तक शिवलिंग के आगे जलते हैं ॥ ६३ ॥ वह दीपदाता उतने हजार युगों तक स्वर्ग में पूजाजाता है व जिन्हों ने शिवालय में कुसुम के तेल से संयुत दीपोको दिया ॥ ६४ ॥ वे आगे की दश और पीछे की दश पुस्तियों के साथ शिवजी के स्थान को जाते है व दीपदान के फलसेही निश्चय से ज्ञानी होजाते है ॥ ६५ ॥ व जिन्हों ने शिवालय में तिल के तेल से संयुत दीपो को दिया वे सैकड़ों भी कुलों से सहितहोकर श्री शिवजी के समीप को प्राप्त होते हैं ॥ ६६ ॥ व जिन्होंने शिवालय मे घृत से भरे दीपों को दीपित किया वे लाखों कुलों से समेत होकर उत्तम स्थान को जाते हैं ॥ ६७ ॥ व जे कपूर और अगर के धूपो से सदाशिवजी को पूज

तैलसंयुक्ता दीपादत्ताःशिवालये ॥ ६४ ॥ दशपूर्वैर्दशावरैस्समेतास्तुशिवालये ॥ ज्ञानिनोहिप्रजायन्ते दीपदानफलेनहि ॥ ६५ ॥ तिलतैलेनसंयुक्ता दीपादत्ताःशिवालये ॥ तेशिवंयान्तिसंयुक्ताः कुलानाञ्चशतैरपि ॥ ६६ ॥ घृताप्तायैःकृतादीपा दीपिताश्चशिवालये ॥ तेयान्तिपरमंस्थानं कुललक्षसमन्विताः ॥ ६७ ॥ कर्पूरागुरुधूपैश्च येयजन्तिसदाशिवम् ॥ आरात्रिकांसकर्पूरां येकुर्वन्तिदिनेदिने ॥ ६८ ॥ तेप्राप्नुवन्तिसुसायुज्यं नात्रकार्याविचारणा ॥ एककालंद्विकालंवा त्रिकालंवाह्यतन्द्रिताः ॥ ६९ ॥ लिङ्गार्चनंप्रकुर्वन्ति तेरुद्रानात्रसंशयः ॥ रुद्राक्षधारणंयेतु कुर्वन्तिशिवपूजनम् ॥ ७० ॥ दानेतपसितीर्थेच पर्वकालेह्यतन्द्रितैः ॥ तेषांयत्सुकृतम्पुण्य मनन्तम्भवतिद्विजाः ॥७१॥ रुद्राक्षाःयेशिवेनोक्तास्तच्छृणुध्वंद्विजोत्तमाः ॥ आरभ्यैकमुखंतावद्यावद्वक्त्राणिषोडश ॥ ७२ ॥ तेषांद्वौचविज्ञेयौ श्रेष्ठौधारयितुन्नरैः ॥ रुद्राक्षाणांपञ्चमुखस्तथैकमुखःस्मृतौ ॥ ७३ ॥ येधारयन्त्येकमुखं रुद्राक्षंनित्यमेवहि ॥ जीवन्मुक्ताश्चविज्ञेयास्तेनरा

ते हैं व जे दिन दिन में कपूर से आरती को करते हैं ॥ ६८ ॥ वे अच्छी सायुज्य मुक्तिको प्राप्त होते है इस मे विचारणा नही करना चाहिये और आलस्य से हीन हुये जे कोई एककाल व दो काल व तीनकाल में भी ॥ ६९ ॥ लिंग की पूजाको अधिकतासे करते है वे रुद्र हैं इस मे संशय नहीं है और जे रुद्राक्ष का धारण व शिवजीका पूजन करते हैं ॥ ७० ॥ हे द्विजो ! उनको वह अनन्त पुण्य होती है जो कि दान तपस्या तीर्थ और पर्वकाल में आलस्य हीन लोगो सेही भलीभांति करीगई है ॥ ७१ ॥ और हे ब्राह्मणोत्तमो ! शिवजीने एक मुख से लगाकर सोलहमुखों तक जिन रुद्राक्षो को कहा है उनको तुम लोग सुनो ॥ ७२ ॥ और उन

रुद्राक्षों में से पञ्चमुख तथा एकमुख ये दो रुद्राक्ष धारण करने के लिये श्रेष्ठ कहे गये हैं व मनुष्यों से विशेषता के साथ जानने योग्य हैं ॥ ७३ ॥ व जे मनुष्य एकमुख रुद्राक्ष को नित्यही धारण करते हैं वे जीवन्मुक्त जानने योग्य हैं इस में संशय नहीं है ॥ ७४ ॥ और जो मनुष्य पञ्चमुख रुद्राक्ष को निरन्तर धारण करता है वह रुद्रलोक को जाता है व रुद्र के साथ आनन्द पाता है ॥ ७५ ॥ व जप तप क्रिया योग स्नान और देवपूजादि जो शुभ कर्म कियाजाताहै वह रुद्राक्ष के धारण से अनन्त फलवाला होता है ॥ ७६ ॥ जो कूकर के कण्ठ में विशेषता से बांधाहुआ भी रुद्राक्ष वर्त्तमान होता है तो जिससे श्वानभी भलीभाति तारा गया है इस में विचार नहीं करना चाहिये ॥ ७७ ॥ वैसेही पापभी रुद्राक्ष के सम्बन्ध से नाश को प्राप्त होजावे है ऐसा जानकर रुद्राक्षों के बन्धन से

नात्रसंशयः ॥ ७४ ॥ योरुद्राक्षंपञ्चमुखं धारयत्यनिशन्नरः ॥ रुद्रलोकञ्चगच्छेत्सरुद्रेणसहमोदते ॥ ७५ ॥ जपस्तपःक्रिया योगस्नानदेवार्चनादिकम् ॥ यत्क्रियतेशुभंकर्म्मह्यनन्तञ्चाक्षधारणात् ॥ ७६ ॥ शुनःकण्ठविबद्धोपि रुद्राक्षोयदिवर्तते ॥ श्वापिसन्तारितोयेन नात्रकार्याविचारणा ॥ ७७ ॥ तथारुद्राक्षसम्बन्धात्पापमपिक्षयंव्रजेत् ॥ एवंज्ञात्वाशुभंकर्म कार्यंरुद्राक्षबन्धनात् ॥ ७८ ॥ त्रिपुण्ड्रधारणंयेषां विभूत्यामन्त्रपूतया ॥ तेरुद्रलोकेरुद्राश्च भविष्यन्तिनसंशयः ॥ ७९ ॥ कपिलायाश्चसंगृह्य गोमयंचान्तरिक्षगम् ॥ शुष्कंकृत्वाथसंगृह्येद्विभूत्यर्थंशिवप्रियाः ॥ ८० ॥ विभूतिश्चसमाख्याता सर्वपापप्रणाशिनी ॥ ललाटेऽङ्गुष्ठरेखाच आदौभाव्याप्रयत्नतः ॥ ८१ ॥ मध्यमांवर्जयित्वातु अङ्गुल्येकद्वयेनवा ॥ एवंत्रिलेखासफला ललाटेयस्यदृश्यते ॥ ८२ ॥ सशैवःशिववज्ज्ञेयो दर्शनात्पापनाशनः ॥ जटाधाराश्चये

शुभकर्म करना चाहिये ॥ ७८ ॥ और मन्त्रोंसे पवित्र विभूति से जिनके त्रिपुण्ड्र का धारण है वे रुद्रलोकमे रुद्र होवेंगे इसमें संशय नही है ॥ ७९ ॥ व हे शिवजी के प्यारे या उनको प्यार करनेवाले ऋषियो ! आकाश में प्राप्त याने ऊपरही रहते हुये कपिलागऊ के गोबर को, भलीभाति ग्रहणकर अनन्तर उसको सुखाकर विभूति के अर्थ संग्रह करे ॥ ८० ॥ ऐसे सब पापविनाशिनी विभूति भलीभांति सबओर से कही गई है और माथ में पहले बड़ेयत्न से अंगुठाकी रेखा हुवाने योग्य है ॥ ८१ ॥ ऐसेही बीचकी अंगुली को बराकर एक अंगुली व दोसे रचित त्रिरेखा जिसके माथ में देखीजाती है ॥ ८२ ॥ वह शैव (शिवभक्त)

शिवजीके समान दर्शन से पापनाशनेवाला जानने योग्य है और जे जन नाम से शैव नहीं है सत्यही शैव है व जटाधारी हैं वे भी शिव के समान है ॥ ८३ ॥ व शिवसम्बन्धी विधान समेत जे जटाओं को थापते है वे शिवजी को प्राप्त होते है इसमें विचार नहीं करना चाहिये ॥ ८४ ॥ जो कि भक्त विशेष से अधिकताके साथ रुद्राक्षों को धारण करे व जिसकरके थोड़े भाव और बड़ेभाव से सदाशिव जी पूजित हैं ॥ ८५ ॥ वह करोड कुलों को भलीभांति उद्धारकर शिवजी के साथ आनन्द पाता है हे द्विजोत्तमो ! उस लिये शिवजी से परतर अन्य कोई नहींहै ॥ ८६ ॥ और शास्त्रमें जो दैव कहाजाता है वह सब शिवकारणवाला है जिस से

शैवाः सत्यञ्चैवनचाख्यया ॥ ८३ ॥ जटायेस्थापयिष्यन्ति शैवेनविधिनायुताः ॥ तेशिवंप्राप्नुवन्तीह नैवकार्याविचारणा ॥ ८४ ॥ रुद्राक्षधारणंकुर्य्यात् प्रोच्चैर्भक्तोविशेषतः ॥ अल्पत्वेनमहत्त्वेन पूजितोवासदाशिवः ॥ ८५ ॥ कुलकोटिंसमुद्धृत्य शिवेनसहमोदते ॥ तस्माच्छिवात्परतरोनास्तिकोपिद्विजोत्तमाः ॥ ८६ ॥ यद्दैवमुच्यतेशास्त्रे तत्सर्वंशिवकारणम् ॥ शिवोहिकर्तालोकानां हर्ताचैवानुमोदिता ॥ ८७ ॥ शिवशक्त्यात्मकंविश्वं जानीध्वंहिद्विजोत्तमाः ॥ शिवइत्यक्षरन्नाम त्रायतेमहतोभयात् ॥ ८८ ॥ तस्माच्छिवंचिन्त्यतां समर्च्यताञ्चद्विजोत्तमाः ॥ ८९ ॥ ऋषयऊचुः ॥ सोमनाथस्यमाहात्म्यं ज्ञातंतवप्रसादतः ॥९०॥ राहोःशिरोभयात्सर्वे रक्षिताःपरमेष्ठिना ॥ सुराश्चेन्द्रादयश्चान्ये तस्मिन्युद्धेसुदारुणे ॥९१॥ अतऊर्द्ध्वंसुरास्सर्वे किमकुर्वंस्तदुच्यताम् ॥ शिवस्यमहिमानंहि श्रुतंतवमुखोद्गतम् ॥९२॥

शिवजीही लोकों के कर्त्ता भर्त्ता और हर्त्ताहैं ॥ ८७ ॥ इससे हे द्विजोत्तमो ! विश्व को शिवशक्त्यात्मक जानो व शिव ऐसा अक्षर (अविनाशी) नाम बड़े डर से रक्षा करताहै ॥ ८८ ॥ हे ब्राह्मणोत्तमो ! शिव जी भलीभांति ध्याये जावें और अच्छे प्रकारसे पूजेजावें ॥ ८९ ॥ ऋषि बोले कि, हमने तुम्हारे प्रसादसे सोमनाथका माहात्म्यजाना ॥ ९० ॥ जिन परमेष्ठी (उत्तम स्थान में टिकनेवाले) ने उस सुदारुण युद्ध में राहु के शिर के डरसे इन्द्रादि सब देव और अन्यजनोंकी रक्षाकी ॥ ९१ ॥ इसके उपरान्त सब देवों ने क्या किया वह कहा जावे क्योंकि तुम्हारे मुख से ऊपर निकली हुई शिवजीकी महिमा सुनी गई है ॥ ९२ ॥

अनन्तर शिवजीका माहात्म्य परमार्थ से कहा जावे ॥९३॥ श्रीलोमशजी बोले कि, जब सब देवलोग दैत्यों से हारगये व शङ्करजी के शरणको प्राप्तहुये फिर शिवजी के प्रणाम करतेभये तब सब सुरोत्तमोंने अकस्मात् युद्धके लिये मन को धारण किया ॥९४॥ वैसेही उससमय लड़ते हुये उत्साह समेत, विशेष बलवान् और उत्तम अस्त्रों से संयुत सब दैत्यों ने देवों से समेत होकर बारबार युद्धको बहुतही किया ॥ ९५ ॥ और ऐसेही जीति के चाही क्रोधसमेत सब देव व दैत्य शेल दुधारा त्रिशूल परिघा और फरसाओं से हिमवान् सम्बन्धी दुस्तर सिंहों की नाई परस्पर लडने लगे ॥ ९६ ॥ तब देवों करके उत्तम अनेक अस्त्रयोगों से मारेहुये दैत्य भूमि से नीचे गिरे ॥९७॥

महिमानंशिवस्याथकथ्यताम्परमार्थतः ॥ ९३ ॥ लोमशउवाच ॥ यदाहिदैत्यैश्चपराजितास्सुराः शम्भुञ्चसर्वेशरणंप्रपन्नाः ॥ शिवंप्रणेमुस्सहसासुरोत्तमा युद्धायसर्वेचमनोदधुस्तदा ॥ ९४ ॥ तथैवदैत्यायुध्यमानास्तदानीमुत्साहयुक्ता विबलाश्चसर्वे ॥ देवैस्समेताश्चपुनःपुनश्च युद्धंप्रचक्रुःपरमास्त्रयुक्ताः ॥ ९५ ॥ एवंहिसर्वेह्यसुरास्सुराश्च शक्त्यृष्टिशूलैः परिघैःपरश्वधैः ॥ जयार्थिनोमर्षयुताःपरस्परं सिंहायथाहैमवतादुरत्ययाः ॥ ९६ ॥ निहन्यमानाह्यसुराःसुरैस्तदा नानास्त्रयोगैःपरमैर्निपेतुः ॥ ९७ ॥ चक्रुस्तेसकलांसर्वे मांसशोणितकर्द्दमाम् ॥ ९८ ॥ ध्वजारथपताकाश्च गजवाजिशिरांसिच ॥ वहन्त्यश्चापगाह्यासन्बह्व्योभीरुभयावहाः ॥९९॥ अगाधाःशोणितोदाश्चोत्तरङ्गाब्रह्मराक्षसान् ॥ तारयन्ति परम्पारं भूतप्रमथराक्षसान् ॥ १०० ॥ शाकिनीडाकिनीरौद्रीयक्षिण्योथसहस्रशः ॥ नानाकेलिषुसंयुक्ताः परस्परमुदान्विताः ॥ १ ॥ एवंसंक्रीडमानास्ते भूतप्रमथराक्षसाः ॥ रणेतस्मिन्महारौद्रे देवासुरसमागमे ॥ २ ॥ बलिनास

और उन सबों ने सारी पृथ्वी को मास व रक्त के कीचवाली किया ॥ ९८ ॥ व ध्वजा रथ पताका और हाथी व घोड़ों के मूडोंको बहती हुई डरभुतों को सबओर से भय प्राप्त करनेवाली बहुती नदिया होगई ॥ ९९ ॥ जे कि अथाह रक्तरूप पानी से पूरी व ऊची लहरोंवाली है और ब्रह्मराक्षस व भूत व प्रमथ तथा राक्षसों को परपारके प्रति तारती हैं ॥ १०० ॥ अनन्तर अनेक भांति के खेलों से संयुत हजारो शाकिनी, डाकिनी, रौद्री और यक्षिणियां आनन्द से समेत हैं ॥ १ ॥ इस भांति देवों और दैत्यो के समागमवाले बड़े रौद्र (घोर) संग्राम में भलीभांति खेलते हुये वे भूत प्रमथ और राक्षस सोहते है ॥ २ ॥ वहा अद्भुतपराक्रमवाले

देवेन्द्रजी ने बलिजी के साथ युद्ध किया और नहीं सहनेवाले विरोचन के पुत्र बलिजीने शक्ति से देवेन्द्र को मारा ॥ ३ ॥ व श्रेष्ठ विक्रम या विशेषता से च-
रण चलानेवाले महेन्द्रजी उस शेलको बचागये और वीर्य्यवान् उन्हीं इन्द्रजीने बडे यत्न के साथ सौ धारोंसे संयुत श्रेष्ठ वज्रसेही दैत्येन्द्र बलिको मारा ॥ ४ ॥ व
बांह को काट लिया उससमय असहनशील व कटीहुई बांहवाले वीर वैरोचनि जी ॥ ५ ॥ गयेहुये प्राणोंवाले होकर सूर्य्य समूह के समान तेजस्वी विमान से
भूमि में गिरे और बलिको गिरा देखकर वृषपर्वा दैत्य क्रोध से संयुत हुआ ॥ ६ ॥ तदनन्तर शत्रुसैन्य के मर्दन करनेवाले इन्द्रजीने बडे वज्र से वृषपर्वा को मार

हदेवेन्द्रो युयुधेद्भुतविक्रमः ॥ शक्त्याजघानदेवेन्द्रं वैरोचनिरमर्षणः ॥ ३ ॥ तांशक्तिंवञ्चयामास महेन्द्रोवरविक्र
मः ॥ जघानसबलिंयत्नाद्दैत्येन्द्रंपरमेणहि ॥ ४ ॥ वज्रेणशतधारेण बाहुंचिच्छेदवीर्यवान् ॥ छिन्नबाहुस्तदावीरो वैरो
चनिरमर्षणः ॥ ५ ॥ गतासुरपतद्भूमौ विमानात्सूर्य्यसम्भवात् ॥ पतितञ्चबलिंदृष्ट्वा वृषपर्वारुषान्वितः ॥ ६ ॥ नि
पात्यवृषपर्वाणमिन्द्रःपरबलार्द्दनः ॥ ततोवज्रेणमहतादानवानवधीद्रणे ॥ ७ ॥ कानिच्छिन्नानिकेषांचिदिन्द्रेणकुपि
तेनच ॥ तथायमेननिहता वायुनावरुणेनच ॥ ८ ॥ कुबेरेणहताश्चान्ये नैर्ऋतेनतथापरे ॥ अग्निनानिहताःकेचिदीशेनै
वविदारिताः ॥ ९ ॥ एवंतुतेतैर्निहताबलीयसो महासुराविक्रमशीलिनश्च ॥ सुरैस्तुसर्वैस्सहलोकपालैः शिवप्रसादा
धिमुखैस्तदानीम् ॥ १० ॥ ततोमहादैत्यवरोदुरात्मा सकालनेमिःपरमास्त्रयुक्तः ॥ ययौतदानींसुरसत्तमानाहन्तुंसदा
क्रूरमतिस्तुदैत्यः ॥ ११ ॥ सिंहारूढोदंशितश्च त्रिशूलेनचसंयुतः ॥ दैत्यानामर्बुदेनैव सिंहारूढेनसंवृतः ॥ १२ ॥

गिराकर संग्राममें अन्य भी दानवों को मारा ॥ ७ ॥ और कुपित हुये इन्द्र जी ने किसी असुरों के शिरों को काटडाला वैसेही कोई यमराज व वायु व वरुण से
मारेगये ॥ ८ ॥ और अन्योंको कुबेर ने तथा अपर असुरों को नैर्ऋत ने मारा ऐसेही कोई अग्नि से मारे व ईशान से बिदारेगये हैं ॥ ९ ॥ और उससमय इस भांति
शिवजीकी प्रसन्नता के सम्मुख, उन सब देवों ने लोकपालों के साथ विक्रम से शोभित व बहुतबलवान् उन बडे असुरों को भलीभांति मारा ॥ १० ॥ तदनन्तर
तबही जो कि कालनेमि दैत्य उत्तम अस्त्रों से संयुत व सदा क्रूरबुद्धि व बड़े दैत्यों में श्रेष्ठ व दुष्टचित्त है वह देवसत्तमों के मारने को गया ॥ ११ ॥ जो कि सिंह पर

सवार व कवच से सजाबजा हुआ व त्रिशूल से संयुत और सिंहों मे चढ़े हुये दश करोड़ दैत्यों सेभी भलीभांति घिरा है ॥ १२ ॥ और बड़े बल व पराक्रमवाले वे सब सिंह दंशित है व उन सिहों में उस कालनेमि के या उन सिंहों के समान महादैत्य चढ़े हैं ॥ १३ ॥ तब आती हुई सिंहों से विभूषित व कालनेमि से संयुत उस सब दैत्यसेना को देखकर इन्द्र अग्रगामीवाले वे देव ॥ १४ ॥ अतुल डरको प्राप्त हुये और ध्यान में परायण हुये याने चिन्तना करने लगे कि आज हम सब क्याकरें व कैसे जीवेंगे यह अद्भुत है ॥ १५ ॥ दशकरोड संख्यावाली यह सेना सिंहों से भलीभांति घिरी है ऐसा उन के विचार करतेही वहा नारद मुनि आये ॥१६॥

तेसिंहादंशितास्सर्वे महाबलपराक्रमाः ॥ तेषुसिंहेषुचारूढा महादैत्याश्चतत्समाः ॥ १३ ॥ आयान्तींदैत्यसेनांतां स र्वांसिंहविभूषिताम् ॥ कालनेमियुतांदृष्ट्वा देवाइन्द्रपुरोगमाः ॥ १४ ॥ भयमाजग्मुरतुलं तदाध्यानपराभवन् ॥ किं कुर्म्मोद्यवयंसर्वे जेष्यामःकथमद्भुतम् ॥ १५ ॥ एतदर्बुदसंख्याकमनीकंसिंहसंवृतम् ॥ एवंविचिन्त्यमानेषु तेष्वागा त्तत्रनारदः ॥ १६ ॥ नारदेनचतत्सर्वं पुरावृत्तंमहत्तरम् ॥ कथितञ्चमहेन्द्राय कालनेमेस्तपोबलम् ॥ १७ ॥ अजेयत्व ञ्चसंग्रामेवरदानबलेनहि ॥ विष्णुंविनाचयेदेवा अशक्ताःरणमण्डले ॥१८॥ जेतुञ्चसततंविष्णुः स्मर्यतांपरमेश्वरः ॥ तमालनीलोवरदः सर्वैर्विजयकांक्षिभिः ॥ १९ ॥ नारदस्यवचःश्रुत्वा तदादेवास्त्वरान्विताः ॥ ध्यानेनमहताविष्णुं त तःपरबलार्दनम् ॥२० ॥ स्मरन्तःपरमात्मानमिदमूचुश्चतंविभुम् ॥ २१ ॥ देवाऊचुः ॥ नमस्तुभ्यंभगवते नमस्तेवि

और नारदजी ने उस के सब आगे के वृत्तान्त को इन्द्रजी के लिये कहा कि कालनेमि के बडाभारी तपस्या का बल है ॥ १७ ॥ व वरदान के बलसेही संग्राम में अजेयत्व है और जे कि देव हैं वे विष्णु जी के विना रणमण्डल में असमर्थ है ॥ १८ ॥ इस से जीतने के लिये तमाल वृक्ष के समान कालेरंग अंग वाले वरदायक परमेश्वर विष्णुजी विजय की इच्छावाले तुम सबों से सुमिरेजावें ॥ १९ ॥ तब नारद के वचन को सुनकर तदनन्तर शीघ्रता समेत सब देव शत्रुबल-विमर्दन विष्णुजीको बड़े ध्यान से ॥ २० ॥ सुमिरते हुये फिर उन समर्थ परमात्मा के प्रति इसको कहते भये ॥ २१ ॥ देव बोले कि हे ऐश्वर्य्यों के स्वामिन्! तुम्हारे

लिये नमस्कार हो हे सब जगत् के उपजानेवाले ! तुम्हारे लिये नमस्कार हो हे लक्ष्मीनिवास ! तुम्हारे लिये नमस्कार हो हे श्रीपते ! तुम्हारे लिये नमस्कार हो॥ २२ ॥ हे देवों के अभयप्रदायक ! आज तुम कालनेमि के भय से पीडित व डर से डरेहुये हम को दैत्य से बचाने के लिये योग्यहो ॥ २३ ॥ उससमय ऐसे ध्याये व भलीभांति सुमिरे व प्रकट हुये व जगतों के अभयदायक श्यामस्वरूप भक्तभयहारी विष्णुजी ॥ २४ ॥ जो कि हाथ में चक्रधारी हैं वह देवों की विशेपता से जीति के लिये आये वैसेही आकाशमें टिकेहुये बडे व्यापक व गरुड़ पर सवार ॥ २५ ॥ व लक्ष्मी जी से समेत व दुर्धर्ष और युद्ध करने के लिये इच्छावाले जिन

श्वमङ्गल ॥ श्रीनिवासनमस्तुभ्यं श्रीपतेतेनमोनमः ॥ २२ ॥ अद्यास्मान्भयभीतांस्त्वं कालनेमिभयार्दितान् ॥ त्रातुमर्हसिदैत्याच्च देवानामभयप्रद ॥ २३ ॥ एवंध्यातःसंस्मृतश्चप्रादुर्भूतोहरिस्तदा ॥ नीलोगरुडमारुह्य जगतामभयप्रदः ॥ २४ ॥ चक्रपाणिस्तथायातो देवानांविजयायच ॥ गगनस्थंमहाविष्णुंगरुडोपरिसंस्थितम् ॥ २५ ॥ श्रियासमेतंदुर्धर्षंयोद्धुकामंददर्शिरे ॥ २६ ॥ तंवैदृष्ट्वाकालनेमिस्तदानीं प्रहस्यप्रोवाचरुषाबलान्वितः ॥ कस्त्वंमहाभागवरेण्यरूपः श्यामोयुवावारणमत्तविक्रमः ॥ २७ ॥ करेगृहीतंनिशितंमहाप्रभञ्च चक्रञ्चकस्मात्कथयस्वमेप्रभो ॥ २८ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ युद्धार्थमितआयातो देवानांकार्यसिद्धये ॥ त्वंस्थिरोभवरेमन्दहतोस्यद्यनसंशयः ॥ २९ ॥ श्रुत्वाभगवतोवाक्यं कालनेमिःप्रतापवान् ॥ उवाचरुषितोभूत्वा भगवन्तमधोक्षजम् ॥ ३० ॥ मूलभूतोहिदेवानां भगवन्युद्धदुर्मदः ॥ युद्धंकुरुमया

को देवों ने देखा ॥ २६ ॥ उन्ही को देखकर तब बहुत हँसकर बल समेत कालनेमि ने कोप के साथ अधिकता से कहा कि हे महाभाग ! स्वीकार करने योग्य रूपवाले व मतवाले हाथी से विक्रमवाले व कालेरंग अंगवाले व युवा तुम कौन हो ॥ २७ ॥ और हे प्रभो ! बहुत तीक्ष्ण व बड़ी दीप्तिवाला यह चक्र हाथमें क्यों गहागया है उसकारण को तुम मुझ से कहो ॥ २८ ॥ श्रीभगवान् विष्णुजी बोले कि, रे मन्द ! देवों के कार्य्य की सिद्धि के लिये युद्धके अर्थ मैं यहा आया हू इससे तुम स्थिर होवो और आज मारेगयेहो इस मे संशय नही है ॥ २९ ॥ ऐसा भगवान् का वचन सुनकर व कुपित होकर प्रतापी कालनेमि ने इन्द्रियो के ज्ञान

से परे भगवान् से कहा ॥ ३० ॥ कि हे ऐश्वर्यसम्पन्न ! युद्ध में दुष्टमदवाले तुम हीं देवों के मूल हुये हो और जो शूरहो तो अब मेरे साथ युद्धको करो ॥ ३१ ॥ तब बड़े प्रकाशवान् विष्णुजी बिहँसकर इस आगे कहेजाते हुये को बोले कि तुम आकाश में टिकनेवालेही होवो और मैं भूमिस्थ होताहूं ॥ ३२ ॥ व हे महाबाहो ! जैसे आकाश में अथवा पृथ्वीतल से अच्छा प्रशस्त व विषमयुद्ध होवे वैसेही तुम करो ॥ ३३ ॥ तब वैसा हो ऐसा मानकर जो कि बड़े प्रभाववाला व अतिशय हिंसक बड़े बलवान् बड़े अनुभाववान् और सिंहोंके ऊपर टिके हुये दश कोटि संख्यक दैत्यों समेत ॥ ३४ ॥ व आनन्द से युक्त महात्मा याने बड़ेमनवाला व असुर समूहोंसे संयुत व दांतों से विकराल मुख और गजेन्द्र कीसी चेष्टावाला है वह आकाश को गया अनन्तर परमउग्र त्रिशूल को लेकर विश्वरूप लक्ष्मीनाथ

सार्द्धं यदिशूरोसिसम्प्रति ॥ ३१ ॥ प्रहस्यभगवान्विष्णुरुवाचेदंमहाप्रभः ॥ गगनस्थोभवत्वंहिमहीस्थोहंभवाम्यहम् ॥ ३२ ॥ सुप्रशस्तञ्चविषमं युद्धञ्चैवयथाभवेत् ॥ तथाकुरुमहाबाहो गगनेवामहीतले ॥ ३३ ॥ तथेतिमत्वाहिमहानुभावो दैत्यैस्समेतोर्बुदसंख्यकैश्च ॥ सिंहोपरिस्थैश्चमहानुभावैर्महाबलैःक्रूरतरैस्तदानीम् ॥ ३४॥ गगनमथजगामानन्दयुक्तोमहात्मा ह्यसुरगणसमेतोविश्वरूपंपरमेशम् ॥ त्रिशिखपरमसुग्रंगृह्यशुण्डीशचेष्टो दशनविकृतवक्त्रोयोद्धुकामोहरिंसः ॥ १३५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेमाहेश्वरखण्डान्तर्गतकेदारखण्डेदेवासुरयुद्धवर्णनंनामत्रयोदशोध्यायः ॥ १३ ॥

लोमशउवाच ॥ ततोयुद्धमतीवासीदसुरैर्विष्णुनासह ॥ तदासिंहास्सपक्षाये दंशिताःपरमाद्भुताः ॥ १ ॥ असुरैरुह्यमानास्ते गरुत्मानंव्यदारयन् ॥ सिंहास्तेदारितास्तेनखण्डिताश्चगरुत्मता ॥ २ ॥ विष्णुनाचतथादैत्यांश्चक्रेण

भक्तभयहारी विष्णु जी के प्रति युद्धके लिये अभिलाषीहुआ ॥ १३५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेमाहेश्वरखण्डान्तर्गतकेदारखण्डेभाषाबन्धेसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचितेदेवासुर युद्धवर्णनंनामत्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । चौदहवें अध्याय में विष्णुकृपा सुरजीति । जहँ तहँ गये दुराय द्रुत दानव दैत्य सभीति ॥ श्रीलोमश जी बोले कि तदनन्तर विष्णु जी के साथ दैत्यों का अत्यन्त युद्धहुआ तब जेकि सिंह पक्षों समेत परम अद्भुत और दंशित है ॥ १ ॥ वे असुरों से चलाये हुये, गरुड़ जी को बिदारते भये और गरुड जीने उन

सिंहो को विदारा व खण्डन किया॥ २ ॥ व वैसेही विष्णु जी करके चक्र से मारे व खण्ड किये हुये उन दैत्यों को देखकर प्रतापी कालनेमि ने ॥ ३ ॥ क्रोध से सब ओर आकुल आखोंवाला होकर त्रिशूल से विष्णु जी को मारा और आतेहुये उस त्रिशूल को मुकुन्द (विष्णु) जी ने पकड लिया इस में संशय नहीं है ॥ ४ ॥ व उन्हो ने बायें हाथ से गहेहुये त्रिशूल से बडे बलवान् उस कालनेमि असुर को मारा और उस सेही भलीभांति हनाहुआ मूर्च्छा समेत वह एकाएक गिरपडा॥ ५ ॥ और गिरकर फिर उठकर व आंखों को धीरे से उघाड कर सबके उरपुर के वासी व आगे टिके हुये विष्णु जी को देखकर ॥ ६ ॥ पाई हुई संज्ञावाले बड़े

शकलीकृतान् ॥ हतांस्तानसुरान्दृष्ट्वा कालनेमिःप्रतापवान् ॥ ३ ॥ त्रिशूलेनाहनद्विष्णुं रोषपर्याकुलेक्षणः ॥ तमायान्तञ्चजगृहे मुकुन्दोनात्रसंशयः ॥ ४ ॥ करेणवामेनजघानलीलया तंकालनेमिंह्यसुरंमहाबलम् ॥ तेनैवशूलेनसमाहतोसौ मूर्च्छान्वितोसौसहसापपात ॥ ५ ॥ पतित्वापुनरुत्थाय शनैरुन्मील्यलोचने ॥ पुरतःस्थितमालोक्य विष्णुंसर्वगुहाशयम् ॥ ६ ॥ लब्धसंज्ञोब्रवीद्वाक्यं कालनेमिर्महाबलः ॥ तवयुद्धंनदास्यामि नास्तिलोकेस्पृहामम ॥७॥ येयेचाहतायुद्धे त्वत्तयंलोकमाप्नुयुः ॥ ब्रह्मणोवचनात्सद्यइन्द्रेणसहसंगताः ॥ ८ ॥ भुञ्जन्तेविविधान्भोगान्देववद्विचरन्तिते ॥ इन्द्रेणसहितास्सर्वे संसारेचपतन्त्यथ ॥ ९ ॥ तस्माद्युद्धेनमरणे न कांक्षेक्षणभङ्गुरम् ॥ अन्यजन्मनिमेवीरवैरभावोस्त्वसंशयम् ॥ १० ॥ दातुमर्हसिमेनाथ कैवल्यंकेवलम्परम् ॥ ११ ॥ तएवदैत्यप्रवरानिपातिताः परेणपुंसापरमार्थदे

बलवान् कालनेमि ने वचन को कहा कि मै तुमको युद्ध नहीं दूंगा क्योंकि लोक में मेरी वाञ्छा नहीं है ॥ ७ ॥ और तुमने युद्धमे जिन को मारा है वे अक्षयलोक को प्राप्त होवे हैं व ब्रह्माजी के वचन से शीघ्रही इन्द्रके साथ संगति करनेवाले ॥ ८ ॥ वे सब अनेक भाति के भोगों को भोगते हैं व देवों की नाई विचरते है उस के बाद इन्द्र से सहित हुये वे फिर संसार में गिरते हैं ॥ ९ ॥ उस से युद्धसे मरने में क्षणभंगुर स्वर्गादि सुख को मैं नहीं चाहता हूं किन्तु हे वीर ! अन्य जन्म मे आप के साथ मेरा निरसन्देह वैरभाव हो ॥ १० ॥ और हे नाथ ! तब तुम मुझको केवल उत्तम कैवल्य मोक्ष देने के लिये योग्यहो ॥ ११ ॥ उससमय परमार्थदा-

यक परमपुरुप विष्णुजी ने देवों को अभय देकर और वैसेही देवों के लिये अमृत को अधिकतासे देकर उन दैत्यप्रवरों कोही निपातन किया ॥ १२ ॥ व जिस से प्रभुता शील समेत विष्णु जी ने शल्य (गासी) रूप बडे बली कालनेमि दैत्य को मारा उससे देवलोग अकंटक हुये ॥ १३ ॥ और कमलनयन भगवान् शीघ्रही अन्तर्धान को प्राप्त होगये व इन्द्रजी ने भी दैत्योंका परम अद्भुत विनाश कर ॥ १४ ॥ पतित नपुंसक रूप अंगभंग डरभुत चित्त व कच्छ और चोटी के छोड़ने वालों की भी वधक्रिया को किया ॥ १५ ॥ क्योंकि इन्द्राणीके पति उदारबुद्धिवाले दुस्तर वह महेन्द्र जी दैत्यों के कालरूप हैं ॥ १६ ॥ उससमय इस भांति

न ॥ दत्त्वाभयंदैवतानांतदानीं तथासुधान्दैवतेभ्यःप्रदत्त्वा ॥ १२ ॥ कालनेमिर्हतोदैत्योदेवाजाताह्यकण्टकाः ॥ शल्यरूपोमहासत्त्वो विष्णुनाप्रभविष्णुना ॥ १३ ॥ तिरोधानङ्गतस्सद्यो भगवान्कमलेक्षणः ॥ इन्द्रोपिकदनंकृत्वा दैत्यानांपरमाद्भुतम् ॥ १४ ॥ पतितक्लीबरूपाणां भग्नानांभीतचेतसाम् ॥ मुक्तकच्छशिखानाञ्च चक्रेचैववधक्रियाम् ॥ १५ ॥ अर्थशास्त्रपरोभूत्वा महेन्द्रोदुरतिक्रमः ॥ दैत्यानांकालरूपोसौ शचीपतिरुदारधीः ॥ १६ ॥ एवंनिहन्यमानानामसुराणांशचीपतेः ॥ निवारणार्थंभगवानागतोनारदस्तदा ॥ १७॥ नारदउवाच ॥ युद्धेहताश्चयेवीराह्यसुराणाञ्चमण्डले ॥ तेषामनुकथंकर्त्ता भीतानाञ्चविहिंसनम् ॥ १८ ॥ येभीताश्चप्रपन्नाश्च घ्नन्तितान्येमदोद्धताः ॥ ब्रह्मघ्नास्तेपि विज्ञेया महापातकसंयुताः ॥ १९ ॥ तस्मात्त्वयानकर्तव्यो मनसापिविहिंसनम् ॥ एवमुक्तस्तदाशक्रो नारदेनमहात्मना।।२०॥सुरसेनान्वितःसद्य आगतोहित्रिविष्टपम् ॥ तदासर्वेसुरगणाःप्रहृष्टाश्चपरस्परम्॥२१॥बभूवुर्मुदितास्सर्वे य

असुरों के मारे जातेही शचीपति इन्द्र के निवारण करने के अर्थ भगवान् नारदजी आये ॥ १७ ॥ श्रीनारदजी बोले कि असुरों के मण्डल में जे वीर युद्ध में मारे गये हैं उन के पीछे तुम कैसे डरभुतों की विशेष हिंसा के करनेवाले हो ॥ १८ ॥ और जे कि मदोद्धत लोग डरेहुये व शरणागतों को मारते हैं वे महापातक से संयुत व ब्राह्मणघातक जानने योग्य हैं ॥ १९ ॥ इससे तुमको मन से भी इनकी विशेष हिंसा नहीं करनी चाहिये इसभांति महात्मा नारदजी से कहे हुये इन्द्र जी उस समय ॥ २० ॥ देवों की सेना समेत होकर स्वर्ग को शीघ्रही आये तब सब देवसमूह आपस मे अधिक आनन्दित थे ॥ २१ ॥ व सब यक्ष

गन्धर्व और किन्नर भी आनन्दित हुये और ऐसेही उससमय देवर्षिश्रेष्ठों तथा ब्रह्मर्षिप्रवरों से ॥ २२ ॥ अमरावती पुरी में शची के साथ इन्द्र जी अभिषेकित
हुये व जब शङ्कर जी के प्रसाद से इन्द्र जी विजय को प्राप्तभये ॥ २३ ॥ तब देव लोक में बडाभारी महोत्सव हुआ व हे ब्राह्मणो ! शङ्ख व डफ व मृदंग व मुर-
चंग ॥ २४ ॥ व नगारा व नगरियां तथा डंका बाजे और ऐसेही उससमय गायक गन्धर्व किन्नर व अप्सराओं के समूह ॥ २५ ॥ व सिद्ध चारण और गुह्यकों ने
गाया नाचा व स्तुति किया जब ऐसे देवेश्वर इन्द्र जी विजय को प्राप्त हुये ॥ २६ ॥ तब देवों से मारे व गये प्राणोंवाले, महात्मा बलि आदि वेही ये दैत्य

त्त्गन्धर्वकिन्नराः ॥ देवर्षिप्रमुखैश्चैव ब्रह्मर्षिप्रमुखैस्तथा ॥ २२ ॥ सएवेन्द्रोऽमरावत्यां सहशच्याभिषेकितः ॥ शक्रो
पिविजयम्प्राप्तः प्रसादाच्छङ्करस्यच ॥ २३ ॥ तदामहोत्सवोविप्रा देवलोकेमहानभूत् ॥ शङ्खाश्चपटहाश्चैव मृदङ्गाःमुर
जानिच ॥ २४ ॥ तथानकाश्चभेर्यश्च नेदुर्दुन्दुभयस्तदा ॥ गायकाश्चैवगन्धर्वाः किन्नराश्चाप्सरोगणाः ॥ २५ ॥ ननृतु
र्जगुस्तुष्टुवुश्च सिद्धचारणगुह्यकाः ॥ एवंविजयमापन्नः शक्रोदेवेश्वरोयदा ॥ २६ ॥ देवैर्हतास्तदादैत्याःपतितास्तेमही
तले ॥ गतासवोमहात्मानो बलिप्रमुखतोह्यमी ॥ २७ ॥ तपस्तप्तम्पुराविप्रो भार्गवोमानसोत्तरम् ॥ गतःशिष्यैःपरिवृ
तस्तस्माद्युद्धेनबुद्धिमान् ॥ अवशेषाश्चयेदैत्यास्तेगताभार्गवम्प्रति ॥ २८ ॥ कथितंवैमहद्वृत्तमसुराणांक्षयावह
म् ॥ निशम्यमन्युनाविष्टोह्यागतोभृगुनन्दनः ॥ २९ ॥ शिष्यैःपरिवृतोभूत्वा मृतांस्तानसुरानपि ॥ विद्यायामृतसञ्जी
व्यापतितान्समजीवयत् ॥ ३० ॥ निद्रापायगतायद्वदुत्थितास्तेतदासुराः ॥ उत्थितस्सबलिःप्राह भार्गवंह्यमितद्युति

पृथ्वीतल मे गिरेपड़े थे ॥ २७ ॥ व जिससे शिष्यों से सब ओर घिरेहुये बुद्धिमान् ब्राह्मण शुक्राचार्य्य जी तपस्या को तपने (करने) के लिये पहलेही मानसोत्तर
को गये थे इस से वह उस युद्धमें न थे और जे कि दैत्य संग्राम मे मरने से बचे वे भृगुवंशोत्पन्न श्रीशुक्राचार्य्य जी के प्रति गये ॥ २८ ॥ व उनसे कहेहुयेही
असुरों के विनाशकारी बड़ेभारी वृत्तान्त को सुनकर क्रोध से व्याप्त (भरे) भृगुनन्दन जी आये ॥ २९ ॥ और शिष्यों से सबओर घिरेहुये होकर उन्होने मरेपड़े
हुये उन असुरों को भी अमृतसञ्जीवनी विद्यासे जिला दिया ॥ ३० ॥ तब जैसे निद्रा के अन्त को प्राप्त हुये लोग जगते हैं वैसेही वे असुर उठे और उठे हुये

उन बलि ने ही अमितदीप्तिवाले शुक्राचार्य्य के प्रति अधिकता से कहा ॥ ३१ ॥ कि आज ऐसे जीने से क्या है मेरा कुछ प्रयोजन नहीं है क्योंकि जैसे नष्टपुरुष (नपुंसक) हो वैसे मैं देवेन्द्र से संग्राम मे गिरायागया हूं ॥ ३२ ॥ ऐसे बलि से कहेहुये वचन को सुनकर शुक्राचार्य्य जी ने वचन को कहा कि जे जाननेवाले मनस्वी लोग संग्राम मे गिरते हैं वे भी शूर है ॥ ३३ ॥ और जो कि शस्त्रसे मारे हुये शीघ्रही मरते है वे स्वर्ग को जाते है इस में सन्देह नहीं है ऐसा वेदो का आयसु है ॥ ३४ ॥ इसभांति भृगुनन्दन ने बलि को समझाया व दैत्यों की सिद्धि के देनेवाली अनेकप्रकार की तपस्या को तपा (किया) ॥ ३५ ॥ वैसेही शुक्राचार्य्य से प्रेरित सब दैत्य चलेगये और बलि आदि सबलोग पाताल में सुख से निश्चयकर बसे॥ ३६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेमाहेश्वरखण्डान्तर्गतकेदारखण्डेभापा

म् ॥ ३१ ॥ जीवितेनकिमद्यैव ममनास्तिप्रयोजनम् ॥ पातितस्त्रिदशेन्द्रेण यथाकापुरुषस्तथा ॥ ३२ ॥ बलिनोक्तंव चःश्रुत्वा शुक्रोवचनमब्रवीत् ॥ मनस्विनोपितेशूराः पतन्तिसमरेबुधाः ॥ ३३ ॥ येशस्त्रेणहताःसद्यो म्रियमाणाव्रज न्तिवै ॥ त्रिविष्टपन्नसन्देह इतिवेदानुशासनम् ॥ ३४ ॥ एवमाश्वासयामास बलिनंभृगुनन्दनः ॥ तपस्ततापविविधं दैत्यानांसिद्धिदायकम् ॥३५॥ तथादैत्यागतास्सर्वे भृगुणाचप्रणोदिताः ॥ पातालमवसन्सर्वे बलिमुख्याःसुखेनवै ॥३६॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेमाहेश्वरखण्डान्तर्गतकेदारखण्डेशैवशास्त्रेदेवेन्द्रविजयोनामचतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ * ॥

ऋषिरुवाच॥ राज्यंप्राप्तोहिदेवेन्द्रः कथंवैसगुरुंविना ॥ गुरोरवज्ञयाजातो राज्यभ्रंशोहितस्यतत् ॥ १ ॥ केनप्रणो दितश्चेन्द्रो बभूवचिरमासने ॥ तत्सर्वंकथयाशुत्वं परंकौतूहलंहिनः ॥ २ ॥ लोमशउवाच ॥ गुरुणापिविनाराज्यं कृत

बन्धेसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचितेदेवेन्द्रविजयोनामचतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

दो० । पन्द्रहवे अध्याय में इन्द्र कियो द्विज घात । तब इन्द्रासन पाय पुनि नहुप ययाति प्रपात ॥ शौनकादि ऋषि बोले कि वह देवेन्द्र जी गुरु के विना कैसे निश्चयसे राज्य को प्राप्तहुये क्योकि उससमय गुरुके अनादर सेही उनका राज्य से पतन हुआ था ॥ १ ॥ और किससे प्रेरित इन्द्र जी बहुत कालतक राज्यसिंहासन में स्थित हुये उस सब को तुम शीघ्रही कहो यह हमको बड़ा कुतूहल (खेल या आश्चर्य्य) है ॥ २ ॥ श्रीलोमशजी बोले कि जब गुरुके विनाभी उन इन्द्रने राज्यको

किया तब अनन्तर विश्वरूप जी इन्द्र के आचार्य्य हुये ॥ ३ ॥ वह तीनमस्तकोंवाले विश्वरूप जी उस यज्ञ और पूजन में देव दैत्य तथा मनुष्यों को भी दानों से
इन्द्र के प्रत्यक्षही तृप्त करते थे ॥ ४ ॥ हे ब्राह्मणो ! वह अग्रणी आचार्य्य प्रतिदिन देवों को आह्वान शब्द समेत देते अनन्तर दैत्योंको चुपचाप देते और मनुष्यों
को मध्यपाठ से देते थे (है) ॥ ५ ॥ एक समय जब वह बडाई और छुटाई से सूचित हुये तब नहीं लखे जाते याने छिपेहुये महेन्द्र ने उनके करने के इच्छित
को जाना ॥ ६ ॥ कि अन्यों का फलप्रदायक यह हमारा पुरोहित दैत्यों की कार्य्य की सिद्धि के लिये यज्ञभाग भेंट को अधिकतासे देता है ॥ ७ ॥ उससमय ऐसा

वान्सशचीपतिः ॥ विश्वरूपोथशक्रस्य याजकश्चाभवत्तदा ॥ ३ ॥ तस्मिन्यज्ञेचदानैश्च पूजनेचासुरान्सुरान् ॥ म
नुष्यांश्चैवत्रिशिरा अपरोक्षंशचीपतेः ॥ ४ ॥ देवान्ददातिसाक्रोशं दैत्यांस्तूष्णीमथोददेत् ॥ मनुष्यान्मध्यपाठेन प्रत्य
हंसोग्रणीर्द्विजाः ॥ ५ ॥ एकदातुमहेन्द्रेण सूचितोगुरुलाघवात् ॥ अलक्ष्यमाणेनतदा ज्ञातंतस्यचिकीर्षितम् ॥ ६ ॥
दैत्यानांकार्यसिद्ध्यर्थमवदानंप्रयच्छति ॥ असौपुरोहितोस्माकं परेषाञ्चफलप्रदः ॥ ७ ॥ इति मत्वातदाशक्रो वज्रे
णशतपर्वणा ॥ चिच्छेदतच्छिरांस्येव तत्क्षणादभवद्वधः ॥ ८ ॥ येनाकरोत्सोमपानं पक्षिणश्चकपिञ्जलाः ॥ त
तोन्येनसुरापानं कलविङ्काभवन्मुखात् ॥ ९ ॥ अन्यान्नादादजायन्त तित्तिराविश्वरूपिणः ॥ एवंहतोविश्वरूपःशक्रे
णमदभागिना ॥ १० ॥ ब्रह्महत्यासुरापानं स्तेयंगुर्वासनागमः ॥ इत्येषामप्यघवतामिदमेवचनिष्कृतिः ॥
११ ॥ नामव्याहरणंविष्णोर्यतस्तद्विषयामतिः ॥ त्रिशिराधूम्रवर्णाच शक्रंग्रस्तुमुपाययौ ॥ १२ ॥ ततोभयेनमहता

मानकर इन्द्र ने सौ गाठोंवाले वज्रसे उन विश्वरूप के मस्तकों कोही काटलिया और उस क्षणमेंही वधहुआ ॥ ८ ॥ तदनन्तर जिस मुख से वह सोमपानको करता
था उस से कपिंजल पक्षीहुये और जिस अन्यमुख से मद्यपान को करता था उस मुख से कलविङ्क हुये ॥ ९ ॥ व विश्वरूप के अन्य अन्न खानेवाले मुख से तित्तिर
उत्पन्न होगये इस भांति गर्वसेवी इन्द्र ने विश्वरूप को मारा ॥ १० ॥ ब्रह्महत्या मद्यपीना चोरी और गुरु के आसन में बैठना इत्यादि इन पापियोंका यहही उद्धार
प्रायश्चित्त है ॥ ११ ॥ कि विष्णुजीके नामों का उच्चारण करना याने जपना जिस से उन भगवान् को विषय करनेवाली बुद्धि होती है और तीनशिरोंवाली काली

धूम्रवर्ण ब्रह्महत्या इन्द्रको ग्रसने के लिये समीप में आई ॥ १२ ॥ तदनन्तर वह बड़े डरसे भगने में परायण हुये और भगेजाते हुये उन इन्द्रको देखकर डर को सबओर से प्राप्त करनेवाली वह पीछे से गई ॥ १३ ॥ देह से हुई पछाहीं की नाईं दौड़ते के पीछे दौड़ती टिकेहुये के पीछे टिक जाती है और इन्द्र को सब ओर से घेरने के लिये ॥ १४ ॥ जबतक अचानक आती है तबतक हे ब्राह्मणो ! इन्द्र जी बहुतकाल के गये हुये की नाईं पानी में शीघ्रता से यथावत् डूब गये ॥ १५ ॥ और इसप्रकार दुःख से बसते हुये उन इन्द्र के दिव्य सौ वर्ष वैसेही दोसौ वर्ष पूरे भये ॥ १६ ॥ तब स्वर्गपृष्ठ में भयदायक अराजक याने राजाके विना उत्पातहुआ

पलायनपरोभवत् ॥ पलायमानंतंदृष्ट्वा अनुयाताभयावहा ॥१३॥ अनुधावतिधावन्तं तिष्ठन्तमनुतिष्ठति ॥ अङ्गभूता यथाछाया शक्रस्यपरिवेष्टितुम् ॥ १४ ॥ आयातिसहसातावदिन्द्रोप्यप्सुनिमज्जितः ॥ शीघ्रत्वेनयथाविप्राश्चिरंत मगतोयथा ॥ १५ ॥ एवंदिव्यशतंपूर्णं वर्षाणाञ्चशचीपतेः ॥ वसतस्तस्यदुःखेन तथाचैवशतद्वयम् ॥ १६ ॥ अराज कंतदाजातं नाकपृष्ठेभयावहम् ॥ तदाचिन्तान्वितादेवा ऋषयोपितपस्विनः ॥ १७ ॥ त्रैलोक्यंवायदाग्रस्तं बभूवचत दाद्विजाः ॥ एकोपिब्रह्महायत्र राष्ट्रेवसतिनिर्भयः ॥ १८ ॥ अकालमरणंतत्र साधूनामुपजायते ॥ राजापापयुतोयस्मि न्राष्ट्रेवसतितत्रवै ॥ १९ ॥ दुर्भिक्षञ्चैवमरणं तथैवोपद्रवाविपत् ॥ भवन्तिबहवोमार्यःप्रजानांनाशहेतवे ॥ २० ॥ तस्मा द्राजाप्रकर्तव्योधर्मश्रद्धापरोनहि ॥ तथाप्रकृतयोराज्ञः शुचित्वेनप्रतिष्ठिताः ॥ २१ ॥ इन्द्रेणचकृतंपापं तेनपापेनवै द्विजाः ॥ पीडितंबहुभिस्तापैःसोपद्रवमभूज्जगत ॥ २२ ॥ शौनकउवाच ॥ अश्वमेधसहस्रेण प्राप्तंराज्यंमहत्तरम् ॥ दे

उससमय देव और तपस्वी ऋषि भी चिन्ता से समेत हुये ॥ १७ ॥ और हे ब्राह्मणो! तब त्रिलोक विपत्ति से ग्रस्तहोगया क्योंकि एक भी ब्रह्मघाती निडर होकर जिस राज्य या देश में बसता है ॥ १८ ॥ वहां साधुओं का अकाल मरना उपजताहै व जिस देशमें पापोंसे संयुत राजा बसता है वहांही ॥ १९ ॥ दुर्भिक्ष व अकालमरना और विपत्ति व बहुत उपद्रव वैसेही महामारियां भी प्रजाओं के नाश के कारण होती हैं ॥ २० ॥ उस से अधर्म की श्रद्धा में परायण राजा नहीं करना चाहिये तथा राजा की प्रकृतियां पवित्रता से प्रतिष्ठित होवे हैं ॥ २१ ॥ और हे ब्राह्मणो ! इन्द्र ने जिस पाप को किया उस पाप से जगत् उपद्रवों से समेत व बहुते तापों

से पीड़ित हुआ ॥ २२ ॥ शौनकजी बोले कि, इन्द्र ने सौ अश्वमेध यज्ञों से देवों के बड़े भारी राज्य को प्रसिद्ध पाया है उस में विघ्न क्यों अधिकता से होता है ॥
२३ ॥ हे महाभाग, सूतजी ! तुम हमारे प्रति उस सबको यथावत् कहो ॥ २४ ॥ श्रीसूतजी बोले कि, देव, दानव और विशेषता से मनुष्यों का कर्मही सुख व दुःख
का कारणभूत है इस में संशय नहीं है ॥ २५ ॥ और हे द्विजो ! इन्द्र ने बडे अद्‌भुत निन्दित कर्म को किया किन्तु गुरु के अनादर के साथ विश्वरूप का वध
किया ॥ २६ ॥ और गुरु के समान पूजनीय तपस्वी उन गौतम ऋषि की स्त्री को सेवन (भोग) किया उसका फल ॥ २७ ॥ कि जिसकी प्रतिक्रिया (उद्धार)

वानांकिलशक्रेण कस्माद्विघ्नंप्रजायते ॥ २३ ॥ सूतसर्वंमहाभाग यथावत्कथयस्वनः ॥२४॥ सूतउवाच॥देवानांदानवा नाञ्च मनुष्याणांविशेषतः ॥ कर्मैवसुखदुःखानां हेतुभूतन्नसंशयः ॥ २५ ॥ इन्द्रेणचकृतंविप्रा महाश्चर्य्यंजुगुप्सित म् ॥ गुरोरवज्ञयाचैव विश्वरूपवधःकृतः ॥ २६ ॥ गौतमस्यगुरोःपत्नी सेवितातस्यतत्फलम् ॥ २७ ॥ प्राप्तंमहेन्द्रेण चिरं यस्यनास्तिप्रतिक्रिया ॥ येहिदुष्कृतकर्माणो नकुर्वन्तिचनिष्कृतिम् ॥ २८ ॥ तेनस्तोकेनमहता पीडिताहिभ वन्तिते ॥ दुष्कृतोपार्जितस्यार्थं प्रायश्चित्तंतुतत्क्षणात् ॥ २९ ॥ कर्तव्यंविविधंविप्राः सर्वपापोपशान्तये ॥ उपपातकम भ्यस्तं महापातकतांव्रजेत् ॥ ३० ॥ तपःस्वधर्मनिष्ठश्च येकुर्वन्तिसदानराः ॥ प्रातर्मध्याह्नसायाह्ने तेषांपापंविनश्यति ॥ ३१ ॥ प्राप्नुवन्त्युत्तमंलोकं नात्रकार्याविचारणा ॥ तस्मादसौदुराचारः प्राप्तोवैकर्मणःफलम् ॥ ३२ ॥ सम्प्रधा-

नहीं है वह इन्द्र से बहुतही पायागया और दुष्टकर्मवाले जे लोग प्रायश्चित्त को नहीं करते हैं ॥ २८ ॥ वे उस थोड़े व बड़े भी पाप के द्वारा पीडितही होते हैं
इस से उसी क्षण में दुष्ट कर्म से कमाये पाप के अर्थ प्रायश्चित्त ॥ २९ ॥ जो कि बहुतभांति का है वह सब पापों के विनाश के लिये करने योग्य है और हे विप्रो !
अभ्यास किया हुआ उपपापभी महापाप के भाव को प्राप्त होजावे है ॥ ३० ॥ और जे मनुष्य सदैव अपने धर्म में निष्ठ तपस्याको करते हैं उनका सब पाप प्रातः
मध्याह्न और सायाह्न समय में विशेषता से नश जाताहै ॥ ३१ ॥ व वे उत्तमलोक को प्राप्त होते हैं इस में विचारणा नहीं करना चाहिये उस से यह दुष्ट आचारवाले

इन्द्र कर्म के फल को निश्चय से प्राप्त हुये ॥ ३२ ॥ उससमय ऐसा निश्चय कर बटुरे हुये सब लोकपालों ने बृहस्पति के समीप आकर अपना में अधिकतासे टिके हुये सब वृत्तान्त को ॥ ३३ ॥ सावधान होकर इन्द्र के गुरु के प्रति कहा और हे ब्राह्मणो ! देवों से कहे हुये वचन को सुनकर बृहस्पति जी ॥ ३४ ॥ जो कि बुद्धिमान् हैं वह अराजक को भलीभांति देखते हुये चिन्तना करतेभये कि आज क्या काम करना चाहिये व कैसे कल्याण होवेगा ॥ ३५ ॥ ऐसे देव व भक्तियुक्त चित्तवाले ऋषि और लोकों के भी करनेयोग्य व नही करने योग्य उस सब को मनसे ही विचारकर ॥ ३६ ॥ बड़े यशस्वी वेगवान् बृहस्पति जी देवों के साथ

र्य्यंतदासर्वे लोकपालास्समन्विताः ॥ बृहस्पतिमुपागम्य सर्वमात्मनिधिष्ठितम् ॥ ३३ ॥ कथयामासुरव्यग्रा इन्द्रस्य चगुरुम्प्रति ॥ देवैरुक्तंवचोविप्रा निशम्यचबृहस्पतिः ॥ ३४ ॥ अराजकन्तुसम्पश्यंश्चिन्तयामासबुद्धिमान् ॥ किङ्का र्य्यंचाद्यकर्तव्यं कथंश्रेयोभविष्यति ॥ ३५ ॥ देवानाञ्चापिलोकानां ऋषीणांभावितात्मनाम् ॥ मनसैवचतत्सर्वं का र्य्याकार्य्यंविचार्य्यच ॥ ३६ ॥ जगामशक्रंत्वरितो देवैस्सहमहायशाः ॥ प्राप्तोजलाशयंतञ्च यत्रास्तेहिपुरन्दरः ॥ ३७ ॥ यस्यतीरेस्थिताहत्या चण्डालीवभयावहा ॥ तत्रोपविष्टास्तेसर्वे देवाऋषिगणान्विताः ॥ ३८ ॥ आह्वानंचकृतंतस्य शक्रस्यगुरुणास्वयम् ॥ समुत्थितस्ततःशक्रो ददर्शस्वगुरुन्तदा ॥ ३९ ॥ बाष्पपूरितवक्त्रोहि तंबृहस्पतिमग्रतः ॥ प्र णिपत्यचतत्रत्यानाशुसर्वांतपस्विनः ॥ ४० ॥ प्राहदीनमुखोभूत्वा मनसासंविमृश्यच ॥ स्वयमेवकृतंपूर्वमज्ञानल क्षणंमहत ॥ ४१ ॥ अधुनैवमयाकार्य्यं किङ्कर्तव्यंवदप्रभो ॥ प्रहस्योवाचभगवान् बृहस्पतिरुदारधीः ॥ ४२ ॥ पुरात्व

इन्द्र के समीप को गये और जहां इन्द्रजी टिके हैं उस जलाशय को प्राप्त हुये ॥ ३७ ॥ कि जिस के तीर में चाण्डाली की नाई डर को प्राप्त करनेवाली ब्रह्महत्या टिकीहै वहां ऋषिसमूहोंसे समेत वे सब देव बैठगये ॥३८॥ और गुरु (बृहस्पति) जीने आपही इन्द्रका आह्वान किया तब भलीभांति उठे हुये इन्द्रने अपने गुरु को देखा ॥ ३९ ॥ और आंसुओं से पूरित मुखवाले होकर आगे टिकेहुये उन बृहस्पति व वहां के सब तपस्वियों को शीघ्रही प्रणामकर ॥ ४० ॥ व दीनमुख होकर फिर अपना सेही कियेहुये अज्ञान लक्षणवाले बडे भारी पूर्व कर्मको मन से भलीभांति विचारकर अधिकता से कहा ॥ ४१ ॥ कि हे प्रभो ! इस समय मेंही मुझ को क्या

कार्य्य करना चाहिये उसको आप कहो तब ऐश्वर्य्यसम्पन्न उदारबुद्धिवाले बृहस्पति जी बिहँसकर बोले ॥ ४२ ॥ कि हे इन्द्र! आगे तुमने जिस कर्मको किया उस कर्म का यह फल तुमको उद्देशकर हुआ और उसका भोगनेसेही विनाशहै॥ ४३ ॥ जिस से स्मृतियों याने धर्मशास्त्रों के कर्त्ताओं ने ब्रह्महत्या के प्रायश्चित्त को नही देखा है क्योंकि जो पाप अज्ञान सेही हुआ है उसका उद्धार है ॥ ४४ ॥ व धर्मशास्त्र के पण्डितों से कहागया है और कामना समेत पापका प्रायश्चित्त नहीं है किन्तु जिस सकाम और जानतेहुये निष्काम ने भी पाप को किया ॥४५॥ उनके लिये ब्राह्मणों के विभेद से प्रायश्चित्त कियाजाता है कि इच्छा से पापाधि-

याकृतंयच्च तस्येदंकर्मणःफलम् ॥ त्वामुद्दिश्यचभोइन्द्र तद्भोगादेवसंक्षयः ॥ ४३ ॥ प्रायश्चित्तंहिहत्यायां नदृष्टंस्मृतिकारिभिः ॥ अज्ञानतोहियज्जातं पापंतस्यप्रतिक्रिया ॥४४ ॥ कथिताधर्मशास्त्रज्ञैः सकामस्यनविद्यते ॥ सकामेन कृतंपापमकामेनैवजानता ॥ ४५ ॥ ताभ्यांविप्रप्रभेदेन प्रायश्चित्तंविधीयते ॥ मरणान्तोविधिःकार्यः कामेनाधिकृतेन हि ॥ ४६ ॥ अज्ञानजनितेपापे प्रायश्चित्तंविधीयते ॥ तस्मात्त्वयाकृतेस्यान्न स्वयमेवहतोद्विजः ॥ ४७ ॥ पुरोहितोहिविद्वांस्तु तस्मान्नास्तिप्रतिक्रिया ॥ यावन्मरणमभ्येति तावदप्सुस्थिरोभव ॥४८॥ शताश्वमेधसंज्ञश्च यत्फलंतवदुर्मते॥ तन्नष्टंतत्क्षणादेव घातितोहिद्विजोयदा ॥ ४९ ॥ सच्छिद्रेहघटेतोयन्नतिष्ठतियथाल्पवपि ॥ तथैवसुकृतंपापे हीयतेचप्रतिक्षणम् ॥ ५० ॥ एतच्छ्रुत्वावचस्तस्य शक्रोवचनमब्रवीत् ॥ कुकर्मणामदीयेन प्राप्तमित्थन्नसंशयः ॥ ५१ ॥ अमरा

कारी को मरणांत विधि करना चाहिये ॥ ४६ ॥ जिससे अज्ञान से उपजे हुये पाप में प्रायश्चित्त कियाजाता है उस से तुम्हारे किये में वह नहीं होवे है क्यों कि तुम ने अपना सेही उस ब्राह्मण को मारा है ॥ ४७ ॥ जो कि पण्डित और पुरोहितभी था उसलिये उद्धार का उपाय नहीं है जबतक मरना सामने से आता है तबतक तुम जलों में स्थिर होवो ॥ ४८ ॥ और हे दुर्बुद्धे ! जो कि तुम्हारा सौ अश्वमेध संज्ञक यज्ञों का फल है वह उसी क्षण में नष्ट होगया कि जबही तुमने ब्राह्मण को वध किया है ॥ ४९ ॥ प्रसिद्ध है कि जैसे थोड़ा भी पानी छेद समेत घड़े में नहीं टिकताहै वैसेही पुण्यभी पाप में प्रतिक्षण घटती है ॥ ५० ॥ उनके इस वचनको

सुनकर इन्द्र ने वचनको कहा कि, मेरे कुकर्मसे ऐसा प्राप्तहुआ इसमें संशय नहीं है ॥ ५१ ॥ परन्तु हे बृहस्पते ! लोकों या लोगों और देवों की कार्य्य की सिद्धि अर्थ तुम देव व ऋषियोंके साथ अमरावती पुरीको शीघ्रही जावो ॥ ५२ ॥ और हे महाभाग ! जो तुम्हारे मन में रुचता है उसको इन्द्र करो जैसे मरा हो वैसे ब्रह्हत्या से घिराहुआ महान् मैं भी हूं ॥ ५३ ॥ जिससे मैं राग और द्वेष से भलीभांति उठे हुये पाप से सबओर भीगा हूं उस से वेग समेत तुम लोग देवराज को शीघ्रही ॥ ५४ ॥ करो वह प्रसिद्ध मेरा आयसु है और मैं सत्य को प्रतिज्ञाकर कहता हूं उससमय ऐसे कहे हुये बृहस्पति अग्रगामीवाले सब लोगों ने ॥ ५५ ॥ अमरा-

वतीञ्चाशुत्वंगच्छदेवर्षिभिस्सह ॥ लोकानांकार्यसिद्ध्यर्थं देवानाञ्चबृहस्पते ॥ ५२ ॥ इन्द्रंकुरुमहाभाग यस्तेमनसिरोचते ॥ यथामृतस्तथाहंवै ब्रह्महत्यावृतोमहान् ॥ ५३ ॥ रागद्वेषसमुत्थेन पापेनास्मिपरिप्लुतः ॥ तस्मात्त्वरान्वितायूयं देवराजानमाशुवै ॥ ५४ ॥ कुरुध्वंमदनुज्ञासा सत्यम्प्रतिवदामिच ॥ एवमुक्तास्तदासर्वे बृहस्पतिपुरोगमाः ॥ ५५ ॥ एत्यामरावतींतूर्णं पुरन्दरविचेष्टितम् ॥ कथयामासुरव्यग्राःशचीम्प्रतियथातथम् ॥ ५६ ॥ राज्यस्यहेतोःकिङ्कार्य्यं विमृशन्तिपुनःपुनः ॥ एवंविमृश्यमानानां देवानांतत्रनारदः ॥५७॥ यदृच्छयागतस्तत्र देवर्षिरमितद्युतिः ॥ उवाचपूजितोदेवाःकस्माद्यूयंविचेतसः ॥ ५८ ॥ तेनोक्ताःकथयामासुःसर्वं शक्रस्यचेष्टितम् ॥ ५९ ॥ नारदउवाच ॥ श्रुतमस्ति मयापूर्वं यदुक्तंशक्रचेष्टितम् ॥ गतमिन्द्रस्यश्रेष्ठत्वमेनसापरमेणहि ॥ ६० ॥ यूयंदेवाश्चसर्वज्ञास्तपसाविक्रमेणच ॥

वती पुरी को शीघ्रही आकर व सावधान होकर इन्द्राणी के प्रति इन्द्र के कर्मको यथातथ्य से कहा ॥ ५६ ॥ और बारबार विचारते हैं कि राज्यके कारण क्या करना चाहिये उससमय इसभांति देवों के विचारतेही नारदजी ॥ ५७ ॥ अपनी इच्छा से वहां आये जो कि देवों के ऋषि और अमितदीप्तिवाले हैं वह उन से पूजित होकर बोले कि हे देवो ! तुम लोग क्यों विमन हो ॥ ५८ ॥ उनसे कहे हुये उन देवों ने इन्द्र के सब कर्म को कहा ॥ ५९ ॥ श्रीनारदजी बोले कि, आप लोगों ने जो इन्द्र का कर्म कहा वह मुझ से पहलेही सुनाहुआ है व परम पापसेही इन्द्र की श्रेष्ठता गई है ॥ ६० ॥ और हे देवो ! तुम तपस्या व विक्रम से सर्वज्ञहो उस

कि जैसे इन्द्राणी से कहागया है ॥ ८० ॥ वैसाहो ऐसा मानकर काम से मोहित उस राजा नहुष ने क्या अवाह्य प्रशंसा जाता है इस भांति बड़ी बुद्धि से विचार कर ॥ ८१ ॥ अनन्तर विशेष निश्चय को किया कि तपस्वी ब्राह्मण अवाह्य होते हैं याने भार बहने के योग्य नहीं हैं इस से मैं उन से अपना को बहवाता (ले चलाता) हूं ॥ ८२ ॥ और उस इन्द्राणी की प्राप्ति के अर्थ दो द्विजेन्द्रों से अपना को लेचलाऊं ऐसा मेरे हृदय में बर्तता है फिर काम से मोहित राजा ने उन ब्राह्मणों को शिबिका (पालकी) दिया ॥ ८३ ॥ तदनन्तर सावधान होकर उस पालकी में बैठा व सर्प सर्प (चलो चलो) ऐसे वचन सेही ब्राह्मणसे गिराया

नहुषःकाममोहितः ॥ विमृश्यपरयाबुद्ध्येत्यवाह्यंकिम्प्रशस्यते ॥ ८१ ॥ अथोविनिश्चयंचक्रे ब्राह्मणाश्चतपस्विनः ॥ अवाह्याश्चभवन्त्यस्मादात्मानंवाहयाम्यहम् ॥ ८२ ॥ द्वाभ्यांचतस्याःप्राप्त्यर्थमितिमेहृदिवर्त्तते ॥ शिबिकाञ्चददौता भ्यां द्विजाभ्यांकाममोहितः ॥ ८३ ॥ उपविष्टस्ततस्तस्यां शिबिकायांसमाहितः ॥ सर्पसर्पेतिवचनात्पातितोब्राह्मणेनंहि ॥ ८४ ॥ तत्रचाजगरोभूत्वा विप्रशापाद्दुरत्ययात् ॥ उत्तमञ्चपदम्प्राप्य तिर्यग्योनिगतोभवत ॥ ८५ ॥ यथाहिनहुषोजातस्तथासर्वेपिताद्दशः ॥ प्राप्नुवन्तिमदंयेवै तेषाञ्चविपदम्भवेत् ॥ ८६ ॥ येमदान्धादुराचाराः कामुकाविषयात्मकाः ॥ द्विजापवादसम्भूताः पतन्तिनरकेऽशुचौ ॥ ८७ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन पदम्प्राप्यविचक्षणैः ॥ अप्रमत्तैर्नरैर्भाव्यमिहामुत्रचलब्धये ॥ ८८ ॥ तथैवनहुषस्सर्पो जातोरण्येमहाभये ॥ एवंचैवाभवत्तत्र देवलोकेह्यराजकम् ॥ ८९ ॥

गया ॥ ८४ ॥ और वहां उत्तम पदको प्राप्त होकर भी दुस्तर द्विज शापसे अजगर होकर तिर्य्यग्योनिमें गत हुआ ॥ ८५ ॥ और जैसेही नहुष होगये वैसेही उसके समान सबभी जे जन गर्व को प्राप्त होते हैं उनको विपत्ति होवे है ॥ ८६ ॥ जे कि मद से अन्धे दुराचारी विषयों में मनवाले कामी और ब्राह्मणों के अपवाद से भरे हैं वे अपवित्र नरक में पड़ते हैं ॥ ८७ ॥ उसलिये बड़े यत्न से उत्तम पद को पाकर इस और उसलोक में भी सुखलाभ के लिये बुद्धिमान् मनुष्यों को अप्रमत्त (अहङ्कार से हीन) होना चाहिये ॥ ८८ ॥ वैसेही बड़े भयानक वन में नहुष नरेश सर्प हुये और ऐसेही देवलोक में फिर भी अराजक होगया ॥ ८९ ॥

तबही वे सब देव विस्मय से व्याप्त (भरे) मनवाले हुये कि आश्चर्य्य और खेद है कि इस राजा ने प्रसिद्धता से बड़ाही कष्टपाया ॥ ९० ॥ क्योंकि इस दुरात्मा का मनुष्य लोक नहीं व स्वर्ग भी नहीं भया और सन्तोंके अनादर से पुण्य या सुकर्म भी शीघ्रही जल गया ॥ ९१ ॥ हे महामुने ! लोक में प्रसिद्ध अन्य यज्ञकर्ता फिर कहा जावे तब बड़े तेजस्वी मुनिसत्तम नारद जी बोले ॥ ९२ ॥ कि हे बड़ेभाग्यवाले देवो ! शीघ्रता समेत तुम लोग राजा ययाति को ले आवो और वे देवों के दूत ययाति को तुरन्तही ले आये ॥ ९३ ॥ उससमय विमान में चढ़कर देवों के गणों से समेत महात्मा नरेश स्वर्ग को प्राप्त हुये वैसेही देवश्रेष्ठ उरग किन्नर यक्ष और सिद्धों

तदैवतेसुरास्सर्वे विस्मयाविष्टचेतसः ॥ अहोवतमहत्कष्टं प्राप्तंराज्ञाह्यनेनवै ॥ ९० ॥ नमर्त्यलोकोनस्वर्गो जातोह्यस्यदुरात्मनः ॥ सतामवज्ञयासद्यस्सुकृतंदग्धमेवच ॥ ९१ ॥ याज्ञिकोह्यपरोलोके कथ्यताञ्चमहामुने ॥ तदोवाच महातेजा नारदोमुनिसत्तमः ॥ ९२ ॥ ययातिञ्चमहाभागा आनयध्वंत्वरान्विताः ॥ देवदूताश्चतेतूर्णं ययातिंनृपमानयन् ॥ ९३ ॥ विमानमारुह्यनृपोमहात्मा ययौदिवंदेवगणैस्समेतः ॥ पुरस्कृतोदेववरैस्तदानीं तथोरगैःकिन्नरयक्षसिद्धैः ॥ ९४ ॥ आयातस्सोमरावत्यां त्रिदशैरपितोषितः ॥ इन्द्रासनेचोपविश्य बभौचैवसमत्सरम् ॥ ९५ ॥ नारदेनैवचोक्तस्तु त्वंराजायाज्ञिकोह्यसि ॥ सतामवज्ञयाप्राप्तो नहुषोदन्दशूकताम् ॥९६॥ येप्राप्नुवन्तिधर्मिष्ठा देवेनपरमम्पदम् ॥ मदनेनैवमूढास्ते नपश्यन्तिशुभाशुभम् ॥ ९७ ॥ पतन्तिनरकेघोरे ततोवैनात्रसंशयः ॥ ९८ ॥ ययातिरुवाच ॥ यत्कृतंमयितत्पुण्यं तेषांविघ्नंप्रजायते ॥ अल्पकत्वेनदेवर्षे विद्धिसर्वम्परंमम ॥ ९९ ॥ महादानानिदत्तानि चान्नदान

से आगे किये गये ॥ ९४ ॥ ऐसे अमरावती पुरी को आये व देवों से भी सन्तोषित हुये वह इन्द्रासन में बैठकर मत्सरसमेत शोभित भये ॥ ९५ ॥ और नारद मुनि से ऐसा कहेगये कि तुम यज्ञकर्त्ता राजाही हो व नहुष नरेश सन्तों के अपमान से सर्पभाव को प्राप्तहुये हैं ॥ ९६ ॥ जे धर्मिष्ठ दैव से श्रेष्ठ पद (स्थान) को पाते हैं वे काम या मद से मूढ़होकर शुभ और अशुभ को नहीं देखते हैं ॥ ९७ ॥ उस मे घोरनरक में निश्चय से गिरते हैं इस में संशय नहीं है ॥ ९८ ॥ ययाति बोले कि, हे देवर्षे ! थोड़े भाव से उनका विघ्न अधिकता से होताहै और मैंने जिस को किया है वह पुण्य मुझ में है इस से तुम मेरे सब को श्रेष्ठ जानो ॥ ९९ ॥

और मैंने अन्नदानोंसे संयुत महादान व भूमिदान समेत बहुत से गोदानों कोभी दिया है ॥ १०० ॥ व वैसेही जब पण्डितों ने जिनको निश्चय से उत्तम कहा है तबही ये सब मुझ से समय समय में यथाविधि से दिये गये हैं ॥ १ ॥ व मैंने वाजपेय अतिरात्र ज्योतिष्टोम और राजसूयादि यज्ञों से यजन (पूजन) किया है ॥ २ ॥ और देवों के देव जगन्नाथ जी अनेक यज्ञों से पूजे गये हैं व मैंने पूर्वसमय में गालव ऋषि के लिये माधवी को कन्याभाव से दिया है ॥ ३ ॥ और उससमय मुनि ने उसको तुम्हारे लिये स्त्रीभाव से दान किया है व गालव के गुरु बुद्धिमान् विश्वामित्रके अर्थ मैंने बहुतसे दानों को दिया है ॥ ४ ॥ ऐसी हुई अनेकों बड़ीभारी

युतानिच ॥ गोदानानिबहून्येव भूमिदानयुतानिच ॥१००॥ तथैवसर्वाण्यपिउत्तमानिचोक्तानिवैयानिमनीषिभिस्तदा ॥ एतानिदत्तानिमयातदैव कालेचकालेचयथाविधानतः ॥ १ ॥ यज्ञैरिष्टंवाजपेयातिरात्रैर्ज्योतिष्टोमैराजसूयादिभिश्च ॥ २ ॥ देवदेवोजगन्नाथ इष्टोयज्ञैरनेकशः ॥ गालवायपुरादत्ता कन्यात्वेनचमाधवी ॥ ३ ॥ पत्नीत्वेनचतुभ्यंच दत्तासामुनिनातदा ॥ गालवस्यगुरोरर्थे विश्वामित्रस्यधीमतः ॥ ४ ॥ एवंभूतान्यनेकानि सुकृतानिमयापुरा ॥ महान्तिचबहून्येव तानिवक्तुंनपार्यते ॥ ५ ॥ भूयःपृष्टस्सर्वदेवैस्सराजा कृतंसर्वंगुप्तमेवंयथार्थम् ॥ विज्ञातुमिच्छास्तियथार्थतोपि सर्वेवयंश्रोतुकामाययाते ॥ ६ ॥ वचोनिशम्यदेवानां ययातिरमितद्युतिः ॥ कथयामासतत्सर्वं पुण्यंशेषंयथार्थतः ॥ ७ ॥ कथितंसर्वमेतच्च निशेषोथाभवत्तदा ॥ स्वपुण्यकथनेनैव ययातिरपतद्भुवि ॥ ८ ॥ तत्क्षणादेवसर्वेषां सुराणांतत्रपश्यताम् ॥ एवमेवतथाजातमराजकमतन्द्रितम् ॥ ९ ॥ अन्योनदृश्यतेलोके याज्ञिकःकोपितत्रवै ॥

बहुतही जिन पुण्यों को मैंने आगे किया है उनको कहने के लिये नहीं पार पायाजाता है ॥ ५ ॥ और सबदेवों से वह राजा फिर पूंछे गये कि हे ययाते ! ऐसा तुम्हारा कियाहुआ यथार्थ सब सुकर्म गुप्त है उसको विशेषता से जानने के लिये इच्छा है और हम सब यथाप्रयोजन से सुनने के चाही हैं ॥ ६ ॥ देवों के वचन को सुन कर अमितदीप्तिवाले ययाति ने उस सब शेष पुण्यको यथार्थ से कहा ॥ ७ ॥ और जब यह सब सुकृत कहागया अनन्तर अपनी पुण्य के कहने से ययाति निःशेष हुये तब स्वर्ग से भूमि में गिरपड़े ॥ ८ ॥ उस क्षण मेंही सब देवों के देखतेही वहां उनका पतन होगया ऐसेही आलस्यहीन वैसा अराजक फिर हुआ ॥ ९ ॥

और हे द्विजोत्तमो ! सुनाजावे कि वहां इन्द्रासन में अभिषेक के अर्थ अन्य कोई यज्ञकर्त्ता लोक में प्रसिद्धता [illegible] ॥ १० ॥ तदनन्तर सब देव ऋषि
महासर्पेन्द्र गन्धर्व यक्ष खग किन्नर चारण विद्याधर असुरगण व अप्सराओं के समूह और वैसेही मनुष्य भी [illegible] होगये ॥ १११ ॥
इति श्रीस्कन्दपुराणेमाहेश्वरखण्डान्तर्गतकेदारखण्डेभाषाबन्धेसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचितेनहुषययात्योरिन्द्रासनात्पतनंनाम[illegible] ॥ १५ ॥
दो० । सोलहवें अध्याय में इन्द्र पापका बांट । त्यागो देह दधीचि मुनि परहित चित शिव सॉट ॥ श्रीलोमशजी बोले कि, तदनन्तर [illegible]

शक्रासनेभिषेकार्थं श्रूयताञ्चद्विजोत्तमाः ॥ १० ॥ सर्वेसुराश्चऋषयोथमहाफणीन्द्रा गन्धर्व[illegible] ॥
श्च ॥ विद्याधरासुरगणाप्सरसांगणाश्च चिन्तान्विताःसमभवन्मनुजास्तथैव ॥ १११ ॥ इति श्रीस्कन्दपुरा[illegible]
ण्डान्तर्गतकेदारखण्डेशैवशास्त्रेनहुषययात्योरिन्द्रासनात्पतनंनामपञ्चदशोध्यायः ॥ १५ ॥

लोमशउवाच ॥ ततःशचीप्रोवाचतान्वाचंधर्मार्थसंयुताम् ॥ माचिन्तांकुर्वतांसर्वे बृहस्पतिपुरोगमाः ॥ १ ॥ [illegible]
ध्वंसहितास्सर्वे शक्रंद्रष्टुंविचक्षणाः ॥ ब्रह्महत्याभिभूतोसौयत्रास्तेसुरसत्तमः ॥ २ ॥ बह्वहंकरणेनैव विश्वरूपो[illegible]
न्दधीः ॥ निहतस्तुमहेन्द्रेण सर्वैःसोपिनिराकृतः ॥ ३ ॥ तस्मात्सर्वैर्भवद्भिश्च गन्तव्यंयत्रसप्रभुः ॥ अवज्ञाहिकृतापू
र्वं महेन्द्रेणतवानघ ॥ ४ ॥ अवज्ञामात्रलब्धेन त्वयाशप्तःपुरन्दरः ॥ तथैवशापितश्चैव मयासार्द्धमसौसुरैः ॥ ५ ॥ नि
रस्तोपिहितस्मात्त्वमवसानपरोभव ॥ यथामदर्थमानीतौ शक्रेजीवतितावुभौ ॥ ६ ॥ त्वयिजीवतिभोब्रह्मन् भार्यातवक

वचनको कहा कि हे बृहस्पति अग्रगामीवाले देवो ! तुम सब जने चिन्ता को मत करो ॥१॥ और साहित हुये बुद्धिमान् तुम सब लोग इन्द्रको देखनेके लिये वहाजावो जहां
ब्रह्महत्या से हारेहुये वह देवसत्तम बसते हैं ॥ २ ॥ क्योंकि बहुते अहङ्कार सेही मन्दबुद्धिवाले विश्वरूप को महेन्द्र ने मारा वह भी सबों से निकाले गये ॥ ३ ॥
उस से जहा वह स्वामी हैं वहा आप सब लोगों को जाना चाहिये हे अपाप बृहस्पते ! आगे महेन्द्र ने तुम्हारा अनादर किया ॥ ४ ॥ और अपमानमात्र के पाने
वाले तुमने इन्द्र को शाप दिया व जिस से वैसेही शापित हुये वह मेरे साथ देवों से ॥ ५ ॥ त्यागे भी गये हैं उस से तुम शाप के अन्त में परायण होवो और जैसे

इन्द्र के जीवतेही मेरे लिये तुम्हारे द्वारा ये दो जने लाये गये हैं ॥ ६ ॥ वैसेही हे ब्रह्मन्! तुम्हारे जीवतेही तुम्हारी स्त्री अन्यपुरुष को करेगी व लोक में कोई सौभाग्यराज तुम्हारे क्षेत्र में उसको उपजावेगा ॥ ७ ॥ वह पुत्र मेरे शाप से प्रसिद्ध नामवाला होवेगा इस में संशय नहीं है व देवों के साथ तुम शीघ्रही जावो और इन्द्र को लावो विलम्ब मत करो ॥ ८ ॥ जो शीघ्रता समेत तुम नहीं जाते हो तो मैं तुम को शाप देती हूं और इन्द्राणी से कहे हुये वचन को सुनकर देवों के साथ वह बृहस्पति जी चले ॥ ९ ॥ व ब्रह्महत्या से परिपीड़ित इन्द्र के प्रति गयेहुये सब देवों ने तड़ागके तीर को प्राप्तहोकर पुरन्दर को पुकारा ॥ १० ॥

रिष्यति ॥ कोपिसौभाग्यराड्लोके तवक्षेत्रेजनिष्यति ॥ ७ ॥ पुत्रोविख्याततनामास शापान्ममनसंशयः ॥ गच्छशीघ्रंसुरैस्साकं शक्रमानयमाचिरम् ॥ ८ ॥ प्रयासित्वरितोनोचेत्पुनःशापंददामिते ॥ शच्योक्तंतुवचःश्रुत्वा सुरैस्सार्द्धंजगामसः ॥ ९ ॥ पुरन्दरंगतास्सर्वे ब्रह्महत्याभिपीडितम् ॥ सरसस्तीरमासाद्य शक्रन्देवाअवादयन् ॥ १० ॥ दृष्टाःशक्रेणतेसर्वे तदाह्यप्सुस्थितेनवै ॥ उवाचदेवान्देवेशः कस्माद्यूयंसमागताः ॥ ११ ॥ अहंहिपापग्रस्तोस्मि ब्रह्महत्यापरिप्लुतः ॥ अप्सुतिष्ठामिभोदेवा एकाकीतपसान्वितः ॥ १२ ॥ तच्छ्रुत्वावचनंतस्य सर्वेदेवाःशतक्रतोः ॥ ऊचुर्विह्वलिता एवं देवराजानमद्भुतम् ॥ १३ ॥ एतादृशंनवाच्यन्ते परेषामुपकारतः ॥ कृतंत्वयैवयत्कर्म विश्वरूपवधादिकम् ॥ १४ ॥ विश्वकर्मसुतेनैव कृतंयाजनलक्षणम् ॥ येनदेवाःक्षयंयान्ति ऋषयोपिमहाप्रभाः ॥ १५ ॥ तदाकृतस्त्वयादेव

तब जलों मेंही टिके हुये इन्द्र ने उन सबों को देखा और देवेश ने देवों से कहा कि तुम लोग क्यों भलीभांति आये हो ॥ ११ ॥ हे देवो! जिससे ब्रह्महत्या से डूबाहुआ मैं पाप से ग्रस्तहूं उस से तपस्या समेत अकेला जलों में टिकता हूं ॥ १२ ॥ उन सौयज्ञवाले इन्द्र के उस वचन को सुनकर विह्वल हुये सब देवों ने अद्भुत देवराज से ऐसा कहा कि ॥ १३ ॥ तुमको इसके समान वचन नहीं बोलना चाहिये जिस से तुमने परोपकार सेही विश्वरूप के मारने आदि कर्म को कियाहै ॥ १४ ॥ क्योंकि जब त्वष्टा के पुत्र से यज्ञकराने लक्षणवाला वैसा कर्म कियागया कि जिस से देव और बड़े प्रकाशवाले ऋषि भी विनाश को प्राप्त होते हैं ॥ १५ ॥

तब हे देव ! तुमने परो (अन्यों) के उपकार को किया है उस से हम सब तुम को अमरावती में ले जाने के लिये आये है ॥ १६ ॥ ऐसे देवों के कहतेही उस
समय शीघ्रता समेत ब्रह्महत्या बोली कि मै देवेन्द्र को घेरती हूं ॥ १७ ॥ और तब बृहस्पति नेही एकाएक वचन को कहा कि हम लोग इससमय तुम्हारे बसाने के
अर्थ स्थानो को करेगे ॥ १८ ॥ ऐसे उन देवों ने कार्य्य की गुरुता से उससमय हत्या को प्रशांत किया ॥ १६ ॥ व उन सब बुद्धिमान् ऋषियों, देवों, यक्षो, पिशाचों,
उरगों, पतगों तथा अप्सराओं, किन्नरो, सिद्धों और चारणोने विचारकर हत्याको चार प्रकार से बांट दिया ॥ २० ॥ तब पहले सब देवों ने पृथ्वी के प्रति कहा कि कार्य

परेषामुपकारकः ॥ ततस्सर्वेवयंयातास्त्वांनेतुममरावतीम्॥१६॥ एवंविवदमानेषु देवेषुचतदाब्रवीत् ॥ ब्रह्महत्यात्वरा
युक्ता देवेन्द्रंवारयाम्यहम् ॥ १७ ॥ तदाबृहस्पतिर्वाक्यमुवाचसहसैवच ॥ वासार्थञ्चकरिष्यामः स्थानानितवसाम्प्रत
म् ॥ १८ ॥ प्रशान्तितातदाहत्या देवैस्तैःकार्यगौरवात् ॥ १९ ॥ विमृश्यसर्वेव्यभजंश्चतुर्धा हत्यांसुरास्तेऋषयोमनीषि
णः ॥ यक्षाःपिशाचाउरगाःपतङ्गास्तथाप्सरःकिन्नरसिद्धचारणाः ॥ २० ॥ आदौत्तमाम्प्रतितदा ऊचुःसर्वेदिवौकसः ॥
एकोह्यंशस्त्वयाग्राह्यो हत्यायाःकार्य्यसिद्धितः ॥ २१ ॥ सुराणांतद्वचःश्रुत्वा धरित्रीकम्पितावदत् ॥ कथंग्राह्योमया
ह्यंशो हत्यायास्तद्विमृश्यताम् ॥ २२ ॥ अहंहिसर्वभूतानां धात्रीविश्वम्भराम्यहम् ॥ अपवित्राभविष्यामि एनसासम्प्लु
ताभृशम् ॥ २३ ॥ पृथ्व्यास्तद्वचनंश्रुत्वा बृहस्पतिरुवाचताम् ॥ माभैषीश्चारुसर्वाङ्गि निष्पापासिनचान्यथा ॥ २४ ॥
यदायदुकुलेश्रीमान्वासुदेवोभविष्यति ॥ तदातत्पदविन्यासैर्निष्पापात्वंभविष्यसि ॥ २५ ॥ कुरुवाक्यंत्वमस्माकं ना

सिद्धिके लिये हत्याका एक हिस्सा तुमको लेना चाहिये ॥२१॥ देवोंके उस वचनको सुनकर कांपती हुई भूमिबोली कि मुझ से हत्याका हिस्सा कैसे गहने योग्य है
वह विचारा जावे ॥ २२ ॥ क्योंकि मैं सब जन्तुओं की धरनेवाली हूं व मैं सब जगत् को धरती या पोषण करती हूं और पाप से भीगी हुई मै बहुतही अपवित्र
होऊंगी ॥ २३ ॥ पृथ्वी के उसवचन को सुनकर बृहस्पति ने उस से कहा कि हे सर्वाङ्गसुन्दरि ! मत डरो तुम पापों से हीन हो यह अन्यथा नहीं है ॥ २४ ॥
जब श्रीमान् वासुदेव (श्रीकृष्ण) जी यदुवंश में होवेंगे तब तुम उनके पावों के पड़ने से निष्पाप होवोगी ॥ २५ ॥ इस से तुम हमारे वचन को करो इस में

विचारणा नहीं करना चाहिये ऐसे कहीहुई पापों से हीन उस पृथ्वी ने उनके वचनको किया ॥ २६ ॥ तदनन्तर सब देवों ने वृक्षों को भलीभाति बुलाकर वचनको
कहा कि कार्य्यसिद्धि के लिये आप को हत्याका अंश (भाग) ग्रहण करना चाहिये ॥ २७ ॥ तब सब वृक्ष भलीभाति आये देवों से ऐसा बोले कि वैसे हुये हम
सबलोग तपस्वियों को बहुत फल देनेवाले है ॥ २८ ॥ उससमय महाभाग्यवान् तपस्वी भी हत्या से समेत पापी होजावेंगे उस से सब विचारा जावे ॥ २९ ॥
और तब भलीभाति आये हुये सब वृक्ष पुरोहित (बृहस्पति) से कहे गये कि सब जने चिन्ता को मत करो क्योंकि इन्द्र के प्रसाद से ॥ ३० ॥ तुम सब छेदों

त्रकार्याविचारणा ॥ इत्युक्त्वापृथिवीतेषां निष्पापासाकरोद्वचः ॥ २६ ॥ ततोवृक्षान्समाहूय सर्वेदेवावचोब्रुवन् ॥ ह
त्यांशोहिग्रहीतव्यो भवद्भिःकार्यसिद्धये ॥ २७ ॥ एवमूचुस्तदावृक्षा देवान्सर्वेसमागतान् ॥ वयंसर्वेतथाभूतास्तापसा
नांफलप्रदाः ॥ २८ ॥ तदाहत्यान्वितास्सर्वे भविष्यन्तितपस्विनः ॥ पापिनोहिमहाभागास्तस्मात्सर्वैर्विमृश्यताम् ॥
२९ ॥ तदापुरोधसाचोक्तास्सर्वेवृक्षास्समागताः ॥ माचिन्तांकुर्वतांसर्वे प्रसादाच्चशतक्रतोः ॥ ३० ॥ छिद्रिताश्चैवस
र्वे अनेकांशत्वमागताः ॥ ततोविटपिनोनित्यं यूयंशुद्धाभविष्यथ ॥ ३१ ॥ इत्युक्तास्तेतदासर्वेऽगृह्णन्हत्यांविभाग
शः ॥ तदाह्वापस्समाहूय ऊचुस्सर्वेदिवौकसः ॥ ३२ ॥ अद्भिश्चगृह्यतामद्य हत्यांशःकार्यसिद्धये ॥ तदाह्यापोमिलि
त्वाथ ऊचुस्सर्वाःपुरोधसम् ॥ ३३ ॥ यानिकानिचपापानितथादुश्चरितानिच ॥ अस्मत्सम्पर्कसंबाधात् स्नानशौचात्म
नोगुरो ॥ ३४ ॥ पुनन्तिप्राणिनस्सर्वे पापेनपरिवेष्टिताः ॥ आपःपुनन्तिसर्वेषाञ्चराचरनिवासिनाम् ॥ ३५ ॥ इत्युक्त्वा

समेत और ऐसेही अनेक अंशभाव को प्राप्त हो उसे नित्यही शाखावाले होकर शुद्ध होवोगे ॥ ३१ ॥ उससमय ऐसे कहेहुये उन सबों ने हत्या को हिस्सा से
लिया तब सब देवों ने जलों को भलीभांति बुलाकर कहा कि ॥ ३२ ॥ आज काज की सिद्धि के लिये जलों से हत्याका अंश ग्रहण किया जावे तबहीं सब
जल मिलकर अनन्तर आचार्य्य बृहस्पति से बोले ॥ ३३ ॥ कि हे गुरो ! जे कोई पाप और वैसेही दुष्टकर्म हैं वे स्नान शौच व आचमनादि रूप हमारे संयोग स-
मूह से ॥ ३४ ॥ पवित्र होते हैं व पापों से चारों ओर घिरेहुये सब प्राणी शुद्ध होजाते हैं और सब स्थावर जंगम निवासियों को पानीही पवित्र करते हैं ॥ ३५ ॥

ऐसा कहकर उन्होंने देवोंके वचनसे उस हत्याके तीसरे भाग (हिस्से) को ले लिया और तब स्त्रियों को भलीभाति बुलाकर बृहस्पति ने [illegible] कहा कि ॥ ३६ ॥
सब कार्य्यार्थ सिद्धि के लिये तुमको हत्याका हिस्सा पाप लेना चाहिये व गुरु के उस वचन को सुनकर सब स्त्रियों ने कहा कि ॥ ३७ ॥ [illegible]
के लिये सबही स्त्रिया हुई हैं अन्यथा नहीं है क्योंकि स्त्री जिस पाप को करती है उस पापसे ॥ ३८ ॥ बहुत से पक्ष लिप्त होते हैं ऐसा वेदों का आशय है [illegible]
त ! तुम्हारा कुछ सुना नहींहै वह विचारा जावे ॥ ३९ ॥ अनन्तर स्त्रियों से कहे हुयेभी बृहस्पतिजी बोले कि हे सुनयनियो ! आप सब इस पापसे डरको मतकरो ॥ ४० ॥

देववाक्यात्तास्तत्तृतीयांशमाददुः ॥ तदास्त्रियस्समाहूय बृहस्पतिरुवाचह ॥ ३६ ॥ अघोहिग्राह्योहत्यांशः सर्वका
र्य्यार्थसिद्धये ॥ निशम्यतद्गुरोर्वाक्यमूचुस्सर्वाश्चयोषितः ॥ ३७ ॥ धर्मार्थकार्यसिद्ध्यर्थं जाताःसर्वाहियोषितः ॥ पाप
माचरतेयोषित्तेनपापेननान्यथा ॥ ३८ ॥ लिप्यन्तेबहवःपक्षा इतिवेदानुशासनम् ॥ श्रुतमस्तिनतेकिञ्चिद्धेपुरोधो
विमृश्यताम् ॥ ३९ ॥ योषिद्भिःप्रोच्यमानोपि उवाचाथबृहस्पतिः ॥ माभयंकुर्व्वतांसर्वाः पापादस्मात्सुलोचनाः ॥
४० ॥ भविष्याणांतथान्यानां भविष्यन्तिफलप्रदाः ॥ हत्यांशोयंहिसर्वासां तथाकामित्वमेवच ॥ ४१ ॥ एवमंशा
श्चहत्यायाःकल्पिताश्चतुरस्सुरैः ॥ निवासमकरोत्सद्यस्तेषुतेषुद्विजोत्तमाः ॥ ४२ ॥ निष्पापोहितदाजातो महेन्द्रोह्यभि
षिञ्चितः ॥ देवपुर्य्यांसुरगणैस्तथैवऋषिभिस्सह ॥ ४३ ॥ शच्यासमेतोहितथापुरन्दरो बभूवविश्वाधिपतिर्महात्मा ॥
देवैस्समेतोहिमहानुभावैर्मुनीश्वरैःसिद्धगणैस्तदानीम् ॥ ४४ ॥ तदाग्नयःशोभनावायवश्च सर्वेग्रहाःसुप्रभाःशान्तियु

तथा होनहारे अन्यों की फल देनेवाली होवेंगी और जैसे यह हत्या का अंश है वैसेही सबों का कामित्व होवेगा ॥ ४१ ॥ इस भाति देवों ने हत्या के चारअंशों
को कल्पित किया और हे द्विजोत्तमो ! वह वह अंश शीघ्रही उन उन में निवास को करता भया ॥ ४२ ॥ तबही इन्द्र जी पाप से हीन होकर गये वैसेही ऋषियों
के साथ देवसमूहों ने देवपुरी में उन को अभिषेक किया ॥ ४३ ॥ उससमय इन्द्राणी समेत व देवों तथा बडे प्रभाववाले मुनीश्वरों और सिद्धसमूहों से सहित
महात्मा इन्द्र जी विश्व के अधिपति याने जगत् के स्वामी हुये ॥ ४४ ॥ तब अग्नियां शोभायमानहैं व वायु शान्तिसंयुतहैं व सबग्रह अच्छी दीप्तिवालेहैं व वह पृथ्वी

शीघ्रही शोभन होगई है तथा पर्वत मणियों के प्रभु हुये है ॥ ४५ ॥ वैसेही पण्डितों के मन प्रसन्न हुये व नदियां अमृत समान जलों की बहनेवाली होगई और
वृक्ष सदाफल होगये ॥ ४६ ॥ व विना जोते बोये उपजीं पकी हुईं ओषधिया अमृतकी समतावाली हुई ऐसेही उससमय सब इन्द्रलोकनिवासियों का ॥ ४७ ॥
महाआनन्दकारी बडाभारी उत्तम उत्साह हुआ व इस अन्तर में इन्द्र के महोत्सव को देखकर त्वष्टाजी ॥ ४८ ॥ बहुतही कुपित हुये और पुत्र के शोच से प्रपीडित
वह वैराग्य कारण खेद में परायणहोकर सुदारुण तपस्य को तपने (करने) के लिये गये ॥ ४९ ॥ उस तपस्या से सन्तुष्ट हुये लोगों के पितामह ब्रह्मा जीने

**काः ॥ जातासद्यःपृथिवीशोभनासा तथाद्रयोमणिप्रभवोबभूवुः ॥ ४५ ॥ प्रसन्नानितथाह्यासन्मनांसिचमनीषिणा
म् ॥ नद्यश्चामृतवाहिन्यो वृक्षाह्यासन्सदाफलाः ॥ ४६ ॥ अकृष्टपच्योषधयो बभूवुश्चामृतोपमाः ॥ एवंतदैवसर्वेषा
मिन्द्रलोकनिवासिनाम् ॥ ४७ ॥ बभूवपरमोत्साहो महामोदकरस्तथा ॥ एतस्मिन्नन्तरेत्वष्टा दृष्ट्वाचेन्द्रमहोत्सव
म् ॥ ४८ ॥ बभूवकुपितोतीव पुत्रशोकप्रपीडितः ॥ जगामनिर्वेदपरस्तपस्तप्तंसुदारुणम् ॥ ४९ ॥ तपसातेनसन्तुष्टो
ब्रह्मालोकपितामहः ॥ त्वष्टारमब्रवीत्त्वष्टर्वरंवरयसुव्रत ॥ ५० ॥ तदावव्रेवरंहृष्टस्त्वष्टालोकपितामहम् ॥ वरःपुत्रोहिदा
तव्यो देवानांहिभयावहः ॥ ५१ ॥ शीघ्रत्वेनैवयोदेवांश्चेद्रञ्चैवजिघांसति ॥ तथेतिचवरोदत्तो ब्रह्मणापरमेष्ठिना ॥
५२ ॥ वरदानात्सपद्येव बभूवपरतस्तदा ॥ वृत्रनामाङ्कितस्तत्र दैत्योहिपरमाद्भुतः ॥ ५३ ॥ धनुषांशतमात्रेणप्रत्य
हंववृधेऽसुरः ॥ पातालान्निर्गतादैत्या येपुरामृतमन्थने ॥ ५४ ॥ घातिताःसुरसङ्घैश्चभृगुणाजीविताःपुनः ॥ बलिंविनापि**

त्वष्टा से कहा कि हे अच्छे व्रतवाले,त्वष्टः ! तुम वर को अङ्गीकारकरो ॥५०॥ तब लोकसृष्टिकर्त्ता को देखकर प्रसन्नहो त्वष्टा ने वर को स्वीकार किया यांने मांग लिया कि
देवों काही भयदायक वह पुत्रही वर देने योग्य है ॥ ५१ ॥ जो कि देवों और इन्द्र को भी शीघ्रता सेही मारने को चाहता है और उत्तम स्थान के वासी ब्रह्माजी
ने वैसा हो ऐसा वर दिया ॥ ५२ ॥ तब वहां परमात्मा पितामह के वरदान से परमअद्भुत प्रसिद्ध वृत्रनाम से लक्षित दैत्य शीघ्रही हुआ ॥ ५३ ॥ और वह
असुर प्रतिदिन में चार सौ हाथ प्रमाण से बढ़ा व आगे अमृतमन्थन समय मे जे दैत्य पाताल से निकले ॥ ५४ ॥ और देवसमूहों से मारे गये व फिर शुक्राचार्य्यसे

जीवित भये हैं वे सब तब बलिके विना वृत्रासुर के सामने आये ॥ ५५ ॥ व उन पाताल से आये हुये असुरों समेत मुख्य महात्मा उस वृत्रासुर से सब पृथ्वी-
तल व्याप्त हुआ याने उसके तेज और डर से भूतल भरगया ॥ ५६ ॥ तब उस से पीड़ितहुये शीघ्रता समेत सब भी तपस्वी ऋषियों ने ब्रह्मा जी से उत्तम सब दुःख
को कहा ॥ ५७ ॥ वैसेही गन्धर्व व वायु गणों समेत सब इन्द्रादि देव ब्रह्मा जी से कहे गये कि त्वष्टा का ऐसा करने को इच्छित है ॥ ५८ ॥ और उन्होंने तुम्हारे
मारने के लिये सब दैत्यों के स्वामी तेजस्वी बड़े वृत्रासुर नामकको उत्तम तपस्या सेही उत्पन्न किया है ॥ ५९ ॥ इससे जैसे वह मारने योग्य होवे वैसेही बड़ायत्न

तेसर्वे वृत्रमभ्याययुस्तदा ॥ ५५ ॥ तैस्समेतेनवृत्रेण पातालादागतासुरैः ॥ सर्वंमहीतलंव्याप्तं तेनैकेनमहात्मना ॥
५६ ॥ तदासर्वेपिऋषयो बाध्यमानास्तपस्विनः ॥ ब्रह्माणंत्वरिताःसर्वमूचुर्व्यसनमुत्तमम् ॥ ५७ ॥ तथाचेन्द्रादयोदेवा
गन्धर्वाःसमरुद्गणाः ॥ ब्रह्मणाकथितास्सर्वेत्वष्टुश्चेतिचिकीर्षितम् ॥ ५८ ॥ भवद्वधार्थञ्जनितस्तपसापरमेणहि ॥ वृ
त्रोनामतुतेजस्वी सर्वदैत्याधिपोमहान् ॥ ५९ ॥ तथाप्रयत्नःक्रियतां यथावध्योभवेदसौ ॥ निशम्यब्रह्मणोवाक्यमूचुर्देवा
स्सवासवाः ॥६०॥ यदात्विन्द्रोहिहत्याया विमुक्तःस्थापितोदिवि ॥ तदास्माभिरकार्य्यञ्च कृतमस्तिदुरासदम् ॥ ६१ ॥
शस्त्राण्यस्त्राण्यनेकानि संक्षिप्तानिह्यबुद्धिभिः ॥ दधीचस्याश्रमेब्रह्मन्किङ्कार्य्यंकरवामहे ॥ ६२ ॥ ब्रह्मणानोदिताः
प्रोचुर्दधीचम्प्राप्यसत्वराः ॥ शस्त्राणिदीयतान्देव निक्षिप्तानिपुराश्रमे ॥ ६३ ॥ तच्छ्रुत्वाप्रहसन्वाक्यं देवान्प्रतितदा
ब्रवीत् ॥ चिरंस्थितानिविज्ञात्वा भवतांतानिवैसुराः ॥ ६४ ॥ शस्त्राण्यपिमहाभागाः पीतानिसकलान्यपि॥एतच्छ्रुत्वा

कियाजावे ऐसा ब्रह्माजी का वचन सुनकर इन्द्रसमेत देवों ने कहा ॥ ६० ॥ कि जब हम लोगों ने ब्रह्महत्या से छूटेहुये इन्द्र को स्वर्ग में थाप दिया तब फिर
दुस्तर अकार्य्य (नहीं करने योग्य) कियागया है ॥ ६१ ॥ हे ब्रह्मन्! जिससे बुद्धि से विहीन हम लोगों ने शस्त्र और अस्त्रों को दधीच के आश्रम में फेंक दिया उस
से हम किस कार्य को करसक्ते हैं ॥ ६२॥ तब ब्रह्माजी से प्रेरित हुये शीघ्रता समेत सब देव दधीच जी के समीप को प्राप्त होकर बोले कि आगे आपके आश्रम में धरे
हुये हमारे शस्त्र दियेजावें ॥ ६३ ॥ उससमय उस वचन को सुनकर उन्होंने देवों के प्रति कहा कि हे देवो! आप के उन अस्त्रों को बहुतकाल से धरे हुये जानकर

उनको ॥ ६४ ॥ और हे महाभागो ! सकल शस्त्रों को भी मैंने निश्चयसे पान कर लिया है उनके इस वचन को सुनकर देवलोग चिन्ता को प्राप्त हुये ॥ ६५ ॥
फिर ब्रह्माजीके निकट आकर सबों ने मुनिके वचन को कहा तब सबोंके कार्य्य की सिद्धि के लिये ब्रह्मा जी देवों से बोले ॥ ६६ ॥ कि तुम लोग उनके हाड़ों कोही
मांगो वह अधिकता से देवेंगे इस में संशय नहीं है ब्रह्माजी के उस वचन को सुनकर इन्द्र ने वचन को कहा ॥ ६७ ॥ कि हे देव ! जब मैंने देवों की कार्य्य
सिद्धि के लिये विश्वरूप को मारा तब देवों ने एक मुझकोही बड़ापापी किया ॥ ६८ ॥ तदनन्तर पुरोहित (बृहस्पति) से भी सम्पत्तिहीन कियागया हूं और

वचस्तस्य चिन्तामापेदिरेसुराः ॥ ६५ ॥ पुनर्ब्रह्माणमागत्य ऊचुस्सर्वेमुनेर्वचः ॥ ब्रह्मोवाचतदादेवान्सर्वेषांकार्यसि
द्धये ॥ ६६ ॥ तस्यास्थीन्येवयाचध्वं प्रदास्यतिनसंशयः ॥ तच्छ्रुत्वाब्रह्मणोवाक्यं शक्रोवचनमब्रवीत् ॥ ६७ ॥ वि
श्वरूपोहतोदेव देवानांकार्यसिद्धये ॥ एकएवतदाब्रह्मन्पापिष्ठोहंकृतस्सुरैः ॥ ६८ ॥ ततःपुरोधसाचैव निःश्रीकस्तत्त्व
णात्कृतः ॥ दिष्ट्यापरमयाचाद्य प्रविष्टोनिजमन्दिरम् ॥ ६९ ॥ दधीचंघातयित्वातु तस्यास्थीनिबहूनिवै ॥ शस्त्राणि
तानिभगवन्कृतानिह्यशुभानिच ॥ ७० ॥ त्वष्ट्राहिजनितोयोवै वृत्रोनामैकदैत्यराट् ॥ कथंतंघातयाम्येव सततंचा
तिदारुणम् ॥ ७१ ॥ शक्रेणोक्तंनिशम्याथ ब्रह्मावाक्यमुवाचह ॥ अर्थशास्त्रपरेणैव विधिनातमबोधयत् ॥ ७२ ॥ आ
ततायिनमायान्तं ब्राह्मणंवातपस्विनम् ॥ हन्तुकामंजिघांसीयात्तेननब्रह्महाभवेत् ॥ ७३ ॥ ब्रह्मणस्तद्वचःश्रुत्वाइन्द्रो
वचनमब्रवीत् ॥ दधीचस्यवधाद्ब्रह्मन्पातित्यंहिनसंशयः ॥ ७४ ॥ तस्माद्ब्रह्मवधात्सर्वं महदेनोभविष्यति ॥ अतोन

आज बड़े मङ्गल से अपने घर में बैठा हूं ॥ ६९ ॥ और हे भगवन् ! दधीच को माराकर उनके जे बहुत से हाड हैं वे शस्त्र किये हुये अशुभही हैं ॥ ७० ॥ व जो
कि वृत्रासुर नामक एक दैत्यराज त्वष्टासे उपजाया गया है और निरन्तर बडादारुण है उसकोही मैं किस प्रकार से माराताहूं ॥ ७१ ॥ अनन्तर इन्द्रके कहेहुये व-
चन को सुनकर ब्रह्मा जीने हर्ष से कहा व अर्थशास्त्र में परायणही विधि से उनको बोधन किया याने समझा दिया ॥ ७२ ॥ कि अपना को मारनेके चाही आते हुये
शस्त्रधारी ब्राह्मण व तपस्वी को मारे उस से ब्रह्मघाती नहीं होवे है ॥ ७३ ॥ ब्रह्मा जीके उस वचन को सुनकर इन्द्र जी वचन को बोले कि हे ब्रह्मन् ! दधीच के

मारने से पतित होने का भय है इस में संशय नहीं है ॥ ७४ ॥ उस [illegible] ...दिविरचितेदधीचोपाख्यानंनामषोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥
७५ ॥ और ब्राह्मण के अनादर से बहुत दोष होवेंगे अन्यथा नहीं क्योंकि [illegible] ...नन्तर उन श्रीदधीचमुनि[illegible]
जन को मन और तन से भी नहीं करना चाहिये उससमय उन इन्द्रके विना [illegible]
बुद्धि से बर्त्तो व दधीच के समीप को शीघ्रही जावो और कार्य्य की गुरुता के कारण से उनके [illegible] ॥

कार्यमस्माभिर्ब्राह्मणानांप्रहेलनम् ॥ ७५ ॥ हेलनाद्बहवोदोषा भविष्यन्तिनचान्यथा ॥ [illegible]
णाहि ॥ ७६ ॥ कर्तव्यंमनसाचैववनैवमेवविजानता ॥ निःस्पृहंतस्यतद्वाक्यं श्रुत्वाब्रह्माउवाचतम् ॥ ७७ ॥ [illegible]
वर्त्तस्व दधीचंगच्छसत्वरम् ॥ याचस्वतस्यचास्थीनि कार्यगौरवकारणात् ॥ ७८ ॥ गुरुणासहितःशक्रो [illegible]
न्वितः ॥ तथेतिमत्वातैस्सर्वैर्दधीचस्याश्रमंशुभम् ॥ ७९ ॥ नानासत्त्वसमायुक्तं वैरभावविवर्जितम् ॥ मार्जारामूषका
श्चैव परस्परमुदान्विताः ॥ ८० ॥ एकपद्येनसिंहाश्च गजिन्यःकलभैस्सह ॥ तथागजाश्चविविधाः क्रीडायुक्ताःपरस्पर
म् ॥ ८१ ॥ नकुलैस्सहसर्पाश्च परस्परमुदान्विताः ॥ एवंविधान्यनेकानिचाश्चर्याणिबहूनिच ॥ ८२ ॥ तेजसापरमे
णैव भ्राजमानोयथारविः ॥ विभावसुर्द्वितीयोवा सुवर्चासहितोयथा ॥ ८३ ॥ यथाब्रह्माहिसावित्र्या तथासौमुनिसत्त

साथ गुरु से समेत इन्द्रजी दधीच के उस शुभआश्रम को भलीभांतिपीछे से गये ॥ ७९ ॥ जो कि अनेक भांति के जन्तुओं से समेत व वैरभाव से विवर्जित है और जहां बिलार व मूसा भी आपुस में आनन्द सहित हैं ॥ ८० ॥ व एक स्थान से हाथी के बच्चों के साथ हथिनियां और सिंह तथा हाथी परस्पर बहुतभांति के खेलों से संयुत हैं ॥ ८१ ॥ व न्यूलो के साथ सर्प आपुसमें आनन्द समेत हैं और इस भांति के बहुतसे अनेकों आश्चर्य्य हैं ॥ ८२ ॥ उस में जो परम तेज से सूर्य्य के समान विराजमान हैं व दूसरे अग्निदेव की नाईं सुवर्चा नामवाली ब्राह्मणी से समेत हैं ॥ ८३ ॥ और जैसे सावित्री के साथ ब्रह्माहों वैसे वह

मुनिसत्तम प्रणाम पूर्वक देवों से देखे गये ॥ ८४ ॥ तब बृहस्पति अग्रगामीवाले देवों ने ऐसा कहा कि तुम तीनलोकों में दाता हो हम ने पहलेही जाना है ॥८५॥
ऐसे देवों के वचन को सुनकर उन मुनि सत्तम ने कहा कि हे देवोत्तमो ! तुम सबलोग जिसलिये आये हो उसको कहो ॥ ८६ ॥ मैं अधिकता से देता हूं सन्देह
नहीं व मेरा वचन अन्यथा नहीं है तब स्वार्थ के चाही बटुरे हुये सब देव दधीच से बोले ॥ ८७ ॥ कि हे विप्र ! डर से डरेहुये हम आपके दर्शनकी आकांक्षा
वाले हैं उन के वचन को सुनकर क्या देना चाहिये वह बोलाजावे ॥ ८८ ॥ ऐसा कहकर उन्हों ने उस अपनी स्त्री को आश्रम में पठाया तदनन्तर देवों ने ब्राह्मण

मः ॥ दृष्टःसुरवरैस्सर्वैः प्रणिपातपुरस्सरम् ॥ ८४ ॥ ऊचुरित्थंतदादेवा बृहस्पतिपुरोगमाः ॥ त्वंदातात्रिषुलोकेषु विदि
तःपूर्वमेवनः ॥ ८५ ॥ देवानांवचनंश्रुत्वा सप्राहमुनिसत्तमः ॥ यदर्थमागताःसर्वे वदध्वंतत्सुरोत्तमाः ॥ ८६ ॥ प्रयच्छा
मिनसन्देहो नान्यथाममभाषितम् ॥ तदोचुस्सहितास्सर्वेदधीचंस्वार्थकामुकाः ॥ ८७ ॥ भयभीतावयंविप्र भवद्दर्शन
काङ्क्षिणः ॥ निशम्यवचनंतेषां किन्दातव्यंतदुच्यताम् ॥ ८८ ॥ इत्युक्त्वातांस्वपत्नींस प्रेषयामासचाश्रमम् ॥ देवा
स्ततोब्रुवन्विप्रं दैत्यानांनिधनंयतः ॥ ८९ ॥ देह्यस्थीनिद्विजस्वानि दत्तानीतिचसोब्रवीत् ॥ तदोचुःसहितास्सर्वे सुप
र्वाणोद्विजोत्तम ॥ ९० ॥ त्वयिजीवतिभोब्रह्मन् कुतोस्थीनिलभामहे ॥ प्रहस्योवाचविप्रर्षिस्तिष्ठध्वंक्षणमेवहि ॥ ९१ ॥
स्वयमेवत्वहंदेवास्त्यक्ष्याम्यद्यकलेवरम् ॥ इत्युक्त्वाचततोविप्रः समाधिमगमत्तदा ॥ ९२ ॥ समाधिनापरेणैव विसृ
ज्यस्वकलेवरम् ॥ ब्रह्मलोकंगतस्सद्यो यस्मान्नावर्ततेपुनः ॥ ९३ ॥ एवंदधीचनामासमुनिवर्यःशिवप्रियः ॥ देहंपरोपका

से कहा कि जिनसे दैत्योंका मरना है ॥ ८९ ॥ हे द्विज ! उन अपने हाड़ों को तुम दो और उन्हों ने ऐसा कहा कि मैंने दिया तब संमिलित सब देव बोले कि हे
द्विजोत्तम ! ॥ ९० ॥ भो ब्रह्मन् ! तुम्हारे जीवतेही हम हाड़ों को क्यों पावेंगे तब ब्रह्मर्षि ने विहँस कर कहा कि तुम लोग क्षणहीभर टिको ॥ ९१ ॥ व हे देवो !
मैं आपही आज देह को त्याग दूंगा उससमय ऐसा कहकर वह ब्राह्मण समाधि को प्राप्त हुये ॥ ९२ ॥ और श्रेष्ठ समाधि सेही अपने शरीर को छोड़कर शीघ्रही उस
ब्रह्मलोक को गये कि जिस से फिर नहीं लौटता है ॥ ९३ ॥ इसभांति परोपकार के अर्थ देह को त्यागकर शिवजीके प्यारे वह दधीचनामक मुनि श्रेष्ठ ब्रह्मपद (ब्रह्म-

स्थान) को प्राप्त भये ॥ ६४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेमाहेश्वरखण्डान्तर्गतकेदारखण्डेभाषाबन्धेसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचितेदधीचोपाख्याननामषोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥
दो० । सत्रहवें अध्याय में व्रतप्रदोष को कीन । वृत्रआदि दलिदैत्यदल इन्द्रराज्यनिज लीन ॥ श्रीलोमशजी बोले कि तदनन्तर उन श्रीदधीचमुनिको विशेषसे लय को प्राप्त हुये देखकर तब सब देवों ने चिन्तना किया कि हम हाड़ों को किसभांति विभाग करेंगे ॥ १ ॥ और उसके बाद इन्द्र ने सुरभी को बुलाकर उस से कहा कि तुम मेरे वचन से दधीच की देह को चाट डालो ॥ २ ॥ और वैसेही हो ऐसे वचन को मानकर उस गऊ ने उसी क्षण मे उस शरीर को शीघ्रही चाटकर मांस

रार्थं त्यक्त्वाब्रह्मपदंययौ ॥ ९४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे केदारखण्डे दधीचोपाख्याननामषोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥
लोमशउवाच ॥ ततःसर्वेसुरगणा दृष्ट्वातंविलयंगतम् ॥ अचिन्तयंस्तदास्थीनिकथञ्चविभजामहे ॥ १ ॥ सुरभिञ्चाह्वयित्वाथ तामुवाचशचीपतिः ॥ कलेवरंदधीचस्य लिहेत्त्वंवचनान्मम ॥ २ ॥ तथेतिचवचोमत्वा तत्क्षणादपिलिह्वत त् ॥ निर्मांसन्तुकृतंसद्यस्तयाधेन्वाकलेवरम् ॥ ३ ॥ जगृहुस्तान्यथास्थीनि चक्रुःशस्त्राणिवैसुराः ॥ तस्यवंशोद्भवंवज्रं शिरोब्रह्मशिरस्तदा ॥ ४ ॥ अन्यानिचास्थीनिबहूनितस्यऋषेस्तदानींजगृहुःसुराश्च ॥ तथाशिराजालमयांश्चपाशां श्चक्रुर्महामर्षयुताश्चदैत्यान् ॥ ५ ॥ शस्त्राण्यस्त्राणिकृत्वातेमहाबलपराक्रमाः ॥ ययुर्दिवंत्वरायुक्ता वृत्रघातनतत्पराः ॥ ६ ॥ ततःसुवर्चाचदधीचपत्नी याप्रेषितासासुरकार्यसिद्धये ॥ व्यलोकयत्तत्रसमेत्यसर्वं मृतंपतिंदेहमथोविशस्तम् ॥७॥

से हीन कर दिया ॥ ३ ॥ अनन्तर देवों ने उन हाड़ों को लिया व प्रसिद्ध शस्त्रों को किया उससमय उन के वंश से याने पीठी की बीच हड्डी से उत्पन्न हुआ वज्र है और मूंड ब्रह्मशिर नामक अस्त्र होगया ॥ ४ ॥ और तबहीं देवों ने उन ऋषि के अन्यभी बहुत से हांड़ों को ग्रहणकर लिया व वैसेही दैत्यो के प्रति बड़े क्रोध से समेत उन्होंने न समूहमयी पसुरियों को किया ॥ ५ ॥ व शीघ्रता समेत बड़े बल और पराक्रमवाले वे शस्त्रों व अस्त्रों को कर स्वर्ग को गये और वृत्रासुरके मार ने में तत्पर भये ॥ ६ ॥ और तदनन्तर जो कि दधीच की स्त्री सुवर्चा देवोंके कार्यकी सिद्धि के लिये पहले पठाई गई थी उसने वहां भली भांति आकर अनन्तर मरे

पति को व काटे चाटे हुये सब शरीर को देखा ॥ ७ ॥ व उससमय पतिव्रता ने देवों के इस सब कर्म को जानकर क्रोध किया और अत्यन्त रुष्ट होती हुई ऋषि श्रेष्ठ की स्त्री सुवर्चा ने निश्चय से शाप को दिया ॥ ८ ॥ फिर उसने ऐसा कहा कि कष्ट है जिससे स्वर्गवासी सब देव बड़े दुष्ट हैं व सब असमर्थ हैं वैसेही लोभी हैं उस से आज से लगाकर सब अपयश वाले होवें ॥ ६ ॥ जब उस तपस्विनी ने इस भाति देवों को शाप दिया तब पीपल वृक्ष के मूल में बैठकर भलीभांति रोदन किया ॥ १० ॥ व उदर से महात्मा दधीच का गर्भ निकला जो कि वह साक्षात् रुद्रका अवतार बड़े दीप्तिमान् पिप्पलादनामक ऋषिहैं ॥ ११ ॥ और देखने

ज्ञात्वाचतत्सर्वमिदंसुराणांकृत्यंतदानींचुकोपसाध्वी ॥ ददौसतीशापमतीवरुष्टा नूनंसुवर्चाऋषिवर्य्यपत्नी ॥ ८ ॥ अहोसुरादुष्टतराश्चसर्वेसर्वेह्यशक्ताश्चतथैवलुब्धाः ॥ तस्माच्चसर्वेपयशाभवन्तुदिवौकसोद्यप्रभृतीत्युवाचसा ॥ ९ ॥ एवंशापंददौतेषां सुराणांसातपस्विनी ॥ उपविश्याश्वत्थमूले यदासमरुदत्तदा ॥ १० ॥ निर्गतोजठराद्गर्भो दधीचस्यमहात्मनः ॥ साक्षाद्रुद्रावतारोसौ पिप्पलादोमहाप्रभः ॥ ११ ॥ प्रहस्यजननीगर्भमुवाचतृषितेक्षणा ॥ सुवर्चातंपिप्पलादं चिरंतिष्ठास्यसन्निधौ ॥ १२ ॥ अश्वत्थश्चमहाभागसर्वेषांसफलोभवेत् ॥ त्वन्तुमद्वचनात्सद्य ऋषीणांप्रवरोभव ॥ १३ ॥ तथैवभाषमाणासा सुवर्चातनयम्प्रति ॥ पतिमन्वगमत्साध्वी परमेणसमाधिना ॥ १४ ॥ एवंदधीचपत्नीसापतिनास्वर्गमाव्रजत् ॥ तेदेवाःकृतशस्त्रास्त्रा दैत्यान्प्रतिसमुत्सुकाः ॥ १५ ॥ आजग्मुश्चेन्द्रमुख्यास्ते महाबलपराक्रमाः ॥ १६ ॥ गुरुम्पुरस्कृत्यतदातुसद्यो गणास्सुराणांबहवस्तदानीम् ॥ भुवंसमागत्यचमध्यदेशमूचुश्चसर्वेपरमा

को प्यासी आंखों वाली माता सुवर्चा ने उन बालक पिप्पलाद से कहा कि तुम इसके समीप में बहुतकाल तक टिको ॥ १२ ॥ व हे महाभाग ! यह पीपल सबों के लिये फलों समेत होवे और तुम मेरे वचन से शीघ्रही ऋषियों के बीच में बड़े श्रेष्ठ होवो ॥ १३ ॥ पुत्रके प्रति वैसेही कहतीहुई पतिव्रता वह सुवर्चा परम समाधि (योग) से पतिके पीछे गई ॥ १४ ॥ इसभांति वह दधीचकीस्त्री पातिके साथ स्वर्ग को प्राप्त हुई व किये हुये शस्त्रों और अस्त्रोंवाले वे देवलोग दैत्योंके प्रति भलीभांति उत्सुकहुये ॥ १५ ॥ व बड़ेबल पराक्रमवाले इन्द्र मुख्य वे लड़नेको आये ॥ १६ ॥ और तब उत्तम अस्त्रोंसे संयुत देवोंके बहुतसे सब गण भूलोकको शीघ्र भली भांति

आकर व गुरुको आगे कर मध्य देश में बसे ॥ १७ ॥ और अच्छेप्रकारसे आयेहुये इन्द्र अग्रगामीवाले देवों को सुनकर दैत्यों के समूह से भलीभांति घिराहुआ बड़ा तेजस्वी वृत्रासुर गया ॥ १८ ॥ व जैसे सबओर से पूरा सुमेरु का कँगूरा अधिकता से देखाजाता है वैसे महातेजस्वी वह त्वष्टाका पुत्र बड़ा है ॥ १९ ॥ व उन महेन्द्र ने संग्राम में बड़ेभारी असुर को देखा और देवों व दानवों का बड़ा अद्भुत देखना हुआ ॥ २० ॥ फिर अन्योन्य याने एक एक के प्रति कुपित हुये बहुते वैरवाले वे परस्पर मारनेकी इच्छासे परमअद्भुत शब्दसे गर्जे ॥ २१ ॥ व इस देवों और दैत्यों के समागम में बजाये जाते हुये भयङ्कर गम्भीर बाजे सब ओर

स्त्रयुक्ताः ॥ १७ ॥ समागतानुपश्रुत्य देवांश्चेन्द्रपुरोगमान् ॥ ययौवृत्रोमहातेजा दैत्यवृन्दसमावृतः ॥ १८ ॥ यथामेरोश्चशिखरं परिपूर्णंप्रदृश्यते ॥ तथासोपिमहातेजा विश्वकर्मसुतोमहान् ॥ १९ ॥ तेनदृष्टोमहेन्द्रेण समरेचमहासुरः ॥ देवानान्दानवानाञ्च दर्शनञ्चमहाद्भुतम् ॥ २० ॥ तदातेबहुवैराश्च परस्परजिघांसया ॥ अन्योन्यमभिसंरब्धाजगर्जुःपरमाद्भुतम् ॥ २१ ॥ वादित्राणिचभीमानि वाद्यमानानिसर्वतः ॥ श्रूयन्तेत्रगभीराणि सुरासुरसमागमे ॥ २२ ॥ वाद्यमानेषुतूर्य्येषु तेसर्वेत्वरयान्विताः ॥ अनेकैःशस्त्रसंपातैर्जघ्नुरन्योन्यमोजसा ॥ २३ ॥ तदादेवासुरेयुद्धे त्रैलोक्यंसचराचरम् ॥ भयेनमहतायुक्तं बभूवगतचेतनम् ॥ २४ ॥ छेदिताःस्फोटिताश्चैव केचिच्छस्त्रैर्द्विधाकृताः ॥ भल्लैश्चैवहताः केचिदङ्गमूलेदिवौकसः ॥ २५ ॥ रश्मयोमेघसम्भूताः प्रकाशन्तेनभस्स्विह ॥ शिरांसिपतितान्येव बभूवुश्चनभःस्थलात् ॥ २६ ॥ नक्षत्राणीवचतदा महाप्रलयसंकुलम् ॥ प्रवर्तितंमध्यदेशे सर्वभूतक्षयावहम् ॥२७॥ शक्रेणसहसंग्रामं च

से सुन पड़ते हैं ॥ २२ ॥ और तुरहियों के बाजतेही वेग समेत उन सबों ने इन्द्रियों के बल के साथ अनेक शस्त्रोंके सम्पातों से परस्पर मार किया ॥ २३ ॥ तब देवासुर संग्राम में स्थावर जंगम समेत त्रैलोक्य बड़े डर से संयुत व विकल होगया ॥ २४ ॥ और ऐसेही कोई वीर शस्त्रों से छेदे व फोड़े तोड़े व दो भांति से कियेगये हैं और कोई देव देहमूल में भालों से मारे गये हैं ॥ २५ ॥ यहां आकाश में मेघों से भलीभांति हुई रश्मियां प्रकाशती हैं ऐसेही आकाश स्थलसे शिर नीचे गिरे हुये हैं ॥ २६ ॥ कि जैसे अन्तरिक्ष से तारा गिरते हैं उससमय सब जन्तुओं का क्षयकारी भारी प्रलय से समेत युद्ध मध्यदेश में प्रवर्त्तित हुआ ॥ २७ ॥ जब

नमुचि ने इन्द्र के साथ संग्राम को किया तब देवराजने आपही वेगके साथ वज्र से नमुचि को मारा ॥ २८ ॥ और वज्र से भी नमुचि असुर का एक रोम नहींटूटा उससमय सब लोग बड़े विस्मय को प्राप्त हुये ॥ २९ ॥ जे कि देव और दैत्य वहां विद्यमान थे तब लज्जित हुये महेन्द्र ने गदा से नमुचि को मारा व वह गदाभी विशेष से चूर्ण होगई ॥ ३० ॥ किन्तु नमुचि की देह में लगीहुई होतेही भूतल में गिरी वैसेही इन्द्र ने बड़े शूल से उसको मारा ॥ ३१ ॥ और नमुचि के अङ्ग के आश्रितहोकर वह शूल सौ भाति से चूर्ण होगया ऐसेही यहां उसने अनेकप्रकार के शस्त्रों से देवों को मारा ॥ ३२ ॥ और विहँसते हुये नमुचि ने इन्द्र को नही

कारनमुचिस्तदा ॥ वज्रेणजघ्नेतरसा नमुचिन्देवराट्स्वयम् ॥ २८ ॥ नरोमैकंचत्रुटितं नमुचेरसुरस्यच ॥ वज्रेणापि तदासर्वे विस्मयम्परमङ्गताः ॥ २९ ॥ असुराश्चसुरास्तत्र महेन्द्रोव्रीडितस्तदा ॥ गदयानमुचिंजघ्ने गदासापिविचूर्णि ता ॥ ३० ॥ नमुचेरङ्गलग्नापि पपातवसुधातले ॥ तथाशूलेनमहता जघानचपुरन्दरः ॥ ३१ ॥ तच्छूलंशतधाचूर्णं नमुचेरङ्गमाश्रितम् ॥ एवंसविविधैःशस्त्रैराजघानसुरानिह ॥ ३२ ॥ प्रहस्यमानोनमुचिर्नजघानपुरन्दरम् ॥ तूष्णीं भूतस्तदाचेन्द्रश्चिन्तयापरयायुतः ॥ ३३ ॥ किङ्कार्य्यंकिमकार्य्यंवा इतीन्द्रोनाविदत्तदा ॥ एतस्मिन्नन्तरेतत्र महा युद्धेमहाभये ॥ ३४ ॥ जातानभोगतावाणी इन्द्रमुद्दिश्यसत्वरम् ॥ ३५ ॥ एतंजघानाशुमहेन्द्रदैत्यं दिवौकसाङ्घोरतरंभयावहम् ॥ फेनेनचैवात्रमहासुरेन्द्रमद्भ्यःसमुत्थेनदुरत्ययेन ॥ ३६ ॥ अन्येनशस्त्रेणसमाहतोसौ वध्यःकदाचिन्नभवत्यतोसुरः ॥ यस्माच्चदेवेशवधार्थमेनं कुरुप्रयत्नंनमुचेर्दुरात्मनः ॥ ३७ ॥ निशम्यवाचंपरमार्थयुक्तां दैवींसदान

मारा तब बड़ी चिन्ता से युक्त इन्द्र चुप हुये ॥ ३३ ॥ उससमय इन्द्र ने ऐसानहीं जाना कि क्या करने योग्य है व क्या नहीं करने योग्य है इसके अनन्तर बड़े भयंकर उस महा युद्ध में ॥ ३४ ॥ इन्द्र को उद्देशकर आकाशगत वाणी शीघ्रही हुई ॥ ३५ ॥ कि हे महेन्द्र ! तुम यहां देवों के भयदायक व बहुत घोर बड़े असुरों के नायक इस दैत्य को जलों से भलीभांति उठेहुये दुर्लंघ्य फेन से शीघ्रही मारो ॥ ३६ ॥ और हे देवेश ! जिससे अन्यशस्त्र से भली भांति हनाहुआ यह असुर कभी वध्य (मारने योग्य) नहीं होता है इस से दुष्ट चित्तवाले नमुचि के मारने के अर्थ तुम इस बड़े प्रयत्न को करो ॥ ३७ ॥ तब उत्तम अर्थसे भरी आनन्दकरी

मङ्गलमयी उस दैवी वाणी को प्रसिद्ध सुनकर अनन्तवीर्यवाले इन्द्र ने समुद्र के किनारे जाकर परम प्रयत्न को किया ॥ ३८ ॥ अनन्तर बिहँसते हुये क्रोध से मूर्च्छित नमुचि ने वहा आये हुये देवेन्द्र को भलीभाति देखकर व शूलसे मारकर इस वचन को कहा ॥ ३९ ॥ कि हे देवसत्तम ! तुमने समुद्र के तीर को क्यों सेवन किया है और आप संग्राम भूमिको छोड़कर शस्त्रों के त्यागनेवाले क्यों हुये हो ॥ ४० ॥ हे दुर्बुद्धे ! तुम्हारे वज्रने मेराक्या किया तथा अन्य अच्छे शस्त्रों और सुन्दरे बहुते अस्त्रोंकोभी ॥ ४१ ॥ तुमने आगे मेरे मारनेके लिये लिया व हे मन्द ! ऐसेही इससमय मुझको मारने के लिये युद्धके अर्थ भलीभाति समीपमें टिकेहुये

न्दकरींशुभान्ताम् ॥ चक्रेप्रयत्नंपरमंतदावै गत्वोदधेस्तीरमनन्तवीर्य्यः ॥ ३८ ॥ तत्रागतंसमीक्ष्याथ नमुचिःक्रोधमूर्च्छितः ॥ हत्वाशूलेनदेवेन्द्रं प्रहसन्निदमब्रवीत् ॥ ३९ ॥ समुद्रस्यतटःकस्मात्सेवितस्सुरसत्तम ॥ विहायरणभूमिञ्च त्यक्तशस्त्रोभवद्भवान् ॥ ४० ॥ त्वदीयेनैववज्रेण किंकृतंममदुर्मते ॥ तथान्यानिसुशस्त्राणि चास्त्राणिसुबहूनिच ॥ ४१ ॥ गृहीतानिपुरामन्द हन्तुमामेवचाधुना ॥ किंकरिष्यसिमांहन्तुं युद्धायसमुपस्थितः ॥ ४२ ॥ केनशस्त्रेणरेमन्द योद्धुमिच्छसिसंयुगे ॥ त्वांघातयामिचाद्यैव यदितिष्ठसिसम्मुखे ॥ ४३ ॥ नोचेद्गच्छमयामुक्तश्चिरंजीवसुखीभव ॥ एवंसगर्वितंतस्य वाक्यमाहवशोभिनः ॥ ४४ ॥ श्रुत्वामहेन्द्रोपिरुषाजगृहेफेनमद्भुतम् ॥ फेनंकरस्थंदृष्ट्वाच तेऽसुराजहसुस्तदा ॥ ४५ ॥ क्षयंगतानिचास्त्राणि फेनेनचपुरन्दर ॥ तदैवेन्द्रेणनिहतः फेनेननमुचिर्महान् ॥ ४६ ॥ अपांफेनेननमुचेः शिरइन्द्रोजहारयत् ॥ कबन्धोन्यपतद्भूमौ छिन्नपक्षइवाचलः ॥ ४७ ॥ हतेचनमुचौदेवाः सर्वेचैवमुदान्विताः ॥ साधु

तुम क्याकरोगे ॥ ४२ ॥ और हे मंद ! तुम सग्राममें किस शस्त्रसे लडनेके लिये इच्छा करतेहो और जो तुम मेरे सामने टिकते हो तो मैं आजही तुमको मारताहूं ॥४३॥ व जो नहीं टिकते हो तो मुझसे छोड़े हुये तुम चलेजावो बहुतकालतक जीवो और सुखी होवो इसभाति समर में शोभावाले उस के गर्वसमेत वचन को ॥ ४४ ॥ सुनकर महेन्द्र ने भी क्रोधसे अद्भुत फेनाको ग्रहण किया और तब हाथमें टिके हुये फेना को देखकर असुरलोग हँसे ॥ ४५ ॥ कि हे इन्द्र ! इस फेना से अस्त्र क्षयको प्राप्त होगये और उस समयमेंही इन्द्रने फेनासे बड़ेभारी नमुचि को मारा ॥ ४६ ॥ जब इन्द्रने जलोंके फेनासे नमुचिके मूँड़को हरलिया तब कटेपक्षवाले पर्वतकी नाईं

विना शिरका शरीर भूमिमें शीघ्रही नीचे गिरपडा ॥ ४७ ॥ और नमुचिके मारेजातेही सब देव आनन्द से समेत हुये व ऋषियोंने भी अच्छाहुआ अच्छाहुआ ऐसे शब्द से पूजा किया ॥ ४८ ॥ जिससमय नमुचि को संग्राम में मारकर सब देव जीतिको प्राप्तभये उस समय कोप से सञ्चलित हर्ष समेत वे दैत्यलोग लडने के चाहीहुये ॥ ४९ ॥ व बहुत भातिके शस्त्रों और अस्त्रोंसे संयुत व आपुस मे मारनेकी इच्छावाले दानवोंके साथ देवोंका युद्ध फिर बहुतही वर्तमान हुआ ॥ ५० ॥ और जब देवोंने उन्हीं असुरोंको बार बार मारकर गिरादिया तब बड़ा तेजस्वी वृत्रासुर इन्द्रके समीप में आया ॥ ५१ ॥ उस समय वृत्रासुरको देखकर बड़े डरसे संयुत

साध्विति शब्देन ऋषयश्चाप्यपूजयन् ॥ ४८ ॥ तदा सर्वे जयम्प्राप्ता हत्वा नमुचिमाहवे ॥ दैत्यास्ते कोपसंक्षुब्धा योद्धुकामा मुदान्विताः ॥ ४९ ॥ पुनः प्रवर्ततेयुद्धं देवानांदानवैस्सह ॥ शस्त्रास्त्रैर्बहुधायुक्तैः परस्परवधैषिभिः ॥ ५० ॥ यदाते ह्यसुरादेवैः पातिताश्चपुनःपुनः ॥ तदावृत्रोमहातेजाः शतक्रतुमुपाव्रजत ॥ ५१ ॥ वृत्रंदृष्ट्वातदासर्वेह्यसुरंसुरमानवाः ॥ भयेनमहतायुक्ताः पतितासुविशेरते ॥ ५२ ॥ एवंभीतेषुसर्वेषु सुरसिद्धेषुवैतदा ॥ इन्द्रश्चैरावतारूढो वज्रपाणिःप्रतापवान् ॥ ५३ ॥ छत्रेणध्रियमाणेन चामरेणविराजितः ॥ तदासर्वेसमेताहि लोकपालैःप्रतापिभिः ॥ ५४ ॥ वृत्रंविलोक्यतंसर्वे लोकपालाःसहेश्वराः ॥ भयभीताश्रभीतन्ते शिवंशरणमन्वयुः ॥ ५५ ॥ मनसाचिन्तयन्सर्वे शङ्करंलोकशङ्करम् ॥ लिङ्गंसम्पूज्यविधिवद् महेन्द्रोजयकामुकः ॥ ५६ ॥ गुरुणाविदितस्सद्यो विश्वासेनपरेणहि ॥ उवाचचतदाशक्रं बृह

भूमिमें गिरेहुये सब देव और मनुष्य सोगये याने अचेत होगये ॥ ५२ ॥ तब इस भांति सब देव व सिद्धों के डरभुत होतेही ऐरावतहाथी में सवार वज्रहाथवाले प्रतापी इन्द्रजी ॥ ५३ ॥ धारेजातेहुये छत्र और चमरसे विराजितहुये और उससमय प्रतापी लोकपालोंके साथ सब देवभी बटुरकर इकट्ठे होगये ॥ ५४ ॥ व उस वृत्रासुरको विशेषतासे देखकर डरसे डरेहुये ईश्वर समेत वे सब लोकपाल निडर शिव जीके शरण को पीछेसे प्राप्तहुये ॥ ५५ ॥ व सबोंने मनसे लोकों के कल्याण कर्त्ता शङ्करजीको ध्यान किया और विधानके समान लिंगको भलीभांति पूजकर जीतिके चाही महेन्द्रजी ॥ ५६ ॥ गुरुसे शीघ्रही जानेगये और उस समय उदार

बुद्धिवाले बृहस्पतिजी ने बड़ेही विश्वासके साथ इन्द्रसे कहा ॥ ५७ ॥ कि जो कार्त्तिकमास के उजेलेपाख में शनैश्चर के दिन सम्पूर्ण त्रयोदशी तिथि मिले तो सब प्राप्तहै इसमें संशय नहीहै ॥५८॥ हे देवेश! उसके प्रदोष समय में सब कामों की समृद्धिके लिये लिंगरूपी सदाशिवजी पूजनेयोग्यहैं ॥ ५९ ॥ मध्याह्न समय (दुपहर) में स्नानकर तिल व अमलाके दलोंसे संयुत सुगन्ध फूल और फलादिकोंसे शिवजीका पूजनकरे ॥ ६० ॥ पीछेसे प्रदोष समयमें स्थावर लिङ्गको पूजे जो कि आपही आप हुआहो व थापागया हो व मनुष्यों का सम्बन्धी हो व मनुष्योंका नहीहो याने देवादिकों से थापितहो ॥ ६१ ॥ और जनोंसे युक्तस्थान या निर्जन

स्पतिरुदारधीः ॥ ५७ ॥ कार्त्तिकेशुक्लपक्षेतु मन्दवारेत्रयोदशी ॥ समग्रायदिलभ्येत सर्वंप्राप्तंनसंशयः ॥५८॥ तस्यां प्रदोषसमये लिङ्गरूपीसदाशिवः ॥ पूजनीयोहिदेवेश सर्वकामसमृद्धये ॥ ५९ ॥ स्नात्वामध्याह्नसमये तिलामलक संयुतैः ॥ शिवस्यचार्चनंकुर्य्याद्गन्धपुष्पफलादिभिः ॥ ६० ॥ पश्चात्प्रदोषवेलायां स्थावरंलिङ्गमर्चयेत् ॥ स्वयम्भुस्थापितंचैव पौरुषेयमपौरुषम् ॥ ६१ ॥ जनेवानिर्जनेवापि चारण्येवातपोवने ॥ तल्लिङ्गमर्चयेद्भक्त्या प्रदोषेचविशेषतः ॥ ६२ ॥ ग्रामाद्बहिःस्थितंलिङ्गं ग्रामाच्छतगुणंफलम् ॥ बाह्याच्छतगुणंपुण्यमारण्यंलिङ्गमर्चितम् ॥ ६३ ॥ आरण्याच्छतगुणम्पुण्यमर्चितेपार्वतेतथा ॥ पार्वताच्चैवलिङ्गाच्च फलञ्चायुतसंख्यकम् ॥ ६४ ॥ तपोवनाश्रितेलिङ्गे पूजितेवा महाफलम् ॥ तस्मादेतद्विभागेन शिवसंपूजनंबुधैः ॥ ६५ ॥ कर्तव्यंहिगुणत्वेन तीर्थस्नानादिकंतथा ॥ पञ्चपिण्डाननुद्धृत्य वाप्यांस्नानमशोभनम् ॥ ६६ ॥ कूपेस्नानंनकुर्वीततूद्धृतेनविशेषतः ॥ तडागेदशपिण्डाञ्च उद्धृत्यस्नानमाच

या वन या तपोवनमेंभी हो उस लिंगको प्रदोष समयमें फिर भक्तिके साथ विशेष से पूजे ॥ ६२ ॥ जोकि लिंग ग्रामसे बाहर टिकाहै उसमें ग्रामसम्बन्धी से सौगुना फलहोता है व वनका पूजितलिंग ग्रामके बाहरवालेसे सौगुना पुण्यवान् है॥६३॥ वैसेही पर्वत सम्बन्धी लिंगके पूजित होतेही वनके लिंगसे सौगुनी पुण्यहै औ ऐसेही पर्वत के लिंगसे दशहजार संख्यक ॥ ६४ ॥ फल तपोवन में टिकेहुये लिंग के पूजित होतेही होताहै अथवा बड़ाफल है उस कारण पण्डितों को विभाग से शिवजी का संपूजन ॥ ६५ ॥ तथा तीर्थस्नानादिक गुणभावसे ही करना चाहिये क्योंकि पाच पिण्ड माटीको नही निकालकर वापीमें नहाना अशुभ है ॥ ६६ ॥

व कूपमें और विशेष से ऊपर आनेहुये जलसे स्नानको नहीं करे और तड़ाग में दशपिण्ड माटीको ऊपर निकालकर स्नानको करे ॥ ६७ ॥ व नदीमें और विशेष से महानदी में नहाना अधिक विशेषण समेतहै ऐसेही सब तीर्थोंके मध्यमें गंगा स्नान विशेष कियाजाता है ॥ ६८ ॥ और देवोंके खात (कुण्ड) में नहाना उस गङ्गास्नान के समान उत्तम प्रशंसित है ॥ ६९ ॥ तदनन्तर प्रदोषसमय में स्नान व मौनको भलीभाति करे ॥ ७० ॥ उसके बाद बड़ेदीपों के हजारा व सैकड़ा से व बत्तिसदीपों की पङ्क्तिसे सदा शिवजी दीपित करनेयोग्यहैं ॥ ७१ ॥ और शिवजीकेसंतोषके लिये घृतसे दीपोंको प्रज्वलित करे वैसेही फल धूप नैवेद्य सुगन्ध व फूल ॥७२॥

रेत् ॥ ६७ ॥ नद्यांस्नानंविशिष्टञ्च महानद्यांविशेषतः ॥ सर्वेषामेवतीर्थानां गङ्गास्नानंविशिष्यते ॥ ६८ ॥ देवखातेच तत्तुल्यं प्रशस्तंस्नानमुत्तमम् ॥६९॥ ततःप्रदोषसमयेस्नानंमौनंसमाचरेत् ॥ ७० ॥ प्रदीपानांसहस्रेण दीपनीयःसदाशिवः ॥ अथदीपशतेनापि द्वात्रिंशद्दीपमालया ॥ ७१ ॥ घृतेनदीपयेद्दीपाञ्छिवस्यपरितुष्टये ॥ तथाफलैश्चधूपैश्च नैवेद्यैर्गन्धपुष्पकैः ॥ ७२ ॥ उपचारैःषोडशभिर्लिङ्गरूपीसदाशिवः ॥ पूज्यःप्रदोषवेलायामसौसर्वार्थसिद्धितः ॥ ७३ ॥ प्रदक्षिणंप्रकुर्वीत शतमष्टोत्तरंयथा ॥ नमस्कारान्प्रकुर्वीततावत्संख्यान्प्रयत्नतः ॥७४ ॥ प्रदक्षिणनमस्कारैः प्रीणनीयःसदाशिवः ॥ नाम्नांशतेनरुद्रोसौस्तवनीयोयथाविधि ॥७५॥ नमोरुद्रायनीलाय भीमायपरमात्मने ॥ कपर्दिनेसुरेशाय व्योमकेशायवैनमः ॥ ७६ ॥ वृषभध्वजायसोमाय सोमनाथायशम्भवे ॥ दिगम्बरायभर्गाय उमाकान्तायवैनमः ॥७७॥

और सोलह उपचारों से प्रदोष समय में सर्वार्थसिद्धिके लिये वह लिंगरूपी सदाशिवजी पूजनीयहैं ॥ ७३ ॥ जैसे आठ अधिक सौ प्रदक्षिणाओंको करे वैसेही बड़े यत्नके साथ उतने संख्यक नमस्कारोंको अधिकता से करे ॥ ७४ ॥ और संसार रूपरोग के भागनेवाले वह सदाशिवजी प्रदक्षिणा पूर्वक नमस्कारोंसे प्रसन्नकरने योग्यहैं व नामों के सैकड़ासे यथाविधि स्तवनीय (स्तुतिकेयोग्य) हैं ॥ ७५ ॥ कि संसाररोग के भगानेवाले, तमोगुणके स्वामी दुष्टोंके भयदायक परमात्मा जटीले देवोंके नायक और आकाशतक लम्बे बालोंवाले के लिये निश्चय से नमस्कारहो नमस्कारहो ॥ ७६ ॥ व वृषभध्वज, मंगललक्ष्मी समेत, चन्द्रमाके नाथ सुखकारी

दिशावस्त्रधारी तेजोरूप पार्वतीकांतके लिये निश्चय से नमस्कारहो ॥ ७७ ॥ हे शिव ! तपोमय मंगलमूर्त्तिश्रेष्ठ, सर्वव्यापक सर्प्पोंकेप्यारे शेषस्वरूप और हाथी या सर्प्पोंके पतिके लिये नमस्कारहो ॥ ७८ ॥ पृथिवीके धर्ता सुगन्धोंके ग्रहणकर्त्ता जीवोंके भर्त्ता तीनपुरों या शरीरों के हर्त्ता सिंहके समान प्रलयकार शरभावतार और यज्ञस्वरूप के लिये नमस्कारहो ॥ ७९ ॥ मत्स्यावतारधार मीनोंके नाथ सिद्ध व उत्तम या जिसमें योगीजन रमतेहैं उस स्थानमें टिकनेवाले व कामके नाशक बोधके प्रकाशक और बुद्धियों के पतिके लिये नमस्कारहो ॥ ८० ॥ ब्रह्मा या काल बालके उपजानेवाले विशेषण समेत अच्छे आचारवान् सर्वात्मा वेदरूप वेदों के

तपोमयायभव्याय शिवश्रेष्ठायविष्णवे ॥ व्यालप्रियायव्यालाय व्यालानांपतयेनमः ॥ ७८ ॥ महीधरायव्याघ्रायपशूनाम्पतयेनमः ॥ पुरान्तकायसिंहाय शार्दूलायमखायच ॥ ७९ ॥ मीनायमीननाथाय सिद्धायपरमेष्ठिने ॥ कामान्तकायबुद्धाय बुद्धीनाम्पतयेनमः ॥ ८० ॥ कपोतायविशिष्टाय शिष्टायसकलात्मने ॥ वेदायवेदजीवाय वेदगुह्यायवैनमः ॥ ८१ ॥ दीर्घायदीर्घरूपाय दीर्घार्थायाविनाशिने ॥ नमोजगत्प्रतिष्ठाय व्योमरूपायवैनमः ॥ ८२ ॥ गजासुरमहाकालायान्धकासुरभेदिने ॥ नीललोहितशुक्लाय चण्डमुण्डप्रियायच ॥ ८३ ॥ भक्तिप्रियायदेवाय ज्ञात्रेज्ञानाव्ययायच ॥ महेशायनमस्तुभ्यं महादेवहरायच ॥ ८४ ॥ त्रिनेत्रायत्रिवेदाय वेदाङ्गायनमोनमः ॥ अर्थायचार्थरूपाय परमार्थायवैनमः ॥ ८५ ॥ विश्वभूपायविश्वाय विश्वनाथायवैनमः ॥ शङ्करायचकालाय कालावयवरूपिणे ॥ ८६ ॥ अरूपायविरूपाय सूक्ष्मसूक्ष्मायवैनमः ॥ श्मशानवासिनेभूयो नमस्तेकृत्तिवाससे ॥ ८७ ॥ शशाङ्कशेखराये

जीव और वेदोंमें गुप्तके लिये निश्चय से नमस्कारहो ॥ ८१ ॥ बडेभारी व बड़ोंके प्रकाशक व बड़े धनवान् व अविनाशी व जगत् की प्रतिष्ठाके कारण व आकाशरूप के लिये निश्चय से नमस्कारहो नमस्कारहो ॥ ८२ ॥ हे नीललोहित ! गजासुरके महाकाल अन्धकासुरके विदारनेवारे चण्ड मुण्डके प्यारे और उजले रंगअंगवाले के लिये नमस्कारहो ॥ ८३ ॥ हे ज्ञानस्वरूप,महादेवजी ! भक्तिके प्यारकारी लीला धारी सर्वज्ञ अविकारी व बड़ेभारी ईश्वर और भक्तभयहारी तुम्हारे लिये नमस्कारहो ॥ ८४ ॥ त्रिनयन या त्रिगुण प्रेरक, त्रिकाल में सत्य या त्रिवेदस्वरूप व वेदों के अङ्ग या मित्रके लिये नमस्कारहो नमस्कारहो व शब्दों के अर्थ प्रयोजनरूप

और परमार्थ के लिये निश्चय से नमस्कारहो ॥ ८५ ॥ विश्वके भूप विश्वरूप विश्वनाथ शङ्कर चित्तके लेनेवाले या महाकाल व कालांगरूपी के लिये निश्चयसे नमस्कारहो ॥ ८६ ॥ मायामयरूप से रहित या सूर्य्य या वासुदेवरूप व विशुद्ध सच्चिदानन्दरूप से सहित सूक्ष्मों से सूक्ष्म श्मशानविहारी व्याघ्राम्बरधारी या गजचर्म वस्त्रवाले तुम्हारे लिये बारबार निश्चय से नमस्कारहो ॥ ८७ ॥ हे उग्र ! चन्द्रभाल ऐश्वर्यवान् भूमिमें सोनेहारे दुःखमें गायेजाते हुये दुर्गमपारवाले और दुर्गाके अंगोंके साखीके लिये नमस्कारहो ॥ ८८ ॥ लिंगरूप लिंगवान् लिंगोंकेपति के लिये नमस्कारहो प्रलयरूप के लिये नमस्कारहो और ॐकारके अर्थके लिये निश्चय से नमस्कारहो ॥ ८९ ॥ हे नीलकण्ठ, गौरीपते, शर्व ! कारणों के कारण मृत्युके जीतनेवाले ब्रह्मस्वरूपी श्रीत्रिलोचन और सकल कल्याणों के कारण

शायोग्रभूमिशयायच॥ दुर्गायदुर्गपाराय दुर्गावयवसाक्षिणे ॥ ८८ ॥ लिङ्गरूपायलिङ्गाय लिङ्गानाम्पतयेनमः ॥ नमःप्रलयरूपाय प्रणवार्थायवैनमः ॥ ८९ ॥ नमोनमःकारणकारणाय मृत्युंजयायात्मभवस्वरूपिणे ॥ श्रीत्र्यम्बकायासितकण्ठशर्व गौरीपतेसकलमङ्गलहेतवेनमः ॥ ९० ॥ नाम्नांशतंमहेशस्य उच्चार्यव्रतिनातदा ॥ प्रदक्षिणनमस्कारैरेतत्संख्यैःप्रपूजनम् ॥ ९१ ॥ कार्यंप्रदोषसमयेतुष्ट्यर्थंशङ्करस्यच ॥ एवंव्रतंसमादिष्टं तवशक्रमहामते ॥ ९२ ॥ शीघ्रंकुरुमहाभाग पश्चाद्युद्धंकुरुप्रभो ॥ शम्भोःप्रसादात्सर्वन्ते भविष्यतिजयादिकम् ॥ ९३ ॥ वृत्रोह्ययंमहातेजास्तपस्वीतपसापुरा ॥ शिवंप्रसादयामास पर्वतेगन्धमादने ॥ ९४ ॥ नाम्नाचित्ररथोराजा वनंचित्ररथस्यतत ॥ एतज्जानीहिभोइन्द्र तवपुर्य्यासमीपतः ॥ ९५ ॥ अस्मिन्वनेमहानागा वसन्तिमहदूर्मयः ॥ तस्माच्चैत्ररथन्नाम वनंपरम

तुम्हारे लिये नमस्कारहो नमस्कारहो नमस्कारहो ॥ ९० ॥ तब महेशजी के नामोंके सैकडाको उच्चारणकर व्रतवाले को इतनी याने सौ संख्यासे गने प्रदक्षिण और नमस्कारों के साथ बडीपूजा ॥ ९१ ॥ प्रदोष समयमें शिवजीकी तुष्टिके लिये करना चाहिये हे महामते, इन्द्र ! मैंने तुमसे इस व्रतको बताया ॥ ९२ ॥ हे महाभाग ! समर्थ तुम पहले इसको शीघ्रहीकरो और पीछेसे युद्धकोकरो तो शङ्करजी की प्रसन्नतासे तुम्हारा सब जयादिक होवेगा ॥ ९३ ॥ क्योंकि बडे तेजस्वी तपस्वी इस वृत्रासुरने आगे गन्धमादन पर्वतमें शिवजीको प्रसन्न कियाहै ॥ ९४ ॥ हे इन्द्र ! नामसे चित्ररथ राजाहुआ उस चित्ररथके इस वनको जानो जोकि तुम्हारी पुरीके समीप

मेंहै ॥ ६५ ॥ इस वनमें बड़ी लहरियों वाले महानाग बमते हैं उससे चैत्ररथ नाम वन परम मंगलमय है ॥ ६६ ॥ और शिवजीनेही उस राजा को एक ऐसा विमान दिया जोकि बड़ा विचित्र इच्छानुसार चलनेवाला किंकिणियों (छोटी घंटियों) से संयुत व सिद्ध और चारणों से सेवित ॥ ६७ ॥ व गन्धर्व अप्सरस यक्ष और किन्नरों से समीप में शोभित था तदनन्तर पूर्व समय में उसही विमान से पृथिवी में पर्य्यटन करताहुआ ॥ ६८ ॥ वह चित्ररथ नामसे प्रसिद्ध राजा बहुत प्रकार के द्वीपों को विशेष से देखकर एक समय शिवजी के स्थान को गया ॥ ६६ ॥ और वहां आयेहुये उसने उत्तम अद्भुत अनूप तथा महेशाजी के गणोंसे विराजित कै-

मङ्गलम् ॥ ९६ ॥ तस्यराज्ञःशिवेनैव यानञ्चपरमाद्भुतम् ॥ कामगंकिङ्किणीयुक्तं सिद्धचारणसेवितम् ॥ ९७ ॥ गन्धर्वै रप्सरोयक्षैः किन्नरैरुपशोभितम् ॥ ततस्तेनैवयानेन पृथिवीम्पर्य्यटन्पुरा ॥ ९८ ॥ एकस्मिन्समयेराजा नाम्नाचित्र रथस्सवै ॥ विलोक्यविविधान्द्वीपानगमद्गिरिशालयम् ॥ ९९ ॥ कैलासमागतस्तत्र ददर्शपरमाद्भुतम् ॥ तथातुलं महेशस्य गणैश्चैवविराजितम् ॥ १०० ॥ अर्द्धाङ्गलग्नयादेव्याशोभितञ्चमहेश्वरम् ॥ सदाशिवंसुकर्पूरगौरमम्बुरुहेक्षणम् ॥ १ ॥ कपर्दिनञ्चन्द्रकलाविभूषितं गङ्गाधरन्देववरंनिरीक्ष्य ॥ प्रहस्यराजाचतदागिरीशं न्यायान्वितंवाक्य मिदंवभाषे ॥ २ ॥ सर्वेत्रशम्भोविषयान्विताश्चमर्त्यादयःस्त्रीविजितास्तुयेन्ये ॥ तेलोकमध्येवयमेवचाज्ञाः स्त्रीसेव नंनैवह्रियाप्रकुर्मः ॥ ३ ॥ एतद्वाक्यंनिशम्याह महेशःप्रहसन्निव ॥ सुवाचंन्यायसंयुक्तां सर्वेषामपिशृण्वताम् ॥ ४ ॥

लास को निश्चय से देखा ॥ १०० ॥ और आधे अंगमें लगीहुई देवीजी से शोभित परमेश्वर सदा कल्याण रूप कमलनयन और अच्छे कपूर से गौर ॥ १ ॥ व जटाजूट वाले, चन्द्रमाकी कलासे विभूषित गगाधर देवोंमें वर और पर्वत या वाणीके स्वामी शिवजीको भलीभांति देखकर व बहुतहँसकर राजाने उससमय न्याय समेत इस वचन को कहा ॥ २ ॥ कि हे शम्भो ! इस जगत्में जोकि मनुष्यादि व अन्य देवादि भी विषयों से सयुत और स्त्रियों से विशेषकर जीते गये हैं याने उनके अधीन हैं वे सब और ऐसे अज्ञानी हमलोग लोगों के बीचमें लाजसे स्त्री सेवन को अधिकता से नहीं करते हैं ॥ ३ ॥ इस वाक्य को सुनकर बिहँसते

हुएसे महेशजी सबोंके सुनतेही न्याय समेत सुन्दरी वाणीको बोले ॥ ४ ॥ कि डर और लोकापवादभी सबोंका है यह अन्यथा नहीं है क्योंकि राबोंकेभी दुःख से प-
चाने वाले विषको मैने खाया है ॥ ५ ॥ तोभी राजाने यहां मेरा उपहास किया तब परमेश्वरी पार्वतीजीने उस चित्ररथ को बुलाकर वचन को कहा ॥ ६ ॥
श्री शैलकुमारी जी बोलीं कि हे मन्दबुद्धे, दुरात्मन् ! आजतुमने मेरेसाथही शंकर जीको कैसे उपहास कराया इसके तुम अपने कर्मके फलकोदेखोगे ॥ ७ ॥ वे जोकि
मनुष्य अथवा देवभी समान चित्तवाले साधुवो का उपहास करता है वह अधम से अधम विशेषण से जानने योग्य है ॥ ८ ॥ और बड़े प्रभाव वाले ये प्रसिद्ध

भयलोकापवादाश्च सर्वेषामपिनान्यथा ॥ ग्रसितंकालकूटञ्च सर्वेषामपिदुर्जरम् ॥ ५ ॥ तथाप्यत्रोपहासोमे कृतोराज्ञा
तदेश्वरी ॥ तञ्चित्ररथमाहूय गिरिजावाक्यमब्रवीत् ॥ ६ ॥ गिरिजोवाच ॥ रेदुरात्मन्कथंत्वद्य शङ्करश्चोपहासितः ॥
मयासहैवमन्दात्मन्द्रक्ष्यसेकर्मणःफलम् ॥ ७ ॥ साधूनांसमचित्तानामुपहासंकरोतियः ॥ देवोवाप्यथवामर्त्यः सवि
ज्ञेयोधमाधमः ॥ ८ ॥ एतेमुनीन्द्राश्चमहानुभावास्तथाह्यमीऋषयोवेदगर्भाः ॥ तथैवसर्वेसनकादयोह्यमी अज्ञाश्चस
र्वेशिवमर्चयन्ते ॥ ९ ॥ रेमूढसर्वेषुजनेष्वभिज्ञस्त्वमेवमेवाद्यनचापरोनरः ॥ तस्मादभिज्ञंहिकरोमिदैत्यं देवैर्द्विजैश्चा
पिबहिष्कृतंत्वाम् ॥ १० ॥ एवंशप्तस्तयादेव्या भवान्याराजसत्तमः ॥ राजाचित्ररथस्सद्यः पपातसहसादिवः ॥ ११ ॥
आसुरींयोनिमासाद्य वृत्रोनाम्नाभवत्तदा ॥ तपसापरमेणैवत्वष्ट्रासंयोजितःक्रमात् ॥ १२ ॥ तपसातेनमहता ह्यजेयोवृ

मुनीन्द्र तथा वेदोंको गर्भ में किये हुए ये सब ऋषि व वैसेही ये सब सनकादिक सिद्ध अज्ञानी हैं क्योंकि शिवजी को पूजते हैं ॥ ६ ॥ रेमूढ़ ! तुमही सबजनों
के मध्य में बड़े पंडितहो और आज ऐसा अन्य कोई मनुष्य नहीं है उससे मैं देवों और ब्राह्मणों सेभी बाहर कियेहुये सब ओर से जाननेवाले ही तुमको दैत्य कर-
तीहूँ ॥ १० ॥ इसभांति उन देवी भवानीजी से शापाहुआ वह राजसत्तम राजा चित्ररथ एकाएक शीघ्रही स्वर्ग से गिरपड़ा ॥ ११ ॥ उस समय आसुरी योनिको
प्राप्तहोकर नामसे वृत्रासुर हुआ ऐसेही त्वष्टाकरके उत्तम तपस्यासे क्रमसे भली भांति जोड़ागया ॥ १२ ॥ जिससे वृत्रासुर उस बड़े तपसे अजेय याने जीतने

योग्य नहीं कहाजाता है उससे तुम इस समय प्रदोष में विधिस शम्भुको भली भांति सामने से पूजकर ॥ १३ ॥ देवों के कार्य्य की सिद्धिके लिये बड़े भारी दैत्य वृत्रासुर को मारो अनन्तर गुरुके उस वचनको सुनकर इन्द्रनेकहा ॥ १४ ॥ कि अब आप मेरे-लिये या मुझसे प्रदोष व्रतके उद्यापन का विधान बतावो, श्रीबृहस्पतिजी बोले कि, कातिक मासके भलीभाति प्राप्तहोतेही शनैश्चर दिनमें त्रयोदशी तिथि ॥ १५ ॥ आज सम्पूर्ण है और वह समग्र व्रतकी सिद्धिके लिये होवे है इससे रूपेका बैल व उसकी पीठमें सुन्दर पीठक (आसन) कराना चाहिये ॥१६॥ उसकेऊपर त्रिनेत्र पञ्चमुख और दशभुजावाले पार्वतीकेपति महादेवजी व आधेअङ्ग

त्रउच्यते ॥ तस्माच्छम्भुंसमभ्यर्च्य प्रदोषेविधिनाधुना ॥ १३ ॥ जहिवृत्रंमहादैत्यं देवानांकार्यसिद्धये ॥ गुरोस्तद्वचनंश्रुत्वा उवाचाथशतक्रतुः ॥ १४ ॥ उद्यापनविधिम्ब्रूहि प्रदोषस्यचमेधुना ॥ बृहस्पतिरुवाच ॥ कार्त्तिकेमासिसम्प्राप्ते मन्दवारेत्रयोदशी ॥ १५ ॥ सम्पूर्णातुभवेत्साद्य समग्रव्रतसिद्धये ॥ वृषभोराजतःकार्यः पृष्ठेतस्यसुपाठकम् ॥ १६ ॥ तस्योपरिन्यसेद्देवमुमाकान्तंत्रिलोचनम् ॥ पञ्चवक्त्रंदशभुजं चार्द्धाङ्गेगिरिजांसतीम् ॥ १७॥ एवंतूमांमहेशञ्च सौवर्णं कारयेद्बुधः ॥ तंवृषेताम्रपात्रेचवस्त्रेणपरिगुण्ठिते ॥ १८॥ स्थापयित्वोमयासार्द्धं नानाभावसमन्वितः ॥ विधिनाजागरंकुर्य्याद्रात्रौश्रद्धासमन्वितः ॥ १९ ॥ पञ्चामृतेनस्नपनंकार्यमादौप्रयत्नतः ॥ पूजामन्त्रान्प्रवक्ष्यामि शृणुदेवेशसाम्प्रतम् ॥ २० ॥ गोक्षीरधामदेवेश गोक्षीरेणमयाकृतम् ॥ स्नपनंदेवदेवेश गृहाणपरमेश्वर ॥ २१ ॥ दध्नाचैवमहादे

में पतिव्रता पर्वतराजकुमारीको थापे ॥ १७ ॥ इमभांति बुद्धिमान् जन सोनेकी पार्वती समेत महेशजीकी मूर्तिको बनवावे व वस्त्रसे सबओर छाये हुए तांबेके पात्र में बैलकी प्रतिमापर उन शिवजीको ॥ १८ ॥ श्रीपार्वतीजी के साथ थापकर बहुतभांति की भावनासमेत व श्रद्धा से संयुत होकर रात्रि में विधिसे जागरण को करे ॥ १९ ॥ व पहले बड़े यत्नके साथ पञ्चामृत से स्नान कराना चाहिये और हे देवेश! अब मैं पूजाके मन्त्रों को अधिकता से कहूंगा तुम सुनो ॥ २० ॥ कि हे गोदुग्ध के समान प्रकाशमान, देवेश, देवों के देव, ईश, परमेश्वर ! तुम मेरेकिये हुए गोदूधसे नहवाने को ग्रहण करो ॥ २१ ॥ और हे महादेवजी ! ऐसेही मुझकरके दही

से स्नपन करायाजाता है तुम मेरे दियेहुए को लो और आज मेरेपर बहुत प्रसन्न होवो ॥ २२ ॥ व हे देव ! मुझकरके तुम्हारी प्रीतिके अर्थ ही घृतसे स्नान कराया जाता है और तुम श्रद्धासे मेरे दियेहुये को ग्रहणकरो ॥ २३ ॥ व हे देवेश ! जिससे मैंने तुम्हारी सन्तुष्टि के अर्थही मधु (सहत) को दियाहै उससे तुम इसको लेवो और मेरी शान्तिके बड़े दायकहोवो ॥ २४ ॥ हे देवदेवेश्वर, प्रभो ! मुझकरके शर्करासे नहवाना कियाजाता है तुम श्रद्धासे दिये हुए को ग्रहणकरो व बहुत प्रसन्न होवो ॥ २५ ॥ इसप्रकार पञ्चामृतसे ही महादेवजी नहवाने योग्य हैं और पीछे से बुद्धिमान् को ताम्र के पात्रसे अर्घ अधिकता से देनाचाहिये ॥ २६ ॥ हे पार्वतीपते,

व स्नपनंकार्य्यतेमया ॥ गृहाणचमयादत्तं सप्रसन्नोभवाद्यवै ॥२२॥ सर्पिषाचमयादेव स्नपनंक्रियतेमया ॥ गृहाणश्रद्धयादत्तं तवप्रीत्यर्थमेवच ॥ २३ ॥ इदंमधुमयादत्तं तवतुष्ट्यर्थमेवच ॥ गृहाणत्वंहिदेवेश ममशान्तिप्रदोभव ॥ २४ ॥ सितयादेवदेवेश स्नपनंक्रियतेमया ॥ गृहाणश्रद्धयादत्तंसुप्रसन्नोभवप्रभो ॥ २५ ॥ एवंपञ्चामृतेनैव स्नपनीयोवृषध्वजः ॥ पश्चादर्घंप्रदातव्यं ताम्रपात्रेणधीमता ॥ २६ ॥ अर्च्योसित्वमुमाकान्त त्वर्घेणानेनवैप्रभो ॥ गृहाणत्वंमयादत्तं प्रसन्नोभवशङ्कर ॥ २७ ॥ मयादत्तंतुतेपाद्यं पुष्पगन्धसमन्वितम् ॥ गृहाणदेवदेवेश प्रसन्नोवरदोभव ॥ २८ ॥ विष्टरंविस्तरेणैव मयादत्तञ्चवैप्रभो ॥ शान्त्यर्थंभवदेवेश वरदोभवमेसदा ॥ २९ ॥ आचमनंमयादत्तं तवविश्वेश्वरप्रभो ॥ गृहाणपरमेशानं तुष्टोभवममाद्यवै ॥ ३० ॥ यज्ञोपवीतंसौवर्णं मयादत्तञ्चशङ्कर ॥ गृहाणपरयातुष्ट्या तुष्टोभवतुसर्वदा ॥ ३१ ॥ एतद्वासोमयादत्तं सोत्तरीयंसुशोभनम् ॥ गृहाणत्वंमहादेव ममायुष्यप्रदोभव ॥ ३२ ॥ सुगन्धंचन्दनंदेव

स्वामिन् शङ्कर ! तुम इस अर्घसे पूजनेयोग्यहो इससे ही तुम मेरे दियेहुएको लेवो और प्रसन्न होवो ॥ २७ ॥ हे देवदेवेश ! तुम्हारे लिये मुझ से दियेहुए फूल सुगन्ध समेत पाद्यको तुम ग्रहणकरो और प्रसन्न व वरके देनेवाले होवो ॥ २८ ॥ हे क्रीड़ाकारिन्, प्रभो, ईश ! मैंने विस्तार से ही तुमको बिछौना दिया और तुम निश्चय से शान्ति के अर्थ होवो व सदा मेरे वरदायकहोवो ॥ २९ ॥ हे परमेश्वर, प्रभो, विश्वनाथजी ! मैंने तुमको आचमन दिया तुम उसको ग्रहणकरो और आजही मुझ से सन्तुष्टहोवो ॥ ३० ॥ और हे शङ्करजी ! तुम मेरे दियेहुए सोने के यज्ञोपवीतको लेवो व सदैव परम प्रसन्नतासे प्रसन्न होवो ॥ ३१ ॥ हे महादेवजी ! तुम मेरेदिये हुए

उपन्नासमेत वहुत अच्छे इस वस्त्रको लेवो व मुझे आयुष्य के देनेवाले होवो ॥ ३२ ॥ हे भवप्रभो, देव, शम्भो ! मैंने उत्तमभक्ति से तुमको सुगन्ध समेत चन्दन दिया व तुम मुझको सुगन्धवालाकरो ॥ ३३ ॥ और हे परमेशान ! ऐसेही तुम मेरीशान्तिके अर्थ सब ओषधियों से समुत्थित विशेषता समेत श्रेष्ठधूपको ग्रहणकरो ॥ ३४ ॥ हे देवदेवेश्वर शङ्कर ! तुम मुझकरके घृतसे प्रज्वलित कियेहुए उत्तम दीपको निश्चयसे लेवो व मुझको ज्ञानके बड़े दाता होवो ॥३५॥ हे परमेश्वर ! तुम मेरी दी हुई दीपों की पंक्तिको ग्रहणकरो और आरतियोंके अधिक देनेसे मेरे तेज के प्रदायकहोवो ॥ ३६ ॥ और उस रात्रिमें विधानके जाननेवाले जनोंकरके बड़े यत्नके साथ

मयादत्तंतुतेप्रभो ॥ भक्त्यापरमयाशम्भो सुगन्धंकुरुमांभव ॥ ३३ ॥ धूपंविशिष्टंपरमं सर्वौषधिविजृम्भितम् ॥ गृहाणपरमेशान ममशान्त्यर्थमेवच ॥३४॥ दीपंहिपरमंशम्भोघृतप्रज्वालितम्मया ॥ गृहाणदेवदेवेश ममज्ञानप्रदोभव॥ ३५॥दीपावलींमयादत्तां गृहाणपरमेश्वर॥आरार्त्तिकप्रदानेनममतेजःप्रदोभव ॥ ३६ ॥ फलदीपादिनैवेद्यताम्बूलादिक्रमेणसः ॥ पूजनीयोविधानज्ञैस्तस्यांरात्रौप्रयत्नतः ॥ ३७ ॥ पश्चाज्जागरणंकार्य्यंगृहेवादेवतालये॥ वितानमण्डपंकृत्वा नानाश्चर्यसमन्वितम् ॥ ३८ ॥ गीतवादित्रनृत्येन त्वर्चनीयःसदाशिवः ॥ अनेनैवप्रकारेण प्रदोषोद्यापनेविधिः ॥ ३९ ॥ कार्योविधिविदाशक्र सर्वकार्यार्थसिद्धये ॥ गुरुणाकथितंसर्वं तच्चकारशतक्रतुः ॥ ४० ॥ हतेतुनमुचौदेवा हर्षेणचसमन्विताः ॥ तुमुलंयुद्धमभवद्देवानांदानवैस्सह ॥ ४१ ॥ तस्मिंस्तुसमरेगाढे देवदैत्यक्षयावहे ॥ द्वन्द्वयुद्धंसमभव

फल व दीपादि व नैवेद्य व ताम्बूल (पानके बीरा) आदिकों के क्रमसे वह महादेवजी पूजने योग्य हैं ॥ ३७ ॥ व पीछेसे जागरण करना चाहिये और घरमें या देवस्थानमें अनेक आश्चर्यों से समेत वितान मण्डप को कर ॥ ३८ ॥ गीत बाजे और नृत्यसे सदा शिवजी पूजनीय हैं इसही प्रकार से प्रदोषव्रतके उद्यापन में विधि है ॥ ३९ ॥ और हे इन्द्र ! सब कार्य्यार्थ सिद्धिके लिये विधिके जाननेवाले को करना चाहिये तब सौ यज्ञोंवाले देवेन्द्रजी ने गुरूसे कहेहुये सबको किया ॥ ४० ॥ और जब नमुचि नामक दैत्य मारागया तब सब देव हर्ष समेतहुये व दानवों के साथ देवोंकाबड़ा घोरयुद्धहुआ ॥ ४१ ॥ व देवों और दैत्योंके क्षयकारी दृढ़ताधारी उस संग्राममें समय

या सीमाके उल्लंघन करनेवाली भयङ्कर लड़ाई भलीभांति हुई ॥ ४२ ॥ वैसेही वहां ईश्वरके अच्छे प्रकार सामनेसे पूजकर युद्धमें परायण इन्द्रजी देवों के साथ वृत्रासुरके प्रति लड़नेलगे ॥ ४३ ॥ व व्योमासुर ने यमराज से तीक्ष्णकोपन ने अग्निसे धूम्रने वायुसे और अतिकोपन दैत्यने नैर्ऋतके साथ युद्धकिया ॥ ४४ ॥ ऐसेही कुबेरके साथ कूष्माण्ड व ईशानके साथ दुस्सहदैत्य लडनेलगा वैसेही अन्यभी बड़े बलवान् बहुतसे दैत्य देवोंके साथ ॥ ४५ ॥ द्वन्द्वयुद्धमें रतहुए व वे सब आपुसमें एक एकको मारने के चाहीहैं तथैव बड़ी बाहोंवाले वे देव श्रेष्ठ जब संग्राम के बीच में जीतिवालेहुये ॥ ४६ ॥ और सब दैत्य श्रेष्ठहारको प्राप्तहुये तब अधिक अनादर

दतिवेलंभयावहम् ॥ ४२ ॥ तथैवेशंसमभ्यर्च्य तत्रयुद्धपरायणः ॥ वृत्रंप्रतिसुरैस्सार्द्धं युयुधेचशतक्रतुः ॥ ४३ ॥ व्योमोपमेनयुयुधेह्यग्निनातीक्ष्णकोपनः ॥ वायुनासहधूम्रश्चनैर्ऋतेनातिकोपनः ॥ ४४ ॥ कुबेरेणैवकूष्माण्ड ईशेनसहदुस्सहः ॥ तथान्येबहवोदैत्या देवैस्सहमहाबलाः ॥ ४५ ॥ द्वन्द्वयुद्धरतास्सर्वे त्वन्योन्यवधकाङ्क्षिणः ॥ तथैवतेदेववरामहाभुजाः सङ्ग्राममध्येजयिनोयदाभवन् ॥ ४६ ॥ पराजयंदैत्यवराश्चसर्वे प्राप्तास्तदानींपरमंपराभवम् ॥ विलोक्यवृत्रोपरमेणमन्युना महाबलोवाक्यमिदंबभाषे ॥ ४७ ॥ वृत्रउवाच ॥ हेदैत्याःपरमार्थाश्च कस्माद्यूयंभयातुराः ॥ पलायनपराःसर्वे विसृज्यरणमद्भुतम् ॥ ४८ ॥ स्वंस्वंपराक्रमंवीरा युद्धायकृतनिश्चयाः ॥ धैर्यंकुरुध्वंचाद्यैव सर्वेलोकपरीप्सवः ॥ ४९ ॥ एवमुक्तास्तुतेसर्वे नानाप्रहरणान्विताः ॥ वृत्रञ्चपृष्ठतःकृत्वा युयुधुर्वैतदाद्भुतम् ॥ ५० ॥ गदाभिःपट्टिशैःखड्गैः शक्तितोमरमुद्गरैः ॥ ऋष्टिभिर्भिन्दिपालैश्च पाशप्राससुमुष्टिभिः ॥ ५१ ॥ तथैवप्राहरन्देवा दधीचास्थिस

को विशेषता से देखकर बड़े बलवान् वृत्रासुर ने परमक्रोध से इस वचन को कहा ॥ ४७ ॥ वृत्रासुर बोला कि हे दैत्यो ! श्रेष्ठ प्रयोजन वाले तुम सब लोग अद्भुत संग्राम को छोड़कर डरसे आतुर और भगने में परायण क्यों होतेहो ॥ ४८ ॥ हे वीरो ! लोकोंके सबओर से चाही व युद्धके लिये निश्चय को कियेहुये तुम सब आजही अपने अपने पराक्रम को व धीरताको करो ॥ ४९ ॥ व उस समय इसभांति कहेहुये वे सब फिर अनेक आयुधों से संयुतहोकर और वृत्रासुर को पीछेकर अद्भुत जैसेहो वैसे लड़नेलगे ॥ ५० ॥ व गदा पट्टिश तलवार बर्छी गुर्ज मुद्गर दुधारा गुफना पाश सांग या भाला और अच्छी मूठियों से उनने युद्धकिया ॥ ५१ ॥

वैसेही देवोने दधीच के हाडोसे भलीभांति उपजेहुये श्रेष्ठ शस्त्रों व अस्त्रोसे असुरों को मारा और अच्छेप्रकार से बिदारा ॥ ५२ ॥ व देवोंसे मारेहुये दैत्य फिर प- हारको प्राप्तभये और उस वृत्रासुर से पठाये जातेहुये फिर देवोंके प्रति गये ॥ ५३ ॥ व जब देवेशो से बारबार मारे जातेहुये वेही कोई दैत्यश्रेष्ठ घायलहुये व कोई अध- मरेहुये व कोई नष्ट हुये व कोई समर मे अंगभंगवाले होगये ॥ ५४ ॥ व कोई डरगये कोई पीडितहुये और वे नपुंसकरूपी देखेगये तब क्रोधवान् वृत्रासुरने सब स- दैत्यनायको को धिक्किया ॥५५॥ कि हे पौलोमन् ! हे महाभाग, वृषपर्वन् ! हे धूम्राक्ष ! हे महाकाय ! हे महादंष्ट्र ! हे वृकासुर ! तुम्हारे लिये नमस्कारहो ॥५६॥ व हे स्थू-

मुद्भवैः ॥ शस्त्रैरस्त्रैश्चपरमैरसुरान्ममदारयन् ॥ ५२ ॥ पुनर्दैत्याहतादेवैः प्राप्तास्तेपिपराजयम् ॥ गताश्चतेनवृत्रेणनो द्यमानास्सुरान्प्रति ॥ ५३ ॥ यदाहितेदैत्यवराःसुरेशैर्निहन्यमानाश्चपुनःपुनश्च ॥ केचित्क्षताश्चार्द्धमृताश्चकेचिन्नष्टास्तु केचित्समरेचभग्नाः ॥ ५४ ॥ केचिद्भीताश्चार्तभूता दृष्टास्तेक्लीबरूपिणः॥वृत्रेणकोपिनासर्वेधिक्कृतादैत्यपुङ्गवाः॥५५॥ हेपौलोमन्महाभागवृषपर्वन्नमोस्तुते ॥ हेधूम्राक्षमहाकायमहादंष्ट्रवृकासुर ॥ ५६ ॥ स्थूलाक्षहेमहाकुक्षेस्थूलदंष्ट्रन मोस्तुते ॥ स्वर्गद्वारंनहातव्यंक्षत्रियाणांमनस्विनाम् ॥ ५७ ॥ सङ्गरेमरणंयेषांतेयान्तिपरमंपदम् ॥ यत्रतत्रसमी प्स्येतसंग्रामेमरणंबुधैः ॥ ५८ ॥ त्यजन्तिसङ्गरंयेवैतेयान्तिनिरयंध्रुवम् ॥ गोब्राह्मणार्थेभृत्यार्थेस्त्रियोर्थेशस्त्रपाणयः ॥ ५९ ॥ संग्रामंयेप्रकुर्वन्तिमहापातकिनोनराः ॥ शस्त्रघातहतायेवैमृतावासमरेतथा ॥ ६० ॥ तेयान्तिपरमंस्थानंनात्र कार्याविचारणा ॥ शस्त्रैर्विक्षिप्तदेहायेगुर्वर्थेस्वामिकारणात् ॥ ६१ ॥ रणेमृताःक्षतायेवैतेयान्तिपरमांगतिम् ॥ तस्मा

लाक्ष ! हे महाकुक्षे ! और हे स्थूलदंष्ट्र ! तुम्हारे लिये नमस्कारहो व अच्छे मनवाले क्षत्रियोंका स्वर्गद्वार नही त्यागना चाहिये ॥ ५७ ॥ जिनका मरना संग्राममें होताहै वे उत्तम स्थानको जातेहै इससे जहा तहा पण्डितों से समर में मरना भलीभाति चहा जावे है ॥ ५८ ॥ और प्रसिद्ध है कि जे सग्रामको त्यागते हैं वे निश्चय से नरक को जाते है और गौओं व ब्राह्मणों के अर्थ व सेवको के अर्थ व स्त्रीके अर्थ शस्त्रसमेतों हाथोंवाले ॥ ५९ ॥ जे महापापी भी मनुष्य संग्रामको अधिकतामे करते है व वैसेही जे समर मे शस्त्रों के घातो से हनेहुये मरे हैं ॥ ६० ॥ वे उत्तम स्थानको जातेहै इसमें विचारणा नहीं करना चाहिये क्योकि जे स्वामीके कारण व गुरुओ के अर्थ शस्त्रो

से छिन्न भिन्न देहोवाले हैं ॥ ६१ ॥ और जे समरमें मरे व घायलहुये है वे निश्चय से श्रेष्ठ गतिको जातेहैं उससे जे पापी भी शूर संग्राम में मारेगये हैं वे ॥ ६२ ॥ ज्ञानियों के भी दुर्लभ परमपदको प्राप्तहोते हैं अथवा तीर्थों में जाना व ऐसेही वेदोंका पढ़ना ॥ ६३ ॥ व जे अनेक भांतिके देवपूजनादि कल्याण या धर्म या पुण्यसमूह हैं वे भी एक स्थानमात्र से सोलहवीं कलाको नहीं योग्य होते हैं ॥ ६४ ॥ संग्राम मे गिरेहुये जनोंकी सब शास्त्रों में यह विधिहै जिससे नि शंक शूरोंको युद्ध और दान करना चाहिये ॥ ६५ ॥ उसलिये आप लोगोंको वेदवचनों के प्रमाण से अन्यथा नहीं करना चाहिये क्योंकि तुम सब लोग शूरता शील और कुलादिकों से समेतहो ॥६६॥ और

द्रणेपियेशूराःपापिनोपिहतास्तुते ॥ ६२ ॥ प्राप्नुवन्तिपरंस्थानंदुर्लभंज्ञानिनामपि ॥ अथवातीर्थगमनंवेदाध्ययनमेवच ॥ ६३ ॥ देवतार्चनयज्ञादिश्रेयांसिविविधानिच ॥ एकपद्येनतान्येवकलान्नार्हन्तिषोडशीम् ॥ ६४ ॥ संग्रामेपतितानांचसर्वशास्त्रेष्वयंविधिः ॥ यस्माद्युद्धंचदानंचकर्तव्यमविशङ्कितैः ॥ ६५ ॥ भवद्भिर्नान्यथाकार्यंवेदवाक्यप्रमाणतः ॥ यूयंसर्वेसमोपेताःशौर्य्यशीलकुलादिभिः ॥ ६६ ॥ पदानियेचैवपलायमानागच्छन्तिशूराऽरणमण्डलाच्च ॥ तएवसर्वेखलुपापलोकानायान्तिनूनंवचनात्स्मृतेश्च ॥ ६७ ॥ येपापिष्ठाःस्वधर्मिष्ठाब्रह्मघ्नागुरुतल्पगाः ॥ नरकंयान्तितेपापैस्तथैवरणविच्युताः ॥ ६८ ॥ तस्माद्भवद्भिर्योद्धव्यंस्वामिकार्यपरत्तमैः ॥ एवमुक्तास्तदातेनवृत्रेणापिमहात्मना ॥ ६९ ॥ चक्रुस्तेवचनंतस्यअसुराश्चसुरान्प्रति ॥ चक्रुःसुतुमुलंयुद्धंसर्वलोकभयङ्करम् ॥७० ॥ तस्मिन्प्रवृत्तेतुमुलेविगाढेवृत्रोरणे

ऐसे संग्राम मण्डल से भगे जातेहुये जे शूर घरोंकोही चलते हैं वेही सब लोग स्मृति और वेदों के वचनसेही पापियों के लोकों को निश्चयसे प्राप्त होते हैं ॥ ६७ ॥ जेकि बड़े पापी बड़े अधर्मी ब्रह्मघाती और गुरु की शय्या में बैठनेवाले हैं वे जैसे पापों से नरक को जातेहैं वैसेही समर से भगेहुये भी नरक को जाते हैं ॥ ६८ ॥ उस कारण स्वामीके कार्य्य में श्रेष्ठ समर्थ आपे लोगोंको युद्ध करना चाहिये उस समय इसभांति उस महात्मा वृत्रासुर से भी कहेहुये ॥ ६९ ॥ उन असुरोंने उसके वचनको किया और देवोंके प्रति सब लोकों या लोगों के भयंकर बहुत घोरयुद्धको किया ॥ ७० ॥ व जब रोमहर्षण बहुत गाढ (दृढ़) वह संग्राम अधिकता से वर्तमानहुआ तब दैत्यों

के पति उस एक (मुख्य) वृत्रासुरने बड़े अद्भुत कोपसे देवश्रेष्ठों समेत इन्द्रदेवके प्रति कहा ॥ ७१ ॥ वृत्रासुर बोला कि, तुम मेरे कहेहुये, धर्मार्थ से सहित हित वचनको सुनो क्योंकि तुम देवोंके पति होकर हित और अहितको नहीं जानतेहो ॥ ७२ ॥ हे इन्द्र ! केवल अर्थमें परायणही तुमने विश्वरूपको माराहै और उस कर्म का यह फल शीघ्रही प्राप्तहुआ ॥ ७३ ॥ व जेकि बहुत दूरतक न देखनेवाले (अविचारी) मन्द मूढ़ क्षुद्र (छोटे) लोग धर्म से बाहर कियेगये हैं वे कार्य्यकी सिद्धिके लिये जिस कर्मको करते हैं वह निष्फल होताहै ॥ ७४ ॥ हे देवेन्द्र ! वह सब भी मनसे निश्चय कियाजावे उस कारण धर्ममें तत्पर होकर गतपापवाले तुम युद्धकरो ॥ ७५ ॥

दैत्यपतिस्सएकः ॥ उवाचरोषेणमहाद्भुतेनशतक्रतुंदेववरैःसमेतम् ॥ ७१ ॥ वृत्रउवाच ॥ शृणुवाक्यंमयोक्तंत्वंधर्मार्थसहितंहितम् ॥ देवानांहिपतिर्भूत्वानजानासिहिताहितम् ॥ ७२ ॥ केवलार्थपरेणैवविश्वरूपोहतस्त्वया ॥ प्राप्तंसद्यस्तुभो इन्द्रतस्येदंकर्मणःफलम् ॥ ७३ ॥ येऽदीर्घदर्शिनोमन्दामूढाधर्मबहिष्कृताः ॥ अल्पकाःकार्य्यसिद्ध्यर्थंयत्कुर्वन्तिचनिष्फलम् ॥ ७४ ॥ तत्सर्वमपिदेवेन्द्रमनसासम्प्रधार्यताम् ॥ तस्माद्धर्मपरोभूत्वायुध्यस्वगतकल्मषः ॥ ७५॥ भ्रातृहात्वंममैवेन्द्रतस्मात्त्वांघातयाम्यहम् ॥ मामायाहिस्थिरोभूत्वादेवैश्चपरिवारितः ॥ ७६ ॥ एवमुक्तस्तुवृत्रेणशक्रोतीवरुषान्वितः ॥ ऐरावतंसमारुह्याययौवृत्रंजिघांसया ॥ ७७॥ इन्द्रमायान्तमालोक्यवृत्रोबलवतांवरः ॥ उवाचप्रहसन्वाक्यंसर्वेषांशृण्वतामपि ॥ ७८ ॥ आदौमाम्प्रहरस्वत्वंपश्चात्त्वांघातयाम्यहम् ॥ इत्येवमुक्तोदेवेन्द्रोगदयाजानुदेशके ॥ ७९ ॥ वृत्रम्बलवतांश्रेष्ठंसञ्जघानमहाबलः ॥ तामायान्तींसजग्राहकरणैकेनलीलया ॥ ८० ॥ तयाप्येवंजघानाशुगदयात्रिदिवे

हे इन्द्र ! जिससे तुम मेरेही भाई के मारनेवालेहो उससे मैं तुमको मारता या मराताहू और देवो से सब ओर घेरेहुये तुम स्थिर होकर मेरे सामने आवो ॥ ७६ ॥ और ऐसे वृत्रासुर से कहेहुये अत्यन्त क्रोधसे समेत इन्द्रजी ऐरावत हाथीमें सवार होकर मारने की इच्छा से वृत्रासुरके प्रति चले ॥ ७७ ॥ व आतेहुये इन्द्रको सामने से देखकर बलवानों में श्रेष्ठ बहुत हँसतेहुये वृत्रासुरने सबोंके सुनतेही वचनको कहा ॥ ७८ ॥ कि पहले तुम मुझको मारो उसके पीछे मैं तुमको मारताहूं ऐसेही कहेहुये देवेन्द्रने गदासे जानुदेशमें याने पावोंकी गांठोंपर ॥ ७९ ॥ बलवानो में श्रेष्ठ वृत्रासुर को भलीभांति मारा व उस बडे बलवान्ने आतीहुई उस गदाको लीलाके साथ एक

हाथसे पकड़लिया ॥ ८० ॥ ऐसे उसही गदासे स्वर्ग के स्वामीको शीघ्रही मारा और हाथीसमेत व वज्रसहित इन्द्रको गिरादिया ॥ ८१ ॥ व गिरेहुये इन्द्रको सामने से देखकर वृत्रासुरने, देवोंके प्रति कहा कि हे देवो ! तुमलोग अपने स्वामीको अमरावतीपुरीमे लेजावो ॥ ८२ ॥ और ऐसा उस महात्मा वृत्रासुरका सत्य वचन सुनकर भली भांति उत्सुकहुये सब देवोंने वैसाही किया कि इन्द्रको संग्राम से ॥ ८३ ॥ लौटारकर व हाथीमे बैठेहुये उनको चारो ओरसे घेरकर डरसे वेगवान् वे सब देव समर को छोड़कर स्वर्ग के प्रतिगये ॥ ८४ ॥ और तदनन्तर जब देवलोग चलेगये तब बडा असुर वृत्र बहुतही हँसा व उस शब्द से दिशाओंका मुख पूरितहुआ ॥ ८५ ॥ व पर्वतो

श्वरम् ॥ सगजम्पातयामाससवज्रंतुपुरन्दरम् ॥ ८१ ॥ पतितंशक्रमालोक्योवाचवृत्रोमरान्प्रति ॥ नयतस्वामिनंदेवाः स्वकीयंवामरावतीम् ॥ ८२ ॥ एवंश्रुत्वावचःसत्यंवृत्रस्यचमहात्मनः ॥ तथाचक्रुस्सुरास्सर्वेरणाच्चेन्द्रंसमुत्सुकाः ॥ ८३ ॥ अरोवाह्यगजस्थंहिपरिवार्य्यभयातुरा ॥ सुराःसर्वेरणंहित्वाजग्मुस्तेत्रिदिवम्प्रति ॥ ८४ ॥ ततोगतेषुदेवेषुननर्त्तचमहासुरः ॥ वृत्रोजहासचपरन्दिङ्मुखंतेनपूरितम् ॥ ८५ ॥ चचालचमहीसर्वासशैलवनसागरा ॥ चुक्षुभेचतदासर्वंजङ्गमाजङ्गमन्तथा ॥ ८६ ॥ श्रुत्वाप्रयातंदेवेन्द्रम्ब्रह्मालोकपितामहः ॥ समुपागत्यविप्रेन्द्राःस्वकमण्डलुवारिणा ॥ ८७ ॥ पस्पर्शलब्धसंज्ञोभूत्तत्क्षणाच्चपुरन्दरः ॥ दृष्ट्वापितामहञ्चाग्रेव्रीडायुक्तोभवत्तदा ॥ ८८ ॥ महेन्द्रंकृपयायुक्तंब्रह्मावाक्यमुवाच ह ॥ ब्रह्मोवाच ॥ वृत्रोहितपसायुक्तोब्रह्मचर्यव्रतेस्थितः ॥ ८९ ॥ त्वष्टुश्चतपसायुक्तोवृत्रश्चैवमहायशाः ॥ अजेयस्तपसोग्रेणतस्मात्त्वंतपसाजय ॥ ९० ॥ वृत्रासुरंदैत्यपतिंशतक्रतोसमाधिनाहंपरमेणवैजहि ॥ निशम्यवाक्यंपरमेष्ठिनोहरिःस

व वनो और समुद्रोंसमेत सब पृथिवी कांपनेलगीं और वैसे तब सब स्थावर जंगम जगत् क्षोभको प्राप्तभया याने संचलित होगया ॥ ८६ ॥ हे ब्राह्मणेन्द्रो ! संग्रामसे भगगये हुये इन्द्रको सुनकर लोको के पितामह ब्रह्माजीने भलीभांति समीप से आकर अपने कमण्डलु के जलसे ॥ ८७ ॥ स्पर्श किया और उस क्षणमे इन्द्रजी सञ्ज्ञाके पानेवालेहुये व उस समय आगे ब्रह्माजीको देखकर लज्जासे संयुतहोगये ॥ ८८ ॥ और ब्रह्माजीने महेन्द्रके प्रति दयासमेत वचनको कहा श्रीब्रह्माजी बोले कि जिससे वृत्रासुर तपस्या से युक्त व ब्रह्मचर्य्य व्रतमें टिकाहै ॥ ८९ ॥ और ऐसेही वह वृत्रासुर त्वष्टाकी भी तपस्या से युक्तहै व बडे यशवालाहै और उग्र तपस्या से जीतने के योग्य

नहीं है इससे तुम उसको तपस्यासे जीतो ॥ ९० ॥ हे सौ यज्ञवाले इन्द्र ! तुम श्रेष्ठसमाधि (योग) से उग्र दैत्योंके स्वामी वृत्रासुरको निश्चयमे मारो वैसेही ब्रह्माजीके वचनको सुनकर इन्द्रने वृषभ (बैल) की मूर्त्तिसे चिह्नित ध्वजावाले महादेवजी को स्मरण किया ॥ ९१ ॥ तब गुरुसे प्रेरित होकर स्तुतिसे प्रशंसा करतेहुये महात्मा इन्द्रजीने निश्चय से कहा इन्द्रजी बोले कि, हे देवोंके भी दुर्गम ! पापों के भूजनेवारे व क्रीड़ाकारी तुम्हारे लिये नमस्कारहो ॥ ९२ ॥ हे देवनायक ! तुम देवोंके कार्य्य की सिद्धिके लिये वरदायक होवो इसभांति स्तुतिमें परायण होकर उदार बुद्धिवाले शची (इन्द्राणी) के पति इन्द्रजी ॥ ९३ ॥ उस समय अपने कार्य्य में कुशल होकर

स्मारदेवंवृषभध्वजंतथा ॥ ९१ ॥ स्तुत्यातदाहस्तवमानोमहात्मापुरन्दरोगुरुणानोदितोहि ॥ इन्द्रउवाच ॥ नमोभर्गायदेवायदेवानामपिदुर्गम ॥ ९२ ॥ वरदोभवदेवेशदेवानांकार्यसिद्धये ॥ एवंस्तुतिपरोभूत्वाशचीपतिरुदारधीः ॥ ९३ ॥ स्वकार्यदक्षोमन्दात्माप्रपञ्चाभिरतस्तदा ॥ प्रपञ्चाभिरतामूढाःशिवभक्तिपराअपि ॥९४॥ नप्राप्नुवन्तितेस्थानंपरमीशस्यरागिणः ॥ निर्मलानिरहङ्कारायेजनाःसाम्बमेवच ॥ ९५ ॥ मृडंज्ञानप्रदञ्चेशंशङ्करंपर्युपासते ॥ तेषाम्परेषांवरदइहामुत्रचशङ्कर ॥ ९६ ॥ महेन्द्रेणस्तुतःशर्वोरागिणापरमेणहि ॥ रागिणांहिसदाशम्भुर्दुर्लभोनात्रसंशयः॥ ९७ ॥ तस्माद्विरागिणोनित्यंसम्मुखोहिसदाशिवः ॥ ९८ ॥ राजासुराणांविषयानुरागीस्वकार्य्यसंसाधनसुप्रवीणः ॥ तस्मात्सदाक्लेशपरःशचीपतिर्यस्मात्सवैकामपरोऽस्तिनित्यम् ॥ ९९ ॥ स्तुवन्तंतन्तदाचेन्द्रंसकामंकार्यगौरवात् ॥

मलिन अन्तःकरणवाले व प्रपंच में सब ओरसे रत (प्रीतिसमेत) हुये जोकि प्रपन्च मे सब ओरसे स्नेहसमेत मूढलोग शिवजी की भक्तिमें परायण भी है ॥ ९४ ॥ वे परमेश्वरके श्रेष्ठ स्थानको नही प्राप्त होते हैं क्योंकि वे संसार मे स्नेहवाले है और ऐसेही काम क्रोध लोभादि मलों से हीन व अहंकारसे रहित जे जन शक्तिसहित ॥ ९५ ॥ सुखकारी ऐश्वर्य्यधारी और ज्ञानके बड़े देनेवाले शंकरजी की भलीभांति उपासना करते हैं उन उत्तम लोगो के इस व उस लोकमे भी कल्याणकर्त्ता शिवजी वरदाताहैं ॥ ९६ ॥ और बडेही रागी याने सुख ज्ञानपूर्वक विषयो मे प्रीतिवाले महेन्द्रने महेशजी की स्तुति किया जिससे शम्भुजी रागियों को सदा दुर्लभहैं इसमें सशय नही है ॥ ९७ ॥ उससे सदाशिवजी वैरागियों के नित्यही सम्मुखही हैं ॥९८॥ और देवोंके राजा सदैव विषयों के अनुरागी हैं व अपने कार्य्योंके भलीभांति सिद्ध

करने में परम प्रवीण हैं और जिसलिये वह इन्द्राणीके पति नित्यही निश्चय से कामनाओं में तत्परहैं उसलिये सदा क्लेशमें परायण है ॥ ९९ ॥ और उस समय कार्य्य
की गुरुता से स्तुति करतेहुये उन इन्द्रको अभिलाषों समेत विशेष से जानकर सबके देखनेवाले या सर्वज्ञ लिंगरूपी महेशजी अधिकता से बोले कि हे इन्द्र ! तुम
देवों के साथ वृत्रासुर दानवके प्रति निश्चय से जावो ॥ १०० ॥ और हे सौयज्ञवाले सुरेश ! यह तपस्यासेही संग्राम में जीतने के लिये साध्यहै ॥ १ ॥ इन्द्रजी बोले
कि बड़ाभारी दैत्यश्रेष्ठ यह वृत्रासुर किस उपाय से जीतने को साध्य है हे शम्भो ! जिससे मेरा विजय होवे वह शीघ्रही कहाजावे ॥ २ ॥ श्रीरुद्रजी बोले कि

विज्ञायाखिलदृक्प्राहमहेशोलिङ्गरूपवान् ॥ इन्द्रगच्छसुरैस्सार्द्धंवृत्रंवैदानवम्प्रति ॥ १०० ॥ तपसैवचसाध्योयंरणेजेतुंश
तक्रतो ॥ १ ॥ इन्द्रउवाच ॥ केनोपायेनसाध्योयंवृत्रोदैत्यवरोमहान् ॥ तच्छीघ्रंकथ्यतांशम्भोयेनमेविजयोभवेत् ॥ २ ॥
श्रीरुद्रउवाच ॥ रणेनशक्यतेहन्तुंमतुदेववरैरपि ॥ ३ ॥ तस्मात्त्वयाहिकर्तव्यंकुत्सितंकर्मचाद्यवै ॥ अस्यशापःपुराद
त्तःपार्वत्याममसन्निधौ ॥ ४ ॥ असौचित्ररथोनाम्नाविख्यातोभुवनत्रये ॥ पर्य्यटन्सुविमानेनमयादत्तेनभास्वता ॥
५ ॥ उपहासादिमांयोनिंसम्प्राप्तोदैत्यपुङ्गवः ॥ तस्मादजेयंजानीहिरणेरणविदांवर ॥ ६ ॥ एवमुक्तोमहेशेनशम्भु
नायोगिनाभृशम् ॥ तथेतिमत्वाशक्रोसौनियमत्वमुपागतः ॥ ७ ॥ रन्ध्रंप्रतीक्ष्यवृत्रस्यतत्समीपेसहस्रकम् ॥ व
त्सराणांमहाभागोवृत्रंहन्तुम्मनोदधे ॥ ८ ॥ अन्तर्वेधाबहिःस्थित्वावज्रपाणिरनुज्ञया ॥ गुरोःपुरोधसश्चैवस्वकार्य

वह समर में देवश्रेष्ठों से भी मारने के लिये नहीं योग्य होता है ॥ ३ ॥ उसलिये आजही तुमको कुत्सित (निन्दित) कर्मही करना चाहिये आगे पार्वतीने मेरे समीप
में इसको शापदिया है ॥ ४ ॥ यह नामसे चित्ररथ राजों मेरे दियेहुये प्रकाशवान् अच्छे विमान से पर्य्यटन करता (सब ओर विचरता) हुआ त्रिलोक में प्रसिद्ध था ॥
५ ॥ वह उपहास से इस योनिको भलीभांति प्राप्त होकर दैत्यश्रेष्ठ हुआ है हे रणविदांवर ! उसलिये तुम उसको अजेय (न जीतने योग्य) जानो ॥ ६ ॥ इसभांति
योगिराज परमेश्वर शंकरजीसे बहुतही कहेहुये वह इन्द्रजी वैसाहो ऐसा मानकर नियमभावको प्राप्तहुये ॥ ७ ॥ वृत्रासुरके छिद्र या अवसरको परखकर व उसके समीप

में वर्षों के हजारा तक टिककर भारीभाग्यवाले ने वृत्रको मारने के लिये मनको धरा ॥ ८ ॥ व पुरोहित गुरु बृहस्पति केही आयसु से अन्तर्वेदी के बाहर टिककर वज्र समेत हाथवाले इन्द्रने अपने कार्य्य को अधिकता से किया ॥ ९ ॥ एक समय सब दैत्यों से चारोंओर घिराहुआ दानवपुंगव प्रसिद्ध वृत्रासुर स्वतन्त्रतासे नर्मदा नदीके किनारे भलीभांति आया ॥ १० ॥ कि पराजय (हार) को प्राप्तहुये इन्द्र देवोंसे स्वर्गके प्रति पहुँचाये गयेहैं मैही वैरियों के मारनेवालाहूं और अन्य कोई मेरे समान नहीहै ॥ ११ ॥ हे ब्राह्मणो ! उस समय ऐसा मानताहुआ पौरुषसे समेत वृत्रासुर प्रदोष समय में नर्मदा के समीप टिकाथा ॥ १२ ॥ और जिस प्रदोषसमय

मकरोद्भृशम् ॥ ९ ॥ एकदानर्मदायांवैवृत्रोदानवपुङ्गवः ॥ दैत्यैःपरिवृतस्सर्वैस्समायातोयदृच्छया ॥ १० ॥ इन्द्रःपराजयंप्राप्तोनीतोदेवैर्दिवम्प्रति ॥ अहमेवहतारिश्चनान्योस्तिसदृशोमम ॥ ११ ॥ मन्यमानस्तदावृत्रःपौरुषेणसमन्वितः ॥ प्रदोषसमयेविप्रानर्मदायामुपस्थितः ॥ १२ ॥ दृष्टश्चेन्द्रेणसमहानसुरैःपरिवारितः ॥ वृत्रोबलवतांश्रेष्ठःप्रदोषसमयेयदा ॥ १३ ॥ तस्मिन्प्रदोषेसंयुक्ताशनिनाचत्रयोदशी ॥ नोदितोगुरुणाचेन्द्रःकरेधृत्वादिवस्पतिः ॥ १४ ॥ प्रदक्षिणनमस्कारैर्यथोक्तविधिनातदा ॥ पूजितोलिङ्गरूपीचॐकारोनर्मदातटे ॥ १५ ॥ प्रदोषव्रतमाहात्म्याद्वज्रपाणिःप्रतापवान् ॥ सजातस्तत्क्षणादेवप्रसादाच्छङ्करस्यच ॥ १६ ॥ वृत्रोपितपसायुक्तः प्रदोषसमयेमहान् ॥ निद्रासक्तोभवत्तत्र शुम्भेनप्रतिबोधितः ॥ १७ ॥ स्वापात्प्रदोषवेलायां तपसार्जितम्फलम् ॥ प्रणष्टंतत्क्षणादेव निःश्रीकत्वमुपाग

में इन्द्रने असुरों से सबओर घेरेहुये व बलवानों में श्रेष्ठ बडेभारी उस वृत्रासुरको देखा ॥ १३ ॥ उस प्रदोष मे त्रयोदशी तिथि शनिवार से संयुत थी और स्वर्ग के स्वामी इन्द्रजी हाथमें धरकर गुरुसे प्रेरित हुये ॥ १४ ॥ तब उन्होंने यथोक्त विधि के साथ प्रदक्षिणा व नमस्कारोंसे नर्मदाके किनारे लिंगरूपी ॐकारनाथ का पूजन किया ॥ १५ ॥ तब वज्रहाथवाले वह इन्द्रजी प्रदोष व्रतके माहात्म्य और शङ्करजी की प्रसन्नता से उसी क्षणमेंही प्रतापी होगये ॥ १६ ॥ और उस प्रदोषसमय में तपस्यासे युक्त बड़ाभारी वृत्रासुर भी निद्रामे आसक्तहुआ व शुम्भसे जगाया गया ॥ १७ ॥ व तपस्यासे कमायाहुआ फल प्रदोषसमयमे सोनेसे विनष्टभया और वह उस

क्षणमेंही सम्पत्ति या शोभासे हीनके भावको प्राप्तहुआ ॥ १८ ॥ व देवीजीके शाप से टूटे मनोरथवाला होगया और जबतक सन्ध्या वन्दन करने के लिये वृत्रासुर तीर्थमें समीप से पैठा ॥ १९ ॥ जोकि अनेक आयुधों समेत बहुत भांतिके दैत्योंसे घेराहै उसके उस कर्मके छिद्रको छिद्रोंके खोजी शचीके पति ॥ २० ॥ इन्द्रजी जानकर अपने शत्रुको मारनेके लिये धीरेधीरे गये तबतक बहुते पराक्रमवाले भयंकर दैत्य अच्छे कोपसे संयुत हुये ॥ २१ ॥ और जे कि दुस्सहहैं वे सब एकसाथ ही इन्द्रके प्रति लड़ने को उठे तदनन्तर अत्यन्त प्रबल दण्डोंवाले उन असुरोंसे युद्धहुआ ॥ २२ ॥ और जब सब देवलोग इन्द्रके सहाय के अर्थ आये तब वेग

तः ॥ १८ ॥ देव्याःशापाच्चसञ्जातो वृत्रोभग्नमनोरथः ॥ सन्ध्यांवन्दयितुंयावद्वृत्रस्तीर्थमुपाविशत् ॥ १९ ॥ वारितोविविधैर्दैत्यैर्नानायुधसमन्वितैः ॥ तस्यतत्कर्मणश्छिद्रंछिद्रान्वेषीशचीपतिः ॥ २० ॥ ज्ञात्वागतःशनैर्हन्तुमात्मशत्रुंशतक्रतुः ॥ तावद्दैत्याःसुसंरब्धाभीमाभूरिपराक्रमाः॥२१ ॥ उत्तस्थुर्युगपत्सर्वे दुस्सहाश्चशतक्रतुम् ॥ ततस्तैरभवद्युद्धमतिप्रबलदण्डिभिः ॥ २२ ॥ सर्वेदेवायदाजग्मुः सहायार्थंशतक्रतोः ॥ तदादैत्याश्चदेवाश्च युयुधुस्तेत्वरान्विताः ॥ २३ ॥ रात्रौयुद्धंसमभवत्सुरासुरविमर्दनम् ॥ अनेकशस्त्रसंवीतं महाघोरतरंतुतत् ॥ २४॥ एवंप्रवर्तमानेतु संग्रामेवैसुदारुणे ॥ तदावृत्रोपिसन्नद्धो गृहीत्वाशूलमुल्बणम् ॥ २५ ॥ इन्द्रप्रमुखतोभूत्वा जगर्जातिविभीषणम् ॥ तस्यनादप्रसारेण पूरितंभुवनत्रयम् ॥ २६ ॥ ऐरावतंसमारुह्य महेन्द्रःशुशुभेतदा ॥ ध्रियमाणेनच्छत्रेण चन्द्रमण्डलशोभिना ॥ २७ ॥ चामरैर्वीज्यमानोसौ बभाषेदैत्यपुङ्गवम् ॥ इन्द्रउवाच ॥ संग्रामंकुरुमेवृत्र बलेनमहतावृतः ॥ २८ ॥ शूर

समेत उन देवों व दैत्योंने युद्धकिया ॥ २३ ॥ व देवों और असुरों के विमर्दनवाला अनेक शस्त्रोंसे समेत बहुत अधिक घोर वह युद्ध रात्रिमें भलीभांति हुआ ॥ २४ ॥ और इसभांति बड़े दारुणसंग्रामके बहुत वर्तमान होतेही तब निश्चय से बख्तर पहने सजाहुआ वृत्रासुरभी उग्र त्रिशूल को ग्रहणकर ॥ २५ ॥ इन्द्रके सामने होकर अधिक भयङ्कर जैसेहो वैसे गर्जा और उसके शब्द के पसरने से त्रिलोक पूरित होगया ॥ २६ ॥ उस समय ऐरावत हाथीपर सवारहोकर महेन्द्रजी धरेजाते हुये चन्द्रमा के मण्डल के समान शोभावाले छत्रसे शोभित हुये ॥ २७ ॥ व चामरों से वीज्यमान होतेहुये उन्होंने दैत्यनायक से कहा इन्द्रजी बोले कि हे वृत्र ! बड़े

बल या सैन्यसे घिरेहुये तुम मेरेसाथ सग्राम को करो ॥ २८ ॥ क्योंकि तुम उत्तम तपस्या से दैत्यों के बीच में शूरहो ऐसे उनसे कहेहुये उस वृत्रासुरने हर्ष से वचन को कहा ॥ २९ ॥ कि हे इन्द्र ! तुम पहले मुझको मारो और मैं पीछे से तुमको मारता हूं वैसाहो ऐसा मानकर यह जब सौधारों वाले अत्यन्त दुस्सह उस वज्र को ॥ ३० ॥ भलीभाति छोड़ने के लिये इच्छासमेत हुये तब बुद्धिमानों में श्रेष्ठ बड़े प्रकाशवान् उन पुरोहित बृहस्पतिजी ने इन्द्रको निश्चय से निवारण किया और वैसाहो ऐसा मानकर व उस वज्रको त्यागकर उन ॥ ३१ ॥ देवेन्द्र ने गदाको अधिकता से लेकर वृत्रासुर को संताड़ित किया व उस वृत्रासुर ने अतिथि

स्त्वमसिदैत्यानां तपसापरमेणहि॥ एवमुक्तस्तदातेन वृत्रोवाक्यमुवाचह ॥ २९ ॥ आदौप्रहरमामिन्द्र पश्चात्त्वांघात याम्यहम् ॥ तथेतिमत्वातदतीवदुस्सहं वज्रंयदासौशतधारमेव ॥ ३० ॥ संमोक्तुकामोहितदापुरन्दरो निवारितस्तेन महाप्रभेण ॥ पुरोधसाबुद्धिमतांवरेण तथेतिमत्वासचतद्विहाय ॥ ३१ ॥ गदांप्रगृह्यदेवेन्द्रो वृत्रंविव्याधताङ्गदाम् ॥ वा रयामासवृत्रोसावतिथिंकृपणोयथा ॥ ३२ ॥ व्यर्थांचस्वगदांदृष्ट्वा इन्द्रश्चिन्तामवापह॥ तंचिन्त्यमानंसतदापुरन्द रं वृत्रोबभाषेपरिषत्समानः ॥ ३३ ॥ पुराकृतंशक्रत्वयामहाद्भुतं जुगुप्सितंकर्मचविस्मृतंकिम् ॥ येनैवजातोसिसहस्र नेत्रः शापान्महर्षेरथगौतमस्य ॥ ३४ ॥ येशूराश्चेन्द्रियग्रामनियमंत्वनुकुर्वते ॥ तेजयम्प्राप्नुवन्तीह नेतरेहिभवादृ शाः ॥ ३५ ॥ रणाजिरंमहाघोरं पापिनांनात्रसंशयः ॥ तस्मात्त्वंगच्छदेवेन्द्र नशूरोसिकदाचन ॥ ३६ ॥ यथाभवन्ति

को कृपण (चुष्ट) जनकी नाई उस गदा को लौटार दिया ॥ ३२ ॥ और इन्द्रजी अपनी गदाको व्यर्थ देखकर प्रकट चिन्ताको प्राप्तहुये तब चिन्तना करतेहुये उन इन्द्रको देखकर सभासद् पण्डित के समान वृत्रासुर बोला ॥ ३३ ॥ कि पूर्व समयमें तुमसे कियाहुआ अधिक अद्भुत वह निंदित कर्म क्या बिसरगया जिस सेही उसके बाद तुम महर्षि गौतम के शापसे हजार नेत्रोंवाले हुयेहो ॥ ३४ ॥ और जे शूरलोग इन्द्रियोंके समूहके नियम (विषयोंसे रोंकना) को क्रमसे करते हैं वेही यहां जीतिको पातेहैं व आपके समान अन्यजन जीतिको नही प्राप्तहोतेहैं ॥ ३५॥ हे देवेन्द्र ! संग्राम आंगन पापियों का बड़ा घोरहै इसमें संशय नहीं है जिससे तुम

कभी शूर नहींहो उससे चलेजावो ॥ ३६ ॥ जैसे पशु खातेपीते है वैसेही तुमहो इसमें संशय नहीं है इसभांति दैत्यश्रेष्ठने देवेन्द्रको बहुतही भर्त्सन (घुड़कना) किया॥३७॥ व दैत्येन्द्रने बिजलीके समान त्रिशूल को कँपाया और अद्भुत पराक्रमवाला वृत्रासुर उस बड़ेभारी त्रिशूल से ॥३८॥ व तीव्रतपस्या से प्रलयकारी रुद्र की नाई विराजमान हुआ और वैसे हुये को भलीभांति सामने देखकर सौ यज्ञोंवाले देवोंके राजा ॥ ३९ ॥ रणमें दानवेश्वर वृत्रासुर को मारने के लिये अभिलाषवाले हुये व आतेहुये मारने के चाही उन इन्द्रको सामने से बहुतही देखकर ॥ ४० ॥ वह वहां हँसा और इन्द्रके भयदायक बहुत बड़े श्रेष्ठ मुखकोही पसारकर पुरन्दर

पशवस्तथात्वंनात्रसंशयः ॥ एवंनिर्भर्त्सयामास देवेन्द्रंदैत्यपुङ्गवः ॥ ३७ ॥ त्रिशूलंधूनयामास दैत्येन्द्रोहितडित्सममू ॥ तेनशूलेनमहता वृत्रोद्भुतपराक्रमः ॥ ३८ ॥ बभौतीव्रेणतपसा यथारुद्रोयुगान्तकृत् ॥ तथामूलंसमालक्ष्य देवराजःशतक्रतुः ॥ ३९ ॥ अभूद्रणेहन्तुकामो वृत्रंदानवपुङ्गवम् ॥ तमायान्तमभिप्रेक्ष्य हन्तुकामंपुरन्दरम् ॥४०॥ जहासपरमंतत्र शक्रस्यचभयावहम् ॥ मुखम्प्रसार्यसुमहदागतोहिपुरन्दरम् ॥ ४१ ॥ तदावृत्रासुरोवीरः समरेसुरसत्तमम् ॥ ग्रस्तुकामोमहातेजा दैत्यानामधिपस्तथा ॥४२॥आगत्यसहसाशक्रं ग्रासयित्वासकुञ्जरम् ॥ सवज्रंसकिरीटञ्च ननर्तचजगर्जंच ॥ ४३ ॥ निमिषान्तरमात्रेण ग्रसितोसौपुरन्दरः ॥ हाहाकारोमहानासीद्देवानांतत्रपश्यताम् ॥ ४४ ॥ भूकम्पोहितदाचासीदुल्कापाताःसहस्रशः ॥ तिमिरेणावृतंसर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम् ॥ ४५ ॥ नृत्यमानोयदावृत्रो बभूवपरमद्युतिः ॥ चिन्त्यमानास्तदासर्वे देवाब्रह्माणमागताः ॥ ४६ ॥ शशंसुस्सर्वमेवैतद्वृत्रासुरविचेष्टितम् ॥ त

(इन्द्र) के प्रति आया ॥ ४१ ॥ उस समय संग्राममें देवसत्तमको ग्रसने की इच्छावाला दैत्योंका स्वामी तथा बड़ा तेजस्वी वीर वृत्रासुर ॥ ४२ ॥ शीघ्रही या एकाएक आकर व हाथी समेत वज्रसमेत और मुकुट समेत इन्द्रको ग्रसकर नाचनेलगा और फिर गर्जा ॥ ४३ ॥ पलकभांजनेके अन्तर मात्रसेही वह इन्द्र उससे ग्रसे (निगले) गये और वहां देखते हुये देवोंका बडाभारी हाहाकार हुआ ॥ ४४ ॥ तब भूकम्प भया व हजारों उल्कापातहुये और सब स्थावर जंगम जगत् अन्धकारमे ढँपगया॥ ४५ ॥ जब नाचता हुआ वृत्रासुर परम प्रकाशवालाहुआ तब चिन्तना करतेहुये सब देव ब्रह्माजीके समीप आये ॥ ४६॥ और इन्होने रावही वृत्रासुरके कर्मको कहा उसको

सुनकर सबलोकोंके पितामह भगवान् ब्रह्माजीने ॥ ४७ ॥ श्रेष्ठ समाधि (उत्तमयोग) से पर्वतमें सोनेवाले महादेवजीकी स्तुति किया ॥ ४८ ॥ श्रीब्रह्माजी बोले कि, ॐकार याने परब्रह्म के लिये नमस्कारहो व लिंगरूप महादेवजीके लिये निश्चयसे नमस्कार हो व क्रीड़ाकारी विरूप आखोंवाले विश्वरूपके लिये नमस्कारहो हे त्रिलोकेश ! तुम वृत्रासुरसे ग्रसेहुये इन्द्रकी रक्षाकरो रक्षाकरो ॥ ४९ ॥ उस समय आईहुई आकाशवाणी ने सबोंकेभी सुनते हुयेही हितके कामके लिये लिंगपूजा में विधानको कहा ॥ ५० ॥ कि प्रदोषव्रतसे युक्त इन्द्रने विकार समेत कर्मको कियाहै व ऐसेही शिवनिर्माल्य, पीठिका (अर्घा) देवमन्दिर और लिंग या मण्डप की छायाको

श्रुत्वाभगवान्ब्रह्मा सर्वलोकपितामहः ॥ ४७ ॥ तुष्टावगिरिशंदेवम्परमेणसमाधिना ॥ ४८ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ ॐनमोलिङ्गरूपायमहादेवायवैनमः ॥ विश्वरूपायदेवाय विरूपाक्षायवैनमः ॥ त्राहित्राहित्रिलोकेश वृत्रग्रस्तम्पुरन्दरम् ॥ ४९ ॥ तदागतानभोवाणी सर्वेषामपिशृण्वताम् ॥ उवाचहितकामाय विधिंलिङ्गार्चनेसताम् ॥ ५० ॥ प्रदोषव्रतयुक्तेनइन्द्रेण विकृतंकृतम् ॥ निर्माल्यंपीठिकाञ्चैव छायांप्रासादमेवच ॥ ५१ ॥ लङ्घयन्तिचयेमूढास्तेवैदण्ड्यानसंशयः ॥ चण्डस्यगणमुख्यस्य तस्मात्कुर्यात्प्रयत्नतः ॥ ५२ ॥ प्रदक्षिणनमस्कारैर्लिङ्गार्चनसमन्वितैः ॥ श्रेयोस्तीतिसुबुद्ध्यावै प्रयत्नाल्लिङ्गपूजनम् ॥ ५३ ॥ कार्यंदीक्षापरैर्नित्यं सर्वपापोपशान्तये ॥ अशरीरन्तुतद्वाक्यं श्रुत्वाब्रह्मादयःसुराः ॥ ५४ ॥ पप्रच्छुस्तेप्राञ्जलयो नभोवाणींशुभावहाम् ॥ प्रातर्मध्याह्नसमये सायंकालेतथैवच ॥ ५५ ॥ कथमर्चामहेलिङ्गं केनैवंविधिनाततः ॥

भी ॥ ५१ ॥ जे मूढ़ लांघतेहैं वे निश्चय से गणोंमें मुख्य चण्ड के दण्डनीयहैं याने चण्डजी उनको दण्ड देतेहैं इसमें संशय नहीहै उससे बड़े यत्न के साथ पूजाको करे ॥ ५२ ॥ लिंगपूजन समेत प्रदक्षिणा और नमस्कारों से सुख या मोक्ष या कल्याण या पुण्यहै ऐसी अच्छी बुद्धिसेही बड़ेयत्न से लिंगका पूजन ॥ ५३ ॥ सब पापों के विनाश के लिये दीक्षामें परायण जनोंको नित्यही करना चाहिये उस विना देहके वचन को सुनकर ब्रह्मादि देव ॥ ५४ ॥ जोकि हाथ जोड़ेहैं उन्होंने कल्याणके प्राप्त करनेवाली आकाशवाणी से पूछा कि प्रातःकाल व मध्याह्न समयमें ऐसेही सायंकाल में ॥ ५५ ॥ हम लोग किस विधि से कैसे उस लिंगको पूजें और

सायाह्न वैसेही मध्याह्न में कौन फूलहैं ॥ ५६ ॥ व प्रातःकाल में भी जे हैं उनको तुम यथातथ्यसे कहो तब आकाशमें प्राप्त वाणी ने विस्तारको कहा कि ॥५७॥कनैर व मदारका फूल और कटेहली (भटकटैया) का फूल भी और ऐसेही धतूरका फूल व वैसेही कमल ॥ ५८ ॥ व अमिलतास सँदेसरा मौलसिरी नागकेसर नीलकमल तथा कदम और श्वेत मदारका फूल ॥ ५९ ॥ व बहुते अनार आदि और बहुतसे कमलभी पण्डितों से तीनोंकालोंमें निरन्तर पवित्र जाननेयोग्यहैं ॥ ६० ॥ व चमेली का फूल बेलाका फूल वैसेही सेवती का श्याम फूल कुरैयाका फूल कठचम्पा या नैनियांका फूल कुसुमनामक का फूल तथा सुरंगसरोज ॥ ६१ ॥ ये फूल सायंकाल

कानिपुष्पाणिसायाह्ने मध्याह्नेचतथैवहि ॥ ५६ ॥ प्रातःकालेतुतान्येव कथयस्वयथातथम् ॥ तदानभोगतावाणी कथयामासविस्तरम्॥५७॥करवीरञ्चार्कपुष्पं बृहतीपुष्पमेवच॥धत्तूरकुसुमञ्चैवं शतपत्रंतथैवच॥५८॥आरग्वधंचपुन्नागंबकुलन्नागकेसरम् ॥नीलोत्पलंकदम्बञ्च मन्दारकुसुमंतथा॥५९॥बहूनिवारिजान्येव कमलानिबहून्यपि॥त्रिकालेचपवित्राणि ज्ञेयानिसततंबुधैः ॥ ६० ॥ जातीपुष्पंमल्लिकायाश्चपुष्पं सेवन्तिकानीलपुष्पंतथैव ॥ तथापुष्पंकौटजंकर्णिकारं कौशुम्भाख्यंवारिजंरक्तवर्णम् ॥ ६१ ॥ एतान्येवचपुष्पाणि सद्भक्त्यालिङ्गपूजने ॥ विशिष्टानिमयोक्तानि सायाह्नेचविशेषतः ॥ ६२ ॥ पद्मकानित्रिकालेच पवित्राणिप्रयत्नतः ॥ रात्रौकैरवकान्येवं पवित्राणिविशेषतः ॥ ६३ ॥ एवमर्चनभेदांश्च ज्ञात्वाताल्लिङ्गमर्चयेत् ॥ कार्य्योविधिर्विधिज्ञैश्च सततञ्चशिवालये ॥ ६४ ॥ वृषभान्तरितोभूत्वा पीठिकान्तरमेव च ॥ प्रदक्षिणंनकुर्वीत कुर्वन्किल्बिषमश्नुते ॥ ६५ ॥ तथाह्यनेनशक्रेण कृतञ्चैवप्रदक्षिणम् ॥ राजसम्भावमाश्रित्य

अच्छीभक्तिसे लिंगकी पूजामें मुझसे विशेषकर विशिष्ट (अधिकता समेत) कहे गयेहैं ॥ ६२ ॥ और कमल के फूल तीनों कालोंमें प्रयत्न से पवित्रहैं ऐसेही अनार रात्रिमे विशेषसे पवित्रहै ॥ ६३ ॥ व इस भांति पूजाके भेदोंको जानकर तब शिवलिंगको पूजे और विधिके जाननेवालों को शिवस्थान में निरन्तर विधान करना चाहिये ॥ ६४ ॥ कि वृषभ याने नन्दीश्वर के मध्यगत होकर और ऐसेही अर्घाके अन्तर में प्रदक्षिणा को नहीं करे क्योंकि करताहुआ पापको प्राप्तहोता है ॥ ६५ ॥

और जिससे इन इन्द्रने राजसभाव को आधारकर वैसेही प्रदक्षिणा को किया है उससे पूजन निष्फल होगया है ॥ ६६ ॥ और आजही हाथी समेत इन्द्र वृत्रासुर से ग्रसेभी गये है इससे आपलोगोंको वहही करना चाहिये कि जिससे इन्द्र अधिकतासे छूटते है ॥ ६७ ॥ हे देवो ! महारुद्र के विधान से इन्द्र उसी क्षणमेंही मुक्त (छूटेहुये) होते है (होवेगे) इसमे विचारणा नहीं करना चाहिये ॥ ६८ ॥ हे द्विजोत्तमो ! तदनन्तर देवोंने रुद्रजीका सम्पूजन और प्रतिदिन दशांश से हवन को किया ॥ ६९ ॥ और जब इन्द्रको छुड़ाने के चाहियो ने जप पूजा और होम को किया तबहीं देवराज वृत्रासुर की कोखको बिदारकर एकाएक विशेषता से नि-

तस्माज्जातञ्चनिष्फलम् ॥ ६६ ॥ ग्रसितोद्यैववृत्रेणसगजोहिपुरन्दरः ॥ भवद्भिरेवतत्कार्यं येनइन्द्रःप्रमुच्यते ॥६७॥ महारुद्रविधानेन मुक्तोभवतितत्क्षणात् ॥ पुरन्दरोह्ययन्देवानात्रकार्याविचारणा ॥ ६८ ॥ तेनैववचसादेवारुद्रस्याभ्यर्चनंततः ॥ हवनंप्रत्यहंचक्रुर्दशांशेनद्विजोत्तमाः ॥ ६९ ॥ जपञ्चपूजांहवनंप्रचक्रुर्विमोक्तुकामाहियदापुरन्दरम् ॥ शम्भोःप्रसादात्सहसा विनिर्गतःकुक्षिंभित्त्वादेवराजस्तदानीम् ॥ ७० ॥ सगजंचसवज्रञ्च सकिरीटंसकुण्डलम् ॥ श्रियापरमयायुक्तं निर्गतन्तुमहौजसम् ॥ ७१ ॥ शतक्रतुंसमालोक्य तेसर्वेत्रिदिवौकसः ॥ गन्धर्वाप्सरसोयक्षा ऋषयश्चमुदान्विताः ॥ ७२ ॥ देवदुन्दुभयोनेदुस्तथाशङ्खास्त्वनेकशः ॥ एकपद्येनसर्वेषां महान्हर्षोदिवौकसाम् ॥ ७३ ॥ सञ्जातस्तत्क्षणादेव यदामुक्तःपुरन्दरः ॥ तदाशचीसमायाता यत्रमुक्तःपुरन्दरः ॥ ७४ ॥ तत्रशच्यासमेतोसावभिषिक्तोमहर्षिभिः ॥ पुण्याहवाचनंतस्य कृतंसर्वैःप्रयत्नतः ॥७५॥ एवंयदाभिषिक्तोसौ महेन्द्रोऋषिभिःपुनः ॥ महीमङ्गलभूयि

कले ॥ ७० ॥ और हाथीसमेत व वज्रसमेत व मुकुट समेत व कुण्डलों समेत व श्रेष्ठ शोभासे संयुत और अधिक ओजस (इन्द्रियोका बल, वाले निकलेहुये ॥ ७१ ॥ इन्द्रको भलीभाति सामने से देखकर वे सब स्वर्गवासी गन्धर्व अप्सरस् यक्ष और ऋषिभी आनन्दसमेत हुये ॥ ७२ ॥ और देवोकी नगरिया तथा बहुतसे शङ्ख बाजे व एक क्षणके भावसे सब देवोंका बडाहर्ष ॥ ७३ ॥ उसीक्षणमेंही भलीभांति हुआ और जब इन्द्रजी छूटेहैं तब इन्द्राणी वहा भलीभांति आई कि जहा छूटेहुये इन्द्रजी हैं ॥ ७४ ॥ वहा सब महर्षियों ने बड़े यत्नके साथ इन्द्राणी से समेत उन इन्द्रको अभिषेक किया और उनका पुण्याहवाचन किया ॥ ७५ ॥ हे द्विजोत्तमो ! इसभांति

जब वह महेन्द्रजी ऋषियोसे फिर अभिषिक्त हुये तब भूमि अधिकमगलवाली हुई ॥ ७६ ॥ व दिशायें प्रसन्नता को प्राप्तहोगई आकाश निर्मलहुआ और अग्नियां शान्तहुई वैसेही महात्माओंके अच्छेमनहुये ॥ ७७ ॥ व उस समय इत्यादि अनेकों मङ्गल भये और ऐसेही महात्माओं के महोत्सव के बहुत वर्तमान होतेही ॥ ७८ ॥ व उन इन्द्रके छूटेहुये होतेही अधिक अद्भुत हुआ कि तबही गिरी व विदारीहुई वृत्रासुर की देह ॥ ७९ ॥ बडे विचित्र सुमेरु पर्वतके शिखरके समान सोहतीहै और जहा वृत्रासुर की भयकर देह गिरी है ॥ ८० ॥ वहा ब्रह्महत्या है क्योकि उस भूमि में बड़ापापी गिराहै और गंगा व यमुना के बीचमें जो भूमिहै वह अन्तर्वेदी ऐसा

ष्ठा तदाजाताद्दिजोत्तमाः ॥ ७६ ॥ दिशःप्रसन्नतांप्राप्ता निर्म्मलञ्चाभवन्नभः ॥ शान्तास्तथाग्नयोजातास्सुमनांसि महात्मनाम् ॥ ७७ ॥ एवमादीन्यनेकानि मङ्गलानितदाभवन् ॥ एवंप्रवर्तमानेतु महताञ्चमहोत्सवे ॥ ७८ ॥ मुक्तेशत क्रतौतस्मिन् बभूवपरमाद्भुतम् ॥ तदैवपतितन्देहं वृत्रस्यचविदारितम् ॥ ७९ ॥ यथामेरुगिरेःशृङ्गं शोभतेपरमाद्भु तम् ॥ यत्रवैपतितन्देहं वृत्रस्यचभयानकम् ॥ ८० ॥ तत्रैवब्रह्महत्याचपापिष्ठःपतितोभुवि ॥ गङ्गायमुनयोर्मध्ये चान्त र्वेदीतिकथ्यते ॥ ८१ ॥ पुण्यभूमिरितिख्याता प्रसिद्धालोकपावनी ॥ वृत्रहत्याप्रविष्टासा यस्मिन्देशेसपापवान् ॥ ८२ ॥ मलस्यबहुसम्भूतेर्मालवेतिप्रकीर्तिता ॥ तस्यान्तुमलभूम्यांवै वृत्रस्यचमहाशिरः ॥ ८३ ॥ षण्मासैश्चततःसर्वैः कृतन्देवैस्सवासवैः ॥ एवंवृत्रवधंकृत्वा शक्रोजयमवापह ॥ ८४ ॥ इन्द्रासनेचोपविष्टो निरातङ्कःशचीपतिः ॥ एत स्मिन्नन्तरेदैत्याः पातालेवासिनंवलिम् ॥ ८५ ॥ शशंसुस्सर्वमागत्य शक्रस्यचविचेष्टितम् ॥ तेषांतद्वचनंश्रुत्वा वैरोच

कहीजाती है ॥ ८१ ॥ व पुण्यभूमि ऐसा कहीगई है व लोगोंके पवित्र करनेवाली प्रसिद्ध है और जिस देशमें वह वृत्रासुरकी हत्या पैठीहै वह पापवान् है ॥ ८२ ॥ व जोकि मलके बहुत समूह होनेसे मालवा ऐसा कहीगईहै उस मलभूमि में फिर प्रसिद्ध वृत्रासुर का बड़ाभारी शिर ॥ ८३ ॥ उस समय इन्द्रसमेत सब देवोंसे छः मासोंमें काटागया है और इसभांति वृत्रासुर का बधकर इन्द्रजी आनन्द से जीति को प्राप्तहुये ॥ ८४ ॥ व अशाक इन्द्राणीके पति इन्द्रासनमें बैठे इस अन्तरमें दैत्यों ने पाताल में बसतेहुये बलिके प्रति ॥ ८५ ॥ आकर इन्द्रके सब कर्म को कहा और उनके उस वचनको सुनकर उदार बुद्धिवाले विरोचन के पुत्र (बलि)

ने ॥८६॥ तब शुक्राचार्यसे पूंछाकि इन्द्रकैसे वशहोवें उनसे कहेहुये शुक्राचार्यजी अधिकतासे बोले कितुम विश्वजित् नामक यज्ञकोकरो ॥ ८७ ॥ हे दैत्येन्द्र ! यज्ञके विना कार्य्यकी सिद्धि नहीं होवेगी और वैसाहो ऐसा मानकर दैत्येन्द्रने यज्ञकेलिये मनको धारण किया ॥ ८८ ॥ व जेजे द्रव्य यज्ञकेयोग्य प्रसिद्धहैं उनको उदारबुद्धि वाले वैरोचनि ने प्रयत्नमे मँगालिया ॥ ८९ ॥ और महात्मा शुक्राचार्य्यने बड़ेभारी यज्ञको विशेषतासे वर्त्तमानकिया तब बलिजी दीक्षासे युक्तहुये व अग्निको हवनसे पूजनेलगे ॥ ९० ॥ और वैसेही विधान कारणवाले कर्मसे अग्निके हवियोंसे तृप्तकियेजातेही उस अग्निसे परम अद्भुत रथ भलीभाति उत्पन्नहुआ ॥ ९१॥ जोकि चारघोडों

निरुदारधीः ॥ ८६ ॥ शुक्रंपप्रच्छचतदा कथमिन्द्रोवशीभवेत ॥ तेनोक्तोभार्गवःप्राह यज्ञंविश्वजितंकुरु ॥ ८७ ॥ विनाय ज्ञंनदैत्येन्द्र कार्यसिद्धिर्भविष्यति ॥ तथेतिमत्वादैत्येन्द्रोयज्ञायचमनोदधे ॥ ८८ ॥ यानियानिचद्रव्याणि यज्ञयो ग्यानितानिवै ॥ आजहारप्रयत्नेन वैरोचनिरुदारधीः ॥८९॥प्रवर्तितोमहायज्ञो भार्गवेणमहात्मना ॥ दीक्षायुक्तोबलिरभू ज्जुहुवेहव्यवाहनम् ॥ ९० ॥ हूयमानेतथाग्नौच कर्मणाविधिहेतुना ॥ तस्माद्वह्नेस्समुत्पन्नः स्यन्दनःपरमाद्भुतः ॥ ९१ ॥ हयैश्चतुर्भिस्संयुक्तो ध्वजैश्चैवमहाप्रभः ॥ शस्त्रैश्चविविधैर्युक्तोनेकैरस्त्रैरलंकृतः ॥ ९२ ॥ ततश्चावभृथस्नानं च क्रेशुक्रप्रणोदितः ॥ स्यन्दनंपूजयित्वाचारुरोहसबलिस्तदा ॥ ९३ ॥ दैत्यैःपरिवृतस्सद्यो योद्धुकामःपुरन्दरम् ॥ स एवंत्रिदिवंप्राप्तो बलिर्वैरोचनोमहान् ॥ ९४ ॥ आगत्यसेनयासार्द्धमारुरोधामरावतीम् ॥ संरुद्धांताम्पुरींदृष्ट्वा तदाते सुरसत्तमाः ॥ ९५ ॥ विमर्शयित्वासुचिरमूचुस्सर्वेबृहस्पतिम् ॥ किंकुर्म्मोद्यमहाभाग ह्यागतादैत्यपुङ्गवाः ॥ ९६ ॥

से और ऐसेही ध्वजोंसे संयुत व बडी दीप्तिवाला व बहुत भातिके शस्त्रोंसे समेत और अनेकों अस्त्रोंसे भूषित है ॥ ९२ ॥ और उसके बाद उससमय शुक्राचार्य्य से प्रेरित वह बलिजी यज्ञान्त स्नानको करतेभये व रथको पूजकर उसपर चढ़े ॥९३॥ और दैत्योंसे सबओर घिरेहुये व इन्द्रसे लडनेके लिये इच्छावाले वहही विरोचनके पुत्र बडेभारी बलि शीघ्रही स्वर्गको प्राप्तहुये ॥ ९४ ॥ व सेनाके साथ आकर उन्होंने अमरावतीपुरीको अधिकता से घेरलिया तब भलीभांति घेरीहुई उस पुरीको देख कर उन देवश्रेष्ठोंने ॥ ९५ ॥ बहुत कालतक विचारकर सब वृत्तान्तको बृहस्पतिसे कहा कि हे महाभाग ! आज हमलोग क्याकरें क्योंकि ये दैत्य श्रेष्ठ आयेहैं ॥९६॥

जे कि सब बड़ेघोर और युद्ध में परमपण्डित हैं ऐसे उनके उस वचन को सुनकर बृहस्पतिजी बोले ॥ ९७ ॥ कि हे देवो ! यज्ञको कियेहुये वे ये सब दैत्य शुक्राचार्य्य से पठायेगये हैं इसलिये तपस्या और विक्रमसे अजेय है याने जीतने योग्य नहीं हैं ॥ ९८ ॥ गुरूसे कहेहुये इस वचन को सुनकर वे सब देवलोग लज्जासे समेत भलीभांति हुये दैत्योंसे सबओर घुड़केहुये बुद्धिसे विकल इन्द्रभी बड़ी चिन्ता और लज्जासे युक्तहोगये ॥ २९९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेमाहेश्वरखण्डान्तर्गत केदारखण्डेभाषाबन्धेसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचितेनमुचिवृत्रासुरादिवधेन्द्रविजयवर्णनपूर्वकबलिपराक्रमोनामसप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ ॐ ॥ ॐ ॥

योद्धुकामामहाघोराः सर्वेयुद्धविशारदाः ॥ तेषांतद्वचनंश्रुत्वाबृहस्पतिरभाषत ॥ ९७ ॥ एतेकृतमखास्सद्यो भृगुणानोदिताःसुराः ॥ अजेयाश्चैवतेसर्वे तपसाविक्रमेणच ॥ ९८ ॥ एतन्निशम्यगुरुणावचनन्तउक्तं सर्वेसुराःसमभवंस्त्रपयाभियुक्ताः ॥ इन्द्रोपिबुद्धिविकलःपरिचिन्तयाच व्रीडायुतःसमभवत्परिभर्त्स्यमानः ॥ २९९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेमाहेश्वरखण्डान्तर्गतकेदारखण्डेशैवशास्त्रे नमुचिवृत्रासुरादिवधेन्द्रविजयबलिपराक्रमोनामसप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

लोमशउवाच ॥ कर्मणापरिभूतोहि महेन्द्रोगुरुमब्रवीत् ॥ विनायुद्धेनसंक्लेशन्तर्त्तुंकुर्मःकिमुच्यताम् ॥ १ ॥ बृहस्पतिरुवाचेदंत्यक्त्वाचैवामरावतीम् ॥ यास्यामोन्यत्रसर्वेवै सकलान्विजिगीषवः ॥ २ ॥ तथाचक्रुस्सुरास्सर्वे हित्वाचैवामरावतीम् ॥ बर्हिणोरूपमास्थाय गतस्सद्यःपुरन्दरः ॥ ३ ॥ काकोभूत्वायमोभूत्वा कृकलासोधनाधिपः ॥ अग्निःकपोतकोभूत्वा भेकोभूत्वामहेश्वरः ॥ ४ ॥ नैर्ऋतस्तत्क्षणादेव कपिर्भूत्वाततोगतः ॥ कश्यपस्याश्रमंपुण्यं सम्प्राप्ता

दो० । अष्टादश अध्याय में श्रीवामन अवतार । सुयश विरोचन को तथा बलि कृत पूर्वपसार ॥ श्रीलोमशजी बोले कि कर्मसे तिरस्कृत (नीचे किये) हुये इन्द्रजीने गुरू से कहाकि हमलोग युद्धके विना क्लेशको तरने (पारजाने) के लिये क्या करें वह कहाजावे ॥ १ ॥ और ऐसेही बृहस्पतिजी बोले कि,सबोंको विशेषसे जीतना चाहतेहुये हम सबलोग अमरावतीपुरीको त्यागकर निश्चयसे अन्यत्र जावेंगे २ ॥ और सब देवोंने वैसाही किया कि इन्द्रजी मयूरके रूपमें टिककरव अमरावतीको छोड़कर शीघ्रही चलेगये ॥ ३ ॥ यमराजजी कागहोकर कुबेर गिरगिटहोकर अग्नि कबूतर होकर महेशान मेढुका होकर ॥ ४ ॥ और नैर्ऋत बानर होकर उसी

क्षणमेंही चलेगये तदनन्तर डरसे आतुर वे सब कश्यपके मनोहर आश्रम में प्राप्त हुये ॥ ५ ॥ व सवोंने माता अदिति के प्रति दैत्योंके कर्मको कहा उस अप्रिय को सुनकर अदितिजी जोकि पुत्रोंके सुखकी लालसावालीहैं ॥ ६ ॥ उन्हींनेही कश्यप जीसे कहा कि हे महर्षे ! देवोंका बडाभारी दुःख सुनाजावे और आप उस वाक्य को सुनकर करने के लिये योग्यहो ॥ ७ ॥ और हे प्रजापते ! दैत्योंसे हारेहुये देव अमरावतीपुरी को निश्चय से त्यागकर तुम्हारे आश्रमको प्राप्त हैं इससे तुम उन की रक्षाकरो ॥ ८ ॥ व उनके उस वचनको सुनकर कश्यपजी वचन को बोले कि हे सर्वाङ्ग सुन्दरि, भामिनि ! तुम ऐसा जानो, कि, वडीभारी तपस्या से ॥ ९ ॥ वे

स्तेभयातुराः ॥ ५ ॥ अदितिंमातरंसर्वे शशंसुर्दैत्यचेष्टितम् ॥ अप्रियंतदुपाकर्ण्य त्वदितिःपुत्रलालसा ॥ ६ ॥ उवाचकश्यपंसातु सुराणांव्यसनम्महत् ॥ महर्षेश्रूयतांवाक्यंश्रुत्वातत्कर्तुमर्हसि ॥ ७ ॥ दैत्यैःपराजितादेवा हित्वाचैवामरावतीम् ॥ त्वदीयमाश्रमंप्राप्तास्तान्रक्षस्वप्रजापते ॥ ८ ॥ तस्यास्तद्वचनंश्रुत्वा कश्यपोवाक्यमब्रवीत् ॥ तपसामहता तन्वि जानीहित्वञ्चभामिनि ॥ ९ ॥ अजेयाह्यसुराःसाध्विभृगुणाह्यनुमोदिताः ॥ तेषांक्षयोहितपसा उग्रेणानेनभामिनि ॥ १० ॥ नहिशीघ्रतरेणैव सुराणांकार्यसिद्धयः ॥ व्रतमेतन्महाभागे कथयाम्यर्थसिद्धये ॥ ११ ॥ तत्कुरुष्वप्रयत्नेन यथोक्तविधिनाशुभे ॥ मासिभाद्रपदेदेवि दशम्यांनियतश्शुचिः ॥ १२ ॥ एकभक्तंप्रकुर्वीत विष्णोःप्रीत्यर्थमेवच ॥ प्रार्थनीयोहरिस्साक्षात्सर्वकामवरेश्वरः ॥ १३ ॥ मन्त्रेणानेनसुभगे तद्भक्तैर्वरवर्णिनि ॥ तवभक्तोस्म्यहन्नाथ दशम्यादिदि

असुर जीतनेयोग्य नहीं हैं क्योंकि हे पतिव्रते ! शुक्राचार्य्यसे पीछे आनन्दित कियेगयेहैं हे भामिनि ! इस उग्रतपस्यासेही उनका क्षय (विनाश) है ॥ १० ॥ हे महाभागे ! शीघ्रतर याने थोड़ी तपस्यासे देवोंके कार्य्योंकी सिद्धियां नहीं हैं इससे मैं प्रयोजनकी सिद्धिके लिये इस व्रतको कहताहूं ॥ ११ ॥ हे शुभे ! तुम उसको यथोक्तविधान से बड़ेयत्नके साथकरो कि हे देवि ! भाद्रमासकी दशमीमें नियमवाला पवित्रजन ॥ १२ ॥ विष्णुजीकी प्रीतिके अर्थ एकभक्त याने एकवार भोजनको करे और ऐसेही साक्षात्सब वाञ्छित वरोंके स्वामी भक्तभयहारी वैकुण्ठविहारी प्रार्थनीय (याचने योग्य) हैं ॥ १३ ॥ हे सुभगे, वरवर्णिनि ! भक्तोंकरके इस मन्त्रसे वह प्रार्थना करने

सन्तों के आधार या सेव्य भक्तभयहारी एक (मुख्य) ॥ ३२ ॥ परमात्मा विष्णुजीने ऐसी चिन्तना किया कि आजही मुझको निश्चयसे क्या कार्य्य करना चाहिये जिससेही सब देव जीतिको और दैत्यश्रेष्ठ हारको प्राप्त होते हैं (होवें) ॥ ३३ ॥ व भगवान्ने गदासे कहा कि हे वेगसंयुते महाभागे ! तुम विरोचनके पुत्र बलिके प्रति शीघ्रही जावो और उनको मारो ॥ ३४ ॥ जब हँसतीहुई स्त्रीकी नाईं गदा इन्द्रियोंके स्वामी से बोली कि जिससे बलि बड़े ब्रह्मण्यहैं उससे मुझसे मारने के लिये अयोग्य हैं याने मैं उनको नहीं मारसक्तीहूं ॥ ३५ ॥ तब सब ओरसे शान्त्वन करतेहुये विष्णुजीने चक्रके प्रति कहा कि हे सुदर्शन ! तुम बलिको मारने के लिये शीघ्रतासे

किंकार्यमद्यैवमयाहिकार्य्येयेनैवदेवाजयमाप्नुवन्ति॥ पराजयंदैत्यवराश्चसर्वेविष्णुःपरात्मैवमचिन्तयत्सः ॥ ३३ ॥ गदामुवाचभगवानाशुगच्छबलिम्प्रति ॥ वैरोचनिंमहाभागेघातयस्वत्वरान्विते ॥ ३४ ॥ गदोवाचहृषीकेशंप्रहसन्तीव भामिनी ॥ मयाह्यशक्योवधितुंब्रह्मण्योहिबलिर्महान् ॥ ३५ ॥ चक्रम्प्रतितदाविष्णुरुवाचपरिसान्त्वयन् ॥ त्वङ्गच्छ बलिंनंहन्तुंशीघ्रत्वेनसुदर्शन ॥ ३६ ॥ तदोवाचत्वरन्नेवंचक्रपाणिंसुदर्शनम् ॥ नशक्यतेमयाहन्तुंबलिनंमधुसूदन ॥ ३७ ॥ ब्रह्मण्योसियथाविष्णोतथासौदैत्यपुङ्गवः॥धनुषापितथाचोक्तःशार्ङ्गपाणिश्चविस्मितः ॥ ३८ ॥ चिन्तयापरयोपेतो विमृश्यसुचिरम्बहु ॥ अत्रिरुवाच ॥ तदातेह्यसुरास्सर्वेकिमकुर्वंस्तदुच्यताम् ॥ ३९ ॥ लोमशउवाच ॥ तदातेह्यसुरा स्सर्वेबलिप्रभृतयोदिवि ॥ रुरुधुस्तांपुरींरम्यांयोद्धुकामाःपुरन्दरम् ॥ ४० ॥ नविदुर्ह्यसुरास्सर्वेगतान्देवांस्त्रिविष्टपात् ॥

जावो ॥ ३६ ॥ उस सय वेगसमेत होतेहुये सुदर्शन चक्रजी विष्णुजी से बोले कि हे मधुसूदन ! मुझसे बलिको मारने के लिये नहीं योग्य होताहै ॥ ३७ ॥ क्योंकि हे विष्णो ! जैसे तुम ब्रह्मण्य (ब्राह्मणों के हितकारी या पूजक) हो वैसेही वह दैत्यश्रेष्ठहैं और फिर धन्वासे भी वैसेही कहेहुए हाथमें शार्ङ्गधनुर्धारी विस्मित ॥ ३८ ॥ व अच्छे बहुत कालतक बहुत विचारकर परम चिन्तासे समेतहुये ॥ अत्रिजी बोले, "यहां ऐसा जानना चाहिये कि बहुतसे स्थानोंमें शौनक उवाच यह देख पड़ताहै और यहां अत्रिउवाच इससे जानाजाताहै कि शौनककाही अत्रि भी नामहै अथवा बहुते श्रोताओं के बीचमें अत्रिनामक ऋषि बोले कि, तब उन सब असुरोंने क्याकिया वह कहाजावे ॥ ३९ ॥ श्रीलोमशजी बोले कि, उस समय इन्द्र से लड़ने के चाही उनबलि आदि दैत्योंने स्वर्ग में उस रमणीकपुरीको घेरलिया ॥ ४० ॥ और जिससे सब

असुरोंने स्वर्ग से कश्यपके आश्रमके प्रति गयेहुये अनेक रूपधारी देवों को नहीं जाना उससे ॥ ४१ ॥ उस समयमेंही देवेशको सामने से मारने के लिये इच्छावाले दैत्योंने छहरदिवालीपर चढ़कर जबतक अमरावतीपुरी में प्रवेशकिया तबतक उन्होंने उसको शून्य देखा ॥ ४२ ॥ और तब शुक्राचार्य्यने असुरों से सब ओर घिरेहुये बलिको बड़े अभिषेकके विधान से इन्द्रासनमें अभिषेक किया ॥ ४३ ॥ वैसेही राज्यमें अधिकतासे टिकेहुये बड़े भारी विरोचन पुत्र बलिजी उसउत्तम ऐश्वर्य्य से इन्द्र से अधिक शोभितहुये ॥ ४४ ॥ और उस समय वह ऋषियों व अप्सराओं व गन्धर्वों व किन्नरों व नागों और असुरों के समूहों से महेन्द्रकी नाईं सेव्यमान हुये ॥ ४५ ॥

नानारूपधरांस्तस्मात्कश्यपस्याश्रमंप्रति ॥ ४१ ॥ प्राकारमारुह्यतदाहिसद्योदैत्याःसुरेशंप्रतिहन्तुकामाः ॥ यावत्प्रविष्टाह्यमरावतींतांतावत्तुशून्यांददृशुःपुरींते ॥ ४२ ॥ इन्द्रासनेचभृगुणाह्यभिषिक्तोबलिस्तदा ॥ महाभिषेकविधिना ह्यसुरैःपरिवारितः ॥ ४३ ॥ तथैवाधिष्ठितोराज्येबलिर्वैरोचनिर्महान् ॥ शुशुभेपरयाभूत्यामहेन्द्रादधिकस्तथा ॥ ४४ ॥ ऋषिभिश्चाप्सरोभिश्चगन्धर्वैःकिन्नरैस्तदा ॥ नागैश्चासुरसङ्घैश्चसेव्यमानोमहेन्द्रवत् ॥ ४५ ॥ कल्पद्रुमोजितस्तेनकामधेनुर्मणिस्तथा ॥ दानैर्दाताचसर्वेषांयदर्थंयेसमागताः ॥ ४६ ॥ सर्वेषामेवभूतानांदानैर्दाताबलिर्महान् ॥ यान्यान्कामयतेकामांस्तान्सर्वान्वितरत्यसौ ॥ ४७ ॥ ससर्वेभ्योहिचार्थिभ्योदानवानामधीश्वरः ॥ शौनकउवाच ॥ देवेन्द्रोहिमहाभागनददातिकदाचन ॥ ४८ ॥ कथम्बलिरसौदाताकथयस्वयथातथम् ॥ लोमशउवाच ॥ जन्मनायेनयत्किञ्चित्क्रियतेसुकृतंनरैः ॥ ४९ ॥ शुभंवाप्यशुभंवापिज्ञातव्यंहिविपश्चिता ॥ शक्रोहियाज्ञिकोविप्राअश्वमेधशतेनवै ॥ ५० ॥ प्राप्तराज्यो

उन्होंने कल्पवृक्ष कामधेनु और चिन्तामणिको जीतलिया और वह जेकि जिसलिये भलीभांति आये उन सबों को उन दानों से देनेवाले हैं ॥ ४६ ॥ वह बलिजी सब प्राणियोंकेही दानों से बड़े दाताहैं जो जिन कामोंकी इच्छा करताहै उसके लिये उन सबोंको देतेहैं ॥ ४७ ॥ व वह दानवों के अधीश्वर बलिजी सब भी याचकों के लिये भी देतेहैं ॥ श्रीशौनकजी बोले कि, हे महाभाग ! देवेन्द्र तो कभी नहीं देतेहैं ॥ ४८ और वह बलिजी कैसे दाताहैं इसको तुम यथातथ्य से कहो ॥ श्रीलोमशजी बोले कि मनुष्यों करके जिस जन्म से जो कुछ अच्छा कर्म कियाजाताहै ॥ ४९ ॥ वह शुभ व अशुभ भी बुद्धिमान्से निश्चयकर जानने योग्यहै ॥ हे ब्राह्मणो ! जिससे इन्द्रजी

अश्वमेधयज्ञों के सैकड़ासेही ॥ ५० ॥ अमरावती मे राज्यके पानेवाले हैं उससे केवल भोगो में लोलुपहैं उस फलको अर्थित (याचित) जानो इससे वह फिर कृपणता में पैठे है ॥ ५१ ॥ और फिर मरणको प्राप्तहोकर क्षीण पुण्यवाले होवेंगे जिसलिये कृमि (छोटा जन्तु) ही इन्द्र होते है व इन्द्र भी कृमि होजाते है ॥ ५२ ॥ इसलिये दान से परतर (अधिक उत्तम) अन्य यहां विशेषसे मुक्तिदायक नहींहै क्योंकि दानसे ज्ञान मिलता है ज्ञानसे मोक्ष होताहै इसमें सन्देह नहीं है ॥ ५३ ॥ और हे ब्राह्मणो! शिवजी मे भक्ति मुक्तिसे बहुत श्रेष्ठहै जिससे सदा शिवजी सब शरणागतों को सब कुछ देते हैं ॥ ५४ ॥ और वह शंकरजी कुछेक दियेहुए पानी से भी प्रसन्न होजाते हैं

मरावत्यांकेवलंभोगलोलुपः ॥ अर्थितंतत्फलंविद्धिपुनःकार्पण्यमाविशत ॥५१॥ पुनर्मरणमाविश्यक्षीणपुण्योभविष्यति ॥ यदिन्द्रःकृमिरेवस्यातकृमिरिन्द्रोहिजायते ॥५२॥ तस्माद्दानात्परतरंनास्तीहतुविमोचनम् ॥ दानाद्धिप्राप्यतेज्ञानंज्ञानान्मोक्षोनसंशयः ॥ ५३ ॥ मोक्षात्परतराभक्तिःशूलपाणौहिवैद्विजाः ॥ ददातिसर्वंसर्वेषांप्रपन्नानांसदाशिवः ॥ ५४ ॥ किञ्चिद्दत्तेनतोयेनपरितुष्यतिशङ्करः ॥ अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासंपुरातनम् ॥ ५५ ॥ विरोचनसुतेनेदंकृतमस्तिशृणुष्वतत् ॥ कितवोहिमहापापोदेवब्राह्मणनिन्दकः ॥ ५६ ॥ कृत्ययापरयोपेतःपरदाररतोमहान् ॥ एकदातुमहत्तेनकैतवेनजितंधनम् ॥ ५७ ॥ गणिकार्थञ्चपुष्पाणिताम्बूलंचन्दनंतथा ॥ कौपीनमात्रंतस्यैवकितवस्यप्रदृश्यते ॥ ५८ ॥ कराभ्यांस्वस्तिकंकृत्वागन्धमाल्यादिकञ्चयत ॥ गणिकार्थमुपादायधावमानोगृहम्प्रति ॥ ५९ ॥ भूत्वाप्रस्खलितो

इसमेंही पुराने इतिहासको उदाहरण करते हैं ॥ ५५ ॥ कि विरोचनके पुत्र बलिसे यह कियागया है उसको तुम सुनो कि आगे एक कितव (कपटी जुवांरी) था जो कि बड़ा पापी देवों और ब्राह्मणोंका निन्दक ॥ ५६ ॥ व बड़ी कृत्या से समेत और बडाभारी परस्त्रियों में रतथा उसने एक समय कैतवसे बड़े धनको जीता ॥ ५७ ॥ परन्तु वेश्याओं के अर्थ फूल व पान तथा चन्दन और अपने लिये उस कितवके कौपीनमात्रही अधिकता से देखाजाताहै ॥ ५८ ॥ जोकि गणिकाके अर्थ स्वस्तिक (मोदक) सुगन्ध और माल्यादिक था उसको दोनों हाथों से लेकर घरके प्रति धावताहुआ ॥ ५९ ॥ वह प्रस्खलित होकर (ठोकर खाकर) उसी क्षण भूमिमें नीचे

गिरपडा और वैसे गिरने से क्षणमात्रतक मूर्च्छा से युक्त होगया ॥ ६० ॥ तदनन्तर वहां दुष्ट कर्मकारी पापीकी मूर्च्छागई और पूर्वके कर्मसेही शीघ्रही बुद्धि भलीभाति उत्पन्न भई ॥ ६१ ॥ व दुःखसे संयुत कितव परम खेदसमेत वैराग्यको प्राप्तहुआ और जोकि बडी गन्ध पुष्पादिक चीज भूमिमें गिरी थी ॥ ६२ ॥ उसको अज्ञानी कितव ने भी शिवजी के लिये ऐसा समर्पण किया ऐसेही यमराजके दूतोंने उसही सुकृतके साथ उसको यमलोकके प्रति पहुँचाया ॥ ६३ ॥ और तब सब लोगोंके भयदायक प्रेतनायक उस पापी से बोले कि रे मन्द ! तू बड़े नरकों में पकाने योग्यहै ॥ ६४ ॥ और उसने कहा कि हे यमराजजी ! मेरा सुकृत (सुकर्म या पुण्य यथातथ्य से

भूमौनिपपातचतत्क्षणात् ॥ पतनान्मूर्च्छयायुक्तःक्षणमात्रंतथाभवत् ॥ ६० ॥ ततोमूर्च्छांगतातत्रपापिनोदुष्टकारिणः ॥ बुद्धिःसद्यःसमुत्पन्नाकर्मणाप्राक्तनेनवै ॥ ६१ ॥ निर्वेदंपरमापन्नःकितवोदुःखसंयुतः ॥ भूम्यांनिपतितंयच्चगन्धपुष्पादिकम्महत् ॥ ६२ ॥ समर्पितंशिवायेतिकितवेनाथबुद्धिना ॥ तेनैवसुकृतेनैवयाम्यैर्नीतोयमक्षयम् ॥ ६३ ॥ तम्पापिनंतदोवाचसर्वलोकभयावहः ॥ पाचनीयोसिरेमन्दनरकेषुमहत्सुच ॥ ६४ ॥ विमृश्यतांमेसुकृतंयथातथ्येनभोयम ॥ चित्रगुप्तेनचाख्यातंतदाचैवंत्वयापुनः ॥ ६५ ॥ शिवमुद्दिश्यकिञ्चिच्चगन्धपुष्पादिकम्भुवि ॥ पतितंचैवदेहान्तेप्रदत्तम्परमात्मने ॥ ६६ ॥ तेनकर्मविपाकेनघटिकात्रयमेवच ॥ शचीपतेपदंसिद्धंप्राप्स्यसित्वंनसंशयः ॥ ६७ ॥ तद्वाक्यंचित्रगुप्तस्यश्रुत्वावाक्यमुवाचह ॥ आदौमोक्ष्येशुभंसर्वंपश्चादशुभमेवच ॥ ६८ ॥ एवमुक्तेतुवचनेबृहस्पतिरुदारधीः ॥ आगतस्तत्क्षणादेवसुरैःसर्वैःसमन्वितः ॥ ६९ ॥ ऐरावतंसमारूढोनीतोसौशक्रमन्दिरम् ॥ शक्रःप्रबोधितस्तेनगुरुणाभावि

विचाराजावे उस समय चित्रगुप्तजीने फिर ऐसा सामने से कहा कि तुमने ॥ ६५ ॥ देहान्त समय भूमिमें गिरेहुये कुछेक सुगन्ध पुष्पादिकको शिवजीको उद्देशकर परमात्माके लिये अधिकतासे दियाहै ॥ ६६ ॥ और उस कर्मके विपाक (फल) सेही तुम तीन घडीतक इन्द्रके सिद्ध स्थानको पावोगे इसमें संशय नही है ॥ ६७ ॥ और चित्रगुप्तके उस वचनको सुनकर उसने वचनको आनन्द से कहा कि मैं पहले शुभ कर्मको भोग करूंगा व पीछे से सब अशुभकोही भोगोंगा ॥ ६८ ॥ और उसके ऐसा वचन कहतेही उस क्षणमेंही सब देवों से समेत उदार बुद्धिवाले बृहस्पतिजी आये ॥ ६९ ॥ व ऐरावत हाथी में सवार वह कितव इन्द्रस्थानको पहुंचायागया और भावना

समेत अन्तःकरणवाले उन गुरूने इन्द्रको अधिकतासे बोधनाकिया ॥ ७० ॥ कि हे इन्द्र ! जितना तीन दण्ड समय होताहै उतने कालतक तुम करके मेरी आज्ञासे कितव भी अपने आसनमें याने इन्द्रासन में भलीभांति थापने योग्यहै ॥ ७१ ॥ ऐसे गुरुके वचनको सब भावसे जानकर उत्सुकतासे रहित इन्द्र राज्यको छोड़कर अन्यत्रही चलेगये और वह कितव उसमें बैठायागया ॥ ७२ ॥ जोकि देवोंके राजाका घर अनेक आश्चर्यों और आनन्दसे समेत है और शंकरजीको फूल व पानसमेत सुगन्धके बहुत देने से ॥ ७३ ॥ वह इन्द्रकी राज्यको प्राप्त होकर इन्द्रासन में अभिषिक्तहुआ तो फिर क्या कहनाहै कि जो श्रद्धासे संयुत लोग परमात्मा शिवजीके लिये ॥ ७४ ॥

तात्मना ॥ ७० ॥ घटिकात्रितयंयावत्तावत्कालम्पुरन्दर ॥ निजासनेपिसंस्थाप्यःकितवोपिममाज्ञया ॥ ७१ ॥ गुरोर्वचनमाज्ञायराज्यंत्यक्त्वानिरुत्सुकः ॥ गतोन्यत्रैवशक्रोसौकितवोहिप्रवेशितः ॥ ७२ ॥ भवनंदेवराजस्यनानाश्चर्यमुदान्वितम् ॥ शम्भोर्गन्धप्रदानाच्चपुष्पताम्बूलसंयुतात् ॥ ७३ ॥ शक्रासनेभिषिक्तोसौप्राप्यराज्यंशतक्रतोः ॥ किम्पुनःश्रद्धयायुक्तःशिवायपरमात्मने ॥ ७४ ॥ अर्पयन्तिसदाभक्त्यागन्धपुष्पादिकम्महत् ॥ शिवस्यपूजयाजाताःशिवांशेनसमन्विताः ॥ ७५ ॥ प्राप्नुवन्तिमहामोदंशक्रस्तेषाञ्चकिङ्करः ॥ शिवपूजारतानाञ्चयत्सुखंशान्तचेतसाम् ॥ ७६ ॥ ब्रह्मशक्रादिकानाञ्चतत्सुखंदुर्लभंमहत् ॥ वराकास्तन्नजानन्तिमूढाविषयलोलुपाः ॥ ७७ ॥ वन्दनीयोमहादेवोह्यर्चनीयःसदाशिवः ॥ पूजनीयोमहादेवःप्राणिभिस्तत्त्ववेदिभिः ॥ ७८ ॥ तस्मादिन्द्रत्वमगमत्कितवोघटिकात्रयम् ॥ पुरोधसाभिषिक्तोसौपुरन्दरपदेस्थितः ॥ ८९ ॥ तदानींनारदेनोक्तःकितवोसौमहायशाः ॥ इन्द्राणीमानयस्वेह

बड़े सुगन्ध पुष्पादिकको भक्तिसे सदैव सौंपते हैं व शिवजीकी पूजासे शिवांश से समेतहुये जे जन ॥ ७५ ॥ बड़े आनन्दको प्राप्त होते है उनके इन्द्र भी सेवक हैं और शिवजी की पूजाके स्नेही शान्त चित्तवाले सन्तोंका जो सुखहै ॥ ७६ ॥ वह बड़ा भारी सुख ब्रह्मा और इन्द्रादिकोंको दुर्लभहै व विषयों में लोलुप बापुरे मूढ़लोग उसको नहीं जानते हैं ॥ ७७ ॥ जिसलिये सारांशके जाननेवाले प्राणियो से महादेवजीही सदा वन्दने योग्यहैं व शिवजीही सेवने योग्यहैं और महादेवही पूजने योग्य हैं ॥ ७८ ॥ इसलिये वह कितव तीन घड़ीतक इन्द्रभावको प्राप्तहुआ व गुरु (बृहस्पति) से अभिषेक कियाहुआ वह इन्द्रके स्थानमें टिका ॥ ७९ ॥ तबहीं वह बड़ा

यशस्वी कितव नारदमुनिसे कहागया कि जिससे राज्य सुशोभितहै उस इन्द्राणीको तुम लावो ॥ ८० ॥ तदनन्तर शिवजी के प्यारे या शिवजीको प्यार करनेवाले कितव ने बिहँसकर कहा कि हे महामुने ! इन्द्राणी से मेरा कार्य्य नहींहै तुमको न कहना चाहिये ॥ ८१ ॥ ऐसा कहकर अनन्तर शिवके प्यारे कितवने अधिकतासे देने के लिये आरम्भकिया अगस्त्यमुनिके लिये ऐरावत हाथीको दिया ॥ ८२ ॥ और उदारबुद्धिवाले बड़े यशस्वी कितवने विश्वामित्रको उच्चैःश्रवानामक घोडादिया और कामधेनुको ॥ ८३ ॥ वसिष्ठजीके लिये दिया व जब समर्थ बड़े तेजस्वी उसने गालव मुनिको चिन्तामणि दिया तब वैसेही ॥ ८४ ॥ बड़े भाग्यवान् कितवने कौंडिन्य को

ययाराज्यंसुशोभितम् ॥८०॥ ततःप्रहस्यचोवाचकितवःशिववल्लभः॥इन्द्राण्यानास्तिमेकार्यंनवाच्यन्तेमहामुने ॥८१॥ एवमुक्त्वाथकितवःप्रदातुमुपचक्रमे ॥ ऐरावतमगस्त्यायप्रददौशिववल्लभः ॥ ८२ ॥ विश्वामित्रायकितवोददौहयमुदारधीः ॥ उच्चैःश्रवससंज्ञञ्चकामधेनुम्महायशाः ॥ ८३ ॥ ददौवशिष्ठाययदाचिन्तामणिमपिप्रभुः ॥ गालवायमहातेजास्तदाकल्पतरुंचसः ॥ ८४ ॥ कौण्डिन्यायमहाभागःकितवोपिददौतथा ॥ एवमादीन्यनेकानिरत्नानिविविधानिच ॥ ८५ ॥ ददौऋषिभ्योमुदितःशिवप्रीत्यर्थमेवच ॥ घटिकात्रितयंयावत्तावत्कालंददौप्रभुः ॥ ८६ ॥ घटिकात्रितयादूर्ध्वंपुनःस्वर्गाद्गतस्तुसः ॥ पुरन्दरोऽमरावत्यामुपविश्यनिजासने ॥८७॥ ऋषिभिःसंस्कृतश्चैवंशच्यासहतदाभवत् ॥ शचीमुवाचदुर्मेधाःकितवेनापिभामिनि ॥८८॥ भुक्तास्यैवहिकथययाथातथ्येनवैशुभे ॥ तदाप्रहस्यचोवाचपुरन्दरमकल्मषा ॥८९॥ आत्मौपम्येनसर्वत्र पश्यसित्वंपुरन्दर ॥ असौमहात्माकितवस्वरूपी शिवप्रसादात्परमार्थविज्ञः ॥ ९० ॥ वैराग्ययुक्तोहि

कल्पवृक्ष भी देदिया और इत्यादि बहुतभांतिके अनेक रत्नोंको ॥ ८५ ॥ शिवजी की प्रीतिके अर्थही आनन्दितहुये उसने ऋषियों के लिये दिया जबतक तीन दण्ड समय हुआ तबतक प्रभुतासमेत कितवने दिया ॥ ८६ ॥ फिर तीन घड़ीके उपरान्त वह स्वर्गसे चलागया और इन्द्रजी अमरावतीपुरीमें अपने आसन पर बैठकर ॥८७॥ शची (इन्द्राणी) के साथ ऋषियोंसे संस्कार समेत कियेगयेहुये और ऐसेही उस समय दुष्टबुद्धिवाले उन्होंने शचीसे कहा कि, हे भामिनि! ॥ ८८ ॥ तुम कितव से भी निश्चयकर भोगीगई हो हे शुभे ! याथातथ्यसे ही कहो और तब पापसे रहित इन्द्राणी ने बिहँसकर इन्द्रसे कहा ॥ ८९ ॥ कि हे इन्द्रजी ! तुम अपनी समतासे

सर्वत्र देखतेहो वह आत्मरूपी महात्मा कितव शिवजीकी प्रसन्नतासे परमार्थ (उत्तम अर्थ,मोक्ष) के जाननेवालाहै ॥९०॥ क्योंकि वैराग्य से संयुत और बड़े प्रभाववाला
है व जिससेही सब कोई परमप्रसन्न है और वह राज्यादिक मोहमय पाश (फँसरी) को अन्योंके लिये त्यागकर विजयी (जीतिवाला) हुआ ॥ ९१ ॥ उस समय इन्द्राणी
के वचन को सुनकर देवोंमें अधिक ऐश्वर्यवाले व इन्द्रासन में प्राप्त (बैठे) हुये वह इन्द्र जी लज्जासे युक्त होकर चुप होगये ॥ ९२ ॥ और वचनोंके जाननेवालोंमें श्रेष्ठ
वह बृहस्पतिजी के प्रति इस वाक्यको बोले कि ऐरावत हाथी वैसेही उच्चैःश्रवा घोड़ा नहीं देखपड़े हैं ॥ ९३ ॥ किसीने कल्पवृक्षादि सब पदार्थोंको हरलियाहै तदनन्तर गुरु
(बृहस्पतिजी) ने कहा कि कितवने बड़े कर्मको कियाहै ॥ ९४ ॥ आज जबतक उस का रहना हुआहै तबतकही उसने ऋषियों के लिये निश्चय से दियाहै

**महानुभावो येनापिसर्वंपरमंप्रसन्नम् ॥ राज्यादिकंमोहमयञ्चपाशं त्यक्त्वापरेभ्योविजयीसजातः ॥ ९१ ॥ वचोनिश
म्यदेवेन्द्र इन्द्राण्याःसपुरन्दरः ॥ व्रीडायुक्तोभवत्तूष्णीमिन्द्रासनगतस्तदा ॥ ९२ ॥ बृहस्पतिमुवाचेदं वाक्यंवाक्य
विदांवरः ॥ ऐरावतोनदृश्येत तथैवोच्चैःश्रवाहयः ॥ ९३ ॥ पारिजातादयस्सर्वे पदार्थाःकेनचिद्धृताः ॥ ततोगुरुरुवाचेदं
कितवेनकृतम्महत् ॥ ९४ ॥ ऋषिभ्योदत्तवानद्य यावत्सत्ताहितस्यवै ॥ स्वसत्तायांमहत्त्याञ्च स्वतन्त्रायेभवन्ति च ॥९५॥
अप्रमत्ताश्चयेनित्यं शिवध्यानपरायणाः ॥ तेप्रियाःशङ्करस्यैव हित्वाकर्मफलानिवै ॥ ९६ ॥ केवलंज्ञानमाश्रित्य ते
यान्तिपरमंपदम् ॥ एतच्छ्रुत्वाहवचनं तस्यचेन्द्रोबृहस्पतेः ॥ ९७॥ कर्तव्यमाचार्य्यकिमद्यकार्य्यं तदत्रसद्योहिभवद्भि
रुच्यताम् ॥ निशम्यशक्रस्यतदासमीरितं बृहस्पतिर्वाक्यमिदंबभाषे ॥ ९८ ॥ प्रायोयमोवाच्यतांसर्वमेतत्समृद्धयेह्या**

और बड़ेभारी अपने होनेके होतेही जे कोई अपने अधीनहैं ॥ ९५ ॥ व जे नित्यही बहुतही मतवाले नहीं हैं और शिवजी के ध्यानमें परायण हैं वेही निश्चय से
शङ्करजीके प्यारेहैं व कर्मोंके फलोंको छोड़कर ॥ ९६ ॥ और केवल ज्ञानको आधार या सेवनकर वे परमपद (उत्तमस्थान या श्रेष्ठमोक्ष) को प्राप्तहोते हैं और उन
बृहस्पतिजी के इस वचन को सुनकर इन्द्रजी ने कहा ॥ ९७ ॥ कि हे आचार्य्य ! आज यहां क्या कार्य्य करना चाहिये वह आपलोगोंसे शीघ्रही कहाजावे तब इन्द्र
के भलीभांति कहेहुये को सुनकर बृहस्पति जी इस वचन को बोले ॥ ९८ ॥ कि हे इन्द्र ! अपनी समृद्धिके लिये बहुधा यमराजजीसेही यह सब कहाजावे वैसाही

हो ऐसा मानकर देवोंके नाथ गुरुके साथ एकाएक चले ॥ ९९ ॥ और अपने कार्य की इच्छावाले इन्द्रजी जब संयमिनी (यमपुरी) पुरीको गये तवही यमराजजी से पूजेजाते हुयेही इन्द्रने स्पष्ट वचन को कहा ॥ १०० ॥ कि तुमने दुष्ट अन्तःकरणवाले कितव को मेरा स्थान दिया और इसने निन्दितों में बड़ेभारी कर्म्मको किया ॥ १ ॥ व जोकि मेरे सब रत्न प्रसिद्ध हैं उनको इसने इन इनके लिये अधिकतासे दिया हे धर्म ! तुम स्वरूप से जानतेहो ॥ २ ॥ और हे धर्मराज ! जो तुम जानते हो तो कितवको क्यों दियाहै इस समय तुमने मेरी राज्यको विनाशके लिये कियाहै॥ ३ ॥ व हे महाभाग ! जिससे तुमने उस समय इसको दिया इसलिये तुम मेरे हाथी

त्मनश्चैवशक्र ॥ तथेतिमत्वागुरुणासहैव राजासुराणांसहसाजगाम ॥ ९९ ॥ स्वकार्यकामोहियदापुरन्दरो ययौपुरींसंयमिनींतदानीम् ॥ यमेनपूज्यमानोहि शक्रोवाक्यमुवाचह ॥ १०० ॥ त्वयादत्तंममपदं कितवायदुरात्मने ॥ अनेनतत्कृतंकर्म जुगुप्सितमहत्तरम् ॥ १ ॥ मदीयानि च रत्नानि तानिसर्वाण्यनेनवै ॥ एभ्यएभ्यःप्रदत्तानि धर्मजानीहितत्त्वतः ॥ २ ॥ त्वंधर्मजानासिकथं कितवायप्रदत्तवान् ॥ ममराज्यंविनाशाय कृतमस्तित्वयाधुना ॥ ३ ॥ आनयस्व महाभाग गजादीनिममत्वरा ॥ अन्यानिचैवंरत्नानिं दत्तानिचयतस्तदा ॥ ४ ॥ निशम्यवाक्यंशक्रस्य यमोवचनमब्रवीत् ॥ कितवन्तुरुषाविष्टः किन्त्वयापापिनाकृतम् ॥ ५ ॥ भोगार्थञ्चैवयद्दत्तं शक्रराज्यंत्वयाधुना ॥ तत्प्रदत्तंद्विजातिभ्योह्यन्यथावैकृतंमहत् ॥ ६ ॥ अकार्य्यंवैत्वयामूढ परद्रव्यापहारणम् ॥ तेनपापेनमहता निरयम्प्रतिगच्छसि ॥ ७ ॥ यमस्यवचनंश्रुत्वा कितवोवाक्यमब्रवीत् ॥ अहंनिरयगामीचनात्रकार्याविचारणा ॥ ८ ॥ यावत्सत्ताममविभो तावच्छक्रा

आदि और अन्य रत्नों को वेगसे लावो ॥ ४ ॥ इन्द्रके वचनको सुनकर क्रोध से भरे हुये यमराजजी ने कितवके प्रति वचन को कहा कि तू पापी ने क्या किया ॥ ५ ॥ क्योंकि जो इन्द्रकी राज्य तुमको भोगके अर्थ दीगई है उसको तुमने ब्राह्मणों के लिये देदिया यह बड़ा अन्यथा किया गयाहै ॥ ६ ॥ हे मूढ़ ! पराये धनका अपहारण (लुटादेना) तुमसे निश्चयकर अकार्य्य है याने करनेयोग्य नहीं था उस बड़े पापसे तुम नरक के प्रति जातेहो ॥ ७ ॥ श्रीयमराजजी का वचन सुनकर कितवने

वचनको कहाकि मैं नरकमें जानेवालाहूं इसमें विचारणा नहीं करना चाहिये ॥ ८ ॥ हे विभो (समर्थ) ! जबतक इन्द्रासन में मेरा रहना था तबतक उस समय जो कुछ था उतने को मैंने ब्राह्मणों के लियेही याथातथ्य से दियाहै ॥ ९ ॥ यमराजजी बोले कि, दान (देना) भूमिमें प्रशंसित है याने कहागया है क्योंकि उसमें कियेहुये कर्मका फल देखाजाता है और स्वर्गमें किसी करके किसीको कहीं नहीं दान देना चाहिये ॥ १० ॥ रे मूढ़ ! जिसलिये तुमने शास्त्रोंसे विरुद्ध कर्म्मको कियाहै उस लिये तुम दण्डके योग्यहो व गुरु ब्रह्मज्ञानियों के सिखलानेवाला है राजा दुष्टमनवाले जनोंकाशिक्षक (नायक) है ॥ ११ ॥ और मैं सब पापशीलवाले प्राणियों का

सनेतदा ॥ तावद्दत्तंचयत्किञ्चिद्विप्रेभ्योहियथातथम् ॥ ९ ॥ यमउवाच ॥ दानंप्रशस्तंभूम्यांच दृश्यतेकर्मणःफलम्॥ स्वर्गेदानंनदातव्यं केनचित्कस्यचित्कचित् ॥ १० ॥ तस्माद्दण्ड्योसिरेमूढ अशास्त्रीयंकृतंत्वया ॥ गुरुरात्मवतांशास्ता राजाशास्तादुरात्मनाम् ॥ ११ ॥ सर्वेषांपापशीलानांशास्ताहंनात्रसंशयः ॥ एवंनिर्भर्त्सयित्वातं कितवंधर्मराड्यदा ॥ १२ ॥ उवाचचित्रगुप्तञ्च निरयेपच्यतामयम् ॥ तदाप्रहस्यचोवाच चित्रगुप्तोयमम्प्रति ॥ १३ ॥ कथंनिरयगामित्वं कितवस्यभविष्यति ॥ येनदत्तोह्यगस्त्याय गजऐरावतोमहान् ॥ १४ ॥ तथाश्वमब्धिसम्भूतं विश्वामित्रमहात्मने ॥ गालवायशुभंरत्नं चिन्तामणिमदात्प्रभुः ॥१५॥ एवमादीनिरत्नानिदत्तानिकितवेनहि ॥ तेनकर्मविपाकेन पूजनीयोजगत्त्रये ॥ १६ ॥ शिवमुद्दिश्ययद्दत्तं स्वर्गेमर्त्येचयैर्नरैः ॥ तत्सर्वञ्चाक्षयंविद्धि निश्छिद्रंकर्मचोच्यते ॥ १७ ॥ त

दण्डदायकहूं इसमें संशय नहीं है जब इसभांति उस कितवको घुड़ककर धर्मराज जीने ॥ १२ ॥ चित्रगुप्त से कहा कि यह नरक में पकायाजावे तब चित्रगुप्तजी बहुत हँसकर यमराजजी के प्रति बोले ॥ १३ ॥ कि, कितव का नरकमें जाना कैसे होवेगा क्योंकि जिसने अगस्त्यके लिये बड़ेभारी ऐरावत हाथीको दियाहै ॥ १४ ॥ वैसेही इस समर्थने महात्मा विश्वामित्रजी के लिये समुद्र से भलीभांति उपजेहुये उच्चैःश्रवा घोड़ेको और गालवमुनि के लिये शुभ रत्न चिन्तामणिको दानकिया है ॥ १५ ॥ व कितवने इत्यादि अनेक रत्नोंको दियाहै उस कर्मके फलसे यह त्रिलोक में पूजनेयोग्य है ॥ १६ ॥ जिन मनुष्यों से स्वर्ग व मर्त्यलोक में भी शिवजी को

उद्देशकर जो कुछ दियागया है उस सबको तुम अविनाशी जानो और वह कर्म छेदोंसे हीन कहाजता है ॥ १७ ॥ उस लिये कितव का नरक मे जाना नहीं होता है व महात्मा कितव के जे सब पाप हैं ॥ १८ ॥ वेभी शिवजी के सुमिरनेसेही भस्म होगये और उसी क्षण में शङ्करजी की प्रसन्नता से सब पुण्य या सुकर्म हुये हैं ॥ १९ ॥ तब यमराजजी ने आपही चित्रगुप्त के उस वचन को सुनकर व बहुत हँसकर व नीचेको गयेहुये मुखवाले होकर इन्द्रजी से इस वचनको कहा ॥ २० ॥ देवेंद्रों के राजा बहुत वयसवालेभी तुम राज्य में लम्पट हो व अश्वमेध यज्ञों के सैकडासेही एकजन्म के लिये या एक जन्मसे बटोराहुआ फल ॥ २१ ॥

स्मान्नरकगामित्वं कितवस्यनविद्यते ॥ यानिपापानिसर्वाणि कितवस्यमहात्मनः ॥ १८ ॥ भस्मीभूतानिसर्वस्य तान्यपिस्मरणाच्चवै ॥ शम्भोःप्रसादात्सर्वाणि सुकृतानिचतत्क्षणात् ॥ १९ ॥ तद्वचश्चित्रगुप्तस्य निशम्यप्रेतराट्स्वयम् ॥ प्रहस्यावाङ्मुखोभूत्वा इदमाहशतक्रतुम् ॥ २० ॥ त्वंराजासिसुरेन्द्राणां स्थविरोराज्यलम्पटः ॥ अश्वमेधशतेनैव एकजन्मार्जितम्फलम् ॥ २१ ॥ त्वयाप्तंनात्रसन्देहोह्यर्जितंतेनवैमहत् ॥ प्रार्थयित्वाह्यगस्त्यादीन्मुनीन्सर्वान्विशेषतः ॥ २२ ॥ अथैनप्रणिपातेन त्वयालभ्यानितानिवै ॥ गजादिकानिरत्नानि यैस्तुत्वञ्चसुखीभव ॥ २३ ॥ तथेतिमत्वा वचनंपुरन्दरो गतःपुरींस्वामविवेकदृष्टिः ॥ अभ्यर्थयामासधनेनभूयसा ऋषींस्ततोलब्धवतांवरिष्ठः ॥ २४ ॥ अनेनैव प्रकारेण लब्धराज्यःपुरन्दरः ॥ यातस्तदामरावत्यां शच्यासहमहाद्युतिः ॥ २५ ॥ कितवस्यपुनर्जन्म दत्तञ्चैवयमे

तुमको मिला है इसमें सन्देह नहीं है और उसने अगस्त्यादि सब मुनियों के प्रति विशेषतासे प्रार्थनाकर बड़ेही फलको निश्चय से कमाया है ॥ २२ ॥ व जिनसे तुम सुखी होवो वे प्रसिद्ध हाथी आदि रत्न तुमकरके धन और नमस्कार से पायेजाने योग्यहैं ॥ २३ ॥ वैसेहीहो ऐसे वचन को मानकर अविवेक (अविचार) में दृष्टि वाले इन्द्रजी अपनी पुरीको गये तदनन्तर पानेवालों में श्रेष्ठ वह बहुते धनसे ऋषियोंको सबओर या सामने से याचते भये ॥ २४ ॥ उस समय इसही प्रकार से राज्यको पायेहुये बड़ी दीप्तिवाले इन्द्रजी शची (इन्द्राणी) के साथ अमरावतीपुरी को गये ॥ २५ ॥ और यमराजजीने कितवका फिर जन्म दिया क्योंकि कुछेक कर्म

के फल या भोगसे वह विरोचन का पुत्र हुआ ॥ २६ ॥ तब वृषपर्वा की पुत्री विरोचनकी पटरानी सुरुचि उस कितव की माताहुई ॥ २७ ॥ जबसे लगाकरके बड़ेमन वाला उसका अंश उदर में प्राप्तहोकर टिका तब से लगाकर प्रह्लादके पुत्र उन विरोचन ॥ २८ ॥ और वैसेही सुरुचि की बुद्धि धर्म और दानमें बहुतही हुई क्योंकि उदर में टिकेहुये उसनेही बुद्धिको अत्यन्त उत्तम करदिया ॥ २९ ॥ हे ब्राह्मणो ! कितवने जिस बुद्धिको किया वह पण्डितोंको दुर्लभ है तबही एक समय इन्द्रजी विरोचन के प्रति गये ॥ ३० ॥ अनन्तर दैत्येन्द्र को मारने के चाही इन्द्रजी भिक्षुक ब्राह्मण होकर विरोचन के घरमे प्राप्तभये और आनन्दसे वचन को बोले ॥ ३१ ॥

नहि ॥ किञ्चित्कर्मविपाकेन वैरोचनसुतोभवत् ॥ २६ ॥ सुरुचिर्जननीतस्य कितवस्याभवत्तदा ॥ विरोचनस्यमहिषी दुहितावृषपर्वणः ॥ २७ ॥ तस्यौजठरमास्थाय तस्यांशोहिमहामनाः ॥ तदाप्रभृतितस्यैव प्रह्लादस्यात्मजस्यवै ॥ २८ ॥ सुरुचेश्चतथाप्यासीद्धर्मेदानेमतिर्बहु ॥ तेनैवजठरस्थेन कृतामतिरनुत्तमा ॥ २९ ॥ कितवेनकृताविप्रा दुर्लभाया मनीषिणाम् ॥ एकदावैतदाशक्रो ययौवैरोचनम्प्रति ॥ ३० ॥ हन्तुकामोहिदैत्येन्द्रं विप्रोभूत्वाथयाचकः ॥ विरोचन गृहंप्राप्त इन्द्रोवाक्यमुवाचह ॥ ३१ ॥ स्थविरोब्राह्मणोभूत्वा यद्देहीत्याहसुव्रत ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वा दैत्येन्द्रोवाक्यम ब्रवीत् ॥ ३२ ॥ किन्दातव्यंतत्रविभो वदाग्रेतन्ममाधुना ॥ इन्द्रोहिविप्ररूपेण विरोचनमुवाचह ॥ ३३ ॥ आत्मप्रती त्यादातव्यं ममनास्त्यत्रसंशयः ॥ याचकस्यमहेन्द्रस्य निशम्यवचनंतदा ॥ ३४ ॥ उवाचप्रहसन्वाक्यं प्रह्लादस्यात्म जोसुरः ॥ ददाम्यात्मशिरोविप्र यदिकामयसेधुना ॥ ३५ ॥ इयंराज्यमनायासमियंश्रीर्नान्यगामिनी ॥ अहंसमर्पयि

जब बूढा ब्राह्मण होकर उन्होंने ऐसा कहा कि हे सुव्रत (अच्छेव्रतवाले) ! मुझको देवो तब उनके वचन को सुनकर दैत्येन्द्र विरोचनजी वचनको बोले ॥ ३२ ॥ कि, हे विभो ! तुमको क्या देना चाहिये उसको मेरे आगे अबहीं कहो और इन्द्र जीने ब्राह्मणरूपसेही विरोचन के प्रति कहा ॥ ३३ ॥ कि मेरे लिये अपनी प्रतीति से देना चाहिये इसमें संशय नहीं है तब मांगते हुये इन्द्रके वचन को सुनकर ॥ ३४ ॥ प्रह्लादके पुत्र असुर विरोचन बिहँसते हुये इस वचन को बोले कि हे विप्र ! इससमय जो तुम चाहतेहो तो मैं अपना शिरभी देताहूं (दूंगा) ॥ ३५ ॥ हे ब्राह्मण! जोकि यह विना परिश्रम की राज्य और यह संपत्ति अन्यमें जानेवाली नहींहै उस

को मैं तुमको समर्पण करूंगा इसमे संशय नहीं है ॥ ३६ ॥ और उससमय उस दैत्येन्द्रसे ऐसा कहेहुये इन्द्रने विचारकर कहा कि हे महाभाग ! तुम मुकुटसे सेवित अपने शिरको मुझे दो ॥ ३७ ॥ महेन्द्रके लिये निश्चयकर आनन्दसे अपना मस्तक काटकर ॥ ३८ ॥ प्रह्लाद के पुत्र असुर विरोचनने अपने हाथ से उनको दिया और आगे प्रह्लादने जिस बहुत दुष्कर कर्मको कियाहै ॥ ३९ ॥ वह केवल परमात्मा विष्णुजी की भक्तिको आश्रय (आधार) करे हुआहै किंतुदानसे परतर (अधिक उत्तम) वस्तु कहीं नहीं है ॥ ४० ॥ व जो आर्त्तलोगों के लिये अधिकतासे दियाजाताहै वह दान बड़ी पुण्यवालाहै और जो कुछ थोडा भी अपनी शक्तिसे दियागया वह अनन्तभावके लिये

ष्यामि तवविप्रनसंशयः ॥ ३६ ॥ इत्युक्तस्तेनदैत्येन विमृश्याहतदाहरिः ॥ ममदेहिमहाभाग शिरोमुकुटसेवितम् ॥ ३७ ॥ एवमुक्तेतुवचनेशक्रेणाद्विजरूपिणा ॥ शीघ्रंमहेन्द्रायतदा स्वशिरःकृत्यवैमुदा ॥ ३८ ॥ स्वकरेणददौतस्मै प्रह्लादस्यात्मजोसुरः ॥ प्रह्लादेनपुरायच्च कृतंकर्मसुदुष्कृतम् ॥ ३९ ॥ केवलंभक्तिमाश्रित्य विष्णोस्तत्परमात्मनः ॥ दानात्परतरंत्वन्यत्कचिद्वस्तुनविद्यते ॥ ४० ॥ तद्दानञ्चमहापुण्यमार्त्तेभ्योयत्प्रदीयते ॥ स्वशक्त्यायच्चकिञ्चिच्च तदानन्त्यायकथ्यते ॥ ४१ ॥ दानात्परतरंनान्यत्त्रिषुलोकेषुविद्यते ॥ सात्त्विकंराजसंचैवतामसञ्चप्रकीर्तितम् ॥ ४२ ॥ तेषांक्रतमनेनैव दानंसात्त्विकलक्षणम् ॥ शिरउत्कृत्यहीन्द्राय प्रदत्तंविप्ररूपिणे ॥ ४३ ॥ किरीटःपतितस्तत्र मणयोहिमहाप्रभाः ॥ एकपद्येनपतितास्तेजातामण्डलायवै ॥ ४४ ॥ दैत्यानाञ्चनरेन्द्राणांपन्नगानांतथैवच ॥ विरोचनस्यतद्दानंत्रिषुलोकेषुविश्रुतम् ॥ ४५ ॥ गायन्तोद्यापिकवयोमहात्मानंमहात्मनः ॥ विरोचनस्यपुत्रोभूत् कितवोसौमहाप्रभः ॥ ४६ ॥

कहाजाता है ॥ ४१ ॥ दानसे परतर अन्य कुछ तीन लोकोंमें नहीं है और वह दान सात्त्विक राजस व ऐसेही तामस कहागयाहै ॥ ४२ ॥ उनमेंसे सतोगुणके लक्षणवाले दान को इनने निश्चयसे कियाहै क्योंकि शिरको काटकर ब्राह्मणरूपी इन्द्रके लिये अधिकतासे दियाहै ॥ ४३ ॥ उनका मुकुट वहा गिरा और बडी दीप्तिवाली जे मणियां गिरी हैं वे भी एक स्थानभावसे मण्डल (चारों ओरसे घेरे) के लिये हुई हैं ॥ ४४ ॥ और विरोचनका वह दान दैत्यो व नरेन्द्रों वैसेही नागो (पातालवासियों) के बीच तीनोंलोकों में विशेषसे सुनागया याने प्रसिद्धहै ॥ ४५ ॥ व आज भी महात्मा कविलोग महात्मा विरोचनको गातेहैं और वह महा प्रकाशवान् कितव उन विरोचनका पुत्रहुआ ॥ ४६ ॥

परन्तु जब पिता मरगया तब वह भया और पतिव्रता उसकी माता देहको त्यागतीभई ॥ उससमय पतिलोकको गई ॥ ४७ ॥ और शुक्राचार्य से पिताके सम्बन्धी अपने आसन में अभिषिक्त हुये बडे यशस्वी वह नाम से बलि ऐसा कहेगये याने प्रसिद्धभये ॥ ४८ ॥ उनसे त्रासित अच्छे बड़े वेगवान् जे सब देवसमूह कश्यप के शुभ आश्रम को चलेगये थे उनको मैने तुम से पहलेही कहा है ॥ ४९ ॥ जब बड़े यशस्वी बलि असुर देवोंकीपुरी में इन्द्र हुये तब आपही सूर्य्य होकर तेजसे तपे ॥ ५० ॥ व आपही अग्नि आपही इन्द्र और आपही वायु होगये व उन महात्माने धर्म के विना धर्मलोकको किया ॥ ५१ ॥ व वैसेही आपही ईशान होकर ईशानकी दिशामें

मृतेपितरिजातोसौ मातातस्यपतिव्रता ॥ कलेवरञ्चतत्याज पतिलोकंगतातदा ॥ ४७ ॥ भार्गवेणाभिषिक्तोसौ जनकस्यनिजासने ॥ नाम्नाबलिरितिख्यातो बभूवचमहायशाः ॥ ४८ ॥ तेनसर्वेसुरगणास्त्रासितास्सुमहाबलाः ॥ गतास्तेकथिताःपूर्वं कश्यपस्याश्रमंशुभम् ॥ ४९ ॥ यदाबलिरभूदिन्द्रो देवपुर्य्यांमहायशाः ॥ स्वयंततापतपसा सूर्योभूत्वातदासुरः ॥ ५० ॥ स्वयमग्निस्स्वयंचेन्द्रः सदागतिरभूत्स्वयम् ॥ धर्मंविनाधर्मलोकःकृतस्तेनमहात्मना ॥ ५१ ॥ ईशोभूत्वास्वयंचास्तेईशान्यांदिशिचस्वयम् ॥ तथाचनैर्ऋतोभूत्वातथाचाम्बुपतिःस्वयम् ॥ ५२ ॥ धनाध्यक्षउदीच्यांवैस्वयमास्तेबलिस्तदा ॥ एवमास्तेबलिःसाक्षात्स्वयमेवत्रिलोकभुक् ॥ ५३ ॥ शिवार्चनेरतश्चैवकितवस्तेनवैद्विजाः ॥ पूर्वाभ्यासेनतेनैवमहादानपरोभवत् ॥ ५४ ॥ एकदातुसभामध्यआस्थितोभृगुणासह ॥ दैत्येन्द्रैःसंवृतःश्रीमानिदंवचनमब्रवीत् ॥ ५५ ॥ आवासंक्रियतामत्रचासुरैर्ममसन्निधौ ॥ हित्वापातालमद्यैवमाविलम्बितुमर्हथ ॥ ५६ ॥

टिक्ते है (टिके) और तथा आपही नैर्ऋत्य और वैसेही वरुण होकर टिके ॥ ५२ ॥ और उस समय बलिजी उत्तरमें कुबेर होकर टिकते हैं इसभाति वह बलि आपही साक्षात् त्रिलोकके भोगनेवालेहुये ॥ ५३ ॥ और हे ब्राह्मणो ! जिसलिये कितव शिवपूजामें रत हुआथा इसलिये उस पूर्वके अभ्याससेही ऐसे बलिजी बडे दानमे परायण हुये ॥ ५४ ॥ और एक समय शुक्राचार्य्य के साथ सभाके बीचमें बैठे व दैत्येन्द्रों से भलीभांति घिरेहुये शोभा या सम्पत्तिवाले बलिने इस वचनको कहा ॥ ५५ ॥

कि आजही पातालको त्यागकर सब असुरोंसे यहां मेरे समीपमें निवास कियाजावे व तुम लोग विलम्ब करनेको मत योग्यहोवो ॥५६॥ और ऐसेही उस वचनको समीप में सुनकर व बहुत हँसकर हर्षसे शुक्राचार्य्यने इस वचनको कहा कि हे महीपते! स्वर्गलोक अनेकभांतिके यज्ञोंसे ॥ ५७ ॥ यज्ञकर्त्ताका होताहै हे महाभाग, राजन्! अन्यथा स्वर्गलोक भोग करनेको नहीं पार पायाजाताहै मेरा वचन अन्यथा नहीं है ॥ ५८ ॥ और गुरूके वचनको अधिकतासे जान (सुन) कर दैत्येन्द्रने वचन को कहा कि मैंने जिस कर्मको कियाहै उससे सब बड़े असुर ॥ ५९ ॥ स्वर्ग में बहुत कालतक बसें इसमें विचारणा नहीं करना चाहिये तब बलिको मूर्ख मानकर भृगुवंशियों में

भार्गवस्तदुपश्रुत्यप्रहस्येदमुवाचह ॥ यज्ञैश्चविविधैश्चैवस्वर्गलोकोमहीपते ॥ ५७ ॥ याज्ञिकस्यमहाभागनान्यथास्व र्गमेवहि ॥ भोक्तुंनपार्यतेराजन्नान्यथाममभाषितम् ॥ ५८ ॥गुरोर्वचनमाज्ञायदैत्येन्द्रोवाक्यमब्रवीत् ॥ मयाकृतंचयत्क र्मतेनसर्वेमहासुराः ॥ ५९ ॥ स्वर्गेवसन्तुसुचिरंनात्रकार्याविचारणा ॥ प्रहस्योवाचभगवान्भार्गवाणांमहातपाः ॥ ६० ॥ बलिनंबालिशंमत्वाशुक्रोबुद्धिमतांवरः ॥ यत्त्वयोक्तंचवचनंबलेमह्यंनरोचते ॥ ६१ ॥ इहैवत्वंसमागत्यवस्तुञ्चेच्छसि सुव्रत ॥ अश्वमेधशतेनैवयजत्वंजातवेदसम् ॥ ६२ ॥ कर्मभूमिगतोभूत्वामाविलम्बितुमर्हसि ॥ तथेतिमत्वासबलिर्म हात्माहित्वातदानींत्रिदिवंमनस्वी ॥ ६३ ॥ दैत्यैस्समेतोगुरुणाचसङ्गतोययौभुवंस्वानुचरैस्समेतः ॥ तन्नर्मदायांभृगुक च्छसंज्ञकंतीरंमहातीर्थमुदारशोभम् ॥६४॥ गत्वातदादैत्यपतिर्महात्माजित्वासमग्रंवसुधातलञ्च ॥ ततोश्वमेधैर्बहुभि र्विचक्षणैर्गुरुप्रयुक्तःसहसायजद्बलिः ॥ ६५ ॥ ईजेचभक्त्यापरयाभियुक्तोवैरोचनिःसत्यवतांवरिष्ठः ॥ कृत्वाब्रह्माणमा

बडे तपस्वी ॥ ६० ॥ व बुद्धिमानों में श्रेष्ठ भगवान् शुक्राचार्य्यजी विहँसकर बोले कि हे बले! तुमने जिस वचनको कहा वह मुझको नहीं रुचता है ॥ ६१ ॥ और हे सुव्रत! जो तुम यहा भलीभाति आकर बसनेके लिये इच्छा करतेहोतो अश्वमेध यज्ञोंके सैकडासेही अग्निको पूजो याने उसमें होमकरो ॥ ६२ ॥ कर्मभूमि में गतहोकर विलम्ब करनेको मत योग्य होवो ॥ वैमाहो ऐसा मानकर तबहीं स्वर्गको त्यागकर अच्छे मनवाले महात्मा वह बलिजी ॥ ६३ ॥ दैत्यों से समेत और अपने पीछे चलने वाले सेवकों से सहित व गुरूसे संगवाले होकर भूलोकको गये और नर्मदा नदीके किनारे उदार शोभावाले उस भृगुकच्छनामक महातीर्थ में ॥ ६४ ॥ जाकर व

उस समय सम्पूर्ण पृथिवीतलको जीतकर तदनन्तर गुरूसे प्रेरित था कर्मों मे जोडेहुये विशेपतासे बोलनेवाले दैत्यपति महात्मा बलिने एकाएक बहुत अश्वमेधों से पूजन किया ॥ ६५ ॥ और सत्यवालों में श्रेष्ठ, विरोचनके पुत्रने उत्तम भक्तिसे संयुत होकर यज्ञोको किया व ब्रह्मा और आचार्य्यकोकर सोलह ऋत्विजहुये ॥ ६६ ॥ व महात्मा शुक्राचार्य्य से परीक्षा कियेहुये दीक्षामें परायण उनसेही अश्वमेध यज्ञोंका एक कम सैकडा निश्चयसे कियागया ॥ ६७ ॥ और बलिने अश्वमेधों के सैकड़ाको पूरा करने के लिये मनको भलीभांति धारणकिया व जबतक उन राजाके अश्वमेध यज्ञोंका सैकड़ा पूरा होवे ॥ ६८ ॥ तबतक मैने आगे यहा अदितिके जिस उत्तम

चार्यमृत्विजःषोडशोभवन् ॥ ६६ ॥ परीक्षितेनतेनैवभार्गवेणमहात्मना ॥ नूनमेकेनशतकं कृतंदीक्षापरेणहि ॥ ६७ ॥ बलिर्मनोऽश्वमेधानांपूर्णंकर्तुंसमादधे ॥ यावद्यज्ञशतंपूर्णंतस्यराज्ञोभविष्यति ॥ ६८ ॥ पुराप्रोक्तंमयाचात्रह्यदित्याव्रतमुत्तमम् ॥ व्रतेनतेनसन्तुष्टोभगवान्हरिरीश्वरः ॥ ६९ ॥ वटुरूपेणमहतापुत्रभूतोबभूवसः ॥ अदित्याःकश्यपेनैवउपनीतस्तदाप्रभुः ॥ ७० ॥ उपनीतेथसम्प्राप्तोब्रह्मालोकपितामहः ॥ दत्तंयज्ञोपवीतञ्चब्रह्मणापरमेष्ठिना ॥ ७१ ॥ दण्डकाष्ठंप्रदत्तंहिसोमेनचमहात्मना ॥ मेखलाचसमानीताअजिनंपरमाद्भुतम् ॥ ७२ ॥ तथैवपादुकेचैवमह्यादत्तेमहात्मने ॥ एवंभगवतेदत्तंविष्णवेवटुरूपिणे ॥ ७३ ॥ व्रतभिक्षांसमानीयभगवांश्चार्थसिद्धये ॥ अभिवन्द्यतदाश्रीशोवामनोप्यदितिंतथा ॥ ७४ ॥ कश्यपश्चमहातेजायज्ञवाटंजगामह ॥ याज्ञिकस्य बलेराशुच्छलनार्थंस्वयं

व्रतको कहाहै उस व्रतसे संतुष्टहुये भक्तभयहारी ऐश्वर्य्यधारीभगवान् ॥ ६९ ॥ वह विष्णुजी बडे बटुरूपसे अदितिके पुत्र भूतहुये तब कश्यपने प्रभूको उपनयन (यज्ञोपवीत) कर्मसे युक्तकिया ॥ ७० ॥ अनन्तर उनके उपनीत (यज्ञोपवीत कर्मसे युक्त) होतेही लोकों के पितामह ब्रह्माजी आकर प्राप्तहुये और उत्तम स्थानके वासी ब्रह्माजीने वामनजीको यज्ञोपवीत दिया ॥ ७१ ॥ व महात्मा चन्द्रमाने दण्डके लिये काष्ठ को दिया और मेखला व बहुत अद्भुत मृगचर्मको भलीभांति प्राप्तकिया ॥ ७२ ॥ वैसेही पृथिवीने महात्माको पादुकाये (खराऊं) दिया इसभाति अन्य जनोंने भी वटुरूपी भगवान् विष्णुजीके लिये उचित वस्तुको दिया ॥ ७३ ॥ और उस समय अर्थ सिद्धिके लिये वहां भिक्षा को भलीभाति लाकर ऐश्वर्य्य सम्पन्न लक्ष्मी के पति वामनजी भी अदितिको सामने से वन्दनकर वैसेही ॥ ७४ ॥ कश्यपजी के

नमस्कारकर और बडे तेजस्वी होकर यज्ञवाटको हर्ष से चले व यज्ञकर्त्ता बलि के शीघ्रही छलने के अर्थ आपही समर्थ ॥ ७५ ॥ पृथिवी के पति साक्षात् परमात्मा वह विष्णुजी देवकार्य्य के कारण बटुरूपी से वामन होकर पावँके अग्रभाग के भारसे भूमिको बहुतही कँपाते हुये तब गलीमें भलीभांति गये ॥ ७६ ॥ और उस समय वेगसे चलते हुये व मुनीश्वरजन और देवगणों (समूहों) करके यथार्थ वचनों से सब ओर प्रशसित महात्मा जगत् के मुख्य बन्धु (प्यारे) वह वामनजी यज्ञवाट को प्राप्तभये ॥ ७७ ॥ और देवेश्वरों से गाये जातेहुये क्रीडाकारी बहुत रूप वेषधारी भक्तभयहारी समर्थ परमेश्वर व वेदान्तसे जानने योग्य उन

प्रभुः ॥७५॥ तदामहीशःसुजगाममार्गंप्रकम्पयद्गांप्रपदाभरेण ॥ सवामनोवटुरूपीवसाक्षाद्विष्णुःपरात्मासुरकार्य हेतोः ॥ ७६ ॥ गीर्भिर्यथार्थाभिरभिष्टुतोजनैर्मुनीश्वरैर्देवगणैर्महात्मा ॥ त्वरेणगच्छन्सचयज्ञवाटं प्राप्तस्तदानींजग देकबन्धुः ॥ ७७ ॥ ससामगानंहियथाविधानञ्चकारदेवोबहुरूपवेषः ॥ उद्गीयमानोभगवान्सुरेश्वरैर्वेदान्तवेद्योहरि रीश्वरःप्रभुः ॥७८॥ ददर्शतंमहायज्ञमश्वमेधंवलेस्तदा ॥ द्वारिस्थितोमहातेजावामनोवटुरूपधृक् ॥ ७९ ॥ ब्रह्मघोषेण महताव्याप्तमासीद्दिगन्तरम् ॥ पठमानस्यचवटोर्वामनस्यमहात्मनः ॥ ८० ॥ वामनउवाच ॥ तत्सङ्घैश्चहतास्सर्वे असुरादैत्यशत्रुणा ॥ कयाधुंमहिषीन्तस्यहिरण्यकशिपोःपुरा ॥ ८१ ॥ कालयन्नारदेनैवदेवराजोनिवारितः ॥ दैत्ये न्द्रेणतदाराजन्मनसायत्समीहितम् ॥ ८२ ॥ शम्भोःप्रसादात्तत्सर्वंतपसैववशीकृतम् ॥ तस्यपुत्रोमहातेजा विष्णु

भगवान् ने यथा विधान से सामवेद के गानको किया ॥ ७८ ॥ तब द्वारमें टिकेहुये बडे तेजस्वी बटु (ब्रह्मचारी) रूपधारी वामनजी ने बलिके उस अश्वमेध नामक महायज्ञ को देखा ॥ ७९ ॥ और पढ़ते हुये महात्मा ब्रह्मचारी वामनजी के बडे वेद शब्दसे दिशाओं का अन्तर (बीच) व्याप्त (भरा) होगया ॥ ८० ॥ श्रीवामन जी बोले कि आगे उन देव समूहों के साथ दैत्यों के वैरी इन्द्र ने सब असुरों को मारा और कयाधु नामवाली उस हिरण्यकशिपु की पटरानी को ॥ ८१ ॥ चलाये लिये जातेहुये देवोंके राजा नारदमुनि सेही निवारण कियेगये व हे राजन्! उससमय दैत्येन्द्र हिरण्यकशिपु ने मनसे जो कुछ चाहा ॥ ८२ ॥ उस सबको शङ्करजी

की प्रसन्नता व तपस्या सेही वश करलिया और उसके पुत्र प्रह्लादजी हुये जोकि बड़े तेजस्वी व इन्द्रियों के जीतनेवाले व विष्णुजी के भक्त हैं ॥ ८३ ॥ जिन से बड़े तेजस्वी दिव्य सिंह याने नृसिंहजी सभामें लायेगयेहुये हे पितृवत्सल, महाभाग ! उन प्रह्लाद के पुत्र तुम्हारे पिता ॥ ८४ ॥ नाम से विरोचन ऐसा कहेगये याने प्रसिद्ध हुये हे राजन् ! जिन महात्मा ने अपनेही मस्तकदान से इन्द्रको सन्तुष्ट किया याने ब्राह्मणरूपधारी इन्द्रको अपना शिरभी देदिया ॥ ८५ ॥ हे राजन् ! तुम उनके पुत्र हो और तुमने श्रेष्ठ सुयशको कियाहै कि बड़ेभारी यशरूप दिया से पांखीके समान देवोंको जलादिया है ॥ ८६ ॥ व जिन तुमने इन्द्रको भी निश्शेष जीत लिया है

भक्तोजितेन्द्रियः ॥ ८३ ॥ दिव्यसिंहोमहातेजायेनानीतोभवत्सभाम् ॥ तस्यपुत्रोमहाभागपितातेपितृवत्सल ॥ ८४ ॥ नाम्नाविरोचनइतिख्यातोयेनमहात्मना ॥ दानेनतोषितोराजन्स्वेनैवशिरसाहरिः ॥८५॥ तस्यात्मजोसिभोराजन्कृतंतेपरमंयशः ॥ यशोदीपेनमहतादग्धाःशलभवत्सुराः ॥ ८६ ॥ इन्द्रोपिनिर्ज़ितोयेनत्वयानास्त्यत्रसंशयः ॥ श्रुतमस्तिमयासर्वंचरितंतवसुव्रत ॥ ८७ ॥ अल्पकोहमिहायातोब्रह्मचर्य्यव्रतेस्थितः ॥ उटजार्थञ्चमेदेहिभूमिंभूमिवतांवर ॥ ८८ ॥ वटोस्तस्यैवतद्वाक्यंश्रुत्वाबलिरभाषत ॥ हेवटोपण्डितोभूत्वायदुक्तंवचनंपुरा ॥ शिशुत्वात्तन्नजानासिश्रुत्वामन्येयथार्थताम् ॥ ८९ ॥ वदब्रह्मन्महाभागकियन्मात्रांमहीतव ॥ दास्यामित्वरितंचैवमनसातद्विमृश्यताम् ॥ ९० ॥ तदाहवामनोवाक्यंस्मयन्मधुरयागिरा ॥ असन्तोषपरायेचविप्रानष्टानसंशयः ॥ ९१ ॥ सन्तुष्टायेहिविप्रास्तेनान्येवेष

इसमें संशय नहीं है हे सुव्रत ! मैंने तुम्हारे सब चरित को सुना है ॥ ८७ ॥ इस से ब्रह्मचर्य्यव्रत में टिकाहुआ छोटे रूपवाला याचक मैं यहां आयाहूं हे भूमिवालो मे श्रेष्ठ ! तुम पर्णशाला (कुटी) बनाने के अर्थ मुझको भूमि दो ॥ ८८ ॥ ऐसे उन ब्रह्मचारी के उस वचनको सुनकर बलिजी ने कहा कि हे वटो ! पण्डित होकर तुम ने मेरे आगे जिस वचनको कहा उसको सुनकर मैं मानताहूं कि तुम बालभाव से नहीं जानते हो ॥ ८९ ॥ हे महाभाग, ब्राह्मण ! तुम शीघ्रही कहो कि कितनी प्रमाण वाली भूमि तुमको दूंगा ऐसा वह मनसे विचार समेत निश्चय किया जावे ॥ ९० ॥ तब मुसकाते हुये वामनजी मधुरवाणी से वचन को बोले कि जे ब्राह्मण असन्तोष में परायण हैं याने सन्तोष से हीन हैं वे नष्ट हैं इसमें संशय नहीं है ॥ ९१ ॥ जे सन्तोषी हैं वेही ब्राह्मण हैं अन्य नहीं है क्योंकि ये केवल ब्राह्मण का वेषधरनेवाले हैं

हे राजन् ! जेकि अपने धर्म मं स्नेहसहित व गर्वरहित व वस्तु संग्रहसे हीन है याने देहका निर्वाहमात्र करते हैं बहुत बटोरकर नहीं धरते हैं ॥ ९२ ॥ और हे महा-
बुद्धे ! जोकि मत्सर (पराई बढ़तीको न देख सकना) से विहीन व क्रोधको जीते हुये व बड़े दानीहैं वेही बडे भागवाले ब्राह्मणहैं और उनसेही यह पृथिवीधारी जाती है
॥ ९३ ॥ यद्यपि तुम तीनलोकमे बहुत होनेसे अच्छे मनवाले दानीहौ तो भी तीन पगमात्र भूमि मुझे देना चाहिये ॥ ९४ ॥ हेदेवोंके मारनेवाले बले ! पृथिवीके बहुत होनेमें
मेरा कार्य्य निश्चित नहीहै इससे वैसेही याने तीन पगसे मेरे पैठने मात्रकी पर्णशाला होवेगी ॥ ९५ ॥ हमारे बसनेके लिये तीनपग पृथिवी पूरी होती है इसमे संशय नहींहै

धराह्यमी ॥ स्वधर्मनिरताराजन्निःस्तम्भानिष्परिग्रहाः ॥ ९२ ॥ निर्मत्सराजितक्रोधावदान्याहिमहामते ॥ विप्रास्ते
हिमहाभागास्तैरियंधार्यतेमही ॥ ९३ ॥ मनस्वीत्वंबहुत्वाच्चदातासिभुवनत्रये ॥ तथापिमेप्रदातव्यामहीत्रिपदसम्मि
ता ॥ ९४ ॥ बहुत्वेनास्तिमेकार्यमह्यावैसुरसूदन ॥ प्रवेशमात्रमुटजंतथाममभविष्यति ॥ ९५ ॥ त्रिपदम्पूर्यतेस्माकंव
स्तुंनास्त्यत्रसंशयः ॥ देहिमेक्रमतोराजन्यदिदातासिभोबले ॥ ९६ ॥ तावत्संख्याप्रदातव्यायावद्भूमिर्भविष्यति ॥ प्र
हस्यतमुवाचैवंवलिर्वैरोचनात्मजः ॥९७॥ दास्यामितेमहींकृत्स्नांसशैलवरकाननाम् ॥ सद्वीपांवैमहाभागमयादत्तांगृ
हाणवै ॥ ९८ ॥ याचकोसिवटोपश्यदीनान्दैन्यावृतान्भृशम् ॥ याचकोह्यल्पकोभूत्तुदात्रासर्वंविमृश्यवै ॥ ९९ ॥ त
थाविलोक्यचात्मानंचार्थिभ्यश्चप्रदीयते ॥ आत्मौपम्येनसर्वत्रयोददात्यत्युदारधीः ॥ २०० ॥ तस्मान्नयाचितव्यंहित्व

इस लिये उतनी भूमि मुझको दो परन्तु हे राजन्बले ! जो तुमदानी होतो मेरे पगचलाने से ॥९६॥ जितनी भूमि होवेगी उतनी संख्यावाली मुझे अधिकतासे देनाचाहिये
तब विरोचनके पुत्र बलिजीने बिहँसकर उन वामनजीसे ऐसा कहा ॥ ९७ ॥ कि हेमहाभाग ! मैं तुम्हारे लिये पर्वतों व श्रेष्ठ वनोंसमेत व सबद्वीपोंसमेत सम्पूर्ण भूमिको दूगा
तुम मेरी दीहुई को निश्चयसे ग्रहणकरो ॥ ९८ ॥ हे बटो ! तुम मांगनेवाले हो व दीनता से घिरेहुये दीन जनोंको बहुतही देखो किन्तु याचक थोडे धनवाला हुआहै
और दाता करके निश्चयसे सबको विचारकर ॥ ९९ ॥ व वैसेही अपनाको देखकरअर्थियों (याचकों) के लिये अधिकतासे दिया जाताहै जोकि अधिक उदार बुद्धिवाला

जन अपनी समतासे सर्वत्रदेताहै ॥२००॥ उससे मन्दभाग्यवाले याचकको मांगना योग्य नही है हे बटो ! आज मैं तुमको पर्वत व श्रेष्ठवनो समेन भूमिदेताहूं ॥ १ ॥
और समुद्रों समेत सम्पूर्ण पृथिवी को दूंगा मेरा वचन अन्यथा नही है फिर वह बटु वामनजी विरोचन के पुत्र बलिजीके प्रतिबोले ॥ २ ॥ कि हे दैत्येन्द्र ! मेरे पग
चलाने से तीनपदों करके पूरा कियाजाता है तब ब्रह्मचारी वेषधारी वामनजी के उस वचन को सुनकर असुरों में अधिक ऐश्वर्य्यवाले बलिजी ॥ ३ ॥ जोकि विहँ-
सते हुये व अपना को बहुतही माननेवाले हैं उन्होंने वचन कहा कि हे ब्रह्मचारिन् ! मेरी दीहुई तीन पदोंसे भूषित भूमि लीजावे ॥ ४ ॥ ऐसा कहेगये व बहुत हँसते
हुये वामनजी दैत्य (बलि) के प्रति अधिकता से बोले कि हे सुव्रत ! तुम सबरी पृथिवीको संकल्पकर देनेकेलिये योग्यहो ॥ ५ ॥ वैसाहो ऐसा मानकर वह कश्यपजी

थिनामन्दभागिना ॥ वटोददाम्यहन्तेद्यसशैलवरकाननाम् ॥ १ ॥ पृथ्वींसमग्रांसाब्धीञ्चनान्यथाममभापितम् ॥
पुनःप्रोवाचसवटुर्विरोचनसुतम्प्रति ॥ २ ॥ पूर्य्यतेममदैत्येन्द्रक्रमतोहिपदैस्त्रिभिः ॥ वटोस्तद्वचनंश्रुत्वाह्यसुरेन्द्रोबलि
स्तदा ॥ ३ ॥ उवाचप्रहसन्वाक्यंमन्यमानोनिजंभृशम् ॥गृह्यताञ्चमयादत्तांपदैस्त्रिभिरलंकृताम् ॥ ४ ॥ इत्युक्तोवाम
नःप्राहप्रहसन्नसुरम्प्रति ॥ सङ्कल्प्यसकलांपृथ्वींदातुमर्हसिसुव्रत ॥ ५ ॥ तथेतिमत्वाबलिनासुपूजितःसवामनःकश्यप
नन्दनोमहान्॥ बलिस्तदानींमहसापरेणसंस्तूयमानोऋषिभिर्मुनीन्द्रैः ॥ ६ ॥ तम्पूजयित्वाशुबलिर्यावद्दातुंसमुद्यतः॥
गुरुणावारितस्तावद्विरोचनसुतोमहान् ॥ ७ ॥ नदातव्यंत्वयादानंविष्णवेवटुरूपिणे ॥ इन्द्रार्थमागतस्सद्योयज्ञविघ्नंकरो
तिते ॥ ८ ॥ तस्मात्त्वयानपूज्योहिविष्णुरध्यात्मदीपकः ॥ पुराकृतमनेनैवमोहिनीरूपधारणम् ॥ ९ ॥ देवेभ्यश्चामृ

के पुत्र बड़े वामनजी बलिसे बहुत पूजितहुये और उस समय उत्तमतेजसे संयुत बलिजी ऋषियों व मुनीन्द्रों से भलीभांति प्रशंसित होतेहै ॥ ६ ॥ व जबतक उन
वामनजीको पूजकर भूमि देनेके लिये वह बलिजी भलीभांति उद्यतभये तबतक विरोचनके पुत्र बडेभारी दैत्येन्द्र को गुरू शुक्राचार्य्यने निवारण किया ॥ ७ ॥ कि
ब्राह्मणबालक ब्रह्मचारी रूपधारी विष्णुजी के लिये तुमको नहीं दानदेना चाहिये जिससे इन्द्रके अर्थ आयेहुये यह शीघ्रही तुम्हारे यज्ञका विघ्न करतेहैं॥ ८ ॥ उससे
इन्द्रियादिकोंके प्रकाशक विष्णुजी तुमसे पूजनेयोग्य नहीं हैं आगे इन्होंने मोहिनी रूपका धारण कियाहै ॥ ९ ॥ और जिन्होंने देवोंको अमृत दियाहै व बड़ेभारी राहु

को मारा व दैत्योंको पछारा व बलवान् कालनेमिको संहाराहै ॥ १० ॥ हे महामते ! इस प्रकार के यह महात्मा पुरुष हैं वहही ईश्वर हैं व वहही सब जगत् के पतिहैं इस लिये तुम मनसे सब हित और अनहित को विचार समेत निश्चयकर करने के लिये योग्यहो ॥ ११ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेमाहेश्वरखण्डान्तर्गतकेदारखण्डेभाषाबन्धेसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचितेबलियज्ञेवामनागमनंनामाष्टादशोध्यायः १८ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । उनइसवें अध्याय में बलिने सर्वसुदीन । वामनको वरपाय पुनि गमन सुतलको कीन ॥ श्रीलोमशजी बोले कि,ऐसे गुरू शुक्राचार्य्यसे भलीभांति बोधित व बिहँसतेहुये दैत्य बलिजीने मेघ गर्जनेके समान गम्भीर वाणीसे कहा ॥ १ ॥ किमेरे हितके चाही तुमकरके जिनवचनोंसे मैं कहागयाहूं उनसेही मैं चलाया गयाहूं किंतु

तंदत्तंराहुर्येनहतोमहान् ॥ येनविद्राविता दैत्याःकालनेमिर्हतोबली ॥ १० ॥ एवंविधोयंपुरुषोमहात्मासईश्वरोविश्वपतिस्सएव ॥ विमृश्यसर्वंमनसामहामतेहिताहितंकर्तुमिहार्हसित्वम् ॥ ११ ॥ इति श्रीकेदारखण्डेऽष्टादशोध्यायः ॥ १८ ॥

लोमशउवाच ॥ एवंसम्बोधितोदैत्यो गुरुणाभार्गवेणहि ॥ उवाचप्रहसन्वाण्या मेघनादगभीरया ॥ १ ॥ त्वयोक्तोहं हितार्थेन यैर्वाक्यैश्चालितोस्म्यहम् ॥ तववाक्यंममप्रीत्याहितमप्यहितंभवेत् ॥ २ ॥ दास्यामिभिक्षितंतस्मै विष्णवेवटुरूपिणे ॥ पात्रीभूतोह्ययंविष्णुः सर्वकर्मावनेश्वरः ॥ ३ ॥ येषांहृदिस्थितोनित्यं तेवैपात्रतमाध्रुवम् ॥ यस्यनाम्ना सर्वमिह पवित्रमिदमुच्यते ॥ ४ ॥ येनवेदाश्चयज्ञाश्च मन्त्रतन्त्रादयोह्यमी ॥ सर्वेसम्पूर्णतांयान्ति सोयंविश्वेश्वरोहरिः ॥ ५ ॥ आगतःकृपयामेद्य सर्वात्माहरिरीश्वरः ॥ उद्धृतंमानसन्देहमेतज्जानीहितत्त्वतः ॥ ६ ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वा

मेरीप्रीतिसे तुम्हारा जो हित वचनहै वहभी अहितहोवेहै ॥ २ ॥ और ब्रह्मचारी रूपधारी इन विष्णुजीके लिये मैं भिक्षादूंगा क्योंकि सब कर्मोंकीरक्षामें ईश्वर व दानादिकोंके पात्रहुये यह विष्णुजी ॥३॥ जिन्होंके हृदयमें नित्यही टिकेहैं वेभी निश्चय से बडे सुपात्रहैं व यहां जिनके नामसे यह सब पवित्र कहाजाताहै ॥ ४ ॥ व जिन विष्णुजीसे या जिनके नामसे ये सब वेद यज्ञ मन्त्र और तन्त्रादिक सम्पूर्णताको प्राप्तहोते हैं वह यह बटुरूपधारी भक्तभयहारी भगवान् विश्वेश्वरहै ॥५॥ और सर्वव्यापक परमेश्वर हरि (विष्णुजी) आज मेरी कृपासे मुझको संसारसागरसे उद्धारनेके लिये आये है तुम इसको तत्त्व (निश्चय) जानो सन्देह नही है ॥ ६ ॥ इस

भांति उनके उस वचन को सुनकर शुक्राचार्य्य ने क्रोध किया और कोपसे समेत होकर धर्मको प्यार करनेवाले दैत्येन्द्रको शाप देनेके लिये आरम्भकिया ॥ ७ ॥ कि
रे शत्रुओ के दण्डदायक, मन्द, दैत्यनायक ! खेदहै कि जिससे गुणोंसे हीनहुआ तू मेरे वचन को उल्लङ्घनकर देनेको इच्छा करताहै उससे सम्पत्ति से रहित होजा
वे ॥ ८ ॥ उससमय परमार्थ के परमपण्डित धर्मज्ञों में श्रेष्ठ बड़ेकवि शुक्राचार्य ने अथाह बोधवाले महात्मा शिष्यको शाप दिया और वेगवान् होतेहुये वह अपने
आश्रम को जानेके लिये इच्छावाले हुये ॥ ९ ॥ और उन शुक्राचार्य्य के जातेही विरोचनके पुत्र बलिजीने वामनजीको पूजकर भूमि देनेके लिये पावँको चलाया

चुकोप च रुषान्वितः ॥ भार्गवःशप्तुमारेभे दैत्येन्द्रंधर्मवत्सलम् ॥ ७ ॥ ममवाक्यमतिक्रम्य दातुमिच्छस्यरिन्दम ॥
विगुणोबतरेमन्द तस्मात्त्वंनिःश्रिकोभव ॥ ८॥ एवंशशाप च तदापरमार्थविज्ञः शिष्यंमहात्मानमगाधबोधम् ॥ सग
न्तुकामोहिमहाकविस्त्वरन्स्वमाश्रमंधर्मविदांवरिष्ठः ॥ ९ ॥ गतेतुभार्गवेतस्मिन् बलिर्वैरोचनात्मजः ॥ वामनञ्चार्च
यित्वाच महींदातुम्प्रचक्रमे ॥ १० ॥ महिषीदैत्यराजस्ययदातत्रपतिव्रता ॥ विन्ध्यावलिस्समागत्य बलेरर्द्धाङ्ग
माश्रिता ॥ ११ ॥ अवनिज्यवटोःपादौ प्रददौविष्णवेमहीम् ॥ सङ्कल्पपूर्वेणतदा विधिनाविधिकोविदः ॥ १२ ॥ सङ्कल्पे
नैवमहता ववृधेभगवानजः ॥ पादैकेनमहीव्याप्ता विष्णुनाप्रभविष्णुना ॥ १३ ॥ सर्वेस्स्वर्गाद्वितीयेन व्याप्तास्तेनम
हात्मना ॥ सत्यलोकस्थितेनैव ब्रह्मणापरमेष्ठिना ॥ १४ ॥ कमण्डलुगतेनैवाम्भसाचावनिनेजह ॥ तत्पादसम्पर्कजला

या लगाकिया ॥ १० ॥ व जब वहां दैत्यराजकी पटरानी पतिव्रता विन्ध्यावलि भलीभांति आकर बलिजीके आधे वामअंगको सेवतीभई याने उसओरमें टिकी ॥ ११ ॥
तब विधानके जाननेवाले बलिजीने ब्रह्मचारी वामनजीके पांवोंको पखारकर विष्णुजीके लिये संकल्प पूर्वक विधानसे भूमिको दानदिया ॥१२॥ और जन्मादिकोसेहीन
भगवान् संकल्पसेही बढे व प्रभुताशील विष्णुजीने एकपांव पृथिवीको व्याप्तकिया याने उनका एकपावँ सबरी भूमिमें भरगया ॥१३॥ और उन महात्मा(बडव्यापक)ने
दूसरे पावँसे सबस्वर्गोको व्याप्त किया व सत्यलोकमें टिकेहुये,उत्तमस्थानकेबासी ब्रह्माजीने ॥ १४ ॥ कमण्डलुमें प्राप्त पानीसेही उस पावँको पखार लिया यह प्रसिद्ध

है औौर उनके या उस पावँके सम्बन्धी जलसे सबमंगलोंकी मंगलकारिणी पापहारिणी वह गङ्गाजीहुई ॥ १५ ॥ कि जिनने त्रिलोकको पवित्र किया व जिन्हौंने सब सगर के पुत्रोंको उबार लिया और उस समय भगीरथ राजाने जिनसे शिवजी के जटाजूटको भरदियाहै ॥ १६ ॥ वह ब्रह्माजीका कियाहुआ विष्णुजीके पावँकी धूरि से समेत व तीर्थों के बीचमें मुख्य गंगानामकतीर्थ उतारागया है ॥ १७ ॥ जब सर्व व्यापक परमात्मा विष्णुजी तीनपग चलानेसे नामकरके त्रिविक्रम हुये तब त्रि विक्रम के पावँ चलाने से त्रिलोक नापागया भया है ॥ १८ ॥ और यह जंगम स्थावररूप जगत् दो पावोंसे सबओर पूर्णहुआ व उस स्वरूप को त्यागकर देवोंके देव

चजाता सापापहासकलमङ्गलमङ्गलाच ॥ १५ ॥ ययात्रिलोकीचकृतापवित्रा ययाचसर्वेसगरात्मजोद्धृताः ॥ ययाकप र्द्दःपरिपूरितश्च शम्भोस्तदानीं च भगीरथेन ॥ १६ ॥ तीर्थानांतीर्थमाद्यञ्च गङ्गाख्यमवतारितम् ॥ तद्विष्णोःपादरज सा समेतंब्रह्मणाकृतम् ॥ १७ ॥ त्रिविक्रमात्परोह्यात्मा नाम्नात्रिविक्रमाभवत् ॥ त्रिविक्रमक्रमात्क्रान्तन्त्रैलोक्यन्तु तदाभवत् ॥ १८ ॥ पदद्वयेनचापूर्णं जगदेतच्चराचरम् ॥ विहायतत्स्वरूपञ्च देवदेवोजनार्दनः ॥ १९ ॥ पुनश्चवटु रूपोसावुपविष्टोनिजासने ॥ तदादेवास्सगन्धर्वा मुनयस्सिद्धचारणाः ॥ २० ॥ आगताश्चबलेर्यज्ञं दृष्ट्वायज्ञपतिं प्रभुम् ॥ तत्रब्रह्मासमागत्यस्तुतिञ्चक्रेपरात्मनः ॥ २१ ॥ जगुर्गन्धर्वपतयो ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥ विद्याधर्यश्चन नृतुःकिन्नराश्चतदाभृशम् ॥ २२ ॥ प्रह्लादश्चागतस्तस्य यज्ञवाटंमहात्मनः ॥ बलेस्तत्रैवचान्येहि दैत्येन्द्राश्चाग तास्त्वरा ॥ २३ ॥ एभिस्सर्वैःपरिवृतो वामनोबलिसद्मनि ॥ उपविश्यासने सोथ उवाचगरुडन्तदा ॥ २४ ॥

जनार्दन (विष्णुजी) ॥ १९ ॥ फिर ब्रह्मचारी बालकरूप होकर वह अपने आसन में बैठे तब गन्धर्वों समेत देव मुनि सिद्ध और चारण ॥ २० ॥ बलिजी के यज्ञको आये और वहां भलीभाति आकर व यज्ञोके पति प्रभुता समेत सबके स्वामी को देखकर ब्रह्माजी ने परमात्मा की स्तुति किया ॥ २१ ॥ और उस समय गन्धर्व्व पतियोने गाया व अप्सरासमूहों ने नाचा व विद्याधरियों और किन्नरों ने बहुतही नृत्य गान किया ॥ २२ ॥ व प्रह्लादजी उन महात्मा बलिके यज्ञवाट में आये और अन्यभी दैत्येन्द्र वहाही वेगसे आगये ॥ २३ ॥ तब इन सबोंसे सबओर घिरेहुये वह वामनजी बलिके घरमें आसनपर बैठकर अनन्तर गरुड़जीसे बोले ॥ २४ ॥ कि

[illegible] कहकर एकपदको नही देताहै उससे तीसरा पदभी तुमको लेनाचाहिये ॥२६॥ इस भांति महात्मा उन वामनजी से कहेहुये गरुडजीने विरोचनके पुत्रको घुडककर [illegible] पृथिवी दिया और मैंने पगचलानेसे ही दोपदों को लिया ॥ २५ ॥ जिस से यह दुष्ट बुद्धिवाला दैत्य प्रतिज्ञाकर याने देने
इस वचन को हर्षसे बोले ॥ २७ ॥ हे मूढ़,बले ! तुमने आज क्या निन्दित कर्म किया क्योंकि तुम धनके न होतेही परमात्माके लिये क्या देतेहो ॥ २८ ॥ और
इससमय थोड़े धनवाले तुमकरके उदारता से क्या करनेयोग्य है ऐसे कहे व बैठे मुसकाते हुये बलिजीने पक्षियों के स्वामी ॥ २९ ॥ गरुड़जी के प्रति उससमय इस

दैत्योसौबालिशोभूत्वादत्तानेनमहीमम ॥ त्रिपदक्रमणेनैवगृहीतंचपदद्वयम् ॥ २५ ॥ पदमेकंप्रतिश्रुत्य नददातिहिदु
र्मतिः ॥ तस्मात्त्वयागृहीतव्यं तृतीयम्पदमेवच ॥ २६ ॥ इत्युक्तोगरुडस्तेन वामनेनमहात्मना ॥ वैरोचनिंविनिर्भर्त्स्य
वाक्यञ्चेदमुवाचह ॥ २७ ॥ रेबलेकिन्त्वयामूढ कृतमद्यजुगुप्सितम् ॥ अविद्यमानेह्यर्थेहि किन्ददासिपरात्मने ॥२८॥
औदार्येणहिकिङ्कार्यमल्पकेनत्वयाधुना ॥ इत्युक्तोबलिराविष्टः स्मयमानंखगेश्वरम् ॥ २९ ॥ वक्ष्यमाणमिदंवाक्यं
गरुत्मानन्तदाब्रवीत् ॥ समर्थोस्मिमहापक्षिन्कृपणोनभवाम्यहम् ॥ ३० ॥ येनेदंकारितंसर्वं तस्मैकिंप्रददाम्यहम् ॥
असमर्थोह्यहंतावत्कृतोनेनमहात्मना ॥ ३१ ॥ तदोवाचबलिंसोपि ताक्ष्यपुत्रोमहामनाः ॥ जानन्नपिचदैत्येन्द्र गुरु
णापिनिवारितः ॥३२॥ विष्णवेपिमहींप्रादास्त्वंतत्किंविस्मृतंमहत् ॥ दातव्यंतत्पदंविष्णोस्तृतीयंयत्प्रतिश्रुतम् ॥ ३३ ॥
नददासिकथंदैत्य निरयन्तुपतिष्यसि ॥ एवमुक्तस्तदातेनगरुडेनमहात्मना ॥ ३४ ॥ नोवाच किञ्चिद्दैत्येन्द्रो गरुडं

आगे कहे जानेवाले वचनको कहा कि हे महापक्षिन् ! मै समर्थहूं कृपण (चुष्ट, दरिद्री) नही होताहूं ॥ ३० ॥ जिनने इस सब जगत्को करायाहै उनको मै क्या
देताहूं क्योकि इन महात्मा ने तबतक मुझको असमर्थ कियाहै ॥ ३१ ॥ तब बड़े मनवाले वह कश्यप के पुत्र गरुडजी भी बलिजीसे बोले कि हे दैत्येन्द्र ! गुरूसे
भी निवारेगये (मनेकिये) व जानतेहुये भी ॥ ३२ ॥ तुमने विष्णुजीके लियेही भूमिको दियाहै वह क्या बहुत बिसरगया है जिसको तुमने प्रतिज्ञा कियाहै वह विष्णुजी
का तीसरा पद देना चाहिये ॥ ३३ ॥ हे दैत्य ! तुम उसको क्यों नहीं देतेहो इस से नरकमे परोगे उस समय उन महात्मा गरुड़जीसे ऐसा कहेहुये ॥ ३४ ॥ दैत्येन्द्र

ने गरुडजी के प्रति अच्छा व बुरा कुछभी न कहा और पक्षियों के स्वामी गरुड़जी क्रोधसे बोले कि तुम कितव (छली) हो इसमें संशय नहीं है ॥ ३५ ॥ आजही तुम मेरेस्वामी को दानसे कलंकित कर फिर मेरे स्वामी के तीसरे पदको क्यो नहीं देते हो ॥ ३६ ॥ हे मूढ़ ! मैं बलसे लेताहूं ऐसा कहकर व बहुतही निठुर होकर जीतने वालों में श्रेष्ठ गरुडजी ने उन बडे दैत्य ॥ ३७ ॥ विरोचन पुत्र (बलि) को तब वरुणसम्बन्धी पाशों (फसरियो) से बाधा व बँधेहुये अपने पतिको देखकर विन्ध्यावलि रानी भलीभांति सामनेगई ॥ ३८ ॥ और उन बलिके वामगोदके समीप में प्राप्तहोकर वामनजीके आगे टिकी उस समय वामनजीसे पूंछीगई कि यह कौन

साध्वसाधुवा ॥ मन्युनोवाचपक्षीन्द्रःकितवोसिनसंशयः ॥ ३५ ॥ प्रतिग्रहाङ्कितंकृत्वा ममस्वामिनमद्यवै ॥ नददासितृतीयञ्च पदंमेस्वामिनःकथम् ॥ ३६ ॥ बलाद्गृह्णामिरेमूढ इत्युक्त्वातंमहासुरम् ॥ नितरांनिष्ठुरोभूत्वा गरुडोजयतांवरः ॥ ३७ ॥ बबन्धवारुणैःपाशैर्विरोचनसुतन्तदा ॥ बद्धंस्वपतिमालोक्य विन्ध्यावलिस्समभ्ययात् ॥ ३८ ॥ तद्वामाङ्कंसमासाद्य वामनस्याग्रतःस्थिता ॥ वामनेनतदापृष्ठा केयंतन्व्यग्रतःस्थिता ॥ ३९ ॥ तदोवाचमहातेजाः प्रह्लादोह्यसुराधिपः ॥ बलेःपत्नीतित्वांप्राप्ता इयंविन्ध्यावलिस्सती ॥ ४० ॥ प्रह्लादस्यवचःश्रुत्वा वामनोवाक्यमब्रवीत् ॥ ब्रूहिविन्ध्यावलेवाक्यं किङ्कार्यंकरवाण्यहम् ॥ ४१ ॥ एवमुक्ताभगवता विन्ध्यावलिरभाषत ॥ विन्ध्यावलिरुवाच ॥ कस्माद्बद्धोममपतिर्गरुडेनमहात्मना ॥ ४२ ॥ तत्कथ्यतांमहाभागत्वराचैवजनार्द्दन ॥ तदोवाचमहातेजावटुवेषधरोहरिः ॥ ४३ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ अनेनैवप्रदत्तामे महीत्रिपदलक्षणा ॥ पदद्वयेनचमयाक्रान्तंत्रैलोक्यमद्यवै ॥ ४४ ॥ अनेनममदा

स्त्री आगे खडीहै ॥ ३९ ॥ तब दैत्यों के स्वामी बडे तेजस्वी प्रह्लादजीनेही ऐसाकहा कि यह पतिव्रता बलिकीस्त्री विन्ध्यावलि तुम्हारे शरणको प्राप्तहुई है ॥ ४० ॥ और प्रह्लादजी के वचनको सुनकर वामनजी वचनको बोलेकि हे विन्ध्यावले ! तुम वचन को कहो कि मैं क्या कार्यकरूं ॥ ४१ ॥ इसभांति भगवान्से कही हुई विन्ध्यावलि ने कहा ॥ श्रीविन्ध्यावलि बोली कि महात्मा गरुडने मेरे पतिको क्यों बांधाहै ॥ ४२ ॥ हे महाभाग, जनार्दन ! वह भी वेगसे कहाजावे तब भारी तेजवाले ब्रह्मचारी वेषधारी भक्तभयहारीने कहा ॥ ४३ ॥ श्रीभगवान् बोले कि इसनेही तीनपद लक्षणवाली भूमिको मुझेदिया और मैंने आजही दो पावों से त्रिलोकको नापलिया ॥ ४४ ॥

व इसको मेरा तीसरापद भी देना चाहिये हे पतिव्रते ! इसलिये मुझसेही गरुडके द्वारा तुम्हारा पति बाधागयाहै ॥ ४५ ॥ इसभाति भगवान्के वचनको सुनकर उसने उत्तम वचनको कहा कि हे प्रभो ! जिसलिये प्रतिज्ञा कियेहुयेको इन्होंनेही तुम्हारोलिये नहीं दिया ॥ ४६ ॥ और विक्रमरूपी तुमने आज त्रिलोकको नापलियाहै इसलिये तुम स्वर्ग अथवा पृथिवीमे हमको बाधो ॥ ४७ ॥ हे देवदेव, जगत्प्रभो, विभो ! आपको कुछ भी नहीं दियागयाहै तब सबके स्वामी भगवान् वामनजी विहँसकर विन्ध्या वलिसे बोले कि ॥ ४८ ॥ हे विशालनेत्रे ! आज इस समय मुझे तीनपद कैसे देने योग्यहैं जो तुम्हारे मनमें बर्तताहै उसको तुम शीघ्रही कहो ॥ ४९ ॥ तब विस्मय से

तव्यं तृतीयंपदमेवच ॥ तस्माद्बद्धोमयासाध्वि गरुडेनैवतेपतिः ॥ ४५ ॥ श्रुत्वाभगवतोवाक्यमुवाचपरमंवचः ॥ प्रतिश्रुतमनेनैव नदत्तंहितवप्रभो ॥ ४६ ॥ क्रान्तंत्रिभुवनञ्चाद्यत्वयाविक्रमरूपिणा ॥ तदस्माकंनिर्बध्नीथाः स्वर्गेवाप्यथवा भुवि ॥ ४७ ॥ किञ्चिन्नदत्तंहिविभो देवदेवजगत्प्रभो ॥ प्रहस्यभगवानाह तदाविन्ध्यावलिंप्रभुः ॥ ४८ ॥ पदानित्रीणि मेचाद्य दातव्यानिकुतोधुना ॥ शीघ्रंवदविशालाक्षि यत्तेमनसिवर्तते ॥ ४९ ॥ तदोवाचमहासाध्वी उरुक्रममविस्मिता ॥ त्वयायतोदेवउरुक्रमेण क्रान्तात्रिलोकीभुवनैकनाथ ॥ ५० ॥ तथैवसर्वंजगदेकबन्धो देयंकिमस्माभिरतुल्यरूपिणे ॥ तस्माद्विज्ञापितंविष्णो ममैवकुरुसम्प्रति ॥ ५१ ॥ प्रतिश्रुतानिमेभर्त्रा पदानित्रीणिचाधुना ॥ पदातिर्मेपतिस्त्वद्य नात्रकार्याविचारणा ॥ ५२ ॥ निधेहिमेपदत्वंहि शीर्ष्णिदेववरप्रभो ॥ द्वितीयंमेशिशोश्चाद्य कुरुमूर्ध्निजगत्पते ॥ ५३ ॥ तृतीयंचजगन्नाथ कुरुशीर्ष्णिपतेर्मम ॥ एवंत्रीणिपदानीश तवदास्यामिकेशव ॥ ५४ ॥ तस्यास्तद्वचनं

हीन हुई बडी पतिव्रता विन्ध्यावलिने वामनजीसे कहा कि हे लोकोंके मुख्य स्वामिन्, देव ! जिससे बड़े पग चलानेवाले तुमने त्रिलोकको नापलिया ॥ ५० ॥ वैसेही सब जगत् होगया हे जगदेकबन्धो ! अनूप रूपधारी आपके लिये हम लोगोंसे क्या देने योग्यहै उससे हे विष्णो ! तुम इस समय मेरेही विज्ञापित याने विशेष से जनाये हुये वचनको करो ॥ ५१ ॥ कि इस समय मेरे पतिसे तीनपद प्रतिज्ञा कियेगये हैं और आज मेरे स्वामीजी पैदलहैं इसमें विचारणा नहीं करना चाहिये ॥ ५२ ॥ हे देवश्रेष्ठ, प्रभो ! तुम मेरे मस्तकमें पहले पदको धरो और हे जगत्पते ! आज मेरे पुत्रके शिरमें दूसरे पदको करो ॥ ५३ ॥ व हे जगन्नाथ ! मेरे नाथके माथमें तुम तीसरे

पदको करो हे ईश, केशव ! इसभांति मैं तुमको तीनोंपद दूंगी ॥ ५४ ॥ उसके उस वचनको सुनकर सन्तुष्टहुये विष्णुजीने विरोचनके पुत्र बालिजीके प्रति मधुर महीन वचनसे कहा ॥ ५५ ॥ कि, हे दैत्येन्द्र ! तुम सब असुरसमूहों के साथ सुतल को जावो व मत बिलम्ब करने के लिये योग्य होवो और बहुत कालतक जीवो व सुखी होवो ॥ ५६ ॥ हे तात, महामते ! मैं सब ओरसे संतुष्टहूं तुम्हारा क्या कार्य्यकरूं क्योंकि तुम सब दाताओंके बीचमें भी बहुत श्रेष्ठहो ॥ ५७ ॥ इससे तुम्हारा कल्याणहो तुम वरको स्वीकारकरो याने मांगो मैं तुम्हारे या तुमको सब वाञ्छित देताहूं जब वामनजी से विरोचनके पुत्र (बलिजी) ऐसा कहेगये ॥ ५८ ॥ व देवदेव चक्रधारी

श्रुत्वा परितुष्टोजनार्दनः ॥ उवाचश्लक्ष्णयावाचा विरोचनसुतम्प्रति ॥ ५५ ॥ सुतलङ्गच्छदैत्येन्द्र माविलंवितुमर्हसि ॥ सर्वैश्चासुरसंघैश्च चिरंजीवसुखीभव ॥ ५६ ॥ परितुष्टोस्म्यहंतात किङ्कार्य्यंकरवाणिते ॥ सर्वेषामपिदातॄणां वरिष्ठोसिमहामते ॥ ५७ ॥ वरंवरयभद्रन्ते सर्वान्कामान्ददामिते ॥ त्रिविक्रमेणैवमुक्तो विरोचनसुतोयदा ॥ ५८ ॥ विमुक्तो हिपरिष्वक्तो देवदेवेनचक्रिणा ॥ तदाबलिरुवाचेदं वाक्यंवाक्यविशारदः ॥ ५९ ॥ त्वयाकृतमिदंसर्वं जगदेतच्चराचरम् ॥ तस्मान्नकामयेकिञ्चित्त्वत्पदाब्जंविनाप्रभो ॥ ६० ॥ भक्तिरस्तुपदाम्भोजेतवदेवजनार्दन ॥ भूयोभूयश्चदेवेशभक्तिर्भवतुशाश्वती ॥ ६१ ॥ एवमभ्यर्थितस्तेनभगवान्भूतभावनः ॥ उवाचपरमप्रीतोविरोचनसुतन्तदा ॥ ६२ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ बलेत्वंसुतलंयाहिज्ञातिसम्बन्धिभिर्वृतः ॥ एवमुक्तस्तदातेनह्यसुरोवाक्यमब्रवीत् ॥ ६३ ॥ सुतलेकिन्तुमेका

ने उनको छोंडदिया और अपने अंगमें लिपटालिया तब वचनों के बड़े पण्डित बालिजीने इस वाक्यको कहा ॥ ५९ ॥ कि हे प्रभो ! जिसलिये यह सब चराचर जगत् तुम्हारा कियाहुआहै इसलिये मैं तुम्हारे पदकमलके विना अन्य कुछ भी नहीं चाहताहूं ॥ ६० ॥ हे देव, जनार्दन ! तुम्हारे चरणारविन्दमें भक्तिहोवे हे देवेश ! बार बार निरन्तर सदैव रहनेवाली भक्तिहोवे ॥ ६१ ॥ उस समय उनसे ऐसा याचितहुये सब देहियों या आकाशादिकों के उपजानेवाले परम प्रसन्न ऐश्वर्य्य सम्पन्न वामनजीने विरोचनके पुत्र बलिजी से कहा ॥ ६२ ॥ श्रीभगवान्जी बोले कि, हे बले ! ज्ञातियों और सम्बन्धियों से संयुत तुम सुतललोकको जावो तब उनसे ऐसा कहेहुये असुर

बलिजी वचनको बोले ॥ ६३ ॥ कि हे देवोंके देव ! सुतलमें मेरा क्या कार्य्य है उसको मुझसे कहो मै तुम्हारे समीपमें टिकताहूं तुम अन्यथा कहने के लिये नहीं योग्य
हो ॥ ६४ ॥ उस समय दयासमेत इन्द्रियोंके स्वामी विष्णुजीने बलिजी से कहा कि हे नरेश ! मैं निरन्तर तुम्हारे समीपमें टिकनेवाला होताहूं (होउंगा) ॥ ६५ ॥
अहो दैत्यवर्य्य, बले ! तुम मत खेदकरो किन्तु मेरे वर वचनको सुनो कि ऐश्वर्य्य वाले तुम्हारे द्वारमें टिकाहुआ मै वहां बसताहूं (बसोंगा) और आज तुमको वर देने
वाला मै वैकुण्ठवासियो के साथ देहको बहुतही प्राप्त करताहूं याने करूंगा ॥ ६६ ॥ इसभाति अतुल तेजवाले उन विष्णुजीके उस वचनको सुनकर असुरों से सब

र्य्यंदेवदेववदस्वमे ॥ तिष्ठामितवसांनिध्येनान्यथावक्तुमर्हसि ॥ ६४ ॥ तदोवाचहृषीकेशोबलिनंकृपयान्वितः ॥ अहं
तवसमीपस्थोभवामिसततंनृप ॥ ६५ ॥ द्वारिस्थितस्तेचविभोर्वसामिमाखिद्यतामसुरवर्यबलेश्शृणुष्व ॥ वाक्यंतुमेवर
महोवरदस्तवाद्यंवैकुण्ठवासिभिरलञ्चवहामिदेहम् ॥६६॥ तच्छुत्वावचनंतस्यविष्णोरतुलतेजसः॥जगामसुतलंदैत्यो
ह्यसुरैःपरिवारितः ॥ ६७ ॥ तत्रपुत्रशतेनैवबाणमुख्येनसत्वरम् ॥ वसमानोमहाबाहुर्दातॄणाञ्चपरागतिः ॥ ६८ ॥
त्रैलोक्येयाचकाये च सर्वेयान्तिबलिम्प्रति ॥ द्वारिस्थितस्तस्यतदास्वयंविष्णुःप्रयच्छति ॥ ६९ ॥ भुक्तिकामाश्चयेके
चिन्मुक्तिकामास्तथापरे ॥ येषांयद्रोचतेविप्रास्तत्तेभ्यःसम्प्रयच्छति ॥ ७० ॥ एवंविधोबलिर्जातःप्रसादाच्छंकरस्य
च ॥ पुराहिकितवत्वेनयद्दत्तंपरमात्मने ॥ ७१ ॥ अशुचिंभूमिमासाद्यगन्धपुष्पादिकम्महत् ॥ पतितञ्चार्पितंतेनशिवा

ओर घिरेहुये दैत्यराज बलिजी सुतलको गये ॥ ६७ ॥ और वहां बाणासुर आदि सौ पुत्रोंके साथ बसतेहुये बड़ी बाहोंवाले बलिजी शीघ्रही दाताओंकी उत्तमगति को
प्राप्तभये ॥ ६७ ॥ व त्रिलोक में जे याचकहैं वे सब जब बलिजीके प्रतिजाते हैं तब उनके द्वारमें टिकेहुये विष्णुजी आपही अधिकता से देते हैं ॥ ६९ ॥ जे कोई भोगों
के चाहीहै वैसेही जे अन्य कोई लोग मोक्षके चाहीहैं और हे ब्राह्मणो ! जिनको जो रुचताहै उनको वह भलीभांति देतेहैं ॥ ७० ॥ और जिससे पूर्वसमयमेंही कितव
भावसे उन्होंने परमात्माके लिये दियाहै उसकारण शिवजीके प्रसादसे बलिजी इस भातिके हुये हैं ॥ ७१ ॥ व उन्हों ने अपवित्र भूमिको प्राप्तहोकर गिरेहुये बड़े सुगन्ध

पुष्पादिकको परमात्मा शिवजीके लिये अर्प्पणकिया ॥ ७२ ॥ और जे लोग श्रद्धाके साथ भक्तिसे महेशजीके लिये सुगन्ध फूल फल और जलको देतेहैं तो फिर क्या कहनाहै वे शिवजीके समीपको जातेहैं ॥ ७३ ॥ क्योंकि हे द्विजो ! शिवजी से परतर याने अधिक उत्तम अन्य पूजनीय नहींहै यह निश्चयहै और जे गूंगे वैसेही अन्धे व पंगुले तथा जडहै ॥ ७४ ॥ और जे ये उपजीहुई हिंसावाले अन्त्यज व चाण्डाल और श्वपच भी हैं परन्तु नित्यही शिवजीकी भक्तिमे परायणहै वे उत्तमगतिको प्राप्त होतेहै ॥ ७५ ॥ इसलिये शिवजीही सब बुद्धिमानों से सदैव पूजने योग्यहैं और वही पण्डितो से सदा सेवने योग्य हैं व ध्याने योग्य हैं और बन्दने योग्य हैं ॥ ७६ ॥

यपरमात्मने ॥ ७२ ॥ किम्पुनःश्रद्धयाभक्त्याचार्पयन्तिमहेश्वरम् ॥ गन्धंपुष्पंफलंतोयंतेयान्तिशिवसन्निधौ ॥ ७३ ॥ शिवात्परतरोनास्तिपूजनीयोहिवैद्विजाः ॥ येहिमूकास्तथान्धाश्चपङ्गवोयेजाडस्तथा ॥ ७४ ॥ जातहिंसाश्चचांडालाः श्वपचास्त्वंत्यजाह्यमी ॥ शिवभक्तिपरानित्यंतेयान्तिपरमाङ्गतिम् ॥ ७५ ॥ तस्माच्छिवःसदापूज्यःसर्वैश्चैवमनीषिभिः ॥ पूजनीयोहिमंचिन्त्योवन्दनीयस्सदाबुधैः ॥ ७६ ॥ महेशम्परमार्थज्ञाश्चिन्तयन्तिहृदिस्थितम् ॥ यत्रजीवोभवत्येव शिवस्तत्रैवतिष्ठति ॥ ७७ ॥ विनाशिवेनयत्किंचिदाशिवम्भवतिक्षणात् ॥ ब्रह्माविष्णुश्चरुद्रश्चगुणकार्यकराह्यमी ॥ ७८ ॥ रजोगुणान्वितोब्रह्माविष्णुःसत्त्वगुणान्वितः ॥ तमोगुणाश्रितोरुद्रोगुणातीतोमहेश्वरः ॥ ७९ ॥ लिङ्गरूपोमहादेवोह्यर्चनीयोमुमुक्षुभिः ॥ शिवात्परतरोनास्तिभुक्तिमुक्तिप्रदायकः ॥ ८० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकेदारखण्डेशैवशास्त्रेबलिबन्धनन्नामैकोनविंशतितमोऽध्यायः ॥ १९ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

इससे परमार्थके जाननेवाले जन हृदयमें टिकेहुये महेशजीको ध्यावते या सुमिरते हैं जहांही जीव होताहै वहांही शिवजी टिकते है ॥ ७७ ॥ और शिवजीके विना जो कुछहै वह क्षणमें अमंगलरूप या कल्याणसे हीन होताहै जिससे ब्रह्मा व विष्णु और रुद्रजी ये गुणोंके कार्य्य करनेवाले है ॥ ७८ ॥ इसलिये ब्रह्माजी रजोगुण समेत हैं विष्णुजी सत्त्वगुणसे संयुतहैं रुद्रजी तमोगुणके सेवी या आधार करनेवाले हैं और महेशजी गुणोंसे परेहैं ॥ ७९ ॥ इसलिये लिंगरूप महादेवजीही मुक्तिचाहियों से पूजनीयहैं और शिवजीसे परतर अन्य कोई भोग व मोक्षका दाता नहीं है ॥ ८० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेलब्धविष्णुवरबलिसुतलगमनंनामैकोनविंशतितमोऽध्यायः ॥ १९ ॥

दो० । या बिसयें अध्यायमें तारक दैत्य प्रसंग। पारवती हिमवान घर प्रकटीं देव उमंग ॥ ऋषिलोग बोले कि, तुमने ब्रह्मा विष्णु और रुद्रजीको त्रिगुणमय कहा और वह लिंगरूपी महेशजी कैसे निर्गुणहैं वैसेही तुम कहो ॥ १ ॥ ब्रह्मा विष्णु रुद्र व बड़ा छोटा यह स्थावर जंगम जगत् तीन गुणोंसे व्याप्तहै और यह सब मायामय विशेषतासे सोहताहै व लिंगके विना किससे किसलिये प्रकाशित होताहै और बड़ा छोटा जो कुछ देखाजाताहै वह कियाहुआ होनेसे नश्वर भयाहै ॥२॥ हे सूतजी ! इस लिये तुम विचारकर संशयको काटने के लिये योग्यहो और तुम व्यासजी की प्रसन्नतासे सबको जानते हो अन्य कोई नही जानताहै ॥३॥ श्रीसूतजी बोले कि, इस

ऋषय ऊचुः ॥ ब्रह्माविष्णुश्चरुद्रश्चत्रिगुणाःकीर्त्तितास्त्वया ॥ लिङ्गरूपीकथन्त्वीशोनिर्गुणोसौयथावद ॥१॥ त्रिभिर्गुणैर्व्याप्तमिदंचराचरंविष्णुश्चरिष्णुर्महदल्पकंवा ॥ मायामयंसर्वमिदंविभातिलिङ्गंविनाकेनकुतोविभाति ॥ यद्दृश्यमानंमहदल्पकञ्चतन्नश्वरंवैकृतकत्वतोभूत् ॥ २ ॥ तस्माद्विमृश्यभोसूतसंशयञ्छेत्तुमर्हसि ॥ व्यासप्रसादात्सकलंजानासित्वंनचापरः ॥ ३ ॥ सूतउवाच ॥ व्यासेनकथितंसर्वमस्मिन्नर्थेशुकम्प्रति ॥ श्रीशुकउवाच ॥ लिङ्गरूपीकथंशम्भुर्निर्गुणःकथ्यतेत्वया ॥ ४ ॥ एतन्मेसंशयंतातच्छेत्तुमर्हस्यशेषतः ॥ श्रीव्यासउवाच ॥ शृणुवत्सब्रवीम्येतत्पुराप्रोक्तन्तुनन्दिना ॥ ५ ॥ पृच्छतागस्त्यमुनिनातेनसर्वंश्रुतंशुक ॥ निर्गुणंपरमात्मानंविद्धिलिङ्गस्वरूपिणम् ॥६॥पराशक्तिस्तथाज्ञेयानिर्गुणाशाश्वतीसती ॥ ययाकृतमिदंसर्वंगुणत्रयविभावितम् ॥७॥ एतच्चराचरंविश्वंनश्वरंपरमार्थतः ॥ एकएव

अर्थमें शुकदेवजी के प्रति व्यासजी से सब कहागया है श्रीशुकदेवजी बोले, कि, तुमने लिंगरूपी शङ्करजी को निर्गुण कैसे कहाहै ॥ ४ ॥ हे तात ! तुम मेरे इस सम्पूर्ण संशय को काटने के लिये योग्यहो श्रीव्यासजी बोले कि, हे वत्स ! तुम सुनो कि आगे नन्दीश्वर ने इसको कहाहै ॥ ५ ॥ और हे शुकदेव ! पूँछते हुये उन अगस्त्यमुनिने सबको सुनाहै कि तुम लिंगस्वरूपी परमात्माको निर्गुण जानो ॥ ६ ॥ वैसेही निरन्तर रहनेवाली सती (पतिव्रता या दक्षकन्या) व पराशक्ति निर्गुणा याने गुणोंसे हीन जानने योग्य हैं जिन्होंने तीनगुणों से उपजाये हुये इस सबको कियाहै ॥ ७ ॥ व यह स्थावर जंगम जगत् परमार्थ से नश्वरहै और अंतर

से रहित व सबसे परे लिंगरूपी आत्मा (सर्वव्यापक) परमेश्वर एकही हैं ॥ ८ ॥ और जिससे पूर्वसमय में प्रकृति के साथ ये सब त्रिगुणमय देहधारी जीव जिसमें ही लयको प्राप्तहुयेहैं इसलिये वह लयकरनेसे लिंग कहागयाहै ॥ ९ ॥ और जिसकारण पराशक्तिभी लिंगमें लयको प्राप्तहुई है तो ब्रह्माजीके कहेहुये उन अन्य तीन गुणोंको क्या कहना है कि जिनसेही बँधाहुआ यह ॥ १० ॥ स्थावर जंगमरूप जगत् है हेमहाभाग ! उस कारण लिंगको अद्भुत पूजे और हे ब्राह्मणोत्तमो ! तुमलोग साक्षात् लिंगको निर्गुणजानो ॥११॥ हे द्विजश्रेष्ठो ! मैंने लिंगका माहात्म्यकहा किन्तु मेरे बुद्धि नहीं है श्रीव्यासजी की प्रसन्नता सेही कहा है ॥ १२ ॥ और

परोत्थात्मालिङ्गरूपीनिरन्तरः ॥ ८ ॥ प्रकृत्यासहतेसर्वेत्रिगुणाश्चलयङ्गताः ॥ यस्मिन्नेवततोलिङ्गंलयनात्कथितम्पुरा ॥ ९ ॥ यस्माल्लिङ्गेलयम्प्राप्तापरःशक्तिःकुतोपरे ॥ त्रयोगुणाश्चरुद्रोक्तायैरिदम्बद्धमेवच ॥ १० ॥ चराचरमहाभागतस्माल्लिङ्गंप्रपूजयेत् ॥ लिङ्गञ्चनिर्गुणंसाक्षाज्जानीध्वम्भोद्विजोत्तमाः ॥ ११ ॥ मयालिङ्गस्यमाहात्म्यंकथितंद्विजपुङ्गवाः ॥ व्यासप्रमादात्कथितम्प्रज्ञानास्तिममैवहि ॥१२॥ नहिमानंनिर्णयितुंशङ्करस्यमहात्मनः ॥ शङ्करःसुखदाताहिचोच्यतेऽसौमनीपिभिः ॥ १३ ॥ शर्वोहिकथ्यतेविप्राःसर्वेषामाश्रयोहिसः ॥ शम्भुर्हिकथ्यतेविप्रायस्माच्चसुखसम्भवः ॥१४॥ एवंसर्वाणिनामानिस्वार्थकानिमहात्मनः ॥ तेनावृतंजगत्सर्वंशम्भुनापरमेष्ठिना ॥ १५ ॥ ऋषयऊचुः ॥ यदादाक्षायणीचाग्नौपतितायज्ञकर्मणि ॥ दक्षस्यचमहाभागतिरोधानङ्गतासती ॥ १६ ॥ प्रादुर्भूताकदासूतकथ्यतांतत्त्वयाधुना ॥

महात्मा शङ्करजीके परिमाण को निर्णय के लिये वह भी नहीं हैं जिससे शिवजी सुखके देनेवाले है इसलिये बुद्धिमानोंसे शङ्कर कहेजातेहैं ॥ १३ ॥ व हे ब्राह्मणो ! जिस लिये वह सबोंके आधारहैं इससे शर्व कहेजातेहैं और हे विप्रो ! जिनसे सुख की उत्पत्ति होतीहै वहही शम्भु कहेजातेहैं ॥ १४ ॥ इसभांति महात्मा महादेवजी के सब नाम अर्थोंसमेत हैं और उत्तम स्थान के वासी उन शङ्करजी से यह सब जगत् सबओर से घिरा है ॥ १५ ॥ ऋषिलोग बोले कि, हे महाभाग ! जब दक्ष कुमारी सतीजी दक्षके यज्ञकर्मके होतेही अग्निमें गिरीं और अन्तर्धानको प्राप्तहोगई॥१६॥ हे सूतजी ! तब वह कब प्रकटहुईहैं इससमय वह तुमसे कहाजावे और महेश

जीकी पराशक्ति फिर कैसे उनको मिलाईगई हैं ॥१७॥ हे महाभाग ! यह सब आगे का वृत्तान्त तुमकरके तत्त्वसे हमारे सामने कहनेयोग्य है क्योंकि आप के विना अन्य कोई कहनेवाला नहीं है ॥ १८ ॥ श्रीसूतजी बोले कि जब देवी दक्षकी पुत्री सतीजी यज्ञ में अन्तर्धान होगई तब शक्तिके विना महेशजी ने भी उत्तमतपस्या को तपा (किया) ॥ १९ ॥ और श्रीविश्वनाथजी लीलासे देहधारी भृंगी व वैसेही नन्दीश्वरके साथ हिमवान् पर्वतमेंटिके॥२०॥ जोकि चण्ड तथा मुण्ड और वैसेही अन्यभी बहुते गणोंसे संयुतहैं व करोड़से गुणेहुये दश याने दशकरोड़ गणोंसे सब ओर घिरे हैं ॥ २१ ॥ वैसेही साठि हजार और एक करोड़ गणों से युक्त हैं वह

पराशक्तिर्महेशस्यमीलिताचकथम्पुनः ॥१७॥ एतत्सर्वंमहाभागपूर्ववृत्तन्तुतत्त्वतः ॥ कथनीयन्त्वयास्माकंनान्योवक्तास्तिकश्चन ॥ १८ ॥ सूतउवाच ॥ यज्ञेदाक्षायणीदेवीयदाचान्तर्हिताभवत् ॥ विनाशक्त्यामहेशोपिततापपरमंतपः ॥ १९ ॥ लीलागृहीतवपुषावर्त्ततेहिमवद्गिरौ ॥ भृङ्गिणासहविश्वेशोनन्दिनाचतथैवच ॥२०॥ तथाचण्डेनमुण्डेनतथान्यैर्बहुभिर्वृतः ॥ दशभिर्कोटिगुणितैर्गणैश्चपरिवारितः ॥ २१ ॥ गणानाञ्चैवकोट्याचतथाषष्टिसहस्रकैः ॥ एवन्तत्रगणैर्देवआगतोवृषभध्वजः ॥ २२ ॥ तपोजुषाणःसहसामहात्माहिमालयस्याग्रगतस्तथैव ॥ गणैर्वृतोवापितुवीरभद्रःसकेवलोवीरमहांश्चशूरः ॥ २३ ॥ एतस्मिन्नन्तरेदैत्याःप्रादुर्भूताह्यविद्यया ॥ विष्णुनाहिबलिर्बद्धस्तथातेवैमहाबलाः ॥ २४ ॥ यातायतस्ततोविप्रा इन्द्रोपेन्द्राघकारकाः ॥ कालखञ्जामहारौद्राःकालकेयास्तथापरे ॥२५॥ निवातकवचास्सर्वेटवंटालकसंज्ञकाः ॥ अन्येचबहवोदैत्या प्रजासंहारकारकाः ॥ २६ ॥ तारकोनमुचेःपुत्रस्तपसापरमेणहि ॥ ब्रह्माणंतोषयामास

क्रीडाकारी वृषभ (बैल) से चिह्नित ध्वजाधारी महादेवजी ऐसे गणों के साथ वहां आये ॥ २२ ॥ और वैसेही एकाएक तपस्याको सेवते हुए महात्मा मुख्य शूर वीरों में बड़े व गणों से घिरे हुएभी वह वीरभद्र जी हिमालय के आगे प्राप्तभये याने टिके ॥ २३ ॥ इस अन्तर में ही अज्ञान से संयुत दैत्यलोग प्रकटहुये जैसे विष्णुजी ने बलिको बांधा वैसेही वेभी बड़े बलवान् थे ॥ २४ ॥ हे विप्रो ! जिससे वे बलिष्ठ थे उससे इन्द्र और विष्णुजी का पापकरने वाले थे कालखंज महारौद्र तथा अपर (अन्य) कालकेय ॥ २५ ॥ निवातकवच टवंटालकसंज्ञक और अन्यभी बहुत से सब दैत्य प्रजाओं के विनाशकारी थे ॥ २६ ॥ व नमुचिके पुत्र

तारकासुर ने उत्तम तपस्या सेही ब्रह्माजी को सन्तुष्ट किया और ब्रह्माजी उससे प्रसन्न हुए ॥ २७ ॥ और दुष्ट चित्तवाले तारकासुर को यथेष्टवर देतेभये कि तुम वरको स्वीकार करो (मागो) मैं तुमको सब वांछित देताहूँ तुम्हारा कल्याण हो ॥ २८ ॥ तब उत्तम स्थान के वासी उन ब्रह्माजी के उस वचन को सुनकर उसने लोकों के भयदायक वरको अंगीकार किया (मांगा) ॥ २९ ॥ कि, हे प्रभो ! जो तुम मुझ से प्रसन्नहो मुझको अजर और अमर भाव दो व वैसेही जिसको अजेयत्व जानते हो उसको दो याने सबके जीतनेवाला मैं बुढ़ाई से हीन होकर सदैवजीवों ॥ ३० ॥ उस समय इस भांति दुरात्मा तारकासुरसे कहे व हँसते हुए ब्रह्माजी वचन को बोले कि तुमको अमरत्व कैसे होगा ॥ ३१ ॥ क्योंकि उपजे हुयेकी मृत्यु निश्चय से है इसको तुम तत्त्व से जानो तब बहुत हँसकर तारकासुरने कहा कि आप मुझको अजेयत्व दो याने मैं सबोंको जीतलों ॥ ३२ ॥ श्रीब्रह्माजी बोले कि, हे दैत्य ! तुमको अजेयत्व होवेगा इसमें संशय नहीं है परन्तु हे दैत्येन्द्र ! बालक के विना अजेयता होवेगी ॥ ३३ ॥ ब्रह्माजी के उस वचन को सुनकर तारकासुर ने कहा कि हे प्रभो ! लड़का के विना मैं सबोंका अजेयहूं याने जीतनेयोग्य नहींहूं ॥ ३४ ॥ हे देवदेवेश ! इससमय मैं तुम्हारी प्रसन्नता से धन्यहूं इसभांति वर पानेवाला होकर तारकासुर बड़ा बलवान् हुआ ॥ ३५ ॥

ब्रह्मातस्यतुतोषवै ॥ २७ ॥ वरान्दद्दौयथेष्टांश्चतारकायदुरात्मने ॥ वरंवृणुष्वभद्रन्तेसर्वान्कामान्ददामिते ॥ २८ ॥ तच्छ्रुत्वावचनन्तस्यब्रह्मणःपरमेष्ठिनः ॥ वरयामासचतदावरंलोकभयावहम् ॥ २९ ॥ यदिमेत्वंप्रसन्नोसिह्यजरामरताम्प्रभो ॥ देहिमेयद्विजानासिह्यजेयत्वन्तथैवच ॥ ३० ॥ एवमुक्तस्तदाब्रह्मातारकेणदुरात्मना ॥ उवाचप्रहसन्वाक्यममरत्वंकुतस्तव ॥ ३१ ॥ जातस्यहिध्रुवंमृत्युरेतज्जानीहितत्त्वतः॥ प्रहस्यतारकःप्राहह्यजेयत्वञ्चदेहिमे ॥ ३२ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ तवदैत्यअजेयत्वंभविष्यतिनसंशयः ॥ विनार्भकेणदैत्येन्द्रअजेयत्वंभविष्यति ॥ ३३ ॥ तच्छ्रुत्वाब्रह्मणोवाक्यमवदत्तारकासुरः ॥ अजेयोहन्तुसर्वेषामर्भकेणविनाप्रभो ॥ ३४ ॥ धन्योहंदेवदेवेशप्रसादात्तवसम्प्रति ॥ एवंलब्धवरोभूत्वातारकोहिमहाबलः ॥ ३५ ॥ मुचुकुन्दंसमाश्रित्यदेवास्तेजयिनोऽभवन् ॥ पुनःपुनस्तुकुर्वाणाःसंग्रामंतारकेणहि ॥ ३६ ॥ मुचुकुन्द

और मुचुकुन्दराजा को भलीभांति आश्रयकर तारकासुर के साथ संग्राम को बारबार करतेहुये वे देवलोग जीतिवाले हुये ॥३६॥ जब देवोंने मुचुकुन्दके बलसेही जीति को पायां तब विचार किया कि निरन्तर लड़ते हुयेही हमलोगोंको क्या करनाचाहिये ॥ ३७ ॥ और ऐसे भवितव्यको स्मरणकरवे इन्द्रसमेत देव ब्रह्माजीके स्थान को गये व ब्रह्माजी के आगे होकर स्तुतिको करतेभये ॥ ३८ ॥ देवलोग बोले कि, मधुदैत्य के मारनेवाले वह विष्णुजी बलिके साथ पाताल में बसते हैं और विष्णु जीकेही विना शत्रुवों ने धर्मादिकों को विनाश किया ॥ ३९ ॥ हे प्रभो ! तुम हम लोगोंको दैत्येन्द्रों से रक्षा करने के लिये योग्यहो तब आकाशगत वाणीने उनसे

बलेनैवजयमापुःसुरास्तदा ॥ किङ्कर्त्तव्यंहिचास्माभिर्युद्ध्यमानैर्निरन्तरम् ॥ ३७ ॥ भवितव्यमितिस्मृत्यगतास्तेब्रह्मणःप दम् ॥ ब्रह्मणश्चाग्रतोभूत्वास्तुतिञ्चक्रुस्सवासवाः ॥ ३८ ॥ देवाऊचुः ॥ बलिनासहपातालमास्तेसौमधुसूदनः ॥ विष्णुंविना हितेसर्वैर्वृषाद्याघातिताःपरैः ॥ ३९ ॥ दैत्येन्द्रैश्चमहाभागत्रातुमर्हसिनःप्रभो ॥ तदानभोगतावाणीतानुवाचेतिसत्वरम् ॥ ४० ॥ हे देवाःक्रियतामाशु ममवाक्यं हि तत्त्वतः ॥ शिवात्मजोयदादेवोभविष्यतिमहाबलः ॥ ४१ ॥ पुनश्चतारकंयुद्धेवधि ष्यतिनसंशयः ॥ केनोपायेनभगवाञ्छम्भुःसर्वगुहाशयः ॥ ४२ ॥ दारापरिग्रहंदेवःकुर्य्यादितिविधीयताम् ॥ क्रियताञ्च परोयत्नो भवद्भिर्नान्यथावचः ॥ ४३ ॥ यूयंदेवाविजानीध्वमित्युवाचाशरीरवाक् ॥ परंविस्मयमापन्ना ऊचुर्देवाःपरस्प रम् ॥ ४४ ॥ श्रुत्वानभोगतांवाणीमाजग्मुस्तेहिमालयम् ॥ बृहस्पतिम्पुरस्कृत्य सर्वेदेवावचोब्रुवन् ॥ ४५ ॥ त्वंहिभूध

शीघ्रही ऐसा कहा ॥ ४० ॥ कि हे देवो ! मेरा वचन शीघ्रही तत्त्वसे कियाजावे कि जब बड़ाबलवान् देव शिवजीका पुत्र होवेगा ॥ ४१ ॥ तब फिर युद्धमें तारकासुर को मारेगा इसमें संशय नहीं है इसलिये किसी उपाय से सब गुफाओंमें सोनेवाले ऐश्वर्य्यधारी कल्याणकारी ॥ ४२ ॥ महादेवजी स्त्रीका सबओर से ग्रहण (व्याह) करें ऐसा कियाजावे और आपलोगों करके श्रेष्ठ यत्न कियाजावे यह वचन अन्यथा नहींहै ॥ ४३ ॥ हे देवो ! तुमलोग विशेषता से जानो इसभांति विना देहकीवाणी ने कहा और बडे विस्मयको प्राप्तहुए देवलोग आपसमें कहनेलगे ॥ ४४ ॥ व आकाशगतवाणी को सुनकर वे सब देव बृहस्पतिजी को आगेकर हिमालय पर्वतको

आये और वचनको बोले ॥४५॥ कि हे महाभाग, हिमालय ! तुम हमारे वचनको सुनो क्योंकि तुमही पर्वतों के स्वामीहो व यक्ष और गन्धर्वों से सेवितहो ॥ ४६ ॥ हे वाक्यविशारद ! इसलिये तुम देवोंके वचन को करने के लिये योग्यहो और हे महाभाग ! जिससे तुम सब तपस्वियो के आधारहो ॥ ४७ ॥ इसलिये हे विभो महेन्द्र समेत हम सब देव तुम्हारे समीप में प्राप्तहैं ॥ ४८ ॥ श्रीलोमशजी बोले कि इसभांति देवोंसे प्रार्थित हुये हिमवान्‌जी जोकि पर्वतो में बहुत उत्तम हैं उन्होंने विहँसकर देवोंके प्रति वचन को कहा ॥ ४९ ॥ कि इन्द्रने आगेही हम सबको असमर्थ किया इससे हमलोग तारकासुर के मारने के प्रति क्या देवोंका कार्य्य करें॥५०॥

रनाथोसि यक्षगन्धर्वसेवितः ॥ हिमालयमहाभाग शृणुष्ववचनंहिनः ॥ ४६ ॥ कर्तुमर्हसिदेवानां वाक्यंवाक्यविशार द ॥ आश्रयस्त्वंमहाभाग सर्वेषांतुतपस्विनाम् ॥ ४७ ॥ तस्मात्सर्वेवयंयाता महेन्द्रसहिताविभो ॥ ४८ ॥ लोमशउ वाच ॥ एवमभ्यर्थितोदेवैर्हिमवान्गिरिसत्तमः ॥ सतुप्रहस्यप्रोवाच वचनंत्रिदशान्प्रति ॥ ४९ ॥ अक्षमाश्चवयंसर्वे म हेन्द्रेणकृताधुना ॥ किंकुर्मस्सुरकार्यञ्च तारकस्यवधम्प्रति ॥ ५० ॥ पक्षयुक्तावयंसर्वे यदास्यामःसुरोत्तमाः ॥ तदाव यंघातयामस्तारकंसहबान्धवैः ॥ ५१ ॥ अचलोहंविपक्षश्चकिङ्कार्यंकरवाणि वः ॥तस्यतद्वचनंश्रुत्वा सर्वेदेवास्तमब्रुव न् ॥ ५२ ॥ सर्वेयूयंवयञ्चैव ह्यसमर्थावधम्प्रति ॥ तारकस्यमहाभाग एतत्कार्यंविचिन्त्यताम् ॥ ५३ ॥ येनसाध्योभवे च्छत्रुस्तारकोहिमहाबलः ॥ तदोवाचमहातेजा हिमवान्ससुरान्प्रति ॥ ५४ ॥ केनोपायेनभोदेवास्तारकंहन्तुमिच्छ थ ॥ कथयन्तुत्वराचैव कार्यंतत्तुममैवहि ॥ ५५ ॥ तदासुरैःकथितंसर्वमेतद्वाण्याचोक्तंयत्पुराकार्यहेतोः ॥ श्रुतंयदागि

हे देवोत्तमो ! जब हम सब जने पक्षोंसे संयुत होवें तब हम बांधवोंके साथ तारका सुरको मरावें ॥५१॥ और पक्षोंसे हीन नहीं चलनेवाला मैं तुम्हारा क्या कार्य्य करूं उन हिमवान्‌के उस वचनको सुनकर सब देवोंने उनसे कहा ॥५२॥ किहे महाभाग ! तुम सबजने और हमलोग तारकासुरके मारनेके प्रति असमर्थहै इससे ऐसा यह कार्य्यविचाराजावे ॥ ५३ ॥ जिससेही बडा बलवान् वैरी तारकासुर साध्यहोवे याने जीतनेके योग्यहोवे तब बड़ेतेजस्वी वह हिमवान्‌जी देवोंके प्रति बोले॥५४॥कि हे देवो ! तुम लोग किसउपायसे तारकासुरको मारनेकेलिये इच्छा करतेहो आपलोगउस कार्य्यको मुझसेभी वेगसेकहैं॥५५॥तब कार्यकेलिये आगे आकाशवाणी करके

जो कहागयाहै इससबको देवोंने कहा और जिस समय पर्वतने इस वचनको सुना उस समय हिमवान् पर्वतभी इसवाक्यको बोले ॥५६॥ कि जब बुद्धिमान्,शिवजीके पुत्र
उससे महात्मातारक दैत्य मारनेयोग्यहै तब सब देवकार्य शुभहोवे और आकाशवाणीसे कहाहुआ यह सत्यहोवेगा ॥ ५७ ॥ इस लिये आपलोगोंको वैसे बड़ायत्न करना
चाहिये जैसे महेशजी स्त्रीको ग्रहणकरें या, करतेहैं और जो कन्या उन शिवजी के योग्यहै वह इस समय शीघ्र देवोंसे भलीभांति देखीजावे ॥ ५८ ॥ तब उनके उस
वचन को सुनकर देवोंने विहँसकर हिमवान् के आगे कहा कि कार्य्यकी सिद्धिके लिये शिवके अर्थ तुमको कन्या उपजाना चाहिये ॥ ५९ ॥ क्योंकि कन्याका उपज

रिणावाक्यमेतत्प्रोवाचचेदंहिमवान्पर्वतोहि ॥ ५६ ॥ शिवस्यपुत्रेणतुधीमतायदा वध्योदैत्यस्तारकोवैमहात्मा ॥ ता
दासर्वसुरकार्यंशुभंस्याद्वाण्याचोक्तंसत्यमेतद्भवेच्च ॥ ५७ ॥ तस्मात्प्रयत्नःक्रियतांभवद्भिर्यथामहेशः कुरुतेपरिग्रहम् ॥
कन्यायथातस्यशिवस्य योग्या निरीक्ष्यतामाशुसुरैरिदानीम् ॥ ५८ ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वा प्रहस्योचुःपुरस्तदा ॥ ज
नितव्यात्वयाकन्या शिवार्थकार्यसिद्धये ॥ ५९ ॥ देवानाञ्चऋषीणाञ्च तथैवचतपस्विनाम् ॥ प्रियंबभूवचस्त्रीणां क
न्याजननमेवच ॥ ६० ॥ तदास्वपत्नींप्रोवाच हिमवानगसत्तमः ॥ यद्यपीहसुताजन्म लोकेलाघवकारणम् ॥ ६१ ॥
तथापिजनितव्याच कन्यकाचवरानने ॥ प्रहस्यमेनाप्रोवाच स्वपतिञ्चहिमालयम् ॥ ६२ ॥ यदुक्तंभवतावाक्यं श्रूयतां
मेत्वयाधुना ॥ ६३ ॥ कन्यासदादुःखकरीनृणांपते स्त्रीणांतथाशोककरीमहामते ॥ तस्माद्विमृश्यसुचिरंस्वयमेव
बुद्ध्या यथाहितंशैलपतेतदुच्यताम् ॥ ६४ ॥ हिमवांस्तदुपश्रुत्य प्रियायावचनंतदा ॥ उवाचवाक्यमेधावी परोपकर

ना देवों व ऋषियों वैसेही तपस्वियों और स्त्रियोंका भी प्यारा हुआ है ॥ ६० ॥ तब पर्वतों में सत्तम हिमवान् ने अपनी स्त्री से कहा कि यद्यपि कन्याका जन्म इस
लोकमें लघुता (छोटाई) का कारण है ॥ ६१ ॥ तोभी हे श्रेष्ठमुखि ! कन्याको उपजाना योग्यहै और मेना ने विहँसकर अपने पति हिमवान् के प्रति अधिकता से
कहा ॥ ६२ ॥ कि इस समय आपने जिस वचन को कहा इसको मैंने सुना ॥६३॥ हे महामते, पते ! पुत्री सदैव पुरुषों की दुःख करनेवालीहै और स्त्रियोंकी शोचकी
करनेवाली है हे पर्वतों के स्वामिन् ! इस लिये बहुत कालतक बुद्धिसे विचारकर जैसे हितहोवे वह आपसेही कहाजावे ॥६४॥ तब प्यारी के उस वचनको समीप से

सुनकर बुद्धिमान् हिमवान्ने परोपकारसे समेत वचनको कहा॥६५॥कि जिस जिस भांति से अन्यजनों का उपजीवन होवेगा वह वह परोपकार से संयुत जनोंको करना चाहिये ॥ ६६ ॥ इसप्रकार पर्वत से प्रेरित हुई भाग्यवती पटरानी मेनाने उस समय उदरमें आनन्दसे कन्याको धारणकिया ॥ ६७ ॥ और विशाल (बड़े) नेत्रों वाली उन श्रेष्ठसतीजी को उदर (पेट) में धारती हुई महाभाग्यवती वह मेनाजी सुन्दर आंखोंवाली होगई ॥ ६८ ॥ तब देवों ऋषियों यक्षों और किन्नरों ने बहुत भाग्यवाली मेना तथा हिमवान् पर्वत की स्तुतिको किया ॥ ६९ ॥ इस अन्तर में नामसे गिरिजानाम कन्या उत्पन्नहुई और जब सबोंकी सुखदेनेवालीदेवीजी प्रकट

णान्वितम् ॥ ६५ ॥ येनयेनप्रकारेण परेषामुपजीवनम् ॥ भविष्यतिचतत्कार्यं परोपकरणान्वितैः ॥ ६६ ॥ एवंप्रवर्तितातेन गिरिणामहिषीतदा ॥ दधारजठरेकन्यां मेनाभाग्यवतीमुदा ॥ ६७ ॥ तांविभूतींविशालाक्षीं जठरेपरमांसतीम् ॥ बभूवसामहाभागा मेनाचारुविलोचना ॥ ६८ ॥ स्तुतिश्चक्रुस्तदादेवा ऋषयोयक्षकिन्नराः ॥ मेनयाभूरिभाग्यायास्तथाहिमवतोगिरेः ॥ ६९ ॥ एतस्मिन्नन्तरेजाता गिरिजानामनामतः ॥ प्रादुर्भूतायदादेवी सर्वेषान्तुसुखप्रदा ॥ ७० ॥ देवदुन्दुभयोनेदुर्ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥ जगुर्गन्धर्वपतयस्तुष्टुवुःसिद्धचारणाः ॥ ७१ ॥ पुष्पवर्षेणमहता ववर्षुर्विबुधास्तथा ॥ तदाप्रसन्नमभवत्सर्वंत्रैलोक्यमेवच ॥ ७२ ॥यदाहिजातागिरिजामहासती तदैवदैत्याभयमाविशंस्ते ॥ प्रापामुदन्देवगणामहर्षयः सचारणाःसिद्धगणास्तथैव ॥ ७३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेमाहेश्वरखण्डान्तर्गतकेदारखण्डेशैवशास्त्रेश्रीपार्वतीप्रादुर्भावोनामविंशतितमोऽध्यायः ॥ २० ॥ * ॥ * ॥ * ॥

हुई ॥ ७० ॥ तब देवोंकी नगरियां बाजीं व अप्सरा समूहों ने नाचा व गन्धर्वश्रेष्ठों ने गाया व सिद्धों और चारणों ने स्तुति किया ॥ ७१ ॥ वैसेही देवोंने बड़ी फूलोंकी वर्षासे बरसा और उससमय सब त्रैलोक्यभी प्रसन्नहुआ ॥ ७२ ॥ जबही महासती गिरिजाजी उपजीं तबही वे दैत्य डरमें पैठे वैसेही देवसमूह महर्षि और चारणों समेत सिद्धसमूह आनन्द को प्राप्तहुये ॥ ७३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेमाहेश्वरखण्डान्तर्गतकेदारखण्डेभाषाबन्धेसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचितेश्रीपार्वतीप्रादुर्भावोनामविंशतितमोऽध्यायः ॥ २० ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

दो० । एकविंश अध्याय में शिव तप तारक जीति । कामदहन गिरिजा गहन नित चित शिवपद प्रीति ॥ श्रीलोमशजी बोले कि, जब वैसे मंगलमयी पतिव्रता सती हिमवान् के घरमें प्रकटीं और हिमवान् के घरमें आठवर्ष की हुई ॥ १ ॥ तब वीरभद्रादि सब गणोंसे सबओर घिरेहुये महेशजी हिमवान् की कन्दरा में उत्तम तपस्याको तपते थे ॥ २ ॥ उनके पल्लवों से कोमल पद कमलों को देखनेके लिये पार्वती के साथ बुद्धिमान् हिमवान्जी इस तपस्याके सेवतेहुये उन महेशजी के समीप को गये ॥ ३ ॥ और वह जब देखने को भलीभांति आये तबतक द्वारमें खडेहुये नन्दीश्वर से लौटारे गये तब सब क्षणभर वहां स्थिर हुये ॥ ४ ॥ फिर हिमवान्

लोमशउवाच ॥ वर्धमानातथासाध्वी गृहेहिमवतःशुभा ॥ अष्टवर्षायदाजाता हिमालयगृहेसती ॥ १ ॥ महेशो हिमवद्द्रोण्यांततापपरमंतपः ॥ सर्वैर्गणैःपरिवृतोवीरभद्रादिभिस्तदा ॥ २ ॥ एतत्तपोजुषाणन्तं महेशंहिमवान्ययौ ॥ तत्पादपल्लवंद्रष्टुं पार्वत्यासहबुद्धिमान् ॥ ३ ॥ यावत्समागतोद्रष्टुं नन्दिनासौनिवारितः ॥ द्वारिस्थितेनचतदा क्षण मेकंस्थिरोभवत् ॥ ४ ॥ पुनर्विज्ञापयामास नन्दिनंहिमवान्गिरिः ॥ विज्ञप्तोनन्दिनाशम्भुरचलोद्रष्टुमागतः ॥ ५ ॥ तदाकर्ण्यवचस्तस्य नन्दिनःपरमेश्वरः ॥ आनयस्वगिरिंचात्र नन्दिनंवाक्यमब्रवीत् ॥ ६ ॥ तथेतिमत्वातन्नन्दी पर्वतञ्चहिमाचलम् ॥ आनयामासचतथा शङ्करंलोकशङ्करम् ॥ ७ ॥ दृष्ट्वातदानींसकलेश्वरंप्रभुं तपोजुषाणंविनिमीलितेक्षणम् ॥ कपर्दिनञ्चन्द्रकलाविभूषितं वेदान्तवेद्यम्परमासनेस्थितम् ॥ ८ ॥ ववन्दशीर्ष्णाचतदाहिमालयः परांमुदम्प्रापदहीनसत्त्वः ॥ उवाचवाचंजगदेकमङ्गलंहिमालयोवाक्यविदांवरिष्ठः ॥ ९ ॥ सभाग्योहंमहादेव

पर्वत ने नन्दीश्वर से विज्ञापना किया और नन्दीश्वर ने शङ्करजी को जनाया कि आपको देखने के लिये हिमवान् पर्वत आयाहै ॥ ५ ॥ तब उन नन्दीके उसवचन को सुनकर परमेश्वरने नन्दीश्वर से वचनको कहा कि तुम पर्वत को यहां लावो ॥ ६ ॥ और वैसाहो उसको ऐसा मानकर नंदीश्वरजी उन हिमाचल पर्वतको लोकों के कल्याणकारी शिवजी के समीप में लाये ॥ ७ ॥ तबहीं तपस्याको सेवते हुये आंखो को मूँदे उत्तम आसनमें बैठे व वेदांतोंसे जाननेयोग्य, चन्द्रकला से विभूषित, जटाजूटधारी समर्थ सर्वेश्वरको देखकर ॥ ८ ॥ शेषजी के समान स्वरूपवाले हिमवान् ने शिरसे वन्दना किया और उत्तम आनन्द को प्राप्तहोकर वचनों के पण्डितों में

बड़े श्रेष्ठ हिमवान्ने उस समय जगत् के मुख्य मंगलकारी शिवजी के प्रति इस वचन को कहा ॥ ९ ॥ कि हे महादेव, शङ्कर ! मैं तुम्हारे प्रसाद से भाग्यसमेतहूं
और हे प्रभो ! तुम्हारे दर्शनके अर्थ प्रतिदिन आऊंगा ॥ १० ॥ हे देवेश ! आप इस कन्या के साथ आनेके लिये मुझे आज्ञा देनेको योग्यहो उनके वचनको सुनकर
देवोंके देव महेश्वरजी ने कहा ॥ ११ ॥ कि हे पर्वत ! कन्याको घरमें छोंड़कर तुम को मेरे दर्शन के अर्थ नित्यही आना चाहिये अन्यथा मेरा देखना नहीं है ॥१२॥
तब नमित कण्ठवाले पर्वतेन्द्रजी शिवजीके प्रति इस वचनको बोले कि मुझको इस कन्या के साथ क्यों नहीं आना चाहिये वह कहाजावे ॥ १३ ॥ और बिहँसते हुये

प्रसादात्तवशङ्कर ॥ प्रत्यहंचागमिष्यामि दर्शनार्थंतवप्रभो ॥ १० ॥ अनयासहदेवेश अनुज्ञांदातुमर्हसि ॥ श्रुत्वातुव
चनंतस्य देवदेवोमहेश्वरः ॥ ११ ॥ आगन्तव्यंत्वयानित्यंदर्शनार्थममाचल ॥ कुमारीञ्चगृहेस्थाप्य नान्यथाममद
र्शनम् ॥ १२ ॥ अचलःप्रत्युवाचेदं गिरीशंनतकन्धरः ॥ कस्मान्मयैतयासार्द्धं नागन्तव्यंतदुच्यताम् ॥ १३ ॥ अचल
ञ्चाब्रवीच्छम्भुः प्रहसन्वाक्यकोविदः ॥ इयंकुमारीसुश्रोणी तन्वीतेचारुभाषिणी ॥ १४ ॥ नानीतव्यामत्समीपेवा
रयामिपुनःपुनः ॥ एतच्छ्रुत्वावचस्तस्य शङ्करस्यचनिष्ठुरम् ॥ १५ ॥ तपस्विनंप्रत्युवाच भवानीगौरिकाशिवम् ॥
गौरीउवाच ॥ तपःशक्त्यान्वितःशम्भो करोषिविपुलंतपः ॥ १६ ॥ तवबुद्धिरियंजाता तपसस्तुमहात्मनः ॥ क
स्त्वंकाप्रकृतिःसूक्ष्मा भगवंस्तद्विमृश्यताम् ॥ १७ ॥ पार्वत्यास्तद्वचःश्रुत्वा महेशोवाक्यमब्रवीत् ॥ महादेवउवाच ॥

वचनों के पण्डित शङ्करजी पर्वत से कहा कि सुन्दर अंगोंवाली मनोहरवचनी अच्छी कटिवाली यह तुम्हारी कुमारी ॥ १४ ॥ मेरे समीप मे लानेयोग्य नही है मैं
बारबार बर्जताहूं व उन शङ्करजी के इस निठुर वचनको सुनकर ॥ १५ ॥ गोरेरग अंगवाली भवानीजी तपस्वी शिवजीके प्रति कहा श्रीपार्वतीजी बोली कि हे शम्भो!
तपस्याकी शक्तिसे समेत तुम बहुत बडे तपको करते हो ॥ १६ ॥ और महाव्यापक आपकी यह बुद्धि तपस्या से हुईहै हे भगवन् ! तुम कौनहो व सूक्ष्म (महीन)
प्रकृति कौनहै वह विचारसे निश्चय कियाजावे ॥ १७ ॥ श्रीपार्वतीजी के उसवचन को सुनकर महेश्वरजी ने वचन को कहा श्रीमहादेवजी बोले कि मैं श्रेष्ठ तपस्या

सेही प्रकृति (माया) को नशाताहूं ॥ १८ ॥ और हे सुन्दर भौंहोंवाली पार्वति ! प्रकृति से हीन मैं सारांशस्वरूप से टिकताहूं उससे प्रकृतिकी सिद्धिके लिये संग्रह कही नहीं करना चाहिये ॥ १९ ॥ श्रीपार्वतीजी बोलीं कि हे शङ्कर ! तुमने बड़ी वाणीसे जिस वचनको कहा वह क्या प्रकृति नहींहै तो आप कैसे उससे परेहो॥२०॥ इसको सुनकर सिद्धान्त सेही यथातथ्य कहना चाहिये और यह सब जगत् निरंतर प्रकृति से बँधाहै ॥ २१ ॥ इसलिये तुमको किसीभांति नही बोलना चाहिये और न बुलाना चाहिये हे शम्भो ! तुम जिसको सुनतेहो व जिसको खातेहो व जिसको देखतेहो वह प्रकृतिही है ॥ २२ ॥ और हे प्रभो ! इससमय वाणीके

तपसापरमेणैव प्रकृतिन्नाशयाम्यहम् ॥ १८ ॥ प्रकृत्यासहितस्सुभ्रु अहंतिष्ठामितत्त्वतः ॥ तस्माच्चप्रकृतेःसिद्धौ न कार्यःसंग्रहःक्वचित् ॥ १९ ॥ श्रीपार्वत्युवाच ॥ यदुक्तंपरयावाचा वचनंशङ्करत्वया ॥ साकिंप्रकृतिर्नैवस्यादतीतस्तां भवान्कथम् ॥ २० ॥ एतन्निशम्यवक्तव्यं तत्त्वतोहियथातथम् ॥ प्रकृत्यासर्वमेतच्च बद्धमस्तिनिरन्तरम् ॥ २१ ॥ तस्मात्त्वयानवक्तव्यं नवाच्यञ्चकथञ्चन ॥ यच्छृणोषियदश्नासि यच्चपश्यसिशङ्कर ॥ २२ ॥ वाग्वादेनचकिङ्कार्यम स्माकञ्चाधुनाप्रभो ॥ प्रकृतेःपरितोसित्वं यदिसत्यंवचस्तव ॥ २३ ॥ भवितव्यंतर्हित्वया नेत्तांमेकुरुसम्प्रति ॥ प्रहस्य भगवान्देवो गिरिजांप्रत्युवाचह ॥ २४ ॥ श्रीमहादेवउवाच ॥ प्रत्यहंकुरुमेसेवां गिरिजेसाधुभाषिणि ॥ २५ ॥ इत्येवमुक्त्वापरमात्मनातदा हिमालयंवाक्यमथोबभाषे ॥ अत्रैवसोहंतपसापरेण चरामिभूम्यांपरमार्थभावः ॥ २६ ॥ तपस्तप्तुमनुज्ञामे दातव्यापर्वताधिप ॥ अनुज्ञयाविनाकिञ्चित्तपःकर्तुंनपार्यते ॥ २७ ॥ एतच्छ्रुत्वावचस्तस्य देवदेवस्यशू

वादसे हम को क्या कार्य्यहै जो तुम प्रकृति से परेहो व तुम्हारा वचन सत्यहै ॥ २३ ॥ तो तुमको होना चाहिये और इससमय तुम मेरा दर्शन मतकरो तब ऐश्वर्य्यधारी क्रीड़ाकारी ने बिहँसकर पार्वतीजी के प्रति आनन्द से कहा ॥ २४ ॥ श्रीमहादेवजी बोले कि हे साधुभाषिणि, गिरिजे ! तुम प्रतिदिन मेरी सेवाकरो ॥ २५ ॥ उस समय ऐसा कहकर अनन्तर परमात्मा ने हिमालय से वचन को कहा कि परमार्थ भक्तिवाला वह मैं इसही भूमिमें श्रेष्ठतप से विचरताहूं ॥ २६ ॥ हे पर्वताधिप ! तपस्या को तपने (करने) के लिये मुझे आज्ञा देना चाहिये क्योंकि आयसु के विना कुछ तपस्या करने को नहीं पारपायाजाता है ॥ २७ ॥ देवोंके देव

उन त्रिशूलधारी के इस वचन को सुनकर हिमवान्जी बिहँसकर शङ्करजी से इस वचन को बोले ॥ २८ ॥ कि हे महादेवजी ! देवों दैत्यों और मनुष्यों समेत यह सब जगत् तुम्हाराही है व बहुत छोटा होकर मैं तुमको क्या देताहूं ॥ २९ ॥ इसभांति हिमवान् के वचन को सुनकर लोको या लोगोंके कल्याणकारी शङ्करजी ने उन पर्वतराजसे आदरसमेत ऐसा कहा कि तुम जावो ॥ ३० ॥ और शिवजीसे आयसु दियेहुये वह हिमवान्भी अपने घरको गये व प्रतिदिन पार्वती के साथ दर्शन में टिके ॥ ३१ ॥ ऐसेही बहुत विक्रमवाले शिवजी में उपासना से वहां उन पुत्री और पिताकाभी कुछेक काल बीतगया ॥ ३२ ॥ तब वहाही देवलोग

लिनः ॥ प्रहस्यहिमवाञ्छम्भुमिदंवचनमब्रवीत् ॥ २८ ॥ त्वदीयंहिजगत्सर्वं सदेवासुरमानुषम् ॥ किमप्यहंमहादेव तुच्छोभूत्वाददामिते ॥ २९ ॥ वचःश्रुत्वाहिमवतः शङ्करोलोकशङ्करः ॥ प्रहस्यागिरिराजन्तं प्राहयाहीतिसादरम् ॥ ३० ॥ शङ्करेणाभ्यनुज्ञातः स्वगृहंहिमवान्ययौ ॥ सार्द्धंगिरिजयासोपि प्रत्यहंदर्शनेस्थितः ॥ ३१ ॥ एवंकतिपयः कालोऽगादुपासनयातयोः ॥ सुतापित्रोश्चतत्रैव शङ्करेचोरुविक्रमे ॥ ३२ ॥ पार्वतींप्रतितत्रैव चिन्तामापेदिरेसुराः ॥ ३३ ॥ तेचिन्त्यमानाश्चसुरास्तदानीं कथंमहेशोगिरिजांसमेष्यति ॥ किङ्कार्यमद्यैववयञ्चकुर्मो बृहस्पतेतत्कथयस्व माचिरम् ॥ ३४ ॥ बृहस्पतिरुवाचेदं महेन्द्रम्प्रतिसद्वचः ॥ एवमेवत्वयाकार्यं महेन्द्रश्रूयतांतदा ॥ ३५ ॥ एतत्कार्य्यंम दनेनैवराजन्नान्यःसमर्थोभवितात्रिलोके ॥ विष्णापितंतापसानांमनोहि तस्मात्त्वयाप्रार्थनीयोहिमारः ॥ ३६ ॥ सुहृद्व चनमाकर्ण्य आह्वयन्मदनंहरिः ॥ आह्वानादाजगामाथमदनःकार्यसाधकः ॥ ३७ ॥ रत्यासमेतःसहमाधवेन सपु

पार्वतीजी के प्रति चिंताको प्राप्तभये ॥ ३३ ॥ कि महेशजी कैसे पार्वतीजी को भलीभांति प्राप्तहोवेंगे ऐसी चिन्तना करते हुये देवोंने बृहस्पति से पूंछा कि हे बृहस्पते ! हम आजही क्या कार्य्यकरें उसको तुम कहो विलम्ब मतकरो ॥ ३४ ॥ तब बृहस्पतिजीने महेन्द्रके प्रति इस अच्छे वचनको कहा कि हे महेन्द्र ! तुमको ऐसाही करना चाहिये वह सुनाजावे ॥ ३५ ॥ हे राजन् ! यह कार्य्य कामदेवसेही होवेगा अन्य कोई त्रिलोकमें समर्थ नहीं है और जिसलिये तपस्वियोंका मन उससे डुबाया गयाहै इसलिये वह कामदेव तुमसे प्रार्थनीयहै ॥ ३६ ॥ इसप्रकार गुरुके वचनको सुनकर इन्द्रजीने कामको बुलाया अनन्तर कार्य्यके सिद्ध करनेवाले कामदेवजी

बुलानेसे आये ॥ ३७ ॥ व रतिसेसमेत फूलोंके धन्वाधारी वह कामदेव वसन्तके साथ सभामें आगे आकर महेन्द्रके प्रति बहुत गर्वित लोक मनोहर वचनको बोले॥ ३८ ॥
कि हे शचीके पति इन्द्रजी ! मै क्यों बुलायागयाहूं उसको तुम मुझसे कहो और आज मैं क्या कार्य्यकरूं वह शीघ्रही कहाजावे ॥ ३९ ॥ हे इन्द्र ! मेरेस्मरणमात्रसे
ही तपस्वी विशेषतासे भ्रष्ट (पतित) हैं व तुमही मेरे वीर्य्य व पराक्रमको जानतेहो ॥ ४० ॥ और शक्तिके पुत्र पराशरजी मेरे वीर्य्यको जानते हैं और ऐसेही अन्य
भी ये बहुत से भृगुआदि ऋषिलोग भी जानते हैं॥ ४१ ॥ व बृहस्पतिजी और उत्तथ्यकी स्त्री भी जानती है उसमें भरद्वाजजी उपजे हैं वह बृहस्पति करके संस्कार से

ष्पधन्वापुरतःसभायाम् ॥ महेन्द्रमागम्यउवाचवाक्यंसुगर्वितंलोकमनोहरञ्च ॥ ३८ ॥ अहमाह्वायितःकस्मा द्ब्रूहितत्त्वंशचीपते ॥ किङ्कार्य्यंकरवाण्यद्य कथ्यतामविलम्बितुम् ॥ ३९ ॥ ममस्मरणमात्रेण विभ्रष्टाहितप स्विनः ॥ त्वमेवजानासिहरे ममवीर्य्यपराक्रमम् ॥ ४० ॥ ममवीर्य्यञ्चजानाति शक्तिपुत्रःपराशरः ॥ एवञ्चान्ये चबहवोभृग्वाद्याऋषयोह्यमी ॥ ४१ ॥ गुरुस्त्वपिहिजानाति भार्य्याचोत्तथ्यमेवहि ॥ तस्यांजातोभरद्वाजो गुरुणासं स्कृतोह्यसौ ॥ ४२ ॥ भरद्वाजमहाभाग इत्युवाचगुरुस्तदा ॥ ममवीर्य्यञ्चशौर्य्यञ्चसम्यग्जानातिवैशशी ॥ ४३ ॥ सूर्य्योपिजानातिहरेकिम्बहूक्तयाप्रजापतिः ॥ जानातिममवीर्य्यञ्चशौर्य्यञ्चैवविशेषतः ॥ ४४ ॥ क्रोधोहिममबन्धु श्चमहाबलपराक्रमः ॥ उभाभ्यान्द्रावितंविश्वंजङ्गमाजङ्गमंमहत् ॥ ४५ ॥ ब्रह्मादिस्तम्बपर्य्यन्तंप्लावितंसचराचर म् ॥ सप्रौढंवचनन्तस्यश्रुत्वाचेन्द्रोभ्यभाषत ॥ ४६ ॥ पुराकृतन्तयायच्चतन्नवाच्यङ्कथञ्चन ॥ वयंसर्वेत्वयावीरजिता

संयुत कियेगये हैं ॥ ४२ ॥ तब बृहस्पतिजीने हे महाभाग, भरद्वाज ! ऐसा कहाहै व चन्द्रमा मेरे वीर्य्य और शूरताको भलीभांति निश्चय से जानते हैं ॥ ४३ ॥ हे हरे !
सूर्य्यदेव भी जानते हैं और बहुत कहने से क्याहै ब्रह्माजी मेरे वीर्य्य व शौर्य्य को भी विशेषता से जानते हैं ॥ ४४ ॥ और बड़े बल पराक्रमवाला क्रोधही मेरा बन्धु (भाई)
है हम दोनों से यह बडा स्थावर जंगमरूप जगत चलायागया है ॥ ४५ ॥ किन्तु दोनोंने ब्रह्माको आदिमें कर गुच्छे पर्य्यन्त सचराचर जगत्को डुबायाहै इसभांति
इस कामके गर्वीले वचनको सुनकर इन्द्रजीने सामने से कहा ॥ ४६ ॥ कि तुमने आगे जिसको किया वह किसीप्रकार से नहीं कहना चाहिये व हे वीर ! छोटे रूपवाले

हम सब तुमसे जीतेगये हैं ॥ ४७ ॥ हे मदन ! तुम हम लोगोंको जीतने के लिये सदैव समर्थहीहो इससे देवोंकी कार्य्यार्थ सिद्धिके लिये तुम महेशजीके प्रति शीघ्रही जावो ॥ ४८ ॥ हे महामते ! तुम आज शंकरजीको श्रीपार्वतीजी से सहितकरो इसप्रकार देवोंसे प्रार्थित व सब जगत्के मोहनेवाले कामदेवजी ॥ ४९ ॥ अप्सराओं से समेत वेगवान् होकर चले ॥ ५० ॥ तदनन्तर फूलोंसमेत बड़े धन्वाको टंकोरकर वैसेही मनोहर बाणोंको लेकर लोकोंके एक जीतनेवाले बडे धन्वाधारी वीर रतिपति शीघ्रही गये ॥ ५१ ॥ अनन्तर उस हिमाचलमें सब ओरसे देखे जातेहुये रति और वसन्तसे समेत व महादेवजीको जीतने के चाही योधाओं में बहुत श्रेष्ठ कामदेवजी

स्समस्तुच्छरूपिणः ॥४७॥ मदनत्वंसमर्थोसि अस्माञ्जेतुंसदैवहि ॥ महेशम्प्रतिगच्छाशुसुरकार्यार्थसिद्धये ॥ ४८ ॥ पार्वत्यासहितंशम्भुंकुरुष्वाद्यमहामते ॥ एवमभ्यर्थितोदेवैर्मदनोविश्वमोहनः ॥ ४९ ॥ जगामत्वरितोभूत्वाऽप्सरोभिस्समन्वितः ॥ ५० ॥ ततोजगामाशुमहाधनुर्धरोविस्फूर्यचापंकुसुमान्वितम्महत् ॥ तथैवबाणांश्चमनोरमांश्चप्रगृह्य वीरोभुवनैकजेता ॥ ५१ ॥ तस्मिन्हिमाद्रौपरिदृश्यमानोबभौस्मरोयोधवतांवरिष्ठः ॥ रत्यासमेतोमधुमाधवेनविजेतुकामोथपिनाकपाणिम् ॥ ५२ ॥ सप्राविशत्त्वरन्नेवमप्सरोभिस्समावृतः ॥ तत्रागतातदारम्भाउर्वशीपुञ्जिकस्थला ॥ ५३ ॥ सुकेशीमिश्रकेशीचसुभगाचतिलोत्तमा ॥ अन्याश्चैवंविधायातास्सहायेमदनस्यच ॥ ५४ ॥ अप्सरसोगणैर्दृष्टा मदनेनसहैवताः ॥ अभ्युत्थानगतास्सर्वैर्मदनेनविमोहिताः ॥ ५५ ॥ भृङ्गिणाचतथारम्भामुण्डेनसहचोर्वशी ॥ मेनकावीरभद्रेणचण्डेनपुञ्जिकस्थला ॥ ५६ ॥ तिलोत्तमादयस्तत्रसंवृताश्चगणैस्सह ॥ उन्मत्तभूतैर्बहुभिस्त्रपान्त्यक्त्वामनीषि

शोभितहुये ॥ ५२ ॥ जब ऐसे वेगवान् होतेहुये अप्सराओंसे समेत उस कामदेवने प्रवेशकिया तब वहां रम्भा उर्वशी और पुञ्जिकस्थला अप्सरा आईं ॥ ५३ ॥ व सुकेशी मिश्रकेशी सुभगा तिलोत्तमा और इसभांतिकी अन्य भी अप्सरायें कामके सहाय में प्राप्तहुईं ॥ ५४ ॥ व कामके साथही उन अप्सराओंको शिवगणोंने देखा और काम से विमोहितहुये वे सब सामने उठनेसे चले ॥ ५५ ॥ व भृंगीके साथ रम्भा मुण्डके साथ उर्वशी वीरभद्रके साथ मेनका चण्डके साथ पुञ्जिकस्थला ॥ ५६ ॥ और

लज्जाको छोंड़कर उन्मत्तहुये बहुतसे बुद्धिमान् अन्य गणोंके साथ वहां तिलोत्तमादि अप्सरायें भलीभांति बरीगई याने उनने उनको अंगीकारकिया ॥ ५७ ॥ व आकाश
तल असमयमें कोकिला या कैलियों से व्याप्तहुआ व अशोक चम्पा आम जूही और ऐसेही कदम्ब ॥ ५८ ॥ व कैम या जलकदम्ब चिरौंजी कटहर राजवृक्ष (अमि-
लतास) चमेली बहुतसे नागकेशर और दाखकी लतायें अधिकतासे देखी जातीहैं ॥५९॥ वैसेही सुवर्ण केतकियां मत्त भौंरोंसे संसेवितहैं व कामके संगसे हंसियोंके साथ
कलहंस ॥ ६० ॥ हथिनियोंके साथ हाथी और मयूरियोंके साथ मोर मतवालेहुये और जिनके आगे संसर्ग से उपजेहुये गुणोंसे शिवजी कामसे हीनहुये हैं ॥ ६१ ॥ उन

भिः ॥५७॥ अकालेकोकिलाभिश्चव्याप्तमासीन्नभस्तलम् ॥ अशोकाश्चम्पकाश्चूतायूथ्यश्चैवकदम्बिकाः ॥ ५८ ॥ नीप
प्रियालुपनसाराजवृक्षाश्चजातकाः ॥ द्राक्षावल्यःप्रदृश्यन्तेबहुलानागकेशराः ॥ ५९ ॥ तथाकनककेतक्योभ्रमरैरुपसे
विताः ॥ मत्तैर्मदनसङ्गेनहंसीभिःकलहंसकाः ॥६०॥ करेणुभिर्गजाह्यासञ्छिखण्डीभिःशिखण्डिनः ॥ निष्कामोयत्पुरो
ह्यासीच्छिवःसम्पर्कजैर्गुणैः ॥ ६१॥ अस्माकंनतिमूलंहिकथञ्जातंविमृश्यच॥ शैलादोहिमहातेजानन्दीह्यमितविक्रमः ॥
६२ ॥ रक्षाविधानंकृतवान्परमेणसमाधिना ॥ निश्चलत्वङ्गताःसर्वेगणाश्चासञ्छुचिव्रताः ॥ ६३ ॥ परस्परंत्रपायुक्ता
विलोक्यासन्नवाङ्मुखाः ॥ एतस्मिन्नन्तरेतत्रमदनोहिधनुर्धरः ॥ ६४ ॥ पञ्चबाणान्समारोप्यस्वकीयेधनुषिद्विजाः ॥ त
रोश्छायांसमाश्रित्यदेवदारुमयान्तदा ॥ ६५ ॥ निरीक्ष्यशम्भुम्परमासनेस्थितंतपोजुषाणम्परमेष्ठिनाम्पतिम् ॥ गङ्गा
धरंनीलतमालकण्ठङ्कपर्दिनञ्चन्द्रकलासमेतम् ॥ ६६ ॥ भुजङ्गभोगाङ्कितसर्वगात्रंपञ्चाननंसिंहविशालविक्रमम् ॥

शिलादके पुत्र बड़े तेजस्वी अमित विक्रमवाले नन्दीश्वरजीने हमारे नवनेका कारण कैसे हुआहै ऐसे विचारकर ॥ ६२ ॥ श्रेष्ठ समाधिसे रक्षाकी विधिको किया तब पवित्र
व्रतवाले सब गण निश्चलताको प्राप्तहुये ॥ ६३ ॥ और परस्पर देखकर लज्जा से संयुत वे नीचे मुखवाले होगये इस अन्तरमें वहां धन्वाधारी कामने ॥ ६४ ॥ हे ब्रा-
ह्मणो ! अपने धन्वामें पांचो बाणोंको भलीभांति चढ़ाकर उस समय देवदारुसे हुई वृक्षोंकी छायाको आधार या सेवनकर ॥ ६५ ॥ व शंकरजीको देखकर जोकि तपस्या
को सेवतेहुये व उत्तम आसनमें टिके व श्रेष्ठस्थानमें बसनेवाले जनों के स्वामी व गंगा के धरनेवाले व श्यामतमालके समान नीलकण्ठ व जटाजूटधारी और चन्द्रमा की

कलासे समेतहै ॥ ६६ ॥ व सर्प्पोंकी देहोंसे अंकित सब अंगोंवाले पंचमुख व सिंहके समान बड़े विक्रमवान् कपूरसे गोरे परम शोभासे संयुत तपस्वी और रुद्राक्ष व विभूतिसे भूषितहैं ॥ ६७ ॥ व दुःखसे प्राप्त होने योग्य दीप्तिमान् बड़े श्रेष्ठ उग्र स्वरूप और बड़े भारी ऐश्वर्य्यधारीहैं उन शिवजीको वसन्तके साथ बाणसे बेधनेके लिये जबतक इच्छाकिया तबतक उस समय जगदम्बा पार्वतीजी ॥ ६८ ॥ जोकि सखी जनों से भलीभांति घिरीहैं व मंगलोंकी मंगलमूर्त्तिहैं वह पूजा करने के लिये सदा शिवजी के समीपमें प्राप्तहुई ॥ ६९ ॥ तबहीं दुर्लभ सुवर्ण फूलों या धतूर के फूलों की मालाको नीलकण्ठमें भलीभांति धारतीभई और चन्द्रमाकी किरणों से सुन्दरी,

कर्पूरगौरंपरयान्वितञ्चतपस्विनञ्चाक्षविभूतिभूषितम् ॥ ६७ ॥ दुरासदंदीप्तिमतांवरिष्ठंमहेशमुग्रंसहमाधवेन ॥ यावच्छिवंवेद्धुमैच्छच्छरेणतावत्तदागिरिजाविश्वमाता ॥६८॥ सखीजनैःसंवृतापूजनायसदाशिवंमङ्गलमङ्गलाय ॥ ६९ ॥ कनककुसुममालांसन्दधेनीलकण्ठे शशिकिरणमनोज्ञादुर्लभांसातदानीम् । स्मितविकसितनेत्राचारुवक्त्रंत्रिनेत्रंसकलजनजनित्रीवीक्ष्यमाणाबभूव ॥७०॥ तावद्विद्धःशरेणैवमोहनाख्येनसत्वरम् ॥ ऋतुराजसहायेनमन्मथेनमहेश्वरः ॥ ७१ ॥ विद्ध्यमानस्तदाशम्भुःशनैरुन्मील्यलोचने ॥ ददर्शगिरिजान्देवःसागरःशशिनःकलाम् ॥ ७२ ॥ चारुप्रसन्नवदनांबिम्बोष्ठींसुस्मितांसतीम् ॥ सुद्विजांसुप्रभान्तन्वींविशालवदनोत्सवाम् ॥ ७३ ॥ गौरींप्रसन्नमुद्राञ्चविश्वमोहनमोहिनीम् ॥ ययात्रिलोकंरचनाकृतम्ब्रह्मादिभिस्सह ॥ ७४ ॥ उत्पत्तिपालनविनाशकृताकृतिर्याकृत्वाग्रतःसत्त्वरजस्त

मुसक्वानसमेत विकसित आंखोंवाली वह सब जनोंकी माता मनोहरमुख त्रिनेत्र शिवजीको देखतीहुई होगई ॥ ७० ॥ तबतक वसन्त सहायक रतिनायकने मोहननामक बाणसेही महेशजी को शीघ्रही वेधनकिया ॥ ७१ ॥ तब कामके बाणसे बेधे जातेहुये क्रीड़ाकारी शिवजीने धीरेसे आंखोंको उघाड़कर चन्द्रमाकी कलाको समुद्र की नाई श्रीपार्वतीजीको देखा ॥ ७२ ॥ जोकि सुन्दर प्रसन्नमुखी कुंदुरूके फलके समान ओठोंवाली भलीभांति मुसुकाती हुई और सतीजी का अवतारहै व अच्छे दांतोंवाली अच्छी दीप्तिवाली अच्छे अंगोंवाली और बड़े भारी मुखके उत्सववाली हैं ॥ ७३ ॥ व गोरे रंग अंगवाली प्रसन्न मुद्रावाली और सब जगत्के मोहनेवालेकी मोहन करनेवाली हैं व जिन्होंने ब्रह्मादिकोंके साथ त्रिलोककी रचनाको कियाहै ॥ ७४ ॥ व जोकि आगे सत्त्व रज और तमनामक गुणोंकोकर जगत्की उत्पत्ति रक्षा और

विनाश कर्मके लिये स्वरूपवाली है व भलीभाति मोहनेवाली सकल मंगलों की मंगलमूर्ति और मुख्य या एका याने सबकी आदिभूत हैं वह देवीजी चेतन स्वरूप शिवजी से साम्हने देखीगई ॥ ७५ ॥ और लोको या लोगोंको पवित्र करनेवाली उन पर्वतकुमारीको देखकर कामसे आतुर कियेहुये क्रीड़ाकारी अविकारी महादेवजी उनके देखनेसेही मोहित होगये ॥ ७६ ॥ ऐसे देखतेहुये देवोंके देव जगतके पति वह शिवजी एकाएक विस्मयसे बहुत फूलीहुई आंखोंवालेहुये ॥ ७७ ॥ और सदाशिव-जीने उपताप समेत होतेहुये मनसे इस आगे कहे जातेहुये वाक्यको कहा कि अपने अधीन अविकार भी मैं इससे क्यों मोहितहूं ॥ ७८ ॥ व किसालिये किसभाति किस

मांसि ॥ साचेतनेनदद्दशेपुरतोहरेणसंमोहनीसकलमङ्गलमङ्गलैका ॥ ७५ ॥ तान्निरीक्ष्यभवोदेवोगिरिजांलोकपावनीम् ॥ सुमोहदर्शनात्तस्यामदनेनातुरीकृतः ॥ ७६ ॥ विस्मयोत्फुल्लनयनोबभूवसहसाशिवः ॥ एवंविलोक्यमानोसौदेवदेवो जगत्पतिः ॥७७॥ मनसादूयमानेनइदमाहसदाशिवः ॥ अनयामोहितःकस्मात्स्वतन्त्रोस्मिनिरामयः ॥ ७८ ॥ कुतःक स्माच्चकेनेदंकृतमस्तिममाप्रियम् ॥ ततोऽयलोकयच्छम्भुर्दिक्षुसर्वासुसादरम् ॥ ७९ ॥ तावद्दृष्टोदक्षिणस्यांदिशि आत्तशरासनः ॥ चक्रीकृतधनुःसज्यश्चक्रेवेद्धुंसदाशिवम् ॥ यावत्पुनःससन्धायमदनोमदनान्तकम् ॥ ८० ॥ तावद्दृष्टो महेशेनसरोषेणसवैद्विजाः ॥ ८१ ॥ निरीक्षितस्तृतीयेनचक्षुषापरमेणहि ॥ मदनस्तत्क्षणादेवज्वालामालावृतोमहा न् ॥ ८२ ॥ हाहाकारोमहानासीद्देवानान्तत्रपश्यताम् ॥ देवाऊचुः ॥ देवदेवमहादेवदेवानांवरदोभव ॥ ८३ ॥ गिरिजा

से यह मेरा अप्रिय कियागया है तदनन्तर शंकरजी सब दिशाओं में आदर समेत विशेषतासे देखनेलगे ॥ ७९ ॥ तबतक उन्होंने दक्षिण दिशामें धन्वाधारी कामको देखा जिसने सदाशिवजीको बेधने के लिये चक्रके समान कियेहुये धन्वाको प्रत्यंचा (रोदा) से समेत कियाहै ॥ ८० ॥ हे ब्राह्मणो! जबतक उस कामने फिर फूलोंके बाणसे महादेवजीको मारा तबतक क्रोधसमेत महेशजीने उसको प्रकट देखा ॥ ८१ ॥ और परमेश्वर करके तीसरे नेत्रसे देखाहुआ वह बड़ा भारी मोहनकारी कामदेव अग्निकी ज्वालाओंकी मालाओं (पंक्तियों) से घिरगया ॥ ८२ ॥ वहां देखते हुये देवोंका बड़ा हाहाकार हुआ ॥ देवलोग बोले कि, हे देवोंके देव, महादेवजी! तुम

देवोंके वरदाताहोवो ॥ ८३ ॥ इस समय हमने श्रीपार्वतीजी के सहायके अर्थ कामको पठायाहै अनन्तर आपने बड़े प्रकाशवाले उस कामको वृथा जलायाहै ॥ ८४ ॥ हे जगदेकबन्धो, शम्भो ! देवोंका कार्य्य तुम्हारेही करने योग्यहै क्योंकि हे क्रीड़ाकारिन् ! जोकि बालक बड़े तेजसे यहां इन पार्वतीजी में भलीभांति उपजेगा उससे ही सब कार्य्य होता है (होवेगा) ॥ ८५ ॥ हे प्रभो, महादेवजी ! सब देवलोग तारकासुर से बहुतही पीड़ितहैं व उस बालकके अर्थ इसका जीवितहै वैसेही तुम श्रीपार्वतीजीको ॥ ८६ ॥ स्वीकारकरो और हे महाभाग ! देवोंके कार्य्य में समर्थ होवो व तुमने आगे गजासुर से हम सब देवोंकी रक्षा कियाहै ॥ ८७॥ व तुमने विषसे निश्च-

याःसहायार्थंप्रेरितोमदनोधुना ॥ वृथात्वयाथदग्धोसौमदनोहिमहाप्रभः ॥ ८४ ॥ त्वयाहिकार्य्यंजगदेकबन्धोकार्यं सुराणाम्परमेणवर्चसा ॥ अस्यांसमुत्पत्स्यतिदेवशम्भोतेनैवसर्वंभवतीहकार्यम् ॥ ८५ ॥ तारकेणमहादेवदेवाःसम्पीडिता भृशम् ॥ तदर्थंजीवितञ्चास्यतथाचगिरिजाम्प्रभो ॥ ८६ ॥ वरयस्वमहाभागदेवकार्येभवक्षमः ॥ गजासुरात्त्वयात्राता वयंसर्वेदिवौकसः ॥ ८७ ॥ कालकूटाच्चनूनंहिरक्षिताःस्मोनचान्यथा ॥ भस्मासुराच्चसर्वेशत्वयात्रातानसंशयः ॥ ८८ ॥ मदनोयंसमायातःसुराणांकार्यसिद्धये ॥ तस्मात्त्वयारक्षणीयउपकारपरोहिनः ॥ ८९ ॥ विनातेनजगत्सर्वंनाशमेष्यति शङ्कर ॥ निष्कामत्वङ्कथंशम्भोस्वबुद्ध्याचविमृश्यताम् ॥ ९० ॥ तदोवाचरुषाविष्टोदेवान्प्रतिमहेश्वरः ॥ विनाकामेन भोदेवाभवितव्यञ्चनान्यथा ॥ ९१ ॥ यदाकामम्पुरस्कृत्यसर्वेदेवाःसवासवाः ॥ तदाभ्रष्टाहिदुःखेनव्याप्तादैन्यंसमाश्रि

यकर रक्षाकियाहै अन्यथा नहीं और हे सर्वेश्वर ! तुमने भस्मासुर से भी रक्षाकिया है इसमें संशय नहींहै ॥ ८८ ॥ यह काम, देवोंके कार्य्योंकी सिद्धिके लिये भलीभांति आयाहै व जिससे हमारे उपकारमें परायण है उससे तुमको रक्षा करना चाहिये ॥ ८९ ॥ हे शम्भो, शंकर ! सब जगत् उसके विना नाशको प्राप्तहोवेगा और अपनी बुद्धिसे विचारसमेत निश्चय कियाजावे कि निष्कामत्व कैसे होवेहै ॥ ९० ॥ तब कोपसे भरे हुये महेशजीने देवोंके प्रति कहा कि हे देवो ! कामके विना होना चाहिये अन्यथा नहीं याने कामसमेत नहीं होना चाहिये ॥ ९१ ॥ व जब इन्द्रसमेत सब देव काम को आगेकर बर्तते हैं तब दुःखसे भरे व दीनताके सेवी होकर स्थान से पतित होते

हैं ॥ ६२ ॥ व तुम मेरे वचनको जानो कि यह दुःखरूपी विना देहका काम ऐसेही नरकमें भी सब प्राणियोंको दुःखरूपी है ॥ ६३ ॥ और दुराचारी तारकासुर भी आज निष्काम (कामसे हीन) होवेगा और कामके विना मनुष्य कैसे पापको करताहै याने नहीं करताहै ॥ ६४ ॥ इसलिये मैंने सबोंकी शान्तिके कारण कामको जलायाहै व तुम सब देव और दैत्य व महर्षि ॥६५॥ और अन्य प्राणियोंसे भी तपस्यामे मन धराजावे मैंने सब जगत्को काम और क्रोधसे विहीन कियाहै ॥ ६६ ॥ हे देवो ! इसलिये सामनेसे देखाजावे कि मै सब दुःखके कारण इस पापीको आज नही जिलाताहूं ॥ ६७ ॥ उससमय उत्तम स्थानके वासी उन शम्भुजीसे ऐसा कहेहुये सब महर्षियोंने

ताः ॥ ९२ ॥ कामोहिनरकेचैवंसर्वेषांप्राणिनांध्रुवम् ॥ दुःखरूपीह्यनङ्गोयञ्जानीध्वंममभाषितम् ॥ ६३ ॥ तारकोपिदुराचारोनिष्कामोद्यभविष्यति ॥ विनाकामेनचकथंपापमाचरतेनरः ॥ ९४ ॥ तस्मात्कामोमयादग्धस्सर्वेषांशान्तिहेतवे ॥ युष्माभिश्चसुरैस्सर्वैरसुरैश्चमहर्षिभिः ॥ ६५ ॥ अन्यैःप्राणिभिर्वात्रतपसिध्रियतांमनः ॥ कामक्रोधविहीनञ्च जगत्सर्वंमयाकृतम् ॥ ९६ ॥ तस्मादेनंपापिनंदुःखमूलं नजीवयाम्यद्यसुराःप्रतीक्ष्यताम् ॥ ९७ ॥ एवमुक्तास्तदातेन शम्भुनापरमेष्ठिना ॥ ऊचुर्महर्षयस्सर्वे शङ्करंलोकशङ्करम् ॥ ६८ ॥ यदुक्तंभवताशम्भो परंश्रेयस्करंहिनः ॥ वक्ष्यामःकिन्तुदेवेश श्रूयतांचावधार्यताम् ॥ ९९ ॥ यथासृष्टमिदंविश्वं तथाकामोह्यधिष्ठितः ॥ विनाकामेनचकथं सृष्टिरेषाभविष्यति ॥ १०० ॥ कामात्मिकमिदंविश्वं निष्कामोहिभवान्परः ॥ तस्मात्प्रकृत्यारचितं कामक्रोधसमन्वितम् ॥ १ ॥ गुणत्रयविभागेन साहङ्कारंगुणान्वितम् ॥ तत्सर्वंकामरूपञ्च सकामःकेनहन्यते ॥ २ ॥ धर्मार्थकाममोक्षार्था

लोको या लोगोंके कल्याणकारी शंकरजीसे कहा ॥ ९८ ॥ कि हे शम्भो ! आपने जिसवचनको कहा वह हमारा सुखकारी या मंगलकारी और बहुत श्रेष्ठहै किन्तु हे देवेश ! हमलोग कहेंगे वह सुनाजावे व समझाजावे ॥ ६६ ॥ कि जैसे यह सब जगत् सिरजागयाहै वैसेही काम अधिकतासे टिकाहै और कामके विना यह सृष्टि कैसे होवेगी ॥ १०० ॥ यह विश्व कामात्मक (काममय) है और काम से हीन आपही सब से परेहो इस लिये प्रकृति से रचित (बनाया) हुआ जो कि काम व क्रोधसे समेतहै ॥ १ ॥ व तीनंगुणों के विभागसे अहङ्कार समेत और गुणोंसे संयुतहै वह सब कामरूप है इस लिये वह काम किससे माराजाताहै ॥ २ ॥ हे महादेवजी ! जिसने धर्म अर्थ

काम और मोक्षनामक चारों अर्थोंको एकरूपताको प्राप्त किया वह काम किनसे नहीं मानाजाताहै ॥ ३ ॥ व ब्रह्मासे लगा स्थावरादि तक सब जगत् जिससे बनायागया है उस दुर्लंघ्य कामको आपनेही वैसे भलीभाति जलाया है ॥ ४ ॥ जिस लिये सब जगत् कामसे हराजाता है व कामसे सबओर पालाजाताहै और कामसेही विश्व उपजायाजाता है इस लिये कामही बड़ा बलवान् है ॥ ५ ॥ हे महादेवजी ! जिसलिये वह क्रोध बड़ा उग्र होताहै या आपमें है कि जिसने तुम को वशकिया है इससे तुम कामको भलीभांति बोधन करनेके लिये योग्यहो ॥ ६ ॥ हे क्रीड़ाकारिन् ! तुमसे सिद्धकिया हुआ बडा बलवान् समर्थ काम समर्थ होने

श्चत्वारोह्येकरूपताम् ॥ नीतायेनमहादेव सकामःकैर्नमन्यते ॥ ३ ॥ कथंत्वयाहिसंदग्धः कामोहिदुरतिक्रमः ॥ येनसंपादितंविश्वमाब्रह्मस्थावरादिकम् ॥ ४ ॥ कामेनह्रियतेविश्वं कामेनपरिपाल्यते ॥ कामेनोत्पाद्यतेविश्वं तस्मात्कामो महाबलः ॥५॥ यस्मात्क्रोधोभवत्युग्रो येनत्वञ्चवशीकृतः ॥ तस्मात्काममंमहादेवसम्बोधयितुमर्हसि ॥ ६ ॥ त्वयासम्पादितोदेव मदनोहिमहाबलः ॥ समर्थोहिसमर्थत्वात्तत्सामर्थ्यंकरिष्यति ॥ ७ ॥ ऋषिभिश्चैवमुक्तोपि द्विगुणंरोषमाश्रितः ॥ चक्षुषाहितृतीयेन दग्धकामोहरस्तदा ॥ ८ ॥ मुनिभिश्चारणैःसिद्धगणैश्चापिसदाशिवः ॥ स्तुतश्चवन्दितोरुद्रो पिनाकीवृषवाहनः ॥९॥ मदनञ्चतथादग्धं त्यक्त्वातम्पर्वतंरुषा ॥ हिमालयाभिधंसद्यस्तिरोधानगतोभवत् ॥ १० ॥ तिरोधानगतन्देवं वीक्ष्यदग्ध्वाचमन्मथम् ॥ सकोकिलंसचूतञ्च सभृङ्गंसहचम्पकम् ॥ ११ ॥ तथैवदग्धंमदनंविलोक्य रत्याविलापञ्चतदानगेन्द्र ॥ सबाष्पकण्ठीमनसेत्यचिन्तयत्कथंसरुद्रोवशगोभवेन्मे ॥ १२ ॥ विमृश्यसैवंगि

से उस सामर्थ्य को करेगा ॥ ७ ॥ उस समय इसभाति ऋषियों से कहे हुये व तीसरे नेत्रसेही कामके जलानेवाले महादेवजी दूने कोपमें टिके ॥ ८ ॥ व मुनि चारण और सिद्धसमूहों मे भी प्रशसित व वन्दित पिनाकधन्वाधारी वृषभ (बैल) सवारीकारी भवरोगहारी सदाशिवजी ॥ ९ ॥ क्रोधसे वैसे जलायेहुये काम को और हिमालय नाम उस पर्वतको त्यागकर शीघ्रही अन्तर्द्धानको प्राप्तहोगये ॥ १० ॥ व कोकिलाओं समेत आबों समेत भौंरों समेत और चम्पोंसमेत कामको जलाकर अन्तर्द्धान गतहुये महादेवजी को देखकर ॥ ११ ॥ और वैसेही कामको जला देखकर रतिके रोदनको देखकर उससमय उन पर्वतेन्द्रकुमारी श्रीपार्वतीजी

ने आंसुवों समेत कण्ठवाली होकर मनसे ऐसी चिन्तना किया कि वह रुद्रजी कैसे मेरे वशमें प्राप्त होवें ॥ १२ ॥ और वहां तबहीं इसभांति विचारकर तथा भलीभांति मोहको प्राप्तहोती व रोतीहुई बडी सुन्दरी रतिको देखकर मोहित हुई मनस्विनी पार्वतीजी बोलीं ॥ १३ ॥ कि हे सखि ! तुम विषाद को मतकरो मै कामको जिवाऊंगी व हे विशालनयनि ! मै तुम्हारे अर्थ तपस्या से उनको पूजा करतीहूं ॥ १४ ॥ जोकि रुद्रजी देवोंके देव व विरूप नेत्रोंवाले और जगत् के गुरुहैं हे सुश्रोणि ! तुम चिन्ताको मतकरो मै कामको तृप्तकरतीहूं ॥ १५ ॥ इसप्रकार विना परिश्रम श्रीपार्वती जी से आश्वासित (समझाई) हुई अच्छे मध्यभाग (कटि) वाली

रिजातदानीं संमुह्यतीतत्रतथावभाषे ॥ संमुह्यमानांरुदतींनिरीक्ष्य रतिंमहारूपवतींमनस्विनी ॥ १३ ॥ माविषादंकुरुसखि मदनंजीवयाम्यहम् ॥ त्वदर्थंभोविशालाक्षि तपसाराधयाम्यहम् ॥ १४ ॥ हरंरुद्रंविरूपाक्षं देवदेवंजगद्गुरुम् ॥ माचिन्तांकुरुसुश्रोणि मदनंतर्पयाम्यहम् ॥ १५ ॥ एवमाश्वासितासाध्वी पार्वत्यारतिरञ्जसा ॥ तपस्ततापसुमहत्पतिंप्राप्तुंसुमध्यमा ॥ १६ ॥ मदनोयत्रदग्धश्च रुद्रेणपरमेष्ठिना ॥ तप्यमानांरतिंतत्र नारदोददृशेतदा ॥ १७ ॥ उपाचागत्यसहसा भामिनींरतिमान्तिके ॥ कस्यासित्वंविशालाक्षि केनवातप्यतेतपः ॥ १८ ॥ तरुणीरूपसम्पन्ना सौभाग्येनपरेणहि ॥ नारदस्यवचःश्रुत्वा रोषेणमहतातदा ॥ १९ ॥ उवाचवाक्यंमधुरं किञ्चिन्निष्ठुरमेवच ॥ रतिरुवाच ॥ नारदोसिमयाज्ञातः कुमारस्त्वन्नसंशयः ॥ २० ॥ परस्त्रियादर्शनंत्वं कर्तुमिच्छसिसुव्रत ॥ यथागतेनमार्गेण गच्छत्वंमा

पतिव्रता रतिने पतिको प्राप्तहोनेके लिये बहुतभारी तपस्या को तपा (किया) ॥१६॥ और उत्तमस्थान के वासी रुद्रजी ने जहां कामको जलाया वहां आकर नारदजी ने उससमय तपस्या करती हुई रतिको देखा ॥ १७ ॥ व एकाएक समीप में आकर भामिनी रतिसे कहा कि हे विशालनेत्रे ! तुम किसकी स्त्रीहो और किसलिये तपस्या तपी (की) जाती है ॥१८॥ क्योंकि रूप (सुन्दरता) से सम्पन्न व युवापनवाली तुम श्रेष्ठ सौभाग्य से संयुतहो तब नारदके वचनको सुनकर बड़े क्रोधसे ॥१९॥ रतिने कुछेक निठुर व मधुर वचनको भी कहा रतिबोली कि तुम नारदहो मुझ से जानेगये हो कि कुमार (कुँवार) हो इसमें संशय नहीं है ॥ २० ॥ हे सुव्रत ! तुम पराई स्त्रीका

देखना चाहतेहो और यथागत गलीसे चलेजावो विलम्बके लिये मतहोवो ॥२१॥ हे वटो ! तुम कुछ नहीं जानते हो केवल बडे कलह करानेवाले हो जोकि क्षुद्र (छोटे) ब्राह्मण व्यसनी और परस्त्रीके चाहीहैं ॥ २२ ॥ वं अकर्ममे रतहुये कठोरहै उनके बीचमें तुम अग्रणी (मुख्य) हो ऐसे रतिसे बहुत घुड़केहुये मुनिसत्तम नारदजी ॥ २३ ॥ आपही चलेगये जोकि देवोंमें ऋषि व अमितदीप्तिवाले हैं वह उससमय ज्ञाननेत्र से सबओर देखते हुये नारदजी ॥ २४ ॥ वेगसेही दैत्यश्रेष्ठ शम्बरासुरके समीपगये और ऐसेही दैत्यराज के लिये जलाये हुये कामको कहा ॥ २५ ॥ जोकि क्रोधसमेत रुद्रजी से जलायागया है उसकी स्त्री अच्छे मनवाली है

विलम्बितुम् ॥ २१ ॥ वटोनकिञ्चिज्ज्जानासि केवलंकलिकोमहान् ॥ परस्त्रीकामुकाःक्षुद्रा विप्राव्यसनिनश्चये ॥ २२ ॥ तथाह्यकर्मणिस्तब्धास्तेषांमध्येत्वमग्रणीः ॥ एवंनिर्भर्त्सितोरत्या नारदोमुनिसत्तमः ॥ २३ ॥ स्वयंजगामचाकाशं देवर्षिरमितद्युतिः ॥ निरीक्ष्यमाणोहितदा सर्वतोज्ञानचक्षुषा ॥ २४ ॥ जगामत्वरितेनैव शम्बरन्दैत्यपुङ्गवम् ॥ शशंस दैत्यराजाय दग्धंमदनमेवच ॥ २५ ॥ रुद्रेणक्रोधयुक्तेन तस्यभार्यामनस्विनी ॥ तामानयमहाभाग भार्यांकुरुमहाबल ॥ २६ ॥ अतीवरूपसम्पन्ना याआनीतास्त्वयास्त्रियः ॥ तासांमध्येरूपवती रतिस्सामदनप्रिया ॥ २७ ॥ एवमाकर्ण्यवचनं देवर्षेर्भावितात्मनः ॥ जगामसहसातत्र यत्रास्तेसासुशोभना ॥ २८ ॥ तान्दृष्ट्वातुविशालाक्षीं रतिंमदनमोहिनीम् ॥ उवाचप्रहसन्वाक्यं शम्बरोदेवसङ्कटः ॥ २९ ॥ एहितन्विमयासार्द्धं राज्यभोगान्यथेष्टतः ॥ भुङ्क्ष्वदेविप्रसादान्मे तपसाकिम्प्रयोजनम् ॥ ३० ॥ एवमुक्तातदातेन शम्बरेणमहात्मना ॥ उवाचतन्वीमधुरं महिषीमदनस्यसा ॥ ३१ ॥

हे महाभाग, महाबल ! तुम उसको लावो व अपनी स्त्रीकरो ॥ २६ ॥ क्योंकि अतिशय सुन्दरता से सम्पन्न जे स्त्रियां तुमसे आनीगई हैं उनके बीचमें कामकी प्यारी वह रति रूपवती है ॥ २७ ॥ इसभांति भक्तियुक्त चित्तवाले नारदजीके वचनको सुनकर वह एकाएक वहां गया जहां वह सुशोभना रति टिकी या टिकती है ॥ २८ ॥ और कामके मोहनेवाली विशालनयनी उस रतिको देखकर बिहँसतेहुये देवसङ्कटदायक शम्बरने वचनको कहाकि ॥ २९ ॥ हे तन्वि, देवि ! तुम यहां आवो मेरी प्रसन्नतासे मेरेसाथ यथेष्ट (मनमाने) राज्यभोगों को भोगकरो और तपस्यासे क्या प्रयोजन है ॥ ३० ॥ इसप्रकार उस महात्मा शम्बरासुर से कही हुई वह अच्छे

अंगोंवाली कामकी पटरानी मधुर वचनको बोली कि ॥ ३१ ॥ हे महाबाहो ! मैं विधवाहूं इससे तुम ऐसा कहने को योग्य नहींहो व दैत्योंके लक्षणोंसे सबओर घिरेहुये वही तुम राजाहो ॥ ३२ ॥ और इसभांति मनसेही उसकी अजयता को विचारकर मुझको मत छुवो क्योंकि हे मूढ़ ! तुम मेरे भलीभांति छूनेसेही ॥ ३३ ॥ व समीप सम्बन्धसे जलेहुये हो मेरा वचन अन्यथा नहींहै तब बहुत हँसतेहुयेकी नाईं बड़े तेजस्वी शम्बरासुर ने कहा कि ॥ ३४ ॥ हे भामिनि ! तुम बहुती भयानक बातोंसे मुझको डरवाती हो परन्तु बहुत कहने से क्या प्रयोजन है मेरे साथ शीघ्रहीं चलो ॥ ३५ ॥ उस समय ऐसा कहतेहुये शम्बरने उस अच्छे अंगवाली मनस्विनी को

विधवाहंमहाबाहो नैवंभाषितुमर्हसि ॥ राजात्वंसहिदैत्यानां लक्षणैःपरिवारितः ॥ ३२ ॥ विमृश्यमनसाचैवमजय त्वंतुतस्यवै ॥ मास्पृशत्वञ्चरेमूढ ममसंस्पर्शनेनवै ॥ ३३ ॥ सम्पर्केणचदग्धोसि नान्यथाममभाषितम् ॥ तदोवाच महातेजाः शम्बरःप्रहसन्निव ॥ ३४ ॥ विभीषिकाभिर्बहुभिर्माभेषयसिभामिनि ॥ गच्छशीघ्रंमयासार्द्धं बहूक्त्याकिम्प्र योजनम् ॥ ३५ ॥ इत्युच्यमानेनतदा नीतासाप्रसभंतथा ॥ स्वपुरंपरमंतन्वी शम्बरेणमनस्विनी ॥ ३६ ॥ कृतामहानसे ध्यक्षा नाम्नामायावतीतिच ॥ ऋषयऊचुः ॥ पार्वत्याधिकृतंसर्वं मदनानयनम्प्रति ॥ ३७ ॥ शम्बरेणहृतातन्वी मदन स्यप्रियासती ॥ अतऊर्द्ध्वंतथासूत किञ्जातंतत्रवर्ण्यताम् ॥ ३८ ॥ सूतउवाच ॥ गतंयदाशिवंदृष्ट्वा दग्ध्वामदनमोज सा ॥ पार्वतीतपसायुक्ता स्थितातत्रैवभामिनी ॥ ३९ ॥ मात्रापित्रातदातन्वी पार्वतीसानिवारिता ॥ बालेएहिगृहंशीघ्र माश्रमंकर्तुमर्हसि ॥ ४० ॥ उक्ताताभ्यांतदासाध्वी गिरिजावाक्यमब्रवीत् ॥ श्रीपार्वत्युवाच ॥ नागच्छामिगृहंमातस्ता

वैसे हठसे अपने श्रेष्ठपुर में प्राप्त किया ॥ ३६ ॥ और मायावती ऐसे नामसे रसोई की स्वामिनी किया ऋषिलोग बोले कि, कामके लानेके प्रति पार्वतीजी से सब अ-धिक कियागया ॥ ३७ ॥ और अच्छे अंगोंवाली कामकी प्यारी पतिव्रता रतिको शम्बर ने हरलिया हे सूतजी ! इसके उपरान्त वहां क्या हुआ वह वैसेही कहाजावे ॥ ३८ ॥ श्रीसूतजी बोले कि, जब तेज से कामको जलाकर गयेहुये शिवजी को देखकर तपस्या से संयुत भामिनी पार्वतीजी वहांही टिकीं ॥ ३९ ॥ तब माता और पिताने अच्छे अंगोंवाली उन पार्वतीजीको निवारण किया कि, हे पुत्रि ! तुम शीघ्रही घरको आवो और परिश्रम करनेको मत योग्यहोवो ॥ ४० ॥ उससमय उनसे कहीहुई

श्रीशैलकुमारी ने वचन को कहा श्रीपार्वतीजी बोलीं कि, हे मातः! हे तात! मैं घर को नहीं आतीहूं तुम उसको स्वरूप या सिद्धान्तसे सुनो ॥ ४१ ॥ जो वचन धर्मार्थ से संयुत है और जिससे तुम संतोष को प्राप्तहोवोगे कि शम्भुजी परोंसे भी परेहैं जिनने बड़े बलवान् को जलाया है ॥ ४२ ॥ जोकि काम मेरे समीप में था इससे मैं उन शिवको यहांही लाऊंगी या लातीहूं और जिस लिये घरकी इच्छा करते हुये प्राणियोंको शङ्करजी दुर्लभहैं ॥ ४३ ॥ उस लिये मैं घरको नही आतीहूं हे मातः! यहसब विचारसमेत निश्चय कियाजावे जब बडेतेजस्वी हिमवान्जीने अपनी कन्या के प्रति कहा कि ॥ ४४ ॥ जिससे सब देवोंसे नमस्कार कियेहुये साक्षात् शिवजी

ततच्छृणुतत्त्वतः ॥४१॥ वाक्यंधर्मार्थसंयुक्तं येनत्वंतोषमेष्यसि ॥ शम्भुःपरेषांपरमो दग्धोयेनमहाबलः॥ ४२ ॥ मदनोममसान्निध्ये ह्यानयेत्रैवतंशिवम् ॥ दुर्लभोहितदाशम्भुः प्राणिनांगृहमिच्छताम् ॥ ४३ ॥ नागच्छामिगृहंमातस्तस्मात्सर्वंविमृश्यताम् ॥ यदोवाचमहातेजा हिमवान्स्वसुताम्प्रति ॥ ४४ ॥ दुराराध्यःशिवःसाक्षात्सर्वदेवनमस्कृतः ॥ त्वयाप्राप्तुमशक्योहि तस्मात्त्वंस्वगृहंव्रज ॥ ४५ ॥ साबाष्पपूरितेनैव कण्ठेनस्वसुताम्प्रति ॥ उवाचमेनातन्वङ्गी एहिशीघ्रंगृहंव्रज ॥ ४६ ॥ तदाप्रहस्यचोवाच मातरम्प्रतिभामिनी ॥ प्रतिज्ञांशृणुमेमातस्तपसापरमेणहि ॥ ४७॥ अत्रैवतंसमानीय वरयामिविचक्षणम् ॥ नाशयामिचरुद्रस्य रुद्रत्वंवरवर्णिनि ॥ ४८ ॥ सुखरूपंकरिष्यामिह्यनङ्गेनसमन्वितम् ॥ प्रतिज्ञानमिदंताभ्यां विसर्ज्यचसुमध्यमा ॥ ४९ ॥ तपसोग्रेणमहता गिरिजाचमनस्विनी ॥ शम्भोरारा

दुःखसे उपासना करनेयोग्यहैं व तुमसे प्राप्त करनेके लिये नहीं योग्यहैं उससे तुम अपने घरको चलो ॥४५॥ व अच्छे अधिक सूक्ष्म सुन्दर अंगोंवाली उन मैनाजीने बाफ से पूरित कण्ठसेही अपनी कन्याके प्रतिकहा कि तुम आवो शीघ्रही घरको जावो ॥ ४६ ॥ और तब भामिनी श्रीपार्वतीजी बहुत हँसकर माताकेप्रति बोलीं कि हे मातः! तुम मेरी प्रतिज्ञाको सुनो कि मैं अधिक उत्तम तपस्या सेही ॥ ४७ ॥ उन विज्ञानी को यहांही भलीभांति लाकर बरूंगी या बरतीहूं व हे वरवर्णिनि! रुद्रजीकी रुद्रपनेको नशाती हूं ॥ ४८ ॥ और कामसे समेत अच्छे स्वरूपवाला करूंगी इस प्रतिज्ञाको उनके लिये त्यागकर याने उनसे कहकर सुन्दरे मध्यभाग (कटि) वाली॥४९॥

मनस्विनी पार्वतीजी ने बड़ी उग्र तपस्या और श्रेष्ठ समाधि (योग) से शिवजीकी पूजाकिया ॥ ५० ॥ व जया और विजया ऐसेही माधवी व सुलोचना और सुश्रुता व श्रुता और वैसेही अन्यसखी शुकी ॥ ५१ ॥ व प्रम्लोचा सुभगा श्यामा चित्रांगी वारुणी सुधा ये और अन्यभी जे बहुतसी सखियां हैं उन्होंने उससमय पार्वतीजी की ॥ ५२ ॥ उपासना (सेवा) किया व तन्वी, वेदगर्भा, भामिनी और चारुदासिनीभी परम उग्रतपस्यासे विचरती हुईथी ॥ ५३ ॥ व परमात्मा रुद्रजी ने जहां कामको जलाया वहां वेदीको बनाकर यह पार्वतीजी उसपर भलीभांति टिकीं ॥ ५४ ॥ और वह फलों व अन्नको भी त्यागकर पत्तोंकी खानेवाली हुई और उसके

धनंचक्रे परमेणसमाधिना ॥ ५० ॥ जयाचविजयाचैव माधवीचसुलोचना ॥ सुश्रुताचश्रुताचैव तथैवचशुकीपरा ॥ ५१ ॥ प्रम्लोचासुभगाश्यामा चित्राङ्गीवारुणीसुधा ॥ एताश्चान्याश्चबह्व्यस्तुसख्यस्तांगिरिजांतदा ॥ ५२ ॥ उपासांचक्रिरेतन्वीवेदगर्भाचभामिनी ॥ तपसापरमोग्रेण चरन्तीचारुदासिनी ॥ ५३ ॥ मदनोयत्रदग्धश्च रुद्रेणपरमात्मना ॥ तत्रेयंवेदिकांकृत्वा तस्योपरितुसंस्थिता ॥ ५४ ॥ त्यक्त्वाफलानिचान्नंवा पर्णादाह्यभवच्चसा ॥ ततःसार्द्राणिपत्राणित्यक्त्वाशुष्कानिचाददे ॥ ५५ ॥ शुष्कानिचैवपर्णानि नाशितानितयायदा ॥ अपर्णेतिचविख्याताबभूवतनुमध्यमा ॥ ५६ ॥ वायुनोपरतायासाह्यम्बुपानादनन्तरम् ॥ कालक्रमेणमहता बभूवगिरिजासती ॥ ५७ ॥ एकाङ्गुष्ठेनचतदादधारचनिजंवपुः ॥ एवमुग्रेणतपसापरमाराधनंसती ॥ ५८ ॥ चकारपरमांनिष्ठांशम्भोःप्रीत्यर्थमेवच ॥ एवम्भावंसमाश्रित्यजगन्मङ्गलमङ्गला ॥ ५९ ॥ तुष्ट्यर्थञ्चमहेशस्यततापपरमन्तपः ॥ एवंदिव्यंसहस्राणिबहूनिचततापवै ॥ ६० ॥ हि

बाद उन्होंने रसीले ओदे पत्तोंको छोड़कर सूखे पत्तोंको ग्रहण किया ॥ ५५ ॥ और जब उन्होंने सूखेभी पत्तोंको नहीं खाया तब पतली मध्यदेहवाली वह अपर्णा ऐसा विशेष से कहीगई याने प्रसिद्ध भई ॥ ५६ ॥ और जो पानी पीने के अनन्तर वायु भोजन से निवृत्त हुई वह गिरिजा बड़े काल क्रम से सत्त्ववाली होगई ॥ ५७ ॥ तब सतीजी ने एक अंगुठा से अपनी देहको धरलिया और ऐसेही उग्र तपस्या से श्रेष्ठ उपासना ॥ ५८ ॥ व उत्तम भक्तिको शंकरजी की प्रीति के अर्थही किया इस भांति के भावको अच्छे प्रकार से आधारकर जगत् के मङ्गलो की मंगल मूर्ति देवीजी ने ॥ ५९ ॥ महेशजी के सन्तोष के अर्थ श्रेष्ठ तपस्या को तपा (किया) और जब

ऐसेही बहुतसी देवोंकी हजारों वर्षोंतक उन्होंने प्रसिद्ध तपस्या किया ॥ ६० ॥ तब स्त्री समेत और पुत्रोंसमेत हिमवान्ने वहां आकर निश्चय की हुई महासती श्रीपार्वती जी से कहा ॥ ६१ ॥ कि हे महादेवि, भामिनि, बाले ! तुम इस तपसे मत खेदकरो रुद्रजी कहा देखे जाते है क्योंकि वह वैरागी है इसमें संशय नहीं है ॥ ६२ ॥ हे तरुणे, पुत्रि ! अच्छे अंगोवाली तुम तपस्यासे बहुत मोहित होवोगी मै तुम्हारे प्रति सत्य कहताहूं संदेह नही है ॥ ६३ ॥ हे वरवर्णिनि ! इस लिये तुम शीघ्रही उठो और अपने घरको आवो हे अपापे ! जिन रुद्रजीने काम को जलादिया है उनसे तुमको क्या है ॥ ६४ ॥ और जोकि सदैव विकारोंसे हीनहै उनको तुम कैसे प्रार्थना

मालयस्तदागत्यपार्वतींकृतनिश्चयाम् ॥ सभार्यःससुतश्चैवमुवाचतुमहासतीम् ॥ ६१ ॥ माखिद्यताम्महादेवि तपसाने नभामिनि ॥ क्वरुद्रोदृश्यतेबाले विरक्तोनात्रसंशयः ॥ ६२ ॥ त्वंतन्वीतरुणेबाले तपसाचविमोहिता ॥ भविष्यतिनसन्देहः सत्यम्प्रतिवदामिते ॥ ६३ ॥ तस्मादुत्तिष्ठएह्याशुस्वगृहंवरवर्णिनि ॥ किन्तेनतवरुद्रेण येनदग्धःस्मरोनघे ॥ ६४ ॥ यस्सदानिर्विकारीच तङ्कथंप्रार्थयिष्यसि ॥ गगनस्थोयदाचन्द्रोग्रहीतुंनहिशक्यते ॥ ६५ ॥ तथैवदुर्गमंशम्भुञ्जानीहित्वंशुचिस्मिते ॥ तथैवमेनयाचोक्ता तथासह्याद्रिणासती ॥ ६६ ॥ मेरुणामन्दरेणैवमैनाकेनतथैवच ॥ एभिरुक्तातदातन्वीपार्वतीतपसिस्थिता ॥ ६७ ॥ उवाचप्रहसन्त्येव हिमवन्तंशुचिस्मिता ॥ पुराप्रोक्तम्मयाताताम्बकिंविस्मृतन्त्वया ॥ ६८ ॥ अधुनैवप्रतिज्ञाञ्चश्रृणुध्वंममबान्धवाः ॥ विरक्तोसौम्महादेवोमदनोयेनवैहतः ॥ ६९ ॥ तंतोषयामितपसाशङ्करंलोक

करतीहो या करोगी जैसे आकाश में टिका हुआ चन्द्रमा ग्रहण करने (पकडने) के लिये नही योग्य होताहै ॥ ६५ ॥ हे पवित्रमन्दहसनि ! वैसेही तुम शंकरजीको दुर्गम जानो और वैसेही मेना तथा सह्य गिरि से भी सती जी ऐसेही कही गई ॥ ६६ ॥ तब मेरु मन्दर वैसेही मैनाक इन सबोंसेभी कही हुई तपमें टिकी अच्छे अंगोंवाली पार्वतीजी ॥ ६७ ॥ जो कि बिहँसती हुई पवित्र मुसकानवाली हैं उन्होंने हिमवान् से कहा कि हे तात ! हे मातः ! आगे मैंने जिस वचन को कहा है वह क्या तुमको बिसर गया है ॥ ६८ ॥ और हे बांधवो ! इस समय भी मेरी प्रतिज्ञाको सुनो कि जिन्होंने कामको माराहै वह महादेवजी विरक्त (वैरागी,संसार स्नेह से हीन) है ॥ ६९ ॥

उन लोककल्याणकारी शङ्करजी को मैं तपस्या से सन्तुष्ट करूंगी और तुम सबजने जावो इसमें विचार नहीं करना चाहिये ॥ ७० ॥ जिन्होंने कामको जलाया और
जिन्होंने पर्वतके वनको जलाया है उनकोही मैं केवल तपस्यासे निश्चयकर यहाही लाऊंगी (लातीहूं) ॥ ७१ ॥ क्योंकि सदाशिवजी बडेभारी तपस्या के बलसेही भली
भांति सेवने योग्यहैं हे महाभाग! तुम जानो मैं सत्य सत्य कहतीहू ॥ ७२ ॥ तब थोड़े अक्षर बोलनेवाली उन पर्वतराजकुमारीने माता मेना और ऐसेही पिता हिमवान्
और वैसेही मेरु व मन्दराचल से भी ऐसा कहा ॥ ७३ ॥ और उससमय विशेष से चर्चा करतेहुये वे पर्वत उसी यथागत गलीसे चलेगये व उन सबोंके जातेही स-

शङ्करम् ॥ सर्वेयूयन्तुगच्छध्वंनात्रकार्याविचारणा ॥ ७० ॥ दग्धोहिमदनोयेनयेनदग्धङ्गिरेर्वनम् ॥ तमानयामिचात्रैव
तपसाकेवलेनहि ॥ ७१ ॥ तपोबलेनमहता सुसेव्योहिसदाशिवः ॥ जानीध्वंहिमहाभाग सत्यंसत्यंवदाम्यहम् ॥ ७२ ॥
एवंबभाषेजननीन्तदानीं हिमालयञ्चैवतथैवमेनाम् ॥ तथैवमेरुम्मितभाषिणीतथा सामन्दरम्पर्वतराजकन्यका ॥
७३ ॥ जग्मुस्तदातेनयथाहिपर्वतायथागतेनापिविचर्चमाणाः ॥ गतेषुतेषुसर्वेषु सखिभिःपरिवारिताः ॥ ७४ ॥ तत्रैवच
तपस्तेपे परमार्थासतीयदा ॥ तपसातेनमहता तप्तमासीच्चराचरम् ॥ ७५ ॥ तदासुरासुरास्सर्वे ब्रह्माणंशरणङ्गताः ॥ दे
वाऊचुः ॥ त्वयासृष्टमिदंसर्वंजगदेतच्चराचरम् ॥ ७६ ॥ त्रातुमर्हसिदेवान्नस्त्वदन्योनोपपद्यते ॥ अस्माकंरक्षणेशक्तइत्या
कर्ण्यवचस्ततः ॥ ७७ ॥ अचिन्तयत्तदाब्रह्मा मनसापरमेणहि ॥ गिरिजातपसोद्भूतं दावाग्निम्परमाद्भुतम् ॥ ७८ ॥ ज्ञा
त्वाब्रह्माजगामाशु क्षीराब्धिम्परमाद्भुते ॥ तत्रसुप्तंसुपर्य्यङ्केशेषाख्येचातिशोभने ॥ ७९ ॥ लक्ष्म्याःपादोपयुगलेसेव्यमा

खियोंसे सब ओर घिरीहुई ॥ ७४ ॥ उत्तम अर्थवाली सतीजीने जिस समय वहांही तपस्या को तपा (किया) और उस बड़ेभारी तपसे स्थावर जङ्गम जगत् तप्तहुआ ॥
७५ ॥ उस समय सब देव और दैत्यादि लोग ब्रह्माजीके शरणकोगये देव बोले कि तुमने इस सब चराचर जगत् को सिरजाहै ॥ ७६ ॥ इसलिये तुम हम देवोंकी रक्षा
करने के लिये योग्य हो और तुमसे अन्य कोई हमारी रक्षामें समर्थ नहीं उचित होता है ऐसे वचनको सुनकर तदनन्तर ॥ ७७ ॥ ब्रह्माजीने श्रेष्ठ मनसेही चिन्तना
किया और तब पार्वतीजी की तपस्या से उपजीहुई परम अद्भुत दावाग्नि को ॥ ७८ ॥ जानकर ब्रह्माजी शीघ्रही क्षीरसागर के तीरको गये और वहां अत्यन्त अद्भुत

शेष नामक अधिक शोभन सुन्दरे पलँग में सोयेहुये ॥ ७९ ॥ जोकि श्रीलक्ष्मीजी से दोपद कमलों में समीप से निरन्तर सेये जाते है व नयेहुये कण्ठ के धरने वाले दूर टिकेहुये गरुडसे भी ॥ ८० ॥ व श्री कान्ति तुष्टि वृत्ति और दयादिकों से सेयेजाते हैं व नव शक्तियों से संयुत, सर्वव्यापक और पार्षदों से सब ओर घिरेहैं ॥ ८१ ॥ अनन्तर कुमुद कुमुद्वन्त सनक सनन्दन सनातन महाभाग प्रसुप्त शत्रुजित ॥ ८२ ॥ व जयन्त जगत्सेन जयमहाप्रभ सनत्कुमार सुतपा नारद और ऐसेही तुम्बुरु ॥ ८३ ॥ व पाचजन्य नामक बड़ाभारी शङ्ख तथा कौमोदकी गदा और वैसेही अधिक अद्भुत सुदर्शन चक्र ॥ ८४ ॥ ये सब जिन परमात्मा विष्णुजीके समीप

नंनिरन्तरम् ॥ दूरस्थेनापिताक्ष्येंणनतकन्धरधारिणा ॥८०॥सेव्यमानंश्रियाकान्त्यातुष्ट्यावृत्त्यादयादिभिः॥नवशक्तियुतंविष्णुंपार्षदैःपरिवारितम् ॥ ८१ ॥ कुमुदोथकुमुद्वन्तःसनकश्चसनन्दनः ॥ सनातनोमहाभागः प्रसुप्तोविजयोरिजित् ॥ ८२ ॥ जयन्तश्चजगत्सेनोजयश्चैवमहाप्रभः ॥ सनत्कुमारःसुतपानारदश्चैवतुम्बुरुः ॥ ८३ ॥ पाञ्चजन्योमहाशङ्खोगदाकौमोदकीतथा ॥ सुदर्शनन्तथाचक्रंशार्ङ्गञ्चपरमाद्भुतम् ॥ ८४ ॥ एतानिवैरूपवन्तिदृष्टानिपरमेष्ठिना ॥ विष्णोस्समीपेपरमात्मनोभृशंददृशुस्सर्वेसुरदानवास्तथा ॥ ८५ ॥ विष्णुंववन्देपरमेष्ठिनांपतिस्तीरेतदानीमुदधेर्महामनाः ॥ त्राहित्राहिमहाविष्णोतप्तान्नःशरणागतान् ॥ ८६ ॥ तपसोग्रेणसन्तप्तान्पार्वत्यापरमेणहि ॥ शेषासनेचोपविष्टउवाचपरमेश्वरः ॥ ८७ ॥ युष्माभिस्सहितश्चाद्यव्रजामिपरमेश्वरम् ॥ महादेवम्प्रार्थयामोगिरिजाम्प्रतिवैसुराः ॥ ८८ ॥ इत्याकर्ण्यवचोविष्णोरूचुःसर्वेदिवौकसः ॥ नयास्यामोवयंसर्वेविरूपाक्षंमहाप्रभम् ॥ ८९ ॥ यथादग्धःपुरातेनमदनोदुराति

में ब्रह्माजीसे प्रसिद्ध रूपवाले देखेगये तथा सब देवों और दानवोंने भी बहुतही देखा ॥ ८५ ॥ उन विष्णुजी को उस समय क्षीरसागर के तीरमें उत्तम स्थानवासियों के स्वामी श्रीब्रह्माजी बन्दतेभये कि हे महाविष्णो ! तुम तपेहुये, शरणागत उन हमलोगों की रक्षाकरो रक्षाकरो ॥ ८६ ॥ जेकि श्रीपार्वतीजी की उत्तम उग्र तपस्यासेही भलीभाति तपे है और शेपशय्यामें बैठेहुये परमेश्वर विष्णुजीने कहा ॥ ८७ ॥ कि हे देवो ! तुमलोगों से सहित मैं आज महेशजी के समीप को चलताहूं और हम

सबजने पार्वतीजी के प्रति महादेवजी की प्रार्थना करते है ॥ ८८ ॥ इसभांति विष्णुजी के वचनको सुनकर सब देवोंने कहा कि हम सब लोग बड प्रकाशवाले रूद्रजी के समीपको नही जावेंगे ॥ ८९ ॥ क्योंकि जैसे आगे उन्होने दुर्लंघनीय कामको जलाया है वैसेही हमको जलावेंगे इस में विचार नही करना चाहिये ॥ ९० ॥ तब परमेश्वर भगवान् विष्णुजी बहुत हँसकर बोले कि तुम सबों से डर मत कियाजावे सदाशिवजी मङ्गलरूप हैं ॥ ९१ ॥ सब देवोंके डरके हरनेहारे वे तुमको नहीं जलावेंगे उस लिये मेरे साथ जाननेवाले आप लोगो को चलना चाहिये ॥ ९२ ॥ हम सब लोग तपस्याको सेवते हुये, लोकोंके स्वामी पुराने पुरुष परोसेपर अङ्गीकार करने योग्य या अधिक उत्तम रूपवाले परमात्मा रूप और प्रकृतिसे पर उन शङ्करजी के शरणको जाते हैं ॥ ९३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेमाहेश्वरखण्डान्तर्गतकेदारखण्डे

क्रमः ॥ तथैवधक्ष्यत्यस्माकंनात्रकार्याविचारणा ॥ ९० ॥ प्रहस्यभगवान्विष्णुरुवाचपरमेश्वरः ॥ माभयंक्रियतांसवैंःशिवरूपःसदाशिवः ॥ ९१ ॥ सनधक्ष्यतिसर्वेषांदेवानांभयनाशनः ॥ तस्माद्भवद्भिर्गन्तव्यंमयासार्द्धविचक्षणैः ॥ ९२ ॥ शम्भुम्पुराणपुरुषंजगतामधीशंवरेण्यरूपञ्चपरम्पराणाम् ॥ तपोजुषाणम्परमात्मरूपंपरात्परंतंशरणंव्रजामः ॥ ९३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकेदारखण्डेशैवशास्त्रेकामदहनंनामैकविंशतितमोऽध्यायः ॥ २१ ॥ * ॥

सूतउवाच ॥ एवमुक्तास्तदादेवाविष्णुनापरमेष्ठिना ॥ जग्मुस्सर्वेमहेशंचद्रष्टुकामाःपिनाकिनम् ॥ १ ॥ परेपारेसमुद्रस्यपरमेणसमाधिना ॥ योगपीठेस्थितःशम्भुर्गणैश्चपरिवारितः ॥२॥ यज्ञोपवीतविधिनाउरसाबिभ्रदावृतम् ॥ वासु

भाषाबन्धेसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचितेकामदहनंनामैकविंशतितमोऽध्यायः ॥ २१ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

दो० । बाइसवें अध्यायमें सब सुर प्रार्थित शम्भु । पारवतीको दीन वर कीन परीक्षा दम्भु ॥ श्रीसूतजी बोले कि, तब इसभांति उत्तम स्थान के वासी विष्णुजीसे कहे हुये देखने के चाही सब देव पिनाकधन्वावाले महादेवजी के निकट गये ॥ १ ॥ और जोकि शङ्करजी समुद्र के परे पारमें श्रेष्ठ समाधिसे योगपीठ याने योगासन में टिके हैं व गणोंसे सब ओर घिरे हैं ॥ २ ॥ व घिरेहुये सर्प्पराज वासुकि को यज्ञोपवीत (जनेऊ) की विधिसे छाती में धारण करते हैं तथा कम्बल और अश्वतर

नागको ॥ ३ ॥ जिन्होने दोनों कानो मे कुण्डल किया है व जोकि कर्कोटक वैसेही कुलिक से भी बाहुओं करके उत्तम कङ्कणको धारतेहैं ॥ ४ ॥ व शङ्ख और पद्मसे विरचित बिजायठ करके विराजित हैं और ऐसेही पहिरनेमे प्राप्त सिंहके चर्म (बाघंबर) सेही सोहते हैं ॥ ५ ॥ उन गङ्गाधर चन्द्रमासे संयुत जटीले व बडे प्रभावो या महात्माओ से विराजमान, अद्भुत, कपूर के समान गौर और वृषभ समेत श्यामकण्ठ देवश्रेष्ठ शिवजी को देवोने देखा ॥ ६ ॥ तब ब्रह्मा व विष्णु व ऋषियो व देवो और दानवोंने वेदों व उपनिषदों समेत बहुत प्रकार के सूक्तों से स्तुति किया ॥ ७ ॥ श्रीब्रह्माजी बोले कि संसाररोगके भगानेवाले काम के विनाशक प्रकाशरूप और

किंसर्पराजन्तुकम्बलाश्वतरौतथा ॥ ३ ॥ कर्णद्वयेकृतौयेनतथाकर्कोटकेनहि ॥ कुलिकेनचबाहुभ्यांबिभ्रत्कङ्कणमुत्तमम् ॥ ४ ॥ शङ्खेनैवचपद्मेनबहुलेनविराजिताः ॥ द्वीपिनश्चर्मणाचैवंपरिधानगतेनच ॥ ५ ॥ गङ्गाधरंसोमयुतङ्कपर्द्दिनंमहानुभावैश्चविराजमानम् ॥ कर्पूरगौरंशितिकण्ठमद्भुतंवृषान्वितन्देववरन्ददर्शुः ॥ ६ ॥ तदाब्रह्माचविष्णुश्चऋषयोदेवदानवाः ॥ तुष्टुवुर्विविधैस्सूक्तैर्वेदोपनिषदन्वितैः ॥ ७ ॥ श्रीब्रह्मोवाच ॥ नमोरुद्रायदेवायमदनान्तकरायच ॥ भर्गायभूरिभाग्याय त्रिनेत्रायत्रिविष्टपे ॥ ८ ॥ शिपिविष्टायभीमाय भीमाक्षायनमोनमः ॥ त्र्यम्बकायजगद्धात्रेविश्वरूपायवैनमः ॥ ९ ॥ त्वंधातासर्वलोकानां पितामातात्वमीश्वरः ॥ त्वंनाथोजगतांस्वामीत्रातुमर्हसिनःप्रभो ॥ १० ॥ इत्याकर्ण्यवचस्तेषां सुराणांनन्दिकेश्वरः ॥ कृपयापरयाविष्टो विज्ञप्तुंशम्भुमारभत् ॥ ११ ॥ विज्ञप्तोनन्दिनातेनशैलादेनमहात्मना ॥ ध्या

त्रिलोकमें बहुत भारी भाग्यवान् त्रिनेत्रदेवजी के लिये नमस्कारहो ॥ ८ ॥ व रश्मियों या पशुओं में पैठने या बैठनेवाले व दुष्टोको भयङ्कररूप विरूप आखो वाले के लिये नमस्कारहो नमस्कारहो व तीनगुणों की उपजानेवाली देहवाले जगत के धारने या पालनेहारे विश्वरूपजीके लिये निश्चय से नमस्कारहो ॥ ९ ॥ हे प्रभो ! तुम सब लोकोके धारनेवालेहो व तुम पिता माता और ईश्वरहो व तुम सबोंसे याचे जातेहो और जगतोंके स्वामीहो इससे तुम हमारी रक्षा करने के लिये योग्यहो ॥ १० ॥ इस भांति उन देवों के वचनको सुनकर बड़ी दयासे भरे हुये नंदिकेश्वरजीने शङ्कर जीको विशेषतासे जनाने के लिये आरम्भ (लगा) किया ॥ ११ ॥ और शिलादजी

पुत्र महात्मा उन नन्दीश्वरजी से देवों के कार्य्य के अर्थही ध्यान में टिके हुये महादेवजी अधिकतासे जनायेगये ॥ १२ ॥ कि हे देवों में बहुत श्रेष्ठ शिवजी ! दैत्य श्रेष्ठों से सब ओर घुडके जाते हुये व तारकासुर से मार्दित, भलीभांति आयेहुये कार्य्योंके चाही ब्रह्मादि देव गण और ऋषियों व सिद्धों के समूह तुमको देखने के लिये विशेषता कराते हैं ॥ १३ ॥ हे देवेश ! उस लिये इस समय तुमसेही निश्चयकर देव लोग रक्षा करने योग्यहैं हे ब्राह्मणो ! जिससमय इस भाति उन नन्दीश्वरजीने शंकरजीको जनाया याने विज्ञापन किया ॥ १४ ॥ उससमय उत्तम योग व दयासे समेत शम्भुजीने समाधिसे विश्राम लिया और उन परमात्मा परमेश्वरने कहा ॥ १५॥

नस्थितोमहादेवःसुरकार्यार्थमेवच ॥ १२ ॥ ब्रह्मादयःसुरगणाऋषिसिद्धसङ्घास्त्वांद्रष्टुमेवसुरवर्य्यविशेषयन्ति ॥ कार्यार्थिनोऽसुरवरैःपरिभर्त्स्यमानाःसमागतास्तारकमर्दिताश्च ॥ १३ ॥ तस्मात्त्वयाहिदेवेशत्रातव्याह्यधुनासुराः ॥ एवन्तेन यदाशम्भुर्विज्ञप्तोनन्दिनाद्विजाः ॥ १४ ॥ शनैरुपारमच्छम्भुःपरयोगदयान्वितः ॥ समाधेःपरमात्मासावुवाचपरमेश्वरः ॥ १५ ॥ श्रीमहादेवउवाच ॥ कस्माद्यूयंमहाभागाह्यागतामत्समीपतः ॥ ब्रह्मादयोह्यमीदेवब्रूतकारणमद्यवै ॥ १६ ॥ तदाब्रह्माप्युवाचेदंसुरकार्य्यंमहत्तरम् ॥ तारकेणकृतंशम्भोदेवानांपरमाद्भुतम् ॥ १७ ॥ कष्टात्कष्टतरन्देवंविष्णुंज्ञप्तुमिहागताः ॥ हेशम्भोतवपुत्रेणऔरसेनहतोभवेत् ॥ १८ ॥ तारकोदेवशत्रुश्चनान्यथाममभाषितम् ॥ तस्मात्त्वयागिरिजादेवशम्भो ग्रहीतव्यापाणिनादक्षिणेन ॥ १९ ॥ पाणिग्रहेणैवमहानुभाव दत्तांगिरीन्द्रेणचतांवृणुष्व ॥ ब्रह्मणोहि

श्रीमहादेवजी बोले कि, हे बडे अंश या भाग्यवालो ! ये ब्रह्मादि देव तुम लोग किसलिये मेरे समीपमें आयेहो आजही उस कारण को निश्चयसे कहो ॥ १६ ॥ तब ब्रह्माजीने भी बड़ेभारी इस देवों के कार्य्य को कहा कि हे शकर ! तारकासुरने देवोंका परम अद्भुत कियाहै ॥ १७ ॥ उस कष्ट से अधिक कष्टको देव विष्णुजीके प्रति जनाने के लिये हम लोग यहां आये है और हे शंभो ! तुम्हारे औरस (व्याही स्त्री में पति के वीर्य्य से उत्पन्न) पुत्रसे वह मारा हुआ होवेगा ॥ १८ ॥ जोकि तारकासुर देवो का शत्रुहै और मेरा वचन अन्यथा नही है हे क्रीडाकर शंकर ! इस लिये तुम करके दहिने हाथ से श्रीपार्वतीजी ग्रहण करने योग्य हैं ॥ १९ ॥ व हे महाप्रभाव !

विहँसते हुये भक्तभयहारी शिवजीने कहा ॥२० ॥ कि जब सर्वसुन्दरी
तुम पर्वतेन्द्रमे दीहुई उनको व्याह सेही अंगीकार करो इसप्रकार ब्रह्माजी के वचन को सुनकर
पार्वती देवी मुझसे बरी हुई होवेंगी तब सब देवेन्द्र तथा ऋषि और मुनिभी ॥२१॥ काम से समेत होवेंगे और परमार्ग याने मोक्षकी गली में असमर्थ होजावेंगे इससे
मैने सबों के कार्य्य की सिद्धि के लिये काम को जलायाहै ॥ २२ ॥और हे देवो! जब अच्छे अंगोंवाली सुमध्यमा शैलकुमारी मुझसे अधिक की होवेगी तबही वह पा-
र्वतीजी काम को भी ॥ २३ ॥ जिलावेंगी हे ब्रह्मन् ! इसमें विचार नही करना चाहिये हे देवो ! इसप्रकार करने योग्य और नहीं करने योग्यके व्यवहारमें विचार

वचःश्रुत्वाप्रहसन्नब्रवीद्धरः ॥२०॥ यदामयावृतादेवी गिरिजासर्वसुन्दरी ॥ तदासर्वेसुरेन्द्राश्चऋषयोमुनयस्तथा ॥ २१॥
सकामाश्चभविष्यन्ति अक्षमाश्चपरेपथि ॥ मदनोहिमयादग्धःसर्वेषांकार्यसिद्धये ॥ २२ ॥ मयाह्यधिकृतातन्वीगि
रिजाचसुमध्यमा ॥ तदानीमेवभोदेवाःपार्वतीमदनञ्चसा ॥ २३ ॥ जीवयिष्यतिभोब्रह्मन् नात्रकार्याविचारणा ॥ एवंवि
मृश्यम्भोदेवाः कार्याकार्यंव्यवस्थितौ ॥ २४ ॥ मदनेनैवदग्धेनसुरकार्यमहत्तरम् ॥ यूयंसर्वेचनिष्कामामयानास्त्यत्र
संशयः ॥ २५ ॥ यथाहंवासुरास्सर्वेतथायूयंप्रयत्नतः ॥ तपःपरमसंयुक्तंकारयामःसुदुष्करम् ॥ २६ ॥ परमानन्दसंयुक्ताः
सुखिनःसर्वएवहि ॥ यूयंसमाधिनातेनमदनेनविनासुराः ॥ २७ ॥ पुराकृतंतवब्रह्मन् मदनेनचविस्मृतम् ॥ कामोहिनर
कायैवतस्मात्क्रोधोपिजायते ॥ २८ ॥ क्रोधाद्भवतिसम्मोहःसम्मोहाद्भ्रमतेत्वरम् ॥ कामक्रोधौपरित्यज्यभवद्भिःसुर

व हे देवो !
करने योग्यहै ॥ २४ ॥ क्योंकि मुझसे जलायेहुये कामसेही बड़ाभारी देवोंका कार्य्य है और तुम सब लोगभी कामसे हीनहो इसमे संशय नहीहै ॥ २५ ॥ व हे देवो !
जैसे मैंहूं वैसे तुमहो इस लिये हमलोग बहुतयत्नसे परमात्मा समेत अच्छीदुष्कर तपस्याको कराते हैं कि ॥ २६ ॥ उस कामके विना तुम सबही देवलोग समाधि
(योग) से परम आनंदसे संयुक्त और सुखीहोवो ॥ २७ ॥ और हे ब्रह्मन् ! पूर्व कालमें काम से कियाहुआ क्या तुमको बिसरगयाहै इस से कामही नरकके लिये
है क्योंकि उससे क्रोधभी उपजता है ॥ २८ ॥ व क्रोध से भलीभांति मोह होता है और संमोह से वेगवान् होता हुआ जन भ्रमता है उस से काम व क्रोधको सबओर

से त्यागकर देवसत्तम आप लोगों ॥ २९ ॥ और सबों कोभी मानना चाहिये सज्जनोंका वचन कहीं अन्यथा नहीं है इसप्रकार विशेषता से सुनाकर वृषभसे चिह्नित ध्वजावाले भगवान् महादेवजी ने ॥ ३० ॥ देव ऋषिसमूह तथा मुनियोंको बहुतही बोधन किया (समझाया) फिर ध्यान को आधार कर याने उसमें टिककर शंकर जी चुपहोगये ॥ ३१ ॥ और पहलेकी नाईं गणों से सबओर घिरेहुये बैठे व सबों के बीचमें ध्यानमें टिके हुये शिवजीको देखकर नंदीश्वरजी उनको विसर्जन (बिदा) कर ॥ ३२ ॥ ब्रह्मासमेत और इंद्रसहित देवों से बिहँसते हुये की नाईं बोले कि तुम लोग यथागत गली से शीघ्रही चलेजावो ॥ ३३ ॥ वैसाही ऐसा मानकर वे सबजने

सत्तमैः ॥ २९ ॥ सर्वैरेवचमन्तव्यंमद्वाक्यंनान्यथाक्वचित् ॥एवंविश्राव्यभगवान् महादेवोवृषध्वजः॥ ३० ॥सुरान्प्रबोध यामासतथाऋषिगणान्मुनीन् ॥तूष्णीम्भूतोभवच्छम्भुर्ध्यानमाश्रित्यवैपुनः ॥ ३१ ॥ आस्तेपुरायथावच्च गणैश्चपरिवारितः ॥ ध्यानस्थितञ्चसर्वेषांदृष्ट्वानन्दीविसृज्यताम्॥३२॥सब्रह्मसेन्द्रान्विबुधानुवाचप्रहसन्निव ॥ यथागतेनमार्गेणगच्छध्वंमाविलम्बितम् ॥ ३३॥ तथेतिमत्वातेसर्वे स्वंस्वकंस्थानमव्रजन् ॥ गतेषुतेषुसर्वेषुसमाधिस्थोभवद्भवः ॥ ३४ ॥ आत्मानमात्मनाकृत्वा आत्मन्येवमचिन्तयत् ॥ परात्परतरंस्वस्थंनिर्मलंनिरविग्रहम् ॥ ३५ ॥ ॥ निरञ्जनंनिराभासं यन्मुह्यन्तिचसूरयः ॥ भानुर्नभातिनशशीनविभावसुर्महान्नज्योतिरेवंनचमारुतोहि ॥ ३६ ॥ यत्केवलंवस्तुविचारतोपिसूक्ष्मात्परंसूक्ष्मतरात्परञ्च ॥ अनिर्देश्यमचिन्त्यञ्चनिर्विकारंनिरामयम् ॥३७॥ ज्ञप्तिमात्रस्वरूपञ्चन्यासिनोयान्ति

अपने अपने घरको गये और उन सबोंके चले जातेही शिवजी समाधिमें टिकेहुये होतेभये ॥ ३४ ॥ बुद्धिसे मनको आत्मा में कर ऐसा ध्यान किया जो कि परों सेभी बहुतपर स्वस्थ निर्मल निश्शेषभावसे निराकार ॥ ३५ ॥ निरंजन (जिसमें कुछ न लिपटे) सकल प्रकाशमय या अनेक प्रकाश से हीन स्वयं प्रकाशवान् और जहां पंडितभी मोह को प्राप्तहोते हैं व जहा सूर्य्य नही चंद्रमा नहीं अग्नि नहीं महत्तत्त्व नहीं नक्षत्र नही और ऐसेही वायुभी नहीं विशेषतासे सोहती है ॥ ३६ ॥ व जोकि केवल वस्तु विचारसेभी सूक्ष्म (महीन) से परे और बहुत सूक्ष्मसे परहै नाम मात्रसे कहने के न योग्य अचिंतनीय अविकार और अरोग है ॥ ३७ ॥ व विज्ञान-

मात्र स्वरूप शब्द से पर चैतन्याकार निर्गुण सत्तामात्र ज्ञान से प्राप्तहोने योग्य व अन्यसे अगम्य है और जहां संन्यासी लोग निश्चय से जाते हैं ॥ ३८ ॥ व जोकि वह गूंगेहुये वेदांतशास्त्रों से वस्तु कहाजाता है वही वस्तुहुये जोकि ईश्वर हैं वह ऐश्वर्य्यसंपन्न पिनाकधन्वा हाथवाले वृषभध्वज हैं ॥ ३९ ॥ और जिन्होंने साक्षात् काम को मारा है वहही तपस्याको सेवते हुये परमेश्वरभी हैं ॥ श्रीलोमशजी बोले कि, तब श्रीदेवी पार्वतीजी नेभी उत्तम तपस्याको तपा (किया) ॥ ४० ॥ उस तपस्या से रुद्रजीभी श्रेष्ठ डरको प्राप्तहुये और सब अर्थोंके दायक केवल निश्चलस्वरूपवाले शंकर जीको ॥ ४१ ॥ श्रीदेवी पार्वती जीने परम तपस्या सेही विशेषता

यत्रवै ॥ शब्दातीतंनिर्गुणञ्चिदाकारंसत्तामात्रंज्ञानगम्यंत्वगम्यम् ॥ ३८ ॥ यत्तद्वस्तुसर्वदाकथ्यतेवैवेदातीतैश्चागमैर्मूकभूतैः ॥ तद्वस्तुभूतोभगवान्सईश्वरःपिनाकपाणिर्भगवान्वृषध्वजः ॥ ३९ ॥ येनैवसाक्षान्मकरध्वजोहतस्तपोजुषाणःपरमेश्वरोपिसः ॥ लोमशउवाच ॥ गिरिजापितदादेवीततापपरमन्तपः ॥ ४० ॥ तपसातेनरुद्रोपिउत्तमम्भयमागतः ॥ शम्भुंसर्वार्थदंस्थाणुंकेवलञ्चस्वरूपिणम् ॥ ४१ ॥ विजिग्येतपसादेवीपार्वतीपरमेणहि ॥ यदाजितस्तयादेव्यातपसावृषभध्वजः ॥ ४२ ॥ समाधेश्चलितोभूत्वायत्रसापार्वतीस्थिता ॥ जगामत्वरितेनैवदेवदेवःपिनाकधृक् ॥ ४३ ॥ तत्रापश्यत्स्थितान्देवींसखिभिःपरिवारिताम् ॥ वेदिकोपरिविन्यस्तांयथैवशशिनःकलाम् ॥ ४४ ॥ सदेवस्तांनिरीक्ष्याथवटुर्भूत्वाचतत्क्षणात ॥ ब्रह्मचारीस्वरूपेणमहेशोभगवान्भवः ॥ ४५ ॥ सखीनांमध्यमाश्रित्यउवाचवटुरूपवान् ॥ किमर्थमलिमध्यस्थाकन्यासर्वाङ्गसुन्दरी ॥ ४६ ॥ केयङ्कस्यकुतोजाताकिमर्थन्तप्यतेतपः ॥ सर्वमेकथ्यतां सख्योयाथातथ्येनस

से जीतलिया जब उन देवी जीने तपस्या से शिवजीको जीता ॥ ४२ ॥ तब देवों के देव महादेवजी समाधि से चलितहोकर शीघ्रही वहां गये जहां वह श्रीपार्वती जी टिकी थीं ॥ ४३ ॥ और वहां क्रीडाकारी शंकरजीने चंद्रमाकी कलाकी नाईं वेदीपर थापीहुई सखियों से सबओर घिरी टिकीहुई देवी जीको देखा ॥ ४४ ॥ व अनंतर उनको देखकर उसी क्षणमेंही ब्राह्मण का बालकहोकर ब्रह्मचारी स्वरूप से क्रीडाकारी ऐश्वर्य्यधारी जगत्कारी महेशजी ॥ ४५ ॥ जोकि वटुरूपवाले हैं उन्होंने सखियोंके बीचको सेवन या आधार कर याने वहां जाकर कहा कि सर्वांगसुन्दरी कन्या किसलिये सखियों के बीचमें टिकी है ॥ ४६ ॥ व यह कौन है किसकी है

कैसे हुई है और किस अर्थ को तपस्या तपी जाती है हे सखियो ! इससमय मेरेप्रति यथातथ्यसे सब कहाजावे ॥ ४७ ॥ और तब जया सखी ने रुद्रजी से तपस्याका
श्रेष्ठकारण कहा कि यह हिमाचलकी कन्या तपस्यासे परमेश्वर शिवजीको ॥ ४८ ॥ पतिभाव से प्राप्त करनेकी इच्छावाली है और वह यह यहां मुझको उपदेश कर
सबोंकी दुर्लंघ्य बडीभारी तपस्याको तपती भई है ॥ ४९ ॥ हे वटो ! तुम मेरेवाक्यको जानो मेरा कहना अन्यथा नही है उस जयाके उस वचनको सुनकर बहुत हँस
कर वह शिवजी ऐसा बोले ॥ ५० ॥ कि हे सखियो ! यह मूढ़ पार्वती अपने हित और अहित को नहीं जानतीहै क्योंकि रुद्रजीकी प्राप्तिके अर्थही तपस्या से क्या

म्प्रति ॥ ४७ ॥ तदोवाचजयारुद्रं तपसःकारणम्परम् ॥ हिमाद्रेर्दुहिताचेयंतपसारुद्रमीश्वरम् ॥ ४८ ॥ प्राप्तुकामाप
तित्वेनसेयंमात्रोपदिश्यच ॥ तपस्ततापसुमहत्सर्वेषान्दुरतिक्रमम् ॥ ४९ ॥ वटोजानीहिमेवाक्यंनान्यथाममभाषि
तम् ॥ तच्छ्रुत्वावचनंतस्याः प्रहस्यैवमुवाचसः ॥ ५० ॥ मूढेयंपार्वतीसख्योनजानातिहिताहितम् ॥ किमस्तितपसा
कार्य्यं रुद्रप्राप्त्यर्थमेवच ॥ ५१ ॥ सोमङ्गलःकपालीच श्मशानप्रियएवच ॥ अशिवःशिवशब्देनभण्यतेचवृथासवै ॥
५२ ॥ अनयाहिवृतोरुद्रोयदासख्यःसमेष्यति ॥ तदेयमशुभातन्वीभविष्यतिनचान्यथा ॥ ५३ ॥ योदक्षशापाधि
कृतोयज्ञबाह्योभवद्द्विजैः ॥ येह्यङ्गभूताःशर्वस्य सर्प्पाह्यासन्महाविषाः ॥ ५४ ॥ चिताभस्मान्वितोरुद्रः कृत्तिवासाह्यम
ङ्गलः ॥ पिशाचैःप्रमथैर्भूतैरावृतोहिनिरन्तरम् ॥ ५५ ॥ तेनरुद्रेणकिङ्कार्य्यमनयासुकुमारया ॥ निर्वार्यतांसखीभिश्च

कार्य्य है ॥ ५१ ॥ वह अमंगलरूप व कपालधारी और ऐसेही श्मशानके प्यारकारीहैं और वह कल्याणसे हीनहैं शिव शब्दसे वृथाही कहे जाते हैं ॥ ५२ ॥ व हे सखि-
यो ! इसकन्या से ही बरेहुये रुद्रजी जब भलीभांति आवेंगे तब अच्छे अंगोंवाली यह अशुभ होजावेगी अन्यथा नहीं ॥ ५३ ॥ और जो कि दक्षके शापके अधिकारीहैं
व ब्राह्मणो करके यज्ञोसे वाहर हुये हैं व जे बड़े विषवाले सर्प्प हैं वेही शिवजीके अंगभूत (प्यारे) भये हैं ॥५४॥ व रुद्रजी चिताकी भस्मसे संयुत, चर्मवस्त्रवाले व अमंगल
है व पिशाच प्रमथ और भीतोंसेही निरन्तर सब ओर से घिरे हैं ॥ ५५ ॥ उन रुद्रसे इस सुकुमारी को क्या कार्य्य है इस लिये पिशाच की नाईं मरने की चाहिनी यह

सखियों से निवारण कीजावे ॥ ५६ ॥ व मनोहररूपवाले महेन्द्र और ऐसेही बडे प्रकाशवान् यमराज व विशाल नेत्रोंवाले नैर्ऋत और जलों के स्वामी वरुण ॥ ५७ ॥ और कुबेर व वायु और अग्निदेवको त्यागकर रुद्रमे क्यो प्रीति है इत्यादि वचनोंको परमेश्वरने कहा ॥ ५८ ॥ इस भाति ब्रह्मचारी रूपधारी रुद्रजीके वचन को सुन कर वहा उन सखियोंके बीच तपस्यामें टिकी हुई उन ॥ ५९ ॥ पतिव्रता पार्वतीजीने ब्रह्मचारी रूपधारी महेशजीके प्रति कोप किया और कहा कि हे जये ! हे विजये ! हे साध्वि ! हे प्रम्लोचे ! हे विश्वसुन्दरि ! ॥ ६० ॥ हे सुलोचने ! हे महाभागे ! मैंने अच्छाही किया है और इस समय यहा इस ब्रह्मचारी से आप लोगो का क्या

भर्तुकामापिशाचवत् ॥ ५६ ॥ महेन्द्रञ्चमनोज्ञंवायमञ्चैवमहाप्रभम् ॥ नैर्ऋतञ्चविशालाक्षंवरुणञ्चअपाम्पतिम् ॥५७॥ कुबेरम्पवनञ्चाग्निं हित्वारुद्रेकुतोरतिः ॥ एवमादीनिवाक्यानि उवाचपरमेश्वरः ॥ ५८ ॥ सखीनांमध्यतस्तासां तत्रसातपसिस्थिता ॥ इत्याकर्ण्यवचस्तस्यरुद्रस्यवटुरूपिणः ॥ ५९ ॥ चुकोपचशिवासाध्वी महेशंवटुरूपिणम् ॥ जयेतुविजयेसाध्विप्रम्लोचेविश्वसुन्दरि ॥ ६० ॥ सुलोचनेमहाभागे समीचीनंकृतंहिमे ॥ वटुनानेनकिङ्कार्यं भवतीनामिहाधुना ॥ ६१ ॥ वटुस्वरूपमास्थाय आगतोदेवनिन्दकः ॥ एवंविमृश्यतांसख्यः किमनेनप्रयोजनम् ॥ ६२ ॥ येनिन्दकाश्चपापाश्चकृतघ्नावेददूषकाः ॥ वेदभ्रष्टाह्यप्रतिष्ठा अवाच्यास्तेमनीषिभिः ॥ ६३ ॥ आर्याणांनिन्दनंश्रुत्वा येनयान्तित्वरान्विताः ॥ स्थानान्तरंह्यप्रतिष्ठास्तेऽपिस्युःपापिनोजनाः ॥ ६४ ॥ गिरिजोक्तंसमाकर्ण्य विजयावाक्यमब्रवीत ॥ वटुस्वरूपिणंरुद्रं कुपितासहसायदा ॥ ६५ ॥ गच्छगच्छाशुत्वरितो नस्थेयञ्चत्वयाधुना ॥ किमनेनप्रलापेन त

कार्य्य है ॥ ६१ ॥ हे सखियो ! ऐसा विचारा जावे कि ब्रह्मचारी ब्राह्मण बालक के स्वरूप मे टिककर देवोंका निन्दक आयाहै इसमे क्या प्रयोजनहै ॥ ६२ ॥ क्योंकि जे निन्दक व पापी व उपकार के न माननेवाले व वेदोंमें दूषणकारी व वेद मार्ग से पतित और प्रतिष्ठासे हीनहैं वे बुद्धिमानोंसे बतलाने योग्य नहीहैं ॥ ६३ ॥ व जे जन धर्मशील सदाचारी श्रेष्ठ लोगों की निन्दा सुनकर वेगसे समेत होकर दूसरे स्थान को नही उठजाते हैं वे भी निश्चय से प्रतिष्ठारहित पापी होवे है ॥ ६४ ॥ इसप्रकार पार्वतीजीके कहे हुये वचन को सुनकर एकाएक कुपित हुई विजयाने जब वटुरूपी रुद्रसे कहा ॥ ६५ ॥ कि वेगवान् तुम शीघ्रही जावो जावो इससमय तुमको नही

टिकना चाहिये और इस बकने से क्या है तुम्हारा प्रयोजन नहीं है ॥ ६६ ॥ तब वहां उससे ऐसा बहुत घुड़के हुये वद्ध महादेवजी बिहँसकर व खड़े होकर फिर अनंतर जोकि वचन शुभ ॥ ६७ ॥ और सत्य है उसको धीरे धीरे विजयाके प्रति शीघ्रही बोले कि हे तन्वि ! तुम ने यहां किस कारणसे कोपको किया ॥ ६८ ॥ व जोकि अच्छाकहा हुआही वचन है वह सबको भी ग्रहण करने योग्यहै और तुम यथोक्त वचन से क्यों बहुत रुष्ट हुईहो ॥ ६९ ॥ जोकि लोक में शंभु कहे जाते हैं वह भिक्षुक है और भिक्षुकों के प्यारे या उनको प्यारकरनेवाले हैं जो मुझसे झूठा कहागया है तो तुम कोपमें परायण होवो ॥ ७० ॥ और तबतक यह हिमवान् कुमारी

वनास्तिप्रयोजनम् ॥ ६६ ॥ वटुर्निर्भर्त्सितस्तत्र तयाचैवंतदाहरः ॥ प्रहस्यवैस्थितोभूत्वा पुनर्वाक्यमथोशुभम् ॥६७॥ शनैःशनैरवितथं विजयाम्प्राहसत्वरम् ॥ अत्रकोपस्त्वयातन्वीकृतःकेनैवहेतुना ॥ ६८ ॥ सर्वेषामपिग्राह्यंवा वचनं सूक्तमेवयत् ॥ यथोक्तेनचवाक्येन कस्मात्त्वन्तुविरोषिता ॥ ६९ ॥ यःशम्भुरुच्यतेलोके भिक्षुकोभिक्षुकप्रियः ॥ यदि मेह्यनृतम्प्रोक्तं तदाकोपपराभव ॥ ७० ॥ इयन्तावत्स्वरूपाच विरूपोसौसदाशिवः ॥ यथाचेयंविशालाक्षी विरूपाक्षो भवस्तथा ॥ ७१ ॥ एवम्भूतेनरुद्रेण मोहितेयङ्कथम्भवेत् ॥ सभाग्योहिपतिःस्त्रीणांसदाभाव्योरतिप्रियः ॥ ७२ ॥ मोहितास्तिचतेनेयं निर्गुणेनगुणात्मिका ॥ नश्रुतोनचविज्ञातोनदृष्टःकेनचिच्छिवः ॥ ७३ ॥ सकामानाञ्चभूतानांदुर्लभो हिसदाशिवः ॥ तपसापरमेणैवगर्वितेयंसुमध्यमा ॥७४ ॥ निःस्तम्भोहिसदास्थाणुःकथम्प्राप्स्यतितम्पतिम् ॥ मयोक्तं किंविशालाक्षि कस्मान्मेरुषिताशुभा ॥ ७५ ॥ यावद्रोषोभवेन्नृणांनारीणाञ्चविशेषतः ॥ तेनरोषेणतत्सर्वं भस्मीभूतङ्क

सुन्दर रूपवाली हैं व वह सदाशिवजी विरूप हैं और जैसे यह विशालनयनी हैं वैसेही महादेवजी कुरूप आंखोंवाले हैं ॥ ७१ ॥ ऐसे हुये रुद्र से यह कैसे मोहित होवे हैं क्योंकि स्त्रियोंका भाग्यसमेत रतिको प्यार करनेवाला पति सदा होना चाहिये ॥ ७२ ॥ और यह गुणस्वरूपिणी देवी उन गुणहीनसे मोहित हैं किसीने शिव को नहीं सुना नहीं जाना और नहीं देखा ॥ ७३ ॥ क्योंकि सदाशिवजी काम समेत प्राणियों को दुर्लभ हैं व अच्छे मध्यभागवाली यह उत्तम तपस्या सेही गर्वित हैं ॥ ७४ ॥ जिस से महादेवजी सदा गर्वसे हीन हैं उससे कैसे उनको पति पावेगी हे विशालाक्षि ! मैंने क्या कहा है और यह मंगलमयी मुझसे क्यों कुपित है ॥७५॥

जबतक पुरुषों और विशेष से स्त्रियों के क्रोध होवै तबतक वह उस क्रोध से उस सबको भस्मीभूत करेगा ॥ ७६ ॥ जोकि सुकृत (पुण्य) बटोरागया है हे तन्वि, सति ! मैंने सत्यही कहा है कि काम व क्रोध व लोभ व दंभ (छल, पाखंड) और मात्सर्य्य (पराई बढ़ती को न सहना) भी ॥ ७७ ॥ व हिंसा ईर्ष्या (गुणों में दोष लाना) और प्रपंच उससे सब विनष्ट होजाता है उस लिये तपस्वियों से काम व क्रोध नित्यही बराया जाता है ॥ ७८ ॥ जब बुद्धिमानों से हृदय में सब जगत् के बीच ईश्वर भावना (ध्यान) करने योग्य है तब सब मुनीश्वरों से ज्ञानमात्र सदा भावनीय है ॥ ७९ ॥ जिस समय उन शंकरजी के उस

रिष्यति ॥ ७६ ॥ सुकृतञ्चार्जितन्तन्वि सत्यमेवोदितंसति॥कामःक्रोधश्चलोभश्च दम्भोमात्सर्य्यमेवच ॥७७॥ हिंसेर्ष्या चप्रपञ्चश्चतेनसर्वंविनश्यति॥ तस्मात्तपस्विभिर्नित्यंकामःक्रोधश्चवार्य्यते ॥ ७८ ॥ यदीश्वरोहृदिमध्येविश्वंभाव्योम नीषिभिः ॥ सर्वदाज्ञप्तिमात्रस्तु तदासर्वैर्मुनीश्वरैः ॥ ७९ ॥ तच्छ्रुत्वावचनन्तस्य शम्भोर्यदाब्रवीद्विजयातञ्चशर्वम् ॥ गच्छाद्यकिञ्चित्तवनास्तिकार्यं नवक्तव्यंवचनंबालिशेन॥ ८० ॥ एवंविवदमानन्तंवटुरूपंसदाशिवम् ॥ विसर्जयामासत दा विजयावाक्यकोविदा ॥ ८१ ॥ तिरोधानंगतस्सद्यो महेशोगिरिजाम्प्रति ॥ अलक्ष्यमाणःसर्वासां सखीनांपरमेश्व रः ॥ ८२ ॥ प्रादुर्बभूवसहसा रूपंधृत्वानिजंतदा ॥ यदाध्यानस्थितादेवी निजध्यानपरासती ॥ ८३ ॥ तदाहृदिस्थितो देवो बहिर्दृष्टिपरोभवत् ॥ नेत्रेउन्मील्यसासाध्वी गिरिजायतलोचना ॥ ८४ ॥ अपश्यद्देवदेवेशं सर्वलोकमहेश्वरम् ॥

वचन को सुन कर विजयाने उन शिवजी से फिर कहा कि तुम जावो आज तुम्हारा कुछ काम नहीं है और मूर्ख से वचन नहीं बोलने योग्य है ॥ ८० ॥ उस समय वचनोंकी पण्डिता विजयाने ऐसे विवाद करतेहुये ब्रह्मचारी रूपधारी उन सदाशिवजी को विसर्जन (बिदा) किया ॥ ८१ ॥ व सब सखियोंसे नहीं देखे जातेहुये अन्तर्द्धान को गये परमेश्वर महेशजी शीघ्रही श्रीपार्वतीजी के प्रति ॥ ८२ ॥ अपने रूपको धरकर उससमय एक एक प्रकटहुये और जब ध्यान में टिकी हुई देवीजी अपने ध्यानमें परायण हुई ॥ ८३ ॥ तब हृदय में टिकेहुये महादेवजी दृष्टिगोचर होगये व आखोंको उघाड़कर बड़े नेत्रोंवाली उन श्रीपार्वतीजीने ॥ ८४ ॥

उन देवदेवेश्वर को देखा जोकि सबलोकोंके महेश्वर व द्विभुज एकमुख अद्भुत और कैलासमें बसनेवाले हैं ॥ ८५ ॥ व जटाजूटकारी चन्द्रकलाधारी और हाथी के चर्मसे ढँपेहैं याने उसको ओढ़ेहैं व कम्बल और अश्वतर दो नाग जिनकेकानों मेंही टिकेहैं ॥ ८६ ॥ व जिनने बड़ी दीप्तिवाले व सर्पराज वासुकि को हार किया है और जोकि बड़े सर्पोंसे बनेहुये बड़ेमोल के कङ्कण ॥ ८७ ॥ शोभाके करनेवालेहैं उनको उन रुद्रजी ने कियाहै ऐसेहुये वह महादेवजी उस समय श्रीपार्वतीजी के प्रतिआये ॥ ८८ ॥ और वेग या शीघ्रतासे संयुत होकर बोले कि, हे भामिनि ! तुम वरको अंगीकार करो और उत्तम विद्या समेत सती श्रीपार्वतीजी ने शंकरजीके

द्विभुजञ्चैकवक्त्रञ्च कैलासावासमद्भुतम् ॥ ८५ ॥ कपर्दिनंचन्द्रलेखं निवीतंगजचर्मणा ॥ कर्णस्थौहिमहाभागौ कम्बलाश्वतरौत्वही ॥ ८६ ॥ वासुकिःसर्पराजश्च कृतोहारोमहाद्युतिः ॥ वलयानिमहार्हाणि महासर्पमयानिच ॥ ८७ ॥ कृतानितेनरुद्रेण तानिशोभकराणिच ॥ एवंभूतस्तदारुद्रःपार्वतींप्रतिचाग्रतः ॥ ८८ ॥ उवाचत्वरयायुक्तो वरंवरयभामिनि ॥ विजयापरयायुक्ता साध्वीप्रोवाचशङ्करम् ॥ ८९ ॥ त्वन्नाथोममदेवेश त्वयाकिञ्चित्स्मृतम्पुरा ॥ दक्षयज्ञविनाशञ्च यदर्थंकृतवान्प्रभो ॥ ९० ॥ सत्वंसाहंसमुत्पन्ना मेनायांकार्यसिद्धये ॥ देवानान्देवदेवेश तारकस्यवधम्प्रति ॥ ९१ ॥ भवतोहिमयासाकं भविष्यतिकुमारकः ॥ तस्मात्त्वयाहिकर्तव्यं ममवाक्यंमहेश्वर ॥ ९२ ॥ गन्तव्यंहिमवत्पार्श्वे नात्रकार्याविचारणा ॥ याचयस्वमहादेव ऋषिभिःपरिवारितः ॥ ९३ ॥ करिष्यतिनसन्देहस्तववाक्यञ्चमेपि

प्रति अधिकता से कहा॥८९॥कि,हे देवेश ! तुम मेरे नाथहो व तुमसे आगे कुछ स्मरण कियागयाहै कि हे प्रभो ! आपने जिसके अर्थ दक्षके यज्ञका विनाश किया ॥९०॥ हे देवदेवेश ! वहही तुमहो और वही मैं तारकासुर के मारनेके प्रति देवोंके कार्य्यों की सिद्धि के लिये हिमवान्‌की स्त्री मेनामें भलीभांति उपजी हूं॥९१॥ हे महेश्वर ! जिस लिये मेरे साथ आपके कुमार (पुत्र) होवेगा उस लिये तुमको मेरा वचन करना चाहिये ॥ ९२ ॥ व हिमवान् के पास जाना चाहिये और इसमें विचार नहीं करना चाहिये हे महादेवजी ! ऋषियों से सबओर घिरेहुये तुम याचना करो ॥ ९३ ॥ व हमारा पिता तुम्हारा वचन करेगा इसमें सन्देह नहींहै जब पूर्वसमय में दक्षकी

कन्याहुई मैंही पिताकरके तुमको दीगईहूं ॥ ६४ ॥ तब तुमने वहां वेदोक्त विधान से ब्याहको नहीं किया और उन महात्मा दक्षने ग्रहोंकी पूजा नहीं किया ॥ ६५ ॥ व ग्रहों के विषयहोने से वह बड़ाभारी अन्तर हुआ हे सुव्रत! इस लिये तुम वेदोंकी कही विधिसे उसको करनेके लिये योग्यहो ॥ ६६ ॥ हे महाभाग! जोकि ब्याह देवों की कार्यसिद्धि के लिये है तब बहुत हँसते हुयेकी नाईं महादेवजीने श्रीपार्वती से कहा कि ॥ ६७ ॥ हे पार्वति! अहंकार से महत्तत्त्व भलीभांति हुआ व महत्तत्त्व से तम उपजा है और तमसे घिराहुआ आकाश है ॥ ६८ ॥ व आकाश से वायुकी उत्पत्ति है वायुसे अग्नि उपजी है अग्निसे जल समुत्पन्न हैं वैसेही जलों में भूमि

ता ॥ दत्तकन्यापुराहंवै पित्रादत्तायदातव ॥ ६४ ॥ तदोक्तविधिनातत्र विवाहोनकृतस्त्वया ॥ नग्रहाःपूजितास्तेन दक्षेणचमहात्मना ॥ ९५ ॥ ग्रहाणांविषयत्वेन सच्छिद्रोयंमहानभूत् ॥ तस्माद्वेदोक्तविधिना कर्तुमर्हसिसुव्रत ॥ ९६ ॥ विवाहस्तुमहाभाग देवानांकार्यसिद्धये ॥ तदोवाचमहादेवो गिरिजाम्प्रहसन्निव ॥ ६७ ॥ अहंकारात्समुत्पन्नं महत्तत्त्वञ्चपार्वति ॥ महत्तत्त्वात्तमोजातं तमसावेष्टितन्नभः ॥ ९८ ॥ नभसोत्पत्तिर्वायोश्च वायोरग्निरजायत ॥ अग्नेरापःसमुत्पन्ना अप्सुजातामहीतथा ॥ ६९ ॥ मह्यादिकानिभूतानि ह्यन्यानिचवरानने ॥ दृष्टंयत्सर्वमेवैतन्नश्वरंविद्धिभामिनि ॥१००॥ एकोनेकत्वमापन्नो निर्गुणोहिगुणावृतः ॥ स्वज्योत्स्नोभातियोनित्यं परज्योत्स्नान्वितोभवत् ॥ १ ॥ स्वतन्त्रःपरतन्त्रश्च त्वयादेविमहत्कृतम् ॥ मायामयंकृतमिदंहिजगत्समग्रं सर्वात्मनासुकृतिभिःपरयाचबुद्ध्या ॥ २ ॥ सर्वात्मभिस्त्वमवधृतम्परमार्थभावैः साशक्तिरिन्द्रियगणैःपरिवेष्टितञ्च ॥ केग्रहाःकउडुगणाः केबाध्यन्तेत्वयाकृताः ॥ ३ ॥ किमुक्तं

प्रकटहुई है ॥ ६६ ॥ हे श्रेष्ठमुखि, भामिनि! पृथिवीआदि भूत और अन्यभी जो यह सब देखागया है उसको तुम नश्वर जानो ॥ १०० ॥ जोकि एक व गुणोंसे हीन और स्वय प्रकाशवान् नित्यही सोहता है वहही अनेकभाव को प्राप्त व गुणों से घिराहुआ और पराये प्रकाशसे समेत होगयाहै ॥ १ ॥ व अपने अधीन और परवश है हे देवि! तुमने महत्तत्त्वको कियाहै और यह सम्पूर्ण जगत् सब रूप से मायामय बनाया गया है व श्रेष्ठबुद्धि से पुण्यवान् ॥ २ ॥ शिवजी में मन लगानेवाले परमार्थ भक्तों से जानागया है और इन्द्रियसमूहोंसे सबओर घिराहै वह शक्ति तुम हो इससे कौन ग्रह कौन नक्षत्रगण व कौन अन्यभी तुमको पीड़ा करसक्तेहैं क्योंकि वे

तुम्हारे कियेहुये हैं ॥३॥ और हे वरवर्णिनि,प्रसन्नांगे,देवि ! इस समय तुमने कल्याणके अर्थ क्या कहा क्योंकि गुणोंका कार्य्य तुमसे प्रकट कियाहुआ होवेहै ॥ ४ ॥ व तुमही रज सत् और तमोगुणमयी सूक्ष्म प्रकृतिहो और हे सुमध्यमे!मैंही निरन्तर व्यापारों का देखनेवालाहूं ॥ ५ ॥ इसलिये मैं हिमवान् के समीपको नहीं जाताहूं व किसीभातिभी नही मांगताहूं क्योंकि देहि (दीजिये) ऐसे वचन से पुरुष शीघ्रही लघुता को प्राप्तहोता है ॥ ६ ॥ हे देवि ! ऐसा जानकर हम को क्या है तुम निश्चय से कहो और हे मंगले ! जोकि तुम्हारी आज्ञासे करना चाहिये उस सबको तुम कहने के लिये योग्यहो ॥ ७ ॥ और उस समय उन शिवजी से कहीहुई कमलनयनी

चाधुनादेवि शिवार्थंवरवर्णिनि ॥ गुणकार्यंप्रसन्नाङ्गे त्वयाप्रादुष्कृतंभवेत् ॥ ४ ॥ त्वंहिवैप्रकृतिःसूक्ष्मा रजःसत्त्वतमो मयी ॥ व्यापारद्रष्टासततमहञ्चैवसुमध्यमे ॥ ५ ॥ हिमालयंनगच्छामि नयाचेहंकथञ्चन ॥ देहीतिवचनात्सद्यः पुरुषो यातिलाघवम् ॥ ६ ॥ इत्थंज्ञात्वाचभोदेवि किमस्माकंवदस्ववै ॥ कार्य्यंतवाज्ञयाभद्रे तत्सर्वंवक्तुमर्हसि ॥ ७ ॥ ते नोक्ताचतदासाध्वी उवाचकमलेक्षणा ॥ त्वमात्माप्रकृतिश्चाहं नात्रकार्याविचारणा ॥ ८ ॥ तथाप्येवंमहादेव शरीरा वरणंकुरु ॥ प्रपञ्चरचनांशम्भो कुरुवाक्यंममप्रभो ॥ ९ ॥ याचस्वमांमहादेव सौभाग्यंममदेहिमे ॥ इत्येवमुक्तस्सत यामहात्मा महेश्वरोलोकविडम्बनाय ॥ १० ॥ तथेतिमत्वाप्रहसञ्जगाम स्वमालयन्देववरैस्सुपूजितः ॥ एतस्मिन्न न्तरेचैव हिमवान्गिरिभिस्सह ॥ ११ ॥ मेनयाभार्य्ययासार्द्धमाजगामत्वरान्वितः ॥ पार्वतीदर्शनार्थञ्च सुतैश्चपरिवारि

पतिव्रता देवीजी बोलीं कि तुम परमात्मा (सर्वव्यापक) हो व मैं प्रकृति माया हूं इसमें विचार नहीं करना चाहिये ॥ ८ ॥ हे प्रभो, महादेव, शम्भो ! तोभी तुम इसभांति देहका आवरण करो व प्रपञ्च की रचना और मेरे वचन को करो ॥ ९ ॥ हे महादेवजी ! तुम मुझको मागो और मेरा सुभाग मुझे देवो ऐसेही उन श्रीपार्वती जीसे कहेहुये महात्मा महेशजी लोकविडम्बन के लिये ॥ १० ॥ वैसाहो ऐसा मानकर विहँसते हुये व देवश्रेष्ठो से बहुत पूजित होकर अपने स्थानको चलेगये और इसही अन्तर में हिमवान्जी पर्वतों के साथ ॥ ११ ॥ व मेना स्त्रीसे सहित आये व अपने पुत्रोंसे सबओर घिरेहुये और पार्वती के दर्शन के अर्थ वेगसे समेत

है ॥ १२ ॥ और जब पार्वतीजी ने पर्वतों के साथ हिमवान् को देखा तब सम्मुख उठने में तत्पर हुई पतिव्रता सतीजीने मस्तक से माता पिता ॥ १३ ॥ तथा भाई व बंधु और सबोंको भी प्रणाम किया उस समय उनको अपने गोदमें चढ़ाकर व लिपटाकर आनन्द के आंसुओं से परिपूरित हुये बड़ेभारी यशस्वी उन ॥ १४ ॥ हिमालय जीने मधुरवचन को कहा कि हे साध्वि ! तुमने यहां जैसे तैसे निश्चय से क्या कियाहै हे महाभागे ! वह सब सुना चाहते हुयेही हम लोगोंसे कहा जावे ॥ १५ ॥ उस मधुरवचन को सुनकर वह श्रीपार्वतीजी पिताकेप्रति बोली कि मैंने उत्तम तपस्या सेही कामकेनाशक शिवजीको प्रार्थित किया॥ १६ ॥ और सबो

तः ॥ १२ ॥ पार्वत्याचयदादृष्टो हिमवान्गिरिभिस्सह॥ अभ्युत्थानपरासाध्वी पितरौशिरसातदा ॥ १३ ॥ प्रणनाम तथाभ्रातॄन् बन्धूंश्चैवचसर्वशः ॥ स्वमङ्कमारोप्यतदामहायशाः सताम्परिष्वज्यचबाष्पपूरितः ॥ १४ ॥ उवाचवा क्यंमधुरंहिमालयः किंवैकृतंसाध्वियथातथात्र ॥ तत्कथ्यतांमहाभागे सर्वंशुश्रूषतांहिनः ॥ १५ ॥ तच्छ्रुत्वामधुरं वाक्यं सोवाचपितरम्प्रति ॥ तपसापरमेणैव प्रार्थितोमदनान्तकः ॥ १६ ॥ प्राप्तंचमेमहत्कार्यं सर्वेषामपिदुर्लभम् ॥ अ त्रतुष्टोमहादेवो वरणार्थंसमागतः ॥ १७ ॥ मयोक्तस्तुयदाशम्भुर्ममपाणिग्रहःकथम् ॥ क्रियतेचत्वयाशम्भो ममपि त्राविनाधुना ॥ १८ ॥ यथागतेनमार्गेण गतोसौत्रिपुरान्तकः ॥ तस्यास्तद्वचनंश्रुत्वावाप्यैवंपरमाम्मुदम् ॥ १९ ॥ ब न्धुभिस्सहधर्मात्मा उवाचस्वसुताम्पुनः ॥ स्वगृहश्चाद्यगच्छामो वयंसर्वेचभूधराः॥ २० ॥ अनयाराधितोदेवः पिना कीवृषभध्वजः ॥ इत्यूचुस्तेतदासर्वे हिमालयपुरोगमाः ॥२१ ॥ पार्वतींसहिताःसर्वे तुष्टुवुर्वाग्भिरावृताः ॥ तांस्तूय

का भी दुर्लभ बड़ाभारी मेरा कार्य्य प्राप्तहुआ क्योंकि प्रसन्नहुये महादेवजी बरने के अर्थ यहा भलीभांति आये ॥ १७ ॥ और जब वह शंकरजी मुझसे कहेगये कि हे शम्भो ! इससमय तुमकरके मेरे पिताके बिना मेरा हाथ पकड़ना (ब्याह) कैसे कियाजाताहै ॥ १८ ॥ तब वह त्रिपुरके नाशक यथागत गलीसे चलेगये इसप्रकार उनके उस वचन को सुनकर व बड़े आनन्द को प्राप्त होकर ॥ १९ ॥ बन्धुओं के साथ धर्मात्मा हिमवान् ने अपनी कन्या से फिर कहा कि हम सब पर्वत आजही अपने घर को चलते हैं ॥ २० ॥ और उस समय हिमवान् आदि उन सबोंने ऐसा कहा कि इन पार्वती ने पिनाकधन्वाधारी क्रीडाकारी वृषभध्वज महादेवजी

की पूजा कियाहै ॥ २१ ॥ व चारोंओर से घेरेहुये सहित (संमिलित, बटुरे) सबलोग पार्वतीजीकी स्तुति करनेलगे और तब प्रशंसी जातीहुई बहुत श्रेष्ठ अंगरंग-वाली उन्हीं पार्वतीजी को अपनी गोदी में बिठलाकर हिमवान्जी ॥ २२ ॥ सर्व पर्वतों के साथही अपने घरको भलीभांति लाये वैसेही देवोंकी नगरियां शङ्ख और अनेकों तुरहियां बाजीं॥२३॥ऐसेही सबओर से बजाये जातेहुये बहुतसे बाजे बाजने लगे व बड़ीभारी फूलोंकी वर्षासे उन्होंने उनको घरकेप्रति प्राप्त किया ॥२४॥ तबही बहुत से पर्वत वैसेही चारणों समेत देव व महर्षि और सब सिद्धसमूहों करके बड़े ऐश्वर्य्य से वह तपस्विनी पार्वतीजी भलीभांति पूजित हुई ॥ २५ ॥ व उस समय

मानाञ्चतदाहिमालयो ह्यारोप्यचाङ्केवरवर्णिनींच ॥ २२ ॥ सर्वैश्चशैलैरपिसार्द्धमेव समानयामासतथास्वमालयम् ॥ देवदुन्दुभयोनेदुश्शङ्खतूर्याण्यनेकशः ॥ २३ ॥ वादित्राणिबहून्येवं वाद्यमानानिसर्वतः ॥ पुष्पवर्षेणमहतातेनानीता गृहम्प्रति ॥ २४ ॥ सम्पूजितासाबहुभिस्तदानीं महाविभूत्यात्वचलैस्तपस्विनी ॥ तथैवदेवैस्सहचारणैश्च महर्षिभिः सिद्धगणैश्चसर्वशः ॥ २५ ॥ पूज्यमानातदादेवी उवाचकमलासना ॥ देवानृषीन्पितॄन्यक्षानन्यान्सर्वान्समागतान् ॥ २६ ॥ गच्छध्वंसर्वएवैते तेयेप्यत्रसमागताः ॥ स्वंस्वंस्थानंयथायोग्यं सेव्यतांपरमेश्वरः ॥ २७॥ एवंतदानींस्वपितु गृहंगता विशोभमानापरमेणवर्चसा ॥ सापार्वतीदेववरैस्सुपूजिता संचिन्तयन्तीमनसासदाशिवम् ॥ १२८ ॥ इति श्री स्कन्दपुराणेमाहेश्वरखण्डान्तर्गतकेदारखण्डेशैवशास्त्रे गौरीतपःफलोदयोनामद्वाविंशतितमोध्यायः ॥ २२ ॥

कमल के फूलोंसे समेत आसन में बैठी पूजीजाती हुई देवीजी ने देव ऋषि पितर यक्ष और भलीभांति आये हुये अन्यभी सबोंसे कहा ॥ २६ ॥ कि जेजे यहां आये हैं वे ये सब तुम लोग यथायोग्य अपने अपने घरको जावो और परमेश्वर निश्चयसे सेये जावें ॥ २७ ॥ तब इसभांति उत्तम तेजसे विराजती हुई वह पार्वतीजी अपने पिताके घरको गई और मनसे सदाशिवजी को ध्यावती या सुमिरती हुई देवश्रेष्ठोंसे बहुत पूजित भई ॥ १२८॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेमाहेश्वरखण्डान्तर्गतकेदारखण्डेभाषाबन्धेसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचितेदेवप्रार्थितशिवरयपार्वतीप्रतिगमनंनामद्वाविंशतितमोऽध्यायः॥ २२ ॥ ॥ ॥

दो० । तेइसवें अध्याय में शम्भुब्याह की बात । ब्रह्मा विष्णु महेन्द्र सुर न्योते सजी बरात ॥ श्रीलोमशजी बोले कि, इस अन्तर में वहां महेशजी से प्रेरित ऋषि भी हिमालय के पास एकाएक शीघ्रही आये ॥ १ ॥ तब उन सबोंको देखकर एकाएक उठकर नमित कण्ठ व प्रसन्नमनवाले उन हिमाचलने पूजा किया और कहा ॥२॥ कि तुम किसलिये आयेहो आनेका कारण कहो उस समय सातों ऋषि बोले कि, महेशजी से पठाये हुये हमलोग ॥ ३ ॥ आपकी कन्याके देखने में तुम्हारे समीपको भलीभांति आयेहैं हे पर्वत ! तुम उन हमको जानो और अपनी कन्याको शीघ्रही दिखाओ ॥ ४ ॥ वैसाहो ऐसा कहेहुये ऋषि वहां लायेगये व शीघ्रही श्रीपार्वतीजी

लोमशउवाच ॥ एतस्मिन्नन्तरेतत्र महेशेनप्रणोदिताः ॥ आजग्मुस्सहसासद्य ऋषयोपिहिमालयम् ॥ १ ॥ तद्दृष्ट्वासहसोत्थाय हिमाद्रिःप्रीतमानसः ॥ पूजयामासतान्सर्वानुवाचनतकन्धरः ॥ २ ॥ किमर्थमागतायूयं ब्रूतागमनकारणम् ॥ तदोचुःसप्तऋषयो महेशप्रेरितावयम् ॥ ३ ॥ समागतास्त्वत्सकाशं कन्यायाश्चविलोकने ॥ तानस्मान्विद्धिभोःशैल स्वांकन्यामाशुदर्शय ॥ ४ ॥ तथेतिचोक्ताऋषय आनीतास्तत्रपार्वतीम् ॥ स्वोत्सङ्गेपरिगृह्याशु गिरीन्द्रःपुत्रिवत्सलः ॥ ५ ॥ हिमवान्गिरिरेवन्तानुवाचप्रहसन्निव ॥इयंसुतामदीयाहि वाक्यंशृणुतमेधुना ॥ ६ ॥ तपस्विनांवरिष्ठोसौ विरक्तोमदनान्तकः ॥ कथमुद्वहनार्थीचयेनानङ्गःकृतःस्मरः ॥ ७ ॥ अत्यासन्नेचातिदूरे अत्याढ्येधनवर्जिते ॥ वृत्तिहीनेचमूर्खेच कन्यादानंनशक्यते ॥ ८ ॥ मूढायचविरक्ताय आत्मसम्भावितायच ॥ आतुरायप्रमत्ताय कन्यादानन्नकारयेत् ॥ ९ ॥ तस्मान्मयाविचारित्वा भवद्भिर्ऋषिसत्तमाः ॥ प्रदातव्यामहेशाय एतन्मेव्रतमुत्तमम् ॥ १० ॥ त

को अपने गोदमें लेकर पुत्रीको प्यार करनेवाले पर्वतेन्द्र ॥ ५ ॥ हिमाचल ने बिहँसते हुयेकी नाईं उनसे ऐसा कहा कि यहही मेरी कन्याहै तुमलोग इससमय मेरा वचन सुनो कि ॥ ६ ॥ जिनने कामको अनंग (विना देहका) किया वह कामके नाशक व तपस्वियों में बहुत श्रेष्ठ और वैराग्य संयुत शिवजी किसभांति ब्याहके चाहीहैं ॥ ७ ॥ अधिक समीप वासी व बहुत दूरदेशी व अत्यन्त धनाढ्यव धनसे वर्जित (दरिद्री) व वृत्तिसे हीन और मूर्खमें कन्याका देना नहीं उचित होताहै ॥ ८ ॥ व मूढ वैरागी अपना से भलीभांति बढ़ाया हुआ आतुर और प्रमादयुक्तमतवाले के लिये कन्याका दान नहीं करावे ॥ ९ ॥ हे ऋषिसत्तमो ! उससे आपके साथ

विचारकर मुझको महेशजी के लिये कन्या अधिकतासे देना चाहिये यह मेरा उत्तमव्रतहै ॥ १० ॥ और पर्वतराजके उस वचनको सुनकर व बहुत हँसकर उन महर्षियों
ने हिमवान् से एक क्षणमें साथही कहा कि ॥ ११ ॥ जिनने तीव्र तपस्याको किया और जिनसे सदाशिवजी पूजेगये उन पार्वतीसे उस तपके द्वारा सन्तुष्टहुये शिवजी
आज प्रसन्नहै ॥ १२ ॥ और हे पर्वत! तुम इनकी व उनकी भी कुछेक उत्तम महिमाको नहीं जानतेहो उस लिये यहा परमात्मा ॥ १३ ॥ शिवजीके लिये इन पार्वतीजी
को देवो हमारे वचन को करो तब परमेश्वर की भक्तिसे संयुक्त चित्तवाले उन ऋषियों के उस वचनको सुनकर ॥ १४ ॥ शीघ्रता से समेत पर्वतेश्वरने पर्वतों

च्छ्रुत्वागिरिराजस्य वचनन्तुमहर्षयः ॥ एकपद्येनऊचुस्तेप्रहस्यचहिमालयम् ॥ ११ ॥ ययाकृतंतपस्तीव्रं ययाचारा धित·शिवः ॥ तपसातेनसन्तुष्टः प्रसन्नोद्यसदाशिवः ॥ १२ ॥ अस्यास्तस्यचभोःशैल नजानासिचकिञ्चन ॥ महिमानं परञ्चैव तस्मादत्रपरात्मने ॥ १३ ॥ शिवायगिरिजासेनां कुरुष्ववचनंहिनः ॥ तच्छ्रुत्वावचनन्तेषां ऋषीणांभावितात्म नाम् ॥ १४ ॥ उवाचत्वरयायुक्तः पर्वतान्पर्वतेश्वरः ॥ हेमेरोहेनिषधहे गन्धमादनमन्दर ॥ १५ ॥ मेनाकक्रियताम द्य शंसध्वञ्चयथातथम् ॥ मेनातदाउवाचेदं वाक्यंवाक्यविशारदा ॥ १६ ॥ अधुनाकिंविमर्शेन कृतंकार्य्यंतदैवहि ॥ उत्पन्नेयंमहाभागा देवकार्यार्थमेवच ॥ १७ ॥ प्रदातव्याशिवायेति शिवस्यार्थेवतारिता ॥ अनयाराधितोरुद्रो रुद्रे णपरिभाविता ॥ १८ ॥ इयंसतीमहाभागा शिवायप्रतिदीयताम् ॥ निमित्तमात्रंतत्कृत्यञ्चास्माभिःशिवपूजने ॥ १९ ॥ एतच्छ्रुत्वावचस्तस्या मेनायाःपरिभाषितम् ॥ परितुष्टोहिमाद्रिश्चवाक्यञ्चेदमुवाचह ॥ २० ॥ ऋषयोत्रनिरीक्षन्तांकन्ये

से कहा कि, हे मेरो! हे निषध! हे गन्धमादन! हे मन्दर! ॥ १५ ॥ और हे मेनाक! तुमलोग आज यथातथ्यसे कहो वही कियाजावे उस समय वाक्योंकी परमपण्डि-
ता हिमवान्की स्त्री मेनाने वचन को कहा ॥ १६ ॥ कि इस समय विचार से क्या है क्योंकि तबही कार्य्य कियागया है और यह महाभागा देवोंके कार्य्य के अर्थही
उपजी हैं ॥ १७ ॥ व शिवजी के अर्थ अवतार धराईगई इससे शिवके लिये देने योग्यहैं इन्होंने रुद्रजी की पूजा कियाहै और रुद्रजी से सबओर सुखित कीहुई ॥
१८ ॥ बड़ी भाग्यवाली यह सतीजी शिवजी को सामनेसे दीजावें और शिवजीकी पूजामें वह निमित्तमात्र हमारे करनेयोग्य है ॥ १९ ॥ व इसप्रकार उन मेनाजीके

सबओर से कहेहुये इस वचन को सुनकर हिमाचलजी सन्तुष्ट हुये और आनन्द से इस वचन को बोले ॥ २० ॥ कि हे ऋषियो ! इस समय आप यहां देखें यह मेरी कन्या है ॥ २१ ॥ जब वैदूर्य्य और मोतियों से विरचित कङ्कणको धारती हुई नितम्बों (चूतलों) में थापित मेखलावाली मंगलमयी वह सोलह वर्षकी (युवावस्थावाली) सुनयनी जगमगाती ज्योतिवाली चन्द्रमाकी कलासी भलीभांति लाई गई ॥ २२ ॥ तब सुन्दरताजलकी बावली सुमुखी व बडीभारी सुदीप्ति से संयुत व कुँदुरूसे ओठोंवाली अच्छे कङ्कणको पहिनेहुई पतले मध्यअङ्गवाली और मंगलमय वस्त्रसे घिरीहुई गौरीजीको देखकर भ्रमेहुये अच्छी बुद्धिवाले व ऋषिभी मोह को प्राप्तहुये व सम्भ्रम (उद्वेग या आदर) से किसी वचनको भी नहीं बोले और बहुत मतवालेकी नाईं रहगये ॥ २३ ॥ उस समय इसप्रकार उनके रूपकरके वे

यंममसम्प्रति ॥ २१ ॥ यदासुनीताचसुलोचनीसा श्यामानितम्बार्पितमेखलाशुभा ॥ वैदूर्यमुक्तावलयंदधाना भास्वत्प्रभाचान्द्रमसीवलेखा ॥ २२ ॥ लावण्योदकवापिकांसुवदनां गौरींमहासुप्रभां बिम्बोष्ठींतनुमध्यमांसुवलयांवीतां शुभावाससा ॥ दृष्ट्वातेऋषयोपिमोहमगमन्भ्रान्तास्तदासंभ्रमान्नोचुःकिञ्चनवाक्यमेवसुधियोह्यासन्प्रमत्ताइव ॥ २३ ॥ एवंतदातेऋषयोपिमोहिता रूपेणतस्याःकिमुतान्यदेवताः ॥ तथैवसर्वेचनिरीक्ष्यतन्वीं सतींगिरीन्द्रस्यसुतांहरप्रियाम् ॥ २४ ॥ ततःपुनश्चैत्यशिवंप्रियाया वृत्तंशशंसुस्त्वृषयस्तदानीम् ॥ २५ ॥ ऋषयऊचुः ॥ प्रदत्ताहिगिरीन्द्रेण स्वसुतानास्तिसंशयः ॥ उद्वाहंगच्छदेवेश देवैश्चपरिवारितः ॥२६॥ गच्छशीघ्रंमहादेव पार्वतीमात्मजन्मने ॥ तच्छ्रुत्वावचनंतेषां प्रहस्येशउवाचह ॥ २७॥ विवाहोपिमहाभागा नदृष्टोनश्रुतोपिच ॥ मयापुराचऋषयः कथ्यताञ्चविशेषतः ॥ २८ ॥

सब लोग मोहितहुये ॥२४॥ तदनन्तर ऋषिलोग निश्चयसे मोहितहुये और देवता क्या हैं और वैसेही हिमवान्की पुत्री शिवप्रिया सुन्दर अंगोंवाली सतीजीको देखकर तबहीं फिर शिवजीके समीपको भलीभांति आकर उन ऋषियों ने प्यारीका वृत्तान्त कहा ॥ २५ ॥ ऋषि बोले कि, पर्वतेन्द्रने निश्चयकर अपनी पुत्रीको अधिकता से दिया इसमें संशय नहीं है और हे देवेश ! देवोंसे सबओर घिरेहुये तुम ब्याहको जावो ॥ २६ ॥ हे महादेव जी ! तुम पुत्रके लिये शीघ्रही पार्वतीजीके प्रति चलो ऐसे उनके उस वचनको सुनकर आनन्दसे विहँसकर परमेश्वरने कहा कि ॥ २७ ॥ हे महाभागो, ऋषियो ! मैंने आगे विवाहको भी नहीं देखा और सुनाभी नहींहै इसलिये विशेषसे कहा

जावैं ॥ २८ ॥ तब बहुत हँसते हुये सब ऋषियोंने सदाशिवजीसे कहा कि हे देव ! विष्णुजी बुलायेजावें और ब्रह्मा इन्द्र ॥ २९ ॥ तथा ऋषिसमूह और यक्ष गन्धर्व व पन्नग व सिद्ध और विद्याधर व किन्नर व अप्सरागण ॥ ३० ॥ इनको और अन्य भी अच्छे बहुते जनोंको तुम इसप्रकार शीघ्रही बुलावो उस समय ऋषियों के वचनको सुनकर वाक्यों के परमपण्डित ॥ ३१ ॥ महादेवजीने नारदमुनि से कहा कि तुम विष्णुजी को शीघ्रही लावो व ब्रह्मा महेन्द्र और अन्यजनों कोभी भली भाति लेआवो ॥ ३२ ॥ व शङ्करजी के वचन को शिरसे लेकर लोकों के पवित्रकरनेवाले नारदजी वेगवान् होकर विष्णुजी के प्यारे वैकुण्ठलोक को गये ॥ ३३ ॥

तदोचुर्ऋषयस्सर्वे प्रहसन्तःसदाशिवम् ॥ विष्णुमाहूयतान्देव ब्रह्माणन्तुशतक्रतुम् ॥ २९ ॥ तथाऋषिगणांश्चैव यक्षगन्धर्वपन्नगान् ॥ सिद्धविद्याधरांश्चैव किन्नरांश्चाप्सरोगणान् ॥ ३० ॥ एतानन्यांश्चसुबहूनाहूयस्वेतिसत्वरम् ॥ तदाकर्ण्यऋषिप्रोक्तं वाक्यंवाक्यविशारदः ॥ ३१ ॥ उवाचनारदन्देवो विष्णुमानयसत्वरम् ॥ ब्रह्माणञ्चमहेन्द्रञ्च अन्यानेवसमानय ॥ ३२ ॥ शम्भोर्वचनमादाय शिरसालोकपावनः ॥ जगामत्वरितोभूत्वा वैकुण्ठंविष्णुवल्लभम् ॥ ३३ ॥ ददर्शदेवंपरमासनेस्थितं श्रियाचदेव्यापरिसेव्यमानम् ॥ चतुर्भुजंदेववरंमहाप्रभं नीलोत्पलश्यामतनुंवरेण्यम् ॥ ३४ ॥ महार्हरत्नावृतचारुकुण्डलं महाकिरीटोत्तमरत्नभास्वरम् ॥ सुवैजयन्त्यावनमालयान्वितं सनातनन्तंभुवनैकसुन्दरम् ॥ ३५ ॥ उवाचनारदोभ्येत्यशम्भोर्वाक्यमथादरात् ॥ ब्रह्मवीणांवाद्यमानःसर्वज्ञो ऋषिसत्तमः ॥ ३६ ॥ एहिएहिमहाविष्णोमहादेवस्त्वरान्वितः ॥ उद्वाहनार्थंशम्भोश्चत्वमेकःकार्यसाधकः ॥ ३७ ॥ प्रहस्यभगवान्प्राहनारदम्प्र

और वहां उन देवको देखतेभये जोकि उत्तम आसन में बैठे व लक्ष्मीदेवी से सब ओर सेये जातेहुये चतुर्भुज देवश्रेष्ठ बड़े प्रकाशवान् व नीलकमलके समान श्याम रंगअंगवाले और अंगीकार करनेयोग्यहैं ॥ ३४ ॥ व महामोलकेयोग्य रत्नोंसे घिरेहुये सुन्दरकुण्डलोंवाले व बड़े मुकुटोत्तमके रत्नोंसे दीप्तिमान् व अच्छी वैजयन्तीमाला समेत सदैव रहनेवाले और लोकोंमें मुख्य सुन्दर हैं उनके ॥ ३५ ॥ सामने जाकर ब्रह्मवीणाको बजातेहुये सर्वज्ञ ऋषिसत्तम नारदजी अनन्तर शङ्करजी के वचन को आदरसे बोले कि ॥ ३६ ॥ हे महाविष्णो ! महादेवजीके कार्य्योंके सिद्ध करनेवाले एक (मुख्य) तुम आवो आवो क्योंकि शिवजी ब्याहके अर्थ शीघ्रता समेत हैं ॥ ३७ ॥

तब बिहँसकर भगवान् ने नारद के प्रति प्रसिद्धता से कहा कि किसभांति व्याहमें उन त्रिशूलधारी की बुद्धि उपजी है ॥ ३८ ॥ प्रयोजनके जाननेवाले भी विष्णुजी नारदजीके प्रति पूँछतेभये श्रीनारदजी बोले कि श्रीपार्वती जी करके बडी भारी तपस्यासे सतोषित रुद्रजी ॥ ३९ ॥ आपही वहांगये जहां वह सती पार्वतीजी थी और प्रसन्नहुये शङ्करजीने पार्वतीजीसे कहा कि मैं दासहूं ॥ ४० ॥ व भामिनी श्रीपार्वतीजी ने उनसे प्रार्थनाकर वरको पाया और जिन शम्भुजीने शीघ्रही कह दिया है वह इससमय तुमको बुलाते हैं ॥ ४१ ॥ उनके उस वचन को सुनकर देवों के देव जनों से याचित विष्णुजी नारद से समेत और पार्षदों से सबओर घेरे

तिवैतदा॥कथमुद्वहनेबुद्धिरुत्पन्नातस्यशूलिनः॥ ३८॥ विज्ञातार्थोऽपिभगवान्नारदम्परिपृष्टवान्॥ नारदउवाच॥ तपसामहतारुद्रः पार्वत्यापरितोषितः ॥ ३९ ॥ स्वयमेवागतस्तत्रयत्रसागिरिजासती ॥ दासोहमवदच्छम्भुः पार्वतींपरितोषितः ॥ ४० ॥ पार्वतीतंसमभ्यर्थ्य वरंप्रापचभामिनी ॥ त्वरितंवावदच्छम्भुस्त्वामाह्वयतिसम्प्रति ॥ ४१ ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वा देवदेवोजनार्दनः ॥ नारदेनसमायुक्तः पार्षदैःपरिवारितः ॥ ४२ ॥ सुपर्णमारुह्ययदामहात्मा योगीश्वराणांप्रभुरच्युतोमहान् ॥ ययौतदाकाशपथाहरिःस्वयं सनारदोदेववरैस्समेतः ॥ ४३ ॥ तंदृष्ट्वात्वरितन्देवो योगिध्येयाङ्घ्रिपङ्कजः ॥ अभ्युत्थायमुदायुक्तः शार्ङ्गिणंपरिषस्वजे ॥ ४४ ॥ उभौहरिहरौदेवौ चैकपद्येनतिष्ठताम् ॥ ऊचतुःस्मतदान्योन्यं क्षेमं कुशलमेवच ॥ ४५ ॥ श्रीश्वरउवाच ॥ गिरिजातपसाविष्णो जितोहंनात्रसंशयः ॥ पाणिग्रहार्थमेवाद्य गन्तुकामो

गये ॥ ४२ ॥ और उस समय देवश्रेष्ठों से समेत व नारदजी से सहित बड़ेभारी भक्तभयहारी योगीश्वरों के स्वामी महात्मा (बड़ेव्यापक) अविनाशी (विष्णुजी) आपही जब गरुड़पर चढ़कर आकाशमार्गसे आकर प्राप्तहुये ॥ ४३ ॥ व उन शार्ङ्गधन्वाधारी वैकुण्ठविहारी को देखकर आनन्द से संयुत होकर योगियों से ध्याने योग्य चरणारविन्दोंवाले महादेवजी ने शीघ्रही सामने उठकर अपने अंगमें लिपटालिया ॥ ४४ ॥ व तब क्रीड़ाकारी भवभयहारी शिवजी और विष्णुजी साथही एक आसनसे बैठे और दोनों जनोंने परस्पर क्षेम कुशलकोभी प्रश्नकर कहा ॥ ४५ ॥ श्रीमहादेवजी बोले कि, हे विष्णो ! मैं पार्वती की तपस्या से जीतागयाहूं इसमें

संशय नही है इससे उनके ब्याहके अर्थही आज हिमालय को जानेके लिये इच्छावालाहूं ॥ ४६ ॥ हे विष्णो ! मैं तुम्हारे आगे यथार्थ (सत्य) कहताहूं कि हे विष्णो ! पूर्वसमयमें जब दक्षने मुझे सतीको दिया ॥ ४७ ॥ तब मैं संकल्प की विधिसे ब्याह नही किया इस समय यह बहुत कर्मोंका विस्तार मुझको करना चाहिये ॥ ४८ ॥ जो सब कार्य्य ब्याहमें उचित है उसको मैं नहीं जानताहूं शङ्करजी के उस वचन को सुनकर व बिहँसकर विष्णुजी ने ॥ ४९ ॥ जबतक कहने को आरम्भ किया तबतक सब लोकपालों व इन्द्रजी के साथ शीघ्रता समेत ब्रह्माजी भलीभांति आये ॥ ५० ॥ वैसेही उस समय सब देव यक्ष दानव नाग पतंग अप्सरा और महर्षि

हिमालयम् ॥ ४६ ॥ यथार्थेनचभोविष्णो कथयामितवाग्रतः ॥ यदादक्षेणमेविष्णो प्रदत्ताचपुरासती ॥ ४७ ॥ नचस ङ्कल्पविधिना मयापाणिग्रहःकृतः ॥ अधुनैतन्मयाकार्य्यंकर्मविस्तारणंवहु ॥ ४८ ॥ यत्कार्यंतन्नजानामि सर्वंपाणि ग्रहोचितम् ॥ शम्भोस्तद्वचनंश्रुत्वा प्रहस्यमधुसूदनः ॥ ४९ ॥ यावद्वक्तुंसमारेभे तावद्ब्रह्मासमागतः ॥ इन्द्रेणसहस वैश्च लोकपालैस्त्वरान्वितः ॥ ५० ॥ तथैवसर्वेसुरयक्षदानवा नागाःपतङ्गाप्सरसोमहर्षयः ॥ समेत्यसर्वेपरिवक्तुरीश मूचुस्तदानींसमवेतवाक्यम् ॥ ५१ ॥ गच्छगच्छमहादेवअस्माभिस्सहितःप्रभो ॥ ततोविष्णुरुवाचेदं प्रस्तावसदृशंव चः ॥ ५२ ॥ गृह्योक्तविधिनाशम्भो कर्मकर्तुमिहार्हसि ॥ नान्दीमुखंयथाश्राद्धं मण्डलस्थापनञ्चवै ॥ ५३ ॥ तथापिचैत द्भगवन् कुलधर्मसमन्वितम् ॥ मण्डपंस्थापनंचैव क्रियतांह्यधुनाविभो ॥ ५४ ॥ तथोक्तोविष्णुनाशम्भुश्चकारात्महि तायवै ॥ ब्रह्माद्याःपूजितास्तेन सर्वंआभ्युदयोचिताः ॥ ५५ ॥ ग्रहाणांपूजनञ्चक्रे कश्यपोब्रह्मणायुतः ॥ तथात्रिश्चवशि

भी ऐश्वर्य्य समेत शिवजी के प्रति सब ओरसे कहने के लिये भलीभांति आकर इकट्ठे एक साथही कहेहुये वचन को बोले ॥ ५१ ॥ कि हे प्रभो, महादेवजी ! हम लोगों समेत तुम चलोचलो तदनन्तर विष्णुजीने प्रकरण के समान इस वचनको कहा कि ॥ ५२ ॥ हे शम्भो ! तुम यहां गृह्यसूत्र के विधान से कर्म को करने के लिये योग्यहो जैसे नांदीमुखश्राद्ध और ग्रहादि मण्डलोंका स्थापन होताहै ॥५३॥ वैसेही हे समर्थ, भगवन् ! इस समय अपने कुलके धर्म समेत यह मंडल स्थापन कियाजावे ॥ ५४ ॥ ऐसा विष्णुजीसे कहेहुये शम्भुजीने अपने हितकेलिये वैसाही किया और उनने आभ्युदय (सम्मुख कुलवृद्धि करनेवाले) कर्ममें उचित सब

ब्रह्मादि देवोंको पूजा ॥ ५५ ॥ और ब्रह्माजीसे संयुत कश्यपऋषि ने ग्रहोंकी पूजा किया वैसेही अत्रि वसिष्ठ गौतम भागुरि भृगु ॥ ५६ ॥ कण्व बृहस्पति शक्ति जमदग्नि पराशर मार्कण्डेय शिलावाक्य शून्यपाल अक्षतश्रम ॥ ५७ ॥ अगस्त्य च्यवन गर्ग शिलाद वैसेही गोभिल ये और अन्यभी बहुत से ऋषि शिवजी के समीप में आये ॥ ५८ ॥ व ब्रह्माजी से प्रेरित उन्होंने वहां विधिसमेत अच्छी क्रियाको किया तथा वेदोंकी माता चण्डीजी पीछे वेगसे सामने गईं ॥ ५९ ॥ जब इस समय बहुतही धावती हुई चण्डीजी आई व आतीहुई बड़े प्रकाशवाली उनके प्रणामकर सामने आये हुये ॥ ६० ॥ सब गणों ने तब भैरवसमेत चंडीजीसे कहा कि, हे चंडि ! तुम हमलोगों

ष्ठश्च गौतमोभागुरिर्भृगुः ॥ ५६ ॥ कण्वोबृहस्पतिःशक्तिर्जमदग्निःपराशरः ॥ मार्कण्डेयःशिलावाक्यः शून्यपालोक्षतश्रमः ॥ ५७ ॥ अगस्त्यश्च्यवनोगर्गः शिलादोगोभिलस्तथा ॥ एतेचान्येचबहवो ह्यागताःशिवसन्निधौ ॥ ५८ ॥ ब्रह्मणानोदितास्तत्रचक्रुस्तेविधिसत्क्रियाम् ॥ वेदमातातथाचण्डीपृष्ठतोन्वगमत्त्वरा ॥ ५९ ॥ आगताह्यधुनाचण्डीधावमानायदाभृशम् ॥ प्राप्तागतान्नजन्तींताम्प्रणिपत्यमहाप्रभाम् ॥ ६० ॥ तदोचुःप्रमथाःसर्वेचण्डीभैरवसंयुताम् ॥ विनास्माकंकुतोयासिवदचण्डियथातथम् ॥ ६१ ॥ उवाचचाहसच्चण्डीभूतानान्तत्रशृण्वताम् ॥ शम्भोरुद्वहनार्थायप्रेतारूढाव्रजाम्यहम् ॥ ६२ ॥ हैमंकलशमादायशिरसाबिभ्रतीत्वियम् ॥ करवालीस्वरूपेणचण्डीयातातत स्त्वयम् ॥ ६३ ॥ भूतैःपरिवृतासर्वैस्सर्वेषामग्रतोव्रजत् ॥ गणास्तदानुजग्मुस्तेगणानांपृष्ठतःसुराः ॥ ६४ ॥ इन्द्रादयोलोकपालाऋषयस्तेग्रपृष्ठतः ॥ ऋषीणाम्पृष्ठतोभूत्वापार्षदाश्चमहाप्रभाः ॥ ६५ ॥ विष्णोरमितभावज्ञाःकुमुदाद्यामनोरमाः ॥ सर्वेपयोदस

विना कहां जातीहो उसको यथातथ्यसे बतलावो ॥ ६१ ॥ वहां चंडीजी हँसीं और सबभूतों के सुनतेही बोली कि प्रेतमें चढ़ीहुई मैं शंकरजीके ब्याहके लिये जातीहूं ॥ ६२ ॥ तदनंतर सोने के कलशको लेकर शिरसे धारतीहुई यह चंडीजी आपही करवाली (मंगल कलशके ले चलनेवाली स्त्री) के स्वरूपसे गईं ॥ ६३ ॥ और जब सब भूतों से सबओर घिरीहुई वह चंडीजी सबोंके आगे चली तब वे गण पीछे से चले व गणोंके पीछे इंद्रादि लोकपाल और सब देव ॥ ६४ ॥ और उन के आगे पीछे वे प्रसिद्ध ऋषि व ऋषियों के पीछे होकर बड़े प्रकाशवान् ॥ ६५ ॥ अनेक भावोंके जाननेवाले मनोहर विष्णुजी के कुमुदादि पार्षद चले जेकि सब मेघोंके समान श्यामरंग अंग

वाले गले मे वनमाला डाले और अनेकभांतिकी मालाओं को धारण किये हैं॥ ६६ ॥ व वे सब श्रीवत्सचिह्न धारे पीतांबरवारे चतुर्भुज कानोंमे कुंडल गहने पहने व मुकुट कड़ा बजुल्ला या बिजायठ ॥ ६७ ॥ हार पैंजनियां करधनी और अंगूठियों से शोभित ये सब विष्णुजीके या बड़े उत्तम पुरुषोंके लक्षणोवाले हैं ॥ ६८ ॥ उन के बीच में प्राप्त लक्ष्मी या शोभासमेत व दैत्यों के विनाशक विष्णुजी सोहते है जोकि त्रिलोकका समस्त मंगल करनेहारे व बड़े प्रभाववाले भक्तों से हृदय हृदय में धारेगये हैं ॥ ६९ ॥ व शिवजी के साथ मोक्षदायक भवभयघायक जीवोंके नायक और जगत् के एक प्यारे है व गरुड़जीके ऊपर भलीभाति टिकेहुये बड़े पूजनीय

ङ्काशाःस्रग्विणोवनमालिनः ॥६६॥ श्रीवत्साङ्कधरास्सर्वेपीतवासोन्विताश्चते ॥ चतुर्भुजाःकुण्डलिनःकिरीटकटकाङ्गदैः ॥६७॥ हारनूपुरसूत्रैश्चकटिसूत्राङ्गुलीयकैः ॥ शोभिताःसर्वएवैतेमहापुरुषलक्षणाः ॥६८ ॥ तेषांमध्येगतोविष्णुःश्रियोपेतःसुरारिहा ॥ बभौत्रिलोकीकृतविश्वमङ्गलोमहानुभावैर्हृदिहृद्यधिष्ठितः ॥ ६९ ॥ शिवेनसाकंपरमार्थदस्तथाहरिःपरात्माजगदेकवन्धुः ॥ सताक्ष्यर्पुत्रोपरिसंस्थितोमहाल्ँलक्ष्म्यासमेतोभुवनैकभर्ता ॥ ७० ॥ सुचामरैर्वीज्यमानोमुनीन्द्रैःसर्वैस्समेतोहरिरीश्वरोमहान् ॥ तथाविरञ्चिर्निजवीरणस्थोवेदैस्समेतःसहषड्भिरङ्गैः ॥ ७१ ॥ यदागमैरितिहासैःपुराणैःसमन्वितोहेमगर्भोबभूवह ॥ ब्रह्माहरिभ्याञ्चतदासुरेन्द्रैःसमावृतोऋषिभिस्सम्परीतः ॥ ७२ ॥ वृषारूढोवृषकेतुर्दुरापोयोगीश्वरैरपिसर्वैरगम्यः ॥ योधर्मउच्यतेवेदैर्देवैःसिद्धैर्महर्षिभिः ॥७३॥ तमारूढोमहादेवोवृषभन्धर्मवत्सलम् ॥

लक्ष्मीसमेत लोकोंके एक पोषनेवाले हैं वह ॥ ७० ॥ अच्छे चामरों से वीजित होते हुये ऐश्वर्य्यधारी भक्तभयहारी व सब मुनीन्द्रों समेत महात्मा विष्णुजी चले वैसे ही अपने हंसमें टिकेहुये व्याकरणादि छहअंगों के साथ वेदोंसे सहित ब्रह्माजी ॥ ७१ ॥ जोकि भीतर प्रकाशधारी या जगत्सृष्टिकारी हैं वह जब शास्त्रों इतिहासों और पुराणोंसे समेत हुये तब ब्रह्मा विष्णु और देवेन्द्रोंसे भलीभांति घिरेहुये ऋषियों से संयुक्त ॥ ७२ ॥ सब योगीश्वरोंसे भी अगम्य दुर्लभ व बैलपर सवार शिवजी सुशोभित हुये जोकि वेद देव सिद्ध और बड़े ऋषियोंसे धर्म कहाजाता है ॥ ७३ ॥ उस धर्म के प्यारे वृषभपर सवार व वचनों से मंगल कियेहुये और उन मातृकाओंसे

समेत महादेवजी ॥७४॥ जोकि इन सब देव दानवों से समेत बड़े ऐश्वर्य्यवान् और विज्ञानी महर्षियोंसे विभूषितहैं वह उस समय स्त्रियों मे उत्तम श्रीपार्वतीके ब्याहके अर्थ पर्वतोंमें बहुत श्रेष्ठ हिमवान्को गये ॥७५॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेमाहेश्वरखण्डान्तर्गतकेदारखण्डेशैवशास्त्रेभाषाबन्धेसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचितेत्रयोविंशोऽध्यायः२३ ॥

दोहा । चौबिसयें अध्यायमे ले सबको अगवान। बहुत विचित्र मकानमें दीन वास हिमवान ॥ श्रीलोमशजी बोले कि, वैसेही बड़े आनंदसमेत परमप्रभाववाले पर्वतेन्द्र हिमवान् ने गर्गाचार्य्य को आगेकर अपनी कन्या के अर्थही मांगल्य शोभा संयुक्त उत्तम ऐश्वर्य्य से सब किया ॥ १ ॥ व आदरसमेत विश्वकर्माको बुला

समेतोमातृभिस्ताभिर्गौभिश्चकृतमङ्गलः ॥७४॥ एभिस्समेतस्सुरदानवैस्सययौमहेशोविबुधैरलंकृतः॥हिमालयङ्गिरिवर्यन्तदानीम्पाणिग्रहार्थम्प्रमदोत्तमायाः॥७५॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकेदारखण्डेशैवशास्त्रेत्रयोविंशतितमोध्यायः२३॥

लोमशउवाच॥ तथैवसर्वंपरयामुदान्वितश्चक्रेगिरीन्द्रःस्वसुतार्थमेव॥गर्गम्पुरस्कृत्यमहानुभावोमाङ्गल्यभूत्यापरयाविभूत्या ॥१॥ आहूयविश्वकर्माणङ्कारयामाससादरम् ॥ मण्डपञ्चसुविस्तीर्णंवेदिकाभिर्मनोहरम् ॥ २ ॥ अयुतेनैवविस्तारंयोजनानांद्विजोत्तमाः ॥ मण्डपञ्चगुणोपेतंनानाश्चर्यसमन्वितम् ॥ ३ ॥ स्थावरंजङ्गमञ्चैवसदृशञ्चमनोहरम् ॥ जङ्गमञ्चजितन्तत्रस्थावरेणतथैवच ॥ ४ ॥ जङ्गमेनचतत्रैवजितंस्थावरमेवच ॥ पयसाचजितातत्रस्थलभूमिरभूत्तदा ॥ ५ ॥ जलंकिन्तुस्थलन्तत्रनविदुस्तत्त्वतोजनाः ॥ क्वचित्सिंहाःकृत्रिमाश्चहयाश्चैवतथामृगाः ॥ ६ ॥ केसत्याश्चअसत्याश्चसंस्कृताविश्वकर्मणा ॥ तथातुचैवविधिनाद्वारपालाःकृताःपुनः ॥ ७ ॥ पुंसोधनूंषिचोत्कृष्यस्थावराजङ्गमोप

कर वेदिकाओंसे मनोहर बड़े लंबे चौंड़े मंडपको कराया ॥ २ ॥ हे ब्राह्मणोत्तमो! जोकि मंडप दशहजार योजनों से विस्तारवान् गुणोंसे संयुक्त बहुतसे आश्चर्यसमेत है ॥ ३ ॥ व स्थावर जंगम समान और मनोहर है वैसेही वहां स्थावर ने जंगम को जीत लिया है ॥ ४ ॥ ऐसेही वहा जंगम ने स्थावर को जीता है उससमय उस में उसकरके स्थलकी पृथिवी पानीसे जीतीगई है ॥ ५ ॥ किंतु जन सत्य से नही जानते हैं कि वहां यह जल है कि स्थल है व कहीं चित्रमें बनाये हुये सिंह घोड़े और मृगभी बने हैं ॥ ६ ॥ जोकि विश्वकर्मा से विरचे गये हैं उनमें से यह नहीं जाना जाता है कि कौन सत्य हैं और कौन असत्य हैं फिर वैसेही उन्होंने विधान

से द्वारपालों को किया है ॥ ७ ॥ नहीं चलतेहुयेभी जन धनुषोंको खींचकर चलते हुये लोगों के समान वर्त्तमान हैं व उसमेंही बनाई हुईभी स्त्रिया कमलोंकी नाई हाथोंवाली सुनयनी हैं ॥ ८ ॥ कोई चामरो से वीज्यमान हैं व कोई फूल और अँगुसोंसे समेत है व वहा कोई मालावाले कियेहुये पुरुष विराजमान हुये है ॥ ९ ॥ वैसेही बहुतसी विरचित पताकाये कल्पित (थापीगई) हैं व क्षीरसागर से भलीभाति उपजी हुई महालक्ष्मीजी द्वार मे टिकी हैं ॥ १० ॥ व हाथी और क्षत्रियभी नहीं किये हुये जनों के समान विभूषित हुये हैं वैसेही सवारों से घोड़े व हाथी के सवारों से हाथी ॥ ११ ॥ और अधिक आश्चर्य समेत रथ रथके असवारों समेत

माः ॥ तत्रैवकृत्रिमायोषाःपद्महस्ताःसुलोचनाः ॥८॥ चामरैर्वीज्यमानाश्चकाश्चित्पुष्पांकुरान्विताः ॥ केचिच्चपुरुषास्तत्रविरेजुःस्रग्विणःकृताः ॥ ९ ॥ कृत्रिमाश्चतथावह्व्यःपताकाःकल्पितास्तथा॥द्वारिस्थितामहालक्ष्मीःक्षीरोदधिसमुद्भवा॥ १०॥ गजाश्चालंकृताह्यासन्क्षत्रियाह्यकृतोपमाः ॥ तथाश्वाःसादिभिश्चैवगजाश्चगजसादिभिः ॥ ११ ॥ रथारथिभिराकृष्टामहाश्चर्यसमन्विताः ॥ सर्वेषांमोहनार्थायतथावैसंसदःकृताः ॥ १२ ॥ महद्वारिस्थितोनन्दीकृतस्तेनहिमण्डपे ॥ शुद्धस्फटिकसङ्काशोयथानन्दीतथैवच ॥ १३ ॥ षोडशप्रकृतयस्तेनयथातथ्येनधीमता ॥ सर्वेदेवायथार्थेनकृतावैविश्वकर्मणा ॥ १४ ॥ तथैवऋषयःसर्वेभृग्वाद्याश्चतपोधनाः ॥ विप्राश्चपार्षदैस्साकमिन्द्रोहिपरमार्थतः ॥ १५ ॥ कृताःसर्वेमहात्मानोयथातथ्येनधीमता ॥ एवम्भूतःकृतस्तेनमण्डपोदिव्यरूपवान् ॥ १६ ॥ अनेकाश्चर्यसंयुक्तोदिव्योदिव्यविमोहनः ॥ एतस्मिन्नन्तरेतत्रआगतोनारदोग्रतः ॥ १७ ॥ ब्रह्मणानोदितःप्राप्तोहिमालयगृहम्प्रति ॥ नारदोथददर्शाग्रेह्या

खींचे गये हैं वैसेही सबों के मोहने के अर्थ भलीभांति सभायें कीगई हैं ॥१२॥ और जैसे शुद्ध स्फटिकमणि के समान उजले रंग अंगवाले नंदीश्वर बडे द्वारपर टिके हैं वैसेही उन्हों ने मण्डपमें नंदी को किया ॥ १३ ॥ व उन बुद्धिमान् विश्वकर्मा ने यथातथ्यसे सोलह प्रकृतियों और सब देवोंको सत्यस्वरूप सेही बनाया है ॥ १४ ॥ वैसेही तपस्या धनवाले भृगु आदि सब ऋषि व पार्षदोंसमेत ब्राह्मण व यथार्थ रूपवान् इंद्र ॥ १५ ॥ और सब महात्माओंको उन बुद्धिमान् ने यथातथ्य से किया है व ऐसे हुये दिव्यरूपवाले मंडपको बनाया है ॥ १६ ॥ जोकि बहुते आश्चर्योंसे संयुक्त प्रकाशवान् और देवोंके मोहनेवाला है इस अवसर में नारदजी आगे वहा

आये ॥ १७ ॥ व ब्रह्माजी से प्रेरितहोकर हिमालय के घरको गये अनन्तर नारद ने आगे वीणासमेत अपनाकोही देखा ॥ १८ ॥ और बडे सुयशवाले नारदजी उस विरचित चित्रकारीधारी मंडपसे भ्रमसंयुक्त होगये व वहां विश्वकर्मा से किये हुये को देखने के लिये ॥ १९ ॥ रत्नों से चित्रित उन हिमवान् के मंडपमे पैठते भये जो कि सोने के कलशों से सेवित व केला आदि मंगलवृक्षोंसे समीपमें शोभितहै ॥ २० ॥ व हजारो खभों से संयुक्त और अधिक अद्भुत है उस मंडप तथा वेदीको देखकर बड़े विस्मयको प्राप्त हुये ॥ २१ ॥ उन ऋषि को भलीभाति देखकर व एकाएक उठकर बंधुओ से बहुतही घिरे हुये हिमवान्ने पूजन किया और ऐसा पूंछा कि

त्मानंवीणयान्वितम् ॥ १८ ॥ भ्रान्तोहिनारदस्तेनकृत्रिमेणमहायशाः ॥ अवलोकयितुन्तत्रचरितंविश्वकर्मणः ॥ १९ ॥ प्रविष्टोमण्डपन्तस्यहिमाद्रेरत्नचित्रितम् ॥ सुवर्णकलशैर्जुष्टंरम्भाद्यैरुपशोभितम् ॥ २० ॥ सहस्रस्तम्भसंयुक्तं मण्डपंपरमाद्भुतम् ॥ वेदिकाञ्चतथादृष्ट्वाविस्मयम्परमंययौ ॥ २१ ॥ तंदृष्ट्वासहसोत्थायहिमवान्बन्धुसंवृतः ॥ तमृषिंपूजयामासकिङ्कार्यमितिपृष्टवान् ॥ २२ ॥ नारदउवाच ॥ आगतास्तेमहात्मानोदेवाइन्द्रपुरोगमाः ॥ तथामहर्षयस्सर्वेगणैश्चपरिवारिताः ॥ २३ ॥ महादेवोवृषारूढोह्यागतोद्वहनम्प्रति ॥ ततस्तद्वचनंश्रुत्वाहिमवान्गिरिसत्तमः ॥ २४ ॥ उवाचनारदंवाक्यंप्रशस्तम्मधुरम्महत् ॥ पूजयित्वायथान्यायङ्गच्छध्वंशङ्करम्प्रति ॥ २५ ॥ तथैवमत्वासमुनिः शैलराजानमब्रवीत् ॥ मैनाकेनचसह्येनमेरुणागिरिणासह ॥ २६ ॥ एभिस्समेतोह्यधुनामहामतेव्रजस्वशीघ्रंशिवमत्र चानय ॥ देवैःसमेतञ्चमहर्षिसङ्घैस्सुरासुरैरर्चितपादपङ्कजम् ॥ २७ ॥ तथेतिमत्वासजगामतूर्णंसहैवतैःपर्वतराजभिश्च ॥

क्या करना चाहिये ॥ २२ ॥ नारदजी बोले कि वैसेही गणोंसे चारों ओर घिरेहुये वे महात्मा इन्द्रादि सब देव और महर्षि भी आये है ॥ २३ ॥ और बैलपर सवारही महादेवजी ब्याहके प्रति आये हैं तदनंतर उनके या उस वचनको सुनकर पर्वतों में बहुतअच्छे श्रेष्ठ हिमवान्ने ॥ २४ ॥ नारदजीको यथा न्याय से पूजनकर प्रशंसनीय बडे मधुरवचन को कहा कि तुम सबलोग श्रीशंकरजीके प्रति चलो ॥ २५ ॥ वैसाही मानकर वह मुनि पर्वतराज से बोले कि मैनाक सह्य और सुमेरुपर्वत के साथ ॥ २६ ॥ इन सबों समेत तुम इस समय जाओ और हे बड़े बुद्धिमन् ! देवों व महर्षि समूहों से समेत व देवताओं और दैत्य दानवादिकों से पूजित पदकमलों

वाले शिवजीको यहा लावो ॥ २७ ॥ वैसाहीहो ऐसा मानकर वह उन पर्वतराजोंके साथ शीघ्रही चले और एक साथही आगे चलनेवाले व ऋषियों में बडे श्रेष्ठ महात्मा नारदजी शङ्करजी के समीप प्राप्तहुये ॥ २८ ॥ व जबतक देवों से सब ओर घिरेहुये महादेवजी देखपड़े तब ब्रह्मा विष्णु और देवोंके साथ इन्द्रजी ॥ २९ ॥ व जे अन्यभी शिवजीके गण बहुत से हैं उन सबोंने नारदजीसे पूँछा कि पूँछतेहुये हमलोगों के आगे सत्यही कहा जावे ॥ ३० ॥ कि ये सह्य और मैनाक पर्वत क्यों भलीभाति आयेहैं व हिमवान्जी शङ्करजी को कन्या देवेंगे व इससमय क्या होरहा है ॥ ३१ ॥ जब ऋषियों में बहुत श्रेष्ठ बड़े तेजस्वी नारदजी ने ब्रह्माको आगे कर

पुरोगमश्चैकपदेनशम्भुम्प्राप्तोऋषीणाम्प्रवरोमहात्मा ॥ २८ ॥ यावद्दृष्टोमहादेवोदेवैश्चपरिवारितः ॥ तदाब्रह्माच विष्णुश्चइन्द्रश्चैवसुरैस्सह ॥ २९ ॥ पप्रच्छुर्नारदंसर्वेयेन्येरुद्रचराभृशम्॥कथ्यताम्पृच्छमानानामस्माकन्तथ्यमेवहि॥ ३० ॥ एतेकस्मात्समायाताःसह्यमैनाकपर्वताः ॥ कन्यांदास्यतिवाशम्भोःकिन्त्विदानीम्प्रवर्तते ॥३१॥ यदोवाचमहातेजानारदोऋषिसत्तमः ॥ ब्रह्माणम्पुरतःकृत्वाविष्णुम्प्रतिसहेतुकम् ॥ ३२ ॥ एकान्तमाश्रित्यतदासुरेन्द्रंसनारदोवाक्यमिदंबभाषे ॥ त्वष्ट्राकृतन्तद्धिकृतम्महत्तरंयेनैवसर्वेभविताविमोहिताः ॥३३॥ पुराकृतन्तस्यमहात्मनस्त्वयाकिञ्चित्स्मृतन्तत्सकलंशचीपते ॥ तस्मादसौत्वांविजिगीषुकामोगृहेवसत्तस्यगिरेर्महात्मनः ॥३४॥ अहंहिमोहितस्तेनप्रतिरूपेणभास्वता ॥ तथाविष्णुःकृतस्तेनशङ्खचक्रगदादिभृत ॥ ३५ ॥ तस्माच्चैवतथाभूतंत्वांचैवकृतवान्प्रभुः ॥ मायामयः

विष्णुजी के प्रति कारण समेत वृत्तान्तको कहा ॥ ३२ ॥ तब एकान्त को आश्रय (आधार या सेवन) कर वह नारदजी देवेन्द्रसे इस वचनको बोले कि त्वष्टा (विश्वकर्मा) ने जो किया वह बहुतही भारी चित्रकारीधारी कर्म किया गयाहै कि जिससे सब विमोहित होवेंगे ॥ ३३ ॥ हे इन्द्राणीपते! आगे उन महात्मा का किया हुआ वह सब कुछ तुम करके स्मरण किया गया है उस लिये तुमको जीतने के चाही वह उन महात्मा पर्वतके घर में बसे हैं ॥ ३४ ॥ मैंभी उस जगमगाते हुये प्रतिबिम्ब से विमोहित हुआहूं वैसेही उन्होंने शङ्ख चक्र गदा पद्म आदिधारी विष्णुजीको कियाहै ॥ ३५ ॥ उस कारण समर्थ ने वैसेही तुमको भी ऐसेही बनादिया है व मायामय

हाथी और वैसेही बड़े श्रेष्ठ घोड़ेको किया है ॥ ३६ ॥ हे देवेन्द्र ! उन महात्माने विचारवाले सबदेवोंके विमोह के लियेही ऐसी प्रतिमाओंको बनायाहै ॥ ३७ ॥ तब उन
के उग्र वचनको सुनकर देवेन्द्रने विष्णुजी के प्रति इस वाक्यको कहा कि वह मुझ को देखकर शीघ्रही मारेंगे ॥ ३८ ॥ क्योंकि यह पुत्र के शोचमें भलीभांति तपे हैं
इस इस विषसे मारेंगे अन्यथा नहीं उनके उस वचनको सुनकर देवोंके देव विष्णुजी ने ॥ ३९ ॥ बहुत हँसकर वचनको कहा और उस समय इन्द्रको आश्वासन
किया कि हे इन्द्राणीपते ! तुम आगे अनेक कवचों से मोहित नहीं हुयेहो ॥ ४० ॥ वहां उपशान्ति के लिये मुझसे सुमिरी हुई विद्या भलीभांति आई है इस समय

कृतानागश्चाश्ववर्यस्तथैवच ॥ ३६ ॥ प्रतिमाश्चैवदेवेन्द्र कृतास्तेनमहात्मना । विमोहनार्थंसर्वेषांदेवानांहिविवेकिना
म् ॥ ३७ ॥ तच्छ्रुत्वावचनंतस्यदेवेन्द्रोवाक्यमब्रवीत् ॥ विष्णुम्प्रतितदाशीघ्रंदृष्ट्वामांनिहनिष्यति ॥ ३८ ॥ पुत्रशो
केनतप्तोसौउग्राजंनानेननान्यथा ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वादेवदेवोजनार्दनः ॥ ३९ ॥ प्रहस्यप्रोवाचवाक्यंशक्रमाश्वासयंस्त
दा ॥ त्वंनानाकवचैःपूर्वंमोहितोसिशचीपते ॥ ४० ॥ विद्यास्मृतातत्रमयासमायातोपशान्तये ॥ महाविद्याबलेनैवप्रवे
श्यंमण्डपेधुना ॥ ४१ ॥ पर्वतोहिमवानेषतथान्येपर्वतोत्तमाः ॥ विपक्षाहिकृताःसर्वेममवाक्याच्चवासव ॥ ४२ ॥ तेन
स्मृत्याथवैदुष्टामायया गिरयोह्यमी ॥ जयमिच्छन्तियेमूढानचभेतव्यमण्वपि ॥ ४३ ॥ एवंविवदमानांस्तान्देवा
ञ्छक्रपुरोगमान् ॥ उवाचत्वरितंशम्भुम्परिम्लानेनचेतसा॥ ४४॥ किंनुवक्तिमहाशैलोयथार्थंवदनारद॥ ददातिवानक
न्यांस्वांकथ्यतांशीघ्रमेवहि ॥ ४५ ॥ किन्तत्रदृष्टन्देवर्षेकृतञ्चैवनमोस्तुते॥ तथोक्तःशम्भुनातत्रनारदोदेवदर्शनः ॥४६॥

महाविद्या के बलसेही मण्डप में पैठना चाहिये ॥ ४१ ॥ हे इन्द्र ! तुमने मेरे वचन से इन हिमवान् पर्वत तथा अन्यभी सब पर्वतोत्तमो को पक्षोंसे हीन किया है ॥
४२ ॥ अनन्तर उस कारण स्मरणसे दुष्ट येही जे मूढ पर्वत मायासे निश्चयकर जीतकी इच्छा करते हैं उनसे थोड़ाभी नहीं डरना चाहिये ॥ ४३ ॥ ऐसा विवादकरते
हुये उन इन्द्रादि देवोंके समीप में शङ्करजीने मलिन मनसे शीघ्रही कहा कि ॥४४॥ हे नारद ! तुम यथार्थ (सत्यही) कहो वह महापर्वत हिमवान् क्या कहते हैं
अपनी कन्याको देवेंगे या कि नहीं यह शीघ्रही कहाजावे ॥ ४५ ॥ हे देवर्षे ! तुम्हारे लिये नमस्कारहो तुमने वहां क्या देखा और क्या किया है उस समय से शिवजी

से ऐसा कहेहुये देवोंके दर्शन (ज्ञान) वाले नारदजी ने ॥ ४६ ॥ उन हिमवान्के मण्डप में जिसको देखा उस सबको एकान्त में कहा तब उस सबको सुनकर बहुत हँसकर शङ्करजी बोले कि ॥ ४७ ॥ हे विष्णो ! जो हिमवान् पर्वत मुझको कन्या देवेंगे तो मायासे मेरा क्या कार्य्य है तुम यथातथ्य से कहो ॥ ४८ ॥ और किसी भी उपाय से फलही साधना चाहिये ऐसा न्यायके जाननेवाले पण्डितों से कहा जाता है उससे कार्य्यार्थी सब इन्द्रादि देवोंकरके शीघ्रही जायाजावे ॥ ४९ ॥ आकाशादि पञ्चतत्त्व या सब प्राणियों के स्वामी सर्वव्यापक शिवजी भी भस्म हुये कामसे मोहित हैं तो अन्य जनोंकी निश्चय से क्या कथा है ॥ ५० ॥ इसप्रकार बतलाते हुये

उवाचसर्वंरहसियद्दृष्टन्तस्यमण्डपे ॥ तच्छ्रुत्वाप्रहसञ्छम्भुरुवाचसकलन्तदा ॥ ४७ ॥ कन्यांदास्यतिचेन्महांपर्वतोहिहिमालयः ॥ माययाममकिङ्कार्य्यंवदविष्णोयथातथम् ॥४८॥ केनाप्युपायेनफलंहिसाध्यमित्युच्यतेपण्डितैर्न्यायविद्भिः ॥ तस्मात्सर्वैर्गम्यतांशीघ्रमेवकार्यार्थिभिश्चेन्द्रपुरोगमैश्च ॥ ४९ ॥ सदाशिवोपिविश्वात्मापञ्चबाणेनमोहितः ॥ भस्मीभूतेनभूतेशोह्यन्येषाञ्चैवकाकथा ॥ ५० ॥ एवंविवदमानोसौशम्भुःपरमशोभनः ॥ कृतोह्यनङ्गेनवशीयथान्यःप्राकृतोजनः ॥ ५१ ॥ मदनोहिबलीलोकेयेनसर्वमिदंजगत् ॥ जितमस्तिचसप्रौढंसदेवर्षिसमन्वितम् ॥ ५२ ॥ सर्वेषामेवदेवानांभूतानाञ्चविशेषतः ॥ राजाह्यनङ्गोबलवान्यस्यचाज्ञाबलीयसी ॥५३॥ वर्ततेस्त्रीस्वरूपेणअजेयोभुवनत्रये ॥ ताडिताहिस्त्रियासर्वेऋषयोहिविचक्षणाः ॥ ५४ ॥ देवामनुष्यागन्धर्वाःपिशाचोरगराक्षसाः॥ आज्ञानलङ्घितासर्वैर्मदनस्यमहात्मनः ॥ ५५ ॥ तपोबलेनमहतातथादानबलेनच ॥ जेतुंत्वशक्योमदनोविनयेनविनाद्विजाः ॥ ५६॥ तस्मादनङ्ग

परमशोभन वह शङ्करजी अन्य प्राकृत जनकी नाईं कामसे वश कियेगये॥५१॥क्योंकि कामही लोकमें बलवान् है जिससे वृद्धोंसमेत व अच्छे देवो और ऋषियों सहित यह सब जगत् जीतागयाहै ॥५२॥ व जिसकी आज्ञा बहुतही बलवती है वह बलवान् काम सबही देवों और विशेष से प्राणियों का भी राजाहै ॥ ५३ ॥ व त्रिलोकसे नहीं जीतने योग्य होकर स्त्रीस्वरूपसे वर्तता है इससे दिव्यदृष्टिवाले विज्ञानी सब ऋषिभी स्त्रीसे सन्ताडितही हैं ॥ ५४ ॥ जेकि देव, मनुष्य, गन्धर्व्व, पिशाच, उरग और राक्षस हैं उन सबों में महात्मा कामकी आज्ञाको नहीं उल्लंघन किया ॥५५॥ हे ब्राह्मणो ! विनयके विना बड़े तपोबल तथा दानके बलसेभी काम जीतने योग्य

नहीं है ॥ ५६ ॥ उस कारण कामका मित्र क्रोधभी बडा बलवान् है इसभांति शिवजीको काम से मोहित देखकर विष्णुजी ॥ ५७ ॥ जोकि वचनोंके जाननेवाले हैं वह
वाक्य को बोले कि हे प्रभो ! तुम निश्चय से चिताको मत करो और मंडपके प्रति सब ओरसे उस सब त्वष्टाके कियेहुये विचित्र को नारदजीनेभी कहा ॥ ५८ ॥ जिसे
सामर्थ शङ्करजीने जाना तब विष्णुजीसे वचन को कहा कि ॥ ५९ ॥ हे विष्णो ! हम संदेहरो क्या कहेंगे क्योंकि उन त्वष्टाने मायासे घिरेहुये मंडपको किया है
केवल मडपही नहीं है ॥ ६० ॥ हे महाभाग ! जिससे व्याह अज्ञान मूलवालाही है उससे इससमय हम सबजने व्याह के अर्थ जाते या जावेंगे ॥ ६१ ॥ और तब

स्यसखाक्रोधश्चबलवत्तरः॥ईश्वरंमदनेनैवम्मोहितंवीक्ष्यमाधवः ॥ ५७ ॥ उवाचवाक्यंवाक्यज्ञोमाचिन्तांकुरुवैप्रभो ॥
यदुक्तंनारदेनैवमण्डपम्प्रतिसर्वतः ॥ ५८ ॥ त्वष्ट्राकृतंविचित्रञ्चतत्सर्वमगमत्प्रभुः ॥ तदानींशङ्करोवाक्यंबभाषेमधुसू
दनम्॥५९॥अविद्ययावृतन्तेनकृतन्त्वष्ट्राहिमण्डपम् ॥ किन्नुवक्ष्यामिहेविष्णोमण्डपःकेवलेनहि ॥६०॥ विवाहोहिमहा
भागअविद्यामूलएवच ॥ तस्मात्सर्वेवयंयामउद्वाहार्थञ्चसम्प्रति ॥ ६१ ॥ नारदञ्चपुरस्कृत्यसर्वेदेवाःसवासवाः ॥ हि
माद्रेःसहिताजग्मुर्मन्दिरंपरमाद्भुतम् ॥ ६२ ॥ अनेकाश्चर्यसंवीतंविचित्रंविश्वकर्मणा ॥ कृतञ्चतेनातिपवित्रमुत्त
मंसयज्ञवाटंबहुभिःपुरस्कृतम् ॥ ६३ ॥ विचित्रचित्रंमनसादुरत्ययन्तद्यज्ञवाटंसचकारबुद्धिमान् ॥ प्रवेक्ष्यमानास्तेसर्वे
सुरेन्द्राऋषिभिस्सह ॥६४॥ दृष्टाहिमाद्रिणातत्राथाभ्युत्थानगतोभवत्॥तथैवतेषाञ्चमनोहराणिगृहाणितेनैवप्रकल्पिता
नि ॥ ६५ ॥ गन्धर्वसिद्धाःप्रमथाश्चयक्षादेवाश्चनागाप्सरसाङ्गणाश्च ॥ वसन्तियत्रैवसुखेनतेवैसततन्त्रतत्रोपवसञ्चका

सम्मिलित हुये सब इन्द्रादि देव नारदजीको आगेकर हिमवान्के परम अद्भुत घरको गये ॥ ६२ ॥ जोकि अनेक आश्चर्योंसे संयुक्त विचित्र उन विश्वकर्मा से कियाहुआ
परमपवित्र उत्तम यज्ञशाला समेत और बहुत जनों से आगे कियागया याने आदरित है ॥ ६३ ॥ और जोकि विचित्र चित्रनारीधारी व मनसेभी दुर्लंघ्य है उस यज्ञ-
वाटको उन बुद्धिमान्ने किया है व ऋषियों के साथ पैठाये जाते हुये उन सब देवेन्द्रों को ॥ ६४ ॥ वहां हिमवान् पर्वतने देखा अनंतर वह सामने उठने से चलने
वाले होगये व वैसेही उन इन्द्रादि देवो के मनोहर घरोंकोभी उन विश्वकर्मा ने बनाया है ॥ ६५ ॥ व गंधर्व सिद्ध प्रमथ यक्ष देव नाग और वे अप्सरों के समूह

जहांपर निश्चयकर सुखसे बसते है वहा वहां उन्होने टिकाश्रयको कियाहै ।.६६॥ और उन के बीचमे महात्मा त्वष्टासे कियेहुयेही के बडे योग्य अतिअद्भुत धारासमेत आगनवाले याने फुहारेवाले घर सोहते है ॥ ६७ ॥ जेकि वहा अवकाश (ठौर) समेत सब देव और भक्तियुक्त चित्तवाले ऋषियो केही टिकने के लिये बनाये गयेहै ॥ ६८ ॥ इसप्रकार यथारुचि जहा तहा टिकतेहुये जनों के बहुतेभी घरोंको विश्वकर्माने विस्तार कर दिया है ॥ ६९ ॥ भैरव और क्षेत्रपाल व जे अन्यभी क्षेत्रवासी है व जे अन्यजन पीपलवृक्षोंके सेवनेवाले है वैसेही जे अन्यलोग आकाशचारी है ॥ ७० ॥ और जे जे जहा जहा टिकेहै वहां वहा उन्होंनेही मनोहर महान्

र ॥ ६६ ॥ तेषाम्मध्येमहार्हाणि धाराजिरगृहाणिच ॥ अत्यद्भुतानिशोभन्ते कृतान्येवमहात्मना ॥ ६७ ॥ निवासार्थं कल्पितानिसावकाशानितत्रवै ॥ देवानाञ्चैवसर्वेषां ऋषीणांभावितात्मनाम् ॥ ६८ ॥ एवंविस्तारयामास विश्वकर्मा बहून्यपि ॥ मन्दिराणियथाजोषं यत्रतत्रैवतिष्ठताम् ॥ ६९ ॥ भैरवाःक्षेत्रपालाश्च येन्येचक्षेत्रवासिनः ॥ अश्वत्थसेविनश्चान्ये खेचराश्चतथापरे ॥ ७० ॥ येयेयत्रोपविष्टाश्च तत्रतत्रैवतेनवै ॥ कृतानिचमनोज्ञानि भवनानिमहान्तिच ॥ ७१ ॥ तान्यप्येवानुशंसीनि भूतानांविश्वकर्मणा ॥ ७२ ॥ तत्रैवतेसर्वगणैःसमेतानिवासितास्तेनहिमाद्रिणास्वयम् ॥ सेन्द्राः सुरायक्षपिशाचराक्षसा गन्धर्वसिद्धाप्सरसांसमूहाः ॥ ७३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेमाहेश्वरखण्डान्तर्गतकेदारखण्डे शैवशास्त्रे हिमाद्रिमण्डप इन्द्रादिदेवगणनिवासोनाम चतुर्विंशतितमोऽध्यायः २४ ॥ * ॥ * ॥

लोमशउवाच ॥ तत्रोपविविशुस्सर्वे सत्कृताश्चहिमाद्रिणा ॥ तत्रैवचमहापात्रं निर्मितंविश्वकर्मणा ॥ १ ॥ दीप्त्या

मंदिरों को किया है ॥ ७१ ॥ व वेभी प्राणियो के बीचमें विश्वकर्मा से पीछे प्रशसनीय है ॥ ७२ ॥ वहाही उन हिमवान् ने आपही सब गणोसमेत उन इंद्रादि देवो सहित देव यक्ष पिशाच राक्षस गंधर्व सिद्ध और अप्सरों के समूहों को निवास कराया (टिकाया) ॥ ७३ ॥ इति श्री स्कन्दपुराणे माहेश्वरखण्डान्तर्गतकेदारखण्डे भाषाबन्धे सिद्धिनाथत्रिवेदिविरचिते हिमाद्रिमण्डपे इन्द्रादिदेवगणनिवासोनाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दोहा । पंचविंश अध्याय में श्रीहिमवान मकान । गे शिव नारद मुनि कियो महिमा महा बखान ॥ श्रीलोमशजी बोले कि हिमवान्से आदर कियेहुये वे सब

जने वहां समीपमें बसे या उस मंदिर में पैठगये और उसमेंही विश्वकर्माने बडे अवकाशवाले स्थानको बनाया ॥ १ ॥ जोकि ब्रह्माजी के टिकनेके अर्थ उत्तम ज्योति
से युक्त जगमगाता है व ऐसेही विष्णुजीका अन्य मन्दिर है जोकि आपही ॥ २ ॥ प्रकाशवान् बहुत विचित्र मनोहर और त्वष्टासे कियागया है ऐसेही त्वष्टाने आपही
मन के हरनेहार चंडीजीके घरको बनाया है ॥ ३ ॥ तथा बडे विचित्र उत्तम सुन्दर महामंगलसंयुक्त व देव श्रेष्ठों से सुपूजित और कैलासकी उपमावाले व बडी
दीप्ति से जगमगाते हुये जिस घरको किया है ॥ ४ ॥ उसमेंही उन हिमवान्‌जीने बडे ऐश्वर्य से समर्थ शिवजीको टिकाया जहां महाप्रभाववाले सूर्य्य नहीं अग्नि

परमयायुक्तं निवासार्थं स्वयम्भुवः ॥ तथैव विष्णोरन्यपरं भवनं स्वयमेव हि ॥ २ ॥ भास्वरं सुविचित्रञ्च कृतं त्वष्ट्रा मनोर
मम् ॥ चण्डीगृहं मनोज्ञञ्च तथैव कृतवान्स्वयम् ॥ ३ ॥ तथातिचित्रं परमं मनोज्ञं महाशुभं देववरैः सुपूजितम् ॥ कैला
ससाम्यं प्रभया महत्या सुशोभनं यद्भवनं चकार ॥ ४ ॥ तत्रैव शम्भुः परया विभूत्या संस्थापितस्तेन हिमाद्रिणा प्रभुः ॥
यत्रैव सूर्योपि महाप्रभावो न शोभते नाग्निर्विधूनचान्ये ॥ ५ ॥ ग्रहाश्च सर्वे न कदा विभान्ति तत्रैव शम्भुश्च यदा निवेशितः ॥
वभौ तदानीं भुवनैकभर्ता विश्वेश्वरो वेदविदांवरिष्ठः ॥ ६ ॥ विश्वेशवन्द्यः परिपूज्यमानो हिमाद्रिणा ज्ञानविदां तदानी
म् ॥ एतस्मिन्नन्तरे मेना समायाता सखीगणैः ॥ ७ ॥ नीराजनार्थं शम्भोश्च ऋषिभिः परिवारिता ॥ तदा वादित्रनिर्घोषै
र्नादितं भुवनत्रयम् ॥ ८ ॥ नीराजनं कृतं तस्य मेनया च तपस्विनः ॥ अवलोकपरा साध्वी मेना जामातरं तदा ॥ ९ ॥

नहीं चन्द्रमा नहीं और अन्य नक्षत्रादि कभी नहीं सोहते हैं ॥ ५ ॥ व जहां सब ग्रहभी कभी नहीं सुशोभित होते हैं याने नहीं प्रकाश करसक्ते हैं उसमेंही सब जगत्
के एक आधार या पोषणकार व वेदों के जाननेवालों में बडे श्रेष्ठ विश्वनाथ शिव जी प्रवेश कराये (टिकाये) गये तब बहुतही शोभित हुये ॥ ६ ॥ जोकि उससमय
लोकपालों से वन्दनीय और ज्ञानके पंडित हिमवान् करके सबओरसे पूजे जाते हैं इस अवसर में सखीसमूहों के साथ हिमवान्की स्त्री मेना भलीभांति आई ॥ ७ ॥
जोकि शिवजीकी आरती करने के अर्थ ऋषियों से सब ओर घिरी हुई हैं तब त्रिलोक भी बाजोंके शब्दसे शब्दायमान होगया ॥ ८ ॥ व जब मेनाजीने उन तपस्वी की

के मुण्डों और अन्य रुण्डों को भी अपने उरमें किया है व जोकि व्याघ्राम्बर पहिने और योगिनी समूहों से संयुत है ॥ २७ ॥ व क्षेत्रपालों से समेत और वैसेही भैरवों से सबओर घेरीगई हुईहैं व महाप्रेत भूत और कर्पटोंसे बहुतही घिरी हैं ॥ २८ ॥ वैसे काली व भैरवी व भय (डर) के पहुँचानेवाली माया व त्रिपुरा तथा जया और वैसेही क्षेमकरी ॥ २९ ॥ और अन्या वैसे आत्मेश्वरी ये सब सदाशिवजीको आगे कर भूतों व प्रेतो से भलीभांति घिरीहुई होकर चलनेकी इच्छावाली है ॥ ३० ॥ तदनन्तर शिवजी के भक्त विष्णुजी इन सबों को देखकर महर्षि और वैसेही देवों को आगेकर ॥ ३१ ॥ अनुसूया तथा अरुन्धती व लोपामुद्रा और वैसेही सावित्री

परिवारिता ॥ महाप्रेतैश्चभूतैश्च कर्पटैःपरिवारिता ॥ २८ ॥ तथाकालीभैरवीच मायाचैवभयावहा ॥ त्रिपुराचजयाचैव तथाक्षेमकरीतथा ॥ २९ ॥ अन्याचैवतथात्मेशीपुरस्कृत्यसदाशिवम् ॥ गन्तुकामाचोग्रतरा भूतैःप्रेतैःसमावृता ॥ ३० ॥ एतास्सर्वाविलोक्याथ शिवभक्तोजनार्दनः ॥ महर्षींश्चपुरस्कृत्यह्यमरांश्चतथैवच ॥ ३१ ॥ अनुसूयांपुरस्कृत्य तथैवचारुन्धतीं ॥ लोपामुद्रांतथाबम सावित्रीञ्चतथैवच ॥ ३२ ॥ विष्णुरुवाच ॥ चन्द्रंकुरुसमीपस्थं लोकपालावृतप्रभो ॥ तदोक्तंविष्णुनावाक्यं निशम्यजगदीश्वरः ॥ ३३ ॥ उवाचप्रहसन्नेव चण्डींप्रतिसदाशिवः ॥ अत्रैवस्थीयतांचण्डि यावद्‌द्वहनंभवेत् ॥ ३४ ॥ ममभावान्विजानासि कार्याकार्यंसुशोभने ॥ एवमाकर्ण्यवचनं शम्भोरमिततेजसः ॥ ३५ ॥ उवाचकुपिताचण्डी विष्णुमुद्दिश्यसादरम् ॥ तथान्येप्रमथास्सर्वे विष्णुमूचुःप्रकोपिताः ॥ ३६ ॥ यत्रयत्रशिवोभाति

को भी आगेकर सुशोभितहुये ॥ ३२ ॥ श्रीविष्णुजी बोले कि, हे लोकपालों से घिरेहुये, प्रभो ! तुम चन्द्रमा को समीपवासी करो तब विष्णुजी से कहे हुये वचन को सुनकर जोकि जगत् के ईश्वर हैं ॥ ३३ ॥ वह हँसतेहुयेही सदाशिवजी चण्डीजीसे बोलेकि हे चण्डि ! जबतक विवाह होवे तबतक यहांही टिकाजावे ॥ ३४ ॥ हे सुशोभने ! तुम मेरे अभिप्रायों और करने व नहीं करने योग्य कार्य्य को विशेष से जानती हो इसभांति अमिततेजवाले शिवजी के वचनको सुनकर ॥ ३५ ॥ क्रोध संयुतहुई चण्डीजी ने आदर समेत विष्णुजी को उद्देशकर कहा और वैसेही कोप कराये हुये सब गण विष्णुजीसे बोले ॥ ३६ ॥ कि हे प्रभो ! जहां जहां शिवजी सोहते

हैं वहां वहां हम लोगभी रहतेहैं इस समय उत्तम आभ्युदय कर्ममें तुमने हमको क्यों निवारण कियाहै ॥ ३७ ॥ उनके उस वचनको सुनकर विष्णुजीने चण्डी व गणों
और अन्यभी उसभांति के जनोंसे वचन को कहा कि मेरे कहेहुये तुमलोग यहांही कार्य्य करने के लिये योग्यहो हे ब्राह्मणो ! जब चण्डीआदि गण उनसे ऐसा क-
हेगये ॥ ३८ । ३९ ॥ तब विष्णुजी के वचन से शीघ्रता समेत वे सब एकान्त में टिके तबतक पर्वतेन्द्रके सब मन्त्री भलीभांति आये ॥ ४० ॥ जे कि शीघ्रही महेशजी
के प्रति आदर से स्त्रियों समेतहैं वे पांच बाजोंका शब्द बड़ा वेदपाठ ॥ ४१ ॥ और बड़े गीतोंके शब्द से स्त्रियों करके भलीभांति घिरेहुये होकर ऐसे वहां प्राप्तहुये कि

तत्रतत्रवयंप्रभो ॥ त्वयानिवारिताःकस्मादयमाभ्युदयेपरे ॥ ३७ ॥ तेषांतद्वचनंश्रुत्वा केशवोवाक्यमब्रवीत् ॥ चण्डीमु
ख्यप्रमथानन्यांश्चैवतथाविधान् ॥ ३८ ॥ यूयञ्चैवमयाप्रोक्ताः कार्य्यंकर्तुमिहार्हथ ॥ एवमुक्तायदातेन चण्डीमु
ख्यागणाद्विजाः ॥ ३९ ॥ एकान्तमाश्रितास्सर्वे विष्णुवाक्यत्वरान्विताः ॥ तावत्सर्वेसमायाताः पर्वतेन्द्रस्यम
न्त्रिणः ॥ ४० ॥ सकलत्राःसंभ्रमेणैव महेशम्प्रतिसत्वरम् ॥ पञ्चवाद्यप्रघोषेण ब्रह्मघोषेणभूयसा ॥ ४१ ॥ योषिद्भिस्सं
वृतास्तत्र गीतशब्देनभूयसा ॥ एवंप्राप्तायतःशम्भुस्सकलैःपरिवारितः ॥ ४२ ॥ आगत्यकलशैस्साकं स्नापितो
हिसदाशिवः ॥ त्रिभिर्माङ्गल्यविधिना तथैवचानिराजितः ॥ ४३ ॥ स्नातस्सुवाससायुक्तस्सर्वैस्तैःप्रतिपूजितः ॥ आरोपि
तोगजस्कन्धेसर्वाभरणभूषितः ॥ ४४ ॥ ऋषयोदेवगन्धर्वैस्तथान्येपर्वतोत्तमाः ॥ शिवाग्रगास्तदाजग्मुःस्त्रियश्चैवसुपू
जिताः ॥ ४५ ॥ बभौछत्रेणमहता ध्रियमाणेनमूर्द्धनि ॥ चामरैर्वीज्यमानोसौ वितानेनविराजितः ॥ ४६ ॥ ब्रह्माविष्णु

जहां सबोंसे सबओर घिरेहुये शङ्करजी विराजमानहैं ॥ ४२ ॥ उन्होंने तीन कलशों के साथ आकर मंगलकी विधिसे सदाशिवजीको स्नान कराया और वैसेही आरतियोंसे
नीराजन किया ॥ ४३ ॥ व उन सबोंने स्नान कियेहुये अच्छे वस्त्रसे संयुत व सामने से सम्पूजित और सब गहनों से भूषित शङ्करजी को हाथी के कन्धेपर चढ़ाया
॥ ४४ ॥ उस समय ऋषि देव गन्धर्व वैसेही अन्य पर्वतोत्तम और शिवजी के आगे चलनेवाली बहुत पूजित हुईं स्त्रियांभी चलीं ॥ ४५ ॥ व चामरों से वीजित होते
हुये और वितान (चँदोवा) से विशेषता समेत शोभितहुये वह मस्तकमें धारेजाते हुये बड़ेभारी छत्रसे विराजित हुये ॥ ४६ ॥ और बड़ी शोभासे संयुत आगे चलते

व जिससमय नारदजी वैसेही गर्गाचार्यादि और अन्य सनकादि मुनियोंसेभी वृषभध्वज महादेवजी कहेगये ॥ ६५ ॥ उस समय इस प्रकार आपुस में पूजेजाते हुये जग दात्मा श्रीपार्वती और श्री शिवजी शोभित हुये ॥ ६६ ॥ तब परस्पर बहुतही देखतेहुये त्रिलोककी शोभासे संयुत वे लक्ष्मी और सावित्रीजी करके विशेपसे नीराजन किये गये ॥ ६७ ॥ अनन्तर अरुन्धती वैसेही अनुसूयाजी ने उत्तम अधिक ऐश्वर्यवाले स्त्री पुरुष उन शिवजी तथा तपस्विनी श्रीपार्वतीजी को ॥ ६८ ॥ देखकर नीराजन (आरती) किया और वैसेही सब ब्राह्मणोंकी स्त्रियों ने भी बारबार उनकी आरती उतार लिया ॥ ६९ ॥ व श्रीपार्वती तथा शंकरजी को विशेषता से देखती और

नारदेनतदोक्तस्तु महादेवोवृषध्वजः ॥ तथागर्गादिभिश्चान्यैर्मुनिभिस्सनकादिभिः ॥ ६५ ॥ एवंपरस्परंतौवै पार्वतीप रमेश्वरौ ॥ अर्च्यमानौतदानीञ्च शुशुभातेजगन्मयौ ॥ ६६ ॥ त्रैलोक्यलक्ष्म्यासंवीतौ निरीक्षन्तौपरस्परम् ॥ तदा नीराजितौलक्ष्म्या सावित्र्याचविशेषतः ॥ ६७ ॥ अरुन्धतीतथातौच दम्पतीपरमेश्वरौ ॥ अनुसूयातथाशम्भुं पार्व तीञ्चतपस्विनीम् ॥ ६८ ॥ दृष्ट्वानीराजयामास प्रीत्युत्फुल्लसुलोचना ॥ तथैवसर्वाद्विजयोषितश्च नीराजयामासुरथो पुनःपुनः ॥ ६९ ॥ सतीञ्चशम्भुञ्चविलोकयन्त्यस्तथैवसर्वामुदिताहसन्त्यः ॥ लोमशउवाच ॥ एतस्मिन्नन्तरेतत्र गर्गा चार्यप्रणोदितः ॥ ७० ॥ हिमवान्मेनयासार्द्धं कन्यांदातुंप्रचक्रमे ॥ हैमंकलशमादाय मेनार्द्धांङ्गमाश्रिता ॥ ७१ ॥ हिमाद्रिणामहाभागा सर्वाभरणभूषिता ॥ तदाहिमाद्रिणाप्रोक्तोविश्वनाथोवरप्रदः ॥ ७२ ॥ ब्रह्मणासहसङ्गत्य विष्णु नाचतथैवहि ॥ पुरोधसातथासार्द्धं गर्गेणसुमहात्मना ॥७३॥ कन्यादानंकरोम्यद्य देवदेवस्यशूलिनः ॥ प्रयोगोभण्यतां

हँसतीहुई वे सब अधिक आनन्दित हुई श्रीलोमशजी बोले कि, इस अवसर में वहा गर्गाचार्य से प्रेरित हुये ॥ ७० ॥ हिमवान्जी ने मेनाजी के साथ कन्याको देनेके लिये प्रारम्भ किया और सोनेके कलश को लेकर मेनाजी आधे अंग में टिकी हैं ॥ ७१ ॥ जोकि बड़े भागवाली व हिमवान्जी के साथ सब गहनों से भूपित हैं तब हिमवान् पर्वतने वरदायक विश्वनायक शिवजीसे कहा ॥७२॥ कि ब्रह्मा और वैसेहीविष्णुजीके साथ संगतिकर वैसेही अच्छे महात्मा पुरोहित गर्गाचार्यजीके साथ ॥७३॥ मैं आज देवोंके देव त्रिशूलधारी महादेवजी के लिये कन्यादान को करताहूं हे ब्रह्मन् ! इस अच्छे समय के समागम में तुम करके संकल्प का प्रयोग पढ़ाजा

ये ॥ ७४ ॥ वैसाहो ऐसा मानकर कालके जाननेवाले उन सब ब्राह्मणसत्तमों ने तिथि वार नक्षत्र योगादिकोंका उच्चारण किया और हिमवान्‌जीने शिवजीसेकहा ॥ ७५ ॥ श्रीहिमवान्‌जी बोले कि, हे तात ! तुम करके अपना गोत्र कहाजावे और हे महाभाग ! तुम कुलको भी विशेषसे कहो वैसेही ऐसे वचनको सुनकर ॥७६॥ अच्छे मुखवाले महादेवजी विकार समेत मुखवाले होगये और अशोच्य होकर भी शोचनेयोग्यके भावको प्राप्तभये तब देवश्रेष्ठ ऋषि गन्धर्व यक्ष मुनि और वैसेही सिद्धसमूहों ने ॥ ७७ ॥ इसभांतिके उत्तरसे हीनमुखवाले ऐश्वर्य्यवान् महेशजीको देखा व तदनन्तर नारदजीने बहुतही हास्यको किया अनन्तर ब्रह्माजीकेपुत्र श्रीनारदजीने वीणाको

ब्रह्मन्नस्मिन्सुसमयागमे ॥ ७४ ॥ तथेतिमत्वातेसर्वे कालज्ञाद्विजसत्तमाः ॥ तिथ्यादिकीर्तनंचक्रुर्हिमवाञ्शम्भुमब्रवीत ॥ ७५ ॥ हिमवानुवाच ॥ स्वगोत्रःकथ्यतांतात कुलञ्चैवविशेषतः ॥ कथयस्वमहाभाग इत्याकर्ण्यवचस्तथा ॥ ७६ ॥ सुमुखोविमुखःसद्यस्त्वशोच्यःशोच्यताङ्गतः ॥ एवंविधस्सुरवरैर्ऋषिभिस्तदानीं गन्धर्वयक्षमुनिसिद्धगणैस्तथैव ॥ ७७ ॥ दृष्टोनिरुत्तरमुखोभगवान्महेशो हास्यंचकारसुभृशंत्वथनारदश्च ॥ वीणांप्रवादयामास ब्रह्मपुत्रोथनारदः ॥ ७८ ॥ तदानींवारितोधीमान् वीणांमावादयप्रभो ॥ इत्युक्तःपर्वतेनैव नारदोवाक्यमब्रवीत् ॥ ७९ ॥ त्वयापृष्टोभवःसाक्षात् स्वगोत्रकथनम्प्रति ॥ अस्यगोत्रंकुलंचैव नादएवपरंगिरे ॥ ८० ॥ अकुलीनकुलीशम्भुर्गोत्राणाञ्चपरागतिः ॥ नादेप्रतिष्ठितःशम्भुर्नादोह्यस्मिन्प्रतिष्ठितः ॥ ८१ ॥ तस्मान्नादमयःशम्भुर्नादाच्चप्रतिलभ्यते ॥ तस्माद्वीणामयाचाद्य वादिताहिपरन्तप ॥ ८२ ॥ अस्यगोत्रकुलन्नाम नजानन्तिहिपर्वत ॥ ब्रह्मादयोहिविबुधा अन्येषाञ्चैवकाक

अधिकता से बजाया ॥ ७८ ॥ उस समय बुद्धिमान् निवारण कियेगये कि हे प्रभो ! वीणाको मत बजाओ इस प्रकार हिमवान् पर्वत सेही कहेहुये नारदजी वचन को बोले कि ॥ ७९ ॥ तुम करके अपना गोत्रकहने के प्रति साक्षात् शिवजी पूछेगयेहैं इससे हे पर्वतेन्द्र ! इनका गोत्र और कुलभी केवल नादही (शब्दस्वरूपवद) है ॥ ८० ॥ व अकुलीनों के कुलवाले शम्भुजी गोत्रोंकी परमगति हैं व शङ्करजी नाद में अधिकता से टिकेहैं और नाद (ॐकारादि शब्द) भी इनमेंही बहुतही टिका है ॥ ८१ ॥ उसलिये शब्दमय शंकरजी नाद करके सामने से मिलतेहैं हे परन्तप! उस कारण आज मैंने वीणाको निश्चय से बजाया है॥८२॥ हे पर्वत ! ब्रह्मादि देवभी

इनके नाम गोत्र और कुलके निश्चयसे नहीं जानते हैं तो अन्य जनोंको क्या कहना है ॥ ८३ ॥ इससेही बाहर मुखवाले मूढ़ताको प्राप्तहुये तुमही महेशजीके विषय मे कुछभी कहने और न कहनेयोग्य को नही जानतेहो ॥ ८४ ॥ हे पर्वतेन्द्र ! जे जे जन तान्त्रिक हैं याने शास्त्रसे परमेश्वर को स्वरूपवान् कल्पितकर मानते हैं वे नष्टहैं अर्थात् यथातथ्यसे नहीं जानतेहैं इसमें संशय नहीं है क्योंकि यह विरूप आंखोंवाले शिवजी रूपसे रहित हैं और यहही कुलसे हीन कहेजाते हैं ॥ ८५ ॥ हे पर्वतश्रेष्ठ ! यह तुम्हारे जामाता (जमाई,दामाद) गोत्रसे वर्जितहैं इसमें संशय नहीं है इससे यहां या इनमें जानते हुये विज्ञानी को विचार नहीं करना चाहिये ॥ ८६ ॥ हे महाभाग, प्रभो ! मेरे बहुत कहने से क्याहै जिनके अंश से मोहित ये सब ऋषि भी भक्तभयहारी अविकारी महादेवजी को नहीं जानते हैं ॥ ८७ ॥ व ब्रह्माजी भी

था ॥ ८३ ॥ त्वंहिमूढत्वमापन्नो नजानासिचकिञ्चन ॥ वाच्यावाच्यंमहेशस्य विषयेहिबहिर्मुख ॥ ८४ ॥ येयेआगमिकाश्चाद्रेनष्टास्तेनात्रसंशयः ॥ अरूपोयंविरूपाक्षो ह्यकुलीनोयमुच्यते ॥ ८५ ॥ अगोत्रोयंगिरिश्रेष्ठ जामातातेनसंशयः ॥ नकर्तव्योविमर्शोत्र जानताविबुधेनहि ॥ ८६ ॥ नजानन्तिहरंसर्वे किंबहूक्त्याममप्रभो ॥ यस्यांशेनमहाभाग मोहिताऋषयोह्यमी ॥ ८७ ॥ ब्रह्मापितन्नजानाति मस्तकम्परमेष्ठिनः ॥ विष्णुर्गतोहिपातालं नदृष्टोङ्घ्रिस्तथैवच ॥८८॥ येनलिङ्गेनमहताह्यगाधेनजगत्त्रयम् ॥ व्याप्तमस्तीतितद्विद्धि किमन्येनप्रयोजनम् ॥८९॥ अनयाराधितंनूनं तवपुत्र्याहिमालय ॥ तत्त्वतोहिनजानासि केयंचैवमहागिरे ॥ ९० ॥ आभ्यामुत्पाद्यतेविश्वमाभ्याञ्चैवप्रतिष्ठितम् ॥ एतच्छ्रुत्वावचस्तस्य नारदस्यमहात्मनः ॥ ९१ ॥ हिमाद्रिप्रमुखास्सर्वे तथाचेन्द्रपुरोगमाः ॥ साधुसाध्वितितेसर्वे

उत्तम स्थानके वासी उन अविनाशी के शिरको नहीं जानते हैं और वैसेही पाताल को गयेहुये विष्णुजीने भी पावँको नहीं देखा ॥ ८८ ॥ व बड़ेभारी अथाह जिस लिंग करके त्रिलोक व्याप्तहै उसको तुम जानो अन्य से क्या प्रयोजन है ॥ ८९ ॥ हे महापर्वत, हिमालय ! इन तुम्हारी कुमारीने निश्चय से लिंगस्वरूप शिवजीकी पूजा कियाहै और यह कन्या कौनहै इनको भी तुम यथार्थ स्वरूप से नहीं जानते हो ॥ ॥ ९० ॥ क्योंकि सब जगत इन दोनों सेही उपजाया जाता है और इनसेही अधिकतामे टिकाहै याने प्रतिष्ठाको पाताहै उन महात्मा नारदजीके इस वचनको सुनकर ॥ ९१ ॥ विस्मय समेत मनवाले हिमाचलादि सब लोग और वैसेही उन सब इन्द्रादि-

कौने अच्छा है अच्छा है ऐसा कहा ॥ ६२ ॥ व वहां ईश्वर की गम्भीरता को जानकर विस्मय से संयुत सब पण्डित आपस में बतलाने लगे ॥ ६३ ॥ ऋषि बोले कि, अपने अधीन परमेश्वर की भक्तिसे जानने योग्य बड़ाभारीभी यह सब जगत् हुआ है वह यह महात्मा त्रिलोकमय अपने रूपसे संयुत व निजज्ञानरूप और परसेभी बहुतही परहैं याने माया और जीवसेभी श्रेष्ठहैं ॥ ६४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेमाहेश्वरखण्डान्तर्गतकेदारखण्डेशैवशास्त्रेभाषाबन्धे सिद्धिनाथत्रिवेदिविरचितेहिमवन्मण्डपे शिवगमनपूर्वककन्यादानप्रस्तावेनारदेनपरमेश्वरमहत्त्ववर्णनंनामपञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

ऊचुर्विस्मयमानसाः ॥ ६२ ॥ ईश्वरस्यतुगाम्भीर्य्यं ज्ञात्वासर्वेविचक्षणाः ॥ विस्मयेनसमाविष्टा ऊचुस्तत्रपरस्परम् ॥ ६३ ॥ ऋषयऊचुः ॥ यस्याज्ञयाजगदिदंचविशालमेवजातंपरात्परतरोनिजबोधरूपः ॥ सर्वस्वतन्त्रपरमेश्वरभावगम्यं सोसौत्रिलोकनिजरूपयुतोमहात्मा ॥ ६४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेमाहेश्वरखण्डान्तर्गतकेदारखण्डे शैवशास्त्रे हिमवन्मण्डपेशिवगमनपूर्वककन्यादानप्रस्तावेनारदेनपरमेश्वरमहत्त्ववर्णनंनाम पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

लोमशउवाच ॥ अथतेपर्वतश्रेष्ठाः प्रेम्णासंजातसम्भ्रमाः ॥ ऊचुस्तेचैकपद्येन हिमवन्तंमहागिरिम् ॥ १ ॥ पर्वता ऊचुः ॥ कन्यादानंकुरुष्वाद्य किंबहूक्त्यास्तिहेप्रभो ॥ भविष्यतिशुभंकार्यमेतदत्रशिवस्यच ॥ २ ॥ तच्छ्रुत्वावचनंतेषां सुहृदांचहिमालयः ॥ कन्यकादानमकरोद्ब्रह्मणानोदितस्तदा ॥ ३ ॥ इमांकन्यांतुभ्यमहं ददामिपरमेश्वर ॥ भार्य्यार्थंप्रतिगृह्णीष्व मन्त्रेणानेनदत्तवान् ॥ ४ ॥ तस्मैरुद्रायमहते देवदेवायशम्भवे ॥ कन्यादत्तामहेशाय गिरीन्द्रेण

दो० । छब्बिसयें अध्याय में श्रीशिव शिवा विवाह । सादर पूजे देव सब हिमगिरि सहित उछाह ॥ श्रीलोमशजी बोले कि तदनन्तर प्रेमसे भलीभांति उपजे हुये आदरवाले उन पर्वतश्रेष्ठोंने महापर्वत हिमवान्जीके प्रति एक साथ या एक क्षणसेही कहा ॥ १ ॥ पर्वत बोले कि, हे प्रभो ! बहुत कहने से क्या है तुम आज कन्यादान को करो व यहां शिवजी का यह शुभकार्य्य होवेगा ॥ २ ॥ तब उन मित्रोंके उस वचन को सुनकर ब्रह्माजी से प्रेरित हुये हिमवान्जी ने कन्यादानको किया ॥ ३ ॥ हे परमेश्वर ! मैं स्त्री करनेके अर्थ इस कन्याको तुम्हारे लिये देताहूं तुम सामने से ग्रहणकरो याने दानलेवो इस मन्त्रसे दिया ॥ ४ ॥ महात्मा पर्वतेन्द्र

ने देवोंके देव पूजनीय बड़े ऐश्वर्य्यधारी कल्याणकारी उन शिवजी के लिये कन्याको दिया ॥ ५ ॥ व कमलदलके समान आंखोंवाले स्त्री पुरुष श्रीपार्वती और परमेश्वरजी को वेदी के बाहर आना व बाहर वेदीमें समीपही बैठाया ॥ ६ ॥ व ब्रह्माजी शिवजीके समीप ब्रह्मासन में प्राप्तहुये और हवन के अधिकता से वर्तमान होतेही विज्ञानी पण्डित ऋषिलोग ॥ ७ ॥ जे कि बहुते शास्त्रों के जाननेवाले हैं वे वहां आपसमें बतलाने लगे व कोई ऋषिजनोंने वेदवाद में रतहुये पण्डितों के प्रति अपने मतसे निश्चय कर कहा कि ॥ ८ ॥ यहही है ऐसा नही है व ऐसाही है अन्यथा नहीं है करनाही चाहिये व ऐसा नही करना चाहिये वैसेही अन्य पण्डितों

महात्मना ॥ ५ ॥ वेद्याश्चबहिरानीतौ दम्पतीकमलेक्षणौ ॥ उपवेशितौबहिर्वेद्याम्पार्वतीपरमेश्वरौ ॥ ६ ॥ ब्रह्माब्रह्मासन गतो बभूवशिवसन्निधौ ॥ प्रवर्तमानेहवने ऋषयश्चविचक्षणाः ॥ ७ ॥ ऊचुःपरस्परंतत्र नानादर्शनवेदिनः ॥ वेदवाद रतान्केचिदब्रुवन्स्वमतेनवै ॥ ८ ॥ इदमेवनचाप्येवमेवमेवनचान्यथा ॥ कार्यमेवनकार्यञ्च कार्याकार्यंतथापरे ॥९॥ इत्येवंब्रुवतांशब्दः श्रूयतेशिवसन्निधौ ॥ स्वकीयमतमास्थाय तेब्रुवन्तिपरस्परम् ॥ १० ॥ तत्त्वज्ञानविहीनाये केव लंवादबुद्धयः ॥ तेषांतद्वचनंश्रुत्वा परस्परजयेषिणाम् ॥ ११ ॥ प्रहसन्नारदोवाक्यमुवाचशिवसन्निधौ ॥ स्वकीयमतमा स्थाय ब्रुवतश्चपरस्परम् ॥ १२ ॥ मौनमास्थायभोविप्राहृदिकृत्वासदाशिवम् ॥ स्थातव्यञ्चपरात्मानं पराणांपरम ञ्चयः ॥ १३ ॥ येनेदंकारितंविश्वं यतस्सर्वंप्रवर्तते ॥ यस्मिन्नविलीयतेविश्वं तस्मैसर्वात्मनेनमः ॥ १४ ॥ सोयमास्तेधु

ने करने और नही करने योग्यको भी कहा ॥ ९ ॥ इस प्रकार बतलाते हुये जनोंका शब्द शिवजी के समीप में सुना जाता है और वे अपने मतमें टिककर परस्पर कहते हैं ॥ १० ॥ जेकि तत्त्वज्ञान से विहीन व केवल विवादमेंही बुद्धिवाले हैं उन आपस में जीतिचाहियों के उस वचन को सुनकर ॥ ११ ॥ बिहसते हुये नारदजी ने शिवजी के समीप में अपने मतको आलम्बनकर परस्पर विवाद करते हुये जनों से वचन को कहा ॥ १२ ॥ कि हे ब्राह्मणो ! जो कि परोंसे भी परहैं उन परमात्मा सदाशिव जी को हृदय में कर चुपचाप टिकना चाहिये ॥ १३ ॥ जिन्हों ने इस सब जगत् को कराया है व जिन से यह सब बहुतही वर्तमान होता है

नागेहे पर्वतेन्द्रस्यवैद्विजाः ॥ मुखादस्यैवसंजातास्सर्वेयूयंविचक्षणाः ॥ १५ ॥ एवमुक्तास्तदातेतु नारदेनद्विजोत्तमाः॥
उपदेशकरैर्वाक्यैर्बोधितास्तेनवैद्विजाः ॥ १६ ॥ वर्त्तमानेचयज्ञेच ब्रह्मालोकपितामहः ॥ ददर्शचरणेदेव्या नखेन्दुञ्च
मनोहरम् ॥ १७ ॥ दर्शनात्स्खलितःसद्यो बभूवाम्बुजसम्भवः ॥ मदनेनसमाविष्टो वीर्यञ्चप्राच्यवद्भुवि ॥ १८ ॥ रेत
साक्षरमाणेन लज्जितोभूत्पितामहः ॥ चरणाभ्याममर्दाथतमगोप्यंदुरत्ययम् ॥ १९ ॥ बहवोऋषयोजाता बालखि
ल्याःसहस्रशः ॥ उपतस्थुस्तदासर्वे ताततातेतिचाब्रुवन् ॥ २० ॥ नारदेनतदोक्तास्ते बालखिल्यास्तुकोपिना ॥ गच्छ
न्तुसर्वेबहवः पर्वतंगन्धमादनम् ॥ २१ ॥ नस्थातव्यंभवद्भिश्च भवतान्नप्रयोजनम् ॥ इत्येवमुक्तास्तेसर्वे बालखिल्याःस
हस्रशः ॥ २२ ॥ नारदेनसमादिष्टा ययुस्सर्वेत्वरान्विताः ॥ नारदेनततोब्रह्माऽऽश्वासितोवचनैःशुभैः ॥ २३ ॥ तावच्चहव

और जिनमें सबजगत विशेषतासे लीन होजाताहै उन सर्वव्यापकके लिये नमस्कार है ॥ १४ ॥ और हे पण्डित, ब्राह्मणो ! वहही इससमय पर्व्वतेन्द्र हिमवान्जीके घर
टिकेहैं व विज्ञानी सब तुमलोग इनकेही मुखसे भलीभांति उत्पन्न हुयेहो ॥ १५ ॥ हे द्विजोत्तम, ऋषियो ! इसप्रकार उन नारदजीने उन ब्राह्मणोंसे कहा और उपदेश (
खलाना) करनेवाले वचनों से निश्चय कर बोधन किया ॥ १६ ॥ व विवाहकर्मसम्बन्धी यज्ञके वर्तमान होतेही लोकों के पितामह (बाबा) ब्रह्माजीने श्रीपार्वतीदेवी
जी के पांवमें मनोहर और चन्द्रमा के समान चमकते हुये एक नखको देखा ॥ १७ ॥ व कमल से उपजे हुये ब्रह्माजी देखनेसही शीघ्रही काम से संयुतहोकर स्ख-
लितहोगये और वीर्य्यभी भूमिमें गिरपड़ा ॥ १८ ॥ तदनन्तर लोकोंके पितामह (ब्रह्माजी) चुवते हुये वीर्य्य से लज्जित हुये व नही छिपाने योग्य दुर्लंघनीय उसको दोनों
पांवों से मर्दने लगे ॥ १९ ॥ तब उससे बालखिल्यनामक बहुतसे हजारन ऋषि उत्पन्नहुये और वे सब समीप में टिके या स्तुति करते भये व हे तात ! हे तात !
ऐसा बोले ॥ २० ॥ उस समय अधिक क्रोधसे संयुत नारदजीने उन बालखिल्यों से कहा कि बहुते सब आप लोग गन्धमादन पर्वत को जावें ॥ २१ ॥ आप को
यहां नहीं टिकना चाहिये क्योंकि आपलोगों का प्रयोजन नहीं है ऐसा किसी कारण से कहेहुये वे सब हजारन बालखिल्य ॥ २२ ॥ जे कि नारदजी से भलीभांति
आयसु पानेवाले याने पठाये गये हैं वे सब शीघ्रता समेत होकर गन्धमादन पर्वत को चले तदनन्तर नारदजी ने शुभवचनों से ब्रह्माजी को आश्वासन किया याने

समझा दिया ॥ २३ ॥ और हे ब्राह्मणो ! तबतक उन महात्मामहेशजी का होम पूराहुआ वैसेही वह ब्रह्माजी शान्ति पढ़ने में परायण हुये ॥ २४ ॥ व बड़े भारी वेदों के शब्दो से दिशाओं का अन्तर (बीच) भरगया तदनन्तर उत्तम महादेवजी को देवों की स्त्रियों ने नीराजन किया ॥ २५ ॥ वैसेही उससमय शंकर जी ऋषियों की स्त्रियों से पूजित हुये और वैसेही उसकेबाद मनके रमानेहारी व मंगलमयरूपधारी अन्य स्त्रियोंने भी शिवजी को नीराजन किया याने आरती उतार लिया ॥२६॥ व अच्छे गीतों के पण्डित गन्धर्वों ने गीतों से वैसेही अन्य महर्षियों ने स्तुतियों से प्रसन्न किया और बड़ेभारी मनवाले महादेवजीने उनको महामोल

नंपूर्णं जातंतस्यमहात्मनः ॥ महेशस्यतथाविप्राः शान्तिपाठपरोभवत् ॥ २४ ॥ ब्रह्मघोषेणमहता व्याप्तमासीद्दिगन्तरम् ॥ ततोनीराजितोदेवो देवपत्नीभिरुत्तमः ॥२५॥ तथैवऋषिपत्नीभि श्शङ्करःपूजितस्तदा ॥ तथागिरीशञ्चमनोरमांशुभां नीराजयामासुरथोन्ययोषितः ॥ २६ ॥ गीतैस्सुगीतज्ञविशारदाश्च तथैवचान्येस्तुतिभिर्महर्षयः ॥ रत्नानिचसहार्हाणि ददौतेभ्योमहामनाः ॥ २७ ॥ ऋषिगन्धर्वयक्षेभ्यो येन्येतत्रसमागताः ॥ एवंसमानर्चतुतान्महात्मा महान्गिरीशःपरमेणवर्चसा ॥ २८ ॥ बभौतदानींसुरसिद्धसङ्घैर्वेद्यांस्थितोसौसकलत्रकोविभुः ॥ एतस्मिन्नन्तरेतत्र ब्रह्मविष्णुपुरोगमाः ॥ २९ ॥ सदाशिवंपुरस्कृत्याभ्यवजह्रुःसुरेश्वराः ॥ तेवैतथामिलित्वाच ऐकपद्येनमानिताः ॥ ३० ॥ पङ्क्तीभूत्वाथबुभुजुः लिङ्गिनाभृङ्गिणासह ॥ केचिद्गणाःपृथग्भूत्वा बुभुजुःकृतभाजनाः ॥ ३१ ॥ नन्द्यादयोमहाभागाः

के योग्य रत्न दिया ॥ २७ ॥ व ऋषि गन्धर्व्व यक्ष और अन्यभी जे जन वहां भली भांति आयेहैं उनके लिये भी रत्नादिकोंका दान दिया इस भांति उत्तम तेज से संयुत बड़े पूजनीय महात्मा महेशजीने उनको भलीभांति पूजन किया ॥ २८ ॥ और उस समय वेदी में टिकेहुये स्त्री समेत वह समर्थ शिवजी देव और सिद्ध समूहों के साथ शोभित हुये इस अन्तर में वहां ब्रह्मा व विष्णु आदि देवेश्वरों ने ॥ २९ ॥ सदाशिवजी को आगेकर भोजन किया वैसेही हिमवान् से आदरित वे सब लोग भी एक साथही मिलकर ॥ ३० ॥ अनन्तर पङ्क्ति होकर लिंगी व भृङ्गी के साथ भोजन करने लगे व पात्रों को कियेहुये कोई गणोंने बिलग होकर भोजन किया ॥ ३१ ॥

जोकि वेदभाष्यवाले नन्दीश्वरादि और वैसे महात्मा वीरभद्रादि गण हैं उन्हों ने महेशजी को आगेकर प्रसाद पाया ॥ ३२ ॥ व १४ वें० ईश्वर शिवजी से सहित इन्द्रादि
देव ऋषि और उन पूर्वोक्त प्रसिद्ध मुनियों ने भी भोजन किया और अनेक भांतिके हास्यरसों से समर्थ स्वामी शङ्करजी को ॥ ३३ ॥ उन नारदादिकों ने सन्तुष्ट किया
जोकि बहुत आश्चर्यों से संयुत हैं वैसेही पात्रों को कियेहुये सब चण्डीजी के गणभी भोजन करनेलगे ॥ ३४ ॥ व वेताल क्षेत्रपाल कूष्माण्ड भैरवादि व शाकिनी
डाकिनी यक्षिणी और मातृकादि ॥ ३५ ॥ योगिनी चतुष्पथी वैसेही अन्य योगी भी व दशकरोड़ और एक करोड महात्मा गण ॥ ३६ ॥ व ऐसेही जोकि ऋषि तथा

**वीरभद्रादयस्तथा ॥ बुभुजुस्तेमहात्मानः पुरस्कृत्यमहेश्वरम् ॥ ३२ ॥ देवाश्चेन्द्रादयस्तत्र ऋषयोमुनयोह्यमी ॥ बुभु
जुस्सहसर्वेशा नानाहास्यरसैर्विभुम् ॥ ३३ ॥ अतोषयन्नारदाद्या अनेकाश्चर्यसंयुताः ॥ तथाचण्डीगणास्सर्वे बुभु
जुःकृतभाजनाः ॥ ३४ ॥ वेतालाःक्षेत्रपालाश्च कूष्माण्डाभैरवादयः ॥ शाकिनीडाकिनीचैव यक्षिण्योमातृकादयः॥
३५ ॥ योगिन्यश्चचतुष्पथ्यो योगिनोहितथापरे ॥ दशकोट्योगणानांहि कोट्येकाचमहात्मनाम् ॥ ३६ ॥ एवंयेऋषय
श्चैव तथान्येविबुधादयः ॥ योगिनोहिमयाचान्ये कथिताःपूर्वमेवहि॥३७॥योगिन्यश्चैवकथितास्तासांमध्येवदामिते॥
मैरेयमद्यमांसानि पशूनांविविधानिच ॥ ३८ ॥ महिषञ्चवराहञ्च खड्गावयवमेवच ॥ शास्तमाजञ्चमेषाञ्च अन्या
न्यपिहिएवच ॥ ३९ ॥ पक्वमुद्धृत्यभक्ष्यार्थं पवित्रंक्रव्यमेवच ॥ भुञ्जन्तिह्यस्थिसंयुक्तं तथान्त्राणिबुभुक्षवः ॥ ४० ॥ आ
मानिकेचिच्छीर्णानिमहिषाणामुरूणिच॥तथाकेचिन्नृत्यमानास्तदानीं रोरूयमाणाःप्रमथाश्चचान्ये॥४१॥केचित्तूष्णीं**

अन्य विद्वानों या देवादि और अन्य योगी भी मुझसे पहलेही कहेगये हैं उन सबोंने भोजन किया ॥ ३७ ॥ और भी मैंने जिन योगिनियों को कहा उनके भोजन को
तुमसे बतलाताहूं कि मैरेय मदिरा व पशुओं के बहुत भांति के मांस ॥ ३८ ॥ महिष (भैंसा) वराह गैंडा के अङ्ग छाग बकरी और भेड़ोंका मांस और ऐसेही अन्य भी ॥
३९ ॥ हाड़ों से संयुत मांस और वैसेही पवित्र क्रव्य को भी खाने के लिये उद्धारकर भोजन के चाही वे सबलोग खातेपीते हैं ॥ ४० ॥ व कोईजन मांसों के कच्चे
बहुते मूड़ों का भोजन करते हैं उस समय कोईगण बहुतही रोते और वैसेही अन्यलोग नाचतेहुये विराजमान हैं ॥ ४१ ॥ व कोई चुपचाप टिकेहैं वैसेही रुद्रगणवाले

अन्यगण विशेषतासे चारोंओर देखते हैं और योगिनियों के समूह के बीच में टिकेहुये भैरव ने भी निश्चयकर नृत्य कियाहै ॥ ४२ ॥ तथा अन्य भूत वेताल क्षेत्रपाल भैरव और सब गणादि शात व बहुतही मतवालेहुये॥४३॥इसप्रकार भोजन कियेहुये सन्तुष्ट व आनन्दित मनवाले वे गणादि और वे सब ब्रह्मादि देव विश्राम के अर्थ अपने स्थानको गये ॥ ४४ ॥ हे ब्राह्मणो ! जब इसभांति हिमवान् पर्वत ने विस्तारसे संयुत बहुतही अच्छे सुमङ्गल्य श्रेष्ठ ब्याह को किया ॥ ४५ ॥ तब चारदिन होगये और हिमवान् पर्वतेन्द्र ने सबओर से पूरे मनसे देवों के देव त्रिशूलधारी की पूजा किया ॥ ४६ ॥ व वस्त्र गहने पोषण तथा ऊंचेनीचे रत्नों से महादेवजी को पूजकर

मास्थिताश्च वीक्षमाणास्तथैवच ॥ योगिनीचक्रमध्यस्थोभैरवोहिननर्तवै ॥ ४२ ॥ तथान्येभूतवेतालाःक्षेत्रपालाश्च भैरवाः ॥ सर्वेशान्ताःप्रमत्ताश्च बभूवुःप्रमथादयः ॥ ४३ ॥ एवन्तेभुक्तवन्तश्च सन्तुष्टाहृष्टमानसाः ॥ विश्रमार्थंगतास्स वैं ब्रह्माद्यास्तेस्वमालयम् ॥ ४४ ॥ एवंविस्तारसंयुक्तं कृतमुद्वहनंसदा ॥ हिमाद्रिणापरंविप्राः सुमङ्गल्यंसुशोभनम् ॥ ४५ ॥ चत्वारोदिवसाजाताः परिपूर्णेनचेतसा ॥ हिमाद्रिणाकृतापूजा देवदेवस्यशूलिनः ॥ ४६ ॥ वस्त्रालङ्कारभरणै र त्नैरुच्चावचैस्तथा ॥ पूजयित्वामहादेवं विष्णवर्चनपरोभवत् ॥ ४७ ॥ लक्ष्म्यासमेतंविष्णुञ्च वस्त्रालङ्करणैःशुभैः ॥ पूज यामासहिमवांस्तथाब्रह्माणमेवच ॥ ४८ ॥ इन्द्रंपुरोधसासार्द्धमिन्द्राण्यासहितंविभुम्॥ तथैवलोकपालांश्चपूजयित्वा पृथक्पृथक् ॥ ४९ ॥ तथैवपूजिताचण्डी भूतप्रमथगुह्यकैः ॥ वस्त्रालङ्करणैश्चैवरत्नैर्नानाविधैस्तथा ॥ ५० ॥ येचान्ये ह्यागतास्तत्र तेसर्वेचप्रपूजिताः ॥ एवन्तदानीम्परिपूजिताश्च देवास्तुसर्वेऋषयोथयक्षाः ॥ ५१ ॥ गन्धर्वकिन्नरगणाः

वह विष्णुजी की पूजामें स्नेहवाले हुये ॥ ४७ ॥ व हिमवान्जी ने शुभवस्त्रों और गहनों से लक्ष्मी समेत विष्णु और वैसेही ब्रह्माजी को भी पूजन किया ॥ ४८ ॥ व पुरोहित बृहस्पति जी के साथ इन्द्राणी समेत समर्थ इन्द्रजी और वैसेही अन्य लोकपालों की भी अलग अलग पूजाकर ॥ ४९ ॥ भूत व प्रमथ (गण) तथा गुह्यकों के साथ चण्डी जी वस्त्र गहने और वैसेही अनेकभांति के रत्नों से पूजीगई ॥ ५० ॥और अन्यभी जे वहां आये थे वे सब बहुतही पूजितहुये उस समय इसभांति सब

देव व अनन्तर यक्षभी चारोंओर से पूजेगये ॥ ५१ ॥ व गन्धर्व किन्नर समूह देव सिद्ध और वैसेही अप्सरों के गण व मनुष्य भी पूजित हुये ॥ ५२ ॥ इति श्रीस्कन्द
पुराणेमाहेश्वरखण्डान्तर्गतकेदारखण्डेशैवशास्त्रेभाषाबन्धेसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचितेशिवोद्वाहेहिमवत्कृतब्रह्मादिपूजनंनामषड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥ ❀ ॥

दो० । सप्तविंशअध्यायमें दम्पतिरतिमतिलीन । कार्त्तिकेयके जन्मको उत्सव वर्णनकीन ॥ श्रीलोमशजी बोले कि वैसेही सब पर्वत भी विष्णुजी से बहुतही पूजित हुये
सह्याचल व विन्ध्याचल व मैनाक व गन्धमादन ॥ १ ॥ माल्यवान् व मलय व महेन्द्र और वैसेही मन्दराचल व मेरु भी उस समय विष्णुजी करके बड़े यत्नसे पूजा

**सुरसिद्धचारणास्तथैवमर्त्याप्सरसाङ्गणाश्च ॥ ५२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेमाहेश्वरखण्डान्तर्गतकेदारखण्डेशैवशा
स्त्रेशिवोद्वाहेहिमवत्कृतब्रह्मादिपूजनंनामषड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥**

**लोमशउवाच ॥ तथैवविष्णुनासर्वेपर्वताश्चप्रपूजिताः ॥ सह्याचलश्चविन्ध्यश्चमैनाकोगन्धमादनः ॥ १ ॥ माल्यवान्म
लयश्चैव महेन्द्रोमन्दरस्तथा ॥ मेरुश्चैवप्रयत्नेन पूजितोविष्णुनातदा ॥ २ ॥ श्वेतकूटःश्वेतगिरिर्नीलाद्रिश्चतथैवच ॥
उदयाद्रिश्चसाङ्गाद्रिश्चास्तङ्गिरिवरोमहान् ॥ ३ ॥ मानसाद्रिस्तथाशैलःकैलासःपर्वतोत्तमः ॥ लोकालोकस्तथाशैलः
पूजितःपरमेष्ठिना ॥ ४ ॥ एवन्तेपर्वताःश्रेष्ठाः पूजिताःसर्वएवहि ॥ ५ ॥ तथान्येपूजितास्तेन सर्वेपर्वतवासिनः ॥ विष्णुना
ब्रह्मणासार्द्धंकृतंसर्वंयथोचितम् ॥ ६ ॥ अन्याहनिचसम्प्राप्ते वरयात्राकृतायथा ॥ हिमाद्रिणाबन्धुभिश्चपर्वतङ्गन्धमादन
म् ॥ ७ ॥ ययुःसर्वेसुरगणा गणाश्चबहवस्तथा ॥ प्रमथाश्चतथासर्वे तथाचण्डीगणाःपरे ॥ ८ ॥ येचान्येबहवस्तत्र**

गया ॥ २ ॥ व श्वेतकूट श्वेतगिरि और वैसेही नील पर्वत व उदयाचल सांगाद्रि और बड़ाभारी पर्वतश्रेष्ठ अस्ताचल ॥ ३ ॥ तथा मानसाद्रि पर्वत व पर्वतों में उत्तम कैलास
वैसेही लोकालोक पर्वत भी उत्तम स्थान के वासी विष्णु या ब्रह्माजी से पूजित हुआ ॥ ४ ॥ ऐसेही वे सबही श्रेष्ठ पर्वत पूजेगये ॥ ५ ॥ वैसेही अन्य पर्वत और सब
पर्वतवासी भी उनसे पूजित हुये इसभांति ब्रह्माजी के साथ विष्णुजीने सब यथाउचित को किया ॥ ६ ॥ और अन्य दिनके भलीभांति प्राप्तहोतेही हिमवान् पर्वतेन्द्रने
बन्धुओं के साथ गन्धमादन पर्वत के प्रति जैसे वरयात्रा को किया ॥ ७ ॥ वैसेही सब देवसमूह व बहुत से गण तथा सब प्रमथ और वैसेही अन्य चण्डीगण भी

चले ॥ ८ ॥ हे ब्राह्मणो ! शिवजी करके सबओर से बढ़ाये गयेहुये जे अन्य भी बहुतसे जन वहा शिवजी के व्याह में हिमालयको भलीभाति आये थे ॥ ९ ॥ वे उससमय पार्वती समेत शङ्करजी और शिवजी के साथ श्रीपार्वती जी दोनो स्त्री पुरुषों को देखकर उत्तम आनन्द को अधिकता से प्राप्तहुये ॥ १० ॥ व उन्हों ने फूलआदिकों से उनकी पूजा किया और स्वरूपसे वचन व अर्थ की नाईं जैसे प्रकृति और पुरुष एकही साथ है अन्यथा नहीं ॥ ११ ॥ वैसेही हाथी में सवार बडेभारी प्रकाशवाले वे स्त्री पुरुष सुशोभित हुये व जब विमान में बैठे हुये ब्रह्मा गरुड़ के ऊपर विष्णु ॥ १२ ॥ और ऐरावत हाथी पर टिकेहुये इन्द्र व पुष्पक विमानके ऊपर कुबेर व मगर

समायाताहिमालयम् ॥ शिवस्योद्वहनेविप्राःशिवेनपरिभाविताः ॥ ९ ॥ परंहर्षसमापन्नादृष्ट्वातेदम्पतीतदा ॥ पार्वती सहितंशम्भुं शम्भुनासहपार्वतीम् ॥ १० ॥ पुष्पाद्यैरर्चयामासुर्वागर्थाविवतत्त्वतः ॥ यथाप्रकृतिपुंसौच एकपद्येन नान्यथा ॥ ११ ॥ दम्पतीतौगजारूढौ शुशुभातेमहाप्रभौ ॥ विमानस्थोयदाब्रह्मा विष्णुश्चगरुडोपरि ॥ १२ ॥ ऐरावत स्थश्चेन्द्रश्च कुबेरःपुष्पकोपरि ॥ पाशीचमकरारूढो यमोमहिषमेवच ॥ १३ ॥ प्रेतारूढोनैर्ऋतोस्तिचाग्निर्बस्तगतोम हान् ॥ मृगारूढश्चपवन ईशोवृषभमेवच ॥ १४ ॥ इत्येतेलोकपालास्ते ग्रहाश्चपरमेष्ठिनः ॥ स्वैःस्वैर्बलैःपरिक्रान्तास्त थान्येप्रमथादयः ॥ १५ ॥ हिमाद्रिणामहाशैलो ऋषभोगन्धमादनः ॥ सह्याचलोनीलगिरिर्मन्दरोमलयाचलः ॥ १६ ॥ कैलासोहिमहातेजा मैनाकश्चमहाप्रभः ॥ एतेचान्येचगिरयःश्रीमन्तोहिमहाप्रभाः ॥ १७ ॥ सकलत्राश्चतेसर्वे ससुता हिमनोरमाः ॥ बलिनोरूपिणःसर्वे मेर्वाद्यास्तत्रपर्वताः ॥ १८ ॥ वरयात्राप्रसङ्गेन शिवार्चनपराभवन् ॥ नन्दिनाद्युप

पर सवार वरुण और महिष (भैंसा) पर चढ़ेहुये यमराज ॥ १३ ॥ व प्रेत में सवार नैर्ऋत और छागके ऊपर प्राप्तहुये बड़े पूजनीय अग्निदेव व मृगपर सवार वायु और ऐसेही ईशानजी बैलपर चढ़े हैं ॥ १४ ॥ इसभाति ये लोकपाल व उत्तम स्थानके वासी वे ग्रह और ऐसे अपने अपने सैन्यों से सबओर घिरेहुये अन्य प्रमथादि भी शोभते हैं ॥ १५ ॥ व हिमवान् पर्वतेन्द्र जी के साथ महापर्वत ऋषभ गन्धमादन सह्याचल नीलगिरि मन्दराचल ॥ १६ ॥ व बड़ातेजस्वी कैलास और महादीप्तिमान् मैनाक ये सब और बडे प्रकाशवाले शोभावान् अन्य पर्वत भी ॥ १७ ॥ व जेकि सब मेरुआदि पर्वत स्त्रियों समेत और पुत्रों से सहित व मनके रमानेवाले बलवान् और रूप-

धारी हैं वे सब वहां ॥ १८॥ वरयात्रा के प्रसंग से शिवजीकी पूजामें परायण हुये और वहां नन्दीश्वरनेही उन मेरुआदि पर्वतों को उपदेश दिया ॥ १९ ॥ व जैसी
कहीगई है वैसी वरयात्रा को हिमवान्जी ने उन सब बन्धुओं के साथ किया और फिर आनाशी करदिया ॥ २० ॥ व अपने घर में टिकेहुये बड़ेभारी सुयशवाले वह
हिमवान्जी शिवजी के संबंध से उपजेहुये उत्तम तेजसेही शोभितहुये ॥ २१ ॥ क्योंकि जिनके बड़े कन्यादान से शंकरजी संतुष्ट होगये वह त्रिलोक में त्रिलोपता
सुने जातेहुये बड़ेभारी पर्वत हिमवान्जीही अधिकतासे कहे गये याने प्रसिद्धहुये ॥ २२ ॥ और शिव ऐसा दोअक्षरका नाम जिनकी जिह्वा के आगे सदैव भलीभांति

दिष्टास्तेमेर्वाद्यास्तत्रपर्वताः ॥ १९ ॥ वरयात्राकृतातेनयथोक्ताचहिमाद्रिणा॥सर्वैस्तैर्बन्धुभिस्सार्द्धं पुनरागमनंकृतम् ॥
२० ॥ स्वकालयस्थोहिमवान्सरेजेहिमहायशाः ॥ शिवसम्पर्कजेनैव महसापरमेणच ॥ २१ ॥ विख्यातोहिमहाशै
लस्त्रिषुलोकेषुविश्रुतः ॥ कन्यादानेनमहतासन्तुष्टोयस्यशङ्करः ॥ २२ ॥ तेधन्यास्तेमहात्मानः कृतकृत्यास्तएवहि॥
द्व्यक्षरंनामयेषांवै जिह्वाग्रेसंस्थितंसदा ॥ २३ ॥ शिवइत्यक्षरंनाम यैरुदीरितमद्यवै ॥ तेवैमनुष्यरूपेणरुद्राःस्युर्नात्रसंश
यः ॥ २४ ॥ किञ्चिद्दलेनसन्तुष्टः पुष्पेणापितथैवच ॥ तोयेनापिचसन्तुष्टो महादेवोनिरन्तरम् ॥ २५ ॥ पत्रेणपुष्पेण
तथाजलेन प्रीतोभवत्येषसदाशिवोहि ॥ २६ ॥ तस्माच्चसर्वैःपरिपूजनीयःशिवोमहाभाग्यकरोनृणामिह ॥ एकोम
हानन्योन्तरितःपरेषांपरावराणांपरमोमहात्मा ॥ २७ ॥ निरन्तरोनिर्गुणोनिर्विकारोनिराबाधोनिर्विकल्पोनिरीहः ॥ नि

टिका है वेही धन्य हैं वेही महात्मा हैं और वेही कृतार्थ हैं ॥ २३ ॥ व आजभी जिन्हों ने निश्चयकर शिव ऐसे अविनाशी नामको कहा वेभी मनुष्य रूपसे रुद्र होते हैं
इस में संशय नहीं है ॥ २४ ॥ श्रीमहादेवजी कुछेक बिल्वपत्रादिकसे संतुष्ट होते हैं व फूल सेभी और वैसेही जलसेभी सदैव संतुष्ट होजाते हैं ॥ २५ ॥ जिस लिये यह
सदाशिवजी फूल पाती तथा पानी सेभी प्रसन्नहोते हैं ॥ २६ ॥ उसलिये इस लोकमें मनुष्योंकी बड़ीभाग्य करनेवाले शिवजी सबों सेभी सब ओर पूजने योग्य हैं जो
कि एक बड़ेभारी व अन्यजनोंके भीतर में प्राप्त हैं व पर (प्रकृति) और अवरों (सब देह धारी लोगों) के बीच मेंभी श्रेष्ठ और महात्मा (बड़ेभारी व्यापक) हैं ॥ २७ ॥

व अंतरसे हीन सत्त्वादि गुणोंसे हीन विकारसे हीन अज्ञान से हीन विकल्पसे हीन व्यापार से हीन मायासे हीन आशा से हीन आधार से हीन व नित्यही योगी और सदैव नित्यही मुक्त हैं ॥ २८ ॥ ऐसे हुये देवोंके नायक सबदायक सर्वज्ञ व सब जगत् से वंदनीय वह महादेवजी उन देवोंसे सदैव संसेवित व प्रशंसित व पूजित व चिंतित और ध्याये गये भये ॥ २९ ॥ तदनंतरही हिमालयजी बहुतश्रेष्ठ बड़े पूजनीय व सबगुणों से प्रसिद्ध व सब गुणवाले महात्मा और लोकपालों से बन्दने के योग्यही हुये तथा तबही पर्वतों के बीचमेंभी बहुतही श्रेष्ठ होगये ॥३०॥ और धर्मात्मा पर्वतेश्वर जब मेना के साथ अपने घरको गये तब उन्होंने सब पर्व-

रञ्जनोनित्ययुक्तोनिराशोनिराधारोनित्यमुक्तःसदैवहि ॥२८ ॥ एवम्भूतोदेवदेवोर्चितश्चैतैर्देवैर्विश्ववन्द्योभवश्च ॥ स्तुतो ध्यातःपूजितश्चिन्तितश्चसर्वज्ञोसौसर्वदासर्वदश्च ॥ २९ ॥ ततोवरिष्ठोहिमहान्प्रसिद्धसर्वैर्गुणैःसर्वगुणोमहात्मा ॥ विश्वे शवन्द्योहितथाहिमालयो जातोगिरीणांप्रवरस्तदानीम् ॥ ३० ॥ मेनयासहधर्मात्मा यदास्थानङ्गतस्ततः ॥ सर्वान्विसर्ज यामासपर्वतान्पर्वतेश्वरः ॥ ३१ ॥ गतेषुतेषुहिमवान् पुत्रैःपौत्रैःप्रपौत्रकैः ॥ रेजेगिरीणाम्प्रवरोमहादेवप्रसादतः ॥ ३२ ॥ अथोगिरिजयासार्द्धं महेशोगन्धमादने ॥ एकान्तेचमतिंचक्रेरमणार्थेसुरूपवान् ॥ ३३ ॥ सुरतेनैवमहता तयासहमहा प्रभुः ॥ तयोःसुरतमापन्नं यद्द्वयोश्चतदाभवत् ॥३४॥ अनिष्टम्महदाश्चर्यम्प्रलयङ्करमेवच ॥ तस्मान्महालयेप्राप्ते ना विन्दतपरस्परम् ॥ ३५ ॥ द्वारिस्थितंनन्दिनश्च ददृशुस्तेमहाप्रभम् ॥ सर्वेब्रह्मादयोदेवाः कार्याकार्यव्यवस्थितौ ॥ ३६ ॥

तोंको विसर्जन (बिदा) किया ॥ ३१ ॥ व उनके जातेही पर्वतोंके बीचमें बहुतश्रेष्ठ हिमवान्‌जी पुत्र पोते और पनातियों के साथ श्रीमहादेवजीके प्रसादसे शोभित हुये ॥ ३२ ॥ अनंतर अच्छे रूपवाले महेशजीने गंधमादन पर्वतपर एकांतमें श्रीपार्वतीजीके साथ क्रीड़ा (रमण) करने के अर्थ मन या बुद्धिको किया ॥ ३३ ॥ व महाप्रभु शिवजी उनके साथ बडे भारी संभोगसेही टिके और उससमय उन दोनों जनोंका संभोग प्राप्तहुआ जोकि ॥ ३४ ॥ लोकोंका अनिष्ट बड़ा अद्भुत और प्रलय करनेवालाभी है उससे महाप्रलयके प्राप्त होतेही उन्हो ने आपुसमें नहीं पाया ॥ ३५ ॥ व उन सब ब्रह्मादि देवों ने करने और नहीं करने योग्यकी व्यवस्था में

बड़े प्रकाशवाले द्वारपर खड़ेहुये नन्दीश्वरजी को देखा ॥ ३६ ॥ और स्थावर जंगम सब जगत् शिवजीके वीर्य्य से नष्ट हुआ व ब्रह्मा और विष्णुजीने ज्ञान के प्रकाश करनेवाले अग्निदेवको स्मरणकिया ॥ ३७ ॥ उन करके मन से भलीभांति सुमिरे व संप्रेरित (पठाये) हुये वेगवान् अग्निदेवने शीघ्रही गमन किया और सुन्दर शिवजी के घरको देखा ॥ ३८ ॥ व आगे द्वारदेशमें टिकेहुये बड़े समर्थ श्रीनन्दीश्वरजीकोभी देखा तब अग्निदेव केशरके समान छविवाला हंस होकर ॥ ३९ ॥ शिवजीके उस पुरमें पैठगये जोकि बहुतभांति के आश्चर्य्योंसे समेत व अनेकोंरत्नोंसे संयुक्त या घिराहुआ और महलोंसे भलीभांति भूषित है ॥४०॥ उस घरके आंगन

रेतसाचजगत्सर्वं नष्टंस्थावरजङ्गमम् ॥ सस्माराग्निंब्रह्माच विष्णुश्चाध्यात्मदीपकम् ॥ ३७ ॥ मनसासंस्मृतस्सद्यो जगामाग्निस्त्वरान्वितः ॥ ताभ्यांसम्प्रेरितोपश्यद्रुचिरंशिवमन्दिरम् ॥ ३८ ॥ द्वारिस्थितंनन्दिनञ्च ददर्शाग्रेमहाप्रभुम् ॥ अग्निर्हंसस्तदाभूत्वा काश्मीरसदृशच्छविः ॥ ३९ ॥ प्रविष्टस्तत्पुरंशम्भोर्नानाश्चर्यसमन्वितम् ॥ अनेकरत्नसंवीतंप्रासादैस्समलंकृतम् ॥ ४० ॥ तदङ्गणमनुप्राप्यउपविश्यहिहव्यराट् ॥ पाणिपात्रस्यमेह्यम्ब भिक्षान्देह्यविरोधिता ॥ ४१ ॥ तच्छ्रुत्वावचनन्तस्य पाणिपात्रस्यचाम्बिका ॥ यावद्दातुंसमारेभे भिक्षान्तस्मैततःस्वयम् ॥ ४२ ॥ उत्थायसुरतात्तस्माच्छिवोहिकुपितोभृशम् ॥ रुद्रस्त्रिशूलमुद्यम्यभैरवोहीषुवत्तदा ॥ ४३ ॥ निवारितोगिरिजया वधात्तस्माच्छिवःस्वयम् ॥ भिक्षांतस्मैददौचाम्बाह्यग्नयेजातवेदसे ॥ ४४ ॥ पाणौभिक्षांगृहीत्वाथ प्रत्यक्षंतेनचाग्निना ॥

को क्रमसे प्राप्तहोकर व बैठकरभी अग्निदेव बोले कि हे अम्ब ! तुम विरोधके विना हाथों को पात्र कियेहुये मुझको भिक्षादो ॥ ४१ ॥ तदनन्तर हाथपात्रवाले उन के उस वचनको सुनकर श्रीपार्वतीजीने अपनाही जबतक उनको भिक्षा देनेके लिये भलीभांति प्रारम्भकिया ॥ ४२ ॥ तबतक बहुतही कुपित हुये संसाररोगहारी शिवजी उस सम्भोग से उठकर व त्रिशूल को उठाकर बाणके समान भयङ्कर होगये ॥ ४३ ॥ तब श्रीपार्वतीजी ने आपही उस वधसे शङ्करजी को निवारण किया और अम्बिकाजी ने उपजे हुये ज्ञानवाले उन अग्निदेव को भिक्षा दिया ॥ ४४ ॥ व अनन्तर उन अग्निदेवने हाथ में भिक्षाको लेकर प्रत्यक्षही खालिया तब कुपितहुई

पार्वतीजी ने उनको निश्चयकर शाप दिया ॥ ४५ ॥ कि रे भिक्षो! तुम मेरे शापसेसर्वभक्षी होवोगे और शङ्करजी के इस वीर्य्य से सबओर पीडाको पावोगे ॥ ४६ ॥ इस प्रकार उग्ररूपधारी अग्निदेव ने शिवजी के आगे रेतको खाकर और फिर जहा सब ब्रह्मादिदेव टिके थे वहा ॥ ४७ ॥ आकर उस वीर्य्य के भोजनादि सब वृत्तांत को कहा तब सबही इन्द्रादि देवसमूह भी गर्भ समेत होगये ॥ ४८ ॥ और जैसेही अग्नि की हवि सबोंके समीप में टिकती है वैसही अग्नि के मुख से उपजे हुयेही रेत से भी वे देव ॥ ४९ ॥ गर्भ सहितही हुये और चिन्तासे बहुतही पीडित होकर सबजने देवदेवों के ईश्वर समर्थ श्रीविष्णुजी के शरणको आये ॥ ५० ॥ देव बोले कि

भक्षिताकुपितातंवै शशापगिरिजाततः ॥ ४५ ॥ रेभिक्षोभविताशापात्सर्वभक्षोममाशुवै॥ अनेनरेतसाशम्भोःपीडा म्प्राप्स्यसिसर्वतः ॥ ४६ ॥ इत्युग्रोभक्षयित्वाग्रेरेतईशस्यहव्यवाट् ॥ यत्रदेवाःस्थितास्तत्र ब्रह्माद्याश्चैवसर्वशः ॥४७॥ आगत्याकथयत्सर्वं तद्रेतोभक्षकादिकम् ॥ सर्वेसगर्भाह्यभवन्निन्द्राद्यादेवतागणाः ॥ ४८ ॥ अग्नेर्हविर्यथाचैव सर्वे षामुपतिष्ठति ॥ अग्नेर्मुखोद्भवेनैव रेतसाचैवतेसुराः ॥४९॥ सगर्भाह्यभवन्सर्वे चिन्तयाचप्रपीडिताः॥ विष्णुंशरणमा जग्मुर्देवदेवेश्वरम्प्रभुम् ॥ ५० ॥ देवाऊचुः ॥ त्वन्त्रातासर्वदेवानांलोकानाम्प्रभुरेवच॥ तस्माद्रक्षाविधातव्याशरणागत वत्सल ॥ ५१ ॥ वयंसर्वेमर्तुकामारेतसानेनपीडिताः ॥ असुरेभ्यःपरित्रस्तावयंसर्वेदिवौकसः ॥ ५२ ॥ शरणंशङ्करंया तापरित्रातुंकृतोद्वहम् ॥ यदापुत्रोहिरुद्रस्य भविष्यतितदावयम् ॥ ५३ ॥ सुखिनःस्यामसर्वेश निर्भयाश्चत्रिविष्टपे ॥ एवंविमृश्यमानानां सर्वेषांभयमागतम् ॥ ५४ ॥ अनेनरेतसाविष्णो जीवितुङ्कथमुत्सहे ॥ त्रिवर्गोहिद्रुथापुंसांकृतोहि

हे शरणागतवत्सल! तुम सब देवों के रक्षक और लोकों के स्वामी भी हो इसलिये हमारी रक्षा करना चाहिये ॥ ५१ ॥ क्योंकि इस वीर्य्य से पीड़ित हुये हमलोग मरने की इच्छावाले हैं और असुरो से सबओर सतायेहुये हमसब देवलोग ॥ ५२ ॥ चारोंओर से रक्षा करने के लिये ब्याह किये हुये शङ्करजी के शरण को गये थे ॥ ५३ ॥ हे सर्वेश! जबहीं रुद्रजी के रेत से पुत्र होवेगा तब हम स्वर्ग में सुखी और अभय होवेंगे ऐसा निश्चय से विचारते हुये सबों को डर आगया ॥ ५४ ॥ हे विष्णो!

हमलोग इस रेतसे जीनेके लिये किसभांति सहसक्ते हैं और जिसकारण अच्छे संस्कार से सयुत पु:षों का त्रिवर्ग याने अर्थ धर्म और काम भी वृथा कियागया है ॥ ५५ ॥ व दैवके विना उलटाही होता है अन्यथा नहीं उस कारण दैवके बलको मानकर सबही देहधारियों के ॥ ५६ ॥ करने व नहीं करने योग्यों की व्यवस्था में हम सब लोग मानते हैं तब देवों के वचन को सुनकर परमेश्वर विष्णुजी ॥ ५७ ॥ जोकि देव शत्रुओं (दैत्यों) के मारनेवाले हैं वे देवोंके बीचमें बिहँसते हुये वचन को बोले कि कार्य्यकी गुरुता से महेश महादेवजी की स्तुति कीजावे ॥ ५८ ॥ वैसाहो ऐसा मानकर वे सब इन्द्रादि देव तथा ब्रह्मादि और सब ऋषिभी शिवजी की

सुपरिस्कृतः ॥ ५५ ॥ विपरीतोभवत्येवविनादैवेननान्यथा ॥ तस्माद्दैवबलंमत्वा सर्वेषामपिदेहिनाम् ॥ ५६ ॥ कार्याकार्य्यव्यवस्थायां सर्वेमन्यामहेवयम् ॥ तदानिशम्यदेवानां परेशःपरिदेवनम् ॥ ५७ ॥ उवाचप्रहसन्वाक्यं देवानांदेवतारिहा ॥ स्तूयतांञ्चमहादेवो महेशःकार्यगौरवात ॥ ५८ ॥ तथेतिमत्वातेसर्वेदेवाजिष्णुपुरोगमाः ॥ तथाब्रह्मादयस्सर्वेऽडिरेऋषयोहरम् ॥ ५९ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ नमोभर्गायदेवाय नीलकण्ठायमीढुषे ॥ त्रिनेत्रायत्रिवेदायलोकत्रितयधारिणे ॥ ६० ॥ त्रिस्वरायत्रिमात्राय त्रिवेदायत्रिमूर्त्तये॥त्रिवर्गायत्रिधामाय त्रिपदायत्रिशूलिने ॥ ६१ ॥ त्राहित्राहिमहादेवरेतसोजगतःपते ॥ ब्रह्मणैवंस्तुतोयावत्तावद्देवोवृषध्वजः ॥ ६२ ॥ प्रादुर्बभूवतत्रैव सुराणांकार्यसिद्धये ॥ दृष्टस्तदानींजगदेकबन्धुर्महात्मभिर्देववरैस्सुपूजितः ॥ ६३ ॥ संस्तूयमानोविविधैर्वचोभिःप्रत्यग्ररूपैःश्रुतिसम्मतैश्च ॥ स्तुव

स्तुति करने लगे ॥ ५९ ॥ श्रीब्रह्माजी बोले कि, ऐश्वर्य्यधारी क्रीडाकारी नीलकण्ठ सुख बरसानेवाले त्रिनेत्र व ऋक् यजुः साम नाम त्रिवेद स्वरूप और तीनों लोकों के धारनेहारे तुम्हारे लिये नमस्कारहो ॥ ६० ॥ तीन स्वर तीन मात्रा और तीन देवोंकी मूर्त्तिवाले अर्थादि त्रिवर्गरूप त्रिलोकवासकारी त्रिशूलधारी और त्रिपादविभूतिवारे तुम्हारे लिये नमस्कारहो ॥ ६१ ॥ हे जगत्पते, महादेवजी ! तुम अपने रेतसे हमारी रक्षा करो रक्षाकरो इसप्रकार वृषध्वज महादेवजी जबतक ब्रह्माजी से प्रशंसित हुये ॥ ६२ ॥ तबतक वहाही देवोंके कार्य्योंकी सिद्धिके लिये प्रकट होगये तब सब महात्मा देवश्रेष्ठों ने जगत् के एक प्यार करनेहारे शिवजीको देखा व अच्छी

पूजा किया ॥ ६३ ॥ व सामने से आगे रूपवाले वेदसम्मत बहुत भांति के वचनों से भलीभांति स्तुति किये जाते हुये परमेश्वरजी ने स्तुति करतेहुये देवोंके बीचमेंही कहा कि ॥ ६४ ॥ इस वीर्य से पीडित हुये सबों करके त्रास (डर या उद्वेग) मत कियाजावे और आजही आपलोगोंको बलसे रेतका उत्खालन (ऊपर निकालना) करना चाहिये ॥ ६५ ॥ हे विप्रो ! वैसेही ऐसा मानकर उन सबों इन्द्रादि देवसमूहोंने तब शङ्करजी के उस वीर्य्यको वमन किया और ॥ ६६ ॥ तपेहुये सोने की नाईं अधिकता समेत अद्भुत वह रेत इकट्ठे होने से बड़ेभारी पर्वत के समान हुआ ॥ ६७ ॥ तब सब इन्द्रादि देवसमूह सुखी होगये और ऐसेही अग्नि के विना वे

ताञ्चैवदेवानामुवाचपरमेश्वरः ॥ ६४ ॥ मात्रासःक्रियतांसर्वैरेतसानेनपीडितैः ॥ उत्खालनंभवद्भिश्च कार्यमद्यैवओजसा ॥ ६५ ॥ तथेतिमत्वातेसर्वे इन्द्राद्यादेवतागणाः॥ वमन्तिस्मतदाविप्रास्तद्रेतःशङ्करस्यच ॥ ६६ ॥ एकपद्येनतद्रेतोमहापर्वतसन्निभम् ॥ तप्तचामीकरप्रख्यं वभूवपरमाद्भुतम् ॥ ६७ ॥ सर्वेचसुखिनोयाता इन्द्राद्यादेवतागणाः ॥ विनाग्निञ्चैवतेसर्वे परितुष्टास्तदाभवन् ॥ ६८ ॥ तेनाग्निनातदोक्तस्तु शङ्करोलोकशङ्करः ॥ कर्तव्यंकिंमहादेव मयादेववरप्रभो ॥ ६९ ॥ तद्वदस्वविभोचाद्य येनाहंसर्वदासुखी ॥ भविष्यासिचदेवानां येनाहंहव्यवाहकः ॥ ७० ॥ यदोवाचशिवंसाक्षाद्देवानामपिशृण्वताम् ॥रेतोविसृज्यतांयोनौतदाग्निःप्रहसन्निव ॥ ७१ ॥ उवाचशङ्करन्देवंभवत्तेजोदुरासदम् ॥ इदमुल्वणवत्तेजो धार्यतेप्राकृतैःकथम् ॥ ७२ ॥ तदाग्निर्नारदेनोक्तस्त्वंकुरुष्ववचोमम ॥ माघेमासिप्रतप्तानां देहेतेजो

तब सन्तुष्ट हुये ॥ ६८ ॥ व उस समय उन अग्निदेव ने लोकों के सुखकारी शिवजीसे कहा कि हे देवश्रेष्ठ,प्रभो,महादेव जी ! मुझको क्या करना चाहिये ॥ ६९ ॥ और हे समर्थ ! मैं जिस से सदैव सुखी होऊंगा व जिससे देवोंको हव्य पहुंचानेवाला होऊंगा उसको तुम कहो ॥ ७० ॥ जब देवों के भी सुनतेही साक्षात् शिवजी बोले कि मेरा वीर्य्य योनि में छोड़ाजावे तब बहुतही हँसते हुये अग्निदेव ने ॥ ७१ ॥ शंकरजी से कहा कि हे देव ! आपका तेज दुःसहने समीप जाने योग्यहै और उल्वण के समान यह वीर्य्य प्राकृत जनों से कैसे धारण किया जासका है ॥ ७२ ॥ तब नारदजीने अग्नि से कहा कि तुम मेरे वचन को कि माघ मास में बहुतही तपेहुये

जनों की देहमें तेज छोंड़ाजावे ॥ ७२ ॥ अनन्तर वैसाहो ऐसा नारदजी का कहना मानकर महादीप्तिमान् व बड़ेभारी प्रभाववाले वह अग्निदेव उत्तम तेजसे प्रज्वलित
भये और ब्राह्ममुहूर्त्त जोकि चारदण्ड रात्रि रहने के बाद होता है उसमें वहांपर बैठगये ॥ ७४ ॥ उस समय वहां प्रज्वलित अग्नि को देखकर शीत (जाड़) से ताडित
हुई तापने की इच्छावाली सब कृत्तिकाओं को अरुन्धती ने निवारण किया ॥ ७५ ॥ परन्तु उनसे निवारण की गई हुई भी उन कृत्तिकाओं ने आपही तापलिया और
जबतक वे सब तापनेलगीं तबतक शिवजी के वीर्य्य के परमाणु याने बहुतही सूक्ष्म किणके ॥ ७६ ॥ वहांही उनके रोमों के छिद्रों में पैठगये तब अग्निदेवजी शीघ्रही

विसृज्यताम् ॥ ७३ ॥ तथेतिमत्वावचनंमहाप्रभः सजातवेदाःपरमेणवर्चसा ॥ समज्ज्वलत्तत्रमहाप्रभावो ब्राह्मेमुहूर्ते
प्यथचोपविष्टः ॥ ७४ ॥ दृष्ट्वाप्रज्वलितन्तत्र कृत्तिकाःशीतताडिताः ॥ तप्तुकामास्तदासर्वाह्यरुन्धत्यानिवारिताः ॥
७५ ॥ तयानिवारिताश्चापि तास्तेपुःकृत्तिकाःस्वयम्॥ यावत्तेपुश्चताःसर्वा रेतसःपरमाणवः ॥ ७६ ॥ विविशूरोमकूपेषु
तासान्तत्रैवसत्वरम् ॥ निरेतोग्निस्तदायातो विश्रान्तःस्वयमेवहि ॥ ७७ ॥ ततस्ताःसहगर्भाश्च ययुःस्वभवनम्प्रति ॥
ऋषिभिस्तुतदाशप्ताः कृत्तिकाखेचरास्त्वथ ॥ ७८ ॥ तदानीमेवताःसर्वा व्यभिचारेणदूषिताः ॥ उत्ससर्जुस्तुयद्रेतः
पृष्ठेहिमवतोगिरेः ॥ ७९ ॥ एकपद्येनतद्रेतस्तप्तचामीकरप्रभम् ॥ गङ्गायान्तुतदाक्षिप्तं कीचकैःपरिवेष्टितम् ॥ ८० ॥
षण्मुखंबालकंज्ञात्वा सर्वेदेवामुदान्विताः॥ गर्गेणोक्तास्तदन्तेवै सुखेनस्थीयतामिति ॥८१॥ शम्भोःपुत्रप्रसादेन सर्वंभ

रेत से रहित होगये और आपही विश्रामवाले हुये ॥ ७७ ॥ तदनन्तर जब गर्भ समेत उन सब कृत्तिकाओंने अपने घर के प्रति गमन किया तब ऋषियों ने उनको शाप
दिया उसके बाद वे आकाश में चलनेवाली होगई ॥ ७८ ॥ व उस समय मेंही व्यभिचार से दूषित हुई उन सबोंने हिमवान् पर्वत के पृष्ठ में उस वीर्य्यको त्याग
किया ॥ ७९ ॥ वह रेत एकक्षण या एक साथही तब गंगाजी में छोड़ागया जोकि तपाये हुये सोने के समान दीप्तिमान् और बांसकी जातियों से सबओर घिरा है ॥
८० ॥ उससे उपजे हुये छःमुख वाले बालकको ज्ञानकर सब देवलोग आनन्द समेत हुये उसके अन्त में गर्गाचार्य ने उनसे ऐसा कहा कि सुखसे रहाजावे ॥ ८१ ॥

क्योंकि शिवजी के पुत्र के प्रसाद से सब कुछ निरन्तर होवेगा और जब बड़ेबलवान् कार्त्तिकेयजी गंगा के कछडे में उत्पन्न हुये ॥ ८२ ॥ तब बैठे हुये गागेय जी-एक रात्रिदिन बसे अनन्तर सम्पूर्ण रूपवाले वह षरामुखजी आनन्द से या प्रक्टही शाख और विशाख होगये ॥ ८३ ॥ व जबही छहमुखवाले शिवजी के पुत्र गंगाजी मे उपजे तबहीं श्रीपार्वती जी दूधसे चुचुवाते हुये कुचोंवाली हुई ॥ ८४ ॥ और अच्छे सूक्ष्म अंगोंवाली गौरीजीने शंकरजी को देखकर कहा कि हे महादेव, शम्भो ! मेरे दूधका प्रस्रव (झिरना) किसलिये भलीभाति हुआ है वह देखाजावे ॥ ८५ ॥ और सर्वज्ञ भी शिवजी अज्ञ (अज्ञान) के समान वहां उनसे बोले तब नारदजी ने

वतिशाश्वतम् ॥ गङ्गायाम्पुलिनंजातः कार्त्तिकेयोमहाबलः ॥ ८२ ॥ उपविष्टोथगङ्गे यो ह्यहोरात्रोषितस्तदा ॥ शाखो विशाखोप्यकलःषरामुखोसौबभूवह ॥ ८३ ॥ जातोयदाहिगङ्गायां षरामुखःशङ्करात्मजः ॥ तदानीमेवगिरिजा जाता स्रुतपयोधरा ॥ ८४ ॥ शिवंनिरीक्ष्यतन्वङ्गी हेशम्भोप्रस्रवोमहान् ॥ सञ्जातोमेमहादेव किमर्थन्तन्निरीक्ष्यताम् ॥ ८५ ॥ सर्वज्ञोपिमहादेवोब्रवीत्तांतत्रचाज्ञवत् ॥ नारदेनतदागत्य कथितंजन्मतस्यतत ॥ ८६ ॥ शिवायचशिवायैच पुत्रोजातोतिसुन्दरः ॥ तदाकर्ण्यवचोविप्रा हर्षनिर्भरमानसाः ॥ ८७ ॥ बभूवुःप्रमथाःसर्वे गन्धमादनवासिनः ॥ अनेकाभिःपताकाभिर्बिल्वपल्लवतोरणैः ॥ ८८ ॥ तथावितानैर्बहुभिर्बभौसज्वलितोमहान् ॥ पर्वतःपुत्रजननाच्छङ्करस्यमहात्मनः ॥ ८९ ॥ तदासर्वेसुरगणा ऋषयःसिद्धचारणाः ॥ यक्षगन्धर्वसर्पाश्चाप्यप्सरोगणसेविताः ॥ ९० ॥ एकपद्येनतेसर्वे सहिताःशङ्करेणहि ॥ दृष्टुङ्गाङ्गेयमधिकंजग्मुःपुलिनसंस्थितम् ॥ ९१ ॥ ततोवृषभमारुह्य ययौगिरिजया

आकर उन कार्त्तिकेयजी के उस जन्मको कहा कि ॥ ८६ ॥ शिव और श्रीपार्वतीजीके लिये बडा सुन्दर बालक हुआ है हे ब्राह्मणो ! उस वचन को सुनकर व आनन्द से निर्भर अन्तःकरणवाले ॥ ८७ ॥ हुये जेकि सब गणलोग गन्धमादन पर्वत के वासीहैं और अनेको पताकाओ व खेलते हुये पल्लवोंवाले बन्दनवारो ॥८८॥ तथा बहुते वितानो करके वह बड़ाभारी पर्वत महात्मा महादेव जी के पुत्रके जन्म से शोभित हुआ ॥ ८९ ॥ तब सब देवगण ऋषि सिद्ध चारण यक्ष गन्धर्व व अप्सरो के समूह से सेवित सर्प्प ॥ ९० ॥ और जेकि शङ्करजी सेही सहित हैं वे सबलोग गंगाजी के कछड़े में भलीभांति टिकेहुये गागेयजी को अधिकतासे देखने के लिये एकसाथही

चले ॥ ९१ ॥ तदनन्तर इन्द्रादिदेवों और वैसेही अन्य जनोंसे भी सहित शिवजी श्रीपार्वती जीके साथ बैलपर चढकर गये ॥ ९२ ॥ उस समय शंख नगरियां व और अनेकों तुरहियां बाजी व तबही सब वीरभद्रादिगण जोकि ॥ ९३ ॥ बहुते बाजों को बजाते हुये खेलों के प्रारम्भ करनेवाले हैं वे भी शिवजी के पीछेचले व क्रकीय तत और वितत भी बाजों के बहुत से भेद कि जिनके लक्षण पहलेही कहे गये हैं वेभी बाजनेलगे ॥ ९४ ॥ वहां कोई गण नृत्य में परायण हैं वैसेही अन्य जन गानेवाले हैं और प्रशंसित होते हुये स्तुति करनेवाले ने उनके गुणकथन को किया ॥ ९५ ॥ इस भांतिवाले चारोंओर से अधिक आनन्दित होतेहुये वे ये देव सिद्ध यक्ष गन्धर्व विद्याधर और पन्नग (नाग) शिवजी के साथ उन वरदायक शङ्करजीके पुत्र कार्त्तिकेयजी को देखने के लिये गये ॥ ९६ ॥ और जबतक उन्होंने शिवजी

सह ॥ अन्यैश्चसहितोभर्गस्सुरैरिन्द्रादिभिस्तथा ॥ ९२ ॥ तदाशङ्खाश्चभेर्य्यश्चनेदुस्तूर्य्याण्यनेकशः ॥ तदानीमेवयेसर्वे वीरभद्रादयोगणाः ॥ ९३ ॥ अन्वयुःकेलिसंरब्धानानावादित्रवादकाः ॥ क्रकीयान्येवंववाद्यानिततानिविततानिच ॥ ९४ ॥ केचिन्नृत्यपरास्तत्र गायकाश्चतथापरे ॥ स्तावकाःस्तूयमानास्तेचक्रुस्तद्गुणकीर्तनम् ॥ ९५ ॥ एवंविधास्तेसुरसिद्धयक्षागन्धर्वविद्याधरपन्नगाह्यमी ॥ शिवेनसार्द्धंपरिहृष्यमाना द्रष्टुंययुस्तंवरदंचशाङ्करिम् ॥ ९६ ॥ यावत्समीक्षयामासुर्गाङ्गेयंशङ्करोपमम् ॥ ददृशुस्तेमहातेजो व्याप्तमासीज्जगत्त्रयम् ॥ ९७ ॥ तत्तेजसावृतंबालं तप्तचामीकरप्रभम् ॥ सुमुखंसुश्रियायुक्तं सुनासासस्मितेक्षणम् ॥ ९८ ॥ चारुप्रसन्नदशनैस्तथासर्वाङ्गसुन्दरम् ॥ तन्दृष्ट्वामहदाश्चर्यं गाङ्गेयंप्राथितालकम् ॥ ९९ ॥ ववन्दिरे तदादेवाः कुमारंसूर्यवर्चसम् ॥ प्रमथाश्चगणास्सर्वे वीरभद्रादयस्तथा ॥ १०० ॥ परिवार्य्योपस्थं

के समान गांगेय जीको भलीभांति देखा तबतक उनके तेजको देखा कि जिससे त्रिलोक व्याप्त हुआ है याने वह तेज सबओर भरगया है ॥ ९७ ॥ उस तेज से घिरेहुये बालक कार्त्तिकेयजी जोकि तपायेहुये सोने के समान दीप्तिमान् अच्छे मुखवाले व अच्छी शोभा और अच्छी नासिकासे संयुत व मन्दमुसकान समेत देखनेवाले हैं ॥ ९८ ॥ व मनोहर प्रसन्न दांतों से सहित तथा सब अङ्गों से सुन्दर और प्रसिद्ध या पसरीहुई अलकों से शोभायमान व बड़े अद्भुत हैं उन गांगेयजी को देखकर ॥ ९९ ॥ देव प्रमथ वैसेही वीरभद्रादि सब गणों ने उस समय वन्दना किया और सूर्य के समान प्रकाशवान् कुमारको ॥ १०० ॥ सब ओर से घेरकर वे

बाये और दहिने भाग मे समीपही भली भांति टिके तथा ब्रह्मा व विष्णु व देवों से घिरेहुये इंद्रजीभी ॥ १ ॥ व नमितकण्ठवाले कोई ऋषि यक्ष और गन्धर्व भी कुमारजी को सबओर से घेरकर दण्डके समान भूमिमे गिरे ॥ २ ॥ व अन्यजनोंने अविनाशी या विकारसे हीन स्वामी मानकर प्रणाम किया और उस बडे उत्सव मे विचित्र बाजे बजायेगये ॥ ३ ॥ वैसेही ऐसे उस उत्साहमें ऋषिलोग शातिपाठके देनेवालेहुये इसअवसरमें श्रीपार्वतीजी के पति शङ्करजी गये ॥ ४ ॥ व अच्छे व्रतवाले शिवजीने श्रीपार्वतीजी के साथ शीघ्र उस बैलसे उतरकर ॥ ५ ॥ जब पुत्रको देखा जो कि जगत् के एक (मुख्य) प्यारे व परमेश्वरी भवानी और गणोंसे सबओर

स्थास्तेवामदक्षिणभागतः ॥ तथाब्रह्माचविष्णुश्च इन्द्रश्चापिसुरैर्वृतः ॥ १ ॥ ऋषयोयक्षगन्धर्वाः परिवार्यकुमारकम् ॥ दण्डवत्पतिताभूमौ केचिन्नतकन्धराः ॥ २ ॥ प्रणेमुःशिरसाचान्ये मत्वास्वामिनमव्ययम् ॥ अवाद्यन्तविचित्राणि वादित्राणिमहोत्सवे ॥ ३ ॥ एवमभ्युदयेतस्मिन्नृषयःशान्तिदास्तथा ॥ एतस्मिन्नन्तरेयातः शङ्करोगिरिजापतिः ॥ ४ ॥ अवतीर्य्यवृषाच्छीघ्रं पार्वत्यासहसुव्रतः ॥ ५ ॥ पुत्रंददर्शचयदाजगदेकबन्धुः प्रीत्यायुतःपरमयापरयाभवान्या ॥ स्नेहान्वितोभुजगभोगयुतोहिसाक्षात्सर्वेश्वरःपरिवृतःप्रमथैस्तदानीम् ॥ ६ ॥ उपगुह्यगुहंतत्र पार्वतीजातसम्भ्रमा ॥ प्रस्नुतंपाययामास स्तनंस्नेहपरिप्लुता ॥ ७ ॥ तदानीराजितादेवैः सकलत्रैर्मुदान्वितैः ॥ जयशब्देनमहता व्याप्तमासीन्नभस्तलम् ॥ ८ ॥ ऋषयोब्रह्मघोषेण गीतेनैवचगायकाः ॥ वाद्यैश्चवादकाश्चैवमुपतस्थुःकुमारकम् ॥ ९ ॥ स्वमङ्कमारोप्यतदागिरीशः कुमारकन्तंप्रभयामहाप्रभम् ॥ बभौभवानीपतिरेवसाक्षाच्छि

घिरेहुये व सर्प्पोंकी देहसे संयुत और साक्षात् सबके ईश्वरही है वह तबही परम प्रसन्नतासे युक्त होकर स्नेह समेत हुये ॥ ६ ॥ और वहां स्नेहसे डूबी या भीगीहुई व उपजेहुये आदरवाली पार्वतीजी ने श्रीस्वामिकार्त्तिकेयजी को समीप से लेकर चुचुवातेहुये कुचको पिलाया ॥ ७ ॥ उस समय स्त्रियों समेत आनन्द सहित देवोंने नीराजन किया व आकाशतल बड़ेभारी जयजयकार शब्द से व्याप्तहुआ याने भर गया ॥ ८ ॥ ऐसेही ऋषि वेदशब्दसे व गायक लोग गीतसे और बजानेवाले बाजो से कुमार के समीप में टिके ॥ ९ ॥ तब पुत्रवालो मे श्रेष्ठ व शोभासे संयुत श्रीपार्वतीजी के पति साक्षात् शिवजीभी दीप्तिसे बड़े प्रकाशवाले उन बालक कार्त्तिकेयजी

को अपने गोदमें चढ़ाकर शोभित हुये ॥ १० ॥ उस समय ऋषियो से अभिषेकवाले कियेजाते व देवसत्तमो से घिरेहुये वे स्त्री पुरुष वहा एक साथही या स्थान या क्षणसे विराजे ॥ ११ ॥ और कुमार (कार्त्तिकेय) जीने शिवजीकी गोदीमें खेल किया व उनके कण्ठ में टिकेहुये वासुकीनाग को भलीभाति पीडा दिया ॥ १२ ॥ व जब वह हाथोंसे मुखको दबाकर सर्प्पोंको गिननेलगे॥ १३ ॥ तब जगत् के एकबन्धु (प्यारे) लोकोंके एक धारने या पोषनेवाले श्रीपार्वती समेत भगवान् महेशजी मन्द मुसकानसे अधिक उत्तम आनन्दको प्राप्तहुये और प्रेमकरके गद्गद वाणीसे कुछेक वचन को नही बोले ॥ ११४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेमाहेश्वरखण्डा

यान्वितःपुत्रवतांवरिष्ठः ॥ १० ॥ दम्पतीतौतदातत्र ऐकपद्येनरेजतुः ॥ अभिषिच्यमानौऋषिभिरावृतोसुरसत्तमैः ॥
११ ॥ कुमारःक्रीडयामास उत्सङ्गेशङ्करस्यच ॥ कण्ठेस्थितंवासुकिञ्चपाणिभ्यांसमपीडयत् ॥ १२ ॥ मुखम्प्रपीडयि
त्वाशुफणीनगणयद्यदा॥१३॥मन्दस्मितेनचतदाभगवान्महेशः प्राप्तोमुदञ्चपरमंगिरिजासमेतः ॥ प्रेम्णासगद्गदगिरा
जगदेकबन्धुर्नोवाचकिञ्चनवचोभुवनैकभर्ता ॥ ११४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेमाहेश्वरखण्डान्तर्गतकेदारखण्डे शैव
शास्त्रेश्रीकार्त्तिकेयजन्मोत्सवोनामसप्तविंशतितमोऽध्यायः ॥ २७ ॥ * ॥ * ॥ * ॥
लोमशउवाच ॥ कुमारंस्वाङ्कमारोप्य उवाचजगदीश्वरः ॥ देवान्प्रतितदारुद्रः सेन्द्रान्गर्भःप्रतापवान् ॥ १ ॥ कि
ङ्कार्यंकथ्यतान्देवाः कुमारेणाधुनामम ॥ तदोचुस्सहितास्सर्वे देवम्पशुपतिम्प्रति ॥ २ ॥ तारकाद्भयमुत्पन्नं सर्वेषांजग ॥

॥ ❁ ॥

न्तर्गतकेदारखण्डेभाषाबन्धेसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचिते श्रीकार्त्तिकेयजन्मोत्सवोनाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

दो० । अष्टविंश अध्याय में सेनापति शिवबाल । अन्तर्वेदी बीचमें देव दैत्यदलचाल ॥ श्रीलोमशजी बोले कि, तब श्रीकार्त्तिकेयजीको अपने गोदमें बिठलाकर जगत् के ईश्वर रुद्रजीने इन्द्रसमेत देवोंके प्रति कहा कि यह गर्भ (बालक) बड़ा प्रतापी है ॥ १ ॥ हे देवो ! इस समय कुमार से मेरा क्या कार्य्य है वह कहा जावे उस समय इकट्ठे संमिलित हुये सब देवोंने क्रीडाकारी शिवजी के प्रति कहा कि ॥ २ ॥ हे जगतो के स्वामिन् ! तारकासुरसे सबों या सब जगतों का डर उपजा

है उस कारण तारकदैत्यको मारने क लिये उद्यत हुये हम लोग आजही जावेंगे ॥ ३ ॥ वैसाहो ऐसा मानकर वे सब देवलोग शङ्करजी के पुत्र श्रीकार्त्तिकेय
जीकोही आगेकर बडेभारी दैत्य तारकासुर के प्रति एकाएक निकलकर चले ॥४॥ हे विप्र ! ब्रह्मा और विष्णुजी जिनके आगे चलनेवाले हे वे सब जने भलीभाति
मिलित हुये व देवोंके उद्यमको सुनकर बडाबलवान् तारकासुर भी ॥ ५ ॥ बड़ी सेनाके साथ लडने के लिये देवोंके प्रति गया और जब देवोंने भलीभाति आयेहुये
तारकासुरके बडेभारी सैन्यको देखा ॥६॥ तब आकाशमें प्राप्तहुई वाणीने शीघ्रही उनसे ऐसाकहा कि शिवजीके पुत्रको आगेकर भलीभांति उद्यतहुये तुम सबलोग ॥७॥

तांविभो ॥ तस्मादद्यैवयास्यामस्तारकंहन्तुमुद्यताः ॥ ३ ॥ तथेतिमत्वासहसा निर्जग्मुस्तेमहासुरम् ॥ कार्त्तिकेयम्पुर
स्कृत्य शङ्करात्मजमेवहि ॥ ४ ॥ सर्वेसम्मिलिताविप्र ब्रह्मविष्णुपुरोगमाः ॥ देवानामुद्यमंश्रुत्वा तारकोपिमहाबलः ॥
५ ॥ सैन्येनमहताचैव ययौयोद्धुंसुरान्प्रति ॥ देवैर्दृष्टंसमायातंतारकस्यमहद्बलम् ॥ ६ ॥ तदानंभोगतावाणी तानुवा
चेतिसत्वरम् ॥ शाङ्करिञ्चपुरस्कृत्य सर्वेयूयंसमुद्यताः ॥ ७ ॥ दैत्यान्विजित्यसंग्रामे जयिनोहिभविष्यथ ॥ वाचन्तुखे
चरींश्रुत्वा देवास्सर्वेसमुत्सुकाः ॥ ८ ॥ कुमारञ्चपुरस्कृत्य सर्वेतेयातसाध्वसाः ॥ योद्धुकामाःसुरायावत्तावत्सेनासमाग
ता ॥ ९ ॥ वरणार्थंकुमारस्य सुताभृत्योर्दुरत्यया ॥ ब्रह्मणानोदितापूर्वं तपःपरममाश्रिता ॥ १० ॥ तपसातेनमहताकु
मारंप्रतिवैतदा ॥ आगताद्दुहितामृत्योः सेनानामैकसुन्दरी ॥ ११ ॥ तांदृष्ट्वाथचतंसर्वे ऊचुर्वाचंपरस्परम् ॥ एवंकुमार

संग्राम में दैत्योंको जीतकर जय (जीति) वालेही होवोगे और आकाशचारिणी वाणीको सुनकर सब देवलोग भलीभांति उत्सुक (उत्साहवाले) हुये ॥
८ ॥ वगयेहुयेडरवाले वे सब देव श्रीकार्त्तिकेयजी को आगेकर जवतक लडने के चाही होकर टिके तबतक सेना भलीभाति आगई ॥ ९ ॥ जोकि मृत्युकी कन्या
व दुःखसे उल्लघन करनेयोग्य है और ब्रह्माजीसे प्रेरी (पठाई) हुई कार्त्तिकेयजी को वरनेके लिये आगेही उत्तमतपस्या में टिकीथी ॥ १० ॥ वह एक (मुख्य) सुंदरी
देवसेना नामवाली मृत्युकी कुमारी उस समय उस बड़ीभारी तपस्यामे कुमारजी के प्रति निश्चयसे आई ॥ ११ ॥ और तदनन्तर उसको देखकर उन सबोंने

श्रीकार्त्तिकेयजी को उद्देशकर आपुसमें ऐसे वचन को कहा कि यह अति सुन्दरी कौन आई है ॥ १२ ॥ व जब कुमारजी ने ब्रह्माजी के वचनसेही उसको अङ्गीकार
किया तब उसके बाद शंकरजीके पुत्र श्रीस्वामिकार्त्तिकेयजी सेनाके पतिहुये ॥ १३ ॥ वैसेही शङ्ख व नगारे व डङ्का व ढोल व गोमुख तथा नगरिया बाजी और मृदंगों
का बडाभारी शब्द हुआ ॥ १४ ॥ व उस बडेशब्द से आकाशस्थल पूरागया तब गंगा व गौरी व कृत्तिका और मातृका समूह ॥ १५ ॥ उन सबोंने आपुस में ऐसा
कहा कि यह पुत्र मेराहै मेराहै इसभांति व सब मातृकादि स्त्रियां विवाद (झगडा) को प्राप्तहुई ॥ १६ ॥ अनन्तर नारदजीने निवारण किया कि तुम लोग मूढ़ताकोही मत

मुद्दिश्य कागताह्यतिसुन्दरी ॥ १२ ॥ ब्रह्मणोवचनाच्चैव कुमारेणयदावृता ॥ अथसेनापतिर्जातः कुमारःशाङ्करिस्त
दा ॥ १३ ॥ तथाशङ्खाश्चभेर्य्यश्च पटहानकगोमुखाः ॥ तथादुन्दुभयोनेदुर्मृदङ्गानांमहास्वनाः ॥ १४॥ तेननादेनम
हतापूरितञ्चनभस्तलम् ॥ तदागौरीचगङ्गाच कृत्तिकामातृकागणाः ॥ १५ ॥ परस्परमथोचुस्ताः सुतोममममेतिच ।
एवंविवादमापन्नाः सर्वास्तामातृकादयः ॥ १६ ॥ निवारितानारदेन मूढत्वंमाकुरुतवै ॥ पार्वत्याशङ्कराज्जातो देवका
र्य्यार्थसिद्धये ॥१७॥ तूष्णींभूत्वास्थिताःसर्वाः कृत्तिकामातृभिस्सह । गुहेनोक्तास्तदासर्वा ऋषिपत्न्यश्चकृत्तिकाः॥१८॥
नक्षत्राणिसमाश्रित्य युष्माभिःस्थीयतांचिरम् ॥ तथामातृगणंतेन स्वामिनास्थापितंदिवि ॥ १९ ॥ मृत्योःकन्याश्चसं
गृह्य पत्नीत्वेनवराननाम् ॥ इन्द्रंप्रोवाचभगवान्कुमारःशङ्करात्मजः ॥ २०॥ दिवंयाहिसुरैःसार्द्धं राज्यंकुरुनिरन्तरम् ॥

करो क्योंकि यह बालक देवोंके कार्य्यार्थोंकी सिद्धिके लिये श्रीशिव औ पार्वतीजी से उत्पन्न हुआहै ॥ १७ ॥ व जब मातृकाओं के साथ सब कृत्तिकायें चुपहोकर
टिकी तब श्रीकुमारजी ने ऋषियों की स्त्रियों कृत्तिकाओं से कहा ॥ १८ ॥ कि नक्षत्रोंको भलीभांति आधारकर तुमलोगोंकरके बहुत कालतक द्युलोकमें टिकाजावे
वैसेही उन स्वामिकार्त्तिकेयजी ने मातृकासमूहको भी द्युलोकमें स्थापित किया ॥ १९ ॥ व ऐश्वर्य सम्पन्न शकरजी के पुत्र कुमारजी ने, अच्छे मुखवाली मृत्यु कन्या
को स्त्रीभाव से भलीभांति ग्रहणकर इन्द्रजी के प्रति अधिकता से कहा ॥ २० ॥ कि तुम देवोंके साथ स्वर्गको जाओ और निरन्तर राज्यको करो तब श्रीकार्त्तिकेयजी

भी इन्द्रजी से ऐसा कहेगये कि तारकासुर से बहुतही पीडित ॥ २१ ॥ व स्वर्गसे भगायेगये हम सब लोग दशों दिशाओं को प्राप्तभये हैं हे महाभाग! स्थानसे सब ओर पतितहुये हम लोगोंसे तुम क्या पूछतेहो ॥ २२ ॥ उस समय उन वज्रधारी (इन्द्र) से ऐसा कहेहुये कल्याणकारी शिवजीके पुत्र श्रीकार्त्तिकेयजीने विहँसकर इन्द्रजी से बहुतही कहा और तुम मतडरो इसभांति अभय को दिया ॥ २३ ॥ इस प्रकार महात्मा उन शंकरजीके पुत्रके कहतेही व गणों और पार्वतीजी के साथ शिवजी के कैलास को जातेही ॥ २४ ॥ बहुते शूरोंसे घिराहुवा बडीबाहुवाला दैत्यश्रेष्ठ तारकासुर बडेभारी सैन्यके साथ आया ॥ २५ ॥ हे ब्राह्मणो ! जैसे प्रलयसमय में

इन्द्रेणोक्तः कुमारोऽपि तारकेणप्रपीडिताः ॥ २१ ॥ स्वर्गाद्विद्राविताःसर्वे वयंयातादिशोदश ॥ किंपृच्छसिमहाभाग ह्यस्मान्पदपरिच्युतान् ॥ २२ ॥ एवमुक्तस्तदातेनवज्रिणाशङ्करात्मजः ॥ प्रहस्यचेन्द्रम्प्रोवाचमाभैषीस्त्वभयन्ददौ ॥ २३ ॥ एवंकथयतस्तस्य शाङ्करेश्चमहात्मनः ॥ कैलासन्तुगतेरुद्रे पार्वत्याप्रमथैस्सह ॥ २४ ॥ आजगाम महाबाहुस्तारकोदैत्यपुङ्गवः ॥ सैन्येनमहतासार्द्धं शूरैर्बहुभिरावृतः ॥ २५ ॥ यमदुन्दुभ्योनेदुर्यथाचप्रलयेद्विजाः ॥ रणकर्कशतूर्य्याणि डिण्डिमान्यद्भुतानिच ॥ २६ ॥ गोमुखाःखरशृङ्गाणिशङ्खाश्चैवबहिर्भूरिशः ॥ वाद्यभेदाश्चवाद्यन्ततस्मिन्दैत्येसमागते ॥ २७ ॥ गर्जमानास्तदावीरास्तारकेणसहैवच ॥ उवाचनारदोवाक्यंतारकन्देवकण्टकम् ॥ २८ ॥ नारदउवाच ॥ पुरादेवैःकृतोयत्नोवधार्थंनात्र संशयः ॥ तवैवचासुरश्रेष्ठ मयोक्तंनान्यथाभवेत् ॥ २९ ॥ कुमारोयञ्चशर्वस्यतवार्थेचोपपादितः॥ एवंज्ञात्वामहाबाहो कुरुयत्नंसमाहितः ॥ ३० ॥ नारदोक्तंनिशम्याथतारकःप्रह

यमराजकी नगरियोंकी नाई नगरियां बाजी व संग्राममें कठोर तुरुही अद्भुत डिंडिम ॥ २६ ॥ गोमुख खरशृङ्ग व शंख और बहुतसे अनेक बाजोंके भेदभी उस दैत्य के भलीभांति आतेही बजायेगये ॥ २७ ॥ और तारकासुर के साथही गर्जते हुये वीर विराजे तब नारदजी ने दैत्योंके स्वामी देवोंके शत्रु तारकासुर से वचन को कहा ॥ २८ ॥ श्रीनारदजी बोले कि, हे दैत्यश्रेष्ठ ! देवोंने तुम्हारेही मारने के अर्थ पहले या आगेही यत्नको कियाहै इसमें संशय नहीं है और मेरा वचन अन्यथा नहीहोवै है ॥ २९ ॥ हे महाबाहो ! यह शिवजीका पुत्र तुम्हारे मारने के अर्थ उपजायागया है ऐसा जानकर व सावधान होकर तुम यत्नको करो ॥ ३० ॥ और उसके बाद

नारदजी के वचनको सुनकर हँसताहुवा सा बुद्धिमान् तारकासुर वचन को बोला कि तुम इन्द्रके प्रतिजाओ ॥ ३१ ॥ व हे महर्षे तुम मेरे वचन को शीघ्रही यथातथ्य से कहो कि जो तुम कुमार याने लड़के को आगेकर मेरेसाथ लड़ने की इच्छा करते हो ॥ ३२ ॥ तो उसको आश्रयकर मूढताको करने के लिये चाहतेहो अन्यथा नहीं और मुचुकुन्दनामक एक मनुष्य को भी आश्रय कर ॥३३॥ उसके प्रभाववाले तुमअमरावतीपुरी में टिकेहो और हे इन्द्र ! जब तुम बालक कार्त्तिकेयके बलको आश्रय कर मेरे आगे टिकतेहो याने टिकोगे ॥ ३४ ॥ तबहेमन्द ! मैं लोकपालोंके साथही तुमको मारूंगा हे देवर्षे ! (नारदजी) तुम देवेन्द्रसे इस वचनको कहो अन्यथा मत

सन्निव ॥ उवाचवाक्यंमेधात्रीगच्छत्वञ्चपुरन्दरम् ॥ ३१ ॥ ममवाक्यंमहर्षेत्वंवदशीघ्रंयथातथ्यम् ॥ कुमारञ्चपुरस्कृत्य मयायोद्धुन्त्वमिच्छसि ॥ ३२ ॥ मूढभावंतमाश्रित्यकर्तुमिच्छसिनान्यथा ॥ मनुष्यमेकमाश्रित्यमुचुकुन्दाख्यमेवच ॥ ३३ । तत्प्रभावोमरावत्यांस्थितोसित्वंपुरन्दर ॥ कौमारबलमाश्रित्यतिष्ठसेयन्ममाग्रतः ॥ ३४ ॥ त्वांहनिष्याम्यहंमन्दलोकपालैःसहैवहि ॥ एतत्कथयदेवेन्द्रन्देवर्षेनान्यथावद ॥ ३५ ॥ तथेतिमत्वाभगवान्सनारदोग्ययौसुराञ्छक्रपुरोगमांश्च ॥ अचष्टसर्वंह्यसुरेन्द्रभाषितम् सहोपवासंमतिमांस्तथैवहि ॥ ३६ ॥ नारदउवाच ॥ भवद्भिःक्रियतान्देवावचनंममनान्यथा ॥ तारकेणयदुक्तञ्चसानुगेनावधार्यताम् ॥ ३७ ॥ तारकउवाच ॥ त्वांहनिष्यामिरेमूढनान्यथाममभाषितम् ॥ मुचुकुन्दंसमासाद्यलोकपालैश्चपूजितः ॥ ३८ ॥ नत्वयाभीरुणायोत्स्येदेवोभूत्वानराश्रितः ॥ तस्यवाक्यंनिशम्येत्थंसर्वे

बोलो ॥ ३५ ॥ वैसाहो ऐसा मानकर बुद्धिमान् भगवान् वह नारदजी इन्द्रादिदेवों के प्रतिगये और वैसेही समीप में वास समेत दैत्येन्द्र के वचन को कहने लगे ॥ ३६ ॥ श्रीनारदजी बोले कि, हे देवो ! जोकि पीछे चलनेवाले सेवकों सहित तारकासुर से कहागया है वह मेरा वचन आपलोगो करके सुना व कियाजावे अन्यथा नहीं ॥ ३७ ॥ तारकासुर बोले कि, रे मूढ इन्द्र ! मैं तुझको मारूंगा मेरा वचन अन्यथा नहीं है क्योंकि तुम मुचुकुन्द को भलीभांति प्राप्त होकर याने उसका आश्रय कर लोकपालों से पूजित हो ॥ ३८ ॥ परन्तु तुम देव होकर मनुष्य के सेवक हो इसलिये डरते हुये मैं तुमसे नहीं युद्ध करूंगा ऐसे उसके वचन को सुनकर

इन्द्र समेत सब देवों ने ॥ ३९ ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी को आगेकर कहा कि हे देवर्षे ! तुमहीं इन कुमार के बल और अबल को जानते हो ॥ ४० ॥ व तुमने अजान के समान होकर उसके वचन को मेरे आगे कैसे कहा तब श्रीनारदजी बिहँसकर देवों के समीप मे वचन को बोले ॥ ४१ ॥ कि मैंने भी तारकासुरके प्रतिउपहासवचन को कहा था कि हे असुरो ! तुम सबजने जानो कि देवलोग बालक से विजय (जीति) वाले ॥ ४२ ॥ होवेंगे यही मेरा वचन है इसमें विचार नहीं करना चाहिये नारदजी के वचन को सुनकर आनन्द सहित सबदेव ॥ ४३ ॥ तारकासुरसे युद्ध के लिये इच्छावाले होकर एकक्षण या एकसाथ से ही उठे और देवेन्द्रजी कुमारको

देवास्सवासवाः ॥ ३९ ॥ ऊचुर्गुहंपुरस्कृत्यनारदंऋषिसत्तमम् ॥ जानासित्वंहिदेवर्षे कुमारस्यबलाबलम् ॥ ४० ॥ अज्ञोभूत्वाकथंवाक्यमुक्तंतस्यममाग्रतः ॥ प्रहस्यनारदोवाक्यमुवाचसुरसन्निधौ ॥ ४१ ॥ अहमप्युपहासंच वाक्यंतारकमुक्तवान् ॥ जानीध्वमसुरास्सर्वे कुमाराज्जयिनःसुराः॥४२॥ भविष्यन्त्यत्रमेवाक्यं नात्रकार्याविचारणा ॥ नारदस्यवचःश्रुत्वा सर्वेदेवामुदान्विताः ॥ ४३ ॥ एकपद्येनउत्तस्थुर्योद्धुकामाश्चतारकम् ॥ कुमारंगजमारोप्य देवेन्द्रोह्यग्रगोभवत् ॥ ४४ ॥ सुरसैन्येनमहता लोकपालैस्समावृतः ॥ तदादुन्दुभयोनेदुर्भेरीतूर्य्याण्यनेकशः ॥ ४५ ॥ वीणावेणुमृदङ्गानि तथागन्धर्वनिस्वनः ॥ गजंदत्त्वामहेन्द्राय कुमारोयानमारुहत् ॥ ४६ ॥ अनेकरत्नसंवीतं नानामणिसमन्वितम् ॥ विचित्रचित्रंसुमहत्तथाश्चर्यसमन्वितम् ॥ ४७ ॥ विमानमारुह्यतदामहायशाः सशाङ्करिस्सर्वगुणैरुपेतः ॥ श्रि

हाथी मे चढ़ाकर आगे चलनेवाले हुये ॥ ४४ ॥ जो कि बड़ीभारी देवों की सेना और लोकपालों से भलीभांति सबओर से घिरे हैं तब नगरियां नगारे या डङ्का व बहुतसी तुरुहियां बाजीं ॥ ४५ ॥ व वीणा बांसुरी और मृदङ्गभी बाजे वैसेही गन्धर्वोंके गानेका बड़ा शब्द हुआ और श्रीकार्त्तिकेयजी महेन्द्रको हाथी देकर विमान में चढ़े ॥ ४६ ॥ जोकि अनेक रत्नों से संयुत या घिराहुआ व बहुतभांति की मणियों से समेत विचित्र चित्रोंवाला बहुतही बड़ाभारी, या, अच्छा पूजनीय तथा आश्चर्योंसे सहित है ॥ ४७ ॥ उस विमानपर सवार होकर जब बड़े यशवाले, सबगुणों से संयुत, श्रेष्ठ शोभासे समेत व बड़े प्रकाशवान् देवों से चामरों करके भलीभांति

वीजित होते हुये और पूजनीय बडेभारी वह शिवजी के पुत्र निश्चयसे सुशोभित हुये ॥ ४८ ॥ तब उन इन्द्रजी ने महामणियों से प्रभायमान् व रत्नों से संयुत व बहुतही विराजित व चन्द्रमा की किरणों से अच्छी शोभावाले वरुण सम्बन्धी छत्रको कुमार (कार्त्तिकेय) जी के शिरमें धारण किया ॥ ४९ ॥ उस समय अपने अपने सैन्यों से सबओर घिरेहुये युद्ध के चाही व बड़े बलवान् सब इन्द्रादि देव भलीभांति मिलगये ॥ ५० ॥ व वहां अपने गणों के साथ यमराजजी भी व मरुतों के साथ वायु व जलके जन्तुओं से सयुत वरुण व गुह्यकों से घिरेहुये कुबेर ॥ ५१ ॥ व्याधि (रोग) यों के साथ नैर्ऋत और गणों के साथ ईशानजी भी आये इसभांति

यासमेतःपर्यावभौमहान् संवीज्यमानोह्यमरैर्महाप्रभैः ॥ ४८ ॥ प्राचेतसंछत्रमहामणिप्रभं रत्नैरुपेतंबहुशोविराजितम् ॥ धृतंतदातेनकुमारमूर्धनि चेन्द्रेणचान्द्रैःकिरणैःसुशोभनम् ॥ ४९ ॥ तदासंमिलितास्सर्वे देवाइन्द्रपुरोगमाः ॥ स्वैःस्वैःपरिक्रान्ता योद्धुकामामहाबलाः ॥ ५० ॥ यमोपिस्वगणैस्सार्द्धं मरुद्भिश्चसदागतिः ॥ यादोभिर्वरुणस्तत्र कुबेरो गुह्यकैर्वृतः ॥ ५१ ॥ ईशोपिप्रमथैस्सार्द्धं नैर्ऋतोव्याधिभिस्सह ॥ एवंह्यष्टौलोकपायोद्धुकामास्सर्वेमिलित्वातारकंहन्तुमेव ॥ ५२ ॥ पुरस्कृत्वाशाङ्करिंविश्ववन्द्यंसेनापतिञ्चात्मविदांवरिष्ठम् ॥ भूत्वाहियोद्धुकामास्तेत्ववतेरुश्चभूतले ॥ ५३ ॥ अन्तर्वेद्यांस्थितास्सर्वे गाङ्गयामुनमध्यगाः ॥ पातालाच्चसमायातास्तारकस्योपजीविनः ॥ ५४ ॥ चेरुरात्मबलोपेता हन्तुकामास्सुरान्रणे ॥ तारकोपिसमायातो विमानेनविराजितः ॥ ५५ ॥ छत्रेणचमहातेजा ध्रियमाणेनमूर्द्धनि ॥ चाम

युद्ध के चाही सब आठो लोकपाल तारकासुरको मारने के लियेही मिलकर ॥ ५२ ॥ व सब जगत् से वन्दनीय ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ सेनाके पति शिवपुत्रको आगेकर और युद्धके लिये इच्छावालेही होकर पृथिवीतलमें निश्चय से उतरे ॥ ५३ ॥ व गंगा और यमुनाके बीच में जानेवाले वे सब अन्तर्वेद में टिके व तारकासुरसे जीविकावाले सेवक भी पाताल से भलीभांति आये ॥ ५४ ॥ और संग्राममें देवोंको मारने के चाही होकर अपने सैन्यों से समेत वे विचरने लगे व विमान से विराजित हुआ तारकासुरभी भलीभांति आया ॥ ५५ ॥ और मूंडे में धारेजाते हुये छत्र से बड़ा तेजस्वी व चामरों से वीजित होता हुआ भी दैत्यराज आपही शोभित हुआ ॥ ५६ ॥

इसप्रकार देव और दैत्य अन्तर्वेदी में गये व बडेभारी सैन्य से अलग अलग व्यूहों को बनाकर वहांपर टिके ॥ ५७ ॥ हाथी व ऊंट व भेडा व अनेक भांति के घोडा वैसेही महामणियो से संयुत विचित्र रथभी हैं ॥५८॥ वहा बहुत से पैदल सांग शूल परशु तलवार तोमर तीर फमरी मुद्गर और पट्टिशो से संयुत विराजते हैं ॥ ५९ ॥ व वे देवो और दैत्यों की सेनायें आपुस में शोभित हुई तब बन्धुवों से प्रशंसित होते हुये देव दैत्यों को मारने के लिये इच्छावाले हुये ॥ ६० ॥ इति श्री स्कन्दपुराणेमाहेश्वरखण्डान्तर्गतकेदारखण्डेशैवशास्त्रेभाषाबन्धेसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचितेऽन्तर्वेद्यांदेवदैत्यसैन्यगमनंनामाष्टविंशतितमोऽध्यायः ॥ २८ ॥ ❀ ॥

रैर्वीज्यमानोपि शुशुभेदैत्यराट्स्वयम् ॥ ५६ ॥ एवन्देवाश्चदैत्याश्च अन्तर्वेद्यांगताःस्थिताः ॥ सैन्येनमहतातत्र व्यूहान्कृत्वापृथक्पृथक् ॥ ५७ ॥ गजाउष्ट्राएडकाश्च हयाश्चविविधास्तथा ॥ स्यन्दनानिविचित्राणि महामणियुतानिवै ॥ ५८ ॥ पदाताबहवस्तत्र शक्तिशूलपरश्वधैः ॥ खड्गतोमरनाराचैः पाशमुद्गरपट्टिशैः ॥ ५९ ॥ तेसैन्येसुरदैत्यानां शुशुभातेपरस्परम् ॥ हन्तुकामास्तदादेवाःस्तुत्यमानाश्चबन्धुभिः ॥ ६० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेमाहेश्वरखण्डान्तर्गतकेदारखण्डेशैवशास्त्रेन्तर्वेद्यांदेवदैत्यसैन्यगमनंनामाष्टविंशतितमोध्यायः ॥ २८ ॥ * ॥ * ॥

लोमशउवाच ॥ उभेसेनेतदातेषां सुराणांचामरद्विषाम् ॥ अनेकाश्चर्यसंवीते चतुरङ्गबलान्विते ॥ १ ॥ विरेजतुर्यदान्योन्यं गर्जतश्चाम्बुदोपमाः ॥ एतस्मिन्नन्तरेतत्र बलमानाःपरस्परम् ॥ २ ॥ देवासुरास्तदासर्वे युयुधुश्चमहाबलाः ॥ युद्धंसुतुमुलंह्यासीद्देवदैत्यसमाकुलम् ॥ ३ ॥ रुण्डमुण्डाङ्कितंसर्वं बाणौघैस्समपद्यत ॥ भूमौनिपतितास्तत्र शतशो

दो० । उन्तिसवें अध्याय मे देवासुर रणगान । जीति परस्पर की तथा तारक असुर महान ॥ श्रीलोमशजी बोले कि, उस समय अनेक आश्चर्यों से संयुत व चतुरङ्ग (हाथी घोडे रथ पैदल) सैन्य समेत उन देवों और दैत्यों की दोनों सेनायें ॥ १ ॥ परस्पर सुशोभित हुई व जब इस अन्तर में वहा आपुस मे बुलाते और गर्जते हुये व मेघों के समान ॥ २ ॥ बड़े बलवान् सब देव और दैत्य लडने लगे तब देवों व दैत्यो से व्याप्त या संयुत अच्छा रोमहर्षण युद्ध हुआ ॥ ३ ॥ व सब

भूतल बाणसमूहों करके रुण्ड और मुण्डों से अङ्कित (चिह्नित) होगया तदनन्तर वहां सैकडों और हज़ारों वीर भूमि में नीचे गिरे॥ ४॥ व बडे दारुण खड्गपातों
(तलवारों के लगने) से किसी की बाहें कटगई हैं व कोई गदाओं तथा मुद्गरोंसे मथेहुये सबअङ्गोंवाले हैं ॥ ५ ॥ व पाशों और भालों से मारे हुये कोई बहुतही
विदरे हृदयवाले हुये हैं व कोई आगुस भालाभेद और दुधारों से पीठ में विदारेगये हैं ॥ ६ ॥ ऐसेही कटेहुये मुण्ड भी भूतल मे गिर पडे और वहांही नाचते हुये
बहुत से कबन्ध याने विना मुण्ड के रुण्ड भी शोभित हुये ॥ ७ ॥ तब वहां रुधिरमयी सैकडों नदियां प्रवर्तित हुईं याने बहनेलगीं व भूत प्रेत पिशाच और हज़ारों

थसहस्रशः ॥ ४ ॥ केषांचिद्बाहवश्छिन्नाः खड्गपातैस्सुदारुणैः ॥ केचिन्मथितसर्वाङ्गा गदाभिर्मुद्गरैस्तथा ॥ ५ ॥ के
चिन्निर्भिन्नहृदयाः पाशैर्भल्लैश्चघातिताः ॥ केचिद्विदारिताःपृष्ठे अंकुशैःकुन्तऋष्टिभिः ॥ ६ ॥ छिन्नान्यपिशिरांस्येवंप
तितानिचभूतले ॥ बहूनिचकबन्धानि नृत्यमानानितत्रवै ॥ ७ ॥ नद्यःप्रवर्तितास्तत्र शतशोसृग्मयास्तदा ॥ भूतप्रेत
पिशाचाश्चशाकिन्यश्चसहस्रशः ॥८॥ गोमायवःशिवास्तत्रभक्ष्यमःणाबलंबहु॥ तथागृध्रावटाःश्येना वायसामांसभ
क्षकाः ॥ ९ ॥ अन्येचबहवःक्रूराः सेनयोरुभयोरपि ॥ बभक्षुःपतितानाञ्च मांसंबहुतरंभुवि ॥ १० ॥ केचिन्मत्ताह्यशु
द्धेनतृप्तास्तेमांसभक्षकाः ॥ जल्पन्तेबलमानाश्च धावमानास्तथापरे ॥ ११ ॥ गजवक्त्राणिकेचिच्च शिरस्स्वाधायवे
गिनः ॥ तृप्तालम्बोदराजाता वेतालाबहवस्तदा ॥ १२ ॥ हयग्रीवाश्चबहवः प्रमथास्तत्रचाभवन् ॥ एवमादीन्यनेका

शाकिनियां ॥ ८ ॥ व बहुते मांसको खातेहुये स्यार स्यारियां गीध वट (चीह्लोंकेभेद) बाज और काग वही मांसकेखानेवाले हुये ॥ ९ ॥ व अन्यभी बहुत से क्रूरोंने
(हिंसक) भूमि में गिरेहुये दोनों भी सेनाओं के वीरोंका बहुतही मांस खाया ॥ १० ॥ वे कोई मासभक्षी पक्षी आदि प्राणी अशुद्ध रुधिरादिसे तृप्त होकर मतवाले
हुये वैसेही धावते व बलबलाते या विचरते हुये अन्य कोई बोलते हैं ॥ ११ ॥ व कोई हाथियों के मुखों को शिरों में सबओर से धरकर वेगवाले हैं और उस समय
मासादि से तृप्तहुये बहुत से वेताल लम्बे उदर (पेट) वाले होगये ॥ १२ ॥ व बहुते गण वहा हयग्रीव (घोड़े के समान कण्ठवाले) हुये और वहां इत्यादि

अनेकों बडेभारी आश्चर्य ॥ १३ ॥ उस सुदारुण युद्धके होतेही संग्रामभूमि में हुये फिर देव और दैत्यों के विशेष से मर्दनेवाला द्वन्द्वयुद्ध हुआ याने दोदो जोड़ाओं की लड़ाई हुई ॥ १४ ॥ वायुदेव के साथ दानव व जम्भ के साथ आपही यमराजजी व बलके साथ वरुणजी व पद्यही के साथ कुबेरजी ॥ १५ ॥ व अग्निदेव के साथ संह्लाद व नैर्ऋतजी के साथ महाहनु व ईशानजी के साथ मेघाभ और इन्द्रजीके साथ तारकासुर ॥ १६ ॥ व यक्ष पिशाच उरग पतग तथा पितर व्याधि (रोग) और सब ज्वरभी विशेष से लड़ने लगे ॥ १७ ॥ वैसेही सन्निपात व अन्य भूत प्रमथ और गुह्यकों ने अनेक शस्त्रों के समूहों व बहुते अस्त्रों से उससमय ॥ १८ ॥

नि महाश्चर्याणितत्रवै ॥ १३ ॥ बभूवूरणभूमौच तास्मिन्युद्धेसुदारुणे ॥ द्वन्द्वयुद्धंसमभवत् सुरासुरविमर्द्दनम् ॥ १४ ॥ दानवोवायुनासार्द्धं जम्भेनैवयमःस्वयम् ॥ बलेनसहपाशीचपद्येनैवचगुह्यराट् ॥ १५ ॥ अग्निनासहसंह्लादो नैर्ऋतेनम हाहनुः ॥ ईशेनसहमेघाभ इन्द्रेणसहतारकः ॥ १६ ॥ यक्षाःपिशाचाउरगाःपतङ्गाःपितरस्तथा ॥ युयुधुर्व्याधयस्सर्वे ज्व राश्चैवविशेषतः ॥ १७ ॥ सन्निपातास्तथाचान्ये भूतप्रमथगुह्यकाः ॥ अनेकशस्त्रसङ्घातैरस्त्रैश्चबहुभिस्तदा ॥ १८ ॥ द्व न्द्वयुद्धेनतेसर्वे युयुधुःकृतनिश्चयाः ॥ अन्योन्यंजयमापन्नास्त्वन्योन्यंदुर्जयास्तथा ॥ १९ ॥ यदाचतेषांसुरदानवा नां बभूवयुद्धंतुमुलंजयेषिणाम् ॥ दावाग्निदग्धाहिमहाद्रुमायथा पतन्तिसद्यःसमरेमरास्तथा ॥ २० ॥ यदासुरास्तेत्वसुरैः पराजिताःबभूविरेस्मिंस्तुमुलेविगाढे ॥ महीमहारौद्रतराविनष्टैःसुरैस्तदानींपतितैरभूत ॥ २१ ॥ एवंयुद्धेसुतुमुले देवदान वसंकुले ॥ तारकेणैवदेवेन्द्रःशक्त्यापरमयाहतः ॥ २२ ॥ सद्यःपपातनागाच्च धरण्यांमूर्छितोमहान् ॥ तथैवलोकपास्स

युद्ध किया और निश्चय किये हुये वे सबलोग आपुस में जीति को प्राप्तहुये वैसेही परस्पर दुःख से जीतने योग्य या जीतिवाले हैं ॥ १९ ॥ जब जीति के चाही उन देवों और दानवों का भयंकर रोमहर्षण युद्ध हुआ तब जैसे दावानल से जलेहुयेवृक्ष होते हैं वैसेही देवलोग संग्राम में शीघ्रही गिरते हैं ॥ २० ॥ और जब वे देव इस रोमहर्षण दृढयुद्ध में दैत्यों से हारगये तबहीं पृथिवी में गिरेपडे व विशेषता से नष्ट हुये देवों से बहुतही बड़ी रौद्र हुई ॥ २१ ॥ श्रीसूतजी बोले कि, देवो और दानवो से भरेहुये ऐसे अच्छे रोमहर्षण युद्ध मे तारकासुरने ही सांग से देवेन्द्र कोमारा ॥ २२ ॥ और मूर्च्छित हुये महात्मा इन्द्रजी हाथी से शीघ्रही गिरपडे वैसेही

न्ये उस कार

बड़े बलवान् असुरों से सब लोकपाल ॥ २२ ॥ हरायेगये व कोई संग्राम के परमपीड़ित उस समय में [illegible]
उस समय ऐसे विनष्ट होती या विशेषता से नीचे गिरती हुई सेनाको बहुत देखकरके तेजवाले राजा मुचुकुन्द ने तारकासुर के प्रति युद्ध किया ॥ ५५ ॥ [illegible]
सुरभी बहुत से दैत्यों से घिरे व गिरेहुये इन्द्रको छोड़कर मुचुकुन्दजी के साथ बहुतही लड़ने लगा ॥ ५६ ॥ इसप्रकार तारकासुर के साथही अत्यन्त युद्ध [illegible]
बड़ीबाहों वाले मुचुकुन्दजी देवों के अर्थ शोभित हुये ॥ २७ ॥ व उन दोनोंने अनेकशस्त्र समूहों से आपुस में युद्ध किया क्योंकि मुचुकुन्दजी तीनलोकोंमें अतोल विक्रम

वैं त्वसुरैश्चमहाबलैः ॥२३॥ केचित्पराजितास्तत्र रणेरणविशारदाः ॥ मृताः केचिच्च संग्रामात्पलायनपरायणाः ॥२४॥
एवंविध्वस्तमानंतत्सैन्यंवीक्ष्यतदान्टपः ॥ मुचुकुन्दोमहातेजास्तारकम्प्रत्ययुध्यत ॥ २५ ॥ मुचुकुन्दं [illegible] तारकं
युयुधेभृशम् ॥ विहायचेन्द्रम्पतितमसुरैर्बहुभिर्वृतम् ॥ २६ ॥ एवंयुद्धमतीवासीत्तारकेणसहैवहि ॥ मुचुकुन्दोमहाबाहु
र्दैवतार्थेबभौतदा ॥ २७ ॥ अनेकैःशस्त्रसङ्घातैर्युयुधातेपरस्परम् ॥ मुचुकुन्दोहिबलवांस्त्रैलोक्यामितविक्रमः ॥ २८ ॥
तारकोहितदातेनमुचुकुन्देनधीमता ॥ खड्गेनचाहतस्तत्रसर्वप्राणंसरक्षति ॥ २९ ॥ प्रहस्यतंप्राहरच्च[illegible]
मब्रवीत ॥ किंरेमूढत्वयाचाद्यकृतमस्तिबलादतः ॥ ३० ॥ नत्वयायुद्धमिच्छामिमानुषेणैववर्जय ॥ तारकस्यवचः श्रु
त्वामुचुकुन्दोभ्यभाषत ॥ ३१ ॥ मयाहतोसिदैत्येन्द्रनान्यद्भवितुमर्हति ॥ दृष्ट्वामेखड्गसम्पातंनत्वन्तिष्ठसिचाग्रतः ॥
३२ ॥ त्वांहन्मिपश्यमेशौर्यंदैत्यराजस्थिरोभव ॥ एवमुक्त्वाथवीरोहिमुचुकुन्दोमहाबलः ॥३३॥ यावज्जघानखड्गेन

वाले और बलवान्नहीं हैं ॥ २८ ॥ उन बुद्धिमान् मुचुकुन्दजी करके तलवार से माराहुआ वह तारकासुर भी उस समय वहां सब प्राणोंकी रक्षा करता है ॥ २९ ॥ और
बहुत हँसते हुये उसने उनको मारा व वचन को कहा कि हे मूढ़ ! आज बल सेतरा किया हुआ क्या है इसलिये ॥ ३० ॥ मैं तुझ मनुष्य केही साथ युद्ध को नहीं
चाहताहूं उससे तू युद्ध को बन्दकर ऐसे तारकासुर के वचन को सुनकर मुचुकुन्दजीने सामने से कहा ॥ ३१ ॥ कि, हे दैत्येन्द्र ! तू मुझसे मारा गया है अन्य कुछ
होने को योग्य नहीं है और तुम मेरे खड्ग संपात (तलवार का भलीभांति गिरना) को देखकर आगे नहीं टिकते हो ॥ ३२ ॥ हे दैत्यराज ! मैं तुमको मारता हूं तुम

मेरी शूरताको देखो व स्थिर होवो ऐसा कहकर अनन्तर बड़े बलवान् वीर मुचुकुन्दजीने ॥ ३३ ॥ जबतक तलवार से मारा तबतक उस करके बर्छी से मारेहुये वह मांधाता राजाके पुत्र वहां संग्राम मण्डल में गिरे ॥ ३४ ॥ व वीर वैरियों के मारनेवाले वह गिरेहुये भी उसीक्षण मे उठे और उस समय दैत्य श्रेष्ठ तारकासुर को मारने के लिये क्रोध से गर्जते हुयेही बड़े बलवान् वह ॥ ३५ ॥ लोकोंके एक जीतनेवाले मांधाता महाराज के पुत्र मुचुकुन्दजी ने ब्रह्मास्त्रको उठाकर वैसेही धन्वाको लिया जोकि तारकासुर से लड़ने के चाही बहुतही कोपसमेत व बड़े मनवारे ॥ ३६ ॥ और जगत्के एक जीतनेहारे हैं उनको महात्मा नारदजीने ही जब निश्चय

तावच्छक्त्यासआहतः ॥ मान्धातुस्तनयस्तत्रपपातरणमण्डले ॥ ३४ ॥ पतितस्तुक्षणादेवउत्थितःपरवीरहा ॥ सगर्जमानोहिरुषामहाबलो हन्तुंतदादैत्यवरञ्चतारकम् ॥ ३५ ॥ ब्रह्मास्त्रमुद्यम्यधनुस्तथाग्रहीन्मान्धातृपुत्रोभुवनैकजेता ॥ यस्तारकंयोद्धुकामस्तरस्वी रुषान्वितोतीवमहामनस्वी ॥ ३६ ॥ दृष्टोयदावैभुवनैकजेता सनारदेनैवमहात्मनातदा ॥ सुविस्मयोत्फुल्लविलोचनोमहान् स नारदोवाक्यमिदंबभाषे ॥ ३७ ॥ अहोमहौजोमुचुकुन्दभूप नतारकोहन्यतेमानुषेण ॥ निशम्यवचनंतस्यदेवर्षेर्नारदस्यच ॥ ३८ ॥ मुचुकुन्दउवाचेदं भविताकोस्यमारकः ॥ तदोवाचमहातेजा नारदोदेवदर्शनः ॥ ३९ ॥ एषहन्तातारकस्य कुमारोहिशिवात्मजः ॥ तस्माद्भवद्भिःस्थातव्यमेकबालेनयुध्यताम् ॥ ४० ॥ तिष्ठत्वन्तुयतोभूत्वा मुचुकन्दमहामते ॥ निशम्यवाक्यंसुमनोहरंशुभंह्युदीरितन्तेनमहाप्रभेण ॥ ४१ ॥

से देखा तब अच्छे विस्मयसे ऊपर को फूलीहुई आंखोंवाले बड़े पूजनीय उन नारदजी ने इस वचनको कहा ॥ ३७ ॥ कि हे महातेजस्विन् राजन् मुचुकुन्दजी ! तारकासुर मनुष्यसे नहीं मारा जाता है और उन देवर्षि नारदजी के वचनको सुनकर ॥ ३८ ॥ श्रीमुचुकुन्दजी इस वचनको बोले कि इस असुरके मारनेवाला कौनहोवेगा तब देवोंके दर्शन या ज्ञानवाले नारदजी ने कहा ॥ ३९ ॥ कि शिवजी के पुत्र यह कुमार (श्रीकार्त्तिकेय) जीही तारकासुरके मारनेवाले है उस लिये आपलोगों को टिकना चाहिये व एक बालक करके दैत्यके साथ युद्ध कियाजावे ॥ ४० ॥ हे महामते मुचुकुन्दजी ! तुम यत्नवाले होकर टिको इसभाति बड़े प्रकाशवान् उन

नारदजी के कहे हुये बहुतही अच्छे मनोहर शुभ वचनको सुनकर ॥ ४१ ॥ सब देव और यक्षभी मनुष्य श्रेष्ठ उन मुचुकुन्दजीके साथही शांतिमें परायण हुये उस कारण
नगरिया बाजी और कियेहुये बड़े शब्दवाले शङ्खभी ॥ ४२ ॥ बहुतभांति के बाजोंके साथ देवों और दैत्योंके समूहों करके बजायेगये वहां देवताओंके प्रति भलीभांति
उद्यत हुये असुर (दैत्यादि) गर्जे ॥ ४३ ॥ व शिवजी के क्रोधसे उपजे हुये बड़े वीर कोपसमेत वीरभद्रजी बहुतसे गणों के साथ बड़ेभारी बलवान् तारकासुर को
प्राप्तहोकर याने उसके सामने जाकर ॥ ४४ ॥ मुचुकुन्दजी और देवोंको भी पीछेकर टिके (खड़ेहुये) तब श्रीकार्त्तिकेयजी को आगेकर उन सब प्रमथों ॥ ४५ ॥ और

एवंसुराःशान्तिपराबभूवुस्तेनैवसाकंनृवरेणयक्षाः ॥ तस्माद्दुन्दुभयोनेदुः शङ्खाश्चकृतनिस्वनाः ॥ ४२ ॥ त्रोटिताविवि
धैर्वाद्यैः सुरासुरसमन्वितैः ॥ जगर्जुरसुरास्तत्र देवान्प्रतिसमुद्यताः ॥ ४३ ॥ शिवकोपोद्भवोवीरो वीरभद्रोरुषान्वितः ॥
गणैर्बहुभिरासाद्य तारकञ्चमहाबलम् ॥ ४४ ॥ मुचुकुन्दपृष्ठतस्तुकृत्वाचैवसुरानस्थितः ॥ तदातेप्रमथास्सर्वे पुरस्कृ
त्यकुमारकम् ॥ ४५ ॥ युयुधुःसंयुगेतत्र वीरभद्रादयोगणाः ॥ त्रिशूलैर्ऋष्टिभिःपाशैः खड्गैःपरिघपट्टिशैः ॥ ४६ ॥ नि
जघ्नुःसमरेन्योन्यं सुरासुरविमर्दने ॥ तारकोवीरभद्रेण त्रिशूलेनहतोभृशम् ॥ ४७ ॥ पपातसहसातत्र क्षणंमूर्च्छाप
रिप्लुतः ॥ उत्थायचमुहूर्त्ताच्च तारकोदैत्यसत्तमः ॥ ४८ ॥ लब्धसंज्ञोबलाविष्टो वीरभद्रंजघानच ॥ शक्त्यातथामहाते
जाःशिवस्यानुचरोबली॥४९॥त्रिशूलेनचघोरेणवीरभद्रोपितारकम् ॥ एवंसंयुध्यमानौतौ जघ्नतुश्चेतरेतरम् ॥ ५० ॥

वीरभद्रादि गणों ने उस संग्राम में युद्धकिया व त्रिशूल दुधारा पाश तलवार परिघ (दण्डा) और पट्टिशों (पटाओं) से ॥ ४६ ॥ देवों व दैत्यों के मर्दनेवाले समर
में परस्पर बहुतही मारा और श्रीवीरभद्रजी करके त्रिशूलसे अधिक माराहुआ तारकासुर ॥ ४७ ॥ वहां एकाएक गिरा व क्षणभर मूर्च्छासे सब ओर डूबगया फिर दो
दण्ड या क्षणमात्र में उठकर दैत्यसत्तम तारकासुर ॥ ४८ ॥ जोकि पाईहुई संज्ञावाला और बलसे भराहै उसने सांगसे वीरभद्रको मारा वैसेही शिवजी के पीछे चलने
वाले बलवान् बड़े तेजस्वी ॥ ४९ ॥ वीरभद्रजी ने भी घोर त्रिशूलसे तारकासुरकोमारा ऐसेही भलीभांति युद्धकरते हुये उन्हों ने आपुस में मार किया ॥ ५० ॥ जब

उन दोनों महात्माओं का बड़ारोमहर्षण घोर युद्धहुआ तब देव और दैत्यभी वहा देखनेवाले ही हुये ॥ ५१ ॥ व उनके नगारा मृदंग ढोल डङ्का और गोमुखों तथा डमरुवों के शब्दसे त्रिलोक व्याप्त (पूरित) होगया ॥ ५२ ॥ और उस बाजों के शब्दसे लड़ते व प्रहारों याने शस्त्रोंके घातोंसे जर्जर कियेहुये व अत्यन्त कोपवाले वे दोनो बडे भारी बलवान् सोहते भये ॥ ५३ ॥ व वे बुध और मंगलकी नाई परस्पर कुपित हैं और नारदजी ने उस दैत्यके मारनेको वीरभद्रजी से भलीभाति कहा ॥ ५४ ॥ परन्तु जोकि वचन तारकासुर के मारने के प्रति नारदजी करके कहा गया वह बुद्धिमान् वीरभद्रजी को नही रुचता है ॥ ५५ ॥ क्योंकि जैसे दैत्य है

द्वन्द्वयुद्धंसुतुमुलं तयोर्जातंमहात्मनोः ॥ सुरासुराश्चतत्रैव प्रेक्षकाह्यभवंस्तदा ॥ ५१ ॥ तयोर्भेरीमृदङ्गैश्च पटहानकगोमुखैः ॥ तथाडमरुनादेन व्याप्तमासीज्जगत्रयम् ॥५२॥ तेनवाद्यप्रघोषेण युध्यमानौमहाबलौ ॥ शुशुभातेतिसंरब्धौ प्रहारैर्जर्जरीकृतौ ॥ ५३ ॥ अन्योन्यमपिसंरब्धौतौबुधाङ्गारकाविव ॥ नारदेनसमाख्यातो वीरभद्रस्यतद्वधः ॥ ५४ ॥ नरोचतेचतद्वाक्यं तारकस्यवधम्प्रति ॥ नारदेनयदुक्तंहिवीरभद्रस्यधीमतः ॥ ५५ ॥ यथासुरस्तथासोपि वीरभद्रोमहाबलः ॥ एवंप्रयुध्यमानौतौ जघ्नतुश्चेतरेतरम् ॥ ५६ ॥ अन्योन्यंस्पर्द्धमानौच गर्जतस्सिंहपाविव ॥ एवंयदा तौभुवियुध्यमानौ महात्मनाज्ञानवतांवरेण ॥ ५७ ॥ सवीरभद्रोहियथानिवारितो वाक्यैरनेकैरथनारदेन ॥ तथानिशम्यतद्वाक्यं नारदस्यमुखोद्गतम् ॥ ५८ ॥ वीरभद्रोरुषाविष्टोनारदंप्रत्युवाचह ॥ तारकञ्चवधिष्यामि पश्यमेद्यपराक्रमम् ॥ ५९ ॥ आनयन्तिचयेवीराः स्वामिनंरणसंसदि ॥ तेपापिनोह्यधर्मिष्ठा विमृशन्तिरणङ्गताः ॥ ६० ॥ भीरुणातेतु

वैसेही वह वीरभद्रजी भी बडे बलवान् हैं व इस प्रकार अधिकता से युद्धकरते हुये उन दोनों ने आपुस में मार किया ॥ ५६ ॥ और परस्पर स्पर्द्धा (डाह) करते हुये वे सिंहपतियों (बड़े सिंहो) की नाई गर्जते हैं इसभांति जब वे भूमिमें युद्ध करते हैं तब ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ महात्मा ॥ ५७ ॥ नारदजी ने उसके बाद जैसेही उन वीरभद्रको बहुते वचनों से निश्चयकर निवारण किया वैसेही नारदजीके मुख से निकले हुये उस वचनको सुनकर ॥ ५८ ॥ क्रोधसे भरेहुये वीरभद्रजी ने नारदजी के प्रति प्रकटही कहा कि तुम आज मेरे पराक्रमको देखो मैं तारकासुरको मारूंगा ॥ ५९ ॥ और जोकि वीर स्वामीको संग्राम सभामें लाते हैं वेही पापी और अधिक

अधर्मी हैं व समर में गयेहुये होकर फिर विचारते हैं ॥६०॥ इसलिये विशेषतासे जानकर वे डरभुतजन कभी बतलाने योग्य नहीं हैं और हे नारदजी! तुमतो योधाओं के उपाय को जानते हो ॥ ६१ ॥ और संग्रामभूमि में प्राप्तहुई पीड़ावाले जे लोग शस्त्रों और अस्त्रों से अङ्गभङ्ग हुये या, होते हैं वे इस लोक में प्रशंसनीय हैं इसमें संशय नहीं है ॥ ६२ ॥ इसभांति गणों के साथ बड़े बलवान् वीरभद्रजीने कहाकि इन्द्रादि देव मेरे वचनों को सुनते हैं ॥ ६३ ॥ और मैं आज पृथिवी को तारकासुर से हीन करूंगा इसमें संशय नहीं है तदनन्तर बड़े बलवान् वीरभद्रजी तारकासुर से लड़ने लगे ॥ ६४ ॥ और जेकि गण श्रेष्ठधारवाले त्रिशूलों से संयुत होकर

विज्ञाय नवाच्यास्तुकदाचन ॥ त्वंनजानासिदेवर्षे सुयोधृणांप्रतिक्रियाम् ॥ ६१ ॥ मृत्युञ्चपृष्ठतःकृत्वा रणभूमिगतव्यथाः ॥ शस्त्रास्त्रैर्भिन्नगात्रा येप्रशस्तानात्रसंशयः ॥ ६२ ॥ इत्याहप्रमथैस्सार्द्धं वीरभद्रोमहाबलः ॥ शृण्वन्तिममवाक्यानि देवाइन्द्रपुरोगमाः ॥ ६३ ॥ अतारकांमहीञ्चाद्य करिष्येनात्रसंशयः ॥ अथत्रिशूलमादाय तारकेणमहाबलः ॥ ६४ ॥ वृषारूढाश्चनेकैश्च त्रिशूलैर्वरधारिभिः ॥ कपर्द्दिनोह्यनेकाश्च गणायेतिप्रहारिणः ॥ ६५ ॥ वीरभद्रंपुरस्कृत्य वीरभद्रपराक्रमाः ॥ त्रिशूलधारिणस्सर्वे सर्वेसर्पाङ्गभूषणाः ॥६६ ॥ सचन्द्रशेखरास्सर्वेजटाजूटविभूषिताः ॥ नीलकण्ठा दशभुजाः पञ्चवक्त्रास्त्रिलोचनाः ॥ ६७॥ छत्रचामरसंवीताःसर्वेयेदशबाहवः ॥ वीरभद्रम्पुरस्कृत्य ये वा हरपराक्रमाः ॥ ६८ ॥ युयुधुस्तेतदादैत्यैस्तारकासुरजीविभिः ॥ पुनःपुनस्तैश्चबभूव सङ्गरोमहाभयोदैत्यवीरैस्तदानीम् ॥ ६९ ॥ असमर्थ

बैलोंपर सवार हैं व जटाजूटधारी और भारी प्रहार (मार) करनेवाले हैं ॥ ६५ ॥ व वीरभद्रके समान पराक्रमी है वे वीरभद्रजी को आगेकर सोहते हैं और वे सब त्रिशूल धारी हैं व सर्पों से भूषित देहवाले हैं ॥ ६६ ॥ व जेकि सब गण चन्द्रमा समेत माथवाले जटाजूटों से भूषित नीलकण्ठ दशभुज पञ्चमुख और त्रिनेत्र हैं ॥ ६७ ॥ व जे कि सब छत्र और चामरों से संयुत व दश बाहोंवाले हैं व जे श्रीवीरभद्र जीको आगेकर शिवजी के समान पराक्रमवाले हैं ॥ ६८ ॥ उनने उस समय तारकासुर से जीविका पानेवाले दैत्योंके साथ युद्धकिया और तबहीं उनगणों व दैत्य श्रेष्ठोंसे बड़ा भयानक सङ्ग्राम वारंवार हुआ ॥ ६९ ॥ तदनन्तर नहीं सहतेहुये वे

गण उत्तम अस्त्रोंके पण्डित दैत्योंसे जीतिवाले भये और गणोकरके जीतेगये बहुत ही पीड़ित हुये वेही असुरलोग संग्राम से विमुख होकर हारको प्राप्तहुये ॥ ७० ॥ और श्रेष्ठ, शस्त्रोंके डरसे पीडित व व्यथावाले उन दैत्योंने वीर तारकासुरकी प्रशंसा किया और वैसेही वचन को सुनकर युद्धका चाही वह तारकासुर सेनामें पैठगया ७१ ॥ जैसे मन्दराचल समुद्र में पैठाथा वैसेही वह महात्मा दैत्यश्रेष्ठ सेनामें पैठगया तब युद्धमें जीतिकी इच्छावाले उस दैत्यराजने गणोंसे समेत होकर युद्धकिया ७२ ॥ जोकि बडा बलवान् तारकासुर इन्द्रादि सब देव तथा गण व यक्ष पिशाच और गुह्यकों को जीतने का चाही है तदनन्तर देवों और दानवों से व्याप्त या, सं

मणाःपरमास्त्रकोविदैस्ततोगणास्तेजयिनोबभूवुः ॥ गणैर्जितास्तेह्यसुराःपराङ्मुखा बभूविरेसुव्यथिताःपराभवम् ॥ ७० ॥ तेतारकंशस्त्रभयेनपीडिताः परेणवीरंव्यथिताःशशंसुः ॥ निशम्यवाक्यंहितथाचतारकः सयोद्धुकामःप्रविवेश सेनाम् ॥ ७१ ॥ यथामहीध्रःप्रविवेशसागरं तथाह्यसौदैत्यवरोमहात्मा ॥ गणैस्समेतोयुयुधेतदानीं सदैत्यराजोयुधिजेतुकामः ॥ ७२ ॥ सर्वान्सुरांश्चेन्द्रमुखान्महाबलस्तथागणान्यक्षपिशाचगुह्यकान् ॥ ततःसमभवद्युद्धं देवदानवसंकुलम् ॥ ७३ ॥ देवदानवयक्षाणां सन्निपातकरोमहान् ॥ तथागणागर्जमाना अश्वाञ्जघ्नुश्चसादिभिः॥रथिभिश्चरथाञ्जघ्नुः कुञ्जरान्सादिभिस्सह॥ वृषारूढैस्सरथैस्तेच सर्वेनिर्घोटिताह्यसुराःपोथिताश्च ॥ ७४ ॥ क्षयंप्रणीताबहवस्तदानीं पेतुःपृथिव्यांनिहताश्चकेचन ॥ केचित्प्रविष्टाहिरसातलञ्चपलायमानाबहवस्तथैव ॥ ७५ ॥ केचिद्भीताःप्राञ्जलयोबभूवुःकेचिच्छरण्याःशरणंगताश्च ॥ मृताःकेचित्तथाचैव भ्रष्टाःकेचिद्रणात्तथा ॥ ७६ ॥ केचिच्चशरणंप्राप्ता रुद्रानुचर

युत युद्ध भलीभांति हुआ ॥ ७३ ॥ जोकि बड़ाभारी युद्ध देव दानव और यक्षोंको इकट्ठा करनेवाला है वैसेही गरजते हुये गणोंने सवारों के साथ घोडो को मारा व रथियों के साथ रथोंको और ऊपर चढ़ेहुये जनोंके साथ हाथियोको भी मारडाला व बैलोंमें सवार रथोंसमेत गणोंने उन सब दैत्योंको मर्दन किया व छेदन भेदनसे पीड़ित करदिया ॥ ७४ ॥ उस समय बहुत से असुर नाशको पठायेगये व शस्त्रास्त्रोंसे संताड़ितहुये कोई पृथिवी मे गिरेहैं और वैसेही भगेजाते हुये कोई बहुत से दैत्य रसातल में पैठगये ॥ ७५ ॥ व डरेहुये कोई हाथ जोड़नेवालेहुये और शरणकेयोग्य कोई लोग शरणको प्राप्तहुये व वैसेही कोई मरगये और तथा कोई संग्रामसे भग

गये ॥ ७६ ॥ व कोई असुर शिवगण सेवकों के शरण को प्राप्तहुये उस समय इस प्रकार सेनाको भ्रष्ट देखकर दैत्योंका रक्षक ॥ ७७ ॥ रोषसे भराहुवा तारकासुर देव
और गणों या देवसमूहों को मारनेके लिये गया व दैत्योंका राजा तारकासुरही दश हजारबाहोंको कर ॥ ७८ ॥ और सिंहपर चढ़कर उनको संग्राम में एकाएक मारता
भया व साजेबाजेहुये सिंहने किसी बैलोंको चीर फारडाला ॥ ७९ ॥ वैसेही तारकासुरने बहुतसे गणोंको मारा और जब महात्मा उस तारकासुरने ऐसा किया ॥८०॥
तब सब देवोंके नहीं सहनेयोग्य बडाभारी व बडी बाहोंवाला तारकासुर त्रिलोकका विनाशकारी हुवा ॥ ८१ ॥ जे कि तारकासुरके पीछे चलनेवाले बहुत बलवान् दैत्य

किङ्करान् ॥ एवंभ्रष्टंतदासैन्यं विलोक्यासुरपालकः ॥७७॥तारकोहिरुषाविष्टो हन्तुन्देवगणान्ययौ ॥ भुजानामयुतंकृ
त्वादैत्यराजोहितारकः ॥ ७८ ॥ आरुह्यसिंहंसहसाघातयामासतान्रणे ॥ दंशितेनचसिंहेन वृषाःकेचिद्विदारिताः ॥
७९ ॥ तथैवतारकेणैव घातिताबहवोगणाः ॥ एवंकृतंयदातेन तारकेणमहात्मना ॥ ८० ॥ सर्वेषामेवदेवानामशक्यो
तारकोमहान् ॥ जातस्तदामहाबाहुस्त्रैलोक्यक्षयकारकः ॥ ८१ ॥ तारकस्यानुगादैत्या अजेयाबलवत्तराः ॥ सिंहारूढा
दंशिनश्च करालायेप्रहारिणः ॥ ८२ ॥ तैराहतागणास्सर्वेसिंहैश्चवृषभाहताः ॥ एवंनिहत्यमानावै गणास्तेरणमण्ड
ले ॥ ८३ ॥ प्रहस्यविष्णुःप्रोवाच कुमारंशिववल्लभम् ॥ श्रीविष्णुरुवाच ॥ नान्योहन्तास्यपापस्य त्वद्विनाकृत्तिकासु
त ॥ ८४ ॥ तस्मात्त्वयैवकर्तव्यं निधनंतारकस्यच ॥ तच्छ्रुत्वाभगवान्क्रुद्धं पार्वतीनन्दनोमहान् ॥ ८५ ॥ प्रहस्यवाक्यं
प्रोवाच विष्णुम्प्रतियथोचितम् ॥८६॥ मयासमीक्ष्यतेसम्यगत्रयुद्धंमहात्मनाम् ॥८७॥ अनभिज्ञोस्म्यहंविष्णो कार्याका

सिंहोंमें सवार व कवचों से सजेहुये कठोर और प्रहार (शस्त्रों से सन्ताडन) करनेवाले हैं ॥ ८२ ॥ उन्होंने सबगणोंको ताडन किया और दैत्योंके सिंहोंने बैलों
को मारा इसभांति संग्राममण्डल में वे गण निश्चय से मारेगये ॥ ८३ ॥ और विष्णुजीने बिहँसकर शिवजी के प्यारे कुमारके प्रति अधिकता से कहा श्रीविष्णुजी
बोले कि, हे कार्त्तिकेयजी ! तुम्हारे विना अन्य कोईभी इस पापीका मारनेवाला नहीं है ॥ ८४ ॥ उस कारण तुमकोही तारकासुरका वध करना चाहिये उसको सुनकर
कुपित हुये ऐश्वर्य सम्पन्न, पूजनीय, पार्वतीजीके नन्दनने ॥८५॥ बिहँसकर विष्णुजीके प्रति यथोचित वचनको कहा॥८६॥ कि यहां महात्माओंका युद्ध मुझसे नहीं

भांति देखाजाता है ॥ ८७ ॥ और हे विष्णो ! करनेयोग्य व नहीं करने योग्यको न जानताहुवा मैं सब ओरसे अजानहूं क्योंकि कौनजन अपनेहैं और कौन शत्रु,
या अन्यहैं इसकोही कभी या किसीभांति नही जानताहूं ॥ ८८ ॥ और युद्ध करतेहुये ये लोग किसलिये परस्पर (आपुसमें) मारने में टिकेहैं ऐसे कार्त्तिकेयजीके वचनको सुन
कर नारदजीने वचनको कहा ॥ ८९ ॥ श्रीनारदजी बोले कि, हेमहाबाहो ! तुम शिवजी के अंशसे उपजेहुये कुमारहो व जगतों के पालक स्वामी और देवोंकी परम (श्रेष्ठ)
गतिहो ॥ ९० ॥ हे वीर ! तारकासुरने आगे बडीदारुण तपस्या को किया कि जिस सेही देवोंको विशेषता से जीतलिया वैसेही स्वर्गको भी जीतलिया ॥ ९१ ॥ और

र्य्याविचक्षणः ॥ केस्वकीयाःपरेकेवै नजानामिकथञ्चन ॥ ८८ ॥ किमर्थंयुद्धमानावै परस्परवधेस्थिताः ॥ कुमारस्य
वचःश्रुत्वा नारदोवाक्यमब्रवीत ॥ ८९ ॥ श्रीनारदउवाच ॥ कुमारोसिमहाबाहो शङ्करस्यांशसम्भवः ॥ त्वंत्राताजगतां
स्वामी देवानांचपरागतिः ॥ ९० ॥ तारकेणपुरावीर तपस्तप्तंसुदारुणम् ॥ येनैवविजितादेवा येनस्वर्गोजितस्तथा ॥ ९१ ॥
तपसातेनचोग्रेण अजेयत्वमवाप्तवान् ॥ अनेनापिजितश्चेन्द्रो लोकपालास्तथैवच ॥ ९२ ॥ त्रैलोक्यंचजितंसर्वं ह्यने
नैवदुरात्मना ॥ तस्मात्त्वयानिहन्तव्यस्तारकोपापदूषकः ॥ ९३ ॥ सर्वेषांशंविधातव्यं त्वयानाथेनचाद्यवै ॥ नारदस्यव
चःश्रुत्वा कुमारःप्राहसन्महान् ॥ ९४ ॥ विमानादवतीर्याथ पदातिपरमोभवत् ॥ पद्भ्यांयदासौपरिधावमानः शिवा
त्मजोयंचकुमाररूपी ॥ ९५ ॥ करेसमादायमहाप्रभावां शक्तिंमहोल्कामतिदीप्तियुक्ताम् ॥ दृष्ट्वातमायान्तमतिप्रचण्ड

उस उग्रतपस्या से अजेयत्व याने नहीं जीतनेयोग्य के भावको पाया है व इसनेही इन्द्र और वैसेही अन्य लोकपालों को भी जीत लियाहै ॥ ९२ ॥ व इसही दुर्बुद्धि
ने सबही त्रिलोकको जीता है उस कारण धर्म्मात्माओं का दुखानेवाला तारकासुर तुमसे बहुतही मारनेयोग्यहै ॥ ९३ ॥ और आजही तुम स्वामीको सबोंका कल्या-
ण करना चाहिये इसभांति नारदजी के वचन को सुनकर पूजनीय श्रीकार्त्तिकेयजी बहुतही हँसे ॥ ९४ ॥ अनन्तर विमान से उतरकर पैदलों में उत्तम हुये और
जब पावोंसे सबओर धावते हुये वह यह कुमाररूप शिवजीके पुत्र ॥ ९५ ॥ बड़ेप्रभाववाली बडीज्योति से जगमगाती हुई व बड़ी उल्का के समान सांगको हाथमें

भलीभांति लेकर चले तब तेजसे नहीं प्रकट रूपवाले अत्यन्त प्रचण्ड व बहुतश्रेष्ठ उन बलवान् बालकको आते देखकर ॥ ९६ ॥ तारकासुरने कहा कि यह कुमार शत्रु
रूप दैत्यसत्तमों का मारनेवाला है इसलिये मैंही वीर इसके साथ युद्धकरूंगा और मैंही सब वीरोंको लड़ाऊंगा ॥ ९७ ॥ और स्वामी समेत सबलोकपालों व गणों
कोभीशीघ्रही मारताहूं ऐसा निरन्तर कहकर वह बडाबलवान् तारकासुर श्रीकार्त्तिकेयजीको उद्देशकर युद्ध करने के लियेगया ॥ ९८ ॥ और उस तारकासुर ने उत्तम
अद्भुत साग या बर्छीको ग्रहण किया याने हाथमें लिया व इस वचन को कहा तारकासुर बोला कि, आपलोगों ने मेरे आगे आज कुमार (बालक) कोही कैसे

म०व्यक्तरूपंबलिनंवरिष्ठम् ॥ ९६ ॥ दैत्योबभाषेसुरसत्तमानामसौकुमारोद्विषतांनिहन्ता ॥ अनेनसार्द्धंत्वहमेववीरो
योत्स्यामिसर्वानहमेववीरान् ॥ ९७ ॥ गणांश्चसर्वानपिघातयामि सहेश्वराल्लोकपांश्चैवसद्यः ॥ इत्येवमुक्त्वासततंमहा
बलः कुमारमुद्दिश्यययौसयोद्धुम् ॥ ९८ ॥ जग्राहशक्तिंपरमाद्भुताञ्च सतारकोवाक्यमिदंबभाषे ॥ तारकउवाच ॥
कुमारोमेग्रतश्चाद्य भवद्भिश्चकथंकृतः ॥ ९९ ॥ यूयं गतत्रपादेवा ययौराजापुरन्दरः ॥ पुरायेनकृतंकर्म विरुद्धंसर्वमे
वतत् ॥ १०० ॥ प्रसुप्ताश्चादितागर्भे जठरस्थानिपातिताः ॥ कश्यपस्यात्मजेनैव बहुरूपेणवैकृतम् ॥ १ ॥ अनेनैवम
हेन्द्रेण तथान्यच्चमहत्कृतम् ॥ गौतमस्यप्रियाभार्या धर्षितातेनपापिना ॥ २ ॥ विश्वरूपोहतोयेन वृत्रश्चैवहतोयथा ॥
कुमारंहन्तुकामोसौ देवेन्द्रोबालघातकः ॥ ३ ॥ कुमारोयंमयादेवा घातितोद्यनसंशयः ॥ पुराहतास्त्वयाविप्रा दक्षयज्ञे

या, क्यों कियाहै और ॥ ९९ ॥ हे देवो ! तुमलोग निर्लज्जहो व राजा इन्द्र चला गयाहै कि जिसने पूर्वसमयमें सबही उस विरुद्धकर्मको कियाहै ॥ १०० ॥ व कश्यप
के पुत्र इन्द्रनेही बहुत सोतेहुये गर्भवासी बालकों को व्याकुल किया और नीचे गिरादिया व बहुतरूप(वेष) कोभी निश्चय से धारण करलियाहै ॥ १ ॥ वैसेही इसही
महेन्द्रने अन्यभी बडभारी नष्टकर्म्मको किया कि उस पापीने गौतमजीकी प्यारी नारी को बरियाई से पतिव्रत भंगकरदिया ॥ २ ॥ और जैसे जिसने विश्वरूप व वृत्रासुर
को माराहै वैसेही वह बालकोंके मराने या मारनेवाला देवेन्द्र इस कुमारको भी मेरे द्वारा मारने का चाहीहै ॥ ३ ॥ हे देवताओ ! आज यह बालक मुझसे मरायागया इसमें

संशय नहीहै और जिस से तुमने आगे दक्षकेयज्ञमें बहुत से ब्राह्मणों को माराहै ॥ ४ ॥ उससे हे बडी बुद्धिवाले, वीर, वीरभद्र ! संग्राम में परमप्रवीण पण्डित मैं तुम
को उस कर्मका फल दिखाऊंगा ॥ ५ ॥ उस समय ऐसाही कहकर बडे मनवाले व वीरोंमें श्रेष्ठ व युद्धवालों में बहुतही उत्तम व दैत्यों के राजा उस एक तारकासुर
ने बडी अद्भुत बर्छीको लिया ॥ ६ ॥ इस प्रकार दैत्येंद्रों के साथ तारकासुरने जब बडे क्रोधसे युद्धमें मन या बुद्धिको किया तब तिरस्कार (अनादर) कीहुई देव-
ताओंकी परंपरा पद्धति विनाशीगई और बड़ाबलवान् वह जीतिवाला हुवा ॥१०७॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेमाहेश्वरखण्डान्तर्गतकेदारखण्डेशैवशास्त्रेभाषाबन्धेसिद्धिनाथ
त्रिवेदिविरचितेतारकासुरादिभिःसहवीरभद्रादियुद्धवर्णनतथाकार्त्तिकेयप्रशंसनंनामैकोनत्रिंशोऽध्यायः २९ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

ह्यनेकशः ॥ ४ ॥ तस्यकर्मफलञ्चाद्य वीरभद्रमहामते ॥ दर्शयिष्यामितेवीर रणेरणविशारदः ॥ ५ ॥ इत्येवमुक्त्वातु
तदामहात्मा दैत्याधिपोवीरवरस्तुचैकः ॥ जग्राहशक्तिंपरमाद्भुताञ्च सतारकोयुद्धवतांवरिष्ठः ॥ ६ ॥ इतिपरमरुषाभि
भूतादितितनयपरम्परासुरेन्द्रैः॥युधिमतिमकरोत्तदानिहता समरविजयीसतारकोबलीयान् ॥ १०७ ॥ इति श्रीस्कन्द
पुराणे माहेश्वरखण्डान्तर्गत केदारखण्डेशैवशास्त्रे तारकासुरादिभिस्सहवीरभद्रादियुद्धवर्णनंतथाकार्त्तिकेयप्रशंसन
न्नामैकोनत्रिंशोध्यायः ॥ २९ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

लोमशउवाच ॥ कृतापमानमायान्तं तारकासुरमोजसा ॥ आजघानचवज्रेण इन्द्रोमतिमतांवरः ॥ १ ॥ तेनव
ज्रप्रहारेण तारकोविह्वलीकृतः ॥ पतितोपिसमुत्थाय शक्त्यातंप्राहरद्रुषा ॥ २ ॥ पुरन्दरंगजस्थंहि अपातयतभूत
ले ॥ हाहाकारोमहानासीत्पतितेचपुरन्दरे ॥ ३ ॥ तारकेणापितत्रैव यत्कृतंतच्छृणुप्रभो ॥ पातितञ्चपदाक्रम्य हस्ताद्व

दो० । यातिसयें अध्याय में कार्त्तिकेयकी जीति । अति आनन्दित लोकतब सुर सब भये अभीति ॥ श्रीलोमशजी बोले कि बुद्धिमानों में श्रेष्ठ इन्द्रजी ने बलसे
अनादर किये आतेहुये तारकासुर को वज्रसे सामने मारा ॥ १ ॥ और उस वज्रके प्रहार से विकल किया गया गिराहुवा भी तारकासुर भलीभांति उठकर क्रोधसे उन
को बर्छीसे मारता भया ॥ २ ॥ व उसने हाथी में चढ़ेहुये इन्द्रजी को पृथिवीतलमेंही गिरादिया और इन्द्रके गिरेहुये होतेही बड़ाभारी हाहाकार हुवा ॥ ३ ॥ हे प्रभो !

तारकासुरने वहाही जिस कर्मको किया उसको तुम सुनो कि गिरायेहुये इन्द्रको पांवसे दबाकर और हाथसे वज्रको लेकर ॥ ४ ॥ व हनेहुये देवेन्द्रको विशेषता रो दे-
खकर वैरियों के विनाशनेवाले तारकासुर ने बडेभारी वज्रघात से उन इन्द्रको ताडन किया ॥ ५ ॥ और जब गिरेहुये इन्द्रको सामने देखकर प्रतापी वीरभद्रजी
त्रिशूल को उठाकर कुपित हुये तब बडेभारी बलवान् उन वीरभद्रजी ने इन्द्रजी को ॥ ६ ॥ भलीभाति रक्षण करतेही बड़ीदीप्तिवाले त्रिशूलसे तारकासुर दैत्यकोमारा
व त्रिशूल के घात से सन्ताडितहुवा वह पृथिवी तलमें गिरा ॥ ७ ॥ और गिराहुवा भी बडातेजस्वी तारकासुर फिर उठा वैसेही उत्तम बर्छीसे वीरभद्रजी को हृदयमें

**त्रंप्रगृह्यच ॥ ४ ॥ हतंदेवेन्द्रमालोक्य तारकोरिपुसूदनः ॥ वज्रघातेनमहता ताडयंस्तुपुरन्दरम् ॥ ५ ॥ इन्द्रंपतितमा
लोक्य वीरभद्रःप्रतापवान् ॥ त्रिशूलमुद्यम्यमहाबलस्तदासवीरभद्रोह्यपितःपुरन्दरम् ॥ ६ ॥ संरक्षमाणोहिजघानता
रकं शूलेनदैत्यञ्चमहाप्रमेण ॥ शूलप्रहाराभिहतो निपपातमहीतले ॥ ७ ॥ पतितोपिमहातेजास्तारकःपुनरुत्थितः ॥
जघानपरयाशक्त्या वीरभद्रंतथोरसि ॥ ८ ॥ वीरभद्रोपिपतितः शक्त्याघातेनतस्यवै ॥ सगणाश्चैवदेवाश्च गन्धर्वो
रगराक्षसाः ॥ ९ ॥ हाहाकारेणमहता चुक्रुशुश्चपुनःपुनः ॥ तदोत्थितस्तुसहसामहाबलः सवीरभद्रोद्विषतांनिहन्ता ॥
१० ॥ त्रिशूलमुद्यम्यतडित्प्रकाशं जाज्वल्यमानंप्रभयानिरन्तरम् ॥ स्वारोचिषाभासितदिग्वितानं सूर्य्येन्दुबिम्बान
लभोडुमण्डलम् ॥ ११ ॥ त्रिशूलेनतदायावद्धन्तुकामोमहाबलः ॥ निवारितःकुमारेण मावधीस्त्वंमहामते ॥ १२ ॥**

मारतामया ॥ ८ ॥ उसकीही शक्ति (बर्छी) के घातसे वीरभद्रजी भी गिरगये और गणोंसमेत देव व गन्धर्व व उरग व राक्षस ॥ ९ ॥ जब बडेभारी हाहाकार रो
बारबार चिघड़कर रोनेलगे तब वैरियों के बहुतही मारनेवाले बडे बलवान् वह वीरभद्रजी एकाएक फिर उठे ॥ १० ॥ और जोकि त्रिशूल बिजुलीके समान प्रकाश
वान् व ज्योति से निरन्तर जगमगाता हुवा व अपनी दीप्ति से दिशाओं के विशेषपसार याने विस्तार और सूर्य्य व चन्द्रमा के बिम्ब व अग्नि व राशि और नक्षत्रों के
मण्डल को प्रकाशित करनेवाला है उसको उठाकर ॥ ११ ॥ जबतक उस त्रिशूल से मारनेकी इच्छावाले हुये तबतक कुमार (कार्त्तिकेय) जीने बड़बलवान् वीरभद्र

पु० ६

जीको निवारण किया कि हे महामते ! तुम मत मारो ॥ १२ ॥ और बड़े तेजवाले व बडेभारी बलवान् श्रीकार्त्तिकेयजी गर्जे व जब आकाशमें भलीभांति टिकेहुये देवों से जय जय ऐसा कहेगये ॥ १३ ॥ और बड़ेभारीवीर श्रीकार्त्तिकेयजी बर्छीसे तारकासुर को मारने के लिये उद्यत हुये और वहा तारकासुर व श्रीकुमारजीका संग्राम जोकि दुःखसे सहने योग्य ॥ १४ ॥ बडाघोर और सब प्राणियों का भयङ्करहै वह हुवा तब बर्छियों को हाथों में लिये हुये उनवीरोंने आपुस में युद्ध किया ॥ १५ ॥ बड़े साधनों (हथियारों) से संयुत व परस्पर छलकरते याने बचाते हुये व सांगों से छेदे भेदे हाथोंवाले वे सिंहों के समान महाबलवान् हैं ॥ १६ ॥ व वैतालों की

जगर्जचमहातेजाः कार्त्तिकेयोमहाबलः ॥ यदाजयेत्यभिहितो देवैराकाशसंस्थितैः ॥ १३ ॥ शक्त्यापरमयावीरस्ता रकंहन्तुमुद्यतः ॥ तारकस्यकुमारस्य संग्रामस्तत्रदुस्सहः ॥ १४ ॥ जातस्तदामहाघोरःसर्वभूतभयङ्करः ॥ शक्तिहस्तौ चतौवीरौ युयुधातेपरस्परम् ॥ १५ ॥ शक्तिभिर्भिन्नहस्तौतौमहासाधनसंयुतौ ॥ परस्परंवञ्चयन्तौ सिंहाविवमहाबलौ ॥ १६ ॥ वैतालिकींसमाश्रित्य तथावैखेचरींगतिम् ॥ पार्वतीमतमाश्रित्य शक्त्याशक्तिविजघ्नतुः ॥ १७ ॥ एभिर्मतैर्म हावीरौचक्रतुर्युद्धमुत्तमम् ॥ अन्योन्यसाधकौभूत्वामहाबलपराक्रमौ ॥ १८ ॥ जघ्नतुःशक्तिधाराभी रणेरणविशारदौ ॥ मूर्ध्निकण्ठेचोदरेच जान्वोश्चैवकटीतटे ॥ १९ ॥ वक्षसिपृष्ठउरसिचिच्छिदुश्चपरस्परम् ॥ तदातौयुद्धमानौ चहन्तुका मौमहाबलौ ॥ २० ॥ प्रेक्षकाह्यभवन्सर्वे देवगन्धर्वगुह्यकाः ॥ ऊचुःपरस्परंसर्वे कोस्मिन्युद्धेविजेष्यति ॥ २१ ॥ तदानभो गतावाणी उवाचपरिसत्वरम् ॥ तारकंहिसुराश्चाद्यकुमारोयंहनिष्यति॥२२॥माशोच्यन्तांसुरास्सर्वैःसुखेनस्थीयतामिद

तथा आकाश में उडनेवालों की चालको भलीभाति आश्रयकर व पार्वतीमत को भलीभाति सेवनकर उन्होंने बर्छीसे बर्छीको मारा ॥ १७ ॥ और आपुस में कार्य्यके सिद्धकरनेवाले होकर बहुत बल पराक्रमवाले बड़भारी वीरोंने इनमतों से उत्तम युद्धको किया ॥ १८ ॥ व उन संग्राम के पण्डितों ने समर मे सागोकी धाराओं से मूँड व कण्ठ व उदर व जानुवों (गुल्फों) और कटितट मे मारा ॥ १९ ॥ व छाती पीठ और उरमें परस्पर छेदन किया तब लड़ते हुये बडे बलवान् वे दोनों मारनेके चाहीहुये ॥ २० ॥ व सब देव गन्धर्व और गुह्यक भी देखनेवालेही होगये और जब सब लोग आपुस मे बतलाने लगे कि इस युद्धमें कौन जीतेगा ॥ २१ ॥

तब आकाशगत वाणीने शीघ्रही सब ओरसे कहाकिहे देवताओ! यह कुमार आज तारकासुरको ही मारेगा ॥ २२ ॥ और हे देवो! सबों से शोचमत कियाजावे व स्वर्ग में सुख से टिकाजावे उस समयमें ही इस प्रकार आकाश में भलीभाति कहीहुई वाणीको सुनकर गणोंसे सब ओर संयुत ॥ २३ ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी दैत्योंके स्वामी उग्ररूपवाले उस तारकासुर को सामने से मारने के चाही हुये व बर्छीबाहोंवाले उन्हीं ने उस बर्छीसे उसको स्तनों के बीचमें सामने से मारा ॥ २४ ॥ और देवों में श्रेष्ठ श्रीकुमारजी व उस हथियारके प्रहारको भी शीघ्रही अनादरकर बड़ा बलवान् दैत्योंका नायक तारकासुर ॥ २५ ॥ भलीभाति कुपित होकर अपनी सांगसे श्रीकार्त्तिकेयजी को भी निश्चयकर सामने से मारताभया और शिवजीके पुत्र श्रीकुमारजी उसही बर्छी के घातसे मूर्छित होगये ॥२६॥ व दो दण्ड, या, क्षणभरमें चैतन्यता

वि॥ श्रुत्वेतिवैताङ्गगनेसमीरितान्तदैववाचंप्रमथैःपरीतः॥२३॥ कुमारकस्तम्प्रतिहन्तुकामोदैत्याधिपंतारकमुग्ररूपम् ॥ शक्त्यातयामहाबाहुराजघानस्तनान्तरे ॥ २४ ॥ तारकस्तुसुरश्रेष्ठं कुमारंबलवत्तरः ॥ तम्प्रहारन्त्वनादृत्य त्वरितंदैत्यपुङ्गवः ॥ २५ ॥ कुमारश्चापिसंक्रुद्धःस्वशक्त्याचाजघानवै॥ तेनशक्तिप्रहारेण शाङ्करिर्मूर्च्छितोभवत ॥ २६ ॥ मुहूर्त्ताच्चेतनांप्राप्यस्तूयमानोमहर्षिभिः॥ यथासिंहोमदोन्मत्तो हन्तुकामस्तथैवच ॥ २७ ॥ कुमारस्तारकंदैत्यमाजघानप्रतापवान्॥ एवंपरस्परेणैव कुमारश्चैवतारकः॥२८॥ युयुधातेतिसंरब्धौशक्तियुद्धपरायणौ ॥ अभ्यासपरमावास्तामन्योन्यंविजिगीषया॥२९॥ तथातौयुद्ध्यमानौचविचित्ररूपौतपस्विनौ॥ धाराभिश्चालिताभिश्चरोषयुक्तौनिजघ्नतुः॥३०॥ अवलोकपराएव यक्षगन्धर्वकिन्नराः ॥ विस्मयंपरमंप्राप्तानोचुःकिञ्चनतत्रवै ॥ ३१ ॥ नववौचतदावायुर्निष्प्रभोभूद्दि

को पाकर महर्षियों से प्रशंसित हुये और जैसे मदसे बडामतवाला सिंहहो वैसेही मारने के लिये इच्छावाले ॥ २७ ॥ प्रतापी कार्त्तिकेयजी ने तारक दैत्यको सब ओर से मारा व इस प्रकार कुमारजी और तारकासुर ने भी ॥ २८ ॥ युद्ध किया जेकि बहुतहीं कुपित व सांगों के युद्धमें परायण हैं वे परस्पर जीतनेकी इच्छा से अभ्यास याने बारबार हथियार चलाने में तत्पर हुये ॥ २९ ॥ और वैसेही युद्धकरते हुये क्रोध से संयुत विचित्ररूपवाले उन तपस्वियों ने चलाई हुई शस्त्रधाराओं से बहुतही मार किया ॥ ३० ॥ वहांहीं ऊपरसे नीचे देखने में परायण हुये देव यक्ष गन्धर्व और किन्नरभी बड़े विस्मयको प्राप्तहोगये व कुछभी नहीं बोलतेभये ॥३१॥

उस समय बयार नहीं बही व सूर्य्यदेव प्रकाश से हीन हुये व पर्वतों और बहुते वनोंसमेत सब भूमि डगमगानेलगी ॥ ३२ ॥ तदनन्तर हिमवान् व सुमेरु व श्वेतकूट व दर्दुर व मलयागिरि व महाशैल व मैनाक व विन्ध्याचल ॥ ३३ ॥ व बडाभारी पर्वत लोकालोक व मानसोत्तर पर्वत व कैलास व मन्दराचल व माल्यवान् और गन्धमादन ॥ ३४ ॥ व उदयाचल व महेन्द्र और वैसेही अस्ताचल ये सब और बड़ीदीप्ति या, शोभावाले अन्यभी बहुतसे पर्वत ॥ ३५ ॥ श्रीकुमारजी को सबओर से चाहनेवाले होकर स्नेहसे व्याकुल हुये व तदनन्तर दैत्य के डरसे डरेहुये उन सबोंको देखकर शङ्करजी के अंश से उत्पन्न उन ॥ ३६ ॥ श्रीपार्वतीजी के पुत्रने

वाकरः ॥ चचालवसुधासर्वा सशैलबहुकानना ॥ ३२ ॥ हिमालयोथमेरुश्च श्वेतकूटश्चदर्दुरः ॥ मलयागोमहाशैलो मैनाकोविन्ध्यपर्वतः ॥ ३३ ॥ लोकालोकोमहाशैलो मानसोत्तरपर्वतः ॥ कैलासोमन्दरोमाल्यो गन्धमादनएवच ॥ ३४ ॥ उदयाद्रिर्महेन्द्रश्च तथैवास्तगिरिर्महान् ॥ एतेचान्येचबहवः पर्वताश्चमहाप्रभाः ॥ ३५ ॥ भूत्वास्नेहार्द्दिता जाताः कुमारञ्चपरीप्सवः ॥ ततःसदृष्ट्वातान्सर्वान्भयभीतांश्चशाङ्करिः ॥ ३६ ॥ पर्वतान्गिरिजापुत्रोबभाषेप्रतिबोधयन् ॥ श्रीकुमारउवाच ॥ माखिद्यतांमहाभागामाचिन्ताक्रियतांनगाः ॥ ३७ ॥ घातयाम्यद्यपापिष्ठं सर्वेषामिहपश्यताम् ॥ एवंसमाश्वास्यतदामनस्वीतान्पर्वतान्देवगणान्समेतान् ॥ ३८ ॥ ननामशम्भुंमनसाहरप्रियः स्वमातरंचैव यदाकुमारः ॥ तंतारकंहन्तुमनामहाभोगृहीतशक्तिःपरमेणवर्चसा ॥ ३९ ॥ विराजमानोतिबलीयसांवरः पिनाकपाणेस्तनयस्तदानीम् ॥ जघानशक्त्याभगवान्सतारकम् दैत्याधिपंवीरवरंतमाजौ ॥ ४० ॥ पपातसद्यःसहसासुरेशो

पर्वतों के प्रति बोध करतेही कहा श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि, हे महाभागो, पर्वतो ! खेदमत कियाजावे और चिन्ताभी मत की जावे ॥ ३७ ॥ क्योंकि मै सबों के देखते ही आज यहां इस बड़ेपापीको मारताहूं उस समय इसभांति संमिलितहुये उनसब पर्वतों और देवसमूहोंको भलीभांति आश्वासनकर (समझाकर) अच्छेमनवाले ॥ ३८ ॥ व महादेवजी के प्यारे कुमारजी ने मनसेही शिव और अपनी माताको नमस्कार किया व जब उस तारकासुर को मारने के लिये मनवाले महा प्रकाशवान् व बर्छीको हाथमें लियेहुये वह उत्तमतेज से ॥ ३९ ॥ शोभायमान हुये तबहीं अधिकबलवानो में बहुत श्रेष्ठ व ऐश्वर्य्य सम्पन्न उन शिवजी के पुत्र श्रीकार्त्तिकेयजी

ने संग्राममें दैत्योंके महाराज, वीरश्रेष्ठ उस तारकासुर को सांगसे मारा ॥ ४० ॥ और टूटेफूटे अंगोंवाला असुरों का स्वामी पर्वतेन्द्र की नाईं एकाएक शीघ्रही भूमि
गिरा वैसेही गिरेहुये बड़ेभारी बलवान् तारकासुर को देखकर ॥ ४१ ॥ व संग्राममें गिराहुवा मानकर वीर श्रीकार्त्तिकेयजी ने फिर भी मारा और श्रीकुमारजी को
बलसे बहुतही मारेहुये उस तारकासुर को ॥ ४२ ॥ उन देवसमूहों व ऋषियों व गुह्यकों व खगों व किन्नरों व चारणों व सिद्धों और अप्सरों के गणोंने देखा ॥
४३ ॥ और बड़े आनन्द से भरेहुये सबोंने उन कुमारजी की स्तुति किया व विद्याधरियां नाचीं तथा गन्धर्वलोग गानेलगे ॥ ४४ ॥ व ऐसा देखकर सबलोग विस्मयको

भूम्यांविशीर्णोहियथागिरीन्द्रः ॥ तंतथापतितंदृष्ट्वा तारकंबलवत्तरम् ॥ ४१ ॥ जघानचपुनर्वीरो मत्वापतितमाहवे ॥
निहतंतंकुमारेण तारकासुरमोजसा ॥ ४२ ॥ ददृशुस्तेसुरगणाऋषयोगुह्यकाःखगाः ॥ किन्नराश्चारणाश्चैव सिद्धाश्चा
प्सरसांगणाः ॥ ४३ ॥ हर्षेणमहताविष्टास्तुष्टुवुस्तंकुमारकम् ॥ विद्याधर्य्यश्चननृतुर्गायकाश्चजगुस्तथा ॥ ४४ ॥ एवंवि
स्मयमापन्नादृष्ट्वासर्वंमुदान्विताः ॥ बभूवुश्चैकपद्येनसर्वेत्रैलोक्यवासिनः ॥ ४५ ॥ सदाशिवोपिसंतुष्टस्तथैवगिरिजा
सती ॥ तत्रागत्यमुदायुक्तः स्वाङ्कमारोप्यचात्मजम् ॥ परिष्वज्यचगाढंचगिरिजापितुतोषवै ॥ स्वमुत्सङ्गेसमारोप्य कु
मारंसूर्यवर्चसम् ॥ ४६ ॥ लीलयामासतन्वङ्गी पार्वतीरुचिरेक्षणा ॥ ऋषिभिःसत्कृतःशम्भुः पार्वत्यासहितस्तदा ॥
४७ ॥ अर्द्धासनगतासाध्वी शुशुभेमितभाषिणी ॥ संस्तूयमाना मुनिभिःसिद्धचारणपन्नगैः ॥ ४८ ॥ नीराजितातदा

प्राप्त होगये और तीनों लोकों के बसनेवाले सब जन एक, साथ या, क्षणमेंही आनन्दसे संयुत हुये ॥ ४५ ॥ वैसेही पतिव्रता श्रीपार्वती और सदाशिवजी भी वहां
आकर व पुत्रको अपने गोदमें चढ़ाकर आनन्दसे संयुत व सन्तुष्ट हुये और सूर्य्य के समान तेजवाले कुमार को दृढता समेत सब ओरसे लिपटाकर व अपनी
गोदीमें भलीभांति बैठालकर श्रीपार्वतीजी भी निश्चय से सन्तुष्टहुई ॥ ४६ ॥ और सूक्ष्मअंगोंवाली सुन्दरनयनी श्रीगौरीजी ने उनको खेलकराया तब ऋषियों
ने पार्वतीसहित शिवजीको सत्कार (आदर) किया ॥ ४७ ॥ व मुनि सिद्धचारण और पन्नगों करके भलीभांति प्रशंसित होतीहुई थोड़ा बोलनेवाली व शिवजी के

आधे आसन में प्राप्तहुई पतिव्रता श्रीपार्वतीजी शोभित हुईं ॥ ४८ ॥ उस समय देवोंने शङ्करजी के साथ श्रीपार्वतीजी को नीराजन (आरती) किया अनन्तर
जब पतिव्रता या सती (दक्षकन्या) रूपिणी वह कुमारजी के साथ शोभायमान हुईं ॥ ४९ ॥ तब पुत्रों व मेरुआदि पर्वतों से सब ओर घिरेहुये हिमवान्जी वहां
आकर स्तुति कियेजाते जनोंमें श्रेष्ठ हुये और ॥ ५० ॥ उस समय ऋषियों के साथ सब इन्द्रादि देवसमूहोंने गीतों व बाजोके शब्द और बडेभारी वेदघोष से ॥५१॥
व बहुतभांतिके सूक्तोंसे वेदोंके श्रेष्ठ पण्डितोंके साथ बहुतही स्तुति किया यह कुमार विजय नाम चरित्र परम (अधिक) अद्भुतहै ॥ ५२ ॥ जोकि सब पापोंका हरने
वाला व दिव्य और मनुष्योंके मनमाने फलोंका बहुतही दायकहै उसको अतौलभाग्य से संयुत व पवित्रहुये जे लोग पढ़तेहैं वे बुढ़ाई सेही अविनाशी और अनन्तरूप

देवैःपार्वतीशम्भुनासह ॥ कुमारेणसहैवाथ शोभमानासतीयदा ॥ ४९ ॥ हिमालयस्तदागत्य पुत्रैश्चपरिवारितः ॥
मेर्वाद्यैःपर्वतैश्चैव स्तूयमानपरोभवत् ॥ ५० ॥ तदादेवगणास्सर्वे इन्द्राद्याऋषिभिस्सह ॥ गीतवादित्रघोषेण ब्रह्मघोषेण
भूयसा ॥५१॥ प्रतुष्टुवुश्चविविधैःसूक्तैर्वेदविदांवरैः ॥कुमारंविजयंनामचरित्रम्परमाद्भुतम् ॥५२॥ सर्वपापहरंदिव्यं
सर्वकामप्रदंनृणाम् ॥ येकीर्तयन्तिशुचयोमितभाग्ययुक्ताश्चानन्तरूपमजराच्युतमादधानाः ॥५३॥ कौमारलक्षणयुतं
शिवधामतुल्यं तेयान्तिलोकमतुलंशिवलक्षणञ्च॥ श्रोष्यन्तियेचपरयासुधियाविनिष्ठाःश्रद्धान्विताश्शिवपराश्शिवध
र्मयुक्ताः ॥ ५४ ॥ कौमारविक्रममहात्म्यमुदारमाद्यमानन्ददायकमनोर्थकरंन्नृणांहि ॥ यःपठेच्छृणुयाद्वापिकुमारस्यम
हात्मनः ॥५५॥ चरितंतारकस्येदं सर्वपातकनाशनम् ॥५६॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेशैवशास्त्रेत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३० ॥

को धारतेहुयेही होतेहैं ॥ ५३ ॥ और श्रीकार्त्तिकेयजी के लक्षणोंसे समेत शिवस्थान के समान व शिवलक्षणवाले अतुल (अनूप) लोकको जातेहैं और उत्तम भक्ति
से विशेष निष्ठावाले श्रद्धासमेत शिवजी में परायण व शिवजीके धर्मोंसे संयुत जे कोई इसको सुनेंगे वेभी पूर्वोक्तलोकको जावेंगे ॥ ५४ ॥ क्योंकि उदार व आद्य
(मुख्य) व आनन्द को देनेवाला कुमारजी के विक्रमका माहात्म्य मनुष्योंके मन वाञ्छित फलोंका करनेहारा है और जोकि महात्मा कुमारजी के माहात्म्य को पढ़े
व सुने ॥ ५५ ॥ सब पापोंका नाशक यह तारकासुरका भी चरित्र कहागयाहै ॥ ५६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेशैवशास्त्रेत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३० ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । यकतिसयें अध्याय में देवस्तुति कहिदीन । श्रीकुमारजी को चरित चारु महातम लीन ॥ श्रीशौनकजी बोले कि, हे विप्र ! महात्मा कार्त्तिकेयजी ने संग्राम में उस तारकासुर को मारकर किस अच्छे बड़े पूजनीय कर्मको किया तुम उस सबको कहने के लिये योग्यहो ॥ १ ॥ क्योंकि कुमारजी अन्य शिवहैं कि जिन्होंने इस सब जगत या चरित्र को पसारा है व तपस्या से सन्तुष्ट किये हुये शङ्करजी जिस अविनाशी उत्तम फलको देते हैं ॥ २ ॥ वहही फल मनुष्यों को श्रीकार्त्तिकेयजी के दर्शन से सदा शीघ्रही होता है हे लोमशजी ! जोकि पापी अधिक अधर्मी और श्वपचभी हैं ॥ ३ ॥ वे कुमारजी के दर्शन से पापहीन होजातेहैं अन्यथा नहीं, इस

शौनकउवाच ॥ हत्वातंतारकंसङ्ख्ये कुमारेणमहात्मना ॥ किंकृतंसुमहद्विप्रंतत्सर्ववक्तुमर्हसि ॥ १ ॥ कुमारोह्य परःशम्भुर्येनसर्वमिदन्ततम् ॥ तपसातोषितश्शम्भुर्ददातिपरमव्ययम् ॥ २ ॥ कुमारदर्शनात्सद्यः सफलोहिनृणांसदा ॥ येपापिनोह्यधर्मिष्ठाः श्वपचाश्चपिरोमश ॥ ३ ॥ दर्शनोद्धतपापास्ते भवन्त्येवनचान्यथा ॥ शौनकस्यवचः श्रुत्वा कुमारस्यमहात्मनः ॥ ४ ॥ व्यासशिष्योमहाप्राज्ञउवाचचरितंतदा ॥ लोमशउवाच ॥ हतस्सतारकस्सङ्ख्येदेवानामजयोयतः ॥५॥ अवध्यश्चद्विजश्रेष्ठ कुमारेणविनाक्वचित ॥ महिमाचकुमारस्य सर्वशास्त्रेषुकथ्यते ॥६॥ वेदैश्चागमैश्चापि पुराणैश्चतथैवच ॥ तथोपनिषदैश्चैवमीमांसाद्वितयेनच ॥ ७ ॥ एवंभूतःकुमारोयमशक्योवर्णितुंद्विजाः ॥ योहिदर्शनमात्रेण पुनातिसकलंजगत ॥८॥ त्रातारंभुवनस्यास्यनिशम्यपितृराट्स्वयम् ॥ ब्रह्माणञ्चैवविष्णु

भांति शौनकजी के वचनको सुनकर महात्मा कुमारजी के ॥ ४ ॥ चरितको बड़ेभारी बुद्धिमान् व्यासजी के शिष्य ने उस समय कहा श्रीलोमशजी बोले कि वह तारकासुर सग्राम में मारागया कि जिससे देवताओं की हारहुई थी ॥ ५ ॥ और हे ब्राह्मणश्रेष्ठ ! जोकि श्रीकार्त्तिकेयजी के विना कहींभी किसी से मारने योग्य नहीं था इससे सब शास्त्रोंमें कुमारजीकी महिमा कही जातीहै ॥ ६ ॥ और वेदों व आगमों (तन्त्रादि शास्त्रों) भी और वैसेही पुराणों तथा उपनिषदों व दोनों मीमांसाओं ने भी (१ कर्ममीमांसा २ वेदान्त) कहा है ॥ ७ ॥ हे द्विज ! ऐसे हुये जोकि यह कार्त्तिकेयजी दर्शन सेही सकलजगत् को पवित्र करतेहैं वह वर्णन करने (कहने)

के योग्य नही है याने उनकी महिमाको कोई नहीं कहसक्ता है ॥ ८ ॥ और ब्रह्मा व विष्णु व वैसेही सदा रहनेवाले शिवजीको इस जगत्के रक्षक सुनकर पितरोंके पति (यमराज) आपही ॥ ९ ॥ लोकोंके कल्याणकारी शङ्करजी के समीप गये व बड़ेयत्नवाले होकर उन दक्षिण दिशाके स्वामीने आपही उनकी स्तुतिकिया ॥ १०॥ श्रीयमराजजी बोले कि, पापोंके जलानेवाले प्रकाशरूप देवोंकेस्वामी महादेवजीके लिये नमस्कार हो व जटाजूटधारी क्रीडाकारी और मृत्युके जीतनेवाले रुद्रजी के नमस्कारहो ॥ ११ ॥ व नीलकण्ठ, आकाश के समान सर्वव्यापक व आकाश के अंगो के रूपवाले व सब जगत् के चलानेहारे कालरूप और कालनाथ के लिये

ऽतथाशर्वंसनातनम् ॥ ९ ॥ सययौत्वरितेनैवशङ्करंलोकशङ्करम् ॥ तुष्टावप्रयतोभूत्वादक्षिणस्याःपतिःस्वयम् ॥१०॥ यमउवाच ॥ नमोभर्गायदेवाय देवानाम्पतयेनमः ॥ मृत्युञ्जयायदेवाय रुद्रायचकपर्दिने ॥ ११ ॥ नीलकण्ठाय व्योमाय व्योमावयवरूपिणे ॥ कालायकालनाथाय कालरूपायवैनमः ॥१२॥ यमेनस्तूयमानोहिउवाचप्रभुरीश्वरः॥ किमर्थमागतोसित्वन्तत्सर्वङ्कथयस्वनः ॥ १३ ॥ यमउवाच ॥ श्रूयतान्देवदेवेशवाक्यंवाक्यविशारद ॥ तपसापरमेणै वतुष्टिम्प्राप्तोमिशङ्कर ॥ १४ ॥ कर्मणापरमेणैवब्रह्मालोकपितामहः ॥ तुष्टिमेतिनसन्देहोनराणांपुण्यकर्मणाम् ॥१५॥ तथाहिविष्णुर्भगवान्वेदवेद्यस्सनातनः ॥ यज्ञैरनेकैस्सन्तुष्टउपवासव्रतैस्तथा ॥ १६ ॥ ददातिकेवलम्भावंयेनकैवल्य माप्नुयुः ॥ नरास्सर्वेममतंनान्यथाहिवचोमम ॥ १७ ॥ ददातितुष्टाहुर्गावैभोगस्वर्गादिसम्पदः ॥ सविताह्यायुरारोग्यं

निश्चय से नमस्कारहो ॥ १२ ॥ इस प्रकार यमराजजी से स्तुति किये जातेहुयेही समर्थ परमेश्वर शिवजीने कहा कि तुम किस प्रयोजनके लिये आयेहो उस सबको हमसे कहो ॥ १३ ॥ श्रीयमराजजी बोले कि हे वाक्य विशारद देवदेवेश ! मेरा वचन सुनाजावे कि हे शङ्करजी ! तुम उत्तम तपस्यासेही सन्तोषको प्राप्तहो ॥ १४ ॥ व लोकोंके पितामह ब्रह्माजी पुण्यकर्मवाले मनुष्योंके श्रेष्ठ कर्मसेही तुष्टिको प्राप्तहोते हैं इसमे सन्देह नहीं है ॥ १५ ॥ वैसेही वेदोसे जानने योग्य व सदैव रहनेवाले भगवान् विष्णुजी उपवासों व व्रतों तथा बहुतसे यज्ञोंसे सन्तुष्ट होते हैं ॥ १६ ॥ और सब मनुष्य जिससे कैवल्य मोक्षको प्राप्तहोवेहैं उस केवल (मुख्य) भाव (भक्ति)

को देते हैं यह मेरासत और वचन अन्यथा नहीं है ॥ १७ ॥ व सन्तुष्ट हुईं दुर्गादेवीजी स्वर्गादिभोग और सम्पत्तियों को निश्चय से देती हैं व सूर्य्यजी इस लोकमें आयु और आरोग्यकोही देते हैं अन्यथा नहीं और हे महादेव, शम्भो! अर्घ व पाद्यआदि व चन्दन तथा मन्त्रों के जपसे प्रसन्न हुयेही गणेशजी निर्विघ्नको करेंगे याने विघ्नोंको हरेंगे ॥ १८। १९ ॥ हे शङ्करजी! वैसेही अन्य सब लोकपाल भी यज्ञ वेदपाठ और दानादिकोंसे सन्तुष्टहोकर यथाशक्ति याने अपनी शक्तिके अनुसार फलों के अधिक देनेवाले हैं ॥ २० ॥ परन्तु यहां सब प्राणियोंका बड़ाभारी आश्चर्य भलीभांति हुवाहै कि तुम्हारे पुत्र कुमारजीने स्वर्गके द्वारको वेरसे हीन किया याने किवाड़ों को खोलदियाहै ॥ २१ ॥ और हे महादेवजी ! पापीलोग भी श्रीकार्त्तिकेयजीके दर्शनसे श्रेष्ठस्वर्ग में विचरनेवाले हुये इसमें संशय नहीं है ॥२२॥ हे शम्भो !

ददातीहनचान्यथा ॥ १८ ॥ गणेशोहिमहादेवअर्घपाद्यादिचन्दनैः ॥ मन्त्राद्दत्यातथाशम्भोनिर्विघ्नञ्चकरिष्यति ॥ १९ ॥ तथान्येलोकपास्सर्वेयथाशक्त्याफलप्रदाः ॥ यज्ञाध्ययनदानाद्यैःपरितुष्टाश्चशङ्कर ॥ २० ॥ सम्भूतम्महदाश्चर्यं सर्वेषांप्राणिनामिह ॥ कृतञ्चतवपुत्रेणस्वर्गद्वारंमयावृतम् ॥ २१ ॥ दर्शनाच्चकुमारस्यसर्वेस्वर्गैकसञ्चराः ॥ पापिनोपिमहादेवजातानास्त्यत्रसंशयः ॥ २२ ॥ मयाकिंक्रियतेशम्भोकार्याकार्यव्यवस्थितौ ॥ येशान्तशीलाःसन्तश्चवदान्यानिरविग्रहाः ॥ २३ ॥ जितेन्द्रियाअलुब्धाश्च कामरागविवर्जिताः ॥ याज्ञिकाधर्मनिष्ठाये वेदवेदाङ्गपारगाः ॥ २४ ॥ याङ्गतियान्तिवैशम्भो सर्वेसुकृतिनोपिहि ॥ ताङ्गतिंदर्शनात्सर्वे श्वपचाश्चाधमाधमाः ॥ २५ ॥ कुमारस्यचदेवेश महदाश्चर्यकर्मणः ॥ कार्त्तिक्यांकृत्तिकायोगसहितायांफलंभवेत ॥ २६ ॥ शिवस्यतनयंदृष्ट्वा संयान्तिस्वकुलैस्सह ॥

करनेयोग्य और नहीं करने योग्य कर्मकी व्यवस्थामें मुझसे क्या कियाजाताहै याने मेरा अधिकार उठगयाहै क्योंकि जे सन्त शान्तस्वभाववाले बड़ेदानी और वैर या धनादि लेनेमे हीनहैं ॥ २३ ॥ व जे इन्द्रियोंके जीतनेवाले व लोभसे रहित व चाह और स्नेहसे वर्जित व यज्ञकर्त्ता व धर्ममें परायण व वेदों और वेदांगों के पारगामी हैं ॥२४॥ हे शङ्करजी ! वे सब सुकर्मवाले पुण्यात्माही जिस गतिको जातेहैं उसीगतिको अधमों से अधम श्वपचभी कुमारजीके दर्शनसे प्राप्तहोतेहैं ॥ २५ ॥ हे देवेश ! कृत्तिका नक्षत्रके सयोग सहित कार्त्तिककी पूर्णमासी में आश्चर्य्य कर्मवाले कार्त्तिकेयजी के दर्शनसे बड़ाभारी फलहोवे है ॥ २६ ॥ और हे शिवजी ! लोग

तुम्हारे पुत्रको देखकर बहुती करोड़ों संख्यक अपने कुलोंके साथ अविकार व अविनाशी स्थानको भलीभांति जातेहै ॥ २७ ॥ ऐसे यमराजजीके वचनको सुनकर शङ्करजी ने वचन को कहा ॥ २८ ॥ श्रीशिवजी बोले कि, हे धर्मराजजी! जिन पुण्यकर्मवाले जनों के भीतर प्राप्तहुवा पाप दूर कियागया है उनके मनमें अच्छी श्रद्धा वर्तमान होती है ॥ २९ ॥ और इसलोक में पूर्वपुण्य से कराई हुई उनकी बडीभारी वाञ्छा (इच्छा) अच्छे तीर्थोंमे जाने व सन्तोंके दर्शन के अर्थही उपजतीहै ॥ ३० ॥ और बहुते जन्मोंके अन्त में मुझमे भक्ति पीछेसे होती है व मेरी भक्तिसे संयुत अन्तःकरणवाले लोगोंको लोकमें क्या शेप (बाकी) रहजाता है

कोटिभिर्बहुभिश्चैव स्थानमव्ययमच्युतम् ॥ २७ ॥ यमस्यवचनंश्रुत्वा शङ्करोवाक्यमब्रवीत् ॥ २८ ॥ श्रीशङ्करउवाच॥ येषान्त्वन्तर्गतंपापं जनानांपुण्यकर्मणाम् ॥ निरस्तमास्तिभोधर्म श्रद्धामनासिवर्तते ॥ २९ ॥ सुतीर्थगमनायैव दर्शनार्थंसतामिह ॥ वाञ्छाचमहतीतेषां जायतेपूर्वकारिता ॥ ३० ॥ बहूनांजन्मनामन्ते मयिभावोनुवर्तते॥ मद्भक्तियुक्तचित्तानां लोकेकिमवशिष्यते ॥ ३१ ॥ जन्माजन्मानुवृत्तानांविस्मयंनैवकारयेत् ॥ ३२ ॥ स्त्रीबालशूद्राश्श्वपचाधमाश्चप्राग्जन्मसंस्कारवशाद्यधर्माः ॥ योनिंगताःपापिषुवर्तमानास्तथापिशुद्ध्यामनुजाभवन्ति ॥ ३३ ॥ तथाहितेनमहताविभवन्ति सर्वे येयेषुयेषुविषयेषुभवन्तिविज्ञाः ॥ दैवेनपूर्वरचितेनभवन्तिसर्वे सुरासुरालोकपतिप्रमुख्याः ॥ ३४ ॥ जाताह्यमीभूतगणाश्चसर्वे ह्यमीचयेवैऋषयोदेवताश्च ॥ ३५ ॥ विस्मयोनैवकर्तव्यस्त्वयाचाणुरपिप्रभो ॥ कुमारदर्शनेचैव धर्मराज

याने उनको सब फल मिलते हैं॥ ३१ ॥ इस लिये जन्म जन्मोंसे संसारमें भ्रमतेहुये जीवोंको विस्मय मत करावे ॥ ३२ ॥ हे यमराजजी! पूर्वजन्मके संस्कार के वशहुये ही स्त्री, बालक शूद्र श्वपच और अधम अन्य लोगभी योनिमें प्राप्तहोकर पापियोंमें वर्त्तमानहैं तोभी शुद्धिसे मनुष्य होते हैं ॥ ३३ ॥ वैसेही जेकि जिन्ह जिन्ह विषयोंमे पण्डितहै वे सब उन्हीं उन्हींमें पूजनीय बड़ेभारी उजले कर्म से ऐश्वर्य्यवान् होते हैं क्योंकि देव दैत्य और लोकपालादि सब कोई पूर्वजन्म के रचित दैव (भाग्य) सेही होते हैं ॥ ३४ ॥ व जेये सब प्राणी समूह हैं और जेकि ये ऋषि व देवहैं वे हुयेभी हैं ॥ ३५ ॥ हे समर्थ, धर्मराज! कुमारजी के दर्शनमें तुमको कुछेक

थोड़ाभी विस्मय नही करना चाहिये और तुम मुझसे उसको जानलो या सुनो ॥ ३६ ॥ जोकि वचन कर्मों से संयुत व सबों के फलोंका देनेवाला है वह यह है कि, सबतीर्थ यज्ञ और अनेकभाति के दानभी ॥ ३७ ॥ मनके शुद्धहोने के लिये करने योग्य हैं इसमें विचार नही करना चाहिये और आपही बुद्धिके साथ मनसे परमेश्वर को या तद्रूप आपकोही भावना करे याने ध्यान धरे ॥ ३८ ॥ कि मैं विनाभावसे युक्तहूं याने देहादि विकारों से हीनहूं व निरन्तर आत्मा (सर्वव्यापक) में भलीभांति टिकाभीहूं ॥ ३९ ॥ व सुखदुःख शीत उष्णादि द्विविधा से परेहूं व साक्षात् विकल्प से रहित हूं (जोकि शब्दके ज्ञानसे जानाजाता औरवस्तुसे शून्य है उसको विकल्प कहते हैं) व स्वस्थ नित्य अजित और सदैव समर्थ हूं ॥ ४० ॥ व गुप्त रहनेवाला और कल्पित हुये भेदसमेत विवादों से निश्चयकर वाहर किया गयाहूं

निबोधमे ॥ ३६ ॥ वचनंकर्मसंयुक्तं सर्वेषांफलदायकम् ॥ सर्वतीर्थानियज्ञानि दानानिविविधानिच ॥ ३७ ॥ कार्याणिमनश्शुद्ध्यर्थं नात्रकार्याविचारणा ॥ मनसाभावयेदात्माआत्मनात्मानमेवच ॥ ३८ ॥ अहंविनाभावयुक्तो ह्यात्मसंस्थोनिरन्तरम् ॥ ३९ ॥ द्वन्द्वातीतोनिर्विकल्पोहिसाक्षात्स्वस्थोनित्योनिर्जितोनित्ययुक्तः ॥ ४० ॥ कूटस्थोवैकल्पनाभेदवादैश्चबहिष्कृतः ॥ बोधबोध्यस्स्वतन्त्रश्च प्रभुरस्मिस्स्वयंप्रभः ॥ ४१ ॥ एतज्ज्ञानंवेदविदोवदन्ति सर्वात्मभावेननिरीक्षयन्ति ॥ सर्वातीतंभावगम्यंविदित्वायेज्ञानिनःसमबुद्ध्याचरन्ति ॥ ४२ ॥ विस्मृत्यचैनंस्वात्मानं केवलंबोधलक्षणम् ॥ संसारिणोहिदृश्यन्ते सर्वास्तास्ताजीवराशयः ॥४३॥ अहंब्रह्माचविष्णुश्च त्रयोमीगुणकारिताः ॥ सृष्टिपालनसंहारकारकानान्यथाभवेत्॥४४॥अहङ्कारकृतैर्नैवकर्मणाकारितावयम् ॥ यूयंसर्वेचविबुधामनुष्याश्चखगादयः॥४५॥

व ज्ञानमे जानने योग्य अपने अधीन व आपसेही प्रकाशवाला और सबका स्वामी हूं ॥ ४१ ॥ जेकि वेदोंके जाननेवाले ज्ञानीलोग भक्तिसे प्राप्तहोने (मिलने) योग्य व सबसे परेहुये आत्माको जानकर भेदसेहीन समान बुद्धिसे विचरते हैं वे इसज्ञानको कहते हैं और सबों में अपने या परमेश्वर के भावसे बहुतही देखते या दिखाते हैं ॥ ४२ ॥ और ज्ञान लक्षणवाले इस अपने आत्माको विसरकर सब जीव समूह ससारी देहधारीही देखेजाते है ॥ ४३ ॥ व गुणों से कराये हुये ब्रह्मा व विष्णु और हम ये तीनोंजन जगतकी उत्पत्ति रक्षा और प्रलयके करनेवाले हैं यह कहना अन्यथा नही है ॥ ४४ ॥ क्योंकि अहङ्कार से कियेहुये कर्मसेही करायेहुये हमलोग

व तुम सब देव मनुष्य और आकाश में चलनेवाले पक्षीआदि ॥ ४५ ॥ तथा पशु आदि अन्य बहुत से ये सब देहधारी अलगही हुयेहैं और संसारमें अलग अलग अच्छे गुणवाले हैं ॥ ४६ ॥ व मायासे वशकिये हुये बुद्धिसे पण्डितमाननेवाले हम लोग देव और सब कोई मृगतृष्णामें गिरेपड़े हैं ॥ ४७ ॥ व आपुस में दोष लगाते हुये मिथ्याबोलने में तत्पर विषयों मे स्नेहवाले और सारभूत को नहीं जानतेहुये खल त्रिगुणमय भावसे सम्पन्न हैं ॥ ४८ ॥ व काम क्रोध भय वैर मोह और मत्सरतासे संयुतहैं व जिसकारण आपुसमें दूषण लगाते हैं उससे ब्रह्मज्ञानसेहीन हुये वे बाहेर याने संसारके सामने मुखवाले हैं ॥ ४९ ॥ इसलिये गुणोंके भेदसे इससब

पश्वादयःपृथग्भूतास्तथान्येबहवोह्यमी ॥ पृथक्पृथक्समीचीनगुणवन्तश्चसंसृतौ ॥ ४६ ॥ पतितामृगतृष्णायां मायया चवशीकृताः ॥ वयंसर्वेचविबुधाः प्रज्ञाःपण्डितमानिनः ॥ ४७ ॥ परस्परंदूषयन्तो मिथ्यावादरताःखलाः ॥ त्रैगुण्यभावसम्पन्ना अतत्त्वज्ञाश्चरागिणः ॥ ४८ ॥ कामक्रोधभयद्वेषमोहमात्सर्यसंयुताः ॥ परस्परंदूषयन्तोह्य तत्त्वज्ञाबहिर्मुखाः ॥ ४९ ॥ तस्मादेवंविदित्वाथ असत्यंगुणभेदतः ॥ गुणातीतञ्चस्वस्थंच परमार्थेचदर्शनम् ॥ ५० ॥ यस्मिन्भेदोह्यभेदश्च यस्मिन्रागोविरागताम् ॥ क्रोधोह्यक्रोधतांयाति तद्धामपरमंशृणु ॥ ५१ ॥ नतद्भासयतेशब्दः कृतकृत्याद्यथार्थतः ॥ शब्दोहिजायतेधर्मप्रवृत्तिपरमोयथा ॥ ५२ ॥ प्रवृत्तिश्चनिवृत्तिश्च तथाद्वन्द्वानिसर्वशः ॥ विलयंयान्तियत्रैव तत्स्थानंशाश्वतंमतम् ॥ ५३ ॥ निरन्तरंनिर्गुणंज्ञप्तिमात्रं निरञ्जनंनिर्विकल्पंनिरीहम् ॥ ५४ ॥ सत्तामात्रंज्ञान

को ऐसेही असत्य जानकर अनन्तर गुणोंसे परेहुये स्वस्थ (आपमें टिकेहुये) परमात्माको जानकर परमार्थ में दर्शन होताहै ॥ ५० ॥ जिससे भेद अभेदको व स्नेह वैराग्यको और क्रोधभी अक्रोध याने क्रोधसेहीन भावको प्राप्तहोता है उस उत्तम प्रकाशरूप स्थानको तुम सुनो ॥ ५१ ॥ कि शब्दभी वाक्इन्द्रियका कार्य्य होने से उसको यथार्थ से नहीं प्रकाश करता है क्योंकि शब्द धर्मकी प्रवृत्ति में यथाशक्ति श्रेष्ठ, या परायणहै ॥ ५२ ॥ और संसारमें प्रवृत्ति व निवृत्ति तथा सब सुख दुःखादि द्वन्द्व जहांहीं विनाशको प्राप्तहोते हैं वह स्थान सदैव रहनेवाला मानागया है ॥ ५३ ॥ व अन्तर (भेद) से हीन निर्गुण ज्ञानमात्र मायासे रहित निर्विकल्प और व्या-

पारसे शून्यहै ॥ ५४ ॥ सत्तामात्र ज्ञानसे मिलने योग्य आपही आप सिद्ध व आपसेही प्रकाशवान् और सदैव वेदोंसे जानने योग्य व अगम है ॥ ५५ ॥ जैकि मायाकरके
दुःख से विचारने योग्य मायामय असत्य मूलवाले अनित्य संसारको व मायाकोभी त्यागकर वैरागी हैं और ममता व अहङ्कारादिकों से हीन हैं वे विकल्प (भेद) से
वर्जित बडे श्रेष्ठ स्थानको जातेहैं ॥ ५६ ॥ हे यमराजजी ! संसार कल्पना मूलवालाहै और कल्पना असत्यही है व जिन्होंने कल्पनाको सब ओरसे त्यागदिया वे परमपद
(श्रेष्ठ स्थान) को जाते हैं ॥ ५७ ॥ जैसे सूतीमें चांदीकी बुद्धि व सर्पमें रस्सीकी बुद्धि और सूर्यकी किरणों में जलकी बुद्धि मिथ्या है वैसेही संसारभी मिथ्या है

गम्यंस्वसिद्धं स्वयंप्रभुंवेदवेद्यंत्वगद्यम् ॥ ५५ ॥ अनित्यसंसारममत्वमूलं मायामयंमायया दुर्विचार्यम् ॥ मायांत्य
क्त्वानिर्ममावीतरागा गच्छन्तितेश्रेष्ठतराविकल्पम् ॥५६॥ संसृतिःकल्पनामूला कल्पनाह्यमृतोपमा ॥ यैःकल्पनापरि
त्यक्ता तेयान्तिपरमंपदम् ॥ ५७ ॥ शुक्त्यांरजतबुद्धिश्च रज्जुबुद्धिर्यथोरगे ॥ मरीचौजलबुद्धिश्च मिथ्यामि
थ्यैवनान्यथा ॥५८॥ सिद्धिःस्ववशच्छन्दवर्तित्वंपारतन्त्र्यंहिवैमृषा॥बद्धोहिपारतन्त्र्याख्यो मुक्तःस्वातन्त्र्यभावनः॥५९॥
एकोह्यात्माविदित्वातं निर्ममोनिरविग्रहः ॥ कुतस्तेषांबन्धनञ्च यथाखपुष्पमेवच ॥ ६० ॥ शशविषाणमिवासत्यंज्ञा
निसंसारएवच ॥ किंकार्यंबहुनोक्तेन वचसानिष्फलेनच ॥ ६१ ॥ ममताञ्चाहिनिराकृत्य प्राप्तुकामाःपरंपदम् ॥ ज्ञा
निनस्तेहिविद्वांसो वीतरागाजितेन्द्रियाः ॥ ६२ ॥ यैस्त्यक्तोममताभावो लोभःमोहनिराकृतः तेयान्तिपरमंस्थानं काम

अन्यथा नहीं है ॥ ५८ ॥ अपने वशमें रहना सिद्धि है व पराये अधीन होनाहीं निश्चयसे असत्य दुःखहै क्योंकि जो पराधीन नामकहै वह बँधाहुवा है और अपने
अधीन भावना करनेवाला ससारःसे मुक्त है ॥ ५९ ॥ व आत्मा एकही है उसको जानकर जे लोग ममतासे हीनहैं और देहादि में अहङ्कारसे रहित है उनका बन्धन
किस प्रकार या किससे है कि जैसे आकाश में फूल असत्यही है ॥ ६० ॥ और यह ज्ञानियों का संसार शशके सींगके समान असत्य है इसलिये कहेहुये बहुते विफल
वचनसे क्या कार्य्य है ॥ ६१ ॥ वजेकि जितेन्द्रिय वैरागी ज्ञानीलोग ममताको दूर कर परमपदको प्राप्तहोनेकेलिये इच्छावाले हैं वेही पण्डित हैं ॥ ६२ ॥ और जिन्होंने

ममताभावको त्यागदिया व लोभ और मोहको भी दूरकियाहै व काम और क्रोधसे हीनहै वे उत्तम स्थानको जातेहैं ॥ ६३ ॥ जबतक काम व लोभ व राग और द्वेपका विशेपतासे टिकनाहै तबतक शब्दमात्रके मुख्य जानने या जनानेवाले परिडतलोग भी श्रेष्ठ सिद्धि (मुक्ति) को नहीं प्राप्त होते हैं ॥ ६४ ॥ श्रीयमराजजी बोले कि, हे प्रभो ! शब्दसेही सबकुछ वर्त्तमान होवे है और तुमने शब्दसे हीन ज्ञान व शब्द के अनित्यता भावको कैसे कहाहै ॥ ६५ ॥ हे शभो ! करने व नहीं करने योग्यकी व्यवस्थामें जो कुछ भी कहनेयोग्यहै वह शब्द के विना किसभांति होसक्ताहै उस सबको तुम मुझसे कहो ॥ ६६॥ श्रीशिवजी बोले कि तुम सावधान होकर परमार्थ

क्रोधविवर्जिताः ॥ ६३ ॥ यावत्कामश्चलोभश्च रागद्वेषव्यवस्थितिः॥ नाप्नुवन्तिपरांसिद्धिंशब्दमात्रैकबोधकाः॥ ६४ ॥ यमउवाच ॥शब्दात्सर्वंप्रवर्तेत निःशब्दंज्ञानमेवच॥ अनित्यत्वंहिशब्दस्य कथंप्रोक्तंत्वयाप्रभो ॥ ६५ ॥ प्रतिपाद्यंहियत्किञ्चित्छब्देनैवविनाकथम् ॥ तत्सर्वंकथ्यतांशम्भो कार्याकार्यव्यवस्थितौ ॥ ६६ ॥ श्री शङ्करउवाच ॥ शृणुष्वावहितोभूत्वा परमार्थयुतंवचः ॥ यस्यश्रवणमात्रेणज्ञातव्यंनावशिष्यते ॥ ६७ ॥ ज्ञानप्रवादिनस्सर्वे ऋषयोवीतकल्मषाः ॥ ज्ञानाभ्यासेनवर्तन्ते नतेज्ञानविदोयम॥६८॥ ज्ञानंज्ञेयंज्ञानगम्यं ज्ञात्वाचपरिगीयते ॥ कथंकेनचज्ञातव्यं किंतद्वस्तुविवक्षितम ॥ ६९ ॥ एतत्सर्वंसमासेन कथयामिप्रबोधने ॥ एकोह्यात्माह्यनेकश्चदृश्यतेभेदभावतः ॥ ७० ॥ यथाभ्रामरिकादृष्ट्याभ्राम्यतेचमहीयम ॥ यथात्माभेदबुद्धयाच प्रतिभातिह्यनेकधा ॥ ७१ ॥ तस्माद्विमर्शनेनैव ज्ञा

याने उत्तम अर्थ से समेत वचन को सुनो कि जिसके सुननेमात्रसेही जानने योग्य शेष (बाकी) नहीं रहताहै ॥ ६७ ॥ हे यमराज ! जेकि पापोंसे हीन व ज्ञानके विवाद करनेवाले सब ऋषिलोग ज्ञानके अभ्यास से बर्तते हैं (रहते हैं) वे ज्ञानके पंडित नहीं हैं ॥ ६८ ॥ क्योंकि ज्ञान ज्ञेय और ज्ञानसे मिलने योग्य को जानकर ज्ञानी कहाजाता है व किसभाति किससे जानने योग्य है और वह कहने के लिये इच्छित क्या वस्तु है ॥ ६९ ॥ मैं इस सबको संक्षेप से कहताहू तुम मुझसे जानो याने सुनो कि एकही आत्मा भेदके होनेसे अनेकसा देखाजाता है ॥ ७० ॥ हे यमराजजी ! जैसे घूमतेहुये की दृष्टिसे भूमि भी भ्रमतीसी दीखती है वैसेही आत्मा

भेदकी बुद्धिसे बहुत प्रकार से प्रतीति समेत प्रकाशता है ॥ ७१ ॥ इस लिये वह आत्माही सुननेव निश्चय सहित विचारसेही जानने योग्य है व अच्छे प्रयोग और
विशेषकर मननसे देखने योग्य है ॥ ७२ ॥ इसभांति आत्माको जानकर बंधन से सुख पूर्वक बहुतही छूटजाता है व यह सब स्थावर जंगम जगत् मायाका जाल
है ॥ ७३ ॥ और ममता लक्षणवाला बड़ाभारी यह संसार मायामय है इससे ममता को बाहेरकर बंधन से सुख पूर्वक बहुतही छूटजाता है ॥ ७४ ॥ मैं कौनहूं व तुमभी
कौनहो और महामायाके अवलंबन (आधार) करनेवाले अन्य लोग भी कौनहैं व किससे हैं यह सब प्रपंच छागके गलेवाले स्तनकी नाईं व्यर्थ है ॥ ७५ ॥ हे यम

तव्यःश्रवणेनच ॥ द्रष्टव्यःसुप्रयोगेण मननेनविशेषतः ॥ ७२ ॥ एवंविबुध्यचात्मानं सुखंबन्धात्प्रमुच्यते ॥ मायाजा
लमिदंसर्वं जगदेतच्चराचरम् ॥ ७३ ॥ मायामयोयंसंसारोममतालक्षणोमहान् ॥ ममताञ्चबहिष्कृत्य सुखंबन्धात्प्रमु
च्यते ॥ ७४ ॥ कोहंकस्त्वंकुतश्चान्येमहामायावलम्बिनः ॥ अजागलस्तनस्येव प्रपञ्चोयंनिरर्थकः ॥ ७५ ॥ निष्फलो
यंनिराभासो निस्सारोधूमडम्बरः ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेनात्मानंत्वंस्मरवैयम ॥ ७६ ॥ लोमशउवाच ॥ एवंप्रचोदितस्ते
न शम्भुनाप्रेतराट्स्वयम् ॥ बुद्धोभूत्वायमःसाक्षादात्मभूतोभवत्तदा ॥ ७७ ॥ कर्मणाहिचसर्वेषां शास्ताकर्मानुसार
तः ॥ बभूवशाङ्करोनॄणांभूतानांससमाहितः ॥ ७८ ॥ ऋषयऊचुः ॥ हत्वातुतारकंयुद्धे कुमारेणमहात्मना ॥ अतऊर्ध्वक
श्यतांभोः किंकृतंमहदद्भुतम् ॥ ७९ ॥ सूतउवाच ॥ तारकंघातितंदृष्ट्वा सर्वेदेवास्सवास्सवाः ॥ तुष्टुवुर्मुदितास्तत्रशा

यह संसार प्रकाश से शून्य विफल असार और अंधकारसे घिराहुआ है इस लिये तुम सब बड़े यत्नसे आत्माकोही स्मरणकरो ॥ ७६ ॥ श्री लोमशजी बोले कि ऐसे
उन शंकरजीसे प्रेरित व प्रेतों याने मरेहुये प्राणियोंके स्वामी यमराजजी उस समय ज्ञानी होकर साक्षात् ब्रह्मभूत होगये ॥ ७७ ॥ और एकाग्रचित्तवाले वह कर्मसेही
मनुष्यों के कर्म के अनुसार सिखलाने हार याने दंडदेनेवारे व सब प्राणियों के कल्याण कारक हुये ॥ ७८ ॥ ऋषि बोले कि, हे लोमशजी ! महात्मा श्रीकार्त्तिकेयजीने
युद्धमें तारकासुरको मारकर इसके उपरांत किस अधिकअद्भुत कर्म को कियाहै सो कहो ॥ ७९ ॥ श्रीसूतजी बोले कि, वहां तारकासुर को माराहुवा देखकर आनन्दितहुये

इन्द्रसहित सब देवोंने लोकोंके पवित्रकर्ता शिवकुमारजीकी स्तुति किया ॥ ८० ॥ देवलोग बोले कि, हे शिवजीके नन्दन! कल्याणरूपके लिये नमस्कारहो व तुम्हारे लिये नमस्कारहो हे विश्वबन्धो ! (सब जगत्के प्यारकरनेहारे) तुम्हारे लिये नमस्कारहो हे जगत्के उपजानेवारे ! तुम्हारे लिये नमस्कारहो ॥ ८१ ॥ और जिन्हों ने तुम्हारा दर्शन कियाहै वे श्वपच भी बहुतश्रेष्ठ हैं इससे हे जगद्बन्धो ! तुम्हारे शरणागत हुये हमलोग तुमको नमस्कार करते हैं ॥ ८२ ॥ तब देवोंकी स्तुतिको सुनकर आनन्दसे समेत पर्वतोंने भी पार्वती नन्दन की स्तुतिकिया ॥ ८३ ॥ पर्वत बोले कि, हे देवश्रेष्ठों से पूजने योग्य, ज्ञानके पण्डितों में प्रधान शङ्करजीके पुत्र!

ङ्करिंलोकपावनम् ॥ ८० ॥ देवाऊचुः ॥ नमःकल्याणरूपायनमस्तेशिवनन्दन ॥ विश्वबन्धोनमस्तेस्तु नमस्तेविश्वभावन ॥ ८१ ॥ वरिष्ठाःश्वपचायैस्तु कृतंवैदर्शनंतव ॥ त्वांनमामोजगद्बन्धो त्वांवयंशरणंगताः ॥ ८२ ॥ स्तोत्रंनिशम्यदेवानां गिरयोपिमुदान्विताः ॥ तुष्टुवुस्सर्वभावेनगिरिजानन्दनंतदा ॥ ८३ ॥ गिरय ऊचुः ॥ त्वंनाथोसिह्यनाथानांशङ्करात्मजतेनमः ॥ नमोदेववरैःपूज्यं नमोज्ञानविदांवर ॥ ८४ ॥ नमोस्तुतेदानववर्यहन्तर्नमोस्तुतेदेववर प्रसीद ॥ एवंस्तुतोगिरिभिःशङ्करात्मजोह्युमासुतःकृत्तिकानांसुतश्च ॥ ८५ ॥ तुष्टोब्रवीद्वरदानांवरिष्ठस्तदागिरिभ्योपिवरम्प्रदत्तवान् ॥ श्रीस्कन्दउवाच ॥ यूयंसर्वेपर्वतामेरुमुख्या वन्द्याश्चमेपूजनीयाःप्रयत्नात् ॥ ८६ ॥ तपस्विभिर्ज्ञानिभिःकर्मभिश्च संसेव्यमानानितराम्भविष्यथ ॥८७॥ पुनन्तुविश्वंवचनान्ममनास्त्यत्रसंशयः ॥ पार्वतीयानितीर्थानि भविष्यन्तिनचान्यथा ॥ ८८ ॥ शिवालयानिदिव्यानिदिव्यान्यायतनानिवै ॥ अयनानिविचित्राणि कृत्रिमाणि

तुमहीं अनाथों के नाथहो तुम्हारेलिये नमस्कारहो नमस्कारहो नमस्कारहो ॥ ८४ ॥ हे दानवों में बहुतश्रेष्ठ तारकासुर के मारनेहारे ! तुम्हारे लिये नमस्कारहो हे देववर ! तुम्हारे लिये नमस्कारहो और तुम प्रसन्नहोवो इस प्रकार पर्वतोंने श्रीपार्वतीजी के पुत्र कार्त्तिकेयजी की स्तुतिकिया ॥ ८५ ॥ तब सन्तुष्ट हुये वरदानियों में बडे श्रेष्ठश्रीकुमारजीने पर्वतोंको भी वरदिया और कहा श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि,तुमसब मेरुआदिक पर्वत बड़ेयत्नसे मेरे वन्दनीय और पूजनीय हो ॥ ८६ ॥ व तपस्वियों ज्ञानियों और सुकर्मियों सेभी बहुतही भलीभांति सेवित होतेहुये होवोगे ॥ ८७ ॥ और आप लोग मेरे वचनसे सब जगत्को पवित्रकरें इसमें सन्देह नहींहै व पर्वत

सम्बन्धी तीर्थ होवेंगे अन्यथा नहीं है ॥ ८८ ॥ व दिव्य शिवजी के स्थान व देव सम्बन्धी, मन्दिर व पूजनीय बनाये हुये विचित्र गृह ॥ ८९ ॥ व दिव्य तपोवन व शिवजी के विशेषता समेत रूप और लिंगरूपभी तुम्हारे ऊपर या समीप में होवेंगे अन्य प्रकार से नहीं ॥ ९० ॥ होवेंगे हे पर्वतो! मेरे वचनसे सन्देह नहीं है जोकि पर्वतोंमें उत्तम यह हिमवान्जी आज मेरे मातामह (नाना) हैं ॥ ९१ ॥ वह बड़े भारीभागवालेहैं और तपस्वियोंके फलदाता होवेंगे व पर्वतोंका राजा यह मेरु सबका आधारहीहोवेगा ॥ ९२ ॥ व पर्वतोंमें श्रेष्ठ लोकालोक और बड़े यशवाला उदयाचलभीलिंगरूप भगवान्ही होवेगा अन्य भांतिसे नहीं ॥ ९३ ॥ और श्रीशैल व महेन्द्र वैसेही

महान्तिच ॥ ८९ ॥ तपोवनानिदिव्यानि भविष्यन्तिचनान्यथा ॥ शम्भोर्विशिष्टरूपाणि लिङ्गरूपाणिचैवहि ॥ ९० ॥ भविष्यन्तिनसन्देहो पर्वतावचनान्मम ॥ योयंमातामहोमेद्य हिमवान्पर्वतोत्तमः ॥ ९१ ॥ तपस्विनांमहाभागः फलदोहि भविष्यति ॥ मेरुश्चगिरिराजोयमाश्रयोहिभविष्यति ॥ ९२ ॥ लोकालोकोगिरिवरउदयाद्रिर्महायशाः ॥ लिङ्गरूपोहिभगवान् भविष्यतिनचान्यथा ॥ ९३ ॥ श्रीशैलोहिमहेन्द्रश्चतथासह्याचलोगिरिः ॥ माल्यवान्मलयोविन्ध्यस्तथासौगन्धमादनः ॥ ९४ ॥ श्वेतकूटस्त्रिकूटोहि तथादर्दुरपर्वतः ॥ एतेचान्येचबहवः पर्वतालिङ्गरूपिणः ॥ ९५ ॥ ममवाक्याद्भविष्यन्ति पापक्षयकराह्यमी ॥ एवंवरंददौतेभ्यः पर्वतेभ्यश्चशाङ्करिः ॥ ९६ ॥ तदानन्दीह्युवाचेदंशिवागमपुरस्कृतम् ॥ नन्द्युवाच ॥ त्वयाकृताहिगिरयो लिङ्गरूपिणएवते ॥ ९७ ॥ शिवालयाःकथंनाथपूज्याःस्युःसर्वदैवतैः ॥ श्रीकुमारउवाच ॥ सर्वैर्नृभिश्चदेवैश्च ब्रह्मादिभिरतन्द्रितैः ॥ ९८ ॥ लिङ्गंशिलामयंपूज्यंदेवदेवस्यशूलिनः ॥ नीलंमुक्तंप्रवालंच वैडूर्यंवज्र

सह्याचल पर्वत व माल्यवान् व मलय व विन्ध्याचल तथा यह गन्धमादन ॥ ९४ ॥ व श्वेतकूट व त्रिकूट तैसेही दर्दुरपर्वत ये और अन्यभी बहुतसे पर्वत जोकि लिंग रूप वालेहैं ॥ ९५ ॥ ये मेरे वचनसे पापोंके विनाशकारीहीहोवेंगे इसप्रकार शंकरजीके पुत्रने उन पर्वतोंके लिये वरको दिया ॥ ९६ ॥ तब नन्दीश्वरने शिव सम्बन्धी शास्त्र के आगे करनेहारे कुमारजीके प्रति इस वचनको कहा कि तुमने उन पर्वतों को लिंगरूपीही करदिया ॥ ९७ ॥ हे नाथ! शिवजी के स्थान सब देवों से कैसे पूजने योग्य होवे हैं ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि, आलस्यसे हीन सब ब्रह्मादि देव और मनुष्यों से ॥ ९८ ॥ त्रिशूलधारी देव देवका शिलामय (पत्थर से बनाहुआ) लिंग

पूजनीयहै व नीलम व मोती व मूंगा व वैडूर्य्य और वज्र ॥ ९९ ॥ व गोमेद व पद्मराग व मर्कतमणि वैसेही सोना व तथा चादी तथा सीसे से बनाहुवा लिंग शुभ है ॥ १०० ॥ मैने रत्नो और धातुओं से रचित लिगों कोही तुमसे कहा जेकि पवित्र पूजने योग्य और सब कामोंके देनेवाले हैं ॥ १ ॥ व इन सबोकेभी बीचमें काश्मीर (केशर से बनाहुवा) लिग विशेष होताहै और बाणलिंग (नर्मदेश्वर) काश्मीर लिगसे भी अधिक कहा जाता है ॥ २ ॥ इसलोक में बाणलिंग से अधिक पवित्र अन्य नही देखाजाता है क्योकि वह पूजाकरनेवाले को इसलोक और उस लोकके भी सब फलको देताहैं ॥ ३ ॥ श्रीनन्दीश्वरजी बोले कि, हे सुव्रत! तुमने उत्तमतासे

मेवच ॥ ९९ ॥ गोमेदंपद्मरागञ्च मर्कतंकाञ्चनंतथा ॥ राजतंताम्रमारंच तथानागमयंशुभम् ॥ १०० ॥ रत्नधातुमयान्येव लिङ्गानिकथितानिते ॥ पवित्राण्येवपूज्यानि सर्वकामप्रदानिच ॥ १ ॥ सतेषामपिसर्वेषां काश्मीरंहिविशिष्यते ॥ काश्मीरादपिलिङ्गाच्चबाणलिङ्गंविशिष्यते ॥ २ ॥ बाणलिङ्गात्परंनान्यत्पवित्रमिहदृश्यते ॥ ऐहिकामुष्मिकंसर्वं पूजाकर्तुःप्रयच्छति ॥ ३ ॥ नन्द्युवाच ॥ लिङ्गानामपिपूज्यंस्याद्बाणलिङ्गंत्वयाकथम् ॥ कथितंचोत्तमत्वेन तत्सर्वंवदसुव्रत ॥ ४ ॥ श्रीकुमारउवाच ॥ रेवायास्तोयमध्येच दृश्यन्तेदृषदोहिमे ॥ शिवप्रसादात्तेपिस्युर्लिङ्गरूपाश्चनान्यथा ॥ ५ ॥ श्लक्ष्णामूर्त्तिःप्रकर्तव्या पिण्डिकोपरिसंस्थिता ॥ पूजनीयाप्रयत्नेन शिवदीक्षायुतेनहि ॥ ६ ॥ पिण्डीयुक्तञ्चशास्त्रस्य विधिनापूजयेच्छिवम् ॥ वरदोहिजगन्नाथः पूजकस्यनचान्यथा ॥ ७ ॥ पञ्चाक्षरीयस्यमुखेस्थितायच्चेतोनुवृत्तिःशिवचिन्त

कैसे कहा कि लिंगों के बीचमें बाणलिंग पूजनीय होवे है उस सबको कहो ॥ ४ ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि, जे पत्थरही नर्मदा नदीके जलके भीतर देखेजाते हैं वे भी शिवजीके प्रसादसे लिंगरूप होवे हैं अन्यथा नहीं ॥ ५ ॥ और शिवमन्त्रकी दीक्षासे संयुतजनको सूक्ष्म सुन्दर मूर्त्तिकरना चाहिये जोकि पिंडिका (अर्घा) के ऊपर भलीभांति टिकीहुई बड़े यत्नसे पूजने योग्य है ॥ ६ ॥ इससे अर्घासमेत शिवजीको शास्त्रकी विधिसे पूजे क्योंकि जगत्के स्वामी शङ्करजी पूजाकरनेवालेके वरदाताहैं अन्यभांति से नही ॥ ७ ॥ जिसके मुखमें पञ्चाक्षर (नमः शिवाय) मन्त्र टिकाहै व जिसके चित्तकी अनुवृत्ति (बारबार बर्त्तना) शिवजीके चिन्तवन (ध्यान या

स्मरण) में है व सब प्राणियोंमें समभावहै और किसीकी निन्दा या दोषके कहनेमें मूकता (गूंगापन) है व परस्त्रियोंमें नपुंसकताहै वह पूजक धन्यहै ॥१०८॥

श्रीस्कन्दपुराणेमाहेश्वरखण्डान्तर्गतकेदारखण्डेशैवशास्त्रेभाषाबन्धेसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचितेदेवादिस्तुतिपूर्वककुमारमाहात्म्यंनामैकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

दो० । बत्तिसवें अध्यायमें श्वेतराजको राखि । कालदहनको कीन शिव पूजा महिमा साखि ॥ श्रीलोमशजी बोले कि, हे ब्राह्मणो ! इसभाति उन कार्त्तिकेयजीने शिवजीके प्रसादसे विशेषता समेत उन शिव सम्बन्धी धर्मोंको विस्तारसेही निश्चयकर कहा ॥ १ ॥ जेकि अनेक शास्त्रोंसे संयुत वैसेही कालेमुखवाले हैं और जे कपाल-

नेन ॥ भूतेषुसाम्यम्परिवादमूकताताषण्डत्वमेवंपरयोषिकासु ॥ १०८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेमाहेश्वरखण्डान्तर्गतके
दारखण्डेशैवशास्त्रेनन्दीकुमारसंवादेएकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥ * ॥ ॥ * ॥ * ॥

लोमशउवाच ॥ एवन्तेशिवधर्माश्च कथितास्तेनवैद्विजाः ॥ सविशेषाःपाशुपतात्प्रसादाच्चैवविस्तरात् ॥ १ ॥ अ
नेकागमसंवीतास्तथाकालमुखाश्चये ॥ कापालिकानांभेदाश्च प्रोक्त०यास्तेप्रसादतः ॥ २ ॥ कुमारोहिमहाभागाः शिव
शास्त्रविशारदः ॥ ३ ॥ शौनकउवाच ॥ श्रुतंकुमारचरितं सुविशेषंसुमङ्गलम् ॥ अस्माभिश्चमहाभाग किञ्चित्प्रच्छाम
हेवयम् ॥ ४ ॥ श्वेतस्यराजराजस्य चरितंपरमाद्भुतम् ॥ येनसन्तोषितोरुद्रः शिवभक्त्यामहत्तया ॥ ५ ॥ तेभक्ता
स्तेमहात्मानो ज्ञानिनस्तेचकर्मिणः ॥ येर्चयन्तिमहाशम्भुंदेवंभक्त्यासमन्विताः ॥ ६ ॥ तस्मात्प्रच्छामहेसर्वे चरितंश

धारियोंके भेदहैं उनको प्रसन्नता से बहुतही कहना चाहिये ॥ २ ॥ क्योंकि, हे बड़े भागवाले ऋषियो ! श्रीकार्त्तिकेयजीही शिव सम्बन्धी शास्त्रों में परम पण्डितहैं ॥ ३ ॥ श्रीशौनकजी बोले कि, हे महाभाग ! हमने विशेषतासमेत सुमंगलरूप कुमारजीके चरित्रको सुना और अब हमलोग आपसे कुछ पूंछतेहैं या पूंछेंगे ॥ ४ ॥ कि जिन्होंने बड़ाई के साथ शिवजीकी भक्तिसे रुद्रजीको सन्तुष्ट कियाहै उन राजाओंके राजा श्वेतका चरित्र बड़ा विचित्रहै ॥ ५ ॥ जेकि भक्तिसे संयुत जन क्रीडाकारी या प्रकाश-धारी महाशम्भुजीको पूजते हैं वेही भक्तहैं व वेही महात्माहैं व वेही ज्ञानी और सुकर्मवाले हैं ॥ ६ ॥ इसलिये हम सब लोग शंकरजीके चरितको पूंछते हैं क्योंकि

तुम व्यासजीके प्रसाद से सबको जानतेहो और अन्य कोई नहीं जानता है ॥ ७ ॥ इसभांति उन मुनियोंके वचनको सुनकर लोमशजीने कहा ॥ श्रीलोमशजी बोले कि, हे महाभागो! बड़ा उत्तम अद्भुत चरित्र सुनाजावे ॥ ८ ॥ कि राज्य में सब भोगोंको भोगतेहुये व महात्मा उन श्वेतराजकी मति (बुद्धि) धर्ममेंही भलीभाति उत्पन्न हुई ॥ ९ ॥ व प्रजाओंको धर्मसे अनुरंजित (संयुत) करतेहुये उस राजाने पृथिवीको पालनकिया जोकि ब्राह्मणोंका भक्त व सत्य बोलनेवाला व शूर और निरन्तर शिवजीका स्नेही था ॥ १० ॥ व उसने जब श्रेष्ठ सामर्थ्य से राज्यको शिक्षण किया तब वैसेही भक्तिकरके जीवोंसे परे व प्रकृति से परेहुये व पुराण परमात्मारूप

ङ्करस्यच ॥ व्यासप्रसादात्सर्वंचजानासित्वंनचापरः ॥ ७ ॥ निशम्यवचनन्तेषां मुनीनांरोमशोब्रवीत् ॥ रोमशउवाच ॥ आकर्ण्यतांमहाभागाश्चरितंपरमाद्भुतम् ॥ ८ ॥ तस्यराज्ञोहिचरतो राज्येभोगांश्चसर्वशः ॥ मतिधर्मैस्समुत्पन्नाश्श्वेतस्यचमहात्मनः ॥ ९ ॥ सपृथ्वींपालयामास प्रजाधर्मेणरञ्जयत् ॥ ब्रह्मण्यःसत्यवाक्छूरः शिवभक्तोनिरन्तरम् ॥ १० ॥ राज्यंशशासचतदापरयाचशक्त्या भुक्त्यातथाचैवसमर्चयत्तदा ॥ ११ ॥ शम्भुंपरेषांपरमंपरात्परं शान्तंपुराणंपरमात्मरूपम् ॥ १२ ॥ महीशस्यमहाभाग शौनकश्रूयतांमम ॥ वाचंशिवकथायुक्तां परमाश्चर्यसंयुताम् ॥ आयुस्तस्य परिक्षीणमर्थतःपरमात्मनः ॥ १३ ॥ नचाधयस्सुतस्यैव व्याधयोहिमहीपतेः ॥ तस्यराज्ञोनबाधन्ते तथाचोपद्रवाह्यमी ॥ निरातङ्कोजनोह्यासीन्निरुपद्रवएवच ॥ अकृष्टपच्यौषधयस्तस्यराज्येबभूविरे ॥ १४ ॥ तपस्विनोब्राह्मणाश्च वर्णाश्रमयुताजनाः ॥ महीमङ्गलभूयिष्ठाबभूवसकलातदा ॥ १५ ॥ शिवप्रसादाच्छ्वेतस्य राज्येतस्य

और शान्त स्वभाववाले शिवजीको भलीभाति पूजनकिया ॥ ११ ॥ हे महाभाग, शौनकजी! तुम शिवजीकी कथासे समेत व उत्तम आश्चर्य्य से सन्त मेरे वचनको सुनो कि पूजा करतेहुये बड़े श्रेष्ठ मनवाले उस राजाका आयुर्दाय सब ओरसे क्षीण होकर बीतगया ॥ १२ ॥ व उस महीपतिके मानसरोग और देहवाले रोग भी नही हुये वैसेही ये सब उपद्रव उस राजाको नही बाधा करते, हैं (थे) ॥ १३ ॥ और उसके राज्यमें जनसमूह उपद्रवो से रहित ईतिभीतिसे हीनहुआ व अन्नादि ओषधियां भी विना जोते बोयेही उत्पन्नहुई ॥ १४ ॥ उस समय ब्राह्मण तपस्वी हुये व सब लोग वर्ण और आश्रमके धर्मसे संयुत थे व सब पृथिवी बहुते मंगलो से भरीहुई

होगई ॥ १५ ॥ हे ब्राह्मणो ! उस महात्मा श्वेतराजाके राज्यमें सब प्रजायें शिवजी की प्रसन्नतासे मानसिक रोगोंसे रहित व सदैव आनन्द और सुखवाली थीं॥
और वे सब लोग पुत्रके मरणरूप दुःखको नहीं व अनादरको नहीं व महामारी (हैज़ा) बीमारीको नहीं व दरिद्रताको कभी नहीं प्राप्त होतेहैं ॥ १७ ॥ हे विप्रो ! इस
प्रकार शिव पूजामें प्रीतिवाले महात्मा उस राजाका फलसमेत बहुतही अधिककाल (समय) निश्चयसेही बीतगया ॥ १८ ॥ एक समय यमराजजीनेही परमार्थ (उत्तम
फल) के देनेवाले उन शंकरजीको पूजतेहुये उस राजाके प्रति यमदूतों को पठाया ॥ १९ ॥ और श्वेतको शीघ्रही लेआवो ऐसे चित्रगुप्तके वचन से वे दूत वैसाहीहो

महात्मनः ॥ निराधयः प्रजास्सर्वास्सदानन्दसुखाद्विजाः ॥ १६ ॥ नपुत्रमरणंदुःखं नापमानंनमारिकाः ॥ नदारिद्र्यंचता
स्सर्वे प्राप्नुवन्तिकदाचन ॥ १७ ॥ एवंबहुतरःकालः तस्यराज्ञोमहात्मनः ॥ गतोहिसफलोविप्राः शिवपूजारतस्यवै ॥
१८ ॥ एकदापूज्यमानन्तं शङ्करंपरमार्थदम् ॥ यमोहिप्रेषयामास यमदूतान्नृपम्प्रति ॥ १९ ॥ वचनाच्चित्रगुप्तस्य श्वे
तमानयताश्विति ॥ तथेतिमत्वातेदूता आगताःशिवमन्दिरम् ॥ २० ॥ राजानन्नेतुकामास्ते पाशहस्तामहाभयाः ॥
यावत्समागतायाम्या राजानंददृशुस्त्वरा ॥ २१ ॥ समाधिनापरेणैव संस्थितंशिवमन्निधौ ॥ चुक्षुभुस्तेयदादूताश्चित्र
न्यस्तायथाभवन् ॥ २२ ॥ नचक्रिरेतदादूता राज्ञोधर्मस्यचैवहि ॥ ज्ञात्वासर्वंयमश्चैव आगतःस्वयमेवहि ॥ २३ ॥ उद्द
त्यदण्डंसहसा नेतुकामस्तदानृपम् ॥ ददर्शचमहाबाहुं शिवध्यानपरायणम् ॥ २४ ॥ शिवभक्तियुतंशान्तं केवलज्ञा

ऐसा मानकर शिव सम्बन्धी घरको आये ॥ २० ॥ व राजाको लेजाने के चाही व पाश हाथवाले व बड़े भारी भयानक वे यमराजके सम्बन्धी दूत जबतक भलीभाति
आये तबतक वेगसे उस राजाको देखतेभये ॥ २१ ॥ जोकि श्रेष्ठ, समाधि (योग) सेही शिवजीके समीपमें भलीभांति टिकाथा और जब वे सब दूत क्षोभको प्राप्तहुये
व चित्रमें थापेहुयेकी नाईं होगये ॥ २२ ॥ तब दूतोंने राजाके धर्मका विघ्न नहीं किया व ऐसेही सबको जानकर यमराज भी आपही आये ॥ २३ ॥ और उस समय
एकाएक लेजानेके लिये इच्छावाले उन्होंने दण्डको ऊपर उठाकर शिवजीके ध्यानमें परायण व बड़ी बाहोंवाले राजाको देखा ॥ २४ ॥ और शिवजीकी भक्तिसे संयुत

व शान्ति स्वभाव व केवल ज्ञानको भलीभांति आश्रय याने आधार या सब ओरसे सेवन करनेवाले राजाको देखकर यमराजजी भी बड़े क्षोभको प्राप्तहुये ॥ २५ ॥ और मरेहुये प्राणियों के राजा वह यमराजजी बहुतही विकल होकर शीघ्रही चित्रमें टिकेहुये पुतले के समान होगये और जोकि प्रजाओंके नित्यही विनाश करनेवाले काल-रूप भी हैं ॥ २६ ॥ वह तीक्ष्ण (पैन) धारवाली तलवार व उत्तम ढालसेही संयुत व क्रोधसे समेत होकर उसी क्षणमेंही राजाके सामने आये ॥ २७ ॥ तबतक उन्होंने भी शिवजीकी पूजामें तत्पर उस राजाको और दूतोंके साथ द्वारे में टिकेहुये भयंकर यमराजजी को भी देखा ॥ २८ ॥ और उस समय उन कालने आपही यमराजजी

नसंश्रयम् ॥ यमोपिदृष्ट्वाराजानं परंक्षोभमुपागमत् ॥ २५ ॥ चित्रस्थोह्यभवत्सद्यः प्रेतराजोतिविह्वलः ॥ कालरूपो पियोनित्यं प्रजानांक्षयकारकः ॥ २६ ॥ आगतस्तत्क्षणादेव नृपम्प्रतिरुषान्वितः ॥ खड्गेनशितधारेण चर्मणापर मेणहि ॥ २७ ॥ तावत्तंददृशेसोपि शिवपूजनतत्परम् ॥ यमंचापिस्थितंद्वारि दूतैस्सहभयावहम् ॥ २८ ॥ उवाचकालोहितदायमञ्चैवस्वयम्प्रति ॥ कस्मात्त्वयाधर्मराजन्नानीतोयंनृपोमहान् ॥ २९ ॥ यमदूतसहायश्च भीत वत्प्रतिभासिमे ॥ कालात्ययोनकर्तव्यो वचनान्ममसुव्रत ॥ ३० ॥ कालेनोक्तस्तदाधर्म उवाचप्रश्रितंवचः ॥ तवा ज्ञाञ्चकरिष्यामि नात्रकार्याविचारणा ॥ ३१ ॥ असौदुरत्ययोस्माकं शिवभक्तोनिरन्तरः ॥ चित्रस्थाइवतिष्ठामो भया द्देवस्यशूलिनः ॥ ३२ ॥ यमस्यवचनंश्रुत्वा कालःक्रोधसमन्वितः ॥ राजानंहन्तुमारेभे त्वरितःखड्गमाददे ॥ ३३ ॥

के प्रति कहा कि, हे धर्मराज ! तुम करके यह बड़ा भारी राजा क्यों नहीं लायागया है ॥ २९ ॥ व हे अच्छे व्रतवाले यमराजजी ! दूतोंके सहायक तुम मुझको डरेहुये की नाईं प्रतीत होतेहो याने जान पड़तेहो और मेरे वचनसे काल (समय) का बहुतही बिताना नहीं करना चाहिये ॥ ३० ॥ और तब कालसे कहेहुये धर्मराजने नम्रता समेत वचनको कहा कि, मैं तुम्हारी आज्ञाको करूंगा इसमें विचार करने योग्य नहीं है ॥ ३१ ॥ परन्तु भेदसे हीन यह शिवजीका भक्त हम लोगोंका दुर्गमहै याने हम इसका उल्लंघन नहीं करसक्ते हैं क्योंकि हमलोग क्रीडाकारी त्रिशूलधारी शंकरजीके डरसे चित्रमें टिकेहुये पुतलोंकी नाईं खड़ेहैं ॥ ३२ ॥ इसभांति यमराज

जीके वचनको सुनकर क्रोधसे समेत वेगवान् कालने राजाको मारने के लिये आरम्भ (लगा) किया व तलवारको लिया ॥ ३३ ॥ और आठ सूर्यों से संयुत ढालको
लेकर जबतक बड़े क्रोधसे शिवजीके मन्दिरमें प्रवेशकिया तबतक वह पिनाकनामकधन्वावाले शंकरजी से देखागया ॥ ३४ ॥ जोकि यह ध्यान में टिकेहुये उत्तम
अपने भक्त श्वेतराजाको मारने के लिये इच्छावालाहै और विशेष शुद्ध (निर्मल) ज्ञान व चैतन्यतासमूह रूप परमात्मा ॥ ३५ ॥ जोकि सर्वव्यापक भेदशून्य आप
सेही प्रकाशवान् श्रेष्ठ या उत्तम माया शक्तिवाला और सबके सामने वर्त्तमान या आगे हुवाहै उसको आपहीआप स्थिर मनकरके सर्वव्यापक के भावसे ध्यावते हुये
ऐसे उस राजाको अधिकता समेत भलीभांति देखकर काल ॥ ३६ ॥ जबतक बड़े अहङ्कारसे ऊपर चढ़नेको चाहीहुवा तबतक उस भक्तके समीपमें देखे व नन्दीश्वर

**चर्मचाष्टार्कसंयुक्तं प्रविवेशशिवालयम् ॥ यावत्कोपेनमहतातावद्दृष्टःपिनाकिना ॥ ३४ ॥ स्वभक्तंहन्तुकामोसौ
श्वेतराजानमुत्तमम् ॥ ध्यानस्थितंपरात्मानं विशुद्धज्ञानचिन्मयम् ॥ ३५ ॥ आत्मानमात्मात्मतयानिरन्तरस्स्वयं
प्रकाशंपरमंपुरस्तात् ॥ एवंविधन्तंप्रसमीक्ष्यकालः सञ्चिन्त्यमानंमनसाचलेन ॥ ३६ ॥ यावद्धन्तुकामोभूद्दर्पेणैव
तमन्तकम् ॥ नन्दिकेश्वरमध्यस्थं तावद्दृष्टंतदन्तिके ॥३७॥ शिवेनमहदीशेन भक्तवत्सलबन्धुना ॥ निरीक्षितस्तृ
तीयेन चक्षुषापरमेष्ठिना ॥ ३८ ॥ स्वभक्तंरक्षमाणेनभस्मसाच्चकृतःक्षणात् ॥ ३९ ॥ ददाहतंकालमनेकवर्णं व्यात्त
ननंभीमवदुग्ररूपम् ॥ ज्वालावलीभिःपरिदह्यमानमतिप्रचण्डंभुवनैकभक्षम् ॥ ४० ॥ ददर्शिरेदेवगणास्समेतास्सय
क्षगन्धर्वपिशाचगुह्यकाः ॥ सिद्धाप्सरस्सर्वखगाश्चपन्नगाःपतत्रिणोलोकपालास्तथैव ॥ ४१ ॥ ज्वालामालावृतःकाल**

के बीचमें टिकेहुये उस कालको ॥ ३७ ॥ उत्तम स्थानके वासी बड़े ऐश्वर्य्यवान्, भक्तवत्सल व सबको प्यारकरनेवाले शिवजी ने तीसरे नेत्रसे देखदिया ॥ ३८ ॥
और अपने भक्तकी रक्षाकरते हुये उन्होंने उसको क्षणमेंही बहुतही भस्मकिया ॥ ३९ ॥ व जब ज्वालाकी पंक्तियों से सब ओर जलते हुये व मुखपसारे हुये भयंकरके
समान उग्ररूपवाले अनेकरंगधारी व सब जगत्के मुख्यखानेहारे अत्यन्त प्रचण्ड उस कालको जलाया ॥ ४० ॥ और बड़ेरहुये देव समूह व यक्षोंसमेत गन्धर्व
पिशाच गुह्यक सिद्ध अप्सरस् व सब आकाशगामी पन्नग पक्षी और वैसेही लोकपालों ने देखा ॥ ४१ ॥ व ज्वालाओंकी मालाओं (पंक्तियों) से घिराहुवा काल

शिवजी के आगे टिका ॥ ४२ ॥ तब संज्ञाकोपाये हुये राजाने धीरेसे आंखोंको उघाड़कर वहां अपने आगे जलते हुये अद्भुतरूपवाले उसको देखा ॥४३॥ व तदनन्तर शङ्करजी करके आपही आप हुई आंखोसे उपजीहुई उसे आगसे जलायेजातेहुये कालको राजाने बारबार देखा ॥ ४४ ॥ और सावधानी से हीनहुये उसनरेशने कालाग्नि के उपजानेवाले रुद्रजी से प्रार्थना किया श्वेतराजा बोले कि, शान्तस्वरूप आपसे प्रकाशवान् आत्मज्ञानी रुद्रजीके लिये नमस्कारहो ॥ ४५ ॥ व भेदसे रहित सूक्ष्मता सहित और ज्योतियो के स्वामीके लिये नमस्कारहो हे जगन्नाथ! तुमही सबके माता पिता मित्र और विश्वासके पात्रहो ॥४६॥ व तुमही बन्धु व अपनेजन, व लोकों

ईश्वरस्याग्रतःस्थितः ॥ ४२ ॥ लब्धसंज्ञस्तदाराजा शनैरुन्मील्यलोचने॥ ददर्शपुरतस्तत्र दह्यमानंतमद्भुतम् ॥ ४३ ॥ व्यापंकृशानुनातेन नेत्रजेनस्वयंभुवा ॥ पुनःपुनर्ददर्शाथज्वाल्यमानन्तुशम्भुना ॥ ४४ ॥ प्रार्थयामासव्यग्रो रुद्रंकालाग्निसम्भवम् ॥ राजोवाच ॥ नमोरुद्रायशान्तायस्वज्योत्स्नायात्मवेधसे ॥ ४५ ॥ निरन्तरायसूक्ष्मायज्यो तिषाम्पतयेनमः ॥ त्रातात्वंहिजगन्नाथ पितामातासुहृत्सखा ॥ ४६ ॥ त्वमेवबन्धुःस्वजनो लोकानाम्प्रभुरीश्वरः ॥ किंकृतंहित्वयाशम्भो कोसौदग्धोममाग्रतः ॥ ४७ ॥ नजानामिचकिंजातं कृतंकेनमहत्तरम् ॥एवंप्रार्थयतस्तस्यश्रुत्वा चपरिदेवनम् ॥ ४८ ॥ उवाचशङ्करोवाक्यं बोधयन्निवतंनृपम् ॥ श्रीरुद्रउवाच ॥ मयादग्धोह्ययंकालस्तवार्थेचतवाग्र तः ॥ ४९ ॥ दह्यमानोहिदृश्येत ज्वालामालावृतोमहान् ॥एवमुक्तस्तदातेन शम्भुनाराजसत्तमः ॥ ५० ॥ उवाचप्रश्रि तोभूत्वा वचनंशिवमग्रतः ॥ किमनेनकृतंशम्भोअकृत्यंवदतत्त्वतः ॥ ५१ ॥ यइमांप्रापितोवस्थां प्राणात्ययकरींभव॥

के नायक और ईश्वरहो हे शम्भो! तुमने क्या किया है व मेरे आगे यह कौन जलगयाहै ॥ ४७ ॥ व मैं नही जानताहूं कि क्याहुवाहै और किसने बहुतही बड़ेभारी इस अद्भुत कर्मको किया है इसप्रकार प्रार्थना करतेहुये उसके रोदनको सुनकर ॥ ४८ ॥ उस राजाको बोधकराते हुये की नाई शङ्करजी ने वचनको कहा कि मैनेही तुम्हारे आगे व तुम्हारे लिये इसकालको जलादिया है ॥ ४९ ॥ और ज्वालाकी पंक्तियोंसे घिरा व जलताहुवा बड़ाभारी वह देखाजावे उस समय इसभांति उनशम्भु- जीसे कहेहुये राजसत्तम श्वेतजी ॥ ५० ॥ शिवजी के आगे विनम्रहोकर वचनको बोले कि हे शम्भो! इसने किस अकृत्य नहीं करने योग्य कर्मको कियाहै तुमउसको

यथातथ्यसे कहो॥५१॥ हे महादेवजी! जोकि इस मरण अवस्थाको पहुँचायागया यह कौनहै ऐसे उस राजासे विशेषतासमेत जनायेहुये परमेश्वरने कहा॥५२॥
कि, हे ऐश्वर्य्य संयुत समर्थ महाराज! जो यह इसलोकमें सब प्राणियोंका खानेवालाहै वह यह क्रूर (हिंसक) तुम्हारे खाने के अर्थ इस समय यहां आयाहै॥५३॥
हे विभो, महाराज! उस कारण बहुते जनोंके कल्याणकी पीछेसे इच्छाकर मैंने विशेषसे तुम्हारे अर्थ इसको अपने समीपमें जलादियाहै॥५४॥ क्योंकि जे पापी व
अधिक अधर्मी व लोकके विनाश-करनेवाले और पाखण्ड विवादसे संयुतहैं वे मेरेही मारने योग्यहैं॥५५॥ रुद्रजीके वचनको सुनकर श्वेतजीने वाक्यको कहा कि

**एवंविज्ञापितस्तेन उवाचपरमेश्वरः॥५२॥ भक्षकोयं महाराज सर्वेषाम्प्राणिनामिह॥ भक्षणार्थंतवविभो सोयंक्रूरो
धुनागतः॥५३॥ ममान्तिकंमहाराज तस्माद्दग्धोमयाविभो॥ बहूनांत्वेममन्विच्छ्यतवार्थंसविशेषतः॥५४॥ येपा
पिनोह्यधर्मिष्ठा लोकसंहारकारकाः॥ पाखण्डवादसंयुक्तावध्यास्तेममचैवहि॥५५॥ वाक्यंनिशम्यरुद्रस्य श्वेतो
वचनमब्रवीत्॥ कालोनियामकोलोके लोकानाम्प्रभुरेवच॥५६॥ तवाज्ञाञ्चपुरस्कृत्य त्रैलोक्येविचरत्यसौ॥ भ
याद्यस्यचलोकोयं पुण्यमाचरतेसदा॥५७॥ धर्मनिष्ठाश्चकेचिच्चभक्त्यापरमयातव॥ उपासनरताःकेचिज्ज्ञानिनो
हितथापरे॥५८॥ केचिदध्यात्मसंयुक्ताः कर्म्मयुक्ताश्चकेचन॥ सर्वेहितेकालभयाभिभूताः कुर्वन्तिकर्म्माणिबहूनि
लोके॥५९॥ कालेनयेवैबहवोह्यमीजनावशीकृताब्राह्मणतेनतेवै॥ कालोहिहर्तासचराचरस्य तथाह्यसौपालकोनहि**

लोकमें काल सबका नियम करनेवालाहै और लोगों या लोकोंका स्वामी भी है॥५६॥ और यह लोक जिसके डरसे सदा पुण्यको करताहै वह यह तुम्हारी आज्ञा
को आगेकर त्रिलोकमें विशेषता से चलता फिरताहै या अधिक भोजन करता है॥५७॥ और कोई लोग धर्ममें अधिक स्थितिवाले या टिकेहैं व कोई तुम्हारी उत्तम
प्रशभक्तिसे उपासनामें रतहैं वैसेही अन्य कोई ज्ञानीहैं॥५८॥ व कोई अध्यात्मयोगसे संयुतहैं और कोई सुकर्मों से समेतहैं व कालके डरसे दबे या अनादर किये
गये हुयेही ये सब लोग लोकमें बहुते कर्मोंको करते हैं॥५९॥ हे ब्राह्मण! जेकि बहुतसेही ये जन प्रसिद्धहैं उनको उस कालने निश्चयसे अपने वश कियाहै और-

वह यह कालही स्थावर जंगम जगत्के हरनेवालाहै वैसेही रक्षकहै दूसरा नहींहै ॥ ६० ॥ जिसलिये वहही जगत्के सिरजनेहारा और प्राणभूत है इसलिये तुम इस को फिर शीघ्रही जिलादो क्योंकि जो तुम सृष्टि करने में परायणहो तो कालको तुरन्तही जिवावो ॥ ६१ ॥ और हे शम्भो ! जो तुम इसलोकमें सब प्राणियों के प्रलय करनेवाले हुयेहो तो महात्मा कालका ऐसाही करो ॥ ६२ ॥ हे शंकरजी ! जो कुछहै वह कालके विना नहीं होवेगा इसप्रकार उस प्रतापी राजासे विज्ञापना कियेहुये शिवजीने ॥ ६३ ॥ उस अपने भक्तके करने के लिये इच्छित और वचनको किया व जिस समय ऐश्वर्य्यवान् परमेश्वर व हाथमें पिनाकधन्वाधारी कल्याणकारी महा-

तीयः ॥ ६० ॥ सस्रष्टावैप्राणभूतोस्तियस्मात्तस्मादिमंजीवयस्वाशुभूयः ॥ यदिसृष्टिपरोसित्वं कालंजीवयसत्वरम् ॥ ६१ ॥ यदिसंहारभूतोसि सर्वेषाम्प्राणिनामिह ॥ तर्ह्येवंकुरुशम्भोत्वं कालस्यचमहात्मनः ॥ ६२ ॥ विनाकालेनयत्किञ्चिद्भविष्यतिनशङ्कर ॥ इतिविज्ञापितस्तेन राज्ञाशम्भुःप्रतापिना ॥ ६३ ॥ चकारवचनंतस्य भक्तस्यचचिकीर्षितम् ॥ शम्भुःप्रहस्यचयदाभगवानधीशः सञ्जीवयामासपिनाकपाणिः ॥ ६४ ॥ सकालएवंतरसासुराज्ञा स्वालिङ्गितोयमसखोयमदूतमध्ये ॥ उपस्थितोसौत्वथलब्धसंज्ञस्तुष्टावदेवंवृषभध्वजंतदा ॥ ६५ ॥ मेनेपुरस्त्वग्निमथात्मनोभृशंसविस्मितोवाक्यमिदंबभाषे ॥ कालउवाच ॥ कालान्तकरदेवेशं त्रिपुरान्तककरप्रभो ॥ ६६ ॥ मदनोहित्वयादेव कृतोनङ्गोजगत्पते ॥ दक्षयज्ञविनाशश्च कृतोहिपरमाद्भुतः ॥ ६७ ॥ कालकूटंदुःप्रसह्यं सर्वेषांक्षयकृन्महत् ॥ ग्रसितञ्च

देवजीने बिहँसकर उसको भलीभांति जिलादिया ॥ ६४ ॥ उस समय इसप्रकार उस राजाने यमदूतोंके बीचमें श्रीयमराजजीके मित्र उस कालको अपने अंगमें भली-भांति लिपटालिया अनन्तर सञ्ज्ञाको पाये व समीपमें टिकेहुये उसने बैलकी मूर्त्तिसे चिह्नित ध्वजाधारी क्रीडाकारी शिवजी की स्तुतिकिया ॥ ६५ ॥ व अपने आगे अग्निको बहुतही मानलिया तदनन्तर विस्मयसे संयुतहुये उसने इस वचनको कहा ॥ काल बोले कि, हे कालके नाशक त्रिपुर विनाशक, देवों के स्वामिन्, प्रभो ! ॥ ६६॥ जगत्पते, महादेवजी ! तुमनेही कामदेवको देहसे हीन करदियाहै और बड़ा अद्भुत दक्ष यज्ञका विनाश भी कियाहै ॥ ६७ ॥ हे शम्भो ! जोकि बड़ा भारी विष

सबोंका विनाशकारी व बहुतही दुःसह और अन्य लोगोंके दुःखसे धारण करने योग्य भी था उसको तुमने पिया या खालियाहै ॥ ६८ ॥ व पूजनीय लिंगरूप तुम
करके त्रिलोक व्याप्त (सब ओर भरा) हुवाहै और सब देवों व दैत्योंने भी जगतमें लीन होनेसे या आपमें लीन करनेसे उसको लिंग ऐसा कहाहै कि ॥६९॥ जिस देव-
देवके उत्तम लिंगकी महिमा और अन्तको ब्रह्मा व विष्णुआदि देवोंने भी नहीं जानपायाहै ॥ ७० ॥ हे देवोंके देव, ईश्वर ! तुम्हारे लिये नमस्कारहो हे सब जगत् के
मंगल करनेहारे ! तुम्हारे लिये नमस्कारहो व विषसे काले गलवाले तुम्हारे लिये नमस्कारहो और उन्हीं जटाजूट धारेहुये के लिये नमस्कारहो ॥ ७१ ॥ व कारणों के
कारण तुम्हारे लिये नमस्कारहो नमस्कारहो व मंगलोंके मंगलरूपके लिये नमस्कारहो और हे बुद्धिहीनों के भी पालनेहारे ! ज्ञानियों में ज्ञानस्वरूप व पण्डितों के

त्वयाशम्भो अन्येषामपिदुर्धरम् ॥ ६८ ॥ लिङ्गरूपेणमहताव्याप्तमासीज्जगत्त्रयम् ॥ लयनाल्लिङ्गमित्युक्तं सर्वैरपिसुरा
सुरैः ॥ ६९ ॥ यस्यान्तंनविदुर्देवा ब्रह्मविष्णुपुरोगमाः ॥ लिङ्गस्यदेवदेवस्य महिमानंपरस्यच ॥ ७० ॥ नमस्तेदेवदे
वेश नमस्तेविश्वमङ्गल ॥ नमस्तेशितिकण्ठाय नमस्तस्मैकपर्दिने ॥ ७१ ॥ नमोनमःकारणकारणायते नमोनमो
मङ्गलमङ्गलात्मने ॥ ज्ञानात्मनेज्ञानविदांमनीषिणे मनीषिणामप्यमनीषिणाम्पते ॥ ७२ ॥ त्वमादिदेवोसिपुमान्पुरा
णस्त्वमेवसर्वंजगदेकबन्धो ॥ वेदान्तवेद्योसिमहानुभावो महानुभावैःपरिकीर्त्यमानः ॥ ७३ ॥ त्वंगासिलुम्पासिजगत्त्रित
यंमहेश स्रष्टासिभूतपतिस्त्वनकश्चिदन्यः ॥ इतिस्तुतस्तदातेन कालेनजगदीश्वरः ॥ ७४ ॥ उवाचकालोराजानं श्वेतं
सम्बोधयन्निव ॥ कालउवाच ॥ मनुष्यलोकेसकलेनात्वत्तोनहिविद्यते ॥ ७५ ॥ येनत्वयाजितोहंवै अजेयोभुवनत्रये ॥

बीचमें बुद्धिवारे तुम्हारे लिये नमस्कारहो ॥ ७२ ॥ हे जगत्के एकबन्धो ! तुमहीं पुराने पुरुष व आदिदेवहो व बडे प्रभाववाले सन्तों से सब ओर कहे जातेहुये तुम
पूजनीय प्रभावधारीहो और वेदान्तसे जानने योग्यहो ॥ ७३ ॥ हे महेशजी ! तुमही त्रिलोकको पालतेहो व घालतेहो व सृष्टिकर्त्ताहो व सब प्राणियोंके या आकाशादि
तत्त्वोंके भी स्वामीहो अन्य कोई नहींहै ऐसेही उस कालने तब जगत्के ईश्वरकी स्तुतिकिया ॥ ७४ ॥ और श्वेत राजाको भलीभांति बोधन करतेहुयेकी नाईं कालने
कहा ॥ काल बोले कि, सकल मनुष्यलोकमें तुमसे अन्य कोई पुरुष नहीं है ॥ ७५ ॥ क्योंकि जिस तुमने त्रिलोक में किसीसे नहीं जीतने योग्य मुझको भी जीतलिया

है और यह स्थावर जंगम जगत् मेरा कियाहुआहै ॥ ७६ ॥ जोकि मैं सब देवों के जीतनेवालाहूं व सब जनोंका दुरतिक्रमहूं याने बडे दुःखसे मेरा उल्लंघन होसक्ता है वह मैं तुम्हारा अनुगामी (दास) हुआहूं हे महाराज! तुम त्रिशूलधारी ॥ ७७ ॥ व उत्तम स्थानके वासी देवोंके देव महादेवजी से मेरेलिये अभयको अधिकता से दानकरो उस समय उस कालसेही ऐसा कहेहुये श्वेतराजाने ॥ ७८ ॥ बहुत हँसकर मेघोंके गर्जनेकी नाईं गम्भीरवाणी से उसके प्रति कहा ॥ राजा बोले कि, तुम एक शिवजीका श्रेष्ठरूपहो इसमें संशय नहींहै ॥ ७९ ॥ हे काल! जिससे तुम प्राणियों के पालन व घालन रूपवालेहो उससे सबोंके नियम करानेहारे तुम बहुतही पूज-

मयाकृतमिदंविश्वं जगदेतच्चराचरम् ॥ ७६ ॥ जेताहंसर्वदेवानां सर्वेषांदुरतिक्रमः ॥ सोहन्तेचानुगोजातो महाराज त्रिशूलिनः ॥ ७७ ॥ अभयन्देवदेवान्मे प्रयच्छपरमेष्ठिनः ॥ एवमुक्तस्तदातेन श्वेतःकालेनचैवहि ॥ ७८ ॥ प्रहस्योवाच तंवाण्या मेघनादगभीरया ॥ राजोवाच ॥ शिवस्यरूपंपरमं त्वमेकोनास्तिसंशयः ॥ ७९ ॥ कालस्त्वमसिभूतानां स्थितिसंहाररूपवान् ॥ तस्मात्पूज्यतमोसित्वं सर्वेषाञ्चनियामकः ॥ ८० ॥ त्वद्भयात्कृतिनस्सर्वे शरणंपरमेश्वरम् ॥ व्रजन्तिविविधैर्भावैरात्मलक्षणतत्पराः ॥ ८१ ॥ तेनैवंरक्षितःकालो राज्ञापरमधर्मिणा ॥ शिवप्रसादमापन्नो लब्ध संज्ञोबभूवह ॥ ८२ ॥ तदायमेनसर्वैस्स मृत्युनायमदूतकैः ॥ शिवंप्रणम्यबीभत्सुः श्वेतंराजानमेवच ॥ ८३ ॥ ययौस्वमालयंविप्रा मेनेस्वंजननंपुनः ॥ माययासहपत्न्याच शिवस्यचरितंमहत् ॥ ८४ ॥ अनुसंस्मृत्यसंस्मृत्य विस्मयंपरमं ययौ ॥ कथयामाससर्वेषां दूतानांस्वयमेवसः ॥ ८५ ॥ आकर्णयतांममवचो हेदूतास्त्वरितेनहि ॥ कर्तव्यंहिप्रयत्नेन

नीयहो ॥ ८० ॥ और आत्माके लक्षणों में तत्परहुये सब पुण्यवान् लोग तुम्हारे डरसे बहुत भांतिके भावों करके परमेश्वरके शरणको जातेहैं ॥ ८१ ॥ ऐसेही परम धर्म वाले राजासे रक्षित व शिवजीकी प्रसन्नताको प्राप्तहुआ काल आनन्दसे सञ्ज्ञा याने भलीभांति ज्ञानके पानेहारा होगया ॥ ८२ ॥ तब डरभुत हुआ वह श्रीशिवजी व श्वेतराजाके प्रणामकर मृत्यु यमराज और सब यमदूतोंके साथ ॥ ८३ ॥ अपने घरको गया व फिर अपना जन्म मानताभया हे विप्रो! माया स्त्रीके साथ वह शिवजी के पूजनीय चरित्रको ॥ ८४ ॥ पीछे या क्रमसे भलीभाति सुमिर सुमिरकर बड़े विस्मयको प्राप्तहुआ और उसने आपही सब दूतोंके बीचमें कहा कि ॥ ८५ ॥ हे दूतो!

तुम लोगों करके शीघ्रही मेरा वचन सुनाजावे और बहुत यत्नसेही करना चाहिये क्योंकि मेरा कहना अन्यथा नहीं है ॥ ८६ ॥ काल बोले कि, लोकमें जे कोई विभूति
से त्रिपुण्ड्रको धारण करेहैं व जे जटाधारी है और जे रुद्राक्षके धरनेवाले हैं वैसेही जे अन्य लोग शिवजीके नामसे ॥ ८७ ॥ जीविकाके कारण दम्भसे संयुत (छली)
हैं व जे पापी और दुष्ट आचारवाले भी मनुष्य शिवजीके वेषमें परायणहैं ये सब ॥ ८८ ॥ आप लोगोंकरके मेरे लोकको कभी लाने योग्य नहीं हैं और उन मायावालों
को भी सदैव बरानाही चाहिये ॥ ८९ ॥ अन्य लोगोंकी क्या कथाहै याने शिवजीसे विमुखजनोंका लाना उचितहै हे दूतो ! उत्तम भक्तिसे संयुत जे सदाशिवको पूजते

नान्यथाममभाषितम् ॥ ८६ ॥ कालउवाच ॥ येत्रिपुण्ड्रंधारयेयुर्लोकेयेचजटाधराः ॥ येरुद्राक्षधराश्चैव तथान्येशिवना
मतः ॥ ८७ ॥ उपजीवनहेतोश्च दाम्भिकाह्यपिमानवाः ॥ पापिनोपिदुराचाराः शिववेषपरायणाः ॥ ८८ ॥ नानीतव्या
भवद्भिश्च ममलोकंकदाचन ॥ वर्ज्यास्तेहिप्रयत्नेन मायिनोपिसदैवहि ॥ ८९ ॥ अन्येषांकाकथाहूता येर्चयन्तिसदाशि
वम् ॥ भक्त्यापरमयायुक्तास्तेरुद्रानात्रसंशयः ॥ ९० ॥ रुद्राक्षमेकंशिरसाबिभर्तियस्तथात्रिपुण्ड्रंचललाटमध्ये ॥ प
ञ्चाक्षरंयेप्रजपन्तिसाधवः पूज्याभवद्भिश्चनचान्यथाक्वचित ॥ ९१ ॥ यस्मिन्राष्ट्रेचवादेशे ग्रामेवापिविचक्षणः ॥ शि
वभक्तोनदृश्येत तच्छ्मशानाद्विशिष्यते ॥ ९२ ॥ तंराष्ट्रंदेशमित्याहुः सत्यंप्रतिवदाम्यहं ॥ यस्मिन्वसतिनित्यं
हि शिवभक्तिसमन्वितः ॥ ९३ ॥ एवमाज्ञापयामास यमोपिनिजकिङ्करान् ॥ तथेतिमत्वातेसर्वे तूष्णीमासन्सुविस्मि

हैं वे रुद्रही हैं इसमें संशय नहीं है ॥ ९० ॥ और जो कोई एक रुद्राक्षको शिर से धारता है वैसेही माथ के मध्य में त्रिपुण्ड्र को लगाता है व जे साधुलोग पञ्चाक्षर
... जाते हैं हे ... कहीं अन्यभांति से नहीं करना चाहिये ॥ ९१ ॥ और जिस राज्य व देश व ग्राम में भी शिवजी का भक्त
... पूजनीय हैं ... राज्य और देश ऐसा कहतेहैं ॥ ९३ ॥ इसप्रकार यमराजजीने भी अपने सेवक दूतोंको आज्ञादिया और वैसाही ऐसा

मानकर बहुत विस्मय समेत हुये वे चुपचाप हो रहगये ॥ ६४ ॥ इसभांतिवाले वह यह सदाशिवजी जगत् के एक धारने या पोषनेहारे व लोकों के गुरु व एक
[illegible] ॥ ९५ ॥ व श्रीमहादेवजी ने [illegible] परमात्मोंकी पराभक्ति से समेत किये हुये [illegible] ॥ ९७ ॥ तब देवों तथा पन्नगों से पूजे जाते हुये व क्षत्रियोंमें बड़े श्रेष्ठ उन श्वेतराजा ने सायुज्य मोक्षको पाया ॥ ९८ ॥

तां ॥९४॥ एवंविधोयंभुवनैकभर्ता सदाशिवोलोकगुरुस्सएकः ॥ दाताप्रहर्तानिजभावयुक्तः सनातनोयंजगदेकबन्धुः॥ ९५ ॥ दग्ध्वाकालंमहादेवो निर्भयन्दत्तवान्प्रभुः ॥ श्वेतस्यराजराजस्य महिमस्वाकरस्यच ॥ ९६ ॥ यदानिर्भयमापन्नः श्वेतराजोमहात्मनः ॥ भक्त्याचपरयायुक्तो बभूवकृतनिश्चयः ॥ ९७ ॥ तदादेवैःपूज्यमानो ऋषिभिःपन्नगैस्तथा ॥ श्वेतोराजन्यवर्योसौशिवसायुज्यमाप्तवान् ॥९८॥ एवंभक्तिपराणाञ्च महेशेचजगद्गुरौ ॥ सिद्धिःकरतलेतेषां सत्यम्प्रतिवदामिवः ॥ ९९ ॥ श्वपचाहिवरिष्ठाःस्युः प्रसादाच्छङ्करस्यच ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन पूजनीयोहिशङ्करः ॥ १०० ॥ बहूनाञ्जन्मनामन्ते शिवभक्तिःप्रजायते ॥ ज्ञानिनांकृतबुद्धीनां जन्मजन्मनिशङ्कर ॥ १ ॥ किम्मयाबहुनोक्तेन संसेव्योहिसदानृभिः ॥ पूजनीयःसदादेवो वन्दनीयस्सदाशिवः ॥ २ ॥ अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासम्पुरातनम् ॥

और मैं सत्य को तुम्हारे प्रति कहता हूं कि, जगत के गुरु (पूजनीय) महेशजी में भक्तिपरायण उनलोगों के करतल (हाथ के बीच) मे ऐसेही सिद्धि टिकी है ॥ ९९ ॥ और जिसलिये शङ्करजीके प्रसाद (प्रसन्नता) से श्वपच भी बहुत श्रेष्ठ होजावे हैं इसलिये शिवजीही सब से बड़े यत्न से पूजने योग्य हैं ॥ १०० ॥ व कीहुई बुद्धिवाले ज्ञानियों के जन्म जन्म में कल्याण करनेवाली शिवजी की भक्ति-बहुते जन्मों के अन्त में अधिकता से होती है ॥ १ ॥ व मेरे बहुत कहने से क्या है मनुष्यों के देव शिवजी कीही सदा पूजा करना चाहिये व सदा भलीभांति सेवा करना चाहिये और सदा वन्दना करना चाहिये ॥ २ ॥ और यहाही इस पुराने इतिहास

को उदाहरण देतेहैं याने सबलोग कहतेहैं कि किरातने जिस बड़े अद्भुत व्रतको कियाहै ॥३॥ व जिसने इस स्थावर जंगम जगतको तार दियाहै॥१०४॥इति श्रीस्कन्दपुराणेमाहेश्वरखण्डान्तर्गतकेदारखण्डेभाषाबन्धेसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचितेश्वेतराजरक्षणार्थकालपराजयपूर्वकशिवपूजादिमाहात्म्यकथनन्नामद्वात्रिंशोऽध्यायः॥ ३२ ॥

दो० । तेंतिसवें अध्याय में कहि किरात इतिहास । श्रीशिवरात्रि महात्म्य इत कीन्ह्यों बहुत प्रकास ॥ ऋषि बोले कि, हे विप्रेन्द्र! वह किरात किस नामवाला था और उसने किस व्रतको किया है जिस लिये हमलोगों को परम (अधिक) कौतुक है इसलिये तुम सब वृत्तान्त को कहो ॥ १ ॥ मैं उस सबको सुनने के लिये

किरातेनकृतंयच्च व्रतञ्चपरमाद्भुतम् ॥ ३ ॥ येनैवतारितंविश्वं जगदेतच्चराचरम् ॥ १०४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकेदारखण्डेशैवशास्त्रेश्वेतराजरक्षणार्थंकालपराजयपूर्वकशिवपूजादिमाहात्म्यकथनंनामद्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

ऋषयऊचुः ॥ किंनामाचकिरातोसौ किन्तेनव्रतमाहितम् ॥ तस्मात्कथयविप्रेन्द्र परंकौतूहलंहिनः ॥ १ ॥ तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामि याथातथ्येनकथ्यताम् ॥ नह्यन्योविद्यतेलोके त्वद्विनाचैवशङ्कर ॥ २ ॥ तस्मात्कथयभोविप्रसर्वंशुश्रूषतांहिनः ॥ एवमुक्तस्तदातेन शौनकेनमहात्मना ॥ ३ ॥ कथयामासतत्सर्वं पुल्कशेनकृतन्तुयत् ॥ लोमशउवाच ॥ आसीत्पुरामहारौद्रश्चण्डोनामदुरात्मवान् ॥ ४ ॥ क्रूरःशठोतिनिष्कृपो भूतानाञ्चभयप्रदः ॥ जलेसमत्स्यान्दुष्टात्मा घातयत्यनिशङ्खलु ॥ ५ ॥ भल्लैर्मृगाञ्छ्वापदांश्च कृष्णसारान्ससल्लकान् ॥ खड्गैनैवतुदुष्टात्मा ऋष्ट्याकांश्चिच्चपाप

इच्छा करता हूं इस कारण आप करके यथातथ्य से कहाजावे हे कल्याणकर! तुम्हारे विना लोक में अन्य कोई कहनेवाला नहीं है ॥ २ ॥ हे विप्र! उससे तुमहीं सुनना चाहते हुये हमलोगों के आगे सबको कहो तब उन महात्मा शौनकजीसे ऐसा कहेहुये ॥ ३ ॥ सूतजीने जोकि बधिक किरात से कियागया है उस सबको कहा ॥ श्रीलोमशजी बोले कि, पूर्वसमय में बड़ाघोर एक चण्डनामा हुआ ॥ ४ ॥ जोकि जन्तुओं के मारनेवाला शठ व दया से हीन और सब प्राणियों का भयदायक था वह दुष्टात्मा जलमें मछलियों को निरन्तर निश्चयकर मारता है ॥ ५ ॥ और दुष्ट अन्तःकरणवाला पापी व भालों तलवारों व दुधाराओं से कोई

कृष्णसार मृग और स्याही समेत श्वापदोंको भी मारता था॥ ६ ॥ व दुष्टजनों का प्यारा या प्यार करनेहारा बड़ापापी व कुपित हुआ ही किरात पक्षियों और विशेष से ब्राह्मणों को मारे या मरावे है ॥ ७ ॥ व उस बधिक किरात की स्त्री भी वैसेही बड़ी भयानक थी ॥ ८ ॥ इसभांति बिहरते हुये उसका बहुत समय बीतगया और पापसमूह में अधिक स्नेहवाले उस किरात के बहुत से काल के जाते होतेही ॥ ९ ॥ एक समय रात्रि मे बहुतही भूंख और प्यास से व्याकुल हुआ पापी भी तर्कस से बाणको लेकर बेल वृक्ष के ऊपर भलीभाति टिका था ॥ १० ॥ अनन्तर माघ मास में उजेले पक्षकी चतुर्दशी (शिवरात्रि) मे नियम सेही निश्चयकर जागता

वान् ॥ ६ ॥ पक्षिणोघातयेत्क्रुद्धो ब्राह्मणांश्चविशेषतः ॥ लुब्धकोहिमहापापो दुष्टोदुष्टजनप्रियः ॥ ७ ॥ भार्यातथावि धातस्य पुल्कशस्यमहाभया ॥ ८ ॥ एवंविहरतस्तस्य बहुकालोऽव्यवर्त्तत ॥ गतेबहुतिथेकाले पापौघनिरतस्यच ॥ ९ ॥ निषङ्गाद्बाणमादाय क्षुत्पिपासार्द्दितोभृशम् ॥ एकदानिशिपापोपि श्रीवृक्षोपरिसंस्थितः ॥ १० ॥ जन्तून्हन्तुन्धनु ष्पाणिर्जाग्रंस्तुनियमेनहि ॥ माघमासेसितायांवैचतुर्दश्यामथाग्रतः ॥ ११ ॥ मृगमार्गावलोकार्थी बिल्वपत्राण्यपातय त् ॥ श्रीवृक्षपर्णानिबहूनितत्र संछेदयामासरुषान्वितोपि ॥ १२ ॥ श्रीवृक्षमूलेपरिवर्तमानं लिङ्गञ्चतस्योपरिदुष्ट भावः ॥ ववर्षगण्डूषजलंदुरात्मा यदृच्छयातानिशिवेपतन्ति ॥ १३ ॥ श्रीवृक्षपर्णानिचदैवयोगाज्जातंचसर्वंशिवपूज नञ्च ॥ गण्डूषवारिणातेन स्नपनञ्चकृतम्महत् ॥ १४ ॥ बिल्वपत्रैरसंख्यातैरर्चनञ्चमहाकृतम् ॥ अज्ञानिनाहिसो

व जन्तुओं के मारने को हाथ मे धन्वाको लिये हुये व अपने आगे ॥ ११ ॥ मृगों की गली को देखने के लिये चाही व क्रोध से संयुत भी था उसने बिल्वपत्रोंको गिरादिया और वहां बहुत से बिल्वपत्रों को भलीभांति छेदन किया ॥ १२ ॥ व जो कि शिवजी का लिग बिल्ववृक्षके मूल में सब ओर से वर्तमान था उसके ऊपर दुष्टभाववाले दुरात्मा ने मुख से कुल्लाके पानी की वर्षाकिया और वे सब स्वतन्त्रता से शिवजी के ऊपर पड़ते हैं ॥ १३ ॥ जेकि बिल्वपत्र उससे गिराये गये थे और वह सब दैवयोगसे शिवजी की पूजा हुई क्योंकि उस कुल्लाके जलसे बड़ा स्नान कराना कियागया ॥१४॥ हे ब्राह्मणो ! दुष्टचित्त अज्ञानीही बधिक किरातने असंख्य

बिल्वपत्रों से बड़ी भारी पूजाको किया ॥ १५ ॥ तदनन्तर वह दुराचारी जन्तुओंके मारनेवाला माघशुक्लपक्षकी चतुर्दशी में चन्द्रमाके उदय होतेही वृक्षसे उतरा ॥
१६ ॥ और जलके समीपको आकर मछलियोंको मारनेके लिये अधिकतासे चला या लगा करताभया हे द्विज (शौनकजी) ! उस किरातकी स्त्री भी वनोदरी नाम
से प्रसिद्धहुई थी ॥ १७ ॥ जोकि दुष्ट अन्तःकरणवाली पापमें निरत व पराये धनकी हरनेहारीथी वह सन्ध्यासमयमें घरसे निकलकर ग्रामके द्वारके बाहर खड़ी थी ॥
१८ ॥ और जब बहुत कालसे स्वामी नहीं आया तब पतिके आनेकी इच्छा से वनकी गलीको अधिकतासे देखतीहुई किराती चिन्तना करनेलगी ॥ १९ ॥ कि

विप्राः पुल्कशेनदुरात्मना ॥ १५ ॥ माघमासेसितपक्षे चतुर्दश्यांविधूदये ॥ पुल्कशोथदुराचारो वृक्षादवततारसः ॥
१६ ॥ आगत्यजलसङ्काशं मत्स्यान्हन्तुम्प्रचक्रमे ॥ लुब्धकस्यापिभार्याभून्नाम्नाद्विजवनोदरी ॥ १७ ॥ दुष्टात्मापाप
निरता परद्रव्यापहारिणी ॥ गृहान्निर्गत्यसायाह्नेपुरद्वारबहिःस्थिता ॥ १८ ॥ वनमार्गंप्रपश्यन्ती पत्युरागमनेच्छया ॥
चिराद्भर्तरिनायाते चिन्तयामासलुब्धकी ॥ १९ ॥ अद्यसायाह्नवेलायामागतास्सर्वलुब्धकाः ॥ तमःस्तोमेनसंछन्नाश्च
तस्रोविदिशोदिशः ॥ २० ॥ रात्रौयामद्वयंजातं किन्नायातिममप्रियः ॥ विललापाथतत्रैव पुल्कशीघोररूपिणी ॥ २१ ॥
मुक्ताफलाशयाकिंवा मातङ्गवशमागतः ॥ किंवाकेसरलोभेन सिंहेनैवविदारितः ॥ २२ ॥ किम्भुजङ्गफणारत्नहारी
सर्पविषार्दितः ॥ किंवावराहदंष्ट्राग्रघातैःपञ्चत्वमागतः ॥ २३ ॥ मधुलोभेनवृक्षाग्रात्किंवाप्रपतितोभुवि ॥ कान्वेषयामिग

आज सायाह्न समयमें सब किरात अपने घरको आयेहैं व चारों विदिशायें (आग्नेयादिकोण) और दिशायें भी अन्धकारके समूहसे भलीभांति छाईहैं ॥ २० ॥ व रात्रि
में दो पहर बीतेहुये हैं तब भी मेरा प्यारा क्यों नहीं आताहै अनन्तर वहांही घोर रूपवाली किरातीने रोदन किया कि ॥ २१ ॥ याकि मेरापति मुक्ताओंकी आशासे
हाथीके वशमें प्राप्तहुआ याकि गलेके बालों के लोभसे सिंहसेही चीर फार डाला गया ॥ २२ ॥ याकि सर्पोंकी फणाओं के रत्नोंका हरनेहारा वह सर्पोंके विषादि से
याकि वराहकी दाढ़ोंके अग्रभागके घातोंसे मृत्युको प्राप्त होगया ॥ २३ ॥ या कि शहदके लोभसे वृक्षके ऊपरसे भूमिमें अधिकतासे गिराहै मैं कहां जाऊं व कहां पता

लगाऊं और कहां किसके प्रति पूछों ॥२४॥ इसभांति बहुतसे विलापकर वह अपने घरके प्रति ढँपगई व उसने उस पतिके विना कुछेक अन्नका नहीं और जलको भी नहीं खाया पिया ॥ २५ ॥ तदनन्तर पतिकी चिन्तना करतीहुई किरातीने उस रात्रिको बितादिया उसके बाद प्रातःकाल प्राणियोंके मारनेवाली वह वनको आई ॥ २६ ॥ और उस पतिके भोजनके अर्थ अन्नको लेकर उस वनमे विचरतीहुई वेगवती पतिव्रताने बड़ी भारी नदीको देखा ॥ २७ ॥ और उस नदीके तीरमें भलीभांति बैठेहुये अपने पतिको अधिकता से देखकर आनन्दितहुई उसने उस अन्नको किनारे में धरकर नदीको तरने के लिये लगाकिया ॥ २८ ॥ अनन्तर उस किरातने मछली

च्छामि कष्टच्छामिचकम्प्रति ॥ २४ ॥ एवंविलप्यबहुना विवृतास्वगृहम्प्रति ॥ नैवान्नंवैजलंकिञ्चिन्नभुक्तन्तंविनात था ॥ २५ ॥ चिन्तयन्तीपतिञ्चाथ लुब्धकीतान्नयेन्निशम् ॥ अथप्रभातवेलायां पुल्कशीवनमाययौ ॥ २६ ॥ अशना र्थञ्चतस्यान्नमादायत्वरितासती ॥ भ्रममाणावनेतस्मिन्ददर्शमहतींनदीम् ॥ २७ ॥ तस्यास्तीरेसमासीनं स्वपति म्प्रेक्ष्यहर्षिता ॥ तदन्नंकूलतःस्थाप्य नदीन्ततुंप्रचक्रमे ॥ २८ ॥ निरीक्ष्यसोथमत्स्यान्नं प्रियाञ्चैवसदृष्टवान् ॥ तस्य भार्यातथायान्ती जलमध्येपपातच ॥ २९ ॥ सतदोद्धृत्यतांतस्माज्जलात्प्रान्तंसमानयत् ॥ तावत्तयोक्तश्चण्डः सए हिशीघ्रन्तुभक्षय ॥ ३० ॥ अन्नन्त्वदर्थमानीतमुपोष्यदिवसंमया ॥ कृतङ्किमद्यरेमन्द गतेहनिचकिंकृतम् ॥ ३१ ॥ नाशितञ्चत्वयामूढ लङ्घनेनाद्यपापिना ॥ नद्यांस्नातौतथातौच दम्पतीचशुचिव्रतौ ॥ ३२ ॥ यावद्भोक्तुंगतौतत्र ताव च्छ्वैकस्समागतः ॥ तेनसर्वंभक्षितञ्च तदन्नंस्वयमेवहि ॥ ३३ ॥ चण्डाप्रकुपितातत्र श्वानंहन्तुमुपस्थिता ॥ निवारिता

समेत अन्नको देखकर प्यारी स्त्री को भी देखा और वैसेही आतीहुई उसकी स्त्री जलके बीचमें गिरी याने डूबगई ॥ २९ ॥ तब वह उसको उस जलसे निकालकर तीरमें भलीभांति लाया तबतक उस स्त्रीने उस चण्ड से कहा कि तुम शीघ्रही आवो और अन्नको खावो ॥ ३० ॥ क्योंकि दिन में उपासकर मुझकरके तुम्हारे अर्थ अन्न लायागयाहै हे मन्द ! तुमने आज क्या किया और बीतेहुये दिनमें भी क्या किया ॥ ३१ ॥ व हे मूढ़ ! तुमने उपाससे आज नहीं भोजन कियाहै और वैसेही नदीमें नहायेहुये अच्छे पवित्र व्रतवाले वे स्त्री व पुरुष ॥ ३२ ॥ जबतक खाने के लिये गये तबतक वहा एक कुत्ता भलीभांति आया और उसने आपही

उस सब अन्नको खालिया ॥ ३३ ॥ जब वहां अधिक कोपसंयुत चण्डा किराती उस श्वानको मारने के लिये समीपमें टिकी याने तैयारहुई तबहीं चण्डने बहुतही क्रोधित चण्डाको निवारण करदिया ॥ ३४ ॥ कि हे शुभे! तुमको इस कूकुर को नहीं मारना चाहिये इसने निश्चयसे क्या कियाहै और जिससे इस पापीनेही हमारे व तुम्हारे अन्नको खालिया है ॥ ३५ ॥ उससे हे मूढ़! तुम उसको भोजनकरो क्योंकि आज भूखे होवोगे इस किराती से ऐसा कहेहुये व शिवजीको प्यार करनेवाले या उनके प्यारे इस चण्डने उससे कहा कि ॥ ३६ ॥ श्वानने जिस अन्नको खायाहै उससे मैं सन्तुष्ट हुआहूं व बीतेहुये आयुषवाले मुझको विनशनेहारे इस शरीर से क्याहै ॥ ३७ ॥ और लोकमें देह दुर्लभहै ऐसा मानकर सब भावसे आदर कियेहुये जे लोग क्षणभर में भंग होने स्वभाववाले अपने शरीरकोही पोषते हैं ॥ ३८ ॥ वे

हिचण्डेन चण्डाप्रकुपितातदा ॥ ३४ ॥ नहन्तव्यस्त्वयाश्वावै किमनेनकृतंशुभे ॥ आवयोर्भक्षितंचान्नमनेनैवहिपापिना ॥ ३५ ॥ किन्तुभक्षयतंमूढ भविताद्यबुभुक्षितः ॥ अनयोक्तश्चचण्डोसौ बभाषेतांशिवप्रियः ॥ ३६ ॥ यच्छुनाभक्षितञ्चान्नं तेनाहम्परितोषितः ॥ किमनेनशरीरेण नश्वरेणगतायुषः ॥ ३७ ॥ शरीरन्दुर्लभंलोके मत्वैवंक्षणभङ्गुरम् ॥ येपुष्णन्तिनिजंदेहं सर्वभावेनचादृताः ॥ ३८ ॥ मूढास्तेपापिनोज्ञेया लोकद्वयबहिष्कृताः ॥ तस्मान्मानम्परित्यज्य कामञ्चदुरविग्रहम् ॥ ३९ ॥ स्वस्थाभवविमर्शेन तत्त्वबुद्ध्यास्थिराभव ॥ बोधितातेनचण्डासा पुल्कशेनतदाभृशम् ॥ ४० ॥ जागरादिहसम्प्राप्तः पुल्कशोपिचतुर्द्दशीम् ॥ शिवरात्रिःप्रसङ्गाच्च यातातस्यचधीमतः ॥ ४१ ॥ श्रेयसातेनसम्प्राप्तो ज्ञानम्परमदुष्करम् ॥ येनतथाप्रयुक्तत्वं समतायेनजायते ॥ ४२ ॥ तज्ज्ञानम्परमम्प्राप्तं शिवरात्रिप्रसङ्गतः ॥

पापी मूढ़ जानने योग्य हैं और दोनों लोकों से बाहर कियेगये हैं उस कारण तुम गर्व व दुस्त्यज काम और क्रोधको भी सब ओरसे त्यागकर ॥ ३९ ॥ निश्चयसमेत विचारसे स्वस्थहोवो व तत्त्वज्ञानसे अचल होजाओ उस समय उस किरातने उस चण्डाको बहुतही बोधनकिया याने ज्ञानदिया ॥ ४० ॥ और जन्तुओं के मारनेवाला किरात भी यहां जागरणसे चतुर्दशीको भलीभांति प्राप्तहुआ व प्रसंग से उस बुद्धिमान्की शिवरात्रि बीतगईथी ॥ ४१ ॥ उस पुण्यसे वह बहुतही अधिक दुःखसे किये जातेहुये दुर्लभ ज्ञानको प्राप्त होगया जिससे उत्तम योग्यता वैसेही जिससे समता भी होतीहै ॥ ४२ ॥ वह परम ज्ञान शिवरात्रिके प्रसंगसे किरातको प्राप्तभया याने

मिलगया और जबतक जहां दोनोंकी अमावस भी भलीभांतिहुई ॥ ४३ ॥ तबतक वहां शिवजीसे प्रेरित बहुतसे गण आगये और बहुतसे विमान यहां उसके समीपमें आये ॥ ४४ ॥ उसने उन विमानो तथा गणोंको देखा और बधिक किरात भी परमभक्तिसे उनके प्रति बोला ॥ ४५ ॥ कि तुम लोग किसलिये या कहांसे भलीभाति आयेहो जेकि आप सब जने रुद्राक्षों को धारण करनेवाले है और कोई विमानों में बैठे हैं व वैसेही अन्य लोग बैलों में सवार हैं ॥ ४६ ॥ व सब जन श्वेतमणि या पत्थरके समान अंगरंगवालेहैं और सब कोई आधे चन्द्रमाको माथमें धारण किये हुयेहैं व जटाजूटवाले और चमड़ोंसे हुये वस्त्रोंको पहने व सर्पोंकी देहोंसे कियेहुये

यावद्द्वयोश्चसञ्जाता त्वमावास्याचयत्रवै ॥ ४३ ॥ आगताश्चगणास्तत्र बहवःशिवनोदिताः ॥ विमानानिबहून्यत्र आगतानितदन्तिकम् ॥ ४४ ॥ दृष्टानितेनतान्येव विमानानिगणास्तथा ॥ उवाचपरयाभक्त्या पुल्कशोपिचतान्प्रति ॥ ४५ ॥ कस्मात्समागतायूयं सर्वेरुद्राक्षधारिणः ॥ विमानस्थाश्चकेचिच्च वृषारूढास्तथापरे ॥ ४६ ॥ सर्वेस्फटिकसङ्काशाः सर्वेचन्द्रार्धशेखराः ॥ कपर्द्दिनश्चर्मपरीतवाससो भुजङ्गभोगैःकृतहारभूषणाः ॥ ४७ ॥ श्रियान्वितारुद्रसमानवीर्य्या यथातथम्भोवदताशुमोचितम् ॥ पुल्कशेनतदापृष्टा ऊचुस्सर्वेचपार्षदाः ॥ ४८ ॥ रुद्रस्यदेवदेवस्य संनम्राःकमलेक्षणाः ॥ गणाऊचुः ॥ प्रेषिताःस्मोवयंचण्ड शिवेनपरमेष्ठिना ॥ ४९ ॥ आगच्छत्वरितोभूत्वा सस्त्रीकोयानमारुह ॥ लिङ्गार्चनंकृतंयच्च त्वयारात्रौशिवस्यच ॥ ५० ॥ तेनकर्मविपाकेन तृप्तोसिशिवसंनिधौ ॥ तथोक्तोवीरभद्रेण पुल्कशः प्रहसन्निव ॥ ५१ ॥ समुवाचस्वयाबुद्ध्या प्रस्तावसदृशंवचः ॥ किम्मयाकृतमद्यैव पापिनाहिंसकेनहि ॥ ५२ ॥ मृगया

हारोंसे भूषितहैं ॥ ४७ ॥ और शोभासमेत व रुद्रजीके समान वीर्य्यवाले हैं हे सब जनो! तुमलोग मुझसे यथातथ्य उचितको शीघ्रही कहो तब बाधकसे पूंछहुये उन पार्षदोंने कहा ॥ ४८ ॥ जेकि देवोके देव शिवजीके सम्बन्धी व भलीभांतिसे नये हुये हैं ॥ गण बोले कि, हे चण्ड! उत्तम स्थानके वासी शिवजी से हम पठाये गये है ॥ ४९ ॥ स्त्रीसमेत तुम वेगवान् होकर आवो और विमानमें चढ़ो व जोकि तुमने शिवजी की रात्रिमें लिंगकी पूजाकिया है ॥ ५० ॥ उस कर्म फलसे तुम शिवजीके समीपमें तृप्तहो उस भांति वीरभद्रजीसे कहेहुये बधिकने हँसतेहुयेकी नाईं ॥ ५१ ॥ प्रस्तावके समान वचनको अपनी बुद्धिसे भलीभांति कहा कि जन्तुओंके मारनेवाले

ही मैं पापीने आजही क्या कियाहै ॥ ५२ ॥ और शिकार में रसिक भी व दुष्टचित्तवाला व नित्यही पापकर्ता मैं बधिक किसभांति स्वर्गको जाताहूं ॥ ५३ ॥ और हे महाभाग ! तुम यथाविधिसे सबको निश्चय से कहो इसप्रकार कारणको पूंछतेहुये उस किरातसे यथाविधि करके ॥ ५४ ॥ शिवधर्मसे आनन्दसमेत उन्होंने उस सबको कहा श्रीवीरभद्रजी बोले कि, जोकि श्रीमहादेवजी देवोंके देव व क्रीडाकारियों के स्वामी व परमेश्वर ॥ ५५ ॥ और श्रीपार्वती जी के पति हैं वह स्त्री समेत तुमसे आज प्रसन्न है क्योंकि हे चण्ड ! तुमने अमावास्यान्त मास के क्रमसे माघ में याने फागुन बदी चतुर्दशी शिवरात्रि में प्रसंग से हुये उत्तम लिंगपूजनको

रसिकोप्येव पुल्कशस्तुदुरात्मवान् ॥ पापाचारोह्यहंनित्यं कथंस्वर्गंव्रजाम्यहम् ॥ ५३ ॥ कथयस्वमहाभाग सर्वञ्चैव यथाविधि ॥ इत्येवम्पृच्छतस्तस्य पुल्कशस्ययथाविधि ॥ ५४ ॥ कथयामासतत्सर्वं शिवधर्ममुदान्वितः ॥ वीरभद्र उवाच ॥ देवदेवोमहादेवो देवानांपतिरीश्वरः ॥ ५५ ॥ परितुष्टोद्यहेचण्ड सभार्यस्यउमापतिः ॥ प्रासङ्गिकंत्वयामाघे कृतंलिङ्गार्च्चनम्परम् ॥ ५६ ॥ शिवतोषकरञ्चाद्य पूतोसित्वंनसंशयः ॥ शिवरात्र्यांप्रसङ्गेन कृतमर्चनमेवच ॥ ५७ ॥ कोलंनिरीक्ष्यमाणेन बिल्वपत्राणिचैवच ॥ छेदितानित्वयाचण्ड पतितानितदैवहि ॥ ५८ ॥ लिङ्गस्यमस्तकेतानि तेन त्वंसुकृतीप्रभो ॥ ततश्चजागरोजातो महावृक्षोपरिध्रुवम् ॥ ५९ ॥ तेनैवजागरेणैव तुतोषजगदीश्वरः ॥ छलेनैवमहाभाग कोलसन्दर्शनेनहि ॥ ६० ॥ शिवरात्रिदिनंह्यत्रप्रसङ्गेनाप्युपोषितम् ॥ तेनोपवासेनसजागरेण तुष्टोह्यसौदेववरोमहात्मा ॥ ६१ ॥ तवप्रसादेनमहानुभावो ददातिसर्वान्वरदोमहांश्च ॥ एवमुक्तस्तदातेन वीरभद्रेणधीमता ॥ ६२ ॥ पुल्क

किया है ॥ ५६ ॥ जो कि व्रत शिवजी के सन्तोष करनेवाला है उस से तुम आज पवित्रहो इस में संशय नहीं है शिवरात्रि मे प्रसंग से पूजाही कीगई है ॥ ५७ ॥ और हे चण्ड ! वराहको बहुतही देखतेहुये तुमसे छेदे हुये याने वाण से काटे हुये जे बिल्वपत्र तबही गिरे हैं ॥ ५८ ॥ वे लिंगके मस्तक पर परे हैं हे प्रभो ! उससे तुम पुण्यवान् हो और तदनन्तर बडे पूजनीय बिल्व वृक्षके ऊपर निश्चयसे जागरण भी हुवा है ॥ ५९ ॥ उसही जागरणसेही जगत् के ईश्वर शिवजी सन्तुष्ट हुये हैं हे महाभाग ! छल से व वराहके भलीभांति देखनेसेही ॥ ६० ॥ यहां तुम करके प्रसंगसे शिवरात्रिका दिन उपोषित हुवाहै याने तुमने उसमें उपास कियाहै उसही

जागरण समेत उपाससे संतुष्ट हुये यह देवश्रेष्ठ महात्मा ॥ ६१ ॥ व बड़ेभारी प्रभाववाले वरदायक महादेवजी तुम को सब देते है उस समय उन बुद्धिमान् वीरभद्र जी से ऐसा कहाहुआ ॥ ६२ ॥ बधिक किरात भी गणो व देवों और सब प्राणियों के भी देखतेही विमान में चढ़गया ॥ ६३ ॥ तब इसके आगे गयेहुये वीणा वंशी मृदङ्गादि और बहुतसी नगरियां व तुरहिया बाजीं ॥ ६४ ॥ व गन्धर्वों के स्वामियों ने गाया व अप्सरासमूहों ने नाचा व सब विद्याधर गण सिद्ध और चारणों ने स्तुति किया ॥ ६५ ॥ व चामरों और बहुतभातिके छत्रों से भी वीजित होता हुआही वह बड़ेभारी महोत्सवसे गन्धमादन पर्वत को लायागया ॥ ६६ ॥ यह चण्ड

शोपिविमानाग्रमारुरोहचपश्यताम् ॥ गणानांदेवतानाञ्च सर्वेषाम्प्राणिनामपि ॥ ६३ ॥ तदादुन्दुभयोनेदु र्भेर्य्यस्तूर्याण्यनेकशः ॥ वीणावेणुमृदङ्गादीन्यस्यचाग्रगतानिच ॥६४॥ जगुर्गन्धर्वपतयो ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥ विद्याधरगणास्सर्वे तुष्टुवुस्सिद्धचारणाः ॥ ६५ ॥ चामरैर्वीज्यमानोहि छत्रैश्चविविधैरपि ॥ महोत्सवेनमहता आनीतोगन्धमादनम् ॥ ६६ ॥ शिवसांनिध्यमगमच्चण्डोसौतेनकर्मणा ॥ शिवरात्र्युपवासेन परमंस्थानमागतम् ॥ ६७ ॥ पुल्कशोपितथाप्राप्तः प्रसङ्गेनसदाशिवम् ॥ किम्पुनःश्रद्धयाभक्त्या शिवायपरमात्मने ॥ ६८ ॥ पुष्पादिकंफलंगन्धं ताम्बूलाक्षतमृद्धिमत् ॥ येप्रयच्छन्तिलोकेस्मिन्रुद्रास्तेनात्रसंशयः ॥ ६९ ॥ ऋषयऊचुः ॥ शिवरात्रिव्रतंसूत कथितञ्चत्वयानघ ॥ आश्चर्यभूतंपरमं कपटेनचयत्कृतम् ॥ ७० ॥ चण्डायपुल्कशायाशु सफलन्तस्यचाभवत् ॥ प्रसङ्गेनापितेनैव

शिवरात्रिमें उपासरूप उस कर्मसे शिवजीकी समीपता को प्राप्तभया और उत्तम स्थानको आया॥६७॥ वैसेही प्रसङ्ग से व्रत को किये हुआ बधिक भी शिवजीको प्राप्त होगया तो उनको फिर क्या कहना है कि परमात्मा शिवजीके लिये श्रद्धा व भक्ति से संयुत ॥ ६८ ॥ जे लोग ऋद्धि समेत फूल आदि फल सुगन्ध पान और अक्षतोंको अधिकतासे देते है वे इस लोकमे रुद्ररूपही है इस में संशय नही है ॥ ६९ ॥ ऋषि बोले कि, हे पापोसेहीन, सूतजी ! तुमने आश्चर्यभूत व उत्तम शिवरात्रि के व्रत को कहा जो कि छलसे कियाहुआ भी ॥ ७० ॥ उस चण्ड किरात को शीघ्रही निश्चय से सफल हुवा और उसही थोडी बुद्धिवाले ने प्रसङ्ग से भी

किया है ॥ ७१ ॥ उस व्रतका क्या फल है व क्या उद्देश है याने इसमें कौन देव पूजनीय है व आगे इसको किसने किया है व यह व्रत किससे हुआ है और किस
लिये किससे पहले कियागयाहै ॥ ७२ ॥ श्रीलोमशजी बोले कि, जब उत्तमस्थान के वासी ब्रह्माजीने सब जगत् को सिरजा तब पहले राशियों से संयुत कालचक्र
हुआ ॥ ७३ ॥ उसमें कार्य्य की सिद्धिके लिये बारह राशियां और सत्ताईस नामवाले नक्षत्र मुख्यहैं ॥ ७४ ॥ इन राशियों और वैसेही नक्षत्रों के साथ खेलताहुवा काल-
चक्र से संयुत प्रचण्ड काल सब जगतको सिरजता है ॥ ७५ ॥ हे ब्राह्मणो ! ब्रह्मा से लेकर स्तम्ब (गुच्छे) पर्य्यन्त को बनाता व पालता और घालडालता है और

**कृतञ्चैवाल्पबुद्धिना ॥ ७१ ॥ किंफलंतस्यचोद्देशः केनचैवपुराकृतम् ॥ कस्माद्व्रतमिदंजातं कुतःकेनपुराकृतम् ॥७२॥
लोमशउवाच ॥ यदासृष्टंजगत्सर्वं ब्रह्मणापरमेष्ठिना ॥ कालचक्रंतदाजातं राशिभिःसंयुतम्पुरा ॥ ७३ ॥ द्वादशराश
यस्तत्र नक्षत्राणितथैवच ॥ सप्तविंशतिसंज्ञानि मुख्यानिकार्य्यसिद्धये ॥ ७४ ॥ एभिस्सर्वम्प्रचण्डश्च राशिभिस्तुडु
भिस्तथा॥कालचक्रान्वितःकालः क्रीडयन्सृजतेजगत् ॥ ७५ ॥ आब्रह्मस्तम्बपर्य्यन्तं सृजत्यवतिहन्तिच ॥ विबद्धम
स्तितेनैव कालेनैकेनभोद्विजाः ॥ ७६ ॥ कालोहिबलवाँल्लोके एकएवनचापरः ॥ तस्मात्कालात्मकंसर्वमिदंनास्त्य
त्रसंशयः ॥ ७७॥ आदौकालोहिकालाच्च जाताःस्वर्लोकनायकाः ॥ ततोलोकाहिसञ्जाता त्रुटिश्चतदनन्तरम् ॥ ७८॥
त्रुटेर्लवोहिसञ्जातो लवाच्चक्षणमेवच ॥ क्षणाच्चनिमिषंजातं प्राणिनाञ्चनिरन्तरम् ॥ ७९॥ निमिषाणाञ्चषष्ट्यावै पल
मित्यभिधीयते ॥ षष्ट्यापलानांघटिका एकानास्त्यत्रसंशयः ॥ ८० ॥ घटिकानाञ्चषष्ट्याचाहोरात्रंविधीयते ॥ पञ्च**

यह उसही एककाल से विशेषता के साथ बँधाहुआ है ॥ ७६ ॥ क्योंकि एककालही लोक में बलवान् है अन्य कोई नहीं है उसकारण यह सब जगत कालात्मक है
इस में संशय नहीं है ॥ ७७ ॥ व पहले कालही हुआ है और काल से स्वर्गलोक के स्वामी हुये हैं तदनन्तर लोक भलीभांति उपजे हैं उसके बाद त्रुटि हुई है ॥
७८ ॥ व त्रुटिसेही लव भलीभांति हुवा है और लव से क्षणहै व क्षणसे निरन्तर प्राणियों का निमिष हुवा है ॥ ७९ ॥ व साठिही निमिषों से पल ऐसा कहाजाता है
व साठिपलों से एकघड़ी (दण्ड) होती है इस में संशय नहीं है ॥ ८० ॥ और साठि दण्डों से दिन व रात्रि कीजाती है व पन्द्रह रात्रि और दिनों से एक पाख

विधान कियाजाता है ॥ ८१ ॥ ऐसेही दो पाखों से एक मास होवै है व बारहमास एक वर्ष होते हैं उस काल को जानने के लिये इच्छावाले पण्डितों को ज्ञान करना चाहिये ॥ ८२ ॥ जो कि परीवा को भलीभांति आदि में कर पूर्णमासी अन्ततक होता है जिससे उसमेंही पक्ष पूरा होजाता है उस से वह पूर्णिमा ऐसी कही जाती है ॥ ८३ ॥ व जो कि पूरे चन्द्रमा से है वह पूर्णमासी देवताओं की प्यारी है और जिसमें निश्चय से चन्द्रमाही नष्टहोता है याने नहीं देखपड़ता है वह पण्डितों से अमावस कहीगई है ॥ ८४ ॥ व अग्निष्वात्तादि पितरोंसे बहुतही प्यारी हुई है यह प्रसिद्ध है और येही तीसो दिन पुण्य समयों से संयुतहै ॥८५॥

दश्यात्त्वहोरात्रात्पक्षमेकंविधीयते ॥ ८१ ॥ पक्षाभ्यांमासएवंस्यान्मासाद्द्वादशवत्सरः ॥ तंकालंज्ञातुकामैश्चकार्य्यं ज्ञानंविचक्षणैः ॥ ८२ ॥ प्रतिपदासमारभ्य पूर्णमास्यन्तमेवच ॥ पक्षःपूर्णोहियस्माच्च पूर्णिमेत्यभिधीयते ॥ ८३ ॥ पूर्णचन्द्रमसायातु सापूर्णादेवताप्रिया ॥ नष्टश्चन्द्रोहियस्यांवैअमासाकथिताबुधैः ॥ ८४ ॥ अग्निष्वात्तादिपितृभ्यः प्रियातीवबभूवह ॥ त्रिंशद्दिनानिह्येतानिपुण्यकालयुतानिच ॥ ८५ ॥ तेषांमध्येविशेषोयस्तंशृणुध्वंद्विजोत्तमाः ॥ योगानांचव्यतीपातउड्डूनांश्रवणोयथा ॥ ८६ ॥ अमावस्यातिथीनाञ्चपूर्णिमाचैवमेवच ॥ संक्रान्तयस्तथाज्ञेयाःपवित्रादानकर्मणि ॥ ८७ ॥ तथाष्टमीप्रियाशम्भोर्गणेशस्यचतुर्थिका ॥ पञ्चमीनागराजस्यकुमारस्यचषष्ठिका ॥ ८८ ॥ भानोश्चसप्तमीज्ञेयानवमीचण्डिकाप्रिया ॥ ब्रह्मणोदशमीज्ञेयारुद्रस्यैकादशीतथा ॥ ८९ ॥ विष्णोःप्रियाद्वादशीचअनङ्गस्यत्रयोदशी ॥ चतुर्दशीतथाशम्भोःप्रियानास्त्यत्रसंशयः ॥ ९० ॥ पूर्णिमासंयुतायातुकृष्णपक्षेचतुर्द

हे द्विजोत्तमो ! उनके बीचमे जो विशेष है उसको तुम लोग सुनो कि जैसे योगों में व्यतीपात व नक्षत्रोंमें श्रवणहै॥८६॥और तिथियोंमें अमावस व ऐसेही पूर्णमासी भी है वैसेही संक्रान्तिया भी दानकर्म में पवित्र जानने योग्य हैं ॥ ८७ ॥ तथा शिवजी की अष्टमी गणेश की चौथि नाग (सर्प्प) राजकी पञ्चमी और छठि कार्त्तिकेयकी प्यारी है ॥ ८८ ॥ व सप्तमी को सूर्य्य की प्यारी जानना चाहिये और नवमी चण्डिकादेवी की प्यारी है व ब्रह्माकी दशमी वैसेही एकादशी रुद्रजी की प्यारी जानने योग्यहै ॥ ८९ ॥ और जैसे विष्णुजीकी द्वादशी व त्रयोदशी तिथि कामदेवकी प्यारी है वैसेही चतुर्दशी शङ्करजी की प्यारीहै इसमें संशय नहीं है ॥९०॥

जो कि चतुर्दशी तिथि कालेपाखमें पूर्णिमा (अमावस) से संयुत होवे उस में सबको उपास करना चाहिये क्योंकि वह शिवजी की सायुज्य मुक्ति करने वाली है ॥ ६१ ॥ व सब पापोंकी विनाशिनी और शिवरात्रि ऐसा विशेष से कही गईहुई प्रसिद्ध है इसमेंही इस पुराने इतिहास को उदाहरण करते हैं याने कहते हैं ॥ ६२ ॥ कि पूर्व समयमें कोई विधवा ब्राह्मणी हुई वह चञ्चला व कामवती और कामी श्वपच के साथ रतिकरनेवाली थी ॥ ६३ ॥ उसमेंही दुष्ट चित्तवाले उस श्वपचका एक पुत्र उत्पन्न हुआ जो कि सब धर्म्मों से बाहर किया गया व दुःसहनाम से प्रसिद्ध भया और दुष्ट अन्तःकरण वालाथा ॥ ६४ ॥ व बडे पापों के प्रयोग से

शी ॥ उपोष्यासातिथिःसर्वैश्शिवसायुज्यकारिका ॥६२॥ शिवरात्रीतिविख्यातासर्वपापप्रणाशिनी ॥ अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासंपुरातनम् ॥ ९२ ॥ ब्राह्मणीविधवाकापिपुराह्यासीच्चचञ्चला ॥ श्वपचेनरतासाचकामुकाकामुकेनहि ॥६३॥ तस्यांतस्यसुतोजातःश्वपचस्यदुरात्मनः ॥ दुःसहोनामदुष्टात्मासर्वधर्मबहिष्कृतः ॥ ९४ ॥ महापापप्रयोगाच्चपापमारभतेसदा ॥ कितवोपिसुरापश्चस्तेयीचगुरुतल्पगः ॥ ६५ ॥ मृगयुश्चदुरात्माचकर्मचाण्डालएवच ॥ अधर्मीसोह्यसद्वृत्त्याकदाचिच्चशिवालयम् ॥ ६६ ॥ शिवरात्र्यांचसंप्राप्तोह्युषितःशिवसन्निधौ ॥ श्रवणंशैवशास्त्रस्ययदृच्छाजातमन्तिके ॥ ६७ ॥ शिवस्यलिङ्गरूपस्यदर्शनञ्चस्वयम्भुवः ॥ एकरात्रोषितोदुष्टःशिवरात्र्यान्तुजागरात ॥ ९८ ॥ तेनकर्मविपाकेनपुण्यांयोनिमवाप्यसः ॥ भुक्त्वापुण्यकृताँल्लोकानुषित्वाशाश्वतीसमाः ॥ ९९ ॥ चित्राङ्गदस्यपुत्रोभूद्

सदैव पापको आरंभ करता, है, (था) व छली व मदपिया व चौर और गुरुकी शय्या में बैठनेवाला था ॥ ६५ ॥ व शिकारी व दुष्टचित्त और ऐसेही कर्मों से चाण्डाल था वहही अधर्मी कभी असत् (वर्जित) वृत्तिसेही शिवजी के स्थानको ॥ ६६ ॥ शिवरात्रिमें भलीभांति प्राप्तहुआ और शिवजी के समीप में उपासा हुआ बसा व निकट में उसको शिव सम्बन्धी शास्त्रका सुनना स्वतन्त्रतासे होगया ॥६७॥ व आपही आप उपजेहुये लिङ्गरूप शिवजी का दर्शन भया और वह दुष्ट शिवरात्रि में जागरणसे एक रात्रि उपासा हुआ बस रहाथा ॥ ६८ ॥ वह उस कर्म फलसे पुण्य (उत्तम) योनि में जन्म को पाकर व पुण्यसे किये हुये लोकों को भोगकर

व निरन्तरवाली वर्षोंतक बसकर ॥ ९९ ॥ चित्रागद का पुत्र हुआ जो कि राजेश्वरों के लक्षणोंवाला व सुभग व सुन्दरी स्त्रियों का प्यारा और विचित्रवीर्य्य नाम से प्रसिद्ध था वह ॥ १०० ॥ महात्मा बड़े भारी राज्यको प्राप्त होकर अहङ्कारसे हीन हुआ और शिवजी में भक्ति को अधिकतासे करता हुआ वह शिव सम्बन्धी धर्म में परायण हुआ ॥ १ ॥ व शैव शास्त्रों को आगेकर शिवजी की पूजा में तत्पर था व रात्रि में शिवजी के समीप बडे यत्न से जागरण को कर ॥ २ ॥ शङ्करजी की गाथा को गावे है और आनन्द से उपजे हुये आसुवों के कणों को आखों से वारवार बहुतही छोड़ताहै व रोमांच पुलक से घिराहुआ था ॥ ३ ॥ व शम्भुजी के सुनने से

पालेश्वरलक्षणः ॥ नाम्नाविचित्रवीर्य्योसौसुभगःसुदरीप्रियः ॥ १०० ॥ राज्यंमहत्तमम्प्राप्यनिस्तम्भोहिमहानभूत् ॥ शिवेभक्तिंप्रकुर्वाणःशिवधर्मपरोभवत् ॥ १ ॥ शैवशास्त्रान्पुरस्कृत्यशिवपूजनतत्परः ॥ रात्रौजागरणंकृत्वाप्रयत्नाच्छिवसन्निधौ ॥ २ ॥ शिवस्यगाथांगायेत्तुआनन्दाश्रुकणान्मुहुः ॥ प्रमुञ्चतिचनेत्रेभ्योरोमाञ्चपुलकावृतः ॥ ३ ॥ बभूवश्रवणाच्छम्भोःप्रेमलक्षणलक्षितः ॥ सप्रेमभक्तिमापेदेदेवदेवस्यशूलिनः ॥४॥ आयुष्यञ्चव्रतंतस्यशिवध्यानपरस्य च ॥ शिवोहिसुलभोलोकेपशूनांज्ञानिनामपि ॥ ५ ॥ संसेव्यस्तुसुखप्राप्त्यैचैकएवसदाशिवः ॥ शिवरात्र्युपवासेनप्राप्तं ज्ञानमनुत्तमम् ॥ ६ ॥ ज्ञानात्सर्वमनुप्राप्तंभूतसाम्यंनिरन्तरम् ॥ सर्वभूतात्मकंज्ञात्वाकेवलञ्चसदाशिवम् ॥७॥ विना शिवेनयत्किञ्चिन्नास्तिवस्त्वत्रकुत्रचित् ॥ एवंपूर्णंनिष्प्रपञ्चज्ञानंप्राप्नोतिदुर्लभम् ॥ ८ ॥ ज्ञानिनामपिसर्वेषामन्येषा

प्रेमके लक्षणोंसे लक्षित हुआ और उसने देवोंके देव त्रिशूलधारी महादेवजीकी प्रेमभक्तिको पाया ॥ ४ ॥ व शिवजीके ध्यानमें परायणहुये उसका आयुष्य व्रत होगया और जिससे शिवजी लोकमें पशुवों व ज्ञानियोंको भी सुलभहैं ॥ ५ ॥ उससे सुखकी प्राप्ति के लिये सदाशिवही भलीभांति सेवने योग्यहै क्योंकि शिवरात्रिके उपाससे अधिक उत्तम ज्ञान प्राप्त हुआ ॥ ६ ॥ और ज्ञानसे सब देहधारियों के स्वरूपवाले केवल शिवजी को जानकर सब भूतोंकी समता निरन्तर पीछेसे प्राप्तहुई ॥ ७ ॥ व शिवके विना जो कुछ वस्तुहै वह कहीं भी नहींहै इस प्रकार वह विचित्रवीर्य्य प्रपंचसे रहित अत्यन्त दुर्लभ उस पूरे ज्ञानको प्राप्तहुआ ॥ ८ ॥ जो कि सब ज्ञानियों को

भी दुर्लभहै तो अन्य लोगोंकी क्या कथाहै और ऐसेही मिलेहुये ज्ञानवाला राजा तब निश्चयसे शिवजी का प्यारा होगया ॥ ९ ॥ व शिवरात्रि के उपास से सायुज्यता मुक्ति को प्राप्त भया और उसने शिवजीसे जन्मको पाया जो सुभ्रू करके पहले कहा गयाहै ॥ १० ॥ कि सतीजीके वियोगसेही जटाजूटके पटकनेके शब्दसे जो कि परमात्मा शिवजीके मस्तक से उत्पन्न हुये वह ॥ ११ ॥ दक्षयज्ञ के विनाशनेवाले वीरभद्रजी प्रसिद्धही हैं वैसेही अन्य भी बहुत से जन शिवरात्रि के व्रतसेही ॥ १२ ॥ आगे सिद्धि को प्राप्त हुये हैं और हे ब्राह्मणो ! या भरतादिक देहधारी विप्र व मान्धाता धुन्धुमार व हरिश्चन्द्रादि नरेश भी इसही उत्तम व्रत सेही सिद्धिको प्राप्तहुये हैं

शैवकाकथा ॥ लब्धज्ञानस्तदाराजाजातोहिशिवबल्लभः ॥९॥ मुक्तिंसायुज्यतांप्राप्तःशिवरात्रेरुपोषणात् ॥ तेनलब्धंशिवाज्जन्मपुरायात्कथितंमया ॥१०॥ दाक्षायणीवियोगाच्चजटोत्पाटननिःस्वनात ॥ यउत्पन्नोमस्तकात्सशिवस्य परमात्मनः ॥ ११ ॥ वीरभद्रोहिविख्यातोदक्षयज्ञविनाशनः ॥ शिवरात्रिव्रतेनैवतथान्येबहवोजनाः ॥ १२ ॥ प्राप्ताः सिद्धिंपुराविप्राभरताद्याश्चदेहिनः ॥मान्धाताधुन्धुमारश्चहरिश्चन्द्रादयोनृपाः ॥ १३ ॥ प्राप्ताःसिद्धिंत्वनेनैवव्रतेनपरमेणहि ॥ तस्माद्व्रतेनतेनैवतारिताबहवःकुलाः ॥ १४ ॥ नशक्यतेवर्णयितुंशेषेणापिमहात्मना ॥ आसन्नलीलोभगवान्सईश्वरोवेदान्तवेद्योभुवनैकनाथः ॥१५॥ स्वज्ञोमनोज्ञोमहतांमहेशोमहानुभावैकतमोप्रमेयः ॥ तयासमेतोगिरिराजकन्ययाक्रीडान्वितोसौगिरिराजमस्तके ॥ १६ ॥ द्यूतंतथैवाक्षयुतंपरेशोयुक्तोभवान्यासमभूशंचकार ॥११७॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेमाहेश्वरखण्डान्तर्गतकेदारखण्डेशैवशास्त्रेशिवरात्रिव्रतमाहात्म्यंनामत्रयस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥३३॥

उस कारण उसही उत्तमव्रत से तारे गयेहुये बहुते कुल ॥ १३ । १४ ॥ महात्मा शेषजी करके वर्णन करने के लिये योग्य नहीं होते हैं याने शेषजी भी उनसबोंको नहीं कहसक्ते हैं और जोसमीपमें हुई लीलावाले ऐश्वर्य्यसम्पन्न ईश्वर व वेदान्तसे जाननेयोग्य व लोकों के एक स्वामी ॥ १५ ॥ व आत्मज्ञानी व मनोहर व पूजनीयोंके महेश व बहुतही बड़ाभारी मुख्य प्रभावधारी और अप्रमेय याने सब प्रमाणोंसे परे हैं वह उन पार्वतीजी समेत पर्वतेन्द्रके मस्तकपर क्रीडायुसंयुत हुये ॥ १६ ॥ वैसेही भवानी समेत उन परमेश्वरने पांसा सहित जुवांको बहुतही किया ॥ ११७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेशिवरात्रिव्रतमाहात्म्यंनामत्रयस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

❀ ॥

दो० । चौंतिसवें अध्यायमें शिवगृह नारदगौन । गौरीशङ्कर कीन तब द्यूत खेलविधि जौन ॥ श्रीलोमशजी बोले कि, देवों के देव जगत् के पालनेवाले व वीरभद्रादि बहुते गणो से समेत पूजनीय महादेवजी ने कैलासमें राज्य को किया ॥ १ ॥ जो कि रुद्रजी इन्द्रादि देवों और ऋषियों से सहितहैं व ब्रह्माजी जिनकी स्तुति में परायण है व विष्णुजी दूत या दास के समान सामने टिके हैं ॥ २ ॥ व देव समूहों के साथ इन्द्रजी सेवाधर्म में तत्पर हुये हैं व चन्द्रमा जिनके छत्रधारी हैं व वायु देव चौर चलाने वाले है !! ३ ॥ व अग्निदेव जिनके सदैव निरन्तर रसोईदार हैं और सब गन्धर्व जिन पिनाकधन्वाधारी के गायक हैं ॥ ४ ॥ व जिनके आगे प्राप्त

लोमशउवाच ॥ राज्यंचकारकैलासेदेवदेवोजगत्पतिः ॥ गणैस्समेतोबहुभिर्वीरभद्रादिभिर्महान् ॥ १ ॥ ऋषिभिस्सहितोरुद्रोदेवैरिन्द्रादिभिस्सह ॥ ब्रह्मायस्यस्तुतिपरोविष्णुःप्रेष्यवदास्थितः ॥ २ ॥ इन्द्रोदेवगणैस्सार्द्धंसेवाधर्म्मपरोभवत् ॥ यस्यच्छत्रधरश्चन्द्रश्चामरेचसदागतिः ॥ ३ ॥ सूपान्नकर्त्तासततञ्जातवेदानिरन्तरम् ॥ गन्धर्वागायकायस्यसर्वेयस्यपिनाकिनः ॥ ४ ॥ विद्याधराश्चबहवस्तथाचाप्सरसांगणाः ॥ नन्नृतुश्चाग्रगायस्यसोसौकैलासपर्वते ॥५॥ पुत्रैर्गणेशस्कन्दाद्यैस्तथागिरिजयासह ॥ राज्यंप्रतापिभिश्चक्रेमहताविक्रमेणच ॥६॥ येनान्धकोमहादैत्योदेवतानामरिर्महान् ॥ दुष्टोविद्धस्त्रिशूलेनगगनेस्थापितश्चसः ॥७॥ हत्वागजासुरंयेनउत्कृत्यचर्मणाकृतम् ॥ चिरंप्रावरणंदिव्यंतथात्रिपुरदीपनम् ॥८॥ विष्णुनापाल्यभूतेनरेजेसर्वाङ्गसुन्दरः ॥ तन्दृष्टुकामोभगवान्नारदोदेवदर्शनः ॥९॥ यथौचपर्व

हुये बहुत से विद्याधरों और वैसेही अप्सराओं के समूहों ने नाच किया है वह यह कैलास पर्वत में ॥ ५ ॥ गणेश व कार्त्तिकेयादि प्रतापी पुत्रों तथा श्रीपार्वतीजी के साथ बड़ेभारी विक्रम से राज्यको करतेभये ॥ ६ ॥ जिन करके त्रिशूलसे वेधाहुआदेवों का बड़ा वैरी व दुष्ट महादैत्य वह अन्धकासुर आकाश में थापागया ॥ ७ ॥ व जिन्होंने गजासुर को मारकर और उखाडकर उसके चर्मसे बहुतही दिव्य वस्त्रको तथा दैत्यों के तीनपुरों के जलाने को किया है ॥ ८ ॥ व जो कि सब अंगों से सुन्दर है और पालने योग्य हुये विष्णुजी के साथ शोभित हुये हैं उनको देखने के चाही व देवों के दर्शन करनेवाले ऐश्वर्य्यसम्पन्न नारदजी ॥ ९ ॥ पर्वतों में श्रेष्ठ और

चन्द्रमा के समान श्वेत व उत्तम अमृत या चूनाकारी से सेवित भी परम अद्भुत कैलास को गये ॥ १० ॥ और उस समय अच्छे बडे बलवान् गोरे रंग अगवाले
उसको देखकर विस्मय से व्यापे हुये नारदजी उस गन्धमादन पर्वत में पैठगये ॥ ११ ॥ जो कि अनेक आश्चर्य्यों से संयुत घरो से सुशोभित व विद्याधरियों और
गाते हुये जनों से पूरित (भराहुआ) और बड़ी भारी छविवाला है ॥ १२ ॥ व जिसमे लताओं से सब ओर घिरेहुये कल्पवृक्ष हैं उनकीही सघन छायामें कामधेनुवें
बैठी है ॥ १३ ॥ व बहुत से जन पारिजात वृक्षों के वनके सुगन्ध मे लम्पट हुये हैं और बहुतसे कल हंस तड़ागों मे क्रीडा करते हैं ॥ १४ ॥ व बहुत से मोरों ने भी

**तच्छ्रेष्ठंकैलासंचन्द्रपाण्डुरम् ॥ सुधयापरयावापिसेवितंपरमाद्भुतम् ॥ १० ॥ कर्पूरगौरंचतदादृष्ट्वातंसुमहाबल
म् ॥ नारदोविस्मयाविष्टःप्रविष्टोगन्धमादनम् ॥ ११ ॥ अनेकाश्चर्यसंयुक्तैर्लयनैश्चसुशोभितम् ॥ विद्याधरीभि
र्गायद्भिः पूरितञ्चमहाप्रभम् ॥ १२ ॥ कल्पद्रुमाश्चबहवो लताभिःपरिवेष्टिताः ॥ घनच्छायासुतेषांवै निविष्टाःकामधेन
वः ॥ १३ ॥ पारिजातवनामोदं लम्पटाबहवोभवन् ॥ कलहंसाश्चबहवः क्रीडमानास्सरस्सुच ॥ १४ ॥ शिखण्डिनोहि
बहवश्चक्रुःकेकारवंमुदा ॥ पञ्चमालापितास्सर्वे विहङ्गास्समुदान्विताः ॥ १५ ॥ करिणःकरिणीभिश्च मोदमानास्सुवर्च
सः ॥ सिंहास्तथागर्जमानाः शार्दूलैस्सहसङ्गताः ॥ १६ ॥ वृषभानन्दिमुख्याश्च रम्भमाणानिरन्तरम् ॥ देवद्रुमाश्चबहव
स्तथाचन्दनवाटिकाः ॥ १७ ॥ नागपुन्नागबकुलाश्चम्पकानागकेशराः ॥ कदम्बाःकनकाब्जञ्च तथाकनककेतकी ॥
१८ ॥ कह्लाराःकर्णिकाराश्च कुमुदाश्चअनेकशः ॥ मन्दारावदरीचैव क्रमुकाःपाटलस्तथा ॥ १९ ॥ तथान्येबहवोवृक्षाः**

आनन्द से केका शब्दको कियाहै व जहां अच्छे आनन्द समेत सब पक्षी मालाओंकी नाईं आचरण करनेवाले हैं ॥ १५ ॥ और हथिनियों के साथ आनन्दित होतेहुये
अच्छे तेजवाले हाथी हैं वैसेही गर्जते हुये सिंह बाघों के साथ संगत हुये हैं ॥ १६ ॥ और जहां निरन्तर रंभाते हुये नन्दीश्वरादि वृषभ (बैल) हैं व बहुतसे देववृक्ष
हैं वैसेही चन्दनोंकी वाटिकायें हैं ॥ १७ ॥ व नागवृक्ष सन्देसरा मौनसिरी चम्पा नागकेशर कदम्ब सुवर्ण कमल तथा सुवर्ण केतकी ॥ १८ ॥ व कह्लार कर्णिकार

(कटचम्पा) और अनेक से अनार मंदार व बेरी सुपारी तथा पाटल हैं ॥ १९ ॥ वैसेही अन्य भी बहुत से ये वृक्षहैं जे कि शिवजी के सन्तोष करनेवाले हैं व अनेक प्रकारकरके वृक्षोंकी लताओं से संयुत हैं वे एक क्षणमें या साथही देखे गये ॥ २० ॥ और उसमें बहुती फुलवारियां दुगुनी हुई हैं व आकाशसे निकला हुआ अधिक अद्भुत गंगाजी का प्रवाह ॥ २१ ॥ उस पर्वतके मस्तकपर गिराहै व बहुतही सोहताहै और उस पर्वतमें कुवांभी है जिसके जल से जगत् पवित्र है ॥ २२ ॥ वह भी उस समय महात्मा नारदजी से दोभाति देखागया वैसेही महात्मा उन नारदजी ने दो प्रकार से हुये सबको देखा ॥ २३ ॥ हे ब्राह्मणो ! तब नारदजी करके

शम्भोस्तोषकराह्यमी ॥ एकपद्येनदृष्टास्ते नानाद्रुमलतान्विताः ॥ २० ॥ आरामाबहवस्तत्र द्विगुणाश्चबभूविरे ॥ गगनान्निस्सृतःसद्यो गङ्गायाःपरमाद्भुतः ॥ २१ ॥ पतितोमस्तकेतस्य पर्वतस्यसुशोभते ॥ कूपोहिपयसायस्य पवित्रंपर्वते जगत् ॥ २२ ॥ सोपिद्विर्धातदादृष्टो नारदेनमहात्मना ॥ सर्वंतथाद्विधाभूतं दृष्टंतेनमहात्मना ॥ २३ ॥ नारदेनतदाविप्राः पर्वतस्सनिरीक्षितः ॥ एवंविलोक्यमानोसौ नारदोभगवानृषिः ॥ २४ ॥ त्वरितेनयथायातः शिवलोकस्यतत्परः ॥ यावद्द्वारिस्थिताःपश्यन्महदाश्चर्यमेवच ॥ २५ ॥ द्वारपालौयदादृष्ट्वा कृत्रिमौविश्वकर्मणा ॥ नारदोमोहितोह्यासीत्पप्रच्छसचितौतदा ॥ २६ ॥ अहंपप्रष्टुमिच्छामि शिवदर्शनलालसः ॥ तस्मादनुज्ञादातव्या दर्शनार्थंशिवस्यच ॥ २७ ॥ अब्रुवन्तौतदादृष्ट्वानारदोविस्मितोभवत् ॥ ज्ञानदृष्ट्याससर्वज्ञस्तूष्णींभूतोभवत्तदा ॥ २८ ॥ कृत्रिमौहिचतौज्ञात्वा

वह पर्वत बहुतही देखागया इसभांति विशेषता से देखते हुये ऐश्वर्य्य सम्पन्न यह नारद ऋषि ॥ २४ ॥ जैसे शीघ्रता से गये वैसेही शिवलोक के देखने में तत्पर हुये व जबतक द्वारमे टिके तबतक बड़ेभारी आश्चर्य्य कोही देखते भये ॥ २५ ॥ और वह नारदजी जब विश्वकर्म्मासे बनाये हुये द्वारपालों को देखकर मोहितही होगये तब उनसे पूंछने लगे ॥ २६ ॥ कि शिवजी के देखनेकी लालसा वाला मैं अधिकतासे पूंछनेके लिये इच्छा करताहूं इस लिये शङ्करजी के दर्शन के अर्थ आयसुदेना चाहिये और ॥ २७ ॥ उस समय नहीं बोलते हुये उनको देखकर नारदजी विस्मयसे संयुत होगये उस समय ज्ञानदृष्टि से सबको जानतेहुये वह चुपचाप हुये ॥२८॥

और उनको विरचेहुयेही जानकर निश्चय से बडे मनवाले वह भीतर पैठे वैसेही उन महात्मा ने अन्य भी असत्यरूपों को देखा ॥ २९ ॥ व ऐश्वर्य्य सम्पन्न नारद ऋषि ने उनकोही आनन्दसे प्रणामकिया और उन्होंने इत्यादि अनेकआश्चर्य्यों को देखा ॥ ३० ॥ तदनन्तर वह प्रकट हुये श्रीपार्वती समेत त्रिनेत्रवाले शिवजीको देखतेभये कि महात्मा शकरजीके आधे आसन में प्राप्तहुईं पतिव्रता ॥ ३१ ॥ व सूक्ष्मअंगोंवाली व सुनयनी और तीक्ष्ण दृष्टिवारी पर्वतराजकी कुमारी गौरीजी विराजती है कि जिनसे त्रिलोक व्याप्तहै ॥ ३२ ॥ और बहुते विकारों से विकला समेत कियेहुये निर्विकार व जैसे रूप (सुन्दरता) और आकारवाले बडे पूजनीय महा-

**प्रविष्टोहिमहामनाः ॥ तथान्येसत्यरूपाश्च दृष्टास्तेनमहात्मना ॥ २९ ॥ प्रणनामऋषिस्तान्वै नारदोभगवान्मुदा ॥
एवमादीन्यनेकानिआश्चर्याणिददर्शसः ॥ ३० ॥ दर्शयामाससव्यक्तंत्र्यम्बकंगिरिजान्वितम् ॥ अर्द्धासनगतासाध्वी
शङ्करस्यमहात्मनः ॥ ३१ ॥ तनयागिरिराजस्ययथाव्याप्तंजगत्त्रयम् ॥ गौरीशितेक्षणाबालातन्वङ्गीचारुलोचना ॥
३२ ॥ यथारूपाकृतिःशम्भुरुपादेयःकृतोमहान् ॥ निर्विकारोविकारैश्चबहुभिर्विकलीकृतः ॥ ३३ ॥ अर्द्धाङ्गलग्नासा
देवीदृष्टातेनशिवस्यच ॥ नारदेनतथादृष्टश्शंभुस्त्रिभुवनेश्वरः ॥ ३४ ॥ शुद्धचामीकरप्रख्यःसेव्यमानःसुरासुरैः ॥
शङ्खेनभोगिवर्य्येणसेवितश्चाङ्घ्रिपङ्कजे ॥ ३५ ॥ धृतराष्ट्रेणचतदापुलिकेनविशेषतः ॥ तथापद्मेनमहता शेषेणापि
विशेषतः ॥ ३६ ॥ अन्यैश्चनागवर्य्यैश्च सेवितोहिनिरन्तरम् ॥ वासुकिःकण्ठमग्नोहि हारभूतोमहाप्रभः ॥
३७ ॥ कम्बलाश्वतरौनित्यंकर्णभूषणभूषितौ ॥ जटामूलगताश्चान्येमहाफणिवराह्यमी ॥ ३८ ॥ अनेकजातिसंवीता**

देवजी ग्रहण करने योग्य कियेगये हैं ॥ ३३ ॥ वैसेही वह शिवजीके आधे अंगमें लगीहुई देखीगईं और उन नारदजीने त्रिलोकेश्वर शकरजीको देखा ॥ ३४ ॥ जोकि देवों और दैत्यों से सेये जातेहुये व शुद्धसुवर्णके समान व सर्पोंमें बहुत श्रेष्ठ शंखसे पदकमलमें सेवितहैं ॥ ३५ ॥ और उस समय धृतराष्ट्र व विशेषसे पुलिक वैसेही पद्म व विशेषसे पूजनीय शेषजी भी ॥ ३६ ॥ व अन्य भी बहुतही श्रेष्ठ नागोंसेही निरन्तर सेवितहैं व जिनके कण्ठमें कुटिलता समेत थाने टेढ़ेहुये बडी दीप्तिवाले वासुकी नाग हारभूत हैं ॥३७॥ व कम्बल और अश्वतर नित्यही कानों में गहनोंकी नाईं भूषितहैं और अन्य भी ये बडे भारी सर्पश्रेष्ठ जटाजूटके मूलमें प्राप्तहैं ॥३८॥

व बहुती जातियों से संयुत अनेक रंग अंगवाले कमल चिह्नधारी सर्प्प व तक्षक पुलिक शंख और बडे दीप्तिमान् धृतराष्ट्र ॥ ३६ ॥ व पद्म व दंष्ट्र व सुदंष्ट्र व कराल तथा भीषण ये नाग और अन्य भी बहुत से सर्प्प ये सब ॥ ४० ॥ महादेवजीके अंग या, प्यारे हुयेहै और ऐसेही त्रिलोकमे पूजनीय होगये है व कोई सर्प्पोत्तम एकही फणासे शोभायमान है ॥ ४१ ॥ और ऐसेही बडे प्रकाशवाली दो व तीन फणाये व चार पांच छः सात और आठई फणावोवाले अन्य नागहै ॥ ४२ ॥ व नव व दश तथा ग्यारह व बारह व तेरह व चौदह ॥ ४३ ॥ वैसेही पन्द्रह व सोलह व अधिक अद्भुत सत्रह व अठारह तथा उन्नीस ॥ ४४ ॥ व चालीस व पचास व साठि

नानावर्णाश्चपद्मिनः ॥ तक्षकःपुलिकःशङ्खो धृतराष्ट्रोमहाप्रभः ॥ ३९ ॥ पद्मोदंष्ट्रस्सुदंष्ट्रश्चकरालोभीषणस्तथा ॥ एतेचान्येचबहवोनागाश्चाशीविषाह्यमी ॥ ४० ॥ अङ्गभूताहरस्यासन्पूज्याश्चैवजगत्त्रये ॥ फणैकयाशोभमानाःके चिद्विपन्नगोत्तमाः ॥ ४१ ॥ फणानांद्वितयंचैवंत्रितयञ्चमहाप्रभम् ॥ चत्वारःपञ्चषष्ठश्चसप्तमोष्टफणाःपरे ॥ ४२ ॥ नवमंदशमञ्चैवतथाचैकादशञ्चतु ॥ द्वादशंत्रयोदशञ्चैवतच्चतुर्द्दशमेवच ॥ ४३ ॥ तथापञ्चदशञ्चैवषोडशंपरमाद्भु तम् ॥ सप्तदशञ्चाष्टदशमेकोनविंशतिकंतथा ॥४४॥ चत्वारिंशत्फणाश्चैवपञ्चाशतषष्टिरेवच ॥ सप्ततिश्चाप्यशीतिश्च सहस्रञ्चतथैवच॥४५॥तथादशसहस्राणिनियुतप्रयुतानिच॥अर्बुदानिचखर्वाणितथाचैवाब्जकानिच॥४६॥ अनन्ताःफ णायोयेषांतेसर्पाःशिवभूषणाः॥दृष्टास्तदानींतेसर्वेनारदेनमहात्मना ॥ ४७ ॥ विषवन्तोपितेसर्वेभोगिनोपिसुशोभिनः ॥ हारभूषेणभूतास्तेमणिमन्तोह्यतस्ततः ॥ ४८ ॥ अर्द्धचन्द्राङ्कितोयस्यकपर्द्दस्त्वतिसुन्दरः ॥ चक्षुषाचतृतीयेनभालस्थे

व सत्तर व अस्सी और वैसेही हजार फणायें ॥ ४५ ॥ तथा दशहजार व लाख व दश लाख व दशकरोड व खर्व और वैसेही पद्म ॥ ४६ ॥ व अनन्त फणाये जिनके हैंवे सर्प शिवजीके गहने हैं और उस समय उन सबोंको महात्मा नारदजीने देखा ॥ ४७ ॥ जेकि सर्प्प विषवाले भी व अच्छी शोभावाले भी हैं और मणियो से संयुत हैं वे सबही ऐसी वैसी हारभूषणसे हुयेहै ॥ ४८ ॥ व जिन शिवजीका बहुतही सुन्दर जटाजूट आधे चन्द्रमासे चिह्नितहै व जोकि माथमे टिकेहुये तीसरे नेत्रसे सुशोभित

है ॥ ४६ ॥ वैसेही मरकत (नीलमणि) के समान श्याम कण्ठवाले अत्यन्त सुन्दर पंचमुख महादेवजी दशबाहों से अच्छे प्रकाशवान् हैं ॥ ५० ॥ व जिन रुद्रजी के
उर बहुत विशाल (विस्तारसमेत चौडा) बनाहै वैसेही ऊरू और जघन भी उत्तम हैं और दिगम्बर योगियोंके रमानेवाले पूजनीय दोनों पदकमलभी शोभितहैं॥५१।
जोकि शिवजीका चरणारविन्द अनूप व तेजसमूहसे संयुत व सुन्दर व सन्ध्या समयकी ललाईकी नाईं सुमंगलरूप व श्रेष्ठ व पापप्रहारी व तेजोराशिकारी व परसे भी
बहुतही परेहुआ याने अत्यन्त उत्तम व लुनाई (सुन्दरता) का एक स्थान व सबोंका सुख सौख्य करनेवाला और पवित्र है वह यह पदकमल देखागया वैसेही
तब योगियों के मनकी रमानेवाली व उत्तमों के बीचमें उत्तम व पतिव्रता व रूपवती स्त्रियों में सुन्दरी व सौभाग्य और लुनाई की बड़ी भारी शोभा, या सम्पत्ति से विरा

नविराजितः ॥ ४९ ॥ तथामरकतश्यामकन्धरोतीवसुन्दरः ॥ पञ्चवक्त्रोमहादेवोदशदोर्भिस्तुसुप्रभः ॥ ५० ॥ उरोयस्यवि
शालञ्चतथोरुजघनंपरम् ॥ पदद्वयञ्चरुद्रस्यशोभितंपरमंमहत् ॥ ५१ ॥ तद्दृष्टंचरणारविन्दमतुलंतेजोमयंसुन्दरम् ॥
सन्ध्यारागसुमङ्गलञ्चपरमंपापापहारंकरम् ॥ ५२ ॥ तेजोराशिकरंपरात्परतरंलावण्यकैकास्पदम् ॥ सर्वेषांसुखसौ
ख्यकारकमिदंशम्भोःपदंपावनम् ॥ ५३ ॥ तथैवदृष्टापरमापराणांपरासतीरूपवतीषुसुन्दरी ॥ सौभाग्यलावण्यमहा
विभूत्याविराजमानाशिवसुन्दरीतदा ॥ ५४ ॥ दृष्ट्वायौदम्पतीशुद्धौराजमानौजगत्त्रये ॥ अभिन्नौभेदमापन्नौनिर्गु
णौगुणिनौचतौ ॥ ५५ ॥ उत्थायोत्थायचतदातुष्टावजगदीश्वरौ ॥ ५६ ॥ श्रीनारदउवाच ॥ नतोस्म्यहंदेववरौभवद्भ्यां
परात्पराभ्यांकलयाकयापि ॥ विराजिताभ्यांसदलिप्रलीढपदाम्बुजाभ्यांचभयापहाभ्याम् ॥ ५७ ॥ दृष्टौमयादम्पती

जतीहुई श्रीपार्वतीजी देखीगई जोकि त्रिलोकमें सोहतेहुये शुद्ध (निर्मल) व भेदसे हीन याने एक स्वरूप होकर भी भेदको प्राप्तहुये व मायाके गुणोंसे परे श्री
अनेक दिव्य गुणोंसे भरेहैं उन स्त्री पुरुषोंको देखकर व उठ उठकर नारदजीने तब जगत्के ईश्वर श्री पार्वती और श्री शिवजीकी स्तुतिकिया ॥५२।५३।५४।५५।५६।
श्रीनारदजी बोले कि, हे देववरो (क्रीडाकारियों में श्रेष्ठो ! किसी भी कलासे सुशोभित व परोसें परे व सन्तरूप भ्रमरों से आस्वादित पदकमलोंवाले
संसाररोगहारक आप दोनोंजनों के लिये मैं नमस्कार करनेवालाहूं ॥ ५७ ॥ जे कि सोहते हुये स्त्री पुरुष स्थावर जंगम समेत सब जगत् के बीजभूत माता श्री

पिताहैं उनको मैंने देखा और आजही तत्त्वसे जानलिया ॥ ५८ ॥ वैसेही आपदोनों जनोंकी कृपासे मुझको यहां सन्देह नहीं है इसभांति उससमय उन महात्मा नारदजीसे स्तुति कियेगये हुये ॥ ५९ ॥ श्रीपार्वती से सहित भगवान् शङ्करजी सन्तुष्ट हुये और बोले कि हे ब्राह्मण ! तुम करके सुखसे टिकाजावे व मैं तुम्हारा क्या कार्य करूं ॥ ६० ॥ शिवजी के उस वचन को सुनकर श्रीनारदमुनि ने कहा कि हे विभो! आजही आपका जो दर्शनहुवा है उससे मैं सन्तुष्ट हूं ॥ ६१ ॥ हे शम्भो ! आज दर्शनसेही मुझको सब कुछ मिलगया है इसमे संशय नहीं है और मैं क्रीडा करने याने खेलने के अर्थ पर्वतोत्तम कैलास को प्राप्तभया हूं ॥ ६२ ॥ हे प्रभो !

राजमानौयौबीजभूतौसचराचरस्य ॥ पितरौसर्वलोकस्यज्ञातौचाद्यैवतत्त्वतः ॥५८॥ ममनास्त्यत्रसन्देहोभवतोःकृपयातथा ॥ एवंस्तुतौतदातेननारदेनमहात्मना ॥ ५९ ॥तुतोषभगवाञ्शम्भुःपार्वत्यासहितोब्रवीत् ॥ सुखेनस्थीयतांब्रह्मन्किंकार्यंकरवाणिते ॥ ६० ॥ तच्छ्रुत्वावचनंशम्भोर्नारदोमुनिरब्रवीत् ॥ दर्शनंजातमद्यैवतेनतुष्टोस्म्यहंविभो॥६१ ॥ दर्शनात्सर्वमेवाद्यशम्भोममनसंशयः ॥ क्रीडनार्थमहंय्यातःकैलासंपर्वतोत्तमम् ॥ ६२ ॥ हृदिस्थोहिसदानॄणांसंस्थितोभगवान्प्रभो ॥ तथापिदर्शनंभाव्यंसततम्प्राणिनामिह ॥ ६३ ॥ श्रीगिरिजोवाच ॥ काक्रीडाहित्वयाभाव्यावदशीघ्रंममाग्रतः ॥ तस्यास्तद्वचनंश्रुत्वाउवाचप्रहमन्निव ॥ ६४ ॥ द्यूतक्रीडामहादेविदृश्यन्तेविविधानिच ॥ भवादृशाभ्यांद्यूतेहिरममाणेमहासुखम् ॥६५॥ इत्येवमुक्तापरमासतीभृशंउवाचवाक्यंकुपिताऋषिम्प्रति ॥६६॥ कथंहिजानामिपरप्रसिद्धंद्यूतञ्चनिर्वेदकरम्मनस्विनाम् ॥ कथंकुतोवाजानासिकेनवाशिक्षितोह्यसि ॥ ६७ ॥ एवमुक्त

मनुष्योंके हृदयमें वसेहुयेही तुम भलीभाति टिकेहो तोभी प्राणियोको यहां निरन्तर दर्शन हुवाना चाहिये ॥ ६३ ॥ श्रीपार्वतीजी बोली कि, कौनसा खेल तुम्हारेसाथ करना चाहिये उसको तुम मेरे आगे शीघ्रही कहो उनके उस वचन को सुनकर बिहँसते हुयेकी नाई नारदजी बोले ॥ ६४ ॥ हे पापहीने, महादेवि ! बहुत भाति की द्यूतक्रीडा (जुवां खेलना) देखीजाती है परन्तु आप सरीखों के साथ जुवामे रमतेहुये में बडाभारी सुखहै ॥ ६५ ॥ कारण समेत ऐसा कहीगई बहुत कुपित हुई परमेश्वरी या महामाया सतीजी ने ऋषिके प्रतिवचन को कहा ॥ ६६ ॥ कि तुम अच्छे मनवाले जनोंके वैराग्यकारी परम प्रसिद्ध द्यूत (जुवां) को किसभांति

निश्चयसे जानतेहो व किसलिये कैसे जानते हो व किससे सिखाये गयेहो ॥ ६७ ॥ इसप्रकार उससमय देवीजीसे कहेहुये देवदर्शनकर्त्ता व बहुतही हँसनेहुये नारदजीने शिवजीके समीपमें श्रीपार्वतीजीके प्रति वचनको कहा ॥६८॥ श्रीनारदजी बोले कि, हे पवित्ररूपिणि परमेश्वरि पर्वतराजकुमारि ! योगीश्वरोंके बीचमें तपस्वी और शिवजीका सेवक मैं जुवाको नहीं जानताहू व नहीं सेवताहू तुम कैसे मुझसे पूछती हो ॥ ६९ ॥ तब नारदजी के वचन को सुनकर पतिव्रता पार्वतीजीने अच्छे तपोधनी के प्रति वचन को कहा कि हे ब्रह्मचारिन् ! तुम सबको जानते हो तोभी देखो मैं तुम्हारे आगे शिवजी के साथ जुवाको करतीहूं ॥ ७० ॥ जब कारणसमेत

स्तदादेव्यानारदोदेवदर्शनः ॥ उवाचवाक्यंप्रहसन्गिरिजांशिवसन्निधौ ॥ ६८ ॥ नारदउवाच ॥ द्यूतंनजानामिनचाऽ यामित्र्यहंतपस्वीशिवकिङ्करश्च ॥ कथञ्चमांपृच्छसिराजकन्यकेयोगीश्वराणांपरमेपवित्रे ॥ ६९ ॥ निशम्यवाक्यं गिरिजासतीतदाउवाचवाक्यंसुतपोधनम्प्रति ॥ जानासिसर्वंचवटोनिरीक्षद्यूतंमहेशेनकरोमितेग्रतः ॥ ७० ॥ इत्ये वमुक्त्वागिरिराजकन्यकाजग्राहचाक्षान्भुवनैकसुन्दरी ॥ क्रीडाञ्चकारचतदाहसतीपरेशीतत्रस्थितासहभवेनभवा न्वितासा ॥ ७१ ॥ तौदम्पतीक्रीडयासक्तमानौदृष्टौतदाऋषिणानारदेन ॥ सविस्मयोत्फुल्लमनास्तपस्वी विलोक्य तेमोदभरेणतेन ॥ ७२ ॥ सखीजनेनसंवीतायदाद्यूतपरासती ॥ शिवेनसहसङ्गत्यछलाद्द्यूतमकारयत ॥ ७३ ॥ सपणंचतदाचक्रेछलेनमहतावृतः ॥ जिताभवानीचतदाशम्भुस्तुप्रहसन्निव ॥ ७४ ॥ नारदेनसहैवार्थउपहासंकरोभव

ऐसा कहकर हँसती व वहां टिकीहुई ऐश्वर्य्य संयुत व लोकों में मुख्यसुन्दरी परमेश्वरी उन पर्वतराजकीकुमारी ने पाशोंको लिया और महादेवजी के साथ द्यूत क्रीडा (जुवाखेलना) को किया ॥ ७१ ॥ तब खेलने से लगेहुये उन स्त्रीपुरुषोंको नारदऋषिने देखा और विस्मय से ऊपर फूलहुयेमनवाले वह तपस्वी उस आन- न्दके भार (समूह) से विशेषता के साथ देखनेलगे ॥ ७२ ॥ जिस समय सखीजनो से भलीभांति घिरीहुई जुवांमें तत्पर पतिव्रता पार्वतीजीने शिवजीके साथ सगम कर छलसे द्यूतको कराया ॥ ७३ ॥ उस समय बडेभारी छलसे घिरेहुये याने संयुत उन शिवजी ने पण (दावमे धरेहुये धन) को किया और जब भवानी को जीत

लिया व बहुतही हँसतेहुयेकी नाई शङ्करजी ॥ ७४ ॥ अनन्तर नारदमुनिके साथही उपहासकरनेवाले हुये तब हारेहुये जुवांको देखकर व उपहास को देखकर या
सुनकर ॥ ७५ ॥ नारदजी के दुर्वचनो से बहुतही कुपितहुई शीघ्रता समेत पार्वतीजीने अर्धचन्द्र को देकर शिवजी से ऐसाही कहा ॥ ७६ ॥ कि मैं चूडामणि व म-
नोहर कुण्डलों को देतीहूं और इसभांति उनके कुपित हुये सुन्दरे बहुतही अच्छेमुखको ॥ ७७ ॥ महादेवजी ने बारबार देखा व जुवांको कराया ॥ ७८ ॥ और उन
पार्वतीजीने लोकोंके कल्याणकर्त्ता शङ्करजी से कहा कि हे शम्भो मेरा दियाहुवा यह पण हारागया अन्यथा नहीं है व तुम करके क्या पण कियाजाता है वह भी

त् ॥ निशम्यहारितंघूतंउपहासंनिशम्यच ॥ ७५ ॥ नारदस्यदुरुक्तैश्चकुपितापार्वतीभृशम् ॥ उवाचशर्वंत्वरितादत्त्वा
चैवार्द्धचन्द्रकम् ॥ ७६ ॥ ददेशिरोमणिञ्चाहं कुण्डलेचमनोहरे ॥ मुखंसुशोभनञ्चैवं तस्याःकुपितसुन्दरम् ॥ ७७ ॥
दृष्टंहरेणचपुनः पुनर्घूतमकारयत् ॥ ७८ ॥ तयागिरिजयाप्रोक्तःशङ्करोलोकशङ्करः ॥ हारितञ्चमयादत्तं पणमेतञ्च
नान्यथा ॥ क्रियतेचत्वयाशम्भो किंपणोहितदुच्यताम् ॥ ७९ ॥ ततःप्रहस्यप्रोवाच पार्वतीञ्चत्रिलोचनः ॥ मयापणो
यंक्रियतेभवानि त्वदर्थमेतच्चविभूषणम्महत् ॥ ८० ॥ सचन्द्रलेखोहिमहान्हिहारस्तथैवकर्णोत्पलभूषणद्वयम् ॥ अ
यमेवत्वयातन्वि मांजित्वागृह्यतांसुखम् ॥ ८१ ॥ ततःप्रवर्तितंघूतं शङ्करेणसहैवच ॥ साक्षेपंचबहुत्वेन भाषमाणौपर
स्परम् ॥ ८२ ॥ एवंविक्रीडमानौता वक्तवन्तौहिसुन्दरौ ॥ यदाजितोभवान्याथ शङ्करोबहुभूषणः ॥ ८३ ॥ प्रहस्यगौ

निश्चय से कहाजावे ॥ ७९ ॥ और तदनन्तर तीन आंखोवाले शिवजी बहुत हँसकर पार्वतीजी से वोले कि हे भवानि ! मुझसे यह पण (दांवमें धराहुवाधन) किया
जाताहै कि तुम्हारे अर्थ यह वडाभारी विभूषण ॥ ८० ॥ व चन्द्रलेखा (टीका) समेत वडाहार वैसेही कानोंके कमलाकार दो गहने (तरयोना) यहही पण है हे
तन्वि ! मुझको जीतकर तुमकरके सुखसे लियाजावे ॥ ८१ ॥ और तदनन्तर शङ्करजी के साथही जुवां कियागया व आपुसमें अधिकता से आक्षेप समेत व्यङ्ग्यवचन
को कहते ॥ ८२ ॥ व विशेष से खेलते हुये पाशावाले वेही दोनोंजने सुन्दर हैं अनन्तर जब भवानीजी ने बहुतेगहनोंवाले शिवजीको जीतलिया ॥ ८३ ॥ और

अधिकसुन्दरी गौरीजी ने विहँसकर शङ्करजी से कहा कि हे सुख या कल्याण करनेवाले शम्भो ! तुम आजही हारेहुये पणको मुझे देवो ॥ ८४ ॥ तब बहुतही हँसते हुये महेशजी आनन्द से या प्रकटही सत्यवचन को बोले कि हे सूक्ष्मअङ्गोंवाली देवि ! मैं तुमसे नहीं जीतागया हूं यह तत्त्व (स्वरूप, या, सिद्धान्त) सेही त्रिचारा जावे ॥ ८५ ॥ हे पतिव्रते ! मैं सब भांति प्राणियों के जीतनेयोग्य नहींहूं उस लिये तुमको ऐसा वचनही नहीं कहना चाहिये और हे कल्याणस्वरूपिणि ! तुम आज यथेच्छितही जुवाको करो और मैं आपही जीत जाऊंगा ॥ ८६ ॥ ऐसे शङ्करजीके वचन को सुनकर व बहुतही हँसकर सूक्ष्मअंगोंवाली व आप से प्रकाशनेहारी जगत्की महतारी पर्वतकुमारी ने अपने पति महेशजी से कहा कि तुम मुझ से जीतगये हो आज इसमे विस्मय नहीं है ॥ ८७ ॥ और अच्छे श्रेष्ठ मुखवाली

रीप्रोवाच शङ्करंत्वतिसुन्दरी ॥ हारितञ्चपणंदेहि ममचाद्यैवशङ्कर ॥ ८४ ॥ तदामहेशःप्रहसन्सत्यंवाक्यमुवाचह ॥ द्यूतं नजितोहंत्वयातन्वि तत्त्वतोहिविमृश्यताम् ॥ ८५ ॥ अजेयोहंप्राणिनांसर्वथैव तस्मान्नवाच्यन्तुवचोहिसाध्वि ॥ उवा कुरुष्वाद्ययथेष्टमेव जेष्याम्यहंस्वयमेवभद्रे ॥ ८६ ॥ एवंश्रुत्वावचनंशङ्करस्य प्रहस्यमातागिरिजास्वयंप्रभा ॥ चतन्वीस्वपतिंमहेशं मयाजितोस्यद्यनविस्मयोत्र ॥ ८७ ॥ एवंचाहतदाशम्भुं करेधृत्वावरानना ॥ जितोसित्वंनसन्देहो मयाद्यूतेनशङ्कर ॥ ८८ ॥ हारितञ्चत्वयाद्यूतं त्वन्नजानासिसम्प्रति ॥ एवंप्रहस्यसचिरंगिरिजाचशम्भुं साप्रदृश्यनर्मवचसाहतदाभिभूतम् ॥ ८९ ॥ देहीहिमेसकलमङ्गलमङ्गलेश यद्धारितंस्मररिपोवचसातुमोदितम् ॥ श्रीशङ्करउवाच॥ अजेयोहंविशालाक्षि तवनास्त्यत्रसंशयः ॥ ९० ॥ अहंकारेणयत्प्रोक्तं त्वयातन्विविमृश्यताम् ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वा

पार्वतीजी हाथमें धरकर शिवजी से ऐसा बोली कि हे शङ्करजी ! मुझकरके तुम भी जुवां से जीतगये हो सन्देह नहीं है ॥ ८८ ॥ और तुमसे द्यूत (जुवा) हारागयाहै तुम इससमय नहीं जानतेहो तब इसभांति विहँसकर व हास्यरस के नर्मवचन से हरायेहुये सुन्दर शङ्करजी को अधिकतासे देखकर उन पार्वतीजीने कहा ॥ ८९ ॥ कि हे कामकेवैरिन् सकलमंगलमंगलेश्वर ! जोकि मेरे प्रति वचन से कहाहुवा हारागयाहै उसको तुम यहां मुझे देवो श्रीशिवजी बोले कि, हे विशालाक्षि! मैं तुम्हारे जीतनेयोग्य नहीं हूं इसमें संशय नहीं है ॥ ९० ॥ हे सूक्ष्मअंगोंवाली सुन्दरि ! तुमने अहङ्कारसे जिसको बहुतही कहा वह निश्चयसे विचारा जावे तद-

नन्तर उनके उस वचन को सुनकर विहँसती हुई वह बोलीं ॥ ९१ ॥ कि हे प्रभो, महादेवजी ! तुम सबोंका अजेयहीहो याने अन्य किसीकरके जीतनेयोग्य नहींहो परंतु एक मुझसेही निर्मल जुवाँसे जीतेगयेहो ॥ ९२ ॥ और हे करनेयोग्य व नहीं करनेयोग्य के देखनेहारे परमपण्डित ! तुम कुछभी नहीं जानतेहो ऐसाही विवाद (झगडा) करतेहुये परमेश्वर वे स्त्री पुरुष दोनोंजन सुशोभित हुये ॥९३॥ और हँसतेहुये ऋषिश्रेष्ठ नारदजीने वचन को कहा श्रीनारदजी बोले कि, हे कानोतक चौड़ी आंखोंवाली देवि! तुम जगत् के मङ्गलकरनेवाले उस एकवचन को सुनो ॥९४॥ कि बड़ेभारी भाग्यवालों में बहुतही श्रेष्ठ यह तुमसे जीतेगये हैं किंतु झूंठही कहती हो क्योंकि

सोवाचप्रहसन्त्यथ ॥ ९१ ॥ अजेयोहिमहादेव सर्वेषामपिवैप्रभो ॥ मयैकयाजितोसित्वं द्यूतेनविमलेनहि ॥ ९२ ॥ न जानासिचकिञ्चिच्च कार्याकार्यविचक्षण ॥ एवंविवदमानौतौ दम्पतीपरमेश्वरौ ॥ ९३ ॥ नारदस्तुहसन्वाक्यमुवाच ऋषिसत्तमः ॥ नारदउवाच ॥ आकर्णयाकर्णविशालनेत्रेवाक्यंतदेकंजगदेकमङ्गलम् ॥ ९४ ॥ असौमहाभाग्यवतां वरेण्यस्त्वयाजितःकिञ्चमृषाब्रवीषि ॥ अजितोहिमहादेवोदेवानांपरमोगुरुः ॥ ९५ ॥ अरूपोयंस्वरूपोयं रूपातीतो यमुच्यते ॥ एकएवपरंज्योतिर्ज्योतिषामपियन्महः ॥ ९६ ॥ त्रैलोक्यनाथोविश्वात्मा शङ्करोलोकशङ्करः ॥ कथंजितस्त्वयादेवि ह्यजेयोभुवनत्रये ॥ ९७ ॥ शिवमेनंनजानासिस्त्रीभावाच्चवरानने ॥ नारदेनैवमुक्तासा कुपितापार्वतीभृशम् ॥ ९८ ॥ बभाषेमत्सरग्रस्ता साक्षेपंवचनंसती ॥ श्रीपार्वत्युवाच ॥ चापल्याच्चनवक्तव्यं ब्रह्मपुत्रनमोस्तुते ॥ ९९ ॥

देवोंके परमपूजनीय गुरुके समान महादेवजी अजितहैं याने किसीसे नहीं हारेहैं ॥९५॥ यह शिवजी रूपसे रहितहैं व यह रूपसहितहै और यह आकारसे अलग ऊपर टिके-हुये कहेजाते हैं और जोकि एकही उत्तमज्योतिरूप व ज्योतियों के भी तेजहैं ॥ ९६ ॥ व त्रिलोकके नाथ सर्वव्यापक जगत्के कल्याणकर्त्ता शंकरजी तुमसे कैसे जीतेगये हैं क्योंकि हे देवि!वह त्रिलोकमे किसीसे जीतेजानेयोग्य नहीं है ॥९७॥ व हे श्रेष्ठमुखि ! तुम स्त्रीभावसे इन शिवजीको नहीं जानतीहो इसभांति नारदसे कहीहुई बहुतही कुपित वह पार्वतीजी ॥९८॥ जोकि मत्सरसे ग्रसीहुई और पतिव्रताहैं उन्होंने आक्षेपसमेत वचनको कहा श्रीपार्वतीजी बोलीं कि, हे ब्रह्माजीके पुत्र ! तुमको चंचलता

बतलाना चाहिये तुम्हारे लिये नमस्कारहो ॥ ९९ ॥ हे देवर्षे! मैं तुमसे डरीहुईहूं तुम्हारा कल्याणहो तुम मौनको धारणकरो क्योंकि हे देवर्षे! तुमने जिनको
कहा यह शिवजी कौनहैं ॥ १०० ॥ जोकि ईश्वर कहेजाते हैं वह मेरे प्रभावसेही शिवहुये हैं और यह मेरे द्वारा पाईहुई प्रतिष्ठावाले हैं इसमें संशय नहीहै ॥ १ ॥
ही बहुत भांतिके वचनको सुनकर व मौनको आलम्बन (धारण) कर समीप में टिकेहुये उन नारदजी को देखकर अनन्तर भृंगीश्वरनामक गणने वचन को
हा ॥ २ ॥ श्रीभृंगीजी बोले कि, हे भामिनि! तुमको कहने योग्य और नहीं कहने योग्य बहुत नहीं बोलना चाहिये क्योंकि हे सुमध्यमे! मेरे स्वामी शंकरजी अजेय

तवभीतास्मिभद्रन्ते देवर्षेमौनमावह ॥ कोयंशिवोस्तिदेवर्षेयउक्तोहित्वयाबहु ॥ १०० ॥ मत्प्रभावाच्छिवोजात ईश्वरोहियउच्यते ॥ मयालब्धप्रतिष्ठोयं जातोनास्त्यत्रसंशयः ॥ १ ॥ एवंबहुविधंश्रुत्वा मौनमालम्ब्यनारदम् ॥ उपस्थितञ्चतन्दृष्ट्वा भृङ्गीवाक्यमथाब्रवीत् ॥ २ ॥ भृङ्ग्युवाच ॥ त्वयाबहुनवक्तव्यं वाच्यावाच्यंचभामिनि ॥ अजेयोनिर्विकारोहिस्वामीममसुमध्यमे ॥ ३ ॥ अविवेकपरासित्वंनजानासिकथञ्चन ॥ स्त्रीभावयुक्तासिवराननेत्वंदेवंनजानासिपरंपराणाम् ॥४॥ कामंपुरस्कृत्यपुराभवानिसमागतास्येवमहेशमुग्रम्॥ यथाकृतान्तेनपिनाकिनापुरातद्विस्मृतंकिंशुभगेवदस्वनः॥५॥कृतोह्यनङ्गोहितदाह्यनेनदग्धंवनंतस्यगिरेःपितुस्ते॥ पश्चात्त्वयाराधितएषएवशिवःपराणांपरमःपरात्मा॥६॥भृङ्गिणेत्येवमुक्तासाउवाचकुपिताभृशम्॥शृण्वतोहिमहेशस्यवाक्यंरुदञ्चभृङ्गिणम्॥७॥पार्वत्युवाच॥

(नहीं जीतने योग्य) व अविकारहैं ॥ ३ ॥ तुम अज्ञान या अविचार में परायणहो इसलिये किसीप्रकार से नहीं जानतीहो हे श्रेष्ठमुखि! तुम स्त्रीभावसे संयुतहो व
परों के बीचमें परेहुये महादेवजीको नहीं जानतीहो ॥ ४ ॥ हे सुभगे भवानि! तुम पूर्वसमयमें कामको आगेकर उग्ररूपकारी महेशजी के समीपमें भलीभांति आईहो
और उन पिनाकधन्वाधारी ने पहले जैसा कियाहै वह क्या भूलगया है उसको हमसे कहो ॥ ५ ॥ क्योंकि तब इनने ही कामको देहसे रहितही कियाहै व तुम्हारे पिता
उन पर्वत हिमवान्के वनको जलादियाहै व पीछेसे परों में से परेहुये परमात्मा यहही शिवजी तुमसे पूजितहुये हैं ॥ ६ ॥ कारणसमेत इसभांति कहीगई बहुतही कुपि-

तहुई उन्होंने महेशजीके सुनतेही भृंगीके प्रतिरूखे वचनको कहा ॥ ७ ॥ श्रीपार्वतीजी बोलीं कि, रे मन्द, हे भृगिन् ! तुमने पक्षपाती होने से मेरे सम्बन्धी जिस वचन को कहा उससे तुम शिवके प्यारेहो और भेद बतलाने में प्रीतिवारेहीहो ॥ ८ ॥ हे मूढ़ ! मैं शिवस्वरूपिणीहू व नित्य शिवजी मुझमें टिकेहैं तुमने वचनके बलसेही शिव और शिवाके लिये भेदको कैसे कहा ॥ ९ ॥ तब श्रीपार्वतीजी के शुभ (मंगल) दायक वचनको सुनकर भृंगीजीने शिवजी के समीप में रूठीहुई पार्वतीजीके प्रति ऐसा फिर कहा ॥ १० ॥ कि तुमसे दक्षनामक पिताके यज्ञमें शिवजी की निन्दा सुनीगई है और तुमने नहीं प्यारेहुये के सुननेसेही शीघ्रही देहको त्याग करदिया

हेभृङ्गिन्पक्षपातित्वाद्यदुक्तंवचनंमम ॥ शिवप्रियोसिरेमन्दभेदवादरतोह्यसि ॥ ८ ॥ अहंशिवात्मिकामूढशिवोनित्योमयिस्थितः ॥ कथंशिवाभ्यांभिन्नत्वंत्वयोक्तंवाग्बलेनहि ॥ ९ ॥ निशम्यवाक्यंशुभदंपार्वत्याभृङ्गिणातदा ॥ प्रत्यूचेपार्वतींरुष्टामेवञ्चशिवसन्निधौ ॥ १० ॥ पितुर्यज्ञेचदक्षस्यशिवनिन्दात्वयाश्रुता ॥ अप्रियश्रवणात्सद्यस्त्वयात्यक्तंकलेवरम् ॥ ११ ॥ तत्क्षणादेवतन्वङ्गित्यधुनाकिंकृतंत्वया ॥ संभ्रमात्किंनजानासिशिवनिन्दनमेवच ॥ १२ ॥ अथवापर्वतश्रेष्ठाज्जातासिवरवर्णिनि ॥ अथवातपसोग्रेणसंतप्तासिसुमध्यमे ॥ १३ ॥ सप्रेमाचशिवेभक्तिस्तवनास्तिचसांप्रतम् ॥ शिवप्रियासितन्वङ्गितस्मादेवंब्रवीमिते ॥ १४ ॥ शिवात्परतरंनान्यत्त्रिषुलोकेषुविद्यते ॥ भक्तिस्त्वयासदाकार्यासप्रेमावरवर्णिनि ॥ १५ ॥ भक्तासित्वंमहादेविमहाभाग्यवतांवरः ॥ संसेव्यतांप्रयत्नेनतपसोपार्जितस्त्वया ॥ १६ ॥ शिवंवरे

है ॥ ११ ॥ हे सूक्ष्मअंगोंवाली देवि ! उस क्षणसेही इससमय तुमने क्या किया व तुम उद्वेग से क्या शिवजी की निन्दाको भी नहीं जानतीहो ॥ १२ ॥ हे श्रेष्ठरंग अगधारिणि सुमध्यमे ! अथवा तुम पर्वतश्रेष्ठसे उपजीहो अथवा घोरतपस्या से भलीभांति तपितहुईहो उससे जड व विकल होगईहो ॥ १३ ॥ और इस समय शिवजीमें तुम्हारी प्रेमसमेतभक्ति नहीं है व हे तन्वंगि ! जिसलिये तुम शिवजीकी प्यारीहो उसलिये मैं तुमसे ऐसा कहताहू ॥ १४ ॥ कि हे वरवर्णिनि ! शिवजी से अधिक परेहुवा अन्य कोई तीनो लोकों मे नहीहै उनमेंही तुमको प्रेमसमेत भक्ति सदैव करना चाहिये ॥ १५ ॥ हे महादेवि ! तुम भक्तिवालीहो इसकारण भाग्यवालों में श्रेष्ठ

तपस्यासे कमाये या, पायेहुये शिवजी तुम करके बडे यत्नसे सेयेजावें ॥ १६ ॥ तुम अंगीकार करनेयोग्य सर्वेश्वर शिवजीको अन्यथा (अन्यप्रकार से) करने के
लेये नहीं उचित होतीहो भृगीके उसवचनको सुनकर पार्वतीजीने उनसे आनन्द के साथ कहा ॥ १७ ॥ श्रीपार्वतीजी बोली कि, हे भृंगिन्! तुम मौनको धारणकर
टिको अथवा जावो किन्तु कहनेयोग्य और नहीं कहनेयोग्यको नहीं जानतेहो और पिशाचकी नाईं क्या कहतेहो ॥ १८ ॥ किसतपस्या व किसप्रकार से भी मैं
शिवजी में लाईगईहूं व मैं कौनहूं और तुमसे जानेहुये यह कौनहैं तुम भेदबुद्धि करके मुझसे बतलातेहो ॥ १९ ॥ तुम कौनहो व किससे संयुतहो और तुम क्यों

गयंसर्वेशंनान्यथाकर्तुमर्हसि ॥ भृङ्गिणस्तद्वचःश्रुत्वागिरिजातमुवाचह ॥ १७ ॥ गिरिजोवाच ॥ रेभृङ्गिन्मौनमास्थ
स्वयस्थिरोभवाथवाव्रज ॥ वाच्यावाच्यंनजानासिकिंब्रवीषिपिशाचवत् ॥ १८ ॥ तपसाकेनचानीताकथंवापिशिवेत्वह
म् ॥ काहंकोसौत्वयाज्ञातोभेदबुद्ध्याब्रवीषिमे ॥ १९ ॥ कोसित्वंकेनयुक्तोसिकस्मात्त्वंबहुभाषसे ॥ शापंतवप्रदास्यामि
शिवःकिंकुरुतेधुना ॥ २० ॥ भृङ्गिणोक्तंतिरस्कृत्यतदाशापंददौसती ॥ निर्मांसोभवरेमन्दरेभृङ्गिञ्छङ्करप्रिय ॥ २१ ॥
एवमुक्त्वातदादेवीपार्वतीशङ्करप्रियम् ॥ अथकोपेनसंयुक्तापार्वतीशङ्करंतुसा ॥ २२ ॥ करेगृह्यचतन्वङ्गीभुजङ्गंवासुकिं
तथा ॥ उत्ततारचकण्ठात्सातथान्यानिबहूनिच ॥ २३ ॥ शम्भोर्जग्राहकुपिताभूषणानित्वरान्विता ॥ हृताचन्द्रकलात
स्यगजाजिनमनुत्तमम् ॥ २४ ॥ कम्बलाश्वतरौनागौमहेशकृतभूषणौ ॥ २५ ॥ हृतौयदामहादेव्याप्रहसन्त्याह्वलोक्ति

बहुत बोलतेहो मैं तुमको शापदूंगी इससमय शिवजी क्या करते हैं ॥ २० ॥ तब भृंगीके कहेहुयेको अनादरकर सतीजीने शापको दिया कि रे मन्द, हे शंकरप्रिय! रे
भृंगिन्! तुम माससे हीन होजावो ॥ २१ ॥ उस समय शंकरजी के प्यारेको ऐसा कहकर अनन्तर शंकरजीके प्रति क्रोधसे संयुतहुई वह श्रीपार्वतीजी ॥ २२ ॥ जोकि
अच्छे सूक्ष्मअंगोंवाली हैं उन्होंने वैसेही हाथमें धरकर वासुकी सर्प और तथा अन्यभी बहुतवस्तुवों को गलेसे उतारलिया ॥ २३ ॥ व शीघ्रतासमेत और कुपितहुई
उन्होंने शिवजीके गहनों को ग्रहणकिया व उनके अधिकउत्तम गजचर्म व चन्द्रकलाको भी हरलिया ॥ २४ ॥ व महेशजीसे भूषणकियेहुये कम्बल और अश्वतर

नामक दो नाग ॥ २५ ॥ जब छलसमेत वचनोंसे बहुतही हँसतीहुई महादेवीजी करके हरलियेगये व उन्होंने छलकीउक्तिसे उनकी लँगोटीको भलीभांति लेलिया ॥
२६ ॥ तब वैसेही पीछेको मुख कियेहुये वे सब वीरभद्रादिगण और सखिया भी लज्जा से पीडितहुईं ॥ २७ ॥ व गणों और मित्रों के साथ लज्जासमेत वे समीप
या, दूरमें टिके और गणेश व कार्त्तिकेय व भृंगी व महातप ॥ २८ ॥ वैसेही चण्ड व मुण्ड व महाकाल व महोदर ये और अन्य भी बहुतसे गण कुरूपसमेत मुखवा-
ले होगये ॥ २९ ॥ व उनको वैसेहुये देखकर महेश्वरजी लज्जितहुये और रूठेहोकर वह रूठीहुई पार्वतीजी के प्रति रूखेवचनको कहनेलगे ॥ ३० ॥ श्रीशिवजी बोले

सिः ॥ कौपीनाच्छादनन्तस्यच्छलोक्त्यासासमग्रहीत् ॥२६॥ तदागणाश्चसख्यश्चपीडितास्त्रपयाभवन् ॥ पराङ्मुखाश्च
तेसर्वेवीरभद्रादयस्तथा ॥२७॥ आरात्स्थितास्सत्रपास्तेप्रमथैःसखिभिस्सह ॥ गणेशश्चकुमारश्चभृङ्गीचैवमहातपाः ॥
२८ ॥ तथाचण्डोहिमुण्डश्चमहाकालोमहोदरः ॥ एतेचान्येचवहवोगणाःकुमुखिनोभवन् ॥ २९ ॥ तांश्चदृष्ट्वातथाभू
तान्महेशोलज्जितोभवत् ॥ उवाचरुषितंवाक्यंरुषितांपार्वतीम्प्रति ॥ ३० ॥ श्रीरुद्रउवाच ॥ गिरिजेत्वंनजानासिपति
शुश्रूषणम्परम् ॥ उपहासंप्रकुर्वन्तिसर्वेपिऋषयोभृशम् ॥ ३१ ॥ तथाब्रह्माचविष्णुश्चतथाचेन्द्रादयोह्यमी ॥ उपहास
परास्सर्वेकिन्त्वयाद्यकृतंशुभे॥ ३२॥यद्येवंकुरुभद्रन्तेकौपीनाच्छादनंविना॥ देहिकौपीनमात्रंमेनान्यथाकर्तुमर्हसि ॥
३३ ॥ एवमुक्तासतीतेनशम्भुनायोगिनातदा ॥ प्रहस्यवाक्यंप्रोवाचपार्वतीरुचिरानना ॥ ३४ ॥ किंकौपीनेनतेकार्य्यंमु
निनाभावितात्मना ॥ दिगम्बरेणैवयदाकृतंदारुवनेत्वया ॥ ३५ ॥ भिक्षाटनमिषेणैवऋषिपत्न्योविमोहिताः ॥ गच्छ

कि, हे पार्वति ! तुम पतिकी सेवाको नहीं जानतीहो इससे सब ऋषिलोग भी बड़ेभारीउपहासको बहुतही अधिकतासे करते हैं ॥ ३१ ॥ और वैसेही ब्रह्मा व विष्णु
तथा ये सबइन्द्रादिदेव उपहास में परायण हैं हे शुभे! तुमने आज क्या कियाहै ॥ ३२ ॥ तुम्हारा कल्याणहो तुम जो ऐसाकरो तो कोपीनवस्त्रके विनाकरो व मुझको
कोपीनमात्र देवो तुम अन्यभांति से करनेको योग्य नहीहो ॥ ३३ ॥ उन योगी शिवजी से ऐसा कहीहुई सुन्दरमुखवाली पतिव्रता पार्वतीजी विहसकर अधिकता से
बोलीं ॥ ३४ ॥ कि कोपीनसे तुम्हारा क्या कार्य्य है क्योंकि भक्तिसमेत मनवाले व मुनिवेषधारी व दिशावस्त्रकारीही तुमने जब दारुवनमें चरितको किया ॥ ३५ ॥

व भिक्षाटनके मिषसे ऋषियोंकी स्त्रियोंको मोहित करदिया तब हे शम्भो ! उन मुनियोंने चलते फिरतेहुये तुम्हारी बड़ीभारी पूजाको किया ॥ ३६ ॥ और वहां कोपीन गिरपड़ाहै यह मेरा वचन अन्यथा नहीं है उसलिये तुमको जुवांमें भी हारेहुयेही वस्त्रको फिर त्यागनाचाहिये ॥ ३७ ॥ उस वचनको सुनकर बड़े क्रोधके साथ तीसरे नेत्रसेही पार्वतीजी को अधिकता से देखतेहुये रुद्रजी कुपित होगये ॥ ३८ ॥ तब कोप संयुतहुये शंकरजीको देखकर बड़े भारी डरसे भरेहुये सब देवसमूह तथा गण और कुमार देखेगये ॥ ३९ ॥ वहां शंकितहुये सबोंने आपसमें धीरे धीरे कहा कि कुपितहुये यह रुद्रजी आज पार्वतीजी को भलीभांति जलावेंगे ॥ ४० ॥ व जैसेही

तस्यैतदाशम्भोपूजनंतैर्महत्कृतम् ॥ ३६ ॥ कौपीनंपतितंतत्रममेदंनान्यथावचः ॥ तस्मात्त्वयाप्रहातव्यंद्यूतेहारितमे वच ॥ ३७ ॥ तच्छ्रुत्वाकुपितोरुद्रःपार्वतीपरमेश्वरः ॥ निरीक्ष्यमाणोतिरुषातृतीयेनैवचक्षुषा ॥ ३८ ॥ कुपितंशङ्करंदृष्ट्वासर्वेदेवगणास्तदा ॥ भयेनमहताद्दष्टास्तथागणकुमारकाः ॥ ३९ ॥ ऊचुस्सर्वेशनैस्तत्रशङ्कितास्तुपरस्परम् ॥ अद्यायंकुपितोरुद्रोगिरिजांसम्प्रधक्ष्यति ॥ ४० ॥ यथाहिमदनोदग्धस्तथेयंनान्यथावचः ॥ एवंमीमांसमानास्तेगणादेवर्षयस्तथा ॥ ४१ ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ किमालोकयसेभूत्वाचक्षुषापरमेणहि ॥ नाहङ्कालोनकामोहंनाहंदक्षस्यवैमखः ॥ ४२ ॥ वृथैवत्वंविरूपाक्षोजातोसिममचाग्रतः ॥ एवमादीन्यनेकानिह्युवाचपरमेश्वरी ॥ ४३ ॥ निशम्यदेवोवाक्यानिगमनायमनोदधे ॥ वनमेवरञ्चाशुविजनम्परमार्थतः ॥ ४४ ॥ एकाकीयतचित्तात्मात्यक्तसर्वपरिग्रहः ॥ ससुखीपरमा

काम जलाया गयाहै वैसेही यह भी जलाईजावेंगी हमलोगों का वचन अन्यथा नहीं है इसभांति वे गणदेव वैसेही ऋषि भी विचारकरते हैं ॥ ४१ ॥ श्रीपार्वती देवीजी बोलीं कि तुम उत्तमनेत्रसे क्या देखने में परायणहुयेहो मैं काल नहींहूं व मैं काम नहींहूं और मैं दक्षका यज्ञ भी नहींहूं ॥ ४२ ॥ इससे तुम मेरे आगे वृथाही कुरूपतासमेत आंखोंवाले हुयेहो इत्यादि अनेकवचनों को परमेश्वरीजीने निश्चयकर कहा ॥ ४३ ॥ और उन वचनों को सुनकर महादेवजीने परमार्थ से श्रेष्ठ निर्जनवनकोही जाने के लिये शीघ्रही मनको धारणकिया ॥ ४४ ॥ जोकि अकेला व चित्त और बुद्धिका रोकनेवाला व सब सामग्रियोंको त्यागेहुवाहै वह सुखी और परमार्थका

जाननेवालाहै वह ज्ञानीहै और वहही पण्डित है ॥ ४५ ॥ जिसने काम (चाह) और राग (सुखको जानकर विषयों में स्नेह) को त्याग करदिया है वह समर्थ या योगीहै और वह सुखी होवे है ॥ ४६ ॥ उससमय ऐसाविचारकर व वैसेही श्रीपार्वतीजीको छोडकर परमदयालु श्रीशंकरजी ॥ ४७ ॥ प्यारीसे विहीन होकर सदैव परमहंसों से संयुत सिद्धाटवीनामक बडेअद्भुत वनको चलेगये ॥ ४८ ॥ और निकलेहुये शिवजीको देखकर सब कैलासवासी व सबगण भी वीरभद्रादिकों के पीछे निकलगये ॥ ४९ ॥ व चामरोंसे वीजितहोतेहुये उनके क्रमपूर्वक पीछेसे भृंगीजी छत्रको भलीभांति लेकर गगा व यमुनाके किनारेमें प्राप्तहुये ॥ ५० ॥ तब

र्थज्ञःसविद्वान्सचपण्डितः ॥ ४५ ॥ येनत्यक्तौकामरागौसयुक्तःससुखीभवेत् ॥ ४६ ॥ एवंविमृश्यचतथागिरिजांविहाय श्रीशङ्करःपरमकारुणिकस्तदानीम् ॥ ४७ ॥ यातःप्रियाविरहितोवनमद्भुतञ्चसिद्धाटवींपरमहंसयुतांसदैव ॥ ४८ ॥ निर्गतंशङ्करंदृष्ट्वासर्वेकैलासवासिनः ॥ निर्ययुश्चगणास्सर्वेवीरभद्रादिपृष्ठतः ॥ ४९ ॥ छत्रम्भृङ्गीसमादायजगामह्यनुपृष्ठतः ॥ चामरैर्वीज्यमानञ्चगङ्गायमुनयोस्तटे ॥ ५० ॥ ताभ्यांयुक्तस्तदानन्दीपृष्ठतोन्वगमत्सुधीः ॥ ५१ ॥ वृषभोह्यग्रतो भूत्वापुष्पकेणविराजितः ॥ शोभमानोमहादेवएभिस्सर्वैस्सुशोभनैः ॥ ५२ ॥ अन्तःपुरगतादेवीविजयासहदुर्मनाः ॥ सखीभिर्बहुभिस्तत्रतथान्याभिःसुसंवृता ॥ ५३ ॥ गिरिजाचिन्तयामासमनसापरमेश्वरम् ॥ ततोदूरंगतःशम्भुःविसृज्य चगणांस्तथा ॥ ५४ ॥ गणेशञ्चकुमारञ्चवीरभद्रन्तथापरान् ॥ नन्दिनम्भृङ्गिणञ्चचण्डंमुण्डादींस्तुतथैवच ॥ ५५ ॥ एतानन्यांश्चसर्वांश्चकैलासपुरवासिनः ॥ विसृज्यचमहादेवएकएवमहातपाः ॥ ५६ ॥ गतोदूरंवनस्यान्तंतथासिद्धाट

उनसे सयुत व अच्छीबुद्धिवाले नन्दीश्वरजी पीछे क्रमसे चले ॥ ५१ ॥ और वृषभ भी आगे होकर पुष्पक से सुशोभितहुवा व बहुत अच्छे इन सबजनों से महादेवजी विराजमानहुये ॥ ५२ ॥ और वहा रनिवास में प्राप्तहुई व विजयासखी के साथ दुःखसमेतमनवाली तथा अन्यभी बहुतसी सखियोंसे भलीभाति घिरीहुई देवीजी ॥ ५३ ॥ श्रीपार्वती ने मनसे परमेश्वर शिवजीका चिंतन (ध्यान) किया और वैसेही गणों को भी छोडकर शकरजी तदनन्तर दूरचलेगये ॥ ५४ ॥ व गणेश व स्वामिकार्त्तिकेय व वीरभद्र तथा अन्यगण व नन्दीश्वर व भृंगी व चण्ड वैसेहीमुण्डादिक ॥ ५५ ॥ ये और अन्यभी सब कैलासपुरकेबसनेवाले जनोंको छोडकर

एकही बड़ेतपस्वी महादेव ॥ ५६ ॥ शिवजी वनके अन्त में दूर तथा सिद्धाटवीको गये और जोकि केशर व रत्नकमल व सिद्धरत्न व वैडूर्य्यमणियों से चित्रित व अ-
मृतसे भूषित ॥ ५७ ॥ दिव्य आसन भूमिसे बनाया गयाहै उसमें योगकेस्वामी महेशजी टिके हे विप्र! पद्मासन में बैठेहुये व योगियों में सत्तम ॥ ५८ ॥ व ढपेहुये
नेत्रोंवाले शिवजीने आपसेही केवल आपकोही ध्यान किया और वह चन्द्रमाल महादेवजी समाधि में शोभितहुये ॥ ५९ ॥ व उनने महात्मा शेषजीको योगका पा-
शकिया और सर्पोंके राजा वासुकीजीका बड़ाभारी कटिबन्धनकिया याने करधनीबनालिया ॥ ६० ॥ जोकि सर्वव्यापक व अपने भावसे भलीभांति भीगेहुये व वेदान्तसे

**वींशिवः ॥ काश्मीररत्नोत्पलसिद्धरत्नवैडूर्य्यचित्रंसुधयापरिस्कृतम् ॥५७॥ दिव्यासनञ्चारुसुकल्पितम्भुवातत्रस्थितोयो
गपतिर्महेशः ॥ पद्मासनेस्थितोविप्रमहेशोयोगवित्तमः ॥ ५८ ॥ केवलञ्चात्मनात्मानन्दध्यौमीलितलोचनः ॥ शुशु
भेसमहादेवःसमाधौचन्द्रशेखरः ॥ ५९ ॥ योगपट्टःकृतस्तेनशेषस्यचमहात्मनः ॥ वासुकिःसर्पराजश्चकटिबन्धःकृतोम
हान् ॥ ६० ॥ आत्मानमात्मात्मतयाचसंप्लुतोवेदान्तवेद्यस्सहिविश्वचेष्टितः ॥ एकोह्यनेकोहिदुरन्तपारस्तथाह्यतर्क्यो
निजबोधरूपः ॥ ६१ ॥ स्थितंतदानीम्परमम्पराणांनिरीक्ष्यमाणोभुवनैकभर्त्ता ॥ १६२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकेदार
खण्डेशैवशास्त्रेद्यूतक्रीडायां शम्भोर्दूरगमनंनामचतुस्त्रिंशोध्यायः ३४ ॥ * ॥ * ॥ * ॥
लोमशउवाच ॥ वनङ्गतेमहादेवेगिरिजाविरहातुरा ॥ सुखंनलेभेतन्वङ्गीहर्म्येष्वायतनेषुच ॥ १ ॥ चिन्तयन्तीशिवं**

जाननेयोग्य व सबजगतकी रचनारूपकर्मवाले व एक याने भेदसेहीन व मायासे अनेकआकारधार व दुरन्तपार व आत्मज्ञानस्वरूप और वैसेही निश्चयकर इन्द्रियों
के विचार से परभी हैं वह आपकोही ॥ ६१ ॥ परोंसे पर टिकेहुये अधिकता से देखतेहुये लोकोंके एक (मुख्य) धारने या पोषनेवाले शिवजी सुशोभितहुये ॥ १६२ ॥
इतिश्रीस्कन्दपुराणेमाहेश्वरखण्डान्तर्गतकेदारखण्डेशैवशास्त्रेभाषाबन्धेसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचितेद्यूतक्रीडायांशम्भोर्दूरगमनंनामचतुस्त्रिंशोध्यायः ॥ ३४ ॥
दो० । पैंतिसवें अध्यायमें गौरी शबरीरूप । लखि मोहे शिवजी वहां यह अतिचरित अनूप ॥ श्रीलोमशजी बोले कि, जब श्रीमहादेवजी वनको चलेगये तब विरह

से व्याकुलहुई सूक्ष्मअंगोंवाली श्रीपार्वतीजीने महल और घरोंमें भी सुखको नहीं पाया ॥ १ ॥ व सब भावसे शिवजीको चिन्तनाकरतीहुई वह वहां टिकीं और शंकरजीको ध्यावतीहुई सतीजी को जानकर विजयासखीने कहा ॥ २ ॥ श्रीविजयाजी बोलीं कि, हे शोभने ! तुम बडीतपस्यासे ही शिवजीको प्राप्तहुईहो और तुमने उनतपस्वी शंकरजी के साथ जुवोंको वृथाही कियाहै ॥ ३ ॥ हे पापरहिते चतुरतामहिते, तन्वि ! जुवामें बहुतसे दोषहै उनको तुमने क्या नहीं सुनाहै व इसलिये तुम शीघ्रतासेही शिवजीको क्षमापनकरो ॥ ४ ॥ हे श्रेष्ठमुखि,देवि ! हम सबों से सहित तुम जावो जावो और जबतक शंकरजी दूरदेशमे सामने या सब ओरसे नहीं गये हैं तबतक जाकर क्षमाकरावो ॥ ५ ॥ और जो तुम इस वडे गरू मेरे वचन को नहीं करोगी तो परमेश्वर शिवजी को अनादरकर तुमको दुःख होवेगा इसभाति

तत्रसर्वेभावेनसंस्थिता ॥ चिन्त्यमानंशिवंज्ञात्वाउवाचविजयासतीम् ॥ २ ॥ विजयोवाच ॥ तपसामहताचैवशिवं प्राप्तासिशोभने ॥ मृषाद्यूतंकृतन्तेनशङ्करेणतपस्विना ॥ ३ ॥ द्यूतेचबहवोदोषानश्रुताःकिंत्वयानघे ॥ क्षमापयशिवं तन्वित्वरेणैवविचक्षणे ॥ ४ ॥ अस्माभिःसहितादेविगच्छगच्छवरानने ॥ यावच्छम्भुर्दूरतोनाभ्यगच्छत्तावद्गत्वाशङ्करंक्षामयस्व ॥ ५ ॥ नोचेन्ममैतद्वचनंगरीयोवज्ञाप्येशंव्यसनंतेभविष्यति ॥ निशम्यवाक्यंविजयाप्रयुक्तंप्रहस्यमानासमधीरचेताः ॥ ६ ॥ उवाचवाक्यंविजयांजयांचआश्चर्यभूतंपरमार्थयुक्तम् ॥ मयाजितोसौनिरपत्रपश्चपुरावृतोवैपरयाविभूत्या ॥ ७ ॥ किंचिच्चकृत्यंममनास्तिमद्योमयाविनासौनचरूपमास्थितः ॥ रूपीकृतोमयादेवोमहेशोनान्यथावद ॥ ८ ॥ मयातेनवियोगश्चसंयोगोनैवजायते ॥ साकारोहिनिराकारोमहेशोहिमयाकृतः ॥ ९ ॥ कृतम्मयावि

विजयासे प्रेरित याने कहेहुये वचनको सुनकर बहुतही हँसतीहुई भलीभांति अधीरचित्तवाली ॥ ६ ॥ श्रीपार्वतीजीने विजया और जयाके प्रति उत्तमअर्थसे संयुत व आश्चर्य्यभूत वचनको कहा कि पूर्वसमय में मुझकरके बड़ीभारी शोभा या सम्पत्तिसे परेहुयेही यह निर्लज्ज शंकरजी जीतेगये हैं ॥ ७ ॥ और शीघ्रही याने इससमय कुछभी मेरे करनेयोग्य नहीं है क्योंकि मुझ विना यह रूपमें नहीं टिकेहै व मैंनेही महेशदेवको रूपवाला कियाहै तुम अन्यथा (अन्यभांति) मत कहो ॥ ८ ॥ और उनके साथ मेरा वियोग व सयोग भी नहीं होताहै जिससे मैंनेही महेशजी को आकार (स्वरूप) से सहित व रूपसे रहित कियाहै ॥ ९ ॥ व देवश्रेष्ठों से समेत यह

स्थावरजंगमरूप सम्पूर्णजगत् मुझसेही कियागयाहै और हे विजये! तुम इनकी क्रीडाके अर्थ इस जगत्की उत्पत्ति व रक्षा या बर्तने के कारणों से मेरे विशेषता
समेत खेलको देखो ॥ १० ॥ उससमय ऐसा कहकर सब जगत्के मंगलकी करनेवाली देवी श्रीपार्वतीजी शबरीकेरूपमें अधिकता से टिककर महेश्वरजी के समीप
को जानेके लिये इच्छावालीहुई ॥ ११ ॥ जोकि काली या युवावस्थावाली व अच्छेअंगोंवाली व शृंगकेसमानदन्तोंवाली व कुदुरूके फलकी नाईं सुन्दर सुरंग नीचे
और ऊंचे के ओठोंवाली व अच्छे कण्ठवाली व कुचोंके भारसे नईहुई व बढ़ायेहुये सचिक्कणबालोंवाली व बीचमें पतलीहुई व विस्तारसमेतकटितटवाली व सोनेके

स्वमिदंसमग्रंचराचरंदेववरैस्समेतम् ॥ क्रीडार्थमस्योद्भववृत्तिहेतुभिर्विक्रीडितम्मेविजयेनिरीक्ष ॥ १० ॥ एवमुक्त्वात
दादेवीगिरिजाविश्वमङ्गला ॥ शबरीरूपमास्थायगन्तुकामामहेश्वरम् ॥ ११ ॥ श्यामातन्वीशिखरदशनाचारु
बिम्बाधरोष्ठी सुग्रीवासाकुचभरनतावर्द्धितस्निग्धकेशी ॥ मध्येक्षामापृथुकटितटाहेमरम्भोरुगौरी पक्षैर्युक्तावरबर्हि
णःशोभमानातदानीम् ॥ १२ ॥ पाणौमृणालसदृशंदधतीक्षुचापंपृष्ठेलसत्कनककेतकिबाणकोशौ ॥ आलोकयन्तीव
वनेगिरीशंसंसेव्यमानाबहुभिःसखीभिः ॥ १३ ॥ भृङ्गिनादेनमहतानादयन्तीजगत्त्रयम् ॥ गिरिजामन्मथंसद्योजीवय
न्तीपुनःपुनः ॥ १४ ॥ सकामावनराजीषुहंसकारण्डवायदा ॥ द्विरेफाबर्हिणश्चैवसर्वेतत्पृच्छयान्विताः ॥ १५ ॥ प्रबु
द्धोहिमहादेवींनिरीक्ष्यशबरींतदा ॥ समाधेरुत्थितःसद्योमहेशोमदनान्वितः ॥ १६ ॥ यावत्करेगृह्यमाणोगिरिजांस

केलाकी नाईं ऊरुवों से गोरी और मोरपक्षों से संयुतहैं वह उस समय सोहतीहुई ॥ १२ ॥ व हाथमें कमलकी पौंगारीके समान ईखके धन्वाको और पीछे सोहतेहुये
सुवर्णांकितकी के बाणोंसे बनेहुये कोशोंको धारती व बहुती सखियों से सेईजाती व वनमें शिवजीको सामने या सब ओरसे देखतीहुई बसीहै ॥ १३ ॥ व बड़ेभारी भृंगी
के शब्दसे त्रिलोकको शब्दसे संयुत कराती व वारंवार कामदेवको शीघ्रही जिलातीहुई श्रीपार्वतीजी विचरनेलगीं ॥ १४ ॥ व जब वनकी पंक्तियों मे कामसे समेत वे
सबहंस कारण्डव (कराकुल) व भौंरे और मोर भी चुयेहुये वीर्यवाले होगये ॥ १५ ॥ तब समाधि से उठे व जागेहुये महेशजी महादेवी शबरीको देखकर शीघ्रही

कामसे समेतहुये ॥ १६ ॥ और जबतक वह श्रीपार्वतीजी को हाथमें पकड़तेहुये समीपमें गये तबतक सतीजी उनके आगे शीघ्रही अन्तर्धान होगई ॥ १७ ॥ जब उन को देखकर उसक्षणमेंही भ्रमतेहुये व भ्रांति से सयुतहोकर भ्रांतिके विनाशनेवाले शङ्करजी ने श्यामदृष्टिवाली शबरीजी को नहीं देखा ॥ १८ ॥ तब जोकि शिवजी विरह से समेत व चुयेहुयेवीर्य्य से सबओर भीगेहुये व अन्तर से हीन व ज्ञानरूप और कामके वैरी है ॥ १६ ॥ व मोहसेरहितहैं उन्होंने सुन्दरता से भरीहुई शबरीरूपधारिणी पार्वतीजी को फिर देखा और प्रस्ताव के समान बड़े वचनकोकहा ॥ २० ॥ श्रीमहादेवजी बोले कि, तुम मेरे वचन को निश्चय से सुनो व सुन

समीपगः॥तावत्तस्यपुरःसद्यस्तिरोधानगतासती॥१७॥तांदृष्ट्वातत्क्षणादेवभ्रान्तोभ्रान्तिविनाशनः॥भ्रममाणोयदा शम्भुर्नापश्यदसितेक्षणाम् ॥ १८ ॥ विरहेणसमायुक्तोह्यच्छ्वयेनपरिप्लुतः ॥ मदनारिस्तदाशम्भुर्ज्ञानरूपोनिरन्त रः ॥ १६ ॥ निर्मोहोरूपसम्पन्नांददर्शगिरिजांपुनः ॥ उवाचवाक्यंशबरींप्रस्तावसदृशंमहत् ॥ २० ॥ श्रीमहादेवउवा च ॥ वाक्यंममशृणुत्वंहिश्रुत्वातत्कर्तुमर्हसि ॥ कासिकस्यासितन्वङ्गिकिमर्थमटनंवने ॥ २१ ॥ तत्कथ्यतांमहाभा गेयथातथ्यंसुमध्यमे ॥ २२ ॥ भिल्युवाच ॥ स्वतन्त्रन्निर्विकारञ्चजगतामीश्वरंपरम् ॥ पतिमन्वेषयिष्यामिसर्वज्ञंसक लार्थकम् ॥ २३ ॥ इत्युक्तःप्रत्युवाचेदङ्गिरिजांवृषभध्वजः ॥ २४॥ अहंतवोदितोभद्रेपतिर्नान्योस्तिभामिनि॥ विमृश्य तांवरारोहेतत्त्वतोहिवरानने ॥ २५ ॥ वचोनिशम्यरुद्रस्यस्मितपूर्वमभाषत ॥ ममापिचमहाभागपतिस्त्वंनान्यथा

कर उसको करने के लिये योग्यहो कि हे तन्वंगि ! तुम कौनहो व किसकीहो औरकिसलिये वनमें तुम्हारा विचरना है ॥ २१ ॥ हे सुमध्यमे, महाभागे ! वह यथातथ्य से (सत्यही) कहाजावे ॥ २२ ॥ श्रीशबरीजी बोलीं कि मैं अपने अधीन व विकार से हीन व जगतों के ईश्वर व सब से पर ॥ २३ ॥ व सर्वज्ञ और कलाओंसमेत प्रयोजनवारे या सब सम्पूर्णवाञ्छितों के देनेहारे या सबवचनों के अर्थरूपपतिकोखोजती हूं ऐसा कहेहुये शिवजी श्रीपार्वतीजी के प्रति इस वचनको बोले ॥ २४ ॥ कि हे अच्छीऊरुवोंवाली, श्रेष्ठमुखि, मंगलरूपिणि, भामिनि ! तत्त्व (सत्य) सेही निश्चयसमेत विचाराजावे कि मैंही तुम्हारा कहा हुआ पतिहूं अन्य नहीं है ॥ २५ ॥

ऐसे शिवजी के कहेहुये को सुनकर श्रीपार्वतीजी ने मुसकानपूर्वक वचन को कहाकि हे महाभाग ! तुम मेरे भी स्वामी हो अन्यथा नहीं कहो ॥ २६ ॥ किंतु हे परंतप !
तुम्हारा मंगलहो मैं तुम से कहूंगी कि तुम गुणों से हीनहो और जैसे उत्तमतपसेही आगे मुझकरके वरेगये हो ॥ २७ ॥ व तुमने वेग के साथ छलमात्रसे ही
मुझ भामिनी को छोड़दिया है क्योंकि तुम इसलोक में निरन्तर सबप्राणियोंके दुराराध्य हो याने बड़ेभारी दुःख से पूजनेयोग्यहो ॥ २८ ॥ उसकारण तुमने मेरे
आगे जिसवचनको कहा वहही फिर नहीं कहनाचाहिये ऐसा शङ्करी का वचन सुनकर उनके प्रति शिवजी बोले ॥ २९ ॥ कि हे शुभमुखि, विशालनेत्रे ! जिसलिये
तुमने कृपासमेत जनों के प्यार व कृपावारे मुझको जानकर ऐसा कहाहै इसलिये मेरावचन करनाचाहिये ॥ ३० ॥ इसप्रकार बहुतभांति उन त्रिशूलधारी से प्रार्थित

वद ॥ २६ ॥ किंतुवक्ष्यामिभद्रन्तेनिर्गुणोऽसिपरन्तप ॥ यथापुराव्रतोऽसित्वंतपसापरमेणहि ॥ २७ ॥ त्यक्तात्वयाचत्वरत
श्छलमात्रेणभामिनी ॥ दुराराध्योहिसततंसर्वेषांप्राणिनामिह ॥ २८ ॥ तस्मान्नवाच्यंहिपुनर्यदुक्तन्तेममाग्रतः ॥ शङ्क
र्यावचनंश्रुत्वाप्रत्युवाचवृषध्वजः ॥ २९ ॥ एवंज्ञात्वाविशालाक्षिकृपिणंकृपिणांप्रियम् ॥ तस्मात्त्वयाहिकर्त्तव्यंवचनंमे
शुभानने ॥ ३० ॥ एवमभ्यर्थितातेनबहुधाशूलपाणिना ॥ प्रहस्यगिरिजाप्राहउपहासकरंवचः ॥ ३१ ॥ तपोधनोऽसिस
ततंविरक्तोऽसिनिरञ्जनः ॥ आत्मारामोऽसिनिर्द्वन्द्वोमदनोयेनघातितः ॥ ३२ ॥ सत्वंसाक्षाद्विरूपाक्षोमयादृष्टोऽसिचाद्य
वै ॥ अशक्योऽसिमयाप्राप्तुंसर्वेषांदुरतिक्रमः ॥ ३३ ॥ तस्मात्त्वयानवक्तव्यंयदुक्तंचपुरोमम ॥ तस्यास्तद्वचनंश्रुत्वा
प्रोवाचमदनान्तकः ॥ ३४ ॥ ममभार्याभवत्वंहिनान्यथाकर्तुमर्हसि ॥ इत्युक्त्वातांकरेगृह्यशिवोऽसौहृच्छयान्वितः ॥ ३५ ॥

हुई पार्वतीजी विहँसकर उपहासकरनेवाले वचनको अधिकता से बोलीं ॥ ३१ ॥ कि तुम निरन्तर तपस्यारूपधनवाले वैरागीमायासे रहित और अपनामेंही रमने
हारेहो व द्विविधा से हीनहो और जिन्होंने कामको मारा याने जलाया है ॥ ३२ ॥ वह साक्षात् विरूपाक्ष अर्थात् कुरूपआखोंवाले तुम आज मुझकरके निश्चयसे
प्रसिद्ध देखेगये हो और सबोंके दुःखसे उल्लङ्घनीय तुम मुझको मिलने के लिये नहीं योग्यहो ॥ ३३ ॥ और उससे तुमने मेरे आगे जिसको कहा वह नहीं कहना
चाहिये उनके उस वचन को सुनकर कामकेविनाशी अविनाशी शिवजी अधिकता से बोले कि ॥ ३४ ॥ तुमही मेरी स्त्रीहोवो और अन्यथा करने के लिये योग्य

नहीं हो ऐसा कहकर उनको हाथ में धरकर यह शिवजी चुयेहुयेवीर्य्य से संयुतहुये ॥ ३५ ॥ और मुसकाती हुई उन्होंने छोंड़ो छोंड़ो ऐसा आदर के साथ कहा कि वनवासी तपस्वी तुमको यह करने के लिये उचित नहीं है ॥ ३६ ॥ और तुम मेरेपितासे मुझको मागो अन्यभाति से नही पावोगे ॥ ३७ ॥ श्रीमहादेवजी बोले कि हे शुभमुखि ! तुम कही भी टिकेहुये अपने पिताको शीघ्रही बतावो ॥३८॥ हे विशालनयने ! मै प्रणामपूर्वक तुमको देखूंगा तब उनसे कहेहुये इस वचन को सुनकर कालीआखोंवाली श्रीपार्वती जी ॥ ३९ ॥ शिवजी को उन अपने पिताके समीपमें लाई जोकि हिमवान्जी कैलास के शिखर में टिकेहुये व पर्वतों के स्वामी है ॥४०॥

उवाचसास्मयन्तीचमुञ्चमुञ्चेतिसादरम् ॥ नोचितंभवताकर्तुंतापसेनवनासिना ॥ ३६ ॥ याचयस्वपितुर्मेत्वंनान्यथा मांचलप्स्यति ॥ ३७ ॥ श्रीमहादेवउवाच ॥ पितरंकथयाशुत्वंस्थितंकुत्रशुभानने ॥ ३८ ॥ द्रक्ष्यामित्वांविशालाक्षिप्र णिपातपुरस्सरम् ॥ एतदुक्तंतदातेननिशम्यासितलोचना ॥ ३९ ॥ आनयामासतंगौरीपितरंवृषभध्वजम् ॥ स्थितं कैलासशिखरेहिमवन्तंनगेश्वरम् ॥ ४० ॥ अद्रिभिर्बहुभिश्चैवसंवृतञ्चमहाप्रभम् ॥ द्वारिस्थितंतयादेव्यादर्शितंश ङ्करस्यहि ॥ ४१ ॥ असौममपितादेवयाचयस्वगतत्रपः ॥ ददातिमांनसंदेहस्तपस्विन्माविलम्बितम् ॥ ४२ ॥ तथेति मत्वासहसाप्रणम्यहिमालयंवाक्यमिदंबभाषे ॥ प्रयच्छतांचाद्यगिरीशमह्यंकन्यांसुरूपांशुभगांमहामते॥४३॥कृपणंवा क्यमाकर्ण्यसमुत्थायहिमालयः॥महेशञ्चसमादायउवाचगिरिराट्स्वयम् ॥४४॥ किंकिंजल्पासिभोदेवतवायुक्तंचसाम्प्र

व बहुते पर्वतोंसे भलीभांति घिरेहुये और बड़ेभारी प्रकाशवाले है वह द्वारमें टिकेहुयेउन देवीजी करके शङ्करजी को निश्चयसे दिखाये गये हैं ॥ ४१ ॥ कि हे तपस्विन् देव ! यहही मेरे पिता हैं तुम लज्जासे हीन होकर मांगो विलम्बको मतकरो और पिताजी मुझको तुम्हारेलिये देतेहैं इसमें सन्देह नही है ॥ ४२ ॥ वैसाहो ऐसामान कर शङ्करजी ने एकाएक प्रणामकर हिमवान्जी से इस वचन को कहा कि हे पर्वतों के स्वामिन् ! आज तुम मेरे लिये उस सुन्दररूपवाली व सुभगा कन्या को देवो ॥ ४३ ॥ ऐसे कृपणवचन को सुनकर भलीभांति उठकर व महेश्वरजीको पकड़कर पर्वतों के राजा हिमालयजी आपही बोले ॥ ४४ ॥ हे प्रभो महादेवजी !

तुम इस समय क्या क्या बकते हो जो कि वचन तुमको अनुचित है क्योंकि हे त्रिलोक के ईश्वर ! तुमही जगत् के दायक और नायकहो ॥ ४५ ॥ व तुमसेही यह
सब स्थावर जंगम जगत् पसारा गया है इसभांति बड़ेभारी या, पूजनीय हिमवान्पर्वत स्तुति में परायण हुये ॥ ४६ ॥ और ऋषियों से सबओर घिरे व वहां आये
हुये नारदजीने हँसते हुयेकी नाईं वचनको कहा कि हे त्रिशूल हाथवाले प्रभो ! तुम्हारे लिये नमस्कार हो ॥ ४७ ॥ हे शम्भो ! तुम सिद्धान्तसारमय मेरे उत्तम वचन
को सुनो कि स्त्रियो के साथ पुरुषों की संगति विडम्बनाके लिये समीप मेंही समर्थ होती है या कीजाती है ॥ ४८ ॥ हे नाथ, देवेश ! तुम जगतोंके स्वामी

**तम् ॥ त्वंदातासित्रिलोकेशत्वंस्वामीजगतांविभो ॥ ४५ ॥ त्वयाततमिदंविश्वंजगदेतच्चराचरम् ॥ एवंस्तुतिपरोभूच्चहि
मालयगिरिर्महान् ॥ ४६ ॥ आगतोनारदस्तत्रऋषिभिःपरिवारितः ॥ उवाचेवहसन्वाक्यंशूलपाणेनमःप्रभो ॥४७॥
हेशम्भोशृणुमेवाक्यंतत्त्वसारमयंपरम् ॥ योषिद्भिःसङ्गतिःपुंसांविडम्बायोपकल्पते ॥ ४८ ॥ त्वंस्वामीजगतांनाथपरा
णांपरमंपरः ॥ विमृश्यसर्वंदेवेशतत्त्यक्त्वातर्तुमर्हसि ॥ ४९ ॥ एवंसम्बोधितस्तेननारदेनमहात्मना ॥ प्रबोधमगमच्छ
म्भुर्जहासपरमेश्वरः ॥ ५० ॥ श्रीशिवउवाच ॥ सत्यमुक्तंत्वयानात्रनान्यथानारदक्वचित ॥ योषित्सङ्गतिमात्रेणनृणांप
तनमेवच ॥ ५१ ॥ भविष्यतिनसंदेहोनान्यथावचनन्तव ॥ अनयामोहितोद्याहमानीतोगन्धमादनम् ॥ ५२ ॥ इत्येवमु
पिशाचवत्कृतमिदंचरितम्परमाद्भुतम् ॥ तस्मात्तिष्ठामिगिरेःसमीपंव्रजामिचाद्यैववनान्तरंपुनः ॥ ५३ ॥**

व परोंमेंसे पर व उत्तमशक्तिवाले हो इससे सबको विचारकर और उसको त्यागकर तरने के लिये योग्यहो ॥ ४९ ॥ इसभांति उन महात्मा नारदजीसे भलीभांति बो-
धित याने समझायेहुये परमेश्वर शंकरजी बड़ेभारी ज्ञानको प्राप्तहुये और हँसनेलगे ॥ ५० ॥ श्रीशिवजी बोले कि, हे नारदजी ! तुमने सत्य को कहा है यहां अन्य
प्रकार से नहीं है क्योंकि स्त्रियों के संगमात्रसेही पुरुषोंका गिरना होता है ॥५१॥ तुम्हारावचन अन्यथा नहीं होवेगा इसमें सन्देह नहीं है आज इनसे मोहित हुआ मैं
गन्धमादनको लायागयाहूं ॥५२॥ और पिशाचकी नाईं यह परम अद्भुत चरित कियागया उस लिये मैं पर्वत के समीप में टिकताहूं और आजही वनके बीचको या

दूसरेवनको फिर जाताहूं ॥ ५३ ॥ कारणसमेत ऐसा कहकर वहयोगियों के भी अगम व दुःख से उल्लंघनेयोग्य मार्गको गये और श्रीपार्वतीजी व पर्वतेन्द्र हिमवान् व पार्षदों को बहुतही देखकर ॥ ५४ ॥ व निराधार (आधार से रहित) जैसे हो वैसेही अधिकतासे देखकर नारदजीने वचन को कहा कि वन्दनीय और पूजने योग्य वह परमार्थदृष्टिसे देखेजावें ॥ ५५ ॥ क्योंकि त्रिपुरके वैरी व बड़ेभारीयशवाले यहमहेशजी जगत् के स्वामी हैं श्रीनारदजी के मुखसे निकलेहुये इस वचन को सुनकर ॥ ५६ ॥ श्रीपार्वतीजी को आगे कर बड़ीभारीदीप्तिवाले वे सबपर्वत लोकों के कल्याणकारी शिवजी के प्रति दण्ड के समान गिरे ॥ ५७ ॥ व सब गणों

क्त्वासजगाममार्गंदुरत्ययंयोगिनामप्यगम्यम् ॥ गिरिजांचगिरीद्रंचपार्षदान्प्रेक्ष्यसत्वरम् ॥ ५४ ॥ निरालम्बंसुविज्ञा
यनारदोवाक्यमब्रवीत्॥वन्दनीयश्चपूज्यस्सईक्ष्यतांपरमार्थतः ॥ ५५ ॥ महेशोयंजगन्नाथस्त्रिपुरारिर्महायशाः ॥ ए
तच्छ्रुत्वातुवचनंनारदस्यमुखोद्गतम् ॥ ५६ ॥ गिरिजांपुरतःकृत्वागिरयस्तेमहाप्रभाः॥दण्डवत्पतितास्सर्वेशङ्करंलोक
शङ्करम् ॥ ५७ ॥ तुष्टुवुःप्रमथास्सर्वेगुह्यकाश्चापिदेवताः ॥ श्रूयमाणोहिभगवानातीतोगन्धमादनम् ॥ ५८ ॥ आगते
सहसर्वैस्तैरभिषिक्तोमहात्मभिः ॥ तदादुन्दुभयोनेदुर्वादित्राणिमुहुर्मुहुः ॥ ५९ ॥ इन्द्रादयःसुरास्सर्वेपुष्पवर्षांववर्षिरे॥
ब्रह्मादिभिस्सुरगणैर्बहुभिःपरीतोयोगीश्वरो गिरिजयासहविश्ववन्द्यः ॥ ६० ॥ अभ्यर्थितःपरममङ्गलमङ्गलश्चदिव्या
सनेपरिरराजमहाविभूत्या ॥ एवंविधान्यनेकानिचरितानिमहात्मनः ॥ ६१ ॥ महेशस्यचवैविप्राःपापहारीणिशृण्वता

गुह्यकों और देवोंने भी स्तुति किया उसको सुनतेहुये या सुनेजातेहुयेही ऐश्वर्य्यसम्पन्न व गन्धमादन को लंघनकर प्राप्तहुये ॥ ५८ ॥ व वहां आयेहुये उन महादेवजी कोही उन सब महात्माओंने अभिषेक किया तब वारंवार नगारियां और बाजे बाजने लगे ॥ ५९ ॥ व इन्द्रादि सबदेवों ने फूलोंकी वर्षाको बरसा और ब्रह्मादिक बहुते देव समूहों से सब ओर घिरेहुये व योगियों के स्वामी व श्रीपार्वतीजी के साथ वर्त्तमान व सबजगत् से वन्दनेयोग्य ॥ ६० ॥ और सामने या सब ओर से प्रार्थित (याचित) हुये व परममंगलोंके मंगलस्वरूप शिवजी बड़ीभारी शोभा या सम्पत्ति से दिव्य आसन के ऊपर सुशोभित हुये और महात्मा महेशजी के इसभांति के

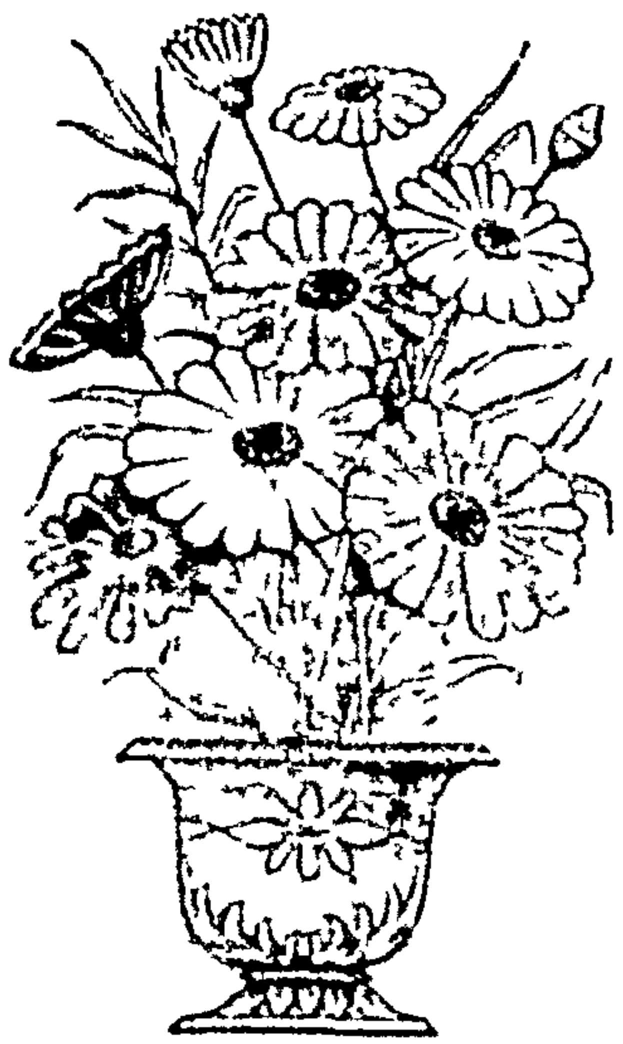
बहुतसे चरितहैं ॥ ६१ ॥ हे ब्राह्मणो ! परमेश्वर रुद्रजी के जे जे चरित यहां सुनतेहुये जनोंके पापहरनेवाले व बड़ेभारी या पूजनीय भी प्रसिद्धहै ॥ ६२ ॥ और उत्तम
या दिगम्बर योगियों के रमानेहारे हैं वे सुनेगये हैं अब मैं तुम लोगों से फिर क्या कहूं श्रीशौनकादि ऋषि बोले कि, हे सूतजी ! तुमने शङ्करजी के चरित्र को ऐसा
कहा ॥ ६३ ॥ और हमलोग इसचरितसेही भलीभांतितृप्त है इसमें संशय नही है श्रीसूतजी बोले कि पसराहुआ सब अद्भुत वहशङ्करजीका रूप मुझकरके
श्रीव्यासजी के प्रसाद (प्रसन्नता) से सुनागया है जो कि अच्छे विस्तार से संयुत व विचित्र व वेदों के भीतर वर्त्तमान या उनको अपने भीतर करनेवाला व

म् ॥ यानियानीहरुद्रस्यचरितानिमहान्त्यपि ॥ ६२ ॥ श्रुतानिपरमाण्येवम्भूयःकिङ्कथयामिवः ॥ ऋषयऊचुः ॥ एवमु
क्तन्त्वयासूतचरितंशङ्करस्यच ॥ ६३ ॥ अनेनचरितेनैवसन्तृप्ताःस्मोनसंशयः ॥ सूतउवाच ॥ व्यासप्रसादाच्छ्रुतमस्ति
सर्वम्मयाततंशङ्कररूपमद्भुतम् ॥ सुविस्तृतञ्चाद्भुतवेदगर्भंज्ञानात्मकम्परममङ्गलपुण्यरूपम् ॥ ६४ ॥ श्रद्धयापरयोपेताः
श्रावयन्तिशिवप्रियाः ॥ ६५ ॥ शृण्वन्तिचैवंयेभक्त्याशम्भोर्माहात्म्यमुत्तमम् ॥ शिवशास्त्रमिदंविप्रास्तेयान्तिपर
माङ्गतिम् ॥ ६६ ॥ नतेषांदुर्लभंकिञ्चित्त्रिषुलोकेषुविद्यते ॥ सर्वंददातिदेवेशोमहेशःसर्वसिद्धिदः ॥ ६७ ॥ इति श्रीस्कन्द
पुराणेकेदारखण्डेशैवशास्त्रेपार्वत्यासहशिवसंयोगकथनंनामपञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥ * ॥ * ॥

सर्गमिदंकेदारखण्डम् समाप्तम् ॥

ज्ञानात्मक व परम (उत्तम) मंगलों और पुण्यों का रूपहै या उनका प्रकाशक है उसको बड़ीश्रद्धासेसंयुत जे शिवजी के प्यारे या उनको प्यारकरनेवाले लोग
सुनावेंगे ॥६४।६५॥ और हे विप्रो ! ऐसेही जे कोई शङ्करजीके माहात्म्य इस उत्तम शिवशास्त्रको भक्तिसे सुनते हैं वे परमगतिको याने श्रेष्ठमुक्तिकोप्राप्त होते हैं ॥ ६६ ॥
उनको त्रिलोकों में कुछ भी दुर्लभ नहीं है क्योंकि सबसिद्धिदायक देवों के नायक महेशजी उनको सब देते हैं ॥ ६७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेमाहेश्वरखण्डान्तर्गत ॥ ❁ ॥
केदारखण्डेशैवशास्त्रेभाषाबन्धेसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचितेपार्वत्यासहशिवसंयोगकथननामपञ्चत्रिंशोध्यायः ॥ ३५ ॥ ❁ ॥ ❁







इति स्कन्दपुराण केदारखण्डः समाप्तः ॥

अथ स्कन्दपुराणअरुणाचलखण्डप्रारम्भः

अथ स्कन्दपुराणमाहेश्वरखण्डान्तर्गतअरुणाचलखण्डस्य सूचीपत्रमाह ॥

इत्यरुणाचलखण्डस्य सूचीपत्रं समाप्तिमगात्

श्रीगणेशाय नमः ॥

अथ स्कन्दपुराणमाहेश्वरखण्डान्तर्गत

अरुणाचलखण्ड सटीक

श्लोक। सिद्धिदं गिरिजापुत्रमादावेव प्रणम्य च। अरुणाचलखण्डस्य भाषार्थः क्रियते मुदा ॥ १ ॥

दो०। ब्रह्मा विष्णु दोऊ यथा तेजस्तंभ प्रमान। ढूंढ्यो सोई प्रथममें कियो चरित्र बखान ॥ चौड़े मस्तक में सुन्दर कस्तूरीका तिलक किये व प्रकाशित चन्द्रमा
को धारे और कटिमें कौपीनवस्त्र शोभितवाले तथा मस्तक में ऊपर उठायेहुये नेत्रकी कनीनिकावाले शिवजी को व चन्द्रकला को जो धारे हैं वे अरुणाचल के

ललाटे विस्तीर्णे रुचिरकृतकाश्मीरतिलकःस्फुरच्चन्द्राधारःस्फुरितकटिकौपीनवसनः ॥ दधानश्चोत्तारंशिरसिफ
णिराजंशशिकलांसईशः सर्वेषामरुणगिरियोगीविजयते ॥ १ ॥ अथाहुर्मुनयःसूतं नैमिषारण्यवासिनः ॥ अरुणाचल
माहात्म्यं त्वत्तःशुश्रूषवोवयम् ॥ २ ॥ तन्माहात्म्यंवदेत्युक्तः सूतःप्रोवाचतान्मुनीन् ॥ श्रीसूतउवाच ॥ एतदर्थंचतुर्वक्त्रं
पप्रच्छसनकःपुरा ॥ ३ ॥ शृणुतावहितायूयं तद्वोवक्ष्यामिसाम्प्रतम् ॥ यदाकर्ण्यतांभक्त्या शृण्वतांपापनाशनम् ॥ ४ ॥
सत्यलोकेस्थितंपूर्वंब्रह्माणंकमलासनम् ॥ सनकःपरिपप्रच्छ प्रणतःप्राञ्जलिःस्थितः ॥ ५ ॥ सनकउवाच ॥ भगवन्भुवना

योगी व सबोंके स्वामी शिवजी उत्कर्ष को प्राप्तहोवैं ॥ १ ॥ इसके अनन्तर नैमिषारण्य के वासी मुनिलोग सूतजी से बोले कि हमलोग तुमसे अरुणाचलका मा-
हात्म्य सुना चाहते हैं ॥ २ ॥ उस माहात्म्य को कहिये ऐसा कहेहुये सूतजी उन मुनियोंसे बोले श्रीसूतजी बोले कि पुरातन समय सनकजीने इसी वस्तुको ब्रह्मासे
पूंछाहै ॥ ३ ॥ सावधान होतेहुये तुमलोग सुनो इस समय उसको मैं तुम लोगों से कहूंगा कि जो सुनते व कहते हुये मनुष्यों का पापनाशक है ॥ ४ ॥ पुरातन

समय प्रणामकर हाथ जोड़ बैठेहुये सनकजीने सत्यलोक में स्थित कमल आसनवाले ब्रह्माजी से पूंछा ॥ ५ ॥ सनकजी बोले कि हे जगदाधार, भगवन्, वेदवेद्य, चतुराननजी ! आपकी प्रसन्नतासे मुझको सब ज्ञानहुआहै ॥ ६ ॥ व निर्मल चित्तरूपी दर्पण में भक्तिका ऐश्वर्य होगया और एकहीबार उपदेश से समस्त ज्ञान विदित होगया ॥ ७ ॥ और संसार के गुरु तुम्हारे कटाक्षों से मैंने शिवज्ञान से संयुत समस्त वेदोंके सारांशार्थ को बहुतही पाया है ॥ ८ ॥ हे दयानिधान, सुरनायकजी ! पृथ्वीमें दैविक, सैद्ध (सिद्धोंके थापे) व मानुष तथा भौतिक शिवलिंग हैं ॥ ९ ॥ उनमें जो लिंग निर्मल व दिव्य तथा अखण्ड ऐश्वर्यदाता हो व आप

धारवेदवेद्यचतुर्मुख ॥ आसीदशेषविज्ञानं प्रसादाद्भवतोमम ॥ ६ ॥ अभवद्भक्तिविभवः शोधितेचित्तदर्पणे ॥ विदितंस कलंज्ञानं सकृदेवोपदेशतः ॥ ७ ॥ सारार्थंसर्ववेदानां शिवज्ञानसमाकुलम् ॥ लब्धवानहमत्यर्थं कटाक्षैस्तेजगद्गुरोः ॥ ८ ॥ लिङ्गानिभुविशैवानि दिव्यानिचकृपानिधे ॥ मानुषाणिचसैद्धानि भौतानिसुरनायक ॥ ९ ॥ यल्लिङ्गममलं दिव्यमपरिच्छेदवैभवम् ॥ स्वयम्भुतेजोवल्लिङ्गं यद्दैत्वंतद्वदस्वमे ॥ १० ॥ नामस्मरणमात्रेण यत्पातकविनाशनम् ॥ शिवसारूप्यदंनित्यं मर्त्यानाञ्चदयानिधे ॥ ११ ॥ अनादिजगदाधारंयत्तेजःशैवमव्ययम् ॥ यद्दृष्ट्वाकृतार्थःस्यात्तन्म ह्यमुपदिश्यताम् ॥ १२ ॥ इतिभक्तिमतस्तस्य कौतूहलसमन्वितम् ॥ वाक्यमाकर्ण्यभगवान् प्रससादतपोनिधिः ॥ १३ ॥ दध्यौचसुचिरंशम्भुं पङ्कजासनसंस्थितः ॥ अन्तरङ्गसुखाम्भोधिमग्नचेताश्चतुर्मुखः ॥ १४ ॥ दृष्ट्वायच्चपुरादृष्टं तेज

हीसे उत्पन्न तथा तेजस्वी हो उस लिंगको तुम मुझसे कहौ ॥ १० ॥ जोकि नामके स्मरणमात्रसे पातकों का विनाशक हो व हे दयानिधे ! जो मनुष्यों को सदैव शिवसारूप्य का देनेवालाहो ॥ ११ ॥ आदिरहित व संसार का आधार व अविनाशी जो शिवजी का तेजहो और जिसको देखकर मनुष्य कृतार्थ होजावै उसको मुझ से उपदेश कीजिये ॥ १२ ॥ इस प्रकार उन भक्तिमान् सनकजी के कौतुकसंयुत वचन को सुनकर तपस्या के निधान भगवान् ब्रह्माजी प्रसन्नहुये ॥ १३ ॥ व पद्मासन से भलीभांति बैठेहुये ब्रह्माजी ने बहुत देरतक शिवजी को ध्यान किया व अन्तरङ्ग (भीतर) के सुखसमुद्र में डूबेहुये चित्तवाले चतुराननजी ॥ १४ ॥

जिन तेजस्तम्भमय शिवको पहले देखा था उन सर्वाधार को देखकर उतरआये व उन्होंने कुछ नहीं जाना ॥ १५ ॥ फिर वे प्रभु! ब्रह्माजी पालनकरने के लिये
शिवजीसे आज्ञाको पाकर योगसे हृदयमें आनन्द होकर बहुत हर्षको प्राप्तहुये॥१६॥शिवजीके दर्शन से रोमाञ्चित शरीरवाले तथा आनन्द के आंसुओं से संयुत नेत्रोंवाले
ब्रह्माजी गद्गद वचन समेतबोले॥१७॥ब्रह्माजीबोले कि हे पुत्र! आपने प्राचीन शिवयोगको चित्तमें स्मरणकराया कि जिसको तुम्हारे आदरसे ध्यानकरताहुआ मैं स्मरण
करताभया॥१८॥तुम्हारे बहुत तपोंसे उत्तम शिवभक्ति पैदाहुईहै उसीभक्तिसे मेरा हृदय क्षणभरमे भ्रमितसा होगया॥१९॥वे मनुष्य आकुलतारहित चरितोंसे सब संसार

स्तम्भमयंशिवम् ॥ उत्तीर्णःसर्वाधारं नकिञ्चित्प्रत्यबुध्यत ॥ १५ ॥ पुनराज्ञांशिवाल्लब्ध्वा ह्यनुपालयितुंप्रभुः ॥
निर्वर्त्यहृदयेयोगात्परंहर्षमुपागतः ॥ १६ ॥ शिवदर्शनसंजातपुलकाङ्कितविग्रहः ॥ आनन्दबाष्पपूर्णनेत्रः सगद्गदम
भाषत ॥ १७ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ अन्तःसंस्मारितःपुत्र भवताहंपुरातनम् ॥ शिवयोगमनुध्यायन्नस्मार्षंतवचादरात् ॥
१८ ॥ शिवभक्तिःपराजाता तपोभिर्बहुभिस्तव ॥ तयामदीयंहृदयंव्यावर्त्तितमिवक्षणात् ॥ १९ ॥ पावयन्तिजगत्सर्वं
चरितैस्तेनिराकुलम् ॥ येषांसदाशिवेभक्तिर्वर्धतेसार्वकालिकी ॥ २० ॥ सम्भाषणंसहावासः क्रीडाचैवविमिश्रणम् ॥
दर्शनंशिवभक्तानां स्मरणञ्चाघनाशनम् ॥ २१ ॥ श्रूयतामद्भुतंशैवमाविर्भूतंयथापुरा ॥ अव्ययंकरुणापूर्णं नराणा
मघभिन्महः ॥ २२ ॥ अहंनारायणश्चोभौ जातौविश्वाधिकारिणौ ॥ बहुस्यामितिसङ्कल्पवितन्वानौसदाशिवात् ॥
२३ ॥ प्रभापन्तौसमुद्भूतौ बलवन्तौपरस्परम् ॥ नचश्रान्तौनियुध्यन्तौ साहंकारौरुदाचन ॥ २४ ॥ परस्परंरणोत्साह

को पवित्र करतेहैं कि जिनके सब समयवाली याने सनातन भक्ति शिवजीमें बढ़तीहै ॥ २० ॥ शिवभक्तों से सम्भाषण करना व साथ बसना, खेलना, मेलन, दर्शन
व स्मरण पातकों का विनाशक है ॥ २१ ॥ पुरातनसमय जिस प्रकार अविनाशी, दयासे पूर्ण व मनुष्यों के पातकों का विनाशक अद्भुत शैव तेज प्रकटहुआ है उस
को सुनिये ॥ २२ ॥ कि मैं व नारायण ये दोनों संसार के अधिकारी हुये और मैं सदाशिवजी से बहुत हूं इस संकल्प को विस्तार करतेभये ॥ २३ ॥ आपस में
सम्भाषण करतेहुये हम दोनों बलवान् उत्पन्न होकर अहङ्कार समेत युद्ध करतेरहे और कभी नहीं थके ॥ २४ ॥ हम दोनोंका आपसमें बड़ा भयंकर युद्धका उत्साह

देखकर दयाकी मूर्त्ति सदाशिवजी ने चिन्तन किया ॥ २५ ॥ कि मुझ से रचे हुये अहंकार में स्थित इन दोनोका लोकनाशक युद्ध किस लिये होताहै ॥ २६ ॥ इस समय दोनों अज्ञानियों का बडाभारी युद्ध मना करनेयोग्यहै और यदि मैं युद्धको न रोकूंगा तो संसारका नाश होजायगा ॥ २७ ॥ वेदोंमें सबसे अधिकतासे प्रसिद्ध मेरे माहात्म्य को क्रोधसे नष्ट स्मरणवाले ये दोनों अज्ञानी नहीं जानते हैं ॥ २८ ॥ सबभी प्राणी अपना को बहुत अधिक मानता है और वह दुर्बुद्धि अ-ज्ञानकी अधिकता से नरक में गिरता है ॥ २९ ॥ यदि मैं कहीं भी संसारमें अपनी भक्तिको देऊ तो मेरे रूपके ज्ञानसे वह आत्मा लयको प्राप्तहोताहै ॥ ३० ॥ यह

मानयोरतिभीषणम् ॥ आलोक्यकरुणामूर्त्तिरचिन्तयदथेश्वरः ॥ २५ ॥ किमर्थमनयोर्युद्धं जायतेलोकनाशनम् ॥ मयासृष्टमहङ्कारमप्येवमधितस्थुषोः ॥ २६ ॥ समयेस्मिन्स्वयंवार्यं मुग्धयोरुभयोर्भृशम् ॥ यदियुद्धंनरोत्स्यामि तदास्याद्भुवनक्षयः ॥ २७ ॥ वेदेषुममामाहात्म्यं विश्वाधिकतयाश्रुतम् ॥ नजानातेइमौमुग्धौक्रोधतोगलितस्मृती ॥ २८ ॥ सर्वोपिजन्तुरात्मानमधिकंमन्यतेभृशम् ॥ अविज्ञानसमाधिक्यादधःपततिदुर्मतिः ॥ २९ ॥ यद्यहंक्वापिभुवने दास्यामिभक्तिमात्मनः ॥ तदामद्रूपविज्ञानात्सआत्मालयतामियात् ॥ ३० ॥ इतिनिश्चित्यसतदा स्वयमेवसदाशिवः ॥ आवयोर्युध्यतोर्मध्येवह्निस्तम्भःसमुद्ययौ ॥ ३१ ॥ अतीत्यसकलाँल्लोकान् सर्वतोग्निरिवज्वलन् ॥ अनाद्यन्ततया चाथ दिगन्तेसंव्यतिष्ठत ॥ ३२ ॥ तेजस्तम्भंज्वलन्तं तमालोक्यशिथिलाशयौ ॥ आवयोःपुरतोजाता वाणीचाप्यशरीरिणी ॥ ३३ ॥ किमर्थंबालकौयुद्धं कल्प्यतेमुग्धमानसौ ॥ युवयोर्बलवैषम्यं शिवएवविचक्षते ॥ ३४ ॥ तेजस्तम्भम

निश्चय कर उस समय आपही सदाशिवजी अग्निस्तम्भरूप होकर युद्ध करते हुये हम दोनोंके वीचमें उत्पन्न हुये ॥ ३१ ॥ सबओर अग्निकी नाईं जलताहुआ वह अग्निस्तम्भ सबलोकों को नांघकर व आदि अन्तसे रहित होकर दिशाओं के अन्ततक स्थितहुआ ॥ ३२ ॥ जलते हुये उस तेजस्तम्भ को देखकर हम दोनों शिथिल आशयवाले होगये और हम दोनोंके आगे आकाशवाणीहुई ॥ ३३ ॥ कि हे अज्ञान मनवाले वालको ! किस लिये युद्ध कियाजाता है तुम दोनोंके बलकी

विषमता को शिवही देखते हैं ॥ ३४ ॥ यह तेजस्तम्भमय रूप शिवजी का स्थित है यदि दोनों इस के आदि अन्तको देखो तो बलमें अधिकहो ॥ ३५ ॥ उससमय
इस प्रकार उस वाणीको सुनकर युद्धसे निवृत्त होगये और हम व गतिमान् विष्णुजी उसको खोजने के लिये स्थित हुये ॥ ३६ ॥ आदि अन्त से रहित शिवजीके
अग्निस्तम्भमय रूपको आदि अन्त के विभाग से देखने के लिये हम दोनोंने उद्योगकिया ॥ ३७ ॥ जैसे आकाश में प्राप्त चन्द्रमा को पकड़ने की इच्छावाले दो
बालक वर्तमान होवैं वैसेही हम दोनों उस तेजको प्रमाण से जानने के लिये उद्योगवान् हुये ॥ ३८ ॥ इसके अनन्तर बड़े उत्साहवाले विष्णुजीने बड़ेभारी शरीर

यंरूपमिदंशम्भोर्व्यवस्थितम् ॥ आद्यन्तयोर्यदियुवामैन्निषातांबलाधिकौ ॥ ३५ ॥ इतितांगिरमाकर्ण्य नियुद्धाद्वि
रतौतदा ॥ अहंविष्णुश्चगतिमान्निचेतुंतद्द्व्यवस्थितौ ॥ ३६ ॥ अग्निस्तम्भमयंरूपं शम्भोराद्यन्तवर्जितम् ॥ आलोकि
तुंव्यवसितावावामाद्यन्तभागतः ॥ ३७ ॥ प्रवृत्तौव्योमगंचन्द्रं यथाबालौजिघृक्षतः ॥ तथैवावांसमुद्युक्तौ परिच्छेत्तुञ्च
तन्महः ॥ ३८ ॥ अथविष्णुर्महोत्साहः क्रोडोभूत्वामहावपुः ॥ तन्मूलविचयायाथ भूमिभागंव्यदारयत् ॥ ३९ ॥ अ
हञ्चहंसतांप्राप्तो महावेगंसमुत्पतन् ॥ दिदृक्षुस्तच्छिरोभागं वियद्दूर्ध्वमगाहिषम् ॥ ४० ॥ अधोधोदारयन्क्षोणिमशेषा
मपिमाधवः ॥ आविर्भूतमिवाधस्तादग्निस्तम्भमवैक्षत ॥ ४१ ॥ अनेककोटिवर्षाणि विचिन्वन्नापितत्रसः ॥ प्रपश्य
न्नादिमक्षय्यमार्तरूपःसविह्वलः ॥ ४२ ॥ विशीर्णदंष्ट्रावलयो विश्लथत्सर्वबन्धनः ॥ श्रमातुरस्तृषाक्रान्तो नोद्धन्तु
मशकद्धरिः ॥ ४३ ॥ वाराहंरूपमतुलं सन्धारयितुमक्षमः ॥ विहर्तुमपिविश्रान्तो विषसादरमापतिः ॥ ४४ ॥ अचि

वाले सूकर होकर उसकी जड़को ढूंढने के लिये भूमिके भागको विदीर्ण किया ॥ ३९ ॥ और हंसरूप को प्राप्तहोकर उसके ऊपर के भागको देखनेकी इच्छावाले मैं
ने बड़ेवेग से उड़कर आकाश के ऊपर खोजकिया ॥ ४० ॥ नीचे २ सब पृथ्वी को खोदते हुये विष्णुजी ने नीचेसे प्रकटहुये से अग्निस्तम्भ को देखा ॥ ४१ ॥ व
अनेकों करोड़ वर्षोंतक ढूंढतेहुये भी आदिको अन्तरहित देखकर वे विष्णुजी दुःखितहोकर विकल होगये ॥ ४२ ॥ और टूटीहुई दाढ़ोंकी पंक्तियोंवाले व शि
हुये सब बन्धनोंवाले विष्णुजी श्रमसे विकल व प्याससे संयुतहोकर ऊपर आनेकेलिये न समर्थहुये ॥ ४३ ॥ और अमित सूकररूपको भी धारनेके लिये असम

व विहार करने के लिये भी श्रमित होकर लक्ष्मीनाथ विष्णुजी विषाद को प्राप्त हुये ॥ ४४ ॥ जो अचिन्तनीय व अतुलित बुद्धिवाले हैं वे भ्रमित मनवाले होकर श्रमित अङ्गोंवाले व श्रमसे घिरकर विष्णुजी शरणके योग्य शिवजी की शरण में आश्रित हुये ॥ ४५ ॥ व मनमें कहनेलगे कि अहङ्कार से उपजी हुई इस बड़ीभारी मेरी मूढताको धिक्कार है कि जिससे मैंने अपने स्वामी शिवात्माको नहीं जाना॥ ४६ ॥ समस्त वेदों, देवताओं व लोकोंके जो आदिभूत व जो साक्षात् शिवजी मूलभूत हैं इनका आदि कैसे होवै ॥ ४७ ॥ आदि अन्त से रहित इन्हीं शिवजी से मैं पैदाहुआहूं और अग्निरूपधारी इन शिवजी को ढूंढने के लिये मैंने प्रारम्भ

न्त्योयममेयात्मा परिभ्रान्तमनास्सच ॥ गलिताङ्गःश्रमाक्रान्तः शरण्यंशिवमाश्रयत् ॥ ४५ ॥ धिङ्ममेदंमहन्मौढ्यमहङ्कारसमुद्भवम् ॥ येनाहमात्मनोनाथमात्मानंनावबुद्धवान् ॥ ४६ ॥ आदिर्हिसर्ववेदानां देवानांजगतामपि ॥ मूलभूतःशिवःसाक्षान्मूलमस्यकथंभवेत् ॥ ४७ ॥ अस्मादेवसमुद्भूतोऽस्म्यहमाद्यन्तवर्जितात् ॥एनमन्वेष्टुमारब्धंहुताशनवपुर्धरम् ॥ ४८ ॥ अप्राप्यकरुणाबन्धोः पितुःशम्भोःप्रसादतः ॥ पुनरेवेदृशीलब्धा मतिर्मेचात्मबोधिनी ॥ ४९ ॥ स्वयमेवमहादेवः शम्भुर्यंपातुमिच्छति ॥ तस्यसद्योभवेद्भावमनहङ्कारमात्मजम् ॥ ५० ॥ नशक्नोमिपुनःकर्तुं पूजामस्यजगद्गुरोः ॥ निवेदयामिचात्मानं शरण्यामिशङ्करम् ॥ ५१ ॥ इतिदध्यौशिवंविष्णुस्तत्समर्पितचेतनः ॥ तत्प्रसादाच्छुद्धबुद्धिः पुनरेवोद्गतःक्षितेः ॥ ५२ ॥ अहञ्चगगनेभ्राम्यन्ननेकानपिवत्सरान् ॥ आघूर्णमाननयनः श्लथत्पक्षः

किया ॥ ४८ ॥ और उसके आदिको न पाकर पिता सदाशिवजी के प्रसादसे फिर ऐसी आत्मज्ञानवाली बुद्धि प्राप्तहुई ॥ ४९ ॥ आपही महादेवजी जिसकी रक्षा करना चाहते हैं उसके शीघ्रही बुद्धिसे उपजाहुआ बिन अहङ्कारका भाव होता है ॥ ५० ॥ फिर मैं इन जगद्गुरु की पूजा करने के लिये नहीं समर्थ हूं इससे आत्मा को अर्पण करताहूं व सदाशिवजीकी शरणमे प्राप्तहूं ॥ ५१ ॥ इस प्रकार उनमें समर्पित चित्तवाले विष्णुजी ने शिवजी का ध्यान किया और उनकी प्रसन्नता से शुद्ध बुद्धिवाले विष्णुजी फिर पृथ्वी से ऊपर आये ॥ ५२ ॥ और अनेकों वर्षोंतक आकाशमें घूमताहुआ मैं भ्रमित नेत्रोंवाला तथा परिश्रमित पक्षोंवाला और परिश्रम से

विकलहुआ ॥ ५३ ॥ आगे स्थित व जलतेहुये उस तेजस्तम्भ, देवपूजित लिंगके समान शैव तेजको ऊपर ऊपर देखकर मैं विकलहुआ॥५४॥इसके अनन्तर तेजअंश
से उपजेहुये सिद्धलोगों ने मुझ हंसको देखा व उद्यम कियेहुये मुझको देखकर उन्होंने आपस में यह कहा ॥ ५५ ॥ कि हंसकी अज्ञानता को आश्चर्य है कि
अब भी खोज करने की इच्छा करता है और समीपही देहपातवाला यह हंस अहङ्कार से नहीं समझता है ॥ ५६ ॥ टूटतेहुये पंखोंवाला व परिश्रम से अमितलोच-
नोंवाला यह हंस अपारतेज में गिरताहुआ मोहरहित होगा इसी प्रकार विकल चित्तवाले थे वाराहरूपी विष्णुजी ॥ ५७ ॥ व्याजरहित दयासेवी शिवजी से

श्रमातुरः ॥ ५३ ॥ उपर्युपरिचालक्ष्यंज्वलन्तंपुरतःस्थितम् ॥ तेजस्तम्भञ्चलिङ्गाभं शैवंतेजःसुरार्चितम् ॥ ५४ ॥
मांहंसंददृशुश्चाथ सिद्धास्तेजोंशसम्भवाः ॥ इदमन्योन्यमूचुस्ते दृष्ट्वामान्तुकृतोद्यमम् ॥ ५५ ॥ अहोहंसस्यमुग्धत्व
मद्यापिविचिकीर्षति ॥ आसन्नदेहपातोपि नाहङ्कारेणबोधते ॥ ५६ ॥ विशीर्यमाणपक्षोयं श्रान्त्याविभ्रान्तलोचनः ॥
अपारेतेजसिपतन् विमोहोयंभविष्यति ॥ एवंचाकुलचित्तोयं क्रोडरूपीजनार्दनः ॥ ५७ ॥ व्यावर्तितःशिवेनैव निर्व्याज
करुणाजुषा ॥ ईदृशांब्रह्ममुख्यानां सुराणांकोटिसञ्चयः ॥ ५८ ॥ यत्तेजःपरमाणुभ्यस्तस्यपारंदिदृक्षते ॥ स्वात्मानौ
द्वावितिध्यात्वा समयेभगवाञ्छिवः ॥ ५९ ॥ यदिबुद्धिन्ददात्यस्मै तस्यनश्येदहंक्रिया ॥ इत्येवंवदतान्तेषांसिद्धानां
सदयंवचः ॥ ६० ॥ आकर्ण्यशीर्णाहङ्कारोहाहमात्मन्यचिन्तयम् ॥ नवेदराशिविज्ञानान्नतपस्तीर्थसेवनात् ॥ ६१ ॥ सञ्जा
यतेशिवज्ञानमस्यचानुग्रहाद्दते ॥ शीर्णोपिपक्षयुगले सीदत्यपिकलेवरम् ॥ ६२ ॥ पुनरुत्सहतेचेतः स्वाहङ्कार

लौटायेगये हैं जिनमें ब्रह्मा मुख्यहैं ऐसे देवताओं के करोड़गण ॥ ५८ ॥ यदि तेज की परमाणुओं से उसके पारको देखना चाहै तो नहीं देखसके हैं ये दोनों अपना
आत्मा हैं यह विचारकर इस समय भगवान् शिवजी ॥ ५९ ॥ यदि इसके लिये बुद्धिको देवें तो उसका अहङ्कार नाशहोवै इस प्रकार दया समेत कहते हुये उन
सिद्धोंका वचन ॥ ६० ॥ सुनकर नष्ट अहङ्कारवाले मैंने चित्तमें चिन्तन किया कि न वेदसमूह के ज्ञानसे व न तपस्या व तीर्थके सेवन से ॥ ६१ ॥ इन शिवजीकी
दयाके विना शिवज्ञान उत्पन्न होताहै दोनों पंखोंके टूटनेपर व शरीर के भी विकलहोनेपर ॥ ६२ ॥ फिरभी चित्त अपने अहङ्कार के ग्रहण में उत्साह करताहै अपने

बलको न जाननेवाले व अहङ्कार से घिरेहुये मुझको धिक्कार है ॥ ६३ ॥ इन शिवभक्त सिद्धोंके लिये सदैव नमस्कार है कि जिन के संसर्ग से मिलेहुये तपसे शोभित चित्तवाला मैं ॥ ६४ ॥ अपनी आत्मा के कारण इन आगे स्थित शिवजीको जानताहूं जिनकी प्रसन्नता के मिलने से ऐश्वर्य से संयुत ॥ ६५ ॥ सब देवता नष्ट शत्रुवोंवाले होते हैं वेद जिनके परमार्थ को बड़े शास्त्रों से नहीं जानत हैं ॥ ६६ ॥ संसार में विलक्षण रूप उन्हीं सदाशिवजी की शरण में मैं प्राप्तहोताहूं समस्त प्राणियोंके स्वामी वे महेश्वर देवजी सब से आराधन करनेयोग्य हैं ॥ ६७ ॥ वे दयानिधान शिवदेवजी मुझको बहुतभांति की भक्तिको देवैं इस प्रकार बहुत भांतिसे

स्यप्रग्रहे॥धिङ्मामहंक्रियाक्रान्तमनात्मबलवेदिनम् ॥ ६३ ॥ शिवभक्तेभ्यएतेभ्यः सिद्धेभ्यःसततंनमः ॥ येषांसंसर्गलब्धेन तपसाशोधिताशयः ॥६४॥ शिवमेनंविजानामिस्वात्महेतुंपुरःस्थितम् ॥ यत्प्रसादावलब्धेन विभवेनसमन्विताः ॥ ६५ ॥ देवाःसर्वेभविष्यन्ति सततंशमितारयः ॥ यस्यवेदानजानन्ति परमार्थंमहागमैः ॥ ६६ ॥ तमेवशरणंयामिशम्भुंविश्वविलक्षणम् ॥ सदेवःसकलाराध्यः सर्वभूतमहेश्वरः ॥६७॥ भक्तिमेबहुधादेवः प्रयच्छतुदयानिधिः ॥ इतिसञ्चिन्त्यबहुधा तदाजयमहंक्रियाम् ॥ ६८ ॥ स्वात्मानमर्पयंस्तस्मै संस्फुरच्चन्द्रमौलये ॥ अवतीर्य्यह्यधोभागे यदाश्रान्तकलेवरः ॥ ६९ ॥ अपश्यंचहरिम्प्राप्तं तेजस्तम्भसमीपगम् ॥ अवादिषमधोभागे विष्णुंकमललोचनम्॥७०॥ लब्धदेहःशिवम्भक्त्या संश्रितश्चन्द्रशेखरम् ॥ अहोकिमिदमाश्चर्यमागतंशौर्यशालिना ॥ ७१ ॥ मयाचभवताक्षान्तं शम्भुशक्त्यासमागतम् ॥ तद्वृत्तान्तमहंसर्वमश्रौषंसिद्धवाक्यतः ॥ ७२ ॥ भक्त्यासम्पूजयावाचा अस्मत्पितर

चिन्तन कर उससमय मैंने अहङ्कार को जीतलिया ॥ ६८ ॥ और प्रकाशित चन्द्रमाको मस्तक में धारेहुये उन शिवजी के लिये अपने आत्मा को अर्पण करते हुये थके शरीरवाले मैंने नीचेभाग में उतरकर जब ॥ ६९ ॥ तेजस्तम्भ के समीपगामी प्राप्तहुये विष्णुजी को देखा व नीचे के भाग में कमलसरीखे नेत्रोंवाले विष्णुजी से कहा ॥७०॥ कि शरीरको प्राप्त पुरुष भक्तिसे चन्द्रभालजी के आश्रित होवै अहो यह क्या आश्चर्य आगया कि शूरता स्वभाववाले ॥ ७१ ॥ मैंने व आपने क्षमा किया शिवजी की शक्तिसे प्राप्त उस सब वृत्तान्तको मैंने सिद्धों के वचन से सुनाहै ॥ ७२ ॥ जोकि भक्ति व भलीभांति पूजन और वचन से हमारे पिता शिवजी

को भजते हैं शिवजी की मायासे उपजेहुये अहङ्कार में आश्रित ॥ ७३ ॥ हम तुम दोनोंने आपस में बड़ाभारी युद्ध किया और हम तुम दोनों के सब वृथा अहङ्कार
को उन्हीं सदाशिवजी ने ॥ ७४ ॥ हरलिया जोकि अमित बुद्धिवाले हैं अपने माहात्म्य को प्रकाश करनेवाले इन तेजस्तम्भमय समर्थ सदाशिवजी को पूजकर
सब सिद्धिको पातेहैं ॥ ७५ ॥ संसाररूपी समुद्र की नौकारूप ये सदाशिवजी नित्यही प्रणाम करनेयोग्य हैं ॥ ७६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽरुणाचलखण्डेदेवीदया
लुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांतेजस्तम्भवर्णननामप्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ ॥ ॥ ॥
दो० । शिवकी स्तुति कीन्ह जिमि ब्रह्म विष्णु दोउ देव । सो दूजे अध्याय में कह्यो चरित सुखदेव ॥ ब्रह्माजी बोले कि इसके अनन्तर समस्त मुखोंसे वेदोंको

मीश्वरम् ॥ शम्भुमायासमुद्भूतमहङ्कारमुपाश्रितौ ॥ ७३ ॥ आवांपरस्परंयुद्धमकार्षंविपुलंमहत् ॥ सएवशङ्करःसर्व
महङ्कारमुधावयोः ॥ ७४ ॥ अपाहरदमेयात्मा स्वमाहात्म्यप्रकाशकम् ॥ अमुमीश्वरमानर्च तेजस्तम्भमयंशिवम् ॥
७५ ॥ अभिवन्द्योऽस्त्यसौनित्यंसंसारसागरस्यनौः ॥ ७६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽरुणाचलमाहात्म्येप्रथमोऽध्यायः ॥१॥
ब्रह्मोवाच ॥ अथाहमुच्चरन्वेदानशेषैर्वदनैःशिवम् ॥ अस्तौषंभक्तिसम्पूर्णः कृत्वामानसमर्चनम् ॥ १ ॥ नमःशिवा
यमहते सर्वलोकैककहेतवे ॥ येनप्रकाशितंसर्वं तस्मैतेसततंनमः ॥ २ ॥ विश्वव्याप्तमिदंतेजः प्रकाशयतिशाम्भवम् ॥
नेक्षन्तेत्वद्दयाहीना नेत्रान्धइवभास्करम् ॥ ३ ॥ स्वयम्भुलिङ्गममलं दृश्यमध्यात्मचक्षुषा ॥ अथवाशाङ्करीशक्ति
रस्त्यणोरप्यणीयसी ॥ ४ ॥ मत्तोमान्यतरःकश्चिद्योमय्यपिविलीयते ॥ अणुस्तेकरुणापात्र महत्त्वंध्रुवमश्नुते ॥ ५ ॥

उच्चारण करतेहुये व भक्तिसे सम्पूर्ण मैंने मानसी पूजन कर शिवजी की स्तुति किया ॥ १ ॥ कि समस्त लोकोंके एकही कारण व महात्मा शिवजी के लिये नम-
स्कारहै जिन्होंने सब प्रकाशित कियाहै उन आपके लिये प्रणाम है ॥ २ ॥ संसारमें व्याप्त यह सदाशिवजी का तेज प्रकाश करता है इसको तुम्हारी दयासे हीनपुरुष
नहीं देखते हैं जैसे कि नेत्रोंसे अन्ध नर सूर्यको नहीं देखते हैं ॥ ३ ॥ आपही से उपजाहुआ निर्मल लिङ्ग अध्यात्मदृष्टिसे देखनेयोग्य है अथवा शिवजीकी शक्ति
सूक्ष्म से भी अतिसूक्ष्म है ॥ ४ ॥ मुझसे अधिक माननेयोग्य कोई है जोकि मुझमें लीन होजाताहै हे दयापात्र! तुम्हारा सूक्ष्म अंश अचल महत्त्व को भोगताहै ॥५॥

तुम्हारे आश्रयवाले मुझसे व तुमसे कोई अधिक नहीं है तुममें समर्पित मनवाला जो पुरुष है वह भी योगकी अपेक्षा करता है ॥ ६ ॥ हे भुवनाधिक, महादेव ! तुम्हारे नामके कीर्तन बिना कैसे वचन की प्रवृत्ति होवैहै हे ईश ! आपही प्रसन्न होवो ॥ ७ ॥ प्रणाम कियेहुये भक्तको अपेक्षित नियोगों में आज्ञा दीजिये नम्रता से बार २ प्रणामकर यह बिनतीकर मैने स्तुति किया ॥ ८ ॥ इसके अनन्तर शुक्र व शङ्कर के कीर्तनों से बार २ वाणीको कृतार्थ करतेहुये नवीन मेघोके समान शब्द वाले विष्णुजी ने हाथ जोड़कर देवदेवेश शिवजी से यह कहा कि हे जगदीश, विरूपलोचन, चन्द्रार्धशेखर ! आपकी जयहो ॥ ९ । १० ॥ हे शम्भो ! तुम्हारे

नाधिकोस्तिपरस्त्वत्तो नमत्तोपित्वदाश्रयात् ॥ त्वय्यर्पितमनायश्च सोपियोगमपेक्षते ॥ ६ ॥ वाचःकथंप्रवृत्तिःस्याद्दृते त्वन्नामकीर्त्तनम् ॥ स्वयमीशमहादेव प्रसीदभुवनाधिक ॥ ॥ ७ ॥ आदिशप्रणतंभक्तमपेक्षितानियुक्तिषु ॥ इदंविज्ञाप्यविनयान्नमस्कृत्वापुनःपुनः ॥ ८ ॥ प्राञ्जलिर्देवदेवेशं भीमंदुर्दर्शवैभवम् ॥ अथविष्णुर्नवाम्भोदगम्भीरध्वनिरभ्यधात् ॥ ९ ॥ वाचंकृतार्थयन्भूपः शुक्रशङ्करकीर्त्तनैः ॥ जगन्नाथविरूपाक्षजयचन्द्रार्धशेखर ॥१०॥ अव्याजममितंशम्भो कारुण्यंतववर्धते ॥ येननिधूर्तमखिलं भक्तेपुज्ञानमाहितम् ॥ ११ ॥ पालनंसर्वविद्यानां प्रायशोभूतिसञ्चयैः ॥ ज्ञानादिकंस्वपुत्राणां पितुरेवप्रवर्ध्यते ॥१२॥ शतशस्तवमूर्त्तीनामेकापिनिखिलैःसुरैः ॥ स्तोतुंनशक्याईशान समवायस्तुकिम्पुनः ॥ १३ ॥ त्वमेवत्वामलंवेत्तुं यदिवात्वत्प्रसादभूः ॥ भ्रमरःकीटमाकृष्य स्वात्मानंकिंनचानयेत् ॥ १४ ॥ देवास्त्वदंशसम्भूताः प्रभवोनभवन्तिकिम् ॥ अथास्याप्यग्निदेवस्य दाहशक्तिर्नकिम्भवेत् ॥१५॥ देशकालक्रियायोगाद्य

व्याज (बहाना या कपट) रहित अमित दया बढ़ती है कि जिससे प्रेरित समस्त ज्ञान भक्तों में स्थित है ॥ ११ ॥ प्रायशः ऐश्वर्यों के समूहों से सब विद्याओं का पालन व अपने पुत्रोंका ज्ञानादिक पिताही के सकाश से बढ़ता है ॥ १२ ॥ हे ईशान ! आपकी जो सैकड़ों मूर्त्तियां हैं उनमें समस्त देवता एककीभी स्तुति नहीं करसक्ते हैं फिर समूह को क्या कहना है ॥ १३ ॥ तुमको जानने के लिये तुम्हीं समर्थ हो अथवा तुम्हारी प्रसन्नता का पात्र याने जिसके ऊपर तुम प्रसन्नता करो वह तुमको जानसक्ता है क्योंकि भ्रमर कीटको खींचकर क्या अपनी सरूपता में नहीं प्राप्त करता है ॥ १४ ॥ तुम्हारे अंशसे उपजे हुये देवता क्या समर्थ नहीं होतेहैं और

अग्निदेव के क्या दाहशक्ति नहीं होवै है ॥ १५ ॥ जैसे देश व समय व कर्मके संयोग से अग्निके भेदकी उत्पत्ति होतीहै वैसेही एकभी तुम विषयों के भेदसे भेदको प्राप्तहोते हो ॥ १६ ॥ हे दयामें परायण, सदाशिवदेवजी ! हे सबके आधाररूप ! नेत्रोंको आनन्द देनेवाली मूर्त्तिको हम दोनोंको दिखलाइये ॥ १७ ॥ श्रीसूतजी बोले कि इस प्रकार भक्ति व श्रद्धासंयुत प्रणाम करते व स्तुति करतेहुये उन ब्रह्मा व विष्णुजी के ऊपर सदाशिवजी प्रसन्नहुये ॥ १८ ॥ फिर चन्द्रार्द्ध मस्तकवाले सदा-शिवदेवजी उस तेजस्तम्भ से पिंगलवर्ण व श्याम कन्धवाले पुरुषरूप होकर प्रकटहुये ॥ १९ ॥ फरसा, बालहरिन, अभय व विश्रामको हाथोंसे धारण कियेहुये उन

थाग्नेर्भेदसम्भवः ॥ तथा विषयभेदेन त्वमेकोपिविभिद्यसे ॥ १६ ॥ अनुग्रहपरोदेवमूर्त्तिंदर्शयशङ्कर ॥ आवयोरखिलाधारनयनानन्ददायिनीम् ॥ १७ ॥ श्रीसूतउवाच ॥ एवंतयोःप्रणमतोःश्रद्धाभक्तिसमन्वितम् ॥ प्रससादपरंशम्भुःस्तुवतोर्ब्रह्मकृष्णयोः ॥ १८ ॥ तेजस्तम्भात्पुनस्तस्माद्देवश्चन्द्रार्द्धशेखरः ॥ आविर्बभूवपुरुषः कपिलःकालकन्धरः ॥ १९ ॥ परशुंबालहरिणं करैरभयविश्रमौ ॥ दधानःपुरुषोवादीत्पुत्रौहेतावितिप्रभुः ॥ २० ॥ परितुष्टोस्मियुवयोर्भक्त्यायुक्तात्मनोर्मयि ॥ भवतांसर्वलोकानांसृष्टिरक्षाधिपौयुवाम् ॥ २१ ॥ युवयोरिष्टसिद्ध्यर्थमाविर्भूतोस्म्यहंयतः ॥ वरंवृणुतमन्यञ्च वरदोहमुपागतः ॥ २२ ॥ इतिदेवस्यवचनात्सुप्रीतौतौकृताञ्जली ॥ विज्ञापयामासतुस्तौ स्वंस्वमर्थंपृथक्पृथक् ॥ २३ ॥ कथयामासतुस्तौच जगत्त्रयविधायकम् ॥ संस्तुवन्वैदिकैर्मन्त्रैरीशानमपराजितम् ॥ २४ ॥ हरसित्वमिदंरूपनमस्तेभद्रमीश्वर ॥ तेजोमयंमहादेव योगिध्येयंनिरञ्जनम् ॥ २५ ॥ आपूर्यमाणंभवता तेजसागगनान्तरम् ॥

प्रभु पुरुष ने दोनोंसे कहा कि हे पुत्रो ! ॥ २० ॥ भक्तिसे मुझमें युक्त चित्तवाले तुम दोनों के ऊपर मैं प्रसन्नहूं तुम दोनों सब लोकोंकी सृष्टि व रक्षाके स्वामी होवो ॥ २१ ॥ जिस लिये तुम दोनोंके प्रिय कार्यकी सिद्धिके लिये मैं प्रकटहुवाहूं इस कारण अन्य वरदान को मांगिये मैं वरदायक प्राप्तहूं ॥ २२ ॥ शिवदेवजी के इस वचनसे प्रसन्न होकर हाथोंको जोड़हुये उन दोनोंने पृथक् २ अपने अपने प्रयोजन को बतलाया ॥ २३ ॥ और तीनों लोकोंको रचनेवाले व अपराजित शिवजीकी वैदिक मन्त्रोंसे स्तुति करते हुये उन्होंने यह कहा ॥ २४ ॥ कि हे ईश्वर, महादेव ! तुम्हारा कल्याणहोवे योगियों से ध्यान करनेयोग्य व निरञ्जन इस तेजोमय रूपको हर

लीजिये ॥ २५ ॥ आपके तेज से आकाश का अन्तर (मध्य) पूरित है देवताओं का स्थान दीजिये तो क्षणभर में कल्याण होगा ॥ २६ ॥ सिद्ध, चारण, गन्धर्व,
देवता व परमर्षि लोग आपके तेजके कारण आकाश में निवास व मार्गको नहीं पाते हैं ॥ २७ ॥ और तुम्हारे तेजसे समस्त पृथ्वी तच रही है व वही पृथ्वी रसोंकी
उत्पत्ति में समर्थ न होगी ॥ २८॥ तुम तेजको हरकर लोकोंके ऊपर दयाके कारण से अरुणाचल संज्ञासे अचल लिंग होवो ॥ २९ ॥ अरुणाचल संज्ञक इस ज्योतिर्मय
रूपको जो मनुष्य भक्तिसे प्रणाम करते हैं वे सब देवताओं से अधिक हैं ॥ ३० ॥ और सब मनुष्य व सिद्ध और परमर्षि सेवन करैं व मानसीभाव में स्थित होकर

परियच्छसुरावासं क्षणाच्छिशम्भविष्यति ॥ २६ ॥ सिद्धचारणगन्धर्वा देवाश्चपरमर्षयः ॥ नावासंदिविसञ्चारं लभेरं
स्तेजसातव ॥ २७ ॥ पृथ्वीचसकलाचैव तप्यमानातवौजसा ॥ साचैवरसप्रोत्पत्तिक्षमानैवभविष्यति ॥ २८ ॥ उप
संहृत्यतेजस्त्वमरुणाचलसंज्ञया ॥ भवस्थावरलिङ्गंत्वं लोकानुग्रहकारणात् ॥ २९ ॥ ज्योतिर्मयमिदंरूपमरुणाचल
संज्ञितम्॥ येनमन्तिनराभक्त्या तेसर्वेत्वमराधिकाः ॥३०॥ सेवन्तांसकलालोकाः सिद्धाश्चपरमर्षयः॥ गणाश्चविविधाभू
मौमानसम्भावमास्थिताः ॥ ३१ ॥ दिव्यारामसमुद्भूताः कल्पकाद्याःसुरद्रुमाः ॥ सेवितास्त्वांप्ररोहन्तु सम्पूर्णाविविधैः
फलैः ॥ ३२ ॥ दिव्यौषधिगणाःसर्वे सिंहाद्यामृगजातयः ॥ सततंपरिवर्तन्तांपापकल्मषनाशनम् ॥३३ ॥ अयनद्वयभि
न्नेनगमनेनापिसंयुतः ॥ नलङ्घयिष्यतिरविः शृङ्गंलिङ्गात्मनस्तव ॥ ३४ ॥ दिव्यदुन्दुभिशङ्खानां निर्घोषैःपुष्पवृष्टि
भिः ॥ सेवितोभवदेवत्वमप्सरोनृत्यगीतिभिः ॥ ३५ ॥ अमरत्वञ्चसिद्धत्वं रससिद्धिञ्चनिर्वृतिम् ॥ लभतांमानुषानित्यं

भूमि में अनेक भांति के गण आप को सेवैं ॥ ३१ ॥ और दिव्य बगीचों में उपजेहुये कल्पकादिक सेवित देव वृक्ष विविधफलों से पूर्ण होकर तुम्हारे ऊपरजयै॥३२॥
व पातकों तथा अपराधों के नाश करनेवाले तुम्हारे ऊपर दिव्य औषधियों के गण व सिंहादिक सब पशु जातियां सब ओर घूमैं ॥ ३३ ॥ और दोनों अयनोंकी भिन्न
गति से भी संयुत सूर्यनारायण जी तुम्हारे लिंगात्मक शिखर को न नांघैंगे ॥३४॥ व हे देव ! दिव्य नगारों और शङ्खों के शब्दो तथा पुष्पवृष्टियों से और अप्सराओं के

नृत्य व गानों से सेवित होवो ॥ ३५ ॥ और तुम्हारे समीप आयेहुये पुरुष अमरता सिद्धता, स्वर्ग [illegible]
जी ! तुम्हारे आश्रित होकर मनुष्य ऐश्वर्यता, सौभाग्य, महत्त्व व काल की वंचना को प्राप्त होवैं व [illegible]
और समस्त मनोरथों के दान से पृथ्वी में दृश्य होवो याने देख पड़ो वैसाही होगा ऐसा वर देनेवाले अरुणा[illegible]
करते हुये लक्ष्मीनाथ विष्णुजी यह बोले कि हे अरुणाचलेश्वर, दयापूर्ण, प्रभो ! प्रसन्न होवो ॥ ३९ ॥ हे [illegible]

त्वत्संनिधिमुपागताः ॥ ३६ ॥ ईशानत्वञ्च सौभाग्यं महत्त्वं कालवञ्चनम् ॥ त्वामाश्रित्य नरा[illegible]
सर्वावयवदानेन सर्वव्याधिविनाशतः ॥ ३७ ॥ सर्वाभीष्टप्रदानेन दृश्यो भव महीतले ॥ तथे[illegible]
शिवम् ॥ ३८ ॥ प्रणम्य कमलानाथः प्रार्थयन्निदमब्रवीत् ॥ प्रसीद करुणापूर्ण शोणशैलेश्वर प्रभो ॥ ३९ ॥ [illegible]
लोकानां हिताय प्रकटोदय ॥ यदाहं त्वामुपाश्रित्य जगद्रक्षणदक्षिणः ॥ ४० ॥ श्रीपतित्वमनुप्राप्तस्तदा[illegible]
ते ॥ नाल्पपुण्यैरुपास्येत त्वद्रूपं महदद्भुतम् ॥ ४१ ॥ मया च ब्रह्मणा वेदप्रोक्तस्तोत्रेण त्वं स्तुतः ॥ प्रदक्षिणा[illegible]
त्यगीतैश्च पूजनैः ॥ ४२ ॥ त्वामर्चयन्ति ये मर्त्याः कृतार्थास्ते गतांहसः ॥ उपवासैर्ब्रह्मणा त्वमर्चितश्चन्द्रशेखर ॥ ४३ ॥
उपहारैरर्चनैश्च त्वामर्चन्तु नराश्च ये ॥ अवश्यमेव मनुजाः सार्वभौमा भवन्तु ते ॥ आरामं मण्डपं चापि कूपं भूमिविशोध-
नम् ॥ ४४ ॥ कुर्वतामरुणाद्रीश संनिधाने पुनर्भवः ॥ अंगप्रदक्षिणं कुर्वन्नष्टैश्वर्यसमश्नुताम् ॥ ४५ ॥ अशेषपातकैः

जब मैं तुम्हारे आश्रित होकर संसार की रक्षा में चतुर होऊं ॥ ४० ॥ व श्रीपतित्वको प्राप्त होऊं तब तुम्हारे भक्त होवैं क्योंकि बड़े अद्भुत तुम्हारे रूप को थोड़ी
पुण्यवाले लोग न उपासना करैं ॥ ४१ ॥ मैने व ब्रह्मा ने वेद मे कहेहुये स्तोत्र से तुम्हारी स्तुति किया है और प्रदक्षिणा, नमस्कार, नृत्य, गीत व पूजनों से ॥ ४२ ॥
जो मनुष्य तुमको पूजतेहैं वे पापरहित व कृतार्थ होजातेहैं हे चन्द्रभाल ! ब्रह्माने उपवासोंके द्वारा तुम्हारा पूजन कियाहै ॥ ४३ ॥ जो मनुष्य बलि व पूजनों से तुम को
पूजैं वे मनुष्य अवश्यही चक्रवर्तीहोवैं और बगीचा, मण्डप, कूप व भूमिशोधन ॥ ४४ ॥ करतेहुये पुरुषों का अरुणाचल के समीप फिर जन्म होवै, और पर्वत की प्रद-

जिणा करताहुआ पुरुष आठों ऐश्वर्यों को भोगकरै ॥ ४५ ॥ व समस्त पातकों से शीघ्रही छूटकर निर्मल चित्तवाला होजावै और तुम्हारे समीप आयेहुये सब पुरुषोंको अहं, मम छोड़कर सदैव तुम्हारे चरणकमलों का ध्यान करना चाहिये वैसाही होगा इस वरदान को विष्णुजी के लिये देकर चन्द्रभाल जी ॥ ४६ । ४७ ॥ अरुणाचल के रूप से अचल लिंगत्व को प्राप्तहुये यह तैजस लिंग सब लोकों का एक कारण है ॥ ४८ ॥ जो कि अरुणाचल ऐसा प्रसिद्ध भूतल में देखपड़ता है युगान्त समय में डूबेहुये लोकान्तोंवाले भी इन चारों समुद्रों से इसके समीपकी भूमि नहीं स्पर्श कीजाती है व हाथी के प्रमाण भर जलबिन्दुवों से त्रिलोक को पूर्ण

सद्यो विमुक्तोनिर्मलाशयः ॥ अहंममविमुच्यैव सदात्वत्पादपङ्कजम् ॥ ४६ ॥ ध्यातव्यंमनुजैःसर्वैस्तवसंनिधिमागतैः ॥ तथास्त्वितिवरंदत्त्वा ।विष्णवेचन्द्रशेखरः ॥ ४७ ॥ अरुणाचलरूपेण प्राप्तःस्थावरलिङ्गताम् ॥ तैजसंलिङ्गमेतद्धि सर्व लोकैककारणम् ॥ ४८ ॥ अरुणाद्रिरितिख्यातं दृश्यतेवसुधातले ॥ युगान्तसमयेचैतैश्चतुर्भिरपिसागरैः ॥ ४९ ॥ अपि निर्मग्नलोकान्तैरस्पृष्टान्तिकभूतलम् ॥ गजप्रमाणैःपृषतैः पूरयन्तोजगत्त्रयम् ॥ ५० ॥ पुष्कलाद्यामहामेघा विश्रा न्तायस्यसानुनि ॥ प्रवृत्तेभूतसंहारे प्रकृतौप्रतिसञ्चरे ॥ ५१ ॥ भविष्यत्सर्वबीजानि निषेदुर्यत्रनिश्चयम् ॥ ब्रह्मणाहूय मानेभ्यःप्रलयानन्तरम्पुनः ॥ ५२ ॥ यत्पादसेविविप्रेभ्यो वेदाध्ययनसंग्रहः ॥ सर्वासामपिविद्यानां कलानांशास्त्रसंप दाम् ॥ ५३ ॥ आगमानाञ्चवेदानां यत्रचास्तिव्यवस्थितिः ॥ यद्गुहागह्वरान्तस्था मुनयःसंशितव्रताः ॥ ५४ ॥ ज टिलाःसम्प्रकाशन्ते कोटिसूर्याग्नितेजसः ॥ पञ्चब्रह्ममयैर्मन्त्रैःपञ्चाक्षरवपुर्द्धरैः॥ ५५ ॥ सदास्तेपृष्ठमारूढोनगात्मा

करतेहुये ॥ ४९ । ५० ॥ पुष्कलादिक महामेघ जिसके शिखर पै विश्राम को प्राप्त होते हैं और प्रलय में जब मायामें प्राणियों का संहार होता है तब ॥ ५१ ॥ होनेवाले सब बीज जहांपर निश्चयकर स्थित हुये हैं और प्रलय के बाद ब्रह्माजी से बुलायेहुये ॥ ५२ ॥ जिसके समीपवाले पर्वतों के सेवी ब्राह्मणों से वेदपाठका संग्रह होता है और सब विद्याओं तथा कलाओं व शास्त्र की सम्पदा ॥ ५३ ॥ व शास्त्र तथा वेदों की जहांपर स्थिति रहती है व जिसकी कन्दराओं के भीतर टिके हुये प्रशंसित व्रतोंवाले मुनिलोग ॥ ५४ ॥ जटाधारी व कोटि सूर्यों के समान तेजवाले भलीभांति प्रकाशित हैं पञ्चाक्षर के शरीर को धारेहुये पांच ब्रह्ममयमन्त्रों

से ॥ ५५ ॥ संयुत अरुणाचल के पृष्ठ पै चढ़ेहुये जो पर्वतात्मक सदाशिव जी सदैव रहते हैं वे आठों दिक्पालों से पूजित आठों लिंगों से सदैव ॥ ५६ ॥ आठ मूर्तियों के स्वरूप से भी आठ सिद्धियों को देनेवाले हैं व जहांपर टिकेहुये उन सदाशिवजी के भक्त सिद्धलोग सदैव कनकाचल को छोड़कर मुक्ति की नहीं अ-पेक्षा करते हैं इसप्रकार पृथ्वी के पुण्यके परिपाक (फल) की राशि ॥ ५७।५८ ॥ अरुणाचल ऐसा प्रसिद्ध है कैलास व सुमेरु पर्वत के शिखर से आयेहुये शिवजी की भक्तिसे संयुत देवगणों से ॥ ५९ ॥ सब वरों के देनेवाले अरुणाचलात्मक शिवदेव जी पूजेजाते हैं ॥ ६० ॥ इसप्रकार उन ब्रह्माजी से कहेहुये समस्तचरित्र

यःसदाशिवः ॥ अष्टभिश्चसदालिङ्गैरष्टदिक्पालपूजितैः ॥ ५६ ॥ अष्टमूर्त्तिस्वरूपेणाप्यष्टसिद्धिप्रदायकः ॥ यत्रसिद्धाः स्थितालोकाभक्तास्तस्येश्वरस्यन ॥ ५७ ॥ अपेक्षन्तिसदामुक्तिं विहायकनकाचलम् ॥ एवंवसुन्धरापुण्यपरिपाक समुच्चयम् ॥ ५८ ॥ अरुणाद्रिरितिख्यातमजभक्तिसमान्वितैः ॥ कैलासान्मेरुशिखरादागतैर्देवसञ्चयैः ॥ ५९ ॥ पूज्य तेशोणशैलात्मा शम्भुःसर्ववरप्रदः ॥ ६० ॥ इतिकथितमशेषमेवतेनमुदितमनाः सनकोनिशम्यभक्त्या ॥ विरचि तविनयःप्रणम्यपुत्रः पितरमपृच्छदशेषवेदसारम् ॥ ६१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽरुणाचलमाहात्म्येद्वितीयोऽध्यायः २॥

सनकउवाच ॥ भगवन्नरुणाद्रीश माहात्म्यमिदमद्भुतम् ॥ कृतंशिवप्रसादेन दययातेजगद्गुरोः ॥ १ ॥ आश्चर्यमे तन्माहात्म्यं सर्वपापविनाशनम् ॥ आराधयन्पुनःकेच वरदंशोणपर्वतम् ॥ २ ॥ अनादिरन्तरहितःशिवः शोणाचला

को प्रसन्नमनवाले सनक जीने भक्ति से सुनकर व फिर विनय रचकर पुत्र सनक जीने पिता ब्रह्माको प्रणाम कर समस्त वेदों के सारांश को पूछा ॥ ६१ ॥ इति श्री स्कन्दपुराणेऽरुणाचलखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांविष्णुकृतारुणाचलस्तुतिवर्णनंनामद्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ ॥ ❀ ❀ ॥

दो० । मूंदो जिमि परिहास सों पारवती शिव नैन। सो तीजे अध्याय में चरित अहै सुखऐन ॥ सनकजी बोले कि हे भगवन्! जगद्गुरु तुम्हारे ऊपर दयाके का-रण शिवजी की प्रसन्नता से यह अद्भुत अरुणाचलेश का माहात्म्य कियागया ॥ १ ॥ यह माहात्म्य आश्चर्यरूप व सब पातकों का विनाशक है वरदायक अरुणा-

चल को फिर किन्होंने आराधन किया है ॥ २ ॥ हे देव! आदि व अन्तसे रहित अरुणाचल आकारवाले सदाशिव जी तुम दोनों के वरदान से भलीभांति स्थित हुये हैं ॥ ३ ॥ अरुणाचल ऐसा एकहीबार कहने से मुक्तिदायक है व उसकी समीपता सब कामों को देनेवाली व पातकों की विनाशक है ॥ ४ ॥ कैलासपर्वत से व सुमेरुगिरीश से प्राप्तहोकर देवता अरुणाचल को आराधनकर कृतार्थ व पापरहित हुये हैं ॥ ५ ॥ उस सनकजी के इस वचन को सुनकर अरुणाचल को मोन्तेहुये वे दयामूर्ति देवदेव ब्रह्माजी बोले ॥ ६ ॥ कि हे वत्स! पार्वतीजी के प्राचीन चरित्र को सुनिये कि जिसप्रकार अरुणाचलेश के आश्रितहोकर वे पार्वतीजी

कृतिः ॥ युवयोस्तपसादेव वरदानाच्चसंस्थितः ॥ ३ ॥ सकृत्संकीर्त्तनेनैव शोणाद्रिरितिमुक्तिदः ॥ संनिधिःसर्वकामानां जायतेचाघनाशनम् ॥ ४ ॥ कैलासशैलात्संप्राप्ता देवामेरुगिरीश्वरात् ॥ अरुणाचलमाराध्य कृतार्थाविगतांहसः॥५॥ इतितद्वचनंश्रुत्वा देवदेवःपितामहः ॥ उवाचकरुणामूर्त्तिररुणाद्रिंसमानयन् ॥ ६ ॥ श्रूयतांवत्सपार्वत्याश्चरितंयत्पुरा तनम् ॥ अरुणाद्रीशमाश्रित्य यथासानिर्वृताभवत् ॥ ७ ॥ पुराकैलासशिखरे सर्वदेवनमस्कृते ॥ वज्ररत्नगणाकीर्णे क ल्पकारामशोभिते ॥ ८ ॥ रत्नस्तम्भसहस्राढ्ये महदास्थानमण्डपे ॥ आससादमहादेवः कदाचित्पार्वतीपतिः ॥ ९ ॥ रत्नसिंहासनंदिव्यं रत्नतोरणसंयुतम् ॥ रत्नपुष्पफलोपेतं कल्पद्रुममनोहरम् ॥ १० ॥ पराध्यर्पदास्तरणं बद्धमुक्तावितान कम् ॥ विमुक्तपुष्पप्राकारं दिव्यधूपोरुसौरभम् ॥ ११ ॥ प्रफुल्लमल्लिकाजालं निनदद्गङ्गसंकुलम् ॥ दिव्यतूर्यघनारावप्रति

आनन्दित हुई हैं ॥ ७ ॥ पहले किसी समय पार्वती के पति महादेवजी समस्त देवताओं से नमस्कृत, वज्र (हीरा) रत्नगणों से पूर्ण, कल्पवृक्ष के बगीचों से शोभित व हजाररत्न स्तम्भों से संयुत तथा बडेभारी सभामण्डपवाले कैलासके शिखर पै दिव्यरत्न सिंहासन पै बैठे थे जोकि रत्नों की बन्दनवार से संयुत व रत्नके फल फूलो से युक्त और कल्पवृक्षों से सुन्दर था ॥ ८ । ९ । १० ॥ जो कि बडेमोलवाले वस्त्रों के बिछौनेवाला व बँधेहुये मोतियों के चँदौवावाला था व छोडेहुये पुष्पों से छहरदिवालीवाला तथा दिव्य धूपों से बहुतसुगन्धोंवाला था ॥ ११ ॥ व फूले हुये बेला के गणों से संयुत व शब्दायमान गंगाजी से युक्त तथा दिव्य तुरही के

सघन शब्दसे प्रतिध्वनिवाले कन्दराओं से संयुक्त था ॥ १२ ॥ व पार्वती जी के सिंह के भ्रमण से डरेहुये हाथियोंवाला तथा नाचती व कोमल गाती हुई अप्स-
राओं से ॥ १३ ॥ सेवित अग्रभागवाला था और दिक्पालों से सेवित तथा ऋग् यजुः सामवेद में गाय मन्त्रों से स्तुति करतेहुये मुनिश्रेष्ठों ॥ १४ ॥ और ब्रह्मर्षि,
देवता, सिद्ध व राजर्षियों से घिरा था व भस्म से भूषित अङ्गोंवाले तथा अनेक आकारवाले गणों से ॥ १५ ॥ सबओर पूर्ण था जो कि रुद्राक्ष की माला से सुन्दर
व शिवजी में परायण थे और कल्याणकारी वीणा, वेणु व मृदङ्गों के शब्दों से॥ १६ ॥ तथा घंटा के टंकार से सुन्दर व वेदध्वनि से मिलेहुये शब्दों से मनोहर महा-

शुद्गुहसंयुतम् ॥१२॥ पार्वतीसिंहसंचारपरित्रस्तमहागजम् ॥ अप्सरोभिःप्रनृत्यद्भिर्गायतीभिश्चकोमलम् ॥१३॥ आसेवि
तपुरोभागं दिक्पालकनिषेवितम् ॥ ऋग्यजुःसामजैर्मन्त्रैः स्तुवद्भिर्मुनिपुङ्गवैः ॥१४॥ ब्रह्मर्षिभिस्तथादेवैः सिद्धैराजर्षि
भिर्वृतम् ॥ गणैश्चविविधाकारैर्भस्मालंकृतविग्रहैः ॥ १५ ॥ रुद्राक्षमालासुभगैःपूर्णंशिवतत्परैः ॥ वीणावेणुमृदङ्गा
नां शङ्कराणाञ्चनिस्वनैः ॥ १६ ॥ घण्टाटङ्कारसुभगैर्वेदध्वनिविमिश्रितैः ॥ मनोहरंमहादिव्यमासनंपार्वतीस
खः ॥ १७ ॥ अलंचकारभगवान् भक्तानुग्रहकाम्यया ॥ अबिभ्रदमलंरूपं सर्वतेजोमयंशिवम् ॥ १८ ॥ अम्बिकास
हितःश्रीमान् विजहारदयानिधिः ॥ सङ्गीतनकथाभेदैर्द्यूतक्रीडाविकल्पनैः ॥ १९ ॥ गणानांविकटैर्नृत्यै रमयामास
पार्वतीम् ॥ विसृज्यसकलान्देवानृषींश्चापिसभासदः ॥ २० ॥ वरान्प्रदायविविधान् भक्तलोकायवाञ्छितान् ॥ आरामे
षुविचित्रेषु सर्वर्तुकुसुमेषुच ॥२१॥ विजहाररतयासार्द्धंरत्नप्रासादपङ्क्तिषु॥वापिकासुमनोज्ञासु रत्नसोपानपङ्क्तिषु ॥२२॥

दिव्य आसन को पार्वती के सखा भगवान् शिवजीने भक्तों के उपर दयाकी कामना से अलंकृत किया और उन्हों ने समस्त तेजोमय कल्याणरूपी निर्मलरूपको
धारण किया ॥ १७ । १८ ॥ पार्वती समेत दया के निधान श्रीमान् शिवजीने विहार किया व संगीत तथा कथा के भेदों व द्यूतक्रीडा (जुँवा) के भेदों से ॥ १९ ॥
व भयङ्कर गणों के नृत्यों से शिवजी ने पार्वती को रमाया सब देवों व ऋषियों तथा सभासदों को बिदाकर ॥ २० ॥ व भक्तजन के लिये चाहेहुये अनेकप्रकार के
वरों को देखकर सब ऋतुओं के फलोंवाले विचित्रबगीचों में ॥ २१ ॥ और रत्नके मन्दिरकी पंक्तियों तथा रत्नों से बनीहुई सोपान (सीढ़ी) की पंक्तियोंवाली सुन्दरी

बावलियों में उन पार्वती समेत शिवजीने विहार किया ॥ २२ ॥ व कितने पर्वतों के शिखरों पै और स्वर्णकदलीवन के बीच में विहार किया व श्रीगंगाजी की तरंगों से शीतल व प्रफुल्लित कमलों की सुगन्धिवाले ॥ २३ ॥ और धीरे धीरे चलतेहुये पवनसे शिवजी श्रमरहित हुये व कल्याणकी कामनावाले आपही शिवदेवजीने समस्त सौभाग्यों से सुन्दरी रतिरूपिणी प्यारी पार्वती देवी को बहुत आनन्दित किया किसी समय एकान्त में चित्त को जाननेवाली व प्रसन्न तथा क्रीड़ा करनेवाले शिवजी को वश में प्राप्त जानती हुई मुग्धा पार्वती जीने पीछे आकर स्नेहसमेत कमल के समान हाथों से इन जगद्गुरु शिवजीके नेत्रों को खेल से

कतिपर्वतशृङ्गेषु हेमरम्भावनान्तरे ॥ गङ्गातरङ्गशीतेनफुल्लपङ्कजगन्धिना॥२३॥वातेनमन्दगतिना बभूवविगतश्रमः ॥ शिवकामःस्वयंदेवः प्रेयसीमत्यनन्दयत् ॥ २४ ॥ रतिरूपांशिवांदेवीं सर्वसौभाग्यसुन्दरीम् ॥ कदाचिद्रहसिप्रीता चित्तज्ञावशवर्त्तिनम् ॥ २५॥ रमणंजानतीमुग्धा पश्चादभ्येत्यसादरम् ॥ कराभ्यांकमलाभाभ्यां नेत्राण्यस्यजगद्गुरोः ॥ २६॥ पिदधेलीलयाशम्भोः किमेतदितिकौतुकात् ॥ चन्द्रादित्याग्निरूपेषु पिहितेष्वक्षिषुक्रमात् ॥ २७॥ अन्धकारोभवत्तत्र चिरकालंभयङ्करः॥ निमिषार्द्धेनदेवस्य जग्मुर्वत्सरकोटयः ॥ २८ ॥ देवीलीलासमुत्थेन तमसाभूज्जगत्त्रयः ॥ तमसापूरितंविश्वमपारेणसमन्ततः ॥ २९ ॥ शून्यंज्योतिःप्रचारेण विनाशंप्रत्यपद्यत ॥ नविजृम्भन्तिविबुधा नचवेदाःप्रकाशिरे ॥ ३० ॥ नापिजीवाःसमभवन् नव्यक्तंकेवलंस्थितम् ॥ जगतामपिसर्वेषामकालेवीक्ष्यसंक्षयम् ॥ ३१ ॥ तपसालब्धभूतीनां विचारःसमपद्यत ॥ किमेतत्तमसोजन्म भुवनत्रयकारणम् ॥ ३२ ॥ भगवानपिसर्वा

मूंदलिया ॥ २४ । २५ । २६ ॥ यह क्या है इस कौतुक से सदाशिवजी के क्रम से चन्द्रमा, सूर्य व अग्निरूप नेत्रों के मूंदने पर ॥ २७ ॥ वहां बहुतसमय तक भयङ्कर अन्धकार होगया शिवदेवजी के आधे निमेष से करोड़ों बरस बीतगये ॥२८॥ व देवीजीके लीला से उपजेहुये अन्धकार से संसार का नाश होगया व सबओर अपार अन्धकार से संसारभर पूर्ण होगया ॥ २९ ॥ व आकाश के प्रचार से शून्य संसार विनाश को प्राप्तहुआ और देवता नहीं विजृम्भित होते (बढ़ते) थे व न वेद प्रकाश को प्राप्त हुये ॥ ३० ॥ व जीव भी न हुये और संसार केवल स्थित रहा परन्तु प्रकट न हुआ असमय में समस्त लोको का भी नाश देखकर ॥ ३१ ॥

तपस्या से पायेहुये ऐश्वर्यवाले जनों का विचार हुआ कि संसार के नाशका कारण यह अन्धकार का जन्म क्यों हुआ ॥ ३२ ॥ समयका आक्षेप करते हुये सर्वव्यापी भगवान्भी क्या नहीं क्लेशित होते हैं पार्वती देवी जी क्रीड़ारूप करके पश्चात्से शिवजी के नेत्रों को मूँदे हैं ॥ ३३ ॥ उस से यह सब त्रिलोक तेजहीन होगया अ-समय से त्रिलोक में अन्धकार व्याप्त होने पर ॥ ३४ ॥ न यज्ञ वर्त्तमान होतेहैं और न पृथ्वी में देवता पूजेजाते हैं ॥ ३५ ॥ और न वेद वर्तमान होते हैं न प्राणी उ-त्पन्न कियेजाते हैं संसार के नाश करने में भयंकर यह बहुतसमय व्यतीत होरहा है ॥ ३६ ॥ इसलिये प्रणतप्रिय सदाशिव जी को बड़ेयत्न से बोध कराना चाहिये

त्मा नक्लिश्येत्कालमाक्षिपन् ॥ देवीविनोदरूपेण पिधत्तेऽपरतोदृशौ ॥ ३३ ॥ तेनेदमखिलंजातं निस्तेजोभुवनत्रय म् ॥ अकालेतमसाव्याप्ते सकलेभुवनत्रये ॥ ३४ ॥ नयज्ञाःसंप्रवर्तन्ते न पूज्यन्तेसुराभुवि ॥ ३५ ॥ नचवेदाःप्रवर्तन्ते नोत्पाद्यन्तेचजन्तवः ॥ कालोमहानयंयाति भुवनक्षयभीषणः ॥ ३६ ॥ बोधनीयःप्रयत्नेन शिवःप्रणतवत्सलः ॥ इति निश्चित्यमनसा वीक्ष्यवैज्ञानचक्षुषा ॥ ३७ ॥ नित्यास्तेसूरयोभक्त्या शम्भुमानम्यतुष्टुवुः ॥ नमःसर्वजगत्कर्त्रे शि वायपरमात्मने ॥ ३८ ॥ माययाशक्तिरूपेण पृथग्भावमुपेयुषे ॥ उमेत्वंभाविनीशक्तिराद्यैकाशिवरूपिणी ॥ ३९ ॥ लीलयाजगदुत्पत्तिरक्षासंहतिकारिणे ॥ मनसावचसादेवशिवभक्त्यात्मकंवपुः ॥ ४० ॥ एकएवमहादेवः परोनेच्छाप्रव र्तकः ॥ इच्छाज्ञानंक्रियाशक्तिर्विद्यामायाकलापरा ॥ ४१ ॥ इतिप्रोक्ताभिधाशम्भो तवनाम्नांशिवाकृतेः ॥ लीलयात

यह निश्चयकर व ज्ञान दृष्टि से देखकर ॥ ३७ ॥ उन अविनाशी विद्वानों ने शम्भु जी को भक्ति से प्रणामकर स्तुति किया कि समस्त संसार के रचनेवाले परमात्मा शिवजी के लिये नमस्कार है ॥ ३८ ॥ मायासे शक्तिरूप करके पृथक्ताको प्राप्तहोने वाले के लिये प्रणाम है व हे पार्वति ! तुम्हीं एक कल्याणरूपिणी भाविनी शक्ति हो ॥ ३९ ॥ व लीला से संसार की उत्पत्ति, रक्षा व संहार करनेवाले आपके लिये नमस्कार है हे देव ! मन, वचन व कर्म से शिवभक्त्यात्मक शरीर को हमलोग प्रणामकरते हैं ॥ ४० ॥ एक महादेवही इच्छा की प्रवृत्ति करानेवाले हैं अन्यनहींहै इच्छाशक्ति, ज्ञानशक्ति व क्रियाशक्ति, विद्या, माया व उत्तम कला ॥ ४१ ॥ हे

शम्भो ! शिवाकारवाले आपके नामों की यह अभिधा (नाम) कहीगईहैं तुम्हारी लीला से यह संसार अकालमें प्रलय को प्राप्तहोगया ॥ ४२ ॥ लोकों को बढ़ाने
वाली तुम्हारी व्याजरहित दयावृद्धिको प्राप्तहोवै तेजों के संहार होनेपर आप के आधे निमेष से ॥ ४३ ॥ लोकों के नाश के लिये अनेक वर्ष बीत गये हे काल-
रूप, दयामूर्त्ते, सदाशिवजी ! प्रसन्नहोवो ॥ ४४ ॥ व संसार के संहाररूप इसप्रेमाधान से विराम को प्राप्तहोवो सिद्धि से शोभित उन भक्तों के इस प्रकार वचनको
सुनकर दयामूर्त्ति सदाशिवजी यह बोले कि हे पार्वति ! नेत्रों को छोड़ दीजिये ॥ ४५ ॥ और उन पार्वती देवीजी ने शिवजी के नेत्रों के आच्छादन को

वलोकोयं अकालेप्रलयंगतः ॥ ४२ ॥ करुणातवनिर्व्याजावर्द्धतांलोकवर्द्धिनी ॥ भवतोनिमिषार्द्धेन तेजसामुपसंहृ
ते ॥ ४३ ॥ गतान्यनेकवर्षाणि जगतांनाशहेतवे ॥ प्रसीदकरुणामूर्ते कालरूपसदाशिव ॥ ४४ ॥ विरमप्रणयाधानाद
मुष्माल्लोकसंक्षयात् ॥ इतितेषांवचःश्रुत्वाभक्तानांसिद्धिशालिनम् ॥ विसृजाक्षीणिगौरीतिकरुणामूर्त्तिरब्रवीत् ॥ ४५ ॥
विससर्जचसादेवी पिधानंहरचक्षुषाम् ॥ सोमसूर्याग्निरूपाणां प्रकाशमभवत्तदा ॥ ४६ ॥ कियान्कालोगतश्चेति पृष्टैः
सिद्धैश्चवैनतैः ॥ उक्तंत्वन्निमिषार्द्धेन जग्मुर्वत्सरकोटयः ॥ ४७ ॥ अथदेवःकृपामूर्त्तिरालोक्यविहसन्प्रियाम् ॥ अब्रवी
त्परमोदारः परंधर्मार्थसङ्ग्रहम् ॥ ४८ ॥ केयंवात्वादृशीकुर्यादीदृशंसद्विगर्हितम् ॥ कर्मनर्मण्यपियतःसर्वंविश्वंचबा
ध्यते ॥ ४९ ॥ इतिशम्भोर्वचःश्रुत्वा धर्मलोपभयाकुला ॥ किंकरिष्यामिभोदेवइत्यपृच्छत्स्मतंप्रिया ॥ ५० ॥ अथदेवः

छोड़दिया उस समय चन्द्रमा, सूर्य व अग्निरूपी नेत्रों का प्रकाशहुआ ॥ ४६ ॥ कितना समय व्यतीत हुआ इसप्रकार पूंछेहुये उन प्रणाम कियेहुये सिद्धों ने कहा
कि तुम्हारे आधे निमेष से करोड़ों वर्ष बीतगये ॥ ४७ ॥ इसके अनन्तर हँसतेहुये दयामूर्ति व बड़ेउदार सदाशिवजीने प्यारी पार्वतीजी को देखकर धर्मार्थके संग्रहवाले
वचन को कहा ॥ ४८ ॥ कि तुम्हारी सी कौन स्त्री-हँसी में भी सज्जनों से निन्दित ऐसे कर्म को करै है कि जिस से सब संसार बाधित है ॥ ४९ ॥ शिवजी का यह
वचन सुनकर धर्मलोप होने के भय से विकल प्यारी पार्वती देवी ने यह पूंछा कि हे देव ! मैं क्या करूं ॥ ५० ॥ इसके अनन्तर उस सन्ताप के कारण देवीजी

से धर्मके भयसे प्रसन्नकरायेहुये प्रसन्नमनवाले दयानिधान शिवदेवजी बोले॥५१॥ कि तुम सावधान होकर सुनिये यहां प्रायश्चित्त कहाजाता है क्योंकि धर्मकामार्ग तुम्हीं से पालन कियाजाता है ॥ ५२ ॥ श्रुति, स्मृति, कर्मकाण्ड व अनेकभांति के ऐश्वर्यवाली विद्या यह सब तुम्हारारूप है व अन्य बड़ाभारी अर्थ मैं हूं ॥५३॥ और लोकों की सृष्टि करने की इच्छा से हम तुम दोनों अभिन्न दृष्टि से मानने योग्य हैं इसलिये लोक के अनुसार तुम्हारेलिये प्रायश्चित्त कहाजाताहै ॥ ५४ ॥ श्रुति व स्मृतियों में विचाराहुआ छहप्रकार का धर्म कहागया है और यदि वह स्वामी से न पालन कियाजावै तो सेवकों से त्याग करने योग्य होता है ॥ ५५ ॥

प्रसन्नात्मा व्याजहारदयानिधिः ॥ देव्यास्तेनानुतापेन धर्मभीत्याचतोषितः ॥ ५१ ॥ शृणुत्वमवधानेन प्रायश्चित्त मिहोच्यते ॥ यतोपिधर्ममार्गोयं त्वयैवपरिपाल्यते ॥ ५२ ॥ श्रुतिस्मृतिक्रियाकल्पाविद्याश्चविविधोदयाः ॥ त्वद्रूपमे तदखिलंमहदर्थोस्मितन्मयः ॥ ५३ ॥ मान्यौचाभिन्नयादृष्ट्याचावांलोकसिसृक्षया ॥ तस्माल्लोकानुरूपन्ते प्रायश्चित्तं विधीयते ॥ ५४ ॥ षड्विधोगदितोधर्मः श्रुतिस्मृतिविचारितः ॥ स्वामिनानानुपाल्येत यदित्याज्योनुजीविभिः ५५ ॥ नत्वांविहायशक्नोमि क्षणमप्यासितुंकचित ॥ अहमेवतपःसर्वंकरिष्याम्यात्मनिस्थितः ॥ ५६ ॥ पृथ्वीचसकलाभूया तपसासफलातव ॥ त्वत्पादयोश्चसंस्पर्शात्त्वत्तपोदर्शनादपि ॥ निरस्यन्तिस्वसान्निध्याद्दुष्टजातमुपद्रवम् ॥ ५७ ॥ कर्मभूमेस्त्वमाधिक्यहेतवेपुण्यमाचर ॥ त्वत्तपश्चरणंलोके वीक्ष्यसर्वोपिसन्ततम् ॥ ५८ ॥ धर्मेदृढतराम्बुद्धिंनि बध्नीयान्नसंशयम् ॥ कृतार्थयिष्यतिमहीदयातेधर्मपालनैः ॥ ५९ ॥ त्वमेवैतत्सदाप्रोक्ता वेदैर्देवीसनातनैः ॥ अति

व तुमको छोड़कर कहीं क्षणभर भी मैं बैठने के लिये नहीं समर्थ हूं और आत्मा में स्थित होकर मैंही सब तपस्या को करूंगा ॥ ५६ ॥ सब पृथ्वी तुम्हारे तप से सफल होगी और तुम्हारे चरणों के स्पर्श से व तुम्हारे तप के भी देखने से अपने समीप से दुष्टों से उपजाहुआ उत्पात नाश होगा ॥ ५७ ॥ तुम कर्मभूमि की अ-धिकता के लिये पुण्य तप करो क्योंकि संसार में तुम्हारी तपश्चर्या को देखकर सब भी मनुष्य सदैव ॥ ५८ ॥ धर्म में बहुतही दृढ़ बुद्धि को निस्सन्देह बांधैंगे और

धर्म के पालन से तुम्हारी दया पृथ्वी को कृतार्थ करै गी ॥ ५९ ॥ सनातन वेदों से सदैव तुम्हीं यह संसार कहीगई हो सब ऐश्वर्यों से संयुत काचीपुरी प्रसिद्ध है ॥ ६० ॥ देवताओं से सम्पूर्ण जो यह पुरी पृथ्वी में प्रत्यक्षता को प्राप्तहोगी कि जहापर कुछ भी कियाहुआ तप अमित फलवाला कहाजाता है ॥ ६१ ॥ देवता व मुनि लोग वहां सदैव निवास चाहते है जहांपर महापापों को नाश करनेवाली कम्पा ऐसी प्रसिद्ध नदी है ॥ ६२ ॥ जहापर टिकेहुये मनुष्यों के करोडों पातक नाशहो- जाते है वहां नित्य बढ़नेवाला एक आम्र का वृक्ष शोभित है ॥ ६३ ॥ जो कि शीतल छायावान् व पुष्प, फल तथा पत्तों से सम्पूर्ण है वहां जप,हवन, दान,तप,

काञ्चीपुरीख्याता सर्वभूतिसमन्विता ॥ ६० ॥ याचेयंदेवसम्पूर्णाप्रत्यक्षंयातिभूतले ॥ यत्रक्लृप्तंतपःकिञ्चिदनन्तफल मुच्यते ॥ ६१ ॥ देवाश्चमुनयस्तत्र वासंवाञ्छन्तिसन्ततम् ॥ यत्रकम्पेतिविख्याता महापातकनाशिनी ॥ ६२ ॥ यत्र स्थितानांमर्त्यानां नश्यन्तिपापकोटयः ॥ तत्रचूतद्रुमश्चैको राजतेनित्यवर्धनः ॥ ६३ ॥ सम्पूर्णःशीतलच्छायः प्र सूनफलपल्लवैः ॥ तत्रजप्तंहुतंदत्तं तप्तम्भोजितमर्चितम् ॥ ६४ ॥ यद्वापरंकृतंकर्म तदक्षयफलंभवेत् ॥ तत्राश्रम पदंकृत्वा सखीजनसमावृता ॥ ६५ ॥ तपसामांसमभ्यर्च्यविपापासंभविष्यसि ॥ गणाश्चविविधाकारा डाकिन्योयो गिनीगणाः ॥ ६६ ॥ परितस्त्वांनिषेवन्तां विष्णुख्यातास्तथापराः ॥ अहञ्चनिष्कलोभूत्वा तवमानसपङ्कजे ॥ ६७ ॥ सन्निधास्यामिदेवेशि पश्यंस्तेलिङ्गपूजनम् ॥ इत्यादिश्यमहादेवः प्रियांकामाकुलामपि ॥ ६८ ॥ विहायनिष्कलंरू पं सहसासमपद्यत ॥ देवीचविस्मयाक्रान्तलोचनाविरहाकुला ॥ ६९ ॥ कम्पाख्यांविमलांसिन्धुं मुनिसङ्घनिषेवि

ब्रह्मभोज व पूजन ॥ ६४ ॥ अथवा जो अन्य कियाहुआ कर्म होता है वह अक्षय फलवाला होता है वहां आश्रमस्थान कर सखीजनों से घिरी हुई तुम ॥ ६५ ॥ तपस्या से मुझ को भलीभांति आराधकर पापरहित होओगी और अनेकभाति के आकार वाले गण व डाकिनी तथा योगिनियों के गण ॥ ६६ ॥ और अपर विद्युत नामक गण चारोंओर से तुमको सेवेंगे और तुम्हारे लिंग के पूजन को देखता हुआ मैं निष्कल होकर हे देवेशि ! तुम्हारे मनरूपी कमल में समीपता करूंगा इस प्रकार कामदेव से विकल भी पार्वतीजी को आज्ञा देकर महादेवजी ॥ ६७ । ६८ ॥ त्यागकर अचानकही कलाओं से हीन रूप को प्राप्तहुये और विस्मय से घिरेहुये

लोचनोंवाली व वियोग से व्याकुल पार्वती देवी जीने ॥ ६९ ॥ अति गणों से सेवित कम्पानामक निर्मल नदी को देखकर दृष्टि को मना करनेवाले तथा कोमल पत्तोंवाले एक आम के वृक्ष को देखा ॥ ७० ॥ जो कि फलों व फूलों से व्याप्त तथा कोकिला के शब्द से संयुत था तब फिर पार्वती जी प्रसन्न हुईं व उन्होंने महादेवजी को स्मरण किया ॥ ७१ ॥ और कामदेवकी अग्निसे घिरेहुये अंगोंवाली वे पार्वतीजी तपस्या से दुर्बली सी होगईं और बहुतशोक संयुत अंगोंवाली व शिव जीके वियोग से व्याकुल वे पार्वती जी समीप में वर्तमान विजयानामक सखी से बोलीं ॥ ७२ । ७३ ॥ पातकों के विनाशक आम्रवृक्ष के नीचे हम तपोंसे महादेवजी को पूजने के लिये आई हैं और नवीन पत्तों व पुष्पोंवाला यह कामदेव का बन्धु एक आम्र मुझको काम से संयुत व महादेवजी को स्मरण कराता है ॥ ७४ ॥

ताम् ॥ आलोक्यकोमलदलं रसालंदृष्टिवारणम् ॥ ७० ॥ फलपुष्पसमाकीर्णं कोकिलालापसङ्कुलम् ॥ प्रससादपुनर्देवं सस्मारचमहेश्वरम् ॥ ७१ ॥ कामाग्निपरिवीताङ्गी तपःक्षामेवसाभवत् ॥ अभ्यभाषतसागौरी विजयांपार्श्ववर्तिनीम् ॥ ७२ ॥ अतिशोकपरीताङ्गी शिवस्यविरहाकुला ॥७३॥ द्रुममघहरमागतारसालं वयमभिपूजयितुंतपोभिरीशम् ॥ अयमभिनवपल्लवप्रसूनः स्मरयतिमांस्मरबन्धुरेकचूतः ॥ ७४ ॥ कथमिवविरहःशिवस्य सह्यःक्षुभितमिवात्रभृशं मनोभवेन ॥ दयितेतरुणेन्दुभालयादस्मरणमहौषधमेकमेवदृष्टम् ॥ ७५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेअरुणाचलमाहात्म्ये तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

* ॥ * ॥ * ॥

अथाभ्यधत्तविजया प्रणम्यजगदम्बिकाम् ॥ सान्त्वयन्तीस्तुतिशतैरुपायैःशिवदर्शनैः ॥ १ ॥ देवित्वमविताचेह स

शिवजी का वियोग कैसे सहने योग्य है यहांपर हमारामन बहुत क्षोभितसा होता है हे दयिते ! युवावस्थावाले चन्द्रमा जिनके मस्तक में हैं उनके चरणका स्मरण ही एक बड़ीभारी औषध देखी गई है ॥ ७५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेअरुणाचलखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायाभाषाटीकायांतपश्चर्तुपार्वत्याःकम्पानदीसमीपगमनवर्णनंनामतृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

दो० । पार्वती कम्पानदी तटपै जिमि तपकीन । सो चौथे अध्याय में वर्णित चरित नवीन ॥ इसके अनन्तर शिवशास्त्रवाले सैकड़ों उपायों से समझाती हुई

विजयाने जगदम्बिका पार्वतीजीको प्रणामकर कहा ॥ १ ॥ कि हे देवि ! इस संसार में शिवदेवजी से सदैव तुम रक्षित हुई हो और उन परमात्मा की तुम प्राणेश्वरी मुख्य शक्तिहो ॥ २ ॥ तौ भी अपनी मायाको दिखलाने के लिये वे समर्थ सदाशिवजी आपही भिन्नता को मानो प्रकट करते हैं ॥ ३ ॥ हे पार्वती जी । आज्ञाको ग्रहणकर आईहो और शिवजी की उस आज्ञा को तुम्हें सदैव उल्लंघन न करना चाहिये ॥ ४ ॥ और सब कामों को निवृत्तकर शिवजी के आश्रित तुमको तप करना चाहिये ॥ ५ ॥ हे जगन्मये ! अन्यथा भी संसार की रक्षा तुम्हारे वश है फिर शिवजी समेत तुमको धर्म की रक्षाकरना

दादेवेनशम्भुना ॥ प्राणेश्वरीत्वमेकासि शक्तिस्तस्यपरात्मनः ॥ २ ॥ तथापिमायामात्मीयां सन्दर्शयितुमीश्वरः ॥ पृथग्भावमिवेशानः प्रकाशयातिसस्वयम् ॥ ३ ॥ आदेशंप्रतिगृह्यैव समुपेतासिपार्वति ॥ अलङ्घनीयासैवाज्ञा शाम्भवी सर्वदात्वया ॥ ४ ॥ विधातव्यंतपःप्राप्य स्थानेस्मिञ्छिवकल्पिते ॥ निवृत्यनिखिलान्कामाञ्छम्भुमाश्रितयात्व या ॥ ५ ॥ अन्यथापिजगद्रक्षा त्वदधीनाजगन्मये ॥ धर्मसंरक्षणंभूयः शिवेनसहचत्वया ॥ ६ ॥ निष्कलंशिवमत्यन्तं ध्यायन्त्यात्मन्यवस्थितम् ॥ वियोगदुःखंकिञ्चित्वं नस्मरिष्यसिपार्वति ॥ ७ ॥ भक्तानांतवमुख्यानां तवैवाचारसंग्र हः ॥ उपदेशतयालोके प्रथतांधर्मवत्सले ॥ ८ ॥ इतितस्यावचःश्रुत्वा गौरीसुस्थिरमानसा ॥ तपःकर्तुंसमारेभे कम्पान द्यास्तटेशुभे ॥ ९ ॥ विमुच्यविविधाभूषा रुद्राक्षगणभूषिता ॥ विसृज्यदिव्यंवसनं पर्यधाद्वल्कलेशुभे ॥ १० ॥ अलका न्सहसाशीघ्रमानयच्चकपर्दताम् ॥ आलिलिम्पतनूंसर्वांभस्मनामुक्तकुङ्कुमा ॥ ११ ॥ मृगेषुकृतसन्तोषा शिलोञ्छ

चाहिये ॥ ६ ॥ हे पार्वति ! मन में स्थित कलाहीन शिवजीको अत्यन्त ध्यान करती हुई तुम कुछ वियोग के दुःखको स्मरण न करोगी ॥ ७ ॥ हे धर्मप्रिये ! संसार में तुम्हारे मुख्य भक्तों को तुम्हारेही आचार का संग्रह उपदेश के भाव से प्रसिद्धहोवै॥ ८ ॥ उस विजया सखी के इस वचन को सुनकर अति स्थिरमनवाली पार्वतीजी ने कम्पानदी के किनारे पै तपस्या करने के लिये प्रारम्भ किया ॥ ९ ॥ अनेकभांति के गहनों को छोड़कर रुद्राक्षगण से भूषित पार्वतीजीने उत्तम वसनको त्याग कर दो उत्तम बकलों को धारण किया ॥ १० ॥ और उन पार्वतीजीने शीघ्रही घुंघुवारे बालों को जटाजूट बनाया व कुंकुम को छोड़हुई उन्हों ने समस्त शरीर में

भस्मका लेपन किया ॥ ११ ॥ व शिलोंछ से कियेहुये जीविकावाले मृगों में सन्तोष किये हुई पार्वती जी ने नियम से संयुत होकर उत्तम शिवजी के पञ्चाक्षर मन्त्र का जप किया ॥ १२ ॥ और कम्पा नदीके निर्मल जलमें त्रिकाल स्नानकर व बालू का लिंग बनाकर आदरपूर्वक पूजन किया ॥ १३ ॥ व वृक्ष के लगाने व दानकरने तथा समस्त अतिथियों को पूजने से उन देवीजीने प्राणियोंकी शान्ति को विस्तार किया और धर्म का पालन किया ॥ १४ ॥ ग्रीष्मऋतु में पञ्चाग्नि के बीच में स्थित व वर्षा में चौतरे पै शयन करती तथा हेमन्त व शिशिरऋतु में जल के मध्य में स्थित होकर पार्वती जी ने तप किया ॥ १५ ॥ तपस्या के कठिन क्रमोंसे

कृतवृत्तिषु ॥ जजापनियमोपेता शिवपञ्चाक्षरं परम् ॥ १२ ॥ कृत्वात्रिषवणंस्नानं कम्पापयसिनिर्मले ॥ कृत्वाचसैकतांलिङ्गं पूजयामाससादरम् ॥ १३ ॥ वृक्षप्ररोपणैर्दानैरशेषातिथिपूजनैः ॥ शान्तिंततानजीवानां देवीधर्ममपालयत ॥ १४ ॥ ग्रीष्मेपञ्चाग्निमध्यस्था वर्षासुस्थण्डिलेशया ॥ हेमन्तेजलमध्यस्था शिशिरेचाकरोत्तपः ॥ १५ ॥ पुण्यात्मनांमहर्षीणां दर्शनार्थमुपेयुषाम् ॥ विस्मयञ्जनयामासदुष्करैस्तपसांक्रमैः ॥ १६ ॥ कदाचित्स्वयमुच्चित्य वनान्तात्पल्लवान्वितम् ॥ पुष्पोत्करंविशेषेणशोधितुंसमुपाविशत् ॥ १७ ॥ कृत्वाचसैकतंलिङ्गंकम्पारोधसिपावने ॥ सम्पूजयितुमारेभे न्यासावाहनपूर्वकम् ॥ १८ ॥ सूर्यमभ्यर्च्यविधिनारक्तैःपुष्पैश्चचन्दनैः ॥ पञ्चावरणसंयुक्तं क्रमादानर्चशङ्करम् ॥ १९ ॥ धूपैर्दीपैश्चनैवेद्यैर्भक्तिभावसमन्वितैः ॥ अपरोक्षितमीशानमालुलोकेपुरोगतम् ॥ २० ॥ अथदेवःशिवःसाक्षात्संशोधयितुमम्बिकाम् ॥ कम्पानद्याःप्रवाहेणमहतापर्यवेष्टयत ॥ २१ ॥ अथवृद्धंप्रवाहन्तं कम्पायाःसमुपस्थि

उन पार्वती जी ने दर्शन के लिये समीप आयेहुये महर्षियों के आश्चर्य पैदाकिया ॥ १६ ॥ किसी समय वन के मध्य से पत्तों समेत पुष्प की राशिको आपही तोड़कर पार्वती जी विशेषता से शोधन के लिये बैठी ॥ १७ ॥ और कम्पानदी के पवित्रकारक किनारे पै बालू का लिंग बनाकर न्यास व आवाहन पूर्वक पार्वतीजी ने पूजने के लिये प्रारम्भ किया ॥ १८ ॥ विधिपूर्वक लालफूलों व चन्दन से सूर्यनारायण जी को पूजकर पांच आवरणों से संयुत सदाशिव जी का पूजन किया ॥ १९ ॥ और भक्तिभाव से संयुत धूप, दीप, व नैवेद्यों से प्रत्यक्ष में प्राप्त उन शिवजी को आगे प्राप्त देखा ॥ २० ॥ इसके अनन्तर साक्षात् सदाशिवदेवजी ने

संशोधन करने के लिये कम्पानदीके बड़ेभारी प्रवाह से घेर लिया ॥ २१ ॥ इस के अनन्तर उस समय कम्पा नदी के बढ़ेहुये उस प्रवाह को समीप में प्राप्त देखकर नियम से बैठीहुई पार्वती जी से सखियों ने कहा ॥ २२ ॥ कि हे देवि ! उठोयह प्रवाह बहुत बढ़रहा है जो कि दिशाओं के मुखों को पूर्णकर वेग से डुबा देगा ॥ २३॥ उनका इसप्रकार वचन सुनकर नेत्रको मूंदे ध्यानकरतीहुई पार्वतीजीने नेत्रोंको उघारकर नदी के उस अमित प्रवाह को देखा ॥ २४ ॥ और पूजनके विघ्नसे विकल उन पार्वती देवीजीने चिन्तवन किया कि क्याकरूं प्रारम्भ कियेहुये पूजनको छोड़नेके लिये नहीं समर्थहूं॥ २५ ॥ प्रायः पृथ्वीमें विना विघ्नके पुण्यात्मा जनोंको

तम् ॥ आलोक्यनियमासीनां ऊचुःसख्यस्तदाम्बिकाम् ॥ २२ ॥ उत्तिष्ठदेविबहुलः प्रवाहोयंविजृम्भते ॥ दिशामुखा न्सम्पूर्यतरसाप्लावयिष्यति ॥ २३ ॥ इतितद्वचनंश्रुत्वा ध्यायन्तीमीलितेक्षणा ॥ उन्मील्यवेगमतुलं नद्यास्तंसम वैक्षत ॥ २४ ॥ अचिन्तयच्चसादेवी पूजाविघ्नसमाकुला ॥ किङ्करोमिनशक्नोमि हातुमारब्धमर्चनम् ॥ २५ ॥ श्रेयः प्राप्तमविघ्नेन प्रायःपुण्यात्मनांभुवि ॥ घटतेधर्मसंयोगोमनोरथफलप्रदः ॥ २६ ॥ सैकतंलिङ्गमेतत्तु प्रवाहाल्लयमे ष्यति ॥ लिङ्गनाशेविमोक्तव्यं सद्भक्तैःप्राणसंग्रहः ॥ २७ ॥ प्रवाहोयंसमायाति शिवमायाविनिर्मितः ॥ विशोधयितु मात्मानं भक्तियुक्तंनिजेपदे ॥ २८ ॥ आलिङ्ग्यसुदृढंदोर्भ्यामेतल्लिङ्गमनाकुलम् ॥ अहंवत्स्यामियाताशुसख्योयू यंविदूरितः ॥ २९ ॥ इत्युक्त्वासैकतंलिङ्गं गाढमालिङ्ग्यसाम्बिका ॥ नद्यास्तेनप्रवाहेण प्लाव्यमानापिदेजतः ॥ ३० ॥ स्तनचूचुकनिर्मग्नमुद्रयासंयुतेनच ॥ महालिङ्गेनसंयुक्ता वलयस्यापिलाञ्छनात ॥ ३१ ॥ निमीलितेक्षणाध्यानानि

कल्याण प्राप्त होता है और धर्म का सयोग मनोरथ के फलको दायकहोताहै ॥ २६ ॥ और यह बालूका लिंग प्रवाह से नाश को प्राप्तहोगा व लिंगनाशहोने पर उत्तम भक्तों को प्राणों का संग्रह छोड़ना चाहिये ॥ २७ ॥ शिवजी की माया से रचाहुआ यह प्रवाह अपने स्थान में आत्मा को पवित्र करने के लिये आता है॥ २८ ॥ विकलता रहित इस लिंग को दृढ़तापूर्वक चिपटाकरमैं बसूंगी हे सखियो ! तुम शीघ्रही दूरजावो ॥ २९ ॥ यह कहकर नदी के उस प्रवाह के वेग से डुबाई जातीहुई भी वे पार्वती जी बालू के लिंग को दृढ़ता से आलिंगनकर स्थितहुई ॥ ३० ॥ जो पार्वती जी के स्तनके अग्रभाग पर्यन्त डूबेहुये लक्षणसे संयुत व कङ्कण

के भी चिह्न से युक्त महालिंग से संयुत थी ॥ ३१ ॥ नेत्रों को मूंदेहुई व ध्यान में स्थित तथा रोमांच संयुत समस्तअङ्गोंवाली पार्वती जी सदाशिवजी को स्मरण क-
रहीं थीं ॥ ३२ ॥ और कम्प, पसीना, उदासी, लज्जा व प्रेम से भी अचललिंग के क्षणभर भी पार्वती जी वियोग की अपेक्षा नहीं करतीथीं ॥ ३३ ॥ इसके अनन्तर
उन पार्वती देवी जीसे कोई आकाशवाणी बोली कि हे बालिके ! लिंग को छोड़ देवो यह बड़ाभारी प्रवाह चलागया ॥ ३४ ॥ हे महाभाग्यवती पार्वती जी ! तुमरो
पूजाहुआ यह स्थिर ऐश्वर्यवाला बालूका लिंग वरदायक व देवताओं से पूजित होगा ॥ ३५ ॥ तुम्हारी तपश्चर्या को देखकर धर्मपालन रचागया है और इस

ष्ठाचहृदयस्थितम् ॥ पुलकाञ्चितसर्वाङ्गी संस्मरन्तीसदाशिवम् ॥ ३२ ॥ कम्पस्वेदपरिग्लानि लज्जाप्रणयकैरपि ॥
क्षणमप्यचलाल्लिङ्गाद्वियोगमपेक्षते ॥ ३३ ॥ अथतामब्रवीत्कापि देवींवागशरीरिणी ॥ विमुञ्चबालिकेलिङ्गं प्रवा
होयंगतोमहान् ॥ ३४ ॥ त्वयार्चितमिदंलिङ्गं सैकतंस्थिरवैभवम् ॥ भविष्यतिमहाभाग्ये वरदंसुरपूजितम् ॥ ३५ ॥ त
पश्चर्यांतवालोक्य रचितंधर्मपालनम् ॥ लिङ्गंचेतन्नमस्कृत्यकृतार्थाःसन्तुमानवाः ॥ ३६ ॥ अहंहितैजसंरूपमास्थाय
वसुधातले ॥ वसामिचात्रसिद्ध्यर्थमरुणाचलसंज्ञया ॥ ३७ ॥ रुणद्धिसर्वलोकेभ्यः पुरुषंपापसञ्चयः ॥ रुणानविद्य
तेयस्मिन् दृष्टेतेनारुणाचलः ॥ ३८ ॥ ऋषयःसिद्धगन्धर्वामहात्मानश्चयोगिनः ॥ मुक्त्वाकैलासशिखरं मेरुंचैनमुपा
सते ॥ ३९ ॥ मदंशजातयोःपूर्वं युद्धतोर्ब्रह्मकृष्णयोः ॥ अहंमोहमपाकर्त्तुं तेजोरूपोऽव्यवस्थितः ॥ ४० ॥ ब्रह्मणाहंसरू
रूपेण विष्णुनाक्रोडरूपिणा ॥ अदृष्टशेषपरपदःप्रथितोभक्तियोगतः ॥ ४१ ॥ ततःप्रसन्नःप्रत्यक्षस्ताभ्यांवरमभी

लिंग को नमस्कार कर मनुष्य कृतार्थ होवैंगे ॥ ३६ ॥ मैं पृथ्वी में तैजसरूप पै स्थित होकर यहां सिद्धिके लिये अरुणाचल नाम से बसता हूं ॥ ३७ ॥ पाप की
राशि पुरुष को सब लोकों से रोंकती है और जिसके देखने पर रुणी (रोंक) नहीं होती है उसकारण अरुणाचल प्रसिद्ध है ॥ ३८ ॥ ऋषि, सिद्ध, गन्धर्व, व महा-
त्मा योगी लोग कैलास के शिखर व सुमेरुगिरि को छोड़कर इसकीउपासनाकरते हैं ॥ ३९ ॥ पुरातन समय मेरे अंश से उत्पन्न युद्धकरतेहुये ब्रह्मा व विष्णुजी के
मोह को दूर करने के लिये तेजरूपवाला मैं स्थितहुआ ॥ ४० ॥ हंसरूपी ब्रह्मा व वाराहरूपी विष्णु जी से न देखतेहुये ऊपर व नीचेभागवाला अरुणाचल पर्वत

भक्ति योग से प्रसिद्धहै ॥ ४१ ॥ तदनन्तर प्रसन्नहो प्रत्यक्षहोकर उन दोनोंके लिये मैंने चाहेहुये वरदान को दिया कि इस त्रिलोक की भलीभाति रक्षा मे निपुणता होवै ॥ ४२ ॥ फिर उन दोनों ने प्रार्थना किया कि अरुणाचल संज्ञा से स्थिरहोवे इसीकारण यह तैजसरूप स्थावर लिग को प्राप्तहुआ है ॥ ४३ ॥ और मेरेभक्त महाभाग्यवान् व गौतममहामुनि से जाकर अरुणाचलका माहात्म्य पूंछिवे और उस को सुनकर वहा तप कीजिये ॥ ४४ ॥ वहांपरमै तुमको सब पापों से छूटने के लिये व सब मनुष्यों के हित के लिये तुमको अपने तैजसरूप को दिखाऊं गा ॥ ४५ ॥ निष्कल शिवजी से कहेहुये इसप्रकारके वचनको सुनकर बहुतअच्छा ऐसाकहकर

प्सितम् ॥ प्रादाञ्जगत्त्रयस्यास्य संरक्षायान्तुकौशलम् ॥ ४२ ॥ प्रार्थितश्चपुनस्ताभ्यामरुणाचलसंज्ञया ॥ गतोत स्तैजसंरूपमिदंस्थावरलिङ्गताम् ॥ ४३ ॥ गत्वापृच्छमहाभागं मद्भक्तंगौतमंमुनिम् ॥ अरुणाचलमाहात्म्यं श्रुत्वात त्रतपश्चर ॥ ४४ ॥ तत्रतेदर्शयिष्यामि तैजसंरूपमात्मनः॥ सर्वपापनिवृत्त्यर्थंसर्वलोकहितायच ॥४५॥ इतिवाचंसमा कर्ण्य निष्कलात्कथितांशिवात् ॥ तथेतिसहसादेवी गन्तुंसमुपचक्रमे ॥ ४६ ॥ अथदेवान्नृषीन्सर्वान् पश्चात्सेवार्थमा गतान् ॥ अवादीदम्बिकालोक्य स्नेहपूर्णेनचक्षुषा ॥ ४७ ॥ अत्रैवस्थीयतांदेवा मुनयश्चदृढव्रताः ॥ नियमाश्चाधिति ष्ठन्ति कम्पारोधसिपावने ॥ ४८ ॥ सर्वपापक्षयकरं सर्वसौभाग्यवर्द्धनम् ॥ पूज्यतांसैकतंलिङ्गं कुचकङ्कणलाञ्छित म् ॥ ४९ ॥ अहंचनिष्कलंरूपमास्थायैतद्दिवानिशम् ॥ आराधयेयमत्रैवाम्बिकांशेनवरप्रदा ॥ ५० ॥ मत्तपश्चरणा ल्लोके मद्धर्मपरिपालनात् ॥ मल्लिङ्गदर्शनाच्चैव सिध्यन्तिवष्टविभूतयः ॥ ५१ ॥ सर्वकामप्रदानेन कामाक्षीमितिनाम

पार्वती देवीजी ने अचानक गमन किया ॥४६॥ इसके अनन्तर पश्चात् सेवा के लिये आयेहुये सब देवताओं व ऋषियो को स्नेह से पूरित नेत्रों से देखकर पार्वती जी बोलीं ॥४७॥ कि हे दृढ़व्रतवाले मुनियो ! वा देवताओ ! तुमलोग यहांपरटिको क्योंकि कंपा नदी के पवित्रकारक किनारे पै नियम भी स्थितहैं ॥ ४८ ॥ और तुमलोग समस्त पापोंके क्षयकारक व सब सौभाग्यों का बढानेवाले तथा कुच व कङ्कण से चिह्नित बालू के लिङ्ग को पूजो ॥ ४९ ॥ और मै भी निष्कलरूप को प्राप्तहोकर यहीं पर अम्बिका के अंशसे वरदायिनी होकर दिनरात इस लिगका आराधन करूंगी ॥५०॥ मेरी तपश्चर्या व मेरे धर्मके परिपालन तथा मेरे लिंगके दर्शनमे प्यारे ऐश्वर्य

सिद्धि होंगे ॥ ५१ ॥ सब कामनाओं के देने से कामाक्षी ऐसे नामसे मेरी भक्तिसे मुझको प्रणामकर चाहाहुआ वरदान मिलैगा ॥ ५२ ॥ और मैं अरुणाचलपै जाकर अदृष्ट जन्मवाले देव देव शिवजीकी आज्ञाको पालन करूंगी ॥ ५३ ॥ वहां जाकर तीव्र तपस्याकर सदा शिवजीको प्रसन्नकर पायेहुये वरदानवाली मुझको पश्चात् भलीभांति आकर देखोगे ॥ ५४ ॥ इसप्रकार चरणसेवी उत्तम भक्तों को शीघ्रही बिदाकरबाला पार्वतीजी शिवजीकी आज्ञासे अरुणाचलपै चलीगईं ॥ ५५ ॥ और वहां अवियोगसे नित्यही सखियों से सेवित पार्वतीजी दिव्य नगारों से शब्दित अरुणाचलपै स्थितहुईं ॥ ५६ ॥ व भीतर तेजोमय शान्ति व अप्सराओं के

तः॥मांप्रणम्यचमद्भक्त्या लभ्यतांवाञ्छितंवरम् ॥ ५२॥ अहंहिदेवदेवस्य शम्भोरव्यक्तजन्मनः ॥ आदेशंपालयिष्यामि गत्वारुणमहीधरे ॥ ५३ ॥ तत्रगत्वातपस्तीव्रं कृत्वाशम्भुंप्रसाद्यच ॥ मान्तुलब्धवरांयूयं पश्चाद्द्रक्ष्यथसङ्गताः ॥ ५४ ॥ इतिसर्वान्विसृज्याशु सद्भक्तान्पादसेविनः ॥ अरुणाद्रिंगताबाला तपसेशङ्कराज्ञया ॥ ५५ ॥ नित्यञ्चसेवितातत्र सखीभिरवियोगतः ॥ आससादारुणाद्रीशंदिव्यदुन्दुभिनादितम् ॥ ५६ ॥ अन्तस्तेजोमयंशान्तमरुणाचलनायकम् ॥ अप्सरोनृत्यगीतैश्च पूजितंपुष्पवृष्टिभिः ॥ ५७ ॥ प्रणम्यस्थावरंलिङ्गं कौतूहलसमन्विता ॥ सिद्धानांयोगिनांसार्थं मृषीणांचान्ववैक्षत ॥ ५८ ॥ अत्रिर्भृगुर्भरद्वाजः कश्यपश्चाङ्गिरास्तथा ॥ कुत्सश्चगौतमश्चान्ये सिद्धविद्याधरामराः ॥ ५९ ॥ तपःकुर्वन्तिसततमपेक्षितवराप्तये ॥ गङ्गाद्याःसरितश्चान्याः परितःपर्युपासते ॥६०॥ दिव्यलिङ्गमिदंपूज्यमरुणाद्रिरितिस्मृतम् ॥ वन्दस्वेतिसुरैःप्रोक्ता प्रणनामपुनःपुनः ॥ ६१ ॥ अभ्यर्थितापुनःसर्वैरातिथ्यार्थंमहर्षि

नृत्यगीतों से तथा पुष्प वृष्टियों से पूजित अरुणाचलके नायक ॥ ५७ ॥ स्थावर लिंगको कौतुक संयुत पार्वतीजीने प्रणामकर सिद्धों, योगियों व ऋषियोंके गणको देखा ॥ ५८ ॥ अत्रि, भृगु, भरद्वाज, कश्यप, अंगिरा, कुत्स, गौतम और अन्य सिद्ध, विद्या- धर व देवता ॥ ५९ ॥ वहांपर चाहेहुये वरके मिलने के लिये सदैव तप करते हैं और गंगादिक अन्य नदियां सब ओर समीप स्थितहैं ॥ ६० ॥ अरुणाद्रि ऐसे कहे हुये इस पूजनीय दिव्य लिंगको प्रणामकरो इसप्रकार देवताओं से कहीहुई पार्वतीजीने बार २ प्रणामकिया ॥ ६१ ॥ फिर आतिथ्य (पहुनई) के लिये सब महर्षियों से प्रार्थना कीहुई उन पार्वतीजीने यह कहा कि शिवजीकी आज्ञासे मुझको इन

गौतम मुनिको देखना चाहिये ॥ ६२ ॥ इसके अनन्तर आयेहुये भक्त मुनियों से बतलायेहुये उन गौतममुनिके समीपगईं और तपस्याके निधान व शिव भक्तों में श्रेष्ठ वे मुनि ॥ ६३ ॥ समिधा, कुश व फलोंको लानेके लिये प्रातःकाल वनके मध्य में गये थे आश्रम मे प्राप्तहुये पाहुनोंको पूजियेगा यह दृढ़ व्रतवाले ॥ ६४ ॥ शिष्यों को आज्ञा देकर वे धर्मात्मा गौतममुनि वनके मध्यमें गयेथे इसके अनन्तर मुनि कहांगये यह कहनेपर गौतमजीको देखने के लिये पर्णशाला में आईहुई उन पार्वतीजी से शिष्योंने कहा कि शीघ्रही क्षणभर में आवैंगे और उन गौतमजीके शिष्योंने सुगन्धित फल मूलों से पूजनकिया ॥ ६५ । ६६ ॥ शिष्योंकी संपदाने अभ्युत्थान

भिः ॥ शिवाज्ञयागौतमोयंद्रष्टव्यइतिसावदत् ॥ ६२ ॥ आगतैर्मुनिभिर्भक्तैर्निर्दिष्टंतमथाभ्यगात् ॥ समुनिःशिवभक्तानां प्रथमस्तपसांनिधिः ॥ ६३ ॥ वनान्तरंगतःप्रातः समित्कुशफलाक्षतैः ॥ अतिथीनाश्रमंप्राप्तानर्चयेतिदृढव्रतान् ॥ ६४ ॥ शिष्यानादिश्यधर्मात्मा गतःसांविपिनान्तरम् ॥ अथतांगौतमंद्रष्टुमागतांपर्णशालिकाम् ॥ ६५ ॥ क्वगतोमुनिरित्युक्ते द्रुतमायास्यतिक्षणात् ॥ शिष्यैरभ्यर्चितातस्य फलमूलैस्सुगन्धिभिः ॥ ६६ ॥ अभ्युत्थानेनमानेन पाद्येनार्घ्येणसूनृतैः ॥ वचनैःफलमूलेन सार्चिताशिष्यसम्पदा ॥ ६७ ॥ क्षणंक्षमस्वेत्यूचुस्ता मन्येजग्मुस्तदन्तिकम् ॥ देव्यांप्रविष्टमात्रायांमहर्षेराश्रमेतदा ॥ ६८ ॥ अभवत्कल्पकयुतो मणिप्रासादसङ्कुलः ॥ वनान्तराद्रुपावृत्यसमित्कुशफलाहरः ॥ ६९ ॥ अपश्यत्स्वाश्रमंदूरे विमानशतशोभितम् ॥ किमेतदितिसाश्चर्यंचिन्तयन्मुनिपुङ्गवः ॥ ७० ॥ गौर्याःसमागमात्सर्वं अपश्यज्ज्ञानचक्षुषा ॥ शीघ्रंनिवृत्तमानोसौ द्रष्टुंतांलोकमातरम् ॥ ७१ ॥ शिष्यैःशीघ्रचरैर्दृ

(भवानी) मान, पाद्य, अर्घ व सत्य प्रियवचन और फल मूलसे उन पार्वतीजी का पूजन किया ॥ ६७ ॥ और क्षणभर क्षमा करिये यह उन पार्वतीजी से कहा व अन्य शिष्य उनके समीपगये उस समय महर्षि गौतमजीके आश्रम मे जब पार्वती जी पैठीं तब ॥ ६८ ॥ वह आश्रम कल्पवृक्षो से संयुत व मणिमय मन्दिरोंसे व्याप्त होगया समिधा, कुश व फलोंको लायेहुये गौतमजीने वनके मध्य से लौटकर ॥ ६९ ॥ दूरही से अपने आश्रमको सैकड़ों विमानों से शोभित देखा यह क्याहै इस प्रकार आश्चर्य समेत चिन्तवन करतेहुये मुनिश्रेष्ठ गौतमजीने ॥ ७० ॥ ज्ञानदृष्टि से सब पार्वतीजीके समागम से देखा व उन जगदम्बिकाको देखने के लिये शीघ्रता से

लौटतेहुये इन गौतमजीने ॥ ७१ ॥ इसके अनन्तर शीघ्रगामी शिष्यों से कहेहुये वृत्तान्तको सुना ॥ ७२ ॥ इसके अनन्तर उस समय आश्चर्य को प्राप्त व आश्रित
प्रिय महर्षि गौतमजी शिवजीकी दयासे शोभित अपनी तपस्याके प्राप्तहुये फलको चिन्तवन करतेहुये आश्रम में आये ॥ ७३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽरुणाचलखण्डे
देवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांपार्वत्याअरुणाचलगमनवर्णनंनामचतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥
दो० । गौतम गिरिजासन कह्यो अरुणाचल परभाव । सो पंचम अध्याय में वर्णित चरित सुहाव ॥ सूतजी बोले कि वनसे मुकुट द्वारपै आयेहुये शान्त, शिव-

तमावेदितमथाशृणोत ॥ ७२ ॥ अथमहर्षिरुपागतकौतुकोनिजतपः फलमेवतदागतम् ॥ शिवदयाकलितम्परि
चिन्तयन्नभजदाश्रममाश्रितवत्सलः ॥ ७३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽरुणाचलमाहात्म्येचतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ * ॥
सूतउवाच ॥ अरण्याद्गौतमंशान्तं मुकुटद्वारआगतम् ॥ प्रत्युत्थातुंप्रवृत्तासा शिवभक्तंजगन्मया ॥ १ ॥ आलु
लोकसमायातं गौतमंशिष्यसेवितम् ॥ लम्बमानशिरश्श्मश्रुसम्पूर्णमुखमण्डलम् ॥ २ ॥ जटाभिरतिताम्राभिस्तीर्थ
स्नानविशुद्धिभिः ॥ न्यस्तरुद्राक्षमणिभिर्ज्वालाभिरिवपावकम् ॥ ३ ॥ भस्मत्रिपुण्ड्रकोपेतं विशालंचास्यमस्तकम् ॥
शुक्लयज्ञोपवीतेन पूर्णरुद्राक्षदामभिः ॥ ४ ॥ दधानंवल्कलैरक्तै तपःकृशितविग्रहम् ॥ जपन्तंवैदिकान्मन्त्रान् रुद्रप्रा
प्तिकरान्बहून् ॥ ५ ॥ शम्भुनावासितेचित्ते सारूप्यमिवभावितम् ॥ तेजोनिधिंदयापूर्णं प्रत्यक्षमिवभास्करम् ॥ ६ ॥

भक्त गौतमजीके प्रत्युत्थानके लिये वे जगदम्बिकाजी प्रवृत्तहुई ॥ १ ॥ और उन पार्वतीजीने लम्बे शिर व दाढ़ी मोछसे सम्पूर्ण मुख मण्डलवाले और शिष्यों से
सेवित आयेहुये गौतमजीको देखा २ जोकि तीर्थोंके स्नानसे पवित्र व अति अरुणवर्णवाली तथा न्यास कीहुई रुद्राक्षकी मणियोंवाली जटाओं से ऐसे शोभितथे कि
जैसे ज्वालाओं से अग्निदेवजी शोभित होते हैं ॥ ३ ॥ और इन गौतमजीका चौड़ा मस्तक भस्मके त्रिपुण्ड्र से संयुत था और श्वेत जनेऊ और रुद्राक्षकी मालाओं से
पूर्णथे ॥ ४ ॥ व अरुण वकलों को धारणकिये तथा तपस्या से दुबले शरीरवाले व रुद्रको प्राप्तकरनेवाले बहुत वैदिक मन्त्रों को जपतेहुये ॥ ५ ॥ व शिवजी से

वसेहुये चित्तमें भावना कीहुई सारूप्यकी नाईं तथा तेजो निधान व दयामें पूर्ण प्रत्यक्ष सूर्यनारायणकी नाईं ॥ ६ ॥ भूमिस्थान में आश्रयवाले उन वृद्धमहात्मा गौतमजीको देखकर हाथोंको जोडेहुई पार्वतीजीने प्रणाम करनेकी इच्छा किया ॥ ७ ॥ हाथोंको जोड़ेहुई समस्त संसारकी माताको देखकर उन गौतममुनिने आश्चर्य समेत यह क्याहै इसप्रकार मना करतेहुये प्रणाम किया ॥ ८ ॥ व कहा कि हे दयानिधे, सुभगे, जगदम्बिके, पार्वति ! अच्छा आनाहुआ व्याज (बहाने) से भक्तकी रक्षा करनेकी कामनावाली तुम आईहो ॥ ९ ॥ अहो मैं इस प्रयोजन को मानताहूं कि विज्ञान से मेरे आगे शिवजीकी पृथक्ताको मानो अवलम्बनकर भली

आलोक्यतंमहात्मानं बृंहणंभूयदाश्रयम् ॥ कृताञ्जलिपुटागौरी प्रणन्तुमुपचक्रमे ॥ ७ ॥ कृताञ्जलिंमुनिर्वीक्ष्य समस्तजगदम्बिकाम् ॥ किमेतदितिसाश्चर्यं वारयन्प्रणनामसः ॥ ८ ॥ स्वागतंगौरिसुभगे लोकमातर्दयानिधे ॥ व्याजेनभक्तसंरक्षां कर्त्तुकामागतास्यहो ॥ ९ ॥ अहोमन्येमुमर्थंच विज्ञानेनपुरोमम ॥ पृथग्भावमिवालम्ब्य शिवस्यासिसमागता ॥ १० ॥ यद्येवन्नाचरःकिंचिन्मायाविलसितन्निजम् ॥ ततःप्रपञ्चसंसिद्धिः कथमेवभविष्यति ॥ ११ ॥ अतस्त्वशेषंमेवक्तुं मायाविलसितंतव ॥ नशक्यतेयन्नेत्रत्वंदीपैश्चैवकदाचन ॥ १२ ॥ आस्यतांपावनेशुद्धे आसनेकुशनिर्मिते ॥ गृह्यतांपाद्यमर्घ्यञ्च पूजाचविविधामया ॥ १३ ॥ इतिशिष्यैःसमानीतदर्भाङ्कपरमासने ॥ आसीनामम्बिकांवृद्धो मुनिरानर्चभक्तिमान् ॥ १४ ॥ निवेद्यसकलांपूजाम्भक्तिभावसमन्वितः ॥ गौर्याःसमभ्यनुज्ञातः स्वयमप्यासनेस्थितः ॥ १५ ॥ उवाचदशनज्योत्स्नापरिधौतदिशामुखः ॥ पुलकाञ्चितसर्वाङ्गः सानन्दाश्रुःसगद्गदम् ॥ १६ ॥ अ

भाति आईहो ॥ १० ॥ यदि ऐसे कुछ अपने माया विलासको न करो तो कैसे प्रपंच (संसार) की सिद्धि होगी ॥ ११ ॥ इसलिये तुम्हारी मायाका समस्त विलास नहीं कहा जासक्ताहै क्योंकि दीपोंसे किसीप्रकार नेत्रता नहीं होसक्तीहै ॥ १२ ॥ कुशसे रचेहुये पवित्र आसनपै बैठिये और अर्घ्यपाद्य व मुझसे की अनेक भांतिकी पूजाको ग्रहण कीजिये ॥ १३ ॥ इसप्रकार भक्तिमान् वृद्ध गौतममुनिने शिष्योंसे लायेहुये कुशोंसे रचित उत्तम आसनपै बैठीहुई पार्वतीजीका पूजन किया ॥ १४ ॥ व सब पूजा को निवेदनकर पार्वतीजी से आज्ञाको पायेहुये भक्तिभाव से संयुत आप भी आसनपै बैठे ॥ १५ ॥ आनन्दके आंशुओं समेत व रोमांचित सब अंगोंवाले गौतममुनि

दाँतोंकी चमकसे दिशा मुखोंको उज्ज्वलकर गद्गदी समेत वचनको बोले ॥ १६ ॥ कि अमित तेजवाले सदा शिवदेवजीके माहात्म्यका आश्चर्यहै क्योंकि भक्त प्रिय
शिवजीने भक्तकी रक्षाके लिये तुमको आज्ञा दिया ॥ १७ ॥ हे अम्बिके ! नहीं तो तुमको अन्य असिद्ध व दुर्लभ क्या विद्यमानहै इस भक्तिके माहात्म्यको दिखलाने
के लिये कैलास पर्वत पै बसतेहुये तपस्या में स्थित वे सदाशिवजी अरुणाचलपै आने की आज्ञा दिया मैंने यह सब जान लिया ॥ १८।१६ ॥ हे महाभागे, दयामूर्ते !
आपही इस भक्त के आश्रम को आईहो स्नेहसे कर्तव्यकार्य को उपदेश कीजिये॥ २० ॥ उन सर्वज्ञ महर्षिका यह वचन सुनकर तदनन्तर उनपार्वतीजीने कौतुक से

होदेवस्यमाहात्म्यं शम्भोरमिततेजसः ॥ यद्भक्तरक्षणायत्वामादिशद्भक्तवत्सलः ॥ १७ ॥ असिद्धञ्चाप्यलभ्यं वा
किंवान्यत्तवविद्यते ॥ अम्बैतद्भक्तिमाहात्म्यं सन्दर्शयितुमीश्वरः ॥ १८ ॥ कैलासशैलेनिवसन्स देवस्तुतपःस्थितः ॥
अरुणाद्रिसमादेशं सर्वज्ञातमिदंमया ॥ १९ ॥ आगतासिमहाभागे भक्ताश्रममिमंस्वयम् ॥ स्नेहेनकरुणामूर्त्ते कर्त्त
व्यमुपदिश्यताम् ॥ २० ॥ इतितस्यवचःश्रुत्वा महर्षेःसर्ववेदिनः ॥ अम्बिकाप्राहकुतुकात्तस्मातंमहामुनिम् ॥ २१ ॥
महावैभवमेतत्ते देवदेवःस्वयंशिवः ॥ मध्येतपस्विनांकर्त्तुंद्रष्टव्यइतिचादिशत् ॥ २२ ॥ आगमानांशिवोक्तानां वेदा
नामपिपारगः ॥ तपसाशम्भुभक्त्याच त्वमेवशिवसम्मतः ॥ २३ ॥ अरुणाचलनाम्नाहं तिष्ठामीत्यब्रवीच्छिवः ॥ अ
स्याचलस्यमाहात्म्यं श्रोतव्यञ्चभवन्मुखात् ॥ २४ ॥ प्राप्तास्म्यहंतपःकर्त्तुं अरुणाचलसन्निधौ ॥ श्रूयतेदर्शनादेव
स्वयमाशुप्रसीदति ॥ २५ ॥ शिवभक्तेनसम्भाषा शिवसङ्कीर्त्तनंतथा ॥ शिवलिङ्गार्चनंलोके वपुर्ग्रहफलोदयः ॥ २६ ॥ त

उन महामुनि गौतमजी से कहा ॥ २१ ॥ कि देव देव सदाशिव जी ने आपही तपस्वियों के मध्य में तुम्हारे इस महाऐश्वर्य को करने के लिये यह आज्ञा दिया कि
गौतम मुनि देखने योग्य हैं ॥ २२ ॥ शिवजी से कहेहुये शास्त्रों व वेदों के भी पारगामी तुम्हीं तपस्या व शिवजी की भक्ति से शिव के सम्मत हो ॥ २३ ॥ मैं अरु-
णाचल नाम से स्थित हूं ऐसा सदाशिवजी ने कहा है और आपके मुख से इस पर्वत का माहात्म्य सुनना चाहिये ॥ २४ ॥ मैं अरुणाचलके समीप तपस्याकरने
के लिये प्राप्तहुईहूं क्योंकि यह सुनाजाता है कि यह पर्वत दर्शनहीसे शीघ्रही प्रसन्न होता है ॥ २५ ॥ शिवभक्त से सम्भाषण करना व शिवजी का कीर्तन करना तथा

शिवलिंग का पूजन संसार में शरीर ग्रहण के फल का ऐश्वर्य है ॥ २६ ॥ इसलिये आप के मुख से मुझ को यह माहात्म्य सुनना चाहिये तुम प्रगटतापूर्वक उपदेश
से मेरे ज्ञानदायक पिता हो ॥ २७ ॥ उन पार्वती जी का यह वचन सुनकर शिवजी को ध्यान करते हुये तपस्याके निधान गौतमजीने अरुणाचलके ऐश्वर्य्यको कहा ॥
२८ ॥ कि अज्ञात की नाईं जो कुछ फिर तुम से पूछाजाता है उसको मैं जानताहूं और सब विद्याओं के मध्य में वह शिवजी की आज्ञा तुम्हीं हो ॥ २९ ॥ अथवाभक्तो
के मुख से शिवजी के ऐश्वर्य का सुनना उनकी उत्तम शिक्षा व तुम्हारी प्रसन्नता का कारण है ॥ ३० ॥ जैसे वेदों को पढ़तेहुये मनुष्यों को वेद फलदायक होते हैं

स्मान्ममैतन्माहात्म्यं श्रोतव्यंभवतोमुखात् ॥ सुव्यक्तमुपदेशेन ज्ञानदोसिपितामम ॥ २७ ॥ इतितस्यावचःश्रुत्वा
गौतमस्तपसानिधिः ॥ आचष्टोगिरिशन्ध्यायन्नरुणाचलवैभवम् ॥ २८ ॥ अज्ञातमिवयत्किञ्चित्पृच्छ्यतेचपुनस्त्व
या॥जानामिसर्वविद्यानामाज्ञाशैवीत्वमेवसा॥ २९॥ अथवाभक्तवक्त्रेण शिववैभवसंश्रवः ॥ शिक्षणंशोभनंतेषां तवतुष्टे
श्चकारणम् ॥ ३० ॥ पठताञ्चैववेदानां यथावेदाफलावहाः ॥ वदतांशृण्वतांलोके शिवसङ्कीर्तनंतथा ॥ ३१ ॥ सकला
न्यघसर्वाणि तपांसिचरितानिमे ॥ यदहंशम्भुनादिष्टःस्वमाहात्म्यस्यकीर्त्तने ॥ ३२ ॥ श्रुतंशिवप्रसादेन माहात्म्यमि
दमद्भुतम् ॥ अरुणाचलमाहात्म्यं दुरितक्षयकारणम् ॥ ३३ ॥ श्रूयतामनवद्याङ्गि पुरावृत्तमिदंमहत् ॥ अरुणाद्रिम
यंलिङ्गमाविर्भूतंयथापुरा॥ ३४ ॥ नशक्यतेपुनर्वक्तुमिदंवैवक्त्रकोटिभिः ॥ अरुणाचलमाहात्म्यं ब्रह्मणामपिकोटि
भिः ॥ ३५ ॥ ब्रह्मणाविष्णुनापूर्वं शशिभास्करवह्निभिः ॥ इन्द्रादिभिश्चदिक्पालैः पूजितश्चाष्टसिद्धये ॥ ३६ ॥ सिद्ध

वैसेही संसार में शिवकीर्तन कहते व सुनतेहुये लोगों को फलदायक होताहै ॥३१॥ आज मैंने कलाओं समेत सब तपस्याओं को किया जो कि शिवजी ने अपने मा-
हात्म्य को कीर्तन करने में मुझे आज्ञा दिया ॥ ३२ ॥ मैंने शिवजी की प्रसन्नतासे इसअद्भुत माहात्म्य को सुना है अरुणाचल का माहात्म्य पाप के नाश का
कारण है ॥ ३३ ॥ हे निर्दोषाङ्गि ! पुरातन समय वर्तमानहुये इस बड़ेभारी चरित्र को सुनिये कि जिसप्रकार पुरातनसमय अरुणाचलमयलिंग प्रकटहुआ है ॥ ३४ ॥
फिर अरुणाचल का यह माहात्म्य करोड़ों ब्रह्माओं से भी करोड़ों मुखों से नहींकहा जासक्ताहै ॥ ३५ ॥ पुरातन समय ब्रह्मा, विष्णु, चन्द्रमा, सूर्य, अग्नि व इन्द्रादिक

दिक्पालों ने आठ सिद्धियों के लिये इसको पूजाहै ॥ ३६ ॥ सिद्ध, चारण, गन्धर्व, यक्ष, विद्याधर, नाग, ग्रह, व दिव्य मुनियों तथा सिद्ध योगियों से यह अरुणाचल पूजागया है ॥ ३७ ॥ उन पातकों की निवृत्ति (छूटने) के लिये व उस उस मनोरथकी सिद्धि के लिये अरुणाचल के स्वामी जो भगवान् शिवजी आराधितहुये हैं ॥ ३८ ॥ देखतेहुये वे शिवजी पापों को हरते हैं व सेवित होकर मनोरथ को देते हैं तथा दूरमें भी मनुष्यों से अरुणाचल ऐसा कहेहुये शिवजी मुक्तिदायक होते हैं ॥ ३९ ॥ अरुणाचल ऐसे प्रसिद्ध तेजस्तम्भमय रूपको चित्त में ध्यान करतेहुये योगी लोग शिवजी की सायुज्य मुक्तिको पाते हैं दान, हवन व जो कुछ जपाहुआ व

चारणगन्धर्वयक्षविद्याधरोरगैः ॥ खगैश्चमुनिभिर्दिव्यैः सिद्धयोगिभिरर्चितः ॥ ३७ ॥ तत्तत्पापनिवृत्त्यर्थं तत्तदीप्सितसिद्धये ॥ आराधितोयोभगवानरुणाद्रिपतिःशिवः ॥ ३८ ॥ दृष्टोहरतिपापानि सेवितोवाञ्छितप्रदः ॥ कीर्तितोपिजनैर्दूरे शोणाद्रिरितिमुक्तिदः ॥ ३९ ॥ तेजस्तम्भमयंरूपमरुणाद्रिरितिश्रुतम् ॥ ध्यायन्तोयोगिनश्चित्ते शिवसायुज्यमाप्नुयुः ॥ दत्तंहुतञ्चयत्किञ्चिज्जप्तञ्चान्यत्तपःकृतम् ॥ ४० ॥ अक्षयंभवतिप्राप्तमरुणाचलसन्निधौ ॥ पुराब्रह्माचविष्णुश्च शिवतेजोंशसम्भवौ ॥ ४१ ॥ साहङ्कारौयुयुधतुः परस्परजिगीषया ॥ तदातयोर्गर्वशान्त्यैयोगिध्यायःसदाशिवः ॥ ४२ ॥ अग्निस्तम्भमयंरूपमादिमध्यान्तवर्जितम् ॥ संप्राप्यतस्थौतन्मध्ये दिशोदशविभासयन् ॥ ४३ ॥ तेजस्तम्भस्यतस्याथद्रष्टुमाद्यन्तभागयोः ॥ हंसक्रोडतनुंकृत्वाजग्मतुर्द्यांरसातले ॥ ४४ ॥ तौविषण्णमुखौदृष्ट्वा भगवान्करुणा

अन्य कियाहुआ तप होता है ॥ ४० ॥ अरुणाचल के समीप प्राप्त वह अक्षयहोता है पुरातन समय शिवजी के तेज के अंश से उपजेहुये ब्रह्मा व विष्णु ने ॥ ४१ ॥ अहङ्कार समेत होकर आपस में जीतकी इच्छा से युद्ध किया है तब उन दोनों के अहङ्कार की शान्ति के लिये योगियों से ध्यान करनेयोग्य सदाशिवजीने ॥ ४२ ॥ आदि, मध्य व अन्त से रहित अग्निस्तम्भमय रूपको प्राप्त होकर दशों दिशाओं को प्रकाशित करतेहुये उनके मध्य में स्थितहुये ॥ ४३ ॥ इसके अनन्तर उसतेजस्तम्भ के आदि व अन्त के भागोंको देखने के लिये ब्रह्मा व विष्णुजी हंस तथा शूकर का शरीर धारणकर आकाश व रसातल को गये ॥ ४४ ॥ उन उदासीनमुखवाले

ब्रह्मा व विष्णु जीको देखकर दयानिधान भगवान् शिवजी प्रकटहुये और चाहेहुये वरदान को दिया ॥ ४५ ॥ और उनसे प्रार्थना कियेहुये शान्त शिवदेवजी स्थावर लिङ्गता को प्राप्त होकर अरुणाचल ऐसे प्रसिद्धहोकर भलीभांति प्रकाशितहैं॥४६॥ दिव्य नगारों के शब्दों व अप्सराओं के गान व नृत्य से तथा सैकड़ों पुष्पवृष्टियों से तैजसलिंग सदैव पूजित होता है ॥ ४७ ॥ और बीतेहुये ब्रह्माओंके मध्य में सबों से वे शिवजी पूजित हैं विष्णुजी की नाभि से उपजेहुये ब्रह्मा ने लोकों को रचा है ॥ ४८ ॥ किसी समय योगियों की तपस्या में विघ्न करने की कामनावाले इन्द्र से प्रार्थना कियेहुये ब्रह्माने उत्तम स्त्री को रचा ॥ ४९ ॥ और सुन्दरताके

निधिः ॥ आविर्बभूवचतयोर्वरंप्रादादभीप्सितम् ॥ ४५ ॥ तत्प्रार्थितश्चदेवोसौ यातःस्थावरलिङ्गताम् ॥ अरुणाद्रिरिति ख्यातःप्रशान्तःसंप्रकाशते ॥४६॥ दिव्यदुन्दुभिनिर्घोषैरप्सरोगीतनर्त्तनैः॥पूज्यतेतैजसंलिङ्गंपुष्पवृष्टिशतैःसदा ॥ ४७ ॥ ब्रह्मणामप्यतीतानां सर्वैश्च प्यर्चितप्रभुः ॥ विष्णुनाभिसमुद्भूतो ब्रह्मालोकान्ससर्जहि ॥ ४८ ॥ सकदाचित्तयोर्विघ्नं कर्तुकामेनयोगिनाम् ॥ इन्द्रेणप्रार्थितोब्रह्माससर्जललितांस्त्रियम् ॥ ४९ ॥ लावण्यगुणसम्पूर्णामालोक्यकमलेक्षणाम् ॥ सुमोहकन्दर्पशरैः सविद्धहृदयोविधिः ॥ ५० ॥ स्प्रष्टुकामंतमालोक्य ब्रह्माणंकमलासनम् ॥ नत्वाप्रदक्षिणव्याजाद्गन्तुमैच्छद्वराप्सराः ॥ ५१ ॥ अस्यांप्रदक्षिणाम्भक्त्या कुर्वाणायांप्रजापतेः ॥ चतसृभ्योपिदिग्भ्योस्य मुखान्युद्भवन्क्षणात् ॥ ५२ ॥ साबालापक्षिणीभूत्वा गगनंसमगाहत ॥ पुनश्चखगरूपेण समायान्तंसमीक्ष्यवै ॥ ५३ ॥ शरणंयाचमानासाशोणाद्रिमिममाश्रयत ॥ ब्रह्मणाविष्णुनाचत्वमदृष्टपदशेखरः ॥ ५४ ॥ रक्षमामरुणाद्रीश शर

गुणों से सम्पूर्ण उस कमलनयनी स्त्री को देखकर कामदेवके बाणों से वेधितहृदय वाले वे ब्रह्मा जी मोहितहुये ॥ ५० ॥ छूने की इच्छावाले उन कमलासन ब्रह्माजी को देखकर प्रणामकर प्रदक्षिणा के बहाने से उत्तम अप्सराने जानेकी इच्छाकिया ॥ ५१ ॥ भक्ति से जब यह प्रदक्षिणा करनेलगी तब इन ब्रह्मा के क्षणभर में चारों दिशाओं से मुख उत्पन्न होगये ॥ ५२ ॥ और वह स्त्री पक्षिणी होकर आकाश में प्राप्तहुई फिर पक्षीरूप से आतेहुये ब्रह्मा को देखकर ॥ ५३ ॥ शरण को मांगतीहुई वह इस अरुणाचल पै आश्रित हुई व बोली कि ब्रह्मा व विष्णुजी से न देखेहुये नीचे व ऊपरभागवाले तुम ॥ ५४ ॥ हे अरुणाचल! शरणमें आईहुई व रक्षाकरने

के योग्यवाली मेरी रक्षा कीजिये डरसे विकल उस अप्सराके इसप्रकार रोनेपर अरुणाचल ॥ ५५ ॥ स्थावर लिंग से उत्पन्न व धनुष को धारण किये कोई बहेलिया
समीप में उत्पन्नहुआ और धनुषमें बाण को लगाकर वह मारनेके लिये प्राप्तहुआ॥ ५६ ॥ आगे व्याध को देखनेपर उन ब्रह्मा का मोह (अज्ञान) नाशहोगया तद-
नन्तर प्रसन्न हृदय होकर कमल से उपजे हुये ब्रह्मा ने ॥ ५७ ॥ उस समय शरण के योग्य अरुणाचलेश्वरजी के लिये प्रणाम किया कि समस्तपापों के क्षयकारक
व पिनाकधारी आपके लिये प्रणाम है ॥ ५८ ॥ अरुणाचलरूपी भक्तों के वश्य, व जानते हुये अपने भक्तों को अकर्म से निवृत्त करनेवाले शिवजीके लिये नमस्कार

ण्यांशरणागताम् ॥ इतितस्याम्भयार्तायां क्रोशन्त्यामरुणाचलात् ॥ ५५ ॥ उदभूत्स्थावराल्लिङ्गाद्व्याधः कश्चिद्धनुर्द्ध
रः ॥ सन्धायसायकंचापेस हन्तुंसमपद्यत ॥ ५६ ॥ निषादेपुरतोदृष्टेमोहस्तस्यननाशहि ॥ ततःप्रसन्नहृदयो जातस्तुक
मलोद्भवः ॥ ५७ ॥ नमश्चक्रेशरण्याय शोणाद्रिपतयेतदा ॥ सर्वपापक्षयकृते नमस्तुभ्यंपिनाकिने ॥ ५८ ॥ अरुणा
चलरूपाय भक्तवश्यायशम्भवे ॥ अजानतांस्वभक्तानां मकर्मविनिवर्त्तिने ॥ ५९ ॥ त्वदन्यःकःप्रभुःकर्तुं पालनंसर्वदे
हिनाम् ॥ उपसंहरमेदेहंतेजसापापनिश्चयम् ॥ ६० ॥ अन्यश्चादिशविश्वात्मन्ब्रह्माणंलोकसृष्टये ॥ अथतस्यवचःश्रुत्वा
शिवोदीनस्यवेधसः ॥ ६१ ॥ उवाचकरुणामूर्त्तिर्भूत्वाचन्द्रार्धशेखरः ॥ दत्तःकालस्तवमयापुरैवननिवर्तते ॥ ६२ ॥
कंवारागादयोदोषानबाधेरन्प्रमादिनम् ॥ तस्माद्दूरस्थितश्चैतदरुणाचलसंज्ञितम् ॥ अजस्त्वंतैजसंलिङ्गं सर्वदोषनिवृ
त्तये ॥ ६३ ॥ वाचिकंमानसंपापं कायिकञ्चापियद्भवेत् ॥ विनश्यतिक्षणात्सर्वं मरुणाचलदर्शनात् ॥ ६४ ॥ प्रदक्षि

है ॥ ५९ ॥ तुम्हारे सिवा अन्य कौन देवता समस्त प्राणियों को पालन करने के लिये समर्थ है पाप निश्चयवाले मेरे शरीर को तेज से संहार कीजिये ॥ ६० ॥ व हे
विश्वात्मन् ! संसार की सृष्टि के लिये अन्य ब्रह्मा को आज्ञादीजिये उन दुःखी विधाता के वचन को सुनकर इसके अनन्तर दयामूर्ति शिवजी अर्धचन्द्र भालवाले
होकर बोले कि पहलेही मैंने तुमको समय दिया है वह नहीं निवृत्त होता है ॥ ६१ । ६२ ॥ व स्नेह आदिक दोष किस असावधाननर को दुःखित नहीं करतेहैं इस
लिये हे ब्रह्मन् ! दूरमें स्थित यह अरुणाचल संज्ञक अपना तैजसलिंग समस्त दोषोंकी निवृत्ति केलियेहै ॥ ६३ ॥ वाचिक, मानस व शारीरिक भी जो पापहोतेहैं वहसब

अरुणाचल के दर्शन से नाशहोजाता है ॥ ६४ ॥ प्रदक्षिणा, नमस्कार, पूजन, स्मरण, व स्तोत्रोंसे यह अरुणाचल मनुष्यों के सबपातकोंका नाशकहै ॥६५॥ कैलास व मेरुशिखरपर और अपने स्थानों कुलाचलों में मैं कोई स्थित हूं और यह अरुणाचल आपही स्थित है ॥ ६६ ॥ कि जिसके देखने से मनुष्यों को केवल नेत्र लाभ नहीं होता है किन्तु सब पापों का नाश व ज्ञान के नेत्रों का लाभ होता है ॥६७॥ पुरातन समय हे ब्रह्मन्! मेरे अंश से उपजेहुये वे जगदीश ब्रह्माजी अपने नाम से प्रसिद्ध इस ब्रह्मपुष्कर में नहाकर मोहरहित हुये हैं ॥ ६८ ॥ हे संसारको रचनेवाले ब्रह्माजी! तुम ब्रह्मतीर्थ में नहाकर मुझको पूज कर हाथों को जोड़

णानमस्कारैः पूजनैःस्मरणस्तवैः ॥ अरुणाद्रिरयंनृणांसर्वकल्मषनाशनः ॥ ६५ ॥ कैलासेमेरुशृङ्गेवा स्वस्थानेषुकुलाद्रिषु ॥ स्थितश्चःकश्चिदेवाह मरुणाद्रिरयंस्वयम् ॥ ६६ ॥ यस्यैवदर्शनान्नृणाञ्चक्षुर्लाभोनकेवलम् ॥ भवेत्सर्वाघनाशश्च लाभश्चज्ञानचक्षुषाम् ॥ ६७ ॥ मदंशसम्भवोब्रह्मास्वनाम्नाब्रह्मपुष्करे ॥ अत्रस्नात्वापुराब्रह्मन्नमोहोभूज्जगत्पतिः ॥ ६८ ॥ स्नात्वात्वंब्रह्मतीर्थेमांसमभ्यर्च्यकृताञ्जलिः ॥ मौनीप्रदक्षिणांकृत्वा विश्वसृड्भवविज्वरः ॥ ६९ ॥ इतिवचनमुदीर्यविश्वनाथं स्थितमरुणाचलरूपतोमहेशम् ॥ अथसरसिनिमज्यपद्मजन्मादुरितहरंसमपूजयत्क्रमेण ॥ ७० ॥ इममरुणगिरीशमेषवेधा यमनियमादिविशुद्धचित्तयोगः ॥ स्फुटतरमभिपूज्यसोपचारं गतदुरितोनिजमापचाधिपत्यम् ॥ ७१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेअरुणाचलमाहात्म्येपञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ * ॥

सूतउवाच ॥ पुरानारायणःकल्पे शयानःसलिलार्णवे ॥ शेषपर्यङ्कशयनेकदाचिन्नावबुध्यत ॥ १ ॥ तमसापूरितं

मौनहो प्रदक्षिणा कर शोचरहित होवो ॥ ६९ ॥ इस के अनन्तर तडाग में नहाकर ब्रह्माजीने इस वचन को कहकर अरुणाचल रूप से स्थित पापनाशक निश्वनाथ शिवजी को क्रमसे पूजन किया ॥७०॥ व यम नियमादिकों से शुद्धचित्त योगवाले इन ब्रह्माजीने इस अरुणाचल को उपचारपूर्वक प्रकटता से पूजकर पापरहित हो अपनी स्वामिता को पायाहै ॥ ७१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेअरुणाचलखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांपञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ ❁ ॥

दो० । जिमि पूज्यो अरुणाचलहिं विष्णु आदि सब देव । सोइ छठें अध्याय में अहै चरित सुखमेव ॥ सूतजी बोले कि पहले किसी समय कल्प में जलसमुद्र में

शेषशय्या पै सोतेहुये नारायणजी न जगे ॥ १ ॥ और कल्प के अन्त में भी लक्षणों से रहित व अज्ञात संसारको अन्धकार से पूर्ण देखकर नित्य (सदैव रहनेवाले)
विद्वान् विषाद को प्राप्त हुये ॥ २ ॥ व बोले कि बड़े आश्चर्य की बात है कि अन्धकार से संसार को मोहनेवाला ऐसा कष्टहै कि जिससे कल्पके अन्तमें अबतक
भी विष्णुजी बोधको न प्राप्तहुये ॥ ३ ॥ प्रकाशसे पूर्ण पुरुषको न देखतेहुये होनेवाले देवतालोग भी कैसे अन्धकार की शान्तिको पावैंगे ॥ ४ ॥ इस प्रकार मन
से निश्चयकर उन्होंने चित्तमें टिकेहुये तेजराशि निरञ्जन देव देव उमापति शिवजी को मनसे चिन्तवन किया ॥ ५ ॥ तदनन्तर प्रणाम कियेहुये नित्य विद्वानों से

विश्वमप्रज्ञातमलक्षणम् ॥ वीक्ष्यकल्पावसानेपि विषेदुर्नित्यसूरयः ॥ २ ॥ अहोकष्टमिदंरूपं तमसाविश्वमोहनम् ॥
येनकल्पावसानेपि विष्णुर्नाद्यापिबुध्यते ॥ ३ ॥ ज्योतिषःपुरुषंपूर्णमपश्यन्तःसुराअपि ॥ कथंवातमसःशान्तिंलभेरन्
परिभाविनः ॥ ४ ॥ इतिनिश्चित्यमनसादेवदेवमुमापतिम् ॥ चिन्तयामासुरात्मस्थं तेजोराशिंनिरञ्जनम् ॥ ५ ॥ ततःप्र
सन्नोभगवान्तेजोराशिर्महेश्वरः ॥ विश्वंसृजेतिविज्ञप्तःप्रणतैर्नित्यसूरिभिः ॥ ६ ॥ ततस्तेजोमयाच्छम्भोःस्फुलिङ्गे
मुसमुद्भवाः ॥ उत्थिताश्चैवदेवानां त्रयस्त्रिंशतिकोटयः ॥ ७ ॥ बोधितःसकलैर्देवैः समुत्थायरमापतिः ॥ प्रभातंवीक्ष्य
सकलंजगर्हतंतमोनिशम् ॥ ८ ॥ मयातमसउद्रेकादकालेशयनंकृतम् ॥ प्रबोधायपरंज्योतिः स्वयंदृष्टःसदाशिवः ॥ ९ ॥
जगदुत्पत्तिकृत्यानिस्वयंकर्तुंव्यवस्थितः ॥ किंमयात्रपुनःकार्यं ब्रह्मणात्मस्वयम्भुवा ॥ १० ॥ धिङ्मांशयन्तंनात्मज्ञं नि
द्रयाहृतचेतनम् ॥ अथवासर्वकर्तारंशरणंयामिशङ्करम् ॥ ११ ॥ सर्वदोषप्रशमनंसर्वाभीष्टफलप्रदम् ॥ पवित्रमल्पपुण्या

संसार को रचो यह विनय कियेहुये तेजकी राशि भगवान् सदाशिवजी प्रसन्न हुये ॥ ६ ॥ उसके उपरान्त तेजमय शिवजी के स्फुलिङ्गों (चिनगारियों) से पैदाहुये
तेंतीस कोटि देवता उठे ॥ ७ ॥ और सब देवताओं से जगायेहुये लक्ष्मीके पति विष्णुजी ने प्रातःकाल को देखकर उस सनातन अन्धकार की निन्दा किया ॥ ८ ॥
कि मैंने अन्धकारकी अधिकता से असमय में शयन किया और प्रबोधके लिये परमज्योति सदाशिवजी आपही देखेगये ॥ ९ ॥ जोकि आपही संसारकी उत्पत्ति के
कार्यों के करने के लिये स्थित हैं फिर इस विषय में मुझको व आपही से उपजे हुये ब्रह्माको क्या करना चाहिये ॥ १० ॥ आत्मा को न जाननेवाले तथा निद्रासे

हरीहुई बुद्धिवाले सोतेहुये मुझको धिक्कारहै अथवा सबको रचनेवाले शङ्करजीकी शरणमें जाऊं॥ ११ ॥ सब दोषोंके विनाशक व समस्त मनोरथफलों के दायक तथा पवित्र शिवजी का दर्शन थोड़ी पुण्यवाले जनों को दुर्लभ है ॥ १२ ॥ आत्मा में टिकेहुये ज्योतिर्लिङ्ग सदाशिवदेवजी को इस प्रकार चिन्तवन करतेहुये विष्णुजी ने बार २ भक्तिसे अष्टांग प्रणाम किया ॥ १३ ॥ व पातकोंके विनाशक तथा संसारको रचनेवाले शिवजीकी स्तुति किया इसके अनन्तर शरण के योग्य तेजोमय सदा शिवजी ने शरणमें आयेहुये ॥ १४ ॥ उन विष्णुजी को कटाक्षों से अनुग्रहकर यह कहा कि उठिये तब उठकर विष्णुजीने दयासेपूर्ण व अर्ध चन्द्रभालवाले सदाशिवजी की स्तुति किया ॥ १५ ॥ कि त्रिलोक के स्वामी व त्रिमूर्त्तिगणके धारनेवाले के लिये नमस्कार है व हे देव ! त्रिवेद शरीरवाले तथा त्रिपुर के द्रोही आपके लिये नम-

नां दुर्लभंशम्भुदर्शनम् ॥ १२ ॥ चिन्तयन्नेवमात्मस्थं ज्योतिर्लिङ्गंसदाशिवम् ॥ प्रणनामहरिर्भक्त्या देवमष्टाङ्गयासु हुः ॥ १३ ॥ विश्वस्रष्टारमीशानं तुष्टावदुरितच्छिदम् ॥ अथतेजोमयःशम्भुः शरण्यःशरणागतम् ॥ १४ ॥ अनुगृह्यक टाक्षैस्तं समुतिष्ठेत्यभाषत ॥ उत्थायकरुणापूर्णं शम्भुंचन्द्रार्द्धशेखरं ॥ १५ ॥ नमस्त्रिभुवनेशाय त्रिमूर्तिगणधारि णे ॥ त्रिवेदवपुषेतुभ्यं त्रिदशत्रिपुरद्रुहे ॥ १६ ॥ त्वमेवजगतामीशो निजांशैर्दैवतामयैः ॥ कार्यकारणरूपेण करोषि स्वेच्छयाक्रियाः ॥ १७ ॥ मांनियुज्यजगद्गुप्तौ परिमोह्यचमायया ॥ नदोषमन्तंसङ्कल्पं विहातुमपिनेच्छसि ॥ १८ ॥ किंकरोमिजगन्मूर्तौन्यस्तभारोस्म्यहंत्वयि ॥ सदोषमिवमन्येहमकालशयनेनस्वम् ॥ १९ ॥ अथशम्भुर्हरेरार्तिमनुतापं समीक्ष्यसः ॥ आदिदेशहरःश्रीमान् प्रायश्चित्तंहरेरिदम् ॥ २० ॥ अरुणाचलरूपेण तिष्ठामिवसुधातले ॥ तस्यदर्शन

स्कारहै ॥ १६ ॥ व लोकोंके स्वामी तुम्ही देवतामय अपने अंशोंसे अपनी इच्छा के द्वारा कार्य व कारणके रूपसे कर्मों को करते हो ॥ १७ ॥ व संसार की रक्षा में मुझको नियुक्तकर तथा मायासे मोहितकर दोषवाले मानसकर्म को छोड़नेकी भी इच्छा नही करतेहो ऐसा नही है याने उसको छोडते हो ॥ १८ ॥ क्या करूं मैं संसार की मूर्त्ति तुममें भारको धरेहूं और असमयमें शयन से मै अपना को सदोषकी नाईं मानताहूं ॥ १९ ॥ इसके अनन्तर उन श्रीमान् सदाशिवजी ने विष्णुके दुःख व सन्ताप को देखकर विष्णुको इस प्रायश्चित्तकी आज्ञा दिया ॥ २० ॥ कि मैं पृथ्वी मैं अरुणाचलरूप से टिकाहूं उसके दर्शनही से तुम्हारे तम (अन्धकार

या अज्ञान) का नाश होगा॥२१॥ पुरातन समय वहांपर मैंने पहलेवाले विष्णुको वरदान दियाहै वही अरुणाचल संज्ञक तैजस लिंगहै ॥ २२ ॥ यह तेजमय रूप
संसारकी रक्षाके कारण हुआहै जोकि अग्निमय, अप्रकट व अपार गुण तथा ऐश्वर्योंवाला है नदी, झरना व देवमुक्त याने स्वयंवृष्टि से गिरेहुये जलोंका भी ॥२३॥
भीतर ज्योतिमयत्वसे उसीमें लय (मिलाप) देख पडता है अन्धों को नेत्रलाभ से व लँगडों को चरणसे चलन से ॥ २४ ॥ व बिन पुत्रवाले मनुष्यों को पुत्रके
मिलने से तथा गूंगोंके वचन की प्रवृत्तिसे व समस्त सिद्धियों के दानसे व सब रोगोंको छुड़ाने से ॥ २५ ॥ और समस्त पातकोंके नाश करने से जो सब वरदायक

मात्रेण भवितातेतमःक्षयः ॥ २१ ॥ पूर्वस्मैविष्णवेतत्र वरोदत्तोमयापुरा ॥ तदेवतैजसंलिङ्गमरुणाचलसंज्ञितम् ॥२२॥
तेजोमयमिदंरूपंप्रभूतंलोकरक्षणात् ॥ यदाग्निमयमव्यक्तमपारगुणवैभवम् ॥ नदीनांनिर्झराणांचदेवमुक्ताम्भसामपि॥
२३ ॥ अन्तर्ज्योतिर्मयत्वेन लयस्तत्रैवदृश्यते ॥ अन्धानांदृष्टिलाभेनपङ्गूनांपादसञ्चरैः ॥ २४॥ अपुत्राणाञ्चपुत्राप्त्या
मूकानांवाक्प्रवृत्तिभिः ॥ सर्वसिद्धिप्रदानेन सर्वव्याधिविमोचनैः ॥ २५ ॥ सर्वपापप्रशमनैर्यत्सर्ववरदंस्थितम्॥तदिदंमेप
रंरूपंशोणाद्रिःकमलेक्षण ॥ २६ ॥ प्रणम्यतपसाराध्यभवत्त्रैलोक्यपालकः ॥ इत्यादिश्यमहादेवः केशवंभक्तवत्स
लः ॥ २७ ॥ अन्तर्दधेहरिश्चैवमरुणाचलमागतः ॥ आगत्यतपत्रास्थाय शोणाचलमुपागतः ॥ २८ ॥ जघानपरितोदु
ष्टानसुरान्काननाश्रयान् ॥ ऋषीणामाश्रमान्पुण्यान्स्थायमासशोभनान् ॥ २९ ॥ प्रावर्तयन्महायज्ञानरुणाद्रौशतु
ष्ये ॥ धर्मांश्चविविधान्पुण्यान्स्थापयामासशोभनान् ॥ ३० ॥ अध्यापयामासहरिर्वेदान्साङ्गान्समंततः ॥ ससर्ज

स्थितहै हे कमललोचन ! वही यह मेरा उत्तमरूप अरुणाचल है ॥ २६ ॥ उसको प्रणाम कर व तपस्या से आराधन कर त्रिलोक के पालक होवो भक्तप्रिय महादेव
जी इस प्रकार विष्णुजी को आज्ञा देकर ॥ २७ ॥ अन्तर्द्धान होगये और विष्णुभी अरुणाचल पै आये और आकर अरुणाचल पै प्राप्तहुये विष्णुजी ने तपस्या में स्थि-
तहोकर ॥ २८ ॥ चारोंओर वनमें रहनेवाले दुष्ट दैत्योंको मारडाला व ऋषियों के पवित्र तथा उत्तम आश्रमों को स्थापित किया ॥ २९ ॥ और अरुणाचल की प्रस-
न्नताके लिये बड़ीभारी यज्ञोंको वर्त्तमान कराया व अनेक भांतिके सुन्दर तथा पुण्यदायक धर्मोंको स्थापित किया और विष्णुजी ने सब ओर अङ्गों समेत वेदोंको

पढ़ाया व दिव्यरूपवाली अप्सराओं के सौ वंशोंको पैदा किया ॥ ३० । ३१ ॥ व यह आज्ञा दिया कि तुम सब नृत्य, गीत व बाजाओ से अरुणाचल की सेवा करो
और कमल नयन विष्णुजी ने इस ब्रह्मतडाग में नहाकर ॥ ३२ ॥ इस पूजित अरुणाचल की प्रदक्षिणा किया व पापरहित होकर उन्होंने सब लोकोंकी स्वामिता को
पाया ॥ ३३ ॥ व सुन्दरी लक्ष्मीजी समेत सदैव क्रीडा किया और दैत्योंसे पीड़ित तेजराशि सूर्यनारायणजी ने भी ॥ ३४ ॥ ब्रह्माके उपदेश से भक्तिपूर्वक अरुणाच-
लको पूजकर और ब्रह्मासे रचेहुये पवित्रकारक तीर्थ में नहाकर ॥ ३५ ॥ आपही सूर्यनारायण स्वामीने इस अरुणाचल की प्रदक्षिणा किया और सब दैत्योंसे विजय

दिव्यरूपाणांशतमप्सरसाङ्कुलम् ॥ ३१ ॥ नृत्यैर्गीतैश्चवादित्रैः सेवध्वमितिचादिशत् ॥ स्नात्वाब्रह्मसरस्यस्मिन्
विष्णुःकमललोचनः ॥ ३२ ॥ प्रदक्षिणंचकारामुमरुणाद्रिसमर्चितम्॥अपापःसर्वलोकानामाधिपत्यञ्चलब्धवान्॥
३३ ॥ रमयासहितोनित्यमभिरेमेसुरूपया ॥ भास्करःतेजसांराशिरसुरैरपिपीडितः ॥ ३४ ॥ ब्रह्मोपदेशादानर्च्य
भक्त्यारुणगिरीश्वरम् ॥ निमज्यविमलेतीर्थे पावनेब्रह्मनिर्मिते ॥ ३५ ॥ प्रदक्षिणञ्चकारैनमरुणाद्रिंस्वयंप्रभुः ॥
अशेषदैत्यविजयंलब्ध्वामेरुप्रदक्षिणम् ॥ ३६ ॥ लेभेचपरमंतेजः परतेजःप्रणाशनम् ॥ दक्षशापानलाक्रान्तस्सो
मःशिववचोबलात् ॥ ३७ ॥ अरुणाचलमभ्यर्च्य लब्धरूपोभवत्पुनः ॥ अग्निर्ब्रह्मर्षिशापेनदधानःसर्वभक्षताम् ॥
३८ ॥ अपूतोपिपवित्रोभूदरुणाचलसेवया ॥ शक्रोवृत्रंबलंपाकंनमुचिंजम्भमुद्धतम् ॥ ३९ ॥ शिवाल्लब्धवरान्दैत्यान्
सर्वान्हत्वाजगत्पतीन्॥पातकैश्चपरिक्षीणस्तथालोकान्तमाश्रितः ॥ ४० ॥ शम्भुंप्रसाद्यतपसा शिवेनपरिचोदितः॥

व सुमेरुकी प्रदक्षिणा को पाकर ॥ ३६ ॥ शत्रुवोंके तेजको नाश करनेवाले उत्तम तेजको पाया और दक्षजी की शापाग्नि से घिराहुआ चन्द्रमा शिवजी के वचन के
बलसे ॥ ३७ ॥ अरुणाचल को पूजकर फिर रूपको प्राप्तहुआ है और ब्रह्मर्षि के शापसे सर्वभक्षता को धारण कियेहुये अग्निदेवजी ॥ ३८ ॥ अपवित्र भी होकर
अरुणाचल की सेवा से पवित्र हुयेहैं और इन्द्रजी वृत्रासुर, बल, पाक, नमुचि व अहङ्कारी जम्भदैत्य को ॥ ३९ ॥ व शिवजी से पायेहुये वरवाले संसार के स्वामी
सब दैत्योंको मारकर पातकों से रहितहो लोकान्त में आश्रित हुये ॥ ४० ॥ और तपस्या से शिवजीको प्रसन्न कराकर शिव से प्रेरित इन्द्रजी अरुणाचल को पूजकर

पापरहित हुयेहैं ॥ ४१ ॥ और उन्होंने अश्वमेध से पूजकर शिवजी को प्रसन्न कियाहै व इन्द्रस्थान को पाकर श्रीमान् इन्द्रजी ने उस समय अरुणाचल के लिये सेवा के निमित्त अप्सराओं के सौगणों को आज्ञा दिया और पुष्प मेघोंको भली भांति आज्ञा देकर वे देवताओं से प्रणाम कियेहुये अरुणाचल को नित्यही पुष्प वृष्टियों से भलीभांति पूजते हैं ॥ ४२ । ४३ ॥ और पृथ्वीमण्डल को धारनेवाले तथा कामरूपी शेषजीने भी शिवजी की आज्ञासे अरुणाचल को पूजकर भजाहै ॥ ४४ ॥ और अन्य नाग, गन्धर्व, सिद्ध, अप्सराओं के गण व दिक्पालों ने उस अरुणाचल को पूजकर चाहेहुये वरोंको पायाहै ॥ ४५ ॥ और दैत्यादिकों को जीतने

अरुणाद्रिसमभ्यर्च्य विपापोभूत्सुराधिपः ॥ ४१ ॥ इष्ट्वाचहयमेधेन प्रीणयामासशङ्करम् ॥ लब्ध्वाचेन्द्रपदंशक्रः शतमप्सरसाङ्कुलम् ॥ ४२ ॥ सेवार्थमादिशच्छ्रीमाञ्छोणाद्रिपतयेतदा ॥ पुष्पमेघान्समादिश्यदिव्याभिःपुष्पवृष्टिभिः ॥ समर्चयतिशोणाद्रिं दिव्यैर्नित्यंचवन्दितम् ॥ ४३ ॥ शेषोपिशोणशैलेशं समभ्यर्च्यशिवाज्ञया ॥ अभजत्कामरूपीच महीमण्डलधारकः ॥ ४४ ॥ अन्येनागाश्चगन्धर्वाः सिद्धाश्चाप्सरसाङ्गणाः ॥ दिक्पालाश्चतमभ्यर्च्य लेभिरेप्सितान्वरान् ॥ ४५ ॥ दैवैरशेषैर्दैत्यादीञ्जेतुकामैस्समुद्यतैः ॥ प्रार्दितैस्सेवितोभीष्टवरायारुणभूधरः ॥ ४६ ॥ पुराकालेचकस्मिंश्चिदादित्यस्तेजसातपन् ॥ ग्रहनाथस्तुशोणाद्रिंविलङ्घयतुमुद्यतः ॥ ४७ ॥ रथवाहाःपुनस्तस्यशक्तिहीनाःश्रमागताः ॥ सोपिश्रियाविहीनश्च भवच्छोणाद्रितेजसा ॥ ४८ ॥ नाशक्नुवन्दिवङ्गन्तुं सर्वगस्यांशुमालिनः ॥ सतुब्रह्मोपदेशेनसमाराध्यारुणाचलम् ॥ ४९ ॥ प्रीत्यातस्माद्विलेभेमार्गंव्योम्निहयाःशुभाः ॥ ततःप्रभृति

की इच्छावाले समस्त विकल देवताओं ने प्रिय वरदान के लिये अरुणाचल की सेवा कियाहै ॥ ४६ ॥ पुरातन समय किसी कालमें तेजसे तपतेहुये ग्रहोंके स्वामी सूर्यनारायणजी अरुणाचल को नांघने के लिये उद्यत हुये ॥ ४७ ॥ फिर उन सूर्य नारायणके रथको लेचलनेवाले घोड़े शक्तिसे हीन व श्रम में प्राप्तहुये और वे सूर्यनारायण भी अरुणाचल के तेजसे शोभाहीन होगये ॥ ४८ ॥ और किरण माली, सर्वव्यापी सूर्यनारायण के घोडे आकाश को जानेके लिये न समर्थहुये और उन सूर्यनारायणजी ने ब्रह्मा के उपदेश से अरुणाचल को प्रीति से आराधन कर उससे तेजको पाया तथा आकाश में उत्तम घोड़ों ने मार्गको पाया तब से लेगा.

कर प्रचण्ड किरणोंवाले वे सूर्यनारायणजी अरुणाचल पर्वत को ॥ ४९ । ५० ॥ नहीं नांघते हैं किन्तु इस अरुणाचल की दाहिनीओर से परिक्रमाओं से चलते हैं ॥ ५१ ॥ पुरातन समय दक्षजीकी यज्ञसे ध्वस्त कियेहुये हीन अंगोंवाले देवताओं ने अरुणाचल को आराधकर अपने अंगोंको पायाहै ॥ ५२ ॥ पूषा देवताने दांतोंको पाया व दक्षजीने मस्तक को पाया, भगदेव ने सम्पूर्ण नेत्रको पाया अरुणाचल के सेवन से उन सरस्वतीजी ने नासिका को पायाहै ॥ ५३ ॥ और बलिराजा से दिये हुये पृथ्वीदान में जलधारा के रोंकने से विष्णुजी के हाथ से कुशके अग्रभाग से शुक्रजी नेत्ररहित हुये हैं ॥ ५४ ॥ और उन शुक्रजी ने अरुणाचल को

तिग्मांशुःसहिशोणाद्रिपर्वतम्॥५०॥ नलङ्घयतिकिंत्वस्यप्रदक्षिणपरिक्रमैः॥५१॥ दक्षयागपरिध्वस्ताहीनाङ्गास्त्रिदशाः पुरा ॥ अरुणाचलमाराध्य स्वान्यङ्गानिचलेभिरे ॥ ५२ ॥ पूषादन्तांशिरोदक्षो भगोनेत्रंत्वखण्डितम् ॥ घ्राणंवाणीच लेभेसा शोणाचलनिषेवणात् ॥ ५३ ॥ भार्गवःक्षीणनेत्रःसन्विष्णुहस्तकुशाग्रतः ॥ बलिदत्तावनीदानजलधारनिरोधतः ॥ ५४ ॥ सतुशोणाचलंगत्वा तपःकृत्वातिदुष्करम् ॥ लेभेनेत्रंचपूतात्मा भास्कराख्येगिरौस्थितः ॥ ५५ ॥ अरुणोनूरुरुत्पन्नः कश्यपश्योपदेशतः ॥ अरुणाचलमाराध्यसूर्यसारथितांययौ ॥ ५६ ॥ लेभिरेवेदवक्तृत्वंपुराब्रह्मर्षयोखिलाः ॥ अरुणाचलनाथस्य सेवयातपसांक्रमैः ॥ ५७ ॥ प्रतर्दनाख्योनृपतिर्गृहीतुंदेवकन्यकाम् ॥ अरुणाद्रिपतेर्गानं कुर्वन्तींसादरोभवत् ॥ ५८ ॥ क्षणात्कपिमुखोजातोमन्त्रिभिश्चोदितोनृपः ॥ प्रत्यर्प्यतांपुनश्चान्यां प्रादादरुणभूपते ॥ ५९ ॥ ततश्चारुमुखोजातः प्रीतःसधरणीपतिः ॥ सायुज्यमस्मैसकलं दत्तवान्भक्तिभावतः ॥ ६० ॥ अरुणा

जाकर व भास्कर नामक पर्वत पै स्थित होकर बड़ा कठिन तप करके पवित्र चित्तहो नेत्रको पाया है ॥ ५५ ॥ और जङ्घों से रहित उत्पन्न अरुणजी कश्यप के उपदेश से अरुणाचल को आराधकर सूर्यनारायण के सारथी कर्म को प्राप्तहुये ॥ ५६ ॥ पुरातन समय सब ब्रह्मर्षियों ने अरुणाचल नाथकी सेवा से व तपस्याओं के क्रमों से वेद वक्तृताको पायाहै ॥ ५७ ॥ और प्रतर्दन नामक राजाने अरुणाचल को गान करतीहुई देवकन्या को पकड़ने के लिये आदर समेत हुआ ॥ ५८ ॥ तब क्षणभर में वानर मुखवाला होगया फिर मन्त्रियों से प्रेरणा किये हुये राजाने उसको देकर व अरुणाचल के लिये अन्य कन्याको दिया ॥ ५९ ॥

तदनन्तर प्रसन्न होकर वह राजा सुन्दर मुखवाला होगया और भक्तिभाव के कारण इसके लिये समस्त सायुज्य को दिया ॥ ६० ॥ अरुणाचल के समीप स्नानसे दुर्बल व भक्तिहीन पुष्पक नामक गन्धर्व नारदजी से शापित हुआहै ॥ ६१ ॥ तदनन्तर व्याघ्र के समान मुखवाले उसको देखकर उन गन्धर्व दासियों ने आश्चर्य समेत आपस में यह पूंछा कि यह क्या कारण है ॥ ६२ ॥ इसके अनन्तर नारद से बतलाये हुये अपने अपमान के फलको जानकर वह अरुणाचल को पूजकर फिर सुन्दर मुखवाला हुआ है ॥ ६३ ॥ सबओर दो योजनतक यह शिवभूमि प्रसिद्ध है और यहां प्रत्यक्षही मुक्तिहै जहा कि कम्पानामक नदीहै ॥ ६४ ॥ पुरातन

चलनाथस्यसन्निधौस्नानदुर्बलः ॥ गन्धर्वःपुष्पकाख्यस्तुभक्तिहीनोहिनारदात ॥ ६१ ॥ ततोव्याघ्रमुखंदृष्ट्वा गन्धर्व परिचारिकाः ॥ किमेतदितिसाश्चर्यंपप्रच्छुस्ताःपरस्परम् ॥ ६२ ॥ अथनारदनिर्दिष्टमवज्ञाफलमात्मनः ॥ बुद्ध्वारुणाद्रिसम्पूज्य पुनश्चसुमुखोभवत ॥ ६३ ॥ शिवभूमिरियंख्याता परितोयोजनद्वयम् ॥ मुक्तिस्तत्रतुप्रत्यक्षा कम्पाख्यत्रास्तिवैनदी ॥ ६४ ॥ सप्तर्षयःपुराभूमौशापदोषसमन्विताः ॥ अरुणाद्रिसमीपेस्मिन्नतपश्चक्रुस्समन्विताः ॥ ६५ ॥ विनिवृत्ताःपुनःसर्वे राजद्रव्यपरिग्रहे ॥कर्त्तुमैच्छंश्चशोणाद्रौस्वप्राणानांचनाशनम् ॥६६॥ अथशोणाद्रिनाथोयं ज्ञात्वातेषांविनिश्चयम् ॥ शापमोक्षंददौश्रीमान् सप्तर्षीणांमहात्मनाम् ॥६७॥ सप्तर्षिभिःकृतंतीर्थं सर्वपापविनाशनम् ॥ शोणाचलस्यनिकटे दृश्यतेपावनंशुभम् ॥ ६८ ॥ पङ्गुर्मुनिःशोणशैलात्पादौलब्धुंसमागतः ॥ अन्तर्हितप्रार्थनार्थं दारुहस्तपुटेवहन् ॥ ६९ ॥ जानुचङ्क्रमणोव्यग्रः शोणनद्यास्तटङ्गतः ॥ दारुहस्तपुटेतत्रनिचिक्षेपपिपासितः ॥ ७० ॥

समय शापदोष से संयुत सप्तर्षि लोगों ने पृथ्वी में इस अरुणाचल के समीप मिलकर तपस्या किया है ॥ ६५ ॥ फिर सब राजाओं की द्रव्यलेने में निवृत्त हुये हैं और उन्हों ने अरुणाचल पै अपने प्राणोंको नाश करनेकी इच्छा किया ॥ ६६ ॥ इसके अनन्तर श्रीमान् इस अरुणाचल स्वामीने उनके निश्चयको जानकर सप्तर्षि महर्षियोंको शापकी मोक्ष दिया ॥६७॥ और सप्तर्षियों ने समस्त पातकों के विनाशक तीर्थको कियाहै जोकि उत्तम व पवित्र कारक तीर्थ अरुणाचल के समीप देख पड़ताहै ॥ ६८ ॥ और पंगु मुनि छिपीहुई प्रार्थनाके निमित्त काष्ठके हाथोंको धारणकरते हुये अरुणाचल से चरणों को पानेके लिये भलीभांति आयेहैं ॥ ६९ ॥ जहांके द्वारा

चलने से विकल उस प्यासे मुनिने शोणनदी के किनारे प्राप्तहोकर उस नदीमें लकड़ी के हाथोंको डाला ॥७०॥ घुटनुओंसे चलनेवाले उस मुनिने जब नदीके जल को पीनेकी इच्छा किया इसके अनन्तर अरुणाचल के स्वामी काष्ठके हाथोंको देख कर ॥ ७१ ॥ यह क्या है ऐसा पूंछते हुये कलि (झगड़ा) में तत्पर होकर उसके सामने दौड़े और क्रोधसे उसको पकड़ने की इच्छावाला वह पंगुमुनि भी उसके सामने दौड़ा ॥ २२ ॥ और अचानकही चरणों को पायेहुये उसने अपने घरको प्रयाण किया और वहा पुरुषको न देखा व आगेप्राप्त काष्ठके हाथोंको ॥७३॥ आपही लेकर व देखकर उसने अरुणाचलको प्रणाम किया व चरणों तथा रूपको पाकर

जानुचङ्क्रमणेतस्मिन्नद्यास्तोयंपिपासति ॥ अथशोणाचलपतिर्दृष्ट्वाचदारुहस्तके ॥ ७१ ॥ किमेतदितितंपृच्छन्न धावत्कलितत्परः ॥ सोपिकोपाज्जिघृक्षुस्तमन्वधावत्तुतत्पुरः ॥ ७२ ॥ लब्धपादश्चसहसा जगामचनिजालयम् ॥ नाद्राक्षीत्पुरुषंतत्र दारुहस्तौपुरोगतौ ॥ ७३ ॥ स्वयंगृहीत्वाचालोक्यववन्देरुणपर्वतम् ॥ ननन्दलब्धचरणोलब्धरू पोमहामुनिः ॥ ७४ ॥ विस्मयोत्फुल्लनयनैः शिवभक्तैर्महात्मभिः ॥ पूजितोलब्धपादःसञ्जगामचयथेच्छया ॥ ७५ ॥ वालीशक्रसुतःश्रीमाञ्छृङ्गादुदयभूभृतः ॥ अस्ताचलस्यशिखरंप्रतिगन्तुंसमुद्यतः ॥ ७६ ॥ आलुलोकेरुणगिरिं सर्व देवनमस्कृतम् ॥ ऊर्द्ध्वंगन्तुंसमुद्युक्तः क्षीणवीर्योपतद्भुवि ॥ ७७ ॥ पित्राशक्रेणसङ्गम्य चोदितःशोणपर्वतम् ॥ लिङ्गन्तै जसमभ्यर्च्य लब्धवीर्योभवत्पुनः ॥ ७८ ॥ नलःपूर्वंसमभ्यर्च्य कलिदोषप्रशान्तये ॥ लब्धरूपःकृपायुक्तो दमय

महामुनि प्रसन्नहुये ॥ ७४ ॥ और चरणों को पायेहुये वे मुनि विस्मय से प्रफुल्लित लोचनोंवाले महात्मा शिवभक्तोंसे पूजित होकर इच्छापूर्वक चलेगये ॥ ७५ ॥ इन्द्र के पुत्र श्रीमान् बालिजी उदयाचल के शिखरसे अस्ताचल के शिखर को जानेके लिये उद्यत हुये ॥ ७६ ॥ और उन्होंने सब देवताओं से प्रणाम कियेहुये अरुणाच-लकोदेखा व ऊपर जानेके लिये उद्यत वे बालि बलरहित होकर पृथ्वीमें गिरपडे॥७७॥ और पिता इन्द्र से समागम को प्राप्त होकर प्रेरणा किये हुए बालिन अरुणाचल पर्वत पै तैजस लिंग को पूजकर फिर बल को पायाहै ॥ ७८ ॥ पुरातन समय दया संयुत नलराजा ने कलियुग के दोष की शांति के लिये इसअरुणाचल को पूज

कर फिर रूपको प्राप्तहो दमयंती स्त्री से संयोग को पायाहै ॥ ७९ ॥ और नीति के सारांश से संयुत उन धर्मात्मा मनुजी ने अरुणाचल को पूजकर अपनासे रचेहुये
प्यारे मनुष्यों को पालन कियाहै ॥ ८० ॥ और इलाने अचानकही सम्पूर्ण गौरी वन को प्राप्तहोकर प्राप्त हुये स्त्रीत्व को अपने पुरोहित से पूंछा ॥ ८१ ॥ व अरुणा
चल को पूजिये इस प्रकार वशिष्ठजी से आज्ञा दिया हुआ वह तपस्या से अरुणा चल देवेश को आराध कर फिर पुरुषत्व को प्राप्त हुआ है ॥ ८२ ॥ अगस्त्य जी
की शाप से सर्पता को प्राप्तहोकर नहुष ने इसके बाद चन्द्रमा के उपदेश से भक्ति पूर्वक अरुणाचल को स्मरण किया ॥ ८३ ॥ और तपस्या में अधिक उन नहुषने

न्याचसङ्गतः ॥ ७९ ॥ मनुःशोणाद्रिमभ्यर्च्य स्वसृष्टान्मानवान्प्रियान् ॥ पालयामासधर्मात्मा नीतिसारसम
न्वितः ॥ ८० ॥ इलाप्रविश्यसहसा गौरीवनमखण्डितम् ॥ स्त्रीभावंसमनुप्राप्तं पप्रच्छस्वपुरोधसम् ॥ ८१ ॥ वशिष्ठेनस
मादिष्टः शोणाद्रिंपूजयेतिसः ॥ तपसाराध्यदेवेशं पुनःपुंस्त्वमुपागतः ॥ ८२ ॥ नहुषोगस्त्यशापेन भुजगत्वमुपाग
तः ॥ सोमोपदेशाद्भक्त्याथ सस्माराऽरुणपर्वतम् ॥ ८३ ॥ ईशानुग्रहतोलेभे शापमोक्षंतपोधिकः ॥ लेभेचपरमंस्था
नमप्राप्यममरैरपि ॥ ८४ भरतोमृगशावस्य स्मरणादायुषोत्यये ॥ नमुक्तिंप्रापयोगेन मृगजन्माभवत्पुनः ॥ ८५ ॥
नारायणोपदेशेन संस्तुत्वाऽरुणपर्वतम् ॥ मुक्तिंप्रापपरांशीघ्रंध्याननिर्धूतकल्मषः ॥ ८६ ॥ भृगुपत्नीवधाद्विष्णुर्दशज
न्मान्यसङ्गतः ॥ पत्नीविरहजन्दुःखप्राप्तवानमितंहरिः ॥ ८७ ॥ पुनर्भृगूपदेशेन शोणाद्रिमिममर्चयन् ॥ अवतारेषुसर्वे
षु सर्वदुःखान्यपाकरोत ॥ ८८ ॥ सरस्वतीचसावित्री श्रीर्भूमिःसरितस्तथा ॥ अभ्यर्च्यशोणशैलेशमापदोमुक्तिमा

महादेवजी की दयासे शाप की मोक्ष को पाया व देवताओं से भी दुर्लभ उत्तम स्थान को पाया ॥ ८४ ॥ व भरतने मृग के बच्चे के स्मरण से आयुर्बल के अन्त में मुक्ति
को नहीं पाया है किन्तु फिर योग से वे मृग जन्म धारी हुये ॥ ८५ ॥ और नारायण के उपदेश से अरुणाचल की भलीभांति स्तुति कर ध्यान से नष्ट पातकों वाले उन्होंने
शीघ्रही उत्तम मुक्ति को पाया है ॥ ८६ ॥ भृगुजी की स्त्री के वध से विष्णुजी दश जन्मों तक स्त्री से वियोग को प्राप्त हुये व इसी कारण विष्णुजी ने स्त्री के वियोग से
उपजे हुये अमितदुःख को पाया ॥ ८७ ॥ फिर भृगु के उपदेश से इस अरुणाचल को पूजते हुये उन्होंने सब अवतारों में समस्त दुःखों को दूर किया है ॥ ८८ ॥ और

सरस्वती, सावित्री, लक्ष्मी, भूमि व नदिया अरुणाचल पर्वत को पूजकर विपत्तियों से मुक्ति को प्राप्तहुई हैं ॥ ८९ ॥ पूर्व दिशा के भागमे सूर्यनारायण, दक्षिण में वि-
श्वामित्र व पश्चिम भाग मे वरुण तथा महादेवजी उत्तर में आश्रित हैं ॥ ९० ॥ दो योजन तक पर्वत की सीमा (हद्द) स्थित है और टिके हुये ये चारों देवता अरुणा-
चल पर्वत को सेवते हैं ॥ ९१ ॥ जो कि अरुणाचल के सब ओर सीमाओं के अन्तमें स्थित हैं वे चारों देवता अरुणाचल आकार वाले शिव को प्रणाम करते हैं ॥ ९२ ॥
इसके उत्तरशिखर में बरगद का वृक्ष देख पड़ताहै जिस की जड़ में सिद्ध वेषवाले महादेवजी सदैव रहते है ॥ ९३ ॥ और जिसकी मडलाकार बडी भारी छाया सदैव

गताः ॥८९॥ भास्करःपूर्वदिग्भागे विश्वामित्रस्तुदक्षिणे ॥ पश्चिमेवरुणोभागे त्रिशूलीचोत्तराश्रयः ॥९०॥ योजनद्वय
पर्यन्तं सीमाशैलस्यसंस्थिता ॥ चतस्रोदेवतास्त्वेताःसेवन्तेशोणपर्वतम् ॥ ९१ ॥ स्थिताःसीमावसानेषु शोणाद्रिमर्व
तःस्थिताः ॥ नमन्तिदेवाश्चत्वारः शिवंशोणाचलाकृतिम् ॥ ९२ ॥ अस्योत्तरेस्मिञ्छिखरे दृश्यतेवटभूरुहः ॥ सिद्ध
वेषःसदैवास्ते यस्यमूलेमहेश्वरः ॥ ९३ ॥ यस्यछायातिमहती सर्वदामण्डलाकृतिः ॥ लक्ष्यतेविस्मयोपेतैः सर्वदादै
वमानवैः ॥ ९४ ॥ अष्टभिःपरितोलिङ्गैरष्टदिक्पालपूजितैः ॥ अष्टासुसंस्थितैर्दिक्षु शोभतेरूपवर्जितः ॥ ९५ ॥ नृपा
णांशम्भुभक्तानां शङ्कराज्ञानुपालिनाम् ॥ अत्रैवमहदास्थानमादिदेवेननिर्मितम् ॥ ९६ ॥ बकुलश्चमहांस्तत्र सदार्थि
तफलप्रदः ॥ आगमार्थविदामूले वामदेवेनसेव्यते ॥ ९७ ॥ अगस्त्यश्चवशिष्ठश्च सम्पूज्यारुणभूधरम् ॥ संस्थाप्यलि
ङ्गेविमले तेपातेतादृशंतपः ॥ ९८ ॥ हिरण्यगर्भतनयः पुराशोणनदःपुमान् ॥ अत्रतीव्रतपस्तप्त्वा गङ्गाभिमुखगोभ

रहती है व विस्मय से संयुत समस्त देवता व मनुष्य सदैव उस को देखतेहैं ॥ ९४ ॥ और सब ओर आठो दिशाओं मे स्थित व आठ दिक्पालों से पूजित आठ लिंगो
से वह रूपसे रहित पर्वत शोभित है ॥ ९५ ॥ और शिवजी की आज्ञा को पालन करने वाले शिवभक्त राजाओं के लिये यहीपर आदि देव सदा शिवजी ने बड़ाभारी
स्थान निर्माण किया है ॥ ९६ ॥ और सदैव मांगे हुये फलो को देने वाला वहां पर बडाभारी मौलसिरी का वृक्ष है जो कि जड मे शास्त्रार्थ के जानने वाले शिव
जीसे सेवित है ॥ ९७ ॥ और अगस्त्य व वशिष्ठजी ने अरुणाचल को भलीभाति पूजकर व निर्मल लिंगोको थापकर वैसीही तपस्या कियाहै ॥ ९८ ॥ पुरातन समय

हिरण्यगर्भ का पुत्र शोणनद नामक पुरुष यहां तीव्र तपस्याकर गङ्गाजीके सम्मुख गामीहुये हैं ॥ ९९ ॥ यहांपर पुण्यदायिनी व निर्मलजलवाली शोणनदी बहती है
और पवित्र किनारोंवाली वेणानदी सबओर से सदैव सेवती है ॥ १०० ॥ और स्पर्शसे डरानेवाले सब देवतालोग भीतर तेजको गुप्तकर सदैव पार्वती व अरुणाच-
ल को आराधन करते हैं ॥ १ ॥ और मैंने भी तपस्या से अरुणाचलरूपी शिवजी को पूजकर सब लोगोंके उपकारके लिये सूक्ष्म लिंगको पूजाहै ॥ २ ॥ व पुरातन
समय विश्वकर्माजी ने अनेक भांति के आनन्दवाले दिव्य विमान को बनवाकर फिर सनातन सुखोंको पैदाकिया है ॥ ३ ॥ और भक्तिसे संयुत अन्य मुनिश्रेष्ठोंने

वत् ॥ ९९ ॥ अत्रशोणनदीपुण्या प्रवहत्यमलोदका ॥ वेणाचपुण्यतटिनी परितःसेवतेसदा ॥ १०० ॥ अन्तर्निगूढते
जस्त्वङ्गत्वायस्सकलैःसुरैः ॥ आराध्यतेसदागौरी शोणाद्रिःस्पर्शभीरुभिः ॥ १ ॥ अहञ्चशम्भुमभ्यर्च्य तपसारुण
पर्वतम् ॥ सर्वलोकोपकारार्थं सूक्ष्मलिङ्गमपूजयम् ॥ २ ॥ विश्वकर्मापुरादिव्यं विमानंविविधोत्सवम् ॥ सङ्कल्पसक्
लान्भोगान् नित्यानजनयत्पुनः ॥ ३ ॥ धर्मशास्त्राणिविविधान्यन्येचमुनिपुङ्गवाः ॥ शिवकार्याणिसर्वाणि चक्रुर्भ
क्तिसमन्विताः ॥ ४ ॥ मयाचशम्भुमभ्यर्च्य ततोऽग्न्याहुतिसम्भवाः ॥ सप्तकन्यावरारोहाः पूजार्थंविनियोजि
ताः ॥ ५ ॥ हतशत्रुगणैर्भूयो लब्धराज्यैःपुरान्नृपैः ॥ प्रत्येकंविविधैर्भोगैः शोणशैलाधिपोर्चितः ॥ ६ ॥ इदमनुभववै
भवंविचित्रं दुरितहरंशिवलिङ्गमद्रिरूपम् ॥ अमलमनभिगम्यनामधेयं वरमरुणंभुवनाधिकंभजस्व ॥ ७ ॥ अवनत
तनरत्नपोचितस्य स्मरणनिराकृतविश्वकल्मषस्य ॥ भजनममितपुण्यराशियोगादरुणगिरेःकृतिनःपरंलभन्ते ॥ ८ ॥

इति श्रीस्कन्दपुराणेअरुणाचलमाहात्म्येषष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

॥ * ॥ * ॥ * ॥

अनेक भांतिके धर्मशालों व समस्त शिवकार्यों को कियाहै ॥ ४ ॥ और मैंने सदाशिवजी को पूजकर तदनन्तर अग्निमें आहुती से उपजीहुई उत्तम कान्तिवाली
सात कन्याओं को पूजन के लिये युक्तकिया है ॥ ५ ॥ व फिर पुरातन समय शत्रुगणों को मारकर राज्यको पायेहुये प्रत्येक राजाओं ने अनेक भांतिके भोगोंसे
अरुणाचल का पूजन कियाहै ॥ ६ ॥ इस पापहारक पर्वतरूपी निर्मल शिव लिंगको भजिये जोकि ज्ञानव ऐश्वर्यवान् तथा विचित्र व न जानने योग्य नामवाला

और उत्तम व संसारभरमें अधिक तथा अरुणवर्ण है ॥ ७ ॥ प्रणाम कियेहुये जनोंके रक्षणमें योग्य और स्मरणही से संसारके पातक को नाश करनेवाले अरुणाचलकी सेवाको पुण्यवान् पुरुषअतुल पुण्यकी राशिके संयोगसेपाते हैं ॥ ८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेअरुणाचलमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायाषष्ठोऽध्यायः॥६॥

दो॰ । अरुणाचल पै भयो जिमि सकल तीर्थ समुदाय । सो सतम अध्यायमें कह्यो चरित सुखदाय ॥ पार्वतीजी बोलीं कि अग्निमय लिंग पृथ्वीमें कैसे जानेयोग्य हुआहै व सब प्राणियों की शांति कैसे हुई है ॥ १ ॥ और किस प्रकार पुण्यदायकअरुणाचल से तीर्थोंकी उत्पत्तिहुई है व सब अंगोंको संहार किये हुये अरुणाचल कैसेहैं ॥ २ ॥ गौतमजी बोले कि सतयुग में अग्निमय पर्वत व त्रेतामें मणिपर्वत द्वापर में सुवर्णाचल व कलियुग में मरकताचल है ॥ ३ ॥ सतयुग में बहुत योज-

गौरीउवाच ॥ कथमग्निमयंलिङ्गमभिगम्यमभूद्भुवि ॥ प्राणिनामपिसर्वेषामुपशान्तिःकथञ्चन ॥ १ ॥ तीर्थानामुद्भवःपुण्यात्कथंचारुणपर्वतात् ॥ उपसंहृतसर्वाङ्गः कथञ्चाप्यरुणाचलः ॥ २ ॥ गौतमउवाच ॥ कृतेत्वग्निमयःशैलः त्रेतायांमणिपर्वतः ॥ द्वापरेहाटकगिरिः कलौमरकताचलः ॥३॥ बहुयोजनपर्यन्तं कृतेवह्निमयःस्थिते ॥ बहिःप्रदक्षिणं चक्रुः प्रशान्त्यर्थंमहर्षयः ॥४॥ शनैःशान्तोरुणाद्रीशः श्रीमानभ्यर्थितःसुरैः ॥ लोकगुप्त्यर्थमत्यर्थमुपशान्तोरुणाचलः ॥ ५ ॥ अथगौरीमुनिंप्राह कथंशान्तोरुणाचलः ॥ कथंवाप्रार्थयामासुर्देवेशंत्रिदशाअमुम् ॥ ६ ॥ इतितस्यावचः श्रुत्वा गौतमस्त्वभ्यभाषत ॥ प्रशस्यभक्तिमतुलान्तस्यास्तत्त्वार्थवेदिनीम् ॥ ७ ॥ गौतमउवाच ॥ अग्निरूपंपुराशैलमासादयितुमक्षमाः ॥ तदासुराःस्तुतिंचक्रुरभ्यर्च्यर्तुसम्भवैः ॥ ८ ॥ देवाऊचुः ॥ भगवन्नरुणाद्रीश सर्वलोकहि

नतक इस पर्वत के अग्निमय स्थित होनेपर शान्ति के लिये महर्षिलोगोंने बाहर प्रदक्षिणा किया ॥ ४ ॥ व देवताओं से प्रार्थना कियाहुआ श्रीमान् अरुणाचल संसारकी रक्षाके लिये बहुतही शान्तहुआ है ॥ ५ ॥ इसके अनन्तर पार्वतीजी ने गौतममुनि से कहा कि अरुणाचल कैसे शान्तहुआ है व किस प्रकार देवताओं ने इस देवेश की प्रार्थना कियाहै ॥ ६ ॥ उन पार्वतीजी के इस वचन को सुनकर उनके तत्त्वार्थको जाननेवाली अतुलभक्तिकी प्रशंसाकर गौतमजी बोले ॥ ७ ॥ गौतमजी बोले कि पुरातन समय अग्निरूपी अरुणाचल के समीप स्थित होनेके लिये असमर्थ देवताओंने उस समय ऋतुवों में उपजेहुये पुष्पोंसे पूजकर स्तुति किया

है ॥ ८ ॥ देवता बोले कि हे समस्त लोकोंके हितदायक, भगवन्, अरुणाचलेशजी ! अग्निरूप भी आप भलीभांति शान्त होकर पृथ्वीमें प्रकाश करो ॥ ९ ॥ जो
यह कि ताम्र व अरुणवर्ण तथा सुमंगल पिंगलवर्ण है इस प्रकार सब देवता शिवशरीर वाले तुम्हारी स्तुति करते हैं ॥ १० ॥ ताम्र, अरुण, परमात्मा शिवजी के
लिये नमस्कारहै और वेदोंसे जाननेयोग्य स्वरूपवाले यज्ञरूपी सोमके लिये नमस्कार है ॥ ११ ॥ हे देव ! यह चराचर सब संसार तुम्हारारूप है यह देवत औ
का रूप तुम्हारा निधान (निधि) सादेखपड़ता है ॥ १२ ॥ बहुत झरनों तथा बरसते हुये मेघोंके जलका संहार युगके नाश होनेपर तुमको योग्यहै ॥ १३ ॥

तावह ॥ अग्निरूपोपिसंशान्तः प्रकाशस्वमहीतले ॥ ९ ॥ असौयस्ताम्रोहारुण उतबभ्रुःसुमङ्गलः ॥ इतित्वांसकला
देवाः स्तुवन्तिशिवविग्रहम् ॥ १० ॥ नमस्ताम्रायारुणाय शिवायपरमात्मने ॥ वेदवेद्यस्वरूपाय सोमायसुखरूपि
णे ॥ ११ ॥ त्वद्रूपमखिलंदेव जगदेतच्चराचरम् ॥ निधानमिवतेरूपं देवानामिदमीक्ष्यते ॥ १२ ॥ वर्षताञ्चपयोदानां
निर्झराणाञ्चभूयसाम् ॥ सलिलानाञ्चसंहारो युक्तस्तेयुगसंक्षये ॥ १३ ॥ अग्नेरापःसमुद्भूतास्त्वत्तोहिपरमात्मनः ॥ वि
श्वसृष्टिंवितन्वन्ति विचित्रगुणवैभवात ॥ १४ ॥ शीतोभवमहादेव शोणाचलकृपानिधे ॥ सर्वेषामपिजीवानां मभि
गम्योभवप्रभो ॥ १५ ॥ इतिस्तुतःसुरैःसर्वैरानतैर्भक्तवत्सलः ॥ सद्यःशीतलतांगच्छन्नभिगम्योभवत्प्रभुः ॥ १६ ॥
प्रावर्तन्तपुनर्नद्यो निर्झराश्चबहूदकाः ॥ वर्षतामपिमेघानां नजग्राहजलंबहु ॥ १७ ॥ तथापितरुणार्कौघकालाग्निश
तकोटिभिः ॥ समानदीप्तिरभजज्जीवानामभ्यगम्यताम् ॥ १८ ॥ विसृज्यविश्वसलिलं नदीश्चरसविन्दरैः ॥ पूजितं

विचित्र गुणों के ऐश्वर्यवाले तुम अग्निरूप परमात्मा से उपजेहुये जल संसारकी सृष्टिको विस्तार करते हैं ॥ १४ ॥ हे महादेव ! दयानिधे, अरुणाचल ! शीतल
होवो हे प्रभो ! सब जीवों के सम्मुख जानेयोग्य होवो ॥ १५ ॥ इस प्रकार नयेहुयेसमस्त देवताओं से स्तुति कियेहुये भक्त प्रिय प्रभु अरुणाचलजी शीघ्रही शीतलता
को प्राप्त होतेहुये सामने जानेयोग्य हुये ॥ १६ ॥ फिर बहुत जलवाली नदियां व झरना वर्तमान हुये और बरसते हुयेभी मेघों के बहुत जलको अरुणाचल
ने नहीं ग्रहण किया ॥ १७ ॥ तौभी तरुण अवस्थावाले सूर्यगण व सौ करोड़ कालाग्नियों के समान शोभावाले अरुणाचलजी ने प्राणियों के सम्मुख न

जानेकी योग्यता को भजा ॥ १८ ॥ जलके प्रवाहों से नदियों में समस्त जलको छोड़कर सब देवताओं से पूजित अरुणाचल सदैव भलीभाति प्रकाशितहै ॥ १९ ॥
और प्रार्थना के वशसे सबओर दिक्पालों, देवताओं व महर्षियों तथा महात्माओं के अनेक भातिके तीर्थहुये हैं ॥ २० ॥ ब्रह्माजी बोले कि उन गौतमजी के इस व-
चन को सुनकर कौतुक से पार्वतीजी ने तीर्थोंकी सब उत्पत्ति को सुनने के लिये उनसे प्रारम्भ किया ॥ २१ ॥ पार्वतीजी बोलीं कि हे भगवन् ! संसार की रक्षाके
लिये अरुणाचल से कौन तीर्थ उत्पन्न है मुझ से तीर्थोंकी सब उत्पत्ति को कहिये ॥ २२ ॥ उन पार्वतीजी के इस वचन को सुनतेहुये गौतमजीने पुरातन समय शि-

सकलैर्देवैःसर्वदासंप्रकाशते ॥१९॥ तीर्थानिविविधान्यामन्परितःप्रार्थनावशात् ॥ दिक्पालानांसुराणाञ्च महर्षीणांम
हात्मनाम् ॥ २० ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इतितस्यवचःश्रुत्वा गौरीकुतकसंयुता ॥ तीर्थानामुद्भवंसर्वं श्रोतुंतमुपचक्रमे ॥ २१ ॥
गौरीउवाच ॥ कानितीर्थानिजातानि शोणाद्रेर्लोकगुप्तये ॥ भगवन्ब्रूहिसकलं तीर्थानामुद्भवंमम ॥ २२ ॥ इतित
स्यावचःश्रृण्वन् गिरिशात्संश्रुतंपुरा ॥ तीर्थानामुद्भवंसर्वंव्याख्यातुमुपचक्रमे ॥ २३ ॥ गौतमउवाच ॥ परस्त्रीसङ्गमा
त्पापं वह्निःस्नात्वात्रचात्यजत् ॥ याम्यंनाममहातीर्थं यमभागेविजृम्भते ॥ २४ ॥ अत्रस्नात्वायमोमुञ्चद्भयंब्रह्मास्त्र
सम्भवम् ॥ नैर्ऋतन्तुमहातीर्थंनैर्ऋत्यांदिशिशोभने॥२५॥भूतवेतालविजयंतत्रस्नात्वार्षयोगताः ॥ पश्चिमेवारुणंती
र्थं दिग्भागेचप्रकाशते ॥ २६ ॥ स्वीयंकोशंपुरालेभे स्नात्वात्रवरुणोनिजम् ॥ वायव्येतद्दिशोभागे वायुतीर्थञ्चशोभ
ते ॥ २७ ॥ तत्रस्नात्वामरुत्पूर्वं जगत्प्राणत्वमाप्तवान् ॥ उत्तरेर्थपतेस्तीर्थं सुवर्णकमलोज्ज्वलम्॥ २८॥ दिव्यसौगन्ध

वजीसे सुनीहुई तीर्थोंकी सब उत्पति को कहनेके लिये प्रारम्भ किया ॥ २३ ॥ गौतमजी बोले कि अग्निदेवजी ने यहां नहाकर पराई स्त्रीके संगम से उपजेहुये पा-
तकको त्याग कियाहै और याम्यनामक महातीर्थ दक्षिणभाग में विराजताहै ॥२४॥ इसमें यमराजजी ने नहाकर ब्रह्मास्त्र से उपजेहुये भयको छोडाहै और नैर्ऋत्यदि-
शामें नैर्ऋतनामक महातीर्थ शोभित है ॥ २५ ॥ उसमें नहाकर ऋषिलोग भूतों व वेतालों के विजय को प्राप्तहुये हैं और पश्चिम दिशाके भागमें वारुणतीर्थ प्रका-
शितहै ॥ २६ ॥ इसमें नहाकर पुरातन समय वरुण ने अपने कोश (खज़ाना) को पायाहै और उस दिशाके वायव्यभाग में वायुतीर्थ शोभित है ॥ २७ ॥ पुरातन

समय उसमें पवनजी ने नहाकर संसारकी जीवताको पायाहै और उत्तर में सुवर्ण के कमलके समान उज्ज्वल धनेशजी का तीर्थहै ॥ २८ ॥ जोकि दिव्य सौगन्धोंसे
व्याप्त व हंसों तथा भ्रमरों से मनोहर कुबेरजी का तीर्थहै और ईशान दिशामें ऐशान तीर्थहै ॥ २९ ॥ उसीके पश्चिम भागमें कमलनयन विष्णुजी हैं इस तीर्थमें
नहाकर पुरातन समय प्यारकीहुई लक्ष्मीजी को भजाहै ॥ ३० ॥ पुरातन समय उसमें नहाकर नवग्रह ग्रहस्थान को प्राप्तहुये हैं उसमें नहातेहुये मनुष्यों के ऊपर
नवग्रहों की प्रसन्नता होती है ॥ ३१ ॥ दुर्गा, गणेश, स्वामिकार्त्तिकेय, क्षेत्रपाल व सरस्वती ये सबओर से निरन्तर इस ब्राह्मयतीर्थ की रक्षा करती हैं ॥ ३२ ॥ और

काकीर्णं हंसभृङ्गमनोहरम् ॥ कौबेरन्तीर्थमीशानऐशान्यंतीर्थमुत्तमम् ॥ २९ ॥ तस्यैवपश्चिमेभागे विष्णुःकमललो
चनः ॥ स्नात्वात्रविष्णुमभजत् कमलाललितापुरा ॥ ३० ॥ नवग्रहाःपुरातत्र स्नात्वाग्रहपदंगताः ॥ नवग्रहप्रसादश्च
जायतेतत्रमज्जताम् ॥ ३१ ॥ दुर्गाविनायकस्कन्दो क्षेत्रपालस्सरस्वती ॥ रक्षन्तिपरितस्तीर्थम्ब्राह्मयमेतदनन्त
रम् ॥ ३२ ॥ गङ्गाचयमुनाचैव गोदावरीसरस्वती ॥ नर्मदासिन्धुकावेर्य्यः शोणशोणानदीचसा ॥ ३३ ॥ एतागूढा
निषेवन्ते पूर्वाद्याशासुसर्वतः ॥ नश्यन्त्यःसकलंपापमात्मक्षेत्रसमुद्भवम् ॥ ३४ ॥ अन्याश्चसरितोदिव्याः पा
र्थिव्यश्शुभोदकाः ॥ उद्जृम्भन्तसहसा शोणाद्रीशप्रसादतः ॥ ३५ ॥ अगस्त्यंदक्षिणेभागे तीर्थंमहदुदाहृत
म् ॥ सर्वाभीष्टार्थसंसिद्धिर्जायतेतत्रमज्जताम् ॥ ३६ ॥ अत्रागस्त्यःसमागम्य स्नात्वामुनिगणावृतः ॥ अभ्यर्चय
तिशोणाद्रिं मासिभाद्रपदेसदा ॥ ३७ ॥ वशिष्ठमुत्तरेभागेतीर्थंदिव्यंशुभोदयम् ॥ सर्ववेदार्थसंसिद्धिर्जायतेतत्रमज्ज

गंगा, यमुना, गोदावरी, सरस्वती, नर्मदा, सिन्धु, कावेरी और शोणशोणा नामक वह नदी ॥ ३३ ॥ पूर्वादिक दिशाओं में गुप्तहोकर अपने क्षेत्रमें उपजेहुये समस्त
पातकको नाश करतीहुई ये नदियां सबओरसे सेवती हैं ॥ ३४ ॥ और उत्तमजल वाली पृथ्वी सम्बंधिनी उत्तम नदियां आचमन कही अरुणाचलकी प्रसन्नतासे बढ़ी
हैं ॥३५॥ और दक्षिणभागमें अगस्त्य नामक बड़ाभारी तीर्थ कहागयाहै उसमें नहातेहुयेमनुष्योंके समस्त चाहेहुये प्रयोजनों की सिद्धिहोती है ॥३६॥ मुनिगणों से घिरे
हुये अगस्त्यजी यहां भलीभांति आकर सदैव भादोंके महीने में अरुणाचल को पूजतेहैं ॥ ३७ ॥ व उत्तरभाग में उत्तम ऐश्वर्यवाला दिव्य वशिष्ठतीर्थ है उसमें

नहानेसे सब बेदोंके अर्थोंकी भलीभांति सिद्धि होतीहै ॥३८॥ वहांपर सुमेरुगिरिसे भगवान् वशिष्ठमुनि आकर कुँवार महीनेमें अरुणाचल की सेवा करते हैं ॥ ३९ ॥
व पूर्व तथा उत्तर दिशामें गङ्गानामक महातीर्थ स्थित है उसमें नहाकर मनुष्यों के समस्त पातकों का नाश होताहै ॥ ४० ॥ यहां कार्त्तिक महीने में गंगादिक सब
नदिया भलीभाति आकर आदरपूर्वक अरुणाचलेशकी सेवा करती है ॥ ४१ ॥ व अरुणाचलेश के समीप ब्राह्मयनामक महातीर्थ है उसके समीप गमनसे शीघ्रही
ब्रह्महत्यादिक पाप नाशहोजाते हैं ॥ ४२ ॥ लोकों के पितामह ब्रह्माजी अगहन महीनेमें यहा आकर प्रतिदिन अरुणाचल को पूजते हैं ॥ ४३ ॥ और पौष महीने में

नात् ॥३८॥ अत्रमेरोःसमागत्य वशिष्ठोभगवानृषिः॥करोत्याश्वयुजेमासे शोणाद्रीशनिषेवणम्॥३९॥गङ्गानाममहा
तीर्थं पूर्वोत्तरदिशिस्थितम्॥ तत्रस्नानाद्भवेन्नृणां सर्वपातकनाशनम् ॥ ४० ॥ गङ्गाद्याःसरितःसर्वाः कार्त्तिकेमासिसङ्ग
ताः ॥ अत्रारुणाद्रिनाथस्य सेवांकुर्वन्तिसादरम् ॥ ४१ ॥ ब्राह्मयंनाममहातीर्थमरुणाद्रीशसन्निधौ ॥ तस्योपसङ्गमा
त्सद्यो ब्रह्महत्यादिनश्यति ॥ ४२ ॥ मार्गमासिसमागत्य ब्रह्मालोकपितामहः ॥ स्नात्वात्रप्रत्यहंदेवमर्चयत्यरुणाचल
म् ॥४३ ॥ पौषेमासिसमागत्यस्नात्वातीर्थेनिजेसुरैः ॥ महेन्द्रःशोणशैलेशमभ्यर्चयतिशङ्करम् ॥ ४४ ॥ शैवंनामम
हातीर्थं सन्निधौदृश्यतेपुरा ॥ रुद्रोब्रह्मकपालेन सहसात्रव्ययुज्यत ॥ ४५ ॥ अत्रशम्भुर्गणैस्सार्द्धं माघेमासिप्रसीदति
प्रायश्चित्तानिसर्वाणि नृणांसफलयन्भुवि ॥ ४६ ॥ आग्नेयमग्निदिग्भागे तीर्थंसौभाग्यदायकम्॥ अग्निरत्रपुरास्ना
त्वा सहसासङ्गतःसुखी ॥ ४७ ॥ अनङ्गेपिस्मरःस्नात्वाफाल्गुनेमासिसङ्गतः ॥ अभ्यर्च्यशोणशैलेशं भूतःसर्वसुखा

देवताओं समेत इन्द्रजी आकर व अपने तीर्थमें नहाकर अरुणाचल के स्वामी सदाशिवजी को पूजते हैं ॥ ४४ ॥ व समीपही शैवनामक महातीर्थ देख पड़ता है
यहां पर पुरातन समय शिवजी अचानकही ब्रह्माके कपाल से छूटगये है ॥ ४५ ॥ यहापर पृथ्वीमें मनुष्योंके सब प्रायश्चित्तों को सफल करतेहुये गणोंसमेत शिवजी
माघमहीने में प्रसन्न होतेहैं ॥ ४६ ॥ और अग्नेयदिशाके भागमें सौभाग्यको देने वाला आग्नेयतीर्थ है पुरातन समय अग्निदेवजी इसमें नहाकर अचानकही सुखी

हुयेहैं ॥ ४७ ॥ और फाल्गुन महीने में आकर कामदेवभी अनंगतीर्थ में नहाकर व अरुणाचलेश को पूजकर समस्त सुखोंके स्वामी हुयेहैं ॥ ४८ ॥ और दक्षिण व पूर्व दिशामें अद्भुत वैष्णवतीर्थ है वहापर कौतुक कियेहुये ब्रह्मर्षिलोग सदैव वसतेहैं ॥ ४९ ॥ चैत महीने में लक्ष्मी के पति विष्णुजी वहापर भलीभांति आकर नहाकर और अरुणाचलेशको पूजकर वे लोकोंके स्वामी हुये हैं ॥ ५० ॥ और उत्तरदिशामें सौर नामक महातीर्थ है उसमें नहाने से सब रोगोंकी शान्ति होजाती है ॥ ५१ ॥ वैशाख महीने में श्रीमान् सूर्यनारायणजी बालखिल्यादि महर्षियों तथा वेदों समेत अचानकही आकर इसतीर्थमें नहाकर सदाशिवजीको सेवतेहैं॥५२॥

धिपः ॥ ४८ ॥ दिशिदक्षिणपूर्वस्यां वैष्णवंतीर्थमद्भुतम् ॥ ब्रह्मर्षयःसदातत्र वसन्तिकृतकौतुकाः ॥ ४९ ॥ चैत्रेमासि समागत्य विष्णुस्तत्ररमापतिः ॥ स्नात्वाभ्यर्च्यारुणाद्रीशं सोभवल्लोकनायकः ॥ ५० ॥ सौरंनाममहातीर्थं कौबेर दिशिजृम्भितम् ॥ सर्वरोगोपशान्तिश्च जायतेतत्रमज्जनात् ॥ ५१ ॥ वैशाखेमासिदिनकृत स्नात्वात्रेशंनिषेवते ॥ बालखिल्यैःसमःश्रीमान् वेदैश्चसहसागतः ॥ ५२ ॥ आश्विनंपावनंतीर्थं मीशब्रह्मोत्तरेस्थितम् ॥ आप्लुतोभिषजौदस्रौ पूतावत्रनिमज्जनात् ॥ ५३ ॥ अत्राश्विनौसमागत्य मासिचारुत्वयुजेशुभे ॥ स्नात्वाशोणाचलपतिंसेवतेप्रतिवत्सरम् ॥ ५४ ॥ पश्चिमेवारुणंतीर्थं वरुणस्तत्रवारिपः ॥ ज्येष्ठमासिसमागत्य स्नात्वाभ्यर्चतिशङ्करम् ॥ ५५ ॥ दक्षिणेशोणशैलस्य निकटेवर्ततेशुभम् ॥ कामदंमोक्षदंचैव तीर्थंपाण्डवसंज्ञितम् ॥ ५६ ॥ अत्रधात्रीसमागत्य सर्वौषधिफलान्विता ॥ ज्येष्ठमासिमहादेवमर्चयत्यरुणाचलम् ॥ ५७ ॥ आषाढेमासिप्राप्तेच विश्वेदेवामहाव्रताः ॥ अभ्यर्च्यशोण

और ईश व ब्रह्मा के उत्तरदिशा में स्थित आश्विन नामक पावन तीर्थ है इसमें नहायेहुये अश्विनीकुमार वैद्य स्नान करने से पवित्र हुयेहैं ॥ ५३ ॥ उत्तम कुँवारके महीने में अश्विनीकुमार देवता प्रतिवर्ष में आकर व नहाकर अरुणाचल के स्वामीको सेवते हैं ॥ ५४ ॥ और पश्चिम में वारुणतीर्थ है ज्येष्ठ महीने में जलके स्वामी वरुणजी वहा आकर व उसी तीर्थमें नहाकर सदाशिवजी को पूजते हैं ॥ ५५ ॥ और अरुणाचल के दक्षिण में समीपही कामदायक व मोक्षदायक पाण्डव सञ्ज्ञक तीर्थहै ॥ ५६ ॥ यहापर सब औषधियों व फलोंसे संयुत धात्री (आंवला) ज्येष्ठ महीनेमें अरुणाचल महादेव को पूजती है ॥ ५७ ॥ व आषाढ़ महीना प्राप्त होने

पर महाबलवान् विश्वेदेवता अरुणाचल को पूजकर देवेशता को प्राप्तहुये हैं ॥५८॥ चन्द्रमा, सूर्यके उत्तर में स्थित वैश्वदेव नामक महातीर्थ है उसमें नहानेसे संसारकी अमित स्वामिता मिलती है ॥ ५९ ॥ और पूर्वदिशा में सबओर लक्ष्मीजी का तीर्थ शोभित है पुरातन समय इसमें लक्ष्मीजी ने नहाकर पुरुषोत्तम विष्णुजी को पायाहै ॥ ६० ॥ उत्तर दिशामे पुरातन समय पुण्यदायिनी स्कन्दनामक नदी स्थितहै पहले इस नदीमें नहाकर स्वामिकार्त्तिकेयजी ने बहुत बलको पायाहै ॥ ६१ ॥ व पश्चिदिशा में उत्तम कुम्भनामक नदी प्रसिद्ध है वहापर घटसे उपजेहुये अगस्त्यजी नित्यही टिके रहते हैं ॥ ६२ ॥ और श्रीगंगाजी मूलभाग में स्थित है

शैलेशमगमन्नमरेशताम्॥ ५८ ॥ वैश्वदेवंमहातीर्थं सोमसूर्योत्तराश्रयम्॥विश्वाधिपत्यमतुलं लभ्यतेतत्रमज्जनात्॥ ५९ ॥ परितोलक्ष्म्यकंतीर्थं पूर्वस्यान्दिशिशोभते ॥ अत्रलक्ष्मीःपुरास्नात्वा लेभेपुरुषमुत्तमम् ॥ ६० ॥ उत्तरस्यान्दिशिपुरा पुण्यास्कन्दनदीस्थिता ॥ अत्रस्नात्वापुरास्कन्दः संप्राप्तोविपुलंबलम् ॥ ६१ ॥ पश्चिमस्यान्दिशिख्याता पराकुम्भनदीशुभा ॥ नित्यंव्यस्थितस्तत्र ह्यगस्त्यःकुम्भसम्भवः ॥ ६२ ॥ गङ्गाचमूलभागस्था यमुनागगनेस्थिता ॥ सोमोद्भवाशिरोभागे सेवन्तेशोणपर्वतम् ॥ ६३ ॥ बहून्यपिचतीर्थानि सम्भूतानिसमन्ततः ॥ तेषांभेदान्पुरावेत्तुं मार्कण्डेयस्तुनाशकत् ॥ ६४ ॥ तपोभिर्बहुभिस्सोयं शोणाद्रिंसमतोषयत् ॥ प्रार्थयामासचवरंप्रीतात्मानंमुनीश्वरः ॥ ६५ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ भगवन्नरुणाद्रीश तीर्थभेदाःसहस्रशः ॥ प्रख्याताश्चप्रकाशन्तिदुर्बोध्यास्त्वल्पचेतसाम् ॥ ६६ ॥ कथमेकत्रसान्निध्यं लभेरन्भुविमानवाः ॥ अपर्याप्तिश्चभवति पृथगेषांनिषेवणे ॥ ६७॥ इतितस्यवचःश्रुत्वा देव

व यमुनाजी आकाश में स्थित हैं और नर्मदाजी मस्तक भागमें स्थित होकर अरुणाचल को सेवती हैं ॥ ६३ ॥ व सबओर उपजेहुये बहुत से तीर्थहैं पुरातन समय उनके भेदोंको जानने के लिये मार्कण्डेयभी नहीं समर्थ हुयेहैं ॥ ६४ ॥ व उन मार्कण्डेयजीने बहुत तपस्याओंसे अरुणाचलको प्रसन्न कियाहै व प्रसन्नमनवाले उस पर्वत से मुनिनायक ने वरकी प्रार्थना किया ॥ ६५ ॥ मार्कण्डेयजी बोले कि हे भगवन्, अरुणाचलेशजी ! हजारों तीर्थोंके भेद प्रसिद्ध व प्रकाशित हैं जोकि थोड़ी बुद्धिवालों के दुःखसे जाननेयोग्य हैं ॥ ६६ ॥ पृथ्वीमे मनुष्य उनकी समीपता को एक ठौरपै किस तरह पावैंगे क्योंकि इनके पृथक् सेवन में परि पूर्णता नहीं होती

है ॥ ६७ ॥ उन मार्कण्डेयजी के इस वचन को सुनकर प्रसन्न मनवाले देव देव उमापतिजीने मुनिके लिये [illegible] ॥ ६८ ॥ [illegible]
उपहार (बलि) के समय में समस्त तीर्थोंका गण गुप्तरूप से मेरी समीपता को प्राप्त होकर सेवता है ॥ ६९ ॥ [illegible]
चाहिये क्योंकि मेरे उपहार के समय में तीर्थोंका गण देख पड़ता है ॥ ७० ॥ इस लिये भक्तिसे संयुत समस्त मुनियों [illegible]
समागम जानना चाहिये और उसीसे देखाजावै ॥ ७१ ॥ हे देवि ! इस प्रकार पुरातन समय अतुल बुद्धिवाले [illegible]

देवउमापतिः ॥ उपायन्दर्शयामास मुनयेप्रीतमानसः ॥ ६८ ॥ महेश्वरउवाच ॥ सदोप[illegible]
मुच्चयः ॥ सन्निधिंममसंप्राप्तः सेवतेगूढरूपतः ॥ ६९ ॥ नान्यदन्वेषणीयन्ते तीर्थमत्रमहामुने ॥ [illegible] ॥
श्यतेतीर्थसञ्चयः ॥ ७० ॥ तस्माद्भक्तियुतैर्नित्यं सर्वतीर्थसमागमः ॥ मुनिभिश्चसुरैःसर्वैर्वेद्यास्तेन[illegible] ॥
इतिदेविपुरादेवो मार्कण्डेयायशङ्करः ॥ उपादिशदमेयात्मा तीर्थसन्दर्शनक्रमम् ॥ ७२ ॥ गौतम[illegible]
पिचपुराण्यानि तीर्थानिशिवसन्निधौ ॥ सदोपहारवेलायांदृश्यानिकिलमानवैः ॥७३॥ व्रतंतीर्थंतपोवेदा यज्ञाश्च[illegible]
-यः ॥ योगाश्चशोणशैलेशाद्दर्शनादृष्टिसञ्चराः ॥ ७४ ॥ निशम्यवाक्यंमुनिपुङ्गवस्य प्रसेदुषीपर्वतराजपुत्री ॥ [illegible]
चदत्यद्भुतमेतदत्र त्वयोपदिष्टंभुवितीर्थजालम् ॥ ७५ ॥ अहंकृतार्थातपतांवरिष्ठ त्वत्सङ्गमात्संप्रतितीर्थजालम् ॥ [illegible]
तंसमस्तञ्चतपोविशेषं शिवोपिमेह्यादिशदद्यतुभ्यम् ॥७६॥ कथंगिरीशःपुनरत्रदेवः स्फु[illegible] ज्वलितवपुर्धरोपि ॥ [illegible]

दर्शन के कारण उपदेश कियाहै ॥ ७२ ॥ गौतमजी बोले कि पुरातन समय जो सब तीर्थ थे सदैव शिवजी की उपहार वेलामें शिवजी के समीप देखनेयोग्यहुये
है ॥ ७३ ॥ व्रत, तीर्थ, तपस्या, वेद, यज्ञ व नियमादिक और योग अरुणाचल के दर्शन से दृष्टिगोचर होतेहैं ॥ ७४ ॥ मुनिश्रेष्ठ गौतमजी के वचनको सुनकर प्र-
सन्न होतीहुई पार्वतीजी बोलीं कि तुमने पृथ्वीमें इस बड़े अद्भुततीर्थ समूह को वर्णन किया ॥ ७५ ॥ हे तपस्वियों में श्रेष्ठ ! मैं कृतार्थ होगई क्योंकि इस समय
तुम्हारे समागम से मैंने तीर्थोंके समूह को सुना व तपस्या विशेष को सुना जो कि सब शिवजी ने भी मुझ से कहाहै ॥ ७६ ॥ और चमकती हुई महाअग्नि के

शरीर को धारेहुये भी शान्त रूपवाले ये परमेश्वर गिरीशदेवजी फिर यहा भूमिमें मनुष्यगणों से किस प्रकार पूजनेयोग्यहैं ॥ ७७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेअरुणाचल खण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायाभाषाटीकायासप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

दो० । अरुणाचल पै जहांपर अहैं जौन से देव । सो अष्टमअध्याय में वर्णितहैं सब भेव ॥ गौतमजी बोले कि हे देवि ! पुरातन के चरित्र को सुनिये कि कैलासपर्वत पै मेरुधन्वी ने लिंगोंको देखने के लिये तीर्थयात्रा के निमित्त मुझको आज्ञा दिया ॥ १ ॥ रुद्रक्षेत्र, केदार, बदरिकाश्रम, काशी व पवित्र देशोंमें तथा

न्तरूपःपरमेश्वरोयमभ्यर्चनीयोभुविमर्त्यवर्गैः ॥७७॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेअरुणाचलमाहात्म्येसप्तमोऽध्यायः ॥७॥

गौतमउवाच ॥ शृणुदेविपुरावृत्तं कैलासेमेरुधन्विना ॥ आदिष्टस्तीर्थयात्रार्थमहंलिङ्गानि वीक्षितुं ॥१॥ रुद्रक्षेत्रेच केदारेतथाबदरिकाश्रमे ॥ काश्यांपुण्येषुदेशेषु तथाश्रीपर्वतेशिवे ॥२॥ काञ्चीमुख्यासुपुण्यासु पुरीष्वपिचसप्तसु॥पावनीनांनदीनांच तीरेषुगिरिजेतथा ॥ ३ ॥ कुलशैलेषुपुण्येषुजलधीनांतटेष्वपि॥स्थानेष्वन्येषुदेवेशिकल्पितेषुवनेष्वपि ॥ ४ ॥ ऋषिभिःविबुधैःसार्थैर्योगिभिर्मनुजैस्तथा॥स्थापितानिचलिङ्गानि स्वयंभूनिचदृष्टवान् ॥ ५॥ तत्रतत्रमहाभागे तीर्थानिशिवसन्निधौ ॥ सेवमानःसशिष्योहं पर्यटन्पृथिवीमिमाम् ॥ ६ ॥ एवंतीर्थानिसर्वाणि गाहमानोव्रतान्वितः ॥ तपांसियज्ञकर्माणि कुर्वन्भूमिंसमुच्चरन् ॥ ७ ॥ शिवस्मरणसंयुक्तः शिवलिङ्गानिसन्नमन् ॥ सर्वाणिभुविपु

कल्याणदायक श्रीपर्वत पै ॥ २ ॥ और जिनमें काची मुख्यहै उन सातों पुण्यदायिनी पुरियों में व हे गिरिजे ! पवित्रकारक नदियों के किनारों पै मै गया ॥३॥ हे देवेशि ! पुण्यदायक कुलाचलों व समुद्रों के किनारों तथा अन्य स्थानों में व कल्पितवनों में गया ॥ ४ ॥ और ऋषियों व देवगणों तथा योगियों व मनुष्यों से पाये व आपहीमे उपजेहुये लिंगोंको मैंने देखा ॥ ५ ॥ हे महाभागे ! इसपृथ्वीमें शिष्यसमेत घूमताहुआ मैं वहां वहां शिवजीके समीप तीर्थोंका सेवन करतारहा ॥ ६॥ और इस भांति तपस्या व यज्ञकर्मों को करता व पृथ्वीमें घूमताहुआ मैं व्रतों से संयुतहोकर समस्त तीर्थोंमें स्नान करतारहा ॥ ७ ॥ और शिवजी के स्मरणसे संयुत

व शिवलिंगों को तथा भूमिमें समस्त पुण्यदायक स्थानोंको प्रणाम करताहुआ मैं इस देशमें प्राप्त हुआ ॥ ८ ॥ यहांपर तीननयनोंवाले पार्वती के पति महादेव
अरुणाद्रि ऐसे प्रसिद्ध पर्वत लिंगको देखा ॥ ९ ॥ यहांपर महात्मा सिद्धलोग व दृढ नियमवाले मुनिलोगों को मैंने देखा जोकि कन्दमूल, फलों को खानेवाले व
अरुणाचलके सेवकथे ॥ १० ॥ पहलेवाले ब्रह्माजी से दिव्यदृष्टि से देखेहुये इस बड़ेभारी अरुणाद्रिमय प्रथम लिंगको मैं स्तुति किया ॥ ११ ॥ हे अरुणाचलेश !
जो यह कि ताम्र, अरुण व सुमंगल बभ्रु (पिंगलवर्ण) हैं इस प्रकार तुमको सदैव स्तुति करतेहैं ॥ १२ ॥ ताम्र, अरुण व परमात्मा शिवजी के लिये प्रणाम है और

एयानि देशमेतदुपाश्रयम् ॥ ८ ॥ अत्रदेवंमहादेवमम्बिकेशंत्रियम्बकम् ॥ अरुणाद्रिरितिख्यातं पर्वतंलिङ्गमैक्षिप
म् ॥ ९ ॥ अत्रसिद्धामहात्मानो मुनयश्चदृढव्रताः ॥ कन्दमूलफलाहारा दृष्टाशोणाद्रिसेवकाः ॥ १० ॥ ह्यस्तोषमा
दिमंलिङ्गमरुणाद्रिमयंमहत् ॥ आद्येनब्रह्मणापूर्वं संदृष्टंदिव्यचक्षुषा ॥ ११ ॥ असौयस्ताम्रोह्यरुण उतबभ्रुःसुमङ्ग
लः ॥ इतिवेदाःस्तुवन्तित्वामरुणाद्रीशसन्ततम् ॥ १२ ॥ नमस्ताम्रायारुणाय शिवायपरमात्मने ॥ सर्ववेदस्वरूपा
य नित्यायामृतमूर्तये ॥ १३ ॥ कालायकरुणार्द्रायदृष्टिपेयामृताङ्घ्रये ॥ भक्तवात्सल्यपूर्णाय पुण्यायपुरभेदि
ने ॥ १४ ॥ दर्शनंतवदेवेश सर्वधर्मफलप्रदम् ॥ भुविलब्धंबलवता नान्यत्कार्यंतपःक्वचित ॥ १५ ॥ भवताकर्मभूरेषा
वर्ततेघनिर्वाधिका ॥ प्रार्थयन्तेस्वसंवासान् देवाश्चात्रत्वदाश्रये ॥ १६ ॥ कालसङ्ग्रहसञ्जातं फललब्धंमयाधुना ॥ आ
न्यत्कृतंतपःसर्वं त्वद्दर्शनफलंमम ॥ १७ ॥ ईदृशंतवदेवेशरूपमत्यद्भुतोदयम् ॥ एकमद्रिमयंलिङ्गं नक्वचिद्दृष्टवान्मु

समस्त वेदस्वरूप व नित्य तथा अमृतमूर्त्ति के लिये प्रणाम है ॥ १३ ॥ काल व दयासे भीगेहुये तथा नेत्रोंसे पीनेयोग्य अमृतरूपी चरणवाले के लिये प्रणाम है
तथा भक्तवत्सलता से पूर्ण व पुण्यरूप और त्रिपुरभेदक के लिये नमस्कार है ॥ १४ ॥ हे देवेशजी ! पृथ्वीमें समस्त धर्मों के फलको देनेवाला तुम्हारा दर्शन
बलवान् को मिलाहै कहीं अन्य कार्यके लिये तप नहीं है ॥ १५ ॥ आपसे यह कर्म भूमि पातकोंको नाशनेवाली वर्तमान है यहां पर देवता तुम्हारे आश्रयमें अपने
निवासों की प्रार्थना करते हैं ॥ १६ ॥ मैंने इस समय कालके संग्रहसे उपजाहुआ फल पायाहै व अन्य कियाहुआ समस्त तप मुझको तुम्हारे दर्शन के फलवाला

हुआ ॥ १७ ॥ हे देवेश ! अत्यन्त अद्भुत ऐश्वर्यवाला ऐसा मुख्य अरुणाचलमय लिंग पृथ्वी मे कहीं नही देखागयाहै ॥ १८ ॥ हे देवेश ! सूर्य, चन्द्रमा व अग्नि से संयुत तथा तीनकोनोंसे सुन्दर तुम्हारी तीन मूर्त्तियोंवाला बड़ाभारी शरीर देखपड़ताहै ॥ १९ ॥ तीन शक्तियों के स्वरूप से तीनों लोकोंको विधान करनेवाला व त्रिवेदात्मक तथा त्रिकोण अङ्गोंवाला तुम्हारा अद्भुत लिंग देखागया ॥ २० ॥ पृथ्वीके भागमें त्रिलोक की रक्षाके लिये आपही विस्तृत होकर स्थित अरुणाचल ऐसा प्रसिद्ध है ॥ २१ ॥ छलरहित दयानिधान तुम अज्ञानी मनुष्यों को दर्शनही से समस्त सुखोंको देतेहो ॥ २२ ॥ पूजन से रहित अन्य लिंग शून्य कहागया है

वि ॥ १८ ॥ सूर्येन्द्वग्निसुसंयुक्तं कोणत्रयमनोहरम् ॥ त्रिमूर्तिरूपंदेवेश दृश्यतेतेवपुर्महत् ॥ १९ ॥ शक्तित्रयस्वरूपे ण कालत्रयविधानकम् ॥ त्रिवेदात्मत्रिकोणाङ्गं लिङ्गन्तेदृष्टमुत्तमम् ॥ २० ॥ त्रैलोक्यरक्षणार्थाय विततस्स्वयमास्थि तः ॥ दृश्यतेवसुधाभागे शोणाद्रिरितिविश्रुतः ॥ २१ ॥ अजानताञ्च मर्त्यानांसमालोकनमात्रतः ॥ वितरस्याखिलान्भो गानव्याजकरुणानिधिः ॥ २२ ॥ अर्चयारहितंलिङ्गमन्यंशल्यमुदाहृतम् ॥ इदन्तुपूजितंदेवैःसदासर्ववरप्रदम् ॥ २३ ॥ प्रसीदकरुणापूर्ण शोणाचलमहेश्वर ॥ त्रायस्वभवभीतंमांप्रपन्नम्भक्तवत्सल ॥ २४ ॥ दृष्टव्यंदृष्टमेतत्ते रूपमत्यद्भुतं महत् ॥ कृतार्थायकृपासिन्धो शरण्यशरणागतैः ॥ २५ ॥ इतिसंस्तूयमानोमेदेवःशोणाचलेश्वरः ॥ अदर्शयत्परंरूपंदि व्यमेहीत्युवाचमाम् ॥ २६ ॥ प्रीतोस्मिभवतःस्तोत्रैर्भक्त्याचपरयाभृशम् ॥ अत्रैवभवतोवासोनित्यमस्तुममान्तिके ॥ २७ ॥ सम्पूज्यचैवमांनित्यं भुविभोगैःसनातनैः ॥ तपसात्वञ्चसर्वेषांमहत्त्वमिहदर्शय ॥ २८ ॥ पूर्वंकैलासशिखरेवसन्तं त्वांत

और सदैव देवताओं से पूजन कियाहुआ यह लिंग सब वरदानों को देनेवाला है ॥ २३ ॥ हे दयापूर्ण, अरुणाचल, महादेवजी ! प्रसन्नहोओ हे भक्तप्रिय ! संसार से डरेहुये मुझ शरणागत की रक्षा कीजिये ॥ २४ ॥ हे शरण्य, दयासिन्धो ! यह तुम्हारा बड़ाभारी अद्भुत स्वरूप कृतार्थ होनेके लिये शरणागतों से देखनेयोग्य है जिसको मैंने देखाहै ॥ २५ ॥ इस प्रकार मुझसे स्तुति कियेहुये अरुणाचलेश्वरदेवजीने उत्तम दिव्यरूप को दिखाया और यह कहा कि यहां आइये ॥ २६ ॥ बड़ी भक्तिसे तुम्हारे स्तोत्रोंसे मैं बहुत प्रसन्नहूं आपका निवास यहीपर मेरे समीप सदैवहोवै ॥ २७ ॥ और मुझको नित्य पूजकर पृथ्वीमें तुम सनातन सुखोंसे युक्तहोग

और तपस्या से तुम यहां सबोंको महत्त्व दिखलाइये ॥ २८ ॥ पुरातन समय कैलासपर्वत के शिखर पै बसतेहुये तपसे संयुत तुमको मैंने यह आज्ञा दियाहै कि पृथ्वी
के भागमें अरुणाचल पै मुझको पूजिये ॥ २९ ॥ आकाशमें सप्तर्षियों से पूजीहुई मेरी पूजा प्रकाशित है वैसेही नित्य योग्य पूजन पृथ्वीतल में शोभित होवै ॥ ३० ॥
हे तपस्या में अधिक गौतमजी ! तुम सबही प्राणियों के कल्याण के लिये पृथ्वीमें शास्त्रोक्त पूजनों से आदरपूर्वक पूजन करो ॥ ३१ ॥ मेरी दिव्यपूजा आकाशमें दे-
खनेयोग्य है और तुमको पृथ्वीमें भी पूजन का प्रकाश करना चाहिये ॥ ३२ ॥ मैं ने माहात्म्य को पहलेही कहाहै कि जिस प्रकार मैं अरुणाचल पृथ्वीभागमें स्थित

**पोन्वितम् ॥ आदिशंपृथवीभागे शोणाद्रौपूजयेतिमाम् ॥ २९ ॥ सप्तर्षिपूजितापूजा दिविमेसंप्रकाशते ॥ तथानि
त्यार्चनायुक्ता शोभतेवसुधातले ॥ ३० ॥ सर्वेषामेवजन्तूनां हितायत्वंतपोधिक ॥ भुविमांपूजयार्चाभिरागमोक्ताभि
रादरात ॥ ३१ ॥ दिव्याममममहापूजा दृश्याहिदिविदैवतैः ॥ प्रकाशनीयाभवता पूजापिवसुधातले ॥ ३२ ॥ माहात्म्यं
पूर्वमेवोक्तं यथाहमरुणाचलः ॥ स्थितोवसुन्धराभागेमयाप्रीतन्तुतेभृशम् ॥ ३३ ॥ येवासंपूजयन्तिस्म पूर्वमांसुकृताधि
काः ॥ तेभ्यस्त्वमधिकोभूमौ प्रकाशस्वाशिवार्चनम् ॥ ३४ ॥ इत्यादिशन्तंदेवेशं प्रणम्यभावभक्तितः ॥ व्यज्ञापयं
दयापूर्णमरुणाद्रीशमानमन् ॥ ३५ ॥ अनासाद्यमिमंरूपमग्निरूपंमहेश्वर ॥ कथमभ्यर्चयाम्येतं मर्त्यलोकोचि
तार्चनैः ॥ ३६ ॥ आदेशमिदमन्वर्थं कथंवाकल्पयाम्यहम् ॥ उपायमादिशश्रीमानभिगम्योयथाभवः ॥ ३७ ॥ इति
विज्ञापितोदेवः श्रीमाञ्छोणाचलेश्वरः ॥ अन्वगृह्णादशेषात्माप्रणतंमान्दयानिधिः ॥ ३८ ॥ अहन्तुसूक्ष्मलिङ्गानि प्र**

हूं और तुमसे मैं बहुतही प्रसन्नहूं ॥ ३३ ॥ और अधिक पुण्यवाले जिन मनुष्यों ने मुझको पूजाहै उनसे अधिक तुम पृथ्वीमें शिवपूजन को प्रकाश करो ॥ ३४ ॥
यह आज्ञा करते हुये दयासे पूर्ण अरुणाचलेश देवेशजी को भक्तिभाव से प्रणाम कर बहुत झुकतेहुये मैंने विनय किया ॥ ३५ ॥ कि हे महेश्वरजी ! यह अग्निरूपी
तुम्हारा स्वरूप समीप नहीं जानेयोग्यहै इसलिये मनुष्य लोकमें योग्य पूजनों से इसको मैं किस प्रकार पूजूं ॥ ३६ ॥ व इस आज्ञाको मैं किसप्रकारसार्थक करूं आप
यत्नको बतलाइये कि जिस प्रकार शोभा सहित आप सम्मुख जाने योग्य होवो ॥ ३७ ॥ इस प्रकार विनय कियेहुये सर्वव्यापक दयानिधान श्रीमान् अरुणेश्वर

जीने प्रणाम कियेहुये मेरे ऊपर दयाकिया ॥ ३८ ॥ व कहा कि मै पृथ्वीतल में सूक्ष्मलिंगोंको प्रकाश करूंगा उनको शास्त्रोक्त क्रियाओंके भेदो से प्रतिदिन पूजन करिये ॥ ३९ ॥ पाच आवरणों से संयुत व अद्भुत अरुणाद्रीश नामक मेरे सूक्ष्म लिंगको तपोबल से पूजिये ॥ ४० ॥ यह आज्ञा देकर महादेवजी ने सूक्ष्म लिंगात्मा से आपही से उपजेहुये निर्मल शिवरूप को मुझे दिखलाया ॥ ४१ ॥ और आपही उपजेहुये उस निर्मल व सम्पूर्ण आवरणों से संयुत सूक्ष्म लिंगको देखकर मै हृदय में कृतार्थ होगया ॥ ४२ ॥ और फिर वेदोक्त प्रकार से भी न देखनेयोग्य प्राप्तहुये उन प्यारे सदाशिवदेवजी के आश्रित होकर विनय किया ॥ ४३ ॥ कि हे दयामूर्त्ते,

काशिष्येमहीतले ॥ आगमोक्तक्रियाभेदैः पूजयप्रतिवासरम् ॥ ३९ ॥ पञ्चावरणसंयुक्तं लिङ्गंमेसूक्ष्ममद्भुतम् ॥ अरुणाद्रीश्वराभिख्यं सम्पूजयतपोबलैः ॥ ४० ॥ इत्यादिश्यमहादेवः स्वयंभुविमलंमहत् ॥ रूपंमेदर्शयामास सूक्ष्मलिङ्गात्मनाशिवम् ॥ ४१ ॥ आलोक्यविमलंलिङ्गं सूक्ष्मन्तत्स्वयमुत्थितम् ॥ अशेषावरणोपेतं कृतार्थहृदयोभवम् ॥ ४२ ॥ पुनर्विज्ञापयंदेवं शम्भुमाश्रित्यवत्सलम् ॥ आगमोक्तप्रकारेणाप्यनिरीक्ष्यन्तमागतम् ॥ ४३ ॥ कथंनुतवरूपाणां नानाभेदान्क्रियोचितान् ॥ जानीयात्करुणामूर्ते स्वयमीश्वरमत्प्रभो ॥ ४४ ॥ पूजकास्तवकेवास्युर्मन्दिरंवात्रकीदृशम् ॥ अथस्तोत्रंकथंपूजा कोवात्रपरिचारकः ॥ ४५ ॥ स्थानरक्षाकथंवास्यात्केवानित्यंचरक्षकाः ॥ कथंवामानुषीपूजा नित्यासंवर्द्धतेतव ॥ ४६ ॥ आगताबहवोदेवा अर्चयेन्मनुजःकथम् ॥ प्रसीदपरमीशान स्वयंमेज्ञापयाखिलम् ॥ ४७ ॥ एवंविज्ञापितोदेवः शोणाद्रीशःस्वयंप्रभुः ॥ आज्ञापयत्तदादेवः विश्वकर्माणमानतम् ॥ ४८ ॥ सृज

मत्प्रभो, सदाशिवजी ! तुम्हारे रूपोंके कर्मयोग्य अनेकों प्रकार के भेदोंको मनुष्य आपही कैसे जानै ॥ ४४ ॥ और तुम्हारे पूजन करनेवाले कौन है व यहांपर कैसा मन्दिरहै और स्तोत्र व पूजन किसप्रकार होताहै और यहांपर कौन सेवकहै ॥४५॥ व किसप्रकार स्थानकी रक्षाहोवैहै और नित्य कौन रक्षकहैं और किसप्रकार तुम्हारी मनुष्योंवाली नित्य पूजा भलीभांति बढ़ती है ॥ ४६॥ और बहुत देवता आयेहैं तो मनुष्य किस प्रकार पूजन करै हे परमेश्वरजी ! प्रसन्न होवो और मुझको आपही सब बतलाइये ॥ ४७ ॥ इस प्रकार विज्ञापित आपही अरुणाचलदेवस्वामी ने उस समय झुकेहुये विश्वकर्मा को आज्ञा दिया ॥ ४८ ॥ कि तुम अधिक गुणोंवा-

ले अरुणनामक दिव्य नगरको रचिये व महामणिगणोंसे उज्ज्वल मेरे उत्तम मन्दिरको बनाइये ॥ ४६ ॥ दयामूर्त्तिवाले श्रीमान् अरुणाचल सदाशिवजीने मुझसे
नाम भेदोंके पूजन क्रमकोकहा ॥ ५० ॥ कि मुझसे उसको सुनिये कि जो यहांपरमेरा पूजक व पूजनके लिये सेवकहै ॥ ५१ ॥ हे गौतमजी ! मुझ से समस्त मनु-
ष्यवाले पूजन के क्रमको सुनिये जो यह कि पृथ्वीमें सब मनुष्यों के कल्याण के लिये प्रसिद्धहै ॥ ५२ ॥ सब ऐश्वर्यों से संयुत यह अरुणाचलेश्वर नामक मेरा बडा
भारी अमितलिंग सदैव तुमसे पूजाजावै ॥ ५३ ॥ और मेरे उत्तरभागमें अपीत कुचा नामक नित्य ऐश्वर्यवाली शक्ति सदा पूजनेयोग्य है जोकि स्थान के माहात्म्यको

त्वंनगरंदिव्यमरुणाख्यंगुणाधिकम् ॥ मन्दिरंममदिव्यञ्च महामणिगणोज्ज्वलम् ॥ ४९ ॥ आबभाषेशिवःश्रीमान्
नामभेदार्चनक्रमम् ॥ महाञ्चकरुणामूर्त्तिररुणाद्रीश्वरःशिवः ॥ ५० ॥ शृणुतन्मेत्रयष्टायः पूजार्थंपरिचारिकः ॥ ५१ ॥
शृणुगौतमसर्वेमे मानुषंपूजनक्रमम् ॥ यएवसर्वलोकानां क्षेमायप्रथतेभुवि ॥ ५२ ॥ इदंमल्लिङ्गमतुलं सर्वैश्वर्ययुतंम
हत् ॥ अरुणाद्रीश्वराभिख्यं पूज्यतांसततंत्वया ॥ ५३ ॥ शक्तिर्ममोत्तरेभागे पूज्यानित्योदयासदा ॥ दधातिस्थान
माहात्म्यमपीतकुचनामिका ॥ ५४ ॥ अरुणाचलराज्ञोय मग्रभागःप्रियान्वितः ॥ उत्सवार्थेमहाघोरःपूज्योभोगशता
वृतः ॥ ५५ ॥ बुधस्यभक्तलोकस्य सर्वदाताभयःशिवः ॥ शारङ्गंपरशुंबिभ्रत् प्रसन्नवदनःसदा ॥ ५६ ॥ उमास्कन्देश्व
रः शम्भुर्दिव्यरत्नविभूषणः ॥ व्याप्यैवंसकलाँल्लोकानविकुण्ठश्रियान्वितः ॥ ५७ ॥ शक्तेरुत्सवप्रारम्भे सम्पू
ज्यासुन्दरेश्वरी ॥ सर्वभूषणसंयुक्ता शृङ्गाररसवर्द्धिनी ॥ ५८ ॥ बालोगणपतिःपूज्यः पुरस्ताद्भूतिनन्दनः ॥ सदन्ति

धारण कियेहै ॥ ५४ ॥ और अरुणाचलराजका यह प्रिया समेत महाघोर उत्सवके लिये पूजनीय अग्रभागहै जोकि सैकड़ों भोगों (सुखों) से घिराहै ॥ ५५ ॥ धनुष व
परशुको धारेहुये व सदैव प्रसन्न मुखवाले अभय सदाशिवजी बुध भक्तजनको सब कुछ देतेहैं ॥ ५६ ॥ पार्वती, स्कन्देश्वर व दिव्यरत्नों से भूषित तथा उत्तम लक्ष्मीसे
संयुत श्रीसदाशिवजी सब लोकोंमें व्याप्त होकर स्थितहैं ॥ ५७ ॥ और शक्तिके उत्सव के प्रारम्भ में शृङ्गाररस को बढ़ानेवाली तथा समस्त भूषणोंसे संयुत सुन्द-

रेश्वरी भलीभांति पूजनेयोग्य है ॥ ५८ ॥ और आगे मेरे समीप वहुत ऐश्वर्योंवाले भक्ष्यों व भोजनोंसे भूषित करतेहुये भूतिनन्दन नामक बालगणपति पूजनेयोग्य हैं ॥ ५९ ॥ और मेरे समीपको न छोड़तीहुई तथा अरुणरेखासे पूजित नेत्रोंवाली समीपही में स्थित उत्सव अर्थवाली उत्तमशक्ति पूजीजावै ॥ ६० ॥ और उछाह के लिये नृत्यमें चतुर अन्य श्रीमान् मुखराङ्घ्रि पतिको पूजकर मनुष्य उत्तमगतिको प्राप्तहोताहै ॥ ६१ ॥ और अन्य महाभाग्यवती भुविनायका नामक शक्ति पूजनेयोग्य है और सूर्यके समीप महाकाल के आगे द्वारपै नन्दी पूजनेयोग्य हैं ॥ ६२ ॥ और मेरे सब भक्तोंका पूजन अपना से कल्पित कियाजाता है कि दक्षिणमें विघ्न-

कमलंकुर्वन् भक्ष्यैर्भोज्यैर्बहुदयैः ॥ ५९ ॥ मत्पार्श्वमविमुञ्चन्ती शोणरेखाञ्चितेक्षणा ॥ उत्सवार्थापराशक्तिरन्ति कस्थैवपूज्यताम् ॥ ६० ॥ मुखराङ्घ्रिपतिःश्रीमानन्यस्ताण्डवपण्डितः ॥ उत्सवार्थसमभ्यर्च्य उत्तमाङ्गतिमाप्नुयात् ॥ ६१ ॥ शक्तिश्चान्यामहाभागा सम्पूज्याभुविनायका ॥ द्वारेनन्दीमहाकालः पुरस्तात्सूर्यसन्निधौ ॥ ६२ ॥ भक्तानांममसर्वेषां पूजनंचात्मकल्पितम् ॥ दक्षिणेमातरःपूज्या विघ्नशास्तृसमन्विताः ॥ ६३ ॥ सम्पूज्योनैर्ऋतेकोणे विघ्नशास्ताविनायकः ॥ स्कन्दःशक्तिधरःश्रीमान्पश्चिमेभुवनेश्वरः ॥ ६४ ॥ कृष्णसंज्ञानिलिङ्गानि ज्येष्ठावायुदिशिस्थिता ॥ दुर्गाचोत्तरभागस्था भक्ताश्चान्येतपोधिकाः ॥ ६५ ॥ लिङ्गानिचमनोज्ञानि पूजनीयान्यनन्तरम् ॥ मन्दिरंममसम्पूज्यं दक्षिणामूर्त्तिदक्षिणे ॥ ६६ ॥ पश्चिमेविष्णुरूपाङ्कमग्निरूपान्वितन्तथा ॥ उत्तरेब्रह्मरूपाङ्कं पूर्वे

शास्ता से संयुत मातृगणों को पूजना चाहिये ॥ ६३ ॥ व नैर्ऋत्यकोणमें विघ्नशास्ता नामक गणेशको पूजना चाहिये व पश्चिम में शक्तिधारक श्रीमान् जगदीश स्वामिकार्त्तिकेयजी को पूजना चाहिये ॥ ६४ ॥ व कृष्णसंज्ञक लिंगोंको पूजना चाहिये तथा वायव्य दिशामें स्थित ज्येष्ठाशक्ति पूजनेयोग्य है और उत्तरभाग में टिकीहुई दुर्गाजी व अधिक तपस्यावाले अन्य भक्त पूजनेयोग्य हैं ॥ ६५ ॥ इसके अनन्तर मनोहर लिंगोंको पूजना चाहिये व दक्षिणा मूर्त्तिके दक्षिणओर मेरा मन्दिर पूजनेयोग्य है ॥ ६६ ॥ पश्चिम में अग्निरूप से संयुत तथा विष्णुरूप से चिह्नित लिंगको पूजना चाहिये व उत्तर में ब्रह्मरूप से चिह्नित व फिर पूर्वमें शारंग

(धनुष) धारीको पूजना चाहिये ॥ ६७ ॥ और समस्त देवताओंकेगुणोंसे संयुत व समस्त शक्तियों समेत लिंगको पूजना चाहिये व समस्त शक्तियों से संयुत अर्पीत
कुचनामक को पूजना चाहिये ॥ ६८ ॥ और दिक्पालकों की स्त्रियोंसे घिरेहुये मन्दिरको पूजकर व मन्दिर के पूजन के लिये वैभवनायिका नामक देवीको पूजना
चाहिये ॥ ६९ ॥ और सब आवरणों समेत क्षेत्रपालको पूजकर इनके आगे रक्षाके लिये आतीहुई अरुणाचलेश्वरी पूजनेयोग्य है ॥ ७० ॥ व काली तथाअन्य बहुत
भांतिकी विधिपालिका देवताओं को पूजना चाहिये और कालीके बड़े ऐश्वर्यवाले बहुत उछाहों को प्रत्येक महीने में करना चाहिये ॥ ७१ ॥ और सदाशिवजी

**शारङ्गभृत्पुनः ॥६७॥ सर्वदेवगुणोपेतं सर्वशक्तिसमन्वितम् ॥ अर्पीतकुचनाथञ्च सर्वशक्तिसमन्वितम् ॥ ६८ ॥ मन्दिर
ञ्चैवसम्पूज्य दिक्पालकवधूवृतम् ॥ मन्दिरस्यार्चनार्थाय देवींवैभवनायिका ॥ ६९ ॥ क्षेत्रपालन्तुसम्पूज्य सर्वावरण
संयुतम् ॥ पुरोस्यत्रातुमायान्ती पूज्यारुणगिरीश्वरी ॥ ७० ॥ कालीबहुविधाश्चान्या देवताविधिपालिकाः ॥ उत्सवा
विविधाःकाल्याः प्रतिमासंमहोदयाः ॥ ७१ ॥ सृजस्वकन्यकादिव्याः शिवदेवार्हसेविकाः ॥ नृत्यगीतकलाभिज्ञा रूप
सौभाग्यसंयुताः ॥ ७२ ॥ चारुविभ्रमसंयुक्ताः कामदानित्ययौवनाः ॥ शिष्यानादिशवेदज्ञान् सदाचारसमुज्ज्वला
न् ॥ ७३ ॥ दिव्योपचारसंसिध्यै सुभगाञ्छुद्धचेतसः ॥ दीक्षितान्विमलान्तांश्च शैवागमविशारदान् ॥ ७४ ॥ शैवा
चारप्रसिद्ध्यर्थमादिशाभ्यर्चनायमे ॥ मार्दलाञ्छाङ्खिकान्वीणान् तालिकान्वेणुवादिकान् ॥ ७५ ॥ शैवकान्सृजस**

के योग्य सेवा करनेवाली दिव्यकन्याओं को रचिये जोकि नृत्य व गीतकी कलाओंको जाननेवाली तथा रूप व सौभाग्य से संयुत होवैं ॥ ७२ ॥ व सुन्दर विभ्र-
म (हाव,भाव) से संयुत तथा कामदायिनी व नित्य यौवनवाली होवैं और उत्तम आचार से उज्ज्वल तथा वेदके जाननेवाले शिष्योंको आज्ञादीजिये ॥ ७३ ॥ जो
कि दिव्यपूजन के लिये शुद्धचित्त से सुन्दर व दीक्षित (दीक्षाको लिये) तथा निर्मल अन्तःकरणवाले व शैवशास्त्र में चतुर होवैं ॥ ७४ ॥ और शैवाचार की प्रसि-
द्धिके लिये मेरे पूजन के निमित्त मर्दल (मृदंग के सदृश बाजा भेद) के बजाने वाले तथा वीणा बजानेवाले व ताली बजानेवाले और वेणुवादकों को आज्ञा दी-

जिये ॥ ७५ ॥ और उत्तम विद्यावाले व चारों बाजाओंमें चतुर शिवभक्तों को आज्ञादीजिये व अनेक भांतिके क्षत्रिय, वैश्य व शिवजीके सम्मतवाले शूद्रोंको आज्ञा दीजिये ॥७६॥ और हे मुनिनाथ ! चारों दिशाओंके तीर्थोंमें बसनेवाले व आशारहित शिवभक्त मुनियोंके लिये चार मठ बनाना चाहिये ॥ ७७ ॥ क्योंकि उनमें स्थित होकर ये सब शिवपूजाकी रक्षा करैंगे और फिर याचना करतेहुये शैव व पाशुपत भक्तभी ॥ ७८ ॥ व अन्य पूजक तथा पालन करनेवाले भी सब पैदा होतेहुये व उत्पन्न हुये तथा पैदा होनेवाले जनोंका सदैव पालन करैंगे ॥ ७९ ॥ और अनष्ट आज्ञावाला मै अरुणाचल के इस स्थानकी रक्षा करता हूँ और बड़ाभारी मौल-

द्विद्यांश्चतुर्वाद्यविशारदान् ॥ क्षत्रियान्विविधान्वैश्याञ्च्छूद्रांश्चशिवसम्मतान् ॥ ७६ ॥ चत्वारश्चमठाःकल्प्याः चतुर्दिक्तीर्थवासिनाम् ॥ मुनीनांशिवभक्तानां निराशानांमुनीश्वर ॥ ७७ ॥ तेषुस्थिताइमेसर्वे रक्षन्तुशिवपूजनम् ॥ भिक्षमाणाःपुनःशैवा भक्ताःपाशुपताअपि ॥ ७८ ॥ पालयन्तुसदान्येच यष्टारोपालिकाह्यपि ॥ सर्वेषाजायमानानां जातानांसम्भविष्यताम् ॥ ७९ ॥ अव्याहताज्ञोरक्षामिस्थानमेतन्महीभृतः ॥ बकुलश्चमहानत्र दृश्यतेदिव्यसूरु हः ॥ ८० ॥ अत्रभक्तावितन्वन्तु शिवकार्येविनिश्चयम् ॥ अत्रमेदीयतेद्रव्यमपेक्षितवराप्तये ॥ ८१ ॥ यस्त्वसावक्षय फलआरक्ष्यःशिवसेवकैः ॥ भक्तैर्विज्ञापितंचार्थं श्रोष्यामिपुरतस्थितैः ॥ ८२ ॥ सर्वंसम्पादयिष्यामितेषांचित्तानुकूलक म् ॥ अपराधसहस्राणि क्षमिष्येस्वर्चतामहम् ॥ ८३ ॥ आगमोक्तेषुमार्गेषु मानुषैर्निर्मितन्तपः ॥ गृह्णामिचापिसततं स र्वसत्रात्मकंयथा ॥ ८४ ॥ सङ्कल्पितम्भवेत्कर्म प्रीतिकृन्ममसेवकैः ॥ आगमार्थानशेषांस्त्वमालोक्यसमयोचि

सिरीका उत्तम वृक्ष यहां देख पडताहै ॥ ८० ॥ यहापर भक्तलोग शिवजीके कार्य में विशेषकर निश्चयको विस्तार करैंगे यहांपर चाहेहुये वरको मिलनेकेलिये मुझ को द्रव्यदीजातीहै ॥ ८१ ॥ और अक्षयफलवाला जो यह वृक्षहै वह शिवजीके सेवकों से सब ओर रक्षा करनेयोग्य है और इसके आगे स्थितभक्तों से कहेहुये प्रयो जनको मै सुनूंगा ॥ ८२ ॥ और उनके चित्तके अनुकूल सब वस्तुको मैं सिद्धकरूंगा व भलीभांति पूजतेहुये लोगोंके हज़ारो अपराधों को मैं क्षमा करूगा ॥ ८३ ॥ व शास्त्रोक्त मार्गोंमे यहापर मनुष्योंसे कीहुई तपस्याको मैं सदैव समस्त यज्ञात्मककी नाईं ग्रहणकरताहूं ॥८४॥ मेरे सेवकोंसे प्रीतिकारक सकल्पित कर्म यहांपरहोवैंहै तुम

समय में योग्य समस्त शाखाओं को [illegible] ॥ ८५ ॥ व [illegible] अगणित पूजन के विधानों को देखकर यव, तिल, लाजा व [illegible]
से ॥ ८६ ॥ तथा शब्द, घी, वसन, भोजन, [illegible] आषाढ़ पर्यन्त प्रत्येक महीने में बड़े ऐश्वर्यवाले उत्सव को करो ॥ ८७ ॥ और
पौर्णमासीवाली बड़ीभारी पूजा आदर सहित [illegible] यज्ञोंको करना चाहिये ॥ ८८ ॥ व इस शक्तिके समीप [illegible]
के दानों को करनाचाहिये और मेरेसमीप निरन्तर दीपादिक [illegible] ॥ ८९ ॥ [illegible] तेजोमयरूप को निस्सन्देह प्राप्तहोते हैं और जो राजा लोग [illegible]

तान् ॥ ८५ ॥ विधानानर्चनाभेदाँल्लोकरक्षापरायणः ॥ व्रीहिभिश्चतिलैर्लाजैर्भक्त्यादीपैस्तथाघृतैः ॥ ८६ ॥ सद्वा
ज्यवस्त्रश्रीगन्धदेवतान्नफलोच्चयैः ॥ ज्येष्ठाद्याषाढपर्यन्तं प्रतिमासंमहोदयम् ॥ ८७ ॥ कर्त्तव्यामहतीपूजा पौर्णमा
सीतुसादरम् ॥ सत्राणिविविधान्यत्र कर्त्तव्यानिसहस्रशः ॥ ८८ ॥ विविधानिचदानानि शक्तेरस्याश्चसन्निधौ ॥ अनि
च्छिन्नप्रदीपाद्यं दातारोममसन्निधौ ॥ ८९ ॥ तेजोमयमिदंरूपं मामयान्तिनसंशयः ॥ जलजन्तरुजंपुण्यं ददतेयेमही
भुजः ॥ ९० ॥ तेषांपुरोगतःसाक्षादहंजेष्यामिविद्विषः ॥ यस्ययस्ययत्तद्देशस्य योयोराजातपोधिकः ॥ ९१ ॥ तत्तत्स
मीहितंरम्यं सम्भवन्तुप्रदास्यति ॥ मत्संनिधिमुपागत्य दुरात्मानोपिभूमिपाः ॥ ९२ ॥ शिवभक्ताभृशंपूर्णा भविष्य
न्तिनसंशयः ॥ ९३ ॥ इतिशम्भुमुखोत्थितंवचः समुपश्रुत्यविधूतकल्मषः ॥ अहमानतवानुव्यजिज्ञपं कुतुकाच्छोण
गिरीश्वरंशिवम् ॥ ९४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽरुणाचलमाहात्म्येऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ * * ॥

से उत्पन्न तथा वृक्षों में उपजे हुये पुष्प को देतेहैं ॥ ९० ॥ उनके आगे प्राप्तहोकर साक्षात् मैं शत्रुवों को जीतूंगा और जिस जिस देशका अधिक तपस्यावाला जो
जो राजा ॥ ९१ ॥ उस उस देशमें उपजीहुई उत्तम बढ़ीहुई वस्तु को देवैगा उसके मनोरथोंको मैं दूँगा और मेरे समीप आकर दुष्टात्माभी शिवभक्त राजालोग बहुत
ही पूर्णहोवैंगे इसमें सन्देह नहीं है ॥ ९२।९३ ॥ इस प्रकार सदाशिवजीके मुखसे कहेहुये वचन को सुनकर पातकों से रहित मैंने प्रणाम किया व कौतुक से अरुणा-
चलेश्वर शिवजीसे निवेदन किया ॥ ९४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽरुणाचलखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायामष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ ॥ * ॥

दो० । गौतम मुनिसों कह्यो है शंभु आपने नाम । सोइ नवम अध्यायमें अहै चरित सुखधाम ॥ गौतम जी बोले कि हे भगवन्, अरुणाचलेश्वरजी ! इस देव-पूजित स्थानमें तुम्हारे नामोंको मैं बहुत विशेषता से सुना चाहताहूं ॥ १ ॥ महादेवजी बोले कि हे द्विजोत्तम, ब्रह्मन् ! पृथ्वीमें सदैव कामनाओं को देनेवाले तथा थोडी पुण्यवाले जनोंको दुर्लभ मेरे मुख्य नामोंको सुनिये ॥ २॥ कि शोणाद्रीश,अरुणाद्रीश,देवाधीश, नतप्रिय, शरणागतरक्षक,धीर, शिव,सेवकवर्धक ॥ ३ ॥ नेत्रो से पीनेयोग्य अमृतरूप ईशान तथा स्त्री व पुरुषके भावको देनेवाले,भक्तकी बिनतीसे उत्पन्न व दीनजनके कारागृहको छुड़ानेवाले ॥ ४ ॥ व सुखराङ्घ्रिपति,श्रीमान्, मृड,

गौतमउवाच ॥ भगवन्नरुणाद्रीश नामधेयानितेभृशम् ॥ विशेषाच्छ्रोतुमिच्छामि स्थानेस्मिन्सुरपूजिते ॥ १ ॥ शिवउवाच ॥ नामानिशृणुमेब्रह्मन् मुख्यानिद्विजसत्तम ॥ दुर्लभान्यल्पपुण्यानां कामदानिसदाभुवि ॥ २ ॥ शोणाद्रीशोरुणाद्रीशो देवाधीशोनतप्रियः ॥ प्रपन्नरक्षकोधीरः शिवःसेवकवर्धकः ॥ ३ ॥ अक्षिपेयामृतेशानः स्त्रीपुम्भावप्रदायकः ॥ भक्तविज्ञप्तिसंजातो दीनवन्दिविमोचकः ॥ ४ ॥ मुखराङ्घ्रिपतिःश्रीमान् मृडोमृगमदेश्वरः ॥ भक्तप्रेक्षणकृत्साक्षी भक्तदोषनिवर्तकः ॥ ५ ॥ सङ्गीतवेत्तानृत्यज्ञस्त्रिवेदीवृद्धवैदिकः ॥त्यागराजःकृपासिन्धुः सुगन्धीशःखगेश्वरः ॥ ६ ॥ कान्तिवीर्येश्वरःशान्तः कपालीकपिलप्रभुः ॥ ज्ञानसम्बन्धनाथश्च श्रीहालाहलसुन्दरः ॥ ७ ॥ आहूयैश्वर्यदाताच स्मृतेसर्वाघनाशनः ॥ व्यत्यस्तनृत्यध्वजधृक्संकान्तिर्नटनेश्वरः ॥ ८ ॥ सामप्रियःकलिध्वंसी वेदमूर्तिर्निरञ्जनः ॥ जगन्नाथोमहादेवस्त्रिनेत्रस्त्रिपुरान्तकः ॥ ९ ॥ भक्तापराधसोढाच योगीशोभोगनायकः ॥ कालमूर्त्तिःक्ष

मृगमदेश्वर, भक्तनिरीक्षणकारी,साक्षी, भक्तदोषनिवर्तक ॥ ५ ॥ व संगीतको जाननेवाले तथा नृत्यज्ञाता, त्रिवेदी, वृद्धवैदिक,त्यागराज, दयासिंधु,सुगंधीश, खगेश्वर ॥ ६ ॥ कान्तिवीर्येश्वर, शान्त, कपाली, कपिलप्रभु, ज्ञानसंबन्ध के स्वामी, श्रीहालाहलसुन्दर ॥ ७ ॥ व बुलाकर ऐश्वर्यदायक तथा स्मरण करने पर समस्त पातकों के विनाशक व विपरीत नृत्यके ध्वजाधारी,संक्रान्ति, नटनेश्वर ॥ ८ ॥ और सामप्रिय, कलिध्वंसी,वेदमूर्ति,निरंजन,जगदीश,महादेव, त्रिनेत्र व त्रिपुरविनाशक ॥ ९॥

व भक्तके अपराध को सहनेवाले, योगीश, भोगनायक, कालमूर्ति, क्षमारूप, धर्मरक्षक, वृषध्वज ॥ १० ॥ और हर, ईश्वर, भीम, चन्द्ररेखावतंसक, कामांतक,
अन्तकशत्रु, सिद्धराज. दिगम्बर ॥ ११ ॥ व शास्त्रप्रिय, ईशान, भस्मरुद्राक्षचिह्नित, श्रीपति, शंकर, विधाता, सर्वविद्येश्वर, पापरहित ॥ १२ ॥ गंगाधर, क्रतुध्वंसी,
निर्मल, नागभूषण, अरूप, बहुरूप, विरूपाक्ष, अक्षराकृति ॥ १३ ॥ अनादि, अन्तरहित, शिवकाम, स्वयंप्रभु, सच्चिदानंदरूप, सर्वात्मा, जीवधारक ॥ १४ ॥ व
स्त्री के संगसे वामाङ्गसुन्दरवाले, चन्द्रमाके समानरूप से सुन्दर, ज्ञानदायक, मुक्तिदायक, भक्तमनोरथदायक ॥ १५ ॥ आश्चर्यरूप ऐश्वर्यवाले, कामी, दोषरहित,

मारूपो धर्मरक्षोवृषध्वजः ॥ १० ॥ हरोपिचेश्वरोभीमश्चन्द्ररेखावतंसकः ॥ स्मरान्तकोन्तकरिपुः सिद्धराजोदिगम्ब
रः ॥ ११ ॥ आगमप्रियईशानो भस्मरुद्राक्षलाञ्छनः ॥ श्रीपतिःशङ्करःस्रष्टा सर्वविद्येश्वरोनघः ॥ १२ ॥ गङ्गाधरः
क्रतुध्वंसी विमलोनागभूषणः ॥ अरूपोबहुरूपश्च विरूपाक्षोक्षराकृतिः ॥ १३ ॥ अनादिरन्तरहितः शिवकामःस्वयं
प्रभुः ॥ सच्चिदानन्दरूपश्च सर्वात्माजीवधारकः ॥ १४ ॥ स्त्रीसङ्गवामसुभगो विधुवद्रूपसुन्दरः ॥ ज्ञानप्रदोमुक्तिदश्च भ
क्तवाञ्छितदायकः ॥ १५ ॥ आश्चर्यवैभवःकामी निरवद्योनिधिप्रदः ॥ शूलीपशुपतिःशम्भुः स्वयम्भूर्गिरिशोमृ
डः ॥ १६ ॥ सर्वनामामनश्चारः शिवोरुणगिरीश्वरः ॥ एतानिममसुख्यानि नामान्यत्रमहामुने ॥ १७ ॥ अन्यानि
दिव्यनामानि पुराणोक्तानिसंस्मर ॥ प्रदक्षिणेनमांनित्यं विशेषात्त्वंसमर्चय ॥ १८ ॥ प्रदक्षिणप्रियोयस्मादहंशोणा
चलाकृतिः ॥ इत्याज्ञप्तोमहादेवमर्चयन्नरुणाचलम् ॥ १९ ॥ अविमुक्तमिहावासं कृतवानहमद्रिजे ॥ २० ॥ गौरहु

निधिदायक, शूलधारी, पशुपति, शंभु, स्वयंभू, गिरिश, मृड ॥ १६ ॥ गर्वनामक, अनश्चार, शिव, अरुणाचलेश्वर हे महामुने ! यहांपर ये मेरे मुख्य नामहैं ॥ १७ ॥
व पुराणोंमें कहेहुये अन्य मेरे दिव्य नामोंको भलीभांति स्मरण कीजिये और नित्य ही प्रदक्षिणाकेद्वारा विशेषतासे तुम मुझको पूजिये ॥ १८ ॥ क्योंकि अरुणाचला-
कारवाला मैं प्रदक्षिणाप्रियहूं हे अद्रिजे ! इस प्रकार आज्ञा पायेहुये मैंने अरुणाचल महादेवजीको पूजते व न छोड़तेहुये महीपर निवास किया ॥ १९।२० ॥ पार्वती

जी बोलीं कि हे समस्त धर्मोंको जाननेवाले आर्य, मुनिनायक, भगवन्, गौतमजी! मुझसे अरुणाचलकी प्रदक्षिणाके माहात्म्यको कहिये ॥ २१ ॥ कि किससमय व किसप्रकार प्रदक्षिणा करनाचाहिये और पहले किन्हों ने अरुणाचल की प्रदक्षिणा किया व प्रियपरमपदको पायाहै ॥ २२ ॥ ब्रह्मा बोले कि इसप्रकार पूछेहुये गौतम मुनिने पर्वत की कन्या पार्वतीजीसे कहा कि हे देवि ! उस माहात्म्यको सुनिये कि जिसको मुझसे महादेवजीने कहाहै ॥ २३ ॥ महादेवजी बोले कि पृथ्वीतल में अरुणाचलात्मक मैं प्रसिद्धहूं और मेरे चारोंओर मुनियों समेत सब देवता वर्तमानहैं ॥ २४ ॥ अन्य जन्मोंमें भी जो कोई कियेहुये पातक होतेहैं वे वे पाप प्रद-

वाच ॥ भगवन्सर्वधर्मज्ञ गौतमार्यमुनीश्वर ॥ प्रदक्षिणस्यमाहात्म्यं ब्रूहिमेशोणभूभृतः ॥ २१ ॥ कस्मिन्कालेक थंकार्यं कैर्वापूर्वंप्रदक्षिणम् ॥ कृतंशोणाद्रिनाथस्य प्राप्तमिष्टंपरम्पदम् ॥ २२ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इतिपृष्टोमुनिःप्राह गौत मःशैलकन्यकाम् ॥ श्रूयतांदेविमाहात्म्यमादिशन्मेमहेश्वरः ॥ २३ ॥ महादेवउवाच ॥ अहंहिशोणशैलात्मा प्रख्या तोवसुधातले ॥ परितोमेसुराःसर्वे वर्तन्तेमुनिभिःसह ॥ २४ ॥ यानिकानिचपापानि जन्मान्तरकृतानिच ॥ तानिता निविनश्यन्ति प्रदक्षिणपदेपदे ॥ २५ ॥ अश्वमेधसहस्राणि वाजपेयायुतानिच ॥ सिध्यन्तिसर्वतीर्थानि प्रदक्षिण पदेपदे ॥ २६ ॥ अविग्रहीनस्यसमस्तलक्षणैः क्रियाविहीनस्यनिकृष्टजन्मनः ॥ प्रदक्षिणीकृत्यशशाङ्कशेखरं प्रयास्य तःकस्यनसिद्धिरग्रतः ॥ २७ ॥ समस्ततीर्थाभिगमेषुपुण्यं समस्तयज्ञागमधर्मजातम् ॥ अवाप्यतेशोणमहीधरस्य प्रदक्षिणाप्रक्रमणेनसत्यम् ॥ २८ ॥ पदेनैकेनभूर्लोकं द्वितीयेनान्तरिक्षकम् ॥ तृतीयेनदिवंमर्त्यो जयत्यस्यप्रद

क्षिणाके पग २ पै नाश होजाते हैं ॥ २५ ॥ हजार अश्वमेध व दशहजार वाजपेय तथा समस्त तीर्थ प्रदक्षिणाके पग २ पै सिद्धहोतेहैं ॥ २६ ॥ समस्त लक्षणोंसे हीन, कर्मोंसे रहित तथा नीच जन्मवाले किस सदाशिवजी की प्रदक्षिणाकर जाते हुये पुरुष के आगे सिद्धि नहीं होतीहै याने सबके आगे सिद्धि प्राप्त होतीहै ॥२७॥ सब तीर्थों के जाने में जो पुण्य होताहै व समस्त यज्ञों व शास्त्रोंके धर्म से उपजाहुआ जो पुण्यहै वह अरुणाचलकी प्रदक्षिणा परिक्रमामें सत्य मिलताहै ॥ २८ ॥ इस

अरुणाचल की प्रदक्षिणामें मनुष्य एक पगसे पृथ्वीलोक व दूसरे से आकाश तथा तीसरे से स्वर्गलोक को जीतलेता है ॥ २९ ॥ व एक पगसे मानसीपाप, दूसरे से वाचिक तथा तीसरे से शारीरक पाप मनुष्योंका क्षीण होजाताहै ॥३०॥ मनुष्य सब पातकोंको एकही पगसे धोडालताहै व दूसरे से सब तपस्या को इस अरुणाचलकी प्रदक्षिणा में प्राप्त होताहै ॥३१॥ यहांपर महर्षियों व सिद्धों के हजारों पर्णशाला (पत्तोंके घर) और देवताओं के हजारों निवासस्थान विद्यमानहैं ॥ ३२ ॥ इस अरुणाचलपै आगे सिद्ध शरीरवाला, देवपूजित मैं नित्यही बसताहूं और मेरे बीचमें भोगों से संयुत दिव्य गुहा ध्यान करने योग्यहै ॥ ३३ ॥ व अरुणाद्रि

क्षिणे ॥ २९ ॥ एकेनमानसंपापं द्वितीयेनतुवाचिकम् ॥ कायिकन्तुतृतीयेन पदेनक्षीयतेनृणाम् ॥ ३० ॥ पातकानिचसर्वाणि पदेनैकेनमार्जयेत ॥ द्वितीयेनतपःसर्वं प्राप्नोत्यस्यप्रदक्षिणे ॥ ३१ ॥ पर्णशालामहर्षीणां सिद्धानाञ्चसहस्रशः ॥ सुराणाञ्चतथावासा विद्यन्तेत्रसहस्रशः ॥ ३२ ॥ अत्रसिद्धवपुर्नित्यं वसाम्यग्रेसुरार्चितः ॥ मध्यान्तरेगुहादिव्या ध्यातव्याभोगसंयुता ॥ ३३ ॥ अग्निस्तम्भमयंरूपमरुणाद्रिरितिश्रुतम् ॥ ध्यायँल्लिङ्गंममबृहन्मन्दंकुर्यात्प्रदक्षिणाम् ॥३४॥ अष्टमूर्तिमयंलिङ्गमिदंमेतैजसस्मृशम् ॥ ध्यात्वाप्रदक्षिणांकुर्वन् पातकानिविनिर्दहेत् ॥३५॥ नपुनःसम्भवस्तस्यय: करोतिप्रदक्षिणाम् ॥ शोणाचलाकृतेर्नित्यंनित्यत्वंध्रुवमश्नुते ॥ ३६ ॥ अस्यपादरजस्स्पर्शात्पूयतेसकलामही ॥ पदमेकन्तुधत्तेयः शोणाद्रीशप्रदक्षिणे ॥ ३७ ॥ नमस्कुर्वन्प्रतिदिशंस्तुवन्ध्यायन्कृताञ्जलिः ॥ असंस्पृष्टकरःकैश्चिन्मन्दंकुर्यात्प्रदक्षिणाम् ॥ ३८ ॥ आसन्नप्रसवानारी यथागच्छेदनाकुलम् ॥ तथाप्रदक्षिणांकुर्यादश्र

ऐसे प्रसिद्ध अग्निस्तंभमय मेरे बड़ेभारी रूपको ध्यान करताहुआ पुरुष धीरे २ प्रदक्षिणा करै ॥ ३४ ॥ यह मेरा तैजसलिंग अष्टमूर्तिमयहै इसको बहुतही ध्यानकर प्रदक्षिणा करताहुआ पुरुष पातकों को भस्म करदेता है ॥ ३५ ॥ जो अरुणाचलाकार लिंगकी नित्यही प्रदक्षिणा करताहै उसका फिर जन्म नहीं होताहै व निश्चय कर नित्यताको भोगताहै ॥ ३६ ॥ जो पुरुष अरुणाचलकी प्रदक्षिणामें एक पगकोभी धरता है उसके चरणकी धूलिके स्पर्श से सब पृथ्वी पवित्र होजाती है ॥ ३७ ॥ सब दिशाओं में नमस्कार व स्तुति तथा ध्यान करताहुआ हाथों को जोड़े पुरुष किसी से हाथ को न मिलाकर धीरे २ प्रदक्षिणा करै ॥ ३८ ॥ जैसे थोड़ेही दिनों

में गर्भ की उत्पत्तिवाली स्त्री आकुलतारहित (धीरे) चलती है वैसेही चरणों के शब्दको न सुनता हुआ पुरुष प्रदक्षिणा करै ॥ ३६ ॥ नहाकर पवित्र वेष व भस्म तथा रुद्राक्ष से भूषित और शिवजी के स्मरण से प्रसन्न विद्वान् धीरे २ प्रदक्षिणा करै ॥ ४० ॥ आगे चलते हुये हजारों देवताओं, मुनियों व पवनरूप वाले अन्य अदृश्य सिद्धों के ॥ ४१ ॥ संघट्ट (घिसन) संमर्द (मलन) व मार्ग की रोक को चिन्तन करता हुआ अनुकूलतापूर्वक भक्त होकर विद्वान् धीरे से चरण देवै ॥ ४२ ॥ अथवा उत्तम गीतो से सदाशिवजी के नामों को भलीभाति कीर्तनकर व शिवजी के लिये नृत्य करताहुआ विद्वान् भक्तों के साथ प्रद-

रसंश्रपदध्वनिम् ॥ ३६ ॥ स्नातोविशुद्धवेषःसन् भस्मरुद्राक्षभूषितः ॥ शिवस्मरणसंहृष्टो मन्दंदद्यात्पदंबुधः ॥ ४० ॥ मुनीनाञ्चरतामग्रे देवानाञ्चसहस्रशः ॥ अदृश्यानाञ्चसिद्धानामन्येषांवायुरूपिणाम् ॥ ४१ ॥ संघट्टमतिसंमर्दमार्ग रोधंविचिन्तयन् ॥ अनुकूलेनभक्तःसञ्छनैर्दद्यात्पदंबुधः ॥ ४२ ॥ अथवाशिवनामानि संकीर्त्यवरगीतिभिः ॥ शिव नृत्यञ्चरचयन्भक्तैः सार्द्धंपरिक्रमेत् ॥ ४३ ॥ माहात्म्यंममचशृण्वन्ननन्यमतिरादरात् ॥ शनैःप्रदक्षिणांकुर्यादान न्दरसनिर्भरः ॥ ४४ ॥ दानैश्चविविधैःपुण्यैरुपकारैस्तथार्थिनाम् ॥ यथामतिदयापूर्ण आस्तिकःपरितोव्रजेत ॥४५॥ कृतेत्वग्निमयंलिङ्गं त्रेतायांमणिपर्वतः ॥ द्वापरेचिन्तयेद्धैमंकलौमरकताचलम् ॥ ४६ ॥ अथवास्फाटिकंरूपमरुणा द्रेःस्वयंप्रभम् ॥ ध्यायन्विमुक्तःसकलैः पापैःशिवपुरंव्रजेत् ॥ ४७ ॥ अवाङ्मनसगम्यत्वादप्रमेयतयास्वयम् ॥ अग्नि

क्षिणा करै ॥ ४३ ॥ व सावधान बुद्धि तथा आनन्द के रससे परिपूर्ण पुरुष मेरे माहात्म्य को सुनता हुआ आदरसे धीरे २ प्रदक्षिणा करै ॥ ४४ ॥ व अनेक भाति के दानों तथा पुण्यों व याचको के उपकारों से बुद्धि के अनुसार दया से पूर्ण, आस्तिक (वेदों व देवताओं को माननेवाला) पुरुष प्रदक्षिणा करै ॥ ४५ ॥ सत-युग में अग्निमय लिंग, त्रेता में मणिपर्वत, द्वापर मे सुवर्णाचल और कलियुग में मरकताचल को ध्यान करै ॥ ४६ ॥ अथवा आपही प्रभावान् अरुणाचल के स्फ-टिक रूपको ध्यान करताहुआ पुरुष समस्त पापो से छूटकर शिवपुर को जाता है ॥ ४७ ॥ वचन व मनके अगोचर होने के कारण व अमित होने से तथा आपही

अग्निमय होने से अरुणाचल नामक लिंगको न प्राप्त होकर ॥ ४८ ॥ ध्यान कर प्रदक्षिणा करनेवाले पुरुष के मैं साक्षात् सम्मुख जाने योग्य होताहूं उसके चरणों
की धूलि मनुष्यों की वृद्धता व मृत्युको हरनेवाली होती है ॥ ४९ ॥ जो कि अरुणाचल की प्रदक्षिणा में एक पग को धरता है देवगणों के वाहन अरुणाचल की
प्रदक्षिणा करते हुये पुरुषों के चरण को लंघलने के लिये आपस में प्रार्थना करते हैं ॥ ५०।५१ ॥ और पृथ्वी में अरुणाचल की प्रदक्षिणा करते हुये पुरुषों को कल्प-
कालिक देववृक्ष छायादान करते हैं ॥ ५२ ॥ सब ऋतुओं के फूलों से व्याप्त तथा देवताओं व गंधर्वों की हजारों कन्याओं से संयुत सैकड़ों करोड़ विमान प्राप्त होते

र्त्वांश्चपरंलिङ्गमनासाद्याचलाभिधम् ॥ ४८ ॥ ध्यात्वाप्रदक्षिणंकर्त्तुरभिगम्योहमञ्जसा ॥ तस्यपादरजोनृणां जराम
रणहारकम् ॥ ४९ ॥ पदमेकंतुधत्तेयः शोणाद्रीशप्रदक्षिणे ॥ वाहनानिसुरौघाणां प्रार्थयन्तेपरस्परम् ॥ ५० ॥ कुर्वतां
चरणंवोढुमरुणाद्रिप्रदक्षिणम् ॥ ५१ ॥ छायाप्रदानंकुर्वन्तिकल्पकाद्याःसुरद्रुमाः ॥ कुर्वतांभुविमर्त्यानामरुणा
द्रिप्रदक्षिणम् ॥ ५२ ॥ देवगन्धर्वकन्यानां सहस्रेणसमावृताः ॥ सर्वर्तुकुसुमाकीर्णा विमानशतकोटयः ॥ ५३ ॥ म
मप्रदक्षिणाम्भूमौ कुर्वतांपादपांसुभिः ॥ यातत्रमहतीवीथी दृष्टाशिवपदप्रदा ॥ ५४ ॥ आगप्रदक्षिणांकुर्वन्न क्षणा
त्सौम्यतनुर्भवेत् ॥ ५५ ॥ प्राप्तोवज्रशरीरत्वं नपतेत्समहीतले ॥ व्योमयानोत्सुकादेवाः सिद्धाश्चपरमर्षयः ॥ ५६ ॥
अदृश्याःसञ्चरन्त्यत्र पश्यन्तोममसन्निधिम् ॥ चिंतयन्तिचमेभक्तिं प्रदक्षिणपरिक्रमे ॥ ५७ ॥ दृष्ट्वाहर्षसमायुक्ता म
र्त्येभ्योददतेवरम् ॥ अत्रदेवास्त्रयस्त्रिंशत्पुराकृत्वाप्रदक्षिणम् ॥ ५८ ॥ प्रत्यहंप्रत्यहंमार्गस्य मासि कोटिशताङ्गताः ॥ आ

हैं ॥ ५३ ॥ और पृथ्वी में मेरी प्रदक्षिणा करते हुये लोगों की चरणधूलियों से जो वहां बड़ाभारी मार्ग है वह देखा हुआ मार्ग शिवस्थान को देनेवाला है ॥ ५४ ॥
और अरुणाचलकी प्रदक्षिणा करता हुआ पुरुष क्षण भरमें सुन्दर शरीरवान् होजाताहै ॥ ५५ ॥ और वज्रशरीरत्व को प्राप्त वह पुरुष भूतल में नहीं गिरता है
आकाश में वाहनों की उत्कण्ठावाले देवता, सिद्ध व उत्तम ऋषिलोग ॥ ५६ ॥ मेरी समीपता को देखते हुये अदृश्यहोकर यहां घूमते हैं व प्रदक्षिणा के गमन में
मेरी भक्तिको चिन्तन करते हैं ॥ ५७ ॥ व उसको देखकर हर्ष से संयुत मनुष्यों के लिये वर देते हैं पुरातन समय यहां पर अगहन महीने में प्रतिदिन तैंतीस देवता

प्रदत्तिणा कर करोडके स्वामी हुये हैं व पुरातन समय सूर्यादिक सब ग्रह प्रदत्तिणाकर ॥ ५८ । ५९ ॥ व पृथ्वी भाग में संभावनाकर सब ग्रहों के स्थान को प्राप्त हुये हैं पृथ्वी में जो मनुष्य रविवारको प्रदत्तिणा करताहै ॥ ६० ॥ वह मुक्त होकर सूर्यमंडलको भेदनकर शिवपुरको जाताहै और सोमवारको अरुणाचल की प्रद-त्तिणा करता हुवा पुरुष ॥ ६१ ॥ अजरता, अमरता को पाकर पृथ्वी में कुरूप नहीं होताहै और मंगल दिन में अरुणाचल की प्रदत्तिणा करता हुवा पुरुष ॥ ६२ ॥ सब उऋणताको प्राप्तहोकर निश्चय कर सार्वभौम (चक्रवर्ती) राजा होताहै और बुध दिन में अरुणाचलकी प्रदक्षिणा करता हुवा पुरुष ॥ ६३ ॥ सर्वज्ञता को पाकर

दित्याद्याग्रहाःसर्वे पुराकृत्वाप्रदत्तिणाम् ॥ ५९ ॥ सम्भाव्यजगतीभागे सर्वेग्रहपदङ्गताः ॥ यःकरोतिनरोभूमौ सूर्यवारेप्रदत्तिणाम् ॥ ६० ॥ ससूर्यमण्डलंभित्त्वा मुक्तःशिवपुरंव्रजेत् ॥ सोमवारेनरःकुर्वन्नरुणाद्रिप्रदत्तिणाम् ॥ ६१ ॥ अजरामरतांप्राप्तो नासौम्योभवतित्तितौ ॥ भौमवारेनरःकुर्वन्नरुणाद्रिप्रदत्तिणाम् ॥ ६२ ॥ आनृण्यमखिलं प्राप्य सार्वभौमोभवेद्ध्रुवम् ॥ बुधवारेनरःकुर्वञ्छोणाद्रीशप्रदक्षिणाम् ॥ ६३ ॥ सर्वज्ञत्वमनुप्राप्य स्ववाचांस्वामितामियात ॥ गुरुवारेनरःकुर्वन् सर्वदेवनमस्कृतः ॥ ६४ ॥ प्रदत्तिणेनशोणाद्रेः सतुलोकगुरुर्भवेत ॥ भृगुवारेनरःकुर्वन्नरुणाद्रिप्रदक्षिणाम् ॥ ६५ ॥ सम्प्राप्यमहतींलक्ष्मींलभतेवैष्णवंपदम् ॥ मन्दवारेनरःकृत्वा शोणाद्रीशप्रदक्षिणाम् ॥ ६६ ॥ विमुक्तोग्रहपीडाभिः सविश्वविजयीभवेत् ॥ ६७ ॥ नत्तत्राणिचसर्वाणि पुरातुदेवतैःसह ॥ ममप्रदत्तिणांकृत्वा पुण्यानिसहसाव्रजन् ॥ ६८ ॥ तिथयःकरणाश्चैव योगाश्चममसम्मताः ॥ अभीष्टफलदाजाताः कुर्व

वह वचनोंकी स्वामिता को प्राप्त होताहै व बृहस्पति दिन में प्रदत्तिणा करताहुवा पुरुष सब देवताओं से प्रणाम कियाहुवा ॥ ६४ ॥ वह अरुणाचल की प्रदत्तिणासे मनुष्योंका गुरु (शित्तक) होताहै और शुक्रवार में अरुणाचलकी प्रदक्षिणा करताहुवा पुरुष ॥६५॥ बड़ी लक्ष्मीको प्राप्तहोकर वह विष्णुजी के स्थान को प्राप्त होता है और शनैश्चर दिनमें मनुष्य अरुणाचलकी प्रदत्तिणा कर ॥ ६६ ॥ ग्रहपीड़ाओं से छूटकर वह संसार भरको जीतनेवाला होताहै ॥ ६७ ॥ पुरातन समय देवताओं समेत सब नत्तत्र मेरी प्रदत्तिणा कर अचानकही पुण्यों को प्राप्त हुये हैं ॥ ६८ ॥ और तिथियां करण व योगादिक मेरे सम्मत होकर मेरी प्रदत्तिणा करते हुये वे

चाहे हुये फलों के दायक हुये हैं ॥ ६६ ॥ और अनेक भांतिके मुहूर्त तथा होरा मेरी प्रदक्षिणा करनेवाले जनोंके ऊपर सदैव सौम्य व शुभ तथा निरन्तर ऐश्वर्य
वाले होतेहैं ॥ ७० ॥ प्रकार पातक को काटती है व दकार मनोरथों को देनेवाली है मेरी प्रदक्षिणा कर मनुष्य समस्त पातकों से छूटजाताहै ॥ ७१ ॥ सदैव भक्ति-
पूर्वक चरणसे मेरी प्रदक्षिणा करनेवाले को क्षण भरमें त्रिलोकको प्रदक्षिणा साध्य देखता हूं ॥ ७२ ॥ लोकेश, दिक्पाल और जो अन्य कारणेश्वर हैं वे पुरातन समय
मेरी प्रदक्षिणा कर स्थिर राज्यवाले हुये हैं ॥ ७३ ॥ और समस्त देवर्षियों से संयुत व गणोंसे संयुक्त मैं उत्तरायण के संयोगमें अपनी प्रदक्षिणा करता हूं ॥ ७४ ॥

तोमत्प्रदक्षिणाम् ॥ ६९ ॥ मुहूर्त्ताविविधाहोराः सौम्याश्चसततोदयाः ॥ मत्प्रदक्षिणकर्तॄणांजायन्तेसततंशुभाः ॥ ७० ॥
प्रच्छिनत्तिप्रकारोघन्दकारोवाञ्छितप्रदः ॥ ममप्रदक्षिणांकृत्वा मुच्यतेसर्वदुष्कृतैः ॥ ७१ ॥ ममप्रदक्षिणांकर्त्तुंभ
क्त्यापादेनसन्ततम् ॥ क्षणेनसाध्यंपश्यामि त्रैलोक्यस्यप्रदक्षिणम् ॥ ७२ ॥ लोकेशाश्चदिगीशाश्च येचान्येकारणे
श्वराः ॥ ममप्रदक्षिणांकृत्वा स्थिरराज्याःपुराभवन् ॥ ७३ ॥ अहंचगणसंयुक्तः सर्वदेवर्षिसंयुतः ॥ उत्तरायणसंयोगे क
रोमिस्वप्रदक्षिणम् ॥ ७४ ॥ मद्रूपंतैजसंलिङ्गमरुणाद्रिरितिश्रुतम् ॥ त्रैलोक्यस्यहितार्थाय करिष्यामिप्रदक्षिण
म् ॥ ७५ ॥ आगत्यद्वापरान्तेच गौरीतपइहाद्भुतम् ॥ कर्त्तुंप्रदक्षिणांकृत्वा मामेष्यत्यनघापुनः ॥ ७६ ॥ कार्त्तिकेमासि
नक्षत्रे कृत्तिकाख्येमहातपाः ॥ ममप्रदक्षिणांगौरी प्रदोषेरचयिष्यति ॥ ७७ ॥ नराणामल्पपुण्यानां दुर्लभंतत्प्रदक्षि
णम् ॥ ज्योतिर्लिङ्गस्यदृष्टस्य देवीप्रार्थनयातथा ॥ ७८ ॥ मयासमेतादेवीसा प्राप्तापीतकुचाम्बिधा ॥ आश्वास्यतिमु

अरुणाद्रि ऐसा प्रसिद्ध मेरा रूप तैजसलिंग है त्रैलोक्य के हितके लिये मैं उस की प्रदक्षिणा करूंगा ॥ ७५ ॥ द्वापरके अन्तमें पार्वती जी यहां अद्भुत तपस्या करने
के लिये आकर व प्रदक्षिणा कर पापरहित होकर फिर मुझको प्राप्तहोंगी ॥ ७६ ॥ कार्त्तिक महीने में कृत्तिका नामक नक्षत्र में बड़े तपवाली पार्वतीजी प्रदोष (सं-
ध्या) समय में मेरी प्रदक्षिणा करेंगी ॥ ७७ ॥ थोड़ी पुण्यवाले जनों को उसकी प्रदक्षिणा दुर्लभहै और देखहुये ज्योतिर्लिंग के देवीकी प्रार्थना से ॥ ७८ ॥ मुझ-

समेत देवी अपीतकुचा नामक प्राप्तहुई वे देवी समनर देवताओं को उत्तरायण के संगम में समभावेंगी ॥ ७९ ॥ देवता, गधर्व, यक्ष, सिद्ध व राक्षसो तथा सब देवयोनियों का वहा समागम (मिलाप) होगा ॥ ८० ॥ उस समय जो पुरुष भलीभांति आकर पूजते हैं तपस्या मे अधिक वे लोग सब जन्मों में किये हुये पापसमूह के प्रायश्चित्त को प्राप्त होते है ॥ ८१ ॥ उत्तरायणके संयोग में वह दिन पुरुषों को दुर्लभहै तब मेरे रूपको पूजकर मनुष्य कृतार्थ होवैंगे ॥ ८२ ॥ और जो राजा लोग मेरी उत्तम प्रदक्षिणा करैंगे उनके आगे जाकर साक्षात् मै शत्रुओ को जीतूंगा ॥ ८३ ॥ जिस जिस देशका तपस्या में अधिक जो जो राजा होवै वह

रान्सर्वानुत्तरायणसङ्गमे ॥ ७९ ॥ देवगन्धर्वयक्षाणां सिद्धानामपिरक्षसाम् ॥ सर्वेषांदेवयोनीनाम्भविताचात्रसङ्गमः ॥ ८० ॥ येतदामांस्समागत्य पूजयन्तितपोधिकाः ॥ सर्वजन्मकृताघौघप्रायश्चित्तंव्रजन्तिते ॥ ८१ ॥ दुर्लभंतद्दिनंपुंसामु त्तरायणसङ्गमे ॥ तदामद्रूपमभ्यर्च्य कृतार्थाःसन्तुमानवाः ॥ ८२ ॥ प्रदक्षिणान्तुमेदिव्यंये कुर्वन्तिमहीभुजः ॥ तेषांपु रोगतःसाक्षादहंजेष्यामिविद्विषः ॥ ८३ ॥ यस्ययस्यतुदेशस्य योयोराजातपोधिकः ॥ सकारयेद्द्विप्रमुख्यैः श्रोत्रियै र्मेप्रदक्षिणम् ॥ ८४ ॥ समग्रमण्डलार्थंवासंकल्पविधिपूर्वकम् ॥ तस्यतस्यस्थिरंराज्यं शत्रूणाञ्चपराहतिम् ॥ ८५ ॥ करिष्यामिमुनेसत्यमहमेवपुरःस्थितः ॥ नवाहनेनकुर्वीत ममजातुप्रदक्षिणम् ॥ ८६ ॥ धर्मलुब्धमनाजानञ्छिवाचा रपरिप्लवम् ॥ धर्मकेतुःपुराराजा यमलोकादुपागतः ॥ ८७ ॥ ममप्रदक्षिणांकर्तुं तुरगेणसमन्वितः ॥ क्षणेनतुरगोजा तो गणनाथःसुरार्चितः ॥ ८८ ॥ प्रतिपेदेपदंशैवं विमुच्यधरणीपतिम् ॥ वीक्ष्यतंवाहनंभूयो गणनाथवपुर्द्धरम् ॥ ८९ ॥

वेदज्ञाता मुख्य ब्राह्मणों से मेरी प्रदक्षिणा करावे ॥ ८४ ॥ समस्त मण्डलके लिये या संकल्प की विधिपूर्वक उस उसकी स्थिर राज्य व शत्रुवोंका नाश ॥ ८५ ॥ मै ही आगे स्थित होकर करूंगा हे मुने ! यह सत्य है और धर्म में लोभी मनवाला शिवाचार के उत्पात को जानताहुवा नर वाहन (सवारी) के द्वारा कदाचित मेरी प्रदक्षिणा न करै पुरातन समय यमलोक से आये हुये धर्मकेतु नामक राजा ने ॥ ८६ । ८७ ॥ घोडे से संयुत होकर मेरी प्रदक्षिणा करनेके लिय इच्छा किया क्षण भरमे वह घोडा देवताओं से पूजित होकर गणों का स्वामी होगया ॥ ८८ ॥ और राजाको छोड़कर शिवजी के स्थानको प्राप्तहुवा राजा गणनाथ के शरीरधारी

उस वाहन (अश्व) को देखकर ॥ ८९ ॥ चरणों से प्रदक्षिणा कर आपभी गणों का स्वामी हुआ तब से लगाकर विष्णु समेत इन्द्रादिक देवता ॥ ९० ॥ सब चरणों ही से मेरी प्रदक्षिणा करते हैं तपस्या के क्षयसे स्वर्ग से गिराया हुआ कोई सिद्ध ॥ ९१ ॥ प्रदक्षिणा करनेवाले पुरुषको देखकर फिर वह स्थानको प्राप्त हुआहै महर्षे ! मेरी प्रदक्षिणा करनेवाले उस पुरुष के चरणों उपजाहुआ रज देवेन्द्र याने इन्द्र जीके मस्तकमें प्राप्त मन्दार पुष्पके केसरोंसे शुद्ध कियाजाताहै प्रदक्षिणाका महाभाग पार्वती हीं जी से सिद्ध कियागया है ॥ ९२ । ९३ ॥ मेरी प्रदक्षिणाकरके मनुष्य मणिपर्वत के शिखरों तथा कल्पवृक्ष वनके बीचमें सदैव भलीभांति

पादप्रदक्षिणांकृत्वा स्वयञ्चगणपोभवत ॥ तदाप्रभृतिशक्राद्याः सुराविष्णुसमन्विताः ॥ ९० ॥ पादाभ्यामेवकुर्वन्ति
ममसर्वेप्रदक्षिणाम् ॥ स्वर्गान्निपातितःकोपि सिद्धःकालेतपःक्षयात ॥ ९१ ॥ प्रदक्षिणकरंवीक्ष्य पुनर्लब्धपदोभवत ।
महर्षेपादजंरक्तं ममकर्तुःप्रदक्षिणाम् ॥ ९२ ॥ मार्ज्यतेतस्यदेवेन्द्रमौलिमन्दारकेसरैः ॥ प्रदक्षिणमहाचीर्थाशिवयैन्नो
पपादिता ॥ ९३ ॥ मणिपर्वतशृङ्गेषु कल्पद्रुमवनान्तरे ॥ संचरन्तिसदामर्त्या ममकृत्वाप्रदक्षिणाम् ॥ ९४ ॥ गौर्युवाच ॥
उपचारप्रवृत्तानां फलमस्मेशंससुव्रत ॥ जनोयैश्चकृतार्थःस्याद्यथाशक्तिकृतादरः ॥ ९५ ॥ मुनिरुवाच ॥ लूतिका
तन्तुजालानि संसृज्यकश्चिदेवहि ॥ जातिस्मरोमहीपस्सन्मुक्तःसर्वैश्चपातकैः ॥ ९६ ॥ उपचारफलंदेवि शृणुवक्ष्याम
हेतव ॥ यन्महंकृपयापूर्वमुक्तवान्परमेश्वरः ॥ ९७ ॥ गजःकश्चित्तृषाक्रान्तो विमुच्यचश्रसून्कचित ॥ वनपल्लवमु
त्कीर्य मुक्तोभूद्गणनायकः ॥ ९८ ॥ कृमयोपिलुठन्तोमेपार्श्वेदुरितवर्जिताः ॥ सिद्धवेषाःपुनःसर्वे ममलोकंव्रजन्ति

घूमते हैं ॥ ९४ ॥ पार्वती जी बोलीं कि हे सुव्रत गौतमजी ! उपचार में प्रवृत्त जनों के फलको कहिये कि जिनसे शक्तिके अनुकूल आदर कियाहुआ पुरुष कृतार्थ होवैहै ॥ ९५ ॥ किसी समय मकरी तन्तुजालोंको रचकर जातिका स्मरण करनेवाला राजा होकर समस्त पापों से छूटगयाहै ॥ ९६ ॥ हे देवि ! उपचार-(पूजन) केफल को सुनिये मैं तुम से कहूंगा जोकि पुरातन समय सदाशिवजीने दया से मुझ से कहा है ॥ ९७ ॥ कि प्याससे संयुत कोई हाथी किसी समय वन के पत्ते को फेंककर व शरीर को छोड़कर मुक्त हो गणनायक हुआ ॥ ९८ ॥ मेरे समीप लोटते हुये भी कीड़े पापोंसे रहित होकर फिर वे सिद्धरूप होकर मेरे लोकको

जाते हैं ॥ ९९ ॥ और अभिन्न दीपक की ज्वाला को जो क्षण भर भी धरता है वह आपही प्रकाश होने से मेरी सारूप्यको भोगताहै ॥ १०० ॥ और शाखामें नीड (घोंसला) वाला कोई हारीत पक्षी भी भलीभाँति मेरे समीप प्राप्त हुवाहै और खद्योत (जुगनू) वहा पर दीपक की नाईं प्रकाशकर जीताहुवा मुक्तिको प्राप्त हुवा है ॥ १ ॥ और गाइया बछड़ों के स्मरण से उपजे हुये दूधके प्रवाहों से सीच कर वे मेरे समीप मुक्ति को पाती भई और मेरे लोकमें आश्रित ॥२॥ हुई और बलि के ग्रहण में चञ्चल कौवा ने पंखों से उपजे हुये पवनसे मेरे अग्रभाग को बढ़ारता हुवा क्षण भर में श्रेष्ठ मुक्तिको पायाहै ॥ ३ ॥ और मूसने मेरी कन्दरा के भाग में

ते ॥ ९९ ॥ अविच्छिन्नप्रदीपार्चिः क्षणमप्याद्धातियः ॥ स्वयंप्रकाशसम्भावान्ममसारूप्यमश्नुते ॥ १०० ॥ हारीतः कोपिसम्प्राप्तः शाखानीडोममान्तिके ॥ खद्योतोदीपवत्तत्र जीवन्मुक्तिसमागतः ॥ १ ॥ गावःप्रस्रवणैःसिक्ता वत्सस्म रणसम्भवैः ॥ मत्पार्श्वंमुक्तिमापुस्ता ममलोकंसमाश्रयन् ॥ २ ॥ काकःपक्षजवातेन बलिग्रहणलोलुपः ॥ मार्जयन् मत्पुरोभागं मुक्तिम्प्रापपरांक्षणात् ॥ ३ ॥ मूषकोमद्गुहाभागे मणिसङ्घविकर्षणैः ॥ प्रकाशाद्वीततिमिरो ममरूपम पद्यत ॥ ४ ॥ छायावृक्षत्वमास्थातुं मुनयस्त्रिदशाअपि ॥ प्रार्थयन्त्येवमत्पार्श्वेनपुनःसम्भवेच्छया ॥५॥ गोपुरंशिखरं सालं मण्डपंवापिकामपि ॥ कुर्वतांमत्पुरोभागे सिद्ध्यन्तीष्टार्थसम्पदः ॥ ६ ॥ सदामर्त्यैरनासाद्यमग्निलिङ्गमिदंम म ॥ अनासाद्याचलेशाख्यं पूज्यतांवसुधातले ॥ ७ ॥ वीक्षणस्पर्शनैर्ध्यानैः स्वभूतंनिखिलंजगत ॥ पोषयन्तीपरा शक्तिः पूज्यापीतकुचाभिधा ॥ ८ ॥ सर्वलोकैकजननी संप्राप्तानित्ययौवनम् ॥ कन्यैवमुनिभिःसेव्या सैवापीतकुचा

मणिगणों के खींचने से प्रकाश होने के कारण अन्धकारहीन होकर मेरे रूप को पाया है ॥ ४ ॥ मुनि व देवतालोग भी फिर न जन्म होने की इच्छा से मेरे समीप वृक्षों की छाया में टिकने के लिये प्रार्थना करते हैं ॥ ५ ॥ पुरद्वार, शिखर, प्राकार, मंडप व बावली को भी मेरे समीप निर्माण करते हुये लोगो की प्रियार्थक सपदा सिद्ध होती हैं ॥ ६ ॥ यह मेरा अग्निमय लिंग मनुष्योंमे सदैव समीप जाने योग्य नहीं है इसलिये समीप न जाने योग्य अरुणाचल नामक लिंग पृथ्वीतल में पूजा जावे ॥ ७ ॥ ओर दर्शन, स्पर्शन व ध्यान स अपना से उपजेहुये समस्त संसार को पोषण करती हुई अपीतकुचानामक उत्तम शक्ति पूजन योग्य है ॥८॥

जोकि सब लोकों की एक माता नित्यही यौवन को प्राप्त है और वह अपीतकुचा नामक कन्याही मुनियों से सेवने योग्य है ॥ ६ ॥ यहां इस अरुणाचल के अग्रभाग पै सदैव बसतेहुये प्राणियों के पुत्र, स्त्री, धन इत्यादिक सब वस्तु वर्तमान होती है ॥ १० ॥ अमित गुणों के आधार व चाहे हुये वरों को देनेवाले तथा समस्त सुखों के स्थान अरुणाचलजी को भलीभांति पूजिये ॥ ११ ॥ हे सुव्रते ! फिर कामनाको पाये हुई तुम सदाशिवजी के आश्रित होगी और तुम्हारा यह तप करना भी संसारके हितको देनेवालाहै ॥ १२ ॥ तुम्हारा तप केवल अपने मनोरथ के फल को देनेवाला नहीहै किन्तु तपस्या करते हुये ऋषियोंके कल्याणकी प्राप्ति

मिधा ॥ ९ ॥ नित्यमस्यपुरोभागे वसतांप्राणिनामिह ॥ पुत्रस्त्रीधनमित्यादि सर्ववस्तुचविद्यते ॥ १० ॥ अप्रमेयगुणाधारमपेक्षितवरप्रदम् ॥ अशेषभोगनिलयं शोणाद्रीशंसमर्चय ॥ ११ ॥ लब्धकामापुनःशम्भुमाश्रयिष्यसिसुव्रते ॥ तपश्चरणमप्येतत्सर्वलोकहितावहम् ॥ १२ ॥ नकेवलंतवतपः स्ववाञ्छितफलप्रदम् ॥ तपस्यतांऋषीणाञ्चक्षेमप्राप्त्यैभविष्यति॥ १३ ॥ कारणान्तरमाशङ्क्यतपःकुर्वन्तिदेवताः ॥ रहस्यंदेवतानान्तु फलेनैवानुमीयते ॥ १४ ॥ अहञ्चसहसंवासात्त्वच्चात्रनिरीक्षणात् ॥ कृतार्थःस्यांमहादेवि तपसात्वंकृतार्थय ॥ १५ ॥ इतितस्यमुनेर्वाक्यमर्थगर्भंनिशम्यसा ॥ गौरीकौतुकसंयुक्ता प्रशशंसमहामुनिम् ॥ १६ ॥ तपःकिमन्यत्कर्त्तव्यं लब्धंतवतुदर्शनम् ॥ अरुणाद्रिरयंदृष्टः श्रुतंमाहात्म्यमस्यच ॥ १७ ॥ अहोभूमिस्तुवैचित्री परदृष्टादिबोधिका ॥ यत्रदैवतैजसंलिङ्गं देवतानांवरप्र

के लिये होगा ॥ १३ ॥ देवता लोग अन्यकारणकी आशंकाकर तपस्याकरतेहैं और देवताओं का रहस्य (गुप्तचरित) फल में नहीं अनुमान कियाजाताहै ॥ १४ ॥ हे महादेवि ! मैं तुम्हारे साथ बसने व यहां तुम्हारे देखने से कृतार्थहूंगा इस लिये तुम तपस्या से कृतार्थ करो ॥ १५ ॥ इसप्रकार उन गौतमजी के अर्थगर्भवाले वचन को सुनकर आश्चर्य से संयुत उन पार्वती जी ने महामुनि की प्रशंसा किया ॥ १६ ॥ कि अन्य क्या तप करना चाहिये क्योंकि तुम्हारा दर्शन मिला व यह अरुणाचल देखागया और इसका माहात्म्य सुनागया ॥ १७ ॥ अहो पराई देखी हुई आदि वस्तुओं को बोध करनेवाली भूमि विचित्र है कि जिसमें देवताओं को वरदायक यह

तैजरा लिंग है ॥ १८ ॥ शिवजी की प्रसन्नताकी सिद्धिके लिये मुझको अपना स्थान दिखलायागया यहीं पर मैं सदाशिवजी को आराधकर संसारके गुरु सदाशिवजी को वश करूंगी ॥ १९ ॥ और रक्षा करनेवाले सदाशिव देवजी से मेरी सदैव एकता होवै यहां पर किये हुये तपसे मै शिवजी की स्त्री हूंगी ॥ २० ॥ इसप्रकार गौतम जी के समीप उस समय आदर से तप करने के लिये उन पार्वती जी ने प्रतिज्ञा किया और वैसाही होवै इसभाति गौतम मुनिसे भक्तिपूर्वक सम्मति को प्राप्तहुई उन पार्वती जीने सुन्दरी पर्णशालाको भजा ॥ २१ ॥ सुकुमार शरीरवाली व कमलनयनी तथा घन (कठोर) व उन्नत स्तनों पै दुपट्टे को धरे, जटाओंको धारे उत्तम

दम् ॥ १८ ॥ शिवप्रसादसिद्ध्यैमे दर्शितंस्थानमात्मनः ॥ अत्रैवशिवमाराध्य वशीकुर्याज्जगद्गुरुम्॥ १९ ॥ अविता भूतमैक्यंमे देवेनभवतात्सदा ॥ तपसात्रकृतेनाहं भवेयंशिवनायका ॥२०॥ इतिगौतमसन्निधौतदानीं सासंवित्तपआद रेणकर्तुम् ॥ अभजद्रुचिराञ्चपर्णशालां मुनिनाचानुमतातथेतिभक्त्या ॥ २१ ॥ सुकुमारतनुःसरोरुहाक्षी घनतुङ्गस्तन कल्पितोत्तरीया ॥ जटिलावरनीलरत्नकान्तिः कर्तुंसातपऐच्छदेवबाला ॥ २२ ॥ नियमैर्बहुभिस्तपोविशेषैः क्रतुषुप्राप्त विभिन्नयोगबन्धैः ॥ निगमागमदृष्टधर्ममार्गं सकलंसातुकृतार्थमाप्तुमैषीत् ॥ २३ ॥ तपसाविविधेनतप्यमाना नकदा चित्परिखेदमापतन्वी ॥ हरिरत्नमयीवकापिवल्ली नितरान्दीप्तिमतीबभूवबाला ॥ १२४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽरुणा चलमाहात्म्येनवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

नील रत्नके समान शोभावाली उन पार्वती जी ने तपस्या करने की इच्छा किया ॥ २२ ॥ बहुत नियमों तथा तपभेदों व यज्ञों में प्राप्त भिन्न योग बन्धनों से वेदों व शास्त्रों में देखे हुये सब धर्ममार्ग को कृतार्थतापूर्वक उसने पाने की इच्छा किया ॥ २३ ॥ अनेक भांतिके तपसे तपती हुई उन सूक्ष्म अंगोंवाली पार्वतीजी ने कभी खेद को न पाया और हरित रत्नमयी कोई वल्लीकी नाईं पार्वती जी अत्यन्तही प्रकाशित हुईं ॥ १२४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽरुणाचलखण्डेदेवीदयालुमिश्रवि रचितायांभाषाटीकायांनवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

दोहा। महिषासुरको उमासन युद्ध भयो विकराल। सोई दशम अध्याय में वर्णित चरित रसाल॥ ब्रह्माजी बोले कि इसके अनन्तर महिषासुरसे पीडित वि-
कल देवता पृथ्वी में जाकर तप करती हुई पार्वतीजी को प्रणाम कर शरण में गये॥ १॥ व यह बोले कि हे देवि! भय से विकल व प्रणाम किये हुये हम
लोगोंको अभय दीजिये देवताओं को देखकर उन देवी ने यह कहा कि क्या कार्य है॥ २॥ तदनन्तर इन्द्र आदिक देवताओं ने हाथों को जोड़कर दैत्येन्द्र महिषा-
सुरसे अपनी भयको देवीजी से कहा॥ ३॥ कि हे देवि! बल व तपस्यासे संयुत तथा धर्मको तोड़नेवाला महिषासुर नामक बड़ाभारी दैत्य तीनों लोकोंको पीडित

ब्रह्मोवाच॥ अथदेवामहीङ्गत्वा महिषासुरपीडिताः॥ नत्वागौरींतपस्यन्तीं जग्मुःशरणमाकुलाः॥ १॥ आनता
श्चाभयंदेहि देवीतिभयविह्वलान्॥ अमरान्वीक्ष्यसादेवी किंकार्यमितिचाभ्यधात॥ २॥ ततोविज्ञापयामासुर्दैत्ये
न्द्राद्भयमात्मनाम्॥ देवैर्बद्धाञ्जलिपुटा देवाइन्द्रपुरोगमाः॥ ३॥ महिषाख्योमहादैत्यो बलेनतपसान्वितः॥ बाधते
देविलोकांस्त्रीन्वेदधर्मविभेदकः॥ ४॥ देवान्सर्वान्विनिर्धूय देवलोकान्मदाधिकः॥ अप्सरोभिःपरिवृतः सुखंक्रीड
तिनन्दने॥ ५॥ ऐरावतमुखान्सर्वान् दिङ्नागान्निजमन्दिरे॥ आवासयन्विनोदार्थमङ्गनाभिःसहागतान्॥ ६॥ उच्चैःश्र
वःपुरोगानामश्वानांद्वीपजन्मनाम्॥ मन्दिराण्यस्यरम्याणिदृश्यन्तेलक्षकोटयः॥ ७॥ हुताशवाहनंमेषंपुत्रारोहार्थ
मीप्सति॥ याम्यंमहिषमानीय शकटेचाभ्यवाहयत॥ ८॥ निधीनाकृष्यसकलान् गृहालंकृतयेदिशत॥ अप्सरःसङ्घ

करता है॥ ४॥ अधिक गर्ववाला वह महिषासुर समस्त देवताओं को सुरलोक से भगाकर अप्सराओंसे संयुत होकर नन्दनवन में सुखपूर्वक क्रीडा करता है॥ ५॥
और उसने स्त्रियों समेत आये हुये ऐरावत इत्यादिक सब दिग्गजों को क्रीडाके लिये अपने मन्दिरमें बसायाहै॥ ६॥ और द्वीपों में पैदाहुये उच्चैःश्रवा इत्यादिक
लाखों व करोड़ों घोड़ इसके सुन्दर मन्दिरों में देखपड़ते हैं॥ ७॥ व अग्नि के वाहन मेष (भेडा) को पुत्रको चढ़ने के लिये चाहता है और यमराज के भैंसे को
लाकर उसने गाड़ीमें प्राप्त कियाहै॥ ८॥ और सब निधियों को खींचकर घरके अलंकार के लिये आज्ञा दियाहै और अपनी सेवा के लिये अप्सराओंके गणों

लायाहै ॥ ६ ॥ व और भी जो कुछ वस्तु त्रिलोकमें रत्नभूत याने सर्वोत्तम है उसके ले आनेपर भी वह क्रोधित महिषासुर विश्रामको नहीं प्राप्त होताहै ॥ १० ॥
और नित्यही डरसे संयुत उसकी आज्ञाको पालतेहुये हम लोग सेवक युक्त होकर अन्यगतिको नहीं देखते है ॥ ११ ॥ शरणागत की रक्षा करना तपस्या का फल
कहागया है और यह उत्तम दैत्य समस्त बलियों को भी दुर्जय है ॥ १२ ॥ व शिवजी से प्राप्त वरके ऐश्वर्यवाला यह दैत्य देवताओं व दैत्यों को भी दुर्जयहै इसके
सींगसे ताड़ित समुद्र तिमिंगिलनामक मछली से रहित होगया ॥ १३ ॥ और रत्नरूपी भेंटके दानसे नित्य उसकी प्रीति चाहताहै व बड़ा गर्ववान् वह महिषासुर

मखिलमात्मसेवार्थमानयत् ॥ ९ ॥ अन्यत्किमपियद्वस्तुरत्नभूतंजगत्त्रये ॥ अप्याहृतेपुनस्तस्मिन्नविश्राम्यतिकोप
वान् ॥ १० ॥ वयञ्चसेवकायुक्ता नित्यम्भीतिसमन्विताः ॥ पूजयन्तश्चतस्याज्ञां नान्यांवीक्ष्यामहेगतिम् ॥ ११ ॥ शर
णागतसन्त्राणं तपःफलमुदाहृतम् ॥ दुर्जयोयंवरोदैत्यः सर्वेषांवलिनामपि ॥ १२ ॥ सुराणामपिदैत्यानां शिवाल्लब्ध
वरोदयः ॥ अस्यश्रृङ्गाहतःसिन्धुर्व्यावर्जिततिमिङ्गिलः ॥ १३ ॥ रत्नोपहारदानेन नित्यंतत्प्रीतिमिच्छति ॥ पर्व
तांश्चसमुत्क्षिप्य श्रृङ्गाग्रेणमहोद्धतः ॥ १४ ॥ क्रीडतिच्चोदिताशेषधातुधूलिविलेपनैः ॥ नशक्यमतुलंतस्य बलंव
कुंदुरासदम् ॥ १५ ॥ स्वयमेवविजानीहि हत्वात्वंनिजतेजसा ॥ शम्भुशक्तिःपरासेयं स्त्रीरूपेणात्रदृश्यते ॥ १६ ॥ मा
ययैवनिहन्तव्यो दैत्योलब्धवरोदयः ॥ नजानीमोवयंकिञ्चिदतः शम्भुविचेष्टितम् ॥१७॥ केवलंपालनीयाःस्मो जग
न्मात्रासदात्वया ॥ इतितेषांभयार्तानामाकर्ण्यवचनंशुभम् ॥ १८ ॥ व्याजहारप्रसन्नात्मा देवीदत्त्वाभयातदा ॥ शर

सींगके अग्रभाग से पर्वतों को ऊपर फेंककर ॥ १४ ॥ टूटी फूटी हुई सब धातुवों की धूलिके लेपनसे क्रीडा करताहै उसका असह्य व अमित बल कहा नहीं जासक्ता
है ॥ १५ ॥ तुम अपने तेजसे मारकर आपही जानोगी वह शिवजी की यह उत्तम शक्तिहै जोकि यहां स्त्रीके रूपसे देखपड़ती है ॥ १६ ॥ वरके ऐश्वर्य को पाय हुय
वह दैत्य मायाही से मारन योग्य है इसलिये हम लोग कुछ सदाशिवजीकी इच्छा को नहीं जानते हैं ॥ १७ ॥ केवल आप जगदम्बिका से हम लोग सदैव पालने के
योग्य हैं डरसे दुःखित उन देवताओं के इसप्रकार वचन को सुनकर ॥ १८ ॥ उस समय अभयको देकर प्रसन्नचित्तवाली देवीजी ने कहा कि तपस्यामे स्थित

मुझको शरणागत की रक्षा ॥ १९ ॥ करना चाहिये हे देवताओ! समय से शत्रु क्षीण होगा बलसे खींचकर उस महादैत्यको मारूँगी ॥ २० ॥ आज उस निरपराधी
का मारना मुझको योग्य नहीं है हे सब देवताओ! पहले की नाईं मानसी पीडारहित होकर जाओ ॥ २१ ॥ धर्मको नाश करनेवाले पुरुष धर्मकी अग्नि में पाखों
की नाईं प्राप्त होते हैं उन भगवती जीके वचन को सुनकर देवता लोग गिरिराजकुमारी को प्रणामकर ॥ २२ ॥ सब निर्भय व प्रसन्नचित्त होकर जिसप्रकार
आये थे उसीभांति चलेगये उन देवताओं के चले जानेपर कमलनयनी पार्वतीजी ॥ २३ ॥ शोभासंयुत व कृशोदरी होकर मोहनी शक्ति होगईं और उन देवी ने

णागतसन्त्राणं तपसिस्थितयामया ॥ १९ ॥ कर्त्तव्यममराःकालात् क्षीणःशत्रुर्भविष्यति ॥ उपायेनसमाकृष्य ह
निष्यामिमहासुरम् ॥ २० ॥ निरागसस्तुहननमद्यमेनहियुज्यते ॥ प्रयातदेवाःसकला यथापूर्वंगताध्ययः ॥ २१ ॥ धर्मा
ग्नौधर्मभेत्तारः शलभत्वंव्रजन्तिहि ॥ देवास्तद्वचनंश्रुत्वाप्रणम्यगिरिकन्यकाम् ॥ २२ ॥ जग्मुर्यथागतंसर्वे निर्भया
हृष्टचेतसः ॥ गतेषुतेषुदेवेषु गौरीकमललोचना ॥ २३ ॥ बभूवमोहनीशक्तिः कान्तियुक्ताकृशोदरी ॥ सादेवीदिक्षुशै
लेषु चतुष्कोणेषुभूभृतः ॥ २४ ॥ रक्षार्थंस्थापितवती चतुरोवटुकांश्चरान् ॥ यदाकैलासशिखरादागताशैलकन्य
का ॥ २५ ॥ अन्वगच्छन्नुसेवमानाश्चतस्रोमातरस्तदा ॥ दुन्दुभिः सत्यवत्याख्या तथाचान्नवतीतिच ॥ २६ ॥ सुन्दरी
तिचतस्रस्तु मातरःपरिचारिकाः ॥ विमुच्यत्वतिथिंश्रान्तंक्षुत्पिपासासमन्वितम् ॥ २७ ॥ अरुणाद्रिमिमन्द्रष्टुं नान्य
मित्यब्रवीच्चतान् ॥ सोमाशैलस्थितान्वीरांस्तानादिश्यबलाधिकान् ॥ २८ ॥ तपश्चचारसाकन्या गौतमाश्रमसन्नि

अरुणाचल के चारों कोनों में पर्वतोंपै चारों दिशाओं में ॥ २४ ॥ रक्षाके लिये चार वटुक चरों (भेदिहा दूतों) को स्थापित किया जब कैलासके शिखरसे गिरिराज-
कुमारी पार्वती जी आईं थीं ॥ २५ ॥ तब सेवा करती हुईं चार मातायें इनके पीछे आईं थीं दुंदुभि, सत्यवती नामक व अन्नवती ॥ २६ ॥ सुन्दरी ये चार मातृका
सेवकी थीं क्षुधा प्यास से संयुत व थके हुये अतिथिको छोड़कर ॥ २७ ॥ इस अरुणाचल को देखने के लिये अन्य पुरुष को न आने दीजियेगा यह उनसे उन
पार्वती जीने कहा व उन अधिक बलवाले पर्वत पै टिकेहुये वीरोंको आज्ञा देकर ॥ २८ ॥ उन कन्या पार्वतीजी ने गौतम मुनि के आश्रम के समीप तपस्या

किया व उन सूक्ष्मांगी पार्वतीजी के तप करने पर कोई दुःख नहीं हुवा ॥ २९ ॥ समय में मेघ बरसे व वृक्ष फलों समेत हुये और प्राणी लोगों ने वैर व पहले के मत्सर (ईर्षा) को छोड दिया ॥ ३० ॥ दो योजन पर्यन्त भयदायक आश्रम सब प्राणियोंके शरण के योग्य हुवा और सीमा (हद) वाले पर्वतों पै टिके हुये ॥ ३१ ॥ चारों बटुक वीरोंसे अरुणाचल रक्षित हुवा ॥ ३२ ॥ वहा पर रोगों की पीड़ा व मानसी व्यथाकी बढ़ती न हुई पर्वतकी कन्या पार्वती जी की प्रशंसा करते हुये सब मुनि कृतार्थ होकर ॥ ३३ ॥ कल्याणदायक व सेवा के योग्य तथा देखने योग्य आश्रम स्थान को आये और दिन रात शिवप्रसन्नकारक व

धौ ॥ तस्यान्तपन्त्यांतन्वङ्ग्यान्नतापःकश्चिदुद्बवौ ॥ २९ ॥ ववर्षकालेजलदः सफलाश्चाभवन्द्रुमाः ॥ विरोधानिचसत्त्वानि मुमुचुःपूर्वमत्सरम् ॥ ३० ॥ आश्रमःसर्वजन्तूनां शरण्योभूद्भयावहः ॥ योजनद्वयपर्यन्तं सीमाशैलेषुसंस्थितैः ॥ ३१ ॥ चतुर्भिर्वटुकैःशूरैरक्षितश्चारुणाचलः ॥ ३२ ॥ नव्याधिपीडनञ्चासीत्तत्रनाधिविजृम्भणम् ॥ कृतार्थामुनयःसर्वे प्रशंसन्तोनगात्मजाम् ॥ ३३ ॥ शिवंलोक्यंपदंसेव्यमागताश्चतथाश्रमम् ॥ साचगौरीतपोघोरं कुर्वतीचदिवानिशम् ॥ ३४ ॥ नतृप्तिमाययौबाला शिवसन्तोपकारकम् ॥ महिषश्चमहावीर्यो मृगयांकर्तुमुद्यतः ॥ ३५ ॥ चचारकाननंसर्वं विदूरेशोणभूभृतः ॥ दैत्यसैन्यसमायुक्तो मृगयूथान्यनेकशः ॥ वनेषुनिघ्नंस्तरसा विचचाराशुभक्षयन् ॥ ३६ ॥ धन्विभिर्बलिभिर्वीरैर्मृगाःकेचिदनुद्रुताः ॥ भयार्ताःपरिधावन्तः प्राविशंस्तेतदाश्रमम् ॥ ३७ ॥ अनुव्रजन्तोदितिजा मृगांस्तान्हन्तुमुद्यताः ॥ वारितावटुकैर्वीरैर्माहतात्रेतिसत्वरैः ॥ ३८ ॥ किमत्रेतितदापृष्टा वटुकादुष्टदान

भयंकर तपस्या करती हुई वे बाला पार्वतीजी तृप्ति को न प्राप्त हुई और महाबलवान् महिषासुर शिकार खेलने के लिये उद्यतहुवा ॥ ३४ । ३५ ॥ और अरुणाचल के समीप दैत्यों की सेना से संयुत महिषासुर सब वनमे घूमताभया व अनेक मृगगणों को बलसे मारता व खाताहुवा वह वनोंमें भ्रमता भया ॥ ३६ ॥ धनुष धारेहुये बलवान् वीरों से भगाये हुये कोई मृग भयसे विकल होकर दौडते हुये वे उसके आश्रम में पैठ गये ॥ ३७ ॥ और उन मृगों को मारने के लिये उद्यत व पीछे जाते हुये दैत्य वीरों को शीघ्रतायुत बटुक वीरों ने मनाकिया कि यहा पर मत मारिये ॥ ३८ ॥ उस समय यहा क्या है इसप्रकार दुष्ट दानवोंसे पूछे हुये बटुकोंने

यह कहा कि यहा पर उत्तम मध्यभाग (कटि) वाली कन्या साक्षात् पार्वतीजी तप करती हैं ॥ ३९ ॥ इससे किसी बलवान् को मुनियों से सेवित व शरणागत
रक्षक इस देवी के तपस्थान में न पैठना चाहिये ॥ ४० ॥ इसप्रकार उनके वचनको सुनकर बलवान् दुष्ट दानवों ने बहुत अच्छा ऐसा कहकर लौटकर करने योग्य
कार्य को चिन्तन किया ॥ ४१ ॥ और माया से पक्षीरूपवाले वे दानव आदर से आश्रम में पैठकर यहा पर बगीचों के वृक्षों व शाखाओं में बैठगये ॥ ४२ ॥ उस
समय मायारूपधारी दैत्यकी सेनावाले लोगोंने फिर समस्त ऋतुओंके फूलों से संयुत उस वन में तप करतीहुई उन शोभित देवीजी को देखा ॥ ४३ ॥ रूपकी

वैः ॥ तपस्यन्तीवरारोहा कन्यात्रेत्याहुरञ्जसा ॥३९॥ नकेनचित्प्रवेष्टव्यं बलिनामुनिसेवितम् ॥ तपःस्थानमिदंदेव्याः
शरणागतरक्षकम् ॥ ४०॥ इतितेषांवचःश्रुत्वा बलिनोदुष्टदानवाः ॥ तथेतिविनिवृत्त्याशु कर्त्तव्यंसमचिन्तयन् ॥४१॥
मायया पक्षिरूपास्ते प्रविश्याश्रममादरात् ॥ आरामवृक्षशाखासु निषेदुरिहदानवाः ॥४२॥ सापुनर्लसितारण्ये सर्वर्तु
कुसुमान्विते ॥ तपस्यन्तीतदादृष्टा मायादैत्यस्यसैनिकैः ॥४३॥ रूपलावण्ययुक्तायानिश्चयंतपसिस्थितम् ॥ वीक्ष्यते
विस्मयोपेता गत्वातस्मैन्यवेदयन् ॥४४॥ अरुणाद्रिस्थितःसोपि स्त्रीरत्नमितिशुश्रुवान् ॥ माययावृद्धवेषोभून्महिषस्त
ज्जिघृक्षया ॥ ४५ ॥ निवृत्यसैनिकान्सर्वानध्वश्रान्तिसमन्वितः ॥ तदाश्रमपदंसोथ प्रविवेशदुराशयः ॥ ४६ ॥ पूजि
तस्तत्सखीभिश्च गतश्रान्तिरिवस्थितः ॥ वृद्धोपृच्छत्किमर्थन्तु तपोस्याइतितास्तथा ॥ ४७ ॥ सख्यऊचुः ॥ बलका

सुन्दरता से संयुत उन पार्वतीजी की तपस्यामे स्थित निश्चयको देखकर विस्मयसे संयुत उन्होने जाकर उस महिषासुरके लिये निवेदन किया ॥ ४४ ॥ और अ-
रुणाचल पै टिके हुये उसने भी यह सुना कि स्त्रियों में श्रेष्ठ वह स्त्री है उसके ग्रहण करने की इच्छा से महिषासुर मायासे वृद्ध के वेषवाला होगया ॥ ४५ ॥ इसके
अनन्तर मार्ग के परिश्रमसे संयुत वह महिषासुर सब सेनावाले दैत्यों को लौटाकर दुष्ट आशासे उस आश्रम स्थान में पैठगया ॥ ४६ ॥ और उनकी सखियों से पू-
जित वह परिश्रमरहित की नाई स्थितहुआ और उन सखियों से उस वृद्ध वेषवाले महिषासुर ने पूछा कि इसका तप किस प्रयोजनके लियेहै ॥ ४७ ॥ सखिया बोली

कि बल, शोभा व प्रसन्नताके लिये पार्वतीजी यहा बहुत दिनोंसे तप करती है और अपूर्व देखेहुये ऐश्वर्यवाले पुरुषोंसे इसका स्वयंवर करने योग्य है ॥ ४८ ॥ इस प्रकार उन सखियों का वचन सुनकर हँसते हुये महिषासुर ने कहा कि इसकी तपस्याका फल मैं प्राप्तहूं यह सत्य स्थित है ॥ ४९ ॥ हे तपस्विनि, बाले ! मेरे सब ऐश्वर्य को सुनिये कि दैत्यों का स्वामी व देवताओं से वन्दित मैं महाशूर महिषासुरहूं ॥ ५० ॥ और यह सब त्रिलोक मुझही से ग्रहण कियाजाता है व अन्य वीर की नाईं नहीं उत्तम भाववाला व समस्त ऐश्वर्यों से संयुत ॥ ५१ ॥ मैं समय में इच्छा के अनुकूल रूपधारी हूं व सब रोगोंका दायकहूं इससे तपस्या के फलको

न्तिप्रसादार्थं चिरमत्रतपस्यति ॥ अपूर्वदृष्टविभवैःकार्योस्यास्तुस्वयंवरः ॥ ४८ ॥ इतितासांवचःश्रुत्वा विहसन्नसुरो ऽभ्यधात् ॥ तपःफलमहंप्राप्तः सत्यमस्याइतिस्थितम् ॥ ४९ ॥ मदीयांसकलाम्भूतिं शृणुबालेतपस्विनि ॥ महिषोहंम हावीरो दैत्येन्द्रःसुरवन्दितः ॥ ५० ॥ जगत्त्रयमिदंसर्वं मयैवपरिगृह्यते ॥ अनन्यवीरसद्भावः सर्वसम्पत्समन्वितः ॥ ५१ ॥ कामरूपधरश्चाहंकाले सर्वरोगप्रदायकः ॥ भजमान्त्वञ्चभर्त्तारं भाजिनंतपसःफलम् ॥ ५२ ॥ सर्वंसम्पाद यिष्यामि कल्पवृक्षैःसमाहृतैः ॥ सृजामितपसाचाहं विश्वकर्माणमेवच ॥ ५३ ॥ कामधेनुसहस्राणि चिन्तामणिशता निच ॥ कल्पारामसहस्राणि सृजामितपसात्क्षणात् ॥ ५४ नवभिर्निधिभिःप्राप्तैः पार्श्वस्थैस्तैर्दिवानिशम् ॥ ॥ अपेक्षि तार्थसंसिद्धिःसहसैवोपपाद्यते ॥५५॥ इतितस्यवचःश्रुत्वा स्मृतदेववचःक्रमात् ॥ विसृज्यमौनंशनकैर्विहसन्तीतमब्रवी त् ॥ ५६ ॥ अहंबलवतोभार्या भवितुञ्चतपश्चिरम् ॥ करोमियद्यसिबली बलंदर्शयमेनिजम् ॥ ५७ ॥ विरुद्धंस्त्रीस्वभाव

भजनेवाले मुझ पतिको तुम भजो ॥ ५२ ॥ मैं लायेहुये कल्पवृक्षोंमे सब सिद्ध करूंगा और तपस्या से मैं विश्वकर्मा को रचताहूं ॥ ५३ ॥ व तपस्या से मैं क्षण भर में हज़ारों कामधेनु व सैकड़ो चिन्तामणि तथा हजारों कल्पवृक्ष के बगीचों को रचताहूं ॥ ५४ ॥ और समीपमें टिकीहुई उन प्राप्त नव निधियों से अहर्निश (दिन रात) चाहे हुये प्रयोजन की सिद्धि अचानकही सिद्धकीजाती है ॥ ५५ ॥ उसके इस वचन को सुनकर स्मरण किये देववचनों के क्रमवाली पार्वती जी मौन को छोड़कर धीरेसे हँसती हुई उससे बोलीं ॥ ५६ ॥ कि मैं बलवान् पुरुषकी स्त्रीहोनेके लिये बहुत दिनों से तप करती हूं यदि बलीहो तो मुझको अपने बलको

दिखलाइये ॥ ५७ ॥ स्त्रीस्वभाव के विरुद्ध उस कहेहुये वचन को सुनकर महिषासुर बड़े खेदकी बात है यह कौन है ऐसा कहकर क्रोध से गरजा ॥ ५८ ॥ पकड़नेकी इच्छावाले उस आतेहुये महिषासुर को देखकर अग्निके समान आकारवाली वे कन्या दुर्गाजी दुरासद (समीप न जाने योग्य) होगईं ॥ ५९ ॥ आगे स्थित जलती हुई महामाया को देखकर आप भी महिषासुर सुमेरुगिरिकी नाईं बढ़ा ॥ ६० ॥ व सीगों से कुलाचल के शृंगों को बार २ फेंकते हुये उसने दिगन्तरों में पठाई हुई अपनी सेना को बुलाया ॥६१॥ इसके अनन्तर ब्रह्मादिक देवताओं ने प्रणामकर कालाग्निरूपवाली दुर्गाजी को अपने अनेक अस्त्रोंसे पूजन किया ॥६२॥

स्य श्रुत्वा तद्वाक्यमुत्थितम् ॥ हन्त केयमिति क्रोधान्ननर्द महिषासुरः ॥ ५८ ॥ जिघृक्षन्तं समायान्तं वीक्ष्य तं महिषासुरम् । अभूद्दुरासदा दुर्गा कन्या साज्वलनाकृतिः ॥ ५९ ॥ महामायां समालोक्य ज्वलन्तीं पुरतः स्थिताम् ॥ स्वयं च महिषाकारो वबृधे मेरुसन्निभः ॥ ६० ॥ कुलभूधरशृङ्गाणि शृङ्गाभ्यां मुहुराक्षिपत् ॥ आजुहाव निजां सेनां संप्रेरितां दिगन्तराम् ॥ ६१ ॥ अथ ब्रह्ममुखा देवाः प्रणम्य विविधायुधैः ॥ पूजयामासुरात्मीयैर्दुर्गां कालाग्निरूपिणीम् ॥ ६२ ॥ पञ्च हेतीर्हरिः प्रादाद्दश चापि सदाशिवः ॥ ब्रह्मा चतस्रश्च तदा तस्यै मायातिरोहितः ॥ ६३ ॥ दिक्पालाश्च सुराश्चान्ये पर्वताश्च पयोधयः ॥ स्वीयैराभरणैः शस्त्रैर्हृद्यास्तामपूजयन् ॥ ६४ ॥ मायासा बहुभिर्हस्तैरुज्ज्वलदायुधसञ्चयैः ॥ आबद्धकवचा चापि दुर्गाभूत् सिंहवाहना ॥ ६५ ॥ आपूरितदिशाभागं तेजस्तत्सोढुमक्षमम् ॥ दुर्गाया घोरमालोक्य महिषस्तु पलायितः ॥ ६६ ॥ अथ तेजो निजं घोरं प्रज्वलत्सोढुमक्षमम् ॥ पलायमानमालोक्य महिषं सा व्यचिन्तयत् ॥ ६७ ॥ उ

विष्णुने पाँच अस्त्रों को दिया व सदाशिवजी ने भी दश अस्त्रों को दिया और उस समय मायासे छिपे हुये ब्रह्माने उनके लिये चार अस्त्रों को दिया ॥ ६३ ॥ व दिक्पाल तथा अन्य देवता व पर्वत और समुद्र अदृश्य होकर अपने आभूषणों व शस्त्रों से उन भगवतीका पूजन किया ॥ ६४ ॥ और जलतेहुये अस्त्रसमूहोंवाले बहुत हाथों से उपलक्षित वे माया दुर्गाजी कवच को बाँधकर सिंहके वाहनवाली हुईं ॥ ६५ ॥ पूर्ण कियेहुये दिशाओंके भागवाले दुर्गाजी के उस भयंकर व असह्य तेज को देखकर सहने के लिये असमर्थ महिषासुर भागगया ॥ ६६ ॥ इसके अनन्तर जलते हुये अपने भयंकर तेजको सहने के लिये असमर्थ उस महिषासुर

को भागते हुये देखकर उस भगवती ने चिन्तन किया ॥ ६७ ॥ कि यह दुष्ट महिषासुर यत्नसे मारने योग्य है क्योंकि बहेलिया लोग कोमलतापूर्वक वनमें मृगो
को बांधते हैं ॥ ६८ ॥ धर्म में बर्तावंवाली दूतसे कहीहुई अपनी वाणियो से इसको खीचकर व इसके क्रोधको उत्पन्न कराकर क्षणभर में शामना करूंगी ॥ ६९ ॥
अधर्म के आचरण से संयुत पुरुषों के धर्मका वचन सुनने से अपने जीवके नाशका हेतु क्रोध तुरन्तही होजाताहै ॥ ७० ॥ अथवा धर्मबुद्धिवाला होकर यदि शान्त
होवेगा तो हितोपदेश से धर्मका लोप न होगा ॥ ७१ ॥ फलार्थी तपस्वियों को सदैव क्रोध त्यागना चाहिये और धर्मकी हानि नही सहने योग्य है इससे क्रोधही

पायेननिहन्तव्यो दुष्टोयंमहिषासुरः ॥ मृदुपूर्वंनिबध्यन्तेमृगामृगयुभिर्वने ॥ ६८ ॥ दूतोक्तिभिःसमाकृष्य स्ववाग्भि
र्धर्मवृत्तिभिः ॥ कोपमस्यसमुद्भाव्य करिष्येभिमुखंक्षणात ॥ ६९ ॥ अधर्मवृत्तियुक्तानां धर्मवाक्यपरिश्रवात् ॥ कोपः
समुद्भवेत्सद्यः स्वजीवक्षयकारणम् ॥ ७० ॥ अथवाधर्मबुद्धिस्सन् यदिशान्तोभविष्यति ॥ तदाहितोपदेशेन धर्मलो
पोनसंभवेत् ॥ ७१ ॥ तपस्विभिःसदाकार्यः कोपत्यागःफलार्थिभिः ॥ धर्महानिर्नसोढव्या तत्कोपोहितपःपरम्॥७२॥
इतिसञ्चिन्त्यसागौरी नाम्नासुरगुरुंमुनिम्॥ आहूयवानरमुखम्प्राहिणोदसुरम्प्रति ॥ ७३ ॥ गच्छत्वंमाययायुक्तो महि
षंवानरानन ॥ महिषंबोधयित्वाच वचनैःशीघ्रमाव्रज ॥ ७४ ॥ मैवन्त्वमरुणाद्रीशमुपपीडयदुर्मते ॥ अत्रदुर्मनसांवी
र्यमदृश्यंभवतिक्षणात् ॥ ७५ ॥ नकलेरुपतापोत्र नासुरैरपिपीडनम् ॥ नसाहसंचशुभदं शिवभक्तिमतामपि ॥ ७६ ॥
पूर्वजन्मकृतैःपुण्यैर्लब्धवीर्यमहोदयः ॥ मात्वंशोणाचलेशाग्नौ शलभत्वंभजासुर ॥ ७७ ॥ शिवेनदत्ताविभवास्त-

उत्तम तप है ॥७२॥ ऐसा भलीभांति चिन्तन कर उन पार्वतीजी ने वानरमुखवाले सुरगुरु नामक मुनिको बुलाकर दैत्य के समीप पठाया ॥ ७३ ॥ कि हे वानरमुख !
मायासे संयुत तुम महिषासुर के समीप जावो और महिषासुर को वचनों से बोध कराकर शीघ्र आवो ॥ ७४ ॥ कि हे दुर्बुद्धे ! तुम अरुणाचल को इसप्रकार मत
पीडित करो क्योंकि यहां पर दुष्ट मनवाले जनोंका वीर्य क्षणभरमें अन्तर्द्धान होजाताहै ॥ ७५ ॥ यहां पर कलियुग का संताप व दैत्यो से पीडा नहीं होती है
और शिवभक्तिवाले जनों का भी साहस शुभदायक नही होता है॥ ७६ ॥ हे दैत्य ! पूर्वजन्म में किये हुये पुण्यों से पाये हुये बल व बडे भारी ऐश्वर्यवाले तुम अरुणा-

चलेशकी अग्निमें शलभताको मत भजो ॥ ७७ ॥ पुरातन समय तपोबलसे शिवजीने तुमको ऐश्वर्य दिया है ॥ ७८ ॥ यहां पर शिवभक्तिवाले धर्मात्माओं का सदा निवास रहता है और पीडासे निवृत्त जनों के रोगका नाश होताहै ॥ ७९ ॥ अन्य से असह्य अमित बल व ऐश्वर्य को पाकर किस लिये अल्पबुद्धि होतेहुये तुम अपने दोषों से नाशको प्राप्तहोगे ॥ ८० ॥ मैं कन्या देखीगई जो फिर कि विशेषतासे अबला (बलहीन) मानी गईहै और भीतर प्राप्त जो अरुणाचलेश हैं वे तुमको मारेंगे ॥ ८१ ॥ अथवा युक्ति के भेदोंसे व शिवसंमत शास्त्रों से निग्रह (दंड) के न योग्य मनवाले तुम अपनी सेनाको लावो ॥ ८२ ॥ बलसे गर्वित तुम जिस

वपूर्वंतपोबलात् ॥ ७८ ॥ अत्रधर्मात्मनांवासः शिवभक्तिमतांसदा ॥ परिपीडानिवृत्तानां भवेद्रोगस्यसंक्षयम् ॥ ७९ ॥ ऐश्वर्यमतुलंप्राप्य बलमन्यदुरासदम् ॥ किमर्थमल्पबुद्धिःसन् स्वदोषैर्नाशमेष्यसि ॥ ८० ॥ अहंकन्यापुनर्दृष्टा विशेषादबलामता ॥ अन्तर्गतोरुणाद्रीशः सएवत्वांहनिष्यति ॥ ८१ ॥ अथवायुक्तिभेदैस्त्वं शास्त्रैर्वाशिवसम्मतैः ॥ अनिग्राह्यमनोवृत्तिरात्मसैन्यंसमानय ॥ ८२ ॥ येनलोकान्समस्तांस्त्वंबाधसेबलगर्वितः ॥ तत्सैन्यंतपसासर्वं क्षणाद्धक्ष्यामितेजसा ॥ ८३ ॥ आनीयसकलंसैन्यमग्रेस्थापयसायुधम् ॥ सद्यःस्वात्मबलैःसृष्टैः संहरिष्यामितत्क्षणात् ॥ ८४ ॥ सस्त्रस्त्रपरिकृत्तस्य ससैन्यस्यतवायुषः ॥ व्यक्तिरत्रैवभविता कोजानातिशिवेहितम् ॥ ८५ ॥ वार्यमाणोपिपूर्वेण कर्मणाप्रेरितोजनः ॥ अवश्यंकर्मकुरुते भुङ्क्तेचसदृशंफलम् ॥ ८६ ॥ तथापिकुरुवाक्यन्त्वं वक्तव्यंकिलसूरिभिः ॥ अकार्यविनिवृत्त्यर्थं नित्यधर्मानुपालनैः ॥ ८७ ॥ इतिगौर्यासमादिष्टांवाचंकपिमुखोमुनिः ॥ दूतःसन्सर्वमाचष्ट महिषस्याग्रतःस्थि

से सब लोकों को पीडित करतेहो उस सब सेनाको मैं क्षणभर में तपस्या व तेजसे जलादूंगी ॥ ८३ ॥ सब अस्त्रों समेत सेनाको लाकर आगे स्थापित करिये मैं शीघ्र ही रचीहुई अपनी सेनाओंसे उसी क्षण उसको संहार करूंगी ॥ ८४ ॥ मेरे शस्त्रों से कटीहुई सेना समेत तुम्हारे आयुर्बल की यहां पर प्रकटता होगी और शिवजी की चेष्टा को कौन जानता है ॥ ८५ ॥ पूर्वकर्मसे प्रेरणा किया मना किया जाताहुआ भी मनुष्य अवश्यही कर्म करताहै व उसीके सदृश फलको भोगताहै ॥ ८६ ॥ तो भी तुम अकार्यसे निवृत्ति के लिये नित्य धर्मपालक विद्वानोंसे कहने योग्य वचन को करिये ॥ ८७ ॥ पार्वतीजी से आज्ञादीहुई इस वाक्य को कपिमुख मुनि

ने दूतहोकर महिषासुरके आगे स्थित होकर सब कहा ॥ ८८ ॥ और उस सबको भलीभांति सुनकर क्रोधके वेगसे विकल उस महिषासुर ने उसको खाने के लिये इच्छाकिया और मायाके बल से वह भी चलागया ॥ ८९ ॥ इसके अनन्तर दुष्ट आशयवाले महिषासुर ने लोकको भयंकर व अस्त्रों समेत तथा सजीहुई अपनी उस सब सेनाको बुलाकर युद्धके लिये आज्ञादिया ॥ ९० ॥ युगान्त में सीमा को छोडकर चारो समुद्रों के समान दैत्यों की अमित सेनाने अरुणाचलको घेरलिया ॥ ९१ ॥ इसके अनन्तर दैत्यों की अद्भुत सेनाको देखकर पार्वतीजी ने तैजस शूरों व बहुत से विकराल भूतगणों को पैदा किया ॥ ९२ ॥ जोकि एक चरण एक

तः ॥ ८८ ॥ सोपिसर्वंसमाकर्ण्य क्रोधवेगसमाकुलः ॥ तंभक्षयितुमारेभे सोपिमायाबलाद्ययौ ॥ ८९ ॥ अथसैन्यंनि जंसर्वं तदाहूयदुराशयः ॥ सन्नद्धंसायुधंयोद्धुमादिशल्लोकभीषणम् ॥ ९० ॥ युगान्तसमयोद्वेलचतुर्जलधिसन्निभम् ॥ दैत्यानांसैन्यमतुलं शोणाद्रिंपर्यवेष्टयत ॥ ९१ ॥ अथगौरीसमालोक्य दैत्यानांसैन्यमद्भुतम् ॥ ससर्जतैजसाञ्छूरा न् घोरान्भूतगणान्बहून् ॥ ९२ ॥ एकपादाक्षिश्रवणालम्बकर्णशिरोधराः ॥ पाणिपादशिरःकुक्षिवक्राःकेचिद्विनि र्गताः ॥ ९३ ॥ अहंग्रसामिसकलमपर्याप्तमिदंमम ॥ अहमेवहनिष्यामि दैत्यसैन्यमशेषतः ॥ ९४ ॥ किंत्वयात्रपुनः कार्यं वीक्ष्यत्वंतिष्ठकेवलम् ॥ अहमेवात्रयोत्स्यामीत्यभाषन्तपरस्परम् ॥ ९५ ॥ तेषांकथयतामेवं गणानांयोगिनी गणैः ॥ आदिशत्सावृता भगवती निहन्तुंदैत्यमण्डलम् ॥ ९६ ॥ आलोक्यतांतथारूपामायान्तींतस्यसैनिकाः ॥ दर्शय न्तःस्ववीर्याणि स्वामिनोग्रेधृतायुधाः ॥ ९७ ॥ ववृषुःशस्त्रवर्षाणि दैत्याःप्रतिदिगन्तरम् ॥ बाणैःकार्मुकनिर्मुक्तैस्त

लोचन व एक कर्णवाले तथा लंबे कान व ग्रीवावाले व कोई टेढे हाथ, पाव, मस्तक व कुक्षि (कोखि) वाले निकले हैं ॥ ९३ ॥ मैं सब को खाजाऊंगा और यह सेना मुझको पूर्ण नहीं है व मैं ही सब असुरसेनाको नाश करूंगा ॥ ९४ ॥ फिर तुमको यहां क्या करना चाहिये केवल देखकर तुम खडेरहो मैं ही इसमें युद्ध करूंगा इस प्रकार से आपस में कहते थे ॥ ९५ ॥ इसप्रकार कहते हुये उन गणों को योगिनीगणों से घिरीहुई उन भगवती ने दैत्यमण्डल को मारने के लिये आज्ञादिया ॥ ९६ ॥ वैसे रूपवाली उन आती हुई सेना को देखकर अस्त्रों को धारे व स्वामीके आगे अपने पराक्रम को दिखाते हुये उस महिषासुर की सेनावाले दैत्यो

ने ॥ ६७ ॥ दिगन्तरों के सामने शस्त्रवृष्टिको बरसाया और उन भगवती ने धनुष से छूटेहुये बाणों से उन अस्त्रों को निवारण किया ॥ ६८ ॥ दुर्गाजीसे रचे
हुये भूत वेतालों के भेदवाले वीरों ने लाखों करोड़ व रथ, हाथी व घोड़ों समेत युद्धकिया॥ ६६ ॥ अनेक भांति के आकारवाली माता डाकिनी व योगिनी के गणों को
रचा फिर तैजस पिशाच,प्रेत व राक्षसोंको रचा ॥१००॥ देवीजीसे रचीहुई दुर्जेय सेना से बड़े भारी दैत्य क्षणभर में भक्षित हुये व पीस डाले गये व दोखंड किये गये व
फाड़ डाले गये तथा मारे गये ॥ १ ॥ व समस्त दैत्योंने जलतीहुई व अस्त्रों समेत देवीजी को देखा जो कि मांससे भलीभांति प्रसन्न कराये हुये भक्त भूतगणों से घिरी

निसातुन्यवारयत् ॥ ९८ ॥ रथानांवारणेन्द्राणां हयानांलक्षकोटिभिः ॥ युयुधुर्भूतवेतालभेदाःसृष्टास्तुदुर्गया ॥ ९९ ॥
मातरोविविधाकारा डाकिन्योयोगिनीगणाः ॥ सृष्टाश्चतैजसाभूयः पिशाचाःप्रेतराक्षसाः ॥ १०० ॥ देव्यासृष्टेनसै
न्येनदुर्जयेनमहासुराः ॥ भक्षिताश्चूर्णिताभिन्ना दारितानिहताःक्षणात् ॥ १ ॥ देवीञ्चसायुधांदृष्ट्वा ज्वलन्तींनिखि
लासुरैः ॥ वृताभूतगणैर्भक्तैर्मांसैश्चैवसुतोषितैः ॥ २ ॥ यदाकैलासशिखरात् प्राप्ताकर्तुंतपोवनम् ॥ तदासमागताःका
श्चिन्मातृकाइहगुप्तये ॥३॥ दुन्दुभिःसत्यवत्याख्या तथाचान्नवतीपुरा ॥ सुन्दरीतिचतस्रस्तामन्वयुःपरिचारिकाः ॥ ४ ॥
देव्यासृष्टाचचामुण्डा दंष्ट्रावलयभीषणा ॥ दैत्यमज्जावसामांसं रक्तंपीत्वाचचारसा ॥ ५ ॥ असुरंकञ्चिदाक्रम्य
शूलाग्रेणातिभीषणम् ॥ स्फुरन्तमधितिष्ठन्ती ननर्तहसितैर्भृशम् ॥ ६ ॥ हतदैत्यशरीरमुण्डखण्डप्रतिबद्धातिनवा

थीं ॥२॥ जब कैलासके शिखरसे तपस्या करने के लिये भगवती वनको प्राप्तहुईं थीं तब यहा रक्षा करनेके लिये कोई मातृका भलीभांति आईथीं ॥३॥ पुरातनसमय दुंदुभि
व सत्यव्रती नामक तथा अन्नव्रती, सुंदरी वे चार दासियां इनके पीछे आईथी ॥४॥ व देवीजी से रचीहुई दाढ़ोंकी पंक्तियोंसे भयंकर वे चामुण्डाजी दैत्यों की मज्जा, वसा
मांस व रक्त को पीकर घूमतीथीं ॥ ५ ॥ और त्रिशूलके अग्रभाग से अत्यन्त भयंकर व फरकते हुये किसी दैत्य को आक्रमण कर ऊपर सवार हुई व बहुत हास्यपूर्वक
नाचने लगीं ॥ ६ ॥ मारे हुये दैत्यों के शरीर व मुण्डके खण्डों से बँधेहुये अत्यन्त नवीन अंगभूषणोंवाले तथा भयंकर योगिनियों के नृत्य ने महिषासुर की क्रोधाग्नि

को जलाया ॥ ७ ॥ अत्यन्त तीक्ष्ण व फैलाये हुये चञ्चल नेत्रोंवाला और जलतीहुई अग्निकी ज्वाला के समान लम्बी जिह्वा के चलाने से घाव संयुत गुहा के समान नासिकावाला महिषासुर चलते हुये सींगों के अग्रभागसे मेघसमूहों को फाड़ रहाथा ॥ ८ ॥ व बारम्बार खुरों की चोट से भूमि को फाड़ते हुये उसने धूलियों से दिगतों को आच्छादित किया व बहुतही घर्घर बडेभारी भयंकर शब्दसे फूटते हुये अण्डकटाहके भ्रमसे सुरसमूहों को मोहित करदिया ॥ ९ ॥ कंपित पूंछ के दण्ड से अरुणाचल के सामने शस्त्रवृष्टि के समूह को ताड़ित करताहुआ वह सेना समेत शीघ्रही सिंह पै बैठी हुई दीप्तिमती दुर्गाजी के सामने गया ॥११०॥

ङ्गभूषणम् ॥ नटनंविकटन्तुयोगिनीनां ज्वलयामासललायकोपवह्निम् ॥ ७ ॥ अतितीव्रविवृत्ततीक्ष्णनेत्रश्चलशृङ्गाग्र विभिन्नमेघजालः ॥ ज्वलदग्निशिखाभदीर्घजिह्वापरिलीढक्षतगह्वराभघोणः ॥ ८ ॥ अवनिंदलयन्खुराभिघातैरस कृतपांशुभिरास्तृणद्दिगन्तान् ॥ अतिघर्घरदीर्घघोरनादस्फुटदण्डभ्रममोहितामरौघः ॥ ९ ॥ धुतबालधिदण्डता ड्यमानप्रतिशोणाचलशस्त्रवर्षसङ्घः ॥ द्रुतमभ्यगमद्बलेनसार्द्धंमृगराजस्थितभासुरांभवानीम् ॥ ११० ॥ इति श्रीस्क न्दपुराणेऽरुणाचलमाहात्म्येदशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ब्रह्मोवाच ॥ सतुसिंहस्थितांगौरीं ज्वलन्तींविविधायुधाम् ॥ शैलवर्षेणमहताकुपितःसमपूरयत् ॥ १ ॥ शरवर्षेणमहता तन्निवार्याविदूरतः ॥ बिभेदानिशितैःशस्त्रैर्महिषस्यतुविग्रहम् ॥ २ ॥ भिद्यमानोपिदैत्येन्द्रः शैलस्थूलवपुर्धरः ॥ विषा

इति श्रीस्कन्दपुराणेऽरुणाचलखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांमहिषासुरदेवीयुद्धवर्णननामदशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो॰ । जिमि महिषासुर दैत्य को हन्यो पारवति देवि। गेरहवें अध्याय में सोइ कथा सुखसेवि ॥ ब्रह्माजी बोले कि क्रोधित होकर उस महिषासुर ने अनेक भांति के अस्त्रोंवाली व जलती हुई तथा सिंहपै स्थित पार्वतीजी को बड़ीभारी पर्वतों की वृष्टिसे पूर्ण करदिया ॥ १ ॥ और भगवती ने अपने बाणोंकी बड़ी भारी वृष्टि से उस शैलवृष्टिको दूरही से वारण कर पैने बाणों से महिषासुर के शरीरको भेदन किया ॥ २ ॥ भेदन कियाजाता हुआ भी पर्वत के समान मोटे शरीर को धारण किये व

युद्ध में दुर्मद महिषासुर कुछ विषाद को न प्राप्तहुआ किन्तु बढ़ता भया ॥ ३ ॥ तलवार, चक्र व बाणवृष्टि, त्रिशूल तथा अन्य अस्त्रों से काटा जाता हुआ वह अन्त-र्द्धान को प्राप्तहुआ ॥ ४ ॥ तदनन्तर प्रचण्ड शब्द मुखवाला, भयंकर, तीखीदाढ़ोंवाला व पैने नखोंवाला सिंहाकार महिषासुर सिंह सब ओर घूमनेलगा ॥ ५ ॥ देवी जी के सिंहने समरमें दैत्यको चपेटे से मारा व उस दैत्यरूपी सिंहके वक्षस्थल को नखों से फाड़डाला ॥ ६ ॥ इसके अनन्तर खुले व फैलाये हुये बड़ेभारीमुख-वाला बड़ाभारी दैत्य व्याघ्रता को प्राप्त हुआ व बलसे उन देवीजी को मारने की इच्छा करते हुये दैत्यने वेगसे हाथ को चलाया ॥ ७ ॥ बड़ी लम्बी नील

दन्नागमत्किञ्चिद्ववृधेयुद्धदुर्मदः ॥ ३ ॥ भिद्यमानःसखड्गेनचक्रेणशरवृष्टिभिः ॥ शूलेनचायुधैश्चान्यैरन्तर्द्धानमगाद
तः ॥ ४ ॥ ततःसिंहाकृतिर्भीमः प्रचण्डनिनदाननः ॥ तीक्ष्णदंष्ट्रःशितनखः परिबभ्रामकेसरी ॥ ५ ॥ देवीसिंहोरणे
दैत्यं ताडयामासपाणिना ॥ दैत्यसिंहस्यचनखैस्तस्यवक्षोऽप्यदारयत् ॥ ६ ॥ अथव्याघ्रतयाप्राप्तस्फुटव्यात्ताननो
महान् ॥ तांवधिष्यन्बलाद्देवीं वेगेनकरमाक्षिपत ॥ ७ ॥ दीर्घाभिर्नीलरेखाभिः पूर्णपिङ्गलविग्रहः ॥ रोमावलिभिरासी
त्सस्वर्णाद्रिरिवसञ्चरन् ॥ ८ ॥ आगच्छन्तंरयाद्देवीभल्लेनशशिवर्चसा ॥ प्रतिजग्राहतंव्याघ्रं पुरत्रयमिवेश्वरः ॥ ९ ॥
सबाणस्तन्मुखेमग्नस्तद्रक्तेनसमुक्षितः ॥ जगामगगनंभित्त्वा दैत्यंशीघ्रमुपागतः ॥ १० ॥ सदैत्योवारणेन्द्रस्य रूपं
कृत्वासमभ्यगात ॥ बलिभिःपशुभिर्भिन्नैस्तस्याःप्रीतिमिवादधे ॥ ११ ॥ तंगजेन्द्रंसमायान्तं मदाक्लिन्नमहीत
लम् ॥ देवीसिंहस्तदादृष्ट्वा ननर्दचजघानच ॥ १२ ॥ अथखड्गधरोवीरश्चर्मपाणिःसमुद्धतः ॥ वक्रंदधानोबभ्रामदं

रेखाओं से पूरित पिंगल शरीरवाला वह चलताहुआ रोमपंक्तियों से सुवर्णाचलकी नाईं शोभित हुआ ॥ ८ ॥ वेग से आतेहुये उस व्याघ्रको देवीजीने चन्द्रमा के समान तेजवाले बाणसे मारा जैसे कि सदाशिवजीने त्रिपुर को विनाश कियाहै ॥ ९ ॥ उसके मुख में डूबाहुआ वह बाण उसके रक्तसे भीगकर आकाशको चलागया और दैत्य को विदीर्णकर शीघ्रही आगया ॥ १० ॥ और वह दैत्य हाथीका रूपकर सामने प्राप्तहुआ उसने मानो कटेहुये बलिवाले पशुओंसे उन भगवती की प्रीति किया ॥ ११ ॥ मदसे पृथ्वी को भिगोते आते हुये उस गजेन्द्र को देखकर देवीजीका सिंह उस समय गरजा व उसने मारा ॥ १२ ॥ इसके अनन्तर तलवारको धारे व दाढ़ों

तथा भौंहों से भयानक मुख को धारण किये हुये ढाल को हाथ में लिये वह गर्वित वीर घूमने लगा ॥ १३ ॥ और कमल, तलवार, ढाल व चक्र से शोभित हाथवाली देवी ने उस वीरसे युद्धकिया व टूटे हुये शिरवाला वह वीर मरगया ॥ १४ ॥ और फिर बड़ी मायासे भैंसे के रूप में स्थित होकर पहले की नाईं विकल वह महिषासुर दैत्य देवीजी से युद्ध करने के लिये प्रवृत्तहुआ ॥ १५ ॥ इसके अनन्तर देवताओं व मुनीश्वरों से प्रेरित गौतम मुनिने स्तुतियों से जगदम्बिकाजीको प्रबोधकरनेके लिये प्रारंभ किया ॥ १६ ॥ कि समस्त संसार की उत्तम प्राणशक्ति तुममें मानी गई है व ज्ञानशक्ति, क्रियाशक्ति व बलशक्ति तुम से प्राप्त होती है ॥ १७ ॥ यह

ष्ट्राभ्रुकुटिभीषणम् ॥१३॥ देवीचजलजंखड्गचर्मचक्रलसत्करा ॥ युयोधतेनवीरेणभग्नशीर्षोऽप्यपद्यत ॥१४॥ भूयःसमा हिषंरूपमास्थायगुरुमायया ॥ देव्यायोद्धुंप्रवृत्तश्च यथापूर्वंसमाकुलः ॥ १५ ॥ अथदेवैर्मुनीन्द्रैश्च चोदितोगौतमोमु निः ॥ प्रबोधयितुमारेभे स्तुतिभिर्जगदम्बिकाम् ॥ १६ ॥ त्वयिसर्वस्यजगतः प्राणशक्तिःपरामता॥ज्ञानशक्तिःक्रिया शक्तिर्बलशक्तिश्चगम्यते ॥ १७ ॥ किमेतदधमःपापो युद्धमारभतेत्वया ॥ उपसंह्रियतामेष दैत्योभुवनगुप्तये ॥ १८ ॥ भिन्नानामस्यदेहानामुपसंहरणात्तव ॥ बलयश्चोपदिश्यन्ते निगमोक्तावरप्रदाः ॥ १९ ॥ अन्यथातृणकल्पस्य श त्रोरस्यनिबर्हणे ॥ कलानिवर्धतोदेवि बिभर्तिसंभ्रमंजगत ॥ २० ॥ स्वशक्तिमुपतिष्ठन्ती समाकर्षयतवैरिपोः ॥ प्राण शक्तिंत्रिशूलेन गुणत्रयवपुर्भृता ॥ २१ ॥ इतिस्मबोधितातेन पुराभगवतीतदा ॥ महिषासुरमाक्रम्य त्रिशूलेनाभ्यदा रयत् ॥२२॥ अनेकगिरिसंकाशं दधौविग्रहमात्मनः॥अशक्नोन्नधारयितुं ससादमहिषासुरः ॥ २३ ॥ निष्पिष्टोविल

क्याहै कि जो नीच व पापी यह महिषासुर तुमसे युद्धका प्रारंभ करताहै संसार की रक्षाके लिये इस दैत्य को संहार कीजिये ॥ १८ ॥ इसकी कटीहुई देहों के संहार से वेदोक्त व वरदायक बलियां तुमको उपदेश कीजाती हैं ॥ १९ ॥ अन्यथा हे देवि ! कलाओं को बढ़ाते हुये इस तिनुका के समान शत्रुके मारने में संसार संभ्रम को धारण करता है ॥ २० ॥ अपनी शक्ति में स्थित होतीहुई त्रिगुण शरीर को धारे हुई तुम त्रिशूलसे शत्रुकी प्राणशक्ति को खींचो ॥ २१ ॥ उस समय पहले उन गौतम जी से इस प्रकार बोध कराई हुई भगवती ने महिषासुर को आक्रमण कर त्रिशूल से फाड़डाला ॥ २२ ॥ व अनेक पर्वतों के समान अपने शरीर को धारण किया

उसको धारण करने के लिये वह महिषासुर समर्थ न हुआ और मरगया ॥ २३ ॥ चरणों से दबा व पिसा हुआ असुरेश महिषासुर विलाप करता व वि-
फरकताहुआ शिरको उठाकर निकलने के लिये न समर्थ हुआ ॥२४॥ भूत, वेताल व राक्षसोंसे त्रिशूल करके भिन्न मुख व अंगोंवाला वह महिषासुर रक्तके धारा
समुद्र की नाईं होगया ॥ २५ ॥ इसके अनन्तर महिषासुर को मारनेवाली उसके शिरपै बैठीहुई भगवती ने पैनी तलवार से बड़ेभारी शिरको काटडाला व नृत्य
किया ॥२६॥ और सिद्ध, गंधर्व व महर्षिलोगों ने दुर्गाजीकी प्रशंसा किया व सब ओर देवताओं से छोड़ीहुई बड़ी पुष्पवृष्टिहुई ॥२७॥ और विकलतारहित सब त्रिलोकी

पन्क्रोशन् पदाक्रान्तःपरिस्फुरन् ॥ निर्गन्तुमुद्धतशिरानशशाकासुराधिपः ॥ २४ ॥ त्रिशूलमुखभिन्नाङ्गो रक्तधारा
समुद्रमैः ॥ समुद्रइवसञ्जातो भूतवेतालराक्षसैः ॥२५॥ अथखड्गेनतीक्ष्णेन चकर्तविपुलंशिरः ॥ ननर्ततस्यशिरसिति
ष्ठन्तीमहिषार्दिनी ॥ २६ ॥ दुर्गांसिद्धाश्चगन्धर्वाः प्रशशंसुर्महर्षयः ॥ पुष्पवृष्टिश्चमहती देवैर्मुक्तासमन्ततः ॥२७॥ प्रका
शमभवत्सर्वं जगत्त्रयमनाकुलम् ॥ ग्रहावैमानिकादेवास्तुष्टुवुश्चाप्सरोगणाः ॥ २८ ॥ अथशक्रःसमागत्य लोकपालैः
समन्वितः ॥ प्रणतःप्राञ्जलिर्देवीं तुष्टावमुदिताशयः ॥२९॥ नमस्तेजगतांमात्रेभूतानांबीजसंविदे ॥ भक्तिःश्रद्धाचभ
जतामभक्तिश्चासिवैनृणाम् ॥ ३० ॥ करुणापरमाकीर्त्तिःशान्तिर्दान्तिःक्षमा ॥ एकैवविश्वरूपात्वं नामभेदैर्निगद्य
से ॥ ३१ ॥ तेषुतेषुपदेष्वस्मांस्तपोनुगुणसिद्धिषु ॥ नियुज्यशत्रुंनिभिद्य शिवाज्ञेवप्रकाशसे ॥ ३२ ॥ अद्यतेमहिषोद्भ

प्रकाशित हुआ और ग्रह व विमानपर चढ़े हुये देवता तथा अप्सराओं के गणों ने भगवती की स्तुति किया ॥ २८ ॥ इसके अनन्तर लोकपालों से संयुत प्रसन्नचित्त
वाले इन्द्र ने आकर हाथोंको जोड़ प्रणामकर देवीजी की स्तुति किया ॥ २९ ॥ कि लोकोंकी माता तुम्हारे लिये नमस्कारहै व प्राणियों के बीज नाम के लिये न-
मस्कार है भजते हुये पुरुषों की तुम भक्ति व श्रद्धाहो और मनुष्यों की अभक्ति भी हो ॥३०॥ उत्तम दया, कीर्ति, शान्ति, दान्ति, क्षमा व क्षमा तुम्ही हो व संसार-
रूपिणी तुम एकही नाम भेदों से कही जातीहो ॥३१॥ उन उन तपस्या के अनुसार सिद्धियोंवाले स्थानों में हमलोगों को युक्त कर व शत्रुको नाशकर शिवजीकी आज्ञा

की नाईं प्रकाशित हो ॥ ३२ ॥ हे शिवे ! आज तुमने दुष्ट महिषासुरको काटडाला और इसका कटाहुआ मस्तक सजीव की नाईं देख पड़ता है ॥ ३३ ॥ अरुणनेत्रों वाले तथा पैने सींगोंवाले व जलती हुई जिह्वा से चंचल शिरको दबाकर टिकीहुई तुम्हारा ऐसाही रूप सदैव होवै ॥ ३४ ॥ चक्र, शृंग, धनुष, बाण, तलवार, ढाल, वर, अभय, शूल, घंटा, अंकुश, चाबुक, कपाल व वज्रादिक ॥ ३५ ॥ समस्त देवास्त्रों से तुम सब देवताओं की मूर्तिहो हे माता ! परिपूर्ण होती हुई तुम हमलोगों के सब शत्रुओं को मारती हो ॥ ३६ ॥ हज़ारों तन्मय अस्त्र व ऐश्वर्य हैं और तुमने अस्त्रों समेत व सवारियों सहित समस्त शत्रुओं को जीतलिया ॥ ३७ ॥ रथ, हाथी

ष्टो विनिकृत्तश्चशाम्भवि ॥ छिन्नमेतस्यतुशिरः सजीवमिवलक्ष्यते ॥ ३३ ॥ रक्तनेत्रंतीक्ष्णशृङ्गं ज्वलज्जिह्वाचलं शिरः ॥ आक्रम्यतवतिष्ठन्त्या रूपमेवसदास्तुनः ॥ ३४ ॥ चक्रशृङ्गधनुर्बाणखड्गचर्मवराभयैः ॥ शूलघण्टाङ्कुशकशाकपालकुलिशादिभिः ॥ ३५ ॥ अशेषदेवतामूर्तिरशेषैर्देवतायुधैः ॥ आपूरितात्वमेवाम्ब सर्वशत्रून्निहंसि नः ॥ ३६ ॥ आयुधानांसहस्राणि तन्मयानिविभूतयः ॥ त्वज्जितारातयःसर्वे सहायुधसवाहकाः ॥ ३७ ॥ रथनागहयैर्युक्ताः ससैन्याअपिभूभृतः ॥ क्षणेनदग्धवीर्याःस्युस्त्वत्प्रसादविवर्जिताः ॥ ३८ ॥ अल्पदोप्यल्पवीर्योवात्वत्पादाम्बुजसेवकः ॥ त्रिलोकनाथतांप्राप्तः प्राप्यतेकीर्त्तिरुत्तमा ॥ ३९ ॥ त्वद्रूपमिदमत्युग्रं ध्यायतामर्चतांसदा ॥ नशत्रुभ्यो भयंकिंञ्चिद्भवेद्विजयशालिना ॥ ४० ॥ ईदृशंसर्वलोकेषुरूपंतेदैवषन्दितम् ॥ पूज्यतामिष्टसिद्ध्यर्थं देवैर्मर्त्यैश्चसर्वदा ॥ ४१ ॥ मातरश्चत्वयासृष्टाः सर्वाभीष्टफलप्रदाः ॥ सगणाःप्रतिपूज्यन्तां सर्वस्थानेषुसर्वदा ॥ ४२ ॥ अयञ्चनिहतो

व घोडों से संयुत तथा सेना समेतभी राजा लोग तुम्हारी प्रसन्नता से रहित होकर क्षणभर में जलेहुये बलवाले होतेहैं ॥ ३८ ॥ थोड़ा देनेवाला व थोड़े बलवाला भी तुम्हारे चरणकमलों का सेवक पुरुष त्रिलोक की स्वामिता को प्राप्त होता है और उत्तम कीर्ति को प्राप्तहोताहै ॥ ३९ ॥ तुम्हारे इस अत्यन्त भयंकर रूपको सदैव ध्यान करते व पूजते हुये विजयसे शोभित मनुष्यों को शत्रुवों से कुछ भय नहीं होता है ॥ ४० ॥ देवताओंसे प्रमाण किया हुआ तुम्हारा ऐसा रूप सदैव सब लोकों में प्रिय कार्यकी सिद्धि के लिये देवताओं व मनुष्यों से पूजा जावै ॥ ४१ ॥ और तुमसे रची हुई सब मनोरथों को देनेवाली मातृकागणों समेत सदैव समस्त स्थानों में पूजी

जावै ॥ ४२ ॥ और तुम्हारे चरणों से किये हुये चिह्नवाला यह मारा हुआ दैत्य तुम्हारे प्रसादसे तुम्हारे आगे तुम्हारे भक्तों से सदैव पूजनीय है ॥ ४३ ॥ इसप्रकार समस्त
ऋषियों व देवताओं से सेवित तथा प्रणाम किये सुरेश से वैसाही होवै यह कहकर वरदायिनी देवीजीने स्वर्ग को बिदा किया ॥ ४४ ॥ व आप प्रसन्नमुखी व विविध
अस्त्रों से उस रूपवाली मूर्ति को मातृकाओं समेत भलीभाति थाप कर स्थान की रक्षा किया ॥ ४५ ॥ निर्मलरूप को ग्रहणकर सखीजनों से घिरीहुई देवीजीने तल-
वारकी धारसे कटे हुये महिषासुर के मस्तक को देखा ॥ ४६ ॥ फिर विश्वभयंकर उसके पराक्रम को कहतीहुई उन बाला दुर्गाजी ने सखियों समेत उसके कंठको

दैत्यस्त्वत्पादकृतलाञ्छनः ॥ तवभक्तैःसदापूज्यस्त्वत्प्रसादात्त्वदग्रतः ॥ ४३ ॥ इत्थंसुरेन्द्रंप्रणतं सर्वर्षिसुरसेवित-
म् ॥ तथेतिवरदादेवी ससर्जचदिवम्प्रति ॥ ४४ ॥ स्वयंचहृष्टवदनां तद्रूपांविविधायुधैः ॥ संस्थाप्यमातृभिःसार्द्धं
स्थानरक्षणमातनोत् ॥ ४५ ॥ संगृह्यविमलंरूपं सखीजनसमावृता ॥ महिषस्यशिरोपश्यद्धिकृत्तंखड्गधारया ॥ ४६ ॥
कथयन्तीपुनस्तस्य विक्रमंलोकभीषणम् ॥ सखीभिःसहसाबाला कण्ठंतस्यव्यलोकयत् ॥ ४७ ॥ अपश्यच्चतदालि-
ङ्गंशिवस्यैतेनपूजितम् ॥ आदत्तसहसागौरी लिङ्गंतस्यगलेस्थितम् ॥ ४८ ॥ आलोक्यचसुचिरं रक्तधारापरिप्लुतम् ॥
आसज्जतपुनर्लिङ्गमस्याःपाणितलागतम् ॥ ४९ ॥ विमोचयितुमुद्युक्ता नाशक्नोल्लग्नमञ्जसा ॥ अचिन्तयच्चसादेवी
किमेतदितिविस्मयात् ॥ ५० ॥ विषादेनचसंयुक्ता महर्षीणांपुरःस्थिता ॥ आहतंशिवभक्तोयमितिशोकंसमाविशत् ॥ ५१ ॥
अगर्हतभृशंतावद्धिग्धिङ्मनःस्त्रीस्वभावजम् ॥ अविचारसमारब्धं शिवभक्तनिबर्हणम् ॥ ५२ ॥ अनुतापपरीताङ्गी गौ-

देखा ॥ ४७ ॥ और इस महिषासुरसे पूजित शिवलिंग को उस समय पार्वतीजी ने देखा व अचानकही उसके कंठमें स्थित लिंग को ग्रहण किया ॥ ४८ ॥ और रक्तकी
धारामें डूबे हुये लिंगको बहुत देरतक देखा फिर इनके हाथमें आयाहुआ वह लिंग चिपटगया ॥ ४९ ॥ और उद्योग करतीहुई पार्वतीजीने साक्षात् चिपटे हुये लिंगको
छुड़ाने के लिये न समर्थ हुई और महर्षियों के आगे स्थित उन पार्वतीजीने विषाद संयुत होकर विस्मयसे यह चिन्तन किया कि यह क्या है मैंने इस शिवभक्तको
मारडाला इस कारण भगवती शोक में प्राप्त हुई ॥ ५० । ५१ ॥ और बहुतही निन्दा किया कि स्त्रीके स्वभावसे उपजे हुये मनको धिक्कारहै क्योंकि बिन विचारे शिव-

भक्तके नाशका प्रारंभ कियागया ॥ ५२ ॥ पश्चात्तापसे घिरे हुये अंगोवाली पार्वतीजीने मुनिश्रेष्ठ गौतमजीके समीप जाकर अपना से किये हुये साहस कर्मको कहा कि ॥ ५३ ॥ हे समस्त धर्मोंके जाननेवाले, भगवन्, आर्य, मुनिनायक गौतमजी ! मानने योग्य मैंने धर्मरूप करके किसी अधर्म को किया ॥ ५४ ॥ शरणमें विकल देवताओं को अभय देनेके लिये उद्यत मैने अज्ञान से शिवभक्त महिष देवको मर्दन किया ॥ ५५ ॥ रजोगुण से आक्रान्त बुद्धिवाले मनुष्यों के धर्मका संग्रह नही होताहै और स्फुटित सैकड़ो विघ्नोंसे सयुत गुरुका प्रसाद सुलभहै ॥ ५६ ॥ आचार सहित व आचारहीन जो दुष्ट मदवाले शिवजी के आश्रित व विशेषकर शिवलिंग-

तमंमुनिसत्तमम् ॥ उपगम्याब्रवीद्बाला साहसंकृतमात्मना ॥ ५३ ॥ भगवान्सर्वधर्मज्ञ गौतमार्यमुनीश्वर ॥ मान्य याधर्मरूपेण कोप्यधर्मःप्रकल्पितः ॥ ५४ ॥ देवानांशरणार्त्तानामभयंदातुमुद्यता ॥ अज्ञानान्महिषंदेवं शिवभक्तममर्दयम् ॥ ५५ ॥ रजसाक्रान्तबुद्धीनां नभवेद्धर्मसंग्रहः ॥ गुरुप्रसादःसुलभः स्फुरद्विघ्नशताकुलः ॥ ५६ ॥ साचारावा निराचारा दुर्मदाःशिवसंश्रयाः ॥ विशेषतोलिङ्गधराःशिवस्तान्बहुमन्यते ॥ ५७ ॥ पुरापुरत्रयावासा दैतेयालिङ्गधारकाः ॥ अज्ञाताःशम्भुनापूर्वं मुक्तलिङ्गानिषूदिताः ॥ ५८ ॥ अस्यकण्ठस्थितंलिङ्गं ममपाणिंनमुञ्चति ॥ कथंपापंनिरस्यामिशिवभक्तवधाश्रयम् ॥ ५९ ॥ अस्यकण्ठस्थितंलिङ्गंधारयन्तीतपोन्विता ॥ तीर्थयात्रांकरिष्यामि यावच्छम्भुः प्रसीदति ॥ ६० ॥ पुनःकैलासमुख्येषु शम्भुस्थानेषुभूरिषु ॥ तीर्थेषुरचितस्नाना लप्स्येपापविशोधनम् ॥ ६१ ॥ इति तस्याःपरिश्रान्तिं दुर्धर्मपरिशङ्कया ॥ आकर्ण्यशिवधर्मज्ञोभयार्तांतामवोचत ॥ ६२ ॥ माभैषीर्गिरिजेमोहाच्छिव

धारी हैं उनको सदाशिवजी बहुत मानते है ॥ ५७ ॥ पुरातन समय त्रिपुरके बसनेवाले लिंगधारी दैत्य लोग पहले शंभुसे नहीं जानेगये फिर वे च्युत लिंग होकर मारेगये ॥ ५८ ॥ इसके कंठका स्थित लिंग मेरे हाथको नही छोड़ताहै मैं शिवभक्त वध के आश्रयवाले पापको कैसे नाशकरूं ॥ ५९ ॥ इसके कंठस्थ लिंगको धारण करती हुई तपस्या से संयुत मैं तबतक तीर्थयात्रा करूंगी कि जबतक सदाशिवजी प्रसन्न होवैंगे ॥ ६० ॥ फिर जिन में कैलास मुख्य है उन बहुत से शिवस्थानों व तीर्थों में स्नान करती हुई मै पातक की शुद्धि को पाऊंगी ॥ ६१ ॥ इसप्रकार अधर्मकी शंकासे उन पार्वतीजी की विकलता को सुनकर शिवधर्मके जाननेवाले गौतम

जी डर से विकल उन पार्वतीजीसे बोले ॥ ६२ ॥ कि हे गिरिजे ! अज्ञानसे शिवभक्त मारागया इस कारण तुम मतडरो क्योंकि हे गिरिकन्यके ! धर्मके सूक्ष्मार्थको
जाननेवाले प्राणी दुर्लभहैं ॥ ६३ ॥ सद्योजातादिकों में आश्रित सदाशिवजीके पांच मुखों से अट्ठाईस करोड़ आगम (शास्त्र) कहे गये हैं ॥६४ ॥ शिवमार्ग में प्रवृत्ति
से शिवभक्तों का निर्णय होताहै व उन के आपस में शिव में तत्पर बहुत भेद हैं॥६५॥ और उन उन सब भेदों से एक बलवान् सदाशिवजी साधने योग्यहैं और अपने
धर्म में स्थित जनों से सबही भेद पूजनीय हैं ॥ ६६ ॥ ईर्षारहित शिवभक्त व शिव की आज्ञापालन करनेवाले जनों से तथा वेदों व बहुत यज्ञों से परम भक्ति

भक्तोहतस्त्विति ॥ धर्मसूक्ष्मार्थवेत्तारो दुर्लभागिरिकन्यके ॥ ६३ ॥ सदाशिवस्यवदनैः सद्योजातादिसंश्रितैः ॥ आग
माःपञ्चभिःप्रोक्ता अष्टाविंशतिकोटयः ॥ ६४ ॥ निर्णयःशिवभक्तानां शिवमार्गप्रवर्त्तितः ॥ भेदाश्चबहवस्तेषामन्यो
न्यस्यशिवेरताः ॥ ६५ ॥ साध्यएकोहिबलवान् सर्वैस्तैस्तैःसदाशिवः ॥ सर्वएवसदापूज्याः स्वधर्मपरिनिष्ठितैः ॥६६॥
अमत्सरैःशम्भुभक्तैः शिवाज्ञापरिपालकैः ॥ वेदैश्चबहुभिर्यज्ञैर्भक्त्याचपरयाशिवः ॥ ६७ ॥ आराध्यतेमहादेवः स
र्वदासर्वदायकः ॥ जीवहिंसानकर्त्तव्या विशेषेणतपस्विनि ॥६८॥ शिवधर्मस्यभेत्तारो निहन्तव्यास्तथाञ्जसा ॥ नवे
षमस्यवीक्षेत नलिङ्गंनैवसम्भवम् ॥ ६९ ॥ शिवधर्मस्यभेत्तारं हन्यादेवाविचारयन् ॥ बहुभिःस्फुटयाबुद्ध्या धर्मवि
द्भिर्निरूपिते ॥ ७० ॥ शिवधर्मस्यविषयेसद्यः शक्तिःप्रवर्त्तते ॥ अस्यकर्मपुनर्दृष्टं लिङ्गमैश्वर्यमर्चितम् ॥७१॥ नजेतुंश
क्यतेदेवि तेनासौसर्वदैवतैः ॥ यदयंनिहतोदेवि त्वयाशङ्करभार्यया ॥ ७२ ॥ आक्रान्तःशापदोषेण महर्षीणांशिवाश्र

करके ॥ ६७ ॥ सर्वदायक सदाशिवजी सदैव आराधन किये जातेहैं हे तपस्विनि ! विशेषकर जीवों की हिंसा न करना चाहिये ॥ ६८ ॥ वैसेही शिवधर्म के तोड़ने
वाले पुरुषों को मारना चाहिये इसके वेष, चिह्न व उत्पत्ति को न देखै ॥ ६९ ॥ किन्तु शिवधर्म के भेदक पुरुष को बिन विचारे मारै बहुत धर्मज्ञ जनों से प्रकाशित
बुद्धिके द्वारा निरूपण किये हुये ॥ ७० ॥ शिवधर्मके विषय में शीघ्रही शक्ति वर्तमान होतीहै फिर इसका कर्म व सदाशिवजीका पूजित लिंग देखागया ॥ ७१ ॥ हे देवि !
उसी कारण यह दैत्य सब देवताओंसे नहीं जीता जासक्ताथा हे देवि ! शंकर की स्त्री तुमने जो इसको मारा है ॥ ७२ ॥ वह शिवजी के आश्रय के कारण महर्षियों

के शापके दोषसे घिराथा क्योंकि उसकी दुष्टता से अपमानके कारण क्रोधित होतेहुये उन मुनियों ने ॥ ७३ ॥ यह शापदिया था कि महिष (भैंसे) की नाईं यह दुष्ट महिष होजावे तदनन्तर महातपस्वी वह उनके वचन से उसी क्षण महिष होगया ॥७४ ॥ और प्रणामकर उसने प्रसन्न कराया व शापकी मुक्तिको मांगा तब प्रसन्न कराये हुये उन्होंने इच्छा के अनुकूल रूपको देकर इसके लिये महिष होने परभी शिवजी की आज्ञा से आपही देवीजी से संहार को दिया लिंग के दर्शन से तुमको विषाद (शोच) न करना चाहिये ॥ ७५ । ७६ ॥ क्योंकि शिवरूपी सिद्धोंका अपमान किसको नहीं पीड़ित करताहै स्नेह से प्राप्त महिषत्व उत्पन्न होनेपर ॥ ७७ ॥

यात ॥ यतस्तेकुपितास्तस्य दौरात्म्यादपमानतः ॥ ७३ ॥ शेपुर्महिषवद्दुष्टो महिषोयंभवत्विति ॥ ततस्तद्वचनात्सद्यो महिषोभून्महातपाः ॥ ७४ ॥ प्रणम्यतोषयामास ययाचेशापमोचनम् ॥ दत्त्वाप्रकामरूपत्वं ददुरस्मैप्रमादितः ॥ ७५ ॥ महिषत्वेपिसंहारः स्वयंदेव्याशिवाज्ञया ॥ विषादोनचकर्त्तव्यो लिङ्गदर्शनतस्त्वया ॥ ७६ ॥ सिद्धानांशिवरूपाणामवज्ञाकंनबाधते ॥ महिषत्वेसमुत्पन्ने रागेणसमुपस्थिते ॥ ७७ ॥ सिद्धप्रसादलब्धोयं शापनाशस्त्वयाकृतः ॥ सर्वेलोकाश्चसंतप्ता नष्टेस्मिन्परिरक्षिताः ॥ ७८ ॥ शापदोषसमुत्पन्ने महिषत्वेविमोचिते ॥ त्वयाचगिरिशप्रीत्यै तपः कुर्वाणयाद्रिजे ॥ ७९ ॥ द्रष्टव्यंतैजसंलिङ्गमरुणाचलसंज्ञितम् ॥ पूर्वजन्मनिभक्तोयमरुणाद्रिपतेःस्फुटम् ॥ ८० ॥ महिषत्वेमदाक्रान्तः परलिङ्गेनसङ्गतः ॥ भक्त्यालिङ्गधरंहन्तुं कःसमर्थोजगत्त्रये ॥ ८१ ॥ दृष्टाःपुरत्रयेपूर्वं शैवाश्चपूजितास्त्रयः ॥ त्वत्खड्गपरिक्रन्तेन कण्ठेनास्यवरानने ॥ ८२ ॥ दीक्षयारहितंलिङ्गं धृतंहन्त्रीतिचोदितम् ॥ अनेनमहिषे

तुमने सिद्धो की प्रसन्नता से मिले हुये इस शापको नाश कियाहै और इसके नाशहोनेपर बहुत संतापित सब लोक रक्षा किये गये ॥ ७८ ॥ हे गिरिजे ! शापके दोष से उत्पन्न महिपत्व के छुड़ाने पर शिवजी की प्रीति के लिये तप करती हुई तुमको ॥ ७९ ॥ अरुणाचल सञ्ज्ञक तैजस लिंग देखना चाहिये पूर्व जन्म में यह प्रगटही अरुणाचलेश का भक्त हुआहै ॥ ८० ॥ और महिपत्व में मदसे घिराहुआ यह उत्तम लिंग से संयोगको प्राप्तहुआहै भक्तिसे लिंगधारक प्राणीको मारनेके लिये त्रिलोक में कौन समर्थ है ॥ ८१ ॥ पुरातन समय त्रिपुरमें पूजेहुये तीन शैव देखे गये हैं हे वरानने ! तुम्हारी तलवार से काटे हुये इसके कंठसे ॥ ८२ ॥ दीक्षारहित लिंग धारण

क्रियागया था इसलिये इस महिषासुर से यह प्रेरणा कीगई कि दीक्षारहित लिंग नाशकरताहै और भक्ति से लिंग को धारनेवाला प्राणी ॥ ८३ ॥ कभी शिवभक्तों
के मध्य में विभास (प्रकाश) से ज्ञानको प्राप्त होताहै और लिंग धारण से पूर्व जन्म के तप के संयोग से स्मरण रहताहै ॥ ८४ ॥ तुम्हारे चरणकमल के स्पर्श से
यह निस्सन्देह मुक्त होगया समस्त प्रायश्चित्तों व अग्नियोंके मध्यमें भयंकर ॥ ८५ ॥ अरुणाचल का दर्शन उत्तम प्रायश्चित्त माना गयाहै शिवसिद्धान्तों के भेद से
अनेक भांति के धर्मों को भलीभांति थापकर ॥ ८६ ॥ और सब दोषों से छूटने के लिये सब तीर्थों को आवाहन कर व किसी भी तड़ागको निर्माणकर हे वरानने !

णापि भक्तितोलिङ्गधारकः ॥ ८३ ॥ कदाचिच्छिवभक्तानां विभासात्प्रत्ययङ्गतः ॥ पूर्वजन्मतपोयोगात्स्मरणांलिङ्गधा
रणात् ॥ ८४ ॥ त्वत्पादपद्मसंस्पर्शादयस्मुक्तोनसंशयः ॥ सर्वेषांनिष्कृतीनान्तु पावकानाञ्चभीषणम् ॥ ८५ ॥ दर्श
नंशोणशैलस्य प्रायश्चित्तंपरम्मतम् ॥ संस्थाप्यविविधान्धर्मांञ्शिवसिद्धान्तभेदतः ॥ ८६ ॥ आवाह्यसर्वतीर्थानि स
र्वदोषनिवृत्तये ॥ सरःकिमपिसम्पाद्य स्नात्वातत्रवरानने ॥ ८७ ॥ अघमर्षणसंयुक्ता सलिङ्गमासमावस ॥ समुत्थायच
मासान्ते देवयागमहोत्सवे ॥ ८८ ॥ आराधयोपचारैस्त्वमरुणाद्रिमयंशिवम् ॥ ८९ ॥ एवंतस्यमुनेर्निशम्यवचनं
शैवार्थमाभाषितं प्रीतादेवनमस्कृतागिरिसुता देवीजगद्धुतये ॥ शैवंधर्ममथोविधायनिखिलं शोणाचलस्याग्रत
स्तीर्थावाहनमप्यसौभगवतीकर्तुंप्रहृष्टाभवत् ॥ ९० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽरुणाचलमाहात्म्यएकादशोऽध्यायः ११ ॥

उसमें नहाकर ॥ ८७ ॥ अघमर्षण से संयुत तुम लिंग समेत महीनेभर निवास करो और महीनाभरके अन्त में उठकर देवयज्ञके बड़े भारी उछाह में ॥ ८८ ॥ तुम
उपचारों से अरुणाचलमय लिंगको पूजो ॥ ८९ ॥ शैवार्थ कहे हुये उन गौतममुनि के वचन को सुनकर प्रसन्न होती हुई सुरवन्दित पार्वती देवी संसार की रक्षा के
लिये समस्त शैवधर्म को रचकर इसके उपरान्त अरुणाचल के आगे ये भगवतीजी तीर्थोंका आवाहन करनेके लिये भी प्रसन्न हुई ॥ ९० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽरुणा
चलखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांमहिषासुरवधोनामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

दो॰ । है प्रसन्न शिव देव जिमि दियो उमहि वरदान । बारहवें अध्याय में सोई कीन बखान ॥ ब्रह्माजी बोले कि मुनियों से सेवित महर्षि गौतमजी के ऐसा कहने पर पार्वतीजीने शिव भक्तके वधसे आश्रित सन्देह को त्यागदिया ॥ १ ॥ इसके अनन्तर कोई मनोहर वाणी आकाश से उत्पन्न हुई कि हे शैलपुत्रि ! पापके प्रायश्चित्त के कारण तुम मत शोच करो ॥ २ ॥ क्योंकि गंगा, यमुना, सिन्धु,गोदावरी,सरस्वती, नर्मदा, कावेरी, शोणा और वह शोणनदी ॥ ३ ॥ ये नव तीर्थ तुम्हारी तलवार से काटेहुये इसी शिलामय स्थानमें होवैंगे हे देवि ! उसमें अघमर्षण याने पापकी निवृत्ति के लिये स्नान कीजियेगा ॥ ४ ॥ इस कुँवार महीने में ज्येष्ठा नक्षत्र

ब्रह्मोवाच ॥ इतिसम्भाषमाणेतु महर्षौमुनिसेविते ॥ विजहौगिरिजाशङ्कां शिवभक्तवधाश्रयाम् ॥ १ ॥ अथान्तरिक्षादुदभूद्वाणीकापिमनोहरा ॥ माशोचःशैलकन्येत्वं पापनिष्कृतिकारणात् ॥ २॥ गङ्गाचयमुनासिन्धुर्गोदावरिसरस्वती ॥ नर्मदासाचकावेरी शोणाशोणनदीचसा ॥ ३ ॥ अत्रैवनवतीर्थानि सम्भवन्तुशिलामये ॥ त्वत्खड्गदारिते देवि कुरुतत्राघमर्षणम् ॥ ४ ॥ अस्मिन्नाश्वियुजेमासे ज्येष्ठानक्षत्रआगते ॥ निमज्जखड्गतीर्थेत्वं सलिङ्गंमासमावस ॥ ५ ॥ नित्यमेवार्चनंमासं त्रिंशद्दिवससम्मितम् ॥ ततःपाणिस्थितंलिङ्गं लब्धपापविशोधनम् ॥ ६ ॥ प्रतिष्ठापयतीर्थाग्रे लोकानुग्रहकारणात् ॥ निमज्यतीर्थएतस्मिन् मनुष्याणांसुशोभने ॥ ७ ॥ तापत्रयोपिनश्यन्ति त्रैलोक्यस्यनसंशयः ॥ सर्वपापहरंलिङ्गं स्थावरंतीर्थसन्निधौ ॥ ८ ॥ स्थापयस्थिरयाभक्त्या सर्वलोकहितायच ॥ नक्षत्रेवैश्वदैवत्ये देवयागंसमाचर ॥ ९ ॥ महोत्सवसमायुक्तं यावद्दशदिनावधि ॥ कृत्वाचावभृथंपुण्यं नक्षत्रेवह्निदैवते ॥ १० ॥

के आने पर तुम खड्गतीर्थ में स्नान करो व लिंग समेत महीनेभर बसो ॥ ५ ॥ और महीने भर तीस दिनों तक नित्यही पूजन करो तदनन्तर पाये हुये पापशुद्धिवाले हाथ में लगे हुये लिंग को ॥ ६ ॥ लोकों के ऊपर दयाके कारण से तीर्थ के आगे स्थापित करो हे सुशोभने ! इस तीर्थ मे नहाकर मनुष्यों के ॥७॥ तीनों लोकों के तीनों ताप नष्ट होजावैंगे इसमें सन्देह नहीं है तीर्थ के समीप समस्त पातकोंके नाशक स्थावर लिंग को ॥ ८ ॥ स्थिरभक्तिसे सब लोकोंके हित के लिये स्थापित करो और विश्वेदेवतावाले (उत्तराषाढ) नक्षत्र में बडे उत्सव से संयुत दशदिन तक देवयज्ञ कीजिये और अग्निदेवतावाले (कृत्तिका) नक्षत्र में पुण्यदायक अवभृथ

(यज्ञान्त स्नान) कर ॥ ९ । १० ॥ सायंकाल में विधिपूर्वक मेरी अरुणाचल मूर्त्तिको पूजियेगा तदनन्तर मैं अपने तैजस रूप को तुम्हें दिखाऊंगा ॥ ११ ॥ और यह
तुम्हारा नियम लोको की रक्षा के लिये होगा महर्षिके उस वचन व उस आकाशवाणी को सुनकर ॥ १२ ॥ पर्वत की कन्या पार्वतीजी ने तपसे उसी को करने के
लिये प्रारंभ किया व आकुलतारहित पार्वतीजीने तलवारसे शिलातलको विदारणकिया ॥ १३ ॥ उसी क्षण वहांपर नव तीर्थ ऊपर निकल आये उस महिषासुर के
कंठ में स्थित लिंग को धारती हुई उन पार्वतीजी ने ॥ १४ ॥ मुनियों की आज्ञासे उस तीर्थ में स्नान किया वहां पर बिल्लौर के समान प्रभावान् नव तीर्थोंका समूह

सायमभ्यर्च्यविधिवदरुणाचलवपुर्मम ॥ ततस्तेदर्शयिष्यामि तैजसंरूपमात्मनः ॥ ११ ॥ एतद्व्रतन्तेलोकानां रक्षायै
सम्भविष्यति ॥ इतितद्वचनंश्रुत्वा महर्षेर्वचनन्तु तत् ॥ १२ ॥ तदेवकर्तुमारेभे तपसाशैलकन्यका ॥ खड्गेनदारयामा
सशिलातलमनाकुला ॥ १३ ॥ उदजृम्भततीर्थानां नवकंतत्रतत्क्षणात् ॥ तस्यकण्ठस्थितंलिङ्गं धारयन्तीनगात्म
जा ॥ १४ ॥ तीर्थेममज्जतस्मिन्मुनीनामभ्यनुज्ञया ॥ तीर्थानांनवकंतत्र संजातंस्फटिकप्रभम् ॥ १५ ॥ अन्तर्वस
दुमाकान्त्यामेचकीकृतमञ्जसा ॥ वसन्त्यांशैलकन्यायां तीर्थेत्रिंशाद्दिनावधिं ॥ १६ ॥ शम्भोर्विरहसन्तप्तं मनःशीतल
तांययौ ॥ तत्रैवचसरोजाक्षी चक्षुषोत्पलकाननम् ॥ १७ ॥ मन्दस्मितेनकुमुदं ससर्जसलिलेस्यसा ॥ देव्यास्तेनोद
वासेनलोकास्तुनिरुपद्रवाः ॥ १८ ॥ कृतार्थास्सहसाजातास्तत्तत्कालफलान्विताः ॥ मासान्तेसासमुत्तीर्य कृत्वादेवो
त्सवंतदा ॥ १९ ॥ कार्त्तिकेमासिनक्षत्रे कृत्तिकाख्येनिशोदये ॥ पूजयित्वातपःसिद्धैरुपचारैर्बहूदयैः ॥ २० ॥ अरु

हुआ ॥ १५ ॥ और भीतर बसती हुई साक्षात् पार्वतीजी की शोभा से श्याम करदियागया जब तीस दिन तक पार्वतीजी ने उस तीर्थ में निवास किया ॥ १६ ॥
तो शिवजी के वियोगसे तचा हुआ मन ठण्ढकता को प्राप्त हुआ और वहीं पर उन कमलनयनी पार्वतीजी ने नेत्रसे कमलवन को ॥ १७ ॥ व मन्द मुसक्यान से
उन्होंने इस तीर्थ के जलमें कोकाबेलीको उत्पन्न किया पार्वती देवीके उस जलवाससे उपद्रवरहित लोक ॥ १८ ॥ अचानकही कृतार्थ होगये व उस उस समय के
अनुसार फलोंसे संयुत हुये महीने के अन्त में वे पार्वतीजी निकलकर व देवोत्सवकर ॥ १९ ॥ कार्तिक महीने में कृत्तिका नामक नक्षत्र में रात्रिके उदय याने

सन्ध्यासमय में तपस्या से सिद्ध बहुत ऐश्वर्यवाले उपचारों से पूजन कर ॥ २० ॥ जगदम्बिकाजी ने अरुणाचलमय लिंगकी स्तुति किया कि हे शोणाचल शरीर धार-नेवाले! तुम विश्वरूपके लिये नमस्कार है ॥ २१ ॥ व समस्त पातकों के नाशनेवाले तेजोमयलिंग के लिये प्रणाम है तुम ब्रह्मा व विष्णुजी से अज्ञात बिभव (ऐश्वर्य) वाले हो ॥ २२ ॥ संसारके ऊपर दया करने के लिये अग्निरूपवाले भी तुम भलीभाति शान्त होगये अहो सैकड़ों पातकों के नाशके लिये कलियुग में कालाग्निरूपवाले शिवजी! ॥ २३ ॥ हे अरुणाचलेश, नेत्रों से पीने योग्य अमृतरूपी समुद्र! मेरी रक्षा कीजिये हे वेदों से जानने योग्य, देवपूजित! तुम्हारा यह

णाद्रिमयंलिङ्गं तुष्टावजगदम्बिका ॥ नमस्तेविश्वरूपायशोणाचलवपुर्भृते ॥ २१ ॥ तेजोमयायलिङ्गाय सर्वपातक नाशिने ॥ ब्रह्मणाविष्णुनाचत्वमपरिच्छेद्यवैभवः ॥ २२ ॥ अग्निरूपोपिसंशान्तो लोकानुग्रहकाङ्क्षये ॥ शतपातकसं घातकलिकालानलाकृते ॥ २३ ॥ अवमामरुणाद्रीश अक्षिपेयामृताम्बुधे॥ विचित्ररूपमेतत्तेवेदवेद्यसुरार्चित॥२४॥ तेजसादेवसर्वेषां बीजभूतोनिगद्यसे ॥ दिदृक्षापरमंतेजस्तवदेवमहेश्वर ॥ २५ ॥ यत्पुराब्रह्मणादृष्टं विष्णुनाचविचि न्वता ॥ यद्यपापास्मिदेवेश तवसन्दर्शनादहम् ॥ २६ ॥ तेजोदर्शयमेदिव्यं सर्वदोषहरम्परम् ॥ प्रार्थयन्त्यांतदादे व्यामरुणाद्रिमयःशिवः ॥ २७ ॥ आविर्बभूवतेजोभिरापूर्यभुवनान्तरम् ॥ कोटिसूर्योदयप्रख्यं तुल्यंपूर्णेन्दुकोटि भिः ॥ २८ ॥ कालाग्निकोटिसंकाशं तेजोपरमदृश्यत ॥ प्रणम्यपरयाभक्त्या मुनिभिःसार्द्धमम्बिका ॥ २९ ॥ विस्म

अद्भुतरूप है ॥ २४॥ हे देव! तुम तेजसे सबों के बीजभूत कहेजाते हो हे महेश्वरदेव! तुम्हारे उत्तम तेजको देखने की इच्छाहै ॥ २५ ॥ जिसको कि पुरातन समय ढूंढ़ते हुये ब्रह्मा व विष्णु ने देखाहै हे देवेश! तुम्हारे दर्शनसे यदि मैं पापरहित हूं तो ॥ २६ ॥ मुझे समस्त दोषों को हरनेवाले, उत्तम दिव्य तेजको दिखलाइये उस समय देवीजी के प्रार्थना करने पर अरुणाचलमय सदाशिवजी ॥ २७ ॥ तेजों से लोकोंके मध्यको पूर्णकर प्रकट हुये करोड़ों सूर्योदयके समान व करोड़ों पूर्ण चन्द्रमाओं के तुल्य ॥ २८॥ व करोड़ों कालाग्नियों के समान उत्तम तेज देखपड़ा उत्तम भक्ति से मुनियों समेत पार्वतीजी उसको प्रणाम कर ॥ २९ ॥ विस्मय

से घिरेहुये क्षित्रवाली व कमलनयनी पार्वतीजी प्रसन्न हुईं इसके अनन्तर उस तेजनिधान अरुणाचल से उपजा हुआ ॥ ३० ॥ कालेकन्धेवाला हिरण्मय पुरुष
वचन बोला कि मेरे स्थानों में किये हुये तपोंसे मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्नहूं ॥ ३१ ॥ हे जगन्मयि ! इस समय बहुत कारणों से तुम करके देखाहुआ यह तेजमय लिंग
लोकों की रक्षा करैगा ॥ ३२ ॥ तुम भूमि में तपों को करती हो इसलिये तुम्हारी और क्या प्रार्थना है मेरे नेत्रों के मूंदने से उपजे हुये अन्धकार के ढेरसे उत्पन्न ॥
३३ ॥ तुम्हारा दोष इस तेजके देखने से शान्त होगया और इस दुष्ट महिषासुर ने लिङ्ग को पूजनेवाले मेरे भक्तको मारडाला ॥ ३४ ॥ और गले में स्थित उसके

याक्रान्तहृदयानन्दनलिनेक्षणा ॥ अथतेजोनिधेस्तस्मादरुणाद्रेःसमुत्थितः ॥ ३० ॥ हिरण्मयोऽब्रवीद्वाचं पुरुषःका
लकन्धरः ॥ प्रसन्नोऽस्मितपोभिस्ते स्थानेषुममकल्पितैः ॥ ३१ ॥ तेजोमयमिदंरूपमीक्षितंचत्वयाधुना ॥ कारणैर्बहु
भिर्लोकान् रक्षिष्यतिजगन्मयि ॥ ३२ ॥ तपांसिकुरुषेभूमौ किमन्यत्प्रार्थितंतव ॥ मल्लोचनपिधानोत्थतमोराशि
समुद्भवः ॥ ३३ ॥ तवदोषःप्रशान्तोभूत्तेजसोऽस्यनिरीक्षणात् ॥ अयन्तुमहिषोदुष्टो मद्भक्तंलिङ्गपूजकम् ॥ ३४ ॥ जग्रा
हसहसाहेतत्तस्यलिङ्गंगलेस्थितम् ॥ अनेनमाक्षितःसोपि नास्तिकःपापलोलुपः ॥ ३५ ॥ अकरोन्मयिविश्वासं
लिङ्गरूपेकरेस्थिते ॥ क्रमेणासोपिसंप्राप्तो मद्भक्तोमुनिजन्मनि ॥ ३६ ॥ मामेवाभ्यर्चयन्ध्यायन् गणनाथत्वमाप्तवा
न् ॥ पूर्वजन्मनिभक्तोयं महिषोपित्वयाहतः ॥ ३७ ॥ चिरंमल्लिङ्गसंवासात् सिद्धिरस्यापिदर्शिता ॥ शिवलिङ्गेष्ववि
श्वासः शिवभक्तावसादनम् ॥ ३८ ॥ नकर्त्तव्यंसदाभक्तैर्गिरिजेमुक्तिकाङ्क्षिभिः ॥ ३९ ॥ दीक्षयारहितंलिङ्गं येनसन्धा

लिङ्गको अचानकही लेलिया और इसने उस पापलुब्धक नास्तिक को खालिया ॥ ३५ ॥ और हाथ में स्थित लिङ्गरूपी मुझमें इसने विश्वास किया मेरा भक्त वह
भी क्रमसे मुनि जन्म में भलीभाति प्राप्त हुआ ॥ ३६ ॥ और मुझही को ध्यान करता व पूजताहुआ वह गणों की स्वामिताको प्राप्तभया पूर्वजन्म में भी इस महिषा-
सुर भक्त को तुमने मारा था ॥ ३७ ॥ बहुत दिनों तक मेरे लिंग के भलीभाति निवास से इसको भी सिद्धि दिखलाई गई शिवलिंगों में विश्वास न करना व शिव
भक्तों को क्लेश देना ॥ ३८ ॥ हे गिरिजे ! मुक्तिको चाहनेवाले भक्तों को यह सदैव न करना चाहिये ॥ ३९ ॥ जो दीक्षासे रहित लिंगको बल से धारण करता है वह

लिङ्ग वैसे फलको नहीं देताहै और वज्रके नाईं उसको मारता है ॥ ४० ॥ अरुणाचलके देखने से उस विषयमें तुमको कुछ दोष नहीं है समस्त दोषोंके विनाश से तुम सफल परिश्रमवाली हो ॥ ४१ ॥ जिसलिये कि पुरातन समय तुम्हारे पुत्रको दूध के दान के लिये ध्यान कीहुई कृत्तिकाओं ने तुम नित्य यौवनवाली प्यारीका अपीतकुचा नाम कियाहै ॥ ४२ ॥ कृत्तिका नक्षत्र में मेरी समीपताके लोभसे तुम्हारे प्रायश्चित्त करने से तुम अपीतकुचा नामक होवो ॥ ४३ ॥ भक्तोंके ऊपर दया की कामना से दयामूर्ति सदाशिवजीका सब पूजन मनसे करके अपीतकुचनामिका होवोगी ॥ ४४ ॥ इसभांति सदाशिव देवजीका अमृतके समान शीतल

र्यतेबलात् ॥ नतादृशंफलंदत्ते वज्रवत्तांनिहान्तिच ॥ ४० ॥ नदोषस्तत्रतेकिञ्चिच्छोणाचलनिरीक्षणात् ॥ सफलश्र मात्वमेवासि सर्वदोषविनाशनात् ॥ ४१ ॥ त्वत्पुत्रस्तन्यदानेन ध्यातायत्कृत्तिकाःपुरा ॥ त्वामपीतकुचांचक्रुर्वत्सलां नित्ययौवनाम् ॥ ४२ ॥ नक्षत्रेकृत्तिकाख्येमे तवसन्निधिलोभतः ॥ प्रायश्चित्तविधानेन भवापीतकुचाभिधा ॥ ४३ ॥ पूजांसर्वांसमाधाय भक्तानुग्रहक्लृप्तये ॥ मनसाकरुणामूर्त्तेरपीतकुचनामिका ॥ ४४ ॥ इतिदेवस्यवचनमाकर्ण्या मृतशीतलम् ॥ प्रणम्यप्रार्थितवतीतिरोदधतचाम्बिका ॥ ४५ ॥ देवदेवप्रसादेन मय्यनुग्रहशालिना ॥ एतत्तेदर्शितं तेजो द्रष्टव्यंचात्रमानवैः ॥ ४६ ॥ प्रत्यक्षञ्चकृतार्थास्मि त्वद्यागान्तमहोत्सवे ॥ नक्षत्रेकृत्तिकाख्येस्मिंस्तेजस्तेदृश्य तांपरम् ॥ ४७ ॥ मद्वीक्षितमिदंतेजः परम्प्रतिवत्सरम् ॥ दृष्ट्वासमस्तैर्दुरितैर्मुच्यन्तांसर्वजन्तवः ॥ ४८ ॥ तथेति देवदेवेतु गिरिरूपेऽव्यवस्थिते ॥ प्रदक्षिणञ्चकारैनं मुनिभिःसार्धमम्बिका ॥ ४९ ॥ घनश्यामलयाकान्त्या परितोजृम्भ

वचन सुनकर अन्तर्धान होते हुये शिवजी को प्रणामकर पार्वतीजी ने प्रार्थना किया॥ ४५ ॥ कि हे देवदेव ! यहां पर मेरे ऊपर दयासे शोभित प्रसन्नताकरके तुम्हारा दिखलाया हुवा यह तेज मनुष्यों से देखने योग्य होवै ॥ ४६ ॥ तुम्हारे यज्ञान्त के बडेभारी उछाह में मैं प्रत्यक्षही कृतार्थ हूं इस कृत्तिकानामक नक्षत्र मे तुम्हारा उत्तम तेज देखपडै ॥ ४७ ॥ मुझसे देखेहुये इस उत्तम तेजको प्रत्येक वर्षमे देखकर सब प्राणी समस्त पातकोंसे छूटजावैं ॥४८॥ बहुत अच्छा ऐसा कहकर पर्वतरूप अरुणाचलके स्थित होनेपर मुनियों समेत पार्वतीजी ने इनकी प्रदक्षिणा किया ॥ ४९ ॥ सब ओर बढ़तीहुई मेघों के समान श्याम शोभासे पार्वतीजीने अरुणाचल-

मय लिंगको मरकत के समान प्रभावान् किया ॥ ५० ॥ धीरे धीरे चलती हुई पार्वतीजी ने चरणकमलों की उत्पन्न शोभा से मानो सब ओर पत्तों समेत कमल
पुष्पोंसे भूमिको आच्छादन किया ॥ ५१ ॥ फूले हुये श्वेत कमल व नील कमलदलों की राशिके समान नेत्र शोभाओं से मानो सब ओर अरुणाचलको पूजती
थीं ॥ ५२ ॥ इन्द्रादिक लोकपालोंकी स्त्रियोंसे सेवित वे मातृगणों से चन्दन, माला व भूषणों से प्रसन्न कीगई ॥५३॥ छत्र, चँवर, झारी व तालके फलोंको धारण
कियेहुई देवस्त्रियों व मुनिस्त्रियों से संयुत वे देवीजी घिरी थीं ॥५४॥ शिव सायुज्यको चाहती हुई पार्वतीजी ने विवाहकी अग्नि की नाईं इन स्वयंस्वामी अरुणाचलजी

माणया ॥ अरुणाद्रिमयंलिङ्गं चक्रेमरकतप्रभम् ॥ ५० ॥ मन्दंचरन्तीजाताभिः प्रभाभिःपादपद्मयोः ॥ तस्ताःपरितो
भूमिंपद्मपुष्पैःसपल्लवैः॥ ५१॥ प्रफुल्लकमलाम्भोजनीलोत्पलदलोत्करैः ॥ अर्चयन्तीचशोणाद्रिमभितोदृष्टिकान्ति
भिः ॥ ५२ ॥ इन्द्रादिलोकपालानामङ्गनाभिर्निषेविता ॥ प्रसादितामातृगणैर्गन्धदामविभूषणैः ॥ ५३ ॥ छत्रचामर
भृङ्गारतालस्यचफलानिवै ॥ वहन्तीभिःसुरस्त्रीभिर्वृतामुनिवधूयुता ॥ ५४ ॥ प्रदक्षिणंचकारैनमरुणाद्रिंस्वयंप्रभुम् ॥
काङ्क्षन्तीशिवसायुज्यं विवाहाग्निमिवाद्रिजा ॥ ५५ ॥ तस्याःप्रदक्षिणास्मभक्त्या कुर्वाणायाःपदेपदे ॥ प्रेषिताःश
म्भुनादेवा वरिवस्तुञ्चमेश्वराः ॥५६॥ सरस्वतीस्वयंधात्रा विष्णुनाचस्वयंरमा ॥ सार्द्धंदिक्पालकान्ताभिः सिषेवाते
नगात्मजाम् ॥ ५७ ॥निरुन्धतीवदेवेशं सलिलैर्वरदानतः॥ अग्निरूपस्यनाथस्य शीतत्वमिवकुर्वती ॥ ५८ ॥ तपस्य
याचगिरिजा देवस्यत्रिपुरद्विषः ॥ दुष्करस्योदवासस्य बोधयन्तीवसाधुना ॥ ५९ ॥ ऋषीणांसेवमानानामुपदेष्टुमि

की प्रदक्षिणा किया ॥५५॥ भक्तिसे पग २ पै उन पार्वतीजी के प्रदक्षिणा करने पर स्वामियों समेत देवताओंको सेवाके लिये शिवजी ने पठाया ॥ ५६॥ ब्रह्मा से पठाई
हुई आपही सरस्वतीजी व विष्णुजी से पठाईहुई आपही लक्ष्मी जी ने दिक्पालोंकी स्त्रियों समेत पार्वतीजी की सेवा किया ॥ ५७ ॥ सदाशिवजी को रोकतीहुई सी
पार्वतीजी वरदान के जलों से मानो अग्निरूपी सदाशिवजी की शीतता को कररही थीं ॥ ५८ ॥ और उन पार्वतीजी त्रिपुरशत्रु शिवदेवकी तपस्या से इस समय

कठिन जलवासको मानो बोध कराती है ॥ ५९ ॥ सेवा करते हुये ऋषियों को क्रमसे मानो उपदेश करने के लिये पहले अभ्यास की हुई क्रीड़ाको तपस्या से भी
भलीभांति प्राप्त हैं ॥ ६० ॥ वियोग से तचे हुये चित्तको व चित्तमें स्थित वैसे सदाशिवजी को भलीभांति चिन्तन कर मानो दोनों के शीतलता करने के लिये जल
में स्थित हुई थीं ॥ ६१ ॥ और शिलातल में उपजे हुये सब तीर्थोंकी अधिकताको मानो कहने के लिये इस संसार में स्थित हैं ॥ ६२ ॥ पापाग्नि, पावाग्नि और
पुण्य जलवास को प्राप्तहोकर तप करती हुई पार्वतीजी मानो शान्ति करनेके लिये स्थित हैं ॥ ६३ ॥ और रक्तकी धारा से डूबेहुये व महिषासुर के कण्ठ में स्थित उस

वकस्मात् ॥ क्रीडामिवपुराभ्यस्तां तपसापिचसङ्गता ॥ ६० ॥ आत्मानंविरहोत्तप्तमात्मस्थन्ताहृशंशिवम् ॥ सञ्चिन्त्य
चोभयोः कर्तुंशीतलत्वंजलेस्थिता ॥ ६१ ॥ तीर्थानामिवसर्वेषामुद्भूतानांशिलातले ॥ आधिक्यमिवलोकेस्मिन् वक्तु
कामास्वयंस्थिता ॥ ६२ ॥ दुरिताग्निश्चपावाग्निमपांवासमदुष्कृतम् ॥ अधिगम्यतपस्यन्ती शान्तिकर्तुमिवस्थि
ता ॥ ६३ ॥ महिषासुरकण्ठस्थं रक्तधारापरिप्लुतम् ॥ चालयन्तीचलिङ्गन्तदमलैस्तीर्थवारिभिः ॥ ६४ ॥ अरुणा
ख्यंपुरंरम्यं निर्मितंविश्वकर्मणा ॥ अपीतकुचनाथेश शोणाद्रीश्वरगुप्तये ॥ ६५ ॥ शृङ्गेषुयस्यसौधेषु वसन्त्योवारयो
षितः ॥ अधःकृताभ्रतडितो जिगीषन्तीवचामरीः ॥ ६६ ॥ उत्तुङ्गसौधशृङ्गस्था गायन्त्योवारयोषितः ॥ सिद्धचारण
गन्धर्वा वीणांवैमुखमादधुः ॥ ६७ ॥ अष्टापदमयाकारमष्टदिक्पालपूजितम् ॥ अष्टसिद्धियुतैःसिद्धैरष्टमूर्त्तिपदाश्रि
तैः ॥ ६८ ॥ अष्टाङ्गभक्तिभिर्भक्तैर्युक्तमष्टाङ्गबुद्धिभिः ॥ चातुर्वर्ण्यगणोपेतमुपवर्णपरिष्कृतम् ॥ ६९ ॥ लसत्सुवर्णदुर्ग

शिवलिंगको निर्मल तीर्थजलों से धोरही थीं ॥ ६४ ॥ और अपीतकुचनाथेश अरुणाचल की रक्षाके लिये विश्वकर्मा ने अरुणनामक मनोहर नगरको निर्माण
किया ॥६५॥ जिसके शृंगों व राजमन्दिरों में बसती हुई अप्सरायें देवांगनाओं को मानो जीतने की इच्छा कररही हैं जोकि मेघोंकी बिजलियों को अपनी शोभा से नीचे
कियेथीं ॥६६॥ और ऊंचे राजमन्दिरों के शिखरों में बैठी अप्सरायें गान कररही थीं और सिद्ध, चारण व गन्धर्व मुख में वीणा को धरे थे ॥ ६७ ॥ और वह नगर
स्वर्णमयागार व आठों दिक्पालों से पूजित तथा अष्टमूर्ति (सदाशिव) जी के स्थानमें आश्रित आठों सिद्धियोंवाले सिद्धोंसे संयुत है ॥६८॥ व अष्टांग भक्तियों तथा

अष्टांग बुद्धिवाले भक्तों से संयुत है और चारों वर्णोंवाले मनुष्य गणों से संयुक्त तथा उपजातियों से संयुत है ॥ ६९ ॥ और सोहते हुये सोने चांदीकी छहरदिवाली
वाला व सुन्दर है व शंख, नगारा, तुरही मृदंग व मुरजादिकों से ॥ ७० ॥ और वीणा व वेणु इत्यादिक बाजाओं से लय समेत तालों करके सब ओर रंजित है
और शिवचित्तवाले महर्षियों की वेदध्वनि के शब्द से ॥ ७१ ॥ सदैव सेवनेयोग्य है नवग्रहोंके समान उदयवाले नवरत्नों की प्रभाराशियों से रात्रि दिनकी
एकताको दिखलाते हुये से वृषध्वज सदाशिवजी को देवी पार्वतीजी ने देखा व सदैव ॥ ७२ ॥ शंख बजानेवाले के भाव को प्राप्त होकर विष्णुजी ने आगे से व्या-
पक शिवजी की सेवाकिया और सुरगणों समेत हजार नेत्रोंवाले इन्द्रजी भली भांति आये ॥ ७३ ॥ और उत्तम सुगन्ध से संयुत फूलोंकी वृष्टि सब ओर से झरी

र्णसालमच्चमनोहरम् ॥ शङ्खदुन्दुभितूर्यैश्च मृदङ्गमुरजादिभिः ॥ ७० ॥ वीणावेणुमुखैस्तालैस्सलयैः सर्वरञ्जितम् ॥
ब्रह्मघोषनिनादेन महर्षीणांशिवात्मनाम् ॥ ७१ ॥ सेवितव्यंसदादेव्या समदर्शिवृषध्वजः ॥ नवरत्नप्रभाजालैर्नवग्र
हसमोदयैः ॥ निशादिवसयोरैक्यं दर्शयन्निवसर्वदा ॥ ७२ ॥ विष्णुःशाङ्खिकतांप्राप्तः सिषेवेपुरतोविभुम् ॥ शक्रःसुरग
णैःसार्द्धं सहस्राक्षःसमाययौ ॥ ७३ ॥ पपातदिव्यगन्धाढ्या पुष्पवृष्टिःसमन्ततः ॥ व्योमगङ्गाजलासङ्गी शीतलोमारुतो
ववौ ॥ ७४ ॥ कुसुमानांनवामोदवासिताखिलदिङ्मुखः ॥ कनकाङ्कितशृङ्गाग्रपरिधूतघनावलिः ॥ ७५ ॥ दर्पसंभ्रमसन्नद्धो
ननादवृषभोमुदा ॥ वसन्तप्रमुखाःसर्वे सहर्षमृतवःपराः ॥ ७६ ॥ आसेवन्तप्रियकरैः पुष्पैःस्वयमुपाचितैः ॥ गणाश्चवि
विधाकाराः सिद्धाश्चपरमर्षयः ॥ ७७ ॥ सुराश्चकुतुकोपेताः समागच्छन्नदिदृक्षवः ॥ कुङ्कुमक्षोदसंमिश्रःकर्पूररजसान्वि

और आकाशगंगा के जलका संगी शीतल पवन बहनेलगा ॥ ७४ ॥ जोकि फूलोंकी नवीन सुगन्धि से सब दिशाओं के मुखों को सुगन्धित कर रहा था और
सुवर्ण से चिह्नित सींगके अग्रभाग से मेघ पंक्तियों को कँपाकर ॥ ७५ ॥ गर्व के संभ्रम से सजाहुआ वृष (नन्दी) प्रसन्नतासे गरजनेलगा और वसन्त इत्यादिक
सब उत्तम ऋतुयें हर्ष समेत ॥ ७६ ॥ प्यारे हाथोंसे आपही तोड़े हुये पुष्पों से सेवते थे और अनेक भांतिके आकारवाले गण व सिद्ध और उत्तम ऋषिलोग ॥ ७७ ॥
व देखने की इच्छावाले कौतुकसंयुत देवतालोग भलीभांति आये व कपूर की धूरिसे संयुत तथा कुंकुम के चूर्ण से मिलीहुई चूर्णमुष्टिकी बड़ीभारी वर्षा सब

भजूं और देखाहुवा हम तुम दोनोंका समागम सब प्रयोजनों को देनेवाला होवै ॥ ९ ॥ और अन्यकी शरण में न जानेवाले तुम्हारे भक्तों के ज्ञान व अज्ञान से किये हुये हजारों अपराध क्षमा कियेजावै ॥ १० ॥ इस प्रकार देवी पार्वतीजी के वचनको सुनकर वरदायक अरुणाचलेश्वर सदाशिवजी ने पार्वती को उसी समस्त मनोरथ को दिया ॥ ११ ॥ और वर देनेकी कामनावाले सदाशिवजी ने आपही कौतुक से पार्वतीजी से कहा कि तुम मृगमद (कस्तूरी)को धारणकरो शिवजी से यह कहागया ॥ १२ ॥ कि बडी तपस्यावाले पुलकनामक मृगरूपधारी बड़ेभारी दैत्य ने अधर्म में प्राप्तहोकर देवताओं समेत सब संसार को पीड़ित कियाहै ॥ १३॥

कः ॥ ९ ॥ ज्ञानाज्ञानकृतंनित्यमपराधसहस्रकम् ॥ क्षम्यतांतवभक्तानामनन्यशरणैषिणाम् ॥ १० ॥ इतिदेव्यावचः श्रुत्वा शम्भुःशोणाचलेश्वरः ॥ तदेववरदःप्रादादुमांसर्वमभीप्सितम् ॥ ११ ॥ उवाचगौरींकुतुकाद्दातुकामःस्वयंशिवः ॥ धारयत्वंमृगमदमिदमुक्तञ्चशम्भुना ॥ १२ ॥ पुलकाख्योमहान्दैत्यो मृगरूपीतपोधिकः ॥ देवैरधर्मसम्प्राप्तो बबाधेसकलंजगत् ॥ १३ ॥ देवैरभ्यर्थितःसोहमाहचासुरनायकम् ॥ विमुञ्चलोकरक्षार्थमासुरंदेहमित्यथ ॥ १४ ॥ त्यक्ष्यामिदेवदेवेश देहमेतत्त्वदाज्ञया ॥ प्रणम्यभक्तिमान्सोपि पश्चाचैवेदमूचिवान् ॥ १५ ॥ मदङ्गसम्भवंदिव्यं सौरभं विश्वमोहनम् ॥ धार्यतेदेवदेवेश सदारैःसर्वदाक्षितौ ॥ १६ ॥ पुलकस्नेहनायाख्या सदाप्रख्यायतांतव ॥ अयंमृगमदोलोके शृङ्गाररसवर्द्धनः ॥ १७ ॥ त्वत्प्रियाकान्तिसौभाग्यरूपलावण्यदायकः ॥ विसृजामिनिजंदेहं सदाशिवम

देवताओ से प्रार्थना कियेहुये मैंने असुरनायक पुलक से यह कहा कि संसारकी रक्षा के लिये दैत्यवाले शरीरको छोड़ दीजिये इसके उपरान्त ॥ १४॥ उस भक्तिमान् पुलक ने प्रणामकर कहा कि हे देवदेवेश ! तुम्हारी आज्ञा से मैं इस देह को छोड़दूंगा और पश्चात यह कहा ॥ १५ ॥ कि हे देवदेवेश ! मेरे अंगरा उपजी हुई संसार को मोहनेवाली उत्तम सुगन्ध पृथ्वी में सदैव स्त्री समेत पुरुषों से धारण कीजाती है इस लिये पुलक के स्नेह के लिये तुम्हारा नाम सदैव प्रसिद्ध होवै यह मृगमद (कस्तूरी) संसार में शृंगाररस को बढ़ानेवाली है ॥ १६।१७ ॥ और तुम्हारी प्यारी पार्वती जी को कान्ति (शोभा) सौभाग्य रूप सुन्दरताको देनेवालीहै हे

सदाशिव, महेश्वरजी ! मैं अपनी देह को छोड़ताहूं ॥ १८ ॥ जो शरीर कि दिव्य सुगन्ध की अभिलाषवाली पार्वती जी से बहुत आदर किया गयाहै और मेरे अंग
से उपजेहुये सुगन्धको पायेहुये जो मृग हैं ॥ १९ ॥ वे हे देवेश ! स्थान के छलसे तुम्हारी मूर्त्तिही में लीन होजावैं वैसाही होगा मेरे ऐसा कहनेपर उसपुलक नामक
दैत्यने ॥ २० ॥ मुझमें जीव को धरकर अपने शरीर को छोड़दिया उसी कारण तुम्हारे अंगसे उपजेहुये बहुत सुगन्धवाले तथा शृंगाररस को बढ़ानेवाले मदको
मैंने प्रेमसे धारण किया वैसी तपस्या से तुम्हारा तचाहुआ शरीर दुबलाहै ॥ २१ । २२ ॥ और वियोग से विकल मेरा यह अंगमार्गसे थकितहै इसप्रकार बहुत भांति

हेश्वर ॥ १८ ॥ सदाबहुमतोदेव्या दिव्यसौरभलुब्धया ॥ मदंशसम्भवायेस्युर्मृगाश्चलब्धसौरभाः ॥ १९ ॥ ली
यन्तांतवदेवेश मूर्त्तावेवायनच्छलात ॥ तथेतिमय्युक्तवतिसदैत्यःपुलकाभिधः ॥ २० ॥ विससर्जनिजंदेहं मयिसंन्यस्त
जीवितः ॥ ततस्त्वदङ्गसम्भूतं मदंबहुलसौरभम् ॥ २१ ॥ अधारयमहंप्रेम्णा शृङ्गाररसवर्द्धनम् ॥ तपसातादृशेनेदं ताम
तववपुःकृशम् ॥ २२ ॥ मदङ्गञ्चवियोगार्त्तमिदंनिर्वाप्यतेध्वना ॥ इतिप्रशस्यबहुधा पुलकस्नेहमद्भुतम् ॥ २३ ॥ आलि
ङ्ग्यमहादेवः पार्वतींप्रेममन्दिराम् ॥ अपृच्छच्चपुनर्देवः पार्वतींललिताकृतिम् ॥ २४ ॥ किमेतदितिहस्तस्थं दृष्ट्वातं
जगदम्बिकाम् ॥ साब्रवीदरुणाद्रीशमानम्यजगदम्बिका ॥ २५ ॥ आगमन्तस्यदीपस्य सदास्वकरवर्तिनः ॥ २६ ॥
गौर्युवाच ॥ अहंकैलासशिखराद्देवदेवत्वदाज्ञया ॥ तपःकर्त्तुमनुप्राप्ता काञ्चींकनकतोरणाम् ॥ २७ ॥ अवाप्य
मानसोद्भूतं कह्लारवनमुत्तमम् ॥ आराध्यंमहादेवमम्लानगुहसौरभम् ॥ २८ ॥ यदत्तयमविश्रान्तमर्चनंयोजितंम

से प्रशंसाकर रोमाञ्चसंयुत स्नेह से आश्चर्यपूर्वक ॥ २३ ॥ महादेवजी ने प्रेममन्दिर पार्वती जी को लिपटा लिया और फिर शिवदेवजी ने सुन्दर
स्वरूपवाली जगदम्बिका पार्वतीजी से यह पूछा कि हाथ में स्थित यह क्या है उसको देखकर उन जगदम्बिका जीने अरुणाचल को प्रणामकर सदैव अपने हाथ
में वर्त्तमान उस दीपके आगम को कहा ॥ २४।२५ । २६ ॥ पार्वतीजी बोलीं कि हे देवदेव ! तुम्हारी आज्ञासे मैं कैलास पर्वत के शिखर से तपस्या करने के लिये
सुवर्ण के बहिर्द्वारवाली काञ्चीपुरी में प्राप्तहुई ॥ २७ ॥ और मानसर से उपजेहुये उत्तम कमल वन में प्राप्त होकर मैंने अम्लान बहुतसुगन्धवाले महादेवजीका आरा-

घनकिया ॥२८॥ और जो अविनाशी तथा विश्राम (समाप्ति) रहित पूजन था उसको मैंने युक्त किया और इस दीप को मैंने तुम्हारे आगे स्थापित किया ॥ २९ ॥ जो कि सम्पूर्ण व बहुत जलताहुआ तथा कामधेनु के घी से भराहुआ है राजाओं से यह देखने योग्य व पालने योग्य है ॥ ३० ॥ संसार की रक्षा के लिये आदर से धर्म का लक्षण धारण करना चाहिये और सब मनोरथों की सिद्धिके लिये व मेरी प्रीति करने के निमित्त ॥ ३१ ॥ व संसार की रक्षाके लिये मैंने बत्तीसधर्मोंको भली भांति स्थापन किया है उनको मेरे समीप आयेहुये पुरुषों को बड़े उपाय से रक्षा करना चाहिये ॥ ३२ ॥ और सब अलङ्कारों से संयुत व सब सुखों से किये

या ॥ अयञ्चदीपःपुरतस्त वसंस्थापितोमया ॥ २९ ॥ अव्युच्छिन्नोमहादीप्तः कामधेनुघृताप्लुतः ॥ अवेक्षणीयोभूपालैरभौपाल्यश्चसर्वदा ॥ ३० ॥ धर्मलक्षणमाधेयंलोकरक्षार्थमादरात् ॥ सर्वाभीप्सितसिद्ध्यर्थं मत्प्रीतिकारणायच॥३१॥ मयासंस्थापिताधर्मा द्वात्रिंशल्लोकगुप्तये ॥ रक्षणीयाःप्रयत्नेन मत्सन्निधिमुपागतैः ॥ ३२ ॥ सर्वालङ्कारसंयुक्तं सर्वभोगकृतोत्सवम् ॥ आलोक्यतामिदंरूपं कन्यायाममकान्तिमत् ॥ ३३ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इतिदेव्यावचःश्रुत्वा शम्भुः शोणाचलेश्वरः ॥ तथेतिवरदःप्रादाद्वरंसर्वमभीप्सितम् ॥ ३४ ॥ एषशोणाचलःश्रीमान् दृश्यतेलोकपूजितः ॥ सर्वदापरितोगुप्तः सर्वभोगैश्चसंवृतः ॥ ३५ ॥ यएतच्छाम्भवंरूपमरुणाद्रितयास्थितम् ॥ पश्यन्तियेनमस्यन्ति कृतार्थाःसर्वएवते ॥ ३६ ॥ अरुणाचलमाहात्म्यमेतच्छृण्वन्तियेभुवि ॥ भवन्तिसततंतेषां समग्राःसर्वसम्पदः ॥ ३७ ॥ श्रीमत्त्वंवाक्पतित्वञ्च रूपमव्याहतंबलम् ॥ लभतेपापनाशञ्च माहात्म्यस्यास्यधारणात् ॥ ३८ ॥ सर्वतीर्थाभि

हुये उत्सववाला मुझ कन्या का छविसंयुत यह रूप देखा जावै ॥ ३३ ॥ ब्रह्मा जी बोले कि देवी पार्वतीजी के इस वचन को सुनकर वरदायक अरुणाचलेश्वर सदाशिवजीने वैसाहीहोगा यह कहकर समस्त चाहेहुये वरदानको दिया॥३४॥ कि यह श्रीमान् अरुणाचल संसार में पूजित व सबओर से रक्षित होकर सदैव देख पड़ताहै जोकि सब सुखों से आच्छादित है ॥३५॥ अरुणाचलता से स्थित इस सदाशिवजी के रूपको जो देखते हैं और जो प्रणाम करते हैं वे सबही कृतार्थ होजाते हैं ॥ ३६ ॥ पृथ्वी में जो मनुष्य इस अरुणाचल के माहात्म्य को सुनते हैं उनके सदैव समस्त संपदायें संपूर्ण होतीहैं ॥ ३७ ॥ इस माहात्म्य के धारणसे वाक्पतित्व

रूप व अविनाशी पराक्रम तथा पातकों के नाशको प्राप्तहोता है ॥ ३८ ॥ और अरुणाचल जीका दर्शन समस्त तीर्थों के स्नान के फलको देनेवाला और सब यज्ञ
कर्मों के फलको देनेवाला व सदाशिवजीकी प्रसन्नताका दायकहै ॥ ३९ ॥ इसी कारण शिवकी आज्ञासे कैलासके शिखरसे प्राप्तहुई देवीजी अरुणाचलके दर्शन से शाप
से मुक्तिको प्राप्तहुई ॥४०॥ पृथ्वीमें व आकाशमें बहुत पुण्यवाले सदाशिवजीके अन्य स्थानोंके स्थित होनेपर शिवजी यहीपर प्रसन्नहुये हैं ॥४१॥ ये श्रीमान् सदाशिवजी
अरुणाचल के रूप से स्थित हैं और सृष्टि, पालन व संहारका कारण उत्तम तेज देखपडता है ॥ ४२ ॥ सब देवताओं से प्रणामकियाहुआ यह तैजसलिंग देखपड़ताहै

षवर्णसर्वयज्ञक्रियाफलम् ॥ सदाशिवप्रसादञ्च तथाशोणाद्रिदर्शनम् ॥ ३९ ॥ इतिकैलासशिखरात् प्राप्तादेवीशिवा
ज्ञया ॥ शापमोक्षङ्गतवती शोणाचलनिरीक्षणात् ॥ ४० ॥ स्थानेष्वन्येषुदेवस्य विद्यमानेषुचक्षितौ ॥ दिविचात्यन्तपु
ण्येषु शङ्करोत्रप्रसेदिवान् ॥ ४१ ॥ अयंसदाशिवःसाक्षादरुणाचलरूपतः ॥ दृश्यतेपरमंतेजः सर्गस्थित्यन्तकारण
म् ॥ ४२ ॥ एतत्तुतैजसंलिङ्गं सर्वदेवनमस्कृतम् ॥ दृश्यतेकर्मभूरेषा तेनसर्वाधिकामता ॥ ४३ ॥ अरुणाचलनाथस्य
तेजसाधूतकिल्बिषः ॥ भक्तिमांश्चनरोलोके सुखीसर्वमवाप्नुते ॥ ४४ ॥ प्रदक्षिणैर्नमस्कारैस्तपोभिर्नियमैरपि ॥ येर्चय
न्त्यरुणाद्रीशं तेषांशम्भुर्वशङ्गतः ॥ ४५ ॥ नतथातपसायोगैर्दानैःप्रीणातिशङ्करः ॥ यथासकृदपिप्राप्तादरुणाचलदर्श
नात् ॥ ४६ ॥ स्वयम्भुवःसदावेदाः सेतिहासादिविस्थिताः ॥ हृष्टाउपासतेचापि स्तुवन्त्यरुणपर्वतम् ॥ ४७ ॥ एतस्यैव
भवंसर्वं नमयानचशार्ङ्गिणा ॥ वचसाशक्यतेवक्तुं वर्षकोटिशतैरपि ॥ ४८ ॥ देवाश्चहरिमुख्यास्ते कल्पकाद्याःसुरद्रु

उसीकारण यह कर्मभूमि सबसे अधिक मानी गईहै ॥४३॥ भक्तिमान् पुरुष अरुणाचलेश के तेजसे नष्ट पातकोंवाला होकर संसार में सुखी होताहै व सब मनोरथ को
प्राप्तहोताहै ॥ ४४ ॥ जो पुरुष प्रदक्षिणा, नमस्कार तपस्या व नियमों से भी अरुणाचलेशजी को पूजते हैं सदाशिवजी उनके वशमें प्राप्तहोते हैं ॥ ४५ ॥ उसप्रकार
तपस्या, योग व दानों से शंकरजी नहीं प्रसन्न होतेहैं जिसभांति कि एकवारभी पाये हुये अरुणाचलके दर्शन से प्रसन्न होते हैं ॥ ४६ ॥ और इतिहासों समेत आप
हीसे उपजे हुये वेद आकाश में स्थित होकर प्रसन्नहोतेहुये उपासना करते हैं व अरुणाचल की स्तुति करते हैं ॥ ४७ ॥ इस अरुणाचल का सब माहात्म्य मुझसे व

विष्णु जीसे वचनके द्वारा करोडों सौ वर्षों से भी नही कहाजासक्ताहै ॥४८॥व विष्णुइत्यादिक देवता व कल्पवृक्षादिक देववृक्ष छिपेहुये रूपवालेहोकर सदैव अरुणाचल की सेवा करते हैं ॥ ४६ ॥ उसके कलियुग का दोष व आधि व्याधियों की वृद्धि नहीं होती है जो कि अरुणाचलसंज्ञक लिंगको पूजता है ॥ ५० ॥ सदाशिवजी के चरणके आश्रयसे यह सब तुमसे कहागया ॥५१॥ हे देवि ! अरुणाचलेशशिवजी के कहेहुये इससमस्त मनोहर माहात्म्यको सदैव वे सनकमुनि दोनों कर्णपुटोंसे पीते हुये तपस्याओं के फलोंको प्राप्त हुये हैं ॥ ५२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽरुणाचलखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायाभाषाटीकायांत्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

माः ॥ प्रच्छन्नरूपाःसेवन्ते सर्वदैवारुणाचलम् ॥ ४९ ॥ नतस्यकलिदोषःस्यान्नाधिव्याधिविजृम्भणम् ॥ येनसम्पूज्यतेलिङ्गमरुणाचलसंज्ञितम् ॥ ५० ॥ इत्येतत्कथितंसर्वं तवशम्भुपदाश्रयात् ॥ ५१ ॥ कथितमिदमशेषमेवदेवि अरुणगिरीशशिवस्यसर्वदेव ॥ श्रुतिपुटयुगलात्पिबन्मनोज्ञंसनकमुनिस्तपसांफलंसलेभे ॥ ५२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽरुणाचलमाहात्म्ये त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ब्रह्मोवाच ॥ वसन्तोनैमिषारण्ये मुनयःसूतमब्रवीत् ॥ स्थानानामुत्तमंशैवं यत्स्थलंतद्वदस्वनः ॥ १ ॥ सूतउवाच ॥ यूयंशृणुतयत्पूर्वं नन्दीश्वरमुखाच्छ्रुतम् ॥ मार्कण्डेयेनतद्वक्ष्ये मुनयःशृणुतादरात् ॥ २ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ नन्दीश्वरत्वयाप्रोक्तो महिमामेद्यभक्तितः ॥ मयाप्यवधृतंसर्वं भक्तिश्रद्धार्द्रचेतसा ॥ ३ ॥ तथापिवदमेभूयो देवदेवदयानिधे ॥ अहंयत्परिपृच्छामि भवन्तंविहितादरः ॥ ४ ॥ त्वयाप्यविदितंकिञ्चिन्नास्त्यत्रभुवनत्रये ॥ सर्वागमपुराणेषु

दो० । नन्दीश्वर से प्रश्नकिय मार्कंडेय मुनीश ! चौदहवें अध्यायमें सोई कथा वरीश ॥ ब्रह्माजी बोले कि नैमिषारण्यमें बसतेहुये मुनिलोग सूतजीसे बोले कि स्थानों के मध्यमें जो उत्तम शिवजीका स्थान हो उस स्थानको हमलोगों से कहिये ॥ १ ॥ सूतजीबोले कि हे मुनियो ! तुमलोग सुनो कि पुरातन समय नंदीश्वर के मुख से सुनेहुये जिस चरित को मैंने मार्कण्डेय मुनिसे सुनाहै उसको मैं कहताहूं तुम लोग आदर से सुनो ॥ २ ॥ मार्कण्डेयजी बोले कि हे नन्दीश्वर ! तुमने भक्ति से आज मुझसे महिमाको वर्णन किया और भक्ति व श्रद्धा से भीगे हुये चित्तसे मैंने भी सब सुना ॥ ३ ॥ तौभी हे दयानिधान, देवदेव ! आदर कियेहुये मैं आप से

जो पूछताहूं उसको मुझसे कहिये ॥ ४ ॥ इस त्रिलोक में तुम से समस्त शास्त्र व पुराणों तथा वेदों के मध्यमें कुछभी अज्ञात नहीं है ॥ ५ ॥ समस्त कर्मोंको करने वाले पुरुषको उस उस फलके मिलने के लिये स्वर्ग व मोक्ष के मध्य में भूमिही उत्तमहै ॥ ६ ॥ पुरातनसमय तुम्हींने पुरुषों के लिये तीनभांति के फलको कहाहै कि भूमि में सुख व स्वर्ग भोग और मोक्ष यह कहागयाहै ॥ ७ ॥ बहुधा पुण्य क्षीण होनेपर पहलेवाले दो याने भूमि में सुख व स्वर्ग भोग क्षीण होजाताहै और तीसरा मोक्ष नहीं नाशहोताहै वही कर्मों की गति है ॥ ८ ॥ और उसकी सिद्धि तो तुमने बुद्धि व विज्ञान के गोचर कहाहै व सबही शरीरधारियों को शुद्ध ज्ञान दुर्लभहै फिर ॥ ९ ॥

वेदेष्वभ्यन्तरेषुच ॥ ५ ॥ स्वर्गापवर्गयोःपुंसो भूमिरेवविशिष्यते ॥ सर्वकर्माणिनिर्मातुस्तत्तत्फलप्रलब्धये ॥ ६ ॥ फलञ्चत्रिविधंपुंसां त्वयैवकथितम्पुरा ॥ भूमौसुखंस्वर्गभोगःकैवल्यमितिचोदितम् ॥ ७ ॥ पुण्यक्षयेचक्षीयेत प्रायः प्राथमिकंद्वयम् ॥ क्षीयतेनतृतीयन्तु कर्मणामेवसागतिः ॥ ८ ॥ तत्सिद्धिस्तुत्वयाप्रोक्ता बुद्धिविज्ञानगोचरा ॥ सर्वेषांदुर्लभंशुद्धज्ञानन्देहभृताम्पुनः ॥ ९ ॥ तज्ज्ञानंकुत्रचक्षेत्रे शास्त्रादिपठनंविना ॥ शिवपूजनमात्रेण सिध्येत्सर्वशरीरिणाम् ॥ १० ॥ ज्ञानयोगक्रियावाचोह्यशेषाणांशरीरिणाम् ॥ अपिशैवागमोक्तेषु नबुद्धिस्साप्रवर्तते ॥ ११ ॥ यस्य स्थानस्यमाहात्म्यात्सर्वस्यापिशरीरिणः ॥ लभ्यतेनियमैःशुद्धं ज्ञानंतन्मेप्रकथ्यताम् ॥ १२ ॥ भस्मरुद्राक्षवहनादीश्वरस्मरणात्तथा ॥ यत्रमुग्धैरपिश्रेयो लभ्यन्तेतत्स्थानमुच्यताम् ॥ १३ ॥ अबुद्धिपूर्वकेणापि यत्रवासेनदेहिनः ॥ अविघ्नंसत्स्यतेश्रेयः स्थानंतन्मेनुगृह्यताम् ॥ १४ ॥ जातानांवर्णसाङ्कर्यैस्तैरश्चींयोनिमीयुषाम् ॥ स्थावराणामपिश्रेयोय

वह ज्ञान विन शास्त्रादिकों के पढ़ने से किस क्षेत्रमें मिलै और सब शरीरधारियों को वह ज्ञान शिवजी के पूजनमात्र से सिद्ध होवैहै ॥ १० ॥ ज्ञान, योग, कर्म व वचन सबही शरीरधारियों के होते हैं परन्तु शैवशास्त्रोक्त कर्मों में वह बुद्धि नहीं वर्तमान होतीहै ॥ ११ ॥ जिस स्थान के माहात्म्यसे सबभी देहधारी को नियमों से शुद्धज्ञानमिलै उसको मुझसे कहिये ॥ १२ ॥ भस्म व रुद्राक्ष के धारण से तथा ईश्वर के स्मरणसे जहांपर अज्ञानियों को भी ज्ञान मिलने योग्य हो उस स्थान को कहिये ॥ १३ ॥ और जहांपर अज्ञानपूर्वक भी प्राणी के निवाससे निर्विघ्नपूर्वक कल्याण सिद्ध होजावै है उस स्थान को मुझसे कहिये ॥ १४ ॥ व संकर वर्णमें उपजे

हुये तथा पशु, पक्षी की योनिमें प्राप्त और स्थावर (वृक्षादिकों) को भी जहां कल्याण होवै उस क्षेत्रको कहिये ॥ १५ ॥ उन मृकंडु के पुत्र मार्कण्डेयजी
कहकर अन्य मुनिनायक महात्माओं समेत शिलादके पुत्र उन नन्दीश्वर के दोनों चरणकमलों को सबशास्त्रोंकी प्राप्ति के लिये प्रणाम किया ॥ १६ ॥ इति श्री
पुराणेऽरुणाचलमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायाभाषाटीकायाचतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀
दो०। कह्यो मार्कण्डेयसन नन्दीश्वर शिवथान। पंद्रहवें अध्यायमें सोई कथा बखान ॥ नन्दिकेश्वरजी बोले कि हे मुने ! आप शैवो में अग्रगण्यहो सब

त्रतत्क्षेत्रमुच्यताम् ॥ १५ ॥ इतीरयित्वासमृकण्डुनन्दनोसमंमुनीन्द्रैरपरैर्महात्मभिः ॥ ननामतस्याङ्घ्रिसरोरुहद्वय
शिलादसूनोरखिलागमाप्तये ॥ १६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽरुणाचलमाहात्म्येचतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ ❀

नन्दिकेश्वरउवाच ॥ स्थानन्त्वयामुनेपृष्टमस्तिमाहेश्वराग्रणीः ॥ चराचराणांसर्वेषां भूतानामपिशर्मणे ॥ १
प्रकल्पितंहिदेवेन तत्तत्कर्मानुगुण्यतः ॥ शरीरभाजांजननं तासुतास्वपियोनिषु ॥ २ ॥ त्वयाशुश्रूषितंतेषां हिताय
हतेह्यलम् ॥ अन्यथासंसृतेर्हानिः कल्पैःकोटिशतैरपि ॥ ३ ॥ स्वल्पैर्हिकर्मभिर्ज्ञानैरपिप्राप्तैःपुनःपुनः ॥ घटीयन्त्र
वज्जन्ममरणैर्नैवशाम्यतः ॥ ४ ॥ कथंनुविरतोदेही गर्भशोकसमागमात् ॥ विश्रान्तयेप्रकल्पेत विशुद्धज्ञानतो
ना ॥ ५ ॥ नूनन्तेकथितःपूर्वं प्रसङ्गवशतोमया ॥ नद्यादिभेदकेष्वेव निवासःकृत्तिवाससः ॥ ६ ॥ केचित्तीरेषुगङ्गाय

प्राणियोंके कल्याणके लिये तुमने स्थानको पूंछाहै ॥ १ ॥ सदाशिव देवजीने उन उनकर्मों के अनुसार उनउन योनियों में शरीरधारियोंकी उत्पत्तिको कल्पित कियाहै
उनके बहुत हितकेलिये तुमने सुनने की इच्छा किया अन्यथा करोड़ों सौ कल्पोंसे भी संसृति (जन्म, मरण) की हानि होती है ॥ ३ ॥ पायेहुये ज्ञानों से थोड़े
के द्वारा फिर फिर घटीयंत्र (रहँट) की नाईं जन्म व मरण नहीं शान्त होतेहैं ॥४॥ गर्भशोक के संयोगसे विराग को प्राप्त प्राणी शुद्धज्ञानके विना किसभांति
के लिये समर्थ होवैहै ॥ ५ ॥ पहले प्रसंग के वशसे मैंने नदीआदिकोंके भेदोंमें शिवजी के स्थानको तुमसे निश्चयकर कहाहै ॥ ६ ॥ कोई गंगानदी के किनारे

कोई सरस्वती नदीके किनारे हैं अन्य यमुनानदीके किनारे व कोई शोणनदी के किनारे पर हैं ॥ ७ ॥ अन्य नर्मदानदी के किनारे व और गोदावरी के किनारे हैं
कोई गोमतीनदी के किनारे व अन्य हैमवती के किनारे हैं ॥ ८ ॥ अन्य समुद्रके किनारों में तथा और द्वीपों में हैं व कोई मुख्य तड़ागों में और कोई
अन्य नदियों के किनारोंमें हैं ॥ ९ ॥ कोई कृष्णा व वेणानदी के किनारे अन्य तुंगभद्रा के समीपहैं और कोई उपद्रोणा के समीप व अन्य भद्रानदी के समीपहैं ॥
१० ॥ अन्य कावेरीनदीके किनारे व कोई वेगवती के किनारेपरहैं अन्य ताम्रपर्णीनदी के समीप व कोई सुरसानदी के किनारे हैं ॥ ११ ॥ कोई ऐरावती के किनारे

केचित्सारस्वतेतटे ॥ कालिन्दीतीरयोरन्ये कतिचिच्छोणरोधसि ॥ ७ ॥ अपरेनर्मदातीरे परेगोदावरीतटे ॥ कति
चिद्गोमतीतीरेष्वन्येहैमवतीतटे ॥ ८ ॥ समुद्रपार्श्वेष्वितरेद्वीपेष्वन्येसरस्सु च ॥ मुख्येषुकेचित्सिन्धूनां तटेष्वपि चके
चन ॥ ९ ॥ कृष्णावेणातटेकेचित्तुङ्गभद्रान्तिकेपरे ॥ उपद्रोणांकतिपयाः परेभद्रापगान्तिके ॥ १० ॥ कावेरीतीरइतरे
केचिद्वेगवतीतटे ॥ अन्येतुताम्रपर्ण्याश्च कतिचित्सुरसातटे ॥ ११ ॥ केचिदैरावतीतीरे केचिद्वेणावतीतटे ॥ १२ ॥ क
न्यातटेषुकतिचित्कतिचित्कुमारीतीरपरेतुतमसांवरणान्तिकेन्ये ॥ मन्दाकिनीसविधयोरितरेपरेपि शिप्रातटेषुपरि
तोप्यपरेपराट्याः ॥ १३ ॥ विपाशाभ्याशइतरेशतद्रुश्चतटेपरे ॥ चर्मण्वत्युपकण्ठेन्ये केचिद्भीमरथीतटे ॥ १४ ॥ केचिद्बि
न्दुसरोभ्यर्णे परेपम्पासरस्तटे ॥ अभ्यर्णेकेपिभैरव्याः कतिचित्कौशिकीतटे ॥ १५ ॥ अपरेमालिनीतीरे परेगन्धव
तीतटे ॥ अन्येवेत्रवतीपार्श्वे कतिचिन्मानसेतटे ॥ १६ ॥ इन्द्रद्युम्नसरस्यन्य एकेतुमणिकर्णिके ॥ परेतुकम्पानद्यावेम

व कोई वेणावती के किनारे परहैं ॥ १२ ॥ कोई कन्या नदीके किनारे व अन्य कुमारी नदीके किनारोंमेंहैं व अन्य तमसावरणा के समीपहैं व अन्य मंदाकिनी व स-
विधानदी के किनारोंपरहैं तथा अन्य शिप्रानदी के किनारे व और पराटीनदी के किनारे हैं ॥ १३ ॥ व अन्य विपाशानदी के समीप और अन्य शतलजनदी के किनारे
हैं अन्य चर्मण्वतीनदीके किनारे व कोई भीमरथीनदीके किनारेहैं ॥ १४ ॥ व कोई बिंदुसरके समीप तथा और पपासर के किनारे परहैं व कोई भैरवीनदीके किनारे
तथा कोई कौशिकीनदीके किनारे हैं ॥ १५ ॥ अन्यमालिनीनदी के किनारे व अपर गन्धवतीके किनारे हैं और अन्य वेत्रवतीनदीके तटपै तथा कोई मानसरोवर के

किनारेपर हैं ॥ १६ ॥ व अन्य इन्द्रद्युम्नतडाग के किनारे व कोई मणिकर्णीका के किनारे व अन्य कंपानदी के किनारे और अन्य महानदी के किनारेपरहैं ॥ १७ ॥ व कोई लोहितीनदी के किनारे और कोई तुंगमानदी के किनारेहैं अन्य वितरतानदी के समीपहैं व और चन्द्रभागानदीके समीप हैं॥१८॥ कोई सुरलोपानदी के समीप व अन्य प्लीवसिनदी के किनारों पै हैं व कोई मधुमतीनदी के किनारे और कोई शोणनद के किनारे पै हैं ॥ १९ ॥ वाराणसी (काशी) क्षेत्र पांच कोसतक पवित्रकारक कहागयाहै जहांपर विमुक्तनामक देव व विशालानामक पूजित देवीजी हैं॥ २० ॥ और जहापर कि कपालमोचन नामक तीर्थ व जहां कालभैरवजी हैं हे मुने!

हानद्याश्चकेचन॥ १७ ॥ लोहित्याःकूलयोःकेचित्कतिचित्तुङ्गमातटे॥ वितस्तायान्तिकेत्वन्ये चन्द्रभागान्तिकेपरे॥ १८॥ सुरलोपान्तिकेकेचित्परेप्लीवसितीरयोः ॥ केचिन्मधुमतीतीरे केचिच्छोणनदेतटे ॥ १९ ॥ उक्तंवाराणसीक्षेत्रं क्रोशपञ्चकपावनम् ॥ देवोयत्रविमुक्ताख्यो विशालाख्यासमर्चिता ॥ २० ॥ कपालमोचनंयत्र यत्रास्तेकालभैरवः ॥ मृतानांयत्ररुद्रत्वं काश्याञ्चविहितम्मुने ॥ २१ ॥ गयाप्रयागौचतथा कथितौसर्वसिद्धिदौ ॥ यत्रपिण्डप्रदानेन तुष्यन्तिपितरःकिल ॥ २२ ॥ गोकर्णञ्चैवकेदारं यस्मिन्महिषरूपधृक् ॥ देवोपिसोधुनास्तेच सर्वश्रेयस्करोनृणाम् ॥ २३ ॥ सर्वसिद्धिकरंपुंसां श्रुतंबदरिकाश्रमम् ॥ अत्रास्तेत्र्यम्बकोदेव्या नरनारायणार्चितम् ॥ २४ ॥ श्रुतंहिनैमिषंक्षेत्रं त्वया यत्रमहेश्वरः ॥ देवदेवोमहादेवस्त्रिपुरस्यान्तकारकः ॥ २५ ॥ अमरेशमितिस्थानं प्रोक्तंसर्वार्थसाधकम् ॥ ॐङ्कारनामातत्रापि चण्डिकाख्यामहेश्वरी ॥ २६ ॥ पुष्कराख्यंमहास्थानं श्रुतंतेकथितम्मया ॥ यत्रदेवोरुजोगन्धिः पुरुहूताम

जिस काशी में मरेहुये मनुष्यों को शिवत्व कहागयाहै ॥ २१ ॥ वैसेही गया और प्रयाग सर्वसिद्धिदायक कहेगयेहैं जहांपर पिण्डके देनेसे पितर प्रकटही प्रसन्नहोते हैं ॥ २२ ॥ और गोकर्ण व केदारक्षेत्रहै कि जिसमें महिषरूपधारी वे शिव देवजी इस समयहैं जोकि मनुष्योंके सबकल्याणकारक हैं ॥ २३॥ और बदरिकाश्रम मनुष्यों को सब सिद्धियोंका कारकहै यहांपर नरनारायणसे पूजित देवीजी समेत त्रिलोचनजीहैं ॥ २४ ॥ और नैमिष क्षेत्रको तुमने सुनाहै जहां कि त्रिपुरके विनाशकारक देवदेव महादेवजीहैं ॥ २५ ॥ व सब प्रयोजनोंको सिद्धकरनेवाला अमरेश ऐसास्थानहै वहांभी ॐकारनामक महादेवजी और चण्डिकानामक भगवतीहैं ॥२६ ॥ और मुझसे

कहे हुये पुष्करनामक बड़ेभारी स्थानको तुमने सुना है जहां कि रजोगन्धि नामक शिवदेव व पुरुहूता महेश्वरी हैं ॥ २७ ॥ मैंने आषाढीनामक पवित्रस्थानको तुमसे
कहा है वहां आषाढेश शिवजी हैं व रतिनामक परमेश्वरीहैं ॥ २८ ॥ और मैंने तुमसे दंडिमुंडीनामक स्थानको कहाहै जहांपर कि मुंडी महादेव और दंडिका भगवती
हैं ॥ २९ ॥ और मैंने तुमसे लाकुलिनामक शुद्धस्थान को कहाहै जिसमें लाकुलीश महादेव और सर्वमंगला परमेश्वरीहैं ॥ ३० ॥ और मैंने तुमसे भारभूति ऐसे स्थानको
कहाहै जहांपर भार नामक शिवजी और भूतिनामक पार्वतीजीहैं ॥ ३१ ॥ और मैंने तुमसे अरालकेश्वर नामक स्थानको कहाहै जहां कि सूक्ष्मनामक शिवजी व सूक्ष्मा

**हेश्वरी ॥२७॥ आषाढीनामतेस्थानं पावनंकथितम्मया ॥ आषाढेशोहरस्तत्र रतिश्चपरमेश्वरी॥२८॥दण्डिमुण्डीसमा
ख्यञ्च स्थानंतेकथितम्मया ॥ यत्रमुण्डीमहादेवो दण्डिकापरमेश्वरी ॥ २९ ॥ लाकुलिनामतेस्थानं विशुद्धंकथि
तम्मया ॥ लाकुलीशोहरोयस्मिन् देवीचसर्वमङ्गला ॥ ३० ॥ भारभूतिरितिस्थानं भवतोभिहितम्मया ॥ यत्रभाराभि
धःशम्भुर्भूत्याख्याभूधरात्मजा ॥ ३१ ॥ अरालकेश्वरंनामस्थानंतेकथितम्मया ॥ यत्रसूक्ष्माभिधःशूली सूक्ष्माख्या
शैलनन्दिनी ॥ ३२ ॥ गयानाममहाक्षेत्रं तवप्रस्तावितम्मया ॥ मङ्गलाख्याशिवायत्र शङ्करःप्रपितामहः ॥ ३३ ॥ कु
रुक्षेत्रमितिस्थानं भवतोविनिवेदितम् ॥ यत्रस्थाणुप्रियादेवी देवःस्थाणुसमाह्वयः ॥३४॥ उत्तंकनखलंनाममयास्थानं
तथोत्तमम् ॥ उग्रोयत्रपुरारातिरुमागिरिवरात्मजा ॥ ३५ ॥ तालकाख्यंमहाक्षेत्रं मार्कण्डेयमयोदितम् ॥ देवीस्वयं
भुवीयत्र स्वयंभूःपरमेश्वरः ॥ ३६ ॥ अट्टहासमितिप्रोक्तं महास्थानंमयातव ॥ यत्रार्कःपूजयित्वेशमासीत्पूर्णमनोर**

नामक पर्वतकुमारीहैं ॥ ३२ ॥ व मैंने गयानामक महातीर्थ को तुमसे कहाहै जहां पर मंगला नामक पार्वती व प्रपितामह नामक सदाशिवजीहैं ॥ ३३ ॥ और कुरुक्षेत्र
ऐसा स्थान तुमसे कहागया है जहांपर स्थाणुप्रिया नामक देवी और स्थाणु नामक शिवजीहैं ॥३४॥ वैसेही मैंने तुमसे कनखलनामक उत्तम स्थानको कहाहै जहांपर
उग्रनामक पुराराति याने त्रिपुरविनाशक शिवजी व उमा नामक पार्वतीजी हैं ॥३५॥ हे मार्कंडेयजी ! तालक नामक महाक्षेत्रको मैंने कहाहै जहांपर स्वयंभुवी नामक
देवी व स्वयंभू नामक शिवहैं ॥३६॥ और मैंने तुम से अट्टहास ऐसे महास्थानको कहाहै जहांपर सूर्यनारायणजी ईशनामक शिवजीको पूजकर पूर्णमनोरथवाले हुये

है ॥३७॥ हे वेदवित्तम, मार्कंडेयजी ! कृत्तिवासनामक स्थान तुमसे कहागयाहै जो निवास कि शिवजी को कैलास से भी अधिक प्याराहै ॥३८॥ और सृष्टिकी सिद्धि के लिये ब्रह्मा से पूजेहुये श्रीशैलपर भ्रामरीनामक पार्वतीदेवी समेत मल्लिकार्जुन नामक महेशजी है ॥ ३९ ॥ और मुखरिणी नामक देवीसमेत कालहस्तीनामक जो ये शिवजी है वे व्यास से आराधन कियेहुये मुखराल नामक स्थान में हैं॥४०॥ और कांची पुरीमें कामाक्षीदेवी समेत कामशासन कालमूल नामक सदाशिवजीहैं ॥४१॥ जो कि तपस्या करतीहुई पार्वतीजी से डरसे लिपटायेहुये शिवजी कंकण से चिह्नित हुये हैं और सघन वनके बीचमें प्राप्त जो व्याघ्रपुर नामक स्थानहै ॥ ४२ ॥ वहांपर

थः ॥३७॥ कृत्तिवासाभिधंक्षेत्रमुक्तंतेवेदवित्तम ॥ यःकैलासादपिश्लाघ्यो निवासःकृत्तिवाससः ॥ ३८ ॥ भ्रामर्याम्बिकयादेव्या महेशोमल्लिकार्जुनः ॥ श्रीशैलेसृष्टिसिद्ध्यर्थं पूजितःपरमेष्ठिना ॥ ३९ ॥ देव्याचमुखरिण्यावैकालहस्तीतिशङ्करः ॥ व्यासेनाराधितोयोसौ मुखरालेमहेश्वरः ॥ ४०॥ काञ्च्याञ्चकालमूलोस्तिकामाक्ष्याकामशासनः ॥४१॥ तपस्यन्त्याभियाश्लिष्टो वलयेनाङ्कितोभवत् ॥ अस्तिव्याघ्रपुरंयच्च घनकाननमध्यगम् ॥४२॥ तत्रनृत्यन्तमीशानं पर्युपास्तेपतञ्जलिः ॥ श्वेतारण्यमितिस्थानमुक्तंतवमयापुरा ॥ ४३ ॥ भग्नमैरावतोदन्तं लेभेयत्रशिवार्चनात् ॥ सेतुबन्धमितिस्थानमवोचंयत्रराघवः ॥ ४४ ॥ रामनाथाख्ययादेवो माहेन्द्रमध्यतिष्ठिपत् ॥ गजप्रपाह्वयस्थानं विद्यते वृषभध्वजः ॥ ४५ ॥ यत्राश्वत्थतरोर्मूले जगद्रक्षार्थमाश्रितः ॥ मणिमुक्तानदीचैव क्षेत्रेवृद्धाचलाह्वये ॥ ४६ ॥ नित्यं सन्निहितोदेव इत्याकर्णितएवते ॥ श्रीमन्मध्यार्चनंनाम श्रुतंस्थानमनुत्तमम् ॥ ४७ ॥ यस्मिन्वरप्रदोनित्यं गौरीसहच

नाचतेहुये शिवजीकी पतंजलिजी उपासना करतेहैं पुरातनसमय मैंने तुमसे श्वेतारण्य ऐसे स्थान को कहाहै ॥४३॥ जहांपर कि शिवजी के पूजनसे ऐरावत ने टूटेहुये दांतको पायाहै और मैंने सेतुबंध ऐसे स्थानको कहाहै जहांपर श्रीरघुनाथदेवजीने ॥ ४४ ॥ महेन्द्रपर्वतपै रामनाथके नामसे महादेवजीका स्थापन कियाहै और गजप्रपा नामक स्थानपै वृषभध्वजनामक सदाशिवजी विद्यमानहैं ॥ ४५ ॥ जहांपर कि पीपल वृक्ष के नीचे शिवजी संसारकी रक्षाके लिये टिके हैं और वृद्धाचलनामक स्थान में मणिमुक्तानामक नदीहै ॥ ४६ ॥ वहांपर श्रीसदाशिवजी नित्यही टिके रहते हैं इसको तुमने सुनाहीहै और श्रीमान् मध्यार्चन नामक अतिउत्तम स्थानको

रोवरः ॥ आश्रितंसोमनाथेन सोमतीर्थंत्वयाश्रुतम् ॥ ४८ ॥ यत्रत्यक्तवतांदेहं नभवेद्भवबन्धनम् ॥ आकर्णितंहिभव
ता क्षेत्रंसिद्धवटाह्वयम् ॥ ४९ ॥ यत्रसिद्धास्मनामेति श्रितंलिङ्गमनुत्तमम् ॥ श्रावितआर्जुनक्षेत्रं कमलालयसंज्ञिक
म् ॥ ५० ॥ वाल्मीकेशार्चनाल्लेभे यत्रश्रीर्ज्ञानमद्भुतम् ॥ श्रुतवानसिकङ्काद्रिं यत्रसन्निहितौहरम् ॥ ५१ ॥ इदानीमप्यु
पासाते मोक्षायब्रह्मकेशवौ ॥ श्रीमद्द्रोणपुरंवेत्सियस्मिन्कलियुगक्षये ॥ ५२ ॥ नौकामारूढवानब्धौ क्षुभितेपार्व
तीपतिः ॥ श्रुतंब्रह्मपुरंनाम क्षेत्रंयत्रस्थितःपुरा ॥ ५३ ॥ ब्रह्मापुष्करिणीतीरे स्थापयामासधूर्जटिम् ॥ श्रीकोटिकाख्यं
जानासि क्षेत्रंयत्रेन्दुशेखरः ॥ ५४ ॥ सम्यक्चध्यायतांपुंसांपापकोटिंव्यपोहति ॥ आकर्णितंचगोकर्णं शिवंयत्सन्निधा
नतः ॥ ५५ ॥ आरिराधयिषुःस्वर्गं जामदग्न्योनकाङ्क्षति ॥ त्रिपुरान्तकमुक्तन्ते क्षेत्रंयत्रत्रियम्बकः ॥ ५६ ॥ निराक
रोतिनिरयाद्भयंदृष्टवतांनृणाम् ॥ उक्तंकालञ्जरंक्षेत्रंयद्वासीकालकन्धरः ॥ ५७ ॥ निवारयतिभक्तानां घोरसंसारसंज्व

तुमने सुनाहै ॥ ४७ ॥ जहांपर कि उत्तम वरदायक सदाशिवजी नित्यही पार्वती समेत टिकेरहते हैं और सोमनाथ से आश्रयकियेहुये सोमतीर्थ को तुमने सुना
है ॥ ४८ ॥ जहांपर देह त्यागनेवाले जनोंको फिर जन्मका बन्धन नहीं होताहै और सिद्धवट नामक स्थानको आपने सुनाहै ॥४९॥ जहांपर सिद्धास्म नामक अति उत्तम
लिंगहै और कमलालय संज्ञक अर्जुनक्षेत्र तुमको सुनायागया ॥ ५० ॥ जहांपर वाल्मीकेश शिवजी के पूजनसे लक्ष्मीजीने अद्भुत ज्ञानको पायाहै और कंकाचल
पर्वतको तुमने सुनाहै जहांपर कि टिकेहुये ब्रह्मा व विष्णुजी मोक्ष के लिये सदाशिवजी की इससमय भी उपासना करतेहैं और श्रीमान् द्रोणपर्वत को जानते हो जिसमें
कलियुग के नाशहोनेपर ॥ ५१ । ५२ ॥ क्षोभित समुद्र में नावके ऊपर पार्वतीपति सदाशिवजी आरूढ हुये हैं और ब्रह्मपुरनामक क्षेत्रको सुना है जहांपर पहले टिके
हुये ॥ ५३ ॥ ब्रह्माजीने पुष्करिणीनदीके किनारे सदाशिवजीका स्थापन कियाहै और श्रीकोटिकनामकक्षेत्र को जानतेहो जहांपर चन्द्रभालजी ॥ ५४ ॥ भलीभांति ध्यान
करतेहुये पुरुषों के करोड़ों पापों को नाश करते हैं और गोकर्णनामक कल्याणदायक क्षेत्रको तुमने सुनाहै जिनकी समीपता से ॥ ५५ ॥ आराधन करनेकी इच्छावाले
परशुरामजी स्वर्गको नहीं चाहते हैं और तुमसे त्रिपुरान्तकनामक क्षेत्र कहागया जहांपर त्रिलोचनजी ॥ ५६ ॥ दर्शन करनेवाले जनों के नरकके डरको नाशकरते हैं व

कालंजर क्षेत्र कहागया जहांके बसनेवाले कालकन्धर शिवजी ॥ ५७ ॥ भक्तोंके भयंकर संसारके दुःखको शान्त करते हैं व प्रियालवनक्षेत्र कहागयाहै जहापर पार्वती पति शिवजी हैं ॥ ५८ ॥ व प्रभासक्षेत्र तुमसे कहागया जहाकि कृष्ण व बलभद्रसे पूजित चन्द्रखण्ड मस्तकवाले शिवजीने अविनाशीफल को दियाहै ॥ ५९ ॥ व वेदारण्य को जानते हो कि जिसमें पहले दक्षजीसे हितकेलिये याचनाकियेहुये वे प्रमथनायक शिवजी मोक्षकेलिये हुये हैं ॥ ६० ॥ व विषमलोचन शिवजीके हेमकूट नामक स्थानको तुमने सुनाहै जहापर तपस्याकरतेहुये पुरुषोंका फिर जन्म नहीं होताहै ॥६१॥ व वेणुवननामक पापनाशकक्षेत्र विद्यमानहै जहापर बासोंके अग्निरूप

रम् ॥ प्रियालवनमाख्यातं क्षेत्रंयत्राम्बिकापतिः ॥ ५८ ॥ क्षेत्रंप्रभासमुक्तन्ते यत्रखण्डेन्दुशेखरः॥ पूजितःशौरिसीरिभ्यान्दत्तवानक्षयंफलम् ॥ ५९ ॥ वेदारण्यंविजानीषे यस्मिन्प्रमथनायकः ॥ अस्त्यर्थितोभून्मोक्षार्थं दक्षेणप्राग्हितायसः ॥ ६० ॥ हेमकूटन्त्वमश्रौषीः स्थानंविषमचक्षुषः ॥ पुंसांतपस्यतांयत्र पुनर्जन्मनविद्यते ॥ ६१ ॥ क्षेत्रंवेणुवनंनाम विद्यतेपापनाशनम् ॥ यत्रवंशानलाद्गर्भाज्जातोमुक्तामणिःशिवः ॥ ६२ ॥ जालन्धरमितिस्थानमन्धकारेस्त्वयाश्रुतम् ॥ लेभेगाणपतंयत्र तपस्याभिर्जलन्धरः ॥ ६३ ॥ ज्वालामुखमितिस्थानमज्ञासीःकथितम्मया ॥ यत्र ज्वालामुखीदेवी कालरुद्रमपूजयत् ॥६४ ॥ अस्तिभद्रवटंनाम क्षेत्रमुक्तंश्रुतंत्वया ॥ त्र्यम्बकंयत्रभक्ताश्च सम्पदेपर्यपूजयन् ॥ ६५ ॥ न्यग्रोधारण्यमुक्तञ्च यत्रोग्रःशिवशङ्करः ॥ उच्चण्डंताण्डवंकृत्वा साकंसंहर्षमेयिवान् ॥ ६६ ॥ गन्धमादनसंज्ञन्तु क्षेत्रमाकर्णितंत्वया ॥ कृत्वासुखंलभेदेवयत्रमृत्युंजयार्चनम् ॥ ६७ ॥ गोपर्वतमितिस्थानं शम्भोःप्र

गर्भसे मुक्तामणि नामक शिवजी उत्पन्नहुयेहैं ॥ ६२ ॥ और तुमने अन्धकारि शिव जीके जालंधर नामक स्थान को सुनाहै जहांपर जलंधर ने तपस्याओं से गणाध्यक्षता को पायाहै ॥६३॥ और मुझसे कहेहुये ज्वालामुख स्थानको तुमने जानाहै जहांपर ज्वालामुखीदेवी ने कालरुद्रजीको पूजाहै ॥ ६४ ॥ तुमने भद्रवटनामक कहेहुये क्षेत्रको सुना है जहांपर भक्तों ने लक्ष्मी के लिये त्रिलोचनजीको पूजाहै ॥ ६५ ॥ व तुमने कहेहुये न्यग्रोधवनको सुनाहै जहांपर उग्रनामक सदाशिवजी प्रचण्ड नृत्यकर पार्वतीजी समेत बड़ीप्रसन्नताको प्राप्तहुयेहैं ॥६६॥ और गन्धमादन नामक क्षेत्रको तुमने सुनाहै जहांपर मृत्युंजयका पूजनकर मनुष्य सुखको अवश्यकर पाता

है॥६७॥व गोपर्व्वत ऐसे शिवजीके स्थानको मैंने कहाहै जहांपर पाणिनिजीने वैयाकरणोंमें मुख्यताको पायाहै॥६८॥और वारकोष्ठ ऐसे क्षेत्रस्थानको तुमने निर... कर सुना
है जहांपर प्रचेताने जलमें तपस्यासे कवियों में मुख्यताको पायाहै॥ ६९ ॥व महातीर्थ ऐसे क्षेत्रको जानतेहो जहांपर कि शिवजीमे ब्रह्मादिक सब्बी देवता पदार्थगये
है ॥७०॥ और मैंने मयूरक्षेत्रको भी कहाहै जहांपर कि व्रतमें स्थित इन्द्रने बिजली को पायाहै ॥७१॥ व वेगवतीनदीके किनारे श्रीसुन्दर ऐसा क्षेत्र कहागयाहै जिस नदी
से संयुत स्थानमें कलियुगमें भी देवदेव शिवजी स्थितहैं ॥ ७२ ॥ और कुंभकोण ऐसे शिवजीके स्थानको तुम जानतेहो जहांपर कि वे गंगाजीहैं और वहां महादेवजी

ख्यापितम्मया ॥ यत्रपाणिनिनालेभे वैयाकरणकाग्रताम् ॥ ६८ ॥ वारकोष्ठमितिक्षेत्रस्थानंनन्ववधारितम् ॥ यत्र
प्रचेताःसलिले तपसाकविमुख्यताम्॥६९॥महातीर्थमितिक्षेत्रं जानीषेयत्रशम्भुना॥ अध्यापिताश्चयत्रैव सर्वेपिद्रुहि
णादयः ॥ ७० ॥ मयूरञ्चापिविहितं क्षेत्रंमाहेश्वरम्मया ॥ लेभेयत्रव्रतस्थेन ह्रादिनीवज्रपाणिना ॥ ७१ ॥ श्रीसुन्दर
मितिक्षेत्रमुक्तंवेगवतीतटे ॥ कलावपियुगेयस्मिन् देवदेवोनदीयुते ॥ ७२ ॥ कुम्भकोणमितिस्थानं शम्भोर्वेत्सिहिय
त्रसा ॥ गङ्गास्तिमाघेसान्निध्यं कुरुतेपापशान्तये ॥ ७३ ॥ स्थानंगोदावरीतीरेत्र्यम्बकंनामतेश्रुतम् ॥ शक्तिंयत्रगुहोले
भे तारकासुरघातिनीम् ॥ ७४ ॥ श्रीपाटलेव्याघ्रपुरमाख्यातंवेदवित्तम ॥ त्रिशङ्कुनाज्ञातिशुद्धो यत्रगङ्गाधरोर्चि
तः ॥ ७५ ॥ क्षेत्रंकदम्बपुर्याख्यं भवताचावधारितम् ॥ त्वत्कृतेयत्रशूलेन कृतान्तंशम्भुरक्षिणोत ॥ ७६ ॥ अविना
शाख्यमुक्तन्ते क्षेत्रंयत्रवृषध्वजः ॥ आस्तेगिरिजयासार्द्धमहादेवोमहेश्वरः ॥ ७७ ॥ रक्तकाननमाख्यातं मयाक्षेत्रं

माघमें पापकी शान्तिकेलिये समीपताकरतेहैं ॥ ७३ ॥ व गोदावरीके किनारेपै त्र्यम्बकनामक स्थानको तुमने सुनाहै जहांपर स्वामिकार्त्तिकेयजीने तारकासुरको मारने
वाली शक्तिको पायाहै ॥ ७४ ॥ व हे वेदवित्तम ! श्रीपाटलपुरमें व्याघ्रपुरनामक स्थानको मैंने तुमसे कहाहै जहांपर त्रिशंकु राजाने ज्ञातिशुद्ध नामक गंगाधरको
पूजाहै ॥ ७५ ॥ और कदम्बपुरीनामक क्षेत्रको आपने सुनाहै जहांपर शिवजीने तुम्हारे लिये त्रिशूल से यमराज का नाश कियाहै ॥ ७६ ॥ और अविनाश नामक क्षेत्र
तुमसे कहागया जहांपर कि पार्वतीजी समेत वृषध्वज महेश्वर महादेवजी स्थितहैं॥ ७७ ॥ व हे अनघ ! मैंने तुमसे रक्तकानन नामक क्षेत्रको कहाहै जहां कि मित्रावरुण

को वरदेनेवाले शिवजी उत्पन्नहुये हैं ॥ ७८ ॥ व तुमने पातालमें स्थित श्रीहाटकेश्वर क्षेत्रको सुना है जहां कि विरोचनके पुत्र बलि अपने स्थानको पानेके लिये शिवजी को पूजतेहैं ॥७९॥ और शिवजी के प्रियनिवासस्थान कैलास को जानतेहो जहां कि यक्षेश्वर कुबेरजी सदैव सेवकहोकर भक्तिसे त्रिलोचनजीको पूजतेहैं ॥ ८० ॥ पुरातनसमय मुझसे शिवजीके कहेहुये इनस्थानोंको तुमनेसुनाहीहै फिर क्या सुनना चाहतेहो ॥ ८१ ॥ शिलादकेपुत्र इन नन्दीश्वरजीने मृकण्डुमुनिके पुत्र मुनिनायक मार्कण्डेयजीसे इसप्रकार कहा व भक्तिसे चरणोंमें प्रणाम करतेहुये उनको करुणारससे भीगेहुये नन्दीश्वरने हाथसे मस्तकमें स्पर्श किया ॥८२॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽरुणा

तवानघ ॥ मित्रावरुणयोर्यत्र रुद्रोजनिवरप्रदः ॥ ७८ ॥ श्रीहाटकेश्वरंक्षेत्रं पातालस्थंत्वयाश्रुतम् ॥ यत्रवैरोचनिर्देवं स्वपदप्राप्तयेर्चति ॥ ७९ ॥ वेत्सिशम्भोःप्रियावासं कैलासंनित्यसेवकः ॥ यत्रयक्षेश्वरस्त्र्यक्षमभ्यर्चयतिभक्तितः ॥ ८० ॥ स्थानानिखण्डपरशोरित्युक्तानिमयापुरा ॥ त्वयाप्यवधृतान्येव किंभूयःश्रोतुमिच्छसि ॥ ८१ ॥ इत्यूचिवानेषशिलादनन्दनोमुनेर्मृकण्डोस्तनयम्मुनीश्वरम् ॥ भक्त्यानमन्तंपदयोःकरेणपस्पर्शमौलौकरुणारसार्द्रः ॥८२॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽरुणाचलमाहात्म्येपञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ * ॥ * ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥ भगवन्वञ्चनेनालं त्वदेकप्रवणेमयि ॥ किम्प्रोद्देश्योस्तितेशिष्यस्त्वत्कृपैवात्रसाक्षिणी ॥ १ ॥ स्थानेषुप्राक्त्वदुक्तेषु फलानिचपृथक्पृथक् ॥ यत्रसर्वफलप्राप्तिः स्थानंतद्वदमेविभो ॥ २ ॥ चराचराणाम्भूतानां जानतामप्यजानताम् ॥ यस्यस्मरणमात्रेण मुक्तिस्तद्वददेशकम् ॥ ३ ॥ पश्यैतेनमयैकेन भगवन्नानुरोध्यसे ॥ सर्वैरप्ये

चलमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांपञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

दो० । जिमि मृकण्डुसुत नन्दिसन पूंछ्यो उत्तम थान । सोलहवें अध्यायमें सोई करत बखान ॥ मार्कंडेयजी बोले कि आपके वचन से तुम्हीं एकमें झुकेहुये मुझमें क्या उद्देश करनेयोग्यहै मैं तुम्हारा शिष्यहूं इसमें तुम्हारी दयाही साक्षिणी है ॥ १ ॥ पहले तुमसे कहेहुयेस्थानों में भिन्न २ फलहैं हे विभो ! जहां सबफलोंकी प्राप्ति होवै उस स्थानको मुझसे कहिये ॥ २ ॥ जानते व न जानतेहुयेभी चराचर प्राणियों की जिसके सुमिरनेही से मुक्ति होती है उस स्थानको कहिये ॥ ३ ॥हे भगवन् !

देखिये इस मुझी एकसे तुम नहीं घिरेहो किन्तु इसीके लिये सबभी मुनियोंसे घिरे हुयेहो ॥ ४ ॥ पुलह,पुलस्त्य, वसिठ,मरीचि,अगस्त्य, दधीच,न्यंकु,भृगु व अत्रिसे घिरे हो ॥ ५ ॥ व जाबालि, जैमिनि, धौम्य, जमदग्नि, उपयाज्ञ, याज व भरतसे घिरेहो ॥ ६ ॥ व पिप्पलाद, कराव, कुमुद, उपमन्यु, कुमुदाक्ष, कुत्स, वत्स व वर-तन्तु से घिरेहो ॥ ७ ॥ व विभांडक, व्यास, कण्वरीष, कंडु, माण्डव्य, मतंग, कुक्षि व मांडुकर्णीसे घिरेहुयेहो ॥ ८ ॥ और चंडी, विश्वामित्र, शांडिल्य, शाकटायन, कैशिक, शातातप, मधुच्छंद, गर्ग, सौभरि व लोमश महर्षि से घिरेहुयेहो ॥ ९ ॥ और आपस्तंब, पृथुस्तंब, भृगु, दंडक, पावित, भारद्वाज, दाम्य, दान्त व श्वेत-

तदर्थंहि मुनिभिःपरिवार्यसे ॥ ४ ॥ पुलहेनपुलस्त्येन वसिष्ठेनमरीचिना ॥ अगस्त्येनदधीचेन न्यङ्कुनाभृगुणात्रि
णा ॥ ५ ॥ जाबालिनाजैमिनिना धौम्येनजमदग्निना ॥ उपयाज्ञेनयाजेन भरतेनपरीवृतः ॥ ६ ॥ पिप्पलादेनकण्वेन
कुमुदेनोपमन्युना ॥ कुमुदाक्षेणकुत्सेन वत्सेनवरतन्तुना ॥ विभाण्डकेनव्यासेन कण्वरीषेणकण्डुना ॥ ७ ॥ माण्डव्येन
मतङ्गेन कुक्षिणामाण्डुकर्णिना ॥ ८ ॥ चण्डकौशिकशाण्डिल्यशाकटायनकैशिकैः ॥ शातातपमधुच्छन्दगर्ग
सौभरिरोमशैः ॥ ९ ॥ आपस्तम्बपृथुस्तम्बभृगुदण्डकपावितैः ॥ भारद्वाजेनदाम्येन दान्तेनश्वेतकेतुना ॥ १० ॥ कौ
ण्डिन्यपुण्डरीकाभ्यां रैभ्येनतृणबिन्दुना ॥ वाल्मीकिनानारदेन वह्निनादृढमन्युना ॥ ११ ॥ बोधायनसुबोधाभ्यां
हारीतेनमृकण्डुना ॥ दुर्वाससासुतीक्ष्णेन जालपादेनशक्तिना ॥ १२ ॥ काङ्कायनेनदत्तेन देवदत्तेनपङ्गुना ॥ संश्रुते
नाग्निवश्येन गालवेनमरुत्वता ॥ १३ ॥ लोकाक्षिणाविश्रवसा सैन्धवेनसुमन्तुना ॥ शिंशपायनमौद्गल्यपथ्यच्यवन

केतु से घिरेहुयेहो ॥ १० ॥ और कौंडिन्य, पुंडरीकसे व रैभ्य तथा तृणबिन्दु से और वाल्मीकि व नारदसे व वह्नि तथा दृढमन्यु से घिरेहो ॥ ११ ॥ व बोधा-यन, सुबोध से व हारीत तथा मृकण्डुसे और दुर्वासा व सुतीक्ष्ण से तथा जालपाद व शक्तिसे घिरेहुयेहो ॥ १२ ॥ व कांकायन,दत्त से तथा देवदत्त व पंगु से और संश्रुत व अग्निवश्यसे तथा गालव व मरुत्वान् से घिरेहुयेहो ॥१३॥ और लोकाक्षी व विश्रवासे तथा सैंधव व सुमन्तु से और शिंशपायन, मौद्गल्य, पथ्य, च्यवन व

माथुर से घिरेहुयेहो ॥ १४ ॥ और ऋष्यशृंग, एकपाद, क्रौंच, दृढ़, गोमुख, देवल, अंगिरा, वामदेव, और्व, पतंजलि व कपिंजल से घिरेहुयेहो ॥ १५ व सनत्कुमार, सनक, सनन्दन, सनातन, हिरण्यनाभ, सत्याक्ष, वनाशन व सुहोतृ से घिरेहुयेहो ॥ १६ ॥ और मैत्रेय, पुष्पजित, सत्यवादी व शालीशक, निदाघ, चम्प, सैवर्त, शैलकाय व पराशरसे घिरेहुयेहो ॥ १७॥ व वैश्यायनक, कौशल्य, शारद्वत, कपिध्वज, कुश, चार्विक, कैवल्य, याज्ञवल्क्य व आश्वलायनजीसे घिरेहो ॥ १८ ॥ और कृष्णातप, तमोनुत, सकारुण व आमलकप्रिय, चरक, पवित्र, कपिल व कणाशीरो घिरेहो ॥ १९ ॥ और नरनारायण तथा मेरे प्रश्नोत्तर के सुननेकी इच्छा में लगेहुये अन्य

माथुरैः ॥ १४ ॥ ऋष्यशृङ्गैकपात्क्रौञ्चदृढगोमुखदेवलैः ॥ अङ्गिरोवामदेवौर्वपतञ्जलिकपिञ्जलैः ॥ १५ ॥ सनत्कुमारसनकसनन्दनसनातनैः ॥ हिरण्यनाभसत्याक्षवनाशनसुहोतृभिः ॥ १६ ॥ मैत्रेयपुष्पजित्सत्यवादिशालीशकैस्तथा ॥ निदाघचम्पसैवर्तशैलकायपराशरैः ॥ १७ ॥ वैश्यायनककौशल्यशारद्वतकपिध्वजैः ॥ कुशचार्विककैवल्ययाज्ञवल्क्याश्वलायनैः ॥ १८ ॥ कृष्णातपतमोनुत्सकारुणामलकप्रियैः ॥ चरकेणपवित्रेण कपिलेनकणाशिना ॥ १९ ॥ नरनारायणाभ्याञ्च दिव्यैश्चान्यैर्महर्षिभिः ॥ मत्प्रश्नोत्तरशुश्रूषातत्परैःप्रत्यवेक्ष्यसे ॥ २० ॥ माहेश्वराग्र्यणीस्त्वञ्च समस्तागमपारगः ॥ व्याप्तश्चसर्वलोकेषु यस्मात्तदनुरोध्यसे ॥ २१ ॥ त्वन्मुखादेवभगवन्वयमेतसुशिक्षिताः ॥ दिव्यागमपुराणेषु द्रष्टव्यःपरमेश्वरः ॥ २२ ॥ कात्यायनीवास्कन्दोवा भगवान्वाथवाभवान् ॥ त्वयियद्यस्तिनोभक्तिर्दयाचास्मासुतेयदि ॥ २३ ॥ रहस्यमिदमुद्धाट्यप्रसादंकर्तुमर्हसि ॥ २४ ॥ इत्थंमृकण्डुतनयेन सनन्दिकेशोवि

दिव्य महर्षियोंमे देखेजातेहो ॥ २० ॥ और जिसलिये सबशास्त्रों के पारगामी तुम शैवों में श्रेष्ठहो और सबलोकों में प्राप्तहो इसीसे घेरेजातेहो ॥ २१ ॥ हे भगवन्! तुम्हारेही मुखसे ये हमलोग भलीभांति शिक्षितहैं उत्तम शास्त्रों व पुराणोंमें परमेश्वर को देखनाचाहिये ॥२२॥ चाहै भगवतीहो या स्वामिकार्त्तिकेयजी व विष्णुजी तथा आप होवो यदि हमलोगोंकी तुममें भक्ति होवै व यदि हमलोगोंके ऊपर तुम्हारी दयाहोवै ॥ २३ ॥ तो इस गुप्तचरित्रको प्रकाशितकर प्रसन्नता करनेके योग्यहो ॥२४॥ इसप्रकार मृकंडु के पुत्र मार्कंडेयजी से कहेहुये उन नन्दीश्वरने तदनन्तर विनय समेत मुसक्यातेहुये मुखवाले उन मार्कंडेयजीको शरीरकी सिद्धिकेलिये पहले भक्ति

ज्ञापितः सविनयंस्मयभावक्त्रम् ॥ तंबद्धमन्यततः शिवभक्तिमत्सुप्राग्भक्तितोषितशिवेषुशरीरसिद्धौ ॥ २५ ॥ इति
श्रीस्कन्दपुराणेऽरुणाचलमाहात्म्येषोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ * ॥ * ॥ * ॥
नन्दिकेश्वरउवाच ॥ मुनेमनःपरीक्षार्थंन्यथात्वंभाषितोमया ॥ तवचेन्नाभिधास्यामि कस्यचान्यस्यकथ्यते ॥ १ ॥
त्वादृगन्योऽस्तिकोलोके शिवधर्मपरायणः ॥ येनस्वल्पायुषाप्येवं नित्येवीप्साऽस्तिभक्तितः ॥ २ ॥ कस्यान्यस्यकृते
देवः स्वस्यैवाज्ञाकरस्परम् ॥ बोधनबोधयामास चरणाङ्गुष्ठपीडितम् ॥ ३ ॥ त्वमेवशाङ्करान्धर्मान्सर्वान्वेत्सिरहस्यतः ॥
योग्योऽसिकालविभ्रान्तः परिपक्वोऽसिचेतसा ॥ ४ ॥ त्वयैवान्येनकेनाहमेवंशुश्रूषितश्चिरम् ॥ त्वयीवकस्मिन्नान्यस्मि
न्ममापिप्रीतिरीदृशी ॥ ५ ॥ उपदेक्ष्यामितेक्षेत्रं गुह्यंतत्कृत्तिवाससः ॥ भक्त्यावधारणीयंयद्भक्तिकैवल्यकाङ्क्षि
भिः ॥ ६ ॥ आदरादनुयुञ्जानं शिष्यंयोदेशिकंस्वयम् ॥ उपदेशेनसन्तुष्टं नकरोतिसकिंगुरुः ॥ ७ ॥ समाहितमनाः

से प्रसन्न करायेहुये शिवदेववाले शिवभक्तिवालों में बहुत माना ॥ २५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽरुणाचलमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायांषोडशोऽध्यायः १६ ॥
दो० । अरुणाचल पै अहैं जो तीरथ विविध प्रकार । सत्रहवें अध्याय में कथा सो परम उदार ॥ नन्दिकेश्वर जी बोले कि हे मुने ! मैंने मनकी परीक्षाके लिये
तुमसे अन्यथा कहा यदि तुमसे उस चरित्र को न कहूंगा तो अन्य किससे कहाजायगा ॥ १ ॥ संसार में शिवजी के धर्म में तत्पर तुम्हारासा अन्य कौन पुरुष है
जिससे कि थोड़ी आयुर्बल से भी सनातन शिव जी में भक्ति से अभिलाषाहै ॥ २ ॥ अन्य किस के लिये शिव देवजी ने अपनेही आज्ञाकारक व चरणों के अंगूठे से
पीड़ित मुझको उत्तमतासे ज्ञान से बोध कराया है ॥ ३ ॥ रहस्य से तुम्हीं सदाशिवजी के समस्त धर्मों को जानतेहो व कालसे भ्रमित होकर योग्यहो और चित्त से
परिपक्व हो ॥ ४ ॥ तुम्हारी नाईं अन्य किसने बहुत दिनों तक मेरी इसप्रकार सेवा कियाहै व तुम्हारी नाईं अन्य किसी में मेरी ऐसी प्रीति नहीं है ॥ ५ ॥ तुमसे सदा-
शिवजी के उस गुप्तक्षेत्र को कहूंगा जो कि भक्ति से मोक्ष को चाहनेवाले पुरुषों के सुनने योग्यहै ॥ ६ ॥ आदर से पूछते हुये व आज्ञाकारी शिष्यको जो आपही

उपदेशसे सन्तुष्ट नहीं करताहै वह क्या गुरुहै ॥ ७ ॥ सावधान मनवाले होकर मुझसे उपदेश किये जाते हुये इस गुप्त चरित्र में निरन्तर विश्वास करिये व परमेश्वर ॥ ८ ॥ कामदेव के विनाशक शिवदेवजी को स्मरण कीजिये व पार्वती जी को प्रणाम कीजिये तदनन्तर ॐकार का उच्चारण कीजिये तुम्हारा बडा भारी कल्याण प्राप्त हुआ है ॥ ९ ॥ हे तपोधन ! द्राविड देशों में दक्षिण दिशाके भाग में तरुण चन्द्रभाल शिवजी का अरुण नामक महाक्षेत्रहै ॥ १० ॥ जोकि तीन योजन चौडा व शिवयोगियों से उपासना करने योग्य है पृथ्वीके उस क्षेत्रको शिवजीका प्यारा हृदय जानिये ॥ ११ ॥ वहा पर सदाशिव देवजी आपही पर्वत के आकारको प्राप्त है

त्वा विश्वासंकुरुशाश्वतम् ॥ मयोपदिश्यमानेस्मिन् रहस्येपरमेश्वरम् ॥ ८ ॥ स्मरस्मरान्तकंदेवं वन्दस्वचापिशाङ्करीम् ॥ ततउच्चरचोङ्कारं श्रेयस्तेमहदागतम् ॥ ९ ॥ अस्तिदक्षिणदिग्भागे द्राविडेषुतपोधन ॥ अरुणाख्यंमहाक्षेत्रं तरुणेन्दुशिखामणेः ॥ १० ॥ योजनत्रयविस्तीर्णमुपास्यंशिवयोगिभिः ॥ तद्भूमेर्हृदयंविद्धि शिवस्यहृदयंगमम् ॥ ११ ॥ तत्रदेवःस्वयंशम्भुः पर्वताकारताङ्गतः ॥ अरुणाचलसंज्ञावानस्तिलोकहितावहः ॥ १२ ॥ आवासःसर्वसिद्धानां महर्षीणांसुपर्वणाम् ॥ विद्याधराणांयक्षाणां गन्धर्वाप्सरसामपि ॥ १३ ॥ सुमेरोरपिकैलासादप्यसौमन्दरादपि ॥ माननीयो महर्षीणां यःस्वयंपरमेश्वरः ॥ १४ ॥ स्पृहयन्तियदीयेभ्योजन्तुभ्योपिदिवौकसः ॥ स्वयंसुलभ्यमुक्तिभ्यो त्रिदिवावासिनोञ्जसा ॥ १५ ॥ नकल्पवृक्षसदृशा यत्रत्यानोमहीरुहाः ॥ तत्रपुष्पफलैर्नित्यं येर्चयन्तिगिरौहरम् ॥ १६ ॥ हिंसैकरुचयोव्याधा अपिकर्मानुसारतः ॥ अनन्तंयत्रदेवस्य प्रादक्षिण्यफलास्पदम् ॥ १७ ॥ यस्यदेशचरामेघाः शिखरा

व अरुणाचल नामवाले वे शिवजी संसार के हितदायक हैं ॥ १२ ॥ और वह अरुणाचल सब सिद्धों, महर्षियों, देवताओं और विद्याधरों, यक्षों व गधर्वों तथा अप्सराओंका निवास स्थान है ॥ १३ ॥ यह अरुणाचल सुमेरु गिरिसे भी व कैलास से और मन्दराचलसे भी महर्षियोंके मानने योग्य है जो कि आपही परमेश्वर रूपहै ॥ १४ ॥ और आपही सुलभ मुक्तिवाले जिस पर्वतवाले प्राणियोंसे स्वर्गवासी साक्षात् देवता भी इच्छा करते हैं ॥ १५ ॥ और जिस पर्वतवाले वृक्ष कल्पवृक्षोंके समानहै उस पर्वत पै नित्य पुष्पों व फलों से जो सदाशिवजी को पूजते है ॥ १६ ॥ वे केवल हिंसा में रुचिवाले बहेलिया भी कर्म के अनुसार फल को पाते हैं जहा पर कि

प्रदक्षिणा के फलका अनन्त स्थान है ॥ १७ ॥ और जिस स्थान के रहनेवाले मेघ शिखरों के बाधक हैं और जहां पर उत्तम ध्वनिवाले पक्षी व कीचक बाँस शब्द
करते हैं ॥ १८ ॥ व जहां पर कृष्णपक्ष में रात्रि आनेपर चमकते हुये जुगुनू शिव देवजी को आरती देनेवाले जनों के स्थान को भोगते हैं ॥ १९ ॥ और भगवान्
शिवदेवजी जहां पर सौभाग्यवती पार्वती जी को बहुत मानते हैं ॥ २० ॥ और जिसके ऊंचे शृंग के अग्रभाग से मिले हुये तथा चन्द्रमाके समान अपनी समा-
नताको पाये हुये नक्षत्र अपना को बहुत मानते हैं ॥ २१ ॥ और जहां पर शिखरों पै सदैव बसते हुये भी सब मृग शिवजीके हाथ में प्रेमवाले मृग का भी अपमान

र्यभिबाधकाः ॥ शुभारावाःखगायत्र कणन्तःकीचकाअपि ॥ १८ ॥ स्फुरन्तोयत्रखद्योताः कृष्णपक्षेनिशागमे ॥ आ
रातिकप्रदातॄणां देवस्याऽनुवतेपदम् ॥ १९ ॥ सौभाग्यं भगवान्देवीमपर्णांबहुमन्यते ॥ २० ॥ यस्योत्तुङ्गस्यशृङ्गा
ग्रसङ्गमाश्चापितारकाः ॥ आत्मनोलब्धसामान्याश्चन्द्रेणबहुमन्यते ॥ २१ ॥ मृगाःसर्वेपिसततं वसन्तोयत्रसानुषु ॥
पाणिप्रणयिनंशम्भोरेणमप्यवजानते ॥ २२ ॥ यस्यपादान्तिकचरैः प्रायेणशबरैरपि ॥ निकुम्भकुम्भसादृश्यमा
त्मनश्चोपलभ्यते ॥ २३ ॥ किंबहूक्त्याभ्यसूयन्ते हैमातुरकुमारयोः ॥ यत्रप्ररूढास्तरवो तिर्यञ्चःशबराअपि ॥ २४॥
सिंहव्याघ्रादयोयस्मिन् कालेत्यक्तकलेवराः ॥ सेवकाइवमन्यन्ते ध्रुवंशोणाद्रिशम्भुना ॥ २५ ॥ अस्यभास्करनामा
द्रिःपूर्वस्यांदिशिदृश्यते ॥ यत्रास्थितःसदावज्री सेवतेशोणपर्वतम् ॥ २६ ॥ प्रतीच्यान्दिशिदण्डाद्रिरितिकश्चिन्महो

करते हैं ॥ २२ ॥ व जिसके समीपवाले पर्वतों में घूमनेवाले प्रायः शबरों से भी निकुंभ व कुंभगण के समान अपनी समानता पाईजाती है ॥ २३ ॥ और बहुत
कहने से क्या है जिस पर्वत पै जमे हुये वृक्ष, पशु, पक्षी व म्लेच्छजातिवाले लोग भी गणेश व स्वामिकार्त्तिकेय की ईर्षा करतेहैं ॥ २४ ॥ और सिंह व्याघ्र आदिक
जिस पर्वत पै काल में शरीर को छोड़कर सेवकों की नाईं निश्चय कर अरुणाचल शिवजी से मानेजातेहैं ॥ २५ ॥ इसके पूर्वदिशा में भास्कर नामक पर्वत देख पड़ता
है जहांपर सदैव बैठे हुये इन्द्रजी अरुणाचल की सेवा करते हैं ॥ २६ ॥ व पश्चिम दिशा में दंडाद्रि ऐसा प्रसिद्ध कोई पर्वत है उस पर्वत पै स्थित प्रजेता लोग अरु-

णाचल को सेवते हैं ॥ २७ ॥ और दक्षिण दिशामें श्रेष्ठ अमराचल पर्वत है उसके ऊपर की भूमि में यमराज जी अरुणाचल की सेवाके लिये स्थित हैं ॥ २८ ॥ और इस उत्तर दिशाके भागमें सिद्धों से स्थित कन्दरोंवाला त्रिशूल पर्वत कुबेरजी से पालित होकर शोभित है ॥ २९ ॥ व उस के समीप अन्य भी बहुत से पर्वतों के किनारों में अन्य दिक्पाल उपासना करत हैं ॥ ३० ॥ और संताप से तचे हुये सब भी वृक्ष आराधन से भी अधिक ऐश्वर्यको प्राप्त होते हैं ॥ ३१ ॥ व मेना तथा हिमाचल की समानसंबंधता से जिस पर्वत के देखनेपर अधिक आनन्द बढ़ता है ॥ ३२ ॥ वृक्षों व पत्तों के चिह्न से देखे जाते हुये जटाधारी शिवजी आपही अरुणा-

धरः ॥ प्राचेतसस्तदारूढाः सेवन्तेरुणपर्वतम् ॥ २७ ॥ दक्षिणस्यांदिशिश्रेयानद्रिरस्त्यमराचलः ॥ कालःशोणाद्रिसेवार्थमध्यास्तेतदधित्यकाम् ॥ २८ ॥ उत्तरेस्मिन्हरिद्भागे सिद्धाध्यासितकन्दरः ॥ विराजतेत्रिशूलाद्रिः श्रीदेनपरिपालितः ॥ २९ ॥ तत्पर्यन्तंप्रभूतानामन्येषामपिभूभृताम् ॥ तटेष्वेवापरेचैव दिक्पालाःपर्युपासते ॥ ३० ॥ परितापेनसन्तप्ताः सर्वेपिधरणीरुहाः ॥ आराधनादप्यधिकमधिगच्छन्तिवैभवम् ॥ ३१ ॥ यस्मिन्गिरीशेसंदृष्टे मेनातुहिनभूभृतोः ॥ समानसम्बन्धतया प्रमोदोवर्धतेतराम् ॥ ३२ ॥ तरुपल्लवलक्ष्येण लक्ष्यमाणोजटाधरः ॥ स्थावरोसिस्वयंशम्भुश्शोणाचलस्वरूपवान् ॥ ३३ ॥ ज्योतिष्मतोस्यश्टङ्गस्य द्विपार्श्वस्थश्चभास्करः ॥ व्यनक्तिस्वस्थलोकेभ्यस्तेजस्त्रितयनेत्रताम् ॥ ३४ ॥ वर्षासुशिखराधस्तादभिनीलबलाहकः ॥ विराजतेपावकेन कालकूटमिवोद्वहन् ॥ ३५ ॥ सहस्रपात्सहस्रैकशीर्षोयःपर्वतेश्वरः ॥ उक्तोनकेवलंश्रुत्वासाक्षादप्युपलक्ष्यते ॥ ३६ ॥ शिरोलिर्नामशिखरी दिशि

चल स्वरूपवाले शिवजी स्थावररूपसे स्थित हैं ॥ ३३ ॥ इस प्रकाशवान् शिखर के दोनों आसपास किनारों में टिके हुये सूर्यनारायणजी अपने लोकों के लिये तेज की त्रिलोचनता को प्रकट करते हैं ॥ ३४ ॥ व वर्षा ऋतु में शिखरके नीचे सामने मेघ अग्निके कारण से विष को धारण करते हुये से शोभित हैं ॥ ३५ ॥ और हज़ार चरणोंवाले व एक हज़ार मस्तकोंवाला जो पर्वत केवल कहा नहीं गयाहै किन्तु सुनकर साक्षात् देख पड़ता है ॥ ३६ ॥ और शिरोलिनामक पर्वत पूर्वदिशा में है

यह हमलोगों ने सुनाहै जो शिखरोंवाला गिरीश अनेक नदियों के समूह से व्याप्त है ॥ ३७ ॥ व जहां मनोहर शिखर पै टिके हुये परमेश्वर महादेवजी स्थावरता से स्थाणुता (अचलता) को धारण करते हैं ॥ ३८ ॥ और जहां पर पर्वत के पिछले भाग में स्थान किये हुये छोटे २ सांप तक्षक अनंतादिक नागेश सर्पादिकों से ईर्षा करते हैं ॥ ३९ ॥ और जो पर्वत सब ओर प्रकट ऐश्वर्योंवाले आठों कोनों से अपनी अष्टमूर्तित्व को मानो विशेष करता है ॥ ४० ॥ और जिस शिवाचल की शक्ति तरंगिणी इडा व पिंगला शिखरों के मध्य में कमलस्थानवाली सुषुम्णा नाड़ी है ॥ ४१ ॥ और जिस ज्योतिःस्तंभ स्वरूप के मूल व अग्रभाग को देखने के लिये

प्राच्याश्चनःश्रुतम् ॥ गिरीशोह्यपियःशृङ्गी लीनानेकसरिद्गणः ॥ ३७ ॥ यत्रशृङ्गेसुरुचिरे संलग्नोनीललोहितः ॥
स्थाणुत्वंस्थावरत्वेन दधतेपरमेश्वरः ॥ ३८ ॥ क्षुद्रास्सरीसृपायत्र कटकेषुकृतास्पदाः ॥ तक्षकानन्तसर्पाद्यैः स्पर्धते
भुजगेश्वरैः ॥ ३९ ॥ अष्टाभिर्योभितःकोणैराविर्भूतविभूतिभिः ॥ सुस्पष्टंविशिनष्टीव स्वकीयामष्टमूर्त्तिताम् ॥ ४० ॥
यस्यशक्तितरङ्गिण्योरिडापिङ्गलयोःस्वयम् ॥ शिवस्यशृङ्गयोर्मध्येसुषुम्णाकमलालया ॥ ४१ ॥ ज्योतिःस्तम्भ
स्वरूपस्य मूलाग्रेयस्यवीक्षितुम् ॥ कोलहंसाकृतीनालं ब्रह्मविष्णूबभूवतुः ॥ ४२ ॥ ताभ्याञ्चप्रार्थितःशम्भुस्तस्मिन्
सान्निध्यवानभूत ॥ अरुणाचलनामासौ महादेवोमहेश्वरः ॥ ४३ ॥ गौतमस्तत्रयोगीन्द्रः सहस्रंपरिवत्सरान् ॥ त
प्त्वातपांसितीव्राणि साक्षाच्चक्रेसदाशिवम् ॥ ४४ ॥ प्रालेयशैलकन्यापि तत्रकृत्वातपःपुरा ॥ अलभद्वामदेहार्द्धं म
न्मथारेःप्रसेदुषः ॥ ४५ ॥ गौर्याप्रतिष्ठितंतत्र अरुणाद्रीश्वराभिधम् ॥ लिङ्गभोगप्रदंपुंसां कैवल्यायप्रकल्पते ॥ ४६ ॥

वाराह व हंसस्वरूपवाले विष्णु व ब्रह्माजी समर्थ नहीं हुये हैं ॥ ४२ ॥ और उन दोनों से प्रार्थना किये हुये सदाशिवजी उस अरुणाचल पै समीपतावाले हुये हैं ये अरुणाचल नामक महेश्वर महादेवजी हैं॥ ४३॥ वहां पर योगीराज गौतमजीने हज़ारों वर्षांतक तीव्रतपों को कर सदाशिवजीको प्रत्यक्ष कियाहै॥ ४४॥ व पुरातन समय हिमाचलकी कन्या,पार्वतीजीने भी वहां तपस्या कर प्रसन्न हुये कामदेवारि (सदाशिव) जी के बांयें आधे शरीर को पायाहै॥ ४५ ॥ वहांपर पार्वती जी से

थापा हुआ अरुणाचलेश्वर नामक सुखदायक लिंग पुरुषों के मोक्ष के लिये समर्थ होता है ॥ ४६ ॥ और वहा पार्वतीजीकी आज्ञा से महिषासुर को मर्दन करनेवाली साक्षात् दुर्गाजी भक्तिमानों को निर्विघ्नपूर्वक मंत्रसिद्धि को देती हैं ॥ ४७ ॥ और वहापर पार्वती जी के आश्रम में खड्गतीर्थ ऐसा प्रसिद्ध नवीन स्थान है उसमें एक बार स्नानकरने से पाच पातकोंका नाश होताहै ॥ ४८ ॥ और दुर्गाजीसे पूजित पापनाशन नामक लिंग एकबार प्रणामही करने से मनुष्यों के समस्त पातकों का हारक है ॥ ४६ ॥ वहां पर कुबेर के व्यतिक्रम (अपराध) से वज्रांगद नामक राजा फिर उनकी भक्ति के माहात्म्य से शिवजी की सायुज्य को प्राप्त हुये है ॥ ५० ॥

तत्रगौरीनिदेशेन दुर्गामहिषमर्दिनी ॥ साक्षाद्भक्तिमतांदत्तेमन्त्रसिद्धिमविघ्नतः ॥ ४७ ॥ खड्गतीर्थमितिख्यातं तत्रगौर्याश्रमेनवम् ॥ सकृत्तन्मज्जनान्नृणां पञ्चपातकनाशनम् ॥ ४८ ॥ दुर्गयाचार्चितंलिङ्गं पापनाशननामकम् ॥ सकृत्प्रणाममात्रेण सर्वपापहरंनृणाम् ॥ ४६ ॥ तत्रवज्राङ्गदोराजावित्तपस्यव्यतिक्रमात् ॥ पुनस्तद्भक्तिमाहात्म्याच्छिवसायुज्यमाप्तवान् ॥ ५० ॥ तस्यप्रदक्षिणेनैवकान्तिशालिकलाधरौ ॥ विद्याधरेश्वरौमुक्तौ दुर्वासःशापबन्धनात् ॥ ५१ ॥ नास्तिशोणाद्रितःक्षेत्रं नास्तिचत्र्यक्षरान्मनुः ॥ नास्तिमाहेश्वराद्धर्मो नास्तिदेवोमहेश्वरात् ॥ ५२ ॥ नास्तिज्ञानंशिवज्ञानान्नास्तिश्रीरुद्रतःश्रुतिः ॥ नास्तिशैवाग्रणीर्विष्णोर्नास्तिरक्षाविभूतितः ॥ ५३ ॥ नास्तिभक्तेःसदाचारो नास्तिदीक्षाकराद्गुरुः ॥ नास्तिरुद्राक्षतोभूषा नास्तिशास्त्रंशिवागमात् ॥ ५४ ॥ नास्तिबिल्वदलात्पत्रं नास्तिपुष्पंसुवर्णकात् ॥ नास्तिवैराग्यतःसौख्यं नास्तिमुक्तेःपरम्पदम् ॥ ५५ ॥ नारुणाद्रेःसमोमेरुर्नकैलासोनमन्दरः ॥ तेनिवासागिरीश

और उसकी प्रदक्षिणाही से कांतिशाली व कलाधर नामक विद्याधराधिप दुर्वासाजी के शापबन्धन से छूटे हैं ॥ ५१ ॥ अरुणाचल से परे क्षेत्र नहीं है व त्र्यक्षरसे बढ़कर मंत्र नहीं है और माहेश्वर धर्म से परे अन्य धर्म नहीं है व शिवजी से परे देवता नहीं है ॥ ५२ ॥ और शिवज्ञानसे परे ज्ञान नहीं है व श्रीरुद्र से परे श्रुति नहीं है और विष्णुजी से परे शैवोत्तम नहीं है व विभूतिसे अन्य रक्षा नहींहै ॥ ५३ ॥ भक्तिसे परे उत्तम आचरण नहीं है व दीक्षा करनेवाले से परे गुरु नहीं है और रुद्राक्ष से परे भूषण नहीं है व शिवशास्त्र से उत्तम शास्त्र नहीं है ॥ ५४ ॥ और बिल्वपत्रसे परे पत्र नहीं है व सुवर्णक (धतूरके पुष्प) से परे पुष्प नहीं है

तथा वैराग्य से उत्तम सुख नहीं है व मुक्ति से परे परमपद नहीं है ॥ ५५ ॥ और अरुणाचल के समान न सुमेरुहै न कैलास है और न मंदराचलहै क्योंकि वे पर्वत गिरीश (सदाशिव) जी के निवासस्थान हैं और यह अरुणाचल वे आपही शिवजी हैं ॥ ५६ ॥ शिलाद के पुत्र नन्दीश्वर के ऐसा कहनेपर प्रसन्नमनवाले उन मृकंडु पुत्र मार्कण्डेयजी ने फिर भी चकितमनवाले होकर उनको बहुतही प्रणामकर फिर विनय किया ॥ ५७ ॥ कि मनुष्यों का क्या क्या कर्म किस प्रकार होता है और वह वह कर्म कैसे नरक के लिये सुनाजाता है और उन उन कर्मों की कैसे प्रतिक्रिया (प्रायश्चित्त) होती है और वह २ कर्म कैसे होताहै उसको मुझसे कहिये ॥ ५८ ॥

इति श्रीस्कन्दपुराणेऽरुणाचलखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांसप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

स्यसोयन्तुगिरिशःस्वयम् ॥ ५६ ॥ इतिवदतिशिलादनन्दनेमुदितमनाःसमृकण्डुनन्दनः ॥ पुनरपिबहुशःप्रणम्यतन्तु चकितमनाश्चपुनर्व्यजिज्ञपत ॥ ५७ ॥ किंकिन्नृणांकर्मकथञ्चजायतेकथन्तुतत्तन्नरकायश्रूयते ॥ तेषाञ्चतेषाञ्चकथं प्रतिक्रियाकथंतुतत्तन्ममकथ्यतामिति ॥ ५८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽरुणाचलमाहात्म्येसप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

नन्दिकेश्वरउवाच ॥ शुद्धसत्त्वगुणोपेतो लोकेस्मिन्दुर्लभःपुमान् ॥ रजस्तमोगुणोपेता भवन्तिसुलभानराः ॥ १ ॥ सात्त्विकःपुण्यशीलत्वान्निःश्रेयसमवाप्नुयात् ॥ त्रैविध्यात्कर्मणामेषामनुभोगायवेधसा ॥ २ ॥ विचित्राण्यपिसृष्टानि नरकाण्यत्रयत्रच ॥ महर्षेमनुजोभूत्वा खरःश्वासूकरोपिवा ॥ ३ ॥ चण्डालोवाभवेत्प्रेत्य पुरुषोब्रह्महत्यया ॥ चिरंरौरवसंशुद्धः कृमिकीटपतङ्गताम् ॥ ४ ॥ प्राप्नुयात्कर्मकर्त्तृत्वं सुरापानेनचाद्विज ॥ ब्रह्मस्वहरणाद्ब्रह्मराक्षसत्व

दो० । जौन पापकारक पुरुष बसत जौन से नर्क । अठारहें अध्याय में सोई चरित उदर्क ॥ नन्दिकेश्वर जी बोले कि इस संसार में शुद्ध सत्त्वगुण से संयुत पुरुष दुर्लभ है और रजोगुण व तमोगुण से संयुत मनुष्य सुलभहै ॥ १ ॥ सत्त्वगुणवाला पुरुष पुण्यस्वभाव से कल्याण को प्राप्त होता है त्रिविधि से इन कर्मों के भोगके लिये ब्रह्माने ॥ २ ॥ यहां और वहां विचित्र नरकों को रचाहै हे महर्षे ! मनुष्य, गधा, कुत्ता या सूकर होकर ॥ ३ ॥ अथवा ब्रह्महत्या से पुरुष मरकर चांडाल होता है और बहुत दिनोंतक रौरवनरक में भलीभांति शुद्ध होकर कृमि,कीट व पतंगत्व को प्राप्त होकर ॥ ४ ॥ हे द्विज ! मदिरा के पीने से कर्मकर्तृत्व

को प्राप्त होताहै याने मज़दूरी करनेवाला होताहै और ब्राह्मणका धन हरनेसे मनुष्य ब्रह्मराक्षसत्व को प्राप्त होता है ॥ ५ ॥ व यदि अन्न को चुराता है तो वह अन्य
जन्म में उस अन्न से रहित होता है और फिर असिपत्रवनमें बहुत दिनों तक पीड़ाको प्राप्त होकर ॥ ६ ॥ गुरु की शय्या पै बैठनेवाला व स्त्री से भोग करनेवाला वह
पुरुष नपुंसकता को प्राप्त होताहै और तचे हुये काले लोह के दंडों से यमदूतों से पीड़ित होकर ॥ ७ ॥ पराई स्त्री से भोग करनेवाला पुरुष कालसूत्र नामक नरकमें
बसता है और अग्नि लगानेवाला पुरुष घोरनरक में बसताहै व विषदेनेवाला नर सुघोर नामक नरक में निवास करता है ॥ ८ ॥ और धर्मनिन्दक,निन्दनीय चुगुल
पुरुष महाघोरनरक में जाता है और मित्रसे द्रोहकरनेवाला पुरुष कराल नरक में बसताहै और हिंसामें केवल तत्पर पुरुष भीम नामक नरक में बसताहै ॥ ९ ॥ और

मवाप्नुयात् ॥ ५ ॥ यद्यन्नंचोरयेत्तेन शून्यःस्यादन्यजन्मनि ॥ असिपत्रवनेपीडामवाप्यसुचिरंपुनः ॥ ६ ॥ नपुंसक
त्वंगच्छेत्सपुरुषोगुरुतल्पगः ॥ तप्तैःकालायसैर्दण्डैःपीडितोयमकिङ्करैः ॥ ७ ॥ नरकेकालसूत्राख्ये निवसेत्परदार
गः ॥ अग्निदोनिवसेद्घोरे सुघोरेगरदायकः ॥ ८ ॥ महाघोरेचपिशुनो वाच्योधर्मविनिन्दकः ॥ वसेत्करालेमित्रध्रुग्भी
मेहिंसैकतत्परः ॥ ९ ॥ संहारेछन्नपापिष्ठो मृषावादीभयानके ॥ असिघोरेवसेद्दापि परक्षेत्रधनादिहृत् ॥ १० ॥ वज्रेप
रद्रोहरतो मांसाशीतरलेद्विजः ॥ तीक्ष्णेमातृपितृद्रोही तापनेजपदूषकः ॥ ११ ॥ अश्वघ्नोपिनिरुच्छ्वासे वसेद्गोघ्नश्चदा
रुणे ॥ भ्रूणहानिवसेच्चण्डे स्त्रीहत्याकृत्तुकूलके ॥ १२ ॥ देवस्वहारीदहने घोरघोरेपरस्वहृत् ॥ कृतान्तदूतानरके सर्वा
नेवेहपापिनः ॥ १३ ॥ बध्नन्तिपाशैर्निघ्नन्ति दण्डैर्विध्यन्तिशङ्कुभिः ॥ तीक्ष्णचञ्चुबकाःकङ्का भीमनेत्रामहोर

छिपे पापवाला पुरुष संहार नरक में जाता है व असत्यवादी नर भयानक नरक में पड़ताहै व पराई स्त्री या खेत व धनादिकोंका हरनेवाला पुरुष असिघोर नामक नरक
में बसताहै ॥ १० ॥ व पराये वैर में तत्पर पुरुष वज्र नरक में रहता है व मांस खानेवाला ब्राह्मण तरल नामक नरक में पड़ताहै माता पिता से द्रोह करनेवाला पुरुष
तीक्ष्ण नामक नरकमें पड़ताहै व जपमें दूषण देनेवाला पुरुष तापन नरकमें पड़ताहै ॥ ११ ॥ और घोड़े को मारनेवाला पुरुष निरुच्छ्वास नरक में बसताहै व गोघाती
नर दारुण नरक में पड़ताहै व गर्भ को नाशनेवाला पुरुष चण्ड नरक में बसताहै व स्त्रीहत्या करनेवाला पुरुष कूलक नरक में रहता है ॥ १२ ॥ देवता का धन

हरनेवाला पुरुष भयंकर दहन नामक नरकमें बसताहै व पराये धनको हरनेवाला भयंकर घोर नामक नरक में बसताहै यमराजके दूत इस नरकमें सब पापियों को ॥
१३ ॥ फँसरियों से बाँधते हैं व दंडों से मारते हैं तथा कीलों से छेदते हैं और पैनी चोंचवाले बगुला, गीध व भयंकर नेत्रोंवाले बड़े सांप ॥ १४ ॥ व कालेय
जातिवाले नाग, व्याघ्र व अन्य हिंसक जीव इस को काटते हैं व शस्त्रों से खण्ड करतेहैं तथा शरीर को जलाते हैं ॥ १५ ॥ और गहरे गढ़े में गाड़ते हैं व चाबुकों
से मारते हैं और वे पुरुष तैलके कड़ाहमें पकाये जातेहैं व महीन सूजियों से पीड़ित किये जाते हैं ॥ १६ ॥ व यमदूत पापी पुरुषोंसे दुःख से लेजानेवाले बोझों को ले
चलाते हैं ब्रह्मघाती पुरुष क्षयरोगी होताहै व मदिरा पीनेवाला नर श्याम दांतोंवाला होताहै ॥ १७ ॥ और सोना चुरानेवाला पुरुष निन्दित नखोंवाला होताहै और गुरु

गाः ॥ १४ ॥ कालेयाश्चापिव्याघ्राश्च हिंस्राश्चान्येदशन्त्यमुम् ॥ शकलीकुर्वतेशस्त्रैर्दहन्तोदेहमेवच ॥ १५ ॥ खनन्ति
गहनेश्वभ्रेकशाभिस्ताडयन्तिच ॥ तैलद्रोण्यांविपच्यन्तेतुद्यन्तेसूक्ष्मसूचिभिः ॥ १६ ॥ वाह्यन्तेदुर्वहान्भारान् यम
दूतैर्हिपापिनः ॥ ब्रह्महाक्षयरोगीस्यात्सुरापःश्यावदन्तकः ॥ १७ ॥ स्वर्णापहारीकुनखी दुश्चर्मागुरुतल्पगः ॥ अप
स्मारीगुरुद्रोही चाण्डालोमुखरोगवान् ॥ १८ ॥ कूटसाक्षीचाक्षिरोगी मन्दाग्निश्चाग्रभोजनः ॥ विद्यापहारीमूकःस्या
दन्धःपुस्तकचोरकः ॥ १९ ॥ परदाररतःपङ्गुर्बधिरःपरनिन्दकः ॥ विड्वराहोनिशाचारी जिह्वारोग्यंशतस्करः ॥ २० ॥
अभ्यागतातिथित्यागी कपोलतिलकोभवेत ॥ पर्वसुस्त्रीरतोमेहीपूत्यास्योभक्ष्यभक्षकः ॥ २१ ॥ मर्यादाभेदको

की शय्या व स्त्री से गमन करनेवाला पुरुष अशुभ चर्मवाला होताहै और गुरुओंसे वैर करनेवाला पुरुष मिरगी रोगवाला व चांडाल पुरुष मुखरोगी होताहै ॥ १८ ॥
और झूठी गवाही देनेवाला नेत्र रोगवान् होता है और सब से पहले भोजन करनेवाला पुरुष मंदाग्नि रोगवाला होताहै व विद्या चुरानेवाला गूंगा होताहै और पुस्तकों
को चुरानेवाला नर अन्ध होताहै ॥ १९ ॥ व पराई स्त्री से स्नेह करनेवाला लँगड़ा होताहै और पराई निन्दा करनेवाला बधिर होताहै व आचाररहित पुरुष ग्रामसूकर
होता है और भाग को चुरानेवाला पुरुष जिह्वारोगी होताहै ॥ २० ॥ और अभ्यागतों व अतिथियों को त्यागनेवाला पुरुष कपोल में तिलरोगवाला होता है और पर्वों
(अमावस्यादि तिथियों) में स्त्री से मैथुन करनेवाला नर प्रमेही होताहै व अभक्ष्य भक्षण करनेवाला नर दुर्गंधि मुखवाला होताहै ॥ २१ ॥ और मर्यादों को नष्ट करने

वाला व तडागों तथा बगीचों को नष्टकरनेवाला पुरुष सेवक होताहै और पहले कहकर जो नहीं देता है वह थोड़ी आयुर्बलवाला व बहुत बकनेवाला होताहै ॥ २२ ॥ और विष्णुसे वैर करनेवाला गिरगिट होताहै व शिवद्रोही वानर होताहै इसप्रकार पातक के फल को जानकर प्रायश्चित्त करै ॥ २३ ॥ व उस विषय में आस्तिक पुरुषों को इस अरुणक्षेत्र में भलीभांति प्रायश्चित्त करना चाहिये ॥ २४ ॥ इसप्रकार नरकों में मनुष्यों के बहुत भांति के कठिन कारण को सुनकर इसके अनन्तर मार्कण्डेयजी चरणोंमें गिरपड़े व उन्होंने उस समय बार २ उसके शान्ति के कर्म की प्रार्थना किया ॥ २५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽरुणाचलखण्डेदेवीदयालु

दासस्तटाकारामहन्नरः ॥ प्रतिश्रुताप्रदोयःस्यादल्पायुश्चविकत्थनः ॥ २२ ॥ विष्णोर्द्रोहीचसरटः शिवद्रोहीचमर्कटः ॥ एवंपापफलंज्ञात्वा प्रायश्चित्तंसमाचरेत् ॥ २३ ॥ तत्रास्मिन्नरुणक्षेत्रे कर्तव्यंसम्यगास्तिकैः ॥ २४ ॥ इतिनिशम्य सुदुष्करकारणम्बहुविधंनरकेषुनृणामथ ॥ चरणयोःपतितश्चतदापुनःपुनरयाचततच्छमनक्रियाम् ॥ २५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽरुणाचलमाहात्म्येऽष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

नन्दिकेश्वरउवाच ॥ विस्तरात्कथयाम्यद्य प्रायश्चित्तमहंहितत ॥ सर्वेषामपिसत्त्वानां शुद्धयेपापचेतसाम् ॥ १ ॥ ब्रह्महाप्राप्यशोणाद्रिं निमग्नःकद्रुतीर्थके ॥ जपन्पञ्चाक्षरंमन्त्रं भस्मरुद्राक्षधारकः ॥ २ ॥ कृतोपवासःसम्पूज्य प्रयतःपरमेश्वरम् ॥ ब्राह्मणान्भोजयेद्वर्षं भिक्षाशीनियतेन्द्रियः ॥ ३ ॥ विशेषपूजामद्रेःस कुर्याद्देवस्यभक्तितः ॥ ब्रह्महत्या

मिश्रविरचितायांभाषाटीकायामष्टादशोऽध्याय. ॥ १८ ॥ ● ॥ ● ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

दो० । जेहि प्रायश्चित के किये होत पाप सों मुक्ति । उनीसवें अध्याय में सोइ कथा की उक्ति ॥ नन्दिकेश्वरजी बोले कि पाप चित्तवाले सर्व प्राणियों की शुद्धिके लिये मैं आज उस प्रायश्चित्त को विस्तार से कहताहूं ॥ १ ॥ कि ब्रह्मघाती पुरुष अरुणाचल पै प्राप्त होकर कद्रु तीर्थ में स्नानकर भस्म व रुद्राक्ष को धारेहुये पंचाक्षर मंत्र को जपताहुआ ॥ २ ॥ उपासकर पवित्रहो सदाशिवजी को पूजकर ब्राह्मणोंको भोजन करावै और इन्द्रियों को रोंककर वर्षभर भिक्षा से भोजन करै ॥ ३ ॥

और भक्तिसे अरुणाचल का विशेष पूजन करे तो वह पुरुष ब्रह्महत्या से छूटकर ब्रह्मलोक में पूजित होताहै ॥ ४ ॥ और मदिरा पीनेवाला भी पुरुष एक वर्ष तक अरुणक्षेत्र में बसकर पवित्र आचारवाला होकर इस भांति महादेवजीको पूजकर ॥ ५ ॥ शतरुद्रिय को उच्चारण करताहुआ सदाशिव देवजी को दूधसे नहवावै तो मदिरा पीने से उपजे हुये पापसे वह शीघ्रही छूट जाताहै ॥ ६ ॥ और सोना चुरानेवाला पुरुष अरुणक्षेत्र में सदाशिवजी को बिल्वपत्रों से पूजकर ब्राह्मणों को भोजन करावै तो कठिन पाप से छूट जाताहै ॥ ७ ॥ और गुरु की स्त्री से रति करनेवाला पुरुष अरुणाचल पै जाकर भक्तिपूर्वक व्रतवान् होकर हज़ार दीपों से ॥ ८ ॥ तीन

विनिर्मुक्तो ब्रह्मलोकेमहीयते ॥ ४ ॥ सुरापोप्यरुणक्षेत्रे वर्षमेकंवसन्प्रति ॥ प्रविशुद्धसमाचारः सम्पूज्यैवंमहेश्वरम् ॥ ५ ॥ क्षीरेणस्नापयेद्देवं शतरुद्रीयमुच्चरन् ॥ सुरापानोद्भवेनाशु पापेनपरिमुच्यते ॥ ६ ॥ सुवर्णस्तेयकृच्छोणक्षेत्रेबिल्वदलैर्हरम् ॥ अभ्यर्च्यभोजयेद्विप्रान् पापान्मुच्येतदुष्करात् ॥ ७ ॥ गुरुदाररतिर्गत्वा पुरुषश्चारुणाचलम् ॥ भक्तिपूर्वंव्रतीभूत्वा सहस्रेणप्रदीपकैः ॥ ८ ॥ मासत्रयंसमाराध्य श्रीशोणाचलशङ्करम् ॥ प्रदद्याद्भूषितांकन्यां ब्राह्मणायसुधीमते ॥ ९ ॥ षडक्षरंजपेन्नित्यं तेनमुच्येतपाप्मना ॥ शिवलोकेचनिवसेदासंसारंनसंशयः ॥ १० ॥ परदारापहर्त्ताच क्षेत्रेस्मिन्नियतेन्द्रियः ॥ मासमेकंनवैःपुष्पैरभ्यर्च्यारुणशङ्करम् ॥ ११ ॥ माहेश्वरायवितरेद्धनंशक्त्यानुगुण्यतः ॥ तत्क्षणेनविनिर्मुक्तस्तस्मात्पापाद्भविष्यति ॥ १२ ॥ गरदोप्यरुणक्षेत्रे व्रतीभूत्वायथापुरा ॥ सर्वोपहारंदेवाय दत्त्वादोषेणमुच्यते ॥ १३ ॥ पिशुनोप्यरुणक्षेत्रे व्रतीवेदरतोनरः ॥ अध्यापयेद्द्विजान्मुख्यांस्ततोनिष्कल्मषोभवेत् ॥ १४ ॥

महीने तक श्रीअरुणाचल शिवजी को आराधकर बुद्धिमान् ब्राह्मण के लिये भूषित कन्या को देवै ॥ ९ ॥ और नित्य षडक्षर मंत्र को जपै तो उस पाप से छूटजाताहै और जबतक संसार रहता है तब तक वह शिवलोक में बसताहै इसमें संदेह नहींहै ॥ १० ॥ और पराई स्त्री को हरनेवाला पुरुष इन्द्रियों को रोंककर इस क्षेत्र में एक महीने तक नवीन पुष्पों से अरुणशिवजी को पूजकर ॥ ११ ॥ शैव जनके लिये शक्तिके अनुसार धन देवै तो उसी क्षण उस पाप से मुक्त होगा ॥ १२ ॥ और विष देनेवाला पुरुष भी अरुणक्षेत्र में पहले की नाईं व्रतवान् होकर शिवदेव जी के लिये सब उपहार को देकर दोषसे छूट जाताहै ॥ १३ ॥ और चुगुल पुरुष भी अरुण

क्षेत्र में व्रतवान् व वेद में तत्पर होकर मुख्य ब्राह्मणों को पढ़ावै तो पापरहित होता है ॥ १४ ॥ और आग लगानेवाला पुरुष भी अरुणक्षेत्र में पहले की नाई तीन महीने तक व्रतवान् होकर उस पाप की शान्ति के लिये मन्दिर को बनवाकर शिवभक्त के लिये देवै ॥ १५ ॥ व धर्मकी निन्दा करनेवाला पुरुष अरुणक्षेत्रमें वर्षभर व्रतवान् हो बसकर पापकी शान्ति के लिये यथाशक्ति यज्ञादिकों को करै ॥ १६ ॥ और पितासे वैर करनेवाला पुरुष एक महीने तक अरुणक्षेत्र में आलस्यरहित टिककर शिवभक्त ब्राह्मणों के लिये हजारों गाइयों को देवै ॥ १७ ॥ और सूर्यग्रहण के समयों में बहुत ब्राह्मणों को भोजन कराकर नीले बैल को छोड़े तो उस

अग्निदोप्यरुणक्षेत्रे त्रीन्मासान्पूर्ववद्व्रती ॥ दद्याच्छैवायनिर्माप्य गृहंतत्पापशान्तये ॥ १५ ॥ धर्मनिन्दाकरःशोण क्षेत्रेवर्षंव्रतीवसन् ॥ सत्रादिकंप्रकुर्वीत यथाशक्त्याघशान्तये ॥ १६ ॥ पितृद्रोह्यरुणक्षेत्रे तिष्ठन्मासमतन्द्रितः ॥ गिरीशेभ्योद्विजेभ्योपि दद्याद्गाश्चसहस्रशः ॥ १७ ॥ सूर्योपरागकालेषु भोजयित्वाद्विजान्बहून् ॥ विमुच्येद्वृषभंनीलं मुच्यतेचततोहिसः ॥ १८ ॥ स्त्रीघ्नःशिशुघ्नोगोघ्नोपि शोणक्षेत्रमुपेयिवान् ॥ व्यतीपातेतिलंदद्याद्द्विजेभ्योदुरितच्छि दे ॥ १९ ॥ प्रच्छन्नपापकृच्छोणक्षेत्रेस्मिन्नियतेन्द्रियः ॥ गुप्तदानानिकुर्वीत भवेद्विगतकल्मषः ॥ २० ॥ मृषाभाष्य रुणक्षेत्रे षण्मासान्निवसन्प्रति ॥ शोणाचलेश्वरस्तोत्रपाठेनस्यादकल्मषः ॥ २१ ॥ कूपादिभेदकृच्छोणक्षेत्रमासा द्यभक्तितः ॥ तटाकान्खानयेत्तत्र ध्रुवंनिर्वृजिनोभवेत् ॥ २२ ॥ क्षेत्रापहारीदेवाय क्षेत्रंदद्यान्महाफलम् ॥ आरामभेद कोप्यस्मै दद्यादुद्यानमुत्तमम् ॥ २३ ॥ गृहापहारीकुर्वीतशिवस्यायतनंनवम् ॥ सद्गुतंतेननिर्मुक्तः शिवसायुज्यमा

पातकसे वह छूटताहै ॥ १८ ॥ और स्त्रीघाती, बालघाती व गोघातीभी मनुष्य अरुणक्षेत्र में प्राप्त होकर पाप नाश होने के लिये ब्राह्मणों के लिये व्यतीपात योग में तिल को देवै ॥ १९ ॥ और छिपे पाप करनेवाला पुरुष इस क्षेत्र में इन्द्रियों को रोंककर गुप्तदानों को करै तो पापरहित होता है ॥ २० ॥ और असत्यवादी पुरुष अरुणक्षेत्र में छह महीने बसकर अरुणाचलेशजीके स्तोत्रके पाठसे पापरहित होताहै ॥ २१ ॥ और कूपादिकों को तोड़नेवाला पुरुष भक्ति से अरुणक्षेत्रमें आकर वहां तड़ागों को खुदावै तो निश्चयकर पापरहित होवैहै ॥ २२ ॥ और क्षेत्र हरनेवाला पुरुष शिवदेवजीके लिये महाफलवाले क्षेत्रको देवै व बगीचाको तोड़नेवाला पुरुष भी इन शिव

देवजीके लिये उत्तम बगीचेको देवै ॥२३॥ और घरको हरनेवाला पुरुष शिवजीके नवीन मन्दिरको बनवावै तो वह शीघ्रही उस पापसे छूटकर शिवजीकी सायुज्यको प्राप्तहोताहै ॥ २४॥ और अन्यसे द्रोह करनेवाला नर अरुणक्षेत्रमें बसकर शिवभक्तों को धनोंसे तृप्तकर उत्तम लोकोंको निस्सन्देह प्राप्त होताहै ॥ २५ ॥ और मोक्षको चाहनेवाला पुरुष अरुणक्षेत्रमें बसकर सदाशिवजी को पूजै और आदरसे अरुणेश्वर का मंत्र जपै ॥२६॥ और यदि प्रियवस्तुकी प्रार्थना होवै तो चरणोंहीसे अरुणाचल की प्रदक्षिणा करनेवाले पुरुष को साक्षात वह शुभ वस्तु प्राप्त होने योग्य होतीहै ॥२७॥ क्षुधित होनेपर व स्खलित होने (गिरने) पर व परवश व दुःस्वप्न दर्शनमें और

प्नुयात ॥ २४ ॥ परद्रोहीवसञ्छोणक्षेत्रेमाहेश्वरान्धनैः ॥ प्रीणयित्वापराँल्लोकान्निःसंशयमवाप्नुयात ॥ २५ ॥
निवसन्नरुणक्षेत्रे पूजयेत्परमेश्वरम् ॥ अरुणेश्वरमन्त्रञ्चजपेन्मोक्षेच्छुरादरात ॥ २६ ॥ प्रार्थ्यमिष्टंयदिस्यात्तत्प
द्भ्यामेवप्रदक्षिणम् ॥ कुर्वतारुणशैलस्यतत्प्राप्यंशुभमञ्जसा ॥ २७ ॥ क्षुधितेस्खलितेचान्यनिघ्नेदुःस्वप्नदर्शने ॥ प्रीत्यु
त्कर्षेपिचबुधैरुच्चार्य्योरुणशङ्करः ॥ २८ ॥ अपिवर्णाश्रमद्रोही शिवद्रोहरतोपिवा ॥ त्रीण्यहान्यरुणक्षेत्रे वसन्मुच्ये
तपातकैः ॥ २९ ॥ पार्थिवःशिवलोकोयं त्रिलोक्यामस्तिभोद्विज ॥ एषदक्षिणकैलासो योसावरुणपर्वतः ॥ ३० ॥
अन्येषुसिद्धिक्षेत्रेषु तपोभिःसिद्धयोनृणाम् ॥ अस्यस्मरणमात्रेण तारतम्यंविचिन्त्यताम् ॥ ३१ ॥ यद्गयायांप्रयागेय
त्काश्यांयत्पुष्करेषुयत ॥ कर्मसेतौचयत्पुंसां तदेवात्रफलंभवेत ॥ ३२ ॥ शोणक्षेत्रेहिचात्रैव नरोयःस्याद्गुणोषितः ॥ त

प्रीति की अधिकतामें भी विद्वान् को अरुणशिवजी का उच्चारण करना चाहिये ॥ २८ ॥ वर्णों व आश्रमों से वैर करनेवाला और शिवद्रोहमें तत्पर भी पुरुष तीनदिन अरुणक्षेत्र में बसकर पातकों से छूट जाता है ॥ २९ ॥ हे द्विज ! त्रिलोक में यह पृथ्वी सम्बन्धी शिवलोकहै और यह दक्षिण कैलासहै जो यह कि अरुणाचल है ॥ ३० ॥ अन्य सिद्धिक्षेत्रों में मनुष्यों को तपस्याओं से सिद्धियां होती हैं व इसके स्मरणमात्र से सिद्धियां होती हैं इस तारतम्यता को चिन्तन कीजिये ॥ ३१ ॥ जो गयामें फल होताहै व जो प्रयागमें होताहै और जो काशीमें व जो पुष्करों में हैं व कर्मसेतु में पुरुषों को जो फल होताहै वही फल यहां पर होता है ॥ ३२ ॥ इसी

अरुणक्षेत्र में जो मनुष्य उपास करता है उसके सौ चान्द्रायण व दश हजार सान्तपनादिक व्रत होते हैं ॥ ३३ ॥ और अरुणक्षेत्र के समीप किये हुये सोलहों दान शास्त्र में कहे हुये दुगुने फल को करते हैं ॥ ३४ ॥ इस प्रकार उन मृकंडुपुत्र मार्कंडेयजी ने नन्दिकेश्वर जी के मुख से नरक के प्रायश्चित्त को सुना व उनकी प्रशंसा कर यह कहा कि दिनों व वर्षों में किस प्रकार अरुणेश्वरजी को पूजै ॥ ३५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽरुणाचलखण्डेभाषाटीकायामेकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ ❀ ॥

दो० । जेहि दिन अरुणाचल शिवहिं पूजि होत जो काम । सोइ बीस अध्यायमें कह्यो चरित सुखधाम ॥ नन्दिकेश्वरजी बोले कि जो पुरुष रविवारमें अरुण कमलों

स्यचान्द्रायणशतं भवेत्सान्तपनायुतम् ॥ ३३ ॥ षोडशापिमहादानान्यरुणक्षेत्रसन्निधौ ॥ अनुष्ठितानिशास्त्रोक्तं कुर्वन्तिद्विगुणंफलम् ॥ ३४ ॥ इतिनन्दिकेश्वरमुखेनशुश्रुवांस्तत्सुतोपिनिरयप्रतिक्रियाम् ॥ अभिनन्द्यतञ्चदिनवत्सरादिकेष्वर्चयेत्कथमितिव्यजिज्ञपत् ॥ ३५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽरुणाचलमाहात्म्यएकोनविंशोध्यायः ॥ १९ ॥

नन्दिकेश्वरउवाच ॥ रक्तोत्पलैरर्कवारे यःशोणाद्रीशमर्चयेत् ॥ अवश्यंतस्यसिध्यन्ति सर्वकार्याण्यसंशयम् ॥ १ ॥ सोमवारेनरोयश्च कुन्दपुष्पैःसमर्चयेत ॥ अरुणाद्रीशमस्यस्युस्सुलभास्सर्वसम्पदः ॥ २ ॥ सौम्यवारेरुणाद्रीशं कस्तूरीकरवीरकैः॥ यःपूजयतितस्यस्यात्सत्यलोकेचलास्थितिः ॥ ३ ॥ गुरुवारेसिताम्भोजैः शोणेशंवरिवस्यतः ॥ जनलोकेचिरंवासः सिद्धैःसहभविष्यति ॥ ४ ॥ चम्पकैर्मल्लिकाभिश्च शुक्रवारेसमर्चयेत् ॥ तपोलोकेप्रपद्येत ब्रह्मर्षिभिरभिष्टुतः ॥ ५ ॥ सौरवारेचजातीभिः समाराध्यारुणेश्वरम् ॥ नजातुयमलोकाय पापीयानपिकल्पते ॥ ६ ॥ प्रथमा

से अरुणाचलेशजी को पूजता है उस के निस्संदेह सब कार्य सिद्ध होते हैं ॥ १ ॥ व सोमवार के दिन जो पुरुष कुन्दके फूलोंसे अरुणाचलेश जी को पूजता है इसको सब सिद्धिया सुलभ होती हैं ॥ २ ॥ और बुधके दिन करतूरी व कनैर के पुष्पों से जो मनुष्य अरुणाचलेशजी को पूजता है उसकी सत्यलोकमें अचल स्थिति होती है ॥ ३ ॥ और बृहस्पति के दिन श्वेत कमलों से अरुणेश जी को पूजते हुये पुरुष का सिद्धों के साथ जनलोक में बहुत दिनों तक निवास होता है ॥ ४ ॥ और जो पुरुष चंपक व बेला के पुष्पों से शुक्रवार को पूजताहै ब्रह्मर्षियों से स्तुति किया हुआ वह पुरुष तपोलोक में प्राप्त होताहै ॥ ५॥ और शनैश्चर दिन में चमेली के पुष्पों

से अरुणाचलेशजी को भलीभांति आराधन कर बहुत पापी भी मनुष्य कदाचित् यमलोक को नहीं जाताहै ॥ ६ ॥ और परेवा तिथि में जो पुरुष शिवदेवजीको उप-
हार अर्पण करताहै वह पापों से छूटकर धन,धान्य से बढ़तीवाला होता है ॥ ७ ॥ और दुइज तिथि में जो मनुष्य भक्ति से दही, भात को निवेदन करता है वह
श्रेष्ठ पुरुष भाग्यवान् व निश्चय कर शोभित होताहै ॥ ८ ॥ और तीज तिथि में जो पुरुष गुड़हर के पुष्पों से अरुणाचलेशजी को पूजताहै उसके शरीरपर्यंत इस जन्म
में नीरोगता होतीहै ॥ ९ ॥ और चौथि तिथि में अरुणाचलेशजी के लिये जो पुरुष पूर्ण घट से जलादिक को निवेदन करताहै उसका मनोरथ पूर्ण होताहै ॥१०॥ व

यान्तिथौदेवस्योपहारंसमर्पयेत ॥ यःपापमुक्तःसभवेद्धनधान्यसमृद्धिमान् ॥ ७ ॥ द्वितीयस्यान्तिथौ भक्त्यायोद
ध्यन्नंनिवेदयेत ॥ सभवेद्भाग्यवाञ्छ्रेष्ठः शोभितोभवतिध्रुवम् ॥ ८ ॥ तृतीयायांजपापुष्पैःशोणेशंपरितर्पयेत ॥ तस्येह
जन्मनारोग्यमाशरीरम्भविष्यति ॥ ९ ॥ चतुर्थ्यामरुणेशाय पूर्णकुम्भाज्जलादिकम् ॥ निवेदयतियस्तस्य भवेत्पूर्णो
मनोरथः ॥ १० ॥ कुन्दपुष्पैश्चपञ्चम्यामुपहारंप्रकल्पयेत॥ शोणेश्वरायभक्त्यायः सस्याद्दव्यवैभवः ॥ ११ ॥ षष्ठ्यां
गुडौदनंदद्यादरुणाचलशम्भवे ॥ भक्त्यायस्तस्यसन्तानो नकदाचित्प्रहीयते ॥ १२ ॥ तिलौदनं यस्सप्तम्यां शोणे
शायसमर्पयेत ॥ सपापंचाप्यधर्मत्वमयत्नेनव्यपोहति ॥ १३ ॥ अष्टम्यांराजशाल्यन्नं योदद्याच्छोणशम्भवे ॥ तस्य
सेवांविनापिस्याद्राजलोकोवशीकृतः ॥ १४ ॥ गोधूमान्नंनवम्यांच शोणाद्रीशाययोर्पयेत ॥ राजयक्ष्मादयस्तस्य भ

जो पुरुष पञ्चमी तिथि में कुन्दपुष्पों से रचे हुये उपहार को अरुणाचलेशजी के लिये भक्ति से कल्पित करता है वह नाशरहित ऐश्वर्यवाला होता है ॥ ११ ॥ और
छठि तिथि में जो मनुष्य भक्ति से अरुणाचल शिवजी के लिये गुड़, भातको देता है उसकी सन्तान कभी नाश नहीं होती है ॥ १२ ॥ व सप्तमी तिथि में जो पुरुष
अरुणाचलेशजी के लिये तिल, भात को निवेदन करताहै वह बिन यत्नहीसे पातक व अधर्मता को नाश करताहै ॥ १३ ॥ और अष्टमी तिथि में जो मनुष्य अरुणा-
चल शिवजी के लिये राजशाली (जड़हन धान) के भात को देताहै उसके बिन सेवा भी राजालोग वश होजाते हैं ॥ १४ ॥ व जो पुरुष नवमी तिथिमें अरुणाचलेश

जी के लिये गेहूं अन्नको अर्पण करै है उसके कभी राजयक्ष्मादिक रोग नहीं होवेंगे ॥ १५ ॥ और दशमी तिथि में जो पुरुष अरुणाचलेशजी के लिये दही सत्तू को निवेदन करताहै वह सदैव सब मनुष्यों की प्रीति का पात्र होताहै ॥ १६ ॥ और एकादशी तिथि में जो मनुष्य अरुणाचलेशजी को चूरों से भेंट कल्पित करताहै उस को कहींसे भय नहीं होताहै ॥ १७ ॥ और जो पुरुष द्वादशी तिथिमें अरुणाचलेश जीके लिये दालि भातको निवेदन करता है उसका विघ्नरहित मनोरथ होता है ॥ १८ ॥ और तेरसि तिथि में जो पुरुष अरुणाचलेशजी के लिये सत्तुवों को निवेदन करता है उसके चित्तको विकलता नहीं होतीहै और परिश्रम भी नहीं

विष्यन्तिनजातुचित् ॥१५॥ दशम्यांशोणनाथाययःकरम्भन्निवेदयेत् ॥ सभवेत्सर्वलोकानांसदैवप्रीतिभाजनम् ॥१६॥
पृथुकैरुपहारंय एकादश्यांप्रकल्पयेत् ॥ अरुणाचलनाथस्य सभवेदकुतोभयः ॥ १७ ॥ द्वादश्यांशोणनाथाय सूपौ
दननिवेदनम् ॥ यःकरोतिभवेत्तस्य निर्विघ्नेनमनोरथः ॥ १८ ॥ यस्सक्तूनरुणेशाय त्रयोदश्यांसमर्पयेत् ॥ तस्याव्या
कुलचित्तत्वमश्रान्तिरपिजायते ॥ १९ ॥ अर्पयेच्छोणनाथाय फलानिविविधानियः ॥ चतुर्दश्यांसमूढोपि सिद्धसार
स्वतोभवेत् ॥ २० ॥ यःपौर्णमास्यांशोणाद्रिनाथायविनिवेदयेत् ॥ पनसस्यफलंतस्य चाक्षिरोगोनजायते ॥ २१ ॥
पितॄणाञ्चतिथौभक्त्याकन्दमूलादियोर्पयेत् ॥ शोणाचलेश्वरायास्य तुष्यन्तिपितरःकिल ॥ २२ ॥ अश्विन्यामरु
णेशायदद्याद्वासांसिभक्तिमान् ॥ भरण्यामरुणेशाय दद्यादाभरणान्यपि ॥ २३ ॥ कृत्तिकासुप्रदीपांश्च रोहिण्यांरौप्य

होता है ॥ १९ ॥ व जो पुरुष चौदसि तिथि में अरुणाचलेशजी के लिये अनेक भांति के फलोंको देताहै वह मूर्खभी सिद्ध सरस्वती देवतावाला होता है ॥२०॥ और जो पुरुष पौर्णमासी तिथिमें अरुणाचलेशजी के लिये कटहर के फलको निवेदन करता है उसके नेत्रोंका रोग नहीं होता है ॥ २१ ॥ और पितरों की तिथि अर्थात् अमावसमें जो पुरुष अरुणाचलेशके लिये भक्तिसे कन्दमूलादिकों को अर्पण करताहै उसके ऊपर पितर प्रसन्न होतेहै ॥ २२ ॥ व भक्तिमान् पुरुष अश्विनीनक्षत्र में अरुणाचलेशजी के लिये बसनों को देवै और भरणीनक्षत्र में अरुणाचलेशजी के लिये गहनोंको भी देवै ॥ २३ ॥ और कृत्तिका में दीपोंको देवै

और रोहिणी नक्षत्र में चांदीको अर्पण करै व मृगशिरा नक्षत्र में मलयज चन्दन तथा आर्द्रा में हरिचन्दन (पीलेचन्दन) को देवै ॥ २४ ॥ व पुनर्वसु नक्षत्र में कस्तूरी और पुष्यमें कर्पूर को चढ़ावै और श्लेषामें केसर व मघानक्षत्र में ठंढेजलको चढ़ावै ॥ २५ ॥ पूर्वाफाल्गुनीमें ताम्बूल व उत्तराफाल्गुनीमें धूपको चढ़ावै और हस्तनक्षत्र में कालागुरु तथा चित्रामें यक्षकर्दम (कपूर, अगुरु, कस्तूरी व कङ्कोलादिक से मिलेहुये चन्दन) को चढ़ावै ॥ २६ ॥ और स्वातीमें कुछेक युवती ब्याही हुई स्त्रियोंको अर्पण करै व विशाखा में चँवर को देवै तथा अनुराधा में मोतियोंका छत्र व ज्येष्ठामें धेनुवों के समूहों को देवै ॥ २७ ॥ और मूलनक्षत्र में मोतियों के भूषणों को व पूर्वाषाढ़ में मुकुट को अर्पण करै व उत्तराषाढ़ में रत्नोंको और श्रवण में सोनेव रत्नोंसे रचेहुये सिंहासनको देवै ॥ २८ ॥ और धनिष्ठानक्षत्रमें सुवर्ण व

मर्पयेत् ॥ मृगशीर्षे मलयजमार्द्रायांहरिचन्दनम् ॥ २४ ॥ पुनर्वसौमृगमदं पुष्येकर्पूरमर्पयेत् ॥ काश्मीरोद्भवमाश्लेषे मघायांतुहिनोदकम् ॥ २५ ॥ ताम्बूलंपूर्वफाल्गुन्यां धूपमुत्तरफाल्गुने ॥ कालागुरुञ्चहस्तर्क्षे चित्रायांयक्षकर्दमम् ॥ २६ ॥ स्वात्यांसुवासिनीवृन्दं विशाखायांप्रकीर्णकम् ॥ मैत्रेमुक्तातपत्रञ्च ज्येष्ठायांधेनुकान्यपि ॥ २७ ॥ मुक्तालङ्कारकान्मूले जलभेमुकुटमर्पयेत् ॥ रत्नानिचोत्तराषाढे श्रवणेभद्रपीठिकाम् ॥ २८ ॥ अष्टापदंधनिष्ठायां वासःशतभिषज्यपि ॥ पूर्वभाद्रपदेनागानुत्तरायांतुरङ्गमम् ॥ २९ ॥ रेवत्याञ्चरथंहैमं प्रदद्याच्छोणशम्भवे ॥ पूर्वंकृत्वामहापूजामर्पयेच्चततो नरः ॥ ३० ॥ पूज्योराशिपुमेषादिष्वरुणेशोविशेषतः ॥ सिन्दुवारैःकुरुवकैः ककुभैःपाटलैःक्रमात् ॥ ३१ ॥ कुटजैर्नीपकुसुमैर्जीवन्तीमल्लिकादिभिः ॥ सरोरुहैर्दमनकैर्नन्द्यावर्तसरोरुहैः ॥ ३२ ॥ पञ्चामृतेनस्नपनमुभयोरुपरागयोः ॥

शतभिष में वसन को देवै व पूर्वाभाद्रपद में हाथियों को देवै व उत्तराभाद्रपद में घोड़ों को देवै ॥ २९ ॥ और रेवती नक्षत्रमें अरुणाचलेशजी के लिये सोनेके रथ को देवै पहले बड़ाभारी पूजनकर तदनन्तर मनुष्य इन वस्तुओं को अर्पण करै ॥ ३० ॥ और मेषादिक राशियों में क्रमसे अरुणेशजी को विशेषकर पूजना चाहिये अर्थात् क्रमसे मेषराशिमें मेवड़ी के पुष्पोंसे, वृषमें लाल या बैंजनी रंगवाले पियाबांसाके फूलों से, मिथुनमें अर्जुन के पुष्पोंसे, कर्कमें पाढ़र के पुष्पोंसे पूजनकरै॥३१॥ सिंहराशि में कौरैया के फूलों से, कन्यामें कदम्ब के पुष्पोंसे, तुलामें जीवन्ती के फूलोंसे व वृश्चिक राशिमें बेलाके फूलोंसे पूजन करै और धनराशि में कमलों से

मकर में देउना के पुष्पोंसे, कुम्भराशि में तगर के पुष्पोंसे व मीन में कमलों से अरुणेशजी को पूजै ॥ ३२ ॥ और चन्द्रमा व सूर्य के दोनों ग्रहणोंमें भक्तिसे पञ्चाक्षर मन्त्रके द्वारा अरुणाचलेश को पञ्चामृत से स्नान करावै व दोनों अयनों में भी पंचगव्य से स्नान करावै ॥ ३३ ॥ षडक्षरमन्त्रके द्वारा पञ्चगव्य से स्नान करावै और दिन रातके बराबरवाले समय में अरुणाचलेशजी को भक्तिसे ॐकार के द्वारा जल या दूध से स्नान करावै प्रातःकालसे मध्याह्नतक तुलसी देना चाहिये व मध्याह्न समयमें अमिलतास ॥ ३४ । ३५ ॥ और दुपहर के उपरान्त अरुणाचलेश को बेला उत्तमहै हज़ार कलशोंके जलोंसे अघोरमन्त्रके द्वारा स्नान करावै ॥३६॥

पञ्चाक्षरेणकुर्वीत शोणनाथस्यभक्तितः ॥ स्नपनंपञ्चगव्येन द्वयोरयनयोरपि ॥३३॥ षडक्षरेणकुर्वीत गव्येनस्नपनक्रियाम् ॥प्रणवेनैवकुर्वीत क्षीरेणस्नपनक्रियाम् ॥३४॥ अरुणाचलनाथस्य भक्त्याचविषुवेयने ॥ प्राह्णेदेयाचतुलसी मध्याह्नेकृतमालकः ॥ ३५ ॥ अपराह्णेमल्लिकाच शोणाद्रीशस्यशस्यते ॥ अघोरमन्त्रैःस्नपयेत्सहस्रकलशोदकैः ॥ ३६ ॥ शतरुद्रीयमुच्चार्य श्रीशोणाचलशाम्भवम् ॥ शिवरात्रौविशेषेणाभ्यर्चयेद्बिल्वपत्रकैः ॥ ३७ ॥ कमलैःकर्णिकारैश्च जागरूकोयतेन्द्रियः ॥ गीतवादित्रनृत्यैश्च दिव्यागमविधानतः ॥ ३८ ॥ पूजयेदपवर्गार्थं शोणशैलेमहेश्वरम् ॥ मासिपौषेचदेवस्य कुर्यादाग्नेयमुत्सवम् ॥ ३९ ॥ नवान्नैरुपहाराद्यैर्व्याहृतीरुच्चरन्बुधः ॥ वैशाखेचविशाखायां शिवतन्त्रानुसारतः ॥ ४० ॥ शोणाचलेश्वरस्यास्य कुर्याद्दमनकोत्सवम् ॥ प्रबोधकंमार्गशीर्षे प्रातर्निर्मायसामभिः ॥ ४१ ॥ महापूजांप्रकुर्वीत शोणशैलस्यभक्तिमान् ॥ तथाप्रदोषेष्वद्रीशं व्यतीपातेषुपर्वसु ॥ ४२ ॥ सोमार्कवार

और शिवरात्रि में शतरुद्रीको उच्चारण कर विशेषकर बिल्वपत्रों से अरुणाचलेशजी को पूजन करै ॥ ३७ ॥ और इन्द्रियों को रोंकेहुये पुरुष जागरणकर दिव्यशास्त्रों की विधिसे कमलोंसे और कठचम्पा के फूलोंसे तथा गीत,बाजन व नृत्योंसे ॥ ३८ ॥ मोक्षके लिये अरुणाचल पै महादेवजीको पूजै और पौषमहीनेमें शिवदेवजी का आग्नेयोत्सव याने कृत्तिका नक्षत्र में उत्सव करै ॥ ३९ ॥ और ॐकारादिक व्याहृतियों को उच्चारण करताहुआ विद्वान् नवान्नों के उपहारादिकों से पूजन करै और वैशाखमें विशाखा नक्षत्रमें शिवशास्त्र के अनुसार ॥ ४० ॥ इन अरुणाचलेशजी का दमनकोत्सवकरै व अगहनमें प्रातःकाल प्रियवचनोंसे प्रबोधकर ॥ ४१ ॥ भक्ति-

मान् पुरुष अरुणाचल का महापूजन करै और व्यतीपात योगोंमें व पर्वों तथा प्रदोष (सन्ध्याओं) में अरुणाचलेशजीको पूजै ॥ ४२ ॥ और शास्त्रके अनुकूल रवि-
वार व सोमवार को अरुणाचलेशजी को पूजै और दीक्षा, यज्ञोपवीत, विवाह व पुत्रजन्मादिक उत्सवों में ॥ ४३ ॥ भक्तिमान् पुरुष, अरुणाचलेशजी की विशेष पूजा
करै और अपने जन्म के नक्षत्र में, संपत्ति में, विपत्ति में व भयों में ॥ ४४ ॥ और गृहप्रवेश व यात्रा में अरुणाचलेश्वरजी को पूजना चाहिये और पराई सेनाके आने
पर तथा बन्धन व नवीन ऐश्वर्य में ॥ ४५ ॥ और शत्रुवों के सामने प्राप्त होनेपर अरुणाचलेशजी का पूजन करै और अरुणाचलेशजी को स्मरण करै व यदि समीप

योऽर्चयेच्छोणाद्रीशं यथागमात् ॥ दीक्षोपनयनोद्वाहपुत्रजन्मादिकेष्वपि ॥ ४३ ॥ विशेषपूजां कुर्वीत शोणनाथस्य
भक्तिमान् ॥ अपि स्वजन्मनक्षत्रे संपत्स्वापत्सु भीतिषु ॥ ४४ ॥ प्रवेशनिर्गमनयोश्चार्चनीयोऽरुणेश्वरः ॥ परचक्राग
मे चैव बन्धने नववैभवे ॥ ४५ ॥ अरुणेशार्चनं कुर्याद् भियातेषु च द्विषाम् ॥ स्मरेच्चाप्यरुणाद्रीशं पश्येत्पर्यन्तगोय
दि ॥ ४६ ॥ स्थितश्चेदिह क्षेत्रेऽपि त्रिकालम्पूजयेच्छिवम् ॥ किमन्यद्बहुनोक्तेन ह्युद्धृत्य भुजमुच्यते ॥ ४७ ॥ अरुणात्क्षे
त्रतो नान्यदलं स्वर्गापवर्गयोः ॥ स्मरणेन मनः श्रोत्रे श्रवणाद्दर्शनाद्दृशौ ॥ ४८ ॥ जिह्वां च कीर्तनाच्छोणक्षेत्रं सद्यः पुना
त्यलम् ॥ अरुणेऽस्मिन्महाक्षेत्रे देहिभिर्लब्धजन्मनि ॥ ४९ ॥ जीवद्भिर्लभ्यते भोगो मोक्षश्चोन्मुक्तजीवितैः ॥ ५० ॥ अ
न्यत्र मुक्तदेहानामप्यत्र श्राद्धकर्मणा ॥ अपि पापात्मनां पुंसामपवर्गो भविष्यति ॥ ५१ ॥ अयोध्यां मथुरां मायां का

में स्थित होकर देखे ॥ ४६ ॥ व यदि इस क्षेत्र में स्थित होकर त्रिकाल सदाशिव जी को पूजै तो अन्य बहुत कहने से क्या है भुजाको उठाकर यह कहा जाता
है ॥ ४७ ॥ कि स्वर्ग व मोक्षके सिवाय अन्यक्षेत्र अरुणक्षेत्र से उत्तम नहींहै क्योंकि स्मरण से मन व श्रवण से कानोंको और दर्शन से नेत्रों को ॥ ४८ ॥ और कीर्तन
करने से जिह्वा को अरुणक्षेत्र शीघ्रही बहुत पवित्र करता है इस अरुणमहाक्षेत्र में पाये हुये जन्म में जीते हुये प्राणियों को सुख मिलताहै और जीव को छोड़े हुये
मनुष्यों को मुक्ति मिलती है ॥ ४९ ॥ ५० ॥ और अन्यत्र छोड़े हुये शरीरवाले पापात्माजनोंको भी यहां श्राद्ध कर्म से मोक्ष होगा ॥ ५१ ॥ अयोध्या, मथुरा, माया, काशी,

कांची, उज्जैनी व द्वारकापुरीको उल्लंघनकर याने इनसे अधिक होकर अरुणक्षेत्र वर्तमानहै॥ ५२॥ ऐसा कहते हुये शिलाद के पुत्र नन्दिकेश्वरजीसे फिर भी मृकण्डु जीके पुत्र मार्कण्डेय जी बोले कि हे पूजनीयवंशवाले नन्दिकेश्वर! इस माहात्म्यको मैं भी पूंछताहूं मुझसे कहिये॥ ५३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽरुणाचलखण्डे देवी दयालुमिश्रविरचितायाभाषाटीकायाविंशोऽध्यायः ॥ २० ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । ब्रह्मा अरु श्रीविष्णु जिमि दोऊ भये सगर्व । इकइसवें अध्यायमें कह्यो चरित सोइ सर्व ॥ नन्दिकेश्वरजी बोले कि हे मार्कंडेयजी! अरुणाचलके माहात्य

शींकाञ्चीमवन्तिकाम् ॥ द्वारकांचारुणक्षेत्रमतिक्रम्यहिवर्त्तते ॥ ५२ ॥ इत्युक्तवन्तञ्चशिलादपुत्रंमृकण्डुसूनुः पुनरप्युवाच ॥ माहात्म्यमेतन्महनीयकीर्तेर्भूयोपिपृच्छामिवदस्वमह्यम् ॥ ५३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽरुणाचलमाहात्म्ये विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

नन्दिकेश्वरउवाच ॥ अरुणाचलमाहात्म्यं विस्तरात्परिपृच्छता ॥ मार्कण्डेयत्वयामन्ये मयिन्यस्तोमहान्भरः ॥ १ ॥ स्थानेकुतूहलात्क्षिप्तं मनस्तेचमहामते ॥ यःशोणाद्रीशचरितं नवेत्तिसनरःपशुः ॥ २ ॥ कथंचशक्यतेवक्तुं मनुजैरपिकात्स्न्यतः ॥ शोणाचलजुषःशम्भोर्माहात्म्यमहिमोदयम् ॥३॥ कथंवाश्रोतुमप्येतदाश्चर्यंशक्यतेनरैः॥अशेषश्चावधार्यन्तु प्रज्ञावत्प्रवरैरपि ॥४॥ इदानींस्मरतश्चित्ते चारित्रंचन्द्रमौलिनः ॥ परामृतानुभूत्यैव सत्यंतृप्यतिमे मनः ॥ ५॥ अद्भुतंशिवचारित्रं मार्कण्डेयमनोहरम् ॥ समवर्णयितुंकृत्स्नं नैवशक्नोतिवैमुखम् ॥६॥ तथाप्येषप्रवक्ष्येह

को विस्तारमें पूंछते हुये तुमने मेरे ऊपर बड़ाभार धरादिया मैं यह मानताहूं ॥ १ ॥ हे महामते ! तुम्हारा मन कौतुकसे आक्षिप्तहै यह योग्य है क्योंकि जो अरुणाद्रीश जी के चरित्र को नहीं जानताहै वह मनुष्य पशुहै ॥ २ ॥ और अरुणाचलसेवी शिवजी के माहात्म्य की महिमा का ऐश्वर्य सम्पूर्णता से मनुष्योंसे भी कैसे कहा जासक्ता है ॥३॥ और इस आश्चर्यमय चरित्र को मनुष्य कैसे सुन सक्ते हैं परन्तु श्रेष्ठ बुद्धिमानों से सब चरित्र सुनने योग्यहै ॥ ४ ॥ इससमय चन्द्रभालजीके चरित्र को चित्तमें स्मरण करते हुये मेरा मन सत्यही उत्तम अमृतके अनुभोगसे तृप्तहोताहै ॥ ५ ॥ हे मार्कंडेयजी ! अद्भुत व मनोहर शिवजीके समस्त चरित्र को वर्णन

करने के लिये मेरा मुख समर्थ नहीं है॥ ६॥ तो भी बुद्धि के अनुसार यह मैं अंशांश याने कुछ भाग से कहूंगा। हे मुने! अरुणाचलेश के पुण्यदायक माहात्म्य को सुनिये ॥ ७ ॥ पुरातन समय देवकल्पके आदि में भेदरहित सदाशिवदेवजी अपनी इच्छा से फिर भी समस्त संसार को उत्पन्न कियाहै ॥ ८ ॥ और पैदा हुये उस संसार को सदैव रचने व पालने के लिये इन महादेवजी ने ब्रह्मा व विष्णुजी को बनायाहै ॥ ९ ॥ त्रिलोचनदेवजी ने दाहिने अंग से ब्रह्माजी को बनाया व बायें अंग से विष्णुजी को रचा ॥ १० ॥ और रजोगुणसे ब्रह्माको व सत्त्वगुण से विष्णुको युक्तकिया और देवदेव सदाशिवजी से नियुक्त किये हुये उन दोनों ब्रह्मा व विष्णुजी

ंशांशेनयथामतिः॥ पुण्यंशोणाद्रिनाथस्य माहात्म्यंश्रूयतांमुने ॥ ७ ॥ पुराहदेवकल्पादौ निर्विकल्पोमहेश्वरः ॥ स्वेच्छयासकलंविश्वं पुनरप्युदभावयत ॥ ८ ॥ उद्भावितञ्चतद्विश्वं स्रष्टुंपातुञ्चसर्वदा ॥ विनिर्ममेचदेवौसब्रह्मविष्णूमहेश्वरः ॥ ९ ॥ असृजद्दक्षिणाङ्गेन त्र्यम्बकःपरमेष्ठिनम् ॥ विष्टरश्रवसन्देवो वामाङ्गेनचसृष्टवान् ॥ १० ॥ ब्रह्माणं रजसाविष्णुं सत्त्वेनसमयूयुजत ॥ नियुक्तौदेवदेवेन तौविरञ्च्यच्युतावुभौ ॥ ११ ॥ ईशात्तेसर्वजगतां सृष्टिरक्षाविधानयोः ॥ मनसैवमरीच्याद्याः सृष्टाथब्रह्मणादश ॥ १२ ॥ दक्षश्चदक्षिणाङ्गुष्ठात्ततोनिर्मितवान्विधिः ॥ मुखेनब्राह्मणान्दोर्भ्यां क्षत्रियानूरुतोविशः ॥ १३ ॥ शूद्रांश्चनिर्ममेपद्भ्यांस्वयंचकमलासनः ॥ मरीचितनयाज्जाताः कश्यपात्सुरासुराः ॥ १४ ॥ मरुत्फणीशयक्षाश्च गन्धर्वाप्सरसस्तथा ॥ मनुश्चस्वयंसंजातो मानवोयंप्रवर्तते ॥ १५ ॥ नानाजातित्वमापाद्य नानाकर्मप्रवर्त्तकम् ॥ अत्रेश्चसमभूदार्षं क्षात्रञ्चविविधंकुलम् ॥ १६ ॥ पुलस्त्यपुलहाभ्याञ्च जज्ञि

से ॥ ११ ॥ सब लोकोंकी सृष्टि व रक्षा करनेमें समर्थ हुये इसके अनन्तर ब्रह्माजीने मरीचि इत्यादिक दशऋषियोंको मनहीसे उत्पन्न कियाहै ॥ १२ ॥ तदनन्तर ब्रह्माने दाहिने अँगूठे से दक्षजी को उत्पन्नकिया और मुखसे ब्राह्मणों को भुजाओंसे क्षत्रियों तथा जंघों से वैश्यों को पैदा किया ॥ १३ ॥ और आपही ब्रह्माजीने शूद्रों को चरणों से उत्पन्नकिया है और मरीचि के पुत्र कश्यपजीसे देवता व दैत्य उत्पन्नहुये हैं ॥ १४ ॥ और पवन, नाग, यक्ष, गंधर्व, अप्सरा और वैसेही मनुजी उत्पन्न हुये जिनसे कि पैदा हुआ यह मनुजवंश वर्तमानहै ॥ १५ ॥ और अनेक भांति के कर्मों कीप्रवृत्ति करनेवाले अनेक प्रकार की जातियों को उत्पन्न कर अत्रिजी के ऋषिवंश

व अनेक प्रकारका क्षत्रिय वंश पैदा हुआ है ॥ १६ ॥ और पुलस्त्य व पुलहजीसे यक्ष व राक्षस उत्पन्न हुये हैं और अंगिरामुनिके उतथ्य व बृहस्पति आदिक महर्षि उत्पन्न हुयेहैं ॥ १७ ॥ और भृगुके अग्नि हुये व च्यवन आदिक ऋषि हुये व वसिष्ठादिके ऋषियों से अन्य महर्षि उत्पन्न हुये ॥ १८ ॥ कि जिनके पुत्रों व पौत्रोंसे यह सब संसार पूर्ण है इसप्रकार ब्रह्माजीने अपने पुत्रोंसे इस संसारको पूर्ण कियाहै ॥ १९ ॥ और समय से व ऐश्वर्य से भी महादेव को भूलगये और भृगुकी कन्या लक्ष्मीजी को व्याहकर विष्णुजीने भी ॥ २० ॥ पृथ्वीमें मत्स्यादि रूप होकर इसी प्रकार सदाशिवजीको स्मरण न किया ॥ २१ ॥ स्वाधीनमें प्राप्त सृष्टि व पालनके कारण दोनो

रेयक्षराक्षसाः ॥ उतथ्यगीष्पतिमुखा जज्ञिरेङ्गिरसोमुनेः ॥ १७ ॥ भृगोरग्निःसमुदभूच्च्यवनाद्यास्तथर्षयः ॥ वसिष्ठप्रमुखेभ्यश्च बभूवुश्चमहर्षयः ॥ १८ ॥ यत्पुत्रपौत्रैर्भुवनमिदमापूर्यतेखिलम् ॥ एवंब्रह्मात्मजैःस्वीयैरिदमापूरयज्जगत् ॥ १९ ॥ कालेनवैभवेनापि विसस्मारमहेश्वरम् ॥ अच्युतोपिभृगोःपुत्रीमुद्वाह्यकमलालयाम् ॥ २० ॥ मत्स्यादिरूपोजगतिचैवन्नास्मरदीश्वरम् ॥ २१ ॥ सृष्टिस्थितिभ्यांद्रुहिणाब्जनाभौ स्वाधीनतांनूनमुपागताभ्याम् ॥ उभौ चगर्वंदधतुर्न्नकस्य मदोधिकारेणभवेन्नरस्य ॥ २२ ॥ इतिश्रीस्कन्दपुराणेऽरुणाचलमाहात्म्यएकविंशोऽध्यायः २१ ॥

नन्दिकेश्वर उवाच ॥ अहमेवप्रभुरिति प्ररूढाधिकगर्वतः ॥ विरञ्च्यच्युतयोरासीद्विवादोमोहसम्भवः ॥ १ ॥ रजोविकाराभ्यधिको ब्रह्मानीलइवाबभौ ॥ विश्वसृष्टिकरोविष्णुं विरञ्चोबह्वगर्हत ॥ २ ॥ कथंत्वमधिकश्चासि विष्णो

ब्रह्मा व विष्णुजी ने अहंकार को धारण किया क्योंकि अधिकारसे किस मनुष्यके अहंकार नहीं होताहै याने सबके होजाता है ॥ २२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽरुणाचलखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायामेकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

दो० । जिमि ब्रह्मा अरु विष्णु दोउ कीन्हों बहुत विवाद । बाइसवें अध्याय में अहै सोइ संवाद ॥ नन्दिकेश्वरजी बोले कि उपजेहुये अधिक अहंकार के कारण मैंही प्रभुहूं इसप्रकार ब्रह्मा व विष्णुजीका अज्ञानसे उत्पन्न विवाद (बहस) हुआ ॥ १ ॥ रजोगुणके विकार से अधिक ब्रह्माजी नीले से होगये और संसारकी सृष्टि

करनेवाले ब्रह्माने विष्णुजी की बड़ी निन्दा किया ॥ २ ॥ हे विष्णो ! लोकों के पितामह मुझ पितासे तुम कैसे अधिक हो क्या ऐसे मोहित हुयेहो ॥ ३ ॥ तुम्हीं ने मधुकैटभ दैत्योंको माराहै व उनको मारकर मैं दैत्यारिहूं यह मानकर हे केशवजी ! गर्व धारण करतेहो ॥ ४ ॥ नित्य तुम्हीं को रचते हुये मुझ रचनेवालेके हाथ आज भी परिश्रम से उत्पन्न पीड़ाको नहीं छोड़तेहैं ॥ ५ ॥ मेरे परिश्रमके जलसे उपजे हुये समुद्र में यदि बरगद न पैदा होता तो डूबते हुये तुम्हारा कहांसे अवलंबन होता ॥ ६ ॥ और महासमुद्र में मधु नामक दैत्य पैदा हुआ है व उसी में कोई भी सर्प था तुम उसके आश्रय हुये और तुम्हारे ऊपर कमल उत्पन्न हुआ

जनयितुर्मम ॥ पितामहस्यलोकानां किमेवमसिमोहितः ॥ ३ ॥ त्वत्तएवहतौदैत्यौनिहत्यमधुकैटभौ ॥ दैत्यारिरिति मत्वाच.गर्ववदसिकेशव ॥ ४ ॥ त्वामेवसृजतोनित्यं बहुधाममवेधसः ॥ अद्याप्यायासजांपीडां नपरित्यजतःकरौ ॥ ५ ॥ ममश्रमाम्भसोद्भूते महाम्भोधौनिमज्जतः ॥ नैयग्रोधोनचोत्पन्नःकुतस्तेस्त्यवलम्बनम् ॥ ६ ॥ मधुर्जज्ञेमहाम्भोधौ तत्रकोपिचपन्नगः ॥ तदाश्रयस्त्वमूर्ध्वन्ते पद्मतत्रासनंमम ॥ ७ ॥ कुतस्तमोमयेब्रूहित्वयिमत्तोगुणोदयाः ॥ सर्वत्वंचैवप्रकृतिनिद्राजडिमनिर्भरः ॥ ८ ॥ जलाशयेप्रस्वपता दैत्यभीत्याजनार्दन ॥ कथंत्वयारक्षितासौ मदधीनाजगत्त्रयी ॥ ९ ॥ चतुर्भ्योममवक्त्रेभ्यो वेदाःसमुदयंगताः ॥ चैतन्यरूपिणीशक्तिःकलत्रंमेसरस्वती ॥ १० ॥ मयाहिसृज्यतेविश्वमिदंस्थावरजङ्गमम् ॥ रक्ष्यतेचतदिन्द्राद्यैर्मामकैःपुत्रपौत्रकैः ॥ ११ ॥ ततःकथयवैकुण्ठ मान्नियोज्येषुकश्चन ॥ जगतामीश्वरान्मत्तः कथंवाप्यतिरिच्यते ॥ १२ ॥ इत्थंसरोषसंरम्भे विधौपरुषभाषिणि ॥ नारायणोपिसस्मेरं स्मि

और वह मेरा आसन है ॥ ७ ॥ यह कहिये कि तमोमय तुममें मुझसे अधिक सबगुणों का ऐश्वर्य कहां से है और तुम मायासे निद्रा की जड़ता से पूर्ण हो ॥ ८ ॥ हे जनार्दनजी ! दैत्यों के डरसे जलमें सोते हुये तुमसे यह मेरे वशमें प्राप्त त्रिलोक कैसे रक्षा किया जाता है ॥ ९ ॥ मेरे चारों मुखों से वेद उदयको प्राप्त हुये हैं याने उत्पन्न हुयेहैं और चैतन्यरूपिणी शक्ति सरस्वतीजी मेरीस्त्री हैं ॥ १० ॥ इस चराचर संसार को मैं रचताहूं और उसको इन्द्रादिक मेरे पुत्र व पौत्र रक्षा करतेहैं ॥ ११ ॥ इस लिये हे विष्णुजी ! कहिये कि लोकोंके मध्यमें मुझसे नियोग (आज्ञा) करनेयोग्य पुरुषोंमें कैसे कोई पुरुष मुझ ईश्वरसे अधिक है ॥ १२ ॥ इस प्रकार क्रोधके

वेग समेत ब्रह्माजीने जब कठोर वचन कहा तब विष्णुजीने भी मुसकराकर ईर्षासमेत उनसे ऐसा वचन कहा ॥ १३ ॥ कि हे ब्रह्माजी ! क्रोध को छोड़ दीजिये वृथा बकते हो तुम मेरी नाभि (तोंदी) के कमलसे पैदा हुये हो यह निश्चय कीजिये ॥ १४ ॥ मैं योगनिद्राको छोड़कर यदि मधुकैटभ दैत्यों को न मारता तो उनसे तुम नाशहोजाते ॥ १५ ॥ सोमक इत्यादिक दैत्यों को मारने के लिये अपनी इच्छा से धारण किये हुये मत्स्यादि रूपवाले मुझसे अन्य कौन सृष्टिका कारण है ॥ १६ ॥ रजोगुणसे गुप्त नेत्रोंवाले पुरुष कुछ भी नहीं देखते हैं इससे रजोमय आपसे क्या देखने योग्यहै ॥ १७ ॥ मुझ रक्षा करनेवालेकी कमलवासिनी लक्ष्मीजी

त्वैवन्तमभाषत ॥ १३ ॥ विरञ्चेमुञ्चसंरम्भं वृथाखलुविकत्थसे ॥ नाभीसरोजसंजातो ममत्वमवधारय ॥ १४ ॥ योगनिद्रांमयोन्मुच्य पुराहिमधुकैटभौ ॥ नचेदुन्मथितौताभ्यांतथैवस्याःप्रणाशितः ॥ १५ ॥ सोमकप्रमुखान्दैत्यान् हन्तुमात्मेच्छयामम ॥ धृतमत्स्यादिरूपस्य कोवान्यःसृष्टिकारणम् ॥ १६ ॥ नकिञ्चिदपिपश्यन्ति रजसागूढदृष्टयः ॥ रजोमयेनभवता किन्नुरूपयितुंक्षमम् ॥ १७ ॥ अविनोभाविनीशक्तिर्ननुमेपद्मवासिनी ॥ यस्याःकटाक्षमात्रेण जगत्त्रितयमेधते ॥ १८ ॥ भूतानामन्तकालोहमात्मनोप्यहमेवहि ॥ मयाविरहितंकिञ्चित्त्रिलोकेषुनविद्यते ॥ १९ ॥ आदित्यावसवोरुद्रा दिक्पालामनवोप्यहम् ॥ भूर्भुवःस्वस्त्रयीमेनांमदधीनांविचिन्तय ॥ २० ॥ ममैवविनियोगेन सृष्टिशक्तिःस्वयंस्थिता ॥ तन्मेत्रैलोक्यनाथस्य किन्त्वंज्येष्ठःसमोथवा ॥ २१ ॥ एवंमोहान्धमनसोरन्योन्यंप्रतिगर्जतोः ॥ युध्यतोश्चससमयः संवर्त्तसदृशस्तयोः ॥ २२ ॥ उदयास्तमयौस्यातां नतदाचन्द्रसूर्ययोः ॥ नक्षत्राणिचताराश्च ग्रहा

भाविनी (उत्पन्न करनेवाली) शक्ति है कि जिस के कटाक्षहीसे त्रिलोक वृद्धिको प्राप्त होता है ॥ १८ ॥ प्राणियों का व अपना भी मैंही अन्तकाल हूं मुझसे रहित त्रिलोक में कुछ नहीं विद्यमान है ॥ १९ ॥ आदित्य, वसु, रुद्र, दिक्पाल व मनु लोग और मैं भी व भूलोक,भुवर्लोक व स्वर्गलोक इनतीनोंको मेरे अधीनजानिये ॥ २० ॥ और मेरीही आज्ञासे सृष्टि की शक्ति आपही स्थित है इसलिये त्रिलोक के स्वामी मुझसे तुम क्या बड़ेहो या समान हो ॥ २१ ॥ इस प्रकार मोहसे अन्धमनवाले वे ब्रह्मा व विष्णु जब आपस में गरजने तथा युद्ध करने लगे तब वह समय कल्पके समान होगया ॥ २२ ॥ उस समय चन्द्रमा व सूर्य का उदय व अस्त नहीं हुआ

और नक्षत्र, तारा व ग्रह क्षीणताको प्राप्तहुये ॥ २३ ॥ और उस समय पवन नहीं चले व अग्नियां नहीं जलतीं भईं और आकाश, पृथ्वी व दिशायें न प्रकाशित हुईं ॥ २४ ॥ व सब समुद्र क्षोभितहुये और पर्वत कांपतेभये तथा ओषधियां सूखगईं व प्राणी विकलहोगये ॥ २५ ॥ और पाख, महीना, ऋतु व वर्ष आदिका नियम जातारहा व दिनरात्रि की व्यवस्थायें नाश को प्राप्तहुईं ॥ २६ ॥ उस समय इन्द्रादिकलोकपालों ने व मरीचि आदिक सब महर्षियों ने असमयसे प्राप्त कल्पान्त को माना ॥ २७ ॥ इसप्रकार महाक्षोभ होनेपर प्राणियों के दुःखित शब्दसे प्रेरित सदाशिवजीने समस्त संसारको विकल जाना ॥ २८ ॥ व मनमें कहा कि मोहकी महिमा

अक्षीणतांययुः ॥ २३ ॥ नववुर्मरुतोवान जज्वलुर्जातवेदसः ॥ नान्तरिक्षंनचक्षोणी नदिशोपिचकाशिरे ॥ २४ ॥ समुद्राश्चुक्षुभुस्सर्वे पर्वताश्चचकम्पिरे ॥ ओषध्यःशोषमासेदुरखसेदुश्चजन्तवः ॥ २५ ॥ पक्षमासर्तुवर्षादिकालस्यनियमोगतः ॥ अहोरात्रव्यवस्थाश्च प्रणाशंसमुपाययुः ॥ २६ ॥ इन्द्रादयोलोकपाला मरीच्याद्यामहर्षयः ॥ सर्वेकालेन संप्राप्तं कल्पान्तंमेनिरेतदा ॥ २७ ॥ एवंजातेमहाक्षोभेभूताक्रन्दप्रचोदितः ॥ भूतनाथोजगत्सर्वं व्याकुलञ्चावबुध्यते ॥ २८ ॥ विस्मृत्यमांचाप्यन्योन्यं शंसन्तौविजगत्प्रभू ॥ अहोमोहस्यमाहात्म्यं यदिमौद्रुहिणाच्युतौ ॥ २९ ॥ जानन्तावपिमांसम्यग्भूतामेवमुद्धतौ ॥ अज्ञानतिमिरोद्भूतदूषिताशयलोचनः ॥ ३० ॥ जनःप्राप्तंस्तुतमपि प्रायोवस्तुनपश्यति ॥ कृतापराधावप्येतौ निमग्नौमोहसागरे ॥ ३१ ॥ मयानोपेक्षणीयौहि लोकानांहितकाम्यया ॥ इतिनिश्चित्यमनसा मायावैवश्यमेतयोः ॥ ३२ ॥ देवोदयामहाम्भोधिर्व्यपोहयितुमैहत ॥ ३३ ॥ अहोनुकम्पातरुणेन्दुमौलेः

का यह आश्चर्य है जो कि मुझ को भूलकर आपसमें अपना को संसार के स्वामी कहतेहुये ये ब्रह्मा व विष्णुजी ॥ २९ ॥ मुझको भलीभांति जानते हुये भी इस प्रकार गर्वित होगये अज्ञानरूपी तिमिरकी उत्पत्तिसे दूषित आशयरूपी नेत्रोंवाला ॥ ३० ॥ मनुष्य प्राप्त व प्रशंसित वस्तुको भी प्रायः नहीं देखता है अपराध को किये हुये व मोहके समुद्र में डूबे ये ब्रह्मा व विष्णुजी ॥ ३१ ॥ लोकोंके हितकी कामनासे मुझसे छोड़ने योग्य नहीं हैं इसप्रकार इन दोनोंकी मायासे विवशता को मनसे निश्चय कर ॥ ३२ ॥ दया के महासमुद्र सदाशिव देवजी ने उस मायाको नाशकरनेकी इच्छा किया ॥ ३३ ॥ अहो इस त्रिलोकमें तरुण चन्द्रमालजी की दया

स्वभावहीसे सिद्धहै क्योंकि इन सदाशिवजीने बड़े मोहके समुद्र के जलसे ब्रह्मा व विष्णुजी को निकालने की इच्छा किया ॥ ३४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽरुणाचल खण्डे देवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांद्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

दो० । तेजस्तंभ प्रमाणहित ब्रह्मा अरु भगवान । उद्यत भे तेईस महँ सोइ चरित्र बखान ॥ मार्कंडेयजीबोले कि हे विभो ! मुझसे यह कहिये कि जिसप्रकार अवि-नाशी सदाशिवजीने मोह के समुद्र में विष्णु व ब्रह्माजीके ऊपर दया किया है ॥ १ ॥ नन्दिकेश्वरजी बोले कि सब चरित्र को सुनिये मैं विस्तार से यथायोग्य

स्वभावसिद्धाभुवनत्रयेस्मिन् ॥ असौप्रमोहाम्बुधिमध्यतोयादुद्धर्तुमैच्छच्चविधातृविष्णू ॥ ३४ ॥ इति श्रीस्कन्द पुराणेऽरुणाचलमाहात्म्येद्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥ आज्ञापयविभोमह्यं यथाशम्भुःसनातनः ॥ अनुजग्राहमोहान्धौ वैकुण्ठपरमेष्ठिनौ ॥ १ ॥ नन्दिकेश्वरउवाच ॥ शृणुष्वसर्ववक्ष्यामि विस्तरेणयथातथम् ॥ यद्देवदेवोविदधे दययाभक्तवत्सलः ॥ २ ॥ उद्भूतश्चोभयोर्मध्ये तथाविवदमानयोः ॥ ज्योतिस्तम्भत्वमभेत्य युद्धारम्भनिरोधकः ॥ ३ ॥ महतोजृम्भमाणस्यतस्यब्रह्माण्ड भेदिनः ॥ अन्तरिक्षमतिश्यामं नीलक्षिप्तमिवाभवत् ॥ ४ ॥ विष्वग्विसर्पतातस्य ज्योतिर्लिङ्गस्यतेजसा ॥ दिशो विरेजिरेसद्यो दूरविस्तारिताइव ॥ ५ ॥ तीव्रैस्तस्यमहाजालैःशोषिताइवसागराः ॥ विमुक्तवन्तःसंक्षोभंस्वामेवप्रकृतिं ययुः ॥ ६ ॥ व्यद्योततदिविप्राग्वच्चन्द्रस्तारागणैःसह॥तेजस्तम्भात्समुद्भिन्नाःस्फुलिङ्गाइवकेचन ॥ ७ ॥ तेजसातस्य

कहताहूं कि भक्तप्रिय शिवदेवजी ने दयासे जो किया है ॥ २ ॥ युद्धके प्रारंभ को रोंकनेवाले शिवजी ज्योतिस्तंभता को प्राप्त होकर उस प्रकार विवाद करते हुये उन दोनों के मध्यमें उत्पन्न हुये ॥ ३ ॥ ब्रह्माण्ड को भेदन करनेवाले उस बडे भारी बढते हुये तेजस्तंभके सकाशसे अतिश्याम आकाश नीलमें फेंका हुआसा हो गया ॥ ४ ॥ सब ओर फैलतेहुये उस ज्योतिर्लिंगके तेजमे उसीक्षण दिशायें दूरतक विस्तारितसी प्रकाशितहुईं ॥ ५ ॥ व उसकी तीक्ष्ण तेज राशियोंसे सोखे हुये समुद्र संक्षोभ को छोडकर अपनेही स्वभाव को प्राप्त हुये ॥ ६ ॥ और आकाश में तारागणों समेत चन्द्रमा पहलेकी नाईं प्रकाशित हुआ और कोई नक्षत्र तेजस्तंभसे उत्पन्न

चिनगारियोंकी नाईं देख पड़तेथे ॥ ७ ॥ और उस अरुण तेजसे मानो गेरू से रंग दियेगये हैं वैसेही भूमि की शोभाको भी नवीन पर्वत की शोभा की नाईं किया ॥ ८ ॥ और उस समय उस तेजस्तंभके प्रतिबिम्बकी अधिक शोभासे समुद्र पद्मराग पत्थरके खण्डमें रचेहुये से शोभित हुये ॥ ९ ॥ और नवीन मूंगोंके गुच्छों से लंबित से वृक्ष होगये व नदियां बहुत फूले हुये कमलोंवालीसी होगईं ॥ १० ॥ और पृथ्वी कुंकुमसे लिपीसी होगई व दिशायें सिन्दूरसे रँगीसी होगईं और सब ओर आकाश समस्त अरुणमय देखपड़ा ॥ ११ ॥ वैसेही ब्रह्माण्डकपाल तेजों से पूर्ण अन्तरोंवाला होगया और महादेव जी का कपाल रक्तसे पूर्णसा होगया ॥ १२ ॥ इस प्रकार

शोणेन गैरिकेणेव रञ्जिताः ॥ भूमेरपिश्रियंतद्वदवहन्नवभूभृतः ॥ ८ ॥ समुद्रास्तत्प्रतिच्छायानिर्भरश्रिययातदा ॥ पद्मरागशिलाखण्डे घटिताइवरेजिरे ॥ ९ ॥ प्रवालगुच्छैःप्रत्यग्रैर्लम्बिताइवपादपाः ॥ नद्यश्चनिर्भरोत्फुल्लकह्लाराइवरेजिरे ॥ १० ॥ महीकुङ्कुमलिप्तेव दिशःसिन्दूरिताइव ॥ सर्वारुणमयंव्योम समन्तात्प्रत्यदृश्यत ॥ ११ ॥ ब्रह्माण्डकर्परंतद्वन्महोभिःपूरितान्तरम् ॥ शोणेनेवचसम्पूर्णं कपालंकृत्तिवाससः ॥ १२ ॥ एवंप्रवर्धमानेन तेजस्तम्भेनतेनच ॥ अरुणाकारताम्भेजे विश्वंस्थावरजङ्गमम् ॥ १३ ॥ तेजोलिङ्गंतदाश्चर्यं दृष्ट्वात्यक्तमिथःक्रुधौ ॥ अचिन्तयेतामेकैकश्चतुर्मुखचतुर्भुजौ ॥ १४ ॥ किमेषवसुधांभित्त्वा शेषादीनांफणाभृताम् ॥ फणामाणिक्यमहसां राशिरुन्मुखताङ्गतः ॥ १५ ॥ किंवाकल्पान्तसुलभाःप्रादुर्भावाःप्रभाकराः ॥ द्वादशापिनभोमध्ये ह्यधुनायुगपदुत्थिताः ॥ १६ ॥ आहोस्विन्मेघसंघर्षाद्विद्युतोव्योममध्यतः ॥ अन्योन्यंमिलिताःक्षिप्रं निपतन्त्यवनीतले ॥ १७ ॥ प्रत्युद्यन्नेषतेजोभीरत्न

बढ़ते हुये उस तेजस्तंभसे चराचर संसार अरुणाकारत्व को भजताभया याने संसारभर लाल होगया ॥ १३ ॥ उस आश्चर्यमय तेजस्वरूप को देखकर आपसमें क्रोध को छोड़कर चतुरानन (ब्रह्मा) व चतुर्भुज (विष्णु) जी प्रत्येकने चिन्तनकिया ॥ १४ ॥ कि क्या यह पृथ्वीको फोड़कर शेषादिक सर्पों की फणाओं की मणियों के तेजों की राशि सम्मुखता को प्राप्तहुई है ॥ १५ ॥ अथवा क्या जिनका कल्पान्त में प्रकट होना सुलभहै वे बारहों सूर्यभी इससमय इकबारगी आकाश में उत्पन्न हुये हैं ॥ १६ ॥ अथवा मेघों के घिसने से बिजलियां आकाश के बीचसे आपसमें मिलकर शीघ्रही पृथ्वीतलमें गिरतीहैं ॥ १७ ॥ और उदय होती हुई यह अग्नि

प्रतिक्षण शक्ति को तेजोंसे रक्षाकरके अपनी निर्विशेषता से समस्त प्राणियोंको पीड़ित नहीं करती है ॥ १८ ॥ और जलती हुई भी यह अग्नि नाश के लिये नहीं समर्थ होतीहै व जलती हुई भी यह अग्निकी नाईं प्राणियों को नहीं जलाती है ॥ १९ ॥ इसकी शोभाके प्रतिबिम्बसे केवल संसारही नहीं लाल हुआहै किन्तु मेरा भी शरीर इसके तेज से अरुणताको प्राप्त होगया है ॥ २० ॥ यह तेजस्तंभ किससे पैदाहुआ है और किस उपाधिवाला व किस मूलवालाहै और कहांपर यह है और किस कारण बहुत प्रकाशितहै तथा किस शक्ति से प्रकाशितहै ॥ २१ ॥ चारोंओर, तिरछा, नीचे व ऊपर इसका क्या प्रमाणहै और क्या यह पाताल में गड़ाहै व यह

च्छक्तिमनुक्षणम् ॥ स्वनिर्विशेषताशेषभूतान्नाग्निःप्रबाधते ॥ १८ ॥ एषउद्दीप्यमानोपि संनाशायनकल्पते ॥ प्रोद्यन्नपिचभूतानि नानिर्दहतिवह्निवत् ॥ १९ ॥ एतस्यकान्तिसंक्रान्त्या जगदेवनकेवलम् ॥ मदीयमपिशोणत्वमग मन्महसावपुः ॥ २० ॥ कस्मादेषसमुत्पन्नः किंमूलःकिमुपाधिकः ॥ कुतस्त्यःकिमुप्रोद्दीप्तःकयाशक्त्याप्रकाशते॥२१॥ कियानवधिरेतस्य विष्वक्तिर्यगधोर्ध्वतः ॥ अवगाढश्चपाताले किंमात्रश्चाप्यसाविति ॥ २२ ॥ तदेतदखिलंज्ञातुं मनः पर्युत्सुकंमृदु ॥ इच्छत्युत्पतितुंव्योम प्रवेष्टुंचरसातलम् ॥ २३ ॥ इतिचिन्ताभराक्रान्तौ तेजस्तम्भावलोकनात् ॥ उ भावप्याकुलावास्तां वैकुण्ठपरमेष्ठिनौ ॥ २४ ॥ अभ्यापतद्गोविन्दः सुतरामेवगर्वितम् ॥ हिरण्यगर्भमालोक्यं स्म यमानमुखाम्बुजः ॥ २५ ॥ अधुनैवावयोर्ब्रह्मन्नन्योन्योत्कर्षकाङ्क्षिणोः ॥ अयमेवपरीक्षार्थं निकषःसमुपस्थि तः ॥ २६ ॥ अमुष्यतेजसांराशेरपरिच्छेद्यसम्पदः ॥ आद्यन्तौज्ञातुमेकेन नशक्यंध्रुवमावयोः ॥ २७ ॥ यःपश्येन्मूल

कितना बड़ाहै ॥ २२ ॥ इस लिये इस सबको जानने के लिये उत्कंठित व कोमल मन आकाश को उड़ने के लिये इच्छा करता है व रसातल में पैठने की इच्छा करता है ॥ २३ ॥ इसप्रकार तेजस्तंभ के देखने से चिन्ता के भार से घिरे हुये दोनों ब्रह्मा व विष्णुजी विकलहुये ॥ २४ ॥ और ब्रह्माजी को बहुतही गर्वित देखकर मुसक्यान संयुत मुख कमलवाले विष्णुजीने ब्रह्मा से कहा ॥ २५ ॥ कि हे ब्रह्मन्! इससमय आपस में अधिकता को चाहनेवाले हमारी व तुम्हारी परीक्षा के लिये यह निकष (कसौटी) प्राप्त हुई है ॥ २६ ॥ निश्चयकर हमारे तुम्हारे मध्य में एक से अमितसंपदावाले इस तेज की राशिका आदि अन्त नहीं जाना जासक्ताहै ॥ २७ ॥ जो

पुरुष आपहीसे उपजे हुये इस तेजके मूल व ऊपर को देखै यहां पर लोकों के स्वामी हम तुम दोनों के मध्य में वही अधिकहै॥२८॥ इस प्रकार निश्चय किये आशय
वाले उन दोनों नेभी उस बड़े भारी तेज के मूल व अग्रभाग को भी देखने के लियेआपस में ईर्षासे उद्यमकिया॥ २९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेअरुणाचलखण्डेदेवीदयालु
मिश्रविरचितायांभाषाटीकायांत्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀

दो० । तेजस्तंभ अनादि लखि भयो विकल वाराह । चौबिसवें अध्याय में कह्यो सो सहित उछाह ॥ नन्दिकेश्वरजी बोले कि इसके अनन्तर हंस स्वरूपवाले ब्रह्मा

मग्रंवा तेजसोऽस्यस्वयंभुवः ॥ सएवनावभ्यधिको जगतांनाथयोरिह ॥ २८ ॥ इत्युभावपिविनिश्चिताशयौमूलमग्रमपि
तस्यवीक्षितुम् ॥ तेजसोतिमहतोबभूवतुःस्पर्द्धयाविरचितोद्यमौमिथः॥२९॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽरुणाचलमाहात्म्ये
त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

नन्दिकेश्वरउवाच ॥ अथहंसाकृतिर्व्योमपदवींलङ्घनक्षमाम् ॥ भेजेविरिञ्चिस्तस्याग्रं द्रक्ष्यामीतिकृतोद्यमः ॥१॥
जग्राहविष्णुर्वाराहं विग्रहंदृढविग्रहम् ॥ विश्वम्भराविनिर्भेदक्रीडामूलमवैभवम् ॥ २ ॥ मूलंतस्यापरिज्ञाय प्रत्यभिज्ञा
तुमुत्सुकः ॥ वाराहरूपीभगवान् दंष्ट्राभ्यामभिनन्महीम् ॥ ३ ॥ विदारयन्नपोत्रेण भूतधात्रीमवाङ्मुखः ॥ महावरा
होददृशे तेजस्तम्भंखनन्नपि ॥ ४ ॥ क्रीडाक्रोडःकठोरेण कण्ठघोषेणपूरयन् ॥ पातालंबहुलोत्साहः प्रवेष्टुमुपचक्र
मे ॥ ५ ॥ विविशयत्रयत्रासौ तत्रतत्रतथास्थितम् ॥ अवैक्षिष्टानलस्तम्भं तमेवकुहरेकिटिः ॥ ६ ॥ विदारितान्महीं

जी ने उस तेजस्तंभ के अग्रभाग को देखूंगा इस लिये उद्यमकर नांघने के योग्य आकाशमार्ग को यात्रा किया ॥ १ ॥ और विष्णुजीने पृथ्वीके तोडने में खेल मूल
(जड़) वाले तथा ऐश्वर्य रहित व पुष्ट शरीरवाले वाराह (सूकर) रूपको ग्रहण किया ॥ २ ॥ और उसकी जड़को न जानकर जानने के लिये उत्कंठित वाराहरूपी
भगवान्ने दाढ़ोंसे पृथ्वी को विदारण किया ॥ ३ ॥ और पृथ्वी को दाढ़ोंसे फाड़ते हुये नीचे मुख किये उस महा वाराहजीने खोदते हुये भी तेजस्तंभको देखा ॥ ४ ॥
व क्रीड़ा से वाराहरूपी तथा बहुत उत्साहवाले विष्णुजीने कंठके कड़े शब्द से दिशाओं को पूर्ण करते हुये पाताल में पैठने का प्रारंभ किया ॥ ५ ॥ जहां जहां ये

वाराहजी पैठे वहा वहा बिल में वैसेही स्थित उसी अग्निस्तंभ को उन्होंने देखा॥ ६ ॥और तोड़ेहुये पृथ्वी के छिद्र से सांप देख पड़े व कोई शेषादिक सर्प तेजस्तंभ के प्ररोह (जडै) सी देख पड़ते थे ॥ ७ ॥ और तेजस्तंभ के उस स्थित मूल को वाराहजी ने न देखा व विष्णुजीसे आदि कच्छप आधारता को प्राप्त हुआ ॥ ८ ॥ व पृथ्वी की जड़ में समीपही जो कि भार के धारण करने से स्थितहै मदोंसे शिथिल बन्धनों वाले वे दिग्गज देख पड़े ॥ ९ ॥ और मधु दैत्यके मारनेवाले उन विष्णुजीने वडे भारी वाराहजी को भी देखा कि जिन की पीठपै सब पृथ्वीका मंडल धराहै ॥ १० ॥ और विष्णुजी ने उस आधार शक्ति को भी देखा कि जिसकी दया से शेष व कच्छप

रन्ध्रात्प्रत्यदृश्यन्तभोगिनः ॥ प्ररोहाइवशेषाद्यास्तेजस्तम्भस्यकेचन ॥ ७ ॥ नादृश्यतेवराहेण मूलंस्तम्भस्यचस्थित म् ॥ आधारताङ्गतश्चैव ह्यच्युतेनादिकच्छपः ॥ ८ ॥ आराद्वसुन्धरामूले येधुरन्धरयास्थिताः ॥ दिक्सिन्धुराश्चदृश्यन्ते मदैश्शिथिलबन्धनाः ॥ ९ ॥ मधुद्विपाचसमहान्कमठोपिविलोकितः ॥ अखण्डमण्डलंभूमेर्यस्यपृष्ठेप्रतिष्ठितम् ॥ १० ॥ आधारशक्तिमपितामभ्यपश्यदधोक्षजः ॥ यदनुग्रहतःशेषकूर्माद्याअपिधूर्वहाः ॥ ११ ॥ अतलंवितलंचैव सुतलंनि तलंतथा ॥ तलातलञ्चपातालंमहातलमितिक्रमात् ॥ १२ ॥ ददर्शसप्तपातालानपिवारिजलोचनः ॥ तत्रत्यान्विविधाकारा न् सर्वानपिसविस्मयः ॥ १३ ॥ अत्यगाद्भोगवत्याख्यां पुरींवैरोचनीमपि ॥ जगाहेन्यांश्चदैत्यानामावासांश्चमनोहरा न् ॥ १४ ॥ इदंदृष्टमिदंदृष्टमित्युपारूढकौतुकः ॥ मूलंमुग्धाशयस्तस्य विचिनोतिस्ममाधवः ॥ १५ ॥ अधस्ताद पियातेन पयोधेस्तेनपोत्रिणा ॥ तथैवतेजस्तम्भस्य निर्विकारमवैक्षत ॥ १६ ॥ दलिताकेवलंपृथ्वी पाथोराशिर्विलो

इत्यादि कभी भारको धारण किये हैं ॥ ११ ॥ अतल, वितल, सुतल, नितल,तलातल,पाताल व महातल इस क्रमसे ॥१२॥ कमल लोचनवाले विष्णुजी ने सातों भी पातालों को देखा और वहां रहनेवाले अनेक भांतिके आकारवाले सब प्राणियोंको भी विस्मय समेत उन्होंने देखा ॥ १३ ॥ और भोगवती नामक बलिकी पुरीको भी विष्णुजी नॉघगये और अन्य दैत्यों के भी सुन्दर स्थानोंको मथते भये ॥ १४ ॥ और अज्ञात आशयवाले विष्णुजीने यह देखा इस प्रकार अधिक प्राप्त कौतुक वाले होकर उस तेजस्तंभकी जड़को खोज किया ॥ १५ ॥ और समुद्र से भी नीचेगयेहुये उन बाराहजी ने तेजस्तंभको वैसेही विकार रहित याने पहलेही की नाई

देखा ॥ १६ ॥ केवल पृथ्वी फाड़ डालीगई व जल की राशि चलाई गई परन्तु वाराहरूपी विष्णुजीने उस तेजस्तंभ की जड़ को न देखा ॥ १७ ॥ इस प्रकार हज़ारों वर्षोंतक भ्रमण करने से विकल मनवाले लीलासे वाराह रूपी विष्णुजीउसके मूल को देखने के लिये समर्थ न हुये ॥ १८ ॥ इसके अनन्तर टूटे खुरोंवाला व टूटी दाढ़ों वाला तथा थके हुये शरीर व टूटे हुये मुख के अग्रभागवाला वह वाराह बहुत परिश्रमको प्राप्त हुआ ॥ १९ ॥ थके व श्वास लेते हुये उन विष्णुजी का ऐसा बढ़ा हुआ अहंकार उसके मूल के देखने की इच्छा समेत उसी क्षण नाशहोगया ॥ २० ॥ शिथिल प्रतिज्ञावालेभी विष्णुजी लौटने के लिये उत्कंठित हुये

लिता ॥ नैवालोकिचतन्मूलं क्रोडरूपेणविष्णुना ॥ १७ ॥ इत्थंवर्षसहस्राणिभ्रान्त्यासंभ्रान्तमानसः ॥ पातालमस्ति तन्मूलं लीलाक्रोडोविलोकितुम् ॥ १८ ॥ अथरुग्णखुरःक्षुण्णदंष्ट्रोविध्वस्तविग्रहः ॥ भग्नपोत्रःसमूदारो जगाहेबहुलं श्रमम् ॥ १९ ॥ श्रान्तस्यश्वसतस्तस्य तादृग्दर्पोविशृङ्खलः ॥ ननाशतत्क्षणात्साकं तन्मूलावेक्षणेच्छया ॥ २० ॥ अनिर्व्यूढप्रतिज्ञोपि प्रत्यावर्त्तितुमुत्सुकः ॥ नचक्षमेसरोजाक्षश्चलितुञ्चपदात्पदम् ॥ २१ ॥ ततोन्धचक्षुषस्तस्य पातालान्तरवर्त्तिनः ॥ तत्तेजएवपन्थानंपुनरप्युदभावयत् ॥ २२ ॥ कथंकथञ्चिदुत्तीर्णोप्यकूपारादुपारतः ॥ स्वेदाम्भःसागरेतीव्रे मग्नोभूच्छलसूकरः ॥ २३ ॥ रज्ज्वेवतेजस्तम्भस्य प्रभयासानुबद्धया ॥ लब्ध्वावलम्बनंकष्टं न्यवर्त्तिष्टजनार्दनः ॥ २४ ॥ नावेक्षियन्मयामूलममुष्यमहसांनिधेः ॥ ततःस्रष्टापिनोदृष्टो शिरोभागःकथञ्चन ॥ २५ ॥ अमुष्यमहसांराशेः प्रागभूद्यत्रसम्भवः ॥ ततोनिवृत्ययास्यामि शरणंशिवमीश्वरम् ॥ २६ ॥ सहिविश्वाधिकोदेवश्चिरंमोहा

और कमल लोचन विष्णुजी पगसे पगभर चलनेकेलिये न समर्थहुये ॥ २१ ॥ तदनन्तरपाताल के भीतर वर्तमान उन अन्धनेत्रोंवाले विष्णुजीको उसीतेजने फिर मार्ग को प्रगट किया ॥ २२ ॥ तब किसी किसी विधि से समुद्र से ऊपर निकले और थकित वे छल से सूकररूप वाले विष्णुजी पसीना के तीव्र समुद्र में डूबगये ॥ २३ ॥ ऊपर बँधीहुई रस्सी की नाईं तेजस्तंभकी प्रभा से अवलंब (सहारा) को पाकर विष्णुजी दुःख से लौटतेभये ॥ २४ ॥ व मन में विचारने लगे कि जिसलिये इस तेजराशि के मूल को मैंने नहीं देखा है उसी कारण ब्रह्माने भी किसी प्रकार ऊपरके भाग को न देखा होगा ॥ २५ ॥ इस तेजराशि की पहले जहांपर उत्पत्ति हुई

है वहा लौटकर मैं शिव शंकरजीकी शरणमें जाऊंगा॥२६ ॥ जिसलिये मोहसे नेत्र रहित मैने ससार भर में अधिक उन शिवदेवजी को बहुत दिनों से भुला दिया उसी कारण यह ऐसा दुष्ट फल प्राप्त हुआ ॥ २७ ॥ ऐसा निश्चयकर गर्वको छोडे हुये कमललोचन विष्णुजी उसी स्थानपर शीघ्रही लौट आये जहां कि तेजकी अतुलना को धारण किये वह स्तभहुआथा ॥ २८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेअरुणाचलखण्डेदेवीदयालु मिश्रविरचितायाभाषाटीकायांचतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥ ॥

दो० । हंसरूप ब्रह्मा यथा देख्यो केताकिपत्र । पच्चिसवें अध्याय में सोई कथाविचित्र ॥ नन्दिकेश्वरजी बोले कि तदनन्तर अवलंब रहित ब्रह्माजी तेजमय स्तंभ

दचक्षुषा ॥ यद्विस्मृतोमयातस्माद्दुर्विपाकोयमीदृशः ॥ २७ ॥ एवंविनिर्धार्यविमुक्तदर्पो निवृत्तवानाशुसरोरुहाक्षः ॥ तमेवदेशमभवद्यत्रस्तम्भःसतेजोमिततांदधानः ॥ २८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽरुणाचलमाहात्म्येचतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥ * ॥ * ॥ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

नन्दिकेश्वरउवाच ॥ ततस्तेजोमयंस्तम्भमनुसृत्यपितामहः ॥ उत्पपातोन्मुखोवेगान्निरालम्बोनभस्तले ॥ १ ॥ द्रुमाउत्पततस्तस्य पक्षाभ्यांविनिवारिताः ॥ व्यशीर्यन्तसमुद्भूताःप्रणुन्नाइववायुभिः ॥ २ ॥ सचगोरुत्पतन्दूरं नाक्ष्णोर्विषयतामगात्॥केवलंददृशेव्योम्निसूक्ष्मरूपेणसृष्टिकृत् ॥ ३ ॥ मायामरालोददृशे तेजस्तम्भस्यपार्श्वतः ॥ सन्ध्यापयोधराभ्यर्णचारीवरजनीकरः ॥ ४ ॥ प्रागत्यगादुत्पतने ततःस्थानंपयोमुचाम् ॥ विमानपदवींपश्चात्तारावर्त्मततःपरम् ॥ ५ ॥ तेजसांयानिधामानि अत्युच्चात्यूर्ध्वचारिणाम् ॥ अतिचक्रामवेगेन तान्यसौरभसाखगः ॥ ६ ॥ मरुतोमनसो

के समीप जाकर शीघ्रतासे ऊपर मुख करके वेगसे आकाशमें उड़े ॥ १ ॥ ऊपर उड़तेहुये उन हंसरूपी ब्रह्माजीके पंखों से कँपाये हुये वृक्ष निवारित होकर टूटगये मानो पवनोंसे फेंके गये हैं ॥ २ ॥ और पृथ्वी से दूर उड़ते हुये वे ब्रह्माजी नेत्र गोचरत्वको न प्राप्त हुये केवल आकाश में सूक्ष्म (छोटे) रूपसे देखपड़े ॥ ३ ॥ तेज स्तंभ के समीप मायासे हंसरूपी ब्रह्माजी देख पडे जैसे कि संध्या समयके मेघोंके समीपगामी चन्द्रमा होवै ॥ ४ ॥ व पहले उडने में मेघोंके स्थानको नांघगये पश्चात विमानों के मार्ग को नांघ उसके उपरान्त नक्षत्रों के मार्ग को नांघगये ॥ ५ ॥ और ऊपर चलनेवाले तेजस्वियों के जो बड़े ऊचे स्थानहैं उनको ये पक्षीरूपवाले ब्रह्मा

जी वेगसे प्रसन्नता पूर्वक नांघगये ॥ ६ ॥ अति सूक्ष्म आकार वाले पवन व मनकाजो वेग है उसको उस हंसने गमनादिक से नीचे करदिया ॥ ७ ॥ श्वेत पंखोंवाले
वे हंसरूपी ब्रह्मा ज्यों ज्यों दूर उड़े त्यों त्यों वह ऊंचा तेजस्तंभ देख पड़ा ॥ ८ ॥ सातों पवन समूहों को नांघकर प्राप्त आश्चर्य वाले ब्रह्माजीने अण्डकटाह को
फोड़कर उस जलते हुये तेजस्तंभ को देखा ॥ ९ ॥ और उत्कर्षको चाहतेहुये मुझको शोच न करते व मूल को देखे हुये विष्णुके आगे कैसे स्थित होना चाहिये ॥ १० ॥
विन पुष्ट प्रतिज्ञावाले जीते हुये मेरे प्राणों से क्या प्रयोजन है याने कुछनहीं इसलिये इस विषय में क्या उपाय करना चाहिये व मेरी क्या गति होगी ॥ ११ ॥

योवा जवःसूक्ष्मतराकृतेः ॥ सोभूदधःकृतस्तेन हंसेनगमनादिना ॥ ७ ॥ यथायथाचोत्पपात सद्धंसःसितच्छदः ॥ त
थातथासददृशे तेजस्तम्भःसमुन्नतः ॥ ८ ॥ अतीत्यमारुतस्कन्धान् सप्तसंप्राप्तविस्मयः ॥ विभिद्याण्डकटाहञ्च ज्वल
न्तंतमुदैक्षत ॥ ९ ॥ कथञ्चदृष्टमूलस्य स्थातव्यंपुरतोहरेः ॥ अविशोचयतःशौरेर्मयाचोत्कर्षमिच्छता ॥ १० ॥ अनिर्व्यूढ
प्रतिज्ञस्य जीवतःकिममासुभिः ॥ तदत्रौपयिकंकिंस्यात्किंकार्यंकागतिर्मम ॥ ११ ॥ अभिसंवाञ्छतोविष्णुं कस्सहा
योभविष्यति ॥ आर्जवेनचनिर्जेतुं प्रतिपादनमक्षमः ॥ १२ ॥ छद्मनावातिरस्कुर्यां मनोहिमहतान्धनम् ॥ इतिसञ्चिन्त
यत्येव विरञ्चेऽव्याकुलात्मनि ॥ १३ ॥ आकाशेददृशेनातिदूरेकिमपिनिर्मलम् ॥ केतकीछदनंतत्रत्वस्याःकथमिहाग
मः ॥ १४ ॥ इतितस्मिंस्तुसन्देहे नेदीयस्तांतदागतः ॥ १५ ॥ अबोधिकेतकीबर्हमितिराजीवजन्मना ॥ तस्याप्यत्य

और विष्णुजी के सामने जाते हुये मेरा कौन सहायक होगा व कोमलता से जीतने के लिये और प्रतिपादन (सिद्धकरने) में असमर्थ मैं ॥ १२ ॥
छलसे अन्तर्द्धानकरूं याने छिपाऊं क्योंकि महात्मा पुरुषों का मनहीं धन होताहै इसप्रकार विकल चित्तवाले ब्रह्माजी के चिन्तवन करने पर ॥ १३ ॥ आकाश में
थोड़ेही दूर पै वहां केतकीका कोई भी निर्मल पत्र देख पड़ा तब विचार किया कि इस केतकीका यहां कैसे आगमन हुआ ॥ १४ ॥ इसप्रकार उस सन्देह के उत्पन्न
होनेपर उस समय वे समीपताको प्राप्त हुये ॥ १५ ॥ और कमलसे उपजे हुये ब्रह्माजी ने यह जाना कि यह केतकीका पत्रहै और उसकी अत्यन्त उठतीहुई सुगन्धको

शक्ति से सूंघकर ॥ १६ ॥ ब्रह्माने निर्मल केतकी पत्र के ग्रहण किया और उनसे ग्रहण करतेही वह चैतन्यता समेत होकर बोला ॥ १७ ॥ कि हे ब्रह्मन् ! मुझको तुम किसलिये ग्रहण करतेहो तब ब्रह्माभी उससे बोले कि सैकड़ों व हज़ारों वर्षतक इसी प्रकार आकाश में उड़कर ॥ १८ ॥ वैसेहीं बढ़तेहुये उस तेजस्तंभ को देखकर मैं श्रमको प्राप्त हुआ और उसकी उत्पत्ति को चिन्तवन करता हुआ मैं अत्यन्त नष्ट आशयवाला हुआ ॥ १६ ॥ और बिन पुष्ट प्रतिज्ञावाला मैं नीचतामें भी स्थित हुआ व इस समय भी नहीं जानागया कि यह तेजों की राशि क्याहै ॥ २० ॥ मैं इसकी परीक्षा में नष्ट बलवाला होगया और मेरे पंख मानो टूटे जातेहैं व नेत्र अन्धे

न्तमप्युद्यत्सौरभंघ्रायशक्तितः ॥ १६ ॥ हिरण्यगर्भोविमलमगृह्णात्केतकच्छदम् ॥ गृहीतमात्रन्तेनैवसचैतन्यःकिलाब्रवीत् ॥ १७ ॥ भोगृह्णासिकिमर्थन्त्वं ब्रह्माचाप्यब्रवीत्तुतम् ॥ वर्षाणांशतसाहस्रमुत्पत्यैवंविहायसा ॥ १८ ॥ तथासमेधमानन्तंदृष्ट्वाश्रममवाप्तवान् ॥ चिन्तयंश्चतदुत्पत्तिमत्यन्तविहताशयः ॥ १९ ॥ अनिर्व्यूढप्रतिज्ञावान्नीचतामपिसंश्रितः ॥ अधुनापिचनज्ञातं काराशिस्तेजसामसौ ॥ २० ॥ अहमेतत्परीक्षायां संपरिच्छिन्नपौरुषः ॥ भज्येतेइवमेपक्षावन्धायेतेदृशाइव ॥ २१ ॥ प्रध्वंसन्तइवाङ्गानि पतामीवाहमप्यधः ॥ किंवान्यद्बहुनोक्तेन सहैवदशवायुभिः ॥ २२ ॥ ममप्राणाश्चशिथिला निर्गच्छन्तीवसाम्प्रतम् ॥ अहङ्कारमदोग्रेण व्योम्निचोत्पततोऽधुना ॥ २३ ॥ मुकुन्देनसहस्पर्धासाचशीघ्रंननाशहि ॥ औन्नत्यमयतेद्यापि तेजस्तम्भोयथापुरा ॥ २४ ॥ तदिमंतेजसोराशिन्नाहंनारायणोथवा ॥ ज्ञातुंसमर्थोनान्येच महेन्द्रप्रमुखाःसुराः ॥ २५ ॥ इतोनिवर्तितुंशक्तिरस्तिमेतोनिवर्त्तये ॥ इतितंश्राव्यमनसा विधाताजा

से हुये जाते हैं ॥ २१ ॥ और अंग नीचे गिरे से पड़ते हैं व मैं भी मानों नीचे गिरता हूं अन्य बहुत कहने से क्याहै दश प्राणों समेत ॥ २२ ॥ मेरे शिथिल प्राण मानों इससमय-निकलते से हैं और अहंकारके भयंकर मदसे इस समय आकाश में उड़तेहुये मेरी ॥ २३ ॥ विष्णु के साथ जो ईर्षा थी वह भी शीघ्रही नाश होगई व जैसा पहले था वैसेही अब भी तेजस्तंभ उन्नति (उंचाई) को प्राप्त होताहै ॥ २४ ॥ इसलिये इस तेजों की राशिको जानने के लिये मैं व नारायण भी समर्थ नहीं है और इन्द्र आदिक देवता भी नहीं समर्थ हैं ॥ २५ ॥ यहा से लौटने के लिये मेरी शक्ति है इससे मैं लौटताहूं यह उसको सुनाकर मनसे उत्पन्न आश्चर्यवाले

ब्रह्माजी ॥ २६ ॥ उससे बोले कि तुम कौनहो और कहांसे तुम्हारी उत्पत्तिहै उस केतकीपत्रने इन ब्रह्माजीसे कहा ॥ २७ ॥ कि केतकीका पत्रही मैं शिवजी की आज्ञासे चैतन्यतासंयुतहूं और तेजस्तंभरूपी इन शिवजी के मस्तक पै बहुत दिनों से टिका हूं ॥ २८ ॥ और वहां से पृथ्वीलोक में बसने की इच्छा से भलीभांति प्राप्त हुआहूं ॥ २९ ॥ इसप्रकार केतकीके पत्रका वचन सुनकर वहां स्वस्थता पाकर कमलसे उपजे हुये ब्रह्माजी ने कहा कि हे केतकीपत्र ! तुम मुझसे तेजस्तंभके इस अग्र भाग को कहिये ॥ ३० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽरुणाचलखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांपञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

तविस्मयः ॥ २६ ॥ प्रत्यभाषततंकस्त्वं कुतोवाप्रसवश्चते ॥ सचप्रत्यब्रवीदेतंवेधसंकेतकच्छदः ॥ २७ ॥ केतकच्छद एवासं सचैतन्यःशिवाज्ञया ॥ तेजस्तम्भात्मनःशम्भोरस्यमूर्द्धिनचिरंस्थितः ॥ २८ ॥ भूलोकेचेच्छयावस्तुं ततःसंप्राप्तवानहम् ॥ २९ ॥ इत्थंश्रुत्वाकेतकिवर्हवाचंलब्ध्वास्वास्थ्यंतत्रचाम्भोजजन्मा ॥ त्वंवैकीर्तयकेतकीपत्रमत्तस्तेजस्तम्भस्याग्रमित्यावभाषे ॥ ३० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽरुणाचलमाहात्म्येपञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥ * ॥

नन्दिकेश्वरउवाच ॥ केतकीवर्हमध्येनं विहस्यपुनरब्रवीत ॥ अपिमूढोनकिञ्चित्त्वं वेत्सियस्माद्ब्रवीषितत ॥ १ ॥ ईदृशाःपरितोलग्ना यस्मिन्ब्रह्माण्डकोटयः ॥ तस्यप्रमाणमेतावदितिकोवेदितुंक्षमः ॥ २ ॥ चतुर्युगायुतेर्यातं ततोनिपततोमम ॥ इदानीमपिनायातस्तन्मध्येकिलभूतले ॥ ३ ॥ इतिब्रुवाणंपत्रञ्च नमस्कृत्यसरोजभूः ॥ हित्वानिजमहंकारमभाषतकृताञ्जलिः ॥ ४ ॥ महात्मन्सत्यमेवासिभूतोहंकेतकच्छद ॥ ब्रह्मणाहिमयास्पर्धा विष्णुनासहनिर्मि

दो० । कहा केतकीपत्र जिमि मृषा वचन अज काज । छब्बिसवें अध्यायमें सोइ कथा सुखसाज ॥ नन्दिकेश्वरजी बोले कि केतकीपत्रने भी विहँसकर फिर इन ब्रह्माजी से कहा कि तुम मूढ हो और कुछ नहीं जानते हो क्योंकि उस वचनको कहते हो ॥ १ ॥ जिसमें कि सब ओर ऐसे करोडों ब्रह्माण्ड लगे हैं उसकी इतनी प्रमाणहै इसको जानने के लिये कौन समर्थ है ॥ २ ॥ उसपर से गिरतेहुये मुझको दश हज़ार चतुर्युगी बीतगई परन्तु इस समय भी पृथ्वीमें उसके बीच में नहीं आया हूं ॥ ३ ॥ ऐसा कहते हुये केतकीपत्र को प्रणामकर ब्रह्माजीने अपने अहंकार को छोड़ हाथों को जोड़कर कहा ॥ ४ ॥ कि हे महात्मन्, केतकीपत्र !

मैं सत्यही तिरस्कृत होगया क्योंकि मुझ ब्रह्माने विष्णुके साथ ईर्षा किया ॥ ५ ॥ और विष्णु में बँधी हुई ईर्षा से मैं नहीं छूटा हूं महर्षियों से मित्रता साप्तपदीन (सात पदों से प्राप्त) कही जाती है ॥ ६ ॥ तुम प्रशंसित बुद्धि से दया करने के योग्य हो तेजस्तंभ के देखने के कारण हंस व वाराहरूपी मैं व विष्णुजी दोनों आपस में अधिकता की इच्छा से मोह से अन्धे होगये इसके मूल को देखने की इच्छावाले वे किस दशा को प्राप्त हुये हैं ॥ ७ । ८ ॥ इसको मैं नहीं जानता हूं और इसके अग्रभाग के देखने की इच्छावाले व हजारों योजन ऊपर उड़तेहुये मेरी ऐसी दशा है ॥ ९ ॥ कि प्राणोंसे वियुक्त सा होकर मैं बहुतही परिश्रम को

ता ॥ ५ ॥ स्पर्धयानविमुक्तोस्मि बद्धयागरुडध्वजे ॥ सख्यंसाप्तपदीनंहि कथ्यतेचमहर्षिभिः ॥ ६ ॥ प्रसंस्तुतधियाहि त्वं कर्तुमर्हस्यनुग्रहम् ॥ अहंविष्णुश्चमोहान्धौ तेजस्तम्भस्यवीक्षणात् ॥ ७ ॥ हंसक्रोडाकृतीभूत्वा मिथःस्वोत्कर्षके च्छया । मूलंदिदृक्षुःसदशां कीदृशींयातवानिति ॥ ८ ॥ नजानेममचास्याग्रं दिदृक्षोरीदृशीदशा ॥ ऊर्ध्वमुड्डीयमा नस्य योजनानांसहस्रकम् ॥ ९ ॥ जातश्रमोस्मिसुतरां वियुज्यइवचासुभिः ॥ अवलम्बश्चलब्धस्त्वं मयात्रैवावसीद ता ॥ १० ॥ तन्मेकुरुष्वमित्रस्य सफलांयाचनामिमाम् ॥ त्वयाचकरणीयावै पार्थनैषाकृताञ्जलेः ॥ ११ ॥ यदिप श्यतिमूलंसजितोहममुनातदा ॥ यदानपश्यतितदाप्यस्मिसाम्यमुपेयिवान् ॥ १२ ॥ इदंद्वयमपिप्रायो ममातिहे पणंसखे ॥ त्वंमदर्थेसहायत्वमिदानींसमुपागतः ॥ १३ ॥ अनृतानभिभाषत्वे प्रार्थितस्त्वंसुहृत्कृते ॥ गिरमेकामिमा मग्रे चक्रपाणेरुदीरय ॥ १४ ॥ एषहंसाकृतिर्ब्रह्मा तेजस्तम्भस्वरूपिणः ॥ अत्युच्चंदृष्टवानग्रमत्रसाक्षीगतोस्म्यहं

प्राप्त हुआहूं यहीं पर दुःखित मुझको तुम अवलम्ब (सहारा) प्राप्त हुये हो ॥ १० ॥ इस लिये मुझ मित्रकी तुम इस याचना को सफल करो और हाथों को जोड़े हुये मेरी इस प्रार्थना को तुमको करना चाहिये ॥ ११ ॥ क्योंकि यदि वे विष्णुजी मूलको देखैंगे तो उनसे मैं जीत लिया गया और यदि न देखैंगे तो भी मैं समता को प्राप्त हूं ॥ १२ ॥ हे मित्र ! ये दोनों भी प्रायः मुझको बहुतही लज्जाकारक है मेरे लिये तुम इस समय सहायता को प्राप्त हो ॥ १३ ॥ तुम मित्र के लिये असत्य कहने में प्रार्थना किये गये हो कि चक्रपाणि विष्णुजी के आगे इस एक वचन को कहिये ॥ १४ ॥ कि हंसस्वरूपी इन ब्रह्माजी ने तेजस्तंभस्वरूपके

बहुतही ऊंचे भाग को देखाहै इस विषय में मैं साक्षी प्राप्त हूं ॥ १५ ॥ और तेजस्तंभ को प्राप्त हुये पिताकी नाईं भलीभांति उन चन्द्रभाल शिवजी से ये ब्रह्माजी कल्पित हुये हैं ॥ १६ ॥ इस लिये मैंनेही विष्णुजीको अधिक कल्पित कियाहै ऐसा कहकर तुम मेरी बड़ी भारी सहायता को करो ॥ १७ ॥ इस प्रकार बार २ ब्रह्माजी से चतुरतापूर्वक प्रार्थना किये हुये इस केतकीपत्रने भी ब्रह्माके समस्त वचन को तेजस्तंभ के समीपसेवी विष्णुजी से वैसेही कहा ॥ १८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽरुणाचलखण्डेदेवोदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांषड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥ ❋ ॥ ❋ ॥ ❋ ॥ ❋ ॥

म् ॥ १५ ॥ तेनापितेजस्तम्भत्वमीयुषाचन्द्रमौलिना ॥ संभावितोयंसुतरां पित्रेवहिपितामहः ॥ १६ ॥ अतोमयैवाभ्यधिको भावितोविष्टरश्रवाः ॥ इत्युक्त्वाममसाहाय्यं सुमहत्क्रियतांत्वया ॥ १७ ॥ एवंभूयःप्रार्थितोयंविधात्रा दाक्षिण्येनकेतकीबर्हकोपि ॥ तेजस्तम्भाभ्यर्णभाजेतथैव प्राहाशेषंविष्णवेब्रह्मवाक्यम् ॥ १८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽरुणाचलमाहात्म्येषड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥ ❋ ॥ ❋ ॥ ❋ ॥

नन्दिकेश्वरउवाच ॥ सोपिब्रह्माणमुद्वीक्ष्य स्वतोपिद्विगुणश्रमम् ॥ नाग्रंदृष्टमनेनेति निश्चिकायविवेकवान् ॥ १ ॥ अनुग्रहीतुंमांमुग्धं हर्तुंचास्यविधेर्मदम् ॥ देवदेवःसएवाद्यनदृष्टइत्यमन्यत ॥ २ ॥ मूलसन्दर्शनेशक्त्यातेजस्तम्भस्य मेमदः ॥ व्यपेतएवमन्येद्य ब्रह्मणोपितथैवच ॥ ३ ॥ स्तूयतेवीतगर्वत्वान्मयेदानींमहेश्वरः ॥ यस्यदक्षिणवामाभ्याम

दो० । तेजस्तंभ अनादि लखि विष्णु शिवस्तुति कीन । सत्ताइस अध्याय में सोइ चरित्र नवीन ॥ नन्दिकेश्वरजी बोले कि अपनासे भी दूने परिश्रमवाले ब्रह्माको देख कर उन ज्ञानवान् विष्णुजीने भी यह निश्चय किया कि तेजस्तंभ के अग्रभागको इन्होंने नहीं देखाहै ॥ १ ॥ मुझ अज्ञानी के ऊपर दया करने के लिये व इन ब्रह्मा के गर्व को हरने के लिये आज वेही देवदेव शिवजी न देख पड़े उन्होंने यह माना ॥ २ ॥ बलसे तेजस्तंभके मूल देखने में मेरा अभिमान तो नाशही होगया और वैसेही ब्रह्मा का भी अभिमान जातारहा मैं यह मानताहूं ॥ ३ ॥ गर्व नाश होने के कारण इस समय उन महादेवजी की स्तुति कीजाती है कि जिन के दाहिने व बायें

अंग से हम दोनों पैदाहुये हैं ॥ ४ ॥ अहंकार नाश होनेसे अबभी ये ब्रह्माजी झूंठे साक्षी (गवाही) को पाकर मुझही को उल्लंघन करना चाहते हैं ॥ ५ ॥ इस लिय आज मुझको सबभी दुःख के दूर करने में समर्थ उन्ही शंकरजी की शरण में प्राप्त होना चाहिये ॥ ६ ॥ क्योंकि अपराध को किये व कृतघ्न तथा गुरुद्रोही की रक्षा करनेवाला उनके सिवाय अन्य कौनहै उन्हीं सदाशिवजीकी मैं स्तुति करताहूं ॥ ७ ॥ हे पृथ्वीमयाकार ! आपकी जयहो हे जलाकार,शंभो ! आपकी जयहो हे सूर्याकार ! आपकी जयहो हे भीममयाकार ! तुम्हारी जयहो ॥ ८ ॥ हे अनलाकार ! आपकी जयहो हे पवनाकार ! जयहो हे होतामय आकारवाले ! आपकी जयहो हे आकाश-

ङ्गाभ्यान्द्वौसमुद्भवौ ॥ ४ ॥ अद्याप्यवीतगर्वत्वाल्लब्ध्वासौकूटसाक्षिणम् ॥ हिरण्यगर्भोमामेवमतिसंक्रान्तुमिच्छति ॥ ५ ॥ तदद्यसकलस्यापि दुःखस्यापनयेक्षमः ॥ सएवशरणत्वेन प्राप्तव्यःशङ्करोमया ॥ ६ ॥ यतःकृतापराधस्य कृतघ्नस्यगुरुद्रुहः ॥ तमृतेरक्षिताकोन्यस्तमेवस्तौमिशङ्करम् ॥७॥ जयपृथ्वीमयाकारजयशम्भोजलाकृते ॥ जयप्रभाकराकारजयभीममयाकृते ॥ ८ ॥ जयवैश्वानराकारगन्धवाहाकृतेजय ॥ जयहोतृमयाकार जयाकाशमयाकृते ॥९॥ रक्षमांत्रिगुणातीत रक्षमांकालविग्रह ॥ रक्षमामक्षयैश्वर्य रक्षमाङ्करुणाकर ॥ १० ॥ स्रष्टात्वंसर्वजगतां रक्षितासर्वदेहिनाम् ॥ हर्ताचसर्वभूतानां त्वांविनैवास्तिकोपरः ॥ ११ ॥ अणूनामप्यणीयांस्त्वं महांस्त्वंमहतामपि ॥ अन्तर्बहिस्त्वमेवैतज्जगदाक्रम्यवर्तसे ॥ १२ ॥ निगमास्तवनिश्वासाविश्वन्तेशिल्पवैभवम् ॥ सर्वंत्वदीयमेवास्ति ज्ञानंदेहिचमे प्रभो ॥ १३ ॥ अमरादानवादैत्याः सिद्धाविद्याधरानराः ॥ पशवःपक्षिणःशैलाः शाखिनोपित्वमेवहि ॥ १४ ॥ स्वर्ग

मयाकार ! आपकी जयहो ॥ ९ ॥ हे तीनों गुणोंसे परे शिवजी ! हमारी रक्षा कीजिये व हे कालशरीर ! मेरी रक्षा कीजिये हे अविनाशी ऐश्वर्यवाले शिवजी ! मेरी रक्षा कीजिये हे कृपाकर ! हमारी रक्षा कीजिये ॥ १० ॥ तुम सब लोकोंके रचनेवालेहो और सब देहधारियों के रक्षकहो और तुम्हारे विना अन्य कौन सब प्राणियों का नाशकारक है ॥ ११ ॥ सूक्ष्मोंके मध्यमें भी तुम बहुत सूक्ष्महो व बड़ोंमें भी तुम बड़े हो भीतर व बाहर इस संसार को तुम्हीं आक्रमण कर वर्तमानहो ॥ १२ ॥ वेद तुम्हारे श्वास हैं व संसार तुम्हारी कारीगरीका ऐश्वर्य है और सब तुम्हाराही है हे प्रभो ! हमको ज्ञान दीजिये ॥ १३ ॥ देवता,दानव,दैत्य, सिद्ध, विद्याधर, मनुष्य, पशु, पक्षी,

पर्वत व वृक्षभी तुम्हींहो ॥ १४ ॥ तुम्हीं स्वर्ग हो तुम्हीं मोक्षहो तुम ॐकारहो और तुम्हीं यज्ञहो तुम योगहो व तुम उत्तम शक्तिहो हे महेश्वर ! तुम क्या नहीं हो
अर्थात् सब तुम्हीं हो ॥ १५ ॥ व स्थावर तथा जंगम प्राणियों का आदि मध्य व अन्त तुम्हींहो और कालस्वरूप को प्राप्त होकर तुम समस्त संसारकी कलना
(नाश) करतेहो ॥ १६ ॥ परेसे भी परे ईश्वर, शास्ता (शिक्षक) व जो सबोंके ऊपर दया करनेवाले शिवजी हैं वे जटाधारी ये महादेवजी कैसे मेरे सामने होवेंगे ॥
१७ ॥ कि जिनको देखकर शरणमें प्राप्त मनुष्य कल्याण को प्राप्त होताहै अथवा बुद्धि के अनुसार उन संसार के रचनेवाले शिवजी की स्तुति करताहूं ॥ १८ ॥ उसको

स्त्वमपवर्गस्त्वं त्वमोङ्कारस्त्वमध्वरः ॥ त्वंयोगस्त्वंपराशक्तिः किंत्वंनहिमहेश्वर ॥ १५ ॥ त्वमादिर्मध्यमन्तश्च तस्थु
षांजग्मुषामपि ॥ कालस्वरूपतांप्राप्य कलयस्यखिलंजगत ॥ १६ ॥ परेशःपरतःशास्ता सर्वानुग्रहकःशिवः ॥ सएष
मेकथंकारं साक्षाद्भवतिधूर्जटिः ॥ १७ ॥ यंदृष्ट्वाशरणंप्राप्तो निश्रेयःसमवाप्नुयात ॥ अथवास्तौमितंविश्वकर्ता
रंचयथामति ॥ १८ ॥ तच्छ्रुत्वैषकृपांकुर्यादवश्यंसर्वतःशुचिः ॥ इतिनिश्चित्यवैकुण्ठः स्तोतुंसमुपचक्रमे ॥ १९ ॥
तमेवंतेजसंस्तम्भं प्रणम्यपरमेश्वरम् ॥ आदिमध्यान्तरहितं मत्वातंजगदीश्वरम् ॥ २० ॥ तदातेनविरञ्चेन वार्यमा
णोपिसस्मितम् ॥ २१ ॥ श्रीविष्णुरुवाच ॥ जयदेवमहादेववामदेववृषध्वज ॥ कालान्तकक्रतुध्वंसिन्नीलकण्ठउमेश्व
र ॥ २२ ॥ जयशम्भोशिवेशान शर्वत्र्यम्बकधूर्जटे ॥ स्मरवैरित्रिपुराराते स्थाणोभवमहेश्वर ॥ २३ ॥ जयेशखण्डपर

सुनकर सब ओर से पवित्र ये शिवजी अवश्य कृपा करेंगे ऐसा निश्चयकर विष्णुजीने स्तुति करने का प्रारंभ किया ॥ १९ ॥ उस समय उन ब्रह्माजी से मुसक्यान
समेत मना किये हुयेभी विष्णुजीने उसी तेजस्तंभ परमेश्वर को प्रणामकर व उसको आदि, मध्य तथा अन्तसे रहित संसार के स्वामी मानकर स्तुति किया ॥
२०। २१ ॥ श्रीविष्णुजी बोले कि हे वामदेव, वृषध्वज, महादेव ! आप की जयहो हे कालांतक, यज्ञध्वंसक, नीलकंठ, पार्वतीपते ! आपकी जयहो ॥ २२ ॥ हे
शंभो, शिव, ईशान ! आपकी जयहो हे शर्व, त्रिलोचन, धूर्जटे ! आपकी जयहो हे कामशत्रु, त्रिपुरारे, स्थाणो, भव, महेश्वर ! आपकी जयहो ॥ २३ ॥ हे ईश,

खण्डपरशो, शूलिन्, पशुपते, हर! आपकी जयहो हे सर्वज्ञ,भार्गव, उर्वीश, कपालिन्, नीललोहित! आपकी जयहो॥ २४॥ हे गंगाधर, ईशान, पिनाकिन्,प्रमथा-
धिपते! आपकी जयहो हे गंगाधर, व्योमकेश, गिरीश,परमेश्वर! आपकी जयहो॥ २५॥ हे भीम,मृगव्याघ्रचर्मवसनवाले,दयानिधे! तुम्हारी जयहो हे कृशानुरेतः!
तुम सदैव कैलासमें वर्तमान रहतेहो॥ २६॥ तुम्हारी आज्ञा से वायु चलती है व शेषजी पृथ्वी के भारको धारे हैं और सूर्य,चन्द्रमा ब्रह्माण्ड में प्रकाशितहैं व समुद्र
बहताहै हे शर्व,प्रभो! तुम्हारी आज्ञासे नक्षत्र चलतेहैं॥ २७॥ हम और ब्रह्मा लोकोंकी सृष्टि व पालनमें समर्थ हैं व कल्पके अन्तमें निद्रा को छोड़कर मैं पृथ्वी को

शो शूलिन्पशुपतेहर॥ सर्वज्ञभार्गवोर्वीश कपालिन्नीललोहित॥ २४॥ जयगङ्गाधरेशान पिनाकिन्प्रमथाधिप॥ ग
ङ्गाधरव्योमकेश गिरीशपरमेश्वर॥ २५॥ जयभीममृगव्याघ्रकृत्तिवासःकृपानिधे॥ कृशानुरेतःकैलासे नैरन्तर्ये
णवर्तसे॥ २६॥ त्वदाज्ञयामरुद्वाति फणीवहतिभूभरम्॥ दीप्यतःसूर्य्यशशिनौ ब्रह्माण्डंस्रवतेम्बुधिः॥ ज्योतींषिसं
चरन्त्येव शर्वत्वच्छासनात्प्रभो॥ २७॥ अहंब्रह्माचजगतांसर्जनत्राणयोरलम्॥ विहायनिद्रांकल्पान्ते पालयामि
चमेदिनीम्॥ २८॥ तवाद्यन्तेनमिलिते यच्चत्वन्महिमैवसः॥ अणिमादिमहासिद्धेरसाधरणवैभवम्॥ २९॥ कथंत्वा
ममरैरन्यैरधिकंस्तौमिशङ्कर॥ विभवेविस्मरामस्त्वां स्मरामःसङ्कटेपिच॥ ३०॥ नरोषोजातुभक्तेषु प्रसादःसर्वदैव
ते॥ यदाविश्वत्सेभक्तिंत्वं यदाचप्राट्टणोषिताम्॥ ३१॥ मोहबोधौतदापुंसां कल्पेतेबन्धमोक्षयोः॥ ३२॥ इतिस्तुतःप्राञ्ज

पालनकरताहूं॥ २८॥ जो कि तुम्हारा आदि व अन्त नहीं मिला वह आपकी महिमाही है क्योंकि आप अणिमादि महासिद्धियोंसे साधारण ऐश्वर्यवाले नहीं हो॥
२९॥ हे शंकर! अन्य देवताओं से अधिक तुम्हारी किस प्रकार स्तुति करूं हमलोग ऐश्वर्य में तुमको भूलजातेहैं और संकटमे स्मरण करतेहैं॥ ३०॥ कभी
भक्तों के ऊपर तुम्हारा क्रोध नहीं होताहै किन्तु सदैव प्रसन्नता रहती है जब तुम भक्तिको देते हो और जब उसको आच्छादित करलेतेहो॥ ३१॥ तब अज्ञान व
ज्ञान पुरुषों के बन्धन व मोक्ष के लिये समर्थ होते हैं॥ ३२॥ इस प्रकार हाथ जोड़े हुये चक्रपाणि विष्णुजी से स्तुति किये हुये दयानिधान पशुपतिजी कमलसे

उपजे हुये ब्रह्माके उपहास करनेपर प्रकट हुये ॥ ३२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽरुणाचलखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांसप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥
दो० । ब्रह्मा अरु केतकी कहँ शाप दीन शिव देव । अट्ठाइस अध्याय में सोइ चरित सुखसेव ॥ नन्दिकेश्वरजी बोले कि तदनन्तर जैसे संध्यासमय के मेघ से
चन्द्रमा निकलै वैसेही स्तंभ को तोडकर शिवजी कैलास के शिखर के समान श्वेतबैल पै चढ़े हुये देखपड़े ॥ १ ॥ जो कि जटाजूटवाले तथा बालचन्द्रमा की गाति
से संयुत मस्तक से उपलक्षितथे और मुण्डोंकी माला व शम्पाक (अमिलतास)की माला को धारे थे ॥ २ ॥ और विषसे काले कन्धोंवाले व प्रकाशित पांचमुखोंसे

लिनाचविष्णुनापतिःपशूनामथचक्रपाणिना ॥ कृतापहासेचसरोजसम्भवे सर्वेश्वरःप्रादुरभूद्दयानिधिः ॥ ३२ ॥
इति श्रीस्कन्दपुराणेऽरुणाचलमाहात्म्येसप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥ * ॥ * ॥ * ॥
नन्दिकेश्वरउवाच ॥ ततःस्तम्भंविनिर्भिद्य सन्ध्याभ्रादिवचन्द्रमाः ॥ कैलासकूटधवलंवृषेन्द्रमधितस्थिवान् ॥ १ ॥
जटाजूटवताबालचन्द्रचारेणमौलिना ॥ कपालमालिकांबिभ्रन् स्रजञ्चारग्वधान्दधन् ॥ २ ॥ पञ्चभिर्वदनैर्दीप्तैः क्ष्वे
डकल्माषकन्धरैः ॥ शूलंकपालंडमरुं सारङ्गंपरशुंधनुः ॥ ३ ॥ खट्वाङ्गमभयंखड्गं दोर्भिश्चर्मचधारयन् ॥ भस्मनोद्धू
लिताकारःस्वावासंद्योतयञ्छिवः ॥ ४ ॥ सर्वालङ्कारसम्पन्नः सर्वदेवैरभिष्टुतः ॥ परिधानीकृतंव्याघ्रचर्मताभ्याम
दर्शिसः ॥ ५ ॥ रूपंदृष्ट्वास्यआनन्दं ननर्तनलिनेक्षणः ॥ नकिञ्चिदपिजानन्स मुमोहचसरोजभूः ॥ ६ ॥ दृशाभिन
न्द्यसाध्व्यातं तदानींसमहेश्वरः ॥ अथोदतिष्ठिपत्साहङ्कारंचतुर्मुखम् ॥ ७ ॥ जगादचाधिकारितान्मदाद्युवांस

उपलक्षितथे व शूल, कपाल, डमरू, बाण,फरसा, धनुष ॥ ३ ॥ खट्वांग, अभय,तलवार व ढाल को हाथोंसे धारण किये थे और भस्मसे धूसरित आकारवाले सदा-
शिवजी अपने स्थान को प्रकाशित करते हुये ॥ ४ ॥ सब भूषणों से संयुत व सबदेवताओं से स्तुति कियेहुये थे और जो कि व्याघ्र चर्मको पहनेथे उन शिवजी को
उन ब्रह्मा व विष्णुजीने देखा ॥ ५ ॥ आनन्दमयरूप को देखकर वे कमलनयन विष्णुजी नाचनेलगे और कुछ न जानते हुये वे ब्रह्माजी मोहित हुये ॥ ६ ॥ उस
समय उन महादेवजीने उत्तम दृष्टि से उनकी देखकर इसके अनन्तर अहंकार समेत चतुराननजी को उठाया ॥ ७ ॥ व कहा कि अधिकार के गर्व से तुम दोनों

गर्वित होगये इस विषय में तुम दोनों को लज्जा न करना चाहिये क्योंकि यह अधिकारियों का क्रम है ॥ ८ ॥ मेरे ऐश्वर्यकी परीक्षाकर विष्णुजी ज्ञानवान् होगये और इन दुष्ट चित्तवाले छलात्मक ब्रह्माने नहीं जाना ॥ ९ ॥ और मैंने शिक्षा दिया परन्तु यह अहंकार से टेढ़ाईको प्राप्तहुआ फिर मैंनेही अपनी कन्या से स्नेह करने वाले ब्रह्मा को शिक्षा दिया ॥ १० ॥ अहो आश्चर्यकी बातहै कि यह तीसरा अपराध कैसे सहाजावै इस लिये इन ब्रह्मा की कहीं प्रतिष्ठा न होवै ॥ ११ ॥ और जिस लिये यह केतकीका पत्र असत्यसाक्षित्व को प्राप्तहुआहै इस कारण इसके उपरान्त कभी मेरे मस्तक पै स्थित न होवै ॥ १२ ॥ इस प्रकार इन दोनों को शाप देकर

मुद्धतौ ॥ नलज्जितव्यमत्रवामयंक्रमोधिकारिणाम् ॥ ८ ॥ परीक्ष्यवैभवंममप्रबोधवानभूद्धरिः ॥ अयंनज्ञानवानज श्छलात्मकोदुरात्मवान् ॥ ९ ॥ अशासिषञ्चवक्रतामुपेयिवानहंकृतेः ॥ पुनःस्वपुत्रिकारतिर्मयैवशिक्षितोभवत् ॥ १० ॥ तृतीयएषमन्तुरप्यहोकथंनुसह्यते ॥ तदस्यतुप्रतिष्ठया क्वचिन्नभूयतांविधेः ॥ ११ ॥ अयंचकेतकच्छदेयंदापकू टसाक्षिताम् ॥ अतःपरंनजातुतन्ममैतुमूर्द्धिसंस्थितिम् ॥ १२ ॥ शप्त्वैवमेतौगिरिशः प्रीत्याविष्णुमभाषत ॥ विष्णो माभैःप्रसन्नोस्मि भवतोभक्तिशालिनः ॥ १३ ॥ ननुत्वमङ्गान्मेजातस्सात्त्विकोसिविशेषतः ॥ माहेश्वराग्रगण्योसि जगत्यांहियथापुरा ॥ १४ ॥ नतवातःपरंजातु भक्तिहानिर्भवेन्मयि ॥ प्रत्यहंवर्धमानासा कल्पतेचविमुक्तये ॥ १५ ॥ इत्यनुग्रहकृतंत्रिलोचनंभक्तिभाजिनिरहंक्रियेहरौ ॥ भीतिमानवनतःस्वयंविधिःस्तोतुमारभतक्लृप्तचन्दनम् ॥ १६ ॥

इति श्रीस्कन्दपुराणेऽरुणाचलमाहात्म्येऽष्टाविंशोध्यायः ॥ २८ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

शिवजी प्रेमसमेत विष्णुजीसे बोले कि हे विष्णुजी ! तुम मतडरो मैं भक्तिसे शोभित आपके ऊपरप्रसन्नहूं ॥ १३ ॥ तुम मेरे अंगसे उत्पन्नहो और विशेषकर सत्त्वगुणी हो और पहले की नाईं तुम पृथ्वी में शैवों में पहले गिनने योग्य हो ॥ १४ ॥ इसके उपरान्त तुम्हारी मुझ में कभी भक्तिकी हानि न होगी और प्रतिदिन बढ़ती हुई वह भक्ति मुक्तिकेलिये समर्थ होगी ॥ १५ ॥ इसप्रकार अहंकाररहित व भक्तिसेवी विष्णुजीके ऊपर दया कियेहुये त्रिलोचन तथा चन्दन लगाये शिवजीको प्रणामकर डरेहुये आपही ब्रह्माने स्तुति करनेका प्रारंभ किया ॥ १६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽरुणाचलखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायामष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

दोहा ॥ ब्रह्मा जिमि शिवदेवकी कीन्हीं स्तुतिहि विचित्र । उन्तिसवँ अध्यायमें सोई सुखद चरित्र ॥ नन्दिकेश्वरजी बोले कि हे देवदेव ! केवल भक्तिसे सुलभ बि
आपकी दयाके तुम्हारे ऐश्वर्यको कौन जानसक्ता है ॥ १ ॥ अकर्तृक वाक्य याने वेदवचन तुम्हारे अविनाशी ऐश्वर्यको स्तुति करने के लिये नहीं समर्थहैं किन्तु वे
दूरहीसे प्रणाम करतेहैं ॥ २ ॥ क्या विष्णु व क्या हम और क्या ये इन्द्रादिक दिक्पाल हे देव ! संसारकी सृष्टि व रक्षा के तुम्हीं करनेवालेहो ॥ ३ ॥ हे पार्वतीपते !
तुम पतिहो और हमभी पशुहैं कि जिन हम लोगोंको फँसरीसे बांधने व छोड़नेके लिये तुम्हीं धृष्ट (ढीठ) हो ॥ ४ ॥ और छब्बीस तत्त्वोंसे स्वरूपवाले तुम सबओर

नन्दिकेश्वरउवाच ॥ देवदेवतवैश्वर्यंकेनशक्यंतवेदितुम् ॥ विनाभक्त्यैकसुलभं भवदीयमनुग्रहम् ॥ १ ॥ अकर्तृ
काणिवाक्यानिऐश्वर्यंतेनिरत्ययम् ॥ नस्तोतुमीशतेकिन्तुनमस्कुर्वन्तिदूरतः ॥ २ ॥ कोविष्णुःकोहमेतेवा दिक्पाला
वासवादयः ॥ त्वमेवदेवकर्तासि जगत्सर्जनरक्षयोः ॥ ३ ॥पतिस्त्वंपार्वतीनाथ पशवोवयमप्यमी ॥ बद्धुंपाशेनमोक्तुंवा
त्वमेवास्मान्प्रगल्भसे ॥ ४ ॥ षड्विंशतिस्वरूपस्त्वमभितश्चाभिवर्तसे ॥ कोविदःकोविनिर्णेतुंतवयाथार्थ्यमीश्वरः॥५॥
किरातःकिलदेवत्वं सारमेयैःकिलागमैः ॥ षड्वर्गहिंस्रान्संहर्तुं करोष्याखेटकौतुकम् ॥६॥ देवदक्षाध्वरेपूर्ववीरभद्रस्त्व
दाज्ञया ॥ काङ्क्षांशिक्षांनकृतवानितिकापिविडम्बना ॥ ७ ॥ तवकालाग्निरूपस्य सर्वब्रह्माण्डदाहितः ॥ पोषणात्पुष्प
चापस्य प्रायोजिहेतिशेमुषी ॥ ८ ॥ कृतापराधःशूलेन त्वयादीर्णोजलन्धरः॥त्रिपुरोन्धकदैत्यश्च नाशितोभवताक्षणा
त् ॥ ९ ॥ अधारयिष्यत्कण्ठेनकालकूटंनचेद्भवान्॥ कथञ्चाधारयिष्यामवयंसर्वेपिजीवितम् ॥ १० ॥ देवदारुवनेपूर्वं

से वर्तमानहो कौन पण्डित तुम्हारी यथार्थताको निर्णय करनेके लिये समर्थहै ॥५॥ व हे देव ! आप किरात (बहेलिया) होकर प्रसिद्धमें शास्त्ररूपी कुत्तोंके द्वारा षड्-
वर्ग (काम, क्रोध, लोभादि) रूपी हिंसक जीवोंको नाश करने के लिये शिकारका खेल करतेहो ॥ ६ ॥ हे देव ! पहले दक्षकी यज्ञमें तुम्हारी आज्ञासे वीरभद्र ने
कौनकौनसी शिक्षाको नहीं किया यहभी कोई विडंबनाहै ॥७॥ समस्त ब्रह्माण्डको जलानेवाले कालाग्निरूप तुम्हारे पुष्पधनुष(कामदेव)के पोषणसे प्रायः बुद्धि लज्जित
होतीहै॥८॥तुमने अपराध कियेहुये जलंधरको त्रिशूलसे फाड़डाला व आपने त्रिपुर तथा अन्धक दैत्यको क्षण भरमें नाश करदिया ॥ ९ ॥ यदि आप गलेसे विषको न

धारण करते तो हम सब लोगभी कैसे प्राणको धारण करते ॥१०॥ पुरातनसमय देवदारुवनमें कंबल व कर्मठ मुनियोंको धूर्त्त वेषवाले तुम तो
कारण तुमने अनुग्रहकिया॥११॥ यदि तुम चरणसे अतिभयंकर अपस्मृति (भूल)को न आक्रमण करते तो उससे घिराहुआ यह सब संसार अन्धे
करता ॥ १२ ॥यदि अर्धनारीश्वररूप तुमसे न प्रकाशित होता तो इस चराचर संसारको रचनेके लिये मैं कैसे समर्थ होता॥ १३ ॥ हे शंभो ! आपने क्रोधसे
जीतनेवाले इन्द्रकी भुजाको स्तंभितकर दिया था वह भुजा कितनेही समयतक तुम्हारे जय खंभकी नाईं स्थितरही ॥१४॥ हे भिक्षुक ! रक्तसे अपने सुन

मुनीन्कम्बलकर्मठान् ॥ प्रक्षोभ्यधूर्तवेषस्त्वं दययान्वग्रहीस्ततः ॥ ११ ॥ अङ्घ्रिणाक्रान्तवान्नोचेदत्युग्रान्त्वे
तिम् ॥ तयाक्रान्तमिदंकृत्स्नमन्धकारायतेजगत् ॥ १२ ॥ अर्धनारीश्वरंरूपं त्वयाचेन्नप्रकाशितम् ॥ प्रभवामिकथंस्र
ष्टुंजगदेतच्चराचरम् ॥ १३ ॥ भवतास्तम्भितःशम्भो संरम्भाज्जम्भजिद्भुजः ॥ कियन्तमेवकालन्तेजयस्तम्भइवस्थि
तः ॥ १४ ॥ भिक्षो कपालमापूर्य रुधिरेणमनोहरम् ॥ शूलेनोत्क्षिप्यमोह्यन्ते त्वमेतदवधारय ॥ १५ ॥ नचेदशिक्षयः
सर्वशस्त्राण्यप्यनुकम्पया ॥ निर्यापयेत्कथंवैरं क्रुद्धोपिजमदग्निभूः ॥ १६ ॥ पुरात्रिपुरमीशान अवधिष्यन्नचेद्भवा
न् ॥ सएवसंहरेद्विश्वं हिरण्यकशिपोरिव ॥ १७ ॥ एकोनपद्मसाहस्रे स्वनेत्रेणकृतार्चने ॥ शूलिन्सुदर्शनंदत्त्वा दै
त्यद्विषमतोषयत् ॥ १८ ॥ स्तुत्यैवमस्यविष्णोश्च प्रार्थनेनप्रसेदिवान् ॥ सृष्टिंकर्तुंधूर्जटिस्तंपुनरप्यभ्यमन्यत ॥१९॥

को भरकर व त्रिशूलसे फेंककर दैत्य मोहित कियेजाते हैं तुम यह निश्चय करो ॥ १५ ॥ यदि दयासे तुम समस्त शस्त्रों को भी न सिखाते तो क्रोधित भी जमदग्नि
जी के पुत्र परशुरामजी कैसे बैरको दूरकरते ॥ १६ ॥ हे ईशान ! पुरातन समय यदि आप त्रिपुरासुर को न मारते तो हिरण्यकशिपुकी नाईं वही संसारको संहार
करता ॥ १७ ॥ हे त्रिशूलधारी ! जब हज़ार कमलोंमें एक न्यून हुआ तो विष्णु जी से अपने नेत्र कमल के द्वारा पूजन करनेपर आपने दैत्यों के शत्रु उन विष्णु
जी को सुदर्शन चक्र देकर प्रसन्न किया ॥ १८ ॥ इन ब्रह्माकी इस प्रकार स्तुति से व विष्णुजीकी प्रार्थनासे प्रसन्नहुये सदाशिवजी ने फिर उनको सृष्टि करने के

लिये आज्ञादिया ॥ १९ ॥ और देवोंकी सभामें पूजनकी आज्ञादिया व चन्द्रमालजीने प्यारसे इनदोनोंसे भी कहा ॥२०॥ कि हे पुत्रो! ऐसा जानकर फिर तुम दोनों गर्वित न होना और मुझही गुरुको याद करतेहुये तुमदोनों सृष्टि व रक्षा में जागतेरहना ॥ २१ ॥ जिसलिये इस स्थानमें मैंने तुमदोनोंके ऊपर दयाकिया उसी कारण यह पुण्यक्षेत्र पुरुषोंके मोक्षके लिये कल्पितहोवै ॥ २२ ॥ और तीन योजनतक इस क्षेत्र मे बसतेहुये मनुष्यों को बिन दीक्षादिकके भी मेरी आज्ञासे मेरी सायुज्य मुक्तिहोवै ॥ २३ ॥ अथवा पशु पक्षियोंको व स्थावर वृक्षादिकों तथा सब प्राणियों को भी वह बुद्धि मोक्षकी होवै ॥ २४ ॥ और मनुष्यों को दर्शनही से व स्मरण से

समज्ञ्यासुचदेवानां पूजनंचानुशिष्टवान् ॥ उमावप्यब्रवीदेतौ वात्सल्याच्चन्द्रशेखरः ॥ २० ॥ वत्सौयुवांनजात्वेवं भूयोभवतमुद्धतौ ॥ गुरुंस्मरन्तौमामेवजागृतंसृष्टिरक्षयोः ॥२१॥ इहप्रदेशेयुवयोर्यन्मयानुग्रहःकृतः ॥ पुण्यक्षेत्रमिदंपुंसां ततोमोक्षायकल्पताम् ॥ २२ ॥ योजनत्रयमात्रेणास्मिन्क्षेत्रेवसतांनृणाम् ॥ दीक्षादिकंविनाप्यस्तु मत्सायुज्यंममाज्ञया ॥ २३ ॥ यद्वातिरश्चामप्यत्र स्थावराणाञ्चदेहिनाम् ॥ सर्वेषामपिसाबुद्धिरपवर्गस्यजायताम् ॥ २४ ॥ नृणाञ्चदर्शनादेव कैवल्यंस्मरणेनवा ॥ अस्तुवेदान्तविज्ञानसंसाध्यंश्रेयसेसतः ॥ २५ ॥ संभूयतेजसांमूर्तिः स्थावराममशाश्वती ॥ अरुणाद्रिरितिख्याता नित्यमेवात्रवर्तताम् ॥ २६ ॥ युगात्ययेपिनैनन्तु मज्जयेयुर्महाब्धयः ॥ नचालयेयुर्मरुतो नदहेयुश्चवह्नयः ॥ २७ ॥ ज्योतिर्मयमिदंलिङ्गं ज्योतिश्छन्नंनजातुचित ॥ क्रमन्तुनिगमेनैव खेचरापिसमन्ततः ॥ २८ ॥ यस्यानुग्रहमिच्छामि जन्तोस्तस्यात्रसम्भवः ॥ देहान्तःकल्पताम्मुक्त्यै विनोपनिषदी

कैवल्य (मोक्ष) होवै और विद्वान्को वेदान्त के ज्ञान का साधन कल्याणके लिये होवै ॥ २५ ॥ तेजसे मेरी स्थावरी (अचल) व सदैव रहनेवाली मूर्ति अरुणाचल ऐसी प्रसिद्धहोकर सदैवही यहां वर्तमान होवै ॥ २६ ॥ और युगके नाशमें भी इस अरुणाचलको महासागर न डुबावैं व पवन न चलावैं तथा अग्नियां इसको न जलावैं ॥ २७ ॥ और यह ज्योतिर्मय लिंग कभी ज्योति (प्रकाश) से आच्छादित न होवै और वेदकी गतिसे नक्षत्र सबओर से परिक्रमाकरैं ॥ २८ ॥ व जिसप्राणी

के ऊपर दयाकी इच्छा करूं उसका यहांपर देहान्तहोना बिन वेदवाणीके मुक्तिके लिये समर्थहोवै ॥ २९ ॥ व यह अरुणाचल दूरसे प्रसंगसे व समीपमें प्रदक्षिणा
से पापात्मा प्राणियों को भी कल्याणदायकहोवै ॥ ३० ॥ और यही पर निश्चय कर महात्मा जनों के निवास होवैंगे इसलिये इस स्थानको छोड़कर कभी न जाना
चाहिये ॥ ३१ ॥ क्योंकि अरुणाचल को अनादर कर कहा टिककर मुक्तिके लिये समर्थहोवोगे इसकारण ब्रह्मा व विष्णु तुम दोनों यहां नित्य बसो॥३२॥ऐसाकहते
हुये कामदेवविनाशक सदाशिवदेव जी को प्रणामकर दूरहुये अहंकारवाले उन ब्रह्मा व विष्णुजी ने विनय किया ॥ ३३ ॥ कि हे जगदीश्वर जी ! यह संसारकी

गिरः॥२९ ॥ एषदूरात्प्रसङ्गेन निकर्षाच्चप्रदक्षिणात् ॥ अपिपापात्मनांपुंसामस्तुनिश्रेयसप्रदः ॥ ३० ॥ अत्रैवनियतंवा
साः सम्भवन्तुमहात्मनाम् ॥ तस्मात्स्थलमिदंहित्वा नगन्तव्यंकदाचन ॥ ३१ ॥ शोणाचलमनादृत्य क्वचस्थित्वा
पिमुक्तये ॥ तस्माद्युवांविधिहरी वसतामत्रनित्यशः ॥३२॥इत्युक्तवन्तंकामारिं प्रणम्यविधिमाधवौ ॥ तौव्यज्ञापयता
न्देवं दूरीभवदहंक्रियौ ॥३३॥ एवमेवजगन्नाथ जगदाधारताङ्गतः॥आस्ताङ्गिरिरसौकिन्तु तेजोप्यस्यसुदुस्सहः॥३४॥
अतोयमेवरुद्रस्य तेजसानान्यशैलवत् ॥ तिष्ठत्वभेद्यमहिमः श्रेयसेसमहाखनिः ॥३५॥ विवृणोतुनिजंज्योतिर्विश्व
स्यास्यसमृद्धये ॥ प्रत्यहंकार्त्तिकेमासि कृत्तिकासुदिनात्यये ॥ ३६ ॥ शर्मदोपिनृणांदेव शोणाद्रिस्तवशासनात् ॥ म
हत्त्वादर्चितुंशक्यो नह्यभक्तस्यकस्यचित ॥ ३७ ॥ एतस्योपत्यकायान्तदद्यारभ्यास्मदर्थनात् ॥ देवेनसन्निधातव्य
मवनीलिङ्गरूपिणा ॥ ३८ ॥ तच्चारुणगिरीशेशमावामाराधयावहे ॥ अभिषेकानुलेपाद्यैरुपचारैर्यथाविधि ॥ ३९ ॥

आधारताको प्राप्त पर्वत ऐसाहीहोवै परन्तु इसका तेज असह्यहै ॥ ३४ ॥ इसकारण शिवजी के तेजसे अन्य पर्वत की नाईं साधारण न होकर यह अखण्ड महिमा
वाला पर्वत कल्याण के लिये बड़ी खानियों से संयुतहोवै ॥ ३५ ॥ और इस संसार की वृद्धिके लिये अपने तेज को छिपालेवै और प्रतिवर्ष कार्त्तिकमहीने में कृत्तिका
नक्षत्रमे दिन बीतनेपर ॥ ३६ ॥ हे देव ! तुम्हारी आज्ञा से अरुणाचल मनुष्योंको कल्याणदायकहोवै व तेजके कारण किसी अभक्त के पूजने योग्य न होवै ॥ ३७ ॥
और आजसे लगाकर हमारी प्रार्थना से इस अरुणाचल की समीपवाली भूमिमे लिंगरूपी सदाशिवजीको टिकना चाहिये ॥ ३८ ॥ और उस अरुणाचलेश लिंग

को हमदोनों अभिषेक व अनुलेपनादिक उपचारोंसे विधिपूर्वक आराधनकरैं ॥ ३९ ॥ और यहांपर [illegible]
पाड़रवृत्तहोवैं ॥ ४० ॥ हे दयानिधान, देवदेवजी ! आपको यहीं टिकना चाहिये क्योंकि तुम्हारे समीप [illegible] ॥ ४१ ॥ [illegible]
अन्यथा यहां पर चित्तकी पवित्रता कैसे होवैहै और आदि अन्तरहित आपकी भक्ति सदैवहीहोवै ॥ ४२ ॥ और [illegible]
दिशा के भागमें सेरवाके आकार ऊंचा व सुन्दर शिखर होवै ॥ ४३ ॥ हे भव ! इससमय अंगोंसमेत वेद, धर्मशास्त्र, पुराण व [illegible]

संत्वत्रकेशराश्चूताः पुन्नागानागकेशराः ॥ आरग्वधाःकुरवकामालूराःपाटलाअपि ॥ ४० ॥ [illegible] ॥ अ
वदयानिधे ॥ यतस्त्वद्भक्तिदार्ढ्यञ्चाप्यभवत्त्वदुपासरात् ॥ ४१ ॥ नान्यथाचित्तशुद्धिश्च भवे[illegible]
नाद्यन्तस्यतेभक्तिर्भविष्यतिचनित्यशः ॥ ४२ ॥ शोणाद्रेःपूर्वदिग्भागे शरावाकारउन्नतः ॥ शिखरो[illegible]
स्यहृदयङ्गमः ॥४३॥ साङ्गावेदाधर्मशास्त्रं पुराणानिशिवागमाः॥ कृत्वाचसकलाःप्रोक्ता भवतैवभवाधुना ॥ ४४ ॥ [illegible]
यसायभक्तानां त्वयैवगुरुरूपिणा ॥ अष्टावपिपुराख्याताआगमाःशैवसंज्ञिताः ॥ ४५॥ तेषुकस्यप्रकारेण कुर्यां[illegible]
दुपासनाम् ॥ कदाप्यज्ञानजाम्भीतिं नाधिगच्छावशङ्कर ॥ ४६ ॥ इतितौधातृगोविन्दौ पादपद्मावलम्बिनौ ॥ ज
गादकरुणामूर्त्तिर्जगतीभृदुमापतिः ॥ ४७ ॥ श्रीमहादेवउवाच ॥ युक्तंयुक्तमिदंभद्रौ ममाप्येवंमनीषितम् ॥ कामिको
क्तेनमार्गेण मामर्चयितुमर्हथः ॥ ४८ ॥ मोहतोविस्मृतामन्ये भवद्भ्यांशैवसंहिता ॥ अधुनामत्प्रसादेन पुनरुद्भासतां

हैं ॥ ४४॥ और पुरातन समय भक्तोंके कल्याणकेलिये गुरुरूपी तुम्हींने आठों शैवनामक शास्त्रोंकोकहाहै ॥ ४५ ॥ हे शंकरजी ! उनमें किसकी विधिसे तुम्हारी उपासना
करतेहुये हमदोनों कभी अज्ञान से उपजेहुये भयको न प्राप्तहोवैंगे ॥ ४६ ॥ इस प्रकार चरणकमलों का अवलम्बन करनेवाले उन ब्रह्मा व विष्णुजीसे दयाकी मूर्त्ति,
संसारपोषक पार्वती के पति शिवजी बोले ॥ ४७ ॥ श्रीमहादेवजी बोले कि हे कल्याणरूपी ब्रह्मा व विष्णुजी ! यह योग्यहै योग्यहै मेरा भी ऐसीही इच्छा है तुम
दोनों कामिक शास्त्र में कहेहुये मार्ग से मुझको पूजने के योग्यहो ॥ ४८ ॥ मैं यह जानताहूं कि आप दोनोंको मोहसे शैवसंहिता भूलगई है इस समय मेरी

प्रसन्नता से वह फिर हृदय में भासित होवै ॥ ४९ ॥ यह कहकर जब शिवदेवजी अन्तर्द्धान हुये तब वहा कोई भी अपूर्व कल्याणरूप लिंग प्रकट हुआ ॥ ५० ॥
उसको देखकर आश्चर्य समेत विष्णु व ब्रह्माजी ने बार २ प्रणामकर आनन्द समेत प्रेमसे बड़ी देरतक स्तुति किया ॥ ५१ ॥ और उन दोनोंने विश्वकर्मा व यम
से अनेक भांतिकी कारीगरी से अद्भुत अरुणाचलेशजीके स्थानको निर्माण कराया ॥५२॥ और शिवजीके स्नानके लिये समस्त तीर्थमय किसीभी अद्भुत व पवित्र
नये तड़ाग को वहीं खुदाया ॥ ५३ ॥ और बहुत दिनोंमे अरुणनामक सुन्दर नगरको बनवाया उसको पाकर उस समय सदाशिवजी ने कैलास के लिये भी इच्छा

हृदि ॥ ४९ ॥ इत्युक्त्वाश्रीशिवोदेवोयदाह्यन्तर्हितोऽभवत् ॥ तदाप्रादुरभूत्तत्र लिङ्गंकिमपिमङ्गलम् ॥ ५० ॥ तदावलोक्य साश्चर्यौमुकुन्दकमलासनौ ॥ मुहुःप्रणम्यसानन्दं प्रेम्णातुष्टुवतुश्चिरम् ॥ ५१ ॥ तावकारयतांशोणगिरिनाथस्य चालयम् ॥ नानाशिल्पाद्भुतंविश्वकर्मणाचयमेनच ॥५२॥ खानयामासतुस्तत्र सरःकिमपिपावनम् ॥ अभिषेकायदेवस्य सर्वतीर्थमयंनवम् ॥ ५३ ॥ अरुणाख्यंपुरंरम्यं कल्पयामासतुश्चिरम् ॥ नैच्छत्तदाचतंलब्ध्वाकैलासायापिधूर्जटिः ॥ ५४ ॥ तस्यांब्रह्मर्षयोदेवा गन्धर्वादिव्ययोषितः ॥ सिद्धाविद्याधरायक्षाः पौरत्वंसमुपाययुः ॥ ५५ ॥ तीर्थानिवापीकूपत्वं गङ्गाद्याःसरितस्तथा ॥ नन्दनादीन्युपवनान्यभवन्निष्कुटत्वतः ॥ ५६ ॥ गोलोकश्चगोष्ठतया नैगमत्वंकिलागमाः ॥ शैलाश्चगोपुरादित्वंसरस्त्वंस्मृतयोययुः ॥ ५७ ॥ भूतप्रेताःपिशाचाश्चवेतालाःकटपूतनाः ॥ प्रपन्नामानुषन्देहं तस्यांकिलपृथग्जनाः ॥ ५८ ॥ देवोपिधूर्जटिस्तस्यांकौतुकीसिद्धरूपधृक् ॥ योगित्वंसमुपास्थायतत्रकौपीनचन्द्रधृ

न किया ॥५४॥ उसमें ब्रह्मर्षि,देवता,गन्धर्व व दिव्य स्त्रियां तथा सिद्ध, विद्याधर,यक्ष नगरताको प्राप्तहुये॥ ५५ ॥ और तीर्थ व गङ्गादिक नदियां बावली तथा कूपताको
प्राप्तहुईं और नन्दनादिक उपवन घरके समीपवाले बगीचेहुये ॥५६॥ और गोलोक गोष्ठता (गौवोंके स्थान) को प्राप्तहुवा व शास्त्र वेदताको प्राप्तहुये और पर्वत पुरके
द्वारत्वादिको प्राप्तहुये तथा स्मृतियां तड़ागत्वको प्राप्तहुईं ॥५७॥ भूत,प्रेत, पिशाच, वेताल, कटपूतना उस पुरीमें मनुजकी देहमें प्राप्त होकर सामान्य नर हुये ॥५८॥
और उस नगरमें सदाशिवदेवजी भी सिद्धरूपधारी कौतुकी (खेल करनेवाले) हुये जोकि कौपीन व चन्द्रमाको धारण कर व योगित्व को प्राप्त होकर वहां स्थित

हुये ॥ ५९ ॥ और किसी से भी न जानेहुये सूर्यनारायण वहां सब कहीं प्रकाश करते हैं व भस्मको लगाये तथा जटाधारण किये उन ब्रह्मा व विष्णुजी ने ॥६०॥
उस समय बहुत दिनोंतक उन अरुणाचलेशजीको पूजन किया और वहां बसनेवाले सब लोगोंकी जाति व नामके अनुसार ॥ ६१ ॥ आपही आचार्यता को प्राप्त
होकर दीक्षादि कर्मोंको किया और सब शास्त्रोंके रहस्यको जाननेवाले ब्रह्मा व विष्णुने क्रमसे निर्माल्यको हरकर ॥ ६२ ॥ और प्रातःकाल नहाकर व पुष्प, पत्रा-
दिक तथा फलोंको लाकर तदनन्तर महादेवजी से सुनेहुये सब मन्त्रोंसे अधिक अरुणेशजी के मन्त्रको बहुतही जपनेवाले उन दोनों ने सदैव जप किया व धूप,

क ॥५९॥ नकेनचिद्विज्ञातः सूर्यःसर्वत्रदीप्यति ॥ तौचकेशवलोकेशौजटिलौभस्मगुण्ठितौ ॥ ६० ॥ तदाशोणाद्रिना
थं तमर्चयामासतुश्चिरम् ॥ तत्रत्यानाञ्चसर्वेषां वर्णानामानुगुण्यतः ॥ ६१ ॥ दीक्षादिकानिचक्राते स्वयमाचार्यताङ्ग
तौ ॥ क्रमेणाहृतनिर्माल्यौ सर्वागमरहोविदौ ॥ ६२ ॥ प्रातःस्नात्वासमाहृत्य पुष्पपत्रादिकंफलम् ॥ मन्त्रञ्चारुणनाथ
स्य ततएवहरश्रुतम् ॥ ६३ ॥ जजल्पातौचजपतुः सर्वमन्त्राधिकंसदा ॥ धूपप्रदीपनैवेद्यैर्गीतवादित्रनर्तनैः ॥ प्रद
क्षिणनमस्कारैर्मुद्राबन्धैःस्तवैर्नवैः ॥ ६४॥ आसनेनचमूर्त्याच मूलेनचयथाविधि ॥ अर्चांब्रह्मषडङ्गाद्यैरर्चयामासतुः
शिवम् ॥ ६५ ॥ एवंवर्षसहस्राणि षोडशारुणशङ्करम् ॥ वेधाविष्णुःसमाराध्य शिवज्ञानमवापतुः ॥ ६६ ॥ इतीदम
आविस्मयारहस्यं पितुःशिलादस्यमुखात्सुपुण्यात् ॥ निवेदितञ्चाद्यतदेवतुभ्यं किमन्यदाकर्णयितुंमनीषा ॥ ६७ ॥
इति श्रीस्कन्दपुराणेऽरुणाचलमाहात्म्यएकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥ * ॥ * ॥

दीप, नैवेद्य, गीत, बाजा व नृत्य तथा प्रदक्षिणा व नमस्कारों से और मुद्राबंधन व नवीन स्तोत्रोंसे ॥ ६३ । ६४ ॥ व आसन, मूर्त्ति तथा मूल व विधिपूर्वक पूजन
और वेदके षडंगादिकों से शिवजी को पूजन किया इस प्रकार सोलह हजार वर्ष तक ब्रह्मा व विष्णुजी ने अरुणशिवजी को भलीभांति आराधकर शिवजी के
ज्ञानको पाया ॥ ६५ । ६६ ॥ पुरातन समय पिता शिलादजी के पवित्र मुख से मैंने जिस चरित्र को सुनाथा उसीको आज तुमसे निवेदन किया और अन्य क्या
सुननेकी इच्छा है ॥ ६७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽरुणाचलखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायामेकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥ ॥

दो० । पारवती अरु शिव यथा कीन्ह्यो खेल अनेक । सोइ तीस अध्यायमें वर्णित चरित सुनेक ॥ इन नन्दीश्वरजी के ऐसे वचनको सुनकर मार्कण्डेयजी बोले कि सुनने योग्य चरित्रको मैंने आपके मुखसे सुनाहीहै ॥ १ ॥ तौभी मैं व मुनिलोग भी आश्चर्य से घिरे है कि यहांपर पार्वती महादेवजीने किस प्रकार तप कियाहै यह कहिये ॥ २ ॥ नन्दिकेश्वरजीबोले कि हे महामते,मार्कण्डेयजी!मैने जिस प्रकार सुनाहै उसीभांति उसको भी यह मैं कहताहूं तुम सावधानता से सुनो ॥ ३ ॥ निश्चय कर तुम उसको जानते हो कि जिस प्रकार विरूपलोचन सदाशिवजी ने सतीनामक दक्षकी कन्या अपनी प्यारीको व्याहाहै ॥ ४ ॥ और जिस प्रकार दक्षप्रजापति

इतिश्रुत्वास्यवचनं मार्कण्डेयोभ्यभाषत ॥ श्रुतमेवमयादेव श्रोतव्यंभवतोमुखात् ॥ १ ॥ तथापिकौतुकेनाहमाक्रान्तोमुनयोप्यमी ॥ गौर्याकथंतपस्तप्तंमहादेव्यात्रकथ्यताम् ॥ २ ॥ नन्दिकेश्वरउवाच ॥ कथयामितदप्येष यथाधिगतमात्मना ॥ शृणुत्वमवधानेन मार्कण्डेयमहामते ॥ ३ ॥ ननुजानासितत्पूर्वंयथादाक्षायणींशिवः ॥ उपयेमेविरूपाक्षो सतीनाम्नींस्वकांप्रियाम् ॥ ४ ॥ यथाचसाक्रुधाभर्तुर्द्रोहिदक्षप्रजापतौ ॥ योगादहासीदात्मीयं वपुरित्यपितेश्रुतम् ॥ ५ ॥ तदाहराज्ञानिघ्नेन वीरभद्रेणयत्कृतम् ॥ अध्वरध्वंसनन्दक्षस्यापितेविदितम्महत् ॥ ६ ॥ अश्रौपीस्तस्यदक्षस्य गणैःशीर्षस्यखण्डनम् ॥ ब्रह्माच्युतेन्द्रमुख्यानां देवानामपिशिक्षणम् ॥ ७ ॥ दन्तानांपातनंपूष्णः पाणेश्चजातवेदसः ॥ अदितिप्रभृतीनाञ्च दिव्यस्त्रीणांपराभवम् ॥ ८ ॥ साचदेवीपुनर्जन्म लेभेहिमवतोगृहे ॥ उमेतिपार्वतीत्या

जीको पतिके द्रोही होनेपर उन सतीजीने योगसे अपने शरीर को छोडाहै इसको भी तुमने सुनाहै ॥ ५ ॥ और उस समय शिवजी की आज्ञाके अधीन वीरभद्रने जो दक्षजीकी यज्ञको विध्वंस कियाहै उस बड़ेभारी चरित्र को भी तुमने जानाहै ॥ ६ ॥ और तुमने गणोंसे उन दक्षजी के मस्तक काटने को सुनाहै और ब्रह्मा, विष्णु व इन्द्र जिनमें मुख्यहैं उन देवताओंकी शिक्षाको भी सुनाहै ॥ ७ ॥ और पूषाके दन्त गिराने को सुनाहै व अग्निके हाथ टूटने को सुनाहै व अदिति इत्यादिक दिव्य स्त्रियोंके तिरस्कार (अनादर) को सुनाहै ॥ ८ ॥ और उन देवीजी ने फिर हिमाचल के घरमें जन्म पाया है फिर उमा व पार्वती ऐसे दूसरे नामको धारण

करतीहुई ॥ ९ ॥ वनमें सेवामें तत्पर उन सतीजी की एकान्तमें रुचि कराते हुये कामदेव को महादेवजी ने कालाग्निसे जलाया है ॥ १० ॥ व किसी समयमें प्यारे
गणों समेत उन शिवदेवजी को वनमें बसनेवाली पार्वतीजीने तपस्याओं से प्रसन्न कियाहै ॥ ११ ॥ इसके अनन्तर विचित्र मयूरों से घिरीहुई उन विलास करनेवाली
पार्वतीजीको ब्याहकर आनन्द से एकान्त में रमण किया ॥ १२ ॥ और वैधव्यता से दुःखित रतिसे कामदेव की प्राप्तिके लिये प्रार्थना कीहुई पर्वत की कन्या पार्व-
तीजी ने तपस्या में इन शिवजी के कामका उद्दीपन किया ॥ १३ ॥ और फिर माता मेना व पिता हिमाचलजी से पति समेत घरमें लाईहुई उन पार्वतीजी ने बहुत

ण्यांद्वितीयांबिभ्रतींपुनः ॥ ९ ॥ देवःस्थाणुर्वनेतांश्चपरिचर्य्यापरांरहः ॥ प्ररोचयिषुंकाममधाक्षीत्कालवह्निना ॥ १० ॥
जितेन्द्रियंचदेवन्तंकापिप्रियगणैस्सह ॥ तपोभिस्तोषयामास गौरीवननिवासिनी ॥ ११ ॥ उपयम्याथतांदेवो वृता
श्चित्रशिखण्डिभिः ॥ रमयामासह्येकान्ते मुदाह्येवंविलासिनीम् ॥ १२ ॥ वैधव्यखिन्नयारत्या प्रार्थिताशैलनन्दि
नी ॥ कामप्राप्त्यैतपस्येनं कामंप्रत्युद्दीपयत् ॥ १३ ॥ पुनश्चमेनयामात्रा पित्राचहिमभूभृता ॥ आनीताभवनंभर्त्रा
साकंचिरमरंस्तसा ॥ १४ ॥ तदाशुम्भनिशुम्भाख्यौ लेभातेवेधसोवरम् ॥ देवदानवमर्त्येषु मास्तुनोपुरुषान्मृतिः ॥ १५ ॥
इतितद्वचनंश्रुत्वा जातत्रासैःसुपर्वभिः ॥ अभ्यर्थितोमहादेवो रहश्चक्रधरादिभिः ॥ १६ ॥ माभैष्टभद्रंकालेन तथाप्रति
विधीयते ॥ यथानिषूदितौस्यातां तादृशौदानवाविति ॥ १७ ॥ दत्ताभयान्मुकुन्दादीन् विसृज्यान्धकसूदनः ॥ अन्तः
पुरगतोरेमे देव्यासहयथापुरा ॥ १८ ॥ कदाचिच्चर्मलक्ष्येण सातुकालीननन्दिता ॥ तस्यप्रीत्यैचरश्यामांत्वां त्वंच

दिनोंतक रमणकिया ॥ १४ ॥ उस समय शुम्भ निशुम्भ नामक दैत्योंने ब्रह्मासे वरको पायाहै कि देवता, दानव व मनुष्यों में पुरुष से मृत्यु न होवै ॥ १५ ॥ उन
के ऐसे वचन को सुनकर उत्पन्न डरवाले चक्रधारी (विष्णु) आदिक देवताओं से एकान्त में प्रार्थना कियेहुये महादेवजी बोले ॥ १६ ॥ कि मतडरो तुमलोगों का
कल्याणहोगा और समयमें वैसाही किया जायगा कि जिस प्रकार वैसे दानव मारे जावैंगे ॥ १७ ॥ अन्धक दैत्यके नाशक शिवजीने दियेहुये निडरवाले विष्णुआदिक
देवताओं को बिदाकर रनिवास में जाकर पहलेकी नाईं रमण किया ॥ १८ ॥ किसी समय चर्मके चिह्नसे वे काले शरीरवाली प्रशंसित न हुईं तब उन्होंने उन

शिवजी की प्रसन्नता के लिये अपनी काली त्वचा (खाल) को छोड़ दिया ॥ १९ ॥ परमेश्वरी पार्वतीजी ने जहांपर अपनी इच्छासे चर्मको फेकदिया वहांपर महाकाशी ऐसा प्रसिद्ध उत्तम क्षेत्र होगया ॥ २० ॥ और वह कौशिकी नामक शोभितहुई व तप करतीहुई विन्ध्याचलवासिनी कालीने रतिकी इच्छा करतेहुये उन शुम्भ निशुम्भ बड़ेभारी दैत्योंको माराहै ॥ २१ ॥ और गौरी देवीजीने उसी सुन्दर शिखरपै गौरता पाने के कारण पतिको प्रसन्न किया ॥ २२ ॥ और क्रमसे गर्भवती होकर पार्वतीजीने उन गणेशजी को व सेनापति षडानन स्वामिकार्त्तिकेयजीको पैदा किया ॥ २३ ॥ पहले अपराधकी पवित्रता के लिये देवीजी के गर्भसे उपजेहुये

मेवजहौनिजा ॥ १९ ॥ यत्रोत्क्षिप्तवतीचर्मस्वेच्छयापरमेश्वरी ॥ महाकाशीतिप्रख्यातंतत्राभूत्क्षेत्रमुत्तमम् ॥ २० ॥ साबभौकौशिकीनाम्नी कालीविन्ध्याद्रिवासिनी ॥ तपस्यन्तीवृषस्यन्ती तौजघानमहासुरौ ॥ २१ ॥ देवीचगौरीशिखरे तस्मिन्नेवमनोहरे ॥ तपोभिर्लब्धगौरत्वाद्भर्त्तारंसमतोषयत् ॥ २२ ॥ क्रमेणदोहदवती भूत्वाप्रासूतपार्वती ॥ जजानतश्चहेरम्बं सेनान्यञ्चषडाननम् ॥ २३ ॥ प्रादुर्बभूवतुस्तौच नारायणचतुर्मुखौ ॥ पूर्वापराधशुद्ध्यर्थं देवीगर्भसमुद्भवौ ॥ २४ ॥ वर्धमानौचतौबालौ पित्रोरालोकमानयोः ॥ मग्नयोरिवहर्षाब्धौ प्रेमपङ्क्तिरभूद्दृढा ॥ २५ ॥ जातुवीणानिनादेन कदाचिच्चित्रलेखनैः ॥ विजह्रतुःशिवौस्वैरमेकदामण्डनैर्मिथः ॥ २६ ॥ जातुदिव्यागमालापैःकदाचिच्चित्रवस्तुभिः ॥ एकदालोकवृत्तान्तैः केषामपिविनिन्दतः ॥ २७ ॥ पुष्पावचयनैर्जातु कदाचिद्वारिवेतसैः ॥ अदीव्यतांचारुणाद्रौ लीलाकेलिभिरेकदा ॥ २८ ॥ मैनाकेनार्चितौजातुमेनयाजातुपूजितौ ॥ जात्वर्हितौहिमवतादम्पतीतौविनोदितौ ॥ २९ ॥

वे विष्णु व चतुरानन ब्रह्माजी प्रकटहुयेहैं ॥ २४ ॥ बढ़तेहुये उन बालकोंको देखतेहुये व हर्षके समुद्रमें डूबेहुयेसे माता पिताओंकी प्रेमपंक्ति पुष्टहुई ॥ २५ ॥ पार्वती व शिवजी अपनी इच्छासे कभी वीणाके शब्दसे व कभी चित्र (तसवीर) के लिखनेसे और एकसमय आपस से भूषणो से क्रीड़ा करतेभये ॥ २६ ॥ उन्होंने कभी दिव्य शास्त्रों के आलापोंसे व कभी विचित्र वस्तुवोंसे क्रीड़ा किया तथा वे एक समय लोकके वृत्तान्तों से किसीकी भी निन्दा करतेथे ॥ २७ ॥ व कभी फूलों के तोडनेसे उन्होंने क्रीड़ा किया और कभी जलके बेतोंसे क्रीड़ाकिया व एक समय उन्होंने अरुणाचल पै लीलापूर्वक खेलोंसे क्रीड़ा किया ॥ २८ ॥ कभी मैनाक से पूजितहुये

व कभी मेनासे पूजित भये और कभी क्रीड़ा करनेवाले वे शिवाशिव स्त्री पुरुष हिमवान् से पूजितहुये ॥ २९ ॥ कभी जुवाके खेलसे व कभी गीत, बाजनों से क्रीड़ा किया और किसी समय पार्वती व शिवजीने जुवाके खेलोंसे बहुत समय तक क्रीड़ा किया ॥ ३० ॥ और जुवामें जीतेहुये पतिकी गोदीमें प्राप्त जोकि कङ्कण कियाहुआ नागथा उसको लेकर पार्वतीजी ने कर्णभूषण किया ॥ ३१ ॥ इसप्रकार सुमेरुगिरि आदिक सुन्दर स्थानोंमें बसतेहुये चराचरके माता पिता उन दोनोंने अत्यन्त मनोहर कामके सुखोंको बहुत दिनोंतक भोगकिया ॥ ३२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽरुणाचलखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३० ॥

जातुद्यूतविनोदेन गीतवाद्यैःकदाचन ॥ एकदाद्यूतलीलाभिःशिवौचिक्रीडतुश्चिरम् ॥ ३० ॥ द्यूतनिर्जितमाच्छिद्यपत्युरुरगङ्गताङ्गतम् ॥ वलयीकृतनागंवै ताटङ्कीकृतवत्युमा ॥ ३१ ॥ इतितौपितरौचराचराणां निवसन्तौकनकाचलादिकेषु ॥ रुचिरेषुपदेषुकामभोगानतिहृद्यान्सुचिरकिलान्वभूताम् ॥ ३२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽरुणाचलमाहात्म्येत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३० ॥

* ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

नन्दिकेश्वरउवाच ॥ गार्हस्थ्यंबिभ्रतीभर्तुररुणाद्रिनिवासिनः ॥ अन्नपानैश्चसातत्र पर्यतर्पयतप्रजाम् ॥ १ ॥ जातुचिद्ब्रह्मसन्ध्यानमुकुलीकृतलोचनम् ॥ बद्धाञ्जलिपुटंदेवमद्राक्षीदद्रिनन्दिनी ॥ २ ॥ ध्यायतेनूनमधुना कापि सौभाग्यशालिनी ॥ क्रियतेयन्मयिप्रेम तन्मन्येवञ्चनंमहत् ॥ ३ ॥ अस्यविज्ञायतेपुंसां कुटिलामानसीगतिः ॥ मिथ्यो

दो० । अरुणाचल के ढिग यथा पारवती तप कीन । इकतिसवें अध्याय में सोइ चरित रसभीन ॥ नन्दिकेश्वरजी बोले कि अरुणाचलनिवासी पतिकी गृहस्थीको धारण करती हुई उन पार्वतीजी ने वहां अन्नपानों से सन्तान को तृप्तकिया ॥ १ ॥ किसी समय गिरिराजकुमारी पार्वतीजीने ब्रह्मके ध्यानमें नेत्रोंको मूंदे व हाथोंको जोड़ेहुये सदाशिवदेवजी को देखा ॥ २ ॥ व मनमें विचार किया कि इस समय शिवजी निश्चय कर किसी भी सौभाग्य से शोभित स्त्रीका ध्यान करते हैं और जो मुझमें स्नेह कियाजाता है उसको मैं बड़ीभारी वंचना (कपट) मानतीहूं ॥ ३ ॥ पुरुषोंके मध्यमें इनके मनकी गति कुटिल (टेढ़ी) जान पड़ती है

झूठे प्रेममें चतुर इन शिवजीसे मैं बहुतही छलीगई ॥ ४ ॥ इसकी चतुरताहीको मैं मनमे कपट मानतीहूं क्योंकि इनके स्नेहका पात्र सौभाग्यवान् अन्य जनहै ॥ ५ ॥
आजसे लगाकर तुम्हारा दासहूं और तुम्हारे तपोंसे मोल लियागयाहू इसप्रकार अज्ञानवती मैं कामदेवनाशक चन्द्रभालजीसे छलीगईहूं ॥ ६ ॥ अज्ञान चित्तवाली
स्त्रियोंका अपने समान न प्रेमकरनेवाले मनुष्यों में सौभाग्यका अभिमान केवल परिहास (हँसौवा) के लिये होताहै ॥ ७ ॥ इसप्रकार प्रेमकेकारण क्रोधसे उदासीन
चित्तवाली पार्वतीदेवीका मुख पाला से सूखेहुये कमल की नाईं देखपड़ा ॥ ८ ॥ और आसुवों के जलसे भरेहुये उन पार्वतीजीके नेत्र जलसे पूर्ण कमलों की नाईं

पचारदक्षेण वञ्चितास्म्यमुनाभृशम् ॥ ४ ॥ मयिदाक्षिण्यमेवास्य मन्येमनसिवञ्चनाम् ॥ जनःसौभाग्यवानन्यश्चास्यै
वस्नेहभाजनम् ॥ ५ ॥ अद्यप्रभृतितेदासस्तपोभिःक्रीतइत्यहम् ॥ मुग्धेन्दुशेखरेणास्मि विप्रलब्धास्मरारिणा ॥ ६ ॥
असमानानुरागेषु नारीणांमूढचेतसाम् ॥ सौभाग्यगर्वोलोकेषु परिहासायकेवलम् ॥ ७ ॥ इतिप्रणयरोषेण देव्याकलु
षचेतसः ॥ पद्मंतुषारगलितमिवाननमलक्ष्यत ॥ ८ ॥ बाष्पवारिप्लुवेतस्या गिरिजायाविलोचने ॥ नीलोत्पलेजलापूर्णे
इवभूम्नाविरेजतुः ॥ ९ ॥ आननञ्चवितिलकं भ्रुवोर्युगमभज्यत ॥ द्विधाकृतमिवासीच्च मन्मथस्यशरासनम् ॥ १० ॥
अन्तर्मन्युभरेणास्याः कम्पतेह्यधरच्छदः ॥ मृदुःप्रवालइवसरक्ताशोकस्यपल्लवः ॥ ११ ॥ अतीवकोपमानन्तत्पार्व
त्यागण्डमण्डलम् ॥ शाणावघर्षमाणिक्यदर्पणप्रतिमंबभौ ॥ १२ ॥ अन्तर्विधूनितौतस्याश्चकम्पातेपयोधरौ ॥
पद्मकोशाविवान्तस्थवायुनाचप्रचालितौ ॥ १३ ॥ अचिन्तयच्चसाभूयः सौभाग्याभावतोमम ॥ अन्यस्त्रियमयंचित्तेकुरु

बहुतही शोभित हुये ॥ ९ ॥ और तिलकरहित मुख व दोनों भौंहैं टूटगईं मानो दोखण्ड कियाहुआ कामदेव का धनुष होगया है ॥ १० ॥ भीतर क्रोधके भारसे
इनका नीचेका ओंठ कँपता है मानो लालअशोक का मूंगेकी नाईं वह अरुण पत्ता हिलरहाहै ॥ ११ ॥ व बहुतही क्रोध करताहुआ वह पार्वती का कपोलमण्डल
कसौटी में घिसनेसे माणिक्य की नाईं शोभित हुआ ॥ १२ ॥ और भीतर से कँपायेहुये उन पार्वतीजी के स्तन कांपनेलगे मानो भीतर टिकेहुये पवन से कमल
की कली कँपाईगई हैं ॥ १३ ॥ फिर उन पार्वती देवीजी ने चिन्तन किया कि मेरे सौभाग्य के अभाव से ये चन्द्रभूषण शिवजी चित्तमें अन्य स्त्रीको

करतेहैं ॥ १४ ॥ इसलिये यह मैं कहीं जाऊंगी क्योंकि अन्यथा कार्य न होगा और तपकरतीहुई मुझको इससमय सौभाग्य इकट्ठा करना चाहिये ॥ १५ ॥ और यह प्यारी गङ्गाजी दोनों लड़कोंको बढ़ावैंगी और अन्य स्त्रीमें तत्पर ये शिवजी मुझको स्मरण नहीं करते हैं ॥ १६ ॥ यह निश्चयकर शिवदेवजीके समीप से शीघ्रही लौटकर वे पार्वतीजी विकल होकर किसी दिशाको निर्देश न कर जानेका प्रारम्भकिया ॥ १७ ॥ और चलावती, माल्यवती, मालिनी, विजया व जया क्रोधसे मना कीहुईं भी ये सखियां स्वामिनी पार्वतीजी के पीछे आपही चलती भईं ॥ १८ ॥ वहांपर वे पार्वतीजी भी पुण्यदायक वनों, नगरों, तड़ागों और नदियों में सबओर

तेचन्द्रभूषणः ॥१४॥ तदेषाक्वापियास्यामि कार्यंनैवान्यथाभवेत् ॥ तपस्यन्त्यैवसौभाग्यमर्जनीयंमयाधुना ॥ १५ ॥
वत्सौतुवर्धयत्येव गङ्गेयमपिवत्सला ॥ देवस्तुनस्मरत्येष मामन्यस्त्रीपरायणः ॥ १६ ॥ इतिनिश्चित्यदेवस्य पार्श्वादा
शुनिवृत्यसा ॥ अनिर्दिश्यदिशङ्काञ्चिद्यातुंव्यग्राप्रचक्रमे ॥ १७ ॥ चलावतीमाल्यवती मालिनीविजयाजया ॥ चारि
ताअपिसंरम्भात्स्वामिनीमन्वगुःस्वयम् ॥ १८ ॥ तत्रसापिगिरीन्पुण्यान्वनानिनगराणिच ॥ सरांसिसरितश्चैषा
विचचारसमन्ततः ॥ १९ ॥ भ्रमन्तीसह्यमद्रेषु द्राविडाख्येषुनिर्वृतिम् ॥ तीर्त्वाशक्त्यापगान्देवी विजयांसमभाष
त ॥ २० ॥ दृश्योयंनातिदूरेण पुरस्तात्सकलारुणः ॥ शृङ्गैस्संलक्ष्यतेष्टाभिर्नूनं माहात्म्यवान्गिरिः ॥ २१ ॥ उपत्य
कासुचैतस्य दृश्यतेतापसाश्रमम् ॥ अतीवपावनंशान्तं पुण्यारण्यमनोहरम् ॥ २२ ॥ गत्वानिरूपयामस्तत्तपःपु
ण्याश्रमान्वयम् । प्रसीदतितरांचेतो येषांसन्दर्शनेनमे ॥२३ ॥ एवमालापयत्यालिं क्रमेणागिरिनन्दिनी ॥ तस्याद्रेर्जग्मु

भ्रमण किया ॥ १९ ॥ सह्य, मद्र, व द्राविड़नामक देशों में घूमतीहुईं वे देवी शक्ति से निर्वृति नदीको उतरकर विजयासखी से बोलीं ॥ २० ॥ कि आगे समीपही यह देखनेयोग्य व आठ शिखरों से सब अरुण निश्चयकर माहात्म्यवान् पर्वत देख पड़ताहै ॥ २१ ॥ इस पर्वतकी समीप भूमियों में तपस्वियों का आश्रम देखपड़ताहै क्योंकि अत्यन्तही पवित्रकारक व शान्त तथा पवित्र वनोंसे सुन्दर है ॥ २२ ॥ इस लिये पुण्यदायक आश्रमों में जाकर हम तपस्या करेंगी कि जिनके भलीभांति

दर्शनसे मेरा चित्त बहुत प्रसन्न होताहै ॥ २३ ॥ इसप्रकार सखी से कहतीहुई पर्वतकुमारी पार्वतीजी ने क्रमसे उस पर्वत के समीप जाकर किसी आश्रमको देखा ॥ २४ ॥ जहां कि जिस पर्वत की भूमिको भैंसा सींगोंके अग्रभाग से बराबर करते हैं और वानर व रीछ फल व फूलों तथा महुवों को लातेहैं ॥ २५ ॥ और ये वाराह जहापर स्नानके योग्य मिट्टीको ऋषियो के लिये लाते हैं और काले कौवों और शुकों व मृगों,व्याघ्रोंसे तथा सिंहों और हाथियोंसे ॥ २६ ॥ और मयूर व सर्पो तथा मूश व बिलारों से जहां मैत्रीका आश्रयहै और पुरोडाशसे हवन कीहुई वस्तुकी सुगन्ध को हरनेवाली ॥ २७ ॥ पवित्र धूमराशि जहांपर वृक्षोंके मध्योंसे निकलती है और

धीपार्श्वमपश्यत्कञ्चिदाश्रमम् ॥ २४ ॥ समीकुर्वन्तियद्भूमिं विषाणैर्यत्रसैरिभाः ॥ वानराःफलपुष्पाणि मधूकानिच भल्लकाः ॥ २५ ॥ क्रोडाःस्नानीयमृत्स्नाञ्च यत्रर्षिभ्योनयन्त्यमी ॥ काकोलकैःशुकैश्चैव मृगव्याघ्रैर्हरिद्विपैः ॥ २६ ॥ कलापिसर्पैर्यत्राखुमार्जारैःसौहृदाश्रयम् ॥ हूयमानपुरोडाशद्रव्यसौरभ्यहारिणी ॥ २७ ॥ यत्रद्रुमान्तरालेभ्यो धूम्यानिर्यातिपावनी ॥ पठन्तिशतरुद्रीयं यत्रवायसवैरिणः ॥ २८ ॥ गृणन्तिकाकाःस्तोत्राणि सामगायन्तिपक्षिणः ॥ शूकशालिषुशार्दूलाश्चारयन्तितथैवगाः ॥ २९ ॥ सिञ्चन्तिपुष्कराम्भोभिरिभाश्चयत्रपादपान् ॥ क्वचिच्चशोभनेदेशे पुण्यापुण्यमनोहरे ॥ ३० ॥ ददर्शसातपस्यन्तं यंकञ्चिदृषिसत्तमम् ॥ बद्धवीरासनंसम्यक् पावनेकुशविष्टरे ॥ ३१ ॥ रुचिराभिःपिशङ्गाभिर्जटाभिर्भस्मपाण्डुरम् ॥ अचञ्चलाभिर्विद्युद्भिरिवशारदवारिदम् ॥ ३२ ॥ शान्तञ्चनिश्चलदृशं समप्रस्फुरिताधरम् ॥ जपन्तञ्चैवरुद्राक्षमालिकामग्रपाणिना ॥ ३३ ॥ वसानंवल्कलयुगे सन्ध्याभ्रेभूभृतंय

जहांपर कौवों के वैरी (घुघुवा) शतरुद्रीयको पढ़ते हैं ॥ २८ ॥ और कौवा स्तोत्रों को पढ़ते हैं व पक्षी सामवेद को गाते हैं वैसेही व्याघ्र यवों व धानोंमें गौवे को चरातेहैं ॥ २९ ॥ और जहापर हाथी सूंडके अग्रभाग द्वारा जलसे वृक्षोंको सींचतेहैं कहींपर सुन्दर शोभित स्थानमें पुण्यरूपिणी ॥ ३० ॥ उन पार्वतीजीने तप करते हुये जिस किसी ऋषिश्रेष्ठ को देखा जोकि पवित्र कुशासन पै भलीभांति स्थान वीरासन को बांधेथे ॥ ३१ ॥ व सुन्दरी पिंगल वर्णवाली जटाओं से भस्मकी नाईं श्वेतवर्णवाले जो मुनि निश्चल बिजलियों से शरद्ऋतु के मेघके समानथे ॥ ३२ ॥ और जो शान्त व अचल लोचनोंवाले तथा समान फरकते हुये ओठोंवाले और

हाथके अग्रभागसे रुद्राक्ष की मालाको जपतेथे ॥ ३३ ॥ और दो बकलों के वसन पहने थे जैसे कि सन्ध्यासमय के मेघों को पर्वत धारण कियेहोवै ॥ ३४ ॥ और षड्वर्ग (कामक्रोधादि) रूपी हिंसक जीवोंको मारनेके लिये मानो बौर (जाल) स्थापित है व उस समय तीन यज्ञोपवीतों को धारण कियेथे ॥ ३५ ॥ योग्य उप-चार (पूजन) को लियेहुई उन पार्वतीजीने उन तपस्यारूपी धनवाले मुनिसे पूछा कि तुम कौनहो और यह उत्तम पर्वत कौनहै जिसपै कि तुम तप करतेहो ॥ ३६॥ उन्होंने कहा कि पवित्र क्षेत्रों में पूजित यह अरुणाचल है और गौतमनामक मुनि मैं भी शिवजी का आराधन करताहूं ॥ ३७ ॥ यह कहकर विजयादिक सखियों

था ॥ ३४ ॥ षड्वर्गहिंस्रान्हन्तुञ्च स्थापितांवागुराभिव ॥ उपवीतत्रयीञ्चापि तदानीमुपधारिणम् ॥ ३५ ॥ कृतोचितो पचारासा तमपृच्छत्तपोधनम् ॥ कस्त्वंकोयंगिरिवरो यत्रत्वंकुरुषेतपः ॥ ३६ ॥ सचाहारुणशैलोयं पुण्यक्षेत्रेषुपूजि तः ॥ गौतमोहंमुनिश्चापितपसाराधयंशिवम् ॥ ३७ ॥ इत्युक्त्वाविजयादीनांमुखेनैतामुमांविदन् ॥ प्रणम्यभक्त्याबहुशो नीतवानुटजन्निजम् ॥ ३८ ॥ कन्दमूलफलाद्यैश्च कृतातिथ्यामिमांमुनिः ॥ जगन्मङ्गलमूलाय तपसेचान्वमन्य त ॥ ३९ ॥ ज्योतिस्तम्भस्यसम्भूतिमारभ्यानुक्रमेणसः ॥ जगादचास्यैशोणाद्रेर्महिमानमशेषतः ॥ ४० ॥ शो णाद्रेःपूर्वदिग्भागेस्थलीश्वरमितिस्थलम् ॥ यत्रसन्निहितःशम्भुर्ज्योतिर्लिङ्गेमहेश्वरि ॥ ४१ ॥ वैकुण्ठपरमेस्थाने गीर्वाणनिविडीकृते ॥ नतत्रतुतपःकर्तुमन्याक्षेपेणशक्यते ॥ ४२ ॥ अन्यःशोणगिरेःपादः प्रवालाचलनामवान् ॥ पु

के मुख से इनको पार्वती जानतेहुये गौतमजी भक्तिसे बहुतही प्रणामकर अपनी कुटीको लाये ॥ ३८ ॥ और कन्द, मूल व फलादिकों से पहुनई कर इन पार्वती जीको मुनिने संसार की मंगलमूल तपस्या के लिये आज्ञा दिया ॥ ३९ ॥ और ज्योतिरस्तम्भकी उत्पत्ति से लगाकर क्रमसे उन गौतममुनिने इनसे अरुणाचलकी सब महिमा को कहा ॥ ४० ॥ और अरुणाचल के पूर्वदिशा के भागमें स्थलीश्वर ऐसा स्थलहै जहांपर हे महेश्वरि ! ज्योतिर्लिङ्ग में सदाशिवजी भलीभांति टिके हैं ॥ ४१ ॥ देवताओंसे सघन कियेहुये उस वैकुण्ठसे उत्तमस्थान में निर्विघ्नता से तप नहीं किया जासक्ता है ॥ ४२ ॥ और अरुणाचल के समीप का प्रवालाचल

नामवाला अन्य पर्वत पुण्यदायक वनों से आच्छादित होनेके कारण सुन्दरता को धारण करता है ॥ ४३ ॥ उसी कारण मैं यहींपर त्रिलोचनजी को थापकर पवित्र चित्तसे तपोंके द्वारा शक्तिके अनुसार आराधन करताहूं ॥ ४४ ॥ हे देवि ! इस मेरे आश्रम के समीप यह बड़ाभारी पुण्यक्षेत्र है यहींपर आश्रम कियाजावै व बहुत दिनोंतक तपस्या करनेयोग्यहै ॥ ४५ ॥ मुनिजी से इस प्रकार आज्ञापाईहुई पार्वती जीने आश्रमरूपी परिग्रह (परिवार) को कर बड़ी तपस्या करनेके लिये उद्योग किया ॥ ४६ ॥ और प्राणियों से आश्रम की रक्षाके लिये वनवासिनी पार्वतीजी ने सुभङ्गा व धुन्धुमारी को पूर्वादिक दिशाओं में स्थापन किया ॥ ४७ ॥ और तपोवन

ण्यारण्योपरुद्धत्वात्सुन्दरत्वंविगाहते ॥ ४३ ॥ ततएवाहमत्रैव प्रतिष्ठाप्यत्रिलोचनम् ॥ आराधयेयथाशक्ति तपोभिः प्रयतात्मना ॥ ४४ ॥ ममाश्रमसमीपेस्मिन् पुण्यक्षेत्रमिदंमहत् ॥ क्रियतामाश्रमोदेवि कर्तव्यंहितपश्चिरम् ॥ ४५ ॥ मुनिनैवमनुज्ञाता कृताश्रमपरिग्रहा ॥ उदयुङ्क्तपःकर्तुं सुमहत्पर्वतात्मजा ॥ ४६ ॥ आश्रमंरक्षितुंसत्त्वैरुमाकाननवासिनी ॥ सुभङ्गान्धुन्धुमारीञ्च प्रागाद्याशास्वतिष्ठिपत् ॥ ४७ ॥ तपोवनस्यसर्वस्य रक्षार्थंसासमादिशत् ॥ दुर्गामनर्गलस्फूर्तिमाज्ञानिर्वहणक्षमाम् ॥ ४८ ॥ अनन्तरंसाधम्मिल्लंमन्दारप्रसवोचितम् ॥ जटाभरत्वंतपसे गमयामासपार्वती ॥ ४९ ॥ हंसचिह्नदशंहित्वा दुकूलंचाप्युमालघु ॥ परुषंसुकुमाराङ्गी परिधत्तेस्मवल्कलम् ॥ ५० ॥ अपिप्रसूनापचये निस्सहाङ्गुलिपल्लवा ॥ अलावीदतितीक्ष्णाग्रानप्यविकारंकुशानिसा ॥ ५१ ॥ शिरीषमृद्वीशाण्डिल्यपल्लवान्युच्चिकायसा ॥ ५२ ॥ पावन्यांतत्रनद्यांसा प्रातर्विहितमज्जना ॥ अर्चयामासरक्ताक्तैर्यथाविधिविभाकरम् ॥ ५३ ॥

की रक्षाके लिये उन्होंने दुर्गा व अनर्गल स्फूर्ति तथा आज्ञानिर्वहणक्षमा को आज्ञा दिया ॥ ४८ ॥ इसके बाद उन पार्वतीजी ने मन्दार के फूलोंके योग्य वेणी को तपस्या के लिये जटाभारत्व को प्राप्तकिया ॥ ४९ ॥ और हंससे चिह्नित किनारोंवाले रेशमी वसनको छोडकर सुकुमार अंगोंवाली पार्वतीजी ने कठोर बकलेको धारण किया ॥ ५० ॥ व फूलोंके तोड़नेमें न सहनेवाली अंगुलिरूपी पत्तोंवाली उन पार्वतीजी अतिपैने अग्रभागवाले कुशोंको विकाररहित छेदन किया ॥ ५१ ॥ और सिरसा के फूलकी नाईं कोमल उन पार्वतीजी ने बिल्वपत्रों को तोड़ा ॥ ५२ ॥ और वहापर पवित्रकारक नदीमें प्रातःकाल स्नान कियेहुई उन पार्वतीजी ने विधि-

पूर्वक लालचन्दनों से सूर्यनारायणका पूजन किया ॥ ५३ ॥ व कुश, अक्षत तथा तिलों से मिलेहुये श्रीनन्दिनामक नदीके जलों से पार्वतीदेवीजी ने देवता, ऋषि व
पितरोंका तर्पण किया ॥ ५४ ॥ और मण्डलमें बालरूपी सूर्यनारायणको आवाहनकर व कमलों से पूजकर पार्वतीजी ने प्रदक्षिणाकर हज़ारों बार प्रणाम किया ॥
५५ ॥ और किसी भी शिवलिंगको आपही थापकर पार्वतीजी ने शास्त्र में कहीहुई विधिसे पूजनकिया ॥ ५६ ॥ व उन पार्वतीजीने आसन, मूर्ति, मूल व फूलोंसे सूर्य-
नारायण व दंडी, पिंगल जिनमें मुख्य हैं उन आदित्यों को तथा दीप्तिआदिक शक्तियों का भी पूजन किया ॥ ५७ ॥ तदनन्तर पूर्वादि दिशाओं में धेनुआदिक मुद्रा

दर्भाक्षततिलोन्मिश्रैर्गौरीश्रीनन्दिवारिभिः ॥ देवीनिर्वर्तयामास देवर्षिपितृतर्पणम् ॥ ५४ ॥ बालकंमण्डलेसूर्यमावा
ह्याभ्यर्च्यपङ्कजैः ॥ कृत्वाप्रदक्षिणांगौरीप्रणनामसहस्रशः ॥ ५५ ॥ स्वयमेवप्रतिष्ठाप्यलिङ्गंकिमपिशङ्करम् ॥ आगमो
क्तेनविधिना पूजयामासपार्वती ॥ ५६ ॥ आसनेनचमूर्त्याच मूलेनकुसुमैरपि ॥ दण्डिपिङ्गलमुख्यांश्च शक्तीर्दीप्त्या
दिकाअपि ॥ ५७ ॥ ततोदिक्षुचसोमादीन् ग्रहान्धेन्वादिमुद्रया ॥ ततश्चाग्रेचार्चयित्वा नैवेद्यंचन्यवेदयत् ॥ ५८ ॥ भू
तशुद्धिंविधायान्तर्यागञ्चकारसा ॥ हृदिपद्मासनेचाथ सर्वान्धर्मादिकान्क्रमात् ॥ ५९ ॥ शक्तीर्दलेषुवामाद्या
दलाग्रेसूर्यवेधसौ ॥ केसराग्रेसोमविष्णूकर्णिकाग्रेग्निधूर्जटी ॥ ६० ॥ तदूर्ध्वंशक्तिचक्रत्वं विन्यस्यगिरिजातदा ॥ अर्घं
दत्त्वाचपाद्यादीनद्रिजाचाभिषिच्यसा ॥ ६१ ॥ अदाच्चन्दनपुष्पादिधूपदीपप्रदायिनी ॥ भूयःपञ्चोपचारैश्च षडङ्गान्य

के द्वारा चन्द्रादिक ग्रहोंको पूजन किया तदनन्तर आगे पूजनकर नैवेद्य को निवेदनकिया ॥ ५८ ॥ व उन पार्वतीजी ने भूतशुद्धिकर अन्तर्यज्ञ को किया इसके
अनन्तर हृदय में कमलासन पै सब धर्मादिकों को पूजन किया ॥ ५९ ॥ और दलोंमें वामादिक शक्तियों को व दलोंके अग्रभाग में सूर्यनारायण व ब्रह्माका पूजन
किया और केसर के अग्रभाग में चन्द्रमा व विष्णुको पूजा तथा गुजरी के आगे अग्नि व सदाशिवजी को पूजा ॥ ६० ॥ उसके ऊपर शक्तिकी चक्रता को धरकर
अर्घ देकर व पाद्यादिकों को देकर उस समय उन पार्वतीजीने अभिषेककर ॥ ६१ ॥ चन्दन, पुष्पादिकोंको दिया और फिर धूप दीप देनेवाली पार्वतीजी ने पञ्चोपचारों

से षडगोंको भी पूजन किया ॥ ६२ ॥ तदनन्तर पूर्वादिक दिशाओ मे इन्द्रादिकों व वज्रादिक अस्त्रोंको विधिसे पूजा और सब उपचारोंको कर दक्षिणादिया ॥ ६३ ॥ और पाचों चक्रोंको पूजकर शिव पूजनकियेहुई उनपार्वतीजी ने नित्यही प्रदक्षिणा व प्रणामादिकों से शिवजीको पूजा ॥ ६४ ॥ और पूजन के अन्तमे उन पार्वतीजी ने शिवशास्त्र में कहीहुई विधि से सौभाग्य को देनेवाली वस्तुओं से अग्निमे हवन किया ॥ ६५ ॥ और कन्द, मूल, फलादिकों से पूजनकर आपही कियेहुई पूजन वाली इसने अतिथियोंको पूजनकिया ॥ ६६ ॥ और ग्रीष्मऋतुमें पञ्चाग्निके मध्यमे अंगूठेके अग्रभागसे खडीहुई वे पार्वतीजी हृदयमें प्राप्त चन्द्रभालजीसे मानो रक्षित

ष्यपूजयत् ॥ ६२ ॥ ततोदिक्षुचशक्रादीन्वज्रादींश्चविधानतः ॥ कृत्वासर्वोपचारांश्च वितताश्चदक्षिणाम् ॥ ६३ ॥ पञ्चचक्राणिचाभ्यर्च्य कृतमाहेश्वरार्चना ॥ प्रदक्षिणाप्रणामाद्यैर्नित्यंशिवमपूजयत् ॥ ६४ ॥ शिवागमोक्तविधिना द्रव्यैःसौभाग्यदायिभिः ॥ साजुहावचयज्ञान्ते प्रणवैर्जातवेदसि ॥ ६५ ॥ परिकल्पितोपधाराचकन्दमूलफलादिकैः ॥ स्वयंकृतोपचारेयमतिथीनभ्यपूजयत् ॥ ६६ ॥ अङ्गुष्ठाग्रेणतिष्ठन्ती ग्रीष्मेपञ्चाग्निमध्यतः ॥ हृद्गतेनशिरश्चन्द्रेणेवसाप्यविताभवत् ॥ ६७ ॥ वर्षारात्रिषुधाराभिः सहवारिधरेणसा ॥ सौदामिनीवददृशे तमसिस्तिमिताकृतिः ॥ ६८ ॥ पाणिपादेनवपुषा मुखेनचगिरीशजा ॥ प्रदर्शयन्त्यनायासन्निन्येसाहैमिनीर्निशाः ॥ ६९ ॥ नीवारबीजदानेन सामृगानप्यपोषयत् ॥ अज्ञातहिंसाभिभवानाश्रमोपान्तवर्तिनः ॥ ७० ॥ कृतालवालसलिलैः सुबालाकलशाहृतैः ॥ वात्सल्याद्वर्द्धयामासापर्णात्वाश्रमपादपान् ॥ ७१ ॥ प्रदक्षिणांकृतवती शोणशैलंगिरीशजा ॥ सामनोर

हुई ॥ ६७ ॥ व वर्षाकी रात्रियों में निश्चल आकारवाली वे पार्वतीजी धाराओं से मेघोंकरके बिजलीसी देखपडीं ॥ ६८ ॥ व हाथ, पांव, शरीर व मुख से अपरिश्रम को दिखलातीहुई उन पार्वतीजी ने हेमन्तऋतु की रात्रियों को व्यतीत किया ॥ ६९ ॥ और उन पार्वतीजी ने तिन्नी व पसहीके बीजोंके दानसे मृगोंकोभी पोषणकिया जोकि हिंसकों के तिरस्कार को नहीं जानते थे व आश्रम के समीप वर्तमान थे ॥ ७० ॥ और उत्तम बाला पार्वतीजी ने कलशों से लायेहुये निर्मित थलहों के जलो

से प्रेमपूर्वक आश्रमवाले वृक्षोंको बढ़ाया ॥ ७१ ॥ और मनोरथकी भलीभांति सिद्धिके लिये सखीजनों समेत उन पार्वतीजी ने अरुणाचल की प्रदक्षिणा किया ॥
७२ ॥ और इसने पञ्चाक्षर मन्त्रको जपा व शिवजी के स्तोत्रों को वर्णन किया तथा अरुणाचलरूपवाले देवको मनसे ध्यान किया ॥ ७३ ॥ कीहुई प्रदक्षिणादि-
कोंसे उन पर्वतकी कन्या पार्वतीजी ने अरुणाचल को प्रतिदिन प्रणाम किया व शिवशास्त्रकी विधिको जाननेवाली उन्होंने बहुत दिनोंतक तपस्या किया ॥ ७४ ॥
इति श्रीस्कन्दपुराणेऽरुणाचलखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायाभाषाटीकायामेकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

थसंसिद्धौ नित्यंसहसखीजनैः ॥ ७२ ॥ पञ्चाक्षरंजजापैषाशिवस्तोत्राण्युदीरयत ॥ दध्यौचदेवंमनसा शोणपर्वतरू
पिणम् ॥ ७३ ॥ अनुदिनमरुणाचलेश्वरंसाप्रणतवतीविहितप्रदक्षिणाद्यैः ॥ शिवनिगमविधानवेदिनीसाऽप्यचरदद्रि
सुताचिरन्तपांसि ॥ ७४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽरुणाचलमाहात्म्येएकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥ ❁ ॥
नन्दिकेश्वरउवाच ॥ तावत्कुतश्चिदाकर्ण्य तत्रस्थांमहिषासुरः ॥ अवज्ञातासुराराातिर्विध्वंसितपुरन्दरः ॥ १ ॥
सर्वलोकजयीसिद्धविद्याधरभयावहः ॥ दुर्निग्रहोवरादासशस्त्रैरखिलैरपि ॥ २ ॥ तीक्ष्णानामपिशापानामप्यगो
चरताङ्गतः ॥ दृप्यद्भिर्दानवैर्दैत्यैःकौणपैश्चनिषेवितः ॥ ३ ॥ दूषकोमुनिपत्नीनां धर्ममार्गोपघातकः ॥ बलात्पुलोम्नोन
मुचेर्वृत्रादपिबलाधिकः ॥ ४ ॥ हिरण्यकशिपोर्वंशो हिरण्याक्षइवापरः ॥ तांविलोभयितुङ्काङ्क्षिन्प्राहिणोत्किलदूति

दो० । जिमि महिषासुर को हन्यो श्रीदुर्गा महरानि । बत्तिसवें अध्यायमें सोइ चरित सुखदानि ॥ नन्दिकेश्वरजी बोले कि तबतक दैत्यों के शत्रु याने देवताओं
के अपमान किये व इन्द्रको विध्वंस किये महिषासुर वहां टिकीहुई देवीजी को किसीसे सुनकर ॥ १ ॥ जोकि सब लोकोंको जीतनेवाला और सिद्धों व विद्याधरों
को भयदायक था और वरदानके कारण सब शस्त्रोंसे भी वह दण्ड देनेयोग्य न था ॥ २ ॥ और तीक्ष्णशापोंकी भी अगोचरताको प्राप्तथा याने शाप नहीं लगते थे
व गर्व करतेहुये दानव, दैत्य तथा राक्षसों से सेवित था ॥ ३ ॥ व मुनिस्त्रियों का दूषक तथा धर्ममार्ग का नाशक था और बल, पुलोमा, नमुचि व वृत्रासुर से

भी अधिक बलवान् था ॥ ४ ॥ व जोकि हिरण्यकशिपु के वंशवाला दूसरा हिरण्याक्ष है उसने उन पार्वतीजी को लुभाने के लिये दूतीको पठाया ॥ ५ ॥ तदन-
न्तर तपस्विनीके रूपको धारण कियेहुई उस दूतीने सखियोंके सामनेही पार्वतीजीसे समझानेवाले इस वचनको कहा ॥ ६ ॥ कि हे वरोरु, भीषणे,भीरो ! बड़ेखेदकी
बात है कि मनोहर-अन्तःपुर (रनिवास मन्दिरों) में विहार करनेके योग्य तुम यहां क्यों बसतीहो ॥ ७ ॥ और आज भोगोंमें निःस्पृह (इच्छारहित) तुम्हारे चित्त
ने देवताओं से भी कठिन तपस्या मे किसलिये प्रवेश किया ॥ ८ ॥ और हे सुकुमाराङ्गि ! मुक्तामय चँदोवोंवाली हंसचिह्नित तूलमयी शय्याको छोड़कर कठोर आ-

कामम् ॥ ५ ॥ ततःसातापसीरूपधारिणीगिरिजाम्प्रति ॥ सखीसमक्षएवेदमुवाचानुनयंवचः ॥ ६ ॥ वरोरुभीषणेभीरो निवसस्यत्रकिंबत ॥ विहर्तुमुचितारम्येष्ववरोधनवेश्मसु ॥ ७ ॥ किमर्थंवाद्यचित्तन्ते यौवनेभोगनिःस्पृहम् ॥ निवे शितंतपसिच देवतैरपिदुष्करे ॥ ८ ॥ हंसतूलमयींशय्यां मुक्तामयवितानकाम् ॥ हित्वाकिमितिमृद्वङ्गि सुप्यतेपरुषाश्र मे ॥ ९ ॥ तपोमयःशिवोदिष्ट्या प्रागेवासीत्त्वयार्चितः ॥ तवानुरूपोनैवान्यो विद्यतेदिविषत्सुच ॥ १० ॥ किन्तुत्रैलो क्यनाथोस्ति महिषोदानवेश्वरः ॥ यदिद्रक्ष्यसितंसुभ्रु त्यक्ष्यस्येवक्षणात्तपः ॥ ११ ॥ आगतामत्रत्वामेष श्रुत्वासर्वे श्वरःप्रभुः ॥ संप्राहिणोदुपानेतुं दूतिकांमांस्मरातुरः ॥ १२ ॥ इत्थमेवविरुद्धेन ब्रुवाणामसमञ्जसम् ॥ देव्याश्चित्तस्थि तिंज्ञात्वा विजयानिरकासयत् ॥ १३ ॥ साचातिरोषेणकृतप्रतिज्ञंदैत्यरूपिणम् ॥ गत्वाविदितवृत्तान्तमकरोन्महिषा

श्रममें किस लिये सोतीहो ॥ ९ ॥ अहोभाग्य है कि तुमने पहलेही तपस्यामय शिवजीको पूजाहै देवताओं के मध्यमें तुम्हारे समान अन्य नहीं विद्यमान है ॥१०॥
किन्तु महिषनामक दानवों का स्वामी त्रिलोकनाथ है हे सुभ्रु ! यदि तुम उसको देखोगी तो क्षणभरमें तपस्याको अवश्य छोड़ोगी ॥ ११ ॥ यहां आईहुई तुमको
सुनकर सबोंके स्वामी इस महिषासुर प्रभुने कामदेवसे विकल होकर तुमको लानेकेलिये मुझ दूतीको पठाया है ॥ १२ ॥ इस प्रकार अन्यायपूर्वक विरोध से कहती
हुई उस दूतीको विजयासखी ने देवीजी के चित्तकी स्थितिको जानकर निकाल दिया ॥ १३ ॥ और उस दूतीने जाकर अतिक्रोधमे प्रतिज्ञा कियेहुये दैत्यरूपी महि-

षासुरसे वृत्तान्तको विदितकिया ॥१४॥ और वहभी उस सब वृत्तान्तको सुनकर आकाशके मध्यमें कूदपड़ा व क्रीडा तथा बाजों के शब्दोंसे आकाश पूर्णसाहोंगया ॥ १५ ॥ और दैत्योंके चरणघात से पृथ्वी फटगई व कराल, दुर्धर, विचक्षु, विकरालय ॥ १६॥ वाष्कल, दुर्मुख, चण्ड, प्रचण्ड व चामर तथा महाहनु, महामौलि, उग्रास्य व विकटेक्षण ॥ १७ ॥ ज्वालास्य, दण्डक ये सेनाध्यक्ष चलतेभये और इस बड़ेभारी शब्दको सुनकर देवीजी नियमों के विघ्नसे ॥ १८ ॥ शंकितहुई और दैत्योंके संहार के लिये उन्होंने सिंहनाद किया व फरकते हुये ओंठों तथा चलतीहुई अंगुलीरूपी पत्तोंवाली पार्वतीजीने ॥ १९ ॥ क्रोधसे अपने अंगोंसे

सुरम् ॥ १४ ॥ सोपितत्सर्वमाकर्ण्यप्रोद्गतोगगनान्तरम् ॥ क्ष्वेलितैर्वाद्यघोषैश्च नभःपूर्णमिवाभवत ॥ १५ ॥ पादाघातैश्चदैत्यानां विदद्रेवसुधातलम् ॥ करालोदुर्धरश्चैव विचक्षुर्विकरालयः॥१६॥वाष्कलोदुर्मुखश्चण्डःप्रचण्डश्चामरस्तथा ॥ महाहनुर्महामौलिरुग्रास्योविकटेक्षणः ॥ १७॥ ज्वालास्योदण्डकश्चेमे सेनान्योपिप्रतस्थिरे ॥ कोलाहलमिमं श्रुत्वा देवीनियमविघ्नतः ॥ १८ ॥ शङ्किताद्दैत्यसंहृत्यै सिंहनादमचीकरत ॥ स्फुरद्दन्तच्छदोपान्ता चलदङ्गुलिपल्लवा ॥ १९ ॥ स्वाङ्गेभ्योयोगिनीचक्रं मातरोप्यसृजन्रुषा ॥ देव्याःप्रियायदैत्यसंहारार्हाःसहस्रशः ॥ २० ॥ काश्चित्त्वरुणच्छायादण्डिन्योहंसवाहनाः ॥ मुखैश्चतुर्भीराजन्त्यःकोपप्रस्फुरिताधरैः ॥ २१ ॥ निर्ययुःकाञ्चनक्रुद्धा ज्वलद्दिशिखपाणयः ॥ निश्वासाभीषणायासा ललाटावृषवाहनाः ॥ २२ ॥ निर्जग्मुरपरास्तद्वत संस्थिताःशिखिवाहने ॥ शक्तिदण्डाभयकराः शतशःषड्भिराननैः ॥ २३ ॥ निश्चक्रमुःपरास्तार्क्ष्यमधिरुह्याधिकक्रुधा ॥ शङ्खचक्रधराःसूर्यच

योगिनीगण व मातृगणोंको उत्पन्नकिया और देवीजीके प्रियकेलिये दैत्योंके संहारके योग्य हजारों ॥ २० ॥ अरुणछायावाली कोई योगिनी वहां दण्डको धारे व हंस पै सवार तथा क्रोधसे चलतेहुये ओंठोंवाले चार मुखोंसे शोभितथीं ॥ २१ ॥ और जलतेहुये बाणोंको हाथमें लिये कोई क्रोधित योगिनी निकली कि जिनके मस्तक श्वास से भयङ्कर और बैलपर चढ़ीहुई थीं ॥ २२ ॥ वैसेही मयूरकी सवारी पै बैठीहुई अन्य योगिनी निकली और सैकड़ों योगिनी शक्ति, दण्ड व अभयको हाथमें लिये छह मुखोंसे उपलक्षित थीं ॥ २३ ॥ व अधिक क्रोधसे अपर योगिनी शङ्ख व चक्रको धारे गरुड़ पै सवार होकर निकलीं जैसे कि सूर्य व चन्द्रमा से

संयुक्त आकाश होवै ॥ २४ ॥ व्याघ्र पै सवार वे कमलके समान कान्तिवाली योगिनी घर्घरशब्द समेत गणोंसहित मुसल व हलको धारण कियेथीं ॥ २५ ॥ क्रोधसे अरुण हज़ार नेत्रोंवाली व श्वेत हाथियों पै सवार तथा अस्त्रोंको धारे वे अन्य श्रेष्ठ सौकरोड़ मातृका चलतीभई ॥ २६ ॥ और बिजली के समान कितेक मातृवा घोड़ो पै सवार होकर प्राप्तहुई जोकि तलवार व खेटकअस्त्र को धारे तथा क्रोधसे पीले वर्णवाली थीं ॥ २७ ॥ चन्द्रमा की नाईं उत्तम शोभावाली उन मातृकाओं ने हठसे चौसठि करोड़ दैत्योंको आश्रम के बाहर घेरलिया ॥ २८ ॥ तदनन्तर योगिनीगण व दानवो की सेनाका आपस में समस्त प्राणियों को भयकारक विक-

न्द्रमोभ्यांदिवोयथा ॥ २४ ॥ प्रातिष्ठन्तव्याघ्रवाहास्तावैकुवलयत्विषः ॥ गणैःसघर्घरारावैर्बिभ्रत्योमुसलंहलम् ॥ २५ ॥ रोषारुणसहस्राक्ष्यो वलक्षद्विपवाहनाः ॥ प्रस्थिताःशतकोट्यस्तामातरोस्त्रधराःपराः ॥ २६ ॥ अश्वारूढाः समापेतुरेकास्ताश्शामिनीनिभाः ॥ खड्गखेटकधारिण्यःकोपेनकपिलाननाः ॥ २७ ॥ काश्चकोटिचतुःषष्टिमसुराना श्रमाद्बहिः ॥ अरुन्धन्प्रसभेनैव तारापतिवरत्विषः ॥ २८ ॥ ततश्चयोगिनीचक्रदानवानीकयोर्मिथः ॥ वर्ततेतरणंघोरं सर्वप्राणिभयङ्करम् ॥ २९ ॥ सायकैर्योगिनीमुक्तैर्दलितादैत्यमौलयः ॥ आच्छादयन्महीपृष्ठं स्थलजानीवसर्वतः ॥ ३० ॥ प्रसस्रूरक्तसरितो नरकैशिकशैवलाः ॥ विलूनपादपाठीनाःस्मेरदेवीमुखाम्बुजाः ॥ ३१ ॥ उत्तुङ्गतुण्डान्यारुह्य सौधानी वपिशाचिकाः ॥ प्रचण्डताण्डवाःपीतरक्तमद्याश्चकाशिरे ॥ ३२ ॥ कपालैर्दैत्यवीराणामपिबन्नसृगासवान् ॥ क्रीडन्तश्चडमरुकाकारैर्मुण्डैश्चतद्गणाः ॥ ३३ ॥ परितोवर्त्तमानास्ते काकौघाःपाशशङ्कया ॥ क्षुधिताअपिमांसस्य पिण्डा

राल युद्ध वर्तमान हुआ ॥ २९ ॥ योगिनियोंसे छोड़हुये बाणोंसे काटेहुये दैत्योंके मस्तकों ने स्थलमें उत्पन्न कमलों की नाईं सबओर से भूमिको आच्छादन किया ॥ ३० ॥ और मनुष्यों के केशरूपी सेवारवाली तथा कटेहुये चरणरूपी पढिन मछलियोंवाली और हास्ययुक्त भगवती के मुखरूपी कमलोंवाली रक्तकी नदिया बहने लगीं ॥ ३१ ॥ व राजमन्दिरों की नाईं ऊंची चोंचोंके ऊपर चढ़कर पिये रक्तरूपी मदिरावाली पिशाचिनी प्रचण्ड ताण्डव (नृत्य) कर शोभित हुईं ॥ ३२ ॥ और वीरदैत्यों के कपालों से उन्होंने रक्तरूपी मदिराओं को पिया और उनके गण डमरू के समान आकारवाले शिरों से खेलरहे हैं ॥ ३३ ॥ सब ओर वर्त्तमान व

क्षुधित भी वे कंकपक्षियों के समूह व सियारियां ने [illegible]

फूलों के आसवों (मद्यों) से इधर उधर चलने से उपजी हुई पर्वतों की [illegible]

शत्रुओं के घोड़े बड़े क्रोध से फेंकेहुये बाणों से बेधित मृगों की नाईं [illegible]

से और कितेक पैने किनारोंवाले हलों से ॥ ३७ ॥ तथा योगिनियों की तलवारों से [illegible]

नितत्यजुः शिवाः ॥ ३४ ॥ सिद्धविद्याधरोन्मुक्तमन्दारप्रसवासवैः ॥ [illegible]

विरेजुर्योगिनीमुक्तैर्दृहलैर्निर्द्विषां हयाः ॥ अमर्षातिशयोत्क्षिप्तैः शूलैश्चो[illegible]

शितैः केपि शक्तिभिः ॥ वज्रैरन्ये हलैरन्ये कतिचिच्छिन्नकोटिभिः ॥ ३७ ॥ योगि[illegible]

निःशेषतामुपाजग्मुर्विनासेनाधिपा इव ॥ ३८ ॥ ब्राह्मीस्वयमुपागम्य विहितायोधनावधात् ॥ कराल[illegible]

नाप्यवधीद्द्रुतम् ॥ ३९ ॥ माहेश्वरी त्रिशूलेन सुचिरं कृतसङ्गरा ॥ चकर्त दुर्घटस्याशु मूर्द्धानमतिरोषणा ॥ ४० ॥ शा

क्त्यालुलान कौमारी चिक्षुरासुरमस्तकम् ॥ चक्रेण चालुनान्मौलिं विकरालस्य वैष्णवी ॥ ४१ ॥ बिडालस्याशु वाराही

मुसलेनालुनाच्छिरः ॥ दुर्मुखं चाशु वज्रेण व्यधादैन्द्री गतायुषम् ॥ ४२ ॥ ख्यातमस्याश्च नामेदं तयोरेव निषूदनात् ॥

चामुण्डा चण्डमुण्डौ च खड्गाग्रेणाचिच्छिदे ॥ ४२ ॥ प्रचण्डचण्डासमरौ वीरौ महामौलिर्महाहनुः ॥ उग्रास्यविकटाक्षौ

मारने के लिये युद्ध कियेहुई ब्राह्मी ने आपही आदर भयङ्कर दण्डसे शीघ्रही कराल नामक दैत्य को मारा ॥ ३९ ॥ और बहुत समय तक युद्ध कियेहुई बड़े [illegible]

वाली माहेश्वरी ने शीघ्रही दुर्घट के मस्तक को काटडाला ॥ ४० ॥ और कौमारी ने शक्तिसे चिक्षुरदैत्य के मस्तक को काटडाला व वैष्णवी जीने चक्र से विकराल-

दैत्यके मस्तक को काटडाला ॥ ४१ ॥ और वाराही ने मुसलसे शीघ्रही बिडाल दैत्य के शिर को काटडाला व ऐन्द्रीजी ने शीघ्रही वज्र से दुर्मुखदैत्य को आयुर्बल

हीन करदिया ॥ ४२ ॥ व चामुण्डाजी ने तलवार के अग्रभाग से चण्ड मुण्डको काटडाला और उन्हीं के मारने से इनका यह नाम प्रसिद्ध हुआ ॥ ४३ ॥ [illegible]

व चामरवीर तथा महामौलि, महाहनु, उग्रास्य, विकटाक्ष, ज्वालास्य व दहन भी ॥ ४४ ॥ व कालनेमि आदिक दैत्य काल के मुखकी नाईं क्रोध से महिषासुर के
सामने युद्धके लिये आतीहुई भगवती के पीछे गये ॥ ४५ ॥ टोप को धारण किये तथा तरकसोंको बाधे व धनुषधारे रथीलोग कवच को बाँधकर चलती हुई ध्वजा
वाली युद्धभूमिको प्राप्तहुये ॥ ४६ ॥ भयंकर सिंहनादोंसे सबओर दिशाओंको पूर्णकरनेवाले व बाण बरसानेवाले दैत्य मातृमण्डलोंके सामने दौड़े ॥ ४७ ॥ और उन
बलवान् दैत्योंसे युद्धकर उस समय उन्होंने स्तुतिकिया कि योगनिद्रा ऐसे रूपसे विष्णुजीके नेत्रकमलोंमें ॥ ४८ ॥ हे देवि ! लीलासे मधुकरी (भ्रमरी) की नाईं तुम

च ज्वालास्यदहनावपि ॥ ४४ ॥ अनुजग्मुःक्रुधायातां युद्धायमहिषासुरम् ॥ कालनेमिप्रभृतयो कालाननमिवासु
रः ॥ ४५ ॥ शिरस्त्रवन्तोरथिनः सुनिषङ्गाधनुर्धराः ॥ उद्बद्धकण्टकाःप्रापुर्युद्धभूमिंचलध्वजाम् ॥ ४६ ॥ समन्तात्पूरि
तदिशः सिंहनादैर्भयङ्करैः ॥ पृषत्कवर्षिणोमातृमण्डलान्यभिदुद्रुवुः ॥ ४७ ॥ ताश्चतैर्बलिभिःकृत्वा संग्राममीडिरे
तदा ॥ योगनिद्रेतिरूपेण विष्णोर्नयनपद्मयोः ॥ ४८ ॥ त्वयानिलीयतेदेवि मधुकर्य्येवलीलया ॥ अमूमुहस्त्वंनयदि
मातश्चमधुकैटभौ ॥ ४९ ॥ कथंजघानतौविष्णुस्तयोरेवाभ्यनुज्ञया ॥ त्वंकौशिकीनचेज्जाता पुराशुम्भनिशुम्भ
योः ॥ ५० ॥ कथंनुलोकपालानामैश्वर्यंदेविचैष्यति ॥ विन्ध्यवासिनिविन्ध्येन किमवन्ध्यंकृतन्तपः ॥ ५१ ॥ यत्रमै
त्रीचसर्वेषां पुंसांलभ्यात्वयासमम् ॥ ५२ ॥ त्वयाविनीतदैत्यानां दण्डमेवधृतंसदा ॥ ब्रह्मणःसृष्टिशक्तिस्त्वं स्थिति
शक्तिर्मधुद्विषः ॥ ५३ ॥ अम्बसंहारशक्तिश्च रुद्रस्यापिप्रजल्प्यसे ॥ यशोदानन्दजातात्वमेकानंशेतिनामतः ॥ ५४ ॥

लीन होजातीहो हे मातः ! यदि मधुकैटभ दैत्योंको तुम न मोहित करती ॥४९॥ तो विष्णुजी उन्हींकी आज्ञासे उनको कैसे मारते यदि पुरातन समय तुम कौशिकी
न उत्पन्न होती तो शुम्भ निशुम्भको ॥ ५० ॥ हे देवि ! लोकपालों का ऐश्वर्य कैसे प्राप्तहोता हे विन्ध्यवासिनि ! विन्ध्याचलने क्या अमोघ तप कियाहै ॥ ५१ ॥
कि जहांपर सब पुरुषों कोभी तुम्हारे साथ मित्रता मिलनेयोग्य होतीहै ॥५२॥ तुमने विनयवाले दैत्योंके ऊपर सदैव दण्ड धारण कियाहै और ब्रह्माकी सृष्टिशक्ति
व विष्णुजी की पालनशक्ति ॥ ५३ ॥ व हे मातः ! शिवजीकी भी संहारशक्ति कही जातीहो और यशोदाके गर्भमें नन्दसे उत्पन्नहुई तुम्ही एक अंशरहित ऐसे नाम से

कहीजाती हो ॥ ५४ ॥ और कंसादिक दैत्यों के नाशकेलिये विष्णुकी सहायता करोगी हे देवि ! तुम महामाया हो व तुम्हीं लक्ष्मी और सरस्वती हो ॥ ५५ ॥ हे दुर्गे ! क्या तुम वे पार्वती भी नहीं उत्पन्न होतीहो याने पार्वती तुम्हींहो उससमय इस स्तोत्रसे अभयको दियेहुई आपही दुर्गाजी ॥ ५६ ॥ प्रसन्न होकर महिषासुर से युद्धके लिये उस समय चलतीभई और हलके अग्रभाग से प्रचण्ड को व भिन्दिपाल से चामरको मारा ॥ ५७ ॥ और महामौलिको छुरीसे व महाहनुको तलवार से मारा तथा उग्रास्य को कुठार (फरसा) से व विकटलोचन को शक्ति से मारा ॥५८॥ व मुद्गर से ज्वालामुख को तथा दहनको मुसल से मारकर रोषसमेत

कंसाद्यसुरसंहारे हरेःसाह्यंकरिष्यसि ॥ त्वंहिदेविमहामायात्वंलक्ष्मीस्त्वंसरस्वती ॥ ५५ ॥ त्वंदेवीपार्वतीसापि दुर्गेकिं वानजायसे ॥ स्तोत्रेणानेनचतदा दुर्गादत्ताभयास्वयम् ॥ ५६ ॥ महिषासुरयुद्धाय संतुष्टानिर्ययौतदा ॥ प्रचण्डञ्चहलाग्रेण भिन्दिपालेनचामरम् ॥ ५७ ॥ महामौलिंछुरिकया कृपाणेनमहाहनुम् ॥ उग्रवक्त्रंकुठारेणशक्त्याविकटचक्षुषम् ॥ ५८ ॥ ज्वालामुखंमुद्गरेण दहनंमुसलेनच ॥ निहत्यमहिषस्याग्रे सरोषंयुद्धयतीस्वयम् ॥ ५९ ॥ सिंहनादंमहाघोरं चक्रेप्रमुदिताशया ॥ अथात्यमर्षितोदुर्गां विशिखैर्महिषासुरः ॥ ६० ॥ विव्याधतालफलके नेत्रयोरुभयोरपि ॥ ततोदुर्गाथसंरम्भात्प्रजहारासुरेश्वरम् ॥ ६१ ॥ बाह्वोर्वक्षसिवक्त्रेच क्षुरप्रैःप्रज्वलत्फलैः ॥ ततोदैत्यस्त्रिभिर्दुर्गां जघान विशिखैर्मुखे ॥ ६२ ॥ पञ्चभिःपञ्चभिर्बाह्वोर्द्वाभ्याञ्चनेत्रयोःद्वयोः ॥ एकेनसारथिञ्चाश्वानष्टभिःकार्मुकंत्रिभिः ॥ ६३ ॥

युद्धकरतीहुई दुर्गाजी आपही महिषासुर के आगे ॥ ५९ ॥ प्रसन्न आशयवाली होकर बड़े भयङ्कर सिंहनाद को किया इसके अनन्तर बड़े क्रोधी महिषासुर ने बाणोंसे दुर्गाजी के मस्तक में व दोनों नेत्रोंमें मारा तदनन्तर दुर्गाजी ने क्रोधसे असुरेश महिषासुर की भुजाओं में व छातीमें तथा मुखमें जलतेहुये बाणोंसे मारा तदनन्तर महिषासुर दैत्यने तीन बाणोंसे दुर्गाके मुखमें मारा ॥६०। ६१। ६२॥ और दुर्गाजीने पांच पांच बाणोंसे उसकी भुजाओंमें मारा व दो बाणोंसे दोनों नेत्रोंमें

मारा व एकबाणसे सारथिकोमारा और आठ बाणो से घोडोंको मारा व तीन बाणोंसे धनुषको काटडाला ॥ ६३ ॥ व दुर्गाजीने चार बाणोंसे उसके ध्वजाको काटडाला
इसके अनन्तर पैदल होकर दैत्यो के स्वामी महिषासुर ने जलतेहुये आकारवाली शतघ्नी (चुभेहुये कीलोवाला दण्ड) ॥ ६४ ॥ जोकि कालदण्डके समान थी उस
को दुर्गाजी के ऊपर छोड़ा देवताओं के हाहाकार करने पर व मातृगणों के भगनेपर ॥ ६५ ॥ आतीहुई उसको दुर्गाजी ने लीला से पकड़लिया तब धनुष, फँस-
री, बन्दूक, तलवार ॥ ६६ ॥ शंकु (बाणविशेष) शक्ति, गदा, चक्र, तोमर, ढाल, अंकुश, परश्वध, भिन्दिपाल, पट्टिश व दण्डको ॥ ६७ ॥ महिषासुरने प्रलय

चतुर्भिश्चध्वजंतस्य दुर्गाच्छिच्छेदसायकैः ॥ पदातिरथदैत्येन्द्रः शतघ्नींज्वलदाकृतिम् ॥ ६४ ॥ कालदण्डप्रतीकाशां
दुर्गाम्प्रतिविमुक्तवान् ॥ हाहाकुर्वत्सुदेवेषु विद्रुतेमातृमण्डले ॥ ६५ ॥ तामापतन्तीमादाय दुर्गाजग्राहलीलया ॥ का
र्मुकञ्चैवपाशञ्च भुशुण्डींकरवालिकाम् ॥ ६६ ॥ शङ्कुंशक्तिङ्गदांचक्रं तोमरंफलकंसृणिम् ॥ परश्वधंभिन्दिपालं प
ट्टिशंलगुडंतथा ॥ ६७ ॥ दुर्गाम्प्रतिविचिक्षेप क्षयाम्भोदइवासुरः ॥ आपतन्त्येवशस्त्राणि क्षिप्तान्यादायवैरिणा ॥ ६८॥
बभञ्जपाणिभिःस्वैरं करिणीवमृणालकम् ॥ दुर्गावाहोसिंहोपि लाङ्गूलाग्रेणमुद्गितम् ॥ ६९ ॥ दंष्ट्रयादारयामास प्रह
रन्मुखपञ्चकैः ॥ क्षणंसिंहःक्षणंक्रोडः क्षणंव्याघ्रःक्षणंगजः ॥ ७० ॥ क्षणञ्चमहिषोभूत्वा दैत्योदुर्गामयोधयत् ॥ म
हिषोपिविषाणाभ्यां तीक्ष्णाभ्यांसत्वमर्षितः ॥ ७१ ॥ ताडयामाससिंहञ्च देवीमपिमुहुर्मुहुः ॥ क्षणंगगनमध्यस्थः क्ष
णंप्राप्तमहीतलः ॥ ७२ ॥ क्षणंदिक्षुभ्रमन्प्राप्तः क्षणंनदतिदानवः ॥ तावद्देवासुरेन्द्रोसौ नेत्रगोचरतामगात् ॥ ७३ ॥

कालके मेघकी नाई दुर्गाजी के ऊपर चलाया शत्रुसे चलाये व आयेहुयेही शस्त्रों को लेकर ॥ ६८ ॥ दुर्गाजीने इच्छाके अनुकूल हाथोसे तोडडाला जैसे कि हथिनी
कमलकी जड़को तोड़डालै और दुर्गाजी की सवारीवाले सिंहने पूंछके अग्रभाग से लपेटकर ॥ ६९ ॥ पांचो मुखो से प्रहार करते हुये उसने दाढ़ोंसे विदारण किया
क्षणमें सिंह व क्षणभरमे वाराह, क्षण मे व्याघ्र, क्षणभर में हाथी ॥ ७० ॥ और क्षण भरमें भैसा होकर उस क्रोधित महिषासुरने भी पैने सींगोसे दुर्गाजीसे युद्धकिया ॥
७१ ॥ और बार २ सिंह व देवीजी को भी ताड़न किया क्षणमे आकाश के बीचमें स्थित होकर व क्षणभरसें पृथ्वीमे प्राप्तहोकर ॥ ७२ ॥ व क्षणभरमें दिशाओमे

घूमता हुआ वह दानव प्राप्तहोकर गर्जता है तबतक यह महिषासुर नेत्रोंके सामने प्राप्तहुआ ॥ ७३ ॥ उस समय दुर्गाजी ने तलवारहीसे हाथसे शिरको [illegible]
और हाथमें कटेहुये मस्तकको लेकर उन दुर्गाजीने नृत्य किया ॥ ७४ ॥ इसप्रकार जब दुर्गाजीने युद्धमें सब लोकों के एकही कण्टकरूप महिषासुर को मारडाला
तब देवताओं ने नृत्य किया व महर्षिलोग प्रसन्नहुये और मेघोंने दिव्यपुष्पों की वर्षा किया ॥ ७५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽरुणाचलखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचि-
तायांभाषाटीकायांद्वात्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

खड्गेनैवतदादुर्गा शिरश्चास्यचकर्तहि ॥ छिन्नस्यमूर्द्धानमादाय पाणिनाथननर्तसा ॥ ७४ ॥ इतिदुर्गयासमितिकासरासुर
दलितेसमस्तभुवनैककण्टके ॥ ननृतुःसुराःप्रजहृषुर्महर्षयो ववृषुश्चदिव्यकुसुमानिवारिदाः ॥ ७५ ॥ इति श्रीस्कन्द
पुराणेऽरुणाचलमाहात्म्येद्वात्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

॥ * ॥ * ॥ * ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥ अहोमहिषदैत्यस्यदुराचारत्वमीदृशम् ॥ अहोदुरितहारिण्या दुर्गायाश्चपराक्रमः ॥ १ ॥ एवं
तदाभद्रकाल्या निहतेमहिषासुरे ॥ किञ्चकारगिरीन्द्रस्य नन्दिनीतपसिस्थिता ॥ २ ॥ नन्दिकेश्वरउवाच ॥ अन
न्तरंसाहस्तेन दधतीदैत्यमस्तकम् ॥ ननामगौरीमन्येनपाणिनाखड्गधारिणा ॥ ३ ॥ अथहर्षेणनृत्यन्तीं तामालो
क्यदयार्द्रया ॥ दृशादेवीजगादैनां दन्तांशुद्योतिताम्बरा ॥ ४ ॥ त्वयातिदुष्करंकर्म निर्मितंविन्ध्यवासिनि ॥ जातंतवप्र

दो० । पारवती अरु देव सब देख्यो ज्योति प्रकाश । तेंतिसवें अध्याय में सोई चरित विलाश ॥ मार्कण्डेयजी बोले कि अहो महिषासुरका ऐसा दुराचार व
आश्चर्य है कि पापहारिणी दुर्गाजी का ऐसा पराक्रम है ॥ १ ॥ इस प्रकार जब उस समय भद्रकाली ने महिषासुर को मारा है तब तपस्या में स्थित गिरिराजकु-
मारी पार्वतीजी ने क्या कियाहै ॥ २ ॥ नन्दिकेश्वरजी बोले कि इसके अनन्तर हाथसे दैत्यके मस्तक को धारेहुई उन दुर्गाजीने तलवार को धारण कियेहुये दूसरे
हाथसे पार्वतीजी को प्रणाम किया ॥ ३ ॥ इसके अनन्तर हर्षसे नाचतीहुई उन दुर्गाजी को दयासे भीगीहुई दृष्टिसे देखकर दन्तोंकी किरणोंसे प्रकाशित आकाश

वाली पार्वतीजी ने इनसे कहा ॥ ४ ॥ कि हे विन्ध्यवासिनि ! तुमने बहुत कठिनकामको किया और तुम्हारे प्रभाव से मेरा तप विघ्नरहित होगया ॥ ५ ॥ इसके
अनन्तर हे संसारमें पवित्र चरित्रवाली दुर्गाजी ! इस महिषासुरके अशुद्ध व भयङ्कर शिरको तुम हाथ से त्याग करनेयोग्य हो ॥ ६ ॥ इसप्रकार पार्वतीजी से कही
हुई व घृणासे विकल मनवाली दुर्गाजीने उस मस्तक के गिराने के लिये हाथको बहुतही कँपाया॥७॥पार्वतीजी बोलीं कि हे देवि ! पापविनाशक नवीन तीर्थको उत्प-
न्न करिये हे दुर्गे ! उसमें स्नान करने से प्रायश्चित्त होवेगा ॥ ८ ॥ इस प्रकार पार्वतीजी से कहीहुई पापकी शङ्कावाली प्रवीण दुर्गाजी ने तलवार से पत्थर की

भावेण निष्प्रत्यूहञ्च मेतपः ॥ ५ ॥ अथैतन्माहिषंशीर्षमपवित्रंभयङ्करम् ॥ जगत्पवित्रचारित्रे त्यक्तुमर्हसिहस्ततः॥६॥
इतिगौर्योदितादुर्गा जुगुप्साकुलमानसा ॥ मूर्द्धस्तस्यनिपाताय व्यधुनोद्बहुशःकरम् ॥७॥ गौर्युवाच ॥ तीर्थमुत्पादयता
न्देवि नवंपापविनाशनम् ॥ तस्मिन्निमज्जनाद्दुर्गेप्रायश्चित्तंभविष्यति ॥ ८ ॥ इतीरितातदागौर्या दुर्गादुरितशङ्कि
नी ॥ पाटयामासखड्गेन शिलापट्टंपटीयसी ॥९॥ पातालावधिनिर्भिन्नात्पाषाणतलतस्ततः ॥ उदजृम्भत्तरङ्गाम्भःपवित्र
मतिनिर्मलम् ॥ १० ॥ ममज्जसापिगम्भीरे तस्मिन्नम्भसिपावने ॥ नमःशोणाद्रिनाथायेत्युक्त्वामन्त्रमनुत्तमम् ॥११॥
तावन्माहिषकण्ठस्थं लिङ्गन्तद्गलितन्तदा ॥ तटेप्रतिष्ठितंजातं पापनाशनसंज्ञया ॥ १२ ॥ उन्ममज्जततोदुर्गातीर्था
म्भोधूतकल्मषा ॥ निपपाताथतत्पाणेर्महिषासुरमस्तकम् ॥ १३ ॥ कृतप्रदक्षिणानत्वा पापनाशनमीश्वरम् ॥ पुरस्ता
दाससागौर्या गौतमेनाभिनन्दिता ॥ १४ ॥ एवंप्रत्यक्षनिहतपापान्तांवीक्ष्यपार्वती ॥ जगाददीर्घतपसं गौतमंमुनि

शिलाको विदारण किया ॥ ९ ॥ तदनन्तर पातालतक फूटेहुये पत्थर से अतिनिर्मल व पवित्र तरंगों से जल उत्पन्न हुआ ॥ १० ॥ और उन दुर्गाजीने भी अरुणा-
चलके लिये नमस्कार है ऐसा अतिउत्तम मन्त्र कहकर उस पवित्र जलमें स्नान किया ॥ ११ ॥ तबतक महिषासुर के गलेमें स्थित लिंग उस समय उसमें गिरकर
पापनाशक संज्ञासे किनारे पै स्थापित हुआ ॥ १२ ॥ तदनन्तर तीर्थ के जलसे पापरहित दुर्गाजी स्नानकर ऊपर निकलीं इसके अनन्तर उसके हाथसे महिषासुरका
मस्तक गिरपड़ा ॥ १३ ॥ प्रदक्षिणा को कियेहुई पार्वती व गौतमजी से प्रशंसित वे दुर्गाजी पापनाशक ईश्वर को प्रणामकर आगे बैठगई ॥ १४ ॥ इस प्रकार प्रत्यक्ष

हीं नष्ट पातकोंवाली उन दुर्गाजी को देखकर उत्तम नितम्बवाली पार्वतीजी बड़ी तपस्यावाले गौतमजी से बोलीं ॥१५॥ कि महिषासुर के नाश करनेके लिये यथार्थ बुद्धि कीगई और इस विन्ध्यवासिनीने दुष्ट महिषासुर के शरीर को ॥१६॥ ग्रहणकर भक्षण किया उसीका यह शिवलिंग है इस लिये हे मुनिश्रेष्ठ ! मेरे भी प्रायश्चित्तको कहिये ॥ १७ ॥ गौतमजी बोले कि हे सब संसारकी सृष्टि व पालन तथा संहार करनेवाली देवि ! हे अम्ब ! तुम्हारा ध्यान सब लोकोंके पातकों का नाशक है ॥ १८ ॥ इसपर भी संसार के चरित्र का अवलम्बनकर तुमने कहाहै क्योंकि अपनी कीहुई भी मर्यादा महात्माओं से उल्लंघन नहीं कीजाती है ॥१९॥ हे मातः ! चित्तको शुद्ध

तम्बिनी ॥ १५ ॥ महिषासुरसंहारेऽञ्जसाहन्तुम्मतिःकृता ॥ विन्ध्यवासिन्यसावेव दुष्टमाहिषविग्रहम् ॥ १६ ॥ गृहीत्वा भक्षयामास तस्यलिङ्गमिदंशिवम् ॥ प्रायश्चित्तंततोब्रूहि ममापिमुनिसत्तम ॥ १७ ॥ गौतमउवाच ॥ देविसर्वजगत्सर्गस्थितिसंहारकारिणि ॥ त्वद्ध्यानमम्बजगतां सर्वपातकनाशनम् ॥ १८ ॥ अथापिलौकिकंवृत्तमवलम्ब्यत्वयेरितम् ॥ स्वकृतापिहिमर्यादा नमहद्भिर्विलङ्घ्यते ॥ १९ ॥ अन्तःकरणकालुष्यक्षालिनीकापिसाक्रिया ॥ कथ्यतेद्य मयामातस्तत्प्रधानंविधीयताम् ॥ २० ॥ अरुणाद्रिरयंसाक्षादनलाद्रिस्तिरोहितः ॥ ज्वलतेज्योतिषास्वेन कृत्तिकापूर्णिमानिशि ॥ २१ ॥ तत्सपर्यातपश्चर्या कार्याकात्यायनित्वया ॥ तज्ज्योतिर्दर्शनात्सर्वममभीष्टन्तवसिद्ध्यति ॥ २२ ॥ इत्युक्तागौतमेनाम्बा तदाप्रभृतिदारुणम् ॥ इयंचशिवभक्ताहि शिवपूजारतासदा ॥ २३ ॥ तपश्चचारपञ्चानामग्नीनांमध्यमाश्रिता ॥ चतुर्णांशिखिनांमध्ये स्थितासूर्यंनिविष्टदृक् ॥ २४ ॥ रेजेहेमशलाकेव द्योतमानागिरीन्द्रजा ॥

करनेवाला वह कर्म आज मुझसे कहाजाता है सावधान विधान होवे याने उसको सावधान होकर सुनिये ॥२०॥ कि छिपाहुआ अग्निपर्वत यह साक्षात् अरुणाचल कृत्तिका नक्षत्रसंयुत पूर्णमासी में अपने तेजसे प्रकाशितहोताहै ॥२१॥ हे कात्यायनि ! उसकी सेवा व तपस्या तुमको करनाचाहिये क्योंकि उसकी ज्योतिके दर्शन से तुम्हारा सब मनोरथ सिद्धहोगा ॥ २२ ॥ गौतमजी से ऐसा कहीहुई इन शिवभक्त पार्वतीजी ने तबसे लगाकर सदैव शिवजी के पूजन में परायण होकर व पांचों अग्नियोंके मध्यमें स्थित होकर भयङ्कर तप किया चार अग्नियों के बीचमें स्थित व सूर्यनारायणमें दृष्टिको लगायेहुई ॥ २३। २४ ॥ प्रकाशित होती हुई गिरिराज-

नन्दिनी पार्वतीजी सोनेकी सलाईकीनाईं शोभितहुईं इसके अनन्तर पार्वतीजी के बड़ेलम्बे प्रेमपाशों से खींचीहुईसी वह कार्त्तिकी पौर्णमासी उत्तम तिथि भलीभांति प्राप्तहुई ॥ २५ ॥ तदनन्तर उस दिनके अन्तमें अरुणाचलके शिखरपै उपाधिरहित ऐश्वर्यवाली कोईभी अपूर्व ज्योति देखपड़ी ॥ २६ ॥ और उसके लिये आयेहुये देवर्षियों समेत ब्रह्मा विष्णु व इन्द्रादिक देवताओं से उपासना किये जाते हुये ॥ २७ ॥ उस बिन इन्धन व बिन स्नेह (तैल) वाले व बिन रुई की बत्ती से उत्पन्न बड़ेभारी दीपक को देखकर पार्वतीजी विस्मयको प्राप्तहुईं ॥ २८ ॥ इसके अनन्तर पगपग पै प्रणाम करती प्रदक्षिणा को कियेहुई पर्वतनन्दिनीजी ने उस

अथाकृष्टेवपार्वत्याः प्रेमपाशैर्निरायतैः ॥ साकार्त्तिकीपौर्णमासी समापेदेशुभातिथिः ॥ २५ ॥ ततस्तस्यदिनस्यान्ते शृङ्गेशोणमहीभृतः ॥ अदर्शिकिमपिज्योतिरनुपाधिकवैभवम् ॥ २६ ॥ तदर्थोपागतैर्ब्रह्ममधुभिद्वासवादिभिः ॥ उपास्यमानमभितो देवैर्दिव्यर्षिसङ्गतैः ॥ २७ ॥ तदनिन्धनमस्नेहमतूलवर्त्तिसम्भवम् ॥ महाप्रदीपमालोक्य विस्मयं प्रापपार्वती ॥ २८ ॥ कृतप्रदक्षिणासाथ प्रणमन्तीपदेपदे ॥ अरुणाद्रीश्वरंनाथं तदातुष्टावशैलजा ॥ २९ ॥ नमस्तेमेरुवामाय कैलासाचलवासिने ॥ नीहारशैलजामात्रे शोणक्ष्माधररूपिणे ॥ ३० ॥ वरुणादिसुरार्च्याय तरुणादित्यवर्चसे ॥ अरुणाचलनाथाय करुणामूर्त्तयेनमः ॥ ३१ ॥ जयजह्नुसुताचन्द्रलेखालंकृतशेखर ॥ सौन्दर्यमोहिताशेषमुनिपत्नीजनाशय ॥ ३२ ॥ जयशैलसुतासङ्गसंभृतानङ्गवैभव ॥ मायानारायणाभोगक्रीडाकरणपण्डित ॥ ३३ ॥ ज

समय उन अरुणाचलेश्वरजी की स्तुतिक्रिया ॥ २९ ॥ कि सुमेरुगिरिवासी आपके लिये प्रणाम है व कैलासपर्वत पै बसनेवाले हिमाचलके दामाद अरुणाचलरूपी आपके लिये प्रणाम है ॥ ३० ॥ वरुणादिक देवताओं से पूजनीय व मध्यदिन में सूर्यनारायण के समान तेजवाले दयामूर्त्ति अरुणाचलेशजी के लिये नमस्कार है ॥ ३१ ॥ हे जह्नुकी कन्या श्रीगंगाजी से व चन्द्रमा की कलासे शोभित मस्तकवाले ! आपकी जयहो हे सौंदर्य से मुनिपत्नियों के आशय को मोहनेवाले ! आपकी जयहो ॥ ३२ ॥ हे पार्वतीजीके संगमें कामदेवके ऐश्वर्यको धारण करनेवाले, मायासे नारायणकी परिपूर्णतामें क्रीड़ा करनेके लिये चतुर ! आप

की जयहो ॥ ३३ ॥ हे शम्भो, ईशान, अपने आनन्दके लिये ताण्डव (नृत्य) करनेवाले शिवजी ! आपकी जयहो हे देवता, गन्धर्व, सिद्ध व विद्याधरों से पूजित ! आपकी जयहो ॥ ३४ ॥ हे गणेशके पिताजी ! जयहो हे स्वामिकार्त्तिकेयप्रिय ! आपकी जयहो हे हैमवती (पार्वती) जी से प्रार्थना करनेयोग्य ! आपकी जयहो हे नृपतिदुर्लभ ! आपकी जयहो ॥ ३५ ॥ इस प्रकार प्रसन्नता से स्तुतिकर उस ज्योतिमें नेत्रोंको लगायेहुई पार्वतीदेवीजी को देखकर सदाशिवजी दयाके बहानेसे अन्तर्द्धानहोगये ॥३६॥ और लीनहोकर अपने अत्यन्त सुन्दररूप को प्राप्त होकर व दिव्य बैलपर सवार होकर इन उत्तम पार्वतीजीको देखकर ॥३७॥ मान

यशम्भोशिवेशान स्वानन्दकृतताण्डव ॥ जयगीर्वाणगन्धर्वसिद्धविद्याधरार्चित ॥ ३४ ॥ जयहेरम्बजनक जयषण्मुखवत्सल ॥ जयहैमवतीप्रार्थ्य जयपार्थिवदुर्लभ ॥ ३५ ॥ इतिस्तुत्वामुदातस्मिंज्ज्योतिषिन्यस्तलोचनाम् ॥ दृष्ट्वादेवीन्दयाव्याजान्निलिल्येवृषभध्वजः ॥ ३६ ॥ लयित्वानिजमास्थाय रूपमत्यन्तसुन्दरम् ॥ आस्थायवृषभंदिव्यमिमान्दृष्ट्वाशिवांशुभाम् ॥ ३७ ॥ मानातिरेकादपहायसर्वमैश्वर्यमेवंतपसिस्थितांताम् ॥ मुग्धांपुनःसान्त्वयितुंगिरीशः प्रचक्रमेपर्वतराजपुत्रीम् ॥ ३८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽरुणाचलमाहात्म्येत्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥ * ॥

नन्दिकेश्वरउवाच ॥ तदाब्रह्मासरस्वत्या महाविष्णुश्चपद्मया ॥ शक्रःपुलोमसुतया परेदिक्पालकाअपि ॥ १ ॥ गन्धर्वाप्सरसांसङ्घा वसवोपिसुराअपि ॥ त्रयस्त्रिंशतकोटिगणाः सुरामुनिगणास्तथा ॥ २ ॥ एकादशमहारुद्रा आदि

की अधिकता से सब ऐश्वर्य को छोड़कर इस प्रकार तपस्या में स्थित मुग्ध थोड़ी अवस्थावाली पार्वतीजीको फिर समझाने के लिये सदाशिवजीने प्रारम्भ किया ॥ ३८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽरुणाचलमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांत्रयस्त्रिंशोऽध्यायः॥ ३३ ॥ ॥

दो० । तब प्रसन्न है शिव यथा कह्यो उमासन बैन । चौंतिसवें अध्यायमें सोइ चरित सुखऐन । नन्दिकेश्वरजी बोले कि उस समय सरस्वती समेत ब्रह्मा व लक्ष्मी समेत विष्णु तथा इन्द्राणी समेत इन्द्रजी और दिक्पालभी ॥१॥ व गन्धर्व तथा अप्सराओंके गण व वसु देवता भी और तैंतीस कोटि देवगण व मुनिगणभी॥ २ ॥

और गेरह महारुद्र व बारह सूर्य तथा भैरव पिशाच, वेताल व कटपूतना ॥ ३ ॥ यक्ष, राक्षस, प्रेत, भूत व जो अन्य शिवजी के सेवक थे वे सब सन्तोषभागी हजारोंगण भयङ्कररूप से संयुत होकर शिवजी को घेरकर प्राप्तहुये ॥ ४ ॥ और योगिनी व दानवोंसे कीहुई अतिभयदायिनी उस युद्धभूमि को कल्पान्तके समान भयानक देखकर सब बहुतही, विस्मय को प्राप्तहुये ॥ ५ ॥ व समीपता कियेहुये शिवजी को देखकर आनन्द देतीहुई पार्वतीजीने बहुत दिनो से दृढ़ उस वियोग के दुःखको त्याग किया ॥ ६ ॥ और रोमाञ्च संयुत व पसीना संयुत मुखवाली तथा कांपतीहुई व कठोर स्तनोंवाली उन पार्वतीजीने चरणोंकी अंगुलियोंमें नेत्रों

त्याद्वादशाअपि ॥ भैरवाश्चपिशाचाश्च वेतालाःकटपूतनाः ॥ ३ ॥ यक्षरक्षःप्रेतभूता येचान्येशिवकिङ्कराः ॥ सन्तोषभाजःसर्वेपि भीमरूपेणसंयुताः ॥ परिवार्य्यमहेशानं समाजग्मुःसहस्रशः ॥ ४ ॥ तद्वीराःसंशयंदृष्ट्वा योगिनीदानवैःकृतम् ॥ अतीवविस्मयम्भेजुः सर्वेकल्पान्तभीषणम् ॥ ५ ॥ कृतसान्निध्यमालोक्य देवमानन्दयत्युमा ॥ चिररात्रप्ररूढाञ्च तद्वियोगव्यथाञ्जहौ ॥ ६ ॥ रोमाञ्चितास्विन्नमुखीवेपमानाघनस्तनी ॥ पादाङ्गुलीषुनयने विनिवेशयतिस्मसा ॥ ७ ॥ वृषभादवरुह्याथ गृहीत्वैनांकरेशिवः ॥ स्मयमानमुखाम्भोजः प्रणयेनैवमब्रवीत् ॥ ८ ॥ व्याकुलीक्रियतेदेवि किमेतत्कारणंविना ॥ सर्वैराराधनीयेति मयापिघटिताञ्जलिः ॥ ९ ॥ किंनवेत्स्यावयोरैक्यं ज्योत्स्नाचन्द्रमसोरिव ॥ आनीतंप्रथमंदेवि तवेदम्भोग्यमीदृशम् ॥ १० ॥ क्वेदंशिरीषमृद्वङ्गि शरीरन्तेगिरीन्द्रजे ॥ पुनःसमाधयश्चेति क्वकर्कशजनोचिताः ॥ ११ ॥ नारायणोहंलक्ष्मीस्त्वं ब्रह्मास्मित्वंसरस्वती ॥ वारुणीत्वंफणीन्द्रोहं रोहिणीत्वमहंश

को लगाया ॥ ७ ॥ इसके अनन्तर बैलसे उतरकर इन पार्वतीजी के हाथको पकड़कर मुसक्यातेहुये मुखकमलवाले सदाशिवजी प्रेमहीसे इसप्रकारबोले ॥८॥ कि हे देवि ! यह क्याहै कि बिन कारण चित्त व्याकुल कियाजाताहै तुम सबोंसे आराधन कीजातीहो इसलिये मैंनेभी अंजलि किया याने हाथोंको जोड़ा ॥ ९ ॥ क्या उजियाली व चन्द्रमाकीनाईं जो हमारी तुम्हारी एकता है उसको नहीं जानतीहो हे देवि ! पहले तुम्हारे भोगनेयोग्य यह ऐसा शरीर प्राप्त कियागयाहै ॥ १० ॥ हे सिरसा के फूलके समान कोमल अङ्गोंवाली, गिरिराजकुमारि ! कहां तुम्हारा यह शरीर और फिर कठोरजनोंके योग्य कहा समाधियाहैं ॥ ११ ॥ मै नारायणहूं तुम

लक्ष्मीहो व मैं ब्रह्माहूं और तुम सरस्वतीहो व तुम वारुणीहो मैं सर्पराजहूं तुम रोहिणीहो और मैं चन्द्रमाहूं ॥१२॥ तुम स्वाहाहो मैं अग्निहूं और मैं ... हूं तुम सुवर्चला
हो और तुम पुलोमादैत्यकी कन्याहो मैं इन्द्रहूं तुम रतिहो व मैं कामदेवहूं ॥१३॥ तुम बुद्धिहो और मैं राजराजहूं तुम शिवाहो और मैं पवनहूं मैं जलजन्तुओंका स्वामी
हूं तुम वीचि (लहरी) हो व तुम प्रकृतिहो और मैं पुरुषहूं ॥ १४ ॥ तुम विद्याहो और मैं जाननेयोग्यहूं व हे पार्वति ! तुम वाणीहो मैं अर्थहूं और मैं ईश्वरहूं और
मेरे अंशवाली तुम्ही आज्ञारूपिणी हो ॥ १५ ॥ हे सृष्टि, पालन व संहार करने में अनुग्रहेश्वरि ! हममें व तुममें किसीको साधारणजनों की नाईं भेद न करना

शी ॥१२॥ स्वाहात्वंहव्यवाहोहं सूर्योहन्त्वंसुवर्चला ॥ पुलोमजात्वंशक्रोहं त्वंरतिश्चित्तभूरहम् ॥ १३ ॥ बुद्धिस्त्वंराज
राजोहं त्वंशिवाहंसमीरणः ॥ यादोधिपोहंवीचिस्त्वं प्रकृतिस्त्वंपुमानहम् ॥ १४ ॥ विद्यात्वंवेदितव्योहं वाक्त्वमर्थो
स्मिपार्वति ॥ ईश्वरोहंमदंशासि त्वमेवाज्ञास्वरूपिणी ॥ १५ ॥ सृष्टिस्थित्युपसंहारविधानानुग्रहेश्वरि ॥ नभेदःकेनचि
त्कार्यः पृथग्जनवदावयोः ॥ १६ ॥ चित्प्रकाशात्मनोर्देविस्वेच्छाधृतशरीरयोः ॥ व्याकुलीकुरुषेशश्वत्कथन्त्वंगि
रिनन्दिनि ॥ १७ ॥ इत्युक्त्वेशोनिषण्णस्तांपार्श्वदेशेन्यवेशयत ॥ १८ ॥ गौरींस्वकीयवामाङ्गेगूहमानामिवाह्रिया ॥ अ
ङ्गद्वयंतयोरैक्यमगात्प्रणयाचलीनयोः ॥ १९ ॥ अर्थद्वयमिवाभाति सन्निकर्षोपलम्भतः ॥ अर्द्धकर्पूरधवलमर्द्धसिन्दूर
पाटलम् ॥ २० ॥ तद्विचित्रमभूदङ्गं शिवयोरेकतागतम् ॥ अर्द्धकुन्तलदामार्धे हारमर्धेतुकाञ्चिका ॥ २१ ॥ एकनूपुर

चाहिये ॥ १६ ॥ हे देवि ! जोकि हम तुम अपनी इच्छासे शरीरको धारणकिये व चित्प्रकाशात्मक हैं हे गिरिनन्दिनि ! सदैव तुम क्यों चित्तको व्याकुल करतीहो ॥
१७ ॥ ऐसा कहकर बैठेहुये सदाशिवजी ने उन पार्वतीजी को समीपही अपने बायें भागवाले अङ्गमें बिठालिया जोकि लज्जा से मानो छिपीजाती थी प्रेमसे मिले
हुये उन दोनोंके अङ्गोंकी एकता होगई ॥ १८ । १९ ॥ मानो समीपहीमें प्राप्तिसे दो अर्थ शोभितहैं आधाअंग कपूरके समान श्वेत व आधा सिन्दूरकेसमान श्वेत तथा
अरुणवर्ण है ॥ २० ॥ एकतामें प्राप्त पार्वती व शिवजीका वह अंग विचित्र होगया कि आधे शिरमें घुँघुवारे बालोंमें फूलोंकी माला व आधेमें हार और आधेमें क्षुद्रघ-

रिटका है ॥२१॥ व एकओर घुंघुरू भुमका तथा कङ्कणसे मनोहरहै सदाशिवजीने अपने बायें अर्द्धांगको देवीजीकेलिये देकर उनसे बोले ॥ २२ ॥ कि हे देवि ! इसके
उपरान्त तुम्हारे क्रोधका अवकाश मत होवे जिस लिये तुम दूधको चाहनेवाले स्वामिकार्त्तिकेयजी को छोड़कर तपस्या के लिये गईथी ॥ २३ ॥ इस लिये अपी-
तस्तनी नामसे यहां मेरे समीप बसिये और हे देवि ! अपीतस्तनी नामक तुमको व अरुणाचलेश नामक मुझकोभी ॥२४॥ भलीभांति आराधनकर सब मनुष्य भोग
व मोक्षमें रमणकरैं और मनुष्यों की मन्त्रसिद्धिको देनेवाली व महिषासुरको मारनेवाली तुम्हारे अंशसे उत्पन्न ये दुर्गादेवीजी यहीपर भलीभांति साधनाकरैं और

ताटङ्कपारिहार्यमनोहरम् ॥ देव्यैदत्त्वास्ववामार्धं वामदेवोजगाद ताम् ॥२२॥ अवकाशोरुषोदेवि माभून्नातःपरन्तव ॥ स्त
न्यार्थिनंगुहंहित्वा यातासितपसेयतः ॥ २३ ॥ तदपीतस्तनीनाम्ना निवसात्रममान्तिके ॥ त्वामपीतस्तनीन्देवि शोणा
द्रीशञ्चमामपि ॥ २४ ॥ जनाःसर्वेसमाराध्य रमन्ताम्भोगमोक्षयोः ॥ इयन्त्वदंशजादेवी दुर्गामहिषसूदिनी ॥ २५ ॥
अत्रैवसंसाधयतां मन्त्रसिद्धिप्रदान्नृणाम् ॥ खड्गतीर्थमिदंपुण्यं सकृदेवनिमज्जनात् ॥ २६ ॥ सर्वरोगहरंपुंसामस्तुस
र्वाघनाशनम् ॥ प्रवालगिरिनाथश्च देवोयंपापनाशनः ॥ २७ ॥ भक्तिश्रद्धावतांनृणाम्भूयाद्वैभूतयेभृशम् ॥ अयञ्च
गौतमोदेवि त्वदनुग्रहभाजनम् ॥ २८ ॥ तपोनुरूपम्भजताल्लोकेह्याचन्द्रतारकम् ॥ इमाश्चमातरःसप्त सप्तलोकैकमात
रः ॥ २९ ॥ अद्यप्रभृतिकुर्वन्तु सान्निध्यञ्चतवाश्रये ॥ शास्तारौभैरवाःक्षेत्रपालकावटुकाअपि ॥३० ॥ अरुणक्षेत्रए
वात्र नित्यंकुर्वन्तिसन्निधिम् ॥ अत्राहमरुणक्षेत्रे सुलभाःसर्वसिद्धयः ॥ ३१ ॥ इदंकृतंपर्वतराजपुत्र्या प्रसादनंशोणगि

यह पुण्यदायक खड्गतीर्थ एकही बार स्नान करने से ॥ २५। २६ ॥ मनुष्यों के समस्त रोगोंको हरनेवाला व समस्त पातकों का नाशक होवैगा और ये प्रवाला-
चलेश शिवदेवजी पापनाशक ॥ २७॥ व भक्ति श्रद्धावाले पुरुषों के बहुतही ऐश्वर्य के लिये होवैंगे व हे देवि ! तुम्हारी दयाके पात्र ये गौतमजी ॥ २८ ॥ तपस्या के
अनुसार तबतक भजैं संसार मे जबतक चन्द्रमा व नक्षत्र रहैं और सातोंलोकों की एकमातायें ये सात मातृका ॥ २९ ॥ आजसे लगाकर तुम्हारे आश्रय में समीपता
करैं और शिक्षा करनेवाले भैरव क्षेत्रपाल व वटुक भी ॥३०॥ नित्य इस अरुणक्षेत्रहीमें समीपता करतेहैं और यहां पर मैं स्थितहूं व इस अरुणक्षेत्र में सब सिद्धियां

सुलभ है ॥ ३१ ॥ पर्वतराज हिमालयकी कन्या से अरुणाचलेशजी की कीहुई इस प्रसन्नताको जो सुनता है वह शत्रुओं को नाशकर सुलभ स्वर्ग मोक्षको प्राप्तहोता है ॥ ३२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽरुणाचलमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांचतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

दो० । सूत अरु अश्व दोऊ यथा छोड्यो निज निज रूप । पैंतिसवें अध्याय में सोई चरित अनूप ॥ मार्कण्डेयजी बोले कि हे स्वामिन्, नित्यशिवानन्द, भगवन्, नन्दिकेश्वरजी ! तुमने अरुणाचलेशजी के माहात्म्यरूपी अमृतसे मुझ को प्रसन्न किया ॥ १ ॥ पाण्ड्यदेश के राजा वज्रांगद ने किस प्रकार अरुणाचल

रीश्वरस्य ॥ शृणोतियःसद्विषतोवधूय स्वर्गापवर्गौसुलभावुपेयात् ॥ ३२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽरुणाचलमाहात्म्ये चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

* ॥ * ॥ * ॥ * ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥ स्वामिन्नित्यशिवानन्द भगवन्नन्दिकेश्वर ॥ आह्लादितोस्मिशोणेशमाहात्म्यसुधयात्वया ॥ १॥ कथंवज्राङ्गदःपाण्ड्यराजःशोणंव्यतिक्रमम् ॥ चक्रेकथंतद्भक्त्यैव प्राप्तवान्सम्पदम्पुनः ॥ २॥ कथंविद्याधराधीशौ कान्तिशालिकलाधरौ ॥ दुर्वासःशापनिर्बन्धान्मोचितौशोणशम्भुना ॥ ३ ॥ नन्दिकेश्वरउवाच ॥ दीर्घायुष्मन्त्वसाफल्यंलब्धवांस्त्वंमृकण्डुज ॥ यदियंश्रेयसीभक्तिर्भवतोभूतनायके ॥४॥ वक्ष्येवज्राङ्गदोदन्तमहंविद्याभृतोह्यपि ॥ यतोभून्महितंलोके शोणाद्रीश्वरवैभवम् ॥ ५ ॥ आसीद्वज्राङ्गदोनाम पाण्ड्यदेशेषुपार्थिवः ॥ आस्तेयस्यभुजस्तम्भेव सुधासागरान्तका ॥६॥ धार्मिकोन्यायविद्धान्तो गम्भीरोदाक्षिणःक्षमः॥शान्तोविनयवान्धीमानेकदारव्रतःकृती॥७॥

का व्यतिक्रम किया है व फिर किसप्रकार उनकी भक्तिसे लक्ष्मीको पायाहै ॥२॥ और कान्तिशाली व कलाधर विद्याधरों के स्वामीभी किस प्रकार अरुणाचलेशजी से दुर्वासाजी के शापके निबन्धन से छुड़ायेगये हैं ॥ ३ ॥ नन्दिकेश्वरजी बोले कि हे मृकण्डुजी के पुत्र मार्कण्डेयजी ! तुमने दीर्घायुर्बल की सफलता को पाया जोकि भूतनाथ शिवजी में आपकी यह कल्याणकारिणी भक्ति है ॥ ४ ॥ मैं वज्रांगद के वृत्तान्त को कहताहूं कि जिस विद्याधर से संसार में अरुणाचलेशजी का ऐश्वर्य पूजितहुआहै ॥ ५ ॥ पाण्ड्यदेशों में वज्रांगद नामक राजा हुआहै कि जिसके भुजारूपी स्तम्भमें समुद्र अन्तवाली पृथ्वी हुई है ॥ ६ ॥ वह राजा धर्मवान्, न्यायका

जाननेवाला तथा इन्द्रियजित् व गम्भीर, चतुर व समर्थ था और शान्त, विनयसंयुत, बुद्धिमान् व पुण्यवान् और एकही स्त्रीसे भोग करनेवाला था ॥ ७ ॥ शिवपूजन में तत्पर, श्रीमान् व शीलवालों में श्रेष्ठ तथा शत्रुवों को जीतेहुये उसने इस समस्त पृथ्वीका पालन किया ॥ ८ ॥ किसी समय घोड़े समेत शिकार खेलताहुआ वह अरुणाचल तक वनमें भ्रमताभया ॥ ९ ॥ वहापर उसने बहुत सुगन्धवाले किसी कस्तूरीवाले मृगको देखकर उसके पीछे कौतुक से घोड़ेको प्रवृत्त कराया याने चलाया ॥ १० ॥ सबओर घेरतेहुये उन राजा से घिराहुआ वह पवन व मनके समान वेगवाला मृग अरुणाचल की प्रदक्षिणा से सबओर चलताभया ॥ ११ ॥ तदन-

शिवपूजासुनिरतः श्रीमाञ्छीलवतांवरः ॥ पृथ्वीमिमाञ्चसकलां शशासजितशात्रवः ॥ ८ ॥ सकदाचिन्मृगव्यान्तु सञ्चरन्सतुरङ्गमः ॥ अरुणाचलपर्यन्तं कान्तारंसमगाहत ॥ ९ ॥ सतत्रबहुलामोदं कञ्चित्कस्तूरिकामृगम् ॥ दृष्ट्वातमन्वकुरगं प्रावर्तयतकौतुकात् ॥ १० ॥ समृगोरुन्धतातेनभ्रमितःशोणपर्वतम् ॥ प्रादक्षिण्यात्परीयाय पवमानमनोजवः ॥ ११ ॥ ततोवज्राङ्गदोनाम राजाजातश्रमस्त्वरन् ॥ पपातवाहाद्विच्छायः क्षीणपुण्यइवाभ्रतः ॥ १२ ॥ मध्यंदिनगतेनैव मार्तण्डेननिपीडितः॥ नाज्ञासीत्क्षणमात्मानंराजाग्रहगृहीतवत् ॥ १३ ॥ अचिन्तयच्चकायंमे निर्हेतुःसत्त्वविप्लवः ॥ क्वगतःसमृगःस्थेयान् मामद्राविहत्यज्यच ॥ १४ ॥ इतिचिन्ताकुलेतस्मिन्नज्ञानेनचदुःखिते ॥ तडित्पुञ्जैश्चव्याप्तेव सहसाद्यौरदृश्यत ॥ १५ ॥ निरीक्षमाणएवास्मिन्हित्वातिर्यक्कलेवरम् ॥ क्षणात्तुरङ्गसारङ्गौ खेचरत्वमुपा

न्तर शीघ्रता करतेहुये वज्रागद नामक राजा परिश्रमसंयुत होकर घोड़े से कान्तिहीन होकर गिरपड़े जैसे कि क्षीणपुण्यवाला पुरुष आकाश से गिरै ॥ १२ ॥ और दुपहरके मध्यमें प्राप्त सूर्यनारायणजी से पीड़ित राजाने ग्रह (भूतादि) से पकड़े हुये की नाई क्षणभर अपना को नहीं जाना ॥१३॥ और चिन्तन किया कि यह मेरे बलका नाश कहांसे होगया और अत्यन्त स्थिर वह मृग इस पर्वत पै मुझको छोड़कर कहांगया ॥ १४ ॥ इस प्रकार जब अज्ञान से दुःखित वह राजा चिन्तासे विकल हुआ तब बिजली के समूहों से व्याप्तसा आकाश देखपड़ा ॥ १५ ॥ और इस के देखनेही पर पशुवाले शरीर को छोड़कर क्षणभर में घोडा व मृग आकाशगा-

मित्वको प्राप्तहुये ॥ १६ ॥ व किरीट तथा कुण्डलको धारे और हार व बजुल्लाको धारण किये व रेशमी धोती पहने और मालाओं को धारेहुये वे दोनों शोभित हुये ॥ १७ ॥ इसके अनन्तर दांतों के किरणसमूहों से उसके बड़ेभारी अन्धकार को हरते हुयेसे वे दोनों आश्चर्य से खींचेहुये मनवाले राजासे बोले ॥ १८ ॥ कि हे राजन् ! विषादसे कुछ कार्य नहीं है हम दोनोंही की पैदाहुई इस ऐसी दशाको ग्रहणाचलके प्रभावसे जानिये ॥ १९ ॥ उस समय उन दोनोंके वचनसे कुछ सहँतायेहुयेसे नम्रता समेत राजा हाथोंको जोड़कर उन दोनोंसे बोले ॥ २० ॥ कि हे कल्याणरूप ! तुम दोनों कौन हो और मेरा यह तिरस्कार किस कारण हुआ इसको

गतौ ॥ १६ ॥ किरीटिनौ कुण्डलिनौ हारकेयूरधारिणौ ॥ क्षौमान्तरीयौ द्वौचापि स्रग्विणौ चविरेजतुः ॥ १७ ॥ अथो चतुस्तंनृपतिमाश्चर्याकृष्टमानसम् ॥ हरन्ताविवदन्तांशुजालैस्तस्यमहत्तमः ॥ १८ ॥ राजन्नलंविषादेन शोणाद्रीश प्रभावतः ॥ एतांजानीहिसञ्जातां द्वयोश्चैवदशांन्दशाम् ॥ १९ ॥ तदावाचातयोःकिञ्चिदाश्वस्तइवपार्थिवः ॥ कृताञ्जलिरभाषिष्ट तावुभौविनयान्वितः ॥ २० ॥ कौयुवांकिंनिमित्तोयमभिषङ्गोममेदृशः ॥ भद्रौभणतमार्तानां त्राणोहि महतांगुणः ॥ २१ ॥ इतितेनकृतेप्रश्ने तमुवाचकलाधरः ॥ राजानंजनिताश्चर्यं निर्दिष्टःकान्तिशालिना ॥ २२ ॥ आवैहिराजन्नावांहि पुराविद्याधरेश्वरौ ॥ परस्परातिसौहार्दौवसन्तमदनाविव ॥ २३ ॥ एकदातुसुवर्णाद्रेः पार्श्वेदुर्वाससो मुनेः ॥ तपोवनमगच्छाव मनसापिदुरासदम् ॥ २४ ॥ क्रोशेचतपसस्तस्य शिवाराधनसाधनीम् ॥ पुष्पोज्ज्वलामपश्याव पुण्यामारामवाटिकाम् ॥ २५ ॥ वनेद्वावपिसञ्जातौ तत्त्वचिन्तननैपुणौ ॥ प्रविशावस्तदुद्यानं प्रसूनापचयो

कहिये क्योंकि दुःखियों की रक्षा करना महात्माओं का गुणहै ॥ २१ ॥ जब उस राजाने ऐसा प्रश्न किया तब कांतिशाली से बतलायेहुये कलाधरने पैदाहुये आश्चर्यवाले उस राजा से कहा ॥ २२ ॥ कि हम दोनोंको पुरातन समयके विद्याधर जानिये जोकि आपस में बड़ी मित्रतासे वसन्त व कामदेवकी नाईं थे ॥ २३ ॥ एकसमय सुमेरुगिरि के समीप मनसे भी दुःखसे जानेयोग्य दुर्वासामुनि के तपोवन को गये ॥ २४ ॥ और कोसभर पै शिवजी के आराधनको साधन करनेवाली उन मुनिकी तपस्या से पुण्यदायिनी व पुष्पोंसे उज्ज्वल बगीचा को हम दोनों ने देखा ॥ २५ ॥ और यथार्थ की चिन्ता में निपुण हम दोनों जन वनमें गये व फूलों के

तोड़ने में उत्कण्ठित हम दोनों उस वनमें पैठगये ॥ २६ ॥ उस स्थान के प्रेम से यह गर्वित कांतिशाली बार बार चरणों के धरने से पृथ्वीको घिसताहुआ भ्रमता भया ॥ २७ ॥ और वहां पुष्पोंकी बड़ीभारी सुगन्ध से मोहित तथा दुष्ट आशयवाला मैं फूलनेवाले फूलों में हाथों को धरताभया ॥ २८ ॥ तदनन्तर बिल्वकी जड़में स्थित व व्याघ्रचर्म के आसन पै बैठेहुये तपस्या की राशि दुर्वासाजी जलतीहुई अग्नि की नाईं टिकेथे ॥ २९ ॥ और क्रोधकी अधिकता के वशसे चलतेहुये ओंठोंवाले व भयानक भौंहोंके बन्धन से चलायमान लोचनोंवाले ॥ ३० ॥ दुर्वासामुनिजी ने नेत्रसे जलातेहुये से देखा तदनन्तर समीप आये ॥ ३१ ॥ व बोले कि हे पापियो!

त्सुकौ ॥ २६ ॥ स्थलस्यतस्यसौहार्दात्कान्तिशाल्येषगर्वितः ॥ सञ्चारमुहुःपादन्यासैराघट्टयन्महीम् ॥ २७ ॥ अह न्तुतत्रपुष्पाणां गन्धातिशयमोहितः ॥ विकस्वरेषुपुष्पेषु न्यस्तहस्तोदुराशयः ॥ २८ ॥ ततःशाण्डिल्यमूलस्थो व्याघ्रचर्मासनेस्थितः ॥ दुर्वासास्तपसांराशिर्ज्वलन्निवहुताशनः ॥ २९ ॥ अमर्षोत्कर्षवशतः स्पन्दमानाधरच्छदः ॥ कराल भ्रूकुटीबन्धसञ्चालितविलोचनः ॥ ३० ॥ दहन्निवदृशापश्यन्नुपासर्पत्ततोमुनिः ॥ ३१ ॥ आःपापौप्रच्युताचारौ युवामत्यन्तगर्वितौ ॥ ज्वलतःकोपवह्नेर्मे शलभत्वमुपागतौ ॥ ३२ ॥ तपोवनमिदंमह्यं पावनम्भूतभावनम् ॥ पादैर्नस्पृशतःक्वापि सूर्याचन्द्रमसावपि ॥ ३३ ॥ नस्पन्दतेत्रवातोपि नलीयन्तेत्रषट्पदाः ॥ ३४ ॥ तदेतत्पादसञ्चारैर्दूषयन्नेषपातकी ॥ हयोभवतुभूलोके परारोहेणपीडितः ॥ ३५ ॥ अपरोप्ययमत्युग्रः पतत्वचलकन्दरे ॥ प्रसूनगन्धलोभार्थं गन्धसारङ्गतांगतः ॥ ३६ ॥ इतितेनोग्ररोषेण वचोवज्रेनिपातिते ॥ तत्क्षणाद्विगलद्गर्वावावान्तच्छरणङ्गतौ ॥ ३७ ॥

छूटेहुये आचारवाले तुम दोनों गर्वित होकर मेरी जलतीहुई कोपाग्नि की शलभताको प्राप्तहुये ॥ ३२ ॥ प्राणियों को उत्पन्न करनेवाले इस मेरे पवित्रकारक वनको कभी सूर्य चन्द्रमा भी चरणों से नहीं स्पर्श करतेहैं ॥ ३३ ॥ यहां पवन भी नहीं चलता है व यहां भ्रमर भी नहीं लीन होतेहैं ॥ ३४ ॥ इस लिये चरणों के चलानेसे वनको दूषित करताहुआ यह पापी पृथ्वीलोक में अन्य की सवारी से पीडित होकर घोड़ा होवै ॥ ३५ ॥ व अत्यन्त उग्र यह अन्य भी फूलोंके लोभके लिये सुगन्धवाले मृगत्वको प्राप्त होकर पर्वतकी कन्दरामें गिरै ॥ ३६ ॥ इसप्रकार उनसे उग्ररोषकरके वचनरूपी वज्रके गिरानेपर उसीक्षण अहङ्काररहित होकर हमदोनों उनकी शरण

में प्राप्तहुये ॥ ३७ ॥ और उन देवताके समीप जाकर व चरणकमलोंको पकड़कर कहा कि तुम्हारा शाप व्यर्थ नहीं होताहै इसलिये इसके अन्तको कहिये ॥३८॥इस
के अनन्तर हे राजन्! बहुत उदासीनमनवाले हम दोनोंको देखकर दयाकी वृष्टिसे शीतल वे मुनि दयासंयुतहुये॥३९॥ और बोले कि हे दुर्बुद्धियो! इसप्रकार कभी मत
होना और अरुणाचल की प्रदक्षिणासे शापका अन्तहोगा ॥ ४० ॥ पुरातन समय सैकड़ों वर्षतक इन्द्र, उपेन्द्र व यमादिक दिक्पालों ने अरुणाचल शिवजीकी उपा-
सना कियाहै ॥ ४१ ॥ और उससमय नन्दनवनके देवताने किसी श्वेत व अरुणवर्णवाले फलको उपायन किया याने भेंटमें दिया ॥ ४२ ॥ शिशुताके कारण कौतुकसे

अभिसृत्यचतन्देवं गृहीत्वाङ्घ्रिसरोरुहौ ॥ अमोघएषत्वच्छापस्तदस्यान्तोनिवेद्यताम् ॥ ३८ ॥ अथातिदीनमनसा
वावामालोक्यपार्थिव ॥ सानुग्रहोभूत्समुनिः कारुण्यासारशीतलः ॥ ३९ ॥ अभाषतचमैवम्भो भवतःक्वापिदुर्धियौ ॥
शापस्यभविताशान्तिररुणाद्रेःप्रदक्षिणात् ॥ ४० ॥ पुराखलुपुरारातिररुणाद्रिःशतंसमाः ॥ पर्युपास्यतदिक्पालै
रिन्द्रोपेन्द्रयमादिभिः ॥ ४१ ॥ तदाचदेवदेवाय नन्दनारण्यदेवताम् ॥ उपायनंकृतवती फलंकिमपिपाटलम् ॥ ४२ ॥
बाल्यात्कुतूहलाकृष्टौ गजाननषडाननौ ॥ पितरंतदयाचेतां लोभनीयतरंफलम् ॥ ४३ ॥ अथताववदद्देवस्तनयौफ
लतर्षितौ ॥ गोपायित्वाफलंपाणिसम्पुटेनकुमारकौ ॥ ४४ ॥ इमांसमस्तांपृथिवीं लोकालोकेनवेष्टिताम् ॥ योवांप्रदक्षि
णीकर्तुमीष्टेतस्मैददाम्यहम् ॥ ४५ ॥ इत्युक्तेपार्वतीशेन स्मयमानमुखेन्दुना ॥ स्कन्दःप्रदक्षिणीकर्तुं मेदिनीमुपच
क्रमे ॥ ४६ ॥ लम्बोदरस्तुदेवस्य शोणशैलाकृतेःपितुः ॥ प्रदक्षिणक्रियांकृत्वा पुरस्तादासतत्क्षणात् ॥ ४७ ॥ तदूह

खींचे हुये गणेश व स्वामिकार्त्तिकेयजी ने उस बहुतही लुभानेवाले फलको पितासे मांगा ॥४३॥ इसके अनन्तर हाथके सपुटसे फलको छिपाकर शिवदेवजीने फलको
चाहनेवाले उन कुमार पुत्रोंसे कहा ॥ ४४ ॥ कि लोकालोक पर्वत से घिरीहुई इस समस्त पृथ्वीकी प्रदक्षिणा करनेके लिये तुम दोनोंके मध्यमें जो समर्थ होवै उस
के लिये मैं इस फलको दूंगा ॥ ४५ ॥ मुसक्यातेहुये मुख चन्द्रमावाले शिवजी के ऐसा कहनेपर स्वामिकार्त्तिकेयजी ने पृथ्वीकी प्रदक्षिणा करने के लिये प्रारम्भ
किया ॥ ४६ ॥ और गणेशजीने अरुणाचल आकारवाले पिता शिवदेवजी की प्रदक्षिणाकर उसी क्षण आगे प्राप्तहुये ॥ ४७ ॥ उन गणेशजीकी उस चतुरताको देख

कर स्नेहसे मस्तकको झुकायेहुये त्रिलोचनजी ने इन गणेशजी के लिये फलको दिया ॥ ४८ ॥ आजसे लगाकर तुम सब फलोंके स्वामी होवो गणेशजी के लिये इस वरदान को देकर तदनन्तर फैलीहुई दांतोंकी उजियाली से कन्दरा को श्वेत कियेहुये सदाशिवजीने वहां सबभी देवताओं व दैत्योंसे कहा ॥ ४९।५० ॥ कि यह अरुणाचल मेरा स्थिरस्वरूप है जो पुरुष भक्ति से इसकी प्रदक्षिणा करता है वह समस्त ऐश्वर्यों का भागी होताहै ॥ ५१ ॥ इस पर्वतकी प्रदक्षिणासे जो पुरुष परिक्रमा करताहै वह चक्रवर्ती होकर सबसे उत्तम अविनाशी पदको प्राप्तहोताहै ॥५२॥ सदाशिवजीकी इस आज्ञासे सब देवताओंने अरुणाचलकी प्रदक्षिणाकर अपने२

ष्ट्वातस्यचातुर्यं हेरम्बायत्रियम्बकः ॥ फलंवितीर्णवानस्मै प्रणयानतमस्तकः ॥ ४८ ॥ अद्यप्रभृतिसर्वेषां फलानान्त्वं विनायकः ॥ भवेरितिवरंदत्त्वा चैकदन्तायशङ्करः ॥ ४९ ॥ बभाषेचततस्तत्र सर्वानपिसुरासुरान् ॥ प्रसरद्दशनज्योत्स्नः कर्बुरीकृतकन्दरः ॥ ५० ॥ स्थावरोयंममाकारः शोणाद्रिर्योस्यभक्तितः ॥ प्रदक्षिणांवितनुते समस्तैश्वर्यभाग्भवेत् ॥ ५१ ॥ गिरेःप्रदक्षिणेनास्य यःपरिक्रमातेपुमान् ॥ सस्रम्राट्सकलोत्कृष्टं लभतेशाश्वतंपदम् ॥ ५२ ॥ इति शासनतःशम्भोः शोणशैलप्रदक्षिणम् ॥ विधायसर्वगीर्वाणा लेभिरेस्वंस्वमीप्सितम् ॥ ५३ ॥ युवामपिमदोद्भूतमालिन्यौशिक्षितौमया ॥ प्रदक्षिणेनशोणाद्रेः शापान्तोवांभविष्यति ॥ ५४ ॥ तिरश्चोरपिवांसिध्येदरुणाद्रेःप्रदक्षिणा ॥ वज्राङ्गदस्यपाण्ड्यस्य नृपतेरनुबन्धतः ॥ ५५ ॥ इत्यमर्षणमहर्षिमहाग्नेःशापहलाहलशोषितसत्त्वौ ॥ पातितौ बहुलपातकभारौ क्षिप्रमेवमृगजातिषुजातौ ॥ ५६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽरुणाचलमाहात्म्येपञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥३५॥

मनोरथको पाया ॥५३॥ और मदसे उपजीहुई मलिनतावाले तुम दोनोंभी मुझसे शिक्षितहुयेहो और अरुणाचलकी प्रदक्षिणासे तुम दोनोंके शापका अन्तहोगा॥५४॥ पाण्ड्यदेश के राजा वज्रांगद के अनुबन्ध (संयोग) से पशुयोनिवाले भी तुम दोनोंकी अरुणाचलकी प्रदक्षिणा सिद्ध होगी ॥ ५५ ॥ इस प्रकार क्रोधी दुर्वासा महर्षिकी बड़ीभारी अग्निसे व शापरूपी विषसे शोषित उद्यमवाले व बहुत पापके भारवाले वे गिरायेहुये दोनों शीघ्रही पशुओं की जातियों में उत्पन्न हुये ॥ ५६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽरुणाचलखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायापञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥ ॥ ॥ ॥

दो० । कान्तिशालि तजि अश्ववपु पायो उत्तमरूप । छत्तिसवें अध्यायमें सोई चरित अनूप ॥ कलाधर बोला कि हे नृपश्रेष्ठ ! कांतिशाली नामक मेरा मित्र कांम्बोजदेशों में घोड़ा होकर इसके उपरान्त आपकी सवारीमें हुआ ॥ १ ॥ और मैं सुगन्धिवाली मृगजातिको प्राप्त होकर अपने अंगसे उपजीहुई सुगन्धके मदमें इस अरुणाचल पै भ्रमता भया ॥ २ ॥ हे धर्मात्मन् ! इस समय शिकार के बहाने से आयेहुये तुमसे हम दोनों अरुणाचलनाथ की प्रदक्षिणा को प्राप्त करायेगये ॥ ३ ॥ घोड़ेपर सवारी के दोषसे तुम्हारी ऐसी दशाहुई और चरणों से चलने के पुण्य से हम दोनोंको पहलेवाला स्थान मिला ॥ ४ ॥ हे नृपेन्द्र ! तुम्हारे सम्बन्ध से हम

कलाधरउवाच ॥ काम्बोजेषुहयोभूत्वा कान्तिशालीसुहृन्मम ॥ अथासीदौपवाह्यत्वे भवतोराजपुङ्गव ॥ १ ॥ अहंचगन्धमृगतां गतःस्वाङ्गप्रसूतिना ॥ सुगन्धिनामदेनास्मिन्विचचारारुणाचले ॥ २ ॥ धर्मात्मन्मृगयाव्याजादागतेनत्वयाधुना ॥ आवांशोणाद्रिनाथस्य प्रापितौहिप्रदक्षिणम् ॥ ३ ॥ वाहारोहणदोषेण तवासीदीदृशीदशा ॥ यादृक्प्रचारपुण्येन प्राप्तनौप्राक्तनम्पदम् ॥ ४ ॥ राजेन्द्रतवसम्बन्धादस्मात्तिर्यक्त्वबन्धनात् ॥ मुक्तावावांस्वकन्धामप्राप्तौस्वस्त्यस्तुतेसदा ॥ ५ ॥ इत्युदीर्यनिजंधाम यियासन्तंकलाधरम् ॥ कान्तिशालिसखंराजाजगादरचिताञ्जलिः ॥ ६ ॥ एवंयुवांशोणशैलशङ्करस्यप्रभावतः ॥ शापार्णवंसमुत्तीर्णौ पुनःस्वीयंपदंगतौ ॥ ७ ॥ भ्राम्यतीवममस्वान्तमन्धायतइवेक्षणम् ॥ निर्यान्तीवममप्राणास्तत्रदैवंबलम्महत् ॥ ८ ॥ कलाधरउवाच ॥ अवधारयविस्तारात्कथयामितवापियत् ॥ समाहितेनमनसा निर्धूतनिखिलाधिना ॥ ९ ॥ जगत्सर्गस्थितिध्वंसविधायिनिमहेश्वरे ॥ अरुणाद्रीश्वरे

दोनों इस पशुयोनि के बन्धन से छूटकर अपने स्थान को प्राप्तहुये तुम्हारा सदैव कल्याण होवै ॥ ५ ॥ ऐसा कहकर अपने स्थानको जातेहुये कान्तिशाली के मित्र कलाधर से हाथोंको जोडकर राजा बोले ॥ ६ ॥ कि इस प्रकार अरुणाचल शिवजीके प्रभाव से तुम दोनों शापरूपी समुद्रको उतरकर फिर अपने स्थानको प्राप्तहुये ॥ ७ ॥ मेरा मन भ्रमितसा होताहै व नेत्र अन्धे से होतेहैं और मेरे प्राण निकलते से है परन्तु उस विषयमें दैवबल बड़ाभारी है ॥ ८ ॥ कलाधर बोला कि तुम से मैं जिसको विस्तार से कहता हूं उसको सब मानसी व्यथाओं से रहित व सावधान मन से सुनिये ॥ ९ ॥ व संसार की सृष्टि, पालन व संहार करनेवाले

तथा दयानिधान अरुणाचलेश महादेवजी में चित्तको लगाइये ॥ १० ॥ इस समय इन अरुणाचलेश देवजी के ऐश्वर्य्य को हम दोनों पशुत्रों के प्रत्यक्ष किया है इसलिये तुम ऐसे इस कार्य को कीजिये ॥ ११ ॥ और कस्तूरी से संयुतहो चरणों से चलकर प्रदक्षिणा कीजिये व कस्तूरीप्रियवाले शिवदेवजी को कमलों से पूजिये ॥ १२ ॥ हे विभो ! तुम्हारे जितनी लक्ष्मी है उस सबको छहरदिवाली, पुरद्वार, मन्दिर व अँगनाई के लिये कल्पित कीजिये ॥ १३ ॥ तो शीघ्रही मनु, मान्धाता, नाभाग व भगीरथ के पदसे अधिक तुम्हारी बडीभारी सिद्धिहोगी ॥१४॥ शीघ्रही अपने स्थान को पायेहुये उन विद्याधरों के ऐसे वचनको सुनकर उससमय

चित्तं निधेहिकरुणानिधौ ॥ १० ॥ प्रत्यक्षितंत्वयेदानीमस्यदेवस्यवैभवम् ॥ तिरश्चोरावयोरेतदीदृशन्त्वंवितन्व तः ॥ ११ ॥ कुरुप्रदक्षिणम्पादचारीमृगमदान्वितैः ॥ कह्लारैःपूजयेशानं देवंमृगमदप्रियम् ॥ १२ ॥ यावतीतवस म्पत्तिस्तावतीमखिलांविभो ॥ प्राकारगोपुरागाराजिरार्थायप्रकल्पय ॥ १३ ॥ अचिरादेवसिद्धिस्ते भविष्यतिगरीय सी ॥ मनुमान्धातृनाभागभगीरथपदाधिका ॥ १४ ॥ इत्थंनिशम्यचतयोर्निजमेवधाम विद्याभृतोःसपदिसङ्गतयोर्नरे न्द्रः ॥ निःसंशयेनमनसानियतस्तदानीं भक्तिंविधायभगवत्यरुणाद्रिनाथे ॥ १५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽरुणाचलमा हात्म्येषट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥ भगवन्भवमाहात्म्यरत्नाकरसुधाकरम् ॥ नन्दीशचित्रंचारित्रं श्रुतंविद्याभृतोर्द्वयोः ॥ १ ॥ कदा वज्राङ्गदःपाण्ड्यः कथन्देवमपूजयत् ॥ कथंचान्वग्रहीत्प्रह्वं देवस्तमरुणेश्वरः ॥ २ ॥ नन्दिकेश्वरउवाच ॥ निवर्तने

राजा सन्देहरहित मनसे अरुणाचलेशजी में भक्तिकर नियत (नियमसंयुत) हुये ॥१५॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽरुणाचलखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायां षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । वज्रांगदनृप पूजि शिव पायो सुख अधिकाइ । सैंतिसवें अध्यायमें सोइ चरित सुखदाइ ॥ मार्कण्डेयजी बोले कि हे भगवन्, नन्दीश्वरजी ! शिवजी के माहात्म्यरूपी समुद्र के चन्द्रमारूपी दोनों विद्याधरों के अद्भुत चरित्रको मैंने सुना ॥ १ ॥ और पाण्ड्यदेशवाले वज्रांगद राजाने किस समय और किस भांति शिव

देवजी को पूजा है और प्रणाम करनेवाले उस राजा के ऊपर किस प्रकार अरुणेश्वरजी ने दया किया है ॥ २ ॥ नन्दिकेश्वर जी बोले कि इसके अनन्तर अपने नगर को लौटने की इच्छा को छोड़कर राजा ने उसी के समीपवाले पर्वत पै अपने निवासकी रुचि किया ॥ ३ ॥ इसके अनन्तर घोड़े के मार्ग के पीछे चलती हुई रथ, हाथी, घोड़ों व वीरों से संयुत इसकी बड़ीभारी सेना प्राप्त हुई ॥ ४ ॥ और पुरोहित, मन्त्री, छोटे राजा, सेनाध्यक्ष व मित्रवर्गों ने वैसे धैर्य के समुद्र राजा को देखा ॥ ५ ॥ तदनन्तर आईहुई उस सेना को आदरपूर्वक पूजित राजा ने अरुणक्षेत्र के शिखर से बाहरही टिकाया ॥ ६ ॥ व उस भक्तिमान् राजाने अपने

च्छांहित्वाथ नृपोनिजपुरम्प्रति ॥ तस्यैवपादपर्यन्ते स्वस्यवासमरोचयत ॥ ३ ॥ अथास्यमहतीसेना वाहमार्गानुसा रिणी ॥ प्राप्ताशताङ्गमातङ्गतुरङ्गभटसंकुला ॥ ४ ॥ समदृश्यतभूपालस्तादृशोधैर्यसागरः ॥ पुरोधोमन्त्रिसामन्त सेनापतिसुहृद्गणैः ॥ ५ ॥ ततस्तामागतांसेनामवनीपतिरादृतः ॥ अरुणक्षेत्रशिखराद्बहिरेवन्यवेशयत ॥ ६ ॥ स्व कीयमखिलंकोशं देशानपिमहाफलान् ॥ शोणाद्रिनाथपूजायै कल्पयामासभक्तिमान् ॥ ७ ॥ गौतमस्याश्रमाभ्या शे स्वयंकृततपोवनः ॥ पुरोधउक्तःसामात्यः शिवार्चनरतोभवत् ॥ ८ ॥ रत्नाङ्गदाख्यंतनयं स्थापयित्वानिजेपदे ॥ त त्प्रेषितैरपिधनैः शोणेशंपर्यतर्पयत् ॥ ९ ॥ परितःशोणशैलस्य परिपूर्णजलाशयान् ॥ खानयामासदानानि ब्राह्मणे भ्योविसृष्टवान् ॥ १० ॥ तेजसारुणनाथस्य ज्वलनस्तम्भरूपिणः ॥ धन्वप्रायेपिदेशेऽस्मिन् दीर्घिकाःशतशोऽयधा त ॥ ११ ॥ सौन्दर्य्यशालिनीरात्मपरिवारपरङ्गतः ॥ सेवार्थंशोणनाथस्य दत्तवान्दीर्घदर्शनः ॥ १२ ॥ अथागतेना

सब खज़ाने को व महाफलवाले याने सम्पन्न देशों को भी अरुणाचल की पूजा के लिये कल्पित किया ॥ ७ ॥ और पुरोहित से कहेहुये मन्त्री समेत राजा गौतम मुनिके आश्रम के समीप आपही तपोवनकर शिवपूजन में परायण हुआ ॥ ८ ॥ और रत्नांगदनामक पुत्रको अपने स्थान पै बिठाकर उस से पठाये हुये धनों से अरुणाचलेशजी को तृप्त किया ॥ ९ ॥ और अरुणाचल के सब ओर परिपूर्ण जलाशयों को खुदाया व ब्राह्मणों के लिये दानों को दिया ॥ १० ॥ अग्निस्तम्भरूपी अरुणेशजी के तेज से इस निर्जल देशमें भी सैकड़ों बावलियों का निर्माण किया ॥ ११ ॥ और अपने वंशमें उत्तमता को प्राप्त इस बुद्धिमान् राजाने अरुणाचल

की सेवा के लिये सुन्दरता से शोभित स्त्रियों को दिया ॥ १२ ॥ इस के अनन्तर आयेहुये लोपामुद्रा के सखा अगस्त्यजी ने अरुणाचलेशजी के पूजन में तत्पर उन राजा की प्रशंसा किया ॥ १३ ॥ प्रतिदिन नवतीर्थ नामक तडाग में स्नान करते हुये राजा ने पापनाशक प्रवालेश्वरजी का पूजन किया ॥ १४ ॥ और कठिन दुःख को हरनेवाली व महिषासुर को संहार करनेवाली दुर्गाजी को वज्रांगद राजाने नित्य आराधन किया ॥ १५ ॥ व ब्रह्मा तथा विष्णुजी की प्रार्थना से लिंगरूपी आदिदेव शिवजीकी प्रतिक्षण अनेक भांतिकी सेवाकिया ॥१६॥ प्रातःकाल उठकर उस तडाग में नहाये हुये राजा ने पञ्चाक्षर मन्त्र को जपते हुये तीन प्रदक्षिणा

गस्त्येन लोपामुद्रासखेनमः ॥ अभिनन्दितस्तुशोणाद्रीशपूजापरायणः ॥ १३ ॥ प्रत्यहंनवतीर्थाख्ये सरसिस्नानमाचरन् ॥ पापनाशप्रवालेशं प्रत्यहम्पर्यपूजयत् ॥ १४ ॥ महिषासुरसंहारकारिणींमानवेश्वरः ॥ नित्यमाराधयामास दुर्गांदुर्गार्तिहारिणीम् ॥ १५ ॥ प्रतिक्षणंब्रह्मविष्णुप्रार्थनालिङ्गरूपिणः ॥ आदिदेवस्यविविधाः सपर्याःपर्यकल्पयत ॥ १६ ॥ प्रत्युषस्युत्थितःस्नातस्तदम्भसिचपार्थिवः ॥ जपन्पञ्चाक्षरंमन्त्रमकार्षीत्त्रिःप्रदक्षिणाम् ॥ १७ ॥ पौर्णमास्यांसकार्त्तिक्यां पार्वतीवल्लभस्यच ॥ महादीपोत्सवंचक्रेमहितंभुवनत्रये ॥ १८ ॥ सगन्धसारकह्लारकर्पूरजलपूरितैः ॥ सहस्रैःस्वर्णकुम्भानामभ्यषिञ्चत्त्रियम्बकम् ॥ १९ ॥ प्रतिमासंभजारोहपूर्वतीर्थोत्सवादिकम् ॥ त्रैलोक्याम्महितंचक्रे रथारोहमहोत्सवम् ॥ २० ॥ अथप्रदक्षिणञ्चास्य विदधेविशदाशयः ॥ योजनत्रितयायामविस्तृतस्यचभूभृतः ॥ २१ ॥ अरुणाचलनाथेति करुणामृतसागर ॥ अरुणावासनाथेति तुष्टावचमुहुर्मुहुः ॥ २२ ॥ संलिप्यविविधैर्द्रव्यै

किया ॥ १७ ॥ व कार्त्तिकी पौर्णमासी में उस राजा ने पार्वतीप्रिय शिवजी के महादीपोत्सव को किया जो कि त्रिलोक में पूजित है ॥ १८ ॥ व चन्दन, कमल व कपूर समेत जलमें भरेहुये हज़ार सोनेके घटों से त्रिलोचन जीको नहवाया ॥ १९ ॥ व प्रत्येक महीने, में ध्वजारोहपूर्वक तीर्थोत्सवादिक व त्रिलोक में पूजित रथारोह महोत्सव को किया ॥ २० ॥ इसके अनन्तर निर्मल अभिप्रायवाले वज्रांगद राजा ने तीन योजन (बारह कोस) लम्बे चौडे इस अरुणाचलकी प्रदक्षिणा किया ॥ २१ ॥ व हे अरुणाचलनाथ, हे करुणामृतसागर, हे अरुणावासनाथ ! इस प्रकार बार २ स्तुति किया ॥ २२ ॥ और कर्पूरकी नाई श्वेत चन्दन के कीचड़ों से नित्य भली

भांति लीपकर पञ्चामृत आदिक अनेक भांति की वस्तुवों से नित्य पूजन किया ॥ २३ ॥ और पीठसे लगाकर केवल अरुणाचलेश मुख्य लिंगरूपी शिवजीको गिरते हुये कस्तूरी के प्रवाहोंवाले कमलों से पूजन किया ॥ २४ ॥ इस प्रकार सेवासे तीनवर्ष तक बैठे हुये उस राजा के ऊपर प्रसन्न होतेहुये सदाशिव जी प्रत्यक्षता को प्राप्त हुये ॥ २५ ॥ जो कि हिमाचल के समान श्वेत उत्तम बैल पै चढ़े व पीछे बैठी हुई पार्वती जीसे दृढ़तापूर्वक आलिंगित थे ॥ २६ ॥ व वसिष्ठादिक ब्रह्मर्षियों तथा नारदादिक महर्षियों से व निकुम्भ कुम्भादिक गणोंसे जिनकी जयस्तुति की जाती थी ॥ २७ ॥ व कमलदल की नाईं लम्बे नेत्रों के दयारूपी सागरकी बड़ी

न्नित्यंपञ्चामृतादिभिः ॥ अभ्यर्चयद्गन्धसारपङ्कैःकर्पूरपाण्डुरैः ॥ २३ ॥ अपूजयत्तुकह्लारैर्गलन्मृगमदद्रवैः ॥ पीठादारभ्यशोणाद्रिनाथैकलिङ्गरूपिणम् ॥ २४ ॥ इतिवर्षत्रयंतस्य विशतोवरिवस्यया॥ अरुणाद्रीश्वरस्तुष्टः प्रत्यक्षत्वमगाहत ॥२५॥ तुषाराचलसंकाशमारूढोवृषपुङ्गवम्॥ अन्वगासीनयादेव्या कृतगाढोपगूहनः ॥ २६ ॥ ब्रह्मर्षिभिर्वसिष्ठाद्यैर्नारदाद्यैर्महर्षिभिः ॥ गणैर्निकुम्भकुम्भाद्यैःक्रियमाणजयस्तुतिः ॥ २७ ॥ करुणासिन्धुकल्लोलैः कमलायामनेत्रयोः ॥ कटाक्षपातैर्जगतां कालुष्यमिववारयन् ॥ २८ ॥ दृष्ट्वाचदेवदेवन्तमष्टाङ्गस्पृष्टभूतलः ॥ प्रणनामपरंहृष्टो वज्राङ्गदमहीपतिः ॥ २९ ॥ व्यजिज्ञपच्चभूपालोमौलौविरचिताञ्जलिः ॥ क्षालयन्निवदन्तांशुजालैस्तत्पादपङ्कजौ ॥ ३० ॥ देवेशयदहंमोहाद्वाहेनत्वदुपान्तिके ॥ व्यचारिषंमएकोहि क्षम्यतांमेऽव्यतिक्रमः ॥ ३१ ॥ इतिवादितमत्यन्तं दीनमेवंदयानिधिः ॥ जगादजगतांनाथो देवःशोणाचलेश्वरः ॥ ३२ ॥ माभैषीर्वत्सभद्रन्ते सन्त्यष्टौममसू

भारी लहरीरूप कटाक्षपातों से संसार के पातकको मानो मना कर रहेथे ॥ २८ ॥ उन देवदेव शिवजी को देखकर आठ अंगों से पृथ्वी को छुये व बहुत प्रसन्न वज्रांगद राजाने प्रणाम किया ॥ २९ ॥ व मस्तकपै हाथों को जोड़कर दांतों की किरणराशियों से उनके चरणकमलों को धोतेहुये से राजाने विनय किया ॥ ३० ॥ कि हे देवेश ! अज्ञान के कारण जो मैंने तुम्हारे समीप घोड़े के द्वारा भ्रमण किया वह मेरा एक अपराध क्षमा कियाजावै ॥ ३१ ॥ ऐसा कहतेहुये व अत्यन्तही उदार राजासे लोकोंके स्वामी व दयानिधान अरुणाचलेश्वर देवजीने कहा ॥ ३२ ॥ कि हे वत्स ! मतडरो तुम्हारा कल्याणहोवे मेरी आठ मूर्त्तियांहैं वे सब प्राणियोंके ऐश्वर्य

के लिये कल्पित है ॥ ३३ ॥ पुरातन समय तुम गर्वित इन्द्र ने कैलास पर्वत के शिखर पै टिकेहुये मेरा अनादर किया है और उसी क्षण मुझ
उससमय क्षणभरमें गर्वरूपी पातकके भारसे रहित होकर अत्यन्तही लज्जित तुम समस्त ऐश्वर्यों के कारणरूप शिवके ज्ञान को प्राप्तहुये हो ॥ ३५
मैंने तुम से यह कहा कि आप पृथ्वी में अवतार लेकर वज्रांगदनामक राजा होकर मेरी कृपा को पावोगे ॥ ३६ ॥ तुम्हारे प्रभाव से यह क्षेत्र मेरे र
मूढ तुम मुझसे शिक्षित हुयेहो जो कि मेरे उत्तम भक्तहो ॥ ३७ ॥ हे राजन्! इस समय दिन रात कीहुई तुम्हारी सेवाओं से मैं प्रसन्न हूं इस

र्त्तयः ॥ ताःसर्वाःसर्वजन्तूनाम्भूत्यर्थपरिकल्पिताः ॥ ३३ ॥ पुरापुरंदरस्त्वंहि कैलासशिखरेस्थितम् ॥ गर्वितोमामवामं स्थास्तम्भितस्तत्क्षणान्मया ॥ ३४ ॥ क्षणंगलितगर्वाघभारस्त्वंव्रीडितस्तदा ॥ उपविष्टःशिवज्ञानमखिलैश्वर्यकारणम् ॥ ३५ ॥ आदिष्टस्त्वंमयावज्रिन्नवतीर्यावनौभवान् ॥ राजावज्राङ्गदोभूत्वा लप्स्यसेमत्कृपामिति ॥ ३६ ॥ जातन्तवप्रभावेण क्षेत्रमेतन्मदास्पदम् ॥ शिक्षितोसिचमुग्धस्त्वं भक्तोसिचपरोमम ॥ ३७ ॥ अधुनातिसपर्याभिस्त्वत्कृताभिरहर्निशम् ॥ परितुष्टोस्म्यहंराजन्नतस्त्वांबोधयाम्यहम् ॥ ३८ ॥ खंवायुरनलोवारिभूस्सूर्यशशिनौपुमान् ॥ इतिमन्मूर्त्तिभिर्विश्वं भासतेसचराचरम् ॥ ३९ ॥ तत्त्वातीतःशिवश्चाहं नमत्तोन्यच्चकिञ्चन ॥ ४० ॥ पूरयन्तिचिदानन्दसिन्धोर्मेकेचिदूर्मयः ॥ वेधोमुकुन्दरुद्रेन्द्रमुखास्सर्वाश्चदेवताः ॥ ४१ ॥ वाणीलक्ष्मीक्षमाश्रद्धाप्रज्ञास्वाहास्वधादिभिः ॥ असंख्येयमहाशक्तिभिश्चेदम्पूरितंजगत् ॥ ४२ ॥ इयंममहाशक्तिर्गौरीमायाजगत्प्रभोः ॥ अनया

कराताहूं ॥ ३८ ॥ कि आकाश, पवन, अग्नि, जल, पृथ्वी, सूर्य, चन्द्रमा व पुरुष इन मेरी मूर्त्तियों से स्थावर जंगम समेत संसार प्रकाशितहै ॥ ३९ ॥ और मैं तत्त्वों से परे शिवहूं व मुझसे अन्य कुछ नहीं है ॥ ४० ॥ कोई लहरियां चिदानन्दरूपी मुझ समुद्र को पूर्ण करती हैं और ब्रह्मा, विष्णु, शिव व इन्द्रादिक जो सब देवता हैं ॥ ४१ ॥ और सरस्वती, लक्ष्मी, क्षमा, श्रद्धा, प्रज्ञा, स्वाहा व स्वधा आदिक असंख्य महाशक्तियों से यह संसार पूर्ण है ॥ ४२ ॥ संसार के स्वामी मेरी यह गौरी

महाशक्ति माया है इस से सदैव संसार आच्छादित होताहै व विस्तार किया जाताहै ॥ ४३ ॥ इस शक्ति से नित्य [illegible] ॥ ४५ ॥ [illegible]
संसार को मैं अपनी इच्छा से आश्चर्यपूर्वक देखताहूं ॥ ४४ ॥ मोहरहित होकर तुम मेरी महिमा से आत्मा को [illegible]
इस लिये हे राजेन्द्र ! मेरे रूप से शोभित पृथ्वी में स्वामिताको प्राप्त तुम मेरी प्रसन्नता से सुखपूर्वक भोगोंको भोग करोगे ॥ ४६ ॥ [illegible]
दिव्य सुखोंवाले भोगों को प्राप्त होवोगे व हे राजन् ! मेरी एकरूपता व चैतन्यताको प्राप्त होवोगे ॥ ४७ ॥ ऐसा कहकर शिवदेव [illegible]

च्छाद्यतेविश्वं शश्वद्विस्तारएवच ॥ ४३ ॥ शक्त्यानयानित्यसर्गरक्षासंहृतिविभ्रमैः ॥ विचित्रमतुलं पश्यामि जगदि[illegible]
त्रंनिजेच्छया ॥ ४४ ॥ अपवाहितमोहस्त्वं महिम्नामेविचारय ॥ आत्मानमविभिन्नन्तु तरङ्गमिववारिधेः ॥ ४५ ॥ त
तोमद्रूपशालिन्यामाधिपत्यंक्षितौगतः ॥ मत्प्रसादेनराजेन्द्र भुङ्क्ष्वभोगान्यथासुखम् ॥ ४६ ॥ पुनःपुरन्दरसं[illegible]
दिव्यसुखांश्चिरम् ॥ मदेकरूपतांराजंश्चिन्मयत्वमवाप्स्यसि ॥ ४७ ॥ इत्युक्त्वान्तर्हितेदेवे राजावज्राङ्गदः कृती ॥
कोणेशम्पूजयन्नेव सर्वान्भोगानवाप्तवान् ॥ ४८ ॥ इत्थन्तेकथितंसाधो शिवभक्तविजृम्भणम् ॥ प्रदक्षिणाफलंप्रो[illegible]
शैलस्यशाश्वतंफलम् ॥ ४९ ॥ किंवाचविस्तरेणात्र कथितेनप्रदक्षिणा ॥ महतामपिदानानां शतादपिविशिष्यते ॥
५० ॥ विषुवायनसंक्रान्तिव्यतीपातादिपर्वसु ॥ प्रदक्षिणांशोणगिरेरसंख्येयफलंलभेत ॥ ५१ ॥ नक्षेत्रमरुणादस्ति
नास्तिदेवोऽरुणेश्वरात् ॥ नास्तिप्रदक्षिणादन्यत्रिलोक्यामधिकंतपः ॥ ५२ ॥ इतिकथयतिनन्दिकेश्वरेऽस्मिन् पुलकि

शिवजी को पूजतेही हुये पुण्यवान् राजा वज्रांगद ने सब सुखों को पाया ॥ ४८ ॥ हे साधो ! शिवजी के भक्त की यह उन्नति कही गई और प्रदक्षिणा का फल व
उत्तम आचरण का अविनाशी फल कहा गया ॥ ४९ ॥ इस विषय में विस्तारपूर्वक कहने से क्या है याने कुछ नहीं क्योंकि बडे भारी सैकड़ों दानों से भी प्रद-
क्षिणा विशेष है ॥ ५० ॥ (विषुवायन) दिनरात बराबरवाले समयमें व संक्रान्ति तथा व्यतीपातादिक पर्वों में अरुणाचलकी प्रदक्षिणा असंख्य फलको प्राप्त होती
है ॥ ५१ ॥ अरुणक्षेत्र से उत्तम अन्य क्षेत्र नहीं है व अरुणेश्वर से श्रेष्ठ देवता नहीं है और त्रिलोक में अरुणाचल की प्रदक्षिणा से अधिक अन्य तपस्या नहीं

है ॥ ५२ ॥ इन नन्दिकेश्वर जी के ऐमा कहनेपर रोमाञ्चित समस्त शरीर वाले मृकण्डु जी के पुत्र मार्कण्डेयजी बार २ आनन्द से आंसुवों की वृष्टि को पाकर बड़े भारी अमृत के समुद्र मे मग्नसे होगये ॥ ५३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽरुणाचलखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायासप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥ ॥

दो० । गौतम सो शिव जिमि कह्यो मुख्य आपने नाम । अरतिसवें अध्याय मे सोइ चरित सुखधाम ॥ गौतमजी बोले कि हे देवपूजित, भगवन्, अरुणेश्वरजी ! जो तुम्हारे नामहैं उनको विशेपता से मै इस स्थान में सुनना चाहताहूं ॥ १ ॥ श्रीमहादेवजी बोले कि हे द्विजोत्तम ! तुम से मैं मुख्यनामों को कहूंगा जोकि थोड़ी

तस्सर्ववपुर्मृकण्डुपुत्रः ॥ मुहुरधिगतहर्षबाष्पवृष्टिर्महतिनिमग्नइवाभवत्सुधाब्धौ ॥ ५३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽरुणाचलमाहात्म्येसप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

गौतमउवाच ॥ भगवन्नरुणाद्रीशनामधेयानियानिते ॥ विशेषाच्छ्रोतुमिच्छामि स्थानेस्मिन्सुरपूजित ॥ १ ॥ श्रीमहादेवउवाच ॥ नामानितेहंवक्ष्यामि मुख्यानिद्विजसत्तम ॥ दुर्लभान्यल्पपुण्यानां कामदानिसदाभुवि ॥ २ ॥ शोणाद्रीशोरुणाद्रीशो देवाधीशोनतप्रियः ॥ प्रपन्नरक्षकोधीरः शिवःसेवकवर्द्धकः ॥ ३ ॥ अक्षिपेयामृतेशानः स्त्रीपुंभावप्रदायकः ॥ भक्तविज्ञप्तिसन्धाता दीनवन्दिविमोचकः ॥ ४ ॥ अरुणाद्रिपतिर्भीमस्तथामृगमदेश्वरः ॥ भक्तानांप्रेमकृत्साक्षाद्भक्तदेवस्त्वनिन्दकः ॥५॥ सङ्गीतप्रियदेवश्च त्रिवेदीवृद्धवैदिकः ॥ देवराजःकृपासिन्धुः सुगन्धिःसौरभोवरः ॥ ६ ॥ कार्त्तवीर्येश्वरःशान्तः कपालीकलशप्रभुः ॥ ज्ञानसम्बन्धनाथश्च श्रीहालाहलसोदरः ॥ ७ ॥ आहूयैश्वर्य

पुण्यवाले जनोंको दुर्लभ व सदैव पृथ्वी में कामदायक हैं ॥ २ ॥ शोणाद्रीश, अरुणाद्रीश, देवाधीश, नतप्रिय, शरणागतरक्षक, धीर, शिव व सेवकवर्द्धक ॥ ३ ॥ व नेत्रोंसे पीनेयोग्य अमृत, ईशान, स्त्री पुरुषता को देनेवाले, भक्त विनयको सन्धान करनेवाले व दीनकारागृहमोचक ॥ ४ ॥ अरुणाद्रिपति, भीम व मृगमदेश्वर, भक्तों के प्रेमकारक तथा भक्तके प्रत्यक्ष देवता व अनिन्दक ॥ ५ ॥ व संगीतप्रियदेवता तथा त्रिवेदी व वृद्धवैदिक, देवराज, दयासमुद्र, सुगन्धि, सौरभ, वर ॥ ६ ॥ व कार्त्तवीर्येश्वर, शान्त, कपाली, कलशप्रभु, ज्ञानसंबंधनाथ व श्रीहालाहलसहोदर ॥ ७ ॥ व बुलाकर ऐश्वर्य देनेवाले तथा स्मरण करनेवाले के समस्त

पातकों के नाशक ॥ ८ ॥ व नृत्यमें उलटे ध्वजाको धारनेवाले, सकीर्त्ति व नटनेश्वर, सामप्रिय, कलिध्वंसी, वेदमूर्त्ति व निरञ्जन ॥ ६ ॥ जगदीश, महादेव, त्रिलो-
चन, त्रिपुरान्तक, भक्तके अपराध को सहनेवाले, योगेश, भोगनायक ॥ १० ॥ काममूर्त्ति, क्षमारूप, धर्मरक्षक,वृषध्वज, हर,अपीतस्तनीभाग व चन्द्ररेखावतंसक ॥
११ ॥ कामान्तक, अन्धकशत्रु, सिद्धराज, महेश्वर, अरूप, बहुरूप, विरूपलोचन, अक्षराकृति ॥ १२ ॥ अनादि, अन्तरहित, शिव, काम, स्वयंप्रभु, सच्चिदानन्दरूप,
सर्वात्मा, जीवधारक ॥ १३ ॥ व स्त्रीसंगी, वामदेव, विधि व अत्यन्तसुन्दर, ज्ञानदायक, मुक्तिदायक, व भक्ताभीष्टदायक ॥ १४ ॥ व आश्चर्य विभववाले,कामी, निर्दोष,

दाताच स्मर्तृसर्वाघनाशनः ॥ ८ ॥ व्यत्यस्तनृत्यध्वजधृक् सकीर्तिर्नटनेश्वरः ॥ सामप्रियःकलिध्वंसी वेदमूर्तिर्निरञ्ज
नः ॥ ९ ॥ जगन्नाथोमहादेवस्त्रिनेत्रस्त्रिपुरान्तकः ॥ भक्तापराधसोढाच योगेशोभोगनायकः ॥ १० ॥ काममूर्तिः क्ष
मारूपो धर्मरक्षोवृषध्वजः ॥ हरोपीतस्तनीभागश्चन्द्ररेखावतंसकः ॥ ११ ॥ स्मरान्तकोन्धकरिपुः सिद्धराजोमहेश्व
रः ॥ अरूपोबहुरूपश्च विरूपाक्षोक्षराकृतिः ॥ १२ ॥ अनादिरन्तरहितः शिवःकामःस्वयंप्रभुः ॥ सच्चिदानन्दरूपश्च सर्वा
त्माजीवधारकः ॥ १३ ॥ स्त्रीसङ्गीवामदेवश्च विधिश्चैवातिसुन्दरः ॥ ज्ञानप्रदोमुक्तिदश्च भक्तवाञ्छितदायकः ॥ १४ ॥
आश्चर्यवैभवःकामी निरवद्योनिधिप्रदः ॥ शूलीपशुपतिःशम्भुः स्वयम्भूर्गिरिशोमृडः ॥ १५ ॥ सर्वमनोभवध्वंसी शा
र्वोरुणागिरीश्वरः ॥ एतानिममसुख्यानि नामान्यत्रमहामुने ॥ १६ ॥ अन्यानिदिव्यनामानि पुराणोक्तानिसंस्मर ॥
प्रदक्षिणेनमांनित्यं विशेषात्त्वंसमर्चय ॥ १७ ॥ प्रदक्षिणप्रियोयस्मादहंशोणाचलाकृतिः ॥ इत्याज्ञप्तोमहादेवमर्चयन्न

निधिदायक, त्रिशूलधारी, पशुपति, शम्भु, स्वयंभू, गिरिश, मृड ॥ १५ ॥ सर्वकामध्वंसी, शर्व व अरुणाचलेश्वर हे, महामुने ! यहां ये मेरे मुख्य नामहैं ॥ १६ ॥ व
पुराणों में कहेहुये अन्य उत्तम नामों को स्मरण कीजिये व विशेषकर प्रदक्षिणासे तुम नित्य मेरा पूजन करो ॥ १७ ॥ क्योंकि अरुणाचल आकारवाला मैं प्रद-
क्षिणाप्रियहूं अर्थात् मुझको प्रदक्षिणा प्यारी है हे पार्वतीजी ! इस प्रकार आज्ञाको पाकर अरुणाचल महादेव को पूजते व न छोड़तेहुये मैंने यहां निवास

किय॥ १८।१९ ॥ पार्वतीजी बोलीं कि हे सब धर्मोंके जाननेवाले,भगवन्,आर्य,मुनिनायक,गौतमजी ! मुझसे अरुणाचल की प्रदक्षिणाके माहात्म्य को कहिये ॥२०॥ कि किस समय व किसभांति करना चाहिये व परमपद प्राप्तहोने के लिये किन प्राचीनजनों ने अरुणाचलनाथ की प्रदक्षिणाकियाहै ॥२१॥ इस प्रकार पूंछेहुये गौतम मुनिने पार्वतीजी से कहा कि हे देवि ! महादेवजीने जिसको कहाहै उस माहात्म्यको सुनिये ॥२२॥ श्रीमहादेवजी बोले कि अरुणाचलात्मक मैं पृथ्वी में प्रसिद्धहूं और मुनियों समेत सब देवता मेरे चारोंओर वर्तमानहैं ॥ २३ ॥ जो कोई पाप जन्मों के बीचमें कियेहोते हैं वे, प्रदक्षिणाके पगपग पै नष्टहोतेहैं ॥२४॥ और हजारों अश्वमेध व सैकड़ों

रुणाचलम् ॥ १८॥ अविमुक्तान्निहावासं कृतवानहमद्रिजे ॥ १९॥ गौर्युवाच ॥ भगवन्सर्वधर्मज्ञ गौतमार्यमुनीश्वर ॥ प्रद क्षिणस्यमाहात्म्यं ब्रूहिमेशोणभूभृतः ॥ २० ॥ कस्मिन्कालेकथंकार्यं कैर्वापूर्वैःप्रदक्षिणम् ॥ कृतंशोणाद्रिनाथस्यप्रा प्तुमिष्टंपरम्पदम् ॥ २१ ॥ इतिपृष्टोमुनिःप्राह गौतमःशैलकन्यकाम् ॥ श्रूयतान्देविमाहात्म्यं आदिशद्यन्महेश्वरः ॥ २२ ॥ श्रीमहादेवउवाच ॥ अहंहिशोणशैलात्मा प्रख्यातोस्मिमहीतले ॥ परितोमांसुराःसर्वे वर्त्तन्तेमुनिभिःसह ॥२३॥ यानिकानिचपापानि जन्मान्तरकृतानिच ॥ तानितानिविनश्यन्ति प्रदक्षिणपदेपदे ॥ २४॥ अश्वमेधसहस्राणि वाज पेयशतानिच ॥ सिध्यन्तिसर्वतीर्थानि प्रदक्षिणपदेपदे ॥ २५ ॥ अविप्रहीनस्यसमस्तलक्षणैः क्रियाविहीनस्यनिकृष्ट जन्मनः ॥ प्रदक्षिणीकृत्यशशाङ्कशेखरं प्रयास्यतःकस्यनसिद्धिरग्रतः ॥२६॥ समस्ततीर्थाभिगमेषुपुण्यंयच्चागमानां पठनेपिपुण्यम् ॥ अवाप्यतेशोणमहीधरस्य प्रदक्षिणप्रक्रमणेनसत्यम् ॥ २७॥ पदेनैकेनभूलोकं द्वितीयेनान्तरिक्ष कम् ॥ तृतीयेनदिवंमर्त्यो जयत्यस्यप्रदक्षिणे ॥ २८ ॥ एकेनमानसंपापं द्वितीयेनतुवाचिकम् ॥ कायिकन्तुतृतीयेन पदै

वाजपेययज्ञ तथा समस्ततीर्थ प्रदक्षिणा के पगपग पै सिद्धहोते हैं ॥ २५ ॥ शिवजी की प्रदक्षिणाकर जातेहुये सब लक्षणों से हीन व कर्महीन तथा नीचजन्मवाले भी किस पुरुष के आगे सिद्धि नही होती है ॥२६॥ सब तीर्थों की यात्राओंमें व शास्त्रों के पढ़ने में भी जो पुण्य मिलती है वही पुण्य अरुणाचल की प्रदक्षिणासे सत्य मिलती है ॥२७॥ इसकी प्रदक्षिणामें मनुष्य एक पगसे भूलोक व दूसरे से आकाश तथा तीसरेसे स्वर्गलोक को जीतता है ॥ २८ ॥ एकपग से मनुष्यों का मानसी

पाप व दूसरे से वाचिक तथा तीसरे पगसे शारीरक पाप नष्टहोता है ॥ २९ ॥ महर्षियों के हजारों पर्णशाला (पत्तोंकेघर) व सिद्धों तथा देवताओं के हजारों
निवासस्थान यहां वर्तमानहैं ॥३०॥ यहांपर देवताओं से पूजित सिद्ध शरीरवाला मैं सदैव आगे बसताहूं व मेरे बीचमें सुखोंसे संयुत उत्तम कन्दरा ध्यान करनेयोग्यहै ॥
३१ ॥ अरुणाचल ऐसे प्रसिद्ध अग्निस्तम्भमयरूपी इस लिंगको ध्यान करताहुआ पुरुष धीरेही से प्रदक्षिणाकरै ॥ ३२ ॥ अष्टमूर्त्तिमय जो यह प्रसिद्ध तैजस लिंग है
इसको ध्यानकर प्रदक्षिणा करताहुआ पुरुष पातकों को जलाता है ॥ ३३ ॥ और अरुणाचलाकार की जो नित्य प्रदक्षिणा करता है उसका फिर जन्म नहीं होताहै

**नश्यतेनृणाम् ॥ २९ ॥ पर्णशालामहर्षीणां सिद्धानाञ्चसहस्रशः॥ ३० ॥ सुराणांचतथावासा विद्यन्तेत्रसहस्रशः ॥
अत्रसिद्धवपुर्नित्यंवसाम्यग्रेसुरार्चितः॥ममान्तरेगुहादिव्याध्यातव्याभोगसंयुता ॥३१॥ अग्निस्तम्भमयंरूपमरुणाद्रि
रितिश्रुतम् ॥ ध्यायल्लिँङ्गमिदंमन्दं कुर्यादेवप्रदक्षिणाम् ॥ ३२ ॥ अष्टमूर्त्तिमयंलिङ्गमिदंयत्तैजसंश्रुतम् ॥ ध्यात्वाप्रद
क्षिणांकुर्वन् पातकानिविनिर्दहेत ॥ ३३ ॥ नपुनःसम्भवस्तस्य यःकरोतिप्रदक्षिणम्॥शोणाचलाकृतेर्नित्यंनित्यत्वंध्रु
वमश्नुते ॥ ३४ ॥ अस्यपादरजःस्पर्शात्पूयतेसकलामही ॥ पदमेकन्तुधत्तेयः शोणाद्रीशप्रदक्षिणे ॥ ३५ ॥ नमस्कुर्व
न्प्रतिदिशं ध्यायन्माञ्चकृताञ्जलिः॥ असंस्पृष्टकरःकैश्चिन्मन्दंकुर्यात्प्रदक्षिणाम् ॥ ३६ ॥ आसन्नप्रसवानारी यथाग
च्छेदनाकुलम् ॥ तथाप्रदक्षिणांकुर्याद्शृण्वन्स्वपदध्वनिम् ॥ ३७॥ स्नातोविशुद्धवेषःसन् भस्मरुद्राक्षभूषितः॥ शि
वस्मरणसंहृष्टो मन्दंदद्यात्पदम्बुधः ॥ ३८ ॥ अथवाशिवनामानि संकीर्त्यवरगीतिभिः ॥ शिवनृत्यञ्चविदधन् भक्तैः**

व अचल नित्यता को भोग करता है ॥ ३४ ॥ व इसके चरणकी धूलिके स्पर्शसे सब पृथ्वी पवित्र होती है जोकि अरुणाचलेशकी प्रदक्षिणामें एक पग धरता है ॥
३५॥ हाथोंको जोड़कर मेरा ध्यान करते व प्रत्येक दिशामें प्रणाम करतेहुये किसी से भी हाथ को न मिलाकर धीरेसे प्रदक्षिणाकरै ॥ ३६ ॥ जैसे थोड़ेही दिनोंमें गर्भको
उत्पन्नकरनेवाली स्त्री धीरे चलती है वैसेही अपने चरणों के शब्दको न सुनताहुआ पुरुष प्रदक्षिणा करै ॥३७॥ नहाकर पवित्र स्वरूपहो भस्म व रुद्राक्ष से भूषित तथा
शिवजी के स्मरण से प्रसन्न विद्वान् धीरे से चरण देवै ॥ ३८ ॥ अथवा सदा शिव जीके नामोंको कहकर व उत्तम गानोंसे शिवनृत्य करताहुआ पुरुष भक्तों के साथ

प्रदक्षिणाकरै ॥ ३९ ॥ और सावधान बुद्धिवाला पुरुष आदर से मेरे माहात्म्य को सुनताहुआ आनन्दके रससे पूर्ण होकर धीरे से प्रदक्षिणाकरै ॥ ४० ॥ और याचकों को अनेक प्रकारके दानों से तथा पवित्र भेंटों से आस्तिक (वेदों व देवताओं में श्रद्धावाला) पुरुष बुद्धिके अनुकूल दया करताहुआ परिक्रमा करै ॥ ४१ ॥ सतयुग में अग्निमयलिंग व त्रेतामें मणिपर्वत तथा द्वापर में सुवर्णाचल व कलियुग में मरकताचलको ध्यानकरै ॥ ४२ ॥ अथवा स्फटिक (बिल्लौरी पत्थर) के समान व अरुण रंगवाले आपही प्रकाशकारक पर्वतको ध्यान करताहुआ पुरुष सब पातकों से छूटकर शिवपुरको जाताहै ॥ ४३ ॥ व वचन तथा मनसे अगम्य (न पाने योग्य)

सार्धपरिक्रमेत् ॥ ३९ ॥ माहात्म्यंममचाशृण्वन्ननन्यमतिरादरात् ॥ शनैःप्रदक्षिणांकुर्यादानन्दरसनिर्भरः ॥ ४० ॥ दानैश्चविविधैःपुण्यैरुपहारैस्तथार्थिनाम् ॥ यथामतिदयांकुर्वन्नास्तिकःपरितोव्रजेत् ॥ ४१ ॥ कृतेत्वग्निमयंलिङ्गं त्रेतायांमणिपर्वतम् ॥ द्वापरेचिन्तयेद्धैमं कलौमरकताचलम् ॥ ४२ ॥ अथवास्फाटिकंरूपमरुणञ्चस्वयंप्रभम् ॥ ध्यायन्विमुक्तःसकलैः पापैःशिवपुरंव्रजेत् ॥ ४३ ॥ अवाङ्मनोभ्यांगम्यत्वादप्रमेयतयास्वयम् ॥ अग्नित्वाच्चपरंलिङ्गमानमेदचलाभिधम् ॥ ४४॥ अग्निस्तम्भमयंलिङ्गं मानसादचलाभिधम् ॥ ध्यात्वाप्रदक्षिणाकर्त्तुमभिगम्योहमञ्जसा ॥ ४५ ॥ अस्यपादरजोनृणामजरामरकारणम् ॥ छायाप्रदानंकुर्वन्ति कल्पकाद्याःसुरद्रुमाः ॥ ४६ ॥ कुर्वताम्भुविमर्त्यानामरुणाद्रिप्रदक्षिणाम् ॥ देवगन्धर्वकन्यानां सहस्रेणसमावृताः ॥ सेवन्तेतंगणाकीर्णा विमानशतकोटयः ॥ ४७ ॥ ममप्रदक्षिणाम्भूमौ कुर्वताम्पादपांसुभिः ॥ पावितामहतीवीथिरिष्टाशिवपदप्रदा ॥ ४८ ॥ अगप्रदक्षि

के कारण व अमित होने से तथा आपही अग्निरूप होने से अचल नामक उत्तम लिंगको प्रणामकरै ॥ ४४ ॥ अग्निस्तम्भमय अचलनामक लिंगको मनसे ध्यानकर मैं प्रदक्षिणा करने के लिये साक्षात् अभिगम्य (जाने योग्य) हूं ॥ ४५ ॥ और इसके चरणोंकी धूलि मनुष्यों के अजर अमरका हेतुहै पृथ्वी में अरुणाचलकी प्रदक्षिणा करतेहुये पुरुषों को कल्पादिक देववृक्ष छायादान करते हैं और देवताओं व गन्धर्वोंकी हजारों कन्याओं से घिरे व गणों से व्याप्त सैकड़ों करोड़ विमान उसकी सेवाकरते हैं ॥ ४६।४७ ॥ पृथ्वी में मेरी प्रदक्षिणा करतेहुये पुरुषोंकी चरणधूलियों से बड़ा प्यारा मार्ग पवित्र कियाजाता है जोकि शिवजीके स्थानको देनेवालाहै ॥४८॥

पर्वतकी प्रदक्षिणा करताहुआ पुरुष क्षणभरमें पुष्ट शरीरवाला होता है और वज्रके शरीरको प्राप्त होकर भूतल में न घिसे ॥ ४९ ॥ विमानों की उत्कण्ठावाले
देवता सिद्ध व उत्तम ऋषिलोग अदृश्य होकर मेरी समीपताको देखतेहुये यहां भलीभांति भ्रमण करते हैं ॥ ५० ॥ और प्रदक्षिणाकी परिक्रमा में मुझमें विनय व भक्ति
को देखकर हर्षसमेत देवता मनुष्यों के लिये वरदान देते हैं ॥ ५१ ॥ पुरातन समय यहांपर तेंतीस देवता अगहन महीने में प्रतिदिन प्रदक्षिणाकर प्रत्येक करोड़ देव-
ताओंकी स्वामिताको प्राप्तहुये हैं ॥ ५२ ॥ व पुरातन समय सूर्यादिकग्रह प्रदक्षिणाकर पृथ्वीभाग में उत्पन्न होकर सब ग्रह स्थानको प्राप्तहुये हैं ॥ ५३ ॥ जो मनुष्य

णांकुर्वन् क्षणात्पुष्टतनुर्भवेत् ॥ प्राप्तोवज्रशरीरत्वं नघृष्येतमहीतले ॥ ४९ ॥ व्योमयानोत्सुकादेवाः सिद्धाश्चपरम
र्षयः ॥ अदृश्याःसञ्चरन्त्यत्र पश्यन्तोममसन्निधिम् ॥ ५० ॥ विनयंमयिभक्तिञ्च प्रदक्षिणपरिक्रमे ॥ दृष्ट्वाहर्षसमायु
ता मर्त्येभ्योददतेवरम् ॥ ५१ ॥ अत्रदेवास्त्रयस्त्रिंशत्पुराकृत्वाप्रदक्षिणाम् ॥ प्रत्येकंप्रत्यहंमार्गे मासिकोटीशताङ्ग
ताः ॥ ५२ ॥ आदित्याद्याग्रहास्सर्वे पुराकृत्वाप्रदक्षिणाम् ॥ सम्भूयजगतीभागे सर्वेग्रहपदंगताः ॥ ५३ ॥ यःकरोतिन
रोभूसौ सूर्यवारेप्रदक्षिणाम् ॥ ससूर्यमण्डलम्भित्त्वा मुक्तःशिवपुरंव्रजेत् ॥ ५४ ॥ सोमवारेनरःकुर्वन्नरुणाद्रिप्रदक्षिण
म् ॥ अजरामरतांप्राप्तः ससौम्योभवतिक्षितौ ॥ ५५ ॥ भौमवारेनरःकुर्वन्नरुणाद्रिप्रदक्षिणाम् ॥ आनृण्यमखिलंप्रा
प्य सार्वभौमःसवैध्रुवम् ॥ ५६ ॥ बुधवारेनरःकृत्वा शोणाद्रीशप्रदक्षिणाम् ॥ शास्त्रज्ञतामनुप्राप्तः सवाचांपति ॥ मिया
त् ॥ ५७ ॥ गुरुवारेनरःकुर्वन् सर्वदेवनमस्कृतः ॥ प्रदक्षिणान्तुशोणाद्रेः सतुलोकगुरुर्भवेत् ॥ ५८ ॥ भृगुवारेनरःकुर्व

पृथ्वी में रविवारके दिन प्रदक्षिणा करताहै वह सूर्यमण्डलको भेदनकर मुक्तहो शिवपुरको जाताहै ॥ ५४ ॥ और सोमवारके दिन अरुणाचलकी प्रदक्षिणा करताहुआ
वह पुरुष अजरता व अमरताको प्राप्तहोकर पृथ्वी में सौम्य होताहै ॥ ५५ ॥ और मगलके दिन अरुणाचलकी प्रदक्षिणा करताहुआ वह पुरुष सब उऋणताको प्राप्त
होकर निश्चयकर महाराजाधिराज होताहै ॥ ५६ ॥ और बुध दिनमें प्रदक्षिणाकर वह मनुष्य शास्त्रज्ञताको प्राप्त होकर वाक्पतित्वको प्राप्त होताहै याने बृहस्पतिके
समान विद्वान् होताहै ॥ ५७ ॥ और बृहस्पतिके दिन अरुणाचलकी प्रदक्षिणा करताहुआ वह पुरुष सब देवताओंसे प्रणाम कियाहुआ होकर संसारमें गुरू (शिक्षक)

होताहै ॥ ५८ ॥ और शुक्रवारको अरुणाचल की प्रदक्षिणा करताहुआ पुरुप बडी भारी लक्ष्मी को प्राप्त होकर विष्णुजी के स्थानको प्राप्तहोताहै ॥ ५९ ॥ और श-
निश्चर के दिन अरुणाचल की प्रदक्षिणाकर ग्रहोंकी पीडाओं से छूटाहुआ वह पुरुप संसारभरको जीतनेवाला होताहै ॥ ६० ॥ पुरातन समय देवताओं समेत सब
नक्षत्र मेरी प्रदक्षिणाकर अचानकही पुण्यों को प्राप्तहुये हैं ॥ ६१ ॥ तिथियां व करणों के स्वामी और योग मेरे सम्मत होकर मेरी प्रदक्षिणा करतेहुये प्यारे फल
देनेवाले हुयेहैं॥ ६२॥और मुहूर्त्त व अनेक भातिके तारा मेरी प्रदक्षिणा करनेवाले पुरुषोंके सदैव ऐश्वर्यवाले व सौम्य तथा निरन्तर शुभहोते हैं ॥ ६३ ॥ प्रकार

न्नरुणाद्रिप्रदक्षिणाम् ॥ सम्प्राप्यमहतींलक्ष्मीं लभतेवैष्णवंपदम् ॥ ५९ ॥ मन्दवारेनरःकृत्वा शोणाद्रीशप्रदक्षिणाम्॥
विमुक्तोग्रहपीडाभिः सविश्वविजयीभवेत् ॥ ६० ॥ नक्षत्राणिचसर्वाणि पुरातुदैवतैःसह ॥ ममप्रदक्षिणांकृत्वा पुण्या
निसहसाव्रजन् ॥ ६१ ॥ तिथयःकरणाधीशा योगाश्चममसम्मताः ॥ अभीष्टफलदाजाताः कुर्वतोमत्प्रदक्षिणा
म् ॥ ६२ ॥ मुहूर्त्ताविविधास्ताराः सौम्याश्चसततोदयाः ॥ मत्प्रदक्षिणकर्तृणां जायन्तेसततंशुभाः ॥ ६३ ॥ प्रच्छिन्न
त्तिप्रकारोघं दकारोवाञ्छितप्रदः॥ क्षिकारात्क्षीयतेकर्मणकारोमुक्तिदायकः ॥ ६४ ॥ दुर्बलाःकार्श्यसंयुक्ता आधिव्याधि
विजृम्भिताः ॥ ममप्रदक्षिणांकृत्वा मुच्यन्तेसर्वदुष्कृतैः ॥६५॥ आगत्यद्वापरान्तेच तपोऽत्राद्भुतमद्रिजा ॥ ममप्रदक्षि
णांकृत्वा मामेष्यत्यनघापुनः ॥ कार्त्तिकेमासिनक्षत्रे कृत्तिकाख्येमहामुने ॥ ६६ ॥ ममप्रदक्षिणांगौरी प्रदोषेरचयत्पु
रा ॥ नराणामल्पपुण्यानां दुर्लभंतत्प्रदक्षिणम् ॥ ६७ ॥ ज्योतिर्लिङ्गस्यबहुशो देवीप्रार्थनयातदा॥ मयासमेतादेवी

पापको काटती है व दकार चाहेहुये मनोरथ को देनेवाली है और क्षिकार से कर्म क्षीणहोता है व णकार मुक्तिदायक है ॥ ६४ ॥ दुर्बल व कृशता से संयुत तथा मा-
नसी विथा व रोगोंसे पीड़ित पुरुप मेरी प्रदक्षिणा करके सब पापोंसे छूटजाते है ॥ ६५ ॥ द्वापरके अन्तमें यहां पार्वतीजी आकर व अद्भुत तप तथा मेरी प्रदक्षिणा
कर फिर पापहीन होकर मुझको प्राप्तहोंगी हे महामुने ! कातिक महीने व कृत्तिकानामक नक्षत्र में ॥ ६६ ॥ पार्वतीजी ने पुरातन समय मेरी प्रदक्षिणा कियाहै
थोड़ी पुण्यवाले मनुष्यों को उसकी प्रदक्षिणा दुर्लभ है ॥ ६७ ॥ उस समय ज्योतिर्लिङ्ग की देवीजी की बहुत प्रार्थना से मुझ समेत अपीतकुचा नामक वे देवी

प्राप्त हुई हैं ॥ ६८ ॥ उत्तरायण के संयोगमें सब देवताओं को आश्वासनकर याने समझाकर वहांपर देवता,गन्धर्व,यक्ष, व सिद्धों तथा राक्षसों और सबही देवताओं का समागम होगा ॥ ६९ ॥ उससमय अधिक तपवाले जो पुरुष भलीभांति आकर मुझको पूजते हैं वे सब जन्मोंमें कियेहुये पापपुञ्जके प्रायश्चित्तको प्राप्तहोतेहैं ॥७०॥ उत्तरायणके संयोगमें पुरुषोंको वह दिन दुर्लभहै क्योंकि उस समय मेरे स्वरूपको पूजकर मनुष्य कृतार्थ होवैंगे ॥ ७१ ॥ धर्मके लोपको व शिवजीके आचार भङ्गको जानता हुआ वह पुरुष सवारीके द्वारा मेरी कभी प्रदक्षिणा न करै ॥ ७२ ॥ पुरातन समय यमलोकसे आयेहुये धर्मकेतु नामक राजाने घोड़ेकेद्वारा मेरी प्रदक्षिणा करने

सा प्राप्तापीतकुचाभिधा ॥ ६८ ॥ आश्वास्यचसुरान्सर्वानुत्तरायणसङ्गमे ॥ देवगन्धर्वयक्षाणां सिद्धानामपिरक्षसाम् ॥ सर्वेषांदेवयोनीनां भवितातत्रसङ्गमः ॥ ६९ ॥ येतदामांसमागत्य पूजयन्तितपोधिकाः ॥ सर्वजन्मकृताघौघप्रायश्चित्तंव्रजन्तिते ॥ ७० ॥ दुर्लभंतद्दिनंपुंसामुत्तरायणसङ्गमे ॥ तदामद्रूपमभ्यर्च्य कृतार्थास्सन्तुमानवाः ॥ ७१ ॥ न वाहनेनकुर्वीत ममजातुप्रदक्षिणम् ॥ धर्मलोपंसजानंस्तु शिवाचारपरिप्लवम् ॥ ७२ ॥ धर्मकेतुःपुराराजा यमलोकादुपागतः ॥ ममप्रदक्षिणांकर्तुं तुरङ्गेणाभिरोचयन् ॥ ७३ ॥ क्षणेनतुरगोजातो गणनाथःसुरार्चितः ॥ प्रतिपेदेपदंशैवं विमुच्यधरणीपतिम् ॥ ७४ ॥ वीक्ष्यतंवाहनंभूपो गणनाथवपुर्धरम् ॥ तदाप्रदक्षिणांकर्तुं चरणाभ्यामरोचयत् ॥ पद्भ्यांप्रदक्षिणांकृत्वा तत्क्षणाद्गणपोभवत् ॥ ७५ ॥ तदाप्रभृतिशक्राद्याः सुराविष्णुपुरोगमाः ॥ पादाभ्यामेवकुर्वन्ति ममसर्वेप्रदक्षिणम् ॥ ७६ ॥ स्वर्गेणपतितःकोपि सिद्धःकालेतपःक्षयात् ॥ प्रदक्षिणाकरंवीक्ष्य पुनर्लब्धपदोभव

के लिये रुचि किया ॥ ७३ ॥ क्षणभरमें वह घोड़ा देवताओंसे पूजितहोकर गणनायक होगया और राजाको छोड़कर शिवजीके स्थानको प्राप्तहुआ ॥ ७४ ॥ गणनायक शरीरधारी उस सवारीको देखकर राजाने उस समय चरणोंसे प्रदक्षिणाकरनेकीरुचि किया और चरणों से प्रदक्षिणाकर वह उसी समय गणनायक हुआ ॥ ७५ ॥ तबसे लगाकर विष्णुपूर्वक इन्द्रादिक सब देवता चरणोंही से मेरी प्रदक्षिणा करते हैं ॥७६॥ तपस्या क्षय होनेके कारण स्वर्गसे गिराहुआ कोई सिद्ध समयमें प्रदक्षिणा

करनेवाले पुरुषको देखकर फिर स्थानको प्राप्तहुआहै ॥ ७७ ॥ मेरी प्रदक्षिणा करके मनुष्य मणिपर्वत के शिखरोंपै व कल्पवृक्षों के वनके मध्यमें सदैव घूमते हैं ॥७८॥ पार्वतीजी बोलीं कि हे सुव्रत, गौतमजी! सेवामें लगेहुये प्राणियों के फलको मुझसे कहिये ॥ ७९ ॥ गौतमजी बोले कि हे गिरिजे! मुझ से पूंछेहुये महादेवजीने जो कहा है उसको सुनिये कि किसीसमय मकड़ी तागोंके जालोंको मेरे ऊपर रच कर जातिका स्मरण करनेवाला राजा होकर उसने मुझको वस्त्रोंसे वेष्टित किया ॥८०॥ और मार्गमें प्यास से बिकल होकर जाताहुआ कोई हाथी कभी वनके पत्तेको फेंककर मुक्तहो गणनायक हुआ है ॥ ८१ ॥ और मेरे समीप लोटतेहुये कीड़े भी पाप

त् ॥ ७७ ॥ मणिपर्वतशृङ्गेषु कल्पद्रुमवनान्तरे ॥ सञ्चरन्तिसदामर्त्या ममकृत्वाप्रदक्षिणाम् ॥ ७८ ॥ गौर्य्युवाच ॥ उपचारप्रवृत्तानां फलम्मेशंससुव्रत ॥ ७९ ॥ गौतमउवाच ॥ मयापृष्टोमहादेवो यदाहगिरिजेशृणु ॥ लूतिकातन्तुजालानि संसृज्यकचिदेवमे ॥ जातिस्मरोमहीपःसन् सोंशुकैर्मामवेष्टयत ॥ ८० ॥ गजःकश्चित्तृषाक्रान्तो मार्गेतुविचरन् कचित् ॥ वनपल्लवमुत्कीर्य मुक्तोभूद्गणनायकः ॥ ८१ ॥ कृमयोविलुठन्तोमे पार्श्वेदुरितवर्जिताः ॥ सिद्धवेषाःपुनःसर्वे ममलोकंव्रजन्तिते ॥ ८२ ॥ अपिच्छिन्नप्रदीपार्चिः क्षणमप्यादधातियः ॥ स्वयंप्रकाशसम्भावान्ममसारूप्यमश्नुते ॥ ८३ ॥ हारीतःकोपिसंप्राप्तः शाखानीडोममान्तिके ॥ खद्योतःस्वार्चिषोनक्तंजीवन्मुक्तःसमागमात ॥ ८४ ॥ गावः प्रस्रवणैःसिक्त्वा वत्सस्मरणसम्भवैः ॥ मत्पार्श्वम्मुक्तिमापुस्ताममलोकंसमाश्रिताः ॥ ८५ ॥ वायसःपक्षवातेन बलिग्रहणलोलुपः ॥ मार्ज्जयन्मत्पुरोभागं मुक्तिंप्रापचतत्क्षणात् ॥ ८६ ॥ मूषकोमद्गुहाभागं मणिसङ्घनिकर्षणैः ॥ प्रका

रहित होकर वे फिर सब सिद्धवेष होकर मेरेलोकको जातेहैं ॥ ८२ ॥ और सम्पूर्ण दीप के प्रकाश को जो क्षणभर भी धरता है वह आपही प्रकाश के होनेसे मेरी सरूपता को भोगता है ॥ ८३ ॥ शाखामें घोंसला कियेहुये कोई हारीत पक्षी मेरे समीप भलीभांति प्राप्तहुआ है और रातमें जुगनू अपने प्रकाश के संयोग से जीवन्मुक्त होगया ॥ ८४ ॥ और बछड़ाके स्मरणसे उपजेहुये दूधके प्रवाहों से मेरे समीप सींचकर वे गाइयां मेरे लोकमें टिककर मुक्तिको प्राप्तहुई हैं ॥ ८५ ॥ और बलिके लेनेमें चञ्चल कौवाने पंखोंके पवनसे मेरे आगे के भागको बटोरतेहुये उसी क्षण मुक्तिको पायाहै ॥ ८६ ॥ और मणिसमूहोंके खींचनेसे मेरी कन्दरा के विभाग

को प्रकाश से अन्धकार रहितकर मूपने मेरे स्वरूप को पायाहै ॥८७॥और मेरे समीप छायावाले वृक्षोंकी योनिमें टिकनेके लिये मुनि व देवताभी फिर न उत्पन्न होने
की इच्छा से प्रार्थना करतेही हैं ॥ ८८ ॥ और मेरे आगे पुरद्वार, शिखर, मण्डप व वावली करतेहुये पुरुषो के मनोरथकी सम्पदायें सिद्ध होतीहैं ॥ ८९ ॥ यह मेरा
अग्निमय लिंग मनुष्योंसे सदैव जाननेयोग्य नहीं है इसलिये अचलेश नामक लिंग भलीभांति प्राप्तहोकर पृथ्वीमें पूजन कियाजावै ॥९०॥ वे शिवदेवजी दर्शन,स्पर्श

**शनाद्धितिमिरं मद्रूपंसमपद्यत ॥ ८७॥ छायावृक्षत्वमास्थातुं मुनयस्त्रिदशाअपि ॥ प्रार्थयन्त्येवमत्पार्श्वे नपुनस्सम्भ
वेच्छया ॥ ८८॥ गोपुरंशिखरञ्चापि मण्डपंवापिकामपि ॥कुर्वतांममत्पुरोभागे सिध्यन्तीष्टार्थसम्पदः ॥ ८९ ॥ सदाम
त्यैस्त्वनासाद्यमग्निलिङ्गमिदंमम ॥ समासाद्याचलेशाख्यंपूज्यतांवसुधातले ॥ ९० ॥ वीक्षणस्पर्शनध्यानैः ससूते
निखिलंजगत् ॥ पोषयन्तीपराशक्तिः पूज्यापीतकुचाभिधा ॥ ९१ ॥ सर्वलोकैकजननी संप्राप्तानित्ययौवनम् ॥ क
न्यैवमामभिप्रेत्य सैवापीतकुचाभिधा ॥ ९२ ॥ क्षणमस्याःपुरोभागे वसतांप्राणिनामिह ॥ परत्रचापिदुष्प्रापमिष्टंव
स्तुनविद्यते ॥ ९३ ॥ अप्रमेयगुणाधारमपेक्षितवरप्रदम् ॥ अशेषभोगनिलयं शोणाद्रिन्त्वंसमर्चय ॥ ९४॥ लब्धका**

ध्यान से सब संसार को उत्पन्न करते हैं और पालन करती हुई अपीतकुचा नामक उत्तमशक्ति पूजन करनेयोग्यहै ॥ ९१ ॥ जोकि सब लोकोंकी एक माता व नित्य
युवावस्थाको प्राप्त वह कन्याही मुझको प्राप्त होकर अपीतकुचानामक है ॥ ९२ ॥ इस भगवती के आगे क्षणभर भी निवास करतेहुये पुरुषों को इसलोक व परलो-
कमें प्रिय वस्तु दुर्लभ नहीं होतीहै ॥ ९३ ॥ अमित गुणोंके आधार व चाहेहुये वर को देनेवाले तथा सब सुखोंके स्थान अरुणाचल को तुम भलीभांति पूजो ॥९४॥

हे सुव्रते ! मनोरथको प्राप्त होतीहुई तुम फिर शिवदेवजीके आश्रित होगी और यह तुम्हारा तप करना भी लोकों के हितको देनेवाला है ॥ ६५ ॥ तुम्हारा तप केवल अपने मनोरथ को देनेवाला नहीं है किन्तु तप करतेहुये ऋषियों की शिक्षाके लिये होगा ॥ ६६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेअरुणाचलखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायामष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

मापुनर्देवमाश्रयिष्यसिसुव्रते ॥ तपश्चरणमप्येतत्तवलोकहितावहम् ॥ ९५ ॥ नकेवलंतवतपः स्ववाञ्छितफलप्रदम् ॥ तपस्यतामृषीणाञ्च शिक्षणायभविष्यति ॥ ९६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽरुणाचलमाहात्म्येऽष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

दो० । श्रीगणपति के दोउ चरण कमलनमें शिरनाइ । यहि अरुणाचलखण्ड की टीका रचेहुँ बनाइ ॥ १ ॥

समाप्तोयमरुणाचलखण्डः ॥

प्रथमबार

लखनऊ

मुंशी नवलकिशोर (सी, आई, ई) के छापेखाने में छपा
सन् १६०८ ई० ॥

इति स्कन्दपुराण अरुणाचलखण्ड समाप्तः ॥

अथ स्कन्दपुराणकुमारिकाखण्डप्रारम्भः॥

अथ स्कन्दपुराणमाहेश्वरखण्डान्तर्गत कुमारिकाखण्डस्य सूचीपत्रमाह ॥

इति कुमारिकाखण्डस्यसूचीपत्रंसमाप्तम् ॥

अथ स्कन्दपुराणमाहेश्वरखण्डप्रारम्भः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

स्कन्दपुराणमाहेश्वरखण्डान्तर्गत

कुमारिकाखण्ड सटीक

दो० । ग्राहरूप अप्सरन जिमि अर्जुन कीन उधार । सोई प्रथम अध्याय में वरणत चरित उदार ॥ मुनिलोग बोले कि हे विशाललोचन ! दक्षिण समुद्रके किनारोंमें जो पांच तीर्थ हैं उनको कहिये क्योंकि महर्षिलोग उनको अत्यन्त वर्णन करते हैं ॥ १ ॥ नारदादिक मुनिलोग जिनमें सब तीर्थोंका फल कहते हैं उन के चरित्र का माहात्म्य हमलोग सुना चाहते हैं ॥ २ ॥ उग्रश्रवा मुनि बोले कि स्वामिकार्त्तिकेय जीके अत्यन्त आश्चर्यमय व पुण्यरूप उत्तम कथावाले बड़े प्रभावको तुम

शिवायनमः ॥ मुनयऊचुः ॥ दक्षिणार्णवतीरेषु यानितीर्थानिपञ्चच ॥ तानिब्रूहिविशालाक्ष वर्णयन्त्यतितानि च ॥ १ ॥ सर्वतीर्थफलंयेषु नारदाद्यावदन्तिच ॥ तेषांचरितमाहात्म्यं श्रोतुमिच्छामहेवयम् ॥ २ ॥ उग्रश्रवाउवाच ॥ शृणुध्वमत्यद्भुतपुण्यसत्कथं कुमारनाथस्यमहाप्रभावम् ॥ द्वैपायनोयन्ममचाहपूर्वं हर्षाम्बुरोमोद्गमचर्चिताङ्गः ॥ ३ ॥ कुमारगीतागाथात्र श्रूयतांमुनिसत्तमाः ॥ यासर्वदेवैर्मुनिभिः पितृभिश्चप्रपूजिता ॥ ४ ॥ साध्वाचारःस्तम्भतीर्थं यो निषेवेतमानवः ॥ नियतंतस्यवासःस्या[illegible]लोकेयथामम ॥ ५ ॥ ब्रह्मलोकाद्विष्णुलोकस्तस्मादपिमहेशितुः ॥ पुत्र

लोग सुनो जिसको पहले प्रसन्नता से उठेहुये रोमोंवाले व्यासजीने मुझसे कहाथा ॥ ३ ॥ हे मुनिश्रेष्ठो ! इस विषयमें स्वामिकार्त्तिकेय जी से गाईहुई कथाको सुनिये जोकि समस्त देवताओं, मुनियों व पितरों से पूजितहै ॥ ४ ॥ उत्तम आचारवाला जो पुरुष स्तम्भतीर्थ को सेवन करता है उसका निवास निश्चयकर मेरेलोकमें वैसे ही होताहै जैसा कि मेराहै ॥ ५ ॥ ब्रह्मलोक के ऊपर विष्णुलोक व उसके भी ऊपर शिवजीका लोकहै और पुत्रप्रिय होनेके कारण से उसके भी ऊपर बड़ा उत्तम

स्वामिकार्त्तिकेय जीका लोकहै ॥६॥ हे मुनिश्रेष्ठो ! पुरातनसमय इस विषयमें नारदमुनिने जो अर्जुनजीकी आश्चर्यमयी कथाको कहाहै मैं तुमलोगों से उसको विस्तार पूर्वक कहूंगा ॥ ७ ॥ पुरातन समय किसी कारण से मणिपूरक वे अर्जुनजी समुद्रके दक्षिण किनारे पै उन पाचोंतीर्थों को नहाने के लियेगये ॥ ८ ॥ कि तपस्वी लोग जिन तीर्थोंको डरसे छोडदेते हैं स्वामिकार्त्तिकेयजी का पहला तीर्थ जोकि मुनिको प्यारा है वह विद्यमान है ॥ ९ ॥ व समुद्रके किनारे मुनिको प्रिय दूसरा स्तम्भेश का तीर्थहै और तीसरा पुलोमा को प्रिय उत्तम वर्करेश्वर तीर्थ है ॥ १० ॥ और करन्धम के पुत्रको प्यारा चौथा महाकालतीर्थ है व पांचवां भारद्वाज जी का सिद्धेश

प्रियत्वात्तस्यापि गुहलोकोमहोत्तमः ॥ ६ ॥ अत्राश्चर्य्यकथायाच फाल्गुनस्यपुरेरिता ॥ नारदेनमुनिश्रेष्ठास्तांवोवक्ष्यामिविस्तरात् ॥ ७ ॥ पुरानिमित्तेकस्मिंश्चित्किरीटीमणिपूरकः ॥ समुद्रदक्षिणेभागे स्नातुन्तीर्थानिपञ्चशः ॥ ८ ॥ वर्ज्यन्तिसदायानि भयात्तीर्थानितापसाः॥कुमारेशस्यपूर्वंचतीर्थमस्तिमुनेःप्रियम् ॥९॥ स्तम्भेशस्यद्वितीयञ्च समुद्रस्यमुनेःप्रियम् ॥ वर्करेश्वरमन्यच्च पुलोमप्रियमुत्तमम् ॥ १० ॥ चतुर्थञ्चमहाकालं कारन्धमनृपप्रियम् ॥ भारद्वाजस्यतीर्थञ्च सिद्धेशाख्यंहिपञ्चमम् ॥ ११ ॥ एतानिपञ्चतीर्थानिददर्शकुरुपुङ्गवः ॥ तपस्विभिर्वर्ज्जितानि महापुण्यानितानिच ॥ १२ ॥ दृष्ट्वापार्थोनारदाद्यानपृच्छत्समहामुनीन् ॥तीर्थानीमानिरम्याणि प्रभावाद्भुतवन्तिच ॥ १३ ॥ किमर्थंब्रूतवर्ज्यन्ते सदैवब्रह्मवादिभिः ॥ १४ ॥ तापसाऊचुः ॥ ग्राहाःपञ्चवसन्त्येषु हरन्तिचतपोधनान् ॥ अतएतानिवर्ज्यन्ते तीर्थानिकुरुनन्दन ॥१५॥ इति श्रुत्वामहाबाहुर्गमनायमहोदधेः ॥ ततस्तन्तापसाःप्रोचुर्गन्तुन्नार्हसिफाल्गुन ॥१६॥

नामक तीर्थहै ॥ ११ ॥ इन पांचों तीर्थोंको कौरवों में श्रेष्ठ अर्जुनजीने देखा जो वे बड़े पुण्यदायक तीर्थ तपस्वियोंसे रहितथे ॥१२ ॥ और उनको देखकर उन अर्जुन जी ने नारदादिक महामुनियों से पूछा कि प्रभावसे आश्चर्यवाले जो ये मनोहर तीर्थ हैं ॥ १३ ॥ ब्रह्मवादी लोग सदैव इनको किसलिये त्याग करतेहैं यह कहिये ॥ १४ ॥ तपस्वी लोग बोले कि हे कुरुनन्दन ! इन तीर्थों में पांच ग्राह बसते हैं वे तपस्वियों को हरलेजाते हैं इससे ये तीर्थ वर्जित कियेजाते हैं ॥ १५ ॥ यह सुनकर महाभुज अर्जुनजी ने समुद्रके किनारे जानेके लिये इच्छा किया तब उनसे तपस्वियों ने कहा, कि हे अर्जुनजी ! तुम जानेके योग्य नहीं हो ॥ १६ ॥

क्योंकि उन ग्राहोंने बहुतसे राजा व मुनिलोगोंको मारडालाहै इस लिये तुम बारहवर्षतक अर्बुद भी तीर्थोंमें स्नान करोगे इन तीर्थोंसे तुम्हारा क्या प्रयोजनहोगा
पतंगके समान व्रतवाले मतहोवो याने पांखीकी तरह अग्निमें मतजलो॥१७।१८॥अर्जुनजी बोले कि दया सारांशवालोंने जो सारांश कहाहै वह क्या कहाजाताहै और
हे मुनियो ! जो धर्मका अर्थीहो उसे महात्माओं को न मना करना चाहिये॥१९॥ क्योंकि मूढ़बुद्धिवाला जो पुरुष धर्मकी इच्छावाले मनुष्य को मना करताहै आश्रय
कियेहुये उस मनुजके श्वासों से पृथ्वी भस्मताको प्राप्त होती है॥२०॥ जो जीवन बिजुली की चमक के समान चलायमान कहाजाताहै यदि धर्मके लिये वह जीव

बहवोघातितास्तैस्तु राजानोमुनयस्तथा ॥ तत्त्वंद्वादशवर्षाणि तीर्थानामर्बुदेष्वपि ॥ १७ ॥ स्नातःकिमेतैस्ती
र्थैस्ते मापतङ्गव्रतोभव ॥ १८ ॥ अर्जुनउवाच ॥ यदुक्तंकरुणासारैस्सारंतत्किन्तुप्रोच्यते ॥ धर्मार्थीमुनयोयश्च न
सवार्योमहात्मभिः ॥ १९ ॥ धर्मकामंहिमनुजं योवारयतिमन्दधीः ॥ तस्याश्रितस्यजगतीनिश्वासैर्भस्मतामिया
त ॥ २० ॥ यज्जीवितन्तुविद्युच्चर्चस्यमानंक्षणभङ्गुरम् ॥ तच्चेद्धर्मकृतेयाति यातुदोषोस्तिकोनतु ॥ २१ ॥ जीवितञ्च
धनन्दाराः पुत्राःक्षेत्रंगृहाणिच ॥ यातियेषान्धर्मकृते तएवभुविमानवाः ॥ २२ ॥ तापसाऊचुः ॥ एवन्तेकुर्वतःपार्थ दी
र्घमायुःप्रवर्द्धताम् ॥ सदाधर्मरतिर्भूयाद् याहिस्वंकुरुवाञ्छितम् ॥ २३ ॥ एवमुक्तःप्रणम्यैतानाशीर्भिरभिसंस्तुतः॥
जगामतानितीर्थानि द्रष्टुंभरतसत्तमः ॥ २४ ॥ ततोसौसद्रमासाद्य महर्षेस्तीर्थमुत्तमम् ॥ विगाह्यतरसावीरः स्नानंच
क्रेपरन्तपः ॥ २५ ॥ अथतंपुरुषव्याघ्रमन्तर्जलचरोमहान् ॥ निजग्राहजलेग्राहः कुन्तीपुत्रंधनंजयम् ॥ २६ ॥ तमा

जाताहै तो जावै उसमें कौनसा दोषहै यह मैं पूछता हूं ॥ २१ ॥ जिन मनुष्यों का जीव, धन, स्त्री, पुत्र, खेत व घर धर्म के लिये जाताहै वेही पृथ्वीमें मनुजहैं॥२२॥
तपस्वी लोग बोले कि हे अर्जुन ! ऐसा करते हुये तुम्हारी बड़ी आयुर्बल बढ़े व सदैव धर्ममें स्नेहहोवै तुम जावो व अपना मनोरथ करो॥२३॥ ऐसा कहेहुये भरतश्रेष्ठ
अर्जुन जी इन मुनियों को प्रणामकर व आशीर्वाद पाकर उन तीर्थोंको देखने के लियेगये ॥ २४ ॥ उसके बाद शत्रुओं के तापक वीर अर्जुनजी ने कल्याणकारक
व उत्तम महर्षिके तीर्थ में जाकर व शीघ्रता से पैठकर स्नान किया ॥ २५ ॥ इसके अनन्तर जलके भीतर पुरुषों में श्रेष्ठ उन कुन्तीके पुत्र अर्जुनजी को बड़ाभारी जल-

चारी ग्राह पकड़लिया ॥ २६ ॥ बलिष्ठोंमें श्रेष्ठ महाभुज अर्जुनजी पराक्रमसे उस ग्राहको लेहीकर उठपड़े ॥ २७ ॥ और यशस्वी अर्जुन जी से खींचाहुआ वह ग्राह समस्त भूषणों से भूषित व कल्याणकारिणी स्त्री होगई ॥ २८ ॥ हे ब्राह्मणो ! जोकि दिव्यरूपिणी वह सुन्दरी नारी जलती हुई ज्वालाओंसे युक्त थी वह बड़े आश्चर्यको देखकर कुन्तीजी के पुत्र अर्जुनजी ॥ २९ ॥ उस बड़ी प्रसन्न स्त्रीसे यह वचन बोले कि हे कल्याणि ! तुम कौन हो और किस कारण से जलचारिणी हुई हो ॥ ३० ॥ और किसलिये तुमने ऐसा बड़ापाप कियाहै ॥ ३१ ॥ स्त्री बोली कि हे अर्जुन ! देववन में वसनेवाली मैं वर्चा अप्सराहूं व हे महाबल ! कुबेर की प्रसन्नतासे मैं नित्य

दायैवकौन्तेयो विस्फुरन्तञ्जलेचरम् ॥ उदतिष्ठन्महाबाहुर्बलेनबलिनांवरः ॥ २७ ॥ उत्कृष्टएवतुग्राहः सोर्जुनेनयशस्विना ॥ बभूवनारीकल्याणी सर्वाभरणभूषिता ॥ २८ ॥ दीप्यमानशिखाविप्रा दिव्यरूपामनोरमा ॥ तदद्भुतंमहद्दृष्ट्वा कुन्तीपुत्रोधनञ्जयः ॥ २९ ॥ तांस्त्रियंपरमप्रीतामिदंवचनमब्रवीत ॥ कावैत्वमसिकल्याणिकुतोवाजलचारिणी ॥ ३० ॥ किमर्थञ्चमहत्पापमिदंकृतवतीह्यसि ॥ ३१ ॥ नार्य्युवाच ॥ अप्सराह्यस्मिकौन्तेय देवारण्यनिवासिनी ॥ इष्टाधनपतेर्नित्यं वर्चानाममहाबल ॥ ३२ ॥ ममसख्यश्चतस्रोन्याः सर्वाःकामगमाःशुभाः ॥ ताभिस्सहप्रयातास्मि देवराजनिवेशनात् ॥ ३३ ॥ ततःपश्यामहेसर्वा ब्राह्मणंतांविकेतकम् ॥ रूपवन्तमधीयानमेकमेकान्तचारिणम् ॥ ३४ ॥ तस्यवैतपसोवीर तद्वनंतेजसावृतम् ॥ आदित्यइवतन्देशं कृत्स्नमत्यवभासयत् ॥ ३५ ॥ तस्यदृष्ट्वावपुस्ताट्टग्रूपंचाद्भुतदर्शनम् ॥ अवतीर्णास्मितन्देशं तपोविघ्नचिकीर्षया ॥ ३६ ॥ अहञ्चसौरभेयीच सामधीबुद्बुदालता ॥ यौगप

ही प्रसन्न रहतीहूं ॥ ३२ ॥ और इच्छापूर्वक चलनेवाली मेरी और उत्तम चार सखियां है उन सबों समेत मैं सुरराज के स्थान से चली ॥ ३३ ॥ तदनन्तर एकान्त में रहनेवाले व पढ़तेहुये रूपवान् तांविकेतक नामक एक ब्राह्मणको हमसबोंने देखा ॥ ३४ ॥ हे वीर ! उनकी तपस्याके तेजसे वह वन घिराहुआथा और सूर्यकी तरह वे उस समस्त स्थानको प्रकाशित कररहे थे ॥ ३५ ॥ उनके वैसे शरीर व आश्चर्यमय दर्शनवाले रूपको देखकर तपमें विघ्नकरने की इच्छा से उस स्थान में मैं उतरती भई ॥ ३६ ॥

हे भारत ! मैं व सौरभेयी और सामधी, बुद्बुदा व लता एकही साथ उस ब्राह्मणके समीप प्राप्तहुई ॥ ३७ ॥ हे वीर ! खेलती व गाती और उस ब्राह्मण को लुभाती हुई
हमसब गईं परन्तु उसने हमसबों में किसी प्रकार मे मन न किया ॥ ३८ ॥ और बड़ी तपस्या में टिकाहुआ वह महातेजस्वी ब्राह्मण चलायमान न हुआ व हे क्षत्रियों में
श्रेष्ठ ! हम सबों पै क्रोधितहो उस ब्राह्मणने शापदिया ॥३९॥ कि तुमसब ग्राहहोकर सौ वर्षतक जलमें होवोगी उसकेउपरान्त हेभरतसत्तम! हमसब बहुत दुःखीहुईं॥४०॥
और तपोरूप धनवाले व पापरहित तथा रूप व अवस्था से कामदेव की नाईं भलीभांति बैठेहुये उस ब्राह्मण की शरण में आईं ॥ ४१ ॥ व प्रार्थना किया कि हे

येनतंविप्रमभ्यगच्छाममभारत ॥ ३७ ॥ गायन्त्योललमानाश्च लोभयन्त्यश्चतंद्विजम् ॥ सचनास्मासुकृतवान् मनो
वीरकथञ्चन ॥ ३८ ॥ नाकम्पतमहातेजाः स्थितस्तपसिनिर्मले ॥ सोशपत्कुपितोस्मासु ब्राह्मणःक्षत्रियर्षभ ॥ ३९ ॥
ग्राहभूताजलेयूयं भविष्यध्वंशतंसमाः ॥ ततोवयंप्रव्यथितास्सर्वाभरतसत्तम ॥ ४० ॥ आगताःशरणंविप्रं तपोधनम
कल्मषम् ॥ रूपेणवयसाचैव कन्दर्पमिवसंस्थितम् ॥ ४१ ॥ अयुक्तंकृतवत्यःस्मक्षन्तुमर्हसिनोद्विज ॥ एषएववधोस्मा
कं सम्पर्याप्तस्तपोधनम् ॥ ४२ ॥ यद्वयंशंसितात्मानं प्रलोब्धुंत्वामुपागताः ॥ अवध्याश्चस्त्रियश्शिष्टा मन्यन्तेधर्मचि
न्तकाः ॥ ४३ ॥ तस्माद्धर्मेणधर्मज्ञ नास्मान्हिंसितुमर्हसि ॥ सर्वभूतेषुधर्मज्ञ मैत्रोब्राह्मणउच्यते ॥ ४४ ॥ सत्योभ
वतुधर्मज्ञ एषवादोमनीषिणाम् ॥ शरणञ्चप्रपन्नानांशिष्टाःकुर्वन्तिपालनम् ॥ ४५ ॥ शरणंत्वांप्रपन्नाःस्म तस्मात्त्वंक्ष
न्तुमर्हसि ॥ एवमुक्तस्तुधर्मात्मा ब्राह्मणःशुभकर्मकृत ॥ ४६ ॥ प्रसादंकृतवाञ्छूरविसोमसमप्रभः ॥ ४७ ॥ ब्राह्म

द्विज ! हम सबोंने अयोग्य कियाहै तुम क्षमा करनेकेयोग्यहो हे तपोधन ! हमलोगोंका यही वध अच्छीतरह पूर्ण होगया ॥ ४२ ॥ जोकि प्रशंसित मनवाले तुमको
लोभने के लिये हम सबआईं थीं और धर्मके चिन्तक उत्तम पुरुष स्त्रियोंको अवध्य (न मारनेयोग्य) मानते हैं ॥ ४३ ॥ इस लिये हे धर्मज्ञ ! धर्मके कारण से तुम हम
लोगोंको मारने के योग्य नहींहो क्योंकि हे धर्मज्ञ ! सम्पूर्ण प्राणियोंमें मित्र ब्राह्मण कहाजाता है ॥ ४४ ॥ हे धर्मज्ञ ! विद्वानों का यह कहना सत्यहोवै और शरण
में प्राप्तहुये प्राणियों का उत्तमजन पालन करते हैं ॥ ४५ ॥ और हम सब तुम्हारी शरण में प्राप्तहैं इस लिये तुमको क्षमा करना चाहिये ऐसा कहेहुये उस उत्तम कर्म-

कारी ब्राह्मण ने ॥ ४६ ॥ हे वीर ! प्रसन्नता किया जोकि चन्द्रमा व सूर्यके समान प्रकाशमान था ॥ ४७ ॥ ब्राह्मण बोला कि आप सबों के चरित्र से चित्तमें मोहको प्राप्तहोताहूं कि ऐसी धृष्टताको आश्चर्य है व जो पापके लिये वर्तमान होनाहै यह बड़े अज्ञानकी बात है ॥ ४८ ॥ यदि यह मनुष्य मस्तक पै बैठेहुये कालको देखै तो भोजनभी न रुचै अकार्य करनेको क्या कहनाहै ॥ ४९ ॥ मनुष्य का जन्म समस्तरत्नोंमें अतिदुर्लभ है परन्तु बड़े आश्चर्यकी बातहै कि उस नरजन्मको स्त्रियोंमें अज्ञानी होकर नीचनर तिनुका के समान करदेते हैं ॥ ५० ॥ व हम तुम से पूंछते हैं कि तुमलोगों का जन्म किसलिये होताहै और कौन लाभ है मनसे यह विचार करके कहि-

णउवाच ॥ भवतीनाञ्चरित्रेण परिमुह्यामिचेतसि ॥ अहोधाष्ट्यंमहामोहो यत्पापायप्रवर्त्तनम् ॥४८॥ मस्तकस्थापिनं मृत्युं यदिपश्येदयञ्जनः ॥ आहारोपिनरोचेत किमुताकार्यकारिता ॥ ४९ ॥ अहोमानुष्यकंजन्म सर्वरत्नसुदुर्लभम् ॥ तृणवत्क्रियतेकैश्चिद्योषिन्मूढैर्नराधमैः ॥५०॥ त्वांवयंसमपृच्छामोजनिर्वःकिन्निमित्ततः ॥ कोवालाभोभिचार्यैतन्म नसासहप्रोच्यताम् ॥ ५१ ॥ नचैताःपरिनिन्दामोजनिर्याभ्यःप्रवर्त्तते ॥ केवलंतान्विनिन्दामोयेचतासुनिर्गलाः ॥ ५२ ॥ यतःपद्मभुवासृष्टंमिथुनं विश्ववृद्धये ॥ तत्तथापरिपाल्यंवैनात्रदोषोस्तिकश्चन ॥ ५३ ॥ याबान्धवैःप्रदत्तास्या दग्निद्विजसमागमे ॥ गार्हस्थ्यपालनंधन्यंतयासाकंहिसर्वदा ॥५४॥ यथाप्रकृतिसंयोगोयत्नेनापिपरस्परम् ॥ साध्यमानो गुणायस्यादगुणायाप्यसाधितः ॥ ५५ ॥ एवंयत्नात्साध्यमानंस्वकंगार्हस्थ्यमुत्तमम् ॥ गुणायमहतेभूयादगुणाया

ये ॥ ५१ ॥ हम इन स्त्रियोकी निन्दा नहीं करते है कि जिनसे जन्म होताहै केवल उनकी निन्दा करते हैं जो पुरुष कि उन स्त्रियोंमें बिन रोंक टोंक प्राप्त होतेहैं ॥५२॥ जिससे कि स्त्री पुरुषका जोड़ा संसारकी वृद्धिके लिये ब्रह्माने रचाहै उसीलिये वैसाही परिपालन करना चाहिये इसमें कोई दोष नहीं है ॥ ५३ ॥ जो स्त्री अग्नि व ब्राह्मण के संयोगमें बन्धुओं से दीजाती है उसके साथ सदैव गृहस्थी का पालन करना प्रशंसित है ॥ ५४ ॥ व यत्नमे भी आपस में साधन कियाहुआ संयोग स्वभाव के अनुसार गुणके लिये होताहै व नही साधन कियाहुआ संयोग अवगुण के लिये होताहै ॥ ५५ ॥ इसीप्रकार यत्नसे साधित अपनी उत्तम गृहस्थी बड़े गुणके

लिये होतीहै और बिनसाधीहुई गृहस्थी अवगुण के लिये भी होती है ॥ ५६ ॥ पांचमुखों से संयुत और द्वारोंपै टिकेहुये गेरह योधाओं से युक्त जो पुरुषहै वह स्त्री
समेत गृहस्थी में कैसे अचेत होजाताहै ॥ ५७ ॥ और जो स्त्रीसे संयुक्त करके पंचयज्ञादिकर्मों से संसार के उपकार के लिये रचागया है वह मूर्खोंकरके अन्यथा सा-
धन कियाजाता है ॥ ५८ ॥ अहो स्त्रियो ! सुनिये नहीं तो तुम्हारी सेवा अशुभहोगी परन्तु तौभी भुजाको उठाकर कहताहूं तुम सुनो ॥ ५९ ॥ कि उत्तम धातुओंमें
सारांश जो वीर्य समानवर्णवाली स्त्रीको छोड़कर निन्दित योनिमें फेंकेगा उसको यमराज ने ऐसा कहाहै ॥ ६० ॥ कि पहले ओषधियों का द्रोही व फिर आत्मद्रोही

**प्यसाधितम् ॥५६॥ पुरंपञ्चमुखंद्वाःस्थैरेकादशभटैर्युतम् ॥ साकंनार्यागार्हपत्येसकथंस्यादचेतनम् ॥५७॥ यश्चस्त्रिया
समायुज्यपञ्चयज्ञादिकर्मभिः ॥ विश्वोपकृतयेसृष्टोमूढैर्हासाध्यतेन्यथा ॥ ५८ ॥ अहोशृणुध्वंनोचेद्वःशुश्रूषाजायते
शुभा ॥ तथापिबाहुमुद्धृत्यकथयामिशृणोपित्वम् ॥ ५९ ॥ सद्धातुसारंयद्वीर्यंसमानांपरिहायच ॥ विनिक्षिपेत्कुयोनौ
तुतस्यैवंप्रोक्तवान्यमः ॥ ६० ॥ प्रथमंचौषधीद्रोग्धाआत्मद्रोग्धाततःपुनः ॥ पितृद्रोग्धाविश्वद्रोग्धायात्यन्धंशा
श्वतीःसमाः ॥ ६१ ॥ मानुष्यंपितरोदेवामुनयोमानवास्तथा ॥ भूतानिचोपजीवन्तितदर्थंनियतोभवेत ॥ ६२ ॥ वच
सामनसाचैवजिह्वयाकरश्रोत्रकैः ॥ दान्तमाहुर्हंसतीर्थंकाकतीर्थमतःपरम् ॥ ६३ ॥ काकप्रायेनयेयस्मिन्रमन्तेतामसा
जनाः॥हंसोपमेतुदेवानांकोर्थस्तेनेतिचिन्त्यताम् ॥६४॥ एवंविधंहिविश्वस्यनिर्माणंस्मरतोहृदि ॥ अपिक्षितेत्रिलोक्यां
रुचकथंपापेरमेन्मनः ॥६५॥ तदिदंवान्यमर्त्यानांशास्त्रदृष्टवतास्त्रियः॥यमलोकेमयादृष्टं मुह्येप्रत्यन्ततःकथम् ॥६६॥**

और पितृद्रोही और विश्वद्रोही ये सैकडों बरसतक अन्धतामिस्रनरकमें प्राप्तहोते हैं॥ ६१॥ पितर, देवता, मुनि व मनुष्य व अन्यप्राणी मनुष्यके समीपसे जीतेहैं उसके
लिये नियत (तैयार) होवै ॥ ६२ ॥ और मन, वचन, जीभ, हाथ व कानोंकरके जितेन्द्रिय पुरुषको विद्वान्लोगोंने हंसतीर्थ कहाहै व इसके उपरान्त अन्य पुरुषको
काकतीर्थ कहाहै ॥ ६३ ॥ और कौवों के सदृशनीतिवाले जिसतीर्थ में तामसीजन रमणकरते हैं हंसोंकी उपमावाले देवताओं के तीर्थमें उनका कौन प्रयोजन है उसीसे
यह विचार कियाजावै ॥ ६४ ॥ संसारके इस प्रकारके निर्माणको हृदयमें स्मरणकरतेहुये पुरुषका मन त्रिलोक के लियभी कैसे पापमें स्नेह करेगा ॥ ६५ ॥ और शास्त्रको

देखे हुये मैंने यमलोकमें स्त्री व अन्य पुरुषोंका यह चरित्र प्रत्यक्ष देखाहै इस लिये कैसे मोहितहोऊं ॥६६॥ व आपसबोंमें कौन क्रोधहै जो जिसलिये बनायेगये हैं वे उसी प्रयोजन को करते हैं और मेरा पराक्रम सत्यहोवै ॥ ६७ ॥ कृत्स्न, समस्त विश्व और सब ये शब्द अक्षयअर्थको कहनेवाले हैं परन्तु यह सौका शब्द अक्षय का वाचक नहींहै ॥ ६८ ॥ जब वनमें ग्राहरूपहो पुरुषों को जलमें पकडतीहुई तुमको पुरुषोंमें श्रेष्ठ कोई मनुष्य जलसे स्थलमें ऊपर खींचैगा ॥ ६९ ॥ तब फिर तुम सब अपने रूपको पावोगी हँसतेहुये भी मैंने पहले कभी झूंठ नहीं कहाहै ॥ ७० ॥ जैसे निन्दित वस्तु के पीने व अशुद्धवस्तु के छूनेकी शुद्धिहोती है वैसेही तुम सबोंकी

भवतीषुचकःकोपोयेतादर्थ्यविनिर्मिताः ॥ तेतमर्थंप्रकुर्वन्ति सत्यमस्तुचमेबलम् ॥ ६७ ॥ कृत्स्नंसमस्तंविश्वञ्च सर्वमक्षयवाचकाः ॥ परिमाणंशतन्त्वेषनैतदक्षय्यवाचकम् ॥ ६८ ॥ यदावनेग्राहभूतां गृह्णन्तींपुरुषाञ्जले ॥ उत्कर्षतिजलात्कश्चित्स्थलंपुरुषसत्तमः ॥ ६९ ॥ तदायूयंपुनस्सर्वाः स्वरूपम्प्रतिपत्स्यत ॥ अनृतंनोक्तपूर्वम्मे हसतापि कदाचन ॥ ७० ॥ कुपानस्यकुष्टक्तस्य शुद्धिस्तद्वद्वराहिवः ॥ ७१ ॥ नार्युवाच ॥ ततोभिवाद्यतंविप्रं कृत्वाचैवप्रदक्षिणम् ॥ अचिन्तयामोपसृत्य तस्माद्देशात्सुदुःखिताः ॥ ७२ ॥ चिन्तयामोवयंसर्वाः कालेनाल्पेनतन्नरम् ॥ समागच्छेमयोनःस्वं रूपमापादयेत्पुनः ॥ ७३ ॥ तावयंचिन्तयित्वेह मुहूर्तादिवभारत ॥ दृष्टवन्त्योमहाभागा देवर्षिमथनारदम् ॥ ७४ ॥ सर्वाहृष्टाःस्मतन्दृष्ट्वादेवर्षिममितद्युतिम् ॥ अभिवाद्यचतम्पार्थ स्थिताःस्मव्यथिताननाः ॥ ७५ ॥ सनोपृच्छद्दुःखमूलमुक्तवत्योवधञ्चतम् ॥ सश्रुत्वातद्यथातथ्यमिदंवचनमब्रवीत ॥ ७६ ॥ दक्षिणेसागरानूपे पञ्चतीर्थानि

उत्तम शुद्धि कहीगई है ॥ ७१ ॥ स्त्री बोली कि उसके उपरान्त उस द्विजको प्रणाम व प्रदक्षिणाकरके उस स्थान से आकर दुःखितहोतीहुई चिन्तन करतीरही ॥ ७२ ॥ हम सब यही विचारतीरही कि थोड़ेही समय के बाद उस मनुष्यके समीप जावैं जो निजरूप को फिर सिद्ध करदेवै ॥७३॥ हे भारत ! यहां महाभागवती हम सब चिन्तनकर के कच्ची दोही घड़ीके बाद देवर्षि नारदजी को देखा ॥ ७४ ॥ व अमितछविवाले उन नारदजी को देखकर हमसब प्रसन्नहोगईं और हे अर्जुन ! उन नारदजीको प्रणामकर विकलमुखवाली हम सब खड़ीहोगईं ॥ ७५ ॥ उन नारदजी ने हम सबोंसे दुःखका मूल पूंछा तब उस वधको हम सबोंने कहा और

उन नारदजीने उस यथार्थवृत्तान्तको जानकर यह वचन कहा ॥ ७६ ॥ कि दक्षिण दिशामें समुद्र के किनारे जो पुण्यदायक व मनोहर पांचतीर्थ हैं उनतीर्थों को
तुमसब शीघ्रही जावो ॥ ७७ ॥ वहां पाण्डुके पुत्र अर्जुनजी स्थितहोकर शुद्धमनवाले वे इस दुःखसे निस्सन्देह छुड़ावेंगे ॥ ७८ ॥ हे वीर ! उन नारदजी के वचनको
सुनकर हम सब यहांआई हैं हे पाण्डव ! तुम इस वचनको सत्यकरनेयोग्यहो ॥ ७९ ॥ तुम्हारे समान साधुजनों का जन्म दीनजनोंका उपकारक होताहै उसके यह
वचन सुनकर अर्जुनजी ने क्रमसे तीर्थों में स्नानक्रिया ॥ ८० ॥ व उन पाण्डवने ग्राहहुई उन अप्सराओं को कृपापूर्वक ऊपर लेआये उसके उपरान्त अर्जुन वीर

सन्निवे ॥ पुण्यानिरमणीयानि तानिगच्छतमाचिरम् ॥ ७७ ॥ तत्रस्थःपुरुषव्याघ्रःपाण्डवोधनञ्जयः ॥ मोक्षयि
ष्यतिशुद्धात्मा दुःखादस्मान्नसंशयः ॥ ७८ ॥ तस्यसर्वावयंवीर श्रुत्वावाक्यमिहागताः ॥ त्वमिदंसत्यवचनं कर्तुमर्ह
सिपाण्डव ॥ ७९ ॥ त्वद्विधानांहिसाधूनां जन्मदीनोपकारकम् ॥ श्रुत्वेतिवचनंतस्याः सस्नौतीर्थेष्वनुक्रमात् ॥ ८० ॥
ग्राहभूताश्चोज्जहार कृपापूर्वंसपाण्डवः ॥ ततःप्रणम्यतावीरं प्रोच्यनानाजयाशिषः ॥ ८१ ॥ गन्तुंकृताभिलाषिण्यः
प्राहपार्थोधनञ्जयः ॥ एषमेहृदिसन्देहः सुदृढःपरिवर्तते ॥ ८२ ॥ कस्माद्वोनारदमुनिरनुगृह्णीन्नशंसत ॥ सर्वःकोप्य
तिहीनोपिस्वपूज्यस्यार्थसाधकः ॥ ८३ ॥ स्वपूज्यतीर्थेष्वावासे प्रोक्तवान्नारदःकथम् ॥ एकैकएषांशक्तोहि अपि
देवान्निवारितुम् ॥ ८४ ॥ तीर्थसंरोधकारिण्यः सर्वेनावारयत्कथम् ॥ इतिचिन्तयतोमह्यं भृशान्दोलायतेमनः ॥ ८५ ॥

को प्रणामकर व बहुतप्रकार के जयके आशीर्वाद देकर उन अप्सराओं ने ॥ ८१ ॥ जब जानेका अभिलाष किया तब कुन्तीके पुत्र अर्जुनजी ने कहा कि मेरे चित्तमें
यह बड़ीपुष्टसन्देह है ॥ ८२ ॥ कि नारद मुनिने तुम सबों के ऊपर क्यों कृपा नहीं किया यह कहिये क्योंकि सब पुरुषभी चाहै अतिनीच भी होवै अपने पूजने
योग्यके प्रयोजन का सिद्धकारक होताहै ॥ ८३ ॥ और नारद ने अपने पूज्यतीर्थों में निवासके निमित्त कैसे कहा क्योंकि इनके मध्यमें देवताको भी निवृत्ति के लिये
एक २ समर्थ है ॥ ८४ ॥ और सबोंने तीर्थको रोकनेवाली तुम सबोंको क्यों नहीं मनाकिया यह चिन्तन करतेहुये मेरा मन बहुत सन्देह में प्राप्तहै ॥ ८५ ॥

और इस विषयमें मुझको बड़ाआश्चर्यहै इससे तुम सब सच कहनेके योग्यहो॥८६॥अप्सरायें बोलीं कि हे अर्जुनजी ! तुम योग्य पूंछतेहो फिर उत्तरदिशामेंदेखो ॥८७॥ कि उत्तम ब्राह्मणों से घिरेहुये जो ये नारद मुनि आते हैं तुम्हारी इच्छाकी प्रियवार्त्ताको ये कहैंगे ऐसा कहकर वे अप्सरायें आकाशतलको चलीगई ॥ ८८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेसपादलक्षसंहितायांकुमारिकाखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांप्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

दो० । नारद सन अर्जुन यथा बहुत बतकही कीन । सो दूजे अध्यायमें बरणत चरित नवीन ॥ मुनि बोले कि उसके उपरान्त ब्राह्मणोंसे घिरेहुये सुरपूजित नारदजीके

महन्मेकौतुकंचात्र सत्यंव्याकर्तुमर्हथ ॥ ८६ ॥ अप्सरसऊचुः ॥ योग्यंपृच्छसिकौन्तेय पुनःपश्योत्तरांदिशम् ॥ ८७ ॥ अयंसुविप्रैरभिसंवृतोयो मुनिस्समायातिचनारदःप्रियम् ॥ सर्वंतवैष्यत्यखिलंचैषवक्ता प्रोक्त्वैवमाकाशतलङ्गतास्ताः ॥ ८८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेसपादलक्षसंहितायांकुमारिकाखण्डेप्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ * ॥

मुनिरुवाच ॥ ततोद्विजैःपरिवृतन्नारदन्देवपूजितम् ॥ अभिगम्योपजग्राह सर्वान्पार्थःपृथक्पृथक् ॥ १ ॥ ततस्तन्नारदःप्राह जयारातीन्धनंजय ॥ धर्मेभवतुतेबुद्धिर्देवेषुब्राह्मणेषुच ॥ २ ॥ कच्चिदेतांमहायात्रां वीरद्वादशवार्षिकीम् ॥ आचरन्खिद्यसेनैवमयिवाकुप्यसेनच ॥३॥ मुनीनामपिचेतांसितीर्थयात्रासुफाल्गुन ॥ खिद्यन्तिपरिकुप्यन्ति श्रेयसांविघ्नमूलतः ॥ ४ ॥ कच्चिन्नतेनदोषेण समाविष्टोसिपाण्डव ॥ अत्रचाङ्गिरसागीतां गाथामेतांहिशुश्रुम ॥ ५ ॥ यस्यहस्तौचपादौच मनश्चैवसुसंयतम् ॥ निर्विकाराःक्रियास्सर्वास्सतीर्थफलमश्नुते ॥ ६ ॥ तदियंहृदिधार्य्यंते किंवा

समीप जाकर अर्जुनजीने अलग २ सबोंको प्रणामकिया॥ १ ॥ उसके उपरान्त नारदजीने उनसे कहा कि हे अर्जुनजी ! शत्रुओंको जीतिये व देवताओं तथा ब्राह्मणों व धर्म में तुम्हारी बुद्धिहोवै ॥ २ ॥ हे वीर ! बारहवर्ष की इस बड़ी तीर्थयात्राको करतेहुये क्या तुम क्लेशको तो नहीं प्राप्तहोते हो और मेरेऊपर क्रोध तो नहीं करतेहो ॥ ३ ॥ हे अर्जुनजी ! मुनियों के चित्तभी तीर्थयात्रा में क्लेशित होते हैं व विघ्नहोने के मूलकारण से कल्याणकारी वस्तुवोंके ऊपर क्रोधितहोते हैं ॥ ४ ॥ हे पाण्डव ! उस दोषसे क्या तुम तो संयुक्त नहींहो इस विषय में अंगिरा महर्षिसे गाईहुई इस गाथाको मैंने सुनाहै ॥ ५ ॥ कि जिसके हाथ, पांव व मन अच्छीतरह

से बंधे हैं उसके सब कर्म विकाररहित हैं और वह सब तीर्थोंका फल भोगता है ॥ ६ ॥ इस लिये तुमको यह बात हृदयमें धारण करनाचाहिये या हम तुमसे क्या
कहैं कि युधिष्ठिरजी जिसके भाई व वे कृष्णजी जिसके मित्र हैं ॥ ७ ॥ परन्तु फिर मनुष्यों को जो यह ब्राह्मणों का सिखावन है वह योग्य है क्योंकि उन
विष्णुजी से हमलोग धर्म के गुरु (उपदेशक) थापेगये हैं ॥ ८ ॥ इस विषयमें ब्राह्मणों प्रति जो गाथा विष्णुने गाया है उसको मुझसे सुनो ॥ ९ ॥ जिस
के अमृतरूप निर्मलयश में सुनने से प्रवेशहोना चाण्डालतक संसारको पवित्र करताहै आपलोगोंसे पायेहुये तीर्थरूप यशवाला वही मैं आपलोगों से प्रतिकूल आ-

**त्वांवच्मेहेवयम् ॥ युधिष्ठिरोयस्यभ्राता सखायस्यसकेशवः ॥ ७ ॥ पुनरेतत्समुचितं यद्विप्रैःशिक्षणंनृणाम् ॥ वयंहि
धर्मगुरवः स्थापितास्तेनविष्णुना ॥ ८ ॥ विष्णुनाचात्रशृणुमे गीताङ्गाथांद्विजान्प्रति ॥ ९ ॥ यस्यामृतामलयशःश्रवणा
वगाहस्सद्यःपुनातिजगदाश्वपचाद्विकुण्ठः ॥ सोहंभवद्भ्यउपलब्धसुतीर्थकीर्तिश्छिन्द्यांस्वबाहुमपिवःप्रतिकूलवृत्तिम् ॥
१० ॥ प्रियञ्चपार्थतेब्रूमोयेषांकुशलकामुकः ॥ ११ ॥ सर्वेकुशलिनस्तेच यादवाःपाण्डवास्तथा ॥ अधुनाभीमसेने
न कुरूणामुपतापकः ॥ १२ ॥ शासनाद्धृतराष्ट्रस्य वीरवर्मानृपोहतः ॥ सहिराज्ञामजेयोभूद्यथापूर्वंबलिर्बली ॥ १३ ॥
कण्टकंकण्टकेनैव धृतराष्ट्रोजिगायतम् ॥ इत्यादिनारदप्रोक्तां वाचमाकर्ण्यफाल्गुनः ॥ १४ ॥ अतीवमुदितःप्राह
तेषामकुशलंकुतः ॥ येब्राह्मणमतेनित्यं येचब्राह्मणपूजकाः ॥ १५ ॥ अहञ्चसततन्नियतस्तीर्थानिविचरन्ननु ॥ आग**

चरणवाली भुजाको भी काटडालूं ॥ १० ॥ हे अर्जुनजी ! तुम्हारी प्रियवार्त्ताको मैं कहताहूं कि तुम जिनकी कुशल की इच्छा रखतेहो ॥ ११ ॥ वे सब यादव व
पांडव कुशलसमेत हैं और इस समय धृतराष्ट्र की आज्ञा से कौरवोंके सन्तापकारक वीरवर्मा राजाको भीमसेन ने मारडाला है जिसप्रकार पहले पराक्रमी बलि थे उसी
भांति वह राजाओं के न जीतनेयोग्यथा ॥ १२ । १३ ॥ जैसे चुभाहुआ कांटा कांटे से निकालाजाता है वैसेही धृतराष्ट्र ने उसको जीतलिया इत्यादि और भी नारदकी
कहीहुई वाणीको सुनकर अर्जुन ॥ १४ ॥ बहुतप्रसन्न होकर बोले कि उनका अकुशल कहांसे होवै जोकि नित्य ब्राह्मणोंके मतमें होते हैं और जो ब्राह्मणोंके पूजकहैं ॥ १५ ॥

और सदैव नियममें बंधकर तीर्थों में घूमताहुआ मैं इसतीर्थको आया और मेरेहृदय में बड़ा आनन्द है ॥ १६ ॥ तीर्थोंका दर्शन धन्यहै व उससे अधिक तीर्थ स्नान धन्यहै, उससे अधिक तीर्थोंका माहात्म्यसुनना धन्यहै यही मनुजीने कहाहै ॥ १७ ॥ इसलिये हे मुने ! मैं इसतीर्थ के गुणोंको सुना चाहताहूं व हे मुने ! जो तुमने स्वीकार कियाहै इसको आपही को सुनानाचाहिये ॥ १८ ॥ क्योंकि त्रिलोक में घूमतेहुये तुम सब सारांशभूत वस्तुको जानते हो इसलिये आपके आदरसे इस को सवतीर्थों से अधिक मानते है ॥ १९ ॥ नारद बोले कि हे गुणिन्, अर्जुनजी ! तुमको यह उचितहै जोकि गुणोंको पूंछतेहो और धर्म से उपजेहुये गुण सुनने के

तस्तीर्थमेतद्धि प्रमोदोतीवमेहृदि ॥ १६ ॥ तीर्थानान्दर्शनंधन्यमवगाहस्ततोधिकः ॥ माहात्म्यश्रवणंतस्मादित्येव मुनिरब्रवीत ॥ १७ ॥ तदहंश्रोतुमिच्छामि तीर्थस्यास्यगुणान्मुने ॥ भवतैवश्राव्यमेतद्यत्त्वयाङ्गीकृतम्मुने ॥ १८ ॥ त्वंहित्रिलोकींविचरन्वेत्सिसर्वांहिसारताम् ॥ तदेतत्सर्वतीर्थेभ्योधिकंमन्येत्वदादृतेः ॥ १९ ॥ नारदउवाच ॥ उचितन्त वपार्थैतद्यत्पृच्छसिगुणिन्गुणान् ॥ गुणिनामेवयुज्यन्ते श्रोतुन्धर्मोद्भवान्गुणान् ॥२०॥ साधूनान्धर्मश्रवणैःकीर्तनैर्याति चान्वहम् ॥ पापानाममदालापैरायुर्यातिवृथात्ययम्॥२१॥ तदहंकीर्तयिष्यामि तीर्थस्यास्यगुणान्बहून्॥यथाश्रुत्वा विजानासियुक्तमङ्गीकृतम्मया ॥ २२ ॥ पुराहंविचरन्पार्थत्रिलोकींकपिलानुगः ॥ गतवान्ब्रह्मणोलोकं तत्रापश्यंपितामहम् ॥ २३ ॥ सहिराजर्षिदेवर्षिमूर्त्तामूर्त्तैस्सुसंवृतः ॥ विभातिविमलोब्रह्मा नक्षत्रैरुडुराडिव ॥ २४ ॥ तमहंप्रणिपत्याथ चक्षुषाकृतस्वागतः ॥ उपविष्टःप्रमुदितः कपिलेनसहैवच ॥ २५ ॥ एतस्मिन्नन्तरेतत्र ब्राह्मणास्समुपागताः॥

लिये गुणीहीजनों को योग्यहैं ॥ २० ॥ उत्तम जनोंकी आयुर्बल प्रतिदिन धर्म के सुनने व कहने से बीतती है व पापियों की आयु अशुभ बातचीतों से वृथा व्यतीत होतीहै ॥ २१ ॥ इसलिये मै इसतीर्थ के बहुत गुणोंको कहूंगा जिसको सुनकर तुमजानोगे कि मैंने योग्य अङ्गीकार कियाहै ॥ २२ ॥ हे अर्जुनजी ! पुरातनसमय कपि-लदेवजी के पीछे त्रिलोकमे घूमताहुआ मैं ब्रह्माके लोकको गया वहां ब्रह्माको देखा ॥ २३ ॥ कि वे ब्रह्माजी मूर्त्तिको धारे व बिनमूर्त्तिवाले राजर्षि व देवर्षियों से घिरे ऐसे शोभित थे जैसे कि नक्षत्रों से घिराहुआ निर्मल चन्द्रमा शोभितहोता है ॥ २४ ॥ इसके अनन्तर उनको प्रणामकरके नेत्रोंसे कुशल पूंछाहुआ मै हर्षितहो कपिलदेव

जी समेत समीप बैठगया ॥ २५ ॥ इसी अवसर में वहाँ ब्राह्मणलोग आये क्योंकि वे ब्राह्मण संसारको देखने के लिये नित्य हितके निमित्त घूमते हैं ॥ २६ ॥ इसके अनन्तर प्रणाम किये बैठेहुये उन ब्राह्मणों को अमृत के समान नेत्रोंसे आनन्दित करतेहुये से ब्रह्माजी बोले ॥ २७ ॥ कि तुमलोगों ने किस २ जगह पयान कियाहै और जो कुछ आश्चर्य देखा या सुनाभी हो उसको कहिये जिसके सुनने से बहुत पुण्यहोती है ॥ २८ ॥ जब भगवान् ब्रह्माने उन सबों से ऐसा कहा तब उनके मध्य में जो श्रेष्ठ मानेगये थे वे शुभ्रव्रानामक ब्राह्मण ब्रह्माको प्रणामकरके यह बोले ॥ २९ ॥ कि समर्थ के आगे विज्ञापनकरना वैसेही है जैसे कि सूर्यको दीपक दिखाना

विचरन्तिहितेनित्यं जगद्द्रष्टुंहिब्राह्मणाः ॥ २६ ॥ कृतप्रणामानथतान्समासीनान्पितामहः॥ चक्षुषामृतकल्पेन ह्लादयन्निवचाब्रवीत् ॥ २७ ॥ कुत्रकुत्रविचरितं दृष्टंश्रुतमथापिच ॥ किञ्चिदेवाद्भुतंब्रूत श्रवणाद्येनपुण्यता ॥ २८ ॥ एवमुक्ताभगवता तेषांयःप्रवरोमतः ॥ शुभ्रव्रानामब्रह्माणंप्रणिपत्येदमूचिवान् ॥ २९ ॥ प्रभोरग्रेचविज्ञप्तिस्तथादीपोरवेर्यथा ॥ तथापिखलुवाच्यस्मे पुण्यार्थंप्रेरितेनते ॥ ३५ ॥ मुनिःकात्यायनोनाम श्रुत्वाधर्म्मान्बहून्द्विजः ॥ सारजिज्ञासयातस्थावेकाङ्गुष्ठःशतंसमाः ॥३१॥ ततःप्रोवाचतंदिव्यावाणीकात्यायनशृणु॥पुण्येसरस्वतीतीरे पृच्छसारस्वतम्मुनिम् ॥ ३२ ॥ सतेसारस्वतोधर्मं धर्म्मज्ञोभिवदिष्यति ॥ इतिश्रुत्वामुनिवरोमुनिश्रेष्ठमुपेत्यतम् ॥ ३३ ॥ प्रणम्यशिरसाभूमौपप्रच्छेदंहृदिस्थितम् ॥ सत्यंकेचित्प्रशंसन्ति तपःशौचेतथापरे ॥ ३४॥ साङ्ख्यंकेपिप्रशंसन्ति योगमन्येप्रचक्षते ॥

परन्तु तौभी तुमसे पुण्यके लिये प्रेरणाकियेहुये मुझको निश्चयकर कहनाचाहिये ॥ ३० ॥ कात्यायननामक ब्राह्मण मुनि बहुतेरे धर्मोंको सुनकर सारवस्तु जानने की इच्छाकरके सौवरसतक एक अगूठाके सहारे खड़ेरहे ॥ ३१ ॥ उसके उपरान्त उनसे आकाशवाणी बोली कि हे कात्यायनजी ! सुनिये पुण्यदायक सरस्वतीनदी के किनारे पै सारस्वतमुनि से पूँछिये ॥ ३२ ॥ धर्मके जाननेवाले वे सारस्वत तुमसे धर्मको कहैंगे यह सुनकर मुनिवर कात्यायनजी उन मुनिश्रेष्ठ सारस्वत के समीप जाकर ॥ ३३ ॥ व मस्तक से भूमिमें गिरकर प्रणामकरके हृदय में टिकीहुई यह बात पूँछा कि कोई सत्यकी प्रशंसा करते हैं व अन्य पुरुष तपस्या व पवित्रता

की प्रशंसा करते हैं ॥ ३४ ॥ व कोई साख्य व अन्य नर योग की प्रशंसा करते हैं और कोई सहनशीलता वैसेही अन्य इन्द्रिय को जीतना व नम्रता की प्रशंसा करते हैं ॥ ३५ ॥ और कोई मौनकी प्रशंसा करते हैं व कोई शास्त्रको उत्तम कहते है व कोई ज्ञानकी अच्छीतरह प्रशंसा करते हैं और कोई वैराग्यको उत्तम कहते हैं ॥ ३६ ॥ वैसेही कोई नरोंने अग्निष्टोमादिक कर्मोंको उत्तम कहाहै व ढेला, पत्थर व सुवर्ण में समदृष्टिवाले कोई पुरुष आत्मज्ञानको उत्तम कहते हैं ॥ ३७ ॥ संसारमें कार्याकार्य की विधिमें ऐसी व्यवस्था होनेपर क्या कल्याणदायकहै ऐसा कहनेवाले पुरुष विशेषकर मोहहीको प्राप्तहोते है ॥ ३८ ॥ हे सर्वज्ञ ! इन कार्यों में महात्माओं

क्षमांकेचित्प्रशंसन्ति तथैवदममार्जवे ॥ ३५ ॥ केचिन्मौनंप्रशंसन्ति केचिदाहुःपरंश्रुतम् ॥ सम्यग्ज्ञानंप्रशंसन्ति केचिद्वैराग्यमुत्तमम् ॥ ३६ ॥ अग्निष्टोमादिकर्म्माणि तथाकेचित्परंविदुः ॥ आत्मज्ञानंपरंकेचित्समलोष्टाश्मकाञ्चनाः ॥ ३७ ॥ इत्थंव्यवस्थितेलोके कृत्याकृत्यविधौजनाः ॥ व्यामोहमेवगच्छन्ति किंश्रेयइतिवादिनः ॥ ३८ ॥ यदेतेषुपरंकृत्यमनुष्ठेयंमहात्मभिः ॥ वक्तुमर्हसिसर्वज्ञमस्सर्वार्थसाधकम् ॥ ३९ ॥ सारस्वतउवाच ॥ यन्मांसरस्वतीप्राह सारंवक्ष्यामितच्छृणु ॥ छायाकारंजगत्सर्वमुत्पत्तिक्षयधर्मिच ॥ ४० ॥ बुद्धावराङ्गनानेत्रभङ्गभङ्गुरमन्तवत् ॥ धनानियौवनंभोगाञ्जलचन्द्रवदस्थिरान् ॥ ४१ ॥ बुद्ध्वासम्यक्परामृश्य स्थाणुन्देवंचसंश्रयेत् ॥ दानंवापुरुषःपापं नालंकर्तुमितिश्रुतिः ॥ ४२ ॥ स्थाणुभक्तोजन्ममृत्युं नाप्नोतीतिश्रुतिस्तथा ॥ सावर्णिनाचगाथेद्वे कीर्तितेश्रु

को जो सब प्रयोजनों का साधक उत्तमकार्य अनुष्ठान करनेयोग्यहो उसको मुझ से तुम कहनेयोग्यहो ॥३९॥ सारस्वत बोले कि मुझ से सरस्वतीजी ने जो सारवस्तु कहाहै उसको मैं कहूँगा सुनो कि उत्पत्ति व नाशधर्मवाला सब संसार छायाके समान आकारवालाहै ॥ ४० ॥ व उत्तम स्त्रियोंकी मित्रता के नाशहोने के समान भङ्गहोनेवालाहै और धन,यौवन व सुखोंको जलमें चन्द्रमाकी नाई चञ्चल जानकर ॥४१॥ व भलीभांति विचारकर मनुज शिवदेवके आश्रितहोवै या दानकरै व पाप करने के योग्य नहीं है यह वेद कहता है ॥ ४२ ॥ वैसेही यह श्रुतिहै कि शिवजीका भक्त जन्म व मृत्यु को नहीं प्राप्तहोता है पुरातनसमय सावर्णिमनु ने जो दो गीतोंको

गायाहै उनकोमुनो ॥ ४३ ॥ कि भगवान् धर्म वृष कहेजाते हैं और वृषभ (बैल) जिनका वाहन है वे महादेव पूजेजाते हैं व वही उत्तम धर्म्म कहाजाता है ॥
४४ ॥ दुःखरूपी भँवर अज्ञानरूपी प्रवाह व धर्माधर्मरूपी जल, क्रोधरूपी कीचड़, मदरूपी ग्राह व लोभरूपी बुलबुला से संयुत ॥ ४५ ॥ और ज्ञानरूपी पाता-
लतक गहरे व सत्त्वगुणरूपी जहाजसे भूषित संसाररूपी समुद्र में डूबतेहुये जनों को एक सदाशिवजी पार उतारते हैं ॥ ४६ ॥ दान व चिन्तवन, प्रियवचन, यश
वैसेही धर्म व फिर परोपकार यही सारांश इस विनसारवाले शरीर से पैदाकरै ॥ ४७ ॥ व धर्ममें स्नेह और वेदमें चिन्तवन व दानमें व्यसन (शौक़) उत्तम है व

ण्येपुरा ॥ ४३ ॥ वृषोहिभगवान्धर्मोवृषभोयस्यवाहनम् ॥ पूज्यतेसमहादेवः सधर्मःपरउच्यते ॥ ४४ ॥ दुःखावर्ते
तमोग्राहे धर्माधर्मजलेतथा ॥ क्रोधपङ्केमदग्राहे लोभबुद्बुदसंयुते ॥ ४५ ॥ ज्ञानगम्भीरपाताले सत्त्वयानविभूषिते ॥
मज्जतस्तारयत्येकोहरस्संसारसागरे ॥ ४६ ॥ दानंचिन्ताप्रियंवाक्यं कीर्तिधर्मस्तथापुनः ॥ परोपकरणंकायादना
सारात्समुद्धरेत् ॥ ४७ ॥ धर्मेरागःश्रुतौचिन्ता दानेव्यसनमुत्तमम् ॥ इन्द्रियार्थेषुवैराग्यं सम्प्राप्तंजन्मनःफलम् ॥
४८ ॥ वर्षेस्मिन्भारतेजन्म प्राप्यमानुष्यमध्रुवम् ॥ नकुर्यादात्मनःश्रेयस्तेनात्मावञ्चितश्चिरम् ॥ ४९ ॥ देवासुराणां
सर्वेषां मानुष्यमतिदुर्लभम् ॥ तत्सम्प्राप्यतथाकुर्यान्नगच्छेन्नरकंयथा ॥ ५० ॥ सर्वस्वमूलंमानुष्यं तथासर्वार्थसाध
कम् ॥ यदिलाभेस्तियत्नस्ते मूलंरक्षप्रयत्नतः ॥ ५१ ॥ महतापुण्यमूलेन क्रियतांकापिनौस्त्वया ॥ गन्तुंदुःखोदधेःपा
रं तवयानन्नविद्यते ॥ ५२ ॥ अविकारिशरीरत्वं दुष्प्राप्यंप्राप्यवैततः ॥ नापक्रामत्यतिसंसारादात्महास्सनराधमः ॥ ५३ ॥

इन्द्रियार्थों याने शब्दस्पर्शादिकों में वैराग्यहोवै तो जन्मका फल भलीभांति प्राप्त हुआ ॥ ४८ ॥ इस भारतवर्ष में विनाशहोनेवाला मनुष्यका जन्मपाकर जो अपना
कल्याण न करै उसने बहुत दिनोंतक जीवात्मा को छलाहै ॥ ४९ ॥ समस्त सुरासुरों के मध्यमें मनुष्यका जन्म अतिदुर्लभ है उसको पाकर वैसेही करै कि जिसप्रकार
नरकको न जावै ॥ ५० ॥ सर्वस्वकी जड तथा सब प्रयोजनों का साधक मनुष्यका जन्महै यदि लाभ में तुम्हारा यत्नहोवै तो मूलको बड़ेउपायसे रक्षाकरो ॥ ५१ ॥
बड़े पुण्यरूपी मूलसे तुम किसी भी नौकाको करो क्योंकि दुःखरूपी समुद्रके पार जाने के लिये तुम्हारे वाहन नहीं है ॥ ५२ ॥ विनाविकारवाले दुर्लभशरीरको पाकर

तदनन्तर जो संसार से नहीं निकलता है वह नीच नर आत्मघाती है ॥ ५३ ॥ इस संसार में परलोक के लिये यतीलोग तपस्या करते हैं व यज्ञकरनेवाले होमकरते हैं व यहां आदर से दान दियेजाते हैं ॥ ५४ ॥ कात्यायनजी बोले कि हे भगवन्, मुने! दान व तपस्या का भी क्या क्या लोकका साक्षीफलहै इनको प्रत्यक्ष दिखलाइये ॥ ५५ ॥ सारस्वत बोले कि मनुष्य प्रियप्राणों के पालने के निमित्त धनके लिये बड़े डरको छोड़कर महालोभ से समुद्र व जंगल और पर्वतमें पैठजाते हैं ॥ ५६ ॥ और अन्य मनुष्य नौकरीमें प्राप्तहोते हैं जोकि कुत्तेकी ऐसी जीविका कहीगई है वैसेही और मनुष्य बहुत क्लेशोंवाली खेतीको करते हैं जोकि हिंसाप्रायहै ॥ ५७॥

तपस्तप्यन्तियतयोजुह्वतेचात्रयज्विनः ॥ दानानिचात्रदीयन्ते परलोकार्थमादरात् ॥ ५४ ॥ कात्यायनउवाच ॥ दानस्यतपसोवापि भगवन्किञ्चकिञ्चन ॥ मुनेप्रत्यक्षमेतानि दर्शयलोकसाक्षिकम् ॥ ५५ ॥ सारस्वतउवाच ॥ परित्यज्यप्रियान्प्राणान्धनार्थेतिमहाभयम् ॥ प्रविशन्तिमहालोभात्समुद्रमटवीङ्गिरिम् ॥ ५६ ॥ सेवामन्येप्रपद्यन्ते श्ववृत्तिरिवयास्मृता ॥ हिंसाप्रायांबहुक्लेशां कृषिञ्चैवतथापरे ॥ ५७ ॥ तस्यदुःखार्जितस्येहप्राणेभ्योपिगरीयसः ॥ आयासशतलब्धस्य परित्यागस्सुदुष्करः ॥ ५८ ॥ यद्ददातियदश्नाति तदेवंधनिनांधनम् ॥ अन्येमृतस्यक्रीडन्ति दारैरपिधनैरपि ॥ ५९ ॥ अहन्यहनिपाचन्तमहंमन्येगुरुन्तथा ॥ मार्जनंदर्पणस्येव यःकरोतिदिनेदिने ॥ ६० ॥ दीयमानंहिनोपैति भूयएवाभिवर्द्धते ॥ कूपउत्सृज्यमानोहिभवेच्छुद्धोबहूदकः ॥ ६१ ॥ एकजन्मसुखस्यार्थे सहस्राणिन लोपयेत ॥ प्राप्तोजन्मसहस्रेषु शक्नोत्येकजन्मनि ॥ ६२॥ मूर्खोहिनददात्यर्थानिहदारिद्र्यशङ्कया ॥ किन्धनेनकरि

प्राणों से भी अधिक प्यारे व सैकड़ों परिश्रमों से पाये व क्लेशसे इकट्ठा कियेहुये उस धनका छोडना बहुतकठिन है ॥ ५८ ॥ जिस धनको देता है व जिसको भोगताहै वही धनियों का धनहै क्योंकि मरेहुये पुरुषकी स्त्रियों व धनोंसे भी अन्य मनुष्य क्रीडा करते हैं ५९ ॥ प्रतिदिन मांगतेहुये पुरुप को हम गुरु (उपदेशक) मानते है जोकि हररोज दर्पणकी नाईं साफकरता है ॥ ६० ॥ दियाहुआ धन नाश नहीं होता किन्तु फिरभी बढ़ताही है क्योंकि जिसकुयें का जल निकलता रहताहै वह शुद्ध व बहुतजलवाला होता है ॥ ६१ ॥ एकजन्म के सुखके लिये हजारों जन्मोंको नष्ट न करै किन्तु हजारों जन्मों में प्राप्तहोकर एकजन्म में कल्याण को

इकट्ठाकरै ॥ ६२ ॥ इस संसारमें मूर्ख दरिद्रता के डरसे धनोंको नहीं देते हैं और नष्टआशयवाले मनुष्य धनसे क्या करैंगे ॥ ६३ ॥ मनुष्य जिसके लिये धन चाहते हैं
वह शरीर नाशवान् है जिसलिये पहले नास्ति नास्ति याने नहीं है २ ये दो अक्षर अभ्यास कियेगये ॥ ६४ ॥ उसी से देहि २ याने दीजिये २ यह उलटा
फल प्राप्तहुआ याचकजन कृपणजन से दीजिये यह कहकर याचना नहीं करतेहैं किन्तु ज्ञानदेते हैं ॥ ६५ ॥ कि यह मेरीदशा बिनदानहीं के कारण से है ऐसेही
आपभी मत होवो मुझको दीजिये यह दाताही के उपकार के लिये याचक कहता है ॥ ६६ ॥ जिससे कि दाता ऊपरको जाताहै और लेनेवाला नीचे खड़ारहता है

च्यन्ति देहिनोभङ्गुराशयाः ॥ ६३ ॥ यदर्थंधनमिच्छन्तितच्छरीरमशाश्वतम् ॥ अक्षरद्वयमभ्यस्तं नास्तिनास्ती
तियत्पुरा ॥ ६४ ॥ तदिदन्देहिदेहीति विपरीतमुपस्थितम् ॥ बोधयन्तिनयाचन्ते देहीतिकृपणाजनाः ॥ ६५ ॥ अवस्थे
यमदानस्य मास्भूदेवंभवानपि ॥ दातुरेवोपकाराय वदत्यर्थीतिदेहिमे ॥ ६६ ॥ यस्माद्दातामयात्यूर्द्ध्वमधस्तिष्ठेत्प्रति
ग्रही ॥ दरिद्राण्याधितामूर्खाः परप्रेष्यकरास्सदा ॥ ६७ ॥ अदत्तदानाजायन्ते दुःखस्यैवहिभाजनाः ॥ धनवन्तमदा
तारन्दरिद्रंचातपस्विनम् ॥ ६८ ॥ उभावम्भसिमोक्तव्यौगलेबद्ध्वामहाशिलाम् ॥ शतेषुजायतेशूरः सहस्रेषुचपण्डि
तः ॥ ६९ ॥ वक्ताशतसहस्रेषु दाताजायेतवानवा ॥ गोभिर्विप्रैश्चवेदैश्च सतीभिस्सत्यवादिभिः ॥ ७० ॥ अलुब्धैर्दा
नशीलैश्च सप्तभिर्धार्यतेमही ॥ शिविरौशीनरोगाणिसुतञ्चप्रियमौरसम् ॥ ७१ ॥ ब्राह्मणार्थमुपाकृत्य नाकपृष्ठ

उसी से जिन्हों ने दान नहीं दियाहै वे सदैव निर्धनी, रोगी, मूर्ख व परायेसेवक तथा दुःखही के पात्रहोते हैं धनवान् अदाता हो व निर्धनी जो तपस्वी न होवै ॥
६७ । ६८ ॥ ये दोनों गले में पत्थल की बड़ीशिला बांधकर जलमें छोड़नेयोग्य है सैकड़ों जनों में शूर व हजारों में पण्डित होताहै ॥ ६९ ॥ व लाखों में वक्ता
होता है परन्तु दाता होवै या न होवै गऊ, ब्राह्मण, वेद व पतिव्रता और सत्यवादी ॥ ७० ॥ व बिनलालचवाले व दानस्वभाववाले यही सातों मनुष्य पृथ्वीको धारते
हैं उसी नरदेशका राजा शिवि अपने अंगोंको व विवाहिता स्त्री में पैदाहुये प्यारे पुत्रको ॥ ७१ ॥ ब्राह्मण के लिये देकर यहां से स्वर्गस्थान को चलेगये व काशी

के स्वामी प्रतर्दन राजाने अपने दोनोंनेत्रों को ब्राह्मण के लिये देकर यहां व वहां अतुलयशको भोगकिया है और विदेह के वंशमें उत्पन्न निमीरोह व परशुरामजी ने पृथ्वीको ब्राह्मणों के लिये दियाहै व गाधिराजाने शहरोंसमेत पृथ्वीको दियाहै जब बहुत बार मेघनहीं बरसे तब समस्तप्राणियों को ॥ ७२ । ७३ । ७४ ॥ वसिष्ठ ने जिलाया है जैसे कि ब्रह्मा प्रजाओं को पालते हैं व बुद्धिमानों में श्रेष्ठ पाचालदेशका राजा ब्रह्मदत्त ॥ ७५ ॥ श्रेष्ठब्राह्मणों के लिये शंखनिधिको देकर स्वर्गको प्राप्तहुआ है व बड़ेयशस्वी सहस्रजित् राजर्षि प्यारेप्राणोंको ॥ ७६ ॥ ब्राह्मण के लिये त्यागकरके अतिउत्तम लोकोंको गये हैं ये और अन्य बहुतसे राजा-

मितोगतः ॥ प्रतर्द्दनःकाशिपतिः प्रदाय नयनत्वके ॥ ७२ ॥ ब्राह्मणायातुलांकीर्तिमिहचामुत्रचाश्नुते ॥ निमीरोहश्चवैदेहोजामदग्न्योवसुन्धराम् ॥ ७३ ॥ ब्राह्मणेभ्योददौचापि गाधिश्चोर्व्वीसपत्तनाम् ॥ अवर्षतिचपर्जन्ये सर्वंभूतानिचासकृत् ॥ ७४ ॥ वसिष्ठोजीवयामास प्रजापतिरिवप्रजाः ॥ ब्रह्मदत्तश्चपाञ्चाल्योराजाबुद्धिमतांवरः ॥ ७५ ॥ निधिशङ्खंद्विजाग्रेभ्योदत्त्वास्वर्गमवाप्तवान् ॥ सहस्रजिच्चराजर्षिः प्राणानिष्टान्महायशाः ॥ ७६ ॥ ब्राह्मणार्थेपरित्यज्य गतोलोकाननुत्तमान् ॥ एतेचान्येचबहवोदानेनस्थाणुभक्तितः ॥ ७७ ॥ रुद्रलोकंगमिष्यन्ति नित्यंशान्तंचस्थानकम् ॥ एषांप्रतिष्ठिताकीर्तिर्यावत्स्थास्यतिमेदिनी ॥ ७८ ॥ इतिसंचिन्त्यसारार्थी स्थाणुदानपरोभव ॥ सोपिमोहंपरित्यज्य तथाकात्यायनोभवत् ॥ ७९ ॥ बहुप्रकारदेशाश्च ग्रामांश्चनगराणिच ॥ ८० ॥ आश्रमान्बहूनहंपर्यटन्नाप्नुयामिस्थानंहितंस्थापयेयत्रविप्रान् ॥ ८१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेद्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ * ॥ * ॥

लोग दान व शिवभक्ति से रुद्रलोकको जातेहैं जो स्थान कि नित्य व शान्तहै इन लोगोंका यश तबतक रहैगा जबतक कि पृथ्वीरहैगी ॥ ७७ । ७८ ॥ ऐसा भलीभांति विचारकर सारांशके चाहनेवाले तुम शिवभक्ति व दानमें तत्पर होवो वे कात्यायन भी मोहको छोड़कर वैसेही होगये ॥ ७९ ॥ और मैं बहुतप्रकार के देशों व ग्रामों व बहुतआश्रमों में घूमताहुआ प्रियस्थानको नहीं पाताहूं कि जहां ब्राह्मणों को स्थापितकरूं ॥ ८० । ८१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांद्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

दो० । धर्मवर्म सन नारद कह्यो श्लोकको अर्थ । सोइ तीजे अध्याय में कीन्हो सुगम समर्थ ॥ नारदजी बोले कि हे वीरवर ! इस तरह पृथ्वीमें जो जो पुण्यदायक स्थानहैं वहा २ उनको देखताहुआ मैं नारद ॥ १ ॥ समस्त पृथ्वीको घूमताहुआ भृगुके आश्रममें प्राप्तहुआ जहांपर सातकल्पोंके स्मरणवाली व उत्तमपुण्यदायिनी नर्मदा नदी है ॥ २ ॥ जोकि महापुण्यकारिणी व पवित्र और समस्ततीर्थमयी तथा शुभहै और जो कीर्त्तनहीं करने व विशेषकर देखने से पवित्र करती है ॥ ३ ॥ हे अर्जुनजी ! उसमें स्नानकरने से प्राणी पातकसे छूटजाताहै जैसे देहके मध्य में पिंगला नाडी कहीगई है ॥ ४ ॥ वैसेही ब्रह्माण्डपिण्डके उस स्थानमें यह कहीगई

नारदउवाच ॥ एवंस्थानानिपुण्यानि यानियानीहवैभुवि ॥ निरीक्षंस्तत्रतत्राहं नारदोवीरसत्तम ॥ १ ॥ विचरन्मेदिनींसर्वां प्राप्तोहमाश्रमंभृगोः ॥ यत्ररेवानदीपुण्या सप्तकल्पस्मरावरा ॥ २ ॥ महापुण्यापवित्राच सर्वतीर्थमयी शुभा ॥ पुनातिकीर्त्तनेनैव दर्शनेनविशेषतः ॥ ३ ॥ तत्रावगाहनात्पार्थ मुच्यतेजन्तुरंहसा ॥ यथास्मपिङ्गलानाडी देहमध्येप्रचक्षते ॥ ४ ॥ इयंब्रह्माण्डपिण्डस्य स्थानेतस्मिन्प्रकीर्तिता ॥ तत्रास्तेशुक्लतीर्थाख्यं रेवायांपापनाशनम् ॥ ५ ॥ यत्रवैस्नानमात्रेण ब्रह्महत्याप्रणश्यति ॥ ६ ॥ तस्यापिसन्निधौपार्थ रेवायामुत्तरेतटे ॥ नानावृक्षसमाकीर्णं लतागुल्मोपशोभितम् ॥ ७ ॥ नानापुष्पफलोपेतं कदलीषण्डमण्डितम् ॥ ८ ॥ अनेकश्वापदाकीर्णं विहगैरनुनादितम् ॥ सुगन्धपुष्पशोभाढ्यं मयूरस्वनादितम् ॥ ९ ॥ भ्रमरैःसर्वमुत्सृज्य नलिनंरावसंयुतम् ॥ यथासंसारमुत्सृज्य भक्तेनहरपादयोः ॥ १० ॥ कोकिलामधुरैःस्वानैर्ह्लादयन्तितथामुनीन् ॥ यथाकथामृताख्यानैर्ब्राह्मणाभवभीरुकान् ॥ ११ ॥

है उसी रेवानदी में पापनाशक शुक्लनामक तीर्थ है ॥ ५ ॥ जिसमें स्नानहीमात्र करनेसे ब्रह्महत्या नाश होजाती है ॥ ६ ॥ हे अर्जुन ! उसके भी समीप रेवानदीके उत्तर किनारेपै अनेकप्रकारके वृक्षोंसे परिपूर्ण व लताओं व छोटे २ वृक्षों से शोभित ॥ ७ ॥ और अनेकप्रकारके फूलों व फलोंसे संयुत व केलाकेसमूहसे विभूषित ॥ ८ ॥ और अनेकभांति के जंगली हिंसकजीवों से व्याप्त व पक्षियों से कूजित तथा सुगन्धवाले पुष्पों से शोभासंयुत व मोर के शब्दों से परिपूरित आश्रम था ॥ ९ ॥ भ्रमरोंने सब छोड़कर कमलको शब्दसंयुत किया जैसे संसार को छोड़कर भक्त शिवचरणों में स्थितहोता है ॥ १० ॥ व कोकिला मीठे शब्दोंसे वैसेही मुनियोंको आ-

नन्द करते हैं जैसे कि ब्राह्मणलोग संसार से डरेहुये जनोंको कथारूपी अमृतके कहने से आनन्द करते हैं ॥ ११ ॥ और जहां वृक्ष पत्तों व फलों और फूलोंसे तथा छाया व काठोंसे मनुष्यों को शिवके नियमीजनों की नाईं आनन्द करतेहैं ॥ १२ ॥ व जहां जिनको पुत्र प्यारे हैं वे पक्षी हे पुत्र, पुत्र ! ऐसा कहतेहैं जैसे कि शिवप्रिय शैवजन नित्यही हे शिव, शिव ! कहते हैं ॥ १३ ॥ इसप्रकारका उन भृगुमुनिका आश्रम कल्याणरूप था जोकि त्रयीविद्या से संयुत ब्राह्मणों करके सबओर भली भांति भूपितथा ॥ १४ ॥ व ऋग्वेद, यजुर्वेद व सामवेदके शब्दोंसे दिशाओंका मध्यपूर्ण था जैसे शिवजीके भक्त बुद्धिमान्करके तीनों भुवन शब्दसे पूर्ण होवैं ॥ १५ ॥

यत्रवृक्षाह्लादयन्ति फलैःपुष्पैश्चपत्रकैः ॥ छायाभिरपिकाष्ठैश्च लोकानिवहरव्रताः ॥ १२ ॥ पुत्रपुत्रेतिवास्यन्ते यत्र पुत्रप्रियाःखगाः ॥ यथाशिवप्रियाःशैवा नित्यंशिवशिवेतिच ॥ १३ ॥ एवंविधंमुनेस्तस्य भृगोराश्रममङ्गलम् ॥ विप्रै स्त्रैविद्यसंयुक्तैस्सर्वतस्समलंकृतम् ॥ १४ ॥ ऋग्यजुःसामनिर्घोषैरापूरितदिगन्तरम् ॥ रुद्रभक्तेनधीरेणयथैवभुवनत्रयम् ॥ १५ ॥ तत्राहंचापिसम्प्राप्तो यत्रास्तेमुनिसत्तमः॥भृगुःपरमधर्मात्मा तपसाद्योतितप्रभः॥ १६॥ आगच्छन्तन्तुमांदृष्ट्वा दीनंतुष्टंचवैतदा॥अभ्युत्थानंकृतंसर्वैर्विप्रैर्भृगुपुरोगमैः॥ १७॥कृत्वासुस्वागतंदृष्ट्वासर्वैचभृगुणासह ॥ आसनेषूपविष्टास्ते मुनीन्द्रास्सहितामया ॥ १८ ॥ विश्रान्तन्तुततःकृत्वाभृगुर्मामभ्युवाचह ॥ कगन्तव्यंमुनिश्रेष्ठ कस्मादिहसमागतः ॥ १९ ॥ आगमेकारणंसर्वं समाचक्ष्वपरिस्फुटम् ॥ ततस्तंचिन्तयाविष्टो भृगुंपार्थाहमब्रवम् ॥ २० ॥ श्रूयतामभिधास्या

जहांपर वे मुनिश्रेष्ठ भृगुजी थे वहां मैं भी प्राप्तहुआ जो भृगु कि बड़े धर्मात्मा व तपस्या से प्रकाशितछविवाले थे ॥ १६ ॥ उस समय दीन व सन्तुष्ट आतेहुये मुझ को देखकर भृगुआदि सब ब्राह्मणो ने अभ्युत्थान किया याने उठपड़े ॥ १७ ॥ व सब देखके सुस्वागत याने अच्छीतरह से आपका आनाहुआ इत्यादि कुशल प्रश्न करके मुझ समेत वे मुनीन्द्रलोग आसनों पै बैठगये ॥ १८ ॥ उसके उपरान्त विश्राममें प्राप्त करके मुझसे भृगुजी बोले कि हे मुनिश्रेष्ठ! कहांको जाइयेगा व यहां किसलिये आयेहो ॥ १९ ॥ आनेमे जो हेतुहो उस सबको प्रकटकहो तदनन्तर हे अर्जुन ! चिन्तासे संयुक्त मैंने भृगुजीसे कहा ॥ २० ॥ कि जिसलिये मैं आयाहूं उस

को कहताहूं सुनिये कि समुद्रके अन्ततक मैंने सम्पूर्ण पृथ्वीका पर्यटन किया ॥ २१ ॥ व ब्राह्मणों को भूमिदान के लिये मैं पग पग ढूंढ़ा ॥ २२ ॥ परन्तु निर्दोष व पवित्र और तीर्थोंसे संयुत रमणीक मनोहर पृथ्वीको किसी प्रकारसे नहीं देखताहूं ॥ २३ ॥ भृगुजी बोले कि ब्राह्मणोंको थापनेकेलिये पहले घूमतेहुये मैंने भी समुद्रतक सम्पूर्ण उत्तम पृथ्वीको देखाहै उससमय ॥ २४ ॥ सबतीर्थमयी महीनामक पुण्यदायिनी उत्तम नदीको देखा जोकि मनोहर व सौम्य तथा महापापोंको नाशनेवाली है ॥ २५ ॥ वहीपर नदीरूप से वह पृथ्वीहै इसमें सन्देह नहीं है हे नारद जी ! पृथ्वी में देखे व बिनदेखे जो तीर्थ है ॥ २६ ॥ वे सब वहीं महीनदी के जल

मियदर्थमहमागतः॥ मयापर्यटितासर्वा समुद्रान्ताचमेदिनी ॥ २१ ॥ द्विजानांभूमिदानार्थं मार्गमाणापदेपदे ॥ २२ ॥
निर्दोषांचपवित्रांच तीर्थैश्चापिसमन्विताम् ॥ रम्यांमनोरमांभूमिं नपश्यामिकथंचन ॥ २३ ॥ भृगुरुवाच ॥ विप्राणां
स्थापनार्थाय मयापिभ्रमतापुरा ॥ पृथ्वीसागरपर्यन्ता दृष्टासर्वातदाशुभा ॥ २४ ॥ महीनामनदीपुण्या सर्वतीर्थम
यीशुभा ॥ दृष्टामनोरमासौम्यामहापापप्रणाशिनी ॥ २५ ॥ नदीरूपेणतत्रैव पृथ्वीसानात्रसंशयः ॥ पृथिव्यांयानिती
र्थानि दृष्टादृष्टानिनारद ॥ २६ ॥ तानिसर्वाणितत्रैव निवसन्तिमहीजले ॥ सासमुद्रेस्तिसम्प्राप्ता पुण्यतोयामहीनदी ॥
२७ ॥ सञ्जातस्तत्रदेवर्षे महीसागरसङ्गमः ॥ स्तम्भाख्यंतत्रतीर्थंतु त्रिषुलोकेषुविश्रुतम् ॥ २८ ॥ तत्रयेमनुजाःस्ना
नं प्रकुर्वन्तिविपश्चितः ॥ सर्वपापविनिर्मुक्ता नोपसर्पन्तितेयमम् ॥ २९ ॥ तत्राद्भुतंचयद्दृष्टं स्नातुंतत्रगतेनमे ॥ तदहंकी
र्तयिष्यामि मुनेशृणुमहाद्भुतम् ॥ ३० ॥ यावत्स्नातुंव्रजाम्यस्मिन्महीसागरसङ्गमे ॥ तीरेस्थितंप्रपश्यामि मुनितपा

में बसते हैं और पवित्रजलवाली वह महीनदी समुद्रमें प्राप्तहुई है ॥ २७ ॥ हे देवर्षे ! वहां महीनदी व समुद्रका सगम हुआ है और वहींपर तीनों लोकों में प्रसिद्ध स्तम्भनामक तीर्थ है ॥ २८ ॥ उस तीर्थ में जो विद्वान् मनुष्य स्नान करते हैं वेसब पापों से छूटकर यमराजके समीप नहीं जाते हैं ॥ २९ ॥ हे मुने, ! वहां स्नानके लिये गयेहुये मैंने जो आश्चर्य देखा है उस बड़े अद्भुत चरितको मैं कहताहूं सुनिये ॥ ३० ॥ कि महीनदी व समुद्र के सगममें जबतक स्नानके लिये जाऊं तबतक किनारे

पै टिकेहुये अग्निके समान उन मुनि को देखा ॥ ३१ ॥ जोकि बड़ेलम्बे व वृद्ध तथा अस्थिमात्रशेषवाले व तपस्याकी शोभासे भूषित और ऊपरको भुजायें करके बार बार रोरहे थे ॥३२ ॥ उन मुनिको वैसे दुःखित देखकर इसके अनन्तर मैं दुःखीहुआ क्योंकि सज्जनों का यही लक्षणहै जोकि दुःखित जनको देखकर ॥ ३३ ॥ कलियुगके पापको दूरकरके उसकी मित्रतामें प्राप्तहोवै तदनन्तर उससमय उनके समीप जाकर मैंने पूछा ॥ ३४ ॥ कि हे मुने ! तुम किसलिये रोतेहो व तुम्हारे शोचका क्या कारणहै मेरे बड़ी जानने की इच्छाहै बहुत गुप्तभी उस वृत्तान्तको कहिये ॥ ३५ ॥ तदनन्तर मुनिने मुझसे कहा कि हे भृगुजी ! मैं भाग्यहीन हूं उससे रोताहूं

पकोपमम् ॥ ३१ ॥ प्रांशुंवृद्धंचास्थिशेषं तपोलक्ष्म्याविभूषितम् ॥ भुजावूर्ध्वंतथाकृत्वा प्ररुदन्तंमुहुर्मुहुः ॥ ३२ ॥ तन्तथादुःखितंदृष्ट्वा दुःखितोहमथाभवम् ॥ सतांलक्षणमेतद्धि यद्दृष्ट्वादुःखितंजनम् ॥ ३३ ॥ तत्सख्यंजायते पश्यन्नयास्यकलिकल्मषम् ॥ ततस्तमुपसङ्गम्य पर्यपृच्छमहन्तदा ॥ ३४ ॥ किमर्थंरोदिषिमुने शोकेकिंकारणंतव ॥ सुगुह्यमपिमेब्रूहि जिज्ञासामहतीहिमे ॥ ३५ ॥ मुनिस्ततोमामवदद् भृगोनिर्भाग्यवानहम् ॥ तेनरोदिमिमापृच्छ दुर्भाग्यंचालयेत्कः ॥३६॥ तमहंविस्मयाविष्टः पुनरेवेदमब्रुवम् ॥ ३७॥ दुर्लभंभारतेजन्म तत्रापिचमनुष्यता ॥ मनुष्यत्वेब्राह्मणत्वंमुनित्वंतत्रदुर्लभम् ॥३८॥ तत्रापिचतपःसिद्धिःप्राप्यतांत्वंचकिम्परम् ॥ किमर्थंरोदिषिमुने विस्मयोत्रमहान्मम ॥ ३९ ॥ एवंसम्पृच्छतेमह्यमेतस्मिन्नेवचान्तरे ॥ सुभद्रोभद्रनाम्नाच मुनिस्तत्राभ्युपाययौ ॥ ४० ॥ सनिकेतंपरित्यज्य ज्ञात्वातीर्थस्यसारणम् ॥ स्नातस्सवैपूजयतितदास्तम्भेश्वरंमुनिः ॥ ४१ ॥ अहंहिदेवशर्म्माख्यो मुनि

मत पूंछिये क्योंकि दुर्भाग्यको कौन चलासक्ता है ॥ ३६ ॥ विस्मयसे सयुक्त मैंने फिरभी उनसे यह कहा ॥ ३७ ॥ कि भारतवर्ष में जन्म दुर्लभहै उसमें भी मनुष्य होना व मनुष्यता में भी ब्राह्मण होना व उसमें भी मुनि होना दुर्लभहै ॥ ३८ ॥ व उस मुनिहोने में भी तपस्याकी सिद्धि दुर्लभहै हे मुने ! उसको पाकर अन्य क्या चाहतेहो और किसलिये रोतेहो इसमें मुझको बड़ा आश्चर्य है ॥ ३९ ॥ मेरे इस प्रकार पूंछतेहुये इसीअवसरमें भद्रनामक सुभद्रमुनि वहां आये ॥ ४० ॥ वे तीर्थका

सारांश जानकरके स्थानको छोडकर उससमय वे मुनि नहाकर स्तम्भेश्वर देवकोपूजते थे ॥ ४१ ॥ व उस रोतेहुये पुरुषने कहा कि वाणी व मनको रोकेहुये देवशर्मा-
नामक ब्राह्मण मैं गंगा व समुद्रके संगममें स्थानको किये निवास करताथा ॥४२॥ व सदैव अमावसमें मैं उस गंगासागर के संगममें पितरोंको तर्पण करताथा उसके
अन्त में प्रत्यक्ष होकर वे पितर मुझको आशीर्वाद देते थे ॥ ४३ ॥ उसके उपरान्त किसी समय प्रसन्न होतेहुये पितर मुझसे बोले कि हे देवशर्मन् ! मैं सदैव यहां
तुम्हारे समीप आताहूं ॥ ४४ ॥ हे पुत्र ! हम लोगों के स्थानको तुम कभी क्यों नहीं आतेहो उसके उपरान्त इस स्थान को छोड़कर पितरों के साथ मैं चन्द्रलोक में

**स्संयतवाग्मनाः ॥ निवसामिकृतस्थानो गङ्गासागरसङ्गमे ॥ ४२ ॥ तत्रदर्शेतर्पयामि सदैवचपितॄनहम् ॥ तदन्तेतेचप्र
त्यक्षा ह्याशिषोमेवदन्तिच ॥ ४३ ॥ ततःकदाचित्पितरःप्रहृष्टामामथाब्रुवन् ॥ वयंसदात्रचायामो देवशर्मस्तवान्ति
के ॥ ४४ ॥ स्थानेस्माकंकदाचित्त्वं नचायासिकुतस्सुत ॥ ततःपरमसंत्यक्त्वा गतवान्पितृभिस्सह ॥ ४५ ॥ पितॄणांम
न्दिरंपुण्यं सोमलोकसमास्थितम् ॥ अथतत्रस्थितश्चाहंतेजोमण्डलदुर्दशान् ॥ ४६ ॥ दृष्ट्वायातान्पूजयाढ्यानप्र
च्छंस्वान्पितॄनिति ॥ केह्यमीसमुपायान्तिभृशंतत्राभृशार्चिताः ॥ ४७ ॥ भृशंप्रमुदितानैवतथायूयंयथाह्यमी ॥ ४८ ॥
पितरऊचुः ॥ पुत्रतेपितरःपुण्याः सुभद्रस्यमहामुनेः ॥ तर्पितास्तेनमुनिना महीसागरसङ्गमे ॥ ४९ ॥ सर्वतीर्थमयी
यत्र निलीनासुनदीमही ॥ तत्रदर्शेतर्पयति सुभद्रस्तेत्वमीसुतः ॥ ५० ॥ इत्याकर्ण्यवचस्तेषां लज्जितोहंभृशंतदा ॥**

स्थित पुण्यदायक पितरों के घरको गया इसके अनन्तर वहां बैठेहुये मैंने तेज के मण्डल से दुर्दर्श ॥ ४५ । ४६ ॥ व पूजा से संयुत आतेहुये पितरों को देखकर
अपने पितरोंसे यह पूंछा कि बहुत तचे व बहुतही पूजित ये कौन भलीभांति आरहे हैं ॥ ४७ ॥ और ये जिसप्रकार प्रसन्न हैं वैसे तुमलोग नहीं हो ॥ ४८ ॥ पितर
बोले कि हे पुत्र ! वे सुभद्र महामुनि के पितर हैं जिनको उन सुभद्रमुनि ने महीनदी व समुद्रके संगम में तृप्तकिया है ॥ ४९ ॥ जहां समस्त तीर्थमयी महीनामक
उत्तम नदी मिली है वहां सुभद्रपुत्र अमावस में तर्पण करताहै ये वही पितर हैं ॥ ५० ॥ उनके यह वचन सुनकर उस समय मैं लज्जित व विस्मित होगया और

इन अपने पितरों को प्रणामकरके मैं अपने स्थान में आया ॥ ५१ ॥ और उस समय मैंने विचारकिया कि मैं वहां अवश्य जाऊंगा जहां कि पितरों का प्रसिद्ध तीर्थ मही व समुद्रका संगमहै ॥ ५२ ॥ और वही स्नानकरके अमावस तिथि में इस लिये पितरोंका तर्पण करूंगा कि जिस प्रकार यह सुभद्र सत्यनामी हुआ वैसाही मै भी होऊं ॥ ५३ ॥ निश्चयकर कुल में अंगाररूपी उस पापी के पैदा होने से क्या है कि जिसके जीतेहुये भी अपने पितर औरोंकी इच्छा करते है ॥ ५४ ॥ यह विचार कर इसके अनन्तर प्रसन्न होता हुआ मैंने रुचि स्त्री से कहा कि हे रुचे ! तुम से संयुत होकर मैं मही व सागर के संगम में जाकर वहीं स्नान करूंगा तुम शीघ्रही

विस्मितश्चप्रणम्यैतान् पितॄन्स्वंस्थानमागतः ॥ ५१ ॥ मयातदाचिन्तितञ्चतत्रयास्याम्यहंस्फुटम् ॥ पुण्योयत्रपितॄरूयातोमहीसागरसङ्गमः ॥ ५२ ॥ कृतस्नानश्चतत्रैव तर्पयिष्येपितॄनिति ॥ दर्शेहञ्चयथाचासौ सत्यनामासुभद्रकः ॥ ५३ ॥ किन्तेनननुजातेन कुलाङ्गारेणपापिना ॥ यस्मिञ्जीवत्यपिनिजाः पितरोन्यस्पृहाकटाः ॥ ५४ ॥ इतिसंचिन्त्यमुदितो रुचिंभार्यामथाब्रवम् ॥ रुचेत्वयासमायुक्तो महीसागरसङ्गमम् ॥ ५५ ॥ गत्वास्नास्यामितत्रैव शीघ्रंत्वंसम्मुखी भव ॥ पतिव्रतासिशुद्धासि कुलीनासियशस्विनि ॥ ५६ ॥ तस्मादेतन्ममशुभे कर्तुमर्हसिचिन्तितम् ॥ ५७ ॥ रुचिरुवाच ॥ हातातस्यजनिर्मेभूत्कथंतस्यदुरात्मना ॥ दुःखैःप्रतप्तायेनाहं दत्त्वातुभ्यंकृताह्यहम् ॥ ५८ ॥ इहकन्दफलाहारैर्यत्किन्तेननपूर्यते ॥ नेतुमिच्छसिमांतत्र यत्रक्षारोदकंसदा ॥ ५९ ॥ त्वमेवतत्रसंयाहि नन्दन्तुतवपूर्वजाः ॥ गच्छवाशिष्टवद्वृद्धवसवाकाकवच्चिरम् ॥ ६० ॥ तथाब्रुवत्यास्तस्याश्चकर्णौतत्रपिधायच ॥ विपुलंशिष्यमादिश्य गृहएकोत्र

सम्मुखी होवो क्योंकि हे यशस्विनि ! तुम पतिव्रताहो व पवित्र तथा कुलीना हो ॥ ५५ । ५६ ॥ इस लिये हे शुभे ! मेरा चिन्तवन कियाहुआ यह कार्य तुम करने के योग्यहो ॥ ५७ ॥ रुचि बोली कि उस पिता के मेरा जन्म क्यो हुआ था कि जिस दुष्टात्मा ने तुम्हारे लिये देकर मै दुःख से तप्त कीगई ॥ ५८ ॥ यहा कन्द, फलके भोजनों से जो तुमने कियाहै क्या उससे नहीं पूर्ण होताहै जो मुझको वहा लेजानेकी इच्छा करतेहो जहां कि सदैव खारी जल है ॥ ५९ ॥ तुम्ही वहा जावो और तुम्हारे पहले पैदाहुये लोग प्रसन्न होवै हे वृद्ध ! चाहै सज्जन की नाईं जावो व कौवाकी तरह बहुत दिनोंतक बसो ॥ ६० ॥ उसको उस तरह कहतेहुये वहां मै

कानों को मूंदकर व विपुल शिष्य को भस्म आज्ञा देकर यहां अकेला आया ॥ ६१ ॥ व श्रद्धा में तत्परहो सो मैं नहाकर व पितरों का तर्पणकर बड़ी चिन्ताको प्राप्तहुआ जैसे कि नरकमें पापी चिन्ताको प्राप्तहोताहै ॥ ६२ ॥ यदि मैं यहीं टिकूं तो आधी देहवालाहूं क्योंकि स्त्री से हीन नर अर्धदेह ऐसा कहागयाहै ॥ ६३॥ जैसे देहमें जीवात्मा के विना कुछ कार्य नहीं सिद्धहोताहै ऐसेही स्त्री से हीन जन करके पुण्य का कार्य नहीं सिद्ध होताहै ॥ ६४ ॥ जो मनुष्य देहों व स्त्रियों में अनुरागी है यह पशुहै इन दोनों का फल ग्रहण करनेयोग्यहै व इसमें कुछ सारांश नहीं है॥६५॥ अर्धदेहीवाला मनुष्य सज्जनों से न छूने योग्य मानागयाहै जैसे कि उत्तानपादका

चागतः ॥ ६१ ॥ सोहंस्नात्वाचसन्तर्प्य पितॄञ्छ्रद्धापरायणः ॥ चिन्तांसुविपुलांप्राप्तो नरकेदुष्कृतीयथा ॥ ६२ ॥ यदिति ष्ठामिचात्रैव अर्द्धदेहीततोह्यहम् ॥ नरोहिगृहिणीहीनो ह्यर्द्धदेहइतिस्मृतः ॥ ६३ ॥ यथात्मनाविनादेहे कार्यंकिञ्चिन्नसि ध्यति ॥ एवंगृहिण्याहीनेन पुण्यकार्यंनसाध्यते ॥ ६४ ॥ योनरःस्त्रीषुदेहेषु अनुरक्तस्त्वसौपशुः ॥ अनयोर्हिफलंग्राह्यं सारंतानात्रकाचन ॥ ६५ ॥ अर्द्धदेहीतिमनुजस्त्वसंस्पृश्यःसतांमतः ॥ औत्तानपादिरस्पृश्यउत्तमोहियथाकृतः ॥ ६६ ॥ अथचेत्तत्रसंयामि नमहीसागरस्ततः ॥ यामिवानकथंपादौ चलतोमेकथञ्चन ॥ ६७ ॥ एतस्मिन्मेमनोविद्धं तत्क्ष तेज्ञानसङ्कटे ॥ अतोहमतिमुह्यामिभृशंशोचिमिरोदिमि ॥ ६८ ॥ इतिश्रुत्वावचस्तस्य भृशंरोमाञ्चपूरितौ ॥ साधुसा दिवत्यवोचावतंसुभद्रोप्यहंतथा ॥ ६९ ॥ दण्डवच्चप्रणमितौ महीसागरसङ्गमम् ॥ चिन्तयावःस्वमनसि प्रतीकारं तुतौहुमौ ॥ ७० ॥ येहिमानुष्यमासाद्य जलबुद्बुदभङ्गुरम् ॥ परार्थायभवन्तेते पुरुषान्येपुरीषकाः ॥ ७१ ॥ ततस्संश्चिन्त्य

पुत्र उत्तम नहीं छूने के योग्य किया गयाहै॥६६॥ इसके अनन्तर यदि मैं वहां जाऊं तो महीसागर का संगम नहीं है व यदि जाऊं तौ कैसे जाऊं मेरे पांव किसी तरह नहीं चलते हैं॥६७॥ व उससे कियेहुये इस अज्ञानके संकट में मेरा मन वेधितहै इसीसे मैं बहुत मोहितहूं और अत्यन्त शोचता व रोताहूं ॥६८॥ उसके ऐसे वचन सुनकर बहुतही रोमांचसे पूरित हम और सुभद्र दोनों ने उनसे बहुत अच्छा बहुत अच्छा ऐसा कहा ॥६९॥ व दण्डाके समान गिरकर प्रणाम किया व वे दोनों हमलोग अपने मनमें महीसागरके संगमको व उसके प्रतीकार (प्रतिद्वन्द्वी) को चिन्तन करतेरहे ॥ ७० ॥ जो मनुष्य जलके बुल्लाके समान नाश होनेवाले मनुज जन्मको पाकर दूसरे

के प्रयोजन के लिये होते हैं वे पुरुष हैं अन्य मल हैं ॥ ७१ ॥ तदनन्तर भलीभांति विचारकर सुभद्रने मुनिश्रेष्ठ देवशर्मा से यह कहा कि हे देवशर्मन् ! मत खेदको
प्राप्त होवो स्थिर हूजिये ॥ ७२ ॥ जैसे सूर्य अँधियालेको नाशतेहैं वैसेही मैं तुम्हारे शोचको नाश करूंगा तुम शीघ्रही अपने घरकोजावो और वहा शोच मत कीजिये-
गा ॥ ७३ ॥ मैं तुम्हारे लिये महीसागरसंगम तीर्थ के खारी जल से तुम्हारे पितरों को तर्पण करूंगा ॥ ७४ ॥ देवशर्मा बोले कि ऐसा कहते हुये तुम्हारा आयुर्बल
सैकड़ों वर्षका होवै क्योंकि जो करने के असमर्थ है मेरे लिये उस बड़े कार्यको करने के योग्यहो ॥ ७५ ॥ और हर्षके स्थानमें फिर मुझको विषाद बाधा करताहै

प्रादेहं सुभद्रोमुनिसत्तमम् ॥ मामुनेपरिखिद्यस्व देवशर्मन्नुस्थिरोभव ॥ ७२ ॥ अहन्तेनाशयिष्यामि शोकंसूर्यस्तमो
यथा ॥ गमिष्यस्याशुस्वंगेहं तत्रमापरितप्स्यसे ॥ ७३ ॥ तीर्थक्षारोदकंतुभ्यं तर्पयिष्येपितृनहम् ॥ ७४ ॥ देवशर्मो
वाच ॥ एवन्तेवदमानस्य आयुरस्तुशतंसमाः ॥ यदशक्यंमहत्कर्म कर्त्तुमर्हसिमत्कृते ॥ ७५ ॥ हर्षस्थानेविषादश्च
पुनर्मांबाधतेश्रृणु ॥ अपिवाक्यंशुभंसन्तो नगृह्णन्तिमुधामुने ॥ ७६ ॥ कथमेतन्महत्कर्म्म कारयामिमुधावद ॥ पु
नःकिञ्चिच्चवक्ष्यामि यथामेनिर्वृतिर्भवेत ॥ ७७ ॥ शापितोसिमयाप्राणैर्यथावच्मितथाकुरु ॥ अहंसदाकरिष्यामि द
र्शेचोद्दिश्यतेपितॄन् ॥ ७८ ॥ श्राद्धंमह्यर्णवेचात्र मत्पितॄणांत्वमाचर ॥ हीनत्वेचापितपसस्संचितस्यापिजन्मना ॥ ७९ ॥
चतुर्भागंप्रदास्यामि एवमेवैतदाचर ॥ ८० ॥ सुभद्रउवाच ॥ यद्येवंतवसन्तोषस्त्वेवमस्तुमुनीश्वर ॥ ८१ ॥ साधूनां

इसको सुनो कि हे मुने ! सज्जन शुभवाक्य भी वृथा नहीं ग्रहण करते हैं ॥ ७६ ॥ इस लिये कहिये कि इस बडे कर्मको मैं वृथा कैसे करवाऊं और फिर भी कुछ
कहताहूं कि जिस प्रकार मुझको आनन्द होवै ॥ ७७ ॥ मैं प्राणोंसे तुमको शापित करताहूं यों न सौगन्द दिलाताहूं कि जैसा कहताहूं वैसाकरो कि मैं सदैव अमा-
वसमें तुम्हारे पितरोंको उद्देशकरके श्राद्ध करूंगा ॥ ७८ ॥ और तुम इस महीसागर में मेरे पितरों की श्राद्धकरो व तपस्याकी कम होनेपर भी जन्मभर मे जो तपस्या
इकट्ठाकीगई है ॥ ७९ ॥ उसका चतुर्थांश दूंगा इसको ऐसाही करो ॥ ८० ॥ सुभद्र बोले कि यदि ऐसा तुम्हारे सन्तोषहै तो हे मुनिनाथ ! ऐसाही होवै ॥ ८१ ॥ जिस

प्रकार उत्तमजनों को प्रसन्नताहोवै वैसाही जानतहुये पुरुषको करना चाहिये ॥ ८२ ॥ भृगुजी बोले कि तदनन्तर प्रसन्नहोकर देवशर्मा चतुर्थांश पुण्यको त्रिवाचिक करके देकर अपने घरको चलेगये व सुभद्रभी स्थितरहे ॥ ८३ ॥ हे नारद ! इसप्रकारका यह महीसागरसंगमहै जिसको स्मरण करतेहुये मेरे आजभी रोमांच होताहै ॥ ८४ ॥ नारद बोले कि हे अर्जुनजी ! ऐसा सुनकर विस्मय से युक्त मैंने प्रसन्नतासे गद्गदावाणी करके उन भृगुसे बहुत अच्छा २ ऐसा कहा ॥ ८५ ॥ और यह कहा कि तुमलोग व हम उत्तम महीनदी के किनारे जावैंगे व हम तुम दोनों बड़ेउत्तम समस्त स्थानको देखैंगे ॥ ८६ ॥ नारदके वचन सुनकर भृगुजी उन समेत आये व

हियथाहर्षस्तथाकार्यंविजानता ॥ ८२ ॥ भृगुरुवाच ॥ देवशर्माततोहृष्टो दत्त्वापुण्यंत्रिवाचिकम् ॥ चतुर्थांशंययौधाम स्वंसुभद्रोप्यवस्थितः ॥ ८३ ॥ एवंविधोनारदासौ महीसागरसङ्गमः ॥ यमनुस्मरतोमह्यं रोमाञ्चोद्यापिवर्त्तते ॥ ८४ ॥ नारदउवाच ॥ इतिश्रुत्वाफाल्गुनाहं हर्षगद्गदयागिरा ॥ विस्मयाविष्टएवाहं साधुसाध्वितितंभृगुम् ॥ ८५ ॥ यूयंवयञ्चमिष्यामो महीतीरंसुशोभनम् ॥ आवांवीक्षावहेसर्वंस्थानंमहदनुत्तमम् ॥ ८६ ॥ नारदस्यवचःश्रुत्वा भृगुस्तेनसहाययौ ॥ समस्तन्तुमहापुण्यं महीकूलंनिरीक्षितम् ॥ ८७ ॥ तद्दृष्ट्वाचातिहृष्टोहमासंरोमाञ्चकञ्चुकः ॥ अब्रवंमुनिशार्दूलं हर्षगद्गदयागिरा ॥ ८८ ॥ त्वत्प्रसादात्करिष्यामिभृगोस्स्थानमनुत्तमम् ॥ स्वस्थानंगम्यतांब्रह्मन्नतःकृत्यंविचिन्तये ॥ ८९ ॥ एवंभृगुंचास्मिविसर्जयित्वा कल्लोलकोलाहलकौतुकीतटे ॥ ततस्त्वहंचिन्तयामिकथंस्थानमिदम्भवेत ॥ ९० ॥ ममायत्नंयतोराज्ञां भूमिरेषासदावशे ॥ यद्यहंधर्मवर्माणं गत्वायाचामिमेदिनीम् ॥ ९१ ॥ अपंय

बड़े पुण्यदायक समस्त महीनदी के किनारे को देखा ॥ ८७ ॥ व उसको देखकर अतिप्रसन्न मैं रोमांचसे आच्छादित होगया और हर्षसे गद्गदावाणी करके मुनिश्रेष्ठ से कहा ॥ ८८ ॥ कि हे भृगुजी ! तुम्हारी प्रसन्नता से अतिउत्तम स्थान करूंगा इस लिये हे ब्रह्मन् ! आप अपने स्थानको जाइये मैं कार्यका विचार करताहूं ॥ ८९ ॥ इस प्रकार भृगुजी को बिदाकरके मैं कल्लोल के कोलाहल से कौतुकयुक्त होके उस नदीके किनारे टिकारहा तदनन्तर मैं चिन्तन करतारहा कि यह स्थान कैसे होवै ॥ ९० ॥ व मेरा उपाय नहीं है क्योंकि यह भूमि सदैव राजाओं के वशमें है यदि मैं धर्मवर्मा राजाके यहां जाकर पृथ्वीको मांगूं ॥ ९१ ॥ तो मेरे मांगने से

वह अवश्यकर देवैगा परन्तु मुनियों ने यह कहा है कि द्रव्य तीनभांति की उत्तम होतीहै ॥ ९२ ॥ याने शुक्ल, मध्य व चित्रवर्ण और उनका फलभी यहहै कि और
जो जो बहाने से धन इकट्ठा कियाजाता है वह कृष्णवर्ण कहागया है ॥ ९३ ॥ श्रद्धासंयुत जो पुरुष शुक्लचित्त (सत्त्वस्वभाव) से तीर्थ व पात्रको पाकर धर्मकरता
है उसको देवयोनि में भोग करता है ॥ ९४ ॥ व रजोगुण चित्तकरके इकट्ठा किये हुये धनसे याचकों के लिये जो दानदेताहै उसको मनुजयोनिमें भोग करताहै ॥
९५ ॥ व तमोगुण से संयुत जो मनुष्य कृष्णचित्त से दान देताहै वह नीच नर मरकर उस फलको पशु पक्षीकी योनिमें भोगताहै ॥ ९६ ॥ और मेरी मागीहुई वह

**त्येवसचमे याचितेनपरंत्विदम् ॥ तथाहिमुनिभिःप्रोक्तं द्रव्यंत्रिविधमुत्तमम् ॥ ९२ ॥ शुक्लंमध्यञ्चशबलं तेषामपिफ
लंत्विदम् ॥ व्याजेनोपार्जितंयद्यत्तत्कृष्णंसमुदाहृतम् ॥ ९३ ॥ शुक्लचित्तेनयोधर्मं प्रकुर्याच्छ्रद्धयान्वितः॥तीर्थंपात्रं
समासाद्य देवत्वेतत्समश्नुते ॥ ९४ ॥ रजसान्वितचित्तेनसंचितेनधनेनच ॥ प्रदद्याद्दानमर्थिभ्यो मानुषत्वेतदश्नुते ॥
९५ ॥ तमोवृतस्तुयोदद्यात्कृष्णचित्तेनमानवः ॥ तिर्यक्त्वेतत्फलंप्रेत्य समश्नातिनराधमः ॥ ९६ ॥ तत्तुमेयाचितंद्र
व्यं राजसंहिस्फुटम्भवेत् ॥ अथब्राह्मण्यभावेन नृपंयाचेप्रतिग्रहम् ॥ ९७ ॥ तदप्यहोचातिकष्टं हेतुनानेनमेमतम् ॥
अयंप्रतिग्रहोघोरो मध्वास्वादोविषोपमः ॥ ९८ ॥ प्रतिग्रहेणसंयुक्तो नरकंप्रविशेद्द्विजः ॥ तस्मादहंनिवृत्तश्च पापाद
स्मात्प्रतिग्रहात् ॥ ९९ ॥ तत्तुकेनाभ्युपायेन दानेनान्यतरेणच ॥ स्वायत्तंस्थानकंकर्म इदंसञ्चिन्तयेमुहुः ॥ १०० ॥ यथा
कुभार्यःपुरुषः चिन्तान्तन्नप्रपद्यते ॥ तथैवविमृशंश्चिन्तांचिन्तान्तन्नलभाम्यनु ॥ १ ॥ एतस्मिन्नन्तरेपार्थ स्नातुंत**

द्रव्य प्रकटही राजसी होगी और ब्राह्मणताके भावसे जो राजासे दान मांगूं ॥ ९७ ॥ इस कारण से वह भी मेरे मत में बड़ेकष्टकी बातहै यह दान भयङ्कर व मधुके
समान स्वादवाला है परन्तु विषके तुल्यहै ॥ ९८ ॥ व दान लेनेसे संयुक्त ब्राह्मण नरक में प्रवेश करता है इस लिये मैं इस पापरूपी प्रतिग्रह से अलगहूं ॥ ९९ ॥
और दानके सिवाय अन्य किस उपाय से वह स्थान अपने अधीन होवै इसी कार्यको मैं बार २ चिन्तन करताथा ॥ १०० ॥ जैसे दुष्टा स्त्रीवाला पुरुष चिन्ताके अन्त
को नहीं प्राप्तहोता है वैसाही विचार करताहुआ मैं, चिन्ताकी समाप्तिको नहीं प्राप्त होताथा ॥ १ ॥ इसी अवसर में हे अर्जुन ! पुण्यदायक महीसागर के संगम में

नहानेके लिये वहां बहुतसे मुनिलोग आये ॥ २ ॥ उन सबोंसे मैंने कहा कि तुमलोग कहांसे आयेहो इसके अनन्तर उन्होंने मुझसे कहा कि हे मुने ! सौराष्ट्र देशमें
हम लोग रहतेहैं ॥ ३ ॥ जिस देशका धर्मवर्मा ऐसा राजा है और दानके तत्त्वको चाहनेवाले उसने बहुत वर्षसमूहों तक तपस्या कियाहै ॥४॥ उसके उपरान्त उन
राजासे आकाशवाणी बोली उसको सुनिये कि दोकारण व छह स्थान और छहअङ्ग व दोफलों से संयुत ॥ ५ ॥ व चार प्रकारका तथा त्रिविध व त्रिनाश दान कहा
जाता है यह एक श्लोक कहकर आकाशमें वाणी चुपहोगई ॥ ६॥ हे नारद ! पूंछी हुईभी उस आकाशवाणी ने श्लोकका अर्थ नहीं कहा तदनन्तर धर्मवर्मा राजाने

त्रसमागताः ॥ बहवोमुनयःपुण्ये महीसागरसङ्गमे ॥ २ ॥ तानहंचाब्रवंसर्वान्कुतोयूयंसमागताः ॥ तेमामूचुःप्रणम्या
थसौराष्ट्रविषयेमुने ॥ ३ ॥ धर्मवर्मेतिनृपतिर्यस्यदेशस्यभूपतिः ॥ सतुदानस्यतत्त्वार्थीतेपेवर्षगणान्बहून् ॥ ४ ॥ तत
स्तंप्राहखेवाणीश्लोकमेकंनृपंशृणु ॥ द्विहेतुषडधिष्ठानं षडङ्गञ्चद्विपाकयुक् ॥ ५ ॥ चतुष्प्रकारंत्रिविधंत्रिनाशंदानमु
च्यते ॥ इत्येकंश्लोकमाभाष्यखेवाणीविरराम ह ॥ ६॥ श्लोकस्यार्थंबभाषेनपृच्छ्यमानापिनारद ॥ ततोराजाधर्म
वर्मापटहेनाप्यघोषयत ॥ ७ ॥ यस्तुश्लोकस्यचैवास्यलब्धस्यतपसामया ॥ करोतिसम्यग्व्याख्यानंतस्यचैतद्ददा
म्यहम् ॥ ८ ॥ गवांवैसप्तनियुतंसुवर्णंचैतदेवच ॥ सप्तग्रामान्प्रयच्छामिश्लोकव्याख्यांकरोतियः ॥ ९ ॥ पटहेनेतिनृ
पतेःश्रुत्वाराज्ञोवचोमहत ॥ आजग्मुर्बहुदेशीया ब्राह्मणाःकोटिशोमुने ॥ १० ॥ वयंचतत्रयाताःस्मधनलोभेननारद ।
दुर्बोधत्वान्नव्याख्यायश्लोकंचात्रसमागताः ॥ ११ ॥ दुर्व्याख्येयस्त्वयंश्लोकोधन्यैर्लभ्योनचैवनः ॥ तीर्थयात्राकृतेया

नगारा पिटवादिया ॥ ७॥ कि मुझको तपस्या से मिलेहुये इस श्लोक का जो अच्छीतरह से व्याख्यान करै उसको मैं यह दूंगा ॥ ८ ॥ कि सात लाख गऊ व
इतनीही अशर्फियां और सात गांव दूंगा जो श्लोकका अर्थ करैगा ॥ ९ ॥ नगारा के द्वारा राजाके इस बड़ेभारी वचन को सुनकर हे मुने ! बहुत से देशोंके करोड़ों
ब्राह्मण आये ॥ १० ॥ हे नारद ! हम लोगभी धनके लालच से वहांगयेथे परन्तु दुर्बोधके कारणसे श्लोकका अर्थ न कहकर यहां आयेहैं ॥ ११ ॥ और यहश्लोक
दुर्व्याख्येय याने कठिनता से अर्थ करनेयोग्य है व धन्य जनों को सुलभ है हमलोगों को नहीं है तीर्थयात्रा के लिये जाते हैं ऐसा चिन्तन करके हमलोग यहां

आयेहैं ॥ १२ ॥ हे अर्जुनजी ! इस प्रकार उन महात्माओं के वचन सुनकर मै बहुतही प्रसन्न हुआ व उनको बिदाकरके यह चिन्तन करनेलगा ॥ १३ ॥ कि बड़े
विस्मयकी बातहै मैंने स्थान के मिलने में यत्न पाया इसमें सन्देह नहीं कि श्लोकका अर्थ कहकर राजासे स्थान व धनको विद्या के मूल्य से पाऊंगा व इसतरहसे
मांगा हुआ प्रतिग्रह न होगा जगत् के गुरु पुराने ऋषि विष्णुजी ने सच कहाहै ॥ १४ । १५ ॥ कि जिसके धर्मकी श्रद्धा होती है वह नहीं पूर्ण होती है ऐसा नहीं है
याने पूरी होतीहै व जिसके पापकी श्रद्धाहै वह नहीं पूर्ण होती ऐसा नहीं है अर्थात् पूरी होती है ॥ १६ ॥ ऐसा चिन्तनकरके विद्वान् रुचि के अनुकूल करते हैं यह

मएवंचिन्त्यात्रचागताः ॥ १२ ॥ एवंफाल्गुनतेषांतुवचःश्रुत्वामहात्मनाम् ॥ अतीवासंप्रहृष्टोहंतान्विसृज्येत्यचिन्त
यम् ॥ १३ ॥ अहोप्राप्तउपायोमेस्थानप्राप्तौनसंशयः ॥ श्लोकंव्याख्यायनृपतेर्लप्स्येस्थानंधनंतथा ॥ १४ ॥ विद्यामूल्येन
नैवंचयाचितंस्यात्प्रतिग्रहः ॥ सत्यमाहपुराणर्षिर्वासुदेवोजगद्गुरुः ॥ १५ ॥ धर्मस्ययस्यश्रद्धास्यान्नचसानैवपूर्यते ॥
पापस्ययस्यश्रद्धास्यान्नचसापिनपूर्यते ॥ १६ ॥ एवंविचिन्त्यविद्वांसःप्रकुर्वन्तियथारुचि ॥ सत्यमेतद्विभोर्वाक्यंदुर्ल्लं
भोतितथाहिमे ॥ १७ ॥ मनोरथोयंसकलः संभूतोङ्कुरितःस्फुटम् ॥ एवंसप्तविधंश्लोकमहंजानामिसस्फुटम् ॥ १८ ॥
अमूर्तैःपितृभिःपूर्वंयद्व्याख्यातोहिमेपुरा ॥ एवंहर्षान्वितःपार्थसंचिन्त्याहंततोमुहुः ॥ १९ ॥ प्रणम्यतीर्थंचलितोमहीसा
गरसङ्गमम् ॥ वृद्धब्राह्मणरूपेणततोहंयातवान्नृपम् ॥ २० ॥ इदंभणितवानस्मिश्लोकव्याख्यांनृपंशृणु ॥ यत्तेपटहविख्या
तंदानंचप्रकटीकुरु ॥ २१ ॥ एवमुक्तेनृपः प्राहप्रोचुरेवंहिकोटिशः ॥ द्विजोत्तमाः पुनर्नास्यप्रोक्तुमर्थोहिशक्यते ॥ २२ ॥

विभु (विष्णु) जी का वचन सत्यहै वैसेही मेरा बहुत दुर्लभ ॥ १७ ॥ यह समस्त मनोरथ प्रकटही अंकुरित होगया क्योंकि ऐसे सात प्रकार के श्लोकको मैं प्रकटता
समेत जानताहूं ॥ १८ ॥ क्योंकि पहले बिन मूर्तिवाले पितरो ने मुझसे व्याख्यान कियाहै हे अर्जुनजी ! इसप्रकार चिन्तनकर तदनन्तर बार २ महीसागर के सगम
तीर्थ को प्रणामकरके उसके उपरान्त बूढ़े ब्राह्मणके रूपसे राजाके समीप गया ॥ १९ । २० ॥ व मैंने राजा से यह कहा कि श्लोक का व्याख्यान सुनिये और तुमने
जो दान नगारे से प्रसिद्ध किया था उसको प्रकट कीजिये ॥ २१ ॥ ऐसा कहनेपर राजाने कहा कि ऐसाही करोड़ों ब्राह्मणोने कहा फिर इसका अर्थ कहने के लिये समर्थ न

हुये ॥ २२ ॥ दो हेतु कौन हैं व छह अधिष्ठान कौन कहेगयेहैं और छह अंग कौनहैं व दो फल कौन कहेगयेहैं ॥ २३ ॥ और चार प्रकार कौनहैं व हे द्विज ! वह तीन प्रकारका क्या है और तीन नाश कौन कहेगये हैं दान के इस विषय को प्रकट कहिये ॥ २४ ॥ हे ब्राह्मण ! यदि इन सात वस्तुवोंको प्रकट कहिये तो सात लाख गऊ व इतनीही अशर्फ़िया ॥ २५ ॥ और सात ग्रामोंको दूंगा नहीं तो अपने घर को जाइयेगा हे अर्जुनजी! उनके ऐसा कहनेपर सौराष्ट्रदेश के स्वामी धर्मवर्मा राजा से यही मैंने कहा कि सुनिये मैं श्लोककी व्याख्या कहूंगा दो दानके कारण सुनो ॥ २६ । २७ ॥ कि दानकी न्यूनता व अधिकता ऐश्वर्य्यदायक नहीं होतीहै किन्तु

कौद्वौहेतुषडाख्यातान्यधिष्ठानानिकानिच ॥ कानिचैवषडङ्गानि कौद्वौपाकौतथास्मृतौ ॥ २३ ॥ केप्रकाराश्चचत्वारः किंवातत्त्रिविधंद्विज ॥ त्रयोनाशाश्चकेप्रोक्ता दानस्यैतत्स्फुटंवद ॥ २४ ॥ स्फुटानीमानिसप्तत्वं यदिवक्ष्यसिब्राह्मण ॥ तद्गवांसप्तनियुतं सुवर्णंचतदेवच ॥ २५ ॥ सप्तग्रामांश्चदास्यामि नोचेद्यास्यसिस्वंगृहम् ॥ इत्युक्तेवचनंपार्थ सौराष्ट्रस्वामिनंनृपम् ॥ २६ ॥ धर्मवर्माणमित्येव प्रावोचमवधारय ॥ श्लोकव्याख्यांस्फुटांवक्ष्ये दानहेतूचद्वौशृणु ॥ २७ ॥ नाल्पत्वंवाबहुत्वंवा दानस्याभ्युदयावहम् ॥ श्रद्धाशक्तिश्चदानानां वृद्धिक्षयकरेहिते ॥ २८ ॥ श्रद्धाविषयेश्लोकाभवन्ति ॥ कायक्लेशैश्चबहुभिर्नचैवार्थस्यराशिभिः ॥ २९ ॥ धर्मस्संप्राप्यतेसूक्ष्मः श्रद्धाधर्माद्भुतन्तपः ॥ श्रद्धास्वर्गश्चमोक्षश्च श्रद्धासर्वमिदंजगत् ॥ ३० ॥ सर्वस्वंजीवितंचापि दद्यादश्रद्धयायदि ॥ नाप्नुयात्सफलंकिञ्चिच्छ्रद्दधानस्ततोभवेत् ॥ ३१ ॥ श्रद्धयासाध्यतेधर्मो महद्भिर्नार्थराशिभिः ॥ निष्किञ्चनाहिमुनयः श्रद्धावन्तोदिवङ्गताः ॥ ३२ ॥

श्रद्धा व शक्ति वेही दानों की वृद्धि व क्षयकारक हैं ॥ २८ ॥ श्रद्धाविषय के ये श्लोकहोते हैं कि बहुत शरीरके क्लेशोंसे व धनकी राशियों से सूक्ष्मधर्म भलीभांति नहीं प्राप्त होता है किन्तु श्रद्धा धर्म व अद्भुत तपस्या है व श्रद्धा स्वर्ग, मोक्ष है और यह सब संसार श्रद्धाहै ॥ २९ । ३० ॥ यदि अश्रद्धा से जो सर्वस्व व प्राण भी देवै कुछ फल नहीं पाताहै इस लिये श्रद्धावान् होवै ॥ ३१ ॥ श्रद्धासे धर्म साधन कियाजाता है व बड़ी धर्मकी राशियों से नहीं क्योंकि निष्किञ्चन (धन-

हीन) मुनिलोग श्रद्धावान् होकर स्वर्गको गये हैं ॥ ३२ ॥ मनुष्यों की श्रद्धा तीन प्रकारकी है और वह स्वभावसे पैदाहोती है सात्त्विकी, राजसी व तामसी है उस
श्रद्धाको सुनो ॥ ३३ ॥ कि सात्त्विकी श्रद्धावाले लोग देवताओंको पूजतेहैं व राजसी श्रद्धावान् यक्षों व राक्षसों को पूजते हैं और तामसीजन प्रेतो, भूतों, पिशाचों को
पूजते हैं ॥ ३४ ॥ इस लिये जो न्याय से इकट्ठा कियाहुआ धनहै श्रद्धावान् पुरुषसे जो वह पात्रमें दियागयाहै उसी थोडीभी द्रव्य से भगवान् शिवजी प्रसन्न होते हैं
३५ ॥ शक्तिके विषय में ये श्लोकहैं कि कुटुम्ब व सेवक के पालन से जो अधिक धनहो उसको देना चाहिये ॥ ३६ ॥ जैसे मदिराका पीना पीछे विप होजाता है

त्रिविधाभवतिश्रद्धा देहिनांसास्वभावजा ॥ सात्त्विकीराजसीचैव तामसीचैवतांशृणु ॥ ३३ ॥ यजन्तेसात्त्विका
देवान्यक्षरक्षांसिराजसाः ॥ प्रेतान्भूतान्पिशाचांश्च यजन्तेतामसाजनाः ॥ ३४ ॥ तस्माच्छ्रद्धावतापात्रे दत्तंन्याया
र्जितंहियत् ॥ तेनैवभगवान्रुद्रः स्वल्पकेनापितुष्यति ॥ ३५ ॥ शक्तिविषयेचश्लोकाभवन्ति ॥ कुटुम्बभक्तभरणा
द्देयंयदतिरिच्यते ॥ ३६ ॥ मध्वास्वादोविषंपश्चाद्दातुर्द्धर्मोन्यथाभवेत् ॥ शक्तेपरजनेदाता स्वजनेदुःखजीविनि॥३७॥
मध्वादनेविषास्वादो धर्म्माणांप्रतिरूपकः ॥ भृत्यानामपराधेन यःकरोत्यौर्ध्वदैहिकम् ॥ ३८ ॥ तद्भवत्यसुखोदर्कं
जीवतस्यमृतस्यच ॥ सामान्यंयाचितंन्यासमाधेर्दानञ्चतद्धनम् ॥ ३९ ॥ अन्वाहितञ्चनिक्षिप्तं सर्वस्वंचान्वयेसति ॥
आपत्स्वपिनदेयानि नववस्तूनिपण्डितैः ॥ ४० ॥ योददातिसमूढात्मा प्रायश्चित्तीभवेन्नरः ॥ इतितेगदितौराजन् द्वौ

वैसेही दाताका धर्म अन्यथा होताहै जबकि स्वजन दुःख से जीतेहों और समर्थ अन्यजनको देवै ॥ ३७ ॥ मदिरा पीनेमें विषका आस्वादन अधर्मों का रूपक है याने
जैसे मद्यपीने में पहले अच्छा व पीछे विषसा होजाताहै ऐसेही अधर्मों में है सेवकोंके अपराधसे जो मृतक पुरुष के कर्म करताहै ॥ ३८ ॥ वह जीते व मरेहुये पुरुषका
आगे फलदायक नहीं होताहै और साधारण व मांगीहुई वस्तु, धरोहरि और मानसी व्यथासे दान व उसी दान लेनेवालेका धन ॥ ३९ ॥ व मासिक श्राद्धवाला धन
व फेंकाहुआ धन और वशहोनेपर सर्वस्व (सब कुछ) ये नव वस्तुवें विपत्तिमें भी पण्डितों को न देना चाहिये ॥ ४० ॥ और जो इन नव वस्तुवोंको देताहै वह मूढ़

चित्तवाला पुरुष प्रायश्चित्ती होताहै हे राजन् ! तुमसे ये दो कारण कहेगये व इस के उपरान्त सुनिये ॥ ४१ ॥ अधिष्ठानों को कहताहूं उन छहोंको सुनिये धर्म, अर्थ, काम, लज्जा, हर्ष व भय ॥ ४२ ॥ विद्वान्जन इन छहोंको दानके अधिष्ठान कहते हैं नित्यही प्रयोजन की अपेक्षा न करके सुपात्र ब्राह्मणों के लिये जो केवल धर्म की बुद्धिसे दियाजाता है वह धर्मदान कहाजाताहै व प्रयोजनकी अपेक्षा करके जो प्रसंग से दियाजाता है ॥ ४३ । ४४ ॥ इस लोकमें फलहेतुवाले उस दानको मुनि-लोगोंने अर्थदान कहाहै व स्त्री, मद्यपान, शिकार व पांसा के प्रसंगसे जो अयोग्यजनोंको उत्तमयत्नसे दियाजाताहै वह कामदान कहाजाताहै व सभामें याचनाकरने

हेतुश्श्रूयतामतः ॥ ४१ ॥ अधिष्ठानानिवक्ष्यामि षडेवशृणुतानिच ॥ धर्ममर्थञ्चकामंच व्रीडाहर्षभयानिच ॥ ४२ ॥
अधिष्ठानानिदानानां षडेतानिप्रचक्षते ॥ पात्रेभ्योदीयतेनित्यमनपेक्ष्यप्रयोजनम् ॥ ४३ ॥ केवलंधर्मबुद्ध्यायद्धर्म
दानंतदुच्यते ॥ प्रयोजनमपेक्ष्यैव प्रसङ्गाद्यत्प्रदीयते ॥ ४४ ॥ तदर्थदानमित्याहुरैहिकंफलहेतुकम् ॥ स्त्रीपानमृगयाक्षा
णां प्रसङ्गाद्यत्प्रदीयते ॥ ४५ ॥ अनर्हेषुसुयत्नेन कामदानंतदुच्यते ॥ संसदिव्रीडयाश्रुत्य अर्थार्थिभ्यःप्रयाचितः ॥
४६ ॥ प्रदीयतेतुतद्दानं व्रीडादानमितिश्रुतम् ॥ दृष्ट्वाप्रियाणिश्रुत्वावा हर्षेणायत्प्रदीयते ॥ ४७ ॥ हर्षदानमितिप्राहुर्दा
नंतद्धर्मचिन्तकाः ॥ आक्रोशानृतहिंसानां प्रतीकारायद्भवेत् ॥ ४८ ॥ दीयतेनुपकर्तृभ्यो भयदानन्तदुच्यते ॥ प्रोक्ता
निषडधिष्ठानि दानाङ्गानिचषट्शृणु ॥ ४९ ॥ दाताप्रतिग्रहीताच शुद्धिर्देयंचधर्मयुक् ॥ देशकालौचदानानामङ्गान्ये
तानिषड्विदुः ॥ ५० ॥ अपरोगीचधर्मात्मा दित्सुरव्यसनःशुचिः ॥ अनिन्द्योनित्यकर्माच षड्भिर्दाताप्रशस्यते ॥ ५१ ॥

पर सुनकरके लज्जासे जो धन याचकों के लिये दियाजाताहै ॥ ४५ । ४६ ॥ वह व्रीडादान ऐसा सुनागया है और प्रियवस्तुओं को देखकर व सुनकरके आनन्द से जो दियाजाता है ॥ ४७ ॥ धर्मचिन्तकजनोंने उसको हर्षदान ऐसा कहाहै और दुष्टोंके गालियां देनेकी निवृत्तिके लिये जो होताहै ॥ ४८ ॥ व अनुपकारियोंके लिये जो दान दियाजाता है वह भयदान कहाजाताहै ये छह अधिष्ठान कहेगये और दानके छह अङ्गोंको सुनो ॥ ४९ ॥ कि दाता, प्रतिग्रह लेनेवाला व पवित्रता और धर्मसंयुत देनेयोग्य द्रव्य व देश, काल विद्वानों ने दानके इन छह अंगोंको कहाहै ॥ ५० ॥ अरोगी व धर्मात्मा व देनेकी इच्छावाला व व्यसनहीन व पवित्र और अनिन्दनीय व

नित्यकर्मोंका करनेवाला छह वस्तुवों करके दानी उत्तम होताहै॥५१॥व अकोमल, श्रद्धाहीन, दुष्टात्मा व जो व्यसनी व झूंठी प्रतिज्ञावाला व बहुत सोनेवालाहै वे दाता महानीच हैं ॥ ५२ ॥ व त्रिशुक्ल याने विद्या, तपस्या व उत्तम-आचरणवान् व सात्त्विकी जीविकावाला, दयालु व इन्द्रियजित् और योनिके दोषों से छूटाहुआ ब्राह्मण पात्र कहाजाता है ॥ ५३ ॥ व सदैव याचकों के देखने में सामनेहीसे भलीभांति प्रीतिहोवै व सत्कार व ईर्षा न होवै दानमें यह शुद्धि कहीगई है ॥ ५४ ॥ व बिन कलंकवाली द्रव्य व विना क्लेशके अपने उपाय से इकट्ठा कियाहुआ थोड़ा या बहुतभी धन देय ऐसा कहाजाता है ॥ ५५ ॥ और किसी भी धर्मसमेत

अनृजुश्चाश्रद्दधानो दुष्टात्माऽव्यसनीचयः ॥ असत्यसन्धोनिद्रालुर्दातारस्तेमहाधमाः ॥ ५२ ॥ त्रिशुक्लःशुक्लवृत्तिश्च घृणालुस्संयतेन्द्रियः ॥ विमुक्तोयोनिदोषेभ्यो ब्राह्मणःपात्रमुच्यते ॥ ५३ ॥ सम्मुखाद्यदिसम्प्रीतिरर्थिनांदर्शनेसदा ॥ सत्कृतिश्चानसूयाच दानेशुद्धिरितिस्मृता ॥ ५४ ॥ अपरीवाद्यमक्लेशं स्वयत्नेनार्जितंधनम् ॥ स्वल्पंवाविपुलंचापि देयमित्यभिधीयते ॥ ५५ ॥ केनापिसहधर्मेण उद्दिश्यकिलकिञ्चन ॥ देयंतद्धर्मयुगिति शून्येशून्यफलंमतम् ॥ ५६ ॥ यद्यद्यद्दुर्लभंद्रव्यं देशेकालेपिवापुनः ॥ दानार्हौदेशकालौतौ स्यातांश्रेष्ठौनचान्यथा ॥ ५७ ॥ षडङ्गानीतिचोक्तानि द्वौचपाकावतःशृणु ॥ द्वौपाकौदानजौप्राहुः परत्रार्थमिहोच्यते ॥ ५८ ॥ सद्भ्योयद्दीयतेकिञ्चित्तत्परत्रोपभुज्यते ॥ असत्सुदीयतेयत्तु तद्दानमिहभुज्यते ॥ ५९ ॥ द्वौपाकावितिनिर्दिष्टौ प्रकारांश्चतुरःशृणु ॥ ध्रुवमाहुस्त्रिकंकाम्यं नैमि

प्रसिद्धमें जो कुछ उद्देशकरके देय होता है वह धर्मयुक् ऐसा कहाजाता है और शून्यमें शून्यफल मानागया है ॥ ५६ ॥ और देश या फिर समयमे भी जो जो वस्तु दुर्लभ हैं वे दोनों देशकाल दान के योग्य श्रेष्ठहै अन्यथा नहीं ॥ ५७ ॥ ये छह अङ्ग कहेगये इसके उपरान्त दो पाकों (फलों) को सुनिये विद्वानो ने दानसे उपजेहुये दो फलोंको कहाहै परलोक के लिये व इस लोकके लिये वे कहेजाते हैं ॥ ५८ ॥ जो कुछ उत्तमजनों के लिये दियाजाता है वह परलोक में भोग कियाजाता है व असत् पुरुषों को जो दियाजाता है वह दान यहीं भोगाजाता है ॥ ५९ ॥ ये दोनों पाक कहेगये और चार प्रकारों को सुनिये मुनियों ने ध्रुव, त्रिक, काम्य व

नैमित्तिक इस क्रमसे कहाहै ॥ ६० ॥ ब्राह्मणों से यह वैदिक दानमार्ग चार प्रकार का कहाजाता है सब कामनाओं के फलवाले कूप, बगीचा व तडागादि ध्रुव हैं ॥
६१ ॥ और जो प्रतिदिन दियाजाताहै उसको विद्वानोंने त्रिक कहाहै और पुत्र,विजय,ऐश्वर्य, स्त्री व पराक्रम के लिये इच्छासे टिकाहुआ जो दानदियाजाताहै वह काम्य
ऐसा कहाजाता है व कालकी अपेक्षा करके व क्रियापेक्ष और गुणापेक्ष यह स्मृतिमें ॥ ६२ । ६३ ॥ सदैव होमसे रहित तीनप्रकार का नैमित्तिक कर्म कहागयाहै ये तुम
से प्रकार कहेगये अब त्रिविधि कहीजाती है ॥ ६४ ॥ कि आठ दान उत्तम हैं व विधिसे चार दान मध्यम हैं व शेष लघुहैं इसको विद्वानों ने त्रैविध्य कहाहै ॥६५॥

त्तिकमितिक्रमात ॥ ६० ॥ वैदिकोदानमार्गोयंचतुर्द्धावर्ण्यतेद्विजैः ॥ कूपारामतडागादिसर्वकामफलंध्रुवम् ॥ ६१ ॥
तदाहुस्त्रिकमित्येव दीयतेयद्दिनेदिने ॥ अपत्यविजयैश्वर्यस्त्रीबलार्थंचदीयते॥६२॥ इच्छासंस्थंचयद्दानं काम्यमित्य
मिधीयते ॥ कालापेक्षंक्रियापेक्षं गुणापेक्षमितिस्मृतौ ॥ ६३ ॥ त्रिधानैमित्तिकंप्रोक्तं सदाहोमविवर्जितम् ॥ इतिप्रो
क्ताःप्रकारास्ते त्रैविध्यमभिधीयते॥ ६४ ॥ अष्टोत्तमानिचत्वारि मध्यमानिविधानतः ॥ कनीयसानिशेषाणि त्रिवि
धत्वमिदंविदुः ॥ ६५ ॥ गृहप्रासादविद्याभूगोकूपतृणहाटकम् ॥ एतान्युत्तमदानानि उत्तमान्यन्यदानतः ॥ ६६ ॥
अन्नारामौचवासांसि हयप्रभृतिवाहनम् ॥ दानानिमध्यमानीति मध्यमद्रव्यदानतः ॥ ६७ ॥ उपानच्छत्रपात्रादिदधि
मध्वासनानिच ॥ दीपकाष्ठोपलादीनि चरमान्याहुरुत्तमाः ॥६८॥ इतितेत्रिविधंप्रोक्तंदाननाशत्रयंशृणु ॥ यद्दत्त्वातप्य
तेपश्चादपात्रेभ्यस्तथाचयत्॥अश्रद्धयाचयद्दानं दाननाशास्त्रयस्त्वमी ॥६९॥ इतिसप्तपदैर्बद्धं दानमाहात्म्यमुत्तमम् ॥

घर व देवमन्दिर या राजगृह, विद्या, भूमि, गऊ, कूप, तृण, सुवर्ण ये दान अन्य दानों से उत्तम हैं ॥ ६६ ॥ और अन्न, बगीचा, वसन व घोडा इत्यादि सवारी
मध्यमद्रव्य के दान के कारण से ये दान मध्यम हैं ॥ ६७ ॥ व पनहीं, छतुरी व पात्रादिक और दही शहद या मिठाई व आसन, दिया, काष्ठ और पत्थर इत्यादिक
उत्तमजनोंने पिछले दान कहा है ॥ ६८ ॥ यह तुमसे त्रिविधि कहीगई है और दान के तीन नाश सुनिये कि जिस दान को देकर पीछे पछतावै और अपात्रों के लिये
जो दान दियाजाताहै व जो अश्रद्धासे दियाजाताहै ये तीन दानके नाशहैं ॥ ६९ ॥ हे राजन्! इसप्रकार सातपदोंसे बँधाहुआ उत्तम दानका माहात्म्य मैंने तुमसे कहा

अच्छा या असाधु कहिये ॥ ७० ॥ धर्मवर्मा बोले कि हे कीर्तिमानोंमें श्रेष्ठ ! आज मेरा जन्म सफल हुआ व आज मेरी तपस्याका फल प्राप्तभया व आज मैं कृतार्थ करदियागया हूँ ॥ ७१ ॥ पढ़करके दुराचारी पुरुष का जन्म वृथा है व बहुत क्लेशसे मिलीहुई स्त्री यदि अप्रिय बोलै तो वह वृथा है ॥ ७२ ॥ व क्लेश से कुँवा बनाकर यदि वह खारीजलवाला हुआ तो वृथा है जैसे कि बहुत क्लेशों से जन्म पाकर धर्म के विना वृथा होता है ॥ ७३ ॥ इसप्रकार प्रसिद्धि में जिसप्रकार मेरी जो तपस्या वृथा थी उसको जिसलिये फलीभूत किया उसीलिये तुम्हारेलिये नमस्कार है व ब्राह्मणों के लिये प्रणामहै ॥ ७४ ॥ पुरातनसमय वैकुण्ठमें विष्णुजीने सनकादिकों

मयातेकीर्तितंराजन् साधुवासाधुवावद ॥ ७० ॥ धर्मवर्मोवाच ॥ अद्यमेसफलंजन्म अद्यमेतपसःफलम् ॥ अद्यैव कृतकृत्योस्मि कृतःकीर्तिमतांवरः ॥ ७१ ॥ पठित्वासकलंजन्म दुराचारस्यनुर्वृथा ॥ बहुक्लेशाच्चलब्धास्त्री सावृथाप्रियवादिनी ॥ ७२ ॥ क्लेशेनकृत्वाकूपंवा सचक्षारोदकोवृथा ॥ बहुक्लेशैर्जन्मनीत्वा विनाधर्मंवृथायथा ॥ ७३ ॥ एवंमेयद्वृथानाम तपस्तस्यफलंयतः ॥ कृतंतस्मान्नमस्तुभ्यं द्विजेभ्यश्चनमोनमः ॥ ७४ ॥ सत्यमाहपुराविष्णुः कुमारान्विष्णुसद्मनि ॥ ७५ ॥ नाहंतथाद्मियजमानहविर्वितानेश्च्योतद् घृतप्लुतमदन्नहुतभुग्मुखेन ॥ यद्ब्राह्मणस्यमुखतश्चरतोनुघासंतुष्टस्यमय्यवहितैर्निजकर्मपाकैः ॥ ७६ ॥ तन्मयाकर्म्मणाचापि यद्विप्रेभ्योऽप्रियंकृतम् ॥ ७७ ॥ सर्वस्यप्रभवोविप्रास्तत्त्वमन्तुप्रसादतः ॥ त्वञ्चकोसिनसामान्यः प्रणम्याहंप्रसादये ॥ ७८ ॥ आत्मानंख्यापयमुने प्रोक्तश्चेत्यब्रवंतदा ॥ नारदोस्मिनृपश्रेष्ठस्थानस्यार्थेसमागतः ॥ ७९ ॥ प्रोक्तञ्चदेहिमेद्रव्यं भूमिञ्चस्थानहेतवे ॥ यद्यपीयंदेवतानांभूमिर्द्र

से सत्य कहा है ॥ ७५ ॥ कि जिसमें घी टपकता है ऐसी यजमानकी खीरको मैं उसतरह यज्ञमें नहीं ग्रहण करता हूं जैसे कि मुझमें अर्पण कियेहुये अपने कर्म फलो से संतुष्ट ब्राह्मण के मुखसे प्रति ग्रासमें भोजन करता हूं ॥७६॥ इसलिये मैंने कर्म से भी जो ब्राह्मणोंका अप्रिय किया हो ॥ ७७ ॥ सबोंके स्वामी ब्राह्मण प्रसन्नता से उस को क्षमाकरैं मैं प्रणाम करके प्रसन्न करताहू आप साधारण द्विज नहीं हो कौनहो॥७८॥हे मुने ! अपनाको कहिये उससमय इसप्रकार कहेहुये मैंने यह कहा कि हे नृपश्रेष्ठ !

नारद हूं स्थानके लिये यहां आया हूं ॥ ७९ ॥ मुझको कहीहुई द्रव्य व स्थान के लिये पृथ्वी देवो हे राजन् ! यद्यपि यह भूमि व धन देवताओंका है ॥ ८० ॥ तैसे
ही जिससमय में जो राजा होता है निश्चयकर उससे मांगना चाहिये क्योंकि वह ईश्वर का अवतार होता है और वह पृथ्वीका स्वामी व दाता होता है ॥ ८१ ॥
इसलिये द्रव्यकी शुद्धि की इच्छासे मैं तुमसे पृथ्वी को मांगता हूं वैसेही पहले घोड़े के लिये गालवमुनि याचना में तत्परहुये हैं ॥ ८२ ॥ राजा बोले कि हे विप्रजी !
यदि तुम नारद हो तो सबराज्य तुम्हारा होवै और मैं ब्राह्मणों का व तुम्हारा निस्सन्देह सेवक हूंगा ॥ ८३ ॥ नारद बोले कि तदनन्तर मैंने धर्मवर्मा राजासे यह कहा कि

ण्यञ्चपार्थिव ॥ ८० ॥ तथापियस्मिन्कालेयो राजाप्रार्थ्यःसनिश्चितम् ॥ सहीश्वरस्यावतारोभर्त्तादाताभुवश्चसः ॥ ८१ ॥
तद्भवंत्वामहंयाचेद्रव्यशुद्धिपरीप्सया ॥ तथैवगालवःपूर्वं हयार्थेप्रार्थनापरः ॥ ८२ ॥ राजोवाच ॥ यदित्वंनारदोविप्र रा
ज्यमस्त्वखिलंतव ॥ अहञ्चब्राह्मणानान्ते दास्यंकर्त्तानसंशयः ॥ ८३ ॥ नारद उवाच ॥ ततोहंधर्म्मवर्म्माणं प्रोक्त्वा
तिष्ठेद्धनंत्वयि ॥ कृत्यकालेग्रहीष्यामि प्रययौरैवतंगिरिम् ॥ ८४ ॥ आसंप्रमुदितश्चाहं पश्यंस्तंगिरिसत्तमम् ॥ आह्वया
नंनरान्साधून् भूमेर्भुजामिवोच्छ्रितम् ॥ ८५ ॥ यस्मिन्नानाविधावृक्षाःप्रकाशन्तेसमन्ततः ॥ साधुंगृहपतिंप्राप्यपुत्रभा
र्य्यादयोयथा ॥ ८६ ॥ मुदितायत्रसंतृप्ता वसन्तेकोकिलादयः ॥ सद्गुरोर्ज्ञानसंतृप्ता यथाशिष्यगणाभुवि ॥ ८७ ॥ यत्र
तप्त्वातपोमर्त्यो यथेप्सितमवाप्नुते ॥ श्रीमहादेवमासाद्यभक्तोयद्वन्मनोरथम् ॥ ८८ ॥ तस्याहंचगिरेःपार्श्वं समासा

धन तुम्हारे पास रहै मैं कार्य्य के समय लेलूंगा यहकहकर रैवतकपर्व्वत पै चला गया ॥ ८४ ॥ और उस उत्तमपर्वत को देखताहुआ मैं प्रसन्नहुआ जो कि पृथ्वी
की भुजाकीनाईं ऊंचाहोकर मानो उत्तमजनों को बुलारहा है ॥ ८५ ॥ व जिस पर्वत पै सबओर अनेकप्रकार के वृक्ष शोभित हैं जैसे घरके उत्तमस्वामी को पाकर पुत्र
व स्त्री आदिक सोहते हैं ॥ ८६ ॥ व जहांपर भलीभांति तृप्तहोकर कोकिलाआदिक पक्षी बसते हैं जैसे कि पृथ्वी में उत्तमगुरु से ज्ञानकरके अच्छीतरह तृप्तकिये
हुये शिष्य समूहरहते हैं ॥ ८७ ॥ व जहां तपस्याकरके मनुष्य चाहेहुये मनोरथ को प्राप्तहोता है जैसे श्री महादेवजी के समीप जाकर भक्त अभिलाष को प्राप्तहोता

है ॥ ८८ ॥ हे अर्जुनजी ! उस पर्वत की बड़ी शिलापै प्राप्तहोकर शीतल, मन्द, सुगन्ध पवनसे प्रसन्न कियेहुये मैंने हृदय में चिन्तवन किया ॥ ८९ ॥ कि जो अत्यन्त दुर्लभ था उसस्थानको मैं तब तक पागया इससमय मैं ब्राह्मणों के लिये तबतक स्थानका प्रारम्भकरूं ॥ ९० ॥ और जो उत्तमपात्र मानेगये हैं वे ब्राह्मण मुझको देखना चाहिये क्योंकि यहां श्रुतिवादियों के ये वचन सुनेजाते हैं ॥ ९१ ॥ जैसे खेवैया से रहित नाव प्राणियों को पारउतारने में समर्थ नहीं होती है वैसेही उत्तमब्राह्मण आचार से रहित उधारने में समर्थ नहीं होता है ॥ ९२ ॥ बिनपढा हुआ ब्राह्मण तिनुका की आग की नाईं तेजहीन होजाता है उसमें हव्य न देना

द्यमहाशिलाम्॥शीतसौरभ्यमन्देन प्रीणितोचिन्तयन्हृदि ॥ ८९ ॥ तावन्मयास्थानमाप्तं यदतीवसुदुर्लभम् ॥ इदानींब्राह्मणार्थेहं कुर्वेतावदुपक्रमम् ॥ ९० ॥ ब्राह्मणाश्चविलोक्यामे येहिपात्रतमामताः ॥ तथाहिचात्रश्रूयन्ते वचांसिश्रुतिवादिनाम् ॥ ९१ ॥ नजन्तोस्तारणेशक्ता यद्वन्नौःकर्णवर्जिता ॥ तद्वच्छ्रेष्ठोप्यनाचारो विप्रोनोद्धरणक्षमः ॥९२॥ ब्राह्मणोह्यनधीयानस्तृणाग्निरिवशाम्यति ॥ तस्मैहव्यन्नदातव्यं नहिभस्मनिहूयते ॥ ९३ ॥ दानंपात्रमतिक्रम्य यदपात्रेप्रदीयते ॥ तदन्तर्गामतिक्रम्य गर्दभस्यगवाह्निकम् ॥ ९४ ॥ ऊपरेवापितंबीजं भिन्नभाण्डेषुगोदुहम् ॥ भस्मनीवहुतंहव्यं मूर्खेदानमशाश्वतम् ॥ ९५ ॥ विद्याहीनेतथापात्रे योददातिप्रतिग्रहम् ॥ नकेवलंहितद्याति शेषंपुण्यंप्रणश्यति ॥ ९६ ॥ भूरात्मानंगौश्चभोगान्सुवर्णन्देहमेववा ॥ अश्वश्चक्षुःस्त्रियंवासो घृतंतेजस्तिलाःप्रजाम् ॥ ९७ ॥ घ्न

चाहिये क्योंकि भस्म में होम नहीं कियाजाता है ॥ ९३ ॥ पात्रको छोड़कर जो दान दियाजाता है वह वैसाही है जैसे कि भीतर गऊको उल्लंघन करके गऊका प्रतिदिनवाला भाग गदहे को दियाजाय ॥ ९४ ॥ ऊसर में बोवायेहुये बीज व फूटे बरतनमें गऊ दुहना व भस्म में हवन कीहुई हव्यकी नाईं मूर्खको दानदेना नाश होजाता है ॥ ९५ ॥ विद्याहीन व पात्ररहित में जो दानदेता है केवल वही नहीं जातारहता किन्तु बचीहुई पुण्यभी नाशहोजाती है ॥ ९६ ॥ भूमिकादान शरीरको व गऊ सुखोंको व सुवर्ण देहको नाश करता है और घोड़ा नेत्रको व वसन स्त्रीको व घी तेजको व तिल प्रजाओं को नाश करतेहैं ॥ ९७ ॥ इसलिये अविद्वान

(मूर्ख) दानलेने से डरै क्योंकि थोड़ेभी दानसे मूर्ख कीचड़ में गऊकी तरह दुःखी होताहै ॥ ९८ ॥ इसलिये जिनकी तपस्या छिपीहै व गुप्तही वेदपाठको
करनेवाले हैं और जो अपनी स्त्रीमें अनुरागी व शान्तहैं उनमें दियाहुआ दान सदैव अविनाशी होताहै ॥ ९९ ॥ देश व समय के उपाय से श्रद्धासंयुक्त जो द्रव्य
पात्रमें दीजाती है वह सब धर्मका लक्षणहै ॥ २०० ॥ केवल विद्या या तपस्यासे पात्रता नहीं होतीहै किन्तु जिसमें आचरण व ये दोनों होवैं वह पात्र कहाजाता
है ॥ १ ॥ व इन तीनोंके भी मध्यमें विद्या मुख्य बड़ाभारी गुणहै विद्याके बिना ब्राह्मण अन्धकी समान होताहै क्योंकि वे विद्यावान् मनुष्य नेत्रोंवाले मानेगयेहैं ॥ २ ॥

न्तितस्माद्विद्वांस्तु बिभियाच्चप्रतिग्रहात् ॥ स्वल्पकेनाप्यविद्वांस्तु पङ्केगौरिवसीदति ॥ ९८ ॥ तस्माद्वेगूढतपसो गू
ढस्वाध्यायसाधकाः ॥ स्वदारनिरताश्शान्तास्तेषुदत्तंसदाक्षयम् ॥ ९९ ॥ देशकालउपायेन द्रव्यंश्रद्धासमन्वितम् ॥
पात्रेप्रदीयतेयत्तत्सकलंधर्मलक्षणम् ॥ २०० ॥ नविद्ययाकेवलया तपसावापिपात्रता ॥ यत्रवृत्तमिमेचोभे तद्धिपात्रं
प्रचक्ष्यते ॥ १ ॥ एतेषांतिसृणाञ्चापि विद्यामुख्योमहान्गुणः ॥ विद्याविनान्धवद्विप्रश्चक्षुष्मन्तोहितेमताः ॥ २ ॥ त
स्माच्चक्षुष्मतोविप्रान्देशेदेशेपरीक्षये ॥ प्रश्नांश्चेन्ममवक्ष्यन्ति तेभ्योदास्याम्यहन्ततः ॥ ३ ॥ इतिसञ्चिन्त्यमनसा
तस्माद्देशात्समुत्थितः ॥ आश्रमेषुमहर्षीणां विचरामिस्मफाल्गुन ॥ ४ ॥ इमाञ्छ्लोकान्गायमानः प्रश्नरूपाञ्छृणुष्व
तान् ॥ मातृकाङ्कोविजानाति कतिवाकीदृशाक्षराम् ॥ ५ ॥ पञ्चपञ्चाद्भुतंगेहं कोविजानातिवाद्विजः ॥ बहुरूपांस्त्रियंक
र्तुमेकरूपांचवेत्तिकः ॥ ६ ॥ कोवाचित्रकथंबन्धं वेत्तिसंसारगोचरः ॥ कोविप्रश्चमहाग्राहं वेत्तिविद्यापरायणः ॥ ७ ॥

इसलिये देश देशमें मैं नेत्रवान् याने विद्वान् द्विजों को परखता हूं यदि मेरे प्रश्नोंको कहैंगे तो मैं उनके लिये दानदूंगा ॥ ३ ॥ ऐसा मनसे चिन्तवन करके मैं
उस स्थान से उठा व हे अर्जुनजी ! महर्षियों के आश्रमों में घूमतारहा ॥ ४ ॥ व प्रश्नरूपी इन श्लोकोंको गाताथा उनको सुनिये कि मातृका को कौन जानताहै व
कितनी है और कैसे अक्षरोंकी है ॥ ५ ॥ अथवा कौन ब्राह्मण पचीस वस्तुवोंसे बने हुये अद्भुत घरको जानताहै और बहुतरूपोंवाली स्त्रीको एकरूपवाली करना कौन
जानता है ॥ ६ ॥ अथवा अद्भुत कथावाले वचन को कौन जानता है व संसार में प्राप्त कौन मनुष्य बन्धन को जानता है और विद्यामें तत्पर कौन पुरुष बड़े ग्राह

को जानता है ॥ ७ ॥ और कौन द्विजोत्तम आठ प्रकारकी ब्राह्मणता को जानता है और चारोंयुगों के मूल दिनोंको कौन कहैगा ॥ ८ ॥ और चौदहों मनुवों के मूल
दिनों को कौन जानता है अथवा सूर्यनारायण किसदिन पहले रथ पर प्राप्तहुये हैं ॥ ९ ॥ और काले सापकी तरह कौन प्राणियों को डरवाता है और इस विकराल
संसार में कौन प्रवीणों के मध्यमें बड़ा चतुरहै ॥ १० ॥ व दोनोंभी मार्गोंको कोई ब्राह्मण जानता है व कहता है मेरे इन बारह प्रश्नोंको जो द्विजोत्तम जानते
हैं ॥ ११ ॥ वे हमारे बहुत पूजनेयोग्यहैं व उनका मैं बहुत दिनोंतक सेवकहूंगा यही गाताहुआ मैं समस्त पृथ्वीमें फिरतारहा ॥ १२ ॥ और जिनको इनका व्याख्यान

कोनाष्टविधब्राह्मण्यं वेत्तिब्राह्मणसत्तमः ॥ युगानाञ्चचतुर्णांवा कोमूलदिवसान्वदेत् ॥ ८ ॥ चतुर्द्दशमनूनाञ्च मूल
वारञ्चवेत्तिकः ॥ कस्मिंश्चैवदिनेप्राप पूर्व्वंवाभास्करोरथम् ॥ ९ ॥ उद्वेजयतिभूतानि कृष्णाहिरिववेत्तिकः ॥ कोवास्मि
न्घोरसंसारे दक्षदक्षतमोभवेत् ॥ १० ॥ पन्थानावपिद्वौकश्चिद्वेत्तिवक्तिचब्राह्मणः ॥ इतिमेद्वादशप्रश्नान् येविदुर्ब्रा
ह्मणोत्तमाः ॥ ११ ॥ तेमेपूज्यतमास्तेषामहमाराधकश्चिरम् ॥ इत्यहंगायमानोवै भ्रमितस्सकलांमहीम् ॥ १२ ॥
तेचाहुर्दुःखव्याख्यानाः प्रश्नांस्तेकुर्महेनमः ॥ १३ ॥ इत्यहंसकलांपृथ्वीं भ्रमित्वागत्यपाण्डव ॥ हिमाद्रिशिखरासी
नो भूयश्चिन्तामवाप्तवान् ॥ १४ ॥ सर्वेविलोकिताविप्राः किमतःकर्तुमुत्सहे ॥१५॥ ततोमेचिन्तयानस्य पुनर्जाताम
तिस्त्वियम् ॥ अद्यापिनगतश्चाहं कलापग्राममुत्तमम् ॥ १६ ॥ यस्मिन्विप्रास्संवसन्ति मूर्तानीवतपांसिच ॥ चतुर
शीतिसाहस्राः श्रुताध्ययनशालिनः ॥ १७ ॥ स्थानेतस्मिन्गमिष्यामियुक्त्याहंचलितस्तदा ॥ खेचरोहिसमाक्रम्य प

कठिन था उन द्विजों ने कहा कि हमलोग तुम्हारे प्रश्नोंको प्रणाम करतेहैं ॥१३॥ हे पांडव ! इस प्रकार समस्त पृथ्वीमें घूमकर आकर हिमाचल पर्वतके शिषरपै बैठ
करके मैं फिर चिन्ताको प्राप्तहुआ ॥ १४ ॥ कि समस्त ब्राह्मण तो देखगये इसके उपरान्त मै क्या करने के लिये उत्साह करूं ॥ १५ ॥ तदनन्तर चिन्ता करतेहुये
मेरे यह बुद्धि उत्पन्नहुई कि आजतकभी मैं उत्तम कलापनगर को नहीं गयाहूं ॥१६॥ कि जिसमें मूर्त्तिमती तपस्याओंकी नाईं चौरासीहज़ार ब्राह्मण शास्त्रके पठनसे

शोभित भलीभाति बसते हैं ॥ १७ ॥ उस स्थानमें मैं जाऊंगा यह विचारकर उस समय चला व आकाशगामी मैं चलकर तदनन्तर बहुत दूरगया ॥ १८ ॥ और पुण्य,
भूमिमें बसेहुये उस उत्तमग्राम को मैंने देखा जोकि सौयोजन चौंडा व अनेक प्रकारके वृक्षों से व्याप्तथा ॥ १९ ॥ जैसे सुखोंसे संयुत व विस्तारित पुण्यवान् का
जन्महोवै वैसाही था जिसमें पुण्यवानों के सैकड़ों आश्रमथे ॥ २० ॥ व जिस ग्राममें सबजीवोंके भी समागम होतेहैं और जहां उत्तममुनियोंके घरमें आनेपर जैसे
सत्कार होताहै वैसेही वहांहोता है ॥ २१ ॥ और अग्निहोत्र से उठाहुआ धूम व प्रवाह जहा शान्त नहीं होताहै हे अर्जुन ! जिस ग्राममें सतयुग के लिये सूर्यवंश

रं पारंगतस्ततः ॥ १८ ॥ अद्राक्षंपुण्यभूमिस्थं ग्रामरत्नमहंहितत् ॥ शतयोजनविस्तीर्णं नानावृक्षसमाकुलम् ॥ १९ ॥
यथापुण्यवतोजन्म विस्तीर्णभोगसंकुलम् ॥ यत्रपुण्यवतांसन्ति शतशःप्रवराश्रमाः ॥ २० ॥ सर्वेषामपिजीवानांमु
नीनांयत्रसङ्गमाः ॥ मुनीनांयत्रसाधूनां गृहेयद्वदुपागते ॥ २१ ॥ अग्निहोत्रोत्थितोधूमःप्रवाहश्चनशाम्यति ॥ यस्मि
न्कृतयुगस्यार्थे बीजंगाथांविशिष्यते ॥ २२ ॥ सूर्यस्यसोमवंशस्य यादवानान्तथैवच ॥ स्थानकंतत्समासाद्य प्रविष्टो
ऽहंपृत्सभाम् ॥ २३ ॥ तत्रतेविविधान्वादान्विवदन्तिद्विजोत्तमाः ॥ वाचामधुरयासूक्त्या वेदामूर्तिधरायथा ॥ २४ ॥
तत्रमेधाविनःकेचिदर्थमन्यैःप्रपूरितम् ॥ चिचित्तिपुर्महाप्रज्ञानानाभोगांश्चचामिषम् ॥ २५ ॥ तत्राहंबाहुमुद्यम्य प्रावो
चंपूर्यतांद्विजाः ॥ काकरवैःकिमेतैर्वा यद्यस्तिज्ञानशालिता ॥ २६ ॥ अपाकुरुध्वंवैप्रश्नान्ममसद्दुर्विषहानमून् ॥ २७ ॥
ब्राह्मणाऊचुः ॥ वदब्राह्मणप्रश्नांस्त्वंश्रुत्वाव्याख्यामहेवयम् ॥ परमोह्येषनोलाभः प्रश्नान्पृच्छतियद्भवान् ॥ २८ ॥

वं-चन्द्रवंश और यादवों का बीज शेषहै उस स्थानमें जाकर मैं मनुष्यों की सभा में पैठगया ॥ २२ । २३ ॥ वहां वे द्विजोत्तमलोग उत्तमउक्ति व मीठीवाणी से अ-
नेक प्रकार के विवादों को कहतेथे जैसे कि मूर्त्तिको धारेहुये वेदहोवैं ॥ २४ ॥ वहां बड़ी बुद्धिवाले विद्वान्लोग औरोंसे पूरण कियेहुये अर्थको व अनेकप्रकार के भोगों
के भासको निराकरण करते थे ॥ २५ ॥ वहां भुजाको उठाकर मैंने कहा कि हे ब्राह्मणो ! मेरे प्रश्नको पूर्णकीजिये यदि ज्ञानकी शोभाहोवै तो इन काकशब्दों से
क्या है ॥ २६ ॥ तो मेरे इन असंख्यप्रश्नों को कहकर सन्देह दूरकीजिये ॥ २७ ॥ ब्राह्मणलोग बोले कि हे द्विज ! अपनी प्रश्नों को कहिये उनको सुनकर हमलोग

कहैंगे यह हम सबोंको बड़ालाभ है जो आप प्रश्नोंको पूंछतेहैं ॥ २८ ॥ मैं पहले कहूंगा मैं पहले कहूंगा इसप्रकार आपस में निषेध किया जैसे कि युद्धमें मैं पहले मैं पहले मारूंगा यह कहकर शूर मना करते हैं ॥२९॥ तदनन्तर मैंने बारहसंख्यक प्रश्नों को उनसे कहा व उन मुनीश्वरों ने सुनकर विलाप करते हुये मुझसे बोले ॥ ३० ॥ कि हे बालक द्विजोत्तम ! तुम्हारी इन छोटी बारह प्रश्नोंसे क्याहै तुम हम सबोंके मध्यमेंसे जिसको कम मानतेहो वह इनप्रश्नोंकोकहै ॥ ३१ ॥ तदनन्तर कृतार्थताको मानता हुआ बड़े विस्मयमें प्राप्त मैंने उनके मध्यमें न्यूनको विचारकर कहा कि यह कहै ॥ ३२ ॥ तदनन्तर सुतनुनामक उस बालक द्विजने मु-

अहंपूर्वकयातेवै न्यषेधन्तपरस्परम् ॥ अहंपूर्वमहंपूर्वमितिवीरायथारणे ॥ २९ ॥ ततस्तानब्रवंप्रश्नानहंद्वादश संख्यकान् ॥ श्रुत्वातेमामवोचन्त लीलायन्तोमुनीश्वराः ॥ ३० ॥ किन्तेबालद्विजप्रश्नैरमीभिःस्वल्पकैरिति ॥ त्वमस्माकंयन्निहीनं मन्यसेसब्रवीत्वमून् ॥ ३१ ॥ ततोतिविस्मितश्चाहं मन्यमानःकृतार्थताम् ॥ तेषान्निहीनंसञ्चिन्त्य प्रावोचंचब्रवीत्वयम् ॥ ३२ ॥ ततस्सुतनुनामास बालोविप्रोभ्युवाचमाम् ॥ ममन्दायतेवाणी प्रश्नैःस्वल्पैस्तवद्विज ॥ ३३ ॥ तथापिवच्मिमांयस्मान्निहीनंमन्यतेभवान् ॥ ३४ ॥ सुतनुरुवाच ॥ अक्षरास्तुद्विपञ्चाशन्मातृकायाम्प्रकीर्तिताः ॥ ॐकारःप्रथमस्तस्य चतुर्दशस्वरास्तथा ॥ ३५ ॥ वर्णाश्चैवत्रयस्त्रिंशदनुस्वारस्तथैवच ॥ विसर्जनीयश्चपरो जिह्वामूलीयएवच ॥ ३६ ॥ उपध्मानीयएवापि द्विपञ्चाशदमीस्मृताः ॥ इतितेकथितासंख्या अर्थंचैषांशृणुद्विज ॥ ३७ ॥ अस्मिन्नर्थेचेतिहासं तववक्ष्यामियःपुरा ॥ मिथिलायांप्रवृत्तोभूद्ब्राह्मणस्यनिवेशने ॥ ३८ ॥ मिथिलायांपुरापु

झसे कहा, कि हे द्विज ! तुम्हारी छोटी प्रश्नोसे मेरीवाणी मन्दसी होतीहै ॥ ३३ ॥ तौभी जिसलिये आप मुझको न्यूनमानते हो उससे कहूंगा ॥ ३४ ॥ सुतनु बोले कि मातृकामें बावन अक्षर कहेगये है पहला ॐकार है व उसके चौदहस्वर हैं ॥ ३५ ॥ और तेंतीसवर्णहैं व वैसेही अनुस्वार, विसर्ग व अन्य जिह्वामूलीय ॥ ३६ ॥ और उपध्मानीय भी ये बावन अक्षर कहेगये है हे द्विज ! यह संख्या तुमसे कही गई और इनका अर्थ सुनिये ॥ ३७ ॥ व इस अर्थमे इतिहास तुमसे कहूंगा जोकि

पुरातन समय मिथिलापुरी में ब्राह्मणके घरमें वर्तमान हुआहै ॥ ३८ ॥ हे ब्राह्मण! पहले मिथिलापुरी में कौथुमनामक ब्राह्मण हुआहै जिसने उन सब विद्याओं को
पढ़ाथा जोकि भूमिमें वर्तमान हैं ॥ ३९ ॥ इसका इकतीस हजार वर्षों में एकक्षण नहीं कटाथा आदर कियेहुये वह इतने दिनोंतक पढ़कर गृहस्थ हुआ ॥ ४० ॥ तद-
नन्तर किसीभी समय के बाद कौथुमके पुत्र हुआ जड़की नाईं वर्तमान उसने मातृका को पढ़ा किया ॥ ४१ ॥ और मातृका याने बावनअक्षरोंको पढ़कर वह किसीप्रकार
अन्य कुछ नहीं पढ़ताथा तदनन्तर दुःखितरूप होकर पिताने उस जड़से कहा ॥ ४२ ॥ कि हे पुत्र ! पढ़ो पढ़ो मैं तुमको लड्डू दूंगा नहीं तो अन्यके लिये मोदक

यां ब्राह्मणःकौथुमाभिधः ॥ येनविद्याःप्रपठितामुविवर्तन्तियाद्विज ॥ ३९ ॥ एकत्रिंशत्सहस्राणि वर्षाणांसकृतादरः ॥
क्षणमस्यनचाच्छिन्नं पठित्वागेहवानभूत ॥४०॥ ततःकेनापिकालेन कौथुमस्याभवत्सुतः ॥ जडवद्वर्त्तमानःसमात्
कांप्रत्यपठ्यत ॥ ४१ ॥ पठित्वामातृकामन्यन्नाध्येतिसकथञ्चन ॥ ततःपिताखिन्नरूपो जडन्तंसमभाषत ॥ ४२ ॥
अधीष्वपुत्रकाधीष्व तवदास्यामिमोदकम् ॥ नत्वन्यस्मैप्रदास्यामिकर्णावुत्पाटयामिते ॥ ४३ ॥ पुत्रउवाच ॥ तात
किंमोदकार्थाय पठ्यतेलोभहेतवे ॥ पठनंनामयत्पुंसां परत्रार्थंहितत्स्मृतम् ॥४४॥ कौथुमउवाच ॥ एवन्तेवदमानस्य
आयुर्भवतुवाडव ॥ साध्वीबुद्धिरियन्तेच कुतोनाध्येष्यतःपरम् ॥ ४५ ॥ पुत्रउवाच ॥ तत्तुसर्वंपरिज्ञेयं ज्ञातमत्रैववैय
तः ॥ ततःपरंकण्ठशोषः किमर्थंक्रियतेवद ॥ ४६ ॥ पितोवाच ॥ विचित्रंभाषसेबाल ज्ञातोत्रार्थश्चकस्त्वया ॥ ब्रूहिब्रू
हिपुनर्वत्स श्रोतुमिच्छामितेगिरम् ॥ ४७ ॥ पुत्र उवाच ॥ एकविंशत्सहस्राणि पठतापित्वयापितः ॥ नान्यतर्कांनुश्रा

दूंगा और तुम्हारे कान उखाड़ूंगा ॥ ४३ ॥ पुत्र बोला कि हे पिताजी ! क्या लोभ के निमित्त मोदकके लिये पढ़ाजाता है किन्तु जो पढ़ना है वह प्रसिद्ध में पुरुषोंके
परलोक के निमित्त कहागया है ॥ ४४ ॥ कौथुम बोले कि हे द्विज ! ऐसा कहते हुये तुम्हारा आयुर्बलहोवै और तुम्हारी यह अच्छी बुद्धिहै किसलिये इसके उपरान्त
नहीं पढ़तेहो ॥ ४५ ॥ पुत्र बोला कि वह तो सब जाननेयोग्य है जिसलिये इसी में जानागयाहै इससे इसके उपरान्त किसलिये कंठशोष कियाजाय कहिये ॥ ४६ ॥
पिता बोला कि हे बालक ! तुम अद्भुत वस्तुको कहते हो इसमें तुमने किस अर्थ को जाना है वत्स ! कहिये फिर कहिये तुम्हारी वाणीको मैं सुनना चाहता हूं ॥ ४७ ॥

पुत्रबोला कि हे पिताजी ! इक्कीसहजार वर्षोंतक पढ़तेहुये भी तुमने अन्य तर्कों को नहीं किन्तु अपने मनमें भ्रमही साधनकिया है ॥ ४८ ॥ यहहै यहहै व यहहै इसप्रकार शास्त्रमें कहाहुआ जो धर्महै उनमें तुम्हारा चित्त इधर उधर भ्रमता है तुम्हारे उस भ्रमको मैं नाश करूंगा ॥ ४९ ॥ उपदेश को पढतेही हो परन्तु यथार्थ से अर्थ के ज्ञाता न होगे क्योंकि जो ब्राह्मण पाठमात्र पढ़ते हैं वे दो पैरवाले पशु हैं ॥ ५० ॥ इस लिये मोहरूपी अज्ञान के लिये अद्भुत सूर्यरूपी उस वाक्यको कहताहूं अ-कार ब्रह्मा कहेगये हैं व उकार विष्णु कहाजाता है ॥ ५१ ॥ व मकार रुद्र कहागया है ये तीनोंगुण कहेगये हैं और मस्तक पै जो उत्तम आधीमात्रा है वे सदाशिव

न्तिरेव साधितामनसिस्वके ॥ ४८ ॥ अयमयंचायमितिधर्मोयोदर्शनोदितः ॥ तेषुवातायतेचेतस्तवतन्नाशयामिते ॥ ४९ ॥ उपदेशंपठस्येव नैवार्थज्ञोसितत्त्वतः ॥ पाठमात्राहियेविप्राद्विपदाःपशवोहिते ॥ ५० ॥ तत्तेब्रवीमितद्वाक्यं मोहमार्तण्डमद्भुतम् ॥ अकारःकथितोब्रह्मा उकारोविष्णुरुच्यते ॥ ५१ ॥ मकारश्चस्मृतोरुद्रस्त्रयश्चैतेगुणाःस्मृताः ॥ अर्द्धमात्राचयामूर्ध्निपरमाससदाशिवः ॥ ५२ ॥ एवमोङ्कारमाहात्म्यं याथात्म्येननशक्यते ॥ वर्षाणामयुतेनापि ग्रन्थकोटिभिरेवच ॥ ५३ ॥ पुनर्यत्सारसर्वस्वं प्रोक्तंतच्छ्रूयतांपरम् ॥ औकारान्ताअकाराद्या मनवस्तेचतुर्द्दश ॥ ५४ ॥ स्वायम्भुवश्चस्वारोचिरौत्तमोरैवतस्तथा ॥ तामसश्चाक्षुषःषष्ठस्तथावैवस्वतोधुना ॥ ५५ ॥ सावर्णिर्ब्रह्मसावर्णी रुद्रसावर्णिरेवच ॥ दत्तसावर्णिरेवापि धर्मसावर्णिरेवच ॥ ५६ ॥ रौच्यौभौत्यस्तथैवापिमनवोमीचतुर्द्दश ॥ श्वेतःपाण्डुस्तथा रक्तस्ताम्रःपीतश्चकापिलः ॥ ५७ ॥ कृष्णःश्यामस्तथाधूम्रः सुपिशङ्गःपिशङ्गकः ॥ त्रिवर्णःशबलोवर्णैः कर्बुरश्चइति

जीहैं ॥ ५२ ॥ इस प्रकार ॐकारका माहात्म्य यथार्थता से दशहजार वर्षों व करोडों ग्रन्थोंमे भी नहीं कहाजासक्ता है ॥ ५३ ॥ फिर जो सारांश का सर्वस्व कहागया है उस उत्तमवस्तु को सुनिये अकार से लगाकर औकार के अन्ततक वे चौदहों मनुहैं ॥ ५४ ॥ स्वायम्भुव, स्वारोचिष, उत्तम, रैवत, तामस व छठें चाक्षुष व इस समय वैवस्वतहैं ॥ ५५ ॥ व सावर्णि, ब्रह्मसावर्णि और रुद्रसावर्णि व दत्तसावर्णि भी व धर्मसावर्णि ॥ ५६ ॥ व रौच्य और भौत्य भी ये चौदह मनुहैं और श्वेत,पाण्डु

व लाल, पीला व कपिल ॥ ५७ ॥ व काला, श्याम और धूमिल व पिंगल और तीनों वर्णवाला व विचित्र रंग और कबरा ये क्रमसे चौदहों मनुवों के रंगहैं ॥५८॥
हे पिताजी ! सूर्यदेवतावाली ऋकार काले वर्ण की पढ़ीजाती है और ककार से लगाकर ह अक्षर के अन्ततक तैंतीस देवताहैं ॥ ५९ ॥ व क अक्षर से लगाकर ठकार
के अन्ततक बारह सूर्य कहेगये हैं व डकार से बकार के अन्ततक वे गेरहों रुद्र हैं ॥ ६० ॥ व भकार से लगाकर षकार के अन्ततक आठ वसु मानेगये हैं और स
ह ये अश्विनीकुमारहैं येही तैंतीस देवता कहेगयेहैं ॥ ६१ ॥ व अनुस्वार, विसर्ग, जिह्वामूलीय और उपध्मानीय इतने ये जरायुज (मनुष्यादि) व अण्डज (अण्डे

क्रमात् ॥ ५८ ॥ वैवस्वतऋकारश्च तातकृष्णःप्रपठ्यते ॥ ककाराद्याहकारान्तास्त्रयस्त्रिंशच्चदेवताः ॥ ५९ ॥ ककारा
द्याष्ठकारान्ता आदित्याद्वादशस्मृताः ॥ डकाराद्याबकारान्ता रुद्राश्चैकादशैवते ॥ ६० ॥ भकाराद्याःषकारान्ता अ
ष्टौहिवसवोमताः ॥ सहौचैत्यश्विनौख्यातौ त्रयस्त्रिंशदितिस्मृताः ॥ ६१ ॥ अनुस्वारोविसर्गश्च जिह्वामूलीयएवच ॥
उपध्मानीयइत्येते जरायुजतथाण्डजाः ॥ ६२ ॥ स्वेदजाश्चोद्भिजश्चापि पितर्जीवाःप्रकीर्तिताः ॥ भावार्थःकथित
श्चायं तत्त्वार्थंशृणुसाम्प्रतम् ॥ ६३ ॥ येपुमांसस्त्वमून्देवान् समाश्रित्यक्रियापराः ॥ अर्द्धमात्रात्मिकेनित्ये पदेली
नास्तएवहि ॥ ६४ ॥ चतुर्णांजीवयोनीनां तदेवपरमुच्यते ॥ यदमून्मनसावाचा कर्मणाचभजेत्सुरान् ॥ ६५ ॥ यस्मि
ञ्छास्त्रेत्वमीदेवा मानितानैवपापिभिः ॥ नतच्छास्त्रंहिमन्तव्यं यदिब्रह्मास्वयंवदेत् ॥ ६६ ॥ अमीचदेवास्सर्वत्र श्रौते
मार्गेप्रतिष्ठिताः ॥ पाखण्डशास्त्रेसर्वत्र निषिद्धाःपापकर्मभिः ॥ ६७ ॥ तदमूल्येऽयातिक्रम्य तपोदानंतथाजपम् ॥ कुर्व

से पैदा होनेवाले) ॥ ६२ ॥ व स्वेदज (कीट डांस इत्यादि) और उद्भिज (वृक्षादि) हे पिताजी ! ये जीव कहेगये हैं यह भावार्थ कहागया व इस समय तत्त्वा-
र्थको सुनिये ॥ ६३ ॥ जो पुरुष इन देवताओं के आश्रित होकर कार्य्योंमें तत्पर होतेहैं वेही अर्द्धमात्रात्मक नित्यपद याने सदाशिव में लीन होजाते हैं ॥ ६४ ॥
चारों जीवयोनियों के मध्यमें वही उत्तम कहाजाता है जोकि इन देवताओं को मन, वचन व कर्मसे भजे ॥ ६५ ॥ और जिस शास्त्रमें पापियों से देवता नहीं माने
गयेहैं उस शास्त्रको न मानना चाहिये यदि आपही ब्रह्माजी कहैं ॥ ६६ ॥ व ये सब देवता वेदवाले मार्गमें प्रतिष्ठित हैं और पापकर्मियों से सब कहीं पाखण्ड के शास्त्र

में निषिद्ध हैं ॥ ६७ ॥ इस लिये जो इन देवोंको छोड़कर तपस्या, दान अथवा जप करते हैं वे दुष्टात्मा लोग पवन के रास्तेमें जातेहैं ॥ ६८ ॥ बड़े आश्चर्य की बातहै कि बिन जीतेहुये इन्द्रियोंवाले जनोंके अज्ञान के माहात्म्य को देखिये कि वे पापी मातृका को पढ़तेहैं और इन देवोंको नहीं मानते हैं ॥ ६९ ॥ सुतनु बोले कि उसके यह वचन सुनकर पिताने बड़े विस्मय में प्राप्तहोकर बहुत प्रश्नोंको पूंछा व उसने भी वैसाही वैसा कहा ॥७०॥ व मैंनेभी तुमसे इस उत्तम मातृका प्रश्नको कहा और पच्चीस वस्तुओं से बनाहुआ घर इस दूसरे प्रश्न को सुनिये ॥ ७१ ॥ कि पांच महाभूत याने पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश व पाच कर्मेन्द्रिय पांच ज्ञानेन्द्रिय

न्तितेदुरात्मानो व्रजन्तिमरुतःपथि ॥ ६८ ॥ अहोमोहस्यमाहात्म्यंपश्यत्वंविजितात्मनाम् ॥ पठन्तिमातृकांपापा मन्यन्तेमून्सुरान्नच ॥ ६९ ॥ सुतनुरुवाच ॥ इतितस्यवचःश्रुत्वा पिताभूदतिविस्मितः ॥ पप्रच्छचबहून्प्रश्नान् सोप्य वादीतथातथा ॥ ७० ॥ मयापितवप्रोक्तोयं मातृकाप्रश्नउत्तमः ॥ द्वितीयंशृणुप्रश्नंच पञ्चपञ्चाद्भुतंगृहम् ॥ ७१ ॥ पञ्चभूतानिपञ्चैव कर्म्मज्ञानेन्द्रियाणिच ॥ पञ्चपञ्चापिविषया मनोबुद्ध्यहमेवच ॥ ७२ ॥ प्रकृतिःपुरुषश्चैव पञ्चविं शस्सदाशिवः ॥ पञ्चपञ्चभिरेतैस्तु निष्पन्नंगृहमुच्यते ॥ ७३ ॥ देहमेतदिदंवेदतत्त्वतोयात्यसौशिवम् ॥ बहुरूपांस्त्रि यंप्राहुर्बुद्धिंवेदान्तवादिनः ॥ ७४ ॥ साहिनानार्थभजनान्नानारूपंप्रपद्यते ॥ धर्मस्यैकस्यसंयोगाद्बहुधाप्येककैवसा ॥ ७५ ॥ इतियोवेदतत्त्वार्थं नासौनरकमाप्नुयात् ॥ मुनिभिर्यच्चनप्रोक्तं यन्नमन्येतदेवताम् ॥ ७६ ॥ वचनंतद्बुधाःप्राहुर्बन्धंचित्र कथन्त्विति ॥ यच्चकामान्वितंवाक्यं पञ्चमंचाप्यतःशृणु ॥ ७७ ॥ एकोलोभोमहान्ग्राहो लोभात्पापंप्रवर्तते ॥ लोभा

व पांच विषय याने शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध और मन, बुद्धि, अहङ्कार ॥ ७२ ॥ व प्रकृति और पचीसवें सदाशिवजी पुरुष इन पचीसों वस्तुवोंसे बनाहुआ यह शरीर गृह कहाजाता है इसको तत्त्वसे जो जानता है यह शिवको प्राप्तहोता है और वेदान्तके वादीजनोंने बुद्धिको बहुरूपी स्त्री कहाहै ॥ ७३ । ७४ ॥ वही अनेक विषयों के सेवन से अनेकप्रकार के रूपको प्राप्तहोती है व एक धर्मके संयोग से बहुत प्रकारकी भी वह एकही है ॥ ७५ ॥ जो इस तत्त्वार्थ को जानता है यह नरकको नहीं प्राप्तहोताहै मुनियों से जो नहीं कहागयाहै व जो वचन देवता को नहीं मानैहै ॥७६॥ उस वचनको विद्वानों ने बन्धन कहाहै और अद्भुत कथावाला यह वचन है जो

कि कामनाओं से संयुतहै इसके उपरान्त पांचवें भी प्रश्नको सुनिये ॥ ७७ ॥ एक लोभ बड़ाभारी ग्राहहै लोभसे पाप वर्तमान होताहै व लोभसे मोह, माया, मान व
गर्व, मृत्यु ॥ ७८ ॥ और अविद्या व मूर्खता सब लोभसे वर्त्तमान होताहै पराये धनोंको हरना व पराईस्त्री की धर्षणाकरना ॥ ७९ ॥ व सब अकार्य साहसोंके कर्म
व मोहसमेत उस लोभको जितेन्द्रिय पुरुषको विशेषकर जीतना चाहिये ॥ ८० ॥ ये और वैर व निन्दा, चुगुली और ईर्षा ये सब दुष्टात्मा लोभियों के होतेहैं ॥ ८१ ॥
सन्देहोंके नाशनेवाले बहुत शास्त्रोंको पढ़ेहुये लोग बड़े भी शास्त्रोंको धारतेहैं परन्तु लोभसे गँसकर नरकको जातेहैं ॥ ८२ ॥ लोभ व क्रोधसे संयुक्त व उत्तमआचरण से

**न्मोहश्चमायाच मानःस्तम्भःपरासुता ॥ ७८ ॥ अविद्याऽप्रज्ञताचैव सर्वंलोभात्प्रवर्त्तते ॥ हरणंपरवित्तानां परदाराभि
मर्शनम् ॥ ७९ ॥ साहसानांचसर्वेषामकार्याणांक्रियास्तथा ॥ सलोभःसहमोहेन विजेतव्योजितात्मना ॥ ८० ॥ द
मेद्रोहाश्चनिन्दाच पैशुन्यंमत्सरस्तथा ॥ भवन्त्येतानिसर्वाणि लुब्धानामकृतात्मनाम् ॥ ८१ ॥ सुमहान्त्यपिशास्त्रा
णि धारयन्तिबहुश्रुताः ॥ छेत्तारस्संशयानांच लोभग्रस्ताव्रजन्त्यधः ॥ ८२ ॥ लोभक्रोधप्रशक्ताश्च शिष्टाचारबहि
ष्कृताः ॥ अन्तःक्षुरावाङ्मधुराः कूपाश्छन्नास्तृणैरिव ॥ ८३ ॥ सर्वंमार्गंविलुम्पन्ति लोभाज्जातिषुनिष्ठुराः ॥ धर्मावतं
सिकाःक्षुद्रामुष्णन्तिध्वजिनोजगत् ॥ ८४ ॥ एतेतिपापिनःसन्ति नित्यंलोभसमन्विताः ॥ जनकोयुवनाश्वश्च वृषाद
र्भिःप्रसेनजित् ॥ ८५ ॥ लोभक्षयाद्दिवंप्राप्तास्तथैवान्येजनाधिपाः ॥ तस्मात्त्यजन्तियेलोभं तेतिक्रामन्तिसागरम् ॥ ८६ ॥
८६ ॥ संसारारण्यमतोन्येये ग्राहग्रस्तानसंशयः ॥ अथब्राह्मणावेद्यन्त्वमष्टौविप्रावधारय ॥ ८७ ॥ मात्रश्चब्राह्मणश्चैव**

अलग कियेहुये जन भीतर छुरेकी धार ऐसे व वचनमें मीठेहोते हैं जैसे कि तिनुकों से छिपेहुये कूप होते हैं ॥ ८३ ॥ व लोभसे जातियों में निठुर मनुष्य सब मार्गको
नाशकरते हैं व नीच पाखण्डीलोग धर्मवानों में उत्तम ऐसे होकर संसार में उत्तम कर्मको चुराते हैं ॥ ८४ ॥ ये नित्यही लोभसे संयुत बड़ेपापी हैं और जनक, युवना-
श्व, वृषादर्भि, प्रसेनजित ॥ ८५ ॥ व वैसेही और भी राजालोग लोभके नाशहोने से स्वर्गको प्राप्तहुये हैं इस लिये जो लालच को छोड़देते हैं वे संसारनामक समुद्रको

नांधजाते हैं इसके उपरान्त हे विप्रजी ! ब्राह्मण के जाननेयोग्य आठ वस्तुवोंको तुम सुनो ॥ ८६।८७ ॥ कि मात्र, ब्राह्मण उसके उपरान्त श्रोत्रिय व अनूचान, भ्रूण, ऋषिकल्प व ऋषि और मुनि ॥ ८८ ॥ इतने ये आठ ब्राह्मण वेदमें पहले कहेगये हैं व उनके मध्यमे विद्या व आचरणकी विशेषता से पिछला पिछला उत्तमहै ॥ ८९ ॥ जब ब्राह्मणों के कुलमें पैदाहोकर जातिमात्र होवै व सस्कारके कर्मोंसे रहितहो वह मात्र ऐसा कहाजाताहै ॥ ९० ॥ व एकोदिश्य को नाघकर जो विनीत व कोमल तथा सत्य-वक्ता व दयालु द्विज वेदके आचरणवाला होवै वह ब्राह्मण ऐसा कहागयाहै ॥ ९१ ॥ व जो ब्राह्मण कल्पसमेत छह अङ्गोंकरके एक शाखाको पढ़कर छह कर्मोंमें तत्परहोवै

श्रोत्रियश्चततःपरम् ॥ अनूचानस्तथाभ्रूणो ऋषिकल्पोऋषिर्मुनिः ॥ ८८ ॥ इत्येतेष्टौसमुद्दिष्टा ब्राह्मणाःप्रथमंश्रुतौ ॥ तेषांपरःपरःश्रेष्ठो विद्यावृत्तविशेषतः ॥ ८९ ॥ ब्राह्मणानांकुलेजातो जातिमात्रोयदाभवेत् ॥ अनुपेतक्रियाहीनो मात्रइत्यभिधीयते ॥ ९० ॥ एकोद्दिश्यमतिक्रम्यवेदस्याचारवान्नृजुः ॥ सब्राह्मणइतिप्रोक्तो निभृतस्सत्यवाग्घृणी ॥ ९१ ॥ एकांशाखांसकल्पाञ्च षड्भिरङ्गैरधीत्यच ॥ षट्कर्मनिरतोविप्रः श्रोत्रियोनामधर्मवित् ॥ ९२ ॥ वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञः शुद्धात्मापापवर्जितः ॥ श्रेष्ठःश्रोत्रियवत्प्राज्ञः सोनूचानइतिवैस्मृतः ॥ ९३ ॥ अनूचानगुणोपेतो यज्ञस्वाध्याययन्त्रितः ॥ भ्रूणइत्युच्यतेशिष्टैः शेषभोजीजितेन्द्रियः ॥ ९४ ॥ वैदिकंलौकिकञ्चैव सर्वज्ञानमवाप्ययः ॥ आश्रमस्थोवशीनित्यमृषिकल्पइतिस्मृतः ॥ ९५ ॥ ऊर्ध्वरेताभवत्यग्रेनियताशीनसंशयी ॥ शापानुग्रहयोःशक्तः सत्यसन्धो

वह धर्मज्ञ श्रोत्रियनामकहै ॥ ९२ ॥ व वेद वेदांगों के तत्त्वका जाननेवाला व पापमेरहित शुद्धचित्तवाला व उत्तम और श्रोत्रियकी नाईं बुद्धिमान् जो द्विजहोवै वह अनूचान ऐसा कहागयाहै ॥ ९३ ॥ व अनूचानके गुणोंसे सयुत व यज्ञ तथा वेदपाठके नियममे बँधाहुआ व जितेन्द्रिय और पञ्चयज्ञादिकों से बचेहुये अन्नका भोजन करनेवाला उत्तमजनों से भ्रूण ऐसा कहाजाता है ॥ ९४ ॥ और वेद व लोकके समस्त ज्ञानको पाकर जो आश्रममे प्राप्त रहैव इन्द्रियोंको वशकिये है वह ऋषिकल्प ऐसा कहागया है ॥ ९५ ॥ व पहले ऊर्ध्वरेताहोवै याने वीर्यको नीचे न गिरनेदेवै किन्तु ऊपर चढ़ावै व नियमभोजी और निस्संदेह व शाप और कृपाकरनेमें समर्थ व सत्य

प्रतिज्ञावाला ऋषिहोता है ॥ ९६ ॥ और सब कर्मोंसे अलग व सब यथार्थका जाननेवाला तथा काम, क्रोधसे रहित व ध्यानमें टिका व कर्महीन व इन्द्रियजित और
मिट्टी व सुवर्णमें समभाववाला मुनिहै ॥ ९७ ॥ इसीप्रकार वंश व विद्या व उत्तम आचरणसे उन्नत द्विजेन्द्र त्रिशुक्ल कहेजातेहैं वेही यज्ञादिकों में पूजेजाते हैं ॥ ९८ ॥
यह इस प्रकारकी ब्राह्मणता कहीगई व युगादिकोंको सुनिये कि वैशाखकी जो तीज है वह सतयुग की आदितिथि कहीगई है ॥ ९९ ॥ और कातिककी भी शुक्ल
पक्षवाली नवमी त्रेतायुग की आदि कहाती है व माघमें कृष्णपक्षकी पन्द्रसि याने अमावस द्वापर की आदितिथि कहलाती है ॥ ३०० ॥ व भादोंकी कृष्णपक्षवाली

**भवेदृषिः ॥ ९६ ॥ निवृत्तःसर्वतत्त्वज्ञः कामक्रोधविवर्जितः ॥ ध्यानस्थोनिष्क्रियोदान्तस्तुल्यमृत्काञ्चनोमुनिः ॥ ९७ ॥
एवमन्वयविद्याभ्यां वृत्तेनचसमुच्छ्रिताः ॥ त्रिशुक्लानामविप्रेन्द्राः पूज्यन्तेसवनादिषु ॥ ९८ ॥ इत्येवंविविधविप्रत्वमु
क्तंशृणुयुगादयः ॥ वैशाखस्यतृतीयायां कृतस्यादिःप्रकीर्तिता ॥ ९९ ॥ कार्त्तिकस्यापिनवमी शुक्लात्रेतादिरुच्यते ॥
माघेपञ्चदशीकृष्णा द्वापरादिस्स्मृताबुधैः ॥ ३०० ॥ त्रयोदशीनभस्येच कृष्णासादिःकलेस्स्मृता ॥ युगादयःस्मृता
ह्येता दत्तस्याक्षयकारिकाः ॥ १ ॥ एताश्चतस्रस्तिथयोयुगाद्या दत्तंहुतंचाक्षयमासुविन्द्यात ॥ युगेयुगेवर्षशतेनदानंयु
गादिकालेदिवसेनतत्फलम् ॥ २ ॥ युगाद्याःकथिताह्येता मन्वाद्याःशृणुसाम्प्रतम् ॥ अश्वयुक्शुक्लनवमी द्वादशीकार्त्ति
कीतथा ॥ ३ ॥ तृतीयाचैत्रमासस्य तथाभाद्रपदस्यच ॥ श्रावणस्यत्वमावस्या पौषस्यैकादशीतथा ॥ ४ ॥ आषाढ
स्यापिदशमीमाघमासस्यसप्तमी ॥ श्रावणस्याष्टमीकृष्णातथाषाढीचपूर्णिमा ॥ ५ ॥ कार्त्तिकीफाल्गुनीचैत्री ज्येष्ठप**

तेरसि कलियुग की आदितिथि है ये युगादितिथियां कहीगई हैं जोकि दियेहुये दानको नहीं नाश करनेवाली हैं ॥ १ ॥ ये चार युगादितिथियां हैं इनमें दान व
हवन कियाहुआ अक्षयको प्राप्तहोवै है युगयुग में जो सैकडों वर्ष करके दानका फल होता है युगादिसमय में वह फल दिनभर से होताहै ॥ २ ॥ ये युगादितिथियां
कहीगई इस समय मन्वादितिथियोंको सुनिये कि कुँवारकी उजेरी नवमी, द्वादशी व कार्त्तिकी ॥ ३ ॥ और चैत महीने की तीज व भादोंकी तृतीया व सावनकी
अमावस वैसेही पूसकी एकादशी ॥ ४ ॥ व आषाढ़की भी दशमी और माघकी सप्तमी व सावनकी कृष्णपक्षवाली अष्टमी और आषाढ़ी पौर्णमासी ॥ ५ ॥ व कातिकी, फागुनी,

चैती और जेठकी उजेरी पन्द्रसि याने पूर्णमासी ये मन्वन्तरकी आदितिथियां दानके अक्षय करनेवाली हैं ॥ ६ ॥ व जिस तिथिमें सूर्यदेवजी पहले रथपर प्राप्तहुये हैं वह तिथि ब्राह्मणों से वही कहीगई है जो माघमे रथसप्तमी होती है ॥ ७ ॥ उसमे दिया व यज्ञ कियाहुआ सबही अविनाशी मानागया है व सब दरिद्रों का नाशक और सूर्यकी प्रसन्नता के लिये मानागया है ॥ ८ ॥ विद्वानो ने जिसको नित्यही उद्वेगकारक कहाहै उसको यथार्थता से सुनिये कि जो नित्यही मांगनेवाला है वह स्वर्गका पात्र नहीं होताहै ॥ ९ ॥ जैसे चोर प्राणियो को भय देताहै वैसेही वह है यह नित्यही उद्वेगकारक पापात्मा नरकको जाताहै ॥ १० ॥ मेरी उत्पत्ति यहां

श्चदशीसिता ॥ मन्वन्तरादयश्चैता दत्तस्याक्षयकारिकाः ॥ ६ ॥ यस्यान्तिथौरथंपूर्वं प्रापदेवोदिवाकरः ॥ सातिथिःक थिताविप्रैः माघेयारथसप्तमी ॥ ७ ॥ तस्यांदत्तंतुचेष्टंयत्सर्वमेवाक्षयंमतम् ॥ सर्वदारिद्र्यशमनं भास्करप्रीतयेमतम् ॥ ८ ॥ नित्योद्वेजकमाहुर्यं बुधास्तंशृणुतत्त्वतः ॥ यश्चयाचनको नित्यन्नसस्वर्गस्यभाजनम् ॥ ९ ॥ उद्वेजयतिभूतानिय थाचौरस्तथैवसः ॥ नरकंयातिपापात्मा नित्योद्वेगकरस्त्वसौ ॥ १० ॥ इहोपपत्तिर्ममकेनकर्मणा क्वचप्रयातव्यमितो भवेन्मया ॥ विचार्य्यचैवंप्रतिकारकारी बुधैस्सचोक्तोद्विजदक्षदक्षः ॥ ११ ॥ मासैरष्टभिरह्नाच पूर्वेणवयसायुषा ॥ तत्क रोतिभवेदन्ते सुखीयेनसबुद्धिमान् ॥ १२ ॥ अर्चिर्धूमश्चद्वौमार्गावाहुर्वेदान्तवादिनः ॥ अर्चिषायातिमोक्षंच धूमेना वर्त्ततेपुनः ॥ १३ ॥ यज्ञैरासाद्यतेधूमो नैष्कर्म्येणार्चिराप्यते ॥ एतयोरपरोमार्गः पाखण्डइतिकीर्त्यते ॥ १४ ॥ योदेवा न्मन्यतेनैव धर्मांश्चमनुसूचितान् ॥ नतौसयातिपन्थानौतत्त्वार्थोयंनिरूपितः ॥ १५ ॥ इतितेकीर्तिताःप्रश्नाः शक्त्या

किसकर्म से है और यहां से मुझको कहा जाना चाहिये ऐसा विचारकर जो उपाय करनेवाला है वह विद्वानों से ब्राह्मणों में दक्षदक्ष कहागया है ॥११॥ आठ महीने व दिन और पहली अवस्था के आयुर्बल से जो उस कर्मको करता है कि जिससे अन्तमें सुखी होवै वह बुद्धिमान्है॥१२॥वेदान्तवादी जनोंने अर्चि व धूम दो मार्गोंको कहाहै अर्चिमार्गसेमोक्षको प्राप्तहोताहै और धूममार्गसे फिर लौटआताहै॥१३॥यज्ञोसे धूममार्ग प्राप्त होताहै और निष्कर्मतासे अर्चिमार्ग मिलता है व इन दोनोंसे अन्य मार्ग पाखण्ड ऐसा कहाजाताहै ॥ १४ ॥ जो मनुसे बतलायेहुये धर्मों व देवताओंको नही मानताहै वह उनदोनों मार्गोंको नही जाताहै यह तत्त्वार्थनिरूपण कियागया

है ॥ १५ ॥ हे द्विजोत्तम ! शक्तिके अनुसार ये प्रश्न तुमसे कहेगये अच्छा या अनुत्तम कहिये व अपनाको भी कहिये ॥ ३१६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डे
देवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांतृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀

दो०। नारद अर्जुन सों कह्यो ग्राम कलापहवाल । सो चौथे अध्यायमें वरणत चरित रसाल ॥ नारदजी बोले कि हे अर्जुन ! ऐसा सुनकर रोमांच से पुलकित
कियाहुआ मैं स्वरूप को प्रकट करके ब्राह्मणों से यह बोला ॥ १ ॥ कि बड़ी प्रसन्नताकी बातहै कि मेरा पिता धन्य है जिसकी सृष्टिसे तुमलोगोंके सन्मान बालक

ब्राह्मणसत्तम॥साधुवासाधुवाब्रूहित्वयापयात्मानमेवच॥३१६॥ इतिश्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेतृतीयोऽध्यायः ३ ॥

नारदउवाच ॥ इतिश्रुत्वाफाल्गुनाहंरोमाञ्चपुलकीकृतः ॥ स्वरूपंप्रकटीकृत्यब्राह्मणानिदमब्रवम् ॥ १ ॥ अहोधन्यः
पितास्माकं यस्यसृष्टेस्सुबालकाः ॥ युष्मद्विधाब्राह्मणेन्द्राःसत्यमाहपुराहरिः ॥ २ ॥ मत्तोप्यनन्तात्परतः परस्मात्स
मस्तभूताधिपतेर्नकश्चित ॥ तेषांकिमुस्यादितरोहिपुंसां द्विजेश्वराणांममभार्गवादिनाम् ॥ ३ ॥ तत्सर्वथाचधन्योस्मि
सम्प्राप्तजन्मनःफलम् ॥ यद्भवन्तोमयादृष्टाः पापोपद्रववर्जिताः ॥ ४ ॥ ततस्तेसहसोत्थाय शातातपपुरोगमाः ॥ अ
र्घपाद्यादिसत्कारैःपूजयन्तिस्ममान्द्विजाः ॥ ५ ॥ प्रोक्तवन्तश्चमांपार्थ वचस्साधुजनोचितम् ॥ धन्यावयंहिदेवर्षिस्त्वम
स्मान्यदिहागतः ॥ ६ ॥ कुतोवागमनन्तेत्र गन्तव्यंकुत्रसाम्प्रतम् ॥ अत्राथागमनेकार्यमुच्यतांमुनिसत्तम ॥ ७ ॥ नार

द्विजेन्द्रहैं पुरातन समय विष्णुने सचकहाहै ॥ २ ॥ कि समस्त प्राणियोंके स्वामी मुझ श्रेष्ठ अनन्त से कोई परे नहींहै फिर मेरे मार्गको कहनेवाले उन द्विजेन्द्र पुरुषों
के मध्यमें से अन्य मनुष्य को क्या कहना है ॥ ३ ॥ इस लिये मैं सर्वथा धन्यहूं व जन्मका फल भलीभांति मिलगया जोकि पाप व उपद्रव से रहित आपलोगोंको
मैंने देखा ॥ ४ ॥ तदनन्तर अचानक उठकर शातातप अग्रगामी द्विजों ने अर्घपाद्यादिक सत्कारों से मुझको पूजन किया ॥ ५ ॥ व हे अर्जुनजी ! उत्तमजनोंके
योग्य वचनको उन्होंने मुझसे कहा कि हमलोग धन्यहैं जोकि देवर्षि तुम हमलोगोंके समीपआयेहो ॥ ६ ॥ और तुम्हारा आगमन यहां कहांसे होताहै व इससमय

कहां जानाहोगा व हे मुनिश्रेष्ठ ! यहां आनेमें कार्य कहिये ॥ ७ ॥ नारदजी बोले कि ब्रह्माजी के वचनसे मैं ब्राह्मणोंको उत्तम स्थान देनेकी इच्छासे महीसागर के
सङ्गम महातीर्थमें गयाथा ॥ ८ ॥ और ब्राह्मणोंकी परीक्षा लेनेके लिये यहा आया व तुमलोगोंकी परीक्षा लीगई हे ब्राह्मणो ! मै तुमलोगों को स्थापन करूंगा इस
से आज्ञादीजिये ॥ ९ ॥ ऐसा कहेहुये शातातप ब्राह्मणों को देखकरके बोले कि हे नारद ! यह सत्यहै कि देवताओं को भी भरतखण्ड दुर्लभ है ॥ १० ॥ उसमेंभी
फिर महीसागर संगम को क्या कहना है कि जिसमें नहायाहुआ पुरुष समस्त महातीर्थ के फलको भोग करता है ॥ ११ ॥ फिर एक बड़ादोष है जिससे हमलोग

द उवाच ॥ अहंहिब्रह्मणोवाक्याद्विप्राणांस्थानकंशुभम् ॥ दातुकामोमहातीर्थे महीसागरसङ्गमे ॥ ८ ॥ परीक्षितुंद्विजान
त्र प्राप्तोयूयंपरीक्षिताः ॥ अहंवःस्थापयिष्यामि नोनुजानीतताद्विजाः ॥ ९ ॥ एवमुक्तोविलोक्यैव द्विजाञ्छातातपोब्रवी
त् ॥ देवानामपिदुष्प्राप्यंसत्यन्नारदभारतम् ॥ १० ॥ किंपुनश्चैवतत्रापि महीसागरसङ्गमः ॥ यत्रस्नातोमहातीर्थफलंस
वंमुपश्नुते ॥ ११ ॥ पुनरेकोमहान्दोषो बिभीमोतितरांयतः ॥ तत्रचौरास्सुबहवो निर्घृणाःप्रियसाहसाः ॥ १२ ॥ स्पर्शेषु
षोडशंचैकविंशंगृह्णन्तिनोधनम् ॥ धनेनतेनहीनानां कीदृशंजन्मनोभवेत् ॥ १३ ॥ वरंबुभुक्षापापासा माचौरकरगा
वयम् ॥ १४ ॥ अर्जुनउवाच ॥ अद्भुतंवर्ण्यतेविप्र केनुचौराःप्रकीर्तिताः ॥ किन्धनञ्चहरन्त्येते येभ्योबिभ्यतिब्राह्म
णाः ॥ १५ ॥ नारदउवाच ॥ कामक्रोधादयश्चौरास्तपएवधनन्तथा ॥ तस्यापहारभीतास्ते मामूचुरितियद्विजाः ॥१६॥

बहुत डरतेहैं क्योंकि सहसाकर्म प्रियवाले व निर्दयी बहुतसे चोर वहांहैं ॥१२॥ स्पर्शोंमें सोलहवां वर्ण याने त और इक्कीसवां याने प अर्थात् तपरूपी धन हमलोगों
का वे लेलेतेहैं व उस धनसे रहित हमलोगों का जन्म कैसाहोगा ॥ १३ ॥ वह पापिनी क्षुधा अच्छी है परन्तु हमलोग चोरोंके हाथमें न जावैं ॥ १४ ॥ अ-
र्जुनजी बोले कि हे विप्रजी ! यह आश्चर्य कहाजाता है और वे चोर कौन कहेगये हैं व ये चोर किस धनको लेतेहैं कि जिनसे ब्राह्मणलोग डरतेहैं॥१५॥नारदजी बोले।

१ कादयो मावसानाः स्पर्शाः ॥ क से म तक स्पर्श कहेजाते हैं ॥

कि काम, क्रोधादिक चोरहैं वैसेही तपही धनहै उसीके चुराजाने से डरेहुये वे ब्राह्मणलोग जोकि मुझसे कहतेभयेहैं ॥ १६ ॥ शातातप बोले कि चोरोंके डरसे डरेहुये
हमलोग वहां सदैव भलीभांति साधना करैंगे इसलिये जागरण कैसे स्वीकार करने के लिये होसक्ता है ॥ १७ ॥ जिसलिये वह भूमि चोरोंसे व्याप्तहै इससे हमलोग
नहीं जावैंगे हे मुने ! उसीसे भयभीत हमलोग सबको त्यागदेते हैं ॥ १८ ॥ और विकराल प्रतिग्रह तुमको छठे भागका फलदायक होगा उन शातातपके ऐसा कहते
हुये हारीतनामक मुनि बोले ॥ १९ ॥ कि प्रसिद्धिमें मूर्खबुद्धि से कौन महीसागर के संगम को छोड़ेगा जहा कि स्वर्ग व मोक्ष करतलमें प्राप्तहोताहै ॥ २० ॥ यदि

शातातपउवाच ॥ वयञ्चौरभयाद्भीतास्तत्रसंसाधनंसदा ॥ ततःकथंशक्यमङ्गीकर्तुंजागरणंतथा ॥ १७ ॥ चौरै
र्व्याप्तासियद्भूमिस्तेनगच्छेमनोवयम् ॥ तस्मात्सर्वंसंत्यजामोभयभीतावयम्मुने ॥१८॥ प्रतिग्रहश्चैवघोरः षष्ठांशःफल
दस्तव ॥ एवंब्रुवतितस्मिंश्च हारीतोनामचाब्रवीत् ॥ १९ ॥ मूढबुद्ध्याकोहिनाम महीसागरसङ्गमम् ॥ त्यजेतयत्रमोक्ष
श्च स्वर्गश्चकरगस्तथा ॥ २० ॥ कलापादिपुग्रामेषु कोत्रसेतविचक्षणः ॥ यदिवासस्स्तम्भतीर्थे क्षणार्द्धमपिलभ्यते ॥
२१ ॥ भयञ्चचौरजंसर्वं किङ्करिष्यतितत्रनः ॥ उमानाथञ्चमनसि पालकंकुर्वतान्दृढम् ॥ २२ ॥ साहसञ्चविनाभूतिर्न
कथञ्चनप्राप्यते ॥ तस्मान्नारदतत्राहमायास्येतववाक्यतः ॥ २३ ॥ षाड्विंशतिसहस्राणि ब्राह्मणामेपरिग्रहे ॥ षट्कर्म
निरताश्शुद्धा लोभदम्भविवर्जिताः ॥ २४ ॥ तैस्सार्द्धमागमिष्यामि ममेदंमतमुत्तमम् ॥ इत्युक्त्वेवचनेतांश्च कृत्वाहृद
पटमूर्द्धनि ॥ २५ ॥ निवृत्तस्सहसापार्थ खेचरोतिमुदान्वितः ॥ शतयोजनमात्रन्तु हिममार्गमतीत्यच ॥ २६ ॥ के

आधाक्षण भी स्तम्भतीर्थ में निवास मिलै तौ कौन विद्वान् कलापादिक ग्रामोंमें बसैहै ॥ २१ ॥ और दृढता से पार्वतीपति को मनमें पालक करतेहुये हमलोगोंका
वहां चोरोंसे उपजाहुआ डर क्या करैगा ॥ २२ ॥ और साहसके विना ऐश्वर्य किसी प्रकार से नही मिलता है इस लिये हे नारदजी ! तुम्हारे वचन से वहां मैं आऊंगा
२३ ॥ व मेरे कुटुम्ब में छब्बिसहज़ार ब्राह्मण छहोंकर्मों में तत्पर और शुद्ध व लोभ तथा पाखण्ड से रहित हैं ॥ २४ ॥ उन समेत मैं आऊंगा यह मेरा उत्तममत
है ऐसा वचन कहनेपर दण्डके शिरपे उनको करके ॥ २५ ॥ हे अर्जुनजी ! बड़े आनन्द से युक्त मैं आकाशगामी होकर सौयोजनकी प्रमाणभर पालाके मार्गको

नांघकर ॥२६॥ उन द्विजोत्तमोंसे संयुक्त मैं केदारक्षेत्रको भलीभांति आया वह देश आकाश या गढा व स्वामिकार्त्तिकेयजीकी प्रसन्नतासे नांघा जामक्ताहै और प्रकारसे
नहीं ॥२७।२८॥ अर्जुनजी बोले कि हे नारदजी ! वह कलापग्राम कहा है व बिलकेद्वारा कैसे वहा मनुष्य जासक्ताहै व स्वामिकार्त्तिकेयजीकी प्रसन्नता कैसे होतीहै यह
मुझसे कहिये॥२९॥नारदजी बोले कि पालासे संयुत केदारक्षेत्र सौयोजनका कहागयाहै उसके अन्तमें चारसौ कोस चौडा वह कलापग्रामहै॥३०॥उसके अन्तमें चारसौ
कोस बालुकार्णव कहाजाताहै उसके उपरान्त चारसौ कोशपर वह स्वर्गीभूमि कहीगईहै ॥३१॥ वहा बिल याने गढ़ेकेद्वारा जिसतरह जाना होसक्ताहै उसको सुनिये

दारंसमुपायातो युक्तस्तैर्द्विजसत्तमैः ॥ आकाशेनतुशक्यश्चबिलेनाथसदेशकः ॥ २७ ॥ अतिक्रान्तुंनान्यथाचतथास्क
न्दप्रसादतः ॥ २८ ॥ अर्जुनउवाच ॥ ककलापञ्चतद्ग्रामं कथंशक्यंबिलेनच ॥ कथंस्कन्दप्रसादःस्यादेतन्मेब्रूहि
नारद ॥ २९ ॥ नारदउवाच ॥ केदारंहिमसंयुक्तं योजनानांशतंस्मृतम् ॥ तदन्तेयोजनशतं विस्तृतंतत्कलापकम् ॥
३० ॥ तदन्तेयोजनशतं वालुकार्णवउच्यते ॥ शतयोजनमात्रंसा भूमिःस्वर्गात्ततःस्मृता ॥ ३१ ॥ बिलेनचयथाशक्यं
गन्तुंतत्रशृणुष्वतत् ॥ निरन्नोवैनिरुदको देवमाराधयेद्गुहम् ॥ ३२ ॥ दक्षिणायान्दिशिततो निष्पापंमन्यतेयदा ॥
तदागुहोस्यादिशति स्वप्नेगच्छतिभारत ॥ ३३ ॥ ततोगुहात्पश्चिमतो बिलमस्तिमहत्तरम् ॥ तत्रप्रविश्यगन्तव्यं यो
जनंशतसप्तकम् ॥ ३४ ॥ तत्रमारकतंलिङ्गमस्तिसूर्यसमप्रभम् ॥ तदग्रेमृत्तिकाचास्ति स्वर्णवर्णासुनिर्मला ॥ ३५ ॥
नमस्कृत्यचतंलिङ्गं गृहीत्वामृत्तिकाञ्चताम् ॥ आगन्तव्यंस्तम्भतीर्थे समाराध्यकुमारिकम् ॥ ३६ ॥ जलंवाकूपतो

कि बिनअन्न व निर्जल रहकर स्वामिकार्त्तिकेय देवका आराधन करै ॥ ३२ ॥ तदनन्तर दक्षिण दिशामें जब अपनाको पापरहित मानताहै तब हे भारत ! स्वप्नमे
इसको स्वामिकार्त्तिकेयजी यह आज्ञा देतेहै कि चलो ॥ ३३ ॥ उसके उपरान्त स्वामिकार्त्तिकेयजीके पश्चिम ओर बडाभारी गढा सातसौ योजन का है उसमें पैठकर
जाना चाहिये ॥ ३४ ॥ वहां सूर्यके समान प्रकाशमान मरकतमणि का लिंगहै उसके आगे सोनेके रगकी बडी निर्मल मिट्टी है ॥ ३५ ॥ उस लिंगको प्रणाम करके व

उस मिट्टीको लेकर कुमारिकेश्वरको भलीभांति आराधन कर स्तंभतीर्थ में आना चाहिये ॥ ३६ ॥ अथवा कुत्रांसे जलको ग्रहणकरै व रात होनेपर उस जल व मिट्टी
से कज्जल बनाके व दोनों आंखैं आंजकर ॥ ३७ ॥ व शरीरका उबटन करके केदारसे छठें स्थानमें नेत्रके अंजनके प्रभावसे उत्तम बिलको देखताहै ॥ ३८ ॥ तदन-
न्तर उसके बीचसे जाताहै व शरीरमें उबटनके प्रभावसे कारीषनामक बड़े विकराल कीड़े उसको नहीं खाते हैं ॥ ३९ ॥ बिलके बीचमें सूर्योंके समान प्रकाशित
सिद्धोंको देखता हुआ वह जाताहै हे अर्जुनजी ! इसप्रकार वह उत्तम कलापग्रामको जाताहै ॥ ४० ॥ और उसमें चारहजार वर्ष आयुर्बल कहीगई हैं व फलोंका

ग्राह्यंभूतायांनिशिकज्जलम् ॥ तेनोदकेनमृत्तिकया कृत्वानेत्रद्वयाञ्जनम् ॥ ३७ ॥ उद्वर्त्तनञ्चदेहस्यकेदारात्षष्ठिकेप
दे ॥ नेत्राञ्जनप्रभावाच्च बिलंपश्यतिशोभनम् ॥ ३८ ॥ तन्मध्येनततोयाति गात्रोद्वर्तनभावतः ॥ कारीषैर्नामकैःस्थै
र्भक्ष्यतेनैवकीटकैः ॥ ३९ ॥ बिलमध्येचसम्पश्यन् ससिद्धान्भास्करप्रभान् ॥ यात्येवंयात्यसौपार्थ कलापग्राममु
त्तमम् ॥ ४० ॥ तत्रवर्षसहस्राणिचत्वार्यायुःप्रकीर्त्तितम् ॥ फलानांभोजनंचस्यात्पुनःपुण्यंचनार्जयेत् ॥ ४१ ॥ इत्येवं
तत्रकथितमतश्चाप्युच्छृणुष्वतत् ॥ तपस्सामर्थ्यतस्सूक्ष्मान् दण्डस्याग्रेनिधायतान् ॥ ४२ ॥ द्विजानहंसमायां
तो महीसागरसङ्गमम् ॥ तत्रोत्तार्यमयायुक्तास्तीरेपुण्यजलाश्रये ॥ ४३ ॥ ततोमयाकृतंस्नानं सहतैर्द्विजसत्तमैः ॥
निश्शेषदोषदावाग्नौ महीसागरसङ्गमे ॥ ४४ ॥ पितॄणान्देवतानाञ्च कृत्वातर्पणसत्क्रियाः ॥ जपमानाःपरंजप्यं
निविष्टास्सङ्गमेवयम् ॥ ४५ ॥ भास्करंसमवेक्षन्तश्चिन्तयन्तोहरिंहृदि ॥ तस्मिंश्चैवान्तरेपार्थ देवाःशक्रपुरोगमाः ॥ ४६ ॥

भोजन होताहै व फिर पुण्यको नहीं इकट्ठा करताहै ॥ ४१ ॥ यही वृत्तान्त कहा गयाहै इसके उपरान्त वहां जो हुआहै उसको सुनिये कि तपस्याकी शक्तिसे सूक्ष्म
उन द्विजोंको दण्डके आगे धरकर ॥ ४२ ॥ मैं महीसागरके संगमको भलीभांति आया व वहां पुण्यदायक जलाश्रयवाले किनारे पै उतारकर मुझसमेत वे बैठे ॥
४३ ॥ तदनन्तर उन द्विजोत्तमों समेत मैंने समस्त दोषोंके जलानेके लिये वनकी अग्निकी नाईं महीसागरके संगममें स्नान किया ॥ ४४ ॥ व पितरों और देवों
का तर्पण व उत्तम कर्मोंको करके उत्तम जपनेकेयोग्य मंत्रको जपतेहुये हमलोग उस संगममें बैठगये ॥ ४५ ॥ व सूर्यको देखतेहुये हम लोग हृदयमें विष्णुका ध्यान

करतेरहे हे अर्जुनजी ! उसी अवसर में इन्द्रआदिक देवता ॥ ४६ ॥ व सूर्यादिक ग्रह और लोकपाल व आठ देवताओं की जातियां और गन्धर्व व अप्सराओं के समूह भलीभाति प्राप्तहुये ॥ ४७ ॥ तदनन्तर गाने व बजानेसे अतिउत्तम उस बड़े उछाहमें ब्राह्मणोंके चरण धोनेके लिये मैं आपही उद्यतहुआ ॥ ४८ ॥ उसीसमय में तृतीयस्वर याने गान्धर्वस्वर से शब्दायमान व सामवेद की ध्वनिसे संयुत मैंने अतिथि के वचनको सुना ॥ ४९ ॥ जो वचन कि शिवभक्ति की नाईं उत्तम व मन को अत्यन्तही प्रियथा ब्राह्मणोंने उठकर पूंछा कि हे विप्रजी ! तुम कौनहो व कहांसे आयेहो ॥५०॥ व क्या मागतेहो तुम्हारे मनमें जो वर्तमानहो उसको कहो ॥५१॥

आदित्याद्याग्रहास्सर्वे लोकपालाश्चसङ्गताः ॥ देवयोनयइत्यष्टौ गन्धर्वाप्सरसाङ्गणाः ॥ ४७ ॥ महोत्सवेततस्तस्मिन् गीतवादित्रकोत्तमे ॥ पादप्रक्षालनंकर्तुं विप्राणामुद्यतःस्वयम् ॥ ४८ ॥ तस्मिन्कालेचाश्रृणवमहमातिथ्यवाक्यताम् ॥ सामध्वनिसमायुक्तां तृतीयस्वरनादिताम् ॥४९॥ अतीवमनसोरम्यां शिवभक्तिमिवोत्तमाम् ॥ विप्रैरुत्थायसंपृष्टः कस्त्वंविप्रकचागतः ॥ ५० ॥ किंवाप्रार्थयसेब्रूहि यत्तेमनसिवर्त्तते ॥ ५१ ॥ विप्रउवाच ॥ मुनिःकपिलनामाहं नारदायनिवेद्यताम् ॥ आगतःप्रार्थनायैव तच्छ्रुत्वाहमथाब्रवम् ॥ ५२ ॥ धन्योहंयदिहायातः कपिलस्त्वंमहामुने ॥ नास्त्यदेयंतवास्माभिः पात्रंनास्तितवाधिकम् ॥ ५३ ॥ कपिलउवाच ॥ ब्रह्मपुत्रत्वयादेयं यदिमेत्वंश्रृणुष्वतत् ॥ अष्टौविप्रसहस्राणि समदेहीतिनारद ॥ ५४ ॥ भूमिदानंकरिष्यामि कलापग्रामवासिनाम् ॥ ब्राह्मणानामहंचैषां तदिदंक्रियतांविभो ॥ ५५ ॥ ततोमयाप्रतिज्ञातमेवमस्तुमहामुने ॥ त्वयापिक्रियतांस्थानं कापिलंकपिलोत्तमम् ॥ ५६ ॥

ब्राह्मण बोला कि मैं कपिलनामक मुनि मांगनेही के लिये आयाहूं नारदसे आपलोग यह कहदीजिये उस वचनको सुनकर इसके उपरान्त मैंने कहा ॥ ५२ ॥ कि हे महामुने ! मैं धन्यहूं जोकि आप कपिलदेवजी यहां आयेहो हमलोगों से तुमको न देनेयोग्य नहीं है क्योंकि तुम से अधिक पात्र नहींहै ॥ ५३ ॥ कपिलजी बोले कि हे ब्रह्मपुत्र ! यदि तुमको मुझे देनेयोग्य है तो तुम सुनो कि हे नारद ! आठहजार ब्राह्मण मुझको दीजिये ॥ ५४ ॥ हे विभो ! कलापग्राम के वासी इन ब्राह्मणोंको मैं भूमिदान करूंगा इस लिये यह कीजिये ॥ ५५ ॥ तदनन्तर मैंने प्रतिज्ञा किया कि हे महामुने ! ऐसाही होगा हे कपिलजी ! तुमभी उत्तम कापिलस्थान

को करो ॥ ५६ ॥ श्राद्धमें या समय प्राप्तहोनेपर जिसके आश्रम में आयाहुआ अतिथि (पाहुन) विमुख होजावै उसका सब कर्म विफल होजाता है ॥ ५७ ॥ जो
अतिथि को नहीं पूजता है वह रौरवनरकवाले लोकोंको जाताहै व जिससे अतिथि पूजागया है वह देवोंसे भी पूजाजाता है ॥ ५८ ॥ उसके उपरान्त उस दानपक्ष में
कपिलमुनि नहीं जीतेगये तदनन्तर उस समय मैंने श्रीमान् हारीतमुनि को सिद्ध व देवोंके संयोगमें चरणधोनेके लिये बुलाया व उस समय हारीत बाया चरण आगे
करके बैठगये ॥५९।६०॥ तदनन्तर अप्सराओं व सिद्धोंकी उत्तम सभामें बड़ा हास्यहुआ व बहुत प्रकारसे विचार करके भूमिमें ब्राह्मण साधु साधु याने बहुत अच्छे२

श्राद्धेवाप्राप्तकालेवा ह्यतिथिर्विमुखोभवेत् ॥ यस्याश्रममुपायातस्तस्यसर्वंहिनिष्फलम् ॥ ५७ ॥ सगच्छेद्रौरवाँल्लोका
न् योतिथिन्नाभिपूजयेत् ॥ अतिथिःपूजितोयेन सदेवैरपिपूज्यते ॥ ५८ ॥ दानपक्षेततस्तस्मिन्नोजितःकपिलोमुनिः॥
ततोमयामुनिःश्रीमान् हारितोह्वयितस्तदा ॥ ५९ ॥ पादप्रक्षालनार्थाय सिद्धदेवसमागमे ॥ हारीतश्चपुरस्कृत्य वामं
पादंतदास्थितः ॥ ६० ॥ ततोहासोमहाञ्जज्ञे ह्यप्सरःसिद्धसंसदि ॥ विचिन्त्यबहुधापृथ्वीं साधुसाधुकृताद्विजाः ॥ ६१ ॥
ततोममापिमनसि शोकवेगोमहानभूत् ॥ सत्यंचैवतथामेने गाथांपूर्वंबुधेरिताम् ॥ ६२ ॥ सर्वेष्वपिचकार्येषु हासिश
ब्दोविगर्हितः ॥ मयिकुर्वतिकार्याणि शिलापातोध्रुवम्भवेत् ॥ ६३ ॥ ततोहमब्रवंविप्रान् यूयंमूर्खाभविष्यथ ॥ धनधा
न्याल्पसंयुक्ता दरिद्राःकलिनावृताः ॥ ६४ ॥ एवमुक्तेप्रहस्यैव हारीतःप्राब्रवीदिदम् ॥ तवैवयंमुनेहानिर्यदस्माच्छपतेभ
वान् ॥ ६५ ॥ कश्शापोदीयतेतुभ्यं शापोयदयमेवते ॥ ततोविमृश्यभूयोहमब्रवंकिमिदंद्विज ॥ ६६ ॥ तथाविधस्य

क्रियेगये ॥ ६१ ॥ उसके उपरान्त मेरे भी मनमें बड़ाशोक का वेग हुआ व पहले विद्वानों से गाईहुई गाथाको मैंने सत्यमाना ॥ ६२ ॥ कि सबही कार्यों में हांसे
शब्द निन्दित है इसलिये कार्योंको करतेहुये भी मेरे ऊपर निश्चयकर शिलापात होगा ॥ ६३ ॥ तदनन्तर मैंने ब्राह्मणोंसे कहा कि तुमलोग थोड़े धनधान्य से सं-
युत व निर्धन व कलह से घिरेहुते तथा मूर्खहोगे ॥ ६४ ॥ ऐसा कहनेपर हारीत हँसकर यह बोले कि हे मुने ! आप जो हमलोगोंको शापदेते हो तो यह तुम्हारीही
हानिहै ॥ ६५ ॥ व जिसलिये यही तुमको शापहै इससे तुम्हारे लिये क्या शाप दियाजाय उसके उपरान्त फिर विचारकर मैंने कहा कि हे द्विज ! वैसे आपका

बायें चरणका देना यह क्या है ॥ ६६ । ६७ ॥ हारीत बोले कि हे बुद्धिमन् ! जिससे मेरे शून्यता हुई है इस कारणको सुनिये कि हा यह दान लेना दुःखरूप है ऐसा चिन्तन करतेहुये मेरे चित्तमें शून्यताहै ॥ ६८ ॥ दान लेनेसे जो द्विजोंका ब्राह्मणवाला तेज शान्त होजाताहै व महादान को लेताहुआ ब्राह्मण जो अपना उत्तमकर्म होताहै ॥ ६९ ॥ उसे दाताको देताहै और दाता अपने पापको उसे देदेताहै इसलिये दाता व दान लेनेवाला दोनों आपस में छलीहैं ॥ ७० ॥ इन दोनोंके मध्यमें जिस को जो हीन मानताहै वह थोड़ी बुद्धिवाला कहाजाताहै हे नारद ! ऐसा चिन्तन करतेहुये मेरे शून्यताहुई है ॥ ७१ ॥ निद्रासे दुःखी व डरसे क्लेशित और कामदेव

भवतो वामपादप्रदानता ॥ ६७ ॥ हारीतउवाच ॥ शृणवैतत्कारणंधीमाञ्छून्यतामेयतोभवत् ॥ इतिचिन्तयतश्चित्ते हादुःखोयंप्रतिग्रहः ॥ ६८ ॥ प्रतिग्रहेणविप्राणां ब्राह्मयंतेजोहिशाम्यति ॥ महादानंहिगृह्णानो ब्राह्मणःस्वंशुभंहियत् ॥ ६९ ॥ ददातिदातुर्दाताच अशुभंयच्छतिस्वकम् ॥ दाताप्रतिग्रहीताच वञ्चकौहिपरस्परम् ॥ ७० ॥ मन्यतेधोनयोर्यस्य सोल्पबुद्धिःप्रणीयते ॥ इतिचिन्तयतोमह्यं शून्यताभूद्धिनारद ॥ ७१ ॥ निद्रार्तश्चभयार्तश्च कामार्तश्शोकपीडितः॥ हृतसर्वस्ववित्तश्च शून्याह्येतेभवन्तिच ॥ ७२ ॥ तदेषुमतिमान्कोपं नकुर्वीतयतस्त्वया ॥ कृतःकोपस्ततस्तुभ्यमेव हानिरियम्मुने ॥ ७३ ॥ ततस्तापान्वितश्चाहं तान्विप्रानब्रवम्पुनः ॥ धिग्मामस्तुसुदुर्बुद्धिमविमृश्यार्थकारिणम् ॥ ७४ ॥ कुर्वतामविमृश्येव तत्किमस्तिनयद्भवेत् ॥ सहसानक्रियांकुर्याद्यातिकुर्वन्महापदम् ॥ ७५ ॥ विमृश्यकारिणन्धीरं वृणवतेसर्वसम्पदः ॥ सत्यमाहमहाबुद्धिश्चिरकारःपरेहितम् ॥ ७६ ॥ पुराहब्राह्मणःकश्चित्प्रख्यातोङ्गिरसाङ्कु

से पीड़ित व शोकसे विकल और जिसकी सब द्रव्य लेलीगई है ये शून्य होते हैं ॥ ७२ ॥ इस लिये बुद्धिमान् इन मनुष्यों पर क्रोध न करै जिसलिये तुमने क्रोधकिया उसीसे हे मुने ! तुम्हारेही लिये हानि है ॥ ७३ ॥ तदनन्तर सन्तापसे संयुत मैंने उन ब्राह्मणों से फिर कहा कि बिन विचारे कार्य करनेवाले मुझ दुष्टबुद्धि को धिक्कार है ॥ ७४ ॥ बिन विचारकर करनेवालोंको वह क्याहै जो नहीं होता याने सब कुछ होताहै सहसाकर्म न करै क्योंकि सहसा करताहुआ पुरुष बड़ी विपत्तिको प्राप्तहोताहै ॥ ७५ ॥ व विचारकर करनेवाले बुद्धिमान्को समस्त सम्पदायें स्वीकार करती हैं बड़े बुद्धिमान् चिरकारकने पराये प्रियको सत्य कहाहै ॥ ७६ ॥

पुरातन समय अङ्गिरा के वंशमें प्रसिद्ध कोई बडा बुद्धिमान् चिरकारी गौतमका पुत्र हुआ है ॥ ७७ ॥ जोकि विचारकर सबकर्मों को करता था और बहुत
कार्यकी सिद्धिसे चिरकारी कहाजाता था ॥ ७८ ॥ दीर्घदर्शना याने बहुत देरतक देखतीहुई किसी व्यभिचार में उसकी माताके ऊपर क्रोधित व बुद्धिकी उत्तमतासे
युक्त पिताने अन्य पुत्रोंको छोडकर चिरकारी से यह कहा कि इस माताको मारडालो तथा याने वैसाही होगा यह देरमें कहकर स्वभावही से उस चिरकारी ने ॥
७९ । ८० ॥ बहुत देरमें करने के प्रयोजन को विचारकर बडेसमय तक चिन्तन किया कि कैसे पिताकी आज्ञाकरूं व किसप्रकार माताको न मारूं ॥ ८१ ॥ व

ले ॥ चिरकारीमहाप्राज्ञो गौतमस्याभवत्सुतः ॥ ७७ ॥ चिरेणसर्वकार्याणि योविमृश्यप्रकुर्वते ॥ चिरकार्याभिनिष्पत्तेश्चि
रकारीतथोच्यते ॥ ७८ ॥ बुद्धिलाघवयुक्तेन जननींदीर्घदर्शनाम् ॥ व्यभिचारेचकस्मिंश्च व्यतिक्रम्यापरान्सुतान् ॥
७९ ॥ पित्रोक्तःकुपितेनाथ जहीमांजननीमिति ॥ सतथेतिचिरेणोक्त्वा स्वभावाच्चिरकारकः ॥ ८० ॥ विमृश्याचि
रकारित्वं चिन्तयामासवैचिरम् ॥ पितुराज्ञांकथंकुर्यां नहन्यांस्मातरंकथम् ॥ ८१ ॥ कथन्धर्मच्छलेनास्मिन्निमज्जेय
मसाधुवत् ॥ पितुराज्ञापरोधर्मः स्वधर्मोमातृरक्षणम् ॥ ८२ ॥ अस्वतन्त्रञ्चपुत्रत्वं तेनमांसोत्रपीडयेत् ॥ स्त्रियंहत्वामा
तरंच कोहिजातुसुखीभवेत् ॥ ८३ ॥ पितरंचाप्यवज्ञाय कःप्रीतित्वमवाप्नुयात् ॥ अनवज्ञापितुर्युक्तं युक्तंमातुश्चरक्षण
म् ॥ ८४ ॥ क्षमायोग्यावुभावेतौ नातिवर्तेतवैकथम् ॥ पिताह्यात्मानमाधत्ते जायायांजज्ञिवानिति ॥ ८५ ॥ शीलचा
रित्रगोत्रस्य धारणार्थंकुलस्यच ॥ सोहमात्मास्वयंपित्रापुत्रत्वेपरिकल्पितः ॥ ८६ ॥ जातकर्मणियत्प्राह पितायच्चो

धर्मके छलसे कैसे दुष्टकी नाईं इस संसारसागर में न डूबूं धर्म पिताकी आज्ञापर है व माताकी रक्षाकरना अपना धर्म है ॥ ८२ ॥ पुत्रता अपने अधीन नहीं होती
याने पुत्र पिताके वश होताहै उसीसे ये पिताजी मुझको दुःखदेते हैं स्त्री व माताको मारकर कभी कौन सुखी होगा ॥८३॥ व पिताका भी अनादर करके कौन स्नेहत्व
को प्राप्तहोगा पिताका सन्मान योग्यहै व माताकी रक्षाकरना उचितहै ॥८४॥ ये दोनों क्षमाके योग्यहैं इससे किसीप्रकार उल्लङ्घन न करै पिता इस लिये स्त्रीमें आत्माको
आधान करताहै व इसीकारण स्त्रीमें पैदाहुआहै शील, चरित्र, गोत्र व कुलके धारणके लिये सो मैं पिताकरके आपही आत्मा पुत्रता में कल्पित कियागया ॥ ८५।८६ ॥

यज्ञके उपकर्म जातकर्म्म में पिताने जो कहाथा उसी से पिताके गौरव की इच्छा से पुत्र दृढ़तापूर्वक परिपूर्ण होगया ॥ ८७ ॥ शरीरादिक देनेयोग्य पदार्थोंको अकेले पिता देताहै उसीलिये पिताका वचन करनेयोग्य है किसीप्रकार विचार न करना चाहिये ॥ ८८ ॥ पिताके वचन करनेवाले मनुष्य के पापभी पवित्र होजाते हैं पिता स्वर्गहै पिता धर्म्महै व पिता उत्तम तपस्या है ॥ ८९ ॥ पिताके प्रसन्न होनेपर समस्त देवता प्रसन्न होतेहैं व उन आशीर्वादों को देतेहैं कि जिनको पिताने कहाहै ॥९०॥ यदि पिता प्रसन्नहोवै तो सब पापोंका प्रायश्चित्त होजाय व बन्धन से इसीप्रकार छूटजावै जैसे कि टेभुवा से फूल, फल अलग होजाते हैं ॥९१॥

पकर्मणि ॥ पर्याप्तःसदृढंपुत्रः पितुर्गौरवलिप्सया ॥ ८७ ॥ शरीरादीनिदेयानि पितात्वेकःप्रयच्छति ॥ तस्मात्पितुर्वचः कार्यंनविचार्यंकथञ्चन ॥८८॥ पातकान्यपिपूयन्तेपितुर्वचनकारिणः॥पितास्वर्गःपिताधर्मःपितापरमकंतपः॥८९॥ पितरिप्रीतिमापन्ने सर्वाःप्रीयन्तिदेवताः ॥ आशिषस्ताभजन्त्येनंपुरुषंप्राहयाःपिता ॥९०॥ निष्कृतिःसर्वपापानां पिता यदाभिनन्दति ॥ मुच्यतेबन्धनात्पुष्पंफलंवृन्ताद्धिमुच्यते ॥९१॥ क्लिश्यन्नपिसुतस्नेहैः पितास्नेहंनमुञ्चति ॥ एतद्विचिन्तितंतावत्पुत्रेणपितृगौरवम् ॥ ९२ ॥ पितानाल्पतरंस्थानंचिन्तयिष्यामिमातरम् ॥ योह्ययंमयिसङ्घातोमर्त्यत्वेपाञ्चभौतिकः ॥ ९३ ॥ अस्यमेजननीहेतुः पावकस्ययथारणिः ॥ मातादेहारणिःपुंसः सर्वस्यार्त्तस्यतनुभृतः ॥ ९४ ॥ मातृलाभेसनाथत्वमनाथत्वंविपर्यये ॥ नसशोचतिनाप्येनंस्थाविर्यमपकर्षति ॥ ९५ ॥ श्रियोहीनोपियोगेहे अम्बेति

पुत्रके स्नेहों से क्लेश पाता हुआ भी पिता प्रेमको नहीं छोडता है तब तक पुत्र करके यही पिताका गौरव चिन्तन कियागया है ॥ ९२ ॥ पिता बहुत कम स्थान नहीं है और मैं माता का चिन्तन करताहूं क्योंकि मनुष्यतामें जो यह मुझ में पञ्चभूत याने पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश का समूह है ॥ ९३ ॥ मेरे इस शरीर का माता कारण है जैसे अग्नि का हेतु अरणी होती है समस्त शरीरधारी पुरुषकी माता शरीर के लिये अरणी (अग्नि पैदाहोनेवाली लकडी) की नाईहै॥ ९४ ॥ माता का मिलना सनाथता है व विपरीत याने न मिलने में अनाथताहै वह शोचता नहीं है और इसको वृद्धता नहीं खींचती है ॥ ९५ ॥ जो कि लक्ष्मीहीन

भी पुरुष घर में माता ऐसी वस्तुको प्राप्त होताहै पुत्रों व पौत्रों से संयुक्त सौ वर्ष के अन्त में भी जो माता के भलीभांति आश्रितहै वह दो वर्ष की अवस्थाकी नाईं आचरण करताहै समर्थ या असमर्थ व दुबले तथा मोटे ॥ ९६ । ९७ ॥ पुत्र को माता पालती है विधि से दूसरा पालक नहीं होता है तब वह बूढ़ा होताहै व तब दुःखी होताहै ॥ ९८ ॥ और तब उसको संसार शून्य होताहै जब कि माता से अलग होताहै माताके बराबर तीर्थ नहीं है व माता के समान गति नहीं है ॥ ९९ ॥ व माता के बराबर रक्षा नहीं है व माता के समान प्रकाश नहीं है कोखिमें भलीभांति धारण करने से धात्री व पैदा करने से जननी ॥ १०० ॥ और अङ्गों के बढ़ने से

प्रतिपद्यते॥पुत्रपौत्रसमापन्नो जननींयःसमाश्रितः ॥९६॥ अपिवर्षशतस्यान्ते सद्विहायनवच्चरेत् ॥ समर्थंवासमर्थंवा कृशंवाप्यकृशंतथा ॥ ९७ ॥ रक्षत्येवसुतंमाता नान्यःपोष्टाविधानतः ॥ तदासवृद्धोभवति तदाभवतिदुःखितः ॥ ९८ ॥ तदाशून्यंजगत्तस्य यदामात्राविमुच्यते ॥ नास्तिमात्रासमंतीर्थं नास्तिमात्रासमागतिः ॥ ९९ ॥ नास्तिमात्रासमन्त्राणं नास्तिमात्रासमाप्रभा ॥ कुक्षौसन्धारणाद्धात्रीजननाज्जननीतथा ॥ १०० ॥ अङ्गानांवर्द्धनादम्बा वीरसूत्वेनवीरसूः ॥ शिशोःशुश्रूषणाच्छक्तिर्मातास्यान्माननाच्चसा ॥ १ ॥ देवतानांसमंलोके मुनयःपितरंविदुः ॥ मर्त्यानान्देवतानांच पूगोनाभ्येतिमातरम् ॥ २ ॥ पतिताङ्गुरवस्त्याज्या माताचनकथञ्चन ॥ गर्भाधारपोषाभ्यां तेनमातागरीयसी ॥ ३ ॥ यतस्साकौशिकीतीरे बलिराजानमीक्षती ॥ स्त्रीवृतंचिरकालत्वाद्धन्तुंदिष्टःस्वमातरम् ॥४॥ विमृशंश्चिरकारित्वाच्चिन्तान्तंनाभ्यपद्यत ॥ एतस्मिन्नन्तरेशक्रो ब्राह्मणंरूपमाश्रितः ॥ ५ ॥ गायन्गाथामुपायातः पितुस्तस्याश्रमा

अम्बा व वीर पैदाकरनेसे वीरसू और बालकके सेवनसे शक्ति और माननेसे वह माता कहाती है ॥ १ ॥ मुनियोंने लोकमें पिताको देवताओंके बराबर कहाहै व मनुष्यों व देवताओं का समूह माता के बराबर नहीं है ॥ २ ॥ धर्म से भ्रष्ट गुरुलोग त्यागने के योग्य हैं व माता किसी प्रकार नहीं है व उसी कारण से गर्भ में धारण करना व पालन से माता गरिष्ठ है ॥ ३ ॥ जिस लिये कौशिकीनदीके किनारे स्त्रियोंसे विरहुये बलिराजाको वह देखती रही उसीसे बहुत समयके कारणसे अपनी माताको मारने के लिये मुझको आज्ञादीगई ॥ ४ ॥ बहुत देरमें कार्य करनेके कारणसे विचारते हुये उस चिरकारी ने चिन्ताके अन्तको न पाया इसी अवसर में

इन्द्र ब्राह्मण के रूपको प्राप्तहुये ॥५॥ व गाथाको गातेहुये उसके पिताके आश्रम के समीप आये कि सब स्त्रियां असत्य होतीहैं जोकि सूत्रकार ने कहाहै ॥ ६ ॥ इससे उनसे फल ग्रहण करनेयोग्यहैं विद्वान् पत्तोंको न देखै यह सुनकर उसको पूजकर उदारबुद्धिवाले मेधातिथि ॥ ७ ॥ बुद्धिमान् बहुत आंसुवों को बहातेहुये दुःखित होकर चिन्तन करतेभये कि बडे आश्चर्य की बातहै कि ईर्षा से फेंकाहुआ मैं पाप के समुद्र में डूबगया ॥ ८ ॥ क्योंकि पतिव्रता स्त्रीको मारकर मुझको कौन तारैगा मैंने शीघ्रतासे उदारबुद्धिवाले चिरकारी को आज्ञादिया ॥ ९ ॥ यदि यह चिरकारी होवै तो मुझको पापसे रक्षाकरै हे चिरकारिक ! तुम्हारा कल्याणहोवै हे चिरकारि-

न्तिके ॥ अनृताहिस्त्रियस्सर्वाःसूत्रकारोयदाब्रवीत् ॥ ६ ॥ अतस्ताभ्यःफलंग्राह्यं नपत्राणीक्षयेत्सुधीः ॥ इतिश्रुत्वातु मानर्च्य मेधातिथिरुदारधीः ॥ ७ ॥ दुःखितोचिन्तयत्प्राज्ञोभृशमश्रूणिवर्त्तयन् ॥ अहोहमीर्ष्ययाक्षिप्तो मग्नोदुष्कृत सागरे ॥ ८ ॥ हत्वानारींचसाध्वींच कोनुमान्तारयिष्यति ॥ सत्वरेणमयाज्ञप्तश्चिरकारीह्युदारधीः ॥ ९ ॥ यद्ययंचिरकारीस्यात्समांत्रायेतपातकात् ॥ चिरकारिकभद्रन्ते भद्रन्तेचिरकारिक ॥ १० ॥ यदद्यचिरकारीत्वं ततोसिचिरकारकः ॥ त्राहिमांमातरंचैव तपोयच्चार्जितंमया ॥ ११ ॥ आत्मानंपातकेभ्यश्च भयेभ्यश्चिरकारिक ॥ एवंसुदुःखितःप्राप्तो गौतमश्चिन्तयंस्तथा ॥ १२ ॥ चिरकारिकंददर्शाथ पुत्रंमातुरुपान्तिके ॥ चिरकारीतुपितरं दृष्ट्वापरमदुःखितः ॥ १३ ॥ शस्त्रंत्यक्त्वास्थितोमूर्ध्ना प्रसादायोपचक्रमे ॥ मेधातिथिस्सुतन्दृष्ट्वा शिरसापतितम्भुवि ॥ १४ ॥ पत्नींचैवच जीवन्तीं परामभ्यगमन्मुदम् ॥ हन्यादितिनसावेद शस्त्रपाणौस्थितेशुभे ॥ १५ ॥ बुद्धिरासीत्सुतन्दृष्ट्वा पितुश्चरण

क ! तुम्हारा कल्याण हो ॥ १० ॥ यदि तुम आज चिरकारी होवो तो चिरकारीहो मैंने जो तपस्या इकट्ठा कियाहै उसको व मुझे और माताकी रक्षा कीजिये ॥ ११ ॥ व हे चिरकारिक ! भयसे व पापों से अपनी रक्षा कीजिये इस प्रकार चिन्तन करतेहुये बड़े दुःखित गौतमजी प्राप्तहुये ॥ १२ ॥ इसके अनन्तर चिरकारिक पुत्र को माताके समीप देखा और चिरकारी पिताको देखकर बडा दुःखित हुआ ॥१३॥ व शस्त्रको छोड़कर खडाहोकर मस्तक से प्रसन्नता करानेके लिये प्रारम्भ किया और मेधातिथि मस्तक से भूमिमें गिरेहुये पुत्रको देखकर ॥ १४ ॥ व जीतीहुई स्त्रीको देखकर बड़े हर्षको प्राप्तहुये और शस्त्रको हाथमें लियेहुये उत्तम पुत्रको देखकर

उस भाँति यह न जाना कि मारैगा ॥१५॥ पिताके चरणोंमें झुकेहुये पुत्रको देखकर यह बुद्धिहुई कि शस्त्र लियेहुये पुरुष भयसे चञ्चलता को नहीं छिपाता है ॥ १६ ॥
तदनन्तर पिताने देरतक देखकर व देरतक माथेमें सूँघकर व बहुत समयतक भुजाओं से लिपटाकर चिरंजीव यह कहा ॥ १७ ॥ व बड़ी देरतक प्रसन्नता से सं-
युत मेधातिथि पुत्र से बोले कि हे चिरकारिक ! तुम्हारा कल्याण व आयुर्बल बहुत दिनोंतक होवै ॥ १८ ॥ व हे सौम्य ! देरमें जो कियागया है इसमें बहुत देरतक
दुःखी नहीं होताहै जिस प्रकार कि पहलेवाले श्रेष्ठ गौतम विद्वान्ने कहाहै ॥१९॥ कि बहुतदेरमें मित्रकर व कियेहुये मित्रको देरमें छोड़े क्योंकि देरमें कियाहुआ मित्र

योर्नतम् ॥ शस्त्रग्रहीनचापल्यं संवृणोतिभयादिति ॥ १६ ॥ ततःपित्राचिरन्दृष्ट्वा चिरंचाघ्रायमूर्द्धनि ॥ चिरन्दोर्भ्यां
परिष्वज्य चिरञ्जीवेत्युदाहृतः ॥ १७ ॥ चिरंमुदान्वितःपुत्रं मेधातिथिरथाब्रवीत् ॥ चिरकारिकभद्रन्ते आयुश्चैवभवे
च्चिरम् ॥ १८ ॥ चिराययत्कृतंसौम्य चिरमस्मिन्नदुःखितः ॥ यथाचार्योब्रवीद्विद्वान् गौतमोमुनिसत्तमः ॥ १९ ॥ चि
रेणमित्रंसन्धायचिरेणचकृतन्त्यजेत ॥ चिरेणविहितंमित्रं चिरन्धारणमर्हति ॥ २० ॥ रागेदर्पेचमानेच द्रोहेपापेच
कर्मणि ॥ अप्रियेचैवकर्त्तव्ये चिरकारीप्रशस्यते ॥ २१ ॥ बन्धूनांसुहृदांचैव भृत्यानांस्त्रीजनस्यच ॥ अव्यक्तेष्वपराधेषु
चिरकारीप्रशस्यते ॥ २२ ॥ चिरन्धर्मान्निषेवेत कुर्याच्चान्वेषणंचिरम् ॥ चिरमन्वास्यविदुषां चिरमिष्टानुपास्यच ॥
२३ ॥ चिरमुन्नीयचात्मानं चिरंयात्यनवज्ञताम् ॥ ब्रुवतश्चपरस्यापि वाक्यन्धर्मोपसंहितम् ॥ २४ ॥ चिरंपृच्छेच्चिरंब्रू
याच्च चिरन्नपरिभूयते ॥ धर्मेशत्रौशस्त्रहस्ते पात्रेचनिकटस्थिते ॥ २५ ॥ भयेचसाधुपूजायां चिरकारीनशस्यते ॥

बहुत दिन धारण के योग्य होता है ॥ २० ॥ स्नेह व गर्व, मान, द्रोह व पापकर्ममें और अप्रिय कार्य करनेमें बहुत देरमें करनेवाला प्रशसनीय होताहै ॥ २१ ॥ भाई,
मित्र, नौकर व स्त्रीजनके अप्रकट अपराधों में देरमें कार्य करनेवाला प्रशसनीय होताहै ॥ २२ ॥ बहुत दिनोंतक धर्मसेवै व बहुत देरतक खोजकरै व विद्वानों के
समीप बहुत दिन बैठकर और बहुत समयतक मित्रोंकी उपासनाकरै ॥ २३ ॥ व बहुत दिनोंतक अपना को उन्नति में प्राप्तकर बहुत समय के बाद आदरता को
प्राप्तहोताहै और जो धर्मसे संयुत वाक्यको अन्यके भी कहेहुये बहुत समयतक पूँछै व कहै वह बहुत दिनोंतक तिरस्कारको नहीं प्राप्तहोताहै धर्म व शस्त्रहस्तवाले शत्रुमें

समीपही प्राप्त पात्रमें ॥ २४ । २५ ॥ व हर और सज्जनकी पूजामें चिरकारी नहीं प्रशंसितहै ऐसा कहकर पुत्र व स्त्रीसमेत मुनि शान्ति को प्राप्तहुये ॥ २६ ॥ इसके अनन्तर बहुत दिनोंतक तपस्या करके बहुत समय के बाद स्वर्गको प्राप्तहुये ऐसा कहतेहुये भी हम मोहसे ऐसे करायेगये ॥ २७ ॥ व मैंने समस्त गुणोंसे संयुत ब्राह्मणोंसे यह कहा कि हे ब्राह्मणो ! कलियुगमें मेरा शाप आपलोगोंके ऊपर पड़ैगा ॥ २८ ॥ तदनन्तर मैंने धर्मवर्मा राजाके समीप ब्राह्मणों के चरण धोकर देवोंको साक्षीकरके संकल्पपूर्वक सुवर्ण, गोदान, गृहदान व धनादिको से ॥ २९ । ३० ॥ और स्त्री व गहने तथा वसनों से ब्राह्मणों को कृतार्थ किया उसके उपरान्त हाथ

एवमुक्त्वापुत्रभार्य्यासहितःप्राप्तवाञ्छमम् ॥ २६ ॥ तपश्चिरमुपास्याथ दिवंयातश्चिरम्मुनिः ॥ वयन्त्वेवंब्रुवन्तोऽपि मोहेनैवंप्रकारिताः ॥२७॥ कलौचभवतांविप्रा मच्छापोनिपतिष्यति ॥ इत्युक्तन्तुमयातत्रविप्रान्सर्वगुणैर्युतान् ॥ २८ ॥ पादप्रक्षालनंकृत्वा ततोहन्धर्म्मवर्मणः ॥ २९ ॥ समीपेसाक्षिणोदेवान् कृत्वासङ्कल्पपूर्वकम् ॥ काञ्चनैर्गोप्रदानैश्चगृहदानैर्धनादिभिः ॥३०॥ भार्याभूषणवस्त्रैश्च कृतार्थाब्राह्मणाःकृताः ॥ ततःकरंसमुद्यम्य प्राहेदन्देवसङ्गमे ॥३१॥ हराङ्गेधृतवामार्द्धायाचद्देवीगिरेस्सुता ॥ ब्रह्मशापोविष्णुशापो रुद्रशापस्तथैवच ॥ ३२ ॥ द्विजशापस्तथाभूयादिदंस्थानंविलुम्पतः ॥ यत्तीर्थेदेवविप्राणां द्रव्यहर्त्रनुमोदकाः ॥ ३३ ॥ रुद्रतालेनहन्यन्ते नरकेशाश्वतीःसमाः ॥ ततस्तथेतितैस्सर्वैर्हृष्टैस्तत्रतथोदितम् ॥३४॥ एवंमयास्थापितेस्थानकेस्मिन्संस्थापयामासचकापिलम्मुनिः॥स्थानंसुतोदेवहूतेःप्रती

उठाकर देवताओं के समागम में यह कहा ॥ ३१ ॥ कि महादेवजी को अङ्गमें धारण कियेहुये वामभागवाली जो पर्वतकी कन्या पार्वती देवीहैं उनका शाप व ब्रह्मशाप, विष्णुशाप वैसेही रुद्रशाप ॥ ३२ ॥ व ब्राह्मणों का शाप इस स्थान के नष्ट करनेवाले पुरुषको होवै क्योंकि तीर्थमें देवों व ब्राह्मणों की द्रव्य लेनेवाले व उसको अच्छा माननेवाले पुरुष ॥ ३३ ॥ नरकमें सैकड़ो वर्षतक रुद्रचपेटे से मारेजाते हैं तदनन्तर वहां प्रसन्न होतेहुये सबोंने तथा याने वैसाही होगा यह कहा ॥ ३४ ॥ इस प्रकार मुझसे इस स्थान के स्थापित होनेपर देवहूती के पुत्र कपिल मुनिने प्रसन्न होकर कापिलनामक स्थानको स्थापित किया उसके उपरान्त देवता

देवस्थान को चलेगये ॥ १३५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे कुमारिकाखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायांनारदीयस्थानप्रतिष्ठानाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥
दो० । बगुला भूपतिसों कह्यो आपन चरित सुनाय । सो पञ्चमअध्यायमें चरित अहै सुखदाय ॥ अर्जुनजी बोले कि तुमने महीसागरके आश्चर्यमय माहात्म्यको कहा
मुझको बड़ाविस्मयहै व अतिआनन्द पैदाहोताहै ॥१॥ हेनारद ! मैं उसको विस्तारपूर्वक तुमसे सुनना चाहताहूं कि किसकी यज्ञमें अग्निसे जलाईहुई भी वह महीना-
मक नदीहुई है ॥२॥ नारदजी बोले कि बड़े कथानकको मैं कहूँगा कि जिसप्रकार महीनदी उत्पन्न हुईहै हे पाण्डव ! इस पुण्यदायिनी कथाको सुनतेहुये तुम पुण्य

तस्ततोययुर्देवतादेवसद्मनि॥१३५॥इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेनारदीयस्थानप्रतिष्ठानामचतुर्थोऽध्यायः॥४॥
अर्जुनउवाच ॥ महीसागरमाहात्म्यमद्भुतंकीर्तितंत्वया ॥ विस्मयःपरमोमह्यं प्रहर्षश्चोपजायते ॥ १ ॥ तदहंवि
स्तरात्त्वत्तः श्रोतुमिच्छामिनारद ॥ कस्ययज्ञेमहीजाता वह्निनाज्वालितापिसा ॥ २ ॥ नारदउवाच ॥ महदाख्यानमा
ख्यास्ये यथाजातामहीनदी ॥ शृण्वन्नेतांकथांपुण्यांपुण्यमाप्स्यसिपाण्डव ॥ ३ ॥ पुराभूद्भूपतिर्भूमाविन्द्रद्युम्नइति
श्रुतः ॥ वदान्यस्सर्वधर्मज्ञो मान्यमानयिताप्रभुः ॥ ४ ॥ उचितज्ञोविवेकस्य निवासोगुणसागरः ॥ नतदस्तिधरापृष्ठे
नगरग्रामपत्तनम् ॥ ५ ॥ तदीयकृतधर्मस्य चिह्नेनयदङ्कितम् ॥ कन्यादानानिबहुधा ब्राह्मणान्विधिनाऽव्यधात् ॥६॥
भूपालोसौनतद्दानमासहासाह्वनार्थिनाम् ॥ दशमीदिवसेरात्रौ गजपृष्ठेनदुन्दुभिः ॥ ७ ॥ ताड्यतेतत्पुरेप्रातः कार्यमे
कादशीव्रतम् ॥ यज्वनातेनभूपेनाविच्छिन्नंसोमपीथिना ॥ ८ ॥ स्तरणैराचितादर्भैर्दर्भकुलोत्सन्धितामही ॥ गङ्गा

पात्रोगे ॥ ३ ॥ पुरातन समय इन्द्रद्युम्न ऐसा सुनाहुआ राजाहुआहै जोकि मनोहर वाक्यवाला व समस्त धर्मोंका ज्ञाता और मान्यजनों को माननेवाला तथा समर्थ
था ॥ ४ ॥ योग्यवस्तुका ज्ञाता तथा विवेकका स्थान व गुणोंका समुद्रथा भूतलमें वह नगर व ग्राम तथा शहर न था ॥५॥ जोकि उसके कियेहुये धर्मके चिह्नसे चिह्नित
न होवै और इस राजाने विधिपूर्वक बहुत प्रकारसे ब्राह्मणोंको कन्यादान दिया और धनके चाहनेवालोंको उसका दान हासले न हुआ व दशमीके दिन रातमें हाथीकी
पीठपरसे नगारा ॥ ६ । ७ ॥ उसके पुरमें बजाया जाताथा कि प्रातःकाल एकादशीव्रत करना चाहिये व निरन्तर सोमपीनेवाले उस यज्ञकारी राजाने ॥ ८ ॥ कुशोंके

विद्वानों से व्याप्त पृथ्वीको दो अंगुल ऊंचीकरदिया गङ्गाके समीपवाले बालू के किनुके व बरसतेहुये मेघकी धारा और आकाश के नक्षत्र ॥ ९ ॥ विद्वानों मे गिनेजासक्ते हैं परन्तु उसका पुण्य नहीं गिनाजासक्ता है ऐसे पुण्योंकरके उसी शरीर से वह राजा ॥ १० ॥ हे कुरुवंशनायक ! विमान के द्वारा ब्रह्माके स्थानमें प्राप्तहुआ व उसने उस समय देवताओंके भी दुर्लभभोगोंको भोगकिया ॥ ११ ॥ इसके उपरान्त सौ कल्पका अन्त बीत जानेपर प्रजाओंके पति ब्रह्माजी उससमय अपने मन्दिर मे टिकेहुये उन इन्द्रद्युम्न राजासे बोले ॥ १२ ॥ ब्रह्मा बोले कि हे नृपोत्तम, इन्द्रद्युम्न ! शीघ्रही धरातलको जावो आज क्षणभरभी तुमको मेरेलोक

यांसिकताधारा वर्षतोदिवितारकाः ॥ ९ ॥ शक्यागणयितुंप्राज्ञैस्तदीयंसुकृतन्नतु ॥ ईदृशैस्सुकृतैरेव तेनैववपुषान्नृपः ॥ १० ॥ धामप्रजापतेःप्राप्तो विमानेनकुरूद्वह ॥ बुभुजेसतदाभोगान्दुर्लभानमरैरपि ॥ ११ ॥ अथकल्पशतस्यान्ते व्यतीतेतंमहीपतिम् ॥ प्राहप्रजापतिर्ब्रह्मा तदास्वेसदनस्थितम् ॥ १२ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इन्द्रद्युम्नद्रुतंगच्छ धरापृष्ठंनृपोत्तम ॥ नस्थातव्यंमदीयेद्य लोकेक्षणमपित्वया ॥ १३ ॥ नपुण्यंकेवलंराजन् गुप्तंस्वर्गस्यसाधकम् ॥ विनानिष्कल्मषांकीर्तिं त्रिलोकीतलविस्तृताम् ॥ १४ ॥ तवकीर्तिसमुच्छेदः साम्प्रतंवसुधातले ॥ सञ्जातश्चिरकालेन गत्वातांकुरु शीघ्रतः ॥ १५ ॥ यदिवाञ्छामहीपाल ममधामनिसंस्थितौ ॥ १६ ॥ इन्द्रद्युम्न उवाच ॥ मदीयंसुकृतंब्रह्मन् कथंभूमौभवेदिति ॥ छन्नंतथाकृतंनैतन्ममचेतसितिष्ठति ॥ १७ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ बलवानेषभूपाल कालःकलयतिस्वयम् ॥ ब्रह्माण्डान्यपिमाञ्चैव गणनाकाभवादृशाम् ॥ १८ ॥ तदेतदेवमन्येहं तवभूपालसाम्प्रतम् ॥ यत्कीर्तिमात्मनोव्यक्ति

में न टिकना चाहिये ॥ १३ ॥ हे राजन् ! त्रिलोकी में विस्तारको प्राप्त व निष्पाप यशके विना केवल छिपीहुई पुण्य स्वर्गकी सिद्धि करनेवाली नहीं होती है ॥ १४ ॥ इस समय पृथ्वीतल में बहुत समयसे तुम्हारा यश नाशहोगया इससे हे भूपाल ! यदि मेरे घर में भलीभांति टिकनेकी इच्छा होवै तो कीजिये शीघ्रही जाकर उस कीर्तिको ॥ १५ । १६ ॥ इन्द्रद्युम्न बोले कि हे ब्रह्मन् ! किसप्रकार वैसा कियाहुआ मेरा पुण्य भूमि में छिपाहोवैगा यह बात मेरे चित्तमें नहीं टिकतीहै ॥ १७ ॥ ब्रह्मा बोले कि हे राजन् ! यह समय बलीहै जो काल कि आपही ब्रह्माण्डों व मुझको भी गिनताहै आपके सरीखे जनों की क्या गिनती है ॥ १८ ॥ हे भूपाल ! इसलिये मै

यही तुम्हारे लिये जानताहूं जिससे कि अपना यश प्रकटकरके फिर स्वर्गको आइये ॥१९॥ उन भूपतिने ब्रह्माके ऐसे वचनको सुना और वैसेही भूमिमें आयेहुये अपने
को देखा॥२०॥व काम्पिल्य नगरमें उन इन्द्रद्युम्न राजाने अतिविस्मित होकर अपनाको व नगर तथा देशको मनुष्यों से आदरपूर्वक पूंछा व देखा॥२१॥मनुष्य बोले कि
हे भद्ररूप ! हमलोग इन्द्रद्युम्न राजा व उसके नगरको नहीं जानतेहैं जो तुम हम सबोंसे पूंछतेहो उसको किसी बड़ी आयुर्बलवालेसे पूंछो॥२२॥इन्द्रद्युम्न बोले कि
हे मनुष्यो ! इस समय पृथ्वीमें भूपति की इस राज्य में कौन दीर्घायु प्रसिद्धहै तुम लोग शीघ्रही यह कहो ॥ २३ ॥ मनुष्य बोले कि नैमिषारण्य में सात कल्पांतक

नीत्वाभ्येहिपुनर्दिवम् ॥ १९ ॥ शुश्रुवानितिवाचंस ब्रह्मणःपृथिवीपतिः ॥ पश्यतिस्मतथात्मानं महीतलमुपागतम् ॥
२० ॥ काम्पिल्यनगरेभूपः पप्रच्छात्मानमादरात् ॥ नगरंसतथादेशमद्राक्षीदतिविस्मितः ॥ २१ ॥ जनाऊचुः ॥ न
जानीमोवयंभूपमिन्द्रद्युम्नंनतत्पुरम् ॥ यत्त्वंपृच्छसिनोभद्रकञ्चित्पृच्छचिरायुषम् ॥ २२ ॥ इन्द्रद्युम्न उवाच ॥ कःस
म्प्रतिधरापृष्ठेचिरायुःप्रथितोजनाः॥पृथिवीशस्यराज्येस्मिन्नित्यत्रब्रूतमाचिरम् ॥ २३ ॥ जनाऊचुः ॥ श्रूयतेनैमिषा
रण्ये सप्तकल्पस्मरोमुनिः ॥ मार्कण्डेयइतिख्यातोगत्वातंपृच्छसंशयम् ॥ २४ ॥ ततोपदिष्टस्तैर्गत्वा तत्रतंमुनिपुङ्गव
म् ॥ निशम्यप्रणिपत्याह नृपःस्वहृदयस्थितम् ॥ २५ ॥ चिरायुर्भगवान्भूमौ यतस्मृतःसाम्प्रतंततः ॥ पृच्छाम्यहं
भवान्वेत्ति इन्द्रद्युम्नंनृपंनवा ॥ २६ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ मासाहसमिदंकार्षीर्भद्रवाचंशृणुष्वमे ॥ एतिजीवन्तमान
न्दो नरंवर्षशतादपि ॥२७॥ तत्करोमिप्रतीकारं तवदुःखोपशान्तये ॥ शृणुभद्रममास्तीह बकोमित्रंचिरन्तनः ॥२८॥

स्मरणवाले मार्कण्डेय ऐसे प्रसिद्ध मुनिहैं उनसे जाकर सन्देहको पूछो ॥ २४ ॥ तदनन्तर उन लोगोंसे उपदेशपाकर वहां उन मुनिश्रेष्ठको सुनकर राजाने जाकर उन
को प्रणाम करके अपने हृदय में टिकीहुई बातको कहा॥२५॥ कि जिसलिये आप भूमिमें इस समय दीर्घायु स्मरण कियेजाते हो इससे मैं पूंछताहूं कि आप इन्द्र-
द्युम्न राजाको जानते हो या नहीं ॥ २६ ॥ मार्कण्डेयजी बोले कि हे कल्याणरूप ! ऐसा साहस मत करो किन्तु मेरा वचन सुनो कि सौ वर्ष के आदमी जीतेहुये
पुरुष के समीप आनन्द आताहै ॥२७॥ इस लिये तुम्हारे दुःख दूर होनेके लिये मैं यत्न करूंगा हे कल्याणमय ! उसको सुनिये कि पुराना बगुला मेरा मित्र है ॥२८॥

जो कि नाडीजंघ ऐसा प्रसिद्ध है वह तुमको निरसन्देह जानैगा इस से शीघ्रही आइये जब तक हम तुम दोनो वहां चलैं ॥ २९ ॥ क्योंकि परया उपकार करना इसी एक फलवाला महात्माओं का जीवन होताहै इस से यदि वह जानैगा तो निरसन्देह इन्द्रद्युम्न को कहैगा ॥ ३० ॥ उस समय द्विजेन्द्र व नृपोत्तम ने प्रसन्न होकर हिमालय पर्वतपै नाडीजंघ के स्थान को इस प्रकार प्रयाण किया ॥ ३१ ॥ इसके अनन्तर बहुत दिनों से आयेहुये अपने मार्कण्डेय मित्रको देखकर प्रीति के कारण से उत्कण्ठित बगुला पक्षी उनके सामने गया ॥ ३२ ॥ पहले कुशल व स्वागत इत्यादि प्रश्नसे सम्भाषण हुआ इसके बाद उनके आनेके हेतु

नाडीजङ्घइतिख्यातः सत्वांज्ञास्यत्यसंशयम् ॥ तस्मादेहिद्रुतंयावदावांतत्रव्रजावभोः ॥ २९ ॥ परोपकारैकफ
लं जीवितंहिमहात्मनाम् ॥ यदिज्ञास्यत्यसंदिग्धमिन्द्रद्युम्नंसवक्ष्यति ॥ ३० ॥ तौप्रस्थितावितितदाविप्रेन्द्रन्नृपपुङ्गवौ ॥
हिमाचलंप्रतिप्रीतौ नाडीजङ्घालयम्प्रति ॥ ३१ ॥ बकोथमित्रंस्वंवीक्ष्यचिरकालादुपागतम् ॥ मार्कण्डेयंययौप्रीत्यु
त्कण्ठितःसम्मुखंद्विजः ॥ ३२ ॥ कृतसंविदभूत्पूर्वंकुशलस्वागतादिना ॥ पप्रच्छानन्तरंकार्यं तदागमनकारणम् ॥
३३ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ नृपोयंत्यजतिप्राणान्पुरावह्निप्रवेशनात् ॥ एतस्यप्राणरक्षार्थं ब्रूहिजानासिचेन्नृपम् ॥
३४ ॥ इतिपृष्टस्सविमना मित्रकार्यप्रसाधनात् ॥ कौशिकःप्राहजानामिनेन्द्रद्युम्नमहन्नृपम् ॥ ३५ ॥ चतुर्दशप्रमा
णामे कल्पाजातस्यभूतले ॥ नदृष्टोनश्रुतोवास इन्द्रद्युम्नोन्नृपःक्षितौ ॥ ३६ ॥ तच्छ्रुत्वाविस्मितोभूपस्तस्यायुरतिमा
त्रतः ॥ दुःखितोपितदाहेतुं पप्रच्छासौतदायुषः ॥ ३७ ॥ एवमायुर्यदितव कथंप्राप्तंब्रवीहितत् ॥ बकस्त्वंनैकथमिदं जुगु

वाला कार्य पूछा ॥ ३३ ॥ मार्कण्डेयजी बोले कि पहले यह राजा अग्निमें पैठनेसे प्राणोंको छोड़ताथा यदि इन्द्रद्युम्न राजाको जानतेहो तो इसकी प्राणरक्षाके लिये कहो ॥ ३४ ॥ इस प्रकार पूछेहुये उस बगुलाने मित्रकार्य के सिद्ध करनेके कारणसे उदासीन होकर कहा कि इन्द्रद्युम्न राजाको मैं नहीं जानताहूं ॥ ३५ ॥ पृथ्वीमे पैदाहुये मुझको चौदहसंख्यक कल्प बीते हैं परन्तु भूमिमें वह इन्द्रद्युम्न राजा न देखागया न सुनागयाहै ॥ ३६ ॥ उसकी उस बडी आयुर्बल को सुनकर विस्मय को प्राप्त

इस राजाने दुःखित भी उस समय उसकी आयुका कारण पूंछा ॥ ३७ ॥ कि यदि तुम्हारा ऐसा आयुर्बल है तो अत्यन्त ही निन्दित यह बगुलापन कैसे प्राप्त हुआ ॥
३८ ॥ बगुला बोला कि हे कल्याणरूप ! सुनिये कि जिसप्रकार शिवजी के पूजनसे बड़ी आयुर्बल मेरे है व हे महामुने ! शापसे निन्दित बकत्व हुईहै ॥ ३९ ॥
त्रिशूलधारी शिवजी के घृतकम्बल के माहात्म्य से मेरे यह दीर्घआयु है व ब्राह्मणके शापसे बगुला का शरीरहै उसको सुनिये ॥ ४० ॥ हे सन्मुने ! पहले जन्म में
पृथ्वीतलमें पाराशरी गोत्रवाले विश्वरूप ब्राह्मणके वृद्धतामें बक ऐसा प्रसिद्ध बालक हुआहूं हे मद्रक ! जो मैं कि पिताको बड़ा प्रिय व शिशुतामें स्वभावहीसे अत्यन्त

प्सितमतीवच ॥ ३८ ॥ बकउवाच ॥ शृणुमद्रयथादीर्घमायुर्मेशिवपूजनात् ॥ जुगुप्सितंबकत्वंच शापेनचमहामुने ॥
३९ ॥ घृतकम्बलमाहात्म्यान्ममदेवस्यशूलिनः ॥ दीर्घमायुरिदंविप्र शापाद्बकवपुःशृणु ॥ ४० ॥ पुराजन्मन्यहंबालो
ब्राह्मणस्याभवम्भुवि ॥ पाराशर्यस्यगोत्रस्य विश्वरूपस्यसन्मुने ॥ ४१ ॥ वृद्धत्वेबकइत्येवं प्रतीतोतिप्रियःपितुः ॥
चपलोतीवबालत्वे निसर्गादेवमद्रक ॥ ४२ ॥ अथमारकतंलिङ्गं देवतामन्दिरात्पितुः ॥ चापल्याद्बालभावाच्चापहृत्य
निहितम्मया ॥ ४३ ॥ घृतस्यकुम्भेसंक्रान्तौ मकरस्योत्तरायणे ॥ अथप्रातर्व्यतीतायां निशियावत्पितामम ॥ ४४ ॥
निर्माल्यापनयंचक्रे तावच्छून्यंशिवालयम् ॥ निशाम्यकान्दिशीकोमां पप्रच्छमधुरस्वरम् ॥ ४५ ॥ वत्साद्यैवत्वया
लिङ्गं नूनंविनिहितंवद ॥ दास्यामिवाञ्छितंयत्तेभक्ष्यमन्यत्तवेप्सितम् ॥ ४६ ॥ ततोमयाबालभावाद्भक्ष्यलुब्धेनतत्पि
तुः ॥ घृतकुम्भान्तरात्कृष्य मद्रलिङ्गंसमर्पितम् ॥ ४७ ॥ अथकालेतुसम्प्राप्ते प्रमृतोहंनृपालये ॥ जातोजातिस्मरस्ततो

चञ्चल था ॥ ४१ । ४२ ॥ इसके अनन्तर मरकतमणिवाले शिवजी के लिंगको पिताके देवमन्दिर से लेकर मैंने चञ्चलता व शिशुता से उत्तरायण मकरकी स-
क्रान्तिमें घीके घड़े में डालदिया इसके बाद रात बीतनेपर प्रातःकाल जबतक मेरे पिताने ॥ ४३ । ४४ ॥ निर्माल्यको दूर किया तबतक शिवालयको शून्य देख
रहेहुये उनने मीठे स्वरसे मुझसे पूछा ॥ ४५ ॥ कि हे वत्स ! आज निश्चयकर तुमने लिंगको धराहै कहिये जो तुम्हारा चाहाहुआ भोजन या और तुम्हारा अभिलाप
… मैं दूंगा ॥ ४६ ॥ तदनन्तर शिशुता से भोजनके लालचवाले मैंने घीके घड़े के भीतर से खींचकर उस कल्याणकारी लिंगको पिताको देदिया ॥ ४७ ॥

इसके अनन्तर काल प्राप्तहोनेपर मैं मरगया व हे तात ! राजाके मन्दिर में जातिके स्मरणवाला मैं आनर्त देशके स्वामीका पुत्र पैदाहुआ ॥ ४८ ॥ घीके व घडेके संयोग से शिशुता व अज्ञानसेभी मकरराशि में सूर्यके टिकने पर घृतकम्बल के माहात्म्यसे मैं जातिस्मरण करनेवाला हुआ ॥ ४९ ॥ तदनन्तर पूर्वजन्मको स्मरण करतेहुये मैंने शिवलिंग को भलीभांति थापन किया व तब से लगाकर मैं घृतसे आच्छादन करताथा ॥५०॥ और पिता, पितामहवाली राज्यको पाकर मैं शक्तिके अनुसार प्रजापालन करताथा तदनन्तर प्रसन्न होकर पार्वतीजी के पति सदाशिवजीने मुझसे कहा ॥ ५१ ॥ कि पहले जन्ममें घृतकम्बलवाली पूजासे प्रसन्न होकर मैंने

तआनर्ताधिपतेस्सुतः॥४८॥घृतकम्बलमाहात्म्यान्मकरस्थेदिवाकरे ॥ अपिबाल्यादवज्ञानात्संयोगाद्घृतकुम्भयोः ॥ ४९ ॥ ततस्संस्थापितंलिङ्गं प्राग्जन्मस्मरतामया ॥ ततःप्रभृतिलिङ्गानि घृतेनाच्छादयाम्यहम् ॥ ५० ॥ पितृपैता महंप्राप्य राज्यंशक्त्यनुरूपतः ॥ ततःप्रसन्नोभगवान् पार्वतीपतिराहमाम् ॥ ५१ ॥ पूर्वजन्मनितुष्टोहं घृतकम्बलपू जया ॥ प्रयच्छामिस्मतेराज्यमधुनाभिमतंवृणु ॥ ५२ ॥ ततोमयावृतःप्रादाद्गाणपत्यंसदीप्सितम् ॥ कैलासेमांशि वोनित्यं सन्तुष्टःप्राहचेतिमाम् ॥ ५३ ॥ तेनैवहिशरीरेणप्रणतंपुरतःस्थितम् ॥ अद्यप्रभृतिसंक्रान्तौ मकरस्यापरोपि यः ॥ ५४ ॥ घृतेनपूजांकर्त्तासौ भावीममगणःस्फुटम् ॥ इत्युक्त्वामांशिवोभद्र गणकोटीश्वरंव्यधात् ॥ ५५ ॥ प्रतीप पालकन्नाम संस्थितंशिवशासने ॥ ततःकामादिभिःषड्भिःपदैश्चङ्क्रमणात्मिकाम् ॥ ५६ ॥ निसर्गचपलाम्प्राप्य भ्रम

तुमको राज्य दिया इससमय अभिलाषित वस्तु को मांगिये ॥ ५२ ॥ तदनन्तर मुझसे मांगेहुये शिवजी ने गणपति होनेवाले मेरे मनोरथको मुझे दिया व कैलास में नित्यही प्रसन्न शिवजी ने उसी शरीरसे प्रणाम कियेगयेव आगे खड़ेहुये मुझ से यह कहा कि आजसे लगाकर मकरकी संक्रान्ति मे और भी जो मनुष्य ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ घृतसे पूजन करैगा वह मेरा गण होगा यह प्रकटतासे मुझसे कहकर शिवजीने कल्याणकारक कोटिगणों का स्वामी किया ॥ ५५ ॥ व शिवजी की आज्ञा में टिकेहुये मुझको प्रतीपनाम पालक किया तदनन्तर कामादिक छह चरणोंसे बहुत चलनेवाली ॥ ५६ ॥ व स्वभावही से चञ्चल उस लक्ष्मी को भ्रमरी की नाईं

पाकर दैवयोग से उसके धारनेमें मैं समर्थ न हुआ ॥ ५७॥ उस समय चारणकी नाई मस्त व अत्यन्तही गर्वित तथा कार्य, अकार्यके विचारसे छूटाहुआ मैं घूमने
लगा ॥ ५८ ॥ विद्या, कुलीनता व उस लक्ष्मीको यथायोग्य पाकर मनुष्य विपत्तियोंकी पात्रता को प्राप्तहोता है जैसे कि नदियों की पात्रताको समुद्र प्राप्त होताहै॥
५९ ॥ इसके अनन्तर कुछ समय बीतनेपर इच्छापूर्वक घूमताहुआ मैं बर्फकी राशिसे छिपेहुये कन्दराओंवाले (हिमवान्) पर्वत पै गया ॥ ६० ॥ वहां स्त्रीसमेत
गालवमुनि तप करतेथे जोकि सदैव तेज तपस्यासे दुबलेथे व जिनकी नसें देखपड़तीथीं ॥ ६१ ॥ क्योंकि ब्राह्मणका यह शरीर इस लोकमें फलदायक नहीं है

रीमिवतांश्रियम् ॥ नैवालममवंतस्या धारणेदैवयोगतः ॥ ५७ ॥ विचचारतदामत्तः किलाहञ्चारणोयथा ॥ कृत्याकृ
त्यविचारेण विमुक्तोतीवगर्वितः ॥ ५८ ॥ विद्यामभिजनंलक्ष्मींप्राप्यताञ्चनरोयथा ॥ आपदांपात्रतामेति सिन्धूनामि
वसागरः ॥ ५९ ॥ अथकालेव्यतिक्रान्ते किञ्चिन्मात्रेयदृच्छया ॥ विचरन्नगमंशैलं हिमानीरुद्धकन्दरम् ॥ ६० ॥
तपस्यतिमुनिस्तत्र गालवोभार्ययासह ॥ सदैवतीव्रतपसाकृशोधमनिसन्ततः ॥ ६१ ॥ ब्राह्मणस्यहिदेहोयं नैवैहिक
फलप्रदः ॥ कृच्छ्रायतपसेचेह प्रेत्यानन्त्यसुखायच ॥ ६२ ॥ तस्यभार्यातिरूपेण विजिग्येविश्वमेवहि। तन्वीश्यामा
मृगाक्षीसा पीनोन्नतपयोधरा ॥ ६३ ॥ हास्यगद्गदसम्भाषामत्तमातङ्गकामिनी ॥ विस्तीर्णजघनामध्यक्षामादीर्घशि
रोरुहा ॥ ६४ ॥ निम्नानाभिर्निधात्रैषा निर्मितासन्दिदृक्षुणा ॥ विकीर्णमिवसौन्दर्यमेकपात्रमिवस्थितम् ॥ ६५ ॥ ततो
विनीतस्तांवीक्ष्य मद्गालववल्लभाम् ॥ अहमासंशरव्रातैस्ताडितःपुष्पधन्वना ॥ ६६ ॥ विवेकिनोपिमुनयस्तावदे

किन्तु यहां कष्ट व तपस्या के निमित्त और मरकर अमित सुखके लियेहै ॥ ६२ ॥ उसकी स्त्रीने बड़ेरूपसे संसारको जीतलियाथा जोकि सूक्ष्म अंगोंवाली व श्यामा
(सोलहवर्ष की) और मृगनयनी और वह स्थूल व ऊंचे स्तनोंवालीथी ॥ ६३ ॥ व जोकि हास्यसंयुत गद्गद सम्भाषणवाली व मस्तीलेहाथी के समान चालवाली
तथा चौड़े जङ्घोंवाली और पतली कटिवाली थी और जिसके बाल लम्बे थे ॥ ६४ ॥ व जिसकी तोंदी गहरी थी फैलीहुई सुन्दरता को मानो एकही पात्रमें
स्थित भलीभांति देखनेकी इच्छावाले ब्रह्माने इसको रचाहै ॥ ६५ ॥ तदनन्तर हे कल्याणरूप! नम्रतासंयुत मैं गालवकी स्त्रीको देखकर कामदेव करके शरसमूहों

से ताड़ित हुआ ॥ ६६ ॥ ज्ञानीभी मुनिलोग तभीतक ज्ञानी होतेहैं जबतक कि मृगनयनियों के कटाक्षों से नहीं देखेजातेहैं ॥६७॥ उससमय उसको हरनेकी इच्छा वाले मैंने यही चित्तमें विचार किया कि मुनिकी तपस्यासे रक्षित इस स्त्रीको जो मैं हरूंगा ॥ ६८ ॥ और यदि इसके लिये मुनि शाप देवैं तो उसमें मेरा अनादर होगा या यह स्त्री मेरी मृत्यु है ॥ ६९ ॥ इस लिये सेवामें तत्पर मैं इस मुनिका शिष्य होऊं और समय पाकर हरूंगा इसके योग्य यह स्त्री नहीं है ॥ ७० ॥ ऐसा विचार कर विद्यार्थी के रूपमें प्राप्त होकर होनहार प्रयोजन से प्रेरणा किया हुआ मैं गालवजी को प्रणामकर यह वचन बोला ॥ ७१ ॥ वैसीही बुद्धि व वैसाही

धविवेकिनः ॥ यावन्नहरिणाक्षीणामपाङ्गैरभिलक्षिताः ॥ ६७ ॥ मयाऽव्यवसितंचित्ते तदानींतांजिहीर्षुणा ॥ इतिचेति हरिष्यामि तपसारक्षिताम्मुनेः ॥ ६८ ॥ अस्याःकृतेयदिशपेन्मुनिस्तत्रपराभवः ॥ ममभावीभवेदेषा भार्यामृत्युर्ममा पिवा ॥ ६९ ॥ तस्माच्छिष्योभवाम्यस्य शुश्रूषानिरतोमुनेः ॥ प्राप्यान्तरंहरिष्यामि नास्ययोग्येयमङ्गना ॥ ७० ॥ इ तिव्यवस्यविद्यार्थिमूर्त्तिमास्थायगालवम् ॥ नमस्कृत्यवचोवोचमितिभाव्यर्थनोदितः ॥ ७१ ॥ तथामतिस्तथामि त्रं व्यवसायस्तथान्नृणाम् ॥ भवेदवश्यंतद्भावि यथापुम्भिःपुराकृतम् ॥ ७२ ॥ नमस्येचेतनंब्रह्म प्रत्यक्षंगालवाख्य या ॥ अविद्याकृष्णसर्प्पेण दष्टंतद्विषपीडितम् ॥ ७३ ॥ उपदेशमहामन्त्रैर्मांजाङ्गुलिकजीवय ॥ महामोहमहावृ क्षो हृदावापसमुत्थितः ॥ ७४ ॥ त्वद्वाक्यतीक्ष्णधारेण कुठारेणक्षयंव्रजेत ॥ अपवर्गपथव्यापी मूढसंसर्गसेचनः ॥ ७५ ॥ छिद्यतांसूत्रधारेण विद्यापरशुनाधुना ॥ भजामितवशिष्योहं वरिवस्यापरश्चिरम् ॥ ७६ ॥ समिद्दर्भःफलंपुष्पं

मित्र और वैसाही मनुष्यों का उद्यम होता है व अवश्यकर वही होनहार होवै है जिस प्रकार कि पुरातन समय मनुष्यों से किया गयाहै ॥ ७२ ॥ हे विषवैद्य ! गालवनाम से दृष्टिगोचर चेतन ब्रह्मको मैं प्रणाम करताहूं अविद्यारूपी काले साप से काटे व उसके विषसे दुःखित मुझको शिक्षारूपी महामन्त्रों से जिलाइये हृदय रूपी थाल्हा में उपजाहुआ महामोहरूपी बड़ा भारी वृक्ष ॥ ७३ । ७४ ॥ तुम्हारे वचनरूप तेज़धारवाले फरसे से नाश होजायगा जो वृक्ष कि मोक्षमार्ग में व्याप्त व मूर्ख के सङ्ग से सींचा गयाहै ॥ ७५ ॥ उसको इस समय सूत्ररूपी धारवाले विद्या रूप फरसे से काटिये सेवा में तत्पर होकर तुम्हारा शिष्य मै बहुत दिनों तक सेवा

करूंगा ॥ ७६ ॥ और समिधा, कुश, फल व फूल, लकड़ियां और जल लाऊंगा मुझ प्राप्त हुये को ग्रहण करिये ॥ ७७ ॥ इस प्रकार पुरातन समय बकनामक व बगुला के से आचरणवाले मेरे ऊपर उस समय कोमलता में प्राप्त मुनिने अनुग्रह किया ॥ ७८ ॥ तदनन्तर अत्यन्तही नम्रहोकर मैं ब्राह्मणी से संयुत उसके विश्वास के लिये दिन २ बहुत दृढ़तापूर्वक प्रसन्न करता रहा ॥ ७९ ॥ और स्त्रीचरित्र को जाननेवाला व पात्रभूत स्त्री को जानता व न विश्वास करता हुआ वह ब्राह्मण मुनि उस स्त्री को गोद में करके सोताथा ॥ ८० ॥ इस के अनन्तर अन्य दिन में वह ब्राह्मणी रजस्वला हुई इससे मेरे विश्वास के कारण रात्रि में वह तपस्विनी अलग

दारूणिजलमेवच ॥ आहरिष्येतुगृह्णीष्व विनीतंमामुपस्थितम् ॥ ७७ ॥ इत्थंपुराबकाभिख्यं बकवृत्तिमुपाश्रितम् ॥ तदार्जवेकृतमतिरनुजग्राहमाम्मुनिः ॥ ७८ ॥ ततोतीवविनीतोहं भूत्वातंब्राह्मणीयुतम् ॥ विश्वासनायसुदृढं तोषयामिदिनेदिने॥७९॥ सचजानन्मुनिःपत्नीं पात्रभूतामविश्वसन् ॥ स्त्रीचरित्रविदङ्केतां विधायस्वपितिद्विजः॥८०॥ अथान्यस्मिन्दिनेसाभूद्ब्राह्मण्यथरजस्वला ॥ तत्पृथक्शायिनीरात्रौ विश्वासान्मेतपस्विनी ॥ ८१ ॥ इदमन्तरमित्येव विचिन्त्याहंप्रहर्षितः ॥ मलिम्लुचाकृतिर्भूत्वा निशीथेतामथाहरम् ॥ ८२ ॥ विललापतदाबाला ह्रियमाणामयोच्चकैः ॥ मैवमेवमितिज्ञात्वा मांस्वरेणाब्रवीन्मुनिम् ॥ ८३ ॥ बकवृत्तिरयंदुष्टो धर्मकञ्चुकमाश्रितः ॥ हरतेमांदुराचारस्तस्मात्त्वंरक्षगालव ॥ ८४ ॥ तवशिष्यःपुराभूत्वा कोप्येषोद्यमलिम्लुचः ॥ मांजिहीर्षतितद्रक्ष शरण्यशरणंभव ॥ ८५ ॥ तद्वाक्यसमकालंस प्रबुद्धोगालवोमुनिः ॥ तिष्ठतिष्ठेतिमामुक्त्वा गतिस्तम्भंव्यधान्मम ॥ ८६ ॥ ततश्चिन्ताकृति

सोरही ॥ ८१ ॥ यही समय है यह विचार कर मैं प्रसन्न हुआ व चोर के आकारवाला होकर आधीरात को मैंने उसको हरलिया ॥ ८२ ॥ तब मुझसे हरी जाती हुई उस स्त्री ने ऐसा मत ऐसा मतकर इसतरह विलाप किया व मुझको जानकर मुनि से कहा ॥ ८३ ॥ कि हे गालवजी ! धर्मकी कवचमें आश्रित होकर दुष्ट आचरणवाला यह बगुले के से बर्तावबाला दुष्ट मुझको हरताहै इसलिये तुम रक्षाकरो ॥ ८४ ॥ पहले तुम्हारा शिष्य होकर कोई भी यह चोर आज मुझको हरताहै इससे रक्षा कीजिये व शरणागत के रक्षक होवो ॥ ८५ ॥ उसके वचनहीके समान समय में वे गालवमुनि जगे व खड़े हो २ ऐसा मुझ से कहकर मेरी चाल को

रोंकदिया ॥ ८६ ॥ तदनन्तर मुनिसे रोंकाहुआ मैं चिन्ता से संयुत आकारवाला हुआ व लज्जित मैं प्रसिद्ध मैं लाजसे अपने अंगोंमें पैठासा जाताथा ॥ ८७ ॥ तदनन्तर क्रोधितहो मेरे पास आकर गालव ने वज्रके समान असह्य उस वचन को मुझ से कहा कि जिससे मैं बगुलाहुआ ॥ ८८ ॥ गालवजी बोले कि बगुलेके ऐसे बर्तावमें वर्तमान होकर मैं जिसलिये तुझसे छलागया उसीकारणसे हे नीचनर ! तुम बहुत समयतक बगुला होगे ॥ ८९ ॥ अधर्ममें प्राप्त मैं इसप्रकार मुनिसे शापितहुआ जो मैं कि पराई स्त्रीमें स्नेह करताहुआ इस अनर्थको प्राप्तहुआ ॥ ९० ॥ संसार में ऐसी कुछ आयुर्बल न्यूनकारक वस्तु नहीं है जैसा कि यहां पराई स्त्रीका

रहंस्तम्भितोमुनिनाभवम् ॥ व्रीडितःप्रविशामीव स्वाङ्गानिकिललज्जया ॥ ८७ ॥ ततःप्रकुपितःप्राह मामभेत्याथ गालवः ॥ तद्वज्रदुःसहंवाक्यं येनाहमभवंबकः ॥ ८८ ॥ गालव उवाच ॥ बकवृत्तिमुपाश्रित्य वञ्चितोहंयतस्त्वया ॥ तस्माद्बकस्त्वंभविता चिरकालंनराधम ॥ ८९ ॥ इतिशप्तोहमभवं मुनिनाधर्म्ममाश्रितः ॥ परदारेरमन्योहमनर्थमिममागतः ॥ ९० ॥ नहीदृशमनायुष्यं लोकेकिञ्चनविद्यते ॥ यादृशंपुरुषस्येह परदारोपसेवनम् ॥ ९१ ॥ ततःसतीमत्संस्पर्शदूषिताङ्गीतपस्विनी ॥ मयाविमुक्तास्नात्वामां तथैवानुशशापह ॥ ९२ ॥ एवंताभ्यामहंशप्तोश्वत्थपर्णोपमोभयात् ॥ कम्पमानःप्रणम्योभाववोचंतत्रदम्पती ॥ ९३ ॥ गणोहमीश्वरस्यैव दुर्विनीततरोयुवा ॥ विरोधएवकुरुतो भगवन्तावनुग्रहम् ॥ ९४ ॥ नवनीतमिवप्रोक्तं हृदयंहिद्विजन्मनाम् ॥ प्रकुप्यन्तिप्रसीदन्ति क्षणेनापिप्रसादिताः ॥ ९५ ॥ त्वयिविप्रप्रपन्नस्य त्वमेवशरणंमम ॥ भूमौस्खलितपादानां भूमिरेषावलम्बनम् ॥ ९६ ॥ गणाधिपत्यमपिमे

समीप सेवन है ॥ ९१ ॥ तदनन्तर मेरे छूनेसे दूषित अंगोंवाली वह तपस्विनी पतिव्रता मुझ से छूटकर नहाकर वैसेही मुझको शाप देतीभई ॥ ९२ ॥ इसप्रकार उन दोनोंसे शापित होकर डरसे पीपलके पत्तेके समान कांपताहुआ मैं प्रणामकर वहां दोनों स्त्री पुरुषोंसे बोला ॥ ९३ ॥ कि नम्रतारहित व विनय से हीन युवावस्था वाला मैं शिवही का गणहूं आप दोनों विरोधही में दयाकीजिये ॥ ९४ ॥ ब्राह्मणोंका हृदय नैनूका ऐसा कहागयाहै क्योंकि वे क्रोधित होतेहैं व क्षणहीभर मे प्रसन्न करायेहुये वे प्रसन्नहोजाते है ॥ ९५ ॥ हे विप्रजी ! आपकी शरणमें प्राप्तहुये मेरे आपही रक्षकहैं क्योंकि भूमिमें लरखरायेहुये चरणोंवाले जनोंकी भूमिही सहारा होती

है ॥ ६६ ॥ गर्वोंकी स्वामिता भी मुझको तिरस्कार का स्थान है दुष्ट विनयवाले मनुष्य की सम्पत्तियां विपत्ति के अन्तवाली होती हैं ॥ ६७ ॥ इसप्रकार भली
भांति वे पुरुष जानते हैं जोकि विवेकी हैं और आत्मा के ज्ञान विना नीचजन दोनों वस्तुओं को नहीं जानते हैं ॥ ६८ ॥ दुष्ट विनयवाला पुरुष स्त्री, ऐश्वर्य
व विद्याको पाकर बहुत समयतक स्थान पै नहीं टिकता है जैसे कि अहंकारसे गर्वित मैं हुआ ॥ ६६ ॥ विद्याका मद व धनका गर्व और तीसरा कुलीनता का
गर्व मदान्ध मनुष्योंके ये मदहोतेहैं और येही सज्जनोंके शान्तिकारक होतेहैं॥१००॥नहीं जीतेहुये चित्तवाले जिन मनुष्योंकी बुद्धि भविष्यत्कालके फलसे शोभित नहीं

जातंपरिभवास्पदम् ॥ विपदन्ताहिजायन्ते दुर्विनीतस्यसम्पदः ॥ ९७ ॥ विदुरेवंविधंसम्यक् पुरुषायेविवेकिनः ॥ नै
वोभयंविदुर्नीचा विनानुभवमात्मनः ॥ ९८ ॥ दुर्विनीतःस्त्रियंप्राप्य विद्यामैश्वर्यमेवच ॥ नतिष्ठतिचिरंस्थानं यथा
हं मदगर्वितः ॥ ९९ ॥ विद्यामदोधनमदस्तृतीयोभिजनोमदः ॥ एतेमदामदान्धानामेतएवसतान्दमाः ॥ १०० ॥
नोदर्कशालिनीबुद्धिर्येषामविजितात्मनाम् ॥ श्रियश्चचपलास्तेर्हिनीयन्तेमादृशैर्जनैः ॥ १ ॥ तत्प्रसीदमुनिश्रेष्ठ शापा
न्तंमेधुनाकुरु॥दुर्विनीतेष्वपिसदा नम्रासाराहिसाधवः ॥२॥ इत्थं०यवस्यविज्ञप्तो विनीतेनापिवैमया ॥ प्रसादप्रवणोभू
त्वा शापान्तंमेतदा०यधात् ॥ ३ ॥ छन्नकीर्तिसमुद्धारसहायस्त्वंभविष्यसि ॥ यदेन्द्रद्युम्नभूपस्यतदामोक्षमवाप्स्य
सि ॥ ४ ॥ इत्यहंमुनिशापेन तदाप्रभृतिपर्वते ॥ हिमाचलेबकोभूत्वा काश्यपेयोवसामिच ॥ ५ ॥ राज्यंचिरायु
रितिमे घृतकम्बलस्य जातिस्मरत्वमधुनापि तथानुभावात् ॥ शापाद्बकत्वमभवन्मुनिगालवस्य तद्भद्र सर्वमुदितं

होतीहै उन्हीं मेरे समान पुरुषों से लक्ष्मी चञ्चलता में प्राप्त कीजाती हैं ॥ १ ॥ इस लिये हे मुनिश्रेष्ठ ! प्रसन्न होवो व इस समय मेरे शापका अन्त कीजिये क्यों
कि नम्रतारहित पुरुषों में भी साधुलोग दमाके सारांशवाले होतेहैं ॥ २ ॥ ऐसा यत्नकरके नम्रतासंयुत भी मुझसे विज्ञापित (खुशामद कियेहुये) उन गालव
मुनिने उस समय प्रसन्नता की ओर झुककर मेरे शापका अन्त किया ॥ ३ ॥ कि जब इन्द्रद्युम्न राजाके नष्टहुये यशके उधारने में तुम सहाय होगे तब मोक्ष पावोगे॥
४ ॥ इस प्रकार मुनिके शापसे कश्यपका पुत्र मैं तब से लगाकर बगुला होकर हिमाचल पर्वत पै बसता हूं ॥ ५ ॥ हे कल्याणरूप ! राज्य व इस भांति मेरी बहुत

दिनोंतक आयुर्बल और वैसेही इस समय भी जातिका स्मरण होना घृतकम्बल के प्रभावसे है व गालवमुनि के शापसे बगुलापन हुआ आपने आज जो कुछ पूंछा वह सब कहागया ॥ १०६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांमहीप्रादुर्भावेपञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

दो० । घुघुवा इन्द्रद्युम्न सन कह्यो अपन सब हाल । सो छठवें अध्यायमें वर्णित कथा रसाल ॥ नारदजी बोले कि नाड़ीजङ्घनामक बगुले से कहाहुआ वचन सुन कर मार्कण्डेय समेत राजा बड़े दुःखी हुये ॥ १ ॥ व उस वचन को सुनकर तुल्य दुःखवाले गालवमुनि ने आंसुवों समेत आंखोंवाले व दुःखित राजाको देखकर फिर उनके लिये बगुलेसे कहा ॥२॥ कि हे महाभाग, पक्षिन् ! आशाको करके हमदोनों तुम्हारे समीप आयेथे और यह इन्द्रद्युम्न ऐसा राजा हम तुम दोनोंको बहुत

भवतायं पृष्टम् ॥ १०६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे कुमारिकाखण्डे महीप्रादुर्भावे पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

नारदउवाच ॥ नाडीजङ्घबकेनोक्तांवाचमाकर्ण्यभूपतिः ॥ मार्कण्डेयेनसंयुक्तो बभूवातीवदुःखितः ॥ १ ॥ तन्निशम्यमुनिर्भूपं दुःखितंसाश्रुलोचनम् ॥ समानव्यसनःप्राहतदर्थंसपुनर्बकम् ॥ २ ॥ विधायाशांमहाभाग त्वदन्तिकमुपागतौ ॥ आवाञ्चिरायुर्ज्ञात्वासाविन्द्रद्युम्नइतिद्विजः ॥ ३ ॥ निष्पन्नंनास्यतत्कार्य्यं प्राणान्नेष्यतिसंक्षयम् ॥ वह्निप्रवेशनपरं वैराग्यंसमुपागतः ॥ ४ ॥ तन्मामुपागतोहञ्चत्वांसिद्धंनास्यवाञ्छितम् ॥५॥ तदेनमनुयास्यामि मरणेनत्वयाशपे ॥ आशांकृत्वाभ्युपाघातं निराशन्नेक्षितुंसमाः ॥ ६ ॥ जीवन्तिसाधवस्तस्माज्जीवितान्मरणंवरम् ॥ प्रार्थितंचामुनाहृत्स्थं मयाचास्मैप्रतिश्रुतम् ॥ ७ ॥ त्वांमित्रंतत्परिज्ञाने धृत्वाहृदिचिरायुषम् ॥ असम्पादयतोनार्थः प्रतिज्ञात

आयुर्बलवाले जानकर आयाथा ॥ ३ ॥ और इसका वह कार्य नहीं सिद्धहुआ इससे प्राणोंको नाशमें प्राप्तकरैगा क्योंकि अग्निप्रवेशपरायण वैराग्यको यह प्राप्तहुआ है ॥ ४ ॥ इसीलिये यह मेरे समीप आयाथा और मैं तुम्हारे पास आया परन्तु इस का मनोरथ नहीं सिद्धहुआ ॥ ५ ॥ इससे मृत्यु करके मैं इसका अनुगामी हूंगा यह तुम्हारी सौगन्द करताहूं क्योंकि आशाको नाशकरके निराश पुरुष को देखने के लिये समदर्शी सज्जनलोग नहीं जीतेहैं इस कारणसे जीनेसे मरना उत्तम है और इसने हृदय में टिकीहुई बातकी प्रार्थना किया व मैंने इससे प्रतिज्ञा कियाथा ॥ ६ । ७ ॥ और उसके जानने में तुझ मित्रको हृदयमें दीर्घ आयुर्बलवाला जानकर

यहां आयाथा व प्रतिज्ञा कीहुई वस्तुको न सिद्ध करतेहुये मेरा आयुर्बल से प्रयोजन नहीं है ॥ ८ ॥ हे मित्र ! इस समय याचकों की आशा न पूर्ण करनेवाले
पापके कारण प्रतिज्ञा कियेहुये मेरी प्रशंसा प्राणोंके त्यागने से है ॥ ९ ॥ व हरिश्चन्द्रकी नाई सत्यप्रतिज्ञा होना मनुष्यों के मध्यमें प्रशंसित नहीं है मित्रोंमें स्नेहका
कम होताहै और वह मित्र साप्तपद कहागया है ॥ १० ॥ वह स्नेह कैसा है कि जिसमें मित्र दुःखित देखाजाता है ऐसा देखताहुआ मैं यशरूपी शरीरके लिये इसके
समेत अग्निसाधन करूंगा हे मित्र ! यह सत्य कहताहूं मुझको आज्ञादीजिये हे पक्षियों में उत्तम, महाभाग, नाडीजङ्घ ! मेरे साथ यह तुम्हारा दर्शन पिछला

**म्ममायुषा ॥ ८ ॥ कलुषेणार्थिनामाशापूरकेणसखेधुना ॥ प्रतिश्रुतकृतःश्लाघ्या ह्यसूनांत्यजतश्चमे ॥ ९ ॥ हरिश्च
न्द्रस्येवनृणां नश्लाघ्यासत्यसन्धता ॥ मित्रेस्नेहस्यपर्यायस्तच्चसाप्तपदंस्मृतम् ॥ १० ॥ स्नेहस्सकीदृशोमित्रंदुःखि
तोयत्रदृश्यते ॥ एवंपश्यन्नहंसाकममुनावह्निसाधनम् ॥ ११ ॥ करिष्येकीर्तिवपुषः कृतेसत्यमिदंसखे ॥ अनुजानी
हिमामेतद्दर्शनंतवपश्चिमम् ॥१२॥ मयासहमहाभाग नाडीजङ्घद्विजोत्तम ॥१३॥ नारदउवाच ॥ वज्रवद्दुस्सहांवाचं
मार्कण्डेयसमीरितम् ॥ शुश्रावसक्षणंध्यात्वा प्रतीतःप्राहताबुभौ ॥१४॥ नाडीजङ्घउवाच ॥ यद्येवन्तादिमंमित्रं निश
न्तंज्वलनेधुना ॥ निवारयमुनिश्रेष्ठ मत्तोस्तिचिरजीवितः ॥ १५ ॥ प्राकारकर्णनामासावुलूकःशिवपर्वते ॥ सज्ञा
स्यतिमहीपालमिन्द्रद्युम्नमसंशयम् ॥ १६ ॥ तस्मादहंत्वयासार्द्धममुनाचशिवालयम् ॥ व्रजामितंशिखरिणां मि
त्रकार्यप्रसिद्धये ॥ १७ ॥ इतीदमुक्त्वातेजग्मुस्त्रयोपिद्विजपुङ्गवाः ॥ कैलासंददृशुस्तत्र तमुलूकंस्वनीडगम् ॥ १८ ॥ कृ**

है॥११।१२।१३॥ नारद बोले कि मार्कण्डेयसे कहेहुये वज्रके समान असह्यवचन उसने सुना व क्षणभर ध्यानकर प्रसन्नहो उन दोनोंसे कहा ॥ १४ ॥ नाडीजङ्घ बोला
कि यदि ऐसा है तो हे मुनिश्रेष्ठ ! इससमय अग्निमें पैठतेहुये इस मित्रको मना करिये क्योंकि प्राकारकर्णनामक यह घुघुवा मुझसे बड़ी उमरवाला शिवपर्वत
(कैलास) पै है वह इन्द्रद्युम्न राजाको निस्सन्देह जानैगा ॥ १५ । १६ ॥ इस लिये मित्रकार्य की सिद्धिके निमित्त तुम्हारे व इसके साथ मैं उस शिवजी के स्थान
वाले पर्वत पै जाऊंगा ॥ १७ ॥ इस तरह यह कहकर वे तीनोंभी द्विजोत्तम कैलासपर्वत को गये वहां अपने घोंसले में प्राप्त उस घुघुवेको देखा ॥ १८ ॥ इस

घुघुवे ने उस बगुला से सम्भाषण किया व स्वागत याने अच्छीतरह के आने के प्रश्नसे पूँछा तब उन दोनों ने होनेवाले मनोरथ को कहा ॥ १९ ॥ कि तुम दीर्घ आयुवाले हो क्या इन्द्रद्युम्न राजाको जानतेहो उलूक बोला कि पृथ्वीमें मुझको पैदाहुये अट्ठाईस कल्पहुयेहैं ॥२०॥ और यह इन्द्रद्युम्न राजा पृथ्वीमें न देखागया न सुनागया उसकी उस बडी आयुर्बल को सुनकर राजा विस्मय में प्राप्तहुआ ॥ २१ ॥ व उस समय दुःखी हुआ और इसने उसकी आयुर्बल का कारण पूंछा कि यदि तुम्हारा ऐसा आयुर्बल है तो तुमको कैसे प्राप्तहुआ उसको कहिये ॥ २२ ॥ और अत्यन्तही निन्दित यह घुघुवापन कैसे हुआ उलूक बोला कि हे कल्याणरूप!

तसंविदसौतेन बकःस्वागतपूजया ॥ पृष्टश्चतावुभौप्राह तत्सर्वम्भाविवाञ्छितम् ॥ १९ ॥ चिरायुरसिजानीषे त्वमिन्द्रद्युम्नकंनृपम् ॥ उलूकउवाच ॥ अष्टाविंशत्प्रमाणामे कल्पाजातस्यभूतले ॥ २० ॥ नदृष्टोनश्रुतोवासाविन्द्रद्युम्नो नृपःक्षितौ ॥ तच्छ्रुत्वाविस्मितोभूपस्तस्यायुरतिमात्रतः ॥ २१ ॥ दुःखितोभूत्तदाहेतुं पप्रच्छासौतदायुषः ॥ एवमायुर्यदितव कथंप्राप्तंब्रवीषितत् ॥ २२ ॥ उलूकत्वंकथमिदंजुगुप्सितमतीवच ॥ उलूकउवाच ॥ शृणुभद्रयथादीर्घमायुर्मेशिवपूजनात् ॥ २३ ॥ जुगुप्सितमुलूकत्वं शापेनचमहामुनेः ॥ वसिष्ठकुलसम्भूतः पुराहमभवंद्विजः ॥ २४ ॥ घण्ट इत्येवविख्यातोवाराणस्यांशिवेरतः ॥ धर्म्मंश्रवणप्रीतश्चसाधूनांसंसदिस्वयम् ॥ २५ ॥ श्रुत्वास्मिपूजयामीशं बिल्वपत्रैरखण्डितैः ॥ नमालतीनमन्दारः शतपत्रन्नमल्लिका ॥ २६ ॥ तथाप्रियाणिश्रीवृक्षो यथामदनविद्विषः ॥ अखण्डबिल्वपत्रेणाप्येकेनशिवमूर्द्धनि ॥ २७ ॥ निहितेननरैःपुण्यंप्राप्यतेलक्षपुष्पजम् ॥ अखण्डितैर्बिल्वपत्रैः श्रद्धयास्वय

सुनिये कि जिसप्रकार मेरे दीर्घआयुर्बल शिवजी के पूजन से हुआ ॥ २३ ॥ व महामुनि के शापसे निन्दित घुघुवापन हुआ है पुरातन समय वसिष्ठके वंशमें उपजाहुआ मैं ब्राह्मणहुआहूं ॥२४॥ जो मैं कि घण्ट इसीनामसे प्रसिद्ध व शिवपूजनमें परायण काशीपुरी में रहताथा और साधुवों की सभामें आपही धर्मके सुनने से प्रसन्न रहताथा ॥ २५ ॥ और सुनकर बिन कटेहुये बिल्वपत्रों से शिवको पूजता था न मालती और न मन्दार व न शतपत्र (कमल) और न चमेली ॥ २६ ॥ उस प्रकार कामदेवके वैरी (शिव) जीको प्रियहै जैसा कि बिल्वका वृक्ष प्याराहै एक भी अखण्डित बिल्वपत्र शिवजी के मस्तक पै धरने से मनुष्योंको लाख फूलों से

उपजाहुआ पुण्य प्राप्तहोता है श्रद्धासे आपही करके लायेहुये अखण्डित बिल्वपत्रों से ॥ २७ । २८ ॥ लिंगका पूजन करके लाख वर्षतक स्वर्गमें बसता है उत्तम शास्त्रों से यह सुनकर मैं शिवजी को श्रद्धासे तीन २ बिल्वके पत्रोंसे त्रिकाल पूजताथा तदनन्तर सौवर्षके अन्तमें चन्द्रभालजी प्रसन्नहुये ॥ २९ । ३० ॥ व प्रत्यक्षहो-कर मेघके समान गम्भीरवाणी करके मुझसे बोले ॥ ३१ ॥ शिवजी बोले कि हे द्विजेन्द्र ! अखण्डित बिल्वपत्रके पूजनसे मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्नहूं जो तुम्हारा मनोरथ हो उसको मांगो मैं दुर्लभभी वस्तुकोदूंगा ॥ ३२ ॥ जिस प्रकार एकभी अखण्डित बिल्वपत्रसे मेरी प्रसन्नता होतीहै उसप्रकार उन करोड़ों बिल्वपत्रों से नहीं होती ॥ ३३ ॥

[illegible] ॥ २८ ॥ लिङ्गप्रपूजनं कृत्वा वर्षलक्षं वसेद्दिवि ॥ सच्छास्त्रेभ्य इति श्रुत्वा पूजयाम्यहमीश्वरम् ॥ २९ ॥ त्रिकालं [illegible] श्रीवत्सस्य त्रिभिस्त्रिभिः ॥ ततो वर्षशतस्यान्ते तुतोष शशिशेखरः ॥ ३० ॥ प्रत्यक्षीभूय मामाह मेघग[illegible] ॥ ३१ ॥ ईश्वर उवाच ॥ तुष्टोस्मि तव विप्रेन्द्राखण्डबिल्वदलार्चनात् ॥ वृणीष्वाभिमतं यत्ते प्रदास्याम्य[illegible] पत्रेण यथा तुष्टिः प्रजायते ॥ एकेनापि भवेत्तेषां तथा न मम कोटिभिः ॥ ३३ ॥ इत्यु[illegible] चराभिस्वरन्देव कुरु मामजरामरम् ॥ ३४ ॥ अथ लीलाविलासो मां तथे[illegible] ॥ ३५ ॥ कृतकृत्यन्तदात्मानं ज्ञातवांश्चाप्यहं क्षितौ ॥ एत[illegible] विचाक्षरार्थवित् ॥ सुदर्शनेति प्रथिता प्रियात[illegible] रूपेणाप्रतिमा भुवि ॥ ३८ ॥ तस्यां त[illegible]

[illegible] मुझको अजर अमर कीजिये ॥ ३४ ॥ इसके अनन्तर [illegible] कृतार्थ जाना इसीसमय [illegible] का ज्ञाता और अन्न- [illegible] रूपसे पृथ्वीमें [illegible] प्रसन्न रहतीथी [illegible] ॥ ३७ ॥ [illegible]

क्रमण याने विद [illegible] उस द्विजने [illegible]
विचारकर उस द्विजने मैं अत्यन्त [illegible]
समय मित्रोंके आगे मैं अत्यन्त [illegible] होतीहुई उप [illegible]
ही विकल मैंने उत्तम अङ्गोंवाली [illegible]

देवलकी कन्याथी ॥ ३८ ॥ उसमें उस देवलसे कन्याहुई जोकि अपने वंशमें विशेषरहित थी वह शिशुता के निवृत्त होनेसे क्रमकरके युवावस्था के सम्मुखहुई ॥ ३९ ॥ गुणों से शोभित उस कन्याको देखने के लिये ब्रह्माके पिताभी न समर्थहुये, अवस्था के मिलापमें याने शिशुता के अलग होने व युवावस्था के आगमन में मैंने उसको देखा ॥ ४० ॥ जोकि यौवन के शरीर में पैठकर निकालेहुये अन्य भावोंसे सुन्दरी व तिलके समान श्याम आखोवाली ॥ ४१ ॥ सखियों के साथ वह खेलतीथी जोकि सुन्दरता की मूर्त्तिसी थी हे कल्याणरूप ! उस उत्तम कटिवाली स्त्रीको देखकर मैंने चिन्तन किया ॥ ४२ ॥ कि यह ब्रह्मा और है जिससे अति-

स्मादभूत्कन्या निर्विशेषानिजान्वये ॥ निवृत्तबालभावाभूत्क्रमात्संयौवनोन्मुखी ॥ ३९ ॥ नालंबभूवतांद्रष्टुं तन यांगुणशालिनीम् ॥ कस्यापिजनकस्साच वयस्सन्धौमयेक्षिता ॥ ४० ॥ प्रविश्ययौवनाभोगे भावैरतिमनोहरा ॥ निर्वास्यमानैरपरैस्तिलसन्तुलिताक्षिभिः ॥ ४१ ॥ क्रीडमानावयस्याभिर्लावण्यप्रतिमेवसा ॥ व्यचिन्तयमहंभद्र ता न्निरीक्ष्यसुमध्यमाम् ॥ ४२ ॥ अनन्याकृतमन्योसौ विधिर्येनातिनिर्मिता ॥ ततस्सात्त्विकभावानां तत्क्षणादस्मिगो चरम् ॥ ४३ ॥ प्रापितोलीलयाहत्य बाणैःकुसुमधन्वना ॥ ततोमयास्खलद्वाचा पृष्टाकस्येतितत्सखी ॥ ४४ ॥ प्राहेति भृगुवंशस्य कन्येयंद्विजजन्मनः ॥ अनूढाद्यापिकेनापि समायातात्रखेलितुम् ॥ ४५ ॥ श्रुत्वैतत्कामदेवस्य शरव्रातै र्भृशंहतः ॥ पितरंप्रणतोगत्वा ययाचेतांभृगूद्वहम् ॥ ४६ ॥ सचमांसदृशंज्ञात्वा शीलेनचकुलेनच ॥ श्रियाचैवार्थिनेम

शय करके बनाईहुई यह सबसे उत्तम कीगईहै तदनन्तर उसीक्षण कामदेव के बाणोंसे लीलाकरके ताड़ित होकर मैं सात्त्विकभावों के दृष्टिगोचर प्राप्त कियागया उसके उपरान्त मुझसे लरखराती हुई वाणीकरके उसकी सखी यह पूंछीगई कि यह किसकी कन्याहै ॥ ४३ । ४४ ॥ उसने यह कहा कि भृगुवंशवाले ब्राह्मण की यह कन्याहै जोकि आजभी किसीसे भी नहीं व्याहीगई है वह यहां खेलनेके लिये भलीभांति आईहै ॥ ४५ ॥ यह सुनकर कामदेव के शरसमूहों से बहुतहीं ताडित मैंने भृगुवंशनायक उसके पिताके समीप जाकर प्रणामकर उस कन्याको मांगा ॥ ४६ ॥ और उनने शील, कुल व लक्ष्मीकरके मुझको तुल्य जानकर पूर्वके क्रमसे

मुझ याचकके लिये वचनसे देदिया ॥ ४७ ॥ तदनन्तर याचना कियेहुये भार्गवको यह कहतेहुये उसने सुना कि उस कुरूप ब्राह्मणके लिये मैं दीगईहूं ॥ ४८ ॥
तब बहुत रोतीहुई उसने मातासे कहा कि देखिये वैसेही कियागया जैसा कि अनुचित करतेहुये जनकने स्वयंवरमें कियाथा ॥ ४९ ॥ विष घोलकर पीऊंगी व
अग्निमें पैठूंगी यह अच्छाहै परन्तु कुरूप पतिका विवाह करनेकेलिये स्त्री किसीप्रकार अच्छी नहीं होती ॥ ५० ॥ तदनन्तर माताने उस कन्याको समझाकर भार्गव
से कहा कि तुमको आग्रह (हठ) से इस कन्याको कुरूप के लिये न देनाचाहिये ॥ ५१ ॥ उसने प्यारीके वचन सुनकर धर्मशास्त्रों को देखकरके कहा कि

ह्यां ददौवाचापुरःक्रमात् ॥ ४७ ॥ ततस्तयायाच्यमानस्य भार्गवस्याशृणोदिति ॥ दत्तास्मितस्मैविप्राय निरूपायेति
जल्पतः ॥ ४८ ॥ रोरूयमाणाजननीमाहपश्यतथाकृतम् ॥ अयोग्यंवैविदधता जनकेनयथावरे ॥ ४९ ॥ विषमालो
ड्ययास्यामि प्रवेक्ष्यामिहुताशनम् ॥ वरन्नतुविरूपस्योद्वोढुंभार्याकथञ्चन ॥ ५० ॥ ततस्संबोध्यजननी तांसुतामाह
भार्गवम् ॥ नदेयास्मैत्वयाकन्या विरूपायेतिचाग्रहात् ॥ ५१ ॥ सवल्लभावचःश्रुत्वा धर्म्मशास्त्राण्यवेक्ष्यच ॥ दत्ताम
पिहरेत्पूर्वां श्रेयांश्चेदाव्रजेद्वरः ॥ ५२ ॥ अर्वाक्शिलाक्रमणतो निष्ठास्यात्सप्तमेपदे ॥ इतिव्यवस्यप्रददावन्यस्मैतां
द्विजस्सुताम् ॥ ५३ ॥ श्वोभाविनिविवाहेतु तच्चसर्वमयाश्रुतम् ॥ ततोतीवविलज्जोहं वयस्यानांपुरस्तदा ॥ ५४ ॥ नश
क्तोवदनंभद्रे तथादर्शयितुन्निजम् ॥ कामार्तोतीवतांसुप्तामुत्तमाङ्गींतदाहरम् ॥ ५५ ॥ नीत्वादुर्गतमेदेशे कृत्वाचोद्वाहि

शिलाक्रमण याने विवाह में पत्थर टालनेके पहले यदि उत्तम वर आवै तो पहले मनसे दीहुई कन्याको भी लेलेवै क्योंकि सप्तपदी होनेपर विवाहकी सिद्धिहोती है
ऐसा विचारकर उस द्विजने अन्यवर के लिये उस कन्याको देदिया ॥ ५२ । ५३ ॥ जब दूसरे दिन विवाह होनेवालाथा तब मैंने उस सब वृत्तान्त को सुना तदनन्तर
उस समय मित्रोंके आगे मैं अत्यन्तही लज्जितहुआ ॥ ५४ ॥ और वैसेही हे कल्याणकारक ! अपना मुख दिखानेकेलिये न समर्थ हुआ उससमय कामदेवसे अत्यन्त
ही विकल मैंने उत्तम अङ्गोंवाली, सोतीहुई उस कन्याको हरलिया ॥ ५५ ॥ व बड़े दुर्गम देशमें लेजाकर व गन्धर्वी विवाह से विवाहवाली ...धिकर तदनन्तर हृदय

में चाहाहुआ मैथुनसेवनकार्य उससमय न चाहतीहुई स्त्रीसे किया इसके अनन्तर प्रातःकालही उसका पिता चरणों के पीछेसे मेरे समीप आकर ॥ ५६ । ५७ ॥ व निवृत्ति (मोक्षपरक) कर्मों से घिरेहुये उन भार्गव द्विजने विवाह कीहुई उस कन्याको देखकर हे कल्याणरूप ! क्रोधितहो उस समय मुझको शापदिया ॥ ५८ ॥ भार्गवजी बोले कि जिसलिये तुमने राक्षस के धर्मसे मेरी कन्याका विवाह कियाहै इससे पापके कारण तुम शीघ्रही राक्षस होवो ॥ ५९ ॥ ऐसा शापित मैंने चरण ग्रहणपूर्वक इसको प्रणामकर आंसूसमेत नेत्रोंकरके गद्गदवचन समेत हाय हाय ऐसाकहा ॥ ६० ॥ तदनन्तर मैंने कहा कि दोषरहित मुझको आप किसलिये ऐसा

कंविधिम् ॥ गान्धर्वेणविवाहेन ततोकार्यंहृदीप्सितम् ॥ ५६ ॥ अनिच्छन्तींतदाबालां बलात्सुरतसेवनम् ॥ अथानुप दमागत्य तत्पिताप्रातरेवमाम् ॥ ५७ ॥ निवृत्तिसंवृतोविप्रस्तांवीक्ष्योद्वाहितांसुताम् ॥ शशापकुपितोभद्र मान्तदा नींसभार्गवः ॥ ५८ ॥ भार्गवउवाच ॥ निशाचरस्यधर्मेणत्वयोद्वोढासुताम्मम ॥ तस्मान्निशाचरःपापाद्भवत्वमवि लम्बितम् ॥ ५९ ॥ इतिशप्तःप्रणम्यैनं पादोपग्रहपूर्वकम् ॥ हाहेतिचाब्रवमहंसाश्रुनेत्रंसगद्गदम् ॥ ६० ॥ ततोहमब्रवंक स्माददोषंमाम्भवानिति ॥ शपतेभवतादत्ता ममवाचापुरासुता ॥ ६१ ॥ सोद्वोढातेमयाकन्या दानंसकृदितिस्मृत म् ॥ सकृज्जल्पन्तिराजानः सकृज्जल्पन्तिचद्विजाः ॥ ६२ ॥ सकृत्प्रदीयतेकन्या त्रीण्येतानिसकृत्सकृत् ॥ प्रतिश्रु तात्वयालब्धा तदाकालमियंमया ॥ ६३ ॥ उद्वोढाचाधुनानाहमुचितश्शापभाजनम् ॥ वृथाकुप्यन्तिमह्यंच भवन्त स्तद्विचार्यताम् ॥६४॥ योदत्त्वाकन्यकांवाचा पश्चाद्धरतिदुर्म्मतिः ॥सयातिनरकंचेति धर्म्मशास्त्रेषुनिश्चितम् ॥ ६५ ॥

शाप देतेहो आपने पहले वाणी से मुझको कन्या दियाथा ॥ ६१ ॥ मैंने उसी तुम्हारी कन्याको ब्याहाहै व ऐसा कहाहै कि दान एकहीबार होताहै व राजा एकही बार कहते हैं और ब्राह्मण एकही बार कहते हैं ॥ ६२ ॥ व कन्या एकही बार दीजातीहै ये तीनों एकही एकबार होतेहैं तुमसे उस समय प्रतिज्ञा कीहुई यह कन्या मुझको मिलीथी ॥ ६३ ॥ व इससमय मने ब्याह किया इससे मैं शापका पात्र योग्य नहींहूं मेरे ऊपर आप वृथा कोप करतेहैं उसको विचारिये ॥ ६४ ॥ जो दुर्बुद्धि

पुरुष वाणी से कन्याको देकर पीछे हरलेता है वह नरकको जाताहै यह धर्मशास्त्रों में निश्चय कियागया है ॥ ६५ ॥ इस मेरे सत्यवचन को सुनकर व हृदयसे विचारकर पश्चात्ताप से संयुक्त इस मुनिने मुझसे यह कहा ॥ ६६ ॥ कि मेरा वचन अन्यथा न होगा तुम घुघुवा होगे हे द्विजोत्तम ! घुघुवाभी निशाचर कहाजाता है ॥ ६७ ॥ व जब इन्द्रद्युम्न के जानने में तुम सहायी होगे तब हे विप्रजी ! अपने स्वरूपको पावोगे उन मुनिने यह मुझसे कहा ॥ ६८ ॥ उनके वचन के समान समय में मेरे यह घुघुवापन हुआहै कि जिसको ब्रह्माके इतने अट्ठाईस दिन हुये हैं ॥ ६९ ॥ पुरातन समय बिल्वपत्रों करके चन्द्रभालजी का बहुत पूजन करनेसे प्र-

तदाकर्ण्यंव्यवस्यासौ तथ्यंमद्वचनंहृदा ॥ पश्चात्तापसमोपेतो मुनिर्मामितिचाब्रवीत् ॥ ६६ ॥ नमेस्यादन्यथा वाक्यमुलूकस्त्वंभविष्यसि ॥ निशाचरोह्युलूकोपि प्रोच्यतेद्विजसत्तम ॥ ६७॥ यदेन्द्रद्युम्नविज्ञाने सहायीत्वंभविष्यसि ॥ तदास्वांप्रकृतिंविप्र प्राप्स्यसीत्यब्रवीत्समाम् ॥ ६८॥ तद्वाक्यसमकालंच कौशिकत्वमिदंमम ॥ एतावन्तिदिनान्यासीदष्टाविंशतिकंविधेः ॥ ६९ ॥ बिल्वीदलैरतिपुराशशिशेखरस्यसम्पूजनेनममदीर्घतरंकिलायुः ॥ सञ्जातमत्रचजुगुप्सितमस्यशापात् कैलासरोधसिनिशाचररूपमासीत् ॥ ७० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेमहीप्रादुर्भावेषष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

उलूकउवाच ॥ इतीदमुक्तमखिलं पूर्वजन्मसमुद्भवम् ॥ स्वरूपमायुषोहेतुः कौशिकत्वस्यचेतिभोः ॥ १ ॥ इत्युक्त्वा विरतेतस्मिन् कौशिकस्यसनामनि ॥ नाडीजङ्घोबकोमित्रमाहतंदुःखितोवचः ॥ २ ॥ नाडीजङ्घउवाच ॥ यदर्थंवयमा

सिद्धमें मेरी बड़ीभारी आयुर्बल है व इनके शापसे यहां कैलासके किनारे पै निन्दित निशाचररूप हुआ है ॥ ७० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेदेवीदयालुमिश्र विरचितायांभाषाटीकायांमहीप्रादुर्भावेषष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥

दो० । वानर शिवहिं भुलाय जिमि नृपति भयो सो आय । सोइ सप्तम अध्यायमें चरित अहै सुखदाय ॥ उलूक बोला कि पूर्वजन्म में उपजाहुआ यह समस्त चरित्र कहागया व हे मित्र ! स्वरूप व आयुर्बल का कारण और घुघुवा होने का वृत्तान्त वर्णन कियागया ॥ १ ॥ यह कहकर जब कौशिक का सनामा यह घुघुवा

चुपारहा तब नाडीजङ्घ बगुला दुःखितहोकर उस मित्रसे वचन बोला ॥ २ ॥ नाडीजङ्घ बोला कि हे महामुने । जिसलिये हमलोग आयेथे वह कार्य न सिद्धहुआ इस
लिये तीनोंकाभी मरण निश्चयकर प्राप्तहुआ ॥ ३ ॥ इन्द्रद्युम्नके न ज्ञातहोनेपर यह कल्याणरूप राजामरनेकी इच्छा करताहै व उसके पीछे मित्र मार्कण्डेयजी व उन
का मित्र मैंभी प्रकटही मृत्युको प्राप्तहूंगा ॥ ४ ॥ मित्रके कार्य में परायण जो पुरुष मरतेहुये मित्रको देखता है उस दुष्टात्मा के जीनेको धिक्कार है धिक्कार है ॥ ५ ॥
इसलिये हे द्विज । मरतेहुये इन दोनोंका मैं अनुगामी हूँगा और तुमसे मैं पूंछता हूं क्योंकि नमस्कार व लिपटना भी पिछला है ॥ ६ ॥ मित्र व अतिथि से प्रतिज्ञा

यातास्तन्नसिद्धंमहामते ॥ कार्यंतन्मरणंनूनं त्रयाणामभ्युपागतम् ॥ ३ ॥ इन्द्रद्युम्नापरिज्ञाने भद्रकोयंमुमूर्षति ॥ त
स्यानुमित्रंमार्कण्डस्तस्यत्वहमपिस्फुटम् ॥ ४ ॥ मित्रकार्येविनिर्वृत्तो म्रियमाणन्निरीक्षते ॥ योमित्रंजीवितन्तस्यधि
गस्तिधिग्दुरात्मनः ॥ ५ ॥ तदेतावनुयास्यामि म्रियमाणावहंद्विज ॥ आपृच्छेत्वांनमस्कार आश्लेषश्चापिपश्चिमः ॥
६ ॥ प्रतिज्ञातमनिष्पाद्य मित्रस्याभ्यागतस्यच ॥ कथन्नरानलज्जन्ते हताशाजीवितेप्सवः ॥७॥ तस्माद्वह्निंप्रवेक्ष्या
मि सार्द्धमाभ्यामसंशयम् ॥ आपृष्टोस्यधुनास्नेहान्ममदेहिजलाञ्जलीम् ॥ ८ ॥ इत्युक्तवत्युलूकोसौ नाडीजङ्घेसगद्
दम् ॥ साश्रुनेत्रंस्थितंभूपं प्राहवाचंसुधामिव ॥ ९ ॥ उलूकउवाच ॥ मयिजीवतिमित्रेते भवान्मृत्युमुपैतिचेत् ॥ अद्य
प्रभृतिकस्तर्हि सुहृदोभिलषिष्यति ॥ १० ॥ अस्त्युपायोमहानत्र गन्धमादनपर्वते ॥ चिरायुर्ममगृध्रोस्तिमित्रंप्राण
समस्सुहृत् ॥ ११ ॥ सविज्ञास्यतिवोभीष्टमिन्द्रद्युम्नंमहीपतिम् ॥ इत्युक्त्वापुरतस्तस्थावुलूकस्सचभूपतिः ॥ १२ ॥

कीहुई वस्तुको न सिद्धकर आशाको नाश करनेवाले व जीनेकी इच्छावाले मनुष्य क्यों नहीं लज्जित होतेहैं ॥ ७ ॥ इस लिये इन दोनों समेत निरसन्देह अग्नि
में पैठूंगा इस समय स्नेहसे पूंछे जातेहो मुझको जलकी अञ्जली दीजिये ॥ ८ ॥ नाडीजङ्घके ऐसा कहनेपर यह उलूक स्थितहोकर आंसूसमेत नेत्रोंकरके गद्गदवचन
समेत राजासे अमृतकी नाई वचन बोला ॥ ९ ॥ उलूक बोला कि मुझ तेरे मित्रके जीतेहुये यदि आप मृत्युको प्राप्तहोतेहो तो आजसे लगाकर कौन मित्रकी
अभिलाषा करैगा ॥ १० ॥ इस विषय में बड़ीयत्न है कि गन्धमादनपर्वत पै दीर्घ आयुर्बलवाला व प्राणोंके समान प्यारा गीध मेरा मित्रहै ॥ ११ ॥ वह तुम लोगों

क प्रिय इन्द्रद्युम्न राजाको विशेषकर जानैगा यह कहकर उलूक आगे खड़ा होगया और वह राजा ॥ १२ ॥ व मार्कण्डेय और बगुला गन्धमादनपर्वत पै गये इस
के अनन्तर आतेहुये व आगे स्थित उस मित्रको देखकर ॥ १३ ॥ यह गीध प्रसन्नहोके अपने घोंसले से सामने आया व पहले सम्भाषणकर और कुशल प्रश्न
आसन, भोजनों से सत्कार करके इस गीधराज ने उस उलूक व उन सबोंसे कार्य पूंछा और उसने कहा कि यह बगुला मेरा व इन मुनिका प्रसिद्धमें मित्रहै ॥
१४।१५ ॥ व यह तीसरा भी मुनिका मित्रहै और यह उद्योग मित्रके लियेहै इन्द्रद्युम्न के जाननेपर यह जियैगा अन्यथा न जियैगा ॥ १६ ॥ व यह बगुला अग्निमें

**मार्कण्डेयोबकश्चैव प्रययुर्गन्धमादनम् ॥ तमायान्तमथालोक्य वयस्यंपुरतःस्थितम् ॥ १३ ॥ स्वकुलायात्प्रहृष्टोसौ
गृध्रस्सम्मुखमाययौ ॥ कृतसंविदसौपूर्वं स्वागतासनभोजनैः ॥ १४ ॥ उलूकंगृध्रराजस्तं कार्यंपप्रच्छतांस्तथा ॥ स
चाचख्यावयंमित्रो बकोमेस्यमुनेःकिल ॥ १५ ॥ मुनेरपितृतीयोयं मित्रस्यार्थेयमुद्यमः ॥ इन्द्रद्युम्नपरिज्ञाने ह्ययंजी
वितिनान्यथा ॥ १६ ॥ वह्निंप्रवेक्ष्यतिबकस्त्वयंतदनुवैवयम् ॥ मयानिषिद्धोयंज्ञात्वा त्वांचिरंतनमात्मनः ॥ १७ ॥ तच्चे
ज्जानासितंब्रूहि चतुर्णांदेहिजीवितम् ॥ संरक्ष्याप्नुहिसत्कीर्तिं क्षयंचशीघ्रमंहसाम् ॥ १८ ॥ गृध्रउवाच ॥ षट्पञ्चा
शद्व्यतीतामे कल्पाजातस्यकौशिक ॥ नदृष्टोनश्रुतोस्माभिरिन्द्रद्युम्नोमहीपतिः ॥ १९ ॥ तच्छ्रुत्वाविस्मयाविष्ट
इन्द्रद्युम्नोपिदुःखितः ॥ पप्रच्छजीवितेहेतुमतिमात्रंविहङ्गमम् ॥ २० ॥ गृध्रउवाच ॥ शृणुभद्रपुराजात्या मर्कटोह
न्तुचापलः ॥ आसंकदाचिदभवद्वसन्तोथऋतुःक्रमात् ॥ २१ ॥ तत्राग्रेदेवदेवस्य वनमध्येशिवालये ॥ भवोद्भवस्यपु**

पैठेगा उसके पीछे हम लोग पैठेंगे क्योंकि अपना से पुराने तुमको जानकर मैंने इसको मना कियाथा ॥१७॥ इसलिये यदि तुम उसको जानतेहो तो कहिये व चारोंको
जीव दीजिये और भलीभांति रक्षाकर उत्तम यश पावोगे व शीघ्रही पापोंके नाशको प्राप्त होंगे ॥ १८ ॥ गीध बोला कि हे कौशिक ! मुझको पैदाहुये छप्पन कल्प बीते हैं
परन्तु हमने इन्द्रद्युम्न राजाको न देखाहै न सुनाहै ॥१९॥ उसको सुनकर विस्मयसे संयुत इन्द्रद्युम्नजी दुःखितहुये और बहुतही जीनेमें पक्षीसे कारण पूंछा ॥ २० ॥
गीध बोला कि हे कल्याणरूप ! सुनिये कि पुरातन समय मैं जातिकरके चञ्चल बन्दर हुआहूं इसके अनन्तर किसी समय क्रमसे वसन्तऋतुहुई ॥ २१ ॥ उस वसन्त

ऋतुमें पहले समय चैत्रके शुक्लपक्षमें चौदसिदिन,चित्रानक्षत्र व हर्षणनामक योगमें वनके बीच शिवालयमें संसार के पैदा करनेवाले देवदेव जगत् योगेश्वरजीके आगे दमनकोत्सव हुआ ॥ २२।२३ ॥ उस उत्सवमे मनुष्योंने सोनेके झूलेमें शिवलिङ्गको धरदिया और रातमे उस झूले पै चढ़कर स्वभावही से चञ्चलजाति की चपलता से बार २ बडी देरतक चलाया इसके अनन्तर प्रातःकाल पूजा के लिये मनुष्य आये व झूलेपै चढेहुये मुझ बन्दर को देखकर दण्डोंसे मारा और वज्रके समान अ-सह्य व बड़ेपुष्ट उनके प्रहारों से ॥ २४ । २५ । २६ ॥ झूलनपै बैठाही हुआ मैं शिवजी के मन्दिर मे मरगया और शिवके झुलाने के माहात्म्य से मैं राजाके घर

रतो जगद्योगेश्वरस्यहि ॥ २२ ॥ चतुर्दशीदिनेचित्रानक्षत्रेहर्षणाभिधे ॥ योगेचैत्रेसितेपक्षे आसीद्दमनकोत्सवः ॥ २३ ॥ तत्रसौवर्णदोलायां लिङ्गमारोपितञ्जनैः ॥ निशायामधिरुह्याहं दोलांताञ्चव्यचालयम् ॥ २४ ॥ निसर्गजाति चापल्याच्चिरकालंपुनःपुनः ॥ अथप्रभातआयाता जनाःपूजाकृतेकपिम् ॥ २५ ॥ दोलाधिरूढमालोक्य लगुडैर्मांव्य ताडयत् ॥ तेषांप्रहारैस्सुदृढैर्बहुभिर्वज्रदुस्सहैः ॥ २६ ॥ दोलासंस्थितएवाहं प्रमृतश्शिवमन्दिरे ॥ शिवान्दोलनमाहा त्म्याज्जातोहंनृपमन्दिरे ॥ २७ ॥ काशीश्वरस्यतनयःप्रतीतोस्मिकुशध्वजः ॥ जातिस्मरस्ततोराज्यं क्रमात्प्राप्याह मैश्वरम् ॥ २८ ॥ कारयामिधरापृष्ठे चैत्रेदमनकोत्सवम् ॥ यथायथान्दोलयति शिवन्दोलास्थितन्नरः ॥ २९ ॥ तथा तथाशुभंयातिपुण्यमायातिभद्रक ॥ शिवदीक्षामुपागम्याखिलसंस्कारसत्कृतः ॥ ३० ॥ शिवाचार्यैर्विमुक्तोहं पशु पाशैस्तदागमात् ॥ विवाहदीक्षापर्यन्तान् संस्कारान्प्राप्यसर्वतः ॥ ३१ ॥ आराधयामिदेवेशं चन्द्रभालमुमापतिम् ॥

में पैदाहुआ ॥ २७ ॥ और काशीश्वर का पुत्र मैं जातिका स्मरणकरनेवाला कुशध्वज विख्यातहुआ, तदनन्तर क्रमसे राज्यपाकर मैं भूपृष्ठमें चैतके महीने मे शिवजी का दमनकोत्सव कराताथा मनुष्य दोलापै बैठेहुये शिवजी को ज्यों २ झुलाता है ॥ २८ । २९ ॥ हे कल्याणरूप ! त्यों २ अमङ्गल नाश होताहै व पुण्य आती है शिवकी दीक्षा (मन्त्र) को पाकर समस्त संस्कारों से संस्कार कियाहुआ ॥ ३० ॥ मैं उस समय शिवके आचार्यों करके शास्त्र के द्वारा पशुओं की नाईं फँसरियों से छोडागया व विवाह और दीक्षातक समस्त संस्कारों को पाकर मैं ॥ ३१ ॥ देवताओंके स्वामी, पार्वती के पति शिवजीका आराधन करतारहा जोकि सब दुःखोंके

नाशके कारण व लोकोंके गुरु (माता, पिता) हैं ॥ ३२ ॥ और चित्तकी वृत्तियों के रोंकसे वैराग्य में अभ्यास के योग करके रुद्र के माहात्म्य को जपते व आठवें (रौद्र) रसकी भावना करतेहुये मैंने शिवजी का आराधन किया ॥ ३३ ॥ तदनन्तर पुष्ट स्थानवाले समाधान के अभ्यास के कारण विघ्नोंसे न ध्वस्त कियेहुये मुझको जानकर प्रसन्नहो शिवजीबोले ॥ ३४ ॥ महादेवजी बोले कि हे कुशध्वज ! मैं प्रसन्नहूं चाहेहुये वरदान को मांगो क्योंकि पृथ्वीमें किसीका भी ऐसा अनुष्ठान नहीं है ॥ ३५ ॥ यह सुनकर मैंने शिवजी से मांगा कि मैं इसी देहसे तुम्हारा गण होऊं महादेवजी ने ऐसाही होगा यह मुझ से कहा ॥ ३६ ॥ तदनन्तर कैलास को

समस्तक्लेशविच्छेदकारणंजगताङ्गुरुम् ॥ ३२ ॥ चित्तवृत्तिनिरोधेन वैराग्याभ्यासयोगतः ॥ जपन्रुद्रीयमाहात्म्यं भावयन्नष्टमंरसम् ॥ ३३ ॥ ततोमांप्रणिधानेनाभ्यासेनदृढभूमिना ॥ अन्तरायानुपहतं ज्ञात्वातुष्टोब्रवीद्धरः ॥ ३४ ॥ ईश्वरउवाच ॥ कुशध्वजाहंतुष्टोद्य वरंवरयवाञ्छितम् ॥ नहीदृशमनुष्ठानं कस्याप्यस्तिमहीतले ॥ ३५ ॥ इतिश्रुत्वावृतश्शम्भुर्मयाभूयांगणस्तव ॥ अनेनैवशरीरेण तथेत्येवाहमांप्रभुः ॥ ३६ ॥ ततःकैलासमानीय विमानंसममादिशत ॥ सर्वरत्नमयंदिव्यं दिव्यैश्वर्यसमावृतम् ॥ ३७ ॥ विचरामिप्रतीतोहं तदारूढोयथेच्छया ॥ अथकालेकचिन्मात्रे व्यतीतेत्रैवपर्वते ॥ ३८ ॥ गवाक्षाधिष्ठितोपश्यं वसन्तेमुनिकन्यकाम् ॥ प्रवातिदक्षिणेवायौ मदनाग्निप्रदीपने ॥ ३९ ॥ अग्निवेश्यसुतांभद्र विवस्त्राञ्जलमध्यगाम् ॥ उद्भिन्नयौवनांश्यामां मध्यक्षामांमृगेक्षणाम् ॥ ४० ॥ विस्तीर्णजघनाभोगां रम्भोरुंसंहतस्तनीम् ॥ तामङ्कुरितलावण्यांजलसेकादिनाग्रतः ॥ ४१ ॥ प्रोन्निद्रपङ्कजमुखीं वर्णनीयत

लाकर उन शिवजी ने समस्त रत्नमय व दिव्य ऐश्वर्यों से घिराहुआ उत्तम विमान मुझको दिया ॥ ३७ ॥ उसीपै चढ़कर प्रसन्नहो मैं इच्छाके अनुकूल घूमताथा इसके अनन्तर कुछ समय बीतनेपर इसी पर्व्वत पै ॥ ३८ ॥ विमान के गवाक्ष (खिरकी) में बैठेहुये मैंने वसन्तऋतुमें कामदेवकी अग्निको बढ़ानेवाले दक्षिणपवन के चलनेपर मुनिकी उस कन्याको देखा ॥ ३९ ॥ हे कल्याणरूप ! जोकि अग्निवेश्यकी कन्या पानीके बीचमें प्राप्त व वसनहीन व उठे यौवनवाली और श्यामा व बीच में पतली व मृगनयनी थी ॥ ४० ॥ व चौड़े जघनस्थलवाली व केलाकीसी जङ्घोंवाली व कड़े कुचोंवाली और आगेसे पानी इत्यादि के छिड़काव से उत्पन्नहुई

शोभावाली थी ॥ ४१ ॥ और खुलेहुये कमल के समान मुखवाली व अत्यन्त वर्णन करनेके योग्य आकारवाली व ज्ञानकी यथात्मता के अनुकूल विद्वानोंसे भी वर्णन करनेयोग्य थी ॥ ४२ ॥ शरसमूहों के समान उवायेहुये कटाक्षों के चलाने से आपही कामदेव ने उसके अङ्गोंमें टिककर मुझको दृढ़तापूर्वक ताड़न किया ॥ ४३ ॥ इस प्रकार सखियों से संयुत व इच्छा के अनुकूल खेलतीहुई उसको कामदेवसे विकल मैंने विमानपर से उतरकर हरलिया ॥ ४४ ॥ हे कल्याणमय ! मुझसे पकडी व विमान पै बैठीहुई उस कन्या ने बड़े उच्चस्वर से हे तात ! ऐसा बड़ाभारी शब्द करती हुई बहुतही रोदन किया ॥ ४५ ॥ तदनन्तर उदासीन होकर दौडतीहुई

माकृतिम् ॥ यथाविज्ञानयाथात्म्याद्विद्वद्भिरपिवर्ण्यकाम् ॥ ४२ ॥ प्रोद्यत्कटाक्षविक्षेपैः शरव्रातैरिवस्मरः ॥ स्वयंत दङ्गमास्थाय ताडयामासमान्दृढम् ॥ ४३ ॥ वयस्यासंवृतामेवं खेलमानांयथेच्छया ॥ अवतीर्याहमहरं विमानान्मद नातुरः ॥ ४४ ॥ सागृहीतामयादीर्घं प्रकुर्वाणामहारवम् ॥ तातेतिचविमानस्था रुरोदातीवभद्रक ॥ ४५ ॥ ततोवय स्यास्तादीना मुनिमाहुःप्रधाविताः ॥ वैमानिकेनकेनापि ह्रियतेतवपुत्रिका ॥ ४६ ॥ रुदन्तींभगवन्नेतां त्रातुंयोग्योसि सर्वतः ॥ तासान्तदाकर्ण्यवचो मुनिर्भद्रतपोनिधिः ॥ ४७ ॥ अग्निवेश्योभ्यगात्तस्या व्योमन्यनुपदन्त्वरत् ॥ तिष्ठति ष्ठेतिमामुक्त्वा संस्तभ्यतपसागतिम् ॥ ४८ ॥ ततःप्रकुपितःप्राह मुनिर्मामितिदुस्सहम् ॥ यस्मान्मदीयातनया मां सपेशीवतेहृता ॥ ४९ ॥ गृध्रेणेवाधुनाव्योम्नि तस्माद्गृध्रोभवद्रुतम् ॥ अनिच्छन्तीमदीयेयं सुताबालातपस्विनी ॥ ५० ॥ त्वयाहृताधुनासीत्तच्छापमाप्नुहिदुर्मते ॥ इत्याकर्ण्यभयाविष्टो लज्जयाधोमुखोमुनेः ॥ ५१ ॥ पादौप्रगृह्य

उन कन्याओं ने मुनिसे कहा कि कोई विमानवाला पुरुष तुम्हारी कन्याको हरता है ॥ ४६ ॥ हे भगवन् ! रोतीहुई उस कन्याको तुम सब भांतिसे रक्षाकरने के योग्यहो हे कल्याणमय ! उनके उस वचन को सुनकर तपस्या के निधान ॥ ४७ ॥ अग्निवेश्यजी शीघ्रता से आकाश में उसके चरणों के पीछेगये व खडेहो २ यह मुझसे कहकर तपस्या से चालको रोंककर ॥ ४८ ॥ तदनन्तर क्रोधित होतेहुये मुनिने मुझसे यह असह्य वचन कहा कि बड़े खेदकी बातहै जिसलिये मांसके पिंड वाली मेरी कन्याको तुमने इस समय आकाश में गीधकी नाईं हराहै उसीकारण शीघ्रही गीधहोवो न चाहतीहुई मेरी यह छोटीकन्या तपस्विनी ॥ ४९ । ५० ॥ इस

समय तुमसे हरीगई है इस लिये हे दुर्बुद्धे ! शापको प्राप्तहोवो ऐसा सुनकर डर से संयुत मैं लज्जासे नीचेमुख करके मुनिके ॥ ५१ ॥ चरण पकड़कर गिरपड़ा व उससमय बहुतही रोतेहुये मैंने कहा कि मैंने जानकर इसको नहीं हराहै व आज भी धर्षणा नहीं कियाहै ॥ ५२ ॥ हे तपस्या के निधान ! प्रसन्नता करिये व मेरे शापको नाश कीजिये क्योंकि जिनके तपही धनहै वे सज्जन प्रणाम कियेहुये पुरुषोंके ऊपर स्वभावहीसे क्षमावान् होतेहैं इस लिये मैं गीध मत होऊं मेरे ऊपर प्रसन्न होवो इसप्रकार शरण में प्राप्त मैंने इन मुनिका प्रणाम किया ॥ ५३ । ५४ ॥ और प्रसन्न होतेहुये मुनिने कहा कि मेरा वचन कभी झूंठ नहीं होवै है परन्तु इन्द्रद्युम्न

न्यपतद्रुदन्नतितरान्तदा ॥ नमेयेयंपरिज्ञाय हतानाद्यापिधर्षिता ॥ ५२ ॥ प्रसादंकुरुमेशापं व्यावर्त्तयतपोनिधे ॥ प्रणतेषुत्तमावन्तो निसर्गेणतपोधनाः ॥ ५३ ॥ भवन्तिसन्तस्तद्गृध्रो माभवेयंप्रसीदमे ॥ इतिप्रपन्नेनमया प्रणतोसौ महामुनिः ॥ ५४ ॥ प्रसन्नःप्राहनोमिथ्या ममवाक्यंभवेत्क्वचित ॥ किन्त्विन्द्रद्युम्नभूपालपरिज्ञानेसहायताम् ॥ ५५ ॥ यदायास्यसिशापस्य तदामुक्तिमवाप्स्यसि ॥ ५६ ॥ इत्युक्त्वासमुनिःप्रायाद्गृहीत्वानिजकन्यकाम् ॥ अखण्डशीलांस्वंस्थानमहंगृध्रोभवन्तदा ॥ ५७ ॥ एवंतदादमनकोत्सवईश्वरस्य आन्दोलनेननृपवेश्मनिमेवतारः ॥ शम्भोर्गणत्वमभवच्चतदाग्निवेश्यशापेनगृध्र इह भद्र तवेदमुक्तम् ॥ ५८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डे महीप्रादुर्भावेदमनकस्यमाहात्म्यन्नामसप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

राजाके जानने में जब तुम सहायता को प्राप्तहोगे तब शापकी मुक्तिको पावोगे ॥ ५५ । ५६ ॥ यह कहकर वे मुनि उत्तम आचरणवाली अपनी कन्याको लेकर अपने स्थानको चलेगये व मैं उससमय गीधहोगया इसप्रकार उस समय दमनकोत्सव में शिवजी के झुलाने से राजा के घरमें मेरा जन्महुआ व शिवजीकी गणता हुईहै और उससमय अग्निवेश्य के शापसे यहां गीधहुआ हे कल्याणमय ! तुमसे यह चरित्र कहागया ॥ ५७।५८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेमहीप्रादुर्भावे देवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांदमनकस्यमाहात्म्यंनामसप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥

दो० । कछुवा इन्द्रद्युम्न कर कह्यो चरित्र अपार । सो अष्टमअध्याय में वर्णत कथाउदार ॥ नारदजी बोले कि गीधका यह वचन सुनकर दुःख व आश्चर्य से संयुत इन्द्रद्युम्नजी उससे पूँछकर मरनेके लिये प्रारम्भ किया ॥ १ ॥ तदनन्तर घुघुवा आदिकों समेत मरनेकी इच्छावाले उस राजाको देखकरके अपनासे दीर्घआयु-बलवाले को भलीभांति विचारकर गीधने कहा ॥ २ ॥ कि ऐसा मतकरो वचन सुनो जोकि हे कल्याणमय ! मुझसे भी प्राचीन है वह तुम्हारे मनोरथ को प्रकटही जानैगा ॥ ३ ॥ मानसर में मन्थरनाम से प्रसिद्ध कछुवा है इस संसार में उसको कुछ अप्रकट नहीं है यहां चलैं ॥ ४ ॥ तदनन्तर घुघुवासमेत प्रसन्न होतेहुये वे

नारदउवाच ॥ गृध्रस्यैतद्वचःश्रुत्वा दुःखविस्मयसंयुतः ॥ इन्द्रद्युम्नस्तमापृच्छ्य मरणायोपचक्रमे ॥ १ ॥ ततस्तमालोक्यतथा मुमूर्षुंकौशिकादिभिः ॥ सहितंसंविचिन्त्याहदीर्घायुषमथात्मनः ॥ २ ॥ मैवंकार्षीःशृणुगिरं भद्रयस्त्वंचिरन्तनः ॥ मत्तोप्यस्तिस्फुटश्चैव यास्यतित्वदभीप्सितम् ॥ ३ ॥ मानसेसरसिख्यातः कूर्मोमन्थरकाख्यया ॥ तस्यनाविदितंकिञ्चिदिहतत्रव्रजामहे ॥ ४ ॥ ततःप्रतीतास्तेभूप मुनिगृध्रबकास्तथा ॥ उलूकसहिताजग्मुस्सर्वेकूर्म्मदिदृत्सवः ॥ ५ ॥ सरःस्थितस्तत्रकूर्मस्तान्निशम्यविहङ्गमान् ॥ कान्दिशीकोविवेशासौ जलंशीघ्रतरन्तदा ॥ ६ ॥ कौशिकोथतमाहेदं प्रहस्यवचनंस्वयम् ॥ कस्मात्कूर्म्मप्रणष्टोद्यविमुखोभ्यागतेष्वपि ॥ ७ ॥ अग्निर्द्विजानांविप्रश्च वर्णानांरमणःस्त्रियः ॥ गुरुःपिताचपुत्राणां सर्वस्याभ्यागतोगुरुः ॥ ८ ॥ विहायतदिमंधर्ममातिथ्यंविमुखःकथम् ॥ गृह्णासिपापंसर्वेषां ब्रूहिकूर्माधुनोत्तरम् ॥ ९ ॥ कूर्मउवाच ॥ चिरन्तनोहिजानामि कर्तुमातिथ्यसत्क्रियाम् ॥ अभ्यागतेष्वप

कछुवा के देखने की इच्छावाले राजा, मुनि, गीध व बगुला सब गये ॥ ५ ॥ वहां तड़ाग में बैठाहुआ यह कछुवा उन पक्षियों को देखकर डरसे भगकर बहुतही शीघ्र उससमय पानीमें पैठगया ॥ ६ ॥ इसके अनन्तर घुघुवा ने हँसकर आपही उस कछुवे से कहा कि हे कूर्म ! आज पाहुनों के आनेपर भी तुम किसलिये वि-मुखहुयेहो ॥ ७ ॥ ब्राह्मणोंका गुरु अग्नि व सब जातियों का ब्राह्मण व स्त्रीका पति और पुत्रोंका पिता गुरुहै व अभ्यागत (अतिथि) सबका गुरुहै ॥ ८ ॥ इसलिये पहुनईका धर्म छोड़कर विमुख होकर तुम कैसे सबका पाप ग्रहण करोगे हे कूर्म ! इससमय प्रत्युत्तर कहिये ॥ ९ ॥ कूर्म बोला कि बहुत प्राचीन मैं पहुनईका सत्कार

करना जानताहूं कि अतिथियों का पूजन धर्मशास्त्रों में निश्चय कियागयाहै ॥ १० ॥ और इस विषयमें बड़ाभारी कारण है उसको मैं तुमलोगों से कहताहूं सुनिये ।
समस्त संस्कार व उत्तम नियमोंवाला मैं इतने दिनोंतक अतिथि मनुष्यके भी निश्चयकर विमुख नहीं हुआहूं परन्तु सांखू के ऐसे आकारवाला जो यह पांचवां इ-
न्द्रद्युम्न राजा देखपड़ता है इससे मैं बहुतही डरताहूं पुरातनसमय रोचकनामक नगरमें इस राजाके यज्ञ करनेपर ॥ ११।१२। १३ ॥ यज्ञकी अग्निसे जलीहुई मेरी
पीठ आजभी बिन घाव नहीं हुईहै इसलिये फिर मुझको डरहुआ कि क्या फिरभी यह बड़ीयत्न करके भूमिमें इस समय मुझको जलावैगा हे कुरुश्रेष्ठ ! कछुवे की

चितिर्धर्म्मशास्त्रेषुनिश्चिता ॥ १० ॥ सुमहत्कारणंचात्र श्रूयतांतद्वदामिवः ॥ नाहंपराङ्मुखोजात एतावन्तिदिनान्यपि ॥
११ ॥ अभ्यागतनरस्यापि सर्वसंस्कारसद्व्रती ॥ किन्त्वेषपञ्चमोयोवै दृश्यतेसरलाकृतिः ॥ १२ ॥ इन्द्रद्युम्नोमहीपा
लो बिभेत्यस्मान्महत्तरम् ॥ अमुनायजमानेन रोचकाख्येपुरापुरे ॥ १३ ॥ यज्ञपावकदग्धामे पृष्ठिर्नाद्यापिनिर्व्रणा ॥
तन्मेभयंपुनर्जातं किमयंपुनरेवमाम् ॥ १४ ॥ अतीवयत्नमाध्याय भुविधक्ष्यतिसम्प्रति ॥ इतिवाक्यावसानेतु कूर्मस्य
कुरुसत्तम ॥ १५ ॥ पपातपुष्पवृष्टिस्तु विमुक्ताप्सरसाङ्गणैः ॥ सस्वनुर्देवबाद्यानि कीर्त्युद्धारेमहीपतेः ॥ १६ ॥ विस्मिता
स्तेचददृशुर्विमानंपुरतःस्थितम् ॥ इन्द्रद्युम्नकृतेदेव दूतेनाधिष्ठितन्तदा ॥ १७ ॥ अयातयामाःप्रददुराशिषोऽस्मैसुर
द्विजाः ॥ साधुवादोदिविमहानासीत्तस्यमहीपतेः ॥ १८ ॥ ततोविमानमालम्ब्य देवदूतस्तमुच्चकैः ॥ इन्द्रद्युम्नमुवाचे
दं शृण्वतांनाकवासिनाम् ॥ १९ ॥ देवदूतउवाच ॥ नवीकृताधुनाकीर्त्तिस्तवभूपालनिर्मला ॥ त्रिलोक्यामपितन्वी

इस वाक्यके अन्तमें ॥ १४।१५ ॥ अप्सराओं के समूहों से छोड़ीहुई फूलोंकी वृष्टि गिरी व राजाके यशउद्धार में देवताओं के बाजाबजे ॥ १६ ॥ उससमय देवदूत जिस
पर बैठाथा इन्द्रद्युम्न के लिये आगे प्राप्त उस विमान को विस्मयमें प्राप्त होतेहुये उन्होंने देखा ॥ १७ ॥ व देवता और ब्राह्मणोंने इसके लिये सफल आशीर्वाद दिया
व आकाश में उस राजाकी बड़ी प्रशंसाहुई ॥ १८ ॥ तदनन्तर विमानको रोंककर स्वर्गवासियों के सुनतेहुये देवदूत ने उच्चस्वर से उस इन्द्रद्युम्न से यह कहा ॥ १९ ॥

देवदूत बोला कि हे राजन् ! तुम्हारा निर्मल यश इस समय त्रिलोकमें भी नवीन कियागया इस लिये शीघ्रही इस विमान पै चढ़िये ॥ २० ॥ व चढ़कर त-
पस्यासे कमायेहुये ब्रह्माके लोकको चलिये मैं तुम्हारे लानेके लिये उन्हीं ब्रह्मासे पठाया गयाहूं ॥ २१ ॥ जबतक मनुष्यका यश पृथ्वीमें प्रसिद्ध होताहै तभीतक
अनन्त पुण्य होनेपर स्वर्गीपुरुष स्वर्गमे बसताहै ॥ २२ ॥ देवालय, तड़ाग, बावली, कुवां व बगीचा इत्यादिका लगाना इसीलिये पहले कहेहुये धर्मशास्त्रोंमे निश्चय
कियागया है ॥ २३ ॥ इन्द्रद्युम्न बोले कि मेरे प्यारे कछुवा, गीध व मार्कण्डेय, बगुला और घुघुवा ये पांचों मेरे मित्रहैं और इन्हींका यह प्रभावहै ॥ २४ ॥ इसलिये

**घ्रं विमानमिदमारुह ॥ २० ॥ गच्छत्वंब्रह्मणोलोकमारुह्यतपसार्जितम् ॥ सम्प्रेषितोहंतेनैव तवानयनकारणात् ॥
२१ ॥ यावत्कीर्त्तिर्मनुष्यस्य पृथिव्यांप्रथिताभवेत् ॥ तावदेवभवेत्स्वर्गी सतिपुण्येत्वनन्तके ॥ २२ ॥ सुरालयसरो
वापीकूपारामादिकल्पना ॥ एतदर्थंहिपूर्वाख्यधर्म्मशास्त्रेषुनिश्चिता ॥ २३ ॥ इन्द्रद्युम्नउवाच ॥ अमीमेपञ्चसुहृ
दो मार्कण्डबककौशिकाः ॥ कूर्म्मगृध्रौप्रभावोयममीषाञ्चममप्रियैः ॥ २४ ॥ तच्चेदमीमयासाकं ब्रह्मलोकंप्रया
न्त्युत ॥ पुरःस्थितास्तदायास्ये ब्रह्मलोकन्नचान्यथा॥२५॥ परेषामनपेक्ष्यैव कृतप्रतिकृतंहियः ॥ प्रवर्ततेहितायैव स
सुहृत्प्रोच्यतेबुधैः ॥ २६ ॥ स्वार्थैयुक्ताधियोयेस्युः परार्थकरणव्रताः ॥ तेपिश्लाघ्याःकिमुतार्थ प्रहाणेनाथसौहृदाः ॥
२७ ॥ प्रतिज्ञातार्थनिर्वाहव्रतालंकृतविग्रहाः ॥ स्वयशोन्नतिदायेस्युरन्वर्थातैर्वसुन्धरा ॥ २८ ॥ मरणायप्रतिज्ञात्म
घातिनश्चगुरुद्रुहः ॥ पित्रावमानिनःपापाः प्रायोनरकमण्डनाः ॥ २९ ॥ परार्थसाध्यास्तदमी पञ्चसम्प्रतिसाधवः ॥**

यदि आगे बैठकर ये मेरे साथ ब्रह्मलोक को चलैं तो मैं ब्रह्मलोकको जाऊंगा अन्यथा न जाऊंगा ॥ २५ ॥ अन्य लोगोंका कियेका बदला न देखकर जो हितही
के लिये वर्त्तमान होताहै वह विद्वानों से मित्र कहाजाता है ॥ २६ ॥ व स्वार्थमें लगीहुई बुद्धिवाले जो पुरुष पराया प्रयोजन करनेके नियमवाले होते हैं वेभी प्रशं-
सनीय हैं और स्वार्थकी हानिसे जो मित्रकार्य करतेहैं उनको क्या कहनाहै ॥ २७ ॥ प्रतिज्ञा कियेहुये प्रयोजन के निबाहने के नियम से भूषित देहवाले जो अपने यश
को उन्नतिदायक होतेहैं उन्हीं से वसुन्धरा सत्यनामवाली है ॥ २८ ॥ व मरने के लिये प्रतिज्ञावाले आत्मघाती और गुरुवों के द्रोही व पिताका अपमान करनेवाले

पापी प्रायः नरकके भूषण होतेहैं ॥ २९ ॥ इस लिये इस समय पराये प्रयोजनके सिद्ध करनेवाले ये पांचों साधुहैं जो मेरे यशका उद्धार हुआ वह इन महात्माओं का प्रभाव है ॥ ३० ॥ यदि मेरे साथ वे स्वर्गको जावैंगे तो मैं भी जाऊंगा हे देवदूत ! अन्यथा न जाऊंगा ॥ ३१ ॥ देवदूत बोला कि हे राजन् ! ये सब महादेवजी के गण शापसे भ्रष्टहोकर पृथ्वीमें प्राप्तहुये हैं व शाप के अन्तमें शिवजी के समीप जाना चाहिये ॥ ३२ ॥ इस लिये हे राजन् ! इनको छोड़कर मेरे साथ चलो और शिवदेवको छोड़कर इनको स्वर्ग नहीं रुचता है ॥ ३३ ॥ इन्द्रद्युम्न बोले कि हे कल्याणमय ! यदि ऐसा है तो जाइये मैं स्वर्गको न जाऊंगा किन्तु वैसीही वैसी

ममकीर्तिसमुद्धारः सप्रभावोमहात्मनाम् ॥ ३० ॥ अमीषांयदितेस्वर्गं प्रयास्यन्तिमयासह ॥ तदाहमपियास्यामि देवदूतान्यथानहि ॥ ३१ ॥ देवदूतउवाच ॥ एतेहरगणास्सर्वेशापभ्रष्टाःक्षितिङ्गताः ॥ शापान्तेहरपार्श्वेतु गन्तव्यंपृथिवीपते ॥ ३२ ॥ विहायेमानतोभूपत्वमागच्छमयासह ॥ नचैषांरोचतेस्वर्गो हित्वादेवंमहेश्वरम् ॥ ३३ ॥ इन्द्रद्युम्नउवाच ॥ यद्येवंगच्छतद्भद्र नयास्येहंत्रिविष्टपम् ॥ तथातथायतिष्यामि भविष्यामियथागणाः ॥ ३४ ॥ अविशुद्धिन्तयाधिक्यदूषणैरेषनिन्दितः ॥ स्वर्गस्सदानुआविकस्तस्मादेनंनकामये ॥ ३५ ॥ तत्रस्थस्यपुनःपातभयन्नव्येतिमानसात ॥ अहर्निशंयतःपुंसस्तस्मात्स्वर्गन्नकामये ॥ ३६ ॥ सतिपुण्यक्षयेतेन पातितोनिजलोकतः ॥ चतुर्मुखेनवैलक्ष्यं गतोस्मिकथमोमितम् ॥ ३७ ॥ इतीदमुक्त्वातन्दूतं शृण्वतोस्यैवविस्मयात् ॥ अप्राक्षीद्भूपतिःकूर्म्मं त्वमायुःकारणंवद॥ ३८ ॥ इदमायुःकथंजातं कूर्मदीर्घतमन्तव ॥ सुहृन्मित्रंगुरुस्त्वंमे येनकीर्त्तिर्ममोद्धृता ॥ ३९ ॥ कूर्म्मउवाच ॥ शृणु

यत्यकरूंगा कि जिस प्रकार गणहोऊं ॥ ३४ ॥ अपवित्रता व न्यूनाधिक्य के दोषोंसे यह स्वर्ग सदा निन्दित सुनाजाता है इस लिये मैं इसको नहीं चाहताहूं ॥ ३५ ॥ फिर जिसलिये वहां टिकेहुये पुरुष के मनसे गिरने का डर दिनरात नहीं जाताहै उसी कारण मैं स्वर्गको नहीं चाहताहूं ॥ ३६ ॥ पुण्यनाश होने पर उन चतुरानन से अपने लोकसे गिरायाहुआ मैं विलक्षणता को प्राप्तहूं उसी लोक को मैं किसप्रकार जाऊं ॥ ३७ ॥ इसप्रकार आश्चर्यसे इसीको सुनतेहुये उस दूतसे यह कहकर कछुवेसे राजाने पूँछा कि हे कूर्म ! तुम आयुर्बल का कारण कहो ॥ ३८ ॥ हे कूर्म ! तुम्हारी यह बड़ीभारी आयुर्बल किसप्रकार हुई है स्नेही, मित्र व मेरे गुरु तुमहो

कि जिनने मेरे यशको प्रकट किया ॥३९॥ कूर्म बोला हे राजन् ! सुनने से पापको नाश करनेवाली पुण्यदायिनी कथाको सुनिये जो यह कथा कि बहुत मीठी व शिवजी के माहात्म्यसे संयुत है ॥ ४०॥ हे राजन् ! उत्तम श्रद्धा से इस कथाको सुनताहुआ भी पुरुष पापसे छुटेहुये शरीरवाला होताहै जिसप्रकार कि पुरातनसमय शिवजीकी प्रसन्नता को पाकर मेरे इसप्रकार की यह आयुर्बल व ब्राह्मणता हुई है ॥ ४१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांमहीप्रादुर्भावेऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

दो० । कछुवा अपनो चरित सब भूपति सों कहि दीन । सोइ नवम अध्याय में वर्णित चरित नवीत ॥ कछुवा बोला कि हे राजन् ! पुरातन समय मैं शांडिल्य

भूपकथांपुण्यां श्रवणात्पापनाशिनीम् ॥ कथांसुमधुरामेतांशिवमाहात्म्यसंयुताम् ॥ ४० ॥ शृण्वन्निमामपिकथांन्नृपतेमनुष्यः सुश्रद्धयाभवतिपापविमुक्तदेहः ॥ शम्भोःप्रसादमधिगम्ययथापुरेवमासीत्प्रसादतइदंममभूद्द्विजत्वम् ॥ ४१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे कुमारिकाखण्डेमहीप्रादुर्भावेऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ * ॥ * ॥

कूर्मउवाच ॥ शाण्डिल्यइतिविख्यातः पुराहमभवन्द्विजः ॥ बालभावेमयाभूप क्रीडमानेनानिर्मितम् ॥ १ ॥ पुराप्रावृषिपांशूत्थं शिवायतनमुत्तमम् ॥ जलार्द्रबालुकाप्रायंप्रांशुप्राकारशोभितम् ॥ २ ॥ पञ्चायतनविन्यासमनोहरतरन्नृप ॥ विनायकशिवासूर्यमधुसूदनमूर्तिमत् ॥ ३ ॥ पीतमृन्मत्स्वर्णकलशं ध्वजमालाविभूषितम् ॥ कोष्ठतोरणविन्यस्तं दोलकेनविभूषितम् ॥ ४ ॥ दृढपांशुसमुद्भूतसोपानश्रेणिमत्पुरात् ॥ बकपुष्पैस्तथान्यैश्च केदारोत्थैस्समा

ऐसा प्रसिद्ध ब्राह्मण हुआहूँ और शिशुता में खेलते हुये मैंने पहले समय वर्षाऋतु में धूलि से उठा हुआ उत्तम शिवमन्दिर बनाया है जो कि जल से भीगी हुई बालुका से मिलित व ऊँची छहरदिवाली से शोभित था ॥ १ । २ ॥ व हे राजन् ! जो मन्दिर कि पंचगृहों के स्थापन से बड़ा सुन्दर व गणेश, पार्वती, सूर्य और विष्णु की मूर्तियोंसे संयुक्त था ॥ ३ ॥ और पीली मिट्टी से संयुक्त व सोने के कलशोंवाला और ध्वजा व मालाओं से शोभित था और जिस में कोठों से बन्दनवार बँधी थी व झूले से भूषित था ॥ ४ ॥ और नगर से पुष्ट मिट्टी से उपजी हुई सीढ़ियों की पंक्तियों से संयुत था व कियारियोंमें उत्पन्न लाये हुये मरुवा के फूलों से

तथा और फूलों से व हे राजन् ! मन्दार, बिल्वपत्र और दूब से पैदा हुये नवीन अंकुरों करके मैं ने इस प्रकार महादेवजी का सुन्दर पूजन किया ॥ ५ । ६ ॥ तदनन्तर उत्तम क्रियाकी अपेक्षारहित नृत्य शिवजी के आगे प्रारम्भ किया व बालपन में बालगणों से घिरेहुये मैंने शिशुता से एकही वार स्वरसहित गान किया तदनन्तर हे राजन् ! मरकर मैं वैदिशनगर में जातिके स्मरणवाला ब्राह्मण हुआ व शिवशास्त्रों से दया किये हुये मैं ने शिवमंत्रको पाकर विशेषता से शिव-पूजन किया ॥ ७ । ८ । ९ ॥ व श्रद्धासंयुत होकर महादेवजी की प्रसन्नता को पाकर शिवलिंग की पूजा किया जो शिवालय का निर्माण करता है वह करोड़

हृतैः ॥ ५ ॥ मन्दारैर्बिल्वपत्रैश्च दूर्वोत्थैश्चनवाङ्कुरैः ॥ पूजाविरचितास्म्याशम्भोरितिमयान्नृप ॥ ६ ॥ ततस्ताण्डवमारभ्यमनपेक्षितसत्क्रियम् ॥ शिवस्यचाग्रतोबाल्याद्गीतञ्चस्वरवर्जितम् ॥ ७ ॥ अकार्षंसकृद्देवाहं बाल्येशिशुगणावृतः ॥ ततोमृतोहंजातश्च विप्रोजातिस्मरोनृप ॥ ८ ॥ वैदिशेनगरेकार्षं शिवपूजांविशेषतः ॥ शिवदीक्षामुपागम्यानुगृहीतश्शिवागमैः ॥ ९ ॥ शिवप्रसादमागम्यलिङ्गंश्रद्धासमन्वितः ॥ कल्पकोटिंवसेत्स्वर्गे यःकरोतिशिवालयम् ॥ १० ॥ अकारिचमहारम्यं विश्वकर्म्मविधानतः ॥ मृन्मयंकाष्ठनिष्पन्नं पक्वेष्टशैलमेवच ॥ ११ ॥ कृतमायतनन्दद्यात्क्रमाद्दशगुणंफलम् ॥ भस्मस्नायीत्रिषवणं भिक्षान्नकृतभोजनः ॥ १२ ॥ जटाधरश्चपश्यंश्च शिवाराधनतत्परः ॥ इत्थंमे कुर्वतोजातं पुनर्मृत्युप्रमापणम् ॥ १३ ॥ जातोजातिस्मरस्तत्र तृतीयेहंभवान्तरे ॥ सार्वभौमोमहीपालः प्रतिष्ठानेपुरोत्तमे ॥ १४ ॥ जयदत्तइतिख्यातस्सूर्यवंशसमुद्भवः ॥ ततोमयाबहुविधाः प्रासादाःकारितान्नृप ॥ १५ ॥ तस्मिन्भवान्तरे

कल्पों तक स्वर्ग में बसताहै ॥ १० ॥ मैंने विश्वकर्मा की विधि से बड़ा सुन्दर मंदिर बनाया मिट्टी से बना हुआ व काठ से सिद्ध और पक्की ईंट व पत्थर से बनाया हुआ घर देवै कि जिनमें क्रमसे दश गुना फल है भस्म से नहानेवाला व तीनबार स्नान करनेवाला और भिक्षान्नसे भोजन करनेवाला मैं ॥ ११ । १२ ॥ जटाधारी शिवजी को देखता हुआ महादेव की आराधना करने में परायण भया हे राजन् ! इस प्रकार करते हुये मेरी फिर मृत्यु हुई ॥ १३ ॥ व उस तीसरे जन्म के बीच में प्रतिष्ठान नामक उत्तम नागर में जाति के स्मरणवाला, सूर्यवंश में उत्पन्न मैं जयदत्त ऐसा प्रसिद्ध चक्रवर्ती राजा हुआ तदनन्तर हे राजन् ! मैंने बहुत प्रकार के

मन्दिर निर्माण कराया ॥ १४ । १५ ॥ तदनन्तर उस जन्म के बीचमें शिवजीके आराधन में परायण मैंने मरुवा के पुष्पपूर्वक पूजन किया ॥ १६ ॥ व हे राजन्!
सोने चांदी व रत्नों के बनायेहुये फूलों से पूजन किया हे नृपश्रेष्ठ! मैं उसप्रकार दानादिको नहीं करताथा ॥ १७ ॥ केवल मैं फूलोंसे शिवलिंगों का पूजन करता
था तदनन्तर भगवान् शिवजी प्रसन्नहोकर मुझको अजर अमर होना वरदान दिया तदनन्तर हे राजन्! उसी शरीर से संयुत मैं और की नाईं असामान्य उस प्रकार
के वरको पाकर ॥ १८ । १९ ॥ मदसे अन्ध हाथी की नाईं इस पृथ्वी में घूमता था इसके उपरान्त शिवभक्ति को छोड़कर कामदेव से विकल मैंने ॥ २० ॥ पराये

शम्भोराराधनपरेणच ॥ ततोनिरूपितापूजा बकपुष्पपुरस्सरा ॥ १६ ॥ सौवर्णैराजतैरत्ननिर्मितैःकुसुमैर्नृप ॥ तथा
विधन्नदानादि करोमि नृपसत्तम ॥ १७ ॥ केवलंशिवलिङ्गानांपूजांपुष्पैःकरोम्यहम् ॥ ततोमेभगवाञ्छम्भुस्संतुष्टोथ
वरन्ददौ ॥ १८ ॥ अजरामरतांराजंस्तेनैववपुषावृतः ॥ ततस्तथाविधं प्राप्यानन्यसाधारणंवरम् ॥ १६ ॥ विचरामि
महीमेतां मदान्धइववारणः ॥ शिवभक्तिंविहायाथ नृपाहंमदनातुरः ॥ २० ॥ प्रधर्षयितुमारब्धः स्त्रियःपरपरिग्रहे ॥
आयुषस्तपसःकीर्त्तेस्तेजसोयशसःश्रियः ॥ २१ ॥ विनाशकारणंमुख्यं परदारप्रधर्षणम् ॥ सकर्णःश्रुतिहीनोसौ पश्य
न्नन्धोवदञ्जडः ॥ २२ ॥ अचेतनश्चेतनावान् मूर्खोविद्वानपिस्फुटम् ॥ तदाभवतिभूपाल पुरुषःक्षणमात्रतः ॥ २३ ॥
यदैवहरिणाक्षीणां गोचरंयातिचक्षुषाम् ॥ मृतस्यनिरयेवासो जीवतश्चेश्वराद्भयम् ॥२४॥ एवंलोकद्वयहरं परदारप्रधर्ष
णम् ॥ यदामरणहीनोहमितिनिश्चयमास्थितः ॥ २५ ॥ ऐहिकामुष्मिकभयं विहायाहंततःपरम् ॥ प्रधर्षयितुमारब्ध

कुटुम्ब में स्त्रियों की धर्षणा करनेका प्रारम्भ किया आयुर्बल, तपस्या, यश, तेज, कीर्त्ति व लक्ष्मी के ॥ २१ ॥ नाशका मुख्य कारण पराई स्त्रीकी धर्षणा करना है यह
कानों समेत कर्णहीन व देखताहुआ अन्धा व कहताहुआ गूँगा है ॥ २२ ॥ व चैतन्यतासंयुत अचैतन्य है हे राजन्! विद्वान्भी पुरुष तब क्षणभर में मूर्ख होजाता
है ॥ २३ ॥ जब कि मृगनयनियों के नेत्रों के सामने प्राप्त होता है मरेहुये नरक में निवास व जीतेहुये को ईश्वर से डरहोता है ॥ २४ ॥ इसप्रकार पराई स्त्रीकी
धर्षणा करना दोनों लोकोंका हरनेवाला है जब कि मैं मृत्यु से हीनहूं इस निश्चय में स्थित हुआ ॥ २५ ॥ उसके उपरान्त इस लोक व परलोक का डर छोड़

कर मैं उससमय हे राजन् ! परस्त्रियों की धर्षणा करनी प्रारम्भ किया ॥ २६ ॥ इसके उपरान्त महादेव के वर देने के कारण मर्यादासे रहित मुझको भलीभांति जान
कर यमराज उन शिवजी के समीप गये ॥ २७ ॥ व मेरे धर्मका उलटना शिवजी से उन्होंने कहा कि हे देव ! तुम्हारे प्रभाव से रक्षित इस बड़े पापकारी के दण्डकरने
में मैं नहीं समर्थहूं तुम मेरे अधिकारमें और को आज्ञा देवो हे ईश ! तुमने संसारके आधाररूपिणी पतिव्रता को कहाहै ॥ २८ । २९ ॥ हे स्वामिन् ! गऊ, ब्राह्मण व
उत्तम नियमवाले और लोभहीन व दानके स्वभाववाले और सत्यमें स्थित ये जो पुरुषहैं उनके मध्यमें पतिव्रता अतिमुख्य है ॥ ३० ॥ उसने उन पतिव्रताओं की

स्तदाभूपपरस्त्रियः ॥ २६ ॥ अथमांसपरिज्ञाय मर्यादारहितंयमः ॥ वरप्रदानादीशस्य तदन्तिकमुपाययौ ॥ २७ ॥
व्यजिज्ञपन्मदीयंच शम्भोर्धर्मव्यतिक्रमम् ॥ नाहंतवानुभावेन गुप्तस्यास्यविनिग्रहे ॥ २८ ॥ अतिपापकृतोदेव म
न्नियोगेन्यमादिश ॥ जगदाधाररूपाहि त्वयेशोक्तापतिव्रता ॥ २९ ॥ गावोविप्रास्सुनियमा अलुब्धादानशीलिनः ॥
सत्यनिष्ठाइतिस्वामिंस्तेषांमुख्यतमासती ॥ ३० ॥ तास्तेनधर्षितालुप्तं मदीयन्धर्मशासनम् ॥ वरप्रदानमत्तेनतवैव
परिभूयमाम् ॥ ३१ ॥ जयदत्तेनदेवेश प्रतिष्ठानाधिवासिना ॥ इमान्धर्मस्यभगवान् गिरमाकर्ण्यकोपितः ॥ ३२ ॥ श
शापमांसमानीय वेपमानंकृताञ्जलिम् ॥ ३३ ॥ ईश्वरउवाच ॥ यस्माद्दुष्टसमाचारधर्षितास्तेपतिव्रताः ॥ कामा
र्तेनमयाशप्तस्तस्मात्कूर्म्मःक्षणाद्भव ॥ ३४ ॥ ततःप्रणम्यविज्ञप्तः शापान्तायहरोमया ॥ प्राहषष्टितमेकल्पे विपापो
भविताग्रणः ॥ ३५ ॥ प्रदीपइतिनामोक्त्वा जगामादर्शनंशिवः ॥ अहंकूर्मस्तदाजातो दशयोजनविस्तृतः ॥ ३६ ॥

धर्षणा किया व हे सुरेश ! तुम्हारेही वर देनेसे मत्त,प्रतिष्ठाननगरमें बसनेवाले जयदत्तने मेरा अनादरकर मेरी धर्मकी आज्ञाका लोप करदिया धर्मराजकी इस वाणीको
सुनकर क्रोधितहो भगवान् शिवजीने ॥ ३१ । ३२ ॥ हाथोंको जोडे व कांपतेहुये मुझको भलीभांति आनकर शाप दिया ॥ ३३ ॥ महादेवजी बोले कि हे दुष्टआच-
रणवाले ! कामदेव से विकल तुमने जिसलिये पतिव्रताओं की धर्षणा कियाहै उसीकारण मुझ से शापित तुम क्षणभर में कछुवा होवो ॥ ३४ ॥ तदनन्तर प्रणाम
कर मैंने शापके लिये महादेवजी से विनय किया व उन्होंने कहा कि साठिवें कल्प में पापरहित होकर प्रदीपनामक गण होगे यह कहकर शिवजी अन्तर्द्धान होगये

उससमय चालीसकोस चौड़ा मैं कछुवा होगया ॥ ३५। ३६ ॥ व पुरातन समय में यज्ञके सिद्ध करने में यज्ञ करनेवाले तुमने मुझको समुद्रके जल से आना उसको स्मरण करताहुआ मैं तुमसे डरताहूं ॥ ३७॥ क्योंकि तुमने मुझको यहां पीठमें जलाया है व तुम मेरे इन घावोंको देखो यहां कल्पसूत्र की विधिसे बहुत यज्ञोंको ॥ ३८ ॥ हे इन्द्रद्युम्न ! उससमय तुमने पीठपै किया है फिर हे राजन् ! यज्ञ करते हुये तुमकरके विस्तारित यज्ञों से समस्त तीर्थोंके मध्यमें सारांशभूत महीनदी बह चली उसमें केवल नहानेसे मनुष्य सब पापोंसे छूटजाताहै ॥३९।४०॥ तदनन्तर हे राजन् ! किसीभी नैमित्तिक प्रलय में तैरताहुआ मैं सौयोजनवाले इस मानसरो-

समुद्रसलिलान्नीतस्त्वयाहंयज्ञसाधने ॥ पुरस्ताद्यायजूकेन स्मरंस्तच्चबिभेमिते ॥ ३७ ॥ दग्धस्त्वयाहंपृष्ठेत्र व्रणा न्येतानिपश्यमे ॥ सवनानिबहून्यत्र कल्पसूत्रविधानतः ॥ ३८ ॥ पृष्ठोपरिकृतान्यासन्निन्द्रद्युम्नतदात्वया ॥ भूयस्सं विततैर्यज्ञैर्यजतापृथिवीपते ॥ ३९ ॥ सुस्रावसर्वतीर्थानां सारभूतामहीनदी ॥ तस्यांचस्नानमात्रेण सर्वपापैःप्रमुच्य ते ॥ ४० ॥ ततोनैमित्तिकेकस्मिन्नपिप्रलयआगतः ॥ प्लवमानइदंराजन् मानसंशतयोजनम् ॥ ४१ ॥ षट्पञ्चाशत्प्र माणेन कल्पाममपुरानृप ॥ व्यतीताइहचत्वारः शेषामोक्षस्ततःपरम् ॥ ४२ ॥ एवमायुरिदन्दीर्घमेवंशापाच्चकू र्मता ॥ ममभूदीश्वरस्यैव सतीधर्मद्रुहोनृप ॥ ४३ ॥ ब्रूहिकिंक्रियतांशत्रोरपितेगृहगामिनः ॥ ममपृष्ठिश्चिरंभूप त्व यादग्धाग्निनापुरा ॥ ४४ ॥ अहंज्वलन्तीमिवतां पश्याम्यद्यापिसन्नृप ॥ इदंविमानमायातं त्वयाकस्मान्निराकृतम्॥ देवदूतसमायुक्तं भुङ्क्ष्वभोगान्निजार्जितान् ॥ ४५॥ इन्द्रद्युम्नउवाच ॥ चतुर्मुखेनतेनाहं स्वर्गान्निर्वासितःस्वयम् ॥

वर में आया ॥ ४१ ॥ हे राजन् ! प्रमाणसे छप्पनकल्प मेरे पहले बीतचुके हैं व यहां चार बाकीहैं उसके उपरान्त मोक्ष होगी ॥ ४२ ॥ हे राजन् ! इसप्रकार मेरी यह बड़ी आयुर्बलहुई है व इसप्रकार महादेवही के शापसे मुझ पतिव्रताधर्मके वैरी को कच्छपताहुई ॥ ४३ ॥ हे राजन् ! कहिये कि घरमें आयेहुये तुम्ह शत्रुका भी क्या कार्य्य किया जाय पुरातन समय तुमने अग्नि से बहुत समयतक मेरी पीठ जलायाहै ॥ ४४ ॥हे उत्तम भूप ! उस पीठ को जलती हुई सी मैं आज भी देखता हूं तुमने देवदूत संयुत आये हुये इस विमान को क्यों निराकरण किया अपनेसे इकट्ठा किये हुये भोगों को भोग कीजिये ॥ ४५ ॥ इन्द्रद्युम्न बोले कि उन्हीं चतुरानन से मैं आपही

स्वर्गसे निकालागया इससे मोक्षके लिये ज्ञान पाकर कर्मोंके नाशको प्राप्तहूंगा ॥४६॥ इस लिये यदि आप आज घरमें आये हुये मेरी पहुनई करनेवाले हो तो कहिये कि
जिसप्रकार कोई भी गुरु मुझ को पारदायक होवै ॥ ४७ ॥ कच्छुवा बोला कि हे राजन्! लोमश नामक महामुनि मुझसे भी बड़ी आयुर्बलवाले हैं मैंने कभी
कलापग्राम में उनको पहले देखा है ॥ ४८ ॥ इन्द्रद्युम्न बोले कि इस लिये आइये हमलोग साथही उनके पास चलें विद्वानों ने तीर्थ से भी अतिपवित्र सत्संगति को
कहाहै ॥ ४९ ॥ उससमय इस प्रकार राजाके वचन सुनकर वे सब भी छहों शीघ्र ही मुनियों में प्रसिद्ध उन लोमश द्विजेन्द्र को चित्तमें धारणकर प्रसन्न हो चले जो

कर्मक्षयंप्रयास्यामि प्राप्यबोधंविमुक्तये ॥ ४६ ॥ तन्मेगृहागतस्याद्ययदातिथ्यकरोभवान् ॥ तदादिशयथाभूयात्
पारदःकोपिमेगुरुः ॥ ४७ ॥ कूर्मउवाच ॥ लोमशोनामदीर्घायुर्मत्तोप्यस्तिमहामुनिः ॥ मयाकलापग्रामेस पूर्वदृष्टः
कश्चिन्नृप ॥ ४८ ॥ इन्द्रद्युम्नउवाच ॥ तस्मादागच्छगच्छामस्तमेवसहितावयम् ॥ प्राहुःपूततमांतीर्थादपिसत्स
ङ्गतिंबुधाः ॥ ४९ ॥ इत्थंनिशम्यनृपतेर्वचनंतदानीं सर्वेपितेषडथतं मुनिमुख्यमाशु ॥ चित्तेविधायमुदितांप्रययुर्द्विजे
न्द्रं जिज्ञासवस्सुचिरजीवितहेतुमस्य ॥ ५० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डे महीप्रादुर्भावेकूर्माख्यानंनाम ॥
नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥
नारदउवाच ॥ अथतेददृशुःपार्थ संयमस्थंमहामुनिम् ॥ क्रियायोगसमायुक्तं तपोमूर्तिधरंयथा ॥ १ ॥ जटात्रिष
वणस्नानकपिलाःशिरसातदा ॥ धारयन्तंलोमशाख्यमाज्यासिक्तमिवानलम् ॥ २ ॥ सव्यहस्तेतृणौघञ्च छाया

कि इसके बहुत समय तक जीने के कारण को जानने की इच्छावाले थे ॥ ५० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांमहीप्रादु
र्भावेकूर्माख्यानंनामनवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ ॥ ॥ ॥
दो० । इन्द्रद्युम्न महीपसन लोमश कह निजहाल । सोई दशम अध्याय में वरणत चरित रसाल ॥ नारद जी बोले कि हे अर्जुनजी ! इसके उपरान्त कर्मयोग से
संयुत व संयम में टिके हुये लोमश महामुनिको उन्हों ने देखा जैसे कि मूर्तिधारी तपस्या होवै ॥ १ ॥ उससमय तीन बार स्नान करने से मस्तक करके पिंगल

वर्ण की जटायें धारणकिये थे घी से सींची हुई अग्नि की नाईं लोमश नामक मुनि को देखा ॥ २ ॥ जो द्विजश्रेष्ठ कि छाया के लिये बायें हाथमें तृणसमूह व दाहिने में रुद्राक्षमालाको धारण किये व मैत्र मार्ग में प्राप्त थे ॥ ३ ॥ ब्रह्मचारियों के मध्य में जो पुरुष चन्द्रमा से उपजे हुये प्राणियों की अहिंसा करके जप से सिद्धि को प्राप्त होताहै वह मुनि मैत्र कहलाता है ॥ ४ ॥ बगुला, राजा, ब्राह्मण, मार्कण्डेयजी, घुघुवा, गीध व कछुवा ने उन लोमश को कलापग्राम में देखकर तपस्या के निधान व बड़े प्राचीन उन मुनि को प्रणाम किया ॥ ५ ॥ व इन मुनि से स्वागत याने कुशलप्रश्न और आसन व सत्कार करके वे प्रसन्न किये गये और यथायोग्य

थंविप्रसत्तमम् ॥ दक्षिणेचाक्षमालाञ्च बिभ्रतंमैत्रमार्गगम् ॥ ३ ॥ अहिंसयेन्दुसञ्जातप्राणिनांब्रह्मचारिणाम् ॥ यस्सिद्धिमेतिजप्येन समैत्रोमुनिरुच्यते ॥ ४ ॥ बकभूपद्विजोलूकगृध्रकूर्माविलोक्यतम् ॥ नेमुःकलापग्रामेतं चिरन्तनतपोनिधिम् ॥ ५ ॥ स्वागतासनसत्कारेणामुनातेभिनन्दिताः ॥ यथोचितंप्रतीतास्तमाहुःकार्यंहृदिस्थितम् ॥ ६ ॥ कूर्म उवाच ॥ इन्द्रद्युम्नोयमवनीपतिस्सत्रिजनाग्रणीः ॥ कीर्तिलोपान्निरस्तोवै वेधसानाकपृष्ठतः ॥ ७ ॥ मार्कण्डेयादिभिः प्राप्य कीर्त्युद्धारेपिसत्तम ॥ नायंकामयतेस्वर्गं पुनःपातादिभीषणम् ॥ ८ ॥ भवतानुगृहीतोयमिहेच्छतिमहोदयम् ॥ मोक्षाख्यंतदयंभूपः शिष्यस्तेभगवन्मया ॥ ९ ॥ त्वत्सकाशमिहानीतो ब्रूहित्वंचास्यवाञ्छितम् ॥ परोपकरणन्नाम साधूनांव्रतमाहितम् ॥ १० ॥ विशेषात्प्रणतिप्राप्तंशिष्यवृत्तिमुपेयुषम् ॥ सर्वप्राणिष्वपापेषु साधुप्रोक्तमसंश

प्रसन्न होतेहुये उन्होंने हृदय में टिके हुये कार्य्य को कहा ॥ ६ ॥ कछुवा बोला कि यज्ञ करनेवाले जनों में अग्रगण्य ये इन्द्रद्युम्न राजा यश के लोप होजाने के कारण स्वर्ग से ब्रह्मा करके निकाल दियेगये हैं ॥ ७ ॥ हे सत्तम! मार्कण्डेयादिकों करके प्राप्त होकर यशके उधारने पर भी यह राजा फिर गिरने इत्यादि से भयानक स्वर्ग की नहीं इच्छा करताहै ॥ ८ ॥ हे भगवन्! आपसे दया कियाहुआ यह यहां मोक्ष नामक बड़े ऐश्वर्य्य की इच्छा करता है इसलिये तुम्हारे शिष्य इस राजा को मैं ॥ ९ ॥ यहां तुम्हारे समीप लाया शीघ्रही आप इसका मनोरथ कहिये परोपकार नामक सज्जनों का व्रत कहागया है ॥ १० ॥ नम्रता व शिष्यवृत्ति में प्राप्त पुरुष को विशेष

कर उपकार करना चाहिये यह पापरहित सब प्राणियों में साधुओं करके निस्सन्देह कहागया है ॥ ११ ॥ व पूर्वोक्त से अन्य मनुष्य का वैर व मृत्यु की जाती है व नम्र
पुरुष के लिये न देना नरक को देता है ॥ १२ ॥ आप उसको व इस अधर्म्म को जानते हो और हमलोग कैसे जानैं ॥ १३ ॥ लोमशजी बोले कि हे कूर्म्म ! तुमने
यह सब आज हमलोगों से योग्य कहा व धर्म्मशास्त्रसे युक्त उस पुराने चरित्र को मैं स्मरण करायागया ॥ १४ ॥ हे राजन् ! हृदय में टिके हुये सन्देह को भलीभांति
विश्वासपूर्वक कहो कि तुम्हारे क्या संदेह है व क्या कहते हो उसको सुनकर मैं निस्सन्देह कहूंगा ॥ १५ ॥ इन्द्रद्युम्न बोले कि हे भगवन् ! तबतक मेरा पहला

यम् ॥ ११ ॥ विद्वेषंमरणंवापि क्रियतेन्यनरस्यच ॥ अप्रदत्तंप्रणयिने निरयंसंप्रयच्छति ॥ १२ ॥ तदवैतिभवान्नेतं
धर्मवेत्तिकुतोवयम् ॥ १३ ॥ लोमशउवाच ॥ कूर्मयुक्तमिदंसर्वं त्वयाभिहितमद्यनः ॥ धर्म्मशास्त्रानपेतन्तत्स्मारितोस्मि
पुरातनम् ॥ १४ ॥ ब्रूहिराजन्सुविश्रब्धं सन्देहंहृदयस्थितम् ॥ कस्तेकिमब्रवीःश्रुत्वा वक्ष्याम्यहमसंशयम् ॥ १५ ॥
इन्द्रद्युम्नउवाच ॥ भगवन्प्रथमःप्रश्नस्तावदेषममोच्यताम् ॥ ग्रीष्मकालेपिमध्यस्थे रवौकिन्नतवाश्रमः ॥ १६ ॥ कु
टीमात्रोपिपयच्छायातृणैश्शिरसिपाणिगैः ॥ लोमशउवाच ॥ मर्तव्यमस्त्यवश्यञ्च कोयमस्मैयतिष्यति ॥ १७ ॥
कस्यार्थेक्रियतेगेहमनित्यभवमध्यगैः ॥ यस्यमृत्युर्भवेन्मित्रं पीतंवामृतमुत्तमम् ॥ १८ ॥ तस्यैतद्युचितंवक्तुमिदं
मेश्वोभविष्यति ॥ इदंयुगसहस्रेषु भविष्यत्यन्वहन्धनम् ॥ १९ ॥ तदप्यल्पत्वमापन्नं काकथामरणावधेः ॥ कारणा
नुगतंकार्यमिदंशुक्रादभूद्वपुः ॥ २० ॥ कथंविशुद्धिमायातित्वालिताङ्गमतङ्गवत ॥ तदस्यापिकृतेपापंशत्रुषड्वर्गनिर्जि

प्रश्न यह कहाजावै कि ग्रीष्म समय में भी सूर्य्य के मध्यस्थहोनेपर तुम्हारा आश्रम कुटीमात्र भी क्यों नहीं है जोकि हाथ में प्राप्त तिनुकों से मस्तकपै छाया किये हो
लोमश बोले कि अवश्यही मरना है यह कौन पुरुष इसके लिये यत्न करैगा ॥ १६।१७ ॥ नाशहोनेवाले संसार के बीचमें प्राप्त पुरुषों करके किसके लिये घर कियाजाता है
जिस की मृत्यु मित्र होवै व जिसने उत्तम अमृत पियाहो ॥ १८ ॥ उसको यह कहना योग्यहै यह मेरे कल होगा व यह धन हजारों युगों में होगा इसप्रकार प्रति-
दिन होताहै ॥ १९ ॥ मृत्युकी अवधि तक वह भी अल्पता को प्राप्त होता है क्या कथा कही जावै कारणका अनुगामी कार्य होताहै यह शरीर वीर्यसे हुआहै ॥ २० ॥

वह धोये अङ्गोंवाले हाथीके समान कैसे पवित्रताको प्राप्तहोवै यह कहिये इस लिये शत्रुवों के छह वर्ग से जीतेहुये पुरुष इसके लिये भी पातक करते हैं ॥ २१ ॥ वेदोक्त पढ़ते व सुनतेहुये यह शरीर कैसे जियैगा हे राजन् ! दांत चलायमान होते हैं व लक्ष्मी यौवन व जीवन चञ्चलहै ॥२२॥ मनुष्यों का यह शरीर अत्यन्तही चलाचल व बहुत हीनहीं है इस प्रकार संसार को सारांशहीन व चलाचल जानकर ॥ २३ ॥ हे राजन् ! किसके लिये कुटीआदि का ग्रहण होताहै ॥ २४ ॥ इन्द्रद्युम्न बोले कि त्रिलोक में दीर्घ आयुर्बलवाले आपही सुने जाते हैं उस के लिये मैं आयाहूं तो इसप्रकार तुम्हारा वचन कैसे है ॥ २५ ॥ लोमशजी बोले कि प्रतिकल्प में मेरे

ताः ॥ २१ ॥ निगमोक्तंपठञ्छृण्वन्निदंजीविष्यतेकथम् ॥ दन्ताश्चलाश्चलालक्ष्मीर्यौवनंजीवितंनृप ॥ २२ ॥ चलाचलमतीवेदंहीनमेवनृणाम्परम् ॥ इतिविज्ञायसंसारमसारञ्चचलाचलम् ॥ २३ ॥ कस्यार्थेक्रियतेराजन्कुटजादिपरिग्रहः ॥ २४ ॥ इन्द्रद्युम्न उवाच ॥ चिरायुर्भगवानेवश्रूयतेभुवनत्रये ॥ तदर्थमहमायातस्तत्किमेवंवचस्तव ॥ २५ ॥ लोमशउवाच ॥ प्रतिकल्पंमेशरीरादेकरोमपरिक्षयः ॥ जायतेसर्वनाशेचममभाविप्रमापणम् ॥ २६ ॥ पश्यजानुप्रदेशेमेद्व्यङ्गुलंरोमवर्जितम् ॥ जातंवपुस्तद्बिभेमिमर्तव्येसतिकिंगृहैः ॥ २७ ॥ नारदउवाच ॥ इत्थंनिशम्यतद्वाक्यं सप्रहस्यातिविस्मितः ॥ भूपालस्तस्यपप्रच्छ कारणन्तादृशायुषः ॥ २८ ॥ इन्द्रद्युम्नउवाच ॥ पृच्छामित्वामहंब्रह्मन् यदायुरितिमीदृशम् ॥ तवदीर्घंप्रभावोसौदानस्यतपसोपिवा ॥ २९ ॥ लोमशउवाच ॥ शृणुभूपप्रवक्ष्यामि पूर्वजन्मसमुद्भवम् ॥ शिवधर्मयुतांपुण्यांकथांश्रवणमात्रतः ॥ ३० ॥ अहमासंपुराशूद्रोदरिद्रोतीवभूतले ॥ भ्रमामिवसुधापृष्ठेक्षु

शरीर से एक रोमका नाश होताहै और सबके नाशमें मेरी मृत्यु होगी ॥ २६ ॥ मेरे जंघस्थल में देखिये मेरा शरीर दो अंगुल रोमसे रहित होगया है इस लिये डरताहूं कि जब मरना है तब घरोंसे क्याहै ॥ २७ ॥ नारद बोले कि इसप्रकार उसका वचन सुनकर बड़े विस्मय में प्राप्त उन राजाने वैसे आयुर्बलका कारण उन से पूंछा ॥ २८ ॥ इन्द्रद्युम्न बोले कि हे ब्रह्मन् ! मैं तुमसे यह पूछताहूं जो कि तुम्हारा ऐसा बड़ा आयुर्बलहै यह दानका अथवा तपस्याका प्रभावहै ॥ २९ ॥ लोमशजी बोले कि हे राजन् ! सुनिये पहले जन्म में उपजा हुआ चरित्र कहूंगा क्योंकि शिवधर्मसे संयुत पुण्यदायिनी कथा के सुननेही से पाप नाश होते है ॥ ३० ॥ पुरातन

समय भूमि में मैं अत्यन्तही निर्धन शूद्र हुआ व भूंखसे बहुतही विकल मैं भूतल में घूमता था ॥ ३१ ॥ तदनन्तर उस समय दुपहर में मैंने जलके बीच में प्राप्त बड़े
भारी जलाधीश लिंग को समीपही देखा ॥ ३२ ॥ तदनन्तर उस जल में पैठकर व नहाकरके उस जल को पीकर मैंने उस शिव जी के लिंग को नहवाया व उत्तम
कमलों से पूजा किया ॥ ३३ ॥ इसके अनन्तर हे नृपश्रेष्ठ! क्षुधा से दुबले कण्ठ वाला मैं शिवजी को प्रणाम कर फिर चला और राह में मरगया ॥ ३४ ॥ तदनन्तर
[illegible]धार शिवलिंग के नहवाने व उन्हीं के पूजनसे जाति के स्मरण वाला मैं ब्राह्मणके घरमें पुत्रपैदाहुआ ॥ ३५ ॥ व सत्य भासित इससंसारको झूंठ खेलवाला

[illegible]पीडितोभृशम् ॥ ३१ ॥ ततोमयामहल्लिङ्गंजलमध्यगतन्तदा ॥ मध्याह्नेवैजलाधीशंदृष्टञ्चैवाविदूरतः ॥ ३२ ॥
[illegible]रिपीत्वास्नात्वाचशाम्भवम् ॥ तल्लिङ्गंस्नापितम्पूजाविहिताकमलैःशुभैः ॥ ३३ ॥ अथक्षुत्क्षामक
[illegible]मस्यच ॥ पुनःप्रचलितोमार्गेप्रमीतोनृपसत्तम ॥ ३४ ॥ ततोहंब्राह्मणगृहेजातोजातिस्मरःसुतः ॥
[illegible]स्यैवपूजनात् ॥ ३५ ॥ स्मरन्विलसितंमिथ्यासत्यमासमिदंजगत ॥ अविद्यामयमित्ये
[illegible] ॥ तेनविप्रेणवार्द्धक्येसमाराध्यमहेश्वरम् ॥ प्राप्तोहमितिमेनामईशानइतिकल्पित
[illegible]न्ममम ॥ चकारव्यपनेष्यामिमूकत्वमितिनित्यशः ॥ ३८ ॥ मन्त्रवादान्
[illegible]मायांमंत्रद्धमनसोस्तथा ॥ ३९ ॥ निरीक्ष्यमूढतांहास्यमासीन्मनसिमे
[illegible] ॥ ४० ॥ सम्पूज्यकमलैःशम्भुं पुनःशयनमभ्यगाम् ॥ ततःप्रमीते

[illegible] शङ्करजी को भलीभांति आराधकर मुझको पायाथा इससे
[illegible] पढ़ाया कि मैं नित्यही गूंगा पनको दूरकरदूंगा
[illegible] मूढ़ता को देखकर उससमय मेरे मनमें हा-
[illegible] प्राप्त होताथा तदनन्तर पिताके मर-

[illegible]

ई है शिवजी [illegible]
नन्दीश्वर
की पूजासे नन्दीश्वर है उन शिवजी [illegible]
को प्राप्तहोगई है

जानेपर गूंगाहै इसकारण से मुझको छोडदिया इसके अनन्तर प्रसन्नहोकर फलाहारी स्थितहोतेहुये मैंने उससमय अनेक भांतिके कमलोंसे शिवजीका पूजनाकिया ॥ ४१।४२ ॥ इसके अनन्तर सौवर्षके अन्तमें आखोंके सामनेप्राप्त वरदायक चन्द्रभालजीसे मैंने वृद्धता व मृत्युका नाशमांगा॥४३ ॥ शिवजीबोले कि जिसलिये नाम रूपके धारनेवालेकी अजरामरता नहीं होतीहै व मेरे भी देहका नाशहोताहै इससे जीनेमें अवधि कीजिये ॥ ४४॥ ऐसेशिवजीके वचन सुनकर उससमय यह मागा कि कल्प के अन्तमें रोमगिरै व सबरोमोंके नाशमें मृत्युहोवै॥ ४५॥ तदनन्तर तुम्हारा गणहोऊं यह वर मुझकोप्रियहै वैसाही होगा यह कहकर वे भगवान् शिवजी अन्तर्द्धान होगये ॥ ४६ ॥ तब से लगाकर मैं तपस्यामें स्थितहुआ ब्रह्म कमल व अन्यभी कमलों के द्वारा शिवजी को पूजने से ब्रह्महत्यादिक पापोंसे छूटजाता है हे महाराज ! तुम भी ऐसा कीजिये तो मनोरथ को पाइयेगा ॥ ४७।४८ ॥ शिवजी के भक्त मनुष्य को त्रिलोकमें कुछ दुर्लभ नहीं है ज्ञानेन्द्रिय समूहकी बाहरी प्रवृत्तिरोंककर ॥ ४९ ॥ सदैव सदाशिवजी में लीनहोना यह अन्तर्योग कहाजाता है बाहरीयोग की कठिनतासे शिवही ने आपही पांचोंमुखों से गाया है जोकि भूमि में उत्तम फलदायक व

पितरिमूकइत्यहमुज्झितः ॥ ४१ ॥ सम्बन्धिभिःप्रतीतोथफलाहारोऽव्यवस्थितः ॥ पूजयामासभूतेशंपङ्कजैर्विविधैस्त दा ॥ ४२ ॥ अथवर्षशतस्यान्ते वरदःशशिशेखरः ॥ प्रत्यक्षोयाचितोमेभूज्जरामरणसंक्षयम् ॥ ४३ ॥ ईश्वरउवाच ॥ अजरामरतानास्तिनामरूपभृतोयतः ॥ ममापिदेहपातःस्यादवधिंकुरुजीविते ॥ ४४ ॥ इतिशम्भोर्वचःश्रुत्वामयावृत मिदंतदा ॥ कल्पान्तेरोमपातोस्तुमरणंसर्वसंक्षये ॥ ४५ ॥ ततस्तवगणोभूयामितिमेभीप्सितोवरः॥ तथेत्युक्त्वासभग वान्हरश्चादर्शनङ्गतः ॥ ४६ ॥ अहंतपसिनिष्ठश्चततःप्रभृतिचाभवम् ॥ ब्रह्माब्जैरितरैर्वापिकमलैर्नात्रसंशयः ॥ एवंकुरुमहाराजत्वमप्याप्स्यसिवाञ्छितम् ॥ ४८ ॥ हरभक्तस्यलोक स्यत्रिलोक्यांनास्तिदुर्लभम् ॥ बहिःप्रवृत्तिंसंगृह्यज्ञानेन्द्रियगणस्यच ॥ ४९ ॥ लयःसदाशिवेनित्यमन्तर्योगोयमुच्य ते ॥ दुष्करत्वाद्बहिर्योगं शिवएवस्वयंजगौ ॥ ५० ॥ पञ्चभिश्चाननैर्भूमौ विशिष्टफलदन्ध्रुवम् ॥ क्लेशकर्मविपाका

४७ ॥ ब्रह्मघातादिकैःपापैर्मुच्यतेशिवपूजनात् ॥

अचल और क्लेशके कर्मोंके फलादिक व आशयोंसे भी असंयुतहैं ॥ ५० । ५१ ॥ उन शिवजीकी आराधनाकर ॐ कारको जपताहुआ पुरुष मोक्षको प्राप्तहोता है व
सबपापों के नाशहोजाने पर शिवमें भक्तिहोती है ॥ ५२ ॥ पापसे नष्ट बुद्धिवाले जनोंको शिवजीकी वार्ताभी दुर्लभ है भरतखण्ड में जन्म दुर्लभहै व शिवजी का
पूजन दुर्लभहै ॥ ५३ ॥ गंगाजी में स्नान दुर्लभ है व शिवमें भक्ति दुर्लभ है व ब्राह्मण के निमित्त दान दुर्लभहै व अग्निकी पूजा दुर्लभहै ॥ ५४ ॥ व थोड़ी पुण्य:
वालोंको पुरुषोत्तमका पूजन दुर्लभ है लाख धनुषोंसे योग व उसके आधेयाने पचास हज़ार धनुषोंसे अग्नि ॥ ५५ ॥ और पचीसहज़ारसे नर्मदा व बारहहज़ार धनु-

**धैराश्यैश्चाप्यसंयुतम् ॥ ५१ ॥ ईशानमाराध्यजपन् प्रणवंमुक्तिमाप्नुयात ॥ सर्वपापक्षयेजाते शिवेभवतिभावना ॥
५२ ॥ पापोपहतबुद्धीनां शिववार्त्तापिदुर्लभा ॥ दुर्लभम्भारतेजन्म दुर्लभंशिवपूजनम् ॥ ५३ ॥ दुर्लभंजाह्नवीस्नानं
शिवेभक्तिःसुदुर्लभा ॥ दुर्लभंब्राह्मणेदानं दुर्लभंवह्निपूजनम् ॥ ५४ ॥ अल्पपुण्यैश्चदुष्प्राप्यं पुरुषोत्तमपूजनम् ॥ लक्षे
णधनुषांयोगस्तदर्द्धेनहुताशनः ॥ ५५ ॥ पञ्चविंशत्सहस्रेणरेवारुद्रश्चषड्ढिभिः ॥ इतीदमुक्तमखिलंमयातवमहीपते ॥
५६ ॥ यथापुराभवद्दीर्घं ममाराध्यमहेश्वरम् ॥ नदुर्लभन्नदुष्प्राप्यं नवासाध्यंमहात्मनाम् ॥ ५७ ॥ शिवभक्तिकृतां
पुंसां त्रिलोक्यामितिनिश्चितम् ॥ नन्दीश्वरस्यतेनैव वपुषाशिवपूजनात् ॥ ५८ ॥ सिद्धिमालोक्यकोराजञ्छङ्कर
न्ननमस्यति ॥ श्वेतस्यचमहीपस्य शितिकण्ठन्नमस्यतः ॥ ५९ ॥ कालोपिप्रलयंयातः कस्तमीशन्नपूजयेत् ॥ यदि
च्छयाविश्वमिदं जायतेऽयवतिष्ठति ॥ ६० ॥ तथासंक्षीयतेचान्ते कस्तन्नशरणंव्रजेत् ॥ ६१ ॥ एतद्रहस्यमिदमेवन्न**

षोंसे शिवजी पुण्यदायक होते हैं हे राजन् ! इसप्रकार मैंने यह सब वृत्तान्त तुमसे कहा ॥ ५६ ॥ कि जिसप्रकार पुरातन समय महादेवजीको आराधनकर मेरीबड़ी
आयुर्बलहुई है शिवजीकी भक्ति करनेवाले महात्मा पुरुषोंको त्रिलोकमें दुर्लभ व दुःखसे मिलने योग्य और असाध्य नहीं है यह निश्चय कियागया है उसी शरीरसे
शिवजीकी पूजासे नन्दीश्वर की ॥ ५७ । ५८ ॥ सिद्धिको देखकर हे राजन् ! कौन शिवको नहीं प्रणाम करताहै और शिवजीका प्रणाम करतेहुये श्वेतराजाकी मृत्युभी
नाशको प्राप्तहोगई है उन शिवजीको कौन नहीं पूजैहै जिनकी इच्छासे यह संसार पैदाहोता है व स्थित होता है ॥ ५९ । ६० ॥ वैसेही अन्तमें नाशहोता है उनकी

शरणमें कौननहीं जावैहै ॥ ६१ ॥ हे राजन्। यह गुप्तचरित्रहै व इस संसार में यही शिव पूजनही मनुष्यों को मुख्य करनाचाहिये जिस शिव पूजनके मध्यमें मनुष्य नरोंसे सेवनेयोग्य स्थानको प्राप्तहोता है व शिवको प्रणाम करने वाला पुरुष सत्यही शिवजीको पाताहै ॥ ६२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांमहीप्रादुर्भावेदशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ ❀ ॥ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो०। जौनदेव जेहिलिंगको पूजतहै मनलाय। गेरहवें अध्याय में सोइ चरित सुखदाय ॥ नारदजी बोले कि उन मुनिनायक के ऐसे वचन सुना व उनने कहा

णांप्रधानं कर्तव्यमत्रशिवपूजनमेवभूप ॥ यस्यान्तराथपदवीमुपयातिलोकः सेव्यान्नरैश्शिवनतश्शिवमेतिसत्यम् ॥ ६२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डे महीप्रादुर्भावेदशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ * ॥ * ॥

नारदउवाच ॥ इतितस्यमुनीन्द्रस्य भूपतिश्श्रुतवान्वचः ॥ प्राहनाहङ्गमिष्यामि त्वांविहायेतरंकचित् ॥ १ ॥ लिङ्गमाराधयाम्यद्य सर्वसिद्धिप्रदंनृणाम् ॥ त्वयैवानुगृहीतेद्यपान्तुसर्वेतवागतम् ॥ २ ॥ तद्भूपतिवचःश्रुत्वा बकोगृध्रोथ कच्छपः ॥ उलूकश्चतथैवोचुः प्रणतालोमशम्मुनिम् ॥ ३ ॥ सचसर्वसुहृद्विप्रस्तथेत्येवाहतांस्तदा ॥ प्रणामप्रणतान्सर्वाननुजग्राहशिष्यवत् ॥ ४ ॥ शिवदीक्षाविधानेन लिङ्गपूजांसमादिशत् ॥ तेषामनुग्रहपरो मुनिःप्रणतवत्सलः ॥ ५ ॥ तीर्थादप्यधिकःस्थाने सतांसाधुसमागमः ॥ पचेलिमफलस्सद्यो दुरन्तकलुषापहः ॥ ६ ॥ अपूर्वःकोपिसद्गोष्ठीसहस्रकि

कि मैं तुमको छोडकर अन्यके समीप कहीं न जाऊगा ॥ १ ॥ व मनुष्योंको समस्त सिद्धिदायक शिवजीके लिंगका आज आराधनकरूंगा आज तुम्हारेही दयाकरनेपर तुम्हारे समीपआये हुये मेरी सब रक्षाकरैंगे ॥ २ ॥ राजाके उस वचनको सुनकर बगुला, गीध व कच्छप व घुघुवाने प्रणामकर उसीप्रकार लोमश मुनिसे कहा ॥ ३ ॥ और सबोंके मित्र उस ब्राह्मण ने उस समय प्रणाम से झुकेहुये उन सबोंसे यह कहा कि वैसाही होगा और शिष्यकी नाई कृपाकिया ॥ ४ ॥ व दयामें परायण तथा प्रणत प्रिय मुनिने शिवजीकी दीक्षाकी विधिमे उनको लिंग पूजनका उपदेश किया ॥ ५ ॥ स्थान में सज्जनों का साधुसे संयोग होना तीर्थ से भी उत्तम फलवाला और शीघ्रही अन्तमें दुखदायक व पातकका नाशकहै ॥ ६ ॥ व उत्तम सभामें हज़ार किरणोंसे उदयवाला जो कोई भी अपूर्व नर एकान्त में भीतरी तप करता है वह

बीचमें प्राप्त अन्धकार (अज्ञान) का नाशक होताहै ॥ ७ ॥ व साधुजनोंकी सभामें पैदाहुये मुखके द्वारा अमृत रससे ये सब मनुष्य अमृतसमुद्र में शक्कर व सहदके
रामान छवों रसवाले होते हैं ॥ ८ ॥ तदनन्तर साधु संगतिको भलीभांति पाकर मार्कण्डेय व राजा पूर्वक उन्होंने शिवजीकी आज्ञासे कर्मयोग का आरम्भ किया ॥ ९ ॥
किसी समय उन के तपस्या करतेही हुये लोमश मुनिके देखने की उत्कण्ठा वाला मैं तीर्थयात्रा के प्रसंगसे इस स्थानपै आया ॥ १० ॥ क्योंकि तीर्थयात्रा के प्रसंगसे
पुरुषोंकी यात्रा मुख्यहै उत्तम जनोंसे भलीभांति बैठागया भूमिभाग तीर्थतासे कहाजाताहै ॥ ११ ॥ हे अर्जुन ! पूजन व पाहुनकी विधिको किये व सहँतायेहुये मुझ

रणोदयः ॥ यएकान्तेतपत्यन्तरन्तर्गततमोपहः ॥ ७ ॥ साधुगोष्ठीसमुद्भूतमुखामृतरसादमी ॥ सर्वैनरास्सुधासिन्धुश
र्करामधुषड्रसाः ॥ ८ ॥ ततस्तेसाधुसंसर्गं सम्प्राप्यशिवशासनात् ॥ आरेभिरेक्रियायोगं मार्कण्डनृपपूर्वकाः ॥
९ ॥ तेषान्तपस्यतामेवाजगामास्मिन्कदाचन ॥ तीर्थयात्रानुषङ्गेण लोमशालोकनोत्सुकः ॥ १० ॥ मुख्यापुरुषया
त्राहि तीर्थयात्रानुषङ्गतः ॥ सद्भिस्समाश्रितोभूमिभागस्तीर्थतयोच्यते ॥ ११ ॥ कृतार्हणातिथ्यविधिं विश्रान्तमाश्र
फाल्गुन ॥ प्रणम्यतेथपप्रच्छुर्नाडीजङ्घपुरस्सराः ॥ १२ ॥ भक्ताऊचुः ॥ शापभ्रष्टावयंब्रह्मंश्चत्वारोपिस्वकर्म्मणा ॥
तन्मुक्तिसाधनार्थाय स्थानंकिञ्चित्समादिश ॥ १३ ॥ इयंहिनिष्फलाभूमिस्सकलेभारतेमुने ॥ तत्रापिक्वचिदेकत्र
सर्वतीर्थफलंवद ॥ १४ ॥ इतिपृष्टस्त्वहंतैश्च तानब्रवमिदंतदा ॥ संवर्तंपरिपृच्छध्वं सवोवक्ष्यतितत्त्वतः ॥ १५ ॥ सर्वती
र्थफलावाप्तिकारकंभूप्रदेशकम् ॥ १६ ॥ तेऊचुः ॥ कुत्रासौतप्यतेयोगी नजानीमोवयञ्चतम् ॥ संवर्त्तदर्शनान्मुक्ति

को प्रणामकर नाड़ीजंघ पूर्वक उन्होंने कहा ॥ १२ ॥ भक्तबोले कि हे ब्रह्मन् ! हमलोग चारोंभी अपने कर्मकरके शापसे भ्रष्टहुये हैं इसलिये मोक्ष साधन के लिये
किसी स्थानको भलीभांति कहिये ॥ १३ ॥ हे मुने ! सब भरतखण्डमें यहभूमि निःफलहै व उसीमें भी कहीं एक ठिकाने समस्त तीर्थोंका फलकहिये ॥१४॥ उनसे इस
प्रकार पूंछेहुये मैंने उस समय यह उनसे कहा कि संवर्त्त से पूंछो वे तुमलोगों से समस्त तीर्थों के फलको प्राप्ति कारक भूमिका स्थान यथार्थ कहैंगे ॥ १५ । १६ ॥

वे बोले कि ये योगी कहां तप करते हैं हमलोग उनको नहीं जानते हैं संवर्त्त के देखनेसे मोक्षहोगा यह दया होवैगी ॥ १७ ॥ यदि जानतेहो तो कहिये मित्रका संग निःफल नहीं होता है तदनन्तर मैंने बार २ विचारकर उन से यह कहा ॥ १८ ॥ कि गुप्त चिह्नके धारी वे संवर्त्तजी काशीमें टिकेहैं जोकि मलसे संयुत व वसनहीन और कुतुप समय के बाद भिक्षान्न से भोजन करनेवाले ॥ १९ ॥ व हाथरूपी पात्र में भोजन करनेहारे और सबप्रकार से सामग्री हीन व ॐकार नामक परब्रह्म ई-श्वर की भावनाकर रहेहैं ॥ २० ॥ और सायाह्न समयमें अन्नपान भोजन करके ये योगीश्वर वनमें मनुष्यों से नहीं जानेजाते हैं व उसी रूपवाले अन्य चिह्नधारी हैं ॥

रितिचस्यादनुग्रहः ॥ १७ ॥ यदिजानासितद्ब्रूहि सुहृत्सङ्गोननिष्फलः ॥ ततोहमब्रवंतांश्च विचार्यैदंपुनःपुनः ॥ १८ ॥ वाराणस्यांसत्रास्तेवै संवर्त्तोगुप्तलिङ्गभृत् ॥ मलदिग्धोविवसनो भिक्षाशीकुतुपादनु ॥ १९ ॥ करपात्रकृताहारस्सर्वथानिष्परिग्रहः ॥ भावयन्ब्रह्मपरमं प्रणवाभिधमीश्वरम् ॥ २० ॥ भुक्त्वान्नपानंसायाह्ने वनेनज्ञायतेजनैः ॥ योगीश्वरो सौतद्रूपास्सन्त्यन्येलिङ्गधारिणः ॥ २१ ॥ वक्ष्यामिलक्षणंतस्ययथाज्ञास्यथतंमुनिम् ॥ प्रतोल्यांराजमार्गेतु निशिभूमौशवञ्जनैः ॥ २२ ॥ अज्ञातंस्थापनीयंच स्वयन्तदविदूरतः ॥ यस्ताम्भूमिमुपागम्य अकस्माद्विनिवर्त्तते ॥ २३ ॥ ससंवर्त्तोनुचाक्राम्यत्येषशल्यमसंशयम् ॥ प्रष्टव्योभिमतञ्चासावुपाश्रित्यविनीतवत् ॥ २४ ॥ तच्छ्रुत्वातेतथाचक्रुस्सप्तापिवचनंमम ॥ प्राप्यवाराणसीन्दृष्ट्वा संवर्त्तन्तेतथाविधम् ॥ २५ ॥ शवन्दृष्ट्वाचतैर्न्यस्तं संवर्तोथन्यवर्तत ॥

२१ ॥ उनका लक्षण मैं कहता हूं कि जिसप्रकार उन मुनिको तुमलोग जानोगे राजा के मार्ग में नगरके चौराहे के बीच रात को न जानाहुआ मुरदा भूमिमें जनों को धरना चाहिये व आप उसके कुछ दूर पै टिके उस भूमिके समीप आकर जो अचानक लौटपड़ै ॥ २२ । २३ ॥ वह संवर्त्त है क्योंकि यह मुनि निस्सन्देह मुरदे को नहीं नांघता है और नम्र की नाईं समीप जाकर इससे चाहाहुआ वृत्तान्त पूंछना चाहिये ॥ २४ ॥ उस वचन को सुनकर उन सातो ने भी वैसाही मेरा वचन किया कि काशी मे प्राप्त होकर वे उसप्रकार के संवर्त्त को देखकर खड़ेहुये ॥ २५ ॥ इसके उपरान्त उनसे धरेहुये मुर्दे को देखकर क्षुधा से घिरेहुये भी संवर्त्त

लौट पड़े उनको जानकर उन्हों ने उन शीघ्रगामी के पीछे गमन किया ॥ २६ ॥ और राजमार्गगामी उन मुनिसे यह कहरहेहैं कि हे ब्रह्मन् ! क्षणभर खड़ेहोवो और
लौटजावो ऐसा कहते व घुड़कते हुये मुनि जारहेहैं ॥२७॥ व कहते हैं कि हे मूर्खो ! मेरे समीप नहीं आने योग्यहै व तुम लोगों का हित नहीं है तदनन्तर हे ब्रह्मन् !
इसने बहुत दूरतक भागके जाकर ॥ २८ ॥ क्रोधितहो उनसबोंसे कहा कि मुझको किसने कहाहै यह शीघ्रही मुझसे बतलाइये कि जिसप्रकार उसको जलाऊं ॥२९॥
अथवा यदि सत्य न कहोगे तो शाप की अग्नि से तुम लोगों को जलाऊंगा। इस के अनन्तर कांपते हुये उन्होंने उन मुनि से यह कहा कि नारद ने बतलाया है॥ ३०॥

**क्षुत्परीतोऽपितंज्ञात्वा जग्मुस्तमनुशीघ्रगम् ॥ २६॥ तिष्ठब्रह्मन्क्षणमिति जल्पन्तोराजमार्गगम् ॥ यातिनिर्भर्त्सयन्नेष
निवर्तध्वमितिब्रुवन् ॥ २७ ॥ समयामममरेमूढा नागन्तव्यन्नवोहितम् ॥ पलायनमसौब्रह्मन् गत्वादूरतरन्ततः ॥ २८॥
कुपितःप्राहतान्सर्वान् केनाख्यातोहमित्युत ॥ निवेदयतशीघ्रम्मे यथाभस्मकरोमितम् ॥ २९॥ शापाग्निनाथवायु
ष्मान् यदिसत्यन्नवक्ष्यथ ॥ अथप्रकम्पिताःप्राहुर्नारदेनेतितम्मुनिम् ॥ ३० ॥ सतानाहपुनर्यान्तं पिशुनानांकसम्प्रति ॥
लोकानांयेनशापाग्नौ भस्मशेषंकरोमितम् ॥ ३१ ॥ ब्रह्मबन्धुंमहाबाहुमतस्त्वंवदतम्मुनिम् ॥ ३२ ॥ तेऊचुः ॥ त्वा
न्निवेद्यसचास्माकं प्रविष्टोहव्यवाहनम् ॥ तत्कालमेवविप्रेन्द्र नविद्मस्तत्रकारणम् ॥ ३३ ॥ अर्जुनउवाच ॥ यदि
नारददेवर्षे प्रविष्टोसिहुताशनम् ॥ जीवितस्तत्कथंभूय आश्चर्यमितिमेवद ॥ ३४ ॥ नारदउवाच ॥ नहुताशस्समुद्रो
वा वायुर्वावृक्षपर्वताः ॥ आयुषोनाशनेशक्ता देहपातायभारत ॥ ३५ ॥ पुनरेतत्कृतञ्चातस्संवर्त्तोमन्यतेयथा ॥ अहं**

उन मुनि ने फिर उनसे कहा कि पिशुन (चुगुल) लोकों के मध्य में इस समय कहाँ गया है कि जिस से ब्राह्मणों में नीच उस महाभुज को शाप की अग्निमें भस्म-
मात्र शेषकरूं इससे तुम उस मुनि को कहो ॥ ३१ । ३२ ॥ वे बोले कि वे हम लोगों से तुम को बतलाकर उसी समयही अग्नि में पैठ गये हे द्विजेन्द्र ! उसमें
हमलोग कारण नहीं जानते हैं॥ ३३ ॥ अर्जुन जी बोले कि हे देवर्षे नारद जी ! यदि अग्नि में तुम पैठ गये थे तो फिर जीना कैसे हुआ यह आश्चर्य मुझसे कहो॥
३४॥ नारद जी बोले कि हे भारत ! अग्नि, समुद्र, पवन व वृक्ष, पहाड़ मेरे शरीरपात के लिये आयुर्बल के नाशने में समर्थ नहीं हैं ॥ ३५॥ फिर जिस प्रकार इस

किये हुये को संवर्त मानैं व मेरा आदर किया जावै उस प्रकार अग्नि में प्राप्त हूंगा ॥ ३६ ॥ हे अर्जुन जी ! जैसे कोई फूल के घरमें पैठना है वैसेही मैं अग्नि मे पैठ कर चलागया अब इसके उपरान्त का वृत्तान्त सुनिये ॥ ३७ ॥ कि संवर्त्तमुनि ने उन मार्कण्डेयादिकोंसे फिर यह कहा कि मार्ग शल्यहीन कियाजावै क्योंकि भूंखा मैं फिर पुरीको भिक्षाके लिये जाऊंगा और मुझसे प्रश्न कहिये ॥ ३८ । ३९ ॥ वे बोले कि हे महामुने ! शापसे भ्रष्टहुये हमलोग तुम्हारी दयासे मोक्षको पावैं प्रणाम किये हुयें हमलोगों से उस यत्नको कहिये ॥ ४० ॥ हे संवर्त्त ! मनुष्य जिस तीर्थ में समस्त तीर्थोंका फल पाता है उस तीर्थ को कहिये कि जहां हमलोग टिकैं ॥ ४१ ॥

सम्मानितश्चेति वह्निंप्राप्स्याम्यहंतथा ॥ ३६ ॥ यथापुष्पगृहेकश्चित् प्रविशत्यङ्गफाल्गुन ॥ तथाहमग्निंसंविश्ययात वानुत्तरंशृणु ॥ ३७ ॥ संवर्त्तस्तान्पुनःप्राह मार्कण्डेयमुखानिति ॥ विशल्यःक्रियतांपन्थाःक्षुधितोहंपुनःपुरीम् ॥ ३८ ॥ भिक्षार्थंपर्यटिष्यामिप्रश्नंप्रब्रूतवैचमे ॥ ३९ ॥ तेऊचुः ॥ शापभ्रष्टावयंमोक्षंप्राप्स्यामस्त्वदनुग्रहात् ॥ प्रतीकारंतदाख्याहिप्रणतानांमहामुने ॥ ४० ॥ यत्रतीर्थेसर्वतीर्थफलंप्राप्नोतिमानवः ॥ तत्तीर्थंब्रूहिसंवर्त्ततिष्ठामोयत्रवैवयम् ॥ ४१ ॥ संवर्तउवाच ॥ नमस्कृत्यकुमारायदुर्गाभ्यश्चनरोत्तमाः ॥ तीर्थंवःसंप्रवक्ष्यामि महीसागरसङ्गमे ॥ ४२ ॥ अमुनाराजसिंहेन इन्द्रद्युम्नेनधीमता ॥ यजताद्व्यङ्गुलोत्सेधयाकृतेयंवसुधायदा ॥ ४३ ॥ तदासन्तप्यमानाया भुवःकाष्ठस्यवैयथा ॥ सुस्रावयोजलौघश्च सर्वदेवनमस्कृतः ॥ ४४ ॥ महीनामनदीसाच पृथिव्यांयानिकानिच ॥ तीर्थानितेषांसलिलसम्भवन्तज्जलंविदुः ॥ ४५ ॥ महीनामसमुत्पन्ना देशमालवकाभिधात् ॥ दक्षिणंसागरंप्राप्ता पुण्योभयतटाशि

संवर्त्त बोले कि हे नरोत्तमो ! स्वामिकार्त्तिकेय व दुर्गा देवियों के लिये प्रणामकर महीसागरसंगम में तीर्थ कहूंगा ॥ ४२ ॥ यज्ञ करते हुये इस बुद्धिमान् नृपोत्तम ने जब इस पृथ्वीको दो अंगुल ऊंची कियाहै ॥ ४३ ॥ तब जैसे कि काठ से जल बहै वैसेही बहुत तचीहुई भूमिसे सबदेवों करके प्रणाम कियाहुआ जो जल का प्रवाह बहा ॥ ४४ ॥ वही महीनामक नदीहुई उसका जल पृथ्वी मे जितने कुछ तीर्थहैं उनके जलसे उपजाहुआ प्राचीन जनोंने कहाहै ॥ ४५ ॥ मालवनामक देश से उत्पन्न

वह नदी दक्षिण समुद्रमें प्राप्तहुई हैं जिसके दोनों किनारे पवित्र और वह कल्याणमयी है ॥ ४६ ॥ पहलेही महीनामक महानदी सर्वतीर्थमयी थी फिर उसका व समुद्र का जो संगम हुआ उसको क्या कहना है ॥ ४७ ॥ काशी, कुरुक्षेत्र, गंगा, नर्मदा, सरस्वती, तापी, पयोष्णी, निर्विन्ध्या, चन्द्रभागा व इरावती ॥ ४८ ॥ और कावेरी, सरयू, गण्डकी व नैमिष, गोदावरी, अरुणा व वरुणा ॥ ४९ ॥ ये और अन्य जो कोई सैकड़ों नदियां भूमिमें हैं वैसेही बीसहज़ार छहसौ जो नदियां हैं ॥ ५० ॥ उनके सारांश से उपजाहुआ महीनदी का जल कहागया है पृथ्वी में समस्त तीर्थों में नहाकर जो फल मिलताहै ॥ ५१ ॥ वह महीसागर में कहागयाहै जैसाकि स्वामि-

वा ॥ ४६ ॥ सर्वतीर्थमयीपूर्वं महीनाममहानदी ॥ किंपुनर्यःसमायोगस्तस्याश्चसरितांपतेः ॥ ४७ ॥ वाराणसीकुरुक्षेत्रं गङ्गारेवासरस्वती ॥ तापीपयोष्णीनिर्विन्ध्या चन्द्रभागाइरावती ॥ ४८ ॥ कावेरीसरयूश्चैव गण्डकीनैमिषंतथा ॥ गया गोदावरीचैव अरुणावरुणातथा ॥ ४९ ॥ एताश्चशतशोन्याश्चयाःकाश्चित्सरितोभुवि ॥ सहस्रविंशतिश्चैव षट्शतानित थैवच ॥ ५० ॥ तासांसारसमुद्भूतं महीतोयंप्रकीर्तितम् ॥ पृथिव्यांसर्वतीर्थेषु स्नात्वायत्फलमाप्यते ॥ ५१ ॥ तन्मही सागरेप्रोक्तं कुमारस्यवचोयथा ॥ एकत्रसर्वतीर्थानां यदिसंयोगमिच्छथ ॥ ५२ ॥ तद्गच्छतमहापुण्यं महीसागरसङ्गम म् ॥ अहंचापिचतत्रैव बहून्वर्षगणान्पुरा ॥ ५३ ॥ अवसञ्चागतश्चात्रनारदस्यभयात्तथा ॥ सहितत्रसमीपस्थःपिशुनश्चवि शेषतः ॥ ५४ ॥ मरुत्तंकथयत्येव तस्मैरूपादिदम्भयम् ॥ अत्रदिग्वाससांमध्ये बहूनांतैःसमन्वहम् ॥ ५५ ॥ निवसा मिप्रतिच्छन्नो मरुत्तादतिभीतवान् ॥ पुनस्सचापिमांनूनंकथयिष्यतिनारदः ॥ ५६ ॥ तथाविधाहिचेष्टास्य पिशुनस्यप्र

कार्त्तिकेय जीका वचन है तुमलोग यदि सबतीर्थों का संगम एकठौर में चाहतेहो ॥ ५२ ॥ तो पुण्यदायक महीसागर के संगमको जाओ पुरातन समय बहुत वर्षस-मूहोंतक मैंने भी वहीं ॥ ५३ ॥ निवास कियाहै और नारदके डरसे मैं यहां आया क्योंकि वहां समीपमें टिके व विशेषता से पिशुन (चुगुल) वे नारदजी ॥ ५४ ॥ मरुत्तसे रूपादिदायक डरको अवश्य कहते हैं यहां बहुतसे वसनहीन मनुष्यों के बीच में मरुत्तसे बहुत डरा व छिपाहुआ मैं उनके साथ बसताहूं और फिरभी वह नारद

निश्चयकर मुझको कहैगा ॥ ५५ । ५६ ॥ क्योंकि इस पिशुनकी वैसीही चेष्टा देखपड़ती है और आपलोगों को भी कहीं किसीसे यह न कहना चाहिये ॥ ५७ ॥ मरुत्तराजा यज्ञकी सिद्धिके लिये उपाय करताहै देवताओं के आचार्य मेरे पिताने दूसरे कारणमें उसको छोड़दिया है ॥ ५८ ॥ और यज्ञकी ऋत्विक्ताके कारण मुझ गुरुके पुत्रको जानकर उसने यह विचार किया है और मायाबीचवाले जीवघातात्मक सचेत वस्तुवों करके यज्ञ व कर्मोंसे मेरा प्रयोजन नहीं है यदि वेदमें कहीहुई जड़रूपी समिधा, फूल व कुशादिक अचैतन्य सामग्रियों से यज्ञ कीजातीहै क्योंकि मनुष्योंका वैसा होनेवाला कार्य हेतुमान् होताहै इसलिये राजाके पीछे होकर तुम

दृश्यते ॥ भवद्भिश्चनचाप्येतद्वक्तव्यःकस्यचित्क्वचित् ॥ ५७ ॥ मरुत्तःकुरुतेयत्नं भूपालोयज्ञसिद्धये ॥ देवाचार्येणसंत्यक्तो पित्रामेकारणान्तरे ॥ ५८ ॥ गुरुपुत्रञ्चमांज्ञात्वा यज्ञार्त्विज्यस्यकारणात् ॥ अविद्यान्तर्गतैर्यज्ञैः कर्मभिर्नप्रयोजनम् ॥ ५९ ॥ ममहिंसात्मकैरस्ति निगमोक्तैस्सचेतनैः ॥ समित्पुष्पकुशप्रायैस्साधनैर्यद्यचेतनैः ॥ ६० ॥ क्रियतेतत्तथाभावि कार्यकारणवन्नृणाम् ॥ तद्यूयंतत्रगच्छध्वं शीघ्रमेवनृपानुगाः ॥ ६१ ॥ अस्तिविप्रःस्वयंब्रह्मा याज्ञवल्क्यश्चतत्रवै ॥ सहिपूर्वंमधोःपुर्यां वसन्नाश्रमउत्तमे ॥ ६२ ॥ आगच्छमानन्नकुलं दृष्ट्वागार्गींवचोब्रवीत् ॥ गार्गिरत्नपयोभद्रे नकुलोयमुपैतिच ॥ ६३ ॥ पयःपातुंकृतमतिः नकुलंतन्निराकुरु ॥ इत्युक्तोनकुलःक्रुद्धस्सहक्रोधपरोभवत् ॥ ६४ ॥ जमदग्नेःपूर्वजैश्च शप्तःप्रोवाचतंमुनिम् ॥ अहोत्वांधिग्धिगित्येवं भूयोधिगितिचैवहि ॥ ६५ ॥ निर्लज्जतामनुष्याणां दृश्यतांपापकर्म्मिणाम् ॥ कथन्तेनामपापानि प्रकुर्वन्तिनराधमाः ॥ ६६ ॥ मरणान्तरितायेषां नारकेतीव्र

लोग शीघ्रही वहां जावो ॥ ५९ । ६० । ६१ ॥ वहां याज्ञवल्क्य ब्राह्मण आपही ब्रह्माहैं पुरातनसमय मधुपुरी में उत्तम आश्रममें वसते हुये उन्होंने ॥ ६२ ॥ आते हुये नेउलेको देखकर गार्गीजी से वचन कहा कि हे कल्याणरूपे, गार्गि ! जलपीने के लिये बुद्धिको किये यह नेउला समीपआता है इसलिये नकुल को निकालिये ऐसा कहाहुआ वह नेउला क्रोधमें तत्परहुआ ॥ ६३ । ६४ ॥ व जमदग्नि के पहले पैदाहुये नरोंसे शापित नेउलेने उन मुनिसे कहा कि अहो तुमको धिक्कारहै २ व फिर धिक्कारहै ॥ ६५ ॥ पापकर्मी मनुष्यों की निर्लज्जता देखीजाय कि प्रसिद्ध में मृत्युसे घिरे वे नीचनर कैसे पाप करतेहैं कि जिनको नरकमें बड़ी पीड़ाहोगी जिस

के निश्चय किये हुये जीनेमें पलभर भी नहीं नांघता है॥ ६६॥६७॥ उतनी ही आयुर्बलवाला जो पुरुष पापकरता है वह कैसा है हे मुने! तुम यह मानतेहो कि
मैं बुद्धिमान् व कुलीनहूं ॥६८॥ उसीसे हे मूढ़! यह नकुलहै ऐसा गर्व करतेहुये तुम मुझको तिरस्कार करतेहो हे याज्ञवल्क्यजी! तुमने क्यापढ़ाहै व तुम्हारे क्या योगेश्वर-
ताहै॥६९॥जो विना अपराधके तिरस्कार करतेहो उस तुम्हारे पढ़ेहुयेको धिक्कारहै क्योंकि किस वेद व किस स्मृति में यह कहाहै इसको मुझसे कहिये ॥७०॥ जोकि बड़े
कठोर वचनों से मुझको नकुल ऐसा कहतेहो क्या यह नही जानतेहो कि जितनी कठोरवाणी ॥ ७१ ॥ दूसरोंको जो सुनाताहै उतनी कीलैं उसके कानमें प्राप्तहोती

**वेदना ॥ निमेषोपिनलङ्घ्येत जीवितयस्यनिश्चिते ॥६७॥ तन्मात्रपरमायुर्यः पापंकुर्यात्कथंसच ॥ त्वंमुनेमन्यसेचे
दं कुलीनोस्मीतिबुद्धिमान् ॥ ६८ ॥ ततःक्षिपसिमांमूढ नकुलोयमितिस्मयन् ॥ किमधीतंयाज्ञवल्क्य कायोगेश्वर
तातव ॥ ६९ ॥ विनापराधंक्षिपसि धिगधीतंहितत्तव ॥ कस्मिन्वेदेस्मृतौकस्यां प्रोक्तमेतद्ब्रवीहिमे ॥ ७० ॥ परुषैरतिवाक्यै
र्मान्नकुलेतिब्रवीषियत ॥ किमिदन्नैवजानासि यावत्यःपरुषागिरः ॥ ७१ ॥ पराञ्छ्रावयतेतावच्छङ्कवस्तस्यश्रोत्रगाः ॥
कराठ्यमानुगःपादं कृत्वातस्यसुदुर्मतेः ॥ ७२ ॥ अतीवतुदतेलोहशङ्कूनन्तर्दयतिकर्णयोः ॥ वावदूकाश्चध्वजिनो
मुष्णन्तिकृपणाञ्जनान् ॥ ७३ ॥ स्वयंहस्तसहस्रेण धर्मंचैवंभवद्विधाः ॥ वज्रस्यदिग्धशस्त्रस्य कालकूटस्यचाप्यु
त ॥ ७४ ॥ समेनवचसातुल्यं मृत्योर्दुःखंममाभवत् ॥ कर्णाश्चलीकनाराचान्योनिहन्तिशरीरिणः ॥ ७५ ॥ साक्ष
ल्पैनैवनिर्दग्धुं योयोहन्तिर्दहोहिसः ॥ यन्त्रपीडैस्समाक्रम्य वरमेषहतोनरः ॥ ७६ ॥ नतुतंपरुषैर्वाक्यैर्जिघांसति**

है व उस दुर्बुद्धि के गलेपै चरण धरके यमदूत ॥ ७२ ॥ बहुतही पीड़ादेता है और कानोंमें लोहकी कीलैं डालताहै व आपके समान बहुत कहनेवाले पाखण्डी लोग
आपही हज़ार हाथोंसे दुखिया जनोंके धर्मको चुराते हैं व वज्र और कालकूट विष से बुझायेहुये शस्त्र के ॥ ७३। ७४ ॥ समान वचन करके मुझको मृत्युके बराबर
दुःख हुआ जो अप्रिय वचन रूप बाणों को प्राणीके कानोंमें मारता है ॥ ७५ ॥ वह सम्पूर्णता से जलाने के योग्य है क्योंकि वह पुरुष हृदयका दाहक है कोल्हू में
डालकर माराहुआ यह मनुष्य श्रेष्ठहै ॥ ७६ ॥ परन्तु उस मनुष्य को कठोर वचनों से किसीप्रकार न मारै हे याज्ञवल्क्य जी! अपना को पण्डित मानते हुये तुमने

मुझको नकुलहो ऐसे तीव्र वचनसे क्यों ताड़न किया ॥ ७७ । ७८ ॥ संवर्त्त बोले कि उनके ऐसे वचन सुनकर बहुत विस्मयमनवाले याज्ञवल्क्य जी हाथोंको बांध के यह बोले ॥ ७९ ॥ कि बड़े धर्म के लिये नमस्कार है कि जिसके सूक्ष्मअंश को भी हमलोग नहीं जानते हैं यहा सज्जनोंके खुलेहुये मतको कौन जानताहै ॥८०॥ क्योंकि ब्रह्मा, विष्णु आदिक व चन्द्रमा, इन्द्रादि जो सर्वज्ञ देवता हैं वे भी मोहित होते हैं और हमारे सरीखेजनों की क्या गिनती है ॥ ८१ ॥ मैं धर्मज्ञहूं इस प्रकार जो अपना को प्राप्त होता है वह दुष्ट मनुष्य मुष्टिका से पातकको बांधने की इच्छा करताहै ॥ ८२ ॥ कोई अज्ञान से व कोई ज्ञानके गर्वसे भी नष्ट होजाते हैं और कोई

कथञ्चन ॥ त्वयात्वहंयाज्ञवल्क्य नित्यंपण्डितमानिना ॥ ७७ ॥ नकुलोसीतितीव्रेण वचसाताडितःकुतः ॥ ७८ ॥ संवर्तउवाच ॥ इतिश्रुत्वावचस्तस्य भृशंविस्मितमानसः ॥ याज्ञवल्क्योब्रवीदेतत्प्रबद्धकरसम्पुटः ॥ ७९ ॥ नमोधर्मायमहते न विद्मोयस्यवैवयम् ॥ परमाणुमपिव्यक्तं कोत्रविद्वान्मतंसताम् ॥ ८० ॥ विरञ्चिविष्णुप्रमुखास्सोमेन्द्रप्रमुखास्तथा ॥ सर्वज्ञास्तेपिमुह्यन्ति गणनास्मादृशाञ्चका ॥ ८१ ॥ धर्मज्ञोस्मीतियोमोहादात्मानंप्रतिपद्यते ॥ सपापंमुष्टिनाबद्धुमिच्छेद्द्विक्रूपणोनरः ॥ ८२ ॥ केचिदज्ञानतोनष्टाःकेचिज्ज्ञानमदादपि ॥ ज्ञानंप्राप्यापिनष्टाश्च केचिदालस्यतोधमाः ॥ ८३ ॥ वेदस्मृतीतिहासेषु पुराणेषुप्रकल्पितम् ॥ चतुष्पादन्तुयोधर्मं नाचरत्यधमःपशुः ॥ ८४ ॥ सपुरा शोचतेव्यक्तं प्राप्यतञ्चान्तकंगृहम् ॥ तथाहिगृह्यकारेण श्रुतौप्रोक्तमिदंवचः ॥ ८५ ॥ नकुलंसकुलंब्रूयात् नकञ्चिन्मर्मणिस्पृशेत् ॥ प्रपठन्नपिचैवाहमिदंसर्वंयथाशुकः ॥ ८६ ॥ आलस्येनाप्यनाचाराद् वृथाकरवमङ्गतत् ॥ केवलंपाठ

नीच नर ज्ञानको पाके भी आलस्यसे नष्ट होते हैं ॥ ८३ ॥ वेद, स्मृति, इतिहास व पुराणों में चार-चरणवाला धर्म कल्पना किया है उसको जो नीच मनुष्य नहीं करता है वह पशुहै ॥८४॥ और अगाडी वह यमराजके घरमें प्राप्तहोकर शोचताहै क्योंकि वैसेही गृह्यसूक्तकारक आचार्यने वेदमें यह वचन कहाहै ॥८५॥ कि जो कुलीन हो उसको कुलवान् कहै व किसी को मर्मस्थान याने नाजुक अंगोंमें न छुवै जैसे सुवाहो वैसेही यह सब पढ़ते हुये भी मैंने ॥८६॥ हे विद्वन् ! आलस्यके कारण अनाचार

से उस धर्मको वृथा करदिया केवल पढ़नेहीसे जो मनुष्य संतोष को प्राप्तहोताहै ॥ ८७॥ व वैसेही जो अपनाको पण्डित मानताहै उससे अन्य कौन पशु मानागयाहै ॥ ८८ ॥ मायामें वर्त्तमान मनुष्य को वेद नहीं तारते हैं अन्तसमय में वेद इस मनुष्य को वैसेहीं छोड़देते हैं जैसे कि जमे पंखवाले पक्षी घोंसले को छोड़ते हैं ॥८९॥ जो ब्राह्मण केवल पढ़नेसे स्वर्गके लिये जाना चाहता है माताकी गोदमें बैठाहुआ वह बालक चन्द्रमा पकडना चाहता है ॥ ९० ॥ इसलिये मेरा अन्याय आप सब प्रकार से क्षमा करनेयोग्यहो क्योंकि सबकोई भी ऐसा कहते हैं उसी से मैंने इस प्रकार कहा ॥ ९१ ॥ नेउला बोला कि यह तुम्हारा कहना वृथाहै जोकि सब मनुष्यों

मात्रेण यश्चसन्तुष्यतेनरः ॥ ८७ ॥ तथापण्डितमानीच कोन्यस्तस्मात्पशुर्मतः ॥ ८८ ॥ नच्छन्दांसिवृजिनात्तारयन्ति मायायांवर्त्तमानंमनुष्यम् ॥ नीडंशकुन्ताइवजातपक्षाश्छन्दांस्येनंप्रजहत्यन्तकाले ॥ ८९ ॥ स्वर्गायगन्तुंकाङ्क्षते द्विजः पाठमात्रेणवाडवः ॥ सबालोमातुरङ्कस्थो ग्रहीतुंसोममिच्छति ॥९०॥ तद्भवान्सर्वथामह्यमनयंसोढुमर्हति ॥ सर्वकोपिवदत्येवं तन्मयैवमुदाहृतम् ॥ ९१ ॥ नकुलउवाच ॥ वृथेदम्भाषितन्तुभ्यं सर्वलोकेनयत्समम् ॥ आत्मानं मन्यसेनैतद्वक्तुंयोग्यंमहात्मनाम् ॥ ९२ ॥ वाजिवारणलोहानां काष्ठपाषाणवाससाम् ॥ नारीपुरुषतोयानामन्तरंमहदन्तरम् ॥ ९३ ॥ अन्येचेत्प्राकृतालोका बहुपापानिकुर्वते ॥ प्रधानपुरुषेणापि कार्यंतत्पृष्ठतोमुने ॥ ९४ ॥ सर्वार्थेनिमितंशास्त्रं मनोबुद्धिस्तथैवच ॥ दत्तेविधातासर्वेषां तथापियदिपापिनः ॥ ९५ ॥ ततोविधातुःकोदोषस्तएवखलुदुर्मगाः ॥ ब्राह्मणेनविशेषेण किंमान्यंलोकवद्यतः ॥ ९६ ॥ यद्यदाचरतिश्रेष्ठस्तत्तदेवेतरोजनः ॥ सयत्प्रमाणंकुरुते लो

के समान अपनाको तुम मानते हो यह महात्माओं को कहना योग्य नहीं है ॥ ९२ ॥ क्योंकि घोडा, हाथी, लोह, काठ, पत्थर, कपड़ा, स्त्री, पुरुष व जल के बीच में बड़ाभेद है ॥ ९३ ॥ यदि और पामर (सामान्य) मनुष्य बहुत पापोंको करैं तो हे मुने ! क्या उसके पीछे मुख्य पुरुषको भी करना चाहिये ॥ ९४ ॥ व शास्त्र सबके लिये बनायागयाहै और वैसेही ब्रह्मा मन, बुद्धि सबको देतेहैं तो भी यदि पापी होवैं ॥ ९५ ॥ तो ब्रह्माका कौन दोषहै निश्चय करके वेही दुष्ट हैं व ब्राह्मण को विशेषकर क्या सब मनुष्यकी नाई होना चाहिये क्योंकि ॥ ९६ ॥ श्रेष्ठ मनुष्य जो जो आचरण करताहै और मनुष्य भी उसीको करताहै और वह जिसको प्रमाण

करताहै संसार उसी के पीछे बर्ताव करताहै ॥ ९७ ॥ इसलिये सदैव अपने व पराये लिये महात्माओंको सज्जनों का धर्म न छोडना चाहिये इससे तुमको उसे सिखाना उचितहै ॥ ९८ ॥ हे मुने ! जिसलिये तुमने भयंकर वचनसे मुझको पीडितकिया इसलिये तुमको शीघ्रही शापदूंगा क्योंकि तुम शापके योग्य मानेगयेहो॥ ९९ ॥ जिसलिये आपने मुझसे यह कहा कि तुम नकुलहो इसलिये तुम शीघ्रही नीचकुलको प्राप्तहोगे फिर हे मुने ! तुम्हीं नकुल होगे ॥ १०० ॥ संवर्त्त बोले कि होनहार वस्तुमें निश्चय किये याज्ञवल्क्य जी ऐसा वचन सुनकर मरुदेश में ब्राह्मण के पुत्र पैदा हुये ॥ १ ॥ उस समय दुष्ट आचरणवाले व पापी, निर्दयी व

कस्तदनुवर्त्तते ॥ ९७ ॥ तस्मात्सदामहद्भिश्च आत्मार्थञ्चपरार्थतः ॥ सतान्धर्मोनसन्त्याज्यो न्याय्यंतच्छिक्षणन्त व ॥ ९८ ॥ यस्मात्त्वयापीडितोहंघोरेणवचसामुने ॥ तस्माच्छप्स्यामित्वांशीघ्रं शापयोग्योहित्वम्मतः ॥ ९९ ॥ नकुलोसीतियत्प्राह भवांस्तस्मात्कुलाधमम् ॥ शीघ्रंप्रपत्स्यतेभूयस्त्वमेवनकुलोमुने ॥ १०० ॥ संवर्तउवाच ॥ इतिवाचंसमाकर्ण्य भाव्यर्थकृतनिश्चयः ॥ याज्ञवल्क्योमरौदेशेविप्रस्याजायतात्मजः ॥ १ ॥ दुराचारस्यपापस्य निर्घृणस्यातिवादिनः ॥ दुष्कुलीनस्यजातोसौ तदाजातिस्मरस्सुतः ॥ २ ॥ सोथज्ञानात्समालोक्य भर्तृयज्ञइतिद्विजः ॥ गुप्तक्षेत्रंसमापन्नो महीसागरसङ्गमम् ॥ ३ ॥ तत्रपाशुपतोभूत्वा शिवाराधनतत्परः ॥ स्वायम्भुवंमहाकालंपूजयन्वर्त्ततेधुना ॥ ४ ॥ योहिनित्यंमहाकालं श्रद्धयापूजयेत्पुमान् ॥ सदौष्कुलीनदोषेभ्यो मुच्यतेहिरिवत्वचः ॥ ५ ॥ यथायथा श्रद्धयासौ तल्लिङ्गंपरिपश्यति ॥ तथातथाविमुच्येत दोषैर्जन्मशतोद्भवैः ॥ ६ ॥ भर्तृयज्ञस्तुतस्यैव लिङ्गस्याराधना

बहुत बोलनेवाले और दुष्टकुलवालेके पैदाहुआ यह पुत्र जातिके स्मरणवाला भया ॥ २ ॥ इसके अनन्तर भर्तृयज्ञ ऐसा वह ब्राह्मण भलीभांति देखकर छिपेहुये मही-सागर के संगमवाले क्षेत्रमें प्राप्तहुआ ॥ ३ ॥ वहां शैवहोकर शिवजी के आराधन में परायण वे स्वायम्भुव महाकाल को पूजतेहुये इस समय वर्त्तमान हैं ॥ ४ ॥ जो पुरुष श्रद्धासे नित्य महाकाल को पूजता है वह दुष्कुलीनता के दोषों से वैसेही छूटजाता है जैसे कि सांप केंचुलि से छूटताहै ॥ ५ ॥ श्रद्धासे यह पुरुष ज्यों २ उस महाकाल लिंगको देखता है त्यों २ सैकड़ों जन्मोंसे उपजेहुये पापोंसे छूटताहै ॥ ६ ॥ और भर्तृयज्ञ क्रमसे उसी लिंगके आराधन से बीज दोषकरके छूट

गये यह उस लिंगकी महिमाहै ॥ ७ ॥ प्राचीनजनोंने नकुलको बभ्रु कहाहै जिस लिये वे भर्तृयज्ञ दुष्कुलीनता से छूटेहैं उसीकारण यह तीर्थ बभ्रुपावन प्रसिद्धहै ॥ ८ ॥ इसलिये तुमलोग वहीं महीसागरसंगम तीर्थको जाओ व पांच तीर्थोंको सेवते हुये तुमलोग निश्चय करके मोक्षपावोगे ॥ ९ ॥ संवर्त्त ब्राह्मण इसप्रकार यह कह कर इच्छापूर्वक चलेगये व भर्तृयज्ञ मुनिको पाकर वे वहां स्थितहुये ॥ १० ॥ तदनन्तर ज्ञानसे उन्होंने उनको शिवजीके गण जानकर कहा कि तुमलोगों को बड़ा भारी निर्मल पुण्यहुआ जोकि इस गुप्तक्षेत्र में ॥ ११ ॥ आपलोग आये जहां कि महीसागर का संगम है क्योंकि स्नान, दान, जप, होम व विशेषकर पिण्डद-

त्कमात ॥ बीजदोषाद्विनिर्मुक्तस्तल्लिङ्गमहिमात्वसौ ॥ ७ ॥ बभ्रुंचनकुलंप्राहुर्विमुक्तोदुष्कुलीनतः ॥ यस्मात्तस्मादिदं तीर्थं ख्यातंवैबभ्रुपावनम् ॥ ८ ॥ तस्माद्व्रजध्वंतत्रैव महीसागरसङ्गमम् ॥ पञ्चतीर्थानिसेवन्तो मुक्तिमाप्स्यथनिश्चितम् ॥ ९ ॥ इतीदमुक्त्वासंवर्त्तो ययावभिमतंद्विजः ॥ भर्तृयज्ञमुनिंप्राप्य तेचतत्रस्थिताभवन् ॥ १० ॥ ततस्तानाहस ज्ञात्वा गणाञ्ज्ञानेनशाम्भवान् ॥ महद्वोविमलंपुण्यं गुप्तक्षेत्रेयदत्रवै ॥ ११ ॥ भवन्तोभ्यागतायत्र महीसागरसङ्गमम् ॥ स्नानंदानंजपोहोमः पिण्डदानंविशेषतः ॥ १२ ॥ अक्षयञ्जायतेसर्वं महीसागरसङ्गमे ॥ पौर्णमास्याममावस्यां महीसागरसङ्गमे ॥ १३ ॥ कृतंतच्चाक्षयंसर्वं स्नानदानजपादिकम् ॥ यदात्रस्थानकंचक्रे देवर्षिर्नारदःपुरा ॥ १४ ॥ तदाग्रहैर्वरोदत्तः शनिनाचवरस्त्वसौ ॥ शनैश्चरेणसंयुक्ताअमावस्यायदाभवेत ॥ १५ ॥ श्राद्धंतत्रप्रकुर्वीत स्नानदानपुरस्सरम् ॥ यदिश्रावणमासस्य शनैश्चरदिनेशुभा ॥ १६ ॥ कुहूर्भवतितस्यान्तु संक्रान्तिकुरुतेरविः ॥ तस्यामे

न ॥ १२ ॥ सब महीसागरसंगम में अक्षय होताहै पौर्णमासी व अमावसमें महीसागरसंगम में ॥ १३ ॥ कियाहुआ, स्नान, दान, जपादिक वह सब अक्षय होजाताहै पुरातन समय जब देवर्षि नारदजीने यहां स्थान किया ॥ १४ ॥ तब ग्रहोंने वरदान दिया व शनैश्चरने यह वरदान दिया कि शनैश्चर से संयुत अमावस्या जब होवे ॥ १५ ॥ तब स्नान, दानपूर्वक श्राद्धको वहां करै यदि शनैश्चर के दिन श्रावण मासकी उत्तम ॥ १६ ॥ अमावस होवै व उसमें सूर्य संक्रमण करैं और यदि उसी

तिथिमें व्यतीपात योगहोवै ॥ १७ ॥ तो सौ सूर्यग्रहणोंसे अधिक पुष्कर नामक पर्वहोतीहै सब योगों का समूह किसी प्रकारसे भी मिलता है ॥ १८ ॥ उस दिन मही-
सागर के संगम में लोहेके शनैश्चर व सोनेके सूर्यको विधिपूर्वक पूजना चाहिये ॥ १९ ॥ शनैश्चर के मन्त्रोंसे शनिको व सूर्यके मन्त्रों करके सूर्यनारायणको ध्यान
करके सबपापों की शान्तिके लिये सूर्यको अर्घदेवै ॥ २० ॥ हे पाण्डुके पुत्र अर्जुन जी। वहां प्रयाग से अधिक स्नान व कुरुक्षेत्र से भी अधिक दान और गयाक्षेत्र
से अधिक पिण्डदान है ॥ २१ ॥ बड़े पुण्यराशिवाले मनुष्यों को यह सब भलीभांति मिलताहै व स्वर्गमें निश्चयकर पितरोंकी अक्षयतृप्ति होती है ॥ २२ ॥

वतिथौयोगो व्यतीपातोभवेद्यदि ॥ १७ ॥ पुष्करन्नामकंपर्वसूर्यपर्वशताधिकम् ॥ सर्वयोगसमावायः कथञ्चिदपिलभ्य
ते ॥ १८ ॥ तस्मिन्दिनेशनिंलौहं काञ्चनंभास्करन्तथा ॥ महीसागरसंसर्गे पूजयेतयथाविधि ॥ १९ ॥ शनिमन्त्रैश्श
निंध्यात्वा सूर्यमन्त्रैर्दिवाकरम् ॥ अर्घंदद्याद्भास्करस्य सर्वपापप्रशान्तये ॥ २० ॥ प्रयागादधिकंस्नानं दानंक्षेत्रात्कु
रोरपि ॥ पिण्डदानंगयाक्षेत्रादधिकंपाण्डुनन्दन ॥ २१ ॥ इदंसम्प्राप्यतेसर्वं महद्भिःपुण्यराशिभिः ॥ पितॄणामक्ष
यातृप्तिर्जायतेदिविनिश्चितम् ॥ २२ ॥ यथागयाशिरःपुण्यंपितॄणांतृप्तिदंपरम् ॥ तथासमधिकःपुण्यो महीसागरस
ङ्गमः ॥ २३ ॥ अग्निश्चतेयोनिरिडाचदेहो रेतोधर्विष्णोरमृतस्यनाभिः ॥ एतद्ब्रुवञ्छ्रद्धयासत्यवाक्यं ततोवगाहेतम
हीसमुद्रम् ॥ २४ ॥ मुख्यश्चयस्सर्वनदीषुचैकः पाथोधिरम्बुप्रचुरामहीच ॥ समस्ततीर्थीकृतयोर्द्वयोश्चावगाह्यचाहंप्रण
मामिनौमि ॥ २५ ॥ कङ्कणंराजतंचापि योत्रनिक्षिपतेनरः ॥ सजायतेमहीपृष्ठेधनधान्ययुतेकुले ॥ २६ ॥ महीञ्चसा

जैसे पुण्यदायक गयाशिरक्षेत्र पितरोंको परमतृप्तिदायक है वैसेही अधिकपुण्यरूप महीसागर का संगम है ॥ २३ ॥ अग्नि व इडा (यज्ञ) तुम्हारा उत्पत्तिस्थान
है व विष्णु के वीर्य्यरूपी जीव को धारनेवाली तुम्हारी देह है व अमृत के तुम नाभि(गर्भस्थान) हो इस सत्यवचनको श्रद्धा से कहताहुआ वह उसके उपरान्त महीसागर
में स्नानकरै ॥ २४ ॥ व सबनदियों में जो एक मुख्य समुद्र है व बहुत जलवाली जो महीनदी है सबतीर्थ कियेहुये इन दोनोंमें स्नानकर मैं बार २ प्रणामकरताहू ॥ २५ ॥
व इस महीसागर में जो मनुष्य चांदीका कंकण फेंकता है वह धरातलमें धन, धान्यवाले वंशमें पैदा होताहै ॥ २६ ॥ मही व सागर को मैं चांदी के कंकण की पूजासे

पूजताहूं मेरे द्रव्यका नाश व दरिद्रता मतहोवै ॥ २७ ॥ यह कंकण फेंकनेका मंत्रहै समस्त तीर्थों व सब यज्ञोंमें जो फल होता है ॥ २८ ॥ वही फल महीसागर के संगम में स्नान, दान से होताहै व झगड़ा उत्पन्न होनेपर जो अपराधी मानागयाहै ॥ २९ ॥ वह नाभिकी प्रमाणभर जलमें खडाहोकर व महीसागर के सगममें अघोर मंत्रसे नहाकर व जलमें हाथडुबाकर ॥ ३० ॥ व पानी में दाहिनाहाथ उछालकर उससे मांगै कि यदि यहां उत्तमधर्म है व यह संगम सत्यहै ॥ ३१ ॥ और यदि यज्ञके करनेवाले सत्यहैं तो शीघ्रही मेरा शुभ व अशुभ होवै ऐसा कहकर तदनन्तर सब दाहिनाहाथ झिटककर ॥ ३२ ॥ निकलआवै यदि पापकारी होगा तो क्षणभरमें उसी

गरश्चैव रौप्यकङ्कणपूजया ॥ पूजयामिभवेन्मामे द्रव्यनाशोदरिद्रता ॥ २७ ॥ इति कङ्कणक्षेपमन्त्रः ॥ यत्फलंसर्व तीर्थेषुसर्वयज्ञेषुयत्फलम् ॥ २८ ॥ तत्फलंस्नानदानेन महीसागरसङ्गमे ॥ विवादेचसमुत्पन्नेअपराधीचयोमतः ॥ २९ ॥ जलेहस्तंसमावाप्य महीसागरसङ्गमे ॥ संस्नात्वाघोरमन्त्रेण स्थित्वानाभिप्रमाणके ॥ ३० ॥ जलेकरंसमुत्पत्य दक्षिणंयाचयेततम् ॥ यदिधर्मोत्तमोस्त्यत्र सत्यश्चेत्सङ्गमस्त्वसौ ॥ ३१ ॥ सत्याश्चेत्क्रतुयष्टारस्सद्यःस्यान्मेशुभाशु भम् ॥ एवमुक्त्वाकरंक्षिप्य दक्षिणंसकलन्ततः ॥ ३२ ॥ निस्सृतःपापकारीचेद्दारेणापीड्यतेक्षणात् ॥ सप्ताहाद्दृश्य तेवापि नोचेन्निर्दोषवान्मतः ॥ ३३ ॥ अत्रस्नात्वाचजप्त्वाच तपस्तप्त्वातथैवच ॥ रुद्रलोकंसुबहवो गताःपुण्येनकर्म णा ॥ ३४ ॥ सोमवारेविशेषेण स्नात्वायोत्रसुभक्तितः ॥ पञ्चतीर्थानिकुरुते मुच्यतेपञ्चपातकैः ॥ ३५ ॥ इत्याद्युक्त्वा बहुविधं तीर्थमाहात्म्यमुत्तमम् ॥ भर्तृयज्ञःशिवस्योच्चैस्तेषामाराधनक्रमम् ॥ ३६ ॥ शिवागमोक्तमादिश्य पूजायो

दिन पीड़ितहोगा अथवा सातदिनमें भी देखपड़ैगा नहींतो निर्दोषवान् मानागया है ॥ ३३ ॥ यहां नहाकर व जपकरके और तपस्या तपके बहुत मनुष्य पुण्यकर्म से शिवलोक को गये हैं ॥ ३४ ॥ व विशेषकर उत्तम भक्ति से जो यहां नहाकर पांच तीर्थों में स्नान करता है वह पांच पापों से छूटजाता है ॥ ३५ ॥ इत्यादिक बहुत प्रकार से उत्तम तीर्थ का माहात्म्य व शिवजीके आराधन का क्रम उन से उच्चप्रकार से कहकर भर्तृयज्ञजी ॥ ३६ ॥ शिवशास्त्र में कहाहुआ विधिपूर्वक पूजन योग

को कहकर फिर शिवभक्तिरूपी केवल समुद्रमें पूर्ण भर्तृयज्ञजी उनसे बोले ॥ ३७॥ कि हे शिवके व्रतवाले लोगो ! शिव से परे देवता नहीं है यह सत्यहै जो शिव जीको छोड़कर अन्य किसी असत् की उपासना करता है ॥ ३८ ॥ वह हाथ में धरेहुये अमृत को छोड़ मृगतृष्णाके समीप दौड़ता है यह प्रत्यक्ष संसार शिवशक्तिमय देखपड़ता है ॥ ३९ ॥ जो लिंगाक व भगांक है कहीं और अन्य देवसे चिह्नित नहीं है और जो उन रुद्र जी पिता व पार्वती माताको छोड़कर ॥ ४० ॥ वर्त्तमान होता है यह अपने पिताको छोड़ अन्य पिताको पिडदेताहै ॥ ४१ ॥ उन शिवजी के उत्तम शतरुद्रियमाहात्म्यको ॥४१॥ सुनिये यदि पापोंको अच्छेप्रकारसे धोना चा-

गंयथाविधि ॥ शिवभक्तसमुद्रेकपूरितःप्राहतान्पुनः ॥ ३७ ॥ नशिवात्परमोदेवस्सत्यमेतच्छिवव्रताः ॥ शिवंविहाय योह्यन्यदसत्किञ्चिदुपासते ॥ ३८ ॥ करस्थंसोमृतन्त्यक्त्वा मृगतृष्णांप्रधावति ॥ शिवशक्तिमयंह्येतत्प्रत्यक्षंदृश्यतेजगत् ॥ ३९ ॥ लिङ्गाङ्कञ्चभगाङ्कञ्च नान्यदेवाङ्कितंकचित् ॥ यश्चतंपितरंरुद्रं त्यक्त्वामातरमम्बिकाम् ॥ ४० ॥ वर्त्तेतसौस्वपितरं त्यक्त्वोपपितृपिण्डदः ॥ तस्यरुद्रस्यमाहात्म्यंशतरुद्रियमुत्तमम्॥४१॥शृणुध्वंयदिपापानामिच्छध्वंक्षालनंपरम् ॥ ब्रह्माहाटकलिङ्गंच समाराध्यकपर्द्दिनः ॥ ४२ ॥ जगत्प्रधानमितिच नामजप्त्वाविराजते ॥ कृष्णःस्थलेकृष्णलिङ्गं नामचोर्ज्जितमेवच ॥ ४३ ॥ सनकाद्याश्चहल्लिङ्गं पूज्यप्रापुर्जगद्गतिम् ॥ दर्भाङ्कुरमयंसप्तमुनयोविश्वयोनिकम् ॥ ४४ ॥ नारदस्त्वन्तरिक्षेच जगद्बीजमितिगृणन् ॥ वज्रमिन्द्रोलिङ्गमेवं विश्वात्मानञ्चनामच ॥ ४५ ॥ सूर्यस्ताम्रंतथालिङ्गं नामविश्वसृजञ्जपन्॥ चन्द्रश्चमौक्तिकंलिङ्गं जपन्नामजगत्पतिम् ॥ ४६ ॥ इन्द्रनीलमयंवह्निर्नामविश्वे

हतेहो कि ब्रह्मा शिवजीके हाटकेश्वर लिंगको भलीभांति आराधनकर ॥ ४२ ॥ व जगत्प्रधान ऐसा नाम जपकर शोभित हैं व कृष्णजी स्थल में कृष्णलिंगको पूजकर व ऊर्जितनामको जपके विराजते हैं ॥ ४३ ॥ व सनकादिकोंने हल्लिंगको पूजकर संसारमें गति पाया है व सातमुनि कुशोंके अंकुरमय लिंगको पूजके व विश्वयोनिनाम को जपकर शोभितहैं ॥ ४४ ॥ व जगद्बीज ऐसा कहतेहुये नारदजी आकाशमें लिंगको पूजतेहैं व इन्द्र हीराका लिग पूजकर व ऐमेही विश्वात्मा नाम जपते हैं ॥ ४५ ॥ और विश्वसृज् नामको जपतेहुये सूर्य तांबे के लिंगको पूजते हैं व जगत्पति नामको जपताहुआ चन्द्रमा मोतीके लिंगको पूजते हैं ॥ ४६ ॥ और विश्व-

श्वर नामको जपतेहुये अग्निजी इन्द्रनीलमणिके लिंगको पूजते हैं व विश्वयोनि नामको जपतेहुये बृहस्पतिजी शिवजीके पुखराजमणि के लिंगको पूजते हैं ॥ ४७ ॥ व शुक्रजी विश्वकर्मा ऐसे नामसे पद्मरागमणि के लिगको पूजते हैं और ईश्वरनाम को जपतेहुये कुबेर सुवर्ण के लिंगको पूजते हैं ॥ ४८ ॥ व विश्वेदेवा चांदीका लिंग पूजते हैं व जगत्पति के नाम को भी जपते हैं व यमराज पित्तल से उपजेहुयेलिंग व शंभु इसीनाम को जपते हैं ॥ ४९ ॥ व वसुदेवता कांस्यसे उपजेहुये लिंगको पूजते और स्वयंभु ऐसे नामको जपतेहैं और महत देवता तीन धातुओं के लिंग को पूजते व उमेश नामको जपते हैं ॥ ५० ॥ व राक्षस लोहके लिंगको पूजते और भूतभव्य भवोद्भवनामको जपते हैं और गुह्यक सीससे उपजे हुये लिंगको पूजते व योग नामको जपते हैं ॥ ५१ ॥ व जैगीषव्य ब्रह्म रंध्रलिंगको पूजते व योगेश्वर

श्वरंजपन् ॥ पुष्परागंगुरुर्लिङ्गं विश्वयोनिंजपन्हरम् ॥ ४७ ॥ पद्मरागमयंशुक्रो विश्वकर्मेतिनामतः ॥ हैमंलिङ्गंच धनदोजपन्नाम्नातथेश्वरम् ॥ ४८ ॥ रौप्यजंविश्वदेवाश्च नामापिजगतांपतिम् ॥ यमश्चरीतिजंलिङ्गं शम्भुमित्येवनामच ॥ ४९ ॥ कांस्यजंवसवोलिङ्गं स्वयम्भुमितिनामच ॥ त्रिलोहंमहतोलिङ्गं नामतूमेशमेवच ॥ ५० ॥ लोहञ्चराक्षसानाम भूतभव्यभवोद्भवम् ॥ गुह्यकासीसजंलिङ्गं नामयोगंजपन्तिच ॥ ५१ ॥ जैगीषव्योब्रह्मरन्ध्रं नामयोगेश्वरंजपन् ॥ निमिर्नयनयोर्लिङ्गं जपञ्छैवेतिनामच ॥ ५२ ॥ धन्वन्तरिर्गोमयंच सर्वलोकसुरेश्वरम् ॥ गन्धर्वादानुजंलिङ्गं सर्वंश्रेष्ठेतिनामच ॥ ५३ ॥ वैडूर्यंराघवोलिङ्गं जप्त्वाज्येष्ठेतिनामच ॥ बाणोमारकतंलिङ्गं वसिष्ठमितिनामच ॥ ५४ ॥ वरुणःस्फाटिकंलिङ्गं नाम्नाचपरमेश्वरम् ॥ नागाविद्रुमलिङ्गंच्चनामलोकत्रयङ्करम् ॥ ५५ ॥ भारतीतनुलिङ्गंच नामलिङ्गं

नाम को जपते हैं और शैव ऐसे नामको जपतेहुये निमि नेत्रों के लिगको पूजते हैं ॥ ५२ ॥ व धन्वन्तरि गोमय लिंगको पूजते व सर्वलोक सुरेश्वर नामको जपते हैं और गंधर्व दानुजलिंगको पूजते व सर्व श्रेष्ठ ऐसे नामको जपते हैं ॥ ५३ ॥ व राघवजी ज्येष्ठ इस नामको जपकर वैदूर्यलिंगको पूजते हैं व बाणासुर मरकतके लिंग को पूजता व वशिष्ठ ऐसे नामको जपता है ॥ ५४ ॥ वरुणजी बिल्लौर के लिंग को पूजते व परमेश्वर नामको जपते हैं और नाग मूंगासे उपजेहुये लिंगको पूजते व त्रिलोक कारक नामको जपते हैं ॥ ५५ ॥ और सरस्वती शरीररूपलिंगको पूजती व लिंगत्रयेश्वरनामको जपती हैं व शनिश्चर के दिन अमावस होनेपर आधीरात के

बीच महीसागर के संगममें शनिश्चरजी आवर्त्तलिंग को पूजते और जगन्नाथ ऐसे नामको जपते हैं व रावणश्चमेलीसे उपजेहुये लिंगको पूजता व सुदुर्जय नामको जपताहै ॥ ५६ । ५७ ॥ व सिद्ध मानसलिंगको पूजते व काममृत्यु जरातिग नामको जपतेहैं और बलियज्ञसे उपजेहुये लिंगको पूजते व इनका ज्ञानात्मा ऐसा नाम जपतेहैं ॥ ५८ ॥ व मरीचि आदिक ऋषि पुष्पसे उपजेहुये लिंगको पूजते व ज्ञान गम्य ऐसे नामको जपतेहैं और सकृतदेवता कियेहुये लिंगको पूजते व ज्ञानज्ञेय ऐसे नामको जपतेहैं ॥ ५९ ॥ व फेनप फेनासे उपजेहुये लिंगको पूजते और सुदुर्विद नामको जपतेहैं व वरदायक शिवजीको जपतेहुये कपिलजी बालूके लिंगकोपूजते

त्र्येश्वरम् ॥ शनिश्चलिङ्गमावर्तं जगन्नाथेतिनामच ॥ ५६ ॥ शनौदर्शेमध्यरात्रौ महीसागरसङ्गमे ॥ जातीजंरावणो लिङ्गं जपन्नामसुदुर्ज्जयम् ॥ ५७ ॥ सिद्धाश्चमानसंलिङ्गंकाममृत्युजरातिगम् ॥ यज्ञजंचबलिर्लिङ्गं ज्ञानात्मेत्यस्यना मच ॥ ५८ ॥ मरीच्याद्याःपुष्पजातंज्ञानगम्येतिनामच ॥ सकृताश्चकृतंलिङ्गं ज्ञानज्ञेयेतिनामच ॥ ५९ ॥ फेनपाःफेन जंलिङ्गं नामचापिसुदुर्विदम् ॥ कपिलोबालुकालिङ्गं वरदञ्चजपन्हरम् ॥ ६० ॥ सारस्वतोवाचिलिङ्गं नामवागीश्वरेति च ॥ गणामूर्तिमयंलिङ्गं नामरुद्रेतिचप्रभोः ॥ ६१ ॥ जाम्बूनदमयन्देवाः शितिकण्ठेतिनामच ॥ शङ्खलिङ्गंबुधोनाम कनिष्ठमितिसंजपन् ॥ ६२ ॥ अश्विनौमृन्मयंलिङ्गं नाम्नाचैवसुवेधसम् ॥ विनायकःपिष्टलिङ्गं नाम्नाचापिकपर्द्दिनम् ॥ ६३ ॥ नवनीतंकुजोलिङ्गं नामगम्येतिकीर्त्तयन् ॥ लेप्यलिङ्गंतथालक्ष्मीर्हरिनेत्रेतिनामच ॥ ६४ ॥ योगिनस्सर्वभूत स्थं स्थाणुरित्येवनामच ॥ विश्वकर्माचप्रासादलिङ्गंयाम्येतिनामच ॥ ६५ ॥ वंशाङ्कुरोत्थंसगरो नामसाङ्गवमेव

हैं ॥ ६० ॥ व सारस्वत देवता वचनमें लिंगको पूजतेहैं और वागीश्वर ऐसा नाम जपतेहैं व गण मूर्त्तिमय लिंगको पूजते और प्रभुके रुद्र ऐसे नामको जपतेहैं ॥ ६१ ॥ देवता सुवर्णमय लिंगको पूजने व शितिकण्ठ ऐसे नामको जपतेहैं व कनिष्ठ ऐसानाम जपते हुये बुध शङ्खके लिंगको पूजते हैं ॥ ६२ ॥ अश्विनीकुमार देवता मिट्टीके लिंगको पूजते व नामसे सुवेधाको जपते हैं व गणेशजी पिष्ट (आटा) के लिंगको पूजते व नामसे कपर्दीको जपते हैं ॥ ६३ ॥ मंगलगम्य ऐसे नामको कहतेहुये नैनूके लिंगको पूजते हैं और लक्ष्मी लिखेहुये लिंगको पूजती व हरिनेत्र ऐसें नामको जपती हैं ॥ ६४ ॥ योगीलोग सम्पूर्ण प्राणियोंमें टिकेहुये लिंगको पूजते व स्थाणु

इसीनाम को जपते हैं और विश्वकर्मा मन्दिर के लिंगको पूजते व याम्य इस नामको जपते हैं ॥ ६५ ॥ और सगरजी बांसके अंकुरासे उठेहुये लिंगको पूजते व सांगत्र नामको जपते हैं और गम्य ऐसानाम कहताहुआ राहु हिंगुके लिंगको पूजताहै ॥ ६६ ॥ व मनुष्य अनेक प्रकारके लिंगको पूजते व पुरुष नामक नामको जपते हैं व नक्षत्र तेजोमय लिंगको पूजते व भग नामक सूर्यको जपते हैं ॥ ६७ ॥ व किन्नर धातुके लिंगको पूजते व सुदीप्त ऐसे नामको जपते हैं और ब्रह्मराक्षस हड्डियों के लिंगको पूजते व देव देव ऐसे नामको जपते हैं ॥ ६८ ॥ और चारण दांतोंसे उत्पन्न हुये लिंगको पूजते व रंहस नामको जपते हैं और साध्य सात धातुओं के लिंगको पूजते व बहुरूप ऐसे नामको जपते हैं ॥ ६९ ॥ और ऋतुवें दूबके अंकुरा का लिंग पूजती हैं व सर्वनामको जपती हैं व अप्सरायें कुंकुमके लिंग को

च ॥ राहुश्चरामठंलिङ्गं नामगम्येतिकीर्त्तयन् ॥ ६६ ॥ नानाविधंमनुष्याश्च पुरुषन्नामनामच ॥ तेजोमयञ्च ऋक्षाणि
भगन्नामचभास्करम् ॥ ६७ ॥ किन्नराधातुलिङ्गञ्च सुदीप्तमितिनामच ॥ देवदेवेतिनामास्थिलिङ्गञ्चब्रह्मराक्षसाः ॥
६८ ॥ दन्तजंचारणालिङ्गं नामरंहसमेवच ॥ सप्तलोहमयंसाध्या बहुरूपेतिनामच ॥ ६९ ॥ दूर्वाङ्कुरमयंलिङ्गं ऋतव
स्सर्वनामच॥ कौङ्कुमंवैचाप्सरसो लिङ्गंचाभूषणंविदुः ॥७०॥ अलक्तकञ्चयोगिन्यो नामचास्यसुचक्रकम् ॥ श्रीखण्डं
सिद्धयोगिन्यस्सहस्राख्येतिनामच ॥ ७१ ॥ डाकिन्योमांसलिङ्गंच नामचास्यसुमीढुषम् ॥ आफेनजञ्चमनवो गिरि
शेतिचनामतः ॥ ७२ ॥ अगस्तिर्व्रीहिजञ्चापि सुशान्तमितिनामच ॥ यवजंदेवलोलिङ्गं पतिमित्येवनामच ॥ ७३ ॥
वल्मीकजञ्चवाल्मीकिश्चीरवासेतिनामच ॥ प्रतर्द्दनोबाणरूपं हिरण्यभुजनामच ॥ ७४ ॥ राजिकञ्चतथादेव्या नाम

पूजती हैं व आचार्यों ने उनका भूषण नामकहा है ॥ ७० ॥ और योगिनी महावर के लिंगको पूजती और इनका सुचक्रक नाम जपती हैं व सिद्ध योगिनी चन्दनका लिंग पूजती व सहस्राख्यनाम को जपती हैं ॥७१॥ और डाकिनियां मांसका लिंग पूजती व इनका सुमीढुष नाम जपती हैं और मनुलोग जवाके फेनासे उपजे हुये लिंगको पूजते व गिरिश ऐसे नामको जपते हैं ॥ ७२ ॥ अगस्ति जी धान्यसे उपजेहुये लिंगको पूजते व सुशान्त ऐसे नामको जपते हैं व देवलजी यवोंसे उत्पन्न लिंगको पूजते व पति इसी नामको जपते हैं ॥ ७३ ॥ व वाल्मीकि जी बँवौरिसे उपजे हुये लिंगको पूजते और चीरवासा ऐसे नामको जपते हैं व प्रतर्द्दनजी बाण

रूप को पूजते व हिरण्य भुजनाम को जपते हैं ॥ ७४ ॥ व दैत्य राईके लिंगको पूजते हैं व उग्र ऐसा नाम कहागया है व दानव धान्य पवित्र करने से उपजे हुये
लिंगको पूजते और दिक्पति नामको जपते हैं ॥ ७५ ॥ व मेघ जलमय लिंगको पूजते और पर्जन्य ऐसे नामको जपते हैं और यक्ष कुरथी के लिंगको पूजते हैं व
नाम भूतपति कहागयाहै ॥ ७६ ॥ और पितर तिलात्मक लिंगको पूजते व वृषपति नामको जपतेहैं व गौतम गोरजके लिंगको पूजते और गोपातिही नामको जपतेहैं ॥
७७ ॥ और वानप्रस्थ फलमय लिंगको पूजते व वृक्षावृत ऐसे नामको जपते हैं व स्वामिकार्त्तिकेय जी पत्थल का लिंग पूजते और सेनान्यही नामको ज-

**उग्रेतिकीर्तितम् ॥ निष्पावजंदानवाश्च लिङ्गंनामचदिक्पतिम् ॥ ७५ ॥ मेघानीरमयंलिङ्गं पर्ज्जन्यमितिनामच ॥
राजमाषमयंयक्षा नामभूतपतिःस्मृतम् ॥ ७६ ॥ तिलात्मकञ्चपितरो नामवृषपतिस्तथा ॥ गौतमोगोरजमयं नाम
गोपतिरेवच ॥ ७७ ॥ वानप्रस्थाःफलमयन्नामवृक्षावृतेतिच ॥ स्कन्दःपाषाणलिङ्गंच नामसेनान्यएवच ॥ ७८ ॥ ना
गश्चाश्वतरोधान्यं मध्यमेतस्यनामतः ॥ पुरोडाशमयंयक्षाःस्रुचहस्तेतिनामच ॥ ७९ ॥ यमःकालायसमयं नाम
प्राहचधन्विनम् ॥ यवाङ्कुरंजामदग्न्यो भार्गवस्तस्यनामतः ॥ ८० ॥ पुरूरवाश्चाज्यमयं बहुरूपेतिनामच ॥ मान्धा
ताशर्करालिङ्गं नामविश्वपतिःस्मृतम् ॥ ८१ ॥ नारायणनरौमौञ्जं सहस्रशिरनामच ॥ ध्यात्वापृथुस्तथालिङ्गं सहस्र
चरणाभिधम् ॥ ८२ ॥ पक्षिणोव्योमलिङ्गंच नामवाहयुतेतिच ॥ गावःपयोमयंलिङ्गं नामनेत्रसहस्रकम् ॥ ८३ ॥ सा**

पते हैं ॥ ७८ ॥ व अश्वतर नाग धान्यको पूजते व इनका मध्य नाम जपतेहैं और यक्ष पुरोडासके लिंगको पूजते वसुचहस्त ऐसे नामको जपतेहैं ॥ ७९ ॥ व यम-
राज लोहमय काले लिंगको पूजतेहैं व धन्वीनाम आचार्यने कहाहै और जामदग्न्यजी यवके अंकुर को पूजते व इनका भार्गव नाम जपते हैं ॥ ८० ॥ और पुरूरवा
घी के लिंगको पूजते व बहुरूप ऐसे नामको जपते हैं व मांधाता शक्करके लिंगको पूजते हैं व विश्वपति नाम कहागयाहै ॥ ८१ ॥ व नरनारायण मौंजीमय लिंगको
पूजते और सहस्र शिर नामको जपते हैं वैसेही पृथुजी लिंगको ध्यानकर सहस्र पाद नामको जपते हैं ॥ ८२ ॥ व पक्षी आकाशके लिंगको पूजते और बाहयुत नाम

को जपते हैं और गाइयां दूधके लिंगको पूजती व नेत्र सहस्रक नामको जपतीहैं ॥ ८३ ॥ पतिव्रता स्त्रियां पतिमय लिंगको पूजती और सर्वात्मक नामको जपती हैं
और पृथ्वी गन्ध लिंगको पूजती व इनके द्वितनु नामको जपती हैं ॥ ८४ ॥ और शैव भस्मके लिंगको पूजते व इनका महेश्वर नाम जपते हैं व ऋषिलोग ज्ञानके
लिंगको पूजते व वीरस्थान ऐसे नामको जपते हैं ॥ ८५ ॥ व ब्राह्मण ब्रह्मलिंग को पूजते हैं व ज्योतिर्मय नाम कहागया है और शेषजी गोरोचन के लिंगको पूजतेहैं
और पशुपति नाम कहागया है ॥ ८६ ॥ व बासुकि विषके लिंगको पूजते व शङ्कर ऐसे नामको जपते हैं व तक्षक कालकूट नामक लिंगको पूजते और बहुरूप ऐसे

ऽयोभर्तृमयंलिङ्गं नामसर्वात्मकेतिच ॥ पृथिवीगन्धलिङ्गंच द्वितनुश्चास्यनामच ॥ ८४ ॥ भस्मलिङ्गंपाशुपतानाम
चास्यमहेश्वरः ॥ ऋषयोज्ञानलिङ्गंच वीरस्थानेतिनामच ॥ ८५ ॥ ब्राह्मणाब्रह्मलिङ्गंच नामज्योतिर्मयंविदुः ॥ गोरोच
नमयंशेषो नामपाशुपतिःस्मृतम् ॥ ८६ ॥ वासुकिर्विषलिङ्गंच नामवैशङ्करेतिच ॥ तक्षकःकालकूटाख्यं बहुरूपेति
नामच ॥ ८७ ॥ हालाहलंचकर्कोटः पिङ्गाक्षइतिनामच ॥ श्रृङ्गीविषमयंलिङ्गं नामधूर्जटिरेवच ॥ ८८ ॥ पुत्रःपितृम
यंलिङ्गं विश्वरूपेतिनामच ॥ पारदञ्चशिवादेवी नामत्र्यम्बकमेवच ॥ ८९ ॥ मत्स्याद्याश्शस्त्रलिङ्गंच नामचापिवृषाक
पिम् ॥ एवंकिंबहुनोक्तेन यद्यत्सत्त्वंचमूर्तिमत् ॥ ९० ॥ जगत्यामस्तितज्जातं शिवाराधनयोगतः ॥ भस्मत्वेयदिवृत्त
त्वं जायतेनाशसेचनात् ॥ ९१ ॥ शिवभक्तिविहीनस्य ततोस्यफलमुच्यते ॥ धर्मार्थकाममोक्षाणां यदिप्राप्तौभवेन्म

नामको जपतेहैं ॥८७॥ और कर्कोटक नाग हालाहल लिंगको पूजता व पिंगाक्ष ऐसे नामको जपताहै व श्रृङ्गी विषमय लिंगको पूजने और धूर्जटिही नामको जपतेहैं ॥
८८ ॥ व पुत्र पितृमय लिंगको पूजता व विश्वरूप ऐसे नामको जपता है और शिवादेवी पाराके लिंगको पूजती व त्र्यम्बक ऐसे नामको जपतीहैं ॥ ८९ ॥ और मछली
हत्यादिक शस्त्रलिंगको पूजती व वृषाकपि नामको जपती हैं ऐसेही बहुत कहनेसे क्याहै जो जो जीव ऐश्वर्यवान् है ॥ ९० ॥ वह शिवजी के आराधन के योगसे
पैदाहुआ है यदि जलके सींचने से भस्म में वृत्तता होवै ॥ ९१ ॥ तो शिवभक्ति से हीन इस पुरुषको फल कहाजाता है यदि धर्म, अर्थ, काम व मोक्षके मिलने में

बुद्धिहोवै ॥ ९२ ॥ तो शिवजी की भलीभांति आराधना करना चाहिये क्योंकि वे त्रिलोकमें कामदायक हैं नित्यही प्रातःकाल जो इस शतरुद्री को पढ़ैगा ॥ ९३ ॥ प्रसन्नहोतेहुये शिवदेवजी उसको सब वरदान देते हैं पृथ्वीतल में इससे अधिक पुण्यदायक दूसरी कुछवस्तु नहीहै ॥ ९४ ॥ सूर्यनारायणने मुझसे यह सबवेदों का गुप्त चरितकहाहै व जो पापवाणीसे कियागयाहै व मन और कर्मसे कियागयाहै॥९५॥वह पाप शतरुद्रीके कहनेपर नाशको प्राप्तहोताहै रोगसे विकल पुरुषरोगसे छूटताहै व बन्धुवा बन्धनसे छूटताहै ॥९६॥ और डरापुरुष डरसे छूटजाताहै जोकि शतरुद्रीको जपताहै व सौनामोंसे व उतनेही फूलोंसे शिवजीको पूजताहै॥९७॥ व सौ प्रणामों

तिः ॥ ९२ ॥ ततोहरस्समाराध्यस्त्रिजगत्यर्थदोमतः ॥ यइदंशतरुद्रीयं प्रातर्नित्यंपठिष्यति ॥ ९३ ॥ तस्यप्रीतश्शिवोदेवः प्रदास्यत्यखिलान्वरान् ॥ नातःपरंपुण्यतमं किञ्चिदस्तिमहीतले ॥ ९४ ॥ सर्ववेदरहस्यंच सूर्येणोक्तमिदंमम ॥ वचसायत्कृतंपापं मनसाकर्मणाकृतम् ॥ ९५ ॥ पापंतन्नाशमायाति कीर्तितेशतरुद्रिये ॥ रोगार्तोमुच्यतेरोगाद्बद्धोमुच्येतबन्धनात ॥ ९६ ॥ भयान्मुच्येतभीतस्तु जपेद्यश्शतरुद्रियम् ॥ नाम्नांशतेनयोविद्वान् पुष्पैस्तावद्भिरीश्वरम् ॥ ९७ ॥ प्रणामानांशतेनापि मुच्यतेसर्वपातकैः ॥ लिङ्गानांशतमेतच्च शतमाराधकस्तथा ॥ ९८ ॥ नामानिचशतंसर्वदोषस्यनाशकाःस्मृताः ॥ विशेषादेषुलिङ्गेषु यःपठिष्यतिपञ्चसु ॥ ९९ ॥ पञ्चवर्षसमुद्भूतैस्सदोषैःपरिमुच्यते ॥ २०० ॥ नारद उवाच ॥ निशम्यैवंपार्थतेपिगुप्तक्षेत्रेमुदायुताः ॥ पञ्चलिङ्गान्यर्चयन्तः शिवध्यानपराभवन् ॥ १ ॥ ततोबहुतिथेकाले प्रत्यक्षोभूयशङ्करः ॥ प्राहतान्मुदितोदेवस्तेषांभक्तिविशेषतः ॥ २ ॥ बकोलूकगृध्रकूर्मा इन्द्रद्युम्न

से भी सब पातकों करके छूटजाता है यह लिंगोंका सैकड़ा व सौ आराधक ॥ ९८ ॥ और सौ नाम सब दोषों के नाशक कहेगये हैं व इन लिंगोंके मध्यमें जो विशेषकर पांच लिंगोंके आगे पढ़ैगा ॥ ९९ ॥ वह पांचवर्ष में उपजेहुये दोषोसे छूटजाताहै ॥ २०० ॥ नारदजी बोले कि हे अर्जुन ! ऐसा सुनकर प्रसन्नतासे संयुत वे भी गुप्तक्षेत्र में पांच लिंगोंको पूजतेहुये शिवजीके ध्यानमें परायणहुये ॥ १ ॥ तदनन्तर बहुत तिथियों वाले समय के बीतने पर उनकी भक्तिकी विशेषता से प्रसन्न

होते हुये शिवदेवजीने उनसे कहा ॥ २ ॥ कि हे बगुला, घुघुवा, गीध, कछुवा ! व हे इन्द्रद्युम्न राजन् ! सारूप्य मुक्तिको प्राप्तहोकर तुमलोग मेरेलोक में बसोगे ॥
३ ॥ व लोमश और मार्कण्डेय भी जीवन्मुक्त होवैंगे देवदेव शिवजीसे ऐसा कहेहुये राजाने महाकालके पूर्व ओर इन्द्रद्युम्नेश्वर नामक लिंगको स्थापन किया व तीर्थ
के गुणोंको जानकर बहुत दिनवाले यशको चाहते हुये राजाने ॥ ४ । ५ ॥ बहुत सुन्दर व अचल लिंगको भलीभांति थापकर यह कहा कि जबतक चन्द्रमा व सूर्य
रहैंगे व जबतक पृथ्वी स्थित रहैगी ॥ ६ ॥ तबतक इन्द्रद्युम्न इन्द्रद्युम्नेश्वर लिंग को पूजैंगे और फिर शिवजी बोले कि जो पुरुष इस लिंगको पूजैगा वह मेरा गण

चपार्थिव ॥ सारूप्यमुक्तिमापन्ना ममलोकेनिवत्स्यथ ॥३॥ लोमशश्चापिमार्कण्डो जीवन्मुक्तोभविष्यतः ॥ इत्युक्तो
देवदेवेन लिङ्गंस्थापितवान्नृपः ॥ ४ ॥ इन्द्रद्युम्नेश्वरंनाममहाकालाच्चपूर्वतः ॥ ज्ञात्वातीर्थगुणान्राजाकीर्तिमिच्छुश्चि
रन्तनीम् ॥ ५ ॥ सुरम्यमचलंलिङ्गं संस्थाप्येदमुवाचह ॥ यावच्चन्द्रश्चसूर्यश्च यावत्तिष्ठतिमेदिनी ॥ ६ ॥ इन्द्रद्युम्नेश्वरं
लिङ्गमिन्द्रद्युम्नःप्रपूजयेत् ॥ पुनश्चप्रोवाचशिवोयएतत्परिपूजयेत् ॥ सगणोजायतेमह्यं ममलोकेनिवत्स्यति ॥ ७ ॥
इत्युक्त्वासहितश्चैव पञ्चभिःशशिशेखरः ॥ रुद्रलोकमगाद्देवस्तेपिजातागणाःपुनः ॥ ८ ॥ एवंप्रभावोराजासीदिन्द्रद्यु
म्नोमहीपतिः ॥ यजतायेनवीरेण निर्मितेयंमहीनदी ॥ ९ ॥ एवंविधःसुपुण्योयं महीसागरसङ्गमः ॥ बभूवतेनसंक्षेपा
त्तवपार्थप्रकीर्तितम् ॥ १० ॥ स्नात्वात्रसंगमेयश्च इन्द्रद्युम्नेश्वरन्नरः ॥ पूजयेत्तस्यवासःस्याद्यत्रेशःपार्वतीपतिः ॥
११ ॥ सर्वबन्धहरंलिङ्गं गाणपत्यप्रदंत्विदम् ॥ यतोबन्धान्विहायैव स्थापितंतेनफाल्गुन ॥ १२ ॥ इतीदमुक्तंतवपु

होगा व मेरे लोक में बसैगा ॥ ७ ॥ यह कहकर चन्द्रभाल देवजी पांचों समेत शिवलोक को चलेगये और फिर वे भी गण हुये ॥ ८ ॥ इन्द्रद्युम्न भूपति ऐसे प्रताप
वाले राजाहुये कि यज्ञकरते हुये जिस वीर से यह महीनदी बनाईगई ॥ ९ ॥ इस प्रकार का यह सुन्दर पुण्यदायक महीसागर का संगम हुआहै उससे हे अर्जुनजी !
तुमसे संक्षेप से कहाहै ॥ १० ॥ इस संगममें नहाकर जो पुरुष इन्द्रद्युम्नेश्वर को पूजैहै उसका निवास वहां होगा जहां कि पार्वतीके पति शिवजी हैं ॥ ११ ॥ यह
लिंग समस्त बन्धनों का हरनेवाला व गणेशता को देनेवाला है जिससे कि हे अर्जुन ! बन्धनों को छोड़कर उसने स्थापन कियाहै ॥ १२ ॥ हे अर्जुनजी ! इस

प्रकार इनका यह पुण्यकारक माहात्म्य तुमसे कहागया और इन्द्रद्युम्नेश्वर के पुण्य पैदा करनेवाले चरित्रको जो कहैगा उसको बड़ी पुण्यहोगी ॥२१३॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायाभाषाटीकायांमहीसागरमाहात्म्यवर्णनंनामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥

दो० । वज्रांगक दानव यथा कीन्हो तप बहुकाल । बारहवें अध्यायमें सोई चरित रसाल ॥ अर्जुन जी बोले कि हे महामुने ! जो तुमने कथाके बीचमें कुमार नामक माहात्म्य को कहाहै उसको मैं विस्तारसे सुनना चाहता हूं ॥ १ ॥ नारद बोले कि हे अर्जुन ! स्वामी स्वामिकार्त्तिकेय जीने वज्रांगके पुत्र तारकको मारकर

एयकारि माहात्म्यमस्योत्तमसंगमस्य ॥ पुण्योद्भवंचेन्द्रद्युम्नेश्वरस्य यःकीर्त्तयेत्तस्यपुण्यंमहत्स्यात ॥ २१३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेमहीसागरमाहात्म्यन्नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ * ॥ * ॥

अर्जुन उवाच ॥ कुमारंनाममाहात्म्यं यत्त्वयोक्तंकथान्तरे ॥ तदहंश्रोतुमिच्छामि विस्तरेणमहामुने ॥ १ ॥ नारद उवाच ॥ तारकंविनिहत्यैव वज्राङ्गतनयंप्रभुः ॥ गुहःसंस्थापयामास लिङ्गमेतच्चफाल्गुन ॥ २ ॥ अर्जुन उवाच ॥ अत्याश्चर्यमयीरम्या कथेयंपापनाशिनी ॥ विस्तरेणचमेब्रूहि याथातथ्येननारद ॥ ३ ॥ वज्राङ्गःकोमहादैत्यः किंप्रभावश्चतारकः ॥ कथंसनिहतश्चैव जातश्चैवकथंगुहः ॥ ४ ॥ कथंसंस्थापितंलिङ्गं कुमारेश्वरसंज्ञितम् ॥ नारद उवाच ॥ प्रणिपत्यकुमाराय सेनान्येचेश्वरायच ॥ ५ ॥ शृणुचैकमनाःपार्थ कुमारचरितंमहत् ॥ मानसोब्रह्मणःपुत्रो दक्षोनामप्रजापतिः ॥ ६ ॥ षष्टिंसोजनयत्कन्या वीरिण्यांनामफाल्गुन ॥ ददौसदशधर्माय कश्यपायत्रयोदश ॥ ७ ॥

इस लिंग को भलीभांति स्थापन कियाहै ॥ २ ॥ अर्जुन बोले कि हे नारद ! यह पापनाशिनी कथा बड़ी आश्चर्यमयी है इसको यथार्थतासे विस्तारपूर्वक मुझसे कहिये ॥ ३ ॥ कि वज्रांग कौन महादैत्य है व तारक किस प्रभाववाला था और वह कैसे मारागया व स्वामिकार्त्तिकेय जी कैसे पैदाहुये ॥ ४ ॥ और कुमारेश्वर नामक कैसे स्थापित हुये नारद बोले कि स्वामिकार्त्तिकेय सेनाध्यक्ष व ईश्वरके लिये प्रणामकर ॥ ५ ॥ हे अर्जुनजी ! एकाग्र मनवाले हो स्वामिकार्त्तिकेय का चरित सुनिये कि ब्रह्माके मानसी पुत्र दक्ष नामक प्रजापतिहुये ॥६॥ हे अर्जुन ! उन्होंने वीरिणी नामक स्त्रीमें साठिकन्या पैदाकिया और दश धर्म व तेरह कश्यपके लिये दिया॥७॥

व स्वामी दक्ष जीने सत्ताईस चन्द्रमा और चार अरिष्टनेमिको दिया और भृगु, अंगिरा व कृशाश्व के लिये दो दो कन्याओं को दिया ॥ ८ ॥ इन सौतियोंके
नाम तुम मुझ से सुनो कि जिनकी सन्तान की उत्पत्तियों से तीनों लोक पूर्णहैं ॥ ९ ॥ भानु, लम्बा, ककुत, भूमि, विश्वा, साध्या, मरुत्वती, वसु, मुहूर्त्ता व संकल्पा
धर्मकी स्त्रियाहैं व पुत्रोंको सुनिये ॥ १० ॥ कि सुवेद, ऋषभ व इन्द्रसेन भानुके पुत्रहुये व लम्बाके विद्योत और उनके स्तनयित्नु हुये ॥ ११ ॥ और ककुत्के शकट
पुत्रहुआ व इसके भी कीकट हुआ और भूमिके दुर्ग पुत्रहुआ व उनके स्वर्ग व नन्दीपुत्र हुये ॥ १२ ॥ व विश्वाके विश्वेदेवता हुये उनको विद्वान् सन्तानहीन कहतेहैं व

सप्तविंशंचसोमाय चतस्रोरिष्टनेमये ॥ भृग्वङ्गिरःकृशाश्वेभ्यो द्वेद्वेचददौप्रभुः ॥ ८ ॥ नामधेयान्यमूषांत्वं साप
त्न्यानाञ्चमेशृणु ॥ यासांप्रसूतिप्रभवैर्लोकाआपूरितास्त्रयः ॥ ९ ॥ भानुर्लम्बाककुद्भूमिर्विश्वासाध्यामरुत्वती ॥ व
सुर्मुहूर्त्तासङ्कल्पा धर्मपत्न्यःसुताञ्छृणु ॥ १० ॥ भानोःसुवेदऋषभ इन्द्रसेनःसुताभवन् ॥ विद्योतआसील्लम्बायां तत
श्चस्तनयित्नवः ॥ ११ ॥ ककुदःशकटःपुत्रः कीटकस्तनयोप्यतः ॥ भुवोदुर्गस्तथास्वर्गो नन्दिश्चैवततोभवत्॥१२॥
विश्वेदेवास्तुविश्वाया अप्रजांस्तान्प्रचक्षते ॥ साध्याद्वादशसाध्याया अर्द्धसिद्धस्तुतत्सुतः ॥ १३ ॥ मरुत्वांस्तुजय
न्तश्च मरुत्वत्यांबभूवतुः ॥ नरनारायणौप्राहुर्जातौज्ञानविदोद्विजाः ॥ १४॥ वसोश्चवसवश्चाष्टौमुहूर्त्तायामुहूर्त्तकाः॥
येवैफलंप्रयच्छन्ति भूतानांस्वस्वकालजम् ॥ १५ ॥सङ्कल्पायाश्चसङ्कल्पः कामःसङ्कल्पजःसुतः ॥ सुरूपायाःसुताआ
सन् रुद्राएकादशैवच ॥ १६ ॥ कपालीपिङ्गलोभीमो विरूपाक्षोविलोहितः ॥ अजकःशासनःशास्ता शम्भुश्चण्डो

साध्याके बारह साध्य देवताहुये व उनके पुत्र अर्द्धसिद्ध हुये ॥ १३ ॥ मरुत्वती के मरुत्वान् व जयन्त पुत्र हुये ज्ञानके जाननेवाले ब्राह्मणोंने उत्पन्नहुये उन दोनोंको
नरनारायण कहाहै ॥ १४ ॥ व वसुके आठ मुहूर्त्त हुये और मुहूर्त्ता के मुहूर्त्तहुये जोकि प्राणियों को अपने २ समय में पैदाहुआ फलदेते हैं ॥ १५ ॥ संकल्पाके संक-
ल्प और संकल्पसे पैदाहुआ पुत्र कामहै और सुरूपाके पुत्र गेरह रुद्र हुयेहैं ॥ १६ ॥ जोकि कपाली, पिंगल,भीम, विरूपाक्ष, विलोहित, अजक, शासन, शास्ता, शम्भु,

चण्ड व भव नामकहैं ॥ १७ ॥ व विरूपाके अन्य पुत्र शिवजी के पार्षद कहेगये हैं इसके अनन्तर अंगिराकी स्त्री स्वधाने पितरोंको पैदाकिया है ॥ १८ ॥ व शचीने अथर्वांगिरस प्रभुको पुत्र उत्पन्न किया और कृशाश्वकी अर्चि व धिषणा दो स्त्रियां हुई हैं॥ १९ ॥ जिनके संहार समेत अस्त्रसमूह पुत्र कहा गयाहै व पतंगी, यामिनी, ताम्रा व तिमि अरिष्टनेमिकी स्त्रियां हुईं ॥ २० ॥ पतंगीने पक्षी व यामिनीने पांखियोंको उत्पन्न किया और ताम्राके बाज, गीध आदिक व तिमिके जलजन्तु समूहहुये हैं ॥ २१ ॥ इसके अनन्तर कश्यपकी स्त्रियोंके नाम सुनिये कि जिनसे यह संसार पैदाहै व जो नाम मनुष्यो व मातृगणोंके कल्याणकारकहैं ॥ २२॥ अदिति, दिति,

भवस्तथा ॥ १७ ॥ रुद्रस्यपार्षदाश्चान्ये विरूपायाःसुतास्स्मृताः ॥ प्रजापतेरङ्गिरसः स्वधापत्नीपितॄनथ ॥ १८ ॥ जज्ञे शचीतथापुत्रमथर्वाङ्गिरसंप्रभुम् ॥ कृशाश्वस्यचद्वेभार्येअर्चिश्चधिषणातथा ॥ १९ ॥ अस्त्रग्रामोययोःपुत्रः ससंहारःप्रकीर्तितः ॥ पतङ्गीयामिनीताम्रा तिमिश्चारिष्टनेमिनः ॥ २० ॥ पतङ्ग्यसूतपतगान् यामिनीशलभानथ ॥ ताम्रायाःश्येनगृध्राद्यास्तिमेर्यादोगणास्तथा ॥ २१ ॥ अथकश्यपपत्नीनां यत्प्रसूतमिदंजगत् ॥ शृणुनामानिलोकानां मातॄणांशङ्कराणिच ॥ २२ ॥ अदितिर्दितिर्दनुःसिंहीह्यनायुःसुरभिस्तथा ॥ अरिष्टाविनताप्राधा तथाक्रोधवशाइरा ॥ २३ ॥ कद्रूर्मुनिश्चलोकानां मातरस्ताःप्रकीर्तिताः ॥ आदित्याश्चादितेःपुत्रा दितेर्दैत्याःप्रकीर्तिताः ॥ २४ ॥ दनोश्च दानवाःपुत्रा राहुःसिंहीसुतोग्रहः ॥ अनायुषस्तथाजातोह्यनायोश्चगणोबली ॥ २५ ॥ गावश्चसुरभीजातारिष्टापुत्राश्चकन्धराः ॥ अरुणंविनतासूत गरुडञ्चमहाबलम् ॥ २६ ॥ प्राधायाःश्वापदाःपुत्रा गणःक्रोधवशस्तथा ॥ जातःक्रोध

दनु, सिंही, अनायु,सुरभि, अरिष्टा, विनता, प्राधा व क्रोधवशा, इरा ॥ २३ ॥ कद्रू व मुनि वे लोकोंकी मातायें कहीगई हैं और अदितिके पुत्र आदित्य व दितिके पुत्र दैत्य कहेगये हैं ॥ २४ ॥ व दनुके पुत्र दानव व सिंहीका पुत्र राहु ग्रह हुआहै और अनायुषके बलिष्ठ अनायुका समूह हुआहै ॥ २५ ॥ व सुरभी के गौवें पैदाहुईं और अरिष्टा के कन्धर पुत्र हुये विनताने अरुण व बड़े बलिष्ठ गरुड़को पैदाकिया ॥२६॥ प्राधाके हिंसक जंगली जीव पुत्र हुये वैसेही क्रोधवशाके क्रोधवश गण पैदाहुआ

और इसके वृत्त पुत्र कहेगयेहैं ॥ २७ ॥ व कद्रूके पुत्र नाग कहेगये हैं और मुनिके अप्सराओंके गण हुये उनमें दितिके जो दो पुत्रथे वे विष्णुजी से मारेगये ॥ २८ ॥
एकवीर हिरण्यकशिपु व दूसरा हिरण्याक्ष तदनन्तर मारेहुये पुत्रोंवाली उस दिति ने कश्यपकी सेवाकर ॥ २९ ॥ व देवी दितिने उनके समीप जाकर बडेबली पुत्रको
मांगा जोकि युद्धमें इन्द्रको मारै उन स्वामी कश्यपजीने उसको दिया ॥३०॥ कि हज़ार वर्षतक नियममें वर्त्तमानहोवो तो ऐसा पुत्रहोगा ऐसा कहीहुई उसने सावधान
हो पुष्करमें टिककर वैसाही किया ॥ ३१ ॥ व सावधान होतेहुये इन्द्रजीने नियममें वर्त्तमान उस दितिकी भक्तिसे सेवाकिया व उसने इनको माना ॥ ३२ ॥ उन

वशायाश्च इरायाभूरुहाःस्मृताः ॥ २७ ॥ कद्रूसुताःस्मृतानागा मुनेरप्सरसांगणाः ॥ तत्रद्वौतनयौयौच दितेस्तौवि
ष्णुनाहतौ ॥ २८ ॥ हिरण्यकशिपुर्वीरो हिरण्याक्षस्तथापरः ॥ ततोनिहतपुत्रासा दितिराराध्यकश्यपम् ॥ २९ ॥ अ
याचतवरंदेवी पुत्रमेत्यमहाबलम् ॥ समरेशक्रहन्तारं सतस्याअददत्प्रभुः ॥ ३० ॥ नियमेचाभिवर्त्तस्व वर्षाणाञ्चस
हस्रकम् ॥ इत्युक्तासातथाचक्रे पुष्करस्थासमाहिता ॥ ३१ ॥ वर्त्तन्त्यानियमेतस्याः सहस्राक्षःसमाहितः ॥ उपासा
माचरन्भक्त्या साचैनमनुमन्यत ॥ ३२ ॥ तस्यवत्सरशेषस्यसहस्रस्यतदादितिः ॥ उवाचशक्रंसुप्रीता भक्त्याशक्र
स्यतोषिता ॥ ३३ ॥ दितिरुवाच ॥ पुत्रोत्तीर्णव्रतप्रायांविद्धिमांदेवसत्तम ॥ भविष्यतितवभ्रातातेनसार्द्धमिमांश्रियम् ॥
३४ ॥ भोक्ष्यसेत्वंयथान्यायं त्रैलोक्यंहतकण्टकम् ॥ इत्युक्त्वानिद्रयाविष्टाचरणाक्रान्तमूर्द्धजा ॥ ३५ ॥ दिवासुप्तादि
तिर्देवी भाव्यर्थबलनोदिता ॥ तत्तुरन्ध्रमवेक्ष्यैव योगमूर्तिस्तदाविशत् ॥ ३६ ॥ जठरेतांदितेर्गर्भंचक्रेवज्रेणसप्तधा ॥

हज़ारवर्षों में जब एक साल शेष रहा तब इन्द्र की भक्ति से प्रसन्न कीहुई व अतिआनन्दित दिति ने इन्द्रसे कहा ॥ ३३ ॥ दिति बोली कि हे देवोत्तम पुत्र ! तुम
उतरे याने समाप्त हुये व्रतवाली मुझको जानो जो तुम्हारा भाई होगा उस समेत तुम इस लक्ष्मी को ॥ ३४ ॥ भोगोगे व न्यायपूर्वक नष्टकंटकोंवाले त्रिलोक को
भोग करोगे यह कहकर नींदसे संयुत व चरणों के स्थान को घेरेहुये बालोंवाली व होनहार वस्तु से प्रेरणा कीहुई दिति देवी दिन में सोगई उससमय उस छिद्र

को देखकर योग से मूर्तिधारी इन्द्रजी उसके पेट में पैठ गये ॥ ३५।३६ ॥ व दितिके उस गर्भ को वज्र से सात खण्ड करडाला तदनन्तर इन्द्रने कोप से फिर एक २ खण्डके सात २ खण्ड किया उसके उपरान्त दिति जागपड़ीं व उस दिति ने इन्द्रसे यह कहा कि न मारना चाहिये न नाशना चाहिये ॥ ३७ । ३८ ॥ जो दिति कि वज्र से काटेजातेहुये बालकों के रोने से जागी थीं तदनन्तर मत रोवो यह वचन उन से कहते हुये इन्द्रजी ॥ ३९ ॥ उस दिति के पेटसे निकलकर हाथजोड़ आगे खड़े होगये व डरकर क्रोध से पूर्ण मातासे वचन बोले ॥ ४० ॥ कि हे माता ! तुमने दिन को शयन किया व चरणों के स्थान को घेरेहुये बालोंवाली तुम देरतक

एकैकंचपुनःखण्डञ्चकारमघवाततः ॥ ३७ ॥ सप्तधासप्तधाकोपाद्बुद्बुध्यततोदितिः ॥ नहन्तव्योनहन्तव्य इति साशक्रमब्रवीत् ॥ ३८ ॥ वज्रेणकृत्यमानानांबुद्धायारोदनेनच ॥ ततःशक्रश्चमारोदीरितितान्वचनंवदन् ॥ ३९ ॥ निर्गत्यजठरात्तस्याःस्थितःप्राञ्जलिनाग्रतः ॥ उवाचवाक्यंचत्रस्तोमातरंरोषपूरिताम् ॥ ४० ॥ दिवास्वापंकृतंमातः पादाक्रान्ताशिरोरुहा ॥ सुप्ताचसुचिरंचातश्छिन्नोगर्भोमयातव ॥ ४१ ॥ एकोनपञ्चाशत्कृताभागावज्रेणतेसुताः ॥ सत्यंभवतुतेवाक्यंसार्द्धंभोक्ष्यामितैःश्रियम् ॥ ४२ ॥ दास्यामितेषांस्थानानिदिवियावदहन्दिते ॥ मारोदीरितिमेप्रोक्ताः ख्याताश्चमरुतस्त्विति ॥ ४३ ॥ इत्युक्तासाचसव्रीडादितिर्जातानिरुत्तरा ॥ तैःसार्द्धंगतवानिन्द्रोदिवन्तेवायवःस्मृताः॥४४॥ ततःपुनश्चभर्त्तारंदितिःप्रोवाचदुःखिता ॥ पुत्रंमेभगवन्देहिशक्रजेतारमूर्जितम् ॥ ४५ ॥ योऽस्त्रशस्त्रैरवध्यत्वङ्गच्छेत्त्रिदिववासिनाम् ॥ नददास्युत्तरंविद्धि मृतामेवप्रजापते ॥ ४६ ॥ इत्युक्तस्सततोवाचतां पत्नीमतिदुःखिताम् ॥ दशवर्षसहस्रा

सोती रही इससे मैंने तुम्हारा गर्भ काटडाला ॥ ४१ ॥ व वज्र से काटे हुये तुम्हारे पुत्र उंचास भाग कियेगये तुम्हारा वचन सत्यहोवै उन समेत मैं लक्ष्मी को भोग करूंगा ॥ ४२ ॥ हे दिते ! जबतक मैं स्वर्ग में रहूंगा तबतक उनको स्थान दूंगा मैंने जो इनसे यह कहा कि मतरोवो इस से मरुत् ऐसे प्रसिद्ध होंगे ॥ ४३ ॥ ऐसी कहीहुई लज्जा समेत वे दिति जी उत्तररहित होगईं और उनसमेत इन्द्रजी स्वर्गको चलेगये और वे पवन कहेगयेहैं ॥ ४४ ॥ तदनन्तर दुःखित होतीहुई दिति ने फिर पति से कहा कि हे भगवन् ! इन्द्र के जीतनेवाले बढ़ेहुये पुत्र को मुझे दीजिये ॥ ४५ ॥ जो कि स्वर्गवासियों के अस्त्र शस्त्रों से अवध्यता को प्राप्त होवै हे प्रजापते !

उत्तर नहीं देते हो तो मुझको मरीहुई जानिये ॥ ४६ ॥ तदनन्तर ऐसा कहेहुये उन कश्यपजीने बड़ीदुःखित उस स्त्री से कहा कि शीघ्रही तुम दशहज़ार वर्षतक
तप में स्थितहोवो ॥ ४७ ॥ वज्र के सारांशमय वन कटनेयोग्य लोह के तुल्य पुष्टअङ्गोंसे संयुत व धर्मप्रिय वज्रांग नामक तुम्हारे पुत्र होगा ॥ ४८ ॥ वर पायेहुई वे
देवी तपस्या के लिये वनको चलीगईं ॥ ४९ ॥ व दशहज़ार वर्षतक भयंकर तपस्या किया व तपस्याके अन्तमें भगवती दितिने दुःखसे जीतने योग्य व जिसके बराबर
दूसरा कर्म करनेवाला नहींथा व न जीतने योग्य व वज्रसे न कटनेवाले पुत्र को पैदाकिया पैदाहुआ ही वह पुत्र सब शास्त्रका पारगामी हुआ ॥ ५० । ५१ ॥ और

णि तपोनिष्ठाभवाशुत्वम् ॥ ४७ ॥ वज्रसारमयैरङ्गैरच्छेद्यैरायसैर्दृढैः ॥ वज्राङ्गोनामपुत्रस्ते भविताधर्मवत्सलः ॥ ४८ ॥
सातुलब्धवरादेवी जगामतपसेवनम् ॥ ४९ ॥ दशवर्षसहस्राणि तपोघोरंसमाचरत् ॥ तपसोन्तेभगवती जनयामासदु
र्जयम् ॥ ५० ॥ पुत्रमप्रतिकर्माणमजेयंवज्रदुश्छिदम् ॥ सजातमात्रएवाभूत्सर्वशास्त्रस्यपारगः ॥ ५१ ॥ उवाचमा
तरंभक्त्या मातःकिङ्करवाण्यहम् ॥ तमुवाचततोहृष्टा दितिर्दैत्याधिपंसुतम् ॥ ५२ ॥ बहवोमेहताःपुत्राः सहस्राक्षेण
पुत्रक ॥ तेषामपचितिङ्कर्तुमिच्छुःशक्रवधादहम् ॥ ५३ ॥ बाढमित्येवतामुक्त्वा जगामत्रिदिवंबली ॥ सम्प्राप्यसमरे
शक्रं सचबाह्वायुधोजयत् ॥ ५४ ॥ पादेनाकृष्यचैवेन्द्रं सिंहःक्षुद्रमृगंयथा ॥ मातुरन्तिकमापृच्छ्याचमानंभयातु
रम् ॥ ५५ ॥ एतस्मिन्नन्तरेब्रह्मा कश्यपश्चमहातपाः ॥ आगतौतत्रसंत्रस्तावथोब्रह्माजगादतम् ॥ ५६ ॥ मुञ्चामुंपुत्रजी
वन्तं किमनेनप्रयोजनम् ॥ अवमानंवधःप्रोक्तो वीरसम्भावितस्यच ॥ ५७ ॥ अस्मद्वाक्येनयोमुक्तो जीवन्नपिमृतोहि

भक्ति करके वह मातासे बोला कि हे माता ! मैं क्याकरूं तदनन्तर प्रसन्न होतीहुई दितिने दैत्योंके स्वामी पुत्रसे कहा ॥ ५२ ॥ कि हे पुत्र ! इन्द्रने मेरे बहुत पुत्रोंको
माराहै मैं इन्द्रके मारने से उनकी पूजा करना चाहती हूं ॥ ५३ ॥ बहुत अच्छा यही उनसे कहकर बलिष्ठ पुत्र स्वर्गको चलागया व युद्धमें इन्द्रको पाकर भुजारूपी
शस्त्रोंवाले उसने इन्द्रको जीतलिया ॥ ५४ ॥ जैसे सिंह क्षुद्रमृग को खींचे वैसेही याचना करतेहुये व डरसे विकल इन्द्रको चरणसे खींचकर माताके समीप लाकर
[illegible] ॥ ५५ ॥ इसी अवसरमें बड़े तपस्वी कश्यप व ब्रह्मा डरकर वहांआये व इसके अनन्तर ब्रह्मा उनसे बोले ॥ ५६ ॥ कि हे पुत्र ! जीतेहुये इसको छोड़दो इससे क्या

प्रयोजन है क्योंकि हे वीर ! मर्यादिक पुरुषका अपमान होना वध कहागया है ॥ ५७ ॥ हमारे वचनके कारण जो छोड़ागया जीताहुआ भी वह मराहै संग्राम में जो शत्रुको मारतेहैं वे वीर नहीं कहेगये हैं ॥ ५८ ॥ व मानमर्दनकर शत्रुको जो छोड़देते हैं वे श्रेष्ठहैं जैसे अत्यन्त श्रेष्ठ मानकर तुमने माताका वचन किया है ॥ ५९ ॥ हे पुत्र ! वैसेही पिताका वचन करना चाहिये इन इन्द्रको छोड़देवो यह सुनकर प्रणाम कियेहुये वज्रांगने वचन कहा ॥ ६० ॥ कि इससे मेरा कार्य नहींहै मैंने माता की आज्ञाकिया है और देवता दैत्योंके स्वामी तुम मेरे प्रपितामहहो ॥ ६१ ॥ हे देव ! तुम्हारा वचन करैंगे इससे इन्द्रको छोड़दिया व इन्द्रकी भोगीहुई इस त्रिलोकीकी

सः ॥ शत्रुंयेघ्नन्तिसमरे नतेवीराःप्रकीर्तिताः ॥ ५८ ॥ कृत्वामानपरिम्लानं येमुञ्चन्तिवराहिते ॥ यथामान्यतमांम त्वा त्वयामातुर्वचःकृतम् ॥५९॥ तथापितुर्वचःकार्यं मुञ्चाशुंपुत्रवासवम् ॥ एतच्छ्रुत्वातुवज्राङ्गः प्रणतोवाक्यमब्रवी त् ॥ ६० ॥ नमेकृत्यमनेनास्ति मातुराज्ञाकृतामया ॥ त्वंसुरासुरनाथोवै ममचप्रपितामहः ॥ ६१ ॥ करिष्येत्वद्वचो देव अतोमुक्तश्शतक्रतुः ॥ नचकाङ्क्षेशक्रभुक्तामिमंत्रैलोक्यराज्यकम् ॥ ६२ ॥ परभुक्तायथानारी परभुक्तामिवस्र जम् ॥ यच्चत्रिभुवनेप्यस्ति सारंतन्ममकथ्यताम् ॥ ६३ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ तपसोनपरंकिञ्चित्तपोहिमहतान्धनम् ॥ तप सात्राप्यतेसर्वं तपोयोग्योसिपुत्रक ॥ ६४ ॥ वज्राङ्गउवाच ॥ तपसोमेरतिर्देव नविघ्नंतत्रमेभवेत् ॥ त्वत्प्रसादेनभगव न्नित्युक्त्वाविरराम सः ॥ ६५ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ क्रूरभावम्परित्यज्ययदिच्छसितपस्सुत ॥ अनयाचित्तशुद्ध्याते पर्याप्तंज न्मनःफलम् ॥ ६६ ॥ इत्युक्त्वापद्मज कन्यां कमलायतलोचनाम् ॥ तामस्मैप्राददद्देवः पत्न्यर्थंपद्मसम्भवः ॥६७॥

राज्यको पराईभोगी हुई मालाकी नाईं मैं नहीं चाहताहूं जैसे कि पराईभोगी स्त्री होवै और जो त्रिलोकमें भी सारांशहोवै मुझसे वह कहाजावै ॥ ६२ । ६३ ॥ ब्रह्मा बोले कि तपस्यामे परे कुछ नहीं है व तप महात्माओं का धनहै हे पुत्र ! यहां तपस्यासे सब मिलताहै व तुम तपस्याके योग्यहो ॥ ६४ ॥ वज्रांग बोला कि हे देव ! तपस्यामें मेरा स्नेह होवै व हे भगवन् ! तुम्हारी प्रसन्नतासे मेरे उस तपमें विघ्न न होवै यह कहकर वह चुपारहा ॥ ६५ ॥ ब्रह्मा बोले कि हे पुत्र ! यदि तप चाहते हो तो क्रूरस्वभाव को छोड़कर वर्त्तमान होवो इसी चित्तकी पवित्रता से तुमको जन्मका फल परिपूर्ण होगा ॥ ६६ ॥ ऐसा कहकर कमलसे पैदाहुये ब्रह्मादेव ने स्त्री के

लिये कमललोचनोंवाली उस कन्याको इसके निमित्त दिया ॥ ६७॥ व पितामहने इसका वरांगी ऐसा नाम किया तदनन्तर कश्यप के साथ ब्रह्मा स्वर्गको चलेगये ॥ ६८ ॥ और उस स्त्री समेत वज्रांग भी तपके लिये बनको चलागया और वह दैत्येन्द्र ऊपर भुजा उठाकर हज़ारवर्ष के समय तक खड़ारहा ॥ ६९ ॥ व कमल सरीखे नेत्रोंवाला व बड़ा तपस्वी और पवित्र बुद्धिवाला वह वज्रांग उतनेही समय तक नीचे मुख करके खड़ारहा व उतनेही समय तक पंचाग्नि का साधक हुआ ॥ ७० ॥ व निराहार और भयकर तपवाला वह तपस्याकी राशि होगया तदनन्तर हज़ारवर्षके समय तक उसने जलके भीतर तपस्या किया ॥ ७१ ॥ व जलके भीतर पैठे

वराङ्गीतिचनामास्याः कृतवांश्चपितामहः ॥ जगामचततोब्रह्मा कश्यपेनसमन्दिवि ॥ ६८ ॥ वज्राङ्गोपितयासार्द्धं जगामतपसेवनम् ॥ ऊर्द्ध्वबाहुस्सदैत्येन्द्रोतिष्ठदब्दसहस्रकम् ॥ ६९ ॥ कालंकमलपत्राक्षः शुद्धबुद्धिर्महातपाः ॥ तावन्नधोमुखःकालं तावान्पञ्चाग्निसाधकः ॥ ७० ॥ निराहारोघोरतपास्तपोराशिरजायत ॥ ततस्सोन्तर्जलेचक्रे कालंवर्षसहस्रकम् ॥ ७१ ॥ जलान्तरंप्रविष्टस्य तस्यपत्नीमहाव्रता ॥ तस्यैवतीरेसरसस्तत्परामौनमाश्रिता ॥ ७२ ॥ निराहारंपतिंमत्वा तपस्तेपेपतिव्रता ॥ तस्यास्तपसिवर्तन्त्या इन्द्रश्चक्रेविभीषणाः ॥ ७३ ॥ भूत्वातुमर्कटाकारं तस्याश्रमपदम्महत् ॥ अपविद्धमपःकुम्भं शून्यतोयंचकारसः ॥ ७४ ॥ तथाविलोलनयनां विलोलवदनांतथा ॥ विलोलकेशान्ताञ्चक्रे विधित्सुस्तपसःक्षतिम् ॥ ७५ ॥ ततश्चमेषरूपेण भयंतस्याश्चकारसः ॥ ततोभुजङ्गरूपेण बद्धाचरणयोर्द्वयोः ॥ ७६ ॥ अपाकर्षत्तद्दूरं तस्माद्देवमहीभृतः ॥ तपोबलाच्चसातस्य नबन्धत्वंजगामह ॥ ७७ ॥ दमयाचमहाभागा श्री

हुये उसकी बडे व्रतवाली स्त्री उसी तड़ाग के किनारे मौनमें प्राप्तहोकर पतिमें परायणाहुई ॥ ७२ ॥ व पतिको निराहार मानकर पतिव्रताने तपस्या किया उसको तपस्यामें वर्त्तमान होतेहुये इन्द्रने डरावने आकारोंको किया ॥ ७३ ॥ व बन्दर का आकार कर उसके बडेभारी आश्रमको विकलकिया और उनने जलके घड़ेको शून्य जलवाला करदिया ॥ ७४ ॥ वैसेही तपके भंगकी इच्छावाले इन्द्रने उसको चंचलनेत्रोंवाली व चपल मुखवाली और चंचलबालोंवाली किया ॥ ७५ ॥ तदनन्तर भेंड़ाके रूपसे उसको भयकिया उसके उपरान्त सर्परूप से दोनों चरण बांधलिया ॥ ७६ ॥ व उस पर्वत से उसने दूरतक खींचा परन्तु तपस्या के बलसे वह उसके

बन्धनता में न प्राप्तहुई ॥ ७७ ॥ व महाभाग्यवती उसने क्षमासे थोडाभी क्रोध न किया तदनन्तर सियार के रूपसे उस आश्रमको दूषित किया ॥ ७८ ॥ व उसने अग्निरूपसे उसके बड़े आश्रमको जलाया और बडे अंगवाले पवनरूप से उस उत्तम स्त्रीको खींचा ॥ ७९ ॥ इस प्रकार बार २ सिंह, भेड़िया इत्यादि डरपानेवाले जीवोंसे जब वज्रांग की स्त्रीने तपस्याको न छोडा तब ॥८०॥ पर्वतकी दुष्टता मानकर उसने शाप देनेका विचार किया व शापकी ओर सम्मुख उस कन्याको देखकर पुरुषशरीरवाला पर्वत ॥ ८१ ॥ उत्तम कटिवाली व वरके योग्य और डरेहुये नेत्रोंवाली उस स्त्री से बोला ॥ ८२ ॥ पर्वत बोला कि हे महाव्रते ! मैं दुष्ट नहींहूं किन्तु

धर्मएवपिनाकरोत् ॥ ततोगोमायुरूपेण तदद्दूपयदाश्रमम् ॥ ७८ ॥ अग्निरूपेणतस्याश्च सददाहमहाश्रमम् ॥ च कर्षवायुरूपेण महांगेनचतांशुभाम् ॥ ७९ ॥ एवंसिंहवृकाद्याभिर्भीषिकाभिःपुनःपुनः ॥ विरराम यदानैव वज्राङ्गमहिषीतदा ॥ ८० ॥ शैलश्चदुष्टतांमत्वा शापंदातुंव्यवस्यत ॥ तांशापाभिमुखीन्दृष्ट्वा शैलःपुरुषविग्रहः ॥ ८१ ॥ उवाचच वरारोहां वरार्हांभीरुलोचनाम् ॥ ८२ ॥ शैलउवाच ॥ नाहंमहाव्रतेदुष्टस्सेव्योहंसर्वदेहिनाम् ॥ अतिखेदंकरोत्येष तवक्रुद्धस्तुवृत्रहा ॥ ८३ ॥ एतस्मिन्नन्तरेयातः कालोवर्षसहस्रकः ॥ तस्मिन्यातेतुभगवान् कालेकमलसम्भवः ॥ ८४ ॥ तुष्टःप्रोवाचवज्राङ्गं तमागत्यजलाशयम् ॥ ८५ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ ददामिसर्वकामांस्त उत्तिष्ठदितिनन्दन ॥ एवमुक्तस्ततोत्थाय दैत्येन्द्रस्तपसोनिधिः ॥ ८६ ॥ उवाचप्राञ्जलिर्वाक्यं सर्वलोकपितामहम् ॥ वज्राङ्गउवाच ॥ आसुरोमेस्तुमाभावो शक्रराज्येचमारतिः ॥ तपोधर्मेरतिश्चास्तुवृणोम्येतत्पितामह ॥ ८७ ॥ एवमस्त्वितितंब्रह्मा प्राहवि

समस्त देहधारियों से सेवनीय हूं और क्रोधितहोकर यह इन्द्र तुमको अतिखेदकारक है ॥ ८३ ॥ इसी अवसर में हजारवर्ष का समय बीतगया व उस समय के बीतने पर कमल से उपजेहुये भगवान् ब्रह्माजी ॥ ८४ ॥ प्रसन्न होकर उस जलाशय के समीप आकर वज्रांगसे बोले ॥ ८५ ॥ ब्रह्मा बोले कि हे दितिपुत्र ! उठो मैं तुमको सब कामनाओं को दूंगा तदनन्तर ऐसा कहेहुये तपस्याके निधान दैत्येन्द्र ने उठकर ॥ ८६ ॥ हाथ जोडकर समस्त लोकोंके पितामहसे वचन कहा वज्रांग बोला कि हे पितामह ! मेरा दैत्य का स्वभाव मतहो व इन्द्रकी राज्यमे स्नेह न हो और तपस्या व धर्म में प्रीतिहो यह तुमसे मांगताहूं ॥ ८७ ॥

विस्मय में प्राप्त मनवाले ब्रह्मा ने उससे यह कहा कि ऐसाही होगा उससमय इन्द्र को समीप देखा क्योंकि होनहार वस्तुको कौन उल्लंघन करताहै ॥ ८८ ॥ ऋषि, मनुष्य, देवता व, शिव, ब्रह्मादिक भी होनहार वस्तुको नहीं नाघते जैसे कि समुद्र अपनी हद्दको नहीं नांघताहै ॥ ८९ ॥ ऐसा विचार कर ब्रह्माजी वहीं अन्तर्द्धान हो-गये व छोड़े हुये संयमोंवाले वज्रांग ने भी तपके समाप्त होजानेपर ॥ ९० ॥ भोजन को चाहतेहुये अपने आश्रममें अपनी स्त्रीको न देखा व फलकी इच्छावाले उस स्त्री-हीनने यह विचारकर व इधर उधर ॥ ९१ ॥ अपनी स्त्रीको देखा इसके अनन्तर देखतेहुये नित्य कर्म करनेकी इच्छावाले उस वज्रांगने इस लोक व परलोकमें सहा-

स्मितमानसः ॥ उपैष्यत्तदाशक्रं भाव्यर्थंकोतिवर्तते ॥ ८८ ॥ ऋषयोमनुजादेवाः शिवब्रह्ममुखाअपि ॥ भाव्यर्थंन्नातिवर्त्तन्ते वेलामिवमहोदधिः ॥ ८९ ॥ इतिचिन्त्यविरिञ्चोपि तत्रैवान्तरधीयत ॥ वज्राङ्गोपिसमाप्तेतु तपसित्यक्तसंयमः ॥ ९० ॥ आहारमिच्छन्स्वाम्भार्यां नददर्शाश्रमेस्वके ॥ भार्याहीनःफलेच्छुश्च संचिन्त्येदमितस्ततः ॥ ९१ ॥ अलोकयत्स्वकांभार्यां विधित्सुःकर्मनैतिकम् ॥ विलोकयन्ददर्शाथ इहामुत्रसहायिनीम् ॥ ९२ ॥ रुदन्तींस्नांप्रियान्दीनां तरुभिश्छादिताननाम् ॥ तांविलोक्यततोदैत्यः प्रोवाचपरिसान्त्वयन् ॥ ९३ ॥ वज्राङ्गउवाच ॥ केनतेपकृतम्भीरु वर्त्तन्त्यास्तपसिस्वके ॥ कथंरोदिषिवाबाले मयिजीवतिभर्तरि ॥ ९४ ॥ कंवाकामंप्रयच्छामि शीघ्रंप्रब्रूहिभामिनि ॥ ९५ ॥ गृहेश्वरींसद्गुणभूषितांशुभां पङ्ग्वन्धयोगेनगतंविहीनाम् ॥ नलालयेत्पूरयेन्नैवकामं सकिंपुमान्नपुमान्मेमतेसौ ॥ ९६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेकुमारेशमाहात्म्यवर्णनंनामद्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

*

यिनी स्त्री को देखा ॥ ९२ ॥ व वृक्षों से छिपे मुखवाली और दुःखित व रोती हुई उस अपनी प्यारी को देखकर तदनन्तर समझाते हुये दैत्यने कहा ॥ ९३ ॥ वज्रांग बोला कि हे भीरु ! अपने तप में वर्तमान होती हुई तुम्हारा किसने अपकार किया है बाले ! मुझ पति के जीने पर तुम क्यों रोती हो ॥ ९४ ॥ हे भामिनि! अथवा कौन कामना को देऊं यह शीघ्रही कहिये ॥ ९५ ॥ उत्तम गुणों से भूषित व पंगु और अन्ध के योगसे गति रहित उत्तम स्त्री को जो प्यार नहीं करताहै व कामना नहीं पूर्ण करता वह क्या पुरुष है किन्तु मेरे मत में यह पुरुष नहीं है ॥ ९६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेकुमारेशमाहात्म्यवर्णनंनामद्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

दो॰ । तप करि तारक जिमि लह्यो ब्रह्मा सों वरदान । तेरहवें अध्याय में सोई करत बखान ॥ वरांगी बोली कि भयङ्कर इन्द्र से अनाथ की नाईं मैं नाशित व फेंकी गईहूं व बहुत डरपाई तथा पीड़ित कीगईहूं ॥ १ ॥ दुःख का व्यापार देखती हुई मैं प्राणों को त्यागने के लिये प्राप्तहूं यदि कृपा होवै तो भयङ्कर दुःखवाली मुझको तारक पुत्र दीजिये ॥ २ ॥ ऐसा कहेहुये दैत्येन्द्र ने दुःखितहो हृदय में चिन्तन किया कि यद्यपि दैत्यों के स्वभाव में मेरी इच्छा नहीं है ॥ ३ ॥ तौ भी अन्य शास्त्रों से मानताहूं कि स्त्री दया करने के योग्य होती है क्योंकि सब आश्रमों को ग्रहण कर अपनेही आश्रम से स्त्रीवाला पुरुष ॥ ४ ॥ दुःख के समुद्र को नांघजाता

वराङ्ग्युवाच ॥ नाशितास्म्यपविद्धास्मित्रासितापीडितास्मिच ॥ रौद्रेणदेवनाथेननष्टनाथेवभूरिशः ॥ १ ॥ दुःखव्यापारपश्यन्ती प्राणांस्त्यक्तुंव्यवस्थिता ॥ पुत्रंमेघोरदुःखस्यतारकंदेहिचेत्कृपा ॥ २ ॥ एवमुक्तस्तुदैत्येन्द्रोदुःखितोचिन्तयद्धृदि ॥ आसुरेचापिमेभावेस्पृहायद्यपिनास्तिच ॥ ३ ॥ तथापिमन्येशास्त्रेभ्यस्त्वनुकम्प्याप्रियेतियत् ॥ सर्वाश्रमानुपादायस्वाश्रमेणकलत्रवान् ॥ ४ ॥ व्यसनार्णवमत्येतिजलपानैरिवार्णवम् ॥ यामाश्रित्येन्द्रियारातीन् दुर्जयांनितराश्रमैः ॥ ५ ॥ गेहिनोहेलयाजिग्युर्दस्यून्दुर्गपतिर्यथा ॥ नकेपिप्रभवस्तास्त्वाप्यनुकर्तुंगृहेश्वरीम् ॥ ६ ॥ अथायुषावाकात्स्न्येंनधर्मादीच्छुर्यतोनरः ॥ यस्यांभवतिचात्मैवततोजायानिगद्यते ॥ ७ ॥ भर्तुर्बिभर्त्तीयायस्मात्तस्माद्भार्येतिसास्मृता ॥ साएवगृहमुक्तञ्चगृहिणीसाततःस्मृता ॥ ८ ॥ संसारकल्मषात्त्रात्री कलत्रमितिसाततः ॥ एवंविधांप्रियांकोवैनानुकम्पितुमर्हति ॥ ९ ॥ त्रीणिज्योतींषिपुरुषइतिवैदेवलोब्रवीत् ॥ भार्याकर्मचविद्याचसंसाध्यंयत्नत

है जैसे कि नाव इत्यादिकों से समुद्र को नांघता है व जिस स्त्री के आश्रित होकर और आश्रमोंसे दुर्जय इन्द्रियरूप शत्रुवोंको गृहस्थों ने लीलासे जीतलियाहै जैसे कि किले का स्वामी शत्रुवो को जीतताहै उस घरकी स्वामिनी का अनुकार करनेकेलिये कोईभी समर्थ नहीं हैं ॥ ५।६ ॥ इसके अनन्तर धर्मादिक चाहनेवाला पुरुष जिसलिये सम्पूर्ण अवस्था से अपनाही जिसमें होताहै उसी से जाया कहीजाती है ॥ ७ ॥ व जिसलिये जोकि पति को धारण करती है उसी से वह भार्या कही गई है और वही घर कही गई है उसी कारण वह गृहिणी कहीजातीहै ॥ ८ ॥ व जिस लिये संसार के पातकसे रक्षा करती है उसी कारण वह कलत्र कही गई है इस

प्रकारकी स्त्री को कौन वृथा करने के योग्य नहीं है ॥ ९ ॥ पुरुष में तीन प्रकाशक वस्तुयें होती हैं ऐसा देवल ने कहाहै कि स्त्री, कर्म व विद्या तीनोंको यत्नसे भली भांति साधन करना चाहिये ॥ १० ॥ इसलिये उन इन्द्रसे पीड़ित इस स्त्रीको यदि न पालूं तो रौरवादिक नरकोंको जाऊंगा इसमें सन्देह नहींहै ॥ ११ ॥ व मैं भी तिनुका की नाईं इसको जीतने के लिये समर्थ हूं फिर इसकी कामना करूंगा कि बड़े बली पुत्रको इसे दूंगा ॥ १२ ॥ ऐसा चिन्तनकर क्रोधसे विकल लोचनोंवाला वज्राग इन्द्रसे बदला लेनेके लिये फिर तपस्या करनेका विचार करताभया ॥ १३॥ और उसका बहुत क्रूर संकल्प जानने के लिये शीघ्रतासंयुत ब्रह्माजी फिर वहां

स्वयम् ॥ १० ॥ तदिमांपीडितान्तेनपतिर्भूत्वानपालये॥ततोयास्येरौरवादीन्नरकान्नात्रसंशयः॥ ११ ॥ अहमप्येनमिन्द्रं वैशक्तोजेतुंतृणंयथा॥ पुनःकामंकरिष्येस्यादास्येपुत्रंमहाबलम् ॥ १२॥ इतिसञ्चिन्त्यवज्राङ्गःकोपव्याकुललोचनः ॥ प्रतिकर्तुमहेन्द्रायतपोभूयोऽव्यवस्यत॥ १३ ॥ ज्ञात्वातस्यचसङ्कल्पंब्रह्माक्रूरतरंपुनः ॥ आजगामत्वरायुक्तोयत्रासौदितिनन्दनः ॥ १४॥उवाचैनंसभगवान्प्रभुर्मधुरयागिरा॥ १५॥ ब्रह्मोवाच॥ किमर्थंभूयएवत्वंनियमंक्रूरमिच्छसि॥ आहाराभिमुखोदैत्यतन्मेब्रूहिमहाव्रत ॥ १६ ॥ यावदब्दसहस्रेण निराहारेणवैफलम्॥ त्यजताप्राप्तमाहारंलब्धन्तेतत्क्षणमात्रतः ॥ १७ ॥ त्यागोह्यप्राप्तकामानांनतथाचगुरुःस्मृतः॥ यथाप्राप्तंपरित्यज्य कामंकमललोचन ॥ १८ ॥ श्रुत्वैतद्ब्रह्मणोवाक्यं दैत्यःप्राञ्जलिरब्रवीत् ॥ पत्न्यर्थेहङ्करिष्यामितपोघोरंपितामह ॥ १९ ॥ पुत्रार्थमुद्यतश्चाहंयःस्याद्वीर्याद्दर्पहा॥ एत

आये जहां कि यह दितिका पुत्रथा ॥ १४ ॥ और उन प्रभु भगवान् ब्रह्माने मीठी वाणी करके इससे कहा ॥ १५ ॥ ब्रह्मा बोले कि हे महाव्रतवाले, दैत्य ! भोजन के सम्मुख तुम फिर किस लिये भयंकर नियमको चाहतेहो उसको मुझसे कहिये ॥१६॥ हज़ार वर्षतक निराहार से जितना फल मिलताहै पायेहुये भोजन को त्यागनेवाले तुमको क्षणभर में वही फल मिला ॥ १७ ॥ हे कमललोचन ! नहीं प्राप्त कामनावालोंका त्याग वैसा गुरु नहीं कहागया है जैसा कि पायेहुये कामको छोड़कर होताहै ॥ १८ ॥ ब्रह्माका यह वचन सुनकर हाथ जोड़कर दैत्यने कहा कि हे पितामह ! मैं स्त्री के लिये विकराल तपस्या करूंगा ॥ १९ ॥ और मैं पुत्रके लिये उद्यतहूं

जोकि देवताओ के गर्वका नाशक हो यह वचन सुनकर कमल के गर्भसे उपजेहुये चतुर्मुख देवजी प्रसन्नहो उस समय दैत्यराज से बोले ॥ २० । २१॥ ब्रह्मा बोले कि हे वत्स ! तुम्हारी तपस्या से कुछ साध्य नहीं है विस्तारवाले क्लेशमें मत वसो और बडाबली तारक नामक तुम्हारे पुत्रहोगा ॥ २२ ॥ जोकि देवस्त्रियों की वेणीका छुडानेवाला होगा ऐसा कहे हुये दैत्यराज ने प्रणामकर व ब्रह्माको ॥ २३ ॥ विदा करके प्रसन्नता से उस स्त्रीको हर्षितकिया व प्रसन्न होतेहुये वे स्त्री पुरुष उस समय अपने आश्रमको गये ॥ २४ ॥ तदनन्तर उत्तमवर्णवाली वरांगी ने पूर्णहजार वर्षतक धारेहुये गर्भको पेटही में धारण किया ॥ २५ ॥ तदनन्तर हजारवर्ष के अन्तमें

च्छ्रुत्वावचोदेवःपद्मगर्भोद्भवस्तदा ॥ २० ॥ उवाचदैत्यराजानंप्रसन्नश्चतुराननः ॥ २१ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ अलन्तेतपसाव त्समाक्लेशेविस्तरेवश ॥ पुत्रस्तेतारकोनाम भविष्यतिमहाबलः ॥ २२ ॥ देवसीमन्तिनीनांयोधम्मिल्लकविमोक्तकः ॥ इत्युक्तोदैत्यनाथश्चप्रणम्यचपितामहम् ॥ २३ ॥ विसर्जयित्वामहिषींनन्दयामासतांमुदा ॥ तौदम्पतीकृतार्थौचजग्म तुःस्वाश्रमन्तदा ॥ २४ ॥ आहितञ्चततोगर्भं वराङ्गीवरवर्णिनी ॥ पूर्णंवर्षसहस्रन्तुदधारोदरएवहि ॥ २५ ॥ ततोवर्षसह स्रान्तेवराङ्गीसम्प्रसूयत ॥ जायमानेतुदैत्येन्द्रे तस्मिँल्लोकभयङ्करे ॥२६॥ चचालसकलापृथ्वीप्रोद्भूताश्चमहार्णवाः ॥ चेलुर्द्धराधराश्चापिववुर्वाताऽतिभीषणाः ॥ २७ ॥ जेपुर्जप्यंमुनिवराव्याधविद्धामृगाइव ॥ जहुःकान्तिञ्चसूर्याद्यानीहारा च्छादितादिशः ॥ २८ ॥ जातेमहासुरेतस्मिन्सर्वएवमहासुराः ॥ आजग्मुर्हर्षितास्तत्रतथाचासुरयोषितः ॥ २९ ॥ जगु र्हर्षसमाविष्टानन्नृतुश्चासुराङ्गनाः ॥ ततोमहोत्सवोजातोदानवानांपृथासुत ॥ ३० ॥ विषण्णमनसोदेवाःसमहेन्द्राभवंस्त

वरांगी ने पुत्र पैदाकिया और लोकोंको भय करनेवाले उस दैत्येन्द्र के उत्पन्न होनेपर ॥२६॥ सब भूमि चलायमान हुई व बड़े समुद्र खलभलाने लगे व पर्वतभी चल उठे और बड़े भयंकर पवन चलनेलगे ॥ २७ ॥ और बहेलियोंसे बेधित हिरनोंकी नाई मुनिश्रेष्ठ मन्त्र जपनेलगे व सूर्यादिकों ने शोभाको छोड़दिया व दिशायें कुहरे से आच्छादित होगई ॥ २८ ॥ जब वह महासुर पैदाहुआ तब प्रसन्न होतेहुये सब ही महासुर वहाआये व वैसेही दैत्योंकी स्त्रियां आई ॥ २९ ॥ और दैत्योंकी कन्यायें हर्षसंयुत होकर गाने व नाचनेलगीं तदनन्तर हे कुन्तीपुत्र ! दानवोंके यहा बड़ा उछाह हुआ ॥ ३० ॥ उस समय इन्द्र समेत देवता दुःखित मनवाले हुये और

पैदाहुआही प्रचण्ड पराक्रमवाला तारकासुर ॥ ३१ ॥ समस्त दैत्योंकी महाराज्यपै कुरंग महिषादिक प्रसिद्ध दैत्योंकरके अभिषेक कियागया जोकि समस्त महागुणों
से संयुत था ॥ ३२ ॥ हे पाण्डुसत्तम! बड़ी राज्यको पाकर तारकासुर उत्तम दैत्यों से युक्तिसंयुत यहवचन बोला ॥ ३३ ॥ कि ऐ बड़ेबलिष्ठ सब दैत्यलोगो! मेरे वचन
सुनो व सुनकर मेरे वचन में दृढबुद्धि करो ॥ ३४ ॥ कि जातिके धर्म से हमलोगों का देवताओं के साथ अविनाशी वैर बढ़ाहै इसलिये उनके विजय के लिये यत्न
करेंगे ॥ ३५ ॥ परन्तु देवताओं के समरमें वह विजय तपसे होसक्ती है मैं यह मानताहूं इसलिये हे दनुपुत्रो ! पहले विकराल तपस्या करूंगा ॥ ३६ ॥ तदनन्तर

दा ॥ जातमात्रस्तुदैत्येन्द्रस्तारकश्चण्डविक्रमः ॥ ३१ ॥ अभिषिक्तोसुरैर्मुख्यैः कुरङ्गमहिषादिभिः ॥ सर्वासुरमहारा
ज्येयुतःसर्वैर्महागुणैः ॥ ३२ ॥ सतुप्राप्तमहाराज्यस्तारकःपाण्डुसत्तम ॥ उवाचदानवाञ्छ्रेष्ठान्युक्तियुक्तमिदंवचः ॥
३३ ॥ शृणुध्वमसुराःसर्वेवाक्यंममममहाबलाः ॥ श्रुत्वाचस्थेयसीबुद्धिःक्रियतांवचनेमम ॥ ३४ ॥ अस्माकंजातिध
र्मेणविरुद्धंवैरमव्ययम् ॥ सुरैःसार्द्धंयतिष्यामस्तत्तेषांविजयायच ॥ ३५ ॥ किन्तुतत्तपसाशक्यं मन्येहंसुरसङ्गरे ॥ त
स्मादादौकरिष्यामितपोघोरंदनोःसुताः ॥ ३६ ॥ ततःसुरान्विजेष्यामोभोक्ष्यामोथजगत्त्रयम् ॥ युक्त्योपयोगिपुरुषे
स्थिराश्रीर्विजायते ॥ ३७ ॥ अयुक्तश्चपलःप्राप्तमपिराज्ञितुमक्षमः ॥ तच्छ्रुत्वादानवाःसर्वेवाक्यंतस्यासुरस्यतु ॥ ३८ ॥
साधुसाध्वित्यथोचुस्तेवचनंतस्यविस्मिताः ॥ सोगत्वापारियात्रस्यगिरेःकन्दरमुत्तमम् ॥ ३९ ॥ सर्वर्त्तुकुसुमाकीर्णंनानौ
षधिविदीपितम् ॥ नानाधातुरसस्राविचित्रनानागृहाश्रयम् ॥ ४० ॥ अनेकाकारबहुलमृगपक्षिकुलाकुलम् ॥ नानाप्र

देवताओं को जीतैंगे व त्रिलोक भोगैंगे क्योंकि युक्तिसे उपयोगी पुरुषमें लक्ष्मी निश्चयकर अचल होतीहै ॥ ३७ ॥ व अयोग्य चंचल पुरुष पाई हुईभी लक्ष्मीकी रक्षा
करने के लिये समर्थ नहीं होताहै उस दानवका वह वचन सुनकर उन सब दैत्यों ने ॥ ३८ ॥ विस्मित होकर उससे बहुत अच्छा २ ऐसा वचन कहा और वह पारि-
यात्र पर्वतकी उत्तम कन्दराको गया ॥ ३९ ॥ जो कन्दरा कि सब ऋतुओं के फूलोंसे व्याप्त व अनेक प्रकारकी ओषधियों से प्रकाशित और अनेक प्रकारके धातु
(गेरू आदिकों) के रसोंको बहानेवाली व विचित्र विचित्र अनेक भांतिके गृहरूप आश्रयवाली थी ॥ ४० ॥ व अनेक रूपवाले बहुत मृग व पक्षियों के कुलोंसे व्याप्तथी

श्रौर अनेक भांतिके झरनों से संयुत व अनेक प्रकारके जलाश्रयवालीथी ॥४१॥ उस कन्दराको पाकर दैत्यने बहुत तपकिया श्रौर शैवी दीक्षाको धारेहुये उसने पांच मन्त्रोंका जपकिया ॥ ४२ ॥ व प्रसिद्धमें वह निराहार होकर दशहज़ार वर्षतक पंचाग्नि का तापनेवाला हुश्रा तदनन्तर प्रतिदिन उसने श्रपने शरीरसे तोला २ भर मांसको काटकर अग्निमें होमकिया उसके उपरान्त मांसहीन होगया तदनन्तर बिनमास की देहवाला वह तपस्या की राशि होगया ॥ ४३ । ४४ ॥ व उसके तेजसे सबश्रोर समस्त प्राणी जलनेलगे श्रौर उसकी तपस्या से डरायेहुये सबदेवता ऊवगये ॥ ४५ ॥ इसी श्रन्तर में बड़ी प्रसन्नताको प्राप्त ब्रह्माजी तारकको वरदेने के

स्रवणोपेतंनानाविधजलाश्रयम् ॥ ४१ ॥ प्राप्यतत्कन्दरंदैत्यश्चकारविपुलंतपः ॥ वहन्पाशुपतीन्दीक्षांपञ्चमन्त्रा ञ्जजापसः ॥४२॥ निराहारःपञ्चतपावर्षायुतमभूत्किल ॥ ततःस्वदेहादुत्कृत्यकर्षंकर्षंदिनेदिने ॥ ४३ ॥ मांसस्याग्नौ जुहावैवततोनिर्मांसताङ्गतः ॥ ततोनिर्मांसदेहःसतपोराशिरजायत ॥ ४४ ॥ जज्वलुःसर्वभूतानितेजसातस्यसर्वतः ॥ उ द्विग्नाश्चसुराःसर्वेतपसातस्यभीषिताः ॥ ४५ ॥ एतस्मिन्नन्तरेब्रह्मापरमंतोषमागतः ॥ तारकस्यवरंदातुंजगामशिखरं गिरेः ॥ ४६ ॥ प्राप्यतंशैलराजानंहंसस्यन्दनमास्थितः ॥ उवाचतारकंदेवोगिरामधुरयातदा ॥ ४७ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ उ त्तिष्ठपुत्रतपसानास्त्यसाध्यन्तवाधुना ॥ वरंवृणीष्वाभिमतंयत्तेमनसिवर्त्तते ॥ ४८ ॥ इत्युक्तस्तारकोदैत्यः प्राञ्जलिः प्राहतंविभुम् ॥ तारक उवाच ॥ वयंप्रभोजातिधर्मात्कृतवैराःसहामरैः ॥ ४९ ॥ तैश्चनिःशेषतोदैत्याःकृताःक्रूरैर्नृशंसव त् ॥ तेषामहंसमुद्धर्ता भवेयमितिमेमतिः ॥ ५० ॥ अवध्यःसर्वभूतानामस्त्राणाञ्चमहौजसाम् ॥ स्यामहञ्चामरश्चैषवरो

लिये पर्वतके शिखरपै गये ॥ ४६ ॥ व हंसरूपी रथपै चढ़ेहुये ब्रह्मादेव जी उस पर्वतराजको प्राप्तहोकर उस समय मीठीवाणी करके तारकासुर से बोले ॥ ४७ ॥ ब्रह्मा बोले कि हे पुत्र ! उठो इस समय तपसे तुमको कुछ श्रसाध्य नहीं है जो तुम्हारे मनमें वर्त्तमान हो चाहेहुये उस वरको मांगिये ॥ ४८ ॥ ऐसा कहाहुआ तारकदैत्य हाथजोड़कर उन व्यापक ब्रह्मा से बोला तारक बोला कि हे प्रभो ! जातिके धर्मसे हमलोग देवताओं के साथ वैरकिये हैं ॥ ४९ ॥ व उन क्रूरदेवोंने घातुक की नाईं दैत्योंको निःशेष करदिया मैं उनका उद्धार करनेवाला होऊं यह मेरी बुद्धिहै ॥५०॥ व बड़े पराक्रमवाले समस्त प्राणियों श्रौर अस्त्रोंका अवध्य व अमर होऊं यह वरमेरे

हृदय में टिकाहै ॥ ५१ ॥ हे देवेश ! यह मुझको दीजिये और वरको मैं नहीं चाहताहूं तदनन्तर देवोंके स्वामी ब्रह्माजी उस दैत्यसे बोले ॥ ५२ ॥ कि शरीरधारी का
मृत्युके विना देह धारण युक्त नहीं है क्योंकि पैदाहुये की मृत्यु होती है यह वेदमें कहाहुआ सत्यहै ॥ ५३ ॥ ऐसा विचारकर किसलिये अपने प्यारेवरको नहीं मांगतेहो
तदनन्तर विचारकर दैत्यों के राजा उस महादैत्यने गर्व से मोहितहो सातदिनवाले बालक के द्वारा मृत्युको ब्रह्मासे मांगा और महादेवजी के वचन से ब्रह्माने वैसाही
होगा यह उस दैत्यसे कहा ॥ ५४ । ५५ ॥ व ब्रह्मादेव जी स्वर्गको गये व दैत्यभी अपने स्थानको चलागया और उस समय तपस्यासे उतरेहुये उनदैत्यको दैत्येश्वरों

**ममहृदिस्थितः ॥ ५१ ॥ एतन्मेदेहिदेवेशनान्यंवैरोचयेवरम् ॥ तमुवाचततोदैत्यंविरिञ्चिोमरनायकः ॥ ५२ ॥ नयुज्य
तेविनामृत्युंदेहिनोदेहधारणम् ॥ जातस्यहिध्रुवोमृत्युः सत्यमेतच्छ्रुतीरितम् ॥ ५३ ॥ इतिसञ्चिन्त्यवरयवरंकस्मान्न
स्वंप्रियम् ॥ ततःसञ्चिन्त्यदैत्येन्द्रःशिशुतःसप्तवासरात् ॥ ५४ ॥ ववेमहासुरोमृत्युंब्रह्माणंमानमोहितः ॥ ब्रह्माप्रावोच
तच्चतंतथेतिहरवाक्यतः ॥ ५५ ॥ जगामत्रिदिवंदेवोदैत्योपिस्वकमालयम् ॥ उत्तीर्णंतपसस्तन्तुदैत्यन्दैत्येश्वरास्त
दा ॥ ५६ ॥ परिवव्रुःफलाकीर्णैर्वृक्षैःशकुनयोयथा ॥ तस्मिन्महतिराज्यस्थेतारकेदितिनन्दने ॥ ५७ ॥ ब्रह्मणाभिहित
स्थानेमहार्णवतटोत्तरे ॥ तरवोजज्ञिरेपार्थततःसर्वर्त्तवःशुभाः ॥ ५८ ॥ कान्तिःस्मृतिर्धृतिर्मेधाश्रीरखण्डाचदानवम् ॥ परि
बव्रुर्गुणाकीर्णानिश्छिद्राःसर्वएवहि ॥ ५९ ॥ कालागुरुविलिप्ताङ्गंमहामुकुटबर्हिणम् ॥ रुचिराङ्गदबद्धाढ्यंमहासिंहासने
स्थितम् ॥ ६० ॥ नृत्यन्तिचाप्सरःश्रेष्ठागन्धर्वागाययन्तिच ॥ चन्द्रार्कौदीपमार्गेषुव्यजनेषुचमारुताः ॥ ६१ ॥ ब्रह्मा**

ने ॥ ५६ ॥ घेरलिया जैसे कि फलोंसे व्याप्त वृक्षको पक्षी घेरते हैं उस बड़ेभारी दैत्यपुत्र तारकको राज्यपै बैठनेपर ॥ ५७ ॥ हे पार्थ ! ब्रह्मासे कहेहुये स्थान महीसा-
गर के किनारेके ऊपर वृक्ष पैदाहुये तदनन्तर उत्तम सब ऋतुवें हुईं ॥ ५८ ॥ व शोभा, स्मरण, धैर्य, बुद्धि व अखण्ड लक्ष्मीने दानवको घेरलिया और गुणों से भरे
व निर्दोष सबही जन हुये ॥ ५९ ॥ और कालागुरुमर्दित अंगवाले व महामुकुटसे शोभित और बँधेहुये सुन्दर बहूँटेसे संयुत व बड़े सिंहासनपै बैठेहुये दानव के
आगे ॥ ६० ॥ उत्तम अप्सरायें नाचतीथीं व गन्धर्वगाते थे और दीपकके स्थानों में चन्द्रमा सूर्य व व्यजनों के स्थानमें पवनथे ॥ ६१ ॥ व ब्रह्मादिक उस के अग्रगामी

थे और जीव देशके कहनेवाले थे ॥६२॥ इस प्रकार उत्कृष्ट आचरण व रामरत अंगके बलसे प्रकाशित वह दैत्य अपनी भुजाओंके बलसे राज्यको भलीभांति पाकर प्रस-
न्नहो किसी समय मन्त्रियों को बुलाकर बोला ॥ ६३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांकुमारेशमाहात्म्येत्रयोदशोऽध्यायः १३॥
दो० । सजि सजि निजसेना सबै जुरे दैत्य अरु देव । चौदहवें अध्याय में सोई वरणत भेव ॥ तारक बोला कि जलके बुल्ले के समान राज्य, स्त्री, पांसा व मद्यपान
से मोहित जो मनुष्य यहां जन्म पाकर पौरुषको छोड़देता है ॥ १ ॥ कल्पपर्यन्त उसका जन्म वृथाहै इसमें सन्देह नहींहै ॥२ ॥ माता, पिताके लिये जो कार्य नहीं

द्याग्रेसरास्तस्यजीवादेशप्रभाषिणः ॥ ६२ ॥ एवंस्वकाद्बाहुबलात्सदैत्यः सम्प्राप्यराज्यंपरिमोदमानः ॥ कदाचिदाहूय
जगादमन्त्रिणः प्रोद्वृत्तसर्वाङ्गबलेनदीपितः ॥ ६३ ॥ इति कुमारिकाखण्डेकुमारेशमाहात्म्येत्रयोदशोध्यायः ॥ १३ ॥
तारक उवाच ॥ राज्येनबुद्बुदाभेनस्त्रीभिरक्षैश्चपानकैः ॥ मोहितोजन्मलब्ध्वात्रत्यजतेपौरुषंनरः ॥ १ ॥ जन्मत
स्यवृथाभूतमाकल्पान्तंनसंशयः ॥ २ ॥ मातापितृभ्यांनकरोतिकार्यंभृत्यानशोकान्नकरोतियोवा ॥ कीर्तिंहिवानार्ज
यतेनमानन्नरःसजातोपिमृतोत्रलोके ॥ ३ ॥ तस्माज्जयायामरपुङ्गवानांत्रैलोक्यलक्ष्मीहरणायशीघ्रम् ॥ संयोज्यतां
मेरथमष्टचक्रंबलञ्चमेदुर्ज्जयदैत्यचक्रम् ॥४॥ ध्वजंचमेकाञ्चनपट्टबद्धंछत्रञ्चमेमौक्तिकजालबद्धम् ॥ अद्याहमासांसुर
कामिनीनांधम्मिल्लकांश्चोद्ग्रथितान्करिष्ये ॥ ५ ॥ यथापुरामर्कटकाःकृतासुरास्तथा हनिष्येद्यबलंदिवौकसाम् ॥
६ ॥ नारदउवाच ॥ तारकस्यवचःश्रुत्वाग्रसनोनामदानवः ॥ सेनानीर्दैत्यराजस्यतथाचक्रेविलम्बितम् ॥ ७ ॥ आहत्य

करताहै अथवा सेवकों को शोचरहित नहीं करता है अथवा जो यश व मानको नहीं इकट्ठा करताहै पैदाहुआ भी वह मनुष्य संसार में मराहै ॥३॥ इसलिये उत्तम
देवताओं के जीतने के निमित्त व त्रिलोक की लक्ष्मीको हरने के लिये शीघ्रही आठ पहियोंवाला मेरा रथ तैयार कियाजाय व न जीतने योग्य दैत्योंका समूह मेरी सेना
तैयारहोवै ॥ ४॥ व सोनेकी पट्टीमें बँधा मेरा ध्वजा व मोतियो की झालर जिसमें बँधीहै ऐसा छत्र तैयारहो आज मैं इन देवस्त्रियों की वेणियोंकी ग्रन्थि को छुडाऊंगा ॥
५ ॥ पुरातन समय जिस प्रकार मैंने देवताओं को वानर कियाहै वैसेही आज देवताओंकी सेनाको मारूंगा ॥ ६ ॥ नारद बोले कि तारकका वचन सुनकर दैत्यराज

की सेनाका स्वामी ग्रसन नामक दानव शीघ्रही वैसाही करताभया ॥ ७ ॥ व गम्भीर नगारेको बजाकर शीघ्रतासंयुत दैत्यने दैत्योंको बुलाकर बुद्धिमान् दैत्यराज तारक
का रथ तैयार किया ॥ ८ ॥ जो रथ कि गरुड़के समान शोभावाले हजार गरुड़ों से संयुत था वे गरुड़ सुपर्ण (गरुड़ जी) के पुत्र मेरुकी कन्दरा में भलीभांति
टिके थे ॥ ९ ॥ जिनको दैत्योंके राजा (तारक) ने वाहन बजायाथा उस रथमें चौंसठि पहिया थे व सोलह कोस चौड़ाथा ॥ १० ॥ व जोकि अनेक भांतिके क्रीडागृहों
से संयुत व गाने, बजानेसे मनोहर था व संयुक्त वह रथ गन्धर्वनगरके आकारवाला देख पडताथा ॥ ११ ॥ और प्रचण्ड पराक्रमवाले दशदैत्य वहांआये कि जिनके

**भेरींगम्भीरां दैत्यानाहूयसत्वरः ॥ सज्जंचक्रेरथंदैत्यो दैत्यराजस्यधीमतः ॥ ८ ॥ गारुडानांसहस्रेण गरुडोपमित
त्विषाम् ॥ तेहिपुत्राःसुपर्णस्य संस्थितामेरुकन्दरे ॥ ९ ॥ विजित्यदैत्यराजेन वाहनत्वेप्रकल्पिताः ॥ अष्टाष्टचक्रःस
रथश्चतुर्योजनविस्तृतः ॥ १० ॥ नानाक्रीडागृहयुतो गीतवाद्यमनोहरः ॥ गन्धर्वनगराकारः संयुक्तःप्रत्यदृश्यत ॥
११ ॥ आजग्मुस्तत्रदैत्याश्च दशचण्डपराक्रमाः ॥ कोटिकोटिर्विशेयेषां सेनाक्षौहिणिसम्मिता ॥ १२ ॥ तेषामग्रेस
रःकुम्भः कुजम्भोनन्तरस्ततः ॥ महिषःकुञ्जरोमेषः कालनेमिर्निमिस्तथा ॥ १३ ॥ ग्रसनोजम्भकःशुम्भो दैत्येन्द्रा
दशनायकाः ॥ अन्येचशतशस्तत्र पृथिवीतोलनक्षमाः ॥ १४ ॥ दैत्येन्द्रागिरिवर्ष्माणः सन्तिचण्डपराक्रमाः ॥ ना
नाविधप्रहरणा नानाशस्त्रास्त्रपारगाः ॥ १५ ॥ तारकस्याभवत्केतुर्बहुरूपोमहाभयः ॥ कचिद्राक्षसोघोरः पिशाचो
ध्वाङ्क्षगृध्रकः ॥ १६ ॥ एवंबहुविधाकारः सकेतुःप्रत्यदृश्यत ॥ केतुनाविकरेणापि सेनानीर्ग्रसनोबभौ ॥ १७ ॥ पिशा**

नशमें कोटि २ अक्षौहिणी सेनाथी ॥ १२ ॥ उनके आगे चलनेवाला कुम्भ व उसके बाद कुजम्भ, महिष, कुंजर, मेष, कालनेमि व निमि ॥ १३ ॥ ग्रसन, जम्भक
और शुम्भ ये दश दैत्येन्द्र सेनाके स्वामीथे और प्रचण्ड पराक्रमवाले सैकड़ों दैत्येन्द्र पर्वतके समानवाले जोकि पृथ्वी के तौलने में समर्थ थे वहां आये जोकि
अनेक भांतिके शस्त्रोंवाले और अनेक प्रकारके शस्त्रास्त्रोंमें पारगामी थे ॥ १४।१५ ॥ बहुत रूपोंवाला महाभय नामक दैत्य तारकका केतु हुआ जोकि कभी भयंकर राक्षस,
पिशाच व कभी कौआ और गीध होजाताथा ॥ १६ ॥ इस प्रकार बहुत भांति के आकारवाला वह केतु देखपड़ता था व विकर राक्षस के ध्वजा से सेनाध्यक्ष ग्रसन

शोभितहुआ ॥ १७ ॥ व पिशाच के तुल्य मस्तक व मुखवाला अयोमय जम्भका ध्वजाहुआ व पूंछको कँपाताहुआ गधा कुजम्भके ध्वजामें हुआ ॥ १८ ॥ व उस समय महिष दैत्यके सोनेवाले केतुमें सियार शोभितहुआ व कुंजरकी ध्वजामें गीध व मेष दैत्यके केतुमें राक्षस हुआ ॥ १९ ॥ व कालनेमिकी ध्वजा में बड़ा सांप व निमिकी ध्वजामें महातिमि मछलीहुई और मथनकी ध्वजामें राक्षसी व जम्भकके केतुमें ध्वाक्ष (काक) शोभित हुआ ॥ २० ॥ और शुम्भकी ध्वजामें महावृक्ष हुआ इस प्रकार के ध्वजा शोभितहुये व अन्य दैत्योंके ध्वजा अनेक भातिके आकारों से विन्यस्त होकर शोभितहुये ॥ २१ ॥ व शीघ्रगतिवाले तथा सोनेकीमालावाले सौ

चमूर्द्धवदनं जम्भस्यासीदयोमयम् ॥ खरोविधूतलाङ्गूलःकुजम्भस्याभवद्ध्वजे ॥ १८ ॥ महिषस्यचगोमायुः केतौहेम्नस्तदाबभौ ॥ गृध्रोवैकुञ्जरस्यासीन्मेषस्याभूच्चराक्षसः ॥ १९ ॥ कालनेमेर्महाव्यालो निमेरासीन्महातिमिः ॥ राक्षसीमथनस्यापि ध्वाङ्क्षोभूज्जम्भकस्यच ॥ २० ॥ महावृक्षश्चशुम्भस्य ध्वजास्त्वेवंविधाबभुः ॥ अनेकाकारविन्यासा ह्यन्येषाञ्चध्वजाबभुः ॥२१॥ शतेनशीघ्रगानांच व्याघ्राणांहेममालिनाम् ॥ ग्रसनस्यरथोयुक्तो महामेघरवोबभौ ॥ २२ ॥ शतेनचापिसिंहानां रथोजम्भस्ययोजितः ॥ कुजम्भस्यरथोयुक्तः पिशाचवदनैःखरैः ॥ २३ ॥ तावद्भिर्म्महिषस्योष्ट्रैःकुम्भस्यचहयैर्युतम् ॥ मेषस्यद्वीपिभिर्भीमैः कुञ्जरैःकालनेमिनः ॥ २४ ॥ पर्वतोवैसमारूढो निश्चित्यविधृतंगजैः ॥ चतुर्दन्तैर्गन्धवद्भिश्चतुर्भिर्मेघसन्निभैः ॥ २५ ॥ शतहस्तायतेकृष्णे तुरङ्गेहेमभूषणे ॥ सितचामरजालेन शोभितेपुष्पदामनि ॥ २६ ॥ मथनोनामदैत्येन्द्रः पाशहस्तोव्यराजत ॥ किङ्किणीमालिनंचोष्ट्रमारूढोभूच्चजम्भकः ॥ २७ ॥

व्याघ्रोंसे संयुत व महामेघों की नाई शब्दवाला ग्रसनका रथ शोभितहुआ ॥२२॥ और जम्भका रथभी सौ सिंहोंसे युक्त कियागया व पिशाच मुखवाले गधोसे कुजम्भका रथ युक्तहुआ ॥ २३ ॥ व महिषका रथ उतनेही ऊंटोंसे व कुम्भका रथ घोडों से संयुत हुआ और मेष दैत्यका रथ भयंकर व्याघ्रोंसे व कालनेमिका रथ हाथियों से युक्तहुआ ॥ २४ ॥ व मेघोंके समान और चार दातोंवाले, गन्धवान् हाथियों से धारेहुये रथपै वह पर्वत दैत्य निश्चयकर सवार हुआ ॥ २५॥ व पुष्पमयी रस्सीवाले और श्वेत चंवर समूहसे शोभित व सोनेकी मालावाले व सौ हाथ विस्तारवाले कालेघोड़ेपर ॥२६॥ मथन नामक दैत्येन्द्र फँसरी हाथमें लेकर शोभित हुआ व घण्टियों

की मालावाले ऊंटपै जम्भक सवारहुआ ॥२७॥ और कालके तुल्य बड़े मेंड़ेपै शुम्भ दानव सवार हुआ व अनेक प्रकारकी सवारी व ध्वजावाले अन्य शूरवीर दानव ॥ २८ ॥ जोकि प्रचण्ड व विचित्र कवचोंवाले थे कुण्डल व किरीटों से शोभित हुये और वे अनेक भांतिके कांधा सूती दुपट्टे डाले व अनेक प्रकारके माला व भूषण धारेथे ॥ २९ ॥ व अनेक भांतिकी सुगन्धियों की गन्धसे संयुत और अनेक प्रकार के सैकड़ों बन्दियों से स्तुति किये जाते थे व अनेक प्रकारके बाजों से चलते हुये अग्रगामियों समेत महारथी जिनमें थे ॥ ३० ॥ व उस सेनामें महारथी अनेक प्रकार की शूरताकी कथामें लगेथे पर्वतों के समान हाथी, घोड़े, रथ व पैदलोंवाली वह

कालतुल्यंमहामेषमारूढःशुम्भदानवः ॥ अन्येचदानवावीरा नानावाहनकेतवः ॥ २८ ॥ प्रचण्डाश्चित्रवर्माणः कुण्डलोष्णीषभूषिताः ॥ नानाविधोत्तरासङ्गा नानामाल्यविभूषणाः ॥ २९ ॥ नानासुगन्धिगन्धाढ्या नानाबन्दिशतस्तुताः ॥ नानावाद्यैःपरिस्पन्दसाग्रेसरमहारथाः ॥ ३० ॥ नानाशौर्यकथाशक्तास्तस्मिन्सैन्येमहारथाः ॥ तद्बलं दैत्यसिंहस्य भीमरूपंव्यदृश्यत ॥ ३१ ॥ महीध्रसममातङ्गतुरङ्गरथपत्तिकम् ॥ सचदैत्येश्वरःक्रुद्धः समारूढोमहारथः॥ ३२ ॥ दशभिःसहितोदैत्यैर्दशबाहुरिवेश्वरः ॥ जगद्धर्त्तुंप्रवृत्तोवा प्रतस्थेसौसुरान्प्रति ॥ ३३ ॥ एतस्मिन्नन्तरेवायुर्देवबन्धुःसुरालयम् ॥ दृष्ट्वातद्दानवबलं जगामेन्द्रस्यशंसितुम् ॥ ३४ ॥ सगत्वातुसभांदिव्यां महेन्द्रस्यमहात्मनः ॥ शशंसमध्येदेवानामिदंकार्यमुपस्थितम् ॥ ३५ ॥ तच्छ्रुत्वादेवराजश्च निमीलितविलोचनः ॥ बृहस्पतिमुवाचेदं वाक्यंकालेमहामतिः ॥ ३६ ॥ इन्द्र उवाच ॥ सम्प्राप्तोतिविमर्द्दोयं देवानांदानवैःसह ॥ कार्यंकिमत्रतद्ब्रूहि नीत्युपायोपबृं

दैत्योत्तम की सेना भयानक रूप देखपड़ी व क्रोधित होकर वह दैत्यनायक बड़े रथपै सवारहुआ ॥ ३१ । ३२ ॥ दशदैत्यों समेत दश भुजाओंवाले ईश्वर (शिव) की नाईं यह संसारको हरने के लिये उद्यतहुआ इस प्रकार इसने देवताओं प्रति यात्रा किया ॥ ३३ ॥ इसी अवसर में देवताओंके भाई पवन दानवोंकी उस सेना को देखकर इन्द्रसे कहने के लिये देवस्थान को गये ॥ ३४ ॥ व महात्मा इन्द्रकी दिव्य सभामें जाकर देवोंके मध्यमें उन पवन ने कहा कि यह कार्य प्राप्त हुआहै ॥ ३५ ॥ उस वचनको सुनकर आंखोंको मूंदहुये बड़े बुद्धिमान् इन्द्रने समयमें बृहस्पति से यह वचन कहा ॥३६॥ इन्द्र बोले कि दानवों के साथ दैत्योंका यह बडा संग्राम प्राप्त

हुआहै इसमें क्या करना चाहिये नीतिके उपाय से बढ़ीहुई उस यत्नको कहिये ॥ ३७ ॥ इन्द्रका यह वचन सुनकर वाणीके स्वामी व उदार बुद्धिवाले महाभाग्यवान् बृहस्पति जीने प्रत्युत्तर दिया ॥ ३८ ॥ बृहस्पतिजी बोले कि हे सुरश्रेष्ठ ! चतुरंगिणीसेनाको जीतने की इच्छावालों को प्रियवचनपूर्वक नीति कहीगई है यह सदैव वाली मर्यादाहै ॥ ३९ ॥ साम, दान, दण्ड व चौथा विभेदहै देश व समयकी विशेषतासे नीतिमें क्रमपूर्वक युक्त करना चाहिये ॥ ४० ॥ उनमेंसे गुणवान् श्रेष्ठजनो में साम युक्त करना चाहिये व लोभियों में दान और शंकितजनों में भेद यह निश्चय कियागया है ॥ ४१ ॥ व नीतिके समय में दुष्टजनों मे दण्डभी युक्त करना चाहिये

हितम् ॥ ३७ ॥ एतच्छ्रुत्वातुवचनं महेन्द्रस्यगिरांपतिः ॥ प्रत्युवाचमहाभागो बृहस्पतिरुदारधीः ॥ ३८ ॥ बृहस्पतिरुवाच ॥ सामपूर्वस्मृतानीतिश्चतुरङ्गांपताकिनीम् ॥ जिगीषतांसुरश्रेष्ठस्थितिरेषासनातनी ॥ ३९ ॥ सामदानञ्चभेदश्च चतुर्थोदण्डएवच ॥ नीतौक्रमात्प्रयोज्याःस्युर्देशकालविशेषतः ॥ ४० ॥ तत्रसामप्रयोक्तव्यमार्येषुगुणवत्सुच ॥ दानंलुब्धेषुभेदश्च शङ्कितेष्वितिनिश्चयः ॥ ४१ ॥ दण्डश्चापिप्रयोक्तव्यो नीतिकालेदुरात्मसु ॥ सामदैत्येषुनैवास्ति निर्गुणत्वाद्दुरात्मसु ॥ ४२ ॥ श्रियाह्येषाञ्चकिंकार्यं समृद्धानांतवापियत् ॥ जातिधर्मेणचाभेद्या विधातुरपितेमताः ॥ ४३ ॥ एकोह्युपायोदण्डोत्र भवतांयदिरोचते ॥ दुर्ज्जनःसुजनत्वाय नकल्पेतकदाचन ॥ ४४ ॥ लालितःपालितोवाकिं श्वा स्वभावंविमुञ्चति ॥ एवंमेमन्यतेबुद्धिः भवन्तोपिव्यवस्यथ ॥ ४५ ॥ एवमुक्तःसहस्राक्ष एवमेवेत्युवाचह ॥ कर्त्तव्यतां ससंचिन्त्य प्रोवाचामरसंसदि ॥ ४६ ॥ बहुमानेनमेवाचंशृणुध्वंनाकवासिनः ॥ भवन्तोयज्ञभोक्तारः सतामिष्टाश्च

निर्गुणता के कारण दुष्टात्मा दैत्योंमें साम उपाय नहीं है ॥ ४२ ॥ व इन समृद्ध (लक्ष्मीवान्) दैत्योंका लक्ष्मीसे क्या कार्य है याने कुछ नहीं जोकि तुम्हारे भी है और जातिके धर्म से वे ब्रह्माके द्वाराभी भेदरहित मानेगये हैं ॥ ४३ ॥ यदि आप लोगों को अच्छा लगे तो इस विषयमें एकही दण्ड उपायहै क्योंकि दुर्जन सुजनता के लिये कभी नहीं समर्थ होताहै ॥४४॥ क्या लालन व पालन कियाहुआ कुत्ता अपने स्वभावको छोड़ताहै मेरी बुद्धि ऐसा मानती है आपलोग भी विचार कीजिये ॥ ४५ ॥ ऐसा कहेहुये इन्द्रजीने यह कहा कि ऐसाही होगा व उन इन्द्रने कर्त्तव्यताको विचारकर देवसभामें कहा ॥ ४६ ॥ कि हे स्वर्गवासियो ! मेरे वचनको बहुत

।दरसे सुनिये कि सत्पुरुषों के प्यारे आपलोग यज्ञके भोगी व सत्वस्वभाववाले हैं ॥ ४७ ॥ व नित्यही संसारके पालनमें परायणहोकर अपने २ स्थानपै टिकेहैं और
आपलोगों के कारण दानवेश्वर दुःख देतेहैं ॥ ४८ ॥ व उनके लिये सामादिक उपाय नहींहै दण्डही कियाजाय व युद्धमें बुद्धि कीजाय और सेना तैयार कीजावै ॥४९॥
और शस्त्रोंका आवाहन कियाजाय व शस्त्रोंके देवता पूजे जावैं और शान्तिमें परायण देवता सवारी व विमानोंको योजितकरैं ॥ ५० ॥ हे देवताओ ! यमको सेनाध्यक्ष
करके शीघ्रही चलो ऐसे कहेहुये देवता तैयारहुये जोकि देवोंके बीचमें मुख्यथे ॥५१॥ सुवर्णके घण्टोंसे सबओर संयुत व अनेक प्रकारके आश्चर्यवाले गुणोंसे युक्त

सात्त्विकाः ॥ ४७ ॥ स्वेस्वेपदेस्थितानित्यं जगतःपालनेरताः ॥ भवताञ्चनिमित्तेन बाधन्तेदानवेश्वराः ॥ ४८ ॥ तेषां
सामादिनैवास्ति दण्डएवविधीयताम् ॥ क्रियतांसमरेबुद्धिःसेनासंयोज्यतामिति ॥४९ ॥ आवाह्यन्तांचशस्त्राणि पूज्य
न्तांशस्त्रदेवताः ॥ वाहनानिविमानानि योजयन्तुशमेरताः ॥ ५० ॥ यमंसेनापतिंकृत्वा शीघ्रंनिर्यातदेवताः ॥ इत्यु
क्ताःसमनह्यन्तदेवानांयेप्रधानतः ॥ ५१ ॥ वाजिनामयुतेनाजौ हेमघण्टापरिष्कृतः ॥ नानाश्चर्यगुणोपेतो दुर्जयो
देवदानवैः ॥ ५२ ॥ रथोमातलिनायुक्तो महेन्द्रस्यव्यदृश्यत ॥ यमोमहिषमास्थाय सेनाग्रेसमवर्त्तत ॥ ५३ ॥ चण्ड
किङ्किणिवृन्देन सर्वतःपरिवारितः ॥ कल्पकालोद्धतज्वालःपूरिताम्बरगोचरः ॥ ५४ ॥ हुताशनःशुकारूढः शक्तिहस्तो
व्यवस्थितः ॥ पवनोऽङ्कुशपाणिस्तुविस्तारितमहाजवः ॥ ५५ ॥ महाराजसमारूढः सेनाग्रेसमदृश्यत ॥ भुजगेन्द्रसमा
रूढो जलेशोभगवान्स्वयम् ॥५६॥ महापाशधरोवीरःसेनायांसमवर्त्तत ॥ नरयुक्तरथेदिव्ये धनाध्यक्षोविग्रहचरः ॥५७॥

और देवता दानवोंसे न जीतने योग्य ॥ ५२ ॥ व मातलि सारथीसे संयुत इन्द्रका रथ देखपडा और यमराज भैंसेपर चढ़कर सेनाके आगे वर्त्तमान हुये ॥
५३ ॥ जोकि भयंकर घण्टियों के गणसे सबओर घिरेथे व कल्पसमय के समान प्रचण्डज्वालाओंवाले और पूरित आकाशवाले ॥ ५४ ॥ अग्निजी सुवापै चढ़कर व
शक्तिको हाथ में लेकर प्राप्तहुये और विस्तारित महावेगवाले पवन अंकुशको हाथमें लेकर ॥ ५५ ॥ महाराजसपै सवारहो सेनाके आगे देखपड़े व सर्पराजपै सवार
भगवान् वरुण देव शूरवीर आपही बड़ी फँसरी को धारणकर सेनामें वर्त्तमानहुये व मनुष्योंसे युक्त दिव्य रथपै आकाशचारी कुबेरजी सवारहुये ॥ ५६ । ५७ ॥

और महासिंह के समान शब्दवाले कुबेरजी गदाको हाथमें लेकर प्राप्तहुये व राक्षसेश निर्ऋति राक्षसमुखवाले घोड़ोंसे संयुत रथपै सवारहुये ॥ ५८॥ जोकि राक्षसगणोंमे घिरे व धनुषको धारे और बड़े शब्दवाले देखपड़े और चन्द्रमा,सूर्य,अश्विनीकुमार,वसु व साध्य देवता ॥ ५९ ॥ व विश्वेदेवा और रुद्र तैयारहोकर युद्धमें खड़ेहुये जो कि सोनेकेसमान पीले उत्तरीय(दुपट्टे)वाले व चित्र विचित्र कवच,अस्त्र व पताकावालेथे॥६०॥और विश्वावसुको आगेकर गन्धर्व देखपड़े जोकि एककांधा सूती दुपट्टेवाले व निर्मल अंगोंमें गहनोंको पहनेथे ॥ ६१ ॥ व लालबालोंवाले तथा गीधों के पताकावाले राक्षस देखपड़े जोकि भयंकर भोजन करनेवाले व काले वस्त्रोंवाले और बड़े

महासिंहरवोयुद्धे गदाहस्तोऽव्यवस्थितः ॥ राक्षसेशोथनिर्ऋती रथेरक्षोमुखैर्हयैः ॥ ५८ ॥ धन्वीरक्षोगणवृतो महारावोऽव्यदृश्यत ॥ चन्द्रादित्यावश्विनौच वसवःसाध्यदेवताः ॥ ५९ ॥ विश्वेदेवाश्चरुद्रश्च सन्नद्धास्तस्थुराहवे ॥ हेमपीतोत्तरासङ्गाश्चित्रवर्मायुधध्वजाः ॥ ६० ॥ गन्धर्वाःप्रत्यदृश्यन्त कृत्वाविश्वावसुंमुखे ॥ तथाचैकोत्तरासङ्गा निर्मलाङ्गविभूषणाः ॥ ६१ ॥ गृध्रध्वजाऽव्यदृश्यन्त राक्षसारक्तमूर्द्धजाः ॥ तथाभीमाशनकराः कृष्णवस्त्रामहारवाः ॥६२॥ यक्षास्तत्रऽव्यदृश्यन्त मणिभद्रादिकोटिशः ॥ गृध्रोलूकध्वजारौद्रा द्वीपिचर्माम्बरास्तथा ॥ ६३ ॥ पिशाचास्तत्रराजन्ते कृत्वाग्निमुखमादितः ॥ गार्द्धपक्षध्वजप्राया दुष्प्रेक्ष्यामुसलायुधाः ॥ ६४ ॥ गुह्यकास्तत्रराजन्ते महावेगपुरःसराः ॥ तथैवश्वेतवसनाः सितपट्टपताकिनः ॥ ६५ ॥ मत्तेभवाहनप्रायाः किन्नरास्तस्थुराहवे ॥ मुक्ताजालपरिष्कारो हंसहारसमप्रभः ॥ ६६ ॥ केतुर्जलधिनाथस्य सौम्यरूपोऽव्यराजत ॥ पद्मरागमहारत्नभूपितोधनदस्यच ॥ ६७ ॥

शब्दवाले थे ॥ ६२ ॥ और मणिभद्रादिक करोड़ों यक्ष वहां देखपड़े जोकि गीध व घुघुवाके ध्वजावाले और भयंकर व व्याघ्र चर्मके वसनवाले थे ॥ ६३ ॥ व अग्निमुखको आगेकर वहा पिशाच शोभित होते हैं जोकि गीधके पंखोके ध्वजावाले व मुसल अस्त्रवाले और दुःखसे देखेजाते थे ॥ ६४ ॥ व बड़े वेगपूर्वक गुह्यक वहां सोहते थे वैसेही श्वेत वसनवाले व श्वेत पट्टी और ध्वजावाले ॥ ६५ ॥ तथा मत्तहाथियों की सवारीवाले किन्नर युद्धमे खड़ेहुये व मोतियो के गुच्छोसे गूंथा और हंस व हारके समान प्रकाशित ॥ ६६ ॥ वरुणका सौम्यरूपवाला ध्वजा शोभित हुआ व पांचरंग और महारत्नों से भूपित कुबेरका ऊंचा ध्वजा उस समय तारकके

युद्धमें शोभितहुआ व काठ और लोहका बनाहुआ कौवा यमराज का बड़ाभारी ध्वजाहुआ ॥ ६७ । ६८ ॥ व निर्ऋति के ध्वजामें प्रेतका मुख शोभितहुआ व सोने और सिंहकी ध्वजावाले चन्द्रमा व सूर्यदेवता बडे छविवान् होकर प्रकाशित हुये ॥६९॥ व रत्नोंसे विचित्र घट करके अश्विनीकुमार की ध्वजाहुई और विचित्र रत्नोंसे बना व सोनेसे रचाहुआ हाथी ॥ ७० ॥ इन्द्रका ध्वजाहुआ जोकि श्वेत चँवरसे शोभित था व उस युद्धमें अन्य देवताओं के ध्वजा अनेक प्रकारके रूपवाले शोभितहुये ॥ ७१ ॥ नागों समेत यक्ष, गन्धर्व, महासर्प व निशाचरोंवाली वह इन्द्रकी सेना दुर्जय देखपडी ॥ ७२ ॥ और अनेक प्रकारके देवगण तेंतीस करोड थे ॥ ७३ ॥ व

ध्वजःसमुच्छ्रितोरेजे तदातारकसंयुधि ॥ काष्ठलोहमयध्वाङ्क्षोयमस्याभून्महाध्वजः ॥६८॥ राक्षसेशस्यवदनं प्रेतस्य ध्वजश्चाबभौ ॥ हेमसिंहध्वजौदेवौ चन्द्रार्कावमितद्युती ॥ ६९ ॥ कुम्भेनरत्नचित्रेण केतुरश्विनयोरभूत ॥ मातङ्गोहेमरचितश्चित्ररत्नपरिष्कृतः ॥ ७० ॥ ध्वजःशतक्रतोरासीत्सितचामरमण्डितः ॥ अन्येषाञ्चध्वजास्तत्र नानारूपाबभूरणे ॥ ७१ ॥ सनागयक्षगन्धर्वमहोरगनिशाचरा ॥ सेनासादेवराजस्य दुर्जयाप्रत्यदृश्यत ॥ ७२ ॥ कोटयश्चत्रयस्त्रिशन्नानादेवनिकायिनाम् ॥७३॥ हिमाचलाभेसितवर्णचामरे सुवर्णपद्मामलसुन्दरध्वजे ॥ कृताभिरामेबहुकुङ्कुमारुणे कपोललोलालिसमूहमस्तके ॥ ७४ ॥ श्रितस्तथैरावतनामकुञ्जरे महाबलश्चित्रविभूषिताम्बरः ॥ विशालवज्रास्त्रवितानभूषितः प्रकीर्णकेयूरभुजाग्रमण्डलः ॥ सहस्रदृग्वन्दिसहस्रसंस्तुतस्त्रिविष्टपेशोभतपाकशासनः ॥ ७५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेचतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

॥ * ॥ * ॥

हिमाचलके समान शोभावाले, श्वेत रंगके चँवरवाले व निर्मल सुवर्ण व कमल के ध्वजावाले और फैलीहुई सुन्दरतावाले व बहुत कुंकुम से लाल और कपोलमें लीलापूर्वक भ्रमरसमूह युक्त माथावाले ॥ ७४ ॥ ऐरावत नामक हाथीपै बैठेहुये बड़े बली व विचित्र शोभित बसनवाले इन्द्र स्वर्ग में शोभित हुये जोकि बड़े वज्र अस्त्र के विस्तारसे शोभित व बाहुके अग्रमण्डल मे बजुल्ले को बाधे व हज़ार नेत्रोंवाले और हज़ारो वन्दियोंसे प्रशंसित होतेथे ॥ ७५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांचतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । ग्रसन दैत्यसों भांति जेहि कीन युद्ध यमराज । पन्द्रहवें अध्यायमें सोइ कहत मुनिराज ॥ नारदजी बोले कि तदनन्तर उन दोनों सेनाओंका वैसाही संयोग हुआ जैसे कि युगान्त प्राप्तहोने पर क्षोभित समुद्रोंका मेलहोवै ॥ १ ॥ उस देवता दैत्योंकी बडी भयानक सेनामें दोनों सेनाओं का भी बड़ाभारी शब्दहुआ ॥ २ ॥ देवता, दैत्योको गर्जतेहुये शंख व नगारे के शब्द से और तुरुहियों के शब्दो व हाथियोकी गर्जनसे ॥ ३ ॥ और अश्वसमूहो के हिनहिनाने से व रथके पहियो के शब्द करके और शूरवीरोके शब्दसे युगान्त ऐसा होगया ॥ ४ ॥ व चित्तसे जीव को त्यागेहुये क्रोधसे घिरे अंगोंवाले देवता, दैत्य तैयारहुये और आपसमे युद्धके

नारद उवाच ॥ ततस्तयोःसमायोगः सेनयोरुभयोरभूत ॥ युगान्तेसमनुप्राप्ते यथाक्षुब्धसमुद्रयोः ॥ १ ॥ सुरासुराणांसंमर्देतस्मिन्परमदारुणे ॥ तुमुलंसुमहज्जातं सेनयोरुभयोरपि ॥ २ ॥ गर्ज्जतांदेवदैत्यानां शङ्खभेरीरवेणच ॥ तूर्याणांचैवनिर्घोषैर्मातङ्गानाञ्चबृंहितैः ॥ ३ ॥ हेषितैर्हयवृन्दानां रथनेमिस्वनेनच ॥ घोषेणचैवशूराणां युगान्तइवचाभवत् ॥ ४ ॥ रोषेणाभिपरीताङ्गास्त्यक्तजीवितचेतसः ॥ समासज्जंस्ततोन्योन्योपक्रमेणातिकोपिताः ॥ ५ ॥ रथारथैः समासक्ता गजाश्चापिमहागजैः ॥ पत्तयःपत्तिभिश्चैव हयाश्चापिमहाहयैः ॥ ६ ॥ ततःप्रासाशनिगदाभिन्दिपालपरश्वधैः ॥ शक्तिभिःपट्टिशैःशूलैर्मुद्गरैर्लगुडैस्तथा ॥ ७ ॥ चक्रैश्चशक्तिभिश्चैव तोमरैरङ्कुशैरपि ॥ कर्णमाकृष्टनाराचैर्वत्सदन्तार्द्धचन्द्रकैः ॥ ८ ॥ भल्लैर्वेतसपत्रैश्च शुकतुण्डैश्चनिर्मलैः ॥ वृष्टिरत्यद्भुताकारा गगनेसमपद्यत ॥ ९ ॥ संप्रच्छाद्यदिशःसर्वास्तमोमयमिवाभवत् ॥ प्राज्ञायन्तनतेन्योन्यं तस्मिंस्तमसिसंकुले ॥ १० ॥ अदृश्यभूतास्तम

प्रारम्भ से क्रोधित हुये ॥ ५ ॥ रथोंसे रथ व बडे हाथियोंसे हाथी, पैदलोसे पैदल व बड़े घोड़ोंसे घोडे मिलगये ॥ ६ ॥ तदनन्तर फँसरी, वज्र, गदा, भिन्दिपाल, (गोफना) व परश्वध, शक्ति, पट्टिश, शूल, मुद्गर व दण्डोंसे ॥ ७ ॥ और चक्र,शक्ति, तोमर व अंकुशो से भी और कानोतक खींचेहुये बाणोसे और वत्सदन्त व अर्द्धचन्द्रसे ॥ ८ ॥ और बरछी, वेतसपत्र व निर्मल शुक तुण्डोंसे आकाशमें अद्भुत आकारवाली वर्षा प्राप्तहुई ॥ ९ ॥ व सब दिशाओं को आच्छादित करके अन्धकारमय ऐसा होगया व उस अन्धकार के व्याप्त होनेपर आपसमें वे नहीं जानेजाते थे ॥ १० ॥ व अन्धकार में न देखेहुये सब आपसमें काटते थे त॰ नन र ग्रे -

हुये भी ध्वजा, भुजा, छत्र व कुण्डल समेत मस्तक, हाथी, घोड़े व पैदलों करके आकाशके ऊपर से गिरेहुये कमलोंकी नाईं पृथ्वी शोभितहुई ॥ ११ । १२ ॥ और टूटे दन्त व फूटे मस्तकाश और कटीहुई बड़ी लम्बी सूंड़वाले रक्तको बहातेहुये हाथी पर्वतों के समान पृथ्वीमें गिरपड़े ॥१३॥ व टूटे तरौंचे और टूटेहुये आंकवाले रथ खण्ड खण्ड होकर गिरपड़े व करोड़ों पैदल और हज़ारों घोड़े गिरपड़े॥१४॥ वैसे उस युद्धमें ग्रसन नामक शत्रुनाशक सेनापति ने बाणोंकी बड़ी वृष्टिसे देवताओं की सेनाको कँपादिया ॥ १५ ॥ तदनन्तर ग्रसनको देखकर यमराज कोपसे मूर्च्छितहुये व विशेषकर अग्निके समान तेजवाली बाणवृष्टिकी वर्षाकिया ॥ १६ ॥ बहुत बाणों

सि निकृन्तन्तिपरस्परम् ॥ ततोध्वजैर्भुजैश्छत्रैः शिरोभिश्चसकुण्डलैः ॥ ११ ॥ गजैस्तुरङ्गैःपादातैः पतद्भिःपतितैरपि ॥ आकाशशिरसोभ्रष्टैः पङ्कजैरिवभूषिता ॥ १२ ॥ भग्नदन्ताभिन्नकुम्भाश्छिन्नदीर्घमहाकराः ॥ गजाःशैलनिभाःपेतुर्धरण्यांरुधिरस्रवाः ॥ १३ ॥ भग्नेषाश्चरथाःपेतुर्भग्नाक्षाःशकलीकृताः ॥ पत्तयःकोटिशःपेतुस्तुरङ्गाश्चसहस्रशः ॥ १४ ॥ तस्मिंस्तथाविधेयुद्धे सेनानीर्ग्रसनोरिहा ॥ बाणवर्षेणमहता देवसैन्यमकम्पयत् ॥ १५ ॥ ततोग्रसनमालोक्य यमःक्रोधविमूर्च्छितः ॥ ववर्षशरवर्षेण विशेषादग्निवर्चसा ॥ १६ ॥ सविद्धोबहुभिर्बाणैर्ग्रसनोतिपराक्रमः ॥ कृतप्रतिकृताकाङ्क्षी धनुराकृष्यभैरवम् ॥ १७ ॥ शरैःपञ्चसहस्रैश्च लक्षैश्चैवव्यताडयत् ॥ ग्रसनेनविमुक्तानां शराणांसोप्यचिन्त्यच ॥ १८ ॥ बाणवृष्टिभिरुग्राभिर्यमोग्रसनमार्दयत् ॥ कृतान्तशरवृष्टीनां सन्ततिंप्रतिसर्पतीम् ॥ १९ ॥ चिच्छेदशरवर्षेण ग्रसनोदानवेश्वरः ॥ विफलांतांसमालोक्य यमःस्वांशरसन्ततिम् ॥ २० ॥ प्राहिणोन्मुद्गरंदीप्तं ग्रस

से बेधेहुये उस बड़े बलिष्ठ ग्रसन ने किये के बदले की इच्छा करके भयंकर धनुष को खींचकर ॥ १७ ॥ लाख व पांचहज़ार बाणोंसे मारा व ग्रसन से छोड़ेहुये बाणों को विचार कर ठन ॥ १८ ॥ यमराज ने बाणोंकी वृष्टिसे ग्रसनको विकल किया व आतीहुई यमराजके बाणवृष्टिकी पातिको ॥ १९ ॥ दानवेश्वर ग्रसन ने बाणवृष्टि से काटडाला यमराज ने अपनी उस शरपंक्तिको निष्फल देखरक ॥ २० ॥ ग्रसनके रथपै प्रकाशित मुद्गरको पठाया और शत्रुके नाशक उस ग्रसन ने उत्तम रथपर से

लीलापूर्वक बायें हाथ से आतेहुये उस मुद्गरको लेलिया व क्रोधकरके उसी मुद्गरसे यमराजके भैंसेको वेगसे मारा ॥ २१ । २२ ॥ और वह पृथ्वीमें गिरपड़ा इसके अनन्तर गिरतेहुये उस भैंसे से कूदकर यमराज ने ॥ २३ ॥ ग्रसनके मुखमें बड़े ज़ोरसे भाला मारा उस प्रहार से मूर्च्छित होताहुआ ग्रसन भूमिमें गिरपड़ा ॥२४ ॥ गिरेहुये ग्रसनको देखकर प्रचण्ड पराक्रमवाले जम्भने यमराजके हृदय में भिन्दिपाल से मारा ॥ २५ ॥ उस प्रहारसे यमराजने मुखसे रक्त गिराया व बडे वेगके प्रहार से विकल यमराज मूर्च्छित होगये ॥ २६ ॥ यमराजको विकल देखकर गदा हाथमें लिये व दशहज़ार यक्षगणोंसे घिरेहुये कुबेर क्रोध से जम्भके समीप आये॥ २७ ॥ व

नस्यरथंप्रति ॥ सतंमुद्गरमायान्तमुपेत्यरथसत्तमात् ॥ २१ ॥ जग्राहवामहस्तेन लीलयाग्रसनोरिहा ॥ तेनैवमुद्गरेणाथ यमस्यमहिषन्तुवा ॥ २२ ॥ ताडयामासवेगेन सपपातमहीतले ॥ उत्पत्याथयमस्तस्मान्महिषान्निपतिष्यतः ॥ २३ ॥ प्रासेनताडयामास ग्रसनंवदनेदृढम् ॥ सततप्रासप्रहारेण मूर्च्छितोन्यपतद्भुवि ॥ २४ ॥ ग्रसनंपतितंदृष्ट्वा जम्भोभीमपराक्रमः ॥ यमस्यभिन्दिपालेन प्रहारमकरोद्धृदि ॥ २५ ॥ यमस्तेनप्रहारेण प्रोद्गिरद्रुधिरंमुखात् ॥ अतिवेगप्रहारार्त्तः कृतान्तोमूर्च्छितोभवत् ॥ २६ ॥ कृतान्तमर्द्दितंदृष्ट्वा गदापाणिर्धनाधिपः ॥ वृतोयक्षायुतगणैर्जम्भंप्रत्याययौरुषा ॥ २७ ॥ जम्भोरुषातमायान्तं दानवानीकसंवृतः ॥ जग्राहवाक्यंप्राज्ञस्तु यथास्निग्धेनभाषितम् ॥ २८ ॥ ग्रसनोलब्धसंज्ञोथ यमस्यप्राहिणोद्गदाम् ॥ मणिहेमपरिष्कारां गुर्वींपरिघमर्द्दिनीम् ॥ २९ ॥ समापतन्तींसंप्रेक्ष्य गदांमहिषवाहनः ॥ गदायाःप्रतिघातार्थं ज्वलज्ज्वलनभैरवम् ॥ ३० ॥ दण्डंमुमोचकोपेन ज्वालामालासमाकुलम् ॥ सगदांवियतिप्राप्य ररासाम्बुधरोद्धतम् ॥ ३१ ॥ संघट्टश्चाभवत्ताभ्यां शैलाभ्यामिवदुःसहः ॥ ताभ्यांनिःशेष

दानवों की सेनासे घिरेहुये जम्भने आतेहुये उसको ग्रहण किया जैसे कि विद्वान् स्नेहीसे कहेहुये वचनको ग्रहण करताहै ॥ २८ ॥ इसके अनन्तर चैतन्यता को पाये हुये ग्रसन ने परिघको मर्दनेवाली व मणियों तथा सोनेसे सजीहुई गरुई गदाको यमराज के ऊपर चलाया ॥ २९ ॥ आतीहुई उस गदाको देखकर गदाके नाशनेके लिये जलतीहुई अग्निसे भयंकर दण्डको क्रोधसे यमराजने चलाया जोकि ज्वालाओं की मालासे घिराथा और वह आकाश में गदाको पाकर मेघोंकी नाईं कराल

शब्दायमान हुआ ॥३०।३१॥ व उन दोनोंका एकमें मिलना पर्वतोंकी नाईं दुःसहहुआ और उन दोनोंका सब शब्द जरुतीहुई उल्काके समान शोभितहुआ ॥३२॥
व आकाश में प्राप्त उन दोनोंका घिसना भयानक हुआ और प्रलय आनेकी शंकासे संसार विकलताको प्राप्तभया ॥ ३३ ॥ व क्षणभर में आकाश शब्दरहित प्राप्त
हुआ इसके अनन्तर दण्ड गदाको नाशकरके तदनन्तर ग्रसन के माथेपै गिरपड़ा ॥३४॥ जैसे कि पहले इकट्ठा कीहुई भाग्य पौरुष करके शान्तहोजावै और उस प्रहार
से वह ग्रसन अन्धकार समेत दिशाओं को देखकर ॥ ३५ ॥ पृथ्वीकी धूलिसे शोभित व मूर्च्छितहो भूमिमें गिरपड़ा तदनन्तर दोनों सेनाओं में भयकर हाहा शब्द

निर्ह्रादो ज्वलदुल्कासमोबभौ॥ ३२ ॥ निष्पेषणंतयोर्भीममभूद्गगनगोचरम् ॥ जगद्व्याकुलतांयातं प्रलयागमश
ङ्कया ॥ ३३ ॥ क्षणात्प्रशान्तनिर्ह्रादं गगनंसमपद्यत ॥ निहत्याथगदांदण्डस्ततोग्रसनमूर्द्धनि ॥ ३४ ॥ पपातपौरुषं
कृत्वा यथादैवंपुरार्जितम् ॥ सतुतेनप्रहारेण दृष्ट्वासतिमिरादिशः ॥ ३५ ॥ पपातभूमौनिःसंज्ञो भूमिरेणुविभूषि
तः ॥ ततोहाहारवोघोरस्सेनयोरुभयोरभूत ॥ ३६ ॥ ततोमुहूर्त्तमात्रेण ग्रसनःप्राप्यचेतनाम् ॥ अपश्यत्स्वान्ततुंध्व
स्तां विलोलाभरणाम्बराम् ॥ ३७ ॥ सचापिचिन्तयामास कृतप्रतिकृतक्रियाम् ॥ धिगस्तुपौरुषंमह्यं प्रभोरग्रेसरःकथ
म् ॥ ३८ ॥ मय्याश्रितानिसैन्यानि जितेमयिजितानिच ॥ असम्भावितरूपोहि सजनोमोदतेसुखम् ॥ ३९ ॥ सम्भा
वितस्तुशक्तश्चेत्तस्यनार्थपरोरिपुः ॥ एवंसंचिन्त्यवेगेन समुत्तस्थौमहाबलः ॥ ४० ॥ मुद्गरंकालदण्डाभं गृहीत्वागिरि
सन्निभम् ॥ ग्रसनोघोरसङ्कल्पः संदष्टोष्ठपुटच्छदः ॥ ४१ ॥ रथेनत्वरितोगच्छद्दासमादान्तकंरणे ॥ समासाद्ययमंयु

हुआ ॥ ३६ ॥ उसके बाद मुहूर्तभर में ग्रसन ने चैतन्यताको पाकर चञ्चल गहनों व वसनोंवाली अपनी देहको ध्वस्त देखा ॥ ३७ ॥ और किये के बदले कार्यको भी
उसने चिन्तन किया कि मेरे पुरुषार्थ को धिक्कारहै मैं कैसे स्वामीका अग्रगामी हुआ ॥ ३८ ॥ क्योंकि मेरे हारजाने पर मेरे आश्रित सेनाभी जीतीगईं व अमर्याद
रूप वह मनुष्य सुखसे प्रसन्न रहताहै ॥ ३९ ॥ व यदि मर्यादिक समर्थहोवै तो उस का यह पुरुष शत्रुभी नहीं होता है ऐसा विचारकर महाबली वह ग्रसन उठपड़ा ॥
४० ॥ और कालदण्ड के समान व पर्वतकी नाईं मुद्गरको लेकर ओंठोंके पुटकोंको चाबेहुये घोरसंकल्पवाला वह ग्रसन दैत्य ॥ ४१ ॥ शीघ्रता समेत रथसे चला व युद्ध

में यमराजके समीपआया व समर में यमराज के समीप प्राप्तहोकर ग्रसनने भयंकर मुद्गरको घुमाकर ॥ ४२ ॥ बड़े वेगसे यमके माथेपै फेंका व प्रकाशित मुद्गर को देखकर घूमेहुये नेत्रोंवाले व बड़े बलिष्ठ यमराज उस असह्य मुद्गर को बचागये और उन यमराजके दूर भगजानेपर भयंकर कर्मवाले प्रचण्ड ॥ ४३ । ४४ ॥ दश हज़ार यमदूतोंको पीसडाला तदनन्तर उन दशहज़ार यमदूतों को मरे जानकर यमदूतो की सेना ॥ ४५ ॥ जोकि दशहज़ार अर्बुद थी क्रोधितहो ग्रसनके सामने दौड़ी और यमदूतमयी उस सेनाको देखकर ग्रसनने ॥ ४६ ॥ हज़ारों यमोंको माना क्योंकि वैसेरूप व पराक्रमवाली वह सेनाथी और ग्रसनको पीड़ितकर सेनाने बाणवृष्टि

द्धे ग्रसनोभ्राम्यमुद्गरम् ॥ ४२ ॥ वेगेनमहतारौद्रं चिक्षेपयममूर्द्धनि ॥ विलोक्यमुद्गरंदीप्तं यमःसम्भ्रान्तलोचनः ॥ ४३ ॥ वञ्चयामासदुर्द्धर्षं मुद्गरन्तंमहाबलः ॥ तस्मिन्नपद्रुतेदूरं चण्डानांभीमकर्म्मणाम् ॥ ४४ ॥ याम्यानांकिङ्कराणा ञ्चाप्ययुतंनिष्पिपेषह ॥ ततस्तदयुतंदृष्ट्वा हतंकिङ्करवाहिनी ॥ ४५ ॥ दशार्बुदमिताक्रुद्धा ग्रसनस्यान्वधावत ॥ ग्रस नस्तुसमालोक्य तांकिङ्करमयींचमूम् ॥ ४६ ॥ मेनेयमसहस्राणि तादृग्रूपबलाहिसा ॥ विगाह्यग्रसनंसेना ववर्षशरवृ ष्टिभिः ॥ ४७ ॥ घोरकल्पान्तसङ्काशो बभूवसमहारणः ॥ केचिच्छैलेनबिभिदुः केचिद्बाणैरजिह्मगैः ॥ ४८ ॥ पिपि षुर्गदयाकेचित्केचिन्मुद्गरवृष्टिभिः ॥ कैश्चित्प्रासप्रहारैश्च दारुणैस्ताडितःसच ॥ ४९ ॥ अपरेकिङ्करास्तस्य ललम्बुर्बाहु मण्डले ॥ शिलाभिरपरेजघ्नुर्द्रुमैरन्येमहोच्छ्रयैः ॥ ५० ॥ तस्यापरेचगात्रेषु दशनानिव्यपातयन् ॥ अपरेमुष्टिभिःपृ ष्ठं किङ्करास्ताडयन्तिच ॥ ५१ ॥ एवंचाभिहतस्तैस्स ग्रसनःक्रोधमूर्च्छितः ॥ उत्सृज्यगात्रंभूपृष्ठे निष्पिपेषसहस्र

से वर्षाकिया ॥ ४७ ॥ वह बड़ाभारी युद्ध भयंकर कल्पांत के समान हुआ कोई पर्वतों से व कोई सीधे जानेवाले बाणों से काटडाला ॥ ४८ ॥ व कोई गदासे और कोई मुद्गरों की वृष्टिसे पीसडाला और कितनों के भालाकी भयकर चोटोंसे वह ग्रसन मारागया ॥४९॥ व अन्य दूतोंने उसकी भुजाओं को पकडा और अन्य यमदूतों ने शिलाओं व अपर यमदूतों ने बड़े ऊंचे वृक्षोंसे मारा ॥५०॥ व अन्य यमदूतों ने उसके अंगोंमें दांतोंसे काटखाया व अन्य यमदूत मुष्टिकाओंसे पीठमें मारतेथे ॥५१॥

इस प्रकार उनसे मारेहुये उस ग्रसन ने क्रोधसे मूर्च्छित होकर शरीर छोड़कर धरातल में हज़ारों यमदूतों को पीसडाला ॥ ५२ ॥ और कितने यमदूतों को उ-
ठाकर इस ग्रसनने युद्धमें मुष्टिकाओं से मारा व कितने अन्य यमदूतों को चरण के प्रहार से चूर्णकिया ॥ ५३ ॥ हे भारत ! उस ग्रसन ने उनको एकही क्षणभर में
यमलोक में प्राप्तकिया और यमदूतोंके युद्धसे वह बढ़ा जैसे कि लकड़ीसे अग्नि बढ़ती है ॥ ५४ ॥ मारेहुये अपने गणोंको व आतेहुये उस ग्रसनको देखकर यमराज
दण्डको उठाकर आये ॥ ५५ ॥ और ग्रसनने आयेहुये यमराज की छातीमें गदासे मारा ग्रसनके उस कर्मको विचारकर शत्रुनाशक यमराज ने ॥ ५६ ॥ व्याघ्रदण्ड

शः ॥ ५२ ॥ कांश्चिदुत्थायजघ्नेसौमुष्टिभिःकिङ्करान्रणे ॥ कांश्चित्पादप्रहारेण याम्यानन्यानचूर्णयत ॥ ५३ ॥ क्षणेनैकेनसता
न्निन्ये यमलोकायभारत ॥ सचकिङ्करयुद्धेन ववृधेग्निरिवैधसा ॥ ५४ ॥ तमालोक्यसमायान्तं गणांश्चप्रहतान्स्वका
न् ॥ आजगामसमुद्यम्य दण्डंमहिषवाहनः ॥ ५५ ॥ ग्रसनस्तुसमायान्तमाजघ्नेगदयोरसि ॥ विचिन्तयित्वातत्क
र्म ग्रसनस्यान्तकोरिहा ॥ ५६ ॥ व्याघ्रदण्डेनसञ्जघ्ने सरथान्न्यपतद्भुवि ॥ ततःक्षणेनचोत्थाय सश्चिन्त्यात्मानमुद्ध
तम् ॥ ५७ ॥ वायुवेगेनसहसा ययौयमरथम्प्रति ॥ पदातिस्सरथंतञ्च समारुह्ययमंतदा ॥ ५८ ॥ योधयामासबाहु
भ्यामाकृष्यबलिनांवरः ॥ यमोपिशस्त्राण्युत्सृज्य बाहुयुद्धेप्रवर्त्तितः ॥ ५९ ॥ ग्रसनःकटिदेशेतु यमंगृह्यबलोद्धतः ॥
भ्रामयामासवेगेन संभ्रमाविष्टमानसम् ॥ ६० ॥ विमोच्याथयमःकष्टात् कण्ठेवष्टभ्यचासुरम् ॥ बाहुभ्यांभ्रामयामा
स सोप्यात्मानममोचयत् ॥ ६१ ॥ ततोजघ्नतुरन्योन्यं मुष्टिभिर्निर्दयौचतौ ॥ दैत्येन्द्रस्यातिवीर्यत्वात्तारिश्रान्ततरो

से मारा और वह रथ से भूमिमें गिरपड़ा तदनन्तर क्षणभरमें उठकर व अपनाको गर्वित चिन्तनकर ॥ ५७ ॥ पवनके तुल्य वेगसे अचानक यम के रथ समीप गया
व पैदल उसने उस रथपै चढ़कर उस समय खींचकर यमराज से भुजाओंसे युद्ध किया व बलिष्ठोंमें श्रेष्ठ यमराज भी शस्त्रोंको छोड़कर बाहुयुद्धमें वर्त्तमान हुये ॥
५८ । ५९ ॥ और बलसे गर्वित ग्रसनने कटिके स्थानमें यमराज को पकड़कर व संभ्रमयुक्त मनवाले यमको वेगसे घुमाया ॥ ६० ॥ इसके अनन्तर यमराजने कष्टसे
छुड़ाकर गलेमें भुजाओंसे पकड़कर घुमाया तब उसने भी अपनाको छुड़ालिया ॥ ६१ ॥ तदनन्तर निर्दयी उनदोनोने आपसमें मुष्टिकाओंसे मारा व दैत्येन्द्रके बड़े बल

के कारण यमराज बहुत थकगये ॥ ६२ ॥ व दैत्यके कांधे पै मुखको धरकर यमने सहँतानेकी इच्छा किया उसके उपरान्त उन यमराजको थके देखकर बलसे उठा कर ग्रसन दैत्यने ॥ ६३ ॥ ऍडी व हाथोंसे मारतेहुये भूतलमें पटकदिया तदनन्तर यमराजके मुखसे बहुत रक्तबहा ॥ ६४ ॥ तदनन्तर निर्जीव ऐसा उन यमराज को देखके छोड़कर जीतको पाकर बडा शब्दकर व देवताओं को डराकर ॥ ६५ ॥ अपनी सेनामें प्राप्तहोकर न चलनेवाले पर्वतकी नाईं वह खडा होगया ॥ ६६ ॥ बडे अस्त्रोंसे आच्छादित अंगोंवाले व शोभाहीन यमराजके पृथ्वीमें प्राप्तहोनेपर समर में उस ग्रसन के शब्द से वे देवता कांपउठे व भयभीत हुये ॥ ६७ ॥ इति श्रीस्क

यमः ॥ ६२ ॥ स्कन्धेनिधायदैत्यस्य मुखंविश्रान्तुमैच्छत ॥ तमालक्ष्यततोदैत्यः श्रान्तमुत्थायचौजसा ॥ ६३ ॥ निष्पिपेषमहीपृष्ठे विनिघ्नन्पार्ष्णिपाणिभिः ॥ ततोयमस्यवदनात्सुस्रावरुधिरंबहु ॥ ६४ ॥ निर्जीवमितितंदृष्ट्वा ततस्सं त्यज्यदानवः ॥ जयंप्राप्योद्धतन्नादं कृत्वासंत्रास्यदेवतान् ॥ ६५ ॥ स्वकंसैन्यंसमासाद्यतस्थौगिरिरिवाचलः ॥ ६६ ॥ नादेनतस्यग्रसनस्यसंख्ये महायुधैश्छादितसर्वगात्रे ॥ गतेकृतान्तेवसुधाञ्चनिष्प्रभे चकम्पिरेकान्दिशकास्सुरास्ते ॥ ६७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेपञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ * ॥ * ॥

नारदउवाच ॥ धनाधिपस्यजम्भेन सायकैर्मर्मभेदिभिः ॥ दिशोपरुद्धाःक्रुद्धेन सैन्यंचाप्यर्दितंभृशम् ॥ १ ॥ तद्दृष्ट्वाकर्म्मदैत्यस्य धनाध्यक्षःप्रतापवान् ॥ आकर्णाकृष्टचापस्तु जम्भमाजौमहाबलम् ॥ २ ॥ हृदिविव्याधबाणानांसहस्रेणाग्निवर्चसाम् ॥ सप्रहस्यततोवीरो बाणानामयुतत्रयम् ॥ ३ ॥ नियुतञ्चतथाकोटिमर्बुदंचाक्षिपत्क्षणात् ॥

न्दपुराणेकुमारिकाखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांपञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

दो० । जम्भादिक दानव सबै कीन्ह्यो जिमि संग्राम । सोलहवे अध्याय में सोइ कथा अभिराम ॥ नारदजी बोले कि सुकुमार स्थान काटनेवाले क्रोधित जम्भ के बाणोंसे दिशायें आच्छादित होगई व कुबेर की सेना बहुत विकलहुई ॥ १ ॥ दैत्यके उस कर्मको देखकर समरमे कानोंतक धनुष खींचेहुये प्रतापी कुबेरजी ने बडेबली जम्भकेहृदयमें ॥ २ ॥ अग्नि समान तेजवाले हजार बाणोंका मारा तदनन्तर हँसकर उस जम्भवीरने तीसहज़ार बाण ॥ ३ ॥ व लक्ष,करोड और अर्बुद बाणोंको क्षण

भरसे चलाया उसकी उस शीघ्रताको देखकर क्रोधित होतेहुये बड़ी गदाको लेकर ॥ ४ ॥ कुबेरजीने चलाया जैसे कि स्वर्गका चाहनेवाला पुरुष अपना धन देता है और गदा छोडने पर प्रलयकासा शब्दहुआ ॥ ५ ॥ व आकाश में प्राणियों के बड़े भयवाले बहुत प्रकार के शब्दहुये व बड़ाभारी पवन पैदाहुआ और आकाश मेघों से भरगया ॥ ६ ॥ जोकि त्रिलोकके पूजित कुबेर की गदाथी बिजुलीके समूहों के समान न देखीजाती हुई उस गदाको देखकर ॥ ७ ॥ दैत्यने गदाके नाशनेके लिये शस्त्रवृष्टिको छोड़ा, और चक्र, गदा, भाला, बन्दूक, पट्टिश ॥ ८ ॥ परिघ, मूसल, वृक्ष व पर्वतोंको अतुल बलवाले दैत्यने चलाया और उन सब शस्त्रोंको नाशकर वह

तस्यतल्लाघवंदृष्ट्वा क्रुद्धोगृह्यमहागदाम् ॥ ४ ॥ धनाध्यक्षःप्रचिक्षेप स्वर्गेप्सुस्स्वधनंयथा ॥ मुक्तायाञ्चगदायांवै नादो भूत्प्रलयेयथा ॥ ५ ॥ भूतानांबहुधारावाजज्ञिरेखेमहाभयाः ॥ वायुश्चसुमहाञ्जज्ञे खमासीन्मेघसंकुलम् ॥ ६ ॥ या हिवैश्रवणस्यास्ते त्रैलोक्याभ्यर्चितागदा ॥ आयान्तींतांसमालोक्य तडित्सङ्घातदुर्दृशाम् ॥ ७ ॥ दैत्योगदाभिघाता र्थं शस्त्रवृष्टिंमुमोचह ॥ चक्राणिचगदाःप्रासान् भुशुण्डीःपट्टिशांस्तथा ॥ ८ ॥ परिघान्मुसलान्वृक्षान् गिरींश्चातुल विक्रमः ॥ कदर्थीकृत्यशस्त्राणि तानिसर्वाणिसागदा ॥ ९ ॥ कल्पान्तभास्करोयद्वन्न्यपतद्दैत्यवक्षसि ॥ सतयागाढ भिन्नस्सन्सफेनंरुधिरंवमन् ॥ १० ॥ निष्पपातरथाज्जम्भोवसुधाङ्गतचेतनः ॥ जम्भंनिपतितन्दृष्ट्वा कुजम्भोघोरनिश्च यः ॥ ११ ॥ धनाधिपस्यसंक्रुद्धो नादेनापूरयन्दिशः ॥ चक्रेबाणमयंजालं शकुन्तमिवपञ्जरम् ॥ १२ ॥ विच्छिद्यबाण जालन्तं मायाजालमिवोत्कटम् ॥ मुमोचबाणानपरांस्तस्ययक्षाधिपोबली ॥ १३ ॥ चिच्छेदलीलयातांश्च दैत्यः

गदा ॥ ९ ॥ कल्पान्तके सूर्यकी नाईं दैत्यकी छातीपै गिरपड़ी, उस गदासे बहुतही भेदित होताहुआ वह जम्भदैत्य फेनासमेत रुधिरको उगिलताहुआ चैतन्यतारहित होकर रथसे भूमिमें गिरपड़ा व गिरेहुये जम्भको देखकर विकराल निश्चयवाले कुजम्भने ॥ १० । ११ ॥ क्रोधित होकर शब्दसे दिशाओं को पूर्णकरते हुये कुबेरके ऊपर बाणमय जाल किया जैसे कि पक्षियों के ऊपर पिंजरा कियाजावै ॥ १२ ॥ बड़े उग्र मायाजालकी नाईं उस बाणसमूहको काटकर यक्षोंके स्वामी बलिष्ठ कुबेरने

और बाणोंको उसके ऊपर छोड़ा ॥ १३ ॥ व क्रोधवश में प्राप्त दैत्यने लीलासे उन बाणोंको काटडाला इसके अनन्तर अपने बाणोंको विफल देखकर क्रोधित कुबेर जीने ॥ १४ ॥ सौ घण्टोंसे बड़े शब्दवाली असह्य शक्तिको लेलिया इसके उपरान्त उससमय पठाई हुई उस शक्तिने उसका हृदय फाडडाला ॥ १५ ॥ जैसे कि संसार से उपजाहुआ दुःख थोड़े ज्ञानवाले पुरुषका हृदय विदारण करडालता है इसके अनन्तर इसका हृदय फाड़कर वह शक्ति भूतलमें प्राप्तहुई ॥ १६ ॥ व पलभर रुक कर भयानक आकारवाले उस दैत्यने पर्वतों के भी तोड़नेवाले पट्टिशको लिया ॥ १७ ॥ उसने समरमें उस पट्टिशसे कुबेर की छातीके बीचको काटडाला जैसे कि

क्रोधवशङ्गतः ॥ निष्फलान्स्वानथोदृष्ट्वा बाणान्क्रुद्धोधनाधिपः ॥ १४ ॥ शक्तिंजग्राहदुर्द्धर्षां शतघण्टामहास्वनाम् ॥ प्रेषितासातदाशक्तिर्दारयामासतंहृदि ॥ १५ ॥ यथाल्पबोधंपुरुषं दुःखंसंसारसम्भवम् ॥ अथास्यहृदयंभित्त्वा जगामध रणीतलम् ॥ १६ ॥ निमेषात्सोपिसंस्तभ्य दानवोदारुणाकृतिः ॥ जग्राहपट्टिशन्दैत्यो गिरीणामपिभेदनम् ॥ १७ ॥ सतेनपट्टिशेनाजौ धनदस्यस्तनान्तरम् ॥ वाक्येनतीक्ष्णरूपेण मर्मस्थानविसर्प्पिणा ॥ १८ ॥ निर्बिभेदसुजातस्य हृदयंदुर्जनोयथा ॥ तेनपट्टिशपातेन धनेशःपरिमूर्च्छितः ॥ १९ ॥ निषसादरथोपस्थे दुर्वाचासुजनोयथा ॥ तथाभूतं तुतंदृष्ट्वा धनेशंवैमृतंयथा ॥ २० ॥ राक्षसोनिर्ऋतिर्देवोनिशाचरबलानुगः ॥ अभिदुद्राववेगेन कुजम्भंभीमविक्र मम् ॥ २१ ॥ अथदृष्ट्वातिदुर्द्धर्षः कुजम्भोराक्षसेश्वरम् ॥ नोदयामासदैत्यौघान् राक्षसेशरथम्प्रति ॥ २२ ॥ सदृष्ट्वा नोदितांसेनां प्रबलान्तांसुभीषणाम् ॥ रथादाप्लुत्यवेगेननिर्ऋतीराक्षसेश्वरः ॥ २३ ॥ खड्गेनतीक्ष्णधारेण चर्मपा

दुष्ट पुरुष सुकुमार स्थानमें जानेवाले तीक्ष्णरूप वचन से सज्जन का हृदय काटता है उस पट्टिशके गिरने से कुबेर मूर्च्छित होगये ॥ १८ । १९ ॥ व रथके ऊपर गिर पड़े जैसे कि दुष्ट वचन से सज्जन गिरपड़ै वैसे कुबेरको मरेहुये की नाईं देखकर ॥ २० ॥ निशाचरोंकी सेना पीछे लिये राक्षस निर्ऋति देवजी वेगसे भयकर पराक्रम वाले कुजम्भके सामने दौड़े ॥ २१ ॥ इसके अनन्तर राक्षसेश निर्ऋतिको देखकर असह्य कुजम्भने निर्ऋति के रथके समीप दैत्यगणों को पठाया ॥ २२ ॥ व पठाई हुई उस प्रबल व भयंकर सेनाको देखकर राक्षसोंके स्वामी निर्ऋति देवजी वेगसे रथसे कूदकर ॥ २३ ॥ तेजधारवाली तलवार समेत ढालको हाथमें लियेहुये दौड़े

व जैसे कमलोंके तड़ागमें हाथी पैठताहै वैसेही दानवों की सेनामें पैठकर उन्हों ने बहुतही पीड़ित किया व हज़ारों दैत्योंको काटडाला किसीको तिल २ भर काट
डाला व अन्य दैत्योंको उत्तम तलवार से काटा ॥ २४।२५ ॥ उन निर्ऋतिने दैत्यों के कटेहुये ओठ व मुखोंसे पृथ्वीको पूर्ण करदिया तदनन्तर बहुतही निःशेष अपनी
सेनाको देखकर उससमय ॥ २६ ॥ कुजम्भ दैत्य कुबेरको छोड़कर निर्ऋतिके निकटगया व चैतन्यता पाकर उस जम्भने भी जीतेहुये हज़ारों कुबेरके चरणानुगा-
मियोंको फँसरियों से बांधकर पकड़ लिया व मूर्त्तिमान् रत्नों तथा पद्मादि निधियों को लेलिया ॥ २७ । २८ ॥ व दिव्य सवारियों और समस्त विमानों को लेलिया

णिरधावत ॥ प्रविश्यदानवानीकं गजःपद्मसरोयथा ॥ २४ ॥ लोडयामासबहुधान्यकृन्ततसहस्रशः ॥ चिच्छेदकांश्चि
त्तिलशो बिभेदान्यान्वरासिना ॥ २५ ॥ संछिन्नौष्ठमुखैःपृथ्वी दैत्यानांसोभ्यपूरयत ॥ ततोनिश्शेषितप्रायांविलोक्य
स्वाञ्चमून्तदा ॥ २६ ॥ मुक्त्वाधनपतिन्दैत्यः कुजम्भोनिर्ऋतिंययौ ॥ लब्धसंज्ञश्चजम्भोपि धनाध्यक्षपदानुगान् ॥
२७ ॥ जीवग्राहान्सजग्राह बद्ध्वापाशैस्सहस्रशः ॥ मूर्त्तिमन्तिचरत्नानि पद्मादींश्चनिधींस्तथा ॥ २८ ॥ वाहनानिचदि
व्यानि विमानानिचसर्वशः ॥ धनेशोलुब्धसंज्ञोथ तामवस्थांविलोक्यच ॥ २९ ॥ निःश्वसन्दीर्घमुष्णञ्च रोषताम्र
विलोचनः ॥ ध्यात्वास्त्रङ्गारुडंदिव्यं बाणंसन्धायकार्मुके ॥ ३० ॥ मुमोचदानवानीके तंबाणंशत्रुदारणम् ॥ प्रथमंका
र्मुकंतस्य वह्निज्वालमदृश्यत ॥ ३१ ॥ निस्सृताश्चस्फुलिङ्गानांकोटयोधनुषस्ततः ॥ ततोज्वालाकुलंव्योमचक्रेचास्त्रंस
मन्ततः ॥ ३२ ॥ तदस्त्रंसहसादृष्ट्वाजम्भोभीमपराक्रमः ॥ सांवर्तमुमुचेतेजस्तच्छान्तंगारुडन्तदा ॥ ३३ ॥ ततस्तदा

इसके अनन्तर चैतन्यता पाकर व उस दशाको देखकर बहुतही गरम सांस लेतेहुये क्रोधसे अरुण नेत्रोंवाले कुबेरजी ने गारुड अस्त्रको ध्यानकर दिव्यबाण को धनुष
पै सन्धान कर ॥ २९।३० ॥ व शत्रुको काटनेवाले उस भयंकर बाणको दैत्योंकी सेनामें छोड़ा पहले उनका धनुष अग्निकी ज्वालावाला देखपड़ा ॥ ३१ ॥ तदनन्तर
धनुष से करोड़ो चिनगारियां निकलीं उसके उपरान्त अस्त्रने सब ओरसे आकाशको ज्वालाओं से व्याप्त करदिया ॥ ३२ ॥ अचानकही उस अस्त्रको देखकर भयानक

बलवाले जम्भने सांवर्त्त अस्त्र को छोड़ा तब गरुड़ अस्त्रका वह तेज शान्त होगया ॥ ३३ ॥ तदनन्तर क्रोधसे विकल दैत्य उन कुबेरजीको देखकर शब्द करता हुआ
पैदल वेगसे कुबेरजीके सामने दौड़ा ॥ ३४ ॥ तदनन्तर भागते हुये उन कुबेरका रत्नोंसे शोभित व प्रकाशित मुकुट आकाशसे सूर्यबिम्बकी नाईं पृथ्वी में गिरपडा ॥
३५ ॥ और कुलीन यक्षोंकी सेना समरसे न भगी क्योंकि समरशिरमे हमलोगों का मरना योग्य भूषणहै ॥ ३६ ॥ यह विचारकर अनेक भांतिके शस्त्रास्त्रोंको हाथमे
लिये युद्धकी इच्छावाले असह्य यक्ष मुकुटके चारो ओर वर्त्तमान होकर खडेहुये ॥ ३७ ॥ जो कि कुबेर के चरणानुगामी वीर अभिमानरूप धनवालेथे उनको क्रोध

नवोदृष्ट्वाकुबेरंरोषविह्वलः ॥ अभिदुद्राववेगेन पदातिर्धनदंनदन् ॥ ३४ ॥ ततःपलायतस्तस्य मुकुटोरत्नमण्डि
तः ॥ पपातभूतलेदीप्तोरविबिम्बमिवाम्बरात् ॥ ३५ ॥ यक्षाणामभिजातानांभग्नंसैन्यंनवैरणात् ॥ मर्त्तुंसंग्रामशिरसि
युक्तंनोभूषणंयतः ॥ ३६ ॥ इतिव्यवस्यदुर्द्धर्षानानाशस्त्रास्त्रपाणयः ॥ युयुत्सवःस्थितायक्षा मुकुटंपरिवर्तिनः ॥
३७ ॥ अभिमानधनावीरा धनदस्यपदानुगाः ॥ तानमर्षाच्चसंप्रेक्ष्यदानवश्चण्डपौरुषः ॥ ३८ ॥ भुशुण्डींभीषणाका
रांगृहीत्वाशैलगौरवाम् ॥ रक्षिणोमुकुटस्याथनिष्पिपेषनिशाचरान् ॥ ३९ ॥ तान्प्रमथ्याथनियुतंमुकुटन्तंस्वकेरथे॥
समारोप्यामररिपुर्जित्वाधनदमाहवे ॥ ४० ॥ धनानिचनिधीन्गृह्यस्वसैन्येनसमायुतः ॥ नादेनमहतादेवान्द्रावया
माससर्वशः ॥ ४१ ॥ मायाममोघामाश्रित्यतामसींराक्षसेश्वरः ॥ मोहयामासदैत्येन्द्राञ्जगत्कृत्वातमोमयम् ॥४२॥
ततोविफलनेत्राणिदानवानांबलानिच ॥ नशेकुश्चलितुन्तत्रपदादपिपदन्तदा ॥ ४३ ॥ ततोनानास्त्रवर्षेण दानवानां

से देखकर प्रचण्ड पराक्रमवाले दानवने ॥ ३८ ॥ भयानकरूपवाली व पर्वत के समान गरुई बन्दूक को लेकर इसके उपरान्त मुकुट के रक्षक निशाचरोंको मारा ॥
३९ ॥ और उन लक्ष वीरों को मारकर उस मुकुट को अपने रथपै धरकर उस देवशत्रु ने समर मे कुबेरको जीतकर ॥ ४० ॥ धन व निधियों को लेकर अपनी
सेना से संयुतहो बडे शब्द से सब देवताओ को भगादिया ॥ ४१ ॥ व राक्षसेश निर्ऋतिने सफल तामसी माया के आश्रित होकर संसार को अन्धकारमय करके
दैत्योत्तमोंको मोह कराया ॥ ४२ ॥ तदनन्तर दानवो की सेनायें विफल नेत्रवाली होगई व उससमय समरमें पगसे पगभर भी चलने के लिये न समर्थ हुई ॥ ४३ ॥

तदनन्तर निर्ऋतिदेव ने अन्धकारसे बहुतही पूर्ण दानवों की बड़ी सेनाको अनेक प्रकार के अस्त्रोंकी वर्षा से मारा ॥ ४४ ॥ दैत्यों के मारेजानेपर जब कुजम्भ का चित्त मोह गया तब कल्पान्त मेघोंके समान दानवेन्द्र महिषने ॥ ४५ ॥ उल्का के समूह से शोभित सावित्र (सूर्यवाला) अस्त्र प्रयोग किया इसके अनन्तर प्रतापी सावित्र परमास्त्र के बढ़नेपर ॥ ४६ ॥ बड़ा विकराल अन्धकार नाश होगया तदनन्तर अस्त्रकी चिनगारियों से अन्धकार श्वेत होगया ॥ ४७ ॥ जैसे कि शरदृऋतुमें फूलेहुये लाल कमलसमूहोंवाला निर्मल तड़ाग श्वेत होताहै तदनन्तर अन्धकार शान्त होनेपर प्राप्त दृष्टिवाले दैत्येन्द्रोंने ॥ ४८ ॥ क्रूर मनसे देवसेनामें बड़ा आश्चर्य

महाचमूम् ॥ जघाननिर्ऋतिर्देवस्तमसासम्भृतांभृशम् ॥ ४४ ॥ हन्यमानेषुदैत्येषुकुजम्भेमूढचेतसि ॥ महिषोदानवेन्द्रस्तु कल्पान्ताम्भोदसन्निभः ॥ ४५ ॥ अस्त्रञ्चकारसावित्रमुल्कासङ्घातमण्डितम् ॥ विजृम्भत्यथसावित्रे परमास्त्रेप्रतापिनि ॥ ४६ ॥ प्रणाशमगमत्तीव्रन्तमोघोरमनन्तरम् ॥ ततोऽस्त्राग्निस्फुलिङ्गेभ्यस्तमःशुक्लंव्यजायत ॥ ४७ ॥ प्रोत्फुल्लारुणपद्मौघंशरदीवामलंसरः ॥ ततस्तमसिसंशान्तेदैत्येन्द्राःप्राप्तचक्षुषः ॥ ४८ ॥ चक्रुःक्रूरेणमनसादेवानीकंमहाद्भुतम् ॥ अथादायधनुर्घोरमिषुंचाशीविषोपमम् ॥ ४९ ॥ कुजम्भेधावतिक्षिप्रं रक्षोराजबलम्प्रति ॥ राक्षसेन्द्रस्तथायान्तं दृष्ट्वातंसपदानुगैः ॥ ५० ॥ विव्याधनिशितैर्बाणैः कालाशनिसमप्रभैः ॥ नादानञ्चसन्धानं नमोक्षंचास्यलक्ष्यते ॥ ५१ ॥ चिच्छेदसशरव्रातैस्ताञ्छूरानतिलाघवात् ॥ ध्वजंशरेणतीक्ष्णेन निचकर्त्तामरद्विषः ॥ ५२ ॥ सारथिञ्चास्यभल्लेन रथनीडादपाहरत ॥ कालकल्पेनबाणेन तञ्चवक्षस्यताडयत् ॥ ५३ ॥ सतुतेनप्रहारेण चकम्पेपीडितोदृढम् ॥ दै

किया इस के उपरान्त भयङ्कर धनुष व सांप के समान बाणको लेकर ॥ ४९ ॥ जब कुजम्भ निर्ऋति के सेना के सामने शीघ्रही दौड़ा तब चरणानुगामियों समेत आते हुये उस दैत्य को देखकर निर्ऋतिने ॥ ५० ॥ काल व वज्रके समान छविवाले पैने बाणोंसे बींधित किया इनका लेना व सन्धान करना व छोड़ना नहीं देखपड़ताहै ॥ ५१ ॥ उन निर्ऋति ने बड़ी शीघ्रता से उन शूरोंको शरसमूहों से काटा व देवशत्रुका ध्वजा पैनेबाण से काटडाला ॥ ५२ ॥ व रथपरसे इनके सारथीको भल्ल

अस्त्रसे मारडाला और कालके समान बाणकरके उनकी छातीमें मारा ॥ ५३ ॥ निर्ऋतिके उस प्रहारसे बहुतही व्यथित वह दैत्येन्द्र कांपताभया जैसे कि भूकम्पसे गऊ कांपती है ॥ ५४ ॥ व मुहूर्त्त (कच्ची दो घड़ी) मे सहँताकर उस शत्रुको संग्राममें न जीतने योग्य मानकर पैदलही उस दैत्यने रथपै चढ़कर बाये हाथसे निर्ऋति राक्षस के बालोंको पकड़कर व घुटनुवों से दबाके बैठगया तदनन्तर उस क्रोधी दैत्यने तलवारसे शिर काटनेकी इच्छा किया ॥ ५५ । ५६ ॥ तदनन्तर कुजम्भके वशमें प्राप्त निर्ऋति को देखकर उस समय देवताओं में बड़ा कोलाहल हुआ ॥ ५७ ॥ इसी अवसर में पाशधारी वरुणदेवजी ने दौडके दानवेन्द्रकी दोनों

त्येन्द्रोराक्षसेन्द्रेण क्षितिकम्पेनगौर्यथा ॥ ५४ ॥ समुहूर्त्तात्समाश्वस्य मत्वातंदुर्ज्जयंरणे ॥ पदातिरारुह्यरथं रक्षोवामकरेणच ॥ ५५ ॥ केशेषुनिर्ऋतिंगृह्य जानुनाक्रम्यचास्थितः ॥ ततःखड्गेनचाशिरश्छेत्तुमैच्छदमर्पणः ॥ ५६ ॥ ततःकलकलोजज्ञे देवानांसुमहांस्तदा ॥ कुजम्भस्यवशंप्राप्तं दृष्ट्वानिर्ऋतिमाहवे ॥ ५७ ॥ एतस्मिन्नन्तरेदेवो वरुणःपाशभृद्द्रुतः ॥ पाशेनदानवेन्द्रस्य ववन्धाशुभुजद्वयम् ॥ ५८ ॥ ततोबद्धभुजन्दैत्यं विफलीकृतपौरुषम् ॥ ताडयामास गदया पाशमुत्सृज्यपाशभृत् ॥ ५९ ॥ सतुतेनप्रहारेण स्रोतोभिःक्षतजंस्रवन् ॥दधारकालमेघस्य रूपंविद्युल्लताभृतः॥ ६० ॥ तदवस्थागतंदृष्ट्वा कुजम्भंमहिषासुरः ॥ व्यावृत्तवदनोभूत्वा भोक्तुमैच्छत्सुरावुभौ ॥ ६१ ॥ निर्ऋतिंवरुणञ्चैव तीक्ष्णदंष्ट्रोत्कटाननः ॥ तावभिप्रायमालक्ष्य तस्यदैत्यस्यदूषितम् ॥ ६२ ॥ त्यक्त्वारथावुभौभीतौ पदातीप्रद्रुतौद्रुतम् ॥ जग्मतुर्महिषाद्भीतौशरणंपाकशासनम् ॥ ६३॥ क्रुद्धोथमहिषोदैत्योवरुणंसमुपाद्रवत् ॥ तमन्तकमुखाकारमालो

भुजाओं को शीघ्रही फँसरी से बाध लिया ॥ ५८ ॥ तदनन्तर पाशधारी वरुण ने फँसरी छोड़कर विफल किये पौरुषवाले व बँधीहुई भुजाओंवाले दैत्यको गदासे मारा ॥५९॥ और उस प्रहारके कारण स्रोत याने कर्ण व नासादिकोंसे रक्तको बहातेहुये उस दैत्यने समयमें बिजुलीरूप लताको धारनेवाले मेघकारूप धारण किया ॥ ६० ॥ उस दशामें प्राप्त कुजम्भ को देखकर फैलाये मुखवाला होकर तेजदाढ़ों से भयानक मुख वाले महिषासुर ने निर्ऋति व वरुण दोनों देवताओं को खानेकी इच्छा किया उस दैत्यका दूषित प्रयोजन देखकर वे ॥ ६१ । ६२ ॥ दोनों देवता डर कर रथ छोड़कर शीघ्रही पैदल भगे और महिषासुर से डरेहुये दोनों इन्द्रकी शरण

में गये ॥ ६३ ॥ इसके अनन्तर क्रोधित होताहुआ महिषासुर दैत्य वरुण के सामने दौड़ा यमराज के मुखकी आकृतिवाले उस दैत्यको देखकर चन्द्रमाने ॥
६४ ॥ शस्त्रसे रचित बडा तीव्र हिमसमूह किया व चन्द्रमा ने दूसरा अतुल वायव्य अस्त्र किया ॥ ६५ ॥ उस प्रचण्ड पवन व सूखेपाला के कारण जाड़ेसे छिपे
पराक्रमवाले सब दानव दुःखित होगये ॥ ६६ ॥ व उस युद्धमें चलने व शस्त्रलेने को भी न समर्थहुये बडे पालाके गिरने व चन्द्रमा से चलायेहुये शस्त्रोंसे ॥ ६७ ॥
असुरसेनाओं के अङ्ग सबओर से जलगये और जाड़ेसे कम्पित मुखवाला महिषासुर उपायहीन होकर ॥ ६८ ॥ हाथोंसे कन्धोंको पकड़कर नीचे मुखकरके बैठगया

क्यहिमदीधितिः ॥ ६४ ॥ चक्रेशस्त्रविसृष्टंहि हिमसङ्घातमुल्बणम् ॥ वायव्यंचास्त्रमतुलं चन्द्रश्चक्रेद्वितीयकम् ॥ ६५ ॥
वायुनातेनचण्डेन संशुष्केणहिमेनच ॥ व्यथितादानवास्सर्वेशीताच्छादितपौरुषाः ॥ ६६ ॥ नशेकुश्चलितुंतत्र नास्त्रा
ण्यादातुमेवच ॥ महाहिमनिपातेन शस्त्रैश्चन्द्रप्रणोदितैः ॥ ६७ ॥ गात्राण्यसुरसैन्यानामदह्यन्तसमन्ततः ॥ महिषो
निष्प्रयत्नस्तु शीतेनकम्पिताननः ॥ ६८ ॥ अंसावालम्ब्यपाणिभ्यामुपविष्टोह्यधोमुखः ॥ सर्वेतेनिष्प्रतीकारा दैत्याश्च
न्द्रमसाजिताः ॥ ६९ ॥ रणेच्छान्दूरतस्त्यक्त्वा तस्थुस्तेजीवितार्थिनः ॥ तत्राब्रवीत्कालनेमिर्दैत्यान्क्रोधविदीपितः ॥
७० ॥ भोभोःशृङ्गारिणःशूराः सर्वशस्त्रास्त्रपारगाः ॥ एकैकोपिजगत्कृत्स्नं शक्तस्तुलयितुंभुजैः ॥ ७१ ॥ एकैकोपित्व
मोग्रस्तुं जगत्सर्वंचराचरम् ॥ एकैकस्यापिपर्याप्ता नसर्वेपिदिवौकसः ॥ ७२ ॥ किंत्रस्तनयनाश्चैवं समरेपरिनिर्जिताः॥
नयुक्तमेतच्छूराणां विशेषाद्दैत्यजन्मनि ॥ ७३ ॥ राज्ञश्चतारकस्यापि दर्शयिष्यथकिंमुखम् ॥ विरतानांरणाच्चासोक्रु

और उपायहीन वे सब दैत्य चन्द्रमा से जीतेगये ॥ ६९ ॥ और युद्धकी इच्छाको दूर छोड़कर जीवके चाहनेवाले वे दैत्य खड़ेहोगये वहां क्रोधसे प्रज्वलित काल-
नेमिने दैत्योंसे कहा ॥ ७० ॥ कि अहो सब शस्त्रास्त्रो के पारगामी, शृङ्गारवाले वीरो ! एक २ भी भुजाओं से सब संसार को तोलने के लिये समर्थहो ॥ ७१ ॥ व एक २
भी सब चराचर संसारको ग्रसनेके लिये समर्थहो व एक २ के भी आगे सब देवता नहीं समर्थ हैं ॥ ७२ ॥ ऐ डरेहुये नेत्रोंवाले ! समर में इस प्रकार हारेहुये क्योंहो यह
वीरोंको योग्य नहीं है व दैत्यके जन्ममे विशेषतासे योग्य नहीं है ॥ ७३ ॥ और तुम लोग तारक राजाकोभी कौन मुख दिखावोगे व क्रोधित होकर यह समर से शान्त

दैत्योंके प्राणोंको हरैगा ॥ ७४ ॥ इस प्रकार कहेहुये भी उन महासुरों ने कुछ नहीं कहा जोकि जाड़ासे नष्ट कानोंवाले व भ्रष्टवसनादिवाले थे ॥ ७५ ॥ और वैसेही महायुद्ध में मरेहुये से दैत्य बावले होगये जाड़ेसे पीडित व नष्ट चैतन्यतावाले उन दैत्योंको देखकर ॥ ७६ ॥ समयके योग्य कार्यको मानकर महादैत्य कालनेमि ने बडेभारी शरीर को विस्तारकर सूर्यकी मायाको रचकर ॥ ७७ ॥ आकाश, दिशा व विदिशाओं को पूर्णकरादिया व इस दानवेन्द्रने शरीर में दश हजार सूर्यनारायण बनाया ॥ ७८ ॥ और दिशा, विदिशाओं को प्रचण्ड अग्नियोंसे पूर्णकिया तदनन्तर क्षणभर में समस्त त्रिलोक ज्वालाओं से व्याप्त होगया ॥ ७९ ॥ व उस ज्वाला

द्धः प्राणान्हरिष्यति ॥ ७४ ॥ इतितेप्रोच्यमानापि नोचुःकिञ्चिन्महासुराः ॥ शीतेननष्टश्रुतयो भ्रष्टवाक्यादयस्तथा ॥ ७५ ॥ मूकास्तथाभवन्दैत्या मृतकल्पामहारणे ॥ तान्दृष्ट्वानष्टचेतस्कान्दैत्याञ्छीतेनपीडितान् ॥ ७६ ॥ मत्वाकालक्षमंकार्यं कालनेमिर्महासुरः ॥ विसृज्यभानवींमायां वितत्यचमहावपुः ॥ ७७ ॥ पूरयामासगगनंदिशोविदिशएव च ॥ निर्ममेदानवेन्द्रोसौ शरीरेभास्करायुतम् ॥ ७८ ॥ दिशश्चविदिशश्चण्डैः पूरयामासपावकैः ॥ ततोज्वालाकुलं सर्वं त्रैलोक्यमभवत्क्षणात् ॥ ७९ ॥ तेनज्वालासमूहेन हिमांशुमगमच्छमम् ॥ ततःक्रमेणविभ्रष्टशीतदुर्दिनमाव भौ ॥ ८० ॥ तद्बलंदानवेन्द्राणां माययाकालनेमिनः ॥ तन्दृष्ट्वादानवानीकं लब्धसंज्ञंदिवाकरः ॥ ८१ ॥ उवाचारुणमत्यर्थं कोपरक्तान्तलोचनः ॥ दिवाकरउवाच ॥ नयत्वंमेरथंशीघ्रं कालनेमिरथोयतः ॥ ८२ ॥ विमर्दस्तत्रविषमो भविताभूतसंक्षयः ॥ एषोजितश्शशाङ्कोत्र वयंयद्बलमाश्रिताः ॥ ८३ ॥ इत्युक्तोनोदयामास रथंगरुडपूर्वजः ॥ रश्मे

समूहसे चन्द्रमा शान्तिको प्राप्तहोगया तदनन्तर क्रमसे कालनेमिकी मायासे नष्ट हुये जाड़ेके दुर्दिनवाली दानवेन्द्रकी सेना शोभितहुई व चैन्यता पायेहुई उस दैत्य की सेना को देखकर सूर्यदेवजी ॥ ८० । ८१ ॥ बहुतही लाललोचनोंवाले होकर अरुण सारथीसे बोले सूर्यनारायण बोले कि जहां कालनेमिका रथहै वहां तुम मेरे रथको शीघ्र लेचलो ॥ ८२ ॥ वहां प्राणियोंके नाशवाला बड़ा युद्धहोगा इस युद्धमें ये चन्द्रमा जीतेगये कि जिनके बलमें हम आश्रितहैं ॥ ८३ ॥ ऐसा कहेहुये गरुड़के बड़े भाई

अरुणने रथको चलाया व श्वेत चँवर धारनेवाले उत्तम घोड़ोंसे संयुत रथपै बैठे हुये ॥ ८४ ॥ संसारके दीपकरूप भगवान् सूर्यनारायण ने बड़े धनुषको लिया व हे
पाण्डुपुत्र ! विषधारी सर्पोंके समान शोभावाले दो बाणोंको लिया ॥ ८५ ॥ एक बाण को शम्बरास्त्र (शाम्बरीमाया) से सन्धानकर छोडा व इन्द्रजाल से लगाये हुये
दूसरे बाणकोछोडा ॥ ८६ ॥ क्षणभर में शम्बरास्त्रने उनके रूपको उलटा किया कि देवताओं का दानवरूप व दानवों का देवरूप होगया ॥ ८७ ॥ अपनेही दैत्योंको
देवता मानकर क्रोधसे संयुत कालनेमि भयंकर अस्त्रोंकी शीघ्रतासे संहारमें यमराजकी नाईं मारा ॥ ८८ ॥ कितनों को तेज तलवार व कितने दैत्यों को बाणवृष्टि और

स्थितोंशुमैरश्वैः सितचामरधारिभिः ॥ ८४ ॥ जगद्दीपोथभगवाञ्जग्राहविततंधनुः ॥ शरौचद्वौपाण्डुपुत्र विषमाशीविष
द्युती ॥ ८५ ॥ शम्बरास्त्रेणसन्धाय बाणमेकंससर्ज्जह ॥ द्वितीयंचेन्द्रजालेन योजितंप्रमुमोचह ॥ ८६ ॥ शम्बरास्त्रंक्षणाच्चक्रे
तेषांरूपविपर्य्ययम् ॥ देवानान्दानवंरूपं दानवानाञ्चदैविकम् ॥ ८७ ॥ मत्वासुरान्स्वकानेव जघ्नेघोरास्त्रलाघवात् ॥ का
लनेमीरुषाविष्टः कृतान्तइवसंक्षये ॥ ८८ ॥ कांश्चित्खड्गेनतीक्ष्णेन कांश्चिन्नाराचवृष्टिभिः ॥ कांश्चिद्गदाभिर्घोराभिः
कांश्चिद्घोरैःपरश्वधैः ॥ ८९ ॥ शिरांसिकेषाञ्चिदपातयत्सभुजान्रथान्सारथींश्चोग्रवेगः ॥ कांश्चित्पिपेषाथरथस्यवेगा
त्कांश्चित्तथात्यद्भुतमिष्टघातैः ॥ ९० ॥ कालनेमीरुषाविष्टस्तेषांरूपंनबुद्धवान् ॥ ततोनिमिश्चदैत्येन्द्रंमत्वादेवंमहाज
वः ॥ ९१ ॥ केशेषुगृह्यतंवीरंचकर्षचननादच ॥ ततोनिमिरुवाचेदंकालनेमिंमहाबलम् ॥ ९२ ॥ अहंनिमिःकालनेमेसुरं
मत्वावधस्त्वमा ॥ भवतामोहितेनाजौदेवान्मत्वासुराःस्वकाः ॥ ९३ ॥ सुरैःसुदुर्जयाःकोट्योनिहतादशविद्धितत ॥ सर्वास्त्र

किसीको भयानक गदाओं व कितने देवरूपधारी दैत्यों को भयंकर परश्वधोंसे मारा ॥ ८९ ॥ व भयकर वेगवाले उसने किसीके मस्तकों व भुजाओंको गिरादिया और
रथों व सारथियों को काटडाला व कितनोंको रथके वेगसे पीसडाला और कितने दैत्योंको अद्भुत ईटकी चोटोंसे मारा ॥ ९० ॥ क्रोधसे सयुत कालनेमि ने उनका
रूप नही जाना और तदनन्तर बड़े वेगवान् कालनेमी ने दैत्येन्द्र निमिको देवता मानकर ॥ ९१ ॥ उस वीर के बाल पकड कर खीचा व शब्द किया तदनन्तर निमि
ने बड़े बलिष्ठ कालनेमिसे कहा ॥ ९२ ॥ कि हे कालनेमि ! मैं निमिहूं देवता मानकर मतमारो संग्राममें मोहित आपने अपने दानवों को देवता मानकर माराहै ॥ ९३ ॥

व देवताओंने दश करोड़ दैत्यों को माराहै उसको जानिये व शीघ्रतासंयुत होकर समस्त अस्त्रों के रोंकनेवाले ब्राह्मय अस्त्रको छोड़िये ॥ ६४ ॥ उनसे जनायेहुये
भ्रमसे विकल कालनेमि दैत्यने शीघ्रतासंयुत होकर उसको छोड़के ब्रह्मास्त्रसे किये हुये अस्त्रको छोड़ा ॥ ६५ ॥ तदनन्तर बहुतही आश्चर्यमय ब्रह्मास्त्र आकाशमें जल-
ताभया व देवताओं की सबही सेना भयसे विकलहुई ॥ ६६ ॥ तदनन्तर उस समय ब्राह्मय अस्त्रसे ताड़ित शम्बरास्त्र शान्तहोगया उस अस्त्रके ताड़ित होनेपर बहुतही
क्रोधित सूर्यदेव स्वामीने ॥ ६७ ॥ बड़े इन्द्रजाल मे प्राप्तहोकर अपना शरीर भयंकर किया जो सूर्य कि चमकती हुई किरणों के समूहसे त्रिलोकको घेरेथे ॥ ६८ ॥

वारणंमुञ्चब्राह्मयमस्त्रंत्वरान्वितः ॥९४॥ सतेनबोधितोदैत्योमुक्तातंसंभ्रमाकुलः ॥ बाणंब्रह्मास्त्रविहितंमुमोचत्वरयान्वि
तः ॥ ९५ ॥ ब्रह्मास्त्रंसंप्रजज्वालततःखेसुमहाद्भुतम् ॥ देवानाञ्चाभवत्सैन्यंसर्वमेवभयाकुलम् ॥ ९६ ॥ शम्बरास्त्रंततः
शान्तंब्राह्मयप्रतिहतन्तदा ॥ तस्मिन्प्रतिहतेह्यस्त्रेसंक्रुद्धोभास्करःप्रभुः ॥ ९७ ॥ महेन्द्रजालमाश्रित्य चक्रेस्वांभीषणा
न्तनुम् ॥ विस्फूर्जत्करसंघातसमाक्रान्तजगत्त्रयः ॥ ९८ ॥ ततापदानवानीकंगलन्मज्जाङ्घ्रिशोणितम् ॥ चक्षूंषिदान
वेन्द्राणाञ्चकारान्धानिसप्रभुः ॥ ९९ ॥ गजानामगलन्मेदःपेतुश्चापिरथाभुवि ॥ तुरङ्गमाश्श्वसन्तश्चघर्मार्त्तारथिनोपि
च ॥ १०० ॥ इतश्चेतश्चसलिलंप्रार्थयन्तस्तृषातुराः ॥ गिरिद्रोणीश्चपादांश्च गिरीणाङ्गहनानिच ॥ १ ॥ तेषांप्रार्थयतां
शीघ्रमन्योन्यस्यविसर्पिणाम् ॥ दावाग्निरज्वलत्तीव्रोघोरार्चिर्दग्धपादपः ॥ २ ॥ तोयार्थिनःपुरोदृष्ट्वातोयंकल्लोलमा
लिनम् ॥ पुरःस्थितमपिक्षीरंनशेकुरुपपादितुम् ॥ ३ ॥ अप्राप्यसलिलम्भूमावभ्याशेद्रुतमेवते ॥ यत्रतत्रव्यदृश्यन्त

उन स्वामी सूर्यनारायण ने गिरतीहुई मज्जा, चरण व रक्तवाली सेनाको जलाया व दानवेन्द्रों के नेत्र अन्धे किया ॥ ६९ ॥ हाथियों की मेदा गिरी व रथभी भूमिमें
गिरे और घामसे विकल हाथी व रथीभी श्वासलेते हैं व प्याससे विकलहोकर इधर उधर जल व पर्वतकी कन्दरा व समीपके छोटे पहाड और पर्वतोंके वनोंको चाहते
थे ॥ १०० । १ ॥ आपसमें इधर उधर घूमतेहुये उन सबोंके चाहनेपर बडा तीव्र दौरहा जला जिसने कि भयानक तापसे वृक्षोंको जलादिया था ॥ २ ॥ व जलके
चाहनेवाले प्राणी बड़ी लहरियो की मालावाले जलको आगे देखकर अगाड़ी प्राप्त भी जलको पानेके लिये न समर्थहुये ॥ ३ ॥ भूमिमें समीपही जलको न पाकर वे

दैत्येश्वर शीघ्रही जहां तहां भूमिमे मरे देखपड़े ॥ ४ ॥ और घोड़ों समेत रथ व हाथी गिरपड़े व गिरतेहुये मज्जा, मेदा व रक्तको उगिलते तथा दौड़ते हुये ॥ ५ ॥
करोड़ २ दानव मरे देखपडते है उस बडे युद्धमें इस प्रकार दानवों के नाशहोनेपर ॥ ६ ॥ बड़े क्रोधसे घूमे लोचनोंवाला क्रोध संयुत यह कालनेमि चमकतीहुई
भयंकर बिजुलीवाला कालमेघ होगया ॥ ७ ॥ जोकि गम्भीर तालके शब्दवाला व संसारके हृदयको कँपानेवाला था उसने आकाशको आच्छादित कर सब सूर्यका
प्रकाश नाश करदिया ॥८॥ और दानवेन्द्रकी सेनामे ठण्ढा जल बरसाया तदनन्तर उस वृष्टिको पाकर दैत्य क्रमसे स्वस्थ हुये ॥ ९ ॥ जैसे कि कुम्हिलाये हुये बीजके

मृतादैत्येश्वराभुवि ॥ ४ ॥ रथागजाश्चपतितास्तुरङ्गैश्चसमन्विताः ॥ स्थितावमन्तोधावन्तोगलन्मज्जावसासृजम् ॥
५ ॥ दानवानांकोटिकोटिर्यदृश्यन्तमृताइव ॥ एवंक्षयेदानवानांतस्मिन्महतिसंयुधि ॥ ६ ॥ प्रकोपोद्वृत्तताम्राक्षः
कालनेमीरुषान्वितः ॥ बभूवकालमेघोसौस्फुरद्दीप्तशतह्रदः ॥ ७ ॥ गम्भीरास्फोटनिर्ह्रादोजगद्धृदयकम्पनः ॥ प्रच्छा
द्यगगनंसूर्यप्रभांसर्वांव्यनाशयत ॥ ८ ॥ ववर्षशीतञ्चजलंदानवेन्द्रबलंप्रति ॥ दैत्यास्तांवृष्टिमासाद्यसमाश्वस्तास्त
तःक्रमात् ॥ ९ ॥ बीजाङ्कुराइवम्लानाः प्राप्यवृष्टिन्धरातले ॥ ततःसमेघरूपीतु कालनेमिर्महासुरः ॥ १० ॥ शस्त्रवृ
ष्टिंववर्षोग्रां देवानीकेषुदुर्जयाम् ॥ तयावृष्ट्यापीड्यमानादैत्यैरन्यैश्चदेवताः ॥ ११ ॥ गतिंकाञ्चिन्नपश्यन्तिगावःशी
तार्दिताइव ॥ परस्परंविलीयन्तोगजेषुतुरगेषुच ॥ १२ ॥ रथेषुचभयत्रस्तास्तत्रतत्रनिलिल्यिरे ॥ एवंतेलीयमानाश्चनि
हताःकालनेमिना ॥ १३ ॥ दृश्यन्तेपतितादेवाःशस्त्रभिन्नाङ्गसन्धयः ॥ विभिन्नाभिन्नमूर्धानस्तथाभिन्नोरुजानवः॥१४॥

अखुवा भूतलमें वृष्टि पाकर चैतन्य होजाते हैं उसके उपरान्त मेघरूपी उस कालनेमि महादैत्य ने ॥ १० ॥ देवसेनाओं मे असहा व भयंकर शस्त्रवृष्टिकी वर्षाकिया
अन्य दैत्योंकरके उस वृष्टिसे पीडित देवता ॥ ११ ॥ जाडे से विकल गाइयों की नाई किसी गतिको नही देखतेथे व आपसमे हाथी घोडोंके समीप छिपतेथे ॥१२॥
व भयभीत होकर जहां तहा रथोंमें छिपतेथे इस प्रकार छिपेहुये वे देवता कालनेमिसे मारेगये ॥ १३ ॥ और शस्त्रोंसे कटेहुये अंगके जोडोंवाले व कटेहुये देवता गिरे

देखपडते हैं कि जिनके मस्तक कटेहैं व जंघा और घुट्ना कटगये हैं ॥१४॥ जोकि गिरेहुये ध्वजाके दण्डोंसे लौटेहुये रथोंके समानथे व हज़ार घोडों और दशहजार हाथियो को ॥ १५ ॥ वैसेही दशहजार रथ व एक लक्ष गन्धर्व, पांच लक्ष यक्ष व वैसेही किन्नरोंको ॥ १६ ॥ व स्वर्गमे प्रसिद्ध सात लक्ष देवताओ को उस निडर दैत्यने मारा और अन्य सुरजातिगणवालोंकी गिनती नहीं है ॥ १७ ॥ गर्वसे उग्र उस कालनेमिने क्रोधित होकर करोडों दैत्योको मारा उस समय देवताओंके बहुत नाशवाले उस युद्धके इसप्रकार वर्त्तमान होनेपर ॥१८॥ विचित्र माला व कवचोंसे उज्ज्वल उन अश्विनीकुमार देवताओंने क्रोधित होकर समरमें एक२ दैत्यको साठि

विपर्यस्तरथाभानिपतितध्वजयष्टिभिः ॥ तुरङ्गाणांसहस्राणिगजानामयुतानिच ॥ १५ ॥ रथानामयुतंतद्वद्गन्धर्वाणांदशायुतम् ॥ यक्षाणांपञ्चलक्षाणिकिन्नराणान्तथैवच ॥ १६ ॥ जघ्नेचनाकमुख्यानांसप्तलक्षाणिनिर्भयः ॥ इतरेषान्नसंख्यास्तिसुरजातिनिकायिनाम् ॥ १७ ॥ जघ्नेसकोटिशःक्रुद्धःकालनेमिर्मदोत्कटः ॥ एवंप्रवर्तितेयुद्धेतदामरमहाक्षये ॥१८॥ संक्रुद्धावश्विनौवीरौचित्रस्रक्कवचोज्ज्वलौ ॥ जघ्नतुस्तौरणेदैत्यमेकैकंषष्टिभिःशरैः ॥ १९ ॥ निर्भिद्यतौमहादैत्याननेकानश्विनौमुदा ॥ ताभ्यांबाणप्रहारैस्तु किञ्चिद्विक्लवचित्ततः ॥ २० ॥ जग्राहचक्रंलक्षारं सूर्यबिम्बशताधिकम् ॥ तेनचक्रेणसोऽश्विभ्यां चिच्छेदरथकूबरम् ॥ २१ ॥ जग्राहाथधनुर्दैत्यश्शरांश्चाशीविषोपमान् ॥ ववर्षभिषजोर्मूर्ध्निसञ्छाद्याकाशगोचरम् ॥ २२ ॥ तावप्यस्त्रैःस्मृतैस्सर्वांश्चिच्छिदुर्दैत्यसायकान् ॥ तच्चकर्मतथादृष्ट्वा विस्मितःकोपमाविशत् ॥ २३ ॥ जग्राहमुद्गरंभीमं कालदण्डविभीषणम् ॥ सतमुद्भ्राम्यवेगेन चिक्षेपाश्वरथंप्रति ॥२४॥

साठि बाणोंसे मारा ॥ १९ ॥ व उन अश्विनीकुमार देवताओंने अनेको महादैत्यो को काटकर प्रसन्नतासंयुत हुये और उन दोनोंके शरप्रहारोंसे कुछ विकल चित्त करके उस दैत्यने ॥ २० ॥ सौ सूर्यबिम्बो से अधिक लाख कोटियोंवाले चक्रको लिया व उसने उस चक्रसे अश्विनीकुमारके रथके जुवांको काटडाला॥ २१॥ इसके अनन्तर दैत्यने धनुष व सर्पोंके समान बाणो को लिया व आकाशतल को आच्छादित कर वैद्योंके मस्तकपै बाणवृष्टि किया ॥ २२ ॥ उन दोनोंने भी स्मरण कियेहुये अस्त्रोंसे दैत्योंके बाणोंको काटडाला व वैसे उस कर्मको देखकर विस्मितहो दैत्य क्रोधमें पैठ गया ॥ २३ ॥ व कालदण्ड के समान भयंकर कराल मुद्गरको लिया और उग

ने उसको वेगसे घुमाकर इसके रथपै फेंकदिया ॥ २४ ॥ और आतेहुये उस मुद्गर को आकाशतल में देखकर दोनों अश्विनीकुमार वेगसे रथको छोड़कर शीघ्रता से कूदपडे ॥ २५ ॥ व स्वर्णजाल से भूषित तथा पर्वत के समान उस मुद्गर ने उन दोनों रथों को पीसकर पृथ्वीको फाडडाला ॥ २६ ॥ इसके अनन्तर युद्ध करतेहुये दानवेन्द्र के उस कर्म को देखकर विचित्र युद्ध करनेवाले वे वैद्य वज्रास्त्र को करते भये ॥ २७ ॥ व भयानक वज्रास्त्रों के प्रहारों से दानव विकल करदिये गये व रथ, ध्वजा, धनुष, छत्र और सोनेकी कवच ॥ २८ ॥ क्षण भर में सब सेना के देखते हुये सौ खण्ड होगई अश्विनीकुमार के उस कठिन कर्म को देखकर उस बड़े परा-

तंतुमुद्गरमायान्तमालोक्याम्बरगोचरे ॥ मुक्त्वारथावुभौवेगादाप्लुतौतरसाश्विनौ ॥ २५ ॥ तौरथौसतुनिष्पि
ष्यमुद्गरोचलसन्निभः ॥ दारयामासधरणीं हेमजालपरिष्कृतः ॥ २६ ॥ तस्यकर्माथतद्दृष्ट्वा भिषजौचित्रयोधिनौ ॥
वज्रास्त्रन्तुप्रकुर्वाणौ दानवेन्द्रस्ययुध्यतः ॥ २७ ॥ घोरवज्रप्रहारैस्तु दानवाविक्लवीकृताः ॥ रथोध्वजोधनुश्छत्रं क
वचंचापिकाञ्चनम् ॥ २८ ॥ क्षणेनशतधाभूतं सर्वसैन्यस्यपश्यतः ॥ तद्दृष्ट्वादुष्करंकर्म सोऽश्विभ्यामतिविक्रमः ॥
२९ ॥ नारायणास्त्रंबलवान् मुमोचरणमूर्द्धनि ॥ ततश्शशामवज्रास्त्रं कालनेमिस्ततोरुषा ॥ ३० ॥ जीवग्राहेग्रहयि
तुमश्विनौतौप्रचक्रमे ॥ तावभिप्रायमालक्ष्य सन्त्यज्यसमराङ्गणम् ॥ ३१ ॥ पदातीवेपमानाङ्गौ प्रद्रुतौवासवोयतः ॥
तयोरनुगतोदैत्यः कालनेमिर्नदन्मुहुः ॥ ३२ ॥ प्राप्येन्द्रस्यबलंक्रूरो दैत्यानीकपदानुगः ॥ कृतान्तइवकल्पान्ते य
दावासवमागतः ॥ ३३ ॥ तन्दृष्ट्वासर्वभूतानि विनेशुर्विकलानितु ॥ हाहारवंप्रकुर्वाणास्तदादेवाश्चमेनिरे ॥ ३४ ॥ प

क्रमी ॥ २९ ॥ व बलिष्ठ दैत्यने रणशीर्ष में नारायणास्त्र को छोडा उससे वज्रास्त्र शान्त होगया तदनन्तर कालनेमि ने क्रोध से ॥ ३० ॥ जीतेहुये उन अश्विनीकु-मार को पकडने की इच्छा किया उस प्रयोजनको देखकर समरका आगन छोडकर कापतेहुये अङ्गोंवाले वे दोनों पैदल होकर वहा भगगये जहां कि इन्द्रथे व बार २ शब्द करता हुआ कालनेमि दैत्य उनका अनुगामी होकर ॥ ३१ । ३२ ॥ व इन्द्र की सेना को प्राप्त होकर दैत्यसेनाचरणानुगामीवाला वह क्रूर दैत्य कल्पान्त में यमराज की नाई जब इन्द्र के समीप आया ॥ ३३ ॥ तब उसको देखकर सब विकल प्राणी भगगये व उस समय हाहा शब्द करते हुये देवताओं ने सब लोकों

की जय कारक इन्द्रकी हार माना व मुख्यपर्वत कांपने लगे और आकाशतल से उल्का गिरनेलगीं ॥ ३४ । ३५ ॥ व मेघ गरजने लगे और दिशाओं में बड़ा भारी शब्दहुआ उस प्राणियोंके निकारको देखकर भयसे विकल इन्द्रसमेत देवता ॥ ३६॥ मन करके संसार के स्वामी विष्णुकी शरणगये व स्तुति करने लगे कि ब्राह्मण को माननेवाले देवता के लिये व गऊ, ब्राह्मण के हितकारी के निमित्त नमस्कार है ॥ ३७ ॥ वही गोविन्दजी हम लोगों की रक्षा करैं भय से विकल वे देवता इस तरह कहते भये देवताओं का विचार जानकर गरुडध्वज विष्णुजी ॥ ३८॥ यह जानकर व शय्या से योगनिद्रा को छोड़कर जो विष्णु कि लक्ष्मीजी के दोनों हाथों से

राजयंमहेन्द्रस्य सर्वलोकक्षयावहम् ॥ चेलुश्शिखरिणोमुख्याः पेतुरुल्कानभस्तलात् ॥ ३५ ॥ जगर्जुर्जलदादिक्षुस म्भूतश्चमहारवः ॥ तांभूतविकृतिन्दृष्ट्वा देवास्सेन्द्राभयाकुलाः ॥ ३६ ॥ मनसाशरणंजग्मुर्वासुदेवंजगत्पतिम् ॥ नमोब्रह्मण्यदेवाय गोब्राह्मणहितायच ॥ ३७॥ सनोरक्षतुगोविन्दो भयार्तास्तेजगुस्सुराः ॥ सुराणांचिन्तितंज्ञात्वा भ गवान्गरुडध्वजः ॥ ३८ ॥ विबुध्येदंहिपर्यङ्काद्योगनिद्रांविहायच ॥ लक्ष्मीकरयुगाजस्रलालिताङ्घ्रिसरोरुहः ॥ ३९ ॥ शरदीवचनीलाब्जकान्तिदेहच्छविर्विभुः ॥ कौस्तुभोद्भासितोरस्कः कान्तकेयूरभास्करः॥ ४० ॥ विमृश्यसरसंक्षोभं वै नतेयमथाह्वयत् ॥ आहूतेचास्थितेतस्मिन् गरुडेदुःखितेभृशम् ॥ ४१ ॥ दिव्यनानास्त्रतीक्ष्णार्चिरारुह्यगरुडोपरि ॥ तत्रापश्यत्सदेवेन्द्रं भयभीतमभिद्रुतम् ॥ ४२ ॥ दानवेन्द्रैर्नवाम्भोदसच्छायैस्सर्वतोत्कटैः ॥ यथाहिपुरुषंघोरैरभा ग्यैःपूर्वसञ्चितैः ॥ ४३ ॥ तत्राणायाव्रजद्विष्णुः स्तूयमानोमुहुस्सुरैः ॥ अभाग्येभ्यःपरिवृतं सुकृतंनिर्मलंयथा ॥४४॥

सदैव दुलरायेहुये चरण कमलोंवाले थे ॥ ३९ ॥ व शरद्ऋतु में नील कमल की छवि के समान देहकी शोभावाले थे और कौस्तुभमणि से जिनका वक्षस्थल शोभित था व सुन्दर बजुल्ले से प्रकाशकारक थे ॥ ४० ॥ उन विष्णुजी ने देवताओं का क्षोभ विचारकर गरुड़ को बुलाया व बुलाने पर उन गरुड़ के बहुतही दुःखित स्थित होनेपर ॥ ४१ ॥ अनेक प्रकार के दिव्य अस्त्रोंसे तीक्ष्ण शोभावाले उन विष्णु जीने गरुड के ऊपर सवार होकर वहा भयसे डरेहुये देवेन्द्र को देखा जो कि नये मेघों के समान कान्तिवाले व सब प्रकार से उग्र दानवेन्द्रों करके घिरे थे जैसे कि पहले इकट्ठा किये हुये भयानक भाग्यों से पुरुष घिरा होवै ॥ ४२ । ४३ ॥ बार बार

देवताओं से स्तुति किये जाते हुये विष्णु जी उनकी रक्षा के लिये गये जैसे कि अभाग्यों से घिरेहुये पुरुषकी रक्षाके लिये निर्मल पुण्यहोवै ॥ ४४ ॥ इस के अनन्तर प्रकाशमण्डलवाले आकाश में दैत्येन्द्र को देखा जैसे कि उदयाचल पै प्राप्त सुन्दर सौ सूर्य होवैं ॥ ४५ ॥ उन विष्णु के तेज का प्रभाव जानने की इच्छावाले दानव कल्पान्त अग्नि की नाईं भयङ्कर गरुड़को देखा ॥ ४६ ॥ व उस गरुड पै बैठेहुये अनूप शोभावाले उन चतुर्भुज विष्णु को देखकर दानवेन्द्र हर्ष से पूरित मनवाले होगये ॥ ४७ ॥ और बोले कि ये शत्रुनाशक व सबों के रक्षक वही केशव देव हैं इनके जीत लेनेपर सब देवता जीतेगये इस में सन्देह नहीं है ॥ ४८ ॥ इनके

अथापश्यतदैत्येन्द्रो वियतिद्युतिमण्डले ॥ स्फुरन्तमुदयाद्रिस्थं कान्तंसूर्यशतंयथा ॥ ४५ ॥ प्रभावंज्ञातुमिच्छन्तो दानवास्तस्यतेजसः ॥ गरुत्मन्तंतथापश्यन् कल्पान्तानलभैरवम् ॥ ४६ ॥ तत्रस्थितञ्चतुर्बाहुं हरिञ्चानुपमद्युतिम् ॥ तमालोक्यासुरेन्द्रास्तु हर्षसम्पूर्णमानसाः ॥ ४७ ॥ अयंहिदेवस्सर्वेषां शरणंकेशवोरिहा ॥ अस्मिञ्जितेजितास्सर्वे देवाश्चनात्रसंशयः ॥ ४८ ॥ एनमाश्रित्यलोकेशायज्ञभागभुजोमराः ॥ इत्युक्त्वातेसमागम्य सर्वएवयतस्ततः ॥ ४९ ॥ कालनेमिप्रभृतयोदशदैत्यमहारथाः ॥ षष्ट्याविव्याधबाणानां कालनेमिर्जनार्दनम् ॥ ५० ॥ निमिश्शतेनबाणानां मथनोदशभिश्शरैः ॥ जम्भकश्चैवविंशत्याशुम्भोदशभिरेवच ॥ ५१ ॥ शेषादैत्येश्वरास्सर्वे विष्णुमेकैकबाणतः ॥ दशभिर्दशभिर्बाणैर्जघ्नतुर्गरुडंरणे ॥ ५२ ॥ तेषामामृश्यतत्कर्म्म विष्णुर्दानवसूदनः ॥ एकैकंदानवंजघ्ने षड्भिःषड्भिरजिह्मगैः ॥ ५३ ॥ आकर्णाकृष्टैर्भूयश्च कालनेमिस्त्रिभिश्शरैः ॥ विष्णुंविव्याधहृदये रोषाद्रक्तविलोचनः ॥ ५४ ॥

आश्रित होकर लोकपाल देवता यज्ञभागों के भोगी हैं यह जहां तहां कहकर व भलीभांति आकर वे सबही ॥ ४९ ॥ कालनेमि इत्यादिक दश महारथी दैत्य थे और कालनेमि ने साठि बाण विष्णु के मारा ॥ ५० ॥ व निमि ने सौ बाण और मथन दश बाण व जम्भक बीसबाण और शुम्भ दशबाण विष्णुके मारा ॥ ५१ ॥ व शेष सब दानवेन्द्रों ने विष्णुको एक २ बाणसे मारा व युद्धमें दश २ बाणोंसे गरुडको मारा ॥ ५२ ॥ उनके उस कर्मको विचारकर दैत्योंके मारनेवाले विष्णुने एक २ दानवको छह छह बाणोंसेमारा ॥ ५३ ॥ फिर कानतक खींचेहुये तीनबाणोंके क्रोधसे कारण लाललोचनोंवाले कालनेमिने विष्णुके हृदयमें बेधन किया ॥ ५४ ॥

तचाये हुये सोनेके समान वे बाण उन विष्णुके हृदय में प्रकट छविवाली व प्रकाशित कौस्तुभमणिकी किरणोंकी नाईं शोभित हुये ॥ ५५ ॥ उन बाणोंसे कुछ शिथिल उन विष्णुजी ने मुद्गरको लिया व उसको वेगसे घुमाकर दानव के लिये छोड दिया ॥ ५६ ॥ और हाथकी शीघ्रता को दिखाते हुये क्रोधित दानवेन्द्र ने न पहुँच हुये मुद्गरको विषसे बुझाये पैने बाणोंसे तिल २ भर काटडाला ॥५७॥ तदनन्तर बहुत क्रोधितहो विष्णुजी ने कराल भालाको लिया व उससे वेग करके दैत्य के हृदय में मारा ॥ ५८ ॥ व क्षणभर मे चैतन्यता पाकर दैत्यपुत्रने सुवर्ण के घण्टे मे अट्टहास शब्दवाली व तेज़ अग्रभागवाली शक्तिको लिया व उससे विष्णुकी

तस्याशोभन्ततेबाणा हृदयेतप्तकाञ्चनाः ॥ मयूखाइवसन्दीप्ताः कौस्तुभस्यस्फुटत्विषः ॥ ५५ ॥ तैर्बाणैःकिञ्चिदायस्तो हरिर्जग्राहमुद्गरम् ॥ सतमुद्भ्राम्यवेगेनदानवायमुमोचवै ॥ ५६ ॥ दानवेन्द्रस्तमप्राप्तं विषदग्धैःशितैश्शरैः ॥ चिच्छेदतिलशःक्रुद्धो दर्शयन्पाणिलाघवम् ॥ ५७ ॥ ततोविष्णुःप्रकुपितःप्रासंजग्राहभैरवम् ॥ तेनदैत्यस्यहृदयं ताडयामासवेगतः ॥ ५८ ॥ क्षणेनलब्धसंज्ञस्तुकालनेमिर्महासुरः ॥ शक्तिंजग्राहतीक्ष्णाग्रां हेमघण्टाट्टहासिनीम् ॥ तयावामंभुजंविष्णोर्बिभेददितिनन्दनः ॥ ५९ ॥ भिन्नंशक्त्याभुजंतस्य स्रुतशोणितमाबभौ ॥ नीलेबलाहकेविद्युद्विद्योतन्तीयथामुहुः ॥ ६० ॥ ततोविष्णुःप्रकुपितो जग्राहविपुलंधनुः ॥ सप्तदशचनाराचांस्तीक्ष्णाग्रान्मर्मभेदिनः ॥ ६१ ॥ दैत्यस्यहृदयंषड्भिर्विव्याधचशिरस्त्रिभिः ॥ चतुर्भिस्सारथिञ्चास्य ध्वजंचैकेनपत्रिणा ॥ ६२ ॥ द्वाभ्यांधनुर्ज्यांधनुषो भुजंचैकेनपत्रिणा ॥ सविद्धोहृदयेगाढं दोषैर्मूढोयथानरः ॥ ६३ ॥ स्रुतरक्तौघरन्ध्रस्तुस्रुतधातुरिवाच

बाईं भुजाको छेदन किया ॥ ५९ ॥ बहतेहुये रक्तवाली शक्तिसे छेदित उनकी भुजा शोभितहुई जैसे कि बार २ चमकती हुई बिजुली नील मेघमें शोभित होती है ॥ ६० ॥ तदनन्तर बहुत क्रोधित विष्णुने बडा धनुप लिया व सुकुमार अंग काटनेवाले और पैने अग्रभागवाले सत्रह बाणोंकोलिया ॥ ६१ ॥ व इस दैत्यके हृदयको छह बाणो व मस्तकको तीन बाणोंसे ताडन किया और चारबाणोंसे सारथी व एक बाण से ध्वजाको काटा ॥ ६२ ॥ व दो बाणोंसे धनुप व धनुपकी पंच और एक बाणसे भुजाको काटडाला व हृदयमें बहुतही बेधित वह दोषोंसे संयुत मूर्ख पुरुपकी नाईं हुआ ॥ ६३ ॥ व बहते हुये रुधिर प्रवाह छिद्रोंवाला वह बहती हुई गैरिक, मैन-

शिला धातुवोंवाले पर्वतकी नाईं टूटे रथपै चैतन्यताहीन व जीव शेष होकर गिरपड़ा ॥ ६४ ॥ व रथके ऊपर गिरेहुये दैत्यसे शत्रुनाशक व चक्रास्त्रवाले विष्णु स्वामीने मुसक्यानपूर्वक यह वचन कहा ॥ ६५ ॥ कि हे असुर! जाइये इससमय जीव से सुखी तुम छोड़ेगये हो तदनन्तर थोड़ेही दिनोंमें मैं तुम्हारा नाशक हूंगा ॥ ६६ ॥ सबोंके स्वामी उन विष्णुके ऐसे वचन सुनकर उस समय क्षणभर में संसारके स्वामी विष्णुसे डराहुआ यह कालनेमि रथको दूरलेगया ॥ ६७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायाकुमारेशमाहात्म्येषोडशोध्यायः ॥ १६ ॥ ॥

लः ॥ पपातचरथेभग्ने विसंज्ञःशिष्टजीवितः ॥ ६४ ॥ पतितस्यरथोपस्थे दानवस्याच्युतोरिहा ॥ स्मितपूर्वमुवाचेदं वाक्यंचक्रायुधःप्रभुः ॥ ६५ ॥ गच्छासुरविमुक्तोसि साम्प्रतंजीवनिर्वृतः ॥ ततःस्वल्पैरेवदिनैरहमेवतवान्तकः ॥ ६६ ॥ एवंवचस्तस्यनिशम्यविष्णोः सर्वेश्वरस्याथरथन्निमेषात् ॥ निनायदूरंकिलकालनेमिर्भीतस्तदासौहरिलोकनाथात् ॥ ६७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डे कुमारेशमाहात्म्ये षोडशोध्यायः ॥ १६ ॥ ॥

* ॥ * ॥ * ॥ *

नारदउवाच ॥ तन्दृष्ट्वादानवास्सर्वे क्रुद्धास्तेस्वबलैर्युताः ॥ सरघाइवमाक्षीकं रुरुधुस्सर्वतस्ततः ॥ १ ॥ पर्वताभगजेभीमे मदस्राविणिदुर्द्धरे ॥ अतिचित्रपताकेतु मुक्ताजालविभूषिते ॥ २ ॥ स्वर्णवर्मान्वितेयद्वन्नगेदावाग्निसंवृते ॥ आरुह्याजौनिमिर्दैत्यो हरिंप्रत्युद्ययौबली ॥ ३ ॥ तस्यासन्दानवारौद्रा गजस्यपरिरक्षिणः ॥ सप्तविंशतिकोट्यश्च किरीटकवचोज्ज्वलाः ॥ ४ ॥ अश्वमारुह्यशैलाभं मथनोहरिमद्रवत ॥ अपरेदानवेन्द्राश्च शूरानानास्त्रपाणयः ॥ ५ ॥

दो० । मथन आदि दैत्याधिपन मार्यो जिमि भगवान । सत्रहवें अध्यायमें सोई करत बखान ॥ नारदजी बोले कि तदनन्तर उसको देखकर क्रोधितहो अपनी सेनासे संयुत उन सब दानवोंने सब ओरसे घेरलिया जैसे कि मक्खियां शहदको घेरलेती हैं ॥ १ ॥ पर्वतके समान भयंकर व मद बहानेवाले, दुर्धर्ष व बड़े विचित्र ध्वजावाले व मोतियों की झालररी शोभित और सोनेकी कवचसे संयुत दावाग्नि से संयुक्त पर्वतकी नाईं हाथीपै सवार होकर पराक्रमी निमि दैत्य समरमें विष्णुके सामने गया ॥ २। ३ ॥ किरीट व कवचसे उज्ज्वल सत्ताईस करोड़ भयङ्कर दैत्य उस हाथीके चारों ओर रक्षक थे ॥ ४ ॥ और पहाड़के समान घोड़ेपै सवार होकर मथन दैत्य

विष्णुके समीपगया व अन्य शूर दैत्येन्द्र अनेक भांतिके अस्त्र हाथोंमें लेकर ॥ ५ ॥ क्रोधितहो युद्धमें आये व सबोंने महासमर में बलसे नारायण जी को मारा व शेष दैत्योंने तेज़ बाणोंसे मारा ॥ ६ ॥ चलायेहुये वे अस्त्र विष्णुमें कैसे पैठगये जैसे कि गुरूसे बहुत प्रकारके कहेहुये उपदेश उत्तम शिष्यमें प्रवेशहोवैं ॥ ७ ॥ तदनन्तर क्रोधित होकर विष्णुने बलसे धनुप बाणोंको लेकर उस दैत्योकी सेनाको नाश किया जैसे कि भूंठा वचन धर्मको नाशकरता है ॥ ८ ॥ विष्णुजी ने अग्निके समान तेजवाले बीस बाणोंसे निमिके मारा और दशबाणोंसे मथन के मारा व पांचबाणों से शुम्भके मारा ॥ ६ ॥ व क्रोधितहो विष्णुने सौ बाणोंसे महिषासुर के हृदयमें मारा

आजग्मुस्समरेक्रुद्धाः सर्वैशक्त्यामहारणे ॥ जघ्नुर्नारायणंशेषा विशिखैस्तीक्ष्णमार्गणैः ॥ ६ ॥ तान्यस्त्राणिप्रयुक्तानि विविशुःपुरुषोत्तमम् ॥ उपदेशागुरोर्यद्वत् सच्छिष्यंबहुधेरिताः ॥ ७ ॥ ततःक्रुद्धोहरिर्गृह्य धनुर्बाणांश्चवैबलात् ॥ व्यधमद्दैत्यसैन्यंतद्धर्म्मंमिथ्यावचोयथा ॥ ८ ॥ निमिंविव्याधविंशत्या बाणैरनलवर्च्चसैः ॥ मथनंदशभिश्चैव शुम्भंपञ्चभिरेवच ॥ ६ ॥ शतेनमहिषंक्रुद्धो विव्याधोरसिमाधवः ॥ जम्भंद्वादशभिस्तीक्ष्णैः सर्वांश्चैकैकशोष्टभिः ॥ १० ॥ तस्यतल्लाघवंदृष्ट्वा दानवाःक्रोधमूर्च्छिताः ॥ चक्रुर्गाढतरंयत्नमावृण्वानाहरिंशरैः ॥ ११ ॥ चिच्छेदचधनुर्ज्यांच निमिर्भल्लेनदानवाः ॥ हस्ताच्चापञ्चसंरम्भाच्चिच्छेदमहिषासुरः ॥ १२ ॥ पीडयामासगरुडं जम्भोबाणायुतैस्त्रिभिः ॥ भुजावस्यचविव्याध शुम्भोबाणायुतेनच ॥ १३ ॥ ततोविस्मितचित्तश्च गदांजग्राहमाधवः ॥ तांप्राहिणोत्सवेगेन मथनाय महाहवे ॥ १४ ॥ तामप्राप्तांनिमिर्बाणैर्मुसलाभैस्सहस्रशः ॥ आहत्यपातयामास व्यनदत्कालमेघवत् ॥ १५ ॥ ततो

व जम्भको बारह पैने बाणोंसे मारा और सबोको प्रत्येकता से आठ २ बाणों से मारा ॥ १० ॥ उसकी उस शीघ्रताको देखकर बाणों से विष्णुको आच्छादन करते हुये कोपसे मूर्च्छित दैत्योंने बडी दृढ़ यत्नकिया ॥ ११ ॥ व निमि दैत्यने भल्ल अस्त्रसे धनुपकी पचको काटडाला व महिपासुर ने क्रोधसे हाथके धनुषको काटा ॥ १२ ॥ जम्भने तीसहज़ार बाणोंसे गरुडको मारा व शुम्भ ने दशहज़ार बाणोंसे इनकी भुजाओं को बेधित किया ॥१३ ॥ तदनन्तर विस्मित चित्तवाले विष्णुने गदालिया व उन्होंने महायुद्धमें वेगसे उस गदाको मथनके लिये पठाया ॥१४॥ उस न पहुँची हुई गदाको निमिने मुसलके समान हज़ारों बाणोंसे मारकर गिरादिया व कालमेघ

के समान शब्दकिया ॥ १५ ॥ तदनन्तर आकाशसे प्राणियों की हाय २ ऐसी कथायें हुईं यह सेना नहींथी जोकि प्रकटतासे भयहीन न हुईहो ॥ १६ ॥ विष्णुजी ने
अयोग्य में याचनाकी नाईं उस गदाको गिरी देखकर दिव्यरत्नों से शोभित भयंकर मुद्गर को लिया ॥ १७ ॥ व निमि दानवको उद्देशकरके बड़े वेगसे उसको छोड़
दिया आतेहुये उस मुद्गरको देखकर आकाशही में तीनों दैत्योंने रोंकदिया ॥१८॥ व बड़ाशब्द करतेहुये जम्भ दैत्यने गदासे व ग्रसनने पट्टिशसे व शक्तिसे महिषदैत्य
ने रोंका ॥ १९ ॥ दुर्जनोंसे सुजनकी नाईं दूरकिये हुये मुद्गरको देखकर सौ घण्टोंसे बड़े शब्दवाली बड़ी विकराल शक्तिको लिया ॥ २० ॥ व भयंकर समरमें उसको

न्तरिक्षेहाहेति भूतानांजज्ञिरेकथाः ॥ नैतदस्तिबलंव्यक्तं यन्नासीद्गतसाध्वसम् ॥ १६ ॥ तांहरिःपतितान्दृष्ट्वा नस्था
नेप्रार्थनामिव ॥ जग्राहमुद्गरंघोरं दिव्यरत्नपरिष्कृतम् ॥ १७ ॥ तम्मुमोचातिवेगेन निमिमुद्दिश्यदानवम् ॥ तमाया
न्तंवियत्येव त्रयोदैत्याह्यवारयन् ॥ १८ ॥ गदयाजम्भदैत्यस्तु ग्रसनःपट्टिशेनतु ॥ शक्त्याचमहिषोदैत्यो विनद
न्तोमहारवम् ॥ १९ ॥ निराकृतंतमालोक्य दुर्जनैस्सुजनंयथा ॥ जग्राहशक्तिमत्युग्रां शतघण्टामहारवाम् ॥२०॥
जम्भायतांसमुद्दिश्य प्राहिणोद्भीषणेरणे ॥ तमायान्तीमथालक्ष्य जम्भोतितरसासुरः ॥ २१ ॥ आप्लुत्यलीलयागृ
ह्णात् कामिनींकामुकोयथा ॥ तथैवगरुडंमूर्ध्नि जघ्नेसप्रहसन्बली ॥ २२ ॥ ततोभूयोरथंप्राप्य धनुर्गृह्याभ्ययोधयत् ॥
विचेताश्चाभवद्युद्धे गरुडश्शक्तिपीडितः ॥ २३ ॥ ततःप्रहस्यतंविष्णुस्साधुसाध्वित्यभाषत ॥ करस्पर्शेनकृतवान् वि
मोहंविनतात्मजम् ॥ २४ ॥ समाश्वास्यचतंराभिमश्शक्तिन्दृष्ट्वाचनिष्फलाम् ॥ कुमार्यस्ययथापुंसः सर्वस्याश्चिन्ति

जम्भके लिये उद्देश करके चलाया इसके अनन्तर आतीहुई उस शक्तिको देखकर बड़े वेगसे जम्भ दैत्यने ॥ २१ ॥ कूदकर लीलासे पकड़ लिया जैसे कि कामी नर
कामिनी को पकड़ता है और हँसतेहुये उस बलिष्ठने उसी गदासे गरुड़के माथेपै मारा ॥ २२ ॥ तदनन्तर फिर रथपै प्राप्तहोकर धनुषको लेकर युद्धकिया और शक्ति
से पीड़ित गरुड़ युद्धमें चैतन्यतारहित होगये ॥ २३ ॥ तदनन्तर हँसकर विष्णुने उससे बहुत अच्छा २ ऐसा कहा व हाथ के स्पर्शसे गरुड़को मूर्च्छारहित किया ॥ २४ ॥

और वचनोंसे उसको समझाकर व शक्तिको वैसेही निष्फल देखकर जैसे कि निन्दित नारीके पुरुषका सब चिन्तित कार्य वृथा होजाता है ॥ २५ ॥ तदनन्तर दृढ़ सारांशयुक्त अन्य पंचको युक्तकिया और तालियों का शब्दकरके उसने रौद्र अस्त्र को छोड़ा ॥ २६ ॥ तदनन्तर अस्त्रके तेजसे सब आकाश नहीं देख पड़ताथा भूमि, दिशा व विदिशायें बाणजालमय शोभित हुई ॥ २७ ॥ उस अस्त्रके माहात्म्य को देखकर सेनापति ग्रसनदैत्यने शीघ्रही सब अस्त्रोंके निवारण करनेवाले ब्राह्मय अस्त्रको किया ॥ २८ ॥ उससे लोकोंका विनाशक वह रौद्र अस्त्र शान्तिको प्राप्तहुआ उस अस्त्रके नाश होनेपर दानवों के नाशक विष्णुजीने ॥ २९ ॥ सबलोकों के भय-

तं यथा ॥ २५ ॥ दृढसारयुतां मौर्वीमन्यां संयोजयेत्ततः ॥ कृत्वा च तलनिर्घोषं रौद्रमस्त्रं मुमोच सः ॥ २६ ॥ ततोऽस्त्रतेजसा तत्सर्वमाकाशं नैव दृश्यते ॥ भूमिर्दिशश्च विदिशो बाणजालमया बभुः ॥ २७ ॥ दृष्ट्वा तदस्त्रमाहात्म्यं सेनानीर्ग्रसनोऽसुरः ॥ ब्राह्मयमस्त्रं चकाराशु सर्वास्त्रविनिवारणम् ॥ २८ ॥ तेन तत्प्रशमं यातं रौद्रास्त्रं लोकघस्मरम् ॥ अस्त्रे प्रतिहते तस्मिन् विष्णुर्दानवसूदनः ॥२९॥ कालदण्डास्त्रमकरोत्सर्वलोकभयङ्करम् ॥ सन्धीयमाने तस्मिंस्तु मारुतः परुषं ववौ ॥ ३० ॥ चकम्पे च महादेवी भिन्नाश्चाम्बुधयोऽभवन् ॥ तमस्त्रमुग्रं दृष्ट्वा तु दानवा युद्धदुर्म्मदाः ॥ ३१ ॥ चक्रुरस्त्राणि दिव्यानि नानारूपाणि संयुगे ॥ ३२ ॥ नारायणास्त्रं ग्रसनस्तु चक्रे त्वाष्ट्रं निमिश्चास्त्रवरं मुमोच ॥ ऐषीकमस्त्रं च चकार जम्भो युद्धे तु दण्डास्त्रनिवारणाय ॥ ३३ ॥ यावच्च सन्धानवशं प्रयान्ति नारायणादीनि निवारणाय ॥ तावत्क्षणेनैव जघान कोटिं दैत्येश्वराणां किल कालदण्डः ॥ ३४ ॥ अनन्तरं शान्तमभयन्तदस्त्रं दैत्यास्त्रयोगेन तु कालदण्डम् ॥ शान्तं तदालोक्य

कारक कालदण्डास्त्र को किया उस अस्त्रके सन्धान करनेपर कठोर पवन चलने लगी ॥ ३० ॥ व महादेवी भूमि कांपनेलगी समुद्र क्षोभको प्राप्तहुये व उस उग्र अस्त्र को देखकर युद्धसे दुष्ट मदवाले दैत्योंने ॥३१॥ युद्धमें अनेक रूपवाले दिव्यअस्त्रों को किया ॥ ३२ ॥ और ग्रसनने नारायणास्त्र किया व निमिने त्वाष्ट्र नामक उत्तम अस्त्रको छोड़ा व दण्डास्त्र के निवारण करनेके लिये युद्धमें जम्भने ऐषीक अस्त्रको किया ॥ ३३ ॥ जबतक निवारण करने के लिये नारायण इत्यादिक अस्त्र सन्धान के वशमें प्राप्तहोते हैं तबतक क्षणहीभर में कालदण्ड ने करोड़ों दैत्येश्वरों को नाशकिया ॥ ३४ ॥ इसके उपरान्त दैत्यास्त्र के योगसे वह कालदण्ड अस्त्र शान्त भय-

वालाहोगया, तब क्रोध से कालाग्नि के तुल्य मूर्त्तिवाले विष्णुजीने अपने अस्त्रको शान्त देखकर ॥ ३५ ॥ दशहज़ार सूर्योंकी कांतिवाले व उग्र धारवाले दूसरे आत्मा की नाईं चक्रको लिया व युद्धमें चतुर्भुज विष्णुने जलतेहुये अस्त्रको सेनापति के लिये फेंकदिया व प्रणामकर ॥ ३६ ॥ उस समय चक्र चला इसके अनन्तर दैत्योंसमने देखकर अपने पराक्रम से सर्वात्मा करके उस प्रचण्ड अस्त्रको प्राप्तहुये पूर्वभाग्य के नाईं मना करने के लिये न समर्थ हुये ॥ ३७ ॥ वह अस्त्ररूप चक्र निस्सन्देह ग्रसनके कण्ठपै गिरा व उसके रक्तकी धारासे लाल व भयंकर नाहवाला चक्र फिरभी विष्णुके हाथमें प्राप्तहुआ ॥ ३८ ॥ व युद्धमें चक्रसे माराहुआ दैत्य भूमिमें गिरा व

हरिःस्वमस्त्रं कोपेनकालानलतुल्यमूर्त्तिः ॥ ३५ ॥ जग्राहचक्रंतपनायुताभमुग्रारमात्मानमिवद्वितीयम् ॥ चिक्षेपसेनापतयेज्वलन्तं चतुर्भुजःसंयतिसम्प्रणम्य ॥ ३६ ॥ तदाव्रजच्चक्रमथोविलोक्य सर्वात्मनादैत्यवराःस्ववीर्यात् ॥ नाशक्नुवन्वारयितुंप्रचण्डं दैवंयथापूर्वमिवोपपन्नम् ॥ ३७ ॥ तदप्रतर्क्यंनचहेतिरूपं चक्रंपपातग्रसनस्यकण्ठे ॥ तद्रक्तधारारुणघोरनाभिजगामभूयोपिकरंमुरारेः ॥ ३८ ॥ चक्राहतःसंयतिदानवश्च पपातभूमौप्रममारचापि ॥ दैत्याश्चशेषाभृशमाप्यशोकं क्रोधंचकेचित्पिपिषुर्भुजाश्च ॥ ३९ ॥ ततोविनिहतेदैत्ये ग्रसनेबलनायके ॥ निर्मर्यादमयुध्यन्त हरिणासहदानवाः ॥ ४० ॥ पट्टिशैर्मुसलैःप्रासैर्गदाभिःकणपैरपि ॥ तीक्ष्णाग्रभागनाराचैश्चक्रशक्तिभिरेवच ॥ ४१ ॥ तदस्त्रजालैर्मुक्तं लब्धलक्ष्योजनार्दनः ॥ एकैकंशतधाचक्रे बाणैरग्निशिखोपमैः ॥ ४२ ॥ जघानतेषांसंक्रुद्धः कोटिकोटिजनार्दनः ॥ ततस्तेसंघशोभूत्वान्यपतत्केशवोपरि ॥ ४३ ॥ गरुडंजगृहुःकेचित्पादयोःशतशोसुराः ॥ ललम्बिरेचपक्षा

मरभी गया, व कोई शेष दैत्य बड़े शोच व क्रोधको पाकर भुजाओं को पीसने लगे ॥ ३९ ॥ तदनन्तर सेनापति ग्रसनदैत्य के मरजाने पर दानवों ने पट्टिश, मुसल, माला, गदा, कणप व पैने अग्रभागवाले बाणों और चक्र तथा शक्तियों से सीमारहित विष्णुसे युद्धकिया ॥ ४० । ४१ ॥ उन सबोंसे छोड़ेहुये अस्त्र समूहको निशाना पायेहुये विष्णुने अग्निकी ज्वालाके समान बाणोंसे एक एक को सौ सौ खण्ड किया ॥ ४२ ॥ और विष्णुने क्रोधितहो उन करोड़ २ दैत्योंको मारा तदनन्तर वे समूह

होकर विष्णुके ऊपर गिरे ॥ ४३ ॥ व कोई सैकड़ों दैत्योंने गरुड़के चरण पकड़लिया व अन्यदैत्य पखनों में लटके और अन्य असुर मुखमें लटकरहे ॥ ४४ ॥ व बार बार शब्द करतेहुते महादैत्य विष्णुके भी धनुप, भुजा व मस्तकोंमें लटकगये ॥४५॥वह बडा अद्भुद देखकर सिद्ध, चारण, गुह्यकों ने युद्धमें विष्णुकी स्तुतिकर हाहा शब्दकिया ॥ ४६ ॥ तदनन्तर विष्णुने उनको झिटक कर भूमिमें गिरादिया जैसे कि ज्ञानी पुरुप संसारमें उपजेहुये दोपोंको अलगकर देताहै ॥ ४७ ॥ तदनन्तर मियान से अलग कर उत्तम नन्दक तलवार व निर्मल ढालको लेकर पैदलही विष्णुजी उनके सामने दौड़े ॥ ४८ ॥ तदनन्तर मुहूर्त्तभरमें दौड़े वहुत पैंतरों से घूमते हुये

भ्यांमुखेचान्येललम्बिरे ॥ ४४ ॥ केशवस्यापिधनुपिभुजयोःशीर्पएवच ॥ ललम्बिरेमहादैत्याविनदन्तोमुहुर्मुहुः ॥४५॥ तदद्भुतंमहद्दृष्ट्वासिद्धचारणगुह्यकाः ॥ हाहेतिमुमुचुर्नादंसङ्गरेस्तुत्यतंहरिम् ॥ ४६ ॥ ततोहरिर्विनिर्धूयपातयामासतान्भुवि ॥ यथाप्रबुद्धःपुरुपोदोपान्संसारसंभवान् ॥ ४७ ॥ विकोशञ्चततःकृत्वा नन्दकंखड्गमुत्तमम् ॥ चर्मचाप्यमलंविष्णुः पदातिस्तानधावत ॥ ४८ ॥ ततोमुहूर्त्तमात्रेणपद्मानिदशकेशवः ॥ चकर्त्तमार्गैर्बहुभिर्विचरन्दैत्यसत्तमान् ॥ ४९ ॥ ततोनिमिप्रभृतयोविनद्यासुरसत्तमाः ॥ अधावन्तमहेष्वासाःकेशवम्पादचारिणम् ॥ ५० ॥ गरुत्मांश्चाभ्ययाच्छीघ्रमारुरोहचतंहरिः ॥ उवाचचगरुत्मन्तंतस्मिंश्चतुमुलेरणे ॥ ५१ ॥ अश्रान्तोयदिताक्ष्योंसिमथनंप्रतितव्रज ॥ श्रान्तश्चेन्मुहूर्त्तात्त्वंरणादपसृतोभव ॥ ५२ ॥ ताक्ष्यंउवाच ॥ नमेश्रमोस्तिलोकेशकिन्तुसस्मारतच्चवै ॥ यन्मेसुतान्वाहनत्वे कल्पयामासतारकः ॥ ५३ ॥ इतिब्रुवन्रणेदैत्यं मथनंप्रतिसोगमत् ॥ दैत्यस्त्वभिमुखंदृष्ट्वा शङ्खचक्रगदाधरम् ॥५४॥

विष्णुजीने दशपद्म दैत्योत्तमों को काटडाला ॥ ४९ ॥ तदनन्तर निमि आदिक वडे धनुपवाले दैत्योत्तमों ने शब्द करके पैदल चलनेवाले विष्णुके सामने दौडे ॥ ५० ॥ व गरुड भी शीघ्रही आये और विष्णुजी उसपै चढे व उस वडे युद्धमें गरुड़ से बोले ॥ ५१ ॥ कि हे गरुड़जी ! यदि थके न होवो तो मथन के सामने चलो व यदि थके होतो मुहूर्त (कच्ची दो घडी) के बाद युद्धसे भागजाना ॥ ५२ ॥ गरुड जी बोले कि हे लोकेश ! मेरे श्रम नहीं है किन्तु मैंने उसको स्मरण किया जोकि तारक ने मेरे पुत्रोंको सवारीमें कल्पना कियाहै ॥ ५३ ॥ ऐसा कहते हुये उन गरुड़ ने युद्धमें मथन दैत्यपै गमन किया व दैत्यने शङ्ख, चक्र, गदाधारी विष्णुको सामने

देखकर पैनी धारवाले भिन्दिपाल से छातीमें मारा उस प्रहारको न चिन्तन करके उस महासमर में विष्णुजीने ॥ ५४ । ५५ ॥ पर्वतराजको भी तोड़नेवाले वै कान
तक खींचेहुये पांच बाणोंसे मारा व फिर दश बाणों से छाती के बीचमें मारा ॥५६॥व मूर्च्छित होकर उस मथनने मुहूर्त्तभर में सहताकर फिर परिघ (दर्हमर्द) को
लेकर विष्णुके माथेमें मारा ॥ ५७ ॥ व उस प्रहारसे विष्णुजी कुछ घूमगये तदनन्तर क्रोधसे फैलाये हुये नेत्रोंवाले विष्णुने गदाको लिया ॥ ५८ ॥ व उस गदासे
मथनके हृदय में बड़ी निष्ठुरता से मारा वह भूमिमें, गिरपड़ा व चूर्ण अंगोंवाला होकर मरगया ॥ ५९ ॥ बहुतही मथित उस मथन दैत्यके भूमिमें गिरनेपर अकेले

जघानभिन्दिपालेनशितधारेणवक्षसि ॥ तंप्रहारमचिन्त्यैव विष्णुस्तस्मिन्महारणे ॥ ५५ ॥ जघानपञ्चभिर्बाणै
गिरीन्द्रस्यापिभेदकैः ॥ आकर्णकृष्टैर्दशभिःपुनर्विद्धःस्तनान्तरे ॥ ५६ ॥ विचेतनोमुहूर्तात्सविश्रम्यमथनःपुनः ॥ गृही
त्वापरिघंमूर्ध्निजनार्दनमताडयत ॥ ५७ ॥ विष्णुस्तेनप्रहारेण किञ्चिदाघूर्णितोभवत ॥ ततःकोपविवृत्ताक्षोगदांजग्राह
माधवः ॥ ५८ ॥ तयासन्ताडयामास मथनंहृदयेदृढम् ॥ सपपाततथाभूमौचूर्णिताङ्गोममारच ॥ ५९ ॥ तस्मिन्निपति
तेभूमौ मथनेमथितेभृशम् ॥ अवसादंययुर्दैत्याः कर्मचैकाकिनंयथा ॥ ६० ॥ ततस्तेषुविपन्नेषुदानवेष्वतिमानिषु ॥
चुकोपरक्तनयनोमहिषोदानवेश्वरः ॥ ६१ ॥ प्रत्युद्ययौहरींरौद्रः स्वबाहुबलमाश्रितः ॥ तीक्ष्णधारेणशूलेनमहिषोहरि
मार्दयत ॥ ६२ ॥ शक्त्याचगरुडंवीरोहृदयेभ्यहनद्दृढम् ॥ ततोविवृत्यवदनंमहाचलगुहानिभम् ॥ ६३ ॥ ग्रस्तुमैच्छ
द्रणेदैत्यःसगरुत्मन्तमच्युतम् ॥ अथाच्युतोपिविज्ञाययदानवस्यचिकीर्षितम् ॥ ६४ ॥ वदनंपूरयामासदिव्यैरस्त्रैर्महाब

कर्मकी नाईं दैत्य क्लेश को प्राप्तहुये ॥ ६० ॥ तदनन्तर बड़ेमानी उन दानवों के दुःखित होनेपर लाललोचनोंवाले दानवेश्वर महिषासुर ने क्रोधकिया ॥ ६१ ॥ व
अपने बाहुबलमें आश्रित होकर भयङ्कर विष्णुजी दैत्यके सामने गये और महिषासुरने पैनीधारवाले शूलसे विष्णु के मारा ॥ ६२ ॥ व वीर दैत्यने शक्तिसे गरुड़
के हृदयमें दृढ़तासे मारा तदनन्तर बड़े पर्वत के समान मुखको फैलाकर ॥ ६३ ॥ दैत्यने युद्धमें गरुड़ समेत विष्णुको खाजानेकी इच्छाकिया इसके उपरान्त महाब-

लिङ्ग विष्णुने भी दानवकी करनेकी इच्छाको जानकर दिव्यअस्त्रोंसे मुख भरदिया उन बाणोंसे माराहुआ वह पर्वतके समान महिपासुर ॥ ६४ । ६५ ॥ घूमीहुई आधी
देहवाला होकर गिरपडा व मरगया गिरेहुये महिपासुरको देखकर विष्णुजीने फिर जिलाकर ॥६६॥ महिपासुर से कहा कि हे दानव ! मुझ से तुम मारने के योग्य नहीं
हो क्योंकि पुरातन समय साक्षात् ब्रह्माजीसे तुम स्त्रीकरके मारने योग्य कहेगयेहो ॥६७॥ उठो व मुझ से छोड़े हुये तुम इस महायुद्ध से शीघ्रही चलेजावो ऐसा विष्णु से
कहाहुआ दैत्य उस स्थान से चलागया ॥ ६८ ॥ उस महिपदैत्य के विमुख होने पर ओंठ से आच्छादित ओठवाले व क्रोधसे भौंहों करके भयानक मुखवाले शुम्भदैत्य

लः ॥ सतैर्बाणैरभिहतो महिषोचलसन्निभः ॥ ६५ ॥ परिवर्तितकायार्द्धःपपातचममारच ॥ महिषंपतितंदृष्ट्वाजीवयि
त्वापुनर्हरिः ॥ ६६ ॥ महिषंप्राहमत्तस्त्वंवधंनार्हसिदानव ॥ योषिद्वध्यःपुरोक्तस्त्वंसाक्षात्कमलयोनिना ॥ ६७ ॥ उत्ति
ष्ठगच्छमत्त्यक्तो द्रुतमस्मान्महारणात् ॥ इत्युक्तोहरिणातस्माद्देशादपगतोसुरः ॥ ६८ ॥ तस्मिन्पराङ्मुखेदैत्येमहि
षेशुम्भदानवः ॥ संछन्नौष्ठपुटोरोषाद्भृकुटीविकटाननः ॥ ६९ ॥ निर्मथ्यपाणिनापाणिंधनुरादायभैरवम् ॥ सज्जीकृ
त्वामहाघोरान्मुमोचशतशःशरान् ॥ ७० ॥ सचित्रयोधीदृढमुष्टिपातैस्ततक्षविष्णुंगरुडञ्चदैत्यः ॥ क्षुप्रैरसंख्यैःप्रतिघा
तहीनैर्विष्णुश्चदैत्येन्द्रशरार्दितोभूत् ॥ ७१ ॥ भुशुण्डिमादायकृतान्ततुल्यां तयाभुशुण्ड्यास्यपिपेषसङ्ख्ये ॥ शुम्भस्य
पुत्रंधरणीधराभं ततस्त्रिभिःशुम्भभुजंबिभेद ॥ ७२ ॥ षष्ट्यास्यशीर्षंदशभिश्चकेतुं विष्णुर्विकृष्टैःश्रवणावसानम् ॥ दैत्य
स्यबाणैर्ज्वलनार्ककान्तैः सतैश्चविद्धोव्यथितोबभूव ॥ ७३ ॥ दैत्येश्वरोविस्रुतशोणितौघो बभूवदुःखीसतुदैत्यसत्त

ने ॥६९ ॥ हाथसे हाथको मलकर व भयंकर धनुप लेकरके चढ़ाकर बड़े कराल सैकडो बाणोंको छोडा ॥ ७० ॥ विचित्र युद्ध करनेवाले उस दैत्यने मुष्टिप्रहारोंसे विष्णु
को मारा व प्रहारहीन असंख्य क्षुप्र अस्त्रो से गरुड़ को मारा व विष्णुजी दैत्येन्द्रके बाणों से दुःखी हुये ॥७१॥ व यमराज के समान बन्दूक को लेकर व उस बन्दूक
से समर में पर्वतके समान इस शुम्भ के पुत्रको मारा तदनन्तर तीन बाणों से शुम्भकी भुजा को काटडाला ॥ ७२ ॥ व साठिबाणों से मस्तक व कानतक खींचे
हुये दश बाणों से विष्णुजी ने इसके ध्वजा को काटडाला व अग्नि के समान छविवाले दैत्य के उन बाणों से बेधित होते हुये वे विष्णु दुःखी हुये ॥ ७३ ॥ व

बहते हुये रक्तके प्रवाहवाला दैत्यों का स्वामी वह श्रेष्ठ दानव दुःखीहुआ तदनन्तर शंख, कमल व शार्ङ्गधनुष हाथवाले विष्णुजी ने धैर्य से कुछ चलेहुये इस दैत्य
से कहा ॥ ७४ ॥ कि हे मूढ़; शुम्भदैत्य ! थोड़ेही दिनोंमें तुम स्त्री से मारे जावोगे युद्ध छोड़दो मुझ से वृथाही युद्ध करने के लिये तुम योग्य नहीं हो तदनन्तर वह
शुम्भदानव चलागया ॥ ७५ ॥ इसके अनन्तर उस वचन को विष्णुके मुख से सुन सिंहनाद करताहुआ वह दैत्य उच्च प्रकार से गरजा व बड़े अट्टहास से संसार को
कँपाकर युद्ध में लीला समेत वचन बोला ॥ ७६ ॥ कि न्यूनबलवाले इन जलवासी दैत्यों से तुम्हारा क्या प्रयोजन है यदि तुम्हारे कुछ बल होवै तो इस युद्ध

मः ॥ ततोऽस्यकिञ्चिच्चलितस्यधैर्याद्बुवाचशङ्खाम्बुजशार्ङ्गपाणिः ॥ ७४ ॥ योषित्सुवध्योसिरणंविमुञ्च शुम्भासुरस्त्व
ल्पतरैरहोभिः ॥ मत्तोर्हसित्वंनवृथैवमूढततोपयातस्सचशुम्भदानवः ॥ ७५ ॥ जम्भोथतद्विष्णुमुखान्निशम्य जगज्ज
चोच्चैःकृतसिंहनादः ॥ प्रोवाचवाक्यंचसलीलमाजौमहाट्टहासेनजगद्विकम्प्य ॥ ७६ ॥ किमेभिस्तेजलावासिदैत्यैर्हीन
पराक्रमैः ॥ मामासादययुद्धेस्मिन्यदितेपौरुषंक्वचित ॥ ७७ ॥ यत्तेपूर्वंहतादैत्या हिरण्याक्षमुखाःकिल ॥ जम्भस्तदा
भवन्नेव पश्यमामद्यसंस्थितम् ॥ ७८ ॥ पश्यतालप्रतीकाशौ भुजावेतौहरेमम ॥ वक्षोवावज्रकठिनं ममप्रहरतत्सुख
म् ॥ ७९ ॥ इत्युक्तःकेशवस्तेन सृक्किणीसंलिहन्रुषा ॥ मुमोचपरिघङ्घोरं गिरीणामपिदारणम् ॥ ८० ॥ ततस्तस्या
द्यनुपदं कालायसमयंदृढम् ॥ मुमोचमुद्गरंविष्णुर्द्वितीयंपर्वतंयथा ॥ ८१ ॥ तदायुद्धद्वयंदृष्ट्वा जम्भोन्यंस्यरथेधनुः ॥
विप्लुत्यपरिघंगृह्य गरुडन्तेनजघ्निवान् ॥ ८२ ॥ द्वितीयंमुद्गरंचानुगृहीत्वाविनदन्रणे ॥ ८३ ॥ सर्वप्राणेनगोविन्दं तेन

में मुझे मारिये ॥ ७७ ॥ पुरातन समय जो तुम ने हिरण्याक्षादिक दैत्यों को मारा है तब जम्भ नहीं था आज भलीभाति टिकेहुये मुझ को देखो ॥ ७८ ॥ हे हरे ! ताल
वृक्ष के समान [illegible] इन भुजाओं को देखिये व मेरे वज्र के समान कठोर वक्षस्थलमें मारिये तो सुख होगा ॥ ७९ ॥ उससे ऐसा कहेहुये उन विष्णुजी ने क्रोध से ग-
लफड़ों को चाटते हुये पर्वतों को भी तोड़नेवाले कराल दहमर्द को छोड़ा ॥ ८० ॥ तदनन्तर उसके भी पीछे कालके समान लोहमय दृढ मुद्गर को विष्णुजी ने दूसरे
पर्वतकी नाईं छोड़ा ॥ ८१ ॥ उस समय दोनों युद्ध देखकर रथपै धनुष धरके जम्भने कूदकर दहमर्दा लिया व उससे गरुड़ को मारा ॥ ८२ ॥ व उसके पीछे दूसरा

मुद्गरलेक युद्धमें शब्द करते हुये उसने सब बलसे उस मुद्गर करके विष्णु के माथे पै मारा उन बडे प्रहारों से गरुड व विष्णु दोनों ॥ ८३ । ८४ ॥ मूर्च्छा में प्राप्त होकर चैतन्यतारहित हो मरे से होगये वह बडा आश्चर्य देखकर दैत्योत्तम गरजे ॥ ८५॥ उस समय हर्षके गर्वसे गर्वित इन दैत्यों को संसार ने नहीं सहा व सिंहनाद, तालशब्द, धनुष शब्द व बाणों से उपजे हुये शब्द करके॥ ८६ ॥ उन्होंने जम्भको प्रसन्न किया और वस्त्रों को हिलाया व शंखों को पूर्ण किया व देवताओं को बहुतही फेंका ॥ ८७ ॥ इसके अनन्तर महायुद्धमें गरुड समेत विष्णुजीने जम्भ को देखकर असह्य युद्धसे विमुख होकर वेगवान् हो पलायन किया याने

मूर्द्धिजघानसः ॥ ताभ्यांचातिप्रहाराभ्यामुभौगरुडकेशवौ ॥ ८४ ॥ मोहाविष्टौविचेतस्कौ मृतकल्पाविवासतुः ॥ तदद्भुतंमहद्दृष्ट्वाजगर्ज्जुर्दैत्यसत्तमाः ॥ ८५ ॥ नैतान्हर्षमदोद्भूतानिहसेहेजगत्तदा ॥ सिंहनादैस्तालनादैर्धनुर्नादैश्चबाणजैः ॥८६॥ जम्भंतेहर्षयामासुर्वासांस्याद्दुधुवुश्चते॥ शङ्खांश्चपूरयामासुश्चिक्षिपुर्देवता भृशम् ॥ ८७॥ संज्ञामवाप्याथमहारणेहरिः सवैनतेयःपरिदृश्यजम्भम् ॥ पराङ्मुखःसंयुगादप्रधृष्यात्पलायनंवेगपरश्चकार ॥ ८८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे कुमारिकाखण्डेकुमारेशमाहात्म्येसप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

नारदउवाच ॥ तमालोक्यपलायन्तं विभ्रष्टध्वजकार्मुकम् ॥ दैत्यान्विमुदितानिन्द्रः कर्त्तव्यंनाभ्यगच्छत ॥ १ ॥ अथायान्निकटंविष्णोः सुरेशस्त्वरयान्वितः ॥ उवाचचैनंमधुरमुत्साहपरिबृंहितम् ॥ २ ॥ किमेभिःक्रीडनैर्देव दानवैर्दुष्टमानसैः ॥ दुर्ज्जनैर्लब्धरन्ध्रस्यपुरुषस्यकुतःक्रिया ॥ ३ ॥ शक्तेनोपेक्षितोनीचोमन्यतेबलमात्मनः॥ तस्माञ्जनी

भगगये ॥ ८८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांकुमारेशमाहात्म्येसप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ ॥

दो० । जीत्यो इन्द्रादिकन कहँ तारक दानवराय । अठारहें अध्यायमें सोइ चरित सुखदाय ॥ नारदजी बोले कि गिरेहुये ध्वजा व धनुषवाले भागतेहुये उन विष्णुको देखकर इन्द्रजी प्रसन्न हुये दैत्यों प्रति कर्त्तव्यता को न प्राप्तहुये ॥ १ ॥ इसके अनन्तर शीघ्रतासंयुत इन्द्रजी विष्णुके समीप आये व उत्साह से बढ़ेहुये इन से मीठे वचन बोले ॥ २ ॥ कि हे देव ! दुष्टमनवाले इन दुर्जन दानवोंसे खेल करके क्या है व पाये हुये छिद्रवाले पुरुष का कर्म किस लिये होताहै ॥ ३ ॥

समर्थ पुरुष से छोड़ा हुआ नीचनर अपना बल मानताहै इस लिये बुद्धिमान् मनुष्य किसी प्रकार नीचको न छोड़े ॥ ४ ॥ और अग्रगामी की सम्पदासे रथी पुरुष
जयको प्राप्त होते हैं हे विभो ! पुरातन समय हिरण्याक्ष के मारने में तुम्हारा कौन मित्रहुआहै ॥ ५ ॥ पराक्रम से शोभित व गर्वसे बढ़ाहुआ हिरण्यकशिपु दैत्य तुम
को पाकर तिनुकाकी नाईं नष्टहोगया वहां तुम्हारा कौन अग्रगामीथा ॥ ६ ॥ पहले मधुकैटभ इत्यादिक बड़े बली दैत्य तुमको पाकर नष्टहोगये जैसे कि अग्निको प्राप्त
होकर पांखी मरजाती हैं ॥ ७ ॥ हे हरे ! युग २ में दैत्योंका नाश तुमसे हुआहै वैसेही हे विष्णो ! यहां आज डरेहुये लोगोंके देवाश्रय आपही हो ॥ ८ ॥ इस प्रकार

चैमतिमानुपेन्द्रेतं कथञ्चन ॥ ४ ॥ अथाग्रेसरसंपत्त्या रथिनोजयमाप्नुयुः ॥ कस्तेसखाभवत्पूर्वं हिरण्याक्षवधेविभो॥
५ ॥ हिरण्यकशिपुर्दैत्यो वीर्यशालिमदोद्धतः ॥ त्वांप्राप्यतृणवन्नष्टस्तत्रकोग्रेसरस्तव ॥ ६ ॥ पूर्वेप्रतिबलादैत्या मधु
कैटभसम्मुखाः ॥ विनष्टास्त्वान्तुसम्प्राप्य शलभाइवपावकम् ॥ ७॥ युगेयुगेचदैत्यानां त्वत्तोनाशोभवद्धरे ॥ तथैवाद्येह
भीतानां त्वंहिविष्णोसुराश्रयः ॥ ८ ॥ एवंशक्रोदितोविष्णुर्व्यवर्द्धतमहाभुजः ॥ बलेनतेजसाक्रुद्ध्या सर्वभूताश्रयोरि
हा ॥ ९ ॥ अथोवाचसहस्राक्षं केशवःप्रहसन्निव ॥ एवमेतद्यथाप्राह भवानस्मद्गतंवचः ॥ १० ॥ त्रैलोक्येदानवान्सर्वान्
दग्धुंशक्तःक्षणादहम् ॥ दुर्जयस्तारकःकिन्तु मुक्त्वासप्तदिनंशिशुम् ॥ ११ ॥ महिषश्चैवशुम्भश्चाप्युभौवध्यौचयोषि
ता ॥ जम्भोदुर्वाससाशप्तःशक्रवध्योभवानिति ॥ १२ ॥ तस्मात्त्वंदिव्यवीर्येण जहिजम्भंमदोत्कटम् ॥ अवध्यःसर्वभू
तानां त्वामृतेसतुदानवः ॥ १३ ॥ मयागुप्तोरणेजम्भंजगत्कण्टकमुद्धर ॥ तद्वैकुण्ठवचःश्रुत्वासहस्राक्षस्सुरारिहा ॥ १४॥

इन्द्रसे कहेहुये महाबाहु विष्णुजी बल, तेज व क्रोध से बढ़े जोकि सब प्राणियों के आश्रयभूत व शत्रुनाशक हैं ॥ ९ ॥ इसके अनन्तर हँसतेहुयेसे विष्णुजी इन्द्रसे
बोले कि यह ऐसाही है जैसा कि आपने हमसे वचन कहाहै ॥ १० ॥ मैं त्रिलोकमें सब दानवों को क्षणभर में जलाने के लिये समर्थ हूं परन्तु सात दिनवाले लड़के
को छोड़कर तारक दुर्जयहै ॥ ११ ॥ और महिषासुर व शुम्भ दोनों भी स्त्रीसे वध्य हैं और जम्भको दुर्वासाने यह शापदिया है कि आप इन्द्रसे वध्यहोंगे ॥ १२ ॥ इस
लिये दिव्य बलसे तुम मदसे उग्र जम्भ दानव को मारो क्योंकि वह दानव तुमको छोड़कर सब प्राणियों से अवध्यहै ॥ १३ ॥ मुझसे रक्षित होकर तुम संसारके कंटक

रूप जम्भ दानवको नाशकरो विष्णुजी का वह वचन सुनकर दैत्योंके नाशक इन्द्रने ॥ १४ ॥ सुराध्यक्षों को सेनाकी रचनाके लिये आज्ञादिया तदनन्तर देवताओं से याचित विष्णुजी ने सेनाको रचा ॥ १५ ॥ समस्त लोक, बल व तपस्याका जो सारांश था उससे गेरह रुद्रोंको विष्णुजी ने अग्रगामी किया ॥ १६ ॥ जो रुद्र कि सांपोंसे संयुत अंगोंवाले व बड़े वेगवान् और जलतेहुये व नील कन्धोंवाले और चन्द्रखण्ड, त्रिपुण्ड्र वाले व पिंगलोचनोंवाले और शूलधारीथे ॥ १७ ॥ व पीले, ऊंचे जटाजूटोंवाले, सिंहचर्म के वस्त्रवाले और भस्मसे मर्दित अंगवाले व विकट भुजमण्डलवाले थे ॥ १८ ॥ और बड़े दैत्योंको भगानेवाले कपाली आदिक रुद्र

समादिशत्सुराध्यक्षान्सैन्यस्यरचनाम्प्रति ॥ ततश्चाभ्यर्थितोदेवैर्विष्णुस्सैन्यमकल्पयत् ॥ १५ ॥ यत्सारंसर्वलोकस्य वीर्यस्यतपसोपिच ॥ तदेकादशरुद्रांस्तु चकाराग्रेसरान्हरिः ॥ १६ ॥ व्यालाढ्याङ्गामहावेगा ज्वलिनोनीलकन्धराः ॥ चन्द्रखण्डत्रिपुण्ड्राश्च पिङ्गाक्षाःशूलधारिणः ॥ १७ ॥ पिङ्गोत्तुङ्गजटाजूटाः सिंहचर्म्मवसानिनः ॥ भस्मोद्धूलितगात्राश्च भुजमण्डलभैरवाः ॥ १८ ॥ कपालीत्यादयोरुद्राविद्रावितमहासुराः ॥ कपालीपिङ्गलोभीमो विरूपाक्षोविलोहितः ॥ १९ ॥ अजैकपाच्छिवःशास्ता शम्भुश्चण्डोभवस्तथा ॥ एतएकादशानान्तु बलारुद्रप्रभाविनः ॥ २० ॥ अपालयन्तत्रिदशान्विगर्जन्तइवाम्बुदाः ॥ हिमाचलाभेमहतिकाञ्चनस्यशुभासने ॥ २१ ॥ प्रचलत्सुमहाहेमघण्टासंहतिमण्डिते ॥ ऐरावतेचतुर्दन्तेमत्तमातङ्गआस्थितः ॥ २२ ॥ महामदजलस्रावेकामरूपेशतक्रतुः ॥ आदित्यावसवोविश्वेमरुतश्चाश्विनावपि ॥ २३ ॥ गन्धर्वाराक्षसायक्षाःसकिन्नरमहोरगाः ॥ कोटिशःकोटिशःकृत्वा वृन्दश्चि

थे, कपाली, पिंगल, भीम, विरूपाक्ष, विलोहित ॥ १९ ॥ अजैकचरण, शिव, शास्ता, शम्भु, चण्ड व भव ये शिवजीके प्रभाववाले गेरहों रुद्रोंकी सेनाहैं ॥ २० ॥ और हिमाचल के समान शोभावाले सोनेके बडेभारी उत्तम आसनपै मेघोंके समान गर्जते हुये वे देवताओं को पालन करतेथे ॥२१॥ व चलतेहुये बड़े सोनेके घण्टा समूहों से शोभित व महामदके जलको बहानेवाले, इच्छारूपधारी व चारदांतोवाले ऐरावत नामक मत्तहाथीपे इन्द्रजी सवारहुये व आदित्य, वसु, विश्वेदेवता, मरुत्

व अश्विनीकुमार भी ॥ २२ । २३ ॥ व गन्धर्व, राक्षस, यक्ष व किन्नरों समेत महानाग चिह्नसे लक्षित करोड़ों करोड़ यूथ करके ॥ २४ ॥ अपने यशको सुनातेहुये
अनेक रंगके अस्त्र व ध्वजावाले देवता वन्दीगण अग्रगामियों समेत दैत्योंके मारने के लिये चले ॥ २५ ॥ व देवसमूहोंसे शोभित व हाथी, रथोंके शब्दसे शब्दित
और श्वेत व ऊंचे कोटियों ध्वज पटों से भूषित वह इन्द्रकी सेना दितिपुत्रोंके शोचको बढ़ानेवाली हुई ॥ २६ ॥ इसके अनन्तर आतीहुई देवसेनाको देखकर संहार
समयके समुद्रके पराक्रमवाले व ओठपुटोंको काटते हुये परश्वध अस्त्रवाले हाथीरूपी बड़ेभारी गजासुर दैत्यने समरमें देवताओं को मर्दन किया व अन्य दैत्योंको

**होपलक्षितम् ॥ २४ ॥ विश्रावयन्तःस्वांकीर्तिं वन्दिवृन्दैःपुरस्सरैः ॥ चेलुर्दैत्यवधेदेवा नानावर्णायुधध्वजाः ॥ २५ ॥
शतक्रतोरमरनिकायपालिता पताकिनीगजरथनादनादिता ॥ सितोन्नतध्वजपटकोटिमण्डिता बभूवसादितिसुतशो
कवर्द्धनी ॥ २६ ॥ आयान्तीमवलोक्याथसुरसेनाङ्गजासुरः ॥ गजरूपीमहांश्चैवसंहाराम्भोधिविक्रमः ॥ २७ ॥ परश्वधा
युधोदैत्योदशन्नोष्ठकसम्पुटः ॥ ममर्द्दचरणेदेवांश्चिक्षेपान्यान्करेणच ॥ २८ ॥ परान्परशुनाजघ्ने दैत्येन्द्रोरौद्रविक्र
मः ॥ तस्यैवंनिघ्नतःक्रुद्धा देवगन्धर्वकिन्नराः ॥ २९ ॥ मुमुचुःसहिताःसर्वे चित्रशस्त्रास्त्रसंहतिम् ॥ परश्वधांश्चचक्राणि
भिन्दिपालान्समुद्गरान् ॥ ३० ॥ कुन्तान्प्रासानसींस्तीक्ष्णान् मुकुटांश्चातिदुःसहान् ॥ तान्सर्वानग्रसद्दैत्यः कवलानी
वयूथपः ॥ ३१ ॥ कोपस्फुरितदीर्घाग्रकरस्फोटेननादयन् ॥ सुरान्निघ्नंश्चचाराजौ दुष्प्रेक्ष्योगजदानवः ॥ ३२ ॥ यस्मि
न्यस्मिन्निपतितेसुरवृन्देगजासुरः ॥ तस्मिंस्तस्मिन्महाशब्दोहाहाकारःप्रजायते ॥ ३३ ॥ कपाल्युवाच ॥ भोभोगृहीत**

हाथसे फेंकदिया ॥ २७ । २८ ॥ व कराल बलवाले दैत्येन्द्र ने अन्य दैत्योंको फरसासे मारा इस प्रकार उसको मारते हुये क्रोधित होकर साथही सब देवता गन्धर्व
किन्नरोंने विचित्र शस्त्रास्त्रोंके समूहको छोड़ा व परश्वध, चक्र, भिन्दिपाल, मुद्गर ॥ २९ । ३० ॥ भाला, प्रास व पैनी तलवार और असह्य मुकुटोंको चलाया व उन
सब अस्त्रोंको दैत्यने लीललिया जैसे कि हाथियों का स्वामी ग्रासोंको खाताहै ॥ ३१ ॥ क्रोधसे फरकते हुये बड़े अग्रभागवाली सूंडके शब्दसे शब्द करता व समर
में देवताओंको नाश करता हुआ वह गज दानव दुःखसे देखने योग्यहुआ ॥ ३२ ॥ जिस २ सुरसमूहमें गजासुर गिरताहै उस २ मे बड़ा हाहाकार शब्द होताहै ॥ ३३ ॥

कपाली बोले कि हे महावलिष्ठ देवताओ ! दैत्येन्द्रको पकडो व इसको काटडालो और इसे खींचों व पैने शूलोंसे इसके सुकुमार स्थानोंमें मारो ॥ ३४ ॥ कपालीका वचन सुनकर तीक्ष्णता से श्वेत मुखवाले शूलको बायें हाथसे पोंछकर क्रोध से फैलाये हुये लोचनोंवाला ॥ ३५ ॥ व फूलेहुये लाल व नील कमलवाला दैत्य सब दिशाओं में मारताहुआ शोभित भया इसके अनन्तर टेढ़ी भौहों के मुखवाले कपाली युद्धमे दैत्येन्द्रके सामनेगये ॥ ३६ ॥ व युद्धमें पर्वतके समान शरीरवाले दैत्येन्द्रको शूलोंसे मारा पश्चात् उसके सब छिद्रोंमें रक्त बहा ॥ ३७ ॥ और बहते हुये भयङ्कर रक्तमे गज दानव शरदृऋतुमे फूलेहुये लाल व नील कमलवाले निर्मल

दैत्येन्द्रंभिन्तचैनंमहाबलाः ॥ कर्षतैनंशितैश्शूलैर्भङ्क्तचैनंहिमर्म्मसु ॥ ३४ ॥ कपालीवाक्यमाकर्ण्य शूलंशातसितंमुखम् ॥ सम्माज्र्यवामहस्तेन संरम्भाविवृतेक्षणः ॥ ३५ ॥ प्रोत्फुल्लारुणनीलाब्जः संहनन्सर्वतोदिशः ॥ अथागाद्भृकुटीवक्त्रोदैत्येन्द्राभिमुखोरणे ॥ ३६ ॥ जघ्नेशूलैश्चदैत्येन्द्रं शैलवर्ष्माणमाहवे ॥ सुस्रावशोणितंपश्चात्सर्वस्रोतस्सुतस्यवै ॥ ३७ ॥ स्रवद्रक्तेनरौद्रेण शुशुभेगजदानवः ॥ प्रोत्फुल्लारुणनीलाब्जं शरदीवामलंसरः ॥ ३८ ॥ भस्मशुभ्रतनुच्छायै रुद्रैर्हंसैरिवावृतम् ॥ क्रुद्धंकपालिनन्दैत्यः प्रचलत्कर्णपल्लवः ॥ ३९ ॥ स्वयंचदन्तैर्बिभिदे नाभिदेशेगजासुरः ॥ दृष्ट्वातुशक्रंरुद्राभ्यां नवरुद्रास्ततोद्रुतम् ॥ ४० ॥ ततक्षुर्विशिखैःशूलैश्शरीरममरद्विषः ॥ ततःकपालिनंत्यक्त्वाशक्रंचासुरपुङ्गवः ॥ ४१ ॥ वेगेनकुपितोदैत्यो नवरुद्रानुपाद्रवत ॥ ममर्द्दचरणाघातैर्द्दन्तैश्चापिकरेणच ॥ ४२ ॥ ततोसौशूलयुद्धेन श्रममापादितोयदा ॥ तदाकपालीजग्राह करमस्यामरद्विषः ॥ ४३ ॥ भ्रामयामासचातीववेगेनचमहा

तडागकी नाईं शोभित हुआ ॥ ३८ ॥ व हंसोंके समान भस्मसे उत्तम शरीरकी शोभावाले रुद्रों करके घिरेहुये क्रोधित कपालीको चलते हुये कर्णपल्लववाले गजासुर दैत्यने आपही दांतो से नाभिके स्थान में विदारण किया व दो रुद्रों समेत इन्द्रको देखकर तदनन्तर शीघ्रही नव रुद्रो ने ॥ ३९ । ४० ॥ देवशत्रु गजासुरके शरीर को बाणों व शूलोंसे भेदन किया तदनन्तर कपाली व इन्द्रको छोड़कर दैत्योत्तम ॥ ४१ ॥ गजासुर दैत्य क्रोधित होकर वेगसे नवरुद्रों के समीप गया व चरणप्रहार, दन्त और हाथसे मर्दनकिया ॥ ४२ ॥ तदनन्तर जब शूलके युद्धसे यह परिश्रम को प्राप्तहुआ तब कपालीने इस देवशत्रु गजासुर की सूंड़ पकड़ लिया ॥ ४३ ॥ व

बड़े वेगसे महादैत्य को घुमाया और कुछ शेष जीववाले व परिश्रमसे विकल दैत्यको उस युद्धमें उत्साहहीन देखकर कपाली जी युद्धके उछाहसे रहितहुये तदनन्तर घूमते हुये इसका भयंकर चर्म उखाड़ कर ॥ ४४ । ४५ ॥ व सब अंगोंसे बहतेहुये रक्तप्रवाहवाले चर्मको अपना वसन किया तदनन्तर बहुत स्तोत्रों करके देवता उनकी बहुत प्रकार से स्तुति किया ॥ ४६ ॥ व कहा कि जो इसको इस प्रकार से न मारता तो यह नहीं मरता और हाथीके चर्मरूप वसन से घिरा कपाली का रूप देख कर ॥ ४७ ॥ हज़ारों दानव डरे व भगे और मारा व गिरे इसप्रकार उस बडेबली दानवेन्द्रके मरजाने पर ॥ ४८ ॥ इसके अनन्तर सैकड़ों नगारोंसे शब्दायमान मत्त

सुरम् ॥ दृष्ट्वाश्रमातुरन्दैत्यं किञ्चिच्छ्वासितजीवितम् ॥४४॥ निरुत्साहंरणेतस्मिन् गतयुद्धोत्सवोभवत् ॥ ततोश्रम
तएवास्य चर्मचोत्कृत्यभैरवम् ॥ ४५ ॥ स्रवत्सर्वाङ्गरक्तौघंचकाराम्बरमात्मनः ॥ तुष्टुवुस्तंततोदेवा बहुधाबहुभिःस्त
वैः ॥ ४६ ॥ ऊचुश्चैनंयोहन्यान्नम्रियेततततस्त्वसौ ॥ दृष्ट्वाकपालिनोरूपंगजचर्माम्बरावृतम् ॥ ४७ ॥ वित्रेसुर्दुद्रुवुर्जघ्नु
र्निपेतुश्चसहस्रशः ॥ एवंविलुलितेतस्मिन्दानवेन्द्रेमहाबले ॥ ४८ ॥ गजंमत्तमथारुह्य शतदुन्दुभिनादितम् ॥ निमिर
भ्यापतत्तूर्णं सुरसैन्यान्यलोडयत ॥ ४९ ॥ यांयांनिमेर्गजोयातिदिशंतांतांसवाहनाः ॥ दुद्रुवुश्चुक्रुशुर्देवा भयेनाकम्पि
तामुहुः ॥ ५० ॥ गन्धेनसुरमातङ्गा दुद्रुवुस्तस्यहस्तिनः ॥ पलायितेषुसैन्येषु सुराणांपाकशासनः ॥ ५१ ॥ तस्थौदि
क्पालकैस्सार्द्धमष्टभिःकेशवेनच ॥ सम्प्राप्तस्तस्यमातङ्गोयावच्छक्रगजंप्रति ॥ ५२ ॥ तावच्छक्रगजोभीतो मुक्त्वा
नादंसुभैरवम् ॥ ध्रियमाणोपियत्नेन नचक्वापितिष्ठति ॥ ५३ ॥ पलायतिगजेतस्मिन्नारूढःपाकशासनः ॥ विपरीतमु

थी पै चढ़कर निमिदैत्य शीघ्रही इसके समीप प्राप्तहुआ व देवसेनाओंको मारा ॥ ४९ ॥ निमिका हाथी जिस जिस दिशाको जाताहै उस उस दिशा में भय से बार
कँपाये हुये देवता सवारियों समेत भगे व चिल्लाने लगे ॥ ५० ॥ व उस के हाथी की सुगन्ध से देवताओं के हाथी भगे और देवताओं की सेना भागने पर इन्द्र ॥ ५१ ॥
दिक्पाल व विष्णु समेत खड़ेरहे व जबतक उसका हाथी इन्द्रके हाथीके सामने भलीभांति प्राप्तहुआ ॥ ५२ ॥ तबतक हे कौरव ! डराहुआ इन्द्रका हाथी भयंकर शब्द

से इसके सुकुमार स्थानोंमें मारो ।
। व फूलेहुये लाल व नील

करके उपाय से धारण कियाजाता भी वह न खड़ाहुआ ॥ ५३ ॥ उस भगेहुये हाथी पर इन्द्रजी चढ़ेथे व उस दानवने६ ॥ व युद्धमें पर्इन्द्र से युद्ध नहीं किया ॥ ५४ ॥
आर इन्द्रने निमिकी छाती में शूल से मारा व गदा से उसके हाथी के कपोल में बड़े ज़ोर से मारा ॥ ५५ ॥ उस प्रहार ते फ्ने चिन्तन कर निडर बलवाले निमि ने
ऐरावतके काटि में मुद्गर से मारा ॥ ५६ ॥ इस के अनन्तर मुद्गर से मारा हुआ पर्वतके आकारवाला इन्द्र का हाथी समर में पांवों से पीछे पृथ्वी में प्राप्तहुआ ॥ ५७ ॥
तदनन्तर शीघ्रता से जल्दी उठकर इन्द्र देवका वह बडा हाथी निमि के हाथी से डरकर युद्ध से शीघ्रही भग गया ॥ ५८ ॥ उसके उपरान्त बहुत कंकरीली धूलि

खंयुद्धं दानवेन्द्रोनसोकरोत् ॥ ५४ ॥ शतक्रतुश्चशूलेन निमिंवक्षस्यताडयत् ॥ गदयादन्तिनंतस्य गण्डदेशेहनद्भृश
म् ॥ ५५ ॥ तंप्रहारमचिन्त्यैव निमिर्निर्भयपौरुषः ॥ ऐरावतंकटीदेशे मुद्गरेणाभ्यताडयत् ॥ ५६ ॥ सहतोमुद्गरेणाथ
शक्रकुञ्जरआहवे ॥ जगामपश्चात्पद्भ्यांच पृथिवींभूधराकृतिः ॥ ५७ ॥ लाघवात्क्षिप्रमुत्थाय ततोमरमहागजः ॥
रणादपससाराशु भीषितोनिमिहस्तिना ॥ ५८ ॥ ततोवायुर्ववौरूक्षो बहुशर्करपांशुलः ॥ सम्मुखोनिमिमातङ्गं कम्प
न्निवप्रकम्पनः ॥ ५९ ॥ स्रुतरक्तोबभौशैलः स्रुतधातुह्रदोयथा ॥ धनेशोपिगदांगुर्वीं तस्यदानवहस्तिनः ॥ ६० ॥ मु
मोचवेगान्न्यपतत्सागदातस्यमूर्द्धनि ॥ गजोगदानिपातेनसतेनपरिमूर्च्छितः ॥ ६१ ॥ दन्तैर्भित्त्वाधरांवेगात्पपाताच
लसन्निभः ॥ पतितेतुगजेतस्मिन् सिंहनादोमहानभूत् ॥ ६२ ॥ सर्वतस्सुरसैन्यानां गजबृंहितबृंहितः ॥ हेषारवेणचा
श्वानां गुणास्फोटैश्चधन्विनाम् ॥ ६३ ॥ गजंतंनिहतंदृष्ट्वानिमिश्चापिपराङ्मुखम् ॥ सुराणांसिंहनादश्च सन्नादितादिग

संयुत बडा भारी व कठोर पवन निमि के हाथी को कँपाता हुआ सामने चलता भया ॥ ५९ ॥ व बहतेहुये रक्तवाला वह हाथी बहतेहुये धातुवों के कुण्डवाले पर्वत
की नाई शोभितहुआ व कुबेर ने भी गरुई गदाको उस दानव के हाथी के ऊपर ॥ ६० ॥ छोडा और वह गदा उसके माथे पै वेग से गिरी व उस गदाके गिरने से
वह हाथी मूर्च्छित हुआ ॥ ६१ ॥ और दांतों से पृथ्वी को फोडकर पर्वत के समान वह हाथी वेगसे गिरपड़ा उस हाथी के गिरने पर हाथियों की गर्जन से बढ़ाहुआ
सुरसेनाओं का बडाभारी सिहनाद सब ओर हुआ जो कि घोड़ोंके हिनहिनानेके शब्दसे व धनुर्द्धारियों की पंचके शब्दसे संयुत था ॥ ६२ । ६३ ॥ और दिशाओं के

सप्यको शब्दायमान करनेवाले देवताओं के सिंहनाद को व विमुख निमि तथा उस मरेहुये हाथीको देखकर ॥ ६४ ॥ जम्भ घीको पियेहुये अग्निकी नाई जल उठ
तदनन्तर क्रोध से लाल लोचनोंवाले उस दैत्यने धनुषमें बाण लगाकर ॥ ६५ ॥ खडेहो ऐसा इन्द्रसेकहा व सारथिको प्रेरणा किया और धनुषमें बाणलगाकर आते
हुये उस दैत्यको सामने देखकर ॥ ६६ ॥ अन्यूनबुद्धिवाले इन्द्रने पुष्ट धनुष व तेलसे धोयेहुये अग्रवाले व सीधेजानेवाले अर्द्धचन्द्र बाणकोलिया ॥ ६७ ॥ व उस
से बल व वृत्रासुर के विनाशक इन्द्रने इसका बाण समेत धनुष काटडाला उस धनुषको शीघ्रही छोड़कर दानवके पुत्र जम्भने वेगवान् बाणके साधनेवाले दूसरे

न्तरम् ॥ ६४ ॥ जम्भोजज्वालकोपेन पीताज्यइवपावकः ॥ ततस्सकोपरक्ताक्षो धनुष्यारोप्यसायकम् ॥ ६५ ॥ तिष्ठेति
चाब्रवीच्छक्रं सारथिञ्चाप्यचोदयत् ॥ तमायान्तमभिप्रेक्ष्य धनुष्यारोप्यसायकम् ॥ ६६ ॥ शतक्रतुरहीनात्मा दृढ
मादत्तकार्म्मुकम् ॥ बाणंचतैलधौताग्रमर्धचन्द्रमजिह्मगम् ॥ ६७ ॥ तेनास्यसशरंचापं चिच्छेदबलवृत्रहा ॥ अपा
स्यतद्धनुःक्षिप्रं जम्भोदानवनन्दनः ॥ ६८ ॥ अन्यत्कार्मुकमादाय वेगवद्बाणसाधनम् ॥ शरांश्चाशीविषाकारांस्तैल
धौतानजिह्मगान् ॥ ६९ ॥ शक्रंविव्याधदशभिर्जत्रुदेशेसपत्रिभिः ॥ हृदयेचत्रिभिश्चैव द्वाभ्यांचस्कन्धयोर्द्वयोः ॥ ७० ॥
शक्रोपिदानवेन्द्राय बाणजालमधारयत् ॥ अप्राप्तान्दानवेन्द्रस्तु शराञ्छक्रभुजेरितान् ॥ ७१ ॥ चिच्छेदशतधाका
शेशरैरग्निशिखोपमैः ॥ ततश्शरजालेनदेवेन्द्रोदानवेश्वरम् ॥ ७२ ॥ आच्छादयद्यथाशीघ्रं वर्षास्विवघनैर्नभः ॥
दैत्योपिबाणजालेन व्यधमत्सायकैस्सितैः ॥ ७३ ॥ यथावायुर्घनाटोपं यदवार्यनिशामुखे ॥ दानवेन्द्रन्तथाचक्रे ग

धनुषको व तैलसे धोयेहुये सीधे जानेवाले बाणोंको लिया ॥ ६८ । ६९ ॥ व उस दानवने दश बाणोंसे इन्द्रके कन्धेकी सन्धि (हँसियों) में मारा व तीन बाणोंसे
हृदय और दोसे दोनों कन्धोंमें मारा ॥ ७० ॥ व इन्द्रने भी दानवेन्द्रके लिये बाणसमूहको पठाया और दानवेन्द्रने इन्द्रकी भुजासे पठाये व न पहुँचेहुये बाणोंको ॥
७१ ॥ आकाशमें अग्निकी ज्वालाके समान बाणोसे सौ खण्ड करके काटडाला तदनन्तर देवेन्द्र ने शरसमूह से दानवेश्व[illegible] वैसेही छिपा लिया जैसे कि वर्षा में
शीघ्रही मेघोंसे आकाश आच्छादित होजाता है और दैत्यने भी बाणसमूह से पैने बाणोंसे सब शरोंको नाश करदिया और दैव[illegible]क हे कौरव ! डराहु[illegible] व जैसे वायु सन्ध्यामें न मना

करने योग्य घटाटोप का करती है वैसेही बडे अद्भुत गन्धर्वास्त्र ने दानवेन्द्र को किया ॥ ७४ ॥ तदनन्तर इस अस्त्रके तेजसे आकाशमण्डल व्याप्त होगया व अनेक भांतिकी छहरदिवाली व बाहरी द्वारोंवाले गन्धर्वनगरों से व्याप्त हुआ ॥ ७५ ॥ जोकि सब ओरसे अद्भुत आकारवाले बाणों करके अस्त्रकी वृष्टिको छोडतेथे उस अस्त्रकी वर्षासे मारी जातीहुई बडीभारी सेना ॥ ७६ ॥ हे भारत ! त्राहि २ ऐसा कहकर जम्भकी शरणमें गई तदनन्तर बार २ हँसतेहुये बड़े पराक्रमी जम्भने शब्द करके ॥ ७७ ॥ व सज्जनों का आचरण स्मरण करतेहुये दैत्योंको अभय दिया तदनन्तर बडे भयवाले मौसल नामक अस्त्रको छोड़ा ॥ ७८ ॥ उसके उपरान्त कराल

न्धर्वास्त्रंमहाद्भुतम् ॥ ७४ ॥ ततोऽस्यतेजसाव्याप्तमभूद्गगनगोचरम् ॥ गन्धर्वनगरैश्चापि नानाप्राकारतोरणैः ॥ ७५ ॥ मुञ्चद्भिरद्भुताकारैरस्त्रवृष्टिंसमन्ततः ॥ तयास्त्रवृष्ट्यादैत्यानां हन्यमानामहाचमूः ॥ ७६ ॥ जम्भंशरणमागच्छत त्राहित्राहीतिभारत ॥ ततोजम्भोमहावीर्यो निनद्यप्रहसन्मुहुः ॥ ७७ ॥ स्मरन्साधुसमाचारं दैत्यानामभयन्ददौ ॥ ततोऽस्त्रंमौसलन्नाम मुमोचसुमहाभयम् ॥ ७८ ॥ ततोऽग्रमुसलैस्सर्वमभवत्पूरितंजगत् ॥ तैर्भग्नानिचसर्वाणि गन्धर्वनगराणिवै ॥ ७९ ॥ अथोग्रैकप्रहारेण गजमश्वंरथंसुरम् ॥ चूर्णयामासतत्क्षिप्रं शतशोथसहस्रशः ॥ ८० ॥ ततस्सुराधिपःशक्रस्त्वाष्ट्रमस्त्रमुदैरयत् ॥ सन्धायमानेचततोनिश्चेरुःपावकार्चिषः ॥ ८१ ॥ ततोयन्त्रमयाविद्याः प्रादुरासन्सहस्रशः ॥ तैर्यन्त्रैरभवद्बद्धमन्तरिक्षेवितानकम् ॥ ८२ ॥ तैर्यन्त्रैर्मौसलंभग्नं हन्यन्तेचासुरास्ततः ॥ शैलास्त्रं मुमुचेजम्भो यन्त्रसङ्घाततोदनम् ॥ ८३ ॥ व्यामप्रमाणैरुपलैस्ततोवर्षःप्रवर्तते ॥ त्वाष्ट्रेणनिर्म्मितान्याशुयानियन्त्रा

मुसलों से सब संसार पूर्णहोगया और उन्होंने सब गन्धर्वनगरोंको तोड़डाला ॥ ७९ ॥ इसके अनन्तर वह अस्त्र एक भयंकर प्रहारसे हाथी, घोड़ा, रथ व देवताको शीघ्रही चूर्ण करडाला और सैकडो व हजारों देवोंको मारा ॥ ८० ॥ तदनन्तर देवताओं के स्वामी इन्द्रने त्वाष्ट्र अस्त्रको चलाया तदनन्तर उसके सन्धान करने पर अग्निकी ज्वालायें निकलीं ॥ ८१ ॥ उसके उपरान्त हजारों यन्त्रमय विद्या प्रकट हुईं व उन यन्त्रोंसे आकाश में वितान (सामियाना) बँधगया ॥ ८२ ॥ और उन यन्त्रों से मुसल टूटगया व देवता मारेजानेलगे तदनन्तर जम्भने यन्त्रसमूह को नाशनेवाले शैलास्त्रको छोड़ा ॥ ८३ ॥ तदनन्तर व्याम प्रमाणभर पत्थरों से वर्षा

१ भुजाओं को तिरछा फैलाने से जो अन्तर होताहे वह व्याम है ॥

भयानक युद्ध को न छोड़ना चाहिये हे प्रभो, इन्द्र ! मोह को मत प्राप्त होवो व शीघ्रही अस्त्र को स्मरण कीजिये ॥ १५॥ यह सुन पवित्र होकर उसने नारायणास्त्र को छोड़ इसी अवसर में मुख को फैलाये हुये दैत्यने क्षणभर में तीन तीन लाख किन्नर सर्प व राक्षसों को निगल गया तदनन्तर नारायणास्त्र इसकी छातीपै गिरा ॥ १६ । १७ ॥ और बड़े अस्त्र से कटे हृदयवाले उसने बहुत रुधिर बहाया व उस अस्त्रके तेजसे उस दैत्य का रूप नाश होगया ॥ १८ ॥ तदनन्तर बड़ाउग्र हास्य करके दैत्य अन्तर्द्धान होगया व आकाशमें खड़ेहुये उस दैत्येन्द्रने इन्द्रियों के अगोचर शस्त्र, अस्त्रको ॥ १९ ॥ छोड़ा जो कि देवों की सेनाओं का बहुतही

प्रभो ॥ १५ ॥ नारायणास्त्रंप्रयतः श्रुत्वेतिमुमुचेहरिः ॥ एतस्मिन्नन्तरेदैत्यो विवृतास्योग्रसत्क्षणात् ॥ १६ ॥ त्रीणि
त्रीणिचलक्षाणि किन्नरोरगरक्षसाम् ॥ ततोनारायणास्त्रंचनिपपातास्यवक्षसि ॥१७॥ महास्त्रभिन्नहृदयः सुस्रावरुधिरं
चसः ॥ तदस्त्रतेजसारूपं तस्यदैत्यस्यनाशितम् ॥ १८ ॥ ततश्चान्तर्दधेदैत्यः कृत्वाहासंमहोत्कटम् ॥ गगनस्थस्स
दैत्येन्द्रः शस्त्रमस्त्रमतीन्द्रियम् ॥ १९ ॥ मुमोचासुरसैन्यानां संहारकरणंपरम् ॥ तथापरश्वधांश्चक्रवज्रबाणान्समुद्ग
रान् ॥ २० ॥ कुन्तान्खड्गान्भिन्दिपालानयोमुखयुतांस्तथा ॥ ववर्षदानवोरोषाद्विविधानक्षयानपि ॥ २१ ॥ तैरस्त्रैर्दान
वोन्मुक्तैर्देवानीकेषुभीषणैः ॥ बाहुभिर्धरणीपूर्णा शिरोभिश्चसकुण्डलैः ॥ २२ ॥ ऊरुभिर्गजहस्ताभैः करीन्द्रैश्चाचलो
पमैः ॥ भग्नेषदण्डचक्राग्रै रथैस्सारथिभिस्सह ॥ २३ ॥ दुस्सञ्चाराभवत्पृथ्वी मांसशोणितकर्दमा ॥ रुधिरौघह्रदाव
र्ता गजदेहशिलोच्चया ॥ २४ ॥ कबन्धनृत्यबहुधा महासुरप्रवाहिनी ॥ शृगालगृध्रध्वाङ्क्षाणां परमानन्दकारिणी ॥ २५ ॥

नाशक था वैसेही परश्वध व मुद्गरों समेत चक्र, वज्र, बाण ॥ २० ॥ भाला, तलवार, भिंदिपाल व लोहमुख संयुत अनेक प्रकार के व अविनाशी भी अस्त्रोंकी दानव ने क्रोध से वृष्टि किया ॥ २१ ॥ व सुरसेनाओं में दानवों से छोड़ेहुये उन अस्त्रों से कटीहुई भयंकर भुजाओं से व कुण्डल समेत मस्तकों से पृथ्वी पूर्ण होगई ॥ २२ ॥ व हाथियों की सूंड़के समान जघस्थल और पर्वतों की नाई हाथियों व सारथि समेत टूटीहुई दसी, गज व आंकवाले रथोंसे ॥ २३ ॥ मांस व रक्तके कीचड़वाली पृथ्वी दुःखसे चलने योग्य हुई जो कि रुधिरप्रवाहके कुण्डरूप भँवरवाली व हाथियोंकी देहरूपी पर्वतोंवाली थी ॥ २४ ॥ और कबंधों के नृत्य समेत बहुत भांति के

हुये इन्द्रने त्रिलोकीको असह्य नारसिंह अस्त्र छोडा ॥ ४ ॥ तदनन्तर मन्त्रकेतेजसे पुष्ट दाढ़ोंसे अट्टहास शब्दवाले व आरोंके समान नखोंवाले हज़ारोंसिंह निकले ॥
५ ॥ उनसे फाडेहुये अंगवाले इसने हाथीकी मायाको नष्ट कर दिया तदनन्तर प्राणोंसे विकल यह भयंकर सर्प हुआ ॥ ६ ॥ कि जिमकी विषसयुत श्वाससे देवता-
ओंकी सेनाके महारथी जलते थे तदनन्तर इन्द्रने समरमें गरुड़वाले अस्त्रका प्रहारकिया ॥ ७ ॥ उसके उपरान्त उस अस्त्रसे हज़ारों गरुड़ निकले उन गरुड़ोंसे सर्प
रूपवाले जंभ को प्राप्त होकर ॥ ८ ॥ वह दैत्य खंडर किया गया और इसकी वह माया नष्ट होगई तदनन्तर माया नाश होने पर महादैत्य जंभने ॥ ९ ॥ चंद्रमा,

पुष्टदंष्ट्राट्टहासानिक्रकचाभनखानिच ॥ ५ ॥ तैर्विपाटितगात्रोसौ गजमायांव्यपोहयत ॥ ततश्चाशीविषोघोरोभवत्प्रा
णसमाकुलः ॥ ६ ॥ विषनिःश्वासनिर्दग्धसुरसैन्यमहारथः ॥ ततोस्त्रंगारुडंचक्रे शक्रःप्रहरणंरणे ॥ ७ ॥ ततोगरु
त्मतांतस्मात्सहस्राणिविनिर्ययुः ॥ तैर्गरुत्मभिरासाद्य जम्भंभुजगरूपिणम् ॥ ८ ॥ कृतस्तुखण्डशोदैत्यः सास्यमाया
व्यनश्यत ॥ मायायांचप्रणष्टायां ततोजम्भोमहासुरः ॥ ९ ॥ चकाररूपमतुलं चन्द्रादित्यपदानुगम् ॥ विवृत्तनय
नोग्रस्तुमियेषसुरपुङ्गवान् ॥ १० ॥ ततोस्यविततेवक्त्रे समहारथकुञ्जरा ॥ सुरसेनाविशद्भीमं पातालोज्ज्वलतालुकम् ॥
११ ॥ सैन्येषुग्रसमानेषु दानवेनबलीयसा ॥ शक्रोदीनत्वमापन्नः श्रान्तवाहनवाहनः ॥ १२ ॥ कर्तव्यंनाधिगच्छत्सप्रो
वाचेदंजनार्द्दनम् ॥ किमनन्तरमेवास्ति कर्त्तव्यमवशेषतः ॥ १३ ॥ तदादिशघटामोस्य दानवस्ययुयुत्सतः ॥ ततोह
रिरुवाचेदं वज्रायुधमुदारधीः ॥ १४ ॥ नसाम्प्रतंरणंत्याज्यंशक्रकातरभैरवम् ॥ माशक्रमोहमागच्छ क्षिप्रमस्त्रंस्मर

सूर्य के चरणो का अनुगामी अतुलितरूप किया व आखोंको फैलाये हुये उसने सुरश्रेष्ठों को ग्रसनेकी इच्छा किया ॥ १० ॥ उसके उपरान्त पातालसे उज्ज्वल तालु
वाले इसके फैलाये मुखमें बडेरथी व हाथियों समेत भयानक सेना पैठगई ॥ ११ ॥ बलिष्ठ दैत्य से सेनाओं के ग्रसित होनेपर थकीहुई सवारी व सेनावाले इन्द्रजी
दीनता को प्राप्त हुये ॥ १२ ॥ और वे कर्तव्यता को न प्राप्त हुये व विष्णु से यह बोले कि इमके अनन्तर क्या कर्तव्य शेष है ॥ १३ ॥ उसको कहिये क्योंकि युद्ध
करते हुये इस दानवके विषयमें मै उसको करूं तदनन्तर उदार बुद्धिवाले विष्णु जी ने वज्रअस्त्रवाले इन्द्र से यह कहा ॥ १४ ॥ कि हे इन्द्र ! इस समय कायरोंके

धाराओंसे संसार भरगया ॥ ६४ ॥ व आग्नेय अस्त्रको शान्त देखकर इन्द्रने अतुलित वायव्यअस्त्रकोकिया उससे मेघ नाशको प्राप्तहुये ॥६५॥ इसके अनन्तर वायव्या-
स्त्रके बलसे मेघ मण्डल के नाश होनेपर नील कमल दलके समान शोभावाला आकाश निर्मल होगया ॥ ६६ ॥ बड़े रूपवाले वायुसे कँपाये हुये जो बड़े बलीभी
दानव थे वे समरमें आगे खड़े होनेके लिये न समर्थ हुये ॥ ६७ ॥ तदनन्तर पवनके नाशके लिये दानवोंकी सेनाका स्वामी जम्भ चालीस कोसकी चौड़ाईवाला पर्वत
होगया॥६८॥जोकि अनेक प्रकारके आश्चर्यों से युक्त व अनेक भांतिकेवृक्ष व लताओंसे घिराथा तदनन्तर दैत्येन्द्रको पर्वताकार होनेपर जब पवन शान्तहोगया तब॥६९॥

**लोक्येन्द्रश्चकारह ॥ वायव्यमस्त्रमतुलं तेनमेघाययुःक्षयम् ॥ ९५ ॥ वायव्यास्त्रबलेनाथ निर्द्धूतेमेघमण्डले ॥ बभू
वानाविलंव्योम नीलोत्पलदलप्रभम् ॥ ९६ ॥ वायुनाचातिरूपेण कम्पिताश्चैवदानवाः ॥ नशेकुरग्रतःस्थातुं रणेतिब
लिनोपिये ॥ ९७ ॥ ततोजम्भोभवच्छैलो दशयोजनविस्तृतः ॥ मारुतप्रतिघातार्थं दानवानाबलाधिपः ॥ ९८ ॥ ना
नाश्चर्यसमायुक्तो नानाद्रुमलतावृतः ॥ ततःप्रशमितेवायौदैत्येन्द्रेपर्वताकृतौ ॥ ९९ ॥ महाशनीवज्रमसौ मुमोचाशु
शतक्रतुः ॥ तयाशन्यापतितया दैत्यस्योपलरूपिणः ॥ १०० ॥ कन्दराणिव्यशीर्यन्त समन्तान्निकराणिच ॥ तत
स्सादानवेन्द्रस्य शैलमायान्यवर्त्तत ॥ १ ॥ निवृत्तशैलमायोथ दानवेन्द्रोमदोत्कटः ॥ बभूवकुञ्जरोभीमो महाशैल
मयाकृतिः ॥ २ ॥ ममर्द्दचसुरानीकंदन्तैरभ्यहनत्सुरान् ॥ बभञ्जपृष्ठतःकांश्चित्करेणाकृष्यदानवः ॥ ३ ॥ ततःक्षय
यतस्तस्य सुरसैन्यानिवृत्रहा ॥ अस्त्रंत्रैलोक्यदुर्द्धर्षं नारसिंहंमुमोचह ॥ ४ ॥ ततःसिंहसहस्राणि निश्चेरुर्मन्त्रतेजसा ॥**

इन इन्द्रने शीघ्रही महाशनिरूप वज्र छोडा व उस गिरहुये वज्रसे पत्थररूपी दैत्यके ॥ १०० ॥ सब ओर बहुतसे कन्दरा टूटगये तदनन्तर दानवेन्द्र की वह पर्वत
वाली माया निवृत्त होगई ॥ १ ॥ इसके अनन्तर निवृत्तहुई पर्वती मायावाला वह मदसे उग्र दानवेन्द्र बड़े शैलकी आकृतिवाला भयानक हाथी होगया ॥ २ ॥ और
उस दानव ने देवसेनाको मर्दन किया व देवताओं को दांतोंसे मारा व कितनोंको सूंड़से खींचकर पीठ तोड़डाला ॥ ३ ॥ तदनन्तर उसे सुरसेनाओं को नाश करते

वर्त्तमान हुई हे भारत ! त्वाष्ट्र अस्त्रसे रचित जो यन्त्रथे वे शीघ्रही ॥ ८४ ॥ उस पत्थर के गिरने से तदनन्तर तिल २ भर होगये उसके उपरान्त देवताओं के मस्त-
कों में बड़े भयदायक पत्थर गिरने लगे ॥ ८५ ॥ इसके अनन्तर वे पत्थर के टुकड़े पृथ्वी व उस चतुरंगिणी सेनाको काटनेलगे तदनन्तर सहस्रलोचनोंवाले इन्द्र
ने वज्रास्त्र को बनाया ॥ ८६ ॥ तदनन्तर सब ओर पत्थर की बड़ी वर्षा टूटगई उसके उपरान्त शैलास्त्रके शान्त होजानेपर पर्वत के समान व बड़े पराक्रमी तथा
शीघ्रतासंयुत जम्भने ऐषीक अस्त्रका निर्माण किया व ऐषीक अस्त्र से पर्वतों का भेदक वज्रास्त्र नाशहोगया ॥ ८७ । ८८ ॥ इसके अनन्तर अतिभयंकर ऐषीक परमास्त्र

णिभारत ॥ ८४ ॥ तेनोपलनिपातेनगतानितिलशस्ततः ॥ ततःशिरस्सुदेवानांशिलाःपेतुर्म्महाभयाः ॥ ८५ ॥ तादारय
न्तिवसुधाञ्चतुरङ्गंबलञ्चतत् ॥ ततोवज्रास्त्रमकरोत्सहस्राक्षःपुरन्दरः ॥ ८६ ॥ ततोपलमहावर्षंव्यशीर्यतसमन्ततः ॥
ततःप्रशान्तेशैलास्त्रेजम्भोभूधरसन्निभः ॥ ८७ ॥ ऐषीकमस्त्रमकरोत्त्वरितोतिपराक्रमः ॥ ऐषीकेणागमन्नाशंवज्रास्त्रं
गिरिदारणम् ॥ ८८ ॥ विजृम्भत्यथचैषीकेपरमास्त्रेतिदारुणे ॥ जज्वलुर्दैवसैन्यानिसस्यन्दनगजानितु॥ ८९ ॥ दह्यमा
नेष्वनीकेषुतेजसास्त्रस्यसर्वतः ॥ आग्नेयमस्त्रमकरोद्बलहापाकशासनः ॥ ९० ॥ तेनास्त्रेणचतन्नाशमैषीकमगमत्त
दा ॥ तस्मिन्प्रतिहतेचास्त्रे पावकास्त्रोऽव्यजृम्भत ॥ ९१ ॥ जज्वालसेनाजम्भस्यरथःसारथिरेवच ॥ ततःप्रतिहतास्त्रोसौ
दैत्येन्द्रःप्रतिभानवान् ॥ ९२ ॥ वारुणास्त्रंमुमोचाथशमनंपावकार्चिषः ॥ ततोजलधरैर्व्योमस्फुरद्विद्युल्लताकुलैः ॥ ९३ ॥
गम्भीरैरसधारैश्च अभ्यपूर्यतमेदिनी ॥ करीन्द्रकरतुल्याभिर्धाराभिःपूरितंजगत् ॥ ९४ ॥ शान्तमाग्नेयमस्त्रंच वि

के बढ़नेपर रथ व हाथियों समेत देवताओं की सेना जलनेलगी ॥ ८९ ॥ अस्त्रके तेजसे सब ओर सेनाओं के जलने पर बल दैत्यके नाशक इन्द्रने आग्नेय अस्त्र
किया ॥ ९० ॥ उस समय उस अस्त्रसे वह ऐषीक अस्त्र नाश होगया और उस अस्त्र के नाश होजाने पर आग्नेयास्त्र बढताभया ॥ ९१ ॥ और जम्भकी सेना, रथ
व सारथी जलनेलगा तदनन्तर नष्ट हुये अस्त्रोंवाले इस बुद्धिमान् दैत्येन्द्र ने ॥ ९२ ॥ अग्निकी ज्वालाओं के नाशक आग्नेयास्त्र को छोडा तदनन्तर चमकती हुई
बिजुली की लताओं से संयुत मेघों से आकाश आच्छादित होगया ॥ ९३ ॥ व जलकी गम्भीर धाराओं से पृथ्वी पूर्ण होगई और हाथी की सूंड के समान

बड़े दैत्यों के प्रवाहवालीथी और सियार, गीध व कौवोंको बड़ी आनन्दकारक थी॥ २५ ॥ व साथ नाचती हुईं संभ्रम समेत स्त्रियों सहित मांस व रक्त पीकर दुर्द्धर्ष पिशाच जातियों से वह युद्ध व्याप्त था ॥ २६ ॥ जिस युद्धमें पतियों से कियेहुये घोड़ोंके खुरों से कर्णफूलोंकरके पिशाचिनी भलीभांति प्रसन्न होती हैं व और पिशाचिनी क्रोधसे देखती हैं ॥ २७ ॥ व मोतियों समेत हाथियों के मस्तकों को स्त्रियोंसे चुराये देखकर कर्णफूल बनाने में चतुर पिशाच स्त्रियों को प्रसन्न करते हैं ॥ २८ ॥ कोई कहते हैं कि हे देवताओ, हे दैत्यो ! हमलोग प्रार्थना करते हैं कि हमारी तृप्ति के लिये कल्पपर्यन्त युद्ध करना चाहिये॥ २९॥ कोई कहते हैं कि यह दैत्य व बड़े

पिशाचजातिभिःकीर्णं पीत्वामिषसुशोणितम् ॥ असंभ्रमाभिर्भार्याभिस्सहनृत्यद्भिरुद्धतैः ॥ २६ ॥ पिशाच्यो यत्रचाश्वानां खुराग्रैर्भर्तृभिःकृतैः ॥ कर्णपूरेषुमोदन्ते पश्यन्त्यन्यास्सरोषतः ॥ २७ ॥ केचित्पत्नीप्रमुषितान् गजकुम्भान्समौक्तिकान् ॥ प्रसादयन्तिबहुधा कर्णपूरार्थकोविदाः ॥ २८ ॥ केचिद्वदन्तिभोदेवाभोदैत्याःप्रार्थयामहे ॥ आकल्पमेवंयोद्धव्यमस्माकंतृप्तिहेतवे ॥ २९ ॥ केचिदाहुरयंदैत्योदेवोयमतिमांसलः ॥ म्रियतेयदिसंग्रामेधातुर्दद्योऽपयाचितम् ॥ ३० ॥ केचिद्युध्यत्सुवीरेषुसृक्किणीसंलिहन्तिच ॥ पतेदयंसपत्नोवैदुर्जनःसुजनंयथा ॥ ३१ ॥ केचिद्रक्तनदीनांचतीरेनास्तिकबुद्धयः ॥ पितॄन्देवांस्तर्पयन्तिशोणितैश्चामिषैःशुभैः ॥ ३२ ॥ केचिदामिषराशिस्थाद्दृष्ट्वान्यस्यकरामिषम् ॥ देहिदेहीतिवाशन्ते कृपणाधनिनोयथा ॥ ३३ ॥ केचित्स्वयमथोतृप्तादृष्ट्वावैखादतःपरान् ॥ सरोषमोष्ठौनिर्भज्य पश्यन्तीवान्यसूचकाः ॥ ३४ ॥ केचित्स्वमुदरंक्रुद्धानिन्दन्तेताडयन्तिच ॥ सर्वमत्रह्यभीप्सन्तःस्वतृप्तोन्यधनंयथा ॥ ३५ ॥

मांसवाला यह देवता यदि समर में मरै तो ब्रह्माको प्रार्थित वस्तु देवैंगे ॥ ३० ॥ वीरोंके युद्ध करने पर कोई गलफडों को चाटतेहैं व कहते हैं कि यह शत्रु गिरै जैसे कि दुर्जन सुजन को कहताहै ॥ ३१ ॥ रक्तकी नदियोंके किनारे नास्तिक बुद्धिवाले कोई रक्त व उत्तम मांसोंसे पितरों तथा देवताओं का तर्पण करते हैं ॥ ३२ ॥ व मांस के ढेरपै बैठेहुये कोई दूसरे के हाथमें मांस देखकर दीजिये २ ऐसा कहते हैं जैसे कृपण धन को मांगते हैं ॥ ३३ ॥ व आप तृप्तिरहित कोई खातेहुये औरों को देखकर क्रोधसे ओंठ काटके अन्य पिशुनों की नाईं देख रहेहैं ॥ ३४ ॥ व क्रोधित होतेहुये कोई अपने पेटकी निन्दा करते व पीटते हैं जैसे कि यहां यशआदिक सब वस्तुको

चाहताहुआ द्रव्यसे तृप्त मनुष्य दूसरे के धनको नहीं चाहता है ॥ ३५ ॥ कोई कहते हैं कि हमलोगोंवाली ब्रह्माकी सृष्टि प्रशंसनीय है जैसे कि उत्तम प्रभात व
अच्छे नक्षत्रोंवाली पौर्णमासीकी रात प्रशंसितहै ॥ ३६ ॥ इसप्रकार इधर उधर मांसभक्षियोंका कहना सुनकर युद्ध में जम्भने शस्त्रोंसे देवताओं को चूर्ण करदिया ॥
३७॥ व आकाश में इन्द्र, कुबेर, वरुण, अग्नि, पवन, यमराज व निर्ऋति सब बड़े बलिष्ठ देवताओं ने दानवकी सन्धियों (अंगों के जोडों) में दिव्य अस्त्रोंको
छोड़ा और देवताओंके अस्त्र दानवपर कैसे व्यर्थताको प्राप्तहुये ॥ ३८ । ३९ ॥ जैसे कि बडे क्रूरचित्तवाली स्त्रीमें सैकड़ों भी उपाय व्यर्थ होजाते हैं व दैत्यके अस्त्रसे

केचिदाहुर्मदीयैवश्लाघ्यासृष्टिस्तुवेधसः ॥ सुप्रभातासुनक्षत्रापौर्णमास्यानिशायथा ॥ ३६ ॥ एवंबहुविधालापं पलादानांततस्ततः ॥ निशम्यसमरेजम्भोदेवाञ्छस्त्रैरचूर्णयत् ॥ ३७ ॥ संक्रन्दनोधनेशश्चवरुणःपावकोनिलः ॥ यमोथनिर्ऋतिश्चापिदिव्यास्त्राणिमहाबलाः ॥ ३८ ॥ आकाशेमुमुचुःसर्वेदानवायासिसन्धिषु ॥ व्यर्थतांजग्मुरस्त्राणिदेवानांदानवम्प्रति ॥ ३९ ॥ यथातिक्रूरचित्तायांनार्य्यांयत्नशतान्यपि ॥ गतिंनविविदुश्चापिभीतादैत्यस्यदेवताः ॥ ४० ॥ दैत्यास्त्रभिन्नसर्वाङ्गागावःशीतार्दिताइव ॥ परस्परंव्यलीयन्तहाहाशब्दाववादिनः ॥ ४१ ॥ तामवस्थांहरिर्दृष्ट्वादेवानाञ्छक्रमुवाचह ॥ ४२ ॥ अघोरमस्त्रंस्मरदेवराजशस्त्रंहियत्पाशुपतप्रभावम् ॥ रुद्रेणतुष्टेनतवप्रदत्तमव्याहतंवीरवराभिघातम् ॥ ४३ ॥ एवंसशक्रोहरिबोधितस्तदा प्रणम्यदेवंवृषकेतुमीश्वरम् ॥ समाददेबाणममित्रघातिनं तमर्द्धचन्द्रंप्रतिपूजितंसुरैः ॥ ४४ ॥ धनुष्यजय्येविनियोज्यबुद्धिमान् न्ययोजयत्तत्रअघोरमन्त्रम् ॥ ततोवधायाशुमुमोचतस्य

कटेहुये सब अंगो वाले डरे देवता दैत्यकी गतिको न जाना जैसे कि जाडेसे विकल गाइयां होवैं और हाहाशब्द को कहतेहुये देवता आपसमे छिपने लगे ॥ ४० । ४१ ॥
उस दशामें देवताओं को देखकर विष्णुजी इन्द्रसे बोले ॥ ४२ ॥ कि हे सुरराज ! अघोर अस्त्रको स्मरण कीजिये जोकि उत्तम वीरोंका नाशक व अक्षय, शिवजी के
प्रभाववाला शस्त्र प्रसन्नहोते हुये शिवजीने तुमको दियाहै ॥ ४३ ॥ विष्णुजीसे इसप्रकार जनाये हुये इन्द्रने उस समय शिवदेव को प्रणाम कर देवताओं से पूजित
शत्रुघाती उस अर्द्धचन्द्र बाणकोलिया ॥ ४४ ॥ व बुद्धिमान् इन्द्रने न जीतने योग्य धनुपमें उसको लगाकर और उसमें अघोरमन्त्रयुक्त किया तदनन्तर पैनीधारवाले

उस बाणको कानोंतक खींचकर उसके मारने के लिये शीघ्रही छोड़ा ॥ ४५ ॥ इस के अनन्तर इस महास्त्रको देखकर अचानकही मायाको छोड़कर वह दैत्य स्थित हुआ जोकि सूखेहुये मुख व पराक्रम तथा कांपतेहुये अंग करके संभ्रम से विकल था ॥ ४६ ॥ तदनन्तर महायुद्ध में उत्तम अस्त्रसे अभिमन्त्रित अर्द्धचन्द्र बाण शरीर से दुपहर के सूर्यबिम्बकी हठसे विडम्बना करता हुआ उन इन्द्रके धनुषसे छोड़ा गया ॥ ४७ ॥ व किरीट, कुण्डल, बहूंटा से संयुत व सुगन्धवाले अनेक भांतिके फूलोंसे सुगन्धित और धुँवासे व्याप्त अग्नि के समान बालोंवाले, कुण्डल समेत जम्भके मस्तक को उस बाणने गिरादिया ॥ ४८ ॥ उस जम्भके मरजानेपर देवता-

विकृष्यकर्णान्तमकुण्ठदीधितिम् ॥ ४५ ॥ अथासुरःप्रेक्ष्यमहास्त्रमेतद्विमृज्यमायांसहसाव्यवस्थितः ॥ प्रवेपमानेनमुखेनशुष्यता बलेनगात्रेणचसम्भ्रमाकुलः ॥ ४६ ॥ ततस्तुतस्यास्त्रवराभिमन्त्रितः शरोर्द्धचन्द्रःप्रसभंमहारणे ॥ पुरन्दरस्येष्वसनप्रमुक्तो मध्यार्कबिम्बंवपुषाविडम्बयन् ॥ ४७॥ किरीटकुण्डाङ्गदकान्तिसंकुलंसुगन्धिनानाकुसुमाधिवासितम् ॥ प्रकीर्णधूमज्वलनाभमूर्द्धजं न्यपातयज्जम्भशिरःसकुण्डलम् ॥ ४८ ॥ तस्मिन्विनिहतेजम्भे प्रशशंसुःसुराद्दहु ॥ ४९ ॥ वासुदेवोपिभगवान्साधुसाध्वितिचाब्रवीत ॥ ततोजम्भंहतंदृष्ट्वा दानवेन्द्राःपराङ्मुखाः ॥ ५० ॥ सर्वेते भग्नसङ्कल्पा दुद्रुवुस्तारकंप्रति॥सन्त्रस्तान्ससमालोक्यश्रुत्वाचचतुरोहतान्॥५१॥सारथिंप्रेरयामास याहीन्द्रंलघुसङ्गरे ॥ तथेत्युक्तःसचप्रायात्तारकेरथमास्थिते ॥ ५२ ॥ सावलेपञ्चसक्रोधं सबलंसपराक्रमम् ॥ सवाहनंसाधिकारं प्रयातोदानवेश्वरः ॥ ५३ ॥ संयुक्तंरथमास्थाय सहस्रेणगरुत्मताम् ॥ सर्वायुधपरिष्कारं सर्वास्त्रपरिरक्षितम् ॥ ५४ ॥ त्रै

ओंने बडी प्रशंसा किया ॥ ४९ ॥ और विष्णु भगवान्ने भी बहुत अच्छा २ ऐसा कहा तदनन्तर मारेहुये जम्भको देखकर नष्टसंकल्पवाले वे सब दानवेन्द्र विमुख होकर तारकके समीप दौड़गये व डरेहुये उन दैत्योंको देखकर और मारेहुये चार दैत्योंको सुनकर उस तारकने ॥ ५० । ५१ ॥ सारथिको प्रेरणा किया कि युद्धमें शीघ्रही इन्द्रके सामने चलो बहुत अच्छा यह कहकर वह सारथि तारकके रथपै बैठने पर चला ॥५२॥ गर्व समेत व क्रोधसहित, सेना समेत,पराक्रम सहित व सवारी समेत और अधिकार सहित वह दानवेश्वर चलताभया ॥ ५३॥ त्रिलोककी ऋद्धि के सम्बन्धवाले व कल्पांत के मेघोंके समान शब्दवाले तथा सब अस्त्रों से रक्षित

और समस्त शस्त्रोंसे भूषित व जिसमें हज़ार गरुड़ जुतेहैं उस रथपै बैठकर दशोदिशाओं को शब्दायमान करताहुआ बड़ी सेनासे संयुत होकर वह तारकासुर चला ॥ ५४ । ५५ ॥ उसको देखकर इन्द्रजी हाथीकी सवारीको छोड़कर तचायेहुयें सोनेसे शोभित रथपै सवारहुये ॥ ५६ ॥ जिसमें गन्धर्व, किन्नर गातेथे व जो कि अप्सराओं के नृत्य से संयुत व समस्त शस्त्रों से युक्त और बड़े रत्नों से व्याप्तथा ॥ ५७ ॥ इन्द्रके उस रथ को चारों ओर से घेरकर विष्णु समेत कवच पहनेहुये लोकपाल खड़े हुये ॥ ५८ ॥ तदनन्तर पृथ्वी कांपनेलगी व रूखे पवनगण चलने लगे व सातो समुद्र कांप उठे और पर्वत हिलने लगे ॥ ५९ ॥ तदनन्तर रत्न जलने लगे व उस

लोकत्रयक्षुद्धिसंबन्धं कल्पान्ताम्भोदनादिनम् ॥ सैन्येनमहतायुक्तो नादयंश्चदिशोदश ॥ ५५ ॥ सहस्राक्षश्चतन्दृष्ट्वा त्यक्त्वावाहनदन्तिनम् ॥ रथंमातलिनायुक्तं तप्तहेमपरिष्कृतम् ॥ ५६ ॥ गन्धर्वकिन्नरोद्गीतमप्सरोनृत्यसंकुलम् ॥ सर्वायुधसमायुक्तं महारत्नसमाचितम् ॥ ५७ ॥ तंरथन्देवराजस्यपरिवार्यसमन्ततः ॥ दंशितालोकपालास्तु तस्थुस्सगरुडध्वजाः ॥ ५८ ॥ ततश्चचालवसुधा ववूरूक्षामरुद्गणाः ॥ चेलुश्चसागरास्सप्त तथाचेलुश्चभूधराः ॥ ५९ ॥ ततोज्वलन्तरत्नानिततोकम्पन्तवाहनाः ॥ ततःसमस्तमुद्भूतंततोदृश्यन्ततारकाः ॥ ६० ॥ एकतस्तारकोदैत्यःसुरसङ्घास्तथैकतः ॥ लोकत्रासदमेकत्र लोकोद्धारणमेकतः ॥ ६१ ॥ चराचराणिभूतानि भयविस्मयवन्तिच ॥ प्रशशंसुस्तदापार्थ ततस्तस्मिन्समागमे ॥ ६२ ॥ अस्त्राणितेजांसिधनानिचेयं शोभाबलंवीरपराक्रमश्च ॥ सत्त्वौजसामङ्गबभूवुरेषां देवासुराणांतपसःपरंस्तुमः ॥ ६३ ॥ अथाभिमुखमायान्तं देवाविनतपर्वभिः ॥ बाणैश्चफणकल्पाग्रैर्विव्यधुस्तारकंप्रति ॥ ६४ ॥

के उपरान्त सवारियां कांप उठीं उसके उपरान्त सब संसार कांपने लगा तदनन्तर नक्षत्र देख पड़ने लगे ॥ ६० ॥ एक ओर तारकासुर व एक ओर सुरसमूह थे, एक ओर संसारको भयदायक व एक ओर लोकको उद्धारकारक थे ॥ ६१ ॥ हे अर्जुन! तदनन्तर उससमय उस युद्धके संयोगमें भय व विस्मयवाले चराचर प्राणी प्रशंसा करते भये ॥ ६२ ॥ कि हे प्राणियो! उद्यम व पराक्रमवाले इन देवता दैत्यों की तपस्या की तत्परताको हमलोग प्रशंसा करतेहैं कि जिनके अस्त्र, तेज, धन व यह शोभा, बल और वीरों का पराक्रम हुआ है ॥ ६३ ॥ इस के अनन्तर देवताओं ने फण के समान अग्रभागवाले व झुकीहुई ग्रन्थियोंवाले बाणों से सामने आतेहुये

उस तारकको मारा ॥ ६४ ॥ उस दैत्येन्द्र दानवने हृदय में देवताओं के बाणों से उन घावों को न चिन्तन कर बाणोंसे आकाश व पृथ्वीको पूरित किया ॥ ६५ ॥
जो बाण कि बँधीहुई फोंकवाले व कानोंतक खींचेहुये और पर्वतोंके तोड़ने वालेथे तदनन्तर तारक दैत्यने सौ बाणोंसे इन्द्रको मारा ॥ ६६ ॥ व सतहत्तरि बाणों से
विष्णु और नब्बे बाणोंसे अग्निको मारा और दश बाणों से पवनके मस्तकपै व दशही बाणोंसे यमराज के मारा ॥ ६७ ॥ दैत्यने सत्तर बाणोंसे कुबेरको, आठ बाणोंसे
वरुण के फिर अट्ठाईस बाणोंसे निर्ऋतिको मारा ॥ ६८ ॥ फिर दैत्यने सुकुमार स्थानको काटनेवाले दश बाणों से एक २ देवता को मारा वैसेही तीन बाणों से

सतान्नचिन्त्यदैत्येन्द्रः सुरबाणक्षतान्हृदि ॥ बाणैर्व्योमतथापृथ्वीं पूरयामासदानवः ॥ ६५ ॥ पुङ्खैर्निबद्धैःकर्णान्त
माकृष्टैर्नगभेदिभिः ॥ ततःशतेनबाणानां शक्रंविव्याधदानवः ॥ ६६ ॥ नारायणञ्चसप्तत्या नवत्याचहुताशनम् ॥
दशभिर्मारुतंमूर्ध्नि यमंदशभिरेवच ॥ ६७ ॥ धनदंचैवसप्तत्या वरुणंचतथाष्टभिः ॥ विंशत्यानिर्ऋतिन्दैत्यः पुनश्चा
ष्टभिरेवच ॥ ६८ ॥ विव्याधपुनरेकैकं दशभिर्मर्म्मभेदिभिः ॥ तथाचमातलिन्दैत्यो विव्याधत्रिभिराशुगैः ॥ ६९ ॥
गरुडंदशभिश्चैव महिषंनवभिस्ततः ॥ पुनर्दैत्योथदेवानांतिलशोनतपर्वभिः ॥ ७० ॥ चकारवर्म्मजालानि चिच्छेद
चधनूंषिच ॥ ततोविकवचादेवा विधनुष्काःप्रपीडिताः ॥ ७१ ॥ चापान्यस्त्राणिसंगृह्य यावन्मुञ्चन्तिसायकान् ॥ ताव
द्बाणंसमादाय कालनेत्रसमप्रभम् ॥ ७२ ॥ ताडयामासशक्रंस विदिशश्चमुमोचह ॥ ततइत्थंसमालोक्य दृष्ट्वासूर्य
शताकृती ॥ ७३ ॥ तार्क्ष्यविष्णूसमाजघ्ने शराभ्यांतावमुह्यताम् ॥ प्रेतनाथस्यवह्नेश्च वरुणस्यशितैश्शरैः ॥ ७४ ॥

मातलि सारथि के मारा ॥ ६९ ॥ व दशबाणों से गरुड़को तदनन्तर नवबाणों से महिष के मारा इसके अनन्तर फिर दैत्यने झुके ग्रन्थियोंवाले बाणोंसे देवताओंकी
कवचसमूहों को तिल २ भर करदिया और धनुषों को काटडाला तदनन्तर कवचविहीन व धनुषरहित देवता पीड़ित हुये ॥ ७० । ७१ ॥ व धनुष और अस्त्रों ले ले
र जबतक बाणोंको छोड़ैं तबतक कालनेत्रों के समान प्रकाशवान् बाणको लेकर ॥ ७२ ॥ उसने इन्द्रको मारा व विदिशाओं में बाणों को छोड़ा तदनन्तर इस प्रकार
करोड़ सौ सूर्योंके समान आकारवाले गरुड़ व विष्णुजी को देखकर दो बाणों से मारा और वे मोहित होगये व यमराज, अग्नि व वरुण और निर्ऋतिका शरीर

पैनेबाणों से बहुत डरमुत किया और चक्र व बाणों से मारकर पवनको श्वासरहित मोहित किया ॥ ७३ । ७४ । ७५ ॥ तदनन्तर विष्णु ने चैतन्यता को पाकर व दिक्पालों को उत्साहित कर बाणसे कुण्डल समेत सारथिका मस्तक देहसे गिरादिया ॥ ७६ ॥ व क्रोधित होतेहुये अग्निने उसके ध्वजाको काटकर गिरादिया उसके उपरान्त इन्द्रने दैत्यराज के किरीट को काटडाला ॥ ७७ ॥ व क्रोधित कुबेर ने बहुत प्रकार के बाणोंसे धनुष को काटडाला और पवनने रथ, आक व जुवोंको तिल तिल भर कर दिया ॥ ७८ ॥ तदनन्तर युद्धमें निर्ऋति ने बाणों से कवच तिल २ भर करादिया यह अतुलित कर्मकर गलफड़ों को चाटते हुये विष्णु आदिक देवताओं

निर्ऋतेश्चाकरोत्कायं भीतभीतंव्यमोहयत् ॥ निरुच्छ्वासंसमाहत्य चक्रबाणैस्समीरणम् ॥७५॥ ततःप्राप्यहरिस्संज्ञां प्रोत्साह्यचदिशांपतीन् ॥ बाणेनसारथेःकायाच्छिरोहार्षीत्सकुण्डलम् ॥७६॥ धूमकेतुर्ध्वजंक्रुद्धस्तस्यच्छित्त्वान्यपातयत् ॥ दैत्यराजकिरीटञ्च चिच्छेदवासवस्ततः ॥ ७७ ॥ धनेशश्चधनुःक्रुद्धो बिभेदबहुधाशरैः ॥ वायुश्चचक्रेतिलशो रथंचाक्षाणिकूबरम् ॥ ७८ ॥ निर्ऋतिस्तिलशोवर्म्मं चक्रेबाणैस्ततोरणे ॥ कृत्वैतदतुलंकर्म्मंतिष्ठतिष्ठेतिप्रोचिरे ॥ ७९ ॥ लिहन्तःसृक्किणीदेवा वासुदेवादयस्तथा ॥ दृष्ट्वातत्कर्मदेवानां तारकोतुलविक्रमः ॥ ८० ॥ मुमोचमुद्गरंभीमं सहस्राक्षायसङ्गरे ॥ दृष्ट्वामुद्गरमायान्तमनिवार्य्यंरणाध्वरे ॥ ८१ ॥ रथादाप्लुत्यधरणीमगमत्पाकशासनः ॥ मुद्गरोपि रथोपस्थे पपातपरुषस्वनः ॥ ८२ ॥ सरथंचूर्णयामास नममारचमातलिः ॥ गृहीत्वापट्टिशन्दैत्यो जघानोरसिकेशवम् ॥ ८३ ॥ स्कन्धेगरुत्मतःसोपि निषसादविचेतनः ॥ खड्गेनराक्षसेन्द्रंच भित्त्वाभूमावपातयत् ॥ ८४ ॥ यमञ्चपातयामास

ने खड़ेहो २ ऐसा कहा देवताओं के उस कर्म को देखकर अतुल बलवाले तारकासुरने ॥ ७९ । ८० ॥ समरमें इन्द्रके लिये भयानक मुद्गरको छोड़ा व युद्धयज्ञ में न रोकने योग्य आतेहुये मुद्गरको देखकर ॥ ८१ ॥ रथसे कूदकर इन्द्र पृथ्वीमें प्राप्तहुये व कठोर शब्दवाला मुद्गर भी रथके ऊपर गिरपड़ा ॥ ८२ ॥ व उसने रथको चूर्ण करदिया और मातलि नहीं मरे व तारक दैत्यने पट्टिशाको लेकर विष्णुकी छाती में मारा ॥ ८३ ॥ और वे विष्णु भी मूर्च्छित होकर गरुडके कन्धेपै बैठरहे और

तलवारसे निर्ऋति देवको काटकर भूमिमें गिरादिया ॥ ८४ ॥ व दैत्यने बन्दूकसे यमराज को भूमिमें गिरादिया और अग्निको भिंदिपालसे मारकर मूर्च्छित किया ॥
८५ ॥ व क्रोधित दानवने पवन को ऊपर फेंककर पृथ्वी में गिराया व धनुष के किनारेसे कुबेरको कूटदिया ॥ ८६ ॥ तदनन्तर युद्धमें पृथ्वीनिवासवाले उन्हीं
देवताओं में से एक २ को क्षणभर में शस्त्रोंसे मारा जैसे कि गुरु बालकों को मारताहै ॥ ८७ ॥ तदनन्तर चैतन्यताको पायेहुये विष्णुजीने दानवेन्द्रों की चर्बी, मेदा व
रक्तसे रँगेहुये असह्य चक्रको लिया ॥ ८८ ॥ व विष्णुजीने दानवेन्द्र के वक्षस्थलमें बड़े ज़ोरसे छोड़दिया व सूर्य के समान कान्तिवाला वह चक्र दैत्य के हृदय

भूमौदैत्योमुशुण्डिना ॥ वह्निंचभिन्दिपालेन चक्रेहत्वाविचेतसम् ॥ ८५ ॥ वायुंदानवउत्क्षिप्य पातयामासभूतले ॥
धनेशन्तुधनुष्कोट्या कुट्टयामासकोपनः ॥ ८६ ॥ ततोवनिनिकायानामेकैकंक्षणमात्रतः ॥ तेषामेवजघानाजौ शस्त्रै
र्बालान्यथागुरुः ॥ ८७ ॥ लब्धसंज्ञस्ततोविष्णुश्चक्रंजग्राहदुर्द्धरम् ॥ दानवेन्द्रवसामेदोरुधिरेणाभिरञ्जितम् ॥ ८८ ॥
मुमोचदानवेन्द्रस्य हृदंवक्षसिकेशवः ॥ पपातचक्रंदैत्यस्यहृदितद्भास्करद्युति ॥ ८९ ॥ व्यशीर्यताथकायेस्य नीलोत्प
लमिवाश्मनि ॥ ततोवज्रंमहेन्द्रोपि प्रमुमोचार्चितंचिरम् ॥ ९० ॥ यस्मिञ्जयाशाशक्रस्य दानवेन्द्रस्यसंयुगे ॥ तारक
स्यचसम्प्राप्य शरीरंशौर्यशालिनः ॥ ९१ ॥ व्यशीर्यतविकीर्णार्चिः शतधाखण्डशोगतम् ॥ ततोवायुरदीनात्मा
वेगेनमहतानदन् ॥ ९२ ॥ ज्वलितज्वलनाभासमङ्कुशंप्रमुमोचह ॥ विशीर्णंतस्यतत्राङ्गे दृष्ट्वावायुर्महारुषा ॥ ९३ ॥
ततश्शैलेन्द्रमुत्पाट्य पुष्पितद्रुमकन्दरम् ॥ चिक्षेपदानवेन्द्रायदशयोजनविस्तृतम् ॥ ९४ ॥ महीधरन्तमायान्तं स

में गिरपड़ा ॥ ८९ ॥ इसके अनन्तर इसके शरीर में वह चक्र टूटगया जैसे कि नीलकमल पत्थर में प्राप्तहोकर टूटजाता है तदनन्तर बहुत समय से पूजित वज्रको
इन्द्रने भी छोड़ा ॥ ९० ॥ कि जिस वज्रमें दानवेन्द्र के युद्धमें इन्द्रको जीत की आशा थी शूरतासे शोभित उस तारकके शरीर में प्राप्त होकर ॥ ९१ ॥
फैलीहुई लपटोंवाला वह वज्र सौ खण्ड होकर टुकड़े २ होगया तदनन्तर बड़े वेगसे शब्द करतेहुये प्रसन्न चित्तवाले पवन ने ॥ ९२ ॥ जलती हुई अग्निके समान
प्रकाशवाले अंकुशको छोड़ा और उसके उस अंगमें वह टूटगया यह देखकर तदनन्तर पवन ने बड़े क्रोधसे फूलेहुये वृक्षोंसे संयुत कन्दरावाले चालीस कोस चौड़े

पर्वतराज को उखाडकर दानवेन्द्र के ऊपर फेंका ॥ ९३ । ९४ ॥ श्रेष्ठ दैत्यने आते हुये उस पर्वतको बालकोंकी नाईं गेंदके खेलकी तरह मुसक्यानपूर्वक बायें हाथ से पकड़लिया ॥ ९५ ॥ तदनन्तर उसीसे मारकर यमराजको गिरादिया उसके उपरान्त क्रोधसे मूर्च्छित यमराजने दण्डको उठाकर ॥ ९६ ॥ व वेगसे घुमाकर उस दुर्जय दण्डको दैत्येन्द्र के माथेपै फेंका और वह दैत्येन्द्रके माथेपै गिरा व हँसतेहुये दैत्यने उसको पकडलिया ॥ ९७ ॥ व क्रोधसे जलते हुये कल्पान्त में लोकोंको जलानेवाले अग्निने युद्धमे दानवेन्द्र के निमित्त असह्य शक्तिको फेंका ॥ ९८ ॥ तदनन्तर वह शक्ति सिरसाके फूलकी मालाकी नाईं इसके हृदय में शोभित हुई उस

स्मितंदैत्यपुङ्गवः ॥ जग्राहवामहस्तेन बालकन्दुकलीलया ॥९५॥ ततस्तेनैवचाहत्य पातयामासचान्तकम् ॥ दण्डंत तःसमुद्यम्यकृतान्तःक्रोधमूर्च्छितः ॥ ९६ ॥ दैत्येन्द्रमूर्द्धिचिक्षेपभ्राम्यवेगेनदुर्ज्जयम् ॥ सोसुरस्यापतन्मूर्द्धि दै त्यस्तंजगृहेस्मयन् ॥ ९७ ॥ कल्पान्तलोकदहनो ज्वलनोरोषसंज्वलन् ॥ शक्तिंचिक्षेपदुर्द्धर्षां दानवेन्द्रायसंयुगे ॥ ९८ ॥ ततःशिरीषमालेव सास्यवक्षस्यराजत ॥ ततःखड्गंसमाकृष्य कोशादाकाशनिर्म्मलम् ॥ ९९ ॥ द्युतिभासित त्रैलोक्यं लोकपालोपिनिर्ऋतिः ॥ चिक्षेपदानवेन्द्राय तस्यमूर्द्धिपपातच ॥ २०० ॥ पतितश्चागमत्खड्गः सशीघ्रंशत खण्डताम् ॥ जलेशश्चततःक्रुद्धो महाभैरवरूपिणम् ॥ १ ॥ मुमोचपाशंदैत्येन्द्र भुजबन्धाभिलाषुकः ॥ सदैत्यभुजमा साद्य पाशस्सद्योव्यपद्यत ॥ २ ॥ स्फुटितक्रकचक्रूरदशनालिरहीश्वरः ॥ ततोश्विनौसचन्द्रार्कौ साध्याश्चवसवश्च ये ॥ ३ ॥ यक्षराक्षसगन्धर्वास्सर्वैश्चास्त्रैःपृथग्विधैः ॥ जघ्नुर्दैत्येश्वरंसर्वे भूतयक्षामहाबलाः ॥ ४ ॥ नचास्याण्यस्यस

के उपरान्त आकाश के समान निर्मल तलवारको मियानसे खींचकर ॥ ९९ ॥ निर्ऋति लोकपाल ने भी छविसे प्रकाशित त्रिलोकवाली उस तलवार को दानवेन्द्रके लिये फेंका और वह उसके मस्तकपै गिरी ॥ २०० ॥ व गिरीहुई वह तलवार शीघ्रही सौ खण्डहोगई तदनन्तर दैत्येन्द्र की भुजाओंको बाधने की इच्छावाले वरुण ने क्रोधित होकर बडी भयानक फँसरीको छोडा और दैत्यकी भुजाओंको प्राप्त होकर वह फँसरी शीघ्रही टूटगई ॥ १।२ ॥ व सर्पराज टूटीहुई आरोंके समान दन्त पंक्ति वाले होगये तदनन्तर चन्द्रमा, सूर्योसमेत अश्विनीकुमार, साध्य व जो वसु देवताथे ॥ ३ ॥ व यक्ष, राक्षस, गन्धर्व इन बड़े बलिष्ठ सब भूत, यक्षादिकोंने अनेक

प्रकारके सब अस्त्रोंसे दैत्येन्द्रको मारा ॥ ४ ॥ और वज्र के समान पर्वत के सदृश इसके अंगमें अस्त्र नहीं लगते थे तदनन्तर दानवोंके स्वामी तारकासुर ने कूदकर
क्रोधितहो करोड़ों देवोंको मुष्टिका व एँड़ियों से मारा उसके उस प्रकारके बलको देखकर भगवान् विष्णुजी ॥ ५।६ ॥ यह कहते हुये अन्तर्द्धान होगये कि हे महा-
देवताओ! भागिये तदनन्तर भागने में आदर कियेहुये इन्द्रादिक देवता॥ ७॥ मदसे उग्र कालनेमि इत्यादिक दैत्यों से घेरे गये व बालोंको खींचकर उन्होंने प्रसन्नता से
मुष्टिका व चरण प्रहारों से ॥ ८॥ रक्तकी नदीमें गिरादिया व देवमार्ग (आकाश) दिखलायागया व लोकपालो समेत देवता बाधकर खींचे गये ॥ ९ ॥ तदनन्तर

ज्जन्ते गात्रेवज्राचलोपमे ॥ ततोदेवानवप्लुत्यतारकोदानवाधिपः ॥ ५ ॥ जघानकोटिशः क्रुद्धो मुष्टिपार्ष्णिभिरेव
च ॥ तथाविधंतस्यवीर्यमालोक्यभगवान्हरिः ॥ ६ ॥ पलायध्वंमहादेवा वदन्नन्तर्हितोभवत् ॥ शक्रादयस्ततोदे
वाः पलायनकृतादराः ॥ ७॥ कालनेमिमुखैर्दैत्यैरुपरुद्धामदोत्कटैः ॥ मुष्टिभिः पादघातैश्चकेशेष्वाकृष्यतैर्मुदा ॥ ८ ॥
पातितारक्तसरिति देवमार्गश्चदर्शितम् ॥ बद्ध्वाचापिह्यकृष्यन्त लोकपालैस्सहामराः ॥ ९ ॥ ततोनिनादस्संजज्ञे
दैत्यानां बलशालिनाम् ॥ कोपेनपृथिवीमध्ये पातालतलवासिनाम् ॥ १० ॥ जयेतिमुदितादैत्यास्तुष्टुवुस्तारकन्त
दा ॥ शङ्खांश्चपूरयामासुः कुन्देन्दुसदृशप्रभान् ॥ ११ ॥ गन्धर्वान्रुरुधुश्चोग्रान् कराघातांश्चचक्रिरे । भृशंहर्षान्विता
दैत्या नेदुश्चननृतुर्मुहुः ॥ १२ ॥ ततोदेवान्पुरःकृत्वा पशुपालः पशूनिव ॥ दैत्येन्द्रोरथमास्थाय जगामसहितोसुरैः ॥
१३ ॥ महासागरकूलस्थं सतारकपुरंबली ॥ योजनद्वादशायामं ताम्रप्राकारशोभितम् ॥ १४ ॥ प्रासादैर्बहुभिःकी

पातालतल में रहनेवाले व पराक्रमसे शोभित दैत्यों का शब्द क्रोध से पृथ्वी के बीचमें हुआ ॥ १० ॥ उस समय तुम्हारी जयहो इसप्रकार प्रसन्न होतेहुये दैत्यों ने
तारक की स्तुति किया व कुन्द तथा चन्द्रमा के समान शोभावाले शङ्खों को पूर्ण किया याने बजाया ॥ ११ ॥ और गन्धर्वों को घेरलिया व उग्र हाथके प्रहारों को
किया और बहुतही प्रसन्नतासे संयुत दैत्योंने शब्द किया और नृत्य किया ॥१२॥ तदनन्तर जैसे पशुपालक पशुओं को आगे करताहै उसी प्रकार देवताओं को आगेकर
दैत्यों समेत यह बलिष्ठ दैत्येन्द्र रथपै बैठकर महासागरके किनारे बसेहुये तारकपुरको गया जो कि अड़तालीस कोस चौड़ा व तांबेकी छहर दिवाली से शोभितथा ॥१३।१४॥

व बहुत मन्दिरों से पूर्ण और दिव्य आश्चर्योंसे शोभित था व जिस पुर में गीत का शब्द व पंच का शब्द और विषय भोग किये जावैं ये तीन शब्द सदैव नहीं पृथक् होते थे उस पुरमें पैठकर तारक राजा अपने घरको गया ॥ १५। १६ ॥ व बड़े भारी उंछाह से वह नर नारियो से आनन्दित हुआ वहां उत्तम सभामें प्राप्त होकर राजा सिहासन पै बैठा ॥ १७ ॥ दैत्योंसे स्तुति किया जाताहुआ व अप्सराओं से क्रीडित वह सिंहों की नाई उत्तम आसनों पै बैठेहुये दैत्येन्द्रोसे घिराथा ॥ १८ ॥ इसी अवसर मे कोई दिव्य स्त्री उसके आगे प्राप्त हुई जो कि अनूपरूप से संयुत और अनेकप्रकार के गहनों से भूषित थी ॥ १९॥ उसको देखकर तारकराजा विस्मय

र्णं दिव्याश्चर्योपशोभितम् ॥ यत्रशब्दास्त्रयोनैव वियुज्यन्तेनिशम्पुरे ॥ १५ ॥ गीतघोषश्चज्याघोषो भुज्यन्तांविष यांस्त्विति ॥ तत्प्रविश्यपुरंराजा जगामस्वकमालयम् ॥ १६ ॥ महोत्सवेनमहता पुंस्त्रीभ्यांप्रतिनन्दितः ॥ तत्रदि व्यांसभांराजा प्राप्यसिंहासनस्थितः ॥ १७ ॥ स्तूयमानोदितिसुतैरप्सरोभिर्विनोदितः ॥ दिव्यासनस्थैर्दैत्येन्द्रैर्वृ तःसिंहैरिवप्रभुः ॥ १८ ॥ एतस्मिन्नन्तरेकाचिद्दिव्यास्त्रीतत्पुरोभवत् ॥ रूपेणानुपमानार्था नानाभरणभूषिता ॥ १९॥ तान्दृष्ट्वातारकोराजा भृशंवैविस्मितोभवत् ॥ विस्मितैस्तैर्वृतोदैत्यैः प्रोवाचेदंस्मयान्निव ॥ २० ॥ कासिदेवीममब्रूहि कामंत्वंरूपसुन्दरि ॥ त्वत्समांयोषितंनैव दृष्टवन्तःपुरावयम् ॥ २१ ॥ स्त्र्युवाच ॥ अहंत्रैलोक्यलक्ष्मीति विद्धि मान्दैत्यसत्तम ॥ अर्जितातपसाचास्मि त्वयावीर्येणचापिभोः ॥ २२ ॥ वीर्यवन्तंत्वनलसं तपस्विनमकातरम् ॥ दाता रञ्चापिभोक्तारं युक्त्यासेवाम्यहंनरम् ॥ २३ ॥ भीरुंनिर्घृणमत्यर्थं साधुपीडाकरन्नरम् ॥ सर्वाभिशङ्कितंसद्यस्त्यजामि

में प्राप्त हुआ व उन विस्मित दैत्योंसे घिराहुआ वह हँसताहुआ सा बोला ॥ २० ॥ कि हे रूपसुन्दरि ! तुम कौन देवीहो मुझसे इच्छापूर्वक कहो पुरातनसमय हमलो- गोंने तुम्हारे समान स्त्रीको नहीं देखाहै ॥ २१ ॥ स्त्री बोली कि हे दैत्यसत्तम ! मैं त्रिलोककी लक्ष्मीहूं यह मुझे जानो और तुमसे मैं तपस्या व पराक्रम से इकट्ठाकी गई हूं ॥ २२ ॥ पराक्रमी, निरालसी, तपस्वी, दृढ़, दाता व भोगी मनुष्यको मैं युक्ति से सेवती हूं ॥ २३ ॥ हे दितिपुत्र ! डरपुत, बड़े निर्दयी व सज्जनो को दुःखदायी

और सब ओरसे शंकित मनुष्य को मैं शीघ्रही छोडदेती हूं ॥ २४ ॥ और जब तुम्हारी पतिव्रता माता इन्द्रसे अपमान कीगई तब इसको छोडदिया था व इस समय तुममें बसती हूं ॥ २५ ॥ तदनन्तर उस समय तारक ने उस से यह कहा कि चुपरहो और तीनोंलोकों से पूजेहुये मुखवाली वे देवी उसमें पैठगई ॥ २६ ॥ तदनन्तर शोभित होतीहुई दानवों की स्त्रियोंने वीर वचनों को लेकर हर्षमे दैत्याधिपति को बढ़ाया ॥ २७ ॥ और दैत्योंसे बाधेहुये बडे विकल देवता द्वारपै टिकेथे जोकि स्त्रियोंसे व नगरवाले अन्य दैत्यो से हँसे जातेथे ॥ २८ ॥ इसी अवसरमें दैत्यके रूपमें प्राप्त व हास्य करनेवालोंके बीचमें टिकेहुये विष्णुने दो कथाओंको कहा॥२९॥

दितिनन्दन ॥ २४ ॥ महेन्द्रेणचमातातेयदासाऽप्यपमानिता ॥ तदैवत्यक्तप्रायोमाविदानींत्वयिसंवसे ॥ २५ ॥ तारकश्चततःप्राह विरमस्वेतितान्तदा ॥ साचाविवेशतन्देवीत्रिजगत्पूजितानना ॥ २६ ॥ ततोदैत्याधिपन्नार्यो दानवानांविभूषिताः ॥ वीरवाक्यान्युपादाय वर्द्धयाञ्चक्रिरेमुदा ॥ २७ ॥ देवाश्चद्वारितिष्ठन्ति बद्धादैत्यैर्भृशातुराः ॥ उपहासंगताःस्त्रीभिर्दैत्यैरन्यैश्चनागरैः ॥ २८ ॥ एतस्मिन्नन्तरेविष्णुर्दैत्यरूपंसमास्थितः ॥ उपहासकमध्यस्थो गाथेद्वेप्राह बुद्धिमान् ॥ २९ ॥ इदमल्पतरन्नाम यदमीषांप्रदृश्यते ॥ मातृक्रोधंस्मरन्राजा किङ्कियत्नंकरिष्यति ॥ ३० ॥ बलीयांसंसमासाद्य नानामेघैरिवास्थितम् ॥ मर्कवत्खेलनैःस्वीयैरुपायैःस्थीयतांसुराः ॥ ३१ ॥ उपहासमिषेणामुमुपदेशंहरेर्मुखात् ॥ समाकर्ण्यततोदेवा मर्करूपेणसंस्थिताः ॥ ३२ ॥ नृत्यन्तस्तेचबहुधा दैत्यांश्चासुरयोषितः ॥ भृशंविनोदयामासुर्मुदाभोज्यानितेददुः ॥ ३३ ॥ विष्णुर्दैत्यप्रतीहारं ततःप्रोवाचबुद्धिमान् ॥ विनोदायमहाराज्ञो मर्कानेता

कि इनके यह बहुत थोडा कर्म प्रसिद्ध में देखपडता है क्योंकि माताके क्रोधको स्मरण करताहुआ राजा क्या क्या यत्न नहीं करैगा ॥ ३० ॥ हे देवताओ ! विष्णुके अनेक प्रकारके मेघोंकी नाईं स्थित बलिष्ठ के समीप जाकर बन्दरों की नाईं अपने खेलरूप यत्नोंसे स्थितहोवो ॥ ३१ ॥ हँसीवा के बहाने से इस उपदेश को विष्णुके मुखसे सुनकर तदनन्तर देवता बन्दरके रूपसे भलीभांति स्थितहुये ॥ ३२ ॥ व बहुत भांति से नाचते हुये उन्होंने दैत्यों व दैत्यों की स्त्रियोंको बहुत प्रसन्न कराया व उन दैत्योंने हर्षसे भोजनों को दिया ॥ ३३ ॥ तदनन्तर बुद्धिमान् विष्णुजी ने दैत्य के द्वारपालक से कहा कि क्रीड़ाके लिये इन बन्दरों को महाराज तारक

से कहो ॥३४॥ तदनन्तर प्रसन्न होताहुआ द्वारपाल सभाके बीचमें पैठगया व घुटनुवोंसे पृथ्वी में प्राप्तहोकर व हाथोंके संपुट को बांधकर वह ॥ ३५ ॥ थोड़े अक्षरों से प्रकट व निर्मल वचनको बोला कि हे दैत्येन्द्र,प्रभो ! तुम्हारे द्वारपै बहुत विनोद करनेवाले बन्दरोंके गण टिकेहैं यदि इच्छाहो तो तुम देखने के योग्यहो उस वचनको सुनकर राजाने कहा कि तुम क्यों विलम्ब करतेहो ॥ ३६।३७ ॥ द्वारपालने यह वचन सुनकर उस समय कालनेमि से कहा कि महाराज इन बन्दरों को शीघ्रही देखना चाहते हैं ॥ ३८ ॥ तुम इन समस्त वानरों से राजाको प्रसन्न करिये तदनन्तर बन्दरों को लेकर कालनेमि राजा के समीप गया ॥ ३९ ॥ व बन्दरों के बीचमें वानररूप

न्प्रकीर्त्तय ॥ ३४ ॥ प्रतीहारस्ततोहृष्टः सभामध्येविवेशच ॥ सजानुभ्यांमहींगत्वा बद्ध्वाचकरसम्पुटम् ॥ ३५ ॥ उवाचानाविलंवाक्यमल्पाक्षरपरिस्फुटम् ॥ दैत्येन्द्रमर्कवृन्दानि द्वारितिष्ठन्तितेप्रभो ॥ ३६ ॥ भृशंविनोदकारीणि स्पृहाचेद्द्रष्टुमर्हसि ॥ तन्निशम्याब्रवीद्राजा किञ्चिरंक्रियतेत्वया ॥ ३७ ॥ क्षत्ताचेतिवचःश्रुत्वा कालनेमिन्तदाब्रवीत् ॥ मर्कानेतान्महाराजो द्रष्टुमिच्छतिशीघ्रतः ॥ ३८ ॥ कीशैस्समस्तैरेभिस्त्वं राजानमनुकूलय ॥ कालनेमिरुपादाय मर्कान्यातोनृपन्ततः ॥ ३९ ॥ मर्कमध्येविष्णुमर्कोयातस्त्यक्त्वाचदैहिकीम् ॥ ततस्तारकदैत्यस्य पुरतोननृतुर्भृशम् ॥ ४० ॥ मर्कादैत्यसभामध्ये हर्षनादविनोदितैः ॥ ततोतिमुदितोराजा तेषांनृत्येनसोब्रवीत् ॥ ४१ ॥ अभयंवोमर्कदेवास्तुष्टोयच्छाम्यहंत्विदम् ॥ मद्गृहेस्थीयतामेवं नचकार्यंभयंहृदि ॥ ४२ ॥ इतिश्रुत्वाविष्णुमर्कः प्रहसन्नमुमब्रवीत् ॥ राजन्विज्ञातुमिच्छामस्तवगेहान्वयंवयम् ॥४३॥ एवमुक्तःप्रहस्याहतारकोदैत्यसत्तमः ॥ त्रिभूमिकंहिमेगेहाभि

विष्णुजी देहकी गतिको छोडकर प्राप्तहुये तदनन्तर प्रसन्नता से गान शब्दके खेलोंसे बन्दरोंने दैत्योंकी सभाके बीचमें तारक दैत्यके आगे बहुतही नृत्यकिया तदनन्तर उनके नाचने से बहुतही प्रसन्न उस राजाने कहा ॥ ४०।४१ ॥ कि हे मर्कट देवताओ ! प्रसन्न होताहुआ मैं तुमलोगों को यह अभय देताहू कि ऐसेही मेरे घर मे टिको व हृदयमें डर न करना चाहिये ॥४२॥ यह सुनकर हँसतेहुये वानररूप विष्णुजी इससे बोले कि हे राजन् ! हमलोग तुम्हारे घरके वंशको जाननेकी इच्छा करतेहैं ॥ ४३॥

ऐसा कहेहुये दैत्योत्तम तारक ने कहा कि यह जो त्रिलोक है वही त्रिभूमिक तीन स्थानोंवाला मेरा घरहै ॥ ४४ ॥ तदनन्तर वानररूप विष्णुजी ने कहा कि यदि ऐसाहै तो अपना वचन स्मरण कीजिये हे राजन्! निडर होकर ये वानर त्रिलोक में घूमैंगे ॥ ४५ ॥ राजा सौ अश्वमेधों से भी सत्यको विशेषकर मानताहै हे दैत्यपते! इस धर्मको स्मरण करतेहुये वचनको सत्य कीजिये ॥ ४६॥ तदनन्तर उस समय विस्मय में प्राप्त दैत्यने यह वचन कहा कि अहो तुम वानर जानेगये हो सत्य कहिये कि आप कौनहैं ॥ ४७ ॥ विष्णुजी बोले कि यदि तुम्हारे कान में प्राप्तहुआ होऊं तो मैं नारायण नामकहूं और देवताओं की रक्षाके लिये वानर के

दंयद्भुवनत्रयम् ॥ ४४ ॥ हरिमर्कस्ततःप्राह यद्येवंस्ववचःस्मर ॥ त्रैलोक्येविचरन्त्वेते मर्का राजन्मुनिर्भयाः ॥ ४५ ॥
अश्वमेधशतस्यापि सत्यंराजाविशिष्यते ॥ धर्ममेनंस्मरन्सत्यंवचनंकुरुदैत्यप ॥ ४६ ॥ ततःसुविस्मितोदैत्यः
प्राहेदंवचनंतदा ॥ मर्कश्चाहोप्रबुद्धोसिसत्यंब्रूहिचकोभवान् ॥४७॥ हरिरुवाच ॥ अहंनारायणोनामयदितेश्रोत्रमागतः॥
देवानांरक्षणार्थाय मर्करूपमुपाश्रितः ॥ ४८ ॥ ततश्चेन्मन्यतेधर्मस्त्वयातद्वचनंस्वकम् ॥ परिपालयतेगेहंविचरन्तु
सुरास्त्वमी ॥ ४९ ॥ अवलेपश्चराजेन्द्र नकर्त्तव्यस्त्वयाहृदि ॥ वीरोहमितिसञ्चिन्त्यपश्यतांकालजंबलम् ॥ ५० ॥ प
र्यायैर्हन्यमानानामभिहन्तानविद्यते ॥ मान्यमेतन्नरोयद्वैकर्त्ताहमितिमन्यते॥ ५१ ॥ ऋषींश्चदेवांश्चमहासुरांश्चत्रैविद्य
द्धांश्चमहामुनींश्च ॥ कंनापदोनोभिभवन्तिकाले कालस्यवीर्येनतुकर्त्तुरेतत् ॥ ५२ ॥ नमन्त्रबलवीर्येण प्रज्ञयापौरुषेण

रूपमें प्राप्तहुआ ॥ ४८ ॥ इस लिये यदि तुमसे धर्म मानाजाता है तो अपना वचन पालिये कि ये देवता तुम्हारे घरमें घूमैं ॥ ४९ ॥ हे राजेन्द्र ! मैं वीरहूं यह विचार कर तुमको हृदय में गर्व न करना चाहिये व समय से उपजाहुआ बल तुम देखो ॥ ५० ॥ क्रम या समय से मारेजाते हुये पुरुषोंका नाशक नहीं विद्यमान है और यह मूर्खता है जोकि मैं कर्त्ताहूं यह मनुष्य मानताहै ॥ ५१ ॥ और ऋषि, देवता, महादैत्य व वेदत्रयीके कर्म में बँधेहुये महामुनियों व किसको समय में विपत्तियां तिरस्कार नहीं करतीं हैं यह समय का बलहै कर्त्ताका नहीं है ॥ ५२ ॥ मन्त्र व पराक्रम के बलसे व बुद्धि तथा पराक्रमसे दुर्लभ वस्तुको नहीं पाताहै व समय २ में

सोताहुआ भी पुरुष प्राप्त होता है ॥ ५३ ॥ माता, पिताकी सेवा व देवता की पूजा और गुण व भलीभांति आचरण पुरुषको सुखदायक नहीं होता है ॥ ५४ ॥ और समय से पीड़ित मनुष्यको रक्षा करने के लिये विद्या, तपस्या, दान, मित्र व भाई लोग समर्थ नहीं होते हैं ॥ ५५ ॥ मनुष्य कालबल के विना आनेवाले अनर्थ को सैकड़ों प्रहारोंसे भी नाश करने के लिये नहीं समर्थ होते हैं ॥ ५६ ॥ हे दैत्य ! पुण्य कर्म देहकी नाईं व समय जीवकी भांति कहाजाता है और कार्योंकी सिद्धि दोनोंके संयोगमें इच्छा कीजाती है ॥ ५७ ॥ हे दैत्य ! पुरातन समय तुमसे उत्तम करोड़ों दैत्य कालरूपी पवनसे सेमरकी रुईकी नाईं दुर्दशामे फेंकेगये ॥ ५८ ॥ और तुम

वा ॥ अलभ्यंलभतेकाले कालेसुप्तोपिविन्दति ॥ ५३ ॥ नमातृपितृशुश्रूषानचदैवतपूजनम् ॥ नगुणोनसमाचारःपुरुषस्यसुखावहः ॥ ५४ ॥ नविद्यानतपोदानंनमित्राणिनबान्धवाः ॥ शक्नुवन्तिपरित्रातुं नरंकालेनपीडितम् ॥ ५५ ॥ नागामिनमनर्थंहिप्रतिघातशतैरपि ॥ शक्नुवन्तिक्षपयितुमृतेकालबलंनराः ॥ ५६ ॥ देहवत्पुण्यकर्माणि जीववत्काल उच्यते ॥ द्वयोस्समागमेदैत्यकार्याणांसिद्धिरिष्यते ॥ ५७ ॥ अहोदैत्यत्वद्विशिष्टा दैत्यानांकोटयःपुरा ॥ शाल्मलीतूलवत्क्षिप्ताः कालवातेनदुर्दशाम् ॥ ५८ ॥ इदंतुलब्ध्वात्वंस्थानमात्मानंबहुमन्यसे ॥ सर्वभूतभवन्देवं ब्रह्माणमिवशाश्वतम् ॥ ५९ ॥ नचेदमचलंस्थानमनन्तंवापिकस्यचित् ॥ त्वन्तुबालिशयाबुद्ध्या ममेदमितिमन्यसे ॥ ६० ॥ अविश्वास्येविश्वसिषि मन्यसेचाध्रुवंध्रुवम् ॥ ममेयमितिमोहात्त्वं त्रैलोकीप्रियमीप्ससि ॥ ६१ ॥ नेयंतवनचास्माकं नचान्येषांस्थिरामता ॥ अतिक्रम्यबहूनन्यांस्त्वयितावदियंस्थिता ॥ ६२ ॥ कञ्चित्कालमियंस्थित्वा त्वयितारकचञ्चला ॥

इस स्थानको पाकर समस्त प्राणियो के पैदा करनेवाले सदैव रहनेवाले ब्रह्माकी नाईं अपनाको बहुत मानतेहो ॥ ५९ ॥ और किसीको यह स्थान अचल व अनन्त नहीं है व यह मेराहै इस बातको तुम मूर्खबुद्धिसे मानतेहो ॥ ६० ॥ व विश्वास न करने योग्यमें विश्वास करतेहो और विनाशवान् वस्तुको अविनाशी मानतेहो व यह त्रिलोक मेराहै इस मोहसे तुम प्रियको चाहतेहो ॥ ६१ ॥ यह त्रिलोकी न तुम्हारी न मेरी और न अन्य पुरुषोंकी अचल मानीगई है बहुत जनोको नाघकर तब

तक यह तुममें स्थितहै ॥ ६२ ॥ हे तारक ! कुछ समय तक तुममें टिककर यह चंचल व बड़ी चपल और पुंश्चली त्रिलोकी फिर और के समीप जावैगी ॥ ६३ ॥
रत्नों समेत ओषधियों से सयुत व नदी, पर्वतादिकों सहित त्रिलोकको जिन्हों ने भोग कियाहै इस समय मैं उनको नहीं देखता हू ॥ ६४ ॥ व वीर हिरण्यकशिपु
और दुःखसे जीतने योग्य हिरण्याक्ष व प्रह्लाद और नमुचि वीर व विप्रचित्ति, विरोचन ॥ ६५ ॥ कीर्त्ति, चर, बर्हि, वातापि व इल्वल, अश्वग्रीव, शम्बर, पुलोमा
और मधुकैटभ ॥ ६६ ॥ व विश्वजित् इत्यादिक अन्य बड़े बली सब दानवेन्द्र कालसे नष्ट कियेगये क्योंकि काल बडा बलिष्ठहै ॥ ६७ ॥ सबोंने अर्ब वर्षोंतक तप

पुंश्चलीचातिचपला पुनरन्यांगमिष्यति ॥ ६३ ॥ सरत्नौषधिसम्पन्नं ससरित्पर्वतादिकम् ॥ तानिदानीन्नपश्यामि येर्भुक्तंभुवनत्रयम् ॥ ६४ ॥ हिरण्यकशिपुर्वीरो हिरण्याक्षश्चदुर्जयः ॥ प्रह्लादोनमुचिर्वीरो विप्रचित्तिर्विरोचनः॥६५॥ कीर्त्तिश्चरश्चबर्हिश्च वातापिरिल्वलस्तथा ॥ अश्वग्रीवःशम्बरश्च पुलोममधुकैटभौ ॥ ६६ ॥ विश्वजित्प्रमुखाश्चान्ये दानवेन्द्रामहाबलाः ॥ कालेनाभ्याहतास्सर्वे कालोहिबलवत्तरः ॥ ६७ ॥ सर्वैर्वर्षार्बुदंतप्तं नत्वमेकोमहातपाः ॥ सर्वैसत्यव्रतपरास्सर्वैचासन्बहुश्रुताः ॥ ६८॥ ज्वलनप्रतिरूपेण कालेनप्रतिसंहताः ॥ मुञ्चेच्छांकामभोगेषु मुञ्चेमंश्रीभवंमदम् ॥ ६९ ॥ एवंस्वराज्यनाशेत्वां शोकस्सम्पीडयिष्यति ॥ शोककालेशुचोमात्वं हर्षकालेचमाहृषः ॥ ७० ॥ अतीतानागतेहित्वा प्रत्युत्पन्नेननर्त्तय ॥ इन्द्रमप्यागतःकालः सदायुक्तमतन्द्रितम् ॥ ७१ ॥ क्षमस्वनचिराद्दैत्य त्वामप्युपगमिष्यति ॥ कोहिस्थातुमलंलोके ममक्रुद्धस्यसंयुगे ॥ ७२ ॥ कालस्तुबलवान्प्राप्तस्तेननातिष्ठसितारक ॥ त्वमेवंवेत्सिमा

कियाथा व सब सत्यके नियममे तत्पर थे और सब बहुत शास्त्रोको पढ़ेथे तुम्ही एक बड़े तपस्वी नहीं हो ॥ ६८ ॥ वे सब दैत्य अग्निके समान रूपवाले कालमे
नष्टकर दियेगये कामनाओंके भोगोंमें इच्छाको छोडदो व लक्ष्मीसे उपजेहुये इस गर्वको छोडो ॥ ६९ ॥ इस प्रकार निज राज्यके नाश होजानेपर तुमको शोच पीडित
करैगा तुम शोचके समयमे मत शोचो व हर्षके समय में प्रसन्न न होवो ॥ ७० ॥ भूत, भविष्य को छोडकर उत्पन्न वस्तुमे वर्त्तमानहोवो और सदैव युक्त व निरालसी
इन्द्रके भी समीप काल आगयाथा ॥ ७१ ॥ हे दैत्य ! क्षमा कीजिये थोड़ेही समयमें काल तुम्हारे समीप भी आवैगा संसारमें मुझ क्रोधित के युद्धमे कौन खड़ेहोने के

लिये समर्थ है ॥ ७२ ॥ हे तारक! बलवान् काल प्राप्त है उसीसे तुम खड़े होतेहो हे दैत्य ! तुम मुझको ऐसा जानतेहो कि मैं जो हूं व जैसे बलवालाहूं ॥ ७३ ॥ मैंने प्रतिकल्पमें करोडों दैत्योंका नाश कियाहै और प्रत्येक कल्पमें मै ब्रह्मा इत्यादिक इस समस्त संसारको रचताहूं ॥ ७४ ॥ इस प्रकार इससमस्त संसारको मैं दृष्टि से जिलाताहूं और हे दैत्येन्द्र ! सब दैत्योंसे संयुत तुमको मैं अंगुली के अग्रभागसे मारने के लिये उत्साह करताहूं परन्तु फिर धर्म का लोप न करूंगा यदि श्रेष्ठ होकर मै ब्रह्माके वरदानात्मक धर्मका ॥ ७५ । ७६ ॥ लोप करूं तो यह धर्म किस की शरणमें जायगा मै कर्ताहूं तुम यह जानो जो कर्त्ता

न्दैत्य योहंयादृक्पराक्रमः ॥ ७३ ॥ कल्पेकल्पेमहादैत्याःकोटिशोपहृतामया ॥ कल्पेकल्पेसृजामीदं ब्रह्मादिसकलं जगत् ॥ ७४॥ इत्थंसंजीवयाम्येतदहंसकलमीक्षणात् ॥ अहंत्वांप्रोत्सहेहन्तुं सर्वदैत्यसमायुतम् ॥ ७५ ॥ अङ्गुल्यग्रेणदैत्येन्द्रपुनर्द्धर्मंनलोपये ॥ यद्यहंप्रवरोभूत्वा धर्म्मंब्रह्मवरात्मकम् ॥ ७६ ॥ लोपयामिततःकंच धर्मोयंशरणंव्रजेत् ॥ अहंकर्तेतिमन्यस्व कर्त्तायस्तुसदाप्रभुः ॥ ७७ ॥ सोयंकालेपचेद्विश्वं वृक्षेफलमिवागतम् ॥ यैरेवकर्म्मभिस्सौख्यं दुःखंतैरेवकर्म्मभिः ॥ ७८ ॥ प्राप्नोतिपुरुषोदैत्य पश्यकालस्यचित्रताम् ॥ सर्वंकालवशादेव बोद्धव्यंधीयुतैर्नरैः ॥ ७९ ॥ स्वकर्म्मपरिपाकस्य फलंसर्वेविदुर्बुधाः ॥ तस्मात्कर्म्मदृढंकार्यं पुण्यापुण्यात्मकंचतत् ॥ ८० ॥ पुण्येनतत्र सौख्यंस्याद्दुःखंपापेननिश्चितम् ॥ इतिसंचिन्त्यदैत्येन्द्रस्ववचःपरिपालय ॥ ८१ ॥ मदुक्तवचनंसर्वं यदिमन्तुमिहार्हसि ॥ तारकउवाच ॥ मामत्रसंस्थितंदृष्ट्वा कालनेमिमुखैर्युतम् ॥ ८२ ॥ कस्येहयततेबुद्धिर्समदुष्करसंयुगे ॥ सात

कि सदैव स्वामीहै ॥ ७७ ॥ वही यह वृक्षमें आयेहुये फलकी नाई समयमें संसारको पकाताहै जिन कर्मों से सुख होताहै उन्हीं कर्मोंसे पुरुष दुःखको पाताहै हे दैत्य ! कालकी विचित्रता को देखो, बुद्धिमान् मनुष्योको सब कालहीके वशसे जानना चाहिये ॥ ७८ । ७९ ॥ सब विद्वानोंने अपने कर्मके फलको कहाहै इससे पुण्य व पापात्मक वह कर्म पुष्ट करना चाहिये ॥ ८० ॥ उन दोनोमें पुण्यसे सुख व पापसे दुःख निश्चय कियागयाहै हे दैत्येन्द्र ! ऐसा विचारकर अपने वचनको पालिये ॥ ८१ ॥ यदि यहां मुझसे कहेहुये समस्त वचनको मानने के लिये योग्यहो तारक बोला कि यहां कालनेमि इत्यादिकों से संयुत टिकेहुये मुझको भलीभांति देखकर

मेरे इस कठिन युद्धमें किसकी बुद्धि यत्नकरैगी उसीसे मारने की इच्छावाले मृत्यु की भी बुद्धि डरतीहै ॥ ८२ । ८३ ॥ और मैं जो कहताहूं वह मेरा वचन निस्सन्देह वैसाहीहै और संसारमें चलायमान जगत् को देखकर कौन शरीरधारी वस्तुवों व देहमें विश्वास करने के लिये उत्साह करताहै व अहंकाररूप वस्तुसे इस विनाशी संसारको सदैव सामने प्राप्त व विकराल और गुप्तकालरूपी अग्निमें धराहुआ जानता हूं इसको आज करूंगा व कल करूंगा यह कहतेहुये पुरुषको ॥ ८४ । ८५ । ८६ ॥ भलीभाति प्राप्त होताहुआ काल हरलेताहै जैसे कि नदी का वेग वृक्षोंको नाश करताहै इससमय तबतक मैंने इसको देखाथा कैसे मरगया ॥ ८७ ॥ व

नऽयथतेबुद्धिर्मृत्योरपिजिघांसतः ॥ ८३ ॥ ब्रवीमियच्चमद्वाक्यं तत्तथैवनसंशयः ॥ कोहिविश्वासमर्थेषु शरीरेवाशरीर
भृत ॥ ८४ ॥ कर्तुमुत्सहतेलोके दृष्ट्वासंप्रस्थितंजगत ॥ अहमर्थेनचैवैनं लोकंजानाम्यशाश्वतम् ॥ ८५ ॥ काला
ग्नावाहितंघोरे गुह्येसततगोचरे ॥ इदमद्यकरिष्यामि श्वःकर्त्तास्मीतिवादिनः ॥ ८६ ॥ कालोहरतिसम्प्राप्तो नदीवेगइ
वाङ्घ्रिपान् ॥ इदानींतावदेवासौ मयादृष्टःकथंमृतः ॥ ८७ ॥ कालेनाह्रियमाणानां प्रलापःश्रूयतेनृणाम् ॥ ईर्ष्याभिमान
शोकेषु कामक्रोधभयेषुच ॥ ८८ ॥ स्पृहामोहातिवादेषु लोकःसक्तोनबुध्यते ॥ तारकउवाच ॥ गुरुंवाप्यगुरुंवापि कृत्या
कृत्यंचकेशव ॥ ८९ ॥ जानामित्वामहंविष्णो सर्वभूतवरंप्रभुम् ॥ किंकुर्म्मःस्वस्वभावेन बलिनंत्वान्तुमन्महे ॥ ९० ॥
केचिद्भजन्तित्वांभक्त्या वैरेणाहेलयापरे ॥ सर्वेनुकम्प्यास्तेवश्यमन्तरात्मन्सुदेहिनाम् ॥ ९१ ॥ पुराणःशाश्वतोध
र्म्मः सर्वप्राणभृतांसमः ॥ तमालम्ब्यमयामुक्ता यान्तुसर्वेदिवौकसः ॥ ९२ ॥ पुनर्म्मर्कस्वरूपेण आन्तव्यंभुवनत्रये ॥

काल से हरेजातेहुये मनुष्योंका प्रलाप सुनपड़ताहै ईर्षा, अभिमान, शोच व काम, क्रोध, भयमें ॥ ८८ ॥ और इच्छा, मोह व विवादों मे लगाहुआ मनुष्य नहीं जानताहै तारक बोला कि हे केशव ! गुरु व अगुरु और कार्य व अकार्य को ॥ ८९ ॥ हे विष्णो ! समस्त प्राणियोंमें श्रेष्ठ व स्वामी तुमको मै जानताहू अपने स्वभाव से हमलोग क्या करैं परन्तु तुमको बलिष्ठ मानतेहैं ॥ ९० ॥ हे उत्तम शरीरधारियों के अन्तरात्मा ! कोई तुमको भक्तिसे व कोई वैरसे भजतेहैं व कोई अनादरसे भजते हैं वे सब अवश्य दयाकरनेके योग्य होतेहैं ॥ ९१ ॥ प्राचीन सनातनधर्म समस्त प्राणधारियोंको समानहै उसका अवलम्बन करके मुझसे छोड़ेहुये सब देवताजावैं ॥ ९२ ॥

और फिर वानरके स्वरूपसे तुमलोगोंको त्रिलोकमें घूमना चाहिये व यज्ञभागों की इच्छा भी न करना चाहिये यह शपथ है ॥ ९३ ॥ तारकसे ऐसा कहहुये देवता हर्षको प्राप्तहुये क्योंकि हरेहुये रोमोंवाला मेष (भेंडा) सौनिक (कसाई)से छोड़ाजाताहै यह भी लाभहै ॥ ९४ ॥ विष्णु बोले कि हे दैत्येन्द्र ! विद्या, ज्ञान व तपस्या से ... तुम तत्त्व (यथार्थ)के ज्ञाता होवो जैसे कि हाथमें आंवलाहो वैसेही प्रकट कालको तुम देखतेहो ॥ ९५ ॥ हे कालचरित्रतत्त्वज्ञ, शिवभक्त, महामते, वज्रांग ... बुद्धिमानो से चाहने योग्यहो ॥ ९६ ॥ जबतक तुम्हारी तपस्या का बल है तबतक त्रिलोकको भोगकरो व ये देवता इस शपथसे संसार में

स ... र्यासमयस्त्वयम् ॥ ९३ ॥ एवमुक्तास्तारकेण देवाहर्षंप्रपेदिरे ॥ मुच्यतेहृतलोमापि मेषोला
...च ॥ दैत्येन्द्रभवतत्त्वज्ञोविद्याज्ञानतपोन्वितः ॥ कालंपश्यसिसुव्यक्तं पाणावामलकं
...हामते ॥ वज्राङ्गसुतधन्योसिस्पृहणीयोसिधीमताम् ॥ ९६ ॥ यावत्तेतपसो
...न्तिसुराजगत् ॥ ९७ ॥ इत्युक्त्वामर्कयूथेन वृतोनारायणःप्रभुः ॥
...गम्य प्रोवाचवचनंहरिः ॥ भवन्तोयातब्रह्माणं सदा
... इत्युक्त्वाभगवान्विष्णुस्तत्रैवान्तरधीयत ॥
...दीप्ततेजाभुवनत्रयेपि ॥ वज्राङ्गपुत्रो
... ॥ जम्भश्चानिर्ऋतिस्थाने

... गिरिपै जाकर विष्णुजीबोले
...चाहिये यह कहकर
...हुआ

वे सब पूर्वोक्त मेरी भुजाके स्थान में हैं ॥ १६ ॥ इसलिये निश्चयकर उस दुष्टात्माने मेरी भुजाओंको नष्ट करदिया हे देवताओ ! जिसने तुमलोगों का अपकार कियाहो उसको मुझसे कहनेके योग्यहो ॥ १७ ॥ देवता बोले कि हे प्रभो ! तुमने जिसको वरदिया है यह जो वज्रांग का पुत्रहै उससे हमलोग बहुतही तिरस्कृतहुये तुम यथार्थसे नहीं जानतेहो ॥१८॥ हे प्रभो! जो वह समस्त तीर्थोंवाला महीसागर का किनारा है उसको घेरकर उसने सुमेरुकी भूमि के समान किया है ॥ १९ ॥ व उसने समस्त देवताओं की सब ऋद्धियों को लेलिया है और महाभूतों के स्वरूपसे वही संसार की रक्षा करताहै ॥ २० ॥ चन्द्रमा, सूर्य, नक्षत्र व जो और देवताके

देवास्तन्ममाख्यातुमर्हथ ॥ १७ ॥ देवाऊचुः ॥ योसौवज्राङ्गतनयस्त्वयादत्तवरःप्रभो ॥ भृशंविप्रकृतास्तेन न त्वंजानासितत्त्वतः ॥ १८ ॥ यत्तन्महीसमुद्रस्य तटंसार्वकतीर्थकम् ॥ तदाक्रम्यकृतन्तेन मेरुभूमिसमंप्रभो ॥ १९ ॥ ऋद्धयस्सर्वदेवानां गृहीतास्तेनसर्वशः ॥ महाभूतस्वरूपेण जगत्पातिसएवच ॥ २० ॥ चन्द्रसूर्यौग्रहास्तारा यच्चान्यद्देवपक्षतः ॥ तच्चसर्वंनिराकृत्य स्थापितोदैत्यपक्षकः ॥ २१ ॥ वयञ्चविधृतास्तेन बहूपहसितास्तथा ॥ विष्णोः प्रसादान्मुक्ताश्च कथंचिदपिकष्टतः ॥ २२ ॥ सुरानुवाचभगवानन्तस्माच्चिन्त्यतत्त्वतः ॥ अवध्यस्तारकोदैत्यः सर्वैरपि सुरासुरैः ॥ २३ ॥ यस्यवध्यश्चनाद्यापि सजातोभुवनेपुमान् ॥ मयाचवरदानेन छन्दयित्वानिवारितः ॥ २४ ॥ तपसासहिदीप्तोभूत्त्रैलोक्यदहनात्मकः ॥ सचवव्रेवधन्दैत्यःशिशुतस्सप्तवासरात् ॥ २५ ॥ सचसप्तदिनोबालः शङ्करांशोभविष्यति ॥ सतीनामातुयादेवी विनष्टादक्षहेलया ॥ २६ ॥ साभविष्यतिकल्याणी हिमाचलशरीरजा ॥ शङ्कर

पक्षसे था उस सबको निकालकर दैत्योंका पक्ष थापा गयाहै ॥ २१ ॥ और उससे हम लोग पकड लियेगये थे व बहुत हँसेगये परन्तु किसी प्रकारसे भी कष्ट करके विष्णुकी प्रसन्नता से छूटे हैं ॥ २२ ॥ भगवान् ब्रह्माजी चित्तमें यथार्थ विचारकर देवताओंसे बोले कि सब भी देवता दैत्योंसे तारकासुर अवध्य है ॥ २३ ॥ व जिस के वध्यहै संसारमें वह पुरुष अभीतक नहीं पैदाहुआ है और मैंने वरदानसे इच्छा कराकर उसको तपस्यासे निवृत्त किया क्योंकि तपसे त्रिलोक का जलानेवाला वह हुआथा और उस दैत्यने सात दिनवाले बालकसे वध मांगा है ॥ २४ ।२५ ॥ और वह सात दिनवाला बालक शिवांश होगा दक्षके अपमानसे सती नामक जो

अतल निरोह (जंघस्थल) हैं और भूमि पेंडूहै व आकाश इसकी नाभिहै ॥ ७ ॥ और ज्योतिः पद (नक्षत्रों का स्थान) इन विराट् जी का वक्षस्थल है और मह-लोंक ग्रीवाहै व जनलोक मुख कहाजाता है ॥ ८ ॥ व तपोलोक मस्तक है और सत्यलोक शिर कहागया है व चन्द्रमा, सूर्य नेत्रहैं और दिशायें विराट्जी के कर्ण व अश्विनीकुमार नासिका में हैं ॥ ९ ॥ व वेदवादी जनोंने ब्रह्मछिद्रमें टिके हुये परमात्मा को तुम्हें कहाहै इस प्रकार तुम्हारे विराट् रूपको स्मरण करतेहुये जो मनुष्य उपासना करते हैं ॥ १० ॥ जन्मके बन्धन से छूटकर वे परमपद को प्राप्तहोते हैं ॥ ११ ॥ इस प्रकार स्थूल व हाथके बीचमें प्राप्त सूक्ष्म और प्रत्येक वस्तुमें

लातले ॥ महीतलञ्चजघनं नाभिश्चास्यनभस्थलम् ॥ ७ ॥ ज्योतिःपदमुरःस्थानं स्वर्लोकोबाहुरुच्यते ॥ ग्रीवामहश्च वदनंजनोलोकःप्रकीर्त्यते ॥ ८ ॥ ललाटञ्चतपोलोकः शीर्षंसत्यमुदाहृतम् ॥ चन्द्रसूर्यौचनयने दिशःश्रोत्रेश्विनौन सि ॥ ९ ॥ आत्मानंब्रह्मरन्ध्रस्थमाहुस्त्वांवेदवादिनः ॥ एवंयेतेविराड्रूपं संस्मरन्तउपासते ॥ १० ॥ जन्मबन्धविनिर्मु क्तास्तेयान्तिपरमंपदम् ॥ ११ ॥ एवंस्थूलंपाणिमध्यंचसूक्ष्मं भावेभावेभावितंत्वांगृणन्ति ॥ सर्वत्रस्थंत्वामतःप्राहवे दस्तस्मैतुभ्यंपद्मजईड्विधेम ॥ १२ ॥ एवंस्तुतोविरञ्चिस्तुकृपयाभिपरिप्लुतः ॥ जानन्नपितदाप्राह तेषामाश्वासहेत वे ॥ १३ ॥ सर्वेभवन्तोदुःखार्ताः परिम्लानमुखाम्बुजाः ॥ भ्रष्टायुधास्तथाकस्माद्भ्रष्टाभरणवाससः ॥ १४ ॥ ममैवा पकृतिर्देवा भवतांयद्विडम्बनम् ॥ यतोविराट्शरीरेमे भवन्तोबाहुसंज्ञकाः ॥ १५ ॥ यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं धार्म्मिकंचो र्ज्जितंमहत् ॥ तन्नाशाद्बाहुनाशोमे बाहुस्थानेचतेमम ॥ १६ ॥ तन्नूनंममभग्नौच बाहूतेनदुरात्मना ॥ येनवोपकृतं

होनेवाले तुमको विद्वान् लोग कहते हैं इसी से वेदने सब स्थानोंमें टिकेहुये तुमको कहाहै हे ब्रह्माजी ! उन तुम्हारे लिये हमलोग स्तुति करते है ॥ १२ ॥ इस प्रकार स्तुति कियेहुये व दयासे संयुत ब्रह्माजीने जानते हुये भी उस समय उनके समझाने के लिये कहा ॥ १३ ॥ कि दुःखसे विकल व कुम्हिलाये हुये मुख कमल वाले तथा छुटेहुये अस्त्रों व भ्रष्टहुये आभूषण, वसनवाले तुमलोग किसलिये हुये हो ॥ १४ ॥ हे देवताओ ! आपलोगों का जो तिरस्कारहुआ यह मेराही अपकारहै क्योंकि मेरे विराट् शरीरमें आपलोग बाहुसञ्ज्ञक हैं ॥ १५ ॥ जो जो प्राणी ऐश्वर्यवान् व बहुत बढ़ेहुये व धार्मिक हैं उनके नाशसे मेरी भुजाका नाश होता है और

थे सब पूर्वोक्त मेरी भुजाके स्थान में हैं ॥ १६ ॥ इसलिये निश्चयकर उस दुष्टात्माने मेरी भुजाओंकों नष्ट करदिया है देवताओ ! जिसने तुमलोगों का अपकार कियाहो उसको मुझसे कहनेके योग्यहो ॥ १७ ॥ देवता बोले कि हे प्रभो ! तुमने जिसको वरदिया है यह जो वज्रांग का पुत्रहै उससे हमलोग बहुतही तिरस्कृतहुये तुम यथार्थसे नहीं जानतेहो ॥१८॥ हे प्रभो! जो वह समस्त तीर्थोंवाला महीसागर का किनारा है उसको घेरकर उसने सुमेरुकी भूमि के समान किया है ॥ १९ ॥ व उसने समस्त देवताओं की सब ऋद्धियों को लेलिया है और महाभूतों के स्वरूपसे वही संसार की रक्षा करताहै ॥ २० ॥ चन्द्रमा, सूर्य, नक्षत्र व जो और देवताके

देवास्तन्ममाख्यातुमर्हथ ॥ १७ ॥ देवाऊचुः ॥ योसौवज्राङ्गतनयस्त्वयादत्तवरःप्रभो ॥ भृशंविप्रकृतास्तेन न त्वंजानासितत्त्वतः ॥ १८ ॥ यत्तन्महीसमुद्रस्य तटंसार्वकतीर्थकम् ॥ तदाक्रम्यकृतन्तेन मेरुभूमिसमंप्रभो ॥ १९ ॥ ऋद्धयस्सर्वदेवानां गृहीतास्तेनसर्वशः ॥ महाभूतस्वरूपेण जगत्पातिसएवच ॥ २० ॥ चन्द्रसूर्यौग्रहास्तारा यच्चान्यद्देवपक्षतः ॥ तच्चसर्वंनिराकृत्य स्थापितोदैत्यपक्षकः ॥ २१ ॥ वयञ्चविधृतास्तेन बहूपहसितास्तथा ॥ विष्णोः प्रसादान्मुक्ताश्च कथंचिदपिकष्टतः ॥ २२ ॥ सुरानुवाचभगवानन्तस्माञ्चिन्त्यतत्त्वतः ॥ अवध्यस्तारकोदैत्यः सर्वैरपि सुरासुरैः ॥ २३ ॥ यस्यवध्यश्चनाद्यापि सजातोभुवनेपुमान् ॥ मयाचवरदानेन छन्दयित्वानिवारितः ॥ २४ ॥ तपसासहिदीप्तोभूत्त्रैलोक्यदहनात्मकः ॥ सचवव्रेवधन्दैत्यःशिशुतस्सप्तवासरात् ॥ २५ ॥ सचसप्तदिनोबालः शङ्करांशोभविष्यति ॥ सतीनामातुयादेवी विनष्टादक्षहेलया ॥ २६ ॥ साभविष्यतिकल्याणी हिमाचलशरीरजा ॥ शङ्कर

पक्षसे था उस सबको निकालकर दैत्योंका पक्ष थापा गयाहै ॥ २१ ॥ और उससे हम लोग पकड लियेगये थे व बहुत हँसगये परन्तु किसी प्रकारसे भी कष्ट करके विष्णुकी प्रसन्नता से छूटे हैं ॥ २२ ॥ भगवान् ब्रह्माजी चित्तमें यथार्थ विचारकर देवताओंसे बोले कि सब भी देवता दैत्योंसे तारकासुर अवध्य है ॥ २३ ॥ व जिस के वध्यहै संसारमे वह पुरुष अभीतक नहीं पैदाहुआ है और मैंने वरदानसे इच्छा कराकर उसको तपस्यासे निवृत्त किया क्योंकि तपसे त्रिलोक का जलानेवाला वह हुआथा और उस दैत्यने सात दिनवाले बालकसे वध मांगा है ॥ २४ ।२५ ॥ और वह सात दिनवाला बालक शिवांश होगा दक्षके अपमानसे सती नामक जो

देवी नष्टहोगई हैं ॥ २६ ॥ वे कल्याणकारिणी हिमाचल के शरीर से पैदा होवैंगी उनके व शिवजी के संयोग में यत्न करना चाहिये ॥ २७ ॥ व मैं भी इस कार्यके शेष कर्मका करनेवाला निस्सन्देह हूंगा साक्षात् कमलसे पैदाहुये उन ब्रह्माजीसे यह कहेहुये देवता ॥ २८ ॥ ब्रह्माको प्रणामकर सुमेरु गिरिपर चलेगये जो देवता कि वानरों के रूपसे घिरेथे तदनन्तर जब देवता चलेगये तब लोकों के पितामह भगवान् ब्रह्माजीने रात्रिको स्मरण किया जोकि पहले पैदाहुई अपनी देहथी तदनन्तर रात्रि भगवती ब्रह्मा के समीप प्राप्त हुई ॥ २९ ।३० ॥ तदनन्तर एकान्तमें उस रात्रिको देखकर ब्रह्माजी रात्रिसे बोले॥३१॥कि हे विभावरि देवि ! देवताओंका बड़ा कार्य

स्यचतस्याश्च यत्नःकार्यस्समागमे ॥ २७ ॥ अहमप्यस्यकार्यस्य शेषंकर्तानसंशयः ॥ इत्युक्तास्त्रिदशास्तेन साक्षात्कमलयोनिना ॥ २८ ॥ जग्मुर्मेरुंप्रणम्येशं मर्करूपेणसंवृताः ॥ ततोगतेषुदेवेषु ब्रह्मालोकपितामहः ॥ २९ ॥ निशांसस्मारभगवान् स्वान्ततनुंपूर्वसम्भवाम् ॥ ततोभगवतीरात्रिरुपतस्थेपितामहम् ॥ ३० ॥ तांविविक्तेसमालोक्य ततोवाचविभावरीम् ॥ ३१ ॥ विभावरिमहत्कार्यं विबुधानामुपस्थितम् ॥ तत्कर्तव्यंत्वयादेवि शृणुकार्यस्यनिश्चयम् ॥ ३२ ॥ तारकोनामदैत्येन्द्रोसुरकेतुरनिर्जितः ॥ तस्याभवायभगवाञ्जनयिष्यतिचेश्वरः ॥ ३३ ॥ सतुसम्भवितातस्य तारकस्यान्तकारकः ॥ अहञ्चादौयदाजातस्तदापश्यंपुरास्थितम् ॥ ३४ ॥ अर्द्धनारीश्वरन्देवं व्याप्यविश्वमवस्थितम् ॥ दृष्ट्वातमब्रवन्देवं विभजस्वेतिभक्तितः ॥ ३५ ॥ ततोनारीपृथग्जाता पुरुषश्चतथापृथक् ॥ तस्याश्चैवांशजास्सर्वाः स्त्रियस्त्रिभुवनेश्वराः ॥ ३६ ॥ एकादशचरुद्राश्च पुरुषास्तस्यवंशजाः ॥ ताञ्नारीमहमालो

प्राप्तहुआ है वह तुम को करना चाहिये और कार्य का निश्चय सुनिये ॥ ३२ ॥ कि तारक नाम दैत्येन्द्र जो कि दैत्यों में श्रेष्ठ व नहीं जीतागयाहै उसके नाशके लिये भगवान् शिवजी पुत्र को पैदा करेंगे ॥ ३३॥ और वह उस तारक का अन्तकारक होगा व पहले जब हम पैदा हुये तब आगे खड़ेहुये अर्द्धनारीश्वर देव (शिव) जी को मैंने देखा जो कि संसार में व्याप्त होकर स्थित थे उन देव को देखकर भक्ति से मैंने यह कहा कि विभाग कीजिये ॥ ३४ । ३५ ॥ तदनन्तर स्त्री अलग होगई व वैसेही पुरुष भिन्न होगया उस स्त्री के अंश से उपजी हुई सब स्त्रियां हुई और उस पुरुष के वंश में पैदा हुये ग्यारह रुद्र पुरुष त्रिलोक के स्वामी हुये इसके

अनन्तर मैंने उस स्त्री को देखकर दक्ष पुत्रसे कहा ॥ ३६ । ३७ ॥ कि पुत्रीको लीजिये यह मुझे व तुझ को भी लोकों में पुन्नामक नरकसे रक्षा करनेवाली तुम्हारी
पुत्री होगी ॥ ३८ ॥ मुझ से ऐसा कहे हुये उन दक्ष जीने उसको कन्या के स्थान में कल्पित कर सती ऐसा नाम कर भक्ति से शिवजी के लिये दे दिया ॥ ३९ ॥
तदनन्तर किसी समय पिताने उसका अपमान किया जो कि पाप मानसकर्मवाला व दुष्टात्मा व मरने की इच्छावाला और कुल में कज्जल रूप था ॥ ४० ॥ जिस
प्रकार उस दक्ष के अपमान से सती देवी ने शरीर को त्याग किया ॥ ४१ ॥ व जिस प्रकार शिव जीने उस यज्ञ को विध्वंस किया वह तुम को प्रकट है और इससमय

क्य पुत्रंदक्षमथाब्रवम् ॥ ३७ ॥ भजस्वपुत्रींजगतां ममापितवापिच ॥ पुन्नामनरकात्त्रात्री पुत्रीतेभाविनीत्वियम् ॥ ३८॥
एवमुक्तोमयादक्षः पुत्रीत्वेपरिकल्प्यताम् ॥ रुद्रायदत्तवान्भक्त्या नामकृत्वासतीतिसः ॥ ३९ ॥ ततःकालेचकस्मिंश्चि
द्वमेनेचतांपिता ॥ मुमूर्षुःपापसङ्कल्पो दुरात्माकुलकज्जलः ॥ ४० ॥ अवमानेनतस्यापि यथादेवीजहौतनुम् ॥
४१ ॥ यथायज्ञस्सचध्वस्तो भवेनविदितंहिते ॥ अधुनाहिमशैलस्य भवित्रीदुहिताचसा ॥४२॥ महेश्वरंपतिंसाच पुनः
प्राप्स्यतिनिश्चितम् ॥ एतदेवत्वयाकार्यं मेनागर्भंप्रविश्यच ॥ ४३ ॥ तस्याश्छविंकुरुकृष्णां यथाकालीभवेच्चसा ॥ यथा
रौद्रोपहसिता तपस्तप्स्यतिसामहत् ॥ ४४ ॥ समाप्तनियमादेवी यदाचोमाभविष्यति ॥ स्वमेवचतदारूपं सुगौरम्प्र
तिपत्स्यते ॥ ४५ ॥ तयोस्सुतप्ततपसोर्भवितायोमहान्सुतः ॥ भविष्यतिसदैत्यस्य तारकस्यविनाशकः ॥ ४६ ॥ तपसो
हिविनानास्ति सिद्धिःकुत्रापिशोभने ॥ सर्वासांकर्म्मसिद्धीनां मूलंहितपउच्यते ॥ ४७ ॥ त्वयापिदानवादेवि देहान्निर्ग

वह हिमाचल की कन्या होगी ॥ ४२ ॥ और वह फिर निश्चय कर महादेव जी को पति पावैगी व तुम को यही करना चाहिये कि मेना के गर्भ में पैठकर ॥ ४३ ॥
उसकी छवि श्याम कीजिये कि जिस प्रकार वह कालीहोवै व जिस भांति शिवजी से हँसीहुई वह बड़ी तपस्या करै ॥ ४४ ॥ और जब पार्वतीदेवी समाप्तहुये नियमों
वाली होवैगी तब अपनेही सुन्दर गौर वर्णको प्राप्तहोगी ॥ ४५ ॥ अच्छीभांति तपस्या कियेहुये उन दोनोंके जो बडाभारी पुत्रहोगा वह तारक दैत्यका नाशक होगा ॥
४६ ॥ हे शोभने ! बिन तपस्या के कहीं भी सिद्धि नहीं होती है क्योंकि कर्मोंकी सब सिद्धियों की जड तप कहीजाती है ॥ ४७॥ हे देवि ! उस समय देहसे निकली

हुई तुमको भी संसारमें दुर्जय चण्ड मुण्ड अग्रगामीवाले दानवों को मारना चाहिये ॥ ४८ ॥ हे देवि ! जिससे तुम चण्ड व मुण्डको मारोगी उसी लिये हे देवि ! संसार में चामुण्डा ऐसी प्रसिद्ध होगी ॥ ४९ ॥ तदनन्तर हे वरदायिनि, देवि ! बहुत भांतिके आकारवाले भेदोंसे सब मे प्राप्त व कामोंको सिद्ध करनेवाली तुमको संसार पूजैगा ॥ ५० ॥ ब्राह्मण लोग ॐकार मुखवाली गायत्रीरूपिणी तुमको पूजते हैं व बड़े बली राजा लोग भी बढ़ीहुई बलदायिनी तुमको, पूजते हैं ॥ ५१ ॥ व वैश्य ऐश्वर्यरूपिणी तुम्हींको पूजते हैं और हे शुभे ! शूद्र शिवा नामक तुमको पूजते हैं मुनियों की तुम स्थिर क्षमाहो व नियमियों की भी दयाहो ॥ ५२ ॥ व

तयातदा ॥ चण्डमुण्डपुरोगाश्च हन्तव्यालोकदुर्ज्जयाः ॥४८॥ यस्माच्चण्डञ्चमुण्डञ्च त्वंदेविनिहनिष्यसि ॥ चामुण्डेतिततोलोके ख्यातादेविभविष्यसि ॥ ४९ ॥ ततस्त्वांवरदेदेवि लोकस्सम्पूजयिष्यति ॥ भेदैर्बहुविधाकारैस्सर्वगां कामसाधनीम् ॥ ५० ॥ ॐकारवक्त्रांगायत्रीं त्वामर्चन्तिद्विजोत्तमाः ॥ ऊर्ज्जितांबलदाञ्चापि राजानस्सुमहाबलाः ॥ ५१ ॥ वैश्याश्चभूतिमित्येव शिवांशूद्रास्तथाशुभे ॥ क्षान्तिर्मुनीनामक्षोभ्या दयानियमिनामपि ॥ ५२ ॥ त्वंमोहःपापचित्तानां नीतिर्नयविसर्प्पिणाम् ॥ संहर्त्रीशुम्भरूपाणांत्वंशान्तिःशुभकर्म्मणाम् ॥ ५३ ॥ त्वंभ्रान्तिर्मूढचित्तानां त्वं फलंक्रतुयाजिनाम् ॥ जलधीनांमहावेला त्वंचलीलाविलासिनाम् ॥ ५४ ॥ सम्भूतिस्त्वंपदार्थानां स्थितिस्त्वंलोकपालिनी ॥ त्वंकालरात्रिर्निश्शेषभुवनावलिनाशिनी ॥ ५५ ॥प्रियभक्तजनानन्ददायिनीत्वंविभावरि ॥ प्रसीदप्रणतानाञ्च सौम्यदृष्ट्यावलोकय ॥ ५६ ॥ इतिस्तुवन्तोयेदेवि पूजयिष्यन्तित्वांशुभाम् ॥ तेसर्वकामानाप्स्यन्ति नियतन्नात्रसं

पाप चित्तवालो के अज्ञान व नीतिसे चलनेवालों की नीति तुम्हीं हो और शुम्भसरीखे दैत्योंकी संहार करनेवाली व उत्तम कर्मोंकी शान्ति तुमहो ॥ ५३ ॥ व अज्ञानियों का भ्रम तुम्हीहो व यज्ञ करनेवालों का फल तुम्हींहो और समुद्रों की तुम मर्यादहो व विलासी पुरुषोंकी क्रीडा तुम्हींहो ॥ ५४ ॥ और तुम पदार्थों का ऐश्वर्यहो व लोकोंको पालनेवाली स्थिति तुम्हींहो और समस्त लोकपंक्तियोंको नाशनेवाली तुम कालरात्रि हो ॥ ५५ ॥ हे विभावरि ! तुम प्यारे भक्त जनोंको आनन्द देनेवालीहो व प्रणाम कियेहुये लोगोंके ऊपर प्रसन्न होवो और सौम्य दृष्टिसे देखो ॥ ५६ ॥ हे देवि ! ऐसी स्तुति करतेहुये जो लोग तुमको पूजैंगे वे निश्चय कर

समस्त कामनाओं को पावैंगे इसमें सन्देह नहीं है ॥ ५७ ॥ इस प्रकार कहीहुई रात्रिदेवी ऐसाही होगा हाथोंको जोड़े हुई यह कहकर शीघ्रता समेत उस समय प्रस-
न्नतासे हिमाचल पैचलीगई ॥५८॥ वहां रत्नोंकी भित्तियोंसे आश्रित बड़े भारी मन्दिर में पाण्डुवर्णकी छवि संयुत मुख कमलवाली उन मेनाको देखा ॥ ५९ ॥ जोकि
कुछ काले मुखवाले ऊंचे कुचोंके भारसे झुकाई जातीथीं व बड़े मोलवाले भूषणोंसे भूषित स्त्रियोंसे सेवितथीं ॥६०॥ जो संसारकी माताके जन्मको देनेवाली हैं उन
के पेटमें पैठकर स्वामिकार्त्तिकेय की माताकी छविको रात्रिने क्रमसे रंग दिया ॥ ६१ ॥ तदनन्तर उत्तम मुखवाली हिमाचल की स्त्री मेनाने उत्तम ब्राह्मय मुहूर्त्तमें

शयः ॥ ५७ ॥ इत्युक्तातुनिशादेवी तथेत्युक्त्वाकृताञ्जलिः ॥ जगामत्वरितातूर्णं तदाहिमगिरिंमुदा ॥ ५८ ॥ तत्रा
सीनांमहाहर्म्ये रत्नभित्तिसमाश्रये ॥ ददर्शमेनांतांपाण्डुच्छविवक्त्रसरोरुहाम् ॥ ५९ ॥ किञ्चिच्छ्याममुखोदग्रस्तनभा
रावनामिताम् ॥ महार्हभूषणैर्युक्तां ताभिःस्त्रीभिर्निषेविताम् ॥ ६० ॥ जन्मदायाजगन्मातुः प्रविश्यजठरान्तरे ॥
अरञ्जयच्छविन्देव्यागुहमातुर्विभावरी ॥ ६१ ॥ ततोजगन्मङ्गलदांमेनाहिमगिरेःप्रिया ॥ ब्राह्मयेमुहूर्त्तेशुभकेप्रासूयत
शुभानना ॥ ६२ ॥ तस्यान्तुजायमानायां जन्तवःस्थाणुजङ्गमाः ॥ अभवन्सुखिनःसर्वे सर्वलोकनिवासिनः ॥ ६३ ॥
अभवत्क्रूरसत्त्वानां चेतःशान्तञ्चदेहिनाम् ॥ ज्योतिषामपिचेतस्त्वमभवत्सुतरान्तदा ॥ ६४ ॥ वनाश्रिताश्चौषधयः
स्वादुवन्तिफलानिच ॥ गन्धवन्तिचमाल्यानि विमलञ्चनभोभवत् ॥ ६५ ॥ मारुतश्चसुखस्पर्शो दिशश्चसुमनोहराः ॥
विस्मृतानिचशास्त्राणि प्रादुर्भावंप्रपेदिरे ॥ ६६ ॥ प्रभावस्तीर्थमुख्यानां तदापुण्यतमोभवत् ॥ सत्येदमेचाद्यय

संसारको कल्याण देनेवाली पार्वती जीको पैदा किया ॥ ६२ ॥ उनके उत्पन्न होने पर समस्त लोकोंके निवासी सब चराचर जीव सुखी हुये ॥ ६३॥ और दुष्ट प्राणियों
का चित्त शांत होगया व उस समय देहधारी व नक्षत्रों के भी अत्यन्त चैतन्यता हुई ॥ ६४ ॥ व वनमें प्राप्त ओषधियां व फल स्वादिष्ठ हुये और माला सुगन्धितहुये
तथा आकाश निर्मल होगया ॥ ६५ ॥ व पवन सुखस्पर्शी और दिशायें अतिमनोहर हुईं व भूलेहुये शास्त्र प्रकटताको प्राप्तहुये ॥ ६६ ॥ व उस समय मुख्यतीर्थों

का प्रभाव अत्यन्त पुण्य हुआ और सत्य, इन्द्रियनिग्रह, वेदपाठ, यज्ञ, दान व तपस्या में भी ॥ ६७ ॥ स्वामिकार्त्तिकेय जी की माताके जन्मसमय में सबकी बुद्धि हुई व आकाशमें देवता भी आनन्द से हर्षित लोचनोंवाले हुये ॥ ६८॥ व विष्णु, ब्रह्मा, इन्द्र, पवन, अग्नि इत्यादिक देवताओंने उससमय उस मेनाके घरमें फूलों की वृष्टिको छोड़ा ॥ ६९ ॥ और बिजुलीकी सी छविसे शोभित सुमेरु इत्यादिक मूर्त्तिधारी पर्वत उस बड़े उछाह में प्राप्तहुये ॥ ७० ॥ व समस्त समुद्र व नदियां भलीभांति आईं उस समय हे भारत ! संसार में हिमाचल सब चराचर जीवोंसे सेवनीय व जानेयोग्य और पूजने योग्य हुआ और वे सब उछाह को भोगकर उस

ने यज्ञेदानेतपस्यपि ॥ ६७ ॥ सर्वेषामभवद्बुद्धिः जन्मकालेगुहारणेः ॥ अन्तरिक्षेमराश्चापि प्रहर्षोत्फुल्ललोचनाः ॥ ६८ ॥ हरिर्ब्रह्मामरेन्द्रार्कवायुवह्निपुरोगमाः ॥ पुष्पवृष्टिंप्रमुमुचुस्तस्मिन्मेनागृहेतदा ॥ ६९ ॥ मेरुप्रभृतयश्चापि मूर्तिमन्तोमहानगाः ॥ तस्मिन्महोत्सवेप्राप्ता विद्युत्कान्त्योपशोभिताः ॥ ७० ॥ सागराःसरितश्चैव समाजग्मुश्चसर्वशः ॥ हिमशैलोभवल्लोके तदासर्वैश्चराचरैः ॥ ७१ ॥ सेव्यश्चाप्यभिगम्यश्च पूजनीयश्चभारत॥ अनुभूयोत्सवन्तेच जग्मुःस्वानालयांस्तदा ॥ ७२ ॥ ततश्चशैलजादेवी चिक्रीडेशुभगातदा ॥ देवगन्धर्वकन्याभिर्नागकिन्नरसम्भवाः ॥ ७३ ॥ मुनीनांचापियाकन्यास्ताभिःसार्द्धसुशोभना ॥ कदाचिदथमेरुस्थो वासवःपाण्डुनन्दन ॥ ७४ ॥ सस्मारमांययौचाहं संस्मृतोवासवन्तदा ॥ मान्दृष्ट्वाचसहस्राक्षः समुत्थायातिहर्षितः ॥ ७५ ॥ पूजयामासताम्पूजाम्प्रतिगृह्याहमब्रवम् ॥ महासुरमहोन्मादकालानलदिवस्पते ॥ ७६ ॥ कुशलंविद्यतेकच्चित्त्वयिचैवसनन्दने ॥ पृष्टोह्येवंमयाशक्रः प्रोवाच

समय अपने २ घरोंको गये ॥ ७१ । ७२ ॥ तदनन्तर उस समय शुभगामिनी पार्वती देवीने देवता व गन्धर्वकी कन्याओं के साथ क्रीडा किया व नाग और किन्नरों से उपजी हुई जो कन्यार्थीं व मुनियोंकी जो कन्यार्थीं उनके साथ सुन्दरी पार्वती ने क्रीडा किया हे पाण्डुपुत्र ! इसके अनन्तर किसी समय सुमेरु गिरि पै टिकेहुये इन्द्रने ॥ ७३ । ७४ ॥ मुझको स्मरण किया व उस समय याद कियाहुआ मैं इन्द्रके समीपगया और मुझको देखकर बड़े प्रसन्न इन्द्रजीने उठकर ॥ ७५ ॥ मेरा पूजन किया उस पूजनको ग्रहण कर मैंने कहा कि हे महादैत्यो के बड़ेभारी उन्माद के लिये कालाग्नि, इन्द्रजी ! ॥ ७६ ॥ क्या नन्दनवन समेत तुम्हारे कुशल विद्यमान

है और क्या नन्दनवन में कुशल है मुझसे इस प्रकार पूंछेहुये इन्द्रने हँसते हुये वचन कहा ॥ ७७ ॥ कि हे मुने ! निश्चयकर तीनोंलोकों में कुशल का अंकुर उ-
त्पन्न हुआ क्योंकि उसके फलके उदयकी लक्ष्मीमें आप स्मरण कियेगये ॥ ७८ ॥ तुम सब सम्मत निश्चयकर जानतेहो तौ भी पूछनेवाला मित्रजन आधे क्षणभर
बडे आनन्दको प्राप्त होताहै ॥ ७९ ॥ इसलिये आप पार्वतीदेवी व हिमाचल व हिमाचलकी स्त्री मेनाको शिवजी को वर सुनाइये कि जिसमें वे उन शिवजीकी रुचि
करै ॥ ८० तदनन्तर उस वचनको सुनकर मैं औषधियों व पत्थलों के स्थान वाले पर्वतोत्तम हिमाचलपै गया जोकि साक्षात् सुरेशकी नाईं है ॥ ८१ ॥ वहां उससे

**वचनंस्मयन् ॥ ७७॥ कुशलस्याङ्कुरस्तावत्सम्भूतोभुवनत्रये ॥ तत्फलोदयसम्पत्तौ यद्भवान्संस्मृतोमुने ॥ ७८ ॥ वे
त्सिसर्वंमतन्त्वंवैतथापिपरिपृच्छकः ॥ निर्वृतिंपरमांयातिनिमेषार्धंसुहृज्जनः ॥७९॥ तद्भवाञ्छैलजान्देवीं शैलेन्द्रंशै
लवल्लभाम् ॥ हरंसंश्रावयवरं यस्मात्तंरोचयन्तिते ॥ ८० ॥ ततस्तद्वाक्यमाकर्ण्य गतोहंशैलसत्तमम् ॥ ओषधिप्रस्थ
निलयंसाक्षादिवदिवस्पतिम् ॥ ८१ ॥ तत्रहैमेस्वयन्तेनमहाभक्त्यानिवेदिते ॥ महासनेपूजितोहमुपविष्टोमहासुख
म् ॥ ८२ ॥ गृहीत्वार्घंततोमाञ्च पप्रच्छश्लक्ष्णयागिरा ॥ कुशलन्तपसःशैलो शनैःफुल्लाननाम्बुजः ॥ ८३ ॥ अहमप्य
स्यतत्प्रोच्यप्रत्यवोचङ्गिरीश्वरम् ॥ त्वयाशैलेन्द्रपूर्वाञ्चह्यपराञ्चादिशन्तथा ॥ ८४ ॥ अभिव्याप्यस्थितवताक्रियतेप्रा
णिपालनम् ॥ अहोधन्योसिविप्रेन्द्राः साहाय्येनतवाचल ॥ ८५ ॥ तपोजपव्रतस्नानैः साधयन्त्यात्मनःपरम् ॥ यज्ञाङ्गसा
धनैःकांश्चित्कन्दादिफलदानतः ॥ ८६ ॥ समुद्धरसिविप्रांस्त्वं किमतःप्रोच्यतेतव ॥ अन्येपिजीवाबहुधात्वामुपाश्रि**

आपही बडीभक्ति करके बतलाये हुये सोनेके बडेभारी आसन पै पूजा कियाहुआ मैं अर्घको ग्रहणकर बडे सुखसे बैठा तदनन्तर फूलेहुये मुख कमल वाले हिमाचल
ने नम्रवाणी करके धीरेसे तपस्याकी कुशल मुझसे पूंछा ॥ ८२ । ८३ ॥ मैंने भी इससे उस कुशलको कहकर गिरिराज से कहा कि हे शैलेन्द्र ! पूर्व व पश्चिम दि-
शाको व्याप्त करके स्थितहोते हुये तुमसे जन्तुवों का पालन कियाजाता है हे अचल ! धन्यहो क्योंकि तुम्हारी सहायतासे द्विजेन्द्र ॥ ८४ । ८५ ॥ तपस्या, जप, व्रत
व स्नान व यज्ञाग के उपायों करके अपने लिये उत्तम स्थानको साधन करते हैं और कितेक ब्राह्मणों को तुम कन्द इत्यादिक फलोके दानसे उद्धार करतेहो इससे

तुम्हारे लिये क्या कहा जाय व हे भूधर ! और भी प्राणी बहुत भांति से तुम्हारे आश्रित होकर ॥ ८६ । ८७ ॥ प्रसन्न होतेहुये वर्त्तमान होते हैं जैसे कि गृहस्थ के आश्रित होकर प्राणी स्थित होते हैं और जाडा, घाम, वर्षा व नानाप्रकार के दुःखोंको सहते हुये तुम ॥ ८८ ॥ प्राणियों का उपकार करते हो ऐसेही साधुजन होते हैं हे पर्वतोत्तम ! इस से हमलोगों से तुम्हारे लिये क्या कहा जाय ॥ ८९ ॥ कि जिसकी कन्दरा में आपही शिवजी बैठे हैं हे अर्जुनजी ! ऐसी यथार्थ वाक्य मेरे कहनेपर ॥ ९० ॥ हिमाचलकी स्त्री मेना दासियों समेत देखनेकी इच्छा से मेरे समीप आई कि जिसके पीछे कन्या आई ॥ ९१ ॥ व लज्जा से झुकेहुये सब अङ्गों

त्यभूधर ॥ ८७ ॥ मुदिताःप्रतिवर्त्तन्ते गृहस्थमिवप्राणिनः ॥ शीतमातपवर्षांश्च क्लेशान्नानाविधान्सहन् ॥ ८८ ॥ उपाकरोषिजन्तूनामेवंरूपाहिसाधवः ॥ किमतःप्रोच्यतेतुभ्यमस्माभिःश्रेष्ठभूधर ॥ ८९ ॥ कन्दरंयस्यचाध्यास्ते स्वयमेवमहेश्वरः ॥ इत्युक्तवतिवाक्यञ्च यथार्थंमयिफाल्गुन ॥ ९० ॥ हिमशैलस्यमहिषी मेनाचागाद्दिदृक्षया ॥ अनुयाताढुहित्राच तथासपरिचारिका ॥ ९१ ॥ लज्जाविनतसर्वाङ्गी प्रविवेशसदोमहत् ॥ ततोमांशैलमहिषी ववन्दे प्रणिपत्यसा ॥ ९२ ॥ वस्त्रैर्निगूढवदना पाणिपद्मकृताञ्जलिः ॥ तामहंसत्यरूपाभिराशीर्भिस्समवर्द्धयम् ॥ ९३ ॥ पतिव्रताशुभाचारा सुभगावीरसूश्शुभे ॥ सदावीरवतीचापिभववंशोन्नतिप्रभा ॥ ९४ ॥ ततोहंविस्मिताक्षींच हिमवद्गिरिपुत्रिकाम् ॥ मृदुवाण्याप्रत्यवोचमेहिबालेममान्तिके ॥ ९५ ॥ ततोदेवीजगन्माता बालभावंस्वकंमम ॥ दर्शयन्ती स्वपितरं कण्ठेगृह्याङ्कमाविशत् ॥ ९६ ॥ उवाचमातातांमन्दं मुनिंवन्दात्रपुत्रिके ॥ मुनेःप्रसादतोवश्यं पतिमाप्स्य

वाली मेनाने बडेभारी मन्दिरमें प्रवेश किया तदनन्तर उस पर्वतकी स्त्री ने गिरकर मेरा प्रणाम किया ॥ ९२ ॥ जो कि वसनों से मुखको छिपाये व करकमलों को जोडेथी उसको मैंने सत्यरूपी आशीर्वादों से बढ़ाया ॥ ९३ ॥ कि हे शुभे ! पतिव्रता व शुभ आचरणोंवाली व सौभाग्यवती और वीर पुत्र पैदा करनेवाली व सदैव वीरवती और वंशकी उन्नति से शोभित होवो ॥ ९४ ॥ तदनन्तर विस्मित लोचनों वाली हिमाचलकी कन्या से मैंने कोमलवाणी करके कहा कि हे बाले ! मेरे समीप आइये ॥ ९५ ॥ तदनन्तर संसारकी माता पार्वती देवी अपनी शिशुता मुझको दिखलाती हुई पिताका कण्ठ पकडकर गोदमें बैठगई ॥ ९६ ॥ उनसे माता ने धीरे

से कहा कि हे कन्ये ! आज मुनि को प्रणाम कीजिये क्योंकि मुनिकी प्रसन्नतासे चाहेहुये पति को अवश्य पावोगी ॥ ९७ ॥ इस प्रकार कहीहुई वसन के अंचल से
छिपेहुये मुखवाली उस कन्या ने कुछ हुंकार पूर्वक कांपकर कुछ न कहा ॥ ९८ ॥ तदनन्तर उपचार के जानने वालों में श्रेष्ठ व विस्मित चित्तवाला मैं फिर देवी से
बोला कि हे शुभे ! आइये ! तुमको मनोहर रत्नोंका खिलौना दूंगा जिसको कि मैंने बहुत दिनों से धराहै उससमय ऐसा कहीहुई वह पिताकी गोदसे बडे वेगपूर्वक
उठकर ॥ ९९ ॥ १०० ॥ मेरे चरणोंका प्रणाम करतीभई और संसारकेपूजनीय उसकोमानतेहुये मैंने उसको अपनी गोदमें लिया व उससे यह कहा कि हे बाले ! तुम्हारे

सिसम्मतम् ॥ ९७ ॥ इत्युक्तासाततोबाला वस्त्रान्तपिहितानना ॥ किञ्चित्सुहुंकृतोत्कम्पं प्रोच्यनोवाचकिञ्चन ॥
९८ ॥ ततोविस्मितचित्तोहमुपचारविदांवरः ॥ प्रत्यवोचंपुनर्देवीमेहिदास्यामितेशुभे ॥ ९९ ॥ रत्नक्रीडनकंरम्यं स्था
पितंसुचिरम्मया ॥ इत्युक्तासातदोत्थाय पितुरङ्कात्सुवेगतः ॥ १०० ॥ वन्दमानाचमेपादौ मयानीताङ्कमात्मनः ॥
मन्यतातांजगत्पूज्यामुक्तंवालेतवोचितम् ॥ १ ॥ नतत्पश्यामियत्तुभ्यं दद्म्याशीःकातवोचिता ॥ इत्युक्तेमातृवात्स
ल्याच्छैलेन्द्रमहिषीतदा ॥ २ ॥ नोदयामासमांमन्दं ममाशिःशङ्कितातदा ॥ भगवन्वेत्सिसर्वंत्वमतीतानागतंप्र
भो ॥ ३ ॥ तदहंज्ञातुमिच्छामि कीदृशोस्याःपतिर्भवेत् ॥ श्रुत्वेतिसस्मितमुखः प्रावोचंनर्मवल्लभः ॥ ४ ॥ नजातोऽ
स्याःपतिर्भद्रे वर्त्ततेचकुलक्षणः ॥ नग्नोतिनिर्द्धनःक्रोधीवृतःक्रूरैश्चसर्वतः ॥ ५ ॥ श्रुत्वेतिसंभ्रमाविष्टो ध्वस्तवीर्योहि
माचलः ॥ मान्तदाप्रत्युवाचेदं साश्रुकण्ठोमहागिरिः ॥ ६ ॥ अहोविचित्रस्संसारो दुर्वेद्योमहतामपि ॥ सुवारस्त्वपिश्र

योग्य ॥ १ ॥ उस आशीर्वादको नहीं देखतीहू जोकि तुम्हारे लिये देऊं और तुम्हारेयोग्य कौन आशीर्वाद है ऐसा कहने पर उस समय मातृ वत्सलता से पर्वतराज की
स्त्रीने ॥ २ ॥ मेरे आशीर्वादसे शंकितहोकर उससमय मुझको धीरेसे प्रेरणाकिया कि हे भगवन्, प्रभो ! तुम भूत भविष्य सब जानतेहो ॥ ३ ॥ इसलिये मैं यह जाननेकी
इच्छा करती हू कि इसका पति कैसाहोगा यह सुनकर मुसक्यान संयुत मुखवाले व हास्य प्रिय मैंने कहा ॥ ४ ॥ कि हे कल्याण कारिणी ! इसका पति पैदानहीं हुआ
है और कुलक्षणी विद्यमान है जोकि नग्न, बड़ा निर्धनी, क्रोधी और सब ओर से दुष्टजनों से घिराहै ॥ ५ ॥ यह सुनकर भ्रमसे संयुत व नष्ट बलवाले हिमाचलहुये

और उस समय आंसुवों समेत कण्ठवाले महाचल ने मुझसे यह कहा ॥ ६ ॥ कि अहो विचित्र संसार महात्माओं से भी दुःख करके जानने योग्यहै और शक्तिसे अ-च्छीभांति स्वीकार किया हुआ भी जो नीचोंमें दया नहीं करता है ॥ ७ ॥ निश्चयकर बडी यत्न व अनेकभातिके पुण्यों से भी मनुष्य अपने लिये बडी दुर्लभ मनुष्यता सिद्ध करता है ॥ ८ ॥ और वह विनाशी शरीर किसीप्रकार अविनाशित्वमें कल्पित कियाजाताहै व उस मनुजता में भी तुल्य नियम करनेवाली, उत्तम आच-रणवती व बडे कुलमें उत्पन्न स्त्री प्रसिद्धि में दुर्लभहै जोकि पतिव्रताहोवै व उसमे भी उस स्त्रीसे धर्मका विचार दुर्लभ है ॥ ९ । १० ॥ जो धर्म कि वेदों समेत पु-

क्त्यायोवेरषुनक्रपायते ॥ ७ ॥ यत्नेनमहतातावत्पुण्यैर्बहुविधैरपि ॥ साधयत्यात्मनोलोको मानुष्यमतिदुर्लभम् ॥ ८ ॥ अध्रुवन्तद्ध्रुवत्वेच कथञ्चित्परिकल्प्यते ॥ तत्रापिदुर्ल्लभानामसमानव्रतचारिणी ॥ ९ ॥ साध्वीमहाकुलोत्पन्ना भार्य्यायास्यात्पतिव्रता ॥ तत्रापिदुर्ल्लभंचैतत्तयाधर्म्मविचारणम् ॥ १० ॥ सहवेदैःपुराणोक्तं जगत्त्रयहितार्थदम् ॥ एतत्सुदुर्ल्लभंयच्च तस्यायदिप्रजायते ॥ ११ ॥ तदापत्यमपत्यार्थसंयुक्तंकिलनारद ॥ एतेषांदुर्लभानांहि किञ्चित्प्राप्नोतिपुण्यवान् ॥ १२ ॥ सर्वमेतदवाप्नोति एकोपियदिवानवा ॥कश्चित्केनापितन्मूलं संसारःकुरुतेनरम् ॥ १३ ॥ वासंसारस्यकोदोषः स्वकृतंयत्रभुज्यते ॥ गार्हस्थ्यञ्चप्रशंसन्तिवेदास्सर्वेपिनारद ॥ १४ ॥ नेतिकेचित्तत्रपुनः कथन्तेयदिनोगृही ॥ अतोधात्राचशास्त्रेषु सुतलाभःप्रशंसितः ॥ १५ ॥ पुनश्चसृष्टिवृद्ध्यर्थं नरकात्त्रायणायच॥ तत्रस्त्रीणांसमुत्पत्तिं

राणोंमें कहाहुआ व त्रिलोकके लिये हित वस्तुका दायकहै और यह जो बडा दुर्लभहै यदि उसके उत्पन्नहोवै ॥ ११ ॥ तो हे नारद जी ! सन्तान रूप अर्थ से संयुत पुत्र या कन्याहोना दुर्लभहै यह प्रसिद्ध है इन दुर्लभोंके बीचमें कुछ वस्तुको पुण्यवान् पुरुषपाता है ॥ १२ ॥ व इस सब वस्तुको एकभी पुरुष पाताहै और नहीं पाता है व संसार किसी कारणसे किसी पुरुषको उसकी मूल करताहै ॥ १३ ॥ अथवा संसारका क्या दोषहै कि जिसमें अपना कियाहुआ कर्म भोगाजाता है हे नारद ! सब भी वेद गृहस्थाश्रम की प्रशंसा करते हैं ॥ १४ ॥ और कोई नहीं फिर उस विषयमें यहहै कि यदि गृहस्थ न होवै तो वे कैसे होवैं इसलिये ब्रह्माने फिर सृष्टि बढ़नेके

लिये व नरकसे रक्षाके निमित्त शास्त्रोंमें पुत्र लाभकी प्रशंसा किया है व उस विषय में स्त्रियोंकी उत्पत्ति के विना सृष्टि नहीं होती है ॥ १५ । १६ ॥ और वह जाति
स्वभावही से विचारी व दीनता युक्त होतीहै उनके ऊपर अपमान न होवै इस कारण से ब्रह्माने ॥ १७ ॥ शास्त्रोंमें बड़े फलवाला यह वचन निस्सन्देह कहाहै कि
दश पुत्रोंके समान कन्याहोती है और दश पुत्रोंको बढ़ाताहुआ ॥ १८ ॥ मनुष्य जिस फलको पाता है वह एक कन्यासे मिलने योग्य है इसलिये सदैव दुःख को
बढ़ानेवाली कन्या पिताके शोचने योग्य होतीहै ॥ १९ ॥ यदि वह सब वस्तुवो से पूर्ण व पति, पुत्र धनोसे संयुत होवै और तुमने इसके लिये जो कहा है वह वचन

**विनासृष्टिर्नजायते ॥ १६ ॥ साचजातिःप्रकृत्यैव कृपणादैन्यभागिनी ॥ तासामुपरिमावज्ञा भवेदितिचवेधसा ॥ १७ ॥
शास्त्रेषूक्तमसंदिग्धं वाक्यमेतन्महाफलम् ॥ दशपुत्रसमाकन्या दशपुत्रान्प्रवर्द्धयन् ॥ १८ ॥ यत्फलंलभतेमर्त्य
स्तल्लभ्यंकन्ययैकया ॥ तस्मात्कन्यापितुःशोच्या सदादुःखविवर्द्धनी ॥ १९ ॥ यदिस्यात्पूर्णसर्वार्था पतिपुत्रधना
न्विता ॥ त्वयोक्तंचकृतेह्यस्यास्तद्वाक्यंममशोकदम् ॥ २० ॥ केनदोषेणमेपुत्री नयोग्याचाशिषांमता ॥ नजातोऽस्याः
पतिःकस्माद्वर्ततेवाकुलक्षणः ॥ २१ ॥ निर्द्धनश्चमुनेकस्मात्सर्वेषांसर्वदःकुतः ॥ इतिदुर्घटवाक्यन्ते मनोमोहयतीवमे ॥
२२ ॥ इतितंपुत्रवात्सल्यात्सभार्यंशोकसम्प्लुतम् ॥ अहमाश्वासयंवाग्भिः सत्याभिःपाण्डुनन्दन ॥ २३ ॥ माशुचःशै
लराजत्वं हर्षस्थानेतिपुण्यभाक् ॥ शृणुत्वंवचनंमह्यं यन्मयोक्तंह्यनर्थवत ॥ २४ ॥ जगन्मातात्वियंबाला पुत्रीतेसर्व
सिद्धिदा ॥ पुराभवेभवद्भार्या सतीनाम्नाभवस्तया ॥ २५ ॥ तदस्याःकिमहंदद्मिरवेर्दीपमिवाल्पकम् ॥ सञ्चिन्त्येतिमहादे**

मुझको शोचदायकहै ॥ २० ॥ और मेरी कन्या किस दोषसे आशीर्वादोंके योग्य नहीं मानीगई है व किसलिये इसका पति नहीं पैदाहुआ है व किस कारण कुलक्षणी
है ॥ २१ ॥ और हे मुने ! किसलिये निर्धनी है व किससे सबोंको सब कुछ देनेवाला है यह तुम्हारी असम्भव वाक्यमेरे मनको मोहतीसी है ॥ २२ ॥ हे पाडु-
पुत्र ! इस प्रकार पुत्र प्रिय होनेके कारण स्त्री समेत शोचसे डूबेहुये उन हिमाचलको मैंने सत्य वचनों से समझाया ॥ २३ ॥ कि हे शैलराज ! बड़े पुण्यभागी तुम
हर्ष के स्थानमें मत शोचकरो व मेरा वचन सुनो जोकि मुझसे अनर्थ की नाईं कहागया है ॥ २४ ॥ संसार की माता व समस्त सिद्धियों की देनेवाली यह तुम्हारी

बाल कन्याहै जोकि पहले जन्ममें सतीनामक शिवजी की स्त्री हुई है ॥ २५ ॥ इसलिये मैं सूर्यको दीपककी नाईं इसे क्या अल्प आशीर्वाद देऊं यह विचारकर मैंने महादेवी को आशीर्वाद न दिया ॥ २६ ॥ और इसका पति नहीं पैदाहुआ है वह आज भी पिताकी नाईं विद्यमान है व भूत, भविष्य और वर्त्तमान को उत्पन्नकरने वाले वे महादेवजी उत्पन्न नहींहुये हैं ॥ २७ ॥ जोकि शरणागत के रक्षक व अविनाशी, शिक्षक, कल्याणकारक व परमेश्वर हैं २८ ॥ हे अचल ! जिसके चरण का सब वेद ध्यान करते हैं व सब वेदों से भी जो नहींपाये गयेहैं और ब्रह्मासे लगाकर संसार जिसका बालकके खेलकी नाईं विद्वान् कहतेहैं ॥ २९ ॥ और अशुभ शील

ल्या नाशिषंदत्तवानहम् ॥ २६ ॥ जातोनास्याःपतिश्चेति वर्त्ततेद्यपितेवसः ॥ नसजातोमहादेवो भूतभव्यभवोद्भवः ॥ २७ ॥ शरण्यःशाश्वतःशास्ता शङ्करःपरमेश्वरः ॥ २८ ॥ सर्वेवेदायत्पदमामनन्तिवेदैश्चसर्वैश्चनयोपिलब्धः ॥ ब्रह्मादिविश्वंननुयस्यशैल बालस्यचक्रीडनकंवदन्ति ॥ २९ ॥ सचामङ्गल्यशीलोपि मङ्गलायतनोहरः ॥ भविष्यतिपतिस्सोस्यास्तत्किमर्थंनुशोचसि ॥ ३० ॥ एवंश्रुत्वासभार्यस्सप्रमोदप्लुतमानसः ॥ प्रणम्यमामितिप्राह यद्येवंपुण्यवानहम् ॥ ३१ ॥ पुनःकिञ्चित्प्रवक्ष्यामि पुत्र्यामेदक्षिणःकरः ॥ उत्तानःकारणंकिञ्चिच्छ्रोतुमिच्छामिनारद ॥ ३२ ॥ इतिपृष्टोस्मिशैलेन प्रावोचंकारणन्तदा ॥ सर्वदैवकरोह्यस्यास्सर्वेषांप्राणिनाम्प्रति ॥ ३३ ॥ अभयस्यप्रदातासावुत्तानस्तुकरस्ततः ॥ एषाभार्याजगद्भर्तुर्वृषाङ्कस्यमहीधर ॥ ३४ ॥ जननीसर्वलोकस्य भाविनीभूतभाविनी ॥ तद्यथाभूतमेवैषा

वाले भी वे शिवजी कल्याण के स्थानहैं वही इसके पति होवैंगे तो किसलिये शोचते हो ॥ ३० ॥ ऐसा सुनकर स्त्री समेत वे हिमाचल आनन्द से डूबेहुये मनवाले होगये व मुझको प्रणामकर यह बोले कि यदि ऐसाहै तो मैं पुण्यवान् हूं ॥ ३१ ॥ हे नारदजी ! फिर कुछ कहताहूं कि मेरी कन्याका दाहिना हाथ उतान है उसका कुछ कारण सुना चाहताहूं ॥ ३२ ॥ पर्वतसे मैं इसप्रकार पूंछागया तब कारणकहा कि इसका हाथ सब प्राणियोंको सदैवही ॥ ३३ ॥ अभयको देनेवाला है इससे यह हाथ उतानहै हे भूधर ! समस्त संसार की माता व प्राणियों को पैदाकरनेवाली यह संसार के स्वामी शिवजी की स्त्री होगी इसलिये जैसा कि हुआ है वैसही शिवजी

के साथ संयोगको प्राप्तहोवै ॥ ३४ । ३५ ॥ हे पर्वतोत्तम ! तुमको विधिपूर्वक वैसाही करना चाहिये हे हिमाचल ! इस विवाह में देवताओं का बड़ाभारी कार्य है ॥ ३६ ॥ ऐसा कहकर उनसे पूंछकर जाकर उस वृत्तान्त को मैंने इन्द्रसे कहा कि मुझको जो कार्य हुआथा उसको मैंने किया ॥३७॥ परन्तु हे इन्द्रजी ! इस शेषकार्य में कामदेव पठाने योग्यहै हे अर्जुनजी ! ऐसा कहकर कलह प्यारी होनेके कारण मैं तारक के समीप गया व तारक से प्रकटतापूर्वक इस वृत्तान्तको भी कहा और उस समयमेरे वचनसे प्रेरणा कियेहुये उन हिमाचलने भी पार्वतीजीको ॥३८।३९॥ उससमय शिवजी की आराधना करने के लिये चुपके से आज्ञा दिया और उन

योगंयातिपिनाकिना ॥ ३५ ॥ त्वयाविधेयंविधिवत्तथाशैलेन्द्रसत्तम ॥ अस्त्यत्रसुमहत्कार्यं देवानांहिमभूधर ॥ ३६॥
इतिप्रोक्त्वातमापृच्छ्य प्रावोचंवासवायतत ॥ ममाभूद्यत्तुकर्त्तव्यं तन्मयाकृतमेवहि ॥ ३७ ॥ किन्तुपञ्चशरःप्रेर्यः
कार्यशेषेचवासव ॥ इत्यादिश्यगतश्चाहं तारकंप्रतिफाल्गुन ॥ ३८ ॥ कलिप्रियत्वात्तस्यैनं वृत्तमुक्तमपिस्फुटम् ॥
हिमाद्रिरपिमेवाक्यप्रेरितःपार्वतींतदा ॥ ३९ ॥ भवस्याराधनांकर्तुं सतूष्णीमादिशत्तदा ॥ सातंपरिचचारेशं तस्यहृ
ष्ट्वासुशीलताम् ॥ ४० ॥ पुण्यतोयफलाद्यानि नियुक्तापार्वतीव्यधात ॥ महेन्द्रोपिचतद्वाक्यात्स्मरंसस्मारभारत ॥
४१ ॥ सचतत्स्मरणंज्ञात्वा वसन्तरतिसंयुतः ॥ चूताङ्कुरस्तस्सहसा प्रादुरासीन्मनोभवः ॥ ४२ ॥ तमाहवासवोधी
मान् स्मयन्निववचःशनैः ॥ उपदेशेनबहुना किन्त्वांप्रतिरतिप्रिय ॥ ४३ ॥ चित्तेवससितेनत्वं वेत्सिभूतमनोगतम् ॥
तथापित्वांवदिष्यामि स्वकार्यपरतांस्मर ॥ ४४॥ मयैकंसुमहत्कार्यं कर्तुमर्हसिमन्मथ ॥ महेश्वरंभूतनाथं सतीभार्यावि

पार्वतीजी ने उनकी सुशीलताको देखकर उन शिवजी की सेवा किया ॥ ४० ॥ व आज्ञा दीहुई पार्वती जीने पवित्र जल व फलादिकों को लाती थीं हे भारत ! उन नारदजी के वचन से इन्द्रने भी कामदेव को स्मरण किया ॥ ४१ ॥ और वह कामदेव उनका स्मरण जानकर वसन्त व रति समेत अचानकही आम्र के अकुर (अखुवा) से प्रकट हुआ ॥ ४२ ॥ बुद्धिमान् इन्द्र ने मुसक्याते हुये से उस कामदेव से धीरेसे कहा कि हे रतिप्रिय ! तुमको बहुत सिखलाने से क्या है याने कुछ नहीं ॥ ४३ ॥ हे स्मर ! चित्तमें बसते हो उसी से प्राणियों के मन में प्राप्त वस्तु को जानते हो तिसपर भी तुम से अपने कार्यकी आवश्यकताको कहूंगा ॥४४॥

हे कामदेव ! तुम मेरा एक बडा भारी कार्य करने के योग्य हो कि सती स्त्रीसे वियोगी भूतनाथ महादेवजी को ॥ ४५ ॥ युक्त कीजिये क्योंकि हिमाचल के घर मे पैदाहुई अविनाशी पार्वती देवी फिर युक्त करने योग्य हैं और प्रसन्न होतेहुये शिवदेवजी तुम्हारे बड़े मनोरथको करैंगे ॥ ४६ ॥ कामदेव बोला कि हे देवेन्द्र ! यह सत्य है परन्तु वे शिव देवजी तपस्या में स्नेह किये हैं और मनुजी ने कहा है कि तेज क्लेश देने योग्य नही है ॥ ४७ ॥ और ब्राह्मण लोग वेदान्तों में बार २ मेरी निन्दा करते हैं कि बहुत भोजन करनेवाला व बड़ा पापी यह कामदेव बड़ी भारी अग्नि है ॥ ४८ ॥ व नित्यही शत्रु इस कामदेवसे ज्ञानियों का ज्ञान आच्छा-

योजितम् ॥ ४५ ॥ संयोजयपुनर्योज्या हिमाद्रिगृहजाव्यया ॥ देवीदेवश्चतुष्टस्ते करिष्यतिमहेप्सितम् ॥ ४६ ॥ नारदउवाच ॥ अलीकमेतद्देवेन्द्र सहिदेवस्तपोरतिः ॥ नात्यासादयितव्यानितेजांसिमनुरब्रवीत् ॥ ४७ ॥ वेदान्तेषुचमांविप्रा गर्हयन्तिपुनःपुनः ॥ महाशनोमहापाप्मा कामोयमनलोमहान् ॥ ४८ ॥ आवृतंज्ञानमेतेन ज्ञानिनांनित्यवैरिणा ॥ तस्मादयंसदात्याज्यः कामोहिरिवसत्तमैः ॥ ४९ ॥ एवंशीलस्यमेकस्मात्प्रतुष्यतिमहेश्वरः ॥ मद्यपस्येवपापस्य वासुदेवोजगद्गुरुः ॥ ५० ॥ इन्द्रउवाच ॥ मैवंब्रूहिमहाभागत्वंविनाकःपुमान्भुवि ॥ धर्म्ममर्थन्तथाकामं मोक्षंवा प्राप्तुमीश्वरः ॥ ५१ ॥ यत्किञ्चित्साध्यतेलोकैर्मूलंतस्यचकामना ॥ कामनांहिविनासाध्यं यदिकिञ्चिद्ब्रवीतुमे ॥ ५२ ॥ मोक्षोमयासाधनीयश्चित्तेनस्मरकामिना ॥ कथंकामंविनिन्दन्ति तस्मात्तेमोक्षसाधकाः ॥ ५३ ॥ सत्यञ्चापिश्रुतेर्वा

दित होता है इस लिये श्रेष्ठ पुरुषों से यह कामदेव सदैव त्यागने योग्य है ॥ ४९ ॥ इस स्वभाववाले मुझ पर कैसे शिवजी प्रसन्न होवैंगे जैसे कि मदिरा पीनेवाले पापी के ऊपर संसार के गुरु विष्णु जी नहीं प्रसन्न होते हैं ॥ ५० ॥ इन्द्रजी बोले कि हे महाभाग ! ऐसा मत कहिये पृथ्वी मे तुम्हारे विना कौन पुरुष धर्म,अर्थ, काम व मोक्ष को पानेके लिये समर्थ है ॥ ५१ ॥ मनुष्यों से जो कुछ साधन कियाजाता है उसकी जड़ कामना है यदि कामना के विना कुछ साधन करने योग्य हो तो मुझसे कहिये ॥ ५२ ॥ हे कामदेव ! मुझसे कामी चित्त करके मोक्ष साधने योग्य है इस लिये मोक्ष साधन करनेवाले काम को वे मोक्ष साधन करनेवाले कैसे

निन्दा करते हैं ॥ ५३ ॥ हे कामदेव ! वेदका भी वचन सत्य है कि तुम्हारा रूप तीन प्रकारका मानागयाहै तामस, राजस व सात्त्विक भी है ॥ ५४ ॥ कामनाके अयोग से
तुम्हारा वह रूप तामस है और सुखकी बढ़ती से इच्छा में तुम्हारा वह राजसरूप है ॥ ५५ ॥ व जितने अर्थ के लिये जो काम है वह तुम्हारा सात्त्विकरूपहै इसलिये
तुम्हारे इनतीनों रूपोंको जो न उपासना करताहो उसको कहिये ॥५६॥ तुम साक्षात् (प्रत्यक्ष)परमपूज्यहो हम लोगोंका यह कार्यकरो अथवा दुःखित देखकर साधारण
पुरुषों को भी पण्डित अपने प्राणों से भी पालतेहैं यह बडा भारी उत्तम फलहै ऐसा विचारकर तुम प्रकटही मेरा कार्य सब प्रकारसे कीजिये ॥ ५७। ५८ ॥ यह सुनकर

**त्रयं तवरूपंत्रिधामतम् ॥ तामसंराजसंचैव सात्त्विकंचापिमन्मथ ॥ ५४ ॥ अयुक्तितःकामनया रूपंतत्तामसन्तव ॥
सुखवृद्ध्यास्पृहायाञ्च रूपंतद्राजसन्तव ॥ ५५ ॥ केवलंयावदर्थार्थं तद्रूपंसात्त्विकन्तव ॥ तत्तेरूपत्रयमिदं ब्रूहिनोपास
तेहियः ॥ ५६ ॥ त्वंसाक्षात्परमःपूज्यः कुरुकार्यमिदंहिनः ॥ अथवापीडितान्दृष्ट्वा सामान्यानपिपण्डिताः ॥ ५७ ॥ स्व
प्राणैरपित्रायन्ति परमेतन्महत्फलम् ॥ इतिसंचिन्त्यत्वंकार्यं सर्वथाकुरुनःस्फुटम् ॥ ५८ ॥ इत्याकर्ण्यतथेत्युक्त्वा व
सन्तरतिसंयुतः ॥ पिकादिसैन्यसम्पन्नो हिमाद्रिंप्रययौस्मरः ॥ ५९ ॥ तत्रापश्यत्स्मरःशम्भोः पुण्यमाश्रममण्डल
म् ॥ नानावृक्षसमाकीर्णं शान्तसत्त्वसमाकुलम् ॥ ६० ॥ तत्रापश्यत्त्रिनेत्रस्य वीरकन्नामद्वारपम् ॥ यथासाक्षान्महे
शानं गणांश्चायुतशस्सच ॥ ६१ ॥ ददर्शचमहेशानं नासाग्रकृतलोचनम् ॥ देवदारुद्रुमच्छायावेदिकामध्यमाश्रि
तम् ॥६२॥ समकायंसुखासीनंसमाधिस्थंमहेश्वरम् ॥ निस्तरङ्गंविनिर्गृह्यस्थितमिन्द्रियगोचरान् ॥६३॥ आत्मानमात्म**

बहुत अच्छा ऐसा कहकर वसन्त व रति समेत तथा कोकिलादिक सेनासे संयुत कामदेव हिमाचल पै गया ॥ ५९ ॥ वहां कामदेव ने अनेक वृक्षों से व्याप्त व
शान्त प्राणियों से भरेहुये पुण्यदायक शिवजी के आश्रममण्डल को देखा ॥ ६० ॥ और उसने वहां त्रिलोचनजीके वीरक नामक द्वारपाल व हजारों गणों को वैसेही
देखा जैसे कि साक्षात् शिवजी होवैं ॥ ६१ ॥ और नासिका के अग्रभाग में किये हुये लोचनोंवाले शिवजी को देखा जो कि देवदारु वृक्षकी छायामें वेदिका के बीच
बैठे हुये थे ॥ ६२ ॥ व जो महादेव कि सीधे शरीरसे सुखपूर्वक बैठेहुये व समाधि में टिके तथा इन्द्रियों के विषयों को रोंककर अचल बैठे थे ॥ ६३ ॥ व चित्त से

परमात्मा में पैठेहुये व तपस्या के निधान थे उस प्रकारके उन शिवदेव को देखकर वह कामदेव भीतर भेदकरने के लिये यत्नवान् हुआ ॥ ६४ ॥ व भँवरही के बहाने से कामदेवने मनमें प्रवेश किया इसी अवसर में खुलेनयनोंवाले शिवदेवजीने ॥६५॥-अनुरागी मनवाले होकर पर्वतराज की कन्या का स्मरण किया और वीरक से बतलाई हुई महाभाग्यवती उन पार्वतीजी ने उसी प्रकार उस समय में प्रवेश किया जिस भांति कि सदैव समीप आतीथी तदनन्तर इन शिवदेवजी ने उस के मनको अनुरागी देखकर ॥ ६६ । ६७ ॥ व लीलापूर्वक पकड़कर अपने पीछे देखा तब तक धनुप को खींचे हुये रति के प्यारे कामदेव को देखा ॥ ६८ ॥ तदनन्तर

नादेवं प्रविष्टंतपसान्निधिम् ॥ तन्तथाविधमालोक्य सोन्तर्भेदाययत्नवान् ॥ ६४ ॥ भ्रमस्यैवेतिव्याजेन विवेशमदनोमनः ॥ एतस्मिन्नन्तरेदेवो विकासितविलोचनः ॥ ६५ ॥ सस्मारनगराजस्य तनयांरक्तमानसः ॥ निवेदितावीरकेण विवेशचगिरेस्सुता ॥ ६६ ॥ तस्मिन्कालेमहाभागा सदायद्वदुपैतिसा ॥ ततस्तस्यामनश्चायमनुरक्तमवेक्ष्यच ॥ ६७ निगृह्यलीलयादेवः स्वकंपृष्ठमवैक्षत ॥ तावदाकृष्टधनुषमपश्यतरतिप्रियम् ॥ ६८ ॥ ततश्चलज्जयादेवो नानास्थानेषुसोगमत् ॥ ६९ ॥ तावत्पश्यतिपृष्ठस्थमाकर्णधनुषंस्मरम् ॥ सनदीपर्वतांश्चैव आश्रमान्सरसीस्तथा ॥ ७० ॥ परिभ्रमन्महादेवः पृष्ठस्थंतमवैक्षत ॥ जगत्त्रयंपरिभ्रम्य पुनरागात्स्वमाश्रमम् ॥ ७१ ॥ पृष्ठस्थमेवतंवीक्ष्य निःश्वासंमुमुचेहरः ॥ ततस्तृतीयनेत्रोत्थवह्निनानाकवासिनः ॥ ७२ ॥ ज्वलतागमितःकामो भस्मत्वंपाण्डुनन्दन ॥ सतुतंभस्मसात्कृत्वाहरनेत्रोद्भवोनलः ॥ ७३ ॥ व्यजृम्भतजगद्दग्धुं ज्वालापूरितदिङ्मुखः ॥ ततोभवोजगद्धेतोर्व्यभजज्जातवेद

वे शिवदेव जी लज्जासे अनेक भांति के स्थानोंमें गये ॥ ६९ ॥ तबतक पीठ में प्राप्त व कानतक धनुपको खींचेहुये कामदेव को देखतेभये व नदी, पर्वत, आश्रम व तड़ागो में घूमते हुये उन शिवदेव जी ने पीठमें प्राप्त उस कामदेवको देखा व तीनोंलोकमें घूमकर फिर अपने आश्रम-को आये ॥ ७० । ७१ ॥ व पीठमें टिके ही हुये उस कामदेव को देखकर शिवजी ने श्वासको छोड़ा तदनन्तर हे पाण्डुपुत्र ! तीसरे नेत्रसे उठी व जलतीहुई अग्निसे कामदेव भस्मताको प्राप्तहोगया और शिवजी के नेत्रसे उपजीहुई वह अग्नि उस कामदेव को भस्मकर ॥ ७२ । ७३ ॥ संसारको जलाने के लिये बढ़ी कि जिसकी ज्वालाओं से दिशाओं के मुख पूर्णहो-

गये तदनन्तर शिवदेवजी ने संसारके लिये अग्निका विभाग किया ॥ ७४ ॥ व अहंकार समेत मनुष्य, चन्द्रमा, पुष्प व गीत व भ्रमर तथा कोकिलाओंके सुखों और विहारों में कामाग्नि को स्थापित किया ॥ ७५ ॥ दुःखसे ओषधि करने योग्य व क्लेशदायक वह अग्नि उन वस्तुवों की प्राप्ति में कामियों के स्नेहसंयुत हृदयको निरन्तर जलाती है ॥ ७६ ॥ महादेवकी ज्वालाओंसे भस्म कियेहुये कामदेवको देखकर प्रियसे वियोगिनी रतिने उदास होकर विलापकिया ॥७७॥ व बहुत विलाप करती हुई रति चैत्रमास से समझाई गई व रतिका विलाप सुनकर देवदेव शिवजी ॥ ७८ ॥ कामकी स्त्रीको देखकर बड़ी कृपासे बोले कि हे कल्याणकारिणी ! बिन

सम् ॥ ७४ ॥ साहङ्कारेजनेचन्द्रेसुमनस्यथगीतके ॥ भृङ्गेषुकोकिलास्येषुविहारेषुस्मरानलम् ॥ ७५ ॥ तत्प्राप्तौस्नेहसंयुतं कामिनांहृदयंकिल ॥ ज्वालयत्यनिशंसोग्निर्दुश्चिकित्स्योऽसुखावहः ॥ ७६ ॥ विलोक्यहरनिश्वासज्वालाभस्मीकृतंस्मरम् ॥ विललापरतिर्दीना विधुराबन्धुनासह ॥ ७७ ॥ विलपन्तीसुबहुशो मधुनापरिसान्त्विता ॥ रत्याःप्रलापमाकर्ण्य देवदेवोवृषध्वजः ॥ ७८ ॥ कृपयापरयाप्राहकामपत्नींनिरीक्ष्यच ॥ अमूर्तोपिहयंभद्रे कार्यंसर्वंकरिष्यति ॥ ७९ ॥ रतिकालेध्रुवंबाले करिष्यतिनसंशयः ॥ यदाविष्णुश्चभविता वासुदेवात्मकोविभुः ॥ ८० ॥ तदातस्यसुतोयंस्यात्सपतिस्तेभविष्यति ॥ ८१ ॥ साप्रणम्यततोरुद्रमितिप्रोक्तारतिस्ततः ॥ जगामस्वेच्छयागत्या वसन्तादिभिरन्विता ॥ १८२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेकामदेवभस्मवर्णनंनामैकोनविंशोऽध्यायः १९ ॥

अर्जुनउवाच ॥ देवर्षेवर्णितंचेदंकथापीयूषमादरात ॥ पुनरेवमुनेब्रूहियद्देवित्तिमहेश्वरः ॥ १ ॥ कथमापसतींभा

शरीरवाला भी यह सब कार्य करैगा ॥ ७९ ॥ व हे बाले ! रतिके समय में निश्चय कर समस्त काम करैगा इसमे सन्देह नही है और जब वसुदेवके पुत्र विष्णुजीहोवैंगे ॥ ८० ॥ तब यह उनका पुत्र होवैहै वही तुम्हारा पति होवैगा ॥ ८१ ॥ तदनन्तर ऐसा कहीहुई वह रति शिवजीको प्रणामकर उसके उपरान्त वसंतादिकों समेत अपनी चाहीहुई गतिसे चलीगई ॥ १८२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांकामदेवभस्मवर्णनंनामैकोनविंशोऽध्यायः १९ ॥

दो० । महादेव पति होन हित पारवती तपकीन । सोइ बीस अध्यायमें वर्णित कथा नवीन ॥ अर्जुन बोले कि हे नारदजी ! यह कथामृत तुमसे वर्णनकियाजाता

हे बाले ! शरीरको छोड़नेकी इच्छावाली तुम नहीं समझतीहो ॥ ५७ ॥ जिसलिये कि मनुष्यों में कामदेव वाम (कठिन) होताहै इससे सबोंके चाहने योग्यहो और
किसलिये शरीरको दुःखित करतीहो ॥ ५८ ॥ व तुमने शिवजी को नहीं जानाहै जोकि नग्न, त्रिशूलधारी, प्रेत गणोसे घिरे व श्मशान में रहनेवाले और भस्मको
लगाये व बैल जिनकी सवारी है ॥ ५९ ॥ और हाथीके चर्मको धारे व सांपों से शोभित अंगवाले और जटाओंको धारे व विरूपनयन और निर्गुण हैं वे कैसे तुम्हारे
योग्य हैं ॥ ६० ॥ कुल व शीलवती स्त्री के वरोंके जो गुण विद्वानों से कहेगये हैं उन में एकभी शिवजी के नहीं है इससे वे शिवजी तुम्हारे योग्य नही हैं ॥ ६१ ॥

तः ॥ स्पृहणीयासिसर्वेषां कथंपीडयसेवपुः ॥ ५८ ॥ अविज्ञातस्त्वयानग्नःशूलीप्रेतगणावृतः ॥ श्मशाननिलयोभस्मो
द्धूलनोवृषवाहनः ॥ ५९ ॥ गजाजिनीद्विजिह्वेभ्योलंकृताङ्गोजटाधरः ॥ विरूपाक्षःकथङ्कारं निर्गुणःस्यात्तवोचितः ॥
६० ॥ गुणायेकुलशीलाया वराणामुदितावुधैः ॥ तेषामेकोपिनैवास्ति नास्तितन्नोचितस्सते ॥ ६१ ॥ शोचनीयतमापू
र्वमासीत्पार्वतिकौमुदी ॥ तमोवृताद्वितीयासित्वन्तुतत्सङ्गमाशया ॥ ६२ ॥ तपोधनास्सर्वसमा वयंयद्यपिपार्वति ॥ दु
नोत्येवतवारम्भः शूलिनोयदसत्क्रियाः ॥ ६३ ॥ वृषभारोहणंवासः श्मशानेपाणिसंग्रहः ॥ सव्यालपाणिनाक्षौम
गजत्वग्बन्धनःकथम् ॥ ६४ ॥ जनहास्यकरंसर्वं त्वयारब्धमसाम्प्रतम् ॥ स्त्रीस्वभावाद्भूतपतिः कथंचाभिमतस्तव ॥
६५ ॥ निवर्त्तयमनस्तस्मादस्मात्सर्वविरोधिनः ॥ मृगाक्षिमदनारातेर्मर्कटाक्षस्यपर्यये ॥ ६६ ॥ विरुद्धवादिनंचैवं ब्रह्म

हे पार्वती जी ! पहले अन्धकार से घिरीहुई उजियाली बहुत शोचने योग्य थी और उसके संयोगकी आशासे दूसरी तुमहो ॥ ६२ ॥ हे पार्वती जी ! तपस्यारूप
धनवाले हमलोग तपस्वी यद्यपि सबोंमे समान होतेहैं तथापि तुम्हारा प्रारम्भ दुःख देनाहै क्योंकि शिवजीके कर्म अशुभ हैं ॥ ६३ ॥ कि बैलकी सवारी व श्मशानमें
बास और जो रेशमी वसनकी नाईं हाथीके चर्मको बाधे हैं उनके सर्पसयुत हाथ से तुम्हारा पाणिग्रहण कैसे होगा ॥ ६४ ॥ तुमने स्त्री के स्वभावसे मनुष्यों के हा-
स्यकारक सब अयोग्यको प्रारम्भ कियाहै नहीं तो वे प्रेतपति तुमसे कैसे चाहेजाते ॥ ६५ ॥ इस लिये हे मृगनयनि ! सबोंके विरोधी इन शिवजीसे मनको लौटारिये

कामदेवके वैरी व मर्कटाक्ष शिवजी के विषयमें ॥ ६६ ॥ विरुद्ध कहनेवाले ब्रह्मचारी शिवजी को देखकर देवीने गद्गद समेत वचन कहा ॥ ६७ ॥ कि हे ब्राह्मण! शिवजी में विरोध बुद्धिवाले मतहोवो क्योंकि देव देव शिवजी की निन्दासे पुरुष बडे नरकमें प्राप्तहोता है ॥ ६८ ॥ तुम उन शिवजीका कर्म भलीभांति नहीं जानते हो हे ब्राह्मण! सुनिये कि जिस प्रकार तुम इस पापसे छूटोगे ॥ ६९ ॥ सबलोकों के वे शिवजी आदिभूत हैं इससे उनका वंश कौन जानता है व सब संसार जिन का रूपहै उसी से नग्न कहेजाते हैं ॥ ७० ॥ व ऐश्वर्य विभूति कहेगये हैं उनको धारण करते हैं इससे वे भूतिधारी हैं और वृष धर्म ऐसा कहागया है उसपै सवार

चारिणमीश्वरम् ॥ निशम्यकुपितादेवी प्राहवाचंसगद्गदम् ॥ ६७ ॥ मामाब्राह्मणभूयास्त्वं विरुद्धमतिरीश्वरे ॥ महतमोयातिपुमान् देवदेवस्यनिन्दया ॥ ६८ ॥ नसम्यगभिजानासि तस्यदेवस्यचेष्टितम् ॥ शृणुब्राह्मणपापात्त्वं यथास्मात्परिमुच्यसे ॥ ६९ ॥ आदिस्ससर्वजगतां कोस्यवेदान्वयन्ततः ॥ सर्वंजगद्यस्यरूपं दिग्वासाःकीर्त्यतेततः ॥ ७० ॥ भूतयःकथितोभूतिस्तांबिभर्त्तिसभूतिभृत ॥ वृषोधर्म्मइतिप्रोक्तस्तमारूढस्ततोवृषी ॥ ७१ ॥ सर्पाश्चदोषाःक्रोधाद्यास्तान्बिभर्त्तिजगन्मयः ॥ नानाविधान्कर्म्मयोगान् जटारूपान्बिभर्त्तिसः ॥ ७२ ॥ वेदत्रयीत्रिनेत्राणि निर्गुणं त्रिगुणंवपुः ॥ भस्मीकरोतियद्देवस्त्रिपुरारिस्ततस्मृतः ॥ ७३ ॥ एवंविधंमहादेवं विदुर्येसूक्ष्मदर्शिनः ॥ कथंकारंहितेनाम भजन्तेनैवतंहरम् ॥ ७४ ॥ अथबिभ्येतिसंसारात्सर्वोविप्रयतोजनः ॥ सर्वोविमृश्यकुरुते विमृश्यैतन्मयाकृतम् ॥ ७५ ॥ शुभंवाप्यशुभंवाशु त्वमप्येनंप्रपूजय ॥ एवंब्रुवंत्यांतस्यान्तु किञ्चित्प्रस्फुरिताधरम् ॥ ७६॥ विज्ञायतंसखीमाह

हैं इससे वृषी हैं ॥ ७१ ॥ और सर्प क्रोधादिक दोषहैं जगन्मय शिवजी उनको धारण किये हैं और वे शिवजी जटारूपी अनेक प्रकार के कर्मयोगो को धारण करते हैं ॥ ७२ ॥ व जो तीन नेत्रोंवाले सदाशिव जीहैं ये ऋग् यजुः व सामवेदको धारण करते हैं और उनका त्रिगुण शरीर निर्गुण है और जिसलिये त्रिलोकको भस्म करते हैं उसीकारण त्रिपुरारि कहेगये हैं ॥ ७३ ॥ जो सूक्ष्मदर्शी है वे इस प्रकार के महादेवजी को जानते हैं और वे कैसे उन शिवजी को नहीं भजते हैं ॥ ७४ ॥ हे विप्रजी! अथवा जिसलिये सब मनुष्य संसार (जन्म, मरण) से डरताहै व विचारकर करताहै उसीकारण मैंने विचारकर यह किया ॥ ७५ ॥ शुभहो या अशुभ

भी हो परन्तु तुमभी शीघ्रही इन शिवजी को पूजो ऐसा उन पार्वती जी के कहने पर कुछ चलते हुये ओंठोंवाले ॥ ७६ ॥ उस ब्राह्मण को जानकर पार्वतीजी सखी से बोलीं कि हे सखी यहकुछभी कहनेकी इच्छावाला ब्राह्मण मनाकिया जावै क्यों कि बडे दूषणों को कहनेवाला केवल पापभागी नहीं होताहै किन्तु सुननेवाला भी होता है इसमें सन्देह नहीं है अथवा ब्राह्मणोंके साथ विवादसे से मेरा क्या कार्यहै ॥ ७७।७८ ॥ कानोंको मूंदकर हमचली जावैंगी जो जैसा हो वह वैसाहोवै यह कहकर उठकर दोनोंकानोंको मूंदकर जब पार्वतीजी चलीं तब ॥ ७९ ॥ स्वरूपको प्राप्तहोकर सदाशिवजी ने वसन पकडलिया तदनन्तर उन सदाशिवजीको देखकर परमेश्वरी पार्वतीजी

किमप्येषविवक्षुकः ॥ वार्यतामालिविप्रोयं महदूदूषणभापकः ॥ ७७ ॥ नकेवलंपापभाजी श्रोतावैस्यान्नसंशयः ॥ अथवाकिञ्चनःकार्यं वादेनब्राह्मणैस्सह ॥ ७८ ॥ कर्णौपिधाययास्यामो यथायःस्यात्तथास्तुसः ॥ इत्युक्तोत्थायगच्छन्त्यां पिधायश्रवणावुभौ ॥ ७९ ॥ स्वरूपंसमुपाश्रित्यजग्रहेवसनंहरः ॥ ततोनिरीक्ष्यतन्देवं संभ्रान्तापरमेश्वरी ॥ ८० ॥ प्रणिपत्यमहेशानं तुष्टावावनताउमा ॥ प्राहतांश्चमहादेवो दासोस्मितवशोभने ॥ ८१ ॥ तपोद्रव्येणक्रीतश्च समादिश यथेप्सितः ॥ देव्युवाच ॥ मनसस्त्वंप्रभुःशम्भो दत्तंतच्चमयातव ॥ ८२ ॥ वपुषःपितरावेतौ सन्मानयितुमर्हसि ॥ श्रीमहादेवउवाच ॥ पित्राहितेप्रतिज्ञातं दृष्ट्वात्वांरूपशालिनीम् ॥ ८३ ॥ बालांस्वयंवरेपुत्रीमहंदास्यामिनान्यथा ॥ तत्तस्यसर्वमेवास्तु वचनंत्वंहिमाचलम् ॥ ८४ ॥ स्वयंवरार्थंसुश्रोणिप्रेरयत्वांवृणेततः ॥ इत्युक्त्वातांमहादेवः शुचिःशु

संभ्रम में प्राप्तहुई ॥ ८० ॥ व नीचेझुकीहुई पार्वतीजीने महादेवजीको प्रणामकर स्तुति किया और शिवजीने उन पार्वतीजीसे कहा कि हे शोभने ! मैं तुम्हारा दास हूं ॥ ८१ ॥ और तपस्यारूपी धन से मैं मोललेलिया गयाहूं जैसीइच्छा है वैसी आज्ञा दीजिये पार्वती देवीबोली कि हे शंभो ! तुम मनके प्रभुहो मैंने तुमको वह मन देदिया ॥ ८२ ॥ और शरीर के स्वामी ये माता पिता हैं उनका तुम सन्मान करने के लिये योग्यहो श्रीमहादेवजी बोले कि रूप से शोभित तुमको देखकर तुम्हारे पिताने यह प्रतिज्ञाकीहै ॥ ८३ ॥ कि मैं अपनी बालकन्याको स्वयंवर में दूंगाअन्यथा न दूंगा उनका वह सब वचन वैसाहीहोवै और हे सुमध्यमे !

तुम स्वयंवर के लिये पिताकी प्रेरणाकरो तदनन्तर मैं तुमको स्वीकार करूंगा उन पार्वतीजीसे ऐसा कहकर पवित्र व अन्तःकरणमें टिकनेवाले व्यापक महादेवजी ॥
८४ । ८५ ॥ उससमय प्रियदेशको चलेगये और वे पार्वतीजी अपने नगरको चली गईं उससमय पार्वतीदेवीको देखकर मेनासमेत हिमाचलजी प्रसन्नहुये ॥ ८६ ॥ और
लिपटाकर हिमालयजीने वृत्तान्तकोपूंछा व उस कन्याने देव देव शिवजीसे कहे हुये सबवृत्तान्त को निवेदनकिया तब उन हिमाचलने ॥ ८७ ॥ प्रसन्नहोकर सब
लोगोंको मैं स्वयंवर को कहलाया तब आश्विनी कुमार व बारहसूर्य, गरुड़, सर्प ॥ ८८ ॥ यक्ष, सिद्ध, साध्य, दैत्य, किंपुरुष, पर्वत और समुद्रादिक जोकोई थे

चिषदोविभुः ॥ ८५ ॥ जगामैवंतदादेशं स्वपुरंप्रययौचसा ॥ दृष्ट्वादेवींतदाहृष्टो मेनयासहितोचलः ॥ ८६ ॥ आलि
ङ्ग्याघ्रायपप्रच्छ सर्वंसाचन्यवेदयत् ॥ दुहितादेवदेवेन आज्ञप्तःसहिमाचलः ॥ ८७ ॥ स्वयंवरंप्रणुदितः सर्वलोकेष्वघो
षयत् ॥ आश्विनौद्वादशादित्या गन्धर्वगरुडोरगाः ॥ ८८ ॥ यक्षाःसिद्धास्तथासाध्या दैत्याःकिम्पुरुषानगाः ॥ समुद्रा
श्चयेकेचित् त्रैलोक्यप्रवराश्चये ॥ ८९ ॥ त्रयस्त्रिंशत्सहस्राणि त्रयस्त्रिंशच्छतानिच ॥ त्रयस्त्रिंशच्चयेदेवा स्त्रयस्त्रि
शच्चकोटयः ॥ ९० ॥ जग्मुर्गिरीन्द्रपुत्रास्तु स्वयंवरमनुत्तमम् ॥ आमंत्रितस्तदाविष्णुर्मेरुमाहहसन्निव ॥ ९१ ॥ माता
स्माकंहिसादेवी मेरोगत्वानमामिताम् ॥ अथशैलसुतादेवीहेममारुह्यशोभनम् ॥ ९२ ॥ विमानंसर्वतोभद्रं सर्वरत्नैरल
ङ्कृतम् ॥ अप्सरोभिःप्रणृत्यद्भिस्सर्वाभरणभूषिता ॥ ९३ ॥ गन्धर्वसङ्घैर्विविधैः किन्नरैश्चसुशोभनैः ॥ वन्दिभिस्तूयमाना
च दिव्यवस्त्रधरास्थिता ॥ ९४ ॥ सितातपत्रंरत्नैस्सुमिश्रितंचाप्यभूत्तदा ॥ शुशुभेपार्वतीतेन यथापूर्णेन्दुमण्डलम् ॥ ९५ ॥

और त्रिलोकमें जो श्रेष्ठ थे वे ॥ ८९ ॥ और तैंतिसहज़ार, तैंतीससौ, तैंतीस व तेंती सकरोड़ जो देवता थे ॥ ९० ॥ वे पर्वत राजहिमालयकी कन्या के स्वयंवर मे गये
व उससमय बुलायेहुये विष्णुजीने हँसतेहुये से सुमेरुगिरिसे कहा ॥ ९१ ॥ कि हे सुमेरु ! हमलोगोंकी वे पार्वतीदेवी माताहैं मैं जाकर उनको प्रणामकरूंगा इसके
अनन्तर नाचतीहुई अप्सराओं से घिरी पर्वतकी कन्या पार्वतीदेवी सब रत्नों से भूषित सोनेके उत्तम सर्वतोभद्र विमानपै चढ़कर प्राप्तहुई ॥ ९२ । ९३ ॥ जोकि अनेक
प्रकारके गंधर्व गणों व उत्तम किन्नरों तथा वन्दियों से स्तुति कीजाती थीं और दिव्य वसनोंको धारणकर स्थितहुईं ॥ ९४ ॥ उससमय रत्नों से मिलाहुआ स्वेत छत्र

होताभया उससे पार्वतीजी इसप्रकार शोभितहुई जैसे कि पूर्णचन्द्र मण्डलहोवे ॥ ९५ ॥ चामरोंको हाथमें लियेहुई दिव्य स्त्रियों से घिरीहुई वे पार्वतीदेवीजी कल्प-वृक्ष से उपजीहुई मालाको लेकर स्थितहुई ॥ ९६ ॥ इसप्रकार उनपार्वतीजीके स्थित होनेपर जबतीनोंलोक स्थित थे तब वृषभध्वज शिवभगवान् क्रीडा के लिये बालक होकर ॥ ९७ ॥ उनपार्वतीजीकी गोदीमें भलीभाति सोगये जाया ऐसाजोपद कहा गयाहै उसके सत्यअर्थ को प्रसिद्ध करने के लिये ईश्वर शिवजीने ऐसाकिया ॥ ९८ ॥ इसके अनन्तर उन पार्वतीजीकी गोदमें प्राप्त बालकको देखकर यहां यह कौनहै ऐसी भलीभांति सम्मति कर बहुत गर्वीले देवताओं ने बड़ा शब्द किया ॥ ९९ ॥

चामरासक्तहस्ताभिर्दिव्यस्त्रीभिश्चसंवृता ॥ मालांप्रगृह्यसातस्थौ सुरद्रुमसमुद्भवाम् ॥ ९६ ॥ एवंतस्यांस्थिता यान्तु स्थितेलोकत्रयेतदा ॥ शिशुर्भूत्वामहादेवः क्रीडार्थंवृषभध्वजः ॥ ९७ ॥ उत्सङ्गतलसंसुप्तो बभूवभगवान्भवः ॥ जायेतियत्पदंख्यातुं तस्यसत्यार्थमीश्वरः ॥ ९८ ॥ अथदृष्ट्वाशिशुन्देवास्तस्याउत्सङ्गवर्त्तिनम् ॥ कोयमत्रेतिसं मन्त्र्य चुक्रुशुर्भृशमुद्धताः ॥ ९९ ॥ वज्रमाहारयत्तस्य बाहुमुद्यम्यवृत्रहा ॥ सबाहुरुद्यतस्तस्य तथैवसमतिष्ठत ॥ १०० ॥ स्तम्भितःशिशुरूपेण देवदेवेनलीलया ॥ वज्रंक्षेप्तुन्नशक्नोति बाहुंचालयितुंतदा ॥ १ ॥ वह्निःशक्तिन्तदाक्षेप्तुं नाश कत्तत्रचास्थितः ॥ यमोपिदण्डंखड्गंच निर्ऋतिस्तंशिशुम्प्रति ॥ २ ॥ पाशञ्चवारुणोराजा ध्वजयष्टिंसमीरणः ॥ सोमो गदामिषुञ्चैव शूलमीशानएवच ॥ ३ ॥ स्तम्भितादेवदेवेनतथान्यभुवनेषुये ॥ पूषादन्तान्दशन्दन्तै र्बालमैक्षतमोहि

और वृत्रासुरके नाशक इन्द्रने भुजाको उठाकर बडे वज्रको चलाया व वज्रको उबाये हुये उनकी वह भुजा वैसीही रहगई ॥ १०० ॥ बालक रूपवाले देवदेव शिवजी से लीला करके रोंकीहुई वह भुजा उस समय वज्र फेंकने के लिये नही समर्थहुई ॥ १ ॥ और वही प्राप्त अग्निजी उस समय शक्तिको चलाने के लिये न समर्थहुये व यमराज ने भी दण्ड व निर्ऋति ने उस बालकके ऊपर चलाने के लिये तलवार लिया ॥ २ ॥ राजा वरुण ने फसरी व पवन ने ध्वजाका दण्ड और चन्द्रमा ने गदा व बाण और ईशान देवने शूलको लिया ॥ ३ ॥ ये और लोकोंमें और जो देवोंके अस्त्र थे वे रोंकेगये व दांतोसे दांतोको पीसते हुये मोहित होकर पूषा देवताने

बालक को देखा ॥ ४ ॥ और शिवजी से देखेहुये उसके भी दांत गिरपडे व भगदेवने नेत्रोंको कुटिल किया और वे फूटगये ॥५॥ स्वामी शिवजीने सबोंका बल, तेज व योग लेलिया इसके अनन्तर उन मनुष्य, दैत्य व देवताओं के भी इस प्रकार स्थित होनेपर ॥ ६ ॥ ब्रह्माने ध्यान में प्राप्तहोकर शिवजीका कर्मजाना व पवित्र होतेहुये उन ब्रह्माने शिवजी के समीप जाकर पुराण व सामवेद के गान व वेदोंवालेगुप्त नामोंसे स्तुति किया कि हे महादेव ! तुम्हारे लिये प्रणाम है व महादेवीके लिये बार २ नमस्कार है ॥ ७ । ८ ॥ तुम्हारी प्रसन्नता से ब्रह्मादिक यह संसार उत्पन्न होताहै व हे मूढ़ देवताओ ! तुम सब ऐसे शिवजी को नहीं जानतेहो ॥ ९ ॥

तः॥ ४ ॥ तस्यापिदशनाःपेतुर्दृष्टमात्रस्यशम्भुना॥ भगश्चनेत्रेविकृते चकारस्फुटितेचते ॥ ५ ॥ बलन्तेजश्चयोगश्च सर्वेषांजगृहेप्रभुः ॥ अथतेषुस्थितेष्वेवं मर्त्यासुरसुरेष्वपि ॥ ६ ॥ ब्रह्माध्यानमुपाश्रित्य बुबोधहरचेष्टितम् ॥ सोभिगम्य महादेवं तुष्टावप्रयतोविधिः॥७॥ पौराणैस्सामसङ्गीतैर्वैदिकैर्गुह्यनामभिः॥ नमस्तुभ्यंमहादेवमहादेव्यैनमोनमः॥ ८ ॥ प्रसादात्तवब्रह्मादि जगदेतत्प्रवर्त्तते ॥ मूढास्तुदेवतास्सर्वैनैवंबुध्यतशङ्करम् ॥ ९ ॥ महादेवमिहायातं सर्वदेवनमस्कृतम् ॥ गच्छध्वंशरणंशीघ्रं यदिजीवितुमिच्छथ ॥ १० ॥ततस्संभ्रमसम्पन्नास्तुष्टुवुःप्रणतास्सुराः ॥ नमोनमोमहादेव पाहिपाहिजगत्पते ॥ ११ ॥ दुराचारभवानस्मानात्मद्रोहपरायणान् ॥ अहोपश्यतनोमौढ्यं जानतस्तत्प्रभाविनीम् ॥ १२ ॥ भार्यामुमांमहादेवीं तथाप्यत्रसमागताः ॥ युक्तमेतद्यदस्माकं राज्यमादत्तमासुरैः ॥ १३ ॥ येषामेवंविधाबुद्धिः कृतमेभिश्चकिन्तव ॥ अथवानोनदोषोस्ति पशवोहिवयंयतः ॥ १४ ॥ त्वयैवपतिनासर्वे प्रेरिताःकुर्महेविभो

यदि जीनेकी इच्छा करतेहो तो समस्त देवताओं से नमस्कार किये व यहां आयेहुये महादेव की शरण में शीघ्रही जावो ॥ १० ॥ तदनन्तर संभ्रममें प्राप्त व प्रणाम कियेहुये देवताओं ने स्तुति किया कि हे महादेव ! आपके लिये बार २ प्रणामहै हे जगत्पते ! अपनेही बैरमें तत्पर व दुराचार की उत्पत्ति वाले हमलोगोंकी रक्षा कीजिये रक्षाकीजिये ॥ ११ ॥ अहो हमलोगों की मूर्खता देखिये कि स्तम्भ उत्पन्न करने वाली महादेवी पार्वती स्त्री को हमलोग जानतेथे तौ भी यहांआये यह योग्य है जोकि दैत्योंने हमारी राज्यको लेलिया ॥ १२ । १३ ॥ जिन हमलोगों की ऐसी बुद्धि है इन्होंने तुम्हारा क्या कार्य किया अथवा हमलोगों का दोष नहीं है क्योंकि हम

लोग पशुहैं ॥ १४ ॥ हे विभो ! तुम्हीं स्वामीसे प्रेरणा कियेहुये हमलोग सब करते हैं हे परमेश्वर ! सम्पूर्ण प्राणियों के तुम स्वामी व ईश्वरहो ॥ १५ ॥ और यन्त्रपै-
चढ़ेहुये सब संसारको तुम घुमातेहो कि जिन से घुमायेहुये मूर्ख हमलोग स्वयंवर में आये ॥ १६ ॥ उन तुम्हारे पशुपति के लिये नमस्कार है हमलोगों के ऊपर प्रस-
न्न हूजिये इसके अनन्तर देव देव त्रिलोचन जी उनके ऊपर प्रसन्न हुये ॥ १७ ॥ व ब्रह्माकी स्तुति से स्वामी शिवजी ने इन देवों को पहलेकी नाईं किया और वहां
क्रोधित होतेहुये तारकादिक दैत्योंने कहा ॥ १८ ॥ कि हे देवताओ ! ये महादेव कौन हैं हमलोग उनको नहीं मानते हैं तदनन्तर हँसकर इस बालक ने लीलासे

ईश्वरस्सर्वभूतानां पतिस्त्वंपरमेश्वर ॥ १५ ॥ भ्रामयस्यखिलंविश्वं यन्त्रारूढंसमायया ॥ येनविभ्रामितामूढाः
समायाताःस्वयंवरम् ॥ १६ ॥ तस्मैपशूनाम्पतये नमस्तुभ्यंप्रसीदनः ॥ अथतेषांप्रसन्नोभूद्देवदेवस्त्रियम्बकः ॥ १७ ॥
यथापूर्वञ्चकारैतान्संस्तवाद्ब्रह्मणःप्रभुः ॥ तारकप्रमुखादैत्याः संक्रुद्धास्तत्रप्रोचिरे ॥ १८ ॥ कोयमङ्गमहादेवो नम
न्यामोवयञ्चतम् ॥ ततःप्रहस्यबालोसौ हुङ्कारंलीलयाऽव्यधात् ॥ १९ ॥ हुङ्कारेणचतेदैत्याः स्वमेवनगरङ्गताः ॥ वि
स्मृतंसकलन्तेषां स्वयंवरमखञ्चतत् ॥ २० ॥ महादेवप्रभावेण दैत्यानांघोरकर्म्मणाम् ॥ एवंयस्यप्रभावोहि घोरदैत्ये
षुफाल्गुन ॥ २१ ॥ कथमीश्वरवाक्यार्थस्तस्मादन्यत्रचोच्यते ॥ असंशयंविमूढास्ते पश्चात्तापंपुरामहान् ॥ २२ ॥ ई
श्वरंभुवनस्यास्ययेभजन्तेनत्र्यम्बकम् ॥ ततस्संस्तूयमानःससुरैःपद्मभवादिभिः ॥ २३ ॥ वपुश्चकारदेवेशस्त्र्यम्बकः
परमाद्भुतम् ॥ तेजसातस्यदेवास्ते सेन्द्रचन्द्रदिवाकराः ॥ २४ ॥ सब्रह्मकाःससाध्याश्च वसुविश्वेचदेवताः ॥ सयमाश्च

हुँकार किया ॥ १९ ॥ व हुँकार से वे दैत्य अपनेही नगरको गये व घोर कर्मी उन दैत्यों को वह स्वयंवर यज्ञ सब महादेव जी के प्रभाव से भूलगई हे अर्जुनजी !
भयंकर दैत्यों में जिन शिवजी का ऐसा प्रतापहै ॥ २० । २१ ॥ उनसे अन्यत्र ईश्वर वचन का अर्थ कैसे कहाजाता है निस्सन्देह वे मूर्ख आगे बड़े पश्चात्ताप को
प्राप्तहोते हैं ॥ २२ ॥ जोकि इस संसार के स्वामी त्रिलोचन जी को नहीं भजते हैं तदनन्तर ब्रह्मादिक देवताओं से स्तुतिकिये जातेहुये उन ॥ २३ ॥ देवेश त्रिलोच-
न जीने बड़ा अद्भुत शरीर किया और उस शरीर के तेजसे चन्द्रमा, सूर्य व इन्द्र समेत वे देवता ॥ २४ ॥ व ब्रह्मादिक व साध्य सहित वसु और विश्वेदेवता तथा

यमराज सहित सुरोत्तमों ने बार २ नेत्रोंकी प्रार्थना किया ॥ २५ ॥ व पार्वती समेत उन अंबिका पति शिवजी ने उन देवोंके लिये अपने शरीर को देखनेकी शक्तिवा
ले बहुत उत्तम नेत्रोंको दिया ॥ २६ ॥ और शिवजी की प्रसन्नतासे अति उत्तम दिव्य नेत्रोंको पाकर उस समय ब्रह्मादिक देवताओं ने उन शिवजीको देखा ॥ २७ ॥
तदनन्तर मुनिलोग जप करनेलगे व आकाश चारियों ने फूलोंकी वृष्टि छोड़ा और उस समय देवताओंने बहुतही नगारा बजाया ॥२८॥ और मुख्य गन्धर्वों ने गाया
व अप्सराओंने नृत्यकिया व सब गणनायक प्रसन्नहुये तथा अम्बा पार्वती जी हर्षित हुईं ॥२९॥ व ब्रह्मादिक देवता भवानी पार्वती व हिमाचल को मानतेभये उस

सुरेन्द्राश्च चक्षुरप्रार्थयन्मुहुः ॥ २५ ॥ तेभ्यः परतमश्चक्षुः स्ववपुर्दृष्टिशक्तिमत ॥ ददावम्बापतिःशर्वो भवान्यासहित
स्मच ॥ २६ ॥ लब्ध्वारुद्रप्रसादेन दिव्यञ्चक्षुरनुत्तमम् ॥ सब्रह्मकास्तदादेवास्तमपश्यन्महेश्वरम् ॥ २७ ॥ ततोज
पेयुर्मुनयः पुष्पवृष्टिञ्चखेचराः ॥ मुमुचुश्चतदानेदुर्देवदुन्दुभयोभृशम् ॥ २८ ॥ जगुर्गन्धर्वमुख्याश्च ननृतुश्चाप्सरोग
णाः ॥ मुमुदुर्गणपास्सर्वे मुमोदाम्बाचपार्वती ॥ २९ ॥ ब्रह्माद्यामेनिरेऽपर्णां भवानींचगिरीश्वरम् ॥ तस्यदेवीततोहृष्टा
समक्षंत्रिदिवौकसाम् ॥ ३० ॥ पादयोःस्थापयामास मालांदिव्यांसुगन्धिनीम् ॥ साधुमाध्वितिसंप्रोच्य तयातत्रैव
चार्चितः ॥ ३१ ॥ सहदेव्यानमश्चक्रुः शिरोभिर्भूतिमाश्रितैः ॥ सर्वेसब्रह्मकादेवा जयेतिमुदिताजगुः ॥ ३२ ॥ इति
श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डे कुमारेशमाहात्म्ये विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥ ॥ * ॥ * ॥
नारदउवाच ॥ अथब्रह्मामहादेवमभिगम्यकृताञ्जलिः ॥ उद्वाहःक्रियतान्देव इत्युवाचमहेश्वरम् ॥ १ ॥ तस्यतद्व

के उपरान्त प्रसन्न होतीहुई पार्वती देवीने देवताओं के सामने उन शिवजी के चरणों में सुगन्धित उत्तम मालाको स्थापित किया और बहुत अच्छा २ ऐसा कहकर
वहीं उन पार्वतीदेवी से शिवजीपूजित हुये ॥ ३०।३१ ॥ और ब्रह्मादिक समस्त देवताओं ने विभूति लगायेहुये मस्तकोंसे पार्वती समेत शिवजीको प्रणाम किया व प्रस-
न्न होतेहुये जयहो ऐसा कहा ॥ ३२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेदेवीदयालु मिश्रविरचितायांभाषाटीकायांकुमारेशमाहात्म्येविंशोऽध्यायः ॥ २० ॥ ⊛ ॥
दो० । पारवती शिव देखकर जेहि विधिभयो विवाह । इकइसवें अध्याय में वर्णित सोइ उछाह ॥ इसके अनन्तर हाथजोड़े हुये ब्रह्माने महादेवके समीप जाकर व

शिवजी से यह कहा कि हे देव ! विवाह कीजिये ॥ १ ॥ उनके उस वचन को सुनकर शिवजीने आपही ब्रह्मा देवसे कहा कि हे ब्रह्मन् ! जिस लिये हम हिमाचल व तुम्हारे भी वशहैं ॥ २ ॥ इससे जो कहाहै वह कियाजाय इस समय हम तुम्हारे वशहैं तदनन्तर ब्रह्माने आपही रत्नमय उत्तम दिव्य नगर ॥ ३ ॥ उसीक्षण शिव जीके विवाह के लिये बनाया जोकि चारसौ कोस चौडा व सैकडों राज मन्दिरोंसे शोभित था ॥ ४ ॥ उस नगरमें महादेव जी आपही टिके उसके उपरान्त शिवदेव जीने चिन्तवन किये व फिर आयेहुये सप्तर्षियों को ॥ ५ ॥ पार्वतीजी की लगनकेलिये पठाया व अरुंधती समेत उन्होंने वहां शिवजीके गुणोंसे स्त्री समेत हिमाचल

चनंश्रुत्वा प्राहदेवंस्वयंहरः ॥ पराधीनावयंब्रह्मन्हिमाद्रेस्तवचापियत् ॥ २ ॥ यदुक्तंक्रियतांतद्विवयंयुष्मद्वशेधुना ॥ ततोब्रह्मास्वयंदिव्यंपुरंरत्नमयंशुभम् ॥ ३ ॥ उद्वाहार्थंमहेशस्य तत्क्षणात्समकल्पयत् ॥ शतयोजनविस्तीर्णं प्रासाद शतशोभितम् ॥ ४ ॥ पुरेतस्मिन्महादेवः स्वयमेवव्यतिष्ठत ॥ ततःसप्तमुनीन्देवश्चिन्तितानागतान्पुनः ॥ ५ ॥ प्राहिणोदम्बिकायाश्च स्थिरपत्रार्थमीश्वरः ॥ सारुन्धतीकास्तेतत्र ह्लादयन्तोहिमाचलम् ॥ ६ ॥ सभार्यमीश्वरगुणैः स्थिरपत्राणिचादधुः ॥ ततस्सम्पूजितास्तेन पुनरागम्यतेचतत् ॥ ७ ॥ न्यवेदयत्त्र्यम्बकाय सचतानभ्यनन्दत ॥ उद्वाहार्थंततोदेवो विश्वंसर्वंन्यमन्त्रयत् ॥ ८ ॥ समागतंचतत्सर्वंविनादैत्यैर्दुरात्मभिः ॥ स्थावरंजङ्गमंश्चापि विश्वंविष्णुपुरोगमम् ॥ ९ ॥ सब्रह्मकंपुराराातिः महिमानमवर्द्धयत् ॥ ततस्तंविधिराहेदं गन्धमादनपर्वते ॥ १० ॥ पुरेस्थितंविवाहस्य देवकालःप्रवर्तते ॥ ततस्तस्यजटाजूटे चन्द्रखण्डंपितामहः ॥ ११ ॥ बबन्धप्रणयोदारो विस्फारितविलोचनः ॥

को प्रसन्न करतेहुये लगनको धरा तदनन्तर उनसे पूजेहुये उन सप्तर्षियों ने फिर आकर उस वृत्तान्त को ॥ ६ । ७ ॥ त्रिलोचन जीसे कहा व उन शिवजीने उन सप्तर्षियों की प्रशसा किया उसके उपरान्त शिवदेवजी ने विवाह के लिये सब संसार का निमन्त्रण किया ॥ ८ ॥ व दुष्टात्मा दैत्यों के विना विष्णु पूर्वक भलीभाति आये हुये ब्रह्मा मसेत चराचर उस संसार की महिमा को शिवजी ने बढ़ाया तदन्तर गन्धमादन पर्वतपै नगर में टिके हुये उन शिवजी से यह कहा ॥ ९ १० ॥ कि हे देव ! विवाह का समय वर्त्तमानहै तदन्तर फैलाये हुए लोचनों वाले व नम्रता से उदार ब्रह्मा जी ने उनके जटा जूट में चन्द्रमा के खंड को बांधा और प्रसन्न होते

हुये विष्णु जीने आपही इन शिवजी के जटा जूटको बनाया ॥ ११ ॥ १२ ॥ व चामुण्डा ने मस्तक में बड़ी भारी मुंड माला को बांधा व शिवजी से यह कहा कि हे शंकर जी ! पुत्र को पैदा कीजिये ॥ १३ ॥ जो कि दैत्येन्द्रवंश को नाशकर मुझ को रक्तसे तृप्त करैगा व जलती हुई किरणों वाले आपही सूर्य जी ने प्रसन्नता से प्रकाशित त्रिलोक वाले रत्न को देव देव शिवजी के बांधा और वासुकी जिन में प्रसिद्ध हैं उन तेजसे जलते हुये उत्तम नागोंने ॥ १४ । १५ ॥ अपनाको शिवजी के भूषणोंके स्थान में आपही किया तदनन्तर पवनों ने हिमाचल के समान समस्त तीक्ष्ण शिखरको अनेक भांतिकी सिद्धियों से विभूषित किया और इन्द्र हाथी का

कपर्दशोभनंविष्णुः स्वयञ्चक्रेस्यहर्षितः ॥ १२ ॥ कपालमालांविपुलां चामुण्डामूर्द्धन्यबन्धत ॥ उवाचचापिगिरिशंपुत्रंजनयशङ्कर ॥१३॥ योदैत्येन्द्रकुलंहत्वा मांरक्तैस्तर्पयिष्यति ॥ सूर्योज्वलच्छिखोरत्नं प्रभासितजगत्रयम् ॥१४॥ बबन्धदेवदेवस्य स्वयमेवप्रमोदतः ॥ शेषावासुकिमुख्याश्चज्वलन्तस्तेजसःशुभाः ॥ १५ ॥ आत्मानंभूषणस्थाने तस्यंचक्रुरीश्वरम् ॥ वायवश्चततस्तीक्ष्णशृङ्गंहिमगिरिप्रभम् ॥ १६ ॥ सर्वविभूषयामासुर्नानाभिरुपपत्तिभिः ॥ शक्रोगजाजिनंगृह्य स्वयमग्रेऽग्यवास्थितः ॥ १७ ॥ चिताभस्मसमादाय कपालेरजतप्रभे ॥ मनुजास्थिमयींमालां प्रेतनाथश्चचन्दनम् ॥ १८ ॥ वह्निस्तेजोमयंदिव्यमजिनंप्रददौस्थितः ॥ एवंविभूषितस्सर्वैर्भृत्यैरीशोबभौभृशम् ॥ १९ ॥ ततोहिमाद्रेःपुरुषा वीरकस्प्रोचिरेवचः ॥ माभूत्कालात्ययःशीघ्रंभवस्यैतन्निवेद्यताम् ॥ २० ॥ ततोदेवंप्रणम्याह वीरकःकरसम्पुटी ॥ त्वारयन्तिमहेशान हिमाद्रेःपुरुषास्त्वमी ॥ २१ ॥ इतिश्रुत्वावचोदेवः शीघ्रमित्येवचाब्रवीत ॥ समन्नारिध

चर्म लेकर आपही आगे खडेहुये ॥ १६ । १७ ॥ व चांदी के समान शोभित कपाल में धरकर व मनुष्यकी हड्डियों की माला और चन्दनको यमराज ने दिया ॥ १८॥ और खडेहुये अग्नि न तेजोमय उत्तम मृग चर्मको दिया इस प्रकार समस्त सेवकों से विभूषित शिवजी बहुतही शोभित हुये ॥ १९ ॥ तदनन्तर हिमाचल के पुरुषों ने वीरक से वचन कहा कि समय का उल्लंघन मतहोवै यह शिवजीसे शीघ्रही बतलाइये ॥ २० ॥ तदनन्तर हाथोंको जोडेहुये वीरकने शिवदेव को प्रणाम कर कहा

कि हे महेशजी ! हिमाचल के ये पुरुष शीघ्रता करते हैं ॥ २१ ॥ यह वचन सुनकर शीघ्रही है यही शिवजीने कहा उन शिवजी को सातों समुद्रों ने दर्पण दिखा या ॥ २२ ॥ महादेव जी उसमें संसारमय अपने रूपको देखा तदनन्तर हाथ जोड़े हुये बुद्धिमान् विष्णुने शिवजी से कहा ॥ २३ ॥ कि हे देव देव, महादेव, त्रिपुर नाशक, शंकरजी ! संसार को आनन्द देनेवाले इस रूपसे वैसेही सोहतेहो ॥ २४ ॥ जैसे कि हे महेश्वरजी ! पहले जो तुम महादेव जी थे तदनन्तर मुसक्याते हुये महादेव जीने जयहो ऐसा वचनकहा ॥ २५ ॥ व विष्णुका हाथ अवलंबनकर धीरेसे बैलपै चढ़े उसके उपरान्त वसु देवताओं ने उसको शूलदिया ॥ २६ ॥ तदनन्तर

यस्तस्य चक्रुर्द्दर्प्पणदर्शनम् ॥ २२ ॥ तत्रैच्चतमहादेवः स्वरूपञ्जगन्मयम् ॥ ततोबद्धाञ्जलिर्धीमान् स्थाणुंप्रोवाचकेशवः ॥ २३ ॥ देवदेवमहादेव त्रिपुरान्तकशङ्कर ॥ शोभसेनेनरूपेणजगदानन्ददायिना ॥ २४ ॥ महेश्वरःयथासाक्षादादौयस्त्वंमहेश्वर ॥ ततःस्मयन्महादेवो जयेतिवचनंजगौ ॥ २५ ॥ करमालंव्यविष्णोश्च वृषमारुरुहेशनैः ॥ ततश्चवसवोदेवाः शूलंतस्यन्यवेदयत् ॥ २६ ॥ धनदोनिधिभिर्युक्तः समीपस्थस्ततोभवत् ॥ सशूलपाणिर्विश्वात्मा सञ्चालततोहरः ॥ २७ ॥ देवदुन्दुभिनादैश्च पुष्पासारैश्चदीपकैः ॥ नृत्यद्भिरप्सरोभिश्च जयेतिचमहाध्वनैः ॥ २८ ॥ सव्यदक्षिणसंस्थानौ ब्रह्माविष्णुश्चजग्मतुः ॥ हंसञ्चगरुडञ्चैव समारुह्यमहत्प्रभौ ॥ २९ ॥ अथादितिर्दितिस्साच दनुर्कद्रूसुपर्णका ॥ पौलोमीसुरसाचैव सिंहिकासुरभीमुनिः ॥ ३० ॥ सिद्धिर्म्मायाक्षमादुर्गा देवीस्वाहासुधास्वधा ॥ सावित्री चैवगायत्री लक्ष्मीसादक्षिणाद्युतिः ॥ ३१ ॥ स्पृहामतिर्धृतिर्बुद्धिर्ग्रन्थिरिक्षिस्सरस्वती ॥ राकाकुहूःसिनीवाली देवी

निधियों से संयुत कुबेरजी समीप में स्थितहुये तदनन्तर शूल हाथमें लियेहुये वे विश्वात्मा महादेव जी भलीभांति चले ॥ २७ ॥ देवताओं के नगारोंके शब्द व फूलोंकी वृष्टि, दीपक व नाचती हुई अप्सराओंसे तथा जय ऐसे महाशब्दों समेत शिवजी चले ॥ २८ ॥ और हंस व गरुडपै चढ़कर बडे प्रकाश वाले ब्रह्मा व विष्णु बांयें, दाहिने ओर स्थितहोकर चले ॥ २९ ॥ इसके उपरान्त आदिति, दिति और वह दनु, कद्रू, सुपर्णा पौलोमी, सुरसा, सिंहिका, सुरभी, मुनि ॥ ३० ॥ सिद्धि, माया

क्षमा,दुर्गा,देवी,स्वाहा,सुधा,स्वधा, सावित्री, गायत्री, लक्ष्मी व वे दक्षिणा, द्युति ॥३१॥ ॥ स्पृहा, मति, धृति, बुद्धि,ग्रंथि, रिद्धि, सरस्वती, राका,कुहू, सिनीवाली और भा
नुमतीदेवी ॥ ३२ ॥ व धरणी, धारणी, वेला, राज्ञी व रोहिणी इतनी ये और देवता ओं की माता व स्त्रियां ॥ ३३ ॥ सब प्रसन्नता संयुत होतीहुई देव देव शिवजीका
विवाह गातीभई नाग, गरुड़, यक्ष गन्धर्व, किन्नर, नर ॥ ३४ ॥ समुद्र, पर्वत,मेघ मास व साल, वेद और मन्त्र, यज्ञ और सब वेद सम्बन्धी धर्म ॥ ३५ ॥ व हुंकार
प्रणव और हज़ारों द्वार पालक तथा महेन्द्रादिक सवारियों समेत करोड़ों देवता ॥ ३६ ॥ महादेवके पीछे चले और शंखकी नाईं श्वेत वर्णवाले करोड़ों व अर्बुदों गण

भानुमतीतथा ॥ ३२ ॥ धरणीधारणीवेला राज्ञीचापिचरोहिणी ॥ इत्येताश्चान्यदेवानां मातरःपत्नयस्तथा ॥ ३३ ॥
उद्वाहंदेवदेवस्य जगुस्सर्वामुदान्विताः ॥ उरगागरुडायक्षागन्धर्वाःकिन्नरानराः ॥ ३४ ॥ सागरागिरयोमेघा मासास्सं
वत्सरास्तथा ॥ वेदमन्त्रास्तथायज्ञाः श्रौताधर्म्माश्चसर्वशः ॥ ३५ ॥ हुङ्कारप्रणवाश्चैव प्रतिहाराःसहस्रशः ॥ कोटिश
श्चतथादेवा महेन्द्राद्यास्सवाहनाः ॥ ३६ ॥ अनुजग्मुर्महादेवं कोटिशोऽर्बुदशश्चहि ॥ गणाश्चपृष्ठतोजग्मुः शङ्खवर्णा
श्चकोटिभिः ॥ ३७ ॥ दशभिःकेकराक्षश्च विद्युतोष्टाभिरेवच ॥ चतुःषष्ट्याविशाषश्च नवभिःपारियात्रिकः ॥ ३८ ॥ ष
ड्भिस्सर्वान्तकःश्रीमान् तथैवविकृताशनः ॥ ज्वालाकेशोद्वादशभिः कोटिभिस्संवृतोययौ ॥ ३९ ॥ सप्तभिस्समदः
श्रीमान् दुन्दुभोष्टाभिरेवच ॥ पञ्चभिश्चकपालीशः षड्भिस्संह्लादकश्शुभः ॥ ४० ॥ कोटिकोटिभिरेवेह कुण्डकःकुम्भ
कस्तथा ॥ विष्टम्भोष्टाभिरेवेह गणपस्सर्वसत्तमः ॥ ४१ ॥ पिप्पलश्चसहस्रेण सन्नादश्चतथाबली ॥ आवेशनस्तथाष्टा

पीछे से चले ॥ ३७ ॥ व दश करोड़ गणों समेत केकराक्ष, आठ करोड़से विद्युत, चौंसठि करोड़ से विशाष और नव करोड़ गणों समेत पारि यात्रिक चला ॥ ३८ ॥ व
श्रीमान् सर्वान्तक छः करोड़ वैसेही विकृताशन छः करोड़ से व ज्वालाकेश बारह करोड़ से घिरकर चला ॥ ३९ ॥ और श्रीमान् समद सात करोड़ से व दुन्दुभ आठ
करोड़, कपालीश पांच करोड़ और उत्तम संह्लादक छः करोड़ गणोंको लेकरचला ॥ ४० ॥ और कुण्डक व कुम्भक करोड़ करोड़ही गण लेकरचले व सबोंमें उत्तम
विष्टम्भ गणनायक आठही करोड़ गण लेकरचला ॥ ४१ ॥ और पिप्पल व वैसेही बलिष्ठ सन्नाद दो हज़ार गणोंको लेकरचला वैसेही आवेशन आठ करोड़ व चन्द्र

तापन सात करोड़ गणों समेत चला ॥ ४२ ॥ व महाकेश हज़ार और तंड़ी बारह करोड़ गणों समेत चला और नग, काल, काशक, महाकाल सौ गणोंको लेकर चला ॥ ४३ ॥ व अग्निक सौ करोड़ और अग्निमुख करोड़ गणलेकर चला और अग्निर्मूर्द्धा करोड़ गणोंसे वधनावह करोड़ गणों समेत चला ॥ ४४ ॥ व मन्नाद सौ गणों समेत और सुमन्त्रक काकपाद करोड़ २ गणों समेत चले वैसेही करण व व्यालक साठि गणोंको लेकरचला ॥ ४५ ॥ और पंचाक्ष, शत मन्यु व मेधा मन्यु बीस गणोंको लेकरचले और काष्ठ सुकेश व वृषभ चौंसाठि करोड़ गणोंको लेकर चले ॥ ४६ ॥ व विश्वरूप, तालकेतु, पंचास्य, शतानन ईशान, वृद्धदेव, दीप्तात्मा

भिस्सप्तभिश्चन्द्रतापनः ॥ ४२ ॥ महाकेशस्सहस्रेण तण्डीद्वादशभिस्तथा ॥ नगःकालःकाशकश्च महाकालःशतेन च ॥ ४३ ॥ अग्निकःशतकोट्यावै कोट्याग्निमुखएवच ॥ अग्निर्मूर्द्धातुकोट्याच कोट्याचैवधनावहः ॥ ४४ ॥ सन्नाद श्चशतेनैव कोटिकोट्यासुमन्त्रकः ॥ काकपादस्तथाषष्ट्याकरणोव्यालकस्तथा ॥ ४५ ॥ पञ्चाक्षःशतमन्युश्च मेधाम न्युस्सविंशतिः ॥ काष्ठकोटिचतुःषष्ट्या सुकेशोवृषभस्तथा ॥ ४६ ॥ विश्वरूपस्तालकेतुः पञ्चास्यश्चशताननः ॥ ईशानोवृद्धदेवश्च दीप्तात्मामृत्युहातथा ॥ ४७ ॥ विषादोयमहाचैव गणोभृङ्गीरिटिस्तथा ॥ अशनिर्हासकश्चैव चतुःष ष्ट्यासहस्रपात ॥ ४८ ॥ एतेचान्येचगणपास्त्वसङ्ख्यातामहाबलाः ॥ सर्वेसहस्रहर्त्तारो जटामुकुटधारिणः ॥ ४९ ॥ चन्द्रलेपावतंसाश्च नीलकण्ठास्त्रिलोचनाः ॥ हारकुण्डलकेयूरमुकुटाद्यैरलङ्कृताः ॥ ५० ॥ अणिमादिगणैर्युक्ताश्श क्ताःशापप्रसादयोः ॥ सूर्यकोटिप्रतीकाशास्तत्राजग्मुर्गणेश्वराः ॥ ५१ ॥ पातालाम्बरभूमिस्थाःसर्वलोकनिवासिनः ॥

व मृत्युहा ॥ ४७ ॥ व विषाद, यमहा व भृंगी और रिटिगण व अशनि, हासक और सहस्रपात् चौंसाठि करोड गणोंको लेकरचले ॥ ४८ ॥ ये और अन्य बडे बली असंख्य गणनायक सब हजारोंको मारनेवाले व जटा मुकुटधारीथे ॥४९॥ वे चन्द्र लेपाको मस्तक में धारे और नीलकण्ठ व तीन नयनों वारेथे और हार, कुण्डल, बहूंटा व मुकुटादिकों से भूषितथे ॥ ५० ॥ और अणिमादिक सिद्धियों के समूहों से संयुत व शाप और आशीर्वाद देनेमें समर्थ तथा करोड सूर्योंके समान प्रकाश वालेथे ऐसे

गणनायक वहां आये ॥ ५१ ॥ व पाताल,आकाश और भूमिमें टिकने वाले सब लोकोंके निवासी प्राप्तहुये व सामवेदके गानेवाले तुम्बुरु, नारद व हाहाहूहू ॥ ५२ ॥ वीणा और अन्य बाजाओं को लेकर बजाते हुये शिवजी के उछाह में आये व तपस्या रूप धनवाले सम्पूर्ण ऋषि वहां वेदमें गायेहुये व पुण्यदायक विवाह वाले मन्त्रोंको प्रसन्न मनहोकर जपतेभये इस प्रकार गंगा व यमुनासे वीजित याने गंगा व यमुनाजी जिन के चँवर डुलारही हैं वे शिवजी चले ॥ ५३ । ५४ ॥ और जल पति (वरुण) ने उनके ऊपर छत्र धारण किया व स्त्रियोंसे अनेक प्रकार के आलाप व लाजा करके प्रसन्न होतेहुये ॥ ५५ ॥ वे देवेश शिवजीके बड़े उत्सव समेत

तुम्बुरुर्नारदोहाहाहूहूश्चैवतुसामगाः ॥ ५२ ॥ तन्त्रीमादायवाद्यांश्च वादयञ्छङ्करोत्सवे ॥ ऋषयःकृत्स्नशस्तत्र वेदगीतान्तपोधनाः ॥ ५३ ॥ पुण्यान्वैवाहिकान्मन्त्राञ्जेपुस्संहृष्टमानसाः ॥ एवंप्रतस्थेगिरिशो वीज्यमानश्चगङ्गया ॥ ५४ ॥ तथायमुनयाचापाम्पतिनाधृतछत्रकः ॥ स्त्रीभिर्नानाविधैर्लापैर्लाजाभिश्चानुमोदितः ॥ ५५ ॥ महोत्सवेनदेवेशो गिरिस्थानंविवेशसः ॥ प्रभास्वत्स्वर्णकलशतोरणानांशतैर्युतम् ॥ ५६ ॥ वैडूर्यबद्धभूमिस्थं रत्नजैश्चगृहैर्युतम् ॥ तत्प्रविश्यस्तूयमानो द्वारमस्याससादसः ॥ ५७ ॥ ततोहिमाचलस्तत्र दृश्यतेऽव्याकुलाकुलः ॥ आदिशन्नात्मभृत्यानां महादेवउपस्थिते ॥ ५८ ॥ ततोब्रह्माणमचलो गुरुत्वेप्रार्थयत्तदा ॥ कृत्यानासर्वभारेषु वासुदेवंचबुद्धिमान् ॥ ५९ ॥ प्रत्याहचविवाहेस्मिन् कुमारीभ्रातरंविना ॥ भविष्यतिकथंविष्णोलाजाहोमादिकर्म्मसु ॥ ६० ॥ सुतोहिममेनाकस्सम्प्रतिह

हिमाचलके स्थानमें पैठगये जो स्थान कि प्रकाशित सोनेके कलशों व बन्दन वारोंसे संयुतथा ॥ ५६ ॥ व वैदूर्यसे बंधीहुई भूमिमे प्राप्त और रत्नोंसे उपजेहुये गृहोंसे संयुत था स्तुति कियेजाते हुये वे शिवजी उस स्थान में पैठकर इन हिमाचलके द्वारपै प्राप्तहुये ॥ ५७ ॥ तदनन्तर वहां महादेवजी के प्राप्तहोने पर अपने सेवकोंको आज्ञा देतेहुये हिमाचल विकलता से संयुत देखपड़ते थे ॥ ५८ ॥ तदनन्तर सब सामग्रियोंके मध्यमें कार्य्यों की गुरुता में हिमाचल ने उस समय ब्रह्माकी प्रार्थना किया और बुद्धिमान् हिमाचल ने विष्णु जी से ॥ ५९ ॥ कहा कि हे विष्णो इस विवाह में कन्या के भाई के विना लाजा होमादिक कर्म कैसे भली भांति

पर शिवजीने पाणि ग्रहण किया शिवदेवजी हिमाचल से पैदाहुई लज्जा समेत देवी को देखकर ॥ ७९ ॥ न तृप्त होतेथे न प्रसन्नहोतेथे और वह भी शिवजी को देख
कर तृप्तनहीं होतीथी वहां अद्भुत रूपवाली पार्वतीदेवीको देखतेहुये ब्रह्मादिक मुनिलोग ॥ ८० ॥ मनसे परमेश्वरकी शरणमें गये कि पार्वतीको देखकर मत मोहि
तहोवैं जैसे कि नारद व हिमाचलहैं वैसेही होवैं ॥ ८१ ॥ तदनन्तर शिवजीने वैसाही सबोंका मनोरथ किया उसके उपरान्त देवताओं व मुनियों से प्रणाम व स्तुति
कियेहुये शिवजीने ॥ ८२ ॥ मूर्त्तिमान् अग्नि के समीप बैठीहुई पार्वतीदेवी में प्रवेश किया और ब्रह्माने मूर्त्तिमान् होकर समीपमें प्राप्त वेदोक्त मन्त्रोंसे ॥ ८३ ॥ मूर्त्ति

तिनचाह्लादी साचदेवंवृषध्वजम् ॥ तत्रब्रह्मादिमुनयो देवीमद्भुतरूपिणीम् ॥ ८० ॥ पश्यन्तःशरणंजग्मुर्मनसापरमे
श्वरम् ॥ मामुह्यामःपार्वतीञ्च यथानारदपर्वतौ ॥ ८१ ॥ ततस्तथैवतच्चक्रे सर्वेषामीप्सितम्भवः ॥ ततोदेवैश्चमुनिभिः
प्रणतःसंस्तुतोहरः ॥ ८२ ॥ प्रविवेशशुभान्देवीं मूर्तिमज्ज्वलनाश्रिताम् ॥ वेधाश्रुतीरितैर्म्मन्त्रैर्मूर्त्तिमद्भिरुपस्थितैः ॥
८३ ॥ मूर्त्तिमग्निंजुहावाज्यंपरिचक्रामतंहरः ॥ लाजाहोमेउमाभ्राता प्राहतंसस्मितंहरिः ॥ ८४ ॥ बहवोमिलितास्स
न्ति लोकास्समरईश्वर ॥ सावधानेनरक्ष्याणि भूपणानिचयानिभो ॥ ८५ ॥ ततोहरस्तदाप्राह स्वजनेमाविगोपय ॥
किञ्चित्प्रार्थयदास्यामि प्राहविष्णुस्ततोनतः ॥ ८६ ॥ त्वयिभक्तिर्दृढामेस्तु सचतद्दुर्लभंददौ ॥ ददतुस्सृष्टिसंरक्षां
ब्रह्मणेदक्षिणामुभौ ॥ ८७ ॥ अग्नयेयज्ञभागांश्च प्रीतौहरजनार्द्दनौ ॥ भृग्वादीनांततोदत्त्वा श्रुतिरक्षणदक्षिणाम् ॥ ८८ ॥

ता अग्निम घृतको हवन किया व शिवजीने उस अग्निकी परिक्रमा किया और लाजा होममें विष्णुजीने मुसक्यान समेत उन शिवजी से कहा ॥ ८४ ॥ कि हे
श्वर ! युद्धमें हमको बहुत लोक मिलेहैं इससे जो भूषणहैं वे सावधानता से रक्षा करने योग्यहैं ॥ ८५ ॥ तदनन्तर उस समय शिवजी बोले कि निजजन मे मत
छिपाइये कुछ मागिये उसको दूंगा तदनन्तर झुकेहुये विष्णुजीने कहा ॥ ८६ ॥ कि तुममें मेरी दृढ़ भक्तिहोवै उनशिवजीने उसदुर्लभ वरको दिया और विष्णु व महा
व दोनोंने ब्रह्माको सृष्टिकी रक्षा दक्षिणा दिया ॥ ८७ ॥ व प्रसन्नहोने हुये शिव व विष्णुने अग्निके लिये यज्ञभागों को दिया तदनन्तर भृगु आदिको को वेदकी रक्षा

रूप दक्षिणा देकर ॥ ८८ ॥ उसके उपरान्त गीत, नृत्य व इच्छानुसार भोजन और अनेकों बडेभारी उछाहों से विस्मय को प्राप्तहुये ॥ ८९ ॥ तदनन्तर दानवों
के डरसे चाहते हुये सब जनोंको विदाकर इन देवीके माता, पिता दुःखीहुये ॥ ९० ॥ तदनन्तर पार्वती समेत शिवजी जब निर्मल कैलास पर्वतपै चलेगये तब मा-
इयों समेत हिमाचल रोनेलगे क्योंकि संसारमें किसकन्याके पिताका मन स्थिरता रहित नहीं होताहै ॥ ९१ ॥ पर्वतराज हिमाचलकी कन्याके इस विवाहको जो पवित्र
मनुष्य सुनता या पढ़ताहै वह भी विशेषतासे विवाहके मंगलमें वृद्धिको प्राप्तहोताहै व बहुत दिनोंतक प्रसन्न रहताहै ॥ ९२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेदेवी

ततोगीतैश्चनृत्यैश्च भोजनैश्चयथेप्सितैः ॥ महोत्सवैरनेकैश्च विस्मयंसमपद्यत ॥ ८९ ॥ ततश्चसर्वतोलोकमिच्छन्तं
दानवैर्भयात ॥ विसर्जयित्वापितरौ देव्याश्चास्यासुदुःखितौ ॥ ९० ॥ ततोगतेभगवतिनीललोहितेसहोमयागि
रिमलंहिभूधरः ॥ सबान्धवोरोदितिकस्यनो मनोविसंस्थितंजगतिहिकन्यकापितुः ॥ ९१ ॥ इमंविवाहंगिरिराजपु
त्र्याः शृणोतिवाध्येतिचयोनरःशुचिः ॥ विशेषतश्चापिविवाहमङ्गले सवृद्धिमाप्नोतिचिरञ्चमोदते ॥ ९२ ॥ इति श्रीस्क
न्दपुराणेकुमारिकाखण्डेकुमारेशमाहात्म्यएकविंशोध्यायः ॥ २१ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

नारदउवाच ॥ ततोनिरुपमंदिव्यं सर्वरत्नमयंशुभम् ॥ ईशेननिर्म्मितंसाक्षात्सहदेव्याभगात्त्विहा ॥ १ ॥ प्रासादेत
त्रचोद्याने रेमेसंहृष्टमानसः ॥ एतस्मिन्नन्तरेदेवास्तारकेनापिपीडिताः ॥ २ ॥ प्रोत्साहितेनचात्यर्थं मिथ्याकलिचिकी
र्षुणा ॥ आसाद्यतेभवन्देवंस्तुवन्तिस्मबहुस्तवैः ॥ ३ ॥ एतस्मिन्नन्तरेदेवी चोद्वर्त्तयतगात्रकम् ॥ उद्वर्त्तनमलेनाथ ॥

दयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांकुमारेशमाहात्म्यएकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

दो० । गई क्रोधकरि शम्भुसन पारवती तपकाज । बाइसवें अध्याय में सोइ चरित सुखसाज ॥ नारदजी बोले कि तदनन्तर समस्त रत्नमय व उत्तम तथा उपमा
रहित दिव्य मन्दिर साक्षात् शिवजीसे निर्मित हुआ व पार्वतीदेवी समेत भगनयननाशक शिवजीने ॥ १ ॥ प्रसन्न मनहोकर उस मन्दिर व बगीचे में रमण किया
इसी अवसरमें देवता भी अत्यन्त उत्साहित व मिथ्या कलह करनेकी इच्छावाले तारकासुर से पीड़ित हुये और उन्होंने शिवदेवजी के समीप जाकर बहुत स्तोत्रोंसे

स्तुति किया ॥ २ । ३ ॥ इसी अवसरमें पार्वतीदेवी ने अंगको मला व इसकेअनन्तर उवटनके मलसे गजानन (गणेश) जी को बनाया ॥ ४ ॥ तदनन्तर देवताओं के पुण्यदायक स्तोत्रोंसे दयासे संयुत व प्रसन्न मनवाली पार्वतीदेवी ने उसको पुत्रऐसा कहा ॥ ५ ॥ इसी अवसर में शिवजी वहा आकर वचन बोले कि हे पार्वती जी ! सुनिये कि तुम्हारा यह पुत्र जिस प्रकार का होगा ॥ ६ ॥ कि वल, प्रभाव वदयासे मेरे समान होगा व जैसा मैं हूं वैसाही गुणोंसे होगा और उसी कारण रक्षक होगा ॥ ७ ॥ और जो दुष्ट आचरण वाले पापी वेद व धर्म से वैर करते हैं उन देववैरियो का यह विघ्न करैगा ॥ ८ ॥ और हे शुभे ! सब धर्म वैसेही अनेक नातिके

बालञ्चक्रेगजाननम् ॥ ४ ॥ देवानांःसंस्तवैःपुण्यैः कृपयाभिपरिप्लुता ॥ पुत्रेत्युवाचतन्देवी ततःसंहृष्टमानसा ॥ ५ ॥ एतस्मिन्नन्तरेशर्वः तत्रागत्यवचोब्रवीत् ॥ पुत्रस्तवायंगिरिजे शृणुयादृग्भविष्यति ॥ ६ ॥ विक्रमेणचवीर्येण कृपया सदृशोमया ॥ यथाहन्तादृशश्चासौ पुत्रस्तेनान्विताःगुणैः ॥ ७ ॥ येचपापादुराचारा वेदान्धर्म्मंद्विषन्तिच ॥ तेषाममर शत्रूणां विघ्नान्येषकरिष्यति ॥ ८ ॥ सर्वेधर्माश्चकर्म्माणि तथानानाविधानिच ॥ सविघ्नानिभविष्यन्ति पूजयास्यविना शुभे ॥ ९ ॥ एवंश्रुत्वाउमाप्राह एवमस्त्वितिशङ्करम् ॥ ततोबृहत्तनुस्सोभूत तेजसाद्योतयन्दिशः ॥ १० ॥ ततोगणै स्समंसर्वैस्सुराणांप्रददौचतम् ॥ यावत्तारकहन्तावो भवेत्तावदयंप्रभुः ॥ ११ ॥ ततोविघ्नपतिर्देवैस्संस्तुतःप्रणतार्त्तिहा ॥ चकारतेषांकृत्यानि विघ्नानिदितिजन्मनाम् ॥ १२ ॥ पार्वतीचपुनर्देवी पुत्रत्वेपरिकल्प्यच ॥ अशोकस्यांकुरन्नीरैरव र्द्धयतस्वाहृतैः ॥ १३ ॥ सप्तर्षीनथचाहूय संस्कारंमङ्गलन्तरोः ॥ कारयामासतन्वङ्गी ततस्तांमुनयोब्रुवन् ॥ १४ ॥

कर्म इनकी पूजाके विना विघ्न सहित होवैंगे ॥ ९ ॥ ऐसा सुनकर पार्वती जीने कहा कि हे शङ्कर ! ऐसाही हो तदनन्तर तेजसे दिशाओ को प्रकाशित करताहुआ यह बडे शरीर वाला होगया ॥ १० ॥ तदनन्तर सब गणो समेत उन गणेशको देवताओं को दिया कि जबतक तारकको मारैगा तबतक यह तुम लोगोका स्वामीहोवेहै॥ ११ ॥ तदनन्तर देवताओं से स्तुति कियेहुये प्रणत दुःख नाशक विघ्नराज ने उन दिति पुत्रों (दैत्यों) के कार्योमे विघ्न किया ॥ १२ ॥ व फिर पार्वती देवी ने अशोकके अकुर को पुत्रता मे कल्पित करके अपनारो लायेहुये जलोसे बढ़ाया ॥ १३ ॥ व इसके अनन्तर सप्तर्षियोको बुलाकर सूक्ष्मागी पार्वती देवीने वृक्षके संस्कार

व मंगलको कराया तदनन्तर मुनियों ने उससे कहा॥ १४॥ कि हे देवि! तुम्हीं से दिखलाये हुये मार्ग में मर्यादा करने के लिये योग्यहो व कल्पना किये हुये वृक्ष-
रूपी पुत्रोंसे क्या फल होगा॥ १५॥ देवी जी बोलीं कि जो विद्वान् बिन जलवाले ग्राममें कुँवा बनवाता है वह तबतक स्वर्ग में सुखी रहता है कि जबतक कूपमें
जल रहता है॥ १६॥ दश कूपोंके समान बावली है व दश बावलियों के बराबर तड़ागहै व दश तड़ागों के तुल्य पुत्र और दश पुत्रोंके समान वृक्षहै॥ १७॥ लोकों
को पैदा करनेवाली यही मनुजी से मर्यादा नियत की गई है व जीर्णोद्धार करनेपरभी उसका दूना फल माना गया है॥ १८॥ तदनन्तर किसी समय भगवान् शिव

त्वयैवदर्शितेमार्गे मर्यादांकर्तुमर्हसि॥ किंफलम्भवितादेविकल्पितैस्तरुपुत्रकैः॥ १५॥ देव्युवाच॥ योवैनिरुदकेग्रामे
कूपंकारयतेबुधः॥ यावत्तोयंभवेत्कूपे तावत्स्वर्गेषुमोदते॥ १६॥ दशकूपसमावापी दशवापीसमंसरः॥ सरोदशस
मःपुत्रो दशपुत्रसमोद्रुमः॥ १७॥ एषैवमनुमर्यादा नियतालोकभाविनी॥ जीर्णोद्धारेकृतेचापि फलंतद्द्विगुणंमतम्॥
१८॥ ततःकदाचिद्भगवाञ्छम्भुश्चक्रीडमन्दिरे॥ मन्दरेहर्षजनने कलधौतमयेशुभे॥ १९॥ प्रकीर्णकुसुमामोदम
हालिकूलकूजिते॥ किन्नरोद्गीतसङ्गीतप्रतिशब्दितमध्यके॥ २०॥ क्रीडामयूरैर्हंसैश्च शुकैश्चैवाभिनादितैः॥ मौक्तिकै
र्विविधैरत्नैर्विनिर्मितगवाक्षके॥ २१॥ तत्रपुण्यकथाभिश्च क्रीडतोरुभयोस्तयोः॥ प्रादुर्भूतोमहाञ्छब्दः पूरिताम्बर
गोचरः॥ २२॥ तंश्रुत्वाकौतुकाद्देवी किमेतदितिशङ्करम्॥ पर्यपृच्छच्छुभतनुं हरंविस्मयपूर्वकम्॥ २३॥ तामाहदे
वीगिरिशो दृष्टपूर्वास्त्वमेतया॥ एतेगणामेक्रीडन्ते शैलेस्मिंस्त्वत्प्रियाःशुभाः॥ २४॥ तपसाब्रह्मचर्येण क्लेशेनत्वे

जी ने [illegible] व रजतमय तथा हर्ष उत्पन्न करनेवाले उत्तम मन्दराचलपै मन्दिरमें क्रीडा किया॥ १९॥ जोकि फैलेहुये फूलों की सुगन्धके कारण बडे भ्रमर गणों
से शब्दायमान था व किन्नरों करके उच्चस्वर से गायेहुये संगीत रागसे बीचमे पहाक पडती थी॥ २०॥ और क्रीडाके मयूर, हंस व शुकों से शब्दायमान
था व जिस में मोती व अनेक प्रकारके रत्नोंसे झरोखा बने थे॥ २१॥ वहां पुण्यदायक कथाओं से दोनो के क्रीडा करते हुये बडा भारी शब्द हुआ कि जिस
से आकाश पूर्ण होगया॥ २२॥ उस शब्द को सुन कर पार्वती देवी ने शुभ अंगवाले व भक्तदुःखहारक शंकर जी से विस्मयपूर्वक कौतुक से पूछा कि यह

क्या है ॥ २३ ॥ उन पार्वती जी से शिवने कहा कि तुमने इनको पहले देखाहै इस पर्वत पै तुम्हारे प्यारे ये उत्तम गण खेलते हैं ॥ २४ ॥ पृथ्वी में जिन्होंने तपस्या व क्लेशरूप ब्रह्मचर्य और क्षेत्रसाधन (तीर्थगमन) करके मुझको प्रसन्न किया है ये वे नरोत्तम ॥ २५ ॥ हे सुन्दरमुखि ! मेरे लोक में हमारे समीप प्राप्त हुये हैं जो कि चराचर संसार की सृष्टि के नाश करने में समर्थ हैं ॥ २६ ॥ इन के विना मेरी प्रसन्नता नहीं होती व इन से रहित मैं क्रीड़ा नहीं करता हूं ये मैं हूं व मैं ये हूँ हे पार्वती जी ! उन इन गणों को देखिये ॥ २७ ॥ ऐसा कहीहुई विस्मय में प्राप्त देवी ने उनको देखा जो कि कमलपत्र के समान नयनोंवाली पार्वती जी महादेव समेत झरोखे में बैठी थीं ॥ २८ ॥ कोई गण दुब्बले व छोटे व बड़े थे व कोई मोटे व बड़े पेटवालेथे और बाघ, हाथी, भेंड़ व छाग के समान मुखवाले

त्रसाधनैः ॥ यैरहंतोषितःपृथ्व्यांतएतेमनुजोत्तमाः ॥ २५ ॥ मत्समीपमनुप्राप्ता ममलोकेवरानने ॥ चराचरस्यजगतः सृष्टिसंहरणक्षमाः ॥ २६ ॥ विनैतान्नैवमेप्रीतिर्नैभिर्विरहितोरणे ॥ एतेह्यहमहञ्चैते तानेतान्पश्यपार्वति ॥ २७ ॥ इत्युक्ताविस्मितादेवी ददृशेतान्गवाक्षके ॥ स्थितापद्मपलाशाक्षी महादेवेनसंयुता ॥ २८ ॥ केचित्कृशाह्रस्वदीर्घाः केचित्स्थूलमहोदराः ॥ व्याघ्रेभमेषाजमुखा नानाप्राणिमहामुखाः ॥ २९ ॥ व्याघ्रचर्मपरीधाना नग्नाव्यालमुखाः परे ॥ गोकर्णगजकर्णाश्च बहुपादमुखेक्षणाः ॥ ३० ॥ विचित्रवाहनाश्चैव नानायुधधरास्तथा ॥ गीतवादित्रतत्त्वज्ञाः सत्त्वगीतरसप्रियाः ॥ ३१ ॥ तान्दृष्ट्वापार्वतीप्राह कतिसंख्याभिधास्त्वमी ॥ ३२ ॥ शङ्करउवाच ॥ असंख्येयास्त्वमीदेवि असंख्येयाभिधास्तथा ॥ जगदापूरितंसर्वं एतैर्भीमैर्महाबलैः ॥ ३३ ॥ सिद्धिक्षेत्रेषुरथ्यासु जीर्णोद्यानेषुवेश्मसु ॥ दान

तथा अनेक भांति के प्राणियों के तुल्य बड़े मुखवालेथे ॥ २९ ॥ व कोई बाघके चमडे को पहने व नग्न थे और अन्य सर्पोंके समान मुखवाले थे व कोई गऊ हाथी के कर्णों के समान कानोंवाले और बहुत चरण, मुख व नेत्रोंवालेथे ॥ ३० ॥ कोई विचित्र सवारियोंवाले व अनेक प्रकारके अस्त्रों को धारे थे और गाने बजाने के तत्त्वके ज्ञाता व प्राणियों के गानके रस जिनको प्रियथे ॥ ३१ ॥ उनको देखकर पार्वतीने कहा कि ये गण कितने संख्यक व कितने नामक हैं ॥ ३२ ॥ शिवजी बोले कि हे देवि ! ये अनगिनती व असंख्यनामकहैं इन बड़ेबली भयंकर गणों से सब संसार पूर्णहै ॥ ३३ ॥ और सिद्धिक्षेत्रों व गांव के बीच चौराहों तथा टूटे फूटे

पुराने बगीचों व घरों में और दानवों के शरीरों तथा बालों व उन्मत्तोंमें ॥ ३४ ॥ अनेक भांतिके आहार, विहारवाले ये प्रसन्नहोकर पैठते हैं व उष्णता पीनेवाले, फेना पीनेवाले और धुवां, मेघ, मदिरा पीनेवालेहैं ॥ ३५ ॥ व चर्बी खानेवाले और सर्वभक्षीहैं व अन्यगण भोजन नहीं करतेहैं व गीत,नृत्य भेंटवाले और अनेक भांतिके शब्दप्रिय हैं ॥ ३६ ॥ व अन्त न होनेके कारण इनके गुणोंको कहने के लिये हम समर्थ नहीं हैं ॥ ३७ ॥ देवीजी बोलीं कि मैनाशिलके चूर्णसे पूर्णमुखवाला व तेजकरके सूर्य के समान व रूपसे तुम्हारे तुल्य जो यहहै ॥ ३८ ॥ हे देव ! गणों से गायेहुये गीतोंको सुन २ कर बार २ नाचताहै व बार २ हास्य करताहै ॥ ३९ ॥ और जो

वानांशरीरेषु बालेषून्मत्तकेषुच ॥ ३४॥ एतेविशन्तिमुदिता नानाहारविहारिणः ॥ उष्णपाःफेनपाश्चैव धूम्राभ्रमधुपायिनः ॥ ३५ ॥ मेदाहाराःसर्वभक्षास्तथान्येचाप्यभोजनाः ॥ गीतनृत्योपहाराश्च नानावाद्यरवप्रियाः ॥ ३६ ॥ अनन्तत्वादमीषाञ्च वक्तुंशक्तानवैगुणान् ॥ ३७ ॥ दे०युवाच ॥ मानःशिलेनकल्केन यएषःपूरिताननः॥ तेजसाभास्कराकारो रूपेणासदृशस्तव ॥ ३८ ॥ आकर्ण्याकर्ण्यमोदेवगणैर्गीतान्महागुणान् ॥ मुहुर्नृत्यतिहासञ्च विदधातिमुहुर्मुहुः ॥ ३९ ॥ सदाशिवशिवेत्युक्तो विह्वलोवक्तियोमुहुः ॥ धन्योयमीदृशीयस्य भक्तिस्त्वयिमहेश्वर ॥ ४० ॥ एनंविज्ञातुमिच्छामिकिन्नामासौगणस्ततः ॥ ४१ ॥ ईदृशस्यसुतस्यास्तिममेच्छात्रिपुरान्तक॥ कदाहमीदृशंपुत्रं लप्स्याम्यानन्ददायकम् ॥ ४२ ॥ शर्वउवाच ॥ एषएवसुतस्तेस्तु यावदीदृक्सुतोभवेत ॥ इत्युक्त्वाविजयांप्राह शीघ्रमानयवीरकम्॥४३॥विजयाचततोगत्वा वीरकंवाक्यमब्रवीत॥ एहिवीरकतेदेवी गिरिजातोषिताशुभा ॥४४॥ त्वामाह्वयतिसादेवी

विह्वलहोकर उत्कंठा से हे सदाशिव ! ऐसा बार २ कहताहै यह धन्यहै हे महेश्वर ! जिसकी तुममें ऐसी भक्तिहै ॥ ४० ॥ इसलिये इसे जानना चाहती हूं कि कौन नामक यह गणहै ॥ ४१ ॥ हे त्रिपुरनाशक ! मेरे ऐसे पुत्र की इच्छाहै मैं कब ऐसा आनन्ददायक पुत्र पाऊंगी ॥ ४२ ॥ शिवजी बोले कि जबतक ऐसा पुत्र होवे तबतक यही तुम्हारा पुत्र होवै ऐसा कहीहुई पार्वती देवीने विजया से कहा कि वीरकको शीघ्रही लाइये॥४३॥तदनन्तर विजया जाकर वीरक से वचन बोली कि ऐ वीरक ! आइये तुम्हारे

लिये उत्तम पार्वतीदेवी बहुतही प्रसन्न कराईगई हैं ॥ ४४ ॥ वे देवी आपही शिवजी के संमत में तुमको बुलातीहैं ऐसा कहेहुये शीघ्रता समेत वीरकजी हाथ से मुख को धोकर ॥ ४५ ॥ देवी के समीप आये कि जिनके पीछे धीरे २ विजया चली आती थी उनवीरक को देखकर पार्वतीजी प्रियवाणी से बोलीं ॥ ४६ ॥ कि हे पुत्र ! आइये २ शिवजीसे तुम मुझको पुत्र दिये गये हो ऐसा कहेहुये वीरक दंडाकी नाईं झुककर देवीजीको प्रणामकर खडे हुये ॥ ४७ ॥ तदनन्तर माताने उस वीरकको लिपटाकर व गोदमें कर उनके कपोलमें चुंबन किया व अंगोंको झाड़दिया ॥ ४८ ॥ व आपही अनेक भांतिके दिव्य भूषणों से भूषित किया इसप्रकार उनवीरक को

भवस्यानुमतेस्वयम् ॥ इत्युक्तःसंभ्रमयुतो मुखंसम्मार्ज्यपाणिना ॥ ४५ ॥ देव्याःसमीपमागच्छद्विजयानुगतःशनैः ॥ तन्दृष्ट्वावीरकंप्राह गिरिजाप्रियया गिरा ॥ ४६ ॥ एह्येहिपुत्रदत्तस्त्वम्भवेनममपुत्रकः ॥ इत्युक्तोदण्डवद्देवींप्रणम्यावस्थितोभवत् ॥ ४७ ॥ मातातस्तमालिङ्ग्य कृत्वोत्सङ्गेचवीरकम् ॥ चुचुम्बचकपोलेतं गात्राणिचह्यमार्ज्जयत् ॥ ४८ ॥ भूषयामासदिव्यैस्तं स्वयंनानाविभूषणैः ॥ एवंसङ्कल्प्यतंपुत्रंलालयित्वाह्युमाचिरम् ॥ ४९ ॥ उवाचपुत्रक्रीडेति गच्छसार्द्धंगणैरिति ॥ ततश्चिक्रीडमध्येच गणानांपार्वतीसुतः ॥ ५० ॥ मुहुर्मुहुःस्वमनसिस्तुवन्भक्तिञ्चशाङ्करीम् ॥ प्रणम्यसर्वभूतानि प्रार्थयामिस्मदुष्करम् ॥ ५१ ॥ भक्त्याभजध्वमीशानं यस्यभक्तेरिदंफलम् ॥ क्रीडितुंवीरकेजाते ततोदेवीच पार्वती ॥ ५२ ॥ नानाकथाभिश्चिक्रीड पुनरेवजटाभृता ॥ ततोगिरिसुताकण्ठे क्षिप्यबाहुंमहेश्वरः ॥ ५३ ॥ तपसस्तु विशेषार्थं नर्मदेवींवचोब्रवीत् ॥ सहिगौरतनुश्शर्वो विशेषाच्छशिशोभितः ॥ ५४ ॥ रञ्जिताचविभावर्या देवीनीलोत्प

पुत्र कल्पना करके पार्वती जीने देरतक प्यारकर ॥ ४९ ॥ यह कहा कि हे पुत्र ! जाइये गणोंके साथ क्रीड़ा करिये तदनन्तर पार्वतीजी के पुत्र वीरकने गणोंके बीच में क्रीड़ा किया ॥ ५० ॥ व बार २ अपने मनमें शिवकी भक्तिको स्तुतिकर कहा कि समस्त भूतोंको प्रणामकर मैं कठिन वस्तुकी याचना करताहूं ॥ ५१ ॥ कि भक्तिसे शिवजी को भजिये कि जिनकी भक्तिका यह फलहै तदनन्तर जब वीरक खेलने चलेगये तब पार्वती देवीने ॥ ५२ ॥ अनेक प्रकारकी कथाओं से फिरभी जटाधारी शिवजी के साथ क्रीडा किया तदनन्तर पार्वती के कण्ठमें भुजाको धरकर महादेवने ॥ ५३ ॥ तपस्याकी विशेषता के लिये देवीसे हँसीवाला वचन कहा क्योंकि वे

च्छविः ॥ ५५ ॥ शर्वउवाच ॥ शरीरेममतन्वङ्गि सितेभासिचतद्द्युतिः ॥ भुजगीवासिताशुभ्रे संश्लिष्टाचन्दनेतरौ ॥
५६ ॥ चन्द्रज्योतिषिसंपृक्तास्तामसीराजयोयथा ॥ रजनीवासितेपक्षे दृष्टिदोषंददासिमे ॥ ५७ ॥ इत्युक्तागिरिजाने
न कण्ठंशर्वाद्विमोच्यसा ॥ उवाचकोपरक्ताक्षी भ्रुकुटीविकृतानना ॥ ५८ ॥ स्वकृतेनजनस्सर्वो जनेनपरिभूयते ॥
अवश्यमर्थमाप्नोतिकर्मणाशशिखण्डभृत् ॥ ५९ ॥ तपोभिर्दीप्तचरितैर्यत्त्वांप्रार्थितवत्यहम् ॥ तस्यमेनियमस्यैव मम
मातापदेपदे ॥ ६० ॥ नैवाहंकुटिलाशर्व विषमानचधूर्जटे ॥ स्वदोषैस्त्वङ्गतःख्याति तथादोषाकराश्रयः ॥ ६१ ॥
नाहंमुष्णामिनयने नेत्रहन्ताभवानभव ॥ भगस्तत्तेविजानाति तथैवेदंजगत्त्रयम् ॥ ६२ ॥ मूर्द्धिशूलंजनयसे स्वैर्दोषै
र्मामधिक्षिपन् ॥ यत्त्वंमामाहकृष्णेति महाकालेतिविश्रुतः ॥ ६३ ॥ यास्याम्यहंपरित्यक्तुमात्मानंतपसागिरिम् ॥ जी

शिवजी गौरशरीर व विशेषता से चन्द्रमा करके शोभित थे ॥ ५४ ॥ और रात्रिसे रंगीहुई देवी नील कमल की छविके तुल्य शोभावाली थीं ॥ ५५ ॥ शिवजी बोले
कि हे तन्वङ्गि ! काली छविवाली तुम मेरे श्वेत शरीरमें वैसेही शोभित होतीहो जैसे कि श्वेत चन्दन वृक्षमें श्याम सर्पिणी लिपटीहो ॥ ५६ ॥ और जैसे चन्द्रमा की उ-
जियाली में मिलीहुई अन्धकार की पंक्तियां होवैं वैसेही हो व कृष्णपक्ष में रात्रिकी नाईं मुझको दृष्टिदोष देती हो ॥ ५७ ॥ उन शिवजी से इस भांति कहीहुई वे पार्वती
देवी क्रोधसे लाल लोचनोंवाली व भौंहोंसे कुटिल मुखवाली होकर शिवजी से कण्ठको छुडाकर बोलीं ॥ ५८ ॥ कि अपने कियेहुये कर्म से सब प्राणी मनुष्य से
निन्दित होताहै हे चन्द्रखण्डधारी ! कर्मोंके प्रयोजन को अवश्य मनुष्य प्राप्तहोताहै ॥ ५९ ॥ जोकि प्रकाशित चरित्रोंवाली तपस्याओं से मैंने तुमको याचना कियाहै
मेरे उस नियम ही के पग२ पै मेरी माता साक्षिणी है ॥ ६० ॥ हे शिवजी ! मैं न कुटिलहूं और न विषम हूं हे धूर्जटे ! तुम अपने दोषों से प्रसिद्धिको प्राप्तहुये हो और
वैसेही दोषाकर (चन्द्रमा) के आश्रयभूत हो ॥ ६१ ॥ हे शिव ! मैं नेत्रोंको नहीं हरती हूं व आप नेत्रनाशक हैं तुम्हारे उस कर्मको भगदेवता व वैसेही यह त्रिलोक
जानताहै ॥ ६२ ॥ अपने दोषोंसे मुझको तिरस्कार करतेहुये तुम मस्तक में पीड़ा पैदा करतेहो जो तुमने मुझे काली ऐसा कहाहै तो आप महाकाल ऐसे प्रसिद्धहो ॥ ६३ ॥

मैं तपस्यासे शरीर त्यागने के लिये पर्वतपै जाऊंगी क्योंकि धूर्त्त शिवजी से निन्दितहो जीतीहुई मेरा कार्य नहीं है ॥ ६४ ॥ कोपसे तीक्ष्ण अक्षरोंवाला उन देवीका वचन सुनकर अशुभ से भ्रमित व दुःखसे जानने योग्य चरितोंवाले सदाशिव जी बोले ॥ ६५ ॥ कि हे गिरिजे ! तुम यथार्थकी जाननेवाली नहींहो और मैं तुम्हारी निन्दामें तत्पर नहीं हूं किन्तु विवाद होनेकी बुद्धिसे मैंने यह पार्वती मेरी प्यारी है स्वस्थ चित्तसे यह कल्पितकर तुमसे हँसौवाका कीर्त्तन किया और प्रायः ऐश्वर्य से गर्वित जनोंके हृदय में तुम अन्यथा चिन्तन कीगईहो ॥ ६६ । ६७ ॥ हे कृष्णांगि ! हम सरीखे पुरुषोंकी वाणी अन्यथा वर्त्तमान होती हैं हे भीरु ! यदि

वत्यानास्तिमेकृत्यं धूर्त्तेनपरिभूतया ॥ ६४ ॥ निशम्यतस्यावचनंकोपतीक्ष्णाक्षरम्भवः ॥ उवाचारिष्टसम्भ्रान्तो दुर्ज्ञेयचरितोहरः ॥ ६५ ॥ नतत्त्वज्ञासिगिरिजे नाहंनिन्दापरस्तव ॥ वादस्यबुद्ध्याकृतवांस्तवाहंनर्म्मकीर्तनम् ॥ ६६ ॥ विकल्प्यस्वस्थचित्तेहि गिरिजैपाममप्रिया ॥ प्रायेणभूतिलिप्तानामन्यथाचिन्तिताहृदि ॥ ६७ ॥ अस्मादृशानांकृष्णाङ्गि प्रवर्त्तन्तेन्यथागिरः ॥ यद्येवंकुपिताभीरु त्वमेवाहंनतेपुनः ॥ ६८ ॥ नर्मवादीभविष्यामि जहिकोपंशुचिस्मिते ॥ शिरसाप्रणतस्तेहं रचितस्तेमयाञ्जलिः ॥ ६९ ॥ हीनेनाप्ययमानेन निन्दितोनैमिविक्रियाम् ॥ वरमेवास्मिविगुणो न त्वंदेविगुणान्विता ॥ ७० ॥ इत्यनेकैश्चाटुसूक्तैर्देवेनप्रतिबोधिता ॥ कोपंतीव्रंनतत्याज सतीमर्मणिताडिता ॥ ७१ ॥ अवबद्धावथक्षिप्त्वा पादौशङ्करपाणिना ॥ विपर्यस्तालकावेगाद्गन्तुमैच्छतशैलजा ॥ ७२ ॥ सत्यांव्रजन्त्याङ्कोपेन पुनराहपुरान्तकः ॥ सत्यंसर्वैरवयवैः सुतेतिसदृशीपितुः ॥ ७३ ॥ हिमाचलस्यशृङ्गैस्ते मेघजालाकुलैर्म्मनः ॥ तथाद्गुरव

तुम ऐसी क्रोधित होतीहो तो फिर तुमसे मैं ॥ ६८ ॥ नर्मवादी (हास्यकर्त्ता) न हूंगा हे शुचिस्मिते ! कोपको नाश करिये मै शिरसे तुम्हारे प्रणाम करताहूं व तुम्हारे मैं हाथ जोडताहूं ॥ ६९ ॥ और तुच्छ अपमान से निन्दित मैं विकारको न प्राप्तहूंगा मैं गुणहीनहूं यह श्रेष्ठ बातहै और हे देवि ! गुणोसे संयुत तुम गुणहीन नहींहो ॥ ७० ॥ इस प्रकार शिवदेवजी से अनेक प्रिय वचनो करके देवीजी न समझी और सुकुमार स्थानो में ताडित पार्वती ने तीक्ष्ण क्रोधको नही छोडा ॥ ७१ ॥ इसके अनन्तर शिवजीके हाथसे बँधेहुये चरणोको झिटककर उलटे पुलटे बालोंवाली पार्वती ने जानेकी इच्छा किया ॥ ७२ ॥ जब पार्वती जी चली तब क्रोधसे फिर शिव

जी ने कहा कि यह सत्यहै कन्या सबअंगों करके पिताके तुल्य होती है ॥ ७३ ॥ मेघसमूहों से व्याप्त हिमाचल के शिखरोंके समान तुम्हारा मनहै वैसेही यह पर्वत
कुण्डों से दुःख करके अवगाहन करने योग्यहै व तुम्हारा आशय दुःखसे अवगाहने योग्यहै ॥ ७४ ॥ तुममें वनोंसे इस काठ करके बहुत भांतिकी कठिनता आई है
और नदियों से तुममें कुटिलता और पालासे तुममें दुःखसेवन योग्यता आई है ॥ ७५ ॥ हे देवि ! यह सब तुममें हिमाचल से भलीभांति प्राप्तहुआ है उससमय इस
प्रकार कहीहुई उन पार्वती जीने शिवसे कहा ॥ ७६ ॥ जोकि क्रोधसे कांपते हुये व धूमसमान मुख व फरकते हुये ओठोंवाली थी कि हे शिवजी ! अपने अपमान से

गाह्योसौ ह्रदेभ्यश्चतवाशयः ॥ ७४ ॥ काठिन्यंकाष्ठतोस्माते वनेभ्योबहुधागतम् ॥ कुटिलत्वंनदीभ्यस्ते दुस्सेव्य
त्वंहिमादपि ॥ ७५ ॥ संक्रान्तंसर्वमेवैतत्तवदेविहिमाचलात ॥ इत्युक्तासापुनःप्राह गिरिशंशैलजातदा ॥ ७६ ॥ कोप
कम्पितधूम्रास्या प्रस्फुरद्दशनच्छदा ॥ माशर्वात्मापमानेन निन्दत्वंगुणिनोजनान् ॥ ७७ ॥ तवापिदुष्टसम्पर्क्कात्सं
क्रान्तंसर्वमेवहि ॥ व्यालेभ्योनेकजिह्वत्वं भस्मनास्नेहबन्धता ॥ ७८ ॥ हृत्कालुष्यंशशाङ्कात्ते दुर्बोधत्वंवृषादपि ॥
अथवाबहुनोक्तेन अलंबहुश्रमेणमे ॥ ७९ ॥ श्मशानवासाच्चाभीस्त्वं नग्नत्वान्नतवत्रपा ॥ निर्घृणत्वंकपालित्वादेवं
कःशक्नुयात्तव ॥ ८० ॥ इत्युक्त्वामन्दिरात्तस्मान्निर्जगामहिमाद्रिजा ॥ तस्यांव्रजन्त्यांक्रुश्य एतेकिलकिलाध्वनिम् ॥
८१ ॥ क्कमातर्गच्छसीत्युक्त्वा रुन्धन्तोधाविताःपुरः ॥ विष्टभ्यचरणौदेव्यावीरकोबाष्पगद्गदम् ॥ ८२ ॥ प्रोवाचमातः

गुणीजनो की मत निन्दा करिये ॥ ७७ ॥ तुम्हारे भी सब कुछ दुष्टोंके मेलसे भलीभांति आयाहै सर्पोंसे अनेक जीभोंका होना व भस्मसे स्नेहका न होना ॥ ७८ ॥ व
चन्द्रमासे तुम्हारे हृदयकी मलिनता व अज्ञानता भी बैलसे आईहै अथवा बहुत कहना व्यर्थ है व बहुत परिश्रम से मेरा कुछ कार्य नही है ॥ ७९ ॥ तुम श्मशान में
रहने से निडर व नंगे होनेके कारण तुम्हारे लज्जा नहीं है और कपाल धारण करने से घृणा नहीं है इसप्रकार तुम्हारे अवगुण कहनेको कौन समर्थ है ॥ ८० ॥ यह
कहकर पार्वती जी उस मन्दिर से निकली जब वे पार्वती चलीं तब इन गणों ने किलकिला शब्द किया ॥ ८१ ॥ व दौड़ते हुये उन्होंने यह कहकर आगे रोंका कि

हे माता ! कहां जातीहो और पार्वती देवी के चरण पकड़कर वीरक ने आंसुवों से गद्गद वचन कहा ॥ ८२ ॥ कि हे माता ! यह क्या है कि जो मुझको छोडकर
शीघ्रता समेत जातीहो स्नेहप्रिय मैं तुम माता के पीछे जाऊंगा ॥ ८३ ॥ और तुमसे छोडाहुआ मैं शिवजी के आश्रय न हूंगा क्योकि माताके विना पुत्र पिताकी
कठोरताका पात्र होता है ॥ ८४ ॥ पश्चात् दाहिने हाथसे मुखको स्पर्शकर पार्वती माताने शोच समेत पुत्रसे कहा ॥ ८५ ॥ कि मेरे साथ तुम पर्वतो के अग्रभागपै
आनेके योग्य नहीहो हे पुत्र ! कहतीहूं कि जो कार्य तुमसे करने योग्य है उसको सुनिये ॥८६॥ कि शिवजी ने मुझे काली ऐसा कहा व तृणकी नाई निन्दा कियाहै

किन्वेतत्त्यक्त्वायास्यसिसत्वरा ॥ अहन्त्वामनुयास्यामिमातरंस्नेहवत्सलः ॥ ८३ ॥ नाहंश्रयिष्येपरुषं गिरिशंचैत्व
योज्झितः ॥ पुत्रःपारुष्यपात्रंहि भवेन्मात्राविनापितुः ॥ ८४ ॥ उन्माज्र्यवदनंपश्चाद्दक्षिणेनतुपाणिना ॥ उवाचवीर
कंमाता सशोकंपुत्रमम्बिका ॥ ८५ ॥ शैलाग्रान्प्रतित्वंचैवनाप्यागन्तुंमयासह ॥ वक्ष्यामिपुत्रतेयोग्यं यत्तुकार्यंत्वया
शृणु ॥ ८६ ॥ कृष्णेत्युक्ताहरेणाहं निन्दिताचतृणंयथा ॥ साहंतपःकरिष्यामि यथागौरीत्वमाप्नुयाम् ॥ ८७ ॥ गौ
राङ्गोलम्पटोह्येष यातायांमय्यनन्तरम् ॥ द्वाररक्षात्वयाकार्या नित्यंरन्ध्रस्यवीक्षणात् ॥ ८८ ॥ यथानकाचित्प्रविशे
द्योषिदत्रहरान्तिके ॥ दृष्ट्वापरांस्त्रियञ्चात्र वदस्वममपुत्रक ॥ ८९ ॥ शीघ्रमेवंकरिष्यामि तपोयुक्तमनन्तरम् ॥
एवमस्त्वितितांदेवीं वीरकःप्राहसाम्प्रतम् ॥ ९० ॥ मातुराज्ञामृतह्रदे प्लाविताङ्गोगतज्वरः ॥ जगामगिरिशंद्रष्टुं प्र
णिपत्यचमातरम् ॥ ९१ ॥ ततःगजाननंप्राह प्रणम्यसमवस्थितम् ॥ साश्रुकण्ठमयाचन्तं नयमामपिपार्वति ॥ ९२ ॥

सो मैं तपस्या करूंगी कि जिस प्रकार गौरशरीरत्वको प्राप्तहूंगी ॥ ८७ ॥ ये गौर शरीरवाले शिवजी लम्पट हैं इससे मेरे जाने पर उसके उपरान्त छिद्रावलोकन से
तुमको नित्यही द्वार रक्षा करना चाहिये ॥ ८८ ॥ कि जिस प्रकार शिवजीके समीप यहां कोई स्त्री न पैठे और यहां अन्य स्त्रीको देखकर हे पुत्र ! मुझसे कहियेगा ॥
८९ ॥ और इसके बाद मैं शीघ्रही योग्य तपस्या करूगी वीरक ने उन पार्वती देवीसे यह कहा कि इस समय ऐसाही होगा ॥ ९० ॥ व माता की आज्ञारूप अमृत
के कुंड मे डूबे हुये अंगोंवाले वीरक जी दु:खरहित होकर माता को प्रणाम कर शिवजी को देखने के लिये गये ॥ ९१ ॥ तदनन्तर हे पार्वती जी ! मुझको भी ले

तलिये यह याचते हुये व प्रणाम कर भलीभांति खड़े व आंसुवों सहित कंठवाले गणेश जी से पार्वती जी बोलीं ॥ ६२ ॥ कि हाथी के मुखवाले तुम को [illegible]
मेरी नाईं हँसैंगे इस लिये मेरे साथ आइये जो मेरी दशा होगी वह तुम्हारी भी होगी ॥ ६३ ॥ हे पुत्र ! तिरस्कार से निन्दित जनों को [illegible]
उन गणेशजी को लेकर वे पार्वती जी हिमाचल पै चली गईं॥६४॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे कुमारिकाखण्डे [illegible] ॥ नारद जी [illegible]
दो० । महादेव के पुत्र जिमि भये षडानन देव । तेइसवें अध्याय में सोइ चरित सुवाम ।

गजवक्त्रं हि त्वां वामो मामिवोपहसिष्यति ॥ तदागच्छ मया सार्द्धं या गतिर्मम तवापि सा ॥ ६३ ॥ परा[illegible]
पांसाधुपुत्रक॥ एवमुक्त्वा तमादाय हिमाद्रिं प्रति सा ययौ ॥ ६४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे कुमारिकाखण्डे कुमारेशमाहात्म्ये
पार्वत्यास्तपोर्थगमनं नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

नारदउवाच ॥ व्रजन्तीं गिरिजां पश्यत्सखीं मातुर्महाप्रभाम् ॥ कुसुमामोदिनीनाम तस्य शैलस्य देवताम् ॥ १ ॥ सा
सापि दृष्ट्वा गिरिसुतां स्नेहविक्लवमानसा ॥ क्व पुनर्गच्छतीत्युच्चैरालिङ्ग्योवाच देवता ॥ २ ॥ साचास्यै सर्वमाचख्यौ शृ
ङ्करात्कोपकारणम् ॥ पुनश्चोवाच गिरिजा देवतां मातृसम्मताम् ॥ ३ ॥ नित्यं शैलाधिराजस्य देवतात्वमनिन्दिते ॥
सर्वज्ञसन्निधानञ्च मयि चातीव वत्सला ॥ ४ ॥ तदहं सम्प्रवक्ष्यामि यद्विधेयं त्वयाधुना ॥ अन्यस्त्रीसम्प्रवेशोत्र [illegible]
पिनाकिनः ॥ ५ ॥ त्वया रक्ष्योऽयं मम शुभे गुरुं पश्चात्करोम्यहम् ॥ तथेत्युक्ते तया देव्या ययौ देवी गिरिं प्रति ॥ ६ ॥ [illegible]

माता की सखी बड़ी शोभावाली कुसुमामोदिनी नामक को देखा ॥ १ ॥ व उस शैल देवता ने भी पार्वती जी को देखकर विकलमन होती हुई फिर [illegible]
[illegible] से यह कहा कि कहां जाती हो ॥ २ ॥ व इन पार्वती ने सब शिव जी करके कोप का कारण इस सखी से कहा व फिर माता से मानी हुई [illegible]
[illegible] हे अनिन्दिते ! तुम नित्यही पर्वताधिराज की देवता हो व शिव जी के समीप तुम्हारी समीपता रहती है व मुझ में बड़ा प्यार करती हो ॥ ४ ॥
[illegible] इस समय जो करना चाहिये उसको मैं कहती हूं कि शिव के समीप और स्त्री के प्रवेश में ॥ ५ ॥ हे शुभे ! तुम को मुझ से कहना [illegible]

म योग्य कार्य को करूंगी जब उस देवी ने यह कहा कि वैसाही होगा तब पार्वती देवी हिमाचल पै चली गई ॥ ६ ॥ वहां अनेक प्रकार के आश्चर्यों से शोभित व मनोहर बड़ेभारी शिखर पै भूषणादिकों को धरकर वृक्षों के बकलों को धारण किया ॥ ७ ॥ व पुत्र से पालन कीहुई पार्वतीने तपस्या किया कि ग्रीष्म ऋतु में पंचाग्नि को तापा व वर्षा में जलवास किया ॥ ८ ॥ व हेमन्त ऋतु में निराहार होती हुई उन पार्वती जीने चौतरे पै स्थित होती हुई तपस्या किया इसी अवसर में अंधक का पुत्र बली दैत्य ॥ ९ ॥ पार्वती जी को गई हुई जानकर पिता का वैर स्मरण करता हुआ बक का भाई आडि नामक शिवजी के छिद्र को देख

तत्रमहाशृङ्गे नानाश्चर्योपशोभिते ॥ विभूषणादिसंन्यस्यवृक्षत्वल्कलधारिणी ॥ ७ ॥ तपस्तेपेगिरिसुता पुत्रेणपरिपालिता ॥ ग्रीष्मेपञ्चाग्निसन्तप्ता वर्षासुचजलोषिता ॥ ८ ॥ स्थण्डिलस्थाचहेमन्ते निराहारातपसा ॥ एतस्मिन्नन्तरेदैत्यो ह्यन्धकस्यसुतोबली ॥ ९ ॥ ज्ञात्वागताङ्गिरिसुतांपितुर्वैरमनुस्मरन् ॥ आडिनामाबकभ्राता हरस्यान्तरप्रेक्षकः ॥ १० ॥ जितेकिलान्धकेदैत्ये गिरिशेनामरद्विषि ॥ आडिश्चकारविपुलं तपोहरजिगीषया ॥ ११ ॥ तमागत्याब्रवीद्ब्रह्मातपसापरितोषितः ॥ ब्रूहिकिंवासुरश्रेष्ठतपसाप्राप्तुमिच्छसि ॥ १२ ॥ ब्रह्माणमाहदैत्यस्तु निर्मृत्युत्वमहंवृणे ॥ १३॥ब्रह्मोवाच ॥नकश्चिच्चविनामृत्युंजन्तुरासुरविद्यते ॥ यतस्ततोपिदैत्येन्द्रमृत्युःप्राप्यःशरीरिणा ॥१४॥इत्युक्तोदैत्यसिंहस्तुनोवाचाम्बुजसम्भवम् ॥ इत्युक्तोमरतांमेने दैत्यराजःस्थितोसुरः ॥ १५ ॥ आजगामसचस्थानन्तदात्रिपुरघाति

रहाथा ॥ १० ॥ यह प्रसिद्ध है कि जब शिवजी ने देवताओं के वैरी अंधक को जीत लिया तब महादेव को जीतने की इच्छा से आडि ने बडी तपस्या किया ॥ ११ ॥ व तपस्यासे प्रसन्न किये हुये ब्रह्माजी उसके समीप आकर बोले कि हे दैत्योत्तम ! तपस्या से तुम क्या पाने की इच्छा करते हो ॥ १२ ॥ दैत्यने ब्रह्मा से कहा कि मैं अमरता को मांगता हूं ॥ १३ ॥ ब्रह्मा बोले कि हे दैत्य ! जिस लिये कोई प्राणी मृत्यु के विना नहीं वर्तमान है इससे हे दैत्येन्द्र ! देहधारीको मृत्यु प्राप्तहोने योग्य होती है ॥ १४ ॥ इस प्रकार कहे हुये दैत्योत्तमने ब्रह्मा से कुछ न कहा व इस भांति कहे हुये दैत्यों के राजा आडि दैत्यने स्थित होकर अमरता माना ॥ १५ ॥

व॰उस समय वह त्रिपुरनाशक शिवजी के स्थान पर आया व द्वार स्थान पै आने पर उसने बैठे हुये द्वारपालक वीरक जी को देखा॥ १६॥ व उसको छल कर वीरक से न मना किये हुये सर्पशरीरधारी इस आडि ने शिवजी के समीप प्रवेशकिया॥ १७॥ इस के अनन्तर मूर्ख बुद्धिवाला यह महादैत्य शिव के छलने के लिये सांप का रूप छोड़ कर पार्वतीरूप होगया॥ १८॥ तदनन्तर तर्कणा से रहित व सुन्दर और समस्त अगों से पूर्ण व सब ज्ञानों से छिपा हुआ पार्वती का रूप कर॥ १६॥ दैत्य ने पैने अग्रभागवाले व वज्र के समान कठोर दांतोंको भग के बीच में किया और बुद्धिके मोह से शिवजी को मारने के लिये उद्यत हुआ॥२०॥

नः॥ आगतेद्वारदेशेतं वीरकंद्वारपंस्थितम्॥ १६॥ तंचासौवञ्चयित्वाच आडिःसर्पशरीरभृत॥ अवारितोवीरकेण प्रविवेशहरान्तिकम्॥ १७॥ भुजङ्गरूपंसन्त्यज्यबभूवाथमहासुरः॥ उमारूपीछलयितुं गिरिशंमूढचेतनः॥ १८॥ कृत्वोमायास्ततोरूपमप्रतर्क्यमनोहरम्॥ सर्वावयवसम्पूर्णंसर्वाभिज्ञानसंवृतम्॥ १९॥ चक्रेभगान्तरेदैत्योदन्तान् वज्रोपमान्दृढान्॥ तीक्ष्णाग्रान्बुद्धिमोहेन गिरिशंहन्तुमुद्यतः॥ २०॥ कृत्वोमारूपमेवं स स्थितोदैत्योहरान्तिके॥ तान्दृष्ट्वागिरिशस्तुष्टः समालिङ्ग्यमहेश्वरः॥ २१॥ मन्यमानोगिरिसुतांसर्वैरवयवान्तरैः॥ अपृच्छत्साधुतेभावो गिरिपुत्रिह्यकृत्रिमः॥२२॥ यात्वंमदाशयंज्ञात्वा प्राप्तैववरवर्णिनि॥ त्वयाविरहितःशून्यं मन्येहंभुवनत्रयम्॥ २३॥ प्राप्तप्रसन्नायन्मान्त्वं युक्तमेवंविधन्तव॥ सत्कृतोयंहरेणैवमुमारूपासुरोब्रवीत॥ २४॥ यातास्यहंतपश्चर्तुङ्कालीवाक्यात्त

इस प्रकार पार्वती का रूप कर शिव के समीप वह दैत्य स्थित हुआ उस को देखकर प्रसन्न होते हुये गिरिश महादेव जी भलीभांति लिपट कर॥ २१॥ व समस्त अंगों के भेदों से पार्वती को जानते हुये शिव ने पूछा कि हे पर्वतपुत्रि! तुम्हारा स्वभाव बिन बनावट का अच्छा है॥ २२॥ हे उत्तमवर्णवाली! जो तुम कि मेरे आशय को जान कर प्राप्तही हुई तुमसे रहित मैं त्रिलोकीको शून्य मानता हूं॥२३॥ प्रसन्न होतीहुई जो तुम मेरे समीप प्राप्तहुई ऐसा तुमको योग्यही है शिव से इस भांति आदर कियेहुये पार्वतीरूप दैत्य ने कहा॥ २४॥ कि तुम्हारे काली ऐसे वचन से मैं बड़ीभारी तपस्या करने के लिये गई थी परन्तु उस तपस्या

में मेरा स्नेह न हुआ उसीसे तुम्हारे समीप प्राप्तहुई ॥ २५ ॥ ऐसा कहेहुये उन शिवजीने वहां कुछ शंका किया कि मेरे सामने छोटे अंगोंवाली व पुष्ट नियमवाली पार्वती जी क्रोधित हुई थीं ॥ २६ ॥ बिन कामना पाये वे पार्वती जी क्यों भलीभांति प्राप्तहुई यह मेरे सन्देह है एकान्त में ऐसा विचार कर इसके बाद ज्ञान से चिन्तन करतेहुये शिवजी ने ॥ २७ ॥ उसकी बाईं बगलमें कमल के लक्षणवाले चिह्नको न देखा कि जिस में लोमोंका भँवर का सा चरित्र था तदनन्तर पिनाकधारी शिवजी ने ॥ २८ ॥ उसको दानवी माया जानकर कुछ मुसक्यान समेत मुखवाले होकर लिंगमें रौद्रास्त्र धरकर दैत्यका अभिलाष किया ॥ २९ ॥ व भ-

वातुलम् ॥ रतिश्चतत्रमेनाभूत्ततः प्राप्तातवान्तिकम् ॥ २५ ॥ इत्युक्तःशङ्करःशङ्काङ्किञ्चित्तत्राकरोच्चसः ॥ कुपितामयि तन्वङ्गी प्रत्यक्षाचदृढव्रता ॥ २६ ॥ अप्राप्तकामासंप्राप्ता किमेतत्संशयोमम ॥ रहसीतिविचिन्त्याथ अभिज्ञानादिचारयन् ॥ २७ ॥ नापश्यद्वामपार्श्वेतु तस्याङ्कम्पद्मलक्षणम् ॥ लोम्नामावर्तचरितं ततोदेवःपिनाकधृक् ॥ २८ ॥ बुद्ध्वा तान्दानवींमायां किञ्चित्प्रहसिताननः ॥ मेढ्रेरौद्रास्त्रमाधाय चक्रेदैत्यमनोरथम् ॥ २९ ॥ सकुर्वन्भैरवान्नादानवसादङ्गतोसुरः ॥ अबुद्धंवीरकेणैतदसुरेन्द्रनिषूदनम् ॥ ३० ॥ कथितामारुतेनाशुगामिनानगदेवता ॥ अपरिच्छिन्नतत्त्वाथ शैलपुत्र्यैन्यवेदयत् ॥ ३१ ॥ श्रुत्वावायुमुखाद्देवीक्रोधसंरक्तलोचना ॥ अशपद्वीरकंपुत्रं हृदयेनविदूयता ॥ ३२ ॥ मातरंमांपरित्यज्य यस्मात्त्वमतिचञ्चलः ॥ विहितावसरःस्त्रीणांशङ्करस्यरहोविधौ ॥ ३३ ॥ तस्मात्तेपरुषारूक्षा जडा हृदयवर्जिता ॥ गणेशक्षारसदृशा शिलामाताभविष्यति ॥ ३४ ॥ एवमुत्सृष्टशापाया गिरिपुत्र्यास्त्वनन्तरम् ॥

यङ्कर शब्दोको करताहुआ वह दैत्य मृत्युको प्राप्तहुआ यह दैत्यका मारना वीरक ने नहीं जाना ॥ ३० ॥ और शीघ्र चलनेवाले पवनने अखण्ड तत्त्ववाली पर्वत के देवता कुसुमामोदिनी से कहा इसके अनन्तर पार्वती जीसे निवेदन किया ॥३१॥ पवनके मुखसे सुनकर क्रोधसे लाल लोचनोंवाली देवीने दुःखित हृदयसे वीरक पुत्रको शापदिया ॥ ३२ ॥ कि जिस लिये मुझ माताको छोडकर बडे चंचल तुमने शिवजी के एकान्त विधान मे स्त्रियोंको समय दिया ॥ ३३ ॥ इसलिये हे गणनायक ! कठोर, स्नेहरहित, जड, हृदयवर्जित व क्षारके समान तुम्हारी माता शिलाहोगी ॥ ३४ ॥ इसके अनन्तर इस प्रकार शाप देतीहुई पार्वती जीके मुखसे बडा

बलिष्ठ सिंहरूपी क्रोध निकला ॥ ३५ ॥ जोकि पश्चात्ताप से घिरकर उन देवी से त्यागया था व जिसके कन्धेपै बड़े २ आलोंके बालथे वह भयानक मुखवाला
सिंह ॥ ३६ ॥ जोकि बलसे पूंछको झिटकताहुआ व दाढ़ोंसे भयङ्कर गुहाके समान मुखवाला था व जीभको चाटताहुआ तथा मुखको फैलाये व दुबली कुक्षिवाला
तथा खानेकी इच्छाकरताथा ॥ ३७ ॥ जब देवीने उसके मुखसें वर्त्तमान होनेका विचारकिया तब उसके मनमें प्राप्त वस्तुको जानकर भगवान् ब्रह्माजी ॥ ३८ ॥ सम्पदाओं
के आश्रयरूप आश्रम स्थानको आये व आकर तदनन्तर ब्रह्माजी उन पार्वती से सत्यवाणी बोले ॥ ३९ ॥ कि हे देवि ! तुम क्या पाने के लिये चाहती हो व मैं

निर्जगाममुखात्क्रोधः सिंहरूपीमहाबलः ॥ ३५ ॥ पश्चात्तापसमावृत्य तयादेव्याविसर्जितः ॥ सतुसिंहःकरालास्यो
महाकेशरकन्धरः ॥ ३६ ॥ प्रोद्धूतबललाङ्गूलो दंष्ट्रोत्कटगुहामुखः ॥ व्यावृतास्योल्ललज्जिह्वःक्षामकुक्षिःखादिषुः ॥
३७ ॥ तस्यास्येवर्तितुन्देवी व्यवस्यतसतीतदा ॥ ज्ञात्वामनोगतंतस्या भगवांश्चतुराननः ॥ ३८ ॥ आजगामाश्रम
पदं सम्पदामालयन्ततः ॥ आगत्योवाचतांब्रह्मा गिरिजामृतयागिरा ॥ ३९ ॥ किन्देविप्राप्तुकामासि किमलभ्यंद
दामिते ॥ तच्छ्रुत्वोवाचगिरिजा गुरुंगौरवगर्भितम् ॥ ४० ॥ तपसादुश्चरेणाप्तः पतिस्त्वेशङ्करोमया ॥ समांश्यामलवर्णां
ति बहुशःप्रोक्तवान्भव ॥ ४१ ॥ श्यामाहंकाञ्चनाकारा वाल्लभ्येनचसंयुता ॥ भर्त्तुर्भूयात्परस्याङ्गेएकतानिर्विशङ्किता ॥
४२ ॥ तस्यास्तद्भाषितंश्रुत्वा प्रोवाचजलजासनः ॥ एवंभवतुभूयास्त्वं भर्त्तुर्देहार्धधारिणी ॥ ४३ ॥ ततस्तस्याःशरीरात्तु
नारीनीलोत्पलत्वचा ॥ निर्गताचशुभापाङ्गी घण्टाहस्तात्रिलोचना ॥ ४४ ॥ नानाभरणपूर्णाङ्गी पीतकौशेयवासिनी ॥

तुमको किस दुर्लभ वस्तुको देऊं उस वचनको सुनकर गुरुतासे भरेहुये ब्रह्मासे पार्वतीजी बोलीं ॥ ४० ॥ कि मैंने कठिन तपस्या से पतिहोने में शिवजी को स्वीकार
किया उन शिवजीने मुझे श्यामरंगवाली ऐसा बार २ कहा ॥ ४१ ॥ इससे श्याम रंगवाली मैं सुवर्णके स्वरूपवाली व प्रियत्व से संयुत होऊं और श्रेष्ठ पति के अंग
में सन्देहरहित एकत्व होवै ॥ ४२ ॥ उसके उस वचनको सुनकर कमलासन ब्रह्माजी बोले कि ऐसाही होवै तुम पतिके आधे शरीरको धारनेवाली होगी ॥ ४३ ॥
तदनन्तर उन पार्वतीजीकी देहसे नील कमलके समान त्वचावाली स्त्री निकली जोकि तीन नयनोंवाली व हाथमें घण्टाको लिये और उत्तम नेत्रान्तोंवालीथी ॥ ४४ ॥

और अनेक प्रकार के गहनों से पूर्ण अंगोंवाली व पीत रेशमी वसन पहनेथी तदनन्तर ब्रह्माने नील कमलके तुल्य छविवाली उस देवीसे कहा ॥ ४५ ॥ कि पार्वतीजी के देहके इस मैलसे तुम मेरी आज्ञा करके भलीभांति प्राप्तहुईहो और तुम आगे अंशरहित व एकही तथा कृतकृत्य होवोगी ॥ ४६ ॥ हे वरानने ! देवी के क्रोधसे जो यह सिंह पैदाहुआहै हे देवि ! वह बड़ाबलिष्ठ सिंह तुम्हारी सवारी व ध्वजामें होगा ॥ ४७ ॥ और यहां तारकासुरके सेनापति शुम्भ निशुम्भको मारकर विन्ध्याचलपै जावो वहां देवताओं का कार्य करोगी ॥ ४८ ॥ हे देवि ! लाख यक्ष जिसके चरणानुगामी है यह सैकडों वड़ीभारी मायाओं से संयुत पाचाल नामक

तामब्रवीत्ततोब्रह्मा देवींनीलाम्बुजत्विषम् ॥ ४५ ॥ अस्माद्भूधरजादेहसम्पर्कात्त्वंममाज्ञया ॥ सम्प्राप्ताकृतकृत्यात्व मेकानंशापुराह्यसि ॥ ४६ ॥ यएषसिंहःप्रोद्भूतो देव्याःक्रोधाद्वरानने ॥ सतेस्तुवाहनेदेवि केतौचास्तुमहाबलः ॥४७॥ गच्छविन्ध्याचलेतत्र सुरकार्यंकरिष्यसि ॥ अत्रशुम्भनिशुम्भौच हत्वातारकसैन्यपौ ॥ ४८ ॥ पाञ्चालोनामयक्षोयं य क्षलक्षपदानुगः ॥ दत्तस्तेकिङ्करोदेवि महामायाशतैर्युतः ॥४९ ॥ इत्युक्ताब्रह्मणादेवी तथेत्याहपितामहम् ॥ निर्ग तायाञ्चकौशिक्यां ज्ञानाद्यैराश्रितागुणैः ॥ ५० ॥ सर्वैःपूर्वभवोत्पन्नैस्तदास्वयमुपस्थितैः ॥ उमापिप्राप्तसङ्कल्पा पश्चा त्तापपरायणा ॥५१॥ मुहुःस्वंपरिनिन्दन्ती जगामगिरिशान्तिकम् ॥ विप्रायान्तिचतांद्वारि परिवार्य्यसमाहिताः॥५२॥ रुरोधवीरकोदेवी हेमवेत्रलताधरः ॥ तामुवाचचकोपेन तिष्ठतिष्ठकयास्यसि ॥ ५३ ॥ प्रयोजनंनतेस्तीह गच्छयातुन्न चार्हसि ॥ देव्यारूपधरोदैत्यो देवंवञ्चयितुंत्विह ॥ ५४ ॥ प्रविष्टोनचदृष्टोसौ सचदेवेनघातितः ॥ घातितेचाहमाज्ञप्तो

सेवक तुमको दियागया ॥ ४९ ॥ ब्रह्मासे इस प्रकार कहीहुई देवीने ब्रह्मासे यह कहा कि वैसाही होगा व कौशिकी देवीके निकलने पर पूर्वजन्ममे उत्पन्न व आपही से उस समय प्राप्त ज्ञानादिक गुणोंसे टिकीहुई पार्वती जी संकल्पित वस्तुको पाकर पश्चात्ताप में तत्परहुई ॥ ५० । ५१ ॥ व बार २ अपनाको निन्दती हुई पार्वती शिव जी के समीपगई और द्वारपै सावधान होतेहुये ब्राह्मण उसको घेरकर जारहे थे ॥ ५२ ॥ सोनेकी बेतरूपी लताको धारण किये वीरकने देवीको रोंका व उससे क्रोध कर कहा कि खड़ीहो २ कहां जावोगी ॥ ५३ ॥ तुम्हारा प्रयोजन नहीं है जाइये यहा जाने के लिये तुम योग्य नहीं हो देवीके रूपको धारे दैत्य शिवदेवजी को

छलनेके लिये यहां ॥ ५४ ॥ पैठाथा व इसको मैंने नहीं देखा और शिवदेवजी ने उसको मारडाला व मार डालने पर बुद्धिमान् शिवनें मुझे आदर समेत वह आज्ञा दिया है कि हे पुत्र ! किसी भी स्त्रीको तुम्हैं प्रवेश न करानाचाहिये इसलिये अनेकवर्ष गणोंतक तुम इसद्वारपै खड़ी ॥ ५५ । ५६॥ होवोगी और यहां पैठने न पावोगी इमसे जावो जो स्नेहके प्यारवाली मेरी माताहै वही एक यहां प्रवेश करैगी ॥ ५७ ॥ जोकि पर्वतराज हिमाचलकी कन्या पार्वती जी शिवको प्यारी हैं तदनन्तर ऐसी कहीहुई पार्वती देवीने चित्तसे बिचारकिया ॥ ५८ ॥ कि वह स्त्री नहीं किन्तु वह तो दैत्यथा और यह दैत्य मिथ्याभाससे नहीं रोंकने योग्यहुआ क्रोधसे घिरीहुई

नीलकण्ठेनधीमता ॥ ५५ ॥ क्वापिस्त्रीनप्रवेष्टव्या त्वयापुत्रेतिसादरम् ॥ तस्मात्त्वमत्रद्वारिस्थ्या वर्षपूगान्यनेकशः ॥ ५६ ॥ भविष्यसिनचाप्यत्र प्रवेशंलप्स्यसेव्रज ॥ एकामेप्रविशेदत्र मातायास्नेहवत्सला ॥ ५७ ॥ नगाधिराजतनया पार्वतीरुद्रवल्लभा ॥ इत्युक्तातुततोदेवी चिन्तयामासचेतसा ॥ ५८ ॥ नसानारीसदैत्योसौ वार्योनैवावभासतः ॥ वृथैववीरकःशप्तो मयाक्रोधपरीतया ॥ ५९ ॥ अकार्यंक्रियतेमूढैः प्रायःक्रोधसमन्वितैः ॥ क्रोधेननश्यतेकीर्तिःक्रोधोहन्तिस्थिरांश्रियम् ॥६०॥ आयुश्छिन्नंनतत्त्वार्थं पुत्रंशापितवत्यहम् ॥ विपरीतार्थबोद्धॄणां सुलभोविपदोदयः ॥ ६१ ॥ सञ्चिन्त्यैवमुवाचेदंवीरकंप्रतिशैलजा॥ शङ्करस्यास्मिदयितासुतातुहिनभूभृतः ॥ ६२ ॥ ममगात्रच्छविभ्रान्त्यामाशङ्कांपुत्रभावय ॥ तुष्टेनगौरतादत्ता ममेयंपद्मयोनिना ॥ ६३ ॥ मयाशप्तोस्यविदिते वृत्तान्तेदैत्यनिर्मिते ॥ कृत्वानारीप्रवेशन्तु शङ्करेरहसिस्थिते ॥ ६४ ॥ ननिवर्तयितुंशक्यःशापःकिन्तुब्रवीमिते ॥ मानुष्यन्तुशिलायान्त्वं शिलादात्म

मैंने वृथाही वीरकको शापदिया ॥ ५९ ॥ प्रायः क्रोधसंयुत मूर्ख जनोंसे अकार्य किया जाताहै क्रोधसे यश नाश होजाताहै व क्रोध अचल लक्ष्मीको नष्टकर देताहै ॥ ६० ॥ आयुर्बल व टगई क्योंकि यथार्थके लिये मैंने पुत्रको नहीं शापदिया है व उलटी वस्तुके जाननेवाले पुरुषोंको विपत्तिका उदय सुलभ होताहै ॥ ६१ ॥ ऐसा विचारकर पार्वतीजी वीरक से यह बोली कि मैं हिमाचल की कन्या व शिवजीकी स्त्री हूं ॥ ६२ ॥ हे पुत्र ! मेरे शरीरकी शोभाके भ्रमसे मत शङ्काकरो मुझको प्रसन्न होतेहुये ब्रह्माने यह गौरतादी है ॥ ६३ ॥ जब शिवजी एकान्तमें स्थितथे तब स्त्रीके रूपसे प्रवेशकर दैत्यसे कीहुई मायाके न जाननेपर मुझसे शापितहुयेहो ॥ ६४ ॥

वह शाप निवृत्त नहीं होसक्ता है किन्तु तुमसे कहताहूं कि तुम मानुषी शिलासे शिलाद से मनुष्यों को स्वर्ग व मोक्षदायक पवित्र अर्बुदारण्य में उत्पन्न होगे जहा कि हे वीरक ! स्वबलेश्वर लिंग वर्त्तमान है ॥ ६५ । ६६ ॥ वह लिंग काशीजीमें विश्वनाथके बराबर फलदायकहै प्रभास क्षेत्रकी दशयात्राओं से मनुष्योंको जो फलहोता है ॥ ६७ ॥ वह फल अर्बुद महापर्व्वतकी एक यात्रा से कहागया है जहापर मनुष्य तपस्या करके देहकी धातुवों को छोडकर ॥ ६८ ॥ फिर संसारी नहीं होता है जैसा कि शिवजी का वचन है कि यदि सौ जन्मोंसे अर्बुद सेवने के लिये मिलै ॥ ६९ ॥ तों वे मनुष्य काशी व केदार क्षेत्रको वृथाही क्यों स्मरण करते है उस

म्भविष्यसि ॥ ६५ ॥ पुण्येचाप्यर्बुदारण्ये स्वर्गमोक्षप्रदेन्नृणाम् ॥ स्वबलेश्वरलिङ्गन्तु वर्ततेयत्रवीरक ॥ ६६ ॥ वाराणस्यांविश्वनाथसमंतत्फलदंन्नृणाम् ॥ प्रभासस्यचयात्राभिर्दशभिर्यत्फलंन्नृणाम् ॥ ६७ ॥ तदेकयात्रयाप्रोक्तमर्बुदस्यमहागिरेः ॥ यत्रतप्त्वातपोमर्त्यो देहधातून्विहायच ॥ ६८ ॥ संसारीनपुनर्भूयान्महेश्वरवचोयथा ॥ अर्बुदोयदिलभ्येत सेवितुंजन्मनांशतैः ॥ ६९ ॥ वाराणसींचकेदारं किंस्मरन्तिवृथैवते ॥ तत्राराध्यभवन्देवं भवान्नन्दीतिनामभृत् ॥ ७० ॥ शीघ्रमेष्यसिचात्रैव प्रतीहारत्वमाप्स्यसि ॥ एवमुक्तेहृष्टरोमा वीरकःप्रणिपत्यताम् ॥ ७१ ॥ संस्तूयविविधैर्वाक्यैर्मातरंसमभाषत ॥ धन्योहंदेवियोलप्स्ये मानुष्यमतिदुर्लभम् ॥ ७२ ॥ शापोनुग्रहरूपोयं विशेषादर्बुदाचले ॥ समीपेयस्यपुण्योस्ति महीसागरसंगमः ॥ ७३ ॥ ऊर्ध्वःपृथिव्यादेशोयंयोगिरेश्चार्णवान्तरे ॥ तत्रगत्वामहापुण्यमवाप्यभवभक्तितः ॥ ७४ ॥ पुनरेष्यामिभोगान्ते इत्युक्त्वाभूच्छिलासुतः ॥ देवीचप्रविवेशाथ भवनंशशिमौ

अर्बुद पर्वतपै शिवदेव को आराधन कर आप नन्दी ऐसे नामको धारने वाले होगे ॥ ७० ॥ और यहां शीघ्रही आवोगे व द्वारपालकत्व को पावोगे ऐसा कहनेपर प्रसन्न रोमोंवाले वीरकने उन पार्वतीजीको प्रणामकर ॥ ७१ ॥ व अनेक प्रकारके वचनोंसे भलीभाति स्तुतिकर मातासे कहा कि हे देवि ! मैं धन्यहूं जोकि बडी दुर्लभ मनुजताको पाऊगा ॥ ७२ ॥ और अर्बुद पर्वतपै यह शाप अनुग्रहरूपहै कि जिसके समीप पुण्यदायक महीसागर का संगमहै ॥ ७३ ॥ यह स्थान पृथ्वी के ऊपरहै जोकि पर्वत व समुद्र के बीचमेंहै वहा जाकर शिवजीकी भक्तिसे बडी पुण्य पाकर ॥७४॥ व भोगोंके अन्तमें फिर आऊंगा यह कहकर शिलाका पुत्र होगया इसके अनन्तर

पार्वती देवी शिवजी के मन्दिर में पैठगईं ॥ ७५ ॥ तदनन्तर उनको देखकर शङ्करजी ने यह कहा कि वीर्यको धिक्कारहै व उसने प्रणामकर उन शिवजी से कहा कि
यह सत्यहै झूंठ नहीं है ॥ ७६ ॥ यह मत्याशवाला मूर्ख पुरुष अनिन्दित स्त्री के योग्यहै व पुरुषोंकी प्रसन्नतासे भवसागर से छूटजाता है ॥ ७७ ॥ तदनन्तर प्रसन्न
होतेहुये शिवदेव ने उनसे कहा कि हे शुभे ! इससमय पुत्र दूंगा कि जिससे हे शोभने ! तुम प्रसिद्धि को प्राप्तहोगी ॥ ७८ ॥ तदनन्तर पार्वती देवीको व शिवजी
अनेक प्रकारके आश्चर्यों का स्थान हुये तदनन्तर हजार वर्षोंके अन्तमें शीघ्रता मनवाले देवोंने ॥ ७९ ॥ शिवका कर्म जानने के लिये अग्निकी प्रेरणा किया और

लिनः ॥ ७५ ॥ ततोदृष्ट्वाचतांप्राह धिग्वीर्यमितिशङ्करः ॥ साचप्रणम्यतंप्राह सत्यमेतन्नमिथ्यया ॥ ७६ ॥ ज
डःप्रकृतिभागोयं नारीमर्हत्यनिन्दिताम् ॥ पुरुषाणांप्रसादेन मुच्यतेभवसागरात् ॥ ७७ ॥ ततःप्रहृष्टस्तामाह हरोदे
वीधुनाशुभे ॥ पुत्रंदास्यामियेनत्वं ख्यातिंप्राप्स्यसिशोभने ॥ ७८ ॥ ततोवभूवदेव्यास्सनानाश्चर्यालयोहरः ॥ ततो
वर्षसहस्रान्ते देवास्त्वरितमानसाः ॥ ७९ ॥ ज्वलनंनोदयामासुर्ज्ञातुंशङ्करचेष्टितम् ॥ द्वारस्थितंप्रतीहारं वञ्चयित्वाच
पावकः ॥ ८० ॥ पारावतस्यरूपेण प्रविवेशहरान्तिकम् ॥ ददर्शतंचदेवेशो विनतांप्रेक्ष्यपार्वतीम् ॥ ८१ ॥ ततस्तंज्वल
नंप्राहनैतद्योग्यंत्वयाकृतम् ॥ यदिदंक्षुभितंस्थानान्मममतेजस्त्वनुत्तमम् ॥ ८२ ॥ गृहाणत्वंसुदुर्बुद्धेनोवाधक्ष्यामित्वांरु
षा ॥ भीतस्ततोसौजग्राह सर्वदेवमुखंसच ॥ ८३ ॥ तेनतेवह्निसहिताविकलाश्चसुराःकृताः ॥ विपाद्यचसुरान्सर्वान् वी
र्यमाहेश्वरन्ततः ॥ ८४ ॥ निष्क्रान्तंतत्सरोजातंपारदंशतयोजनम् ॥ वह्निश्चव्याकुलीभूतोगङ्गायांमुमुचेसकृत ॥ ८५ ॥

अग्निने द्वारपै बैठेहुये द्वारपालको छलकर ॥ ८० ॥ कबूतर के रूपसे शिवजी के समीप प्रवेश किया और देवेश शिवने उन अग्निको देखा व झुँकीहुई पार्वती जीको
देखकर ॥ ८१ ॥ उसके उपरान्त उन अग्निसेकहा कि तुमने यह योग्य नहीं किया और स्थानसे चलाहुआ जो यह मेरा अति उत्तम वीर्य है ॥ ८२ ॥ हे दुर्बुद्धे! तुम
इसको ग्रहणकरो नहीं तो तुमको क्रोधसे जलादूंगा तदनन्तर डरेहुये इन अग्निने उसको ग्रहण किया जो वे अग्नि कि सब देवताओं का मुखहैं ॥ ८३ ॥ उस वीर्य
से अग्नि समेत वे देवता विकल कियेगये सब देवताओंको दुःखितकर तदनन्तर शिवजी का वीर्य ॥ ८४ ॥ निकलताभया और वह सौ योजन का पारावाला तड़ाग

पु०
७६

होगया और अग्निने भी विकलहोकर एकहीबार उसको गंगामें छोड़दिया ॥ ८५ ॥ और जलतीहुई उन गंगादेवीने तरंगोंसे बाहर छोड़दिया उससे त्रिलोकमें प्रसिद्ध श्वेतपर्वत होगया ॥ ८६ ॥ इसी अवसर में हिमालयपै अग्निमें होम करते हुये सप्तर्षियोंने अग्निको बुलाया व मन्त्रके बलसे ॥ ८७ ॥ अग्निने वहां आकर हवन कियेहुये उस भागको ग्रहण किया व उस कर्मके समाप्त होनेपर वहां टिकेहुये अग्निने उन सप्तर्षियों की स्त्रियोंको देखा ॥ ८८ ॥ व सुवर्ण व केला के बीचकी नाईं गौरतावाली और चन्द्रलेखा के समान उन स्त्रियों को देखते हुये विकसित नयनोंवाले अग्निजी कामके वश होगये ॥ ८९ ॥ फिर उन अग्निने चिन्तन किया

दह्यमानाचसादेवी तरङ्गैर्बहिरुत्सृजत् ॥ जातस्त्रिभुवनख्यातस्तेनचश्वेतपर्वतः ॥ ८६ ॥ एतस्मिन्नन्तरेवह्निराहूतश्च हिमालये ॥ सप्तर्षिभिर्वह्निहोमं कुर्वद्भिर्म्मन्त्रवीर्य्यतः ॥ ८७ ॥ आगत्यतत्रजग्राहे अग्निर्भागञ्चतंहुतम् ॥ गतेतस्मिंश्च तत्रस्थः पत्नीतेषामपश्यत ॥ ८८ ॥ सुवर्णकदलीगर्भनिभास्ताश्चन्द्रलेखया ॥ पश्यमानःप्रफुल्लाक्षो वह्निःकामवशङ्गतः ॥ ८९ ॥ सम्भूयश्चिन्तयामास नन्वहंक्षुभितोस्मियत् ॥ साध्वीःपत्नीर्द्विजेन्द्राणामकामाःकामयाम्यहम् ॥ ९० ॥ पापमेतत्कर्म्मचोग्रं नश्यामितृणवत्स्फुटम् ॥ कृत्वैतन्नश्यतेकीर्त्तिर्यावदाचन्द्रतारकम् ॥ ९१ ॥ एवंसञ्चिन्त्यबहुधा गत्वाचैववनान्तरे ॥ वशीकर्तुंसनाशक्नोदुपायैर्बहुभिर्म्मनः ॥ ९२ ॥ ततःसकामसन्तप्तो मूर्च्छितःसमपद्यत ॥ ततःस्वाहाचभार्य्यास्य बुबुधेतद्विचेष्टितम् ॥ ९३ ॥ ज्ञात्वाचचिन्तयामास प्रहृष्टामनसिस्वयम् ॥ स्वांभार्य्यामेषमान्त्यक्त्वाबहुवासा

कि मैं निश्चयकर क्षोभित होगया और जिन लिये मैं न चाहतीहुई द्विजेन्द्रों की पतिव्रता स्त्रियोंको मैं चाहता हूं ॥ ९० ॥ यह कर्म बड़ा उग्र पापहै इससे यह प्रकट है कि मैं तिनुकाकी नाईं नाश होजाऊंगा यह कर्म करके तबतक यश नाश होजाताहै कि जबतक चन्द्रमा व सूर्य रहतेहैं ॥ ९१ ॥ इसभांति बहुत प्रकारसे विचारकर व वनके बीचमें जाकर वे अग्निजी बहुत यत्नोंसे मनको वश करने के लिये न समर्थ हुये ॥ ९२ ॥ तदनन्तर कामदेव से बहुतही तचेहुये वे अग्निजी मूर्च्छितहुये उसके उपरान्त इनकी स्त्री अग्निने उनका कर्मजाना ॥ ९३ ॥ व जानकर मन में आपही हर्षित होतीहुई चिन्तन किया कि बहुत दिनोंतक निरासमे मुझ अपनी

कु०
अ०

स्त्री को अपमानसे छोडकर ॥ ९४ ॥ निश्चयकर जिसलिये सप्तर्षि महात्माओंकी स्त्रियोंकी इच्छाकरताहै इससे इनके रूपको प्राप्त होकर मैं इनकी सेवाकरूं ॥९५॥
तदनन्तर जो अंगिराकी उत्तम स्त्री शिवा नामकथी उसका रूपधर अग्निके समीप प्राप्तहोकर वह बोली ॥ ९६ ॥ कि हे अग्ने ! कामसे तचीहुई मुझको तुम चाहने
योग्यहो हे देव ! यदि ऐसा न करोगे तो मुझको मरी जानिये ॥९७॥ हे हुताशन ! शिवानामक मैं अंगिरा की स्त्री सबों समेत प्राप्तहुई हूं और वे क्रमसे आवैंगी ॥
९८ ॥ हम सबोंको तुम नित्यही प्यारेहो जो योग्यहो उसको कीजिये तदनन्तर उस स्त्री समेत वे अग्निजी कामदेवसे संतप्त हुये ॥ ९९ ॥ और उनके प्रसन्न होनेपर

दवज्ञया ॥ ९४ ॥ भार्याकामयतेनूनंसप्तर्षीणांमहात्मनाम् ॥ यदासांरूपमाश्रित्यभजिष्येतेन्नचाप्यहम् ॥ ९५ ॥ तत
स्त्वंगिरिशोभार्या शिवानामेतिशोभना ॥ तस्यारूपंसमाधाय पावकंप्राप्यसाब्रवीत् ॥ ९६ ॥ मामग्नेकामसन्तप्तां
त्वंकामयितुमर्हसि ॥ नचेत्करिष्यसेदेव मृतांमामुपधारय ॥ ९७ ॥ अहमङ्गिरसोभार्या शिवानामहुताशन ॥ सर्वासि
स्सहिताप्राप्ता ताश्चायास्यन्त्यनुक्रमात् ॥ ९८ ॥ अस्माकंत्वंप्रियोनित्यमुचितंयत्तदाचर ॥ ततस्सकामसंतप्तः सं
भूतस्तयासह ॥ ९९ ॥ प्रीतप्रीताचसादेवी निर्जगामवनान्तरात् ॥ चिन्तयन्तीममेदंच रूपंद्रक्ष्यन्तिकानने ॥ १०० ॥
तेब्राह्मणीनांपतयो दोषंवक्ष्यन्तिपावकात् ॥ तस्मादेतद्द्रक्ष्यमाणागरुडंसम्भवाम्यहम् ॥ १ ॥ सुपर्णीसाततोभूता दद
र्शश्वेतपर्वतम् ॥ शरस्तंबैस्सुसंपृक्तं रक्षोभिश्चपिशाचकैः ॥ २ ॥ सातत्रसहसागत्वा शैलपृष्ठंसुदुर्गमम् ॥ प्राक्षिपत्का
ञ्चनेकुण्डे शुक्रंतद्धारणोत्तमा ॥ ३ ॥ शिष्टानामपिदेवीनां सप्तर्षीणांमहात्मनाम् ॥ पत्नीसरूपतांकृत्वा कामयामास

प्रसन्न होगई याने रमण किया और यह विचारती हुई वनके बीचसे निकली कि वनमें ब्राह्मणियों के पति वे सप्तर्षि मेरा यह रूप देखैंगे व अग्निसे दोषको कहैंगे
इस लिये जो यह गरुड देख पडताहै मैं वही होजाऊ ॥ १०० । १ ॥ तदनन्तर वह गरुडी होगई और राक्षसों व पिशाचोंसे व्याप्त उस तडाग और श्वेतपर्वतको
उसने देखा ॥ २॥ व उस वीर्यके धारने में असमर्थ उसने वहां बड़े दुर्गम पर्वतके पृष्ठमें अचानकही जाकर व सोनेके कुण्डमे उसको फेंक दिया ॥ ३ ॥ और सप्तर्षि

महात्माओं की शेष जो देवीं स्त्री थीं उनके भी स्वरूपको करके अग्निको काम के संयुत कराया ॥ ४ ॥ और उसके तपके प्रभावसे और पतिकी सेवासे अरुंधती का दिव्यरूप वह न धारण करसकी ॥ ५ ॥ हे कुरुनायक ! अग्निने उनमें छह बार करके वीर्यको प्रक्षेप किया और स्वाहासे उस कुंड को अधिकतामें प्राप्त होनेपर ॥ ६ ॥ तदनन्तर अग्नि ने दुःख से शोचा व मोहित हुये कि अहो मैंने पाप किया व इसीकारण शरीरके त्यागने में बुद्धि की ॥ ७ ॥ तदनन्तर उनसे आकाशवाणी बोली कि मरण मत कीजिये क्योंकि यह होनहार था व हे अग्ने ! भावी वस्तु से कौन छूटता है ॥ ८ ॥ व होनहार वस्तु से भी तुम ने जिस लिये चित्त से उस

पावकम् ॥ ४ ॥ दिव्यंरूपमरुन्धत्याः कर्तुन्नशकितंतया ॥ तस्यास्तपःप्रभावेण भर्तुःशुश्रूषणेनच ॥ ५ ॥ षट्कृत्वस्ता सुविक्षिप्तमग्निरेतःकुरूद्वह ॥ तस्मिन्कुण्डेचबहुले प्रतिपाद्येचस्वाहया ॥ ६ ॥ ततश्चपावकोदुःखाच्छुशोचचमुमो हच ॥ अहःपापंकृतमित्येव देहन्यासेकरोन्मतिम् ॥ ७ ॥ ततस्तंखेचरीवाणी प्राहमामरणंकुरु ॥ भाव्यमेतच्चभाव्यर्था त् कोहिपावकमुच्यते ॥ ८ ॥ भाव्यर्थेनापियत्तेच परदारोपसेवनम् ॥ कृतंतच्चेतसातेन त्वामजीर्णम्भविष्यति ॥ ९ ॥ श्वेतकेतोर्महायज्ञे घृतधाराभितर्प्पणात् ॥ शोकंचत्यजनैतास्ताः स्वाहैवेयंतवप्रिया ॥ १० ॥ श्वेतपर्वतकुण्डस्थं पु त्रंचद्रष्टुमर्हसि ॥ ततोवह्निस्तत्रगत्वा ददर्शतनयंप्रभुम् ॥ ११ ॥ अर्जुनउवाच ॥ कस्मात्स्वाहाकरोद्रूपं षण्णांतासां महामुने ॥ यास्ताभर्त्तृपरास्साध्व्यस्तपस्विन्योऽग्निसन्निभाः ॥१२॥ नबिभेतिचकिन्ताभ्यः षड्भ्यःस्वाहापराधिनी ॥ भर्तृभक्त्याजगद्दग्धुं यतःशक्ताश्चतामुने ॥ १३ ॥ नारदउवाच ॥ सत्यमेतत्कुरुश्रेष्ठ शृणुतत्रापिकारणम् ॥ येनतासां

पराई स्त्री का सेवन किया उस से श्वेतकेतु की बडी भारी यज्ञ में घृतधारा की तृप्ति से तुम को अजीर्ण होगा और शोच छोडिये क्योंकि ये सप्तर्षियो की वे स्त्रियां नहीं है किन्तु यह तुम्हारी स्त्री स्वाहा ही है ॥ ९ । १० ॥ व श्वेतपर्वत के ऊपर कुड मे टिके हुये पुत्र को देखने के योग्यहो तदनन्तर अग्नि ने वहा जाकर समर्थ पुत्र को देखा ॥ ११ ॥ अर्जुन जी बोले कि हे महामुने ! स्वाहा ने किस लिये उन छहों स्त्रियों का रूप किया जो वे किं पति में परायण व उत्तम आचार वाली तथा तपस्विनी व अग्निके समान थीं ॥ १२ ॥ हे महामुने ! अपराधवाली स्वाहा क्या उन छहो से नही डरती थीं क्योंकि पति की भक्ति से वे संसार को जलाने

के लिये समर्थ हैं ॥ १३ ॥ नारद जी बोले कि हे कुरुश्रेष्ठ । यह सत्य है उस कारण को भी सुनिये कि जिस से उन का रूप कियागया व उन्होंने शाप न दिया ॥ १४ ॥
जोकि पहले अग्निने एकही बार शिवजीका वीर्य उन गंगामे फेंकदिया था उसको ज्ञानभावसे उन छहों स्त्रियोंने धारण किया ॥ १५ ॥ तदनन्तर उस तेजसे मोहित
होती हुई विकलहोकर वे अपने २ पतियों की लज्जासे एकान्त में गंगाके किनारे बैठगईं ॥१६॥ इस समयको देखकर मनोरथ को चाहती हुई स्वाहाने उनके शरीर
में पैठकर उस वीर्यको हरलिया॥१७॥ व जिस प्रकार मैंने तुमसे कहाहै वैसेही अग्निके साथ क्रीड़ा किया हे भारत ! इस उपकारको स्मरण करतीहुई उन्होंने ॥१८॥

कृतंरूपं नवाशापंददुश्चताः ॥ १४ ॥ यत्तुतद्वह्निनादिप्तंरुद्रतेजःसकृत्पुरा ॥ गङ्गायांतत्रदधुस्ताः षट्पत्न्योज्ञानभाव
तः ॥ १५ ॥ ततस्ताविह्वलीभूतास्तेजसातेनमोहिताः ॥ लज्जयास्वस्वभर्तॄणां गङ्गातीरस्थितारहः ॥ १६ ॥ एतदन्त
रमालोक्य चिकीर्षन्तीमनीषितम् ॥ स्वाहाशरीरमाविश्यतासान्तेजोजहारतत् ॥ १७ ॥ चिक्रीडवह्निनाचापि यथाते
कथितम्मया ॥ उपकारमिमन्ताभिःस्मरन्तीभिश्चभारत ॥ १८ ॥ नशप्तासायतःशापो नदेयश्चोपकारिणे ॥ ततस्स
मर्षयोज्ञात्वा ज्ञानेनशुचिताङ्गताः ॥ १९ ॥ तत्यजुस्तेतदापत्नीर्विनादेवीमरुन्धतीम् ॥ विश्वामित्रस्तुभगवान् कुमारंश
रणङ्गतः ॥ २० ॥ स्तवंदिव्यंसम्प्रचक्रे महासेनस्यचापिसः ॥ अष्टोत्तरशतन्नाम्नां शृणुत्वंतानिफाल्गुन ॥ २१ ॥ ज
पेनयेषांपापानि यान्तिज्ञानमवाप्नुयात ॥ त्वंब्रह्मवादीत्वंब्रह्मा ब्रह्मब्राह्मणवत्सलः ॥ २२ ॥ ब्रह्मण्योब्रह्मदेवश्च ब्रह्मदो
ब्रह्मसंग्रहः ॥ त्वंपरंपरमन्तेजो मङ्गलानाञ्चमङ्गलम् ॥ २३ ॥ अप्रमेयगुणश्चैव मन्त्राणांमन्त्रगोभवान् ॥ त्वंसावित्रीम

उसको शाप नहीं दिया क्योंकि उपकारी के लिये शाप न देना चाहिये तदनन्तर उन सप्तर्षियों ने पवित्रताको प्राप्तहुई उन स्त्रियोंको ज्ञानसे जानकर उस
समय अरुंधती देवीको छोडकर स्त्रियोंको त्यागदिया और भगवान् विश्वामित्रजी स्वामिकार्त्तिकेयकी शरणमें गये ॥ १९ । २० ॥ व उन्होंने स्वामिकार्त्तिकेय जी के
एकसौ आठ नामोंसे दिव्य स्तुतिभी किया हे अर्जुन ! उन नामोंको सुनिये ॥ २१ ॥ कि जिनके जपसे पाप चले जातेहैं व ज्ञानको प्राप्त होताहै तुम ब्रह्मवादी हो और
तुम ब्रह्मा व ब्रह्म तथा ब्राह्मणप्रिय हो ॥ २२ ॥ व ब्राह्मणों को माननेवाले, ब्रह्मदेव, ब्रह्मदायक व ब्रह्म (वेद) के संग्रहकर्त्ताहो तुम श्रेष्ठहो व उत्तम तेज तथा

मंगलोंके भी मंगलहो ॥२३॥ व असंख्य गुणोंवाले तथा मन्त्रोंके मध्यमें मन्त्रगामी आपहो हो व सावित्रीमय देवता तुम्हींहो और सब कहीं शत्रुवोंसे अजितहो ॥२४॥ व छह अक्षरवाले मन्त्रोंमे सर्वात्मक मन्त्रदेव तुम्हीं हो व गौवोंके पुत्र, दैत्यनाशक, सम्भव व संसारको उत्पन्न करनेवाले तुम्हीं हो ॥ २५ ॥ व पिनाकधारी, शत्रुनाशक, कूटस्कन्द व सुरों के अग्रगामी और द्वादश, भूर्भुवभावी व भूमिके पुत्र तथा नमस्कृतहो ॥ २६ ॥ नागराज, सुधर्मात्मा, स्वर्गपृष्ठ, सनातन,हेमगर्भ, महागर्भ, जय व विजयेश्वर तुम्हींहो ॥२७॥ और तुम कर्त्ता व तुम्हीं विधाता व नित्य, अनित्य व शत्रुनाशक तुम्हींहो और महासेन, महातेजस्वी वीरसेन व भूपति तुम्हीं

योदेवः सर्वत्रैवपराजितः ॥ २४ ॥ मन्त्रस्सर्वात्मकोदेवः षडक्षरवतांवरः ॥ गवाम्पुत्रःसुरारिघ्नस्सम्भवोभवभावनः ॥ २५ ॥ पिनाकीशत्रुहाचैव कूटस्कन्दस्सुराग्रणीः ॥ द्वादशोभूर्भुवोभावीभुवःपुत्रोनमस्कृतः ॥ २६ ॥ नागराजःसुधर्मात्मा नाकपृष्ठस्सनातनः ॥ हेमगर्भोमहागर्भो जयश्चविजयेश्वरः ॥ २७ ॥ त्वङ्कर्त्तात्वंविधाताच नित्योनित्योऽरिमर्द्दनः ॥ महासेनोमहातेजा वीरसेनश्चभूपतिः ॥ २८ ॥ सुरसेनस्सुराध्यक्षो भीमसेनोनिरामयः ॥ शौरिर्यदुर्महातेजा वीर्यवान्सत्यविक्रमः ॥ २९ ॥ तेजोगर्भोसुररिपुस्सुरमूर्तिःसुरोर्जितः ॥ कृतज्ञोवरदःसत्यः शरण्यस्साधुवत्सलः ॥ ३० ॥ सुव्रतः सूर्यसङ्काशो वह्निगर्भोरणोत्सुकः ॥ पिप्पलीशीघ्रगोरौद्रिर्गाङ्गेयोरिपुदारणः ॥ ३१ ॥ कार्त्तिकेयःप्रभुःक्षान्तो नीलदंष्ट्रो महामनाः ॥ निग्रहोनिग्रहाणाञ्च नेतात्वंदैत्यसूदनः ॥ ३२ ॥ प्रग्रहःपरमन्दानः क्रोधघ्नस्तारकोच्छिदः ॥ कुक्कुटीवहुलोवादी कामदोभूरिवर्द्धनः ॥ ३३ ॥ अमोघोमृतदोह्यग्निश्शत्रुघ्नस्सर्वबोधनः ॥ अनघोह्यमरःश्रीमानुन्नतोह्यग्निस

हो ॥ २८ ॥ व सुरसेन, सुराध्यक्ष, भीमसेन, निरामय, शौरि, यदु, महातेजा, वीर्यवान् व सत्यविक्रम तुम्हींहो ॥ २९ ॥ और तेजोगर्भ, असुररिपु,सुरमूर्त्ति, सुरोर्जित. कृतज्ञ, वरद, सत्य, शरण्य व साधुवत्सल तुम्ही हो ॥३०॥ व सुव्रत, सूर्यसंकाश,वह्निगर्भ, रणोत्सुक, पिप्पली, शीघ्रगामी, रौद्रि, गांगेय व शत्रुदारण तुम्हींहो ॥३१॥ व कार्त्तिकेय, प्रभु, क्षान्त, नीलदंष्ट्र, महामन, निग्रह व निग्रहों के स्वामी व दैत्यनाशक तुम्हींहो ॥ ३२ ॥ व प्रग्रह, परमंदान, क्रोधघ्न व तारकनाशक,कुक्कुटी, वहुल, वादी, कामदायक व भूरिवर्द्धन तुम्हींहो ॥ ३३ ॥ व अमोघ,अमृतदाता, अग्नि, शत्रुनाशक, सर्वबोधन, अनघ, अमर, श्रीमान्, उन्नत, व अग्निसम्भव

हो ॥ ३४ ॥ व पिशाचराज, सूर्याभ, शिवात्मा व सनातन तुम्हींहो इस प्रकार समस्त प्राणियों के ईश्वर उन स्वामिकार्त्तिकेय जी की स्तुति विश्वामित्र महर्षिने एक सौ आठ नामोंसे किया व प्रसन्नमूर्त्तिवाले इन स्वामिकार्त्तिकेय ने मुनिनायकसे यह कहा कि वर मांगिये ॥ ३५ । ३६ ॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! तुमसे बनाई हुई यह स्तुति पृथ्वीमें मनुष्योंके अभिलाषकी प्राप्तिके लिये होगी ॥ ३७ ॥ जो मनुष्य इस स्तोत्रको पढ़ैगा उसके वंशमें लक्ष्मी बढ़ैगी और न राक्षस, न भूत, पिशाच और न विप-त्तिया ॥ ३८ ॥ उस घरमें विघ्नकारक होवैगी कि जहां मनुष्य इस प्रकार मेरी स्तुति करते हैं वह पुरुष दुःस्वप्न नहीं देखताहै व बँधाहुआ पुरुष बंधन से छूटजाता

स्तवः ॥ ३४ ॥ पिशाचराजस्सूर्याभः शिवात्मात्वंसनातनः ॥ एवंससर्वभूतानांसंस्तुतःपरमेश्वरः ॥ ३५ ॥ नाम्नामष्ट
शतेनायं विश्वामित्रमहर्षिणा ॥ प्रसन्नमूर्त्तिराहेदं मुनीन्द्रंव्रियतामिति ॥ ३६ ॥ ममत्वयाद्विजश्रेष्ठस्तुतिरेषाविनिर्मि
ता ॥ भविष्यतिमनोभीष्टप्राप्तयेप्राणिनाम्भुवि ॥ ३७ ॥ विवर्द्धतेकुलेलक्ष्मीस्तस्ययःप्रपठेदिमम् ॥ नराक्षसाःपिशा
चाश्च नभूतानिनचापदः ॥ ३८ ॥ विघ्नकारीणितद्गेहे यत्रैवंसंस्तुवन्तिमाम् ॥ दुःस्वप्नंनचपश्येत्सबद्धोमुच्येतबन्धना
त् ॥ ३९ ॥ स्तवस्यास्यप्रभावेण दिव्यभावःपुमान्भवेत् ॥ त्वंचमांश्रुतिसंस्कारैःसर्वैःसंस्कर्तुमर्हसि ॥ ४० ॥ संस्काररं
हितंजन्म यतश्चपशुवत्स्मृतम् ॥ त्वंचमद्वरदानेन ब्रह्मर्षिश्चभविष्यसि ॥ ४१ ॥ ततोमुनिस्तस्यचक्रे जातकर्मादि
काःक्रियाः ॥ पौरोहित्यंतथामेजे स्कन्दस्यैवाज्ञयाप्रभोः ॥ ४२ ॥ ततस्तंवह्निरभ्यागाद्ददर्शचसुतंगुहम् ॥ षट्शीर्षं द्विगुण
श्रोत्रंद्वादशाक्षिभुजक्रमात् ॥ ४३ ॥ एकग्रीवंह्येककायं कुमारंसव्यलोकयत् ॥ प्रथमेहनिकललं द्वितीयेविक्रियां

है ॥ ३९ ॥ इस स्तोत्रके प्रभावसे पुरुष देवभाव होजाता है और तुम सब वेदों के संस्कारों से संस्कार करने योग्यहो ॥ ४० ॥ क्योंकि संस्कार से रहित जन्म पशुकी नाईं कहागया है व तुम मेरे वरदान से ब्रह्मर्षि होगे ॥ ४१ ॥ तदनन्तर विश्वामित्र मुनिने उनकी जातकर्मादिक क्रियाओं को किया व स्वामिकार्त्तिकही स्वामी की आज्ञासे पुरोहिती सेवन किया ॥ ४२ ॥ तदनन्तर अग्निजी उनके समीप आये व छह शिरों तथा दूने याने बारह कानोंवाले व क्रमसे बारह नेत्रों व भुजाओंवाले स्वामि-कार्त्तिकेय पुत्रको देखा ॥ ४३ ॥ और एक ग्रीवा व एकही देहवाले स्वामिकार्त्तिकेय जीको उन अग्निने देखा पहले दिन कललहुआ व दूसरे दिन विकारको प्राप्तभया

याने अंगवान् होगया ॥ ४४ ॥ तीजको बालक होगया व चौथिको पूर्णही हुआ इसके अनन्तर वे पंचमी में संस्कार कियेगये व अग्निकोभी देखा ॥ ४५ ॥ तदनन्तर हे अर्जुनजी ! अग्निने उनको लिपटालिया व चुम्बन किया और हे पुत्र ! ऐसा कहकर आपही उनके लिये अस्त्रदिया ॥ ४६ ॥ व उन स्वामिकार्त्तिकेय ने शक्तिको लेकर अग्निको प्रणामकर श्वेतपर्वतके शिखरपै भलीभाति चढ़कर मुखों से दशों दिशाओं को देखते हुये ॥ ४७ ॥ और दैत्यों समेत संसारको डरवाते हुये भयंकर शब्द किया उसके उपरान्त दश पद्म राक्षसोंसे घिराहुआ श्वेतपर्वतके शिखरको ॥ ४८ ॥ बलसे शक्तिके द्वारा तोडडाला जोकि चारसौ कोस चौंडाथा वह एकही प्रहारसे खण्ड २

गतम् ॥ ४४ ॥ तृतीयेह्निशिशुर्जातश्चतुर्थेपूर्णएवच ॥ पञ्चमेसंस्कृतस्सोभूत् पावकंचाप्यपश्यत् ॥ ४५ ॥ ततस्तंपावकःपार्थ आलिलिङ्गचुचुम्बच ॥ पुत्रेतिचोक्त्वातस्मैसशक्त्यस्त्रमददात्स्वयम् ॥ ४६ ॥ सचशक्तिंसमादाय नमस्कृत्यचपावकम् ॥ श्वेतशृङ्गंसमारूढो मुखैःपश्यन्दिशोदश ॥ ४७ ॥ व्यनदद्भैरवन्नादं त्रासयन्सासुरंजगत् ॥ ततःश्वेतगिरेःशृङ्गं रक्षःपद्मदशावृतम् ॥ ४८ ॥ बिभेदतरसाशक्त्या शतयोजनविस्तृतम् ॥ तदेकेनप्रहारेण खण्डशःपतितंभुवि ॥ ४९ ॥ चूर्णीकृताराक्षसास्ते सततंधर्म्मशत्रवः ॥ ततःप्रव्यथिताभूमिर्व्यशीर्यतसमन्ततः ॥ ५० ॥ भीताश्चपर्वतास्सर्वे चुक्रुशुःप्रलयेयथा ॥ सर्वेदेवास्समाजग्मुरिन्द्रेन्दुवरुणादयः ॥ ५१ ॥ नेशुश्चभूतानिभृशं त्राहित्राहीतिचाजगुः ॥ एवंश्रुत्वा ततोदेवा वासवन्तेतदाब्रुवन् ॥ ५२ ॥ येनैकेनप्रहारेण त्रैलोक्यंव्याकुलीकृतम् ॥ सतुक्रुद्धःक्षणाद्विश्वं संहरिष्यतिवासव ॥ ५३ ॥ वयञ्चपालनार्थाय सृष्टादेवेनवेधसा ॥ तच्चत्राणंसदाकार्यं प्राणैःकण्ठगतैरपि ॥ ५४ ॥ अस्माकंपश्यतामे

होकर भूमिमे गिरपडा ॥ ४९ ॥ और सदैव धर्मके वैरी वे राक्षस चूर्ण करदियेगये तदनन्तर बहुत दुःखित होतीहुई पृथ्वी सब ओर फटगई ॥ ५० ॥ व डरेहुये समस्त पर्वत प्रलयके समान चिल्लानेलगे और इन्द्रादिक व वरुणादिक सब देवता भलीभांति आये ॥ ५१ ॥ व बहुत प्राणी नाशहोगये व उन्होंने रक्षा कीजिये २ ऐसा कहा ऐसा सुनकर तदनन्तर उस समय वे देवता इन्द्रसे बोले ॥ ५२ ॥ कि जिसने एक ही प्रहारसे त्रिलोक को विकल करदिया है इन्द्रजी ! क्रोधित होताहुआ वह संसार को क्षणभरमे संहार करैगा ॥ ५३ ॥ और ब्रह्मादेवसे हमलोग पालने के लिये रचेगये हैं इससे प्राणोंके कण्ठगत होनेपर भी वह रक्षा सदैव करना चाहिये ॥ ५४ ॥

व हमलोगों के देखते हुये यदि संसार इस प्रकार क्षोभित होताहै तो वीरोंके जन्मको धिक्कारहै और क्षणभर में मरना प्रशंसा के योग्यहै ॥ ५५ ॥ इस लिये हे इन्द्र जी ! हम सबों समेत तुम इसके समीप चलने योग्यहो ऐसा कहेहुये व उसके बलको जानने की इच्छावाले इन्द्र बहुत अच्छा यह कहकर देवों समेत उस समय बहुत शीघ्रगये दुर्द्धर्ष व बड़े वेगवाली तथा शब्दकरती हुई उस सुरसेनाको देखकर स्वामिकार्त्तिकेय जीने समुद्रकी नाईं शब्दकिया व उनके बड़े शब्दसे क्षोभित समुद्र की नाईं ॥ ५६ । ५७ । ५८ ॥ चैतन्यताहीन सुरसेना जहां तहां ही घूमने लगी व उन स्वामिकार्त्तिकेय जीने मारनेकी इच्छावाले समीपमें प्राप्त देवताओं को देख

वं यदिसंक्षोभ्यतेजगत ॥ धिक्ततोजन्मवीराणां श्लाघ्यंहिमरणंक्षणात ॥ ५५ ॥ तदस्माभिस्सहैनंत्वं गन्तुमर्हसि वासव ॥ एवमुक्तस्तथेत्युक्त्वा देवैस्सार्द्धंतमभ्ययात ॥ ५६॥ विवित्सुस्तस्यवीर्यञ्च शक्रस्तूर्णतरन्तदा॥ उग्रंतच्चमहावेगं देवानीकंदुरासदम् ॥ ५७ ॥ नर्दमानंगुहःप्रेक्ष्य ननादजलधिर्यथा ॥ तस्यनादेनमहता समुद्धूतोदधिप्रभम्॥५८॥ बभ्रामयत्रतत्रैव देवसैन्यमचेतनम ॥ जिघांसूनुपसंप्राप्तान्देवान्दृष्ट्वासपावकिः ॥ ५९ ॥ विससर्जमुखात्तत्र प्रवृद्धाः पावकार्चिषः ॥ अदहद्देवसैन्यानि चेष्टमानानिभूतले ॥ ६० ॥ तेप्रदीप्तशिरोदेहाः प्रदीप्तायुधवाहनाः ॥ प्रच्युताःसहसा भान्तिदिवस्तारागणाइव ॥ ६१ ॥ दह्यमानाःप्रपन्नास्ते शरणंपावकात्मजम् ॥ देवावज्रधरंत्यक्त्वा ततःशान्तिमुपागताः॥ ६२॥ त्यक्तोदेवैस्तदाशक्रः स्कन्दंवज्रमवासृजत ॥ तद्विसृष्टंजघानाशु पार्श्वंस्कन्दस्यदक्षिणम् ॥ ६३॥ बिभेदच कुरुश्रेष्ठ पार्श्वंतस्यमहात्मनः ॥ वज्रप्रहारात्स्कन्दस्य संजातःपुरुषोपरः ॥ ६४ ॥ युवाकाञ्चनसन्नाहःशक्तिधृग्दिव्य

कर ॥ ५९ ॥ वहां मुखसे बढ़ीहुई अग्निकी ज्वालाओं को पैदा किया और पृथ्वी में चेष्टा करती हुई देवसेनाओंको जलाया ॥ ६० ॥ और प्रकाशित शिर व शरीरवाले तथा प्रदीपित अस्त्रों व सवारियोंवाले वे देवता अकस्मात् आकाशसे गिरेहुये नक्षत्रगणोंकी नाईं शोभित होतेथे ॥ ६१ ॥ व जलते हुये वे देवता स्वामिकार्त्तिकेय जी की शरणमें प्राप्तहुये तदनन्तर वज्रधारी इन्द्रको छोड़कर देवता शान्तिको प्राप्तहुये ॥ ६२ ॥ व देवताओं से त्यागेहुये इन्द्रने उस समय स्वामिकार्त्तिकेय जी के ऊपर वज्रको छोड़ा व उनसे छोड़ेहुये उस वज्रने शीघ्रही स्वामिकार्त्तिकेय जी के दाहिने पांजरको हननकिया ॥ ६३ ॥ व हे कुरुश्रेष्ठ ! उन स्वामिकार्त्तिकेय महात्मा के पांजर

को फाडडाला व स्वामिकार्त्तिकेय जीके ऊपर वज्रके प्रहारसे और पुरुप पैदाहुआ ॥ ६४ ॥ जोकि युवा व सोनेकी कवच पहने, शक्तिको धारे और उत्तम कुण्डलों को पहने था व शाख ऐसे प्रसिद्ध उस पुरुषने भी बहुतही अद्भुत शब्दकिया ॥ ६५ ॥ तदनन्तर क्रोधित होतेहुये इन्द्रने फिर स्कन्दके हृदयको विदीर्ण किया उसमें भी नैगमेय ऐसा प्रसिद्ध वैसाही पुरुप पैदाहुआ ॥ ६६ ॥ तदनन्तर शीघ्रता समेत स्वामिकार्त्तिकेयादिक जब शब्दकर उन इन्द्रके समीपआये तब वज्रको छोडकर इन्द्र हाथजोडके शरणमें प्राप्तहुये ॥ ६७ ॥ व श्रेष्ठ स्वामिकार्त्तिकेय जी ने सेनासमेत उसको अभय दिया तदनन्तर प्रसन्न होतेहुये देवताओं ने बाजोंको बजाया ॥ ६८ ॥

कुण्डलः ॥ शाखइत्यभिविख्यातःसोपिनानद्तेद्भुतम् ॥ ६५ ॥ ततश्चेन्द्रःपुनःक्रुद्धो हृदिस्कन्दंव्यदारयत् ॥ तत्रापिता दृशोजज्ञे नैगमेयइतिश्रुतः ॥ ६६ ॥ ततोविनद्यस्कन्दाद्याःसत्वरास्तंयदाययुः ॥ तदेन्द्रोवज्रमुत्सृज्य प्राञ्जलिःशरणं ययौ ॥ ६७ ॥ तस्याभयंददौस्कन्दः सहसैन्यस्यसत्तमः ॥ ततःप्रहृष्टास्त्रिदशा वादित्राण्यभ्यवादयन् ॥ ६८ ॥ वज्रप्र हारात्कन्याश्च जज्ञिरेचमहाबलाः ॥ हरन्तिताःसृष्टिजातान् गर्भस्थांश्चैवदारुणाः ॥ ६९ ॥ काकीचहिलिमाचैव रुद्राच वृषलातथा ॥ आर्यापलालावैचित्रा सप्तैताःशिशुमातरः ॥ ७० ॥ एतासांवीर्यसम्पन्नः शिशुश्चाभूत्सुदारुणः ॥ स्क न्दप्रसादजःस्कन्दं हिरण्यकवचंसुरम् ॥ ७१ ॥ लोहिताम्बरसंवीतं त्रैलोक्स्यापिसुप्रियम् ॥ युवानंश्रीःस्वयंभेजे तंप्र णम्यशरीरिणम् ॥ ७२ ॥ श्रियाजुष्टंचतंप्राहुस्सर्वेदेवाःप्रणम्यवै ॥ हिरण्यवर्णभद्रन्ते लोकानांशङ्करोभव ॥ ७३ ॥ भ

और वज्रके मारनेसे बडी बलिष्ठ कन्याये पैदाहुई थीं वे भयंकर कन्यायें गर्भ में टिकेहुये सृष्टिमें उत्पन्न जीवोंको हरती हैं ॥ ६९ ॥ काको, हिलिमा, रुद्रा, वृषला व आर्या, पलाला और वैचित्रा ये सातों बालमातायें है ॥ ७० ॥ इन सबों के पराक्रम से संयुत बडा भयंकर पुत्र हुआ जोकि स्वामिकार्त्तिकेय की प्रसन्नतासे पैदाहुआ था और सुवर्णकी कवचवाले व लाल वसन पहने तथा त्रिलोक के भी बडे प्यारे व युवा, शरीरधारी उन स्वामिकार्त्तिकेय देवजी को आपही लक्ष्मीजी ने प्रणामकर सेवन किया ॥ ७१ । ७२ ॥ लक्ष्मीसे सेवित उन स्वामिकार्त्तिकेय जीको समस्त देवताओं ने प्रणामकर कहा कि हे स्वर्णवर्ण ! तुम्हारा कल्याण होवै तुम लोकोंके

कल्याणकारक होवो ॥ ७३ ॥ हे स्वामिन् ! त्रिलोक के कल्याण के लिये आप हम सबोंके इन्द्र होवो ॥ ७४ ॥ स्वामिकार्त्तिकेयजी बोले कि हे सुरश्रेष्ठो ! सब लोकों के इन्द्र यहा क्या करते हैं व सुरेश्वर किस प्रकार सुरसमूहों को नित्यही पालते हैं ॥ ७५ ॥ देवता बोले कि देवोंके स्वामी इन्द्र प्राणियों तथा समस्त देवताओं को बल, तेज, सन्तान सुख व बुद्धिको देते हैं ॥ ७६ ॥ व अत्यन्त बलिष्ठ इन्द्र दुष्टोंको नाशते हैं और उत्तम आचरणवालोंको सुखदेते हैं और कार्योंमें प्राणियोंके अनुगामी होते हैं ॥ ७७ ॥ सूर्य न होनेपर सूर्य व चन्द्रमा न होनेपर वे इन्द्र चन्द्रमा होते हैं और अग्नि तथा पृथ्वीमें जीने का कारण पवन होते हैं ॥ ८८ ॥ इन्द्र रो

वानिन्द्रोस्तुनोनाथ त्रैलोक्यस्यहितायवै ॥ ७४ ॥ स्कन्दउवाच ॥ किमिन्द्रस्सर्वलोकानां करोतीहसुरोत्तमाः ॥ कथन्देवगणांश्चैव पातिनित्यंसुरेश्वरः ॥ ७५ ॥ देवाऊचुः ॥ इन्द्रोदिशतिभूतानां वलंतेजःप्रजांसुखम् ॥ प्रज्ञांप्रयच्छतितथासर्वान्देवान्सुरेश्वरः ॥ ७६ ॥ दुर्वृत्तानांसंहरति वृत्तस्थानांप्रयच्छति ॥ अनुयातिचभूतानि कार्येषुवलवत्तरः ॥ ७७ ॥ असूर्येसभवेत्सूर्यस्तथाचन्द्रेचचन्द्रमाः ॥ भवत्यग्निश्चवायुश्च पृथिव्यांजीवकारणम् ॥ ७८ ॥ एतदिन्द्रेणकर्त्तव्यमिन्द्रेहिविपुलंवलम् ॥ त्वंचेन्द्रोभवनोवीर तारकंजहितेनमः ॥ ७९ ॥ इन्द्रउवाच ॥ भवत्वेन्द्रोमहाबाहो सर्वेषान्नःसुखावहः ॥ प्रणम्यप्रार्थयेस्कन्द तारकंजहिरक्षनः ॥ ८० ॥ स्कन्दउवाच ॥ शाधित्वमेवत्रैलोक्यं भवानिन्द्रोस्तुसर्वदा ॥ करिष्येचैन्द्रकर्माणि नममेन्द्रत्वमीप्सितम् ॥ ८१ ॥ त्वमेवराजाभद्रन्ते त्रैलोक्यस्यममैवच ॥ करोमिकिञ्चतेशक्र शासनंब्रूहितन्मम ॥ ८२ ॥ इन्द्रउवाच ॥ यदिसत्यमिदंवाक्यं निश्चयाद्भाषितंत्वया ॥ अभिषिञ्चामिदेवानां सेनापत्ये

यही करने योग्य कार्य है और इन्द्रमे बडा पराक्रम होताहै हे वीर ! हमलोगों के तुम इन्द्र होवो व तारकासुर को मारो तुम्हारे लिये प्रणामहै ॥ ७९ ॥ इन्द्र बोले कि हे महाबाहो ! हम सबोंके सुखदायक इन्द्र होवो हे स्कन्दजी ! प्रणाम करके प्रार्थना करते हैं कि तारकको मारिये व हमलोगों की रक्षा कीजिये ॥ ८० ॥ स्वामिकार्त्तिकेयजी बोले कि तुम्ही त्रिलोक की राज्यकरो व आप सदैव इन्द्रहोवो और मैं इन्द्र के कर्मोंको करूंगा मुझको इन्द्र होना प्यारा नहीं है ॥ ८१ ॥ हे इन्द्रजी ! तुम्हारा कल्याण होवै त्रिलोक के व मेरे तुम्ही राजा होवो तुम्हारा क्या कार्य करूं उस आज्ञाको मुझसे कहिये ॥ ८२ ॥ इन्द्र बोले कि निश्चय से तुम करके कहाहुआ

यदि यह वचन सत्यहै तो हे महाबल ! देवोंकी सेनाध्यक्षता में अभिषेक करूं ॥८३॥ तुम्हारे वचनसे मैं इन्द्रहूंगा तुमको यशहोवै ॥ ८४ ॥ स्वामिकार्त्तिकेय जी बोले कि दानवों के विनाशके लिये व देवोंके प्रयोजन की सिद्धिके लिये तथा गऊ, ब्राह्मण के लिये तुम्हारा वचन ऐसाही होवै ॥८५॥ ऐसा कहने पर देवताओं का बड़ाभारी शब्दहुआ व त्रिलोक को कम्पकारक सब भी प्राणियों का शब्दहुआ ॥ ८६ ॥ व जयहो इस प्रकार इनकी स्तुति किया व बाजाओं को बजाया और नृत्य तथा गान व प्रणाम किया ॥ ८७ ॥ उस बड़ेभारी शब्दसे विस्मय में प्राप्तहोती हुई पार्वती ने शिवजी से कहा कि हे देव ! यह कौन बड़ाभारी शब्द होता है ॥ ८८ ॥ शिवजी

महाबल ॥ ८३ ॥ अहमिन्द्रोभविष्यामि तववाक्याद्यशोस्तुते ॥ ८४ ॥ स्कन्दउवाच ॥ दानवानांविनाशाय देवाना मर्थसिद्धये ॥ गोब्राह्मणस्यचार्थाय एवमस्तुवचस्तव ॥ ८५ ॥ इत्युक्तेतुमहान्नादः सुराणामभ्यजायत ॥ भूतानांचा पिसर्वेषां त्रैलोक्याःकम्पकारकः ॥ ८६ ॥ जयेतितुष्टुवुश्चैनं वादित्राण्यभ्यवादयन् ॥ ननृतुश्चजगुश्चैनं नमस्कारांश्च चक्रिरे ॥८७॥ तेनशब्देनमहता विस्मितानगनन्दिनी ॥ शङ्करंप्राहकोदेव नादोयमतिवर्त्तते ॥ ८८ ॥ रुद्रउवाच ॥ अ द्यनूनंप्रहृष्टानां सुराणांविविधागिरः ॥ श्रूयन्तेचततोदेवि यतोजातःसुतस्तव ॥ ८९ ॥ गवाञ्चब्राह्मणानांच साध्वीना ञ्चदिवौकसाम् ॥ मार्जयिष्यतिचाश्रूणि पुत्रस्तेपुण्यवत्यसि ॥ ९० ॥ एवंवदतिसादेवीद्रष्टुमत्युत्सुकाभवत् ॥ शङ्क रश्चमहातेजाः पुत्रस्नेहोधिकोयतः ॥ ९१ ॥ वृषभन्तुसमारुह्य देव्यासहसमुत्सुकः ॥ सगणोभवआगच्छत्पुत्रदर्शन लालसः ॥९२॥ ततोब्रह्मामहासेनं प्रजापतिरथाब्रवीत् ॥ अभिगच्छमहादेवं पितरंमातरम्प्रभो ॥ ९३ ॥ अनयोर्वीर्यसंयो

बोले कि निश्चयकर आज प्रसन्न हुये देवताओं की अनेक प्रकारकी वाणी उसी कारणसे सुन पड़ती हैं कि जिस लिये हे देवि ! तुम्हारा पुत्र पैदाहुआ है ॥ ८९ ॥ और तुम्हारा पुत्र गौवों और ब्राह्मणों तथा पतिव्रताओं व देवताओं के आंसुवों को पोंछैगा इससे तुम पुण्यवती हो ॥ ९० ॥ ऐसा कहने पर वे देवी पुत्रको देखने के लिये उत्कण्ठित हुई और बड़े तेजस्वी शिवभी उत्कण्ठित हुये क्योंकि पुत्रका स्नेह बहुत होता है ॥ ९१ ॥ पुत्रके देखने की अति इच्छावाले, उत्कण्ठित शिवजी पार्वती देवी समेत बैलपै चढ़कर गणों समेत आये ॥ ९२ ॥ तदनन्तर प्रजापति ब्रह्माजी स्वामिकार्त्तिकेय से बोले कि हे प्रभो ! महादेव जी पिता व माता के

समीप जावो ॥ ९३ ॥ इन्हीं दोनों के वीर्य के संयोगसे तुम्हारी उत्पत्ति कहीगई है ऐसाही होगा यह कहकर बड़े बुद्धिमान् स्वामिकार्त्तिकेय जीने पिता महादेव व
माता को पूजन किया उसके उपरान्त उस पुत्रको लिपटाकर व बहुत देरतक आशीर्वादोंको युक्तकर ॥ ९४ । ९५ ॥ व पार्वती तथा शिवजी दोनों बहुत देरतक प्रसन्नहुये
व प्रसन्न होतेहुये शिवजी इन स्वामिकार्त्तिकेय को सिद्धके साराशका तत्त्व दिया ॥ ९६ ॥ और हर्षसे व्याप्त पार्वती देवीने प्रसन्न होकर मायासे मुक्तिको दिया इसी
अवसरमें ऋषियों से छोड़ीहुई छह देवी वहां आईं व उस समय उन स्वामिकार्त्तिकेयको हे पुत्र ! ऐसा कहकर तदनन्तर पार्वती ने यही कहा उसी बीचमें इन्द्रजी

**गात तवोत्पत्तिरुदाहृता ॥ एवमस्त्वितिचाप्युक्त्वा महासेनोमहेश्वरम् ॥ ९४ ॥ अपूजयदमेयात्मापितरंमातरंतथा ॥
ततस्तमालिङ्ग्यसुतं चिरंसंयोज्यचाशिषः ॥ ९५ ॥ चिरंजहृषतुश्चोभौपार्वतीपरमेश्वरौ ॥ सिद्धसारस्यतत्त्वञ्च ददौ
तुष्टोस्यशङ्करः ॥ ९६ ॥ देवीप्रकृतिमोक्षञ्च तुष्टाहर्षपरिप्लुता ॥ एतस्मिन्नेवकालेच षड्देव्यश्चसमागमन् ॥ ९७ ॥
ऋषिभिःसम्परित्यक्तास्तं पुत्रेतिजगुस्तदा ॥ पार्वतीचततःप्राह शक्रस्तत्रान्तरेब्रवीत ॥ ९८ ॥ रोहिण्याश्चानुजास्क
न्दस्पर्द्धमानाभिजित्स्वसा ॥ इच्छन्तीज्येष्ठतान्देवी पृथक्कृत्वञ्चतपोरता ॥ ९९ ॥ ततःप्रभृतिमूढोस्मितत्स्थानेस्थापयप्र
भो ॥ ततस्तथेतिप्रोक्तेच कृत्तिकास्तादिवङ्गताः ॥ २०० ॥ नक्षत्रंसर्पशीर्षाभम्माभातितदग्निदैवतम् ॥ अथैनमब्रवीत्स्वा
हा प्रियाचाहंमहार्चिषः ॥ १ ॥ तदग्नेःप्रियतान्देहि सहवासंसदैवच ॥ २ ॥ स्कन्दउवाच ॥ हव्यकव्यञ्चयत्किञ्चिद्
द्विजाहोष्यन्तिपावके ॥ तत्तेनाम्नाप्रदास्यन्ति वासःसार्द्धंभवेच्चवै ॥ ३ ॥ पावकःप्रार्थयामास यज्ञभागान्पुनःसुरम् ॥**

बोले ॥ ९७।९८ ॥ कि हे स्वामिकार्त्तिकेय जी ! अभिजित की बहन व रोहिणी की छोटी भगिनी याने कृत्तिका देवी ईर्षाको करके अलग ज्येष्ठता को चाहती हुई तपस्यामें
तत्पर है ॥ ९९ ॥ हे प्रभो ! तबसे लगाकर मैं मूढ़हूं इस लिये स्थान में स्थापित कीजिये तदनन्तर वैसाही होगा यह कहने पर वे कृत्तिकायें स्वर्गको चलीगईं ॥
२०० ॥ और अग्निदेवतावाला वह नक्षत्र सांपके मस्तक की नाईं शोभित है इसके अनन्तर स्वाहा ने इनसे कहा कि बड़ी ज्वालाओंवाले अग्नि की मैं स्त्री हूं ॥
१ ॥ इस लिये अग्निदेवको प्यारी होना व सदैवही समीप वास दीजिये ॥ २ ॥ स्वामिकार्त्तिकेयजी बोले कि ब्राह्मणलोग जो कुछ हव्य कव्य अग्निमें होम करेंगे वह

अभिषेक करावैंगे उस विषय में तुम आज्ञादेने योग्यहो जैसे कि हाथीके पांवमें सब पैरोंका अन्तर्भाव इच्छित होताहै ॥ ११॥ वैसेही महीसागर के जलमें समस्त तीर्थों का मध्य स्थानहै जैसे कि शिवजी समस्त देवमय कहेजाते हैं ॥१२॥ वैसेही महीसागर का संगम समस्त तीर्थों का स्थानहै व शिवजी अर्धनारीश्वर रूप जैसे सब कुछ देनेवाला है १३ ॥ वैसेही महीसागर का स्नान समस्त फलोंका दायक है हे स्कन्दजी ! जिसने यहा भक्तिभावमे पितरोंको तृप्त किया है ॥ १४ ॥ उससे सब तीर्थों में पितर तृप्त करायेगये इसमें सन्देह नही है और हृदय में यह न मानना चाहिये कि यह जल खारी है क्योंकि ॥ १५॥ जैसे कडुवा व तीखा आदि गौवोंका

च्यामहेत्वांच तत्रचादेष्टुमर्हसि ॥ यथाहस्तिपदेसर्वपदान्तर्भावइष्यते ॥ ११ ॥ सर्वतीर्थान्तरस्थानं तथार्णवमहीजले॥ सर्वभूतमयोयद्वत्त्र्यम्बकःपरिकीर्त्यते ॥१२॥ सर्वतीर्थपदस्तद्वन्महीसागरसङ्गमः ॥ अर्द्धनारीश्वरंरूपं यथारुद्रस्य सर्वदम् ॥ १३ ॥ तथामहीसमुद्रस्य स्नानंसर्वफलप्रदम् ॥ येनात्रपितरःस्कन्दतर्प्पिताभक्तिभावतः ॥ १४ ॥ तेनसर्वेषुतीर्थेषु तर्प्पितानात्रसंशयः ॥ नचैतद्धृदिमन्तव्यं क्षारमेतज्जलंहियत् ॥ १५ ॥ यथाकटुचतिक्तादि गवांग्रस्तंच क्षीरदम् ॥ एवमेवत्विदन्तोयं पितॄणांतृप्तिदायकम् ॥ १६ ॥ एवंब्रुवत्सुदेवेषुकपिलोपिमुनिर्जगौ ॥ सत्यमेतदुमापुत्र सर्वतीर्थमयीतदा ॥ १७ ॥ कर्दमेयस्त्वहमपि श्रुत्वातीर्थमहागुणान् ॥ सर्वांभुवंपरित्यज्य कृत्वात्राश्रममाश्रितः ॥ १८ ॥ ततोमहेश्वरःप्राह सत्यमेतत्सुरोदितम् ॥ ब्रह्मादयस्ततःप्राहुस्सर्वेभूयोपितेगुहम् ॥ १९ ॥ अत्राभिषेकंतेवीर करिष्यामस्समादिश ॥ ततस्सुविस्मितस्तत्र स्नात्वास्कन्दोमहामनाः ॥ २० ॥ अभिषिञ्चन्तुमान्देवा इतितानब्र

खायाहुआ तृणादि दूधदायक है ऐसेही यह जल पितरोंको परम तृप्तिदायक है ॥ १६ ॥ देवताओं के ऐसा कहते हुये उससमय कपिलमुनिने भी कहा कि हे पार्वतीपुत्र ! यह सत्यहै कि महीनदी समस्ततीर्थमयी है ॥ १७ ॥ कर्दम का पुत्र मैं भी तीर्थोंके बड़े गुणोंको सुनकर समस्त पृथ्वीको छोड़कर यहां आश्रम बनाकर स्थित होगया ॥ १८ ॥ तदनन्तर महादेव ने कहा कि देवताओं से कहाहुआ यह सत्यहै उसके उपरान्त उन ब्रह्मादिक सब देवताओं ने फिर भी स्वामिकार्त्तिकेय से कहा ॥ १९ ॥ कि हे वीर ! यहां हमलोग तुम्हारा अभिषेक करैंगे आज्ञा दीजिये तदनन्तर बड़े विस्मय में प्राप्त व उदार मनवाले स्वामिकार्त्तिकेय जीने उस में

नहाकर ॥ २० ॥ देवताओं से यह वचन कहा कि देवतालोग मेरा अभिषेक करैं तदनन्तर शास्त्रके द्वारा अभिषेक की सब सामग्रियों को मँगाकर ॥ २१ ॥ मुख्य चार ऋत्विजों ने मन्त्रसे पवित्र अग्निमें हवन किया ब्रह्मा, कपिल, बृहस्पति व चौथे विश्वामित्र थे ॥ २२ ॥ और अन्यभी वेदके पारगामी सैकड़ों मुनि वहा थे व हे भारत ! उस मन्त्रने वहां अद्भुत वस्तुको दिखलाया ॥२३॥ जो कि कुण्डके बीचमें प्राप्त अग्नि लिंगमूर्त्तिवाली देखपड़ी अग्निके बीचमें टिकाहुआ मैं ही नित्य हव्यको ग्रहण करताहूं ॥ २४ ॥ यह दिखाने के लिये व्यापक महादेव जी लिंगमूर्त्तिधारी हुये तदनन्तर प्रसन्न होतेहुये देवताओं ने उस बडे भारी लिंगको प्रणाम

वीदचः ॥ ततोऽभिषेकसम्भारान्सर्वान्संभृत्यशास्त्रतः ॥ २१ ॥ जुहुवुर्मन्त्रपूतेऽग्नौ चत्वारोमुख्यऋत्विजः ॥ ब्रह्माचकपिलोजीवो विश्वामित्रश्चतुर्थकः ॥ २२ ॥ अन्येचशतशस्तत्र मुनयोवेदपारगाः ॥ तत्राद्भुतञ्चमन्त्रस्स दर्शयामासभारत ॥ २३ ॥ यदग्निकुण्डमध्यस्थो लिङ्गमूर्तिर्व्यदृश्यत ॥ अहमेवाग्निमध्यस्थो हविर्गृह्णामिनित्यशः ॥ २४ ॥ एतत्सन्दर्शनार्थाय लिङ्गमूर्तिरभूद्विभुः ॥ तल्लिङ्गमतुलंदेवा नमश्चक्रुर्मुदान्विताः ॥ २५ ॥ सर्वपापापहंपार्थ सर्वकामफलप्रदम् ॥ तत्रहोमावसानेच दत्तेहिमवताशुभे ॥ २६ ॥ दिव्यरत्नान्वितेस्कन्दो निषण्णःपरमासने ॥ सर्वमङ्गलसम्भारैर्विधिमन्त्रपुरस्कृतः॥ २७॥ अभ्यषिञ्चंस्ततोदेवाः कुमारंशङ्करात्मजम् ॥ इन्द्रोविष्णुर्महावीर्यो ब्रह्मरुद्रौचफाल्गुन॥ २८ ॥ आदित्याद्याग्रहास्सर्वे तथाभावनिलानलौ ॥ आदित्यावसवोरुद्राः साध्याश्चैवाश्विनावुभौ ॥ २९ ॥ विश्वेदेवाश्चमरुतो गन्धर्वाप्सरसस्तथा ॥ देवब्रह्मर्षयश्चैव बालखिल्याःसरीसृपाः ॥ ३० ॥ विद्याधरायोगसिद्धाः पुलस्त्यपुल

किया ॥ २५ ॥ हे अर्जुन ! जोकि सब पापोंका विनाशक व समस्त कामनाओं का फलदायकहै और वहां होमके अन्तमें जब हिमवान् ने दिव्य रत्नोंसे संयुत उत्तम वस्तु दिया तब समस्त मंगल की सामग्रियों से विधिपूर्वक पूजित स्वामिकार्त्तिकेयजी उत्तम आसनपै बैठे ॥ २६ ।२७ ॥ तदनन्तर देवोंने शिवजीके पुत्र स्वामिकार्त्ति-कजी का अभिषेक किया हे अर्जुन जी ! इन्द्र व बडे पराक्रमी विष्णु, ब्रह्मा, महादेव ॥ २८ ॥ व सूर्यादिक समस्त ग्रह वैसेही पवन, अग्नि, आदित्य, वसु, रुद्र, सा-ध्य व दोनों अश्विनीकुमार ॥ २९ ॥ व विश्वेदेवा, मरुत, गन्धर्व, अप्सरा व देवर्षि, ब्रह्मर्षि व बालखिल्य मुनि और सर्पादिक ॥ ३० ॥ विद्याधर, योगसिद्ध पुलस्त्य

व पुलहादिक और पितर, कश्यप, विश्वेदेवता, मरीचि, भृगु, अंगिरा ॥ ३१ ॥ व दक्ष और जो मनुथे व नक्षत्र, ऋतुवें व मही इत्यादिक मूर्तिमती नदियाँ ॥ ३२ ॥ व लवण सागरादिक समुद्र और प्रभासादिक तीर्थ व पृथ्वी, आकाश, स्वर्ग, वृक्ष व पर्वत ॥ ३३ ॥ व पुत्रका मंगल करतीहुई अदिति इत्यादिक मातायें और वासुकि इत्यादिक नाग व गरुड, अरुण ये दोनों ॥ ३४ ॥ व वरुण कुबेर यम और वैसेही सेवक तथा राक्षस, निर्ऋति व मांसभक्षी प्राणी ॥ ३५ ॥ व धर्म, बृहस्पति, कपिल, विश्वामित्र तथा बहुल होनेके कारण जो अनेक भातिके देवगण नहीं कहेगये ॥ ३६ ॥ वे सब महीनदी के किनारे प्रसन्नता से स्वामिकार्त्तिकेयजीको अभिषेककर

हादयः ॥ पितरःकश्यपोविश्वेमरीचिर्भृगुरङ्गिराः ॥ ३१ ॥ दक्षोथमनवोयेच ज्योतींषिऋतवस्तथा ॥ मूर्तिमत्यश्चस रितोमहीप्रभृतिकास्तथा ॥ ३२ ॥ लवणाद्यास्समुद्राश्च प्रभासाद्याश्चतीर्थकाः ॥ पृथिवीद्यौर्दिवश्चैव पादपाःपर्वतास्त था॥३३॥ अदित्याद्यामातरश्चकुर्वत्यस्सूनुमङ्गलम् ॥ वासुकिप्रमुखानागास्तथोभौगरुडारुणौ ॥ ३४ ॥ वरुणोधनदश्चै व यमश्चानुचरास्तथा॥राक्षसोनिर्ऋतिश्चैव भूतानिपललाशनाः ॥ ३५ ॥ धर्म्मोबृहस्पतिश्चैव कपिलोगाधिनन्दनः ॥ बहुलत्वाच्चनोक्तायेविविधादेवतागणाः ॥ ३६ ॥ तेचसर्वेमहीकूले ह्यभिषिच्यमुदागुहम् ॥ ततोमहासेनमुग्रांदेवदैत्या दिदर्प्पहा ॥ ३७ ॥ ददौपशुपतिस्तस्मै सर्वभूतमहाचमूम् ॥ विष्णुर्ददौवैजयन्तीं मालांबलविवर्द्धिनीम् ॥३८॥ उमाद दौचरमसा वाससीसूर्यसप्रभे ॥ गङ्गाकमण्डलुंदिव्यममृतोद्भवमुत्तमम् ॥ ३९ ॥ महीमहानदीतस्य चाक्षमालांस सागरा ॥ ददौमुदाकुमाराय दण्डंचैवबृहस्पतिः ॥ ४० ॥ गरुडोदयितंपुत्रं मयूरंचित्रबर्हणम् ॥ अरुणस्ताम्रचूडञ्च प्र

तदनन्तर देवों व दैत्यादिकों के गर्वनाशक शिवजीने उनके लिये समस्त प्राणियोंवाली वड़ी सेना जोकि भयंकर थी दी व विष्णुने बलको बढ़ानेवाली वैजयन्ती माला दिया ॥ ३७।३८ ॥ व पार्वती ने प्रसन्नता से सूर्यके समान प्रकाशित दो वसनोंको दिया व गंगाने अमृतसे उपजे हुये उत्तम कमण्डलु को दिया ॥ ३९ ॥ व सागरसमेत मही महानदी ने रुद्राक्षमाला को दिया व बृहस्पति ने प्रसन्नता से स्वामिकार्त्तिकेयजो के लिये दण्डको दिया ॥ ४० ॥ व गरुड़ ने विचित्र पंखोंवाले प्यारे मयूर

को पुत्रको दिया और अरुण ने लालशिखावाले मुर्गेको दिया ॥ ४१ ॥ और बल व प्रभावसे संयुत वरुण राजाने छागदिया वैसेही ब्रह्माने ब्रह्मण्य स्वामिकार्त्तिकजी के लिये मृगचर्म दिया ॥ ४२ ॥ व मनसे पैदाहुये बड़े पराक्रमी तथा बलसे उग्र चार अनुचरों (सेवकों) को दिया नन्दिसेन, लोहिताक्ष, घण्टाकर्ण ॥ ४३ ॥ व चौथा भी बड़ाबली कुमुदमाली प्रसिद्धथा तदनन्तर शिवदेवजी ने बलिष्ठ क्रतुपार्षद को दिया ॥ ४४ ॥ जिसने कि भलीभाँति क्रोधित होकर देवासुरसंग्राम में एक करोड चालीस लाख भयंकर कर्मोंके करनेवाले दैत्यों को भुजाओं से माराहै ॥ ४५ ॥ तदनन्तर यमराज ने बडे शोभायमान व बडे पराक्रमी तथा यमराज के समान

ददौचरणायुधम् ॥ ४१ ॥ छागञ्चवरुणोराजा बलवीर्यसमन्वितः ॥ कृष्णाजिनंतथाब्रह्मा ब्रह्मण्यायददौतथा ॥४२॥
चतुरोनुचरांश्चैव महावीर्यान्बलोत्कटान् ॥ नन्दिसेनंलोहिताक्षं घण्टाकर्णञ्चमानसान् ॥ ४३ ॥ चतुर्थंचाप्यतिबलं
ख्यातंकुमुदमालिनम् ॥ ततःस्थाणुर्ददौदेवो बलिनंपार्षदंक्रतुम् ॥ ४४ ॥ यश्चदेवासुरेयुद्धे दैत्यानांभीमकर्मणाम् ॥
जघानदोर्भ्यांसंक्रुद्धः प्रयुतानिचतुर्दश ॥ ४५ ॥ यमःप्रादादनुचरौ यमकालोपमौततः ॥ उन्मथञ्चप्रमाथञ्च महावी
र्यौमहाद्युती ॥ ४६ ॥ सुभ्राजोभास्करश्चैव यौसदाचानुयायिनौ ॥ तौसूर्यःकार्त्तिकेयाय ददौप्रीतिमुदान्वितः ॥ ४७ ॥
कैलासखण्डसङ्काशौ श्वेतमाल्यानुलेपनौ ॥ सोमोप्यनुचरौप्रादान्मणिंसुमणिमेवच ॥ ४८ ॥ ज्वालाजिह्वंज्योतिषञ्च
ददावग्निर्महाबलौ ॥ परिघञ्चबलंचैव भीमंचापिमहाबलम् ॥ ४९ ॥ स्कन्दायत्रीननुचरान् ददौविष्णुरुरुक्रमः ॥ ५० ॥
उत्क्रोशंपञ्चजंचैव वज्रदण्डधरावुभौ ॥ ५१ ॥ ददौमहेशपुत्राय वासवःपरवीरहा ॥ तौहिशत्रून्महेन्द्रस्य जघ्नतुस्समम

उन्मथ व प्रमाथ सेवकोंको दिया ॥ ४६ ॥ हे अर्जुनजी ! जोकि सदैव अनुगामी थे उन सुभ्राज व भास्कर अनुचरोंको प्रसन्नता से संयुत सूर्यने स्वामिकार्त्तिकके लिये दिया ॥ ४७ ॥ जो अनुचर कि कैलास के खण्डके समान व श्वेत मालाओ तथा वसनोंको धारेथे और चन्द्रमा ने मणि व सुमणि सेवकोंको दिया ॥ ४८ ॥ और अ-ग्निने ज्वालाजिह्व व ज्योतिष बडे बलिष्ठ सेवकों को दिया और उरुक्रम विष्णुजी ने परिघ, बल व भीम तीन सेवको को स्वामिकार्त्तिक के लिये दिया ॥ ४९ । ५० ॥ और उत्क्रोश व पंचज दोनों दण्डधारियों को शत्रु वीरों के नाशनेवाले इन्द्रने शिवजी के पुत्र के लिये दिया उन्हों ने समर में बहुतेरे इन्द्र के शत्रुओं को

मारा है ॥ ५१।५२ ॥ व हे भरतर्षभ! प्रसन्न होतेहुये आयुर्वेद (वैद्यकी) में चतुर अश्विनीकुमारने स्कन्दजीके लिये वर्द्धन व वंचन सेवकों को दिया ॥ ५३ ॥ व पवन ने स्वामिकार्त्तिकेय जीके लिये बडे चक्रधारी व बड़े बली बल तथा अतिबल दो सेवकोंको दिया ॥ ५४ ॥ और वरुण स्वामीने प्रास व अतिबल सेवकों को दिया और और सुवर्चस, महात्मा व अतिवर्द्धन को ॥ ५५ ॥ हे अर्जुन ! साक्षात् हिमवान्ने नाती (स्वामिकार्त्तिकेयजी) के लिये दिया और सुमेरुने कांचन तथा मेघमाली को दिया ॥५६॥ व बड़े पत्थरों से युद्ध करनेवाले तथा प्रसन्न उच्छ्रित व अतिशृङ्ग उत्तम पार्षदों को उस विन्ध्याचल ने स्वाहा के पुत्र स्कन्दजीके लिये दिया ॥५७॥

रेबद्दन् ॥ ५२ ॥ वर्द्धनंवञ्चनंचैव आयुर्वेदविशारदौ ॥ स्कन्दायददतुःप्रीतावश्विनौभरतर्षभ॥५३॥ बलंचातिबलंचैव महाचक्रौमहाबलौ ॥ प्रददौकार्त्तिकेयाय वायुश्चानुचरावुभौ ॥ ५४ ॥ प्रासञ्चातिबलंचैवं वरुणश्चददौप्रभुः ॥ सुवर्चसंम हात्मानं तथैवाप्यतिवर्द्धनम् ॥ ५५ ॥ हिमवान्प्रददौपार्थसाक्षाद्दौहित्रकायवै ॥ काञ्चनंचददौमेरुर्मेघमालिनमेव च ॥ ५६ ॥ उच्छ्रितंचातिशृङ्गञ्च महापाषाणयोधिनौ ॥ स्वाहेयायददौप्रीतौ सविन्ध्यःपार्षदौशुभौ ॥ ५७ ॥ संग्रहं विग्रहंचैव समुद्रोपिगदाधरौ ॥ प्रददौपार्षदौवीरौ महीनद्यासमन्वितः ॥ ५८ ॥ उन्मादंपुष्पदन्तञ्च शङ्कुकर्णं तथैवच ॥ प्रददावग्निपुत्राय पार्वतीशुभदर्शना ॥ ५९ ॥ जयंमहाजयंचैव नागाज्वलनसूनवे ॥ प्रददुर्बलिनांश्रेष्ठौ सुवर्णौपार्षदावुभौ ॥ ६० ॥ एवंसाध्याश्चरुद्राश्च वसवःपितरस्तथा ॥ सर्वेजगतियेमुख्या ददुःस्कन्दायपार्षदान् ॥ ६१ ॥ नानावीर्यान्महावीरान् नानायुधविभूषणान् ॥ बहुलत्वान्नशक्यन्ते संख्यातुन्तेचफाल्गुन ॥ ६२ ॥ मातरश्चददु

और महीनदी से संयुत समुद्र ने भी संग्रह व विग्रह गदाधारी, वीर पार्षदों को दिया ॥ ५८ ॥ व उत्तम दर्शनोवाली पार्वती ने उन्माद, पुष्पदन्त व शंकुकर्ण को अग्निपुत्र स्कन्दजी के लिये दिया ॥५९॥ और नागोने जय व महाजयको स्वामिकार्त्तिकके लिये दिया जो दोनो पार्षद कि बलिष्ठोंमें श्रेष्ठव उत्तम रंगकेथे ॥६०॥ इसीप्रकार साध्य रुद्र, वसु व पितर जो सब कि संसार में प्रसिद्ध थे उन्होंने स्वामिकार्त्तिकके लिये पार्षदोंको दिया ॥ ६१ ॥ हे अर्जुन ! जोकि अनेक भांतिके पराक्रमवाले, बड़े वीर व अनेक भाति के अस्त्ररूप गहनोंवाले थे वे अधिकता से नहीं गिनेजासक्ते हैं ॥ ६२ ॥ व माताओं ने उस समय उन स्वामी स्कन्दजीके लिये

मातृगणों को दिया जिन सबोंसे चराचर तीनों लोक व्याप्त हैं ॥ ६३ ॥ प्रभावती, विशालाक्षी, गोपाली, गोनसा व अप्सुजाता, बृहद्दण्डी, कालिका, बहुपुत्रिका ॥ ६४ ॥ भयंकरी, चक्राङ्गी, तीर्थनेमि व धाविनी, गीतप्रिया, अलाताक्षी, चटुला व शलभामुखी ॥ ६५ ॥ और विद्युज्जिह्वा, भद्रकाली, शीता, उलूखलमेखला, शतघण्टारवा, वेणी, चक्राक्षी व रक्तपा ॥ ६६ ॥ पूतना, रोदना, वामा, कोटरा, मेघवाहिनी ऊर्ध्ववेणी, धरा, जरायु व जर्जरानना ॥६७॥ व वेटाखटी, दहदहा, धमधमापदा व बहुवेणी, बहुशिरा, बहुपादा और बहुस्तनी ॥ ६८॥ व शतोलूकमुखी, कृष्णा और कर्णप्रावरणा, शून्यालया, धान्यवासा, पशुदा, अन्नदा व सदा ॥ ६९ ॥ हे भ-

स्तस्य तदामातृगणान्प्रभोः॥याभिर्व्याप्तास्त्रयोलोकाः सकलाश्चराचराः ॥ ६३ ॥ प्रभावतीविशालाक्षी गोपालीगोनसातथा ॥ अप्सुजाताबृहद्दण्डी कालिकाबहुपुत्रिका ॥ ६४ ॥ भयंकरीचचक्राङ्गी तीर्थनेमिश्चधाविनी ॥ गीतप्रिया ह्यलाताक्षी चटुलाशलभामुखी ॥ ६५ ॥ विद्युज्जिह्वाभद्रकाली शीतोलूखलमेखला ॥ शतघण्टारवावेणीचक्राक्षी चैवरक्तपा ॥ ६६ ॥ पूतनारोदनावामा कोटरामेघवाहिनी॥ ऊर्ध्ववेणीधराचैव जरायुर्जर्जरानना ॥ ६७॥ वेटाखटीदहदहा तथाधमधमापदा ॥ बहुवेणीबहुशिरा बहुपादाबहुस्तनी ॥ ६८ ॥ शतोलूकमुखीकृष्णा कर्णप्रावरणातथा ॥ शून्यालयाधान्यवासा पशुदाचान्नदासदा ॥ ६९ ॥ एताश्चान्याश्चबह्व्योपि मातरोभरतर्षभ ॥ बहुलत्वादहंतासां नसंख्यातुमिहोत्सहे ॥ ७० ॥ वृक्षचत्वरवासिन्यश्चतुष्पथनिवेशनाः ॥ गुहाश्मशानवासिन्यः शैलप्रस्रवणालयाः ॥ ७१ ॥ नानाभरणवस्त्राढ्या नानामूर्त्तिधरास्तथा ॥ नानावेषायुधधराः परिवव्रुस्तदागुहम् ॥ ७२ ॥ सशुभेशुशुभेश्री

रतर्षभ! ये और अन्यभी बहुत मातायेंहैं बहुत होनेके कारण मैं यहां उनकी संख्या करनेके लिये उत्साह नहीं करताहूं ॥ ७० ॥ जो मातृगण कि वृक्षों व चौतरोंमें रहनेवाली तथा चौराहेमें स्थानवाली व कन्दरा और श्मशानवासिनी व पर्वत तथा झरनोंमें रहनेवाली हैं ॥ ७१ ॥ व अनेक प्रकार के वसन व गहनोंवाली और अनेक भातिकी मूर्त्तिधारिणी हैं व अनेक वेष तथा अस्त्रोंको धारनेवाली उन माताओं ने उस समय स्वामिकार्त्तिकेय जी को घेरलिया ॥ ७२ ॥ और वे स्वामिकार्त्तिकेय जी

उत्तम पर्वतपै दूसरे महासेनकी नाईं शोभितहुये व सैनाध्यक्षता मैं देवताओं तथा अनेक मुनीश्वरों ने जब अभिषेक किया ॥ ७३ ॥ उसके उपरान्त स्वामिकार्त्तिकेय ने एक एक मुखसे शिव ब्रह्मापूर्वक उन सबोंको प्रणाम कर यह कहा कि वरदान को मांगिये ॥ ७४ ॥ व उन्होने इन महासेन को आशीर्वादों से युक्तकर वरदान मांगा कि यही हमलोगों का वरदानहै कि जिससे पापी तारकको मारिये ॥ ७५ ॥ ऐसाही होगा यह उनसे कहकर योग योग ऐसा कहतेहुये वड़े तेजस्वी तारकशत्रु स्वामिकार्त्तिकेयजी मयूरपै सवारहुये ॥ ७६ ॥ इसके अनन्तर शक्तिको हाथमे लेकर उस समय स्वामिकार्त्तिकेय जी देवताओं से बोले कि हे सुरोत्तमो ! जो आज मैं

मान् गुहोगुहइवापरः ॥ सेनापत्येचाभिषिक्तैर्देवैर्नानामुनीश्वरैः ॥ ७३ ॥ ततःप्रणम्यसर्वांस्तानेकैकास्येनपावकिः ॥ व्रियतांवरइत्याह भवब्रह्मपुरोगमान् ॥ तेचैनंयोज्यचाशीभिरयाचन्तवरंगुहम् ॥७४॥ एषएववरोस्माकं यत्पापंतारकं जहि ॥ ७५ ॥ एवमस्त्वितितानुक्त्वा योगोयोगइतिब्रुवन् ॥ तारकारिर्महातेजा मयूरंचाध्यरोहत ॥ ७६ ॥ शक्तिंहस्ते विगृह्याथ गुहोदेवांस्तदाब्रवीत् ॥ यदद्यतारकंपापं नाहंहन्मिसुरोत्तमाः ॥ ७७ ॥ गोब्राह्मणावमन्तॄणांततोयामिगतिं स्फुटम् ॥ एवन्तेनप्रतिज्ञाते शब्दोतिसुमहानभूत् ॥ ७८ ॥ योगोयोगइतिप्राहुराज्ञयाशरजन्मनः ॥ अजरेवाससीरक्ते वसानःपार्वतीसुतः ॥ ७९ ॥ अथाग्रेसर्वदेवानां स्थितोवीरोययौमुदा ॥ तस्यकेतुरलंभाति चरणायुधशोभितः ॥ ८० ॥ चरणाभ्यांगिरीन्क्षक्तो योविदारयितुंरणे ॥ याचेष्टासर्वभूतानां प्रभाशान्तिर्बलंतथा ॥ ८१ ॥ तन्मयागुहशक्तिस्सा भृशंहस्तेऽभ्यरोचत ॥ यदाद्यंसर्वलोकेषु तन्मयंकवचंतथा ॥ ८२ ॥ योत्स्यमानस्यवीरस्य देहेप्रादुरभूत्स्वयम् ॥ धर्मस्स

पापी तारकको न मारूं ॥ ७७ ॥ तो गऊ व ब्राह्मणोंके अपमान करनेवालोंकी गतिको प्रकटही प्राप्तहोऊं इसप्रकार उनके प्रतिज्ञा करनेपर वडाभारी शब्दहुआ ॥७८॥ और स्वामिकार्त्तिकेय जी की आज्ञासे देवोंने योग २ ऐसा कहा इसके अनन्तर नवीन अरुण वसन पहने पार्वती जीके पुत्र स्वामिकार्त्तिकेय वीर सब देवताओ के आगे प्राप्तहोकर प्रसन्नतासे चले और चरणायुध (मुर्गे) से शोभित उनका पताका बहुतही शोभित था ॥ ७९ । ८० ॥ जोकि युद्धमे चरणो से पर्वतोको फोडने के लिये समर्थथा और सम्पूर्ण प्राणियों की जो चेष्टा, प्रकाश, शान्ति व बलहै ॥८१॥ तन्मयी वह स्वामिकार्त्तिकेयजी की शक्ति हाथमे बहुतही शोभितहुई वैसेही समस्त

लोकोंमें जो आदिभूत हैं ॥ ८२ ॥ तन्मय कवच युद्ध करतेहुये वीर स्वामिकार्त्तिकेयजी के शरीर में आपही प्रकटहुई और धर्म, सत्य, ज्ञान, तेज, कान्ति, वीरता ॥ ८३ ॥ व पराक्रम, प्रभाव, दया ये सब उस समय दोनों हाथ जोड़कर आज्ञाकारी हो आपही उन स्वामिकार्त्तिकेय महात्मा के आगे खड़ेहुये ॥ ८४ ॥ आगे जाते हुये भी उन स्वामिकार्त्तिकेयजीके पीछे सूर्यवर्णवाले रथ करके पार्वती समेत महादेव स्वामी चले ॥ ८५ ॥ जो रथ कि लीलासे आपही ऐश्वर्यवान् शिवजीने रचाथा व उस समय उस उत्तम रथमें हजार सिंह युक्त कियेगये ॥ ८६ ॥ और इस रथके मनोरथको महर्षियों समेत ब्रह्माजी देकर उस रथपै पार्वती समेत शिवजी ऐसे शो-

त्यसस्संमोहस्तेजःकान्तिश्चसूनृता ॥ ८३ ॥ बलमोजःकृपाचैवबद्धाञ्जलियुगन्तदा ॥ आदेशकारीण्यग्रेस्य स्वयंतस्थुर्महा
त्मनः ॥ ८४ ॥ तमग्रेचापिगच्छन्तंपृष्ठतोनुययौहरः ॥ रथेनादित्यवर्णेनपार्वत्यासहितःप्रभुः ॥ ८५ ॥ निर्मितेनहरेणैव
स्वयमीशेनलीलया ॥ तदासहस्रसिंहानांतस्मिन्युक्तंरथोत्तमे ॥ ८६ ॥ अभीष्टंचरथस्यास्यब्रह्मादत्त्वामहर्षिभिः ॥ तस्मिन्
रथेपशुपतिःस्थितोभात्युमयासह ॥ ८७ ॥ प्रभयामण्डितस्सूर्यः सेन्द्रचापघनोयथा ॥ अग्रतस्तस्यभगवान् धनेशोगु
ह्यकैस्सह ॥ ८८ ॥ आस्थायसत्वरंयातिपुष्पकंनरवाहनः ॥ ८९ ॥ ऐरावतंसमास्थाय शक्रश्चापिसुरैस्सह ॥ ९० ॥ पृष्ठतोनु
ययौयस्तुवरदोवृषभध्वजः ॥ तस्यदक्षिणतोदेवामरुतश्चित्रयोधिनः ॥ ९१ ॥ गच्छन्तिवसुभिस्सार्द्धंरुद्रैश्चसहसंगताः ॥
यमश्चमृत्युनासार्द्धंसर्वतःपरिवारितः ॥ ९२ ॥ घोरैर्व्याधिशतैश्चापि सहितोयातिकोपनः ॥ यमस्यपृष्ठतश्चापि घोर
स्त्रिशिखरःस्थितः ॥ ९३ ॥ विजयोनामरुद्रस्ययातिशूलःस्वयंकृतः ॥ तमुग्रपाशोभगवान् वरुणस्सलिलेश्वरः ॥ ९४ ॥

भितथे ॥ ८७ ॥ कि जैसे प्रभासे शोभित सूर्य व इन्द्रधनुष समेत मेघ होवै और उन स्वामिकार्त्तिकेयजी के आगे गुह्यकों समेत नरवाहन भगवान् कुबेरजी पुष्पकपै चढ़कर शीघ्रही चले ॥ ८८ ॥ ८९ ॥ और ऐरावतपै चढ़कर इन्द्रभी देवताओं समेत ॥ ९० ॥ पीछे चले और जो वरदायक शिवजीथे उनके दाहिने विचित्र युद्ध करनेवाले पवनदेवता वसुवोंसमेत व रुद्रोंसे मिलकर चले और मृत्यु समेत तथा भयंकर दूतोंसे सब ओर घिरे व सैकड़ों रोगों सहित क्रोधी यमराजजी चले और यमराज के भी पीछे भयंकर त्रिशिखर स्थित हुआ ॥ ९१ ॥ ९२ ॥ ९३ ॥ और आपही से कियाहुआ विजय नामक शिवजी का शूल चला व अनेक भांतिके जलजन्तुओं से घिरे भयं-

कर फँसरीवाले भगवान् जलेश वरुणजी उस शूलको घेरकर धीरे २ चले इसकेबाद विजयके पीछे शिवजीका पट्टिशचला ॥ ९४ । ९५ ॥ जोकि गदा, मुशल व शक्ति आदिक अस्त्रों से घिराथा व हे अर्जुन जी ! पट्टिश के पीछे बड़ा भारी पाशुपत अस्त्र चला ॥ ९६॥ जोकि बहुत मस्तकोंवाला व बड़ा विकराल और एक चरणवाला व बहुत पेटोंवालाथा और महर्षिगणों से घिराहुआ कमण्डलु भी चला ॥ ९७ ॥ उसके दाहिने शोभासे घिरा व चलता हुआ दण्ड शोभित था जोकि भृगु, अंगिरा समेत देवताओं से भी पूजितथा ॥९८॥ इसके अनन्तर राक्षस, देवता, गन्धर्व, सर्प व नदियां, नद, समुद्र व अप्सराओं के गण ॥ ९९ ॥ और नक्षत्र ग्रह व स्थावर,

परिवार्यशनैर्याति यादोभिर्विविधैर्वृतः ॥ पृष्ठतोविजयस्याथ यातिरुद्रस्यपट्टिशः ॥ ९५ ॥ गदामुशलशक्त्याद्यैर्वृतः प्रहरणैश्चयः ॥ पट्टिशंचान्वगात्पार्थ अस्त्रंपाशुपतंमहत् ॥ ९६ ॥ बहुशीर्षंमहाघोरमेकपादंबहूदरम् ॥ कमण्डलुश्चापियथौ महर्षिगणसंवृतः ॥ ९७ ॥ तस्यदक्षिणतोभातिदण्डोगच्छञ्छ्रियावृतः ॥ भृग्वङ्गिरोभिस्सहितो देवैश्चाप्यभिपूजितः ॥ ९८ ॥ राक्षसाश्चाथदेवास्तु गन्धर्वाभुजगास्तथा ॥ नद्योनदास्समुद्राश्च मुनयोप्सरसाङ्गणाः ॥ ९९ ॥ नक्षत्राणिग्रहाश्चैव स्थावरंजङ्गमंतथा ॥ मातरश्चमहादेवमनुजग्मुःक्षुधान्विताः ॥ १०० ॥ सर्वेषांपृष्ठतश्चासीत्तार्क्ष्यस्थोबुद्धिमान्हरिः ॥ पालयन्पृतनांसर्वांस्वपरीवारसंवृतः ॥ १ ॥ एवंसैन्यसमोपेत उत्तरंतटमागतः ॥ ताम्रप्राकारमाश्रित्य तस्थौत्र्यम्बकनन्दनः ॥ २ ॥ सतारकपुरस्यापि पश्यन्नृद्धिंमहोत्तमाम् ॥ विसिस्मियेमहासेनः प्रशशंसतपोस्यच ॥ ३ ॥ स्थितःपश्यन्सशुशुभे मयूरस्थोगुहस्तदा ॥ छत्रेणध्रियमाणेन स्वयंसोमसमत्विषा ॥ ४ ॥ वीज्य

जंगम तथा क्षुधासे संयुत मातृगण महादेवके पीछे चले ॥ १०० ॥ और समस्त सेनाकी रक्षा करतेहुये अपने कुटुम्बसे संयुत बुद्धिमान् विष्णुजी गरुड़पै चढ़कर सबके पीछे हुये ॥ १ ॥ इस प्रकार सेनासे संयुत शिवजी के पुत्र स्वामिकार्त्तिकेय जी उत्तर किनारेपै आये व ताम्रकी छहरदिवाली पै आश्रित होकर टिके ॥ २ ॥ और तारक नगरकी भी बड़ी उत्तम ऋद्धिको देखतेहुये उन स्वामिकार्त्तिकेय जी विस्मय में प्राप्तहुये व इसकी तपस्याकी प्रशंसा किया ॥ ३ ॥ उस समय मयूरपै प्राप्त व

टिके, देखते हुये वे स्वामिकार्त्तिकेय जी शोभित हुये व घेरेहुये छत्र करके शोभासे आपही चन्द्रमाके समानथे ॥ ४ ॥ और सुन्दर पवन तथा अग्निसे महाछविवाले स्वामिकार्त्तिकेय जी वीजित थे याने पवन व अग्नि इनके चँवर डुलारहेथे और मातृगण व सब देवों तथा अपने गणोंसे घिरेथे ॥ ५ ॥ तदनन्तर देवताओं के बीच में इन्द्रजी उन स्वामिकार्त्तिकेय को प्रणामकर वचन बोले कि बलसे शोभित दैत्योंकी सेना को देखिये देखिये ॥ ६ ॥ जोकि गेहमें स्नेही पुरुषों की नाईं कालरूप तुमको नहीं जानते हैं इनके समीप दूत युक्त किया (पठाया) जावै जोकि तुमको तारकासुर से कहै ॥ ७ ॥ क्योंकि वीरोंको यह उचित है व महात्मा पुरुषमें यश-

मानश्चरम्याभ्यां वाय्वग्निभ्यांमहाद्युतिः ॥ मातृभिश्चसुरैस्सर्वैः स्वगणैरभिसंवृतः ॥ ५ ॥ ततःप्रणम्यतंशक्रो देवमध्येवचोब्रवीत् ॥ पश्यपश्यमहासेनां दैत्यानांबलशालिनाम् ॥ ६ ॥ त्वांयेकालंनजानन्ति मर्त्यागेहरताइव ॥ एतेषांयुज्यतान्दूतो यस्त्वांशंसेततारके ॥७॥ वीराणामुचितंत्वेतत्कीर्तिदञ्चमहाजने ॥ अनुज्ञयाततःस्कन्दभक्तःशक्रोधनंजय ॥ ८ ॥ मामादिश्यासुरेन्द्राय प्राहिणोद्दौत्ययौगिकम् ॥ अहंस्वयंभर्तृकामः शक्रेणापिचप्रेषितः ॥ ९ ॥ प्रासादेस्त्रीसहस्राणां मध्येप्रोवाचचैवतम् ॥ असुराधमदुर्बुद्धेशक्रस्त्वामाहतच्छृणु ॥ १० ॥ यज्जन्मदुर्लभादाप्तं किल्बिषंदानवत्वया ॥ तस्याहंनाशकस्तेद्य पुरुषश्चेद्भविष्यसि ॥ ११ ॥ शीघ्रंनिस्सरपापिष्ठनिस्सरिष्यसिचेन्नहि ॥ त्वणात्त्वपुरंक्षेप्स्ये पावित्र्यायचसागरम् ॥ १२ ॥ इतिश्रुत्वारूक्षवाचंक्रुद्धःस्त्रीगणसंवृतः ॥ मुष्टिमुद्यम्यमाधावद्गीतश्चाहंपला

दायकहै तदनन्तर हे अर्जुनजी ! आज्ञासे स्वामिकार्त्तिकेय जी के भक्त इन्द्रने ॥ ८ ॥ दूत कर्मके योग्यवाले मुझको आज्ञादेकर दैत्यराज तारकासुरके लिये पठाया और इन्द्रसे पठाये हुये भी स्वामी की कामनावाले मैंने ॥ ९ ॥ हजारों स्त्रियों के बीचवाले मन्दिर में उससे कहा कि हे नीच दैत्य,दुर्बुद्धे ! इन्द्रने जो तुमसे कहा है उसको सुनिये ॥ १० ॥ हे दानव ! जोकि दुर्लभ जन्म से पातक तुमने ग्रहण कियाहै आज उसी तुमको मैं नाश करूंगा यदि पुरुष हो तो ॥ ११ ॥ हे पापी ! शीघ्र निकलिये और यदि न निकलेगा तो पवित्रता के लिये क्षणभर में तेरे नगरको समुद्रमें फेंकदूंगा ॥१२॥ ऐसी कठोरवाणी सुनकर स्त्रीगणोंसे घिराहुआ वह तारक

क्रोधितहो मुष्टिका उठाकर मेरे सामने दौड़ा और मैं डरकर भगा ॥१३॥ और दुःखितहोकर उस वृत्तान्तको स्वामिकार्त्तिकेय जी से बतलाया व मेरे आनेपर दैत्यने चित्त में चिन्तन किया ॥१४॥ कि बिन आश्रयवाले इन्द्र यह कहने के लिये नहीं योग्य हैं और भयंकर अशकुन मेरे डर पैदा करते हैं ॥ १५ ॥ ऐसा विचारकर व उठकर वह झरोखापै चढ़गया व अचानकही भूमिवासी उसने झरोखे के ऊपर बैठकर ॥ १६ ॥ देवताओं की सेनाओं से आकाश व पृथ्वी को अच्छादित देखा और रथ, हाथी व घोड़ों से भी दशों दिशायें शब्दायमान थीं ॥ १७ ॥ और अद्भुत आकारवाले विमानों व किन्नरों के उच्चस्वर के गानेवाले शब्दों तथा नगारों व गोशृंगों

यितः ॥१३॥ व्याकुलस्तत्रवृत्तान्तं कुमारायन्यवेदयम् ॥ मयिचाप्यागतेदैत्यश्चिन्तयामासचेतसि ॥१४॥ अनालब्धाश्रयःशक्रो वक्तुमेतन्नचार्हति॥ निमित्तानिचघोराणि त्रासंसंजनयन्तिमे ॥ १५ ॥ एवंविचिन्त्यचोत्थाय गवाक्षंसोध्यरोहत ॥ सहसाभौमिकावासः शृङ्गवातायनास्थितः ॥ १६ ॥ अपश्यद्देवसैन्यैस्सदिवंभूमिञ्चसंवृताम् ॥ रथैर्गजैर्हयैश्चापि नादिताश्चदिशोदश ॥ १७ ॥ विमानैश्चाद्भुताकारैःकिन्नरोद्गीतनादितैः ॥ दुन्दुभिभिर्गोविषाणैस्तालैःशङ्खैश्चनादितैः ॥ १८ ॥ अक्षोभ्यामिवतांसेनां दृष्ट्वासोचिन्तयत्तदा ॥ एतेमयाजिताःपूर्वं कस्माद्भूयस्समागताः ॥ १९ ॥ इतिचिन्तापरोदैत्यः शुश्रावकटुकाक्षरम् ॥ देवबन्धुभिरुद्घुष्टं घोरंहृदयदारणम् ॥ २० ॥ जयातुलशक्तिदीधितिपिञ्जररुचारुणमण्डल ॥ जयभुजोद्भासितसैन्यसुखाय कुमुदकाननविकसनेन्दो ॥२१॥ कुमारवरजयदितिकुलमहोदधिवडवानलमधुररव ॥ जयासुरमुकुटमयूखकुटिलरञ्जितचरणनखमहासेन ॥ २२ ॥ तारकवंशशुष्कतृणदावानलयो

व तालियों और बाजते हुये शंखोंसे ॥ १८ ॥ क्षोभरहित सी उस सेना को देख कर उसने उस समय चिन्तन किया कि पहलेही मुझ से जीतेहुये ये फिर क्यों भलीभांति आये ॥ १९ ॥ इस चिन्ता में लगेहुये दैत्यने देवबन्धुवों से उच्चप्रकार करके कहीहुई व भयानक तथा हृदयको फाडनेवाली कडुवे अक्षरों की वाणी को सुना ॥ २० ॥ याने यह शब्द होरहाथा कि हे अतुलित शक्तिकी किरणों के पिंजर की शोभासे लाल मण्डलवाले ! तुम्हारी जयहो व हे भुजाओं से शोभित सेनाके सुखकेलिये कोकाबेली के समूहको फुलानेवाले चन्द्रमा ! तुम्हारी जयहो ॥ २१ ॥ हे कुमारवर ! तुम्हारी जयहो व हे दितिवंशरूपी महासमुद्र के लिये वडवानल

तुम्हारी जयहो हे मधुर शब्दवाले ! हे दैत्यों के मुकुटोंकी कुटिल किरणोंसे रंगेहुये चरण नखवाले, महासेन ! तुम्हारी जयहो ॥ २२ ॥ हे सूखे तिनुकाकी नाईं तारक वंशके लिये दावानल ! हे योगीश्वर ! व हे योगीजनों के हृदयरूपी आकाश में निस्तारपूर्वक पूजित महासेन ! तुम्हारी जयहो व हे नखकी किरणोंसे संयुत कल्याण की खानि करनेवाले शोभित चरणकमलवाले, स्कन्दजी ! तुम्हारी जयहो व हे सात दिनके बालक ! हे भुवन पंक्तियोंके शोचको जलानेवाले ! तुम्हारे लिये वारवार नमस्कारहै व मनोहररूप तथा साधुवोंके डरको नाशकरनेवाले तुम्हारेलिये नमस्कारहै ॥ २३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायाकुमारेशमाहात्म्येचतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

गीश्वरयोगिजनहृदयगगनविततार्चितमहासेन ॥ जय नखकिरणकल्याणखानिकरविराजितचरणकमलस्कन्द ॥ जयबालसप्तवासरभुवनावलिशोकसन्दहन ॥ नमोनमस्तेस्तुमनोरमायनमोऽस्तुतेसाधुभयापहाय ॥ २३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेकुमारेशमाहात्म्ये चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

॥ * ॥ * ॥ * ॥

नारदउवाच ॥ श्रुत्वैवंसंस्तवन्दैत्यस्तद्घुष्टंदेववन्दिभिः ॥ सस्मारब्रह्मणोवाक्यं वधंबालादुपस्थितम् ॥ १ ॥ श्रुत्वासंक्लिष्टसर्वाङ्गोद्वारस्थंराजावचोब्रवीत ॥ अमात्यान्द्रष्टुमिच्छामि शीघ्रमानयमाचिरम् ॥ २ ॥ ततस्तेराजवचनात्कालनेमिमुखागताः ॥ प्राहतांस्तारकोदैत्यः किमिदंवोविचेष्टितम् ॥ ३ ॥ यैःशत्रुसम्भवावार्ता क्वापिनश्रावितामम ॥ मदिराकामभत्तानां मन्त्रित्वंवोनयुज्यते ॥ ४ ॥ हितंमन्त्रयतेराज्ञां तेनमन्त्रीनिगद्यते ॥ ५ ॥ अमात्याऊ

तारकको मार्यो यथा शिवसुत षण्मुख देव । पचीसवें अध्याय में सोइ चरित सुखमेव ॥ नारदजी बोले कि इस प्रकार देवताओं के वन्दीजनों से कहेहुये स्तोत्र को सुनकर तारक दैत्यने बालकसे वधरूप प्राप्त ब्रह्माके वचनको स्मरण किया ॥ १ ॥ व सुनकर क्लेशित सब अंगोंवाले उस तारक राजाने द्वारपै टिकेहुये पुरुष से वचन कहा कि मैं मन्त्रियों को देखना चाहताहूं शीघ्रही लावो देर मतकरो ॥ २ ॥ तदनन्तर राजाके वचन से वे कालनेमि इत्यादिक आये उनसे तारकासुर ने कहा कि तुमलोगों का यह क्या कर्म है ॥३॥ कि जिनसे शत्रुवों से उत्पन्न हुई कोई भी वार्त्ता मुझको न सुनाई गई इससे मदिरारूपी कामसे मत्त तुमलोगों का मन्त्री

होना योग्य नहीं है॥४॥जिस लिये कि राजासे हितका सम्मत करताहै उसीसे मन्त्री कहाजाताहै॥५॥मन्त्री बोले कि इन देवताओंको कौन जानताहै व हमलोग दैत्योंकी यह बुद्धिहै कि हे महाराज! शोच मत कीजिये हमलोग देवोंको जीतैंगे ॥ ६ ॥ क्या बालकसे भी डरहै यह चिन्तन करना लज्जाके लियेहै यह सब भलीभांति साध्यहै नगारा दृढ़तासे बजायाजावै ॥ ७ ॥ तदनन्तर दैत्यराजके वचनसे उस समय तैयार होनेके मातारूप नगारा बहुतही बजायागया व उसने हाथियोंको कँपादिया ॥ ८ ॥ व दैत्यराज तारकासुरके स्मरण करनेसे बडेभारी दैत्य पर्वत, नदी, समुद्र, पाताल व गढ़ोंसे भी ॥९॥ अचानकही भलीभांति प्राप्तहुये जोकि युगान्तकी अग्निके समान

चुः ॥ कोजानातिसुरानेतान् दैत्यानामितिनोमतिः ॥ माविषीदमहाराज वयंजेष्यामहेसुरान् ॥ ६ ॥ बालादपिभयं किंवा लज्जायैचिन्तितंत्विदम् ॥ सर्वमेतत्सुसाध्यञ्च भेरीसन्ताड्यतांदृढा ॥ ७ ॥ ततोदैत्येन्द्रवचनात्सन्नाहजननी तदा ॥ भृशंसन्ताडिताभेरी कम्पयामाससागजान् ॥ ८ ॥ स्मरणाद्दैत्यराजस्य पर्वतेभ्योमहासुराः ॥ निम्नगाभ्यस्समुद्रेभ्यः पातालेभ्योबिलादपि ॥ ९ ॥ सहसासमनुप्राप्ता युगान्तानलसप्रभाः ॥ कोटिकोटिसहस्रैश्च परार्द्धैर्दशभिश्शतैः ॥ १० ॥ सेनापतिःकालनेमिः शीघ्रन्देवानुपाययौ ॥ चतुर्योजनविस्तीर्णे नानाश्चर्यसमन्विते ॥ ११ ॥ रथेस्थितो मनाग्दीनस्तारकःसम्प्रदृश्यते ॥ एतस्मिन्नन्तरेपार्थ क्रुद्धैःस्कन्दस्यपार्षदैः ॥ १२ ॥ प्राकारःपातितस्सर्वो भग्नान्युपवनानिच ॥ ततश्चचालवसुधा देवीसवनकानना ॥ १३ ॥ जज्वालखंसनक्षत्रं प्रमूढंभुवनंभृशम् ॥ तमोभूतंजगच्चासीद् गृध्रैर्व्याप्तंनभोभवत् ॥ १४ ॥ ततोनानाप्रहरणं प्रलयाम्बुदसन्निभम् ॥ कालनेमिमुखंपार्थप्रादृश्यतमहच्छविः ॥१५॥

प्रकाशितथे और करोड कोटि हजार व दश सौ परार्द्ध दैत्यो समेत॥१०॥सेनापति कालनेमि शीघ्रही देवताओ पै प्राप्तहुआ और सोलह कोस चौंडे व अनेक आश्चर्योंसे सयुत॥११॥ रथपै बैठाहुआ कुछ उदास तारकासुर देख पडताथा इसी अवसरमें हे अर्जुन! स्वामिकार्त्तिकेयजीके क्रोधित पार्षदोने ॥ १२ ॥ सब शहरदिवाली गिरादिया व बगीचोंको तोडडाला उसके उपरान्त जल व जंगलो समेत पृथ्वी देवी कापने लगी ॥१३॥ व नक्षत्रों समेत आकाश जल उठा व संसार बहुतही मोहित होगया व जगत् अन्धकारमय होगया और आकाश गीधोंसे पूर्ण होगया ॥ १४ ॥ तदनन्तर हे अर्जुन जी! प्रलयके मेघोंके समान व अनेक अस्त्रोंवाला और बडी शोभावाला

कालनेमि का मुख देखपड़ा ॥ १५ ॥ और असख्य व अनेक प्रकारकी बाणियो से गर्जताहुआ वह युद्धमें देवताओं तथा भगवान् शिवजी के सामने दौड़ा ॥ १६ ॥ तदनन्तर गर्जते हुये दैत्यों करके बडे अस्त्र व पर्वत, तोप व लोहेके दहमर्दों से क्षणभर मे सब देवताओं की सेना भगादीगई व अग्नियों से नाशित वनकी नाईं दैत्यों से मारीजाती हुई सुरसेना विमुख भी देखपडी ॥ १७ ॥ १८ ॥ व पृथ्वी में अग्नि से जलाहुआ जैसे बडेभारी वृक्षोंका वन होवै वैसेही वह देवसेना होगई और कटीहुई हड्डी, मस्तक व देहवाले वे देवता भगे ॥ १९ ॥ और महासुरोसे मारे जातेहुये वे स्वामीको न प्राप्तहुये इसके अनन्तर उस भगीहुई सेनाको देखकर

सतुघोरमसंख्येया गर्ज्जंश्चविविधागिरः ॥ अभ्यद्रवद्रणेदेवान् भगवन्तञ्चशङ्करम् ॥ १६ ॥ विनदद्भिस्ततोदैत्यैर्देवानीकंमहायुधैः ॥ पर्वतैश्चशतघ्नीभिरायसैःपरिघैरपि ॥ १७ ॥ क्षणेनद्रावितंसर्वं विमुखंचाप्यदृश्यत ॥ असुरैर्वध्यमानन्तु पावकैरिवकाननम् ॥ १८ ॥ अग्निदग्धंचभूपृष्ठे महाद्रुमवनंयथा ॥ तेभिन्नास्थिशिरोदेहाः प्राद्रवन्तदिवौकसः ॥ १९ ॥ ननाथमध्यगच्छन्त वध्यमानामहासुरैः ॥ अथतद्विद्रुतंसैन्यं दृष्ट्वादेवःपुरन्दरः ॥ २० ॥ आश्वासयन्नुवाचेदं बलंतद्दानवार्दितम् ॥ भयंत्यजतभद्रंवः शूराःशस्त्राणिगृह्णत ॥ २१ ॥ कुरुध्वंविक्रमेबुद्धिं माकाचिज्जाड्यतास्तुवः ॥ एपकालानलप्रख्यो मयूरंसमुपस्थितः ॥ २२ ॥ रक्षितावोमहासेनः कथंभीतिस्तथापिवः ॥ शक्रस्यवचनंश्रुत्वा समाश्वस्तादिवौकसः ॥ २३ ॥ दानवंप्रत्ययुध्यन्त शक्रंकृत्वाव्यपाश्रमम् ॥ कालनेमिर्महेन्द्रेण संयुगेसमयुध्यत ॥ २४ ॥ सहस्राक्षौहिणीयुक्तो जम्भकःशङ्करेणच ॥ कुजम्भोविष्णुनाचैव तावत्यक्षौहिणीवृतः ॥ २५ ॥ अन्येचत्रिदशाःसर्वे

इन्द्रजीने ॥ २० ॥ दानवोंसे विकल उरा सुरसेना को समझाते हुये यह कहा कि हे वीरो ! डरको छोडिये तुमलोगों का कल्याण होगा शस्त्रोंको लीजिये ॥ २१ ॥ व पराक्रम में बुद्धि कीजिये तुमलोगों के कोई जडता मत होवै क्योंकि कालाग्नि के समान मयूरपै भलीभांति बैठेहुये ये ॥ २२ ॥ स्वामिकार्त्तिकेय जी तुम्हारे रक्षकहैं तौभी तुमलोगो के कैसे डरहै इन्द्रके वचन सुनकर समझे हुये देवताओंने ॥ २३ ॥ इन्द्रको परिश्रमरहित करके दानवों से युद्धकिया युद्धमे कालनेमि इन्द्रके साथयुद्ध करताथा ॥ २४ ॥ व हजार अक्षौहिणीसे संयुत जम्भक शिवजीसे लड़नेलगा और उतनीही अर्थात् हज़ार अक्षौहिणीसे घिराहुआ कुजम्भ विष्णुसे युद्ध करनेलगा ॥ २५ ॥

और अन्य सब देवता व बड़े वलिष्ठ पवन व वसुवों समेत साध्य दैत्योंसे युद्ध करनेलगे ॥ २६ ॥ तदनन्तर हे अर्जुन ! कालनेमि बहुत प्रकारका युद्ध कर
के अचानक कूदकर ऐरावतके माथेपै बैठगया ॥ २७ ॥ और चरणकी चोट से व मुष्टिका से उस हाथी व इन्द्रजी को गर्जते हुये उस कालनेमि ने मारा व वे दोनों
भूमि में गिरपडे ॥ २८ ॥ तदनन्तर चैतन्यतारहित इन्द्रको लेकर व रथपै बैठकर कालनेमि फिरभी तारकासुरके सामने प्राप्तहुआ ॥ २९॥ इसके अनन्तर उस समय
अचानकही यमराज इत्यादि देवता चिल्लानेलगे कि राजा हराजाताहै २ कोई भी रक्षक नहीं विद्यमान है ॥ ३० ॥ इसी अवसर में रथपै बैठेहुये शिवजी पिनाक

मरुतश्चमहाबलाः ॥ प्रत्ययुध्यन्तदैत्येन्द्रैःसाध्याश्चवसुभिस्सह ॥ २६ ॥ ततोबहुविधंयुद्धं कालनेमिर्विधायच ॥ उत्प्लु
त्यसहसापार्थ ऐरावतशिरंश्रितः ॥ २७ ॥ सतुपादप्रहारेणमुष्टिनाचैवतंगजम् ॥ शक्रञ्चजघ्नेविनदन् पेततुस्तावुभौ
भुवि ॥ २८ ॥ ततःशक्रंसमादाय कालनेमिर्विचेतसम् ॥ रथमाश्रित्यभूयोपि तारकाभिमुखोययौ ॥ २९ ॥ अथोत्क्रु
ष्टंतदादेवैस्सहसाचान्तकादिभिः ॥ ह्रियतेह्रियतेराजा त्राताकोपिनविद्यते ॥ ३० ॥ एतस्मिन्नन्तरेशर्वः पिनाकधनुष
श्च्युतैः ॥ बाणैस्ससैन्यंकृत्वाच जम्भंयुद्धपराङ्मुखम् ॥ ३१ ॥ कालनेमिंसमागम्य रथस्थोवाक्यमब्रवीत् ॥ किमेते
नमहेन्द्रेण मयायुध्यस्वदानव ॥ ३२ ॥ वीरमन्यसुदुर्बुद्धेततोज्ञास्यसिवीरताम् ॥ ३३ ॥ कालनेमिरुवाच ॥ नग्नेनस
हकोयुध्येद्धननेनापियेनच ॥ संसत्सुदैत्यवीराणामुपहासःप्रजायते ॥ ३४ ॥ आत्मनस्तुसमंकञ्चिद्विलोकयसुदुर्मते ॥
तदाकर्ण्यंचसावज्ञं वचःशर्वोविसिष्मिये ॥ ३५ ॥ ततःकुमारस्सहसा मयूरस्थोऽभ्यधावत ॥ कुजम्भंसानुगंहत्वा वा

धनुष से छोडे हुये बाणों करके सेनासमेत जम्भको युद्धसे विमुखकर कालनेमिके समीप भलीभांति आकर वचन बोले कि हे दानव! इन इन्द्रसे क्याहै मेरे साथ युद्ध
कीजिये ॥३१।३२ ॥ हे अपनाको वीर माननेवाले, दुर्बुद्धे ! तदनन्तर वीरताको जानोगे ॥३३॥ कालनेमि बोला कि नग्नके साथ कौन युद्धकरे कि जिसके मारने से भी
वीर दैत्योंकी सभाओं में उपहास होवैगा ॥ ३४ ॥ हे दुष्टबुद्धे! अपने समान किसी को देखो अपमान समेत उस वचनको सुनकर शिवजी विस्मय में प्राप्तहुये ॥३५॥

तदनन्तर मयूरपै बैठेहुये स्वामिकार्त्तिकेय जी अचानक दौड़े व अनुगामियों समेत कुजम्भको मारकर विष्णुजी दौड़े ॥ ३६ ॥ तदनन्तर विष्णु ने स्वामिकार्त्तिकेय से कहा कि हे प्रभो ! इस पापी व नीच दैत्यसे तुम्हारा क्या कार्य है याने तुम न लड़ो किन्तु थोड़ीदेर मेरा पराक्रम देखो ॥ ३७ ॥ ऐसा कह इन स्कन्दजी को मनाकर गरुड़पै बैठेहुये विष्णुने शार्ङ्गधनुष से छूटेहुये बाणोंको दैत्यके ऊपर चलाया ॥ ३८ ॥ व वज्रोंकी नाईं उन बाणोंसे ताड़ित महादैत्य क्रोधित होकर इन्द्रको छोड़कर उन बाणोंको बाणोंसे नाशकिया ॥ ३९ ॥ विष्णुने जिन दिव्य बाणों व अस्त्रोंको छोड़ा उनको हँसतेहुये दैत्यने खेलहीसे निवृत्तकिया ॥४०॥ तदनन्तर शीघ्रकारी

सुदेवोऽभ्यधावत ॥ ३६ ॥ ततोहरिःस्कन्दमाह किमेतेनतवप्रभो ॥ दैत्याधमेनपापेन मुहूर्त्तंपश्यमेबलम् ॥ ३७ ॥ एव
मुक्त्वानिवार्य्यैनं केशवोगरुडस्थितः ॥ शार्ङ्गकोदण्डनिर्मुक्तैर्बाणैर्दैत्यमवाकिरत् ॥ ३८ ॥ सतैर्बाणैस्ताड्यमानोवज्रै
रिवमहासुरः ॥ विमुच्यवासवंक्रुद्धो बाणांस्तान्व्यधमच्छरैः ॥ ३९ ॥ यांश्चबाणान्हरिर्दिव्यान्यस्त्राणिचमुमोचह ॥
न्यवारयत्तदैत्यस्तान् प्रहसँल्लीलयैवच ॥ ४० ॥ ततःकौमोदकींगृह्य क्षिप्रकारीजनार्द्दनः ॥ मुमोचसेनानाथायसारथिं
चव्यचूर्णयत् ॥ ४१ ॥ ततोरथादवप्लुत्य विवृत्यवदनंमहत् ॥ गरुडंत्वरयादायसविष्णुर्न्यस्तवान्मुखे ॥ ४२ ॥ ततोभू
र्सर्वदेवानां विमोहोजगतामपि ॥ चचालवसुधाचेलुः पर्वताःसप्तचार्णवाः ॥ ४३ ॥ कालनेमिर्नदंश्चैव प्रानृत्यतमहा
रणे ॥ असंमूढस्ततोविष्णुस्त्वराकालेत्वरान्वितः ॥ ४४ ॥ कुक्षिंविदार्य्यचक्रेण भास्करोऽभ्रादिवोदितः ॥ बहिर्भूतोहरि
श्चैतं मोहयित्वास्वनिद्रया ॥ ४५ ॥ पातालस्यतलंनिन्ये तत्रशिश्येसकाष्ठवत् ॥ ततश्चक्रेणदैत्यानां निहतादश

विष्णुने कौमोदकी गदाको लेकर सेनापति के लिये छोड़ा व सारथीको चूर्णकिया ॥ ४१ ॥ तदनन्तर रथसे कूदकर बड़े भारी मुखको फैलाकर शीघ्रतासे विष्णु समेत गरुड़को लेकर मुखमें धरलिया ॥ ४२ ॥ तदनन्तर सब देवताओं व लोकोंको भी मोहहुआ व पृथ्वी कांपउठी और पर्वत तथा समुद्र चलनेलगे ॥ ४३ ॥ और गर्जताहुआ कालनेमि महासमर में नाचनेलगा। उसके उपरान्त ज्ञानवान् विष्णुजी शीघ्रता के समय में शीघ्रतासंयुत होकर ॥ ४४ ॥ चक्रसे कोखीको फाड़कर मेघ से सूर्यकी नाईं उदयहुये व बाहरहुये विष्णुजी अपनी नींदसे इसको मोहकर ॥ ४५ ॥ पातालके नीचे लेगये वहां वह काठकी नाईं सोरहा तदनन्तर चक्रसे दश करोड़

दैत्योंको मारा ॥ ४६ ॥ व उसीक्षण प्रसन्न होतेहुये देवता मोहरहितहो शोभितहुये तदनन्तर शिवजी ने उन विष्णुको लिपटाकर कहा कि हे जनार्दन ! तुमने बहुत अच्छा किया ॥ ४७ ॥ तुमने जो कर्मकिया है उसका करनेवाला दूसरा नहीहै जो महिषासुर आदिक दुःखसे जीतने योग्यथे उनको देवीने नाशकिया है ॥ ४८ ॥ हे विष्णो ! उनके मध्यमें यह बडा बलीथा जिसको तुमने जीताहै हे जनार्दन ! तारकामय युद्धमें यह तुम्हारे मारनेयोग्यथा ॥४९॥ व फिर आठवें जन्ममे कंसरूप यह आपसे मारने योग्यहै संसारके गुरु विष्णुको इस प्रकार प्रशंसा करतेहुये॥५०॥चैतन्यताको प्राप्त उन देवताओने दैत्योंकी सेनाओ को गिरादिया व महास्त्रोसे जर्जर वे

कोटयः ॥ ४६ ॥ प्रमोदितास्तथादेवा विमोहास्तत्क्षणाद्बभुः ॥ ततःशर्वस्तमालिङ्ग्य साधुसाधुजनार्द्दन ॥ ४७ ॥ त्वयायद्विहितंकर्म्म तत्कर्त्तान्योनविद्यते ॥ महिषाद्यास्सुदुर्ज्जेया देव्यायेविनिपातिताः ॥ ४८ ॥ तेषामतिबलोह्येव त्वयाविष्णोविनिर्जितः ॥ तारकामयसंग्रामे वध्यस्तेसोजनार्द्दन ॥ ४९ ॥ कंसरूपःपुनस्तेयं हन्तव्योष्टमजन्मनि ॥ एवंप्रशंसमानास्ते वासुदेवंजगद्गुरुम् ॥ ५० ॥ अस्त्रजालैर्लब्धसंज्ञा दैत्यसैन्यान्यपातयन् ॥ तानिदैत्यशरीराणि जर्जराणिमहायुधैः ॥ ५१ ॥ अपतन्भूतलेपार्थ पर्वताइवसर्वतः ॥ ततस्तुदानवंसैन्यं हतसेनापतिन्तदा ॥ ५२ ॥ देवैः स्कन्दानुगैश्चैव कृतंशस्त्रैःपराङ्मुखम् ॥ अथोत्कुष्टंतदाहृष्टैस्सर्वैर्देवैर्मुदायुतैः ॥ ५३ ॥ दैवतानिचसर्वाणि तदातूर्याण्यवादयन् ॥ अथभग्नंबलंप्रेक्ष्य हतवीर्यंमहारणे ॥ ५४ ॥ देवानांचमहामोदं तारकःप्राहसारथिम् ॥ सारथेपश्यसैन्यानि द्राव्यमाणानिमेसुरैः ॥ ५५ ॥ येस्माभिस्तृणवन्नष्टाः पश्यकालस्यचित्रताम् ॥ तन्मेवाहयशीघ्रंत्वं रथमेनं

दैत्यो के शरीर ॥ ५१ ॥ हे अर्जुन ! कटेहुये पर्वतोंकी नाईं सब ओर गिरपडे तदनन्तर उस समय मरेहुये सेनाध्यक्षवाली दानवोंकी सेनाको ॥ ५२ ॥ स्वामिकार्त्तिकेयजी के अनुगामी देवताओं ने शस्त्रोसे विमुखकर दिया और उस समय प्रसन्नतासे संयुत सब हर्षित दैत्योने उच्चस्वर से शब्द किया ॥ ५३ ॥ व उस समय सब देवताओ ने तुरहियो को बजाया इसके अनन्तर नष्टबलवाले महायुद्धमे भगी हुई सेनाको देखकर ॥ ५४ ॥ व देवताओं के बडे हर्षको देखकर तारकासुर ने सारथी से कहा कि हे सारथे ! उन्ही देवोसे भगाई हुई मेरी सेनाओको देखिये ॥५५॥ कि जिनको हमने तिनुकाकी नाईं नाशकर दियाथा यह समय की विचित्रता देखिये

इसलिये तुम इस मेरे रथको देवताओं के सामने शीघ्रही पहुँचावो ॥ ५६ ॥ मेरी भुजाओं के बलको नीच देवता लोग देखैं व भागैं सारथी से इस प्रकार कहते व बडेभारी धनुषको कँपातेहुये उस ॥ ५७ ॥ क्रोधसे लाल लोचनोंवाले तारक राजा ने देवसेना में प्रवेश किया इसके अनन्तर आतेहुये उस तारकासुर को देखकर विष्णुजी स्वामिकार्त्तिकेयसे बोले ॥ ५८ ॥ कि हे कुमार ! जैसे युगान्तमे काल होताहै वैसेही दैत्यराज तारकको देखिये यह वही है कि जिसने भयकर तपसे शिवजी का आराधन कियाहै ॥ ५९ ॥ यह वही है कि जिससे इन्द्रादिक देवता अर्बुदवर्षोंतक वानर कियेगये हैं और यह वहीहै कि जो युद्धमें हमलोगों से सब शस्त्रसमू-

सुरान्प्रति ॥ ५६ ॥ पश्यन्तुमेबलंबाह्वोर्देवन्तुचसुराधमाः ॥ ञ्जवन्नेवंसारथिंतुसधुन्वन्सुमहाधनुः ॥ ५७ ॥ क्रोधरक्तेक्षणोराजा देवसैन्यंसमाविशत् ॥ आगच्छमानन्तंदृष्ट्वाहरिःस्कन्दमथाब्रवीत् ॥ ५८ ॥ कुमारपश्यदैत्येन्द्रं कालंयद्वद्युगात्यये ॥ अयंसयेनतपसाघोरेणाराधितःशिवः ॥ ५९ ॥ अयंसयेनशक्राद्याः कृतामर्कास्समार्बुदम् ॥ अयंससर्वशस्त्रौघैर्योस्माभिर्नजितोरणे ॥ ६० ॥ नावज्ञयाहसितव्यस्तारकोयंमहासुरः ॥ सप्तमंहिदिनन्तेद्य मध्याह्नोयञ्चवर्तते ॥ ६१ ॥ अर्कादस्तमितादेनं जहिवध्योन्यथानहि ॥ एवमुक्त्वासशक्रादीन्स्त्वरितःकेशवोब्रवीत् ॥ ६२ ॥ आसाद्यतदैत्येन्द्रं सुखवध्योयथाभवेत ॥ ततस्तेविष्णुवचनाद्दिनदन्तोदिवौकसः ॥ ६३ ॥ तमासाद्यशरव्रातैर्मुदितास्समवाकिरन् ॥ प्रहसन्निवदेवांस्तान् द्रावयामासतारकः॥ ६४ ॥ यथानास्तिकदुर्वृत्तो नानाशास्त्रोपदेशकान् ॥ सोऽंश

हों करके नहीं जीतागया है ॥ ६० ॥ यह तारक महासुर अपमानसे हँसने योग्य नहीहै तुम्हारा आज सातवां दिनहै व यह दुपहर की बेला वर्तमान है ॥ ६१ ॥ और सूर्यास्त होनेतक इसको मारिये अन्यथा मारने योग्य न होगा ऐसा कहकर शीघ्रता संयुत विष्णुजी इन्द्रादिक देवताओंसे बोले ॥ ६२ ॥ कि दैत्येन्द्रको पीडित करिये जिस प्रकार सुखपूर्वक मारने योग्य होवै तदनन्तर विष्णुजीके वचन से गर्जते हुये उन देवताओं ने ॥ ६३ ॥ उसके समीप प्राप्तहोकर प्रसन्न होतेहुये शरसमूहोंको चलाया और हँसते हुये से तारकासुर ने उन देवोंको वैसेही भगादिया ॥ ६४ ॥ जैसे कि दुराचारी नास्तिक अनेक प्रकारके शास्त्रके उपदेश करनेवालों को

भगा देताहै बडेभारी रथपै बैठेहुये उस तारक वीरको सहनेकेलिये वे देवता न समर्थहुये ॥ ६५ ॥ जैसे कि बडेभारी अपस्मार (मिरगी)रोगसे घिरे व कटुवादी पुरुषको सज्जन लोग नहीं सहसक्ते हैं क्षणभर में सब देवताओं को कँपाकर तारकासुर ॥ ६६ ॥ बडेभारी धनुषको कँपाताहुआ स्वामिकार्त्तिकेय जीके समीप आया तदनन्तर आते हुये उस तारकासुर को देखकर स्वामिकार्त्तिकेय जी आगे प्राप्तहुये ॥ ६७ ॥ उन महासेन के दाहिने बगलको शिवने व वामको विष्णुने रक्षा किया और वैसे ही करोडों व अरबों पार्षदों ने उनकी पीठकी रक्षाकी ॥ ६८॥ तदनन्तर संसारको आश्चर्य करानेवाले वे देवपालक व दैत्यपति उग्र धर्म, अधर्मकी नाईं बड़े युद्धमे

क्षानतेवीरं महतिस्यन्दनेस्थितम् ॥ ६५ ॥ महापस्मारसंक्रान्तं यथैवाप्रियवादिनम् ॥ विधूयसकलान्देवान् क्षणमात्रेणतारकः ॥ ६६ ॥ आजगामकुमाराय विधुन्वन्सुमहाधनुः ॥ आगच्छमानन्तंदृष्ट्वा स्कन्दःप्रत्युद्ययौततः ॥ ६७ ॥ तस्यारक्षद्भवःपार्श्वं दक्षिणंचेतरंहरिः ॥ पृष्ठंवापार्षदास्तस्य कोटिशोर्बुदशस्तथा ॥ ६८ ॥ ततस्तौसुमहायुद्धे संसक्तौदेवदैत्यपौ ॥ धर्माधर्माविवोदग्रौजगदाश्चर्यकारकौ ॥ ६९ ॥ ततःकुमारमासाद्य लीलयातारकोऽब्रवीत् ॥ अहो बालातिबालस्त्वं यत्त्वंगीर्वाणवाक्यतः ॥ ७० ॥ आसादयसिमांयुद्धे पतङ्गइवपावकम् ॥ वधेनतवकोलाभो ममयुक्तोसिबालकः ॥ ७१ ॥ पिबक्षीरंगृहाणेमं कन्दुकंक्रीडलीलया ॥ एवमुक्तेप्रहस्याह तारकंयोगिनांगुरुः ॥ ७२ ॥ शिशुत्वं मावमंस्थामे शिशुःकष्टोभुजङ्गमः ॥ दुष्प्रेक्ष्योभास्करोबालो दुःस्पृश्योऽल्पोपिपावकः ॥ ७३ ॥ अल्पाक्षरोनमन्त्रः

लगगये ॥ ६९ ॥ तदनन्तर स्वामिकार्त्तिकेयजीके समीप लीलासे प्राप्तहोकर तारकासुर बोला कि हे बालक ! तुम बहुतही मूर्खहो जोकि देवताओं के वचनसे ॥ ७० ॥ युद्धमें मेरे समीप वैसेही प्राप्त होतेहो जैसे कि पांखी अग्निमें प्राप्तहोवै तुमको मारने से मुझको क्या लाभ योग्य होगा तुम बालकहो ॥ ७१ ॥ दूधपियो व इस गेंदकोलेवो व लीलासे खेलो ऐसा कहनेपर योगियों के गुरु स्वामिकार्त्तिकेयजी तारकासुर से बोले ॥ ७२ ॥ मेरी शिशुता मत मानिये क्योंकि छोटा साप दुःखदायक होताहै व उदयको प्राप्त सूर्यनारायणजी दुःखसे देखने योग्य होते हैं व थोडी भी अग्नि क्लेश से छूने योग्य होती है ॥ ७३ ॥ हे दैत्य ! थोड़े अक्षरोंवाला मंत्र क्या

सफल नहीं होता है ऐसा कहकर व दैत्य से छोड़ेहुये उस गेंदको लेकर ॥ ७४ ॥ व उसमें शक्ति अस्त्र को धरकर दैत्य के ऊपर छोड़दिया उस प्रहार से उस का रथ चूर्ण करदिया गया ॥ ७५ ॥ जोकि अनेक आश्चर्यों से संयुत व सोलह कोस का था जब उत्तम रथ टूटगया तब जो गरुड़ के पुत्र थे वे ॥ ७६ ॥ किसीप्रकार छूटकर कूदकर समुद्र के बीचमें पैठगये तदनन्तर क्रोधित होतेहुये तारकासुरने स्वामिकार्त्तिकेय के ऊपर मुद्गर फेंका ॥ ७७ ॥ व विन्ध्याचल की नाईं उसको लेकर स्वामिकार्त्तिकेयने उस तारकासुरको मारा व उसके पुष्ट तथा स्थूल वक्षस्थलमें मुद्गर सौ खंड होगया ॥ ७८ ॥ उस समय तारकासुरने छहमुखवाले महासेन जी

किं सफलोदैत्यदृश्यते ॥ एवमुक्त्वादैत्यमुक्तं गृहीत्वाकन्दुकञ्चतम् ॥ ७४ ॥ तस्मिञ्छक्त्यस्त्रमाधाय दैत्यायप्रमुमोचह ॥ तस्यतेनप्रहारेण रथश्चूर्णीकृतोभवत् ॥ ७५ ॥ चतुर्योजनमात्रोयो नानाश्चर्यसमन्वितः ॥ गरुडस्यसुतायेच शीर्यमाणेरथोत्तमे ॥ ७६ ॥ मुक्ताःकथंचिदुत्पत्य सागरान्तरमाविशन् ॥ ततःक्रुद्धस्तारकश्च मुद्गरंतिमवान्गुहे ॥ ७७॥ विन्ध्याद्रिमिवतंस्कन्दो गृहीत्वातंव्यताडयत् ॥ स्थिरेतस्योरसिव्यूढे मुद्गरःशतधागमत् ॥ ७८ ॥ मेनेचदुर्जयंदैत्यस्तदाषड्वदनंरणे ॥ चिन्तयामासबुद्ध्याच प्राप्तंतद्ब्रह्मणोवचः ॥ ७९ ॥ तमन्तकमिवालक्ष्य दैत्यवीराश्चकोटिशः ॥ नदन्तोतिमहासेनं नानाशस्त्रैरवाकिरन् ॥ ८० ॥ क्रुद्धस्तेषुततःस्कन्दस्त्वमोघांशक्तिमाददे ॥ अभ्यस्यमानेशक्त्यस्त्रे स्कन्देनामिततेजसा ॥ ८१ ॥ उल्काजालंमहाघोरं पपातवसुधातले ॥ चाल्यमानातथाशक्तिः सुघोराशम्भवसूनुना ॥ ८२ ॥ ततःकोटिसहस्राणि ततःकोटिशतानिच ॥ तथानियुतसाहस्रं प्रयुतंकोटिरेवच ॥ ८३ ॥ हृदोदरश्चदैत्येन्द्रं

को युद्धमें दुर्जय माना और प्राप्तहुये ब्रह्माके उस वचनको बुद्धि से चिन्तन किया ॥ ७९ ॥ व यमराज की नाईं उन स्वामिकार्त्तिकेय जी को देखकर बहुत गर्जतेहुये करोड़ों वीरदैत्यों ने महासेन के ऊपर अनेक भांति के शस्त्रों को चलाया ॥ ८० ॥ तदनन्तर उनके ऊपर क्रोधित होतेहुये स्वामिकार्त्तिकेय ने सफल शक्तिको लिया व अतुल तेजवाले स्वामिकार्त्तिकेयजी ने जब शक्तिअस्त्रको चलाया तब ॥ ८१ ॥ बड़ा भयानक उल्काका समूह पृथ्वी में गिरा व शिवजी के पुत्र से चलाई हुई जो अतिविकराल शक्तिथी ॥ ८२ ॥ उससे करोड़ों हज़ार व करोड़सौ वैसेही हजारों लाख व दश लाख और करोड़ शक्तियां उत्पन्न हुईं ॥ ८३ ॥ और हृदोदर दैत्यराज

को दश निखर्वसे घेरदिया उससमय हे अर्जुन ! स्वामिकार्त्तिकेयजीके सेवकोंने रोमहर्षण युद्ध किया व मैं शत्रुवोंके मध्यमे मरनेयोग्य नहींहूँ इस शब्दसे दशोंदिशाओं को पूर्णकर रहे थे और शक्ति अस्त्रकी ज्वालाओं से उपजी हुई शक्तियों से कोई दैत्य मारे गये ॥ ८४ । ८५ ॥ व कोई हजारो दैत्य अग्निसे ताड़ित होकर नष्ट होगये और कोई अमरदैत्य घण्टाके शब्दसे डरकर फटेहुये हृदयोंवाले होगये ॥ ८६ ॥ अभाग्यों से नाशित मनुष्यों की नाई इस प्रकार गणादिको से दानवों के मारेजाने पर तारकासुर स्वामिकार्त्तिकेयजीके सामने आया ॥८७॥ व लाख घण्टों वाली असह्य दिव्य गदाको लिया व उससमय मयूरके मारा और मयूर विमुख होगया ॥८८॥

निखर्वैर्दशभिर्वृतम् ॥ तत्राकुर्वन्सुतुमुलं नाहंवध्यस्तुशत्रुषु ॥ ८४ ॥ कुमारानुचराःपार्थ पूरयन्तोदिशोदश ॥ शक्त्यस्त्रस्यार्चिसम्भूतशक्तिभिःकेपिसूदिताः ॥ ८५ ॥ पावकादवधूताश्च हताःकेचित्सहस्रशः ॥ केचिद्घण्टारवत्रस्ता विभिन्नहृदयाःपरे ॥ ८६ ॥ एवंनिहन्यमानेषु दानवेषुगणादिभिः ॥ अभाग्यैरिवलोकेषु तारकःस्कन्दमाययौ ॥ ८७ ॥ जग्राहचगदांदिव्यां लक्षघण्टांदुरासदाम् ॥ तदामयूरमाजघ्नेमयूरोविमुखोभवत् ॥ ८८ ॥ दृष्ट्वापराङ्मुखंस्कन्दं वासुदेवोब्रवीत्त्वरन् ॥ देवसेनापतेशीघ्रं शक्तिंमुञ्चमहासुरे ॥ ८९ ॥ प्रतिज्ञामात्मनःपाहिलम्बतेरविमण्डलम् ॥ ९० ॥ स्कन्दउवाच ॥ त्वयैवरुद्रभक्तोयं जनार्द्दनममेरितः ॥ वधार्थंरुद्रभक्तस्य बाहुःशक्तिंनमुञ्चति ॥ ९१ ॥ नारुद्रः पूजयेद्रुद्रं भक्तरूपमयोहरः ॥ रुद्ररूपममुंहत्वा कीदृशंजन्ममेभवेत् ॥ ९२ ॥ तिरस्कृताविप्रलब्धाः शप्ताःक्षिप्ताःप्र

व स्वामिकार्त्तिकेय जी को विमुख देखकर शीघ्रता करते हुये विष्णुजी बोले कि हे सुरसेना के स्वामी ! शीघ्रही महादैत्यके ऊपर शक्तिको छोड़िये ॥ ८९ ॥ व अपनी प्रतिज्ञाको पालिये सूर्य्यमण्डल जाताहै अर्थात् अस्त होता है ॥ ९० ॥ स्वामिकार्त्तिकेय जी बोले कि हे जनार्दन जी ! तुम्हीने इसको मुझसे शिवजी का भक्त कहाहै इससे शिवभक्तको मारनेके लिये भुजा शक्तिको नहीं छोडती है ॥ ९१ ॥ क्योंकि बिन रुद्रके पुरुष शिवजीको न पूजैगा व शिवजी भक्तरूपमय है और इस रुद्ररूप दैत्यको मारकर मेरा जन्म कैसाहोगा ॥ ९२ ॥ क्योंकि तिरस्कार किये हुये व छलित, शापित, प्रेरित व बहुतही पीड़ित कियेहुये शिवजीके भक्त सब

वंश को जलादेते हैं फिर मारेहुये उन शिवभक्तों को क्या कहना है ॥ ९३ ॥ यदि यह मुझको मारे तो मेरा कल्याण होगा इससे युद्धमें यह मुझको मारे न निर्वेद को प्राप्त मैं शिवजी के भक्तोंके निमित्त शस्त्रको न लूंगा ॥ ९४ ॥ विष्णुजी बोले कि हे स्वामिकार्त्तिकेयजी ! यह तुमको योग्य नहीं है व जिस प्रकार यह दानव शिवजीका भक्तहै उसको सुनिये कि वेदके जाननेवाले मुनियों ने पार्वतीपति शिवके दोतनुओं को कहाहै ॥ ९५ ॥ उन दोनोंमें एक जीवात्मिका व दूसरी प्रत्यक्षाहै और प्राणियों में जो भक्तद्रोही है वह शिवजीका भक्त नहीं कहा गया है ॥ ९६ ॥ और शिवजीमें जो भक्त पुरुष प्राणियों के ऊपर दयावान् होवै यह

पीडिताः ॥ रुद्रभक्ताः कुलंसर्वं निर्दहन्तिहताः किमु ॥ ९३ ॥ एषचेद्धन्तिमद्रमेहन्यतामेषमांरणे ॥ रुद्रभक्तेषुनिर्विण्णो नाहंशस्त्रमुपाददे ॥ ९४ ॥ विष्णुरुवाच ॥ नैतत्तवोचितंस्कन्दरुद्रभक्तोयथाशृणु ॥ द्वेतनूगिरिजाभर्तुर्वदन्तिमुनयोविदुः ॥ ९५ ॥ एकाजीवात्मिकातत्र प्रत्यक्षाचतथापरा ॥ द्रोग्धाभूतेषुभक्तश्च रुद्रभक्तोनसस्मृतः ॥ ९६ ॥ भक्तोरुद्रेकृपावांश्च जन्तुष्वेषहरव्रतः ॥ तदेनंभूतमूर्त्तेश्च द्रोग्धारंतुपिनाकिनः ॥ ९७ ॥ जहिनैवात्रपश्यामि दोषंकञ्चनतेप्रभो ॥ श्रुत्वेतिवाचंगोविन्दात् सत्यार्थामपिभारत ॥ ९८ ॥ हन्तुंनकुरुतेबुद्धिं रुद्रभक्तइतिस्मरन् ॥ तारकस्तुततःक्रुद्धो ययौ वेगेनकेशवम् ॥ ९९ ॥ प्राहचैनंसुदुर्बुद्धे हन्मित्वांपश्यमेबलम् ॥ देवानांचापिधर्माणां मूलमस्तिभवानतः ॥ १०० ॥ हत्वात्वामद्यसर्वांस्तांश्छेत्स्येपश्याद्यमेबलम् ॥१॥ विष्णुरुवाच ॥ दैत्येन्द्रतवचास्माभिः किमहोशृणुतत्त्वतः ॥ स्थेय

शिवव्रत भक्त है इसलिये प्राणियोंकी मूर्तिवाले पिनाकधारी शिवजी के इस द्रोही दैत्यको ॥ ९७ ॥ मारिये हे प्रभो ! इसमें तुम्हारे किसी दोष को मैं नहीं देखता हूं हे भारत ! सत्यअर्थवाली भी इस वाणी को विष्णु से सुनकर ॥ ९८ ॥ शिवजीका भक्त है यह स्मरण करतेहुये स्कन्दजो मारने के लिये बुद्धि नहीं करते हैं तदनन्तर क्रोधित होताहुआ तारकासुर वेगसे विष्णुजीके समीप गया ॥ ९९ ॥ व इनसे बोला कि हे दुर्बुद्धे ! मैं तुमको मारताहूं मेरे पराक्रमको देखिये देवताओं व धर्मों की जड़ आपही हैं ॥ १०० ॥ आज तुमको मारकर उन समस्त देवताओंको काटूंगा आज मेरे बलको देखिये ॥ १ ॥ विष्णुजी बोले कि हे दैत्येन्द्र ! हम लोगों से

तुम्हारा क्या प्रयोजन है किन्तु यथार्थता से सुनिये कि रथपै जो ये शिवजी हैं इन के मारने पर सब मारेहुये हैं ॥ २ ॥ यह सुनकर क्रोधित होताहुआ तारकासुर शीघ्र ही शिवजी के रथके समीप गया व जाकर उसनें शिवजी के रथकी सगुनी को पकड लिया ॥ ३ ॥ जब उस क्रोधित तारक ने अचानक सगुनी को पकड लिया तब आकाश व पृथ्वी विस्मय में प्राप्तहुई व महर्षिलोग मोहित हुये ॥ ४ ॥ व मेघों के समान बड़े शरीर वाले दैत्य गर्जनेलगे हमलोगों ने जीतलिया उन दैत्योंके इस निश्चयको प्राप्तहोकर ॥ ५ ॥ व तारकासुर के भी प्रयोजन को देखकर भगवान् शिवजी पार्वती समेत रथको छोड़कर बैलपर चढ़े ॥ ६ ॥ इसके अनन्तर ॐ इस

एषशर्वोयं हतेस्मिन्सकलंहतम् ॥ २ ॥ श्रुत्वेतितारकःक्रुद्धस्तूर्णंरुद्ररथंययौ ॥ अभिसृत्यसजग्राह रुद्रस्यरथकूबरम् ॥ ३ ॥ यदासकूबरंक्रुद्धस्तारकस्सहसाग्रहीत् ॥ विस्मितेरोदसीतूर्णं मुमुहुश्चमहर्षयः ॥ ४ ॥ विनदन्तोमहाकाया दैत्या जलधरोपमाः ॥ आसाद्यनिश्चितंतेषां जितमस्माभिरित्युत ॥ ५ ॥ तारकस्याप्यभिप्रायं भगवान्वीक्ष्यशङ्करः ॥ उमयासहतत्त्यक्त्वा रथंवृषभमारुहत् ॥ ६ ॥ ॐमित्यथजपन्ब्रह्म आकाशंसहसाश्रितः ॥ ततस्तंशतसिंहञ्च रथंरुद्रेणनिर्मितम् ॥ ७ ॥ उत्क्षिप्यपृथ्व्यामास्फोट्य चूर्णयामासतारकः ॥ शूलपाशुपतादीनि सहसोपस्थितानिच ॥ ८ ॥ वारयामासगिरिशो नवस्साध्यइतिब्रुवन् ॥ ततस्सवञ्चितंज्ञात्वारुद्रेणात्मानमीर्ष्यया ॥ ९ ॥ विनदन्सहसाधावद्वृषभस्थं महेश्वरम् ॥ ततोजनार्दनोधावच्चचक्रमुद्यम्यवेगतः ॥ १० ॥ वज्रमिन्द्रस्तथोद्यम्य दण्डंचापियमोनदन् ॥ गदान्ध

ब्रह्माक्षर को जपते हुये अचानकही आकाश मे स्थित हुये तदनन्तर शिवजी से बनाये हुये उस सौ सिंहोंवाले रथको ॥ ७ ॥ तारकासुर ने ऊपर फेंककर व पृथ्वी में पटककर चूर्णकर दिया व अचानकही समीप प्राप्तहुये त्रिशूल व पाशुपत इत्यादिक अस्त्रोंको ॥ ८ ॥ शिवजीने यह कहकर मनाकिया कि तुमलोगोंके साध्य नहीं है उसके उपरान्त शिवजीसे अपनाको छलाहुआ जानकर ईर्षासे गर्जताहुआ वह तारकासुर बैलपै बैठेहुये शिवजी के सामने अचानक दौडा तदनन्तर चक्रको उठाकर विष्णुजी वेगसे दौड़े ॥ ९ । १० ॥ वैसेही वज्रको उठाकर इन्द्र व गर्जते हुये यमराजभी दण्डको उठाकर दौडे व क्रोधित होतेहुये कुबेरजी गदाको व गर्जतेहुये

वरुण फँसरीको उठाकर दौडे ॥ ११ ॥ व पवन विकराल तथा बडेभारी अंकुशको व अग्नि बडे प्रकाशवाली शक्तिको उठाकर दौडे और निर्ऋति पैनी तलवार को व क्रोधित होतेहुये रुद्र पर्वतों को उठाकर चले ॥ १२ ॥ व साध्य देवता धनुषों को लेकर और वसु देवता दहमर्दों को व विश्वेदेवता मुशल को और चन्द्रमा सूर्य भी प्रभाको उठाकर दौडे ॥ १३ । और अश्विनीकुमार देव ओषधियों को व नाग जलते हुये विषको तथा हिमाचल आदिक भी व समुद्र पर्वतों को उठाकर दौड़े ॥ १४ ॥ हे अर्जुन ! बहुतही गर्जते व दौडते हुये देवताओ को देखकर बडे हाथीकी नाई गर्जताहुआ तारकासुर अचानकही लौटा ॥ १५ ॥ व भुजामें मूकासे

नेश्वरः क्रुद्धः पाशञ्च वरुणोनदन् ॥ ११ ॥ वायुर्म्महाङ्कुशङ्घोरं शक्तिंवह्निर्महाप्रभाम् ॥ निर्ऋतिर्निशितंखड्गं रुद्राःशैलांश्चकोपिताः ॥ १२ ॥ धनूंषिसाध्यादेवाश्च परिघान्वसवस्तथा ॥ विश्वेदेवाश्चमुशलं चन्द्रार्कौचप्रभामपि ॥ १३ ॥ ओषधीश्चाश्विनौदेवौ नागाश्चज्वलितंविषम् ॥ हिमाद्रिप्रमुखाश्चापि समुद्राश्चमहीधरान् ॥ १४ ॥ भृशमुन्नदतोदेवान् धावतोवीक्ष्यतारकः ॥ निवृत्तस्सहसापार्थ महागजइवोन्नदन् ॥ १५ ॥ सवज्रंमुष्टिनाहत्य भुजेशक्रमपातयत् ॥ दण्डं यमादुपादाय मूर्ध्निहत्यन्यपातयत् ॥ १६ ॥ उरसाहत्यसगदं धनदंभुव्यपातयत् ॥ वरुणात्पाशमादाय तेनबद्ध्वान्यपातयत् ॥ १७ ॥ महाङ्कुशेनवायुञ्च वीरंमूर्ध्निजघानसः ॥ फूत्कारैरुद्यतंवह्निं शमयामासतारकः ॥ १८ ॥ निर्ऋतेःखड्गमादाय हत्वातेनन्यपातयत् ॥ शूलैरेवतथारुद्राः साध्याश्चधनुषार्दिताः ॥ १९ ॥ परिघैरेववसवोमुशलैरेवविश्वकाः ॥ रेणुनाच्छाद्यचन्द्रार्कौ वल्मीकस्थौकृताविव ॥ २० ॥ महोग्राश्चौषधीस्तालैरश्विनौसोद्यताडयत् ॥ सविषाश्चकृ

मारकर वज्र समेत इन्द्रको गिरादिया व यमराज से दण्डको लेकर और माथेमें मारकर गिरादिया ॥ १६ ॥ और वक्षस्थल से मारकर गदा समेत कुबेरको भूमिमें गिराया व वरुण से फँसरीको लेकर उससे बाधकर उनको गिरादिया ॥ १७ ॥ और उस तारकने पवन वीरको मस्तकमें बडे भारी अंकुशसे मारा व जलतीहुई अग्नि को फूत्कार (मुखकी वायु) से शान्त करादिया ॥ १८ ॥ व निर्ऋति की तलवारको लेकर उससे मारकर उनको गिराया व वैसेही रुद्रोंको शूलोंसे और साध्य देवोंको धनुष से व्याकुल किया ॥ १९ ॥ व दहमर्दोंसे वसुवोंको और मुशलोंसे विश्वेदेवताओंको मारा और चन्द्रमा व सूर्यको धूलिसे आच्छादितकर बँबौरीमें करादिया ॥ २० ॥

व बडी उग्र ओषधियों व अश्विनीकुमार देवताओं को भी उसने चपोटों से मारा व विष समेत नागोंको चरण मे कूट कर विषहीन करदिया ॥ २१ ॥ व पर्वत पर्वतोंही से अत्यन्त श्वासरहित करदिये गये इसप्रकार थोड़ी देरमें उसी सेनाको चैतन्यताहीन व हाहाभूत करके गर्जताहुआ वह चक्रधारी विष्णुजीके सामने दौडा तदनन्तर उस समय बुद्धिमानो मे श्रेष्ठ विष्णु स्वामी जी उसी क्षण हँसते हुये से उसीभांति अन्तर्द्धान होगये जैसे कि कुयोगी पुरुषसे अदृश्य होजातेहैं.विष्णुको न देखता हुआ तारकासुर क्रोधित व वेगमें प्राप्तहोकर फिर शिवजीके सामने मूका उठाकर दौडा इसके अनन्तर विष्णुभगवान् जी बिजुली की नाई अदृश्य व दृश्य

तानागा निर्विषाःपादकुट्टनैः ॥ २१ ॥ पर्वताःपर्वतैरेव निरुच्छ्वासाभृशंकृताः ॥ एवंतदेवसैन्यञ्च हाहाभूतमचेतनम् ॥ २२ ॥ कृत्वामुहूर्तंसोधावच्चक्रपाणिन्तमुन्नदन् ॥ ततश्चान्तर्द्दधेसद्यः प्रहसन्निवकेशवः ॥ २३ ॥ कुयोगिनइवस्वामी तदाबुद्धिमतांवरः ॥ अपश्यंस्तारकोविष्णुं पुनर्वृषभवाहनम् ॥ २४ ॥ अधावत्कुपितोदैत्यो मुष्टिमुद्यम्यवेगितः ॥ आचण्डांशुरिवालक्ष्यो लक्ष्योथभगवान्हरिः ॥ २५ ॥ आबभाषेततोदेवान् बाहुमुद्यम्यचोच्चकैः ॥ पलायध्वंमहादेवाः शक्तिश्चेद्विपलायितुम् ॥ २६ ॥ विमूढाहिवयंसर्वे येबालवचसागताः ॥ किन्नःश्रुतःपुरागीतः श्लोकःस्वायम्भुवेरितः ॥ २७ ॥ येर्थाबालेषुनिक्षिप्तास्स्त्रीष्वपण्डितकेषुच ॥ अपस्मारिषुवैचापि सर्वेनिस्संशयङ्गताः ॥ २८ ॥ प्रत्यक्षंतदिदंसर्व मधुनाचात्रदृश्यते ॥ अज्ञासिष्मपुरैवैतद्रुद्रभक्तंनहन्त्यसौ ॥ २९ ॥ यत्प्रतिज्ञांकरिष्येन ततोनःकदनंमहत् ॥ अ

हुये ॥ २२ । २३ । २४ । २५ ॥ तदनन्तर भुजाको उठाकर देवताओं से उच्चप्रकार करके बोले कि हे महादेवताओ ! यदि भागनेकी शक्ति होवै तो तुमलोग भागिये ॥ २६ ॥ हमलोग सब बड़े अज्ञानी हैं जोकि बालक के वचन से आये क्या पुरातनसमय का गाया स्वायम्भुव मनुसे कहाहुआ श्लोक नहीं सुनागयाहै ॥ २७ ॥ कि जो वस्तुवें बालक, स्त्री, मूर्ख व मिरगीवाले मनुष्यों में भी धरीजाती हैं वे सब निस्सन्देह नष्ट होजाती हैं ॥ २८॥ इस लिये यह सब यहा इस समय प्रत्यक्ष देखपड़ता है हमने पहलेही इस बातको जानाथा कि यह शिवजीके भक्तको नहीं मारता है ॥ २९ ॥ यदि प्रतिज्ञा न करूं तो हमलोगों का बड़ा विनाश होताहै इसके अनन्तर

यदि कुबुद्धिवाला यह दैत्येन्द्र को न मारैगा ॥ ३० ॥ तो हे महाभाग्यवानो ! तुम लोग मतडरो मैं तुमलोगों के शत्रुको मारूंगा हे देवताओ ! आज मेरे सफल बाहु बलको देखिये ॥ ३१ ॥ इस दैत्यको मैं एकही मूकासे मारूंगा इमको तुमलोग देखो मैंने आपलोगोंको सदैव दाहिनी भुजा दिया है ॥ ३२ ॥ उस सत्यको मैं पालन करूंगा व तुमलोगों के शत्रुको मारूंगा जो दैत्य आकाशमें हैं जो पातालमें और जो महादैत्य भूमिमेंहैं ॥ ३३ ॥ क्षणभर में उनको नाश करूंगा जैसे कि बडी वायु मेघोंको नाश करदेती है ऐसा कहकर अस्त्ररहित जगदीशजी दाहिना मूका उठाकर व गरुडकी पीठसे उतरकर दौडे उन गोविन्दजीके दौडनेपर तीनोंलोक कांप

शैषयादिदैत्येन्द्रं ननिहन्तिकुबुद्धिमान् ॥ ३० ॥ माबिभीथमहाभागा निहनिष्यामिवोरिपून्॥ अद्यमेसफलंबाह्वोर्बलं पश्यतदेवताः ॥ ३१ ॥ दैत्यञ्चैमंनाशयामि मुष्टिनैकेनपश्यत ॥ मयाहिदक्षिणोबाहुर्दत्तश्चभवतांसदा ॥ ३२ ॥ रिपून्वोनिहनिष्यामि सत्यंतत्परिपालये ॥ येम्बरेयेचपाताले भुवियेचमहासुराः ॥ ३३ ॥ क्षणात्तान्नाशयिष्यामि महावातोघनानिव ॥ एवमुक्त्वाजगन्नाथो मुष्टिमुद्यम्यदक्षिणाम् ॥ ३४ ॥ निरायुधस्ताक्ष्यपृष्ठादवप्लुत्याभ्यधावत ॥ तस्मिन्धावतिगोविन्दे चचालभुवनत्रयम् ॥ ३५ ॥ विमूर्च्छितमभूद्विश्वं देवाभीतिपरांययुः ॥ धावतश्चापिकल्पान्ते रुद्रकल्पस्यतस्ययाः ॥ ३६ ॥ मुखात्समुद्ययुर्ज्वालास्ताभिःसर्वंशतंहतम् ॥ ततोन्तरिक्षेचागत्याभ्याशंसाध्यःस्वयन्तदा ॥ ३७ ॥ जहिकोपंवासुदेव त्वयिक्रुद्धेद्यवैजगत ॥ अनादृत्यैवतद्वाक्यं ब्रुवन्नान्यत्करोम्यहम् ॥ ३८ ॥ आह्वयंश्चमहादैत्यं क्रुद्धोहरिरधावत ॥ उवाचचासौसाध्यञ्च यत्स्यात्पालयतांफलम् ॥ ३९ ॥ दुष्टान्विनिघ्नतांश्चैव तत्फलं

उठे ॥ ३४ । ३५ ॥ व सरार मूर्च्छित होगया और देवता बडे डरको प्राप्तहुये व कल्पान्त में शिवजी के समान दौडते हुये उन विष्णुजी के मुखसे जो ॥ ३६ ॥ ज्वालायें उत्पन्नहुईं उनसे सौ खर्व दैत्य नाशहोगये तदनन्तर उस समय आकाश में समीप आकर आपही साध्यदेवजी बोले ॥ ३७ ॥ कि हे वासुदेवजी ! क्रोधको नाशकीजिये क्योंकि तुम्हारे क्रोधित होनेपर आज संसारभर मूर्च्छित होगया उस के वचन का अनादर ही करके बोले कि कहताहुआ मैं अन्य कर्म नहीं करता हूं याने जो कहताहूं उसीको करताहूं ॥ ३८ ॥ और महादैत्य को पुकारतेहुये क्रोधित विष्णुजी दौड़े व इन विष्णुने साध्यदेवसे कहा कि उत्तम जनोंको पालतेहुये पुरुषो

को जो फल होताहै ॥ ३९ ॥ व दुष्टोंको मारनेवाले जनोंको जो फल होता है वह फल मुझको होगा इसके अनन्तर शिवजीके पीछे जातेहुये तारकको स्वामिकार्त्ति-केय जीने देखा ॥ ४० ॥ व तारकासुर के पीछे दौडते हुये पुराणपुरुष विष्णुजीको देखा व संसारको अत्यन्तही व्याकुल और पहले कीहुई अपनी प्रतिज्ञाको स्मरण कर ॥ ४१ ॥ व पश्चिम दिशामें जातेहुये अरुण सूर्यनारायण को देखकर व यह आकाशवाणी सुनतेहुये कि हे स्कन्दजी ! तुम क्यों व्याकुल होतेहो ॥ ४२ ॥ यदि ब्रह्मवधकर पश्चात्ताप होवै तो शिवजी का लिंग स्थापित करना क्योंकि उससे मारकर सैकड़ों भी ब्रह्मघातों से मुक्ति होजाती है ॥ ४३ ॥ यह सुनकर पृथ्वी को

ममजायताम् ॥ अथापश्यन्महासेनो रुद्रंयान्तञ्चतारकम् ॥ ४० ॥ तारकंचान्वधावन्तं पुराणपुरुषंहरिम् ॥ जगच्च क्षुब्धमत्यर्थं स्वाम्प्रतिज्ञांपुराकृताम् ॥ ४१ ॥ पश्चिमांप्रतिलम्बन्तं भास्करञ्चापिलोहितम् ॥ आकाशवाणींशृण्वंश्च किंस्कन्दत्वंविषीदसि ॥ ४२ ॥ पश्चात्तापोयदिभवेत् कृत्वाब्रह्मवधंतव ॥ स्थापयेर्लिङ्गमीशस्य मोक्षोहत्वाशतैरपि ॥ ४३ ॥ आविवेशमहाक्रोधं दिधक्षुरिवमेदिनीम् ॥ अथप्लुत्यमयूरात्स प्रहसन्निवकेशवम् ॥ ४४ ॥ बाहुभ्यामप्युपादाय प्रोवाचभवनन्दनः ॥ जानामित्वामहंविष्णो महाबुद्धिपराक्रमम् ॥ ४५ ॥ भूतभव्यभविष्यांस्त्वं दैत्यान्हंस्यपि हुंकृतैः ॥ त्वमेवहन्तादैत्यानां देवानांपरिपालकः ॥ ४६ ॥ धर्मसंस्थापकश्चत्वमेपतेरचितोञ्जलिः ॥ क्षणार्द्धंपश्यमेवीर्यं भास्करोलोहितायते ॥ ४७ ॥ एवंप्रणम्यस्कन्देन वासुदेवःप्रसादितः ॥ विरोषोभूत्तमालिङ्ग्य वचनंकेशवोब्रवी

जलाते हुये से स्वामिकार्त्तिकेय जी बड़े क्रोधमें प्राप्तहुये इसके अनन्तर मयूरसे कूदकर हँसते हुये से वे शिवजी के पुत्र स्वामिकार्त्तिकेय जी विष्णु को भुजाओं से लिपटाकर बोले कि हे विष्णो ! बडी बुद्धि व बलवाले तुमको मैं जानताहूं ॥४४।४५॥ और तुम भूत, भविष्य, वर्त्तमान दैत्योंको भी हुंकारोंसे नाश करतेहो दैत्योंके नाशक व देवताओं के रक्षक तुम्हींहो ॥ ४६ ॥ और धर्मके भलाभाति स्थापन करनेवाले तुम्हींहो तुम्हारे लिये मैंने यह अंजली रचा है याने हाथ जोडताहूं कि आधे क्षणभर मेरा पराक्रम देखिये सूर्य अरुणताको प्राप्तहैं ॥ ४७ ॥ इस प्रकार प्रणामकर स्वामिकार्त्तिकेय जीने विष्णुको प्रसन्न किया और उनको लिपटकर विष्णुजी क्रोध

रहित हुये व यह वचन बोले ॥ ४८ ॥ कि हे स्वामिकार्त्तिकेयजी ! यह सनातन धर्महै और देवता तुमसे रक्षा करने योग्य हैं अपना को स्मरण कीजिये कि जिस लिये तुम शिवजीसे पैदाहुये हो ॥ ४९ ॥ महात्माओ का जीवन व जन्म साधुवों के पालने के निमित्त व दुष्टोंके नाश के लिये व देवताओ तथा ब्राह्मणो के हित के लिये होताहै ॥ ५० ॥ और शिवजीके गगादेवी से व कृत्तिकाओ के तेजसे स्वाहा तथा अग्निसे तुम पैदाहुये हो उस तेजको सफल कीजिये ॥ ५१ ॥ हे शिवपुत्र ! जिराका धन, बल व सम्पदायें साधुवोके लिये होती हैं उसका वह सब सफल है अन्यथा नहीं ॥ ५२ ॥ आज धर्म, देवता, गौवें, साध्य व ब्राह्मण तुम्हारे पराक्रम

त ॥ ४८ ॥ सनातनस्तुधर्म्मोयं सुराश्चैवत्वयागुह ॥ स्मरात्मानंयदर्थन्त्वमुत्पन्नोसिमहेश्वरात् ॥ ४९ ॥ साधूनांपालनार्थाय दुष्टसंहरणायच ॥ सुरविप्रकृतेजन्म जीवितंचमहात्मनाम् ॥ ५० ॥ रुद्रस्यदे०यागङ्गायाः कृत्तिकानांच तेजसा ॥ स्वाहावह्निश्चजातस्त्वं तत्तेजस्सफलीकुरु ॥ ५१ ॥ साधूनांहिकृतेयस्य धनंवीर्यंचसम्पदः ॥ सफलंतस्यतत्सर्वं नान्यथारुद्रनन्दन ॥ ५२ ॥ अद्यधर्माश्चदेवाश्च गावस्साध्याश्चब्राह्मणाः ॥ नन्दन्तुतववीर्येण तद्दर्शयबलंनिजम् ॥ ५३ ॥ स्कन्दउवाच ॥ यागतिःशिवसंत्यागे त्वत्त्यागेनचकेशव ॥ ताङ्गतिंप्राप्नुयांक्षिप्रं हन्मिचेन्नाद्यतारक ॥ ५४ ॥ यागतिर्धर्म्मसन्त्यागे साध्वीभार्यातिपीडनात् ॥ साधूनाञ्चपरित्यागे वृथाजीवितहिंसनात् ॥ ५५ ॥ निष्ठुरस्यगतिर्याच ताङ्गतिंयामिकेशव ॥ इत्युक्तेसुमहान्नादः सम्प्रजज्ञेदिवौकसाम् ॥ ५६ ॥ प्रशशंसुर्गुहंकेचित्केचिन्नारायणंप्रभुम् ॥ ततस्ताक्ष्यंरथारूढो हरिस्तस्मिन्महारणे ॥ ५७ ॥ ताम्रचूडंमहासेनस्तारकंचाप्यधावत ॥ लोहितम्बरसंवीतो

से प्रसन्नहोवें इस लिये अपने बलको दिखाइये ॥ ५३ ॥ स्वामिकार्त्तिकेय जी बोले कि हे केशव ! शिवजी के त्यागने में व तुम्हारे त्यागसे जो दशा होती है उसी गतिको मैं शीघ्रही प्राप्तहोऊं यदि आज तारकासुरको न मारूं ॥ ५४ ॥ व धर्मके छोडनेमें जो गतिहोती है तथा पतिव्रता स्त्रीको अतिदुःख देनेसे व साधुवोंको त्यागने में और वृथा जीवहिंसा से जो गतिहोती है ॥ ५५ ॥ व हे केशव ! निठुर पुरुषकी जो गति होती है उसीदशा को मैं प्राप्तहोऊं यदि तारकासुर को न मारूं यह कहने पर देवताओंका बड़ाभारी शब्दहुआ ॥ ५६ ॥ कोई स्वामिकार्त्तिकेय और कोई नारायण स्वामी की प्रशंसा करनेलगे तदनन्तर उस महायुद्ध में विष्णुजी गरुड़पै

चढ़े ॥ ५७ ॥ और अरुण वसन पहने लाल माला तथा भूषणोंवाले स्वामिकार्त्तिकेय जी मुर्गेपर सवार हुये व तारकके सामने दौडे ॥ ५८ ॥ जोकि अरुण नयनों वाले व बडी भुजाओंवाले व सोनेकी कवचवाले थे उन स्वामी स्वामिकार्त्तिकेयजीने बाहुसे शक्तिको तोलते व सब प्राणियों को कँपातेहुये उस तारकको प्राप्तहोकर हँसते हुये से कहा कि हे दुर्बुद्धे ! खडेहो २ तुम्हारे जीवनको मैं नाश करताहूं ॥ ५९ । ६० ॥ संसार प्रसन्न कियाजावै तुम्हारा जीवन दुर्लभ है जो दुष्टगर्वसे धर्म व देवोंमें तुम्हारी निठुरता है ॥ ६१ ॥ उसी तुम्हारे ऊपर मैं आज प्रहार करता हूं भलीभांति सीखेहुये शस्त्रको स्मरण कीजिये ऐसा स्वामिकार्त्तिकेय जी के कहनेपर

लोहितस्रग्विभूषणः ॥५८॥ लोहिताक्षोमहाबाहुर्हिरण्यकवचःप्रभुः॥भुजेनतोलयञ्च्छक्तिं सर्वभूतानिकम्पयन् ॥५९॥ प्राप्यतंतारकंप्राह महासेनोहसन्निव ॥ तिष्ठतिष्ठसुदुर्बुद्धेजीवितन्तेहराम्यहम् ॥ ६० ॥ सुहृष्टःक्रियतांलोकोदुर्लभंजीवनन्तव॥यत्तेतुनिष्ठुरत्वंचधर्मेदेवेषुदुर्मदात्॥६१॥तस्यतेप्रहराम्यद्यस्मरशस्त्रंसुशिक्षितम्॥ एवमुक्तेगुहेनाथनिवृत्तस्यास्यभारत॥ ६२ ॥ तारकस्यशिरोदेशात् कापिनारीविनिर्ययौ ॥ तेजसाभासयन्तीतामधऊर्द्ध्वंदिशोदश ॥ ६३ ॥ दृष्ट्वा नारींगुहःप्राह कासिकस्माद्विनिर्गता ॥ ६४॥ नार्युवाच ॥ अहंशक्तिर्गुहाख्याता भूतेषुचसदास्थिता ॥ अनेनदैत्यराजेन महतातपसार्जिता ॥ ६५ ॥ शूरेषुसर्वेषुवसामिचाहं विप्रेषुशास्त्रार्थपरेषुचैवम् ॥ साध्वीषुनारीषुतथावसामि विना गुणान्नैववसामिकुत्र ॥ ६६ ॥ यदस्यपुण्यसङ्घस्य सम्प्राप्तोस्यावधिर्गुह ॥ तदेनंत्यज्ययास्यामि जह्येनंविश्वहे

इसके उपरान्त हे अर्जुन ! लौटेहुये इस ॥ ६२ ॥ तारकके मस्तक स्थानसे कोई अदृष्ट स्त्री निकली नीचे व ऊपर दशों दिशाओं को तेजसे प्रकाशित करती हुई उस ॥ ६३ ॥ स्त्रीको देखकर स्वामिकार्त्तिकेयजी बोले कि तुम कौनहो व किसलिये निकलीहो ॥ ६४ ॥ स्त्री बोली कि हे स्वामिकार्त्तिकेयजी ! सदैव प्राणियोंमें टिकी हुई मैं शक्ति ऐसी प्रसिद्ध हूं जोकि इस दैत्योंके राजासे बड़ो तपस्या करके इकट्ठा कीगईहूं ॥ ६५ ॥ सब वीरोंमे मैं बसतीहूं व शास्त्रार्थ में परायण ब्राह्मणोंमें बसती हूं वैसही पतिव्रता स्त्रियोंमे रहती हूं और गुणोंके विना कहीं नहीं बसती हू ॥ ६६ ॥ हे स्कन्दजी ! जिस लिये इसके पुण्यपुञ्जकी अवधि प्राप्तहुई है उसीकारण इस

को छोडकर जाऊंगी अब संसारके लिये इसको मारिये ॥ ६७ ॥ जब वह शक्ति निकली तब जिसलिये कि दैत्यका मस्तक कांपउठा व इसकी वह देह कांपतीभई
उसीसे क्षणभर में वह बलहीन होगया ॥ ६८ ॥ इसी अवसर में शिवजी के पुत्र उन स्वामिकार्त्तिकेयजी ने शक्तिको लिया और उल्काके समान ज्वालाओं को छो-
डतीहुई व सूर्य और अग्निके समान प्रकाशवाली ॥ ६९ ॥ व शब्दमें कल्पान्त के मेघोंके समान और संसारको जलाने की इच्छावाली सी व तारकके विनाश के
लिये अभाग्य की दशाके समान ॥ ७० ॥ व पर्वतों को तोड़नेवाली और समस्त प्राणियों से बलमें अधिक उस शक्तिको ऊपर फेंककर क्रोधित स्वामिकार्त्तिकेयजी

**तवे ॥ ६७ ॥ तस्यांशक्तौनिर्गतायां दैत्यशीर्षञ्चकम्पयन् ॥ कम्पितंवास्यतद्देहं गतवीर्योभवत्क्षणात् ॥ ६८ ॥ एतस्मि
न्नन्तरेशक्तिं सोभ्यसद्गिरिशात्मजः ॥ उल्काज्वालाविमुञ्चन्तीं तथासूर्याग्निसप्रभाम् ॥ ६९ ॥ कल्पाम्भोभृत्समाना
न्दे दिधक्षन्तींजगद्यथा ॥ तारकस्यान्तकालाय अभाग्यस्यदशामिव ॥७०॥ दारणींपर्वतानांच सर्वसत्त्वबलाधिकाम् ॥
उत्क्षिप्यतांविनद्योच्चैरमुञ्चत्कुपितोगुहः ॥ ७१ ॥ धर्मश्चेद्बलवाँल्लोके धर्मोजयतिचेत्सदा ॥ तेनसत्येनदैत्योयं प्र
लयंयात्वितीरयन् ॥ ७२ ॥ साकुमारभुजोत्सृष्टा दुर्निवार्यादुरासदा ॥ बिभेदहृदयंतस्य भित्त्वाचधरणींगता ॥ ७३ ॥
निःस्पृश्यजलकल्लोलपूर्वकंस्कन्दमाययौ ॥ सचसन्ताडितःशक्त्या विभिन्नहृदयोसुरः ॥ ७४ ॥ नादयन्वसुधांसर्वा
पपाताधोमुखोमृतः ॥ एवंप्रतापस्त्रैलोक्यां निर्जित्यबहुशस्सुरान् ॥ ७५॥ महारणेकुमारेण निहतःपार्थतारकः ॥ तस्मि
न्विनिहतेदैत्ये प्रहर्षविश्वमाययौ ॥ ७६ ॥ ववुर्वातास्तथारम्याः सुप्रभोभूद्दिवाकरः ॥ जज्वलुश्चाग्नयःशान्ताः शा**

ने उच्चप्रकार से गर्जकर छोडदिया ॥ ७१ ॥ यदि संसार में धर्म बलिष्ठ है व यदि सदैव धर्म जय को प्राप्तहोताहै उस सत्यसे यह दैत्य नाशको प्राप्तहोवै यह कहते
हुये स्वामिकार्त्तिकेय ने शक्तिको छोडा ॥ ७२ ॥ स्वामिकार्त्तिकेय की भुजासे छोडी हुई असह्य व न रोंकने योग्य उस शक्तिने हृदयको फाडडाला व फाडकर पृथ्वीमें
चलीगई ॥ ७३ ॥ व पृथ्वीसे जलके कल्लोल (लहरी) पूर्वक निकलकर स्वामिकार्त्तिकेय जीके समीप आई व शक्तिसे माराहुआ टूटे हृदयवाला वह तारकासुर ॥
७४ ॥ समस्त पृथ्वीको शब्दायमान करताहुआ मरकर नीचे मुखकरके गिरपड़ा हे अर्जुन ! ऐसे प्रतापवाला तारकासुर त्रिलोक में बहुत देवताओं को जीतकर समर

पातक नाश होजाता है ॥ ९ ॥ इसप्रकार शोचते हुये बुद्धिमान् शिवजी के पुत्र स्वामिकार्त्तिकेय जीसे पुरुषोंके गुरु विष्णुजी देवताओं के बीचमें वचन बोले ॥१०॥ कि हे शिवपुत्र ! यदि श्रुति, स्मृति, इतिहास व पुराणोंका प्रमाणहै तो दुष्टके मारनेमे दोष नहीं है ॥ ११ ॥ क्योंकि जो निर्दयी पुरुष पराये प्राणों से अपने प्राणो को पालता है उसका मारडालना उसके लिये कल्याणहै कि जिसके दोषसे पुरुषनरक को जाताहै ॥ १२ ॥ गर्भघाती पुरुष अन्नादिको मे व दुराचारवती स्त्री पतिमे और यज्ञ कराने योग्य शिष्य गुरुमें व चोर राजा में अपना पाप शुद्ध करताहै ॥ १३ ॥ व जो समर्थ पुरुष पापीको नहीं मारता है तो उसके जितने पाप होते हैं उनके

तोपिमहदर्जितम् ॥ ९ ॥ इति संशोचतस्तस्य शिवपुत्रस्यधीमतः ॥ वासुदेवोगुरुःपुंसां देवमध्येवचोब्रवीत् ॥१०॥ श्रुतिःस्मृतिश्चेतिहासाःपुराणञ्चशिवात्मज ॥ प्रमाणंचेत्ततोदुष्टवधेदोषोनविद्यते ॥ ११ ॥ स्वप्राणान्यःपरप्राणैःप्रपुष्णात्यघृणःपुमान् ॥ तद्वधस्तस्यहिश्रेयो यद्दोषाद्यात्यधःपुमान् ॥ १२ ॥ अन्नादोभ्रूणहामार्ष्टि पत्यौभार्यापचारिणी ॥ गुरौशिष्यश्चयाज्यश्चस्तेनोराजनिकिल्बिषम् ॥ १३ ॥ पापिनंपुरुषंयोहि समर्थोननिहन्तिच ॥ तस्ययावन्तिपापानि तदर्द्धसोप्यवाप्नुते ॥ १४ ॥ पापिनोयदिवध्यन्ते नैवपालनसंस्थितैः ॥ ततोयमक्षमोलोकः कंयातिशरणंगुह ॥ १५ ॥ कथंयज्ञाश्चवेदाश्च वर्तन्तेविश्वधारकाः ॥ तस्मात्त्वयापुण्यमाप्तं नचपापंकथञ्चन ॥ १६ ॥ अथचेद्रुद्रभक्तेषु बहुमानं तवप्रभो ॥ तदहंकीर्तयिष्यामि प्रायश्चित्तंमहोत्तमम् ॥ १७ ॥ आजन्मसम्भवैःपापैः पुमान्येनविमुच्यते ॥ आकल्पान्तंचकायेन रुद्रलोकेप्रमोदते ॥१८॥ कृतेपापेनुतापोवै यस्यस्कन्दप्रजायते॥रुद्राराधनतोन्यच्च प्रायश्चित्तंपरन्नहि॥१९॥

आधेभागको वह भी पाताहै ॥ १४ ॥ हे स्वामिकार्त्तिकेयजी ! पालन करनेमें भलीभांति टिकेहुये पुरुष यदि पापियों को न मारें तो यह असमर्थ पुरुष किसकी शरण में जावै ॥ १५ ॥ व संसारको धारनेवाले यज्ञ व वेद किस प्रकार वर्त्तमान होवैं इसलिये तुमने पुण्यको पायाहै पाप किसी प्रकारसे नहीं ॥ १६ ॥ अथवा हे प्रभो ! यदि शिवभक्तों में तुम्हारा बहुत आदरहै तो मैं बड़े उत्तम प्रायश्चित्त को कहूंगा ॥ १७ ॥ कि जिससे पुरुष जन्मसे लगाकर पापों से छूटजाता है व कल्पान्त तक शरीरसे शिवलोकमें प्रसन्न रहताहै ॥ १८ ॥ हे स्वामिकार्त्तिकेय जी ! पाप करनेपर जिसको पश्चात्ताप होवै तो शिवाराधन से बढ़कर और प्रायश्चित्त नहीं है ॥ १९ ॥

कि जिनकी महिमा कहनेके लिये ब्रह्माभी समर्थ नहीं हैं व जिसको कहनेके लिये वेद डरताहै उनसे उत्तम क्या होवै है ॥ २० ॥ पृथ्वी रथ व ब्रह्मा सारथी बाण मैं
व धनुष मन्दराचल और पहिया भी चन्द्रमा, सूर्य त्रिलोकमें अन्य किस देवताकेहैं॥ २१ ॥ उन शिवजी का आराधन कोई मुनिलोग योगमार्गके द्वारा कहते हैं पर-
न्तु वह तुमको दुःखसे साधने योग्य है क्योंकि वह आराधन नित्यही शून्यके उपासक उन योगियों का है ॥ २२ ॥ इस लिये जो भोग व मोक्षको चाहै वह उन
शिवजी के लिगको पूजै सृष्टिके आदिमें मेरे व ब्रह्मा के विवाद में ये शिवजी लिगरूप हुये हैं ॥२३॥ कि जिसकी प्रमाण में हमदोनों न समर्थ हुये जिस लिये सदैव

नयस्यालमपिब्रह्मा महिमानंविवर्णितुम् ॥ श्रुतिश्चभीतायंवक्तुंकिंतस्मात्परमंभवेत् ॥ २० ॥ क्षोणीरथोविधिर्यन्ता
शरोहंमन्दरोधनुः ॥ रथाङ्गेचापिचन्द्रार्कौ कस्यान्यस्यचत्रैपुरे ॥ २१ ॥ आराधनंतस्यकेचिद्योगमार्गेणचक्षते ॥
दुःखसाध्यंहितत्तेषां नित्यंशून्यमुपासताम् ॥ २२ ॥ तस्मात्तस्यार्चयेल्लिङ्गं भुक्तिमुक्तिंयइच्छति ॥ सृष्ट्यादौलिङ्गरूपो
सौ विवादेममवेधसः ॥ २३ ॥ अभूद्यस्यपरिच्छेदे नालमावांबभूविव ॥ चराचरंजगत्सर्वं यतोलीनंसदात्रच ॥ २४ ॥
तस्माल्लिङ्गमितिप्रोक्तं वेदेरुद्रस्यधीमतः ॥ तोयेनस्नापयेल्लिङ्गं श्रद्धयाशुचिनाचयः ॥२५॥ ब्रह्मादितृणपर्यन्तं तेनेदं
तर्पितंजगत् ॥ पञ्चामृतेनतल्लिङ्गं स्नापयेद्यश्चबुद्धिमान् ॥ २६ ॥ तर्पितंतेनविश्वंस्यात् सुधयापितृभिस्समम् ॥ पुष्पै
रभ्यर्चयेल्लिङ्गं यथाकालोद्भवैश्चयः ॥ २७ ॥ तेनवैपूजितंविश्वं सकलंनात्रसंशयः ॥ नैवेद्यंतत्रयोदद्याल्लिङ्गस्याग्रेवि
चक्षणः ॥ २८ ॥ भोजितंतेनविश्वंस्याल्लिङ्गस्यैवंफलंमहत् ॥ किमत्रबहुनोक्तेन स्वल्पंवायदिवाबहु ॥ २९ ॥ लिङ्ग

इस लिगमें सब स्थावर, जंगम संसार व्याप्तहै ॥ २४ ॥ इसलिये वेदमें लिंग ऐसा कहागया है और जो मनुष्य श्रद्धासे बुद्धिमान् शिवजीके लिगको पवित्र जल से
स्नान कराता है ॥ २५ ॥ उससे ब्रह्मासे लगाकर तृणपर्यन्त यह संसार तृप्त किया गया और जो बुद्धिमान् पञ्चामृत से उन शिवजी के लिंगको स्नान कराता है ॥
२६ ॥ उससे पितरों समेत संसार अमृत करके तृप्त कियागयाहै व समय के अनुकूल उपजे हुये फूलोंसे जो लिगको पूजताहै ॥ २७ ॥ उससे समस्त संसार पूजित
हुआ, इसमें सन्देह नहीं है व जो चतुर मनुष्य वहीं शिवलिंग के आगे नैवेद्य को निवेदन करताहै ॥ २८ ॥ उससे संसार भोजन करायागया लिंगका ऐसा बड़ाभारी

फलहै यहां बहुत कहने से क्याहै याने कुछ नहीं थोड़ा या बहुत ॥ २९ ॥ जो कुछ लिंगका पूजनादिक कियाजाताहै वह सब संसारको प्रीतिदायकहै और जो मनुष्य पवित्र देशमें उत्तम भक्तिसे उस लिंगका स्थापन करता है ॥ ३० ॥ वह सब पापोंसे छूटकर शिवलोक में प्रसन्न रहताहै नित्यही यज्ञोंसे पूजतेहुये पुरुषको जो फल विद्वानों ने कहाहै ॥ ३१ ॥ वह वैसेही शिवजी के उत्तम लक्षणोंवाले लिंग को देखते हुये पुरुषको होताहै हे स्वामिकार्त्तिकेय जी ! जैसे सब देवताओंका मुख अग्नि कहीजाती है ॥ ३२ ॥ वैसेही समस्त लोकों का मुख शिवलिंगहै इसमे सन्देह नहीं है व शिवलिंग के पूजने से सात जन्मोंमें भी कियेहुये पापोंसे छूटजाता

स्यक्रियतेयच्चतत्सर्वंशिवप्रीतिदम् ॥ तच्चल्लिङ्गंस्थापयेद्यःशुचौदेशेसुभक्तितः ॥ ३० ॥ ससर्वपापनिर्मुक्तोरुद्रलोकेप्रमोदते ॥ यन्नित्यंयजतोयज्ञैःफलमाहुर्मनीषिणः ॥ ३१ ॥ तत्तथापश्यतोलिङ्गंशिवस्यशुभलक्षणम् ॥ यथाग्निस्सर्वदेवानां मुखंस्कन्दप्रकीर्त्यते ॥ ३२ ॥ तथैवसर्वजगतां मुखंलिङ्गंनसंशयः ॥ अर्चनान्मुच्यतेपापैस्सप्तजन्मकृतैरपि ॥ ३३ ॥ अतीतंचतथागामिकुलानांतारयेच्छतम् ॥ मृन्मयंकाष्ठनिष्पन्नं यच्चेष्टंशैलमेवच ॥ ३४ ॥ कृतमायतनंदद्यात् क्रमाच्छतगुणंफलम् ॥ कलशंतत्रचारोप्य एकविंशाकुलैर्युतः ॥ ३५ ॥ आकल्पान्तंरुद्रलोके मोदतेरुद्रवत्सुखम् ॥ एवंविधंफलंलिङ्गे नत्वतोर्हसिशोचितुम् ॥ ३६ ॥ तस्मादत्रमहासेन लिङ्गंस्थापितुमर्हसि ॥ यदुक्तमेतदश्लीलं यदिकिञ्चन वात्रचेत् ॥ ३७ ॥ तद्ब्रवीतुमहासेन स्वयंसाक्षीमहेश्वरः ॥ एवंवदतिगोविन्दे साधुसाधुसुराजगुः ॥ ३८ ॥ महादेवश्च

है ॥ ३३ ॥ और वैसेही भूत व भविष्य सौ पुश्तियों को तारताहै मिट्टीसे बनाहुआ व काष्ठसे सिद्ध तथा जो ईटसे निर्मित व पत्थरही से ॥ ३४ ॥ बनाये हुये मन्दिरको जो उसमें कलश धरकर देताहै उसको क्रमसे सौगुना फल होताहै व इक्कीस पुश्तियों से संयुत वह ॥ ३५ ॥ कल्पपर्यन्त शिवलोकमे प्रसन्न रहताहै व शिवकी नाईं उसको सुख होता है इस प्रकारका शिवलिंगमे फलहै इससे शोचने के लिये तुम नहीं योग्यहो ॥ ३६ ॥ इसलिये हे महासेन ! तुम यहां लिंगको थापने के लिये योग्यहो और यदि इस विषय मे जो यह कुछ निन्दित या अमंगल कहागया हो ॥ ३७ ॥ हे महासेन ! उसको कहिये इसमें आपही महादेव साक्षी हैं विष्णुके ऐसा

कहने पर देवताओं ने बहुत अच्छा २ ऐसा कहा॥ ३८॥ और महादेवजी स्वामिकार्त्तिकेयको लिपटाकर वचन बोले कि जिस लिये मेरे भक्तोंके ऊपर आप बड़ी दया करतेहो ॥ ३९ ॥ उससे तुम्हारे ऊपर मेरी बड़ीभारी प्रसन्नता हुईहै किन्तु संसारकेगुरु विष्णुभगवान् ने जो कहाहै ॥ ४० ॥ वह वैसाही है इसमें विष्णु ने अन्यथा कुछ नहीं कहाहै क्योंकि जो मैं हूं वे विष्णु जानने योग्यहैं व जो विष्णुहैं वे मैं हूं ॥ ४१ ॥ हे सुव्रत ! हमदोनोंमें दो दीपकोंकी नाईं कुछ भेद नहीं है जो इनसे वैर करता है वह मुझसे शत्रुता करताहै और जो इनका अनुगामी है वह मेरा अनुचरहै ॥ ४२ ॥ हे स्कन्दजी ! जो ऐसा जानताहै वह मेरा भक्तहै अन्यथा नहीं है ॥४३॥

**आलिङ्ग्य स्कन्दंवचनमब्रवीत् ॥ यद्भवान्ममभक्तेषु प्रकरोतिकृपांपराम् ॥ ३९ ॥ तेनातिपरमाप्रीतिर्ममजातातवोप
रि ॥ किन्तुयद्भगवानाह वासुदेवोजगद्गुरुः ॥ ४० ॥ तत्तथानान्यथाकिञ्चिदत्रप्रोक्तंहिविष्णुना ॥ योह्यहंसहरिर्ज्ञेयो
योहरिस्सोहमित्युत ॥ ४१ ॥ नावयोरन्तरंकिञ्चिद्दीपयोरिवसुव्रत ॥ एनंद्वेष्टिसमांद्वेष्टि योवान्वेनंसमामनु ॥ ४२ ॥
इतिस्कन्दविजानाति समद्भक्तोन्यथानहि ॥ ४३ ॥ कुमारउवाच ॥ एवमेवास्तिजानामि त्वांचविष्णुञ्चशङ्कर ॥ यच्च
लिङ्गंकृतेप्राह हरिर्मान्धर्मवत्सलः ॥ ४४ ॥ खवाणीतारकवधे एवमेवपुराहमाम् ॥ लिङ्गंसंस्थापयिष्यामि सर्वपापापहं
ततः ॥ ४५ ॥ एकायत्रप्रतिज्ञामे गृहीतास्यवधायच ॥ द्वितीयंयत्रनिस्सत्त्वस्त्यक्तःशक्त्यापुराभवत् ॥ ४६ ॥ तृतीयं
यत्रनिहतो दैत्यःपापोपशान्तिदम् ॥ इत्युक्त्वाविश्वकर्म्माणमाहूयप्राहपावकिः ॥ ४७ ॥ त्रीणिलिङ्गानिशुद्धानि शी**

स्वामिकार्त्तिकेय जी बोले कि हे शिवजी ! ऐसाहीहै मैं तुमको व विष्णुजीको जानताहूं और धर्मप्रिय विष्णुजीने जो लिंगके लिये मुझसे कहाहै॥ ४४ ॥ पुरातन समय तारकासुर के मारने में आकाशवाणीने मुझसे ऐसाही कहाथा इस लिये समस्त पातकों के नाशक एक लिंगको मैं वहां थापूंगा कि जहां इसके मारनेके लिये प्रतिज्ञा को ग्रहण कियाथा व दूसरा लिंग वहां थापूंगा जहां कि पहले शक्तिसे छोड़ाहुआ दैत्य निर्बल भया था ॥ ४५ । ४६ ॥ व पापको शान्तिदायक तीसरे लिंगको वहां थापूंगा जहां कि दैत्यको मैंने मारा है यह कहकर स्वामिकार्त्तिकेय जी ने विश्वकर्माको बुलाकर कहा ॥ ४७ ॥ कि तुम तीन शुद्ध लिंगोंको शीघ्रही करने के लिये.

योग्यहो स्वामिकार्त्तिकेय जीके वचन से उन विश्वकर्मा ने बनाया ॥ ४८ ॥ और उन विश्वकर्मा ने उन तीन पवित्र लिंगोंको दिया तदनन्तर ब्रह्मादिक देवताओं व विष्णु तथा शिव समेत ॥ ४९ ॥ पहले समीप पश्चिम दिशामें प्रतिज्ञेश्वरही ऐसे अति उत्तम लिंगको महासेनने भलीभांति थापा ॥ ५० ॥ कार्त्तिक व चैत्रमें अष्टमी तिथिमें यहा नहाकर पूजन तथा जागरणकर मनुष्य मृत्युको भी उल्लंघन करैगा ॥ ५१ ॥ वहा आपही शिवजीने स्वामिकार्त्तिकेय की प्रसन्नता के लिये यह कहा है तदनन्तर दूसरे लिंगको आग्नेय दिशामें आश्रितकर वहा स्थापन किया जहां कि मस्तक से शक्ति निकली थी व कपालेश्वर ऐसाही पापनाशक वह उत्तम लिंग

र्हत्वंकर्तुमर्हसि ॥ वचनाद्बाहुलेयस्य निर्ममेचैववार्धुकिः ॥ ४८ ॥ त्रीणिलिङ्गानिशुद्धानि न्यवेदयतत्तानिसः ॥ ततोब्र ह्मादिभिस्सार्द्धं विष्णुनाशङ्करेणच ॥ ४९ ॥ पूर्वंसंस्थापयामास पश्चिमायामदूरतः ॥ प्रतिज्ञेश्वरमित्येव लिङ्गंपरमशो भनम् ॥ ५० ॥ अष्टम्यांबाहुलेचात्र चैत्रेस्नात्वानुपोष्यच ॥ पूजाञ्चजागरंकृत्वा मृत्युमप्युत्क्रमिष्यति ॥ ५१ ॥ इत्या हस्कन्दप्रीत्यर्थं स्वयंतत्रमहेश्वरः ॥ ततोद्वितीयलिङ्गन्तु वह्निकोणाश्रितन्ततः ॥ ५२ ॥ स्थापयामासशिरसो यत्रश क्तिर्विनिर्ययौ ॥ कपालेश्वरमित्येव लिङ्गंपापापहंशुभम् ॥५३॥ शक्तिञ्चतामभिष्टूय स्थापयामासतत्रच ॥ कपालेशस्य सान्निध्ये देवीकापालिकेश्वरी ॥ ५४ ॥ तत्रचोत्तरदिग्भागेशक्तिच्छिद्रंप्रचक्ष्यते॥पातालगङ्गायत्रास्ति सर्वपापहराशि वा ॥ ५५ ॥ तत्रस्नात्वाततःस्कन्दः कृपयाभिपरिप्लुतः ॥ ददौतोयंतारकाय सहितस्सर्वदैवतैः ॥ ५६ ॥ काश्यपेयाय वज्राङ्गतनयायमहात्मने ॥ रुद्रभक्तायसतिलमक्षय्योदकमस्त्विति ॥ ५७ ॥ ततोमहेश्वरःप्रीतः प्राहस्कन्दस्यश्टृ

प्रसिद्ध हुआ ॥ ५२ । ५३ ॥ व उस शक्तिकी स्तुतिकर वहीं कपालेश्वर के समीप स्थापन किया वे कापालिकेश्वरी देवी प्रसिद्ध हुईं ॥ ५४ ॥ और वहां उत्तर दिशाके भागमें शक्तिका छिद्र कहाजाता है जहां कि सब पापोंको नाशनेवाली कल्याणदायिनी पातालगंगा हैं ॥ ५५ ॥ उसमें नहाकर तदनन्तर सब देवताओं समेत दया से व्याप्त स्वामिकार्त्तिकेय ने तारकासुर के लिये जलको दिया ॥ ५६ ॥ कश्यपके वंशमें उत्पन्न व वज्रांगके पुत्र शिवभक्त महात्मा तारकके लिये तिल समेत यह

अन्तर्योदक होवै यह कहकर तिलांजलीदी ॥ ५७ ॥ तदनन्तर प्रसन्न महादेवजीने सुनते हुये महासेनसे कहा कि चैतके कृष्णपक्षमें जो मनुष्य यहां ॥५८॥ नहाकर
व उपास रहकर कपालेश्वर शिवको भलीभांति पूजैगा वह तेजस्वी के वधसे पैदा हुये पापसे छूट जावैगा ॥ ५९ ॥ इसी तिथिमें सोमवार के दिन शिवयोग व तैतिल
करण इस षट्योगमें जो पुरुष इस पातालगंगा में नहाकर शक्तिछिद्र के समीप रुद्रिय (षडंग) को रातमें पढ़ैगा वह शरीर समेत शिवलोकको जावैगा कपाले-
श्वर के समीप जो शक्तिछिद्र कहाजाता है ॥ ६० ॥ ६१ ॥ पृथ्वीमें उसके बराबर दूसरा तीर्थ नहीं विद्यमान है यह शिवजीका वचन सुनकर स्वामिकार्त्तिकेय जी

ग्वतः ॥ चतुर्दश्यांकृष्णपक्षे मधौचैवात्रयोनरः ॥ ५८ ॥ स्नात्वोपोष्यसमभ्यर्च्चेत्कपालेश्वरमीश्वरम् ॥ तेजोवधस
मुद्भूतपातकेनसमुच्यते ॥ ५९ ॥ अस्यामेवतिथौसोमे शिवयोगेचतैतिले ॥ षड्योगेशक्तिछिद्रेयो रुद्रियंप्रजपेन्नि
शि ॥ ६० ॥ स्नात्वात्रसशरीरोवै रुद्रलोकंव्रजिष्यति ॥ कपालेशस्यसान्निध्ये शक्तिच्छिद्रंहिकीर्त्यते ॥ ६१ ॥ तस्यतु
ल्यंपरंतीर्थंपृथिव्यांनैवविद्यते ॥ इतिश्रुत्वारुद्रवचःस्वयंस्कन्दःप्रीतोभवद्भृशम् ॥ ६२ ॥ देवाश्चमुदितास्सर्वेसाधुसाध्वितिते
जगुः ॥ ६३ ॥ इतिश्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डप्रतिज्ञेश्वरशक्तिच्छिद्रमाहात्म्यवर्णनंनामषड्विंशोध्यायः ॥ २६ ॥

नारदउवाच ॥ ततस्तृतीयलिङ्गस्य चिकीर्षुस्थापनंगुहम् ॥ ब्रह्माप्राहास्यप्रीत्यर्थं स्वयमन्यत्करोम्यहम् ॥ १ ॥
यद्यप्येतच्छुभंलिङ्गं सर्वदोषविवर्जितम् ॥ तथाप्यन्यत्करिष्येहं सर्वश्रेष्ठतमंहियत ॥ २ ॥ ततोब्रह्मासर्वदोषविमुक्तं

बहुत प्रसन्न हुये ॥ ६२ ॥ व प्रसन्न होतेहुये उन सब देवताओंने बहुत अच्छा २ ऐसा कहा ॥ ६३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभा
षाटीकायांप्रतिज्ञेश्वरशक्तिच्छिद्रमाहात्म्यवर्णननामषड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

दो० । महासेन थाप्यो शिवहिं कुमारेश अस नाम । सत्ताइस अध्याय में सोइ चरित सुखधाम ॥ नारदजी बोले कि तदनन्तर तीसरे लिंगका स्थापन करनेकी
इच्छावाले स्वामिकार्त्तिकेय जीसे इनकी प्रीतिके लिये ब्रह्माने आपही कहा कि अन्य तीसरे लिंगको मैं निर्माण करूंगा ॥ १ ॥ यद्यपि सब दोषोंसे रहित यह लिंग

प्तहोता है ॥ २१ ॥ याने तांबे चांदी व सुवर्ण के घटसे क्रम करके सौगुना फलहोताहै और चन्दन, अगुरु, कस्तूरी व कपूरसे क्रम करके अधिक फलको प्राप्तहोता
॥ २२ ॥ और वे वस्तुयें मुझमें लगाकर ऐश्वर्यवान्, शोभावान् व सुखी होताहै गुग्गुलुकी धूप उत्तमहै व उससे अगुरु श्रेष्ठहै ॥२३॥ इन धूपोंको देकर मनुष्य सुख
स्वर्गको प्राप्तहोता है और दीपक देनेवाला पुरुष यश व उत्तम नेत्रोंको प्राप्त होता है ॥ २४ ॥ व नैवेद्यके देने से मनुष्य मिष्टान्नभोजी होता है और तोलाभर
सोनेका फूल देनेपर दशगुना फल होता है ॥ २५ ॥ व पुरुष फलको प्राप्तहोता है और सत्यप्रतिज्ञावान् होता है व सम्पूर्ण बिल्वपत्रों और अनेक भांति के फूलों

तगुणंफलम् ॥ श्रीखण्डागुरुकाश्मीरशशिभिःक्रमशोधिकम् ॥ २२ ॥ माञ्चतैश्चसमालिप्य स्याच्छ्रीमान्शुभगस्सु खी ॥ प्रशस्तोगुग्गुलोर्धूपस्तस्माच्चैवागुरुर्वरः ॥ २३ ॥ धूपानेतान्नरोदत्त्वा सुखंस्वर्गमवाप्नुयात् ॥ दीपदःकीर्त्तिमा प्नोति चक्षुरुत्तममेवच ॥२४॥ नैवेद्यस्यप्रदानेन नरोमिष्टाशनोभवेत् ॥ पुष्पेणहेमकर्षस्य दत्तेदशगुणंफलम् ॥२५॥ फ लंप्राप्नोतिपुरुषः सत्यसन्धश्चजायते ॥ अखण्डैर्बिल्वपत्रैश्च पुष्पैर्वाविविधैरपि ॥ २६ ॥ लिङ्गंसम्पूज्य नंकृत्वा लक्षमेकंव सेद्दिवि ॥ यस्तुपुष्पगृहंकुर्यान्नरःशुद्धाशयोभुवि ॥ २७ ॥ पुष्पकेणविमानेन दिविसक्रीडतेचिरम् ॥ भूषणाम्बरदा नेन नरोभवतिभोगभुक् ॥ २८ ॥ सचामरप्रदानेन जायतेपार्थिवोनरः ॥ रम्यंवितानकन्दत्त्वा शत्रुभिर्नाभिभूयते ॥ २९ ॥ गीतंवाद्यञ्चनृत्यञ्च कृत्वाशुद्धोव्रजेत्समाम् ॥ शङ्खघण्टाप्रदानेन विद्वान्भवतिचध्रुवम् ॥ ३० ॥ विधायरथ यात्रांच चिरंशोकैःप्रमुच्यते ॥ नमस्कारंप्रणामंच कृत्वाजायेन्महाकुले ॥ ३१ ॥ वाचयंश्चाग्रतःशास्त्रं समज्ञानीप्र

से ॥ २६ ॥ लिंग को पूजकर एकलाख वर्ष तक स्वर्ग में बसता है और जो पुरुष फूलका घर बनाता है वह भूमि में पवित्र आशयवाला होताहै ॥ २७ ॥ और
स्वर्ग में वह बहुत दिनो तक पुष्पक विमानके द्वारा क्रीडा करता है व भूषण, वसन के दानसे मनुष्य सुखोंका भोगी होता है ॥ २८ ॥ और चँवरके देने से वह
मनुष्य श्रेष्ठ राजा होताहै व सुन्दर चँदोवा देकर शत्रुवोंसे नहीं हारताहै ॥ २९ ॥ व गीत, बाजन, नृत्यको कर वह शुद्ध मनुष्य मेरे समीप प्राप्तहोताहै और शङ्ख व
घण्टाके देनेसे अवश्य विद्वान् होताहै ॥ ३० ॥ व रथयात्राको कर बहुत दिनोतक शोचोसे छूटजाता है व नमस्कार, प्रणाम करके बडेभारी कुलमे पैदाहोता है ॥३१॥

और मेरे आगे शास्त्रको पढ़ता या पढ़ाता हुआ पुरुष ज्ञानी होताहै व मेरी भक्ति व स्तुतिसे मनुष्य मनके मोहोंसे छूटजाता है॥ ३२ ॥ और मेरे निर्माल्यके हरने से
मनुष्य गोदान के फलको प्राप्त होताहै व आरती को घुमाकर मनुष्य दुःखरहित होताहै ॥ ३३ ॥ व चन्दन को देकर मनुष्य दुःखसे उपजेहुये तापों से छूटजाता है
वैसेही लिंगके समीप अपनी शक्तिके अनुसार दान देकर ॥ ३४ ॥ सौगुने फलको पाकर इस लोक व परलोकमें प्रसन्न रहता है और प्रणामसे पंद्रह स्नान कराने से
बीस व यथोक्त विधिसे पूजन करनेसे मैं सौ अपराधोंको क्षमाकरूंगा हे स्वामिकार्त्तिकेयजी ! जैसा कि फल कहागयाहै वह सब उनको यहां वैसाहीहोगा ॥ ३५।३६॥

जायते ॥ विमुच्यतेमनोमोहैर्भक्त्यास्तुत्याचमेनरः ॥ ३२ ॥ गोदानफलमाप्नोति निर्माल्यहरणान्मम ॥ आरात्रिकं
भ्रामयित्वा आर्तिहीनःप्रजायते ॥ ३३ ॥ दत्त्वाशीतलकन्तापैर्मुच्यतेदुःखसम्भवैः ॥ तथादत्त्वास्वशक्त्याच दानं
लिङ्गस्यसन्निधौ ॥ ३४ ॥ फलंशतगुणंप्राप्य इहचामुत्रमोदते ॥ प्रणामात्पञ्चदशाच स्नानाद्विंशतिपूजया ॥ ३५ ॥
शतंयथाप्रोक्तविधेरपराधानहंक्षमे ॥ एतत्सर्वंयथोद्दिष्टं कुमारात्रभविष्यति ॥ ३६॥ येमांप्रपूजयिष्यन्ति कुमारेश्वर
संज्ञितम् ॥ वाराणस्यांयथावत्स विश्वनाथोस्मिसंस्थितः ॥ ३७ ॥ गुप्तक्षेत्रेतथास्थास्ये कुमारेश्वरसंज्ञितः ॥ श्रुत्वेति
वचनंरुद्राद्देवानांशृण्वतांगुहः ॥ ३८ ॥ विस्मितःप्रणिपत्यैनं तुष्टावगिरिजापतिम् ॥ ३९ ॥ नमःशिवायास्तुनिराम
याय नमःशिवायास्तुमनोमयाय ॥ नमःशिवायास्तुसुरार्चिताय तुभ्यंसदाभक्तकृपापराय ॥ ४० ॥ नमोभवायाग्रह
णाश्रयाय नमोस्तुशर्वायनमःशिवाय ॥ नमोस्तुसिद्धायपुरातनाय नमोस्तुकालायनमःकलाय ॥ ४१ ॥ नमोस्तुते

जोकि कुमारेश्वर संज्ञक मुझको पूजेंगे हे पुत्र ! काशीजी में जैसे मैं विश्वनाथ नामक भलीभांति टिकाहूं ॥ ३७ ॥ वैसेही गुप्तक्षेत्र में कुमारेश्वर संज्ञक मैं
टिकूंगा देवताओं के सुनते हुये इस वचनको महादेव जी से सुनकर स्वामिकार्त्तिकेय जीने ॥ ३८ ॥ विस्मयमें प्राप्तहोकर इन पार्वती जी के पति सदाशिव जी को
प्रणामकर स्तुति किया ॥ ३९ ॥ कि व्याधिरहित शिवजी के लिये नमस्कारहोवे व मनोमय शिवजी के लिये प्रणाम है व सदैव भक्तके ऊपर दयापरायण और
देवताओं से पूजित जो तुम सदाशिवजी हो उनके लिये प्रणाम है॥ ४० ॥ आश्रय को न ग्रहण करनेवाले याने अनाश्रय शिवजी के लिये प्रणाम है व

शर्वनामक शिवजी के लिये प्रणाम है व सिद्ध और पुराणपुरुष के लिये नमस्कार है व कालरूप के लिये नमस्कार है और कल याने तेजस्वरूप आपके लिये प्रणाम है ॥ ४१ ॥ व भयंकर गुणों के अनुगामी जो तुमहो उनके लिये प्रणामहै व सृष्ट्यात्मक ऐश्वर्यरूपके लिये प्रणामहै अनेक भुवनों के रचनेवाले व भक्तके मनोरथको देनेवाले आपके लिये प्रणाम है ॥ ४२ ॥ कर्मोंको उत्पन्न करनेवाले व विधातारूप आपके लिये सदैव प्रणामहै व हे भगवन्! अपने को भी करनेवाले आपके लिये प्रणाम है अनन्तरूप आपके लिये सदैव प्रणाम है और न सहने योग्य क्रोधवाले आपके लिये प्रणाम है ॥ ४३ ॥ व अपरिमित प्रमाण वाले आपके लिये प्रणाम है और बैल जिनकी सवारी है उन आपके लिये प्रणामहै व प्रसिद्ध और संसार की ओषधिरूप आपके लिये प्रणाम है व रोगसमूहों

भीमगुणानुगाय नमोस्तुसर्गात्मकभूतिकाय ॥ नमोस्तुनानाभुवनाधिकर्त्रे नमोस्तुभक्ताभिमतप्रदाने ॥ ४२ ॥ नमोस्तुकर्म्मप्रसवायधात्रे नमःसदातेभगवन्स्वकर्त्रे ॥ अनन्तरूपायसदैवतुभ्यमसह्यकोपायनमोस्तुतुभ्यम् ॥ ४३ ॥ अमेयमानायनमोस्तुतुभ्यं वृषेन्द्रयानायनमोस्तुतुभ्यम् ॥ नमःप्रसिद्धायभवौषधाय नमोस्तुतेव्याधिगणापहाय ॥ ४४ ॥ चराचरायत्वमृतप्रदाय कुमारनाथायनमःशिवाय ॥ ममेशभूतेशमहेश्वरेश कामेशवागीशबलेशधीश ॥ ४५ ॥ क्रोधेशमोहेशपरावरेश नमोस्तुमोक्षेशगुहाशयेश ॥ ४६ ॥ इतिसंस्तूयवरदं शूलपाणिमुमापतिम् ॥ प्रणिपत्यउमापुत्रो नमोनमउवाचच ॥ ४७ ॥ एवंभक्तिभराक्रान्तमात्मयोग्यंसुतंशिवः ॥ अभिनन्द्यचिरङ्कालमिदंवचन

के नाशक तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥ ४४ ॥ चराचररूपवाले के लिये व मोक्ष देनेवाले आपके लिये प्रणाम है और स्वामिकार्त्तिकेय जी के स्वामी शिवजी के लिये प्रणामहै हे मेरे स्वामी, प्राणियों के पति, महेश्वर, ईश, कामेश, सरस्वतीश, बलेश, बुद्धीश! आपके लिये प्रणामहै ॥ ४५ ॥ हे क्रोधके स्वामी, मोहके ईश, परावरेश, मोक्षेश, गुहाशयेश! आपके लिये प्रणामहै ॥ ४६ ॥ इस प्रकार वरदायक पार्वती के पति त्रिशूल हाथमें धारनेवाले शिवजी की भलीभांति स्तुतिकर पार्वती के पुत्र सदाशिवजी को प्रणामकर यह बोले कि नमस्कार है नमस्कार है ॥ ४७ ॥ इस भांति भक्तिके भारसे घिरे व अपने योग्य पुत्रको बहुत समय तक प्रशंसाकर

सदाशिवजी यह वचनबोले ॥ ४८ ॥ कि मेरे भक्तका बधात्मक दुःख तुमको न चिन्तन करना चाहिये हे पुत्र ! इस कर्म से तुम मुनियोंके भी प्रशंसनीयहो ॥ ४९॥
सायंकाल व प्रातःकाल में जो मनुष्य बड़ी भक्तिसे तुमसे कियेहुये स्तोत्र करके मेरी स्तुति करैंगे उनको जो फल होगा उसे सुनिये ॥ ५०॥ कि न रोग होगा न
दरिद्रता होगी और न प्रियका वियोग होगा और दुर्लभ सुखों को भोगकर वे मेरे स्थानको जावैंगे ॥ ५१ ॥ और वैसेहीं अन्य भी बड़े दुर्लभ वरोंको दूंगा हे पुत्र !
तुम्हारी भक्तिसे मैं बहुत प्रसन्नहूं और तुम्हारी प्रसन्नता के लिये ॥५२॥ महीसागर के किनारेपै जो मनुष्य मेरी स्तुति करैंगे वैशाखी में उनका वह सब दान पूजन

मब्रवीत् ॥ ४८ ॥ त्वयादुःखन्नसंचिन्त्यं ममभक्तवधात्मकम् ॥ कर्म्मणानेनश्लाघ्योसि मुनीनामपिपुत्रक ॥ ४९ ॥
येचसायंतथाप्रातस्त्वत्कृतेनस्तवेनमाम् ॥ स्तोष्यन्तिपरयाभक्त्या शृणुतेषांचयत्फलम् ॥ ५० ॥ नव्याधिर्नचदा
रिद्र्यंनचैवेष्टवियोजनम् ॥ भुक्त्वाभोगान्दुर्लभांश्च ममायास्यन्तिसद्मते ॥ ५१ ॥ तथान्यानपिदास्यामि वरान्परमदु
र्लभान् ॥ भक्त्यातवातितुष्टोहं प्रीत्यर्थंतवपुत्रक ॥ ५२ ॥ महीसागरकूलेतु येमांस्तोष्यन्तिमानवाः ॥ तेषांतदक्षयं
सर्वं वैशाख्यांदानपूजनम् ॥ ५३ ॥ सरस्यत्रचयस्नानं प्रकरिष्यन्तिमानवाः ॥ सर्वतीर्थफलावाप्तिर्वैशाख्यांप्रभवि
ष्यति ॥ ५४ ॥ कुमारेशञ्चमांभक्त्या महीसागरसङ्गमे ॥ स्नात्वायःपूजयेन्नित्यंतस्यजातिस्मृतिर्भवेत् ॥ ५५ ॥ जातिस्मृ
तिरियंपुत्र यस्यांजातोप्रजायते ॥ स्मरेत्तस्याःप्रकर्तव्यं श्रेयोरूपंसुदुर्लभम् ॥ ५६ ॥ यस्मिन्कालेत्वनावृष्टिर्जायतेकृ
त्तिकासुत ॥ स्नापयेद्विधिवन्मांश्च कलशैर्विविधैःशुभैः ॥ ५७ ॥ एकरात्रंत्रिरात्रंवा पञ्चरात्रञ्चसप्तवा ॥ स्नापयेद्गन्ध

अक्षयहोगा ॥ ५३ ॥ व वैशाखी पूर्णमासी में इस तड़ागमें जो मनुष्य स्नान करैंगे उनको सबतीर्थोंके फलोंकी प्राप्तिहोगी ॥ ५४ ॥ और महीसागरसंगममें स्नानकर
जो मुझ कुमारेश को भक्तिसे नित्यही पूजता है उसको जातिका स्मरण होवै है ॥ ५५ ॥ हे पुत्र ! यह जातिका स्मरण जिस जातिमें उत्पन्न होवै उससे अतिदुर्लभ
कल्याणरूप कर्त्तव्यता को स्मरणकरै ॥ ५६ ॥ हे कृत्तिका के पुत्र । जिस समय में अनावृष्टि होवै उस समय अनेक भांति के उत्तम कलशों से विधिपूर्वक मुझको

स्नान करावै ॥ ५७ ॥ एकरात व तीनरात व पांच रातों तथा सात रातोंतक चन्दन युक्त जल से स्नान करावै व कुंकुमसे लेपन करै ॥५८॥ और लालकनैर के फूलों
ते व गुडहर या जपा नामक वृक्षके फूलोंसे पूजन करै व वस्त्रोंको पहनाकर फूलों की मालाओं से पूजन करै ॥ ५९ ॥ और ब्राह्मणों व प्रशंसित व्रतोंवाले तपस्वियो
को भोजन करावै और शिवजी का लक्षहोमकरै व ग्रहादिकों का हवनकरै ॥ ६० ॥ तदनन्तर भूमिदान करै व उसके उपरान्त गवाह्निककर्मकरै व कल्याणदायिनी
शान्तिको पढ़वावै व रुद्रजाप्य करवावै ॥६१॥ ब्राह्मणोत्तमो को इस विधि के करनेसे जब मेघ अगर्भित होते हैं याने मेघोंके गर्भमें जल नहीं होताहै तबभी बरसते है

तोयेन कुङ्कुमेनविलेपयेत् ॥ ५८ ॥ करवीरैरक्तपुष्पैर्जपापुष्पैस्तथैवच ॥ अर्चयेत्पुष्पमालाभिः परिधाप्यचवाससी॥
५९ ॥ भोजयेद्ब्राह्मणांश्चैव तापसान्संशितव्रतान् ॥ लक्षंहोमंप्रकुर्वीत शिवहोमंग्रहादिकम् ॥ ६० ॥ भूमिदानंततःकु
र्यात् ततोदद्याद्गवाह्निकम् ॥ आघोषयेच्छिवांशान्तिं रुद्रजाप्यन्तुकारयेत् ॥ ६१ ॥ अनेनैवविधानेन कृतेनतुद्विजो
त्तमैः ॥ अगर्भितायदामेघा वर्षन्तेनात्रसंशयः ॥६२ ॥ विविधैःपूर्य्यतेधान्यैः शाद्वलैश्चवसुन्धरा ॥ आरोग्यत्वंभवेच्चै
व जनेपशुकुलेतथा ॥ ६३ ॥ धर्मयुक्तोभवेद्राजा परचक्रैर्नपीड्यते ॥ घृतेनस्नापयेन्मांच भक्तियुक्तोनरोत्रयः ॥ ६४ ॥
कन्यादानफलंतस्य नात्रकाचिद्विचारणा ॥ क्षीरेणस्नापयेद्देवं तथापञ्चामृतेनच ॥ ६५ ॥ अग्निष्टोमस्ययज्ञस्य फलं
तस्योपजायते ॥ कुमारेश्वरतीर्थेच प्राणत्यागंकरोतियः ॥ ६६ ॥ ममलोकेवसेत्तावद्यावदाभूतसम्प्लवम् ॥ अयनेवि

इसमें सन्देह नहीं है ॥ ६२ ॥ और अनेक प्रकारके अन्नों व हरित तृणोंसे पृथ्वी पूर्ण होजाती है व मनुष्यो और पशुसमूह में नीरोगता होती है ॥ ६३ ॥ और यदि
राजा धर्म से संयुत होवै तो पराई सेना से पीड़ित नहीं होता है और यहां भक्तिसे संयुत जो मनुष्य मुझको घृतसे नहवाता है ॥ ६४ ॥ उसको कन्यादानका फल
प्राप्तहोता है इसमें कुछ विचार नहीं है और दूधसे व पंचामृतसे जो शिवदेवजीको स्नान कराता है ॥ ६५ ॥ उसको अग्निष्टोम यज्ञका फल होता है और कुमारेश्वर
तीर्थमें जो प्राणोंको त्याग करताहै ॥६६॥ वह तबतक मेरे लोक में बसताहै कि जब तक प्रलयहोती है व विषुव अयन (दिनरात बराबरवाले समय) में और चन्द्रमा

व सूर्यके ग्रहणमें ॥६७॥ और पौर्णमासी व अमावस में और संक्रान्ति व वैधृति योग में जो मनुष्य महीसागरसंगम में नहाकर कुमारेश देवजीको भक्तिसे पूजता
है उसके पुण्यके फलको सुनिये कि पृथ्वीतलके तीर्थों में स्नानका जो बडाभारी फल होताहै ॥६८।६९॥ और समस्त लिंगोंके पूजित होनेपर जो फल होताहै वह उस
फलको प्राप्तहोता है व नीरोगता, पुत्रलाभ, धनलाभ व उत्तम सुखको ॥ ७० ॥ मनुष्य कुमारेश्वर की सेवासे निश्चयकर प्राप्तहोता है और जो तपस्वी ब्रह्मचारी
पवित्र होकर यहां टिकता है ॥ ७१ ॥ वह उत्तम शैव योगको पाकर उन शिवजी के स्थानको प्राप्त होता है और पापात्मा मनुष्यों को उसी क्षण फल दिखलानेवाला

षुवेचैव ग्रहणेचन्द्रसूर्ययोः ॥ ६७ ॥ पूर्णमास्याममावस्यांसंक्रान्तौवैधृतेतथा ॥ कुमारेशंनरःस्नात्वा महीसागरसङ्ग
मे ॥६८॥ भक्त्यायोभ्यर्चयेद्देवं तस्यपुण्यफलंशृणु ॥ यन्महीतलतीर्थेषु स्नानस्यसुमहत्फलम् ॥६९॥ यच्चार्चितेषुलि
ङ्गेषु सर्वेषुस्यात्फलञ्चतत् ॥ आरोग्यंपुत्रलाभंच धनलाभंसुखंशुभम् ॥ ७० ॥ निश्चितंलभतेमर्त्यः कुमारेश्वरसेवया ॥
ब्रह्मचारीशुचिर्भूत्वा यस्तिष्ठेदत्रतापसः ॥ ७१ ॥ परंपाशुपतंयोगं प्राप्ययातितदालयम् ॥ पापात्मनांचमर्त्यानां स
द्योऽस्तिफलदर्शकः ॥ ७२ ॥ दिव्येनाष्टविधेनैव कोशस्साधारणोत्रच ॥ अघोराद्यैःपञ्चमन्त्रैः स्नाप्यलिङ्गंमहत्प्रभम्॥
७३ ॥ अघोरेणैवतत्तापं दद्यादादेश्यकारिणे ॥ पिबेदेतदुदीर्य्यासौ प्रसृतित्रयमेवच ॥ ७४ ॥ यदिधर्म्मस्तथासत्यमी
श्वरोत्रजगत्त्रये ॥ कोशपानात्फलंसद्यो द्रक्ष्याम्यस्मिञ्छुभाशुभम् ॥७५॥ पानेचैवकुलंहन्याद्गमनेचकुटुम्बकम् ॥ द
र्शनेचशुभंपाने हन्यादेवञ्चमिथ्यया ॥ ७६ ॥ त्रिभिर्दिनैस्त्रिभिःपक्षैस्त्रिभिर्मासैस्त्रिभिस्समैः ॥ अत्युग्रपुण्यपापानां पाने

होताहै ॥ ७२ ॥ व उत्तम आठ प्रकार से यहां साधारण शपथ होती है कि अघोरादिक पांच मन्त्रोंसे बडे प्रकाशवान् लिंगको नहवाकर ॥ ७३ ॥ अघोरही मन्त्र से
उस जलको आज्ञाकारी के लिये देवै और यह पुरुष इस श्लोकको उच्चारणकर तीन पसर जलको पिये ॥ ७४ ॥ कि यदि धर्म वैसेही सत्यहै जैसे कि त्रिलोक में
ईश्वर सत्य है तो कोशपान याने शपथवाले जलके पीने से मैं इसी क्षण इसमें शुभाशुभ फलको देखूं ॥ ७५ ॥ कि पान में कुल को नाश करै व गमन में कुटुंब
को नाश करै व दर्शन में शुभको नाश करै इस भांति पानमें मिथ्यासे नाश करै ॥७६॥ तीन दिन, तीन पक्ष; तीन महीना व तीन वर्षोंसे बड़े उग्र पुण्य पापोंके फल

को इस जल के पान से भोग करता है ॥ ७७ ॥ हे पुत्र ! तुम्हारी प्रीति की वृद्धि के लिये तुम से यहां थापे हुये लिंगमें मैंने इन वरदानों को दिया व मुझसे फिर कुछ कहिये ॥ ७८ ॥ स्वामिकार्त्तिकेय जी बोले कि हे महेश्वर ! तुम्हारे इन वरदानों के देने से मैं कृतार्थ होगया तुम्हारे लिये नमस्कार है नमस्कार है नमस्कार है हे विभो ! तुमको यहां इस स्थान को न छोड़ना चाहिये ॥ ७९ ॥ इस प्रकार देवेश शिवजी को प्रणाम कर माता को प्रणाम करते हुये स्वामिकार्त्तिकेय जी बोले कि हे माता ! मेरे प्रिय की इच्छासे तुम को भी यहां यह स्थान न छोड़ना चाहिये ॥८०॥ हे पार्वतीजी ! तुम को भी मैं यहां स्थापन करूंगा वरदायिनी हूजि-

नफलमश्नुते ॥ ७७ ॥ एतेपरामयालिङ्गे दत्तात्रस्थापितेत्वया ॥ तवप्रीत्यभिवृद्ध्यर्थं ब्रूहिभूयोममात्मज ॥ ७८ ॥ स्कन्दउवाच ॥ कृतकृत्योवरैर्दत्तैस्त्वयाचैतैर्महेश्वरः ॥ नमोनमोनमस्तेस्तु नात्रत्याज्यंत्वयाविभो ॥ ७९ ॥ एवंप्रणम्यदेवेशं मातरंप्रणतोब्रवीत ॥ त्वयापिमातर्नैवात्र त्याज्यंममप्रियेप्सया ॥ ८० ॥ त्वामप्यत्रस्थापयिष्ये वरदाभव पार्वति ॥ ८१ ॥ पार्वत्युवाच ॥ यत्रशर्वःस्वभावेन तत्रतिष्ठाम्यहंसुत ॥ तवभक्त्याविशेषेण स्थास्येस्त्रीणांवरप्रदा ॥ ८२ ॥ युद्धेषुतवकर्म्माणि रुद्रभक्तेषुवैकृपा ॥ पश्यन्तिपुत्रिणीमुख्याः प्रीणिताचभृशन्त्वया ॥ ८३ ॥ गर्भक्लेशंस्त्रियो मन्ये साफल्यंभजतेतदा ॥ सुतोयदारुद्रभक्तः सानन्दंसद्भिरीर्यते ॥ ८४ ॥ तवैवाहंप्रियार्थाय तिष्ठाम्यत्रषडानन ॥ स्त्रीभिराराधितादास्ये सौभाग्यंसुपतिंसुतान् ॥ ८५ ॥ चैत्रेवापितृतीयायां स्नात्वाशीतेनवारिणा ॥ अर्चयिष्यतिमां

ये ॥ ८१ ॥ पार्वती जी बोलीं कि हे पुत्र ! जहां शिव जी हैं वहां मैं स्वभावही से टिकती हूं और तुम्हारी भक्ति से विशेष कर स्त्रियों को वरदेनेवाली मैं टिकूंगी ॥ ८२ ॥ पुत्रवती स्त्रियों में मुख्य स्त्रियां युद्ध में तुम्हारे कर्मों को व शिव जी के भक्तों में दया को देखती हैं और तुमसे बहुतही तृप्त कीहुई ॥ ८३ ॥ मैं स्त्रियों के गर्भ के क्लेश को मानती हूं और वह क्लेश तब सफलता को भजता है जब कि विद्वानों से आनन्दपूर्वक पुत्र शिवभक्त कहाजाता है ॥ ८४ ॥ हे षडानन ! तुम्हारेही प्रिय के लिये मैं यहां टिकूंगी और स्त्रियों से आराधना कीहुई मैं सौभाग्य, उत्तम पति व पुत्रों को दूंगी ॥ ८५ ॥ और चैत में तीज तिथि में ठंढे जलसे

नहाकर जो स्त्री मुझको फूल, धूप व चन्दनादिक लेपनों से पूजैगी ॥ ८६ ॥ व भाईसे संयुत जो स्त्री अष्टसौभाग्यको देवैगी उसको पिता, माता, सासु, ससुर,
पुत्र, पति, उत्तम भाग्य व लक्ष्मी इन आठोंको मैं दूगी ॥ ८७ ॥ कुंकुम, फूल, चन्दन, ताम्बूल, जल, अक्षत व सातवां लोन कहागया है और आठवां जीरा है ॥
८८ ॥ इन सबों को तोलासे तौलावै व इनसे पूजनकरै तो वह ससार में अनुपम स्त्री होती है और सुवर्ण व सुगन्धित वस्तुवों और उत्तम फलोंसे भी पूजन करनेसे
उत्तम फलको प्राप्तहोती है ॥ ८९ ॥ और पश्चात् जो लोनको भोजन करती है वह संसार में विधवा नहीं होती है माघ व कार्त्तिकमें भी और चैत्रमें स्नान कर

यावै पुष्पैर्धूपैर्विलेपनैः ॥ ८६ ॥ दास्यतेचाष्टसौभाग्यं यानारीभक्तिसंयुता ॥ पितरौश्वशुरौपुत्रान्पतिंसौभाग्यसम्प
दम् ॥ ८७ ॥ कुङ्कुमंपुष्पश्रीखण्डं ताम्बूलंजलमक्षतान् ॥ सप्तमंलवणंप्रोक्तमष्टमंचैवजीरकम् ॥ ८८ ॥ तोलयेत्तो
लयाचापि साविश्वंतुलिताभवेत् ॥ सुवर्णेनाथसौगन्धद्रव्यैःशुभफलैरपि ॥ ८९ ॥ भुक्तेवालवणंपश्चान्नसास्याद्विध
वाभवे ॥ माघेवाकार्त्तिकेवापि चैत्रेस्नात्वार्चयेतमाम् ॥ ९० ॥ दौर्भाग्यदुःखदारिद्र्यैर्नसासंयोगमाप्नुयात् ॥ श्रुत्वेति
गिरिजावाचं सानन्दःपार्वतीसुतः ॥ ९१ ॥ स्थापयित्वागिरिसुतां विनायकमथाब्रवीत ॥ पुष्पैर्धूपैर्मोदकैश्च पूर्वमभ्य
र्च्यत्वामपि ॥ पूजयन्तिकुमारेशं तेषांविघ्नहरोभव ॥ ९२ ॥ गणेशउवाच ॥ भ्रातस्त्वयास्थापितेऽस्मिंल्लिङ्गेऽम
काश्चयेनराः ॥ नतेषांममविघ्नानि ममचाप्यनुगामिनाम् ॥ ९३ ॥ एवमुक्तेविघ्नराजे प्रसन्नेस्थापितस्त्वसौ ॥ तस्मा
दसौसदाभ्यर्च्यश्चतुर्थ्यांचविशेषतः ॥ ९४ ॥ एवंस्थाप्यकुमारेशं लब्ध्वाचैतान्वरान्द्विवात् ॥ मुदितःकृतकृत्यश्चा

जो मुझको पूजती है ॥ ९० ॥ वह दुर्भाग्यता, दुःख व दरिद्रोंसे संयोग को नहीं प्राप्तहोती है यह पार्वतीजी का वचन सुनकर आनन्द समेत पार्वती के पुत्र स्वा-
मिकार्त्तिकेयजी ॥ ९१ ॥ गिरिनन्दिनी पार्वती जीको थापकर इसके उपरान्त गणेशजी से बोले कि पुष्प, धूप व लड्डुवोंसे पहले तुमको भी पूजकर जो कुमारेशको
पूजैं तुम उनके विघ्नहारक हो ॥ ९२ ॥ गणेशजी बोले कि हे भाई ! तुमसे थापेहुये इस लिगमें जो नर भक्तहैं उनको मेरे विघ्न न होवैंगे और मेरे अनुगामियों को
भी विघ्न न होवैंगे ॥ ९३ ॥ प्रसन्न गणेशजीके ऐसा कहनेपर ये स्थापन कियेगये इसलिये ये गणेशजी सदैव पूजने योग्यहैं व चौथिमें विशेषकर पूजनीय हैं ॥ ९४ ॥

इसभांति कुमारेशको थापकर व शिवजी से इन वरदानों को पाकर प्रसन्न स्वामिकार्त्तिकेय जी ने अपनाको कृतार्थ माना ॥ ९५ ॥ और वहीं कुमारेश्वर के समीप अंशसे टिके व यहां टिकेहुये शिवजीको स्वामिकार्त्तिकेयकी यात्रावाले जो मनुष्य देखतेहैं हे भारत ! उनकी स्वामियात्रा सफल होतीहै॥९६॥और कार्त्तिकी पौर्णमासीमें यदि विशेषकर स्वामिकार्त्तिकेय जी का पूजनकरै तो स्वामिकार्त्तिकेय जी की यात्रामें जो फल मिलताहै उस फलको भलीभांति प्राप्तहोता है ॥ ९७ ॥ और रोगोसे विकल मनुष्य रोगोंसे छूटजाता है और पवित्रहोकर ब्रह्मचारी एकसौ आठ नामों को जपकर महीनेभर में संकट से छूटजाता है ॥ ९८ ॥ हे अर्जुनजी ! इस प्रकारका

त्मानंमेनेषडाननः ॥ ९५ ॥ तस्थावंशेनतत्रैव कुमारेश्वरसन्निधौ ॥ अत्रस्थितंहरंवैये पश्यन्तिस्वामियात्रिणः ॥ सफलास्वामियात्राच तेषांभवतिभारत ॥ ९६ ॥ कार्त्तिक्यांचविशेषेण कार्त्तिकेयंसमर्चयेत् ॥ यत्फलंस्वामियात्रायां तत्फलंसमवाप्नुते ॥ ९७ ॥ रोगाभिभूतोरोगैर्वा नाम्नामष्टोत्तरंशतम् ॥ जप्त्वाशुचिर्ब्रह्मचारी मासंमुच्येतसंकटात् ॥ ९८ ॥ एवंविधमिदंपार्थ महीसागरसङ्गमम् ॥ निर्मलीकृत्यचात्मानं साधवर्थेलिङ्गमर्पितम् ॥ ९९ ॥ एतदाराध्यसंजातं रेजूरामादयःपुरा ॥ शतसंख्याबलंराज्यं रुद्रलोकञ्चलेभिरे ॥ १०० ॥ जामदग्न्यस्त्विदंलिङ्गमाराध्यचसमाहितः ॥ लेभेकुठारमुज्जहे येनार्ज्जुनभुजान्युधि ॥ १ ॥ अग्रतोदेवदेवस्य ज्ञात्वातीर्थमहागुणान् ॥ रामेश्वरमितिख्यातं स्थापितंलिङ्गमुत्तमम् ॥ २ ॥ तच्चयोभ्यर्चयेद्भक्त्यारुद्रलोकंसगच्छति ॥ प्रीतश्चतस्यरामश्च कुमारेशश्चफा

यह महीसागरसंगम है स्वामिकार्त्तिकेय जीने जीवात्मा को निर्मलकर साधुजनों के लिये लिंगको स्थापन कियाहै ॥ ९९ ॥ व भलीभांति पैदाहुये इस लिंगको आराधकर रामादिक मनुष्य शोभित हुये हैं और सैकडों संख्यक पुरुषोने बल, राज्य व शिवलोक को पायाहै ॥ १०० ॥ और जमदग्नि के पुत्र परशुरामजी ने सावधान होकर इस लिंगको आराधकर फरसाको पायाहै कि जिससे युद्धमे सहस्रार्जुन की भुजाओंको काटडाला है ॥ १ ॥ व देवदेव शिवजी के आगे तीर्थके बड़भारी गुणों को जानकर रामेश्वर ऐसे प्रसिद्ध उत्तम लिंगको स्थापन किया है ॥ २ ॥ जो पुरुष भक्तिसे उसको पूजता है वह शिवलोक को जाताहै व हे अर्जुनजी ! उसके ऊपर

रामेश्वर व कुमारेशजी प्रसन्न होते हैं ॥ ३ ॥ यह संक्षेप से कुमारेश का वर्णन कहागया जो पुरुष कुमारेशके माहात्म्य को उनके आगे कहता है ॥ ४ ॥ और जो सु-
नतेहैं व सुनकर प्रसन्न होते हैं वे शिवजी के लोकमें बसते हैं व श्राद्धके समय में जो मनुष्य इस लिंगके माहात्म्य को पढ़ताहै ॥ ५ ॥ उसकी वह श्राद्ध अक्षय होती
है इसमें सन्देह नहीं है और यदि इस लिंगके माहात्म्यको गर्भिणी स्त्रीको सुनावै ॥६॥ तो गुणवान् पुत्र पैदाहोताहै और कन्याभी पतिव्रता होती है यह चरित्र पवित्र
व पापहारक, धर्मदायक व आनन्दकारकहै और पढ़ते व सुनते हुये भी पुरुषोंके सब मनोरथोंका दायकहै ॥१०७॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेदेवीदयालुमिश्र

**ल्गुन ॥ ३ ॥ इतिसंक्षेपतःप्रोक्तं कुमारेशस्यवर्णनम् ॥ कुमारेशस्यमाहात्म्यं कीर्त्तयेद्यस्तदग्रतः॥ ४॥ येचशृण्वन्ति
नन्दन्ति रुद्रलोकेवसन्तिते ॥ अस्यलिङ्गस्यमाहात्म्यं श्राद्धकालेचयःपठेत्॥५॥ पितॄणामक्षयंश्राद्धं जायतेनात्रसंश
यः॥अस्यलिङ्गस्यमाहात्म्यंगुर्विणींश्रावयेद्यदि॥६॥गुणवाञ्जायतेपुत्रःकन्याचापिपतिव्रता॥ एतत्पुण्यंपापहरं धर्म्यं
चाह्लादकारकम्॥ पठतांशृण्वतांवापि सर्वाभीष्टफलप्रदम्॥१०७॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डे श्रीकुमारेश
माहात्म्यवर्णनन्नामसप्तविंशोध्यायः॥ २७ ॥**

* ॥ * ॥ * ॥ * ॥

**नारदउवाच ॥ कुमारेणस्थापितेत्र कुमारेशेततस्सुराः॥ प्रणम्यगुहमूचुश्च संबद्धकरसम्पुटाः ॥ १ ॥ किञ्चिद्विज्ञाप
यिष्यामो वयंत्वांशृणुतत्प्रभो ॥ पूर्वप्रसिद्धआचारः प्रोच्यतेजयिनामयम् ॥ २ ॥ जयन्तियेरणेशत्रूंस्तैःकार्यस्तत्रचि
ह्नकः॥ तस्मात्तवजयोद्योतनिमित्तंस्तम्भमुत्तमम् ॥ ३ ॥ निक्षिपामःस्वयंयावत्तदनुज्ञातुमर्हसि ॥ विश्वकर्मो**

विरचितायांभाषाटीकायांश्रीकुमारेश्वरमाहात्म्यवर्णनंनामसप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

दो॰। स्तम्भेश्वर नामक शिवहि थाप्यो षण्मुख देव। अट्ठाइस अध्यायमें सो सुखदायक भेव ॥ नारदजी बोले कि यहांपर स्वामिकार्त्तिकेयजीसे कुमारेशके स्था-
पित होनेपर तदनन्तर हाथोंको जोड़ेहुये देवता स्वामिकार्त्तिकेय जीको प्रणामकर बोले ॥ १ ॥ कि हे प्रभो ! हमलोग कुछ विनय करते हैं उसको सुनिये कि जीत-
वाले जनोंको पहले से प्रसिद्ध यह आचार कहाजाता है ॥ २ ॥ कि जो संग्राम में शत्रुवों को जीतते हैं उनको वहां चिह्न करना चाहिये इसलिये तुम्हारी जीत के

प्रकाश के निमित्त उत्तम स्तम्भको ॥ ३ ॥ जबतक हमलोग आपही जलमें डालैं तबतक तुम उसको आज्ञा देने के लिये योग्यहो और विश्वकर्मा से रचाहुआ जो तीसरा उत्तम लिंगहै ॥ ४ ॥ उसको हे शिवात्मज ! उस स्तम्भके आगे स्थापन कीजिये देवताओंके ऐसा कहने पर उदारमनवाले स्वामिकार्त्तिकेय जीने यह कहा कि वैसाही होवै ॥५॥ तदनन्तर प्रसन्न होतेहुये इन्द्रादिक देवताओं ने सुवर्णमय सुन्दर व रत्नमय स्तम्भको जलमें फेंक दिया ॥ ६ ॥ और उसके आगे उन देवताओं ने चारों दिशाओं में समस्त रत्नमय चौतरेको बनाया उसपै प्रसन्न होतीहुई उत्तम अप्सराओं ने दश प्रकार से नृत्य किया और प्रसन्न होतीहुई मातृदेवता-

तंयच्च तृतीयंलिङ्गमुत्तमम् ॥ ४ ॥ तस्यस्तम्भस्याग्रतश्च संस्थापयशिवात्मज ॥ एवमुक्तस्सुरैःस्कन्दस्तथेत्याहमहामनाः ॥ ५ ॥ ततोहृष्टास्सुरगणाः शक्राद्याःस्तम्भमुत्तमम् ॥ जाम्बूनदमयंशुभ्रं रत्नमप्सुनिचिक्षिपुः ॥ ६ ॥ पुरतःस्थण्डिलंदिक्षु सर्वरत्नमयन्तुते ॥ तत्रहृष्टाश्चाप्सरसो नन्तुर्दशधाशुभाः ॥ मातरोमङ्गलान्यस्यजगुःस्कन्दस्यहर्षिताः ॥ ७ ॥ इन्द्राद्यानन्ततुस्तत्र स्वयंविष्णुश्चवादकः ॥ पेतुःखात्पुष्पवर्षाणि देववाद्यानिसस्वनुः ॥ ८ ॥ एवंस्तम्भंसमारोप्य यच्चाख्यंविश्वनन्दकम् ॥ स्तम्भेश्वरस्ततोदेवः स्थापितश्चैवपश्चिमे ॥ ९ ॥ विरञ्चिप्रमुखैर्देवैर्जातानन्दैस्समन्तदा ॥ हरीशादित्यसंयुक्तैस्सेन्द्रैर्मुनिगणैरपि ॥ १० ॥ तस्यैवपश्चिमेभागे शक्त्यग्रेणमहात्मना ॥ गुहेननिर्मितःकूपो गङ्गातत्रातलोद्भवा ॥ ११ ॥ माघस्यचचतुर्दश्यां कृष्णायांपितृतर्पणम् ॥ कूपेस्नानन्नरःकृत्वा कुर्याद्यःपाण्डुनन्द

ओं ने इन स्वामिकार्त्तिकेय जीके मंगलों को गाया ॥ ७ ॥ और वहां इन्द्रादिकों ने नृत्य किया और आपही विष्णु बाजाको बजानेवाले हुये आकाश से फूलों की वृष्टिझरी व देवताओं के बाजा बजे ॥ ८ ॥ जो विश्वनन्दक नामक है उस स्तम्भको भलीभांति आरोपणकर तदनन्तर पश्चिम दिशामें स्तम्भेश्वर देवजी थापेगये ॥ ९ ॥ व उस समय प्राप्त आनन्दवाले ब्रह्मादिक देवताओं समेत और विष्णु, शिव, सूर्य संयुत इन्द्र समेत देवताओं सहित और मुनिगणों से भी संयुत ॥ १० ॥ महात्मा स्वामिकार्त्तिकेय जीने उसीके पश्चिम भागमें शक्तिके आगे कूपका निर्माण किया और वहां अतल से उपजीहुई गंगाजी प्राप्त हैं ॥ ११ ॥

हे पाण्डुपुत्र ! माघकी कृष्णपक्षवाली चौदसिमें जो मनुष्य उस कूपमें नहाकर पितरोंका तर्पण करताहै ॥ १२ ॥ तो गयाजीमें श्राद्धसे जो पुण्य मिलती है उसी फल
को वह प्रकटहो प्राप्तहोता है तदनन्तर स्तम्भेश्वर देवको जो मनुष्य चन्दनादिक सुगंधित वस्तुओं और फूलों से पूजता है ॥१३॥ वह वाजपेय यज्ञके फलको पाकर
शिवजीके स्थानमें सुखको प्राप्तहोताहै पौर्णमासी व अमावसमें जो पापहीन पुरुष महीसागर के संगममें श्राद्धकर स्तंभेश्वरको पूजताहै उसके पितर तृप्तहोते है व तृप्त
होकर आशीर्वादोंको देतेहैं ॥१४।१५॥ और वह सब पातकों को नाशकर शिवजीके लोकमें पूजित होताहै पुरातन समय स्वामिकार्त्तिकेय जीकी प्रसन्नताकेलिये सदा-

नः ॥ १२ ॥ गयाश्राद्धेनयत्पुण्यंतत्फलंलभतेस्फुटम् ॥ स्तम्भेश्वरंततोदेवं गन्धैःपुष्पैःप्रपूजयेत् ॥ १३॥ वाजपेयफलं
प्राप्यमोदतेरुद्रसद्मनि ॥ पूर्णिमास्याममायाञ्च महीसागरसङ्गमे ॥१४॥ श्राद्धंकृत्वाच्चयोऽभ्यर्चेत् स्तम्भेश्वरमकल्मषः ॥
पितरस्तस्यतृप्यन्ति तृप्तायच्छन्तिचाशिषः ॥ १५ ॥ समित्त्वासर्वपापानि रुद्रलोकेमहीयते ॥ इत्याहभगवान्रुद्रः स्क
न्दस्यप्रीतयेपुरा ॥ १६ ॥ एवमेवचतुर्थञ्च स्थापितंलिङ्गमुत्तमम् ॥ प्रणेमुर्देवतास्सर्वे साधुसाध्वितिवैजगुः ॥ १७ ॥
इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डे स्तम्भेश्वरमाहात्म्यन्नामाष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥ * * ॥
नारदउवाच ॥ एवंदृष्ट्वाथितौतानि लिङ्गानिहरसूनुना ॥ हरिब्रह्मेन्द्रप्रमुखा देवाःप्रोचुःपरस्परम् ॥ १ ॥ अहोधन्यः
कुमारोयं महीसागरसङ्गमे ॥ येनचत्वारिलिङ्गानि स्थापितानिसुदुर्लभे ॥ २ ॥ वयमप्यत्रशुद्ध्यर्थंतोषार्थंस्कन्दरुद्रयोः ॥

शिवजी ने यह कहाहै ॥ १६ ॥ ऐसेही जो चौथा उत्तम लिंग स्थापन किया गयाहै उसको सब देवताओंने प्रणामकिया व बहुतअच्छा बहुतअच्छा ऐसा कहा ॥ १७ ॥
इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांस्तम्भेश्वरमाहात्म्यंनामाष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥ ❀ ॥
दोहा । सकल सुरन लिंगाहि थप्यो सिद्धेश्वर अस नाम । उन्तिसवें अध्यायमें सोईचरित ललाम ॥ १ ॥ नारदजी बोले कि शिवजी के पुत्रसे थापेहुये पृथ्वी में उन
लिंगोंको देखकर विष्णु, ब्रह्मा व इन्द्रादिक देवताओंने आपसमें कहा ॥ १ ॥ कि अहो ये स्वामिकार्त्तिकेयजी धन्य हैं कि जिन्हों ने अत्यन्तदुर्लभ महीसागरसंगम

तीर्थमें चारलिंगोंको स्थापन किया ॥ २ ॥ हमलोगभी शुद्धि के लिये व स्वामिकार्त्तिकेय और शिवजीकी प्रसन्नता के निमित्त यहां भलाई के लिये और आत्मलाभ के लिये लिंगोंकी परंपराको करैंगे ॥ ३ ॥ अथवा करोड़ों देवता व मुनिलोग सव यदि इस महीसागर के किनारे पै असंख्य लिंगोंको स्थापन करैंगे ॥ ४ ॥ तो हे देवताओ ! बहुत होनेके कारण से उनका पूजन कैसे होगा और जिसकी राज्यमें शक्ति से एक लिंग नहीं पूजाजाता है ॥५॥ उसकी वह राज्य दुर्भिक्ष, रोग व चोरोंसे पीड़ित होती है इसलिये मिलकर हमलोग एक उत्तम लिंगको थापैंगे ॥ ६ ॥ यह सम्मनिकर व शिवजी से आज्ञाको पाकर प्रसन्न होतेहुये सब देवताओं ने और

साध्वर्थेचात्मलाभाय कुर्मोलिङ्गपरम्पराम् ॥ ३ ॥ अथवाकोटिशोदेवा मुनयश्चैवसंख्यया ॥ सर्वेचेत्स्थापयिष्यन्ति लिङ्गान्यत्रमहीतटे ॥ ४ ॥ पूजातेषांकथंभावी बहुत्वाच्चात्रभोःसुराः ॥ यस्यराष्ट्रेलिङ्गमेकं पूज्यतेनैवशक्तितः ॥ ५ ॥ तस्यसीदतितद्राष्ट्रं दुर्भिक्षव्याधितस्करैः ॥ सम्भूयस्थापयिष्यामो लिङ्गमेकंततःशुभम् ॥ ६ ॥ इतिकृत्वामतिंसर्वे प्राप्यानुज्ञांमहेश्वरात् ॥ प्रहर्षितागुहश्चैव हरिब्रह्ममुखाःसुराः ॥ ७ ॥ भूमिभागंशुभंवीक्ष्य विजनेलिङ्गमुत्तमम् ॥ स्थापयामासुरथते स्वयंब्रह्मविनिर्मितम् ॥ ८ ॥ सिद्धार्थैस्थापितंयस्माद्देवैर्ब्रह्मादिभिःस्वयम् ॥ सिद्धेश्वरमितिप्राहुर्नामलिङ्गस्यतस्यवै ॥ ९ ॥ सर्वैर्देवैस्तत्रदिव्यं खानितंसरउत्तमम् ॥ सर्वतीर्थोदकैःशुभ्रैःपूरितञ्चमहात्मभिः ॥ १० ॥ एतस्मिन्नन्तरेपार्थ पातालाच्छेषनन्दनः ॥ कुमुदोनामचागत्य प्राहशेषादिपन्नगान् ॥ ११ ॥ अस्मिंस्तारकयुद्धेतु प्रलम्बोनाम दानवः ॥ पलायित्वास्कन्दभीत्यायःपातालंसमाविशत् ॥ १२ ॥ सवोवसूनिपुत्रांश्च भार्याःकन्यागृहाणिच ॥ विध्वंस

स्वामिकार्त्तिकेयजी व विष्णु और ब्रह्मा इत्यादिक देवताओं ने ॥ ७ ॥ उत्तम भूमिभागको देखकर इसके अनन्तर आपही ब्रह्मासे निर्मित लिंगको उन्हों ने एकान्त स्थापन किया ॥ ८ ॥ जिसलिये सिद्ध प्रयोजनोंवाले समस्त देवताओं ने आपही लिंगको स्थापन किया इससे उस लिंगका सिद्धेश्वर ऐसा नाम कहा है ॥ ९ ॥ और वहांपर सब देवताओं ने उत्तम तडागको खुदाय व महात्माओं ने सब तीर्थों के उत्तम जलोंसे उसको पूर्णकिया ॥ १० ॥ इसी अवसर मे हे अर्जुनजी ! कुमुद नामक शेषके पुत्रने पातालसे आकर शेषादिक सर्पोंसे कहा ॥ ११ ॥ कि इस तारक युद्धमे स्वामिकार्त्तिकेयके डरसे भगकर जो प्रलम्ब नामक दानव पातालमें पैठगयाहै॥१२॥

वह तुमलोगों के धन, पुत्र, स्त्री, कन्या व घरोंको विध्वंस करता है इससे हे नागेन्द्रो ! शीघ्रही दौडिये २ ॥ १३ ॥ शेषके पुत्र कुमुद की उस वाक्य को सुनकर उन नागेन्द्रों ने उत्कण्ठताको पाया व जायँगे २ ऐसा कहने लगे ॥१४॥ तदनन्तर उनको रोंककर इसके उपरान्त क्रोधित होतेहुये स्वामिकार्त्तिकेयजी ने शक्तिको लिया व दैत्य माराजावै यह कहकर पातालके लिये उस शक्तिको छोड़दिया ॥ १५॥ तदनन्तर स्वामिकार्त्तिकेय जी की भुजासे छूटीहुई वह शक्ति वेगसे पृथ्वीको फो-ड़कर अचानकही पैठ गई जैसे कि भाग्य मनुष्य में पैठ जाती है ॥ १६ ॥ और दश करोड़ दैत्यों से संयुत उरा प्रलम्ब को जलाकर व नागों को प्रसन्न कर जल

यतिनागेन्द्राः शीघ्रंधावतधावत ॥ १३ ॥ शेषात्मजस्यतद्वाक्यं कुमुदस्यनिशम्यते ॥ औत्सुक्यमापुर्नागेन्द्रा यामयामेतिवादिनः ॥ १४ ॥ तन्निवार्यततःस्कन्दः क्रुद्धःशक्तिमथाददे ॥ पातालायप्रमुमोचाथ प्रोक्त्वादैत्योनिहन्यताम् ॥ १५ ॥ ततःस्कन्दभुजोत्सृष्टा भुवंनिर्भिद्यवेगतः ॥ प्रविष्टासहसाशक्तिर्यथादैवंनरम्प्रति ॥ १६ ॥ सातंदग्ध्वाप्रलम्बञ्च कोटिभिर्दशभिर्युतम् ॥ नन्दयित्वागतानागाञ्जलकल्लोलपूर्विका ॥ १७ ॥ यान्त्याशक्त्यातथामार्गे यत्कृतंविवरम्भुवि ॥ पातालगङ्गातोयेन पूरितंपापहारिणा ॥ १८ ॥ तस्यनामददौस्कन्दः सिद्धकूपइतिप्रभुः ॥ कृष्णाष्टम्यांचतुर्दश्यामुपवासीनरश्चयः ॥ १९ ॥ स्नात्वाकूपेर्चयेद्देवं सिद्धेश्वरमनन्यधीः ॥ अनेकभवसम्भूतं पापंतस्यपलायते ॥ २० ॥ सिद्धकुण्डेचयःस्नानं कुरुतेश्रद्धयायुतः ॥ सर्वकल्मषनिर्मुक्तो भक्तियोग्योभवेद्ध्रुवं ॥ २१ ॥ वटश्चाप्यक्षयस्तस्य तुष्टोरुद्रोवरन्ददौ ॥ प्रयागवटतुल्योयमत्रश्राद्धंकरोतियः ॥ २२ ॥ पितॄणामक्षयंदानं सर्वेषांपिण्डपातनात् ॥

की बडी भारी लहरियोपूर्वक वह शक्ति आगई ॥ १७ ॥ वैसेही मार्ग मे जाती हुई शक्ति से भूमि में जो गढ़ा किया गया वह पातालगंगा के पापहारी जल से पूर्ण होगया ॥ १८ ॥ उस का नाम स्वामिकार्त्तिकेय प्रभु ने सिद्धकूप ऐसा दिया कृष्णपक्ष की अष्टमी व चौदसि मे जो उपवासी पुरुष ॥ १९ ॥ उस कूपमें नहाकर अनन्यबुद्धिहोकर सिद्धेश्वर देवजीको पूजन करैगा अनेक जन्मों से उपजाहुआ उसका पाप भगजावैगा ॥ २० ॥ और श्रद्धासंयुत जो पुरुष सिद्धकुण्डमे स्नान करता है वह सब पातकोसे छूटकर संसार में भक्तिके योग्य होताहै ॥ २१ ॥ और अक्षयवट भी है उसको प्रसन्न होतेहुये शिवजी ने वर दियाहै कि यह प्रयागके वट

की नाईं है यहां जो श्राद्ध करता है ॥ २२ ॥ पिण्डके पातन से उस के सब पितरोंको अक्षयदान होताहै तदनन्तर उस समय स्वामिकार्त्तिकेय समेत ब्रह्मादिक देवताओं ने ॥२३॥ बडीभारी शक्ति सिद्धाम्बिका ईश्वरीकी प्रार्थना किया कि तुमरो प्रवेश कियेहुये मत्स्यरूपी जनार्दन भगवान् ने ॥ २४ ॥ संसारके उधारने के लिये अनेकों कर्मोंको कियाहै इस प्रकार उन भगवती से देवताओं ने प्रार्थना किया कि हे शुभे ! तुमको यहां छोडना न चाहिये ॥ २५ ॥ यहापर टिकीहुई तुम इस समस्त क्षेत्रको दुष्टसे रक्षाकरो हे शुभे ! अष्टमी व चौदसि में बलिप्रदान व पुष्पों से तुमको ॥ २६ ॥ जो मनुष्य पूजें वे समस्त विपत्तियों से सदैव तुमसे रक्षा करने

ततोब्रह्मादयोदेवाः स्कन्देनसहितास्तदा ॥२३॥ सिद्धाम्बिकांमहाशक्तिं प्रार्थयामासुरीश्वरीम्॥त्वयाविष्टोहिभगवान् मत्स्यरूपीजनार्द्दनः ॥ २४ ॥ जगदुद्धारणार्थाय चक्रेकर्माण्यनेकशः ॥ इतितांप्रार्थयामासुरत्रत्याज्यंनतेशुभे ॥ २५ ॥ अत्रास्थितासर्वमिदं क्षेत्रंपालयदुष्टतः ॥ अष्टम्यांचचतुर्द्दश्यां बलिपुष्पैश्चत्वांशुभे ॥ २६ ॥ येपूजयन्तितेपाल्यास्सर्वापद्भ्यस्त्वयासदा ॥ एवमुक्तासिद्धमाता तथेतिप्रत्यवोचत ॥ २७ ॥ स्थापयामासुरथतां लिङ्गादुत्तरभागतः॥तत्रक्षेत्रेपितन्देवाश्चतुःषष्टिमहेश्वरम् ॥ २८ ॥ सिद्धेशंनामक्षेत्रस्य रक्षार्थंनिदधुःस्वयम्॥ तंचयेपूजयिष्यन्ति कार्यारम्भेषुसर्वदा ॥ २९ ॥ वर्षेवर्षेराजमापबलिनाचविशेषतः ॥ तानसौपालयेत्तुष्टः पितातोकानिवस्वकान् ॥ ३० ॥ ततः सिद्धिकृतेदेवास्तत्रसिद्धविनायकम् ॥ कपर्दितनयंपार्थ स्थापयाञ्चक्रिरेमुदा ॥ ३१ ॥ तञ्चयेपूजयन्त्यत्र कार्यारम्भेषु

योग्यहैं इस प्रकार कहीहुई सिद्धमाताने यह कहा कि वैसाही होगा ॥ २७ ॥ इसके अनन्तर लिंगसे उत्तर भागमें देवताओं ने उन भगवती को स्थापन किया व उस क्षेत्रमें भी देवताओं ने चतुःषष्टिमहेश्वर ॥ २८ ॥ सिद्धेश्वर नामकको क्षेत्रकी रक्षा के लिये आपही स्थापन किया सदैव जो मनुष्य कार्यके प्रारम्भ में उन सिद्धेश्वर को पूजेंगे ॥ २९॥ व वर्ष २ में जो विशेषता से लोबिया की बलिसे पूजन करतेहैं उनको प्रसन्न होतेहुये ये शिवजी पालन करते हैं जैसे कि पिता अपने पुत्रोंको पालता है ॥ ३० ॥ तदनन्तर हे अर्जुन जी ! देवताओं ने वहां सिद्धिके लिये शिवजीके पुत्र सिद्धविनायक को हर्षसे स्थापन किया ॥ ३१ ॥ इस संसारमें जो मनुष्य

कार्यके प्रारम्भों में सदैव उनको पूजते हैं उनकी सिद्धिको ये प्रबल विघ्नराज जी देते हैं ॥ ३२ ॥ इस प्रकार यहां सिद्धसप्तकको जो सदैव पूजताहै व देखताहै और स्मरण करता है वह समस्त दोषोंसे छूटजाता है ॥ ३३ ॥ सिद्धेश्वर, सिद्धवट व साक्षात् सिद्धाम्बिका, सिद्धविनायक, सिद्धेशक्षेत्राधिपति व सिद्धसर और सिद्धकूप ये सातों सिद्धक्षेत्र हैं ॥ ३४ ॥ यहांपर प्रसन्न होतेहुये शिवजी ने देवताओं को दुर्लभ वरों को दिया है कि वैशाख महीनेकी कृष्णपक्षवाली अष्टमीमें जो सिद्धकूप में ॥ ३५ ॥ नहाकर व वटके नीचे पिण्डोंको देकर मुझे पूजताहै वह सिद्धिका भागी होताहै और जो ब्रह्मचारी जितेन्द्रिय होकर ॥ ३६ ॥ मुझको सदैव पूजताहै उसके

सर्वदा ॥ तेषांसिद्धिंददात्येष प्रबलोविघ्नराड्भवे ॥ ३२ ॥ इत्यत्रपूजयेद्यस्तु सततंसिद्धसप्तकम् ॥ पश्येदास्मरतेवापि सर्वदोषैर्विमुच्यते ॥ ३३ ॥ सिद्धेश्वरःसिद्धवटश्चसाक्षात् सिद्धाम्बिकासिद्धविनायकश्च ॥ सिद्धेशक्षेत्राधिपतिश्चसिद्धसरस्तथासिद्धकूपश्चसप्त ॥ ३४ ॥ अत्रतुष्टोददौरुद्रस्सुराणांदुर्लभान्वरान् ॥ वैशाखमासस्याष्टम्यां कृष्णायांसिद्धकूपके ॥ ३५ ॥ स्नात्वापिण्डान्वटेदत्त्वापूजयेन्मांससिद्धिभाक् ॥ सदायोऽभ्यर्चयेन्मांच ब्रह्मचारीजितेन्द्रियः ॥ ३६ ॥ अष्टाविष्टकरानित्यं भवेयुस्तस्यसिद्धयः ॥ मन्त्रजाप्यंबलिंहोममन्त्रयःकुरुतेनरः ॥ ३७ ॥ एकचित्तःशुचिर्भूत्वा सोभीष्टांसिद्धिमाप्नुयात ॥ समाहितमनावाथ सिद्धेशंयस्तुपश्यति ॥ ३८ ॥ तस्यसिद्धिर्भवत्येव विघ्नैर्यदिनहन्यते ॥ सिद्धाम्बिकामहादेवी चात्रसन्निहितास्तिया ॥ ३९ ॥ सिद्धिदासाधकेन्द्राणां महाविद्यांयजन्तिये ॥ धीरेभ्योब्रह्मचारिभ्यः शुद्धचित्तेभ्यएवच ॥ ४० ॥ मन्त्रजप्याद्ददात्येषा सर्वसिद्धिंयथेप्सिताम् ॥ पातालस्यबिलंचैतद्गुहशक्त्याकृतंमहत् ॥ ४१ ॥

नित्यही प्रियकारिणी आठ सिद्धियां होती हैं व एकचित्त और पवित्र होकर जो मनुष्य यहां मन्त्रका जप, बलि व होम करता है वह प्यारी सिद्धिको प्राप्तहोता है अथवा सावधानमनवाला जो पुरुष सिद्धेशजी को देखता है ॥ ३७ । ३८ ॥ उसकी सिद्धि होतीही है यदि विघ्नोंसे नाश न कियाजावै और जो यहां सिद्धाम्बिका महा-देवी भलीभांति स्थितहैं ॥ ३९ ॥ वे साधकोंमें उत्तम जनोंको सिद्धि देनेवाली हैं उन महाविद्या को जो पूजते हैं उन धीर, ब्रह्मचारी व शुद्धचित्तवाले जनोंके लिये ॥ ४० ॥ यह भगवती मन्त्रके जपसे अभिलाष के अनुकूल सब सिद्धिको देतीहैं और स्वामिकार्त्तिकेय जी की शक्तिने पाताल के इस बड़ेभारी गढ़को किया है ॥ ४१ ॥

और वहां जो विघ्नक्षेत्र है यहां सिद्धाम्बिका जीके प्रसादसे बहुत से अनेक भांतिके ऐश्वर्यों को मनुष्य पाते हैं ॥ ४२ ॥ हे देवताओ ! यहां करोड़ों पुरुष सिद्धिको प्राप्त होवैंगे और विद्याधरता, देवत्व, गन्धर्वत्व व नागता को ॥ ४३ ॥ और यक्षत्व व अमरता को साधक लोग पावैंगे व यहा विजय नामक चौतराहै उसके प्रभाव से ॥ ४४ ॥ सिद्धाम्बिका को भलीभांति आराधकर मनुष्य दुर्लभ सिद्धिको पावैंगे और यहां टिकेहुये मुझको जो देखैगा व जो मुझको पूजैगा॥४५॥ और चरणके चलाने से याने तीर्थयात्राके निमित्त चलनेसेभी पुण्यकी प्राप्तिहोगी ॥४६॥ नारदजी बोले कि इसभांति त्रिलोचनजी के इन वरदानोंके देनेपर देवतोत्तम प्रसन्नता को प्राप्तहुये

सिद्धाम्बिकाप्रसादेन विघ्नक्षेत्रंचतत्रयत ॥ प्रत्यक्षंप्राप्नुवन्त्यत्र नानाश्चर्याणिभूरिशः ॥ ४२ ॥ अत्रसिद्धिंप्रयास्यन्ति कोटिशःपुरुषाःसुराः ॥ विद्याधरत्वंदेवत्वंगन्धर्वत्वंचनागताम् ॥ ४३ ॥ यक्षत्वंवामरत्वंच प्राप्स्यन्त्यत्रचसाधकाः ॥ अत्रवैविजयोनाम स्थण्डिलस्तत्प्रभावतः ॥ ४४ ॥ सिद्धाम्बिकांसमाराध्य सिद्धिंप्राप्स्यतिदुर्लभाम् ॥ योमांद्रक्ष्यतिचात्रस्थं यश्चमांपूजयिष्यति ॥ ४५ ॥ पादप्रचारतोवापि पुण्यावाप्तिर्भविष्यति ॥ ४६ ॥ नारदउवाच ॥ त्र्यम्बकेणवरेष्वेवं दत्तेष्वेवंसुरोत्तमाः ॥ प्रहर्षंसमपद्यन्त गाथांचेमांजगुस्तदा ॥ ४७ ॥ तेनयज्ञैर्जपैःस्तोत्रैस्तपोभिस्तोपिता वयम् ॥ सर्वेदेवाःसिद्धलिङ्गं योनरःपूजयिष्यति ॥ ४८ ॥ इत्युक्त्वातेमुदंप्राप्य स्कन्देनसहितास्सुराः ॥ करोतिरम्यप्रासादान् योत्रवैशरजन्मनः ॥ ४९ ॥ चतुर्वर्गफलावाप्तिं दत्त्वाक्षेत्राच्चसंययुः ॥ केचित्स्कन्दंप्रशंसन्तस्तीर्थमन्येहरिंपरे ॥ ५० ॥ केचिल्लिङ्गानिपञ्चापि युद्धेकेचिद्दिवंययुः ॥ ततोन्तरिक्षेचालिङ्ग्य महासेनंहरोब्रवीत् ॥ ५१ ॥ सप्तमेम

व उस समय उन्होंने इस गाथाको गाया ॥ ४७ ॥ उससे यज्ञों, जपों, स्तोत्रों व तपोंसे हम सब देवता प्रसन्न करायेगये जो मनुष्य सिद्धलिंग को पूजैगा ॥ ४८ ॥ ऐसा कहकर हर्षको प्राप्तहोकर स्वामिकार्त्तिकेय समेत वे देवता जो यहां स्वामिकार्त्तिकेयजीके उत्तम मन्दिरोंको करता है ॥ ४९ ॥ उसको धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष की प्राप्तिको देकर क्षेत्रसे चलेगये कोई स्वामिकार्त्तिकेयजीकी प्रशंसा करतेहैं अन्य तीर्थकी व दूसरे विष्णुकी प्रशंसा करतेहैं ॥५०॥ व कोई पांचोंलिंगोंकी प्रशंसाकरतेहुये व कोईयुद्धको प्रशंसतेहुये स्वर्गको चलेगये तदनन्तर आकाशमें स्वामिकार्त्तिकेयजी को लिपटाकर महादेवजी बोले ॥ ५१ ॥ कि हे मपालक ! सातवें पवनसमूह

पै नित्यही बसिये व हे पुत्र ! कार्यों में मैं सदैवही तुमसे पूछने योग्यहूं ॥ ५२ ॥ तुम मेरे दर्शन व भक्तिसे परमकल्याण को पावोगे हे वत्स ! मैं स्तम्भतीर्थ को कभी न छोड़ूंगा ॥ ५३ ॥ यह कहकर व लिपटाकर महादेवजी ने इन स्वामिकार्त्तिकेयको बिदाकिया और ब्रह्मा व विष्णु आदिक देवता उन शिवजीसे भक्तिके कारण प्रशंसित हुये ॥ ५४ ॥ तदनन्तर बिदाकिये हुये वे देवता अपने २ स्थानोंको चलेगये शिवजी कैलासको गये व सातवें पवनसमूहपै स्वामिकार्त्तिकेयजी गये ॥५५॥ हे अर्जुनजी ! पाचलिंगों से उपजे हुये इस वृत्तान्तको मैंने तुमसे कहा जो महाबुद्धिमान् मनुष्य स्वामिकार्त्तिकेयसम्बन्धिनी कथाको पढ़ता है ॥ ५६ ॥ व सुनताहै या सुनाताहै वह मनुष्य

स्तः स्कन्धे वसनित्यंप्रपालक ॥ कार्येष्वहंत्वयापुत्र संप्रष्टव्यस्सदैवहि ॥ ५२ ॥ दर्शनान्ममभक्त्याच श्रेयःपरमवाप्स्यसि ॥ स्तम्भतीर्थंचवत्साहं नविमोक्ष्यामिकर्हिचित् ॥ ५३ ॥ इत्युक्त्वाविसृज्जैनं परिष्वज्यमहेश्वरः ॥ ब्रह्मविष्णुमुखाश्चैवं भक्त्यातेनाभिनन्दिताः ॥ ५४ ॥ विसर्जितास्ततोजग्मुः स्वानिस्वान्यालयानिते ॥ शर्वोजगामकैलासं स्कन्धंवैसप्तमंगुहः ॥५५॥ इत्येतत्कथितंपार्थ लिङ्गपञ्चकसम्भवम् ॥ यःपठेत्स्कन्दसंबद्धां कथांमर्त्योमहामतिः ॥५६॥ शृणुयाच्छ्रावयेद्वापि सभवेत्कीर्तिमान्नरः ॥ बह्वायुःसुभगःश्रीमान् कान्तिमाञ्छुभदर्शनः ॥५७॥ भूतेभ्योनिर्भयश्चापि सर्वदुःखविवर्जितः ॥ शुचिर्भूत्वापुमान्यश्च कुमारेश्वरसन्निधौ ॥ ५८ ॥ शृणुयात्स्कन्दचरितं महाधनपतिर्भवेत ॥ बालानांव्याधिदुष्टानां राजद्वारोपसेविनाम् ॥ ५९ ॥ इदन्तुपरमंधन्यं सर्वदोषहरंसदा ॥ तनुत्ययेतुसायोज्यं षण्मुखस्यव्रजेन्नरः ॥६०॥ वरमेनंददुर्देवाः स्कन्दस्याथगतादिवम् ॥६१॥ इति पञ्चलिङ्गोपाख्यानंनामैकोनत्रिंशोध्यायः ॥२९॥

कीर्तिमान् होताहै व बहुतआयुर्बलवाला व सुन्दर व लक्ष्मीवान् और छविवान् व उत्तम दर्शनोंवाला होताहै ॥ ५७ ॥ व प्राणियों से निडर और समस्त दुःखो से रहित होताहै और पवित्रहोकर जो पुरुष कुमारेश्वरजीके समीप ॥ ५८ ॥ स्वामिकार्त्तिकेयजीके चरितको सुनताहै वह बहुतधनवान् होताहै रोगसे दूषित बालक व राजद्वारसेवी जनोंको ॥ ५९ ॥ यह चरित परमधन्यहै व सदैव समस्त दोषोंको हरनेवालाहै और शरीरनाश होनेपर मनुष्य स्वामिकार्त्तिकेयजीकी सायुज्यताको प्राप्त होताहै ॥६०॥ देवताओंने स्वामिकार्त्तिकेयजीको यह वरदान दियाहै इसके उपरान्त स्वर्गको चलेगये ॥६१॥ इति कुमारिकाखण्डेभाषाटीकायामेकोनत्रिंशोऽध्यायः॥२९॥

दो० । सातो द्वीपन मध्यमहँ अहैं चरित सब जौन । कहत तीस अध्याय में कथा रुचिर अति तौन ॥ नारदजी बोले कि हे अर्जुन ! इसके उपरान्त मैं तुमसे बर्करीतीर्थका माहात्म्य कहताहूं कि जिसप्रकार हे राजकुमार ! सौ सींगोंवाली बर्करिका हुई है ॥ १ ॥ जिसके नामसे यह कुमारिका खण्ड प्रसिद्ध है जोकि धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष चारों पदार्थों को देनेवालाहै ॥ २ ॥ और जिसने पृथ्वीमें अनेक ग्रामोंकी कल्पना कियाहै और जिससे यह भरतखण्ड भलीभांति कल्पित हुआहै ॥ ३ ॥ अर्जुनजी बोले कि हे मुने ! यह मुझको बड़ा आश्चर्य है इससे उत्तम सुनने योग्य इस समस्त कुमारीचरित को विस्तार समेत कहिये ॥ ४ ॥ कैसे यह संसार

नारदउवाच ॥ बर्करीतीर्थमाहात्म्यमथोवक्ष्यामितेर्ज्जुन ॥ यथाबर्करिकाजाताशतशृङ्गान्नृपात्मज ॥ १ ॥ कुमारिकेतिविख्यातं यस्यानाम्नाप्रकथ्यते ॥ इदंकुमारिकाखण्डंचतुर्वर्गफलप्रदम् ॥ २ ॥ ययाकृतातुपृथ्व्याञ्च नानाग्रामादिकल्पना ॥ इदंभरतखण्डंच ययासम्यक्प्रकल्पितम् ॥ ३ ॥ अर्ज्जुनउवाच ॥ महदेतन्ममाश्चर्यं श्रोतव्यंपरंमुने ॥ कुमारीचरितंसर्वं कथयस्वंसविस्तरम् ॥ ४ ॥ कथंविश्वमिदंजातं कथंचास्तिप्रकल्पितम् ॥ कथंचभरतंखण्डंशुश्रूषेयंसदामम ॥ ५ ॥ नारदउवाच॥ अव्यक्तेस्मिन्नृलोकेच प्रकृतिःपुरुषश्चद्वौ ॥ अजौसनातनावेकौ केवलंश्रृणुमोवयम् ॥ ६ ॥ ततःस्वभावकालाभ्यां स्वरूपाभ्यांसमीरिते ॥ ईक्षणेनैवप्रकृतेर्महत्तत्त्वमजायत ॥ ७ ॥ महत्तत्त्वाद्विकुर्वाणादहंतत्त्वंव्यजायत ॥ त्रिधातन्मुनिभिःप्रोक्तं सत्त्वंराजसतामसम् ॥ ८ ॥ तामसात्पञ्चजातानितन्मात्राणि

उत्पन्न हुआ है व कैसे कल्पित हुआ है और कैसे भरतखंड हुआ है मेरे यह सदैवसे सुनने की इच्छा थी ॥ ५ ॥ नारदजी बोले कि इस अप्रकट मनुष्यलोक में प्रकृति (माया) व पुरुष (परमात्मा) दोनों अज (जन्मरहित) व सनातन (सदैव रहनेवाले) हैं व केवल एक याने अद्वितीय है हम यही सुनते हैं ॥ ६ ॥ तदनन्तर स्वरूपवाले स्वभाव व समय से प्रेरणा करने पर प्रकृति (माया) के देखनेहीसे महत्तत्त्व पैदा हुआ ॥ ७ ॥ व महत्तत्त्व को विकार में प्राप्त होने से अहंकार तत्त्व पैदा हुआ यह अहंकार तत्त्व मुनियों से सत्त्व, राजस व तामस तीनप्रकारका कहागया है ॥ ८ ॥ तामस से पांच तन्मात्रायें (शब्द, स्पर्श, रूप, रस,

गन्ध) उत्पन्न हुई यह विद्वानों ने कहा है और तन्मात्राओं से पांच भूत (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश) पैदा हुये और इन में जो विशेष याने पृथ्वी है उस से पांचों गुण याने शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध उत्पन्न हैं ॥ ९ ॥ व तैजस (राजस) से, अहंकार से पांच ज्ञान इन्द्रियां व पांच कर्म इन्द्रियां उत्पन्न हुईं व गेरहवें मनको विद्वानों ने सात्विक कहाहै याने मन सात्विक अहंकार से पैदा हुआहै ॥१०॥ पहले चौबिस तत्त्व उत्पन्न हुये हैं ऐसा विद्वानों ने कहाहै हे भारत (अर्जुन) जी ! भक्तिसे सदाशिवजी से देखेहुये वे तत्त्व ॥ ११ ॥ बुल्लेके आकार को प्राप्तहुये तदनन्तर उत्तम अण्डा होगया और ब्रह्माण्डका भेद सौ करोड प्रमाण वाला कहा गयाहै ॥ १२ ॥ इस ब्रह्माण्ड के जीवात्मा ब्रह्मा कहे गये हैं उन्होंने इस अण्ड के तीन विभाग किया उसमें ऊपरके विभागमें देवता स्थित हुये और मध्य

विदुर्बुधाः ॥ तन्मात्राभ्यश्चभूतानि विशेषाःपञ्चतद्भवाः ॥ ९ ॥ तैजसाच्चाप्यहङ्काराद् बुद्धिःकर्मेन्द्रियाणिच ॥ एकादशंमनश्चैव सात्त्विकंकवयोविदुः ॥ १० ॥ चतुर्विंशतितत्त्वानि जातानीतिपुराविदुः ॥ सदाशिवेनवैभक्त्यातानिदृष्टानि भारत ॥ ११ ॥ बुद्बुदाकारतांजग्मुरण्डंयाततःशुभम् ॥ शतकोटिप्रमाणञ्च ब्रह्मण्डाभेदमुच्यते ॥ १२ ॥ आत्मास्यकथितोब्रह्मा व्यभजत्सत्रिधात्विदम् ॥ ऊर्ध्वंतत्रस्थितादेवामध्येचैवचमानवाः ॥ १३ ॥ नागदैत्याश्चपाताले त्रिधैतत्परिकल्पितम् ॥ एकैकंसप्तधाभूयस्ततस्तेनप्रकल्पितम् ॥ १४ ॥ पातालानिचद्वीपानि स्वर्लोकास्सप्तसप्तच ॥ सप्तद्वीपानिवक्ष्यामि शृणुतेषांप्रकल्पनम् ॥ १५ ॥ लक्षयोजनविस्तारं जम्बूद्वीपंप्रकीर्त्यते ॥ सूर्यबिम्बसमाकारं तावत्क्षीरार्णवावृतम् ॥ १६ ॥ शाकद्वीपंद्विगुणतो जम्बूद्वीपात्ततःपरम् ॥ तावताक्षीरतोयेन समुद्रेणपरीवृतम् ॥ १७ ॥ सुरातोयेनदैत्यानां

में मनुष्य स्थितहुये ॥१३॥ और नाग व दैत्य पातालमें स्थितहुये इस प्रकार यह तीन खण्डका कल्पित हुआ तदनन्तर उन ब्रह्माजीने एक एकको फिर सात सात २ खण्डों से कल्पित किया ॥ १४ ॥ सात पाताल, सातद्वीप व सात स्वर्गादिक लोक हुये सात द्वीपों को मैं कहताहूं उनकी कल्पना को सुनिये ॥ १५ ॥ कि लाख योजन विस्तारवाला जम्बूद्वीप कहाजाता है जोकि सूर्यबिम्ब के समान गोल आकार का है और उतनेही प्रमाणवाले क्षीरसागर से घिरा है ॥ १६ ॥ उस जम्बूद्वीप के उपरान्त द्विगुण प्रमाण से याने दोलाख योजन चौड़ा शाकद्वीप है और उतनेही याने दोलाख चौडे दूधके समुद्र से वह घिराहै ॥ १७ ॥

उसके उपरान्त उससे दुगुना पुष्करद्वीप है व उतनेही चौंड़े मदिरा के समुद्र से वह द्वीप घिरा है जोकि दैत्योंको मोह कराता है ॥ १८ ॥ उसके उपरान्त उस द्वीपसे दुगुना कुशद्वीप कहागया है और वह उतनेही प्रमाणवाले दही के समुद्र से चारों ओर घिराहै ॥ १९ ॥ तदनन्तर उससे दुगुना क्रौंचसंज्ञक द्वीपहै जोकि घींके समुद्रसे घिरा है उसके उपरान्त उससे दुगुना शाल्मलि द्वीप है और उतनेही ॥ २० ॥ ऊखके रस स्वरूपवाले समुद्र से चारों ओर घिरा है उसके उपरान्त उससे दूना गोमेदद्वीप है और उतनेही स्वादिष्ठ जलवाले सुन्दर पर्वत से चारोंओर घिराहै इस प्रकार हे अर्जुन जी! दो करोड़ पांच लाख तीनसौ ॥ २१ । २२ ॥ पचास

मोहकेनार्णवेनहि ॥ पुष्करश्चततोद्वीपंद्विगुणंतावतावृतम् ॥ १८ ॥ कुशद्वीपंद्विगुणतस्ततस्तत्परतःस्मृतम् ॥ दधितोयेनपरितस्तावदर्णवसंवृतम् ॥ १९ ॥ ततःपरंक्रौञ्चसंज्ञं द्विगुणंहिघृतावृतम् ॥ ततःशाल्मलिद्वीपश्च द्विगुणंतावतैवच ॥ २० ॥ इक्षुसारस्वरूपेण समुद्रेणपरीवृतम् ॥ गोमेदंतस्यपरितोद्विगुणंतावतावृतम् ॥ २१ ॥ स्वादुतोयेनरम्येण समुद्रेणसमन्ततः ॥ एवंकोटिद्वयंपार्थ लक्षपञ्चशतन्त्रयः ॥ २२ ॥ पञ्चाशच्चसहस्राणि सप्तद्वीपाससागरा ॥ दशोत्तराणिपञ्चैव अङ्गुलानांशतानिच ॥ २३ ॥ अपांवृद्धिक्षयौदृष्टौ पक्षयोःशुक्लकृष्णयोः ॥ ततोहेममयीभूमिर्दशकोट्यःकुरूद्वह ॥ २४ ॥ देवानांक्रीडनस्थानं लोकालोकस्ततःपरम् ॥ पर्वतोवलयाकारो योजनायुतविस्तृतः ॥ २५ ॥ अस्यबाह्येतमोघोरं दुष्प्रेक्ष्यंजीववर्जितम् ॥ चतुर्विंशत्स्मृताःकोट्यो लक्षाण्येकोनविंशतिः ॥ २६ ॥ चत्वारिंशत्सहस्राणि योजनानाञ्चफाल्गुन ॥ सप्तसागरमानस्तु गर्तोदस्तदनन्तरम् ॥ २७ ॥ कोटियोजनविस्तारः कटाहःसंव्यवस्थितः ॥ ब्रह्मणोण्डक्

हज़ार योजन समुद्रों समेत सब पृथ्वी है व पांच सौ दश अंगुल जलकी वृद्धि व क्षय शुक्लपक्ष व कृष्णपक्ष मे देखीगई है याने शुक्लपक्ष में पांचसौ दश अंगुल जल बढता है और कृष्णपक्ष में इतनाही घटताहै और उसके उपरान्त हे अर्जुनजी ! दश करोड़ योजन सुवर्णमयी भूमिहै ॥ २३ । २४ ॥ वह देवताओंका क्रीड़ा स्थान है उसके उपरान्त दश हज़ार योजन चौंड़ा लोकालोक पर्वत कंकण के आकारवाला है ॥ २५ ॥ इसके बाहर जीवोंसे रहित व दुःख से देखने योग्य अन्धकार है हे अर्जुन जी! वह अन्धकार चौबीस करोड़ उन्नीस लाख योजन ॥ २६ ॥ व हे अर्जुन ! चालीस हज़ार योजन है तदनन्तर सात समुद्रों के प्रमाणभर गर्तोद है ॥ २७ ॥

और करोड़ योजन चौंड़ा अण्डकटाह प्राप्तहै जोकि पृथ्वी के आवरणरूप ब्रह्मा के अण्डकटाह सें घिराहै ॥ २८ ॥ और सुमेरुगिरि के बीचसे सबओर दशों दिशाओं
में पचास करोड योजन जानने योग्यहै जम्बूद्वीपके बीचमें सुमेरु नामक पर्वतहै ॥ २९ ॥ वह नीचे व ऊंचे प्रमाण से एकलक्ष योजन है और नीचे सोलहही हज़ार
योजन स्थितहै ॥ ३० ॥ व चौरासी हज़ार योजन ऊंचाहै और माथेपै बत्तीसहज़ार योजन चौड़ाहै और तीन शिखरों से संयुक्त व प्यालेके आकारकी नाईं मस्तक है ॥
३१ ॥ बीचके शिखरपै ब्रह्माका निवास व ईशानमें त्रिलोचन जीका स्थान है व नैर्ऋत्यदिशामें विष्णुजी का निवासहै और सोनेके शिखरपै ब्रह्माका स्थानहै ॥ ३२ ॥

**टाहेन संवृतोमेरुमध्यतः ॥ २८ ॥ पञ्चाशत्कोटयोज्ञेया दशदिक्षुसमन्ततः ॥ जम्बूद्वीपस्यमध्येतु मेरुर्नामास्तिपर्व
तः ॥ २९ ॥ सलक्षयोजनोज्ञेयो ह्यधश्चोर्द्ध्वप्रमाणतः ॥ षोडशैवसहस्राणि योजनानामधःस्थितः ॥ ३० ॥ उच्छ्रयाच्च
तुरशीतिर्द्वात्रिंशन्मूर्द्धिविस्तृतः ॥ त्रिभिःशृङ्गैःसमायुक्तःशरावाकृतिमस्तकः ॥ ३१ ॥ मध्यशृङ्गेब्रह्मवास ऐशान्यां
त्र्यम्बकस्यच ॥ नैर्ऋतेवासुदेवस्य हेमशृङ्गेचवेधसः ॥ ३२ ॥ रत्नजेशङ्करस्यापिवासोऽस्तिकेशवस्यच ॥ मेरोर्दिक्षुचतुर्ष्वेव
विष्कुम्भगिरयःस्मृताः ॥ ३३ ॥ पूर्वेतुमन्दरोनाम दक्षिणेमेरुमन्दरः ॥ सुपार्श्वःपश्चिमेज्ञेयः कुमुदस्तुतथोत्तरे ॥ ३४ ॥
कदम्बोमन्दरेज्ञेयो जम्बूर्वैमेरुमन्दरे ॥ अश्वत्थोथसुपार्श्वेतु कुमुदेचवटोमतः ॥ ३५ ॥ एकादशशतायामाश्चत्वा
रोगिरिकेतवः ॥ एतेषांसन्तिचत्वारि वनानिगिरिमूर्द्धसु ॥ ३६ ॥ पूर्वेवैनन्दनन्नाम दक्षिणेचैत्ररथन्दनम् ॥ वैभ्राजंप**

व रत्नोंसे उपजे हुये शिखरपै शिवजीका भी स्थानहै और चांदीके शिखरपै विष्णु जीका स्थानहै और सुमेरुगिरिके चारों दिशाओं में विष्कुम्भ याने रोंकनेवाले
पर्वत कहेगये हैं ॥ ३३ ॥ पूर्वदिशा में मन्दर नामक पहाड़है व दक्षिणमें मेरुमन्दरहै और पश्चिममें सुपार्श्व जानने योग्यहै वैसेही उत्तरमें कुमुद नामक पर्वतहै ॥
३४ ॥ और मन्दर पर्वतपै कदम्ब का वृक्ष जानने योग्यहै व मेरुमन्दरपै जामुन और सुपार्श्वपर्वतपर पीपल व कुमुद पर्वतपै बरगद का वृक्ष है ॥ ३५ ॥ पर्वतों के
केतुरूप ये चारों वृक्ष गेरह सौ योजन लम्बे हैं इन चारों पर्वतों के ऊपर चार वनहैं ॥ ३६ ॥ पूर्व में नन्दनवन, दक्षिणमें चैत्ररथ, पश्चिम में वैभ्राज और उत्तरमें सर्व-

तोभद्र वन है ॥ ३७ ॥ और इन चारोंमें चार तड़ाग हैं उनको मुझसे सुनिये कि पूर्वदिशामें अरुणोद नामक तडागहै व दक्षिणमें मानसरोवरहै ॥३८॥ और पश्चिम में शीतोदक नामक और उत्तर में महाह्रद नामक तड़ागहै ये अडानेवाले पर्वत पचीस हजार योजन ऊंचे हैं और हज़ार योजन चारों ओर कहागया है और वहां बहुत से अन्यभी बड़ेभारी पर्वतहैं ॥ ३९ । ४० ॥ सुमेरु पर्वत के दक्षिण ओर तीनपर्वत खण्डोंकी सीमावाले हैं निषध, हेमकूट व हिमवान् येही वे तीन पर्वत हैं ॥ ४१ ॥ ये लक्ष योजन लम्बे और दो हज़ार योजन चौंड़े हैं और सुमेरुगिरिके उत्तर नील, श्वेत व शृंगवान् ये पर्वत हैं ॥४२॥ और सुमेरुगिरि के पूर्व ओर माल्यवान्

श्चिमेज्ञेयमुत्तरेसार्वभद्रकम् ॥ ३७ ॥ सरांसिचापिचत्वारिचतुर्ष्वेषुनिबोधमे ॥ पूर्वेरुणोदसंज्ञन्तु मानसंदक्षिणेसरः ॥ ३८ ॥ प्रत्यक्शीतोदकंनाम उत्तरेचमहाह्रदः ॥ विष्कुम्भगिरयोह्येतेउच्छ्रिताःपञ्चविंशतिः ॥३९॥ योजनानांसहस्राणि सहस्रंपरितःस्मृतम् ॥ अन्येचसन्तिबहुशस्तत्रैवचमहाचलाः ॥ ४० ॥ मेरोर्दक्षिणतश्चैव त्रयोमर्यादपर्वताः ॥ निषधोहेमकूटश्चहिमवानितितेत्रयः ॥ ४१ ॥ लक्षयोजनदीर्घाश्चविस्तीर्णाद्विसहस्रकम्॥त्रयश्चोत्तरतोमेरोर्नीलःश्वेतोथशृङ्गवान् ॥ ४२ ॥ माल्यवान्पूर्वतोमेरोर्गन्धाख्यःपश्चिमेतथा ॥ इत्येतेगिरयःप्रोक्ता जम्बूद्वीपेसमन्ततः ॥ ४३ ॥ मेरुमन्दरसंस्थाया महागजप्रमाणतः ॥फलानिजम्ब्वास्तन्नाम्ना जम्बूद्वीपमिदंस्मृतम् ॥ ४४ ॥ आसीत्स्वायम्भुवोनाम मनुराद्यःप्रजापतिः ॥ प्रियव्रतोत्तानपादौ तस्यास्तांतनयावुभौ ॥ ४५ ॥ ध्रुवश्चोत्तानपादस्य पुत्रःपरमधार्मिकः ॥ भक्त्यासविष्णुमाराध्यस्थानञ्चैवाक्षयङ्गतः ॥ ४६ ॥ प्रियव्रतस्यराजर्षेरुत्पन्नादशसूनवः ॥ त्रयःप्रव्रजितास्तत्र परंब्र

व पश्चिममें गन्धमादन है जम्बूद्वीप में चारोंओर ये पर्वत कहेगये हैं ॥ ४३ ॥ मेरुमन्दरपर्वतके ऊपर प्राप्त जामुनके वृक्षके फल बडे हाथियोंके बराबरहैं इसलिये उसीके नामसे यह जम्बूद्वीप कहागया है ॥ ४४ ॥ पहलेवाले प्रजापति स्वायम्भुव नामक हुये हैं उनके प्रियव्रत व उत्तानपाद दो पुत्र हुये ॥ ४५ ॥ और उत्तानपाद के बड़े धर्मवान् ध्रुव पुत्र पैदाहुये वे भक्तिसे विष्णुका आराधनकर अविनाशी स्थानपै गये ॥ ४६ ॥ राजर्षि प्रियव्रतके दश पुत्र पैदाहुये उनमें से तीन संन्यासी होकर

परब्रह्ममें प्राप्त होगये ॥ ४७ ॥ और उन्होंने सात पुत्रोंको सातों द्वीपों में स्थापित किया सबसे बड़े आग्नीध्र ऐसे प्रसिद्ध जम्बूद्वीप के स्वामी हुये ॥ ४८ ॥ और उन
के नव पुत्र नवों खण्डों के स्वामी कहे गये हैं व उनके नाम से चिह्नित वे खण्ड आज भी स्थित हैं ॥ ४९ ॥ और प्रत्येक खण्ड का नवहजार योजन विस्तार कहा
गया है व सुमेरुगिरिकी चारों दिशाओंमें गंधमादन व माल्यवान् पर्वत के ॥ ५० ॥ बीचमें सुवर्ण की भूमिवाला इलावृतखण्ड यहां कहा जाता है और माल्यवान् से
समुद्र के अन्त तक भद्राश्व ऐसा खण्ड कहा जाता है ॥ ५१ ॥ व गंधमादन से समुद्र के अन्ततक केतुमाल ऐसा खण्ड कहा गया है और शृङ्गवान् से समुद्र के

ह्मसमाश्रिताः ॥४७॥ सप्तसप्तसुद्वीपेषु तेनपुत्राःप्रतिष्ठिताः॥जम्बूद्वीपाधिपोज्येष्ठश्चाग्नीध्रइतिविश्रुतः॥ ४८ ॥ तस्यैव
वैनवसुता नववर्षेश्वराःस्मृताः ॥ तेषांनाम्नाचतेवर्षास्तिष्ठन्त्यद्यापिचाङ्किताः ॥ ४९ ॥ योजनानांसहस्राणिनवप्रत्येक
शःस्मृताः ॥ मेरोश्चतुर्दिशंखण्डं गन्धमाल्यवतोर्द्वयोः ॥ ५० ॥ अन्तरेहेमभूमिष्कमिलावृतमिहोच्यते ॥ माल्यव
त्सागरान्तश्च भद्राश्वमितिचोच्यते ॥ ५१ ॥ गन्धवत्सागरान्तश्च केतुमालमितिस्मृतम् ॥ शृङ्गवज्जलधेरन्तः कुरु
खण्डमितिस्मृतम् ॥ ५२ ॥ शृङ्गवच्छ्वेतमध्येच खण्डंप्रोक्तंहिरण्मयम् ॥ सुनीलश्वेतयोर्मध्ये खण्डमाहुश्चरम्यक
म् ॥ ५३ ॥ निषधोहेमकूटश्च हरिखण्डंतदन्तरा ॥ हिमवद्धेमकूटान्तः खण्डंकिम्पुरुषंस्मृतम् ॥ ५४ ॥ हिमाद्रिज
लधेरन्तर्नाभिखण्डमितिस्मृतम् ॥ नाभिखण्डश्चकुरवोद्वेवर्षेधनुषाकृती ॥ ५५ ॥ हिमवांश्चगिरिःशृङ्गीज्यास्थाने
परिकीर्तितौ ॥ नाभेःपुत्रश्चऋषभ ऋषभाद्भरतोभवत् ॥ ५६ ॥ तस्यनाम्नात्विदंवर्षं भारतंचेतिकीर्त्यते ॥ अत्रवर्मा

बीचतक कुरुखण्ड ऐसा कहा गयाहै ॥ ५२ ॥ और शृङ्गवान् व श्वेतपर्वत के बीच में हिरण्मयखण्ड कहा गयाहै व सुनील और श्वेतपर्वत के बीचमें विद्वान् रम्यक
खण्ड कहते हैं ॥ ५३ ॥ और निषध व हेमकूट जो पर्वत हैं उन दोनों के बीच में हरिवर्षहै व हिंमवान् और हेमकूट के बीच में किंपुरुषखण्ड कहा गयाहै ॥ ५४ ॥
और हिमाचल व समुद्र के बीच में नाभिखण्ड ऐसा कहा गया है नाभिखण्ड व कुरुखण्ड ये दो वर्ष धनुषके खण्डके समानहैं ॥ ५५ ॥ और हिमवान् व शृङ्गवान्
पर्वत [illegible] के स्थान में कहे गये हैं नाभि के पुत्र ऋषभ हुये और ऋषभ के भरत हुये ॥ ५६ ॥ उनके नाम से यह भारतखण्ड ऐसा कहा जाता है इस भरतखण्ड में

धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष चारोंका उपार्जन (इकट्ठा करना) होता है ॥ ५७ ॥ हे कुरुनन्दन, अर्जुन जी ! अन्यत्र सब कहीं सुख भोग करने की भूमि है शाक-द्वीप में हजार योजन का शाकवृक्ष है ॥ ५८ ॥ उस के नाम से वह वर्ष शाकद्वीप ऐसा कहा गयाहै और उस द्वीप के स्वामी मेधातिथि नामक प्रियव्रत के पुत्र हैं ॥ ५९ ॥ और उनके पुरोजव, मनोजव, पवमान, धूम्रानीक, चित्ररेफ, बहुरूप, विश्वधार नामक पुत्र हुये व इन्हीं के नामो से सात खण्ड हुये हैं और शाकद्वीप में ऋतव्रत, सत्यव्रत, दानव्रत, अनुव्रत, नामक वर्ण पवनात्मक भगवान् को जपते हैं ॥ ६० ॥ कि भीतर पैठकर जो आत्मकेतु याने प्राणादिक वृत्तियों से प्राणियों

र्थकामानां मोक्षस्यचउपार्ज्जनम् ॥ ५७ ॥ अन्यत्रभोगभूमिश्च सर्वत्रकुरुनन्दन ॥ शाकद्वीपेचशाकोस्ति योजनानांसहस्रकः ॥५८॥ तस्यनाम्नाचतद्वर्षं शाकद्वीपमितिस्मृतम् ॥ तस्यचप्रैयव्रतएवाधिपतिर्नाम्नामेधातिथिरिति ॥ ५९ ॥ तस्यपुरोजवमनोजवपवमानधूम्रानीकचित्ररेफबहुरूपविश्वधारसंज्ञानि पुत्रनामानिसप्तवर्षाणि शाकद्वीपे चवर्णाऋतव्रतसत्यव्रतदानव्रतानुव्रतनामानोवाय्वात्मकंभगवन्तंजपन्ति ॥ ६० ॥ अन्तःप्रविश्यभूतानि योबिभर्त्यात्मकेतुभिः ॥ अन्तर्यामीश्वरःसाक्षात्पातुनोयद्वशेजगत् ॥६१॥ कुशद्वीपेकुशस्तम्बो योजनानांसहस्रकः ॥ तच्चिह्नाचिह्नितंयस्मात् कुशद्वीपंततःस्मृतम् ॥ ६२ ॥ तद्द्वीपपतिश्चप्रैयव्रतोहिरण्यरोमातत्पुत्रवसुवसुदानदृढरुचिनाभिगुप्तस्तुत्यव्रतविविक्तवामदेवनामाङ्कितानिसप्तवर्षाणि ॥ ६३ ॥ वर्णाश्चकुशलकोविदाभियुक्तकुलकसंज्ञाजातवेदसम्भगवन्तंस्तुवन्ति॥ ६४॥ परस्यब्रह्मणःसाक्षाज्जातवेदोसिहव्यवाट् ॥ देवानांपुरुषाङ्गानां यज्ञेनपुरुषंयजेतिस्तुतिः ॥६५॥

को पालन करता है वह साक्षात् अन्तर्यामी ईश्वर पवन हमलोगों की रक्षा करै कि जिसके वशमें संसारहै ॥ ६१ ॥ कुशद्वीपमें हजार योजन कुशाका गुच्छाहै जिसलिये उसी चिह्नसे चिह्नितहै उसीकारण कुशद्वीप कहागयाहै ॥ ६२ ॥ उस द्वीप के स्वामी प्रियव्रतके पुत्र हिरण्यरोमा हुये और उनके पुत्र वसु, वसुदान, दृढरुचि, नाभिगुप्त, स्तुत्यव्रत, विविक्त व वामदेव के नामों से चिह्नित सातखण्ड हुये ॥ ६३ ॥ और कुशल, कोविद, अभियुक्त, कुलकसंज्ञकवर्ण भगवान् अग्निदेवकी स्तुति करतेहैं ॥ ६४ ॥ कि हे अग्निदेव ! तुम साक्षात् परब्रह्मको हव्य प्राप्त करतेहो इसलिये पुरुषके अंगभूत देवताओंके यज्ञसे पुरुष (परमेश्वर) को पूजिये यह स्तुति है ॥६५॥

क्रौंचद्वीप में दश हजार योजन ऊंचा क्रौंच नामक पर्वतहै जो यह कि स्वामिकार्त्तिकेय जीसे तोड़ागया है उसी अपने चिह्नसे क्रौंचद्वीप कहाजाता है ॥ ६६ ॥
वहा भी प्रियव्रतके पुत्र घृतपृष्ठ नामक उस द्वीपके स्वामी हुये हैं उनके पुत्र आममधुरुह, मेघपृष्ठ, सुधामा, भ्राजिष्ठ, लोहितार्णव और वनस्पति नामक हुये व इ-
न्हीके नामोंसे सात खण्ड हुये और पुरुष, ऋषभ, द्रविण और देवकसंज्ञक वर्ण भगवान् जलमय (वरुण) देवकी स्तुति करते हैं ॥ ६७ ॥ हे जलो ! आप लोग
ईश्वरसे सामर्थ्यको पायेहो इसीलिये भूर्भुवःस्वः तीनोंलोकों को पवित्र करतेहुये वे आपलोग हमलोगों को स्पर्श कीजिये व शरीरों को पवित्र कीजिये क्योंकि आप

क्रौञ्चद्वीपेक्रौञ्चनामा पर्वतोयोजनायुतः ॥ योसौगुहेननिर्भिन्नः स्वचिह्नंक्रौञ्चद्वीपकम् ॥ ६६ ॥ तत्रचप्रैयव्रतोघृत
पृष्ठनामातत्पुत्रा आममधुरुहमेघपृष्ठसुधामभ्राजिष्ठलोहितार्णववनस्पतयइतिनामानिसप्तवर्षाणिवर्णाश्च पुरुषऋषभ
भद्रविणदेवकसंज्ञा आपोमयंभगवन्तंस्तुवन्ति ॥ ६७ ॥ आपःपुरुषवीर्याःस्थपुनन्तीर्भूर्भुवःसुवः ॥ तानःपुनीतामीव
घ्नीः स्पृशतामात्मनासुवःइतिजपः ॥ ६८ ॥ शाल्मलिर्नामवृक्षश्च तार्क्ष्यावासस्सहस्रकम् ॥ योजनानांचतच्चिह्नंशा
ल्मलीद्वीपमुच्यते ॥ ६९ ॥ तस्याधिपतिःप्रैयव्रतोयज्ञबाहुस्तत्पुत्रास्सुरोचनसौमनस्यरमणकदेववर्षपारिभद्राप्या
यनाविज्ञातनामानि सप्तवर्षाणिवर्णाश्चश्रुतधरवीर्यधरवसुन्धरेषन्धरसंज्ञाभगवन्तंसोममयंयजन्ते ॥ ७० ॥ स्वगोभिः
पितृदेवेभ्यो विभजन्कृष्णशुक्लयोः ॥ अन्धःप्रजानांसर्वासां राजानस्सोमआस्त्विति ॥ ७१ ॥ गोमेदनामाप्लुन्नो

लोग आत्मा (स्वरूपही) से पापनाशकहो यह जपहै ॥ ६८ ॥ जिसपर गरुड़जी का स्थानहै ऐसा शाल्मलि (सेमर) नामवाला वृक्ष हज़ार योजन ऊंचा है उसी
चिह्नवाला शाल्मली द्वीप कहाजाता है ॥ ६९ ॥ उसके स्वामी प्रियव्रत के पुत्र यज्ञबाहुहुये उनके पुत्र सुरोचन, सौमनस्य, रमणक, देववर्ष, पारिभद्र, आप्यायन, अ-
विज्ञात नामक हुये व इन्हींके नामोंसे सात खण्ड हुये और श्रुतधर, वीर्यधर, वसुन्धर, इषंधर संज्ञक वर्ण भगवान् चन्द्रमा का पूजन करते हैं ॥ ७० ॥ कि कृष्ण
व शुक्लपक्ष में पितरों और देवताओं के लिये अपनी किरणों से अन्नको बांटतेहुये सब प्रजाओं के राजा चन्द्रमा हमारी सम्मुखता से होवैं ॥७१॥ गोमेद नामक एक

पकरिया का वृक्ष है कि जिसकी सुगन्धित छायासे सुखके कारण मेदा (चर्बी) वृद्धिको प्राप्तहोती है इस लिये वह गोमेद नामक द्वीप कहाजाता है॥ ७२॥ और वहा प्रियव्रतके पुत्र इध्मजिह्व स्वामी हुये हैं उनके पुत्र शिव, यवस, सुभद्र, शान्त, क्षेम, अमृत व अभय नामक हुये और इन्हीं नामोंवाले इस द्वीप में सात खण्डहुये और हंस, पतंग, ऊर्ध्वायन, सत्यागसंज्ञक चार वर्ण सूर्यभगवान् का पूजन करते हैं॥ ७३॥ व यह जपते हैं कि जो पुराणपुरुष विष्णुजी का स्वरूप हैं उन सत्य (अनुष्ठित धर्म) व ऋत (प्रमाण कियेजातेहुये धर्म) और इनदोनोंके बोधक ब्रह्म याने वेद व अमृत (शुभफल) और मृत्यु (अशुभफल) के अधिष्ठाता सूर्यकी शरणमे हमलोग प्राप्त होते हैं यह जपहै॥ ७४॥ जिसमें एकलाख सोनेके से पत्तेहैं ऐसा हज़ार योजन ऊंचा व अग्निके समान जलता हुआ पुष्कर (कमल) है

स्ति सुरभ्यायस्यच्छायया ॥ मेदावृद्धिङ्गतासौख्याद्गोमेदंद्वीपमुच्यते ॥ ७२ ॥ तत्रप्रैयव्रतइध्मजिह्वः पतिस्तत्पुत्राःशिवयवससुभद्रशान्तक्षेमामृताभयनामानिसप्तवर्षाणिवर्णाश्चहंसपतङ्गोर्ध्वायनसत्याङ्गसंज्ञाश्चत्वारो भगवन्तंसूर्यं यजन्ते ॥ ७३ ॥ पुराणस्यविष्णोरूपंयत्सत्यस्यर्तस्यब्रह्मणोमृतस्यच मृत्योश्चसूर्यमात्मानमीमहीतिजपः ॥ ७४ ॥ स्वर्णपत्राणिनियुतं योजनानांसहस्रकम् ॥ पुष्करंज्वलदाभाति तच्चिह्नंद्वीपपुष्करम् ॥ ७५॥ तस्याधिपतिःप्रैयव्रतो वीतिहोत्रनामातत्पुत्रौरमणकधातकिनौ तन्नामचिह्नितंखण्डद्वयञ्चतयोरन्तरालेमानसोत्तरनामाचलोवलयाकारः पर्वतोयस्मिन्भ्रमतिभगवान्भास्करइति ॥ ७६ ॥ तत्रवर्णाश्चनसन्तिकेवलंसमानास्तेब्रह्मध्यायन्ति ॥ ७७ ॥ यत्तत्कर्ममयंलिङ्गं ब्रह्मलिङ्गंजनोर्चयेत ॥ एकान्तमद्वयंशान्तंतस्मैभगवतेनमइतिजपः॥७८॥ एषुक्रोधोनमात्सर्यं पुण्य

इससे उस चिह्नवाला पुष्करद्वीप कहाजाता है ॥ ७५ ॥ उसके स्वामी प्रियव्रत के पुत्र वीतिहोत्र नामक हुये और उनके पुत्र रमणक व धातकि नामक हुये और उन्हीं के नामसे चिह्नित दो खण्ड होगये उनके बीचमें मानसोत्तर नामक पर्वत कंकण के आकारवाला है कि जिसमें सूर्यनारायण भगवान् घूमते हैं ॥ ७६ ॥ और वहां जातिया नहीं हैं केवल समान वर्णवाले वे पुरुष ब्रह्मका ध्यान करते हैं ॥ ७७ ॥ कि कर्मफलदायक जो वह प्रसिद्ध मूर्त्ति है कि जिससे ब्रह्म जाना जाता है और जिसको मनुष्य पूजते हैं व एक परमेश्वरमें जिसकी स्थितिहै और जो अद्वितीय व शान्तहै उन ब्रह्ममूर्त्तिधारी भगवान् के लिये नमस्कारहै (यह जपहै)॥७८॥

इनमें क्रोध, ईर्षा व पुण्य, पाप का इकट्ठा करना यह कुछ नहीं है और क्रमसे दश हज़ार गुना आयुर्बल कहागया है ॥ ७९ ॥ उपर्युक्त मन्त्रको जपते हुये स्त्रियोंसे सयुत व पुरुष देवताओंकी नाईं विहार करते हैं इसके उपरान्त मैं ऊपरके लोककी प्रमाणको तुमसे कहूंगा ॥ ८० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांभूमिविभागवर्णनंनामत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥ ॥

दो० । नभमण्डल में है यथा सूर्यादिक का थान । इकतिसवें अध्याय में सोई चरित बखान ॥ नारदजी कहते हैं कि हे कौरव्य (अर्जुन) जी ! भूमिसे लाख

पापार्ज्जनंनच ॥ अयुतंद्विगुणंचापि क्रमादायुःप्रकीर्तितम् ॥७९॥ जपन्तःकामिनीयुक्ता विहरन्त्यमराइव ॥ अथतेसम्प्रवक्ष्यामि ऊर्द्ध्वलोकस्यसंस्थितिम् ॥ ८० ॥ इतिश्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेभूसंस्थितिर्नामत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

नारदउवाच ॥ भूमेर्योजनलक्षेच कौरव्यरविमण्डले ॥ योजनानांसहस्राणि भास्करस्यरथानव ॥ १ ॥ ईषादण्डस्तथैवास्य द्विगुणःपरिकीर्तितः ॥ सार्द्धकोटिस्तथासार्द्ध सप्तलक्षाणिचार्जुन ॥ २ ॥ योजनानान्तुतस्याक्षस्तत्रचक्रंप्रतिष्ठितम् ॥ त्रिनाभिमतिचपञ्चारं षण्नेमिपरिकीर्तितम् ॥ ३ ॥ चत्वारिंशत्सहस्राणि द्वितीयोक्षोविवस्वतः ॥ पञ्चचान्यानिसार्द्धानि स्यन्दनस्यतुपाण्डव ॥४॥ अक्षप्रमाणमुभयोः प्रमाणन्तद्युगार्द्धयोः ॥ ह्रस्वोक्षस्तद्युगार्द्धंच ध्रुवाधारंरथस्यवै ॥५॥ द्वितीयेक्षेतथासव्ये चक्रंतन्मानसेसंस्थितम् ॥ हयाश्चसप्तछन्दांसि तेषांनामानिमेशृणु ॥ ६ ॥ गायत्रीच

योजन रविमण्डल पर सूर्यनारायण का रथ अठारह हज़ार योजन चौड़ाहै ॥ १ ॥ और रथके दसाका दण्ड इसका दुगुना याने अठारह हजार योजन कहागया है और हे अर्जुन ! इसका आंक डेढकोटि साढे सात लाख ॥ २ ॥ योजन है उसमें पहिया लगाहै उस पहिये में तीन नाभि और पांच आरा व छह पुट्ठी कहीगई हैं ॥ ३ ॥ और हे पाण्डव ! सूर्य के रथका दूसरा आंक भी चालीस हज़ार योजन व अर्धसमेत पांच याने साढे पैंतालीस हज़ार योजनहै ॥ ४ ॥ जो दोनों आंकोंकी प्रमाण है वही दोनों युगोंकी प्रमाणहै और छोटाआंक व छोटा जुवां रथका ध्रुवके आधार (आश्रित) है ॥ ५ ॥ और दूसरे बायें आंकमें वह पहियाहै जोकि मानसाचल पर्वत

१ पुट्ठीसे लगाकर जिस आधार में आरा लगाये जाते हैं उसको नाभि कहते हैं ॥

पै स्थितहैं और सूर्यके घोडे सातों छन्दैं हैं उनके नामोंको मुझसे सुनिये ॥ ६ ॥ कि गायत्री, बृहती, उष्णिक्, जगती, त्रिष्टुप्, अनुष्टुप् व पंक्ति ये छंदैं सूर्यनारायण के घोड़े कहेगये हैं ॥ ७ ॥ सदैव विद्यमान इन सूर्यनारायण का अस्त व उदय नहीं होताहै किन्तु सूर्यनारायण का देखपडना व न देखपड़नाही उदय व अस्त कहाजाताहै ॥८॥ इन्द्रादिकों की पुरीमें स्थित होतेहुये ये सूर्य तीनपुरी व दो विकर्णों (कोनों) का स्पर्शकरते हैं याने प्रकाश करते है और विकर्ण (कोने) में स्थित होकर तीनों कोणों व दो पुरोंका स्पर्श करते हैं ॥ ९ ॥ उत्तरायण के आदिमें सूर्य नारायण मकरराशि में जाते हैं तदनन्तर कुम्भ व मीनमे प्राप्त होतेहैं वैसेही एक

बृहत्युष्णिग्जगतीत्रिष्टुबेवच ॥ अनुष्टुप्पङ्क्तिरित्युक्ताश्छन्दांसिहरयोरवेः ॥ ७ ॥ नैवास्तमनमर्कस्य नोदयस्सर्वदासतः ॥ उदयास्तमनाख्यंहि दर्शनादर्शनंरवेः ॥ ८ ॥ शक्रादीनांपुरेतिष्ठन् स्पृशत्येषपुरत्रयम् ॥ विकर्णौद्वौविकर्णस्थस्त्रीन्कोणान्द्वेपुरेतथा ॥ ९ ॥ अयनस्योत्तरस्यादौ मकरंयातिभास्करः ॥ ततःकुम्भंचमीनंचराशेराश्यन्तरन्तथा ॥ १० ॥ त्रिष्वेतेष्वथभुक्तेषु ततोवैषुवतींगतिम् ॥ प्रयातिसविताकुर्वन्नहोरात्रंचतत्समम् ॥ ११ ॥ ततोरात्रिःक्षयंयाति वर्द्धतेनुदिनंदिनम् ॥ ततश्चमिथुनस्यान्ते पराङ्काष्ठामुपागतः ॥ १२ ॥ राशिंकर्कटकंप्राप्य कुरुतेदक्षिणायनम् ॥ कुलालचक्रपर्यन्तो यथाशीघ्रंनिवर्त्तते ॥ १३ ॥ दक्षिणेप्रचलेत्सूर्यस्तथाशीघ्रंनिवर्तते ॥ अतिवेगतयाकालंवायुमार्गबलाच्चरन् ॥ तस्मात्प्रकृष्टांभूमिंस कालेनाल्पेनगच्छति ॥ १४ ॥ कुलालचक्रमध्यस्थोयथामन्दंप्रसर्प

राशिसे दूसरी राशिको प्राप्तहोते हैं ॥ १० ॥ इन तीनराशियोंके भोगने पर उसके उपरान्त सूर्यनारायण दिन व रात उन दोनों को वरावर करते हुये वैषुवती गतिको प्राप्तहोते हैं ॥ ११ ॥ तदनन्तर याने मेषसंक्रान्ति के उपरान्त रात्रि न्यूनता को प्राप्तहोती है और दिन प्रतिदिन बढ़ताहै तदनन्तर मिथुनराशि के अन्तमे परा काष्ठा याने उत्तरायणके अन्तको प्राप्त ॥ १२ ॥ सूर्यनारायण कर्कराशिमें प्राप्त होकर दक्षिणायन करते हैं जैसे कुम्हार के चाकका अन्तभाग शीघ्र चलता है ॥ १३ ॥ वैसेही दक्षिणायन की गतिमें सूर्यनारायण शीघ्र चलते हैं जिस लिये उस दक्षिणायन समय में बड़े वेगसे पवन मार्ग के बलसे चलते हैं इसलिये वे सूर्यनारायण

थोडेही समय से बहुत घूमि जाते हैं ॥ १४ ॥ जैसे कुम्हारके चाकके बीचमें टिकाहुआ जन्तु धीरे २ चलताहै वैसेही मन्दगतिवाले सूर्यनारायण उत्तरायणमें मन्द
गतिसे चलते हैं ॥ १५ ॥ इसीकारण बहुत समय से सूर्यनारायण थोडी भूमि जातेहैं और सन्ध्याके समयमें मन्देहा संज्ञक राक्षस सूर्यको खानेकी इच्छा करते हैं ॥
१६ ॥ और उन पापी राक्षसोंको ब्रह्मासे कियाहुआ यह शापहै कि शरीरका नाश न होना और प्रतिदिन मैं मरणहोना ॥ १७ ॥ इसलिये उन राक्षसोंसे सूर्यनारायण
का बड़ा भयंकर युद्धहोता है और गायत्रीके मन्त्रसे जिस पवित्र जलको ब्राह्मण लोग फेंकते हैं ॥ १८ ॥ उससे वे पापी राक्षस जलजाते हैं उसी कारण सदैव स-

ति ॥ तथोदगयनेसूर्यस्सर्पतेमन्दविक्रमः ॥ १५ ॥ तस्माद्दीर्घेणकालेन भूमिमल्पान्तुगच्छति ॥ संध्याकालेचमं
न्देहाः सूर्यमिच्छन्तिखादितुम् ॥ १६ ॥ प्रजापतिकृतःशापस्तेषांकलुषरक्षसाम् ॥ अक्षयत्वंशरीराणांमरणञ्चदिने
दिने ॥ १७ ॥ ततस्सूर्यस्यतैर्युद्धं भवत्यत्यन्तदारुणम् ॥ गायत्रीमन्त्रपूतंयद्द्विजास्तोयंक्षिपन्तिच ॥ १८ ॥ तेनदह्यन्ति
तेपापाः सन्ध्योपास्यातततस्सदा ॥ येसन्ध्यांनह्युपासन्ति कृतघ्नायान्तिरौरवम् ॥ १९ ॥ प्रतिमासंपृथक्सूर्य ऋषिग
न्धर्वराक्षसैः ॥ अप्सरोग्रामणीसर्पैरथोयातिचसप्तभिः ॥ २० ॥ धातार्यमामित्रवरुणौ विवस्वानिन्द्रएवच ॥ पूषाचस
वितासाम्बो भगस्त्वष्टाचकीर्तितः ॥२१॥ विष्णुश्चैत्रादिमासेषुआदित्याद्वादशस्मृताः ॥ ततोदिवाकरस्थानान्मण्डलं
शशिनःस्थितम् ॥ २२ ॥ लक्षमात्रेणतस्यापि त्रिचक्रोरथउच्यते ॥ कुन्दाभादशचैवाश्वा वामदक्षिणतोयुताः ॥२३॥

न्ध्योपासन करना चाहिये जो पुरुष सन्ध्योपासन नहीं करते हैं वे कृतघ्नी नर रौरव नरकको जाते हैं ॥१९॥ प्रत्येक महीनेमें भिन्न भिन्न सूर्य, ऋषि, गन्धर्व, राक्षस,
अप्सरा, ग्रामणी (यक्ष), सर्प इन सातोंसे संयुक्त सूर्यनारायण का रथ गमन करताहै ॥ २० ॥ व धाता, अर्यमा, मित्र, वरुण, विवस्वान्, इन्द्र व पूषा, सविता,
साम्ब भग व त्वष्टा कहेगये हैं॥ २१ ॥ और विष्णु ये चैत्रादिक महीनों में बारह आदित्य कहेगये हैं तदनन्तर सूर्यके स्थानसे लक्ष योजनकी प्रमाणसे चन्द्रमा का
मण्डल स्थितहै उन चन्द्रमा का भी रथ तीन पहियावाला कहाजाताहै और बायें व दाहिने ओर कुन्दके समान श्वेत दश घोड़े संयुत (जुतेहुये) हैं ॥ २२ । २३ ॥

पर कि सनक, सनन्दन,सनातन व सनत्कुमार बसते हैं उसके उपरान्त चारकरोड़ योजन तपोलोक कहागयाहै ॥४२॥ जहांपर कि सन्तापसे रहित वे वैराज देवता विराजतेहैं और तपोलोकसे छहगुने याने चौबीस हजार योजन सत्यलोक शोभितहै ॥४३॥जहांके बसनेवाले पुरुष फिर नहीं मरतेहैं वही ब्रह्मलोक मानागया है और अठारह करोड़ व पचासी लाख ॥ ४४॥ योजन उसके उपरान्त अनुपम उत्तम स्थान भलीभाति शोभित है भूर्भुवःस्वः ये तीनोंलोक कृतक याने सृष्टिके आदिमें ये तीनो लोक रचेजाते है ॥ ४५ ॥ जन, तप व सत्य ये तीनोंलोक अकृत्रिम है और कृत्रिम व अकृत्रिम लोकोंके बीचमे महर्लोक ऐसा कहागया है ॥ ४६ ॥ जोकि कल्पान्त

वैराजायत्रतेदेवाः स्थितादाहविवर्जिताः ॥ षड्गुणेनतपोलोकात् सत्यलोकोविराजते ॥ ४३ ॥ अपुनर्मारकायत्र ब्रह्मलोकोहिसम्मतः ॥ अष्टादशतथाकोट्यो लक्षाश्चाशीतिपञ्चच ॥ ४४ ॥ शुभंनिरुपमंस्थानं तदूर्द्धंसम्प्रकाशते ॥ भूर्भुवःस्वरितिप्रोक्तं त्रैलोक्यंकृतकंत्विदम् ॥ ४५ ॥ जनस्तपस्तथासत्यमितिवाकृतकत्रयम् ॥ कृतकाकृतयोर्म्मध्ये महर्लोकइतिस्मृतः ॥ ४६ ॥ शून्योभवतिकल्पान्तेयोत्यन्तंनविनश्यति ॥ एतेसप्तसमाख्याता लोकाःपुण्यैरुपार्ज्जिताः ॥ ४७ ॥ यज्ञैर्दानैर्जपैर्होमैस्तीर्थैर्ब्रह्मसमुच्चयैः ॥ वेदादिप्रोक्तैरन्यैश्च साध्याँल्लोकानिमान्विदुः ॥ ४८ ॥ ततश्चाण्डश्चशिरसो धारानीरमयीशिवा ॥ सर्वलोकान्समाप्लाव्य गङ्गामेरुमुपागता ॥ ४९ ॥ ततोमहीतलंसर्वं पातालञ्चयथाक्रमम् ॥ अण्डमूर्द्धिस्थितादेवी सततंद्वारवासिनी ॥ ५० ॥ देवानांकोटिकोटीभिः संवृतापिङ्गलेनच ॥ तत्रस्थि

में शून्य होजाता है परन्तु अत्यन्त नष्ट नहीं होताहै ये पुण्यों से इकट्ठा कियेहुये सातलोक कहेगये ॥ ४७ ॥ विद्वानोंने इन लोकों को यज्ञ, दान, जप, होम, तीर्थ व ब्रह्मसमूह याने गायत्री के बहुत जपसे व वेदादिकों में कहेहुये अन्य स्तोत्रों से साधन करने योग्य कहा है ॥ ४८ ॥ उसके उपरान्त ब्रह्माण्ड के मस्तक से कल्याणकारिणी जलमयी धारा श्रीगंगाजी सबलोकों में होकर सुमेरु गिरिपै प्राप्तहुई ॥ ४९ ॥ तदनन्तर समस्त भूतल व पाताल में क्रमपूर्वक प्राप्तहुई सदैव द्वारपै बसनेवाली श्रीगंगादेवी ब्रह्माण्ड के मस्तकपै स्थितहैं ॥ ५० ॥ जोकि करोड़ों करोड़ देवता व पिंगल से घिरीहुई वे उत्तम गंगाजी वहां स्थित होकर सदैव

ब्रह्माण्डकी रक्षा करती हैं ॥५१॥ व बडेभारी बलवान् दुष्ट गणोंको नाश करती हैं और जिस प्रकार सातोंभी पवनके समूह स्थित हैं उनको सुनिये ॥५२॥ कि पृथ्वी
को उल्लंघनकर मेघमण्डल में प्रवह नामक पवन स्थित है जोकि बडा बलवान् पवन मेघोंको लेजाता है ॥ ५३ ॥ हे अर्जुन जी ! धूमसे उत्पन्न व गरमीसे उपजे
हुये जो मेघ समुद्र के जलोंसे नहीं पूर्ण होते हैं वे नीले अंगवाले होकर बरसनेवाले होतेहैं ॥ ५४ ॥ दूसरा वह नामक पवन सूर्यमण्डल में बँधा है उससे बँधा
हुआ यह सूर्यमण्डल ध्रुवसे घुमाया जाता है ॥ ५५ ॥ और तीसरा उद्वह नामक पवन चन्द्रमा के स्थानमे स्थित है कि जिससे बँधाहुआ यह चन्द्रमण्डल ध्रुव से

तासदारक्षां कुरुतेऽण्डस्यसाशुभा ॥५१॥ निहन्तिदुष्टसङ्घातान् महाबलपराक्रमान् ॥ वायुस्कन्धानिसप्तापि शृणुयद्व
त्स्थितान्यपि ॥ ५२ ॥ पृथिवींसमतिक्रम्य संस्थितोमेघमण्डले ॥ प्रवहोनामयोमेघान् प्रवहत्यतिशक्तिमान् ॥ ५३ ॥
धूमजाश्चोष्णजामेघाः सामुद्रैर्येनपूरिताः ॥ तोयैर्भवन्तिनीलाङ्गा वर्षिष्ठाश्चैवभारत ॥ ५४ ॥ द्वितीयश्चवहोनाम
निबद्धस्सूर्यमण्डले ॥ तेनबद्धंध्रुवेनेदं भ्राम्यतेसूर्यमण्डलम् ॥ ५५ ॥ तृतीयश्चोद्वहोनाम चन्द्रस्कन्धेप्रतिष्ठितः ॥
बद्धंध्रुवेणयेनेदं भ्राम्यतेचन्द्रमण्डलम् ॥ ५६ ॥ चतुर्थस्संवहोनाम स्थितोनक्षत्रमण्डले ॥ वातरश्मिभिराबद्धं ध्रुवेण
सहभ्राम्यते ॥ ५७ ॥ ग्रहेषुपञ्चमस्सोपि विवहोनाममारुतः ॥ ग्रहचक्रमिदंयेन भ्राम्यतेध्रुवसन्धितम् ॥ ५८ ॥ षष्ठःप
रिवहोनाम स्थितस्सप्तर्षिमण्डले ॥ भ्रमन्तिध्रुवसंबद्धायेनसप्तर्षयोदिवि ॥ ५९ ॥ सप्तमश्चध्रुवेबद्धो वायुर्नाम्नापराव
हः ॥ येनसंस्थापितंध्रौव्यं चक्रंचान्यानिभारत ॥ ६० ॥ यंसमासाद्यवेगेन दिशामन्तंप्रपेदिरे ॥ दक्षस्यदशपुत्राणां स

घुमाया जाताहै ॥ ५६ ॥ चौथा संवह नामक पवन नक्षत्रमण्डल में स्थित है उस पवनकी रस्सियों से बँधाहुआ यह ज्योतिश्चक्र ध्रुवसे घुमाया जाताहै ॥ ५७ ॥ और
वह पांचवा विवह नामक पवनभी ग्रहोंके मण्डलमें स्थित है कि जिससे ध्रुवमें बँधाहुआ यह ग्रहचक्र घुमाया जाता है ॥ ५८ ॥ छठा परिवह नामक पवन सप्तर्षि
मण्डल में टिकाहै कि जिससे ध्रुवमें बँधेहुये सप्तर्षि आकाश में घूमते हैं ॥५९॥ हे अर्जुन ! सातवां परावह नामक पवन ध्रुवमें बँधाहै कि जिससे ध्रुवचक्र भलीभांति

स्थापित है व और भी चक्र स्थापित हैं ॥ ६० ॥ दक्षप्रजापति के दश हज़ार पुत्र जिस पवनमें प्राप्तहोकर दिशाओं के अन्तमें प्राप्तहुये ॥ ६१ ॥ इस प्रकार दितिके
पुत्र ये उंचास पवन विशेषता से टिके हैं न रसतेहुये जोकि सर्वव्यापी व सर्वधारी होकर भलीभांति चलते है ॥ ६२ ॥ ध्रुवसे ऊपर बिन सूर्य, बिन नक्षत्र व बिन
ताराओ का स्थानहै वहां के वे पुरुष नित्यही अपने तेज व अपनी शक्तिसे टिके हैं ॥६३॥ तुमसे यह वृत्तान्त कहागया इसके उपरान्त पातालोंको भलीभांति सुनिये ॥
६४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांनक्षत्रादिसस्थानवर्णनंनामैकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

हस्राणिप्रजापतेः ॥ ६१ ॥ एवमेतेदितेःपुत्राः सप्तसप्तव्यवस्थिताः ॥ अनारमन्तःसंयान्ति सर्वगास्सर्वधारिणः ॥६२॥
ध्रुवादूर्ध्वमसूर्यंचअनक्षत्रमतारकम् ॥ स्वतेजसास्वशक्त्याचाधिष्ठितास्तेहिनित्यदा ॥ ६३ ॥ इत्यूर्ध्वंतेसमाख्यातं
पातालान्यथसंशृणु ॥ ६४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेनक्षत्रादिसंस्थानवर्णनंनामैकत्रिंशोध्यायः ॥ ३१ ॥ ॥

नारदउवाच ॥ सहस्रसप्तत्युच्छ्राये भूमेरस्तिकुरूद्वह ॥ दशसाहस्रमेकैकं पातालानिपरस्परम् ॥ अतलंवितलंचै
व नितलंचरसातलम् ॥ १ ॥ तलातलंचसुतलं पातालंचापिसप्तमम् ॥ कृष्णशुक्लारुणाःपीताः शर्कराःशैलकाञ्चनाः ॥
२ ॥ भूमयोयत्रकौरव्य वरप्रासादशोभिताः ॥ तेषुदानवदैतेयनागाश्चशतसङ्घशः ॥ ३ ॥ स्वर्लोकादपिरम्याणि दृष्टा
निबहुशोमया ॥ आह्लादकारिणोनाम गणकायत्रपन्नगाः ॥ ४ ॥ दैत्यदानवकन्याभिर्महारूपाभिरन्विते ॥ पाताले

दो० । अतल वितल आदिक यथा राजत हैं पाताल । बत्तिसवें अध्यायमे सोई रुचिर हवाल ॥ नारदजी बोले कि हे अर्जुन ! पृथ्वीकी ऊँचाई सत्तर हजार योजन
है व सब पाताल परस्पर दश हजार योजन ऊंचेहै अतल, वितल, नितल, रसातल ॥१॥ तलातल व सुतल और सातवां पाताल भी है हे अर्जुन! जहांपर कि श्याम,
श्वेत, अरुण, पीत, ककरीली, पहाडी और सोनेकी पृथ्वी है जोकि उत्तम मन्दिरों से शोभित हैं उनमे सैकडों गण दानव, दैत्य व नाग ॥ २ । ३ ॥ मैने बहुत से
देखेहै जोकि स्वर्गलोकसे भी सुन्दर है जहांपर आह्लादकारी नामक सर्पगण हैं ॥ ४ ॥ बड़ी रूपवती दैत्यों व दानवों की कन्याओं से संयुत उग पाताल में मुक्तहुये

भी जिस पुरुषकी प्रीति नहीं होतीहै ॥ ५ ॥ जहांपर न गरमीहै न जाड़ाहै न वर्षाहै और न दुःखहै व भक्ष्य भोजन के महासुखोंसे भी जहांपर समय व्यतीत होताहै ॥ ६ ॥ हे अर्जुन जी! सातवें पाताल में श्रीहाटकेश्वर लिंग है ब्रह्मासे थापाहुआ जोकि हजार योजन ऊंचा है ॥ ७ ॥ और हाटकेश्वर लिंगका दिव्य मन्दिर दश हजार योजन ऊंचाहै जोकि समस्तरत्नमय व अनेक आश्चर्यों से शोभित है ॥ ८ ॥ वहां अनेक श्रेष्ठ नागेन्द्र उस लिंगको पूजते हैं उसके नीचे बहुत जलहै व उस के नीचे नरक कहेगये हैं ॥ ९ ॥ हे महामते! जिनमें पापी पुरुष गिराये जाते हैं उनको सुनिये कि पचपन करोड़ नरकहैं उनमेंसे इक्कीस राजा याने मुख्यहैं ॥ १० ॥

कस्यनप्रीतिर्विमुक्तस्यापिजायते ॥ ५ ॥ यत्रनोष्णंनवाशीतं नवर्षंदुःखमेववा ॥ भक्ष्यभोज्यमहाभोगैः कालोयत्रा
पिजायते ॥ ६ ॥ पातालेसप्तमेचास्ति लिङ्गंश्रीहाटकेश्वरम् ॥ ब्रह्मणास्थापितंपार्थ साहस्रंयोजनोच्छ्रितम् ॥ ७ ॥ हाट
कस्यचलिङ्गस्य प्रासादोयोजनायुतः ॥ सर्वरत्नमयोदिव्योनानाश्चर्यविभूषितः ॥ ८ ॥ तत्रार्चयन्तितल्लिङ्गं नानानागे
न्द्रसत्तमाः ॥ तदधश्चजलंभूमिस्तस्याधोनरकाःस्मृताः ॥ ९ ॥ पापिनोयेषुपात्यन्ते ताञ्छृणुष्वमहामते ॥ कोटयः
पञ्चपञ्चाशद्राजानश्चैकविंशतिः ॥ १० ॥ रौरवःशूकरोरोधस्तालोविशसनस्तथा ॥ महाज्वालस्तप्तकुम्भो लवणो
थविमोहनः ॥ ११ ॥ रुधिरान्धोवैतरणी कृमिशःकृमिभोजनः ॥ असिपत्रवनंकृष्णो लालाभक्षश्चदारुणः ॥ १२ ॥
तथापूयवहःपापो वह्निज्वालोप्यधःशिराः ॥ सन्दंशःकृष्णसूत्रश्च तमश्चावीचिरेवच ॥ १३ ॥ श्वभोजनोऽथाप्रतिभस्त्व
वीचिश्चतथापरः ॥ कूटसाक्षीरौरवंच रोधघ्नोविप्ररोधकः ॥ १४ ॥ सुरापःशूकरंयाति तालंमिथ्यामनुष्यहा। गुरुतल्पी

रौरव, शूकरमुख, रोध, ताल व विशसन, महाज्वाल, तप्तकुम्भ, लवण व विमोहन ॥ ११ ॥ रुधिरान्ध, वैतरणी, कृमिश, कृमिभोजन, असिपत्रवन, कृष्ण व भयंकर लालाभक्ष ॥ १२ ॥ वैसेही पापी पूयवह, वह्निज्वाल, अधःशिरा, सन्दंश, कृष्णसूत्र, तम व अवीचि ॥ १३ ॥ श्वभोजन, अप्रतिभ व दूसरा अवीचि है झूठी गवाही देनेवाला रौरवको जाताहै और गऊ व ब्राह्मणको रोंकमें रखनेवाला रोध नामक नरक को जाता है ॥ १४ ॥ मदिरा पीनेवाला नर शूकरमुख नरक को जाताहै और वृथाही मनुष्यको मारनेवाला ताल नामक नरकको जाताहै और गुरु की शय्यापर बैठनेवाला या गुरु की स्त्री से व्यभिचार करनेवाला पुरुष तप्तकुंभ

नरकको जाताहै और भक्तको मारनेवाला मनुष्य तप्तलोह नरकको जाता है॥ १५॥ जो गुरुका अपमान करताहै वह महाज्वाल नामक नरक में गिरायाजाता है और शास्त्रों को नाश करनेवाला लवण नामक नरकको जाता है व मर्यादरहित मनुष्य बिमोहन नरक में जाताहै ॥ १६ ॥ देवताओंका वैरी कृमिभक्ष नरक में जाता है व दुष्ट पूजन करनेवाला नर कृमिशनरक में जाताहै और पितरों व देवताओं से पहले भोजन करनेवाला नर लालाभक्षनरक में जाता है ॥ १७ ॥ वृथाही जीवों से वैर करनेवाला और कपट के शास्त्र बनानेवाला नर शसन नामक नरक को जाताहै और निषेध वस्तुका ग्रहण करनेवाला अधोमुख नरक को जाता है व अकेलेही भोजन करनेवाला मनुष्य पूयवाहक नरक में जाताहै ॥ १८ ॥ व मुर्गा, कुत्ता, बिलार और पक्षियों को सेवनेवाला पुरुष तथा घर, खेत, तृण व अन्नादि को जलाने

तप्तकुम्भं तप्तलोहश्चभक्तहा ॥ १५ ॥ गुरूणामवमन्तायो महाज्वालेनिपात्यते ॥ लवणंशास्त्रहन्ताच निर्मर्यादीविमोहके ॥ १६ ॥ कृमिभक्षेदेवद्वेष्टा कृमिशेचदुरिष्टिकृत् ॥ पितृदेवात्पूर्वमश्नँल्लालाभक्षेप्रयातिच ॥ १७ ॥ मिथ्याजीवविरोधीचशसनेकूटशास्त्रकृत् ॥ अधोमुखेचासद्ग्राहीएकाशीपूयवाहके ॥ १८ ॥ तथाचकुक्कुटश्वौतुपक्षिजोष्टाप्रयातिच ॥ रुधिरान्धेगृहक्षेत्रतृणधान्यादिदाहकः ॥ १९ ॥ नक्षत्ररङ्गजीवीच यातिवैतरणींनरः ॥ धनयौवनमत्तोयोधनहाकृष्णमेतिसः ॥२०॥ असिपत्रवनेयातिवृक्षच्छेदीवृथैवच ॥ कुहकाजीविनस्सर्वे वह्निज्वालेपतन्तिच ॥ २१ ॥ परस्त्रीचपरान्नञ्च गच्छन्सन्दंशमेतिच ॥ दिवास्वप्नपरायेच व्रतलोपपराश्चये ॥ २२ ॥ शरीरमदमत्ताश्च यान्तिचैतेश्वभोजनम् ॥ शिवंहरिन्नमन्यन्ते यान्त्यवीचिनमेवच ॥ २३ ॥ इत्येवमादिभिःपापैरशास्त्रीयस्यसेवनैः ॥ पतन्त्येत्र

वाला पुरुष रुधिरान्ध नरकमें जाता है ॥ १९ ॥ नक्षत्रों, व नटकार्य और मल्लादिकों के कर्म से जीविका करनेवाला पुरुष वैतरणी नदीवाले नरक को जाताहै और धन व यौवनसे जो मतवाला है और जो धन को हरलेताहै वह पुरुष कृष्ण नामक नरक को जाताहै ॥ २० ॥ और वृथाही वृक्षों को काटनेवाला पुरुष असिपत्रवन नामक नरकमें जाताहै व कपटसे जीविकावाले सब पुरुष वह्निज्वाल नरकमें गिरतेहैं॥ २१॥पराये अन्न व पराई स्त्री के समीप जाता हुआ पुरुष सन्दंश नरक को जाताहै और जो दिन में स्वप्नपर याने सोते हैं और जो व्रतके भङ्ग करने मे तत्परहैं ॥ २२ ॥ और जो शरीर के गर्व से मतवालेहैं ये पुरुष श्वभोजन नामक नरकमें जातेहैं जो सदा-

शिव व विष्णुजी को नहीं मानते हैं वे अवीचि नामक नरक को जाते हैं ॥ २३ ॥ इत्यादिक पापों से व विनशास्त्रवाली वस्तुके सेवन से पुरुष हजारों भयंकर नरकों
में गिरतेही हैं ॥ २४ ॥ इस लिये जो बुद्धिमान् मनुष्य इन नरकों से अलग होनाचाहै तो उससे वेदमार्ग के द्वारा विष्णु व महादेवजी दोनों देवता पूजनीयहैं ॥ २५ ॥
नरकों के नीचे भागमें कालाग्निसंज्ञक स्थित है उस के नीचे कच्छप व उस के नीचे शेषजी कहेगये हैं ॥ २६ ॥ जिन शेषजी के मस्तक के अग्रभागपै यह समस्त
संसार सरसों की नाईं धराहै इस अमित प्रभावसे वे अनन्त ऐसे कहेजाते हैं॥२७॥तदनन्तर पद्म, कुमुद, अंजन व वामन ये दिशाओं के हाथी हैं उसके नीचे अण्ड

**महाघोरनरकेषुसहस्रशः ॥ २४ ॥ तस्माद्यइच्छेदेतेभ्योविमोक्षंबुद्धिमान्नरः ॥ श्रुतिमार्गेणतेनार्च्यौ देवौहरिहरावु
भौ ॥ २५ ॥ नरकाणामधोभागे स्थितःकालाग्निसंज्ञकः ॥ तदधश्चैवमण्डूको ह्यनन्तस्तदधःस्मृतः ॥ २६ ॥ यस्यैत
त्सकलंविश्वं मूर्द्धाग्रेसर्षपायते ॥ इत्यनन्तप्रभावात्सोनन्तश्चेत्यत्रकीर्त्यते ॥ २७ ॥ दिशाङ्गजास्ततःपद्मकुमुदाञ्जन
वामनाः ॥ तदधोण्डकटाहश्च एकवीरोस्तितत्रच ॥२८॥ चतुर्लक्षसहस्राणि तावन्त्येवशतानिच॥ एतेनैवप्रमाणेन उ
दकञ्चततःस्मृतम् ॥ २९ ॥ तदधोनरकाःकोट्यो द्विकोट्यग्निस्ततोमहान् ॥ ३० ॥ चत्वारिंशतिसाहस्रैस्तदधस्तम
उच्यते ॥ चत्वारिंशच्चकोट्यस्तु चतस्रश्चतथापराः ॥ ३१ ॥एकोननवतिर्लक्षाः सहस्राशीतिरेवच ॥ तदधोण्डकटाहेथ
कोटिमात्रेस्थितापरा ॥३२॥ देवीयुक्ताकपालीशा दण्डहस्तेनचापिसा ॥ देवीनांकोटिकोटीभिस्संवृतातत्रपालिनी ॥
३३ ॥ सङ्कर्षणास्यनिःश्वासप्रेरितोदाहकोनलः ॥ कालाग्निप्रेरयत्येष कल्पान्तेदहतेजगत् ॥ ३४ ॥ एवंविधमध**

कटाह है वहां एकवीर है ॥ २८ ॥ उसके उपरान्त चार लाख हजार व उतनेही याने चार लाखसौ इसी प्रमाणसे जल कहागया है ॥ २९ ॥ उसके नीचे करोडों
नरकहैं उसके उपरान्त दो करोड योजन तक बडीभारी अग्नि है ॥ ३० ॥ उसके नीचे चालीस हज़ार योजन अन्धकार कहाजाता है चालीस व चार और याने च-
वालिस करोड ॥ ३१ ॥ नवासी लाख अस्सीहज़ार योजन पर करोड़ योजनवाले अण्डकटाह मे उत्तम कपालीशा देवी युक्तहैं वे हाथमें दण्डसे भी उपलक्षित हैं
और करोड़ों करोड़ देवियोंसे घिरीहुई वह देवी वहा पालन करती है ॥ ३२।३३॥ और शेषजीके श्वास से प्रेरित यह जलानेवाली अग्नि कल्पान्त मे संसार को ज-

लाती है ॥ ३४॥ हे भारत! इस संसार में वहां नीचे इस प्रकारका सब निर्मित स्थानहै और मध्यसूत्र कटाह में जो पालकहैं उनको मुझसे सुनिये ॥ ३५ ॥ पूर्वमें वसुधामा स्थितहै व दक्षिण में शंखपाल, पश्चिम में तक्षकेश व उत्तर मे केतुमान् हैं ॥ ३६ ॥ हरसिद्धि, सुवर्णाक्षी, भास्करा व योगनन्दिनी करोड करोड़ देवियोंसे संयुत ये देवियां इस संसारको पालन करती हैं ॥ ३७ ॥ इस प्रकार बड़े आश्चर्यवाले ब्रह्माण्ड को जिन्होने स्थापन कियाहै मैं उन ब्रह्मा, विष्णु व महेश को नित्य नमस्कार करताहूं ॥ ३८ ॥ विष्णुलोक व रुद्रलोक, इससे बाहर कहा जाता है उसका वर्णन करने के लिये न ब्रह्मा समर्थ हैं और न हमलोग समर्थ हैं ॥ ३९ ॥ विष्णु

स्तत्र निर्मितंचात्रभारत ॥ मध्यसूत्रेकटाहेच पालकास्ताञ्छृणुष्वमे ॥ ३५ ॥ वसुधामास्थितःपूर्वे शङ्खपालश्चदक्षिणे ॥ तक्षकेशःस्थितःपश्चादुत्तरेकेतुमानिति ॥ ३६ ॥ हरसिद्धिस्सुवर्णाक्षी भास्करायोगनन्दिनी ॥ कोटिकोटियुता देव्यो देवीनांपालयन्त्यदः ॥ ३७ ॥ एवमेतन्महाश्चर्यं ब्रह्माण्डंस्थापितंचयैः ॥ नमामितानहंनित्यं ब्रह्मविष्णुमहेश्वरान् ॥ ३८ ॥ विष्णुलोकोरुद्रलोको बहिश्चात्माप्रकीर्त्यते ॥ तच्चवर्णयितुंब्रह्मा शक्तोनैवास्मदादयः ॥ ३९ ॥ विमुक्तायत्रसंयान्ति नित्यंहरिहरव्रताः ॥ ब्रह्माण्डंसंवृतंह्येतत् कटाहेनसमन्ततः ॥ ४० ॥ कपित्थस्ययथाबीजंकटाहेनसुसंवृतम् ॥ दशोत्तरेणपयसा वृतंतच्चापितेजसा ॥ ४१ ॥ तेजश्चवायुनावायुर्नभसाहन्तयाचतत् ॥ अहङ्कारश्चमहता तच्चापिप्रकृतिःपरा ॥ ४२ ॥ दशोत्तराणिसर्वाणि षडाहुःसप्तमञ्चयत् ॥ प्राकृतावरणंपार्थ तदनन्तंप्रकीर्तितम् ॥ ४३ ॥ अण्डानान्तुसहस्राणां सहस्राण्ययुतानिच ॥ ईदृशानांतथातत्र कोटिकोटीशतानिच ॥ ४४ ॥ सर्वाण्येवंविधान्येव

व महादेव के नियमोवाले पुरुष मुक्त होकर जहां जाते है यह ब्रह्माण्ड सबओर कटाह से घिराहुआ है ॥ ४० ॥ जैसे कि कटाह याने कैथाके गोलाकार बकले से भलीभांति घिराहुआ कैथाका बीजहोवै वह अण्डकटाह अपनी प्रमाण के दशगुने जलसे घिराहै और वह जलभी तेज अग्निसें घिरा है ॥ ४१ ॥ और अग्नि पवन से घिरीहै और पवन आकाश से और वह आकाश अहंकार से घिराहै और अहंकार महत्तत्त्व से घिराहै व उस महत्तत्त्व को परम प्रकृति घेरेहै॥४२॥ विद्वानों ने सब छह आवरणों को दशोत्तर याने दश दश गुना अधिक कहा है और हे अर्जुन जी ! जो सातवां प्राकृत आवरण है वह अनन्त कहागया है ॥४३॥ और उस प्रकृति

में ऐसे हज़ारों हजार व दशहजार और करोडों करोड सैकड़ों ब्रह्माण्ड स्थित हैं ॥ ४४ ॥ और समस्त ब्रह्माण्ड ऐसेही हैं जैसा कि यह कहागया है हे पार्थ ! जिसका ऐसा ऐश्वर्य है उन सदाशिव जीको मैं प्रणाम करताहूं ॥ ४५ ॥ इसलिये बडे आश्चर्य की बातहै कि वह कौन पापात्मा निर्बुद्धि पुरुषहै कि जो इस प्रकार के मोहमें प्राप्तहोकर तारनेवाले शिवको न भजै ॥ ४६ ॥ इसके अनन्तर मैं तुमसे समयका प्रमाण कहताहूं कि उसको सुनिये ॥ ४७ ॥ कि पद्रह निमेषकी काष्ठा विद्वानों ने कही है और तीस काष्ठाकी कला गनै और तीस कलाओंका मुहूर्त्त होताहै व तीसमुहूर्त्तों का दिन रात दोनों होतेहैं ॥ ४८ ॥ एक दिन में तीन तीन मुहूर्त्तोंवाले पांच

यादृशंकीर्तितंत्विदम् ॥ यस्यैवंवैभवंपार्थ तन्नमामिसदाशिवम् ॥ ४५ ॥ अहोमन्दःसपापात्मा कोवातस्माद्चेत
नः ॥ यएवंविधसम्मोहस्तारकंनाशिवंभजेत ॥ ४६ ॥ अथतेकीर्तयिष्यामिकालमानंनिबोधतत् ॥ ४७ ॥ काष्ठानिमे
षादशपञ्चचाहुस्त्रिंशच्चकाष्ठागणयेत्कलांहि ॥ त्रिंशत्कलाश्चापिभवेन्मुहूर्त्तस्तैस्त्रिंशताराज्यहनीउभेच ॥४८॥ दिवसे
[illegible]कालाःस्युस्त्रिमुहूर्ताःशृणुष्वतान् ॥ प्रातस्तथासङ्गवश्चमध्याह्नश्चापराह्णिकः ॥ ४९ ॥ सायाह्नःपञ्चमश्चापि मुहूर्तादृ
[illegible] ॥ अहोरात्राःपञ्चदश पक्षइत्यभिधीयते ॥ ५० ॥ मासःपक्षद्वयेनोक्तो द्वौमासौचार्कजावृतुः ॥ ऋतुत्रयंचा
[illegible]त्युच्यते ॥ ५१ ॥ चतुर्भेदंमासमाहुः पञ्चभेदंचवत्सरम् ॥ संवत्सरस्तुप्रथमे द्वितीयःपरिवत्सरः ॥
[illegible] त्सरश्चानुवत्सरः ॥ पञ्चमश्चयुगोनाम गणनानिश्चयोहिसः ॥ ५३ ॥ मासेनचमनुष्याणाम
५२ ॥ [illegible] ॥ [illegible]हःप्रोक्तः शुक्लपक्षश्चशर्वरी ॥ ५४ ॥ मानुषेणचवर्षेण दैविकोदिवसःस्मृतः ॥ अहस्त
होरात्रं[illegible]

[illegible] होते हैं उनको सुनिये कि प्रातः, संगव, मध्याह्न, अपराह्ण ॥ ४९ ॥ व पांचवा सायाह्नहै और दिनमें पंद्रह मुहूर्त्त होते हैं व पद्रह दिनरात का पक्ष ऐसा कहाजाता [illegible] दो महीनों की ऋतु होती है और तीन ऋतुओंका अयन होताहै व दो अयनों का साल कहाजाता है ॥ [illegible] ॥ विद्वानों ने महीने के चार भेद [illegible] सालको कहा है पहला संवत्सर दूसरा परिवत्सर ॥ ५२ ॥ तीसरा इद्वत्सर और चौथा अनुवत्सर है [illegible] वही गणना का निश्चय है ॥५३॥ मनुष्यों के एक महीने से पितरों का दिनरात होताहै कृष्णपक्ष दिन कहागया है व शुक्लपक्ष रात्रिहै ॥५४॥

और मनुष्यों के एक वर्ष से देवताओं का दिनरात कहागया है उसमें उत्तरायण दिनहै व दक्षिणायन रात्रिहै ॥ ५५ ॥ और देवताओं के वर्ष से सप्तर्षियों का दिन मानागया है व सप्तर्षियों के वर्ष से ध्रुवका दिन कहागया है ॥ ५६ ॥ मनुष्यों के सत्रह लाख व अट्ठाईस हज़ार वर्षका सतयुग होताहै ॥ ५७ ॥ व मनुष्यों ही के वर्ष प्रमाण से बारहलाख छानबे हजार वर्षका त्रेतायुग कहागया है और अठारहलाख चौंसठि हज़ार वर्षका द्वापर युग होता है ॥ ५८ ॥ व चारलाख, बत्तीसहज़ार वर्षको कलियुग कहागयाहै इन चारों से देवताओंका युग ऐसा कहाजाता है ॥ ५९ ॥ और मनुका आयुर्बल इकहत्तरि युगोंका होताहै और चौदह मनुवों के समय

त्तोदगयनं रात्रिःस्याद्दक्षिणायनम् ॥ ५५ ॥ वर्षेणचैवदेवानांमतःसप्तर्षिवासरः ॥ सप्तर्षीणांचवर्षेण ध्रौवश्चदिवसःस्मृतः ॥ ५६ ॥ मानुषाणांचवर्षाणि लक्षास्सप्तदशैवच ॥ अष्टाविंशतिचैवापि सहस्राणिकृतंयुगम् ॥ ५७ ॥ लक्षाद्वादशसाहस्राः षण्णवत्यधिकःपरः ॥ मानुषेणैवमानेन त्रेतायुगउदीरितः ॥ अष्टौलक्षाश्चतुःषष्टिसहस्राणिचद्वापरः ॥ ५८ ॥ चतुर्लक्षश्चद्वात्रिंशत्सहस्राणिकलिःस्मृतः ॥ चतुर्भिरेतैर्देवानां युगमित्यभिधीयते ॥ ५९ ॥ आयुर्मनोर्युगानांच साधिकाह्येकसप्ततिः ॥ चतुर्दशमनूनांच कालेनब्रह्मणोदिनम् ॥ ६० ॥ युगानांचसहस्रेण सचकल्पःशृणुष्वतत् ॥ भवोद्भवस्तथाभव्य ऋतुर्वह्निर्वराहकः ॥ ६१ ॥ सावित्रऔसिकश्चापि गान्धारःकुशिकस्तथा ॥ ऋषभश्चतथाखड्गो गान्धारीयश्चमध्यमः ॥ ६२ ॥ वैराजश्चनिषादश्च मेघवाहनपञ्चमौ ॥ चित्रकोज्ञानआकूतिर्मनोदर्शश्चबृंहिकः ॥ ६३ ॥ श्वेतरोहितरक्तौच पीतवासाःशिवःप्रभुः ॥ सर्वरूपश्चमानोयमेवंवर्षशतावधिः ॥ ६४ ॥ पूर्वार्द्धमपरार्धञ्च ब्रह्ममानमिदंस्मृ

से ब्रह्माका दिन होताहै ॥ ६० ॥ और हज़ार युगोंसे कल्पहोता है उसको सुनिये कि भवोद्भव, भव्य, ऋतु, वह्नि, वराहक ॥ ६१ ॥ सावित्र, औसिक, गान्धार, कुशिक, ऋषभ व खड्ग, गांधारी जोकि मध्यम है ॥ ६२ ॥ वैराज, निषाद, मेघवाहन, पंचम, चित्रक, ज्ञान, आकूति, मनोदर्श व बृंहिक ये नामहैं ॥ ६३ ॥ श्वेत, अरुण, लाल व पीले वसनवाले शिव स्वामी होते हैं जोकि समस्त रूपधारी हैं यह ब्रह्माके दिनकी प्रमाणहै इसी प्रकार सौ वर्ष ब्रह्माके आयुर्बल की अवधि है ॥ ६४ ॥ पूर्वार्द्ध

व परार्द्ध यहाँ ब्रह्माकी आयुर्बल का प्रमाण है और विष्णु व शङ्करजीकी आयुर्बलके वर्णन करने में मैं समर्थ नहीं हूं ॥ ६५ ॥ कहां तो थोड़ी बुद्धिवाला मैं और कहां अपार विष्णु व त्रिलोचनजी हैं देवताओंवाले प्रमाणसे पातालों में गिनाजाता है ॥ ६६ ॥ यह तुमसे बुद्धिके द्वारा सूचित कियागया इसके उपरान्त फिर प्रकरण (पहले सम्बन्ध की कथा) को सुनिये ॥ ६७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेभाषाटीकायांभुवनकोशेकालादिवर्णननामद्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

दो० । वर्णेश्वरहि लिंग जिमि थाप्यो राजकुमारि । तैंतिसवें अध्याय में सोइ चरित सुखकारि ॥ नारदजी बोले कि हे अर्जुन जी ! ऋषभ नामक वे हुये हैं कि

तम् ॥ विष्णोश्चशङ्करस्यापि नाहंशक्तोस्मिवर्णने ॥ ६५ ॥ क्वाहमल्पमतिःपार्थ क्वापारौहरित्र्यम्बकौ ॥ दैविकेनैवमाने न पातालेष्वपिगण्यते ॥ ६६ ॥ इति तेसूचितंबुद्ध्या शृणवतःप्रकृतंपुनः ॥ ६७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डे भुवनकोशेकालादिवर्णननामद्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

* ॥ * ॥ * ॥

नारदउवाच ॥ ऋषभोनामयन्नाम्ना नानापाखण्डकल्पनाः ॥ कलौपार्थभविष्यन्ति लोकानांमोहनात्मिकाः ॥ १ ॥ तस्यपुत्रश्चभरतः शतशृङ्गश्चतत्सुतः ॥ तस्यपुत्राष्टकंजातंतथैकाचकुमारिका ॥ २ ॥ इन्द्रद्वीपःकसेरुश्च ताम्रद्वीपगभस्तिमान् ॥ नागस्सौम्यश्चगन्धर्वो वरुणश्चकुमारिका ॥ ३ ॥ वदनंत्वापिकन्यायाः पार्थबर्करिकाकृति ॥ शृणुतत्कारणंसर्व महाश्चर्यसमन्वितम् ॥ ४ ॥ महीसागरपर्यन्ते वृक्षराजीविराजिते ॥ जालिगुल्मलताकीर्णे स्तम्भतीर्थस्यसन्निधौ ॥ ५ ॥ अजासमागतामध्यात्काचिदेकातुबर्करी ॥ भ्रान्तासतीसमायाता प्रदेशेतत्रदुश्चरे ॥ ६ ॥ इतस्ततोभ्रम

जिनके नाम से कलियुग में मोह करानेवाले अनेक भांति के पाखण्ड कल्पना होते हैं ॥ १ ॥ उनके पुत्र भरत हुये और उनके पुत्र शतशृंग हुये और उनके आठ पुत्र तथा एक कन्या हुई ॥ २ ॥ इन्द्रद्वीप, कसेरु, ताम्रद्वीप, गभस्तिमान्, नाग, सौम्य, गंधर्व व वरुण और एक कन्या थी ॥ ३ ॥ हे अर्जुन जी ! कन्याका मुख भी बकरी के मुख के आकार समान था उस बड़े आश्चर्य से संयुत कारणको सुनिये ॥ ४ ॥ कि वृक्षों की पंक्तियोंसे शोभित व झाड़ीखादार छोटे वृक्षों व लताओं से पूर्ण महीसागर के किनारे स्तंभतीर्थ के समीप ॥ ५ ॥ कोई एक बकरी आगई जो वह बकरी कि अपने यूथ से भूल कर उस कठिन स्थान में आई थी ॥ ६ ॥

वह इधर उधर जालवाले शाखारहित-वृक्षोंके बीचमें घूमती थी उस समय क्षुधा, प्याससे व्याकुल वह निकलने के लिये न समर्थ हुई ॥ ७ ॥ तदनन्तर जालवाले वृक्षों के बीचमें वह लगगई और मृत्युको प्राप्तहुई कुछ समयके उपरान्त उसके शिरसे टूटकर वह शरीर नीचे ॥ ८ ॥ शनैश्चर अमावस के दिन समस्त तीर्थमय व सब पापों के छुडानेवाले महीसागर संगम में गिरपड़ा ॥ ९ ॥ और वह शिर उन्हीं वृक्षों में स्थित रहा जो कि उन लतादिकों में लगा हुआ भली भांति स्थित था जिस लिये कि जालवाले शाखारहित वृक्षों में वह शिर लगाहुआ था उसी कारण जलमें नहीं गिरा ॥ १० ॥ हे कुरुनायक अर्जुन जी ! महीसागर

न्तीसा जालिमध्येसमन्ततः ॥ निर्गन्तुंनैवशक्नोति क्षुत्पिपासार्दितातदा ॥ ७ ॥ विलग्नाजालिमध्येचततःपञ्चत्वमागता ॥ कालेनकियतातस्यास्त्रुटित्वाशिरसोप्यधः ॥ ८ ॥ पपातशनिदर्शेचमहीसागरसङ्गमे ॥ सर्वतीर्थमयेतत्र सर्वपापप्रमोचने ॥ ९ ॥ शिरस्तुतदवस्थंहि संलग्नंतत्रसंस्थितम् ॥ जालिगुल्मावलग्नंच तस्मान्नैवापतज्जले ॥ १० ॥ शेषकायप्रपातेन महीसागरसङ्गमे ॥ तस्यतीर्थप्रभावेन वर्करीसाकुरूद्वह ॥ ११ ॥ शतश्रृङ्गस्यवैराज्ञः सिंहलेष्वभवत्सुता ॥ मुखंबर्करिकातुल्यं ततस्तस्याऽभ्यजायत ॥ १२ ॥ दिव्यनारीशुभाकारा शेषकायंबभौशुभम् ॥ पूर्वंतस्याप्यपुत्रस्य राज्ञःपुत्रशतोपमा ॥ १३ ॥ पुत्रीजाताप्रमोदेन स्वजनानन्दवर्द्धिनी ॥ ततस्तस्याविलोक्याथ मुखंबर्करिकाकृति ॥ १४ ॥ विस्मयंसमनुप्राप्ताःसर्वेतेराजपूरुषाः ॥ विषादंपरमापन्नो राजास्वान्तःपुरस्तदा ॥ १५ ॥ खिन्नाःप्रकृतयःसर्वास्ताद्दग्रूपविलोकनात् ॥ तत्किमित्येतदाश्चर्यमूचुःपौरास्सुविस्मिताः ॥ १६ ॥ ततःसायौवनंप्राप्ता साक्षाद्देवसुतो

संगममें शेष शरीर के गिरने के कारण उस तीर्थ के प्रभाव से वह बकरी ॥ ११ ॥ सिंहल देश में शतश्रृंगनामक राजा की कन्या हुई और उसी कारण उसका मुख बकरी के नाईं हुआ ॥ १२ ॥ और उत्तम आकारवाली वह दिव्य स्त्री हुई व मुख को छोडकर शेष शरीर उत्तम शोभित हुआ पुत्रहीन उस राजाके पहलेही सौपुत्रों के समान ॥ १३ ॥ वह कन्या पैदाहुई जो कि हर्ष से निज जनों के आनन्द को बढानेवाली थी तदनन्तर बकरी के आकारवाले उसके मुख को देखकर ॥ १४ ॥ वे सब राजपुरुष बड़े विस्मयको प्राप्तहुये व उससमय राजा व रनिवास सब बड़े दुःखको प्राप्तहुआ ॥ १५ ॥ और वैसे रूपको देखनेसे सब प्रजायें दुःखितहुईं और बड़े

विस्मय में प्राप्त होतेहुये पुरवासी जनोंने उस समय यह कहा कि यह क्या आश्चर्य है ॥ १६ ॥ तदनन्तर साक्षात् देवकन्याके समान वह युवावस्थाको प्राप्तहुई व उसने अपने मुखको शीशे में देखकर पहले जन्मको स्मरण किया ॥ १७ ॥ और उस तीर्थके प्रभावको माता, पितासे बतलाया व यह कहा कि हे पिताजी ! मेरे लिये शोच न करना चाहिये ॥ १८ ॥ हे माता ! शोच मत कीजिये क्योंकि पहले जन्ममें इकट्ठा कियाहुआ यह फलहै तदनन्तर उसने पहले के उत्तम वृत्तान्तको कहकर ॥ १९ ॥ पूर्व जन्म में पैदाहुआ उसका शरीर जहां गिराथा उस स्थानको जाने के लिये उसने पिता, मातासे कहा ॥ २० ॥ कि हे पिताजी ! मैं महीसागरके संगम में जाऊंगी हे

पमा ॥ स्वमुखंदर्पणेवीक्ष्य स्मृतःपूर्वभवस्तया ॥ १७ ॥ तस्यतीर्थप्रभावन्तु मातृपित्रोर्निवेदितम् ॥ विषादोनैवकर्त्तव्यो मदर्थंतातनिश्चितम् ॥ १८ ॥ माशोकंकुरुमेमातः पूर्वजन्मार्जितंफलम् ॥ ततःपूर्वंसुवृत्तान्तमुक्त्वासाचकुमारिका ॥ १९ ॥ पूर्वजन्मोद्भवःकायस्तस्यायत्रापतत्तथा ॥ गमनायतमुद्देशं विज्ञप्तौपितरौतया ॥ २० ॥ अहंतातगमिष्यामि महीसागरसङ्गमे ॥ भवामितत्रसम्प्राप्ता यथाकुरुतथान्नृप ॥ २१ ॥ ततःपित्राप्रतिज्ञातं शतशृङ्गेणतत्तथा ॥ तस्याःसंवाहनंचक्रे राजापोतैस्सरत्नकैः ॥ २२ ॥ स्तम्भतीर्थंततस्सापि प्राप्यपोतार्थसंयुता ॥ भूरिदानंतत्रचक्रे दानंसर्वस्वदक्षिणम् ॥ २३ ॥ जालिगुल्मान्तरेन्विष्य ततोदृष्टंनिजंशिरः ॥ अस्थिचर्मावशेषन्तु तदादायप्रयत्नतः ॥ २४ ॥ दग्ध्वासङ्गमसान्निध्ये क्षिप्तान्यस्थीनिसागरे ॥ ततस्तीर्थप्रभावेण मुखंजातंशशिप्रभम् ॥ २५ ॥ नतादृग्देवकन्यानां

राजन् ! वहांपर भलीभांति प्राप्तहुई मैं जिसप्रकार होऊं वैसाही कीजिये ॥ २१ ॥ तदनन्तर शतशृंग पिताने उसकी प्रतिज्ञाकिया कि वैसाही होगा और राजाने रत्नों समेत नावों के द्वारा उसको प्राप्तकिया याने पहुँचाया ॥ २२ ॥ तदनन्तर नावों की द्रव्यसे संयुत वह कन्याभी स्तम्भतीर्थमें प्राप्तहुई व उसने वहां बहुतसा दान किया और सर्वस्व दक्षिणावाला दान किया ॥ २३ ॥ तदनन्तर जालवाले शाखारहित वृक्षोंके बीचमें ढूंढ़कर उसने अपने शिरको देखा कि जिस में हड्डी व चर्ममात्र शेषथा और उसको बड़े यत्नसे लेकर ॥ २४ ॥ व संगमके समीप जलाकर हड्डियोंको समुद्रमें फेंकदिया तदनन्तर तीर्थके प्रभावसे मुख चन्द्रमाके समान शोभावान्

होगया ॥ २५ ॥ वैसा मुख न देवकन्याओं का था न वैसा नागपत्नियों का था और न वैसा मनुष्य की स्त्रियोंका था जैसा कि उसका उत्तम मुख था ॥ २६ ॥ देवता, दैत्य व मनुष्य सब उसके रूपसे मोहित होगये और बहुत भांतिसे इसकी प्रार्थना करते थे परन्तु वह वर (पति) को नहीं चाहती थी ॥ २७ ॥ और उसने वहां बडे क्लेशदायक कठिन तपका प्रारम्भ किया तदनन्तर वर्ष पूर्ण होने पर देवताओं के देवता महादेवजी ॥ २८ ॥ उसके सामने प्राप्तहुये व यह बोले कि मैं वरदायक हूं तदनन्तर उन शिवजीको पूजकर कुमारी वचनको बोली ॥ २९ ॥ कि हे देवेश ! यदि प्रसन्नहो और यदि मुझको वरदान देने योग्यहै तो हे शंकरजी !

नतादृग्नागयोषिताम् ॥ नतादृग्मर्त्यनारीणां तस्यायादृग्मुखंशुभम् ॥ २६ ॥ सुरासुरनरास्सर्वे तस्यारूपेणमोहिताः ॥ बहुधाप्रार्थयन्त्येनां नसावरमभीप्सति ॥ २७ ॥ कष्टंतयामुदातत्र प्रारब्धंदुश्चरन्तपः ॥ ततस्संवत्सरेपूर्णे देवदेवोमहेश्वरः ॥ २८ ॥ प्रत्यक्षतांगतस्तस्या वरदोस्मीतिचाब्रवीत् ॥ ततस्तंपूजयित्वातु कुमारीवाक्यमब्रवीत् ॥ २९ ॥ परितुष्टोसिदेवेश यदिदेयोवरोमम ॥ ३० ॥ सान्निध्यंक्रियतामत्र सर्वकालंहिशङ्कर ॥ एवमस्त्वितिशर्वेण प्रोक्तेहृष्टाकुमारिका ॥ ३१ ॥ यत्रदग्धंशिरस्तस्या बर्कर्याःकुरुसत्तम ॥ बर्करेशःशिवस्तत्र तथासंस्थापितस्तया ॥ ३२ ॥ सम्मुह्यतुतदाश्चर्यं श्रुत्वेदश्चतलातलात् ॥ स्वस्तिकोनामनागेन्द्रः कुमारींद्रष्टुमाययौ ॥ ३३ ॥ शिरसागच्छतातेन यत्रभित्त्वाचभूतलम् ॥ ईशानेबर्करेशस्य कूपोभूत्स्वस्तिकाभिधः ॥ ३४ ॥ पूरितोगङ्गयापार्थ सर्वतीर्थफलप्रदः ॥ दृष्ट्वा

यहां सब समय में आप समीपता कीजिये ऐसाही होगा शंकरजीके ऐसा कहनेपर कुमारी प्रसन्नहुई ॥ ३०।३१ ॥ हे कुरुश्रेष्ठ अर्जुनजी ! जहां उस बकरी का शिर जलागया था वहां उसने बर्करेश नामक शिवजीको भलीभांति स्थापित किया ॥३२॥ इस आश्चर्यको सुनकर उस समय भलीभांति मोहित होकर स्वस्तिक नामक नागोंका राजा तलातल से कुमारीको देखने के लिये आया ॥ ३३ ॥ मस्तकके द्वारा गमन करताहुआ वह पृथ्वीको फोडकर जहां निकला वहां बर्करेश्वर के ईशान कोणमें स्वस्तिक नामक कूप हुआ ॥ ३४ ॥ हे अर्जुनजी ! गंगाजी से पूर्ण किया हुआ वह कूप समस्त तीर्थोंके फलोंको देताहै थापेहुये लिंगको देखकर प्रसन्न होते

हुये. शिवजीने वरदान दियाहै ॥ ३५ ॥ कि जिन मृतक शरीरों का यहां दाह होगा समुद्रमें फेंकेहुये हड्डियोंवाले उनकी अविनाशिनी गति होगी ॥ ३६ ॥ और बहुत
समय तक स्वर्गमें बसकर वे यहां भलीभांति प्राप्तहोकर सब वस्तुओं से सम्पूर्ण व प्रताप समेत राजाहोंगे ॥३७॥ और जो मनुष्य महीसागर के जलमें नहाकर भक्ति
[illegible] बर्करेश्वरको पूजताहै उसके मनका अभिलाष होताहै ॥३८॥ और कार्त्तिकमहीने में कृष्णपक्षवाली चौदसि में श्रद्धासंयुत जो मनुष्य कूपमें नहाकर व अपने पि-
[illegible] पूजकर ॥ ३९ ॥ जो बर्करेशको पूजैगा वह सब पापों से छूटजायगा इस प्रकार समस्त वरोंको पाकर वह फिर सिंहलदेश को चलीगई ॥ ४० ॥ हे अर्जुन

[illegible]लिङ्गं शिवस्तुष्टोवरन्ददौ ॥ ३५ ॥ येषांमृतशरीराणामत्रदाहःप्रजायते ॥ प्रक्षिप्तसागरास्थीनां तेषांस्याद
[illegible] ॥ ३६ ॥ तेस्वर्गेसुचिरङ्कालं वसित्वात्रसमागताः ॥ राजानस्सर्वसम्पूर्णाः सप्रतापाभवन्तुते ॥ ३७ ॥ बर्करेश
[illegible]यतिमानवः ॥ स्नात्वार्णवमहातोये तस्यस्यान्मनसेप्सितम् ॥ ३८ ॥ कार्त्तिकेचचतुर्दश्यां कृष्णा
[illegible]नन्तरःकृत्वा सन्तर्प्यचपितॄन्निजान् ॥ ३९ ॥ पूजयेद्बर्करेशंयः सर्वपापैःप्रमुच्यते ॥ एवंल
[illegible]गमी ॥ ४० ॥ शतशृङ्गायपित्रेच वृत्तान्तंस्वंन्यवेदयत ॥ तच्छ्रुत्वाविस्मितोराजा लोका
[illegible]महातीर्थमाजग्मुश्चकृतादराः ॥ स्नात्वात्रदत्त्वादानानि विविधानिचतेततः ॥ ४२ ॥
[illegible] ॥ आनिच्छन्त्यांकुमार्यांच वरंद्रव्यञ्चपार्थिवः ॥ ४३ ॥ तथान्यदपिप्रीत्यासौ
[illegible]भञ्ज्यसः ॥ ४४ ॥ ददावष्टौस्वपुत्राणां कुमार्यैनवमंतथा ॥ तेषांचि

[illegible] राजा व समस्त मनुष्य विस्मय में प्राप्तहुये ॥ ४१ ॥ और उन्होंने महातीर्थ की प्रशंसा
[illegible] व अनेक प्रकारके दानोंको देकर वे लोग ॥ ४२ ॥ तीर्थमाहात्म्य से प्रसन्नहोकर
[illegible] राजाने प्रसन्नता से इसको जो दियाहै उसको सुनिये कि उस राजाने इस भर-
[illegible] खण्डको कुमारीके लिये दिया पर्वतोंसे शोभित उनके त्रिभागों को

म उसन
श: कहाहै और चारही लोग

मैं कहूंगा ॥ ४५ ॥ पुत्रोंके नामोंवाले खण्डों व पर्वतोंको मुझसे सुनिये कि महेन्द्र, मलय, सह्य, शक्तिमान् व ऋच्छ पर्वत ॥ ४६ ॥ और विन्ध्य व पारियात्र ये सात इस खण्डमें कुलपर्वत हैं महेन्द्र के उपरान्त इन्द्रद्वीप खण्ड कहाजाता है ॥ ४७ ॥ और पारियात्रके इस पार विद्वानों ने कुमारिकाखण्ड कहा है ये सब खण्ड एक एक हजार योजन हैं ॥ ४८ ॥ हे अर्जुन ! नदियों की उत्पत्तिको भी संक्षेप से सुनिये कि वेदस्मृति इत्यादिक नदियां पारियात्र पर्वत से उपजीहुई मानीगई हैं ॥ ४९ ॥ और नर्मदा व सुरसादिक नदियां विन्ध्याचल से निकली हैं और शतद्रू (सतलज) व चन्द्रभागादिक नदियां ऋच्छपर्वत से उपजी हैं ॥ ५० ॥ और ऋषि-

भेदान्वक्ष्यामि पर्वतैरुपशोभितान् ॥ ४५ ॥ पुत्रनामानिवर्षाणि पर्वतांश्चशृणुष्वमे ॥ महेन्द्रोमलयःसह्यः शुक्तिमा न्ऋच्छपर्वतः ॥ ४६ ॥ विन्ध्यश्चपारियात्रश्च सप्तात्रकुलपर्वताः ॥ महेन्द्रपरतश्चैव इन्द्रद्वीपंनिगद्यते ॥ ४७ ॥ पारियात्र स्यचैवार्वाक् खण्डंकौमारिकंविदुः ॥ सहस्रमेकमेकञ्च सर्वखण्डान्यमूनिच ॥४८॥ नदीनांसम्भवञ्चापि संक्षेपाच्छृणु फाल्गुन ॥ वेदस्मृतिमुखानद्यः पारियात्रोद्भवामताः ॥ ४९ ॥ नर्मदासुरसाद्याश्च नद्योविन्ध्याद्विनिर्गताः ॥ शतद्रूच न्द्रभागाद्या ऋच्छपर्वतसम्भवाः ॥ ५० ॥ ऋषिकूलाकुमार्याद्याः शुक्तिमत्पादसम्भवाः ॥ तापीपयोष्णीनिर्विन्ध्या का वेरीचमहानदी ॥ ५१ ॥ कृष्णावेणाभीमरथीसह्यपादोद्भवाःस्मृताः ॥ कृतमालाताम्रपर्णीप्रमुखामलयोद्भवाः ॥ ५२ ॥ त्रिसामाऋषिकुल्याद्यामहेन्द्रप्रभवाःस्मृताः ॥ एवंविभज्यपुत्रेभ्यः कुमार्यैचमहीपतिः ॥ ५३ ॥ शतशृङ्गंगिरिंगत्वा उदीच्यांतप्तवांस्तपः ॥ तत्रतप्त्वातपोघोरं ब्रह्मलोकंजगामसः ॥ ५४ ॥ शतशृङ्गोनृपश्रेष्ठ शतशृङ्गेनगोत्तमे ॥ यत्रया

कूला व कुमारी आदिक नदियां शुक्तिमान् पर्वतके समीपवाले पहाड से उत्पन्न हुई हैं और तापी, पयोष्णी, निर्विन्ध्या, कावेरी और महानदी ॥ ५१ ॥ व कृष्णा, वेणा भीमरथी ये नदियां सह्य पर्वत के समीपवाले पहाडसे उत्पन्न हुईहैं और कृतमाला व ताम्रपर्णी इत्यादिक नदियां मलय पर्वतसे उपजी हैं ॥ ५२ ॥ और त्रिसामा व ऋषिकुल्यादिक नदिया महेन्द्र पर्वत से उपजी हुई कहीगई है इस प्रकार पुत्रों व कुमारी के लिये विभागकर राजाने ॥ ५३ ॥ उत्तर दिशामें शतशृंग पर्वतपै जाकर तपस्या किया उस शतशृंग पर्वतोत्तमपै भयानक तपस्याकर वह नृपोत्तम शतशृंग ब्रह्मलोक को चलागया हे कौन्तेय, पाण्डुपुत्र, अर्जुनजी ! जिस पर्वतपै कि सगे

भाइयों समेत तुम गये थे ॥ ५४ । ५५ ॥ और महाभाग्यवती, उत्तम आचरणोंवाली कुमारी ने खण्डमें उपजेहुये धनसे दानोंको देती हुई तपस्या किया ॥ ५६ ॥
तदनन्तर किसी समय के उपरान्त आठों भाइयों से बडे प्रभाव, बल व उत्साहवाले नव नव पुत्र पैदाहुये ॥ ५७ ॥ तदनन्तर वे पुत्र भलीभांति आकर कुमारी
से बोले कि हे शुभे ! तुम हम सबोंकी कुलदेवीहो इसलिये हमलोगोंके ऊपर प्रसन्नता कीजिये ॥ ५८ ॥ और आपही आठों खण्डोंको बांटकर हम सब बहत्तरजनों
को दीजिये कि जिस प्रकार हमसबों का भेद न होवै ॥ ५९ ॥ समस्त धर्मोंको जाननेवाली व ज्ञानमें ब्रह्माके बराबर ऐसा कहीहुई उस कन्याने नव खण्डों के

तौसिकौन्तेयपाण्डोत्वंसोदरैस्सह ॥ ५५ ॥ कुमारीचमहाभागास्तस्मतीर्थैतथासती ॥ खण्डोद्भवेनद्रव्येण तेपेदाना
नियच्छती ॥ ५६ ॥ ततःकेनापिकालेन भ्रातृभ्योष्टभ्यएवच ॥ महावीर्यबलोत्साहा जातानवनवात्मजाः ॥ ५७ ॥ तेस
मेत्यसमागत्य कुमारींप्रोचिरेततः ॥ कुलदेवीत्वमस्माकंप्रसादंकुरुनःशुभे ॥ ५८ ॥ अष्टौखण्डानिवास्माकं त्रिभ
ज्यस्वयमेवच ॥ देहिद्विसप्ततीनांनो विभेदःस्याद्यथाननः ॥ ५९ ॥ इत्युक्तासर्वधर्मज्ञा विज्ञानेब्रह्मणस्समा ॥ द्वासप्त
तिविभेदैस्सानवखण्डान्यचीकरत ॥ ६० ॥ तेषांनामानिग्रामाश्च पत्तनानिचफाल्गुन ॥ वेलाकुलानिसंख्याय व
क्ष्यामितत्त्वतः ॥ ६१ ॥ कोटिश्चतस्रोग्रामाणां विदधेसाथमण्डले ॥ सार्द्धकोटिद्वयग्रामैर्देशोबालकउच्यते ॥ ६२ ॥
सपादकोटिग्रामाणां खुरासाहणकंविदुः ॥ लक्षाश्चत्वारएवापि ग्रामाणामन्धलेस्मृताः ॥ ६३ ॥ एकलक्षश्चनेपालो
ग्रामाणांपरिकीर्तितः ॥ षट्त्रिंशल्लक्षमानञ्च कान्यकुब्जंप्रकीर्तितम् ॥ ६४ ॥ द्वासप्ततिस्तथालक्षा ग्रामाणांजनकेस्मृ

बहत्तर विभाग किया ॥ ६० ॥ हे अर्जुन ! उनके नाम व ग्राम और शहर जोकि समुद्र के किनारों में प्राप्त हैं उनको गिनकर तुमसे यथार्थता से कहूंगा ॥ ६१ ॥
मण्डल में उसने चारकरोड़ ग्रामोंको बनाया ढाई करोड़ ग्रामोंसे बालक देश कहा जाताहै ॥ ६२ ॥ और विद्वानों ने सवादो करोड़ ग्रामोंका खुरासाहणक (खुरासान)
देश कहाहै और चारही लाख ग्राम अन्धलक देशमें कहेगये हैं ॥ ६३ ॥ व एक लाख ग्रामोंका नैपाल देश कहागया है और छत्तीस लाख ग्रामोंकी प्रमाणवाला

कान्यकुब्ज देश कहागयाहै ॥ ६४ ॥ वैसेही बहत्तर लाख ग्राम जनक देशमें कहेगये हैं और अठारह लाख ग्राम गौडदेश में हैं ॥ ६५ ॥ और कामरूप देशमें नव लाख ग्राम कहेगये है और लाहर्वे व माल संज्ञक देश में नव लाख ग्राम हैं ॥ ६६ ॥ व कान्तिपूर देशमें नवही लाख ग्राम कहेगये हैं व नवलाख ग्राम पाचिपूरदेश में कहेगये हैं ॥ ६७ ॥ वैसेही जालन्धरदेश में नव लाख ग्राम कहेगये हैं और लोहपूर देश में नव लाख ग्राम कहे हैं ॥ ६८ ॥ और हरीपाल देश पाच लाख ग्रामों का माना गया है ॥ ६९ ॥ वैसेही इडके देश मे साढे तीनलाख ग्राम कहेगये है वैसेही पांभणवाहक देश में साढे तीनलाख ग्राम कहे हैं ॥ ७० ॥ और नीलपूरक

ताः ॥ अष्टादशतथालक्षाग्रामाणांगौडदेशके ॥ ६५ ॥ कामरूपेचग्रामाणां नवलक्षाःप्रकीर्तिताः ॥ लाहर्वेमालसंज्ञेच ग्रामाणांनवलक्षकम् ॥ ६६ ॥ नवैवलक्षाग्रामाणां कान्तिपूरेप्रकीर्तिताः ॥ ग्रामाणांनवलक्षञ्च पाचिपूरेप्रकीर्तितम् ॥ ६७ ॥ जालन्धरेतथादेशे नवलक्षाःप्रकीर्त्तिताः ॥ लोहपूरेतथादेशे लक्षाःप्रोक्तानवैवच ॥ ६८ ॥ हरीपालञ्चग्रामाणां लक्षपञ्चकसम्मितम् ॥ ६९ ॥ सार्द्धलक्षत्रयंप्रोक्तमिडस्यविषयेतथा ॥ सार्द्धलक्षत्रयंप्रोक्तंतथापाम्भणवाहके ॥ ७० ॥ एकविंशतिसाहस्रं ग्रामाणांनीलपूरके ॥ तथाम्लविषयेपार्थ ग्रामाणामेकलक्षकम् ॥ ७१ ॥ नरेन्दुनामदेशेच लक्षमेकंसपादकम् ॥ तिलङ्गदेशेचतथालक्षःप्रोक्तस्सपादकः ॥ ७२ ॥ लक्षाष्टादशसाहस्रनवतिर्विश्वमालयम् ॥ सयम्भरंतथादेशो लक्षःप्रोक्तःसपादकः ॥ ७३ ॥ मेवाडश्चतथाप्रोक्तो लक्षश्चैकःसपादकः ॥ अशीतिश्चसहस्राणि वागुरिःपरिकीर्त्तितः ॥ ७४ ॥ ग्रामैस्सप्ततिसाहस्रैर्गुर्ज्जराख्यःप्रकीर्त्यते ॥ तथासप्ततिसाहस्रः पाण्डुविषयएवच ॥ ७५ ॥ तेजाकु

देश में इक्कीस हज़ार ग्राम हैं वैसेही हे अर्जुनजी ! अम्लदेश में एक लाख ग्रामहैं ॥ ७१ ॥ और नरेन्दुनामक देश में सवालाख ग्राम है वैसेही तैलङ्गदेश में एक लाख पच्चीस हज़ार ग्राम हैं ॥ ७२ ॥ व अठारह लाख नब्बेहजार ग्राम विश्वमालयदेश में है और सवालाख ग्रामों का सयंभर देश कहागया है ॥ ७३ ॥ वैसेही मेवाड देश सवालाख ग्रामों का कहा गया है व अस्सी हज़ार ग्रामोंका वागुरिदेश कहा गया है ॥ ७४ ॥ और सत्तरहज़ार ग्रामों से गुर्जरनामक कहाजाता है वैसेही

सत्तर हज़ार ग्रामों का पाण्डु देशहै ॥ ७५ ॥ और बयालीस हज़ार ग्रामों का तेजाकुति देश कहा गया है व अरसठि हज़ार ग्रामों का काश्मीरमण्डल कहा गयाहै ॥ ७६ ॥ व विद्वानों ने बत्तीस हज़ार ग्रामों को कौंकण देश में कहा है और चौदह सौ चालीस ग्रामों का लघुकौंकण देश है ॥ ७७ ॥ और पचपन हज़ार ग्रामों से सौराष्ट्र देश कहा जाताहै और इक्कीस हज़ार ग्रामोंवाला ताडदेश कहा गया है ॥७८॥ और दश हज़ार ग्रामों का अतिसिन्धु देश कहाजाता है वैसेही हे अर्जुन ! दश हज़ार ग्रामों का अश्वमुख देश कहा जाता है ॥ ७९ ॥ और सजाणुहूति देश में दशहज़ार ग्राम हैं वैसेही दश हज़ार ग्रामों का वेणु नामक देश कहा गया है ॥ ८० ॥

ति:सहस्राणि द्वाचत्वारिंशएवच ॥ अष्टषष्टिसहस्राणि प्रोक्तंकाश्मीरमण्डलम् ॥७६॥ षट्त्रिंशच्चसहस्राणि ग्रामाणांकौङ्कणेविदुः ॥ चतुर्दशशतंहंच विंशतीलघुकौङ्कणम् ॥७७॥ पञ्चपञ्चाशत्साहस्रं ग्रामैस्सौराष्ट्रमुच्यते ॥ एकविंशतिसाहस्रस्ताडदेशःप्रकीर्तितः ॥ ७८ ॥ अतिसिन्धुश्चग्रामाणांदशसाहस्रमुच्यते ॥ तथाचाश्वमुखंपार्थ दशसाहस्रमुच्यते ॥ ७९ ॥ सहस्रदशकंचैव सजाणुहूतिदेशकः ॥ वेणुनामातथादेशो सहस्रदशकःस्मृतः ॥ ८० ॥ सहस्राणिदशख्यातं तथाकलहजन्तथा ॥ देशोद्राविडमाख्यातं सहस्राणिदशैवच ॥ ८१ ॥ भद्राश्वदेवभद्राश्चौसहस्रदशकौस्मृतौ॥ षट्त्रिंशच्चसहस्राणि स्मृतश्चापिचिरायुषः ॥ ८२ ॥ षट्त्रिंशच्चसहस्राणि यमकोटिःप्रकीर्त्यते ॥ अष्टादशतथाकोट्यो रोमकोदेशउच्यते ॥ ८३ ॥ कामरुश्चापिकर्णाटो जाङ्गलश्चत्रयस्त्विमे ॥ सपादलक्षंग्रामाणां प्रत्येकंपरिकीर्तितम् ॥ ८४ ॥ पञ्चलक्षाश्चग्रामाणां स्त्रीराज्येपरिकीर्तिताः ॥ पुलस्तिविषयश्चापि दशलक्षकउच्यते ॥ ८५ ॥ प्रत्येकंलक्ष

वैसेही कलहज देश दश हज़ार ग्रामों का कहा गया है और दशही हजार ग्रामों का द्राविड देश कहा गया है ॥ ८१ ॥ और भद्राश्व व देवभद्राश्व देश दश हज़ार ग्रामों के कहेगये हैं और चिरायुष देश भी छत्तीस हज़ार ग्रामों का कहा गया है ॥ ८२ ॥ और छत्तीस हज़ार ग्रामों का यमकोटि देश कहा जाता है वैसेही अठारह करोड ग्रामों का रामक देश कहा जाताहै ॥ ८३ ॥ कामरू, कर्णाट व जांगल ये तीनों देश प्रत्येक सवालाख ग्रामों के कहेजाते हैं ॥ ८४ ॥ और पांचलाख ग्राम स्त्री के राज्य में कहे हैं व पुलस्तिका देश भी दश लक्ष ग्रामों का कहा जाता है ॥ ८५ ॥ और काम्बोज व कौशल प्रत्येक दश लाख ग्रामों के कहे हैं व चारलाख

ग्रामों का बाह्लीक देश कहा गया है ॥ ८६ ॥ और छत्तीस हजार ग्रामों का लङ्का देश कहा गया है व चौंसठि हजार ग्रामों का वर्द्धमान देश कहा गया है ॥ ८७ ॥ और दश हज़ार ग्रामों का सिंहलद्वीप कहा जाता है व छत्तीस हजार ग्रामों का पाड्य देश है ॥ ८८ ॥ और एक लाख ग्रामों का भयानक देश है व छाछठि हज़ार ग्रामों का मागध देश कहा जाताहै ॥ ८९ ॥ वैसेही साठि हजार ग्रामों का पंगुदेश है और वरेन्दक देश तीस हजार ग्रामों का कहा गया है ॥ ९० ॥ व पचीस हजार ग्रामों का मूलस्थान देश कहा गया है और चालीस हज़ार ग्रामों का यवन देश कहा गया है ॥ ९१ ॥ और पत्तबाहु देश चारही हजार ग्रामों का कहा गया है ये

शकौ देशौकाम्बोजकौशलौ ॥ ग्रामाणांचचतुर्लक्षो बाह्लीकःपरिकीर्तितः ॥ ८६ ॥ षट्त्रिंशच्चसहस्राणि लङ्कादेशः प्रकीर्तितः ॥ चतुःषष्टिसहस्राणि वर्द्धमानंप्रकीर्तितम् ॥ ८७ ॥ सहस्रदशकञ्चापि सिंहलद्वीपमुच्यते ॥ षट्त्रिंशच्चसहस्राणि ग्रामाणांपाण्ड्यदेशकः ॥ ८८ ॥ लक्षैकंचतथाप्रोक्तंग्रामाणांचभयानकम् ॥ षट्षष्टिश्चसहस्राणिदेशोमागध उच्यते ॥ ८९ ॥ तथाषष्टिसहस्राणिग्रामाणांपङ्गुदेशकः ॥ त्रिंशत्साहस्रउक्तश्च ग्रामाणांचवरेन्दकः ॥ ९० ॥ पञ्चविंशतिसाहस्रं मूलस्थानंप्रकीर्तितम् ॥ चत्वारिंशत्सहस्राणि ग्रामाणांयवनःस्मृतः ॥ ९१ ॥ चत्वार्येवसहस्राणि पत्तबाहुरुदीर्यते ॥ द्वासप्ततिरिमेदेशाग्रामसंख्याचकीर्तिता ॥ ९२ ॥ एवंभरतखण्डस्य षण्णवत्येवकोटयः ॥ द्वासप्ततिस्तथालक्षाः पत्तनानांप्रकीर्तिताः ॥ ९३ ॥ षट्त्रिंशच्चसहस्राणि वेलाकूलानिभारत ॥ एवंविभज्यखण्डानि भ्रातृजानांददौततः ॥ ९४ ॥ आत्मीयमपिसादेवीअनिच्छत्स्वपितेषुच ॥ यतोमान्येषुभगिनीं प्रतिकुप्यन्तुभारत ॥ ९५ ॥ भ्रातॄन्प्रतिभगिन्यश्चविचार्यैवंददौशुभा ॥ तत्कृत्वासानुमान्यैतान्कृतार्थत्वमुपागता ॥ ९६ ॥ तदेतेषुचदेशेषु चतुर्वर्ग

बहत्तरि देश हैं और ग्रामों की संख्या कही गई ॥ ९२ ॥ इस प्रकार भरतखण्ड के ग्रामों की संख्या छानवे करोड बहत्तरि लाख छत्तीस हज़ार कहीगई है हे भारत ! इस प्रकार समुद्र के किनारे तक नवों खण्डोंको विभागकर उस कुमारी ने अपने भाइयों के पुत्रोंको देदिया ॥ ९३ । ९४ ॥ और उन लोगों के न चाहनेपर भी उस देवीने अपने भी अंशको देदिया हे अर्जुनजी ! जिसलिये कि धनके कारण मान्यजनों व बहन के ऊपरभी ॥ ९५ ॥ व भाइयों के ऊपर भगिनी भी क्रोध करती हैं

इसलिये ऐसा विचारकर उसने अपने भी भागको देदिया उस कर्मकोकर व इन भाइयों को मानकर वह कृतार्थता को प्राप्तहुई ॥ ९६ ॥ इसलिये इन समस्त देशोंके बीचमें धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष चारों वस्तुवों के साधनवाला कुमारीखण्डही है जोकि समस्त खण्डों के बीचमें श्रेष्ठ कहागया है ॥ ९७ ॥ उसमें भी जो गुप्तक्षेत्र था उसको भी देदिया और बडे नियमोंवाली वह कुमारिका गुप्तक्षेत्र में कुमारेशदेवको पूजती हुई गुप्तक्षेत्र में टिकी ॥ ९८ ॥ व कुण्डों में उसने स्नान किया और संगम में तपस्याको किया तदनन्तर समयकी अधिकता से स्वामिकार्त्तिकेय जीसे रचाहुआ जो मन्दिर ॥ ९९ ॥ पुराना होगयाथा उस मन्दिरको नवीन स्वर्णमय करा दिया उसके उपरान्त उसकी भक्तिसे भी प्रसन्न कराये हुये महादेव जी प्रसन्न हुये ॥ १०० ॥ व कुमारेश्वर लिंगसे उठकर प्रत्यक्ष प्राप्तहो शिवजी उससे बोले कि हे

स्यसाधनम् ॥ सर्वेषांप्रवरंप्रोक्तं कुमारीखण्डमेवच ॥ ९७ ॥ तत्रापिगुप्तक्षेत्रंचददौतत्साकुमारिका ॥ गुप्तक्षेत्रेकुमारेशं पूजयन्तीमहाव्रता ॥ ९८ ॥ तस्थौह्रदेषुस्नातासा तप्तुंचैवापिसङ्गमे ॥ ततःकालप्रकर्षाच्च प्रासादेस्कन्दनिर्मिते ॥ ९९ ॥ जीर्णनवंस्वर्णमयं प्रासादंचाप्यकारयत ॥ ततस्तुष्टोमहादेवस्तस्याभक्त्यापितोषितः ॥ १०० ॥ कुमारलिङ्गादुत्थाय प्रत्यक्षस्तामवोचत ॥ भद्रेतवाहंभक्त्याच विज्ञानेनचतोषितः ॥ १ ॥ जीर्णस्यपुनरुद्धारो यत्प्रासादस्यतेकृतः ॥ तवनाम्नाचविख्यातं भविष्यामिकुमारिके ॥ २ ॥ कर्ताचापितथोद्धर्त्ता द्वौवैसमफलौस्मृतौ ॥ कुमारीशःकुमारीश इतिवक्ष्यन्तिसन्ततम् ॥ ३ ॥ बर्करेशेचयेदत्ता वराभाव्यास्सदैवते ॥ तवापिप्रान्तकालश्च समीपेवरवर्णिनि ॥४॥ अभर्तृकायानार्याश्चनस्वर्गोमोक्षएवच ॥ यथैववृद्धकन्यायाः सरस्वत्यास्तटेशुभे ॥ ५ ॥ तस्मात्त्वमत्रतीर्थेच महाकाल

भद्रे ! तुम्हारी भक्ति व विज्ञान से मैं प्रसन्न होगया ॥ १ ॥ हे कुमारिके ! जोकि पुराने मन्दिर का तुमने फिर उद्धारक्रिया याने नवीन बनादियाहै वह मन्दिर तुम्हार नामसे प्रसिद्ध होगा ॥ २ ॥ मन्दिर का बनवानेवाला व जीर्णोद्धार करनेवाला दोनों समान फलवाले कहेगये हैं सब मनुष्य इसलिंग को सदैव कुमारीश २ ऐसा कहैंगे ॥ ३ ॥ और बर्करेश्वरमें जो वरदान दिये गये वे सदैव होनेवाले हैं हे उत्तम रंगवाली कुमारिके ! तुम्हारा भी अन्तका समय समीपहै ॥ ४ ॥ और बिन पति-वाली कुँवारी कन्याको स्वर्ग और मोक्ष नहीं होता है जैसे कि सरस्वतीके उत्तम किनारेपै वृद्धकन्याको नहीं हुआहै ॥ ५ ॥ इसलिये हे शुभे, वरवर्णिनि ! सिद्धिको

प्राप्तहोने के लिये इसी तीर्थमें महाकाल ऐसे कहेहुये पुरुषको पतिभाव में स्वीकारकरो ॥ ६ ॥ तदनन्तर शिवजी के वचन से उसने उन महाकाल नामक को पति स्वाकार किया और महाकाल सयुक्त वह शिवलोक को चलीगई ॥ ७ ॥ वहां उस को लिपटाकर प्रसन्न होती हुई पार्वती जीने कहा कि हे शुभे ! जिसलिये तुमने पृथ्वी को चित्रपद्मा लिखा है ॥ ८ ॥ इस कारण नामसे चित्रलेखा होकर तुम मेरी सखी होवो तदनन्तर वह शुभदायिनी कुमारी चित्रलेखा ऐसी सखी हुई ॥ ९ ॥ जिसने कि ऊपासे अनिरुद्ध नामक उत्तम पतिको कहाहै व जोकि योगिनियों में श्रेष्ठ महाकाल की प्यारी स्त्री थी ॥ १० ॥ जिस लिये कि तड़ागोंके जलोंमें तपस्या कर-

मितिस्मृतम् ॥ सिद्धिङ्गतंवृणुशुभे पतित्वेवरवर्णिनि ॥ ६ ॥ ततःसारुद्रवाक्येन वरयामासतम्पतिम् ॥ रुद्रलोकंययौचापि महाकालसमन्विता ॥ ७ ॥ तत्रतांपार्वतींप्राह समालिङ्ग्यचहर्षिता ॥ यस्मात्त्वयाचित्रपद्मा लिखितापृथिवीशुभे॥ ८ ॥ चित्रलेखेतिनाम्नात्वं तस्माद्भवसखीमम॥ ततस्सखीसमभवच्चित्रलेखेतिसाशुभा ॥ ९ ॥ ययानिरुद्धःकथित ऊषायाःपतिरुत्तमः ॥ योगिनीनांवरिष्ठाया महाकालस्यवल्लभा ॥ १० ॥ अप्सुसासरसांबिन्दुं पूर्णेवर्षशतेययौ ॥ तपश्चरन्तीतस्मात्सा प्रोच्यतेवाप्सरादिवि ॥ ११ ॥ एवंविधंकुमारीशं लिङ्गमेतद्धिफाल्गुन ॥ स्थापयामासशिवदं बर्करेश्वरसंज्ञितम् ॥ १२ ॥ तस्मादत्रनृणांदाहश्चास्थिक्षेपश्चभारत ॥ प्रयागादधिकौप्रोक्तौ महेशस्यवचोयथा ॥११३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेबर्करेश्वरमाहात्म्यंनामत्रयस्त्रिंशोध्यायः ॥ ३३ ॥ * ॥ * ॥

अर्जुनउवाच ॥ महाकालस्त्वसौकश्च कथंसिद्धिमुपागतः ॥ अस्मिंस्तीर्थेमुनिश्रेष्ठ महदाश्चर्यमत्रमे ॥ १ ॥ सर्व

तीहुई उसने सौ वर्ष पूर्णहोने पर जलका बूंदपिया इसलिये वह स्वर्ग में अप्सरा कहीजाती है ॥ ११ ॥ हे अर्जुन जी ! इस प्रकार का यह कुमारीश लिंग और इसने कल्याणदायक बर्करेश्वर संज्ञक लिंगको थापाहै ॥ १२ ॥ इस लिये हे भारत! यहां मनुष्यों का दाह करना व अस्थियों का फेंकना प्रयाग से अधिक कहागया है जैसे कि शिवजी के वचनहैं ॥ ११३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायाभाषाटीकायांबर्करेश्वरमाहात्म्यवर्णनंनामत्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३॥

दो० । महाकाल नामक यथा भयो लिंग उत्पन्न । चौंतिसवें अध्याय में सोइ कथासम्पन्न ॥ अर्जुनजी बोले कि हे मुनिश्रेष्ठ ! यह महाकाल कौनहै व इस तीर्थमें

वह कैसे सिद्धिको प्राप्तहुआहै इस विषयमें मुझको बड़ा आश्चर्य है ॥१॥ श्रद्धावान् व पूंछतेहुये मेरे लिये इस समस्त चरितको कहिये नारदजीबोले कि हे पाण्डुवंश
के नायक ! वरदायक व अविनाशी महाकाल शिवजीको प्रणामकर अपनी सामर्थ्यसे उनका चरित कहूंगा पुरातन समय काशीपुरीमें जपनेवालोंमें श्रेष्ठ शिवजीका
जप करनेवाला महाभाग्यवान् व बड़ा यशस्वी माटि नामक हुआ है पुत्रके लिये रुद्रोंको जपते हुये बिन पुत्रवाले उसके प्रसिद्धमें ॥ २ । ३ । ४ ॥ सौवर्ष बीतगये
तदनन्तर प्रसन्न होतेहुये शिवजी ने उससे कहा कि हे मांटे ! मेरे समान प्रभाव व पराक्रमवाला तथा बुद्धिमान् तुम्हारे पुत्र ॥ ५ ॥ होगा जोकि तुम्हारे समस्त वंशको

मेतत्समाख्याहि श्रद्दधानायपृच्छते ॥ नारदउवाच ॥ नमस्कृत्यमहाकालं वरदंस्थाणुमव्ययम् ॥ २ ॥ शक्तितश्च
रितंतस्य वक्ष्येपाण्डुकुलोद्वह ॥ वाराणस्यांपुरिपुरा बभूवजपतांवरः ॥ ३ ॥ रुद्रजापीमहाभागो माण्टिर्नाममहाय
शाः ॥ तस्यापुत्रस्यपुत्रार्थंरुद्रान्संजपतःकिल ॥ ४ ॥ गतंवर्षशतंतुष्टस्ततस्तंप्राहशङ्करः ॥ माण्टेतवसुतोधीमान् म.
त्प्रभावपराक्रमः ॥ ५ ॥ वंशस्यतवसर्वस्यसमुद्धर्ताभविष्यति ॥ इतिश्रुत्वारुद्रवचो माण्टिर्हर्षपरङ्गतः ॥ ६ ॥ ततःकाले
कियन्मात्रे पत्नीमाण्टेर्महात्मनः ॥ दधारगर्भंवटिकातपोमूर्त्तिधरायथा ॥ ७ ॥ तस्यगर्भस्यवर्षाणि चत्वारिकिलसंय
युः ॥ नपुनर्मातुरुदरंत्यक्त्वानिर्गच्छतेबहिः ॥ ८ ॥ ततोमाण्टिस्तमामन्त्र्य सामभिस्तमवोचत ॥ वत्ससामान्यपुत्रोपि
पित्रोस्सम्पूजकस्सदा ॥ ९ ॥ शुद्धायांमातरिभवो मांत्वंकिम्पीडयस्यलम् ॥ वत्समानुष्यवासस्यस्पृहातवकथन्नहि ॥ १० ॥
यत्रधर्मार्थकामानांमोक्षस्यापिचसङ्गतिः ॥ कदामनुष्याजायेम पूजायत्रमहाफला ॥ ११ ॥ पितृणांदेवतानांच नानाध

उद्धारनेवाला होगा श्रीशिवजी के इस वचनको सुनकर मांट बड़े हर्षको प्राप्तहुये ॥ ६ ॥ तदनन्तर कुछ समय के बीतने पर महात्मा माटिजीकी वटिका नामक
स्त्रीने गर्भको धारणकिया जैसे कि तपस्याकी मूर्त्तिको धारेहोवै ॥ ७ ॥ उस गर्भके चारवर्ष बीतगये परन्तु फिर वह माताके पेटको छोड़कर बाहर नहीं निकलता था॥
८ ॥ तदनन्तर मांटिजी ने उसका संबोधनकर प्यारे वचनोंके द्वारा उससे कहा कि हे पुत्र ! साधारण पुत्रभी सदैव माता पिताका भलीभांति पूजक होताहै ॥ ९ ॥
शुद्ध मातामें होकर तुम मुझको क्यों बहुत पीड़ित करतेहो हे पुत्र ! मनुष्ययोनिमें बसनेकी इच्छा तुम्हारे क्यों नहीं है ॥ १० ॥ कि जिस मनुष्ययोनि में धर्म, अर्थ,

काम व मोक्षकी भी प्राप्ति होती है कब मनुष्य होकर हम पैदा होवैंगे कि जिस मनुष्ययोनिमें बडे फलवाला पूजनहै ॥ ११ ॥ और जिसमें पितरों व देवताओं के अनेक भातिके धर्म हैं इस प्रकार अनेक योनियों में प्राप्तभी प्राणी शोचते हैं ॥ १२ ॥ देवताओं के भी इच्छा करने योग्य उस मनुष्य जन्मको अनादरकर तुम पेट हीमें क्यों टिकेहो यह कहिये ॥ १३ ॥ गर्भ बोला कि हे पिताजी ! यह सब मैं जानताहूं कि यह मनुष्यजन्म परमदुर्लभ है परन्तु कालमार्गको मै नित्यही डरताहूं॥ १४ ॥ वेदों मे दोमार्ग प्रसिद्ध कहे हैं एक काल व दूसरा अर्चिहै अर्चिमार्ग के द्वारा मोक्षवाले पुरुष जाते हैं व कर्मवाले पुरुष कालमार्गमे जाते हैं ॥ १५ ॥ कालमार्ग

मांश्चयत्रहि ॥ इतिभूतानिशोचन्ति नानायोनिगतान्यपि ॥ १२ ॥ तत्तुमानुष्यजन्मत्वं स्पृहणीयंदिवौकसाम् ॥ अनादृत्यकथंब्रूहि स्थितश्चोदरएवच ॥ १३ ॥ गर्भउवाच ॥ तातजानाम्यहंसर्वमेतत्परमदुर्लभम् ॥ किन्तुविभेम्यतिमात्रं कालमार्गस्यनित्यशः ॥ १४॥ द्वौमार्गौकिलवेदेषु प्रोक्तौकालोर्चिरेवच ॥ अर्चिषामोक्षिणोयान्तिकालमार्गेणकर्मिणः ॥ १५ ॥ स्वर्गेवानरकेवापि कालमार्गगतोह्ययम् ॥ नशर्मलभतेक्वापि व्याधविद्धोमृगोयथा ॥ १६ ॥ तस्यैवहेतोःप्रयतेत् कोविदोयन्नदुःखवत् ॥ कालेनघोररूपेण गम्भीरेणसमाहतम् ॥ १७ ॥ तच्चेन्ममनस्तातनानादोषैर्नमोह्यते ॥ ततोहं दुर्लभंजन्म मानुष्यंशीघ्रमाप्नुयाम् ॥ १८ ॥ ततस्तस्यपितापार्थ कान्दिशीकोमहेश्वरम् ॥ जगामशरणन्देव त्राहि त्राहिमहेश्वर ॥ १९ ॥ त्वांविनाकोपरोदेव पुत्रस्याभीष्टदोस्तिमे ॥ त्वयैवदत्तस्त्वंचामुं जन्मप्रापयमेसुतम् ॥ २० ॥

से गयाहुआ यह पुरुष स्वर्ग या नरक मे भी होवै परन्तु कहीं भी कल्याणको नहीं पाताहै जैसे कि बहेलियेमे बेधाहुआ मृग होवै ॥ १६ ॥ विद्वान् उसीवस्तु के लिये यत्नकरै कि जो दुःखवान् न होवै भयंकर रूप गम्भीर कालसे ताडित ॥ १७ ॥ मेरा मन यदि हे पिताजी ! अनेक भांतिके दोषोसे मोहको न प्राप्तहोवै तो मैं दुर्लभ मनुष्यजन्म को शीघ्रही प्राप्त होऊं ॥ १८ ॥ तदनन्तर हे अर्जुन जी ! डराया हुआ उसका पिता श्रीसदाशिव जी की शरण मे गया व बोला कि हे महेश्वर जी ! रक्षा कीजिये रक्षा कीजिये ॥ १९ ॥ हे देव ! तुम्हारे विना दूसरा कौन मेरे पुत्रको मनोरथको दायक है तुम्हीने उस पुत्रको दिया है और तुम्ही इस मेरे पुत्रका जन्म

प्राप्त कराइये ॥ २० ॥ तदनन्तर उस की बड़ी भक्ति से प्रसन्न होते हुये ये सदाशिवजी अपनी विभूतियों और ज्ञान, धर्म, वैराग्य व ऐश्वर्य से बोले ॥ २१ ॥ कि हे विभूतियो ! विलोमतासे शीघ्रही मांटिपुत्र का प्रबोध कीजिये तदनन्तर बोध कराती हुई उन विभूतियों ने गर्भ से कहा ॥ २२ ॥ कि हे महामते, मांटिपुत्र ! तुम को हृदय में डर न धारण करना चाहिये धर्मादिक चारों और हम तुम्हारे मनको नहीं छोड़ेंगे ॥ २३ ॥ और अन्य अधर्मादिकों ने तुम से जैसा कहा है हम लोग उस भांति नहीं कहते हैं व हमलोग तुम को भजैंगे तुम्हारे लिये नमस्कार है हमलोगों से तुम को डर न होगा ॥ २४ ॥ विभूतियों से ऐसा कहा हुआ वह कुमार

ततस्तस्यातिभक्त्यासौ तुष्टःप्राहमहेश्वरः ॥ विभूतीःस्वाज्ज्ञानधर्मवैराग्यैश्वर्यमेवच ॥ २१ ॥ विपरीताश्चशीघ्रंभो माणिटपुत्रःप्रबोध्यताम् ॥ ततस्ताबोधयन्त्यश्चविभूत्योगर्भमूचिरे ॥ २२ ॥ महामतेमाणिटपुत्र नधार्यन्तेभयंहृदि ॥ चत्वारस्त्वांहिधर्माद्यामनस्त्यक्ष्यामहेनते ॥ २३ ॥ त्वत्तोपरेत्वधर्माद्याःप्रोचुर्नैवतथावयम् ॥ भजिष्यामोनमस्तुभ्यमस्माभिस्तेभयंनहि ॥ २४ ॥ इत्युक्तेसविभूतीभिः शीघ्रमेवकुमारकः ॥ निस्ससारबहिर्जातः चकम्पेतिरुरोदच ॥ २५ ॥ ततोविभूतयःप्राहुर्माण्टेतवसुतस्त्वसौ ॥ अद्यापिकालमार्गस्यभीतःकम्पतिरोदिति ॥ २६ ॥ कालभीतिरितिख्यातस्ततस्मादेषभविष्यति ॥ इतिदत्त्वावरंताश्चमहादेवान्तिकंययुः ॥ २७ ॥ सोपिबालःप्रववृधे शुक्लपक्षइवोडुराट् ॥ संस्कृतस्सचसंस्कारैर्धीमान्पाशुपतव्रती ॥ २८ ॥ पञ्चमन्त्राञ्जपञ्छुद्धस्तीर्थयात्रापरोभवत् ॥ रुद्रक्षेत्रेषुस्नातोयं जपन्मन्त्रांश्चभारत ॥ २९ ॥ कालभीतिर्गुप्तक्षेत्रगुणाञ्छ्रुत्वाभ्युपाययौ ॥ स्नात्वाततोमहीतोये जप्त्वामन्त्रांश्चकोटिशः ॥ ३० ॥ निवृत्तो

शीघ्रही निकला और बाहर पैदा होकर वह कांपा व बहुत रोदन करने लगा ॥ २५ ॥ तदनन्तर विभूतियों ने कहा कि हे माण्टे ! तुम्हारा यह पुत्र अबभी कालमार्ग से डरकर कांपता व रोता है ॥ २६ ॥ इस लिये यह कालभीति ऐसा प्रसिद्धहोगा यह वरदान देकर वे विभूतियां श्रीमहादेव जी के समीप चली गईं ॥ २७ ॥ और वह बालक भी वैसेही बढ़नेलगा जैसे कि शुक्लपक्ष में चन्द्रमा बढ़ता है और संस्कारों से संस्कार किया हुआ वह बुद्धिमान् शिव जी के नियमों को ग्रहण कर ॥ २८ ॥ व पवित्र होकर पांच मन्त्रों को जपता हुआ तीर्थयात्रा में तत्पर हुआ हे भारत ! मन्त्रों को जपता हुआ रुद्रतीर्थों में नहाकर यह ॥ २९ ॥ कालभीति

तो मैं किसी प्रकार तुम्हारे जलको न ग्रहण करूंगा इस विषयमें मुझसे जो गुरु ने कहाहै इस श्रुति के वचनको सुनिये ॥ ४९ ॥ कि जिसका वंश नहीं जानाजाता है
उसीकारण वीर्यशुद्धिके विना उसके अन्नको खाता व जल पीता हुआ भी साधुजन उसीकारण दुःखी होता है ॥ ५० ॥ और जो शिवजीको नहीं जानता है व जो
शिवभक्त नहीं है उसके अन्न व जलको खाताहुआ पुरुष पातकी होताहै इसमें सन्देह नहीं है ॥५१॥ जो शिवको न जानकर इस संसार मे भोजन करता है वह ब्रह्म-
घाती कहाजाता है और ब्रह्मघाती का अन्नादिक दूषित है इसलिये उसके अन्नादिको न खावै ॥५२॥ जैसे कि गंगाजल का घडा मदिराके बूंदसे तन्मय याने मदिरा

राहश्रुतेरिदम् ॥ ४९ ॥ नज्ञायतेकुलंयस्यबीजशुद्धिंविनाततः ॥ तस्यखादन्पिबन्वापि साधुःसीदतितत्क्षणात् ॥ ५०
यश्चरुद्रंनजानाति रुद्रभक्तश्चयोनहि ॥ अन्नोदकंतस्य भुञ्जन्पातकीस्यान्नसंशयः ॥ ५१ ॥ अज्ञात्वायःशिवंभु
ङ्क्ते कथ्यतेसोत्रब्रह्महा ॥ दूषितंब्रह्महान्नादितस्मात्तस्यनभक्षयेत् ॥५२॥ गङ्गोदकुम्भस्स्याद्यद्वत्तन्मयोमद्यबिन्दुना ॥
अशिवज्ञस्ययोभुङ्क्ते शिवज्ञोपितथैवसः ॥ ५३ ॥ हीनवर्णश्चयःस्याद्धि शिवभक्तोपिनैवयः ॥ तावप्रतिग्राह्यगुणौ विलो
क्यौद्वौप्रतिग्रहे ॥ ५४ ॥ नरउवाच ॥ एतेनतववाक्येनहास्यंसंजायतेमम ॥ अहोमुग्धोसिमिथ्यात्वमपस्मारीजडो
पिवा ॥ ५५ ॥ यदासर्वेषुभूतेषु शिवोवसतिनित्यशः ॥ साध्वसाधुततोवाच्यं नैवनिन्दाशिवस्यसा ॥ ५६ ॥ आत्मन
श्चपरस्यापि यःकरोत्यन्तरान्तरम् ॥ तस्यभिन्नदृशोमृत्युर्विदधेभयमुल्वणम् ॥ ५७ ॥ अथवाकातुपानीये भवेद

ही के समान होजाता है ऐसेही शिवको न जाननेवाले पुरुषका अन्नादि जो भोजन करता है वह शिवका ज्ञाताभी वैसाही होजाताहै ॥ ५३ ॥ जो हीनवर्ण है और
जो शिवभक्त भी नहीं है उन दोनोंके गुण ग्रहण करने योग्य नहीं हैं और वे दोनों प्रतिग्रहमें देखने योग्य होतेहैं ॥ ५४ ॥ मनुष्य बोला कि तुम्हारे इस वचन से मेरे
हास्य उत्पन्न होता है अहो बड़े आश्चर्य की बात है कि तुम वृथाही अज्ञानहो अथवा अपस्मारी (मिर्गी रोगवाले) या मूर्खहो ॥ ५५ ॥ जब समस्त प्राणियों में
श्रीशिवजी नित्य बसते हैं तो अच्छा व खोंटा न कहना चाहिये क्योंकि वह शिवजी की निन्दाहोती है ॥ ५६ ॥ जो अपनासे दूसरे के भीतरका अन्तर करता है

उस भिन्नदर्शीके बडे डरको मृत्यु करती है ॥ ५७ ॥ अथवा जलमें क्या अपवित्रता होवे है इसको कहिये क्योंकि मिट्टीसे बनाया हुआ यह घट अग्निसे पकाया गया है ॥ ५८ ॥ और जलसे भरा है इनमें कोई अपवित्रता नहीं है अथवा यदि मेरे संसर्ग से अशुद्धता है तो प्रकटही नहीं है ॥५९॥ क्योंकि इस पृथ्वीमें भलीभांति टिकेहुये हम व तुम किसभांतिसे हैं यह कहिये और तुम किसलिये पृथ्वी में चलतेहो आकाशमें नहीं जातेहो इस कारण ॥६०॥ ऐसा विचार करनेपर तुम्हारा कहना अज्ञानकी नाईं होताहै ॥ ६१ ॥ कालभीति बोले कि यदि सब प्राणियोंमें शिवदेव ही हैं ऐसा कहाजाताहै तो नास्तिक लोग किसलिये भोजन में मिट्टी को नहीं खाते

शुचितावद ॥ मृत्तिकामयकुम्भोयं पावकेनापिपाचितः ॥ ५८ ॥ पूर्णश्चपयसाकाचिन्नेतेषामस्त्यशुद्धिता ॥ अथचेन्ममसंसर्गादशुचित्वंनचस्फुटम् ॥ ५९ ॥ तदस्यांसंस्थितःपृथ्व्यामहंत्वञ्चकुतोवद ॥ कुतःपृथिव्यांचरसि खेत्वंनैवचरस्यतः ॥ ६० ॥ एवंविचार्यमाणेते भाषितंमुग्धवद्भवेत् ॥६१ ॥कालभीतिरुवाच ॥ सर्वभूतेषुयद्देवः शिवएवेतिचोच्यते ॥ नास्तिकामृत्तिकांकस्माद्भक्षयन्तिनभोज्यके॥६२॥शुद्ध्यर्थंतेनविश्वस्य स्थापितासंस्थितिर्यथा ॥ कालेनफलितासाच नान्यथातांशृणुष्वच ॥ ६३ ॥ ससर्ज्जंचपुराधाता भूतात्मकमिदंजगत् ॥ तच्चनामप्रपञ्चेन बद्धंदाम्नाचगौर्यथा ॥ ६४ ॥ सच्चनामप्रपञ्चस्तु चतुर्धाभिद्यतेकिल ॥ ध्वनिर्वर्णाःपदंवाक्यमित्यास्पदचतुष्टयम् ॥ ६५ ॥ तत्रध्वनिर्नादमयो वर्णाश्चोङ्कारपूर्वकाः ॥ पदंशिवमितिप्रोक्तं वाक्यञ्चेतिशिवंभजेत् ॥ ६६ ॥ तच्चापिवाक्यंत्रिविधं भवेदितिश्रुतेर्मतम् ॥ प्रभुसंमतमेकञ्च सुहृत्संमतमेवच ॥ ६७ ॥ कान्तासम्मतमेवापि वाक्यंहित्रिविधंविदुः ॥ प्रभुःस्वामीयथाभृत्य

है ॥ ६२ ॥ उसी कारण संसारकी मर्यादा शुद्धिकेलिये थापीगई है और वह यथाकाल याने समय के अनुकूल फलित होती है अन्यथा नहीं होती है उसको सुनिये ॥ ६३ ॥ कि पुरातन समय विधाता ने इस भूतात्मक संसार को रचाहै और वह नाम के प्रपंच से बँधाहै जैसे कि रस्सीसे पशु बाधेजाते हैं ॥ ६४ ॥ और वह नामका प्रपंच प्रसिद्धमें चारप्रकारसे भेदको प्राप्त होताहै कि ध्वनि, अक्षर, पद व वाक्य यह चार स्थानहैं ॥ ६५ ॥ उनमें से ध्वनि शब्दमयी है और अक्षर ॐकारपूर्वक हैं और पद शिव ऐसा कहागयाहै और शिवको भजै यह वाक्यहै ॥ ६६ ॥ और वह वाक्य भी तीन भांतिकी है यह वेदका मत है कि एक स्वामीसे सम्मत दूसरा मित्रसे

सम्मत ॥ ६७ ॥ और तीसरा स्त्री से भी सम्मतहै विद्वानोंने इस तीन भांतिके वचनको कहाहै प्रभु याने स्वामी जिस प्रकार सेवक से आज्ञा करताहै कि इस कर्मको कीजिये ॥ ६८ ॥ वैसेही श्रुति स्मृति दोनों स्वामीके तुल्य वचनको कहते हैं और इतिहास पुराणादिक सुहृत्संमत कहेजाते हैं ॥ ६९ ॥ ये मित्र की नाईं यथार्थ समझाकर इस मनुष्य को वर्तमान कराते हैं और जो काव्यालापादिक है वह स्त्रीसम्मत वचन कहा जाता है ॥ ७० ॥ जो स्वामी की वाक्य कही गई है वह बाहर व भीतर पवित्र होती है और मित्र की वाक्य दो प्रकार की पवित्र होती है कि स्वर्ग की कामना से इस वचन को पालन करै ॥ ७१ ॥ इस लिये यह पालन करने योग्य है और भूमि में ज्ञान के कारण यह वेद कहता है व यदि तुम से नास्तिक्य के वचन के द्वारा यह कहा जाता है ॥ ७२ ॥ तो इस से वेद, शास्त्र व पुराण क्या

मादिशत्येतदाचर ॥ ६८ ॥ तथाश्रुतिस्मृतीचोभे प्राहतुःप्रभुसंमितम् ॥ इतिहासपुराणादिसुहृत्संमतउच्यते ॥ ६९ ॥ सुहृद्वत्प्रतिबोध्यैनं प्रवर्तयतितत्त्वतः ॥ काव्यालापादिकंयच्चकान्तासम्मतउच्यते ॥७०॥ प्रभुवाक्यंस्मृतंतच्च सबाह्याभ्यन्तरंशुचि ॥ सुहृद्वाक्यंद्विधाशौचंपालयेत्स्वर्गकाङ्क्षया ७१ ॥ तदेतत्पालनीयंस्याद्भुविज्ञानाच्छ्रुतिर्वदेत् ॥ त्वया नास्तिक्यवाक्येन चेदेतदभिधीयते ॥ ७२ ॥ एतेनश्रुतिशास्त्राणिपुराणञ्चवृथैवकिम् ॥ अग्रेसप्तर्षिपूर्वायेब्राह्मणाःक्षत्रियाभवन् ॥ ७३ ॥ मुग्धास्सर्वेभवान्दक्षो येहिवेदाङ्गतोह्यनु ॥ तथावेदान्तवचनं सत्त्वस्थाऊर्ध्वगामिनः ॥ ७४ ॥ तिष्ठन्तिमध्येरजसाह्यधोगच्छन्तितामसाः ॥ सत्त्वाहारैस्सत्त्ववृत्त्या स्वर्गगामीभवेत्ततः ॥ ७५ ॥ नचैतदप्यसूयामो यद्भूतेषुशिवोनहि ॥ अस्त्येवसर्वभूतेषु शृणुवत्राप्युपमानकम् ॥ ७६ ॥ यथासुवर्णजातानि भूषणानिबहूनिच ॥

वृथाही हैं पुरातन समय सप्तर्षिपूर्वक जो ब्राह्मण व क्षत्रियहुये हैं ॥ ७३ ॥ वे सब अज्ञान हुये जो कि वेदांगों के पीछे व वेदान्तों के वचन को करतेथे और आप चतुर हो सत्त्वगुण में टिकेहुये पुरुष ऊर्ध्वगामी याने स्वर्गादिको को जाते हैं॥ ७४ ॥ और रजोगुण से मध्य मनुष्यलोक में टिकते हैं और तमोगुणी पुरुष नरक को जाते है सत्त्वगुणी भोजनवाला सत्त्ववृत्तिसे स्वर्गगामी होताहै इसलिये ॥ ७५ ॥ हम इसकी ईर्षा नही करते हैं क्योंकि प्राणियोंमें शिव नहीं है और समस्त प्राणियों में सदाशिवजी अवश्यकर हैं इस विषयमें भी उपमाको सुनिये ॥ ७६ ॥ कि जैसे सोनेसे बनेहुये बहुत भूषण हैं उन में से कोई सिद्धिरूपवाले है और कोई हीन

रूपवाले हैं परन्तु ॥ ७७ ॥ सुवर्ण समस्त गहनोंमें अवश्यकर है वैसेही वे सदाशिवजी हैं हीनरूपवाला सुवर्ण जैसे शोधित होकर भलीभांति शुद्ध सुवर्ण के साथ
एकताको प्राप्त होताहै ॥ ७८ ॥ वैसेही शोधित होतीहुई यह देह शुद्धहोकर प्रकट ही स्वर्गको जाती है इसलिये बुद्धिमान् करके सब यत्नसे हीनको न ग्रहण करना
चाहिये ॥ ७९ ॥ यदि इस शरीर को शोधनकरै तो शुद्ध होकर प्रकटही स्वर्गको चलाजावै जो सब किसी से जलको ग्रहण करता है इसके एक दिन संसर्ग से जो
निराहारी पुरुष पवित्रहोवै यह भी प्रकटही धर्मसे भ्रष्ट होजाता है इसलिये सब उपायसे मैं जलको नहीं ग्रहण करूंगा यह प्रकटही कहताहूं ॥ ८० । ८१ ॥ चाहै

कानिचित्सिद्धरूपाणि हीनरूपाणिकानिचित ॥७७॥ स्वर्णंसर्वेषुचास्त्येव तथैवसमसदाशिवः ॥ हीनरूपंशोधितंसत सु
शुद्धेनैतिचैकताम् ॥ ७८ ॥ तथेदंशोधितंदेहं शुद्धोदिविव्रजेत्स्फुटम् ॥ तस्मात्सर्वात्मनाहीनं नग्राह्यंबतधीमता ॥७९॥
चेदिदंशोधयेद्देहं शुद्धोदिविव्रजेत्स्फुटम् ॥ सर्वतोयप्रतिग्राही निराहारीचयःपुमान् ॥ ८० ॥ शुचिःस्यादस्यदिवसा
त्पतितोसौभवेत्स्फुटम् ॥ तस्मात्सर्वात्मनानैवग्रहीष्येहंजलंस्फुटम् ॥८१॥ साधुवाप्यथवासाधु प्रमाणंनःश्रुतिःपरा ॥
एवमुक्तेसचनरः प्रहसन्दक्षिणेनच ॥ ८२ ॥ अङ्गुष्ठेनलिखन्भूमिं चक्रेगर्तंमहोत्तमम् ॥ तत्रचिक्षेपतत्तोयं तेनगर्तंस्म
पूरितम् ॥ ८३ ॥ अत्यरिच्यततोयंच ततःपादेनसंलिखन् ॥ चक्रेसरःपूरितञ्च अतिरिक्तजलेनतत् ॥ ८४ ॥ तदद्भुतंमहद्
दृष्ट्वा नैवविप्रोविसिष्मिये ॥ यतोबहुविधंचित्रं भवद्भूताद्युपासिषु ॥८५॥ तच्चित्रेणनजहाच्च श्रुतिमार्गंसनातनम् ॥८६॥
नरउवाच ॥ अतिमूर्खोसिविप्रत्वं प्रज्ञावादांश्चभाषसे ॥ किन्नश्रुतस्त्वयाश्लोकः पुराविद्भिरीरितः ॥ ८७ ॥ कूपो

अच्छाहो या अनभला हमको वेद परम प्रमाण है ऐसा कहनेपर हँसते हुये उस पुरुषने दाहिने ॥ ८२ ॥ अंगूठे से भूमिको लिखते हुये बडे उत्तम गढ़को किया व उस
में वह जल फेंकदिया उससे वह गढ़ा पूर्णहोगया ॥ ८३ ॥ और जल बढ़ा तदनन्तर चरणसे लिखते हुये उसने बढ़ेहुये जलसे उस तडागको पूर्णकरदिया ॥८४॥
उस बडे आश्चर्य को देखकर ब्राह्मण विस्मय को न प्राप्तहुआ क्योंकि भूतादिकों की उपासनावाले जनोंमें बहुत प्रकारका आश्चर्य होताहै ॥ ८५ ॥ इस लिये आश्चर्य
के कारण सदैववाले वेदमार्गको न छोड़े ॥ ८६ ॥ मनुष्य बोला कि हे विप्रजी ! तुम बड़े मूर्खहो और बुद्धिमानी की वार्त्ताको कहतेहो पुरातन समय विद्वानो से

कहेहुये श्लोकको क्या तुसने नहीं सुनाहै ॥ ८७ ॥ कि हे भारत ! कुँवा अन्य नर का व घडा और का तथा रस्सी अन्यकी है और एक पियाता है व एक पीताहै वे सब समभागी होते हैं ॥ ८८ ॥ इसलिये धर्म के जाननेवाले तुम किस २ कारण मेरे जलको नहीं पियोगे ॥ ८९ ॥ नारदजी बोले कि तदनन्तर उसने बहुत प्रकारसे समभागियों के श्लोकको विचार किया व न निश्चय होनेके कारण घटादिकों से समभागी पुरुषको विचारकर यह निश्चय किया कि ॥ ९० ॥ बहुत वस्तु व जहाज, द्रव्य और क्षेत्र इन सबोंमें जैसे समभागत्व है ऐसेही सबके बराबर कर्त्ताको फल होताहै बारबार ॥ ९१ ॥ यह निश्चयकर कालभीति उस मनुष्य से बोले कि यह

न्यस्यघटोन्यस्य रज्जुरन्यस्यभारत ॥ पाययत्येकःपिबत्येकः सर्वेतेसमभागिनः ॥ ८८ ॥ तज्जलंममकस्मात्त्वं धर्मज्ञोनैवपास्यसि ॥ ८९ ॥ नारदउवाच ॥ ततोविममृशेश्लोकं बहुधासमभागिनाम् ॥ अनिश्चयाद्विचार्य्यासौ घटाद्यैः समभागिनम् ॥ ९० ॥ बहुपोतद्रव्यक्षेत्रेषु सर्वेपुसमभागता ॥ एवंकर्त्तुःफलंसर्वं समंस्याच्चपुनःपुनः ॥ ९१ ॥ इतिनिश्चित्यप्रोवाचकालभीतिर्नरंचतम् ॥ सत्यमेतत्किन्तुकुम्भपयसागर्त्तपूरणम् ॥ ९२ ॥ दृष्ट्वाप्रत्यक्षतोमादृक्कथंपिबतिभो वद ॥ साधुवाप्यथवासाधु नपिबेयंकथञ्चन ॥ ९३ ॥ एवंविनिश्चयेतस्य संस्थितेकुरुनन्दन ॥ पुरुषोसौप्रहस्यैव क्षणादन्तर्दधेततः ॥ ९४ ॥ कालभीतिश्चपरमं विस्मयंसमुपागतः ॥ वृत्तान्तःकोयमित्येव चिन्तयामासभूयशः ॥ ९५ ॥ तस्यचिन्तयतःपार्थ बिल्वाधस्तात्सुशोभनम् ॥ उत्थितंसहसालिङ्गं पृथिव्याद्योतयन्दिशः ॥ ९६ ॥ प्रादुर्भावेततस्तस्य महालिङ्गस्यभारत ॥ ननृतुःखेप्सरोवृन्दा गन्धर्वाललितंजगुः ॥ ९७ ॥ पारिजातमयींपुष्पवृष्टिमिन्द्रोमुमोचच ॥ जये

सत्यहै परन्तु घडेके जल से गढ़ाका पूर्णहोना प्रत्यक्षही देखकर ॥ ९२ ॥ मेरे समान पुरुष कैसे पियैगा हे मनुष्य ! यह कहिये चाहै अच्छाहो या न अच्छाहो मैं किसी प्रकार जलको न पियूंगा ॥ ९३ ॥ हे कुरुनन्दन ! उसके ऐसे निश्चयके स्थित होने पर यह पुरुष हँसकर तदनन्तर क्षणभर में अन्तर्द्धान होगया ॥ ९४ ॥ और कालभीति बडे विस्मयको प्राप्तहुये व उन्होंने यही बहुत चिन्तन किया कि यह क्या वृत्तान्त है ॥ ९५ ॥ हे अर्जुन जी ! उसके चिन्तन करते हुये बिल्व वृक्षके नीचे दिशाओं को प्रकाशित करताहुआ अचानकही पृथ्वीसे अति उत्तम लिंग निकला ॥ ९६ ॥ तदनन्तर हे भारत ! उस महालिंग के प्रकट होनेपर आकाशमें अप्सराओं

के गण नाचने लगे व गन्धर्वों ने सुन्दर गानकिया ॥९७॥ और इन्द्रने पारिजात के फूलोंकी वृष्टि छोड़ा व देवताओं ने जय ऐसा कहा और मुनिलोगों ने अनेक प्रकार के स्तोत्रों से स्तुति किया ॥ ९८ ॥ हे कौरव्य ! उस बडेभारी उछाहके वर्त्तमान होनेपर प्रसन्न होतेहुये कालभीति ने प्रणामकर स्तोत्र किया ॥ ९९ ॥ कि पापके कालरूप व संसाररूपी कीचडके काल व कालके काल, कालमार्ग के काल, शोभा समेत कालेकण्ठवाले व संसार के कालरूप महाकाल देवको मैं प्रणाम करताहूं ॥ १०० ॥ हे सर्वविद्येश्वर ! मैं ईशानवक्त्र नामक तुमको प्रणाम करताहूं कि जिन आपकी वेद स्तुति करता है तुम भूतेश्वरहो व प्रपितामहहो उन आप महेश्वर जी के लिये प्रणामहोवै ॥ १ ॥ जिनकी वेद स्तुति करताहै उन द्वितीयतत्पुरुष संज्ञक आपकी शरणमें मैं प्राप्तहूं व तुमको जानताहूं हे देवेश ! मैं तुम्हारा ध्यान करताहूं

तिर्देवामुनयस्तुष्टुवुर्विविधैःस्तवैः ॥ ९८ ॥ तस्मिन्महतिकौरव्य वर्तमानेमहोत्सवे ॥ कालभीतिःप्रमुदितः प्रणम्य स्तोत्रमैरयत ॥ ९९ ॥ पापस्यकालंभवपङ्ककालं कालस्यकालंकालमार्गस्यकालम् ॥ देवंमहाकालमहंप्रपद्ये श्रीकालकण्ठंभवकालरूपम् ॥ १०० ॥ ईशानवक्त्रंप्रणमामित्वामहं स्तौतिश्रुतिस्सर्वविद्येश्वरंत्वाम् ॥ भूतेश्वरस्त्वंप्रपितामहस्त्वं तस्मैनमस्तेस्तुमहेश्वराय ॥१॥ यंस्तौतिवेदस्तमहंप्रपद्ये तत्पुरुषसंज्ञंशरणंद्वितीयम् ॥ त्वांविद्महेधीमहेतद्विनस्त्वं प्रदेहिदेवेशनमोनमस्ते ॥ २ ॥ अघोरवक्त्रंत्रितयंप्रपद्ये अथर्वजुष्टंतवरूपकाणि ॥ अघोरघोराणिचघोरघोराण्यहं सदानौमिभूतानितुभ्यम् ॥ ३ ॥ चतुर्थवक्त्रंचसदाप्रपद्ये सद्योभिजातायनमोनमस्ते ॥ भवेभवेभूयभवंभजामि भवोद्भव त्वांशिवतत्रतत्र ॥ ४ ॥ नमोस्तुतेवामदेवायज्येष्ठरुद्रायकालायकलाविकारिणे ॥ बलंकरायापिबलप्रमाथिने भूता

इसलिये मुझे शरण दीजिये याने रक्षा कीजिये तुम्हारे लिये नमस्कार है नमस्कारहै ॥ २ ॥ व अथर्ववेदसे सेवित तीसरे अघोरवक्त्रकी शरणमें मैं प्राप्तहूं अघोर घोर व घोरसे भी घोर प्राणी तुम्हारे रूप हैं मैं आपके लिये सदैव प्रणाम करताहूं ॥ ३ ॥ व चौथे मुखकी शरणमें मैं सदैव प्राप्तहूं और सद्योभिजात संज्ञक तुम्हारे लिये नमस्कार है नमस्कार है हे संसार के उत्पन्न करनेवाले शिवजी ! जन्म जन्ममें मैं जहां जहां उत्पन्न होऊं वहां वहां तुम सदाशिवजी को मैं भजूं ॥ ४ ॥ व वामदेव नामक ज्येष्ठरुद्र, कालसंज्ञक आपके लिये प्रणाम है और कलाओंके विकारसंयुत बलकारक व बल दैत्यके नाशनेहारे, प्राणियों के नाशक और कामदेव के विनाशक

आपके लिये मैं प्रणाम करताहूं ॥५॥ सुन्दर पुण्य गन्धवाले व तीन नयनोंवाले और कल्याण व पुष्टिको बढ़ानेहारे आपका मैं पूजन करता हूं हे उग्र, त्रिलोचनजी ! जैसे पकाहुआ पेहँटुवा बन्धन (टेंभुवा) से छूटजाता है ऐसेही मुझे मृत्यु के मार्गसे रक्षा कीजिये याने छुडाइये ॥६॥ हे ईश ! स्नेह से रहित जो मुनिलोग यज्ञ में मन्त्रोत्तम तुम्हारे षडक्षर मन्त्रको जपते हैं उनके तुम शरण (रक्षक) हो उस ॐकारपूर्वक नमः शिवाय ऐसे मन्त्रको मैं पूजताहूं ॥७॥ हे भारत ! इस प्रकार स्तुति कियेहुये महादेव जीने लिंगसे निकलकर त्रिलोकको प्रकाशसे प्रकाशित करते हुये प्रत्यक्ष होकर उस ब्राह्मणसे कहा ॥८॥ हे द्विज ! इस महातीर्थ में तुमने

निहन्त्रेमदनोन्मथाय ॥५॥ त्रियम्बकंत्वांचयजामहेवयंसुपुण्यगन्धंशिवपुष्टिवर्द्धनम् ॥ उर्वारुकम्पक्कमिवोग्रबन्धना द्रक्षस्वमांत्र्यम्बकमृत्युमार्गात् ॥६॥ षडक्षरंमन्त्रवरंतवेशजपन्तियज्ञेमुनयोवीतरागाः ॥ तेषांप्रपन्नोसियजामहेतमो ङ्कारपूर्वंचनमःशिवाय ॥७॥ एवंस्तुतोमहादेवो लिङ्गान्निःसृत्यभारत ॥ त्रिजगद्द्योतयन्भासा प्रत्यक्षःप्राहतंद्विजम् ॥८॥ यत्त्वयात्रमहातीर्थे भृशमाराधितोद्विज ॥ तेनातितुष्टस्तेवत्स नेशःकालःकथञ्चन ॥९॥ अहञ्चनररूपीयो द्रष्टुंतेध र्म्मसंस्थितिम् ॥ धन्यस्तुधर्म्ममार्गोयं पाल्यतेयद्भवद्विधैः ॥१०॥ सर्वतीर्थोदकैर्गर्तः पूरितोमेसरस्तथा ॥ जलमेतन्म हापुण्यं त्वदर्थमेसमाहृतम् ॥११॥ सप्तमन्त्रंरहस्यंच यत्कृतंस्तवनंमम ॥ अनेनपठ्यमानेन सप्तमन्त्रफलंलभेत् ॥ १२॥ अभीष्टंचवरंमत्तो वृणीष्वमनसेप्सितम् ॥ त्वयातितोषितोह्यस्मि नादेयंविद्यतेतव ॥१३॥ कालभीतिरुग्वा

जो मेरा बहुत ही आराधन किया उससे मैं बडा प्रसन्नहूं व हे वत्स ! काल तुम्हारे लिये किसी प्रकार समर्थ न होगा ॥९॥ व मनुष्यरूपवाला मैं वहीहूं जोकि तुम्हारे धर्मकी स्थितिको देखने के लिये प्राप्तहुआ था और यह धर्मका मार्ग धन्यहै जोकि आप सरीखे पुरुषोंसे पालन किया जाताहै ॥१०॥ मैंने समस्त तीर्थों के जलोंसे जो इस गढ़को पूर्ण किया है इस महापवित्र जलको मैं तुम्हारे लिये भलीभांति लायाहूं ॥११॥ सात मन्त्रोंवाला जो यह मेरा गुप्त स्तोत्र कियागया है पढ़ेजाते हुये इस स्तोत्र से मनुष्य सातो मन्त्रो के फलोंको प्राप्तहोता है ॥१२॥ और मनसे चाहेहुये प्रिय वरदानको तुम मुझ से मांगो मैं तुमसे बहुतही प्रसन्न हूं

इसलिये तुमको कुछ न देने योग्य नहीं है ॥ १३ ॥ कालभीति बोले कि हे शङ्कर जी ! मैं धन्यहूं व मेरे ऊपर आपने दया किया तुम्हारी प्रसन्नता से अन्यथा सब
धर्म केवल परिश्रमही के लिये होते हैं ॥ १४ ॥ यदि तुम प्रसन्न हो तो यहां सदैव समीपता कीजावै और तुम्हारे लिंग में जो पूजनादिक किया जावै वह अविनाशी
होवै ॥ १५ ॥ हे देव ! जो फल दश हजार पांच मंत्रों के जपनेवाले पुरुष को होवै वही फल मनुष्यों को इस लिंग के देखने से होवै ॥ १६ ॥ हे महेश्वर !
जिस लिये मैं कालमार्ग से छुड़ाया गया उसी कारण यह लिंग महाकाल ऐसा प्रसिद्ध होवै ॥ १७ ॥ और इस कुयें में नहाकर जो मनुष्य पितरों का तर्पण करै

च ॥ धन्योस्म्यनुगृहीतोस्मि यत्त्वंतुष्टोसिशङ्कर ॥ त्वत्तोषात्सकलाधर्म्माः श्रमायैवान्यथामताः ॥ १४ ॥ यदितुष्टोसि
सान्निध्यमिहत्वंक्रियतांसदा ॥ अक्षयंतत्कृतंचास्तु यल्लिङ्गेक्रियतेतव ॥ १५ ॥ जपतोयत्फलन्देव पञ्चमन्त्रायुतेनच ॥
तत्फलंजायतांनृणामस्यलिङ्गस्यदर्शने ॥ १६ ॥ कालमार्गादहंयस्मान्मोचितोस्मिमहेश्वर ॥ महाकालमितिख्यातं
लिङ्गंतस्माद्भवत्विदम् ॥ १७ ॥ अस्मिंश्चकूपेयोमर्त्यः स्नात्वातर्पयतेपितॄन् ॥ सर्वतीर्थफलंचास्तु पितॄणामक्षयाग
तिः ॥ १८ ॥ इतितस्यवचःश्रुत्वा प्रीतस्तंशङ्करोब्रवीत् ॥ स्वयम्भुवंयत्रलिङ्गं तत्रनित्यंवसाम्यहम् ॥ १९ ॥ स्वयम्भुवं
चरत्नोत्थं धातुपाषाणलेपजम् ॥ लिङ्गंक्रमेणफलदमन्त्यात्पूर्वंदशोत्तरम् ॥ २० ॥ आकाशेतारकालिङ्गं पातालेहाटके
श्वरम् ॥ स्वयम्भुवंधरापृष्ठे तदेतत्त्रितयंशुभम् ॥ २१ ॥ विशेषात्प्रार्थितंयच्च तच्चसर्वंभविष्यति ॥ अत्रपुष्पंफलंपूजा
नैवेद्यंस्तवनक्रिया ॥ २२ ॥ दानंचान्यच्चयत्किञ्चिदक्षयंतद्भविष्यति ॥ माघासितचतुर्दश्यां शिवयोगेचपुत्रक ॥ २३ ॥

उसको सब तीर्थों का फल होवै व पितरों की अविनाशिनी गति होवै ॥ १८ ॥ उसके यह वचन सुनकर प्रसन्न होते हुये शिवजी उससे बोले कि आपही उपजा
हुआ जहां लिंग है वहां मैं नित्यही बसता हूं ॥ १९ ॥ आपही पैदा हुआ व रत्नों से उत्पन्न और धातुओं व पत्थर और लेपसे उपजा हुआ लिंग क्रमसे अन्तवाले
से पहला दश गुना फलदायक है ॥ २० ॥ आकाश में तारकालिंग पाताल में हाटकेश्वर और भूतल में आपही उपजा हुआ लिंग ये तीनों उत्तम हैं ॥ २१ ॥
विशेषतासे जो प्रार्थना किया गया वह सब होगा और यहांपर पुष्प, फल, पूजन, नैवेद्य व स्तोत्रकर्म ॥ २२ ॥ दान और अन्य जो कुछ होगा वह अक्षय होगा

हे पुत्र ! माघकी कृष्णपक्ष चौदसि शिवयोग में ॥ २३ ॥ लिंगार्चनपूर्वक जो कूप में नहाकर पितरों का तर्पण करैगा उसको समस्त तीर्थोंके फलकी प्राप्ति होगी और
पितरों की अविनाशिनी गति होगी ॥ २४ ॥ और उस रात्रिमें प्रत्येक पहरमें जो पुरुष महाकालजीको पूजैगा वह समस्त लिंगोके समीप जागरणके फलको पावैगा॥
२५ ॥ और जो जितेन्द्रिय पुरुष इस लिंगमें मुझको नित्यही पूजैगा हे द्विजोत्तम ! उसको नित्यही भुक्ति मुक्ति दूर में नहीं स्थित है ॥ २६ ॥ चौदसि अष्टमी, सोमवार
व पर्वों में जो पुरुष तडाग मे नहाकर इस लिंगको पूजैगा वह शिवको प्राप्तहोगा ॥ २७ ॥ और यहां पर जप, तप, रुद्रजप यह सब अक्षयही होगा और तुम नन्दी

लिङ्गार्चापूर्वतःकूपे स्नात्वायस्तर्पयेत्पितॄन् ॥ सर्वतीर्थफलावाप्तिःपितॄणांचाक्षयागतिः ॥ २४ ॥ तस्यारात्रौमहा
कालं यामेयामेप्रपूजयेत् ॥ यःपुमान्सर्वलिङ्गेषु सजागरफलंलभेत ॥ २५ ॥ जितेन्द्रियश्चयोनित्यं मांलिङ्गेत्रप्रपू
जयेत् ॥ भुक्तिमुक्तीनदूरस्थे तस्यनित्यंद्विजोत्तमाः ॥ २६ ॥ चतुर्दश्यामथाष्टम्यां सोमवारेचपर्वसु ॥ स्नात्वासरसियो
भ्यर्चेल्लिङ्गमेतच्छिवंव्रजेत ॥ २७ ॥ जपस्तपोरुद्रजपः सर्वमक्षयमेवच ॥ त्वंचनन्दीद्वितीयोमे प्रतिहारोभविष्यसि॥
२८ ॥ कालमार्गजपाद्वत्स महाकालाभिधेश्वरम् ॥ करन्धमोत्रराजर्षिरचिरादागमिष्यति ॥ २९ ॥ तस्यप्रोक्त्वाभ
वान्धर्मांस्ततोमल्लोकमाव्रज ॥ इत्युक्त्वाभगवान्रुद्रो लिङ्गमध्येन्यलीयत ॥ ३० ॥ महाकालोपिमुदितस्तत्रतेपे
महातपः ॥ १३१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे कुमारिकाखण्डेमहाकालप्रादुर्भावोनामचतुस्त्रिंशोध्यायः ॥ ३४ ॥

नारदउवाच ॥ अथकेनापिकालेन पार्थराजाकरन्धमः ॥ विशेषमिच्छुर्धर्मेषु श्रुत्वातीर्थमहागुणान् ॥ १ ॥ महाका *

नामक मेरे दूसरे द्वारपाल होगे हे वत्स ! कालमार्ग के जपसे यह महाकालेश्वरनामक लिंग प्रसिद्ध होगा यहां पर करंधम नामक राजर्षि शीघ्रही आवैगा ॥ २८ । २९ ॥
उससे शैवधर्मोको कहकर तुम मेरे लोकको आइयेगा ऐसा कहकर भगवान् शिवजी लिंग के बीच में लीन होगये ॥ ३० ॥ और प्रसन्न होतेहुये महाकालने भी वहा बडा
भारी तप किया ॥ १३१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायाभाषाटीकायांमहाकाललिङ्गप्रादुर्भाववर्णननामचतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

दो० । चारोयुग के आचरण अहैं जौन परकार । पैंतिसवें अध्याय मे सोई चरित उदार ॥ नारदजी बोले कि हे अर्जुन ! इसके अनन्तर कुछ समय के उपरान्त धर्मो

के मध्य में विशेषधर्म की इच्छावाला राजा करन्धम तीर्थ के बड़े भारी गुणों को सुनकर ॥ १ ॥ व महाकालजी के चरित्र को सुनकर एकही आया तदनन्तर इसने
महीसागर के जलमें नहाकर लिंगों को पूजन किया ॥ २ ॥ व महाकाल लिंग के समीप प्राप्त होकर बड़ी प्रसन्नता को प्राप्त हुआ और महालिंग को देखता हुआ वह
राजा तृप्त न हुआ ॥ ३ ॥ जैसे निर्धनी कृपण जन ख़ज़ाना का घड़ा पाकर जीवनको सफल माने ऐसेही महाकालजी को देखकर उसने जीवन सफल माना ॥ ४ ॥
व जिनके दर्शन से यह फल प्राप्त होताहै उनके समीप दशहज़ार पंचमंत्रों को जपकर तदनन्तर बड़ी सेवासे पूजन कर व प्रणाम कर यह राजा करन्धम ॥ ५ ॥

तच्चरित्रंचतथैकःसमुपाययौ ॥ महीसागरतोयेसौ स्नात्वालिङ्गान्यथार्चयत् ॥ २ ॥ महाकालमनुप्राप्य परमांप्रीति
मागतः ॥ सपश्यन्सुमहालिङ्गं नातृप्यतजनेश्वरः ॥ ३ ॥ यथादरिद्रःकृपणो निधिकुम्भमवाप्यच ॥ सफलंजीवितं
मेने महाकालंनिरीक्ष्यच ॥ ४ ॥ पञ्चमन्त्रायुतंजप्त्वाफलंयस्येहदर्शनात् ॥ ततःसपर्ययाभ्यर्च्यमहत्यासौप्रण
म्यच ॥ ५ ॥ स्तुत्वाचलिङ्गप्रवरं महाकालमुपासदत् ॥ ६ ॥ ततोरुद्रवचःस्मृत्वा महाकालःस्मयन्निव ॥ प्रत्युद्
म्यनृपंपूजामर्घंचप्रत्यपादयत् ॥ ७ ॥ ततःकुशलप्रश्नादिकृत्वासीनःसुखंनृपः ॥ महाकालमुपामन्त्र्यकथान्तेवाक्य
माब्रवीत् ॥ ८ ॥ भगवन्संशयोमेहं सदायंपरिवर्त्तते ॥ यदिदंतर्पणन्नाम पितॄणांक्रियतेनृभिः ॥ ९ ॥ जलमध्येज
लंयाति कथंतृप्यन्तिपूर्वजाः ॥ एवंपिण्डादिदानञ्च सर्वमत्रैवदृश्यते ॥ १० ॥ मन्यामहेकथंचैवं पित्राद्यैरुपभुज्य

लिंगों में श्रेष्ठ महाकालजी की स्तुति करके पास में बैठगया ॥ ६ ॥ तदनन्तर शिवजीका वचन सुनकर मुसकराते हुये महाकालजी ने राजाके समीप प्राप्तहोकर पूजन व
अर्घ्य को ग्रहण किया ॥ ७ ॥ तदनन्तर कुशलप्रश्नादिक कर सुख से बैठे हुये राजाकरन्धम महाकाल को सम्बोधन कर कथा के अन्त में वचन बोले ॥ ८ ॥ कि हे
भगवन् ! मेरे मन संदेह सदैव वर्तमान रहता है कि जो यह प्रसिद्ध में मनुष्यों से तर्पण कियाजाताहै ॥ ९ ॥ तो जलके मध्य में जल जाताहै और पितर कैसे तृप्त
होजाते हैं इसीप्रकार पिण्डादिक दान सब यहीं देखा पड़ताहै ॥ १० ॥ इस लिये हम यह कैसे मानैं कि पित्रादिकों से भोजन किया जाताहै और यह नहीं है कि जो कुछ

उनके समीप न प्राप्त होवै ॥ ११ ॥ इस लिये स्वप्न में मनुष्य के पास आकर वे याचक होकर वृथाहीं देख पडते हैं ॥ १२ ॥ और सदैव देवताओं के भी प्रत्यक्षही
विश्वास देख पड़तेहैं तो कैसे वे ग्रहण करते हैं इस विषयमें मेरा मन मोहको प्राप्तहोताहै ॥ १३ ॥ महाकालजी बोले कि उन पितरों व देवताओं की योनि इसी प्रकार
की है कि जो दूर में कहा हुआ व दूर में पूजन और दूर में स्तुति होती है इसपरभी जो ॥ १४ ॥ होने योग्य, भूत व भविष्य सब को जानते हैं व उसको प्राप्तहोते
है पाच तन्मात्रारूप याने शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध व मन, बुद्धि, चित्त व जड़अहंकार ॥ १५ ॥ इन नवो तत्त्वों से बनी हुई देह है और इस देह में दशम पुरुषो-

ते ॥ नचैतदस्तियत्तेषां नोपतिष्ठतिकिञ्चन ॥ ११ ॥ स्वप्नेयथाक्रम्यनरं दृश्यन्तेयाचकाश्चते ॥ १२ ॥ देवानांचापिदृश्य
न्ते प्रत्यक्षाःप्रत्ययास्सदा ॥ तत्कथंपरिगृह्णन्ति मनोमेत्रप्रमुह्यति ॥ १३ ॥ महाकालउवाच ॥ योनिरेवंविधातेषां पि
तॄणांचदिवौकसाम् ॥ दूरोक्तंदूरपूजाच दूरस्तुतिरथापियत् ॥ १४ ॥ भाव्यंभूतंभविष्यञ्च सर्वंजानन्तियान्तिच ॥ पञ्चत
न्मात्ररूपञ्च मनोबुद्धिरहंजडः ॥ १५ ॥ नवतत्त्वमयन्देहंदशमःपुरुषोत्तमः ॥ तस्माद्गन्धेनतृप्यन्ति रसतत्त्वेनतेत
था ॥ १६ ॥ शब्दतत्त्वेनतुष्यन्ति स्पर्शंतत्त्वञ्चगृह्णते ॥ शुचिन्दृष्ट्वाचतुष्यन्ति नात्रराजन्भवेन्मृषा ॥ १७ ॥ यथातृ
णंपशूनाञ्च नराणामन्नमुच्यते ॥ एवंदैवतयोनीनामन्नसारञ्चभोजनम् ॥ १८ ॥ शक्तयस्सर्वदेवानामचिन्त्याज्ञानगो
चराः ॥ तस्मात्तत्त्वंप्रगृह्णन्ति शेषमत्रैवदृश्यते ॥ १९ ॥ करन्धमउवाच ॥ पितृभ्योदीयतेश्राद्धं स्वकर्मवशगाश्चते ॥
स्वर्गस्थानरकस्थावा कथन्तैरुपभुज्यते ॥ २० ॥ अथस्वर्गेचनरकेस्थिताःकर्माभियन्त्रिताः ॥ शक्नुवन्तिवरानेतान्दा

त्तम (परमेश्वर) है इस लिये वे गन्ध से व रसतत्त्व से तृप्त होते हैं ॥ १६ ॥ व शब्द तत्त्वसे प्रसन्न होते हैं और स्पर्शतत्त्व को ग्रहण करते है और पवित्र वस्तु को
देखकर प्रसन्न होते हैं हे राजन्! इसमें झूंठ नहीं है ॥ १७ ॥ जैसे पशुवोंका भोजन तृण व मनुष्यों का अन्न कहा जाताहै ऐसेही देवयोनियोंका भोजन अन्नका सारांश
है ॥ १८ ॥ सब देवताओं की शक्तियां अचिन्त्य व ज्ञान से देखने योग्य है इसलिये वे तत्त्व (यथार्थ) वस्तुको ग्रहण करतेहैं और शेप वस्तु यहीं देख पडतीहै ॥ १९ ॥
करन्धम बोले कि जिन पितरों के लिये श्राद्ध दीजाती है वे अपने कर्म के वश में प्राप्त होतेहैं चाहै स्वर्ग में टिके हों या नरक में स्थित होवैं तो उनसे किस प्रकार

भोजन किया जाताहै ॥२०॥ और स्वर्ग व नरकमें अपने कर्मोंसे बँधेहुये वे स्थित होते हैं तो वे समर्थ देवता व पितर इन वरोंको देनेके लिये कैसे समर्थ होतेहैं ॥२१॥ क्यों
कि यह लिखाहै कि प्रसन्न होते हुये पितृ पितामह लोग मनुष्यों को आयुर्बल, पुत्र, धन, विद्या, स्वर्ग, मोक्ष व सुख और राज्य को देते हैं ॥ २२ ॥ महाकालजी बोले
कि हे नृपोत्तम ! यह सत्य है कि पितरभी अपने कर्म में टिके होतेहैं परन्तु देवता, दैत्य व यक्षादिकों के पितर विना मूर्त्तिवाले होतेहैं ॥ २३ ॥ और चारों वर्णों के पितर
मूर्त्तिमान् होते हैं इस भांति सात प्रकार के पितर कहे गये हैं वे सब कुछ देतेहैं और वैसेही सब देनेके लिये समर्थ हैं ॥ २४ ॥ हे राजन् ! जिन पितरों के प्रबल इकतीस

तुंवैचेश्वराःकथम् ॥ २१ ॥ आयुःप्रजांधनंविद्यां स्वर्गमोक्षंसुखानिच ॥ प्रयच्छन्तितथाराज्यं प्रीतानृणांपितामहाः ॥
२२ ॥ महाकालउवाच ॥ सत्यमेतत्स्वकर्मस्थाः पितरोपिनृपोत्तम ॥ किन्तुदेवासुराणांच यक्षादीनाममूर्त्तकाः ॥
२३ ॥ मूर्त्ताश्चतुर्णांवर्णानां पितरस्सप्तधास्मृताः ॥ तेहिसर्वंप्रयच्छन्ति दातुंसर्वंतथेश्वराः ॥ २४ ॥ एकत्रिंशद्गणायेषां
पितॄणांप्रबलान्नृप ॥ कृतञ्चतदिदंश्राद्धं तर्पयेत्तान्नरान्पितॄन् ॥ २५ ॥ तेतृप्तास्तर्पयन्त्यस्य पूर्वजान्यत्रसंस्थिता
न् ॥ एवंस्वानाञ्चोपतिष्ठेच्छ्राद्धंयच्छन्तितेवरान् ॥ २६ ॥ राजोवाच ॥ भूतादिभ्योयथाविप्रनाम्नाचोद्दिश्यदीयते ॥
सुरादीनांकथंचैवं संक्षेपेणनदीयते ॥ २७ ॥ इदंपितृभ्योदेवेभ्यो द्विजेभ्यःपावकायच ॥ एवंकस्माद्विस्तराःस्युर्मनः
कायातिकष्टदाः ॥ २८ ॥ महाकालउवाच ॥ उचिताप्रतिपत्तिश्च वार्यासर्वेषुनित्यशः ॥ प्रतिपत्तिंचोचितान्ते विना

गया है उन्हीं उत्तम पितरों को यह की हुई श्राद्ध तृप्त करती है ॥ २५ ॥ और तृप्त होते हुये वे पितर इसके उन पितरों को वहाँ तृप्त करते हैं कि वे जहां टिके होते हैं
इस प्रकार अपने पितरों के समीप श्राद्ध प्राप्त होती है और वे वरों को देते हैं ॥२६॥ राजा बोले कि हे विप्रजी ! जैसे भूतादिकों के लिये नामसे उद्देश कर दिया जाता
ऐसेही देवादिकों को संक्षेप से क्यों नहीं दिया जाता है ॥ २७॥ यह पितरों, देवताओं, ब्राह्मणों और अग्नि के लिये दिया जाता है इस प्रकार मन व शरीर को बड़े
[illegible] विस्तार किस लिये होते हैं॥ २८॥ महाकालजी बोले कि नित्यही सबोंमें योग्य प्रतिपादन करना चाहिये क्योंकि योग्य प्रतिपादन के विना वे नहीं ग्रहण

करते हैं ॥ २९ ॥ जैसे घर के द्वारपै बैठा हुआ कुत्ता बलि (भोजन) को ग्रहण करता है हे राजन् ! वैसेही क्या प्रधान पुरुष भी ग्रहण करैगा ॥ ३० ॥ इसीप्रकार
वे देवता भूतों की नाईं किसी प्रकार नही ग्रहण करते हैं पवित्र कामनाओंको सेवते हुये ने विना श्रद्धावाले पुरुष से हव्यको नही ग्रहण करते हैं ॥३१॥ और विन मंत्रों
से जो दीहुई वस्तु होती है उसको वे निर्मल देवता नहीं ग्रहण करते है हे राजन् ! मंत्रोंके इस विषय में वेद ने भी ऐसा कहा है ॥ ३२ ॥ कि मंत्र देवता हैं इसलिये
जो विद्वान् इस प्रकार मंत्रपूर्वक जो करता है उसको देवपंक्ति प्रसिद्धही ग्रहण करती है इसलिये विन मंत्र के कुछ न ग्रहण करै और न विन मंत्र के प्रतिपादन

गृह्णन्तिनैवच ॥२९॥ यथाश्वागृहद्वारस्थो बलिंगृह्णातिकिन्तथा ॥ प्रधानपुरुषोराजन् गृह्णातिचतथासमम् ॥ ३० ॥ एव
न्तेभूतवद्देवा नहिगृह्णन्तिकर्हिचित् ॥ शुचिकामाञ्जुषन्तस्ते हविरश्रद्दधानतः ॥ ३१ ॥ विनामन्त्रैश्चयद्दत्तं नतद्गृ
ह्णन्तितेमलाः ॥ श्रुतिरप्यत्रप्राहेदं मन्त्राणांविषयेनृप ॥ ३२ ॥ मन्त्रादेवतास्तस्माद्य एवंविद्वान्मन्त्रवत्करोति देव
तालिरेवतत्प्रसिद्धंगृह्णाति तस्मान्नामन्त्रवत्प्रतिगृह्णीयान्नामन्त्रवद्वाप्रतिपादयेदिति ॥ ३३ ॥ तस्मान्मन्त्रैस्सदादेयं पौरा
णैर्वैदिकैरपि ॥ अन्यथातेनगृह्णन्ति भूतानामुपतिष्ठति ॥ ३४ ॥ राजोवाच ॥ दर्भास्तिलाअक्षताश्च तोयंचैतैस्तुसंयु
तम् ॥ कस्मात्प्रदीयतेदानं ज्ञातुमिच्छामिकारणम् ॥३५॥ महाकालउवाच ॥ पुराकिलप्रदत्तानि नृभिर्दानानिभूरिशः॥
असुराःप्रत्यगृह्णन्त प्रविश्याभ्यन्तरंबलात् ॥ ३६ ॥ ततोदेवाश्चपितरः प्रत्यूचुःपद्मसम्भवम् ॥ स्वामिन्नःपश्यतामेव
सर्वंदैत्यैःप्रगृह्यते ॥ ३७॥ विधेहितेषांरक्षांत्वं विनष्टाश्चान्यथावयम् ॥ ततोब्रह्माविमृश्यैव रक्षोपायमचीकरत् ॥ ३८ ॥

करै॥३३॥ उसी कारण सदैव पुराणके ज्ञाता व वैदिकोंसे भी मंत्रों करके देना चाहिये अन्यथा वे नहीं ग्रहण करते हैं और वह भूतों को प्राप्त होताहै ॥ ३४ ॥ राजा बोले
कि कुश, तिल, अक्षत व जल इन सबो से संयुत दान किस लिये दियाजाताहै मैं इस कारण को जानना चाहताहूं ॥ ३५ ॥ महाकाल जी बोले कि पुरातन समय
प्रसिद्ध में मनुष्यों ने अनेकों दानों को दिया तब उसके अन्तर में बल से पैठकर दैत्यों ने उस को ग्रहण किया ॥ ३६ ॥ तदनन्तर देवताओं व पितरो ने ब्रह्मा जी
से कहा कि हे स्वामिन् ! हम सबों के देखतेही हुये समस्त दैत्यों से दानादिक वस्तु ग्रहण कीजाती है ॥ ३७ ॥ तुम उनके सकाश से रक्षा कीजिये नहीं तो हम

लोग नाश होजावैंगे तदनन्तर ब्रह्मा ने विचार कर रक्षा का यत्न किया ॥ ३८ ॥ कि पितरों को तिलों से संयुत वस्तु देवैं और देवों को अक्षतों से संयुक्त देवैं और
जल व कुश सब कहीं संयुक्त करैं तो इस प्रकार दैत्य नहीं ग्रहण करते हैं ॥ ३९ ॥ इन वस्तुवों के विना जो दीहुई वस्तु है उसको बल से दैत्य ग्रहण करते हैं और
पितर व देवता शोच से श्वास लेकर चलेजाते हैं और फलको देने के लिये वे समर्थ नहीं होते हैं ॥ ४० ॥ इसलिये कुशों में सब से दान दिया जाता है करन्धम
बोले कि चतुर्युग की व्यवस्थाको मैं यथार्थ सुना चाहताहूं ॥ ४१ ॥ मेरे यह बड़ी जानने की इच्छा सदैवही वर्त्तमान रहती है ॥ ४२ ॥ महाकालजी बोले कि पहिला

**तिलैर्युतिंपितृणांचदेवानामक्षतैस्सह ॥ तोयंदर्भश्चसर्वत्रएवंगृह्णन्तिनासुराः ॥ ३९ ॥ एतान्विनाप्रदत्तंयद्बलाद्दैत्यैःप्र
गृह्यते ॥ निःश्वस्यपितरोदेवा यान्तिदातुंफलंनहि ॥४०॥ तस्माद्दर्भेषुसर्वैश्च दानमेवंप्रदीयते ॥ करन्धमउवाच ॥ चतु
र्युगव्यवस्थांच श्रोतुमिच्छामितत्त्वतः ॥ ४१ ॥ महतीयंविवित्सामे सदैवपरिवर्त्तते ॥ ४२ ॥ महाकालउवाच ॥ आद्यं
कृतयुगंविद्धि ततस्त्रेतायुगंस्मृतम् ॥ द्वापरन्तिष्यमेवेति चत्वारश्चसमासतः ॥ ४३ ॥ सत्त्वंकृतंरजस्त्रेता द्वापरञ्चरजस्त
मः ॥ कलिस्तमस्तुविज्ञेयं युगावर्त्तयुगेषुच ॥ ४४ ॥ ध्यानम्पुरःकृतयुगे त्रेतायांयज्ञउच्यते ॥ वृत्तञ्चद्वापरेसत्यं दा
नमेवकलौयुगे ॥ ४५ ॥ कृतेतुमानसीसृष्टिर्वृत्तिस्साक्षाद्रसोल्लसा ॥ तेजोमध्यःप्रजास्तृप्ताः सदानन्दाश्चभोगिनः ॥
४६ ॥ अधमोत्तमौनतत्रास्तां निर्विशेषाःप्रजाःशुभाः ॥ तुल्यमायुस्सुखंरूपं तासांतस्मिन्कृतेयुगे ॥४७॥ नचप्रीतिर्न**

सतयुग जानिये तदनन्तर त्रेतायुग कहा गया है और द्वापर व कलियुग ये चारों युग संक्षेप से कहे गये ॥ ४३ ॥ सतयुग सत्त्वगुण, त्रेतायुग रज, द्वापर रजोगुण
तमोगुण और युगों के आवर्त (भ्रमण) वाले युगों में कलियुग तमोगुण जानने योग्य है ॥ ४४ ॥ पुरातन समय सतयुग में ध्यान, त्रेता में यज्ञ कहा जाता है
और द्वापर में उत्तम आचरण व कलियुग में दानही कहा गया है ॥ ४५ ॥ सतयुगमें मानसी सृष्टि होती है और जीविका साक्षात् रससे शोभित होती है और तेजो-
मयी प्रजायें होती हैं वे तृप्त होकर सदैव आनन्द व भोगी होते हैं ॥ ४६ ॥ उस युग में नीच व उत्तम नहीं होते हैं याने सब सम होते हैं और सब उत्तम प्रजा भेद

रहित होते हैं और उस सतयुग में उन प्रजाओं का आयुर्बल, सुख व रूप समान होताहै ॥ ४७ ॥ और न अप्रीति होती है न उद्वेग (क्लेश) होताहै न वैर होताहै और न ग्लानि होती है व पर्वत और समुद्र के समीप रहनेवाले उन प्रजाओं को दया प्यारी होती है ॥ ४८ ॥ उस समय वर्ण व आश्रम की व्यवस्था नहीं होतीहै और संकरवर्ण नहीं होताहै और वे एक बुद्धि से उत्तम सदाशिव जी का ध्यान करते हैं ॥ ४९ ॥ तदनन्तर चौथेचरण में वह रससे शोभित जीविका नष्ट होगई उसके उपरान्त उन प्रजाओं के लिये गृहसंज्ञक वृक्ष उत्पन्न हुये ॥ ५० ॥ वे वृक्ष वस्त्रों व फलों और आभूषणों को पैदा करते हैं व उन में उन प्रजाओं के लिये

चोद्वेगोनद्वेषोनापिचक्लमः ॥ पर्वतोदधिवासिन्योह्यनुक्रोशप्रियास्तुताः ॥ ४८ ॥ वर्णाश्रमव्यवस्थाच तदासीन्नचसङ्करः ॥ ऐकमत्येनध्यायन्ति परमन्तेसदाशिवम् ॥ ४९ ॥ चतुर्थेचततःपादे नष्टासाभूद्रसोल्लसा ॥ प्रादुरासंस्ततस्तासां वृक्षाश्चगृहसंज्ञिताः ॥ ५० ॥ वस्त्राणितेप्रसूयन्ते फलान्याभरणानिच ॥ तेष्वेवजायतेतासां गन्धवर्णरसान्वितम् ॥ ५१ ॥ अमाक्षिकंमहावीर्यं पुटकेपुटकेमधु ॥ तेनतावर्त्तयन्तिस्मकृतस्यान्तेप्रजास्तदा ॥ ५२ ॥ हृष्टपुष्टास्तयासिद्ध्याप्रजावैविगतज्वराः ॥ ततःकालेनकेनापि तासांवृद्धेरसेन्द्रिये ॥ ५३ ॥ युगभावात्तथाध्याने स्वल्पीभूतेपरस्यच ॥ वृक्षास्तत्पर्यगृह्णन्त मधुचामाक्षिकंबलात् ॥ ५४ ॥ तासान्तेनापचारेण लोभदोषकृतेनवै ॥ प्रणष्टामधुनासार्द्धं कल्पवृक्षाःक्वचित्क्वचित् ॥ ५५ ॥ तस्यांचाप्यल्पशिष्टायां द्वन्द्वान्यभ्युत्थितानिच ॥ शीतातपैर्मनोदुःखैस्ततस्तादुःखिता

सुगन्ध, वर्ण व रस से संयुक्त ॥ ५१ ॥ बिन मक्षिकावाला और बड़े प्रभाव या बलसंयुत शहद पत्ते पत्ते में उत्पन्न होताहै उससे सतयुग के अन्त मे उस समय वे प्रजा जीविका करते हैं ॥ ५२ ॥ व उस सिद्धि से प्रजा ज्वर (दुःख) से रहित व हृष्ट पुष्ट होते हैं तदनन्तर कुछ समय के उपरान्त रस इन्द्रिय के वृद्ध होने पर ॥ ५३ ॥ युग के भाव से परपुरुष का ध्यान कम होने पर बिन मक्षिकावाले शहद को वे वृक्ष बल से ग्रहण कर लेते हैं ॥ ५४ ॥ उन प्रजाओ के लोभ व दोष से कियेहुये अपचार (अपराध) करके शहद समेत कल्पवृक्ष नष्टहोगये व कहीं कहीं ॥ ५५ ॥ उस सिद्धिके अल्पशेष रहनेपर द्वन्द्व (दुःख सुख) उत्पन्न हुये तद-

नन्तर शीत व घाम इत्यादिक मनके दुःखों से वे प्रजा बहुत दुःखी हुये ॥ ५६ ॥ तदनन्तर आच्छादन के लिये उन्होंने स्थानों को बनाया तब त्रेतायुग में उनके लिये फिर सिद्धि उत्पन्न हुई ॥ ५७ ॥ और वृक्ष व ग्राम तथा जङ्गली चौदह ओषधियां उत्पन्न हुई जोकि जल व भूमिके संयोग से बिन जोते व बिन बोये पैदा होतीथी ॥ ५८ ॥ और वृक्ष व बिन शाखाओंवाले छोटे वृक्ष ऋतु के अनुकूल फूलों व फलोंसमेत पैदाहुये और उन प्रशंसनीय फूलों व फलोंसे उनकी जीविका हुई ॥ ५९ ॥ तदनन्तर फिर उनके सब ओरसे स्नेह व लोभहुआ तब कालके बलसे उन्होंने नदी, क्षेत्रों व पर्वतोंको ग्रहण किया ॥ ६० ॥ और हठसे बलके अनुसार

भृशम् ॥ ५६ ॥ चक्रुरावरणार्थंहि निकेतानिततस्तुताः ॥ तदाप्रादुरभूत्तासां सिद्धिस्त्रेतायुगेपुनः ॥ ५७ ॥ वृक्षावभूवु रोषध्योग्रामारण्याश्चतुर्दश ॥ अकृष्टपच्याश्चानुप्तास्तोयभूमिसमागमात् ॥ ५८ ॥ ऋतुपुष्पफलैश्चैव वृक्षगुल्माश्च जज्ञिरे ॥ तैश्चवृत्तिरभूत्तासां धन्यैःपुष्पैःफलैस्तथा ॥ ५९ ॥ ततःपुनरभूत्तासां रागोलोभश्चसर्वतः ॥ कालवीर्येणचागृह्णन् नदीक्षेत्राणिपर्वतान् ॥ ६० ॥ वृक्षगुल्मौषधीश्चैव प्रसह्याशुयथाबलम् ॥ विपर्ययेणचौषध्यः प्रणष्टाश्चचतुर्दश ॥ ६१ ॥ गत्वाधरांप्रविष्टास्ता ओषध्यःपीडिताःप्रजाः ॥ दुदोहगांपृथुर्वैन्यस्सर्वभूतहितायवै ॥ ६२ ॥ तदाप्रभृतिवौषध्यः फलाकृष्टाःप्रजास्ततः ॥ वार्तयावर्त्तयन्तिस्म पाल्यमानाश्चक्षत्रियैः ॥ ६३ ॥ वर्णाश्रमप्रतिष्ठाच यज्ञस्त्रेतासुचोच्यते ॥ सदाशिवध्यानमयं त्यक्त्वामोक्षमचेतनाः ॥ ६४ ॥ पुष्पितांवाचमाश्रित्य रागात्स्वर्गमसाधयन् ॥ द्वापरेचप्रवर्त्तन्ते मतिभेदास्ततोनृणाम् ॥ ६५ ॥ मनसाकर्मणावाचाकृच्छ्राद्वार्त्ताप्रसिद्ध्यति ॥ लोभोधृतिःशिवन्त्यक्त्वा धर्म्मा

वृक्ष, गुल्म व ओषधियों को ग्रहण किया व कालके विपरीतसे चौदह ओषधियां नष्टहोगई ॥ ६१ ॥ व जाकर पृथ्वी में पैठगई तब प्रजा पीडित हुये उस समय वेनके पुत्र पृथुने गऊ रूपवाली पृथ्वीको दुह लिया ॥ ६२ ॥ तब से लगाकर फालसे जोतीहुई ओषधियां उत्पन्न हुई तदनन्तर क्षत्रियों से पालन किये जातेहुये प्रजा जीविका से वर्तमान हुये ॥ ६३ ॥ त्रेतायुगों में वर्ण व आश्रम की प्रतिष्ठा व यज्ञ कहीजाती हैं और निर्बुद्धि पुरुष सदाशिवजी के ध्यानमय मोक्षको छोड़कर ॥ ६४ ॥ पुष्पित वाणीके आश्रितहोकर स्नेहसे स्वर्ग का साधन करतेभये हैं तदनन्तर द्वापर में मनुष्यों के बुद्धिभेद वर्तमान होते हैं ॥ ६५ ॥ और मन,

कर्म व वचन से क्लेशकरके जीविका सिद्ध होती है लोभ, धैर्य व कल्याण को छोड़कर धर्मोंका संकर ॥ ६६ ॥ व वर्ण, आश्रम का विध्वंस द्वापर में वर्त्तमान होताहै तब द्वापरके अन्तमें एकवेद चार प्रकारसे विभाग कियाजाताहै ॥ ६७ ॥ ब्राह्मणोंके लिये एक वेद चतुष्पाद यानेचार चरणों मे संयुक्त कियाजाता है कि जिस में गौरवसे इतिहास पुराण भेदको प्राप्तहोते हैं याने उत्पन्न होतेहैं ॥ ६८ ॥ ब्राह्म, पाद्म, विष्णुपुराण, शिवपुराण, भागवत वैसेही अन्य नारदपुराण व सातवां मार्कण्डेयपुराण ॥ ६९ ॥ और आठवा अग्निपुराण कहागया है वैसेही नवां भविष्यपुराणहै और दशम ब्रह्मवैवर्त्त, गेरहवां लिंगपुराण है ॥ ७० ॥ और बारहवा वाराह-

णांसंकरस्तथा ॥ ६६ ॥ वर्णाश्रमपरिध्वंसाः प्रवर्त्तन्तेचद्वापरे ॥ वेदोव्यासैश्चतुर्द्धाच व्यस्यतेद्वापरान्ततः ॥ ६७ ॥ एकोवेदश्चतुष्पादः क्रियतेद्विजहेतवे ॥ इतिहासपुराणानिभिद्यन्तेयत्रगौरवात् ॥ ६८ ॥ ब्राह्मंपाद्मंवैष्णवञ्च शैवंभागवतंतथा ॥ तथान्यन्नारदीयञ्च मार्कण्डेयंचसप्तमम् ॥ ६९ ॥ आग्नेयमष्टमंप्रोक्तं भविष्यंनवमंतथा ॥ दशमंब्रह्मवैवर्तं लिङ्गमेकादशंस्मृतम् ॥ ७० ॥ वाराहंद्वादशंप्रोक्तं स्कान्दंचैवत्रयोदशम् ॥ चतुर्दशंवामनाख्यं कौर्म्यंपञ्चदशंस्मृतम् ॥ ७१ ॥ मात्स्यंषोडशमंचैव गारुडञ्चततःपरम् ॥ अतःपरञ्चब्रह्माण्डमेवमष्टादशानिच ॥ ७२ ॥ अस्मिन्वाराहकल्पेच व्यासेनकारितान्नृप ॥ ७३ ॥ ऋतुस्सत्योभार्गवश्च अङ्गिरास्सवितातथा ॥ मृत्युःशतक्रतुर्धीमान् वसिष्ठोभविताधुना ॥ ७४ ॥ सारस्वतस्त्रिधामाच वेदवित्त्रिवृतोमुनिः ॥ शततेजाःस्वयंविष्णुः नारायणइतिस्मृतः ॥ ७५ ॥ करकश्चारुणिर्धीमांस्तथादेवोऋतञ्जयः ॥ ऋतञ्जयोभरद्वाजोगौतमःकृतिसत्तमः ॥ ७६ ॥ वाचःश्रवामुनिश्चैव तथाशुष्या

पुराण कहा है और स्कन्द तेरहवा है व चौदहवां वामन नामक पुराण व पन्द्रहवा कूर्मपुराण कहागया है ॥ ७१ ॥ सोलहवां मत्स्यपुराण तदनन्तर गरुडपुराण है व इसके उपरान्त ब्रह्माण्ड पुराण है इस प्रकार अठारह पुराण हुये ॥ ७२ ॥ हे राजन् ! इस वाराहकल्पमें ये पुराण व्यास से बनायेगये हैं ॥ ७३ ॥ ऋतु व सत्य, भार्गव, अङ्गिरा, सविता, मृत्यु व बुद्धिमान् शतक्रतु व वसिष्ठ महर्षि इस समय होवैंगे ॥ ७४ ॥ और सारस्वत त्रिधामा व वेदके जाननेवाले त्रिवृतमुनि, शततेजा व आपही विष्णुनारायण ऐसे कहेगये हैं ॥ ७५ ॥ करक व बुद्धिमान् अरुणि वैसेही ऋतञ्जयदेव व ऋतञ्जय, भरद्वाज, गौतम और कृतिसत्तम ॥ ७६ ॥ व वाचःश्रवामुनि

तथा शुष्यायनमुनि, तृणबिन्दु, ऋक्षशक्ति व पाराशर ॥ ७७ ॥ जातूकर्ण्य, विष्णु और द्वैपायन (वेदव्यास) मुनि और अश्वत्थामा इत्यादिक ये भविष्य (होने वाले) मुनिलोग तुमसे सूचित कियेगये ॥ ७८ ॥ और लोकके लिये द्वापर में धर्मशास्त्रभी उत्पन्न होतेहैं मनु, अत्रि, विष्णु, हारीत, याज्ञवल्क्य, उशना, अङ्गिरा ॥ ७९ ॥ यम, आपस्तम्ब, संवर्त, कात्यायन, बृहस्पति, पराशर, व्यास, शङ्ख, लिखित, दक्ष, गौतम ॥ ८० ॥ शातातप, वसिष्ठ ये धर्मशास्त्र के प्रयोजक (बनानेवाले) हैं तदनन्तर द्वापर की सन्ध्या में कलियुग वर्तमान होनेपर ॥ ८१ ॥ शैवयोग नष्ट होजानेपर योगियों के आनन्ददायक मुनि उत्पन्न होतेहैं पहले श्वेत, कल, रुद्र,

यनोमुनिः ॥ तृणबिन्दुस्तथाऋक्षशक्तिःपाराशरस्तथा ॥ ७७ ॥ जातूकर्ण्योथविष्णुश्च स्वयंद्वैपायनोमुनिः ॥ अश्वत्थामप्रमुखाश्चैते भविष्याःसूचितास्तव ॥ ७८ ॥ धर्म्मशास्त्राणिलोकार्थं भिद्यन्तेचापिद्वापरे ॥ मन्वत्रिविष्णुहारीतयाज्ञवल्क्योशनोङ्गिराः ॥ ७९ ॥ यमापस्तम्बसंवर्त्ताः कात्यायनबृहस्पती ॥ पराशरव्यासशङ्खलिखितादक्षगौतमौ ॥ ८० ॥ शातातपोवसिष्ठश्च धर्म्मशास्त्रप्रयोजकाः ॥ ततोद्वापरसन्ध्यायां प्रवर्त्ततिकलौयुगे ॥ ८१ ॥ नश्यमानेशैवयोगे जायन्तेयोगिनन्दन ॥ आद्यश्वेतकलोरुद्रः सुतारस्तारणस्तथा ॥ ८२ ॥ सुहोत्रःकङ्कणश्चैव लौगाक्षिश्चमहामुनिः ॥ जैगीषव्यश्चभाव्योवै भगवान्दधिवाहनः ॥ ८३ ॥ ऋषभश्चमुनिर्धीमानुग्राहस्त्रिसुबालकः ॥ गौतमोवेदशीर्षश्च गोकर्णश्चशिखण्डिभृत ॥ ८४ ॥ गुहावासीजटामाली अट्टहासश्चदारुकः ॥ लाङ्गलीसंयमीशूली डिण्डीमुण्डीश्वरःस्त्रयम् ॥ ८५ ॥ सहिष्णुस्सोमशर्माच नकुलीशश्चपार्थिव ॥ कायावरोहणोभावीत्याद्यायोगेश्वराःक्रमात् ॥ ८६ ॥ एते वक्ष्यन्तिसंक्षिप्तं शिवधर्मंकलौयुगे ॥ एवंकलियुगेराजञ्छास्त्रसंक्षेपउच्यते ॥ ८७ ॥ शृणुतिष्यप्रवृत्तिञ्च हर्षोद्वेग

सुतार, तारण ॥ ८२ ॥ सुहोत्र, कंकण, लौगाक्षि महामुनि व जैगीषव्य व होनेवाले भगवान् दधिवाहन ॥ ८३ ॥ ऋषभ व बुद्धिमान् उग्राह और त्रिसुबालक, गौतम व वेदशीर्ष, गोकर्ण व शिखंडिभृत ॥ ८४ ॥ गुहावासी, जटामाली, अट्टहास, दारुक, लांगली, संयमी, शूली, डिण्डी व आनन्दी मुण्डीश्वर ॥ ८५ ॥ सहिष्णु, सोमशर्मा नकुलीश व हे राजन् ! कायावरोहण होवैंगे इत्यादिक योगीश्वर क्रमसे होंगे ॥ ८६ ॥ ये सब कलियुगमें संक्षेपमें प्राप्त शिवधर्म को कहेंगे हे राजन् ! इस

प्रकार कलियुगमें शास्त्रका संक्षेप कहाजाताहै ॥ ८७ ॥ हर्ष व शोचकरनेवाले कलियुगकी प्रवृत्तिको सुनिये कि उस कलियुग में अज्ञान से व्याकुल इन्द्रियोंवाले मनुष्य तमस्विनी (अज्ञानवती) माया व ईर्षा और वधसाधन करते हैं और कलियुग में मारनेवाला रोग होताहै व सदैव क्षुधाके भय होते हैं ॥ ८८ । ८९ ॥ और भयङ्कर अनावृष्टि भयहोगी व देशोंका विपर्यय (उलटपुलट) होजायगा और अधर्मके सेवन से मनुष्यों को वेदका प्रमाण नहीं होताहै ॥ ९० ॥ और अधर्मी, अनाचारी, बड़े क्रोधी व न्यून तेजवाले लालची मनुष्य झूंठ कहते हैं व स्त्रियोंके समान और दुष्ट सन्तानवाले होतेहैं ॥ ९१ ॥ दुष्टयज्ञों व दुष्ट पढ़नेसे और दुराचार

करौंकिल ॥ तिष्येमायामसूयाञ्च वधञ्चैवतमस्विनीम् ॥८८॥ साधयन्तिनरास्तत्र तमसाव्याकुलेन्द्रियाः ॥ कलौप्रमा यकोरोगःसततंक्षुद्भयानिच ॥८९॥ अनावृष्टिर्भयङ्घोरं देशानाञ्चविपर्य्ययः ॥ नप्रमाणंश्रुतेरस्ति नृणाञ्चाधर्मसेवनात् ॥ ९० ॥ अधार्मिकास्त्वनाचारा महाकोपाल्पतेजसः ॥ अनृतंब्रुवतेलुब्धानारीप्रायाश्चदुष्प्रजाः ॥ ९१ ॥ दुरिष्टैर्दुरधीतैश्च दुराचारैर्दुरागमैः ॥ विप्राणांकर्म्मदोषैश्च प्रजानांजायतेक्षयः ॥ ९२ ॥ उत्सीदन्तिक्षत्रियविप्रा वर्द्धन्तेशूद्रवैश्यकाः ॥ शूद्राविप्रैस्सहासन्ते शयनासनभोजनैः ॥९३॥ शूद्राश्चब्राह्मणाचाराः शूद्राचाराश्चब्राह्मणाः ॥ राजवृत्त्यांस्थिताश्चौराश्चौराचाराश्चपार्थिवाः ॥ ९४ ॥ एकपत्न्योविनश्यन्तिवर्द्धयन्त्यभिसारिकाः ॥ तदाह्यल्पफलाभूमिः कचिच्चापि महाफला ॥९५॥ अरक्षितारोहर्त्तारो राजानःपापनिर्दयाः ॥ अक्षत्रियास्तुराजानो विप्राःशूद्रोपजीविनः ॥ ९६ ॥ शूद्रा

व दुष्टशास्त्र और ब्राह्मणों के कर्मोंके दोषोंसे सन्तान का नाश होता है ॥ ९२ ॥ और क्षत्रिय व ब्राह्मण क्लेशको प्राप्त होतेहैं और शूद्र, वैश्य बढ़ते हैं व शूद्र लोग ब्राह्मणों के साथ शय्या, आसन व भोजन करने में बैठते हैं ॥ ९३ ॥ शूद्र ब्राह्मणों की नाई आचारवाले होते हैं और ब्राह्मण शूद्रों की नाई आचार करते हैं चोर राजाओंकेसे आचरण में स्थित होवैंगे व राजा लोग चोरों केसे आचार करैंगे ॥९४॥ और पतिव्रता स्त्री नाश होजावैंगी और अभिसारिकास्त्रिया बढ़ैंगी उस समय पृथ्वी थोड़े फलोंवाली होगी व कहीं बहुत फलोंवाली होगी ॥ ९५॥ और पापी व निर्दयी राजा लोग रक्षा करनेवाले न होवैंगे किन्तु द्रव्य लेनेवाले होंगे व राजालोग

१ कान्तार्थिनी तु या याति सकेत साभिसारिकेति ॥

अल्पवित्तिय होंगे याने दुःख से न छुडावैंगे व ब्राह्मण शूद्रकी जीविकावाले होंगे ॥ ९६ ॥ और ब्राह्मणों से प्रणाम कियेहुये सब शूद्र विवाद करेंगे और ब्राह्मणों को
देख कर आसन पै बैठे हुये थोडी बुद्धिवाले शूद्र लोग न चलैंगे ॥ ९७ ॥ और मुखपै हाथ धरकर ब्राह्मण लोग उस समय नीचभी शूद्रके कान में नम्रतापूर्वक
उससे वचन कहैंगे ॥ ९८ ॥ ब्राह्मणों के देखते हुये भी शूद्र ऊंचे आसन पै बैठे रहैंगे हे राजन् ! यह जानकर राजा उनको नहीं मारैगा हे राजन् ! काल
के बलको देखिये॥ ९९ ॥ थोड़े शास्त्र व थोड़ी भाग्य व बलसे संयुत ब्राह्मण लोग फूलों व उत्तम आसनों और गहनों से शूद्रों को पूजैंगे॥ १००॥ और ब्राह्मण

विवादिनस्सर्वे ब्राह्मणैरभिवन्दिताः ॥ आसनस्थान्द्विजान्दृष्ट्वा नचलन्त्यल्पबुद्धयः ॥ ९७ ॥ आस्येनिधायवैहस्तंकर्णे
शूद्रस्यचद्विजाः ॥ नीचस्यापितदावाक्यं वक्ष्यन्तिविनयेनतम् ॥ ९८ ॥ उच्चासनस्थाःशूद्राश्चद्विजानांपश्यतामपि ॥
ज्ञात्वानहिंसतेराजा पश्यकालबलंनृप ॥ ९९ ॥ पुष्पैःशुभासितैश्चैव तथान्यैर्मण्डलैर्द्विजाः ॥ शूद्रानभ्यर्चयन्त्यल्प
श्रुतभाग्यबलान्विताः ॥ १०० ॥ पाखण्डिनांचगृह्णन्ति ब्राह्मणाःकुप्रतिग्रहान् ॥ येनतेरौरवंयान्ति सुदुस्तारंद्विजाध
माः ॥ १ ॥ तपोयज्ञफलानाञ्च विक्रेतारोद्विजास्तथा ॥ अनयाश्चभविष्यन्ति बहवःकोटिशःकलौ ॥ २ ॥ पुरुषाल्पब
हुस्त्रीको नृणांचापत्यसम्भवः ॥ निन्दन्तिवेदवाक्यानि वेदार्थांश्चकलौयुगे ॥ ३ ॥ शूद्रैःस्वयंनिर्मितंयत्प्रमाणंशास्त्रमेव
तत् ॥ श्वापदप्रबलत्वंच गवांचापिह्युपक्षयः ॥ ४ ॥ कस्यचिद्दानप्रभृतिधर्मस्यास्तिनशुद्धता ॥ साधूनांबहवोनाशाः

लोग पाखंडियों के दुष्ट दानों को ग्रहण करते हैं जिससे कि वे अधम ब्राह्मण दुःखसे पार होने योग्य रौरव नरक को प्राप्त होते हैं ॥ १ ॥ और तपस्या व यज्ञके फलों
को बेंचनेवाले ब्राह्मण होवैंगे व कलियुग में बहुत से करोड़ों अन्याय होवैंगे ॥ २ ॥ और मनुष्योंके सन्तान की उत्पत्ति में पुत्र थोडे होवैंगे और कन्या बहुत होंगी व
कलियुग में पुरुष वेदवाक्यों की निन्दा करते हैं व वेदार्थों को निन्दते हैं ॥ ३ ॥ और जो आपही शूद्रों से निर्माण किया गया है वही शास्त्र प्रमाण होगा
और हिंसक जीवों की प्रबलता होगी व गौवों का भी विनाश होगा ॥ ४ ॥ दान इत्यादिक किसी धर्म की शुद्धता न होगी व साधुवों के मध्य में बहुत नाश

होजावैंगे और राजालोग अपनेही रक्षक होंगे ॥ ५ ॥ युगान्त प्राप्तहोने पर देश अट्ट[1] (अन्न) विक्रयवाले और ब्राह्मण वेंद वेंचनेवाले व स्त्रियां केश (भग) वेंच-नेवाली याने पुंश्चली होवैंगी ॥६॥ और घर स्त्रीप्रधान होवैंगे याने घरोंमें स्त्रियां प्रधानहोंगी और वे कर्कशा व कुवसन होंगी व बहुत भक्षणकरनेवाली और अहंकारिणी व कृत्या (अभिचार से उत्पन्न स्त्री) के समान होंगी ॥ ७ ॥ और सब वणिग्जन होंगे याने बनियाका काम करैंगे और इन्द्र चित्रवर्षी होंगे याने कहीं २ वृष्टि करेंगे और कुशीलसेवन व वृथारूपवाले पाखण्डों से विरेहुये मनुष्य होवैंगे ॥ ८ ॥ आपस में मनुष्य बहुत याचना करनेवाले होंगे और उससमय मनुष्य पापों में नि.शङ्क

पार्थिवाश्चस्वरक्षिणः ॥ ५ ॥ अट्टशूलाजनपदाः शिवशूलाश्चब्राह्मणाः ॥ प्रमदाःकेशशूलिन्यो युगान्तेसमुपस्थिते ॥ ६ ॥ स्त्रीप्रधानानिगेहानि कुचैलास्ताश्चकर्कशाः ॥ बहुभक्षानलिप्ताश्च कृत्याइवभवन्तिच ॥ ७ ॥ सर्वेवणिग्जनाश्चापि चित्रवर्षीचवासवः ॥ कुशीलचर्यापाखण्डैर्वृथारूपैस्समावृता ॥ ८ ॥ बहुयाचनकोलोको भविष्यतिपरस्परम् ॥ अशङ्कश्चैवपापेषु तदालोकोभविष्यति ॥ ९ ॥ हर्त्तारःपररत्नानांपरदारप्रधर्षकाः ॥ ऊनषोडशवर्षाश्च प्रजायन्तेयुगक्षये ॥ १० ॥ तथाद्वादशवर्षाश्च प्रसवन्तिस्त्रियस्तदा ॥ चौराश्चौरस्यहर्त्तारो हर्त्तुर्हर्त्तातथापरः ॥ ११ ॥ दानकर्म्मण्युपरते लोकेनिष्क्रियताङ्गते ॥ कीटमूषकसर्पाश्च धर्षयिष्यन्तिमानवान् ॥ १२ ॥ वर्णाश्रमाणांयेचान्ये पाखण्डाःपरिपन्थिनः ॥ तेतदाप्रोद्भविष्यन्तितेषांवृद्धिश्चपार्थिव ॥ १३ ॥ दुःखंपुत्रकलत्राच्च देहोत्सादस्सरोगता ॥ अधर्माभि

होवेंगे ॥ ९ ॥ और पराये रत्नोंके हरनेवाले व पराई स्त्रियोंकी धर्षणा करनेवाले पुरुष होंगे व युगक्षय में पुरुष पन्द्रहही वर्ष के होवैंगे ॥ १० ॥ व उससमय बारह वर्षवाली स्त्रियां सन्तान पैदा करैंगी व चोरकी वस्तुको भी चोर हर लेवैंगे वैसही हरनेवाले से अन्य हरलेगा ॥ ११ ॥ दान कर्म के नाश होनेपर व मनुष्य के कर्महीन होनेपर कीड़े, मूश व साप मनुष्यों को क्लेश देवैंगे ॥ १२ ॥ हे राजन् ! वर्ण व आश्रमों के शत्रु जो अन्य पाखण्ड हैं वे उस समय उत्पन्न

१ अट्टमन्नशिवोवेद शूलोविक्रयउच्यते । केशोभगमितिप्रोक्तस्मृपिभिस्तत्त्वदर्शिभिरिति ॥

होंगे और उनकी वृद्धिहोगी ॥ १३ ॥ और पुत्रों व स्त्रियों से दुःखहोगा व देहको क्लेश होगा और सरोगता होगी कलियुग में क्रमसे अधर्मका प्रवेशहोगा ॥ १४ ॥
और दोषोंके निधान कलियुग के एक बड़ेभारी गुणको सुनिये कि जिससे थोड़ेही समय करके मनुष्य सिद्धिको प्राप्तहोते हैं ॥ १५ ॥ सतयुगादिक तीनोंयुगोंवाले
पुरुष ऐसा कहतेहैं कि वे धन्यहैं जोकि श्रद्धासंयुत पुरुष कलियुग में श्रुति, स्मृति पुराणोंमें कहेहुये धर्मको करते हैं ॥ १६ ॥ त्रेतामें वर्षभर व द्वापरमें महीनेभरवाला
जिस प्रकार धर्म कहागया है वैसेही क्लेश करता हुआ पुरुष उस धर्मको मनुष्य कलियुग में एक दिन से प्राप्त होता है ॥ १७ ॥ हे राजन्! तीनों युगोंमें उतने

निवेशात्वंक्रमशोजायतेकलौ ॥ १४ ॥ कलेर्दोषनिधेश्चैवशृणुचैकंमहागुणम् ॥ यदल्पेनतुकालेन सिद्धिङ्गच्छन्ति
मानवाः ॥ १५ ॥ त्रियुगीयावदन्त्येवं धन्याधर्मंचरन्तिये ॥ श्रुतिस्मृतिपुराणोक्तं कलौश्रद्धापरायणाः ॥ १६ ॥ त्रेतायां
वार्षिकोधर्मो द्वापरेमासिकःस्मृतः ॥ यथाक्लेशंचरन्प्राज्ञस्तदह्नाप्राप्यतेकलौ ॥ १७ ॥ युगत्रयेणतावन्तः सिद्धिङ्ग
च्छन्तिपार्थिव ॥ यावन्तःसिद्धिमायान्ति कलौहरिहरव्रताः ॥ १८ ॥ अष्टाविंशेकलौयच्च भविताताम्निबोधमे ॥ त्रिषु
चैवसहस्रेषु कलेर्यातेषुपार्थिव ॥ १९ ॥ चर्चितायांसमाराध्य लप्स्यतेभूधरापहः ॥ त्रिशतेषुदशन्यूनेष्वस्यांम्भुवि
भविष्यति ॥ २० ॥ शूरकोनामवीराणामधिपःसिद्धमन्त्रकः ॥ २१ ॥ ततस्त्रिषुसहस्रेषु विंशत्याचाधिकेषुहि ॥ भ
विष्यतिविक्रमार्को राज्यंसोथप्रलप्स्यते ॥ २२ ॥ सिद्धिप्रसादाद्विपादे दीनान्यउद्धरिष्यति ॥ ततस्त्रिषुसहस्रेषु

पुरुष सिद्धि को प्राप्तहैं जितने कि कलियुग में विष्णु व शिवके नियमवाले पुरुष सिद्धिको प्राप्त होतेहैं ॥ १८ ॥ और अट्ठाईसवें कलियुग में जो होगा उसको मुझ
से सुनिये कि हे राजन्! कलियुग के तीन हज़ार वर्ष बीतने पर ॥ १९ ॥ पूजित भूमिमें शिवजी को आराधकर भूधरापह नामक राजा भूमिको पावैगा और दश
न्यून तीनसौ वर्ष बीतनेपर इस पृथ्वीमें वीरोंका स्वामी शूरकनामक होगा जोकि सिद्धमन्त्रवाला होगा ॥ २० । २१ ॥ तदनन्तर बीस अधिक तीन हजार वर्ष
कलियुग बीतनेपर विक्रमादित्य होवैंगे और वे राज्यको प्राप्तहोंगे ॥ २२ ॥ जोकि सिद्धिके प्रसाद से विपत्ति में दीनजनों को उधारैंगे तदनन्तर तीन हजार व सौ

अधिक वर्ष बीतनेपर ॥ २३ ॥ प्रजाओं के दरिद्र को हरनेवाले शुकनामक राजा होंगे तदनन्तर तीन हज़ार व छह सौ अधिक वर्ष बीतनेपर ॥ २४ ॥ मगधदेश में हेमसदन नामक पुरुषसे अंजनी स्त्री में विष्णुके अंश,धर्मरक्षक आपही साक्षात् बुध जी होवेंगे ॥ २५ ॥ व उन महात्मा के बडेभारी कर्म होवेंगे और वे ज्योतिर्विद इत्यादिक करोड़ों उग्र मनुष्यों को मारेंगे ॥ २६ ॥ और चौंसठि वर्षतक वे सातों द्वीपोंको भोगकर भक्तोंके लिये अपना यश छोड़कर पश्चात् स्वर्गको जावेंगे ॥ २७ ॥ जिस लिये सब अवतारों के गुणों से वे अधिक थे इस लिये भक्तलोग उन को समस्त पापोंके विनाशक बुध कहेंगे ॥ २८ ॥ और चार हजार चार सौ अधिक

शतेनाभ्यधिकेषुच ॥ २३ ॥ शुकोनामभविष्यश्चप्रजादारिद्र्यहारकः ॥ ततस्त्रिषुसहस्रेषु षट्शतैरधिकेषुच ॥ २४ ॥ मागधेहेमसदनादञ्जन्यांप्रभविष्यति ॥ विष्णोरंशोधर्मपाताबुधस्साक्षात्स्वयंप्रभुः ॥ २५ ॥ तस्यकर्माणिभूरीणि भविष्यन्तिमहात्मनः ॥ ज्योतिर्विदमुखानुग्रान् सहनिष्यतिकोटिशः ॥ २६ ॥ चतुःषष्टिंसवर्षाणि भुक्त्वाद्वीपानिसप्तच ॥ भक्तेभ्यःस्वयशोमुक्त्वा दिवंपश्चाद्व्रजिष्यति ॥ २७ ॥ सर्वेषाञ्चावताराणां गुणैस्समधिकोयतः ॥ ततोवक्ष्यन्तितंभक्ताः सर्वपापहरंबुधम् ॥ २८ ॥ चतुर्षुचसहस्रेषु शतेष्वपिचतुर्षुच ॥ साधिकेषुमहान्राजा प्रमतिःप्रभविष्यति ॥ २९ ॥ गोत्रेषुवैचन्द्रमसो वहुसेनापतिर्बली ॥ म्लेच्छान्सकोटिशोहत्वा पाखण्डानिचसर्वशः ॥ ३० ॥ वैदिकंकेवलंशुद्धं सद्धर्मंवर्त्तयिष्यति ॥ गङ्गायमुनयोर्मध्ये निष्ठांयास्यतिपार्थिव ॥ ३१ ॥ ततःप्रजाश्चकालेन केनापिभृशपीडिताः ॥ घोरञ्चाधर्म्ममाश्रित्य शाठ्येनचभवन्तिताः ॥ ३२ ॥ अप्रग्रहास्ततस्तावै लोभाविष्टाश्चवृन्दशः ॥ उपहिंसन्तिचान्यो

वर्ष बीतनेपर बड़ेभारी प्रमतिनामक राजाहोंगे ॥ २९ ॥ जोकि चन्द्रमा के वंशोंमें होकर बहुत सेनाओं का स्वामी व बलवान् वह करोड़ों म्लेच्छों व सब पाखण्डों को नाशकर ॥ ३० ॥ केवल वैदिक शुद्ध उत्तमधर्म को चलावैगा और हे राजन्! वह गङ्गा यमुनाके बीचमें नाशको प्राप्तहोगा ॥ ३१ ॥ तदनन्तर किसी समय से बहुतही पीड़ितहोकर वे प्रजा भयङ्कर धर्ममें आश्रितहोकर शठतासे युक्तहोवेंगे ॥ ३२ ॥ तदनन्तर बन्धन से रहित वे प्रजागण व्याकुल व श्रमसे पीड़ित तथा लोभमें

प्राप्तहोकर आपसमें हिंसा करेंगे ॥ ३३ ॥ श्रौत व स्मार्तधर्म नष्टहोजाने पर उस समय आपस में नष्ट व मर्यादारहित, दयाहीन स्नेहहीन और लज्जारहित ॥ ३४ ॥ व छोटे और पचीसही वर्ष की अवस्थावाले प्रजालोग घरों व स्त्रियोंको छोड़कर विषादसे व्याकुल इन्द्रियोंवाले वे हाहाभूत होकर भ्रमण करेंगे ॥ ३५ ॥ और अवर्षणसे नष्ट प्रजालोग जीविका को छोड़कर दुःखित होवेंगे और वे प्रजा अपने देशोंको छोड़कर पर्वतोंको सेवते हैं ॥ ३६ ॥ व नदी, समुद्र, कूपों और पर्वतों को सेवते हैं तथा बहुत दुःखी होकर मांस, मूल और फलोंसे जीविका करते हैं ॥ ३७ ॥ और फटे कपड़े, पत्तों और मृगचर्मोंको धारणकिये वे कार्यरहित व परिग्रहहीन होवेंगे

न्यं व्याकुलश्रमपीडिताः ॥ ३३ ॥ नष्टेश्रौतेतथास्मार्त्तेपरस्परहतास्तदा ॥ निर्मर्यादानिष्करुणानिःस्नेहानिरपत्रपाः ॥
३४ ॥ गृहान्दाराणिसंत्यज्य ह्रस्वकाःपञ्चविंशकाः ॥ हाहाभूताश्चरिष्यन्ति विषादव्याकुलेन्द्रियाः ॥ ३५ ॥ अ
नावृष्टिहताश्चैव वार्त्तामुत्सृज्यदुःखिताः ॥ पर्वतांस्तेनिषेवन्ते हित्वाजनपदान्स्वकान् ॥ ३६ ॥ सरित्सागरकूपांश्च से
वन्तेपर्वतांस्तथा ॥ मांसैर्मूलफलैश्चैव वर्त्तयन्तिसुदुःखिताः ॥ ३७ ॥ चीरपत्राजिनधरानिष्क्रियानिष्परिग्रहाः ॥ धर्मस्य
नाशनायैव शाल्योम्लेच्छोहनिष्यति ॥ ३८ ॥ उत्तमाधममध्यत्वं सर्वमुच्छिद्यघोरकृत ॥ ततस्तस्यवधार्थाय विष्णु
स्साक्षाज्जगत्पतिः ॥ ३९ ॥ सम्भलेविष्णुयशसोभूत्वापुत्रोद्विजोत्तमः ॥ द्विजोत्तमैःपरिवृतःशाल्यान्तंसविधास्यति ॥
४० ॥ कोटिशोर्बुदशःपापान्निहत्यसचसर्वशः ॥ पालयिष्यतितद्धर्म्मं योधर्म्मःश्रुतिपूर्वकः ॥ ४१ ॥ कृत्वापोतंधर्म्म
रूपं साधूनांपरमेश्वरः ॥ गमिष्यतिपरंलोकं कृत्वाकर्माणिभूरिशः ॥ ४२ ॥ ततःकृतयुगंभूयः प्रवर्तिष्यतिपार्थिव ॥

तब धर्मके नाशने के लिये शाल्य म्लेच्छ उनको मारेगा ॥ ३८ ॥ जोकि उत्तम, अधम व मध्य सबको नाशकर घोरकर्मकारी होगा तदनन्तर उसके मारने के लिये संसारके स्वामी साक्षात् विष्णुजी ॥ ३९ ॥ सम्भलनगर में विष्णुयशा के पुत्र होकर द्विजोत्तमों से घिरेहुये वे द्विजोत्तम विष्णु शाल्यका अन्त करेंगे ॥ ४० ॥ करोड़ों व अर्बुदों सब पापियोंको मारकर वे कल्किरूपी विष्णुजी उस धर्मको पालेंगे जोकि वेदपूर्वक है ॥ ४१ ॥ वे परमेश्वर साधुओंके लिये धर्मरूपी जहाज़ को करके

व बहुत से कर्मोंको कर परलोक को जावैंगे ॥ ४२ ॥ तदनन्तर हे राजन् ! फिर सतयुग वर्तमान होगा पहलेवाला सतयुग व अन्तवाला वह अन्य युगोंसे विशेष है ॥ ४३ ॥ और अट्ठाईसवां शेष कलियुग अन्यसे वर्तमान होकर तदनन्तर सूर्यवंश व चन्द्रवंश वर्त्तमान होगा ॥ ४४ ॥ मनुके पुत्र देवापि से व श्रुतदेव ब्राह्मण से फिर सृष्टि पैदाहोगी हे राजन् ! इस प्रकार चारों युगोंकी व्यवस्था परिक्रमण करतीहै ॥ ४५ ॥ चारोंयुगों में वे धन्यहैं जोकि शिव व विष्णुजीको भजतेहैं ॥ ४६ ॥
इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांयुगव्यवस्थावर्णनंनामपञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥ ● ॥ ● ॥

आद्यंकृतयुगंचान्त्यं तदन्येभ्योविशिष्यते ॥ ४३ ॥ अष्टाविंशःकलिश्चैव शेषःप्रावर्त्यचान्यतः ॥ ततःकृतेसूर्यवंशः सोमवंशःप्रवर्त्स्यति ॥ ४४ ॥ मन्वात्मजाच्चदेवापेः श्रुतदेवाच्चब्राह्मणात् ॥ इतिचातुर्युगीराजन् व्यवस्थापरिवर्त्तते ॥ ४५ ॥ चतुर्युगेतेधन्यावै जेभजन्तिहराच्युतौ ॥ ४६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डे युगव्यवस्थावर्णनंनामपञ्चत्रिंशोध्यायः ॥ ३५ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

करन्धमउवाच ॥ केचिच्छिवंसमाश्रित्य विष्णुमाश्रित्यवेधसम् ॥ वर्णयन्तिपरंमोक्षं त्वन्तुकस्मात्प्रमन्यसे ॥ १ ॥ महाकालउवाच॥ अपारवैभवादेवास्त्रयोप्येतेनरर्षभ॥ योगीन्द्राणामपितत्र चेतोमुह्यतिकिंमम ॥ २ ॥ पुराकिलैवंमुनयोनैमिषारण्यवासिनः ॥ सन्दिह्यन्तःश्रेष्ठतायां ब्रह्मलोकमुपागमन् ॥ ३ ॥ तस्मिन्क्षणेविरञ्चोपि श्लोकञ्चप्रब्रवीत्किल ॥ अनन्तायनमस्तस्मै यस्यान्तोनोपलभ्यते॥ ४ ॥ महेशायचह्यावेतौ मयिस्तांसुमुखौसदा ॥ ततःश्रेष्ठौच

दो० । नृपति करन्धम सन कह्यो महाकाल जिमि हाल । छत्तिसवें अध्याय में सोई चरित रसाल ॥ करंधम बोले कि कोई शिवके आश्रित होकर और कोई विष्णु व कोई ब्रह्माके आश्रित होकर उत्तम मोक्षको वर्णन करते हैं और तुम किससे मानते हो ॥ १ ॥ महाकालजी बोले कि हे नरश्रेष्ठ ! ये तीनों देवता अपार ऐश्वर्य वालेहैं उस विषय में योगीन्द्रों का भी चित्त मोहित होताहै फिर मुझको क्या कहनाहै ॥ २ ॥ पुरातन समय इस प्रकार नैमिषारण्य के बसनेवाले मुनिलोग श्रेष्ठत्व में सन्देह करतेहुये ब्रह्मलोक को गये ॥ ३ ॥ उस समय में ब्रह्माने भी प्रसिद्ध में इस श्लोकको कहा कि उन अनन्त के लिये नमस्कार है कि जिनका अन्त नहीं

मिलता है ॥ ४ ॥ व महेशजी के लिये नमस्कारहै ये दोनों सदैव मेरे ऊपर सुमुख (प्रसन्न) रहैं तदनन्तर मुनिलोग उन दोनोंको श्रेष्ठ मानकर क्षीरसागर को गये॥ ५ ॥ वहां योगेश्वर विष्णुजी इस श्लोकको पढ़तेहुये बोले कि समस्त प्राणियों में परमब्रह्मरूपी ब्रह्मा व सदाशिवजीको मैं प्रणाम करताहूं वे दोनों मेरे मंगलके लिये होवैं तदनन्तर विस्मय में प्राप्त होतेहुये वे मुनिलोग विष्णु के यहांसे लौटकर फिर चलेगये ॥ ६ । ७ ॥ और उन्होंने कैलास में पार्वती से यह कहतेहुये शिवजी को देखा कि एकादशी में विष्णुजी के मन्दिर के बीच जागरण में मैं नाचताहूं ॥ ८ ॥ व विष्णु और ब्रह्माकी प्रसन्नता के लिये मैं सदैव तपस्या करताहूं यह सुनकर

तौमत्वा क्षीरोदंमुनयोययुः ॥ ५ ॥ तत्रयोगेश्वरःश्लोकं प्रपठन्नमुमब्रवीत ॥ ब्रह्माणंसर्वभूतेषु परमंब्रह्मरूपिणम् ॥ ६ ॥ सदाशिवञ्चवन्देतौ भवेतांमङ्गलायमे ॥ ततस्तेविस्मिताविष्णोरपसृत्यययुःपुनः ॥ ७ ॥ कैलासेददृशुःस्थाणुं वदन्तंगिरिजांप्रति ॥ एकादश्यांप्रनृत्यामि जागरेविष्णुसद्मनि ॥ ८ ॥ सदातपस्याञ्चरामिप्रीत्यर्थंहरिवेधसोः ॥ श्रुत्वेतिचापसृत्यैव खिन्नास्तेमुनयोब्रुवन् ॥ ९ ॥ यदादेवानसंयान्ति पारंचैवपरस्परम् ॥ तत्सृष्टसृष्टसृष्टेषु गणनाकास्मदादिषु ॥ १० ॥ उत्तमाधममध्यत्वममीषांवर्णयन्तिये ॥ असत्यवादिनःपापास्तेयान्तिनिरयंध्रुवम् ॥ ११ ॥ एवन्तेनिश्चयामासुर्नैमिषेयास्तपस्विनः ॥ सत्यमेतच्चराजेन्द्र ममापीदंस्फुटम्मतम् ॥ १२ ॥ जापकानांसहस्राणि वैष्णवानांतथैवच ॥ शैवानांचविधिंविष्णुं स्थाणुंचाप्यत्रदान्भिदम् ॥ १३ ॥ तस्माद्यस्यमनोरागोयस्मिन्देवेभवेत्स्फुटम् ॥ सतंभजेद्धिपापःस्यान्नमेदंमतमुत्तमम् ॥ १४ ॥ करन्धमउवाच ॥ कानिपापानिविप्रेन्द्र यैस्तुसम्मूढचेतसः ॥ नदेवेषुन

लौटकरके दुःखित होतेहुये वे मुनिलोग बोले ॥ ९ ॥ कि जब देवता लोग आपस में पारको नहीं प्राप्तहोते हैं तो उनसे रचित से पैदा किये जनों से उत्पन्नहुये हम लोगोंकी क्या गिनती है ॥ १० ॥ इन तीनों में जो पुरुष उत्तम, अधम व मध्यमताको वर्णन करते हैं वे असत्यवादी निश्चयकर नरकको जाते हैं ॥ ११ ॥ इसप्रकार नैमिषारण्य में रहनेवाले उन तपस्वियों ने निश्चय किया और हे राजेन्द्र ! यह सत्यहै क्योंकि मेराभी यही प्रकटही मतहै ॥ १२ ॥ क्योंकि हज़ारों जापक वैष्णव व शैवोंने ब्रह्मा, विष्णु व शिवजीको यही कहाहै ॥ १३ ॥ इसलिये जिसके मनका स्नेह जिस देवतामें प्रकटही होवै वह उसको भजै तो पापहीन होगा यह मेरा उत्तम

मतहै ॥ १४ ॥ करन्धम बोले कि हे द्विजेन्द्र ! वे कौन पातकहैं कि जिनसे मूढ़ चित्तवाले मनुष्यका मन देवताओंमें और धर्मोंमें स्नेह को नहीं प्राप्त होताहै ॥ १५ ॥ महाकालजी बोले कि चित्तकी वृत्तियों के भेद से अधर्म के भेद जानने योग्य हैं और वे अनेकों करोड़ भेदोंसे स्थूल, सूक्ष्म व अतिसूक्ष्म हैं ॥ १६ ॥ उनमे जो पापसमूह नरकहेतुवाले स्थूल (मोटे) हैं वे संक्षेप से कहेजाते हैं जोकि मन, वचन, कर्मसे साधन कियेजाते हैं ॥ १७ ॥ पराई स्त्री व द्रव्यमें मनसे इच्छा करना व चित्तसे अशुभ चिन्तन करना और चित्तमें अकार्यका प्रवेशहोना यह चार प्रकारका मानसकर्म है ॥ १८ ॥ और असंबद्ध वचन कहना व असत्य और जो अप्रिय

धर्मेषु रतिमापद्यतेमनः ॥ १५ ॥ महाकालउवाच ॥ अधर्मभेदाविज्ञेयाश्चित्तवृत्तिप्रभेदतः ॥ स्थूलाःसूक्ष्माःसुसूक्ष्माश्च कोटिभेदैरनेकशः ॥ १६ ॥ तत्रयेपापनिचयाः स्थूलानरकहेतवः ॥ तेसमासेनकथ्यन्ते मनोवाक्कायसाधनाः ॥ १७ ॥ परस्त्रीद्रव्यसङ्कल्पश्चेतसानिष्टचिन्तनम् ॥ अकार्याभिनिवेशश्च चतुर्द्धाकर्ममानसम् ॥ १८ ॥ असंबद्धप्रलापित्वम सत्यंचाप्रियञ्चयत ॥ परापवादंपैशुन्यं चतुर्द्धाकर्मवाचिकम् ॥ १९ ॥ अभक्ष्यभक्षणंहिंसा मिथ्याकामस्यसेवनम् ॥ परस्वानामुपादानं चतुर्द्धाकर्मकायिकम् ॥ २० ॥ इत्येतद्द्वादशविधं कर्मप्रोक्तंत्रिसम्भवम् ॥ अस्यभेदान्पुनर्वच्मियेषां फलमनन्तकम् ॥ २१ ॥ येद्विषन्तिमहादेवं संसारार्णवतारकम् ॥ सुमहत्पातकोपेतास्तेयान्तिनरकाग्निषु ॥ २२ ॥ म हान्तिपातकान्याहुर्निरन्तरफलानिषट् ॥ नाभिवन्दन्तियेदृष्ट्वा शङ्करंनस्तुवन्तिच ॥ २३ ॥ यथेष्टचेष्टानिश्शङ्कास्सं

होताहै व पराई निन्दा व चुगुली करना यह चार प्रकारका वाचिककर्म है ॥ १९ ॥ अभक्ष्य का भोजन करना, जीवमारना व मिथ्या कामका सेवन और पराई द्रव्य का ग्रहण करना यह चार प्रकार का शारीरककर्म है ॥ २० ॥ मन वचन व कर्मसे उपजाहुआ यह बारह प्रकारका कर्महै फिर इसके भेदोंको कहताहूं कि जिनका अमित फलहै ॥ २१ ॥ संसार समुद्र के पार उतारनेवाले महादेवजी से जो वैर करते हैं वडेभारी पातकों से संयुक्त वे नरक की अग्नियों में प्राप्त होतेहै ॥ २२ ॥ और विद्वान्लोग निरन्तर फलोंवाले छह बडे पातकोंको कहते हैं कि जो शिवजीको देखकर न प्रणाम करते है और न स्तुति करतेहैं ॥ २३ ॥ और अपनी इच्छा

के अनुसार कर्म करनेवाले निस्सन्देह जो मनुष्य भलीभांति टिकते व रमण करते हैं और शिव व गुरुके सामने पूजन से रहित रहते हैं ॥ २४ ॥ व जो शिवजी के आचार को नहीं मानते हैं ये छह सदाशिवजी की भक्तिसे वैर करते हैं और गुरु, दुःखी व अशक्त व विदेश में टिकेहुये ॥ २५ ॥ और शत्रुओं से हारेहुये मनुष्य को जो पापकारी नर छोड़ता है और उनकी स्त्री पुत्र व मित्रोंमें जो अपमान करता है ॥ २६ ॥ यह गुरुकी निन्दाके बराबर बड़ाभारी पातक जाननेयोग्य है ब्रह्मघाती, मदिरा पीनेवाला, चोर व गुरुकी तल्प (शय्या व स्त्री) में गमन करनेवाला ॥ २७ ॥ ये महापातकी हैं और उनका साथ करनेवाला पांचवां पापी है क्रोध से या

तिष्ठन्तिरमन्तिच ॥ उपचारविनिर्मुक्ताः शिवस्यगुरुसन्निधौ ॥ २४ ॥ शिवाचारन्नमन्यन्ते शिवभक्तंद्विषन्तिषट् ॥ गुरुमार्तमशक्तञ्चविदेशप्रस्थितन्तथा ॥ २५ ॥ अरिभिःपरिभूतंवा यस्सन्त्यजतिपापकृत् ॥ तद्भार्यापुत्रमित्रेषु यश्चावज्ञांकरोतिवा ॥ २६ ॥ इत्येतत्पातकंज्ञेयं गुरुनिन्दासमंमहत् ॥ ब्रह्मघ्नश्चसुरापश्चस्तेयीचगुरुतल्पगः ॥२७॥ महापातकिनस्त्वेते तत्संसर्गीचपञ्चमः ॥ क्रोधाद्द्वेषाद्भयाल्लोभाद्ब्राह्मणस्यवदन्तिये॥२८॥मर्मान्तकंमहादोषं ब्रह्मघ्नास्सम्प्रकीर्त्तिताः ॥ ब्राह्मणंयस्समाहूय याचमानमकिञ्चनम् ॥२९॥ पश्चान्नास्तीतियोब्रूयात्सचवैब्रह्महास्मृतः ॥ यश्चविद्याभिमानेन नित्यंजयतिसद्द्विजम् ॥ ३० ॥ उदासीनंसभामध्ये ब्रह्महासप्रकीर्त्तितः ॥ मिथ्यागुणैःस्वमात्मानं नयत्युत्कर्षतांबलात् ॥ ३१ ॥ विरुद्ध्यगुरुभिस्सार्द्धं ब्रह्मघ्नःसचकीर्त्तितः ॥ क्षुत्तृषातप्तदेहानां द्विजानांभोक्तुमिच्छताम् ॥ ३२ ॥ यस्स

वैर, भय व लोभसे जो मनुष्य ब्राह्मण के मर्म (सुकुमारस्थान) के नाशक महादोषको कहते हैं वे ब्रह्मघाती कहेगये हैं जो कोई अकिंचन याने धनरहित मांगतेहुये ब्राह्मण को बुलाकर ॥ २८ । २९ ॥ और पश्चात् जो यह कहता है कि नहीं है वह ब्रह्मघाती कहागयाहै और जो विद्याके अभिमान से नित्य सभाके बीच में शत्रुता, मित्रता से रहित उत्तम ब्राह्मण को जीतता है वह ब्रह्मघाती कहागया है व वृथाही गुणोंसे जो बल करके गुरु याने उत्तमजनों से विरोधकर अपनी आत्माको उच्चता में प्राप्त करता है वह ब्रह्मघाती कहागया है और क्षुधा व प्याससे सन्तप्त शरीर वाले तथा भोजन चाहते हुये ब्राह्मणों के विषय में ॥३०।३१।३२॥

जो विघ्न करता है विद्वानों ने उसको ब्रह्मघाती कहाहै और समस्त मनुष्यों की जो चुगुली करता है व छिद्र (दोषों) के ढूंढने में लगारहता है ॥ ३३ ॥ और जो दुष्ट उद्वेग याने ऊब या दुःखको करता है वह ब्रह्मघाती कहागया है और प्याससे व्याकुल व जलके लिये समीप जातीहुई गौवोंका ॥ ३४ ॥ जो विघ्न करता है विद्वानों ने उसको ब्रह्मघाती कहाहै व पराये दोषको जानकर जो राजाके कानमें कहता है ॥ ३५ ॥ वह चुगुल बड़ा पापी व दुष्टहै विद्वानों ने उसको ब्रह्मघाती कहाहै ब्राह्मणों से न्यायकरके जो द्रव्य इकट्ठा कीजाती है छलसे या बलसे जो उसका हरलेना है वह ब्रह्महत्या के समान मानागया है और मूढबुद्धिवाला जो शास्त्रोंको पढ़कर

माचरतेविघ्नं तमाहुर्ब्रह्मघातकम् ॥ पिशुनस्सर्वलोकानां छिद्रान्वेषणतत्परः ॥३३॥ उद्वेगजननःक्रूरस्सचवैब्रह्महास्मृतः ॥ गवांतृषाभिभूतानां जलार्थमुपसर्पताम् ॥ ३४ ॥ यस्समाचरतेविघ्नं तमाहुर्ब्रह्मघातकम् ॥ परदोषंपरिज्ञाय नृपकर्णेजपेत्तुयः ॥ ३५ ॥ पापीयान्पिशुनःक्रूरस्तमाहुर्ब्रह्मघातकम् ॥ न्यायेनोपार्जितंविप्रैस्तद्द्रव्यहरणञ्चयत् ॥ ३६ ॥ छद्मनाथाबलाद्वापि ब्रह्महत्यासमस्मृतम् ॥ अधीत्ययश्चशास्त्राणि परित्यजतिमूढधीः ॥ ३७ ॥ सुरापानसमंज्ञेयं जीवनायैववापठेत् ॥ अग्निहोत्रपरित्यागस्तथायज्ञीयकर्मणाम् ॥ ३८ ॥ मातापितृपरित्यागः कूटसाक्ष्यंसुहृद्वधः ॥३९॥ अभक्ष्यभक्षणंचैव जन्तूनांकाम्ययाचयः ॥ ग्रामंवनंगवांवासं यःस्वक्रोधेनदीपयेत् ॥ ४० ॥ अतिपापानिघोराणि सुरापानसमानिच ॥ दीनसर्वस्वहरणं नरस्त्रीगजवाजिनाम् ॥ ४१ ॥ गोभूरत्नसुवर्णानामोषधीनांरसस्यच ॥ चन्दनागुरुकर्पूरकस्तूरीपट्टवाससाम् ॥ ४२ ॥ हस्तन्यासापहरणं रुक्मस्तेयसमंस्मृतम् ॥ कन्यानांवरयोग्यानामदानं

छोडदेता है ॥ ३६ । ३७ ॥ अथवा जीविकाही के लिये जो पढ़ता है वह मदिरा पीनेके समान जाननेयोग्य है व यज्ञवाले कर्मों और अग्निहोत्र का छोडना ॥३८॥ और माता, पिताका छोडदेना व झूठी गवाही देना व मित्रका मारना ॥ ३९ ॥ और अभक्ष्यका भोजन करना व प्राणियोंकी कामना से जो ग्राम, वन और गौवों के स्थानको क्रोधसे जलाता है ॥ ४० ॥ ये बडे भयङ्कर पातक हैं और मदिरा पीने के समान हैं दीनजन का सर्वस्व हरलेना और मनुष्य, स्त्री, हाथी व घोडोंका हरलेना ॥ ४१ ॥ और गऊ, भूमि, रत्न, सोना, ओषधी, रस, चन्दन, अगुरु, कपूर, कस्तूरी और रेशमी वस्त्रोंका ॥ ४२ ॥ व हाथमें धरीहुई वस्तुका हरलेना सुवर्ण

की चोरीके समान मानागया और वरकेयोग्य कन्याओं का समान वरके लिये न देना ॥ ४३ ॥ व पुत्र और मित्र की स्त्रियोंमें गमन करना व बहिनियों में गमन और कन्याके साथ घोर साहस करना व चाण्डाल की स्त्रीका सेवन ॥ ४४ ॥ और समान जातिवाली स्त्रीके साथ गमन (दुष्टकर्म) करना यह सब गुरुकी शय्या व स्त्रीके साथ दुष्कर्म करने के बराबर मानागया है और ब्राह्मणके लिये द्रव्य देनेके लिये प्रतिज्ञा कर फिर जो नहीं देताहै ॥ ४५ ॥ और जो ब्राह्मण स्मरण नहीं करता है वह पातक तुल्यहै अहंकार, बड़ा क्रोध, पाखण्डता व कृतघ्नता ॥ ४६ ॥ और विषयोंमें बहुत आसक्त रहना, कृपणता, शठता, ईर्षा व विन दोषमें पुत्र, मित्र व स्वामी

सदृशेवरे ॥ ४३ ॥ पुत्रमित्रकलत्रेषु गमनंभगिनीषुच ॥ कुमारीसाहसङ्घोरमन्त्यजस्त्रीनिषेवणम् ॥ ४४ ॥ सवर्णायाचगमनं गुरुतल्पसमस्मृतम् ॥ द्विजायार्थंप्रतिश्रुत्य नप्रयच्छतियःपुनः ॥ ४५ ॥ नचस्मारयतेविप्रस्तुल्यंतदुपपातकम् ॥ अभिमानातिकोपश्च दाम्भिकत्वंकृतघ्नता ॥ ४६ ॥ अत्यन्तविषयासक्तिःकार्पण्यंशाठ्यमत्सरम् ॥ पुत्रमित्रकलत्राणामदोषेस्वामिनस्तथा ॥ ४७ ॥ भृत्यानाञ्चपरित्यागस्साधुबन्धुतपस्विनाम् ॥ गवांक्षत्रियवैश्यानां स्त्रीशूद्राणाञ्चताडनम् ॥ ४८ ॥ शिवाश्रमतरूणाञ्च पुष्पारामविनाशनम् ॥ अयाज्यानांयाजनञ्च अयाच्यानाञ्चयाचनम् ॥ ४९ ॥ यज्ञारामतडागादिदारापत्यस्यविक्रयः ॥ तीर्थयात्रोपवासानां व्रतायतनकर्म्मणाम् ॥ ५० ॥ स्त्रीधनाद्युपजीवन्ति स्त्रीभिरत्यन्तनिर्जिताः ॥ अरक्षणञ्चनारीणां मद्यपस्त्रीनिषेवणम् ॥ ५१ ॥ ऋणानामप्रदानञ्च मिथ्यावृत्त्युप

का छोड़ना ॥ ४७ ॥ और सेवकों को त्याग करना व साधु, भाई, तपस्वियों और गऊ, क्षत्रिय, वैश्य व स्त्री और शूद्रोंको मारना ॥ ४८ ॥ व शिवजी के आश्रमवाले वृक्षोंका और फुलवारी का नाश करना व न यज्ञ करानेयोग्य जनोंको यज्ञकराना और न मांगनेयोग्य जनोंसे मांगना ॥ ४९ ॥ और यज्ञ, बगीचा, तडागादिक व स्त्री और पुत्रोंका बेंचना व तीर्थयात्रा, उपास व व्रत और देवमन्दिरादिक कर्मोंका बेंचना समान है ॥ ५० ॥ और स्त्रीके धन से जो जीविका करते हैं व स्त्रियों से अत्यन्तही जीतेहुये बराबर हैं स्त्रियोंकी रक्षा न करना और मदिरा पीनेवालेकी स्त्री का सेवन ॥ ५१ ॥ और ऋणोंको न देना व मिथ्यावृत्तिसे जीविका करना और

निन्दितजनों के धनका लेना और पतिव्रता व कन्याका वचन से दूषण देना ॥ ५२ ॥ व विष मारनेवाले यन्त्रों (कलों) का प्रयोग व नाशका कर्म करना व उच्चाटन प्रयोग और मोहन व वैरकर्म ॥ ५३ ॥ और जिह्वाके कामको भोगनेके लिये जिस का निजकर्मों में प्रारम्भ होवै व मूल्यसे जो पढ़ाता है व मूल्य देकर जो पढताहै ॥ ५४ ॥ और संस्कारहीनता, व्रतों का छोडना, सब भोजनों का सेवन और असत् शास्त्रों के सम्मुख जाना व सूखी तर्कों याने सन्देहों का अवलम्बन करना ॥ ५५ ॥ व देवता, अग्नि, गुरु व साधुवों की निन्दा तथा गऊ और ब्राह्मण, राजाओं व मण्डलेश्वरों की भी सामने या पीछे निन्दा करना ॥ ५६ ॥ और पितरों व

जीवनम् ॥ निन्दितानांधनादानं साध्वीकन्योक्तिदूषणम् ॥ ५२ ॥ विषमारणयन्त्राणां प्रयोगोन्मूलकर्मणी ॥ उच्चाटनाभिचारश्च रागविद्वेषणक्रिया ॥ ५३ ॥ जिह्वाकामोपभोगार्थं यस्यारम्भःस्वकर्म्मसु ॥ मूल्येनाध्यापयेद्यस्तु मूल्येनाधीयतेचयः ॥ ५४ ॥ व्रात्यताव्रतसन्त्यागः सर्वाहारनिषेवणम् ॥ असच्छास्त्राभिगमनं शुष्कतर्कावलम्बनम् ॥ ५५ ॥ देवाग्निगुरुसाधूनांनिन्दागोब्राह्मणस्यच ॥ प्रत्यक्षंचपरोक्षंवा राज्ञांमण्डलिनामपि ॥ ५६ ॥ उत्सन्नपितृदेवेज्याः स्वकर्मत्यागिनश्चये ॥ दुःशीलानास्तिकाःपापास्सदाचासत्यवादिनः ॥ ५७ ॥ पर्वकालेदिवाप्सु वियोनौपशुयोनिषु ॥ रजस्वलायायोनौवा मैथुनंयस्समाचरेत् ॥ ५८ ॥ स्त्रीपुत्रमित्रसुहृदामाशाछेदकराश्चये ॥ जनस्याप्रियवक्तारः क्रूराःसमयभेदिनः ॥ ५९ ॥ भेत्तातडागकूपानां विक्रेतारोरसस्यच॥एकपङ्क्तिस्थितानाञ्चपङ्क्तिभेदंकरोतियः ॥ ६० ॥ इत्येतैश्चनराःपापैरुपपातकिनःस्मृताः ॥ युक्तास्तद्वनकैःपापैः पापिनस्तान्निबोधमे ॥ ६१ ॥ येगोब्राह्म

देवताओं की यज्ञोंको जो छोडेहुये हैं और जो अपने कर्मोंके त्याग करनेवाले हैं और दुःशील, नास्तिक, पापी व सदैव झूंठ कहनेवाले ॥ ५७ ॥ और पर्व (ग्रहण या अमावस्या इत्यादिक) समय में और दिनमें व जलमें और अपना से भिन्न जातिमें तथा पशुयोनियों व रजस्वला की योनिमें जो मैथुन करता है ॥ ५८ ॥ और स्त्री, पुत्र, मित्र, स्नेहीजनों की आशाको जो नाश करते हैं जो मनुष्यको अप्रियवचन कहनेवाले और क्रूर व प्रतिज्ञाका नाश करनेवाले ॥ ५९ ॥ व तडाग और कूपोंको तोड़नेवाले और रसके बेंचनेवाले व एक पंक्तिमें बैठेहुये जनोंका जो पंक्तिभेद करता है ॥ ६० ॥ इन पातकों से मनुष्य उपपातकी कहेगये हैं उनसे न्यून

पापोंसे जो संयुक्तहैं उन पापियोंको मुझसे सुनिये ॥ ६१ ॥ कि गऊ, ब्राह्मण, कन्या और स्वामी, मित्र व तपस्वियोंके बीचमें जो कार्योंके निमित्त जातेहैं वे मनुष्य पापी कहेगये हैं ॥ ६२ ॥ जो पराई लक्ष्मीसे जलते हैं और जो हीन स्त्रीको सेवते हैं और जो फलके लिये दान व यज्ञादिक कर्मोंको करते हैं ॥ ६३ ॥ गोष्ठ (गोशाला) व जल और गांवके बीच चौराहों में व वृक्षकी छाया व पहाड़ों तथा बगीचा व देवमन्दिरों में जो विष्ठादिक त्यागते हैं ॥ ६४ ॥ जो नित्यही गान बजाने में तत्पर हैं व मत्तहोकर जो किलकिला शब्द में तत्पर हैं और कपटसे वेष कर्म व आचारवाले व कपट के व्यवहारवाले ॥ ६५ ॥ व कपटसे आज्ञा करनेवाले तथा कपट से

गोकन्यानां स्वामिमित्रतपस्विनाम् ॥ अन्तरंयान्तिकार्येषुतेस्मृताःपापिनोनराः ॥ ६२ ॥ परश्रियाभितप्यन्ते हीनां सेवन्तियेस्त्रियम् ॥ फलत्यर्थंयेचकुर्वन्तिदानयज्ञादिकाःक्रियाः ॥ ६३ ॥ गोष्ठाग्निजलरथ्यासु तरुच्छायानगेषुच ॥ त्यजन्तियेपुरीषाद्यमारामायतनेषुच ॥ ६४ ॥ गीतवाद्यरतानित्यं मत्ताःकिलकिलापराः ॥ कूटवेषक्रियाचाराः कूटसंव्यवहारिणः ॥ ६५ ॥ कूटशासनकर्त्तारः कूटयुद्धकराश्चये ॥ निर्दयोतीवभृत्येषु पशूनांदमनश्चयः ॥ मिथ्याप्रवदतेवाक्यमाकर्णयतियःशनैः ॥ ६६ ॥ योभार्यापुत्रमित्राणिबालवृद्धकृशातुरान् ॥ भृत्यानतिथिबन्धूंश्च त्यक्त्वाश्नाति बुभुक्षितान् ॥ ६७ ॥ यःस्वयंमिष्टमश्नाति विप्रायान्यत्प्रयच्छति ॥ वृथापाकस्सविज्ञेयो ब्रह्मवादिविगर्हितः ॥ ६८ ॥ नियमान्स्वयमादाय येत्यजन्त्यजितेन्द्रियाः ॥ येताडयन्तिगान्नित्यं त्रासयन्तिमुहुर्मुहुः ॥ ६९ ॥ दुर्बलान्नैवपुष्णन्ति पुष्टेनार्थंद्विषन्तिच ॥ पीडयन्त्यतिभारेण सक्षतान्वाहयन्तिच ॥ ७० ॥ तासामदत्त्वाचाश्नन्ति चिकित्सन्तिनरा

जो युद्ध करनेवाले हैं और सेवकों के ऊपर जो बड़ा निर्दयी है व जो पशुओं को दमन (शान्त) करनेवाला है और जो झूठ कहता है व जो धीरेसे सुनता है ॥ ६६ ॥ और जो स्त्री, पुत्र, मित्र, बालक, वृद्ध, दुबले, रोगी, सेवक, पाहुन, भाई इन सबों को क्षुधित छोड़कर भोजन करताहै ॥ ६७ ॥ और जो आप मीठा भोजन खाताहै व ब्राह्मण के लिये अन्य देता है वह ब्रह्मवादियों से निन्दित वृथापाक जानने योग्यहै ॥ ६८ ॥ आपही नियमों को लेकर इन्द्रियों को न जीतेहुये जो लोग छोड़देते हैं और जो नित्य गऊको पीटते हैं व बार बार दुःख देतेहैं ॥ ६९ ॥ जो दुबलोंको पुष्ट नहीं करते हैं व पुष्ट करनेके लिये जो वैर करते हैं व घावसमेत पशुओंको बड़े

बोझसे जो पीड़ित करते हैं व उनसे बोझ लेचलवाते हैं ॥ ७० ॥ और उनको न देकर आप भोजन करते हैं व जो रोगियोंकी ओषधि नहीं करते हैं व छगड़ी तथा भें-
डियोंसे जीविका करनेवाला और भैंसियों से जीविकावाला व शूद्राका पति ॥ ७१ ॥ और हीनजातिसे अपनी जीविकावाला, वैद्य व जो पाखण्डी है और जो शास्त्रका
उल्लङ्घनकर अपनी इच्छा से कर लेता है ॥ ७२ ॥ व सदैव दण्डकी रुचिवाला और जिसको दण्डकी रुचि न हो तथा जिस राजाकी राज्यमे घूसलेनेवाले अधि-
कारियों से और चोरोंसे प्रजा पीड़ित होतीहै वह नरक मे पचता है व जो बेचोर को चोरकी नाई देखता है और चोरको बेचोर की नाई देखता है ॥ ७३ । ७४ ॥

गिणः ॥ अजाविकोमाहिषिकस्सामुद्रीवृषलीपतिः ॥ ७१ ॥ हीनवर्णातमवृत्तिश्च वैद्योधर्मध्वजीचयः ॥ यश्चशास्त्रमति
क्रम्य स्वेच्छयाचाहरेत्करम् ॥ ७२ ॥ सदादण्डरुचिर्यश्चयोवादण्डरुचिर्नहि ॥ उत्कोचकैरधिकृतैस्तस्करैश्चप्रपीड्य
ते ॥ ७३ ॥ यस्यराज्ञःप्रजाराष्ट्रे पच्यतेनरकेषुसः ॥ अचौरंचौरवद्यश्च चौरंवाचौररूपिणम्॥७४॥आलस्योपहतोराजा
व्यसनीनरकंव्रजेत् ॥ एवमादीनिचान्यानि पापान्याहुःपुराविदः ॥ ७५ ॥ यद्वातद्वापरद्रव्यमपिसर्षपमात्रकम् ॥ अ
पहृत्यनरःपापो नारकीनात्रसंशयः ॥ ७६ ॥ एवमाद्यैर्नरःपापैरुत्क्रान्तेस्समनन्तरम् ॥ शरीरंपातनार्थाय पूर्वाकारम
वाप्नुयात् ॥ ७७ ॥ तस्मात्त्रिविधमप्येतन्नारकीयंविवर्जयेत् ॥ सदाशिवंचशरणं व्रजेत्सश्रद्धयायुतः ॥ ७८ ॥ नम
स्कारःस्तुतिःपूजा नामसङ्कीर्त्तनंतथा ॥ सम्पर्कात्कौतुकाल्लोभान्नतस्यविफलंभवेत् ॥ ७९ ॥ करन्धमउवाच ॥ संक्षे

और आलस्य से नाशित व व्यसनी राजा नरकको जाताहै इत्यादिक पापोंको पुरातन समय के जाननेवालों ने कहाहै ॥ ७५ ॥ अथवा सरसोंभरभी पराई द्रव्यको
हरकर मनुष्य पातकी होताहै इसमें सन्देह नहीं है ॥ ७६ ॥ इत्यादिक पापों से मनुष्य प्राण निकलने के उपरान्त नरक के दुःखों के लिये पहलेवाले आकार के
समान शरीर को प्राप्तहोता है ॥ ७७ ॥ इस लिये नरकवाले इस तीनों प्रकारके कर्मको वर्जित करै और श्रद्धासंयुत वह मनुष्य सदाशिवजीकी शरणमें जावै ॥ ७८ ॥
और नमस्कार स्तुति, पूजन व नामकीर्तन करै क्योंकि मेल, कौतुक (खेल) व लोभसे उसका वह पाप निष्फल न होगा ॥ ७९ ॥ करंधम बोले कि तुम संक्षेप से

शिवपूजाकी विधिको कहने के योग्यहो कि जिसके करने से मनुष्य शिवपूजन के फलको प्राप्तहोता है ॥ ८० ॥ महाकाल बोले कि प्रातःकाल, मध्याह्न व सायङ्काल
में सदैव शिवजी को भजै क्योंकि उनके दर्शन व स्पर्श से मनुष्य प्रकटही कृतार्थ होजाता है ॥ ८१ ॥ पहले स्नान करै अथवा विपत्ति से संयुत मनुष्य भस्मस्नान
व कण्ठ से स्नानकरै अथवा मन्त्रही से स्नान करै ॥ ८२ ॥ तदनन्तर भेंड़की ऊन से बनाहुआ या श्वेतवसन पहनै और गेरू इत्यादि धातुओं से रंगा व बहुत
मलिन व सिलाहुआ वसन न पहनै ॥ ८३ ॥ और कांधासूती दुपट्टा या अँगौछा धारण करै क्योंकि उसके बिना पूजन निष्फल होजाता है और मस्तक व कन्धों

पाच्छिवपूजाया विधानंवक्तुमर्हसि ॥ कृतेनयेनमनुजःशिवपूजाफलंलभेत् ॥ ८० ॥ महाकालउवाच ॥ प्रातर्मध्याह्न
सायाह्ने शङ्करंसर्वदाभजेत् ॥ दर्शनात्स्पर्शनान्मर्त्यः कृतकृत्योभवेत्स्फुटम् ॥ ८१ ॥ आदौस्नानंप्रकुर्वीत भस्मस्ना
नमथापिवा ॥ आपद्गतःकण्ठस्नानं मन्त्रस्नानमथापिवा ॥ ८२ ॥ आविकम्परिदध्याच्च ततोवासःसितंचवा ॥ धातुर
क्तमथोत्यर्थमलिनंसन्धितंनच ॥ ८३ ॥ उत्तरीयञ्चसन्दध्याद्विनातन्निष्फलार्चनम् ॥ भस्मत्रिपुण्ड्धारीच ललाटे
हृदिचांसयोः ॥ ८४ ॥ पूजयेद्योमहादेवं प्रीतःपश्यतितंमुहुः ॥ सर्वदोषान्विनिर्मुच्य शिवायतनमाविशेत् ॥ ८५ ॥ प्रवि
श्यचप्रणम्येशं ततोगर्भगृहंविशेत् ॥ पाणिप्रक्षाल्यतच्चित्तो निर्माल्यमवरोपयेत् ॥ ८६ ॥ योरुद्रायतनेभक्त्या कुरु
तेमार्ज्जनक्रियाम् ॥ तस्यात्मामार्ज्यतेतत्त्वं स्थाणुनैतत्परस्परम् ॥ ८७ ॥ रुद्रभक्तेनसन्तिष्ठेन्मालिन्यंमार्जितंक्वचि
त् ॥ भक्तदेवेनतिष्ठेन्नो मालिन्यंमार्जितंक्वचित् ॥ ८८ ॥ गडुकान्पूरयेत्पश्चान्निर्मलेनजलेनवै ॥ गडुकास्तुसमास्स

में भस्म के त्रिपुण्ड्र को धारनेवाला ॥ ८४ ॥ जो पुरुष श्रीसदाशिवजी को पूजताहै और प्रसन्न होकर बार २ उनको देखता है वह सब दोषों को छोड़कर शिवमन्दिर
में पैठे ॥ ८५ ॥ और पैठकर शिवजी को प्रणामकर उसके उपरान्त निवासमन्दिर में पैठे और हाथोंको धोकर उन्हींमें चित्त लगायेहुये वह पुरुष निर्माल्य अलग
करै ॥ ८६ ॥ जो पुरुष भक्तिसे शिवजी के मन्दिरमें झार बहोर करता है उसकी आत्मा शिवजी से यथार्थ शुद्ध कीजाती है यह परस्पर कर्म होताहै ॥ ८७ ॥ शिवजी के
भक्तसे शुद्ध कीहुई मलिनता चाहै कहीं स्थित होवै परन्तु भक्तके देव सदाशिव जैसे शुद्ध कीहुई मलिनता कहीं नहीं रहती है ॥ ८८ ॥ पश्चात् निर्मल जलसे गडुओं

को पूर्णकरै और गडुवा सब बराबर होवैं और देखने में सुन्दर होवैं ॥ ८९ ॥ और फूटे न होवैं तथा सुन्दर रूपवाले होवैं व सब जलसे पूर्णहोवैं और वसन से पवित्र जल याने छानेहुये जलोंसे पूर्ण व चन्दन और धूपसे अधिवासित (सुगन्धित) होवैं ॥ ९० ॥ और षडक्षर मन्त्रसे धोये व पूर्ण किये और लायेगये होवैं इस प्रकार एकसौ आठ गडुवों को करै अथवा अट्ठाईस करै ॥ ९१ ॥ अथवा अठारह या चार ही होवैं उससे न्यून न करावै और दूध, दही, घृत, शहद, व ऊखका रस ॥९२॥ इस प्रकार वह सब वस्तु शिवजी से बाईओर धरै तदनन्तर बाहर निकलकर द्वारपालोंको पूजै ॥ ९३ ॥ इसके उपरान्त सबोंके पढ़नेवाले मन्त्र कहेजाते हैं ॥ ९४ ॥

वें सर्वेचशुभदर्शनाः ॥ ८९ ॥ निर्व्रणास्सौम्यरूपाश्च सर्वेचोदकपूरिताः ॥ वस्त्रपूतजलैःपूर्णा गन्धधूपाधिवासिताः ॥ ९० ॥ क्षालिताःपूरितानीताः षडक्षरजपेनच ॥ गडुकाष्टशतंकुर्यादथवाचाष्टविंशतिम् ॥ ९१ ॥ अष्टादशापिचतुरस्त तोन्यूनन्नकारयेत् ॥ पयोदधिघृतंचैव क्षौद्रमिक्षुरसन्तथा ॥ ९२ ॥ एवंसर्वंचतद्द्रव्यंवामतस्संन्यसेद्भवात् ॥ ततोबहि र्विनिष्क्रम्य पूजयेत्प्रतिहारकान्॥९३॥सर्वेषांवाचकामन्त्राःकथ्यन्तेतःपरंक्रमात् ॥९४॥ ॐगंगणपतयेनमः ॐक्षेंक्षेत्र पालायनमः ॐगुंगुरुभ्योनमः इत्याकाशे ॥ ॐकुंकुलदेवतायैनमः ॐनंनन्दिनेनमः ॐमंमहाकालायनमः ॥ ९५ ॥ ततःप्रविश्यलिङ्गाच्च किञ्चिद्दक्षिणतःशुचिः ॥ उदङ्मुखःक्षणन्ध्यायेत्समकायासनस्थितः ॥ ९६ ॥ धर्मादिभिः परिवृतं मध्येपद्मार्कमण्डलम् ॥ सोममण्डलमध्यस्थंध्यायेद्वैवह्निमण्डलम् ॥ ९७ ॥ तन्मध्येविश्वरूपन्तं वामा ज्येष्ठादिशक्तिकम् ॥ पञ्चवक्त्रंदशभुजं त्रिनेत्रंचन्द्रभूषितम् ॥ ९८ ॥ वामाङ्कगिरिजन्देवं ध्यायेत्सिद्धैःस्तुतंमुहुः ॥ त

ॐगं गणपतयेनमः ॐक्षें क्षेत्रपालायनमः ॐगुं गुरुभ्योनमः इन मन्त्रोंसे आकाश में पूजन करै और कुं कुलदेवतायैनमः ॐनं नन्दिनेनमः ॐमं महाकालाय नमः ॥९५॥ तदनन्तर भीतर पैठकर लिंगके दक्षिणओर बैठकर पवित्र हो उत्तर मुख होकर समशरीर से आसनपै बैठकर क्षणभर ध्यानकरै ॥ ९६ ॥ कि धर्मादिकों से घिराहुआ बीचमें कमल के नाई सूर्यमण्डल है और चन्द्रमण्डल के बीचमें स्थित अग्निमण्डल का ध्यानकरै ॥ ९७ ॥ उसके बीचमें वामा व ज्येष्ठा इत्यादिक शक्तियोंसे संयुत उन विश्वरूप पांच मुखवाले दश भुजाओंवारे, तीन नयनोंवाले और चन्द्रमा से भूषित सदाशिव को ॥ ९८ ॥ कि जिनके बाईओर गोदीमें पार्वती

जीहैं व सिद्धोंसे बार बार स्तुति कियेजाते हैं उन शिवदेव का ध्यानकरै तदनन्तर हे राजन् ! सम्भव होनेपर पहले पादार्घ देवै ॥ ९९ ॥ जल, अक्षत, कुश, चन्दन
व घी समेत पुष्प, दूध दही और फिर शहद यह नवाङ्ग अर्घ कहागयाहै ॥ १०० ॥ तदनन्तर श्रद्धासे भीगे चित्तवाला पुरुष लिंगस्नान का आरम्भ करै पहले गडुवा
को लेकर मलस्नान करावै ॥ १ ॥ पहले आधेजल से नहवावै और मलको रगड़ै तदनन्तर सब से स्नान करावै पश्चात् पूजन करै उसके उपरान्त धूप देवै ॥ २ ॥
तदनन्तर भक्तिसे प्रणामकर मूलमन्त्र से स्नान करावै ॐवं विश्वमूर्तये शिवायनमः यह बारह अक्षरवाला मूलमन्त्रहै ॥ ३ ॥ जल व धूपके पूजन से अलग फिर मूल

त:पूर्वंप्रदद्याच्च पादार्घंशम्भवेन्नृप ॥ ९९ ॥ पानीयमक्षतादर्भागन्धपुष्पंससर्पिषा ॥ क्षीरंदधिमधुपुनर्नवाङ्गोर्घःप्र
कीर्तितः ॥ १०० ॥ ततःश्रद्धार्द्रचित्तश्च स्नानंलिङ्गस्यचारभेत ॥ गृहीत्वागडुकंपूर्वं मलस्नानंसमाचरेत् ॥ १ ॥ अर्द्धे
नस्नापयेत्पूर्वं कुर्याच्चमलघर्षणम् ॥ सर्वेणस्नापयेत्पश्चात् पूजयेद्धूपयेत्ततः ॥ २ ॥ प्रणम्यचततोभक्त्या स्नापयेन्मूल
मन्त्रतः ॥ ॐवंविश्वमूर्त्तयेशिवायनमः इतिद्वादशाक्षरोमूलमन्त्रः ॥ ३ ॥ वारिक्षीरदधिक्षौद्रघृतेनेक्षुरसेनच ॥
स्नापयेन्मूलमन्त्रेण जलधूपार्चनात्पृथक् ॥ ४ ॥ गडुकैःस्नापयेत्सर्वैस्ततोगन्धैर्विरूक्षयेत् ॥ विरूक्षितंततःस्नाप्य
श्रीखण्डेनविलेपयेत् ॥ ५ ॥ पूजयेद्विविधैःपुष्पैर्विधिनायेनतच्छृणु ॥ ॐऐश्वर्यायनमः आग्नेयपादे ॥ ॐधर्मायनमः
नैर्ऋत्यके ॥ ६ ॥ ॐशान्तायनमः वायव्ये ॥ ॐवैराग्यायनमः ईशानपादे ॥ ॐऐश्वर्यायनमः पूर्वपादे ॥ ७ ॥ ॐधर्माय
नमः दक्षिणे ॥ ॐअज्ञानायनमःपश्चिमे ॥ ॐअवैराग्यायनमःउत्तरे ॥ ८ ॥ ॐअनन्तायनमः ॐपद्मायनमः ॥ ॐआर्के

मन्त्रके द्वारा जल, दूध, दही, शहद, घी व ऊखके रससे स्नान करावै ॥ ४ ॥ व सब गडुवों से स्नान करावै तदनन्तर सुगन्धित वस्तुओं से उबटन लगावै उसके
उपरान्त उबटन लगायेहुये लिंगको नहवाकर चन्दन से लेपकरै ॥ ५ ॥ और जिस विधिसे अनेकभांति के फूलों करके पूजन करै उसको सुनिये कि ॐऐश्वर्यायनमः
इस मन्त्रसे आग्नेयस्थान में पूजै और धर्मायनमः इस मन्त्रसे नैर्ऋत्यदिशा में पूजनकरै ॥ ६ ॥ ॐशान्तायनमः इस मन्त्रसे वायव्यमें व ॐवैराग्यायनमः इस मन्त्रमे
ईशान स्थान में पूजनकरै और ॐऐश्वर्यायनमः इस मन्त्रसे पूर्वस्थान में पूजन करै ॥ ७ ॥ ॐधर्मायनमः इस मन्त्रसे दक्षिण में और ॐअज्ञानायनमः इस मंत्र

से पश्चिममें पूजन करै ॐवैराग्यायनमः इस मन्त्रसे उत्तर में पूजनकरै ॥ ८ ॥ ॐअनन्तायनमः ॐपद्मायनमः ॐअर्कमण्डलायनमः ॐसोममण्डलायनमः ॥९॥ ॐवह्निमण्डलायनमः ॐवामाज्येष्ठादिपञ्चमन्त्रशक्तिभ्योनमः ॐपरमप्रकृत्यैदेव्यै नमः इन मन्त्रोंसे चारों दिशाओं में पूजनकरै ॥ १० ॥ ॐईशान, तत्पुरुष, अघोर वामदेव व सद्योजात इन मन्त्ररूप पञ्चमुख के लिये और रुद्र, साध्य, वसु, आदित्य व विश्वेदेवादि देवरूप के लिये नमस्कार है और अण्डज, स्वेदज, उद्भिज व जरायुज चार प्रकारके सृष्टिरूप और स्थावर जंगम मूर्त्तिवाले परमेश्वर के लिये नमस्कार है ॥ ११ ॥ ॐहूं विश्वमूर्त्तये शिवायनमः ॐत्रिशूलधनुःखड्गकपालकु-

मण्डलायनमः॥ॐसोममण्डलायनमः॥९॥ॐवह्निमण्डलायनमः॥ ॐवामाज्येष्ठादिपञ्चमन्त्रशक्तिभ्योनमः॥ ॐपरमप्रकृत्यैदेव्यैनमश्चतुर्दिक्षु ॥ १० ॥ ॐईशानतत्पुरुषअघोरवामदेवसद्योजातपञ्चवक्त्राय रुद्रसाध्यवस्वादित्यविश्वेदेवादिदेवरूपाय॥ अण्डजस्वेदजोद्भिजजरायुजरूपायस्थावरजङ्गममूर्त्तये परमेश्वरायनमः ॥ ११ ॥ ॐहूंविश्वमूर्त्तयेशिवायनमः ॥ त्रिशूलधनुःखड्गकपालकुठारेभ्यः नमइति ॥ १२ ॥ ततोजलाधारमुखचण्डीश्वरायनमः ॥ एवं सम्पूज्यविधिवत्ततोर्घंसन्निवेशयेत् ॥ १३ ॥ पानीयमक्षताःपुष्पमेतैर्युक्तंफलोत्तमम् ॥ गृहाणार्घंमहादेव पूजासम्पूर्त्तिहेतवे ॥ १४ ॥ अर्घादनन्तरंशक्तः पूजयेद्वस्त्रपूजया ॥ धूपंदीपञ्चनैवेद्यं क्रमात्पश्चान्निवेदयेत् ॥ १५ ॥ घण्टाञ्चवादयेत्तत्र ततोनीराजनंचरेत् ॥ भ्रामयेद्देवदेवस्य शङ्खवादित्रनिःस्वनैः ॥ १६ ॥ नीराजनञ्चयःपश्येद्देवदेवस्यशूलिनः ॥

ठारेभ्योनमः इन मन्त्रोंसे अस्त्रोंका पूजनकरै ॥ १२ ॥ तदनन्तर जलाधारमुखचण्डीश्वरायनमः इस मन्त्रसे पूजन करै इसप्रकार विधिपूर्वक भलीभांति पूजकर तदनन्तर अर्घधरै ॥ १३ ॥ जल, अक्षत व फूल इनसे संयुक्त उत्तम फलवाले अर्घको हे महादेवजी ! पूजन के पूर्ण होनेके लिये ग्रहण कीजिये ॥ १४ ॥ अर्घ के उपरान्त समर्थ पुरुष वसन के पूजन से पूजै पश्चात् क्रमसे धूप, दीप व नैवेद्य निवेदन करै ॥ १५ ॥ और वहां घण्टा बजावै उसके उपरान्त नीराजन करै व उस नीराजनको शङ्ख इत्यादिक बाजाओं के शब्दोंसे देवदेव शिवजी के ऊपर घुमावै ॥ १६ ॥ जो पुरुष त्रिशूलधारी देवदेव शिवजी के नीराजन को देखता है वह समस्त

पातकोंसे छूटजाता है फिर जो करताहै उसको क्या कहनाहै ॥ १७ ॥ नाचना, गाना व बजाना इन तीनोंको जो करता है उसके ऊपर शिवजी प्रसन्न होतेहैं क्योंकि गाने बजाने में बहुत फलहै ॥ १८ ॥ उसके उपरान्त स्तोत्रोंसे स्तुतिकर दण्डाकी नाईं भूमिमें गिरकर प्रणामकरै तदनन्तर देवेश शिवजी से क्षमापन करावै कि सुकृत याने जो अच्छीतरह से कियागया हो व दुष्कृतहो उसको क्षमा कीजिये ॥ १९ ॥ इस प्रकार जो शिवजीको व विशेषकर इस लिंग में पूजताहै वह पिता, बाबा व परबाबा को ॥ २० ॥ सब पातक से उधारकर बहुत दिनोंतक शिवलोक में बसताहै इस प्रकार शैवहोकर उत्तम आचारकी स्थितिमें नियमवाला जो पुरुष ॥ २१ ॥

समुच्येत्पातकैस्सर्वैः किम्पुनर्यः करिष्यति ॥ १७ ॥ नृत्यंगीतञ्चवाद्यञ्च त्रितयंचापियश्चरेत् ॥ तस्यतुष्येदनन्तांहिगी
तवाद्येफलंयतः ॥ १८ ॥ स्तोत्रैस्स्ततश्चमंस्तूय दण्डवत्प्रणमेद्भुवि ॥ क्षमापयेच्चदेवेशं सुकृतंदुष्कृतंक्षम ॥ १९ ॥ यए
वंयजतेरुद्रमस्मिँल्लिङ्गेविशेषतः ॥ पितरंपितामहंचैव तथैवप्रपितामहम् ॥ २० ॥ सर्वपापात्समुत्तीर्य रुद्रलोकेवसेच्चिर
म् ॥ एवंमाहेश्वरोभूत्वासदाचारस्थितिव्रतः ॥ २१ ॥ पशुपाशविमोक्षार्थं पूजयेत्तन्मनायदि ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तः शि
वलोकंसगच्छति ॥ यएवंपूजयेद्रुद्रं तेनैवतर्पितंजगत् ॥ २२ ॥ किन्त्वेतत्सफलंराजन्नाचारंयोनलङ्घयेत् ॥ आचारा
त्फलतेधर्मोह्याचारात्स्वर्गमश्नुते ॥ २३ ॥ आचाराल्लभतेचायुराचाराद्धन्त्यलक्षणम् ॥ यज्ञदानतपांसीह पुरुषस्य
नभूतये ॥ २४ ॥ भवन्तियःसदाचारं समुल्लङ्घ्यप्रवर्त्तते ॥ तस्यकञ्चित्समुद्देशं वक्ष्येतंशृणुपार्थिव ॥ २५ ॥ त्रिवर्गसा

यदि पशुकी नाईं फँसरी से छूटने के लिये उनमें मन लगाकर पूजन करै तो सब पापोंसे छूटकर वह शिवलोक को जाता है जो इस प्रकार शिवजी को पूजताहै उसीने संसारभर को तृप्तकर दिया ॥ २२ ॥ परन्तु हे राजन्! यह उसका सफल होताहै कि जो आचारको नहीं नांघताहै क्योंकि आचारसे धर्म फलताहै और आचार से मनुष्य स्वर्गको भोगताहै ॥ २३ ॥ और आचारसे आयुर्बल को प्राप्तहोता है व आचार अलक्षणको नाशकरदेताहै इस लोकमें उस पुरुषकी यज्ञ, दान व तपस्या ऐश्वर्यके लिये नहीं होतीहै ॥ २४ ॥ जो कि उत्तम आचारको छोड़कर वर्तमानहोताहै हे राजन्! मैं उसके कुछ उद्देशको कहताहूं उसको सुनिये ॥ २५ ॥ कि त्रिवर्ग याने

धर्म, अर्थ व कामके साधनमें गृहस्थको यत्न करना चाहिये क्योंकि उसकी भलीभांति सिद्धि होने पर इस लोक व परलोकमें गृहस्थ की सिद्धिहोती है॥२६॥ ब्राह्ममुहूर्त में जागै और धर्म व अर्थका चिन्तन करै इसके अनन्तर उठकर दन्तधावनपूर्वक आचमनकर ॥ २७ ॥ शान्तचित्तवाला विद्वान् पवित्र होकर सन्ध्योपासन करै पहली याने प्रातःकाल की सन्ध्या नक्षत्रों समेत व पिछली सन्ध्या सूर्य समेत ॥ २८ ॥ न्यायपूर्वक उपासन करै इसको विन विपत्तिमें न छोडै और झूंठ व असत निरर्थक वचन व कठोरवचन को वर्जित करै ॥ २९ ॥ व हे राजन्! दुष्टकी सेवा, और असतवार्ता व असत् शास्त्रको वर्जित करै शीशा देखना, दतून व बालों में

धर्मेयत्नः कर्त्तव्योगृहमेधिना॥ तत्संसिद्धौगृहस्थस्य सिद्धिरत्रपरत्रच ॥२६॥ ब्राह्मेमुहूर्त्तेंबुध्येत धर्म्मार्थौंचापिचिन्तयेत् ॥ समुत्थायत्वथाचम्य दन्तधावनपूर्वकम् ॥ २७ ॥ सन्ध्यामुपासीतबुधः शान्तान्तःप्रयतःशुचिः॥ पूर्वांसन्ध्यांसनक्षत्रां पश्चिमांसदिवाकराम् ॥ २८ ॥ उपासीतयथान्यायंनैनांजह्यादनापदि ॥ वर्ज्जयेदनृतंचासत्प्रलापंपरुषंतथा ॥ २९ ॥ असत्सेवामसद्वादस्त्वसच्छास्त्रंचपार्थिव॥ आदर्शदर्शनंदन्तधावनंकेशसाधनम् ॥ ३० ॥ देवार्चनंचपूर्वाह्णे कार्याण्याहुर्महर्षयः॥ पालाशमासनंचैवपादुकेदन्तधावनम् ॥ ३१ ॥ वर्जयेदासनंचैव पदानाकर्षयेद्बुधः ॥ जलमग्निञ्चनानयेत युगपच्चविचक्षणः ॥ ३२ ॥ पादौप्रसारयेन्नैव गुरुदेवाग्निसम्मुखे ॥ चतुष्पथंचैत्यतरुं देवागारंतथायतिम् ॥ ३३ ॥ विद्याधिकंगुरुंवृद्धं कुर्यादेतान्प्रदक्षिणान् ॥ ३४ ॥ आहारनीहारविहारयोगास्सुसंवृता धर्म्मविदातुकार्याः ॥ वाग्बुद्धिवीर्याणितपस्तथैवदानायुषीगुप्ततमेचकार्ये ॥ ३५ ॥ उभेमूत्रपुरीषेतु दिवाकुर्यादुदङ्मुखः ॥ दक्षिणाभिमुखो

कङ्घी करना ॥ ३० ॥ और देवपूजन इनको महर्षियों ने पूर्वाह्ण याने दुपहर के पहलेवाले कार्य कहाहै और छिउलाका आसन, खडाऊं और दतून ॥ ३१ ॥ वर्जित करै व विद्वान् आसन को पैरसे न खींचै और चतुर मनुष्य एकही साथ जल व अग्निको न लेजावै ॥ ३२ ॥ और गुरु, देवता व अग्निके सामने पांवों को न फैलावै व चौराहा, देवमन्दिर के समीप वृक्ष, देवमन्दिर व संन्यासी ॥३३॥ और विद्यामें अधिक व गुरु तथा वृद्ध इनकी प्रदक्षिणा करै ॥ ३४ ॥ और धर्म जाननेवाले पुरुष को भोजन, दस्तुलाना व विहार के योग बहुतही छिपेहुये करने चाहिये और वाणी व बुद्धिके पराक्रम तथा तपस्या व दान और आयुर्बल अत्यन्त

ही गुप्त करना चाहिये ॥ ३५ ॥ और मल व मूत्र त्याग दोनों दिनमें उत्तरमुख होकर करना चाहिये और रात्रिमें दक्षिणमुख होकर करना चाहिये इस प्रकार आयुर्बल नहीं घटती है ॥ ३६ ॥ अग्नि के सामने, सूर्य के सम्मुख व गऊके सामने, ब्रह्मचारी के सम्मुख और चन्द्रमा व जलके सामने तथा सन्ध्यामें मल त्याग करने से बुद्धि नाश होती है ॥ ३७ ॥ भोजन, शयन, स्नान करनेपर व मल मूत्र त्यागने पर और गात्रके बीच चौराहा नांघनेपर इन पाचों कर्मोंमें सदैव आचमन करै ॥ ३८ ॥ नदीमें मल त्याग न करै और श्मशान व भस्ममें न करै तथा गोमय व जोते, बोयेहुये खेतमें और घाससे हरी भूमि में मल त्याग न करै ॥ ३९ ॥ और

रात्रौह्येवमायुर्नरिष्यते ॥ ३६ ॥ प्रत्यग्निंप्रतिसूर्यञ्च प्रतिगांप्रतिनम्प्रति ॥ प्रतिसोमोदकंसन्ध्यां प्रज्ञानश्यतिमेहतः ॥ ३७ ॥ भोजनेशयनेस्नाने उत्सर्गेमलमूत्रयोः ॥ रथ्याचङ्क्रमणेचैव पञ्चकेष्वाचमेत्सदा ॥ ३८ ॥ ननद्यांमेहनंकुर्यान्न श्मशानेनभस्मनि ॥ नगोमयेनचकृष्टे नैवोप्तेनैवशाद्वले ॥ ३९ ॥ उद्धृताभिस्तथाद्भिस्तु शौचंकुर्याद्विचक्षणः ॥ अन्तर्जलाद्देवकूलाद्वल्मीकान्मूषिकस्थलात् ॥ ४० ॥ अपविद्धापशौचाच्च वर्जयेत्पञ्चमृत्तिकाः ॥ गन्धलेपापहरणं शौचंकुर्यात्तथाबुधः ॥ ४१ ॥ नात्मानंताडयेन्नैव दद्याद्दुःखेभ्यएवच ॥ नोभाभ्यामपिपाणिभ्यां कण्डूयेदात्मनःशिरः ॥ ४२ ॥ रक्षेद्दारांस्त्यजेदीर्षां तांश्चनिष्कारणांबुधः ॥ सूर्यार्घ्यंचविनाकाश्चित्क्रियानैवाचरेत्तथा ॥ ४३ ॥ अद्रोहेणैवभूतानामल्पद्रोहेणवापुनः ॥ शिवचित्तोर्जयेद्वित्तं नचातिकृपणोभवेत ॥ ४४ ॥ नेर्ष्यःस्यान्नकृतघ्नःस्यान्नपरद्रोहकर्मधीः॥

ऊपर खींचेहुये जलोंसे चतुर नर शौचकरै और जलके बीचमें व देवस्थान के किनारे से और बँबौरि व मूसाके स्थानसे ॥ ४० ॥ व शौचसे फेंकीहुई इन पाचों मिट्टियोंको वर्जितकरै और विद्वान् चन्दनादिक गन्ध लेपके हरणपर्यन्त शौचकरै ॥ ४१ ॥ आत्माको ताडन न करै न दुःखोंकेलिये देवै और दोनों हाथोंसे अपने शिरको न खुजलावै ॥ ४२ ॥ विद्वान् स्त्रियोंकी रक्षाकरै व उनमें विनकारण ईर्षाको छोडदेवै वैसे ही सूर्यनारायण को अर्घ दिये विना कोई कर्म न करै ॥ ४३ ॥ प्राणियो के अवैरसे या अल्प वैरसे शिवचित्तवाला मनुष्य द्रव्यको इकट्ठाकरै और अत्यन्तकृपण न होवै ॥ ४४ ॥ ईर्षावान् न होवै न कृतघ्न होवै न पराये वैरकर्ममें बुद्धिको लगावै

और हाथ पांवसे चञ्चल न होवै न नेत्र चाञ्चलहोवै न शठ होवै ॥ ४५ ॥ और वाणी व अङ्गसे चञ्चल न होवै और दुष्ट के गोचर न होवै याने सामने न जावै और शुष्कवाद अर्थात् वृथा वार्त्ता न करै न वृथा देखकरै ॥ ४६ ॥ व उपायों से प्रयोजनों को सिद्धकरै और दण्ड उपाय तो अगतिक गतिहै याने जब और उपायों से कार्य न होवै तो दण्डकरै और टूटाआसन व टूटीशय्या व फूटा वर्तन त्याग करै ॥ ४७ ॥ और अग्नि व लिंगके बीचसे न जावै हे नृपोत्तम! व दो अग्नियों व ब्राह्मणों व स्त्री पुरुषों के बीचमें होकर न जावै ॥ ४८ ॥ और चन्द्रमा व सूर्यकी प्रतिमा के बीचमें न निकले और गधा व बैलके बीचमें न जावै क्योंकि इनके बीच

नपाणिपादचपलो ननेत्रचपलोऽनृजुः ॥ ४५ ॥ नचवागङ्गचपलो नचाशिष्टस्यगोचरः ॥ नशुष्कवादंकुर्वीत शुष्कवैरन्तथैवच ॥ ४६ ॥ उपायैस्साधयेदर्थान् दण्डस्त्वगतिकागतिः ॥ भिन्नासनंभिन्नशय्यां वर्ज्जयेद्भिन्नभाजनम् ॥४७॥ अन्तरेणनगच्छेच्च द्वयोर्ज्वलनलिङ्गयोः ॥ नाग्न्योर्नविप्रयोश्चैव नदम्पत्योर्नृपोत्तम ॥ ४८ ॥ नसूर्यसोमयोश्चैव खरस्यवृषभस्यच ॥ एतेषामन्तरंगच्छन् यतःपापमवाप्नुयात ॥ ४९ ॥ नैकवस्त्रश्चभुञ्जीत नाग्नौहोममथाचरेत् ॥ नवार्चयेद्द्विजान्नैव कुर्याद्देवार्चनंबुधः ॥ ५० ॥ खण्डनंपेषणंमार्ष्टिं जलसंशोधनंतथा ॥ रन्धनंभोजनंस्वाप उत्थानंगमनंक्षुतम् ॥ ५१ ॥ कार्यारम्भंसमाप्तिंच वचःप्रोक्त्वातथाप्रियम् ॥ पिबञ्जिघ्रन्स्पृशञ्छृण्वन् त्रिवक्षुमैथुनंतथा ॥ ५२ ॥ शुचित्वंचजपेत्स्थाणुं यःकृत्वाविंशतिंसदा ॥ माहेश्वरस्सहिज्ञेयः शेषोन्योनामधारकः ॥ ५३ ॥ सवैरुद्रमयो

में जाताहुआ पुरुष पापको प्राप्त होताहै ॥ ४९ ॥ व एकवस्त्र होकर भोजन न करै और न अग्निमें होमकरै और एक वस्त्रवाला होकर विद्वान् ब्राह्मणों को न पूजै न देवपूजनकरै ॥ ५० ॥ खण्डन (काटना), पेषण (पीसना), झाडबुहार, जलशोधन (जल छानना) व पाककर्म्म, भोजन, शयन, उठना, जाना, छींकना ॥५१॥ व कार्यारम्भ, कार्यसमाप्ति और अप्रियवचन कहकर व पीताहुआ, सूंघता हुआ, छूताहुआ, सुनताहुआ, कहताहुआ और मैथुन ॥ ५२ ॥ व पवित्रता इन बीस कर्मों को करके जो सदैव शिवजी को जपता है वह शैव जाननेयोग्य है और शेष नाम धारनेवाला है ॥ ५३ ॥ और निश्चयकर शिवमय होकर तदनन्तर अन्त में

शिवजी के समीप प्राप्त होता है और पराई स्त्रीसे सम्भाषण न करै और यदि वार्त्ता करै ॥ ५४ ॥ तो विद्वान् हे माता! हे बहन! हे पुत्रि! हे आर्ये! ऐसा कहै और जूंठे होकर कुछ न कहै न सूर्यनारायण को देखै ॥ ५५ ॥ और न चन्द्रमा को देखै न नक्षत्रोंको न देवताको और न अपने शिरको देखै तथा बहन, कन्या व माता इनके साथ एकान्तमें आसन न करै ॥ ५६ ॥ क्योंकि इन्द्रियों का समूह दुर्जय होताहै उससे पण्डितभी होकर मोहित होजाता है घरमें आयेहुये गुरुको देखकर आपही यत्नसे उठकर ॥ ५७ ॥ उसको आसन देवै और चरणों का प्रणाम करै और विद्वान् उत्तर ओर शिर करकेन सोवै न पश्चिम शिरकरके सोवै ॥ ५८ ॥ किन्तु दक्षिण

भूतस्ततश्चान्तेशिवंव्रजेत् ॥ परस्त्रियंनाभिभाषेत्तथासम्भाषयेद्यदि ॥ ५४ ॥ मातःस्वसर्थोपुत्रि आर्येतिचवदेद्बुधः ॥ उच्छिष्टोनालपेत्किञ्चिन्नचसूर्यंविलोकयेत् ॥ ५५ ॥ नेन्दुन्नतारकांश्चैव नदेवंनात्मनःशिरः ॥ स्वस्रादुहित्रामात्रावा नैकान्तासनमाचरेत् ॥ ५६ ॥ दुर्जयोहीन्द्रियग्रामो मुह्यतेपण्डितोपिसन् ॥ गुरुमभ्यागतंगेहे स्वयमुत्थाययत्नतः ॥ ५७ ॥ आसनंकल्पयेत्तस्य कुर्यात्पादाभिवन्दनम् ॥ नोदक्शिराःस्वपेज्जातु नचप्रत्यक्शिराबुधः ॥ ५८ ॥ शिरस्य गस्तिमाधाय शयीताथपुरन्दरम् ॥ उदक्यादर्शनंस्पर्शं वर्ज्यंसम्भाषणंतथा ॥ ५९ ॥ नाप्सुमूत्रंपुरीषंवा मैथुनंवासमाचरेत् ॥ कृत्वाविभवतोदेवमनुष्यर्षिसमर्पितम् ॥ ६० ॥ पितृणाञ्चततःशेषं भोक्तुमाहेश्वरोर्हति ॥ वाग्यतःशुचिराचान्तः प्राङ्मुखोदङ्मुखोपिवा ॥ ६१ ॥ अन्तर्जानुश्चताचित्तोभुञ्जीतान्नमकुत्सयन् ॥ नोपघातंविनादोषान्नतस्योदीरयेत्ततः ॥ ६२ ॥ नग्नःस्नानन्नकुर्वीत नशयीतव्रजेतवा ॥ दुष्कृतन्नगुरोर्ब्रूयात्क्रुद्धंचैनंप्रसादयेत् ॥ ६३ ॥ परिवादन्नशृणुया

ओर शिर धरकर या पूर्व शिरकरके सोवै और रजस्वला का दर्शन, छूना व सम्भाषण वर्जित करनेयोग्य है ॥ ५९ ॥ और जलोंमें मूत्र, विष्ठा व मैथुन न करै व ऐश्वर्य के अनुसार देवता, मनुष्य व ऋषियों को समर्पणकर ॥ ६० ॥ व पितरों को देकर तदनन्तर शेष अन्नको शैव भोजन करनेके लिये योग्य होता है वाणीको रोंके, पवित्र व आचमन कियेहुये पुरुष पूर्वमुख या उत्तरमुख होकर ॥ ६१ ॥ और दोनों जङ्घोंके बीचमें हाथकर व उसीमें चित्त लगाकर व निन्दा न करताहुआ मनुष्य अन्नको भोजन करै तदनन्तर नष्ट होने के विना उस अन्नके दोषों को न कहै ॥ ६२ ॥ व नंगे होकर स्नान न करै न सोवै और न गमनकरै और गुरुका

पातक न कहै व क्रोधितहुये इस गुरुको प्रसन्न करावै ॥ ६३ ॥ और अन्य पुरुषोंकी भी कहीहुई निन्दाको न सुनै व सैकडों कार्योंको भी छोडकर धर्मोंको सुनै ॥६४॥
क्योंकि नित्य नित्य वह पवित्रता घर व शीशाकी नाईं होतीहै और शुक्लपक्षवाली चौदसि में सदैव रात्रिभोजी होवै ॥ ६५ ॥ और गूझा, गुंझिया व मांस अपने लिये
न बनवावै और सायंकाल व प्रातःकाल में अतिथि का पूजनकरके भोजन करना चाहिये ॥६६॥ और दोनों सन्ध्याओंमें सोना, पढ़ना व भोजन विशेषकर वर्जित करै क्योंकि
अज्ञान से सन्ध्याओं में भोजन करता हुआ मनुष्य मदिरा पीनेवाले के समान होताहै ॥ ६७ ॥ और नहायाहुआ पुरुष बालोंको न हिलावै व मार्गमें छींकने और

दन्येषामपिजल्पितम् ॥ सदाचाकर्णयेद्धर्मांस्त्यक्त्वाकृत्यशतान्यपि ॥ ६४ ॥ नित्यंनित्यंहिसाशुद्धिः गेहदर्पण
योरिव ॥ शुक्लायाञ्चचतुर्दश्यां नक्तभोजीसदाभवेत् ॥ ६५ ॥ संयावंकृशरंमांसं नात्मार्थमुपसाधयेत् ॥ सायंप्रातश्च
भोक्तव्यं कृत्वाह्यतिथिपूजनम् ॥ ६६ ॥ स्वप्नाध्ययनभोज्यानि सन्ध्ययोश्चविवर्ज्जयेत् ॥ भुञ्जानस्सन्ध्ययोर्म्मो
हात्सुरापसदृशोभवेत् ॥ ६७ ॥ स्नातोनधूनयेत्केशान् क्षुतेनिष्ठीवितेध्वनि ॥ आलभेद्दक्षिणंकर्णं सर्वभूतानिक्षामये
त् ॥ ६८ ॥ नचापिनीलीवासःस्यान्नविपर्यस्तवस्त्रभृत् ॥ वर्ज्यञ्चमलिनंवस्त्रं दशाभिश्चविवर्ज्जितम् ॥ ६९ ॥ प्रक्षाल्य
मुखहस्तौच पादौचाप्युपविश्यतु ॥ अन्तर्ज्जानुस्त्रिराचामेद्द्विर्मुखंपरिमार्ज्जयेत् ॥ ७० ॥ तोयेनस्पर्शयेत्खानि स्वमू
र्द्धानन्तथैवच ॥ आचम्यपुनराचम्य क्रियाःकुर्वीतसर्वशः ॥ ७१ ॥ क्षुतेनिष्ठीवितेचैव दन्तलग्नेतथैवच ॥ पतिताना
ञ्चसम्भाषेत्कुर्यादाचमनक्रियाम् ॥ ७२ ॥ अध्येतव्यात्रयीनित्यं भूतयेचविपश्चिता ॥ धर्मतोधनमाहार्य्यं यष्टव्यंचा

थूंकनेपर दाहिने कान को छूलेवै और समस्त प्राणियों का क्षमापन करै ॥ ६८ ॥ और नीलेवसन को भी न पहनै न उलटा वस्त्र धारणकरै और मलिन व किनारों
से रहित वसन वर्जित करनेयोग्य है ॥ ६९ ॥ मुख व हाथ और चरणों को धोकर बैठकर व जङ्घोंके बीचमें हाथकर तीनबार आचमन करै व दोबार मुखधोवै ॥७०॥
और जलसे इन्द्रियों को स्पर्शकरावै और अपने मस्तक को छिडकै व आचमनकर फिर आचमन करके संपूर्णकर्मों को करै ॥ ७१ ॥ छींकने, थूंकने और दांतमे
अन्नादि लगेरहने पर और धर्मसे भ्रष्टजनोंके सम्भाषण करनेपर आचमनकरै ॥ ७२ ॥ और विद्वान् को ऐश्वर्यके लिये नित्यही वेदत्रयी पढ़ना चाहिये और धर्मसे धनको

पियत्नतः ॥ ७३ ॥ हीनेभ्योपिनयुञ्जीत त्वङ्कारङ्कर्हिचिद्बुधः ॥ त्वङ्कारोवावधोवेति गुरूणामुभयंसमम् ॥ ७४ ॥ सत्यं
वाच्यंमित्रभावेनभाव्यंवाक्यंवाच्यंनित्यमाश्वासकारि ॥ लोकेमुष्मिन्यद्धितंस्यात्तथास्मिन्नात्मायोगेयोजनीयोगभी
रैः ॥ ७५ ॥ तीर्थस्नानैस्सोपवासैर्व्रतैश्च पात्रेदानैर्होमजाप्यैश्चयज्ञैः ॥ भवार्चनैर्देवपूजाविशेषैरात्मानित्यंशोधनीयोमला
क्षैः ॥ ७६ ॥ यच्चापिकुर्वतोनात्मा जुगुप्सामेतिपार्थिव ॥ तत्कर्तव्यमसङ्गेन यच्चगोप्यंमहात्मने ॥ ७७ ॥ इतितेदिष्टउ
द्देशः कीर्तितःकिञ्चिदेवच ॥ शेषःस्मृतिपुराणेभ्यस्त्वयाश्रोतव्यएवच ॥ ७८ ॥ एवमाचरतोधर्मं महेशस्यगृहेस
तः ॥ धर्मार्थकामसम्प्राप्त्या परत्रेहचशोभनम् ॥ ७९ ॥ एवंनानाविधान्धर्मान् महाकालस्यफाल्गुन ॥ वदतोध्वनि
राकाशे सुमहानभ्यजायत ॥ ८० ॥ यावत्पश्यन्तियेतत्र समाजग्मुःशृणुष्वतान् ॥ ब्रह्माविष्णुःस्वयंरुद्रो देवीरुद्रग
णास्तथा ॥ ८१ ॥ इन्द्रादयस्तथादेवा वसिष्ठाद्यामुनीश्वराः ॥ तुम्बुरुप्रमुखाश्चापि गन्धर्वाप्सरसाङ्गणाः ॥ ८२ ॥ तान्स

लाना चाहिये व यत्नसे यज्ञ करना चाहिये ॥ ७३ ॥ और विद्वान् हीनजनोंके लिये भी त्वंकार कभी न युक्तकरै याने तुकारकर न बोले क्योंकि त्वंकार या वध गुरुओं
को दोनों बराबर हैं ॥ ७४ ॥ सत्य बोलना चाहिये व मित्रभाव से बर्ताव करना चाहिये व नित्य आश्वासनकारी (समझानेवाले) वचन बोलना चाहिये
और इसलोक में जो हितहोवै इसी योगमें गम्भीरजनों को आत्मा युक्त करना चाहिये ॥ ७५ ॥ तीर्थस्नान व उपाससमेत व्रतोंसे और पात्रमें दानदेने से और
होम,जप व यज्ञोंसे और शिवपूजन व देवपूजन के विशेषों से निर्मल इन्द्रियोंवाले जनोंको जीवात्मा शोधना चाहिये ॥ ७६ ॥ हे राजन् ! जिस कर्मको करतेहुये मनुष्य
का मन घृणाको न प्राप्तहोवै वह निस्संग होकर करना चाहिये और जो महात्मा के लिये गुप्त करने योग्य न हो उसको भी करना चाहिये ॥ ७७ ॥ यह उद्देश तुम
से बतलायागया व कुछ कहागया और शेष स्मृति, पुराणों से तुमको सुननाही चाहिये ॥ ७८ ॥ इस प्रकार धर्म करतेहुये घरमें वर्त्तमान शैव पुरुषको धर्म, अर्थ
व कामकी भलीभांति प्राप्तिसे परलोक व इस लोकमें शुभफल होताहै ॥ ७९ ॥ हे अर्जुनजी ! इस प्रकार महाकालजी के अनेकभांति के धर्मोंको कहतेहुये आकाश
में बड़ाभारी शब्दहुआ ॥ ८० ॥ और जबतक देखैं तबतक वहांपर जो आये उनको सुनिये कि ब्रह्मा, विष्णु व आपही शिवजी पार्वती देवी और शिवजीके गण ॥ ८१ ॥

वैसेही इन्द्रादिक देवता व वसिष्ठादिक मुनीश्वर और तुम्बरु इत्यादिक गन्धर्व व अप्सराओं के गण ॥ ८२ ॥ भक्तिकी आधिक्यता से अतिपूर्ण महाबुद्धिमान् महाकालजी ने उन महेश्वर आदिक सब देवताओं को बहुतभांति से पूजन किया ॥ ८३ ॥ तदनन्तर महीसागर के सङ्गममें उत्तम रत्नासन पै बैठेहुये महाकालका ब्रह्मादिक देवताओं ने अभिषेक किया ॥ ८४ ॥ तदनन्तर बडेभारी पदको पाकर श्रीमान् महाकालजीने देवेश शिवजी को प्रणामकर पार्वतीजीको मस्तक से प्रणाम किया ॥ ८५ ॥ तदनन्तर हे अर्जुन ! पार्वतीदेवीजी ने आनन्द से बड़ेबुद्धिमान् महाकालजी को अपनी गोदीमें लेलिया व पुत्रता में कल्पित किया ॥ ८६ ॥

हेशमुखान्सर्वान् महाकालोमहामतिः ॥ अर्चयामासबहुधाभक्त्युद्रेकातिपूरितः ॥ ८३ ॥ ततोब्रह्मादिभिर्देवैः शुभेर त्नासनेसच ॥ उपविष्टश्चाभिषिक्तो महीसागरसङ्गमे ॥ ८४ ॥ ततःश्रीमान्महाकालःप्राप्यचैवंपदंमहत् ॥ मूर्ध्नाप्रणम्य देवेशं गिरिजांचाभ्यवादयत् ॥ ८५ ॥ ततोदेव्यासमालिङ्ग्यनीतोत्सङ्गंस्वकम्मुदा ॥ पुत्रत्वेकल्पितःपार्थ महाकालोम हामतिः ॥ ८६ ॥ उक्तश्चयावद्ब्रह्माण्डमिदमास्तेशिवव्रत ॥ ८७ ॥ तावत्तिष्ठशिवस्थाने शिववच्छिवभक्तितः ॥ देवे नचवरोदत्तस्त्वल्लिङ्गंयोर्चयिष्यति ॥ ८८ ॥ जितेन्द्रियःशुचिर्भूत्वा अद्धामल्लोकमाप्स्यति ॥ दर्शनंस्तवनंपूजाप्रणाम श्चततोजपः ॥ ८९ ॥ दत्तंचान्यत्कृतंलिङ्गे ममातितृप्तिकारकम् ॥ इत्युक्तेविस्मितादेवाः साधुसाध्वितितेजगुः ॥ ९० ॥ ब्र ह्मविष्णुमुखाश्चैव महाकालंप्रतुष्टुवुः ॥ ततस्सुरैःस्तूयमानोवन्द्यमानश्चचारणैः ॥ ९१ ॥ नृत्यद्भिरप्सरोभिश्च गीतैर्ग

व कहा कि हे शिवव्रतवाले महाकालजी ! जबतक यह ब्रह्माण्ड है ॥ ८७ ॥ तबतक तुम शिवजी की भक्तिसे शिवके नाईं शिवस्थान में टिको और शिवदेवजी ने यह वरदान दिया किजो तुम्हारे लिंगको जितेन्द्रिय व पवित्र होकर पूजेगा वह साक्षात् मेरे लोकको प्राप्तहोगा और दर्शन,स्तुति,पूजन, प्रणाम और जप ॥८८।८९॥ व दान और लिंगमें अन्यभी कियाहुआ कर्म मुझको बहुतही तृप्तिकारक होगा ऐसा कहनेपर विस्मयको प्राप्त होतेहुये उन देवताओं ने बहुत अच्छा बहुत अच्छा ऐसा कहा ॥ ९० ॥ और ब्रह्मा, विष्णु आदिक देवताओ ने महाकाल की स्तुति किया तदनन्तर देवताओं से स्तुति कियेजाते व चारणों से प्रणाम कियेजाते

हुये महाकालजी ॥ ६१ ॥ नाचतीहुई अप्सराओं व गन्धर्वों से उत्पन्न उत्तम गीतों को गातेहुये गन्धर्वों और स्तुति करतेहुये करोड़ों करोड़ गणों से सब ओर घिरे
हुये ॥ ६२ ॥ शिव अग्रगामीवाले महाकालजी शिवजीके स्थानको चलेगये हे कुरुनन्दन ! इस प्रकार यह महालिंग उत्पन्न हुआहै ॥ ६३ ॥ और महाकाल का कूप व
तड़ाग भी सिद्धिदायक है हे अर्जुनजी ! यहांपर जो मनुष्य लिंगके आराधन में तत्पर होतेहैं ॥ ६४ ॥ उनको महाकालजी भलीभांति लिपटाकर सदाशिव के लिये
निवेदन करते हैं यह अतिअद्भुत लिंग तीनों लोकों में प्रसिद्ध है ॥ ६५ ॥ जिन्हों ने इस लिंगको देखा व स्पर्श किया और पूजन कियाहै वे शिवजी के मन्दिर को
चलेगये हैं हे अर्जुन ! इस प्रकार ये सातलिंग उत्पन्न हुयेहैं ॥ ६६ ॥ इस चरित्र को जो सुनते व पढ़तेहैं वे भी उत्तम मनुष्य धन्यहैं ॥ ६७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे

न्धर्वजैःशुभैः ॥ कोटिकोटिगणैश्चैव स्तुवद्भिस्सर्वतोवृतः ॥ ६२ ॥ महाकालोरुद्रधामगतोभवपुरस्सरः ॥ एवमेतन्महा
लिङ्गमुत्पन्नंकुरुनन्दन ॥ ६३ ॥ कूपश्चापिसरःपुण्यं महाकालस्यसिद्धिदम् ॥ अत्रयेमनुजाःपार्थलिङ्गस्याराधनेरताः ॥
६४ ॥ महाकालस्समालिङ्ग्य ताञ्छिवायन्यवेदयत् ॥ एतदत्यद्भुतंलिङ्गं त्रिषुलोकेषुविश्रुतम् ॥ ९५ ॥ दृष्टंस्पृष्टंपूजितंवै
गतास्तेभवसद्मनि ॥ एवमेतानिलिङ्गानि सप्तजातानिफाल्गुन ॥ ९६ ॥ येशृण्वन्तिगृणन्त्येतत्तेपिधन्यानरोत्तमाः ॥
६७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेमहाकालमाहात्म्यन्नामषट्त्रिंशोध्यायः ॥ ३६ ॥ * ॥ * ॥

नारदउवाच ॥ ततोमयास्थापितेच स्थानेकालान्तरेणह ॥ चिन्तितंहृदयेभूयो द्विजानुग्रहकाम्यया ॥ १ ॥ वासुदे
वंविहीनंहि तीर्थमेतन्नरोचते ॥ असूर्यंहिजगद्यद्वत्सहिभूषणभूषणः ॥ २ ॥ यत्रनैवहरिःस्वामी तीर्थेगेहेथमानसे ॥ शा

कुमारिकाखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायाभाषाटीकायांमहाकालमाहात्म्यवर्णनंनामषट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥ ❋ ॥ ❋ ॥

दो० । वृद्धवासुदेवहिं यथा थाप्यो है ब्रह्मर्षि । सैंतिसवें अध्याय में कह्यो सो चरित महर्षि ॥ नारदजी बोले कि तदनन्तर कुछ समय के बाद मैंने जब लिंगका
स्थापन किया तब फिर ब्राह्मणों के ऊपर दयाकी कामना से हृदय में चिन्तन किया कि ॥ १ ॥ विष्णुजी के विना यह तीर्थ नहीं अच्छा लगताहै जैसे कि विना
सूर्यके संसार नहीं अच्छा लगताहै क्योंकि वे विष्णुजी भूषणके भी भूषणरूपहैं ॥ २ ॥ जिस तीर्थ, घर, मन व शास्त्रमें विष्णुस्वामी नहीं हैं वह सब असत् है और

हंसतीर्थ है नहीं है किन्तु काकतीर्थ है ॥ ३ ॥ इस लिये पुरुषोत्तम वरदायक विष्णुको प्रसन्न कराकर संसार के ऊपर दयाकी कामना से उनको साक्षात् कलासे लाऊं-
गा ॥ ४ ॥ हे अर्जुनजी ! ऐसा चिन्तनकर तदनन्तर यहीं भलीभांति टिकेहुये मैंने ज्ञानयोग से योगीन्द्र विष्णुजीको सौवर्षतक प्रसन्न किया ॥ ५ ॥ इन्द्रियों को
रोंककर अष्टाक्षरमन्त्र को जपताहुआ मैं वासुदेव मे तन्मय होकर समस्त प्राणियों के ऊपर दया करने में परायण हुआ ॥ ६ ॥ इस प्रकार मुझसे आराधन कियेहुये
करोड़ों गणोंसे घिरे विष्णुजी गरुड पै बैठकर प्रत्यक्षहुये ॥ ७ ॥ तदनन्तर हाथ जोड़कर मैंने विधिपूर्वक विष्णुजी को अर्घ देकर इसके अनन्तर जुड़ेहुये हाथोंवाले

स्त्रेवातदसत्सर्वंहंसतीर्थंनवायसम् ॥ ३ ॥ तस्मात्प्रसाद्यवरदंतीर्थेस्मिन्पुरुपोत्तमम् ॥ आनेष्येकलयासाक्षाद्विश्वानुग्रह
काम्यया ॥ ४ ॥ इतिसञ्चिन्त्यकौरव्य ततोहञ्चात्रसंस्थितः ॥ ज्ञानयोगेनयोगीन्द्रं शतंवर्षाण्यतोपयम् ॥ ५ ॥ अष्टाक्ष
रंजपन्मन्त्रं सन्निगृह्येन्द्रियाणिच ॥ वासुदेवमयोभूत्वा सर्वभूतकृपापरः ॥ ६ ॥ एवंमयाराध्यमानो गरुडंहरिरास्थि
तः ॥ गणकोटीपरिवृतः प्रत्यक्षस्समजायत ॥ ७ ॥ ततोहंप्राञ्जलिर्भूत्वा दत्त्वार्घंविधिवद्धरेः ॥ प्रत्यवोचंप्रणम्याथ
प्रबद्धकरसम्पुटः ॥ ८ ॥ श्वेतद्वीपेपुरादृष्टं मयारूपंतवप्रभो ॥ अजंसनातनंविष्णो नरनारायणात्मकम् ॥ ९ ॥ तद्रू
पस्यकलामेकां स्थापयात्रजनार्द्दन ॥ यदितुष्टोसिमेविष्णोतदिदंक्रियतान्त्वया ॥ १० ॥ एवंमयाप्रार्थितःस प्रोवाचग
रुडध्वजः ॥ एवमस्तुब्रह्मपुत्र यत्त्वयाभीप्सितंहृदि ॥ ११ ॥ तत्तथाभवितासर्वं मयास्थेयंसदैवहि ॥ एवमुक्त्वागतेवि
ष्णौ निवेश्यस्वकलांप्रभौ ॥ १२ ॥ मयासंस्थापितोविष्णुर्लोकानुग्रहकाम्यया ॥ यस्मात्स्वयंश्वेतद्वीपनिवास्यत्र

मैंने प्रणामकर यह कहा ॥ ८ ॥ कि हे प्रभो, विष्णो ! पुरातन समय मैंने श्वेतद्वीपमें तुम्हारे जन्मरहित व सदैव रहनेवाले नरनारायणात्मकरूपको देखाहै ॥ ९ ॥
हे जनार्दनजी ! उस रूपकी एक कलाको यहा स्थापन कीजिये हे विष्णो ! यदि मेरे ऊपर प्रसन्नहो तो तुम यह करो ॥ १० ॥ मुझ से इस प्रकार प्रार्थना किये
हुये वे गरुडध्वज विष्णुजी बोले कि हे ब्रह्मपुत्र नारदजी ! ऐसाही होगा तुमने जो हृदय में इच्छा किया ॥ ११ ॥ वह सब वैसाही होगा मै सदैवही यहां टिकूंगा
ऐसा कहकर व अपनी कलाको स्थितकर जब विष्णु प्रभु चलेगये तब ॥ १२ ॥ संसारभर के ऊपर दयाकी कामना से मैंने विष्णुजी का स्थापन किया-जिस लिये

कि श्वेतद्वीपनिवासी विष्णुजी आपही यहां स्थित हैं ॥ १३ ॥ उसीकारण संसार भरके वृद्ध (बड़े) वृद्धनामक वासुदेव कहेगये हैं कार्त्तिक के शुक्लपक्ष में जो उत्तम एकादशी होती है ॥ १४ ॥ उसमें जलप्रस्रवण याने झरनाआदिकों में विधि से स्नानकर जो पुरुष भक्तिसे पंचोपचार पूजन करके अच्युत विष्णुजी को पूजन करै ॥ १५ ॥ व उपासकर जागरण करै और पाखण्ड व क्रोधसे रहित मनुष्य विष्णुके आगे गाना, बजाना व विष्णुजीकी कथाको करै ॥ १६ ॥ व नियममें प्राप्तहोकर प्रसन्नमनवाला मनुष्य यथाशक्ति से दानदेवै तो अनेक जन्मों से उपजेहुये समस्त पातकों से भी ॥ १७ ॥ यह पुरुष निस्संदेह छूटजाता है यद्यपि ब्रह्मघाती

हरिःस्थितः ॥ १३ ॥ वृद्धोविश्वस्यवृद्धाख्यो वासुदेवस्ततःस्मृतः ॥ कार्त्तिकेशुक्लपक्षेया भवत्येकादशीशुभा ॥ १४ ॥ स्नानंकृत्वाविधानेन तोयप्रस्रवणादिषु ॥ योर्च्चयेदच्युतंभक्त्या पञ्चोपचारपूजया ॥ १५ ॥ उपोष्यजागरं कुर्याद्गीतवाद्यंहरेःपुरः ॥ कथांवावैष्णवींकुर्याद्दम्भक्रोधविवर्ज्जितः ॥ १६ ॥ दानंदद्याद्यथाशक्त्या नियतोहृष्टमानसः ॥ अनेकभवसम्भूतात्कल्मषादखिलादपि ॥ १७ ॥ मुच्यतेसौनसन्देहो यद्यपिब्रह्मघातकः ॥ गरुडेनविमानेन वैकुण्ठपदमाप्नुयात् ॥ १८ ॥ कुलानांतारयेत्पार्थ शतमेकोत्तरंसतु ॥ श्रद्धायुक्तंमुदायुक्तंसोत्साहंसस्पृहंतथा ॥ १९ ॥ अहङ्कारविहीनञ्चस्नानंधूपानुलेपनम् ॥ पुष्पनैवेद्यसंयुक्तमर्घदानसमन्वितम् ॥ २० ॥ यामेयामेमहाभक्त्या कृत्वारार्तिकसंयुतम् ॥ चामराह्लादसंयुक्तं भेरीनादपुरस्कृतम् ॥ २१ ॥ पुराणश्रुतिसम्पन्नं भक्तिनृत्यसमन्वितम् ॥ विनिद्रंक्षुतृषास्वादास्पृहणीयंचभारत ॥ २२ ॥ तत्पादसौरभाघ्राणसंयुक्तंविष्णुवल्लभम् ॥ सङ्गीतंशार्वरंकृतं तत्क्षेत्रगमनान्वि

होवै तौ भी गरुड़रूपी विमान के द्वारा वह वैकुण्ठस्थान को प्राप्तहोवैगा ॥ १८ ॥ और हे अर्जुनजी ! वह एकसौ एक पुश्तियों को तारता है व श्रद्धायुक्त, प्रसन्नतायुक्त, उत्साह समेत और अभिलाष समेत ॥ १९ ॥ व अहङ्कारहीन, स्नान, धूप, चन्दन व पुष्प नैवेद्यसंयुक्त, अर्घ दानसंयुत ॥ २० ॥ और बड़ीभक्तिसे प्रत्येक पहर में आरतीसंयुत करके व चँवर के आनन्दसंयुत और भेरी शब्दपूर्वक ॥ २१ ॥ व पुराण, वेदसे संयुत, भक्तिसे नृत्य समेत, निद्रारहित व हे अर्जुन ! क्षुधा, प्यास के आस्वादन की इच्छा न करना ॥ २२ ॥ और उनके चरण सुगन्ध के आघ्राण संयुक्त व विष्णुके प्यारे रात्रिमें कियेहुये गानसंयुत और उनके तीर्थों में गमन

संयुत ॥ २३ ॥ व पवनकी रोंकसंयुक्त, ब्रह्मचर्य समेत स्तुतिवादसंयुक्त और चरणोदकसे भूषित ॥२४॥ सत्यसंयुक्त व उत्तमजनोंके संयोगसंयुत और पवित्र वार्त्तासमेत
इन पचीस विशेषों समेत जो मनुष्य एकादशी में जागरण करताहै वह फिर भूमि में नहीं उत्पन्न होताहै और यहींपर पहले ऐतरेयनामक उर्वीधर ब्राह्मण ॥२५।२६॥
महाभाग्यवान् विष्णुजी की प्रसन्नता से सिद्धिको प्राप्तहुआ है ॥ २७ ॥ अर्जुनजी बोले कि हे मुने ! ऐतरेय किसका पुत्रथा व इसका कहां निवासथा और विष्णुजी
की प्रसन्नता से वह बुद्धिमान् कैसे सिद्धिको प्राप्तहुआ है ॥ २८ ॥ नारदजी बोले कि इसी मेरे स्थानमें हारीतके वंशमें मांडूकि ऐसा वेदवेदांगों का पारगामी श्रेष्ठ

तम् ॥ २३ ॥ वायुरोधेनसंयुक्तं ब्रह्मचर्यसमन्वितम् ॥ स्तुतिवादेनसंयुक्तंपादोदकविभूषितम् ॥ २४ ॥ सत्यान्वितंसतां
योगसंयुतंपुण्यवार्तया ॥ पञ्चविंशतिभिर्युक्तं विशेषैर्जागरंनरः ॥ २५ ॥ एकादश्यांप्रकुर्वीत नपुनर्जायतेभुवि ॥ अत्रै
वोर्वीधरःपूर्वमैतरेयइतिद्विजः ॥ २६ ॥ सिद्धिंप्राप्तोमहाभागो वासुदेवप्रसादतः ॥ २७ ॥ अर्जुनउवाच ॥ ऐतरेयःकस्य
पुत्रो निवासःकास्यवामुने ॥ कथंसिद्धिमगाद्धीमान् वासुदेवप्रसादतः ॥ २८ ॥ नारदउवाच ॥ अस्मिन्नेवममस्थानेहा
रीतस्यान्वयेभवत् ॥ माण्डूकिरितिविप्राग्र्यो वेदवेदाङ्गपारगः ॥ २९ ॥ तस्यासीदितरानाम भार्यानारीगुणैर्युता ॥
तस्यामजायतसुतस्त्वैतरेयइतिस्मृतः ॥ ३० ॥ सचबाल्यात्प्रभृत्येव प्राग्जन्मन्यनुशिक्षितम् ॥ जजापमन्त्रंत्वनिशं
द्वादशाक्षरसंज्ञितम् ॥ ३१ ॥ नशृणोतिनवक्त्येव नचाध्येतिकथञ्चन ॥ ततोमूकोयमित्येव नानोपायैःप्रबोधितः ॥
३२ ॥ पित्रायदानकुरुते व्यवहारायमानसम् ॥ ततोनिश्चित्यमाण्डूकिर्जडोयमितिभारत ॥ ३३ ॥ अन्यान्विवाहया

ब्राह्मणहुआ है ॥ २९ ॥ उसके स्त्रियोंके गुणोंसे संयुत इतरा नामक स्त्री हुई उसमें ऐतरेय ऐसा कहाहुआ पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ ३० ॥ और वह बाल्यावस्था से लगाकर
ही पहले जन्ममें सीखेहुये द्वादशाक्षर मन्त्रको सदैव जपताभया ॥ ३१ ॥ और न सुनताथा न कहता था व न किसीप्रकार से कुछ पढ़ता था तदनन्तर इस कारण
से वह अनेक उपायों करके समझायागया कि यह गूंगाहै ॥ ३२ ॥ जब पिताके साथ व्यवहार के लिये उसने मन नहीं किया तदनन्तर हे अर्जुनजी ! मांडूकि ने

यह मूर्खहै ऐसा निश्चयकर ॥ ३३ ॥ अन्य पुत्रोंका विवाह किया व उनको स्त्री समेत किया और जो पिंगानामक स्त्रीथी उसके कर्मकाण्डमें चतुर व वेदों व वेदांगों
के कहनेवाले चार पुत्र पैदाहुये जोकि यज्ञों और शांतिक होमों में सब कहीं ब्राह्मणोंसे पूजितहुये ॥ ३४ । ३५ ॥ और ऐतरेयने भी नित्यही त्रिकाल विष्णुजी के
मन्दिरमें उत्तम जप करनेयोग्य मन्त्रका जपकिया और वह अन्यत्र परिश्रम नहीं करता था ॥ ३६ ॥ तदनन्तर ऐतरेय की माता ने सौति के पुत्रोंको वैसे देखकर
दुःखित मनमें पुत्रसे यह वचन कहा ॥ ३७ ॥ कि क्लेशही के लिये तुम पैदा हुये हो मेरे जन्म व जीवन को धिक्कार है क्योंकि इस मनुष्यलोक में उस स्त्री का पैदा

**मास दारान्पुत्रांस्तथाददे ॥ पिङ्गानामचयाभार्या तस्याःपुत्राश्चजज्ञिरे ॥ ३४ ॥ चत्वारःकर्म्मकुशला वेदवेदाङ्गवादि
नः ॥ यज्ञेषुशान्तिहोमेषु द्विजैस्सर्वत्रपूजिताः ॥ ३५ ॥ ऐतरेयोपिनित्यञ्च त्रिकालंहरिमन्दिरे ॥ जजापपरमंजाप्यं ना
न्यत्रकुरुतेश्रमम् ॥ ३६ ॥ ततोमातानिरीक्ष्यैव सपत्नीतनयांस्तथा ॥ दूयमानेनमनसा तनयंवाक्यमब्रवीत् ॥ ३७ ॥
क्लेशायैवचजातोसि धिग्मेजन्मचजीवितम् ॥ नार्यास्तस्यान्नृलोकेत्र वृथैवजननंस्फुटम् ॥ ३८ ॥ विमानिताचयाभर्त्रा
यत्पुत्रोनगुणैर्युतः ॥ पिङ्गयंकृतपुण्यावै यस्याःपुत्रामहागुणाः ॥ ३९ ॥ वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञास्सर्वत्राभ्यर्चिताद्विजैः ॥
तदहंपुत्रदुर्भाग्या महीसागरसङ्गमे ॥ ४० ॥ निमज्जिष्येवरंमृत्युर्जीवितेकिम्फलंमम ॥ त्वमप्येवंमहामौनी नन्दश
क्तोहरिंचिरम् ॥ ४१ ॥ नारदउवाच ॥ इतिमातुर्वचःश्रुत्वाप्रहस्यैतरेयकः ॥ ध्यात्वामुहूर्त्तंधर्मज्ञो मातरंप्रणतोब्रवी
त ॥ ४२ ॥ मातर्मिथ्याभिमूढासि अज्ञानेज्ञानवत्यसि ॥ अशोच्यंशोचसिशुभे शोच्यैर्नैवापिशोचसि ॥ ४३ ॥ देह**

होना प्रकटही वृथाहै ॥ ३८ ॥ कि जो पतिसे अपमान कीगई हो और जिसका पुत्र गुणोंसे संयुत न होवै इस पिंगाने पुण्यको कियाहै कि जिसके पुत्र बड़ेगुणी हैं ॥ ३९ ॥
जो कि वेद वेदांगों के तत्त्व (यथार्थ) को जाननेवाले व सब कहीं ब्राह्मणों से पूजित हैं इस लिये हे पुत्र ! अभाग्यवती मैं महीसागर के संगम में ॥ ४० ॥ डूब
जाऊँगी मृत्यु उत्तम है क्योंकि मेरे जीने में क्या फल है और समर्थ तुमभी महामौनी होकर विष्णु जीको बहुत दिन तक प्रसन्न करो ॥ ४१ ॥ नारद जी बोले कि
माताके यह वचन सुनकर हँसते हुये धर्मज्ञ ऐतरेय मुहूर्तभर ध्यान कर व माता को प्रणाम कर बोले ॥ ४२ ॥ कि हे माता ! तुम वृथाही मूढ़हो व अज्ञान में ज्ञान-

बती होती हो और न शोचने योग्य में शोचती हो हे शुभे ! शोचने योग्य वस्तुमें नहीं शोचती हो ॥ ४३ ॥ झूंठे संसार में इस देह के लिये तुम क्यों मोहित होती
हो यह तो मूर्खों का आचरण है विद्वानों को यह नहीं योग्य है ॥ ४४ ॥ संसारमें सारांश वस्तु अन्य है और मोहित मनुष्य अन्य सारांश देखते हैं जैसे कि दीपकके
नाईं स्थित जुगुनूको देखते हैं ॥ ४५ ॥ इस जिस वस्तु को तुम सारांश मानती हो उसकी भी असारताको सुनिये कि इसप्रकार की मनुष्यता गर्भ से लगाकर बड़ी कष्ट-
दायकहै ॥ ४६ ॥ हड्डी व पैररूपी तुला (घरके काष्ठ बंधनके लिये पीठ याने बंड़ेर) व खंभोंवाले और नसों के बंधन से बँधे हुये व रक्त मांस रूपी मिट्टीसे लीपे और
विष्ठा व मूत्ररूपी वस्तु पात्रवाले ॥ ४७ ॥ और बाल व रोमरूपी तृणों से आच्छादित व सुवर्णरूपी त्वचा युक्त उत्तम धातुवाले और मुख रूपी एक बड़े द्वारवाले

स्यास्यकृतेमिथ्या संसारेकिंविमुह्यसि ॥ मूर्खाचरितमेतद्धिविदुषामुचितन्नहि ॥ ४४ ॥ अन्यत्संसारसारञ्च सारमन्य
च्चमोहिताः ॥ प्रपश्यन्तियथारात्रौ खद्योतंदीपवत्स्थितम् ॥ ४५ ॥ यदिदंमन्यसेसारंशृणुतस्याप्यसारताम् ॥ एवंविधं
हिमानुष्यमागर्भादतिकष्टदम् ॥ ४६ ॥ अस्थिपादतुलास्तम्भे स्नायुबन्धेनयन्त्रिते ॥ रक्तमांसमृदालिप्ते विण्मूत्रद्र
व्यभाजने ॥ ४७ ॥ केशरोमतृणच्छन्ने सुवर्णत्वक्सुधातुके ॥ वदनैकमहाद्वारे पङ्गवाक्षविभूषिते ॥ ४८ ॥ अक्षिद्वयक
पाटेच तथादन्तार्गलान्विते ॥ नाडीस्वेदप्रवाहेचकालवक्त्रानलस्थिते ॥ ४९ ॥ एवंविधेशुभेगेही जीवोनामास्तिशोभ
ने ॥ गुणत्रयमयीभार्या प्रकृतिस्तस्यतत्रच ॥ ५० ॥ क्रोधाहङ्कारकामाश्च ईर्ष्यालोभादयोपिच ॥ अपत्यान्यस्यहाकष्ट
मेवंमूढःप्रवर्त्तते ॥ ५१ ॥ यस्ययोयोयथामोहस्तथातंशृणुतत्त्वतः ॥ स्रोतांसियस्यसततं प्रस्रवन्तिगिरेरिव ॥ ५२ ॥

तथा छहझरोखों से शोभित ॥ ४८ ॥ व दोनों नेत्ररूपी किवाड़वाले और दंतरूपी अर्गला (बेडक्न) से संयुत और नाड़ियों से पसीना रूप प्रवाहवाले व कालके
मुखरूपी अग्नि में स्थित ॥ ४९ ॥ इसप्रकार के उत्तम घरमे घरवाला जीव रहता है और उसमें उस जीव की त्रिगुणमयी प्रकृति स्त्री है ॥ ५० ॥ और क्रोध, अहंकार,
काम, ईर्ष्या, व लोभादिक इसके पुत्र है हाय बडे कष्टकी बातहै कि इसप्रकार वह मूढ़ जीव वर्तमान होताहै ॥ ५१ ॥ जिसका जो जो मोह जिस प्रकार होताहै उस
को उसी प्रकार से यथार्थ सुनिये कि जिसके कफ व मूत्रादिक झरना पहाड़ों की नाईं झरा करते हैं इसी देह के लिये मनुष्य मोहित होता है समस्त अपवित्र वस्तु

का निधान, विष्ठा व मूत्र से संयुत शरीर का एक अंग भी पवित्र नहीं विद्यमानहै अपने शरीर के सोतों (नाक, कान इत्यादिकों) को छूकर मिट्टी व जल से हाथ
पवित्र किया जाता है ॥ ५२ । ५३ । ५४ ॥ परन्तु अपने स्वभाव को नहीं छोड़ता है जैसे कि नवाई हुई कुत्ते की पूँछ कितनीही सीधी कीजाय परन्तु अपनी टेढ़ाई
रूप स्वभाव को छोड़कर वह सीधी न होगी अपने शरीर की दुर्गन्ध से जो पुरुष नहीं विराग को प्राप्त होता है ॥ ५५ ॥ उसको अन्य वैराग्य का कारण क्या उपदेश
दियाजाय दुर्गन्ध व लेपन कीहुई वस्तुके दूर करनेके लिये शरीर का शौच कहा गयाहै ॥५६॥ इन दोनों के नाश होने पर पश्चात् स्वभाव की शुद्धि से पवित्र होता

**कफमूत्रादिकान्यस्य कृतेदेहस्यमुह्यति ॥ सर्वाशुचिनिधानस्य शरीरस्यनविद्यते ॥ ५३ ॥ शुचिरेकःप्रदेशोपि विण्मू
त्रस्ययुतस्यच ॥ स्पृष्ट्वास्वदेहस्रोतांसि मृत्तोयैश्शोद्ध्यतेकरः ॥ ५४ ॥ नजहातिस्ववक्रंभावं श्वपुच्छमिवनामितम् ॥
स्वदेहाशुचिगन्धेन नविरज्येतयोनरः ॥ ५५ ॥ विरागकारणंतस्य किमन्यदुपदिश्यते ॥ गन्धलेपापनोदार्थंशौचंदे
हस्यकीर्त्तितम् ॥ ५६ ॥ द्वयस्यापगमात्पश्चाद्भावशुद्ध्याविशुद्ध्यति ॥ गङ्गातोयेनसर्वेण मृद्भारैश्चनगोपमैः ॥ ५७ ॥
सदैवह्याचरञ्छौचंभावदुष्टोनशुद्ध्यति ॥ श्वायदिक्षालितस्तीर्थे किंशुद्धिमधिगच्छति ॥ ५८ ॥ अन्तर्भावप्रदुष्टस्यवि
शतोपिहुताशनम् ॥ नस्वर्गोनापवर्गश्च देहनिर्दहनंपरम् ॥ ५९ ॥ भावशुद्धिःपरंशौचं प्रमाणंसर्वकर्म्मसु ॥ अन्यथालि
ङ्ग्यतेकान्ता भावेनदुहितान्यथा ॥ ६० ॥ अन्यथैवस्तनंपुत्रश्चिन्तयत्यन्यथापतिः ॥ चित्तंविशोधयेत्तस्मात् किमन्यै**

है क्योंकि समस्त गङ्गाजल से और पर्वत के समान मिट्टियोंके भारोंसे ॥ ५७ ॥ सदैवही शौच करताहुआ दुष्टस्वभाववाला पुरुष नहीं शुद्ध होताहै जैसे कि यदि कुत्ता
तीर्थमें धोयाजावै तो क्या शुद्धिको प्राप्तहोगा याने नहीं शुद्धहोगा ॥५८॥ वैसेही अग्निमें भी पैठतेहुये भीतर दुष्टभाववाले मनुष्यको न स्वर्ग होताहै और न मोक्ष होताहै
केवल देहका जलनाही होताहै ॥ ५९ ॥ समस्त कर्मोंमें भावकी शुद्धि परमशौच प्रमाण (मानीगई) है क्योंकि स्त्री और भावसे लिपटाई जातीहै और कन्या अन्यभाव
से ॥ ६० ॥ व पुत्र व माताके स्तनको और भावसे चिन्तन करता है व पति स्त्री के स्तनको अन्यभाव से देखताहै इस लिये चित्तको विशेषकर पवित्रकरै अन्य बाहरी

शोधनों से क्या है याने कुछ नहीं ॥ ६१ ॥ क्योंकि भावसे पवित्र जीवात्मावाला वह पुरुष आपही मोक्षको प्राप्तहोता है और ज्ञानरूपी निर्मलजल व फिर उत्तम वैराग्यरूपी मिट्टी से पुरुषके ॥ ६२ ॥ अविद्या व रागरूपी विष्ठा, मूत्रके लेप व दुर्गन्धका शोधन होताहै ऐसेही इस शरीर को विद्वानों ने स्वभावसे अपवित्र कहाहै ॥ ६३ ॥ यह निस्सार शरीर त्वचामात्र सारांशवाला केलाके साराश के समानहै इसप्रकार दोषवान् शरीरको जानकर जो विद्वान् शिथिल होजावै ॥ ६४ ॥ वह संसार से निकलजाता है और जो पुष्टता से ग्रहण कियेहै वह संसार में टिकताहै ऐसाही यह बड़ा कष्टवाला जन्मका दुःख कहागया है ॥ ६५ ॥ जोकि पुरुषों के

बाह्यशोधनैः ॥ ६१ ॥ भावतस्सविशुद्धात्मा स्वयंमोक्षञ्चविन्दति ॥ ज्ञानामलाम्भसापुंसस्सद्वैराग्यमृदापुनः ॥ ६२ ॥ अविद्यारागविण्मूत्रलेपगन्धविशोधनम् ॥ एवमेतच्छरीरंहि निसर्गादशुचिंविदुः ॥ ६३ ॥ त्वङ्मात्रसारंनिस्सारं कदलीसारसन्निभम् ॥ ज्ञात्वैवन्दोषवद्देहं यःप्राज्ञःशिथिलीभवेत ॥ ६४ ॥ सनिष्क्रामतिसंसाराद् दृढग्राहीसतिष्ठति ॥ एवमेतन्महाकष्टं जन्मदुःखंप्रकीर्त्तितम् ॥ ६५ ॥ पुंसामज्ञानदोषेण नानाकर्म्मवशेनच ॥ यथागिरिवराक्रान्तः कश्चिद्दुःखेनतिष्ठति ॥ ६६ ॥ तथाजरायुनादेही दुःखन्तिष्ठतिवेश्मसु ॥ पतितस्सागरेयद्वद्दुःखंतिष्ठतिव्याकुलः ॥ ६७ ॥ गर्भोदकेनसिक्ताङ्गस्तथास्तेव्याकुलःपुमान् ॥ ६८ ॥ लोहकुम्भेयथान्यस्य पच्यतेकश्चिदग्निना ॥ गर्भकुम्भेतथाक्षिप्तः पच्यतेजठराग्निना ॥ ६९ ॥ सूचीभिरग्निवर्णाभिर्विभिन्नस्यनिरन्तरम् ॥ यावद्दुःखंभवेत्तस्य तद्गर्भेष्टगुणंभवेत ॥ ७० ॥ इत्येतद्गर्भदुःखंहि प्राणिनांपरिकीर्तितम् ॥ चरस्थिराणांसर्वेषामात्मागर्भानुतापतः ॥ ७१ ॥ तत्रस्थस्यास्य

अज्ञान के दोषसे व अनेकभांति के कर्मवश से होताहै जैसे बड़ेभारी पर्वत से दबायाहुआ कोई पुरुष दुःखसे स्थित होताहै ॥ ६६ ॥ वैसेही जरायु (झोरी) से देहधारी पुरुष पेटरूपी घरमे दुःखसे टिकताहै जैसे समुद्र में गिराहुआ पुरुष व्याकुल होकर स्थित रहता है ॥ ६७ ॥ वैसेही गर्भके जलसे सींचेहुये अङ्गोंवाला पुरुष व्याकुल होकर रहता है ॥ ६८ ॥ जैसे लोहेके घड़ेमें धरकर कोई अग्निमें पकाया जाताहै वैसेही गर्भरूपी घड़ेमें फेंकाहुआ पुरुष जठराग्नि से पकता है ॥ ६९ ॥ अग्निके समान रंगवाली सूजियों से सदैव छेदतेहुये पुरुष को जितना दुःखहोताहै उसके अठगुना वह दुःख पेटमें होताहै ॥ ७० ॥ इस प्रकार प्राणियों का यह गर्भ

दुःख कहागया है श्रौर स्थावर जंगम सबही प्राणियों का जीवात्मा गर्भके दुःखसे विकल होताहै ॥ ७१ ॥ श्रौर उस पेटमें टिकेहुये इस पुरुषको सब जन्मोंका स्मरण होताहै कि मरकर मैं फिर पैदाहुआ व पैदाहोकर मैं फिर मरगया ॥ ७२ ॥ और पैदाहोतेहुये मैंने अनेकप्रकार की हज़ारों योनियों को देखाहै व इस समय पैदाहोकर मैं संस्कारों को पाकर ॥ ७३ ॥ तदनन्तर ऐसा पुण्यकर्म करूंगा कि जिससे गर्भ न होवै और संसार में वर्तमान होनेको हरनेवाले वेदको पढूंगा ॥ ७४ ॥ इस प्रकार चिन्तन करता व मोक्षके यत्नको विचारताहुआ वह कहताहै फिर पैदा होते हुये उस को गर्भसे कोटिगुना दुःखहोता है ॥ ७५ ॥ श्रौर गर्भवास में जो स्मरण होता है

सर्वेषां जन्मनांस्मरणंभवेत् ॥ मृतश्चाहंपुनर्जातो जातश्चाहंपुनर्मृतः ॥ ७२ ॥ नानायोनिसहस्राणि मयादृष्टानिजायता ॥ अधुनाजातमात्रोहं प्राप्तसंस्कारएवच ॥ ७३ ॥ ततःश्रेयस्करिष्यामि येनगर्भोनसम्भवेत् ॥ अध्येष्यामिचहरणं संसारविनिवर्तनम् ॥ ७४ ॥ एवंसञ्चिन्तयन्नाहमोक्षोपायंविचिन्तयन् ॥ गर्भात्कोटिगुणंदुःखं जायमानस्यजायते ॥ ७५ ॥ गर्भवासेस्मृतिर्यातु जायमानस्यनश्यति ॥ स्पृष्टमात्रश्चबाह्येतु वायुनामूढतांभजेत् ॥ ७६ ॥ सम्मूढस्यस्मृतिभ्रंशः शीघ्रंसञ्जायतेपुनः ॥ स्मृतिभ्रंशात्ततस्तस्य पूर्वकर्मवशेनच ॥ ७७ ॥ रतिस्सञ्जायतेतूर्णं जन्तोस्तत्रैवजन्मनि ॥ रतोमूढश्चलोकोयमकार्येसम्प्रवर्त्तते ॥ ७८ ॥ तत्रात्मानंविजानाति नपरञ्चदैवतम् ॥ नशृणोतिपरंश्रेयः सतिचक्षुषिनेक्षते ॥ ७९ ॥ समेपथिशनैर्गच्छंश्चलतीवपदेपदे ॥ सत्यांबुद्धौनजानाति बोध्यमानोबुधैरपि ॥ ८० ॥ संसारेक्लि

वह पैदा होतेहुये पुरुषका नष्ट होजाताहै श्रौर बाहर पवनसे छुवाही हुआ वह पुरुष अज्ञानताको भजताहै ॥ ७६ ॥ व बहुतही अज्ञानी उस प्राणीका फिर शीघ्रही स्मरण नाश होजाताहै तदनन्तर स्मरण नाशहोनेसे पूर्वकर्मवशके कारण उस ॥७७॥ प्राणी का स्नेह शीघ्रही उसी जन्ममें भलीभांति होजाता है श्रौर उसी जन्ममें स्नेहवाला यह मूढ मनुष्य न करनेयोग्य कर्ममें वर्तमान होताहै ॥ ७८ ॥ उसमें न अपनाको जानताहै और न दूसरे को व देवता को नहीं जानता है और उत्तम कल्याणदायक वस्तुको नही सुन्ता है व नेत्रोंके होनेपर भी नहीं देखता है ॥ ७९ ॥ श्रौर सम मार्गमें धीरे धीरे चलताहुआ वह पुरुष मानो पग पगभर चलता है श्रौर बुद्धिहोने

पर विद्वानों से बोध कराया जाताहुआ भी वह नहीं जानता है ॥ ८० ॥ और लोभके वश उसका अनुगामी होकर संसारमें भोगगण याने सुखसमूहों से क्लेशित होता है गर्भका स्मरण न रहने से उसके दुःखको कहनेके लिये महर्षियों ने स्वर्ग व मोक्षके साधन करनेवाले शास्त्रको कहा है परन्तु मनुष्य अपने कल्याणको नहीं करते हैं वह इस संसार में बडा अद्भुत चरितहै ॥८१।८२॥ फिर अप्रकट इन्द्रियों की वृत्तिके कारण बाल्यावस्था में बडाभारी दुःख होता है क्योंकि इच्छा करता हुआभी वह पुरुष कुछ कहने व करने के लिये समर्थ नहीं होताहै ॥ ८३ ॥ वैसेही दांतोंके उठने में बडा दुःखहोता है और मूढ़ता विधान से व अनेक भांतिके बाल

श्यतेभोगगणैर्लोभवशानुगः ॥ गर्भस्मृतेरभावेन शास्त्रमुक्तंमहर्षिभिः ॥ ८१ ॥ तद्दुःखकथनार्थाय स्वर्गमोक्षप्रसाधकम् ॥ नकुर्वन्त्यात्मनःश्रेयस्तदत्रमहदद्भुतम् ॥ ८२ ॥ अव्यक्तेन्द्रियवृत्तित्वाद्बाल्येदुःखंमहत्पुनः ॥ इच्छन्नपिनशक्नोति वक्तुंकर्तुञ्चकिञ्चन ॥ ८३ ॥ दन्तोत्थानेमहादुःखं मौढ्येनविधिनातथा ॥ बालरोगैश्चविविधैःपीडाबालग्रहैरिव ॥८४॥ तृड्बुभुक्षापरीताङ्गः क्वचित्तिष्ठतिरारटन् अक्षराध्ययनाद्यैश्च दुःखंस्याद्गुरुशासनात् ॥८५॥ प्रमत्तेन्द्रियवृत्तेश्चकामरागप्रपीडनात् ॥ ८६ ॥ रागोद्धतस्यसततं कुतस्सौख्यंहियौवने ॥ ईर्ष्ययासुमहद्दुःखं मोहोद्रिक्तस्यजायते ॥ ८७ ॥ मत्तस्यकुपितस्यैव रागोदुःखायकेवलम् ॥ नरात्रौविन्दतेनिद्रां कामानांपरिखेदतः ॥ ८८ ॥ दिवापिहिकुतस्सौख्यं द्रव्योपार्ज्जनचिन्तया ॥ नारीषुभ्रूणहत्याच सर्वदोषाश्रयासुच ॥ ८९ ॥ विण्मूत्रोत्सर्गसदृशं सौख्यंमैथुनतोम

रोगोंसे बालग्रहों (पूतनादिकों) की नाईं पीडाहोती है ॥ ८४ ॥ और प्यास व भूंखसे घिरेहुये अंगोंवाला वह कहीं बार २ रटताहुआ स्थित होताहै और गुरुकी आज्ञासे अक्षरों के पठनादिकों करके दुःख होता है ॥ ८५ ॥ और असावधान इन्द्रियों की वृत्तिमे काम व स्नेहकी पीड़ासे दुःखहोता है ॥ ८६ ॥ और युवावस्था में अनुराग से बढ़ेहुये पुरुष को सदैव कहांसे सुखहोवै और मोह बढ़ेहुये पुरुषको ईर्षामे बडा भारी दुःखहोता है ॥ ८७ ॥ असावधान व क्रोधित का अनुराग केवल दुःखहीके लिये होताहै और कामनाओंके दुःख मे रात्रिमें पुरुष निद्राको नहीं प्राप्तहोता है ॥ ८८ ॥ और दिनमें भी द्रव्य इकट्ठा करने की चिन्ता से कहांसे सुख होवै और समस्त दोषों की आश्रयरूप स्त्रियों में भ्रूण (गर्भ) की हत्या होती है ॥ ८९ ॥ और मैथुन से विष्ठा व मूत्रके त्यागने के समान सुख मानागया है व

सन्मान, अपमान, वियोग व प्रियवस्तु के प्राप्तहोने से ॥ ९० ॥ यौवन वृद्धता से ग्रसगया तो मनुष्य कहांपर सुखको भजै सिमटे और पकेहुये बालोंसे संयुत शरीर
करके शिथिल देहवाला ॥ ९१ ॥ और वृद्धतासे जर्जर कियाहुआ मनुष्य समस्त कर्मोंमें अशक्त होगया और पहले स्त्री पुरुषों का जो यौवन व रूप आपस में प्रिय
था ॥ ९२ ॥ वृद्धतासे ग्रसाहुआ वही दोनोंकोभी अप्रियहोगया और वृद्धतासे तिरस्कृत पुरुषका स्त्री पुत्रादिक व भाइयों ॥ ९३ ॥ और दुष्टकर्मी नौकरों से निःशक्ति के
कारण अपमान कियाजाताहै धर्म, अर्थ, काम और मोक्षको भी चौथी अवस्थासे ॥ ९४ ॥ मनुष्य साधनकरनेकेलिये समर्थ नहीं होताहै इसलिये युवावस्थामें प्राप्तहोकर मनुष्य

तम् ॥ सन्मानेनापमानेन वियोगेनष्टसङ्गमैः ॥ ९० ॥ यौवनंजरयाग्रस्तं सौख्यंकुत्रभवेन्नरः ॥ वलीपलितकायेन शि
थिलीकृतविग्रहः ॥ ९१ ॥ सर्वक्रियास्वशक्तश्च जरयाजर्जरीकृतः ॥ स्त्रीपुंसोर्यौवनंरूपं यदन्योन्यप्रियम्पुरा ॥ ९२ ॥
तदेवजरयाग्रस्तमुभयोरपिनप्रियम् ॥ जराभिभूतःपुरुषः पत्नीपुत्रादिबान्धवैः ॥ ९३ ॥ अशक्तत्वाद्दुराचारैर्भृत्यैश्च
परिभूयते ॥ धर्ममर्थञ्चकामञ्च मोक्षञ्चनतुरीयतः ॥ ९४ ॥ शक्तस्साधयितुंतस्माद्युवाधर्म्मंसमाचरेत ॥ वातपित्तकफा
दीनां वैषम्यंव्याधिरुच्यते ॥ ९५ ॥ वातादीनांसमूहश्च देहोयंपरिकीर्त्तितः ॥ तस्माद्व्याधिमयंज्ञेयं शरीरमिदमात्मनः ॥
९६ ॥ भोगैर्नानाविधैर्यान्ति देहीदुःखान्यनेकधा ॥ तानितुस्वात्मवेद्यानि किमन्यत्कथयाम्यहम् ॥ ९७ ॥ एकोत्तरं
व्याधिशतमस्मिन्देहेप्रतिष्ठितम् ॥ तत्रैकःकालसंयुक्तः शेषास्त्वागन्तवःस्मृताः ॥ ९८ ॥ येत्विहागन्तवःप्रोक्तास्तेप्रशा
म्यन्तिभेषजैः ॥ जपहोमप्रदानैश्च कालमृत्युर्नशाम्यति ॥ ९९ ॥ विविधाव्याधयःसर्वास्सर्पाद्याःप्राणिनस्तथा ॥ वि

धर्मकरै वात, पित्त व कफकी विषमता व्याधि कहीजाती है ॥ ९५ ॥ और वातपित्तादिकोंके समूहवाला यह शरीर कहागयाहै इसलिये यह अपना शरीर रोगमय जानने
योग्यहै ॥ ९६ ॥ अनेक प्रकारके भोगोंसे मनुष्य अनेकभांतिके दुःखोंको प्राप्तहोताहै और वे अपनी आत्मासे जाननेयोग्यहैं मैं अन्य क्या कहूँ ॥ ९७ ॥ इस देहमें एक
अधिक सौ रोग टिकेहैं उनमें एकरोग मृत्युसे संयुक्तहैं और शेष आनेवाले कहेगये हैं ॥ ९८ ॥ इस शरीर में जो रोग आनेवाले कहेगये हैं वे ओषधियों से शान्त होजाते हैं

और जप व होम और दानों से कालमृत्यु नहीं शान्त होतीहै ॥ ९९ ॥ और अनेक प्रकार के सब रोग व सर्प इत्यादिक प्राणी, विष और प्रयोग ये शरीरधारियों के मृत्यु के द्वार हैं ॥ १०० ॥ कालसे पीड़ित मनुष्य की रक्षा करने के लिये न औषध न तपस्या न दान न मित्र और न भाई समर्थ होते हैं ॥ १ ॥ रसायन, तपस्या, जप व योगसिद्धवाले महात्मा विद्वान् व संयमी पुरुषों से भी कालमृत्यु नहीं हटती है ॥ २ ॥ मृत्यु के समान दुःख नहीं है व मृत्यु के तुल्य भय नहीं है और सौ वर्ष आयुर्बलवाले मनुष्य होते हैं परन्तु उस आयुर्बल को प्राप्त होते हैं और नहीं होते हैं ॥ ३ ॥ कोई मनुष्य तो अस्सी वर्ष के होकर मरजाते हैं व कोई सत्तर

षाणिचाभिचारश्च मृत्योर्द्वाराणिदेहिनाम् ॥ १०० ॥ नौषधन्नतपोदानं नमित्रानचबान्धवाः ॥ शक्नुवन्तिपरित्रातुं नरं कालेनपीडितम् ॥ १ ॥ रसायनतपोजप्यैर्योगसिद्धैर्म्महात्मभिः ॥ कालमृत्युरपिप्राज्ञैर्नीयतेनापिसंयतैः ॥ २ ॥ नास्तिमृत्युसमंदुःखं नास्तिमृत्युसमंभयम् ॥ जनाःशतायुषस्तश्च भवन्तिनभवन्तिच ॥ ३ ॥ अशीतिकाविपद्यन्ते केचित्सप्ततिकानराः ॥ परमायुःस्थिताःसृष्टौ तदप्यस्तिनधिष्ठितम् ॥ ४ ॥ यस्ययावद्ध्वेदायुर्देहिनःपूर्वकर्म्मभिः ॥ तस्यार्द्धमायुषोरात्रिर्हरतेमृतरूपिणः ॥ ५ ॥ बालभावेनमोहेन वार्द्धक्येजरयातथा ॥ वर्षाणिविंशतिर्यांति धर्म्मकामार्थवर्ज्जिताः ॥ ६ ॥ आगन्तुकैर्भयैःपुंसां व्याधिशोकैरनेकधा ॥ ह्रियतेर्द्धंहितत्रापि यच्छेषंतद्धिजीवितम् ॥ ७ ॥ जीवितान्तेचमरणं महाघोरमवाप्नुयात् ॥ जायतेयोनिकोटीषु मृतःकर्म्मवशात्पुनः ॥ ८ ॥ देहभेदेनयःपुंसां वियोगः

ही वर्ष के होकर मरते हैं केवल सौ वर्ष परमायु के सृष्टि में स्थित हैं परन्तु उस परमायु में कोई नहीं स्थित होता है ॥ ४ ॥ पूर्वजन्मके कर्मों से जिस प्राणी की जितनी आयुर्बल होती है मृतक के समान रूपवाले पुरुष के उस आयुर्बल के आधे भागको रात्रि हरलेती है ॥ ५ ॥ और अज्ञान से बाल्यावस्था करके व वृद्धता में बुढापे से धर्म, अर्थ व कामरहित बीस वर्ष बीत जातेहैं ॥ ६ ॥ और उसमें भी पुरुषों की आधी आयुर्बल को आनेवाले अनेक प्रकारके भय रोग व शोक हरलेते हैं और जो शेषहै वही जीवन होता है ॥ ७ ॥ और जीने के अन्त में मनुष्य बड़ी भयानक मृत्यु को प्राप्त होता है व मरकर कर्म के वश से फिर करोड़ों योनियों में

उत्पन्न होता है ॥ ८ ॥ कर्म की संख्या से पुरुषों का जो शरीर के भेदसे वियोग है वह मरण कहागयाहै और परमार्थ से नाश नहीं होता है ॥ ९ ॥ बड़े अज्ञानमें पैठे हुये प्राणी के मरने में सुकुमार अंगों को काटे जाने पर जो दुःख होताहै उसकी उपमा इस संसार में कहीं नहीं है ॥ १० ॥ हा पिता ! हा माता ! हा कान्ते ! इस प्रकार कहता हुआ बड़ा दुःखी व मृत्युका भोजन पुरुष सर्पसे मेढ़क की नाईं निगललिया जाता है ॥ ११ ॥ भाइयों से छोड़ा व प्रियों से घिराहुआ वह मनुष्य बड़ी लम्बी व गरम श्वासों को लेता है और सूखे हुये मुखसे उपलक्षित होताहै ॥ १२ ॥ और खट्वा के चारों ओर अन्त तक बार बार लोटताहुआ अज्ञानी पुरुष इधर उधर

कर्मसंख्यया ॥ मरणंतद्विनिर्दिष्टं ननाशःपरमार्थतः ॥ ९ ॥ महातमःप्रविष्टस्य छिद्यमानेषुमर्म्मसु ॥ यद्दुःखंमरणे जन्तोर्नतस्येहोपमाक्वचित् ॥ १० ॥ हातातमातर्हाकान्ते वदन्नेवंसुदुःखितः ॥ मण्डूकइवसर्पेण गीर्यतेमृत्युभोजनः ॥ ११ ॥ बान्धवैस्सम्परित्यक्तः प्रियैश्चपरिवारितः ॥ निःश्वसन्दीर्घमुष्णाञ्च मुखेनपरिशुष्यता ॥ १२ ॥ चतुरन्तेषुखट्वायाः परिवर्त्तन्मुहुर्मुहुः ॥ सम्मूढःक्षिपतेत्यर्थं हस्तपादावितस्ततः ॥ १३ ॥ खट्वातोवाञ्छतेभूमिं भूमेःखट्वांपुनर्महीम् ॥ विवस्त्रस्त्यक्तलज्जश्च मूत्रविष्ठानुलेपनः ॥ १४ ॥ याचमानश्चसलिलं शुष्ककण्ठोष्ठतालुकः ॥ चिन्तयानःस्ववित्तानि कस्यैतानिमृतेमयि ॥ १५ ॥ पञ्चावटान्खनमानःकालपाशेनकर्षितः ॥ म्रियतेपश्यतामेव गलेघुर्घुरायते ॥ १६ ॥ जीवस्तृणजलौकेवदेहाद्देहंविशेत्क्रमात् ॥ सम्प्राप्योत्तरमंशेन देहंत्यजतिपूर्वकम् ॥ १७ ॥ मरणात्प्रार्थनाद्दुःख

[illegible] फेंकता है ॥ १३ ॥ और खट्वा से भूमिको चाहता है व भूमिसे खट्वाको और फिर पृथ्वी की इच्छा करताहै व वसनहीन लज्जाको छोड़ [illegible] ॥ १४ ॥ और जलको मांगताहुआ व सूखे कण्ठ, ओंठ और तालुवाला पुरुष अपने धनोंको चिन्तन कररहाहै कि मेरे मरनेपर ये धन [illegible] से खींचाहुआ पांच गढ़ोंको खोदताहुआ वह मनुष्यों के देखतेहुये मरजाता है और गलेमें घुरघुर शब्द होता है ॥ १६ ॥ फिर [illegible] शरीर में क्रमसे पैठता है याने अंशसे अगले शरीर को प्राप्तहोकर पहली देहको त्याग देताहै ॥ १७ ॥ ज्ञानीपुरुषको [illegible] से पांच गढ़े से खुद जाते हैं ॥

मरने से मांगने में अधिक दुःख होताहै क्योंकि मरने में क्षणभर दुःख होताहै और याचना से कियाहुआ दुःख अनन्त होताहै ॥ १८ ॥ मैंने इस समय इसको जाना है इसी प्रकार दुःखकी परम्परा (शैली) है और सब रोगोंके मध्यमें भूंख रोगोंसे बहुत अधिक कहीगई है ॥ १९ ॥ और वह क्षुधा ओषधियों के लेप्न से क्षणभर भी नहीं शान्तहोती है व क्षुधारूपी रोगकी पीड़ा बड़ी कठिन व सब पराक्रम को काटनेवाली है ॥ २० ॥ व उस क्षुधासे परास्त मनुष्य वैसेही मरजाता है जैसे कि अन्य रोगोंसे मरता है राजाको यह केवल अभिमानही होताहै कि मेरे घरमें यह वस्तु शोभित है ॥ २१ ॥ क्योंकि समस्त आभूषण भारकी नाईहैं और सब विले-

मधिकंहिविवेकिनः ॥ क्षणिकंमरणेदुःखमनन्तंप्रार्थनाकृतम् ॥ १८ ॥ ज्ञानंमयेदमधुना इत्थंदुःखपरम्परा ॥ क्षुधाच सर्वरोगाणां व्याधिश्रेष्ठतमास्मृता ॥ १९ ॥ सानैवौषधिलेपेन क्षणमात्रंप्रशाम्यति ॥ क्षुद्व्याधिवेदनातीव्रा निःशेषबलकृन्तनी ॥ २० ॥ तयाभिभूतोम्रियते यथान्यैर्व्याधिभिर्नरः ॥ राज्ञोभिमानमात्रंहि ममैतद्राजतेगृहे ॥ २१ ॥ सर्वमाभरणंभारं सर्वमालेपनंमलम् ॥ सर्वंप्रलपितंगीतं नृत्यमुन्मत्तचेष्टितम् ॥ २२ ॥ इत्येवंराज्यसम्भोगैः कुतःसौख्यंविचारतः ॥ नृपाणांव्यग्रचित्तानामन्योन्यंविजिगीषया ॥ २३ ॥ प्रायेणश्रीमहालेपान्नहुषाद्यामहान्नृपाः ॥ स्वर्गंप्राप्यापि पतिताः कःश्रियाविन्दतेसुखम् ॥ २४ ॥ नरैःपुण्यफलंस्वर्गे मूलोच्छेदेनभुज्यते ॥ नचान्यत्क्रियतेकर्म्म सोत्रदोषस्सुदारुणः ॥ २५ ॥ छिन्नमूलस्तरुर्यद्वदवशःपततिक्षितौ ॥ पुण्यमूलक्षयेतद्वद्वांपतन्तिदिवौकसः ॥ २६ ॥ इतिस्वर्गेपिदे

पन मलहैं व सब गान अनर्थक वचनहैं व नृत्य मतवाले का कर्महै ॥ २२ ॥ इस प्रकार विचारसे आपस में जीतकी इच्छा से विकल चित्तवाले राजाओं को राज्यके सुखोंसे किस कारण सुख होताहै ॥ २३ ॥ प्रायः लक्ष्मी के बड़े अहङ्कार से नहुषादिक बड़ेभारी राजालोग स्वर्गको प्राप्त होकर भी गिरपड़े तो भला लक्ष्मीसे कौन सुखको प्राप्तहोता है ॥ २४ ॥ स्वर्गमें मनुष्यों से स्वर्गका फल मूल याने इकट्ठा कियेहुये पुण्यके नाशसे भोगाजाता है और अन्यकर्म नहीं कियाजाता है वह बड़ा दारुण दुःख इस स्वर्गमें है ॥ २५ ॥ जैसे कटीहुई जड़वाला वृक्ष विवश होकर भूमिमें गिरपड़ता है वैसेही पुण्यरूपी मूलधनके नाश होनेपर स्वर्गीपुरुष पृथ्वी में

गिरपड़तेहैं ॥ २६॥ इसविचारसे स्वर्गमें देवताओंको भी सुख नहींहै वैसेही नरकी मनुष्योंका दुःख प्रसिद्धहीहै क्या कहाजावै ॥ २७ ॥ स्थावर प्राणियोंमें भी दावानल, जाड़ा व शोषण,कुल्हाड़ीसे काटना और बकलोंका काटना ये बड़े दुःखहैं ॥२८ ॥ और प्रचण्ड पवनसे पत्ते, शाखा व फलोंका गिराना और सदैव हाथियों तथा अन्य देहधारियोंसे मर्दन करना येदुःखहैं ॥ २९ ॥ और सर्पोंको प्यास भूंख तथा भयङ्करक्रोधका दुःखहै और संसारमें दुष्टोंको मारना व फॅसरी से बांधना दुःखहै ॥ ३० ॥ हे माता ! ऐसेही बार बार सर्प वृश्चिकोंको अचानकही जन्म मरण दुःख होताहै और वैसाही कीटादिकोंको दुःख होताहै ॥३१ ॥ और वर्षा,जाड़ा,व घामसे पशु,पक्षियों

वानां नास्तिसौख्यंविचारतः ॥ तथानरकिणांदुःखं प्रसिद्धंकिञ्चवर्ण्यते ॥ २७ ॥ स्थावरेष्वपिदुःखानि दावाग्निर्हिम
शोषणम् ॥ कुठाराच्छेदनन्तीव्रं वल्कलानाञ्चतक्षणम् ॥ २८ ॥ पर्णशाखाफलानाञ्च पातनंचण्डवायुना ॥ अपमर्द्द
ञ्चसततं गजैरन्यैश्चदेहिभिः ॥ २९ ॥ तृड्बुभुक्षाचसर्पाणां क्रोधदुःखञ्चदारुणम् ॥ दुष्टानांघातनंलोके पाशेनचनिब
न्धनम् ॥ ३० ॥ एवंसरीसृपाणाञ्च दुःखंमातर्मुहुर्मुहुः ॥ अकस्माज्जन्ममरणं कीटादीनांतथाविधम् ॥ ३१ ॥ वर्षशी
तातपैर्दुःखं सुकष्टंमृगपक्षिणाम् ॥ क्षुत्तृट्क्लेशेनमहता संत्रस्ताश्चसदामृगाः ॥ ३२ ॥ पशुनागनिकायानां शृणुदुःखा
नियानिच ॥ क्षुत्तृट्शीतादिसहनं वधबन्धनताडनम् ॥ ३३ ॥ भारोद्वहनसंक्लेशं शिक्षायुद्धादिपीडनम् ॥ आत्मयूथ
वियोगश्च वनानयनमादियत ॥ ३४ ॥ दुर्भिक्षंदुर्भगत्वञ्चमूर्खत्वञ्चदरिद्रता ॥ अधरोत्तरभावश्च मरणंराष्ट्रविप्लवः ॥
३५ ॥ अन्योन्याभिभवाद्दुःखमन्योन्यातिशयात्पुनः ॥ अनित्यताप्रभावाणामुच्छ्रायाणाञ्चपातनम् ॥ ३६ ॥ इत्येव

को दुःखहोता है व क्षुधा, प्यास के बडेभारी दुःख से पशु सदैव व्याकुल रहते हैं ॥ ३२ ॥ और पशुओं व हाथियों के समूहों को जो दुःखहोते हैं उनको सुनिये कि क्षुधा, प्यासादिकका सहना और वध बन्धन व मारना॥३३॥ और बोझलेजाने का दुःख व युद्धादिकों में पीड़ा और अपने यूथ से वियोग होना और जो वनसे ले आना इत्यादिक है ॥३४॥ और दुर्भिक्ष, दुर्भाग्यता, मूर्खता, दरिद्रता व नीच या उच्चहोना, मरना और राज्यभंग होना ॥ ३५॥ और आपस में तिरस्कार से दुःख

फिर परस्पर में अधिकता से दुःख व अनित्य प्रभाववाले उच्चजनों का गिरना ॥ ३६ ॥ इत्यादिक के दुःखोंसे जिस लिये चराचर व्याप्तहै उसी कारण नरक से लगाकर मनुष्य पर्यंत सबको विद्वान् त्याग देवै ॥ ३७ ॥ जिस प्रकार एक कन्धे से दूसरे कन्धेपर जो भार आजाताहै उसको मनुष्य विश्राम मानताहै वैसेही संसारमे यह सब दुःख दुःखसे शान्त होताहै ॥ ३८ ॥ इसप्रकार परस्पर अधिकतामें स्थित इस सब संसारको दुःखसे विकल जानकर उत्तम निर्वेदको प्राप्तहोवै ॥ ३९ ॥ और निर्वेदसे विराग (स्नेहराहित्य) होताहै व विराग से ज्ञान उत्पन्न होताहै व ज्ञानसे उन परम विष्णुको जानकर मुक्तिको प्राप्तहोता है ॥ ४० ॥ हे माता ! मैं ऐसे संसार

माद्भिर्दुःखैर्यस्माद्व्याप्तंचराचरम् ॥ निरयादिमनुष्यान्तंतस्मात्सर्वंत्यजेद्बुधः ॥ ३७ ॥ स्कन्धात्स्कन्धंचयद्भारं वि श्रामंमन्यतेयथा ॥ तद्वत्सर्वमिदंलोके दुःखंदुःखेनशाम्यति ॥ ३८ ॥ एवमेतज्जगत्सर्वमन्योन्यातिशयस्थितम् ॥ दुःखैराकुलितंज्ञात्वा निर्वेदंपरमाव्रजेत् ॥ ३९ ॥ निर्वेदाच्चविरागःस्याद्विरागाज्ज्ञानसम्भवः ॥ ज्ञानेनतम्परंज्ञात्वा वि ष्णुंमुक्तिमवाप्नुयात् ॥ ४० ॥ नाहमेतादृशेलोके रमेयंजननिकचित् ॥ राजहंसोयथाशुद्धः काकामेध्यप्रदेशके ॥४१॥ शृणुमातर्यत्रसंस्थो रमेयंनिरुपद्रवः ॥ अविद्यावनमत्युग्रं नानाकर्म्मातिशाखिमत् ॥ ४२ ॥ सङ्कल्पदंशमशकं शोक हर्षहिमातपम् ॥ मोहान्धकारतिमिरं लोभव्यालसरीसृपम् ॥ ४३ ॥ विषयानल्पकाध्वानं कामक्रोधविशोधकम् ॥ तदतीत्यमहादुःखं प्रविष्टोस्मिमहद्वनम् ॥ ४४ ॥ नतत्प्रविश्यशोचन्ति नप्रहृष्यन्तितद्विदः ॥ नचबिभ्यतिकेषांचि

म कहीं नहीं रमूंगा जैसे कि राजहंस कौवोंवाले अशुद्ध देशमें नहीं रमताहै ॥ ४१ ॥ हे माता ! सुनिये कि जहांपर मैं उपद्रवरहित होकर रमण करूंगा कि अनेक प्रकार के कर्मरूपी बडे वृक्षोंवाला जो बड़ाकराल अविद्या (माया) का वनहै ॥४२॥ और जो वन कि संकल्परूपी मच्छड़ व डासोंवाला शोक हर्षरूपी जाड न घामवाला और मोहसे अज्ञानरूपी अन्धकारवाला व लोभरूपी सर्प, बिच्छूवाला है ॥ ४३ ॥ और विषयरूपी बहुत मार्गोंवाला, काम क्रोधरूपी विशोधकोंवालाहै उस बडे दुःखों वाले वनको नाघकर मैं बडेभारी वनमें पैठाहूं ॥ ४४ ॥ उस वनके जाननेवाले मनुष्य उसमें पैठकर न शोचते हैं और न प्रसन्न होंते है और न किसीको डरतेहैं व कोई

उनसे भी नहीं डरतेहैं ॥ ४५॥ उस वनमें सात बड़ेभारी वृक्षहैं और सातही शाखाहैं व सात फलहैं और सात आश्रम व सात समाधियां और सातदीक्षा (मन्त्र) हैं यह
वनका रूपहै ॥ ४६ ॥ और दिव्य फूल व फल कोई पंचरंगे और कोई चार रंगके हैं व कोई तीन, दो व एकही रंगवाले हैं ॥ ४७ ॥ ऐसे फूलों व फलोंको पैदा करते
हुये वृक्ष वहां व्याप्तहोकर उस वनमें स्थित हैं ॥ ४८ ॥ और उसमें सात पतिव्रता स्त्रियां बसती हैं जोकि किरणोंवाली हैं और प्रजाओं से ऊपर रसोंको खींचती हैं
उन सबोंको यथार्थ से कोई नहीं जानताहै ॥ ४९॥ और इन वनमें सातही पर्वतहैं कि जिनसे त्रिलोक धारण कियागया है व सातही नद और नदियां हैं कि जिन

**नचबिभ्यतिकेचन ॥ ४५ ॥ तस्मिन्वनेसप्तमहाद्रुमास्तु सप्तैवशाखाश्चफलानिसप्त ॥ सप्ताश्रमास्सप्तसमाधयश्च दी
क्षाश्चसप्तैतदरण्यरूपम् ॥ ४६ ॥ पञ्चवर्णानिदिव्यानि चतुर्वर्णानिकानिचित ॥ त्रिद्विचैवैकवर्णानि पुष्पाणिचफला
नि च ॥ ४७ ॥ सृजन्तःपादपास्तत्र व्याप्यतिष्ठन्तितद्वनम् ॥ ४८ ॥ सप्तस्त्रियस्तत्रवसन्तिसत्यस्त्ववाङ्मुखाभानुमती
र्भवन्ति ॥ ऊर्ध्वंरसानाददतेप्रजाभ्यस्सर्वानतास्तत्त्वतःकोपिवेद ॥ ४९ ॥ सप्तैवगिरयश्चात्र धृतैर्येर्भुवनत्रयम् ॥ नदा
श्चसरितस्सप्त ब्रह्मवारिवहास्सदा ॥ ५० ॥ तेजश्चाभयदातृत्वमद्रोहःकौशलंतथा ॥ अचापल्यंतथाक्रोधः प्रियवाद
श्चसप्तमः ॥ ५१ ॥ इत्येतेगिरयोज्ञेयास्तस्मिन्विद्यावनेस्थिताः ॥ सुनिश्चयस्तथासर्वैः समतानिग्रहोगुणः ॥ ५२ ॥ नि
र्ममत्वंतपश्चात्र सन्तोषस्सप्तमोहृदः ॥ भगवद्गुणविज्ञानाद्भक्तिःस्यात्प्रथमानदी ॥ ५३ ॥ वैराग्यंममतात्यागस्तथेशा
राधनंसदा ॥ ईशार्पणंपञ्चमीस्यात् षष्ठीब्रह्मैकतामता ॥ ५४ ॥ सिद्धिश्चसप्तमीप्रोक्ता सप्तनद्योत्रसप्तयाः ॥ ५५ ॥ न**

में, सदैव ब्रह्मरूप जल बहता है ॥ ५० ॥ तेज व अभय देना, अद्रोह, निपुणता, अचंचलता, अक्रोध और सातवां प्रिय कहना ॥ ५१ ॥ उस विद्यावन में स्थित
ये पर्वत जाननेयोग्य हैं व दृढ़ निश्चय, सबोंमे समता, इन्द्रियों को रोकना, गुण ॥ ५२ ॥ व ममत्वहीनता, तपस्या व सन्तोष इस वनमें सातवां कुण्डहै और भग-
वान्के गुणोंके ज्ञानसे भक्तिहोना पहली नदी है ॥५३॥ और वैराग्य, ममताका त्याग व सदैव परमेश्वरका आराधन करना और ईश्वर में कर्मोंका समर्पण करना पांचवीं
नदी है व छठी नदी ब्रह्ममें एक होजाना मानीगई है ॥ ५४ ॥ और सातवीं सिद्धि कहीगई है इस वनमें जो सात नदियां कहीगई हैं वे यही सातौंहैं ॥ ५५॥ और

नदियों का सङ्गम वहां वैकुण्ठ के समीप है जिससे कि आत्मा में तृप्त, शान्त व इन्द्रियोंको जीतेहुये मनुष्य परसेभीपरे स्थानको प्राप्तहोते हैं ॥ ५६ ॥ कोई वृक्षोंको कोई स्त्रियोंको कोई पर्वतोंको और कोई नदोंको और कोई श्रेष्ठ ज्ञानियोंने उन सातों नदियोंको कहाहै ॥५७॥ व्रत न छूटनेकी कामनावाला मैं इसी विद्यारूप वनमें ब्रह्मचर्य करताहूं उसमें ब्रह्महीं समिधा है ब्रह्महीं अग्नि व ब्रह्महीं यज्ञहै ॥ ५८ ॥ जल ब्रह्म है व गुरु ब्रह्महै यही मेरा ब्रह्मचर्य है विद्वानोंने ऐसे इसी सूक्ष्म ब्रह्मचर्य को कहा है ॥ ५९ ॥ हे माता ! मेरे गुरुको सुनिये कि जो मुझको विद्यादायक हुआहै ॥ ६० ॥ एकही शिक्षक है दूसरा सिखलानेवाला नहीं है हृदयही मे टिकाहुआ शिक्षक

दीनांसङ्गमस्तत्र वैकुण्ठसमुपह्वरे ॥ आत्मतृप्तायतोयान्तिशान्तादान्ताःपरात्परम् ॥ ५६ ॥ केचिद्द्रुमान्स्त्रियःकेचित् गिरीन्केचिन्नदान्परे ॥ सरितःकेचिदाहुस्ताःसप्तैवज्ञानवित्तमाः ॥ ५७ ॥ अपेतव्रतकामोत्र ब्रह्मचर्यञ्चरामिच ॥ ब्रह्मैव समिधस्तत्र ब्रह्माग्निर्ब्रह्मसंस्तरः ॥ ५८ ॥ आपोब्रह्मगुरुर्ब्रह्मब्रह्मचर्यमिदंमम ॥ एतदेवेदृशंसूक्ष्मं ब्रह्मचर्यंविदुर्बुधाः ॥ ५९ ॥ गुरुञ्चशृणुमेमातर्योमेविद्याप्रदोभवत् ॥ ६० ॥ एकःशास्तानद्वितीयोऽस्तिशास्ता हृद्येवतिष्ठन्पुरुषःशास्तिशास्ता ॥ तेनाभियुक्तःप्रस्रवणादिवोदकं यथानियुक्तोस्मितथाचरामि ॥ ६१ ॥ एकोगुरुर्नास्तिततोद्वितीयो योहृद्गतस्तमहंवैनमामि ॥ यञ्चावमन्यैवगुरुंमुकुन्दंपराभूतादानवास्सर्वएव ॥ ६२ ॥ एकोबन्धुर्नास्तिततोद्वितीयो योहृद्गतस्तमहंवैनमामि ॥ तेनानुशिष्टाबान्धवाबन्धुमन्तः सप्तर्षयस्सप्तदिविप्रभान्ति ॥ ६३ ॥ ब्रह्मचर्यञ्चसंसेव्यं गार्हस्थ्यंशृणुयादृशम् ॥ पत्नीप्रकृतिरूपामे तच्चित्तोनास्मिकर्हिचित् ॥ ६४ ॥ मच्चित्तासासदामातर्ममसर्वार्थसाधनी ॥ घ्राणंजिह्वाच

पुरुष शिक्षा देताहै झरना से जलकी नाई उससे युक्त मैं जैसा नियुक्त कियागयाहूं वैसाही करताहूं ॥ ६१ ॥ एकही गुरुहै उससे दूसरा नहीं है जोकि हृदय में प्राप्तहै उसको मैं प्रणाम करताहूं कि जिन मुकुन्द गुरुको अपमानकर सबही दानव पराभव को प्राप्तहुये हैं ॥ ६२ ॥ वह एकही बन्धुहै उससे दूसरा नहीं है जोकि हृदय में प्राप्तहै उसको मैं प्रणाम करताहूं और उनसे सिखलायेहुये बन्धुमान् सात सप्तर्षि भाई स्वर्गमें शोभित हैं ॥ ६३ ॥ ब्रह्मचर्य भलीभांति सेवनेके योग्यहै और जिस प्रकारकी गृहस्थी है उसको सुनिये कि प्रकृतिरूपी मेरी स्त्री है मैं कभी उसमें चित्त नहीं लगाता हूं ॥ ६४ ॥ व हे माता ! मेरे समस्त अर्थोंको साधनेवाली वह

सदैव मुझमें चित्त लगाये रहती है और नासिका, जिह्वा, नेत्र, त्वचा व पांचवां कान ॥ ६५ ॥ और मन व बुद्धि ये सात अग्नियां मेरे जलती हैं और गन्ध, रस,
रूप, शब्द और पांचवां स्पर्श ॥ ६६ ॥ माननेयोग्य व जाननेयोग्य ये सात समिधा मानीगई हैं याने उपर्युक्त क्रमसे एक एक अग्निमें एक एक यह समिधा
जलती है और हवन करनेवाला नारायण (जीव) है और ध्यानसे आपही नारायण भोग करताहै ॥ ६७ ॥ ऐसे यज्ञसे इस वनमें मैं उस ईश्वर को पूजताहूं ॥
६८ ॥ सब कामोंको न चाहते और सब दोषोंसे द्वेष न करतेहुये मेरे स्वभावों में लेप आसक्त होना नहीं होताहै जैसे कि जलके बूंदका लेप कमल के पत्तोंमें नहीं

**चक्षुश्च त्वक्चश्रोत्रंचपञ्चमम् ॥ ६५ ॥ मनोबुद्धिश्चसप्तैते दीप्यन्तेपावकामम ॥ गन्धोरसश्चरूपंच शब्दःस्पर्शश्चपञ्च
मः॥ ६६॥ मन्तव्यमथबोद्धव्यं सप्तैताःसमिधोमताः ॥ होतानारायणोध्यानाद्भुङ्क्तेनारायणःस्वयम् ॥ ६७॥ एवंविधेन
यज्ञेन यजाम्यस्मिंस्तमीश्वरम् ॥ ६८ ॥ अकामयानस्यचसर्वकामान्अविद्विषाणस्यचसर्वदोषान् ॥ नमेस्वभावेषुभव
न्तिलेपास्तोयस्यविन्दोरिवपुष्करेषु ॥ ६९ ॥ नित्यस्यमेनैवभवन्त्यनित्या निरीक्षमाणस्यबहुस्वभावान् ॥ नसज्ज
तेकर्मसुभोगजालं दिवीवसूर्यस्यमयूखजालम् ॥ ७० ॥ एवंविधेनपुत्रेण मातर्मादुःखिनीभव ॥ तत्पदंत्वाञ्चनेष्या
मि नचक्रतुशतैरपि ॥ ७१ ॥ इतिपुत्रवचःश्रुत्वा विस्मिताचेतराभवत ॥ चिन्तयामासयद्येवं विद्वान्ममसुतोदृढम् ॥
७२ ॥ लोकेपुण्यातिमायाति ततोमेस्याद्यशःपरम् ॥ इत्यादिचिन्तयन्त्याञ्च जनन्यांभगवान्हरिः ॥ ७३ ॥ प्र.
हृष्टस्तस्यतैर्वाक्यैर्विस्मितःप्रादुरासत ॥ मूर्त्तेःस्वयंविनिष्क्रम्यशङ्खचक्रगदाधरः ॥ ७४ ॥ जगदुद्भासयद्भासा सूर्यको**

होताहै ॥ ६९ ॥ बहुत स्वभावों को देखते हुये मुझ नित्यके कार्य अनित्य (नाश) नहीं होतेहैं और मेरे भोगका समूह कर्मोंमें नहीं संग करताहै जैसे कि सूर्यकी कि-
रणोंका समूह आकाश में नहीं लगता है ॥ ७० ॥ हे माता ! मुझ ऐसे पुत्र से तुम मत दुःखी होवो क्योंकि मैं तुमको उस स्थान पै प्राप्तकरूंगा जोकि सैकडों यज्ञों
से भी नहीं मिलता है ॥ ७१ ॥ यह पुत्रके वचन सुनकर इतरा विस्मय में प्राप्तहुई व उसने चिन्तन किया कि यदि ऐसा मेरा पुत्र दृढ विद्वान्है ॥ ७२ ॥ तो लोकमें प्रसिद्धि
को प्राप्तहोगा तदनन्तर मेरा उत्तम यशहोवैगा। माताके इत्यादिक चिन्तन करने पर भगवान् विष्णुजी ॥७३॥ उसकी उन वाक्योंसे प्रसन्न होकर मूर्त्तिसे निकलकर

विस्मय में प्राप्त आपही शङ्ख,चक्र व गदाको धारणकर प्रकटहुये ॥ ७४ ॥ और करोड़ सूर्यों के समान प्रकाशवान् विष्णुजी ने दीप्तिसे संसारको प्रकाशित करदिया तदनन्तर पृथ्वीमें गिरकर प्रसन्न रोमोंवाले बुद्धिमान् ऐतरेयजी ने गद्गदवचन होकर मस्तक पै अञ्जलिको बांधकर स्तुतिकिया कि तुम वासुदेव भगवान्के लिये नमस्कार है मैं आपका ध्यान करताहूं ॥ ७५ । ७६ ॥ व प्रद्युम्नके लिये व अनिरुद्ध के लिये नमस्कार है और संकर्षण के लिये नमस्कार है व विज्ञानमात्र के लिये और परमानन्द मूर्त्तिके लिये प्रणाम है ॥ ७७ ॥ व आत्माराम याने अपनाही में रमनेवाले व शान्त और निवृत्त भेददृष्टिवाले के लिये नमस्कारहै और आत्मानन्द के अनुभवही से भलीभांति छोड़ीहुई विषयवासना की ऊर्मियोंवाले के लिये नमस्कार है ॥ ७८ ॥ हृषीकेश (इन्द्रियों के स्वामी) के लिये व महान् तथा

टिसमप्रभः ॥ ततोनिपत्यधरणीं हृष्टरोमासुगद्गदः ॥ ७५ ॥ मूर्ध्निबद्धाञ्जलिर्धीमानैतरेयोऽथतुष्टुवे ॥ ॐनमस्तुभ्यं भगवते वासुदेवायधीमहि ॥ ७६ ॥ प्रद्युम्नायानिरुद्धाय नमःसङ्कर्षणायच ॥ नमोविज्ञानमात्राय परमानन्दमूर्त्तये ॥ ७७ ॥ आत्मारामायशान्ताय निवृत्तद्वैतदृष्टये ॥ आत्मानन्दानुभूत्यैव सम्यक्त्यक्तोर्मयेनमः ॥ ७८ ॥ हृषीकेशायमह तेनमस्तेनन्तशक्तये ॥ वचस्युपरतेप्राप्यो विरामेमनसासह ॥ ७९ ॥ अनामरूपश्चिन्मात्रस्सोऽव्यान्नस्सदसत्परः ॥ च तुर्भिश्चत्रिभिर्द्वाभ्यामेकधाप्रणमामितम् ॥ ८० ॥ पूर्वापरापरयुगे शास्तारंपरमेश्वरम् ॥ हित्वागतिंमोक्षकामा यम्भ जन्तिदशात्मकम् ॥८१ ॥ तम्परंसत्यममलं त्वांवयंपर्युपास्महे ॥ ८२ ॥ ॐनमोभगवतेमहापुरुषाय महानुभावायम हाविभूतिपतये सकलसात्वतनिकरकरकमलकुड्मललालितचरणारविन्दयुगलपरमपरमेष्ठिन्नमस्ते ॥ ८३ ॥ तवा

अनन्तशक्तिवाले आपके लिये नमस्कारहै मन समेत वचन के शान्त होनेपर आप मिलनेयोग्य हैं ॥ ७९ ॥ सदसत् (कार्यकारण) से परे जो अनाम अरूप चैतन्य-मात्रहै वह हमारी रक्षाकरै चार, तीन, दो समेत एक प्रकार याने दशात्मक उन विष्णुको मैं प्रणाम करताहूं ॥ ८० ॥ पूर्व, पर व अन्य युगमें आज्ञा करनेवाले जिन दशात्मक ईश्वरको मोक्ष चाहनेवाले पुरुष अन्यगतिको छोड़कर भजते हैं ॥८१॥ उन सत्य, पर, निर्मल तुमको हमलोग उपासना करते हैं ॥ ८२ ॥ हे समस्त देवता या भक्तसमूहों के करकमलकलियों से दुलरायेहुये चरण कमल युगलवाले परम परमेष्ठिन् ! आपके लिये नमस्कार है व महापुरुष महानुभाववाले तथा महाविभूतियो

के स्वामी व ऐश्वर्यवान् आपके लिये नमस्कार है ॥ ८३ ॥ अग्नि तुम्हारा मुखहै व पृथ्वी दोनों चरण हैं, आकाश शिर है और चन्द्रमा, सूर्य नेत्रहैं व समस्त लोक
आपका शरीर है और चारों दिशायें आपकी भुजाहैं हे भगवन् ! आपके लिये नमस्कार है ॥ ८४ ॥ हे स्तुति करनेयोग्य, नाथ ! सब समयमें सब समुद्रों में भी
उतने जल नहीं हैं जितने कि इस भयङ्कर संसाररूपी महासमुद्र में मुझसे प्राणी हुयेहैं ॥ ८५ ॥ हे ईश ! हिमाचल, महेन्द्र कैलास व सुमेरु आदिकों में वैसी शिलाओं
की सम्पत्ति नहीं है जैसी कि अनेकों देहोंको ग्रहण करतेहुये मेरे बड़ीभारी सम्पत्तिहै ॥ ८६ ॥ हे देव ! भूमिमें वे देश नहीं हैं कि जिनमें मैं नहीं पैदाहुआ हूं और न स्थित

ग्निरास्यंवसुधाङ्घ्रियुग्मं नभःशिरश्चन्द्ररवीचनेत्रे ॥ समस्तलोकास्तुवपुर्भुजाश्च दिशश्चतस्रोभगवन्नमस्ते ॥ ८४ ॥ न
सन्तितावन्तिजलान्यपीड्य सर्वेषुनाथाब्धिषुसर्वकालम् ॥ भूतानियावन्तिमयात्रभीमे यातानिसंसारमहासमुद्रे ॥८५॥
सम्पच्छिलानांहिमवन्महेन्द्रकैलासमेर्वादिषुनैवतादृक् ॥ देहान्यनेकानितुगृह्णतोमे प्राप्तासिसंपन्महतांयथेश ॥८६॥
नसन्तितेदेवभुविप्रदेशा नयेषुजातोऽस्मितथानिविष्टः ॥ अतोमयायेषुनजन्तवश्च सम्भक्षितोवानचभूतसङ्घैः ॥ ८७ ॥
शोकाभिभूतस्यममाशुदेव यावत्प्रमाणंपतितंभवेतु ॥ तावत्प्रमाणंनजलंपयोदामुञ्चन्तिदिव्यैरपिवर्षलक्षैः ॥८८॥ म
न्येधरित्रीपरमाणुसंख्यामुपैतिपित्रोर्गणनाचमह्यम् ॥ मित्राण्यमित्राणिनुजीवबन्धून् संख्यातुमीशोऽस्मिनदेवदेव ॥
८९ ॥ त्वय्यर्पितन्नाथपुनःपुनर्मे मनस्समाक्षिप्यसुदुर्द्धरारिम् ॥ कामोवशंक्रोधमुखैस्सहायैः करोतिकिन्तद्भगवान्क
रोमि ॥ ९० ॥ सोहंभृशार्तःकरुणांकुरुत्वं संसारगर्त्तेपतितस्यविष्णो ॥ महात्मनांसंश्रयमभ्युपेतो नैवावसीदत्यपिदु

हुआहूं और जिनमें जन्तु न भक्षण कियेगये हों और भूतसमूहोंसे मैं नहीं भक्षणहुआहूं ॥ ८७ ॥ हे देव ! शोकसे तिरस्कृत मेरे जितने संख्यक आंसू संसार में गिरतेहैं
उतनी प्रमाणभर जलको मेघ देवताओंवाले लाखवर्षोंसे भी नहीं छोड़ते हैं ॥ ८८ ॥ हे देवदेव ! मेरे माता पिताओं की गणना पृथ्वी के परमाणुओं की संख्याको
प्राप्तहोती है मैं यह मानताहूं और इस जीवके बन्धुवों तथा मित्रों और शत्रुओं की गणना करने के लिये मैं नहीं समर्थ हूं ॥ ८९ ॥ हे नाथ, भगवन् ! तुम में अर्पण
कियेहुये मेरे बड़े कठिन, शत्रुरूप मनको क्रोधआदिक सहायों करके काम खींचकर वशमें करता है इसलिये मैं क्या करूं ॥ ९० ॥ सो मैं बहुतही दुःखीहूं हे विष्णो !

संसाररूपी गढ़ेमें गिरेहुये मेरे ऊपर आप कृपा कीजिये क्योंकि अत्यन्त दुर्गति में प्राप्तभी मनुष्य महात्माओं के आश्रय में प्राप्तहोकर क्लेशको नहीं प्राप्त होता है ॥ ९१ ॥ रोगी मनुष्योंकी शरण वैद्यहै और महासमुद्र के बीचमें डूबतेहुये पुरुष की शरण नौका होतीहै और बालक की शरण माता पिताहै व हे हरे ! संसार में दुःखित मनुष्यकी शरण एक आपहीहो ॥ ९२ ॥ हे सर्वेश्वर, सर्वभूत व सबके कारण, परमार्थरूप साराशवाले ! आप इस बड़े दुःखसमूहोंवाले संसाररूपी गढ़ेसे अपने सहारा करनेसे मुझको ऊपर निकालिये ॥ ९३ ॥ हे उरुक्रम, अच्युत ! क्षुधा,प्यास व तीन धातुओं से बार २ दुःखित व जाड़ा, गरमी तथा वर्षा व अन्य अन्य

गतोपि ॥ ९१ ॥ परायणंरोगवतांहिवैद्यो महाब्धिमग्नस्यचनौर्नरस्य ॥ बालस्यमातापितरौत्तुघोरसंसारखिन्नस्यह रेत्वमेकः ॥ ९२ ॥ प्रसीदसर्वेश्वरसर्वभूत सर्वस्यहेतोपरमार्थसार ॥ मामुद्धरास्माद्गुरुदुःखसङ्घातसंसारगर्त्तात्स्वपरिग्र हेण ॥ ९३ ॥ क्षुत्तृट्त्रिधातुभिरिमंमुहुरर्द्यमानं शीतोष्णवातवर्षैरितरेतराच्च॥ कामाग्निनाच्युतरुपाचसुदुर्भरेण सम्प श्यतोमनउरुक्रमदुःखितंमे ॥ ९४ ॥ भवन्तुभद्राणिसमस्तदोषाः प्रयान्तुनाशंजगतोखिलस्य ॥ मयाद्यशक्त्यापरमे श्वरेप्रभौ स्तुतेजगद्धातरिवासुदेवे ॥ ९५ ॥ येभूतलेयेदिवियेन्तरिक्षे रसातलेप्राणिगणाश्चकेचित् ॥ भवन्तुतेसिद्धियु जोमयाद्यस्तुतेजगद्धातरिवासुदेवे ॥ ९६ ॥ शृण्वन्तियेमेपठतस्तथान्ये पश्यन्तियेमामिदमीरयन्तम् ॥ देवासुरा मानुजास्तिरश्चो भवन्तुतेप्यच्युतज्ञानभाजः ॥ ९७ ॥ येचापिमूकाविकलेन्द्रियाश्चशृण्वन्तिनोनैवविलोकयन्ति ॥ प

कारणों और दुःखसे पूर्ण होनेवाली कामाग्नि व क्रोधसे क्लेशित इस संसार को देखतेहुये मेरा मन दुःखी होताहै ॥ ९४ ॥ आज शक्तिसमेत व संसारके धरनेवाले परमेश्वर वासुदेव स्वामीकी मेरे स्तुति करनेपर समस्त संसार के कल्याण होवैं व सब दोष नाशको प्राप्तहोवैं ॥ ९५ ॥ जो भूतल मे और जो स्वर्गमे व जो आकाश में तथा जो कोई प्राणियों के गण रसातलमें हैं वे आज संसार के धारनेवाले वासुदेवकी मेरे स्तुति करनेपर सिद्धिसे युक्तहोवैं ॥ ९६ ॥ पढ़तेहुये मेरे इस स्तोत्रको जो सुनते हैं और अन्य जो पुरुष इसको कहतेहुये मुझको देखते हैं वे देव, दैत्यादिक व मनुष्य और पक्षीआदिक विष्णुजीके ज्ञानके भागी होवैं ॥ ९७ ॥ और जो

गूँगे व विकल इन्द्रियोंवाले पशुआदिक तथा कीड़े व चींटी आदि जीव न सुनते हैं न देखते हैं वे भी विष्णुजीके ज्ञानके भागीहोवैं ॥ ९८ ॥ और संसारमें दुःख नाश हो-
जावै व प्रजाओं से लोभादि दोषोंका गण जाता रहै जैसे अपने शरीरमें भाईमें और पुत्रमें भाव होता है वैसेही मनुष्यका भाव समस्तजन में भी होवै ॥ ९९ ॥ समस्त
दोषोंके नाश करनेमें चतुर व आनन्द के हेतुभूत तथा संसारके वैद्य विष्णुजी के हृदय में टिकनेपर समस्त मनुष्यों के संसारवाले बन्धन ढीले होजावैं ॥ २०० ॥
संसारके धारनेवाले वासुदेवजी के स्मरण करनेपर मेरा जो मानसपाप होवै और जो वाणीसे करताहूं व कियाहुआ जो शरीरवाला पापहै वह नाश होजावै ॥ १ ॥

ग्वादयःकीटपिपीलिकाद्या भवन्तुतेप्यच्युतयोगभाजः ॥ ९८ ॥ नश्यन्तुदुःखानिजगत्यपैतुलोभादिकोदोषगणःप्रजा
स्यः ॥ यथात्मनिभ्रातरिचात्मजेषा तथानरस्यास्तुजनेपिभावः ॥ ९९ ॥ संसारवैद्येखिलदोषहानिविचक्षणेनिर्वृतिहे
तुभूते ॥ संसारबन्धाःशिथिलीभवन्तुहृदिस्थितेसर्वजनस्यविष्णौ ॥ २०० ॥ पापंप्रणाशंममचप्रयातु यन्मानसंयच्चक
रोमिवाचा ॥ शारीरमप्याचरितंचयन्मे स्मृतेजगद्धातरिवासुदेवे ॥ १ ॥ यथाहिमोवासुदेवेतिप्रोक्ते सङ्कीर्त्तनेविष्णुभक्त
स्यचापि ॥ स्मृतेहरौवापिप्रयातिपापं सत्येनमेनश्यतान्तेनपापम् ॥ २ ॥ मूढोयमल्पमतिरल्पविचेष्टितोयं क्लिष्टंम
नोस्यविषयैर्मयिनप्रसङ्गि ॥ इत्थंकृपांकुरुमयिप्रणतेखिलेशत्वांस्तोतुमम्बुजभवोपिहिदेवनेशः ॥ ३ ॥ सत्वंप्रसीदभग
वन्कुरुमय्यनाथे विष्णोकृपांपरमकारुणिकःकिलत्वम् ॥ संसारसागरनिमग्नमनन्तदीनमुद्धर्तुमर्हसिहरेपुरुषोत्तमो

जिस प्रकार हे वासुदेव ! ऐसा कहनेपर व विष्णुभक्त के कीर्तन करने और विष्णु जीको स्मरण करनेपर पाप चलाजाताहै उसी सत्यसे मेरा पाप नाश होजावै ॥ २ ॥
[illegible] ! आप प्रणाम कियेहुये मेरे ऊपर इस कारणसे दया कीजिये कि यह मूढ़ (अज्ञानी) है व थोड़ी बुद्धिवाला और थोड़े व्यापारवाला है और विषयोंसे
[illegible] मन मुझमें नहीं लगाहै हे देव ! तुम्हारी स्तुति करने के लिये कमल से उपजेहुये ब्रह्माभी नहीं समर्थ हैं ॥ ३ ॥ हे भगवन् ! सो तुम प्रसन्नहोवो हे
[illegible] ऊपर आप दयाकीजिये क्योंकि प्रसिद्धमें तुम बड़े दयालुहो हे हरे ! तुम पुरुषोत्तमहो इससे संसाररूपी सागरमें डूबतेहुये व बहुत दुःखी मुझको

उद्धारनेके योग्यहो ॥ ४ ॥ हे अर्जुन ! इस प्रकार स्तुति कियेहुये बड़े शरीरवाले वे वासुदेव भगवान् आनन्दपूर्वक उससे यह बोले ॥ ५ ॥ कि हे वत्स, ऐतरेय ! भक्ति पूर्वक इस स्तुतिसे मैं प्रसन्नहूं तुम मुझसे उस दुर्लभ वरदान को मांगो जोकि प्रियहो ॥ ६ ॥ ऐतरेयजी बोले कि हे नाथ ! मुझको यही वरदान नित्य प्यारा है कि हे हरे ! भयङ्कर संसाररूपी समुद्र में डूबतेहुये मेरेलिये आप कर्णधार (खेवैया) होवो ॥ ७ ॥ वासुदेवजी बोले कि जिनके तुम्हारे ऐसी भक्तिहै वे तुम संसार से मुक्तहीहो और महाग्रहों समेत तेरह ग्रहों से तुम्हारा बन्धन न होगा ॥ ८ ॥ और गुप्तक्षेत्र में टिकेहुये मुझ वासुदेव को जो सदैव इस स्तोत्रसे स्तुति करैगा उसके पाप

सि ॥ ४ ॥ इत्थंस्तुतस्सभगवानैतरेयेणभारत ॥ वासुदेवोविशालात्मा सानन्दमिदमाहतम् ॥ ५ ॥ वत्सैतरेयतुष्टोस्मि भक्त्यानेनस्तवेनते ॥ वरंवृणुष्वत्वंमत्तो दुर्लभंयदभीप्सितम् ॥ ६ ॥ ऐतरेयउवाच ॥ एषएववरोनाथ ममानित्यमभीप्सितः ॥ मज्जतोघोरसंसारे कर्णधारोहरेभव ॥ ७ ॥ वासुदेवउवाच ॥ मुक्तएवासिसंसाराद्यस्यतेभक्तिरीदृशी ॥ ग्रहैर्म्महाग्रहैर्बन्धो नैवतेस्यात्त्रयोदशैः ॥ ८ ॥ यश्चस्तोत्रेणसततं गुप्तक्षेत्रसमास्थितम् ॥ स्तोष्यतेवासुदेवंमां सपापक्षयमाप्स्यति ॥ ९ ॥ यस्मादनेनस्तोत्रेण पापंनाशमवाप्स्यति ॥ अघनाशनमित्येव तस्मात्ख्यातिमवाप्स्यति ॥ १० ॥ एकादश्यामुपोष्यैव ममाग्रेयःपठिष्यति ॥ स्तवमेनंसपूतात्मा ममलोकमवाप्स्यते ॥ ११ ॥ सर्वेषामेवक्षेत्राणां गुप्तक्षेत्रंप्रियंयथा ॥ तथासर्वस्तवानाञ्चस्तवोयंसुप्रियोमम ॥ १२ ॥ यानिचोद्दिश्यभूतानि जप्यतेसौमहात्मभिः ॥ तानिशान्तिभगंप्रज्ञां प्राप्स्यन्तिकृपयाममः ॥ १३ ॥ त्वञ्चवत्सश्रौतधर्मान्सम्यगाचरश्रद्धया ॥ नतैर्बन्धमपिन्यस्तैराप्स्यस्य

नाश होजावैंगे ॥ ९ ॥ जिसलिये कि इस स्तोत्रसे पाप नाशको प्राप्तहोगा उसीकारण यह अघनाशन ऐसी प्रसिद्धिको प्राप्तहोगा ॥ १० ॥ और एकादशीमें उपासकर जो मनुष्य मेरे आगे इस स्तोत्रको पढ़ैगा वह पवित्र मनवाला पुरुष मेरे लोकको प्राप्तहोगा ॥ ११ ॥ सबही क्षेत्रोंके मध्यमें जैसे गुप्तक्षेत्र प्रियहै वैसेही सब स्तोत्रोंके मध्य में मुझको यह स्तोत्र प्याराहै ॥ १२ ॥ और जिन प्राणियोंका उद्देशकर यह स्तोत्र महात्माओंसे जपाजाता है वे शान्ति, ऐश्वर्य व बुद्धिको मेरी दयासे पातेहै ॥ १३ ॥

हे वत्स ! तुम श्रद्धासे वेदवाले धर्मों को भलीभांति करो मुझमें अर्पण कियेहुये उन फलरहित धर्मों से तुम बन्धन को न प्राप्तहोगे ॥ १४ ॥ यज्ञोंसे पूजन करो व स्त्रीको प्राप्तहोकर माताको प्रसन्नकरो और मुझमें तीव्रध्यानसे निस्संदेह मुझको प्राप्तहोगे ॥ १५ ॥ बुद्धि, मन, अहङ्कार व ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय इन तेरह ग्रहों से जो संयुक्त हैं वेही तेरह महाग्रह हैं ॥ १६ ॥ याने जानना, मानना, अहङ्कार होना, शब्द, स्पर्श, रस, रूप, गन्ध व वचन कहना, ग्रहण करना, गमन, मल त्याग व रतिका आनन्द ये तेरह महाग्रह हैं ॥ १७ ॥ हे पुत्र ! इन महाग्रहों को जानकर अपने शुद्धग्रहों से ध्यान योगकरके मुझको ग्रहण करो तो इस

नभिसन्धितैः ॥ १४ ॥ यजयज्ञैश्वाप्यैव दाराल्लन्दयमातरम् ॥ मयिध्यानेनतीव्रेण मामेवाप्स्यस्यसंशयम् ॥ १५ ॥ बुद्धिर्मनोप्यहङ्कारो बुद्धिकर्मेन्द्रियैरिह ॥ त्रयोदशग्रहैर्येस्युस्त्रयोदशमहाग्रहाः ॥ १६ ॥ बोद्धव्यमथमन्तव्यमहन्ताशब्दएवच ॥ स्पर्शोरसोरूपगन्धौ वचनादानकर्मच ॥ गमनोत्सर्गावानन्दस्त्रयोदशमहाग्रहाः ॥ १७ ॥ एतान्महाग्रहान्पुत्रबुद्ध्वाशुद्धैस्स्वकैर्ग्रहैः ॥ गृहाणध्यानयोगेन मामेवंमोक्षमाप्स्यसि ॥ १८ ॥ एवन्त्वंकर्म्मभिर्वीर नैष्कर्म्यंसमवाप्स्यसि ॥ शुल्वंरसेनसंबद्धं दक्षोहेमंयथाश्नुते ॥ १९ ॥ वर्णाश्रमाचारवतामपिसंन्यस्तकर्म्मणाम् ॥ मदनुध्यानयुक्तेन मोक्षोनास्तीहदुर्लभः ॥ २० ॥ तस्मादेवंवर्त्तमानो नन्दाव्रतपरायणः ॥ उद्धृत्यसप्तपुरुषाल्लँयंमयिगमिष्यसि ॥ २१ ॥ साम्प्रतंप्रतिमास्यन्ति वेदाश्चापठितापिते ॥ ततस्त्वंकोटितीर्थंच यज्ञेवैहरिमेधसः ॥ २२ ॥ याहितत्रभविष्यन्ते सर्वमातुरभीप्सितम् ॥ इत्युक्त्वाभगवान्विष्णुर्मूर्त्तिमध्यंविवेशह ॥ २३ ॥ विलोकयमानोनिमिषं मात्राचैवसुतेनच ॥ ततोमूर्त्तिंनमस्कृत्य

प्रकार तुम मोक्षको पावोगे ॥ १८ ॥ हे वीर ! इस प्रकार तुम कर्मोंसे निष्कर्मत्व को पावोगे जैसे कि चतुर मनुष्य पारासे कलई कियेहुये तांबेको सुवर्ण बनाताहै ॥ १९ ॥ वर्णाश्रम में उचित आचारवाले व मुझमें अर्पण कर्मवाले तथा मेरे ध्यानमें युक्त मनुष्य को इस संसार में मोक्ष दुर्लभ नहीं होता है ॥ २० ॥ इस लिये इस प्रकार एकादशी के व्रत में परायण तुम इस प्रकार वर्तमान होकर सात पुरुषों को उद्धारकर मुझमें लयको प्राप्तहोगे ॥ २१ ॥ और बिन पढ़ेहुये भी वेद इस समय तुमको भासितहोंगे इस लिये तुम कोटितीर्थ में हरिमेधाकी यज्ञमे ॥ २२ ॥ जावो वहां तुम्हारी माताका सम्पूर्ण मनोरथहोगा। ऐसा कहकर भगवान् विष्णुजी मूर्त्ति

के बीचमें पैठगये ॥ २३ ॥ जोंकि माता व पुत्र से बिन पलकलगाने से देखेजाते थे तदनन्तर विष्णुजी की मूर्त्तिको प्रणामकर विस्मयमें प्राप्त होतेहुये ॥ २४ ॥ ऐतरेय प्रसन्न होकर अपनी माता से वचन बोले कि पुरातन समय मैं शूद्र हुआहूं और संसार के दोषोंसे डराहुआ मैं ॥ २५ ॥ धर्ममें सिद्धिको प्राप्त ब्राह्मण की शरण में गया और उस दयालु ब्राह्मण ने मुझसे द्वादशाक्षर मन्त्रको कहा ॥ २६ ॥ व यह कहा कि इसको सदैव जपकरो और मैंने सदैव उसको जप किया उसी जप के प्रभाव से तुम्हारे पेटसे मेरी उत्पत्तिहुई ॥ २७॥ और जातिका स्मरण व विष्णु जीकी भक्ति और सदैव यहीं स्थिति रहतीहै मातासे यह कहकर उन्होंने यज्ञमें जाकर

वासुदेवस्यविस्मितः ॥२४॥ ऐतरेयःस्वजननींमुदितोवाक्यमब्रवीत् ॥ पुराहमभवंशूद्रो भीतस्संसारदोषतः ॥ २५ ॥ परिनिष्ठागतंधर्म्मे ब्राह्मणंशरणङ्गतः ॥ सकृपालुर्म्ममप्राहमन्त्रंवैद्वादशाक्षरम् ॥ २६ ॥ सदैवंजपचेत्युक्तस्तमहंजप्त वान्सदा ॥ तेनजप्यप्रभावेण ममोत्पत्तिस्तवोदरात् ॥ २७ ॥ जातिस्मृतिर्विष्णुभक्तिस्थितिरत्रचसर्वदा ॥ इत्युक्त्वा मातरंगत्वा सयज्ञेप्रोक्तवान्वचः ॥ नमस्तस्मैभगवते विष्णवेऽकुण्ठमेधसे ॥ २८ ॥ यन्मायामोहितधियो भ्रमामःक र्म्मसागरे ॥ इतिश्लोकंमहार्थंते हरिमेधमुखाद्विजाः ॥ २९ ॥ आकर्ण्यासनपूजाद्यैः पूजयामासुरङ्गतः ॥ ततोवेदार्थ निपुणास्तेनतेतोषिताद्विजाः ॥ ३० ॥ प्रददुर्दक्षिणांसर्वे हरिमेधास्सुतामपि ॥ द्रव्यंकन्याञ्चसंगृह्य स्वगृहंसमुपागम त् ॥ ३१ ॥ नन्दयित्वास्वजननीं पुत्रानुत्पाद्यचामलान् ॥ इष्ट्वायज्ञैरैतरेयो द्वादशीव्रततत्परः ॥ ३२ ॥ वासुदेवानुध्या

यह वचन कहा कि तीक्ष्णबुद्धिवाले उन विष्णुभगवान् के लिये नमस्कार है ॥ २८ ॥ कि जिनकी मायासे मोहित बुद्धिवाले हमलोग कर्मोंके समुद्र में घूमते हैं इस बडेभारी अर्थवाले श्लोकको हरिमेधा इत्यादिक ब्राह्मण ॥ २९ ॥ सुनकर आसन, पूजनादिकों से अङ्गोंमें पूजन करतेभये तदनन्तर वेदार्थों से निपुण ब्राह्मण उन ऐतरेय से प्रसन्न कियेगये ॥ ३० ॥ व उन सबोंने दक्षिणा दिया और हरिमेधा कन्याको भी देदिया तब ऐतरेयजी द्रव्य व कन्याको लेकर अपने घरको भली भांति प्राप्तहुये ॥ ३१ ॥ व अपनी माताको प्रसन्नकर तथा निर्मल पुत्रोंको उत्पन्नकर ऐतरेयजी यज्ञोंसे पूजनकर द्वादशीके व्रतमें तत्पर हुये ॥ ३२ ॥ और विष्णुजीके

ध्यान से पश्चात् मोक्षको प्राप्तहुये हे भारत ! इस प्रकारके वासुदेव आपही यहां हैं ॥ ३३ ॥ उनको जो अर्चन करता है व पूजता है व स्तुति करता है विद्वानोंने उसके सब कर्मको अक्षय कहाहै शिवधर्मों में मैंने जिस फलको पहले तुमसे कहा है ॥ ३४ ॥ वैसेही फलको मनुष्य वासुदेवजीकी प्रसन्नता से प्राप्त होताहै ॥ २३५ ॥
इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांवृद्धवासुदेवमाहात्म्यवर्णनंनामसप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥
दो० । थाप्यो भट्टादित्य को जिमि नारदमुनिनाथ । अर्तिसवें अध्याय में सोई वर्णत गाथ ॥ नारदजी बोले कि हे अर्जुनजी ! तदनन्तर मैंने फिरभी मनुष्यों के

नेन मोक्षंपश्चाढुपागतः ॥ एवंविधोवासुदेवः स्वयमत्रास्तिभारत ॥ ३३ ॥ योर्च्चयेत्पूजयेत्स्तौति सर्वंतस्याक्षयंविदुः ॥ शिवधर्म्मेषुयत्प्रोक्तं फलंपूर्वंमयातव ॥ ३४ ॥ तादृशंलभतेमर्त्यो वासुदेवप्रसादतः ॥ २३५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेवृद्धवासुदेवमाहात्म्यन्नामसप्तत्रिंशोध्यायः ॥ ३७ ॥

* ॥ * ॥ * ॥

नारदउवाच ॥ ततोहंपार्थभूयोपिजनानुग्रहकाम्यया ॥ प्रत्यक्षदेवंमार्तण्डमत्रानेतुमियेषवै ॥ १ ॥ सर्वेषांप्राणिनांयस्माढुदयोभगवान्रविः ॥ इहामुत्रचकौन्तेय विश्वाधारोरविर्मतः ॥ २ ॥ येस्मरन्तिरविंभक्त्या कीर्त्तयन्तिच येनराः ॥ प्रपूजयन्तियेनित्यं कृतार्थास्तेनसंशयः ॥ ३ ॥ आत्मद्रोहःकृतस्तेन जातेनात्रभवेस्फुटम् ॥ नार्चितोयेनदेवेशः सहस्रकिरणोरविः ॥ ४ ॥ सूर्य्यभक्तिपरायेतु नित्यंतद्गतमानसाः ॥ येस्मरन्तिसदासूर्य्यं नतेदुःखस्यभाजनम् ॥ ५ ॥

ऊपर दयाकी कामना से सूर्यनारायण प्रत्यक्षदेवको यहां लानेके लिये इच्छाकिया ॥ १ ॥ जिसलिये भगवान् सूर्यनारायण सब प्राणियों के यहां व परलोक में उदय (ऐश्वर्य) दायक हैं हे अर्जुनजी ! इसीसे सूर्य संसारके आधाररूप मानेगये हैं ॥ २ ॥ जो मनुष्य भक्तिसे सूर्यनारायण को स्मरण करते हैं व जो कीर्तन करते हैं और जो नित्यही पूजते हैं व कृतार्थ होजाते हैं इस में सन्देह नहीं है ॥ ३ ॥ इस संसारमें पैदाहुये उस पुरुष से अपनाही वैर कियागया कि जिसने हजार किरणों वाले सूर्यनारायण देवेश को नहीं पूजाहै ॥ ४ ॥ जो सूर्यनारायण की भक्तिमें परायणहैं और नित्यही उनमें मनको लगायेहुये जो मनुष्य सदैव सूर्यनारायण को

स्मरण करते हैं वे दुःखके पात्र नहीं होते हैं ॥ ५ ॥ मनोहर मन्दिर व अनेक प्रकार के आभूषण और स्त्रियां व तृप्तिपर्यन्त धन सूर्यनारायण के पूजनविधिका फलहै ॥ ६ ॥ सूर्यनारायण में भक्ति दुर्लभ है व उनका पूजन दुर्लभ है और उनके लिये दान दुर्लभ है व उनका होम भी दुर्लभहै ॥ ७ ॥ नमस्कारादि से संयुक्त रवि ये दो अक्षर जिसकी जिह्वाके अग्रभाग में वर्तमान हैं उसका जीवन सफलहै ॥ ८ ॥ मैंने सूर्यनारायण से पैदाहुये इस बड़ेभारी माहात्म्य को हृदय में भलीभांति विचारकर हे अर्जुनजी ! पूर्ण सौ वर्षतक पवनभोजी होकर छन्दोंके शुद्ध जपसे भक्तिके द्वारा सूर्यको प्रसन्न किया तदनन्तर योगके बलसे व्यापक सूर्यनारायणजी आकाश से

भवनानिमनोज्ञानि विविधाभरणास्त्रियः ॥ धनंचतृप्तिपर्य्यन्तं सूर्य्यपूजाविधेःफलम् ॥ ६ ॥ दुर्लभाभास्करेभक्तिर्दुर्लभंतस्यचार्चनम् ॥ दानञ्चदुर्लभंतस्मै तद्धोमश्चसुदुर्लभः ॥ ७ ॥ नमस्कारादिसंयुक्तं रविरित्यक्षरद्वयम् ॥ जिह्वाग्रेवर्त्ततेयस्य सफलंतस्यजीवितम् ॥ ८ ॥ इत्यहंहृदिसञ्चिन्त्य माहात्म्यंरविजंमहत् ॥ पूर्णंवर्षशतंपार्थ रविंभक्त्या ह्यतोषयम् ॥ ९ ॥ जपेनसुविशुद्धेन छन्दसांवायुभोजनः ॥ ततःखाद्भितयंमूर्त्तिं कृत्वायोगबलाद्विभुः ॥ १० ॥ तेजसा दुर्दृशोभास्वान् प्रत्यक्षस्समजायत ॥ तमहंप्राञ्जलिर्भूत्वानमस्कृत्यरविंप्रभुम् ॥ ११ ॥ सामभिर्विविधैर्देवं पर्यतोषयमीश्वरम् ॥ तुष्टोमामाहवरदो देवर्षेसुचिरन्त्वया ॥ १२ ॥ तपसाराधितोस्मीति वरंवृणुयथेप्सितम् ॥ इत्युक्तोहंलोकनाथं प्राञ्जलिःप्राब्रवंवचः ॥ १३ ॥ यदितुष्टोभवान्मह्यं यदिदेयोवरोमम ॥ ततस्तेकामरूपाया कलानाथप्रवर्त्तते ॥ १४ ॥

दूसरी मूर्त्तिको कर ॥ ९ । १० ॥ व आंखोंके सामने प्राप्तहुये जो सूर्यनारायण कि तेजके कारण दुःखसे देखेजाते थे उन स्वामी सूर्यनारायण को हाथोंको जोडकर प्रणामकरके मैंने ॥ ११ ॥ ईश्वर सूर्यदेव को अनेक भांतिके सामवेदोक्त मन्त्रोंसे प्रसन्न किया तब प्रसन्न होतेहुये वरदायक सूर्यनारायणजी ने मुझ से कहा कि हे नारदजी ! तुमने बहुत दिनोंतक ॥ १२ ॥ तपस्या से मेरा आराधन किया इस से अभिलाषके अनुसार वरदान को मांगिये ऐसा कहेहुये मैंने हाथोंको जोडकर संसार के स्वामी सूर्यनारायणजीसे यह वचन कहा ॥ १३ ॥ कि यदि आप मेरे ऊपर प्रसन्न हो और यदि मुझको वर देनेयोग्य है तो हे नाथ ! तुम्हारी जो कामरूपिणी कला

वर्तमान हैं॥ १४॥ जोकि राजा राजवर्द्धन व अन्यजनों से पहले आराधन कीगई है हे सूर्यनारायणजी ! उस कलासे आप सदैव हमको रक्षाकरने के लिये योग्यहैं॥१५॥ तदनन्तर हे अर्जुनजी ! वैसाही होगा यह सूर्यदेव के कहनेपर मैंने महादित्यनामक सूर्यनारायण को थापा ॥ १६ ॥ जिसलिये मुझ भट्टसे सूर्यनारायण थापेगये उसीकारण महादित्य ऐसे रवि कहेगये तदनन्तर फूलोंसे पूजित व कियेहुये प्रवेशवाले उन सूर्यनारायणजी की ॥ १७ ॥ भक्तिकी अधिकतासे डूबेहुये अङ्गोंवाले मैंने समस्त वेदोंमें छिपेहुये एकसौ आठ नामोंसे इस स्तुतिको किया ॥ १८ ॥ कि आप सात घोड़ोंवाले व अचिन्त्य शरीरवाले तथा महादयालुवोंमें उत्तम

राजवर्द्धनराज्ञायाराधिताचजनैःपुरा ॥ तयाचकलयामानोसदानस्त्रातुमर्हसि ॥ १५ ॥ ततस्तथेतिदेवेन प्रोक्तेतुष्टे नभारत ॥ आस्थापयमहंसूर्यं महादित्याभिधानकम् ॥ १६ ॥ भट्टेनस्थापितंयस्मान्मयातस्माद्रविर्जगौ ॥ ततस्समपूजितेपुष्पैःकृतावेशमहंरविम् ॥ १७ ॥ भक्त्युद्रेकप्लुताङ्गोथ स्तुतिमेतांसमाचरम् ॥ सर्ववेदरहस्यैश्च नामभिश्च शताष्टभिः ॥ १८ ॥ सप्तसप्तिरचिन्त्यात्मा महाकारुणिकोत्तमः ॥ संजीवनोजयोजीवो जीवनाथोजगत्पतिः ॥ १९ ॥ कालाश्रयःकालकर्त्ता महायोगीमहामतिः ॥ भूतान्तःकरणोदेवः कमलानन्दनन्दनः ॥ २० ॥ सहस्रपाच्चवरदोदिव्य मण्डलमण्डितः ॥ धर्मप्रियोचितोनात्मा सवितावायुवाहनः ॥ २१ ॥ आदित्यःक्रोधनःसूर्यो रश्मिमालीविभावसुः ॥ दिनकृद्दिनहृन्मौनी सुरथोरथिनांवरः ॥ २२ ॥ राज्ञांपतिःस्वर्णरेताःपूषात्वष्टादिवाकरः ॥ आकाशतिलकोधाता संवि

हो और भलीभांति जिलातेहो व जय, जीव व जीव के स्वामी तथा जगदीश्वर हो ॥ १९ ॥ और कालके आशय कालकर्त्ता, महायोगी व महाबुद्धिमान् हो और प्राणियों के अन्तःकरणरूपी देव और कमलों को आनन्ददायक हो ॥ २० ॥ और हजार चरणोंवाले व वरदायक और उत्तम मण्डल से भूषित हो और धर्मप्रिय उचित व शरीररहित, सविता और पवन आपके वाहन हैं ॥ २१ ॥ आदित्य, क्रोधी, सूर्य, किरणों की मालावाले, विभावसु, दिन करनेवाले व दिन हरनेवाले, मौनी, सुरथ व रथियों में श्रेष्ठहो ॥२२॥ और राजाओं के स्वामी, स्वर्ण वीर्यवाले,पूषा, त्वष्टा, दिनकर व आकाश में तिलकरूप, धारण करनेवाले, भलीभांति विभाग

करनेवाले व मनोहर हो ॥ २३ ॥ बुद्धिमान्, बुद्धिके पति, धन्य, विष्णु, लक्ष्मीपति व वैद्योत्तम, प्रकाशकारी, लोकनाथ व लोकपालों से नमस्कार कियेजाते हो॥२४॥ और विदितासन, सुलोचन, महात्मा व भक्तप्रियहो और यश व यशकारक, नित्य, प्रकाशवाले और पातकनाशकहो ॥ २५ ॥ व आनन्द को जीतेहुये, बड़े पराक्रमी, हंस व संहार करनेवाले, कृतार्थ, निस्संग बहुज्ञाता व वाणीके पतिहो ॥ २६ ॥ संसारके पूजनीय, मृत्युहारक, किरणवान् व धर्मका कारणहो और प्रणत दुःखहारी, नीरोग, आयुष्मान्, सुखदायक व सुखीहो ॥ २७ ॥ मण्डलरूप, कमललोचन, व्रती व व्रतोंके फलको देनेवालेहो व पवित्र, पूर्ण, मोक्षमार्गवाले, दाता,

भागीमनोहरः ॥ २३ ॥ प्राज्ञःप्रज्ञापतिर्धन्यो विष्णुःश्रीशोभिषग्वरः ॥ आलोककृल्लोकनाथो लोकपालनमस्कृतः ॥२४॥ विदितासनःसुनयनो महात्माभक्तवत्सलः ॥ कीर्त्तिःकीर्त्तिकरोनित्योरोचिष्णुःकल्मपापहः ॥ २५ ॥ जितानन्दोमहावीर्यो हंसस्संहारकारकः ॥ कृतकृत्यस्त्वसङ्गश्च बहुज्ञोवचसाम्पतिः ॥ २६ ॥ विश्वपूज्योमृत्युहारी घृणीधर्म्मस्यकारणम् ॥ प्रणतार्तिहरोरोग आयुष्मान्सुखदस्सुखी ॥ २७ ॥ मण्डलंपुण्डरीकाक्षो व्रतीव्रतफलप्रदः ॥ शुचिःपूर्णोमोक्षमार्गो दाताभोक्तामहेश्वरः ॥ २८ ॥ धन्वन्तरिःप्रियाभासो धनुर्वेदविदेकराट् ॥ जगत्पिताधूमकेतुर्विद्युतोध्वान्तहागुरुः ॥ २९ ॥ गोपतिश्चतथातिथ्यश्शुभाचारश्शुचिःप्रियः॥ सामप्रियोलोकबन्धुर्नैकरूपोयुगादिकृत् ॥ ३० ॥ धर्म्मसेतुर्लोकसाक्षी खेटोर्कस्सर्वदाप्रभुः ॥ मयैवंसंस्तुतोभानुर्नाम्नामष्टशतेनच ॥ ३१ ॥ तुष्यतांसर्वलोकानां सर्वलोकप्रियोविभुः ॥ इत्येवंसंस्तवात्प्रीतो भास्करोमामवोचत ॥ ३२ ॥ सदात्रकलयास्थास्ये देवर्षेत्वत्प्रियेप्सया ॥ योमामत्रमहाभ

भोक्ता व महेश्वरहो ॥ २८ ॥ और धन्वन्तरि, प्रियाभास, धनुर्वेदज्ञाता व एकराजा हो व संसारके पिता, धूमकेतु, विद्युत, अन्धकारनाशक व गुरुहो ॥ २९ ॥ और किरणों के स्वामी, आतिथ्य, शुभ आचरणवाले, शुचि व प्यारेहो व सामप्रिय, लोकबन्धु, अनेकरूपवाले व युगादिकारकहो ॥ ३० ॥ धर्मसेतु, लोकसाक्षी, आकाशचारी, अर्क व सदैव स्वामीहो मुझ से इस भांति एकसौ आठ नामों करके स्तुति कियेहुये सूर्यनारायण ॥ ३१ ॥ सब मनुष्यों के ऊपर प्रसन्न होवें जोकि समस्तलोकप्रिय व व्यापकहैं इसी स्तोत्रसे प्रसन्न होतेहुये सूर्यनारायणजी मुझसे बोले ॥३२॥ कि हे नारदजी ! तुम्हारे प्रियकी इच्छा से मैं सदैव कला करके यहां टिकूंगा जो

मनुष्य यहां बड़ीभक्ति से मुझ भद्रादित्य को पूजैगा ॥ ३३ ॥ वह उसी फलको प्राप्तहोवैगा जोकि कामरूप सूर्यनारायण को पूजकर मिलता है और मुझको उद्देश करि जो मनुष्य थोड़ा या बहुत दान ॥ ३४॥ यहां देवैगा उस अक्षयदानको मैं हाथहीसे लियेहुये दानकी नाईं ग्रहण करूंगा लालकमल, श्वेतकमल, मौलसिरी और कनैर ॥ ३५ ॥ व सौपत्तोंवाले महाकमलों से रविवार के दिन जो मनुष्य मुझको यहां सप्तमी या छठिको पूजैंगे ॥३६॥ वे जिन जिन कामनाओंकी प्रार्थना करैंगे उन उन मनोरथों को निश्चयकर पावैंगे व मेरी भक्तिसे दर्शन करके रोग व दरिद्रका नाशहोगा ॥३७॥ और प्रणामसे मनुष्य स्वर्गको प्राप्तहोताहै और नित्य स्तुतिकर मोक्षको

क्त्या भद्रादित्यंप्रपूजयेत् ॥ ३३ ॥ सहस्रांशुंकामरूपं सम्पूज्याप्नोतितत्फलम् ॥ मामुद्दिश्यचयोमर्त्यः स्वल्पंवायदि वांबहु ॥ ३४ ॥ दास्यतेत्राक्षयन्तच्च ग्रहीष्येकरजंयथा ॥ रक्तोत्पलैश्चकल्हारैः केसरैःकरवीरकैः ॥ ३५ ॥ शतपत्रैर्महापद्मै रविवारेणमानवाः ॥ सप्तम्यामथषष्ठ्यांवा येर्चयिष्यन्तिमामिह ॥ ३६ ॥ यान्यान्प्रार्थयतेकामांस्तांस्तानाप्स्यन्तिनिश्चितम् ॥ दर्शनान्ममभक्त्याचनाशोऽव्याधिदारिद्र्योः ॥ ३७॥ प्रणामात्स्वर्गमाप्नोतिस्तुत्वामोक्षञ्चनित्यशः॥ अभक्तियश्चकर्त्तामे सगच्छेन्निश्चितंक्षयम् ॥ ३८ ॥ अष्टोत्तरशतंनाम्नां ममाग्रेयस्त्वयेरितम् ॥ त्रिकालमेककालंवा पठतःशृणुयत्फलम् ॥ ३९ ॥ कीर्तिमान्सुभगोविद्वान्सुमुखीप्रियदर्शनः ॥ भवेद्वर्षशतायुश्च सर्वरोगविवर्जितः ॥ ४० ॥ यस्त्विदंशृणुयान्नित्यं पठेद्वाप्रयतश्शुचिः ॥ अक्षयंस्वल्पमप्यन्नं भवेत्तस्योपसाधितम् ॥ ४१ ॥ विजयीचभवेन्नित्यंतथाजातिस्मरोभवेत् ॥ तस्मादेतत्सदाजप्यं परंस्वस्त्ययनंमहत् ॥ ४२ ॥ तथाममाग्रेकुण्डञ्च कुरुस्नानार्थं

पाताहै और जो मेरी भक्तिको नहीं करताहै वह निश्चयकर नाशको प्राप्तहोताहै ॥३८॥ तुमसे मेरे आगे कहेहुये इन एकसौ आठ नामोंको त्रिकाल या एक समयमें पढ़तेहुये मनुष्यको जो फल होताहै उसको सुनिये ॥ ३९ ॥ कि वह मनुष्य यशस्वी, सुन्दर ऐश्वर्यवान्, विद्वान, सुन्दर मुखवाला और प्रियदर्शन तथा सौवर्ष आयुर्बलवाला व समस्त रोगोंसे रहित होवै है ॥४०॥ और जो पवित्र होकर इस स्तोत्रको नित्य पढ़ता या सुनताहै उसका थोडाभी साधित (बनायाहुआ) अन्न अक्षय होताहै ॥४१॥ व नित्यही विजयवान् होताहै और जातिका स्मरण करनेवाला होताहै इस लिये यह बड़ाभारी कल्याणकारक उत्तम स्तोत्र सदैव जपनेयोग्य है ॥ ४२ ॥

और स्नान के लिये मेरे आगे उत्तमकुण्ड कीजिये जहां कामरूपिणी कला है वहां वनमें कुण्ड होवै है ॥ ४३ ॥ इस प्रकार वरोंको देकर सूर्यनारायणजी वहीं अन्तर्धान होगये तदनन्तर सूर्यनारायण के वचनसे सिद्धेशजीके बाईंओर ॥ ४४ ॥ कुशकी शलाका से वनके मध्यमें कुण्ड कियागया हे भारत ! यहां कामरूप से उपजाहुआ कुण्ड और वे वृक्ष ॥ ४५ ॥ भलीभांति लगेहैं वह मेरे चित्तमें बड़ा आश्चर्यहुआ है माघमहीने की शुक्लपक्षवाली सप्तमी में जो स्त्री या पुरुषभी ॥ ४६ ॥ उत्तमकुण्ड मे नहाकर भट्टादित्य को देखता है उसको अमितपुण्य होती है और जो रथको पूजता है ॥ ४७ ॥ व जिस किसी मार्गमें यह रथयात्रा करता है उसको

सुत्तमम् ॥ कामरूपाकलायत्र तत्रकुण्डंवनेभवेत् ॥ ४३ ॥ एवंदत्त्वावरान्भानुस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ ततोभास्करवाक्येन सिद्धेशस्यचसव्यतः ॥ ४४ ॥ वनमध्येमहाकुण्डं कृतन्दर्भशलाकया ॥ कामरूपभवंकुण्डं वृक्षास्तेचात्रभारत ॥ ४५ ॥ संलीनास्तन्महाश्चर्यं ममाजायतचेतसि ॥ माघमासस्यशुक्लायां सप्तम्यांस्त्रीनरोपिवा ॥ ४६ ॥ स्नानंकुण्डेशुभेकृत्वा भट्टादित्यंप्रपश्यति ॥ तस्यानन्तंभवेत्पुण्यं रथंयश्चप्रपूजयेत् ॥ ४७ ॥ रथयात्रांचकुरुतेयस्मिन्कस्मिन्नसौपथि ॥ येचपश्यन्तिलोकास्ते धन्यास्सर्वेनसंशयः ॥ ४८ ॥ पुत्रधान्यधनैर्युक्ता नीरुजस्तेजसान्विताः ॥ भविष्यन्तिनरास्तेये कारयन्तिरथोत्सवम् ॥ ४९ ॥ गङ्गादिसर्वतीर्थेषु यत्फलंकीर्तितंबुधैः ॥ भट्टादित्यस्यकुण्डेतु तत्फलंसप्तमीदिने ॥ ५० ॥ तत्रकुण्डेचयःस्नात्वा सूर्यायार्घंप्रयच्छति ॥ कपिलागोशतस्यासौ दत्तस्यफलमश्नुते ॥ ५१ ॥ अर्ज्जुनउवाच ॥ वासुदेवादयस्सर्वे वदन्त्येवंमहामुने ॥ भास्करार्घंविनाप्रातः कृतंसर्वञ्चनिष्फलम् ॥ ५२ ॥ तस्याहंश्रोतुमिच्छामि

जो मनुष्य देखते हैं वे सब धन्यहैं इसमें सन्देह नहीं है ॥ ४८ ॥ और वे मनुष्य पुत्र, धान्य व धनोंसे संयुक्त और नीरोग व तेजसे संयुक्त होतेहै जोकि रथोत्सवको करते हैं ॥ ४९ ॥ गङ्गादिक समस्त तीर्थों में विद्वानों से जो फल कहागया है वह फल उपर्युक्त सप्तमी के दिनमें भट्टादित्य के कुण्डमें होताहै ॥ ५० ॥ और उस कुण्डमें नहाकर जो पुरुष सूर्यनारायण के लिये अर्घ देताहै यह सौ कपिला गऊ दानके फलको भोगता है ॥ ५१ ॥ अर्जुनजी बोले कि हे महामुने ! वासुदेवादिक सब इस प्रकार कहते हैं कि सूर्यनारायण के अर्घके विना प्रातःकालमें कियाहुआ सब निष्फल होजाता है ॥ ५२ ॥ हे विधि जाननेवालों में श्रेष्ठ नारदजी !

उसकी विधिको मैं सुना चाहता हूं ॥ ५३ ॥ नारदजी बोले कि जिस प्रकार ब्रह्मादिक देवता महात्मा सूर्यनारायणजी के लिये अर्घदेते हैं उस समस्त पातकों के नाशनेवाली विधिको सुनिये ॥ ५४ ॥ पहले तबतक प्रातःकाल में सूर्योदय होनेपर पवित्र होकर गोमयसे क्रियेहुये मण्डलके ऊपर लालचन्दनसे मण्डलकर तदनन्तर तांबेके पात्रमें लालचन्दन, जल, श्वेतचन्दनादिक वस्तुवोंसे पूर्णकरके उस के बीचमें सुवर्ण, अक्षत, दूब, दही, घी, डालकर स्थापन करै ॥ ५५ ॥ तदनन्तर अपने शरीरको इस मन्त्रसे स्पर्शकरै कि "ॐखंखोल्कायनमः" यह सातबार कहना चाहिये उससे देहकी शुद्धिरूपत्व होतीहै व अर्घकी योग्यता होती है पश्चात् आसन

विधिंविधिविदांवर ॥ ५३ ॥ नारदउवाच ॥ यथाब्रह्मादयोदेवा यच्छन्त्यर्घंमहात्मने ॥ भास्कराय शृणुत्वन्तं विधिं सर्वाघनाशनम् ॥५४॥ प्रथमंतावत्प्रत्यूषे उदितेसूर्येशुचिर्भूत्वागोमयकृतमण्डलस्योपरिरक्तचन्दनेन मण्डलंकृत्वा ततस्ताम्रपात्रे रक्तचन्दनोदकश्वेतचन्दनादिद्रव्यैः प्रपूरणं कृत्वा तन्मध्ये हेमाक्षतदूर्वादधिसर्पिंषीपरिक्षिप्यस्था पयेत ॥ ५५ ॥ ततःस्वशरीरमालभेदनेनमन्त्रेण ॥ ॐखंखोल्कायनमः ॥ सप्तवारानुच्चारितव्यं तेनशुद्धिरूपत्वं जाय तेदेहस्यार्घार्हताचभवति ॥ पश्चादासनस्थंसवितारं मण्डलमध्येद्वादशात्मकंसुरादिभिः सम्पूज्यमानंध्यात्वा पूर्वोक्त मर्घपात्रंशिरसिकृत्वा भूमौजानुनीनिपात्यसूर्याभिमुखस्तद्गतमनाभूत्वा अर्घमन्त्रमुदाहरेत्तदुच्यते ॥ ५६ ॥ सूर्यवक्त्रा द्विनिर्गतामिति ॥ यस्योच्चारणशब्देन रथंसंस्थाप्यभास्करः ॥ ५७ ॥ प्रतिगृह्णातिचैवार्घं वरमिष्टञ्चयच्छति ॥ ॐय स्याहुस्सप्तछन्दांसि रथेतिष्ठन्तिवाजिनः ॥ ५८ ॥ अरुणस्सारथिर्यस्य रथवाहोग्रतःस्थितः ॥ जयाचविजयाचैव ज

में स्थित व मण्डल के बीचमें देवादिकों से पूजन कियेजाते हुये द्वादशात्मक सूर्यनारायण को ध्यानकर पूर्वोक्त अर्घके पात्रको मस्तक पै करके घुटनुवों को भूमिमें गिराकर सूर्यकेसामने उनमें मन लगायेहुये होकर अर्घके मन्त्रको कहै वह कहा जाताहै ॥ ५६ ॥ "सूर्यवक्त्राद्विनिर्गतां" यह मन्त्रहै जिसके उच्चारणके शब्दसे रथको भलीभांति खड़ाकर सूर्यनारायण ॥ ५७ ॥ अर्घको ग्रहण करतेहैं व प्रिय वरदानको देतेहैं जिनके रथमें सात छन्दैं घोड़े होकर स्थितहैं ऐसा मुनिलोगकहते हैं ॥ ५८ ॥

व जिनके रथको चलानेवाले सारथी अरुणजी आगे स्थित हैं और जया, विजया, जयन्ती, अपराजिता ॥ ५९ ॥ व दण्ड, पिंगल, हरित, अश्वमुख, डिंडि, शेषनाग व गणाध्यक्ष ॥ ६० ॥ स्कन्द इसी प्रकार गरुड़ व कल्माप,पक्षी और राज्ञी, तिक्षुभादेवी, लुलिता व श्वेतसंज्ञका ॥ ६१ ॥ वैसेही यज्ञभोजी जो अन्य देवता कहेगये हैं नीचे व ऊपर चलनेवाले इनसे घिरेहुये जो ये सूर्यनारायण हैं उन अन्धकारनाशक संसारकारक सूर्यनारायण को मैं आह्वान करताहूं हे भगवन्, सूर्यनारायण ! आइये व इस यज्ञको वर्तमान करिये ॥ ६२ । ६३ ॥ इस अर्घ व पाद्य को ग्रहण कीजिये आपके लिये नमस्कारहै नमस्कारहै आवाहनको कहते हैं कि

यन्तीचापराजिता ॥ ५९ ॥ दण्डश्चपिङ्गलश्चैव हरितोश्वमुखस्तथा॥डिण्डिश्चशेषनागश्च गणाध्यक्षस्तथैवच ॥ ६० ॥ स्कन्दएवंतुतार्क्ष्यश्च तथाकल्माषपक्षिणौ ॥ राज्ञीचतिक्षुभादेवी लुलिताश्वेतसंज्ञका ॥ ६१ ॥ तथायज्ञभुजोदेवा येचान्येपरिकीर्तिताः ॥ एभिःपरिवृतोयोसावधरोत्तरचारिभिः॥ ६२ ॥ तमहंलोककर्त्तारमाह्वयामितमोपहम् ॥ आयाहि भगवन्भानो अमुंयज्ञंप्रवर्त्तय ॥ ६३ ॥ इदमर्घञ्चपाद्यञ्च प्रगृहाणनमोनमः॥अथावाहनम्॥सहस्रकिरणवरदखंखोल्कायनमइति ॥ ६४ ॥ सान्निध्यकरणं ॐवषट्इत्युच्चार्यसूर्यस्यचरणयुगलं पश्यन्भुविपदयोर्वापात्रंनिधापयेत् ॥ पाद्यन्तदुच्यतेएवंपाद्यं दत्त्वाबद्धाञ्जलिःसुस्वागतमितिकुर्यात् ॥ ६५ ॥ स्वागतंभगवन्नेहि प्रसादायास्यतांमम ॥ इहगृहाण पूजान्नः प्रसादञ्चधियाकुरु ॥ ६६ ॥ तिष्ठतावदथात्रैव यावत्पूजांकरोम्यहम् ॥ एवंविज्ञापनन्दत्त्वा आसनंदद्यादनेनमन्त्रेण ॥ ६७ ॥ ॐकमलासनकमलनन्दनोपाविशेति ॥ आसनमुपविष्टस्यशेषांपूजांनियोजयेदनेनन्यायेन ॥ ६८ ॥

हे सहस्र किरणोंवाले, वरदायक ! खंखोल्कायनमः यह आवाहन का मन्त्रहै ॥ ६४ ॥ अब समीपकरण कहते हैं कि ॐवषट् ऐसा उच्चारणकर सूर्यनारायण के दोनों चरणों को देखताहुआ पुरुष भूमि व चरणो के समीप पात्र धर देवै वह पाद्य कहाजाताहै इस प्रकार पाद्यको देकर हाथोंको जोडेहुये पुरुष सुस्वागतकरै याने आनेका कुशल प्रश्न पूछै ॥ ६५ ॥ हे भगवन् ! तुम्हारा आना अच्छा हुआ मेरे ऊपर प्रसन्नता के लिये बैठिये व यहां हमारे पूजनको ग्रहण कीजिये और बुद्धिसे प्रसन्नता कीजिये ॥ ६६ ॥ और जबतक मैं पूजन करूं तबतक यहींपर स्थित हूजिये इस प्रकार विज्ञापन देकर इस मन्त्रसे आसन देवै ॥ ६७ ॥ कि हे

कमलासन, कमलानन्ददायक ! बैठिये यह मन्त्रहै और आसन पै बैठेहुये सूर्यनारायण का शेषपूजन इस न्यायसे नियुक्तकरै ॥६८॥ कि सोममूर्त्तिधारी क्षीरोदधिपति
के लिये नमस्कार है यह क्षीरादि स्नानका मन्त्र है व नीरवसु भास्करके लिये नमस्कारहै इस मन्त्रसे जलस्नान करावै ॥ ६९ ॥ तदनन्तर दो श्वेतवसन इस मन्त्र
से देवै कि हे सूर्य ! इन दो वस्त्रोंको दयासे ग्रहण कीजिये तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥ ७० ॥ एक वसन कटिभूषण है और दूसरा अङ्गमें दुपट्टे के स्थान में है तद-
नन्तर इस मन्त्रसे यज्ञोपवीत देवै ॥ ७१ ॥ कि हे देवेश ! सूतके तागों से बनेहुये इस श्वेत व पवित्र तथा उत्तम यज्ञोपवीत को ग्रहण कीजिये आपके लिये नमस्कार

**ॐसोममूर्तिक्षीरोदधिपतयेनमः ॥ इतिक्षीरादिस्नानम् ॥ भास्करायनीरवसवेनमः ॥ इतिजलस्नानम् ॥ ६९ ॥ ततो
वासोयुगं शुभ्रंदद्यादनेनमन्त्रेण ॥ इदंवासोयुगंसूर्य गृहाणकृपयानमः ॥ ७० ॥ कटिभूषणमेकन्ते द्वितीयञ्चाङ्गप्रा
वरणम् ॥ ततोयज्ञोपवीतं दद्यादनेनमन्त्रेण ॥ ७१ ॥ सूत्रतन्तुमयंशुभ्रं पवित्रमिदमुत्तमम् ॥ यज्ञोपवीतंदेवेश प्रगृह्य
णनमोस्तुते ॥ ७२ ॥ ततःशक्तिश्चेन्मुकुटमुद्रिकादिभूषणानिदद्यादनेनमन्त्रेण ॥ ७३ ॥ मुकुटोयंरत्नबद्धो मुद्रिकाभूष
णानिच ॥ अलङ्कारंगृहाणेमं मयाभक्त्यासमर्पितम् ॥ ७४ ॥ एवमलङ्कारंनिवेद्य पश्चात्केसरकुङ्कुमकर्पूररक्तचन्दन
मिश्रमनुलेपनंदद्यात् ॥ ७५ ॥ ॐतवातिप्रियवृक्षाणां रसोयंतिग्मदीधिते ॥ ७६ ॥ तवैवचोचितःस्वामिन् गृहाणकृप
यामम ॥ ततश्चपङ्कजकरवीरवर्णककेसरकोकनदादिभिः पूजांकुर्यात् ॥ ७७ ॥ ॐवनस्पतिरसोदिव्यो गन्धाढ्योगन्ध**

है ॥ ७२ ॥ तदनन्तर यदि शक्तिहोवै तो मुकुट, मुन्दरी आदिक भूषणों को इस मन्त्रसे देवै ॥ ७३ ॥ कि रत्नोंसे गूँधाहुआ यह मुकुट, मुद्रिका व भूषणों को और
मुझसे भक्तिकरके अर्पण कियेहुये इस अलङ्कार को ग्रहण कीजिये ॥ ७४ ॥ इसप्रकार अलङ्कार देनेयोग्य है पश्चात् केसर, कुंकुम, कपूर व लालचन्दन से मिले
हुये अनुलेपन को देवै ॥ ७५ ॥ हे तीक्ष्ण किरणोंवाले सूर्यनारायणजी ! तुमको अत्यन्त प्यारे वृक्षोंका यह रस है ॥ ७६ ॥ हे स्वामिन् ! यह तुम्हारेही योग्य है इस
से मेरे ऊपर दयाकरके ग्रहण कीजिये तदनन्तर कमल, कनैर, वर्णक (चन्दन) मौलसिरी लालकमल आदिक फूलों से पूजन करै ॥ ७७ ॥ वनस्पति का उत्तम

रस जोकि सुगन्ध से संयुत व उत्तम सुगन्धवाला है और यह सब देवताओं के सूंघने योग्य है इस धूपको आप ग्रहण कीजिये ॥ ७८ ॥ यह धूपका मन्त्र समाप्त हुआ ॥ तदनन्तर खीर आदिक हविष्यान्नको इस मन्त्रसे निवेदन करै ॥ ७९ ॥ कि समस्त प्राणियों के बलको बढ़ानेवाली अमृत के समान नैवेद्य जोकि मुझसे पूर्णपात्र में दीगई है उसको ग्रहणकर मेरे ऊपर प्रसन्नहोवो ॥ ८० ॥ तदनन्तर पवित्र होने के लिये जल, ताम्बूल, दीप आरती व सूर्यमुखीका फूल देवै और बार बार पूजन से लगाकर नैवेद्य पर्यन्त यथाशक्तिसे देकर व स्तुतिकर ॥ ८१ ॥ अच्छीभांति किया गयाहो व भलीभाति न कियागयाहो उसको क्षमाकरिये यह कहकर विसर्जन करै

उत्तमः ॥ आघ्रेयःसर्वदेवानां धूपोयंप्रतिगृह्यताम् ॥ ७८ ॥ इतिधूपमन्त्रः॥ततःपायसादिहविष्यान्नंनिवेदयेदनेनमन्त्रेण ॥ ७९ ॥ नैवेद्यममृतंसर्वभूतानांप्राणवर्द्धनम् ॥ पूर्णपात्रेमयादत्तं प्रतिगृह्यप्रसीदमे ॥ ८० ॥ ततःशौचोदकताम्बूलदीपारार्त्तिकतोलिकादद्यात् ॥ पुनःपुनःपूजादिनैवेद्यंयथाशक्त्यादत्त्वास्तुत्वा ॥ ८१ ॥सुकृतंदुष्कृतंवाक्षमस्वेतिप्रोक्त्वा विसर्जयेत ॥ ततोभूयोनमेद्देवमेवंवस्त्रोपवीतालङ्कारान्ब्राह्मणायनिवेद्य ॥ ८२ ॥ निर्म्माल्यंसंहृत्याम्भसिनिक्षिपेदित्यर्घदानविधिः ॥ ८३ ॥ यएवंभास्करायार्घं मूर्त्तौमण्डलकेपिवा ॥ नित्यंनिवेदयेत्प्रातः स्याद्रवेरात्मवत्प्रियः ॥ ८४ ॥ अनेनविधिनाकर्णोभास्करार्घंप्रयच्छति ॥ ततःसूर्यस्यपार्थासावात्मवद्वल्लभोमतः ॥ ८५ ॥ अशक्तश्चेन्नित्यमेवमर्घं दातुंदिवाकरे ॥ ततोत्ररथसप्तम्यांकुण्डेदेयःप्रयत्नतः ॥ ८६ ॥ अश्वमेधफलंप्राप्यसूर्यलोकमवाप्नुयात् ॥ तस्मात्सर्व

तदनन्तर फिर सूर्यदेवको प्रणामकरै और इसीप्रकार वसन, यज्ञोपवीत, आभूषणों को ब्राह्मण के लिये देकर ॥ ८२ ॥ और निर्माल्य बटोरकर जलमें फेंकदेवै यह अर्घ दान की विधि है ॥ ८३ ॥ इस प्रकार प्रातःकाल जो मनुष्य नित्य सूर्यनारायण के लिये अर्घको मूर्ति या मण्डल में भी देताहै वह सूर्यनारायण को आत्माकी नाईं प्यारा होता है ॥ ८४ ॥ इस विधि से कर्णजी सूर्यनारायण को अर्घ देते हैं उसी कारण हे अर्जुनजी ! ये कर्ण सूर्यनारायण को अपने समान प्यारे मानेगये हैं ॥८५॥ यदि इसप्रकार सूर्यनारायण में नित्यअर्घ देनेके लिये असमर्थ होवै तो रथसप्तमीमें इस कुण्डमें बड़े उपाय से अर्घ देनाचाहिये ॥ ८६ ॥ क्योंकि अर्घदेनेवाला

पुरुष अश्वमेधके फलको पाकर सूर्यलोकको प्राप्तहोता है इस लिये हे भारत ! यहां सब यत्नसे अर्घ देनाचाहिये ॥ ८७ ॥ इसप्रकारके ये भट्टादित्य देव यहां स्थित हैं
इनसे भी बहुत पापहारी व धर्म बढ़ानेवाला न होगा ॥ ८८ ॥ और हे अर्जुनजी ! यहां शीघ्रही विश्वास करानेवाली आठ प्रकारकी सौगन्द होती है कि जिससे हला-
हल विषकी नाईं पापोंका भोग होताहै ॥ ८९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेद्विवेदीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायामष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥ ❀ ॥
दो० । होत आठविधि शपथ जिमि भट्टादित्य समक्ष । उन्तालिस अध्याय में सोइ चरित परतक्ष ॥ अर्जुनजी बोले कि हे मुनिनाथजी ! इसमें दिव्य याने सौगन्द
के प्रकारको सुनाचाहता हूँ कि कौन सौगन्दैं किस प्रकार करना चाहिये कि जिनसे पुण्य व पाप प्रकट होता है ॥ १ ॥ नारदजी बोले कि कोश (दिव्यशपथ) घट,

प्रयत्नेनदातव्योऽर्घोऽत्रभारत ॥ ८८ ॥ दिव्यमष्टविधंचात्रसद्यःप्रत्ययकारकम् ॥ पापानांचोपभुक्तंहियथापार्थहलाहल-
म् ॥ ८९ ॥ इति श्री स्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेभट्टादित्यमाहात्म्यंनामाष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥ *

अर्जुनउवाच ॥ दिव्यप्रकारमिच्छामिश्रोतुमस्मिन्मुनीश्वर ॥ कथंकार्याणिकानीहस्फुटंयैःपुण्यपातकम् ॥ १ ॥
नारदउवाच ॥ शपथाःकोशघटकौविषाग्नीतप्तमाषकौ ॥ फालंचतण्डुलंचैवदिव्यान्यष्टौविदुर्द्विजाः ॥ २ ॥ असाक्षिकेषु
चार्थेषुमिथोविवदमानयोः ॥ राजद्रोहाभिशापेषुसाहसेषुतथैवच ॥ ३ ॥ अविन्दंस्तत्त्वतः सत्यंशपथंनाभिलङ्घयेत ॥
महर्षिभिश्चदेवैश्चसत्यार्थाःशपथाःकृताः ॥ ४ ॥ यवनोनृपतिःक्षीणोमिथ्याशपथमाचरन् ॥ वसिष्ठाग्रेवर्षमध्येसान्वयःकि-
लभारत ॥ ५ ॥ अन्धःशत्रुगृहंगच्छेद्योमिथ्याशपथांश्चरेत ॥ रौरवस्यस्वयंद्वारमुद्घाटयतिदुर्मतिः ॥ ६ ॥ मन्यन्तेवैपापकृ-

विष, अग्नि, तप्तमाष फाल, चावल इन आठ दिव्य सौगन्दों को ब्राह्मणों ने कहा है ॥ २ ॥ वस्तुओं में साक्षी न होनेपर व आपस में दो पुरुषों के विवाद करनेपर व
राजद्रोह अभिशाप (असत्य मदिरापानादि दोष लगाना) व साहस कार्यों में ॥ ३ ॥ और यथार्थतासे सत्यको न जाननेपर शपथको न उल्लंघनकरै क्योंकि महर्षियों
व देवताओं से सत्य के लिये सौगन्दैं कीगई हैं ॥ ४ ॥ हे भारत ! यह प्रसिद्ध है कि वसिष्ठजी के आगे झूठी सौगन्द करता हुआ यवनराजा वंश समेत वर्षही भरके
बीचमें नाश होगयाहै ॥ ५ ॥ जो मिथ्या सौगन्दोंको करताहै वह अन्ध होकर शत्रु के घरमें प्राप्तहोता है और वह दुर्बुद्धि पुरुष रौरव नरकके द्वारको आपही उघारता

है ॥ ६ ॥ पाप करनेवाले मनुष्य यह मानते हैं कि हमको कोई नहीं देखता है और उन मनुष्योंको अपने अपने समय में देवता देखते हैं ॥ ७ ॥ सूर्य, चन्द्रमा, पवन अग्नि, आकाश, भूमि, जल, हृदय, यमराज, दिन व रात और दोनो सन्ध्या व धर्म मनुष्य के आचरणको जानता है ॥ ८ ॥ इस लिये ऐसा जानकर सत्यार्थक सौगन्दोको करै क्योंकि मिथ्या शपथों को करता हुआ मनुष्य मरकर व इस लोकमें भी नष्टहोजाता है ॥ ९ ॥ मैं यह सत्य कहता हूँ क्योंकि आप साक्षी हैं इससे शुभाशुभ फलको दीजिये ऐसा कहता हुआ पवित्र मनुष्य सूर्यनारायण के चरणों को छुवै ॥ १० ॥ इसके अनन्तर ब्राह्मण भी शास्त्रको छुवै और क्षत्रिय शस्त्रको छुवै

तोनकश्चित्पश्यतीतिनः ॥ तांश्चदेवाःप्रपश्यन्तिस्वेस्वेचैवान्तरेनरान् ॥ ७ ॥ आदित्यचन्द्रावनिलोनलश्चद्यौर्भूमिरापो हृदयंयमश्च ॥ अहश्चरात्रिश्चउभेचसन्ध्येधर्म्मोहिजानातिनरस्यवृत्तम् ॥ ८ ॥ एवंतस्मादभिज्ञायसत्यार्थाञ्छपथांश्चरेत् ॥ वृथाहिशपथान्कुर्वन्प्रेत्यचेहविनश्यति ॥ ९ ॥ इदंसत्यंवदामीतिब्रुवन्साक्षीभवान्यतः ॥ शुभाशुभफलं देहिशुचिःपादौरवेःस्पृशेत् ॥ १० ॥ अथशास्त्रस्यविप्रोपिशस्त्रस्यापिचक्षत्रियः ॥ माषंस्पृशेत्तथावैश्यः शूद्रःस्वगुरुमेवच ॥ ११ ॥ मातरंपितरंपूज्यं स्पृशेत्साधारणंत्विदम् ॥ कोशस्वरूपंपूर्वंते व्याख्यातंपाण्डुनन्दन ॥ १२ ॥ विप्रेभ्यस्तथाकोशंवर्णानांदापयेन्नृप ॥ योयोयद्देवताभक्तो दापयेत्तस्यतन्नरम् ॥ १३ ॥ समभक्तश्चदेवानामादित्यस्यैव दापयेत् ॥ सर्वेषांचोग्रदेवानां स्नापयेदायुधंस्वकम् ॥ १४॥ स्नानोदकंचसकलं गृहीत्वापाययेन्नरम् ॥ त्रिसप्तरात्रिमध्ये च फलंकोशस्यनिर्दिशेत् ॥ १५ ॥ अतःपरंमहादिव्यविधानंशृणुभारत ॥ शपथांश्चापिकोशञ्च विज्ञात्यंदिव्यमेव

व वैश्य उडदछुवै और शूद्र अपने गुरुको छुवै ॥ ११ ॥ और माता, पिता व पूजनीय का स्पर्शकरै यह साधारण है और हे पाण्डुपुत्र ! कोशस्वरूपको तुममे पहले कहाहै ॥ १२ ॥ और हे राजन् ! श्रेष्ठ ब्राह्मण कोश (दिव्य शपथ) को वर्णोंको दिलावै और जो जो मनुष्य जिस देवताका भक्त है उस मनुष्यको उसकी सौगन्द दिलावै ॥ १३ ॥ और देवताओं के समभक्तवाले पुरुषको सूर्यही की सौगन्द दिलावै और समस्त उग्र देवताओं को नहवावै और अपना अस्त्र लेवै ॥ १४ ॥ और सब स्नानका जल लेकर मनुष्यको पिलावै व तीन और सात रात्रियों के मध्य में दिव्य शपथ का फल कहदेवै ॥ १५ ॥ इसके उपरान्त हे भारत ! महादिव्य विधिको

सुनिये और सौगन्दों तथा कोश और जो दिव्य त्रिजातीयहै उसको सुनिये ॥१६॥ कि पुरातन समय ब्रह्माने यह कहा है कि शिर समेत सौगन्द देना चाहिये और
बड़े उग्र देवताओं के प्रकटही शिररहित भी सौगन्दको देना चाहिये ॥ १७ ॥ और ब्रह्मचारी साधुवों को राजा बिन शिरके सौगन्दको न दिलावै और बड़े पवन
में घट न देना चाहिये और गरमी समय में आग न देना चाहिये ॥ १८ ॥ व ब्रह्मचारियोंको फाले न देना चाहिये और मुखके रोगवाले मनुष्यों को चावल न देना
चाहिये और कुष्ठ व पित्तसे विकल मनुष्यों को और ब्राह्मणों को विष न देनाचाहिये ॥ १९ ॥ और ऐरके नामक तृणविशेषवाले देशमें दिव्य और सौगन्दों तथा कोश

यत् ॥ १६ ॥ सशिरस्कंप्रदातव्यमितिब्रह्मापुराब्रवीत् ॥ महोग्राणांचदातव्यमशिरस्कमपिस्फुटम् ॥ १७ ॥ साधू
नांवर्णिनांराजा नाशिरस्कंप्रदापयेत् ॥ नप्रवातेघटन्देयं नोष्णकालेहुताशनम् ॥ १८ ॥ वर्णिनाञ्चतथाफालंतण्डुलं
मुखरोगिणाम् ॥ कुष्ठपित्तार्दितानाञ्च ब्राह्मणानाञ्चनोविषम् ॥ १९ ॥ नदिव्यमैरकेदेशे शपथान्कोशमेवच ॥ २० ॥
मन्त्रैस्तथासुरैर्दिव्यान्स्तम्भयन्तीहकेचन ॥ प्रतिघातविदस्तेषांयोजयेद्धर्म्मवत्सलम् ॥ २१ ॥ दिव्यानांस्तम्भकंज्ञात्वा
पापनीत्यंमहीपतिः ॥ विवासयेत्स्वकाद्राष्ट्रात्तेहिलोकस्यकण्टकाः ॥ २२ ॥ तेषामन्वेषणेयत्नं राजानित्यंसमाचरेत् ॥
तेहिपापसमाचारास्तस्करेभ्योपितस्कराः ॥ २३ ॥ प्राग्दृष्टदोषान्स्वल्पेपि दुर्गेषुविनियोजयेत् ॥ महत्स्वपिनचा
र्थेषु धर्म्मज्ञान्धर्मवत्सलान् ॥ २४ ॥ नमिथ्यावचनंयेषांजन्मप्रभृतिविद्यते ॥ अश्रद्धयात्पार्थिवस्तेषां वचनादेवभारत ॥ २५ ॥

(दिव्य सौगन्द) को न देना चाहिये ॥ २० ॥ और प्रतिघात याने उन सौगन्दवाली वस्तुवों के नाशक यत्नोंको जाननेवाले कोई आसुर मन्त्रों से सौगन्दों को रोक
लेते हैं इससे उनके मध्य में जो धर्म्म प्रियहो उसको नियुक्त करै ॥ २१ ॥ और दिव्य सौगन्दों के स्तंभकरनेवाले पापनीतिमान् पुरुषको जानकर राजा अपने राज्य
से निकाल देवै क्योंकि वे संसारके कण्टकरूप हैं ॥ २२ ॥ और राजा उनके ढूँढ़ने में नित्यही यत्नकरै क्योंकि पाप आचरणवाले चोरों से भी चोर हैं ॥ २३ ॥ और
पहले देखे हुये दोषोंवाले उनको थोड़े पाप करनेपर भी कठिन बन्दीगृहों में नियुक्त करै और धर्मप्रिय, धर्मज्ञ जनों को बड़े भी अकार्यों में दण्ड से न युक्त

करै ॥ २४ ॥ जन्म से लगाकर जिनका झूंठा वचन नहीं विद्यमान है हे अर्जुन जी ! उनके वचन से राजा विश्वास करै ॥ २५ ॥ क्योंकि पुरुष की धर्मिष्ठता को जानकर चतुर राजा क्रोध व लोभ से दण्ड को कराताहुवा आपही दूषित होता है ॥ २६ ॥ इस लिये उस विषयमें पहले पापीकी सौगन्दका घट कहा जाता है कि बराबर भूमि में पूर्व व दक्षिण दिशाके भागमें ॥ २७ ॥ यज्ञवाले वृक्षके दो स्तम्भ स्थापित करना चाहिये और खम्भा की प्रमाण सात हाथ कहीगई है ॥ २८ ॥ दो हाथ काठको गाड़देवै और पांचहाथ देखने योग्यरहै व उन दोनोंका अन्तर (बीच) चार हाथ करना चाहिये ॥ २९ ॥ और चतुर मनुष्य मस्तक के ऊपर दृढ़ काठ

ज्ञात्वाधर्म्मिष्ठतांराजा पुरुषस्यविचक्षणः ॥ क्रोधाल्लोभात्कारयंश्च स्वयमेवप्रदुष्यति ॥ २६ ॥ तस्मात्पापिष्ठदिव्य स्यतत्रादौप्रोच्यतेघटः ॥ सुसमायांपृथिव्याञ्च दिग्भागेपूर्वदक्षिणे ॥ २७ ॥ यज्ञियस्यतुवृक्षस्य स्थाप्यंचस्तम्भकद्वयम् ॥ स्तम्भकस्यप्रमाणञ्च सप्तहस्तंप्रकीर्त्तितम् ॥ २८ ॥ द्वौहस्तौनिखनेत्काष्ठं दृश्यंस्याद्धस्तपञ्चकम् ॥ अन्तरन्तु तयोःकार्यं तथाहस्तचतुष्टयम् ॥ २९ ॥ मुण्डकोपरिकाष्ठञ्च दृढंकुर्याद्विचक्षणः ॥ चतुर्हस्तंतुलाकाष्ठमग्रएयंकारये त्स्थितम् ॥ ३० ॥ खदिरार्जुनवृक्षाणां शिशपासालजंतथा ॥ तुलाकाष्ठेतुकर्तव्यं तथावैशिक्यकद्वयम् ॥ ३१ ॥ प्राङ्मुखोनिश्चलःकार्यः शुचौदेशेघटस्तथा ॥ पाषाणस्यापिजायेतस्तम्भेषुचघटस्तथा ॥ ३२ ॥ वणिक्सुवर्णकारोवा कुशलःकांस्यकारकः ॥ तुलाधारधरःकार्यो रिपौमित्रेचयःसमः ॥ ३३ ॥ श्रावयेत्प्राड्विवाकोपि तुलाधारंविचक्षणः ॥ ब्रह्मघ्नायेस्मृतालोका येचस्त्रीबालघातिनः ॥ ३४ ॥ तुलाधारस्यतेलोकास्तुलान्धारयतोमृषा ॥ एकस्मिंस्तोलयेच्चिक्ये

करै और अग्रभागमें रहनेवाले तुलाका पुष्टकाठ चारहाथ बनवाना चाहिये ॥ ३० ॥ जोकि खैर अर्जुन वृक्षोंका और सीसम व सॉखूसे उपजाहोवै और तुलाके काठमें दो सिकहर करना चाहिये ॥ ३१ ॥ और पवित्र स्थान में पूर्वमुख निश्चलघट करना चाहिये व पत्थर के भी स्तम्भों में घट होता है ॥ ३२ ॥ बनिया, सोनार व चतुर कांस्यकारक (ठठेर) तुलाधारका धारी करना चाहिये जोकि शत्रु व मित्रमें सम होवै ॥ ३३ ॥ और चतुर न्यायाधीश भी तुलाधारण करनेवाले को यह सुनावै कि जो लोक ब्रह्मघातीको कहे गये हैं और जो लोक स्त्री व बालघातकको होते हैं ॥ ३४ ॥ वेही लोक असत्य तुलाको धारते हुये तुलाधारको होते हैं एक सिकहर में स्नान

क्रिये व उपासे मनुष्य को तौलै ॥ ३५ ॥ और दूसरे में विद्वान् उन्नम व श्वेत मृत्तिकाको तौलै और ईंट, भस्म, पत्थर, खोपड़ी व हड्डियों को वर्जित करै ॥ ३६ ॥ तो
लकर उसके उपरान्त उस सिक्कहर से पहले उस मनुष्यको उतार लेवै तदनन्तर पत्रको लिखकर उसके माथेपै धरै ॥ ३७ ॥ और पत्रमें यह मन्त्र लिखना चाहिये
जोकि पुरातन समय ब्रह्माजीसे कहागया है कि तुम ब्रह्माकी कन्याहो और नामसे तुला ऐसी कहीजातीहो ॥ ३८ ॥ तुकार नित्यही गुरुमें कहीं गई है और लकार लघु
में कहागयाहै उसी कारण गुरु और लघुके संयोगसे तुला कहा जाताहै ॥ ३९ ॥ हेशुभे! बुद्धिसे उत्तम इस मनुष्यको सन्देह से छुड़ाइये यह कहकर फिर पत्र समेत

स्नातंसूपोषितन्नरम् ॥ ३५ ॥ द्वितीयेमृत्तिकांशुभ्रां गौरांवैतोलयेद्बुधः ॥ इष्टकाभस्मपाषाणकपालास्थीनिवर्ज्जये
त् ॥ ३६ ॥ तोलयित्वाततःपूर्वं तस्मात्तमवतारयेत ॥ मूर्द्धिपत्रंततस्तस्यसंप्रलिख्यनिवेशयेत ॥ ३७ ॥ पत्रेमन्त्रस्त्वयंले
ख्योयःपुरोक्तःस्वयंभुवा ॥ ब्रह्मणस्त्वंसुतादेवि तुलानाम्नेतिकथ्यसे ॥ ३८ ॥ तुकारोगौरवेनित्यं लकारोलघुनिस्मृतः ॥
गुरुलाघवसंयोगात्तुलातेननिगद्यते ॥ ३९ ॥ संशयान्मोचयस्वैनं मतिशस्तंनरंशुभे ॥ भूयस्त्वारोपयेत्तन्तुनरंतस्मि
न्सपत्रकम् ॥ ४० ॥ तुलितोयदिवर्द्धेत शुद्धोभवतिधर्म्मतः ॥ हीयमानोनशुद्धःस्यादितिधर्म्मविदोविदुः ॥ ४१ ॥ शिक्य
च्छेदेतुलाभङ्गे पुनरारोपयेन्नरम् ॥ एवंनिस्संशयंज्ञानं यच्चात्मानन्नचालयेत ॥ ४२ ॥ एतत्सर्वंरवौवारे कार्यंसम्पूज्य
भास्करम् ॥ अथातस्सम्प्रवक्ष्यामि विषदिव्यंश्रृणुष्वमे ॥ ४३ ॥ द्विप्रकारंचयत्प्रोक्तं घटसर्प्पविषंतथा ॥ शृङ्गिणोवत्स
नागस्य हिमशैलभवस्यच ॥ ४४ ॥ यवास्सप्तप्रदातव्याअथवाषड्घृतप्लुताः ॥ मूर्द्धिविन्यस्यपत्रन्तु मन्त्रचैनमु

उस मनुष्यको उस तुलापै आरोपण करै ॥ ४० ॥ यदि तोलाहुआ वह मनुष्य बढ़ै तो धर्म्म से शुद्ध होताहै और न्यून होता हुआ पुरुष शुद्ध नहीं होवै है यह धर्म्मके
जाननेवाले लोग कहते हैं ॥ ४१ ॥ और सिकहर कटनेपर व तुला टूटनेपर फिर मनुष्यको आरोपण करै इस प्रकार निस्सन्देह ज्ञान होजाता है यदि शरीर को न
चलावै ॥ ४२ ॥ व सूर्यनारायणजी को पूजकर यह सब रविवार को करना चाहिये अब इसके अनन्तर विष सौगन्दको कहताहूं उसको मुझसे सुनिये ॥ ४३ ॥ जोकि
दो प्रकारका कहागया है एक घटके भीतर सर्प और दूसरा विष जोकि शृङ्गवान् हिमाचल और वत्सनाग के होता है ॥ ४४ ॥ घीसे डूबे हुये सात या छह यव देना

चाहिये और मस्तकपै पत्रको धरकर इस मन्त्रको कहै ॥ ४५ ॥ कि हे विषे ! तुम ब्रह्माके पुत्रहो इस लिये सत्य व धर्म्ममें प्राप्तहोकर इस मनुष्यकी पापसे रक्षाकीजिये और इसकी सत्यसे अमृतहोवो ॥ ४६ ॥ जिस विषके वेगों से बिनजीर्ण और जो छर्दि व मूर्च्छा से रहितहो उस मनुष्यको शुद्धजानै यह धर्म्म के जाननेवाले लोग कहते हैं ॥ ४७॥ व क्षुधित मनुष्य घटके भीतर बैठेहुये भूँखे सर्पसे पहलेकी नाईं कहकर सातबार उसकी तालुको छुवै यदि वह सर्प न काटै तो वह शुद्धहोताहै॥४८ ॥ और जिसप्रकार ब्रह्माने अग्निदिव्य (सौगन्द) को कहाहै उसको मुझसे सुनिये कि सूर्य्यनारायणके आगे सात मण्डलोंको करै ॥ ४९ ॥ और पूर्वसे लगाकर मण्डल

दाहरेत् ॥ ४५ ॥ त्वंविषब्रह्मणःपुत्रस्सत्यधर्म्मेव्यवस्थितः॥त्रायस्वैनंनरंपापात्सत्येनास्यभवामृतम् ॥ ४६ ॥ यस्यवेगैर्विनाजीर्णं छर्दिमूर्च्छाविवर्ज्जितम् ॥ तन्तुशुद्धंविजानीयादितिधर्म्मविदोविदुः ॥ ४७ ॥ क्षुधितःक्षुधितंसर्प्पं घटस्थंप्रोच्यपूर्ववत् ॥ संस्पृशेत्तालुकंसप्त नदशेत्क्षुध्यतीतिसः ॥ ४८ ॥ अग्निदिव्यंयथाप्राहविरञ्चिस्तच्छृणुष्वमे ॥ सप्तमण्डलकान्कुर्याद्देवस्याग्रेरवेस्तथा ॥ ४९ ॥ मण्डलान्मण्डलंकार्यंपूर्वेणेतिविनिश्चयः ॥ षोडशाङ्गुलकङ्कार्यं मण्डलान्मण्डलान्तरम् ॥ ५० ॥ आर्द्रवाससमाहूय तथाचैवाप्युपोषितम् ॥ कारयेत्सर्वदिव्यानि देवब्राह्मणसन्निधौ ॥ ५१ ॥ प्रत्यक्षंकारयेद्दिव्यं राज्ञोवाधिकृतस्यच ॥ ब्राह्मणानांश्रुतिविदां प्रकृतीनान्तथैवच ॥ ५२ ॥ पश्चिमेदिनकालेहि प्राङ्मुखःप्राञ्जलिःशुचिः ॥ चतुरस्रेमण्डलेन्ये कृत्वाचैवसमौकरौ ॥ ५३ ॥ लक्षयेयुःक्षतादीनि हस्तयोस्तस्यकारिणः ॥ सप्ताश्वत्थस्यपत्राणि बध्नीयुःकरयोस्ततः ॥ ५४ ॥ नवेनासितसूत्रेण कार्पासेनदृढंयथा ॥ ततस्तुसुसमंकृत्वा अष्टाङ्

से मण्डल करना चाहिये यह निश्चय है और एक मण्डल से दूमरे मण्डल का अन्तर सोलह अंगुल करना चाहिये ॥ ५० ॥ और उपास कियेहुये और भीगे वसन वाले पुरुषको बुलाकर देवता व ब्राह्मण के समीप सब सौगन्दों को करावै ॥ ५१ ॥ अथवा राजा या अधिकारीके सामने व वेद जाननेवाले ब्राह्मणों और प्रजाओं के सामने सौगन्द करावै ॥ ५२ ॥ व पश्चिम दिनके समय मे पूर्वमुखहो हाथ जोड़कर पवित्र पुरुष अन्य चौकोन मण्डलमें बराबर हाथकर ॥ ५३ ॥ और उस शपथ करने वालेके हाथों में घाव आदिकों को देखलेवैं और पीपलके सात पत्तोंको कपासके नवीन सूतसे उसके हाथो मे दृढ़तासे विद्वान् बांधदेवै तदनन्तर आठ अगुल लोहे

का बराबर पिण्डकर ॥ ५४ । ५५ ॥ व पचासपलभर उस दृढ़ पिण्डको अग्निमें तचावै और पहले सूर्यनारायण का पूजनकर इस अग्निका भी पूजन लालचन्दन धूप और लाल फूलों से करावै व अभिशप्त याने असत्यही मदिरापानादि दोष लगाये हुये पुरुषके मस्तक में पत्रको बांधै ॥ ५६ । ५७ ॥ जोकि ब्रह्मासे कहेहुये इस मन्त्रसे संयुक्त होवै कि हे अग्नि ! तुम चारों वेदहो और यज्ञों में तुम हवन किये जातेहो ॥ ५८ ॥ और जिस लिये पापको पवित्र करतेहो उसी कारण पावक कहे जातेहो व समस्त देवताओं का तुम मुख हो और तुम ब्रह्मवादियों का मुख हो ॥ ५९ ॥ और प्राणियों के पेटमें स्थितहो इससे शुभाशुभ को जानतेहो हे पावक !

गुलकमायसम् ॥ ५५ ॥ पिण्डंहुताशनेतप्तं पञ्चाशत्पलिकंदृढम् ॥ आदौपूजांरवेःकृत्वा हुताशस्याप्यकारयेत् ॥ ५६ ॥ रक्तचन्दनधूपाभ्यां रक्तपुष्पैस्तथैवच ॥ अभिशप्तस्यपत्रञ्च बध्नीयात्सैवमूर्द्धनि ॥ ५७ ॥ मन्त्रेणानेनसंयुक्तं ब्रह्मणाभिहितेनतु ॥ त्वमग्नेवेदाश्चत्वारस्त्वञ्चयज्ञेषुहूयसे ॥ ५८ ॥ पापंपुनासिवैयस्मात्तस्मात्पावकउच्यसे ॥ त्वं मुखंसर्वदेवानां त्वंमुखंब्रह्मवादिनाम् ॥ ५९ ॥ जठरस्थोसिभूतानामतोवेत्सिशुभाशुभम् ॥ पापेषुदर्शयात्मानमर्चिष्मान्भवपावक ॥ ६० ॥ अथवाशुद्धभावेषु शीतोभवमहाबल ॥ ततोभिशप्तश्शनैर्म्मण्डलानिपरिक्रमेत् ॥ ६१ ॥ परिक्रम्यशनैर्जह्याल्लोहपिण्डंततःक्षितौ ॥ विपन्नहस्तंतंपश्चात्कारयेद्व्रीहिमर्दनम् ॥ ६२ ॥ निर्विकारौकरौदृष्ट्वा शुद्धोभवतिधर्म्मतः ॥ भयाद्वापातयेद्यस्तु दग्धोवानविभाव्यते ॥ ६३ ॥ पुनस्तंधारयेल्लोहं विधिरेषप्रकीर्त्तितः ॥ अथातस्सम्प्रवक्ष्यामि तप्तमाषविधिंशृणु ॥ ६४ ॥ कारयेदायसम्पात्रं ताम्रंवाषोडशाङ्गुलम् ॥ चतुरङ्गुलखातन्तु मृन्मयं

पापियों में अपना को दिखलाइये और ज्वालावान्होवो ॥ ६० ॥ अथवा हे महाबलवान् अग्ने ! शुद्ध भाववाले जनों में शीतल होवो तदनन्तर दूषित पुरुष धीरेसे मण्डलोंकी परिक्रमाकरै ॥ ६१ ॥ और धीरेसे परिक्रमाकर तदनन्तर भूमिमें लोहका पिण्ड छोड़देवै पश्चात् विन पत्र हाथवाले उसके धान्यमर्दन करावै ॥ ६२ ॥ और विकाररहित हाथोंको देखकर धर्म्म से शुद्ध होताहै और डरसे गिरा देता है और जलाहुआ नहीं प्रकट होताहै ॥ ६३ ॥ उसके हाथमें फिर लोहको धरावै यह विधि कहीगई है इसके अनन्तर तचेहुये उड़दोंकी विधिको कहताहूं उसको सुनिये ॥ ६४ ॥ कि लोहे या तांबे अथवा मिट्टीके सोलह अंगुल पात्रको बनवावै व चार अंगुल

गहरा बनवावै ॥ ६५ ॥ व उसको बीसपल घी और तैलमें पूर्णकरै तदनन्तर बहुतही तचेहुये कुण्ड में सुवर्ण के माष (उड़द) को फेंकै ॥ ६६ ॥ व उस कहे हुये पत्रको दूषित पुरुषके मस्तकपै धरै और अँगूठा व अंगुली के मिलापसे तचेहुये माष (उड़द) को उठावै ॥ ६७ ॥ और फलका इत्यादिकों से रहित व बिन जले हुये पुरुषको शुद्ध जानना चाहिये हे धनञ्जय ! फालशुद्धिको कहताहूँ उसको तुम सुनो ॥ ६८ ॥ बारह पलका बनायाहुआ लोह फाल कहा जाताहै वह आठ अंगुल बराबर लम्बा व चार अंगुल चौडाहोवै ॥ ६९ ॥ और उस कहेहुये पत्रको दूषित पुरुषके मस्तकपै धरै और इसमेंसे छह अंगुल फालको चाटता हुआ पुरुष तीनबार

चापिकारयेत् ॥ ६५ ॥ पूरयेद्घृततैलाभ्यां पलैर्विंशतिभिस्ततः ॥ सुतप्तेविक्षिपेत्तत्र सुवर्णस्यतुमाषकम् ॥ ६६ ॥ तदुक्तंविन्यसेत्पत्रमभिशप्तस्यमूर्द्धनि ॥ अङ्गुष्ठाङ्गुलियोगेनतप्तमाषंसमुद्धरेत् ॥ ६७ ॥ शुद्धंज्ञेयमसंदग्धं विस्फोटादिविवर्जितम् ॥ फालशुद्धिंप्रवक्ष्यामि तांशृणुत्वंधनञ्जय॥६८॥ आयसंद्वादशपलं घटितंफालमुच्यते ॥ अष्टाङ्गुलंसमन्दीर्घं चतुरङ्गुलविस्तृतम् ॥ ६९ ॥ तदुक्तंविन्यसेत्पत्रमभिशप्तस्यमूर्द्धनि ॥ त्रिःपरावर्त्तयेज्जिह्वां लिहन्तस्मात्षडङ्गुलम् ॥ ७० ॥ गवांक्षीरंप्रदातव्यं जिह्वाशोधनमुत्तमम् ॥ जिह्वापरीक्षणंकुर्याद्दग्धंचेन्नविभाव्यते ॥ ७१ ॥ तंविशुद्धंविजानीयाद्विशुद्धंचैवमोक्षयेत् ॥ तण्डुलस्याथवक्ष्यामिविधिंधर्म्मसनातनम् ॥ ७२ ॥ चौर्येतुतण्डुलंदेयं नचान्यत्रकथञ्चन ॥ तण्डुलानुदकेस्थित्वा रात्रौतत्रैवस्थापयेत् ॥ प्रभातेकारिणोदेया भक्षणायनसंशयः ॥ ७३ ॥ त्रिःकृत्वाप्राङ्मुखस्यैव पत्रेनिष्ठीवयेत्ततः ॥ पिप्पलस्याथभूर्जस्य नचान्यस्यकथञ्चन ॥७४॥ तांस्तुवैकारयेच्छुद्धांस्तण्डुलाञ्छा

जिह्वाको घुमावै ॥ ७० ॥ और उत्तम जिह्वाका शोधन करनेवाला गौवोंका दूधदेना चाहिये और जिह्वाकी परीक्षा करै यदि जलीहुई जीभ न प्रकटहोवै ॥ ७१ ॥ तो उस पुरुषको विशेषकर शुद्ध जानकर छुडादेवै इसके अनन्तर चावलकी सनातन धर्म्मवाली विधिको कहताहूं ॥ ७२ ॥ कि चोरीमें तण्डुल देना चाहिये अन्यत्र किसी प्रकारसे न देना चाहिये रात्रिमें चावलोंको जलमें धरकर वहीं स्थापितकरै ॥ ७३ ॥ और प्रातःकाल में पूर्वमुख बैठे हुये सौगन्द करनेवाले को वे चावल भक्षणके निमित्त तीनबारकरके देना चाहिये तदनन्तर पीपल या भोजके पत्ते में थुँकावै अन्यवृक्षके पत्ते में किसी प्रकारसे न थुँकावै ॥ ७४ ॥ और शालीधानोंसे उपजेहुये उन

चावलों को शुद्ध करावै कि सूर्यनारायण के आगे बैठाहुआ पुरुष मिट्टीके पात्रमें शुद्ध चावलोंको कर धर्म्मसे इस मन्त्रके द्वारा अभिमन्त्रित करै कि धर्म्म के यथार्थ
को जाननेवाले पुरुषों से मनुष्यों को पवित्रता दीजाती है ॥७५।७६॥ हे तण्डुल ! तुम धर्म्म से रक्षा करने के लिये योग्यहो सूर्यनारायण के आगे बैठेहुये उन मनुष्यों के
थूकनेपर ॥७७॥ जिस मनुष्यके रक्त देखपडै उसको अपवित्र बतलावै इसप्रकार पापके सन्देह को नाशनेवाली आठ प्रकारकी सौगन्द है ॥ ७८ ॥ हे कुरुनन्दन !
जोकि भट्टादित्य के आगे होतीहै और वैसेही जाननेवाले पुरुषोंने दो भांतिकी जलकी सौगन्द कहा है ॥ ७९ ॥ एक जल हाथवाली और दूसरी जलमें स्नान कहा है

लिस्सम्भवान् ॥ मृन्मयेभाजनेकृत्वा सवितुःपुरतःस्थितः ॥ ७५ ॥ तण्डुलान्मन्त्रयेच्छुद्धान्मन्त्रेणानेनधर्म्मतः ॥ दीयते
धर्म्मतत्त्वज्ञैर्म्मानुषाणांविशोधनम् ॥ ७६ ॥ त्वन्तुतण्डुलसत्येन धर्म्मतस्त्रातुमर्हसि ॥ निष्ठीवनेकृतेतेषां सवितुःपुर
तस्सदा ॥ ७७ ॥ शोणितंदृश्यतेयस्य तमशुद्धंविनिर्दिशेत् ॥ एवमष्टविधंदिव्यं पापसंशयछेदनम् ॥ ७८ ॥ भट्टादि
त्यस्यपुरतो जायतेकुरुनन्दन ॥ जलदिव्यंतथाप्राहुर्द्विप्रकारंतथाविदः ॥ ७९ ॥ जलहस्तंस्मृतंचैकं मज्जनंचापरंवि
दुः ॥ बाणाक्षेपस्तथादानं यावद्वीर्यवतांकृतम् ॥ ८० ॥ तावत्तंमज्जयेज्जीवेच्चेत्ततःशुद्धिमादिशेत् ॥ एवंविधमिदंस्थानं
भट्टादित्यस्यभारत ॥ ८१ ॥ ममैवकृपयाभानोर्जातमेतन्महीतले ॥ ८२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डे दि
व्यवर्णनन्नामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

नारदउवाच ॥ तथाबहूदकस्थाने कथामाकर्णयाद्भुतम् ॥ यस्माद्बहूदकंकुण्डं कामरूपेयदस्तिच ॥ १ ॥ तदस्ति

जबतक पराक्रमी पुरुषोंका बाणका चलाना व लेना किया जाय ॥ ८० ॥ तबतक उसको जलमें डुबावै यदि वह जियै तो शुद्धि कहै हे भारत ! ऐसा यह भट्टादित्य का
स्थानहै ॥८१॥ और यह सूर्यका स्थान मेरीही दयासे भूतलमें हुआहै ॥८२॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांदिव्यवर्णनन्नामै
कोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । नन्दभद्र सत्यव्रत कीन बतकही जौन । चालिसवें अध्याय में कही कथा सब तौन ॥ नारदजी बोले कि वैसेही बहूदकके स्थानमें अद्भुत कथाको सुनिये जिस

लिये कि कामरूपमें जो बहूदक कुण्ड है ॥ १ ॥ वह यहां भलीभांति घिराहै इस लिये बहूदक कहागया है कपिलदेवजी ने बहुतवर्षोंतक तपस्या कर ॥ २ ॥ कपिलेश्वर संज्ञक उत्तम लिङ्गको थापा है हे अर्जुनजी ! और उस लिङ्ग को सदैव नन्दभद्र ऐसे प्रसिद्ध ॥ ३ ॥ बनिया ने आदरकर त्रिकाल पूजन किया है जोकि सब धर्म्मों की विशेषता को जाननेवाला और साक्षात् दूसरे धर्म्मकी नाईं था ॥ ४ ॥ धर्म्मों में जो कुछ कहा जाता है वह उसको कुछ अज्ञात न था और सबोंका मित्र नित्यही सबों के हितमें परायण था ॥ ५ ॥ और कर्म, मन व वचन से इस धर्म्म के आश्रित था जोकि न हुआहै न होगा और वह कोई धर्म्म है ॥ ६ ॥ जोकि सर्वत्र

चात्रसंक्रान्तं तस्मात्प्रोक्तंबहूदकम् ॥ कपिलेनतपस्तप्त्वा वर्षाणिसुबहून्यपि ॥ २ ॥ स्थापितंशोभनंलिङ्गं कपिलेश्वर संज्ञितम् ॥ तच्चलिङ्गंसदापार्थ नन्दभद्रइतिश्रुतः ॥ ३ ॥ वणिक्सम्पूजयामास त्रिकालञ्चकृतादरः ॥ सर्वधर्म्मविशेषज्ञः साक्षाद्धर्म्मइवापरः ॥ ४ ॥ नाज्ञातंतस्यकिञ्चिच्चयद्धर्म्मेषुप्रकीर्त्यते ॥ सर्वेषांचसुहृन्नित्यं सर्वेषाञ्चहितेरतः ॥ ५ ॥ कर्म्मणामनसावाचा धर्ममेनमुपाश्रितः ॥ नभूतोनभविष्यश्चसवैधर्म्मोस्तिकश्चन ॥ ६ ॥ नदोषोयोहिसर्वत्र निश्चित्यैवं व्यवस्थितः ॥ अस्यधर्मसमुद्रस्य सम्प्रवृद्धस्यसर्वतः ॥ ७ ॥ निर्मथ्यनन्दभद्रेण आहृतंतन्निशामय ॥ वाणिज्यंमन्यतेश्रेष्ठं जीवनायतदास्थितः ॥ ८ ॥ परिच्छिन्नैःकाष्ठतृणैःशरणन्तेनकारिते ॥ मद्यवर्ज्यंभेदवर्ज्यंकूटवर्ज्यंसमन्तथा ॥ ९ ॥ सर्वभूतेषुवाणिज्यमन्नलाभेनसोचरत् ॥ अमाययापरेभ्योसौ गृहीत्वैवक्रयाणकम् ॥ १० ॥ अमाययैवभूतेभ्यो विक्रीणात्येवसद्व्रतः ॥ केचिद्यज्ञंप्रशंसन्ति नन्दभद्रोनमन्यते ॥ ११ ॥ दोषमेनंविनिश्चित्य शृणुतंपाण्डुन

बिन दोषहो ऐसा निश्चयकर विशेषतासे स्थितहुआ सब ओर से बढ़ेहुये इस धर्म्मरूपी समुद्रको ॥ ७ ॥ मथकर नन्दभद्र ने जो आहरण किया उसको सुनिये कि उससमय में स्थित वह जीविका के लिये वाणिज्यको श्रेष्ठ मानता था ॥ ८ ॥ और कटेहुये काठ व तिनुकों से उसने घर बनवाया था और मदिरारहित व भेदहीन और कपटरहित समतासे ॥ ९ ॥ उसने अन्नके लाभ से समस्त प्राणियों में वाणिज्य किया और यह बिन छलसे दूसरोंसे मोललेनेवाली वस्तुको लेकर ॥ १० ॥ और बिन छलही से उत्तम व्रतवाला यह प्राणियों के लिये बेंचता था और कोई यज्ञकी प्रशंसा करते हैं परन्तु नन्दभद्र इस दोषको निश्चयकर नहीं मानता है हे पाण्डु-

नन्दन ! उसको सुनिये लोभी, असत्यवादी, पाखण्डी व अपनी प्रशंसा में परायण पुरुष ॥ ११ । १२ ॥ यज्ञों से पूजन करता हुआ संसारको मारता है और अपना को अन्धतम नरकमें लेजाता है जिस लिये कि अग्नि में प्राप्त आहुति सूर्यनारायणको प्राप्त होती है ॥१३॥ उसीसे सूर्यनारायण से वर्षा होती है और वृष्टि से अन्न व उस अन्न से प्रजा होते हैं तब यजमान ऋत्विजोको द्रव्य देताहै ॥ १४ ॥ दक्षिणारहित व अविधि से वृथा यज्ञ करनेपर ॥ १५ ॥ मारेहुये पशु मरे यजमान को दण्डोंसे मारते हैं इस लिये शुद्ध ब्राह्मण, द्रव्य व यजमान से यज्ञ उत्तम कहीगई है ॥ १६ ॥ इसको विचारकर यह बनिया यज्ञके सारांश में स्थित था श्रद्धासे

न्दन ॥ लुब्धोऽनृतीदाम्भिकश्च स्वप्रशंसापरायणः ॥ १२ ॥ यजन्यज्ञैर्जगद्धन्ति स्वञ्चान्धतमसन्नयेत् ॥ अग्निप्राप्ताहु
तिर्यस्मादादित्यमुपतिष्ठति ॥ १३ ॥ आदित्याज्जायतेवृष्टिर्वृष्टेरन्नंततःप्रजाः ॥ तदादाद्यजमानश्च ऋत्विजोद्रव्यमे
वच ॥ १४ ॥ अदक्षिणेवृथायज्ञे कृतेचाप्यविधानतः ॥ १५ ॥ पशवोलगुडैर्हन्युर्यजमानंमृतंहताः ॥ तस्माच्छुद्धैर्द्विज
द्रव्ययजमानैःशुभःस्मृतः ॥१६॥ यज्ञएतद्विचार्यासौ यज्ञसारंसमास्थितः ॥श्रद्धयादेवपूजायां नमस्कारस्तुतिःशुभा ॥१७॥
नैवेद्येहविषश्चैव सयज्ञोहिविकल्मषः ॥ सएवयज्ञःप्रोक्तोवै येनतुष्यन्तिदेवताः ॥ १८ ॥ केचिच्छ्लस्यन्तिसंन्यासं नन्द
भद्रोनमन्यते ॥ योहिसंन्यस्यविषयान् मनसागृह्यतेपुनः ॥१९॥ उभयभ्रष्टएवासौ छिन्नाभ्रमिवनश्यति ॥ संन्यासस्य
तुयत्सारं तत्तेनाहृतमुत्तमम् ॥ २० ॥ कस्यचिन्नैवकर्माणिशपतेवाप्रशंसति ॥ नानामार्गस्थितंलोकं चन्द्रवल्लीलये
क्षते ॥ २१ ॥ नद्वेष्टिनोकामयते नानुरुध्यविरुध्यते ॥ समाश्मकाञ्चनोधीरस्तुल्यनिन्दात्मसंस्तुतिः ॥ २२ ॥ अभय

देवपूजन में उत्तम नमस्कार व स्तुति ॥ १७ ॥ और हविष्यान्न की नैवेद्य वही पापहीन यज्ञ है वही यज्ञ कहीगई है कि जिस से देवता प्रसन्नहोते है ॥ १८ ॥ कोई संन्यास की प्रशंसा करते हैं परन्तु नन्दभद्र नहीं मानता था क्योंकि जो संन्यास लेकर फिर मनसे विषयों को ग्रहण करता है ॥ १९ ॥ दोनों ओर से भ्रष्ट हुआ यह पुरुष कटे मेघकी नाईं नष्ट होजाता है और जो संन्यास का उत्तम सारांश था उसने उसका आदर किया ॥ २० ॥ और यह किसीके कर्मोंकी न निन्दा करताथा और न प्रशंसा करता था और अनेक प्रकारके मार्गों में स्थित संसारको चन्द्रमा की नाईं लीलासे देखता था ॥ २१ ॥ न वैर करता था न कामना करताथा और न अनुरोध

कर विरोध करता था व पत्थर और सुवर्ण में समभाववाला पुरुष ज्ञानीथा और उसको अपनी निन्दा व प्रशंसा समान थी ॥ २२ ॥ और समस्त प्राणियों से निडर और अन्धे बहरे की नाईं आकारवाला था और कर्मोंके फलमें उसकी इच्छा नहीं थी उसी कारण शिवजी का आराधन करता था ॥ २३ ॥ और कारण से धर्म्म को चाहता हुआ वह तदनन्तर मनुष्यलोकमें घूमता था व विचारकर उस पुरुषने मोक्षके इस सारांश को ग्रहण किया ॥ २४ ॥ कोई कृषीकी प्रशंसा करता है परन्तु नन्दभद्र नहीं मानताथा जिस लिये कि वे अण्डकोशों को काटडालते हैं व नासिकाको छेदते हैं ॥ २५ ॥ और बहुत भारोंको खिंचवाते हैं व बांधते हैं और शान्त

स्सर्वभूतेभ्यो यथान्धबधिराकृतिः ॥ नकर्म्मणांफलेकाङ्क्षाशिवस्याराधनंहितत् ॥ २३ ॥ कारणाद्धर्म्ममन्विच्छन्नृलो कञ्चततश्चरन् ॥ विविच्यसनरस्त्वेतत्सारंमोक्षस्यचाददे ॥ २४ ॥ कृषिङ्केचित्प्रशंसन्ति नन्दभद्रोनमन्यते ॥ यस्मा च्छिन्दन्तिवृषणांस्तथाभिन्दन्तिनासिकाम् ॥ २५ ॥ कर्षयन्तिमहाभारान्बध्नन्तिदमयन्तिच ॥ बहुदंशमशान्देशा न् नयन्तिबहुकर्दमान् ॥ २६ ॥ वाहसम्पीडिताधुर्य्यास्सीदन्त्यविधिनापरे ॥ मन्यन्तेनात्महन्तारं विशिष्टेनास्यकर्म णः ॥ २७ ॥ अघ्न्याइतिगवांनाम श्रुतौताःपीडयेत्कथम् ॥ भूमिंभूमिशयांश्चैव हन्तिकाष्ठमयोमुखम् ॥ २८ ॥ पञ्चे न्द्रियेषुजीवेषु सर्व्वंवसतिदैवतम् ॥ आदित्यश्चन्द्रमावायुः प्रभृत्येवञ्चतांस्तुयः ॥ २९ ॥ विक्रीणातिचकूटेतु तस्यका नुविचारणा ॥ अजोविर्वरुणोमेषः सूर्योश्वःपृथिवीविराट् ॥ ३० ॥ धेनुर्वत्सश्चसोमोवै विक्रयीतन्नसिध्यति ॥ एवंविध

करते हैं और बहुत डांस मसावाले व बहुत कीचडवाले देशोंमें ले जाते हैं ॥ २६ ॥ और अन्य धुरीवाले बैल अविधि करके बोझसे पीडितहोकर क्लेशित होते हैं और इस कर्म के विशेषसे जीवात्मा के मारनेवाले को नहीं मानते हैं ॥ २७ ॥ वेदमें अघ्न्या याने अवध्य यह गौवोंका नामहै इससे उनको कैसे पीड़ितकरै और पृथ्वी तथा भूमि में सोनेवाले जन्तुवोंको लोहमुखवाले काठमे मारता है ॥ २८ ॥ व जिस लिये कि इन्द्रियों व जीवोंमें सब देवता बसते हैं कि सूर्य, चन्द्रमा व पवन आदिक देवता रहते हैं उसी कारण जो मनुष्य उनको ॥ २९ ॥ बेचता है उसके कपटमे क्या विचार है याने कुछ नहीं छाग सूर्य हैं व भेड़ा वरुण हैं और घोडा सूर्य हैं व

पृथ्वी विराट् रूपहै ॥ ३० ॥ और गऊ व बछड़ा चन्द्रमा हैं इससे इनका बेंचनेवाला मनुष्य सिद्ध नहीं होता है इसप्रकार के हजारों दोषोंसे संयुत कृषी सदैव होती है ॥ ३१ ॥ आठबैल, दोहल और बीस बीघावाली पृथ्वी कृषी होती है व यह किसान मनुष्य वृद्ध पशुवोंको धर्म्मसे देवै याने बेंचै नहीं ॥ ३२ ॥ यह कृषीका सारांश है उस लिये नन्दभद्र ने इसका आदर किया है और देवताओं व पितरोंके कार्योंमें अन्न विशेषकर पवित्र करने के लिये योग्य हैं ॥ ३३ ॥ और सदैव मनुष्य ब्राह्मण व भूतों के लिये अन्नका नियोगकर भोजन करता है कोई ऐश्वर्य की प्रशंसा करते हैं परन्तु नन्दभद्र नहीं मानता है ॥ ३४ ॥ क्योंकि ऐश्वर्यवाले पुरुष सबही मनुष्यों

सहस्रैस्तु युतादोषैः कृषिस्सदा ॥ ३१ ॥ अष्टौगावश्चद्विहलंविंशआवाभवेत्कृषिः ॥ धर्म्मेणदद्यात्संवृद्धान् पशूनेष कृषी
बलः ॥ ३२ ॥ सारमेतत्कृषेस्तेन नन्दभद्रेणचादृतम् ॥ विशोधनीयान्यन्नानि स्वशक्त्यादैवपैतृषु ॥ ३३ ॥ मनुष्य
द्विजभूतेषुनियुज्यास्नातिसर्वदा ॥ केचिच्छंसन्तिचैश्वर्य्यंनन्दभद्रोनमन्यते ॥ ३४ ॥ मानुषानखिलानेव दासमानेन
भुञ्जते ॥ वधबन्धविरोधेन पीडयन्तिदिवानिशम् ॥ ३५ ॥ देहंकिमेतद्धातुःस्वमातुर्वाजनकस्यवा ॥ मातुःपितुर्वा
क्रेतुर्वाबलिनोऽग्नेश्शुनोपिवा ॥ ३६ ॥ इतिसञ्चिन्त्यविहरंत्यमराइवचेश्वराः ॥ ऐश्वर्यमदमाविष्टामत्ताःपानमदादिव ॥
३७ ॥ ऐश्वर्य्यमदमत्तोहि पतितत्वाद्विमाद्यति ॥ आत्मवत्सर्वभूतेषु श्रियानैवचमाद्यति ॥ ३८ ॥ नात्मप्रत्ययवद्देहे ई
श्वरश्चेदृशोस्तिहि ॥ ऐश्वर्यस्यापियत्सारं सजग्राहनिशामय ॥ ३९ ॥ स्वशक्त्यासर्वभूतेषु यदसौनपराङ्मुखः ॥ तौ

को दासमानसे भोगते हैं और वध व बन्धन तथा शत्रुतासे अहर्निश पीड़ित करतेहैं ॥ ३५ ॥ और क्या यह देहधारण करनेवाले अपने माता पिताकी है या मोललेने वाले माता पिताकी है अथवा बलवान् अग्नि या कुत्तेकी है ॥ ३६ ॥ यह भलीभांति विचारकर समर्थ जन देवताओं की नाईं विहार करते हैं व ऐश्वर्य के मदमें प्राप्त होकर मदिराके मदकेनाईं मतवाले होतेहैं ॥ ३७ ॥ और ऐश्वर्यके मदसे मतवाला पुरुष पतित होनेके कारण मत्तहोताहै व समस्त प्राणियोंमे अपनी आत्माकी नाईं जो बर्ताव करता है वह लक्ष्मी से मत्त नहीं होता है ॥ ३८ ॥ और जो जन यह नहीं समझते हैं कि अपने ज्ञानके नाईं शरीर में ऐसा ईश्वर है वह लक्ष्मीसे मत्त होताहै

और उसने ऐश्वर्य के भी जिस सारांशको ग्रहण किया है उसको सुनिये ॥ ३९ ॥ कि अपनी शक्तिके अनुसार यह समस्त प्राणियों मे विमुख नहीं होताथा कितेक पुरुष तीर्थोंकी प्रशंसा करते हैं परन्तु नन्दभद्र नहीं मानता था ॥ ४० ॥ क्योंकि परिश्रम से व पसीनाके किनुकों से और ताप, शीत, पवन, भूँख और प्यास से व क्रोधसे मनुष्य घरमें धर्म्म के नाशको प्राप्तहोता है ॥ ४१ ॥ और सुख से धनके नाशको भी प्राप्तहोता है और श्रद्धासे थोड़ी द्रव्यवाला समर्थ पुरुष बडी पुण्यकरने के लिये समर्थ होताहै परन्तु वह श्रद्धा शीघ्रही कहां होती है ॥ ४२ ॥ उस नन्दभद्र ने सदैव पवित्र व देव पूजक होकर घरमें तीर्थका सारांश किया है जल पापोको

र्थान्येकेप्रशंसन्ति नन्दभद्रोनमन्यते ॥ ४० ॥ श्रमेणशीकरात्तापशीतवातक्षुधातृषा ॥ क्रोधेनगेहधर्मस्य चापिना शमवाप्नुयात् ॥ ४१ ॥ सौख्येनचधनस्यापि श्रद्धयास्वल्पकोर्थवान् ॥ समर्थोहिमहत्पुण्यं शक्तआशुकचास्तिसा॥ ४२ ॥ सदाशुचिर्देवयाजी तीर्थसारंगृहेऽयधात् ॥ नापःपुनन्तिपापानि नशैलानमहाश्रमाः ॥ ४३ ॥ आत्मापुनातिपा पानि यदिपापान्निवर्त्तते ॥ एवमेवसमाचारं प्रादुर्भूतमितस्ततः ॥ ४४ ॥ एकीकृत्यसदाधीमान् नन्दभद्रस्समास्थि तः ॥ तस्यैवंवर्ततस्साधोःस्पृहयन्त्यपिदेवताः ॥ ४५ ॥ वासवप्रमुखास्सर्वे विस्मयंचपरंययुः ॥ अत्रैवस्थानकेचापि शू द्रोभूत्प्रान्तिवेश्मकः ॥ ४६ ॥ सनन्दभद्रंधर्म्मस्थं पुनःपुनरसूयति ॥ नास्तिकस्सुदुराचारस्सत्यव्रतइतिश्रुतः ॥ ४७ ॥ ससदानन्दभद्रस्य विलोकयतिचान्तरम् ॥ छिद्रंचेदस्यपश्यामि ततोधर्म्मान्निवर्त्तते ॥ ४८ ॥ स्वभावएषक्रूराणां ना

नहीं पवित्र करते हैं न पर्वत और न बड़े आश्रम पवित्र करते हैं ॥ ४३ ॥ किन्तु यदि पापसे निवृत्त होवै तो आत्मा (मन या बुद्धि) पापोंको पवित्र करती है इधर उधर ऐसेही प्रकटहुये आचरण को ॥ ४४ ॥ इकट्ठाकर नन्दभद्र सदैव स्थितथा इस प्रकार वर्तमान होतेहुये उस साधुकी देवता भी इच्छा करते थे ॥ ४५ ॥ और इन्द्र आदिक सब देवता बडे विस्मयको प्राप्तहुये और इसी स्थानमें समीप मन्दिरवाला शूद्रहुआ है ॥ ४६ ॥ वह धर्म्ममें टिकेहुये नन्दभद्रकी बार बार ईर्षा करताथा जोकि नास्तिक व दुराचारी सत्यव्रत ऐसा प्रसिद्धथा ॥ ४७ ॥ वह सदैव नन्दभद्रका अन्तर (दोष) देखताथा कि यदि इसके छिद्रको देखूं तो यह धर्म्मसे निवृत्तहोगा ॥ ४८ ॥

दुष्टात्मा क्रूर नास्तिकों का यह स्वभाव होताहै कि जिससे अपनी परिपूर्णता होतीहै उसी कारण अन्यको भी पतित करते हैं ॥४६॥ तदनन्तर इसप्रकार वर्तमान होते हुये उस बुद्धिमान् नन्दभद्र के वृद्धता में क्लेशसे एकपुत्र हुआ और वह भी नाशहोगया ॥ ५० ॥ और उसको भाग्य से किया हुआ जानकर बड़े बुद्धिमान् नन्दभद्र ने शोच न किया क्योंकि देवता हो या मनुष्य भी हो दैव (भाग्य) से कौन छूटताहै ॥५१॥ तदनन्तर पतिव्रताके समस्त गुणों से संयुक्त व बड़ी प्यारी इसकी स्त्री जोकि घरके धर्म्म की मूर्ति साक्षात् अरुन्धती की नाईं थी ॥ ५२ ॥ हे अर्जुनजी ! नामसे कनका नामक वह नाशको प्राप्तहुई तदनन्तर घरके धर्म्मके नाशसे इस जि-

स्तिकानांदुरात्मनाम् ॥ आत्मनोयेनपर्याप्तिः पातयन्त्यपरञ्चतत ॥ ४९ ॥ ततस्त्वेवंवर्त्ततोस्य नन्दभद्रस्यधीमतः॥ एकोभूत्तनयःकष्टाद्वार्द्धक्येसोप्यनश्यत ॥ ५० ॥ तच्चदैवकृतंमत्वा नशुशोचमहामतिः ॥ देवोवामानवोवापि कोहिदैवाद्विमुच्यते ॥ ५१ ॥ ततोस्यसुप्रियाभार्या सर्वैस्साध्वीगुणैर्युता ॥ गृहधर्म्मस्यमूर्त्तिर्या साक्षादिवअरुन्धती ॥ ५२ ॥ विनाशमागतापार्थ कनकानामनामतः ॥ ततोजितेन्द्रियस्त्वेष गेहधर्म्मविनाशतः ॥ ५३ ॥ शुशोचचमहाकष्टं पापोहमितिचासकृत ॥ तत्तस्यचान्तरंदृष्ट्वा हृष्यत्सत्यव्रतश्चिरात ॥ ५४ ॥ उपाव्रजत्सहाकष्टं ब्रुवंस्तन्नन्दभद्रकम् ॥ आशुमित्रइवासाद्य नन्दभद्रमुवाचसः ॥ ५५ ॥ हानन्दभद्रयद्येवंतवाप्येवंविधंफलम् ॥ एतेनमन्येमनसि धर्म्मोध्येषवृथैवहि ॥ ५६ ॥ इत्यादिबहुधाप्रोच्य तत्तद्वाक्यंततस्ततः ॥ सत्यव्रतस्ततःप्राह नन्दभद्रंकृपान्वितः ॥ ५७ ॥ नन्दभद्रसदातुभ्यं वक्तुकामोस्मिकिञ्चन ॥ प्रस्तावस्याप्यभावाच्च नोदितञ्चमयाक्वचित ॥ ५८ ॥ अप्रस्तावेब्रुवन्वाक्यं बृहस्पति

तेन्द्रियने ॥ ५३ ॥ हा बड़े कष्टकी बातहै ऐसा कहकर शोचकिया कि मैं पापी हूँ यह बार बार कहा उसके उस छिद्रको देखकर सत्यव्रत बहुतदिनोंसे प्रसन्नहुआ ॥५४॥ व हा कष्ट ऐसा कहताहुआ वह उस नन्दभद्र के समीप आया व शीघ्रही मित्रकी नाईं आकर वह नन्दभद्र से बोला ॥ ५५ ॥ कि हा नन्दभद्र ! यदि ऐसा है कि तुम कोभी इस प्रकारका फल मिला तो इससे मैं मनमें मानताहूँ कि यह धर्म्मभी वृथाहै ॥ ५६ ॥ इत्यादिक उन उन वचनों को बहुत प्रकार से उससे कहकर तदनन्तर दयासंगत सत्यव्रत ने नन्दभद्र से कहा ॥ ५७ ॥ कि हे नन्दभद्र ! मैं तुमसे सदैव कुछ कहनेकी इच्छाचाहताथा और प्रस्तावके अभावसे मैंने कभीकुछ नहींकहा ॥५८॥

क्योंकि अप्रस्ताव में वचनको कहते हुये आपही बृहस्पति भी बुद्धिके अज्ञान व हीनकी नाईं अपमान को प्राप्तहोता है ॥ ५९ ॥ नन्दभद्र बोले कि कहिये कहिये मुझको सज्जनोंकी सभा से कुछ अन्य प्रिय नहींहै क्योंकि शुद्ध प्राणियोंके वचनों से अज्ञान दूरकर दिया जाताहै ॥ ६० ॥ सत्यव्रत बोले कि नव नव दोषों से छूटे हुये और नव बुद्धिके दोषों से अदूषित वचन को कहूंगा ॥ ६१ ॥ कि सूक्ष्म, संख्या, क्रम, निर्णय व प्रयोजन अर्थसे उपजे हुये ये पांच वस्तुयें जिसमें होवैं वह वाक्य कही जाती है ॥ ६२ ॥ धर्म्म, अर्थ, काम व मोक्षको उद्देशकर जो वचन कहा जाता है वह प्रयोजन ऐसा पहला वाक्य का लक्षण है ॥ ६३ ॥ व धर्म्म, अर्थ, काम

रपिस्वयम् ॥ लभतेबुद्ध्यविज्ञानं अवमानञ्चहीनवत् ॥ ५९ ॥ नन्दभद्रउवाच ॥ ब्रूहिब्रूहिनमेकिञ्चित्साधुगोष्ठ्याःप्रियं परम् ॥ वचोभिःशुद्धसत्त्वानां तमश्चैवापनीयते ॥ ६० ॥ सत्यव्रतउवाच ॥ नवभिर्नवभिश्चैव विमुक्तञ्चापिदूषणैः ॥ नवभिर्बुद्धिदोषैश्च वाक्यंवक्ष्याम्यदोषवत् ॥ ६१ ॥ सूक्ष्मसंख्याक्रमाश्चापि निर्णयःसप्रयोजनः ॥ पञ्चैतान्यर्थजातानि यत्रतद्वाक्यमुच्यते ॥ ६२ ॥ धर्ममर्थञ्चकामञ्च मोक्षमुद्दिश्यचोच्यते ॥ प्रयोजनमितिप्रोक्तं प्रथमंवाक्यलक्षणम् ॥ ६३ ॥ धर्मार्थकाममोक्षेषु प्रतिज्ञायविशेषतः ॥ इदंतदितिवाक्यंयत् प्रोच्यतेसविनिर्णयः ॥ ६४ ॥ इदंपूर्वमिदंपश्चाद्वक्तव्यंयत्क्रमेणहि ॥ क्रमयोगन्तदप्याहुर्वाक्यतत्त्वविदोबुधाः ॥ ६५ ॥ दोषाणाञ्चगुणानाञ्च प्रमाणंप्रविभागशः ॥ उभयार्थमभिप्रेक्ष्य सङ्क्षेपादवधारणम् ॥ ६६ ॥ वाक्ययज्ञेषुभिन्नेषु यत्रभेदःप्रदृश्यते ॥ तत्रतत्रार्थहेतुत्वं तत्सूक्ष्ममितिनिर्दिशेत् ॥ ६७ ॥ इतिवाक्यगुणानाञ्च वाग्दोषादिनवशृणु ॥ यत्त्याज्यार्थमभिन्नार्थं अप्रवृत्तंतथाधिकम् ॥ ६८ ॥ अश्ल

व मोक्षों में विशेषता से जानकर यह वह है ऐसा जो वचन है वह निर्णय कहा जाता है ॥ ६४ ॥ यह पहले और यह पीछे कहने योग्यहै ऐसा जो क्रम से कथन है वाक्यतत्त्व के जानने वालों ने उसको भी क्रम योग कहा है ॥ ६५ ॥ दोषों और गुणों के विभाग से जो प्रमाणहै व दोनों के अर्थ को देखकर संक्षेप से निश्चय करना संख्या है ॥ ६६ ॥ भिन्न वाक्य यज्ञों में जहां भेद देखपड़ता है वहां वहांजो अर्थ का कारण है वह सूक्ष्म ऐसा कहाजाता है ॥ ६७ ॥ ये वाक्य गुणों के मध्य

में कहेगये हैं और वचनके नव दोषादिकों को सुनिये कि जो त्यागकरने के योग्य अर्थ वाला है व अभिन्न अर्थवाला, अप्रवृत्त, अधिक ॥ ६८ ॥ और कठोर, सन्देह
युक्त व चरण के अन्तमें गुरुअक्षर, पराङ्मुख याने विमुख मुख से जो कहाजाय व जिस में असत्यहो और संस्कार हीन ॥ ६९ ॥ और जो वर्ग से विरुद्ध हो, न्यून,
काष्ठादि शब्दवाला व अकारण और बुद्धि से उपजेहुये उन वाणी के दोषों को सुनिये ॥ ७० ॥ कि काम, क्रोध, भय, लोभ, दीनता, मूर्खता और दया से रहित व मान
से हीन और धर्म से रहित ये दोष हैं ॥ ७१ ॥ जब वक्ता और श्रोता और वचन विकलता रहित होवे और वक्ता की इच्छा में साम याने प्रिय वचन समेत होवे तब वह

**क्ष्णंचापिसन्दिग्धं पादान्तेगुरुचाक्षरम् ॥ पराङ्मुखमुखंयत्रअनृतंचाप्यसंस्कृतम् ॥ ६९ ॥ विरुद्धंयच्चवर्गेण न्यूनंकाष्ठा
दिशब्दकम् ॥ निष्कारणंचवाग्दोषान् बुद्धिजाञ्छृणुत्वञ्चतान् ॥ ७० ॥ कामात्क्रोधाद्भयाच्चैव लोभाद्दैन्यादनार्यका
त् ॥ हीनोनुक्रोशतोमानाद्धर्मादेतेचदोषकाः ॥ ७१ ॥ वक्ताश्रोताचवाक्यञ्च यदात्वविकलंभवेत ॥ समामेतिविवक्षा
यां तदासोर्थंप्रकाशते ॥ ७२ ॥ वक्तव्येतुयदावक्ता श्रोतारमवमन्यते ॥ श्रोतावाप्यथवक्तारं तदावाक्यन्नरोहति ॥७३॥
अथयःस्वप्रियंब्रूयाच्छ्रोतुश्चोत्सृज्ययद्धितम् ॥ विशङ्काजायतेयस्मिन्वाक्यंतदपिदोषवत ॥ ७४ ॥ तस्माद्यःस्वप्रियं
त्यक्त्वा श्रोतुश्चाप्यथयत्प्रियम् ॥ सत्यमेवप्रभाषेत सवक्तानेतरोभुवि ॥ ७५ ॥ मिथ्यावादाञ्छास्त्रजालसम्भवान्यदि
हायच ॥ सत्यमेवव्रतंयस्मात्तस्मात्सत्यव्रतस्त्वहम् ॥ ७६ ॥ सत्यन्तेसम्प्रवक्ष्यामि मन्तुमर्हसितत्तथा ॥ यदाप्रभृति**

अर्थ को प्रकाश करता है ॥ ७२ ॥ और कहने योग्य वचन में जब वक्ता श्रोता का अपमान करता है अथवा श्रोता वक्ता का अपमान करै तब वचन प्रगट नहीं होता
है ॥७३॥ अथवा जो श्रोताके हित को छोड़कर अपने प्रिय जिसवचन को कहता है व जिसमें विशेषकर शङ्का उत्पन्न होती है वह भी वचन दोषवान् होताहै ॥ ७४ ॥
इसलिये जो अपने प्रिय को छोड़कर और श्रोता को जो प्रिय है उसको भी छोड़कर सत्यही कहता है वह पृथ्वी में वक्ता है और नहीं है ॥ ७५ ॥ जिसलिये शास्त्र
समूहों से उपजेहुये मिथ्यावादोंको छोड़कर जिस से कि सत्यही व्रत है उसीकारण मैं सत्यव्रत हूं ॥ ७६ ॥ मैं तुम से सत्य कहता हूं उसको वैसेही माननेके योग्यहो

हे भद्र ! जब से लगाकर तुम पाषाण (पत्थल) के पूजन में परायण हुये हो ॥ ७७ ॥ तब से लगाकर मैं कुछ उत्तम नहीं देखता हूं क्योंकि एक भी वह पुत्र नष्ट होगया व श्रेष्ठ स्त्री नाश होगई ॥ ७८ ॥ हे साधो ! कपट कर्मों का ऐसाही फल होवै है देवता कहा हैं यह मिथ्याहै क्योंकि यदि वे होते तो देख भी पड़ते ॥ ७९॥ कपटी ब्राह्मणों की यह सब मिथ्याही कल्पनाहै पितरों को उद्देश कर मनुष्य देते हैं परन्तु मुझको हँसी आती है ॥ ८० ॥ अन्न के उपद्रव को देखताहुआ मरामनुष्य क्या भोजन करै गा और जो यह मूर्ख नीच ब्राह्मण समस्त संसार के निर्माण को बहुतभांति से वर्णन करते हैं तौ भी सत्यता से सुनिये कि संसार की उत्पत्ति व

भद्रत्वं पाषाणस्यार्चनेरतः ॥ ७७ ॥ तदाप्रभृतिकिञ्चिच्च नहिपश्यामिशोभनम् ॥ एकस्सोपिसुतोनष्टो भार्याचार्य्यातथैवच ॥ ७८ ॥ कूटानांकर्मणांसाधो फलमेवंविधंभवेत् ॥ क्वदेवास्सन्तिमिथ्यैव दृश्यन्तेचेद्भवन्त्यपि ॥ ७९ ॥ सर्वाचकूटविप्राणां मिथ्यैवैषाविकल्पना ॥ पितॄनुद्दिश्ययच्छन्ति ममहासःप्रजायते ॥ ८० ॥ अन्नस्योपद्रवंपश्यन् मृतोहिकिमशिष्यति ॥ यच्चेदंबहुधामूढा वर्णयन्तिद्विजाधमाः ॥ ८१ ॥ विश्वनिर्माणमखिलं तथापिशृणुसत्यतः ॥ उत्पत्तिश्चापिभङ्गश्च विश्वस्यैतद्द्वयंमृषा ॥ ८२ ॥ एवमेवंहिसर्वञ्च सदैवंवर्त्ततेजगत् ॥ स्वभावतोविश्वमिदं वर्त्ततेहिस्वभावतः ॥ ८३ ॥ स्वभावतस्सूर्य्यमुखाभ्रमन्त्यमी स्वभावतोवायवोवान्तिनित्यम् ॥ स्वभावतोवर्षतिचाम्बुदस्त्वयं स्वभावतोरोहतिधान्यमुप्तम् ॥ ८४ ॥ स्वभावतस्संस्थितामेदिनीच स्वभावतस्सरितस्संस्रवन्ति ॥ स्वभावतःपर्वताभान्तिनित्यंस्वभावतश्चाम्बुधिरेषसंस्थितः ॥ ८५ ॥ स्वभावतोजनयतिगर्भिणीसुतं स्वभावतोमीबहवश्चजीवाः ॥ यथास्वभावेनभव

नाश ये दोनों झूंठ हैं ॥ ८१ । ८२ ॥ ऐसेही स्वर्गसमेत सब संसार स्वभावही से वर्तमान है यह संसार स्वभावही से वर्तमान है ॥ ८३ ॥ ये सूर्यादिक ग्रह स्वभावही से घूमते हैं और पवन नित्यही स्वभावसे चलते हैं व यह मेघ स्वभावसे बरसते हैं और बोयाहुआ अन्न स्वभावही से जमता है ॥ ८४ ॥ स्वभावही से पृथ्वी भलीभांति स्थितहै और नदियां स्वभाहीसे बहती हैं व पर्वत नित्यही स्वभाव से शोभित हैं और स्वभावही से यह समुद्र स्थितहै ॥ ८५ ॥ व गर्भिणी स्वभावहीसे पुत्रको पैदाकरती

है और ये जीव स्वभाव से वर्तमान हैं जैसे कुटिल स्वभाववाले कण्टक स्वभाव से बेरके वृक्षों में टेढ़े होते हैं ॥ ८६ ॥ वैसेही स्वभावही से यह धर्म्म प्रकाश करता है
क्योंकि कोई कर्ता नहीं देख पडता है ॥ ८७ ॥ इस लिये संसारको इसप्रकार स्थितहोने पर मूर्ख मनुष्य मतवालेकी नाईं मोहको प्राप्तहोता है और जो धूर्त्त लोग
मनुष्यताको भी श्रेष्ठ कहते हैं उसको सुनिये ॥ ८८ ॥ कि मनुष्यसे अधिक वह कष्ट वैरियों को न होवै क्योंकि क्षण क्षणभर में मनुष्यों के हजारों शोकस्थान हैं ॥ ८९ ॥
मनुष्य होना बन्दीगृह कहागया है इससे सभाग्य पुरुष इस मनुष्यतासे छूटिजाता है क्योंकि पशु, पक्षी, कीट, कीडे सुखपूर्वक ॥ ९० ॥ ये बिन बँधेहुये विहार

न्तिवक्रा वक्रस्वभावाबदरीषु कण्टकाः ॥ ८६ ॥ तथास्वभावेनहिधर्ममेतत् प्रकाशतेकोपिकर्त्तानदृश्यः ॥ ८७ ॥ तद्दे
वंसंस्थितेलोके मूढोमुह्यतिमत्तवत् ॥ मानुष्यमपियद्धूर्त्ता वदन्त्यग्र्यंशृणुष्वतत ॥ ८८ ॥ मनुष्यान्नपरंकष्टं वैरिणान्नो
भवेत्ततत् ॥ शोकस्थानसहस्राणि मनुष्याणांक्षणेक्षणे ॥ ८९ ॥ मानुष्यंहिस्मृताकारा सभाग्योस्मात्प्रमुच्यते ॥ पश
वःपक्षिणःकीटाः कृमयश्चयथासुखम् ॥ ९० ॥ अबद्धाविहरन्त्येते योनिरेषासुदुर्लभा ॥ निश्चिन्ताःस्थावराह्येते सौख्य
मेषांमहद्भुवि ॥ ९१ ॥ बहुनाकिंमनुष्येभ्यस्सर्वेधन्यान्ययोनिजाः ॥ स्वभावमेनंजानीहि पुण्यापुण्यादिकल्पना ॥
९२ ॥ यदेतेस्थावराःकीटाः पतङ्गामनुजादिकाः ॥ तस्मान्मिथ्यांपरित्यज्य नन्दभद्रयथासुखम् ॥ पिबक्रीडतथा
भुङ्क्ष्वभोगान्सत्यमिदम्भुवि ॥ ९३ ॥ नारदउवाच ॥ इत्येतैरसुखैर्वाक्यैरयुक्तैरसमञ्जसैः ॥ सत्यव्रतस्यनाकम्पन्न
न्दभद्रोमहामतिः ॥ प्रहसन्निवतंप्राह तत्क्षोभ्यस्सागरोयथा ॥ ९४ ॥ यद्भवानाहधर्मिष्ठास्सदादुःखस्यभागिनः ॥ तं

करते हैं इससे यह योनि अत्यन्त दुर्लभहै ये स्थावर (वृक्षादिक) निश्चिन्त रहते हैं और इनको भूमि में बड़ासुख होताहै ॥ ९१ ॥ और बहुत कहने से क्याहै मनुष्यों
से अन्य योनि में पैदाहुये सब प्राणी धन्य हैं और पुण्य व पापादिक कल्पना इसको स्वभावही जानिये ॥ ९२ ॥ जिसलिये स्थावर, कीट, पतङ्ग व मनुजादिक मुख्यहैं
इसलिये हे नन्दभद्र ! मिथ्याको छोड़कर सुखपूर्वक पियो व क्रीडाकरो और भोगोंको भोगो भूमिमें यही सत्यहै ॥ ९३ ॥ नारदजीबोले कि सत्यव्रतके इन अयोग्य व सुखर
हित तथा अन्यायक वचनोंसे बड़े बुद्धिमान् नन्दभद्रजी चलायमान न हुये और हँसते हुयेसे वे क्षोभरहित समुद्रकी नाईं उससे बोले ॥ ९४ ॥ कि जो आपने कहा

कि धर्मिष्ठ लोग सदैव दुःख के भागी होते हैं वह झूंठहै क्योंकि पापियोंके भी मैं दुःखसमूहों को देखताहूँ ॥ ९५ ॥ और संसारके बन्धनके दुःख व पुत्र स्त्री आदिको का मरना ये पापियोंके भी देखेजाते हैं इस लिये धर्म्म गुरु मानागया है ॥ ९६ ॥ यह साधु है अहो बडे कष्टकी बात है कि इस साधु को दुःख होता है इस बातको महात्मा लोग जानते हैं परन्तु पापियों को यह भी दुर्लभ है ॥ ९७ ॥ और स्त्री आदिक बन्धनके लोभके लिये घरमें बैठे हुये पापी जनसे आपभी डरते हैं और इस से द्वेष करतेहो व क्रोध करतेहो वह वृथाहै ॥ ९८ ॥ इस संसारके महेश्वर कारण नहीं हैं जो यह तुम कहते हो तुम्हारा वह बालकों कासा वचन है क्योंकि राजाके

न्मिथ्यादुःखजालानि पश्यामःपापिनामपि ॥ ९५ ॥ भवबन्धपरिक्लेशाः पुत्रदारादिपञ्चता ॥ पापिनामपिदृश्यन्ते त स्माद्धर्मोगुरुर्मतः ॥ ९६ ॥ अयंसाधुरहोकष्टं कष्टमस्यमहाजनाः ॥ साधोर्विदन्त्येतदपि पापानांदुर्लभंत्विदम् ॥ ९७ ॥ दारादिद्रव्यलोभार्थं पापिनोविशतोगृहे ॥ भवानपिविभेत्यस्माद्द्वेष्टिकुप्यतितद्वृथा ॥ ९८ ॥ यदस्यजगतोब्रूषे नास्तिहेतु र्महेश्वरः ॥ तद्बालभाषितंतुभ्यं किंराजानंविनाप्रजाः ॥ ९९ ॥ यच्चब्रवीषिपाषाणं मिथ्यालिङ्गंसमर्चसि ॥ तद्भवाल्लिँङ्ग माहात्म्यं वेत्तिनान्धोयथारविम् ॥ १०० ॥ ब्रह्मादयस्सुरास्सर्वे राजानश्चमहर्द्धिकाः ॥ मानवामुनयश्चैव सर्वेलिङ्गंय जन्तिच ॥ १ ॥ स्वनामाख्यानचिह्नानि तेषांलिङ्गानिसन्तिच ॥ एतेकिन्न्वभवन्मूर्खास्त्वन्तुसत्यव्रतस्सुधीः ॥ २ ॥ प्रति ष्ठाप्यपुराब्रह्मा पुष्करेनीललोहितम् ॥ प्राप्तवान्परमांसिद्धिंससर्जेमाःप्रजाःप्रभुः ॥ ३ ॥ विष्णुनाचनिहत्याजौ रावणं पयसान्निधेः ॥ तीरेरामेश्वरंलिङ्गं स्थापितंचास्तिकिंमुधा ॥ ४ ॥ वृत्रंहत्वापुराशक्रो महेन्द्रेस्थाप्यशङ्करम् ॥ लिङ्गंवि

विना प्रजा नहीं होते हैं ॥ ९९ ॥ और जो कहतेहो कि पत्थरके लिङ्गको मिथ्या पूजतेहो तो आप लिङ्गके माहात्म्यको नहीं जानते हो जैसे कि अन्ध सूर्य को नहीं जानता है ॥ १०० ॥ ब्रह्मादिक सब देवता व बड़ी ऋद्धिवाले राजालोग, मनुष्य व मुनि ये सब लिङ्गको पूजते हैं ॥ १ ॥ और उनके लिंग अपने नामकी प्रसिद्धि से चिह्नित हैं क्या येसब मूर्ख हुये हैं और तुम सत्यव्रत विद्वान्हो ॥ २ ॥ पुरातन समय ब्रह्माने पुष्करमें सदाशिवजीको थापकर बड़ी सिद्धिको पायाहै और उन प्रभुने इन प्रजाओं को रचाहै ॥ ३ ॥ और विष्णुने भी समर में रावणको मारकर समुद्रके किनारे रामेश्वर लिंगको स्थापन किया है क्या यह वृथाही है ॥ ४ ॥ व पुरातन समय

वृत्रासुर को मारकर महेन्द्र पर्वतपै शङ्करलिंग को थापकर पापोंसे छूटकर ये इन्द्र आजभी स्वर्ग में प्रसन्न हैं ॥ ५ ॥ और गंगा व समुद्रके संगममें शिवजीको स्थापित
कर सूर्य रोगरहित हुये हैं और चन्द्रमाने पश्चिम समुद्र के समीप प्रभासक्षेत्रमें शिवको स्थापन किया है ॥ ६ ॥ और यमराज व कुबेर ने काशीमें तथा गरुड़ व
कश्यपजी ने सह्य पर्वतपै लिंगको थापाहै और वायु व वरुण नैमिष क्षेत्रमें लिंगको थापकर आनन्दित हैं ॥ ७ ॥ व इसी स्तम्भतीर्थ में स्वामी स्वामिकार्त्तिकेयजी ने
कुमारेश नामक लिंगको थापा है क्या वह लिंग समस्त पातकोंका नाशक नहीं है ॥ ८ ॥ इसप्रकार अन्य देवताओं व राजाओं तथा मुनियों ने जिन लिंगोंको स्थापन

मुक्तपापोयं त्रिदिवेद्यापिमोदते ॥ ५ ॥ स्थापयित्वाशिवंसूर्यो गङ्गासागरसङ्गमे ॥ निरामयोभवत्सोमः प्रभासेपश्चि
मोदधौ ॥६॥ काश्यांयमश्चधनदः सहेगरुडकश्यपौ ॥ नैमिषेवायुवरुणौ स्थाप्यलिङ्गंप्रमोदतः ॥७॥ अस्मिन्नेवस्तम्भ
तीर्थे कुमारेशंगुहोविभुः ॥ लिङ्गंसंस्थापयामास सर्वपापहरन्नकिम् ॥ ८ ॥ एवमन्यैस्सुरैर्यानि पार्थिवैर्मुनिभिस्तथा ॥
संस्थापितानिलिङ्गानि नाहंवक्तुंसमुत्सहे ॥ ९ ॥ पृथिवीवासिनस्सर्वे येचस्वर्गनिवासिनः ॥ पातालवासिनस्तृप्ता जा
यन्तेलिङ्गपूजनात् ॥ १० ॥ यच्चब्रवीषिगीर्वाणास्सन्तिनोसन्तिचेत्कुतः ॥ कुत्रापिनैवदृश्यन्ते तेनमेविस्मयोमहा
न् ॥ ११ ॥ एवंत्वकस्मात्तान्देवान्याचन्तेऽयाकुलाःकथम् ॥ यानिच्छसिमहाप्राज्ञ साधुःकोस्तिगुरुस्तव ॥ १२ ॥ स्व
भावेनैवसर्वार्थास्संसिद्धायदितेमते ॥ भोजनंहिकथंसिद्ध्येन्नैवकर्तारमन्तरा॥१३॥बदरीमन्तरेणापि दृश्यन्तेकण्टकान
हि॥१४॥ तस्मात्कर्तासिनिर्माणं यस्ययावत्तथैवतत् ॥ यच्चब्रवीषिपश्वाद्यास्सुखिनोधन्यकास्त्वमी ॥१५॥ त्वद्दत्तेनैवसु

कियाहै उनको मैं कहने के लिये नहीं उत्साह करताहूँ ॥ ९ ॥ सब पृथ्वीके बसनेवाले और जो स्वर्गके वासी हैं व पातालवासी ये सब लिंगके पूजनसे तृप्तहोते हैं ॥ १० ॥
और जो कहतेहो कि देवता नहीं हैं यदि हैं तो कहीं भी क्यों नहीं देखपडते हैं इससे मेरे बडा विस्मय है ॥ ११ ॥ क्योंकि यदि ऐसा होवै तो उन देवताओं से व्याकुल
पुरुष अचानक कैसे याचना करैं कि जिनको हे महाप्राज्ञ! तुम चाहतेहो और तुम्हारा कौन साधु गुरु है ॥ १२ ॥ यदि तुम्हारे मतमें स्वभावही से सब वस्तुवें भली
भांति सिद्धहैं तो कर्ताके विना भोजन क्यों नहीं सिद्धहोताहै॥१३॥व बेरिके विना कांटे नहीं देखपड़ते हैं ॥१४॥ इस लिये जिसकी जितनी निर्माण करोगे वह वैसाही

होगा और जो कहतेहो कि पशुआदिक ये धन्य व सुखी हैं ॥ १५ ॥ सो तुम्हारे विना किसीने न ऐसा कहाहै न सुना है व तामसी और जो विकल हैं उन जीवोंको कष्ट होताहै ॥ १६ ॥ कि समस्त इन्द्रियोंसे संयुक्त सब धन्यहैं परन्तु मनुष्य प्रशंसनीय नहींहैं तुममे इकट्ठा कियेहुये इस सत्यव्रतको मै नरकके लिये मानताहूँ ॥ १७॥ इस प्रयोजन मे तुमको भय न करना चाहिये यह आपका काम शीघ्रही होगा और पहले प्रारम्भही में ज्ञानहीको कहते हुये ॥ १८ ॥ तुम्हारी यह निस्सारता है क्योंकि यह प्रकटहै कि पहले आडम्बर के लिये जो वचनहै उसको कहतेहुये मायावियोंका वचन आडम्बरसे विरा होताहै ॥१९॥ और प्रज्वलित सोनेकी नाईं सज्जनोंकी यह

त्वत्त्र केनापिश्रुतमेवच ॥ तामसाविकलायेच कष्टन्तेषाञ्चजन्मिनाम् ॥ १६ ॥ सर्वेन्द्रिययुताःश्रेष्ठास्सर्वेधन्यानमानुषाः॥ सत्यंतवव्रतंमन्ये नरकायत्वयाहृतम् ॥ १७ ॥ अस्मिन्नर्थेनभीःकार्या कामोयंभविताचिरात् ॥ आदावाडम्बरेचैव ब्रुवतोज्ञानमेवच ॥ १८ ॥ इयंनिस्सारताव्यक्तमादावाडम्बराययत ॥ मायाविनांहिब्रुवतां वाक्यंचाडम्बरावृतम् ॥ १९ ॥ सुवर्णकमिवोद्दीप्तं परीक्ष्येयंसतांसदा ॥ आदौमध्येतथाचान्ते तेषांवाक्यमदोषवत् ॥ २० ॥ कसेदादौस्वर्णमिव च्छेदेपिस्याच्छुभाशुभम् ॥ त्वयान्यथाप्रतिज्ञातमुक्तंचैवान्यथापुनः ॥ २१ ॥ मोहयस्यपरंयच्च दोषेणैवपरस्यतु ॥ अपोवस्त्रान्तिलांस्तैलं गन्धोवासयतेयथा ॥ २२ ॥ पुष्पाणामधिवासेन तथासंसर्गजागुणाः ॥ मोहजालस्ययोनिर्हि मूढैरेवसमागमः ॥ २३ ॥ अहन्यहनिधर्मस्य योनिस्साधुसमागमः ॥ तस्मात्प्राज्ञैश्चवृद्धैश्च शुद्धभावैस्सहास्थितिः ॥ २४ ॥ सद्भिश्चसहसंसर्गः कार्य्यःशमपरायणैः ॥ ननीचैर्नाप्यविद्वद्भिर्नानात्मज्ञैर्विशेषतः ॥ २५ ॥ यस्यत्रीण्यवदातानि यो

सदैव परीक्षाहै कि आदि मध्य व अन्तमें उनका वचन दोषहीन होताहै ॥२०॥पहले सोनेकी नाईं कसै तो फिर कटने पर शुभ व अशुभ होता है और तुमने अन्यथा प्रतिज्ञा किया व फिर अन्यथा कहा ॥ २१ ॥ क्योंकि पराये दोषसे अन्यको मोहते हो फूलों के अधिवाससे सुगन्ध जिसप्रकार जल, वसन, तिल व तैलको सुगन्धित करता है वैसेही संसर्ग (सङ्गति) से पैदाहुये गुण होते हैं और मूर्खों से संयोग मोहसमूह की खानि है ॥ २२ । २३ ॥ और साधुओं का समागम दिन दिनमें धर्म का उत्पत्तिकारक है इस लिये बुद्धिमान् व शुद्ध स्वभाववाले वृद्धोंके साथ बैठना ॥ २४ ॥ और सज्जनों व शान्तिमें परायण पुरुषों से संसर्ग (संगति) करनाचाहिये

और न नीचों, न मूर्खों से व विशेषकर आत्माके न जाननेवालोंसे संसर्ग न करना चाहिये ॥ २५ ॥ जिसकी उत्पत्ति, विद्या व कर्म तीनों शुद्धहोवैं और जिनके शास्त्र विद्यमान हैं उनको विशेषकर सेवन करै ॥ २६ ॥ क्योंकि दुष्टोंके दर्शन, स्पर्श, वार्तालाप व साथ बैठने से धर्म्मके आचार न्यून होजाते हैं और वे मनुष्य सिद्ध नहीं होते हैं ॥ २७ ॥ और नीचोंके समागम से पुरुषोंकी बुद्धि नष्टहोती है और मध्यम पुरुषों के साथसे मध्यताको प्राप्तहोती है व उत्तम जनोंकी संगति से उत्तमता को प्राप्तहोती है ॥ २८ ॥ इसप्रकार धर्म्मको स्मरण करता हुआ मैं फिर तुम्हारे संगको नहीं चाहता हूँ क्योंकि ब्राह्मणों की तुम निन्दा करतेहो जिन्हों ने कि समुद्रको न

निर्विद्याचकर्मच ॥ तान्सेवेतविशेषेण शास्त्रंयेषांहिविद्यते ॥ २६ ॥ असतांदर्शनस्पर्शसञ्जल्पनसहासनैः ॥ धर्माचाराःप्रहीयन्ते नचसिध्यन्तिमानवाः ॥ २७ ॥ बुद्धिश्चहीयतेपुंसां नीचैस्सहसमागमात् ॥ मध्यस्थैर्मध्यतांयाति श्रेष्ठतांयातिचोत्तमैः ॥ २८ ॥ इतिधर्मंस्मरन्नाहं सङ्गमार्थीपुनस्तव ॥ यन्निन्दसिद्विजानेव यैरपेयोर्णवःकृतः ॥ २९ ॥ वेदाःप्रमाणंस्मृतयःप्रमाणं धर्मार्थयुक्तंवचनंप्रमाणम् ॥ नैतत्त्रयंयस्यभवेत्प्रमाणं कस्तस्यकुर्याद्वचनप्रमाणम् ॥ ३० ॥ इतीरयित्वावचनंमहात्मा सत्यव्रतस्तंसहसातदैव ॥ गृहाद्विनिस्सृत्यजगामपुण्यं बहूदकंभद्रवरेस्सुपुण्यम् ॥ १३१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे कुमारिकाखण्डेसत्यव्रतनन्दभद्रविवादवर्णनन्नामचत्वारिंशोध्यायः ॥ ४० ॥ * ॥ * ॥

नारदउवाच ॥ बहूदकस्यकुण्डस्य तीरस्थंलिङ्गमुत्तमम् ॥ कपिलेश्वरमभ्यर्च्य नन्दभद्रस्ततस्सुधीः ॥ १ ॥ प्रण

पीने योग्य करदिया है ॥ २९ ॥ वेद प्रमाण हैं व स्मृतियां प्रमाण हैं और धर्म्म व अर्थसे संयुत वचन प्रमाण हैं और ये तीनों जिसके प्रमाण न होवैं उसके वचनका प्रमाण कौन करैगा ॥ ३० ॥ महात्मा नन्दभद्र इसप्रकार उस सत्यव्रत से वचन कहकर उसी समय अचानकही घर से निकलकर महादित्य के पुण्यदायक पवित्र बहूदक कुण्डको चलेगये॥१३१॥इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांसत्यव्रतनन्दभद्रविवादवर्णनंनामचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥

दो० । नन्दभद्र थाप्यो यथा बालादित्य दिनेश । इकतालिस अध्याय में सोई शुभ उपदेश ॥ नारदजी बोले कि बहूदककुण्ड के किनारे पै स्थित कपिलेश्वर

नामक उत्तम लिङ्ग को पूजकर तदनन्तर विद्वान् नन्दभद्र ॥ १ ॥ प्रणाम कर हाथों को जोड़कर आगे स्थित हुये और संसार के चरित्रों से कुछ दुःखी उन्होंने गाथा को गाया कि ॥ २ ॥ संसारके रचनेवाले सदाशिवको यदि देखूं तो अनेकों प्रश्नों से मैं उनसे शीघ्रही पूंछूं ॥३॥ कि तुम्हारे रचेहुये बिना क्या चेष्टारहित संसार पूर्ण है जो सब संसार कि ज्ञानसमेत, शुद्ध व स्नेहादिक से रहित आप से बहुत भांति का रचा गया है ॥ ४ । ५ ॥ और वैररहित व समदर्शी आप से जड़ निर्माण किया हुआ यह संसार अपने समान क्यों नहीं रचागया और सुख, दुःख व जन्म, मरण से ॥ ६ ॥ ब्रह्मादिक कीटपर्यन्त यह संसार क्यों दुःखी है हे सदाशिवजी ! तुम

म्यचाग्रतस्तस्थौ प्रबद्धकरसम्पुटः ॥ संसारचरितैःकिञ्चिद्दुःखीगाथामगायत ॥ २ ॥ स्रष्टारमस्यजगतश्चेत्पश्यामिसदाशिवम् ॥ नानापृच्छाभिरथतंपृच्छाम्येवाविलम्बितम् ॥३॥ आपूर्यमाणंतवकिंजगत्संसर्जनंविना ॥ निरीहंबहुधा यत्तु सृष्टमेषाखिलंजगत् ॥ ४ ॥ सचेतनेनशुद्धेन रागादिरहितेनच ॥ ५ ॥ अथकस्मादात्मसमं नसृष्टंनिर्मितंजडम् ॥ निर्वैरेणसमेनाथ सुखदुःखभवाभवैः ॥ ६ ॥ ब्रह्मादिकीटपर्यन्तं किमिदंक्लिश्यतेजगत् ॥ कांश्चित्स्वर्गेथनरके पातयेस्त्वंसदाशिव ॥ ७ ॥ किंफलंसमवाप्नोषि किमेवंकुरुषेवद ॥ हृष्टैःपुत्रादिभिर्नाथ वियुक्तामानवाह्यमी ॥ ८ ॥ क्रन्दन्तिकरुणासार किंघृणापिभवेन्नते ॥ ९ ॥ अतीवनोचितंतुभ्यमेतदीश्वरसर्वथा ॥ यत्तेभक्ताःसमंपापैर्मज्जन्तेदुःखसागरे ॥ १० ॥ एवंविधेनसंसारचारित्रेणविमोहितः ॥ स्थानान्तरन्नयास्यामि भोक्ष्येपास्यामिनोदकम् ॥ ११ ॥ सप्राणान्तमपिचात्रैवस्थास्येसञ्चिन्तयन्नहम् ॥ सएवंविमृशन्नेवनन्दभद्रस्त्वथस्थितः ॥ १२ ॥ ततश्चतुर्थदिवसे वह्नूदकतटे

कितनों को स्वर्ग व कितनों को नरक में गिराते हो ॥ ७ ॥ और किस फलको प्राप्त होतेहो व ऐसा क्यों करतेहो यह कहिये हे नाथ ! प्रसन्न पुत्रादिको से बिछुडे हुये ये मनुष्य ॥ ८ ॥ रोते हैं हे दयासार शिवजी ! क्या तुम्हारे दया भी नहीं होवे है ॥ ९ ॥ हे ईश्वर ! तुम को यह सब प्रकार से बहुतही अयोग्य है जो कि तुम्हारे भक्त पापों समेत होकर दुःखसागर में डूबते हैं ॥ १० ॥ इस प्रकार के संसार के चरित्र से मोहित मैं दूसरे स्थान को न जाऊंगा न भोजन करूंगा न जल पियूंगा ॥ ११ ॥ और इस प्रकार चिन्तन करता हुआ मैं मरणपर्यन्त तक भी यहीं टिकूंगा इस प्रकार विचार करता हुआ नन्दभद्र स्थित हुआ ॥ १२ ॥ उसके चौथे दिन उत्तम

बहूदक के किनारे पै सात वर्षवाला कोई बालक पीड़ा से पीड़ित होकर आया ॥ १३ ॥ जो कि बहुतही दुबला व गलत्कुष्ठी और पगपग पै मूर्च्छित होताथा ॥१४॥ वह बालक क्लेश से हँसकर नन्दभद्र से यह बोला कि अहो स्वरूपवान् सब अङ्गोंवाले ! आप किस कारण दुःखी हो ॥ १५ ॥ तदनन्तर नन्दभद्र ने इस के सब कारण को कहा व उस समस्त कारण को सुनकर उदासीनमनवाला बालक बोला ॥ १६ ॥ कि अहो हा बड़ा उग्र कष्ट है कि वह विद्वान् भी यदि नहीं जानता है जो कि संपूर्ण इन्द्रिय व अङ्गोंवाला मरने के लिये वृथा इच्छा करताहै ॥ १७ ॥ जहां मुहूर्त्त भरमें खट्वांग राजा मोक्षमार्ग को प्राप्त होगया उसी भरतखण्ड को आयुर्बल

शुभे ॥ कश्चिद्बालःसप्तवर्षः पीडापीडितआययौ ॥१३॥ कृशोतीवगलत्कुष्ठी प्रमुह्यंश्चपदेपदे ॥ १४ ॥ नन्दभद्रमुवाचेदं कृच्छ्रात्संस्तभ्यबालकः ॥ अहोस्वरूपसर्वाङ्ग कस्माद्दुःखीभवानपि ॥ १५ ॥ ततोस्यकारणंसर्वं व्याचष्टनन्दभद्रकः ॥ श्रुत्वातत्कारणंसर्वं बालोदीनमनाब्रवीत ॥ १६ ॥ अहोहाकष्टमत्युग्रं बुधोपिनसबुध्यते ॥ सम्पूर्णेन्द्रियगात्रोयो मर्तुमिच्छतिवैवृथा ॥ १७ ॥ मुहूर्त्ताद्यत्रखट्वाङ्गोमोक्षमार्गमुपागतः ॥ तदेवभारतंखण्डंमर्त्यायुषित्यजेद्धिकः ॥ १८ ॥ अहमेवदृढंमन्ये पितृभ्यांयोविवर्जितः ॥ नशक्तश्चलितुंवापिमर्तुमिच्छामिनापिच ॥ १९ ॥ सर्वेलाभाःसत्त्वमत इतिसत्यंवचः श्रुतेः ॥ सन्तोषोप्युचितस्तुभ्यं देहंयस्येदृढंत्विदम् ॥ २० ॥ शरीरंनिरुजंचेन्मेभवेदपिकथंचन ॥ क्षणेक्षणेचतत्कुर्याम्भुज्यतेयद्युगेयुगे ॥ २१ ॥ इन्द्रियाणिवशेयस्यशरीरंचदृढम्भवेत ॥ सोप्यन्यदिच्छतेचेच्चकोन्यस्तस्मादचेतनः ॥ २२ ॥ शोकस्थानसहस्राणि हर्षस्थानशतानिच ॥ दिवसेदिवसेमूढमाविशन्तिनपण्डितम् ॥ २३ ॥ नहिज्ञा

होनेपर कौन छोड़ता है ॥ १८ ॥ मैंही दृढ़ मानताहूं जो कि माता, पिता से रहित व चलने के लिये भी नहीं समर्थहूं और मरनेकी इच्छा भी नहीं करताहूं ॥ १९ ॥ बलवान् मनुष्य को सब लाभ होतेहैं यह वेदका वचन सत्य है इस से तुम को सन्तोष भी उचित है कि जिनका यह शरीर पुष्ट है ॥ २० ॥ यदि किसी प्रकार मेरा भी शरीर नीरोग होवै तो क्षण क्षण भरमें उस कर्मको करूं कि जो युग युगमें भोग किया जाता है ॥ २१ ॥ इन्द्रियां जिसके वशमें हैं और शरीर पुष्टहै वह यदि अन्य की इच्छाकरै तो उससे अन्य कौन मूर्ख है ॥ २२ ॥ हज़ारों शोक स्थान व सैकड़ों हर्ष स्थान प्रतिदिन मूर्खमें प्रवेश करते हैं पण्डित में नहीं प्रवेश करते हैं ॥ २३ ॥

और आपके समान बुद्धिमान् मनुष्य जड़को नाशनेवाले व ज्ञानका अवरोध करनेवाले बड़े पापकर्मोंमें नहीं संग करते हैं ॥ २४ ॥ सब कल्याण को करनेवाली जिस बुद्धिको आठ अंगोंवाली कहते हैं वह श्रुति स्मृति से विरुद्ध तुम्हारी बुद्धि निर्मल नहीं है ॥ २५ ॥ कठिन क्लेशोंमें और स्वजनकी विपत्तियों में आपके समान मनुष्य शरीरवाले और मानसी दुःखों से पीडित नहीं होते हैं ॥ २६ ॥ और सत् असत् विवेकसंयुत बुद्धिवाले मनुष्य मिलने योग्य वस्तुको भी नहीं चाहते हैं और नष्ट वस्तुको शोचने के लिये नहीं इच्छा करते हैं व विपत्तियों में मोहित नहीं होते हैं ॥ २७ ॥ मन व देहसे उठेहुये दुःखों से संसार दुःखितहै उनके शान्तिके इस उपाय

नावरुद्धेषु बहुपापेषुकर्मसु ॥ मूलघातिषुसज्जन्ते बुद्धिमन्तोभवद्विधाः ॥ २४ ॥ अष्टाङ्गांबुद्धिमाहुर्यां सर्वश्रेयोविधायिनीम् ॥ श्रुतिस्मृतिविरुद्धासानबुद्धिस्तवनिर्मला॥२५॥ अथकृच्छ्रेषुदुर्गेषुह्यापत्सुस्वजनस्यच ॥ शारीरैर्मानसैर्दुःखैर्नसीदन्तिभवद्विधाः ॥ २६ ॥ नप्राप्यमपिवाञ्छन्तिनष्टंनेच्छन्तिशोचितुम् ॥ आपत्सुचनमुह्यन्तिनराःपण्डितबुद्धयः ॥ २७ ॥ मनोदेहसमुत्थाभ्यां दुःखाभ्यामर्दितंजगत् ॥ तयोर्व्याससमासाभ्यांशमोपायमिमंशृणु ॥ २८ ॥ व्याधेरनिष्टसंस्पर्शाच्छ्रमादिष्टविवर्जितात् ॥ द्विप्रकारंमहाकष्टं द्वयोरेतदुदाहृतम् ॥ २९ ॥ मानसेनहिदुःखेन शरीरमुपतप्यते ॥ अयःपिण्डेनतप्तेन कुम्भसंस्थमिवोदकम् ॥ ३० ॥ तदाशुप्रतिकाराच्च सततञ्चविवर्जनात् ॥ व्याधेराधेश्चप्रशमःक्रियायोगद्वयेनतु ॥ ३१ ॥ मानसंशमयेत्तस्माज्ज्ञानेनाग्निमिवाम्बुना ॥ प्रशान्तेमानसेह्यस्य शारीरमुपशाम्यति ॥ ३२ ॥ मनसोदुःखमूलन्तु स्नेहइत्युपलभ्यते ॥ स्नेहाचसज्जतेजन्तुर्दुःखयोगमुपैतिच ॥ ३३ ॥ स्नेहमूलानि

को विस्तार व संक्षेपसे सुनिये ॥ २८ ॥ कि व्याधिसे व अनिष्ट वस्तुके स्पर्शसे और परिश्रम तथा प्रियके वर्जित से दोनोंको यह दो प्रकारका महाकष्ट कहागयाहै ॥ २९ ॥ मानस दुःख से शरीर संतप्त होताहै जैसे कि तचेहुये लोहपिण्डसे घड़ामें प्राप्त जल सन्तप्त होताहै ॥ ३० ॥ इस लिये शीघ्रही प्रतिकार (उपाय) से और सदैव त्यागसे इन दोनों क्रियाओंके योगकरके रोग व मानसी व्यथाकी शान्ति होती है ॥ ३१ ॥ इस लिये ज्ञानसे मानसी क्लेशको शान्तकरै जैसे कि जलसे अग्नि शान्त कीजाती है इस मनुष्यके मानस क्लेशका नाशहोनेपर शरीरवाला दुःख शान्त होजाताहै ॥ ३२ ॥ मनके दुःखकी जड़ स्नेह ऐसा पायाजाता है और स्नेहसे प्राणी सङ्ग करताहै और

दुःखके योगको प्राप्तहोता है ॥ ३३॥ स्नेह जड़वाले दुःख होते हैं और भय स्नेह से पैदा होते हैं और शोच, हर्ष व परिश्रम सब स्नेहसे वर्तमान होताहै ॥ ३४ ॥ और
स्नेहसे इन्द्रियों में प्रीति और विषयोंमें स्नेह होता है ये दोनों अकल्याणदायक हैं और उनमें पहला गुरु मानागया है ॥ ३५ ॥ इस लिये त्यागी, वैररहित व अग्रहेण
करनेवाला दुःखी नहीं होताहै और अत्यागी मनुष्य यहां बार बार जन्म मरणको प्राप्त होता है ॥ ३६ ॥ इस लिये मित्रों से व धन इकट्ठा करने से स्नेहमें न लिप्तहोवै
और अपने शरीर से उपजेहुये स्नेहको ज्ञानसे निवृत्त करै ॥ ३७ ॥ ज्ञानसे संयुत, सिद्ध व शास्त्रज्ञ और कृतात्म (चतुर) इन मनुष्यों में स्नेह नहीं लगता है जैसे

दुःखानि स्नेहजानिभयानिच ॥ शोकहर्षौतथायासं सर्वस्नेहात्प्रवर्त्तते ॥३४॥ स्नेहादिन्द्रियरागश्च प्रजज्ञेवैषयस्तथा॥
अश्रेयस्काउभावेतौ पूर्वस्तत्रगुरुर्मतः ॥ ३५ ॥ त्यागीतस्मान्नदुःखीस्यान्निर्वैरोनिरवग्रहः ॥ अत्यागीजन्ममरणे प्रा
प्नोतिहपुनःपुनः ॥ ३६ ॥ तस्मात्स्नेहेनलिप्येत मित्रेभ्योधनसंचयात ॥ स्वशरीरसमुत्थञ्च ज्ञानेनविनिवर्तयेत ॥
३७ ॥ ज्ञानान्वितेषुसिद्धेषु शास्त्रज्ञेषुकृतात्मसु॥ नैतेषुसज्जतेस्नेहः पद्मपत्रेष्विवोदकम् ॥३८॥ रागाभिभूतःपुरुषः का
मेनपरिकृष्यते ॥ इच्छासंजायतेचास्य ततस्तृष्णाप्रवर्तते ॥३९ ॥ तृष्णाहिसर्वपापिष्ठा नित्योद्वेगकरीमता ॥ अधर्म
बहुलाचैव घोररूपानुबन्धिनी ॥ ४० ॥ यादुस्त्यजादुर्मतिभिर्यानजीर्यतिजीर्यतः ॥ योसौप्राणान्तकोरोगस्तान्तस्मा
त्त्यजतस्सुखम् ॥४१॥ अनाद्यन्तातुसातृष्णा ह्यन्तर्देहगतान्नृणाम् ॥ विनाशयतिभूतानि लोहंलोहमलोयथा ॥ ४२ ॥

कि कमल के पत्तोंमें जल नहीं लगता है ॥ ३८ ॥ स्नेह से तिरस्कृत पुरुष कामसे खींचाजाताहै व इसके इच्छा उत्पन्न होतीहै तदनन्तर तृष्णा वर्तमान होतीहै ॥ ३९ ॥
और तृष्णा सबसे पापिष्ठ होती है और वह नित्यही उद्वेग करनेवाली मानीगई है और बहुत अधर्मवाली व घोररूपिणी तथा दोषोंको उत्पन्न करनेवाली है ॥ ४० ॥
जो दुर्बुद्धियोंसे दुःख करके छोड़ने योग्य है और जो जीर्ण पुरुषकी भी जीर्ण नहीं होती है और जो यह प्राणान्तक रोगहै उस तृष्णा को छोड़ते हुये पुरुष को सुख
होता है ॥ ४१ ॥ मनुष्यों के देह भीतरमें प्राप्त वह तृष्णा आदि अन्तसे रहित है और प्राणियोंको वह नाश करतीहै जैसे कि लोहका मल (मुरचा) लोहको नाशता

है ॥ ४२ ॥ जैसे ईंधन से उठीहुई अग्नि करके काष्ठ नाशको प्राप्तहोता है वैसेही पापी मनुष्य उत्पन्नहुये लोभसे नाश होजाता है ॥ ४३ ॥ इस लिये शरीर में और अपने बन्धुवोंमें लोभ न करनाचाहिये इसी कारण इनमें मैं प्रसन्न नहीं होताहूं और प्राणोंके नाशमें शोक करनेवाला नहीं हूं ॥ ४४ ॥ नन्दभद्र बोले कि अहो बाल ! मेरे मतमें तुम बालक नहींहो मैं तुमको प्रणाम करताहूँ और तुम्हारे वचनों से अत्यन्त तृप्त मैं तुमसे कुछ पूँछताहूँ ॥ ४५ ॥ कि अहंकार, काम व क्रोध और इन्द्रियों को मनुष्य निन्दते हैं और उस विषय में मेरे यह कहनेकी इच्छा होती है ॥ ४६ ॥ यह मैं हूँ और मेरा यह कार्य व वस्तु है व मैं ऐसाहूँ इत्यादिक अपनेको जानना

यथैधसासमुत्थेन वह्निनानाशमृच्छति ॥ तथाकृतात्मालोभेन समुत्पन्नेननश्यति ॥ ४३ ॥ तस्माल्लोभोनकर्तव्यः शरीरेचात्मबन्धुषु ॥ इत्येषुनाहंहृष्येयं प्राणनाशेनशोककृत् ॥ ४४ ॥ नन्दभद्रउवाच ॥ अहोबालनबालस्त्वं मतोमेत्वान्नमाम्यहम् ॥ त्वद्वाक्यैरतितृप्तोहं त्वान्तुपृच्छामिकिञ्चन ॥ ४५ ॥ अहङ्कारःकामक्रोधौ इन्द्रियाणिचमानवाः ॥ निन्दन्तितत्रमेनित्यं विवक्षेयंप्रजायते ॥ ४६ ॥ अहमेषममेदञ्च कार्यमीदृक्चवस्त्वहम् ॥ इत्यादिचात्मविज्ञानमहङ्कारइतिस्मृतः ॥ ४७ ॥ परिहार्यमहेयञ्च विनोन्मत्तःप्रकीर्त्यते ॥ कामोभिलाषइत्युक्तः सचेत्पुंसाविवर्जितः ॥ ४८ ॥ कथंस्वर्गोमुमुक्षाच साध्यतेहृष्यताकथम् ॥ क्रोधोवायदिसंत्याज्यस्ततःशत्रुक्षयंकथम् ॥ ४९ ॥ ब्रह्माण्डस्यनराणाञ्च विन्नातंतृणवद्विदुः ॥ इन्द्रियाणिनिगृह्यैव दुष्टानीतिनपीडयेत् ॥ ५० ॥ कथंस्याद्धर्मश्रवणं कथंवाजीवनंभवेत् ॥ एतस्मिन्मेमनोविद्वन् खिद्यतेज्ञानसङ्कटे ॥ ५१ ॥ तथाकस्मादिदंसृष्टं जडेविश्वंचिदात्मना ॥ एवंयद्बहुधाक्लेशैः पीड्यतेहाकु

अहंकार ऐसा कहागया है ॥ ४७ ॥ और छोड़ने योग्य व न त्यागने योग्य वस्तुके विना उन्मत्त कहा जाता है और काम अभिलाष ऐसा कहागया है यदि वह मनुष्य से रहित होवै ॥ ४८ ॥ तो प्रसन्न होतेहुये मनुष्यसे स्वर्ग व मुक्तिकी इच्छा कैसे साधन कीजाय और यदि क्रोध छोडने के योग्य होवै तो किस प्रकार शत्रुका नाश होवै ॥ ४९ ॥ और उस क्रोधके विना ब्रह्माण्ड के मनुष्यों को विद्वानोंने तिनुकाके नाई कहाहै और इन्द्रियों का निग्रहकर दुष्टहैं इसकारण यदि उनको न पीड़ित करै ॥ ५० ॥ तो किस प्रकार धर्म्म का श्रवणहो और किस प्रकार जीवन होवै हे विद्वन्! इस ज्ञानके सङ्कटमें मेरा मन क्लेशित होताहै ॥ ५१ ॥ वैसेही चैतन्यात्मा शङ्कर

जैसे यह संसार जड़ क्यों रचागया जोकि इसभांति बहुत प्रकारके क्लेशोंसे पीड़ित होताहै हाय यह किस कारण हुआ ॥ ५२ ॥ बालक बोला कि भलीभांति यह जैसा
पूँछागया कि जिसमें प्राणी मोहित होते हैं उसको सावधान मनवाले होकर सुनिये कि जिसप्रकार मैंने व्यासजी से जानाहै ॥ ५३ ॥ प्रकृति व पुरुष ये दोनों अनादि
हैं मैंने पुरातन समय यह सुना है और सृष्टिके पहले वे दोनों अजर अमर होकर धर्म्मसे स्थितहुये ॥ ५४ ॥ तदनन्तर पहले काल व स्वभाव से प्रकृति प्रेरितहुई और
उसने देव (पुरुष) के साथ संयोग की इच्छा किया व उस संयोगके अभाव से क्रोधितहुई ॥ ५५ ॥ तदनन्तर लीलासे देवता करके वह देखीहुई तमोमयीहुई और

तस्त्वदम् ॥ ५२ ॥ बालउवाच ॥ सम्यग्गेतद्यथापृष्टं यत्रमुह्यन्तिजन्तवः ॥ शृणवेकाग्रमनाभूत्वा ज्ञातंद्वैपायनान्मया ॥
५३ ॥ प्रकृतिःपुरुषश्चैव अनादीशृणुमःपुरा ॥ तौधर्म्मेणावतिष्ठेते सृष्टेःप्रागजरामरौ ॥ ५४ ॥ ततःकालस्वभावाभ्यां
प्रेरिताप्रकृतिःपुरा ॥ संयोगमैच्छद्देवेन तदभावात्प्रकुप्यति ॥ ५५ ॥ ततस्तमोमयीसाच लीलयादेववीक्षिता ॥ राज
सीसमभूदुष्टा सात्त्विकीसमजायत ॥ ५६ ॥ तस्याःप्रधारणार्थंच प्रवृत्तःस्वांशकंततः ॥ असूयतमहत्तत्त्वं त्रिगुणं
तद्विदुर्बुधाः ॥ ५७ ॥ अहङ्कारस्ततोजातः सत्त्वराजसतामसः ॥ तमोरजस्त्वमापाद्य रजस्सत्त्वगुणान्नयेत् ॥ ५८ ॥ शु
द्धसत्त्वेततोमोक्षंप्रवदन्तिमनीषिणः ॥ तमसोरजसस्तस्मात्तंशुद्ध्यर्थञ्चसर्वशः ॥ ५९ ॥ जीवात्मसंज्ञान्स्वीयांशानभ
जत्परमेश्वरः ॥ तेजःक्षेत्राणितानन्तो देहायावन्तएवहि ॥ ६० ॥ निस्सरन्तियथालोहात्तप्तलिङ्गात्स्फुलिङ्गकाः ॥
तन्मात्रभूतसर्गोयमहङ्कारात्तुतामसात् ॥ ६१ ॥ इन्द्रियाणांसात्त्विकाच्च निर्गुणान्यपितान्यपि ॥ एतेसंसिद्धयन्त्येनं

वह दुष्टा राजसीहुई और फिर सात्त्विकी होगई ॥ ५६ ॥ तदनन्तर अपने अंशको उससे धारणके लिये प्रवृत्त हुये और उसने महत्तत्त्व को पैदा किया विद्वानोंने उस
को त्रिगुण कहा है ॥ ५७ ॥ तदनन्तर सत्त्व, रज व तमोगुणवाला अहंकार पैदा हुआ उसीकारण तमोगुण को रजोगुणत्व सिद्धकर रजोगुण को सत्त्वगुण में प्राप्त
करै ॥ ५८ ॥ तदनन्तर शुद्ध सत्त्व होनेपर विद्वान् मोक्षको कहते हैं इस लिये तमोगुण व रजोगुणसे भलीभांति शुद्धिके लिये सब ॥ ५९ ॥ आगे अंशवाले जीवात्म-
संज्ञकों को परमेश्वरने भजाहै तेजके शरीर उतनेही हैं जितने कि देहहैं ॥ ६० ॥ तचेहुये लोहसे जैसे चिनगारियां निकलती हैं यह तन्मात्र (शब्द, स्पर्श, रूप, रस,

गन्ध) व भूतसर्ग याने पृथ्वी, जल, अग्नि, पवन, आकाश तामस अहंकार से हैं ॥ ६१ ॥ व इन्द्रियोंकी उत्पत्ति सात्त्विकसे है वेभी निर्गुणी हैं परन्तु सच्चिदान-
परमेश्वर के देखने से ये इस संसारको भलीभांति सिद्ध करते हैं ॥ ६२ ॥ मुक्त होनेकी इच्छावाले जनों से रजोगुण व तमोगुण सत्त्वगुणही से शोधन किये जाते हैं
इस लिये-काम, क्रोध व इन्द्रियों का प्रवृत्तहोना ॥ ६३ ॥ और अहंकारको भलीभांति शोधन कर शुद्ध सात्त्विक को भोगता है और राजसी व तामसी ये कामादिक
त्यागने योग्यहैं॥६४॥ व संसारको जीतनेकी इच्छावाले पुरुषको सात्त्विक वस्तुवें सदैव सेवने योग्यहैं कि जिस सत्त्वगुणके गुण और उस लक्षणको संक्षेपसे कहूँगा॥ ६५॥

सच्चिदानन्दवीक्षणात् ॥ ६२॥ रजस्तमश्चशोध्येते सत्त्वेनैवमुमुक्षुभिः ॥ तस्मात्कामश्चक्रोधश्चइन्द्रियाणांप्रवर्तनम् ॥
६३ ॥ अहङ्कारञ्चसंशोध्य सात्त्विकंशुद्धमश्नुते ॥ राजसास्तामसाश्चैव त्याज्याःकामादयस्त्वमी ॥ ६४ ॥ सात्त्विका
स्सर्वदासेव्याः संसारविजिगीषुणा ॥ गुणाश्चयस्यवक्ष्यामिसंक्षेपाल्लक्षणंचतत् ॥ ६५ ॥ शास्त्राभ्यासस्ततोज्ञानं शौच
मिन्द्रियनिग्रहः ॥ धर्मक्रियात्मचिन्ताच सात्त्विकंगुणलक्षणम् ॥६६॥ आरम्भश्चरतिर्गानं तथासत्कार्य्यनिग्रहः ॥ वि
षयोपासनाजस्रं राजसंगुणलक्षणम् ॥ ६७ ॥ अन्यायेनधनादानं तीव्रनास्तिक्यमेवच ॥ क्रौर्य्यञ्चयाचकाद्यंचताम
संगुणलक्षणम् ॥ ६८ ॥ तस्माद्बुद्धिमुखैश्चैतैः सात्त्विकैर्देवताम्भजेत् ॥ राजसैर्मानुषत्वञ्च तामसैःस्थाणुयोनिताम् ॥
६९ ॥ बुद्ध्याद्यैरेवमुक्तिःस्यादेतैरेवचयातना ॥ अमीषांचाप्यभावेवै नकिञ्चिदुपपद्यते ॥ ७० ॥ कलादोहिकलाहीनं

कि शास्त्रका अभ्यास व ज्ञान, शौच, इन्द्रियों का जीतना, धर्म्म कार्य व परमात्मा का चिन्तन करना यह गुण व लक्षण सात्त्विक है ॥ ६६ ॥ व कार्यका आरम्भ,
रति, गान व उत्तम कार्योंका निग्रह (मना करना) और सदैव विषयोंकी उपासना यह रजोगुणका गुण लक्षण है ॥६७॥ व अन्याय से धनलेना, तीव्रनास्तिकता
क्रूरता व याचनादिक तामस गुण लक्षण हैं ॥ ६८ ॥ इस लिये बुद्धि आदिक इन सात्त्विक गुणोंमे देवताको भजै और राजसों से मनुजता व तामसों से स्थावरयोनि
को भजै ॥ ६९ ॥ बुद्धि आदिकों से मुक्ति होती है व इन्हीं से यातना (नरकका दुःख) होता है और इनके अभावमे कुछ नहीं सिद्धहोता है ॥ ७० ॥ जैसे सोनार

कान्तिरहित सुवर्णको शोधता है वैसेही सात्त्विक गुणोंसे रजोगुण व तमोगुण संशोधन करै ॥ ७१ ॥ इसीकारण गुणों के सम्बन्धादिकको कहनेवालों के मध्य में
सुखी व दुःखी प्राणीको शास्त्र देखना चाहिये ॥ ७२ ॥ परमेश्वर ने एक एक गुणको अट्ठाईस लक्षों से विभाग किया तो वे चौरासीलाख जीवयोनि होगई ॥ ७३ ॥
ईश्वरके अंश वे सब जीव मायाके गुणों से मोहित हैं व हे विभो ! जैसे कि पहले कियेगये हैं वैसेही क्लेशोंको प्राप्तहोते हैं ॥ ७४ ॥ अन्न जल व जीवोंके कल्याण के
लिये तत्त्वज्ञाता पुरुष मनुष्ययोनिको शिवभाव से भावित (प्रकट कीहुई) कहा है ॥ ७५ ॥ नन्दभद्र बोले कि यह ऐसाही है परन्तु हे महामते ! फिर मैं इसको

सुवर्णंशोधयेद्यथा ॥ तथारजस्तमश्चैव संशोध्येत्सात्त्विकैर्गुणैः ॥ ७१ ॥ अस्मादेवगुणानाञ्च समवायादिवादिनाम् ॥
सुखिनोदुःखिनश्चैव प्राणिनःशास्त्रदर्शनम् ॥ ७२ ॥ अष्टाविंशतिलक्षैश्च गुणमेकैकमीश्वरः ॥ व्यभजच्चतुरशीतिल
क्षास्ताजीवयोनयः ॥ ७३ ॥ ईश्वरांशाश्चतेसर्वे मोहिताःप्रकृतेर्गुणैः ॥ क्लेशानासादयन्त्येव यथैवादिकृताविभो ॥७४॥
अन्नानांपयसांचापि जीवानाञ्चापिश्रेयसे ॥ मानुष्यमाहुस्तत्त्वज्ञाः शिवभावेनभावितम् ॥ ७५ ॥ नन्दभद्रउवाच ॥ ए
वमेतत्किन्तुभूयः पृच्छाम्येतन्महामते ॥ ईश्वरास्सर्वदातारः पूज्यन्तेयैश्चदेवताः ॥ ७६ ॥ स्वभक्तांस्तान्नदुःखेभ्यः
कस्माद्रक्षन्तिमानवान् ॥ विशेषात्केपिदृश्यन्ते दुःखमग्नास्सुरास्ततः ॥ ७७ ॥ इतिमेमुह्यतेबुद्धिस्तत्त्वंकिंबालमन्य
से ॥ बालउवाच ॥ अशुचिस्तुशुचिश्चापि देवभक्तोद्विधास्मृतः ॥ ७८ ॥ कर्मणामनसावाचा तद्भक्तोसक्तउच्यते ॥
अशुचिर्देवताश्चैव यदापूजयतेनरः ॥ ७९ ॥ तदाभूतान्याविशन्ति ततोमुह्यतितत्क्षणात् ॥ विमूढश्चाप्यकार्याणि

पूँछताहूँ कि ईश्वर सब कुछ दाता होतेहैं परन्तु जिनसे देवता पूजेजाते हैं ॥ ७६ ॥ उन अपने भक्त मनुष्यों को वे देवता क्यों नहीं रक्षा करते हैं व उसीकारण कोई
देवता भी दुःख में मग्न देखे जाते हैं ॥ ७७ ॥ इसकारण मेरी बुद्धि मोहित होती है हे बालक ! उसको तुम क्या मानतेहो बालक बोला कि अपवित्र व पवित्र भी दो
प्रकार का देवभक्त कहागया है ॥ ७८ ॥ कर्म, मन व वचन से उस देवताका भक्त भक्त कहा जाता है और अपवित्र मनुष्य जब देवताओं को पूजता है ॥ ७९ ॥ तब

भूत प्रवेश करते हैं उसीकारण वह उसी क्षण मोहित होताहै और मोहितहुआ भी मनुष्य अनेकभांति के इन अकार्योंको सेवता है ॥ ८० ॥ तदनन्तर शीघ्रही नाश होजाता है इसकारण अपवित्र मनुष्य पूजन न करै और जो शुचि मनुष्य पूजता है उसका इस लोकमें कल्याण होता है ॥ ८१ ॥ और उसका पूर्वजन्म मे कियाहुआ कर्म प्रकटहोता है क्योंकि कर्म से कौन छूटता है देखिये महादेवजी ब्रह्महत्या के डरसे इधर उधरगये हैं ॥ ८२ ॥ व उन्होंने तीर्थोंमें स्नान किया तो अन्य मनुष्य किस लिये किये हुये कर्म से छूटैं अम्बरीष की कन्याको पर्वत गन्धर्व व नारद ने हरकर फलको पायाहै ॥ ८३ ॥ और रामचन्द्रजी सीताहरण को प्राप्तहुये तो अन्य

नानैतानिनिषेवते॥ ८०॥ ततोविनश्यतिक्षिप्रं नाशुचिःपूजयेत्ततः ॥ शुचिर्वाभ्यर्चयेद्यश्च तस्यचेहशुभंभवेत् ॥ ८१ ॥ तस्यपूर्वकृतंव्यक्तं कर्मणाकोहिमुच्यते ॥ महेश्वरोब्रह्महत्याभयाद्यातइतस्ततः ॥ ८२ ॥ सस्नौतीर्थेषुकस्माच्च इतरोमुच्यतेकृतात् ॥ अम्बरीषसुतांहृत्वा पर्वतोनारदस्तथा ॥ ८३ ॥ सीतापहारमापेदे रामोन्योमुच्यतेकथम् ॥ ब्रह्मापि शिरसश्छेदं कामयित्वासुतामगात् ॥ ८४ ॥ इदंचन्द्ररवीधिष्ण्यप्रमुखाःप्राप्नुयुःकृतम् ॥ तस्मादवश्यंस्वकृतं भोज्यमेवनरैस्सदा ॥ ८५ ॥ मुच्यतेसोपिस्वकृतान्नैवेतिश्रुतिनिर्णयः ॥ किन्तुदेवप्रसादेन लभ्यमेकंसुरव्रतैः ॥ ८६ ॥ बहुभिर्जन्मभिर्भोज्यं भुक्तमेकेनजन्मना ॥ तच्चभुक्त्वाततःस्वर्गं भवेदितिविनिश्चयः ॥ ८७ ॥ येतप्यन्तेकृतैःपापैः शुचयोदेवताव्रताः ॥ इहतेपुत्रपौत्रैश्च मोदन्तेमुत्रचेहच ॥ ८८ ॥ तस्माद्देवास्सदापूज्याःशुचिभिःश्रद्धयान्वितैः ॥प्रकृतिःशोध

मनुष्य कैसे छूटै ब्रह्माभी कन्याकी इच्छाकर शिरके छेदको प्राप्तहुये हैं ॥ ८४ ॥ और चन्द्रमा, सूर्य व नक्षत्र इत्यादिक इस कियेहुये फलको प्राप्तहोते हैं इसकारण अवश्य मनुष्यों को सदैव अपना किया हुआ कर्म भोगना होताहै ॥ ८५ ॥ और यही वेदमें निर्णय है कि वह मनुष्यभी अपने किये हुये कर्म से नहीं छूटता है परन्तु देवताकी प्रसन्नता से देवता के व्रतवाले मनुष्यों से एक वस्तु मिलने योग्य है ॥ ८६ ॥ कि जो बहुत जन्मों से भोगने योग्य होता है वह एकही जन्मसे भुक्त होजाता है और उसको भोगकर तदनन्तर स्वर्ग होवै है यह निश्चयहै ॥८७॥ जो पवित्र देवव्रतवाले मनुष्य किये हुये पातकों से दुःखित होते हैं वे इस लोक व परलोकमें पुत्रों और

पौत्रों से प्रसन्न होतेहैं ॥ ८८ ॥ इस लिये श्रद्धासंयुत पवित्र मनुष्योंसे सदैव देवता पूजने योग्य हैं और अपनी जाति में कहेहुये कर्मोंके द्वारा प्रकृति शोचने योग्य होती है ॥ ८९ ॥ सदाशिवजी के विना भलीभांति कियाहुआ भी दुराचारी का धर्म क्लेशही के लिये होताहै ऐसा भगवान् शिवदेवजी ने कहा है ॥ ९० ॥ अपनासे किया हुआ कर्म भोगने योग्य होताहै इस लिये सदाशिवजी पूजने योग्य हैं और अपने आचार से स्नेह व वैर सदैव छोड़ने योग्य है ॥ ९१ ॥ नन्दभद्र बोले कि हे शुद्ध बुद्धिवाले बालक ! यह क्या है कि पापी भी विपत्तिरहित होते हैं और स्त्रियों व धनोंसे भी प्रसन्न होतेहुये देख पड़ते हैं ॥ ९२ ॥ बालक बोला कि यह तो प्रकटही

नीयाश्चस्ववर्णोदितकर्मभिः ॥ ८९ ॥ स्वनुष्ठितोपिधर्मःस्यात् क्लेशायैवविनाशिवम् ॥ दुराचारस्यदेवोपि प्राहेतिभगवा
न्हरः ॥ ९० ॥ भोक्तव्यंस्वकृतंतस्मात्पूजनीयस्सदाशिवः ॥ स्वाचारेणपरित्याज्यौ रागद्वेषौनिरन्तरम् ॥ ९१ ॥ नन्दभ
द्रउवाच ॥ शुद्धप्रज्ञकिमेतच्च पापिनोपिनिरापदः ॥ मोदमानाःप्रदृश्यन्ते दारैरपिधनैरपि ॥ ९२ ॥ बालउवाच ॥ व्यक्तं
यैस्तमसादत्तं दानंपूर्वेषुजन्मसु ॥ प्राप्तैस्तस्यदानस्य फलमत्रनसंशयः ॥ ९३ ॥ किन्तुयत्तमसाकर्म कृतंतस्यप्रभाव
तः ॥ धर्मस्यनरतिर्भूयात्तत्श्चास्यसदैवहि ॥ ९४ ॥ भुक्त्वापुण्यफलंयाति नरकंनात्रसंशयः ॥ अस्मिंश्चसमयेपूर्वं मा
र्कण्डेयेनश्रूयते ॥ ९५ ॥ इहचैकस्यनामुत्र अमुत्रैकस्यनत्विह ॥ इहचामुत्रचैकस्य नामुत्रैकस्यनत्विह ॥ ९६ ॥ पू
र्वोपात्तंभवेत्पुण्यं भुङ्क्तेनैवार्जयत्यपि ॥ इहभोगस्सवैप्रोक्तोदुर्भगस्याल्पमेधसः ॥ ९७ ॥ पूर्वोपात्तंयस्यनास्ति तपोभि

है कि जिन्हों ने तमोगुण से पूर्वजन्म में दान दिया है उन्होंने उस दानके फलको यहां पायाहै इसमें सन्देह नहीं है ॥ ९३ ॥ परन्तु जिसलिये तमोगुणसे कर्म किया है उसके प्रभाव से इसकी सदैवही धर्म्म में प्रीति नहीं होतीहै ॥ ९४ ॥ और पुण्य के फलको भोगकर वह नरकको जाताहै इसमें सन्देह नहीं है और इस सिद्धान्त में पहले मार्कण्डेयजी से यह सुना जाता है ॥ ९५ ॥ कि एक पुरुषको इस लोकमें परलोकमें नहीं व एकको परलोकमें इस लोक में नहीं व एकको इस लोकमें व पर-लोकमें भी और एकको न परलोकमें न इस लोक में सुख होता है ॥ ९६ ॥ पहले इकट्ठा कीहुई जो पुण्यहोती है उसको जो मनुष्य भोगताहै और इकट्ठा नहीं करता

है इस लोकमें वह भोग थोडीबुद्धिवाले दुर्भाग्य मनुष्यको कहागया है ॥ ९७॥ और पूर्वजन्म में जिसका इकट्ठा कियाहुआ पुण्य नहीं होताहै व इस लोकमें तपस्याओं से इकट्ठा करताहै उस बुद्धिमान्को परलोकमें सदैव प्रकटही सुख होताहै ॥ ९८ ॥ और पहले जन्म में इकट्ठा कीहुई पुण्य जिसके होती है और तपस्याओं से इकट्ठा भी करताहै उस किसी विद्वान्को इस लोक व परलोकमें भी सुख होताहै ॥ ९९ ॥ और पूर्वजन्ममें इकट्ठा कियाहुआ पुण्य जिसके नहींहै व इस लोकमें इकट्ठा भी नहीं करताहै उसको इस लोक व परलोकमे भीं सुख नहीं होताहै उस नीचनरको धिक्कार है ॥ १०० ॥ ऐसा जानकर हे महाभाग ! सब कार्योंको छोड़कर शिवजीको भजिये

श्चार्जयत्यपि ॥ परलोकेतस्यभोगो धीमतःसततंस्फुटम् ॥ ९८ ॥ पूर्वोपात्तंयस्यचास्ति तपोभिश्चार्जयत्यपि ॥ इहचा मुत्रतस्यस्याद्भोगःकस्यापिधीमतः ॥ ९९ ॥ पूर्वोपात्तंयस्यनास्तिपुण्यंचेहनवार्जयेत् ॥ नतस्येहामुत्रचापि भोगो धिक्तंनराधमम् ॥१००॥ इतिज्ञात्वामहाभाग त्यक्त्वाकार्याणिकृत्स्नशः ॥ भजरुद्रंवर्णधर्मं पालयास्मात्परन्नहि ॥ १ ॥ योहिनष्टेष्वभीष्टेषु प्राप्तेष्वपिचशोचति ॥ तृप्येन्नवासवेबद्धो निश्चितंसोन्यजन्मनि ॥ २ ॥ नन्दभद्रउवाच ॥ नमस्तु भ्यमबालाय बालरूपायधीमते ॥ कोभवांस्तत्त्वतोवेत्तुमिच्छामित्वांसुविस्मितः ॥ ३ ॥ बहवोपिमयावृद्धा दृष्टाश्चोपा सितास्सदा ॥ तेषामीदृशकीबुद्धिर्नदृष्टानश्रुतामया ॥ ४ ॥ येनमेजन्मसन्देहा नाशितालीलयैवच ॥ तस्मात्सामान्य रूपीत्वंनिश्चितंनमतंमम ॥ ५ ॥ बालउवाच ॥ महदेतत्समाख्येयमेकाग्रःश्रृणुतत्त्वतः ॥ इतस्सप्तान्तिमेचापि ह्यष्ट

व जातिके धर्म्मको पालिये इससे परे धर्म्म नहीं है ॥ १ ॥ और जो प्रिय वस्तुवों के नाशहोने व प्राप्तहोनेपर भी शोचता है और तृप्त नहीं होता है वह निश्चयकर अन्य जन्ममें बँध जाताहै ॥ २ ॥ नन्दभद्र बोले कि बालक रूप तुम्हारे अबालक बुद्धिमान् के लिये नमस्कारहै आप कौनहो बडे विस्मयमें प्राप्त मैं तुमको यथार्थता से जानना चाहताहूँ ॥ ३ ॥ मैंने बहुत वृद्धोंको देखा व उपासना किया है परन्तु उनकी ऐसी बुद्धिको मैंने न देखा है न सुना है ॥ ४ ॥ जिससे कि मेरे जन्म के सन्देह खेलहीसे नाश करदियेगये इस लिये साधारणरूपवाले तुम नहींहो यह निश्चयकर मेरा मत है ॥ ५ ॥ बालक बोला कि यह कथानक बड़ाभारी है इसको

एकाग्र मन होकर यथार्थ से सुनिये कि इससे सातके अन्त में आठवें जन्म में मैं ॥ ६ ॥ सुन्दर वैदिश नगरमें वेद वेदांगों के यथार्थ का जाननेवाला और धर्म
शास्त्रार्थ के अर्थको जाननेवालों में श्रेष्ठ धर्मजालिक नामक हुआहूं ॥ ७ ॥ और धर्मशास्त्रों के कहने में जैसे साक्षात् बृहस्पतिजी होवैं वैसाही था परन्तु मनुष्यों
को अनेक भांतिके धर्मोंको मैं बहुत कहता था ॥ ८ ॥ और मैं आप बड़ा दुराचारी व पापियोंके भी पापी राजाथा जोकि मांसभक्षी मदिरासेवी और सदैव पराई स्त्रियों
से स्नेही था ॥ ९ ॥ और असत्य कहनेवाला व छली सदैव पाखण्डी और दुष्ट था तथा लोभी, दुष्टात्मा और शठ था व कभी कुछ नहीं करताथा ॥ १० ॥ जिस लिये

मेजन्मनित्वहम् ॥ ६ ॥ वैदिशेनगरेरम्ये नाम्नासंधर्मजालिकः ॥ वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञः स्मृतिशास्त्रार्थविद्वरः ॥ ७ ॥ व्या
ख्यानेधर्मशास्त्राणां यथासाक्षाद्बृहस्पतिः ॥ किन्त्वहंविविधान्धर्माँल्लोकानांवर्णयेभृशम् ॥ ८ ॥ स्वयञ्चातिदुरा
चारः पापिनामपिपापिराट् ॥ मांसाशीमद्यसेवीच परदाररतस्सदा ॥ ९ ॥ असत्यवादीदम्भीच सदाधर्मध्वजीख
लः ॥ लोभीदुरात्माचशठो नकर्त्ताकर्हिचित्क्वचित ॥ १० ॥ यस्माज्जालिकवज्जालं लोकेभ्यःशिक्षयामिच ॥ तत्त्व
ज्ञामान्ततःप्राहुर्धर्मजालिकमित्युत ॥ ११ ॥ सोहंतैर्बहुभिश्शीर्णैः पातकैरन्तआगते ॥ मृतोगतोयमस्थानं पातितःकूट
शाल्मलीम् ॥ १२ ॥ यमदूतैस्ततःकृष्टःस्मार्यमाणःस्वचेष्टितम् ॥ खड्गैःश्वभिःकृत्यमानो जीवामिप्रम्रियामिच ॥ १३ ॥
आत्मानंबहुभिर्निन्दञ्छ्लाघ्यवतीन्यवसंसमाः ॥ नरकेयामतिर्भूयाद्यमदूतप्रपीडनात ॥ १४ ॥ साचेन्मुहूर्त्तमात्रंस्यादपिध

बहेलिया की नाईं जालको मनुष्यों के लिये भी सिखलाता था उसी कारण तत्त्वको जाननेवाले लोग मुझको धर्मजालिक ऐसा कहते थे ॥ ११ ॥ बहुत इकट्ठाकिये
हुये पातकों से संयुत मैं मृत्यु आनेपर मरकर यमराजके स्थानको गया व कूटशाल्मली नामक नरकमें गिरायागया ॥ १२ ॥ तदनन्तर यमदूतों से अपने कर्मको
स्मरण कराया जाता हुआ मैं खींचा जाताथा और तलवारों व कुत्तों से काटाजाता हुआ मैं जीताथा व मरजाताथा ॥ १३ ॥ बहुत बातोंसे अपनी निन्दा करता हुआ
मैं सैकड़ों वर्षतक वहां बसा यमराज के दूतोंकी पीड़ासे नरक में जो बुद्धि होवै है ॥ १४ ॥ वही यदि मुहूर्त्तमात्रभी होवै तो पुरुष धन्य (प्रशंसनीय) होता है

तदनन्तर उन यमदूतों से पीड़ित मैं किसी प्रकार छोड़ागया ॥ १५ ॥ इसके अनन्तर स्थावरताको भोगकर और बहुतसे क्लेशोंको प्राप्तहोकर मैं पश्चात् उत्तम सारस्वत किनारे पै कीड़ा हुआ ॥ १६ ॥ और उस मार्ग में सुखपूर्वक इच्छासे भलीभाति सोताथा इसके अनन्तर मैंने आतेहुये रथके ऊंचे शब्दको सुना ॥ १७ ॥ और उसी शब्दको सुनकर अचानकही डरगया और वेगसे मार्गको छोड़कर भगा ॥ १८ ॥ इसी अवसर में इच्छासे व्यासजी वहां प्राप्तहुये व दयासंयुत उन मुनिने वहां पै स्थित मुझको देखा ॥ १९ ॥ मैंने ब्राह्मणजन्म में जो सब मनुष्योंके अनेक प्रकार के धर्मोंको कहाथा उसीके प्रभाव से व्यासजीका समागम हुआ ॥ २० ॥ तदनन्तर

न्यस्ततःपुमान् ॥ तैस्ततोहंप्रमुक्तश्च कथंचिदपिपीडितः ॥ १५ ॥ स्थाणुत्वमनुभूयाथ क्लेशानासाद्यभूरिशः ॥ कीटोहमभवंपश्चात्तीरेसारस्वतेशुभे ॥ १६ ॥ तत्रमार्गेसुखमिवसंसुप्तोहंयदृच्छया ॥ आगच्छतोरथस्याथ शब्दमश्रौषमुन्नतम् ॥ १७ ॥ तमेवनिनदंश्रुत्वा भीतोहंसहसाजवात् ॥ मार्गमुत्सृज्यदूरेण प्रपलायनमाचरम् ॥ १८ ॥ एतस्मिन्नन्तरेव्यासस्तत्रप्राप्तोयदृच्छया ॥ समामपश्यत्तत्रस्थं कृपयासंयुतोमुनिः ॥ १९ ॥ यन्मयासर्वलोकानां नानाधर्म्माःप्रकीर्तिताः ॥ विप्रजन्मनितस्यैव प्रभावाद्व्याससङ्गमः ॥ २० ॥ ततस्सर्वरुतज्ञोमां प्राहार्यःकीटभाषया ॥ किमेवन्नश्यसेकीटकस्मान्मृत्योर्बिभेषिच ॥ २१ ॥ अहोसमुचिताभीतिर्मनुष्यस्यकुतस्ततः ॥ इत्युक्तोमतिमान्पूर्वपुण्याद्व्यासंतदोचिवान् ॥ २२ ॥ नमेभयंजगद्वन्द्य मृत्योरस्मात्कथञ्चन ॥ एतदेवभयंमन्येगच्छेयमधमाङ्गतिम् ॥ २३ ॥ अस्याअपिकुयोनेश्च सन्त्यन्याःकोटिशोधमाः ॥ तासुगर्भादिकक्लेशभीतस्त्रस्तोस्मिनान्यथा ॥ २४ ॥ व्यासउवाच ॥ माभयंकुरु

सब जीवोंके शब्दको जाननेवाले वे श्रेष्ठ व्यासजी कीट की भाषासे मुझमे बोले कि हे कीट ! इस प्रकार क्यों भगते हो और मृत्युसे किस कारण डरतेहो ॥ २१ ॥ अहो मनुष्यके सकाशसे किस लिये भययोग्य है तदनन्तर पूर्वके पुण्यरों ऐसा कहा हुआ बुद्धिमान् मै उस समय व्यासजी से बोला ॥ २२ ॥ कि हे संसारके प्रणाम करने योग्य व्यासजी ! इसमृत्युमे मुझको किसी प्रकार भय नहीं है किन्तु यही भय मानताहूं कि नीचगति मे जाऊंगा ॥ २३ ॥ क्योंकि इस कुयोनिसे भी अन्य करोडो योनि नीचहै उनमे गर्भादिकके क्लेशके डरसे डराहू अन्यथा नहीं डरताहू ॥ २४ ॥ व्यासजी बोले कि डर मत कीजिये क्योंकि सब योनियोंसे मैं शीघ्रही छुडाऊगा कि

जबतक निश्चयकर ब्राह्मणताको प्राप्त करूंगा ॥ २५ ॥ उनसे ऐसा कहेहुये मैंने उस समय संसारके गुरु व्यासजीको प्रणामकर व मार्गमें आकर पहिया से पीड़ित होकर मृत्यु किया ॥ २६ ॥ तदनन्तर कौवा व सियार आदिकी योनियों में मैं जब हुआ तब तब भलीभांति आकर व्यासजी ने मुझको वह स्मरण कराया ॥ २७ ॥ तदनन्तर बहुत भांतिकी योनि में घूमकर मैं दुबला होगया और इस ब्राह्मण के घरमें बड़ा दुःखित मैं इस योनि में प्राप्तहुआ ॥ २८ ॥ तदनन्तर जन्मसे लगाकर मैं माता, पिता से रहितहुआ और बहुत पीड़ादेनेवाली इसी योनिमें गलत्कुष्ठवाला मैं हुआ ॥ २९ ॥ तदनन्तर पांचवें वर्ष में व्यासजी ने मेरे समीप आकर कान में

सर्वाभ्यो योनिभ्यश्चाचिरादिव ॥ मोक्षयिष्यामिब्राह्मण्यंयावन्नेष्यामिनिश्चितम् ॥ २५ ॥ इत्युक्तोऽहंतदातेन तम्प्रणम्यजगद्गुरुम् ॥ मार्गमागत्यचक्रेण पीडितोमृत्युमाचरम् ॥ २६ ॥ ततःकाकशृगालादियोनिष्वत्रयदाभवम् ॥ तदातदासमागत्य व्यासोमास्मारयच्चतत् ॥ २७ ॥ ततोबहुविधांयोनिं परिक्रम्यास्मिकर्शितः ॥ ब्राह्मणस्यास्यगेहेस्यां योनौयातोतिदुःखितः ॥ २८ ॥ ततोजन्मप्रभृत्यस्मिपितृभ्यांपरिवर्जितः ॥ गलत्कुष्ठीमहापीडामेतांयोनिंमवामिच ॥ २९ ॥ ततोमांपञ्चमेवर्षे व्यासआगत्यजप्तवान् ॥ कर्णेसारस्वतंमन्त्रं तेनाहंसंस्मरामिच ॥ ३० ॥ अनधीतानिशास्त्राणि वेदान्धर्मांश्चकृत्स्नशः ॥ उक्तंव्यासेनचेदम्मे गच्छक्षेत्रंगुहस्यच ॥ ३१ ॥ तत्रत्वंनन्दभद्रञ्च आश्वासयमहामतिम् ॥ त्यक्त्वाबहूदकेप्राणानस्थिक्षेपोमहीजले ॥ ३२ ॥ कारयत्वंततोभावी मैत्रेयइतिसन्मुनिः ॥ गमिष्यसिततोमोक्षमितिमांव्यासउक्तवान् ॥ ३३ ॥ आगतश्चततश्चात्र वाहकेभ्योतिक्लेशतः ॥ इतितेकथितंसर्वमात्मनश्चरितं

सरस्वतीजी का मन्त्र जपदिया उसी कारण मैं बिन पढेहुये शास्त्रोंको और सम्पूर्ण वेदों व धर्मोंको भलीभांति स्मरण करताहूँ और व्यासजी ने मुझसे यह कहा कि स्वामिकार्त्तिकेयजी के क्षेत्रको जाइये ॥ ३० । ३१ ॥ और वहां बड़े बुद्धिमान् नन्दभद्रको तुम समझाओ व बहूदकतीर्थ में प्राणोंको छोड़कर महीनदीके जलमें अस्थि-क्षेप ॥ ३२ ॥ कराकर तदनन्तर तुम मैत्रेय ऐसे उत्तम मुनिहोगे उसके उपरान्त मोक्षको प्राप्तहोवोगे व्यासजीने मुझसे यह कहा है ॥ ३३ ॥ तदनन्तर भारवाहकों से

मैं यहां बड़े क्लेशसे आया इस समस्त अपने चरितको मैंने तुमसे कहा ॥ ३४ ॥ हे नन्दभद्र ! इस प्रकारके कष्टदायक पापको सदैव त्यागिये नन्दभद्र बोले कि अहो तुम्हारा बड़ा अद्भुत चरित है कि जिससे मेरे हृदय में ॥ ३५ ॥ फिर सौगुना दृढ़ मन धर्म्म के लिये होगया परन्तु तुमसे कहेहुये धर्म्मके कर्मको करना चाहता हूँ ॥ ३६ ॥ इस लिये आप धर्म्मको स्मरण कीजिये और कुछ निश्चित धर्म्मको आज्ञा कीजिये बालक बोला कि इस तीर्थमे सातदिनतक निराहार स्थितहोकर मैं॥३७॥ सूर्यनारायण के मन्त्रोंको जपूंगा तदनन्तर शरीरको त्यागूंगा तदनन्तर तुमसे बर्करिकातीर्थमें मैं किनारे पै जलाने योग्यहूं ॥ ३८ ॥ और मेरे सब अस्थिभी इसी

मया ॥ ३४ ॥ पापमेवंविधंकष्टं नन्दभद्रसदात्यज ॥ नन्दभद्रउवाच ॥ अहोमहाद्भुतंतुभ्यं चरितंयेनमेहृदि ॥ ३५ ॥ भूयःशतगुणंजातं धर्म्मायदृढमानसम् ॥ किन्तुत्वयोक्तधर्म्मस्य कर्तुकामोस्मिकर्मच ॥ ३६ ॥ धर्मंस्मरभवांस्तस्मात्किञ्चिदादिशनिश्चितम् ॥ बालउवाच ॥ अत्रतीर्थेचसप्ताहं निराहारस्त्वहंस्थितः ॥ ३७ ॥ सूर्यमन्त्राञ्जपिष्यामि त्यक्ष्यामिचततस्तनुम् ॥ ततोबर्करिकातीर्थे दग्धव्योहंत्वयातटे ॥ ३८ ॥ अस्थीनिसर्वाण्यपिच ममाक्षेप्याणिचात्र हि ॥ यदिसापह्नवंचित्तं मयातवनचास्तिचेत् ॥ ३९ ॥ ततस्त्वांगुरुकार्य्यार्थमादिशामिशृणुष्वतत् ॥ अस्मिन्बहूदकेतीर्थे यत्रप्राणांस्त्यजाम्यहम् ॥ ४० ॥ तत्रमन्नामचिह्नस्ते संस्थाप्योभास्करोविभुः ॥ आरोग्यंधनधान्यञ्च पुत्रदारादिसम्पदः ॥ ४१ ॥ भास्करोभगवांस्तुष्टोदद्यादेतच्छ्रुतेर्वचः ॥ सवितापरमोदेवस्सर्वदोवोद्विजन्मनाम् ॥ ४२ ॥ वेदवेदाङ्गगीतश्च त्वमप्येनंसदाभज ॥ बहूदकमिदंकुण्डं संसेव्यञ्चसदात्वया ॥ ४३ ॥ माहात्म्यंयस्यवक्ष्यामि संक्षे

तीर्थ में फेंकने योग्य हैं और यदि तुम्हारा चित्त मुझसे छल समेत न होवै ॥३९॥ तो तुमको गुरु (बड़े) कार्यके लिये आज्ञा करताहूँ उसको सुनिये कि इस बहूदक तीर्थ में मैं जहां प्राणोंको छोडूं ॥ ४० ॥ वहांपर मेरे नामसे चिह्नित सूर्यनारायण स्वामी स्थापन करने योग्य हैं क्योंकि नीरोगता, धन, धान्य व पुत्र, स्त्री आदिक सम्पदाको ॥ ४१ ॥ प्रसन्न होतेहुये भगवान् सूर्यनारायण देते हैं यह वेदका वचनहै और श्रेष्ठ देव सूर्यनारायणजी तुम लोगों ब्राह्मणोंको सब कुछ देनेवाले हैं ॥ ४२ ॥ जोकि वेदों व वेदागों से गायेगये हैं इन सूर्यनारायणको तुमभी सदैव भजो और यह बहूदक कुण्ड सदैव तुमसे सेवने योग्य है ॥ ४३ ॥ कि जिसके व्यासजी से

सूचित माहात्म्यको मैं तुमसे संक्षेपसे कहताहूँ कि बहूदक नामक उत्तम कुण्डमें जो मनुष्य विधिपूर्वक नहाता है ॥ ४४ ॥ उसके सब जन्मोंमें नीरोगता, धन व धान्यादिक होती है और माघमहीने में सप्तमी तिथिमें जो मनुष्य बहूदक कुण्ड में नहाकर ॥ ४५ ॥ पितरों को पिण्ड देता है उसके वे पितर अविनाशिनी तृप्तिको प्राप्तहोते हैं और बहूदक कुण्डके किनारे पै पितरोंको उद्देशकर जो कुछ दिया जाताहै वह अक्षय उनको प्राप्तहोता है अन्यथा नहीं है स्नान, दान, जप, होम, वेदपाठ व पितरोंका तर्पण ॥ ४६ । ४७ ॥ बहूदक कुण्डमें कियाहुआ यह सब बहुत फलवाला होता है हे अर्जुनजी ! व्याससे कहा हुआ यह तुमको हृदय में भलीभांति धारण

पादव्याससूचितम् ॥ बहूदकेकुण्डवरे स्नातियोविधिवन्नरः ॥ ४४ ॥ आरोग्यधनधान्याद्यं तस्यस्यात्सर्वजन्मसु ॥ बहूदकेचयःस्नात्वा सप्तम्यांमासमाघके ॥ ४५ ॥ दद्यात्पिण्डंपितॄणाञ्च तेक्षयांतृप्तिमाप्नुयुः ॥ बहूदकस्यतीरेच प्रेतानुद्दिश्यदीयते ॥ ४६ ॥ यत्किञ्चिदक्षयंतेषामुपतिष्ठेन्नचान्यथा ॥ स्नानन्दानंजपोहोमः स्वाध्यायःपितृतर्पणम् ॥ ४७ ॥ कृतंबहूदकेकुण्डे सर्वस्यात्सुमहत्फलम् ॥ त्वयैतद्धृदिसन्धार्यं फाल्गुनव्यासभाषितम् ॥ ४८ ॥ नारदउवाच ॥ इत्युक्त्वासोभवन्मौनी स्नात्वाकुण्डेततःशुचिः ॥ ४९ ॥ तीरेस्यतरुमाश्रित्य स्वयंमन्त्राञ्जजापच ॥ ततस्तुसप्तरात्रान्ते जहौबालोनिजानसून् ॥ ५० ॥ संस्कारितोयथोक्तंच नन्दभद्रेणब्राह्मणैः ॥ यत्रबालस्सचप्राणाञ्जहौजपपरायणः ॥ ५१ ॥ बालादित्यमितिख्यातं तत्रस्थापयतप्रभुम् ॥ बहूदकेचयःस्नात्वा बालादित्यंप्रपूजयेत ॥ ५२ ॥ तस्यस्याद्भास्करस्तुष्टो मोक्षोपायञ्चविन्दति ॥ नन्दभद्रोप्यथान्यस्यां भार्यायामप्यगान्सुतान् ॥ ५३ ॥ उत्पाद्यात्मसमा

करना चाहिये ॥ ४८ ॥ नारदजी बोले कि इसप्रकार कहकर वह बालक मौन होगया तदनन्तर कुण्डमें नहाकर पवित्रहोकर ॥ ४९ ॥ इसके किनारे वृक्षके आश्रितहोकर आपही मन्त्रोंको जपा उसके उपरान्त उस बालक ने सात रातों के अन्तमें अपने प्राणों को छोड़दिया ॥ ५० ॥ व जैसा कि कहा था वैसेही नन्दभद्र व ब्राह्मणों से संस्कार कियागया और जपमें परायण उस बालकने जहांपर प्राणोंको छोड़ाथा ॥ ५१ ॥ वहांपर नन्दभद्र ने बालादित्य ऐसे प्रसिद्ध उन सूर्यनारायण को स्थापन किया जो मनुष्य बहूदक कुण्ड में नहाकर बालादित्यको पूजता है ॥ ५२ ॥ उसके ऊपर सूर्यनारायणजी प्रसन्न होते हैं व मोक्षके उपायको प्राप्तहोताहै व बुद्धिमान् नन्दभद्र

भी अन्य स्त्रीमें अपने समान और पुत्रोंको उत्पन्नकर शिव व सूर्यनारायणमें परायण हुये व हे अर्जुनजी ! शिवजी के शरीरको प्राप्तहुये कि जिससे फिर लौटना दुर्लभ होताहै ॥ ५३ । ५४ ॥ इस प्रकारका यह बहूदक ऐसा कहा हुआ महाकुण्ड है इस के किनारे पै वल्लीनाथ अपने अंशको छोड़ैगा ॥ ५५ ॥ जो योगी कि दत्तात्रेय का अवतार होगा उन देवको पूजकर योगी सिद्धिको प्राप्तहोताहै ॥ ५६ ॥ और पशुओं की वृद्धिको प्राप्तहोता है व यह प्रभु गऊके शरण्य (रक्षक) हैं हे भारत ! वैसेही इस क्षेत्रमें पश्चिम दिशामें बुधके पुत्र पुरूरवाजी हैं ॥ ५७ ॥ इस तीर्थका माहात्म्य पुत्र व शिष्यके कर्णमूल में जपना चाहिये और नास्तिकको किसी प्रकारसे न सु-

न्धीमाञ्छिवसूर्य्यपरायणः ॥ रुद्रदेहंययौपार्थ पुनरावृत्तिदुर्लभम् ॥ ५४ ॥ एवमेतन्महाकुण्डंबहूदकमितिस्मृतम् ॥ अस्यतीरेस्वमंशञ्च वल्लीनाथःप्रमोक्ष्यति ॥ ५५ ॥ दत्तात्रेयस्ययोयोगी ह्यवतारोभविष्यति ॥ अर्चयित्वाचतन्देवं योगीसिद्धिमवाप्नुयात् ॥ ५६ ॥ पशूनामृद्धिमाप्नोति गोशरण्योस्त्यसौप्रभुः ॥ पश्चिमायांबुधसुतस्तथाक्षेत्रेत्रभारत ॥ ५७ ॥ अस्यतीर्थस्यमाहात्म्यं जप्तव्यंकर्णमूलके ॥ पुत्रस्यचापिशिष्यस्य नकथञ्चननास्तिकम् ॥ ५८ ॥ शृणोतीदंश्रद्धयायस्तस्यतुष्येच्चभास्करः ॥ धारयन्हृदयेमोक्षं मुच्यतेभवसागरात् ॥ ५९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेभद्रादित्यमाहात्म्यन्नामैकचत्वारिंशोध्यायः ॥ ४१ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

नारदउवाच ॥ ततोमयास्यतीर्थस्य रक्षणायधनञ्जय ॥ समाराध्ययथादेव्यः स्थापितास्तच्छृणुष्वमे ॥ १ ॥ यथात्मासर्वभूतेषु व्यापकःपरमेश्वरः ॥ तथैवप्रकृतिर्नित्याव्यापका परमेश्वरी ॥ २ ॥ शक्तिप्रसादादाप्नोति सुखंस

नाना चाहिये ॥ ५८ ॥ जो मनुष्य श्रद्धासे इस चरित्रको सुनताहै उसके ऊपर सूर्यनारायणजी प्रसन्नहोते हैं व हृदय में मोक्षको धारता हुआ पुरुष भवसागर से छूट जाता है ॥ ५९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांभद्रादित्यमाहात्म्यकथनन्नामैकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥ ॥

दो० । थाप्यो नवदुर्गादिकन जिमि नारद मुनिनाथ । बयालिसें अध्यायमें सोई वर्णत गाथ ॥ नारदजी बोले कि हे अर्जुनजी ! तदनन्तर इस तीर्थकी रक्षाके लिये मैंने जिसप्रकार आराधनकर देवियोंको स्थापन कियाहै उसको मुझसे सुनिये ॥ १ ॥ जैसे कि आत्मा परमेश्वर समस्त प्राणियों में व्यापी है वैसेही प्रकृति परमेश्वरी

नित्या (नाशरहित) व व्यापिनी है ॥ २ ॥ हे अर्जुनजी ! शक्तिकी प्रसन्नता से मनुष्य सुख व समस्त सम्पदाओं को प्राप्तहोता है इसप्रकार वह परमेश्वरी सम्पूर्ण प्राणियोंमें भलीभांति टिकीहै ॥ ३ ॥ बुद्धि, ह्री, पुष्टि, लज्जा, तुष्टि, शान्ति, क्षमा, स्पृहा, श्रद्धा, चेतना, शक्ति ये मन्त्रोत्साहसे उपजीहुई शक्तियाहैं ॥ ४ ॥ यही प्रकृति सदैव बन्धन के लिये व मोक्षके लिये होती है और इसको आराधनकर इन्द्रादिक देवता ऐश्वर्यको पाते हैं ॥ ५ ॥ और जो नीचनर शक्तिको नहीं मानते हैं और तिर-स्कार करते हैं वे योगीन्द्रभी अव्यक्त (मोक्ष) से आकाशमें प्राप्त वस्तुओंकी नाईं गिरपड़ते हैं ॥ ६ ॥ पुरातन समय काशीजी में सिद्ध योगीश्वर फिर उस शक्तिका

र्वाश्चसम्पदः ॥ ईश्वरीसर्वभूतेषु साचैवंपार्थसंस्थिता ॥ ३ ॥ बुद्धिर्ह्रीःपुष्टिर्लज्जेच तुष्टिःशान्तिःक्षमास्पृहा ॥ श्रद्धाचचे तनाशक्तिर्मन्त्रोत्साहसमुद्भवाः ॥ ४ ॥ इयमेवचबन्धायमोक्षायेयञ्चसर्वदा ॥ एतामाराध्यचैश्वर्यमिन्द्राद्यास्सम वाप्नुयुः ॥ ५ ॥ येचशक्तिन्नमन्यन्ते तिरस्कुर्वन्तिचाधमाः ॥ योगीन्द्राअपितेऽव्यक्ताद्भ्रश्यन्त्याकाशगायथा ॥ ६ ॥ वाराणस्यांकिलपुरा सिद्धायोगीश्वराःपुनः ॥ अवमन्यचतांशक्तिं पुनर्भ्रंशमुपागताः ॥ ७ ॥ तस्मात्सदादेहि नेयं शक्तिःपूज्येतिनित्यदा ॥ तुष्टाददातिसाकामान् रुष्टासंहरतेक्षणात् ॥८॥ परमाप्रकृतिस्साचबहुभेदैर्व्यवस्थिता ॥ तस्मान्मयामहादेव्योयत्रसंस्थापिताःशृणु ॥ ९ ॥ चतस्रस्तुमहाशक्त्यश्चतुर्दिक्षुव्यवस्थिताः॥सिद्धाम्बिकातुपूर्वस्यां स्थापितासागुहेनच ॥ १० ॥ जगदादौमूलप्रकृतिरुत्पन्नासाप्रकीर्त्यते ॥ आराधितायतःसिद्धैस्तस्मात्सिद्धाम्बिकास्मृ ता ॥ ११ ॥ दक्षिणस्यान्तथातारासंस्थितास्थापितामया ॥ तारणार्थायदेवानां यास्यात्कूर्मसमाश्रिता ॥ १२ ॥

अपमानकर भ्रष्टताको प्राप्त हुये हैं ॥ ७ ॥ इस लिये शरीरधारीसे सदैवही यह शक्ति नित्य पूजने योग्य है क्योंकि प्रसन्नहोती हुई वह मनोरथों को देती है और क्रोधित होकर उसीक्षण संहार करती है ॥८॥ और वह उत्तम प्रकृति बहुत भेदों से स्थितहै इस लिये मैंने महादेवियोंको जहां स्थापन कियाहै उसको सुनिये ॥ ९ ॥ कि चार महाशक्तियां चारों दिशाओं में स्थित हैं उस सिद्धाम्बिका शक्तिको स्वामिकार्त्तिकेयजी ने पूर्वदिशामें स्थापन कियाहै ॥ १० ॥ संसारके आदिमें उत्पन्न हुई वह मूलप्रकृति कही जाती है व जिस लिये सिद्धों से आराधन कीगई है उसी कारण सिद्धाम्बिका कहीगईहै ॥ ११ ॥ और वैसेही दक्षिणमें मुझसे थापीहुई तारा

शक्ति स्थित है जोकि देवताओं के तारने के लिये कच्छप पै भलीभांति आश्रित है ॥ १२ ॥ और जिससे प्रवेशकिये हुये जगद्गुरु कूर्मावतार विष्णुजी देवताओं को उधारा है और इसीसे पैठीहुई देहवाले बुद्धजी वेदमार्गको नष्टकरनेवाले करोड़ों पापकर्मी योद्धाओं को मारैंगे मैं इन पर्वतकन्याको भलीभाति आराधन कर लाया हूं ॥ १३ । १४ ॥ और बड़ी भयंकर वह देवी करोड़ संख्यक देवियोंसे घिरीहै और मेरे गौरवके कारण दक्षिण दिशामें आश्रितहोकर भलीभाति टिकीहै ॥ १५ ॥ वैसेही पश्चिम दिशामें उत्तम भास्वरादेवी स्थितहै कि जिससे पैठेहुये सूर्यादिक ग्रह प्रकाशित हैं ॥ १६ ॥ और सब नक्षत्रोंके सम्पूर्ण विम्ब जिससे जाते व आते हैं हे कुरु-

ययाविष्टस्समुज्जह्रे देवान्कूर्मोजगद्गुरुः ॥ अनयाविष्टदेहश्च बुद्धोयोधान्हनिष्यति ॥ १३ ॥ कोटिशोवेदमार्गस्य ध्वंसकान्यायकर्मिणः ॥ इयंमयासमाराध्य समानीतागिरेस्सुता ॥ १४ ॥ कोटिसंख्याभिरत्युग्रादेवीभिस्संवृताचसा ॥ दक्षिणान्दिशमाश्रित्य संस्थितामममगौरवात् ॥ १५ ॥ पश्चिमायान्तथादेवी संस्थिताभास्वराशुभा ॥ ययाविष्टानि भासन्ते भास्करप्रमुखानिच ॥ १६ ॥ बिम्बानिसर्वताराणांगच्छन्त्यायान्तिसर्वशः ॥ सावैमहाबलाशक्तिर्भास्वराकुरुनन्दन ॥ १७ ॥ मयाराध्यसमानीता कटाहादत्रसंस्थिता ॥ कोटिदेवीवृतानित्यं त्रायतेपश्चिमान्दिशम् ॥ १८ ॥ उत्तरस्यान्तथादेवी संस्थितायोगनन्दिनी ॥ परमप्रकृतेर्देहात्पूर्वंनिस्सृतयायया ॥ दृष्ट्यादृष्टानिर्मलयायोगिनस्तेचतुःसनाः ॥ १९ ॥ योगीश्वरीचसादेवी सनकाद्यैस्तथोदिता ॥ साचाण्डस्यकटाहान्मे समाराध्यात्रप्रापिता ॥ २० ॥ योगिनीभिःपरिवृतासंस्थिताचोत्तरान्दिशम् ॥ एवमेतामहाशक्त्यश्चतस्रःसंस्थितास्सदा ॥ २१ ॥ पूजिताःकामदानित्यं

नन्दन ! वह भास्वरा शक्ति महाबलवती है ॥ १७ ॥ जोकि मुझसे भलीभाति आराधकर अण्डकटाह से लाई हुई यहां भलीभांति टिकी है और करोड़ देवियोंसे घिरीहुई वह पश्चिमदिशाकी रक्षा करती है ॥ १८ ॥ और वैसेही उत्तर दिशा में योगनन्दिनी देवी स्थित हैं पुरातन समय उत्तम प्रकृतिकी देहसे निकलीहुई जिस भगवतीने निर्मल दृष्टिसे उन सनक,सनन्दन, सनातन, सनत्कुमारको देखाहै॥१९॥वैसेही सनकादिकोंने उस देवीको योगीश्वरी कहा है और मैंने उसको आराधनकर अण्डकटाहसे यहां प्राप्तकराया है ॥ २० ॥ योगिनियों से घिरीहुई वह उत्तर दिशामें भलीभांति स्थितहै इसप्रकार ये चार महाशक्तियां सदैव स्थित रहती हैं ॥ २१ ॥

पूजित होती हुई वे नित्यही मनोरथोंको देती हैं और क्रोधितहोकर संहार करनेमें समर्थ हैं और तदनन्तर मैं नवदुर्गाओंको लायाहूं उनको सुनिये ॥ २२ ॥ कि एक त्रिपुरा नामक उत्तम देवी है कि पुरातन समय जिससे पैठेहुये जगदीश्वर शिवजीने त्रिपुरको भस्मतामें प्राप्त किया ॥ २३ ॥ उसी कारण भगवान् शिवजीने उसको त्रिपुरा ऐसा कहाहै व उन्होंने आपही स्तुतिकिया उसी कारण सब लोकों के भी वह शक्ति पूजनेयोग्य है ॥ २४ ॥ और मैं उसको आराधनकर अमरेश पर्वत से लायाहूं और महा-दित्यके समीप वह देवी कामदायिनी है ॥ २५ ॥ और अन्यभी कोलम्बा नामक सनातनी शक्तिहै जिससे कि पैठेहुये वाराहरूपी विष्णुजी पृथ्वीको ऊपरलाये हैं ॥ २६ ॥

रुष्टास्संहरणक्षमाः ॥ ततश्चनवमेदुर्गास्समानीताःशृणुष्वताः ॥ २२ ॥ त्रिपुरानामपरमा देवीस्थाणुर्ययापुरा ॥ आवि ष्टस्त्रिपुरन्निन्ये भस्मत्वंजगदीश्वरः ॥ २३ ॥ त्रिपुरेतिततस्तांञ्च प्रोक्तवान्भगवान्हरः ॥ तुष्टावचस्वयंतस्मात् पूज्या साजगतामपि ॥ २४ ॥ साचाराध्यसमानीतामरेशपर्वतान्मया ॥ भक्तानांकामदासास्ति महादित्यसमीपतः ॥ २५ ॥ अपराचापिकोलम्बा महाशक्तिःसनातनी ॥ कोलरूपीययाविष्टः केशवश्चोज्जहारगाम् ॥ २६ ॥ तस्मात्साविष्णु नाचोक्ता कोलम्बेतिस्तुतार्चिता ॥ साचदेवीमयापार्थ शक्तियोगेनतोषिता ॥ २७ ॥ वाराहगिरिसंस्थामां समानीताच साब्रवीत् ॥ यत्राहंनारदप्रदा तिष्ठामिकृपयार्थिनाम् ॥ २८ ॥ तत्रकूपेनसंस्थाहं रुद्राणीसंस्थितेनवै ॥ तंहिकूपंविनामह्यं नरतिर्जायतेक्वचित् ॥ २९ ॥ तस्माद्भवान्कूपवरं स्वयमत्रखनद्विज ॥ एवमुक्तेपार्थदेव्या दर्भमूलेनमेतदा ॥ ३० ॥ कू पोखानियत्रसाक्षाद्रुद्राणीकूपआबभौ ॥ ततोमयातत्रदेव्याः स्नात्वाजप्ताचतर्पिता ॥ ३१ ॥ पूजिताचततोदेवी प्रणतंसा

उसी लिये विष्णुजी से पूजित व स्तुति कीहुई वह देवी कोलम्बा ऐसी कहीगई व हे अर्जुनजी ! मैंने शक्तिके योगसे उस देवीको प्रसन्न किया ॥ २७ ॥ और वाराह पर्वत पै टिकी व लाईहुई उस देवीने मुझसे कहा कि हे नारदजी ! जहां याचकों के ऊपर कृपाके कारण मैं सदैव स्थित होती हूँ ॥ २८ ॥ वहां रुद्राणी करके स्थित कूप समेत मैं टिकती हूँ क्योंकि उस कूपके विना मुझको कहीं प्रीति नहीं होती है ॥ २९ ॥ इस लिये हे द्विज ! यहां उत्तम कूपको आपही खोदिये हे अर्जुनजी ! देवीजी के ऐसा कहने पर उस समय मैंने कुशकी जड़से ॥ ३० ॥ वहीपर कूपको खोदा जहां कि साक्षात् पार्वतीजी का कूप शोभितथा तदनन्तर देवीजी के उस कूप

में नहाकर मैंने जप किया व तृप्तकिया ॥ ३१ ॥ तदनन्तर पूजीहुई देवीजी ने उस समय प्रणाम कियेहुये मुझसे कहा कि तुमसे प्रसन्नतः मैं प्राप्तकराई हुई मैं सदैव
यहां टिकूंगी ॥ ३२ ॥ और विशेषकर माघकी अष्टमी में जो मनुष्य इस कूपमें नहाकर मुझको पूजैंगे उनके पापको मैं नाश करूंगी ॥ ३३ ॥ जोकि समस्ततीर्थमय
और जो सब ऋतुवोंवाला वनहै वही यह पार्वतीजी का कूप निर्जल देशके समीप है ॥ ३४ ॥ और हे नारदजी ! प्रयाग, गङ्गा व विशेषकर गयाजीसे भी अधिक इस
कूप में स्नानको मैंने कहा है ॥ ३५ ॥ इस लिये हे तपोधन ! तुम्हारे वचन से मैं यहां भलीभाति टिकीहूं और पुण्यदायक तड़ागको स्वामिकार्त्तिक संयुक्त निरालसी

तदाब्रवीत् ॥ सदात्रचाहंस्थास्यामि प्रसादंप्रापितात्वया ॥३२॥ येचकूपेत्रसंस्नात्वा माघाष्टम्यांविशेषतः॥ पूजयिष्य
न्तिमांमर्त्यास्तेषांछेत्स्यामिदुष्कृतम् ॥ ३३ ॥ सर्वतीर्थमयोयश्च सर्वर्तुकवनोस्तियः ॥ मरोस्समीपेरुद्राण्याः कूपएष
सएवच ॥ ३४ ॥ प्रयागादपिगङ्गाया गयायाश्चविशेषतः ॥ कूपेस्मिन्नधिकंस्नानं मयानारदकीर्त्तितम् ॥ ३५ ॥ तदह
न्तववाक्येन संस्थितात्रतपोधन ॥ गुहेनाथसरःपुण्यं पालयिष्याम्यतन्द्रिता ॥ ३६ ॥कुमारेशंपूजयित्वा पूजयिष्य
तियश्चमाम् ॥ देवीभिःषष्टिकोटीभिर्युतातस्यास्म्यभीष्टदा ॥ ३७ ॥ श्रीनारदउवाच ॥ इत्युक्तोहंपार्थदेव्या तदानींप्रीय
माणया ॥ प्रत्यब्रवंप्रमुदितः कोलम्बांविश्वमातरम् ॥३८॥ अत्रास्यमातस्त्वन्देवी गुप्तक्षेत्रस्यकारणम् ॥तीर्थयात्रावृथा
तेषां नार्चयन्तीहयेचत्वाम् ॥ ३९ ॥ इदञ्चयत्सरःपुण्यं त्वन्नाम्नाख्यातिमेष्यति ॥ ईश्वरीसरसोऽस्यत्वं तीर्थस्यास्य
तथेश्वरी ॥ ४० ॥ एवंदीर्घंतपस्तप्त्वा स्थापितासामयाशुभा ॥ महादुर्गानरैस्तस्मात्पूज्यास्तिसततंबुधैः ॥ ४१ ॥ तृ

होतीहुई मैं रक्षाकरूंगी ॥ ३६ ॥ कुमारेश शिवको पूजकर जो मनुष्य मुझको पूजैगा साठ करोड़ देवियोंसे संयुत मैं उसके मनोरथ को दूंगी ॥ ३७ ॥ श्रीनारदजी बोले
कि हे अर्जुनजी ! प्रसन्न होती हुई देवीजी से इस प्रकार कहेहुये मैंने प्रसन्नहोकर संसारकी माता कोलम्बीजी से कहा ॥ ३८ ॥ कि हे माता ! यहां इस गुप्तक्षेत्रकी तुम
देवी कारणभूतहो इस लिये इस लोकमें जो तुमको नहीं पूजते हैं उनकी तीर्थयात्रा वृथा होती है ॥ ३९ ॥ और यह जो पवित्र तड़ाग है वह तुम्हारे नामसे प्रसिद्धिको
प्राप्तहोगा और इस तड़ागकी स्वामिनी व इस तीर्थकी ईश्वरीहो ॥ ४० ॥ इसप्रकार बड़ी तपस्याकर मैंने उन उत्तम महादुर्गाको थापाहै इस लिये विद्वान् मनुष्यों से

वह सदैव पूजने योग्यहै ॥ ४१॥ और तीसरी इस दिशामें मुझसे व स्वामिकार्त्तिकेयजी से भलीभांति थापीहुई कपालेशा देवी टिकी हैं इनका प्रभाव पहले कहा गया
है ॥ ४२ ॥ कि जो उत्तम मनुष्य नित्यही कपालेश्वरजी को पूजकर इस देवी को देखते हैं वे धन्य हैं और वह संसारकी शक्ति है ॥ ४३ ॥ इस प्रकार वे तीन दुर्गा
पूर्व दिशामें भलीभांति स्थितहैं और पश्चिम दिशामें बड़ी उत्तम तीन दुर्गाओं को कहताहूं ॥ ४४ ॥ ब्रह्माण्डको पालन करनेवाली जो सुवर्णाक्षी देवीहै उस देवीको
मैंने आराधनकर इस तीर्थमें स्थापित कियाहै ॥४५॥ और जो इसको प्रणाम करेंगे व शक्तिसे पूजैंगे वे तैंतीस करोड़ देवियोंसे पूजित होते हैं ॥ ४६ ॥ और वीरत्वको

तीयाचदिशित्वस्यां स्थितासंस्थापितामया ॥ गुहेनचकपालेशा प्रभावोस्याःपुरेरितः ॥ ४२ ॥ धन्यास्तेयेप्रपश्यन्ति
नित्यमेनांनरोत्तमाः ॥ कपालेश्वरमभ्यर्च्य विश्वशक्तिरियन्तुसा ॥ ४३ ॥ एवंतुतिस्रोदुर्गास्ताःपूर्वस्यान्दिशिसंस्थि
ताः ॥ पश्चिमायांप्रवक्ष्यामि तिस्रोदुर्गामहोत्तमाः ॥ ४४ ॥सुवर्णाक्षीतुयादेवी ब्रह्माण्डपरिपालिनी॥सामयात्रसमारा
ध्य तीर्थेदेवीनिवेशिता ॥ ४५ ॥येचैनांप्रणमिष्यन्ति पूजयिष्यन्तिभक्तितः ॥ त्रयस्त्रिंशतिकोटीभिर्देवीभिःपूजिताश्च
ते ॥ ४६ ॥ इयमार्याचर्चिताच वीरत्वंसममीप्सुभिः ॥ बहुभिर्देवदैतेयैर्ददौतेभ्यश्चवीरताम् ॥ ४७ ॥ एवमेवमहादुर्गा
शूद्रकंवीरसत्तमम् ॥ चौरैर्बद्धंकलावग्रे मोक्षयिष्यतिविक्रमात् ॥ ४८ ॥ ततस्तुतांसमाराध्य वीरेन्द्रत्वमवाप्स्यति ॥
निहनिष्यतिचाक्रम्य कालसेनमुखान्रिपून् ॥ ४९ ॥ तस्मादियंसमाराध्या वीर्यकामैर्नरैस्सदा ॥ चर्चितायामहादु
र्गा पश्चिमायांदिशिस्थिता ॥ ५० ॥ तथात्रैलोक्यविजयाविजयास्यांस्थितासदा ॥ यामाराध्यजयंप्राप त्रैलोक्येरोहि

चाहनेवाले बहुत देवता दैत्योंने इस उत्तम देवीका पूजन कियाहै और उनके लिये इसने वीरता दी है ॥ ४७ ॥ इसीप्रकार आगे कलियुग में चोरों से बँधेहुये शूद्रक
उत्तम वीरको महादुर्गा पराक्रम से छुड़ावैंगी ॥ ४८ ॥ तदनन्तर उनको भलीभांति आराधकर वीरेन्द्रताको पावैगा और कालमुख इत्यादिक शत्रुवोंको घेरकरमारैगा॥४९॥
इस लिये पराक्रम को चाहनेवाले पुरुषों से यह सदैव आराधन करने योग्य है जोकि पूजीहुई महादुर्गा पश्चिम दिशामें स्थित है ॥ ५० ॥ वैसेही इस दिशामें

त्रिलोककी विजय देनेवाली विजया सदैव स्थित हैं जिनको आराधकर रोहिणी के पति बलभद्रजी ने त्रिलोकमें जीतको पायाहै ॥ ५१ ॥ सदैव जयको देनेवाली उस भगवती को मैं पूजकर चन्द्रलोक से लाया हूं इस प्रकार ये शक्तियां पश्चिम दिशामें स्थित हैं इसके उपरान्त उत्तर दिशामे देवियो को सुनिये ॥ ५२ ॥ कि उत्तर दिशामें एकवीरा इत्यादिक तीन देवियां स्थित हैं एकवीरा ऐसी जो देवी है वह साक्षात् शिवजी से पूजित है ॥ ५३ ॥ जिससे कि पैठेहुये ये भूतराज शिवजी सब संसारको संहारते हैं अपने पराक्रम से एकवीरा समस्त लोकों को भस्मकर स्थित होती है ॥ ५४ ॥ इसप्रकार की यह सदैववाली एकवीरा शक्ति है ॥ ५५ ॥ जोकि

णीपतिः ॥ ५१ ॥ सोमलोकान्मयानीता पूजिताजयदासदा ॥ एवमेताःपश्चिमायामुत्तरस्यामतःशृणु ॥ ५२ ॥ तिस्रोदे व्यश्चोत्तरस्यामेकवीरामुखाःस्थिताः ॥ एकवीरेतियादेवीसासाक्षाच्छिवपूजिता ॥ ५३ ॥ ययाविष्टोजगत्सर्वं संहरत्ये षभूतराट्॥एकवीरास्ववीर्येण कृत्वालोकांश्चभस्मसात् ॥५४॥ एवंविधात्वेकवीरा शक्तिरेषासनातनी॥५५॥पूजिताराधि ताचैव सर्वाभीष्टप्रदानृणाम् ॥ ब्रह्मलोकात्समानीता मयाराध्यतुभारत ॥ ५६ ॥ नामकीर्त्तनमप्यस्या दुष्टानांघात नंविदुः ॥ द्वितीयाहरसिद्धाख्यादेवीदुर्गामहाबला ॥५७॥ शाकोत्तरात्समाराध्य मयानीतात्रपाण्डव ॥ यदाशाकोत्त रस्थाने पार्वत्याप्रार्थितेनच ॥५८॥रुद्रेणडाकिनीमन्त्रःप्रोक्तोदेव्याकृपालुना॥ तदामन्त्रप्रभावेणमोहितागिरिजासती॥ ५९ ॥ तमेवाक्रम्यमांसञ्च शोणितञ्चनवंपपौ ॥ ततोरुद्रशरीरात्तुविनिष्क्रान्तार्तिनाशिनी ॥ ६० ॥ हरिसिद्धिर्महादुर्गा महामन्त्रविशारदा ॥ सासहस्रभुजादेवी समाक्रम्याभ्यपीडयत् ॥ ६१ ॥ मोचयामासगिरिशमशामयत्तांतथा ॥

पूजन व आराधन कीहुई शक्ति मनुष्यों के सब मनोरथों को देनेवाली है हे भारत ! मैं उसको आराधकर ब्रह्मलोक से लायाहूं ॥ ५६ ॥ विद्वानोंने इसके नामका कीर्तनभी दुष्टोंको नाश करनेवाला कहा है और दूसरी हरसिद्धि नामक महाबलवती दुर्गादेवी हैं ॥ ५७ ॥ हे पाण्डव ! शाकोत्तर स्थानसे मैं आराधनकर यहां लायाहूं जब शाकोत्तर स्थान में पार्वतीजी से प्रार्थना कियेहुये ॥ ५८ ॥ दयालु शिवजी ने देवीसे डाकिनीमन्त्रको कहा है तब मन्त्रके प्रभाव से पतिव्रता पार्वतीजी मोहित हुई ॥५९॥ और उनने उन शिवजी को आक्रमणकर मांस व रक्तको पिया तदनन्तर शिवजी के शरीरसे हरसिद्धि नामक क्लेशको नाशनेवाली महादुर्गा निकलीं और

होमन्त्र में चतुर व हजारभुजाओंवाली उन देवीने दबाकर उसको पीड़ित किया ॥ ६० । ६१ ॥ और शिवजी को छुड़ाया व उसको शान्त किया तबसे लगाकर वह
संसारमें हरसिद्धि ऐसी कही जाती है ॥ ६२ ॥ और साठ करोड़ देवियों से संयुत वह देवताओं से पूजीजाती है दोपोंको नाशनेवाली इस भगवती को आराधि कर
सुग्रीव इत्यादिक ॥ ६३ ॥ बड़े बलवान् हुये व डाकिनीगणों के नाशक हुये इस लिये मन, वचन व कर्म से इस देवीका पूजनकरै ॥ ॥ ६४ ॥ हरसिद्धि में परायण
पुरुषके समीप डाकिनी इत्यादिक नहीं जाती हैं और तीसरी ईशानकोण में टिकीहुई नवीं दुर्गा स्थित है ॥ ६५ ॥ जिनके वर्णन करनेमें सरस्वतीजी भी पारको नहीं

**ततःप्रभृतिसालोके हरसिद्धिःप्रकीर्त्यते ॥ ६२ ॥ देवीनांषष्टिकोटीभिरावृतापूज्यतेसुरैः ॥ एतामाराध्यसुग्रीवप्रमु
खादोषनाशिकाम् ॥ ६३ ॥ अभवन्सुमहावीर्य्या डाकिनीसङ्घनाशकाः ॥ तस्मादेतांपूजयेत मनोवाक्कायकर्मभिः ॥
६४ ॥ डाकिन्याद्यानसर्पन्ति हरसिद्धिरतन्नरम् ॥ तृतीयेशानकोणस्था चण्डिकानवमीस्थिता ॥ ६५ ॥ वागीशापि
लभेत्पारं नैवयस्याःप्रवर्णने ॥ माद्भुतंपार्वतीदेहाद्विनिःसृत्यमहासुरौ ॥ ६६ ॥ चण्डमुण्डौनिहत्यैव भक्षयामासरोषतः ॥
अक्षौहिणीशतन्तेषां चण्डमुण्डौचतावुभौ ॥ ६७ ॥ नापूर्यतैकदेशोऽस्या विशालाक्ष्यास्त्वियंहिसा ॥ इयमेवान्ध
कानाञ्च तृषिताशोणितम्पुनः ॥ ६८ ॥ पपौततोनिजग्राहान्धकन्तुभगवान्भवः ॥ इयञ्चरक्तबीजानां कृत्वापानञ्चर
क्तकम् ॥ ६९ ॥ अर्पयामासतन्देव्याश्चामुण्डापीतशोणितम् ॥ एषातृप्यतिभक्तानां प्रणामेनातिभारत ॥ ७० ॥
अर्बुदानाञ्चकोटीभिर्दैत्यानांपापकर्मणाम् ॥ कुण्डंचात्रमहादेव्या पुण्यंनिष्पादितंशुभम् ॥ ७१ ॥ यत्रवैस्पर्शमात्रे**

पाती हैं जिसने कि शीघ्रही पार्वतीजी की देहसे निकलकर बड़ेभारी दैत्य ॥ ६६ ॥ चण्ड व मुण्डको मारकर क्रोधसे उन दैत्योंकी सौ अक्षौहिणी व उन दोनों चण्ड,
मुण्डको भक्षण करलियाहै ॥ ६७ ॥ और इस विशालाक्षी के मुखका एक देश (स्थान) भी न पूर्णहुआ यह वह भगवती है और प्यासी होतीहुई इसी देवीने फिर
अन्धक दैत्योंका रक्त ॥ ६८ ॥ पिया तदनन्तर भगवान् शिवजीने अन्धकको पकड़ लिया और इसीने रक्तबीज दैत्योंका रक्त पीकर ॥ ६९ ॥ चामुण्डा मे पियेहुये रक्त
वाले उसको देवी को दे दिया हे भारत ! भक्तों के प्रणाम से यह बहुत प्रसन्न होती है ॥७०॥ और पापकर्म्म करोड़ों अर्बुद दैत्योंको मारकर महादेवीने यहां पवित्र व उत्तम

कुण्डको रचा है ॥ ७१ ॥ जिसमें स्पर्शमात्रही से मनुष्य समस्त तीर्थों के फलको पाताहै व हे भारत! रसकी सिद्धि, देहसिद्धि व धर्म्मकी सिद्धि होती है ॥ ७२ ॥ और चण्डिकासे रचेहुये इस तीर्थ में अनेक भांतिकी सिद्धि प्राप्त होती है थोड़े या बहुत उपचारसे भी जो मनुष्य देवीको पूजता है ॥ ७३ ॥ उसको करोड़ सौ देवियों से घिरीहुई वह शक्ति ऐश्वर्यको देतीहै इस प्रकार ये नव महादुर्गा इस तीर्थमें भलीभाति स्थित हैं ॥ ७४ ॥ और दिशाओं की चारों देवियां कल्याण चाहनेवाले नरोंसे नित्यही पूजने योग्य हैं और कुंवार व माघ के नवरात्रमें विशेषकर ॥ ७५ ॥ उपासकर या एक बार भोजनकर इन देवियोंको बलि और पुवाकी नैवेद्य तर्पण, धूप और

ण सर्वतीर्थफलंलभेत् ॥ रससिद्धिर्देहसिद्धिर्धर्मसिद्धिश्चभारत ॥ ७२ ॥ विविधाप्राप्यतेसिद्धिस्तीर्थेस्मिश्चण्डिकाकृते॥ यश्चपूजयतेदेवीं स्वल्पेनबहुनापिवा ॥ ७३ ॥ कात्यायनीकोटिशतवृतातस्यविभूतिदा ॥ एवमेतामहादुर्गानवती र्थेत्रसंस्थिताः ॥ ७४ ॥ चतस्रश्चापिदिग्देव्यो नित्यमर्च्याःशुभेप्सुभिः ॥ आश्विनस्यचमाघस्य नवरात्रेविशेषतः ॥ ७५ ॥ उपोष्यचैकभक्तोवादेवीस्त्वेताःप्रपूजयेत् ॥ बलिपूपकनैवेद्यैस्तर्पणैर्धूपगन्धकैः ॥ ७६ ॥ तासामिष्टिंचचरतांर थ्यासुत्रिकचत्वरे ॥ भूतप्रेतपिशाचाद्या नापिकुर्युःप्रपीडनम् ॥ ७७ ॥ आपदोविद्रवन्त्याशुयोगिन्योनन्दयन्तिच ॥ पुत्रार्थीलभतेपुत्रान्धनार्थीधनमाप्नुयात् ॥ ७८ ॥ रोगार्त्तोमुच्यतेरोगाद्बद्धो मुच्येतबन्धनात् ॥ आसांयःकुरुतेभक्तिं नरोनार्यथश्रद्धया ॥ ७९ ॥ सर्वान्कामानवाप्नोति यांश्चिन्तयतिचेतसि ॥ कामगम्यद्रुमादेव्यश्चिन्तामणिनिभा स्तथा ॥ ८० ॥ तथात्रभूतमातास्ति हरसिद्धेस्तुदक्षिणे ॥ ८१ ॥ तस्यामाहात्म्यमतुलंसंक्षेपात्प्रब्रवीमिते ॥ पूर्वं

चन्दन से पूजनकरै ॥ ७६ ॥ और गांवके बीच चौराहों में व त्रिक तथा चौराहे में भूत, प्रेत व पिशाचादिक पीड़ा नहीं करते हैं ॥ ७७ ॥ और विपत्तियां नष्ट होजाती हैं व वे योगिनियां प्रसन्न होजाती हैं पुत्र चाहनेवाला पुरुष पुत्रोंको पाताहै व धन को चाहनेवाला धन पाताहै ॥ ७८ ॥ व रोगसे विकल मनुष्य रोगसे छूट जाता है व बँधाहुआ मनुष्य बन्धनसे छूट जाताहै जो पुरुष या स्त्री श्रद्धासे इनकी भक्तिको करता है ॥ ७९ ॥ वह जिन जिन मनोरथो को चित्तमें चिन्तन करताहै उन सब मनोरथोंको प्राप्तहोता है वे देवियां मनमें प्राप्त मनोरथोंको देनेके लिये कल्पवृक्ष व चिन्तामणि के समानहैं ॥ ८० ॥ वैसेही हरसिद्धिके दक्षिणओर यहांपर भूतमाता

है ॥ ८१ ॥ उनके अतुल माहात्म्य को मैं संक्षेपसे तुमसे कहताहूँ पुरातन समय प्रसिद्धि में पुण्यदायक सारस्वत किनारे पै विद्वान् स्वामिकार्त्तिकेयजी ने ॥ ८२ ॥
भूत, प्रेत व पिशाचों की राज्य पै उसका अभिषेक कियाहै और उन्हों ने सब भूतों को मर्यादा में धारण किया है ॥ ८३ ॥ व भगवान् स्वामिकार्त्तिकेयजी ने दयासे
भूतोंको इस अन्नको दिया है कि जो बिन मन्त्रसे हवन किया गयाहो व जो कुछ वेदबाह्य कियाहो ॥ ८४ ॥ व अश्रद्धा तथा क्रोधसे जो कर्म किया गयाहो वह तुम
लोगोंकी तृप्तिके लिये होगा तदनन्तर वे भूत इस भोगसे प्रसन्नहोते थे ॥ ८५ ॥ तदनन्तर कुछ समय के बाद श्रद्धा व अश्रद्धासे कीहुई पुण्यको देवताओं को आक-

किलगुहोविद्वान् पुण्येसारस्वतेतटे ॥ ८२ ॥ भूतप्रेतपिशाचानामधिराज्येभ्यषिञ्चत ॥ सचसर्वाणिभूतानि मर्यादा
यामधारयत ॥ ८३ ॥ एतच्चदत्तवानन्नं कृपयाभगवान्गुहः ॥ यदमन्त्रहुतंकिञ्चिद्वेदबाह्यञ्चयत्कृतम् ॥ ८४ ॥ अश्रद्ध
याचक्रोधेन तद्वस्तृप्त्यैभविष्यति ॥ ततस्त्वनेनभोगेन तानिनन्दन्तिकृत्स्नशः ॥ ८५ ॥ ततःकेनापिकालेन श्रद्धयाश्र
द्धयाकृतम् ॥ पुण्यंतान्येवभूतानि ग्रसन्त्याक्रम्यदेवताः ॥ ८६ ॥ ततोदेवाःक्षुधार्तास्ते गुहायैतन्न्यवेदयन् ॥ क्रुद्धस्यचै
तदाकर्ण्य गुहःकालइवाभवत् ॥ ८७ ॥ तस्यक्रुद्धस्यभ्रुवयोर्मध्यात्काचिद्विनिर्गता ॥ ज्वालामालासुदुर्दर्शा नारीद्वाद
शलोचना ॥ ८८ ॥ साचप्रणम्यतम्प्राह तवशक्तिरहंप्रभो ॥ शीघ्रमादिशमांकृत्ये किङ्करोमितवेप्सितम् ॥ ८९ ॥ का
र्त्तिकेयउवाच ॥ एतैर्भूतगणैःपापैर्लङ्घ्यतेममशासनम् ॥ मनुष्यदत्तंसकलं भुज्यतेस्वेच्छयाधमैः ॥ ९० ॥ तस्मात्त्वंशी

मणकर वे भूत ग्रसलेते थे ॥ ८६ ॥ तदनन्तर भूँखसे विकल देवताओं ने उस वृत्तान्तको स्वामिकार्त्तिकेयजी से निवेदन किया और इसको सुनकर क्रोधित होतेहुये
स्वामिकार्त्तिकेयजी कालके नाईं हुये ॥ ८७ ॥ व उन क्रोधित स्वामिकार्त्तिकेयजी के भौंहों के बीचसे कोई स्त्री निकली जोकि ज्वालाओं की मालासे दुःख करके देखने
योग्य व बारह नेत्रोंवाली थी ॥ ८८ ॥ उसने प्रणामकर उन स्वामिकार्त्तिकेयजी से कहा कि हे प्रभो! मैं तुम्हारी शक्तिहूं मुझको कार्य्य में शीघ्रही आज्ञा दीजिये कि
तुम्हारे किस मनोरथको करूं ॥ ८९ ॥ स्वामिकार्त्तिकेयजी बोले कि इन पापी व नीच भूत गणोंसे मेरी आज्ञा उल्लंघन कीजाती है कि मनुष्यों से दियेहुये सब दानादिको

अपनी इच्छासे भोगते हैं ॥ ९० ॥ इस लिये तुम शीघ्रही इनको मर्यादामें प्राप्तकरो हे शुभे ! इस मर्यादा में सौ करोड़ देवियां अनुगामिनी होवैंगी ॥ ९१ ॥ तदनन्तर वैसाही होगा यह कहकर उस समय देवियोंसे घिरीहुई स्वामिकार्त्तिकेयजीकी शक्ति मयूर पै भलीभांति चढकर आगई ॥ ९२ ॥ और अटारी पै प्राप्तहोकर भूतगणोंको उस देवीने देखा व उनके समीप प्राप्तहोकर अनेक प्रकारके अस्त्रोंसे मारा ॥ ९३ ॥ तदनन्तर महासमरमें मारेजातेहुये प्रेत, पिशाचादिक अनेकभांति के वेषों से दीनकी नाईं उन देवीको प्रसन्न करानेलगे ॥ ९४ ॥ कोई ब्राह्मणों के वेषोंसे व तपस्वियों की उक्तियों से प्रसन्न करानेलगे व हे कमललोचनि ! प्रसन्न हूजिये ऐसा बारबार

घ्नमेतानि मर्यादायामुपानय ॥ एतामनुव्रजिष्यन्ति देव्यःकोटिशतंशुभे ॥ ९१ ॥ ततस्तथेतिसाचोक्त्वा देवीभिस्संवृतातदा ॥ मयूरंसमुपास्थाय गुहशक्तिस्समागता ॥ ९२ ॥ शिरोभवनमासाद्य भूतसङ्घानपश्यत॥जघानतान्समासाद्य देवीनानाविधायुधायुधैः॥९३॥ततःप्रेतपिशाचाद्याहन्यमानामहारणे ॥ प्रसादयन्तितान्देवीं नानावेषैस्सुदीनवत् ॥९४॥ केचिद्ब्राह्मणवेषैश्च तापसानांतथोक्तिभिः ॥ नृत्यन्तितत्रपद्माक्षिप्रसीदेतिपुनःपुनः ॥ ९५ ॥ ततःप्रसन्नासादेवी व्रियतांस्वेच्छयाहतान् ॥ तेचप्रोचुस्ततोनस्त्वं भूतमाताभवेश्वरि ॥९६ ॥ मर्यादांनैवत्यक्ष्यामो वयंस्कन्दविनिर्मिताम् ॥ येचैवंत्वांतोषयन्तु तेषांदेहभृतांसदा ॥९७॥ देव्युवाच ॥ वैशाखेदर्शदिवसे येचैवंतोषयन्तिमाम्॥ अरिष्टवृक्षजैःपुष्पैर्दधिभक्तैश्चपूजनैः ॥ ९८॥ तेषांसर्गोपसर्गाश्च यास्यन्तिविलयंस्फुटम् ॥ एवंदत्त्वावरन्देवी मुमुदेभूतसंवृता ॥ ९९ ॥ इतिप्रभा

कहकर नाचते हैं ॥ ९५ ॥ तदनन्तर प्रसन्न होती हुई उन देवीने अपनी इच्छासे उनसे यह कहा कि वरदानको मांगिये तदनन्तर उन्हों ने कहा कि हे ईश्वर ! तुम हमलोगों की भूतमाता होवो ॥ ९६ ॥ और स्वामिकार्त्तिकेयजी से बनाईहुई मर्यादा को हमलोग नहीं छोड़ैंगे और जो तुमको इसप्रकार प्रसन्न करैं उन शरीरधारियों के ऊपर तुम सदैव प्रसन्न होवो ॥ ९७ ॥ देवीजी बोलीं कि वैशाखमें अमावस्या के दिन जो इसप्रकार मुझको प्रसन्न करावैंगे और नींबके वृक्षसे उपजेहुये फूलोंसे व दही भातके पूजन से ॥ ९८ ॥ उनके मोह व उपद्रव प्रत्यक्ष नाशको प्राप्तहोवैंगे इस प्रकार वरदानको देकर भूतों से घिरीहुई देवीजी प्रसन्न हुईं ॥ ९९ ॥ हे भारत !

ऐसे प्रकार प्रभाववाली उस देवीको मैं यहां लायाहूं जो मनुष्य इन देवीको प्रणाम करताहै वह सब अरिष्टोंसे छूट जाताहै ॥ १०० ॥ मैंने उत्तम तीर्थमें इसप्रकार प्रभाव
वाली देवियोंको चारों दिशाओं के श्रेष्ठ स्थान में संक्षेप से कहा जोकि हे अर्जुनजी ! चारों युगोंमें मुख्य मनुष्योंसे पूजितहुई हैं ॥१०१॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाख-
ण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांदेव्युपाख्यानन्नामद्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥
दो० । सोमनाथ शिव भे यथा सिद्धेश्वर के पास । तैंतालिस अध्याय में वर्णत सहित हुलास ॥ नारदजी बोले कि इसके अनन्तर मैं सोमनाथजी को प्रकट कहता

वासादेवी मयानीतात्रभारत ॥ यएतांप्रणमेन्मर्त्यः सर्वानिष्टैर्विमुच्यते ॥१००॥ एवंप्रभावाःपरिकीर्तितामया समास्त
स्तीर्थवरेचदेव्यः॥चतुर्युगेचार्जुनपूजितायाश्चतुर्दिशस्थानवरेषुमुख्यैः॥ १०१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेदे
व्युपाख्यानन्नामद्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥ ✻ ॥ ✻ ॥ ✻ ॥
नारदउवाच ॥ अथातःसम्प्रवक्ष्यामि सोमनाथमहंस्फुटम् ॥ शृणुयात्कीर्त्तयेच्चापि पापक्षोभस्ततोभवेत ॥ १ ॥
पुरात्रेतायुगेपार्थ गौडदेशसमुद्भवौ ॥ ऊर्जयन्तश्चप्रालेयो विप्रावास्तांमहाद्युती ॥ २ ॥ तावेकदापुराणान्तःश्लोकमे
कमपश्यताम् ॥ तन्दृष्ट्वासर्वशास्त्रज्ञावास्तांकण्टकितत्वचौ ॥ ३ ॥ प्रभासाद्यानितीर्थानि पुलस्त्यायाहपद्मभूः ॥ नये
स्तत्राप्लुतञ्चैव नतैस्तीर्थमुपासितम् ॥ ४ ॥ इतिश्लोकंपठित्वातु पुनःपुनरघुष्यताम् ॥ ५ ॥ तावेवचप्रभासस्य निस्सृ
तौस्नातुमुत्तमौ ॥ तौवनानिनदीश्चैवाप्यतिक्रम्यशनैःशनैः ॥ ६ ॥ महर्षिगणसङ्कीर्णामुत्तीर्णौनर्मदांशिवाम् ॥ गुप्त

हूँ इस चरित्रको जो सुनता या कीर्तन करता है उसके पापोंका नाश होताहै ॥ १ ॥ हे पार्थ ! पुरातन समय त्रेतायुगमें गौड़देश में उपजेहुये बडी शोभावाले ऊर्जयन्त
व प्रालेय नामक ब्राह्मणहुये हैं ॥ २ ॥ एक समय उन दोनोंने एक श्लोकको देखा व उसको देखकर समस्त शास्त्रके जाननेवाले वे दोनों पुलकितहुये ॥ ३ ॥ व ब्रह्माने
पुलस्त्यजी के लिये कहा है कि प्रभासादिक जो तीर्थ हैं उनमें जिन्हों ने नहीं नहाया है उनसे तीर्थ नहीं सेवन कियागया है ॥ ४ ॥ इस श्लोकको पढकर उन दोनों
ने बार बार घोषणा किया ॥ ५ ॥ और वे दोनों उत्तम जन प्रभासक्षेत्रके स्नान के लिये निकले और वे दोनों वनों व नदियोंको धीरे धीरे नांघकर ॥ ६ ॥ महर्षि गणों

से व्याप्त व कल्याणदायिनी तथा गुप्त क्षेत्रके माहात्म्यवाली नर्मदा नदीको उतरे तदनन्तर महीसागर से उपजे हुये तीर्थको नहाकर उन दोनोंने प्रभासक्षेत्र नहाने के लिये मार्ग में प्रस्थान किया तदनन्तर मार्ग शून्य होनेके कारण प्यास व भूँखसे बहुत व्याकुलहुये ॥ ७ । ८ ॥ और सिद्धलिंगके समीप वे ब्राह्मण चैतन्यतारहित होगये व सिद्धनाथ को प्रणामकर वे दोनों बडे धैर्यसे चले ॥ ९ ॥ और भूँखके बडे वेगसे व प्यास तथा दुपहर के सूर्यनारायण से सन्तापित व शून्य चरणोंवाले वे दोनों मूर्च्छित होकर अचानकही भूमि में गिरपड़े ॥ १० ॥ तदनन्तर मुहूर्त्तमात्र में उठकर व धैर्य्य से कुछ समाश्वासकर प्रालेयने ऊर्जयन्त से कहा कि हे मित्र ! मैंने

क्षेत्रस्यमाहात्म्यां महीसागरसम्भवम् ॥ ७ ॥ ततःस्नात्वाप्रभासाय तौमार्गेतुप्रतस्थतुः ॥ ततोमार्गस्यशून्यत्वात्तृट्क्षुधापीडितौभृशम् ॥ ८ ॥ आस्तांविचेतनौविप्रौ सिद्धलिङ्गसमीपतः ॥ सिद्धनाथंनमस्कृत्य सम्प्रयातौसुधैर्यतः ॥ ९ ॥ क्षुधावेगेनतीक्ष्णेन तृषामध्यार्कतापितौ ॥ सहसापतितौभूमौ शून्यपादौविमूर्च्छितौ ॥१०॥ ततोमुहूर्तात्प्रालेय ऊर्जयन्तमभाषत ॥ किञ्चिदाश्वस्यधैर्याच्च सखेकिञ्चिच्छ्रुतम्मया ॥ ११ ॥ यथायथाविवर्णाङ्गो जायतेतीर्थयात्रया ॥ तथातथाभवेद्दानैस्तुष्टस्सोमेश्वरोहरः ॥ १२ ॥ तथास्तांलब्धसंज्ञौतावेवमुक्तेनचश्रुतेः ॥ ततश्चसजगामैव प्रालेयःकिञ्चिदन्तरे ॥ १३ ॥ उत्थितंसहसालिङ्गंभूमिंभित्त्वासुदुर्दृशम् ॥ खेवाणीचाभवत्तत्र पुष्पवर्षपुरस्सरा॥ १४॥प्रालेयतवहेतोस्तु सोमनाथसमंफलम् ॥ उत्थितंसागरतटे लिङ्गंतिष्ठात्रसुव्रत ॥१५॥ प्रालेयउवाच ॥ यद्येवंसत्यमेतच्च तथाप्यात्मा प्रकल्पितः ॥ १६ ॥ प्रभासायप्रयातव्यं यदामृत्युर्मयास्फुटम् ॥ दर्शमात्रेणभावेन तपोदेहेदृढीकृतम् ॥ १७ ॥ तत

कुछ सुना है ॥ ११ ॥ कि तीर्थयात्रासे ज्यों ज्यों रङ्गहीन अङ्गोंवाला होता है त्यों त्यों सोमेश्वर महादेवजी दानो से प्रसन्न होतेहैं ॥ १२ ॥ तदनन्तर वह प्रालेय कुछ अन्तर पै गया ॥१३॥ व भूमिको फोडकर अचानकही दुर्दर्श (तेजस्वी) लिंग उत्पन्नहुआ और वहां पुष्पवृष्टिपूर्वक आकाशवाणी हुई ॥ १४ ॥ कि हे प्रालेय ! तुम्हारे लिये सोमनाथके समान फलवाला लिंग समुद्रके किनारे उत्पन्न हुआहै हे सुव्रत ! यहां टिकिये ॥ १५ ॥ प्रालेय बोले कि यदि ऐसा यह सत्य है तौभी आत्मा प्रभास के लिये कल्पित कियागयाहै इसलिये यदि मृत्युभी होवै तौभी मुझको जाना चाहिये क्योंकि दर्शनमात्र भाव से शरीर में तपस्या दृढ़ कीगई है ॥ १६ । १७ ॥ तद-

नन्तर मूर्च्छा के अभाव से आगे जातेहुये ऊर्जयन्त ने भी उन्नत लिंगको देखा और वहभी इसी प्रकार प्राप्तहुआ ॥ १८ ॥ तदनन्तर उन दोनोंकी प्रत्यक्षतामें प्राप्त
होकर शिवजी ने दृढ़ विश्वास किया और उन्हों ने देखकर तदनन्तर शिवजी के प्रभासस्थानको चलेगये ॥ १९ ॥ और वे दोनों सोमनाथ सिद्धेश्वरजी के समीप
हैं ऊर्जयन्त पश्चिम में व प्रालेयेश्वर पूर्वदिशामें हैं ॥ २० ॥ सोमकुण्डके जलमें नहाकर व महीसागर के जलमें धीरे २ नहाकर जो दोनों सोमनाथों को देखताहै
वह जन्मभर के पातकसे छूट जाता है ॥ २१ ॥ हे पाण्डव! यहांपर हाटकेश्वर संज्ञक लिंगको थापकर ब्रह्माजी पवित्रहोकर स्तुति कियाहै उसको सुनिये ॥ २२ ॥

श्चैवोर्जयन्तोपि मूर्च्छाभावाच्चरन्पुरः ॥ अपश्यदुच्छ्रितंलिङ्गं सचैवंप्रत्यपद्यत ॥ १८ ॥ ततःप्रत्यक्षतांप्राप्तो भवश्चक्रेत
योर्दृढम् ॥ दृष्ट्वातुतौततोयातौ प्रभासंशिवसद्मच ॥ १९ ॥ तावेतौसोमनाथौद्वौ सिद्धेश्वरसमीपतः ॥ उर्जयन्तःप्रती
च्याञ्च प्रालेयश्चेश्वरःपुरः ॥ २० ॥ सोमकुण्डाम्भसिशनैः स्नात्वार्णवमहीजले ॥ सोमनाथद्वयंपश्येज्जन्मपापाद्विमु
च्यते ॥ २१ ॥ ब्रह्मात्रस्थापयित्वातु हाटकेश्वरसंज्ञितम् ॥ लिङ्गन्तुष्टावप्रयतः स्तुतितांशृणुपाण्डव ॥ २२ ॥ नमस्ते
भगवन्रुद्र भास्करामिततेजसे ॥ नमोभवायरुद्राय रसायाम्बुमयायते ॥ २३ ॥ शर्वायक्षितिरूपाय सदासुरभिणे
नमः ॥ ईशायवायवेतुभ्यं स्मरनाशायतेनमः ॥ २४ ॥ पशूनांपतयेच्चापि पालकायातितेजसे ॥ भीमायव्योमरूपाय
शब्दमात्रायतेनमः ॥ २५ ॥ महादेवायसोमाय अमृतायनमोस्तुते ॥ उग्राययजमानाय नमस्तेकर्मयोगिने ॥ २६ ॥
इत्येवनामभिर्दिव्यैः स्तोत्रमेतदुदीरितम् ॥ यःपठेच्छृणुयाद्वापि पितामहकृतंस्तवम् ॥ २७ ॥ हाटकेश्वरलिङ्ग

हे भगवन्, रुद्रजी! प्रकाश करनेवाले व अतुल तेजवाले आपके लिये नमस्कारहै भव, रुद्रके लिये प्रणाम है व रसरूपी, जलमय आपके लिये प्रणाम है ॥ २३ ॥
व पृथ्वीरूप, शर्वके लिये नमस्कार है व सदैव सुरभि आपके लिये प्रणाम है व ईश, पवनरूप आपके लिये प्रणामहै और कामदेवके नाशक आपके लिये नमस्कार
है ॥ २४ ॥ पशुपति व अमित तेजवाले पालकके लिये नमस्कार है और भीम, आकाशरूपी तुम्हारे लिये प्रणाम है व शब्दमात्र तुम्हारे लिये प्रणाम है ॥ २५ ॥
महादेव, सोम व अमृतरूप तुम्हारे लिये प्रणाम है व उग्र, यजमानमूर्ति के लिये और कर्मयोगी आपके लिये प्रणाम है ॥ २६ ॥ इन्हीं दिव्यनामों से यह स्तोत्र

कहा गयाहै जो पुरुष पवित्र होकर नित्यही ब्रह्मासे किये हुये हाटकेश्वर लिंगके इस स्तोत्रको पढ़ता या सुनता है वह अष्टमूर्ति सदाशिवजी में सायुज्य मुक्तिको प्राप्तहोता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ २७ । २८ ॥ महीसागर सङ्गम में इस प्रकार के बहुत से पवित्र तीर्थ हैं जोकि मुझसे संक्षेप से वर्णन कियेगये ॥ २९ ॥ इति श्री स्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांत्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥ ॥ ॥ ॥
दो० । अतिथिरूप दिनकर यथा कीन्हो प्रश्नक दोइ । चवालिसें अध्याय में कह्यो चरित सब सोइ ॥ अर्जुनजी बोले कि हे महामुने ! इन अद्भुत तीर्थों व लिंगोंको

स्य नित्यञ्चप्रयतोनरः ॥ अष्टमूर्त्तौससायुज्यं लभतेनात्रसंशयः ॥ २८ ॥ एवंविधानितीर्थानि महीसागरसङ्गमे ॥ ब ह्वनिसन्तिपुण्यानि संक्षेपाद्वर्णितानिमे ॥ २९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डे त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥
अर्जुनउवाच ॥ इत्यद्भुतानितीर्थानि लिङ्गानिचमहामुने ॥ श्रुत्वातवमुखाम्भोजाद्भृशंहृष्यतिमेमनः ॥ १ ॥ मही सागरकस्यापि स्थापितस्यत्वयामुने ॥ यानितीर्थानिमुख्यानि तानिवर्णयमेप्रभो ॥ २ ॥ नारदउवाच ॥ श्रीमन्म हीसागरकेयानितीर्थानिफाल्गुन ॥ ३ ॥ तानिवक्ष्यामियत्रास्ते जयादित्योरविःप्रभुः ॥ जयादित्यस्ययोनाम कीर्त्तये द्यदिमानवः ॥ ४ ॥ सर्वरोगविनिर्मुक्तो लभतेहृदयेप्सितम् ॥ यस्यसन्दर्शनादेव कल्याणैरपिपूर्यते ॥ ५ ॥ मुच्यते चाप्यकल्याणैः श्रद्धावान्पार्थमानवः ॥ तस्यदेवस्यचोत्पत्तिं शृणुपार्थवदामिते ॥ ६ ॥ शृण्वन्वाकीर्त्तयन्वापि प्रसादं

तुम्हारे मुख कमलसे सुनकर मेरा मन बहुतही प्रसन्न होता है ॥ १ ॥ हे प्रभो ! तुमसे थापेहुये महीसागर के जो मुख्य तीर्थ होवैं उनको मुझसे वर्णन कीजिये ॥ २ ॥ नारदजी बोले कि हे अर्जुनजी ! श्रीमन्महीसागर तीर्थमें जो तीर्थहैं ॥ ३ ॥ उनको मैं कहताहूं जहांपर कि जयादित्यस्वामी सूर्यनारायण हैं यदि जयादित्यके नामको जो मनुष्य कीर्तन करता है ॥ ४ ॥ तो वह सबरोगों से छूटकर हृदयके मनोरथ को प्राप्तहोताहै व जिनके भलीभांति दर्शनही से मनुष्य सुखोसे भी पूर्णहोजाताहै ॥ ५ ॥ और हे अर्जुनजी ! श्रद्धावान् पुरुष अकल्याणों से छूटजाताहै हे पार्थ ! उन सूर्यदेव की उत्पत्तिको सुनिये उसको मै तुमसे कहताहूं ॥ ६ ॥ उस चरित्रको सुनना व

कहता हुआ पुरुष सूर्यनारायण से प्रसन्नताको प्राप्तहोता है मैं इस स्थानको भलीभांति थापकर किसी समय ॥ ७ ॥ स्वच्छन्दता से सूर्यनारायण के दर्शनों का चाहने
वाला मैं सूर्यलोक को गया और प्रणाम किये व बैठेहुये मुझको अर्घ्य से पूजकर सूर्यनारायण ॥ ८ ॥ देवजी हँसते हुये से मीठे वचन से यह बोले कि हे विप्रजी !
कहां से आतेहो और कहां जावोगे ॥ ९ ॥ व हे नारदमुने ! विहार कियाहुआ यह तुम्हारा समय कहां व्यतीत हुआ नारदजी बोले कि सूर्यनारायण से इसप्रकार कहे
हुये मैंने प्रणामकर उससमय यह कहा ॥ १० ॥ कि हे विभो, भास्करजी ! पृथ्वीके भरतखण्ड में महीनगरसे तुम्हारे दर्शनों का चाहनेवाला मैं आयाहूं ॥ ११ ॥ सूर्य-

**भास्करालभेत ॥ अहंसंस्थाप्यसंस्थानमेतत्कालेनकेनचित् ॥७॥ प्रयातोभास्करंलोकं दर्शनार्थीयदृच्छया ॥ समांप्रण
तमासीनमभ्यर्च्यार्घ्येणभास्करः ॥ ८ ॥ प्रहसन्निवप्राहेदं देवोमधुरयागिरा ॥ कुतआगम्यतेविप्र क्वचवाप्रतिगम्यते ॥
९ ॥ क्वचायन्नारदमुने कालस्तेविहृतोभवत् ॥ नारदउवाच ॥ एवमुक्तोभास्करेणोतत्तदाप्राब्रवन्नतः ॥ १० ॥ भारतेजग
तीखण्डे महीनगरकादपि ॥ दर्शनार्थीतवविभो समायातोस्मिभास्कर ॥११॥ रविरुवाच ॥ यत्त्वयास्थापितंस्थानं तत्रयेस
न्तिब्राह्मणाः ॥ तेषांगुणान्ममब्रूहि किंगुणाननुतेद्विजाः ॥ १२ ॥ नारदउवाच ॥ एवंपृष्टोभगवता पुनरेवाब्रवंवचः ॥
यदितान्भोःप्रशंसामि स्वीयान्स्तौतीतिवाच्यता ॥ १३ ॥ निन्दाम्यनर्हान्कस्माद्वाकष्टमेवोभयत्रच ॥ अथवापारमा
हात्म्ये मतिस्तेषांमहात्मनाम् ॥ १४ ॥ अल्पेकृतेवर्णनेस्याद्दोषएवमहान्मम ॥ मदर्चितद्विजेन्द्राणां यदिस्याच्छ्रवणे
च्छुता ॥ १५ ॥ ततःस्वयंविलोक्यास्तेगत्वेदंसम्मतंरवे ॥ इतिश्रुत्वाममवचो रविरासीत्सुविस्मितः ॥ १६ ॥ स्वयन्द्र**

नारायणजी बोले कि तुमसे जो स्थान थापा गया है उसमें जो ब्राह्मण हैं उनके गुणोंको मुझसे कहिये कि वे ब्राह्मण किस गुणवाले हैं ॥ १२ ॥ नारदजी बोले कि
इसप्रकार भगवान् सूर्यनारायणसे पूँछेहुये मैंने फिर वचन कहा कि हे सूर्यनारायणजी ! यदि मैं उनकी प्रशंसा करूं तो यह कहने की योग्यता होगी कि अपने द्विजों
की प्रशंसा करते हैं ॥ १३ ॥ और न निन्दने के योग्य उन ब्राह्मणोंकी निन्दा किस लिये करूं इससे दोनों ओर कष्टहै अथवा उन महात्माओं की बुद्धि अपार माहात्म्यमें
है ॥ १४ ॥ इससे थोड़ा वर्णन करने में मुझको बडा दोषहोगा यदि मुझसे पूजे हुये ब्राह्मणों के सुननेकी इच्छाहोवै ॥ १५ ॥ इसकारण हे सूर्यनारायणजी ! आपही

जाकर वे ब्राह्मण देखने योग्यहैं मेरा यह संमतहै मेरे इस प्रकार वचनको सुनकर सूर्यनारायण बडे विस्मय मे प्राप्तहुये ॥ १६ ॥ व दिननायक ने बार बार कहा कि आपही देखूंगा इसके अनन्तर ब्राह्मणका शरीरकर सूर्यनारायणजी मुझको बिदाकर ॥ १७ ॥ तपतेहुये से आकाशमार्ग से समुद्रके किनारे प्राप्तहुये इनके अनन्तर त्रिकाल स्नानसे पीली जटाओ को धारेहुये ॥ १८ ॥ बड़े तेजस्वी, वृद्धब्राह्मण वे सूर्यनारायण मेरे ब्राह्मणों से देखेगये तदनन्तर वडे हर्षसे प्रफुल्लित लोचनोंवाले हारीत इत्यादिक ॥ १९ ॥ वे ब्राह्मण ब्रह्मसभासे उठकर ब्राह्मण के सामने शीघ्रता से गये व उत्तम ब्राह्मणको प्रणामकर उन्होने प्रसन्नतासे यह कहा ॥ २० ॥ ब्राह्मण

क्ष्यामिचोवाच पुनःपुनरहर्पतिः ॥ सोथविप्रान्तनुंकृत्वा मांविसृज्यैवभास्करः ॥ १७ ॥ प्रतपन्दिवमार्गाच्च प्रयातोर्णवरो धसि ॥ जटांत्रिषवणस्नानपिङ्गलान्धारयन्नथ ॥ १८ ॥ वृद्धद्विजोमहातेजा ददृशेब्राह्मणैर्मम ॥ ततोहारीतप्रमुखाः प्र हर्षोत्फुल्ललोचनाः ॥ १९ ॥ उत्थायब्रह्मशालायास्तेद्विजाद्विजमद्रवन् ॥ नमस्कृत्यद्विजाग्र्यन्ते प्रहर्षादिदमब्रुवन् ॥ २० ॥ द्विजाऊचुः ॥ अद्यनोदिवसःपुण्यस्सफलंजीवनञ्चनः ॥ यत्त्वयाविप्रप्रवर स्वयमागमनंकृतम् ॥ २१ ॥ धन्यस्य हिगृहस्थस्य कृपयैवद्विजोत्तमाः ॥ आतिथ्यवेषेणायान्ति पावनार्थन्नसंशयः ॥ २२ ॥ तत्त्वंगेहानिचास्माकं पादच ङ्क्रमणेनच ॥ दर्शनाद्भोजनात्स्नानादस्माभिस्सहपावय ॥ २३ ॥ अतिथिरुवाच ॥ भोजनंद्विविधंविप्राः प्राकृतंपर मंपरम् ॥ तदहंसम्यगिच्छामि दत्तंपरमभोजनम् ॥ २४ ॥ इत्येतदतिथेःश्रुत्वा हारीतःपुत्रमब्रवीत् ॥ प्रश्नद्वयन्तुकम ठ वेत्सिपुत्रद्विजोदितम् ॥ २५ ॥ कमठउवाच ॥ द्रुतंप्रणम्यत्वांवक्ष्ये यादृक्परमभोजनम् ॥ २६ ॥ तर्पयिष्यामिचद्वि

लोग बोले कि आज हमारा पुण्य दिन है और हमलोगोंका जन्म सफल होगया जोकि हे द्विजोत्तम ! आपही आगमन किया ॥ २१ ॥ धन्य गृहस्थके ऊपर दयाके कारण द्विजोत्तम लोग पाहुनके वेषसे पवित्र करने के लिये आते हैं इसमें सन्देह नहीं है ॥ २२ ॥ इस लिये तुम हमलोगों के साथ चरणों से गमन, दर्शन, भोजन व स्नान से हमारे घरोंको पवित्र कीजिये ॥ २३ ॥ अतिथि बोला कि हे ब्राह्मणो ! भोजन दो प्रकारकाहै एक प्राकृत व दूसरा परम भोजनहै इसलिये मैं दियेहुये परम भोजनको भलीभांति चाहताहूं ॥ २४ ॥ अतिथि के इस वचन को सुनकर हारीत पुत्र से बोले कि हे कमठपुत्र ! ब्राह्मण से कियेहुये दो प्रश्नों को जानते हो ॥ २५ ॥

कमठ बोला कि तुमको प्रणाम कर मैं शीघ्रही कहूंगा कि जैसा परम भोजनहै ॥ २६ ॥ और परमभोजन को देकर ब्राह्मण कों तृप्तकरूंगा क्योंकि पुत्र पैदाहोने से
मनुष्योंको सुख होता है ॥ २७ ॥ उत्तम अतिथि को भलीभांति तृप्तकर तुम्हारा वचन सत्यकरूंगा दो प्रकारका भोजनहै उनका विभाग यहहै कि एक प्राकृत भो-
जन कहाजाताहै और दूसरा परम भोजनहै ॥ २८।२९॥ कि परम आत्मा कहाजाता है और उसका वह भोजन होवैहै ॥ ३० ॥ कि जिससे अनेक प्रकारके धर्मका जो
श्रवणहै और उसमें जो प्राकृत नाम भोजनहै वह पुरुषकी जो प्रकृति है ॥ ३१ ॥ और चौबीस तत्त्वोंके समूह का जो तर्पण है वह प्राकृत भोजन है विद्वान् लोग

जं दत्त्वापरमभोजनम् ॥ सुतेनकिलजातेन जायतेचनृणांसुखम् ॥ २७ ॥ सत्यङ्करिष्येतेवाक्यं सन्तर्प्यातिथिमुत्तम
म् ॥ भोजनंद्विप्रकारञ्च प्रविभागस्तयोरयम् ॥ २८ ॥ प्राकृतंप्रोच्यतेत्वेकमन्यत्परमभोजनम् ॥ २९ ॥ परमःप्रोच्य
तेचात्मा तस्यतद्भोजनंभवेत् ॥ ३० ॥ यतोनानाप्रकारस्य धर्मस्यश्रवणंहियत् ॥ तत्रयत्प्राकृतन्नाम प्रकृतिःपुरुषस्यत
त् ॥ ३१ ॥ चतुर्विंशतितत्त्वानां गणस्योक्तस्यतर्पणम् ॥ षट्पञ्चभेदमदनं कोविदाःप्रवदन्तितत् ॥ ३२ ॥ येनभुक्ते
नतृप्तंस्यात् क्षेत्रंयद्देहलक्षणम् ॥ ३३ ॥ यथापरम्पदन्नामप्रोक्तंपरमभोजनम् ॥ तदन्नंप्रोच्यतेभोक्तुः क्षेत्रज्ञश्रवणा
त्सुखम् ॥३४॥ तद्दास्यामिद्विजाग्र्याय पृच्छविप्रयदिच्छसि॥ शक्तितस्तर्पयिष्यामि त्वामहंविप्रसंसदि ॥ ३५ ॥ नारद
उवाच ॥ कमठस्यैतदाकर्ण्य सोतिथिर्वचनंमहत् ॥ मनसैवप्रशस्यामुं प्रश्नमेनमथाकरोत् ॥ ३६ ॥ कथंसञ्जायतेज
न्तुः कथञ्चापिप्रलीयते ॥ भस्मनामथसंप्राप्य क्वचायंप्रतिपद्यते ॥ ३७ ॥ कमठउवाच ॥ गुरवेप्राङ्नमस्कृत्य धर्मायत

उस भोजनको छप्पन प्रकार का कहते हैं ॥ ३२ ॥ कि जिसके भोजन करने से देहलक्षणोंवाला क्षेत्र (शरीर) तृप्त होजाता है ॥ ३३ ॥ और जैसे परमपदना-
मक परम भोजन कहागया है वह अन्न भोजन करनेवाले का है कि जिससे आत्माके श्रवणसे सुख होता है ॥ ३४ ॥ हे विप्रजी ! उसको द्विजोत्तम के लिये दूंगा जो
इच्छा हो उसको पूंछिये ब्राह्मणों की सभा में मैं तुमको शक्ति के अनुसार तृप्त करूंगा ॥ ३५ ॥ नारदजी बोले कि कमठ के इस बड़े भारी वचन को सुनकर उस
अतिथि ने मनही से इसकी प्रशंसा कर इस प्रश्न को किया ॥ ३६ ॥ कि किस प्रकार प्राणी उत्पन्न होताहै व किस भांति नष्ट होताहै व इसके उपरान्त भस्मत्व-

को प्राप्त होकर यह कहां प्राप्त होताहै ॥ ३७ ॥ कमठ बोला कि पहले गुरु के लिये प्रणाम कर उसके उपरान्त धर्म के लिये नमस्कार कर हे द्विज ! वेद में कहे हुये इस प्रश्न को मैं तुमसे कहताहूं ॥ ३८ ॥ कि प्रसिद्धि में प्राणी के जन्म में तीन भांति का कर्म कारण है पुण्य, पाप व मिश्रित और वह कर्म सत्त्वगुणी, रजोगुणी और तामसी होताहै ॥ ३९ ॥ उनमे जो सात्त्विक पुरुष होताहै वह स्वर्ग को प्राप्त होता है और स्वर्ग से समय में गिरकर धनवान् धर्मवान् व सुखी होता है ॥ ४० ॥ वैसेही जो तामस प्राणी है वह नरक में प्राप्तहोता है और बहुत पीड़ाओं को भोगकर स्थावरता (वृक्षत्व) को प्राप्तहोताहै ॥ ४१ ॥ और महा-

दनन्तरम् ॥ छन्दोगीतममुंप्रश्नं शक्त्यावक्ष्यामितेद्विज ॥ ३८ ॥ जननेत्रिविधंकर्महेतुर्जन्तोर्भवेत्किल ॥ पुण्यंपाप श्चमिश्रञ्च सत्त्वंराजसतामसम् ॥ ३९ ॥ तत्रयस्सात्त्विकोनाम सस्वर्गंप्रतिपद्यते ॥ स्वर्गात्कालपरिभ्रष्टो धनीधर्मीसुखी भवेत् ॥ ४० ॥ तथायस्तामसोनाम नरकम्प्रतिपद्यते ॥ भुक्त्वाबह्वीर्यातनाश्च स्थावरत्वंप्रपद्यते ॥ ४१ ॥ महतान्दर्श नस्पर्शैरुपभोगसहासनैः ॥ महताकालयोगेन संमुक्तोमानवोभवेत् ॥ ४२ ॥ सोपिदुःखदारिद्र्याद्यैर्वेष्टितोविकलेन्द्रियः ॥ प्रत्यक्षंसर्वलोकानां पापस्यैतद्धिलक्षणम् ॥ ४३ ॥ अथयोमिश्रकर्मास्यात्तिर्यक्त्वंप्रतिपद्यच ॥ महतामेवसंसर्गात् सं सरन्मानवोभवेत् ॥ ४४ ॥ यस्यपुण्यंपृथुतरं पापमल्पंहिजायते ॥ सपूर्वंदुःखितोभूत्वा पश्चात्सौख्यायकल्पते ॥ पापं पृथुतरंयस्य पुण्यमल्पतरम्भवेत् ॥ ४५ ॥ पूर्वंसुखीततोदुःखी मिश्रस्यैतद्धिलक्षणम् ॥ ताञ्चमानुषसम्भूतिं शृणुया

त्माओं के दर्शन, स्पर्श, भोग व समीप बैठने से बहुत समय के बाद छूटा हुआ वह पुरुष होता है ॥ ४२ ॥ और वह भी दुःख दरिद्रादिकों से घिरा व विकल इन्द्रियों वाला होता है सब मनुष्यों के सामने पापी का यह लक्षण है ॥ ४३ ॥ और जो मिश्रित कर्मवाला होता है तिर्यक् योनि को प्राप्त होकर घूमताहुआ वह महात्मा-ओं के संसर्ग से मनुष्य होता है ॥४४॥ जिसके पुण्य बहुत अधिक होती है व पाप थोड़ा होताहै वह पहले दुःखी होकर पश्चात् सुखके लिये समर्थ होता है और पाप जिसके बहुत अधिक होता है व पुण्य बहुत कम होती है ॥ ४५ ॥ वह पहले सुखी तदनन्तर दुःखी होताहै यह मिश्रित कर्मवाले का लक्षणहै और

ह्गसौभवेत ॥ ४६ ॥ पुरुषस्यास्त्रियश्चैव शुक्रशोणितसङ्गमे ॥ सर्वदोषविनिर्मुक्तो जीवःसंसरतेस्फुटम् ॥ ४७ ॥ गुणा न्वितस्सतन्मात्रो मनोबुद्धिसमन्वितः ॥ जीवःप्रविष्टोगर्भन्तु कललेप्रतितिष्ठति ॥ ४८ ॥ मूढश्चकललेतत्र मासमा त्रश्चतिष्ठति ॥ द्वितीयन्तुतथामासं घनीभूतस्सतिष्ठति ॥ ४९ ॥ तस्यावयवनिर्माणं तृतीयेमासिजायते ॥ मातुराहा रपीतञ्च सप्तमेमासिसोऽश्नुते ॥ ५० ॥ अष्टमेनवमेचापि भृशमुद्विजतेततः ॥ जरायुणावेष्टिताङ्गो मुखबद्धकराङ्गुलिः ॥ ५१ ॥ मध्येक्लीबस्तुवामेस्त्री दक्षिणेपुरुषस्तथा ॥ तिष्ठत्युदरभागेच सृष्टेरभिमुखःकिल ॥ ५२ ॥ याश्चतिष्ठत्यसौयोनी स्ताश्चवेत्तिनसंशयः ॥ सर्वस्मरतिवृत्तान्तं बहूनांजन्मनामपि ॥ ५३ ॥ अन्धेतमसिकिंद्दश्यमन्धेमोहंद्दढंलभेत् ॥ शी तेमात्राजलेपीतं शीतमुष्णंतथोष्णके ॥ ५४ ॥ व्यवायेलभतेमातुः क्लेशंव्याधेश्चवेदनाम् ॥ अलक्ष्याःपितृमात्रो श्च जायन्तेव्याधयःपराः ॥ ५५ ॥ सौकुमार्य्यात्कुजंतीव्रां जनयन्तिचतस्यताः ॥ स्वल्पमप्यथतज्ज्ञालं वेत्तिवर्षशतो

मनुष्यकी उस उत्पत्ति को सुनिये कि जैसी वह होतीहै ॥ ४६ ॥ पुरुष व स्त्री के वीर्य तथा रक्तके मिलने में समस्त दोषोंसे छुटा हुआ जीव प्रकटही प्राप्त होता है ॥ ४७ ॥ गुणोंसे संयुत व शब्द,स्पर्श,रूप,रस, गन्ध व मन तथा बुद्धि समेत जीव गर्भ में पैठकर कललमें स्थित होताहै ॥ ४८ ॥ और वह अज्ञानी पुरुष उस कलल में महीने भर टिकता है वैसेही दूसरे महीना भर कड़ा होकर स्थित होताहै ॥ ४९ ॥ और तीसरे महीने में उसके अङ्गोंका निर्माण होताहै व सातवें महीने में वह प्राणी माताकी खाई पी हुई वस्तु को भोजन करताहै ॥५०॥ तदनन्तर आठवें व नवें महीने में वह बहुत विकल होताहै जो कि झोरी से घिरे अंगोंवाला होताहै और हाथकी अंगुली मुखमें बँधी होती हैं ॥ ५१ ॥ बीचमें नपुंसक, बाईं ओर कन्या व दाहिने पुरुष होताहै इसप्रकार सृष्टिके संमुख प्राप्त जीव पेटके त्रिभाग में टिकता है ॥ ५२ ॥ और जिन योनियों में यह टिकता भया है उनको निस्सन्देह जानताहै और बहुत जन्मों के भी सब वृत्तान्त को स्मरण करताहै ॥ ५३ ॥ और बड़े अन्धकार में क्या देखपड़े वह प्राणी सघन अन्धकार में मोहको प्राप्त होताहै और माताके ठंढा जल पीने से ठंढे जलको पीताहै व गरम जल पीने पर गरम जलको पीता है ॥ ५४ ॥ ...माताके मैथुनकर्म में क्लेश पाता है व रोग की पीड़ा को प्राप्त होताहै व माता पिताओं के न देखने योग्य अन्य रोग उत्पन्न होते हैं ॥ ५५ ॥ सुकुमारता

से वे व्याधियां उस पुरुष के तीव्ररोग को पैदा करती हैं इसके अनन्तर वह प्राणी थोड़े भी उस समय को सौ वर्षों के समान मानता है ॥ ५६ ॥ और प्राचीन
कर्मों से प्राणी गर्भ में बहुत संतप्त होताहै और पुण्य के लिये बारबार मनोरथोंको करता है ॥ ५७ ॥ कि मैं यदि मनुष्य योनि में जन्म व जीवन पाऊंगा तो
उस कर्मको करूंगा कि जिससे प्रकटही मोक्ष होजावै ॥ ५८ ॥ सीमन्तोन्नयन कर्म के पश्चात् इस प्रकार चिन्तन करते हुये उसको पीड़ा के कारण तीन
महीना तीन युगों के समान होजाते हैं ॥ ५९ ॥ तदनन्तर अपना समय प्राप्त होने पर प्रसूतिपवन से चलाया वह पुरुष पीड़ा को भोगता हुवा नीचे

पमम् ॥५६॥ सन्तप्यतेभृशंगर्भे कर्मभिश्चपुरातनैः॥ मनोरथांश्चकुरुते सुकृतार्थंपुनःपुनः ॥५७॥ जन्मचेदहमाप्स्यामि
मानुष्यंजीवितंतथा ॥ ततःकृत्यंकरिष्यामि येनमोक्षोभवेत्स्फुटम् ॥५८॥ एवन्तुचिन्तयानस्य सीमन्तोन्नयनादनु॥
मासत्रयन्तद्व्रजति पीडातस्त्रियुगैस्समम् ॥ ५९ ॥ ततःस्वकालेसम्प्राप्ते सूतिमारुतचालितः ॥ भवत्यवाङ्मुखोजन्तुः
पीडामनुभवन्सवै ॥ ६० ॥ अधोमुखस्सङ्कटेन योनिद्वारेणनिस्सरेत् ॥ पीडयापीड्यमानोपि चर्मकर्तनतुल्यया ॥ ६१ ॥
करपत्रसमस्पर्शं करसंस्पर्शनादिकम् ॥ जातमात्रोविजानाति स्तनमात्रंविमोहितः ॥ ६२ ॥ प्राक्कर्मवशगस्यास्य ग
र्भज्ञानञ्चनश्यति ॥ ततःकरोतिकर्माणि शितिरक्तसितानिच ॥ ६३ ॥ अस्थिपादतुलास्तम्भं स्नायुबन्धेनयन्त्रितम् ॥
रक्तमांसमृदालिप्तं विण्मूत्रद्रव्यभाजनम् ॥ ६४ ॥ सप्तभित्तिसुसंबद्धंछिन्नंरोमतृणैरपि ॥ वदनैकमहाद्वारं गवाक्षाष्ट

मुखवाला होताहै ॥ ६० ॥ और चर्म काटने के तुल्य पीड़ासे पीडित भी नीचे मुखवाला वह प्राणी योनि के द्वारसे क्लेश करके निकलता है ॥ ६१ ॥ और
हाथका स्पर्श आदिक उसको आराके समान स्पर्श होताहै व पैदा हुवा यह मोहित प्राणी स्तनमात्र को जानता है ॥ ६२ ॥ पूर्व कर्मके वश में प्राप्त इस
मनुष्य का गर्भवाला ज्ञान नष्ट होजाता है तदनन्तर काले (तामसी) अरुण (राजसी) श्वेत (सात्त्विकी) कर्मों को करता है ॥ ६३ ॥ अस्थि व चरणरूपी
तुला, स्तंभवाला व नसों के बन्धन से बँधा हुवा रक्त, मांस रूपी मिट्टी से लीपा व विष्ठा, मूत्ररूप वस्तुवोंका पात्र ॥ ६४ ॥ व सात धातुरूपी भीतियो से बँधा तथा

रोमरूपी तृणोंसे आच्छादित व मुखरूपी एक बड़े द्वारवाला और आठ झरोखोंसे शोभित ॥ ६५ ॥ दोनों ओंठरूपी किंवाड़वाला व दन्तरूपी दहमर्दे से मूँदा और नसोंके पसीने से प्रवाहवाला व कफ, पित्तसे संयुत ॥ ६६ ॥ वृद्धता, शोचसे पैठा हुआ और कालमुखरूपी अग्निमें प्राप्त तथा स्नेह व वैरादिकों से गँसाहुआ और बहुत शोकोंसे उत्पन्न ॥६७॥ हे द्विज ! पुरुषोंका यह देहरूपी घर इस प्रकार उत्पन्न होताहै कि जिसमें बुद्धिरूपी स्त्रीवाला जीवात्मारूप गृहस्थ बसता है ॥ ६८ ॥ और मृत्युको प्राप्तहोकर मोक्ष, स्वर्ग व नरक को प्राप्तहोता है ॥ ६९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेगर्भवासादिवर्णनंनामचतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥ ❀ ॥

...पितम् ॥ ६५ ॥ ओष्ठद्वयकपाटंच दन्तार्गलविमुद्रितम् ॥ नाडीस्वेदप्रवाहञ्च कफपित्तपरिप्लुतम् ॥ ६६ ॥ जरा
...निष्ठं कालवक्त्रानलेस्थितम् ॥ रागद्वेषादिभिर्ग्रस्तंबहुशोकसमुद्भवम् ॥ ६७ ॥ एवंसञ्जायतेपुंसां देहगेहमिदं
...क्षेत्रज्ञो गृहस्थोबुद्धिगेहिनी ॥ ६८ ॥ मोक्षंस्वर्गञ्चनरकमास्तेपञ्चत्वमागतः ॥ ६९ ॥ इति श्री
...गर्भवासादिवर्णनन्नामचतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥ ❀ ॥
...कमठैतत्त्वयोदितम् ॥ शरीरलक्षणंश्रोतुं पुनरिच्छामितद्वद ॥ १ ॥
...शरीरञ्चतथोच्यते ॥ पादमूलञ्चपातालं प्रपदञ्चरसातलम् ॥ २ ॥ तलातल
...चोरू वितलञ्चातलंस्मृतम् ॥ ३ ॥ नाभिर्महीतलंप्राहुर्भुवर्लोकम
...म् ॥ ४ ॥ नेत्रेतपस्सत्यलोकं शीर्षदेशंवदन्तिच ॥ यथाचसप्तद्वीपा

...अतिथि बोला कि हे बालकके मतमें बालक कमठ ! तुमने यह बहुत
...कि जैसे यहां यह ब्रह्माण्ड है वैसेही शरीर कहाजाता है कि पा-
...और वितल व अतल ऊरू (मोटीजाँघैं)
...॥४॥ व तपलोक नेत्र व सत्यलोक

एक उपांग व दू...
...की जिह्वा
देहधारियों ... स्थित है ॥ २२ ॥ हे ...
में जीव स्थित है ॥ २३ ॥ और मेदा, मज्जा व अस्थि ...
तेहैं ॥ २४ ॥

को मस्तक स्थान कहतेहैं जिस प्रकार पृथ्वी के सात द्वीप स्थित हैं ॥ ५ ॥ वैसेही इस शरीर में सात धातु हैं उनके नामोको मुझ से सुनिये कि त्वचा, रक्त, मांस, मेदा (चर्बी), अस्थि, मज्जा व वीर्य ये धातु हैं ॥ ६ ॥ व इस देहमें तीनसौ साठ अस्थिहैं और तीन लाख नसैं कहीगई हैं ॥ ७ ॥ और छप्पन हजार अन्य नसैहै वे देहमें रसको प्राप्तकरती है जैसे कि नदिया भूमिमें जलको बहाती हैं ॥८॥ और मोटे व महीन साढ़े तीन करोड रोमोंसे शरीर सबओर आच्छादित है और वे रोम दृश्य व अदृश्य कहेगये है याने कुछ देखपड़ते हैं और कुछ नहीं देख पड़तेहैं ॥ ९ ॥ व मुझसे कहेजातेहुये छह मुख्य अङ्गोको सुनिये कि दो भुजायें और दो ऊरू

नि पृथिव्याःसंस्थितानिच ॥ ५॥ तथात्रधातवःसप्त नामतस्तान्निबोधमे ॥ त्वगसृङ्मांसमेदोस्थिमज्जाशुक्राणिधातवः ॥ ६ ॥ अस्थीन्यत्रशतानिस्युस्त्रीणिषष्ट्यधिकानिच ॥ त्रिंशच्छतसहस्राणि नाडीनांकथितानिच ॥ ७ ॥ षट्पञ्चाशतसहस्राणि तथान्यानितुचैवहि ॥ तावहन्तिरसन्देहे जलंनद्योयथाभुवि ॥ ८ ॥ सार्द्धाभिस्तिसृभिश्छन्नं समन्ताद्रोमकोटिभिः॥शरीरंस्थूलसूक्ष्माभिर्दृश्यादृश्याहितेस्मृताः॥९॥षडङ्गानिप्रधानानि कथ्यमानानिमेशृणु ॥ द्वौबाहूसक्थिनीद्वेच मूर्द्धाजठरमेवच ॥ १० ॥ अन्त्राण्यत्रतथात्रीणि सार्द्धायुतयुतानिच ॥ पुरुषाणांतथास्त्रीणांप्राहुर्वेदविदोद्विजाः ॥ ११ ॥ ऊर्द्ध्वनालमधोवक्त्रं हृदिपद्मंप्रकीर्त्यते ॥ १२ ॥ हृत्पद्मवामतःप्लीहा दक्षिणेस्मात्तथायकृत ॥ मज्जातोमेदसश्चैव वसायाश्चतथाद्विज ॥ १३ ॥ मूत्रस्यचैवपित्तस्य श्लेष्मणःशकृतस्तथा ॥ रक्तस्यचरसस्यात्र गर्ताःशारीरकेस्मृताः ॥ १४ ॥ तेभ्यःप्रवर्तमानास्ते देहंसन्धारयन्त्युत ॥ धमन्यश्चतथासप्त पञ्चमूर्द्धानमास्थिताः ॥ १५ ॥ एकामेढ्र

(मोटीजाघैं) व मस्तक और पेट ॥ १० ॥ और वेदके जाननेवाले ब्राह्मण पुरुषों व स्त्रियों के इस शरीर में पैंतीस हजार आँतैं कहते हैं ॥ ११ ॥ और ऊपर नाल व नीचे मुखवाला कमल हृदयमे कहाजाता है ॥ १२ ॥ व हृदय कमल के बाईओर प्लीहा व इससे दाहिनेओर यकृत् है और हे द्विज ! मज्जा, मेदा व वसा ॥ १३ ॥ और मूत्र, पित्त, श्लेष्मा व विष्ठा, रक्त व रसके गढ़ा इस शरीरमे कहेगये हैं ॥१४॥ उनसे वर्तमान होकर वे देहको धारण करते है और वैसेही बाहर नाड़ी मस्तक में

स्थितहैं॥ १५॥ हे द्विज ! एक नाड़ी लिंगमें प्राप्तहै व एक जिह्वामें स्थितहै और इस देहमें सब नाड़ियां नाभिकमलसे वर्तमानहैं ॥१६॥ कि जिनके मध्यमें शिरमें प्राप्त सुषुम्णा व पिंगला श्रेष्ठहै जोकि नासिकाद्वार में प्राप्तहोकर शरीर के बढ़ाने में भलीभांति स्थित हैं॥ १७॥ और इस देहमें पवन, अग्नि व चन्द्रमा पाच पांच प्रकारका है प्राण, अपान, समान, उदान व व्यानहैं॥ १८॥ और पवनमण्डल कृष्णवर्ण व मातृक होता है एक पलकों का मण्डल, दूसरा चर्ममण्डल ॥ १९॥ तीसरा श्वेतमण्डल कहाहै व चौथा कृष्णमण्डल है और पांचवां नेत्रमण्डल है इस प्रकार पांच मण्डलोंवाला नेत्र होताहै ॥ २०॥ और दो नेत्रके भाग अन्य हैं

गताचैकातथाजिह्वागताद्विज ॥ नाड्यःसर्वाःप्रवर्तन्ते नाभिपद्मात्तथात्रच ॥ १६ ॥ यासांश्रेष्ठाशिरोयाता सुषुम्णाचेतिपिङ्गला ॥ नासिकाद्वारमासाद्य संस्थितेदेहवर्धने ॥ १७ ॥ वायुरग्निश्चन्द्रमाश्च पञ्चधापञ्चधात्रच ॥ प्राणापानसमानाश्च उदानोव्यानएवच ॥ १८ ॥ कृष्णञ्चमण्डलंवातं तथाभवतिमातृकम् ॥ पक्ष्ममण्डलमेकन्तु द्वितीयंचर्ममण्डलम् ॥ १९ ॥ शुक्लंतृतीयंकथितं चतुर्थंकृष्णमण्डलम् ॥ दृग्मण्डलंपञ्चमन्तु नेत्रंस्यात्पञ्चमण्डलम् ॥ २० ॥ अपरेनेत्रभागेद्वे उपाङ्गोपाङ्गएवच ॥ अपाङ्गोनेत्रपर्यन्तो नासामूलमुपाङ्गकः॥ २१॥ वृषणौचतथाप्रोक्तौ मेदोसृक्कफमांसकौ ॥ असृग्मांसमयीजिह्वा सर्वेषामेवदेहिनाम् ॥ २२॥ हस्तयोरोष्ठयोर्मेढ्रे ग्रीवायाञ्चर्मपूर्वकम् ॥ एवमत्रस्थितोजीवो देहेस्मिन्सप्तधातुके ॥ २३ ॥ पञ्चविंशतिकेपार्थ देहेवासोस्यकथ्यते ॥ त्वगसृग्मांसमित्याहुस्त्रिकंमातृसमुद्भवम् ॥ २४ ॥ मेदोमज्जास्थिकंप्रोक्तं पितृजंषट्ककौशिकम् ॥ एवंभूतमयन्देहं पञ्चभूतसमुद्भवैः ॥ २५ ॥ अन्नैर्यथावृद्धिमेति तदहंन

एक उपांग व दूसरा अपाङ्ग नेत्रान्त भाग अपांग है और नासिका की जड़का भाग उपांग है ॥ २१ ॥ और अण्डकोश मेदा, रक्त, कफ व मांससंयुत होते हैं व सबही देहधारियों की जिह्वा रक्त व मांसमयी होतीहै ॥ २२ ॥ व हाथों, ओठोंमें व लिंग और ग्रीवामें चर्मपूर्वक मांस व रक्त होताहै इस प्रकार इस सात धातुवोंवाले शरीर में जीव स्थित है ॥ २३ ॥ हे अर्जुनजी ! पचीस तत्त्ववाले शरीर में इस जीवका वास कहाजाताहै त्वचा, रक्त व मास इन तीनोंको विद्वान् मातासे उत्पन्नहुये कहतेहैं ॥ २४ ॥ और मेदा, मज्जा व अस्थि पितासे उत्पन्न हुये कहेजाते हैं इस प्रकार छह पिण्डोंवाला भूतमय शरीर पञ्चभूतों से उपजे हुये ॥ २५ ॥ अन्नोंसे जिस

प्रकार वृद्धिको प्राप्तहोता है उसको मैं तुमसे कहता हूं कि पिण्डमय ग्रास कवलों के द्वारा शरीरधारियों से भोजन कियेहुये उस अन्नको ॥ २६ ॥ पहले स्थूलाशयमें प्राण पवन दो प्रकारका करताहै कि अन्नके मध्यमे पैठकर अन्नको पृथक् करताहै व जलको भिन्न करताहै ॥२७॥ व अग्निके ऊपर जलको स्थापितकर और उस जल के ऊपर उस अन्नको धरकर और जलके नीचे आपही प्राण पवन स्थितहोकर अग्निको धीरेसे फूंकताहै ॥२८॥ पवनसे धौंकीहुई अग्नि जलको अत्यन्त गर्म करती है और गर्मजल से वह अन्न फिर सबओर से पकता है ॥ २९ ॥ व पकाहुआ अन्न दो प्रकार का होताहै कि कीट अलग होताहै व रस पृथक् होजाता है और बारह

र्णयामिते ॥ तदन्नंपिण्डकवलैर्ग्रासैर्भुक्तञ्चदेहिभिः ॥ २६ ॥ पूर्वंस्थूलाशयेवायुप्राणःप्रकुरुतेद्विधा ॥ सम्प्रविश्यान्नम ध्येतु पृथगन्नंपृथग्जलम् ॥ २७ ॥ अग्नेरूर्ध्वंजलंस्थाप्यतदन्नंतज्जलोपरि ॥ जलस्याधःस्वयंप्राणःस्थित्वाग्निंधम तेशनैः ॥ २८ ॥ वायुनाधाम्यमानोग्निरत्युष्णंकुरुतेजलम् ॥ तदन्नमुष्णतोयेन समन्तात्पच्यतेपुनः ॥ २९ ॥ द्विधाभं वतितत्पक्वं पृथक्किट्टंपृथग्रसम् ॥ मलैर्द्वादशभिःकिट्टमन्नंदेहाद्बहिर्व्रजेत् ॥ ३० ॥ कर्णाक्षिनासिकाजिह्वादन्ताः शिश्नोगुदन्नखाः ॥रोमकूपाणिचैवस्युर्द्वादशैतेमलाशयाः ॥३१॥ हृत्पद्मेप्रतिबद्धाश्च सर्वानाड्यस्समन्ततः ॥ तासांमु खेषुतंसूक्ष्मं व्यानःस्थापयतेरसम् ॥ ३२ ॥ रसेनतेनतानाडीः समानःपूरयेत्पुनः ॥ ततःप्रयान्तिसम्पूर्णास्ताश्चदेहंस मन्ततः ॥ ३३ ॥ ततस्सनाडीमध्यथो रञ्जकेणोष्मणारसः ॥ पच्यतेपच्यमानस्तु रुधिरंत्वग्भवेत्पुनः ॥ ३४ ॥ तत स्त्वग्रोमकेशाश्च प्राणकर्मप्रकीर्त्तितम् ॥ त्यागोविण्मूत्रशुक्राणां गर्भनिर्मोक्षणंतथा ॥ ३५ ॥ अपानकर्मनिर्दिष्टं स्था

मलोंसे भिन्न होकर कीट शरीरसे बाहर चलाजाताहै ॥ ३० ॥ कान, नेत्र, नासिका, जिह्वा, दांत, लिंग, गुदा, नख व रोमोंके छिद्र ये बारह मलके आशय हैं ॥ ३१ ॥ सबओरसे सब नाड़िया हृदय कमलमें बँधी हैं उनके मुखोंमें उस सूक्ष्म रसको व्यानपवन स्थापित करता है ॥ ३२ ॥ फिर समान पवन उस रससे नाडियों को पूर्ण करता है तदनन्तर पूर्णहुई वे नाड़िया सबओर देहमें जातीहैं ॥ ३३ ॥ तदनन्तर नाडियोंके मध्यमें प्राप्त वह रस रंजक ऊष्मासे पकताहै और पकताहुआ वह रस रुधिर होताहै फिर चर्म होताहै ॥ ३४ ॥ इस लिये त्वचा, रोम व केश प्राण पवन का कर्म कहागया है और विष्ठा, मूत्र व वीर्य का त्याग करना व गर्भमोक्ष ॥ ३५ ॥

अपानका कर्म कहागयाहै और गुदाके ऊपर इसका स्थानहै व समान पवन अन्नको धारण करता है व भिन्न करताहै ॥ ३६ ॥ व वचनकी प्रवृत्ति का दायक व सब कर्मोंके बड़े यत्नमें होताहै ॥ ३७ ॥ और हृदय से लगाकर कण्ठतक उदान पवन का स्थान कहागयाहै और हृदय में नित्यही स्थित होकर व्यानपवन देहका भरण पोषण करताहै ॥ ३८ ॥ और धातुवृद्धि को देनेवाला व नेत्रका खोलना, मूँदना इस कर्मको करनेवाला है व पाचक, रंजक और साधक व आलोचक ॥ ३९ ॥ और भ्राजक यह पांच प्रकार की अग्नि शरीर में स्थित है नित्यही पक्वाशय में स्थित होकर पाचक अग्नि अन्नको पचाती है ॥ ४० ॥ और आमाशय में स्थित रंजक

नमस्यगुदोपरि ॥ समानोधारयत्यन्नं विवेचयतिचाप्यथ ॥३६ ॥ वाक्प्रवृत्तिप्रदश्चैव प्रयत्नेसर्वकर्मणाम् ॥ ३७॥ आक्एठमुरसःस्थानमुदानस्यप्रकीर्त्तितम् ॥ व्यानोहृदिस्थितोनित्यं तथादेहभरोपिच ॥ ३८ ॥ धातुवृद्धिप्रदश्चैष नेत्रोन्मेषनिमेषकृत् ॥ पाचकोरञ्जकश्चैव साधकालोचकस्तथा ॥ ३९ ॥ भ्राजकश्चतथादेहे पञ्चधापावकःस्थितः ॥ पाचकस्तु पचत्यन्नं नित्यंपक्वाशयस्थितः ॥४०॥ आमाशयस्थश्चरसंरञ्जकःकुरुतेत्वसृक् ॥ साधकोहृदिसंस्थश्च बुद्ध्याद्युत्साहकारकः ॥ ४१ ॥ आलोकश्चहृदिसंस्थो रूपदर्शनशक्तिकृत् ॥ त्वक्संस्थोभ्राजकोदेहं भ्राजयेन्निर्मलीकृतम् ॥ ४२ ॥ क्लेदकोबोधकश्चैवतर्पणःश्लेष्मकस्तथा॥४३॥अलम्बकस्तथादेहे पञ्चधासोमउच्यते॥ क्लेदकःक्लेदयत्यन्नं नित्यंपक्वाशयस्थितः ॥ ४४ ॥ बोधकोरसनाथश्च रसानामवबोधकः ॥ शिरस्थश्चक्षुरादीनां तर्पणात्तर्पणःस्मृतः ॥ ४५ ॥ सर्वसन्धिगतश्चैव श्लेष्मणःश्मेष्मणांतथा ॥ उरस्थस्सर्वगात्राणामवलम्बमलम्बकः ॥ ४६ ॥ एवंवाय्वग्निसोमैश्च देहोस

अग्नि रस व रक्तको करतीहै व हृदयमें स्थित साधक अग्नि बुद्धिआदिक उत्साहको करती है ॥ ४१ ॥ व हृदयमें भलीभांति टिकीहुई आलोक अग्नि रूप के दर्शनकी शक्ति करनेवाली है और त्वचामें स्थित भ्राजक अग्नि निर्मल कीहुई देहको शोभित करती है व क्लेदक, बोधक, तर्पण व श्लेष्मक ॥ ४२ । ४३ ॥ और अलम्बक यह पांच प्रकारका चन्द्रमा देहमें स्थितहै पक्वाशय में स्थित क्लेदक नित्यही अन्न को भिगोता है ॥ ४४ ॥ व जिह्वामें टिकाहुआ बोधक रसोंका ज्ञान करानेवाला है और चक्षुआदिकोंकी तृप्ति करनेसे शिरमें टिकाहुआ तर्पण कहागयाहै॥४५॥ व सबजोड़ोंमें प्राप्त श्लेष्मण श्लेष्म करताहै याने सन्धियों को जोड़ता है और हृदय में

टिकाहुआ अवलम्बक सब शरीरका अवलम्ब करताहै ॥ ४६ ॥ इस प्रकार पवन,अग्नि व चन्द्रमासे यह जीव भलीभांति धारण कियागयाहै स्रोत याने कर्णादिक आ-
काश तत्त्वसे उत्पन्न हैं व कोठेकी पवित्रता उसी देहसे होती है ॥ ४७ ॥ और इस शरीरमें नासिका,केश, नखोंको पार्थिव जानिये अस्थि,धैर्य,गुरुता,त्वचा,मांस,हृदय,
गुदा,नाभि, मेदा,यकृत,मज्जा,अन्न, आमाशय,नाडी, नसैं व पकाशय वेदके जाननेवाले इसीप्रकार कहतेहैं ॥४८।४९॥ नेत्रोंका शुक्लमण्डल क्रमसे पैत्तिक होताहै और
नख मज्जा व इन्द्रियों की निर्मलता, वीर्य यह हृदय में क्रमसे होताहै ॥ ५० ॥ इस प्रकार बारह भांतिका परिणाम इस शरीरका कहाजाता है इस प्रकार पुण्यके लिये

न्धारितस्त्वसौ ॥ आकाशजानिस्रोतांसि तथाकोष्ठविविक्तता ॥ ४७ ॥ पार्थिवानीहजानीहि घ्राणकेशनखानिच ॥ अ
स्थीनिधैर्यंगुरुता त्वङ्मांसहृदयंगुदम् ॥ ४८ ॥ नाभिर्मेदोयकृन्मज्जा अन्नमामाशयःशिराः ॥ स्नायुपक्वाशयश्चैवं
प्राहुर्वेदविदोद्विजाः ॥ ४९ ॥ नेत्रयोर्मण्डलंशुक्लं क्रमाद्भवतिपैत्तिकम् ॥ नखमज्जाखवैमल्यं शुक्रंहृदिक्रमाद्भवेत् ॥
५० ॥ एवंद्वादशधाचास्य परिणामःप्रकीर्त्यते ॥ एवमेवविनिष्पन्नं शरीरंपुण्यहेतवे ॥ ५१ ॥ यथैवस्यन्दनःशुभ्रो भा
रसंवाहनायवै ॥ तैलाभ्यङ्गादिभिर्यत्नैर्बहुभिःपालनेनवा ॥ ५२ ॥ किंकृत्यंसाध्यतेतेन यदिभारंवहेन्नहि ॥ सर्वमेतेनदेहे
न किंकृत्यंभोजनोत्तमैः ॥ ५३ ॥ वर्द्धतेनतुचेत्पुण्यं कुरुतेपशुवच्चतत् ॥ भवन्तिचात्रयेश्लोकास्तान्सर्वानवधारय ॥
५४ ॥ यस्मिन्कालेचदेशेच वयसायादृशेनच ॥ कृतंशुभाशुभङ्कर्म तत्तथातेनभुज्यते ॥ ५५ ॥ तस्मात्सदाशुभंकार्यं
कर्तव्यञ्चसुखार्थिभिः ॥ विच्छिद्यन्तेन्यथाभोगा ग्रीष्मेकुसरितोयथा ॥ ५६ ॥ यस्मात्पापेनदुःखानि तीव्राणिसुबहू

यह शरीर सिद्धहुआहै ॥ ५१ ॥ जैसे कि उत्तम रथ भार लेचलने के लिये होता है तैलाभ्यंग इत्यादिक बहुत यत्नो से व पालन से ॥ ५२ ॥ उससे क्या कार्य साधन
कियाजाता है कि यदि वह भारको न लेचलै तो इस शरीरसे क्या सब कार्यहै क्योंकि यदि उत्तम भोजनोसे बढताहै पुण्य नहीं करताहै तो वह शरीर पशु की नाई
है इस विषय में जो श्लोकहै उन सबों को सुनिये ॥ ५३ । ५४ ॥ कि जिस समय में व जिस देशमे जैसी अवस्था से शुभाशुभ कर्म कियागया है वह उससे वैसेही
भोग कियाजाता है ॥ ५५ ॥ इस लिये सुख चाहनेवाले पुरुषोंको सदैव उत्तम कार्य करना चाहिये क्योंकि अन्यथा सुख नष्ट होजाते हैं जैसे कि ग्रीष्ममें क्षुद्रनदियां

सूखजाती हैं ॥ ५६ ॥ जिसलिये पातक के कारण बहुत से तीव्र दुःख होते हैं इस लिये पातक न करना चाहिये क्योंकि वह शरीर को पीड़ाकारक है ॥ ५७ ॥ हे साधो ! इस प्रकार मैंने शक्तिके अनुकूल तुम्हारे इस प्रश्नको वर्णन किया कि जिस प्रकार प्राणी पैदाहोताहै और जिस भांति नष्टहोताहै उसको सुनिये ॥ ५८ ॥ कि आयुर्बल कर्मसे क्षीण होनेपर जब मनुष्यकी मृत्यु प्राप्तहोतीहै तब अपने कर्मके वशमें प्राप्त जीव यमदूतोंसे खींचाजाता है ॥ ५९ ॥ पुण्यके नाशहोनेपर पञ्चतन्मात्राओं समेत और बुद्धि अहङ्कारसे संयुत जीव यमदूतोंकी फँसरियों से बँधकर शरीरको छोड़देताहै ॥ ६० ॥ पुण्यकर्मसे जीव शिरके सात छिद्रोंके द्वारा याने मुख नेत्रादिकोंसे

न्यपि ॥ तस्मात्पापन्नकर्त्तव्यमात्मपीडाकरंहितत् ॥ ५७ ॥ एवन्तेवर्णितस्साधो प्रश्नोयंशक्तितोमया ॥ यथासञ्जायतेप्राणी यथाश्रृणुप्रलीयते ॥ ५८ ॥ आयुष्येकर्मणाक्षीणे सम्प्राप्तमरणेनृणाम् ॥ स्वकर्मवशगोदेही कृष्यतेयमकिङ्करैः ॥ ५९ ॥ पञ्चतन्मात्रसहितस्समेतोबुद्ध्यहङ्कृतैः ॥ पुण्यापायेयमैःपाशैर्बद्धोजीवस्त्यजेद्वपुः ॥ ६० ॥ शिरस्सप्तभिश्छिद्रैर्निर्गच्छेत्पुण्यकर्मणा ॥ अधस्तःपापिनोयान्ति योगिनोब्रह्मरन्ध्रतः ॥ ६१ ॥ तत्क्षणात्सोथगृह्णातिशारीरंचातिवाहिकम् ॥ अङ्गुष्ठपर्वमात्रन्तु स्वप्राणैरेवनिर्मितम् ॥ ६२ ॥ ततस्तस्मिन्स्थितञ्जीवं देहंयमभटास्तथा ॥ बद्ध्वानयन्तिमार्गेण याम्येनचयथाबलम् ॥ ६३ ॥ तप्ताम्बरीषतुल्येन अयस्तप्तनिभेनच ॥ प्रतप्तसिकतेनेव ताम्रतप्तनिभेनच ॥ ६४ ॥ षडशीतिसहस्राणियोजनानांमहीतलात् ॥ कृष्यमाणोयमपुरीं नीयतेपापकृद्भटैः ॥ ६५ ॥ क्वचिच्छीतंघर्मउग्रमन्धकारंक्वचिन्महत् ॥ अग्निसंकाशवदनैः काककङ्ककजम्बुकैः ॥ ६६ ॥ मक्षिकादंशमशकैर्भक्ष्यतेसर्पवृ

निकलताहै और पापी पुरुष नीचे के (गुदा) मार्गसे जाते हैं व योगीजन ब्रह्मछिद्रसे जातेहैं ॥ ६१ ॥ इसके अनन्तर वह अपनेही प्राणोंसे निर्माण कियेहुये व अँगूठा के पोढ़भर और बहुत चलनेवाले शरीर को ग्रहण करता है ॥ ६२ ॥ तदनन्तर उस शरीरमें जीव टिकता है और यमदूत शरीरको बांधकर यममार्गके द्वारा बलके अनुसार लेजाते हैं ॥ ६३ ॥ जो मार्ग कि तचेहुये भारके सदृश व तचेलोहके समान और तचे ताम्र के सदृश बालूवाला है ॥ ६४ ॥ पृथ्वीसे छियासी हज़ार योजन यमदूतों से खींचा जाताहुआ पापकारी पुरुष यमपुरीमें प्राप्त कियाजाताहै ॥ ६५ ॥ कहीं जाड़ा व भयङ्कर उष्णता और कहीं बड़ा अन्धकारहै और अग्निकेसमान मुखवाले

कौवा, कङ्क, सियार ॥ ६६ ॥ मक्षिका, डाँस, मच्छड़ साँप व बीछियों से खायाजाता है और उनसे खायाहुआ भी प्राणी चिल्लाता है परन्तु मरता नहीं है ॥ ६७ ॥ और कहीं भयंकर राक्षसों से भक्षण कियाजाताहै व खींचाजाताहै और फेंकाजाताहै और अत्यन्त भयंकर बालूसे जलता हुआ प्राणी लेगया जाताहै ॥ ६८ ॥ और उस बड़े दुस्तर मार्गको प्राणी दश मुहूर्त्त याने आठ घण्टे में जाता है और उस समयको भी वह प्राणी वर्षभर के बराबर मानता है ॥ ६९ ॥ और पीब, रक्तसे कीचड़वाली भयंकर नदीको उतरताहै जो नदी कि बालरूपी सेवार व हरित भूमिवाली वैतरणी नामकहै ॥७०॥ तदनन्तर यमदूतोंसे वह प्राणी यमराजके आगे खड़ा कियाजाताहै

श्चिकैः ॥ भक्ष्यमाणोपितैर्जन्तुः क्रन्दतेम्रियतेनहि ॥६७॥क्वचिच्चभक्ष्यतेघोरै राक्षसैःकृष्यतेस्यते ॥ दह्यमानोतिघोरेण सैकतेनचनीयते ॥ ६८ ॥ मुहूर्त्तैर्दशभिर्याति तंमार्गमतिदुस्तरम् ॥ तत्कालंचाप्यसौवेत्ति पुरुषोवर्षसम्मितम् ॥ ६९ ॥ तार्यतेचनदीङ्घोरां पूयशोणितकर्दमाम् ॥ नदींवैतरणीन्नाम केशशैवलशाद्वला ॥ ७० ॥ ततोयमस्यपुरतः स्थीयतेयमकिङ्करैः ॥ पापीमहाभयंपश्येत्कालान्तकमुखैर्वृतम् ॥ ७१ ॥ पुण्यकर्मासौम्यरूपं धर्मराजंतदाकिल ॥ मनुष्या एवगच्छन्ति यमलोकन्नचापरे ॥ ७२ ॥ मरणानन्तरन्तेषांजन्तूनांयोनिप्रेरणम् ॥ ततोहिचैतेमनुजाः श्रूयन्तेनान्यजन्तवः ॥ ७३ ॥ धार्मिकःपूज्यतेतत्र पापःपाशगतोभवेत् ॥ धार्मिकाश्चयथायान्ति तंमार्गंवच्मितेद्विज ॥ ७४ ॥ आरामद्रुमदातारः फलपुष्पवतांयथा ॥ छाययाचसुखंयान्ति तथायेछत्रदानराः ॥ ७५ ॥ उपानहःप्रदाःपानैर्वितृषामूर्त्तिधा

पापी पुरुष काल व अन्तक इत्यादिकोंसे घिरेहुये महाभयानक यमराजको देखताहै ॥७१॥ और पुण्यकर्म करनेवाला पुरुष उस समय सौम्यरूपवाले धर्मराजको देखता है और मनुष्यही यमलोकको जातेहैं अन्य प्राणी नहीं जातेहैं ॥ ७२ ॥ क्योंकि उन जन्तुवोंके मरण उपरान्त योनिमें प्रेरणा होतीहै उसी कारण ये मनुष्य नरकमें सुने जाते हैं अन्य प्राणी नहीं सुनेजाते हैं ॥ ७३ ॥ धर्मवान् पुरुष वहां पूजाजाता है और पापी मनुष्य फँसरी में प्राप्त होताहै व हे ब्राह्मण ! जिस प्रकार धर्मवान् पुरुष जातेहैं उस मार्गको तुमसे कहताहूं ॥ ७४ ॥ बगीचा व वृक्षों के देनेवाले पुरुष जिस प्रकार फल फूलवाले वृक्षोंकी छायासे जातेहैं वैसेही जो छतुरी देने

वाले मनुष्य हैं वे जातेहैं ॥ ७५ ॥ व पनहियों को देनेवाले मूर्त्तिधारी पुरुष जलपान से प्यासरहित होतेहैं और सवारियों के देनेवाले और शय्या व आसन
देनेवाले पुरुष विमानोंके द्वारा जाते हैं ॥ ७६ ॥ और भोजन को देनेवाले पुरुष भक्ष्यभोजनों से तृप्तहोकर जातेहैं व दीपकको देनेवाले पुरुष प्रकाश समेत जातेहैं
और गऊ देनेवाले नर उस नदीमें सुखपूर्वक जातेहैं ॥ ७७ ॥ व श्रीसूर्यनारायण और महादेव व पुरुषोत्तम विष्णुजी को जो मनुष्य जन्मसे लगाकर भक्तिसे पूजते
हैं वे यमदूतोंसे पूजित होकर जातेहैं ॥ ७८ ॥ पृथ्वी, गऊ, सुवर्ण, लोह, तिल व रुई, लोन और सप्तधान्यको देकर मनुष्य सुखपूर्वक जातेहैं ॥ ७९ ॥ तदनन्तर वहांपर

रिणः ॥ विमानैर्यानदायान्ति तथाशय्यासनप्रदाः ॥ ७६ ॥ भक्ष्यभोज्यैस्तथातृप्ता यान्तिभोजनदायिनः ॥ दीपप्र
दाःप्रकाशेन गोप्रदास्तांनदींसुखम् ॥ ७७ ॥ श्रीसूर्यंचमहादेवं भक्त्यायेपुरुषोत्तमम् ॥ जन्मप्रभृतितेयान्ति पूज्यमा
नायमानुगैः ॥ ७८ ॥ महींगाङ्काञ्चनंलोहं तिलान्कर्पासमेवच ॥ लवणंसप्तधान्यञ्च दत्त्वायान्तिसुखन्नराः ॥ ७९ ॥ ते
षांतत्रगतानाञ्च पापिनांपुण्यकर्मणाम् ॥ चित्रगुप्तःप्रेतयोनिं निरूपयतिवैततः ॥ ८० ॥ प्रेतलोकेसवसति ततःसंवत्स
रन्नरः ॥ वत्सरेणाचतेनास्य शरीरमभिजायते ॥ ८१ ॥ सोदकुम्भमथान्नादि बान्धवैर्यस्यदीयते ॥ दिनेदिनेसतद्भुक्त्वा
तेनवृद्धिंप्रयातिच ॥ ८२ ॥ पूर्वदत्तमथान्नाद्यं प्राप्नोतिस्वयमेवच ॥ स्वयंयेननदत्तन्तु तथादातानविद्यते ॥ ८३ ॥ न
चाप्युदकदातासौ क्षुत्तृड्भ्यामपिपीड्यते ॥ बान्धवैश्चोदकंदत्तं नदीभूत्वोपतिष्ठते ॥ ८४ ॥ मासिमासिचयच्छ्राद्धं षो

प्राप्तहुये उन पापी व पुण्यकर्मी मनुष्यों की प्रेतयोनि को चित्रगुप्त निरूपण करते हैं ॥ ८० ॥ तदनन्तर वह पुरुष वर्षभरतक प्रेतलोक में बसताहै और उसी वर्षभर
में इसका शरीर होजाताहै ॥ ८१ ॥ और जलकुम्भ समेत अन्नादिक जिस पुरुषको भाइयों से दियाजाता है वह दिन दिनमें उसको भोजनकर उससे वृद्धिको प्राप्त
होताहै ॥ ८२ ॥ पहले दियेहुये अन्नादिक को वह आपही प्राप्त होताहै और जिसने आपभी नहीं दियाहै और देनेवाला नहीं विद्यमानहै ॥ ८३ ॥ और जल देनेवाला
भी नहीं है यह पुरुष क्षुधा, प्याससे पीड़ित होताहै और भाइयों से दियाहुआ जल नदी होकर समीप प्राप्त होताहै ॥ ८४ ॥ और षोड़श श्राद्धपूर्वक जो महीने

महीने में श्राद्धहोती है वह जिसकी नहीं कीजाती है वह प्रेतयोनि से नहीं छूटता है ॥ ८५ ॥ मनुष्यों के दिनसे प्रेतलोक में दिन होताहै इस लिये वर्षभरतक प्रति-
दिन प्रेतके लिये अन्न देना चाहिये ॥ ८६ ॥ उन श्मशानिक यमदूत गणोंको मैं प्रणाम करताहूं जोकि शीत, पवन व आतप (घाम) से संयुत पापी पुरुषकी रक्षा
नहीं करते हैं ॥ ८७ ॥ जैसे कि विषम (कठिन) मनुष्य बन्धन में किसी मनुष्य की नहीं रक्षा करते हैं षोड़श श्राद्धपूर्वक जिसको प्रेतपिण्ड नहीं दियेजाते हैं
प्रेतता से उसकी मुक्तियुगों के बाद भी नहीं होतीहै इस लिये पुण्यवान् भाइयोंसे सपिण्डी करने पर मनुष्य ॥ ८८ । ८९ ॥ पूर्ण वर्षभर होनेपर सम्पूर्ण देहको प्राप्त

डशश्राद्धपूर्वकम् ॥ तन्नैवक्रियतेयस्य प्रेतत्वात्सनमुच्यते ॥ ८५ ॥ मानुषेणादिनेनैव प्रेतलोकेदिनंस्मृतम् ॥ तस्माद्दि
नेदिनेदेयं प्रेतायान्नञ्चवत्सरम् ॥ ८६ ॥ तांश्चश्मशानिकानेव गणान्याम्यान्नमाम्यहम् ॥ शीतवातातपोपेतं येनर
क्षन्तिपापिनम् ॥ ८७ ॥ यथानबन्धनेकश्चिद्रक्ष्यतेविषमैर्नरैः ॥ प्रेतपिण्डानदीयन्ते षोडशश्राद्धपूर्वकाः ॥ ८८ ॥ य
स्यतस्यनमोक्षोस्ति प्रेतत्वाद्दैयुगैरपि ॥ ततस्सपिण्डीकरणे बान्धवैस्सुकृतैर्नरः ॥ ८९ ॥ पूर्णेसंवत्सरेदेहं सम्पूर्णप्रति
पद्यते ॥ पापात्माघोररूपन्तु धार्मिकोदिव्यमुत्तमम् ॥ ९० ॥ ततस्सनरकंयाति स्वर्गंवास्वेनकर्मणा ॥ रौरवाद्याश्चन
रकाः पातालतलसंस्थिताः ॥ ९१ ॥ सुराद्याःसत्यपर्यन्तं स्वर्लोकस्योर्ध्वमाश्रिताः ॥ इतिहासपुराणेषु वेदस्मृतिषुयत्कृत
म् ॥ ९२ ॥ पुण्यन्तेनभवेत्स्वर्गो नरकस्तद्विपर्ययात् ॥ तत्रापिकालंवसति कर्मणामनुरूपतः ॥ ९३ ॥ अर्वाक्सपिण्डी
करणं यस्यवर्षाच्चवाकृतम् ॥ प्रेतत्वमपितस्यापि प्रोक्तंसंवत्सरंध्रुवम् ॥ ९४ ॥ यैरिष्टञ्चत्रिभिर्भेदैरर्चितंवासुरत्रयम् ॥

होताहै पापात्मा भयङ्कररूपको प्राप्त होताहै व धर्मवान् उत्तम दिव्यरूप को प्राप्त होताहै ॥९०॥ तदनन्तर वह पुरुष अपने कर्मसे स्वर्ग या नरकको जाताहै और रौरव
आदिक नरक पातालतलमें स्थितहैं॥९१॥ और देवादिक स्वर्गलोकके ऊपर सत्यलोक तक टिकेहैं इतिहासपुराणों और वेद,स्मृतियों में जो पुण्य कियागयाहै उससे स्वर्ग
होताहै और उसके विपरीत नरक होता है और वहांभी कर्मोंके अनुसार समयतक बसताहै ॥ ९२ । ९३ ॥ और वर्षभर के इस पार जिसका सपिण्डीकरण होताहै
उसका भी प्रेतत्व निश्चयकर वर्षभरतक कहागया है ॥९४॥ जिन्होंने तीन भेदों से यज्ञ कियाहै या तीन देवताओंका पूजन कियाहै व वैसेही जो युद्धमें मारेगयेहैं वे

प्रेतलोक को नहीं जातेहैं ॥ ६५ ॥ केवल पुण्य से प्राणी पवित्र स्वर्गको जाताहै व केवल पापसे अन्धतम नरक को जाताहै और पाप पुण्यके मिश्रित होनेसे स्वर्ग व नरकको प्राप्तहोता है और इस प्राणीका वैसाही शरीर होताहै ॥ ६६ ॥ उत्पत्ति, मृत्यु व परलोकवास तुमसे किये हुये जिन तीन प्रश्नोंको मेरे पिताने कहाथा मैंने उनको वर्णन किया फिर क्या चाहते हो उसको मैं तुमसे कहूं ॥ ६७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेमरडूकेनप्रश्नत्रयवर्णनंनामपञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥

दो० । जयादित्य नामक रविहिं थप्यो कमठ द्विजराज । छियालिसें अध्याय में सोइ चरित सुखसाज ॥ अतिथि बोला कि तुमने जो इस परलोक के स्वरूपको

प्रेतलोकन्नतेयान्ति यथायेसमरेहताः ॥ ९५ ॥ शुद्धेनपुण्येनदिवञ्चशुद्धं पापेनशुद्धेनतथातमोन्धम् ॥ मिश्रेणस्वर्गन्न रकञ्चयाति देहस्तथैवास्यभवेच्चतादृक् ॥ ९६ ॥ प्रश्नत्रयञ्चेतितवप्रणीतमुत्पत्तिमृत्यूपरलोकवासम् ॥ यदागुरुर्मेस मुदाजहार किम्भूयइच्छस्युततद्ददामि ॥ ९७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डे मरडूकेनप्रश्नत्रयवर्णनन्नाम पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

अतिथिरुवाच ॥ यदेतत्परलोकस्य स्वरूपमाहतंत्वया ॥ आगमंसमुपाश्रित्य तत्तथैवनसंशयः ॥ १ ॥ किंत्वत्रना स्तिकाःपापास्संदिह्यन्तेल्पचेतनाः ॥ तेषान्निस्संशयकृतं वेदकर्मफलंहितत् ॥ २ ॥ इहैवकस्यकस्यैव कर्मणःपापकस्य च ॥ प्रभावात्कीदृशोजायेत्कमठत्वंवदवेत्सिचेत् ॥ ३ ॥ कमठउवाच ॥ सर्वमेतत्प्रवक्ष्यामि स्थिरोभूत्वाशृणुष्वच ॥ यथा ममगुरुःप्राह यन्मेचेतसिसंस्थितम् ॥ ४ ॥ ब्रह्महाक्षयरोगीस्यात्पञ्चपातकिनस्त्वमी ॥ सर्वसुकसर्वरोगीस्यात्सुरापः

वर्णन किया वह शास्त्र के आश्रितहोकर वैसाही है इसमें सन्देह नहीं है ॥ १ ॥ परन्तु इस विषय में थोड़ी बुद्धिवाले, पापी, नास्तिक सन्देह को प्राप्त होतेहैं उनका निस्सन्देह किया हुआ यह वेदकर्मका फल होताहै ॥ २ ॥ हे कमठ ! किस किस पापकर्म के प्रभाव से इस संसार में कैसा मनुष्य पैदाहोताहै यदि जानते हो तो इसको कहिये ॥ ३ ॥ कमठ बोला कि मैं इस समस्त चरित्रको कहताहूं स्थिरहोकर सुनिये कि जिस प्रकार मेरे पिताने कहाहै और जो मेरे चित्तमें भलीभांति टिकाहै ॥ ४ ॥ कि ये पांच पातकी

हैं याने ब्रह्मघाती क्षयरोगी होताहै व सर्वभक्षी सब रोगोंवाला होताहै और मदिरा पीनेवाला श्यामदांतोंवाला होताहै ॥ ५ ॥ सोना चुरानेवाला मनुष्य कुत्सितनखोंवाला होताहै व गुरुकी शय्यापै बैठनेवाला पुरुष दुष्टचर्मवाला होताहै और साधुवोंकी निन्दा सुनकर मनुष्य बहिरा होताहै ॥ ६ ॥ और आपही अपने यशको कहनेवाला पापी मनुष्य गूंगा होताहै और गुरुवों की आज्ञाका लोप करनेवाला मनुष्य अपस्मारी (मिरगी रोगवाला) होताहै ॥ ७ ॥ व उन गुरुवों का अपमान करनेवाला पुरुष कीड़ा होताहै और साधुजनों की द्रव्य चुराने के लिये मनुष्य जितने पग देताहै ॥ ८ ॥ उतनेही वर्षतक वह नीचनर पंगुता को प्राप्तहोताहै और जो

श्यावदन्तकः ॥५॥ सुवर्णचौरःकुनखी दुश्चर्मागुरुतल्पगः ॥ निन्दामाकर्ण्यसाधूनां बधिरस्सम्प्रजायते ॥६॥ स्वयंकीर्त्तिकथश्चापि मूकःपापोभिजायते ॥ आज्ञालोपीगुरूणाञ्चअपस्मारीभवेन्नरः ॥ ७ ॥ अवज्ञाकारकस्तेषां कृमिरेवाभिजायते ॥ चौर्यार्थंसाधुद्रव्याणां दद्याद्यावत्पदानिच ॥८॥ तावद्वर्षाणिपङ्गुत्वं सप्राप्नोतिनराधमः ॥ दत्त्वाहरतितद्भूयो जायतेकृकलासकः॥कुपितान्नप्रसाद्यैव पूज्यान्स्याच्छीर्षरोगवान् ॥९॥ रजस्वलाञ्चगच्छंश्च चाण्डालस्सम्प्रजायते॥ १० ॥ वस्त्रापहारीश्वित्रीस्यात्कुष्ठकृष्णीतथाग्निदः ॥ दर्दुरोरूपहारीस्यात्कूटसाक्षीमुखेगदी ॥ ११ ॥ परदाराभिगमने रतःस्यादक्षिरोगवान् ॥ प्रतिज्ञांचाप्यकुर्वन्वा अल्पायुर्जायतेनरः ॥ १२ ॥ विप्रवृत्तापहारीस्याज्जीर्णरोगीसदाधमः ॥ नैष्ठिकान्नाशनाद्भूयान्मनुजोरोगवान्सदा ॥ १३ ॥ पत्नीबहुत्वेत्वेकायां रतोमेदःक्षयीभवेत् ॥ स्वामिनाधर्ममुक्तो

द्रव्यको देकर फिर हरलेताहै वह गिरगिटहोता है ॥ ९ ॥ और पूजनेयोग्य कोपित पुरुषों को न प्रसन्न कराकर मस्तक के रोगवाला होताहै और रजस्वला स्त्रीसे मैथुन करनेवाला पुरुष चाण्डाल होताहै ॥ १० ॥ व वसन हरनेवाला नर मण्डलकुष्ठवाला होताहै व अग्नि देनेवाला कालेकुष्ठवाला होताहै व चांदी को हरनेवाला पुरुष मेढक होताहै और झूठी गवाही देनेवाला मनुष्य मुखरोगवाला होताहै ॥ ११ ॥ और पराई स्त्रियोंके गमन मे परायण पुरुष नेत्ररोगवाला होताहै और प्रतिज्ञा को न करताहुआ पुरुष थोड़ी आयुर्बलवाला होताहै ॥ १२ ॥ व ब्राह्मण की जीविका को हरनेवाला नीचनर सदैव जीर्णरोगवाला होता है और ब्रह्मचारी का अन्न

भोजन करनेसे मनुष्य सदैव रोगवान् होता है ॥१३॥ व बहुत स्त्रियोंके होनेपर जो एक ही स्त्रीमें स्नेह करता है वह मेदक्षयी होताहै और जिससे स्वामीने धर्मको कहा और वह उसको पाप समेत करता है ॥ १४ ॥ या आपही सब वस्तुको खाजाता वह अज्ञानी पुरुष जलोदररोगवाला होताहै और पीड़ित होतेहुये दुर्बल को जो बलवान् मनुष्य देखता है ॥ १५ ॥ वह अङ्गहीन होताहै व अन्नको चुराकर मनुष्य बैल होता है और व्यवहार में पक्षपात करनेवाला पुरुष जिह्वारोगवाला होता है ॥ १६ ॥ व धर्ममें लगेहुये पुरुषको मनाकर पुरुष स्त्रीसे वियोगी होताहै और आपही भोजन बनानेवाला जो पहले भोजन करताहै वह गलेके रोगको प्राप्तहोता

यस्तंसाधेनसमाचरेत् ॥ १४ ॥ स्वयंवाभक्षयेद्द्रव्यं समूढःस्याज्जलोदरी ॥ दुर्बलंपीड्यमानंयो बलवान्समुपेक्षते ॥ १५ ॥ अङ्गहीनःसचभवेदन्नंहृत्वावृषोभवेत् ॥ व्यवहारेपक्षपाती जिह्वारोगीभवेन्नरः ॥ १६ ॥ धर्मप्रवृत्तंसंवार्य पत्न्यासहवियोगवान् ॥ स्वयंपाकाग्रभोजीयो गलरोगमवाप्नुयात् ॥१७॥ पञ्चयज्ञानकृत्वैव भोक्तास्याद्ग्रामसूकरः ॥ पर्वमैथुनकृन्मेही परित्यज्यस्वगेहिनीम् ॥ १८ ॥ गणिकादिरक्तोमूढात्मा खल्वाटोवैनरोभवेत् ॥ परिक्लीणानिमित्रबन्धून्स्वामिनन्दयितागुगान् ॥ १९ ॥ परित्यज्यनिवृत्तात्मा क्लिष्टवृत्तिस्सदाभवेत् ॥ लब्ध्वानोपचरेद्यस्तु पितरौस्वामिनंगुरुम् ॥ २० ॥ प्राप्तद्रव्यश्चातिकष्टात्परिभ्रंशोर्थतोभवेत् ॥ विश्वस्तस्यापहारीयो दुःखानांभाजनंभजेत् ॥ २१ ॥ दुर्बलोब्रह्मवाहीस कुटिलोयोभवेत्सदा ॥ जन्मान्धश्चापियोगाघ्नो निष्पशुर्दुःखदोगवाम् ॥ २२ ॥ निर्दयोगोषुयोमा

है ॥ १७ ॥ और पञ्चयज्ञोंको न करके भोजन करनेवाला मनुष्य ग्रामसूकर होता है व पर्वों में मैथुन करनेवाला प्रमेही होताहै अपनी स्त्रीको छोड़कर ॥ १८ ॥ वेश्यादिकों में स्नेह करनेहारा मूढ़ चित्तवाला पुरुष खल्वाट अर्थात् खौरारोगवाला होताहै व क्लेशित मित्र, बन्धु, स्वामी, स्त्री व सेवकोंको ॥ १९ ॥ छोड़कर निवृत्तचित्तवाला पुरुष सदैव क्लेशित जीविकावाला होताहै और जो छलसे माता, पिता, स्वामी व गुरुकी सेवा करता है ॥ २० ॥ वह बड़े दुःखसे द्रव्यको पाकर धनसे भ्रष्टहोता है विश्वास कियेहुये पुरुषकी द्रव्यको जो हरलेताहै वह दुःखोंका पात्र होता है ॥ २१ ॥ और जो सदा कुटिल होकर ब्राह्मणों से भार लेचलाता है वह दुर्बल होता है

व जो गोघाती है वह जन्मान्ध होताहै और गौवोंको जो दुःखदायी होता है वह पशुहीन होताहै ॥ २२ ॥ और जो माघमें गौवोंमें निर्दयी होताहै वह सदैव मार्गमें कष्टको प्राप्तहोताहै और जो सभामे पक्षपाती होताहै वह गलगण्डरोगी होताहै ॥२३॥ व सदैव क्रोधी पुरुष चाण्डाल होताहै और चुगुली करनेवाला मनुष्य मुखमें दुर्गन्ध-वाला होताहै व छाग बेचनेवाला पुरुष बहेलिया होताहै और कुण्ड (दोगला) पुरुषके यहां भोजन करनेवाला सेवक होताहै ॥ २४ ॥ नास्तिकपुरुष तिलपीड़क (तेली) होताहै व श्रद्धाहीन नर आयुर्बलरहित होताहै अभक्ष्य भक्षण करनेवाला नर गण्डमाला रोगवाला होताहै और सबको दुःख करनेवाला दुःखी होताहै ॥२५॥ व अन्याय से ज्ञान ग्रहण करनेवाला मनुष्य मूर्ख होताहै और शास्त्रोंको चुरानेवाला नर केकराक्ष (कञ्जा) होताहै व जो पुरुष पवित्र कथासे वैर करता है ॥ २६ ॥ नरक से

घे सदासोध्वसुकष्टगः ॥ पक्षपातीसभायांयो गलगण्डीसजायते ॥ २३ ॥ सदाक्रोधीचचाण्डालः पूतिवक्त्रश्चसूचकः ॥ अजविक्रयकृद्व्याधः कुण्डाशीभृतकोभवेत् ॥ २४ ॥ नास्तिकस्तिलपीडीस्यादश्रद्धोगतजीवितः ॥ अभक्ष्यादोगण्डमाली विषादीसर्वदुःखकृत् ॥ २५ ॥ अन्यायतोज्ञानग्राही मूर्खोभवतिमानवः ॥ शास्त्रचौरःकेकराक्षः कथांपुण्यांचद्वेष्टियः ॥ २६ ॥ कृमिवक्त्रस्सचभवेद्विभ्रष्टोनरकात्कुधीः ॥ देवद्विजगवांवृत्तिहारकोबहुभक्षकृत् ॥ २७ ॥ तडागारामभेत्तायो भवेद्विकलपाणिकः ॥ व्यवहारेछलग्राही भृत्यग्रस्तोभवेन्नरः ॥ २८ ॥ सदाप्रमेहरोगीस्यात् परदाररतोनरः ॥ वातरोगीकुवैद्यःस्याद्दुश्चर्मागुरुतल्पगः ॥ २९ ॥ सदामेहीपशुरतिर्गोत्रस्त्रीमैथुनेपशुः ॥ स्वसारंमातरंपुत्रवधूंग

भ्रष्टहोकर दुष्ट बुद्धिवाला वह पुरुष कीटमुखवाला होताहै व देवता, ब्राह्मण और गौवोंकी जीविका को हरनेवाला मनुष्य बहुत भोजन करनेवाला होताहै ॥ २७ ॥ और तड़ाग,बगीचा को जो तोडता है वह व्याकुल हाथोंवाला होताहै व व्यवहार में छलको ग्रहण करनेवाला पुरुष सेवकों से ग्रसाहुआ होताहै ॥ २८ ॥ और पराई स्त्रीसे प्रीति करनेवाला पुरुष सदैव प्रमेहरोगी होताहै व निन्दित वैद्य वातरोगी होताहै और गुरुकी शय्या या स्त्रीमें गमन करनेवाला पुरुष दुष्टचर्मवाला होता है ॥२६॥ और पशुओं से मैथुन करनेवाला पुरुष सदैव प्रमेही होताहै और वंशवाली स्त्रीसे मैथुन करनेवाला पुरुष पशु होता है और बहन व माता व पतोहू से गमन

१ सौभाग्यवती स्त्री में अन्य पुरुष से उत्पन्न हुये पुत्रको कुण्ड कहते हैं ॥

करनेवाला वीर्यरहित होताहै ॥ ३० ॥ कृतघ्न पुरुष सब कार्यों की निष्फलता को भोग करताहै हे ब्रह्मन् ! मैंने तुमसे पापियों का यही वृत्तान्त वर्णन किया ॥ ३१ ॥
और सब वृत्तान्तके वर्णन करनेमें चित्रगुप्त भी मोहित होतेहैं ये मनुष्य नरकसे भ्रष्टहोकर हज़ारों योनियोंको भोगकर ॥ ३२ ॥ इसप्रकारके लक्षणोंसे चिह्नित होतेहैं जो,
धर्मको नहीं मानते हैं और जो व्यसनोंसे जीतेहुयेहैं ॥ ३३ ॥ वे ये शेष पापी पुरुष अनुमानसे जाननेयोग्यहैं और जिनका पाप नाशको प्राप्त होगयाहै व जो स्वर्गसे प्राप्त
हुयेहैं ॥३४॥ वे समस्त दुःखोंसे छूटकर केवल धर्मको भजतेहैं इस विषयमें ये श्लोक कहे हैं कि धर्म व दान से किया हुवा सुख होताहै और अधर्म से दुःखकी उत्पत्ति

कृतघ्नवीर्यवान् ॥ ३० ॥ कृतघ्नस्सर्वकार्याणां विफलंसमुपाश्नुते ॥ इत्येवंतेमयाब्रह्मन् पापिनांपरिकीर्तितः ॥ ३१ ॥
चित्रगुप्तोपिमुह्येत सकलस्यानुवर्णने ॥ एतेनरकविभ्रष्टा भुक्त्वायोनीस्सहस्रशः ॥ ३२ ॥ एवंविधैश्चिह्निताश्च जाय
न्तेलक्षणैर्नराः ॥ येहिधर्मन्नमन्यन्ते तथायेव्यसनैर्जिताः ॥ ३३ ॥ अनुमानेनबोद्धव्यास्तएतेशेषपापिनः ॥ येषांत्वन्तं
गतंपापं स्वर्गाद्वायेसमागताः ॥ ३४ ॥ सर्वव्यसननिर्मुक्ता धर्ममेकंभजन्तिते ॥ भवन्तिचात्रश्लोकाः ॥ धर्मदानकृतं
सौख्यमधर्माद्दुःखसम्भवम् ॥ ३५ ॥ तस्माद्धर्मंसुखार्थाय कुर्यात्पापंविवर्जयेत् ॥ लोकद्वयेपियत्सौख्यं तद्धर्मात्
प्रोच्यतेयतः ॥ ३६ ॥ धर्मएवमतिंकुर्यात् सर्वकार्यार्थसिद्धये ॥ मुहूर्त्तमपिजीवेद्धि नरःशुक्लेनकर्मणा ॥ ३७ ॥ नकल्प
मपिजीवेच्च लोकद्वयविरोधिना ॥ इतिपृष्टंत्वयाविप्र यथाशक्त्यामयेरितम् ॥ ३८ ॥ असूक्तंसूक्तमथवाक्षन्तव्यंकिंव
दामिते ॥ नारदउवाच ॥ कमठस्यैतदाकर्ण्य त्वष्टवर्षस्यभाषितम् ॥ ३९ ॥ भगवान्भास्करःप्रीतो बभूवातीवविस्मि

होती है ॥ ३५ ॥ इसलिये सुखके लिये धर्म करै और पापको छोड़ देवै क्योंकि दोनों लोकों में जो सुख होता है वह धर्म से कहा जाता है ॥ ३६ ॥ समस्त कर्मों की
[illegible]के लिये धर्महीमें बुद्धि करै और शुक्ल याने धर्मके कार्य से मुहूर्तभर जीवै ॥ ३७ ॥ परन्तु दोनों लोकों के वैरी पापसे कल्पभर न जीवै हे विप्रजी ! आपने
पूछा उसको मैंने अपनी शक्ति से वर्णन किया ॥ ३८ ॥ अच्छी भांति न कहा हुवा व भलीभांति कहा हुवा वचन आपसे क्षमा करने योग्यहै अब आपसे मैं
[illegible]जी बोले कि आठवर्षवाले कमठ का यह वचन सुन कर ॥ ३९ ॥ भगवान् सूर्यनारायण जी प्रसन्न होते हुये बड़े विस्मय में प्राप्त हुये और उन्होंने

उस समय हारीत इत्यादिक ब्राह्मणोंकी प्रशंसा किया ॥ ४० ॥ व मनमें कहा कि अहो ऐसे उत्तम ब्राह्मणों से पृथ्वी धन्य है व ब्रह्मा धन्य हैं कि जिनकी मर्यादा
पालन कीजाती है ॥ ४१ ॥ व इस समय इन उत्तम ब्राह्मणों से वेद धन्य हैं कि जिनके मध्य में यह बालक की बुद्धि प्रकटही ऐसी है ॥ ४२ ॥ और हारीत आदि-
कोंकी क्या बुद्धि होवैगी कि जिनको त्रिलोक का भी वृत्तान्त निस्सन्देह अप्रकट नहींहै ॥ ४३ ॥ जैसा कि नारदने इनको कहा था उससे ये बहुत अधिकहैं इस प्रकार
उन ब्राह्मणोंकी प्रशंसा कर प्रसन्न होते हुये सूर्यनारायणजी बोले ॥ ४४ ॥ हे मुख्य ब्राह्मणो ! मैं सूर्य तुम लोगों के दर्शन के लिये सूर्यलोक से प्राप्त हुवाहूं और मुझ

तः ॥ प्रशशंसचतान्विप्रान् हारीतप्रमुखांस्तदा ॥ ४० ॥ अहोवसुमतीधन्या द्विजैरेवंविधोत्तमैः ॥ अथप्रजापतिर्ध
न्यो यन्मर्यादाभिपाल्यते ॥ ४१ ॥ अमीभिर्ब्राह्मणवरैर्धन्यावेदाश्चसम्प्रति ॥ येषांमध्येबालबुद्धिरियमेतादृशीस्फु
टा ॥ ४२ ॥ हारीतप्रमुखानांहि कावैबुद्धिर्भविष्यति ॥ असंशयंत्रिलोकस्य येषामविदितन्नहि ॥ ४३ ॥ यथैतान्नारदः
प्राह भूयस्तस्मादमीबहु ॥ इतिप्रशस्यतान्विप्रान्प्रहृष्टोरविरब्रवीत् ॥ ४४ ॥ अहंसूर्योविप्रमुख्या युष्माकंदर्शनंकृ
ते ॥ समागतस्सूर्यलोकात्प्राप्तंनेत्रफलंचमे ॥ ४५ ॥ भवद्विधैर्विप्रमुख्यैस्सजल्पनसहासनात् ॥ अन्त्यजाअपिपूयन्ते
किम्पुनर्मादृशाद्विज ॥ ४६ ॥ सर्वथानारदोधन्यो योसौत्रैलोक्यतत्त्ववित् ॥ युष्माभिर्वर्द्धतेश्रेयो यस्यवैधृत्यदानव
त् ॥ ४७ ॥ प्रणमामिचवःसर्वान्मनोबुद्धिसमाधिभिः ॥ तपोवृत्तञ्चवार्द्धक्यं यतोवार्द्धक्यकारणम् ॥ ४८ ॥ वरंमत्तोवृ
णीध्वञ्च दुर्लभंयंहृदीच्छथ ॥ यूयंस्वयंहिवरदा मत्सङ्गोमास्तुनिष्फलः ॥ ४९ ॥ देवतानांहिसंसर्गो निष्फलोनोपपद्य

को नेत्रोंका फल मिलगया ॥ ४५ ॥ हे द्विज ! तुम्हारे समान मुख्य ब्राह्मणों के साथ वार्तालाप करने से व साथ बैठने से चाण्डाल भी पवित्र होजाते हैं फिर मेरे
सरीखे जनों को क्या कहना है ॥ ४६ ॥ नारद मुनि सब प्रकार से धन्य हैं जो ये कि त्रिलोक के तत्त्व को जाननेवाले है जिनका पुण्य कि तुम लोगों से वैधृत्य
योग में दान की नाईं बढ़ता है ॥ ४७ ॥ मैं तुम सबों को मन, बुद्धि व समाधि से प्रणाम करता हूं क्योंकि तपस्या, आचरण व वृद्धता बुढ़ापे का कारण है ॥ ४८ ॥
जिस दुर्लभ वरदानको तुम हृदय मे चाहतेहो उसको मुझसे मांगिये तुमलोग आपही वरदायकहो परन्तु मेरा संग मत निष्फल होवै ॥ ४९ ॥ क्योंकि देवताओंका

संग निष्फल नहीं सिद्ध होता है इसलिये मुझसे किसी वरदानको मांगिये मै उसे तुमलोगों को दूंगा ॥ ५० ॥ नारदजी बोले कि सूर्यनारायणका यह वचन सुनकर प्रसन्न होतेहुये उन द्विजोत्तमोंने बड़ी भक्ति से पाद्य, अर्घ, स्तुति व चन्दन से भलीभांति पूजनकर ॥ ५१ ॥ मंडलादिक महाजपों को जपते हुये उन्होंने सूर्यनारायण से कहा कि हे आदित्य ! आपकी जयहो व हे भानो ! तुम्हारी जयहो, हे अमल ! आपकी जयहो ॥ ५२ ॥ हे वेदपते, सूर्यनारायणजी ! आपकी जयहो हे दिनपते ! हमलोगों को तारिये तुम ब्राह्मणों के उत्तम देवताहो और ब्राह्मणों की सृष्टि त्वन्मय है याने उस सृष्टि में आपही प्रधानहो ॥ ५३ ॥ तुमसे देखाहुआ यह हम लोगों

ते ॥ तस्मान्मत्तोवरंकिञ्चिद्वृणुध्वंप्रददामिवः ॥ ५० ॥ नारदउवाच ॥ इतिसूर्यवचःश्रुत्वा प्रहृष्टास्तेद्विजोत्तमाः ॥ सम्पूज्यपरयाभक्त्या पाद्यार्घस्तुतिचन्दनैः ॥ ५१ ॥ मण्डलादीन्महाजप्यान् गृणन्तःप्रोचिरेरविम् ॥ जयादित्यजयस्वामिञ्जयभानोजयामल ॥ ५२ ॥ जयवेदपतेसूर्यतारयास्मानहर्पते ॥ विप्राणांत्वंपरोदेवो विप्रसर्गोपित्वन्मयः ॥ ५३ ॥ नितरांपूतमेतन्नः स्थानंचेदंत्वयेक्षितम् ॥ अद्यनःसफलावेदा अद्यनःसफलाःक्रियाः ॥ अद्यनस्सफलंगेहं त्वयासङ्गम्यगोपते ॥ ५४ ॥ वरंयदिप्रदातासितदेनंप्रवृणीमहे ॥ अस्माकन्तुत्वयास्थानं नत्याज्यंहिकथञ्चन ॥ ५५ ॥ श्रीसूर्यउवाच ॥ यस्माद्भवद्भिःपूर्वन्तु जयादित्येतिप्रोदितम् ॥ जयादित्यइतिख्यातस्तस्मात्स्थास्येत्रसर्वदा ॥ ५६ ॥ यावन्महीसमुद्राश्च पर्वतानगराणिच ॥ तावत्स्थास्यामिहेविप्रा नहित्यक्ष्यामिकर्हिचित ॥ ५७ ॥ दारिद्र्यरोगसङ्घातान् दद्रूचकुष्ठमण्डलम् ॥ कुष्ठादीन्नाशयिष्यामि भजतामत्रसंस्थितः ॥ ५८ ॥ योमामत्रस्थितञ्चापि पू

[illegible] अत्यन्त पवित्र होगया आज हमलोगों के वेद सफल होगये और आज हमारे कर्म सफल होगये हे गोपते ! आज आपसे समागम होकर हम लोगों का [illegible] गया ॥ ५४ ॥ यदि वरदान को देतेहो तो हम इस वरको मांगते हैं हमलोगों का स्थान तुमको किसी प्रकार न छोड़ना चाहिये ॥ ५५ ॥ श्रीसूर्यनारा- [illegible] जिये आप लोगों ने पहले जयादित्य ऐसा कहा उसी कारण यहां जयादित्य ऐसा प्रसिद्ध मैं सदैव टिकूंगा ॥ ५६ ॥ हे ब्राह्मणो ! जबतक पृथ्वी, [illegible] तबतक मैं टिकूंगा किसी प्रकार नहीं छोड़ूंगा ॥ ५७ ॥ व यहांपर भलीभांति टिकाहुआ मैं भजनेवाले पुरुषों के दारिद्र्य व रोगसमूहोंको व दाद व

कुष्ठ के मण्डल इत्यादिक कुष्ठोंको नाश करूंगा ॥ ५८ ॥ और यहां टिकेहुये मुझ को जो मनुष्य पूजैगा उसकी पूजाको मैं सूर्यलोक से आकर ग्रहण करूंगा ॥ ५६ ॥
नारदजी बोले कि भगवान् सूर्यनारायण के ऐसा कहनेपर हारीतादिक द्विजोत्तमों ने वेदमें कहीहुई विधिसे मूर्त्तिको स्थापन किया ॥६०॥ तदनन्तर ब्राह्मणों ने ऐसा
कहा कि हे कमठ! तुम्हारे लिये सूर्यनारायण स्वामी यहां स्थितहैं इस लिये पहले तुम सूर्यनारायणसे बोलो ॥ ६१ ॥ समस्त ब्राह्मणों से ऐसा कहेहुये उत्तम बोलने
वाले कमठने जयादित्य को प्रणामकर इस महास्तोत्र को गाया ॥ ६२ ॥ कि हे आदिदेव! तुम देखे नहीं गयेहो केवल भलीभांति यजुर्वेद में सुनेगयेहो ऐसा विद्वान्

**जयिष्यतिमानवः ॥ सूर्यलोकात्समागत्य पूजांतस्यभजाम्यहम् ॥ ५९ ॥ नारदउवाच ॥ एवमुक्तेभगवता हारीताद्या
द्विजोत्तमाः ॥ मूर्त्तिसंस्थापयामासुर्वेदोदितविधानतः॥६०॥ततोद्विजाःप्राहुरेवं कमठत्वत्कृतेरविः ॥ अत्रस्वामीस्थित
स्तस्मात्प्रथमंब्रूहित्वंरविम् ॥ ६१ ॥ इत्युक्तोब्राह्मणैस्सर्वैःकमठोवाग्मिनांवरः ॥ प्रणिपत्यजयादित्यं महास्तोत्रमिदंज
गौ ॥ ६२ ॥ त्वन्नैवदृष्टःकेवलःसंश्रुतश्चयजुष्येवंव्याहरन्त्यादिदेव ॥ चतुर्विधाभारतीदूरदूरं धृष्टःस्तौमिस्वार्थकामःक्ष
मैतत् ॥ ६३ ॥ मार्त्तण्डसूर्यांशुरविस्तथेन्द्रो भानुर्भगश्चार्यमास्वर्णरेताः ॥ दिवाकरोमित्रविष्णुश्चदेवख्यातस्त्वंवै
द्वादशात्मानमस्ते ॥ ६४ ॥ लोकत्रयंवैतवगर्भगेहं पयोधरःप्रोच्यतेरन्ध्रमुग्रम् ॥ नक्षत्रमालाकुसुमाभिमाला तस्मै
नमोव्योमलिङ्गायतुभ्यम् ॥ ६५ ॥ त्वन्देवदेवस्त्वमनाथनाथस्त्वंपाह्युपायैःकृपणान्कृपालुः ॥ त्वंनेत्रनेत्रंजनबुद्धिबुद्धि
र्बुद्धेःपरस्त्वंजयजीवजीव ॥ ६६ ॥ दारिद्र्यदारिद्र्यनिधेर्निदानं रोगप्रयोगःप्रथितःपृथिव्याम् ॥ चिरञ्जयादित्यजयाप्र**

कहते हैं व चार प्रकारकी वाणी बहुत दूर रहती है और स्वार्थ में परायण मैं ढीठ होकर स्तुति करताहूँ इसको क्षमा करियेगा ॥ ६३ ॥ हे देव! मार्तण्ड,सूर्य,अंशु,रवि,
इन्द्र, भानु, भग, अर्यमा, स्वर्णरेता, दिवाकर, मित्र व विष्णु तुम द्वादशात्मा प्रसिद्धहो तुम्हारे लिये नमस्कारहै ॥ ६४ ॥ तीनोंलोक तुम्हारा वासगृहहैं और मेघ
उग्रछिद्र कहा जाता है और नक्षत्रोंका समूह फूलोंकी माला है उन आकाश चिह्नवाले तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥ ६५ ॥ तुम देवताओं के देवताहो और अनाथों के
नाथहो और दयालु तुम दीन मनुष्यों की यत्नों से रक्षा करतेहो नेत्रोंके तुम नेत्रहो व मनुष्यों की बुद्धिकी बुद्धिहो और बुद्धिसे परेहो हे जीवके जिलानेवाले सूर्य!

तुम्हारी जयहो ॥ ६६ ॥ दरिद्रके भी दरिद्रके आदि कारणहो व रोगके प्रयोग पृथ्वी में प्रसिद्धहो हे आदित्य! बहुत समयतक तुम उत्कर्षको प्राप्तहोवो हे अप्रमाणवाले
सूर्य! तुम्हारी जयहो व्याधिसे ग्रसेहुये व रोगोंसे तिरस्कृत व टूटी नासिकावाले व भङ्गशरीरवाले तथा चैतन्यतारहित पुरुषको माता, पिता व भाई छोड़ देते हैं
वे हे सूर्यनारायण,देव! सबों से त्यागे हुये पुरुषको तुम पालतेहो इस लिये तुमसे अन्य और कौन देवता आपसे श्रेष्ठहै ॥ ६७ । ६८ ॥ तुम मेरे पिताहो व तुम माताहो
तुम मेरे गुरुहो और तुम्ही भाईहो, तुम मेरा धर्महो और तुम मेरा मोक्षमार्गहो हे देव! मैं तुम्हारा सेवकहूँ त्यागिये या रक्षाकीजिये ॥ ६९ ॥ मैं पापीहूँ और मूढ़हूँ,

मेय व्याधिग्रस्तंकुष्ठरोगाभिभूतम् ॥ ६७ ॥ भग्नघ्राणंशीर्णदेहंविसंज्ञं मातापिताबान्धवास्सन्त्यजन्ति ॥ सर्वैस्त्य
क्तंपासिदेवविवस्वंस्त्वत्तोदेवःकोऽस्तिश्रेष्ठस्त्वदन्यः ॥ ६८ ॥ त्वंमेपितात्वंजननीत्वमेव त्वंमेगुरुर्बान्धवाश्चत्वमेव ॥ त्वंमेध
र्मस्त्वञ्चमेमोक्षमार्गो दासस्तुभ्यंत्यजवारक्षदेव ॥ ६९ ॥ पापोऽस्मिमूढोऽस्मिमहोग्रकर्मा रौद्रोऽस्मिपापस्यनिधानम
स्मि ॥ तथापिनित्यंप्रणिपत्यपादयोर्भजामिभक्तान्पालयश्रीजयार्क ॥ ७० ॥ नारदउवाच ॥ एवंस्तुतोजयादित्यःकमठे
नमहात्मना ॥ स्निग्धगम्भीरयावाचा प्राहतंप्रहसन्निव ॥ ७१ ॥ जयादित्याष्टकमिदं यत्त्वयापरिकीर्तितम् ॥ अनेन
स्तोष्यतेयस्तु भुवितस्यनदुर्लभम् ॥ ७२ ॥ रविवारेविशेषेणमांसमभ्यर्च्ययःपठेत् ॥ तस्यरोगाःप्रणश्यन्तिदारिद्र्यंच
नसंशयः ॥ ७३ ॥ त्वयाचतोषितोवत्स तवदद्मिवरन्त्वमुम् ॥ सर्वज्ञोभुविभूत्वात्वंततोमुक्तिमवाप्स्यसि ॥ ७४ ॥ त्वत्पितास्मृ

बड़े भयङ्कर कर्मोंका करनेवाला हूँ, भयानक हूँ व पापकी खानिहूँ तौभी नित्यही प्रणामकर मैं तुमको भजताहूं भक्तोंको पालिये हे श्रीसूर्यनारायणजी! आपकी जय
हो ॥ ७० ॥ नारदजी बोले कि इस प्रकार कमठ महात्मासे स्तुति कियेहुये जयादित्य जी हँसते हुयेसे स्नेहयुक्त के समान गम्भीर वाणीसे उस कमठ से बोले ॥ ७१ ॥
कि तुमने जो यह जयादित्याष्टक कहा है इससे जो स्तुति करैगा उसको पृथ्वी में कुछ दुर्लभ न होगा ॥ ७२ ॥ और विशेषकर रविवार के दिन मुझको जो भली
भांति पूजकर पढ़ै है उसके रोग व दारिद्र्य निस्सन्देह नाश होजाते हैं ॥ ७३ ॥ हे वत्स! तुमसे प्रसन्न कराया हुआ मैं तुमको इस वरदानको देताहूँ कि पृथ्वीमें सर्वज्ञ

होकरे तदनन्तर तुम मुक्तिको पावोगे ॥ ७४ ॥ और तुम्हारा पिता कभी स्मृतिकारक होगा व हे वत्स ! मैं इस स्थानको कभी नहीं छोड़ूंगा ॥७५॥ ऐसा कहकर वे ब्राह्मणों से पूजित व स्तुति कियेहुये प्रभु भगवान् सूर्यनारायणजी उन द्विजेन्द्रों से आज्ञा लेकर वहीं अन्तर्द्धान होगये ॥ ७६ ॥ हे अर्जुनजी ! इस प्रकार इस पृथ्वी में जयादित्यजी कुँवारमहीने में उत्पन्नहुये हैं इस लिये यहांपर वह महीना बड़ा विशेषहै॥७७॥कुँवार महीने में रविवार के दिन जो जयादित्य को पूजता है वह मनुष्य करोड़ तीर्थोंमें नहाकर बड़ेभारी फलको भोगता है ॥ ७८ ॥ लालमालाओं करके पूजनसे व लालचन्दन, कुंकुम के लेपसे व सुगन्धित धूपों से व घीमें पकाये हुये नैवेद्यों

तिकारश्च कदाचित्प्रभविष्यति ॥ नचैतत्स्थानकंवत्स परित्यक्ष्यामिकर्हिचित् ॥ ७५ ॥ एवमुक्त्वासभगवान् ब्राह्मणैरर्चितःस्तुतः ॥ अनुज्ञाप्यद्विजेन्द्रांस्तांस्तत्रैवान्तर्दधेप्रभुः ॥ ७६ ॥ एवंपार्थसमुत्पन्नो जयादित्योऽत्रभूतले ॥ आश्विनेमासितस्मात्समासोत्रातिविशिष्यते ॥ ७७ ॥ आश्विनेभानुवारेण योजयादित्यमर्चयेत् ॥ कोटितीर्थेनरःस्नात्वा सुमहत्फलमश्नुते ॥ ७८ ॥ पूजनाद्रक्तमाल्यैश्च रक्तचन्दनकुङ्कुमैः ॥ लेपनाद्गन्धधूपाद्यैर्नैवेद्यैर्घृतपाचितैः ॥ ७९ ॥ ब्रह्मघ्नश्चसुरापश्चस्तेयीचगुरुतल्पगः ॥ मुच्यतेसर्वपापेभ्यस्सूर्यलोकंसगच्छति ॥ ८० ॥ पुत्रदारधनान्यायुः प्राप्यसंसारकंसुखम् ॥ इष्टैःकामैस्समायुक्तः सूर्यलोकेवसेच्चिरम् ॥८१॥सर्वेषुरविवारेषु जयादित्यस्यदर्शनम् ॥ कीर्त्तनंस्मरणंचापि सर्वरोगोपशान्तिदम् ॥ ८२ ॥ अनादिनिधनन्देवमव्यक्तंतेजसान्निधिम् ॥ भक्त्यार्चयन्तिलीयन्ते सौरस्थानेनिरामये ॥ ८३ ॥ सूर्योपरागेसम्प्राप्तेरविकूपेसमाहितः ॥ स्नानंयःकुरुतेपार्थ होमंकुर्यात्प्रयत्नतः ॥८४॥ दानंचैवयथाशक्त्या

से ॥ ७९ ॥ ब्रह्मघाती, मदिरा पीनेवाला व चोर और गुरुकी शय्यापै बैठनेवाला पुरुष सब पातकों से छूटजाता है और वह सूर्यलोकको जाताहै ॥ ८० ॥ व पुत्र, स्त्री, धन, आयुर्बल व संसारी सुखको पाकर प्रियकामों से संयुक्त वह बहुत दिनोंतक सूर्यलोकमें बसता है ॥ ८१ ॥ सब रविवारों में जयादित्य का दर्शन, कीर्तन व स्मरण भी समस्त रोगोंकी शांतिका दायक है ॥ ८२ ॥ जन्म व मृत्युरहित, अव्यक्त तथा तेजोंके निधान सूर्यदेवको जो भक्तिसे पूजते हैं वे रोगरहित सूर्य के स्थानमें लीन होते हैं ॥ ८३ ॥ हे अर्जुनजी ! सूर्यग्रहण प्राप्तहोने पर सावधान होताहुआ जो मनुष्य सूर्यकूपमें स्नान करता है व बड़े उपाय से होम करता है ॥ ८४ ॥ और

जयादित्य के आगे स्थित होकर जो यथाशक्तिसे दान करताहै हे अर्जुनजी! तुम सावधानमनवाले हो व उसके पुण्यके माहात्म्य को सुनिये ॥ ८५ ॥ कुरुक्षेत्र में जो
पुण्यहोती है व प्रभास, पुष्कर, काशी, प्रयाग और नैमिष में जो पुण्य प्राप्तहोती है ॥ ८६ ॥ उस पुण्यको मनुष्य जयादित्य की प्रसन्नता से प्राप्तहोता है ॥ ८७ ॥
इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांजयादित्यमाहात्म्यवर्णनन्नामषट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥ ● ॥
दो० । कोटितीर्थकर अहै जो अतुल अमित परभाव । सैंतालिस अध्याय में सोई चरित सुहाव ॥ अर्जुनजी बोले कि हे मुने! कोटितीर्थ किसप्रकार उत्पन्नहुआ ❀ ॥

जयादित्याग्रतःस्थितः ॥ तस्यपुण्यस्यमाहात्म्यं शृणुष्वैकमनाभव ॥ ८५ ॥ कुरुक्षेत्रेचयत्पुण्यंप्रभासेपुष्करेष्वपि ॥
वाराणस्याञ्चयत्पुण्यं प्रयागेनैमिषेपिवा ॥ ८६ ॥ तत्पुण्यंलभतेमर्त्यो जयादित्यप्रसादतः ॥ ८७ ॥ इति श्रीस्क
न्दपुराणेकुमारिकाखण्डेजयादित्यमाहात्म्यन्नामषट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥ * ॥ * ॥
अर्जुनउवाच ॥ कोटितीर्थंकथंजातं केनवानिर्मितम्पुरा ॥ कस्माद्वाकोटितीर्थानां फलमत्रोच्यतेमुने ॥ १ ॥ नार
दउवाच ॥ यदामेस्थापितंस्थानं प्रसाद्याथमयाप्रभुः ॥ ब्रह्मलोकात्समानीतस्साक्षाद्ब्रह्मापितामहः ॥ २ ॥ ततोम
ध्याह्नसमयेस्नानार्थंभगवान्विधिः ॥ ३ ॥ सस्मारकोटितीर्थानि स्मृतान्यत्रागतानिच ॥ स्वर्गाच्चदशलक्षाणि सप्तति
श्चमहीतलात् ॥ ४ ॥ पातालाद्विंशलक्षाणि स्मृतान्यभ्यागतानिच ॥ अनेनप्रविभागेन लिङ्गान्यपिकुरूद्वह ॥५॥ आ
यातानिततोदृष्ट्वा विविधानिपितामहः ॥ ततोभिषेचनंकृत्वालिङ्गान्यभ्यर्च्यपद्मभूः ॥ ६ ॥ मध्याह्नकृत्यंसंसाध्य ममप्रे

है व पुरातन समय किसने निर्माण कियाहै और किस लिये यहापर करोड़ों तीर्थों का फल कहा जाता है ॥ १ ॥ नारदजी बोले कि जब मैंने स्थानको स्थापन किया
इसके अनन्तर मैंने साक्षात् प्रभु, पितामह ब्रह्माजी को प्रसन्न कराकर ब्रह्मलोकसे भलीभांति लाया ॥ २ ॥ तदनन्तर मध्याह्न समय में स्नानके लिये भगवान् ब्रह्मा
जीने ॥ ३ ॥ कोटितीर्थोंको स्मरण किया और स्मरण कियेहुये वे तीर्थ यहां आगये दशलाख तीर्थ स्वर्ग से आये व सत्तरलाख भूतल से आये ॥ ४ ॥ व स्मरण किये
हुये बीसलाख तीर्थ पातालसे आये व हे कुरूद्वह! इसी विभाग से लिंगभी आये ॥ ५ ॥ तदनन्तर उन विविध लिंगोंको देखकर कमल से उपजेहुये ब्रह्माजीने स्नान

कर तदनन्तर लिंगोंको पूजकर ॥ ६ ॥ मध्याह्न कार्यको साधनकर मुझको प्रेमसे वरदान दिया तदनन्तर भगवान् ब्रह्माजी ने यहा मनसे तडाग निर्माण किया ॥ ७ ॥
और पूजित तीर्थोंने भगवान् ब्रह्माजी से यह कहा कि हे भगवन्, ब्रह्माजी ! हमलोग क्या करैं हे प्रभो ! हम सबको आज्ञा दीजिये ॥ ८ ॥ उन तीर्थों के उस वचनको
सुनकर प्रजापति ब्रह्माजी ने कहा कि सब तीर्थोंको इस तडाग में यहा टिकना चाहिये ॥ ९ ॥ और सब लिगोंको एक लिगमें स्थित होना चाहिये कि जिसके पूजन
से व करोड़ तीर्थों के स्नान से व करोड लिगोंके पूजन से ॥ १० ॥ व दानसे जो फल होताहै वह यहांपर होगा यदि मेरा वचन सत्य है और जो यहां विधिपूर्वक

मणावरन्ददौ ॥ ततोभगवताह्यत्र मनसानिर्मितंसरः ॥ ७ ॥ भगवानर्चितैस्तीर्थैरिदमूचेप्रजापतिः ॥ किंकुर्मोभगवन्धा
तरादेशंदेहिनःप्रभो ॥ ८ ॥ तेषांतद्वचनंश्रुत्वा ब्रह्माप्राहप्रजापतिः ॥ एतस्मिन्सरसिस्थेयं तीर्थैस्सर्वैरथात्रच ॥ ९ ॥
एकस्मिंश्चतथालिङ्गेसर्वलिङ्गैःसमर्चनात् ॥ कोटीनामेवतीर्थानां लिङ्गानांस्नानपूजया ॥ १० ॥ दानेनचफलंतत्र यदि
सत्यंवचोमम ॥ श्राद्धंय कुरुतेचात्र पिण्डदानंयथाविधि ॥ ११ ॥ पितॄणामक्षयातृप्तिर्जायतेनात्रसंशयः ॥ स्नात्वातु
योर्चयेद्देवं कोटीश्वरमनन्यधीः ॥ १२ ॥ कोटिलिङ्गार्चनफलं व्यक्तंतस्योपजायते ॥ त्रैलोक्येयानिलिङ्गानि गङ्गाद्या
स्सरितस्तथा ॥ १३ ॥ तेषांमफलमाप्नोति कोटितीर्थावगाहनात् ॥ एवंदत्त्वावरंब्रह्मा ब्रह्मलोकंययौप्रभुः ॥ १४ ॥ को
टितीर्थंश्चसञ्जातं ततप्रभृतिविश्रुतम् ॥ अस्मिंस्तीर्थेचपुण्यार्थं ब्रह्माद्यादेवसत्तमाः ॥ १५ ॥ यज्ञान्बहुविधान्कृत्वा
ततस्सिद्धिंपरांययुः ॥ वसिष्ठाद्यैर्मुनिवरैस्तपश्चीर्णंपुरानघ ॥ १६ ॥ मनसोभीप्सितान्कामान्प्रापुरन्येतपोधनाः ॥ अ

श्राद्ध व पिण्डदान करता है ॥ ११ ॥ तो उसके पितरोंकी अक्षय तृप्ति होती है इसमें सन्देह नहीं है व एकाग्र बुद्धिवाला जो पुरुष नहाकर कोटीश्वर देवको पूजता है ॥ १२ ॥
उसको प्रकटही करोड़ लिंगों के पूजनका फल होता है त्रिलोकमें जो लिंग हैं व गङ्गादिक जो नदियां हैं ॥ १३ ॥ उनके फलको वह मनुष्य कोटितीर्थ के स्नानसे
प्राप्तहोता है इस प्रकार वरदानको देकर प्रभु ब्रह्माजी ब्रह्मलोकको चलेगये ॥ १४ ॥तबसे लगाकर कोटितीर्थ प्रसिद्ध हुआ है इस तीर्थमें पुण्यके लिये ब्रह्मादिक देवतो-
त्तम ॥ १५ ॥ बहुत प्रकारके यज्ञोंको करके तदनन्तर बड़ी सिद्धिको प्राप्तहुये व हे पापरहित अर्जुनजी ! पुरातन समय यहा पर वसिष्ठादिक उत्तम मुनियोंने तपस्या

कियाहै ॥ १६ । व तपस्यारूप धनवाले अन्य मुनियों ने मनके अभिलाषोंको पाया है हे अर्जुनजी ! पुरातन समय अत्रिमुनि ने यहां तपस्या कियाहै ॥ १७ ॥ व उन्हों
ने कोटितीर्थ से दक्षिण और महापापहारी अत्रीश्वर सञ्ज्ञक उत्तम लिंगको थापाहै ॥ १८ ॥ और उस लिंगको थापकर उन्हों ने आगे तड़ाग निर्माण किया है उसमें
नहाकर जो मनुष्य बड़े उपायसे अत्रीश्वर लिंगको भलीभांति पूजकर श्राद्ध करता है वह बहुत दिनोंतक शिवलोक में बसताहै व भारद्वाज मुनिने कोटितीर्थ तड़ाग
के समीप ॥ १९ । २० ॥ तप किया है व हे महाबाहो ! उन्हों ने यज्ञोंको किया है और भारद्वाजेश्वर नामक मनोहर लिंग को स्थापित किया है ॥ २१ ॥ और

स्मिंस्तीर्थेपुरापार्थ अत्रिणाविहितन्तपः ॥ १७ ॥ कोटितीर्थाद्दक्षिणतः स्थापितंलिङ्गमुत्तमम् ॥ अत्रीश्वराभिसंज्ञन्तु
महापापहरंपरम् ॥ १८ ॥ स्थापयित्वाचतंलिङ्गमग्रेचक्रेसरोवरम् ॥ तत्रस्नात्वाचयोमर्त्यः श्राद्धंकुर्यात्प्रयत्नतः ॥ १९ ॥
अत्रीश्वरंसमभ्यर्च्य रुद्रलोकेवसेच्चिरम् ॥ भारद्वाजेनमुनिना कोटितीर्थसरोवरे ॥ २० ॥ तपश्चीर्णंमहाबाहो यज्ञाश्च
विहिताःकिल ॥ भारद्वाजेश्वरंलिङ्गं स्थापितंसुमनोहरम् ॥ २१ ॥ तत्रकृत्वासरोरम्यं परामुदमवाप्तवान् ॥ तत्रस्नात्वा
नरोभक्त्याश्राद्धं कुर्याद्विधानतः ॥ २२ ॥ भारद्वाजेश्वरम्पूज्य शिवलोकेमहीयते ॥ ततश्चकोटितीर्थेऽस्मिन् गौतमो
भगवानृषिः ॥ २३ ॥ अतप्यततपोघोरमहल्यासङ्गमाशया ॥ तत्कामंप्राप्तवान्धीमान् परामुदमुपागतः ॥ २४ ॥ अह
ल्यायाःसमायोगमस्यतीर्थप्रभावतः ॥ अस्मिन्क्षेत्रेमहालिङ्गं गौतमेश्वरसंज्ञकम् ॥ २५ ॥ स्थापयामासभगवान्
हल्यासरस्तटे ॥ अर्जुनउवाच ॥ अहल्ययाकदाब्रह्मन्खानितंवैमहत्सरः ॥ २६ ॥ तन्ममाख्याहिसकलमहल्या

उन्हों ने वहां मनोहर तड़ाग करके उत्तम आनन्द को पाया है वहां नहाकर जो मनुष्य भारद्वाजेश्वर को पूजकर विधिसे भक्तिपूर्वक श्राद्ध करता है वह शिवलोक
में पूजाजाता है तदनन्तर इस कोटितीर्थ में भगवान् गौतमऋषिने ॥ २२ । २३ ॥ अहल्या के समागमकी आशा से भयङ्कर तप किया व उन बुद्धिमान्ने उस मनोरथ
को पाया और वे परम प्रसन्नताको प्राप्त हुये ॥ २४ ॥ इस तीर्थके प्रभाव से अहल्या का संयोग हुआ है और भगवान् गौतममुनि ने अहल्यातड़ाग के किनारेपै
गौतमेश्वर नामक महालिंगको स्थापन किया है अर्जुनजी बोले कि हे ब्रह्मन् ! अहल्या से किससमय बड़ाभारी तड़ाग बनवाया गयाहै ॥ २५ । २६ ॥ अहल्यातड़ाग

के उस सम्पूर्ण कारणको मुझसे कहिये नारदजी बोले कि हे अर्जुनजी ! गौतमजी से अहल्या शापको प्राप्तहुई हैं यह प्रकटहै ॥ २७ ॥ कि पुरातनसमय इन्द्रके संयोग में वे अहल्याजी बड़े दुःखको प्राप्तहुई हैं तदनन्तर उन दुःखित मुनिने कोटिसंज्ञक तीर्थमें तप किया है ॥ २८ ॥ हे अर्जुनजी ! उस तपस्या से अहल्याके साथ संयोग को प्राप्तहुये तदनन्तर परमप्रसन्न होतीहुई उन पतिव्रता अहल्याजी ने इस क्षेत्रमें तीर्थों के जलोंसे पूर्ण बड़े पुण्यदायक तड़ागको कियाहै जो पुरुष अहल्यातड़ागमें स्नान व पिण्डदान करता है ॥ २९ । ३० ॥ वह गौतमेश्वर शिवजीको भलीभांति पूजकर ब्रह्मलोकको जाताहै हे नरश्रेष्ठ ! इसके उपरान्त अनेक मुनिभी कोटितीर्थ

हृदकारणम् ॥ अहल्याशापमापन्ना गौतमात्किलफाल्गुन ॥ २७॥ पुराचेन्द्रसमायोगे परन्दुःखमुपागता ॥ ततो दुःखीचसमुनिः कोटितीर्थेकरोत्तपः ॥ २८ ॥ तपसातेनवैपार्थ अहल्यासहसङ्गतः ॥ ततस्साध्वीपरंहृष्टा अत्रक्षेत्रेस रोवरम् ॥ २९ ॥ चकारसुमहत्पुण्यं तीर्थोदैःपरिपूरितम् ॥ अहल्यासरसिस्नानं पिण्डंदानंसमाचरेत् ॥ ३० ॥ गौतमे शंचसम्पूज्य ब्रह्मलोकंसगच्छति ॥ कोटितीर्थेनरश्रेष्ठ अनेकमुनयोप्यतः ॥ ३१ ॥ तपस्तप्त्वासुघोरञ्च परांसिद्धिमु पागताः ॥ राजभिर्बहुभिःपूर्वं तपोदानंतथाध्वराः ॥ ३२ ॥ अस्मिंस्तीर्थेसुविहिताः परांसिद्धिमुपागताः ॥ अस्यतीरेद्वि जंचैकं मिष्टान्नैर्यश्चतर्पयेत् ॥ ३३ ॥ तेनश्रद्धासहायेन कोटिर्भवतितर्पिता ॥ इष्ट्वात्रयज्ञमेकन्तु कोटियज्ञफलंभवेत् ॥ ३४ ॥ कन्यांब्राह्मेणविधिना दत्त्वाकोटिगुणंफलम् ॥ सर्वदानंकोटिगुणं कोटितीर्थेभवेद्यतः ॥ ३५ ॥ स्वर्गेमर्त्येचपाताले तस्मादेतत्सुदुर्लभम् ॥ ३६ ॥ इतिश्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेकोटितीर्थमाहात्म्यन्नाम सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥

में ॥ ३१ ॥ बड़ी विकराल तपस्याकर उत्तम सिद्धिको प्राप्तहुये हैं व पुरातन समय बहुत राजाओं ने तपस्या, दान व यज्ञोंको ॥ ३२ ॥ इस तीर्थमें किया किये गये और यहां पर एक यज्ञकरके कोटियज्ञों का फल होताहै ॥ ३४ ॥ और वेदकी विधिसे कन्याको देकर कोटिगुना फल होताहै क्योंकि कोटितीर्थ में सब दान हैं और वे परम सिद्धिको प्राप्तहुये हैं इस तड़ागके किनारे जो पुरुष मिष्टान्नों से एक ब्राह्मणको तृप्तकरता है ॥ ३३ ॥ श्रद्धा सहायवाले उस पुरुषसे करोड़ ब्राह्मण तृप्त कोटिगुना होताहै ॥ ३५ ॥ इस लिये स्वर्ग व मृत्युलोक और पाताल मे यह तीर्थ बहुत दुर्लभहै ॥ ३६ ॥ इति श्रीकोटितीर्थमाहात्म्यवर्णनन्नामसप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥

दो० । शालायैं थाप्यो यथा नारद तीनहुँ देव । अरतालिस अध्याय में सोइ चरित सुखदेव ॥ नारदजी बोले कि इसके अनन्तर अन्य उत्तम शाला स्थानको क-
हूँगा ॥ १ ॥ पुरातन समय स्थानके भलीभांति स्थापित करनेपर द्विजोत्तमोंने मुझसे कहा कि हे सुव्रत ! स्थानकी रक्षाके लिये यत्न कीजिये ॥ २ ॥ तदनन्तर मैंने प्रतिज्ञा
किया कि स्थानकी रक्षाकरूंगा पश्चात् मैंने ब्रह्मा, विष्णु व शिवजी का आराधन किया ॥ ३ ॥ तदनन्तर एकाग्र चित्तसे आराधन किये हुये वे तीनों सुरोत्तम प्रसन्न
हुये इसके अनन्तर भलीभांति आकर वे मुझसे बोले कि हे नारदजी ! वरदान मांगिये ॥ ४ ॥ उनको पूजकर मैंने कहा कि स्थानकी रक्षा कीजावे बहुत प्रसन्न कराये

नारदउवाच ॥ अथान्यत्संप्रवक्ष्यामि शालामाहात्म्यमुत्तमम् ॥ १ ॥ संस्थापितेपुरास्थाने प्रोक्तोहंद्विजपुङ्गवैः ॥
स्थानस्यरक्षणार्थाय ह्युपायंकुरुसुव्रत ॥ २ ॥ ततोमयाप्रतिज्ञातं करिष्येस्थानरक्षणम् ॥ आराधितामयापश्चाद्ब्र
ह्माविष्णुमहेश्वराः ॥ ३ ॥ त्रयस्त्वेकाग्रचित्तेन ततस्तुष्टास्सुरोत्तमाः ॥ समागम्याथमाम्प्रोचुर्नारदव्रियतांवरः ॥ ४ ॥
प्रोक्तंतानर्च्यचमया क्रियतांस्थानरक्षणम् ॥ अयमेववरोमह्यं देयोदेवैस्सुतोषितैः ॥ ५ ॥ स्थानलोपोयथानस्याद्य
थाकीर्त्तिर्भवेन्मम ॥ एवमस्त्विति देवेशैः प्रतिज्ञातंतदामुने ॥ ६ ॥ स्वांशेनप्रकरिष्यामो द्विजानांपरिरक्षणम् ॥ एव
मुक्त्वाकलायुक्ता देवैस्त्रिभिरपिस्वयम् ॥ ७ ॥ अन्तर्द्धानन्ततःप्राप्ताः सर्वेपिसुरसत्तमाः ॥ ततोमयाद्विजैस्सार्द्धं शा
लाग्र्येस्थानरक्षणे ॥ ८ ॥ स्थापिताश्चपृथग्देवास्त्रयस्त्रिभुवनेश्वराः ॥ पीड्यमानायदाविप्राः केनापिचभवन्तिहि ॥ ९ ॥
पूर्वाह्णेचापिऋग्वेदं मध्याह्नेचयजूंषिच ॥ यामेतृतीयेसामानि तारस्वरमधीत्यच ॥ १० ॥ शापंयस्यप्रदास्यन्ति

हुये देवताओं से मुझको यही वर देनेयोग्य है ॥ ५ ॥ कि जिसप्रकार स्थानका लोप न होवै और मेरा यश होवै उस समय देवेश्वरों ने यह प्रतिज्ञा किया कि हे मुने !
ऐसाही होगा ॥ ६ ॥ हम लोग अपने अंशसे ब्राह्मणोंकी रक्षाकरैंगे ऐसा कहकर कलाओं से संयुत तीनोंभी देवता अन्तर्द्धान होगये ॥ ७ ॥ तदनन्तर सबभी सुरोत्तम
प्राप्तहुये उसके उपरान्त स्थानरक्षणवाली उत्तम शाला (मन्दिर) में ब्राह्मणों समेत मैंने ॥ ८ ॥ अलग अलग त्रिलोकके स्वामी उन तीनों देवताओं का स्थापन
किया जब किसीसेभी ब्राह्मण पीड़ित होते हैं ॥ ९ ॥ तब पूर्वाह्णमें ऋग्वेद, मध्याह्न में यजुर्वेद व तीसरे पहर में सामवेद को ॐकारस्वरपूर्वक पढ़कर ॥ १० ॥ व

शालाके अगाड़ी बहुत क्रोधितहोते हुयेवे जिसको शाप देते हैं वह सात, आठ वर्ष के भीतर या तीन वर्षके अन्तरमें भस्मताको प्राप्तहोता है ॥ ११ ॥ यदि नारदजी के आगे आप लोगों ने स्थानरक्षाकी प्रतिज्ञा कियाहै तो उस सत्यसे हम लोगोंका वैरी क्षणभरमें भस्महोजावै हुम् ॥ १२ ॥ इस शापके मन्त्रसे निश्चयकर शत्रु भस्म होजाताहै वहांपर जो मनुष्य तीनो पुरुषोंकी शालाको प्रतिदिन देखताहै ॥१३॥ व उनको पूजताहै व प्रणाम करताहै यह पुरुष स्वर्गलोकमें पूजित होताहै ॥१४॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांशालात्रिपुरुषमाहात्म्यवर्णनन्नामाष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

शालाग्रेभृशरोषिताः ॥ सप्ताष्टवर्षमध्याद्वात्रिवर्षाद्भस्मतांव्रजेत् ॥ ११ ॥ प्रतिज्ञातास्थानरक्षा यदिवोनारदाग्रतः ॥ सत्येनतेननोवैरी भस्मीभवतुहुंक्षणात् ॥ १२ ॥ अनेनशापमन्त्रेण भस्मीभवतिनिश्चितम् ॥ शालांत्रिपुरुषान्तत्रयः पश्यतिदिनेदिने ॥ १३ ॥ अर्चयेत्प्रणमेन्नासौ स्वर्गलोकेमहीयते ॥ १४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेशाला त्रिपुरुषमाहात्म्यन्नामाष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

नारदउवाच ॥ अथान्यत्सम्प्रवक्ष्यामि मदीयसरसोमहत् ॥ १ ॥ माहात्म्यमतुलंपार्थ देवानामपिदुर्लभम् ॥ मया पूर्वंसरःखातं दर्भाङ्कुरशलाकया ॥ २ ॥ मृत्तिकाताम्रपात्रेण त्यक्ताबाह्येततःस्वयम् ॥ सर्वेषामेवतीर्थानामाहृत्योदक मुत्तमम् ॥ ३ ॥ तत्तत्रसरसिक्षिप्तं तेनसंपूरितंसरः ॥ आश्विनेमासिसम्प्राप्ते भानुवारेनरःशुचिः ॥ ४ ॥ श्राद्धंयःकु रुतेतत्र स्नानंदानंविशेषतः ॥ पितरस्तस्यतृप्यन्ति यावदाभूतसम्प्लवम् ॥ ५ ॥ नारदीयंसरोह्येतद्विख्यातंजगतीत

दो० । नारदमुनि कुशमूल सन विरच्यो रुचिर तड़ाग । उंचसवें अध्याय में कह्यो सो अति अनुराग ॥ नारदजी बोले कि हे अर्जुनजी ! इसके अनन्तर मैं अन्य चरितको कहताहूं कि मेरे तडाग का बडाभारी अतुल माहात्म्य है जोकि देवताओं को भी दुर्लभ है पुरातन समय मैंने कुशके अँखुवाकी शलाका से तड़ागको खोदा है ॥ १ । २ ॥ तदनन्तर तांबेके पात्रसे मिट्टी बाहर छोड़ी व आपही समस्त तीर्थों के उत्तम जलको लाकर ॥ ३ ॥ उसे उस तड़ाग मे फेंकदिया उससे तडाग पूर्ण होगया जब कुँवार महीना भलीभांति प्राप्तहोवै तब रविवारके दिन पवित्र होकर जो मनुष्य ॥ ४ ॥ वहां श्राद्ध करता है और विशेषकर स्नान दान करता है उसके

पितर कल्पपर्यन्त तृप्त रहते हैं ॥ ५ ॥ यह नारद का तड़ाग पृथ्वी में प्रसिद्ध है और बड़े पुण्ययोग से देवताओंको भी नहीं प्राप्तहोता है ॥ ६ ॥ यहां पर जो दान
दिया जाता है और अग्नि में जो हवन किया जाता है और जप व अनशनव्रत साधन वह सब अक्षय जानै ॥ ७ ॥ नारदजी के उत्तम तड़ाग में नहाकर जो पुरुष
श्रद्धासे नारदेश्वर शिवजीको पूजता है वह समस्त पातकों से छूटजाता है ॥ ८ ॥ हे अर्जुनजी ! पुरातन समय इस तीर्थ में आपने हितकी कामना से कद्रूके शापको
छूटने के लिये सब नागोंने तपस्या कियाहै ॥ ९ ॥ तदनन्तर इस तीर्थ के प्रभावसे वे बड़ी सिद्धिको प्राप्तहुये हैं तदनन्तर नारदेश्वर के उत्तर भागमें बहुत प्रसन्नहोते

ले ॥ महतापुण्ययोगेन देवैरपिहिनाप्यते ॥ ६ ॥ यदत्रदीयतेदानं हूयतेयच्चपावके ॥ सर्वन्तदक्षयंविद्याज्जपोनशन
साधनम् ॥ ७ ॥ नारदीयेसरःश्रेष्ठे स्नात्वायोनारदेश्वरम् ॥ पूजयेच्छ्रद्धयामर्त्यस्सर्वपापैःप्रमुच्यते ॥ ८ ॥ अत्रतीर्थेपु
रापार्थ सर्वनागैस्तपःकृतम् ॥ कद्रूशापस्यमोक्षार्थमात्मनोहितकाम्यया ॥ ९ ॥ ततस्सिद्धिंपरांप्राप्तास्तीर्थस्यास्य
प्रभावतः ॥ ततोनागेश्वरंलिङ्गं स्थापयामासुरूर्जितम् ॥ १० ॥ नारदादुत्तरेभागे सर्वेनागाःप्रहर्षिताः ॥ नारदीयेसरः
श्रेष्ठे यःस्नात्वापूजयेद्धरम् ॥ ११ ॥ नागेश्वरंमहाभक्त्या तस्यपुण्यमनन्तकम् ॥ तेषांसर्पभयंनास्ति नागानांवचनं
यथा ॥ १२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डे नागेश्वरमाहात्म्यन्नामैकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४९ ॥ * ॥

नारदउवाच ॥ अपराद्वारकानाम देवीचात्रास्तिपाण्डव ॥ साचब्रह्माण्डद्वारेवै सदैवविहितालया ॥ १ ॥ चतुर्विंश

हुये सब नागोंने बड़े हुये नागेश्वर लिंगको स्थापन किया है नारदजी के उत्तम तड़ाग में नहाकर जो पुरुष नागेश्वर शिवजी को बडी भक्ति से पूजता है उसको
अनन्त पुण्य होताहै और उनको सांपोंका डर नही होताहै जैसा कि नागोंका वचन है ॥ १० । ११ । १२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेदेवीदयालुमिश्रवि
रचितायाभाषाटीकायानागेश्वरमाहात्म्यवर्णनन्नामैकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४९ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥
दो० । नारदमुनि थाप्यो यथा देवि द्वारका नाम । पचासवें अध्यायमें सोइ चरित अभिराम ॥ नारदजी बोले कि हे पाण्डव ! यहांपर अन्य द्वारका नामक देवी है

और उन देवीजी ने सदैवही ब्रह्माण्ड द्वारपै स्थान कियाहै ॥ १ ॥ जोकि चौविस करोड़ देवियों से रक्षितथीं तदनन्तर मैं बड़ीभारी तपस्या करके यहां लाया व प्रसन्न किया ॥ २ ॥ तदनन्तर उन द्वारवासिनी देवीजीको अन्य द्वारपै स्थापन किया चैतमहीने के कृष्णपक्ष में जो नवमी होवै है ॥३॥ उस दिन मनुष्य कुण्डमें स्नानकर उन देवीको पूजै क्योंकि उपहार, ताम्बूल, नैवेद्य व चन्दन, धूपादिक पूजनोंसे ॥४॥ सात जन्मोंमें किया हुआ पातक उसी क्षण नाश होजाता है व मनुष्य जिन जिन कामनाओंकी प्रार्थना करताहै उनको प्राप्तहोता है ॥ ५ ॥ और उस कुण्डमें केवल स्नानमात्र से वन्ध्या स्त्री पुत्रको पाती है व चैत महीनेकी नवमी में पुष्प धूपसे

तिकोटीभिर्देवीभिःपरिरक्षिता ॥ ततोदीर्घतपस्तप्त्वा मयानीतात्रतोपिता ॥ २ ॥ अपरस्मिंस्ततोद्वारे स्थापिताद्वारवासिनी ॥ नवमीचैत्रमासस्य कृष्णपक्षेभवेत्तुया ॥ ३ ॥ कुण्डेस्नानंनरःकृत्वा ताञ्चदेवींप्रपूजयेत् ॥ बलिताम्बूलनैवेद्यैर्गन्धधूपादिपूजनैः ॥ ४ ॥ सप्तजन्मकृतंपापं नाशमायातितत्क्षणात् ॥ यान्यान्प्रार्थयतेकामांस्तांस्तानाप्नोतिमानवः ॥ ५ ॥ बन्ध्याचलभतेपुत्रं स्नानमात्रेणतत्रवै ॥ नवम्यांचैत्रमासस्य पुष्पधूपाद्यपूजया ॥ ६ ॥ विघ्नांश्चनाशयेद्देवी सर्वसिद्धिंप्रयच्छति ॥ भक्तानांतत्क्षणादेव सत्यमेतन्नसंशयः ॥ ७ ॥ उत्तरेद्वारकाञ्चापि पूज्यैवंविधिनानरः ॥ एतदेवफलंसोपि प्राप्नुयान्मानवोत्तमः ॥ ८ ॥ उपोष्यनवरात्रञ्च स्नात्वाकुण्डेसमाहितः ॥ पूर्वद्वारेतुवैदेवी यास्थिताद्वारवासिनी ॥ ९ ॥ तस्याःपूजनमात्रेण प्राप्नुयाद्वाञ्छितंफलम् ॥ आश्विनेमासिसम्प्राप्ते नवरात्रेविशेषतः ॥ १० ॥ पूजयेद्देवताम्भक्त्या पुष्पधूपादितर्पणैः ॥ अपुत्रोलभतेपुत्रंनिर्धनोलभतेधनम् ॥ ११ ॥ बन्ध्याप्रसूयतेपार्थनात्रकार्या

पूजन करसे ॥ ६ ॥ देवीजी विघ्नोंको नाश करती हैं व भक्तोंको उसी क्षण समस्त सिद्धिको देती हैं यह सत्य है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ७ ॥ और मनुष्य उत्तरमें भी द्वारकादेवीको इसीविधिसे पूजकर वहभी उत्तम पुरुष इसी फलको प्राप्तहोताहै ॥८॥ नवरात्रमें उपासकर सावधान होताहुआ मनुष्य कुण्डमें नहाकर और पूर्व द्वारपै जो द्वारवासिनी देवी टिकी हैं ॥ ९ ॥ उनके पूजनमात्र से चाहेहुये फलको प्राप्तहोताहै कुँवार महीना प्राप्तहोनेपर नवरात्रमें विशेषकर ॥ १० ॥ भक्तिपूर्वक पुष्प,धूपादिक व तर्पणोंसे देवताका पूजनकरै तो पुत्रहीन मनुष्य पुत्रको प्राप्तहोताहै व निर्धनी धनकोपाताहै॥११॥और बन्ध्या स्त्री पुत्रको पैदाकरतीहै हे अर्जुनजी! इसमें विचार

न करना चाहिये ॥ १२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायाभाषाटीकायाकोटितीर्थद्वारकादेवीमाहात्म्यवर्णनन्नामपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ५० ॥
दो० । स्तुति नारदकी कहीं कृष्णचन्द्र यदुनन्द । इक्यावन अध्याय महँ सोइ चरित सुखकन्द ॥ नारदजी बोले कि हे अर्जुनजी ! ब्राह्मणोंकी कामनासे वहां
पर मेरी भी मूर्ति है और वहा छत्र व दण्ड से शोभित मैं उस स्थानको नहीं छोड़ताहूं कातिक महीनेकी शुक्लपक्षवाली जो उत्तम एकादशी होतीहै ॥ १ । २ ॥ उस
तिथिमें मेरा पूजन करके कलियुग का दोष छूटजाता है अर्जुनजी बोले कि बालकपनसे लगाकर मेरे हृदयमें यह सन्देह वर्तमान है ॥ ३ ॥ हे विप्रजी ! उसको पूछते

विचारणा॥१२॥इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेकोटितीर्थद्वारकादेवीमाहात्म्यन्नामपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥५०॥

नारदउवाच ॥ ममापिपार्थतत्रास्ते मूर्तिर्ब्राह्मणकाम्यया ॥ १ ॥ तत्रनाहंत्यजाम्यङ्गच्छत्रदण्डविभूषितः ॥ का
र्त्तिकस्यतुयाशुक्ला भवत्येकादशीशुभा ॥ २ ॥ तस्यांमदर्चनंकृत्वा कलिदोषाद्विमुच्यते ॥ अर्जुनउवाच ॥ बाल्यात्प्र
भृतिसन्देहो ममायंहृदिवर्तते ॥ ३ ॥ पृच्छतस्तन्ममेविप्र नक्रोधंकर्तुमर्हसि ॥ सदात्वंमोक्षधर्मेषु परिनिष्ठाम्पराङ्
तः ॥ ४ ॥ सर्वभूतसमोदान्तो रागद्वेषविवर्जितः ॥ सदाकलिकरोलोके निर्दयस्सर्वजन्तुषु ॥ ५ ॥ बहूनांहिसहस्राणि
देवगन्धर्वरक्षसाम् ॥ राज्ञांमुनीनांदैत्यानां कलेर्नष्टानितेभवन् ॥ ६ ॥ कस्मादेषाचचेष्टाते सन्देहंमेहरद्विज ॥ सन्दे
हान्नसुखंशेते बाणविद्धोमृगोयथा ॥ ७ ॥ सूतउवाच ॥ शौनकेदंवचःश्रुत्वा फाल्गुनान्नारदोमुनिः ॥ प्रहसन्निवबाभ्रव्य
वदनंसन्निरीक्षते ॥ ८ ॥ सचबाभ्रव्यनामावैहारीतस्यान्वयोद्भवः ॥ ब्राह्मणोनारदमुनेस्समीपंसम्प्रवर्त्तते ॥ ९ ॥ सच

हुये मेरे ऊपर तुम क्रोध करने के योग्य नहीहो कि सदैव तुम मोक्षधर्मों में उत्तम सिद्धिको प्राप्तहो ॥ ४ ॥ और सम्पूर्ण प्राणियों में समान व इन्द्रियजित् और स्नेह
व वैरसे रहितहो परन्तु संसारमें समस्त प्राणियोंमें निर्दयीहोकर कलि (लड़ाई) करानेवालेहो ॥ ५ ॥ बहुत हज़ार देवता, गन्धर्व, राक्षस, राजा, मुनि व दैत्य तुम्हारी
लड़ाई से नष्ट होगये हैं ॥ ६ ॥ हे विप्रजी ! तुम्हारा यह कर्म किस लियेहै मेरी इस सन्देहको हरलीजिये क्योंकि सन्देहसे मनुष्य बाण से बेधेहुये मृगकी नाईं सुख-
पूर्वक नहीं सोताहै ॥ ७ ॥ सूतजी बोले कि हे शौनकजी ! अर्जुनसे यह वचन सुनकर नारदमुनि हँसतेहुये से बाभ्रव्यके मुखको देखने लगे ॥ ८ ॥ और वह बाभ्रव्य

नामक ब्राह्मण हारीत के वंशमें उत्पन्न था जोकि नारदमुनिके समीप वर्तमान था ॥ ९ ॥ वह महाबुद्धिमान् नारद के मनकी इच्छा को जानकर हँसताहुआसा कोमल वचन करके अर्जुन से बोला ॥ १० ॥ बाभ्रव्य बोला कि हे पाण्डव ! जैसा तुम नारदजीसे कहतेहो यह सत्य है इस वृत्तान्तमें सब मनुष्य भी संदेह को प्राप्त होते हैं ॥ ११ ॥ परन्तु जिसप्रकार मैंने श्रीकृष्णजी से सुनाहै उसको मैं तुमसे कहूंगा कि पहले कुछ समय के अन्तरमें सम्पूर्ण यादवों को प्रसन्न करनेवाले ॥ १२ ॥ प्रभु श्रीकृष्णजी उग्रसेन व वसुदेव और बभ्रुसमेत वहां महीसागर की यात्रामें आये ॥ १३ ॥ और बलभद्रजी व रुक्मिणी के पुत्र प्रद्युम्न और युयुधानादिकों समेत

ज्ञात्वामहाबुद्धिर्नारदस्यमनीषितम् ॥ प्रहसन्निवचोवाच फाल्गुनंस्निग्धयागिरा ॥ १० ॥ बाभ्रव्यउवाच ॥ सत्यमेत द्यथात्थत्वं नारदंप्रतिपाण्डव ॥ सर्वोपिचात्रवृत्तान्ते संशयंयातिमानवः ॥ ११ ॥ तदहन्तेप्रवक्ष्यामि यथाकृष्णान्म याश्रुतम् ॥ स्तोककालान्तरेपूर्वं सर्वयादवनन्दनः ॥ १२ ॥ महीसागरयात्रायां कृष्णस्तत्रायययौप्रभुः ॥ उग्रसेनेनस हितो वसुदेवेनबभ्रुणा ॥ १३ ॥ रामेणरौक्मिणीयेन युयुधानादिभिस्तदा ॥ सचस्नात्वाज्ञातिमतां महीसागरसङ्गमे ॥ १४ ॥ पिण्डदानादिकृत्वाच दत्त्वादानानिभूरिशः ॥ गुहेश्वरादिलिङ्गानि यत्नतःप्रतिपूज्यच ॥ १५ ॥ स्नानंकृत्वाको टितीर्थे जयादित्यंसमर्च्यच ॥ आनर्चनारदमुनिमुक्तःकृष्णोमहामनाः ॥ १६ ॥ उग्रसेनेनराज्ञावै पूर्वजन्मजटायु ना ॥ मदादिविप्रमुख्यानां यदूनांचोपशृण्वताम् ॥ १७ ॥ उग्रसेनोमहाराजः कृष्णंप्रोवाचसंसदि ॥ उग्रसेनउवाच ॥ कृष्णपृच्छामिलोकेश संशयंवदतंमम ॥ १८ ॥ योयन्नाममहाबुद्धिर्नारदोविश्ववेदितः ॥ कस्मादेवातिचपलो वायुवद्

उन श्रीकृष्णजी ने उस समय महीसागरसंगम में नहाकर कुटुम्बियोंको ॥ १४ ॥ पिंडदानादि कर व बहुत से दानोंको देकर और गुहेश्वरादिक लिंगोंको यत्न से पूजकर ॥ १५ ॥ कोटितीर्थ में नहाकर जयादित्यको पूजकर नारद मुनिका पूजन किया तब पूर्वजन्म में जो जटायु थे उन उग्रसेन ने हम इत्यादिक ब्राह्मणों व यदुवंशियो के सुनते हुये उदारचित्तवाले श्रीकृष्णजी से कहा ॥ १६ । १७ ॥ महाराज उग्रसेन सभामें श्रीकृष्णजीसे बोले उग्रसेन बोले कि हे लोकेश श्रीकृष्णजी ! मै जो पूंछताहूं उस संदेहको मुझसे कहिये कि ॥ १८ ॥ जो ये महाबुद्धिमान् नारदजी संसार में प्रसिद्धहैं ये किस कारण अतिचञ्चलहै और पवनकी नाई संसारमें घूमते

है ॥१६॥ व किस कारण इनको कलि (बखेडा) प्याराहै और किसलिये तुम्हारे ऊपर बड़े प्रसन्न रहते हैं श्रीकृष्णजी बोले कि हे राजन्! तुमने यह सब सत्य पूँछा है
मैं तुमसे कहताहूँ ॥ २० ॥ कि पुरातन समय सृष्टिके मार्गमें वर्तमान पुत्रोंको नारदजीसे अन्यत्र पठायेहुये देखकर दक्षजीने मुनिश्रेष्ठ नारदजीको शापदिया है ॥ २१ ॥
कि घूमते हुये तुम्हारा इस संसार में स्थान (टिकना) न होगा और वैसेही दूसरे पुत्रोंको अन्यत्र चलाने के कारणसे चुगुलीके कहनेवाले होगे ॥ २२ ॥ इसप्रकार
दोभाति से पुत्रोंको सृष्टिमार्ग से चलादेने के कारण दो शापोंको पाकर निराकरण करने के लिये समर्थभी नारदमुनि ने उसको वैसाही माना ॥ २३ ॥ क्योंकि इतनाही

भ्रमतेजगत् ॥ १९ ॥ कलिप्रियश्चकस्माद्वा कस्मात्त्वय्यतिप्रीतिमान् ॥ श्रीकृष्णउवाच ॥ सत्यंराजंस्त्वयापृष्टमेत
त्सर्ववदामिते ॥ २० ॥ दक्षेणतुपुराशप्तो नारदोमुनिसत्तमः ॥ सृष्टिमार्गेसुतान्वीक्ष्य नारदेनविवासितान् ॥ २१ ॥ ना
वस्थानञ्चलोकेस्मिन् भ्रमतस्तेभविष्यति ॥ पैशुन्यवक्ताचतथा द्वितीयानांप्रचालनात् ॥ २२ ॥ इतिशापद्वयंप्रा
प्य द्विविधात्मजचालनात् ॥ निराकर्तुंसमर्थोपि मुनिर्मेनेतथैवतत् ॥ २३ ॥ एतावान्साधुवादोहि यत्क्षमेतेश्वरःस्वय
म् ॥ विनाशकालंचावेक्ष्य कलिंवर्द्धयतेयतः ॥ २४ ॥ सत्यंचवक्तितस्माच्च नसपापेनलिप्यते ॥ भ्रमतोपिचसर्वत्र ना
स्ययस्मात्पृथग्मनः ॥ २५ ॥ ध्येयाद्भवतिनैवस्याद्भ्रमदोषस्ततोस्यच ॥ यच्चप्रीतिर्मयित्वस्य परमातच्छृणुष्वच ॥
२६ ॥ अहंहिसर्वदास्तौमि नारदंदेवदर्शनम् ॥ महेन्द्रगदितेनैव स्तोत्रेणशृणुतन्नृप ॥ २७ ॥ उत्सङ्गाद्ब्रह्मणोजातो य
स्याहंतानविद्यते ॥ अगुप्तश्रुतिचारित्रं नारदंतन्नमाम्यहम् ॥ २८ ॥ अरतिःक्रोधचापल्ये भयन्नैतानियस्यच ॥ आदी

प्रशंसनीय वादहै जोकि समर्थ होकर आपही क्षमाकरै जिस लिये विनाशका समय देखकर नारदजी कलिको बढ़ाते हैं ॥ २४ ॥ व सत्य कहते हैं उसी कारण वे पाप
से नहीं लिप्तहोते हैं और जिस लिये सर्वत्र घूमतेहुये भी इनका मन ध्यान करने योग्य पुरुषसे भिन्न नहीं होताहै उसीकारण इनको घूमनेका दोष नहीं होताहै और
जो मुझमें इनकी बड़ी प्रीति है उगको सुनिये ॥ २५ ॥ २६ ॥ कि देवताके तुल्य दर्शनवाले नारदजी की मैं इन्द्रसे कहेहुये स्तोत्र से सदैव स्तुति करताहूँ हे राजन्!
उसको सुनिये ॥ २७ ॥ कि जो ब्रह्माकी गोदीसे उत्पन्नहुये हैं और जिनके अहङ्कार नहीं विद्यमानहै उन प्रकट वेद चरितवाले नारदजीको मैं प्रणाम करताहूँ ॥ २८ ॥

व वैर, क्रोध, चञ्चलता व भय ये जिनके नहीं हैं उन शीघ्र कार्यकारी बुद्धिमान् नारदजीको मैं नमस्कार करताहूं ॥ २९ ॥ और काम या लोभसे जो अन्यथा (झूंठ) वचन नहीं कहते हैं उन सब प्राणियों के उपासना करने योग्य नारदजी को मैं प्रणाम करताहूं ॥ ३० ॥ अध्यातम की गति व तत्त्व (यथार्थ) के जाननेवाले, ज्ञानशक्तिवाले, इन्द्रियजित, सीधे और यथार्थ कहनेवाले उन नारदजीको मै प्रणाम करताहूं ॥ ३१ ॥ तेज, यश, बुद्धि, नीति, नम्रता, जन्म व तपस्या से वृद्ध नारद मुनिको मै प्रणाम करताहूँ ॥ ३२ ॥ सुख, शीलवालेव उत्तम वेषवाले, भले भोजनवाले, प्रकाशवाले व पवित्र, सुन्दर नेत्रोंवाले और अच्छे वचनोंवाले नारदमुनि को

र्घसूत्रंतन्धीरं नारदंप्रणमाम्यहम् ॥ २९ ॥ कामाद्वायदिवालोभाद्वाचंयोनान्यथावदेत् ॥ उपास्यंसर्वजन्तूनां नारदन्तंनमाम्यहम् ॥ ३० ॥ अध्यात्मगतितत्त्वज्ञं ज्ञानशक्तिंजितेन्द्रियम् ॥ ऋजुंयथार्थवक्तारं नारदन्तंनमाम्यहम् ॥ ३१ ॥ तेजसायशसाबुद्ध्या नयेनविनयेनच ॥ जन्मनातपसावृद्धं नारदंप्रणमाम्यहम् ॥ ३२ ॥ सुखशीलंसुसंवेषंसुभोजंभास्वरंशुचिम् ॥ सुचक्षुषंसुवाक्यञ्च नारदंप्रणमाम्यहम् ॥ ३३ ॥ कल्याणंकुरुतेबाढं पापंयास्मिन्नविद्यते ॥ नप्रीयतेपरार्थेन योसौतन्नौमिनारदम् ॥ ३४ ॥ वेदस्मृतिपुराणोक्तं धर्मंयोनित्यमास्थितः ॥ प्रियाप्रियविमुक्तन्तं नारदंप्रणमाम्यहम् ॥ ३५ ॥ असक्तस्सर्वसङ्गेषु यस्सक्तात्मेवलक्ष्यते ॥ अदीर्घसंशयोवाग्मी नारदंप्रणमाम्यहम् ॥ ३६ ॥ नासूयत्यागमंकिञ्चित्तपःकृत्येनजीवति ॥ अवन्ध्यकालोवश्यात्मा तमहन्नौमिनारदम् ॥ ३७ ॥ कृतश्रमंकृतप्रज्ञं नचतृ

मैं प्रणाम करताहूँ ॥ ३३ ॥ जो बहुत कल्याण करतेहैं और जिनमें पाप नहीं विद्यमानहै और जो यह दूसरेके प्रयोजनसे नहीं तृप्त होतेहैं अर्थात् जो सदैव दूसरोंके प्रयोजन को चाहते हैं उन नारदजी को मै प्रणाम करताहूं ॥ ३४ ॥ वेद, स्मृति व पुराणोंमें कहेहुये धर्म्म पै जो नित्यही स्थितरहते हैं उन प्रिय व अप्रियसे छूटेहुये नारदको मैं प्रणाम करताहूँ ॥ ३५ ॥ जो समस्त सङ्गों में आसक्त नहीं हैं परन्तु आसक्तचित्तवाले से देख पडतेहै व थोडी सन्देहवाले और जो उत्तम वचनवालेहै उन नारदजीको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ३६ ॥ और जो शास्त्रसे कुछ भी द्रोह नहीं करते है और जो तपस्यासे जीते हैं व जो सफल समयवाले व वशीभूत चित्तवाले हैं उन नारदजी

को मैं प्रणाम करताहूँ ॥ ३७ ॥ परिश्रम किये व प्रवीण बुद्धिवाले और समाधि से अतृप्त व नित्यही यत्नमें सावधान उन नारदजी को मैं प्रणाम करताहूं ॥ ३८ ॥
जो द्रव्य मिलने में प्रसन्न नहीं होते हैं और न मिलने में जो दुःखी भी नहीं होते हैं और जो स्थिरबुद्धिवाले व अनासक्त चित्तवाले हैं उन नारदजी को मैं प्रणाम
करताहूं ॥ ३९ ॥ समस्त गुणोंसे संयुत, चतुर, पवित्र, निडर, समयके जाननेवाले व नीति के ज्ञाता उन नारदजी की शरण में मैं जाताहूँ ॥ ४० ॥ हे राजन्! नारद
के इस स्तोत्रको मैं नित्यही जपताहूं उसी से मुनिश्रेष्ठ नारदजी मेरे ऊपर बड़ी प्रीति करते हैं ॥ ४१ ॥ जो अन्यभी मनुष्य पवित्र होकर इस स्तुतिको जपताहै उसके

तंसमाधितः ॥ नित्ययत्नाप्रमत्तञ्च नारदंतन्नमाम्यहम् ॥ ३८ ॥ ननुहृष्यत्यर्थलाभे योलाभेनव्यथत्यपि ॥ स्थिरबु
द्धिरसक्तात्मा तमहंनौमिनारदम् ॥ ३९ ॥ तंसर्वगुणसम्पन्नंदक्षंशुचिमकातरम् ॥ कालज्ञञ्चनयज्ञञ्च शरणंयामिनारद
म् ॥ ४० ॥ इमंस्तवन्नारदस्य नित्यंराजञ्जपाम्यहम् ॥ तेनमेपरमांप्रीतिं करोतिमुनिसत्तमः ॥४१॥ अन्योपिचशुचि
र्भूत्वा नित्यमेतांस्तुतिञ्जपेत् ॥ अचिरात्तस्यदेवर्षिः प्रसादंकुरुतेपरम् ॥ ४२ ॥ एतान्गुणान्नारदस्य त्वमप्याकर्ण्य
पार्थिव ॥ जपनित्यंस्तवंपुण्यं प्रीतस्तेभवितामुनिः ॥ ४३ ॥ बाभ्रव्यउवाच ॥ इतिकृष्णमुखाच्छ्रुत्वा नारदस्यगुणान्नृ
पः ॥ बभूवपरमप्रीतश्चक्रेतच्चतथाचसः ॥ ४४ ॥ ततोनारदमभ्यर्च्यदत्त्वादानञ्चपुष्कलम् ॥ नारदीयद्विजाग्र्याणान्नार
दः प्रीयतामिति ॥ ४५ ॥ ययौद्वारवतींकृष्णः सभ्रातृज्ञातिबान्धवः ॥ तीर्थयात्रामिमांकृत्वा विधिवत्पुरुषोत्तमः ॥४६॥
तस्मात्त्वमपिकौरव्यनारदस्यगुणानिमान् ॥ श्रुत्वाश्रद्धामयोभूत्वा शृणुकृत्यंयदत्रच ॥ ४७ ॥ कार्त्तिकेशुक्लद्वादश्यां

ऊपर शीघ्रही नारदजी परमप्रसन्नता करते हैं ॥ ४२ ॥ हे राजन्! नारदमुनि के इनगुणोंको सुनकर तुमभी नित्य पुण्यदायक स्तोत्रको जपो तो नारदमुनि तुम्हारे ऊपर
प्रसन्नहोवेंगे ॥ ४३ ॥ बाभ्रव्य बोले कि श्रीकृष्णजी के मुख से इसप्रकार नारदके गुणोंको सुनकर वे उग्रसेनजी बहुत प्रसन्नहुये और उन्होंने उसको वैसाही किया ॥ ४४ ॥
तदनन्तर नारदजी को पूजकर व नारदजी प्रसन्नहोवैं इस लिये नारदजी के उत्तमद्विजोंको बहुतसा दानदेकर ॥ ४५ ॥ भाई और कुटुम्बी व बन्धुओं समेत पुरुषोत्तम
श्रीकृष्णजी इस तीर्थयात्रा को विधिपूर्वक करके द्वारकापुरी को चलेगये ॥ ४६ ॥ इस लिये हे अर्जुनजी! तुमभी नारदजी के इन गुणोंको सुनकर व श्रद्धासंयुत होकर

यहां जो कार्य करनाचाहिये उसको सुनिये ॥४७॥ कि कातिक महीनेमें शुक्लपक्षवाली प्रबोधिनी एकादशीमें ये नारदमुनि विष्णुजीके ध्यान व समाधि से प्रबुद्ध होतेहैं याने जागते हैं तब ॥ ४८ ॥ उसी दिन यहींपर नारदजी से बनाये हुये कूपमें नहाकर सावधान होता हुआ मनुष्य बड़े उपाय से श्राद्धकरै ॥ ४९ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! जिस प्रकार विष्णुजी ने योगनिद्रा को त्याग किया है वैसेही संसार के उपकार के लिये आपभी निद्राको छोड़िये ॥ ५० ॥ इस मन्त्रसे नारदजी को उठाकर छतुरी, धोती आदिक उत्तम पूजनों से पूजनकरै व श्रीकृष्णजीसे कहीहुई स्तुतिसे स्तुतिकरै ॥५१॥ और ब्राह्मणों को भक्तिसे प्रणामकर नारदजी प्रसन्नहोवैं इस लिये ब्राह्मणों को

प्रबोधिन्यामसौमुनिः ॥ विष्णोर्ध्यानसमाधिभ्यां प्रबुद्धोजायतेतदा ॥ ४८ ॥ तस्मिन्दिनेनारदेन निर्मितेत्रैवकूपके ॥ स्नानंकृत्वाप्रयत्नेन श्राद्धंकुर्यात्समाहितः ॥ ४९ ॥ योगनिद्रायथात्यक्ता हरिणामुनिसत्तम ॥ तथालोकोपकाराय भवानपिपरित्यज ॥ ५० ॥ इतिमन्त्रेणचोत्थाप्य नारदंपरिपूजयेत् ॥ कृष्णप्रोदितयास्तुत्या छत्रधौतार्चनैःशुभैः ॥ ५१ ॥ शक्त्याद्विजानांदेयंच छत्रंधौतंकमण्डलुम् ॥ प्रणम्यब्राह्मणान्भक्त्या नारदःप्रीयतामिति ॥ ५२ ॥ एवंकृते प्रसादात्स मुनेःपापात्प्रमुच्यते ॥ जायतेनकलिस्तस्यतथासौख्यंभवेदिह ॥ ५३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेनारदमाहात्म्यवर्णनन्नामैकपञ्चाशत्तमोध्यायः ॥ ५१ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सूतउवाच ॥ इतिबाभ्रव्यवचनमाकर्ण्यकुरुनन्दनः ॥ प्राणमन्नारदंभक्त्या विस्मितःपुलकान्वितः ॥ १ ॥ प्रणम्यचचिरङ्कालं पुनर्नारदमब्रवीत् ॥ गुप्तक्षेत्रस्यमाहात्म्यं संश्रुत्यैवंस्त्वन्मुखान्मुने ॥ २ ॥ तृप्तिंनैवाधिगच्छामि भूय

यथाशक्ति छतुरी, धोती व कमण्डलु को देवै ॥ ५२ ॥ ऐसा करनेपर नारदमुनिकी प्रसन्नतासे वह पातकसे छूटजाताहै और उसके बखेड़ा नहीं होताहै व इस लोक में सुखहोता है ॥ ५३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांनारदमाहात्म्यवर्णनन्नामैकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥ ॥

दो० । होत आठ परकार को जिमि अष्टांगक योग । बावनवें अध्याय में सोई कथित नियोग ॥ इसप्रकार बाभ्रव्यके वचनको सुनकर कुरुनन्दन अर्जुनजीने भक्ति से नारद को प्रणाम किया व विस्मय में प्राप्तहुये व रोमांच से संयुत हुये ॥ १ ॥ व बहुत देरतक प्रणाम कर फिर नारद जीसे बोले कि हे मुने ! तुम्हारे मुख से गुप्त-

क्षेत्र के माहात्म्य को सुनताहुआ मैं तृप्तिको नहीं प्राप्तहोताहूं इसलिये उसको फिर कहिये नारदजी बोले कि हे कुरूद्वह ! महालिंगकी महिमाको मैं कहूंगा ॥२।३॥ सावधान होतेहुये तुम गौतमेश्वर लिंग के उस माहात्म्य को सुनो कि जो महायोगी व नैयायिक गौतम मुनि हुये हैं ॥ ४ ॥ वे अहल्या के पति प्रभु गौतमजी गोदावरी के लानेवाले हुये हैं और उन्हों ने गुप्तक्षेत्र के बड़े उत्तम माहात्म्य को जानकर ॥ ५ ॥ योग का संकट करतेहुये वहांपर बड़ीभारी तपस्या किया है तदन-न्तर योग की सिद्धिको पाकर महात्मा गौतम जीने ॥ ६ ॥ गौतमेश्वर संज्ञासे लिंग को भलीभांति स्थापन किया व इस महालिंगको भलीभांति नहवाकर और चन्दन

स्तद्वक्तुमर्हसि ॥ नारदउवाच ॥ महालिङ्गस्यवक्ष्यामि महिमानंकुरूद्वह ॥ ३ ॥ गौतमेश्वरलिङ्गस्य सावधानःशृणुष्वतत् ॥ अक्षपादोमहायोगी गौतमोयोभवन्मुनिः ॥४॥ गोदावरीसमानेता अहल्यायाःपतिःप्रभुः ॥ गुप्तक्षेत्रस्यमाहात्म्यं सचज्ञात्वामहोत्तमम् ॥ ५ ॥ योगसंबाधनंकुर्वंस्तत्रतेपेतपोमहत् ॥ योगसिद्धिंततःप्राप्य गौतमेनमहात्मना ॥ ६॥ अत्रसंस्थापितंलिङ्गं गौतमेश्वरसंज्ञया ॥ संस्नाप्यैतन्महालिङ्गं चन्दनेनाविलिप्यच ॥ ७ ॥ सम्पूज्यपुष्पैर्विविधैर्गुग्गुलुंदाहयेत्पुनः ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तो रुद्रलोकेमहीयते ॥ ८ ॥ अर्जुनउवाच ॥ योगस्वरूपमिच्छामि श्रोतुंनारदतत्त्वतः ॥ योगंसर्वेप्रशंसन्ति यतस्सर्वोत्तमोत्तमम् ॥ ९ ॥ नारदउवाच ॥ समासात्तववक्ष्यामि योगतत्त्वंकुरूद्वह ॥ श्रवणादपिनैर्मल्यं यस्यस्यात्सेवनात्किमु ॥ १० ॥ चित्तवृत्तिनिरोधाढ्यं योगतत्त्वंप्रकीर्त्यते ॥ तदष्टाङ्गप्रकारेण साधयन्तीहयोगिनः ॥ ११ ॥ यमश्चनियमश्चैव प्राणायामस्तृतीयकः ॥ प्रत्याहारोधारणाच ध्येयंध्यानञ्चसत्तमम् ॥ १२॥

से विलेपनकर ॥ ७ ॥ अनेक भांति के फूलों से भलीभांति पूजकर फिर गूगुल जलावै तो समस्त पातकों से छूटकर मनुष्य शिवलोक में पूजाजाता है ॥ ८ ॥ अर्जुनजी बोले कि हे नारद जी ! मैं योग के स्वरूप को यथार्थ से सुनना चाहताहूं क्योंकि सर्वोत्तम से भी उत्तम योगकी सब प्रशंसा करते हैं ॥ ९ ॥ नारदजी बोले कि हे कुरुनायक ! मैं योग के तत्त्व को तुम से संक्षेप से कहूंगा कि जिसके सुनने से भी निर्मलता होती है फिर सेवन से क्या कहना है ॥ १० ॥ चित्त की वृत्ति के निरोध (रोक) से संयुक्त योगतत्त्व कहाजाता है उसको इस संसार में योगीलोग अष्टांग प्रकार से साधन करते हैं ॥ ११ ॥ यम, नियम व

तीसरा प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्येय व उत्तम ध्यान ॥ १२ ॥ व समाधि यह अष्टांगयोग कहागया है हे पाण्डव ! इन आठों के प्रत्येक लक्षण को क्रम से सुनिये ॥ १३ ॥ कि जिनके साधन से मनुष्य योगको प्राप्तहोता है अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य व परिग्रह ॥ १४ ॥ ये पांच यम कहेगये हैं और इनके लक्षणको भी सुनिये कि जो पुरुष अपनी नाई हितके लिये समस्त प्राणियो में वर्तमान होता है ॥ १५ ॥ यह अहिंसा कहीगई है जोकि वेदमें कही है देखा व सुना हुआ और अनुमान न किया हुआ यथार्थता से अपना भोगा हुआ वृत्तान्त ॥ १६ ॥ पराई पीड़ासे रहित कैसे सत्य नहीं है याने सत्य है और विपत्तिमें भी पराई द्रव्य-

समाधिरितिचाष्टाङ्गो योगस्सम्परिकीर्तितः ॥ प्रत्येकलक्षणंत्वेपामष्टानांश्रृणुपाण्डव ॥ १३ ॥ अनुक्रमान्नरोयेषां साधनाद्योगमश्नुते ॥ अहिंसासत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्य्यपरिग्रहौ ॥ १४ ॥ एतेपञ्चयमाःप्रोक्ताः श्रृणुत्वेपामपिलक्षणम् ॥ आत्मवत्सर्वभूतेषु योहितायप्रवर्त्तते ॥ १५ ॥ अहिंसैषासमाख्याता वेदसंविहिताचया ॥ दृष्टंश्रुतंनानुमितं स्वानुभूतंयथार्थतः ॥ १६ ॥ कथन्नसत्यमित्युक्तं परपीडाविवर्जितम् ॥ अनादानंपरस्वानामापद्यपिकथञ्चन ॥ १७ ॥ मनसा कर्मणावाचा तदस्तेयंप्रकीर्तितम् ॥ अमैथुनंयतीनाञ्च मनोवाक्कायकर्मणा ॥ १८ ॥ गुहास्थानाञ्चमनसा स्मृतएषपरिग्रहः ॥ एतेयमास्तवप्रोक्ताः पञ्चैवनियमाञ्छृणु ॥ १९ ॥ शौचन्तुष्टिस्तपश्चैव जपोभक्तिर्गुरोस्तथा ॥ एतेषामपिपञ्चानां पृथक्संश्रृणुलक्षणम् ॥ २० ॥ बाह्यमाभ्यन्तरञ्चैवद्विविधंशौचमुच्यते ॥ बाह्यन्तुमृज्जलैःप्रोक्तमान्तरंशुद्धमानसम् ॥ २१ ॥ न्यायेनागतयावृत्त्या भिक्षयावार्तयापिवा ॥ सन्तोषोयस्यसततं सातुष्टिरितिचोच्यते ॥ २२ ॥

का किसी प्रकार मन, वचन व कर्म से न लेना वह अस्तेय कहागया है और मन, वचन व कर्म से संन्यासियों का अमैथुन याने स्त्रीसङ्ग न करना या अकेले रहना ॥ १७।१८ ॥ कन्दराओं मे टिकेहुये जनोंका यह परिग्रह मनके द्वारा कहा गयाहै ये यम तुमसे कहेगये और पांचही नियमों को सुनिये ॥ १९ ॥ कि शौच, तुष्टि, तपस्या, जप व गुरुकी भक्ति इन पाचोंके अलग अलग लक्षणको सुनिये ॥ २० ॥ शौच दो प्रकार का कहा जाता है एक बाहरी व दूसरा भीतरी बाहरवाला शौच तो मिट्टी व जलों से कहा गया है व भीतर का शौच शुद्ध मन होता है ॥ २१ ॥ न्यायसे प्राप्त जीविका या भिक्षाकी जीविकासे जिसको सदैव सन्तोष रहताहै वही

वृष्टि ऐसी कही जातीहै ॥ २२ ॥ व फिर न्यून भोजनमें तत्पर होकर जो चान्द्रायणादिक कहेहुये व्रतोंको करता है वह तप कहा जाता है ॥ २३ ॥ और ॐकारका अभ्यास आदिक अपने वेदका पठन जप कहा गया है व शिवका जानना व गुरुमें भक्तिहोना गुरुभक्ति सुनीगई है ॥ २४ ॥ इस प्रकार यमों व नियमों को भली भांति साधनकर चतुर पुरुष सदैव प्राणायाम करै अन्यथा योगका साधक नहीं होताहै ॥२५॥ जिसलिये अशुद्ध शरीरवाले पुरुषके पवनका बड़ा कोप होताहै व पवन के कोपसे वह मनुष्य कुष्ठपन व जडतादिकको भोगताहै ॥ २६ ॥ इस लिये चतुर पुरुष शरीरको पवित्रकर अन्य वस्तुका यत्नकरै हे पाण्डव ! प्राणायाम का लक्षण

चान्द्रायणादीनि पुनस्तपांसिविहितानियः ॥ आहारलाघवपरः कुर्यात्तत्तपउच्यते ॥ २३ ॥ स्वाध्यायस्तुजपःप्रोक्तः प्रणवाभ्यसनादिकः ॥ शिवज्ञानंगुरौभक्तिर्गुरुभक्तिरितिश्रुता ॥ २४ ॥ एवंसंसाध्यनियमान् यमांश्चसुविचक्षणः ॥ प्राणायामंसदाध्यायेदन्यथायोगसाधकः ॥ २५ ॥ यतोऽशुचिशरीरस्य वायुकोपोमहान्भवेत् ॥ वायुकोपात्कुष्ठताञ्च जडत्वादीनुपाश्नुते ॥ २६ ॥ तस्माद्विचक्षणःशुद्धं कृत्वादेहंयतेतपरम् ॥ प्राणायामस्यवक्ष्यामि लक्षणंशृणुपाण्डव ॥ २७ ॥ प्राणापाननिरोधश्च प्राणायामःप्रकीर्तितः ॥ लघुमध्योत्तरीयाख्यः सचधीरैस्त्रिधोदितः ॥ २८ ॥ लघुर्द्वादशमात्रस्तु मात्रानिमिषउन्मिषः ॥ द्विगुणोमध्यमश्चोक्तस्त्रिगुणश्चोत्तमःस्मृतः ॥ २९ ॥ प्रथमेनजयेत्स्वेदं मध्यमेनतुवेपथुम् ॥ विषादञ्चतृतीयेन जयेद्दोषाननुक्रमात् ॥ ३० ॥ पद्माद्यमासनंकृत्वा रेचकंपूरकंतथा ॥ कुम्भकञ्चसुखासीनः प्राणायामंतथाभ्यसेत् ॥ ३१ ॥ प्राणानामुपसंरोधः प्राणायामइतिस्मृतः ॥ यथापर्वतधातूनांध्मातानांदह्यतेम

कहता हूँ उसको सुनिये ॥ २७ ॥ कि प्राण व अपान पवनका रोंकना प्राणायाम कहागया है और वह विद्वानों से लघु, मध्यम, उत्तरीय नामक तीनभांतिका कहा गया है ॥ २८ ॥ बारह मात्राका लघु होताहै और पलक मूँदने व खोलने के समयका नाम मात्राहै इसका दुगुना मध्यम कहा गया है व तिगुना उत्तम कहा गयाहै ॥ २९ ॥ पहले से पसीना को जीतै व मध्यम से कम्पको और तीसरे से विषाद को जीतै इस प्रकार क्रमसे दोषोंको जीतै ॥ ३० ॥ और पद्मादिक आसनकर सुखपूर्वक बैठाहुआ पुरुष रेचक, पूरक व कुम्भक प्राणायामका अभ्यास करै ॥ ३१ ॥ प्राणों का निरोध करना याने रोंकलेना यही प्राणायाम कहा गयाहै जैसे तपाईहुई पर्वत

की धातुवों का मल जलताहै ॥ ३२ ॥ वैसेही इन्द्रियों से कियाहुआ दोष प्राणायाम से जलता है और सौ कपिला गौवोंको देकर जो फल होताहै वह फल प्राणायाम से
होता है इस लिये योगका जाननेवाला मनुष्य सदैव प्राणका निरोधकरै और प्राणायामसे दिव्य शान्तिआदिक क्रमसे सिद्ध होते हैं ॥ ३३ । ३४ ॥ व शान्ति, प्रशा-
न्ति, दीप्ति व प्रसाद ये गुण क्रमपूर्वक होते है और सहजही में आनेवाले पापोंकी निवृत्ति होती है ॥ ३५ ॥ मनका निग्रह करना शान्ति ऐसा नामक प्रथम गुण
उत्पन्न होताहै और लोभ व मोहात्मक समस्त दोषोंको मन व बुद्धिमे निराकरणकर जो प्राप्तिहोती है वह इस लोकमें प्रशान्ति कहीजाती है और भूत,भविष्य व दूर

लः ॥ ३२ ॥ तथेन्द्रियकृतोदोषः प्राणायामेनदह्यते ॥ गोशतंकापिलंदत्त्वा यत्फलंतत्फलंभवेत् ॥ ३३ ॥ प्राणायामेन
योगज्ञस्तस्मात्प्राणंसदायमेत् ॥ प्राणायामेनसिद्ध्यन्ति दिव्याःशान्त्यादयःक्रमात् ॥ ३४ ॥ शान्तिःप्रशान्तिर्दीप्ति
श्च प्रसादश्चयथाक्रमम् ॥ सहजागन्तुकानाञ्च पापानाञ्चनिवर्त्तनम् ॥ ३५ ॥ शमनंशान्तिरित्याख्यः प्रथमोजायते
गुणः ॥ लोभमोहात्मकान्दोषान्निराकृत्यैवकृत्स्नशः ॥ ३६ ॥ मनसाप्रज्ञयाप्राप्तिः साप्रशान्तिरिहोच्यते ॥ अतीताना
गतानाञ्च विप्रकृष्टतिरोहिणाम् ॥ ३७ ॥ अर्थानामिहसंवित्तिस्सादीप्तिरितिहोच्यते ॥ सर्वेन्द्रियप्रसादश्च बुद्धेर्वैमरुता
मपि ॥ ३८ ॥ प्रसादइतिसप्रोक्तः प्राप्यमेवंचतुष्टयम् ॥ एवंफलंसदायोगी प्राणायामंसमभ्यसेत् ॥ ३९ ॥ मृदुत्वंसेव्य
मानस्तु सिंहशार्दूलकुञ्जराः ॥ यथायान्तितथाप्राणो वश्योभवतिसाधितः ॥ ४० ॥ प्राणायामस्त्वयंप्रोक्तः प्रत्याहारम
तःशृणु ॥ विषयेषुप्रवृत्तस्य चेतसोविनिवर्तनम् ॥ ४१ ॥ प्रत्याहारंविनिर्दिष्टं तस्यसंयमनंहितत् ॥ प्रत्याहारस्त्वयंप्रोक्तो

तथा छिपी हुई ॥ ३६ । ३७ ॥ वस्तुवों का यहां ज्ञान होना वही इस लोकमें दीप्ति कही जातीहै सब इन्द्रियोंका प्रसन्नहोना और बुद्धि व पवनोंका भी प्रसन्नहोना ॥३८॥
वह प्रसाद ऐसा गुण कहा गया है इस प्रकार चारगुण पाने योग्यहैं इसफलवाले प्राणायाम को योगी सदैव अभ्यास करै ॥ ३९ ॥ सेवन किये जातेहुये सिंह, व्याघ्र
व हाथी जैसे मृदुता को प्राप्तहोते है वैसेही साधन कियाहुआ प्राण वश में होजाता है ॥ ४० ॥ यह प्राणायाम कहा गया इसके उपरान्त प्रत्याहार को सुनिये कि
विषयों में वर्तमान चित्तका निवृत्त करना प्रत्याहार बतलाया गयाहै और उस चित्तका रोकना वह प्रत्याहार है ॥ ४१ ॥ यह प्रत्याहार कहा गया अब धारणाके लक्षण

को सुनिये कि जैसे जलके चाहनेवाले पुरुष जलको पात्र व हाथ आदिक से धीरे धीरे ॥ ४२ ॥ पीते हैं वैसेही साधन किये हुये पवनको योगी पीता है वायु, लिंग,
नाभि, हृदय, तालु व भौंहों के बीच ललाट में ॥ ४३ ॥ क्रमसे चतुर्दल कमल व षट्दल, दशपत्र, द्वादशदल, षोडशपत्र व द्विदल कमल में क्रमसे प्राणों को
लावे ॥ ४४ ॥ चतुर पुरुष ब्रह्मरन्ध्र के द्वारा मस्तकमें प्राणको भलीभांति धारणकरै व बारह प्राणायामोंको करै यह धारणा कहीगई है ॥ ४५ ॥ इन दश धारणाओं को
पाकर पुरुष अक्षर (ब्रह्म) की समताको प्राप्तहोता है और धारणा में टिकेहुये पुरुषको जो ध्येय (ध्यान करने योग्य) है उसका लक्षण तुम सुनो ॥ ४६ ॥ हे

धारणालक्षणंशृणु ॥ यथातोयार्थिनस्तोयं पात्रहस्तादिभिःशनैः ॥४२॥ आपिबेयुस्तथावायुं योगीपिबतिसाधितम् ॥
पायौलिङ्गेतथानाभ्यां हृदितात्वोर्भ्रुवोन्तरे ॥ ४३ ॥ चतुर्दलेषड्दशच द्वादशेषोडशेद्विके ॥ ४४ ॥ मूर्द्धनिब्रह्मरन्ध्रेण
प्राणंसन्धारयेत्कृती ॥प्राणायामोदशद्वौच धारणैषाप्रकीर्तिता ॥ ४५ ॥ दशैताधारणाःप्राप्य प्राप्नोत्यक्षरसाम्यताम्॥
धारणास्थस्ययद्ध्येयन्तस्यत्वंशृणुलक्षणम् ॥ ४६॥ ध्येयंबहुविधम्पार्थ यस्यान्तोनोपलभ्यते ॥ केचिच्छिवंहरिंकेचि
त केचित्सूर्यंविधिंपरे ॥ ४७ ॥ केचिद्देवींमहाभूतान्युतध्यायन्तिकेचन ॥ तत्रयोयच्चध्यायेत सचतत्रप्रलीयते ॥ ४८॥
तस्मात्सदाशिवन्देवं पञ्चवक्त्रंहरंस्मरेत ॥ पद्मासनस्थितंगौरं वृषोपरिसुसंस्थितम् ॥ ४९ ॥ दशहस्तंसुप्रसन्नवदनं
ध्यानमास्थितम् ॥ ध्येयमेतत्तवप्रोक्तं तस्यध्यानंसमाचरेत ॥ ५० ॥ ध्यानस्यलक्षणंत्वेतन्निमेषार्द्धमपिस्फुटम् ॥
नपृथग्ध्यायतेध्येयाद्धारणायांसमास्थितः ॥ ५१ ॥ एवमेतान्दुरारोहां भूमिमास्थाययोगवित ॥ नकिञ्चिच्चिन्तये

अर्जुनजी ! ध्येय बहुत प्रकारका है कि जिसका अन्त नहीं मिलता है कोई सदाशिवजी को कोई विष्णुको कोई सूर्य व कोई ब्रह्माको ध्याते हैं ॥ ४७ ॥ व कोई
देवी और कोई महाभूतोंको ध्याते हैं परन्तु उस विषय में जो जिसका ध्यान करताहै वह उसमें लीन होजाताहै ॥ ४८ ॥ इस लिये पांच मुखवाले सदाशिवदेव महा-
देवजीको स्मरणकरै कि पद्मासन से बैठेहुये, गौरवर्ण व बैलके ऊपर बैठेहुये ॥४९॥ व दश हाथोंवाले, प्रसन्नमुखवाले व ध्यानमें स्थितहैं यह ध्यान तुमसे कहा गया
उन सदाशिवजी का ध्यानकरै ॥ ५० ॥ और ध्यान का लक्षण यह है कि धारणामें स्थित मनुष्य आधे पलभर भी ध्येय देवतासे अलग न ध्यान करै ॥ ५१ ॥ इस

प्रकार दुःखसे चढ़ने योग्य इसभूमि(स्थान) में स्थितहोकर योग जाननेवाला मनुष्य पश्चात् कुछ न ध्यानकरै वह समाधि ऐसी कही जातीहै ॥ ५२ ॥ और भलीभांति
कहते हुये मुझसे समाधिके लक्षण को सुनिये कि शब्द, स्पर्श, रससेहीन व गन्ध रूपसे रहित ॥ ५३ ॥ उस उत्तम पुरुषको प्राप्त हुआ मनुष्य समाधि मे स्थित कहा
गयाहै और उसको प्राप्तहोकर मनुष्य कभी विघ्नों से तिरस्कृत नहीं होताहै ॥५४॥ और समाधि में टिकाहुआ पुरुष बडेभारी दुःखसे भी नहीं चलायमान होताहै यदि
उसके कानों में शङ्खादिक सैकड़ों बाजा बजायेजाते हैं ॥ ५५ ॥ व यदि नगारा पीटे जावैं तौभी वह पुरुष बाहरके शब्दको नहीं प्राप्त होता है चाबुक के प्रहारसे

त्पश्चात्सासमाधिरितीर्यते ॥ ५२ ॥ समाधेर्लक्षणंसम्यग्ब्रुवतोमेनिशामय ॥ शब्दस्पर्शरसैर्हीनं गन्धरूपविवर्जित
म् ॥ ५३ ॥ तंपरम्पुरुषंप्राप्तः समाधिस्थःप्रकीर्तितः ॥ तन्तुप्राप्यनरोविघ्नैर्नाभिभूयेतकर्हिचित् ॥ ५४ ॥ समाधिस्थ
स्तुदुःखेन गुरुणापिनचाल्यते ॥ शङ्खादिशतशस्तस्य वाद्यतेयदिकर्णयोः ॥ ५५ ॥ भेर्यश्चयदिहन्यन्ते शब्दंबाह्यन्न
विन्दति ॥ कशाप्रहाराभिहतो वह्निदग्धतनुस्तथा ॥ ५६ ॥ शीताद्येचस्थितेघोरे स्पर्शंबाह्यन्नविन्दति ॥ रूपेगन्धेरसे
त ॥ ५८ ॥ नस्वर्गेनचपाताले मानुषेक्कचतत्सुखम् ॥ समाधिन्निश्चलांप्राप्य यत्सुखंविन्दतेनरः ॥ ५९ ॥ एवमारूढ
बाह्ये तादृशस्यतुकाकथा ॥ ५७ ॥ दृष्ट्वायश्चैवमात्मानं समाधिंलभतेपुनः ॥ तृष्णावाथबुभुक्षावा नतंबाधेतकर्हिचि
योगस्य तस्यापिकुरुनन्दन ॥ पञ्चोपसर्गाःकटुकाः प्रवर्तन्तेयथाशृणु ॥ ६० ॥ प्रातिभःश्रावणोदेवो भ्रमावर्तोथभी

माराहुआ व अग्निसे जलीहुई देहवाला वह पुरुष॥ ५६ ॥ भयङ्कर जाड़ इत्यादिक प्राप्तहोनेपर भी बाहरी स्पर्शको नहीं प्राप्तहोता है तो वैसे पुरुषको रूप, गन्ध व
रसमें क्या कहना है याने बाहरी रूप, रस व गन्धको भी किसी प्रकारसे नहीं प्राप्त होसक्ता है ॥ ५७ ॥ जो इस प्रकार आत्माको देखकर फिर समाधि को प्राप्त
होता है उसको किसी प्रकार प्यास व भूँख नहीं बाधा करती है ॥ ५८ ॥ न स्वर्ग में और न पाताल मे फिर मनुष्यलोक में वह सुख कहां है कि जिस सुख को
मनुष्य अचल समाधि को प्राप्त होकर पाताहै ॥ ५९ ॥ हे कुरुनन्दन ! इस प्रकार उस योगारूढ पुरुष के भी पांच कटु उपद्रव जिस प्रकार वर्तमान होते हैं उनको

सुनिये ॥ ६० ॥ कि प्रातिभ, श्रावण, दैव, भ्रम व भयंकर आवर्त ये पांच उपद्रव हैं सब शास्त्रों का ज्ञान होना यह सात्त्विक प्रातिभ उत्पातहै ॥ ६१ ॥ उसमें जो पुरुष गर्वको ग्रहण करताहै वह शीघ्रही योगसे अलग होजाताहै और हज़ारों योजनोंसे शब्द का सुनना वह श्रावण नामक उत्पातहै ॥ ६२ ॥ यह दूसरा सात्त्विक उपसर्ग है इससे मत्तहोकर पुरुष नष्ट होजाताहै और जो आठों देवयोनियों को देखता है यह दैव उपसर्ग है ॥ ६३ ॥ यह भी सात्त्विक दोष है इस मद से पुरुष नष्ट हो जाताहै और जल के भँवर की नाईं जब ज्ञानरूपी भँवर में विकल होताहै ॥ ६४ ॥ यह आवर्त नामक राजस दोष बडा भयंकरहै और जो कि योगीका अवलम्बहीन

षणः ॥ प्रतिभासर्वशास्त्राणां प्रातिभोयञ्चसात्त्विकः ॥ ६१ ॥ तत्रयोमदमादद्याद्योगाच्छीघ्रंच्यवेतसः ॥ योजनानांस हस्रेभ्यः श्रवणंश्रावणस्तुसः ॥ ६२ ॥ द्वितीयस्सात्त्विकश्चायमस्मान्मत्तोविनश्यति ॥ अष्टौपश्यतियोनीश्च देवानां देवइत्यसौ ॥ ६३ ॥ अयञ्चसात्त्विकोदोषो मदादस्माद्विनश्यति ॥ आवर्तइवतोयस्य ज्ञानावर्तैर्यदाकुलः ॥ ६४ ॥ आ वर्ताख्यस्त्वयंदोषो राजसस्समहाभयः ॥ भ्राम्यतेयन्निरालम्बं मनोदोषैश्चयोगिनः ॥ ६५ ॥ समस्ताधारविभ्रंशाद् भ्रमाख्यस्तामसोगुणः ॥ एतैर्नाशितयोगास्तु सकलादेवयोनयः ॥ ६६ ॥ उपसर्गैर्महाघोरैरावर्त्तन्तेपुनःपुनः ॥ प्रा वृत्यकम्बलंशुक्लं योगीतस्मान्मनोमयम् ॥ ६७ ॥ चिन्तयेत्परमंब्रह्म कृत्वातत्प्रवणंमनः ॥ आहारास्सात्त्विकाश्चैव संसेव्यास्सिद्धिमिच्छता ॥ ६८ ॥ राजसैस्तामसैश्चैवयोगीसिद्ध्येन्नकर्हिचित ॥ श्रद्दधानेषुदान्तेषु श्रोत्रियेषुमहात्मसु ॥ ६९ ॥ स्वधर्मादनपेतेषु भिक्षायाच्याचयोगिना ॥ भैक्ष्यंयवान्नन्तक्रंवा पयःसंयावमेववा ॥ ७० ॥ फलंमूलंविपक्वंवा

मन दोषों से भ्रमित किया जाताहै ॥ ६५ ॥ सब आधारों के भ्रष्ट होने के कारण भ्रम नामक तामसी अवगुण है इन से नष्ट किये योगवाले सब देवयोनिवाले प्राणी ॥ ६६ ॥ बड़े भयंकर उत्पातों से बार बार भ्रमते हैं इस लिये श्वेत कम्बल आच्छादन कर योगी मनोमय परब्रह्म को उसमें मन झुकाकर चिन्तन करै और सिद्धि चाहनेवाले पुरुषको सात्त्विकी भोजन सेवन करना चाहिये ॥ ६७।६८ ॥ क्योंकि राजसी व तामसी भोजनो से योगी किसी प्रकार नही सिद्ध होताहै और श्रद्धा- वान्, इन्द्रियजित, वेदवित् व महात्माओं में ॥ ६९ ॥ और अपने धर्मसे अभिन्नजनों में योगी को भिक्षा मागना चाहिये और भिक्षामें पाया हुआ, यवान्न, मट्ठा या दूध

व गुम्फिया ॥ ७० ॥ या बिन पके फल, मूल, कन, पीना, सत्तू वेही पवित्रभोजन योगियों को सिद्धिकारक हैं॥ ७१ ॥ योग साधन करनेवाला पुरुष लक्षणों से मृत्यु समय को जानकर सावधान होकर कालकी वंचना के लिये योग करै ॥ ७२ ॥ उन लक्षणों को मैं कहताहूं कि जिनसे योगका जाननेवाला पुरुष मृत्युको जानता है कि अरुण चर्म व वसनको धारे तथा गाती व प्रियपूर्वक हँसती हुई ॥ ७३ ॥ स्त्री स्वप्न में जिसको दक्षिण दिशा में ले जावै वह भी मनुष्य नहीं जीता है और स्वप्न में हँसते हुये व नंगे पुरुषको हँसकर॥७४॥ व इसको जो बहुतही देखै उसको मृत्यु में प्राप्त जानै रीछ व वानर की सवारी पै बैठकर गाता हुआ जो पुरुष

कणपिण्याकसक्तवः ॥ शुच्याहारास्तथातेवै योगिनांसिद्धिकारकाः ॥ ७१ ॥ मृत्युकालंविदित्वाच निमित्तैर्योगसाधकः ॥ योगंयुञ्जीतकालस्य वञ्चनार्थंसमाहितः ॥ ७२ ॥ निमित्तानिचवक्ष्यामि मृत्युंयैर्वेत्तियोगवित् ॥ रक्तचर्माम्बरधरा गायन्तीहसतीप्रियम् ॥ ७३ ॥ दक्षिणस्यान्नयेन्नारी स्वप्नेसोपिनजीवति ॥ नग्नञ्चपुरुषंस्वप्ने हसमानंप्रहस्यच ॥ ७४ ॥ एनञ्चवीक्षतेत्यर्थं तंविद्यान्मृत्युमागतम् ॥ ऋक्षवानरयुग्यस्थो गायन्योदक्षिणांदिशम् ॥ ७५ ॥ यातिमज्जेत्तुयःपङ्के गोमयेवानजीवति ॥ केशाङ्गारतुषाभस्मभुजगैर्निर्जलान्नदीम् ॥ ७६ ॥ एषामन्यतमैःपूर्णां दृष्ट्वास्वप्नेनजीवति ॥ करालैर्विकटैःकृष्णैः पुरुषैरुद्यतायुधैः ॥ ७७ ॥ पाषाणैस्ताडितःस्वप्ने सद्योमृत्युंव्रजेन्नरः ॥ सूर्योदयेयस्य शिवा क्रोशन्तीयातिसम्मुखम् ॥ ७८ ॥ विपरीतंपरीतंवासद्योमृत्युमृच्छति ॥ दीपंछिन्नंचयोवेत्ति वमत्यग्निं तथानिशि ॥ ७९ ॥ नात्मानंपरनेत्रस्थं वीक्ष्यतेनसजीवति ॥ शुक्रायुधञ्चार्द्धरात्रे दिवातारागणन्तथा ॥ ८० ॥ दृष्ट्वा

दक्षिण दिशाको जाताहै और जो कीचड में या गोमय में नहाता है वह नहीं जीता है और निर्जल नदी को बाल, अँगार, भूसी, भस्म व सांपों से ॥ ७५ । ७६ ॥ या इन के सिवाय अन्य वस्तुवों से स्वप्न में पूर्ण देखनेवाला पुरुष नहीं जीता है व विकट, भयंकर, काले व अस्त्रों को उठाये हुये पुरुषों से ॥ ७७ ॥ पत्थरों करके जो स्वप्न में माराजाता है वह मनुष्य शीघ्रही मृत्यु को प्राप्त होता है और सूर्योदय में चिल्लाती हुई सियारी जिसके सामने जाती है ॥ ७८ ॥ व बाये या दाहिने ओर जाती है वह मनुष्य शीघ्रही मृत्युको प्राप्त होता है और जो कटे हुये दीपको जानता है व रात में अग्नि को वमन करता है ॥ ७९ ॥

न्येतसंक्षीणामात्मच्छायांयआत्मवान् ॥ नासिकावक्रतामेति कर्णयोर्निम्नतोन्नतिः ॥ ८१ ॥ नेत्रञ्चवामंस्रवति त
मीपतः ॥ आरक्ततामेतिमुखं जिह्वाचाप्यसितायदा ॥ ८२ ॥ तदाप्राज्ञोविजानीयादासन्नंमृत्युमात्मनः ॥
स्वप्नेयोयातिदक्षिणाम् ॥ ८३ ॥ दिशंकर्णौपिधायापि निर्घोषंशृणुयान्नच ॥ नसजीवेत्तथास्वप्ने प
४ ॥ द्वारन्नचोत्तिष्ठतिच श्वभ्राद्दृष्टिश्चलोर्द्ध्वगा ॥ स्वप्नेग्निप्रविशेद्यस्तु नचनिष्क्रामतेपुनः ॥
न्तंतस्यजीवितम् ॥ तथाभिहन्यतेदृष्टैर्भूतैरात्रावथोदिवा ॥ ८६ ॥ प्रकृतेर्विकृतिर्वापि त
स्तुणाञ्चपित्रोर्ज्ञानविदान्तथा ॥ ८७ ॥ निन्दामवज्ञांकुरुते भक्तोभूत्वानजीवति ॥
त ॥ ८८ ॥ धारणांसम्यगास्थाय समाधावचलोभवेत ॥ यदिनेच्छतितंमृत्युं

और पराये नेत्र में स्थित अपने शरीर को जो नहीं देखता है वह नहीं जीता है आधीरात में इन्द्रधनुष व दिन में नक्षत्रगणों को जो देखता है ॥ ८० ॥ और
जो शरीरधारी पुरुष दृष्टि से अपनी छाया को क्षीण देखै व नासिका कुटिलताको प्राप्त होवै व कानों में नीचता, उच्चता होवै ॥ ८१ ॥ और जिसका बायां नेत्र बहने
लगे उसकी मृत्यु समीपही है व मुख कुछ अरुणता को प्राप्त होवै और जब जीभ काली होजावै ॥ ८२ ॥ तब विद्वान् अपनी मृत्युको समीपही जानै व जो पुरुष
ऊंट व गधे की सवारीसे स्वप्न में दक्षिण दिशा को जाता है व कानों को मूंदकर शब्द को भी न सुनै वह नहीं जियैगा वैसेही स्वप्न में गढ़े में गिरहुये पुरुष का
[illegible] दृष्टि ऊपर को जातीहो और स्वप्नमें जो अग्निमें पैठे व फिर नहीं निकलै ॥ ८३ । ८४ । ८५ ॥
[illegible] ऐसेही देखे हुये भूतों से रात या दिन में जो मारा जाता है ॥ ८६ ॥ व जिसके स्वभाव का
[illegible] पिता [illegible] ज्ञान के जाननेवाले जनोंकी ॥ ८७ ॥ जो भक्तहोकर निन्दा व अपमान करता है
[illegible] धारणा में स्थितहोकर समाधि में अचल होवै और यदि यह मृत्युको न

र्वकाः ॥ ४४ ॥
। व एकही याने आकाशसे धारण कर
सके उपरान्त सुनिये ॥ ४ ॥ छायाका नाश व उत्प
होना ॥ ५ ॥ और दूरसे शब्द सुनना और सब प्राणियों के शब्द
का देखना ॥ ६ ॥ ये आठ आकाश की सिद्धियां व पहलेवाली भी बत्तीस

चाहै तो मृत्युको नहीं प्राप्तहोता है ॥ ८९ ॥ अथवा मुक्तिको चाहता हुआ पुरुष ब्रह्मको मस्तक में विसर्जन करै और मुक्त होजाने पर जब देह स्थित रहती है तब फिर जो उपद्रव ॥ ९० ॥ योगी के समीप प्राप्तहोते हैं हे पाण्डव! उनको भी सुनिये कि ऐशान व राक्षसपुरमें, यक्ष और गन्धर्वनगर में ॥ ९१ ॥ व इन्द्र, सौम्य, प्रजापति और ब्रह्मपुर में आठ उत्तम सिद्धियां होती हैं उनको सुनिये कि पार्थिवा व जलमयी और तैजसी ॥ ९२ ॥ वाती, व्योमात्मिका, मानसी, अहम्भवा व मति ये प्रत्येक आठभांतिकी भिन्नहैं व क्रमसे दुगुनी दुगुनी हैं ॥ ९३ ॥ कि पहले आठ व अन्तमें चौंसठि हैं उसको सुनिये कि जिसप्रकार वे सिद्धियां हैं स्थूलता,

ततोनासौप्रपद्यते ॥ ८९ ॥ विमुक्तिमथवाञ्छन्तु विसृजेद्ब्रह्ममूर्द्धनि ॥ सन्तिदेहेविमुक्तेवा उपसर्गाश्चयेपुनः ॥ ९० ॥ योगिनंसमुपायान्ति शृणुतान्यपिपाण्डव ॥ ऐशानेराक्षसपुरेयक्षेगन्धर्वएववा ॥ ९१ ॥ ऐन्द्रेसौम्येप्रजापत्ये ब्राह्मेचाष्टसुसिद्धयः ॥ भवन्तिचाष्टौशृणुताः पार्थिवाप्याचतैजसी ॥ ९२ ॥ वातीव्योमात्मिकाचैव मानसाहंभवामतिः ॥ प्रत्येकमष्टधाभिन्ना द्विगुणाद्विगुणाक्रमात् ॥ ९३ ॥ पूर्वेचाष्टौचतुःषष्टिरन्तेशृणुचतद्यथा ॥ स्थूलताह्रस्वताबाल्यं वार्द्धक्यंयौवनंतथा ॥ ९४ ॥ नानाजातिस्वरूपञ्च चतुर्भिर्देहधारणम् ॥ पार्थिवांशंविनानित्यमष्टौपार्थिवसिद्धयः ॥ ९५ ॥ विजितेपृथिवीतत्त्वे याऐशान्येभवन्तिच ॥ भूमाविवजलेवासोनातुरोर्णवमाविशेत् ॥ ९६ ॥ सर्वत्रजलप्राप्तिश्च अपिशुष्कंध्रुवंस्थलम् ॥ धारणंत्रिभिर्देहस्य नदींचस्थापयेत्करे ॥ ९७ ॥ अव्रणत्वंशरीरस्य कान्तिश्चाप्यष्टकंस्मृतम् ॥ अष्टौपूर्वाइमाश्चाष्टौ राक्षसानांपुरेस्मृताः ॥ ९८ ॥ देहादग्निविनिर्माणं तत्तापभयवर्जितम् ॥ शक्तिर्दग्धुंचलोकानां ज

ह्रस्वता, बालपन, वृद्धता, युवापन ॥ ९४ ॥ व अनेक प्रकारकी जातिके स्वरूपको धारणकरना व पृथ्वी अंशके विना नित्य चारही महाभूतों याने जल, तेज, वायु, आकाशसे देह धारण होता है ये आठ पार्थिव सिद्धियां हैं ॥ ९५ ॥ जोकि पृथ्वी तत्त्व जीतने पर ईशानलोकमें होती हैं और भूमिकी तरह जलमें वासहोना और मनुष्य शीघ्रतासे समुद्रमें पैठजाता है ॥ ९६ ॥ व निश्चयकर सूखाभी स्थल होवै परन्तु सब कहीं जलकी प्राप्तिहोना और तीनही वस्तुवोंसे याने तेज, वायु, आकाशसे देहको धारणकरता है व नदीको हाथमें धरलेताहै ॥ ९७ ॥ और घाव न होना व शरीरकी शोभाहोना ये आठ सिद्धियां कहीगई आठ पहलेवाली और आठ ये

राक्षसों के पुरकी सिद्धियां कहीगई हैं ॥ ९८ ॥ और देहसे अग्नि रचना व उसकी तापके डरसे रहित होना, लोकों के जलाने के लिये शक्तिहोना व जलके बीचमें अग्नि जलाना ॥ ९९ ॥ और हाथसे आग लेलेना व स्मरणमात्र से अग्निमें जली हुई वस्तुका निर्माण करना और दोही वस्तुओं से अर्थात् पवन व आकाश से देह धारण करना ॥ १०० ॥ पहलेवाली सोलह सिद्धिया व आठ तैजसी सिद्धियां ये यक्षस्थानमें हैं और मनके समान गतिहोना व प्राणियों के भीतर प्रवेश करना ॥ १ ॥ व खेलही से पर्वतादिक बड़े बोझों का चलना, लघुता, गुरुता व हाथों से पवन का धारण करना ॥ २ ॥ और अंगुली के अग्रभाग के निपातन से भूमिका सब कहीं

लमध्येऽग्निज्वालनम् ॥ ९९ ॥ अग्निग्रहश्चहस्तेन स्मृतिमात्रेणपावके ॥ भस्मीभूतस्यनिर्माणं द्वाभ्यांदेहस्यधारणम् ॥ १०० ॥ पूर्वाःषोडशचाप्यष्टौ तैजस्योयक्षसद्मनि ॥ मनोगतित्वंभूतानामन्तर्निवेशनन्तथा ॥ १ ॥ पर्वतादिमहाभारवहनंलीलयैवच ॥ लघुत्वंगौरवत्वंच पाणिभ्यांवायुधारणम् ॥ २ ॥ अङ्गुल्यग्रनिपातेन भूमेःसर्वत्रकम्पनम् ॥ देहधारणमेकेनगन्धर्वेवातसिद्धयः ॥ ३ ॥ चतुर्विंशतिपूर्वाश्च अष्टावेताश्चसिद्धयः ॥ गन्धर्वलोकेद्वात्रिंशदतऊर्ध्वंनिशामय ॥ ४ ॥ छायाविघातनिष्पत्तिरिन्द्रियाणामदर्शनम् ॥ आकाशगमनंनित्यमिन्द्रियाद्याःसमाःस्वयम् ॥ ५ ॥ दूरेचशब्दग्रहणंसर्वशब्दावगाहनम् ॥ तन्मात्रलिङ्गग्रहणंसर्वप्राणिनिदर्शनम् ॥ ६ ॥ अष्टौव्योमात्मिकाश्चैन्द्रे द्वात्रिंशदपिपूर्विकाः ॥ यथाकामोपलब्धिश्च यथाकामविनिर्गमम् ॥ ७ ॥ सर्वशक्तिमवश्चैवसर्वगुह्यनिदर्शनम् ॥ संसारदर्शनञ्चा

कांपना व एकही याने आकाशसे धारण करना ये वातसिद्धियां गन्धर्वलोक में हैं ॥ ३ ॥ चौबिस पहलेवाली और आठ ये सिद्धियां गन्धर्वलोकमें बत्तीस सिद्धियां हैं इसके उपरान्त सुनिये ॥ ४ ॥ छायाका नाश व उत्पन्नहोना, इन्द्रियों का न देख पड़ना व नित्यही आकाश में गमन करना व आपही इन्द्रिय आदिकों का शान्त होना ॥ ५ ॥ और दूरसे शब्द सुनना और सब प्राणियों के शब्दका जानलेना और तन्मात्र (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध) के चिह्नका ग्रहणकरना व समस्त प्राणियों का देखना ॥ ६ ॥ ये आठ आकाश की सिद्धियां व पहलेवाली भी बत्तीस सिद्धियां इन्द्रलोक में प्राप्त होती हैं और इच्छाके अनुकूल वस्तुका मिलना व इच्छाके अनु-

सार जाना ॥ ७ ॥ व सबकी शक्ति उत्पन्नहोना, सब गुप्त वस्तुवों का दर्शन और संसारभरको देखना ये मानसी आठ सिद्धियां ॥ ८ ॥ और चालीस पहलेवाली सिद्धियां ये सोमलोक में कहीगई हैं और काटना, तपाना, छेदना व संसारभर में घूमना ॥९॥ समस्त प्राणियों का प्रसन्नरहना और मृत्यु व कालका जीतना अहङ्कार से उत्पन्न ये आठ व पहलेवाली सिद्धिया प्रजापतिलोक में हैं ॥ १० ॥ और आकारही से संसारकी सृष्टि करना व अनुग्रह, प्रलय का अधिकार व लोकमें चित्त प्रवृत्त करना ॥ ११ ॥ व यह असमानता और चित्रमें प्रकटहोना व शान्तहोना तथा शुभ, अशुभ का करना ये आठ बुद्धिसे उपजेहुये गुण ॥ १२ ॥ और छप्पन पहलेवाले

पि मानस्योष्टौचसिद्धयः ॥ ८ ॥ चत्वारिंशाच्चपूर्वाश्चसोमलोकेस्मृतास्त्विमाः ॥ छेदनन्तापनंवेधं संसारपरिवर्त्तनम्॥ ९ ॥ सर्वभूतप्रसादत्वं मृत्युकालजयस्तथा ॥ अहङ्कारोद्भवाश्चाष्टौ प्राजापत्येचपूर्वकाः ॥ १० ॥ आकारेणजगत्सृष्टिस्तथानुग्रहमेवच ॥ प्रलयस्याधिकारश्चलोकेचित्तप्रवर्तनम्॥ ११ ॥ असादृश्यमिदंचित्रव्यक्तंनिर्वाणमेवच ॥ शुभेतरस्यकर्तृत्वमष्टौबुद्धिभवास्त्विमाः ॥ १२ ॥ षट्पञ्चाशत्तथापूर्वाश्चतुःषष्टिरिमेगुणाः ॥ ब्राह्मयेपदेप्रवर्तन्ते गुह्यमेतत्तवेरितम् ॥ १३ ॥ जीवस्यबुद्धिभेदेच सिद्धिष्वेतासुयोगिना ॥ सङ्गोनैवविधातव्यो भयात्पतनसम्भवात् ॥ १४ ॥ एतान्गुणान्निराकृत्य युञ्जतोयोगिनस्सदा॥सिद्धयोष्टौप्रवर्तन्ते योगसंसिद्धिकारकाः ॥ १५ ॥ अणिमालघिमाचैव महिमाप्राप्तिरेवच ॥ प्राकाम्यञ्चतथेशत्वं वशित्वञ्चतथापरम् ॥ १६ ॥ यत्रकामावसायत्वं माहेश्वरपदेस्थितिः ॥ सूक्ष्मात्सूक्ष्मत्वमणिमाशीघ्रत्वाल्लघिमास्मृता ॥ १७ ॥ वशित्वाद्वशितानाम सप्तमीसिद्धिरुत्तमा ॥ यत्रेच्छातत्रच

ये चौंसठि गुण ब्रह्माके स्थानमें वर्तमान हैं यह गुप्तचरित तुमसे कहा गया ॥१३॥ जीवके बुद्धिभेद होने पर भ्रष्टहोने से उपजे हुये डरसे इन सिद्धियों में योगीको सङ्ग न करना चाहिये ॥ १४ ॥ इन गुणोंको निराकरणकर सदैव योग करते हुये योगीके योगको भलीभांति सिद्ध करनेवाली आठ सिद्धियां वर्तमान होतीहैं ॥ १५ ॥ अणिमा, लघिमा, महिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व व अन्य वशित्व ये सिद्धियां प्राप्तहोती हैं ॥ १६ ॥ कि जिस सिद्धिमें कामोंकी समाप्ति होतीहै व माहेश्वर स्थान में स्थिति होती है और सूक्ष्मसे सूक्ष्मता अणिमा है व शीघ्रतासे लघिमा कहीगई है ॥१७॥ और वशमें होना यह वशिता नामक सातवीं उत्तम सिद्धिहै कि जहां इच्छा

होवै वहां स्थितिहोवै व जिसमें कामोंकी समाप्तिहोती है ॥ १८ ॥ ईश्वरके पदपै प्राप्त पुरुषके ये सिद्धियां होती हैं उसी कारण न उत्पन्न होताहै न बढ़ता है और न नष्ट
होताहै ॥ १९ ॥ इसप्रकार मुक्त ऐसा कहा गया है जोकि इस भांति मुक्तिको प्राप्तहोताहै जिस प्रकार जलमें फेंकाहुआ जल जलके साथ एकताको प्राप्तहोता है ॥ २० ॥
वैसेही योगीका जीव परमात्माके साथ समताको प्राप्तहोताहै ऐसा फल जानकर योगी सदैव योगका अभ्यास करै ॥ २१ ॥ इस योगार्थ में निर्मल योगीलोग इस उपमा
को कहते हैं कि चन्द्रमा की किरणों के संयोगसे सूर्यकान्तमणि अग्निको ॥ २२ ॥ नहीं उत्पन्न करती है एक न होकर वहीं भी उपमा योगीकी है जैसे कपिंजल, मूषा

स्थानं यत्रकामावसायिता ॥ १८ ॥ ऐश्वर्यंपदमाप्तस्य भवन्त्येताश्चसिद्धयः ॥ ततोनजायतेनैव वर्द्धतेनविनश्यति ॥
१९ ॥ एवंमुक्तइतिप्रोक्तो यएवंमुक्तिमाप्नुयात ॥ यथाजलंजलेनैक्यं निक्षिप्तमुपगच्छति ॥ २० ॥ तथैवसाम्यमभ्ये
ति योगेनात्मापरात्मना ॥ एवंज्ञात्वाफलंयोगी सदायोगंसमभ्यसेत ॥ २१ ॥ अत्रोपमांव्याहरन्ति योगार्थेयोगिनो
मलाः ॥ शशाङ्करश्मिसंयोगादर्ककान्तोहुताशनम् ॥ २२ ॥ समुत्सृजतिनैकस्सन्नुपमासापियोगिनः ॥ कपिञ्जलाखुनकु
ला वसन्तिस्वामिवद्गृहे ॥ २३ ॥ ध्वस्तेयान्त्यन्यतोदुःखंनतेषांसोपमीयते ॥ पिपीलिकामृदायद्वन्मुखाग्रेणकनीय
सीं ॥ २४ ॥ करोतिमृद्भागचयं उपदेशस्सयोगिनः ॥ पशुपक्षिमनुष्याद्यैः पत्रपुष्पफलान्वितम् ॥ २५ ॥ छिन्नंविलु
प्यमानन्तु बुद्धासिद्ध्यन्तियोगिनः ॥ रुरुगात्रविषाणाग्रमालक्ष्यतिलकाकृति ॥ २६ ॥ सहतेनविवृद्धन्तु योगीसि
द्धिमुपाश्नुते ॥ जलपूर्णमुपादाय पात्रमारोहतेपुरः ॥ २७ ॥ तुङ्गमार्गविलोक्यैवं विज्ञातंकिन्नयोगिना ॥ तद्गृहंयत्रवस

व नेउले स्वामी की तरह घरमें बसते हैं ॥ २३ ॥ और घर नाश होने पर अन्यत्र चलेजाते हैं व उनको दुःख नहीं होताहै वही उपमा दीजाती है जैसे चींटी मुखके
छोटे अग्रभाग के द्वारा मिट्टी स ॥ २४ ॥ मिट्टी के भागका ढेर करदेती है वही उपदेश योगीको होताहै पत्र, पुष्प व फलों से संयुत वृक्षको पशु, पक्षी व मनुष्यों से काटे
जातेहुये जानकर योगी सिद्धिको प्राप्तहोते हैं रुरु (मृगविशेष) के शरीर व सींगके अग्रभागको तिलक के आकार समान देखकर ॥ २५ । २६ ॥ योगी सिद्धिको भोगता
क्योंकि यह सींग उसकी देहके साथ बढ़ताहै ऊंचे मार्गको देखकर मनुष्य जलसे भरेहुये पात्रको लेकर जैसे चढ़ता है क्या योगीने ऐसा नहीं जानाहै वही घर है

जहां कि निवासहोवै और वही भोजनहै कि जिससे जीवन होताहै ॥ २७। २८ ॥ व जिससे प्रयोजन सिद्ध होता है व आपही योगकी सिद्धिके लिये होताहै वैसेही ज्ञानको योगी उपासनाकरै जोकि कार्यका साधकहोवै ॥ २९ ॥ और जो यह ज्ञानकी अधिकता है वह योगको विघ्न करनेवाली है यह जानने योग्य है यह जानने योग्य है इस प्रकार तृषित होकर जो विचरता है ॥ ३० ॥ वह हज़ार कल्पोंसे भी जानने योग्य वस्तुको नहीं प्राप्तहोता है सङ्गको छोड़हुये व क्रोधको जीतकर थोड़े भोजनवाला जितेन्द्रिय मनुष्य ॥ ३१ ॥ बुद्धिसे द्वारोंको मूँदकर मनको ध्यान में लगावै और सात्त्विक भोजनको सेवै उसका सेवन न करै कि जिससे ज्ञानरहित

तिस्तद्भोज्यंयेनजीव्यते ॥ २८ ॥ येननिष्पद्यतेचार्थः स्वयंस्याद्योगसिद्धये ॥ तथाज्ञानमुपासीत योगीयत्कार्यसाधकम् ॥ २९ ॥ ज्ञानानांबहुताचेयं योगविघ्नकरा हिसा ॥ इदंज्ञेयमिदंज्ञेयमितियस्तृषितश्चरेत् ॥ ३० ॥ अपिकल्पसहस्रेणनैवज्ञेयमवाप्नुयात् ॥ त्यक्तसङ्गोजितक्रोधो लघ्वाहारोजितेन्द्रियः ॥ ३१ ॥ पिधायबुद्ध्याद्वाराणि मनोध्यानेनिवेशयेत् ॥ आहारंसात्त्विकंसेवेन्नतंयेनविचेतनः ॥ ३२ ॥ सादयन्योहिभुञ्जानो रौरवस्यप्रियातिथिः ॥ वाग्दण्डःकर्मदण्डश्च मनोदण्डश्चतेत्रयः ॥ ३३ ॥ यस्यैतेनियतादण्डा सत्रिदण्डीयतीस्मृतः ॥ अनुरागंजनोयाति परोक्षेगुणकीर्त्तनम् ॥ नबिभ्यतिचसत्त्वानि सिद्धेर्लक्षणमुच्यते ॥ ३४ ॥ अलौल्यमारोग्यमनिष्ठुरत्वं गन्धःशुभोमूत्रपुरीषमल्पम् ॥ ३५ ॥ कान्तिःप्रसादःस्वरसौम्यताच योगप्रवृत्तेःप्रथमंहिचिह्नम् ॥ समाहितोब्रह्मपरेऽप्रमादी शुचिस्तथैकान्तरतिर्जितेन्द्रियः ॥ ३६ ॥ समाप्नुयाद्योगमिमंमहात्मना विमुक्तिमाप्नोतिततश्चयोगतः ॥ कुलंपवित्रंजननीकृतार्थावसुन्ध

होजावै ॥ ३२ ॥ व क्लेशित करताहुआ जो भोजन करताहै वह रौरव नरकका प्यारा पाहुन होताहै वाणीका दण्ड, कर्मका दण्ड व मनका दण्ड वे तीनों दण्डहैं ॥ ३३ ॥ जिसके ये तीन दण्ड नियतहैं वह त्रिदण्डी यती कहा गयाहै मनुष्य जिससे स्नेह को प्राप्तहोवैं और परोक्ष में जिसके गुण कहेजावैं और जिससे प्राणी न डरै यह सिद्धिका लक्षण कहा जाता है ॥ ३४ ॥ अचञ्चलता, नीरोगता, कामलता, सुन्दर गन्ध व थोडा मूत्र, विष्ठा ॥ ३५ ॥ शोभा, प्रसन्नता, स्वरकी सुन्दरता यह योगमें प्रवृत्तिका प्रथम चिह्नहै सावधान व परब्रह्ममें प्रमादरहित, पवित्र एकान्त प्रीतिवाला, जितेन्द्रिय ॥ ३६ ॥ व उदारमनवाला पुरुष इस योगको प्राप्तहोताहै तदनन्तर योग

से विशेषकर मुक्तिको प्राप्तहोताहै उसका कुल पवित्र होगया व माता कृतार्थ होगई और उससे पृथ्वी भाग्यवती होगई ॥ ३७॥ कि जिसका चित्त मुक्तिके मार्गमें सुख-
सागर में डूबगया व परब्रह्म में चित्त लगगया है व विशेषकर शुद्ध व समान ढेला व सुवर्णवाला और महोत्सवयुक्त समस्त प्राणियों में बसता हुआ ॥ ३८ ॥ यती
(संन्यासी) सदैव रहनेवाले व विकाररहित उत्तम स्थान में जाकर फिर नहीं उत्पन्न होताहै मैंने इस योगरहस्यको वर्णन किया और इसप्रकारके योगको गौतम
मुनिने पायाहै ॥ ३९ ॥ हे अर्जुनजी! दर्शन करते हुये पुरुषके कलियुग के पापविनाशक इस लिंगको उन गौतमजी ने स्थापन किया है जो पुरुष कुँवार महीने

**रामाग्यवतीचतेन ॥ ३७ ॥ विमुक्तिमार्गेसुखसिन्धुमग्नं लग्नंपरेब्रह्मणियस्यचेतः ॥ विशुद्धशुद्धस्समलोष्टकाञ्चनः
समस्तभूतेषुवसन्महोत्सवः ॥ ३८ ॥ स्थानंपरंशाश्वतमव्ययञ्च यतिर्हिगत्वानपुनःप्रजायते ॥ इदंमयायोगरहस्य
मुक्तमेवंविधङ्गौतमःप्रापयोगम् ॥ ३९ ॥ तेनैतच्चस्थापितम्पार्थलिङ्गं सम्पश्यतोवैकलिकल्मषघ्नम् ॥ यश्चाश्विनेकृ
ष्णचतुर्दशीदिने रात्रौसमभ्यर्चतिलिङ्गमेतत् ॥ ४० ॥ महोपहारेणविमुक्तपापस्सयातियत्रास्तिसगौतमोमुनिः ॥ इदं
मयापार्थतवप्रणीतं गुप्तस्यक्षेत्रस्यसमासयोगात् ॥ ४१ ॥ माहात्म्यमेतत्सकलंशृणोतियस्सस्याद्विशुद्धःकिमुवच्मिभू
यः ॥ ४२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डे गौतमेश्वरमाहात्म्यन्नामद्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥ * ॥
नारदउवाच ॥ अतःपरंप्रवक्ष्यामि ब्रह्मेशंलिङ्गमुत्तमम् ॥ यस्यश्रवणमात्रेण वाजपेयफलंलभेत् ॥ १ ॥ एकदातु**

में कृष्णपक्षकी चौदसि के दिन रातको इस लिंगका बड़े उपहार से पूजन करता है ॥४०॥ वह पातकोंसे छूटकर वहां जाताहै जहां कि गौतम मुनिहैं हे अर्जुनजी!
गुप्तक्षेत्र के इस चरितको मैंने तुमसे संक्षेपसे वर्णन किया ॥४१॥ जो इस समस्त माहात्म्यको सुनताहै वह विशेषकर पवित्र होताहै अब फिर मैं क्या वर्णनकरूं ॥ ४२ ॥
इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायाभाषाटीकायामष्टाङ्गयोगवर्णनपूर्वकगौतमेश्वरमाहात्म्यन्नामद्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥ ❀ ॥
दो० । नारदमुनि थाप्यो यथा ब्रह्मेशक शिवदेव । तिरपनके अध्यायमें सोई चरित सुभेव ॥ नारदजी बोले कि इसके उपरान्त उत्तम ब्रह्मेश लिङ्ग को कहताहूं कि

जिसके सुननेही से वाजपेय यज्ञके फलको प्राप्त होताहै ॥ १ ॥ हे अर्जुन जी! पहले एक समय सृष्टि की इच्छावाले ब्रह्मा जीने डेढ़हेजार वर्ष तक भयंकर तपस्या कियाहै ॥ २ ॥ तदनन्तर उस तपस्यासे प्रसन्न होकर पार्वतीजीके पति सदाशिवजीने इन लोककारक ब्रह्माजी के लिये निज मनोरथवाले वरदान को दियाहै ॥ ३ ॥ तदनन्तर प्रसन्न व बहुतही आनन्दित तथा कृतार्थ होकर ब्रह्माजीने क्षेत्र का माहात्म्य जानकर आपही लिंगका निर्माण किया ॥ ४ ॥ व ब्रह्मसर नामक समस्त पातकों के विनाशक तथा उत्तम व पुण्यदायक तड़ाग को महीनगर से पूर्व ओर खोदाहै ॥ ५ ॥ व इस तड़ाग के किनारे स्वामी शिवजी के महालिंग को थापाहै

पुरापार्थ सृष्टिकामेनब्रह्मणा ॥ तपःसुचरितंघोरं सार्द्धवर्षसहस्रकम् ॥ २ ॥ तपसातेनसन्तुष्टः पार्वतीपतिशङ्करः ॥ वरमस्मैततःप्रादाल्लोककर्त्रेस्ववाञ्छितम् ॥ ३ ॥ ततोहृष्टःप्रमुदितः कृतकृत्यःपितामहः ॥ ज्ञात्वाक्षेत्रस्यमाहात्म्यं स्वयंलिङ्गंचकारह ॥ ४ ॥ चखानचसरःपुण्यं नाम्नाब्रह्मसरःशुभम् ॥ महीनगरकात्पूर्वं महापातकनाशनम् ॥ ५ ॥ अस्य तीरेमहालिङ्गं स्थापयामासवैप्रभुम् ॥ तत्रदेवःस्वयंसाक्षाद्विद्यतेकिलशङ्करः ॥ ६ ॥ पुष्करादधिकंतीर्थं ब्रह्मेशन्नाम फाल्गुन ॥ तत्रस्नात्वानरोभक्त्या पिण्डदानंसमाचरेत् ॥ ७ ॥ दानञ्चैवयथाशक्त्या कार्त्तिक्याञ्चविशेषतः ॥ देवंप्रपूजयेद्भक्त्या ब्रह्मेशंहृष्टमानसः ॥ ८ ॥ पितरस्तस्यतुष्यन्ति यावदाभूतसम्प्लवम् ॥ पुष्करेषुचयत्पुण्यं कुरुक्षेत्रेरविग्रहे ॥ ९ ॥ गङ्गादिपुण्यक्षेत्रेषु यत्फलंप्राप्यतेनरैः ॥ तत्फलंसमवाप्नोति तीर्थस्यास्यावगाहनात् ॥ १० ॥ मोक्षलिङ्गस्यमाहात्म्यं शृणुपार्थमहाद्भुतम् ॥ मयास्थानहितार्थञ्चसमाराध्यमहेश्वरम् ॥ ११ ॥ स्थापितंप्रवरंलिङ्गं नाम्नामोक्ष

वहां पर साक्षात् सदाशिव जी प्रकटही विद्यमान हैं ॥ ६ ॥ हे अर्जुनजी! ब्रह्मेश नामक तीर्थ पुष्कर से अधिक है उसमें भक्तिसे नहाकर मनुष्य पिण्डदान करै ॥७॥ व यथाशक्ति से दान करै और कार्त्तिकी मे विशेषकर प्रसन्नमन होताहुआ पुरुष ब्रह्मेश नामक शिवदेव को भक्ति से पूजै ॥ ८ ॥ तो उसके पितर कल्पपर्यन्त तृप्त होते हैं पुष्करक्षेत्र में जो पुण्य है व सूर्यग्रहण मे कुरुक्षेत्र में जो पुण्य होती है ॥ ९ ॥ और गङ्गादिक पवित्र तीर्थों में मनुष्यों को जो पुण्य मिलती है उस फलको मनुष्य इस तीर्थ के स्नान से पाताहै ॥ १० ॥ हे अर्जुन! मोक्षलिंगके बड़े अद्भुत माहात्म्यको सुनिये कि मैने स्थानके हितके लिये महादेवजीका आराधनकर॥११॥

मोक्षेश्वर नामक सदाशिवजी के उत्तम लिंगको थापाहै तदनन्तर हे अर्जुनजी ! कुशके अग्रभाग से मैंने कूप खनन किया [illegible] है ॥ १२ ॥ व लोकोंके रचने वाले परमेष्ठी ब्रह्माजी को प्रसन्न कराकर और मनुष्योंको मोक्ष मिलने के लिये ब्रह्माके कमण्डलुसे सरस्वतीजी को मोक्षनाथ के इस कूपमें लायेहु [illegible] शुक्लपक्षमें जो चौदसि होती है ॥१३।१४॥ उस तिथिमें कुँवेमें नहाकर प्रेतोंको उद्देशकर जो तिलपिण्ड देताहै वह निश्चयकर मोक्षतीर्थ के फलको प्राप्तहोताहै ॥१५॥ कुँ [illegible] व हे अर्जुनजी ! उसके कुलमें प्रेत नहीं होताहै इसमें सन्देह नहीं है इस तीर्थ के प्रभावसे प्रेत मोक्षको प्राप्तहोते हैं ॥ १६ ॥ व जयादित्य नामक उत्तम कूपमें यत्नसे

श्वरंहरम् ॥ दर्भाग्रेणततःपार्थ कूपंखनितवानहम् ॥ १२ ॥ प्रसाद्यलोककर्तारं ब्रह्माणंपरमेष्ठिनम् ॥ कमण्डलोर्ब्रह्मणश्च समानीतासरस्वती ॥ १३ ॥ कूपेस्मिन्मोक्षनाथस्यलोकानांमोक्षप्राप्तये ॥ कार्त्तिकस्यतुमासस्य शुक्लपक्षेचतुर्दशी ॥ १४ ॥ कूपेस्नात्वानरस्तस्यां तिलपिण्डंसमाचरेत् ॥ प्रेतानुद्दिश्यनियतं मोक्षतीर्थफलंलभेत् ॥ १५ ॥ कुलेन जायतेतस्य प्रेतःपार्थनसंशयः ॥ प्रेतामोक्षंप्रगच्छन्ति तीर्थस्यास्यप्रभावतः ॥ १६ ॥ जयादित्येकूपवरे नरःस्नात्वा प्रयत्नतः ॥ गर्गेश्वरंनमस्कृत्य नसगर्भेषुमज्जति ॥ १७ ॥ इदंमयापार्थतवप्रणीतं गुप्तस्यक्षेत्रस्यसमासयोगात् ॥ माहात्म्यमेतत्सकलंशृणोतियः सस्याद्विशुद्धःकिमुवच्मिभूयः ॥ १८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेब्रह्मेश्वरमाहात्म्यन्नामत्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५३ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

अर्जुनउवाच ॥ गुप्तक्षेत्रमिदंकस्मात् कस्माद्गुप्तश्चनारद ॥ यस्यप्रभावस्सुमहानेवंकस्माच्चसंश्रुतम् ॥ १ ॥ नारदउ

नहाकर व गर्गेश्वर को नमस्कार कर वह पुरुष गर्भमें नहीं पडता है ॥ १७ ॥ हे अर्जुनजी ! मैंने संक्षेपयोग से गुप्तक्षेत्रके इस माहात्म्यको तुमसे वर्णन किया इस समस्त माहात्म्य को जो पुरुष सुनताहै वह विशेषकर शुद्ध होताहै अत्र फिर क्या वर्णन करूं ॥ १८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायांब्रह्मेश्वरलिङ्गमाहात्म्यवर्णनन्नामत्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५३ ॥ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥

दो० । गुप्तक्षेत्र भयो यथा धर्म्म शापसों गुप्त । चौवनके अध्यायमें सोई चरित सुलुप्त ॥ अर्जुनजी बोले कि हे नारदजी ! यह गुप्तक्षेत्र किस कारणसे है व किस

लिये गुप्तहै कि जिसका प्रभाव ऐसाहै और यह किससे सुनागया है ॥ १ ॥ नारदजी बोले कि हे पाण्डव! इस गुप्तक्षेत्र के कारणमें प्राचीन कथाको सुनिये कि जिस प्रकार यह शापसे गुप्तथा ॥ २ ॥ पुरातन समय किसी कारणमें समस्ततीर्थों के अधिदेवता मिलकर ब्रह्माजी को प्रणाम करने के लिये ब्रह्मसभा में गये ॥ ३ ॥ पुष्कर, प्रभास, नैमिष, अर्बुद व कुरुक्षेत्र और धर्मारण्य क्षेत्रके अधिदेवता ॥ ४ ॥ व वस्त्रापथक्षेत्र तथा फल्गुतीर्थ के जो देवताथे वे और केदारक्षेत्र तथा अन्यक्षेत्रों के स्वामी करोड़ों देवता ॥ ५ ॥ व सिन्धुनदी व समुद्र योगके देवता और महीसागर तीर्थ के देवता और गङ्गा व नर्मदादिक नदियों के अधिदेवता ॥ ६ ॥ और

वाच ॥ पुरातनीमत्रकथां गुप्तक्षेत्रस्यकारणे ॥ शृणुपाण्डवशापेन गुप्तमासीदिदंयथा ॥ २ ॥ पुरानिमित्तेकस्मिंश्चि त्सर्वतीर्थाधिदेवताः ॥ प्रणामायब्रह्मसदो ब्रह्माणंसहिताययुः ॥ ३ ॥ पुष्करस्यप्रभासस्य नैमिषस्यार्बुदस्यच ॥ कुरु क्षेत्रस्यक्षेत्रस्य धर्मारण्यस्यदेवताः ॥ ४ ॥ वस्त्रापथस्यक्षेत्रस्य फल्गुतीर्थस्यचापिये ॥ केदारस्यतथान्येषां क्षेत्राणां कोटिशोधिपाः ॥ ५ ॥ सिन्धुसागरयोगस्य महीसागरकस्यच ॥ गङ्गारेवामुखीनाञ्च नदीनामधिदेवताः ॥ ६ ॥ शो णह्रदपुरोगाणां ह्रदानांचाधिदेवताः ॥ तेसर्वेसङ्घशोभूत्वा श्रेष्ठज्ञानायचात्मनः ॥ ७ ॥ समुपाजग्मुरमला महतोब्रह्मण स्सभाम् ॥ ८ ॥ ततस्तीर्थानिसर्वाणि समायातानिवीक्ष्यसः ॥ उत्तस्थौसहितस्सर्वैस्सभासद्भिःपितामहः ॥ ९ ॥ प्रण म्यसर्वतीर्थेभ्यः प्रबद्धकरसम्पुटः ॥ तीर्थानिभगवानाह विस्मयोत्फुल्ललोचनः ॥ १० ॥ अद्यनस्सद्मसफलं युष्माभि रितिपावितम् ॥ वयञ्चपाविताभूयो युष्माकंदर्शनादपि ॥ तीर्थानान्दर्शनंश्रेयः स्पर्शनंस्नानमेवच ॥ ११ ॥ कीर्त्तनं

शोणनद पूर्वक कुण्डों के जो निर्मल अधिदेवता थे वे सब समूह होकर अपनाको श्रेष्ठ जानने के लिये महात्मा ब्रह्माजी की सभामें आये ॥ ७।८ ॥ तब ... हुये समस्त तीर्थोंको देखकर सब सामाजिकों समेत वे ब्रह्माजी उठखड़े ॥ ९ ॥ और दोनों हाथोंको जोड़कर समस्त तीर्थोंको प्रणामकर ... ब्रह्माजी ने विस्मयसे प्रफुल्लित लोचनोंवाले होकर कहा ॥ १० ॥ कि आपलोगों से पवित्र किया गया इस लिये हमारा स्थान सफल होगया ... आपलोगों के दर्शनसे भी हमलोग पवित्र

क्रियेगये क्योंकि तीर्थोंका दर्शन, स्पर्शन व स्नान कल्याणदायक होता है ॥ ११ ॥ व तीर्थोंका कीर्तन व स्मरणभी पुण्यरूप के सिवाय अन्य कुछ नहीं होता है बड़े
पापोंसे संयुत व अत्यन्तही निठुर जो भयङ्कर प्राणी होते हैं ॥ १२ ॥ वेभी पवित्र होजाते हैं फिर धर्म्म में टिकेहुयें लोगोंको क्या कहना है ऐसा कहकर उन ब्रह्माजी
ने पुलस्त्य पुत्रको आज्ञा दिया ॥१३॥ कि तीर्थों के लिये शीघ्रही अर्घको लाइये कि जिसप्रकार मैं पूजनकरूं पुलस्त्यजी बोले कि कमलसे उपजेहुये ब्रह्माजी ! असंख्य
तीर्थ देख पड़ते हैं ॥ १४ ॥ हे पिताजी ! इस लिये मुझको आज्ञा देतेहो कि एक अर्घको लाइये कि जिससे धर्म के वचन में यह श्लोक गान किया जाताहै ॥ १५ ॥

**स्मरणंचापि नस्यात्पुण्यंविनापरम् ॥ महापापान्विताश्रौद्रास्तथायेस्युस्सुनिष्ठुराः ॥ १२ ॥ तेपितीर्थैःप्रपूयन्ते किम्पुन
र्धर्मसंस्थिताः ॥ एवमुक्त्वापुलस्त्यंस पुत्रमब्ज्यादिदेशह ॥ १३ ॥ शीघ्रमर्घंतीर्थहेतोस्समानययथार्चये ॥ पुलस्त्यउ
वाच ॥ असंख्यातानितीर्थानि दृश्यन्तेपद्मसम्भव ॥ १४ ॥ तदादिशसिमान्तात अर्घमेकमुपानय ॥ धर्मप्रवचनेश्लो
को यतएषप्रगीयते ॥ १५ ॥ भवेयुर्यद्यसंख्याता अर्घयोग्यास्समर्चने ॥ ततस्तेषांवरिष्ठाय दातव्योर्घःकिलैककः ॥
१६ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ सत्यमेवतथावत्स त्वयाप्रोक्तमिदंवचः ॥ एवंकुरुष्वचार्घैकमानयार्घंसुशीघ्रतः ॥ १७ ॥ नारदउ
वाच ॥ ततःपुलस्त्योवेगेन समानिन्येर्घमुत्तमम् ॥ तञ्चब्रह्माकरेगृह्य तीर्थान्याहेतिभारत ॥ १८ ॥ सर्वैर्भवद्भिस्संहत्य
मुख्यस्त्वेकःप्रकीर्तितः ॥ तस्मैचार्घंप्रयच्छामि नैवंमामनयंस्पृशेत ॥ १९ ॥ तीर्थान्यूचुः ॥ नवयंश्रेष्ठतांविद्मः कथञ्च
नपरस्परम् ॥ अस्माद्धेतोश्चसम्प्राप्ता ज्ञात्वादेहित्वमेवतत् ॥ २० ॥ श्रीब्रह्मोवाच ॥ नाहंवेद्मिश्रेष्ठतांवः कथञ्चननमो**

कि पूजन में यदि असंख्य अर्घके योग्य जन होवैं तो उनके मध्यमें श्रेष्ठके लिये एक अर्घ देनाचाहिये ॥१६॥ ब्रह्माजी बोले कि हे वत्स ! तुमसे कहा हुआ यह वचन सत्यही
है ऐसा कीजिये कि आज शीघ्रही एक अर्घको लाइये ॥ १७ ॥ नारदजी बोले कि तदनन्तर पुलस्त्यजी शीघ्रतासे एक उत्तम अर्घको लाये व उसको हाथमें लेकर
हे भारत ! ब्रह्माजी ने तीर्थों से यह कहा ॥ १८ ॥ कि आप सब लोगों में मिलकर जो एक मुख्य कहा गयाहो उसके लिये मैं अर्घको देऊं इस प्रकार मुझको अन्याय
नहीं स्पर्श करैगा ॥ १९ ॥ तीर्थ बोले कि हमलोग आपसमें किसी प्रकारसे श्रेष्ठता को नहीं जानते हैं इस लिये आपके समीप प्राप्तहुये हैं उसको जानकर आपही

दीजिये ॥ २० ॥ श्रीब्रह्माजी बोले कि हम किसीप्रकार आप लोगोंकी श्रेष्ठता को नहीं जानते हैं तुम सबोंके लिये नमस्कारहै क्योंकि सब अपारमहिमावालेहो इस लिये आपही कहिये ॥ २१ ॥ जहां कि गङ्गा, गया, काशी, पुष्कर, नैमिष, कुरुक्षेत्र, नर्मदा व महीसागरका सङ्गम है ॥ २२ ॥ व प्रभासादिक सैकडों तीर्थ जहांपर हैं वहां हमारी कौनसी बुद्धिहै नारदजी बोले कि ब्रह्माजी के ऐसा कहनेपर किसीने कुछ न कहा ॥ २३ ॥ तदनन्तर बहुत देरमें महीसागरसंगम यह बोला कि हे चतुराननजी ! इस अर्घको तुम शीघ्रही मुझे देवो ॥ २४ ॥ क्योंकि मेरे करोड़वें भागमें कोई नहीं पूर्णहोता है जिस लिये कि इन्द्रद्युम्न राजा से तचाई हुई पृथ्वी ॥ २५ ॥ समस्त

स्तुवः ॥ सर्वेचापारमाहात्म्याः स्वयमेववदन्त्वतः ॥ २१ ॥ यत्रगङ्गागयाकाशी पुष्करंनैमिषंतथा ॥ कुरुक्षेत्रंतथारेवा महीसागरसङ्गमः ॥ २२ ॥ प्रभासाद्यानिशतशो यत्रनस्तत्रकामतिः ॥ नारदउवाच ॥ एवमुक्तेपद्मभुवा कोपिनोवाच किञ्चन ॥ २३ ॥ चिरेणेदन्ततःप्राह महीसागरसङ्गमः ॥ ममैनमर्घंत्वंयच्छ चतुराननशीघ्रतः ॥ २४ ॥ यतःकोटिकलायांवा ममकोपिनपूर्यते ॥ यतश्चेन्द्रद्युम्नराज्ञा तप्यमानावसुन्धरा ॥ २५ ॥ सर्वतीर्थमयीभूता महीनामाभवन्नदी ॥ साचसर्वाणितीर्थानि संयुक्ताचमयासह ॥ २६ ॥ सर्वतीर्थमयस्तस्मादस्मिन्ख्यातोजगत्त्रये ॥ गुहेनचमहालिङ्गं कुमारेश्वरमीश्वरम् ॥ २७ ॥ संस्थाप्यतीर्थमुख्यत्वं ममदत्तंमहात्मना ॥ नारदेनापिमत्तीरे स्थानंसंस्थाप्यशोभनम् ॥ २८ ॥ सर्वेभ्यःपुण्यक्षेत्रेभ्यो दत्तंश्रैष्ठ्यंपुरामम ॥ एवंत्रिभिर्हेतुवरैर्ममैवार्घःप्रदीयताम् ॥ २९ ॥ गुणैकदेशेपिसमं मतीर्थंनवैपरम् ॥ इत्युक्तेवचनेतत्र तीर्थराजेनभारत ॥ ३० ॥ सर्वेनोचुःकिञ्चनापि किंब्रह्मावक्ष्यतीतिनः ॥ ततोब्रह्मसु

तीर्थमयी होकर मही नामक नदीहुई और सब तीर्थों समेत वह मुझ सहित मिलगई ॥ २६ ॥ उसी कारण मैं इस त्रिलोकमें समस्त तीर्थमय प्रसिद्धहूं और महात्मा स्वामिकार्त्तिकेयजी ने कुमारेश्वर नामक महालिंग शिवको भलीभांति थापकर मुझको तीर्थमुख्यता दिया और नारदजी ने भी मेरे किनारे पै उत्तम स्थान को थापकर ॥ २७ । २८ ॥ पुरातन समय मुझको सब पुण्यदायक क्षेत्रोंसे श्रेष्ठता दियाहै इस प्रकार उत्तम तीन हेतुवों से मुझहीको अर्घ दियाजावै ॥ २९ ॥ क्योंकिमेरे गुणके एकभागके तुल्य भी अन्य तीर्थ नहीं है हे भारत ! वहां तीर्थराजके ऐसा कहनेपर ॥ ३० ॥ सबोंने इससे कुछभी न कहा कि ब्रह्मा हमलोगोंसे क्या कहैंगे तदनन्तर

श्वेतमाला व अनुलेपनोंवाले ब्रह्माके बडे पुत्र ॥ ३१ ॥ धर्म्मने दाहिनी भुजाको उठाकर यह वचन कहा कि अहो कष्टकी बात है तीर्थराजने अज्ञान से यह अच्छा
नहीं कहा ॥ ३२ ॥ क्योंकि उत्तम जनोंको अपने शरीर के होतेहुये भी गुण आपही न कहना चाहिये जो सभाओं में दूसरों को तिरस्कार करताहुआ आपही अपने
गुणोंको कहताहै ॥३३॥ यह राजस अहङ्कार निन्दित है इस लिये इस अहङ्कार से इन गुणों के होनेपर भी ॥३४॥ जिस लिये गर्व स्तम्भ किया गया इससे ध्वस्तरूप
वाला यह तीर्थ अप्रसिद्ध होकर स्तम्भतीर्थ ऐसा प्रसिद्धहोगा ॥ ३५ ॥ क्योंकि ब्रह्माजी ने भी गर्वका फल शीघ्रही पाया है तो अन्यको क्या कहना है धर्म्मदेव के ऐसा

तोज्येष्ठः श्वेतमाल्यानुलेपनः ॥ ३१ ॥ दक्षिणंबाहुमुद्धृत्यधर्मोवचनमब्रवीत् ॥ अहोकष्टमिदंकूक्तं तीर्थराजेनमोह
तः ॥ ३२ ॥ सन्तोपिनगुणावाच्याः स्वयंसद्भिःस्वकायतः ॥ स्वीयान्गुणान्स्वयंयोहि संसत्सुप्रक्षिपन्परान् ॥ ३३ ॥ ब्र
वीतिराजसस्त्वेषह्यहङ्कारोजुगुप्सितः ॥ तस्मादस्मादहङ्कारात्सत्स्वप्येषुगुणेषुच ॥ ३४ ॥ अप्रख्यातंध्वस्तरूपमिदंती
र्थंभविष्यति ॥ स्तम्भतीर्थमितिख्यातंस्तम्भोगर्वःकृतोयतः ॥ ३५ ॥ स्तम्भस्यहिफलंसद्यो ब्रह्मापिप्रापकिंपरः ॥ इ
त्युक्तेधर्मदेवेनहाहेतिरवउत्थितः ॥ ३६ ॥ तत्रशीघ्रंसमायातो योगीशोहञ्चपाण्डव ॥ गुहस्ततोवचःप्राह धर्मन्देवस
भागमे ॥ ३७ ॥ अयुक्तमेवशापोयद्दत्तोयंधर्मधार्ष्ट्यतः ॥ ब्रवीतुकोपिसर्वेषां तीर्थानांत्रिषुवर्त्तताम् ॥ ३८ ॥ येननार्घेना
र्हतेसौ महीसागरसङ्गमः ॥ तिष्ठन्नात्मगुणोयश्च तीर्थराजेनवर्णितः ॥ ३९ ॥ तत्रकोविगुणोनाम मिथ्यावादेयतोगुणः ॥
अहोनयुक्तंपालानां यदितेप्यविमृश्यच ॥ ४० ॥ एवमर्थान्करिष्यन्ति कंयान्तिशरणंप्रजाः ॥ एवमुक्तेगुहेनाथ धर्मो

कहनेपर हा हा ऐसा शब्द उठता भया ॥ ३६ ॥ हे पाण्डव ! वहांपर शीघ्रही योगीश्वर (स्वामिकार्त्तिकेयजी) व मैंभी आया तदनन्तर देवताओं की सभामें स्वामि-
कार्त्तिकेयजी ने धर्म से यह वचन कहा ॥ ३७ ॥ हे धर्म्म ! धृष्टता से जो यह शाप दियागया यह अयोग्यही किया गया क्योंकि तीनों लोकों में वर्तमान सब तीर्थों के
मध्यमें कोई भी कहै ॥३८॥ कि जिससे यह महीसागरसङ्गम अर्घ के योग्य नहीं है और जो टिकता हुआ अपना गुण तीर्थराजसे कहा गया ॥ ३९ ॥ उसमें प्रसिद्धता
में क्या अवगुण है क्योंकि मिथ्या कहने में अवगुण है अहो राजाओंको यह नहीं योग्यहै क्योंकि यदि वेभी न विचारकर ॥ ४० ॥ ऐसेही कार्यों को करैं तो प्रजा किस

की शरण में जावै ऐसा स्वामिकार्त्तिकेयजी के कहने पर धर्म्म वचन बोले ॥ ४१ ॥ कि यह सत्य है क्योंकि यह महीसागरसङ्गम सब तीर्थों की मुख्यताके योग्य है व ब्रह्माजीसे अर्घ के योग्यहै ॥ ४२ ॥ परन्तु अपने गुण न कहना चाहिये यह सज्जनों का सदैव नियम है पराया तिरस्कार व अपनी प्रशंसा करना ब्रह्माको भी चला देताहै ॥ ४३ ॥ पराये आक्षेप (तिरस्कार) समेत अपनी प्रशंसा को करतेहुये ययातिराजा क्या स्वर्गसे नहीं गिरे हैं याने स्वर्गसे भ्रष्टहुये हैं ॥ ४४ ॥ पुरातन समय बुद्धिमान् परमेश्वर ने जिन प्रमाणोंको किया है वे भलीभांति पालन करने योग्यहैं इससे उनको कौन विद्वान् उल्लंघन करैहै ॥ ४५॥ तुम्हारे पिताने आज्ञादेकर जिस

वचनमब्रवीत् ॥ ४१ ॥ सत्यमेतद्यदर्हार्यं महीसागरसङ्गमः ॥ मुख्यत्वंसर्वतीर्थानामर्घंचापिपितामहात् ॥ ४२ ॥ किन्तुनात्मगुणावाच्याः सतामेतत्सदाव्रतम् ॥ परात्तेपःस्वप्रशंसा ब्रह्माणमपिचालयेत् ॥ ४३ ॥ स्वप्रशंसाम्प्रकुर्वाणःपराक्षेपसमन्विताम् ॥ किन्दिवःपृथिवीपालो ययातिर्नपपातह ॥ ४४ ॥ यानिपूर्वंप्रमाणानि कृतानीशेनधीमता॥ तानिसम्पालनीयानि तानिकोतिक्रमेद्बुधः ॥ ४५ ॥ तवपित्रासमादिश्य यदर्थंस्थापितावयम् ॥ पालयामःसदातच्चत्वंपालयितुमर्हसि ॥ ४६ ॥ ईश्वराश्चप्रमाणेन भवन्तोयदिकुर्वते ॥ तदस्माभिरिदंचोक्तं शासनंधीमतांवर ॥ ४७ ॥ एवमुक्त्वास्वीयमुद्रां भोक्तुकामंवृषंतथा ॥ अहंप्रस्तावमन्वीक्ष्यवाक्यमेतदुदैरयम् ॥ ४८ ॥ नमोधर्मायमहते विश्वधात्रेमहात्मने ॥ ब्रह्मविष्णुशिवैर्नित्यं पूजितायाघनाशिने ॥ ४९ ॥ यदिमुद्रांभवान्धर्म परिचक्षतिकर्हिचित् ॥ तद

लिये हमलोगों को थापा है सदैव उसको पालन करते हैं और तुमभी उसका पालन करने के योग्य हो ॥ ४६ ॥ हे बुद्धिमानों में श्रेष्ठ स्वामिकार्त्तिकेयजी ! जिस लिये कि आपलोग समर्थ पुरुष प्रमाण से करते हैं इस लिये हमने यह शासन (आज्ञा) कहा ॥ ४७ ॥ व इसप्रकार अपना लक्षण कहकर भोजन को चाहनेवाले धर्म्म से प्रस्ताव को देखकर हमने इस वचन को कहा है ॥ ४८ ॥ कि महान् धर्म्म के लिये नमस्कार है व महात्मा विश्वधाता के लिये प्रणाम है और ब्रह्मा, विष्णु व शिवजी से नित्यही पूजित व पापनाशक धर्म्म के लिये नमस्कार है ॥ ४९ ॥ हे धर्म्म ! यदि आप कभी अपने लक्षणको कहतेहो तो हमलोगों का किस कारण अभाव होताहै

हे प्रभो ! संसारको मत नाश कीजिये ॥ ५० ॥ और योगीश्वर स्वामिकार्त्तिकेयजी को भी तुम मानने के योग्यहो क्योंकि साक्षात् शिवजी के पुत्र शिवही की नाईं मानने योग्य हैं ॥ ५१ ॥ और स्वामिकार्त्तिकेयदेवजी तुम्हारा सम्मान करने योग्य हैं और तुम दोनोंकी एकतासे यह संसार सुखपूर्वक जियै ॥ ५२ ॥ हे मानद ! तीर्थ-राजको तुमसे दियाहुआ अपनी न प्रसिद्धिके लक्षणवाला यह शाप और अनुग्रह कियाजावै ॥ ५३ ॥ ऐसा कहतेहुये मेरी प्रशंसाकर ब्रह्माजी ने यह कहा कि हे धर्म ! नारदजी ने यह अच्छा कहा है इस वचनको कीजिये ॥ ५४ ॥ और स्वामिकार्त्तिकेयजी का सम्मान कीजिये क्योंकि स्वामिकार्त्तिकेयजी हमलोगों के स्वामी हैं ब्रह्माजी

स्माकंकुतोऽभावो माविश्वंनाशयप्रभो ॥ ५० ॥ योगीश्वरंगुहञ्चापि त्वंमानयितुमर्हसि ॥ शिववन्माननीयोहि यतः साक्षाच्छिवात्मजः ॥ ५१ ॥ त्वाञ्चदेवोगुहःस्वामी सम्मानयितुमर्हति ॥ युवयोरैक्यभावेन सुखंजीवेदिदंजगत् ॥ ५२ ॥ त्वयाप्रदत्तःशापोयमस्वप्रख्यातिलक्षणः ॥ अनुग्रहश्चक्रियतां तीर्थराजस्यमानद ॥ ५३ ॥ एवमुच्चरमाणम्मां प्रशस्याहापिपद्मभूः ॥ साध्वेतन्नारदेनोक्तं धर्मैतद्वचनंकुरु ॥ ५४ ॥ सम्मानयगुहञ्चापि गुहःस्वामीयतोहिनः ॥ एवमुक्तेब्रह्मणाच धर्मोवचनमब्रवीत ॥ ५५ ॥ नमोगुहायसिद्धाय किङ्करायस्यवैवयम् ॥ मदीयांस्कन्दविज्ञप्तिंनाथैनामवधारय ॥ ५६ ॥ इतस्मादेतन्महातीर्थमप्रसिद्धंभविष्यति ॥ शनिवारेत्वमावस्या भवेत्तस्यांफलंहियत् ॥ ५७ ॥ महीसागरयात्रायां भवेत्तच्चावधारय ॥ प्रभासदशयात्राभिस्सप्तभिःपुष्करस्यच ॥ ५८ ॥ अष्टाभिश्चप्रयागस्य तत्फलंप्रभविष्यति ॥ पञ्चभिःकुरुक्षेत्रस्यनकुलीशस्यचत्रिभिः ॥ ५९ ॥ अर्बुदस्यचयत्षड्भिस्तत्फलञ्चभविष्यति ॥ व

के ऐसा कहनेपर धर्म्म वचन बोले ॥ ५५ ॥ कि सिद्ध स्वामिकार्त्तिकेयजी के लिये प्रणाम है कि जिनके हमलोग किङ्कर हैं हे स्वामी महासेनजी ! हमारी इस विनय को सुनिये ॥ ५६ ॥ कि गर्वके कारण यह तीर्थ अप्रसिद्ध होगा और शनिवार को जो अमावस होवै उस अमावस में महीसागरकी यात्रा में जो फल होवै है उसको सुनिये ॥ ५७ ॥ कि प्रभासकी दश यात्राओं से व पुष्करकी सात यात्राओंसे ॥ ५८ ॥ व प्रयागकी आठ यात्राओं से जो फल होता है वही फल होगा व कुरुक्षेत्रकी पांच यात्राओं से और नकुलीशतीर्थकी तीन यात्राओं से ॥ ५९ ॥ व अर्बुदक्षेत्रकी छह यात्राओं से जो फल होता है वह फल उस दिन यहां होगा और वस्त्रापथतीर्थ की

तीन यात्राओं से व गङ्गाजीकी पांच यात्राओं से जो फल होता है ॥ ६० ॥ और कूपोदरी की चार यात्राओं से जो फल होता है वही फल यहां होगा वैसेही काशीकी छह यात्राओं से व गोदावरी की पांच यात्राओं से जो फल होता है ॥६१॥ वही फल स्तम्भतीर्थ में शनैश्चर अमावस के दिन होगा ऐसा वरदान देनेपर उस समय स्वामिकार्त्तिकेयजी प्रसन्नमन हुये ॥ ६२ ॥ व ब्रह्माने भी सावधान होकर स्तम्भतीर्थ के लिये अर्घदिया व अमित शोभावाले उन्हो ने सब तीर्थोंके मध्य में श्रेष्ठताको दिया ॥ ६३ ॥ और तीर्थों व स्वामी स्वामिकार्त्तिकेयजी का सम्मानकर उन्हों ने बिदा किया इस प्रकार पहले गुप्तक्षेत्र का यह कारण वर्तमान हुआ है ॥ ६४ ॥ व

स्नापथस्यतिसृभिर्गङ्गायाःपञ्चभिश्चयत् ॥ ६० ॥ कूपोदर्याश्चतुर्भिर्यत्तत्फलंप्रभविष्यति॥काश्याःषड्भिस्तथायत्स्याद्गोदावर्य्याश्चपञ्चभिः ॥ ६१ ॥ तत्फलंस्तम्भतीर्थेवै शनिदर्शेभविष्यति ॥ एवंदत्तेवरेस्कन्दस्तदाप्रीतमनाभवत् ॥ ६२ ॥ ब्रह्मापिस्तम्भतीर्थाय ददावर्घंसमाहितः ॥ ददौचसर्वतीर्थानां श्रेष्ठत्वममितद्युतिः ॥ ६३ ॥ तीर्थानिचगुहञ्चाथं सम्मान्यविससर्जसः ॥ एवमेतत्पुरावृत्तं गुप्तक्षेत्रस्यकारणम् ॥ ६४ ॥ भूयश्चापिप्रसिद्ध्यर्थं धर्मेणोक्तञ्चयद्वचः ॥ समासतस्तत्सर्वंवै मयोक्तञ्चकुरूद्वह ॥ ६५ ॥ यतोधर्मस्यरूपस्य नानारूपैःप्रवर्ततः ॥ परित्राणायभवतः कृष्णस्यचभवोभवेत् ॥ ६६ ॥ तदिदंवर्णितंतुभ्यं सर्वतीर्थफलंमहत् ॥ श्रुत्वैतदादितस्सर्वं पुमान्पापैःप्रमुच्यते ॥ ६७॥ सूतउवाच ॥ श्रुत्वेतिविजयोधीमान् प्रशशंससुविस्मितः ॥ विसृष्टोनारदाद्यैश्च द्वारकांप्रतिजग्मिवान् ॥ ६८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे कुमारिकाखण्डेऽर्जुनतीर्थयात्रावर्णनन्नामचतुष्पञ्चाशत्तमोध्यायः ॥ ५४ ॥ * ॥ * ॥

कुरुनायक ! फिरभी प्रसिद्धिके लिये धर्म्मने जिसवचनको कहा संक्षेप से वह सब मुझसे कहा गया ॥६५॥ जिस लिये कि अनेक प्रकारके रूपों से वर्तमान धर्मकेरूप की रक्षाके लिये आपका व कृष्णजी का जन्म होताहै ॥६६॥ वही यह तुमसे समस्त तीर्थोंका बडाभारी फल कहा गया इस सबको पहलेही से सुनकर मनुष्य पातकों से छूटजाता है ॥ ६७ ॥ सूतजी बोले कि यह सुनकर विस्मय में प्राप्तहोते हुये बुद्धिमान् अर्जुनजी ने प्रशंसा किया और नारदादिकों से बिदा कियेहुये वे द्वारकाको चलेगये ॥ ६८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायामर्जुनतीर्थयात्रावर्णनन्नामचतुष्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५४ ॥ ॥

दो० । गयो घटोत्कच व्याह हित प्राग्ज्योतिषपुर नाम । पञ्चपन के अध्याय में सोई चरित ललाम ॥ शौनक जी बोले कि हे सूतजी ! यह बड़ा अद्भुत गुप्तक्षेत्र का अतुल माहात्म्य कहागया जो कि पवित्रकारक व हर्ष को बढ़ानेवालाहै ॥ १ ॥ फिर सिद्धिलिंग का पहले जो यह माहात्म्य कीर्तन कियागया है कि चण्डिलकी सहायता से पुण्यात्मा विजयनामक सिद्धिमाताकी प्रसन्नतासे सिद्धि को प्राप्तहोगा यह चण्डिल नामक कौनहै व विजयनामक कौनहै ॥२।३॥ और उसने किसप्रकार सिद्धिमाता के प्रसाद से सिद्धि को पाया है इस को तत्त्व से कहिये सुननेको हम लोगों के आश्चर्य है ॥ ४ ॥ सज्जनों के चरित्र सुनने में किस को कौतुक नहीं

शौनकउवाच ॥ अत्यद्भुतमिदंसूत गुप्तक्षेत्रस्यपावनम् ॥ महन्माहात्म्यमतुलं कीर्तितंहर्षवर्द्धनम् ॥ १ ॥ पुनर्यं त्सिद्धिलिङ्गस्य पूर्वंमाहात्म्यकीर्तनम् ॥ इत्युक्तंयत्प्रसादेन सिद्धिमातुस्तुसेत्स्यति ॥ २ ॥ विजयोनामपुण्यात्मा साहाय्याच्चण्डिलस्यच ॥ कोन्वसौचण्डिलोनाम विजयोनामकस्तथा ॥ ३ ॥ कथञ्चप्राप्तवान्सिद्धिं सिद्धिमातुःप्रसादतः ॥ एतदाचक्ष्वतत्त्वेन श्रोतुंकौतूहलंहिनः ॥ ४ ॥ सताञ्चरित्रश्रवणे कौतुकंकस्यनोभवेत् ॥ उग्रश्रवाउवाच ॥ साधुपृष्टमिदंविप्रदूरान्तरितमप्युत ॥ ५ ॥ श्रुतंद्वैपायनमुखात्कथांवक्ष्यामिचात्रवः ॥ पुराद्रुपदराजस्य पुत्रीमासाद्यपाण्डवाः ॥ ६ ॥ धृतराष्ट्रमतेप्रस्थादिन्द्रप्रस्थंन्यवेशयन् ॥ रक्षितावासुदेवेन कदाचित्तत्रपाण्डवाः ॥ ७ ॥ उपविष्टास्सभामध्येकथाश्चक्रुःपृथग्विधाः ॥ देवर्षिपितृभूतानां राज्ञाञ्चापिप्रकीर्तने ॥ ८ ॥ क्रियमाणेथतत्रागाद्भीमपुत्रोघटोत्कचः ॥ तन्दृष्ट्वाश्च

होता है उग्रश्रवा सूतजी बोले कि हे विप्र जी ! तुमने यह बहुतअच्छा पूंछा जो कि दूरान्तरित भी है ॥ ५ ॥ इस विषय में व्यासजीके मुख से सुनीहुई कथा को मैं तुम लोगों से कहूंगा कि पुरातन समय द्रुपदराजा की कन्या (द्रौपदी) को प्राप्तहोकर पाण्डव ॥ ६ ॥ पश्चात् धृतराष्ट्र के मत में प्राप्त होकर इन्द्रप्रस्थ(दिल्ली) में प्रवेश करते भये किसी समय वहां कृष्णजी से रक्षित पाण्डव लोगों ने ॥ ७ ॥ सभा के मध्य में बैठकर अनेक भांतिकी कथाओं को कहा व देव, ऋषि, पितर, भूत व राजाओं का कीर्तन ॥ ८ ॥ करनेपर वहां भीम का पुत्र घटोत्कच आया उसको देखकर पांचों भाइयों ने व पराक्रमी कृष्णाजी ने ॥ ९ ॥ अचानकही

आसन से उठकर प्रसन्नतासंयुत हो लिपटा लिया और प्रणाम से झुककर उस भीमपुत्र ने भी उनको प्रणाम किया ॥ १० ॥ तदनन्तर आशीर्वादको देकर राजा युधिष्ठिर ने अपनी गोदीमें बिठा लिया व स्नेहसे मस्तक में सूँघकर जनोंकी सभामें उससे कहा ॥ ११ ॥ युधिष्ठिर बोले कि हे पुत्र ! कहां से आगमन होताहै और तुमने इस समयको कहां विहार किया क्या मामाके नष्टहोजाने पर सुखपूर्वक राज्य करतेहो ॥ १२ ॥ और हे हैडम्ब ! क्या देवों, ब्राह्मणों, गौओं व साधुओं में सदैव अपकार तो नहीं करतेहो और तुम कृष्ण व हमलोगों से प्रसन्न रहतेहो ॥१३॥ व हिडम्बका सब वन और उसकी सेनाके जो राक्षस हैं हे साधो ! तुमसे पालन

तरःपञ्चवासुदेवश्चवीर्यवान्॥९॥उत्थायसहसापीठादालिलिङ्गुर्मुदायुताः॥सचतान्प्रणतिप्रह्वोववन्देभीमनन्दनः॥१०॥ आशीर्दत्त्वाततोराज्ञास्वोत्सङ्गमुपवेशितः॥ आघ्रायस्नेहतोमूर्ध्निप्रोक्तश्चजनसंसदि ॥ ११ ॥ युधिष्ठिरउवाच ॥ कुतआगम्यतेपुत्र कुत्रायंविहृतस्त्वया॥कालःकच्चित्सुखंराज्यं कुरुषेमातुलेहते ॥ १२ ॥ कच्चिद्देवेषुविप्रेषु गोषुसाधुषुसर्वदा ॥ हैडम्बनापकुरुषे प्रीयसेत्वंहरेश्चनः ॥१३॥ हिडम्बस्यवनंसर्वं तस्ययेसैन्यराक्षसाः ॥ पाल्यमानास्त्वयासाधो वर्द्धन्ते जनक्षेमकाः ॥१४॥ कच्चिन्नन्दतितेमाता भृशन्तेप्रियकारिणी॥कन्यैवयापुराभीमं त्यक्त्वामानंपतिंश्रिता॥ १५॥इतिपृष्टोधर्मराज्ञा सारंहैडम्बिरब्रवीत् ॥ हतेस्मिन्सुदुराचारे मातुलेस्मिनियोजितः ॥ १६ ॥ तद्राज्यस्यासनेस्थाप्य दुष्टान्निघ्नंश्चराम्यिच ॥ माताकुशलिनीदेवी तपोदिव्यमुपाश्रिता॥ १७ ॥ मामुवाचसदापुत्र पितॄणांभक्तिकृद्भव ॥ सोहंमातुर्वचःश्रुत्वा मेरुपादात्समागतः ॥ १८ ॥ प्रणामायैवभवतां भक्तियुक्तेनचेतसा ॥ आत्मानञ्चमहत्यर्थे कस्मिंश्चित्तुनि

किये जातेहुये जनोंको कल्याण करनेवाले वे बढते हैं ॥ १४ ॥ और तुम्हारा बहुतहीप्यार करनेवाली तुम्हारी माता क्या प्रसन्नहै जोकि कन्यारूपिणी हिडिम्बा पहलेही मानको छोडकर भीमपति के आश्रित हुई ॥ १५ ॥ इसप्रकार युधिष्ठिर से पूँछेहुये घटोत्कच ने उत्तम वचन कहा कि इस दुराचारी मातुलके नाशहोजाने पर उसकी राज्यके आसन पै स्थापित होकर नियोजित किया गयाहूं और दुष्टोंको मारताहुआ मैं घूमताहूं और मेरीमाता देवी कुशलिनी होकर उत्तम तपस्यामें आश्रितहै ॥१६।१७॥ और उसने मुझसे कहा है कि हे पुत्र ! तुम सदैव पितरों के भक्तिकारक होवो सो मैं माताका वचन सुनकर मेरुके समीपवाले पर्वतसे भक्तिसंयुत चित्तसे आपलोगों

के प्रणाम के लिये आयाहूं और किसी बडे कार्य में आपलोगों से नियुक्त किये अपनाको चाहताहूं जिस लिये कि यह बड़ाभारी फलहै जोकि पुत्र सदैव पितरोंकी
आज्ञाका पालनकरै ॥ १८। १९। २० ॥ उससे वह इस संसारमें मनुष्योंको जीतता है और यहा यशस्वी होता है ऐसा कहेहुये उस घटोत्कच को बार बार लिपटाकर
राजा ॥ २१ ॥ धर्मराज (युधिष्ठिर) जी आनन्द समेत आंसुवों संयुक्त व गद्गद वचन समेत बोले कि हे पुत्र! हमलोगों के भक्तिकारी व सहायक तुम्हीं वर्तमानहो ॥ २२ ॥
हे हिडम्बाके पुत्र घटोत्कच! इसीलिये साधुलोग पुत्रको चाहते हैं क्योंकि तुम्हारे सरीखे पुत्र इस लोक व उस लोकमें तारते हैं ॥ २३ ॥ जैसी माताहोती है वैसाही

योजितम् ॥ १९ ॥ भवद्भिरहमिच्छामि फलंयस्मादिदंमहत् ॥ यदाज्ञापालनंपुत्रः पितॄणांसर्वदाचरेत् ॥ २० ॥ तेनेह
लोकान्सजयेदिहजायेच्चकीर्त्तिमान् ॥ इत्युक्तवन्तंतंराजा परिरभ्यपुनःपुनः ॥ २१ ॥ उवाचधर्मराट्पुत्रं सान
न्दाश्रुसगद्गदम् ॥ त्वमेवनोभक्तिकारी सहायश्चापिवर्तसे ॥ २२ ॥ एतदर्थंचहैडम्बे पुत्रमिच्छन्तिसाधवः ॥ इहामुत्रतार
यन्ते त्वादृशाश्चापिपुत्रकाः ॥ २३ ॥ अवश्यंयादृशीमाता तादृशस्तनयोभवेत् ॥ माताचतेभक्तिमती दृढंनस्त्वंच
तादृशः ॥ २४ ॥ अहोसुदुष्करंदेवी कुरुतेमेप्रियावधूः ॥ याभर्तृप्रियमुल्लङ्घ्यतपएवसमाश्रिता ॥ २५ ॥ नूनंकामेन
भोगैर्वाकृत्यंबह्वानमेमनाक् ॥ दुष्कुलीनापियाभक्तासूतेपत्यञ्चभक्तिमत् ॥ २६ ॥ कुलीनमेवतन्मन्येममेदंमतमुत्तम
म् ॥ एवंबहूनिवाक्यानितानितानिवदन्नृपः ॥ २७ ॥ धर्मराजःसमाभाष्य केशवंवाक्यमब्रवीत् ॥ पुण्डरीकाक्ष जानासि
यथाभीमादभूदयम् ॥ २८ ॥ जातमात्रस्तुयःस्वामिन्यौवनस्थोबभूवह ॥ अष्टानांदेवयोनीनांयतोजन्मचयौवनम् ॥ २९ ॥

पुत्र अवश्यकर होताहै तुम्हारी माता हमलोगों की दृढ भक्तिमती है व तुमभी वैसेही हो ॥ २४ ॥ मेरीप्यारी स्त्री हिडम्बादेवी कठिन कर्म करती है जोकि पतिके प्रियको
छोड़कर तपही में आश्रित हुई ॥ २५ ॥ निश्चयकर कामसे या भोगों से स्त्री के साथ मेरा कुछ कार्य नहीं है जोकि दुष्ट कुलवाली भी भक्तिमती होकर भक्तिमान्
पुत्रको पैदा करती है ॥ २६ ॥ उसको मैं कुलीन मानता हूँ मेरा यही मत उत्तमहै इस प्रकार उन उन बहुत वचनों को कहते हुये राजा ॥ २७ ॥ युधिष्ठिर सम्भाषण
कर कृष्णजी से बोले कि हे पुण्डरीकाक्ष! क्या जानतेहो कि जिस प्रकार यह भीमसे हुआ है ॥ २८ ॥ हे स्वामिन्! पैदा होतेही जो युवावस्था में स्थित हुआहै जिस

लिये आठों देवयोनियों का जन्म व यौवन ॥ २९ ॥ उसीक्षण होवै है उसीकारण इसके उसीक्षण युवावस्था हुई है इस लिये हे कृष्णजी ! इसके योग्य स्त्री के लिये मेरे सदैव चिन्ता रहती है ॥ ३० ॥ हे सर्वज्ञ कृष्णजी ! यह कहिये कि घटोत्कच के योग्य कहीं स्त्री देखपड़ती है जिससे कि आप त्रिलोकको भी जानतेहो ॥ ३१ ॥ इस लिये हिडम्बा के पुत्र घटोत्कच के योग्य वैसीही स्त्रीको कहने के योग्यहो धर्मराज युधिष्ठिर से ऐसा कहेहुये कृष्णजी ने क्षणभर ध्यानकर ॥ ३२ ॥ उस समय धर्मराज से यह वचन कहा कि हे राजन् ! विद्यमान है इसके योग्य उत्तम स्त्रीको मैं कहूंगा ॥ ३३ ॥ जोकि इस समय उत्तम व मनोहर प्राग्ज्योतिषपुर में भलीभांति

सद्यएवभवेत्तस्मात्सद्योस्यास्तीतियौवनम् ॥ तदस्योचितदारार्थे सदाचिन्तास्तिकृष्णमे ॥ ३० ॥ उचितंवदहैडम्बेः ककलत्रंप्रदृश्यते ॥ यद्भवान्कृष्णसर्वज्ञ त्रिलोकीमपिवेत्सिच ॥ ३१ ॥ हैडम्बेरुचितांदारां वक्तुमर्हसितादृशीम् ॥ एवमुक्तोधर्मराज्ञा क्षणंध्यात्वाजनार्द्दनः ॥ ३२ ॥ धर्मराजमिदंवाक्यंतदन्तरमथाब्रवीत् ॥ अस्तिराजन्प्रवक्ष्यामि दारामस्योचितांशुभाम् ॥ ३३ ॥ सांप्रतंसंस्थितांरम्येप्राग्ज्योतिषिपुरेवरे ॥ साचपुत्रीपुरापार्थदैत्यस्याद्भुतकर्मणः ॥ ३४ ॥ यौसोनरकदैत्यस्यप्राणतुल्यःसखाभवत ॥ सचमेनिहतोघोरः पाशदुर्गसमन्वितः॥ ३५ ॥ नरकश्चदुराचारो हतस्तद्वेत्सिसर्वतः ॥ ततोहतेमुरौदैत्ये मयातस्यसुताव्रजत् ॥३६॥ योद्धुंमामतिवीर्यासा घोराकामकटङ्कटा ॥ तत्ततोहंमहायुद्धे खड्गखेटकधारिणीम् ॥ ३७॥ अयोधयंमहाबाणैः खड्गधन्वसुनिःसृतैः॥खड्गेनचिच्छिदेबाणान् ममसाचमुरोःसुता॥३८॥

टिकी है हे युधिष्ठिरजी ! पहले अद्भुत कर्मवाले उस दैत्यकी वह कन्याथी ॥ ३४ ॥ जोकि यह नरक दैत्यका प्राणके समान मित्र हुआ है उस भयानक दैत्य को मैंने फँसरी व कोटों समेत मारडाला ॥ ३५ ॥ और दुराचारी नरकासुर मारागया उसको तुम सब तरह से जानतेहो मुझसे मुरु दैत्यके मरजाने पर तदनन्तर उसकी यह कन्या मुझसे युद्ध करने के लिये आई जोकि भयंकर व बड़े पराक्रमवाली तथा कामिनी थी तदनन्तर महायुद्ध में तलवार व खेटक नामक अस्त्रको धारनेवाली उससे मैंने ॥ ३६ । ३७ ॥ तलवार व धनुष से निकले हुये महाबाणों से युद्ध किया और मुरु दानवकी उस कन्याने तलवार से मेरे बाणोंको काटडाला ॥ ३८ ॥

व भलीभाति आकर उसने गरुडके मस्तकमें मारा और मूर्च्छा में प्राप्तहोकर वह गरुड़ अचैतन्य होगया ॥ ३९ ॥ तदनन्तर उसके मारनेके लिये मैंने चक्रको उठाया
व हे नराधिप ! मुझसे उठायेहुये चक्रको देखकर ॥ ४० ॥ कामाख्या नामक देवीने आगे खड़ीहोकर मुझसे वचन कहा कि हे पुरुषोत्तमजी ! इसको मारने के लिये
आप योग्य नहींहैं इसकी रक्षाकीजिये ॥ ४१ ॥ क्योंकि मैंने इसको न जीतने योग्य तलवार व खेटकको दियाहै व युद्धमें अनुपम बुद्धि व अनुपमशक्तिको दियाहै ॥ ४२ ॥
उसी कारण हे सुरोत्तम ! तुम विष्णुजी से भी वह नहीं जीतीगई ऐसा कहने पर उस समय मैंने देवीजीसे यह वचन कहा ॥ ४३ ॥ कि हे शुभे ! मैं निवृत्त होताहीं

समागम्यचखड्गेन गरुडंमूर्द्ध्न्यताडयत ॥ सचमोहसमाविष्टो गरुडोभूदचेतनः ॥ ३९ ॥ ततस्तस्यावधार्थाय मयाच
क्रंसमुद्यतम् ॥ चक्रंसमुद्यतंदृष्ट्वा मयातस्मिन्नराधिप ॥ ४० ॥ कामाख्यानाममान्देवी पुरःस्थित्वावचोब्रवीत ॥ नै
तांहन्तुंभवानर्हो रक्षैतांपुरुषोत्तम ॥ ४१ ॥ अजेयन्तुमयाह्यस्या दत्तंखड्गंचखेटकम् ॥ बुद्धिरप्रतिमाचापि शक्तिश्चा
प्रतिमारणे ॥ ४२ ॥ ततस्त्वयाविष्णुनापि नजितासीत्सुरोत्तम ॥ एवमुक्तेतदादेवीं वचनंचाहमब्रवम् ॥ ४३ ॥ अहमे
वनिवृत्तोस्मिवारयैनाञ्चत्वंशुभे ॥ ततश्चालिङ्ग्यतांभक्त्याकामाख्यावाक्यमब्रवीत ॥ ४४ ॥ भद्रेरणान्निवर्तस्व नायं
हन्तुंकथञ्चन ॥ शक्यःकेनापिसमरे माधवोरणदुर्जयः ॥ ४५ ॥ नाभूदस्तिभविष्योवा तवोचितमिदंस्फुटम् ॥ अ
स्यभ्रातुर्हिभीमस्य स्नुषात्वञ्चभविष्यसि ॥ ४६ ॥ तस्मात्त्वंश्वशुरंभद्रे सम्मानयजनार्दनम् ॥ नचशोकस्त्वयाका
र्यः पितरंप्रतिपण्डितैः ॥ ४७ ॥ जातस्यहिध्रुवंमृत्युर्ध्रुवंजन्ममृतस्यच ॥ बहवःशास्त्रवेत्तारो वदकेनापिवार्यते ॥ ४८ ॥

हूं और इसको तुम मनाकरो तदनन्तर भक्तिसे उसको लिपटाकर कामाख्या वचन बोली ॥ ४४ ॥ कि हे भद्रे ! रणसे निवृत्तहोवो ये माधवजी समरमें किसीसेभी नहीं
मारे जासक्ते हैं क्योंकि युद्धमें ये दुर्जय हैं ॥ ४५ ॥ इनके समान न कोई हुआहै न है न होनेवाला है इससे तुमको यह प्रकटही योग्य है क्योंकि इनके भाई भीमकी
तुम पतोहू होवोगी ॥ ४६ ॥ इस लिये हे भद्रे ! तुम श्वशुर कृष्णजी का सम्मान करो और पिताके निमित्त तुमको शोच न करना चाहिये क्योंकि पण्डितों ने यह
कहा है कि ॥ ४७ ॥ उत्पन्न प्राणीकी मृत्यु अवश्य है व मरेप्राणी का जन्म अवश्य कर होताहै बहुतसे शास्त्रके जाननेवाले हैं भला कहिये किसीसे भी मृत्यु वारण की-

जाती है ॥ ४८ ॥ ऋषि, देवता, महादैत्य व ऋग्, यजुः, सामके जाननेवालोंमें वृद्ध पुरुष व राजालोग उन सबोंको एक मृत्युकालमें प्राप्त कर देती है इससे भूत भविष्य का जाननेवाला इसविषयमें कहीं नहीं मोहित होताहै, ॥ ४९ ॥ इन जनार्दनसे तुम्हारे पिताकी मृत्यु प्रशंसा करनेके योग्यही है क्योंकि समस्त पातकों से छूटकर यह विष्णुजी के स्थानको चलागया ॥ ५० ॥ इस प्रकार कामाख्या से कहीहुई उस कामकटङ्कटा ने क्रोध छोडकर प्रीति से अङ्गोंसमेत मुझको प्रणाम किया ॥ ५१ ॥ व हे भरतर्षभ ! उसको मैंने आशीर्वाद दे कर कहा कि भगदत्तसे पूजित तुम इसी नगर में टिको ॥ ५२ ॥ मैंने व देवीजी ने प्रसन्नतासे यहां भगदत्तको राजा किया है वह

ऋषींश्चदेवांश्चमहासुरांश्च त्रैविद्यवृद्धान्पुरुषान्नृपांश्च ॥ तान्मृत्युरेकोनयतेन्तकाले परावरज्ञोत्रनमुह्यतेकश्चित् ॥ ४९ ॥ श्लाघ्यएवहितेमृत्युः पितुरस्माज्जनार्द्दनात ॥ सर्वपातकनिर्मुक्तो गतोसौधामवैष्णवम् ॥ ५० ॥ एवंकामाख्ययाप्रोक्ता साचकामकटङ्कटा ॥ त्यक्त्वाक्रोधञ्चसम्प्रीत्या गात्रैस्तुप्रणताचमाम् ॥ ५१ ॥ तामहंचाशिषंदत्त्वा प्रावोचंभरतर्षभ ॥ अस्मिन्नेवपुरेतिष्ठ भगदत्तेनपूजिता ॥ ५२ ॥ मयादेव्याचतुष्ट्यात्र भगदत्तः कृतोनृपः ॥ सतेपूजां बहुविधां करिष्यतिस्वसुर्यथा ॥ ५३ ॥ वसन्तेचात्रतंवीरं हैडम्बंपतिमाप्स्यसि ॥ एवमाश्वास्यतान्देवीं मौर्वींचाहंव्यसर्जयम् ॥ ५४ ॥ सास्थिताचपुरेतत्र गतोहंशक्रसद्मच ॥ ततोद्वारवतींप्राप्य त्वयासहसमागतः ॥ ५५ ॥ एवमेषोचितादारा हैडम्बेर्विद्यतेशुभा ॥ कामाख्येवरणेघोरा याविद्युदिवभासते ॥ ५६ ॥ नचरूपंवर्णितुंमे श्वशुरस्योचितंसतः॥ साधोर्हिनैतदुचितं सर्वस्त्रीणांचवर्णनम् ॥ ५७ ॥ पुनरेवञ्चसमयः कृतस्तंशृणुयस्तया ॥ योमांनिरुत्तरांप्रश्ने कृत्वैव

बहनकी नाई तुम्हारी बहुत भांतिकी पूजाकरैगा ॥ ५३ ॥ और वसन्त में तुम यहींपर हिडम्बा के पुत्र घटोत्कच को पतिपावोगी इस प्रकार आश्वासन कर उस कामाख्या देवी व मौर्वीको मैंने बिदाकिया॥५४॥ और वह उस पुरमें टिकी व मैं इन्द्रके मन्दिरको गया तदनन्तर द्वारकामें प्राप्तहोकर तुमसे समागमहुआ॥५५॥ इसप्रकार यह उत्तम स्त्री घटोत्कचके योग्य है जोकि युद्धमें कामाख्या की नाई भयंकर और बिजलीकी नाई प्रकाशितहै ॥ ५६ ॥ मुझ सज्जन श्वशुरको उसका रूप वर्णनकरना योग्य नहीं है क्योंकि साधुवों को सब स्त्रियोंका यह वर्णन करना योग्य नहीं है ॥ ५७ ॥ फिर उसने जो यह ऐसी प्रतिज्ञा किया है उसको सुनिये कि जो पुरुष प्रश्नमें

मुझको निरुत्तरकर जीतैगा ॥ ५८ ॥ व जो मेरे समान बलवान् होगा वह मेरा पतिहोगा इस समय (प्रतिज्ञा) को सुनकर बहुत दैत्य व राक्षस ॥ ५९ ॥ उसके जीतने के लिये आये और वे जीतकर मारेगये पहले जो जो इसके समीप गया है वह नहीं लौटाहै ॥ ६० ॥ जैसे कि अग्निकी जलतीहुई प्रभामें प्राप्तहोकर पाखियों का समूह नहीं लौटता है इस प्रकार ऐसी मौर्वीको यदि जीतने के लिये महापराक्रमी घटोत्कच उत्साह करता है तो इसकी वह स्त्री निश्चय कर होगी युधिष्ठिरजी बोले कि जिसके एक बड़ाभारी अवगुण है उसके सब गुणोंसे क्या कार्य है ॥ ६१ । ६२ ॥ क्योंकि दूधसे क्या किया जाताहै यदि वह विषमिश्रित होवै केवल साहस

विजयेत्पुमान् ॥ ५८ ॥ योमेप्रतिबलश्चापि समेभर्त्ताभविष्यति ॥ एतन्त्वसमयंश्रुत्वा बहवोदैत्यराक्षसाः ॥ ५९ ॥ तस्याजयार्थमागमंस्तेचजित्वाहतास्तथा ॥ योयएनाङ्गतःपूर्वं नसभूयोन्यवर्त्तत ॥ ६० ॥ वह्नेरिवप्रभान्दीप्तां पतङ्गानांसमुच्चयः ॥ एवमेतादृशींमौर्वीं जेतुमुत्सहतेयदि ॥ ६१ ॥ घटोत्कचोमहावीर्यो भार्यास्यनियतंभवेत् ॥ युधिष्ठिरउवाच ॥ अलंसर्वगुणैस्तस्या यस्यास्त्वेकोऽगुणोमहान् ॥ ६२ ॥ क्रियतेकिंहिक्षीरेण यदितद्विषमिश्रितम् ॥ प्राणाधिकं भीमसेनं कथंकेवलसाहसात् ॥ ६३ ॥ क्षिपयंतत्रवाक्यानांशुद्धानांचाप्यकोविदम् ॥ अन्याश्चापिस्त्रियस्सन्ति देशेदेशेजनार्दन ॥ ६४ ॥ बह्वयस्तासांवराङ्गाश्चिद्योधितंवक्तुमर्हसि ॥ भीमउवाच ॥ सत्यमुक्तंकेशवेन वाक्यंवक्तुमुत्तमम् ॥ ६५ ॥ राज्ञापुनःस्नेहवशाद्यदुक्तंतन्नभातिमे ॥ कार्यंदुस्साध्यएवस्यात् क्षत्रियस्यपराक्रमः ॥ ६६ ॥ हरीन्द्रस्येवयूथेषु गजानान्मृगेषुच ॥ आत्माप्रख्यातिमानेयः सर्वथावीरपुङ्गवैः ॥ ६७ ॥ सचख्यातिकथंजायेद्दुस्साध्यकरणा

से मैं प्राणो से अधिक भीमसेन के पुत्र घटोत्कच को कैसे ॥ ६३ ॥ वहा पठाऊं जोकि शुद्ध वचनोंका भी अज्ञानी है हे जनार्दनजी ! देश देशमें और भी बहुतसी स्त्रियां हैं ॥ ६४ ॥ उनमें से किसी उत्तम स्त्रीको तुम कहनेके योग्यहो भीमजी बोले कि बहुत प्रयोजनवाले उत्तम वचनको कृष्णजीने सत्य कहाहै ॥ ६५ ॥ फिर राजा युधिष्ठिर ने स्नेहके वशसे जो कहा है वह मुझको नहीं अच्छा जानपडता है क्योंकि कठिनही कार्यमें क्षत्रियका पराक्रम होता है ॥ ६६ ॥ जैसे कि हाथियों के गणों में सिंहका पराक्रम होता है मृगों मे नहीं होता है व उत्तम वीरोंको सब प्रकार से आत्मा प्रसिद्धिमें प्राप्त करना चाहिये ॥ ६७ ॥ और कठिन कार्य करने के बिना वह

कैसे प्रसिद्धि में प्राप्तहोवै हे पार्थ! हिडम्बा के पुत्र घटोत्कचकी रक्षा करना अपने वशमें नहीं प्राप्तहै ॥ ६८ ॥ क्योंकि जिस विधाताने इसको दिया है वही इसको पालैगा और विज्ञानी पुरुषको सर्वथा ऊंचे स्थान पै चढ़ने में यत्न करना चाहिये ॥ ६९ ॥ वैसेही एकही घटोत्कच शीघ्रही मौर्वीको पावैगा अर्जुनजी बोले कि भीमसेन ने केवल पराक्रमयुक्त वचन कहा है ॥ ७० ॥ और भाग्यके बलसे निर्बल मुझको सबल जानपड़ता है और जो पहले कामाख्या ने वचन कहा है उसको कृष्णजी झूँठ नहीं कहते हैं ॥ ७१ ॥ कि कामाख्या ने कहाथा कि हे कल्याणरूपे! जिसभांति भीमका पुत्र (घटोत्कच) तुम्हारे हाथको ग्रहणकरैगा इस हेतुसे वहां घटोत्कच

द्रते ॥ नह्यात्मवशगंपार्थ हैडम्बेयस्यरक्षणम् ॥ ६८ ॥ येनदत्तस्त्वयन्धात्रा सएनंपालयिष्यति ॥ सर्वथोच्चपदारोहे य त्नःकार्योविजानता ॥ ६९ ॥ तथैकएवहैडम्बो मौर्वीमाप्नोतिमाचिरम् ॥ अर्जुनउवाच ॥ केवलंपौरुषपरं भीमेनोक्त मिदंवचः ॥ ७० ॥ अबलंदैवहेतुत्वात्सबलंप्रतिभातिमे ॥ नमृषाहिवचोब्रूते कामाख्यायापुराब्रवीत् ॥ ७१ ॥ यथाभी मसुतःपाणिं तवभद्रग्रहीष्यते ॥ अनेनहेतुनायातु शीघ्रंतत्रघटोत्कचः ॥ ७२ ॥ इतिमेरोचतेकृष्ण ब्रूहिकिन्तवरोच ते ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ रोचतेमेवचस्तुभ्यं भीमस्यचमहात्मनः ॥ ७३ ॥ नहितुल्योभीमसेनबुद्धौवीर्येचकश्चन ॥ अ न्तरेणचयोवेत्ति प्राप्तामेवमुरोस्सुताम् ॥ ७४ ॥ तच्छीघ्रंस्यात्तुहैडम्ब त्वञ्चकिम्पुत्रमन्यसे ॥ घटोत्कचउवाच ॥ न हिन्याय्याःस्वकावक्तुं पूज्यानामग्रतोगुणाः ॥ ७५ ॥ प्रवृत्ताएवभासन्ते सद्गुणाश्चरवेःकराः ॥ सर्वथातत्करिष्यामि पितरोयेनमेऽमलाः ॥ ७६ ॥ लज्जिष्यन्तिनसंसत्सु मयापुत्रेणपाण्डवाः ॥ एवमुक्त्वामहाबाहुरुत्थायप्रणनाम

शीघ्रही जावै ॥ ७२ ॥ हे कृष्णजी! यह मुझको रुचता है आप कहिये कि तुमको क्या अच्छा जानपडता है श्रीभगवान् कृष्णजी बोले कि मुझको तुम्हारे व महात्मा भीमजी के वचन अच्छे जानपडते है ॥ ७३ ॥ और भीमसेन की बुद्धि व बलमें कोई बराबर नहीं है जोकि चित्तसे मुरुकी कन्या को प्राप्तही जानता है ॥ ७४ ॥ और वह शीघ्रही होगा व हे घटोत्कच, पुत्र! तुम क्या मानतेहो घटोत्कच बोले कि पूजनीय पुरुषोके आगे अपने गुण कहने योग्य नहीं होतेहैं ॥ ७५ ॥ क्योंकि उत्तम जनोंके गुण व सूर्यकी किरणै वर्तमान होकर प्रकाशित होती हैं मै सर्वथा उस कर्म को करूंगा कि जिससे मेरे निर्मल पितर ॥७६॥ पाण्डवलोग मुझ पुत्रसे सभाओंमें

लज्जित न होवैंगे ऐसा कहकर महाबाहु घटोत्कचने उनको प्रणाम किया ॥ ७६ ॥ और पितरों से जयके आशीर्वादों से बढ़ाये हुये उसने जाने की इच्छा किया व जानेकी इच्छावाले उस घटोत्कच की प्रशंसाकर कृष्णजी ने यह कहा ॥ ७७ । ७८ ॥ कि कथा कहने के समय में जयको प्राप्तकरनेवाले मुझको स्मरण कीजियेगा कि जिस प्रकार शीघ्रही मैं तुम्हारी दुर्भेद्य बुद्धिको बढ़ाऊं ॥ ७९ ॥ यह कहकर व उसको लिपटाकर कृष्णजी ने आशीर्वाद समेत उसको बिदा किया ॥ ८० ॥ तदनन्तर हिडम्बा का पुत्र घटोत्कच सूर्याक्ष, कालाख्य व महोदर अनुगामियों समेत आकाशमार्ग में प्राप्तहोकर दिनान्त में प्राग्ज्योतिष नामक उस पुरको गया ॥ ८१ ॥ इति

तान् ॥ ७७ ॥ जयाशीर्भिश्चपितृभिर्वर्द्धितोगन्तुमैच्छत ॥ तंगन्तुकाममाहेदंप्रशंसन्मधुजनार्दनः ॥ ७८ ॥ कथाकथन कालेमांस्मरेथास्त्वंजयावहम् ॥ यथाबुद्धिंसुदुर्भेद्यां वर्द्धयाम्यविलम्बतः ॥ ७९ ॥ इत्युक्त्वालिङ्ग्यतंकृष्णोऽथसज्जय तमाशिषम् ॥ ८० ॥ ततोहिडम्बातनयोमहौजाःसूर्याक्षकालाख्यमहोदरानुगः ॥ वियत्पथंप्राप्यजगामतत्पुरं प्राग्ज्योतिषाख्यंदिनसंक्षये ॥ ८१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डे घटोत्कचस्यप्राग्ज्योतिषपुरप्रयाणन्नाम पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥

* ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सूतउवाच ॥ सोथप्राग्ज्योतिषोबाह्ये महोपवनसंस्थितम् ॥ सहस्रभूमिकंगेहमपश्यत्तहिरण्मयम् ॥ १ ॥ वेणुवीणामृदङ्गानां निःस्वनैःप्रतिपूजितम् ॥ सहस्रदशसंख्याभिश्चेटीभिरभिभूषितम् ॥ २ ॥ आयाद्भिःप्रतियाद्भिश्च भगदत्तस्यकिङ्करैः ॥ किमिच्छतीतिभगिनी पृच्छकैरभिपूरितम् ॥ ३ ॥ तदासौघसहैडम्बिर्मेरोःशिखरवद्गृहम् ॥ द्वारिस्थि

श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांघटोत्कचस्यप्राग्ज्योतिषपुरप्रयाणंनामपञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥

दो० । मौर्वीको प्रश्नादि सन जाति कीन जिमि ब्याह । छप्पन के अध्याय में कह्यो सो सहित उछाह ॥ सूतजी बोले कि इसके अनन्तर उस घटोत्कच ने प्राग्ज्योतिषपुरके बाहर वाटिकामें स्थित सोने के सहस्रभूमिक मन्दिरको देखा ॥ १ ॥ जोकि वेणु, वीणा व मृदङ्गों के शब्दोंसे पूजित व दशहजार संख्यक दासियों से भूषितथा ॥ २ ॥ और बहन क्या चाहती है यह पूंछनेवाले तथा आते व जातेहुये भगदत्त के सेवकों से पूरित था ॥ ३ ॥ सुमेरुगिरिके शिखरकी नाईं उस घरके समीप

प्राप्तहोकर उस घटोत्कच ने द्वारपै बैठीहुई कर्णप्रावरणा सखीको देखा ॥ ४ ॥ और वीर घटोत्कचने उससे प्रियपूर्वक कहा कि हे भद्रे! वह मुरु दानवकी कन्या कहां है दूरदेशसे आयाहुआ मैं कामुक अतिथि उसको देखना चाहताहूँ ॥ ५ ॥ कर्णप्रावरणा बोली कि हे महाबाहो! व हे कामुक! उस मौर्वी से तुम्हारा क्या प्रयोजन है कि जिससे करोडों कामी पुरुष पहले मारडालेगये हैं ॥ ६ ॥ उसी की तीन दासियों में से मैं प्यारी दासीहूँ और हे घटोत्कच! तुम्हारे रूपको देखकर मैं रमूंगी ॥ ७ ॥ हे वीर! तुम्हारे चरणों को प्रणामकर आपके वचन करनेवाली मैं स्थितहू इससे हे कामुक! मेरे साथ आनन्द करो व सुखों को भोगकीजिये ॥ ८ ॥

तांसन्ददर्श कर्णप्रावरणांसखीम् ॥ ४ ॥ तामाहललितंवीरो भद्रेसाकमुरोस्सुता ॥ कामुकोद्रष्टुमिच्छामि दूरदेशाग तोतिथिः ॥ ५ ॥ कर्णप्रावरणोवाच ॥ किन्तवास्तिमहाबाहो तयामौर्व्याप्रयोजनम् ॥ कोटिशोनिहताःपूर्वं ययाकामु ककामुकाः ॥ ६ ॥ अस्याश्चानुचरीणांहि दास्यस्मितिसृणांप्रिया ॥ तवरूपमहंदृष्ट्वा रमेयंवैघटोत्कच ॥ ७ ॥ प्रण म्यपादयोर्वीर स्थितातेवचनङ्करी ॥ तन्मयासहमोदस्वभुङ्क्ष्वभोगांश्चकामुक ॥ ८ ॥ घटोत्कचउवाच ॥ कल्याणी किंवदन्तीते प्रयुक्तास्योचिताशुभे ॥ पुनर्नैतद्वचस्तुभ्यं विशतेममचेतसि ॥ ९ ॥ वामःकामोयतोभद्रे यस्मिन्नुपानि बध्यते ॥ सचात्रनैवबध्नाति तद्वयंकिम्प्रकुर्महे ॥ १० ॥ अद्यतेस्वामिनीदृष्टा जिताचाक्रीडतेमया ॥ तयावाविजि तोयामि पूर्वेषांकामिनाङ्गतिम् ॥ ११ ॥ कर्णप्रावरणेतस्माच्छीघ्रमेवनिवेद्यताम् ॥ यथादर्शनमात्रेण पूजयत्यतिथिं खला ॥ १२ ॥ इतिभैमेर्वचःश्रुत्वा प्रस्खलन्तीनिशाचरी ॥ प्रासादशिखरस्थान्तां मौर्वीमेवंवचोवदत् ॥ १३ ॥ देवि

घटोत्कच बोला कि हे शुभे! कहीहुई तुम्हारी कल्याणकारिणी व उत्तम वार्ता इसके योग्यहै परन्तु तुम्हारा यह वचन मेरे चित्तमें नहीं पैठताहै क्योंकि ॥ ९ ॥ हे भद्रे! वाम (कठिन) काम जिसमें बँधजाता है उसी में बँधता है और वह यहां नहीं रुचिको बांधता है इससे हम क्या करैं ॥ १० ॥ आज देखी व जीतीहुई तुम्हारी स्वामिनी मेरे साथ क्रीडा करैगी या उससे जीताहुआ मैं पहलेवाले मनुष्योंकी दशामें प्राप्तहूंगा ॥ ११ ॥ हे कर्णप्रावरणे! इस लिये शीघ्रही निवेदन कीजिये कि जिस प्रकार वह दुष्टा देखनेही से अतिथिको पूजै ॥ १२ ॥ भीमके पुत्र घटोत्कचके ऐसे वचनको सुनकर लरखरातीहुई निशाचरीने मन्दिर के शिखर पै बैठीहुई उस मौर्वीसे

वचन कहा ॥ १३ ॥ कि हे देवि ! त्रिलोकमें भी अतुलित छविवाला कोई श्रीमान् युवा पुरुष कामका अतिथि होकर तुम्हारे द्वारपै वर्तमान है इससे उस उस उत्तम वस्तुको दीजिये ॥ १४ ॥ कटंकटा बोली कि शीघ्रही इस पुरुषको लाइये किस लिये देर कीजाती है कदाचित् समागम से मेरी प्रतिज्ञा पूर्णहोजावै ॥ १५ ॥ ऐसे वचन जिससे कहेगये उस दासीने घटोत्कच के समीप प्राप्तहोकर कहा कि हे कामुक! उस मृत्यु के समीप तुम शीघ्रही जाओ ॥ १६ ॥ इसभांति कहेहुये उस घटोत्कच ने वहीपर धनुषको छोड़कर घरमें प्रवेश किया जैसे कि मेंढकोंकी गुहामें सिंह पैठ जाता है ॥ १७ ॥ शुकगणों व कबूतर के समूहोंको व मदसे मतवाली सारिकाओं

कोपियुवाश्रीमांस्त्रैलोक्येप्यमितप्रभः ॥ कामातिथिस्तवद्वारिवर्त्ततेदिशतत्परम् ॥ १४ ॥ कटङ्कटोवाच ॥ नीयतांशीघ्रमेवासौ किमर्थञ्चविलम्ब्यते ॥ कदाचिदेवसङ्गत्या समयोमेनिपूर्य्यते ॥ १५ ॥ इत्युक्तवचनाचेटी प्राप्यावोचद्घटोत्कचम् ॥ व्रजशीघ्रंकामुकत्वं तस्यामृत्योश्चसन्निधौ ॥ १६ ॥ इत्युक्तस्सप्रहस्यैव तत्रोत्सृज्यस्वकार्मुकम् ॥ प्रविवेशगृहंभैमिः सिंहोभेकगुहामिव ॥ १७ ॥ सपश्यञ्छुकसङ्घातान्पारावतगणांस्तथा ॥ सारिकाश्चमदोन्मत्ता भैमिस्ताश्चाप्यपश्यत ॥ १८ ॥ रूपेणवयसाचैव रतेरप्यरतिङ्करीम् ॥ आन्दोलकसुखासीनां सर्वाभरणभूषिताम् ॥ १९ ॥ तांविद्युतमिवोन्नद्धां दृष्ट्वाभैमिरचिन्तयत् ॥ अहोकृष्णेनपित्रामे निर्दिष्टेयंममोचिता ॥ २० ॥ न्यायमेतत्कृतेपूर्वं नष्टायत्कामिनाङ्गणाः ॥ शरीरंयदपर्याप्तं क्षीयतेयदिकामिनाम् ॥ २१ ॥ कामिनीनांकृतेयेषां क्षीयताङ्गणानात्रका ॥ एवंबहुविधंकामी चिन्तयन्नाहभैमिकः ॥ २२ ॥ निष्ठुरेवज्रहृदयेप्राप्तोहमतिथिस्तव ॥ उचितातत्सतांपूजा कुरुयातेहृदि

को देखते हुये भीमके पुत्र उस घटोत्कच ने उसको भी देखा ॥ १८ ॥ जोकि रूप व अवस्थासे रतिकी भी अप्रीति करती थी और झूलन पै सुखपूर्वक बैठी व सब गहनों से शोभित थी ॥ १९ ॥ बिजली की नाई प्रकाशित उस स्त्रीको देखकर भीमके पुत्र घटोत्कच ने चिन्तन किया कि अहो बड़े आश्चर्य की बात है कि पिता कृष्णजी ने इसको मेरे योग्य बतलाया है ॥ २० ॥ यह योग्यहै जोकि इसके लिये पहले कामियों के गणनष्ट हुये हैं यदि स्त्रियोंके लिये जिन कामियों का असमर्थ शरीर नाश होताहै तो वह नाश होवै यहां क्या गिनती है इस प्रकार बहुतभांति से चिन्तन करते हुये कामी घटोत्कच ने कहा ॥ २१ । २२ ॥ कि हे वज्रके समान

हृदयवाली, निष्ठुरे ! मैं अतिथि तुम्हारे समीप प्राप्तहुआ हूँ इस लिये तुम्हारे हृदय में सन्तोष के योग्य पूजा जो स्थितहो उसको कीजिये ॥२३॥ यह हिडम्बाके पुत्रका वचन सुनकर उसके रूपसे वह कामकटंकटा विस्मितहुई और उस मूर्खिणीने अपनी निन्दा किया ॥ २४ ॥ कि मुझको धिक्कारहै धिक्कारहै जोकि मैंने पहले उस प्रतिज्ञा को कियाहै यदि पहले वह प्रतिज्ञा न की होती तो यह पति होता ॥ २५ ॥ इस प्रकार चिन्तन करती हुई वह घटोत्कच से वचन बोली कि हे भद्र ! तुम वृथाही आयेहो जीतेहुये फिर सुखपूर्वक जावो ॥ २६ ॥ अथवा यदि मुझको चाहते हो तो शीघ्रही कथाको कहिये और कथाको कहकर यदि मुझको सन्देह में पतित

स्थिता ॥ २३ ॥ इतिहैडम्बवचनं श्रुत्वाकामकटङ्कटा ॥ विस्मिताभूत्तस्यरूपात् स्वान्निनिन्दचबालिशा ॥ २४ ॥ धिग्धिङ्मांयन्मयापूर्वं समयःसकृतोभवत् ॥ नकृतोभूद्यदिपुरा अभविष्यदसौपतिः ॥ २५ ॥ इतिसञ्चिन्तयन्तीसा भैमिंवचनमब्रवीत् ॥ वृथात्वमागतोभद्र जीवन्याहिपुनस्सुखम् ॥ २६ ॥ अथकामयसेमान्त्वं तत्कथांशीघ्रमुच्चर ॥ कथामाभाष्ययदिमां सन्देहेपातयिष्यसि ॥ २७ ॥ ततोहंवशगाजाता अतोवासेऽव्यसेमया ॥ इत्युक्तवचनामेतां नेत्रोपान्तेनवीक्ष्यसः ॥ २८ ॥ स्मृत्वाचराचरकथं कृष्णमाराऽधवान्कथाम् ॥ कस्यांचिदभवत्पत्न्यां युवाकोप्यजितेन्द्रियः ॥ २९ ॥ तस्यचैकासुताजज्ञे भार्याचापिमृताभवत् ॥ ततोबालककाम्पुत्रीं पुपोषचररक्षच ॥ ३० ॥ सायदाभूद्यौवनगा ऽव्यञ्जितावयवाशुभा ॥ प्रोल्लसत्कुचमध्याङ्गी प्रोत्फुल्लमुखपङ्कजा ॥ ३१ ॥ तदास्यकामललितं बभूवचपितुर्मनः ॥ प्रोवाचताञ्चतनयां समालिङ्ग्यदुराशयः ॥ ३२ ॥ प्रतिहारकपुत्रीत्वं मयानीताचपोषिता ॥ भार्यार्थेसुचिरङ्कालं

करोगे ॥ २७ ॥ तो मैं वशगामिनी हूंगी व इसके अनन्तर मुझसे सेवितहोगे ऐसे कहेहुये वचनवाली इस भैमीको नेत्रके कटाक्षसे देखकर उसने ॥ २८ ॥ चराचर की कथावाले कृष्णजी को स्मरणकर कथाका प्रारम्भ किया कि किसी स्त्रीमें कोई निर्जितेन्द्रिय युवा पुरुष हुआ है ॥ २९ ॥ उसके एक कन्या उत्पन्नहुई और स्त्रीभी मरगई तदनन्तर छोटी कन्याको उसने पालन किया व रक्षा किया ॥ ३० ॥ जब वह उत्तम कन्या प्रकट अङ्गोंवाली व यौवन में प्राप्तहुई जोकि शोभित कुच व कटिवाली और प्रफुल्लित मुखकमलवाली थी ॥ ३१ ॥ तब इस पिताका मन कामदेव से चञ्चल होगया और दुष्ट आशयवाला वह उस कन्याको लिपटाकर वचन

बोला ॥ ३२ ॥ कि मायावी की तुम्हारी कन्याको मैं लाया व बहुत दिनोंतक स्त्री के लिये पोषण किया है प्रिये ! उस कार्य के अर्थको साधन कीजिये ॥ ३३ ॥ उससमय
ऐसा कहीहुई उसने उस वचनको वैसेही माना और उस भार्य्याने उसको पतिभाव से भजा व उस पुरुषने उसको स्त्रीत्व से भजा ॥ ३४ ॥ तदनन्तर उस मदनगर्दभ
से उसके कन्या पैदाहुई तो कहिये कि वह उसकी नातिनि होती है या कन्या ॥ ३५ ॥ ऐसे प्रश्नको मुझसे शीघ्रही कहिये यदि तुम्हारे शक्ति है इस प्रश्नको सुनकर
उसने हृदय में बहुत भांति से चिन्तन किया ॥ ३६ ॥ परन्तु इस प्रश्न के निर्द्धार (निश्चय) को किसी प्रकार से नहीं देखती थी तदनन्तर प्रश्न से जीती हुई

तत्कार्य्यंसाधयप्रिये ॥ ३३ ॥ इत्युक्त्वासाचमेनेच तत्तथैववचस्तदा ॥ पतित्वेनचभेजेतं भार्य्यात्वेनसतान्तथा ॥ ३४ ॥
ततस्तस्यास्सुताजज्ञे तस्मान्मदनरासभात् ॥ वदसातस्यभवतिकिन्दौहित्रीसुताथवा ॥ ३५ ॥ एवंप्रश्नंममब्रूहि शी
घ्रंत्वंशक्तिरस्तिते ॥ इतिप्रश्नञ्चसाश्रुत्वाचिन्तयद्बहुधाहृदि ॥ ३६ ॥ नचपश्यतिनिर्द्धारं प्रश्नस्यास्यकथञ्चन ॥ त
तःप्रश्नेनविजिता स्वांशक्तिंसमुपाददे ॥ ३७ ॥ अताडयद्गुहारज्जुं कराभ्यांदोलकस्यच ॥ ततोरक्षांसिनिष्पेतुः कोटिशो
भीषणान्यपि ॥ ३८ ॥ सिंहव्याघ्रवराहाश्च महिषाश्चित्रकामृगाः ॥ समीक्ष्यतानसंख्येयान् पाटितुन्धावतोरुषा ॥ ३९ ॥
अपाटयन्नखैर्भीमैः कनिष्ठाङ्गुष्ठजैर्हसन् ॥ ततोविनिस्सृतास्तत्र द्विगुणाराक्षसादयः ॥ ४० ॥ तेमौर्वीनिर्मिता
स्सर्वे क्षणादेवास्यभक्षिताः ॥ विजितायांस्वशक्तौच बलशक्तिंतथाददे ॥ ४१ ॥ उत्थायसहसादोलात् खड्गमादातुमै
च्छत ॥ उत्तिष्ठन्तीञ्चतास्मैभिरनुसृत्यजवाद्दिव ॥ ४२ ॥ केशेष्वादायसव्येन पाणिनापातयद्भुवि ॥ ततःकण्ठेसव्य

उसने अपनी शक्ति को लिया ॥ ३७ ॥ और झूला की गुप्त रस्सी को हाथों से पकड़कर मारा तदनन्तर बड़े भयङ्कर करोड़ों राक्षस निकले ॥ ३८ ॥ और
सिंह, व्याघ्र, वराह, महिष, चीता व मृग उत्पन्नहुये मारने के लिये क्रोध से दौड़तेहुये उन असंख्य राक्षसादिकों को देखकर ॥ ३९ ॥ हँसतेहुये घटोत्कच ने
कनिष्ठा व अंगूठा से उपजे हुये नखों से फाड़डाला तदनन्तर वहां दूने राक्षसादिक निकले ॥ ४० ॥ और मौर्वी से रचेहुये वे सब राक्षसादिक क्षणभर में इस से
भक्षितहुये व अपनी शक्ति के जीतजाने पर उसने बलशक्ति को लिया ॥ ४१ ॥ और झूला से अचानकही उठकर तलवार लेने की इच्छा किया घटोत्कच ने

उठतीहुई उसके पीछे वेग से जाकर ॥ ४२ ॥ बायें हाथ से बालों को पकडकर भूमि में गिरा दिया तदनन्तर कण्ठ पै बायां चरण धरकर व कतरनी को लेकर ॥ ४३ ॥ दाहिने हाथ से इसकी नासिका काटने की इच्छा किया तदनन्तर फरकती हुई मौर्वी ने धीरेसे यह घटोत्कच से कहा ॥ ४४ ॥ कि हे नाथ ! तुमने प्रश्न,शक्ति व बल तीनों प्रकार से मुझ को जीत लिया इस लिये मुझ को छोड दीजिये तुम्हारे लिये नमस्कार है मैं तुम्हारी कार्यकारिणी हूं जो आप आज्ञादीजिये मैं उसको करूं ॥ ४५ ॥ घटोत्कच बोला कि यदि ऐसा है तो मैंने तुमको छोड़दिया और जो बलहो उसको फिर दिखलाइये इसभांति कही व छोड़ीहुई उसने इस घटोत्कच

पादं दत्त्वादायचकर्तिकाम् ॥ ४३ ॥ दक्षिणेनकरेणास्याश्छेत्तुमैच्छतनासिकाम् ॥ विस्फुरन्तीततोमौर्वी मन्दमाह घटोत्कचम् ॥ ४४ ॥ प्रश्नेनशक्त्याचबलेननाथ त्रिधात्वयाहंविजितानमस्ते ॥ तन्मुञ्चमाङ्कर्मकरीतवास्मि यदादिशत्वंप्रकरोमितच्च ॥ ४५ ॥ घटोत्कचउवाच ॥ यद्येवंतर्हिमुक्तासि भूयोदर्शययद्बलम् ॥ एवमुक्ताप्रणम्यैनं मुक्ता चाहप्रणम्यसा ॥ ४६ ॥ जानामित्वांमहाबाहो वीरंशक्तिमतांवरम् ॥ सर्वराक्षसभर्तारं त्रैलोक्येमितविक्रमम् ॥ ४७ ॥ गुह्यकाधिपतिस्त्वंहि कालनाभइतिस्मृतः ॥ षष्टिकोटिपतिर्यातस्त्वञ्चरक्षःपतिर्भुवि ॥ ४८ ॥ इतिमांप्राहकामाख्यास र्वंतत्संस्मराम्यहम् ॥ इहगेहंसानुगम्मे दत्तमप्यात्मनातव ॥ ४९ ॥ समादिशप्राणनाथ कमादेशङ्करोमिते ॥ घटोत्कचउवाच ॥ प्रच्छन्नैश्चैवघटते नविवाहःकथञ्चन ॥ ५० ॥ मौर्वियस्यहिवर्तन्ते पितरोबान्धवास्तथा ॥ तन्मांशीघ्रं

को प्रणामकर कहा ॥ ४६ ॥ कि हे महाबाहो ! त्रिलोकमें अतुल बलवाले व समस्त राक्षसोंके स्वामी तथा शक्तिमानों में श्रेष्ठ व वीर तुमको मैं जानतीहूं ॥ ४७ ॥ और कालनाभ ऐसे कहेहुये तुम गुह्यकों के स्वामीहो और साठ करोड़ राक्षसों के स्वामी होकर तुम भूमि में राक्षसराजहो ॥ ४८ ॥ ऐसा मुझसे कामाख्या ने कहा है उस सब वृत्तान्तको मैं स्मरण करतीहूँ यहांपर मैंने आत्मा समेत व अनुगामियों समेत मन्दिर तुमको देदिया ॥ ४९ ॥ हे प्राणनाथ ! आज्ञा दीजिये मैं तुम्हारी किस आज्ञा को करू घटोत्कच बोला कि हे मौर्वि ! जिसके पिता व भाई लोग विद्यमान है उन छिपे हुये पुरुषोंका किसी प्रकार विवाह नहीं होता है इस लिये हे शुभे ! मुझको

शीघ्रही इन्द्रप्रस्थ जाने के लिये ले चलिये ॥ ५० । ५१ ॥ हमलोगों के वंशका यही क्रमहै कि स्त्री पतिको उधारती है वहां आज्ञाको पाकर मैं. तुम्हारा विवाह करूं-
गा ॥५२॥ सूतजी बोले कि तदनन्तर मौर्वीने भगदत्त स्वामीसे निवेदन किया और बहुत द्रव्यको लेकर इसके उपरान्त भगदत्त भाईको विदा किया ॥५३॥ तदनन्तर
अनेक द्रव्यों से संयुत व प्रशंसित उस मौर्वीने घटोत्कचको पीठपै चढ़ाकर दिल्ली को प्रयाण किया ॥ ५४ ॥ तदनन्तर कृष्णजीने व पाण्डवोंने इसकी प्रशंसा किया
और उत्तम लग्नमें भीमके पुत्र घटोत्कचने इसका पाणिग्रहण किया ॥ ५५ ॥ कुरुवंशियों तथा राक्षसोंकी कहीहुई उत्तम विधिसे उसको व्याहकर घटोत्कचने उसके

वहशुभे शक्रप्रस्थायसाम्प्रतम् ॥ ५१ ॥ अयंकुलक्रमोस्माकं यद्भार्यापतिमुद्धरेत् ॥ तत्रानुज्ञांसमासाद्य परिणेष्यामि
त्वामहम् ॥ ५२ ॥ सूतउवाच ॥ भगदत्तमथोनाथं ततोमौर्वीन्यवेदयत ॥ समादायबहुद्रव्यं विससर्जाथभ्रातरम् ॥
५३ ॥ ततःपृष्ठंसमारोप्य घटोत्कचमनिन्दिता ॥ नानाद्रव्यपरीवारा शक्रप्रस्थंसमाव्रजत ॥ ५४ ॥ ततोसौवासुदेवे
न पाण्डवैश्चाभिनन्दितः ॥ शुभेलग्नेपाणिमस्या जगृहेभीमनन्दनः ॥ ५५ ॥ कुरूणांराक्षसानाञ्च प्रोक्तोत्तमविधा
नतः ॥ उद्वाह्यतान्तद्धनैश्च तर्पयामासपाण्डवान् ॥ ५६ ॥ कुन्तीचद्रौपदीचोभे मुमुदातेनिरीक्ष्यताम् ॥ माङ्गल्यान्य
स्यचक्राते मौर्व्याश्चधनतस्तुते ॥ ५७ ॥ ततोविवाहेनिर्वृत्तेप्रतिपूज्यघटोत्कचम् ॥ भार्ययासहितंराजा स्वराज्याय
समादिशत ॥ ५८ ॥ सोप्याज्ञांशिरसाचैव हैडम्बिर्भार्ययासह ॥ शुभंहिडम्बस्यवनं स्वराज्यंसमुपाव्रजत् ॥ ५९ ॥ ततो
राक्षसयोषाभिर्वीरोभैमिःप्रवर्द्धितः ॥ महोत्सवेनमहता स्वराज्येप्रमुमोदसः ॥ ६० ॥ ततोवनेषुचित्रेषु निम्नगापुलिनेषु

धनोंसे पाण्डवोंको तृप्तकिया ॥ ५६ ॥ कुन्ती और द्रौपदी दोनो उस मौर्वीको देखकर प्रसन्न हुईं और उन्हों ने मौर्वी के धनसे इसके मङ्गल कार्योंको किया ॥ ५७ ॥
तदनन्तर जब विवाह निवृत्त होगया तब घटोत्कचको प्रतिपूजकर स्त्री समेत उस को राजाने अपनी राज्यके लिये आज्ञादिया ॥५८॥ व हिडम्बाका पुत्र वह घटोत्कच
भी आज्ञाको मस्तक से मानकर स्त्री समेत हिडम्बा के उत्तम वनमें अपनी राज्यको आगया ॥ ५९ ॥ तदनन्तर भीमका पुत्र वह घटोत्कच वीर राक्षसों की
स्त्रियों से बढ़कर बड़ेभारी उछाह से अपनी राज्य पै प्रसन्न हुआ ॥ ६० ॥ तदनन्तर घटोत्कचने उस स्त्रीसमेत दिचित्र वनोंमे व नदियों के किनारों में रमण किया जैसे

कि रावणने मन्दोदरीमे रमण कियाहै ॥ ६१ ॥ बहुत दिनोंतक क्रीडा करते हुये उस बडी छविवाले घटोत्कच के गर्भ उत्पन्न हुआ राक्षसों मे श्रेष्ठ वह घटोत्कचका पुत्र बालसूर्यके समान प्रभावान् था ॥ ६२ ॥ पैदा होतेही वह बालक बढ़ा व क्षणभर में युवावस्थाको प्राप्तहोगया जोकि नीले मेघसमूहोंकी नाईं शोभित और घड़ेकी तरह मुखवाला व जलते हुये नेत्रोंवाला था ॥ ६३ ॥ व जोकि उठे हुये बालोंवाला व उठे रोमोवाला था उस बालक ने प्रणामकर माता व पितासे कहा कि तुम दोनोंको मै प्रणाम करताहूं जोकि पैदाहुये मेरे गुरुहो ॥६४॥ आप दोनों से दियेहुये अपने नामको मैं चाहताहूं इसके उपरान्त जो उन्नतिदायक कल्याण कर्तव्यहो उसको

च ॥ रेमेसहतयाभैमिर्मन्दोदर्य्येवरावणः ॥ ६१ ॥ चिरंविक्रीडतस्तस्य गर्भोजज्ञेमहाद्युतेः ॥ हैडम्बोराक्षसव्याघ्रो बाल सूर्य्यसमप्रभः ॥ ६२ ॥ सजातमात्रोववृधे क्षणाद्यौवनगोभवत् ॥ नीलमेघचयप्रख्यो घटास्योदीप्तलोचनः ॥ ६३ ॥ ऊर्द्ध्वकेशश्चोर्द्ध्वरोमा पितरौप्रणतोब्रवीत् ॥ प्रणमामियुवांचोभौ जातस्यप्रथमौगुरू ॥ ६४ ॥ भवद्भ्यांदत्तमिच्छामि ह्यभिधानंतथात्मनः ॥ अतःपरञ्चयच्छ्रेयःकर्तव्यंप्रोन्नतिप्रदम् ॥ ६५ ॥ ततोभैमिस्तमालिङ्ग्य पुत्रंवचनमब्रवीत् ॥ व र्वराकारकेशत्वाद्बर्वरीकाभिधोभवान् ॥ ६६ ॥ भविष्यसिमहाबाहो कुलस्यानन्दवर्द्धनः ॥ ६७ ॥ श्रेयश्चतेयत्परमंच दृष्टं यत्कीर्त्यतेबहुविधंविप्रमुख्यैः ॥ पृच्छामहेतत्कुरुवंशनाथं गत्वापुरींद्वारकांवासुदेवम् ॥ ६८ ॥ इति श्रीस्कन्दपु राणेकुमारिकाखण्डे घटोत्कचविवाहवर्णनन्नामषट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥ * ॥ * ॥

कहिये ॥ ६५ ॥ तदनन्तर घटोत्कचने उस पुत्रको लिपटाकर वचन कहा कि वर्बर के समान बालहोनेके कारण आप वर्बरीक नामक ॥ ६६ ॥ होगे व हे महाबाहो! वंशके आनन्दको बढ़ानेवाले होगे ॥ ६७ ॥ और तुम्हारा जो उत्तम कल्याण देखा गया है व जो उत्तम ब्राह्मणों से बहुत भातिका कहा जाताहै उसको मैं द्वारकापुरी में जाकर कुरुवंश के स्वामी वासुदेव कृष्णजी से पूंछूंगा ॥ ६८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांघटोत्कचविवाहवर्णन न्नामषट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

दो० । गुप्तक्षेत्रमें कीन तप यथा घटोत्कच बाल । सत्तावन अध्याय में सोई चरित रसाल ॥ सूतजी बोले कि तदनन्तर वहां कामकटंकटा मौर्वी को छोड़कर
बुद्धिमान् घटोत्कच अनुगामी पुत्र समेत आकाशमार्ग से द्वारका को गया ॥ १ ॥ राक्षस अनुगामीवाले उस घटोत्कच राक्षसको आतेहुये देखकर द्वारकावासी योधाओं
ने बड़ा भयंकर शब्द किया ॥ २ ॥ और नवलाख वे योधा तैयार होकर जाते हैं जाते हैं यह कहने लगे व आपस में यह बोले कि आयेहुये दो राक्षस पैनेबाणों
से गिरा दिये जावें ॥ ३ ॥ अस्त्रोंको लिये आतेहुये उन यदुवीरों को देखकर उस घटोत्कच ने बड़ी भुजाको उठाकर ऊंचेस्वर से कहा ॥ ४ ॥ कि हे वीरो ! मुझको

सूतउवाच ॥ ततोघटोत्कचोमुक्त्वा तत्रकामकटङ्कटाम् ॥ पुत्रेणानुगतोधीमान् वियताद्वारकांययौ ॥ १ ॥ आग
च्छन्तंचतन्दृष्ट्वा राक्षसंराक्षसानुगम् ॥ द्वारकावासिनोयोधाश्चक्रुश्चात्युल्वणंरवम् ॥ २ ॥ यास्यामस्सुसन्नद्धा नवलक्ष
मितास्तुते ॥ राक्षसौद्वौसमायातौ पात्येतांविशिखैश्शितैः ॥ ३ ॥ तान्गृहीतायुधान्दृष्ट्वा यदुवीरान्घटोत्कचः ॥ उ
त्थायविपुलंबाहुं जगौतारस्वरेणसः ॥ ४ ॥ राक्षसंविद्धमांवीरा भीमपुत्रंघटोत्कचम् ॥ सुप्रियंवासुदेवस्य प्रणामार्थमु
पागतम् ॥ ५ ॥ निवेदयन्तुमांप्राप्तं यादवेन्द्रायसात्मजम् ॥ इतितस्यवचःश्रुत्वा यादवेन्द्रंन्यवेदयन् ॥ ६ ॥ आहदेव
स्सभास्थश्च शीघ्रमेवाव्रजत्वसौ ॥ ततःप्रवेशयामासुर्द्वारकान्तेघटोत्कचम् ॥ ७ ॥ सपुत्रस्सोपिरम्याणि वनान्युपव
नानिच ॥ क्रीडाशैलांश्चहर्म्याणि सपश्यन्नागतस्सभाम् ॥ ८ ॥ सतत्रचोग्रसेनञ्च वसुदेवञ्चसात्यकिम् ॥ अक्रूरराम
प्रमुखान्ववन्देकृष्णमेवच ॥ ९ ॥ तत्पादयोःप्रपतितं समालिङ्ग्यसहात्मजम् ॥ साशिषंस्वसमीपस्थमुपवेश्यदस

भीमके पुत्र घटोत्कच राक्षस जानिये जोकि कृष्णको प्याराहूं और प्रणाम के लिये आयाहूं ॥ ५ ॥ पुत्र समेत प्राप्तहुये मुझको यदूत्तम श्रीकृष्णजी से बतलाइये
उसका ऐसा वचन सुनकर यदूत्तम कृष्णजी से उन्हों ने निवेदन किया ॥ ६ ॥ और सभामें बैठेहुये कृष्णदेवजी बोले कि वह शीघ्रही आवै तदनन्तर उन्होंने घटोत्कच
को शीघ्रही प्रवेश कराया ॥ ७ ॥ और पुत्र समेत वह घटोत्कच भी मनोहर वनों व उपवनों तथा क्रीड़ा पर्वत व मन्दिरों को देखताहुआ सभामें आया ॥ ८ ॥ वहां
पर उग्रसेन, वसुदेव, सात्यकि, अक्रूर व बलभद्र इत्यादिकों को व श्रीकृष्णजी को उसने प्रणाम किया ॥ ९ ॥ पुत्र समेत चरणों में गिरेहुये उसको आशीर्वाद समेत

लिपटाकर और बिठाकर अपने समीप बैठेहुये उससे कृष्णजी यह बोले ॥ १० ॥ कि हे कुरुवंश के बढ़ानेवाले, राक्षसों में श्रेष्ठ, पुत्र! क्या सब ओरसे कुशलहै और तुम्हारा आना किस लिये हुआहै ॥ ११ ॥ घटोत्कच बोला कि हे देव! आपकी प्रसन्नतासे मेरे सब ओर कुशल है और जिस कार्य्य के लिये मैं आयाहूं उस कारणको सुनिये ॥ १२ ॥ कि तुमसे कहीहुई स्त्रीमें यह मेरे पुत्र पैदाहुआहै वह तुमसे प्रश्नको पूंछता है उसको सुनिये इसी लिये मैं आयाहूं ॥ १३ ॥ श्रीकृष्ण भगवान् बोले कि हे मौर्वीके पुत्र वत्स! कहिये व जो चाहतेहो उस सबको पूंछिये जैसे घटोत्कच मुझको बहुत प्याराहै वैसेही तुमहो ॥१४॥ बर्बरीक बोला कि हे आदिदेव! मन, बुद्धि

ब्रवीत् ॥ १० ॥ पुत्रराक्षसशार्दूल कुरूणांकुलवर्द्धन ॥ कुशलंसर्वतःकिञ्चित्किमर्थस्तेसमागमः ॥ ११ ॥ घटोत्कचउवाच ॥ देवयुष्मत्प्रसादेन सर्वतःकुशलंमम ॥ श्रूयताङ्कारणंतच यदर्थमहमागतः ॥ १२ ॥ तवोपदिष्टभार्यायां जातोयंतनयोमम ॥ सचप्रश्नंपृच्छतित्वां श्रूयतामागतस्त्वतः ॥ १३ ॥ भगवानुवाच ॥ वत्समौर्वेयब्रूहित्वं सर्वंपृच्छयदिच्छसि ॥ यथाघटोत्कचोमह्यं सुप्रियश्चतथाभवान् ॥ १४ ॥ बर्बरीकउवाच ॥ प्रणम्यत्वामादिदेवमनोबुद्धिसमाधिभिः ॥ पृच्छामिकेनश्रेयःस्याज्जन्तोर्जातस्यमाधव ॥ १५ ॥ केचिच्छ्रेयोधर्ममाहुरैश्वर्यंत्यागभोजनम् ॥ केचिद्दमंतपोद्रव्यं भोगान्मुक्तिञ्चकेचन ॥ १६ ॥ तदेवंशतसंख्येषु श्रेयस्सुपुरुषोत्तम ॥ ममचैकंकुलस्यास्य श्रेयोमद्ब्रूहिनिश्चितम् ॥ १७ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ वत्सपृथक्पृथक्प्रोक्तं वर्णानांश्रेयउत्तमम् ॥ ब्राह्मणानांतपोमूलं दानाध्ययनएवच ॥ १८ ॥ धर्मप्रकटनञ्चापि श्रेयउक्तंमनीषिभिः ॥ बलंसाध्यंपूर्वमेव क्षत्रियाणाम्प्रकीर्तितम् ॥ १९ ॥ दुष्टानांनाशनञ्चापि साधूनां

व समाधि से तुमको प्रणामकर पूंछताहूं कि हे माधवजी! पैदाहुये प्राणीका किस कर्मसे कल्याण होताहै ॥ १५ ॥ कितेक जन धर्म्मको कल्याणरूप कहते है व कोई ऐश्वर्य, दान व भोजनको कहते हैं व कोई दम, तपस्या, द्रव्य व भोगों को कहतेहैं व कोई मुक्तिको कहतेहैं ॥ १६ ॥ तो इस प्रकार सैकडों कल्याण होनेपर हे पुरुषोत्तम! मुझसे इस वंशके एक कल्याणको कहिये जोकि निश्चितहोवै ॥१७॥ श्रीकृष्णभगवान् बोले कि हे वत्स! जातियो का उत्तम कल्याण अलग अलग कहा गयाहै कि तप मूलवाला कल्याण ब्राह्मणोंका कहा गयाहै व दान, पढ़ना ॥१८॥ और धर्म्मप्रकट करना भी विद्वानों से उत्तम कल्याण कहा गयाहै और क्षत्रियों का पहलेही

बल साधन करना कल्याण कहा गया है ॥ १९ ॥ और दुष्टोंका नाश करना व साधुवों का पालन करना कहा गया है और वैश्यों का पशुपालन व कृषी कर्म कहा गयाहै ॥ २० ॥ और शूद्रका कल्याण ब्राह्मण की सेवाहै व उस जीविकासे जीता हुआ शूद्र सुखी होता है अथवा अनेक प्रकार के शिल्पकर्मों से जिये व ब्राह्मणका हितकरै ॥ २१ ॥ स्त्रीमें प्रीति करनेवाला व सेवकों का पालक, पवित्र व श्रद्धापरायण ब्राह्मण नमस्कार से व मन्त्र से पञ्चयज्ञों को न छोड़े ॥ २२ ॥ आप क्षत्रिय के वंशमें उत्पन्नहो इस लिये जो कीजिये उसको सुनिये कि पहले तुम अतुल बल साधन करो उससे दुष्टोंकी शिक्षा कीजिये व साधुवोंका पालन कीजिये तो स्वर्गही

परिपालनम् ॥ पशुपाल्यञ्चवैश्यानां कृषिविज्ञानमेवच ॥ २० ॥ शूद्रस्यद्विजशुश्रूषा तयाजीवन्सुखीभवेत् ॥ शिल्पैर्वाविविधैर्जीवेद्द्विजातिहितमाचरेत् ॥ २१ ॥ भार्यारतिर्भृत्यपोष्टा शुचिःश्रद्धापरायणः ॥ नमस्कारेणमन्त्रेण पञ्चयज्ञान्नहापयेत् ॥ २२ ॥ तद्भवान्क्षत्रियकुले जातोऽस्तिकुरुतच्छृणु ॥ बलंसाधयपूर्वन्त्वमतुलंतेनशिक्षय ॥ २३ ॥ दुष्टान्पालयसाधूंश्च स्वर्गमेवमवाप्स्यसि ॥ बलंचलभ्यतेपुत्र देवीनांसुप्रसादतः ॥ २४ ॥ तद्भवान्बलप्राप्त्यर्थं देव्याराधनमाचर ॥ २५ ॥ बर्वरीकउवाच ॥ कस्मिन्क्षेत्रेचकान्देवीं कथमाराधयाम्यहम् ॥ एतत्प्रसादप्रवणंमनःकृत्वाप्रकीर्तय ॥ २६ ॥ इतिपृष्टःक्षणन्ध्यात्वा प्राहदामोदरोविभुः ॥ वत्सक्षेत्रंप्रवक्ष्यामि यत्रतप्स्यसितत्तपः ॥ २७ ॥ गुप्तक्षेत्रमितिख्यातं महीसागरसङ्गमे ॥ तत्रत्रिभुवनेयाश्च देव्यस्सन्तिपृथग्विधाः ॥ २८ ॥ नारदेनसमानीतास्ताश्चैवंसुमहात्मना ॥ चतस्रस्तत्रादिग्देव्यो नवदुर्गाश्चसन्तिया: ॥ २९ ॥ समाराधयतागत्वा तासामैक्यंहिदुर्लभम् ॥ नित्यंपूजयतःपुत्र पुष्पधू

को पावोगे और हे पुत्र ! देवियों की प्रसन्नतासे बल मिलता है ॥ २३ । २४ ॥ इस लिये आप बल मिलने के निमित्त देवीका आराधन कीजिये ॥ २५ ॥ बर्बरीक बोला कि किस क्षेत्रमें व किस देवीको मैं कैसे आराधन करूं मनको प्रसन्नतामें झुकाकर यह कहिये ॥२६॥ ऐसा पूछेहुये श्रीकृष्णस्वामीजीने क्षणभर ध्यानकर कहा कि हे वत्स ! मैं क्षेत्रको कहूंगा कि जहां तुम उस तपस्याको करोगे ॥ २७ ॥ महीसागरसङ्गममें जो गुप्तक्षेत्र ऐसा प्रसिद्ध है वहांपर वे देवियां महात्मा नारदजी से लाईगई हैं जो कि त्रिलोकमें अनेक भातिकी हैं वहां जो चार दिशाओं की देवियां हैं व जो नव दुर्गा हैं ॥ २८ । २९ ॥ उनको जाकर आराधन कीजिये और उनकी एकता दुर्लभ

है हे पुत्र! नित्यही पुष्प, धूप व लेपनों तथा स्तुतियों व उपहारों से पूजते हुये तुम्हारे ऊपर वे जिसप्रकार प्रसन्न होवैं वैसेही पूजियेगा ॥ ३० । ३१ ॥ क्योंकि हे पुत्र! देवियों के प्रसन्न होनेपर बल, धन, यश व पुत्र, उत्तम स्त्रियां, स्वर्ग व दुर्लभ मुक्तिपद मिलता है तुम से यह सत्य कहागया है ॥ ३२ ॥ ऐसा वर्वरीक से कह कर श्रीकृष्णजी घटोत्कच से बोले कि हे घटोत्कच! तुम्हारा यह पुत्र बहुतही उत्तम हृदयवाला है ॥ ३३ ॥ इस लिये मैंने सुहृदय ऐसा दूसरा नाम दिया ऐसा कहकर लिपटा कर व अनेक भांति के धनों से भलीभांति तृप्तकर ॥ ३४ ॥ भगवान् कृष्णजीने गुप्तक्षेत्र के लिये आज्ञा दिया इसके अनन्तर वह कृष्ण व

पविलेपनैः ॥ ३० ॥ स्तुतिभिश्चोपहारैश्च यथातुष्यन्तितास्तव ॥ ३१ ॥ तुष्टासुदेवीषुबलंधनञ्च कीर्तिश्चपुत्रास्सुभगाश्चदाराः ॥ स्वर्गस्तथामुक्तिपदञ्चपुत्र सुदुर्लभंसत्यमेतत्तवोक्तम् ॥ ३२ ॥ एवमुक्त्वावर्वरीकं कृष्णःप्राहघटोत्कचम् ॥ घटोत्कचायंपुत्रस्ते दृढंसुहृदयोह्यसौ ॥ ३३ ॥ तस्मात्सुहृदयेत्येवं दत्तंनाममयाद्विकम् ॥ एवमुक्त्वासमालिङ्ग्य सन्तर्प्यविविधैर्धनैः ॥ ३४ ॥ गुप्तक्षेत्रायभगवान् वर्वरीकंसमादिशत् ॥ सोथकृष्णंनमस्कृत्य पितरंयादवान्स्थितान् ॥ ३५ ॥ अनुज्ञाप्यचतान्सर्वान् गुप्तक्षेत्रंसमाव्रजत् ॥ घटोत्कचोपिकृष्णेन विसृष्टस्सवनंययौ ॥ ३६ ॥ स्मरन्पुत्रगुणान्पश्चात् स्वराज्यंसमपालयत् ॥ ततःसुहृदयोधीमान् गुप्तक्षेत्रकृताश्रयः ॥ ३७ ॥ त्रिकालंपूजयामास देवीःकर्मसमाधिभिः ॥ नित्यंपुष्पैश्चधूपैश्च उपहारैःपृथग्विधैः ॥ ३८ ॥ तस्याराधयतोदेव्यस्तुतुषुर्हायनैस्त्रिभिः ॥ ततःप्रत्यक्षतोभूत्वा ददुस्तस्यमहात्मनः ॥ ३९ ॥ बलंयत्त्रिषुलोकेषु कस्यचिन्नास्तिदुर्लभम् ॥ ऊचुश्चकञ्चित्कालंत्वं वसात्रैवमहा

पिताको तथा बैठेहुये यदुवंशियों को प्रणामकर ॥ ३५ ॥ और उन सबोंसे आज्ञा को लेकर गुप्तक्षेत्र को चलागया व कृष्ण से विदाहोकर वह घटोत्कच भी वनको गया ॥ ३६ ॥ और पश्चात् पुत्रके गुणोंको स्मरण करते हुये उस ने अपने राज्य का पालन किया तदनन्तर गुप्तक्षेत्र में आश्रय किये हुये उस बुद्धिमान् सुहृदय ने ॥ ३७ ॥ कर्म व समाधि से देवियोका त्रिकालपूजन किया नित्यही पुष्प, धूप व अनेक भांति के उपहारों से ॥ ३८ ॥ आराधन करते हुये उसके ऊपर तीन वर्षोंमें देवियां प्रसन्न हुई व प्रत्यक्ष होकर उस महात्मा को वह बल दिया कि जो दुर्लभ बल तीनों लोकों में किसी के नहीं है और उन्होंने कहा कि हे महाद्युते! तुम कुछ

समय तक यहीं बसो ॥ ३९।४०॥ क्योंकि विजयकी सङ्गतिसे तुम बहुत कल्याण को पावोगे सब देवियों से ऐसा कहाहुआ वह वहीं टिकताभया ॥ ४१ ॥ इस के उपरान्त विजयनामक मागध ब्राह्मण आया वह द्विजोत्तम समस्त पृथ्वीको चरणों से आक्रमणकर ॥ ४२ ॥ व काशीजी में विद्याका बल पाकर साधना के लिये आयाथा व गुहेश्वर इत्यादिक सातों लिंगोंको पूजतेहुये इसने ॥ ४३॥ बहुत दिनों तक विद्याफल की प्राप्तिके लिये देवियों का आराधन किया तदनन्तर उसके ऊपर प्रसन्न होतीहुई देवियों ने स्वप्नमें यह वचन कहा ॥ ४४ ॥ कि सिद्धिमाता के आगे आंगन में तुम सब विद्याओं की साधना करो और यह सुहृदय भक्त तुम्हारी सहा-

द्युते ॥ ४० ॥ सङ्गत्याविजयस्यत्वं भूयःश्रेयोह्यवाप्स्यसि ॥ इत्युक्तस्सर्वदेवीभिस्सतत्रैवव्यवस्थितः ॥ ४१ ॥ आजगामा र्थविजयो नाम्नामागधब्राह्मणः ॥ ससर्वांपृथिवींकृत्वा पादाक्रान्तांद्विजोत्तमः ॥ ४२ ॥ काश्यांविद्याबलंप्राप्य साधना र्थमुपाययौ ॥ गुहेश्वरमुखान्येष सप्तलिङ्गानिपूजयन् ॥ ४३ ॥ आराधयामासचिरन्देवीर्विद्याफलाप्तये ॥ ततस्तुष्टा स्तस्यदेव्यः स्वप्नेप्रोचुरिदंवचः ॥ ४४ ॥ विद्याःसाधयत्वंसर्वाः सिद्धिमातुःपुराङ्गणे ॥ अयंभक्तस्सुहृदयस्साहाय्यन्ते करिष्यति ॥ ४५ ॥ ततस्तद्वचनंश्रुत्वा विजयस्तत्समाधितः ॥ उत्थायनत्वादेवीस्तं वव्रेभीमात्मजात्मजम् ॥ ४६ ॥ सोपिदेवीवचःश्रुत्वा मेनेसाहाय्यकारणम् ॥ ततःकृष्णाचतुर्दश्यामुपोष्यविजयःशुचिः ॥ ४७ ॥ स्नात्वाभ्यर्च्यैवलि ङ्गानि देवीश्चैवार्चयत्पृथक् ॥ कृत्वास्नानमुपोष्यैव वर्बरीकोन्तिकेभवत् ॥ ४८ ॥ प्रथमायान्ततोरात्रौ ययौसिद्धाम्बि कापुरः ॥ मण्डलंतत्रकृत्वाचभगाकारङ्करेणच ॥४९॥ अष्टदिक्ष्वष्टकीलांश्च निखन्यैवससूत्रकान् ॥ कृष्णाजिनधरोभू

यता करैगा ॥ ४५ ॥ तदनन्तर उस वचन को सुनकर विजय ने उस समाधि से उठकर व देवियों का प्रणामकर भीमपुत्र (घटोत्कच) के पुत्र सुहृदयसे कहा ॥ ४६॥ उसनेभी देवीका वचन सुनकर सहायताका कारण माना तदनन्तर कृष्णपक्ष की चतुर्दशी में उपासकर व पवित्रहोकर विजयने ॥ ४७ ॥ स्नानकर व लिंगोंको पूजकर पृथक् देवियों का पूजन किया व वर्बरीक स्नान कर तथा उपास करके समीप में प्राप्तहुआ ॥ ४८ ॥ तदनन्तर पहली रातमें वह सिद्धाम्बिका के आगे प्राप्तहुआ और

वहां हाथसे भगके आकार मण्डलकर ॥४९॥ आठों दिशाओं में सूत्र समेत आठकीलों को गाडकर वर्वरीक से संयुत विजय मृगचर्मधारीहोकर ॥ ५० ॥ व शिखाको बांधकर दिग्बन्धनकर तदनन्तर उसने विधिका प्रारम्भ किया और मण्डल के मध्य शुद्ध कुण्डमें तीन मेखला बनाकर ॥ ५१ ॥ उसके उपरान्त वहींपर खदिर की तलवार धरकर व सब ओर कीलोंको धरकर इसके उपरान्त विजय ने वर्वरीक से कहा ॥ ५२ ॥ कि निद्रारहित व पवित्र बैठकर मैं देवी के स्तोत्रको कहता हुआ जबतक कर्म करताहूं कि जिस प्रकार विघ्न न होवै ऐसा कहकर महाबलवान् वर्वरीक के वहां बैठने पर ॥ ५३ ॥ यमी विजयने दाहको डुबातेहुये शोषण किया तदनन्तर

त्वा वर्वरीकसमन्वितः ॥ ५० ॥ शिखामाबध्यदिग्बन्धं कृत्वारेभेततोविधिम् ॥ मध्येवैमण्डलस्यापि कुण्डेशुद्धेत्रिमेखलाः॥ ५१ ॥ समर्प्यचततःखड्गंखादिरंस्थाप्यतत्रच ॥ संस्थाप्यकीलानभितो वर्वरीकमथाब्रवीत् ॥ ५२ ॥ शुचिर्विनिद्रस्संविष्टः स्तवन्देव्यास्समुच्चरन् ॥ यावत्कर्मकरोम्येष यथाविघ्नन्नजायते ॥ इत्युक्तेसंस्थितेतत्र वर्वरीकेमहाबले ॥ ५३ ॥ विजयःशोषणन्दाहं प्लावयन्कृतवान्यमी॥ सुखासीनस्ततोभूत्वा गुंगुरुभ्योनमइति ॥ ५४ ॥ मन्त्रमष्टोत्तरशतंजप्त्वा गुरुभ्यः प्रणम्य च ततोगणेश्वरविधानमारब्धवान् ॥ ५५ ॥ अथातस्सम्प्रवक्ष्यामि मन्त्रंगणपतेःपरम् ॥ सर्वकार्यकरंस्वल्पं महार्थंसर्वसिद्धिदम् ॥ ५६ ॥ ॐगांगींगूंगैंगौंगः सप्ताक्षरोमन्त्रः ॥ ॐअस्यगणपतिमन्त्रस्य गणोनामऋषिःविघ्नेश्वरोदेवता गंबीजम् ॥ ॐशक्तिःपूजार्थेजपार्थेवा तिलकार्थेमनईप्सितार्थे होमार्थेवाविनियोगइति ॥ ५७ ॥ साधकस्यपूर्वंतिलकप्रकरणम् ॥ ॐगांगणपतयेनमः ॥ इतितिलकस्योपरिअक्षतान्दद्यात् ॥५८॥ गांगणपत

सुखपूर्वक बैठकर गुं गुरुभ्योनमः इस ॥ ५४ ॥ मन्त्रको अष्टोत्तरशत जपकर व गुरुवों के लिये प्रणामकर उसके उपरान्त गणपतिविधि को प्रारम्भ किया ॥ ५५ ॥ इसके उपरान्त मैं गणेशजी का उत्तम मन्त्र कहताहूं जोकि समस्त कार्योंको करनेवाला अल्प व बहुत अर्थवान् और सब सिद्धियों को देनेवाला है ॥५६॥ ॐ गां गीं गूं गैं गौं गः यह सप्ताक्षर मन्त्र है और इस गणेश मन्त्र के गण नामक मुनि व विघ्नेश्वर देवता हैं और गं बीज व ॐ शक्तिहै और पूजन के लिये या जपके लिये या तिलक के लिये व मनोरथ के निमित्त अथवा होमके लिये विनियोग है याने उपर्युक्त जो कार्यहो उस एकको कहकर विनियोग करै ॥ ५७ ॥ पहले साधकको

तिलक करना चाहिये ॐ गां गणपतयेनमः इस मन्त्रसे तिलक के ऊपर अक्षतोंको देवै ॥ ५८ ॥ गां गणपतयेनमः यह तिलकका मन्त्रहै ॐ गौं नेत्रत्रयायवौषट् इस
मन्त्रसे गणेशजी के लिये तीन पुष्पाञ्जली देकर मूलमन्त्रसे चन्दन, सुगन्ध, पुष्प, धूप, दीप नैवेद्य ताम्बूलादिकको देवै ॥ ५९ ॥ इसके उपरान्त मूलमन्त्रसे जपकरै
एकसौ आठ, हज़ार, लाख या करोड यथाशक्ति जपकर दशांश हवनके लिये अग्नि का आवाहन करै ॥ ६० ॥ अग्निका आवाहन कर गं गणपतये स्वाहा इस मन्त्रसे
गूगुल की गोलिया होममें देवै और विनियोग करै यह गणेश्वर महाकल्प समाप्त हुआ ॥ ६१ ॥ जो पुरुष इस प्रकार सब विघ्नों में उत्तम मन्त्रको साधै उसके सब

येनमः॥ इतितिलकमन्त्रः ॥ ॐगौंनेत्रत्रयायवौषट्इतिमन्त्रेणगणेशायपुष्पाञ्जलित्रयंदत्त्वा मूलमन्त्रेण चन्दनगन्ध
पुष्पधूपदीपनैवेद्यताम्बूलादिकं दद्यात् ॥ ५९ ॥ अतऊर्ध्वंमूलमन्त्रेणजपंकुर्यात् ॥ अष्टोत्तरशतंसहस्रंलक्षंकोटिञ्च
तियथाशक्तिजप्त्वाचदशांशहोमार्थेऽग्निमावाहयेत् ॥ ६० ॥ अग्निमावाह्यगंगणपतयेस्वाहेतिमन्त्रेण गुग्गुलुगुटि
काभिर्होमंविदध्यात् ॥ विनियोगश्चेतिगणेश्वरोमहाकल्पः ॥ ६१ ॥ यएवंसर्वविघ्नेषु साधयेन्मन्त्रमुत्तमम् ॥ सर्वविघ्ना
निनश्यन्तिमनोऽभीष्टञ्चसिद्ध्यति ॥ ६२ ॥ डाकिनीयातुधान्यश्च प्रेताद्याश्चभयङ्कराः ॥ शत्रूणाञ्जायतेनाशो वशीक
रणमेवच ॥ ६३ ॥ इदंगणेश्वरङ्कल्पं विजानन्विजयोऽपिच ॥ तिलकंविधिनाकृत्वा जप्त्वाचाष्टोत्तरंशतम् ॥ ६४ ॥ द
शांशगुटिकाहुत्वा पूज्यसिद्धिविनायकम् ॥ सिद्धिक्षेत्रस्यपालस्य चक्रेपूजान्ततोनिशि ॥ ६५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुरा
णेकुमारिकाखण्डेमहाविद्यासाधनन्नाम सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५७ ॥

विघ्न नाश होजाते हैं और मनोरथ सिद्ध होता है ॥ ६२ ॥ और डाकिनी, राक्षसी व भयङ्कर प्रेतादिक नाश होतेहैं व शत्रुओं का नाशहोताहै व वशीकरण है ॥ ६३ ॥
इस गणेश्वर कल्पको जानते हुये विजयने विधिसे तिलककर व अष्टोत्तरशत जपकर ॥ ६४ ॥ और दशांश गूगुल की गुटिका हवनकर व सिद्धिविनायकको पूजकर
तदनन्तर रात्रिमें सिद्धिक्षेत्रपालका पूजन किया ॥ ६५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांमहाविद्यासाधनवर्णनन्नामसप्त-
ञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५७ ॥

दो० । क्षेत्रपाल चौंसठि रच्यो जिमि मुखसों ईशान । अट्ठावन अध्यायमें कीन्हो सोइ बखान ॥ शौनकजी बोले कि हे सूतजी ! पहले हमलोगोंने गणेशकी उत्पत्ति को सुनाहै और क्षेत्रनाथ कैसे उत्पन्नहुयेहै सुनतेहुये हमलोगों से यह कहिये ॥ १ ॥ सूतजी बोले कि पूर्वकाल में तारक दैत्यसे पीड़ित होतेहुये देवता देवीजी रामेत बैठेहुये शिवदेवजी को प्रणामकर यह बोले ॥ २ ॥ कि हे देव ! देवता, दैत्यों से दुर्जय व भयङ्कर तारक दैत्यसे हमलोग पीडित हैं व अपने स्थानसे भी गिरादिये गये ॥ ३ ॥ अर्द्धनारीश्वर (सदाशिव) जीके विना वह दुष्टात्मा दैत्य विष्णु व इन्द्र तथा अन्य भी किसी देवतासे नहीं मारा जासक्ताहै ॥४॥ उससे पीड़ित हमलोगों के

शौनकउवाच ॥ श्रुतासूतपुरास्माभिरुत्पत्तिर्गणपस्यच ॥ क्षेत्रनाथःकथंजज्ञे वदैतच्छ्रुण्वतांहिनः ॥ १ ॥ सूतउवाच ॥ पुरातारकदैत्येन पीड्यमानादिवौकसः ॥ देवंदेव्यासहासीनं प्रणिपत्येदमब्रुवन् ॥ २ ॥ देवदैत्येनघोरेण दुर्जयेनसुरासुरैः ॥ पीडितास्तारकेणास्मः स्वस्थानाच्चापिच्यावित्ताः ॥ ३ ॥ नविष्णुनानचेन्द्रेण नचान्येनापिकेनचित् ॥ शक्योहन्तुंसदुष्टात्मा अर्द्धनारीश्वरंविना ॥ ४ ॥ तेनसम्पीड्यमानानामस्माकंशरणम्भव ॥ इत्युक्त्वारुरुदुर्देवास्त्राहित्राहीतिचाब्रुवन् ॥ ५ ॥ ततोतिकृपयाविष्टा हरकण्ठस्यकालिमाम् ॥ गृहीत्वापार्वतीचक्रे नारीमेकांमहाभयाम् ॥ आत्मशक्तिंतत्रमुक्त्वा प्रोवाचेदंततःशुभा ॥ ६ ॥ यस्मादतीवकालासि तस्मात्त्वंकालिकाभव ॥ देवारिञ्चदुरात्मानंशीघ्रंनाशयशोभने ॥ ७ ॥ एवमुक्तामहारावा कालिकाप्राप्यतन्तदा ॥ रावेणैवमृतंचक्रे सानुगंतारकासुरम् ॥ ८ ॥ ततोपिसाश्मशानस्था महारावानमुञ्चत ॥ यैरासन्विह्वलालोकास्त्रयोपिप्रमृतास्तथा ॥ ९ ॥ ततोरुद्रोबालरूपं कृत्वांविश्वकृतेप्र

शरण (रक्षक) हूजिये ऐसा कहकर देवता रोने लगे व रक्षा कीजिये रक्षा कीजिये यहबोले ॥५॥ तदनन्तर बहुत दयासे संयुत पार्वतीजीने शिवजीके कण्ठकी (कालिमा) कालापन लेकर एक बडी भयानक स्त्रीको किया तदनन्तर अपनी शक्तिको उसमें छोडकर वे शुभदायिनी पार्वतीजी यह बोलीं ॥६॥ कि जिस लिये तुम बहुतही कालीहो इसकारण कालिकाहोवो व हे शोभने ! दुष्टात्मा देवशत्रु तारकासुर को शीघ्रही नाश कीजिये ॥ ७ ॥ इस प्रकार कहीहुई बडे शब्दवाली कालिकाजी उस समय उसके समीप प्राप्तहोकर शब्दही से अनुगामियों समेत तारकासुर को मारडाला ॥ ८ ॥ उसके उपरान्त श्मशानमें स्थित होकर उसने बड़ेभारी शब्दों को किया कि जिनसे

तीनोंलोक विकल होगये और बहुतसे मनुष्य मरगये ॥ ९ ॥ तदनन्तर स्वामी सदाशिवजी ने संसारके लिये बालकरूपको किया और रोते हुये शिवजी प्रेतस्थान (श्मशान) में आये ॥ १० ॥ तदनन्तर रोतेहुये बालक को गोदीमेंकर दयासयुत कालिकाजी ने मतरोवो यह कहती हुई दूधको पिलाया ॥ ११ ॥ और बालकने भी दूधके बहाने उसके अंगसे उपजेहुये क्रोधको पीलिया जो यह क्रोध कि शिवजी के कण्ठसे उत्पन्न विषसे पैदाहुआ था ॥ १२ ॥ उस समय क्रोधवाले स्वभाव के पीजानेपर कालिका सौम्य होगई तदनन्तर किये हुये बालकरूपको उस बालक ने त्यागने की इच्छा किया ॥ १३ ॥ व यह कहा कि यदि तुम्हारे भय हो तो अन्य

मु: ॥ रुदंस्तस्याःसमीपेचाप्यागतःप्रेतसद्मनि ॥ १० ॥ रुदन्तंचततोबालंकृत्वोत्सङ्गेकृपान्विता ॥ कालिकापाययत्स्त न्यं मारुदेतिप्रजल्पती ॥ ११ ॥ स्तन्यव्याजेनबालोपिपपौक्रोधंतदङ्गजम् ॥ योसौहरात्कण्ठभवविषाद्वासीत्समुद्भू तः ॥ १२ ॥ पीतक्रोधस्वभावेच सौम्यासीत्कालिकातदा ॥ बालोपिबालरूपंतत्त्यक्तुमैच्छत्ततःकृतम् ॥ १३ ॥ अस्तिचे द्भयतेभीतिरन्यान्सृष्ट्याभिबालकान् ॥ चतुःषष्टिंक्षेत्रपालानित्युक्त्वासोसृजन्मुखात् ॥ १४ ॥ प्राहतान्बालरूपांश्च बालरूपीमहेश्वरः ॥ स्वर्गेषुपञ्चविंशानां पातालेषुचतावताम् ॥ १५ ॥ चतुर्दशानांभूलोकेवासोवःपालनंतथा ॥ अ यमेवश्मशानस्थो भविताश्वाचवाहनम् ॥ नैवेद्यंभवतांभक्तंमाषतण्डुलमिश्रकम् ॥ १६ ॥ अनभ्यर्च्यचयोयुष्मा न्किञ्चित्कार्यंविधास्यति ॥ तस्यतन्निष्फलंभाविमुक्तं प्रेतैश्चराक्षसैः ॥ १७ ॥ इत्युक्त्वाभगवान्रुद्रस्तत्रैवान्तरधीय त ॥ क्षेत्रपालाःस्थिताश्चैव यथास्थाननिरूपिताः ॥ १८ ॥ इतिवःक्षेत्रपालानां सृष्टिःप्रोक्तासमासतः ॥ आराधनंप्रव

बालकोंको रचू यह कहकर उन शिवजी ने मुखसे चौंसठि क्षेत्रपालोंको रचा ॥१४॥ और बालकरूपी शिवजी ने उन बालरूपी क्षेत्रपालों से कहा कि पचीस का स्वर्ग में वासहोवै व उतनेही याने पचीसका पातालों में निवासहोवै ॥ १५ ॥ और चौदह का पृथ्वीलोकमें निवासहोवै व पालन कीजिये और श्मशान में टिकाहुआ यह कुत्ता वाहन होगा और उडद व अक्षतों से मिश्रित भात आप लोगोंका नैवेद्य होगा ॥ १६ ॥ और जो तुमलोगों को न पूजकर कुछ कार्यकरैगा उसका वह कार्य निष्फल होगा और प्रेतों व राक्षसो से मुक्तहोगा ॥१७॥ ऐसा कहकर भगवान् शिवजी वहींपर अन्तर्द्धान होगये और स्थान के अनुकूल निरूपित क्षेत्रपाल स्थितहुये ॥ १८ ॥

तुमलोगों से क्षेत्रपालों की यह सृष्टि संक्षेप से कहीगई और आराधन कहताहूं कि जिससे वे प्रसन्न होते हैं ॥ १९ ॥ जो ऊर्ध्वकेश व विरूप लोचनोंवाले हैं तथा जो नित्यही घोररूपी हैं व रक्तनेत्र और जो पिङ्गाक्ष हैं उन क्षेत्रपालों को मैं प्रणाम करताहूं ॥ २० ॥ अज्वर, अपकुम्भ व जो इडाचार हैं और इन्द्रमूर्ति, कोलनामक, उपपाद, रिपुंसन ॥ २१ ॥ सिद्धप, एककलिक, नीलपात, एकदंष्ट्र ॥ २२ ॥ व इरापति, अघहारी, विघ्नहारी, अन्तक, ऊर्ध्वपाद, कम्बल, खण्डन व खर ॥२३॥ गोमुख, जंघाल, गणनाथ, रावण, जटाल व अजटाल इन स्वर्गके क्षेत्रपालों को मैं नमस्कार करताहूं ॥ २४ ॥ ककार, हठकारी, टङ्कपाणि व खणि, टंककर्ण, जम्बर, स्फुलिङ्गस्थ,

क्ष्यामियेनप्रीताभवन्तिते ॥ १९ ॥ ऊर्ध्वकेशाविरूपाक्षानित्यंयेघोररूपिणः ॥ रक्तनेत्राश्चपिङ्गाक्षाःक्षेत्रपालान्नमामि तान् ॥ २० ॥ अज्वरोह्यपकुम्भश्च इडाचारस्तथैवयः ॥ इन्द्रमूर्तिश्चकोलाख्य उपपादोरिपुंसनः ॥ २१ ॥ सिद्धप श्चैककलिकोनीलपादेकदंष्ट्रकः ॥ २२ ॥ इरापतिश्चाघहारीविघ्नहारीतथान्तकः ॥ ऊर्ध्वपादःकम्बलश्चखण्डनःखरएव च ॥ २३ ॥ गोमुखश्चैवजङ्घालो गणनाथश्चरावणः ॥ जटालोप्यजटालश्च नौमिस्वःक्षेत्रपालकान् ॥ २४ ॥ ककारोहठ कारीच टङ्कपाणिःखणिस्तथा ॥ टङ्ककर्णोजम्बरश्च स्फुलिङ्गस्थस्तडिद्रुचिः ॥ २५ ॥ दन्तुरोघननादश्च नन्दकश्चत थापरः ॥ पेकात्कारश्चपाञ्चालोवर्वरोभीमरूपवान् ॥ २६ ॥ भग्नपक्षःकालमेघो दुर्द्दमोभास्वरस्तथा ॥ रौरवश्चापिलम्बो ष्ठोवर्जिणःसुजटालकः ॥ २७ ॥ सुगन्धोहुहुकश्चैवनौमिपातालरक्षकान् ॥ सर्वलिङ्गेषुहुङ्कारः श्मशानेषुभृगावहः ॥२८॥ महालक्षोवनेघोरेज्वालाक्षोवसतौस्थितः ॥ एकवृक्षश्चवृक्षेषुकरालवदनोनिशि ॥ २९ ॥ घण्टारवोगुहावासीपद्मख ञ्जोजलेस्थितः ॥ चत्वरेषुदुरारोहः पर्वतेकुरुतस्तथा ॥ ३० ॥ निर्भरेषुप्रवाहाख्यो माणिभद्रोनिधिष्वपि ॥ रसक्षेत्रेरसा

तडिद्रुचि ॥ २५ ॥ दन्तुर, घननाद व अन्य नन्दक, पेकात्कार, पांचाल, वर्बर व भीमरूपवान् ॥ २६ ॥ भग्नपक्ष, कालमेघ, दुर्दम, भास्वर, रौरव, लम्बोष्ठ, वर्जिण, सुजटालक ॥ २७ ॥ व सुगन्ध और हुहुक इन पातालरक्षकों को मैं प्रणाम करताहू सब लिंगों में हुंकार व श्मशानों में भृगावह ॥ २८ ॥ और भयङ्कर वनमे महालक्ष व ज्वालाक्ष ग्राममें स्थित हैं और एकवृक्ष वृक्षों मे, करालवदन रात्रि मे ॥ २९ ॥ और घण्टारव गुहा मे बसनेवाले व पद्मखंज जल मे स्थित हैं और चत्वरो मे

दुरारोह व पर्वतमें कुरुत ॥ ३० ॥ झरनों में प्रवाह नामक व मणिभद्र निधियों में स्थित हैं रसक्षेत्रमें रसाध्यक्ष व यज्ञवाटमें कोटन टिके हैं ॥ ३१ ॥ जो ये चौदह
भूमि में व्याप्त होकर स्थित हैं उनको मैं नमस्कार करताहूं और इस प्रकार चौंसठि संख्यक क्षेत्रपालों की शरणमें मैं प्राप्तहोता हूं ॥ ३२ ॥ वे प्रसन्नहोवैं प्रसन्नहोवैं
और मेरे पूजने से तृप्तहोवैं इस प्रकार जो पवित्र पुरुष समस्त कार्यों में क्षेत्रपालों को पूजता है ॥ ३३ ॥ उसके ऊपर क्षेत्रपाल प्रसन्न होते हैं व उसके मनोरथको देते
हैं इस क्षेत्रपालकल्पको जानतेहुये विजयने ॥ ३४ ॥ पहले कहीहुई विधिसे पूजकर सिद्धिके लिये उनकी स्तुति किया तदनन्तर वटयक्षिणी देवीको प्रणामकर पूजन

ध्यक्षो यज्ञवाटेचकोटनः ॥ ३१ ॥ चतुर्दशभुवंव्याप्यस्थिताश्चैवनमामितान् ॥ एवंचतुःषष्टिमिताञ्छरणंयामिक्षे
त्रपान् ॥ ३२ ॥ प्रसीदन्तुप्रसीदन्तु तृप्यन्तुममपूजया ॥ सर्वकार्येषुयश्चैवं क्षेत्रपानर्चयेच्छुचिः ॥ ३३ ॥ क्षेत्रपास्तस्य
तुष्यन्ति यच्छन्तिचतदीप्सितम् ॥ इदंक्षेत्रपकल्पञ्च विजानन्विजयस्तथा ॥ ३४ ॥ पूर्वोक्तविधिनाभ्यर्च्य सिद्धये
तुष्टुवेचतान् ॥ प्रणम्यचततोदेवीमानर्चवटयक्षिणीम् ॥ ३५ ॥ पुरायदानारदेन कलापग्रामतोद्विजाः ॥ समानीता
श्चैतःसाकं सुनन्दानामब्राह्मणी ॥ ३६ ॥ विधवाभ्यागताचात्र तपस्तप्तुंमहीतटे ॥ साकृच्छ्रणिपराकादीन्यतिकृ
च्छ्राणिकुर्वती ॥ ३७ ॥ ज्येष्ठेभाद्रपदेचक्रे सावित्र्याद्वित्रिरात्रिकम् ॥ मासोपवासञ्चतथाकार्त्तिकेकुलनन्दिनी ॥ ३८ ॥
सप्तलिङ्गानिसम्पूज्य देवीपूजांसदाव्यधात् ॥ दर्शेस्नानंतथाचक्रे महीसागरसङ्गमे ॥ ३९ ॥ इत्यादिबहुभिस्तैस्तैर्नि
त्यंनियमपालनैः ॥ धूतपापाययौलोकमुमयाकृतस्वागता ॥ ४० ॥ अंशेनचवटेतस्मिन्सम्भूतावटयक्षिणी ॥ तस्या

किया ॥ ३५ ॥ पुरातन समय जब नारदजी कलापग्रामसे ब्राह्मणों को लाये हैं तब उनके साथ सुनन्दा नामक ब्राह्मणी ॥ ३६ ॥ जोकि विधवाथी वह महीनदी के
किनारे पै तपस्या करने के लिये यहां आई है कृच्छ्रचान्द्रायणादिक व पराकादिक अतिकृच्छ्रोंको करतीहुई उसने ॥ ३७ ॥ ज्येष्ठ व भाद्रपद के महीने में सावित्रीके
द्वित्रिरात्रिक व्रतको किया व कुलको आनन्द देनेवाली उसने कातिक महीने में मासोपवास किया ॥ ३८ ॥ और सात लिंगोंको पूजकर सदैव देवीका पूजन किया
व अमावस में महीसागरसङ्गम से स्नान किया ॥ ३९ ॥ इत्यादिक उन उन बहुत नियमों के पालनसे पापरहित होकर वह शिवलोकको चलीगई कि जिनका स्वागत

पार्वतीजीने किया ॥ ४० ॥ और अंशसे उस वटमें वटयक्षिणी उत्पन्नहुई और उससे प्रसन्नहोकर सिद्ध लिंगमें टिकेहुये सदाशिवजीने यह वरदान दिया ॥ ४१ ॥ कि पहले तुमको न पूजकर जो मनुष्य मुझको पूजैगा उसका वह सब निष्फल होजायगा और मेरा यह कहा हुआ पालन करनेही योग्य है ॥ ४२ ॥ इस लिये नित्यही वटमे स्थित वटयक्षिणी को पुष्पों, धूपों व नैवेद्यो से और इस मन्त्रके द्वारा भक्तिपूर्वक पूजन करै ॥ ४३ ॥ कि हे सुनन्दे ! तुम वन्दना करने योग्यहो मेरे इस पूजन को ग्रहण कीजिये और हे वटयक्षिणि ! मेरे ऊपर तुम सब समयों में प्रसन्नहोवो ॥ ४४ ॥ इस प्रकार उन वटयक्षिणीको भलीभांति पूजकर व प्रणामकर व क्षमापन

स्तुष्टोवरंप्रादात्सिद्धलिङ्गस्थितोहरः ॥ ४१ ॥ अनभ्यर्च्यपुरात्वाञ्च मत्पूजांयःकरिष्यति ॥ तस्यतन्निष्फलंसर्वमित्यु क्तंपाल्यमेवमे ॥ ४२ ॥ तस्मात्प्रपूजयेन्नित्यं वटस्थांवटयक्षिणीम् ॥ पुष्पैर्धूपैश्चनैवेद्यैर्मन्त्रेणानेनभक्तितः ॥ ४३ ॥ सुनन्देवन्दनीयासि पूजामेतांगृहाणमे ॥ प्रसीदसर्वकालेषु ममत्वंवटयक्षिणि ॥ ४४ ॥ एवंसम्पूज्यतान्नत्वा क्षमा प्यवटयक्षिणीम् ॥ सर्वान्कामानवाप्नोति नरोनारीचसर्वदा ॥ ४५ ॥ विजयश्चापिमाहात्म्यमेवंजानन्महामतिः ॥ आ नर्चवटवृक्षस्थां शक्तितोवटयक्षिणीम् ॥ ४६ ॥ ततस्सिद्धाम्बिकान्नत्वा जप्तवानपराजिताम् ॥ महाविद्यांवैष्णवीन्तुसाध नेनसमन्विताम् ॥ ४७ ॥ यस्याःस्मरणमात्रेण सर्वदुःखक्षयोभवेत् ॥ तांविद्यांकीर्त्तयिष्यामि शृणुत्वंविप्रपुङ्गव ॥ ४८ ॥ ॐनमोभगवतेवासुदेवाय नमोनन्तायसहस्रशीर्षाय क्षीरोदार्णवशायिने शेषभोगपर्यङ्काय गरुडवाहनायपीतवाससे वासुदेवसङ्कर्षणप्रद्युम्नानिरुद्धायहयशिरसे च नृसिंहवामनत्रिविक्रमरामवरप्रदनमोस्तुतेऽसुरदैत्यदानवयक्षराक्षसभूत

कराकर मनुष्य व स्त्री सदैव समस्त कामनाओं को प्राप्तहोती है ॥ ४५ ॥ ऐसे माहात्म्यको जानतेहुये महाबुद्धिमान् विजय ने बरगदके वृक्षमें टिकीहुई वटयक्षिणी को शक्तिसे पूजन किया ॥ ४६ ॥ तदनन्तर सिद्धाम्बिका को प्रणामकर साधनसे संयुत वैष्णवी महाविद्या अपराजिताको जपा ॥ ४७ ॥ कि जिसके स्मरणमात्रसे समस्त दुःखोंका नाशहोता है हे द्विजोत्तम ! उस विद्याको मैं कहताहूं तुम सुनो ॥ ४८ ॥ भगवान्, वासुदेव के लिये नमस्कार है व हजार शिरोंवाले, क्षीरसागर में शयन करनेहारे अनन्तके लिये प्रणाम है तथा शेषशरीरशय्यावाले, गरुड़ वाहनवाले, पीतवसनवाले, वासुदेव, सकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध व हयशीर्ष के लिये प्रणाम है

हे नृसिंह, त्रिविक्रम, वामन, वरदायक, रामजी! तुम्हारे लिये नमस्कारहै असुर, दैत्य, दानव, यक्ष, राक्षस, भूत, प्रेत, पिशाच, कूष्माण्ड, सिद्धि योगिनी व स्कन्द पूर्वक ग्रहों तथा नक्षत्रग्रहों व अन्य भूतादिकों को मारिये मारिये पचाइये पचाइये मथिये मथिये विध्वंसन कीजिये विध्वंसन कीजिये भगाइये भगाइये और शङ्ख, चक्र, वज्र व गदा और मुशल से भस्मकीजिये कीजिये हे सहस्रबाहो, सहस्रचरणायुध ! आपकी जयहो जयहो हे अपराजित, अप्रतिहत, सहस्रलोचन ! ज्वलिये ज्वलिये चलिये चलिये हे विश्वरूप,बहुरूप,मधुसूदन,महावराह,महापुरुष,वैकुण्ठ, नारायण, पद्मनाभ, गोविन्द, दामोदर,हृषीकेश, समस्तअसुरविनाशक, समस्तभूत-

प्रेतपिशाचकूष्माण्डसिद्धियोगिनीस्कन्दपुरोगमान् ग्रहान्नक्षत्रग्रहांश्चान्यांश्च हनहन पचपच मथमथ विध्वंसय विध्वंसय विद्रावयविद्रावय शङ्खेनचक्रेणवज्रेणगदयामुशलेनभस्मीकुरुकुरु सहस्रबाहो सहस्रचरणायुध जयजय अपराजित अप्रतिहत सहस्रनेत्र ज्वल ज्वल प्रज्वल प्रज्वल विश्वरूप बहुरूप मधुसूदन महावराह महापुरुषवैकुण्ठ ॥ नारायण पद्मनाभ गोविन्द दामोदर हृषीकेश सर्वासुरोत्सादन सर्वभूतवशङ्कर सर्वदुःखप्रभेदन सर्वापत्प्रभञ्जन सर्वनागप्रमर्द्दन सर्वदेवमहेश्वर सर्वबन्धविमोक्षण सर्वाहितप्रमर्दन सर्वज्वरप्रणाशन सर्वग्रहनिवारण सर्वपापप्रशमन जनार्द्दन जनानन्दकरनमोस्तुतेस्वाहा ॥ ४९ ॥ इमामपराजितां वैष्णवींमहाविद्यांजपतिपठति शृणोति स्मरति धारयति कीर्त्तयतिच न तस्यवाय्वग्निवज्रोपलाशनिवर्षभयन्नसमुद्रभयन्न ग्रहभयमथचौरभयन्नभवेत् ॥५०॥ क्वचिद्रात्र्यन्धकारे स्त्रीराजकुलविषोपविषगरदवशीकरणविद्वेषणोच्चाटनवधबन्धभयंवानभवेत् ॥ ५१ ॥ एतैर्मन्त्रप

वशाकारक, सकलदुःखप्रभेदन, समस्तविपत्तिविनाशन, सकलनागप्रमर्दन, सर्वदेव, महेश्वर, सर्वबन्धविमोक्षण, समस्तशत्रुप्रमर्दन, सर्वज्वरनाशक, सर्वग्रहनिवारक, सर्वपापप्रशमन, जनार्दन, भक्तानन्दकर ! तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥ ४६ ॥ इस अपराजिता, वैष्णवी महाविद्याको जो जपताहै या पढ़ताहै या सुनताहै अथवा स्मरण करता है अथवा धारण करता है या कीर्तन करता है उसके पवन, अग्नि, वज्र, पत्थर, वज्रपात व वर्षाका भय नहीं होताहै और समुद्रका भय नहीं होताहै और न ग्रहोंका भय होता है व चोरोंका भय नहीं होताहै ॥ ५० ॥ और कहीं रात्रिके अन्धकार में स्त्री, राजकुल, विष, उपविष तथा हालाहलदायक व वशीकरण,

विद्वेषण, उच्चाटन और वधबन्धन का भय नहीं होता है ॥ ५१ ॥ भलीभांति सिद्धिके लिये वृद्धों से पूजित इन मन्त्रपदों के कहने से उपर्युक्त भय नहीं होते हैं ॥ ५२ ॥ जैसे कि वह कहा जाताहै हे अभये, अनघे, अजिते, असिते, अमृते, अपराजिते ! हे पढ़नेवालेको सिद्धि देनेवाली, स्मरण करनेवाले को सिद्धि देनेवाली ! तुम एकहीहो हे अंशरहिते, ध्रुवे, अरुन्धति ! तुम सावित्री व गायत्री तथा जातदेवीहो हे समानस्तोके, सरस्वति ! ॥ ५३ ॥ हे धारिणि, सौदामिनि, मदनोन्मादिनि, अदिते, विनते, गौरि, गन्धारि, मातंगि, कृष्णे, यशोदे, सत्यवादिनि, ब्रह्मवादिनि, कालि, कपालिनि, इन्द्रे, सद्योपयाचनकारिणि ! जलस्थल में प्राप्त या आकाश में

दैरुदाहृतैर्वृद्धैस्संसिद्ध्यैपूजितैः ॥ ५२ ॥ तद्यथा ॥ नमोनमस्तेस्तुअभये अनघेअजिते असिते अमृते अपराजितेपठतःसिद्धेस्मरतःसिद्धेएकानंशेतथाध्रुवे ॥ अरुन्धतिसावित्रीगायत्रीजातदेवीसमानस्तोकेसरस्वति ॥ ५३ ॥ धारिणि सौदामिनिमदनोन्मादिनि अदितेविनतेगौरिगन्धारिमातङ्गि कृष्णेयशोदेसत्यवादिनि ब्रह्मवादिनि कालिकपालिनीन्द्रे सद्योपयाचनकारिणिजलस्थलगतमन्तरिक्षगतंवारक्षरक्षसर्वभूतभयोपद्रवेभ्योरक्षरक्षस्वाहा॥५४॥यस्याःप्रणश्यतेपुष्पंगर्भोवाप्रपतेद्यदि ॥ म्रियन्तेबालकायस्याः काकबन्ध्याचयाभवेत् ॥ ५५ ॥ साधारयेदिमांविद्यामेभिर्दोषैर्नलिप्यते ॥ रणेराजकुलेद्यूते नित्यंतस्यजयोभवेत् ॥ ५६ ॥ अस्त्रन्धारयतेह्येषां समरेकाण्डधारिणाम् ॥ गुल्मशूलाक्षिरोगाणां नित्यन्नाशकरीतथा ॥ ५७ ॥ शिरोरोगज्वराणांच नाशिनीसर्वदेहिनाम् ॥ ५८ ॥ तद्यथा ॥ हनहनकालीसर

प्राप्त मेरी रक्षाकीजिये रक्षाकीजिये और समस्त प्राणियों के भय व उपद्रवों से रक्षाकीजिये रक्षाकीजिये ॥ ५४ ॥ जिसका पुष्प नाशहोजाता है या यदि गर्भही गिरजाता है व जिसके बालक मरजाते हैं और जो काकबन्ध्या होती है ॥ ५५ ॥ वह इस विद्याको धारण करै तो इन दोषो से नहीं लिप्त होती है और जो पुरुष इस विद्याको धारण करता है उसकी युद्ध, राजकुल और जुवामें नित्यही जीत होतीहै ॥ ५६ ॥ क्योंकि युद्धमें बाण धारनेवाले इन पुरुषों के लिये महाविद्या अस्त्रको धारण करती है और गुल्म, शूल व नेत्ररोगों को नित्यही नाश करनेवाली है ॥ ५७ ॥ और समस्त प्राणियों के शिरवाले रोगों व ज्वरोंको नाशनेवाली है ॥ ५८ ॥ जैसे कि

उसी मन्त्रको कहते हैं ॥ हन हन काली सर सर गौरीधम धम विद्ये आलेनले माले गन्धे वेधे शवरे विधे नाशय पापं हन दुःस्वप्नविनायकनाशिनि निर्जरी
रान्ध्ये दुन्दुभिनादे मानसवेगिनि शङ्खिनि चक्रिणि वज्रिणि शूलिनि अपमृत्युविनाशिनि विनाशिनि विश्वेश्वरि द्राविडि केशवदयिते पाशुपति महिते दुर्दमनि दम-
नि शवरि किरातिनि ॐ हुं हुं हुं क्रं क्रं क्र त्वर त्वर उत्सादय उत्सादय ब्रह्माणि माहेश्वरि वाराहि विनायकि पूर्वादिशि ऐन्द्रि आग्नेयि चामुण्डे वारुणि वायव्ये
रक्षोगते प्रचण्डविद्योते इन्द्रोपेन्द्रभगिनि विजये शांतिस्वस्तिपुष्टिविवर्द्धिनि कामांकुशे कामदुघे सर्वकामवरप्रदे सर्वभूतेषुवासिनि प्रतिविद्या कुरु कुरु आकर्षणि

सर गौरीधमधम विद्येआलेनलेमाले गन्धेवेधेशवरेविद्ये नाशय पापंहनदुस्स्वप्नविनायकनाशिनिनिर्जरीसन्ध्ये
दुन्दुभिनादेमानसवेगिनि शङ्खिनिचक्रिणिवज्रिणिशूलिनिअपमृत्युविनाशिनिविनाशिनि विश्वेश्वरिद्राविडिके
शवदयितेपाशुपति॥महितेदुर्दमनिदमनिशवरिकिरातिनिॐहुंहुंहुंक्रंक्रंक्रंत्वरत्वर उत्सादयउत्सादय ब्रह्माणिमाहेश्व
रिवाराहिविनायकिपूर्वादिशि॥ऐन्द्रिआग्नेयिचामुण्डेवारुणिवायव्ये रक्षोगतेप्रचण्डविद्योते इन्द्रोपेन्द्रभगिनि ॥
विजयेशान्तिस्वस्तिपुष्टिविवर्द्धनि कामाङ्कुशे कामदुघेसर्वकामवरप्रदे ॥ सर्वभूतेषुवासिनिप्रतिविद्याकुरुकुरु आकर्ष
णिवैशिनि ज्वालामालिनि तापनिशोषणि ॥ नीलपताकेमहागौरि महाश्रिये महामयूरि आदित्यरश्मिजाह्नवियम
घण्टेकिणिकिणि॥ चिन्तामणिसुरभिसुरोत्पन्ने कामदुघेयथामनीषितंकार्यं तन्ममसिद्ध्यतुस्वाहा ॥ ५९ ॥ ॐभूःस्वा
हा ॐभुवःस्वाहा ॐस्वःस्वाहा ॐभूर्भुवःस्वःस्वाहा॥ ६० ॥ यत्रैवगतंपापं यत्रैवप्रतिगच्छतुस्वाहा ॥ ॐबलेमहाबलेसि
द्धेसाधनिस्वाहा ॥ ६१ ॥ इतितांसाधयामास वैष्णवीमपराजिताम् ॥ विजयःसंयतोभूत्वा मनोबुद्धिसमाधिभिः॥६२॥

वैशिनि ज्वालामालिनि तापनि शोषणि नीलपताके महागौरि महाश्रिये महामयूरि आदित्यरश्मिजाह्नवि यमघण्टे किणि किणि चिन्तामणि सुरभिसुरोत्पन्ने कामदुघे
यथा मनीषितं कार्य तन्मम सिद्ध्यतु स्वाहा ॥ ५९ ॥ ॐ भूः स्वाहा ॐ भुवः स्वाहा ॐ स्वः स्वाहा ॐ भूर्भुवः स्वः स्वाहा ॥ ६० ॥ यत्रैवगतंपापयत्रैवप्रतिगच्छतुस्वाहा
ॐ बले महाबले सिद्धे साधनि स्वाहा ॥ ६१ ॥ इस प्रकार विजय ने संयम में प्राप्तहोकर मन, बुद्धि व समाधि से अपराजिता वैष्णवी का साधन किया ॥ ६२ ॥

हे द्विजोत्तमो ! जो मनुष्य साधन विनाभी इसको पढ़ताहै उसके भी समस्त विघ्न नाश होजाते हैं ॥ ६३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचि-
तायांभाषाटीकायामष्टाधिकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५८ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥
दो० । भीम पौत्र मार्यो यथा बहुत राक्षसन वीर । उंसठि के अध्याय में कहत सोइ मतिधीर ॥ सूतजी बोले कि वहां स्वस्थहोकर सुबल व अतिबल संज्ञक मन्त्रोंके
द्वारा अग्निमें तिल व अक्षतों से संयुत शर्करा को शीघ्रही हवन करते हुये इस विजयके ॥ १ ॥ एक पहर बीतने पर कोई स्त्री आई जोकि रक्तसे भीगेहुये एक

पएनांपठतेनित्यं साधनेनविनापिवा ॥ तस्यापिसर्वविघ्नाश्चनश्यन्तिद्विजपुङ्गवाः ॥ ६३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारि
काखण्डेऽष्टाधिकपञ्चाशत्तमोध्यायः ॥ ५८ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥
सूतउवाच ॥ आश्वस्यतत्रवह्नौच शर्कराक्षसरैर्युताम् ॥ जुह्वतोमन्त्रमुख्यैःसुबलातिबलसंज्ञकैः ॥ १ ॥ यामेतुप्रथ
मेयाति काचिन्नारीसमाययौ ॥ शोणिताक्तैकवसना तथाचोर्ध्वशिरोरुहा ॥ २ ॥ दारुणाक्षीशुक्लदन्ती भयस्यापिभय
ङ्करी ॥ सारुरोदमहारावं प्राप्यतंहोमभूमिकम् ॥३ ॥ तांदृष्ट्वाचुक्षुभेसद्यो विजयोभीतिमागतः ॥ बर्बरीकश्चनिर्भीतस्तस्या
सम्मुखमाययौ ॥ ४ ॥ ततःकण्ठेसमाश्लिष्य तस्यामतिमतांवरः ॥ रुरोदद्विगुणंवीरो मेघवत्प्रलयेबहु ॥ ५ ॥ तन्दृ
ष्ट्वाविस्मितासाच यावन्मुञ्चतितन्तदा ॥ तावन्निष्पीडितेकण्ठे मोक्तुंतस्मिन्नचाशकत् ॥ ६ ॥ पीड्यमानेचबलिना

वसनवाली व ऊपर उठेहुये बालोंवाली थी ॥ २ ॥ और भयङ्कर नेत्रोंवाली तथा श्वेत दांतोंवाली व भयको भी भय करनेवाली थी वह उस होमभूमि में
प्राप्त होकर बडे शब्दसे रोनेलगी उसको देखकर भयमें प्राप्त होते हुये विजय शीघ्रही क्षोभित होगये और निडर बर्बरीक उसके सामने आये ॥ ३ । ४ ॥
तदनन्तर उसके गलेमे लिपटकर बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ बर्बरीकवीर उसके दूने बहुतही रोने लगे जैसे कि प्रलय में मेघ गरजते हैं ॥ ५ ॥ उनको देखकर विस्मित होती
हुई वह उस समय जबतक उनको छोडै तबतक उस कण्ठके बहुत पीड़ित होने पर छोडनेके लिये न समर्थ हुई ॥ ६ ॥ बलवान् बर्बरीक ने जब बार बार उसका

कण्ठ पीड़ित किया तब वज्रसे मारेहुये पर्वतकी नाईं उसने अनेक भांतिके शब्दों को किया ॥ ७ ॥ तदनन्तर शब्दोंकोकर उसके उपरान्त रक्षाकीजिये छोड़िये ऐसा कहतीहुई दयालु वर्वरीक से छोड़ीगई और चरणों में गिरीहुई वह यह बोली ॥ ८ ॥ कि तुम्हारे कार्यको करनेवाली मैं दासी तुम्हारी शरण में प्राप्तहूं महाजिह्वा ऐसी मुझ कामरूपिणी राक्षसी को जानिये ॥ ९ ॥ जोकि काशी के श्मशानमें स्थानवाली और देवता व दानवों के गर्वको नाशनेवाली हूं हे वीर ! यदि मुझे दुर्लभ प्राण दक्षिणाको दीजिये ॥ १० ॥ तो समस्त प्राणियोंको भयदेनेवाली मैं तपस्या करूंगी इस प्रयोजनमें मैं अपने देवताकी सौगन्द करतीहूं ॥ ११ ॥ यदि यह झूंठहोवै तो

कण्ठेतस्यामुहुर्मुहुः ॥ मुमोचविविधान्रावान् वज्राहतइवाचलः ॥ ७ ॥ क्षणंरावांस्ततोमुक्त्वा त्राहिमुञ्चेतिवादिनी ॥ ततःकृपालुनामुक्ता पादयोःपतिताब्रवीत् ॥ ८ ॥ शरणन्तेप्रपन्नास्मि दासीकर्मकरीतव ॥ महाजिह्वेतिमांविद्धि राक्षसीं कामरूपिणीम् ॥ ९ ॥ काशीश्मशाननिलया देवदानवदर्पहा ॥ ददासियदिमेवीर दुर्लभांप्राणदक्षिणाम् ॥ १० ॥ ततस्तपश्चरिष्यामि सर्वभूतभयप्रदा ॥ अस्मिन्नर्थेस्वदेवस्य शपथंप्रकरोम्यहम् ॥ ११ ॥ यद्येतद्वितथंकुर्यां भस्मीभूतान्ततःक्षणात् ॥ एवंब्रुवाणांतांवीरो निगृह्यशपथैर्दृढम् ॥ १२ ॥ मुमोचसापिसंहृष्टा कृच्छ्रान्मुक्ताययौवनम् ॥ सोपिवीरः खड्गधारीतत्रैवावस्थितोभवत् ॥ १३ ॥ ततोमध्यमरात्रौचगर्जितंश्रूयतेमहत् ॥ अन्धकारश्चसञ्जज्ञे तमोन्धनरकप्रभम् ॥ १४ ॥ ददृशेचततःशैलः शतशृङ्गोतिविस्तरः ॥ नानाशिलाःप्रमुमुचे नानावृक्षाश्चसोच्छ्रयाः ॥ १५ ॥ नानानिर्झरनिर्ह्रादं ववर्षेशोणितंबहु ॥ तन्तथाद्भुतमालोक्य निर्भीतो भैमिनन्दनः ॥ १६ ॥ पर्वताद्द्विगुणोभूत्वा पर्वतंसहसा

क्षणभरमें भस्मकर दीजियेगा इस प्रकार कहती हुई उसको वीर वर्वरीकने सौगन्दों से दृढतापूर्वक दण्डकर ॥ १२ ॥ छोड दिया और दुःखसे छूटीहुई वहभी वनको चलीगई और तलवार को धारण कियेहुये वे वर्वरीक भी वहां स्थितहुये ॥ १३ ॥ तदनन्तर आधीरातमें बड़ाभारी गर्जित शब्द सुनपडा और अन्धतम नरकके समान अन्धकार उत्पन्नहुआ ॥ १४ ॥ तदनन्तर सैकड़ों शिखरोंवाला बडा चौड़ा पर्वत देखपडा व उसने अनेक शिला तथा अनेक भांतिके ऊंचे वृक्षोंको छोडा ॥ १५ ॥ व अनेक प्रवाहों से शब्दवाले बहुत रक्तकी वृष्टि किया उसको वैसा देखकर निडर भैमिनन्दन वर्वरीक ने ॥ १६ ॥ अचानकही कूदकर पर्वत से दुगुने होकर जब

पर्वतको लेकर और पर्वतही के अंशवाले पहाड़से मारा ॥ १७ ॥ तब वह टूटगया और पृथ्वीमण्डल में गिरपड़ा तदनन्तर सौ मस्तक व सौ पेटोंवाला तथा चार कोसकी देहवाला ॥ १८ ॥ रेफलेन्द्र मुखों से बडी ज्वालाओं को छोडताहुआ दौडा दौडतेहुये उसको देखकर बडावली वर्वरीक ॥ १९ ॥ वैसेही रूपको धरकर गर्जते हुये उस दानवके सामने दौडा तदनन्तर आधीरातमे शीघ्रही उन दोनोंने विचित्रतापूर्वक भलीभांति ॥ २० ॥ बाणसमूहोंसे युद्ध किया जैसे कि वर्षा में दो मेघ युद्ध करैं जब दोनों के धनुष कटगये तब तलवारोंसे युद्ध करनेलगे व तलवारोंके टूट जानेपर दोनोंने घूसों से युद्ध किया ॥ २१ ॥ और दो पर्वतों की नाई शोभित उन

प्लुतः ॥ यदाभिजघ्नेसंहृत्य पर्वतांशेनभूभृता ॥ १७ ॥ तदाविशीर्णःसोभूच्च पतितोभूमिमण्डले ॥ ततोयोजनदेहीस शतशीर्षःशतोदरः ॥ १८ ॥ वक्त्रैर्मुञ्चन्महाज्वाला रेफलेन्द्रोऽभ्यधावत ॥ तन्धावमानन्दृष्ट्वैववर्वरीकोमहाबलः ॥ १९ ॥ विधायतादृशंरूपं नदंस्तञ्चाभ्यधावत ॥ ततोमध्यमरात्रौतौ लघुचित्रञ्चसुष्ठुच ॥ २० ॥ युयुधातेबाणजालैर्यथाप्रावृषितोयदौ ॥ छिन्नचापौचखड्गाभ्यां छिन्नखड्गौचमुष्टिभिः ॥ २१ ॥ पर्वताविवसम्प्रख्यौ चिरंयुयुधतुःस्थिरम् ॥ ततःकुक्षौसमुत्पाद्य भ्रामयित्वामुहूर्त्तकम् ॥ २२ ॥ भूमौप्रघर्षयामास प्रमृतञ्चमुमोचह ॥ चिक्षेपचाग्निकोणेतं महीसागररोधसि ॥ २३ ॥ तत्ररेफलपप्रख्योग्रामोद्यापिप्रवर्तते ॥ एवंसरेफलोनाम वृत्रतुल्यपराक्रमः ॥ २४ ॥ नाथोवन्त्याःश्मशानस्य विघ्नकृन्निहतोबलः ॥ तन्निहत्यपुनर्वीरो वर्वरीकःस्थितोभवत् ॥ २५ ॥ ततस्तृतीययामेतु प्रतीच्यांदिशिचाययौ ॥ पर्वताभामहानादा पादैःकम्पयतीवकुम् ॥ २६ ॥ द्रुहद्रुहाख्याकृत्यादी मेघभ्रष्टातडिद्यथा ॥ तामायान्तीन्त

बहुत देरतक स्थिरता से युद्ध किया उसके उपरान्त कोखिमें मारकर व थोडी देरतक घुमाकर ॥ २२ ॥ भूमि में पटक दिया और मरेहुये उसको छोड़दिया अग्निकोण में महीसागर के किनारे पै उसको फेंकदिया ॥ २३ ॥ वहा पर रेफलप नामक ग्राम आज भी वर्तमानहै ऐसा वह रेफल नामक वृत्रासुरके समान था ॥ २४ ॥ अवन्ती (उज्जयिनी) पुरीके श्मशानका स्वामी वह बलवान् विघ्नकारी मारागया उसको मारकर फिर वर्वरीक वीर स्थितहुये ॥ २५ ॥ तदनन्तर पहर मे चरणोंसे भूमिको कँपातीहुई सी बड़े शब्दवाली व पर्वत के समान शोभावाली द्रुहद्रुहा नामक राक्षसी पश्चिम दिशामें आई जैसे कि मेघसे गिरीहुई

बिजलीहोवै आतीहुई उसको वैसीदेखकर सूर्य व अग्निके समान प्रभावान् ॥ २६ । २७ ॥ वर्वरीकने हँसते हुये संवेगपूर्वक जाकर रोंकलिया तदनन्तर वेगसे आती
हुई उसकी चोंचमें घूंमों से मारकर ॥ २८ ॥ वहीं स्थापित किया और बहुतही पीडित वह वहीपर स्थितहुई तदनन्तर क्रोधित होतीहुई दुहदुहा राक्षसी ने बड़ा
भारी शब्द कर कूदकर ॥ २९ ॥ शीघ्रही वर्वरीकको पृथ्वीमें उच्चतासे फेंकदिया तदनन्तर बहुतही गर्जकर चरण चोटको चलाया ॥ ३० ॥ और वीर वर्वरीक ने चरणों को
पकड़कर भुजाओं के खेलही से फेंक दिया उसके उपरान्त उठकर फिर दौड़तीहुई उस राक्षसीको पकड़कर ॥ ३१ ॥ वर्वरीक ने घूंसासे इसको गिराकर तबतक गले

आदृष्ट्वा सूर्यवैश्वानरप्रभः ॥ २७ ॥ उपसृत्यजवाद्भैमी रुरोधप्रहसन्निव ॥ वेगाच्चतःप्रद्रवन्तीं तुण्डेचाहत्यमुष्टिभिः ॥
२८ ॥ स्थापयामासतत्रैव तस्थौसातीवपीडिता ॥ ततःक्रुद्धामहारावं कृत्वाप्लुत्यदुहदुहा ॥ २९ ॥ जगत्यामाशुचिक्षे
प वर्वरीकंतथोच्चकैः ॥ ततोनदित्वाचातीव पादघातममुञ्चत ॥ ३० ॥ पादौचवीरस्संगृह्य चिक्षेपभुजलीलया ॥ ततः
पुनस्समुत्थाय धावन्तींतांनिगृह्यच ॥ ३१ ॥ मुष्टिनापातयित्वैतां तावत्कण्ठमपीडयत ॥ कण्ठंचास्यास्समापीड्य
प्राणानत्याजयद्द्रुतम् ॥ ३२ ॥ एवंशीकोत्तरस्थानश्मशानैकपदोद्भवा ॥ शाकिनीपुरुषादीसा वर्वरीकेणसूदिता ॥
३३ ॥ हत्वातांश्चापिचिक्षेप प्रतीच्यामेवलीलया ॥ दुहदुहाह्वयश्चाद्यापि तत्रग्रामश्चवर्त्तते ॥ ३४ ॥ ततस्तत्रैवमन्त्यस्थो
वर्वरीकोमिरक्षणे ॥ ततश्चतुर्थेयामेच प्राप्तःक्षपणकोद्भुतः ॥ ३५ ॥ मुण्डीनग्नोमयूराणां पिच्छधारीमहाव्रतः ॥ प्रोवा
चेदंवचनं हाहाकष्टमतीवभोः ॥ ३६ ॥ अहिंसापरमोधर्मस्तदग्निर्ज्वाल्यतेकुतः ॥ दृश्यमानेयतोवह्नौ सूक्ष्मजीवव

को पीडित किया व इसके गलेको भलीभांति पीडितकर वर्वरीक ने शीघ्रही प्राणोंको त्याग कराया ॥ ३२ ॥ इस प्रकार शीकोत्तर स्थान के श्मशान में उपजी हुई वह
मनुष्यों को खानेवाली राक्षसी वर्वरीकसे मारीगई ॥ ३३ ॥ उसको मारकर वर्वरीक ने लीलासे पश्चिमही दिशामें फेंकदिया वहां दुहदुहा नामक ग्राम आजभी वर्तमान
है ॥ ३४ ॥ तदनन्तर वहीपर सब ओरसे रक्षामें वर्वरीक स्थितहुये तदनन्तर चौथे पहर में मुण्डीनग्न नामक अद्भुत क्षपणक प्राप्तहुआ जोकि मयूरों के पङ्खोंको धारे
और महानियमवान् था वह यह वचन बोला कि हे वर्वरीक ! हाय हाय बड़े कष्टकी बात है ॥ ३५ । ३६ ॥ अहिंसा परम धर्म है तो अग्नि क्यों जलाई जाती है क्योंकि

हवन कीजाती हुई अग्निमें छोटे जीवोंका वध बहुत होता है ॥ ३७ ॥ उसका यह वचन सुनकर हँसतेहुये वर्वरीक बोले कि अग्निमें हवन करनेपर सब देवताओं की
तृप्तिहोती है ॥ ३८ ॥ हे दुर्बुद्धे, पापिन्! तुम झूंठ कहतेहो इससे शिक्षाके योग्यहो ऐसा कहकर अचानकही आकर इसके समीप में स्थितहोकर ॥ ३९ ॥ घूंसों से
मारकर दांतों को गिरादिया और रक्तकी पातियोंसे संयुत मुखमध्यवाले तथा पृथ्वी में गिरेहुये उसको छोड़ दिया ॥ ४० ॥ और दैत्यके शरीर को धारनेवाला वह
भयङ्कर राक्षस क्षणभर में चैतन्यता को पाकर वर्वरीक के भयसे दौड़ा और गुफाके बिलमें पैठगया ॥ ४१ ॥ और घुड़कतेहुये क्रोधित वर्वरीक वेगसे उसके पीछेचले

धोमहान् ॥ ३७ ॥ श्रुत्वेदंवचनंतस्य वर्वरीकोब्रवीत्स्मयन् ॥ तर्पणंसर्वदेवानां हूयमानेचपावके ॥ ३८ ॥ अनृतंभाषसे
पाप शिक्षायोग्योसिदुर्मते ॥ इत्युक्त्वासहसोपेत्य समीपेवस्थितोस्यवै ॥ ३९ ॥ दन्तान्मुष्टिप्रहारैश्च समाहत्याभ्य
पातयत् ॥ रुधिरावलिवक्त्रान्तं मुमोचपतितंभुवि ॥ ४० ॥ सक्षणाच्चेतनांप्राप्य घोरोदैत्यवपुर्धरः ॥ भयाद्भैमेःप्रदुद्राव
गुहाविवरमाविशत् ॥ ४१ ॥ क्रुद्धोभैमिश्चतंवेगादनुवव्राजभर्त्सयन् ॥ वायुवेगेनदैत्योपि पातालतलमाविशत् ॥ ४२ ॥
बहुप्रभेतिनगरी षष्टियोजनमायता ॥ तस्यांविवेशसहसा तञ्चानुवर्वरीककः ॥ ४३ ॥ वर्वरीकंततोदृष्ट्वा नादोभूच्चप
लाशिनाम् ॥ धावध्वंहन्यतामेष छिद्यतांभिद्यतामिति ॥ ४४ ॥ तच्छ्रुत्वादैत्यवीराणां कोटयोनवभीषणाः ॥ नाना
युधधरावीरं वर्वरीकमुपाद्रवन् ॥ ४५ ॥ दृष्ट्वातान्कोटिशोदैत्यान् क्रोधीभीमात्मजात्मभूः ॥ निमील्यसहसानेत्रे ते
षांमध्यमधावत ॥ ४६ ॥ पादघातैस्ततःकांश्चिद्भुजाघातैस्तथापरान् ॥ हृदयस्याभिघातैश्च क्षणान्निन्येयमक्षयम् ॥ ४७ ॥

और दैत्यभी पवन के समान वेगसे पातालतलमें पैठगया ॥ ४२ ॥ बहुप्रभा नामक साठि योजन की चौंड़ी जो पुरीथी उसमें वह अचानकही पैठगया और
उसके पीछे वर्वरीक पैठगये ॥ ४३ ॥ उसके उपरान्त वर्वरीकको देखकर राक्षसों का यह शब्द हुआ कि दौडिये मारिये इमको काटिये व भेदन कीजिये ॥ ४४ ॥ उस
वचनको सुनकर नवकरोड़ भयङ्कर दैत्य अनेक प्रकार के अस्त्रोंको धारकर वर्वरीकके सामने दौड़े ॥ ४५ ॥ उन करोड़ों दैत्योंको देखकर घटोत्कचका पुत्र वह वर्वरीक
क्रोधित होकर अचानकही आखोंको मूँदकर उनके मध्यमें दौड़ा ॥ ४६ ॥ तदनन्तर उन्होंने कितने दैत्योंको चरणप्रहारों से व कितनों को भुजाघातो से और कितनों

को वक्षस्थल के प्रहारों से क्षणभर में यमस्थान में पठादिया ॥ ४७ ॥ जैसे कि क्रोधित होताहुआ कटी अर्थात् चटाई बनानेवाला नरकुलके वनको भूमि के
बराबर करदेवै वैसेही बर्बरीकने उस समेत नवकरोड राक्षसोंको मारा ॥४८॥ तदनन्तर उस समय वासुकी इत्यादिक नाग आये और उन्हों ने विविध वचनों से उत्तम
चित्तवाले बर्बरीककी स्तुति किया व कहा॥४९॥कि हे घटोत्कचके पुत्र ! तुमने नागोंका बड़ा कार्य किया जोकि सेवकों समेत इस पलाशी नामक दैत्यको मारा ॥५०॥
हे वीर ! सेवकों समेत इस दुष्टात्मासे अनेक प्रकार के उपायो करके पीड़ितहोकर हमलोग पातालसे भी नीचे कियेगये ॥ ५१ ॥ इस लिये तुम नागों से मनोभिल-

**यथानलवनंक्रुद्धःकुर्याद्भूमिसमंकटी ॥ नवकोटिस्तथाजघ्ने सहतेनपलाशिनाम् ॥ ४८ ॥ ततोनागाःसमाजग्मु
र्वासुकीप्रमुखास्तदा ॥ तुष्टुवुर्विविधैर्वाक्यैरूचुःसुहृदयञ्चते ॥ ४९ ॥ नागानांपरमंकृत्यं कृतन्तेभैमिनन्दन ॥ पलाशी
नामदैत्योयं नीतःसानुचरःक्षयम् ॥५०॥ अनेनाहिवयंवीरसानुगेनदुरात्मना ॥ पीडिताविविधोपायैः पातालादप्यधः
कृताः ॥ ५१ ॥ वरंवृणीष्वत्वंतस्मान्नागेभ्योभिमतंवरम् ॥ वरदाःसर्वएवस्म वयंतुभ्यंसुतोषिताः ॥ ५२ ॥ वर्बरीकउवा
च ॥ यदिदेयोवरोमह्यं तदेनंप्रवृणोम्यहम् ॥ सर्वविघ्नविनिर्मुक्तो विजयःसिद्धिमाप्नुयात् ॥ ५३ ॥ ततस्तथेतितंप्रोचुः
प्रहृष्टावायुभोजनाः ॥ सचतेभ्यःपुरींदत्त्वा निवृत्तोनागपूजितः ॥ ५४ ॥ विवरस्यतुरम्येण समागच्छन्महाप्रभम् ॥
सर्वरत्नमयंलिङ्गं स्थितंकल्पतरोरधः ॥ ५५ ॥ अर्च्यमानंसुबह्वीभिर्नागकन्याभिरैक्षत ॥ ततोसौविस्मयाविष्टो नाग
कन्याहापृच्छत ॥ ५६ ॥ केनेदंस्थापितंलिङ्गं सूर्यवैश्वानरप्रभम् ॥ लिङ्गंह्यपिचतुर्दिक्षु मार्गानेतान्प्रकीर्तय ॥ ५७ ॥ इ**

षित उत्तम वरदान को मांगो क्योंकि बहुतही प्रसन्न कियेहुये हम सब लोग तुम्हारे लिये वरदायक हैं ॥ ५२ ॥ वर्बरीक बोले कि यदि मुझको वरदेने योग्य है तो मैं
इस वरको मागताहूँ कि समस्त विघ्नोंसे छूटकर विजय सिद्धिको प्राप्तहोवै ॥ ५३ ॥ तदनन्तर पवनभोजी उन नागोंने उससे यह कहा कि वैसाही होगा और वे वर्बरीक
उन नागों के लिये पुरीको देकर व नागों से पूजित होकर लौटपड़े ॥ ५४ ॥ और बिलके मनोहर मार्ग से आते हुये उन्होंने समस्तरत्नमय व महाप्रकाशमान
तथा बहुतरी नागकन्याओं से पूजेजातेहुये कल्पवृक्षके नीचे स्थित लिङ्गको देखा तदनन्तर विस्मय में प्राप्तहोकर इन वर्बरीकने नागकन्याओं से पूछा ॥५५।५६॥ कि

सूर्य व अग्निके समान प्रकाशमान इस लिंगको किसने थापाहै और लिंगसे चारों दिशाओंमें जो ये मार्गगये हैं उनको कहिये ॥ ५७ ॥ ऐसे वीरके वचनको सुनकर बडीभारी कटि व स्तनोंवाली उन कन्याओं ने लज्जा समेत व मुसक्यानपूर्वक कटाक्षको छोड़कर यह कहा ॥ ५८ ॥ कि समस्त सर्पोंके राजा महात्मा शेषजी ने तपस्या करके यहां इस महालिंगको थापाहै ॥ ५९ ॥ जोकि दर्शन, स्पर्शन व पूजन करनेसे समस्त सिद्धियोंको देताहै और लिंगसे पूर्वओर यह मार्ग भूमिमें श्रीपर्वत को चलागयाहै ॥ ६० ॥ जोकि वहांपर नागोंकी प्राप्तिके लिये एलापत्र नागसे बनाया गयाहै और लिंगसे दक्षिण ओर यह मार्ग भूमि में सूपरिक को जाता है ॥ ६१ ॥

तिवीरवचःश्रुत्वाबृहत्कटिपयोधराः ॥ सव्रीडंसस्मितापाङ्गंनिर्मुच्येदन्तमब्रुवन् ॥ ५८ ॥ सर्वपन्नगराजेन शेषेणसुमहात्मना ॥ तपस्तप्त्वामहालिङ्गमिदमत्रप्रतिष्ठितम् ॥ ५९ ॥ दर्शनात्स्पर्शनाद्ध्यानादर्चनात्सर्वसिद्धिदम् ॥ लिङ्गात्पूर्वेणमार्गोयं यातःश्रीपर्वतंभुवि ॥ ६० ॥ एलापत्रेणविहितोनागानांतत्रप्राप्तये ॥ दक्षिणेनचमार्गोयं यातिसूपरिकंभुवि ॥ ६१ ॥ कर्कोटकेननागेन कृतोयंतत्रप्राप्तये ॥ पश्चिमेनचमार्गोयं प्रभासंयातिसुप्रभम् ॥ ६२ ॥ ऐरावतेनविहितो नागानांगमनायच ॥ उत्तरेणचमार्गोयं यातिक्षेत्रंकुरोर्भुवि ॥ ६३ ॥ विहितस्तक्षकेणासौ गन्तुंतत्रमहात्मना ॥ ऊर्द्ध्वोयश्चापिमार्गोयं येनयातुंभवान्स्थितः ॥ ६४ ॥ गुप्तक्षेत्रेबुद्धिलिङ्गं गुहशक्त्याचयःकृतः ॥ इतीदंवर्णितंधीर विज्ञप्तिः श्रूयतांमम ॥ ६५ ॥ कोभवानधुनैवत्वं दैत्यपृष्ठगतोभवत् ॥ अधुनैकःसमायातः समायातोत्रनोवद ॥ ६६ ॥ वयञ्चसर्वा

वहांपर प्राप्तिके लिये इसको कर्कोटक नागने कियाहै और लिंगसे पश्चिम ओर यह मार्ग बहुत प्रकाशमान प्रभासक्षेत्रको जाता है ॥ ६२ ॥ जोकि नागों के जाने के लिये ऐरावत से रचागयाहै और उत्तर ओर यह मार्ग पृथ्वीमें कुरुक्षेत्रको जाताहै ॥ ६३ ॥ इसको तक्षक नागने वहां जाने के लिये बनायाहै और ऊपरवाला जो यह मार्ग है कि जिसमें जाने के लिये आप स्थितहो ॥ ६४ ॥ यह गुप्तक्षेत्र में बुद्धि लिंगको जाता है जोकि स्वामिकार्त्तिकेयजी की शक्तिसे रचागया है हे वीर! यह तो वर्णन कियागया अब मेरी विनयको सुनिये ॥ ६५ ॥ कि आप कौनहो इसी समय तुम दैत्य के पीछेगये थे और अब अकेले आयेहो यहां आयेहुये आप हम

लोगों से यह कहिये ॥६६॥ और हम सब आपकी दासी हैं व तुमको पति मांगती हैं क्योंकि हम सबों के साथ देवभूमियों में अनेक प्रकारकी क्रीड़ा कीजिये ॥ ६७ ॥
बर्बरीक बोले कि कुरुवंश में मैं पैदाहुआ हूं और पाण्डु के पुत्र भीमका पौत्रहूं व बर्बरीक ऐसा प्रसिद्धहू और उस दैत्यके मारने के लिये आयाथा ॥६८॥ और वह
पापी दैत्य मारागया मैं फिर पृथ्वीको जाऊंगा हे कन्याओ! आप सबों से किसी प्रकार मेरा कार्य नहीं है ॥ ६९ ॥ क्योंकि मैं सदैव ब्रह्मचारी के व्रतमें स्थितहू यह
कहकर उस पूजित लिंगको दण्डाकी नाईं प्रणामकर ॥७०॥ उन सबों से देखेहुये वे बर्बरीकवीर ऊपर चले तदनन्तर बाहर आकर वे वहां शोभित हुये ॥ ७१ ॥ और

स्तेदास्यस्त्वांपतिंप्रवृणीमहे ॥ अस्माभिःसहितःक्रीडां विविधाःसुरभूमिषु ॥ ६७ ॥ बर्बरीकउवाच ॥ अहंकुरुकुलोत्प
न्नः पाण्डुपुत्रस्यपौत्रकः ॥ बर्बरीकइतिख्यातस्तंदैत्यंहन्तुमागतः ॥ ६८॥ सचदैत्योहतोपापः पुनर्यास्येमहीतले ॥ भव
तीभिश्चमेनास्ति कृत्यंभोभोःकथञ्चन ॥६९॥ ब्रह्मचारिव्रतंयस्मादहंसततमास्थितः ॥ इत्युक्त्वाभ्यर्चितंलिङ्गं प्रणिपत्यच
दण्डवत् ॥ ७० ॥ ऊर्ध्वमाचक्रमेवीरः सर्वाभिस्ताभिरीक्षितः ॥ ततोबहिःसमागत्य उच्चकाशेसतत्रवै ॥ ७१ ॥ प्रहर्षे
णैवपूर्वायाः प्रकाशयद्दशोदिशः ॥ तस्मिन्कालेचविजयःकर्मसर्वंसमापितवान् ॥ ७२ ॥ कान्तिस्सूर्यसमामाशु ऊर्ध्वमा
चक्रमेक्षणात् ॥ ततोवियच्च्युतंदेवैः पुष्पवर्षमभून्महत् ॥ ७३ ॥ जगुर्गन्धर्वमुख्याश्च ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥
विजयोबर्बरीकश्च ततोवचनमब्रवीत् ॥ ७४ ॥ तवप्रसादाद्वीरेन्द्र सिद्धिःप्राप्तामयातुला ॥ चिरञ्जीवचिरन्नन्द
चिरन्त्यजचिरञ्जय ॥ ७५ ॥ अतएवहिसाधूनां सङ्गमिच्छन्तिसाधवः ॥ औषधंसर्वदोषाणां भवत्सत्सङ्गमायतः ॥७६॥

बड़े हर्षसे पूर्वदिशाको प्रकाशित कर देखपड़े और उस समय विजय ने समस्त कर्मको समाप्त किया ॥ ७२ ॥ और सूर्यके समान शोभाको ऊपर क्षणभर मे देखा
तदनन्तर देवताओं से आकाश से छोड़ीहुई फूलोंकी बहुत वृष्टिहुई ॥७३॥ मुख्य गन्धर्व गानेलगे व अप्सराओं के गण नाचने लगे तदनन्तर विजय ने बर्बरीक से
वचन कहा ॥ ७४ ॥ कि हे वीरेन्द्र ! तुम्हारी प्रसन्नता से मैंने अतुल सिद्धिको पाया चिरंजीवरहो और बहुत दिनतक प्रसन्नरहो व बहुत समयतक दानोंको देवो व
बहुत दिनोंतक जीतको प्राप्तहोवो ॥ ७५ ॥ इसी से साधुलोग सज्जनो का साथ चाहते हैं जिस लिये कि सज्जनकी सङ्गति समस्त दोषोंकी औषध है ॥ ७६ ॥

और तुम सिन्दूर के समान प्रकाशमान व पराक्रमवान् तथा पवित्र व उत्तम होम में स्थित भस्मको हाथमें भरकर ग्रहण कीजिये ॥७७॥ शत्रुवों के स्थानवाले समर में छोडतेहुये पुरुषकी यह भस्म अक्षय होजातीहै व मृत्युके शरीरको ध्वस्तकरैगी॥७८॥इसप्रकार शत्रुवोंके सकाश से तुम्हारी सुखपूर्वक जीतहोगी व वर्वरीक बोले कि इच्छा रहित होताहुआ जो पुरुष उपकार करता है वह साधु ऐसा कहा जाताहै ॥ ७९ ॥ और जो इच्छापूर्वक उपकार करता है उसकी साधुतामें कौन गुणहै इस लिये अन्यके लिये भस्म दीजिये मेरा इससे कोई भी प्रयोजन नहींहै ॥ ८० ॥ मैं प्रसन्नतामे सुन्दरी दृष्टिके विना तुमसे इसको नहीं मांगताहूं देवता बोले कि कौरवों और

त्वञ्चहोमस्थितंभस्म सिन्दूरसदृशप्रभम् ॥ सत्त्ववच्चशुचिवरं पूर्य्यपाणौगृहाणच ॥ ७७ ॥ अक्षय्यमेतत्संग्रामे प्रथमन्तुप्रमुञ्चतः ॥ शत्रूणांस्थानकेमृत्योर्देहध्वस्तंकरिष्यति ॥ ७८ ॥ एवंसुखेनविजयः शत्रूणान्तेभविष्यति ॥ वर्वरीकउवाच॥उपकुर्य्यान्निराकाङ्क्षो यस्ससाधुरितीर्यते॥७९ ॥ साकाङ्क्षमुपकुर्याद्यः साधुत्वेतस्यकोगुणः ॥ तद्देहि भस्मचान्यस्मै मदीयोर्थोनकोप्यतः ॥ ८० ॥ प्रसादसम्मुखींदृष्टिं विनानैतद्वृणोमिते ॥ देवाऊचुः ॥ कुरूणांपाण्डवानाञ्च भविष्यतिमहान्रणः ॥ ८१ ॥ ततोभूमिस्थितंभस्मप्राप्स्यन्तियदिकौरवाः ॥ महाननर्थोभविता पाण्डवानांतःस्फुटम् ॥ ८२ ॥ तस्माद्गृहाणभस्मत्वं सोपिचक्रेतथावचः ॥ देवीभिस्सहितादेवास्सम्मान्यविजयञ्चते ॥ ८३ ॥ सिद्धैश्वर्यंददुस्तस्मै सिद्धिसेनेतिनामच ॥ एवंसविजयोविप्राः सिद्धिंलेभेसुदुर्लभाम् ॥ ८४ ॥ वर्वरीकश्चकृत्वैतद्देवीभक्तिरतोवसत॥८५॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेविजयस्यसिद्धिलाभवर्णनन्नामैकोनषष्टितमोध्यायः ॥५९॥

पाण्डवोंका बड़ाभारी युद्धहोगा ॥ ८१ ॥ इसलिये यदि कौरव भूमि में स्थित भस्म को पावैंगे तो प्रकटही पाण्डवोंका बडा अनर्थ होगा ॥ ८२ ॥ इस लिये तुम भस्म को ग्रहणकरो उसने भी वैसेही वचन किया और देवियों समेत उन देवताओं ने विजय का सम्मानकर ॥ ८३ ॥ उनके लिये सिद्धैश्वर्य को दिया और सिद्धिसेन ऐसा नाम किया हे ब्राह्मणो ! इस प्रकार उस विजय ने अत्यन्त दुर्लभ सिद्धिको पाया है॥८४॥और वर्वरीक यह करके देवीजीकी भक्तिमें परायण होकर बसता भया ॥८५॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांविजयस्यसिद्धिलाभवर्णनन्नामैकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥ ५९ ॥ ❀ ॥

दो० । वर्वरीक अरु भीमसन भयो युद्ध विकराल । सोइ साठि अध्यायमें वर्णित चरित रसाल ॥ सूत जी बोले कि इसप्रकार देवी के आराधन में परायण व सप्त लिंगों के पूजन में तत्पर भीमपुत्र (घटोत्कच) के पुत्र वर्वरीकवीर जब वहां स्थित हुये ॥ १ ॥ तब कुछ समय के बाद जुवा में हारे हुये पाडव लोग उत्तम तीर्थ में स्नान करने के लिये क्रमसे वहां आये ॥ २ ॥ और क्षेत्रसे ईशान विदिशामें स्थित चण्डिका देवीको देखकर मार्ग से दुःखी द्रौपदी समेत पाचों पाण्डव बैठगये ॥३॥ और उस समय वहीपर चण्डिकागण बैठाथा आयेहुये उनवीरों को उस वर्वरीकने देखा ॥ ४ ॥ परन्तु इसने पाण्डवोंको नहीं जाना और न पाण्डवोंने इसको जाना

सूतउवाच ॥ एवंतत्रस्थितेवीरेदेव्याराधनतत्परे ॥ सप्तलिङ्गार्चनरतेभीमनन्दननन्दने ॥ १ ॥ ततःकालेनकेनापि पाण्डवाद्यूतनिर्जिताः ॥ तत्राजग्मुश्चक्रमतस्तीर्थेस्नानकृतेशुभे ॥ २ ॥ विलोक्यचण्डिकांदेवीं क्षेत्रादीशानतः [illegible]नाम् ॥ आसेदुर्मार्गखिन्नास्ते द्रौपदीपञ्चमास्तदा ॥ ३ ॥ तत्रैवचोपविष्टोभूत्तदानींचण्डिकागणः ॥ वर्वरीकःसता [illegible]मागतानपश्यत ॥ ४ ॥ परंनासौवेदपाण्डून् पाण्डवास्तंचनोविदुः ॥ आजन्मयस्मान्नैवाभूत्पाण्डूनाञ्चास्य [illegible]ः ॥ ५ ॥ ततःप्रविश्यमानेस्मिन्देवीमासाद्यपाण्डवाः ॥ पिटकाद्यंतत्रमुक्त्वा तृषयैन्तञ्जलंतदा ॥ ६ ॥ ततोभी [illegible] जलंपातुंनिविशाह ॥ प्रविशन्तंचतंप्राह युधिष्ठिरइदंवचः ॥ ७ ॥ उद्धृत्यभीमतोयंत्वं पादौप्रक्षाल्यभोव [illegible]दोषो महांस्त्वांचप्राप्स्यते ॥ ८ ॥ एतद्राज्ञोवचोभीमस्तृषाव्याकुललोचनः ॥ अश्रुत्वैवविवेशासौ कुण्ड[illegible] ॥ ९ ॥ सचदृष्ट्वाजलंपातुं तत्रैवकृतनिश्चयः ॥ मुखंहस्तौचचरणौक्षालयामासशुद्धये ॥ १० ॥

क्योंकि जन्म से लगाकर [illegible] और [illegible] नहीं हुआथा ॥ ५ ॥ तदनन्तर इसके पैठतेहुये पाण्डव लोग देवी के समीप प्राप्तहोकर वहीं पेटरिया आदिक छोड़कर उस समय प्यास से [illegible] ॥ ६ ॥ तदनन्तर भीमसेनजी जल पीने के लिये कुण्डके बीच मे पैठे और पैठते हुये उनसे युधिष्ठिरजी यह वचन बोले ॥ ७ ॥ कि हे भीमसेन ! तुम जलको [illegible] चरणों को धोकर तदनन्तर जलको पियो नहीं तो तुमको बडा दोष प्राप्तहोगा ॥ ८ ॥ प्यासमे विकल लोचनों [illegible] भीमसेनजी राजा युधिष्ठिरके इस वचनको न सुनकर जल की इच्छासे कुण्डके मध्यमें पैठगये ॥ ९ ॥ और जलको देखकर उन्होंने वहीं जल पीनेके लिये

निश्चयकर पवित्रताके लिये मुख,हाथों व चरणोंको धोया ॥ १० ॥ तदनन्तर जलको पिया क्योंकि अपवित्र पुरुषसे जो जल पियाहुआ होवै है उसकी देहमें पैठकर प्रेत व पिशाच उस जलको पीते हैं ॥ ११ ॥ इसभांति जब भीमसेनजी उस कुण्ड में चरण धोनेलगे तब उत्तम हृदयवाले बर्बरीक ने ऊपरसे यह सत्य वचन कहा ॥ १२ ॥ कि हे दुर्बुद्धे! पाप निश्चयवाले तुम यह क्या करतेहो कि देवीजीके कुण्ड में मुख्य हाथों व चरणोंको धोतेहो ॥ १३ ॥ क्योंकि सदैव मैं इस जल से देवीजी को स्नान कराताहूँ इसी जल में तुम मलको फेंकतेहो क्या पापसे नहीं डरतेहो और ॥ १४ ॥ जो जल मलसे संयुत होता है वह मनुष्योंसे भी छूने योग्य

ततःपीतंजलंपुंसाह्यपवित्रेणयद्भवेत् ॥ प्रेताःपिशाचास्तद्देहं संक्रम्यप्रपिबन्तितत् ॥ ११ ॥ एवंप्रक्षाल्यमानेच पादौ तत्रवृकोदरे ॥ उपरिष्टात्तदाप्राह सत्यंसुहृदयोवचः ॥ १२ ॥ दुर्मतेभोःकिमेतत्त्वं कुरुषेपापनिश्चयः ॥ देवीकुण्डेक्षाल यसिमुखंपादौकरौतथा ॥ १३ ॥ यतोदेवीसदानेन जलेनस्नाप्यतेमया ॥ त्वमत्रतोयेक्षिपसि मलंपापान्नबिभ्य सि ॥ १४ ॥ मलाक्तंयद्भवेत्तोयमस्पृश्यंतन्नरैरपि ॥ कुतोदेवैश्चतत्तोयं स्पृश्यतेतत्त्वतोवद ॥ १५ ॥ शीघ्रंत्वंनिस्सरा स्माच्चकुण्डाद्भूत्वाबहिःपिब ॥ यद्येवमतिमूढोसितीर्थेषुभ्रमसेकुतः ॥ १६ ॥ भीमउवाच ॥ किमेतद्भाषसेक्रूर परुषंरा क्षसाधम ॥ यतस्तोयानिजन्तूनामुपभोगार्थमेवहि ॥ १७॥यत्तीर्थेषुस्नानकार्यमुक्तंमुनिवरैरपि ॥ अङ्गप्रक्षालनंस्ना नमुक्तमानिन्दसेकुतः ॥ १८ ॥ यदिनक्रियतेस्नानमङ्गप्रक्षालनंतथा ॥ तत्किमर्थंपूर्तंधर्माः क्रियन्तेधर्मशालि भिः ॥ १९ ॥ सुहृदय उवाच ॥ स्नातव्यंतीर्थमुख्येषु सत्यमेतन्नसंशयः ॥ चरेतुकिन्तुसंविश्य स्थावरेषुबहिःस्थि

नहीं होताहै फिर देवताओं से वह जल कैसे स्पर्श किया जाता है इसको यथार्थ कहिये ॥ १५ ॥ तुम शीघ्रही इस कुण्डसे निकलो और बाहर होकर जलको पियो यदि तुम ऐसे अत्यन्त मूढ़हो तो तीर्थों में क्यों घूमतेहो ॥ १६ ॥ भीमसेनजी बोले कि हे राक्षसों में नीच, क्रूर! इस कठोर वचनको क्यों कहतेहो क्योंकि जल प्राणियों के भोगनेही के लिये है ॥ १७ ॥ जिस लिये उत्तम मुनियों ने भी तीर्थों में स्नानकार्य को कहा है और अङ्गों का धोना स्नान कहा गया है तो किस लिये निन्दा करतेहो ॥ १८ ॥ यदि स्नान व अङ्गोंका प्रक्षालन नहीं किया जाताहै तो धर्मवानों से किस लिये पूर्तधर्म (कूप, तड़ागादिक) किये जाते हैं ॥ १९ ॥ सुहृदय बर्बरीक

बोले कि मुख्यतीर्थों में स्नान करना चाहिये यह सत्यहै इसमें सन्देह नहीं है परन्तु चर तीर्थ अर्थात् नदी आदिकों में पैठकर नहाना चाहिये और स्थावर याने तडाग
व कुण्डादिकोंमें बाहर स्थित होकर स्नान करना चाहिये॥ २० ॥ और स्थावरों (तडागादिकों) में भी वहा पैठकर स्नानकिया जाता है जहा कि देवस्नान के लिये भक्त
जलको नहीं लेताहै ॥ २१ ॥ और वहा वह तडाग सौ हाथसे ऊपर किया जाताहै और पैठने में भी यह क्रम है कि बाहर चरणों को प्रक्षालन करै ॥ २२ ॥ उसके
उपरान्त स्नानकरना चाहिये नहीं तो दोषभागी होताहै क्या तुमने ब्रह्मासे कहेहुये श्लोकको नहीं सुनाहै क्योंकि ॥२३॥ मल,मूत्र, विष्ठा, कफ व थूक और कुल्लाको जो

तः ॥ २० ॥ स्थावरेष्वपिसंविश्य तत्रस्नानंविधीयते ॥ नयत्रदेवस्नानायभक्तः संगृह्यतेजलम् ॥ २१ ॥ तच्चहस्तश
तादूर्ध्वं सरस्तत्रविधीयते ॥ संवेशोपिक्रमश्चायं पादौप्रक्षालयेद्बहिः ॥ २२ ॥ ततःस्नानंप्रकर्त्तव्यमन्यथादोषभाग्भ
वेत् ॥ किंनश्रुतंत्वयाप्रोक्तः श्लोकःपद्मभुवापरः ॥ २३ ॥ मलंमूत्रंपुरीषञ्चश्लेष्मनिष्ठीवितंतथा ॥ गण्डूषमप्सुमुञ्चन्ति
येतेब्रह्महभिःसमाः ॥ २४ ॥ तस्मान्निःसरशीघ्रं त्वंयद्येवमजितेन्द्रियः ॥ तत्किमर्थंदुराचार तीर्थेष्वटसिबालिश॥२५॥
यस्यहस्तौचपादौच मनश्चैवसुसंयतम् ॥ निर्विकाराःक्रियाःसर्वाः सहितीर्थफलंलभेत् ॥ २६ ॥ भीमउवाच ॥ अध
र्मोवापिधर्मोस्तु निर्गन्तुंनैवशक्नुयाम् ॥ क्षुधातृषामयानित्यं वारितुंनैवशक्यते ॥ २७ ॥ सुहृदयउवाच ॥ जीवितार्थं
हित्वंकस्मात्पापंप्रकुरुषेवद ॥ किंनश्रुतस्त्वयाश्लोकः यःशिवेनसमीरितः ॥ २८ ॥ मुहूर्तमपिजीवेतनरःशुक्लेनकर्मणा॥

जलमें छोडते हैं वे ब्रह्मघाती के समानहैं ॥ २४ ॥ इस लिये तुम शीघ्रही निकलो और यदि तुम ऐसे अजितेन्द्रियहो तो हे दुराचारी, मूर्ख! तीर्थोंमें क्यों घूमतेहो ॥२५॥
जिसके हाथ, पाव और मन बँधाहै उसके सब कर्म विकाररहित होते हैं और वह तीर्थोंके फलको पाताहै ॥ २६ ॥ भीमसेनजी बोले कि अधर्महो या धर्महो मै निकलने
के लिये नहीं समर्थ हूँ क्योंकि नित्यही मुझसे भूँख व प्यास रोंकने के लिये नही समर्थ होती है ॥ २७ ॥ सुहृदय बर्बरीकजी बोले कि जीवनार्थ याने जीने के लिये
क्यों पाप करतेहो यह कहिये क्या तुमने उस श्लोकको नहीं सुना है जोकि शिवजी से कहा गया है ॥ २८ ॥ कि मनुष्य पुण्यकर्म से मुहूर्त्तभर जिये परन्तु दोनों

लोकों में विरोधी (पाप) कर्म से कल्पभरतक न जियै ॥ २९ ॥ भीमसेनजी बोले कि तुम्हारे काकशब्द से मेरे कान बहरे होगये मैं जलको अवश्य पियूंगा तुम इच्छापूर्वक विलापकरो या सूखो ॥ ३० ॥ सुहृदय वर्वरीक बोले कि धर्मके रक्षा करनेवाले क्षत्रियों के बंशमें मैं पैदाहुआ हूँ इससे किसी प्रकार तुमको पाप न करने दूंगा ॥ ३१ ॥ हमारे कुण्डसे तुम शीघ्रही ऊपर निकलो नहीं तो ईंटके खण्डों से मैं शीघ्रही तुम्हारे शिरको चूर्णकरूंगा ॥ ३२ ॥ यह कहकर ईंटको लेकर वर्वरीकने शिरके ऊपर छोड़ दिया और भीमसेनभी उसको बचाकर कूदकर बाहर आगये ॥ ३३ ॥ तदनन्तर आपस में घुड़कते हुये भयङ्कर पराक्रमवाले व युद्धके पारगामी

नकल्पमपिजीवेत लोकद्वयविरोधिना ॥ २९ ॥ भीमउवाच ॥ काकारावेणतेमह्यं कर्णौबधिरताङ्गतौ ॥ पास्याम्येवजलञ्चात्र कामंविलपशुष्यच ॥ ३० ॥ सुहृदयउवाच ॥ क्षत्रियाणांकुलेजातस्त्वहंधर्माभिरक्षिणाम् ॥ तस्मात्तेपातकंकर्तुं नदास्यामिकथञ्चन ॥ ३१ ॥ ऊर्ध्वमेवहिशीघ्रन्त्वमस्मत्कुण्डाद्विनिःसर ॥ इष्टकाशकलैःशीघ्रं चूर्णयिष्येशिरस्तव ॥ ३२ ॥ इत्युक्त्वाचेष्टकांगृह्य मुमोचशिरसःप्रति ॥ भीमश्चवञ्चयित्वातामुत्प्लुत्यबहिराव्रजत् ॥ ३३ ॥ भर्त्सयन्तौततश्चोभावन्योन्यंभीमविक्रमौ ॥ युयुधातेप्रलम्बाभ्यांबाहुभ्यांयुद्धपारगौ ॥ ३४ ॥ व्यूढोरस्कौदीर्घभुजौनियुद्धकुशलावुभौ ॥ मुष्टिभिःपार्ष्णिघातैश्च जानुभिश्चाप्युजघ्नतुः ॥ ३५ ॥ ततोमुहूर्तात्क्रव्यादात्पर्यहीयतपाण्डवः ॥ हीयमानस्ततोभीम उद्यतोभूत्पुनःपुनः ॥ ३६ ॥ अहीयततोप्यङ्गववृद्धेववर्वरीककः ॥ ततोभीमंसमुत्पाट्य वर्वरीकोबलादिव ॥ ३७ ॥ निष्पिपेषततःक्रुद्धस्तदद्भुतमिवाभवत् ॥ मूर्च्छितंचैनमादायविस्फुरन्तंपुनःपुनः ॥ ३८ ॥ सागरायप्रचलितः

दोनोंने लम्बीभुजाओं से युद्ध किया ॥ ३४ ॥ जोकि दोनों चौड़े वक्षस्थलवाले व लम्बीभुजाओंवाले तथा युद्धमे निपुण थे उन्होंने घूंसों व एडियों की चोटोंसे और घुटनुवों से मारा ॥ ३५ ॥ तदनन्तर मुहूर्त्तभर में वर्वरीक राक्षस से पाण्डव भीमसेनजी अशक्त होगये उसके उपरान्त अशक्तहोतेहुये भीमसेनजी वारंवार उद्यत हुये और तबभी अशक्त हुये हे द्विजोत्तम ! वर्वरीक बढ़ताभया तदनन्तर वर्वरीकने बलसे भीमको पटककर ॥ ३६ । ३७ ॥ उसके उपरान्त क्रोधितहोकर पीसडाला वह आश्चर्यसा होगया और मूर्च्छित तथा बार फरकतेहुये इन भीमसेनको लेकर ॥ ३८ ॥ वह वर्वरीक उस समय प्रसन्नता से उस जलमें फेंकने के लिये समुद्रको

चला परन्तु पाण्डवों ने इसको नहीं देखा और न द्रौपदीदेवी ने देखा ॥ ३९ ॥ उस अद्भुत पराक्रमवाले वीरने जब कुरुवीरों में मुख्य भीमसेनजी को पकड़ लिया
तब आकाशतलमें यह देखकर देवियों समेत देवताओं को आकाशमें बड़ा आश्चर्य हुआ ॥ ४० ॥ तदनन्तर उस समय समुद्र के किनारेपै प्राप्तहुये बर्बरीकको देखकर
आकाश में खड़ेहुये भगवान् शिवजी बोले ॥ ४१ ॥ कि अहो राक्षसों में श्रेष्ठ महाबली, बर्बरीक! इन भरतोत्तम भीमसेनजीको छोड़ दीजिये जोकि तुम्हारे पितामह
(बाबा) हैं ॥ ४२ ॥ भाइयों संयुक्त व द्रौपदी समेत ये भीमसेनजी तीर्थयात्रा में घूमतेहुये इस तीर्थ में नहाने के लिये आये ॥ ४३ ॥ इस लिये कौरवनन्दन भी-

क्षेप्तुंतत्रमुदाम्भसि ॥ ददृशुःपाण्डवानैव देवीपाञ्चालिकायिनः ॥ ३९ ॥ तथागृहीतेकुरुवीरमुख्ये वीरेणतेनाद्भुतविक्र-
मेण ॥ आश्चर्यमासीद्धिविदेवतानां देवीभिराकाशतलेनिरीक्ष्य ॥ ४० ॥ सागरस्यततस्तीरे बर्बरीकङ्गतंतदा ॥ निरी-
क्ष्यभगवान्रुद्रो वियत्स्थःसमभाषत ॥ ४१ ॥ भोभोराक्षसशार्दूलबर्बरीकमहाबल ॥ मुञ्चैनंभरतश्रेष्ठंभीमन्तवपिताम-
हम् ॥ ४२ ॥ अयंहितीर्थयात्रायां विचरन्भ्रातृभिर्युतः ॥ कृष्णयाचाप्यदस्तीर्थं स्नातुमेवाभ्युपाययौ ॥ ४३ ॥ सम्मा-
नंसर्वथातस्मादर्हःकौरवनन्दनः ॥ अपापोवासपापोवा पूज्यएवपितामहः ॥ ४४ ॥ सूतउवाच ॥ इतिरुद्रवचःश्रुत्वा
सहसातंविमुच्यसः ॥ न्यपतत्पादयोर्हाधिक् कष्टंकष्टञ्चप्राहसः ॥ ४५ ॥ क्षम्यतांक्षम्यतांचेतिपुनःपुनरवोचत ॥ शिर
श्चाताडयन्स्वीयंरुरोदचमुहुर्मुहुः ॥ ४६ ॥ तंतथापरिशोचन्तंमुह्यमानंमुहुर्मुहुः ॥ भीमसेनःसमालिङ्ग्य आघ्रायचवचो-
ब्रवीत ॥ ४७ ॥ वयन्त्वान्नैवजानीमस्त्वं चास्माञ्जन्मकालतः ॥ अत्रवासश्चतेपुत्र जानामिक्षणसंयुतः ॥ ४८ ॥ परं

मसेनजी सब प्रकारसे सम्मानके योग्यहैं क्योंकि चाहै पापहीनहो या पापीहो परन्तु पितामह पूजनेही के योग्य होता है ॥ ४४ ॥ सूतजी बोले कि इस प्रकार शिवजी-
का वचन सुनकर अचानकही उन भीमसेनजी को छोड़कर वह बर्बरीक चरणों में गिरपडा व उसने यह कहा कि हाय धिक्कारहै व बड़े कष्टकी बातहै ॥ ४५ ॥ और
वह यह बारबार बोला कि क्षमाकीजिये क्षमाकीजिये व अपने शिरको पीटतेहुये उसने बार बार रोदन किया ॥ ४६ ॥ उस प्रकार शोचने व बारबार मोहित होते
हुये उसको भीमसेनजी ने लिपटाकर व सूंघकर यह वचन कहा ॥ ४७ ॥ कि हमलोग तुमको नहीं जानतेहैं व तुम हम सबोंको नहीं जानतेहो हे पुत्र ! जबसमय

से लगाकर तुम्हारा यहां निवास है यह कृष्णमगेत मैं जानता था ॥ ४८ ॥ परन्तु सब भूलगया क्योंकि अनेक भांति के दुःखोंसे मोहित दुःखित जनोंका सब स्मरण
लुप्त होजाता है यह प्रकटही है ॥ ४९ ॥ इस लिये हम सबोंको यह दुःख समय वीतने मे हुआहै हे पुत्र! तुम मत शोचकरो तुम्हारा कुछभी दोष नहींहै ॥५०॥ क्योंकि
कुपथमें स्थित होनेपर सब क्षत्रियको शरीरका दण्डदेवै साधुओंका यही वर्ताव होताहै कि कुमार्ग मे चलते हुये ॥ ५१ ॥ पिता, माता, मित्र, भाई व पुत्रादिकोंको साधु
(उत्तम) जन नहीं छोड़ताहै मुझको यह बडाभारी हर्ष हुआ और मैं व मेरे पूर्वज पितरलोग धन्यहैं ॥ ५२ ॥ कि जिसके ऐसा धर्मका जाननेवाला व धर्मपालक पुत्र

**तुविस्मृतंसर्वं नानादुःखैःप्रमुह्यताम् ॥ दुःखितानांयतःसर्वास्मृतिर्लुप्ताभवेत्स्फुटम् ॥ ४९ ॥ तदस्माकमिदन्दुःखं सर्वं
कालाभियानतः ॥ माशोचसित्वंतनयनतेदोषोस्तिचाण्वपि ॥ ५० ॥ यतःसर्वक्षत्रियस्य दद्याद्विपथिसंस्थिते ॥ क्षा
त्माभिदण्डंसाधूनांप्रवृत्तिःकुपथेयतः ॥ ५१ ॥ पितृमातृसुहृद्भ्रातृपुत्रादीन्नविमुञ्चति ॥ अतीवममहर्षोयं धन्योहं
पूर्वजाश्चमे ॥ ५२ ॥ यस्यत्वीदृशकःपुत्रो धर्मज्ञोधर्मपालकः ॥ वरार्हस्त्वंप्रशंसार्होममान्येषांमतान्तथा ॥ ५३ ॥ त
स्माच्छोकंविहायेमं स्वस्थोभवितुमर्हसि ॥ बर्बरीकउवाच ॥ पापंमान्ताततातत्वं ब्रह्मघ्नादपिकुत्सितम् ॥ ५४ ॥ अप्र
शस्यंनार्हसीहद्रष्टुंस्प्रष्टुमपिप्रभो ॥ सर्वेषामेवपापानां निष्कृतिःप्रोच्यतेद्विजैः ॥ ५५ ॥ पित्रोरभक्तस्यपुनर्निष्कृ
तिर्नैवविद्यते ॥ तद्येनदेहेनमयाताततातोभिपीडितः ॥ ५६ ॥ तत्स्वमेवपरित्यक्ष्ये महीसागरसङ्गमे ॥ मैवंभवेयमन्ये
षु अपिजन्मसुपातकी ॥ ५७ ॥ नमामस्मादभिप्रायादर्हःकोपिनिवर्त्तितुम् ॥ यतोंशेनविलिप्येत प्रायश्चित्तान्निवार**

पैदाहुआ तुम वरदानके योग्यहो व मेरे तथा अन्य सज्जनों के बीचमें प्रशंसा के योग्यहो ॥ ५३ ॥ इस लिये इस शोचको छोडकर तुम स्वस्थ होने के योग्यहो बर्बरीक
बोले कि हे पिताके पिता याने पितामहजी! पापी व ब्रह्मघाती से भी निन्दित व अप्रशंसनीय मुझको तुम यहां देखने व छूनेके योग्य नहींहो क्योंकि हे प्रभो! सबही
पापोंका प्रायश्चित्त ब्राह्मणों से कहा जाता है ॥ ५४ । ५५ ॥ परन्तु माता पिताके अभक्तका प्रायश्चित्त नहीं विद्यमान है इस लिये मुझसे जिस शरीर करके पितामह
पीडित किया गया ॥ ५६ ॥ उसी अपने शरीरको मैं महीसागर के सङ्गममें त्याग करूंगा क्योंकि अन्य जन्मों में ऐसा पातकी न होऊं ॥ ५७ ॥ मुझको इस प्रयोजन

से लौटाने के लिये कोईभी नहीं योग्य है क्योंकि प्रायश्चित्त से लौटानेवाला पापके भागसे लिप्त (संयुत) होता है ॥ ५८ ॥ ऐसा कहकर कूदकर बलवान् बर्बरीक एकार्णव याने महीसागरसङ्गमको चलागया और समुद्रभी कांपनेलगा कि मैं इसको किसप्रकार मारूं ॥ ५९ ॥ तदनन्तर वहांपर शिवजी समेत सिद्धाम्बिकाकी चारों दिशाओं की देवियां लिपटाकर भलीभांति बिठाकर बोलीं ॥ ६० ॥ कि हे वीरेन्द्र ! बिनजाने हुये पाप करनेपर पातक नहीं होता है यह वचन शास्त्रों में कहा है इस लिये तुम अन्यथा करने के लिये नहीं योग्यहो ॥ ६१ ॥ हे बर्बरीक ! पीछे लगेहुये इन अपने पितामह (बाबा) को देखो कि हे पुत्र ! हे पुत्र ! ऐसा कहतेहैं व तुम्हारे

कः ॥ ५८ ॥ एवमुक्त्वासमुत्प्लुत्ययथावेकार्णवंबली ॥ समुद्रोपिचकम्पेच कथमेनंनिहन्म्यहम् ॥५९॥ ततःसिद्धाम्बिकायाश्च देव्यस्तत्रचतुर्दिशाम् ॥ समालिङ्ग्यचसंस्थाप्य रुद्रेणसहिताजगुः ॥ ६० ॥ अज्ञातविहितेपापेनास्ति वीरेन्द्रकल्मषम् ॥ शास्त्रेषूक्तमिदंवाक्यं नान्यथाकर्त्तुमर्हसि ॥६१॥ अमुञ्चपृष्ठलग्नन्त्वं पश्यभोःस्वपितामहम् ॥ पुत्रपुत्रेतिवाशन्तमनुत्वांमरणोन्मुखम् ॥ ६२ ॥ अधुनाचेत्स्वकंदेहंवीरत्वंपरित्यक्ष्यसि ॥ ततस्त्यक्ष्यतिभीमोपि पातकंतन्महत्तव ॥ ६३ ॥ एवंज्ञात्वाधारयत्वं स्वशरीरंमहामते ॥ अथचेत्त्यक्तुकामस्त्वं तत्रापिवचनंशृणु ॥६४॥ स्वल्पेनैवचकालेन कृष्णाद्देवकिनन्दनात् ॥ देहपातस्तवप्रोक्तस्तं प्रतीक्षयदिच्छसि ॥ ६५ ॥ यतोविष्णुकराद्धस्त देहपातोविशिष्यते ॥ तस्मात्प्रतीक्ष्यतंकालमस्माकंवचनंकुरु ॥ ६६ ॥ एवमुक्तोनिवृत्तेवर्बरीकोपिदुर्मनाः ॥ रुद्रश्चदेवीश्चामुण्डां सोपाल

पश्चात् मरने को उद्यत हैं ॥ ६२ ॥ हे वीर ! इस समय यदि तुम अपना शरीर त्यागोगे तो भीमसेनजीभी अपने शरीरको छोड़ैंगे वह तुमको बड़ा पातकहोगा ॥ ६३ ॥ ऐसा जानकर हे महामते ! तुम अपने शरीरको धारणकरो अथवा यदि तुम शरीर छोड़नेकी इच्छा करतेहो तो उस विषयमें भी वचनको सुनिये ॥ ६४ ॥ कि थोड़ेही समय में देवकीजी के पुत्र कृष्णजी से तुम्हारे शरीरका नाश कहागया है यदि तुम यह चाहतेहो तो उस समयको परखिये ॥ ६५ ॥ हे वत्स ! जिस लिये कि विष्णुजी के हाथ से शरीरका नाशहोना उत्तम है इस कारण उस समयको परखिये व हमसबों का वचन कीजिये ॥ ६६ ॥ ऐसा कहने पर उदासीन मनवाले बर्बरीक भी निवृत्त

हुये और शिवजी उपालम्भ (समझाना) समेत चामुण्डा देवीसे वचन बोले ॥ ६७ ॥ कि हे देवि ! तुम्हीं जानतीहो कि भूमिकार्यके लिये पाण्डव लोग शार्ङ्गधनु-धारी कृष्णजी से रक्षितहोतेहैं तुमने उसकी क्यों उपेक्षा किया ॥ ६८ ॥ तुमने भलीभांति आकर इन भीमसेनजीकी रक्षाकिया और मैभी अपने भक्त श्रीकृष्णजी की रक्षा करूंगा ॥ ६९ ॥ जिस लिये चण्डिका के कार्य में इसने बडाभारी युद्ध किया इस कारण चण्डिल नाम से यह संसारभर के पूजनीय होगा ॥ ७० ॥ ऐसा कहकर सब मनुष्यों के देखते हुये देविया और सब देवता चलेगये व भीमसेनने भी उस बर्बरीक को लेकर पाण्डवों से समस्त वृत्तान्त को कहा ॥ ७१ ॥ और विस्मय में

म्भंवचोब्रवीत् ॥ ६७ ॥ त्वमेवदेविजानासिरक्ष्यन्तेशार्ङ्गधन्विना ॥ पाण्डवाभूमिकृत्यार्थेतत्तेकस्मादुपेक्षितम् ॥ ६८ ॥ त्वयाचसमुपागम्य रक्षितोयंवृकोदरः ॥ अहंचरक्षयिष्यामि स्वभक्तंकृष्णमच्युत ॥ ६९ ॥ यस्माच्चचण्डिकाकृत्ये कृतोनेनमहारणः ॥ तस्माच्चण्डिलनाम्नायं विश्वपूज्योभविष्यति ॥ ७० ॥ एवमुक्त्वागताःसर्वे देवादेव्यश्चपश्यताम् ॥ भीमोपितंसमादाय पाण्डुभ्यःसर्वमूचिवान् ॥७१॥ विस्मिताःपाण्डवास्तंचपूजयित्वापुनःपुनः ॥ यथोक्तविधिना चक्रुस्तीर्थस्नानमतन्द्रिताः ॥ ७२ ॥ भीमोपियत्ररुद्रेणमोचितस्तत्रसुप्रभम् ॥ लिङ्गंसंस्थापयामास भीमेश्वरमिति स्मृतम् ॥ ७३ ॥ ज्येष्ठमासेकृष्णपक्षे चतुर्दश्यामुपोषितः ॥ रात्रौसम्पूज्यभीमेशं जन्मपापात्प्रमुच्यते ॥ ७४ ॥ यथैवलिङ्गानिसुपूजितानि सप्तात्रमुख्यानिमहाफलानि ॥ भीमेश्वरंलिङ्गमिदंतथैव समस्तपापापहंसुपूज्यम् ॥ ७५ ॥

इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेभीमेश्वरलिङ्गस्थापनंनामषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥ * ॥

प्राप्तहोते हुये निरालसी पाण्डव लोग उनको बारबार पूजकर यथोक्त विधानसे तीर्थस्नान करतेभये ॥ ७२ ॥ और जहांपर शिवजी से छुडायेगयेथे वहांपर भीमसेन नेभी भीमेश्वर ऐसे कहेहुये प्रकाशमान लिंगको भलीभांति स्थापन किया ॥ ७३ ॥ ज्येष्ठ महीने में कृष्णपक्ष की चतुर्दशी तिथिमें उपास रहकर मनुष्य भीमेश लिंगको रात्रिमे पूजकर जन्मभरके पापसे छूट जाताहै ॥ ७४ ॥ जैसे यहांपर पूजित होतेहुये सात मुख्य लिंग बडेभारी फलदायक होतेहैं वैसेही समस्त पातकोंको हरनेवाला यह भीमेश्वर लिंग भलीभांतिपूजने योग्यहै॥७५॥इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांभीमेश्वरलिङ्गस्थापनन्नामषष्टितमोऽध्यायः॥६०॥

दो० । देवी-स्तुतिकरि भीम जिमि पायो लोचन तीन । इकसठिके अध्याय में सोई चरित नवीन ॥ सूतजी बोले कि बड़े तेजवाले युधिष्ठिरजीने भाइयों समेत इस तीर्थ में रात रात्रियोंतक बसकर जानके लिये इच्छा किया ॥ १ ॥ प्रातःकाल निर्मल होनेपर नहाकर उन युधिष्ठिरजी ने देवी व लिंगों को पूजकर तथा क्षेत्रकी प्रदक्षिणाकर देवी के स्तोत्रका जप किया ॥ २ ॥ कृष्णसे कहाहुआ जो स्तोत्र कि सदैव यात्राके समयों में जपने योग्यहै युधिष्ठिरजी बोले कि हे यथाशक्ति देवताओं से पूजने योग्य, कृष्णाकी प्यारीबहन! ॥ ३ ॥ मन, वचन व कर्मसे तुमको प्रणामकर मैं शरण में प्राप्तहोताहूं हे बलभद्र को अभय देनेवाली, कृष्णाकी छविके समान

सूतउवाच ॥ उषित्वासप्तरात्राणि तीर्थेस्मिन्भ्रातृभिःसह ॥ युधिष्ठिरोमहातेजा गमनायोपचक्रमे ॥ १ ॥ प्रभातेविमलेस्नात्वादेवीलिङ्गान्यथार्च्यच ॥ कृत्वाप्रदक्षिणंक्षेत्रेदेवीस्तोत्रंजजापसः ॥ २ ॥ प्रयाणकालेषुसदाजप्यं कृष्णोनकीर्तितम् ॥ युधिष्ठिरउवाच ॥ देवपूज्येयथाशक्तिः कृष्णस्यभगिनिप्रिये ॥ ३ ॥ नत्वात्वांशरणंयामि मनोवाक्कायकर्मभिः ॥ सङ्कर्षणायाभयदे कृष्णाच्छविसमप्रभे ॥ ४ ॥ एकानंशेमहादेविपुत्रवत्त्राहिमांशुभे ॥ त्वयाततमिदंविश्वं जगदव्यक्तरूपया ॥ ५ ॥ इतिमत्वात्वाङ्गतोस्मिशरणंत्राहिमांशुभे ॥ कार्यारम्भेषुसर्वेषु सानुगेनमयातव ॥ ६ ॥ स्वआत्माकल्पितोभद्रे ज्ञात्वैतदनुकम्पय ॥ इतिब्रुवाणंराजानं शिरोबद्धाञ्जलिन्तदा ॥ ७ ॥ वायुपुत्रःप्रहस्यैव सासूयमिदमब्रवीत् ॥ येत्वांराजन्वदन्त्येवं सर्वज्ञोयंयुधिष्ठिरः ॥ ८ ॥ वृथैववचनंतेषांयत्त्वंवेत्सिनचाणवपि ॥ कोहिप्रज्ञावतांमुख्यः सर्व

शोभावाली! ॥ ४ ॥ तुम एकहीहो हे अंशरहिते, शुभे! पुत्रकी नाई मेरी रक्षा कीजिये अप्रकट रूपवाली तुमसे यह समस्त संसार विस्तारित है ॥ ५ ॥ यह मानकर मैं तुम्हारी शरण में प्राप्तहूं हे शुभे! मेरी रक्षाकीजिये समस्त कार्यों के प्रारम्भों में अनुगामियों समेत मैंने अपने आत्मा को तुम्हारे कल्पित किया है भद्रे! यह जानकर दयाकीजिये उस समय ऐसा कहते व मस्तक पै अञ्जली को बांधेहुये राजा युधिष्ठिरसे ॥ ६ । ७ ॥ पवनपुत्र भीमसेनजी ईर्षापूर्वक हँसकर यह वचन बोले कि हे राजन्! जो मनुष्य तुमको ऐसा कहते हैं कि ये युधिष्ठिर सर्वज्ञ हैं ॥ ८ ॥ उनका वचन वृथाही है तुम कुछभी नहीं जानतेहो क्योंकि समस्त शास्त्रों के जाननेवालों

में श्रेष्ठ व बुद्धिमानों में मुख्य कौन पुरुष ॥९॥ स्त्रियोंकी शरण में प्राप्तहोवै है जैसे कि मूर्खबुद्धिवाले आपहो जिस लिये कि तुम ऐसा जानतेहो व सब शास्त्रों में यह कहा जाता है ॥ १० ॥ कि यह मूर्खिणी प्रकृति जड़है जिससे कि संसार मोहित है पुरुषको बुद्धि समेत व प्रकृतिको बुद्धिरहित ॥ ११ ॥ विद्वान् कहते हैं और पुरुष के पक्षमें मनुष्य हैं व प्रकृति के पक्षमें स्त्रियां हैं इस लिये हे वृथाबुद्धिवाले, युधिष्ठिरजी! तुम आपही पुरुष होकर ॥ १२ ॥ स्त्रीकी स्तुति करतेहो व प्रणाम करतेहो और मेरे बहुतही हास उत्पन्न होताहै यदि कोई पनहियों को शिरके ऊपर चढ़ावै ॥ १३ ॥ तो जैसे वह मूर्ख होता है वैसेही देवीजी की भक्तिमें परायण पुरुष है हे

शास्त्रविदांवरः ॥ ९ ॥ स्त्रीणांशरणमापद्येदज्ञबुद्धिर्यथाभवान् ॥ यतस्त्वमेवंवेत्सीदं सर्वशास्त्रेषुकीर्त्यते ॥ १० ॥ जडेयं प्रकृतिर्मूढाययासंमोहितंजगत् ॥ सचेतनञ्चपुरुषंप्रकृतिञ्चविचेतनाम् ॥ ११ ॥ प्राहुर्बुधानराःपक्षेपुंसश्चप्रकृतेःस्त्रियः ॥ तत्स्वयंपुरुषोभूत्वा युधिष्ठिरवृथामते ॥ १२ ॥ स्त्रियंस्तौषिचनौषित्वं हासोमेतीवजायते ॥ आरोहयेच्छिरसिवैकश्चिदे वमुपानहौ ॥ १३ ॥ यथासमूढोभवतिदेवीभक्तिरतस्तथा ॥ यदितेवन्दिवत्पार्थ तिष्ठेद्वाणीनवारिता ॥ १४ ॥ तत्किमर्थं महादेवं नस्तौषित्रिपुरान्तकम् ॥ विरूपाक्षेतिनामत्वान्महेशंनमहामते ॥ १५ ॥ ततःकिमर्थंस्तुत्यर्हंनस्तौषिपुरुषो त्तमम् ॥ यस्यप्रसादादस्माभिः प्राप्ताद्रुपदनन्दिनी ॥ १६ ॥ इन्द्रप्रस्थेतथाराज्यंराजसूयस्त्वमापसः ॥ विजयेनधनुर्लब्धं जरासन्धोमयाहतः ॥ १७ ॥ प्रत्याहर्तुंतथेच्छामः कौरवेभ्यःस्वकांश्रियम् ॥ यस्यप्रसादात्तंमुक्त्वाकृष्णंकस्तोषये

पार्थ! यदि वन्दीजनों की नाईं मना कीहुई तुम्हारी वाणी नहीं रुकती है ॥ १४ ॥ तो किस लिये त्रिपुरान्तक शिवजी की स्तुति नहीं करतेहो और हे महामते! विरूपाक्ष ऐसा नाम होनेके कारण यदि महेशजी की नहीं स्तुति करतेहो ॥ १५ ॥ तो किस लिये स्तुतिके योग्य पुरुषोत्तम कृष्णजीकी स्तुति नहीं करतेहो कि जिनके प्रसादसे हम लोगोंने द्रुपदकी कन्या द्रौपदीजी को पाया है ॥ १६ ॥ व दिल्ली में राज्यको पाया और तुमने उस राजसूययज्ञ को किया तथा अर्जुन ने धनुषको पाया व मैंने जरासन्ध को मारा है ॥ १७ ॥ और जिनके प्रसाद से हमलोग कौरवो से अपनी लक्ष्मीको फिर लेना चाहते है उन कृष्णजीको छोड़कर कौन पुरुष स्त्रीकी स्तुति

करैगा ॥ १८ ॥ अथवा आपही यदुवंशियों के उत्तम कुलमें पैदाहुये यादव श्रीकृष्णजी को जानकर बुद्धि थोड़ी होने के कारण से उनकी स्तुति नहीं करतेहो ॥ १६ ॥
तो किस लिये बडे पराक्रमी उत्तम अर्जुनजीकी स्तुति नहीं करतेहो कि जिन्होंने पहले निशाने को बेध दिया है व जिन्हों ने कर्णादिक वीरोंको मारडाला है ॥ २० ॥
व जिन्हों ने उस खाण्डव वनको जलादिया और जिन्हों ने यज्ञमें राजाओं को जीत लिया है व यह सुना जाताहै कि जिन अर्जुनने पराक्रमकर शिवजीको जीत
लिया है ॥ २१ ॥ भूमिलोकमें टिकेहुये इन अर्जुनकी शरण में जाइये व स्तुति कीजिये अथवा उन इन्द्रने मुझको राज्य क्यों नहीं दिया ॥ २२ ॥ यह मानकर

**त्स्थिये ॥ १८ ॥ अथस्वयंयादवानामुत्पन्नंकुलउत्तमे ॥ ज्ञात्वाचैवत्वमल्पत्वाद्बुद्धेर्नस्तौषियादवम् ॥१९॥ तत्किमर्थं
महावीर्यं नस्तौष्यर्जुनमुत्तमम् ॥ येनविद्धंपुरालक्ष्यं येनकर्णादयोहताः ॥ २० ॥ येनतत्खाण्डवंदग्धं यज्ञेयेननृपा
जिताः ॥ श्रूयतेयेनविक्रम्य महेशानोपिनिर्जितः ॥ २१ ॥ भूलोकसंस्थितस्यास्य शरणंयाहिनौषिच ॥ अथवातेनश
क्रेण राज्यंमेनार्पितंकुतः ॥ २२ ॥ इतिमत्वावृथैवत्वं नस्तौषिभ्रातरंमम ॥ ततोमांवाकथंवीरं नस्तौषित्वंयुधिष्ठि
र ॥ २३ ॥ येनत्वंरक्षितःपूर्वं लाक्षागेहाग्निमध्यतः ॥ वृक्षेणाहत्यमद्रेशं नदींशुष्कांप्रतारितः ॥ २४ ॥ राजराजस्तथा
येन जरासन्धोनिपातितः ॥ पूर्वादिग्निर्जितायेन येनपूर्वंबकोहतः ॥२५॥ हिडिम्बश्चमहावीर्यः किर्म्मीरश्चाधुनावने॥
कालेकालेचरक्षामि त्वामेवाहंसदानुगः ॥ २६ ॥ नतांपश्यामिरक्षन्तीं नत्वायांस्तौषिभारत ॥ अथक्षुधालुंज्ञात्वामां स**

तुम वृथाही मेरे भाईकी स्तुति नहीं करतेहो तो हे युधिष्ठिरजी ! मुझ वीरकी क्यों नहीं स्तुति करतेहो ॥ २३ ॥ कि जिनसे पुरातन समय तुम लाक्षागृह में अग्नि के
बीचसे रक्षा कियेगये हो और मद्र देश के राजाको वृक्षसे मारकर सूखी नदीमें प्रतारित हुये याने पार कियेहो ॥ २४ ॥ तथा जिनसे राजाओंका राजा जरासन्ध मारा
गया व जिसने पूर्वदिशाको जीतलिया है और जिसने पहले बकासुर को मारा है ॥ २५ ॥ और महापराक्रमी हिडम्ब जिससे मारागया व इस समय वनमें किर्मीर
दैत्यको मारा व सदैवही अनुगामी होकर मैं प्रत्येक समय में तुम्हारी रक्षाकरताहूं ॥ २६ ॥ हे भारत ! रक्षाकरती हुई उसको मैं नहीं देखताहूं कि जिसको प्रणामकर

तुम स्तुति करतेहो अथवा सदैव पेटभरनेवालों में श्रेष्ठ तथा क्षुधालु मुझको जानकर ॥ २७ ॥ व हे क्षमाकरनेवालों में श्रेष्ठ ! मुझको क्रूर व साहसी जानकर नहीं स्तुति करतेहो तो उत्तम संयमी होकर ॐकारको कहतेहुये तुम ॥ २८ ॥ मार्ग में क्यों नहीं प्राप्तहोतेहो क्योंकि वृथा आलाप करनेवाला दोषभागी होताहै प्रेत, पिशाच व राक्षस वृथा अनर्थक वचन कहनेवाले ॥ २९ ॥ मनुष्य मे प्रवेश करते हैं और उनसे प्रवेश कियाहुआ पुरुष बार बार निरर्थक वचनको कहताहै वृथा कहनेवाला पुरुष जिस वस्तुको भोजन करता है व कहीं जिस पुण्यको करता है ॥ ३० ॥ वह सब प्रेतादिकों की तृप्ति के लिये होता है ऐसा शास्त्रमें निश्चय किया गया है और

दौदरिकसत्तमम् ॥ २७ ॥ क्रूरंसाहसिकञ्चैव नस्तौषिक्षमिणांवर ॥ ततःसुसंयतोभूत्वा प्रणवंसमुदीरयन् ॥ २८ ॥ कथंनयासिमार्गेत्वं वृथालापोहिदोषभाक् ॥ प्रेताःपिशाचारक्षांसि वृथालापपरंनरम् ॥ २९ ॥ आविशन्तितदाविष्टोवक्ता वदंपुनःपुनः ॥ वृथालापीयदश्नाति यत्करोतिशुभंकचित् ॥३०॥ प्रेतादितृप्तयेसर्वमितिशास्त्रविनिश्चयः ॥ नायंतस्यास्तिवैलोकः कुतएवपरोभवेत् ॥ ३१ ॥ तस्माद्विजानतायत्नात्त्याज्यमेववृथावचः ॥ एवंसंस्मारितोपित्वंयदिभूयः प्रवर्त्तसे ॥ ३२ ॥ भूताविष्टश्चिकित्स्योनोविविधैरौषधैर्भवान् ॥ इतिप्रवर्णितांश्रुत्वा भीमसेनेनभारतीम् ॥ ३३ ॥ पठामिचप्रतिदिनंविहस्याहयुधिष्ठिरः ॥ नूनंत्वमल्पविज्ञानो वेदाधीतास्त्रयोवृथा ॥ ३४ ॥ मातरंसर्वभूतानामम्बिकांयन्नमन्यसे ॥ स्त्रीपक्षइतिमत्वातामवजानासिभोःकथम् ॥ ३५ ॥ स्त्रीसतीनप्रणम्याकिंत्वयाकुन्तीवृकोदर ॥ यदिनस्यान्महा

उसको यह लोकभी नहीं होता है तो परलोक कहां से होवै ॥ ३१ ॥ इस लिये विज्ञानी पुरुषको यत्नसे अनर्थक वचन त्यागना चाहिये इस प्रकार स्मरण कराये हुये भी तुम यदि फिर ऐसाही बर्ताव करोगे ॥ ३२ ॥ तो भूतों से आवेश कियेहुये आप अनेक प्रकारकी औषधों से चिकित्सा करने योग्य नहींहो भीमसेन से इस प्रकार वर्णन कीहुई वाणीको सुनकर ॥ ३३ ॥ युधिष्ठिरजी हँसकर बोले कि प्रतिदिन इस स्तोत्रको पढूंगा और तुम निश्चयकर अल्पज्ञानीहो व वृथाही तुमने तीनों वेदोंको पढ़ाहै ॥ ३४ ॥ क्योंकि समस्त प्राणियों की माता भगवती को नहीं मानतेहो हे भीमसेन ! वे स्त्रीपक्षमें हैं ऐसा मानकर क्यों अपमान करतेहो ॥ ३५ ॥ हे भीमसेन

जी ! पतिव्रता श्री कुन्तीजी क्या तुमसे प्रणाम करने योग्य नहीं हैं यदि ब्रह्मा, विष्णु व शिवजी से पूजित महामाया न होतीं ॥ ३६ ॥ तो हे पार्थ ! तुम्हारे शरीर
की उत्पत्ति कैसे होती यह यथार्थ कहिये और ईश्वर परमात्मा को त्यागने के लिये कैसे नहीं समर्थ है ॥ ३७ ॥ जिन लिये देवीजी फिर उससे सेवितहुईं उसीकारण
उनको बहुत बढ़ीहुई मानताहूं वासुदेव कृष्णजी भी नित्यही परेसे भी परे उस शक्तिकी स्तुति करते हैं ॥ ३८ ॥ यदि मैं चिकित्सा करने के योग्यहूं तो चिकित्सा
में क्या होगा मूर्खता से महेश्वरी के विषयमें ऐसा फिर नहीं कहने योग्यहै ॥ ३९ ॥ यदि तुम सुखको चाहतेहो तो भूमिमें गिरकर उनकी शरणमें प्राप्तहूजिये भीमसेन

माया ब्रह्मविष्णुशिवार्चिता ॥ ३६ ॥ तवदेहोद्भवः पार्थ कथंस्याद्रात्त्वतोवद ॥ ईश्वरः परमात्मानं त्यक्तुंशक्तः कथंनहि ॥
३७ ॥ पुनस्सेवितोदेवी तेनमन्येमहोर्जिताम् ॥ वासुदेवोपिनित्यंतांस्तौतिशक्तिंपरात्पराम् ॥ ३८ ॥ अहंयदिचिकित्स्यःस्यां
चिकित्सायांचकिंभवेत् ॥ नैवंभूयःप्रवक्तव्यंमौर्ख्यात्प्रतिमहेश्वरीम् ॥ ३९ ॥ भूमौनिपत्यशरण्यांयाहिचेत्सुखमिच्छसि ॥
भीमउवाच ॥ सर्वोपायैर्बोधयन्ति चाटाहस्तगतंनरम् ॥ ४० ॥ इदमेवौषधंतत्रतैःसार्द्धंजल्पनंनहि ॥ जनेजनेमतिर्भिन्ना स
त्यमेतन्नृपस्फुटम् ॥ ४१ ॥ स्वाभीष्टंकुरुतेसर्वः कुर्मोभीष्टंवयंतथा ॥ नागायुतसमप्राणो वायुपुत्रोवृकोदरः ॥ ४२ ॥ न
स्त्रियंशरणंगच्छेद्वाङ्मात्रेणकथंचन ॥ इत्युक्त्वावचनंभीमस्त्वनुवव्राजतंनृपम् ॥ ४३ ॥ राजापिसानुगोयातोनसाध्वि
तिमुहुर्ब्रुवन् ॥ ततःक्षणातिविकलइतश्चेतश्चप्रस्खलन् ॥ ४४ ॥ उवाचवचनंभीमः सुसम्भ्रान्तोनृपंप्रति ॥ धर्मराज

जी बोले कि प्रेमसे मिथ्या कहनेवाले लोग हाथमें प्राप्त मनुष्य को सब उपायों से समझाते हैं ॥ ४० ॥ परन्तु उस विषयमें यही औषध है कि उनके साथ वार्ता न
करै हे राजन् ! यह प्रकटही सत्य है कि प्रत्येक मनुष्यमें बुद्धि भिन्नहोती है ॥ ४१ ॥ सब मनुष्य अपनी प्रिय वस्तुको करता है वैसेही जो प्रियहै उसको मैंभी करूंगा
दशहजार हाथियों के समान बलवाले पवनपुत्र भीमसेनजी ॥ ४२ ॥ किसी प्रकार वचनमात्रसे भी स्त्री की शरणमें न जावैंगे यह वचन कहकर भीमसेनजी उन युधि-
ष्ठिर राजाके पीछे चले ॥ ४३ ॥ और यह अच्छा नहीं है ऐसा बार बार कहतेहुये अनुगामियों समेत राजायुधिष्ठिर भी चले तदनन्तर क्षणभरमें इधर उधर लरखराते

हुये व अत्यन्तही विकल ॥ ४४ ॥ भीमसेनजी संभ्रमितहोकर राजायुधिष्ठिर से वचन बोले कि हे महाबुद्धे, नृपोत्तम, धर्मराजजी ! मुझको देखिये ॥ ४५ ॥ कि मैं नेत्रों से नहीं देखताहूं यह मेरे क्या विकलता होगई राजायुधिष्ठिरजी बोले हे भीमसेनजी ! तुम्हारे ऊपर महेश्वरी देवीजी निश्चयकर क्रोधितहोगई हैं ॥ ४६ ॥ उसी से हे महासाहसप्रिय ! तुम्हारे नेत्र नष्ट होगये इस लिये इस समय परमेश्वरीकी शरण में जाइये ॥ ४७॥ तो कदाचित् फिर प्रसन्नहोकर ये तुमको फिर नेत्रोको देवैं भीमसेनजी बोले कि हे युधिष्ठिरजी ! मैंभी यही जानताहूं कि देवीजी ने मुझको शाप दिया है ॥ ४८ ॥ फिर मैं प्रभावके विश्वास के लिये सदैव उनकी निन्दाकरता

महाबुद्धे पश्यमांनृपसत्तम ॥ ४५ ॥ चक्षुर्भ्यांनैवपश्यामिवैकल्यंकिमिदंमम ॥ राजोवाच ॥ भीमभीमध्रुवंदेवी कुपितातेमहेश्वरी ॥४६॥ तेननष्टेचक्षुषीते महासाहसवल्लभ ॥ तत्सांप्रतमभिप्रेहिशरणंपरमेश्वरीम् ॥ ४७ ॥ पुनःप्रसन्नातेदद्यात् कदाचिन्नयनेपुनः ॥ भीमउवाच ॥ अहमप्यङ्गजानामि शप्तोदेव्यायुधिष्ठिर ॥ ४८ ॥ प्रभावप्रत्ययार्थंहि सदानिन्दामितांपुनः ॥ तस्मात्प्रभावंदृष्ट्वैवनिपत्यवसुधातले ॥ ४९ ॥ मनोवाग्बुद्धिभिर्गत्वा शरणंस्तौमिमातरम् ॥इत्युक्त्वाभ्रातरंज्येष्ठं साष्टाङ्गंप्रणिपत्यच ॥ ५० ॥ गत्वैवदेव्याःशरणं भीमस्तुष्टावमातरम् ॥ भीमउवाच ॥ सर्वभूताम्बिकेदेविब्रह्माण्डशतपत्रके ॥ ५१ ॥ बालिशंबालकंस्वीयं त्राहित्राहिनमोस्तुते ॥ त्वंब्राह्मीब्रह्मणःशक्तिर्वैष्णवीत्वञ्चशाम्भवी ॥ ५२ ॥ त्रिमूर्तेशक्तिरूपात्वं रक्षरक्षनमोस्तुते ॥ त्वमैन्द्रीचत्वमाग्नेयीत्वंयाम्यात्वंचनैर्ऋती ॥ ५३ ॥ त्वंवारुणी

था इस लिये प्रभावको देखकर व पृथ्वीतलमें गिरकर ॥ ४९ ॥ मन, वचन व बुद्धिसे शरण जाकर भगवती माताकी स्तुति करताहूं यह कहकर बड़े भाई युधिष्ठिरको साष्टांग प्रणामकर ॥५०॥ व देवीजी की शरण में जाकर भीमसेनजी ने भगवती माताकी स्तुतिकिया भीमसेनजी बोले कि हे समस्त प्राणियोंकी माता, ब्रह्माण्डरूपी कमलवाली, देवि ! ॥ ५१ ॥ अपने मूर्ख बालककी रक्षाकीजिये रक्षाकीजिये तुम्हारे लिये नमस्कार है तुम ब्रह्माकी शक्ति ब्राह्मीहो व वैष्णवीहो और शैवीहो ॥ ५२ ॥ हे त्रिमूर्ते ! तुम शक्तिरूपिणीहो मेरी रक्षाकीजिये रक्षाकीजिये तुम्हारे लिये नमस्कार है तुम ऐन्द्रीहो व तुम्हीं आग्नेयीहो, तुम याम्या (यमराजकी शक्ति) हो और तुम्हीं

नैर्ऋतीहो ॥ ५३ ॥ तुम वारुणीहो, तुम्हीं वायव्याहो और तुम्हीं कौबेरी हो तुम्हारे लिये नमस्कार है हे शिवदेवि, वाराहि, नारसिंहि, जयदायिनि ! ॥ ५४ ॥ हे
कौमारि, कुलकल्याणि, कुपेश्वरि ! तुम्हारे लिये नमस्कार है तुम सूर्य मे तथा चन्द्रमा में व भौममें और तुम बुध में व बृहस्पति में बसतीहो ॥ ५५ ॥ और
तुम शुक्रमे, शनैश्चर में व तुम्हीं राहु और केतुमें बसतीहो तुम्हारे लिये नमस्कार है तुम ध्रुवचक्र में बसतीहो व सप्तर्षियों के चक्रमें तुम्हारी स्थितिहै ॥ ५६ ॥ हे भव-
चक्रे, आकाशचक्रे, भूतचक्रे! तुम्हारे लिये नमस्कारहै हे देवि ! तुम सातों द्वीपोंमें और सातों समुद्रों में स्थितहो ॥ ५७ ॥ और सातों पातालों में नीचे स्थितहो तुम्हारे

त्वंवायव्यात्वंकौबेरीनमोस्तुते ॥ईशानदेविवाराहिनारसिंहिजयप्रदे ॥ ५४ ॥ कौमारिकुलकल्याणि कुपेश्वरिनमोस्तु
ते ॥ त्वंसूर्येत्वंतथासोमे त्वंभौमेत्वंबुधेगुरौ ॥ ५५ ॥ त्वंशुक्रेत्वंशनौराहौ त्वंकेतौचनमोस्तुते ॥ त्वमसिध्रुवचक्रेत्वं मुनिच
क्रेचतेस्थितिः ॥५६॥ भवचक्रेखचक्रेच भूतचक्रेनमोस्तुते ॥ सप्तद्वीपेषुत्वंदेवि समुद्रेषुचसप्तसु ॥ ५७ ॥ सप्तस्वपिचपाता
लेष्वधःसंस्थानमोस्तुते ॥ चतुर्भुजेचतुर्वक्त्रे फलदेचत्वरप्रिये ॥ ५८ ॥ चराचरस्तुतेदेवि चरणौप्रणमामिते ॥ महा
घोरमहारात्रिघराटालिविकटेह्वले ॥ ५९ ॥ सततंसप्तमीपूज्ये नेत्रदेशरणंभव ॥ महानादेमहावीर्ये महामोहविनाशि
नि ॥ ६० ॥ महावन्ध्यापहेदेवि देहिनेत्रत्रयंमम ॥ मेरुवासिनिपिङ्गाभेनेत्रत्राणैककारिणी ॥ ६१ ॥ हुंहुंकारध्वस्तदैत्ये
शरण्येशरणंभव ॥ सर्वमङ्गलमाङ्गल्ये यदित्वंसत्यतोम्बिके ॥ ६२ ॥ ततोमेमङ्गलंदेहि नेत्रदानान्नमोस्तुते ॥ यदिस

लिये नमस्कार है हे चतुर्भुजे, चतुर्मुखि, फलदे, चत्वरप्रिये ! ॥ ५८ ॥ हे चराचरस्तुते, देवि ! मैं तुम्हारे चरणोंको प्रणाम करताहूं हे महाघोरे, महारात्रि, घराटालि,
विकटे, ह्वले ! ॥ ५९ ॥ हे सदैव सप्तमी तिथिमें पूजनीये, नेत्रदायिनि ! शरण रक्षा करनेवाली) होवो हे महानादे, महावीर्ये, महामोहविनाशिनि ! ॥ ६० ॥ हे महावन्ध-
विनाशिनि, देवि ! मुझे तीननेत्रों को दीजिये हे मेरुवासिनि, पिङ्गाभे ! तुम्हीं एक नेत्रोंकी रक्षाको करनेवालीहो ॥ ६१ ॥ हे हुंहुंकारसे दैत्योंको नाशनेवाली, शरण
के योग्य ! शरणहोवो हे अम्बिके, सर्वमङ्गलमांगल्ये ! यदि तुम सत्यही समस्त मङ्गलों को देनेवालीहो ॥ ६२ ॥ तो नेत्रदान से मुझको कल्याण दीजिये तुम्हारे

लिये नमस्कारहै यदि तुमने सबों के ऊपर दया कियाहै और तुम सत्यसे कृपावती हो ॥ ६३ ॥ तो मेरे ऊपर दयाकरो व नेत्रोंको दीजिये तुम्हारे लिये नमस्कार है
हे देवि ! यदि इस कारण कोप करती हो कि यह पापीहै तो वृथाहीहै ॥ ६४ ॥ क्योंकि तुम मुझको क्या ऐसा नहीं मोहती हो इसलिये हे देवि ! तुम्हारे लिये नमस्कार
है जो आपही धूलिको ऊपर फेंककर और उससे विरजावै और जैसे वह उसीकारण क्रोधकरै ॥ ६५ ॥ वैसेही तुम क्रोधकरती हो हे माता ! अपने रूपको दिखलाइये
पाण्डव भीमसेनजी से इस प्रकार स्तुति कीहुई कृष्णकी छविके समान शोभावाली ॥ ६६ ॥ तथा स्त्रियोंसे सुन्दर मुखवाली भगवतीजी प्रत्यक्षहुई जोकि करोड़ों

वैऽनुगृहीताः सत्यतस्त्वंकृपावती ॥ ६३ ॥ ततःकृपांकुरुमयि देहिनेत्रेनमोस्तुते ॥ पापोयमितियद्देविप्रकुप्यसिवृथैव
तत् ॥ ६४ ॥ त्वंमांमोहयसित्वेवं नहिकिन्तन्नमोस्तुते ॥ स्वयमुत्साद्ययोरेणुंवेष्टितस्तेनकुप्यति ॥ ६५ ॥ तथाकुप्य
सिमेमातारूपंस्वीयंप्रदर्शय ॥ इतिस्तुतापाण्डवेन देवीकृष्णच्छविच्छविः ॥ ६६॥ रामाभिरामवदना प्रत्यक्षंसमजाय
त ॥ विद्युत्कोटिसमाभासा मुकुटेनातिशोभिता ॥ ६७॥ सूर्यबिम्बप्रभाभ्याञ्च कुण्डलाभ्यांविभूषिता ॥ प्रवाहेनेवहारे
ण सुरनद्याविराजिता ॥ ६८ ॥ कल्पद्रुमप्रसूनैश्च पूर्णावतंसमण्डला ॥ दन्तेन्दुकान्तिविध्वस्तभक्तमोहमहाभया ॥
६९ ॥ खड्गचर्मशूलपात्रचतुर्भुजविराजिता ॥ वाससातडिदाभेन मेघलेखेववेष्टिता ॥ ७० ॥ जयेतिपुष्पवर्षैश्च शक्रा
द्यैरभिपूजिता ॥ गणैर्देवीभिराकीर्णा शतपद्मैर्महाबलैः ॥ ७१ ॥ तांतादृशींव्योम्निदृष्ट्वा यथाबालोभिधावति ॥ तथा

बिजुलियों के समान व प्रकाशित मुकुट से बहुतही शोभित थीं ॥ ६७ ॥ और सूर्यबिम्बके समान प्रभावाले कुण्डलों से विभूपित थीं और श्रीगङ्गाजीके मनोहर प्रवाह
के समान विराजित थीं ॥ ६८ ॥ व जोकि कल्पद्रुम के पुष्पोंसे पूरित कर्णपूर मण्डलवाली तथा दन्तरूपी चन्द्रमा की कान्तिसे भक्तोंके मोह व महाभय को
विध्वंस करनेवाली थीं ॥ ६९ ॥ और तलवार, ढाल, त्रिशूल व पात्र समेत चारों भुजाओं से शोभितथीं और बिजुली के समान छविवाले वसन से मेघपक्ति की
नाई वेष्टित थीं ॥ ७० ॥ और जयहो ऐसा कहकर इन्द्रादिक देवताओं से पुष्पवृष्टि के द्वारा पूजित थीं और महाबली सौपद्म संख्यक देवीके गणोंसे घिरीथीं ॥ ७१ ॥

आकाश में वैसी उन भगवती को देखकर जैसे बालक दौडता है वैसेही ये भीमसेनजी हे माता ! ऐसा कहतेहुये सामने दौडे ॥ ७२ ॥ उस समय देवीजी के दर्श-
नही,से उत्तम तीननेत्रोंसे सयुतहुये और प्रणामकर बार २ यह बोले कि तुम्हारे लिये नमस्कार है नमस्कारहै ॥७३॥ हे कमललोचनि, देवि ! प्रसन्न होवो हे माता ! फिर
प्रसन्न होवो हे क्षमाशील (स्वभाव) वाली देवि ! मुझ पापीके ऊपर फिर प्रसन्न होवो॥७४॥ इसप्रकार स्तुतिकीहुई भगवतीने आपही पार्थिव भीमसेनजी को उठाकर व
गोदीमें बिठाकर दयासे इस वचन को कहा ॥ ७५ ॥ कि जिसलिये तुमने स्तोत्र को किया उसीसे तुम्हारे ऊपर मैं प्रसन्नहुई इसी कारण मैंने तीननेत्रोंको दिया दो

संमुखमाधावदंबमातरितिब्रुवन् ॥ ७२ ॥ दर्शनेनैवदेव्याश्च शुभ्रनेत्रत्रयस्तदा ॥ प्रणिपत्यनमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यंमु
हुर्जगौ ॥ ७३ ॥ प्रसीददेविपद्माक्षि पुनर्मातःप्रसीदमे ॥ पुनःप्रसीदपापस्य क्षमाशीलेप्रसीदमे ॥ ७४ ॥ एवंस्तुताभगव
ती स्वयमुत्थाप्यपार्थिवम् ॥ भीमंचोत्सङ्गमारोप्य कृपयेदंवचोब्रवीत् ॥ ७५ ॥ यत्त्वयाभिहितंस्तोत्रं तेनतुष्टातवोपरि ॥
अतोनेत्रत्रयंदत्तं द्वेबाह्येचान्तरंपरम् ॥ ७६ ॥ नाहंकोपंयत्रतत्र दर्शयामिवृकोदर ॥ त्वन्तुप्रधानपुरुषस्ततःक्रोधमद
र्शयम् ॥ ७७ ॥ नैतत्प्रियञ्च कृष्णस्यभ्रातुर्मेक्रोधमाचरम् ॥ भवन्तोवासुदेवस्ययतःप्राणाबहिश्चराः ॥ ७८ ॥ त्वञ्चनिन्द
सिमांनित्यं तच्चजानेवृकोदर ॥ मत्प्रभावपरिज्ञानहेतवेकीदृशास्त्विति ॥ ७९ ॥ तदेवनैवभूयस्ते प्रकर्त्तव्यंकथञ्चन ॥
अधिक्षेपोहिपूज्यानामावहत्यधिकांरुजम् ॥ ८० ॥ तदिदानींसर्वमेव क्षन्तव्यञ्चपरस्परम् ॥ यच्चब्रवीमित्वांवीर तन्निशा।

बाहरवाले और तीसरा भीतर का नेत्र दियागया ॥ ७६ ॥ हे भीमसेनजी ! मैं जहां तहां क्रोधको नहीं दिखलाती हूं तुमतो मुख्य पुरुष हो इससे मैंने क्रोधको दिख-
लाया ॥ ७७ ॥ और मैंने जो क्रोध किया यह मेरे भाई कृष्णजी को नहीं प्रियहै क्योंकि आपलोग कृष्णजी के बाहर चलनेवाले प्राणहो ॥ ७८ ॥ हे भीमसेनजी !
तुम मुझको नित्यही मेरे प्रभाव को जानने के लिये निन्दते हो कि वह कैसाहै उसको मैं जानती हूं ॥ ७९ ॥ उसको तुम्हें फिर किसी प्रकार न करना चाहिये
क्योंकि पूजनीयजनोंका तिरस्कार अधिकरोग को प्राप्त करता है ॥ ८० ॥ वह सब इस समय आपसमें क्षमा करना चाहिये और हे भारत, वीर ! मैं तुमसे जो कहती

हु उसको सुनिये ॥ ८१ ॥ कि जब २ धर्मकी ग्लानि (न्यूनता) में विष्णुजी प्रकट होते है तब २ मे अवतार को लेकर इन विष्णुजी की सहायिनी होती हूं ॥ ८२ ॥ और इस समय व्यापक विष्णुजी वसुदेवके पुत्र हुये हैं व मैं भी एकही अंशरहित नामक नन्दगोप की कन्या हुईहूं ॥ ८३ ॥ इस लिये जैसे मेरे भाई भगवान् कृष्णजी पूजित है वैसेही आपलोग पाण्डव भी सदैव मेरे भाईहो ॥ ८४ ॥ जो उत्तम मनुष्य भीमकी बहन है इसी कारण मेरी स्तुतिकरैंगे प्रसन्नतासंयुत मैं उनके शत्रुओं का नाश करूगी ॥ ८५ ॥ व हे भाई ! धृतराष्ट्र के पुत्रोंके मारने के निमित्त महायुद्ध में नकुल भाईको दोगे तब मै तुम्हारे भुजाओं को हँसूंगी ॥८६॥

मयभारत ॥ ८१ ॥ यदायदाहिधर्मस्य ग्लानावाविर्भवेद्धरिः ॥ तदातदावतीर्याहं विष्णोरस्यसहायिनी ॥ ८२ ॥ इदानींचहरिर्ज्जातो वसुदेवसुतोविभुः ॥ अहञ्चनन्दगोपस्यएकानंशाभिधासुता ॥ ८३ ॥ तद्यथाभगवान्कृष्णो मम भ्राताभिपूजितः ॥ भवन्तोपितथामह्यं भ्रातरःपाण्डवाःसदा ॥ ८४ ॥ येभीमभगिनीत्येवं मांस्तोष्यन्तिनरोत्तमाः ॥ सपत्नान्नाशयिष्यामि तेषांहर्षसमन्विता ॥ ८५ ॥ त्वञ्चभ्रातुर्यमंवीरं प्रदास्यसिमहारणे ॥ भुजयोस्तेहसिष्यामि धार्तराष्ट्रनिपातने ॥ ८६ ॥ कृत्वाराज्यञ्चवर्षाणि षट्त्रिंशत्तदनन्तरे ॥ वानप्रस्थस्यधर्मेण पृथ्वींपरिचरिष्यथ ॥ ८७ ॥ अस्मिन्नेवततोदेशे लोहोनाममहासुरः ॥ भवतांन्यस्तशस्त्राणांवधार्थंप्रक्रमिष्यति ॥ ८८ ॥ ततस्तंसर्वभूतानामवध्यंभवतांकृते ॥ अन्धंकृत्वापातयिष्येततस्तंमारयिष्यसि ॥८९॥ निस्तीर्यचहिमंसर्वं निमग्नाबालुकार्णवे ॥ स्वर्गयास्यथराजैकःसशरीरोगमिष्यति ॥ ९० ॥ अन्धोयत्रकृतोलोहो लोहाणाभिधयापुरम् ॥ भविष्यतिचतत्रैवस्थास्येहंकलयास

और छत्तीस वर्षतक राज्यकर उसके उपरान्त वानप्रस्थ के धर्मसे पृथ्वीपर तुमलोग घूमोगे ॥ ८७ ॥ तदनन्तर इसी देशमें धरेहुये अस्त्रोंवाले आपलोगों को मारनेके लिये लोहनामक महादैत्य घेरैगा ॥ ८८ ॥ उसके उपरान्त समस्त प्राणियों से अवध्य उस दैत्यको मैं आपलोगों के लिये अन्धकरके गिरादूंगी तब उसको तुम मारोगे ॥ ८९ ॥ तदनन्तर समस्त पालाको उतरकर तुमलोग बालुकार्णव में डूबकर स्वर्गको जाओगे और एक राजा युधिष्ठिर शरीर समेत स्वर्गको जावैगा ॥ ९० ॥

और जहांपर लोहासुर अन्त कियागया है वहांपर लोहाणनामक पुर होगा और वहींपर मैं सदैव अपनी कलासे टिकूंगी ॥ ६१ ॥ तदनन्तर कलियुग प्राप्तहोनेपर कल नामक मेरा भक्तहोगा उसके नामसे मैं कलेश्वरीहूँगी ॥ ६२ ॥ और अन्य बेलाकनामक मेरा उत्तमभक्त होगा उसके आराधन से कलियुग में मैं प्रसिद्धिको प्राप्तहूंगी ॥ ६३ ॥ और लोहाणनगर में भलीभांति टिकीहुई मुझको जो मनुष्य शुक्लपक्ष की सप्तमी में श्रद्धासे पूजैंगे उनसे मैं सब कहीं पूजितहूंगी ॥ ६४ ॥ और हे पाण्डव ! उस दिन भक्तिभावसे तृप्त कीहुई मैं सब अन्धोंको नेत्रदूंगी ॥ ६५ ॥ और वहांपर आप चरण के अंगूठे से कुण्डको करोगे उस दिन उस कुण्डमें स्नान

दा ॥ ९१ ॥ ततःकलियुगेप्राप्ते कलोनामभविष्यति ॥ ममभक्तस्तस्यनाम्ना भवेयन्तुकलेश्वरी ॥ ९२ ॥ बेलाकश्चापरो भक्तो भविष्यतिममोत्तमः ॥ तस्याराधनतःख्यातिं प्रयास्यामिकलौयुगे ॥ ९३ ॥ लोहाणसंस्थितांचैव येर्चयिष्यन्तिमांजनाः ॥ श्रद्धयासितसप्तम्यां तैश्चसर्वत्रपूजिता ॥ ९४ ॥ अन्धानाञ्चप्रदास्यामि सर्वेषांनयनान्यहम् ॥ तस्मिन्दिने तर्पिताहं भक्तिभावेनपाण्डव ॥ ६५ ॥ पादाङ्गुष्ठेनचभवांस्तत्रकुण्डंविधास्यति ॥ सर्वतीर्थस्नानतुल्यं तत्रस्नानञ्चतद्दिने ॥ ९६ ॥ मत्स्यानांनेत्रनेत्रस्थं तेजस्तन्मात्रमुत्तमम् ॥ उद्धृत्ययोजयिष्यामि सान्वैतद्भविष्यति ॥ ९७ ॥ एवंनाममहास्थानं कलौख्यातिङ्गमिष्यति ॥ लोहाणाख्यंमहाबाहोनामकेलेश्वरीतिच ॥ ६८ ॥ दुर्गमाख्यंततोहत्वा आस्मिन्क्षेत्रेचभारत ॥ दुर्गानाम्नीभविष्यामिमहीसागरपूर्वतः ॥ ९९ ॥ धर्मारण्येवसिष्यामि भवतांत्राणकारणात ॥ धर्मारण्यस्थिताञ्चैवयेर्चयिष्यन्तिमानवाः ॥१००॥ आश्विनेमासिचैत्रेवा नवम्यांशुक्लपक्षके ॥ स्नात्वामहीसागरेच तेपांदा

समस्त तीर्थों के स्नानके बराबर होगा ॥ ६६ ॥ मछलियों के नेत्रनेत्र मे टिकेहुये तन्मात्र उत्तम तेजको निकालकर मैं युक्त करूंगी इस से वह नेत्रसमेत होगा ॥ ६७ ॥ हे महाबाहो ! उस प्रकार कलियुग में लोहाणनामक महास्थान प्रसिद्धिको प्राप्तहोगा और केलेश्वरी ऐसा नामहोगा ॥ ६८ ॥ तदनन्तर हे भारत ! इस क्षेत्र में दुर्गमनामक दैत्यको मारकर महीसागरके पूर्व और दुर्गानामक हूंगी ॥ ६९ ॥ व आप लोगोंकी रक्षाके कारण मैं धर्मारण्य में बसूंगी और धर्मारण्य में टिकीहुई

मुझको महीसागरमें नहाकर जो मनुष्य कुँवार या चैत्र महीने में शुक्लपक्ष में नवमी तिथिमें पूजैंगे उनके मनोरथ को दूंगी ॥ १०० । १ ॥ और श्रद्धासंयुत जो मनुष्य मुझको विधिपूर्वक पूजैंगे उनको पुत्र तथा पौत्र तथा स्वर्ग व मोक्षको दूंगी इसमें सन्देह नहीं है ॥ २ ॥ इसप्रकार मडालर व लोहाण में निवासहोगा और कलिकालके प्रवेश मे आपलोगों पाण्डवों के वंशमें उपजाहुआ वत्सराज मुझको यत्नसे प्रसन्न करैगा तदनन्तर उसके नामसे कलियुग में वत्सेश्वरी ऐसी मैं प्रसिद्ध हूंगी ॥ ३ । ४ ॥ और वत्सराज के समस्त अर्थोंको देनेवाली हूंगी और मेरे प्रसाद से वह राजा संसार को दुःख देनेवाली ॥ ५ ॥ अडालया नामक राक्षसी को उस

स्यामिवाञ्छितम् ॥ १ ॥ विधिनायेर्चयिष्यन्ति माञ्चश्रद्धासमन्विताः ॥ पुत्रपौत्रान्प्रदास्यामि स्वर्गंमोक्षंनसंशयः ॥ २ ॥ इत्थंमडालरेवासो लोहाणेचभविष्यति ॥ प्रवेशेचकलेःकाले भवतांवंशसम्भवः ॥ ३ ॥ वत्सराजःपाण्डवानां तोषयिष्यतियत्नतः ॥ तस्यनाम्नाततःख्याताभविष्यामिकलौयुगे ॥ ४ ॥ वत्सेश्वरीतिवत्सस्य राज्ञःसर्वार्थदायिनी ॥ मत्प्रसादात्सराजाच भुवनोत्तापकारिणीम् ॥ ५ ॥ अडालयांनामतदाराक्षसींनिहनिष्यति ॥ तस्याश्चापिवधस्थाने ह्यडालरमितिस्मृतम् ॥ ६ ॥ भविष्यतिपुरन्तत्र माञ्चसंस्थापयिष्यति ॥ अडालराभिधेग्रामे पूजयिष्यन्तियेजनाः ॥ ७ ॥ वत्सेश्वरींसिताष्टम्यामाश्विनेमासिसर्वदा ॥ धूपोपहारबलिभिःपूजयिष्यन्तिमानवाः ॥ ८ ॥ तेषांसर्वफलावाप्ति र्भविष्यतिनसंशयः ॥ इत्थंमडालरोवासो लोहाणेचभविष्यति ॥ ९ ॥ धर्मारण्येमहाक्षेत्रे महीसागरसन्निधौ ॥ सर्वलो कहितार्थाय लोहाणस्थांनिशम्यमाम् ॥ १० ॥ अन्धेकृतेमयालोहोबहुतप्त्वातपःमतु ॥ वृत्रासुरइवाजेयोलोकानुत्सा

समय मारैगा और उसके भी वधस्थान में अडालर ऐसा कहाहुआ ॥ ६ ॥ नगर होगा और वहांपर वह मुझको स्थापित करैगा और अडालर नामक ग्राममें जो मनुष्य मुझको पूजैंगे ॥७॥ व सदैव कुँवार महीनेमें शुक्लपक्ष की अष्टमी में धूप, उपहार व बलियों से जो मनुष्य वत्सेश्वरीको पूजैंगे ॥८॥ उनको निस्संदेह समस्त फलोंकी प्राप्तिहोगी इस प्रकार मडालर व लोहाणपुर मे मेरा निवास होगा ॥ ९ ॥ व महीसागर के समीप धर्मारण्य महाक्षेत्र मे निवासहोगा सब लोकोंके हितके लिये लोहाणनगरमे टिकीहुई मुझको सुनकर ॥ १० ॥ लोहनामक दैत्य मुझसे अन्ध करनेपर बहुत तपस्याकर वह वृत्रासुर की नाईं न जीतनेयोग्य होकर मनुष्यों-

को क्लेशदेवैंगा ॥ ११ ॥ और गयनामक विघ्नकारी अन्य दैत्य उससमय आप लोगों के प्रस्थानमें लोह दैत्यकी नाईं होगा उसको मैं नपुंसक करूंगी ॥ १२ ॥
और वहांपर गयत्रादा इस नामसे मुझको पूजेंगे और यहांपर गयत्राद ऐसा ग्राम प्रसिद्धहोगा ॥ १३ ॥ गयत्राद ग्राममें माघकी अष्टमीमें जो मनुष्य गयत्रादानामक
भगवतीको पूजेंगे उनके सब भी उपद्रव नाश होजावैंगे ॥ १४ ॥ और पाण्डवों से सदैव आराधन कीहुई मुझको जो क्रोध करावैंगे महाभयंकर स्थित उन पुरुषों
का पौरुष हरूंगी ॥ १५ ॥ और उनका सब वंश नपुंसक होगा कि जिस भयङ्कर व विकराल कलियुग में अतिनिर्घृणी व रौद्रजन होगा ॥ १६ ॥ इस प्रकार यहांपर

दयिष्यति ॥ ११ ॥ गयोनामापरोदैत्यो भवतांविघ्नकृत्तदा ॥ प्रस्थानेलोहवद्भावी करिष्येतंनपुंसकम् ॥ १२ ॥ गयत्रादे
तिमान्तत्र पूजयिष्यन्तिमानवाः ॥ ग्रामश्चापिगयत्रादोह्यत्रख्यातोभविष्यति ॥ १३ ॥ गयत्रादेगयत्रादांयेर्चयिष्यन्ति
मानवाः ॥ माघाष्टम्यांनशिष्यन्तितेषांसर्वेप्युपद्रवाः ॥ १४ ॥ येचमांकोपयिष्यन्ति पाण्डवाराधितांसदा ॥ तेषांपुंस्त्वंह
रिष्यामि महारौद्राधितिष्ठताम् ॥ १५ ॥ परिवारश्चतेषांवैषण्ढःसर्वोभविष्यति ॥ यस्मिन्कलियुगेघोरे रौद्रेरौद्रातिनिर्घृ
णाः ॥ १६ ॥ एवंचतुर्थंतन्महत्स्थानमत्रभविष्यति ॥ भवत्सुचापिस्वर्गेषुगयोपिसुमहत्तपः ॥ १७ ॥ तप्त्वासोथपुनःपुंस्त्वं
लोकान्सम्पीडयिष्यति ॥ गयातीर्थंगतेचैव गयाध्वंसनकाम्यया ॥ १८ ॥ बुधएवजगत्स्वामी तत्रतंसूदयिष्यति ॥
इत्थंश्रमात्पीतवासा अवतीर्यबुधःप्रभुः ॥ १९ ॥ बहूनिकृत्वाकर्माणिस्वस्थानंप्रतिपत्स्यते ॥ इतिसंक्षेपतःप्रोक्तं भविष्यं
पाण्डवामया ॥ २० ॥ भवतांचित्तनिर्वृत्यैश्रूयतांभूयएवच ॥ इदंतीर्थोत्तमंमह्यं संसेव्यंसर्वदाप्रियम् ॥ २१ ॥ कृतंय

मेरा यह चौथा स्थानहोगा और आपलोगोंके भी स्वर्ग जानेपर गयभी बड़ीभारी तपस्या ॥ १७ ॥ कर इसके उपरान्त पुरुषत्वको पाकर वह मनुष्यों को पीडित करैगा।
और गयातीर्थ के नाशने की इच्छासे वह जब गयातीर्थ को जावैगा ॥ १८ ॥ तब वहांपर संसार के स्वामी बुधहीजी उसको नाश करैंगे इस प्रकार परिश्रम से पीत
वसनवाले बुध स्वामी अवतार लेकर ॥ १९ ॥ व बहुत से कार्योंको करके अपने स्थानको प्राप्त होवेंगे हे पाण्डवलोगो ! आपलोगों के चित्तके आनन्दके लिये मैंने
संक्षेपसे इस होनेवाले चरित्रको कहा और फिरभी सुनिये कि तीर्थोंमें उत्तम व प्यारा यह मेरा तीर्थ सदैव सेवनेयोग्यहैं ॥ २०।२१ ॥ जो आपलोगोंने यहां आगमन

किया उससे मुझको बड़ी प्रसन्नता हुई और भीमके पौत्र (बर्बरीक) से मैं दृढ़तापूर्वक प्रसन्न कराई गईहूँ ॥ २२ ॥ और वैसेही सब देवियों को उसने प्रसन्न किया है यह अन्यथा नहीं जाननेयोग्य है और उससे जो तीर्थ कियेगये है उनको आप लोग जाइये ॥ २३ ॥ और सब बाधाओं में मैंही स्मरण करनेयोग्य हूं व तुम सबोंसे मैं जाने के लिये पूंछती हूं क्योंकि तुमलोग मुझको कृष्णके समान हो ॥ २४ ॥ देवीजी का ऐसा वचन सुनकर विस्मय से प्रफुल्लित लोचनोंवाले पाण्डवलोगों ने बार बार प्रणामकर दीपककी नाई गईहुई इन भगवतीको न देखा ॥ १२५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांकेलेश्वरीवत्से

दत्रागमनंतेनप्रीतिःपरामम ॥ भीमस्यचापिपौत्रेण दृढंसन्तोषितास्म्यहम् ॥ २२ ॥ देव्यस्तथैवसर्वाश्च एतज्ज्ञेयंनचान्यथा ॥ व्रजध्वञ्चापितीर्थानि यानितेनकृतानिच ॥ २३ ॥ आबाधास्वपिसर्वासु स्मरणीयाहमेवच ॥ आपृच्छेचापि वःसर्वान् यूयंकृष्णसमामम ॥२४॥ इतिदेव्यावचःश्रुत्वा विस्मयोत्फुल्ललोचनाः ॥ पुनःपुनःप्रणम्यैतां नापश्यन्दीपवद्गताम् ॥ १२५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेकेलेश्वरीवत्सेश्वरीदुर्गामाहात्म्यंनामैकषष्टितमोध्यायः ॥ ६१ ॥

सूतउवाच ॥ ततस्त्रयोदशेवर्षे व्यतीतेसमयेतदा ॥ उपप्लवेसङ्गतेषु सर्वराजसुपाण्डवाः ॥ १ ॥ योद्धुमागत्यसन्तस्थुः कुरुक्षेत्रेमहारथाः ॥ कौरवाश्चापिसन्तस्थुर्दुर्योधनपुरोगमाः ॥ २ ॥ ततोभीष्मेणचप्रोक्तं चरैःश्रुत्वायुधिष्ठिरः ॥ रथातिरथसंख्यायैं राज्ञांमध्येवचोब्रवीत् ॥ ३ ॥ भीष्मेणविहितंकृष्ण रथातिरथवर्णनम् ॥ ततोदुर्योधनोपृच्छदिदंस्वीया

श्वरीदुर्गामाहात्म्यवर्णनंनामैकषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । कृष्ण दूरि जिमि कीन है भीमसेन को गर्व । बासठिके अध्याय में कह्यो चरित सोइ सर्व ॥ सूतजी बोले कि तदनन्तर तेरह वर्षका समय बीतनेपर उस समय उपद्रव में प्राप्तहुये समस्त राजाओं के मध्य में पाण्डव लोग ॥ १ ॥ युद्धके लिये आकर कुरुक्षेत्र में स्थितहुये और दुर्योधनपूर्वक कौरव महारथी भी भली भांति स्थितहुये ॥२॥ तदनन्तर रथी व अतिरथी योधाओं के गिनने के लिये भीष्मसे कहेहुये वचन को भेदिहा दूतोंके द्वारा सुनकर युधिष्ठिरजी राजाओं के मध्यमें

बोले ॥ ३ ॥ कि हे कृष्णजी ! भीष्मजीने जब रथी व अतिरथी योधाओं का वर्णन किया तब दुर्योधननै अपने महारथियोंसे यह पूँछा ॥ ४ ॥ कि सेना समेत इन पाण्ड-
वोंको कितने समय में कौन वीर मारैगा भीष्मजीने व कृपाचार्य ने महीनाभर में मारनेकी प्रतिज्ञा किया ॥ ५ ॥ वैसेही द्रोणाचार्य ने एक दिनमें व अश्वत्थामा ने
युद्धमें दश दिनमें मारनेकी प्रतिज्ञा किया व सदैव मुझको भय करनेवाले कर्णने छह दिनमें मारने की प्रतिज्ञा किया ॥ ६ ॥ और मैं उसको अपने महारथियों से पूँछता
हूं कि कौन योधा कितने समय से मारैगा राजा युधिष्ठिर का यह वचन सुनकर अर्जुनजी वचन को बोले ॥ ७ ॥ कि हे युधिष्ठिरजी ! भीष्मादिकों ने यह अयोग्य

न्महारथान् ॥ ४ ॥ ससैन्यान्पाण्डवानेतान्हन्यात्कालेनकेनकः ॥ मासेनतुप्रतिज्ञातुं भीष्मेणचकृपेणच ॥ ५ ॥
तथाद्रोणेनचाह्नाच दशाभिर्द्रौणिनारणे ॥ षड्भिःकर्णेनचतथा सदाममभयंकृता ॥ ६ ॥ तदहंस्वांश्चपृच्छामि केनका
लेनहन्तिकः ॥ एतच्छ्रुत्वावचोराज्ञः फाल्गुनोवाक्यमब्रवीत् ॥ ७ ॥ अयुक्तमेतद्भीष्माद्यैः प्रतिज्ञातंयुधिष्ठिर ॥ यतोजये
चविजये निश्चयोहिमृषान्नृप ॥ ८ ॥ तत्रापियेसन्तिनृपाः सन्नद्धारणसंस्थिताः ॥ पश्यैतान्पुरुषव्याघ्रान् कालकल्पा
न्दुरासदान् ॥ ९ ॥ द्रुपदञ्चविराटञ्च धृष्टद्युम्नञ्चकैकयम् ॥ सहदेवंसात्यकिञ्च चेकितानञ्चदुर्जयम् ॥ १० ॥ धृष्टद्युम्नं
सपुत्रञ्चमहावीर्यंघटोत्कचम् ॥ भीमादींश्चमहेष्वासान् केशवञ्चापराजितम् ॥ ११ ॥ मन्येहमेकस्त्वेतेषां हन्यात्कौरव
वाहिनीम् ॥ सन्नद्धाःप्रतिदृश्यन्ते भीष्माद्यावहवोरथाः ॥ १२ ॥ तेभ्योभयंनकार्यन्ते राजन्नेतेमृगाइव ॥ अस्माकंधनु
षांघोषैरिदानीमेवभारत ॥ १३ ॥ कौरवाविद्रविष्यन्ति सिंहत्रस्तामृगाइव ॥ वृद्धाद्भीष्माद्द्विजाद्वृद्धाद्द्रोणादपिकृपाद्

प्रतिज्ञा कियाहै क्योंकि हे राजन् ! जीत व हारमें निश्चय झूंठही होतीहै ॥ ८ ॥ रणमें तैयार होकर जो भलीभांति स्थित राजा लोगहैं कालके समान असह्य इन नरो-
त्तमोंको देखिये ॥ ९ ॥ द्रुपद, विराट, धृष्टद्युम्न, कैकय, सहदेव, सात्यकी व दुःख से जीतनेयोग्य चेकितान ॥ १० ॥ और पुत्र समेत धृष्टद्युम्न व बड़े पराक्रमी घटो-
त्कच तथा बड़े धनुर्धर भीमादिकों को और दूसरों से न हारेहुये कृष्णजी को देखिये ॥ ११ ॥ मैं यह मानताहूं कि इनके मध्यमें एकवीर कौरवों की सेनाको नाशकरै
है भीष्मादिक बहुत से रथी वीर जो तैयारहुये देख पड़ते हैं ॥ १२ ॥ हे राजन् ! तुमको उनसे भय न करना चाहिये ये मृगोंकी नाईं हैं हे भारत ! हम लोगोंके धनुषों के

शब्दोंसे इसीसमय कौरव भगजावैंगे जैसे कि सिंहसे डरेहुये मृगहोवैं बूढ़े भीष्मसे व वृद्ध द्रोणाचार्य द्विजसे व वृद्ध कृपाचार्यसे भी ॥१३।१४॥ और द्रोणके पुत्र दुर्बुद्धि तथा मूर्ख अश्वत्थामा से क्या डर है अथवा हे भारत ! चित्तके आनन्द के लिये शत्रुवों की सेनाओं में वधका जानना चाहते हो तो मेरा वचन सुनिये कि समरमें मैं एकही होऊं और सब रथी योधा खडेहोवैं ॥ १५ । १६ ॥ तो एक दिनमें भी सेना संयुत सब कौरवोंको भगादेऊं इस प्रकार अर्जुन का वचन सुनकर हँसतेहुये भीम के पौत्र बर्बरीक बोले ॥ १७ ॥ कि जिसने गुप्तक्षेत्र में तपस्या किया व जिसने देवियों को प्रसन्न कियाहै उसकी भुजाओं का बल अतुल है और उसका कहाहुआ

पि ॥ १४ ॥ बालिशात्किम्भयंद्रौणेर्द्रोणपुत्रस्यदुर्मतेः ॥ अथवाचित्तनिर्वृत्यै ज्ञातुमिच्छसिभारत ॥ १५ ॥ शत्रूणांप्रत्य नीकेषुवधंतच्छृणुमद्वचः ॥ एकोहमेवसंग्रामे सर्वेतिष्ठन्तुमेरथाः ॥ १६ ॥ एकाहेक्षिपयेसर्वान् कौरवान्सैन्यसंयुतान् ॥ इत्यर्ज्जुनवचःश्रुत्वास्मयन्भैमिसुतोब्रवीत् ॥ १७ ॥ येनतप्तंगुप्तक्षेत्रे येनदेव्यःसुतोषिताः ॥ तस्यातुलंबाहुबलं तेन चोक्तंनिशम्यताम् ॥ १८ ॥ यद्ब्रवींमिवचःसत्यं शृणुध्वंतन्नराधिपाः ॥ आत्मनोवीर्यसदृशं केवलंनतुदर्पतः ॥ १९ ॥ यदार्येणप्रतिज्ञातमर्ज्जुनेनमहात्मना ॥ नमर्षयामितद्वाक्यं कृताक्षेपोमहानयम् ॥ २० ॥ सर्वेभवन्तस्तिष्ठन्तु सार्ज्जुनाः सहकेशवाः॥एकान्मुहूर्त्ताद्भीष्मादीन्सर्वान्नेष्येयमक्षयम् ॥ २१ ॥ मयितिष्ठतिकेनापि शस्त्रंग्राह्यंनसंयुगे ॥ स्वधर्मश पथोवोस्तु मृतेग्राह्यंततोमयि ॥ २२ ॥ पश्यध्वमेवलंबाह्वोर्देव्याराधनसम्भवम् ॥ माहात्म्यंगुप्तक्षेत्रस्य तथामुक्तिश्चपा

वचन सुनाजावै ॥ १८ ॥ हे राजाओ ! मैं जिस सत्य वचनको कहताहूं उसको सुनिये जोकि केवल अपने बलके समानहै गर्वसे नहीं कहाजाताहै ॥१९॥ महात्मा व आर्य अर्जुनजी ने जो प्रतिज्ञा कियाहै उस वचन को मैं नहीं सुनताहूं यह किया हुआ बडाभारी आक्षेप (तिरस्कार) है ॥ २० ॥ अर्जुन समेत व कृष्णजी समेत आपलोग खडेरहिये मैं एकही मुहूर्त्त में भीष्मादिक सबोंको यमराज के स्थानमें प्राप्त करदूंगा ॥ २१ ॥ युद्धमें जबतक मैं टिकाहूं तबतक किसीको भी शस्त्र न ग्रहण करना चाहिये आपलोगों को अपने धर्मकी सौगन्द है कि जब मैं मरजाऊं तदनन्तर तुम सबोंको शस्त्र ग्रहण करना चाहिये ॥ २२ ॥ देवीके आराधन से

उपजेहुये मेरे बाहुबल को देखिये हे पाण्डवो ! गुप्तक्षेत्र के माहात्म्य व मुक्तिको देखिये ॥ २३ ॥ और मेरे भयङ्कर धनुष व अक्षय तरकसों को देखिये जिस लिये
कि देवीजी से दीहुई तलवार है उसी कारण मैं इस वचन को कहताहूं ॥ २४ ॥ उसका ऐसा वचन सुनकर क्षत्रिय लोग विस्मय को प्राप्तहुये और निन्दा कियेहुये
अर्जुनजीने लजाकर श्रीकृष्णजीको देखा ॥२५॥ उन लज्जित अर्जुनजीसे कृष्णजी उत्तम वचन बोले कि घटोत्कचके पुत्र बर्बरीकने यह अपने योग्यही कहाहै ॥२६॥
पुरातन समय इसने पातालमें नव करोड़ संयुत पलाशी दैत्यको क्षणही भरमें माराहै यह बड़ा अद्भुत वृत्तान्त सुनाजाताहै ॥२७॥ फिर इससे मैं यह पूंछूंगा कि किस

ण्डवाः ॥ २३ ॥ पश्यध्वंमेधनुर्घोरं तूणीरावक्षयौतथा ॥ खड्गञ्चदेव्यादत्तं यत्ततोवच्मिवचस्त्विदम् ॥२४॥ इतितस्य
वचःश्रुत्वाक्षत्रियाविस्मयंययुः ॥ अर्जुनश्चकृताक्षेपोलज्जितःकृष्णमैक्षत ॥ २५ ॥ तमाहलज्जितंकृष्णः फाल्गुनंपर
मंवचः ॥ आत्मौपयिकमेवेदं भैमिपुत्रोभ्यभाषत ॥ २६ ॥ नवकोटियुतोऽनेन पलाशीनिहतःपुरा ॥ क्षणादेवचपाता
लेश्रूयतेमहदद्भुतम् ॥ २७ ॥ पुनःपृच्छामहेत्वेनं केनोपायेनकौरवान् ॥ मुहूर्ताद्धंसिब्रूहित्वंपृच्छयतांचाहतंजयः ॥ २८ ॥
ततःस्मयन्तंदेवेन्द्रो भैमिपुत्रमभाषत ॥ भीष्मद्रोणकृपद्रौणिकर्णदुर्योधनादिभिः ॥ २९ ॥ गुप्तांत्र्यम्बकदुर्जेयां सेनांहं
सिकथंक्षणात् ॥ अयंसहान्विस्मयस्ते वचसाभैमिनन्दन ॥ ३० ॥ सम्भूतःसर्वराज्ञाञ्च फाल्गुनस्यचधीमतः ॥ तद्ब्रू
हिकेनोपायेनमुहूर्ताद्धंसिकौरवान् ॥ ३१ ॥ उपायवीर्यन्तेज्ञात्वा विश्वस्तावयमप्युत ॥ इत्युक्तोवासुदेवेन सर्वभूतेश्वरेण

उपायसे तुम मुहूर्त्तभरमें कौरवों को मारोगे यह कहिये अर्जुनजीने उन श्रीकृष्णजी से कहा कि पूंछिये ॥२८॥ तदनन्तर मुसकराते हुये देवेन्द्र कृष्णजी ने घटोत्कच
के पुत्र बर्बरीक से कहा कि भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, कर्ण व दुर्योधनादिकों से रक्षित व शिवजी से भी दुर्जेय कौरवों की सेनाको कैसे क्षणभर में मा-
रोगे हे भैमिपुत्र ! तुम्हारे वचन से यह बड़ाभारी आश्चर्य ॥ २९ । ३० ॥ सब राजाओं के व बुद्धिमान् अर्जुनजी के हुआहै इस लिये कहिये कि किस उपाय से
तुम मुहूर्त्तभर में कौरवों को मारोगे ॥ ३१ ॥ तुम्हारे उपाय का बल जानकर हमलोग भी विश्वास को प्राप्तहोवैं समस्त प्राणियों के स्वामी कृष्णजी से

ऐसा कहाहुआ ॥ ३२ ॥ सिंहके समान वक्षस्थलवाला, पर्वत के समान तथा अनेक प्रकार के भूषणोंसे भूषित और घड़ेके समान मुखवाला तथा घटशब्द के समान हास्यवाला, ऊपर उठेहुये बालोंवाला व अतिप्रकाशमान ॥ ३३ ॥ व बिजली के समान नेत्रोंवाला और पवन के समान वेगवान् जोकि क्षणभर में संसार को नाश करदेवै देवीजीसे दियेहुये अतुल बलवाला वह बर्बरीक बोला ॥ ३४ ॥ कि यदि उपाय के देखने में तुमलोगों का मनहै तो मैं दिखलाताहूं उसको कृष्णसमेत पाण्डव लोग देखैं ॥ ३५ ॥ ऐसा कहकर धनुष को चढ़ाकर शीघ्रता करतेहुये उसने गांसीरहित भी बाणको लगाया जोकि सिन्दूर के समान भस्मसे सम्पूर्ण था ॥ ३६ ॥

च ॥ ३२ ॥ सिंहवक्षाःपर्वताभो नानाभूषणभूषितः ॥ घटास्योघटहासश्च ऊर्ध्वकेशोतिदीप्तिमान् ॥ ३३ ॥ विद्युदक्षोवा युजवोयःक्षणान्नाशयेज्जगत् ॥ देवीदत्तातुलबलो वर्वरीकोभ्यभाषत ॥ ३४ ॥ यदिवोमानसंवीरा उपायस्यप्रदर्शने ॥ तदहंदर्शयाम्येष पश्यध्वंसहकेशवाः ॥ ३५ ॥ इत्युक्त्वाधनुरारोप्यसंदधेविशिखंत्वरन्॥ निःशल्यंचापिसम्पूर्णं सिन्दूरामेनभस्मना ॥ ३६ ॥ आकर्णमाकृष्यचतंमुमोच मुखादथोद्भूतमभूच्चभस्म ॥ सेनाद्वयेतच्चपपातशीघ्रंतत्रैवयत्रास्ति चमूःसमस्ता ॥ ३७ ॥ सर्वमर्मसुभीष्मस्य कण्ठेराधेयद्रोणयोः ॥ ३८ ॥ ऊरौदुर्योधनस्यापि शल्यस्यापिचवक्षसि ॥ कण्ठेचशकुनेर्नेत्रे भगदत्तस्यचापतत् ॥ ३९ ॥ कृष्णस्यपादतलकेकण्ठेद्रुपदमत्स्ययोः ॥ शिखण्डिनस्तथाकुक्षौकण्ठे सेनापतेस्तदा ॥ ४० ॥ पपातरक्तंतद्भस्म तत्रतेषाञ्चमर्मसु ॥ केवलंपञ्चपाण्डूनांकृपद्रौण्योश्चनास्पृशत् ॥ ४१ ॥ इतिकृ

कानतक खींचकर उस बाणको छोड़ा इसके अनन्तर बाणके मुखसे भस्म उड़ी और वह भस्म शीघ्रही दोनों सेनाओं में वहीं गिरी जहां कि सब सेनाथी ॥ ३७ ॥ भीष्मजी के सब सुकुमार अंगोंमें और कर्ण व द्रोणाचार्य के कण्ठमें वह भस्म गिरी ॥ ३८ ॥ व दुर्योधन की जांघ पै व शल्यके भी वक्षस्थल में वह भस्म गिरी और शकुनि के भी कण्ठमे व भगदत्त के नेत्रमें भस्मगिरी ॥ ३९ ॥ और कृष्ण जीके चरणके नीचे व द्रुपद और मत्स्यके कण्ठमें गिरी और उस समय शिखण्डी की कोखिमें व सेनापति के कण्ठमें गिरी ॥ ४० ॥ वह लालभस्म वहांपर उन योधाओं के सुकुमार अङ्गोंमें गिरी केवल पांच पाण्डवों और कृपाचार्य व अश्वत्थामा

को उसने नहीं स्पर्श किया ॥ ४१ ॥ यह कर्म करके तदनन्तर फिर वर्बरीक बोला कि आपलोगोंने इसको देखा जो कि मैंने सुकुमार अङ्गको देखा ॥ ४२ ॥ इस समय
मैं इनके मर्मस्थानों में देवीजीसे दियेहुये अमोघपैनेबाणों को मारूंगा उनसे ये क्षण भरमें मरजावैंगे ॥ ४३ ॥ तुम लोगोंको अपने धर्मकी सौगन्द है कि कहीं किसीको
शस्त्र न लेना चाहिये मैं मुहूर्त्तभर में याने कच्ची दो घड़ी में इन शत्रुओं को पैने बाणों से गिरादूंगा ॥ ४४ ॥ तदनन्तर विस्मय चित्तवाले युधिष्ठिर इत्यादिकों का
बड़ाभारी शब्द हुआ जोकि बहुत अच्छा बहुत अच्छा ऐसा कहरहेथे ॥ ४५ ॥ और क्रोधित होतेहुये कृष्णजी ने पैने चक्रसे इस प्रकार कहतेही हुये इस वर्बरीक के

त्वाततोभूयोबर्बरीकोभ्यभाषत ॥ दृष्टंभवद्भिरेवंयन्मयामर्मनिरीक्षितम् ॥ ४२ ॥ अधुनापातयिष्यामि मर्मस्वेषांशि
ताञ्छरान् ॥ देवीदत्तानमोघाख्यांस्तैर्मरिष्यन्त्यमीक्षणात् ॥ ४३ ॥ शपथोवःस्वधर्मस्य शस्त्रंग्राह्यंनचकचित् ॥ मुहू
र्त्तात्पातयिष्यामि शत्रूनेताञ्छितैःशरैः ॥ ४४ ॥ ततोविस्मितचित्तानांयुधिष्ठिरपुरोगताम् ॥ आसीन्निनादःसुमहान्
साधुसाध्वितिशंसताम् ॥ ४५ ॥ वासुदेवस्तुसंक्रुद्धश्चक्रेणनिशितेनच ॥ एवंब्रुवतएवास्यशिरश्छित्त्वान्यपातयत ॥ ४६ ॥
ततःक्षणात्सर्वमासीदविघ्नंराजमण्डलम् ॥ व्यलोकयन्केशवन्ते विस्मिताश्चाभवन्भृशम् ॥ ४७ ॥ किमेतदितिप्राहु
अहतोभैमिसुतःकथम् ॥ पाण्डवाश्चापिमुमुचुरश्रूणिसहपार्थिवाः ॥ ४८ ॥ हाहापुत्रेतिचगृणन्प्रस्खलन्तःपदेपदे ॥ घ
टोत्कचोऽपतद्दीनःपुत्रोपरिविमूर्च्छितः ॥ ४९ ॥ एतस्मिन्नन्तरेदेव्यश्चतुर्दशसमाययुः ॥ ५० ॥ सिद्धाम्बिकाक्रोधमता
कपाली तारासुवर्णाचत्रिलोकजेत्री ॥ भाणेश्वरीचर्चिकाचैकवीरा योगेश्वरीचण्डिकात्रैपुराच ॥ ५१ ॥ भूताम्बिकाहर

शिरको काटकर गिरादिया ॥ ४६ ॥ तदनन्तर क्षणभर समस्त राजमण्डल विघ्नरहित हुआ और उन्होंने श्रीकृष्णजीको देखा व बहुतही विस्मय में प्राप्तहुये ॥४७॥ व
उन्होंने कहा कि यह क्या हुआ घटोत्कच का पुत्र वर्बरीक कैसे मारागया और राजाओं समेत पाण्डव लोगोंने आसुवोंको छोडा ॥ ४८ ॥ जोकि हा पुत्र! हा पुत्र! ऐसा
कहतेहुये पग २ पै लरखराते थे और दुःखित घटोत्कच मूर्च्छित होकर पुत्रके ऊपर गिरपडा ॥ ४९ ॥ इसी अवसर में चौदह देवियां भलीभांति आगई ॥ ५० ॥ सिद्धा-
म्बिका, क्रोधमता, कपाली, तारा, सुवर्णा न त्रिलोकजेत्री, भाणेश्वरी, चर्चिका, एकवीरा, योगेश्वरी, चण्डिका और त्रैपुरा ॥ ५१ ॥ भूताम्बिका व हरसिद्धि इनके समीप

प्राप्तहोकर इसके उपरान्त वे भयङ्कर देवियां स्थितहुईं तदनन्तर श्रीचण्डिका जी घटोत्कच को समझा कर व बड़ेस्वर से वचन बोलीं कि ॥ ५२ ॥ हे राजाओ! सब लोग सुनिये कि जिसकारण से विदितात्मा कृष्णजी ने बड़े बलवान् वर्वरीक को माराहै ॥ ५३ ॥ पुरातन समय सुमेरुगिरि के मस्तक पै भारसे पीड़ित पृथ्वी इकट्ठाहुये इन देवताओं से यह बोली कि मेरे भार को हरलीजिये ॥ ५४ ॥ तदनन्तर ब्रह्माने विष्णुजी से कहा कि तुम उपकार करो हे प्रभो! देवता तुम्हारे अनुगामी होवैंगे आप भारके हारक होवो ॥ ५५ ॥ तदनन्तर विकाररहित विष्णुजी ने उस वचनको वैसाही माना इसी अवसर में जो चौरासी करोड़ राक्षस थे उनके स्वामी

सिद्धिस्तथामुंसंप्राप्यतस्थुस्त्वथताभयंकराः॥ श्रीचण्डिकाश्वास्यततोघटोत्कचंप्रोवाचवाक्यंमहतास्वरेण॥ ५२॥ शृणुध्वंपार्थिवाःसर्वे कृष्णेनविदितात्मना॥ हेतुनायेननिहतोवर्वरीकोमहाबलः॥ ५३॥ मेरुमूर्द्धिपुरापृथ्वी समवेतान्दिवौकसः॥ भाराक्रान्ताजगादैतान् भारोपह्रियतांमम॥ ५४॥ ततोब्रह्माप्राहविष्णुं भगवंस्त्वमुपाकुरु॥ देवास्त्वानुगमिष्यन्तिभारहारीभवप्रभो॥ ५५॥ ततस्तथेतितन्मेने वचनंविष्णुरव्ययः॥ एतस्मिन्नन्तरेबाहुमुद्धृत्योच्चैरभाषत॥ ५६॥ सूर्यवर्चेतिरक्षेन्द्रश्चतुराशीतिकोटयः॥ किमर्थंमानुषेलोके भवद्भिर्जन्मकार्यते॥ ५७॥ मयितिष्ठतिदोषाणामनेकानामिहास्यति॥ सर्वेभवन्तोमोदध्वंस्वर्गेषुमहविष्णुना॥ ५८॥ अहमेकोवतीर्य्यैनान्हनिष्यामिभुवोभरान्॥ स्वधर्मशपथावोवै सन्तिचेज्जन्मप्राप्स्यथ॥ ५९॥ इत्युक्तेवचनेब्रह्मा क्रुद्धस्तंसमभाषत॥ दुर्मतेसर्वदेवानामविषह्यंमहाभरम्॥ ६०॥ स्वसाध्यंब्रूहिदनुजशापयोग्योसिबालिश॥ देशकालोचितंस्वीयं परस्यचचलंहृदा॥ ६१॥ अवि

सूर्यवर्चा राक्षसेन्द्र ने भुजाको उठाकर उच्चप्रकार से कहा कि जब अनेक दोषोंको नाश करनेवाला मैं यहां टिकाहूं तब मनुष्यलोक में आपलोग क्यों जन्म कीजियेगा विष्णुजी समेत आप सबलोग स्वर्गमें आनन्द कीजिये ॥ ५६ । ५७ । ५८ ॥ और एक मैंही अवतार को लेकर पृथ्वीके भाररूप इन सबोंको मारूंगा यदि तुम लोग जन्मको प्राप्तहोवो तो तुम सबोंको अपने धर्मकी सौगन्द है ॥ ५९ ॥ ऐसा वचन कहनेपर क्रोधित होकर ब्रह्माने उससे कहा कि हे दुर्बुद्धे! जो महाभार सब देवताओं के असह्य है ॥ ६० ॥ उसको अपना से साधनेयोग्य कहतेहो इस लिये हे मूर्ख, दनुज! तुम शापके योग्यहौ क्योंकि देश व समय के योग्य तथा अपने

व पराये पराक्रम को हृदयसे ॥ ६१ ॥ न विचारकर जो पुरुष कहताहै यह दण्डके योग्य होताहै इस कारण पृथ्वीका भार हरने में जब युद्धका प्रारम्भ होवैगा ॥ ६२ ॥
तुम कृष्णजीसे शरीर नाशको प्राप्त होगे इसमें सन्देह नहीं है इसप्रकार ब्रह्माजीसे शापित इस सूर्यवर्चाने विष्णुजीसे यह याचना किया ॥ ६३ ॥ कि यदि इस भांति
नाशहोवे तो हे देव ! मैं एक प्रार्थना करताहूं कि जन्म से लगाकर मुझे सब प्रयोजनोंको साधनेवाली बुद्धिदीजिये ॥ ६४ ॥ तदनन्तर देवताओं की सभामें श्री-
कृष्णजी ने यह कहा कि वैसाही होगा और तुम्हारे शिरको देवियां पूजैंगी और तुम पूजनीय होगे ॥ ६५ ॥ इस प्रकार कहेहुये इसने व आपलोग देवताओंने अव-

**चार्येणपुरुषोवक्तिसोर्हतिदण्डनम् ॥ तस्माद्भूभारहरणे युद्धस्योपक्रमेसति ॥ ६२ ॥ शरीरनाशंकृष्णात्त्वमवाप्स्यसि
नसंशयम् ॥ एवंशप्तोब्रह्मणासौविष्णुमेतदयाचत ॥ ६३ ॥ यद्येवंभवितानाशस्तदेकंदेवप्रार्थये ॥ जन्मप्रभृतिमेदेहि
मतिंसर्वार्थसाधनीम् ॥ ६४ ॥ ततस्तथेतिसंप्राहकेशवोदेवसंसदि ॥ शिरस्तेपूजयिष्यन्तिदेव्यःपूज्योभविष्यसि ॥६५॥
इत्युक्तश्चावतीर्णोसौ भवन्तश्चतथासुराः ॥ सूर्यवर्चाःसचायंहिनिहतोभैमिपुत्रकः ॥ ६६ ॥ प्राक्शापंब्रह्मणस्स्मृत्वाहतोऽ
नेनमहात्मना ॥ तस्माद्दोषोनकृष्णोऽस्मिन्द्रष्टव्यःसर्वभूमिपैः ॥ ६७ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ यदुक्तंप्रिययादेव्या तत्त
थैवनसंशयः ॥ यद्येवमधुनानैव हन्यांब्रह्मवचोऽन्यथा ॥ ६८ ॥ ततोमयेदितिस्मृत्वा मयासौविनिपातितः ॥ ६९ ॥
गुप्तक्षेत्रेमयैवासौ नियुक्तोदेव्यनुस्मृतौ ॥ पूर्वंदत्तंवरंस्वीयंस्मरतादेवसंसदि ॥ ७० ॥ इत्युक्त्वाचण्डिकांप्राहदेविभक्त
शिरस्त्विदम् ॥ अभ्युक्षसुधयाशीघ्रमजरंचामरंव्यधाः ॥ ७१ ॥ यथाराहुशिरस्तद्वत्तच्छिरःप्रणनामतम् ॥ उवाच**

तार लियाहै वह सूर्यवर्चा यही घटोत्कच का पुत्रहै जोकि मारागया है ॥ ६६ ॥ पहले ब्रह्माके शापको स्मरणकर इन महात्माने इसको माराहै इसलिये सब राजा-
ओंको इन श्रीकृष्णजी में दोष न देखना चाहिये ॥ ६७ ॥ श्रीभगवान् कृष्णजी बोले कि प्यारी भगवतीजी ने जो कहाहै वह वैसाही है इसमें सन्देह नहीं है यदि
मैं इस समय इसको न मारूं तो ब्रह्माका वह वचन अन्यथा होगा यह स्मरणकर मैंने इसको मारडाला ॥ ६८ । ६९ ॥ और देवसभा मे पहिले दियेहुये अपने वर-
दानको स्मरण करतेहु मैंने गुप्तक्षेत्रमें इसको देवीके स्मरण में नियुक्त किया ॥ ७० ॥ यह कहकर चण्डिकाजी से कहा कि हे देवि ! इस भक्तके मस्तक को शीघ्रही

अमृतसे छिड़को और अजर अमर करो ॥ ७१ ॥ जैसे कि राहुका शिर हुआ है वैसेही होवै यह सुनकर उसके शिरने उन श्रीकृष्णजीको प्रणाम किया व कहा कि जिस प्रकार मैं युद्धको देखूं वह अनुमान कीजिये ॥ ७२ ॥ तदनन्तर मेघके समान गंभीर वचनवाले स्वामी श्रीकृष्णजी ने यह वचन कहा कि जबतक नक्षत्रों समेत पृथ्वी व चन्द्रमा सूर्य रहैंगे ॥ ७३ ॥ तबतक हे वत्स ! तुम सब मनुष्यों के पूजनीय होगे और समस्त देवीके लोकोंमें देवीकी नाईं विचरोगे ॥ ७४ ॥ व लोकोंमें अपने व देवीजी के भक्तोंको चाहेहुये अभिलाष को दोगे और वात, पित्त व कफमें उत्पन्न हुईं जो पीड़ायें बालकोंके होंगी उनको तुम सुखपूर्वक पूजन से शान्त करोगे और

यदिद्रक्ष्यामियुद्धंतदनुमन्यताम् ॥ ७२ ॥ ततःकृष्णोवचःप्राहमेघगम्भीरवाक्प्रभुः ॥ यावन्महीसनक्षत्रायावच्चन्द्र दिवाकरौ ॥ ७३ ॥ तावत्त्वंसर्वलोकानां वत्सपूज्योभविष्यसि ॥ देवीलोकेषुसर्वेषु देवीवद्विचरिष्यसि ॥ ७४ ॥ स्वभक्ता नाञ्चलोकेषु देवीनांदास्यसीप्सितम् ॥ बालानांयेभविष्यन्ति वातपित्तकफोद्भवाः ॥ ७५ ॥ पीडिकास्ताःसुखेनैवश मयिष्यसिपूजनात् ॥ इदञ्चशृङ्गमारुह्य पश्ययुद्धंयथाभवेत् ॥ ७६ ॥ धावन्त्येतेकौरवास्मान् वयंयास्यामस्तान्प्रति ॥ इत्युक्तेवासुदेवेनदेव्यश्चाम्बरमाविशन् ॥ ७७ ॥ बर्बरीकशिरश्चैवंगिरिशृङ्गमवापतत् ॥ देहस्यभूमिसंस्कारश्चाभवन्नै मूर्द्धनः ॥ ७८ ॥ ततोयुद्धंमहदभूत्कुरुपाण्डवसेनयोः ॥ ७९ ॥ अष्टादशाहंनिहता येचद्रोणकृपादयः ॥ दुर्योधनेहते क्रूरेह्यष्टादशादिनात्यये ॥ ८० ॥ युधिष्ठिरोज्ञातिमध्ये गोविन्दंसमभाषत ॥ पुरुषोत्तमसंग्रामेसुहृदःसन्तारितावयम् ॥ ८१ ॥

इस शिखर पै चढ़कर जिसभांति युद्धहोवै उसको देखिये ॥ ७५ । ७६ ॥ कि ये कौरव हमारे सामने दौड़ैंगे व हम लोग इनके सामने जावैंगे विष्णुजी के ऐसा कहने पर देवियां आकाश में प्रवेश होगईं ॥ ७७ ॥ और ऐसेही वह बर्बरीक का मस्तक पर्वत के शिखर पै प्राप्तहुआ व देहका भूमि में संस्कार हुआ और मस्तक का नहीं भया ॥ ७८ ॥ तदनन्तर कौरवों और पाण्डवोंकी सेनाओंका अठारह दिनतक बड़ाभारी युद्धहुआ ॥ ७९ ॥ और जो द्रोण व कृपाचार्य इत्यादिकथे वे मारेगयेव अठारह दिन बीत जानेपर जब क्रूर दुर्योधन मारागया तब ॥ ८० ॥ कुटुम्बियोंके मध्यमें युधिष्ठिरजी श्रीकृष्णजी से बोले कि हे पुरुषोत्तम ! युद्धमें हमलोगों की आपही

नाथने बार २ रक्षा किया हे पुरुषोत्तम, हरे! तुम्हारे लिये नमस्कारहै उनका वचन सुनकर ईर्षा समेत भीमसेनजी यह वचन बोले कि ॥ ८१।८२ ॥ हे राजेन्द्र! मैंने
धृतराष्ट्र के पुत्रोंका विनाश कियाहै उन मुझको निराकरणकर पुरुषोत्तम कृष्णजीको तुम क्यों मूर्खकी नाईं कहतेहो ॥ ८३ ॥ हे पाण्डव! धृष्टद्युम्न, अर्जुन व सा-
त्यकी और मुझको निराकरणकर ऐसा कहतेहो इस लिये हे युधिष्ठिर! तुमको धिक्कारहै ॥ ८४॥ अर्जुनजी बोले कि हे भीमसेनजी! ऐसा मत कहिये मत कहिये तुम
कृष्णजी को नहीं जानते हो क्योंकि मैंने व तुमने तथा अन्य ने शत्रुओं को नहीं माराहै ॥ ८५ ॥ चलताहुआ मैं उस समर में शत्रुओं को मारतेहुये एकही मनुष्य

त्वयैवनाथेनहरे नमस्तेपुरुषोत्तम ॥ श्रुत्वातस्यापिसासूयमिदंभीमोवचोऽब्रवीत् ॥ ८२ ॥ मयाध्वस्ताधार्तराष्ट्रास्तान्नि
राकृत्यमांनृप ॥ पुरुषोत्तमंकृष्णमिति मूढवत्किम्ब्रवीषित्वम् ॥ ८३ ॥ धृष्टद्युम्नंफाल्गुनञ्च सात्यकिंमाञ्चपाण्डव ॥
निराकृत्यब्रवीष्येवमतोधिक्त्वांयुधिष्ठिर ॥ ८४ ॥ अर्जुनउवाच ॥ मैवंमैवंभीमब्रूहिनत्वंवेत्सिजनार्दनम् ॥ नमयान
त्वयापार्थनान्येनापिहताद्विषः ॥ ८५ ॥ एकंहिसर्वदागच्छन्नरंपश्यामिसंयुगे ॥ निघ्नन्तंशात्रवांस्तत्र नजानेकोऽप्यसा
विति ॥ ८६ ॥ भीमउवाच ॥ विभ्रान्तोसिध्रुवंपार्थनात्रहन्तानरोपरः ॥ अथचेदस्तितत्पौत्रं शृङ्गस्थंवच्मिहन्तिकः ॥ ८७ ॥
उपसृत्यततोभीमो वर्वरीकमपृच्छत ॥ वदैतेकेननिहता धार्तराष्ट्राहिशात्रवाः ॥ ८८ ॥ वर्वरीकउवाच ॥ एकोमयापुमा
न्दृष्टो युध्यमानःपरैःसह ॥ स०यतःपञ्चवक्त्रःसदक्षिणेचैकवक्त्रकः ॥ ८९ ॥ स०यतोदशहस्तश्चधृतशूलाद्युदायुधः ॥

को देखताथा परन्तु मैं यह नहीं जानताहूं कि यह कौनहै ॥ ८६ ॥ भीमसेनजी बोले कि हे अर्जुनजी! तुम निश्चयकर भ्रमित हो क्योंकि इस समरमें अन्य नर
मारनेवाला नहीं था अथवा यदि अन्यहै तो शिखर पै टिकेहुये पौत्र वर्वरीक से पूछताहूं कि कौन मारता था ॥ ८७ ॥ तदनन्तर भीमसेनने समीप जाकर वर्वरीकसे
पूंछा कि यह कहिये कि धृतराष्ट्र के पुत्रों दुर्योधनादिक शत्रुओं को किसने माराहै ॥ ८८ ॥ वर्वरीक बोले कि शत्रुओं के साथ लडतेहुये एक पुरुषको मैंने देखाहै वह
बायें ओर पांचमुखोंवाला व दाहिनेओर एक मुखवाला था ॥ ८९ ॥ व जिसके बायेंओर दशहाथ और शूलादिक उठायेहुये अस्त्रोंको धारेथा और दाहिनेओर चार

हाथोंवाला तथा चक्रादिक उठायेहुये अस्त्रोंको धारण कियेथा ॥ ९० ॥ व बायेंओर जटाधारी तथा दाहिनेओर मुकुटको धारण कियेथा और बायेंओर भस्मको धारण
किये व दाहिने चन्दन समेत था ॥ ९१ ॥ व बायेंओर चन्द्रमाको धारण किये तथा दाहिनेओर कौस्तुभमणि की शोभाथी उसके दर्शन से मेरेभी बडाभारी डर उत्पन्न
हुआ था ॥ ९२ ॥ मैं ऐसे मनुष्यको देखाहै अन्य मनुष्य नहीं है जोकि उनको माराहै ऐसा कहनेपर आकाशसे बडे प्रकाशवाली पुष्पवृष्टि हुई ॥ ९३ ॥ और देवताओ
के बाजा बजनेलगे व उन देवताओ ने बहुत अच्छा बहुत अच्छा ऐसा कहा और पाण्डवलोग विस्मयको प्राप्तहुये व उन्होंने पुरुषोत्तम श्रीकृष्णजीको प्रणाम

दक्षिणेचचतुर्हस्तोधृतचक्राद्युदायुधः ॥ ९० ॥ सव्यतश्चजटाधारी दक्षिणेमुकुटोच्चयः ॥ सव्यतोभस्मधारीच दक्षिणे
चसचन्दनः ॥ ९१ ॥ सव्यतश्चन्द्रधारीचदक्षिणेकौस्तुभद्युतिः ॥ ममापितद्दर्शनतोमहद्भयमजायत ॥ ९२ ॥ ईदृशो
मेनरोदृष्टोनचान्योयोजघानतान् ॥ इत्युक्तेपुष्पवर्षन्तु खादासीत्सुमहत्प्रभम् ॥ ९३ ॥ सस्वनुर्देववाद्यानिसाधुसाध्विति
तेजगुः ॥ विस्मिताःपाण्डवास्त्वासन् प्रणेमुःपुरुषोत्तमम् ॥ ९४ ॥ विस्मितश्चाभवद्भीमो निश्वासांश्चाप्यमुञ्चत ॥ तत
स्तंकेशवःस्वामी समादायकरेदृढम् ॥ ९५ ॥ कुरुशार्दूलएहीति प्रोक्त्वासंस्मारकाश्यपम् ॥ आरुह्यगरुडंपश्चात्स्मृत
मात्रमुपस्थितम् ॥ ९६ ॥ भीमेनसहितोव्योम्नि प्रयातोदक्षिणांदिशम् ॥ ततोर्णवमतीत्यैवसुवेलंचमहागिरिम् ॥ ९७ ॥
लङ्कासमीपेदृष्ट्वैवसरःकृष्णोब्रवीद्वचः ॥ कुरुशार्दूलपश्येदं सरोद्वादशयोजनम् ॥ ९८ ॥ प्रविश्यैतत्सरःशीघ्रमानया
स्यतलात्मृदम् ॥ इत्युक्तोगरुडाच्छीघ्रं न्यपतत्सजलेबली ॥ ९९ ॥ योजनंचागमद्भूच्छन्नधोनोतामपश्यत ॥ ततोभी

किया ॥ ९४ ॥ और भीमसेनजी विस्मितहुये व श्वासोंको छोड़नेलगे तदनन्तर स्वामी श्रीकृष्णजीने उन भीमसेनजी का हाथ पकडकर ॥ ९५ ॥ व हे कुरुश्रेष्ठ ! आइये
ऐसा कहकर गरुडजी को स्मरण किया पश्चात् स्मरणमात्र से समीप प्राप्तहुये गरुड़ पै चढ़कर ॥ ९६ ॥ भीमसेन समेत श्रीकृष्णजी आकाश में दक्षिण दिशाको
चलेगये तदनन्तर समुद्र व सुवेल नामक महापर्वत को नांघकर ॥ ९७ ॥ लङ्काके समीप तड़ागको देखकर श्रीकृष्णजी वचन बोले कि हे कुरुश्रेष्ठ ! बारह योजन
याने अड़तालिस कोस चौड़े इस तड़ाग को देखिये ॥ ९८ ॥ और इस तड़ाग में पैठ कर इसके नीचेसे शीघ्रही मिट्टीको लाइये ऐसा कहेहुये वे बलवान् भीमसेनजी

जलमें शीघ्रही कूदपड़े ॥ ९९ ॥ व योजनभर गये और जातेहुये उन्होंने नीचे उस मिट्टीको न देखा तदनन्तर भस्महुये बलवाले भीमसेनजी निकलकर कृष्णजी से
बोले ॥ १०० ॥ कि यह बडाभारी तडाग गहरा है कितेक महाबलवान् लोग मुझ को खानेलगे तब किसी प्रकार से मै निकला ॥ १ ॥ इस प्रकार कहेहुये तेजस्वी
श्रीकृष्णजी हँसतेहुये बडेभारी तड़ाग को अपने अँगूठे से ऊपर फेंकदिया तब वह नीचेका भाग ऊपरहोगया ॥ २ ॥ उसको देखकर विस्मयमें प्राप्त होतेहुये भीम-
सेनजी श्रीकृष्णजीसे बोले कि हे श्रीकृष्णजी! यह क्याहै इसको मुझसे कहिये ॥ ३ ॥ श्रीभगवान् कृष्णजी बोले कि पुरातन समय कुम्भकर्ण ऐसा प्रसिद्ध राक्षस
हुआहै श्रीरामजी के बाणसे मारेहुये उस दुर्बुद्धिका मस्तक कटगया है ॥ ४ ॥ हे भीमसेनजी! उसके शिरके तालुका यह बारह योजन चौड़ा खण्डहै जोकि

सोविनिःसृत्य भस्मवीर्योह्यभाषत ॥ १०० ॥ अगाधमेतत्सुमहत्सरः कैश्चिन्महाबलैः ॥ अहंखादितुमारब्धः कथंचिच्चा
पिनिर्गतः ॥ १ ॥ एवमुक्तोहसन्कृष्ण उच्चिक्षेपमहत्सरः ॥ स्वेनाङ्गुष्ठेनतेजस्वी तदधोर्ध्वमजायत ॥ २ ॥ तदृष्ट्वावि
स्मितःप्राहकिमिदंकृष्णब्रूहिमे ॥ ३ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ कुम्भकर्णइतिख्यातः पूर्वमासीन्निशाचरः ॥ रामबाणहतस्या
मूच्छिरश्छिन्नंसुदुर्मतेः ॥४॥ शिरसस्तस्यतालुक्यंखण्डमेतद्वृकोदर ॥ योजनद्वादशायामं मृदिविप्रंविचूर्णित
म् ॥ ५ ॥ विधृतस्त्वन्तुयस्तैश्च सर्पगेहाभिधासुराः ॥ त्रिकूटस्यशिलाभिश्च चूर्णितायेचकोटिशः ॥ ६ ॥ एतेहिविश्वरिपु
वोनिहताःस्युस्त्वयातः ॥ गच्छामपाण्डवान्भीम द्रोणोहित्वरतेद्दृढम् ॥ ७ ॥ ततोभीमःप्रणम्याह मनोवाक्कायबुद्धि
भिः ॥ कृतमाजन्मनःपूर्वं कुकृतंक्षमकेशव ॥ ८ ॥ पुरुषोत्तमभवान्नाथो बालिशस्यप्रसीदमे ॥ ततःक्षान्तमितिप्रोक्तं

मिट्टीमें फेंकागया व चूर्णकर डालागयाथा ॥ ५ ॥ और जिन्होंने तुमको पकड़लिया था वे सर्पगेह नामक दानव हैं जोकि करोड़ो दानव त्रिकूट पर्वत की शिलाओं से
मारेगये हैं ॥ ६ ॥ संसार के शत्रु इन दानवों को मैंने यत्नसे माराहै हे भीमसेनजी! मैं पाण्डवों के समीप जाताहूं क्योंकि द्रोणाचार्यजी दृढ़तासे शीघ्रता करते
हैं ॥७॥ तदनन्तर भीमसेनजीने प्रणामकर कहा कि हे केशवजी! पुरातन समय मैंने जन्मसे लगाकर मन, वचन, शरीर व बुद्धिसे जो पाप कियाहो उसको क्षमा
कीजिये ॥ ८ ॥ हे पुरुषोत्तम! आप स्वामीहो इससे मुझ मूर्खके ऊपर प्रसन्नहोवो तदनन्तर श्रीकृष्णजी ने यह कहा कि मैंने क्षमा किया उसके उपरान्त भीमसेन

समेत श्रीकृष्णजी ॥ ९ ॥ फिर भी समर के आंगन में आकर बर्बरीक से वचन बोले कि हे सुहृदय बर्बरीक ! समस्त लोकोंमें नित्यही ॥ १० ॥ सब मनुष्यों से पूजित होकर और उनको उत्तमवरों को देवो और समस्त क्षेत्रोत्तमों में उत्तम गुप्तक्षेत्र तुमको न छोडना चाहिये ॥ ११ ॥ और बाहरस्थल में तुम्हारा निवासहोवै और हमारा जो पातक है उसको क्षमा कीजिये ऐसा कहेहुये बर्बरीकजी उन कृष्णजीको प्रणामकर प्रसन्नतासे अपनी इच्छापूर्वक चलेगये ॥ १२ ॥ और श्रीकृष्णचन्द्रभी अन्यकार्यों को कर स्वर्गको चलेगये हे ब्राह्मणो ! आपलोगों से यह बर्बरीककी उत्पत्ति वर्णन कीगई ॥ १३ ॥ और इनके स्तोत्रको कहताहूं कि जिससे यक्षराज बर्बरीक प्रसन्न होतेहैं ॥ १४ ॥ हे चौरासी करोड दानव परिवारवाले, सूर्यवर्चा नामक, यक्षराज ! आपकी जयहो जयहो हे पृथ्वी के भार हरने में प्रवृत्तिके कारण पायेहुये शापसे राक्षसयोनि में प्राप्त उत्पत्तिवाले ! आपकी जयहो हे कामकटंकटाकी कुक्षिके राजहंस ! आपकी जयहो ॥ १५ ॥ हे घटोत्कच के आनन्द को बढानेवाले, बर्बरीक नामक ! आपकी जयहो हे श्रीकृष्णजीके उपदेश से गुप्तक्षेत्र में देवीजीके समाराधनसे पायेहुये अतुल बलवाले ! आपकी जयहो हे विजय को सिद्धि देनेवाले ! आपकी जयहो ॥ १६ ॥ हे पिङ्गला व रेफलेन्द्र तथा दुहद्रुहा और नव करोड़ दानवों के स्वामी पलाशनामक दैत्यरूपी वनके लिये दावानल !

भीमेनमहितोहरिः ॥ ९ ॥ रणाजिरंभूपएत्य बर्बरीकंवचोब्रवीत् ॥ बर्बरीकसुहृदय सर्वलोकेपुनित्यशः ॥ १० ॥ पूजितः सर्वलोकैस्त्वं यच्छतेषांवरान्वरान् ॥ गुप्तक्षेत्रञ्चनत्याज्यं सर्वक्षेत्रोत्तमोत्तमम् ॥ ११ ॥ बहिःस्थलंतथावासः क्षमनो दुष्कृतञ्चयत् ॥ इत्युक्तस्तन्नमस्कृत्य भैमिःस्वैरंययौमुदा ॥ १२ ॥ वासुदेवोपिकार्याणि कृत्वान्यानिदिवङ्गतः ॥ इतिवो वर्णितोत्पत्तिर्बर्बरीकस्यब्राह्मणाः ॥ १३ ॥ स्तवञ्चास्यप्रवक्ष्यामि येनतुष्यतियक्षराट् ॥ १४ ॥ जयजयचतुरशीतिकोटिपरिवारसूर्यवर्चाभिधानयक्षराज जयभूभारहरणप्रवृत्तिलब्धशापप्राप्तनैर्ऋतयोनिसम्भव जयकामकटङ्कटाकुक्षिराजहंस ॥ १५ ॥ जयघटोत्कचानन्दवर्द्धनबर्बरीकाभिधान जयकृष्णोपदिष्टगुप्तक्षेत्रदेवीसमाराधनप्राप्तातुलवीर्यंजयविजयसिद्धिदायक ॥ १६ ॥ जयपिङ्गलारेफलेन्द्रद्रुहद्रुहानवकोटीश्वरपलाशवनदावानल जयभूपातालान्त

आपकी जयहो हे पृथ्वी व पाताल के बीचमें नागकन्याओं के परिहारक ! आपकी जयहो ! हे भीमसेनजी के मानको मर्दन करनेवाले ! आपकी जयहो ॥ १७ ॥ हे सकल कौरवों की सेनाको मुहूर्त्तभर में मारने के लिये प्रवृत्त होनेवाले ! आपकी जयहो हे श्रीकृष्णजी के वरसे पायेहुये समस्त उत्तम वरदानों की सामर्थ्यवाले ! आपकी जयहो ॥ १८ ॥ हे कलिकाल में वन्दित ! आपकी जयहो जयहो तुम्हारे लिये नमस्कार है रक्षा कीजिये इस कारण आपके लिये नमस्कार है ॥ १९ ॥ हे द्विजोत्तमो ! जो पुरुष श्रावण में अमावस के दिन व वैशाख में कृष्णपक्ष की तेरसि में सुहृदय वर्वरीक को पूजकर इस स्तोत्र से स्तुति करता है ॥ २० ॥ उसके

रालेनागकन्यापरिहारकजयभीममानमर्दन ॥ १७॥ जयसकलकौरवसैन्यमुहूर्त्तवधप्रवृत्त ॥ जयश्रीकृष्णवरलब्धसर्व प्रवरवरदानसामर्थ्य ॥ १८ ॥ जयजयकलिकालवन्दितनमोस्तुते पाहिपाहीतिनमोस्तुते ॥ १९ ॥ अनेनयःसुहृद यंश्रावणेभ्यर्च्यदर्शके ॥ वैशाखेचत्रयोदश्यां कृष्णपक्षेद्विजोत्तमाः ॥ २० ॥ सतदीयैःप्रवचनैःसंस्तवैतस्यतुष्यति ॥ इत्युक्तस्तान्नमस्कृत्य भैमिःस्वैरंययौमुदा ॥ २१ ॥ वासुदेवोपिकर्माणिसर्वाण्यूर्ध्वमकारयत् ॥ २२ ॥ ततोविप्रानारदश्च समाराध्यमहेश्वरम् ॥ महीनगरकेपुण्ये स्थापयामासशङ्करम् ॥ २३ ॥ लोकानाञ्चहितार्थाय केदारंलिङ्गमुत्तमम् ॥ अत्रीशादुत्तरेभागे महापापप्रणाशनम् ॥ २४ ॥ अग्निकुण्डेनरःस्नात्वा श्राद्धंकृत्वायथाविधि॥अत्रीशंचनमस्कृत्य रुद्रलोकमवाप्नुयात्॥२५॥जयादित्यंपूजयन्तिकूपेस्नात्वानरोत्तमाः॥जयादित्यंनमस्कृत्य केदारञ्चप्रपश्यति ॥ २६ ॥

वचनों से स्तुति मेंवे वर्वरीकजी उसके ऊपर प्रसन्न होतेहैं ऐसा कहेहुये वर्वरीकजी उनको नमस्कार कर प्रसन्नता से अपनी इच्छापूर्वक चलेगये ॥ २१ ॥ और श्रीकृष्णजी ने भी इसके उपरान्त सब कर्मोंको कराया ॥ २२ ॥ तदनन्तर हे ब्राह्मणो ! नारदजीने महादेव का भलीभांति आराधन कर पुण्यदायक महीनगरमें शङ्करजी को स्थापित किया ॥ २३ ॥ और लोकोंके हितके लिये अत्रीशसे उत्तरभाग में महापातकों को विनाशनेवाले उत्तम केदारलिंग को थापाहै ॥ २४ ॥ अग्निकुण्ड में स्नानकर के मनुष्य विधिपूर्वक श्राद्धकर और अत्रीश्वर शिवजीको नमस्कार कर शिवलोक को प्राप्तहोताहै ॥ २५ ॥ और कूपमें नहाकर जो उत्तममनुष्य जयादित्य

को पूजते हैं व जयादित्य को नमस्कारकर जो केदारेश्वर को देखता है ॥ २६ ॥ वह फिर माताके दूधको नहीं पीताहै और मुक्तिका भागी होताहै तदनन्तर नीलकण्ठ शिवजी महात्मा नारदजी के लिये ॥ २७ ॥ वरदान देकर आपही उत्तम महीनगरमें टिकतेभये कोटितीर्थ में नहाकर जो मनुष्य नीलकण्ठजी को देखता है ॥ २८ ॥ जयादित्य की प्रसन्नता से उसके वंशका नाश नहीं होताहै और उसके कुलमें न रोग होता है न दरिद्र होताहै और न कलङ्क होताहै ॥ २९ ॥ और वे पुत्र पौत्रो से संयुत तथा धन धान्य से युक्त होकर इस लोकमें बहुत सुखोंको भोगकर सूर्यलोकमें बसते हैं ॥ ३० ॥ हे ब्राह्मणो ! मैंने इस प्रकार संक्षेपसे गुप्तक्षेत्र को वर्णन किया

मातुःस्तन्यंपुनर्नैवसपिबेन्मुक्तिभाग्भवेत् ॥ ततोरुद्रोनीलकण्ठो नारदायमहात्मने ॥ २७ ॥ वरंदत्त्वास्वयंतस्थौ महीनगरकेशुभे ॥ कोटितीर्थेनरःस्नात्वा नीलकण्ठंप्रपश्यति ॥२८॥ नतस्यवंशनाशोस्ति जयादित्यप्रसादतः ॥ तेषां कुलेनरोगःस्यान्नदारिद्र्यंनलाञ्छनम् ॥ २९ ॥ पुत्रपौत्रसमायुक्ता धनधान्यसमन्विताः ॥ भुक्त्वाभोगानिहबहून् सूर्यलोकेवसन्तिते ॥ ३० ॥ इतिप्रोक्तंमयाविप्रा गुप्तक्षेत्रंसमासतः ॥ सप्तक्रोशप्रमाणञ्च क्षेत्रस्यास्यपुरोद्विजाः ॥ ३१ ॥ स्वयंभुवाप्रोक्तमिदं सर्वकामार्थसिद्धिदम् ॥ इतिवोवर्णितःपुण्यो महीसागरसङ्गमः ॥ ३२ ॥ शृण्वन्संकीर्तयंश्चैनंसर्वपापैःप्रमुच्यते ॥ यइदंश्रावयेद्विद्वान् माहात्म्यंतस्यसङ्गमे ॥ ३३ ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तो रुद्रलोकमवाप्नुयात् ॥ गुप्तक्षेत्रस्य माहात्म्यं सकलंश्रावयेद्यदि ॥ सर्वैश्वर्यमवाप्नोति ब्रह्महत्यांव्यपोहति ॥ ३४ ॥ कोटितीर्थस्यमाहात्म्यं महीनगरकस्य

और हे ब्राह्मणो ! इस क्षेत्रका प्रमाण सातकोस है वह पहलेही कहागया है ॥ ३१ ॥ ब्रह्माजी ने इस तीर्थको समस्त कामनाओं के अर्थ सिद्धिका दायक कहाहै आप लोगों से यह पुण्यदायक महीसागरसङ्गम वर्णन कियागया ॥ ३२ ॥ इसको सुनता व कीर्तन करताहुआ पुरुष सब पापोंसे छूटजाताहै और उस महीसागर के संगम में जो विद्वान् इस माहात्म्य को सुनाता है ॥ ३३ ॥ वह समस्त पातकों से छूटकर शिवजी के लोकको प्राप्तहोता है और यदि गुप्तक्षेत्र के समस्त माहात्म्य को जो पुरुष सुनाता है वह सब ऐश्वर्य को पाताहै व ब्रह्महत्या को नाश करताहै ॥ ३४ ॥ कोटितीर्थ के और महीनगरके माहात्म्य को जो सुनता है और सुनाता है वह ब्रह्म-

भावके लिये समर्थ होता है याने ब्रह्ममें लीन होजाता है ॥ ३५ ॥ कोटितीर्थ में नहाकर व यत्नसे श्राद्धकरके यथाशक्ति से दानको देवै मुझ से उसका फल सुनिये ॥ ३६ ॥ कि स्वर्ग, पाताल व मृत्युलोक में जो तीर्थ हैं उनके स्नान से जो पुण्य मिलती है उस फलको मनुष्य प्राप्त होता है ॥ ३७ ॥ पायेहुये दक्षिणावाले अश्व-मेधादिक यज्ञोंके करने से और समस्त व्रत व तपस्याओं के करने से जो पुण्य मिलतीहै ॥ ३८ ॥ हे ब्राह्मणो ! वही पुण्य कोटितीर्थ में होती है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ३९ ॥ इस यशकारक व पापहारक और निश्चयकर पुण्यदायक तथा पवित्र व उत्तम चरित्र को जो पुरुष भक्तिसे सुनता है वह पुण्यभागी मनुष्य प्राणोंके नाश

च ॥ शृणोतिश्रावयेद्यस्तुब्रह्मभूयायकल्पते ॥ ३५ ॥ कोटितीर्थेनरःस्नात्वा श्राद्धंकृत्वाचयत्नतः ॥ दानंदद्याद्यथाशक्त्या शृणुध्वंतत्फलंहिमे ॥ ३६ ॥ स्वर्गपातालमर्त्येषु यानितीर्थानिसन्तिवै ॥ तेषांस्नानाच्चयत्पुण्यंतत्फलंप्राप्नुयान्नरः ॥ ३७ ॥ अश्वमेधादिभिर्यज्ञैरिष्टैश्चैवाप्रदक्षिणैः ॥ सर्वव्रततपोभिश्च कृतैर्यत्पुण्यमाप्यते ॥ ३८ ॥ तत्पुण्यंजायतेविप्राःकोटितीर्थेनसंशयः ॥ ३९ ॥ इदंपवित्रंखलुपुण्यदायकं यशस्करंपापहरंपरन्तथा ॥ शृणोतिभक्त्यापुरुषःसपुण्यभागसुक्षयेशम्भुपुरंव्रजेच्चवै ॥ ४० ॥ धन्यंयशस्यंनियतंसुपुण्यं सुमोक्षदंपापहरंनराणाम् ॥ शृणोतिनित्यंनियतःशुचिःपुमान्नभित्वाद्विषोविष्णुपदंप्रयाति ॥ ४१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेगुप्तक्षेत्रमाहात्म्यंनामद्विषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥

होनेपर शिवलोक को प्राप्तहोता है ॥ ४० ॥ इस प्रशंसनीय, यशदायक व निश्चयकर पुण्यदायक तथा मनुष्यों को मोक्षदायक व पापहारक चरित्र को जो मनुष्य पवित्र होकर नित्यही सुनता है वह शत्रुओंको नाशकर स्वर्गको प्राप्तहोताहै ॥ ४१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांगुप्तक्षेत्रमाहात्म्यंनामद्विषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥

॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । श्रीमहेश के दोउ चरण कमलन को शिर नाय ॥ यहि कुमारिकाखण्ड कर किय अनुवाद सुहाय ॥ १ ॥
जेहि पढ़ि सुनिकै सकल जन पावहिं हर्ष अपार ॥ सो भाषा अनुवाद किय मैं निज मति अनुसार ॥ २ ॥

इति स्कन्दपुराणकुमारिकाखण्डः ॥

जाननेवालाहै वह ज्ञानीहै और वहही पण्डित है ॥ ४५ ॥ जिसने काम (चाह) और राग (सुखको जानकर विषयों में स्नेह) को त्याग करदिया है वह समर्थ या योगीहै और वह सुखी होवे है ॥ ४६ ॥ उससमय ऐसाविचारकर व वैसेही श्रीपार्वतीजीको छोडकर परमदयालु श्रीशंकरजी ॥ ४७ ॥ प्यारीसे विहीन होकर सदैव परमहंसों से संयुत सिद्धाटवीनामक बडेअद्भुत वनको चलेगये ॥ ४८ ॥ और निकलेहुये शिवजीको देखकर सब कैलासवासी व सबगण भी वीरभद्रादिकों के पीछे निकलगये ॥ ४९ ॥ व चामरोंसे वीजितहोतेहुये उनके क्रमपूर्वक पीछेसे भृंगीजी छत्रको भलीभांति लेकर गंगा व यमुनाके किनारेमें प्राप्तहुये ॥ ५० ॥ तब

र्थज्ञःसविद्वान्सचपण्डितः ॥ ४५ ॥ येनत्यक्तौकामरागौसयुक्तःससुखीभवेत् ॥ ४६ ॥ एवंविमृश्यचतथागिरिजांविहाय श्रीशङ्करःपरमकारुणिकस्तदानीम् ॥ ४७ ॥ यातःप्रियाविरहितोवनमद्भुतञ्चसिद्धाटवींपरमहंसयुतांसदैव ॥ ४८ ॥ निर्गतंशङ्करंदृष्ट्वासर्वेकैलासवासिनः ॥ निर्ययुश्चगणास्सर्वेवीरभद्रादिपृष्ठतः ॥ ४९ ॥ छत्रम्भृङ्गीसमादायजगामह्यनुपृष्ठतः ॥ चामरैर्वीज्यमानञ्चगङ्गायमुनयोस्तटे ॥ ५० ॥ ताभ्यांयुक्तस्तदानन्दीपृष्ठतोन्वगमत्सुधीः ॥ ५१ ॥ वृषभोह्यग्रतोभूत्वापुष्पकेणविराजितः ॥ शोभमानोमहादेवएभिस्सर्वैस्सुशोभनैः ॥ ५२ ॥ अन्तःपुरगतादेवीविजयासहदुर्मनाः ॥ सखीभिर्बहुभिस्तत्रतथान्याभिःसुसंवृता ॥ ५३ ॥ गिरिजाचिन्तयामासमनसापरमेश्वरम् ॥ ततोदूरंगतःशम्भुःविसृज्यचगणांस्तथा ॥ ५४ ॥ गणेशञ्चकुमारञ्चवीरभद्रन्तथापरान् ॥ नन्दिनम्भृङ्गिणञ्चण्डंमुण्डादींस्तुतथैवच ॥ ५५ ॥ एतानन्यांश्चसर्वांश्चकैलासपुरवासिनः ॥ विसृज्यचमहादेवएकएवमहातपाः ॥ ५६ ॥ गतोदूरंवनस्यान्तंतथासिद्धाट

उनसे संयुत व अच्छीबुद्धिवाले नन्दीश्वरजी पीछे क्रमसे चले ॥ ५१ ॥ और वृषभ भी आगे होकर पुष्पक से सुशोभितहुवा व बहुत अच्छे इन सबजनों से महादेवजी विराजमानहुये ॥ ५२ ॥ और वहा रनिवास में प्राप्तहुई व विजयासखी के साथ दुःखसमेतमनवाली तथा अन्यभी बहुतसी सखियोसे भलीभाति घिरीहुई देवीजी ॥ ५३ ॥ श्रीपार्वती ने मनसे परमेश्वर शिवजीका चिंतन (ध्यान) किया और वैसेही गणों को भी छोडकर शंकरजी तदनन्तर दूरचलेगये ॥ ५४ ॥ व गणेश व स्वामिकार्त्तिकेय व वीरभद्र तथा अन्यगण व नन्दीश्वर व भृंगी व चण्ड वैसेहीमुण्डादिक ॥ ५५ ॥ ये और अन्यभी सब कैलासपुरकेबसनेवाले जनोंको छोडकर

एकही बड़ेतपस्वी महादेव ॥ ५६ ॥ शिवजी वनके अन्त में दूर तथा सिद्धाटवीको गये और जोकि केशर व रत्नकमल व सिद्धरत्न व वैडूर्य्यमणियों से चित्रित व अ-
मृतसे भूषित ॥ ५७ ॥ दिव्य आसन भूमिसे बनाया गयाहै उसमें योगकेस्वामी महेशजी टिके हे विप्र! पद्मासन में बैठेहुये व योगियों में सत्तम ॥ ५८ ॥ व ढपेहुये
नेत्रोंवाले शिवजीने आपसेही केवल आपकोही ध्यान किया और वह चन्द्रमाल महादेवजी समाधि में शोभितहुये ॥ ५९ ॥ व उनने महात्मा शेषजीको योगका पा-
शकिया और सर्पोंके राजा वासुकीजीका बड़ाभारी कटिबन्धनकिया याने करधनीबनालिया ॥६०॥ जोकि सर्वव्यापक व अपने भावसे भलीभांति भीगेहुये व वेदान्तसे

**वीशिवः ॥ काश्मीररत्नोत्पलसिद्धरत्नवैडूर्य्यचित्रंसुधयापरिस्कृतम् ॥५७॥ दिव्यासनञ्चारुसुकल्पितम्भुवातत्रस्थितोयो
गपतिर्महेशः ॥ पद्मासनेस्थितोविप्रमहेशोयोगवित्तमः ॥ ५८ ॥ केवलञ्चात्मनात्मानन्दध्यौमीलितलोचनः ॥ शुशु
भेसमहादेवःसमाधौचन्द्रशेखरः ॥ ५९ ॥ योगपट्टःकृतस्तेनशेषस्यचमहात्मनः ॥ वासुकिःसर्पराजश्चकटिबन्धःकृतोम
हान् ॥ ६० ॥ आत्मानमात्मात्मतयाचसंप्लुतोवेदान्तवेद्यस्सहिविश्वचेष्टितः ॥ एकोह्यनेकोहिदुरन्तपारस्तथाह्यातर्क्यो
निजबोधरूपः ॥ ६१ ॥ स्थितंतदानीम्परमम्पराणांनिरीक्ष्यमाणोभुवनैकभर्त्ता ॥ १६२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकेदार
खण्डेशैवशास्त्रेद्यूतक्रीडायांशम्भोर्दूरगमनंनामचतुस्त्रिंशोध्यायः ३४ ॥ * ॥ * ॥ * ॥
लोमशउवाच ॥ वनङ्गतेमहादेवेगिरिजाविरहातुरा ॥ सुखंनलेभेतन्वङ्गीहर्म्येष्वायतनेषुच ॥ १ ॥ चिन्तयन्तीशिवं**

जाननेयोग्य व सबजगतकी रचनारूपकर्मवाले व एक याने भेदसेहीन व मायासे अनेकआकारधार व दुरन्तपार व आत्मज्ञानस्वरूप और वैसेही निश्चयकर इन्द्रियों
के विचार से परभी हैं वह आपकोही ॥ ६१ ॥ परोंसे पर टिकेहुये अधिकता से देखतेहुये लोकोंके एक (मुख्य) धारने या पोषनेवाले शिवजी सुशोभितहुये ॥ १६२ ॥
इतिश्रीस्कन्दपुराणेमाहेश्वरखण्डान्तर्गतकेदारखण्डेशैवशास्त्रेभाषाबन्धेसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचितद्यूतक्रीडायांशम्भोर्दूरगमनंनामचतुस्त्रिंशोध्यायः ॥ ३४ ॥
दो० । पैंतिसवें अध्यायमें गौरी शबरीरूप । लखि मोहे शिवजी वहां यह अतिचरित अनूप ॥ श्रीलोमशजी बोले कि, जब श्रीमहादेवजी वनको चलेगये तब विरह

से व्याकुलहुई सूक्ष्मअंगोंवाली श्रीपार्वतीजीने महल और घरोंमें भी सुखको नहीं पाया ॥ १ ॥ व सब भावसे शिवजीको चिन्तनाकरतीहुई वह वहां टिकीं और शंकरजीको ध्यावतीहुई सतीजी को जानकर विजयासखीने कहा ॥ २ ॥ श्रीविजयाजी बोलीं कि, हे शोभने ! तुम बडीतपस्यासे ही शिवजीको प्राप्तहुईहो और तुमने उनतपस्वी शंकरजी के साथ जुवोंको वृथाही कियाहै ॥ ३ ॥ हे पापरहिते चतुरतामहिते, तन्वि ! जुवामें बहुतसे दोषहै उनको तुमने क्या नहीं सुनाहै व इसलिये तुम शीघ्रतासेही शिवजीको क्षमापनकरो ॥ ४ ॥ हे श्रेष्ठमुखि,देवि ! हम सबों से सहित तुम जावो जावो और जबतक शंकरजी दूरदेशमे सामने या सब ओरसे नहीं गये हैं तबतक जाकर क्षमाकरावो ॥ ५ ॥ और जो तुम इस वडे गरू मेरे वचन को नहीं करोगी तो परमेश्वर शिवजी को अनादरकर तुमको दुःख होवेगा इसभाति

तत्रसर्वेणभावेनसंस्थिता ॥ चिन्त्यमानंशिवंज्ञात्वाउवाचविजयासतीम् ॥ २ ॥ विजयोवाच ॥ तपसामहताचैवशिवंप्राप्तासिशोभने ॥ मृषाद्यूतंकृतन्तेनशङ्करेणतपस्विना ॥ ३ ॥ द्यूतेचबहवोदोषानश्रुताःकिंत्वयानघे ॥ क्षमापयशिवंतन्वित्वरेणैवविचक्षणे ॥ ४ ॥ अस्माभिःसहितादेविगच्छगच्छवरानने ॥ यावच्छम्भुर्दूरतोनाभ्यगच्छत्तावद्गत्वाशङ्करंक्षामयस्व ॥ ५ ॥ नोचेन्ममैतद्वचनंगरीयोवज्ञाप्येशंव्यसनंतेभविष्यति ॥ निशम्यवाक्यंविजयाप्रयुक्तंप्रहस्यमानासमधीरचेताः ॥ ६ ॥ उवाचवाक्यंविजयांजयांचआश्चर्यभूतंपरमार्थयुक्तम् ॥ मयाजितोसौनिरपत्रपश्चपुरावृतोवैपरयाविभूत्या ॥ ७ ॥ किंचिच्चकृत्यंममनास्तिमद्योमयाविनासौनचरूपमास्थितः ॥ रूपीकृतोमयादेवोमहेशोनान्यथावद ॥ ८ ॥ मयातेनवियोगश्चसंयोगोनैवजायते ॥ साकारोहिनिराकारोमहेशोहिमयाकृतः ॥ ९ ॥ कृतम्मयावि

विजयासे प्रेरित याने कहेहुये वचनको सुनकर बहुतही हँसतीहुई भलीभांति अधीरचित्तवाली ॥ ६ ॥ श्रीपार्वतीजीने विजया और जयाके प्रति उत्तमअर्थसे संयुत व आश्चर्यभूत वचनको कहा कि पूर्वसमय में मुझकरके बड़ीभारी शोभा या सम्पत्तिसे परेहुयेही यह निर्लज्ज शंकरजी जीतेगये हैं ॥ ७ ॥ और शीघ्रही याने इससमय कुछभी मेरे करनेयोग्य नहीं है क्योंकि मुझ विना यह रूपमें नहीं टिकेहै व मैंनेही महेशदेवको रूपवाला कियाहै तुम अन्यथा (अन्यभांति) मत कहो ॥ ८ ॥ और उनके साथ मेरा वियोग व सयोग भी नहीं होताहै जिससे मैंनेही महेशजी को आकार (स्वरूप) से सहित व रूपसे रहित कियाहै ॥ ९ ॥ व देवश्रेष्ठों से समेत यह

स्थावरजंगमरूप सम्पूर्णजगत् मुझसेही कियागयाहै और हे विजये! तुम इनकी क्रीडाके अर्थ इस जगतकी उत्पत्ति व रक्षा या बर्तने के कारणों से मेरे विशेषता समेत खेलको देखो ॥ १० ॥ उससमय ऐसा कहकर सब जगतके मंगलकी करनेवाली देवी श्रीपार्वतीजी शबरीकेरूपमें अधिकता से टिककर महेश्वरजी के समीप को जानेके लिये इच्छावालीहुई ॥ ११ ॥ जोकि काली या युवावस्थावाली व अच्छेअंगोंवाली व भृंगकेसमानदन्तोंवाली व कुदुरूके फलकी नाईं सुन्दर सुरंग नीचे और ऊंचे के ओठोंवाली व अच्छे कण्ठवाली व कुचोंके भारसे नईहुई व बढ़ायेहुये सचिक्कणबालोंवाली व बीचमें पतलीहुई व विस्तारसमेतकटितटवाली व सोनेके

एवमिदंसमग्रंचराचरंदेववरैस्समेतम् ॥ क्रीडार्थमस्योद्भववृत्तिहेतुभिर्विक्रीडितम्मेविजयेनिरीक्ष ॥ १० ॥ एवमुक्त्वात
दादेवीगिरिजाविश्वमङ्गला ॥ शबरीरूपमास्थायगन्तुकामामहेश्वरम् ॥ ११ ॥ श्यामातन्वीशिखरदशनाचारु
बिम्बाधरोष्ठी सुग्रीवासाकुचभरनतावर्द्धितस्निग्धकेशी ॥ मध्येक्षामापृथुकटितटाहेमरम्भोरुगौरी पक्षैर्युक्तावरबर्हि
णः शोभमानातदानीम् ॥ १२ ॥ पाणौमृणालसदृशंदधतीक्षुचापंपृष्ठेलसत्कनककेतकिबाणकोशौ ॥ आलोकयन्तीव
वनेगिरिशंसंसेव्यमानाबहुभिःसखीभिः ॥ १३ ॥ भृङ्गिनादेनमहतानादयन्तीजगत्रयम् ॥ गिरिजामन्मथंसद्योजीवय
न्तीपुनःपुनः ॥ १४ ॥ सकामावनराजीषुहंसकारण्डवायदा ॥ द्विरेफाबर्हिणश्चैवसर्वेतपृच्छयान्विताः ॥ १५ ॥ प्रबु
द्धोहिमहादेवींनिरीक्ष्यशबरींतदा ॥ समाधेस्त्थितःसद्योमहेशोमदनान्वितः ॥ १६ ॥ यावत्करेगृह्यमाणोगिरिजांस

केलाकी नाईं ऊरुओं से गोरी और मोरपक्षों से संयुतहैं वह उस समय सोहतीहुई ॥ १२ ॥ व हाथमें कमलकी पौंणारीके समान ईखके धन्वाको और पीछे सोहतेहुये सुवर्णांकितकी के बाणसे बनेहुये कोशोंको धारती व बहुती सखियों से सेईजाती व वनमें शिवजीको सामने या सब ओरसे देखतीहुई बसीहैं ॥ १३ ॥ व बड़ेभारी भृंगी के शब्दसे त्रिलोकको शब्दसे संयुत कराती व वारंवार कामदेवको शीघ्रही जिलातीहुई श्रीपार्वतीजी विचरनेलगीं ॥ १४ ॥ व जब वनकी पंक्तियों मे कामसे समेत वे सबहंस कारण्डव (कराकुल) व भौंरे और मोर भी चुयेहुये वीर्यवाले होगये ॥ १५ ॥ तब समाधि से उठ व जागेहुये महेशजी महादेवी शबरीको देखकर शीघ्रही

कामसे समेतहुये ॥ १६ ॥ और जबतक वह श्रीपार्वतीजी को हाथमें पकडतेहुये समीपमें गये तबतक सतीजी उनके आगे शीघ्रही अन्तर्धान होगई ॥ १७ ॥ जब उन को देखकर उसक्षणमेंही भ्रमतेहुये व भ्रांति से सयुतहोकर भ्रांतिके विनाशनेवाले शङ्करजी ने श्यामदृष्टिवाली शबरीजी को नहीं देखा ॥ १८ ॥ तब जोकि शिवजी विरह से समेत व चुयेहुयेवीर्य्य से सबओर भीगेहुये व अन्तर से हीन व ज्ञानरूप और कामके वैरी है ॥ १९ ॥ व मोहसेरहितहैं उन्होंने सुन्दरता से भरीहुई शबरीरूपधारिणी पार्वतीजी को फिर देखा और प्रस्ताव के समान बड़े वचनकोकहा ॥ २० ॥ श्रीमहादेवजी बोले कि, तुम मेरे वचन को निश्चय से सुनो व सुन

समीपगः ॥ तावत्तस्यपुरःसद्यस्तिरोधानगतासती ॥ १७ ॥ तांदृष्ट्वातत्क्षणादेवभ्रान्तोभ्रान्तिविनाशनः ॥ भ्रममाणोयदा शम्भुर्नापश्यदसितेक्षणाम् ॥ १८ ॥ विरहेणसमायुक्तोह्यच्छ्येनपरिप्लुतः ॥ मदनारिस्तदाशम्भुर्ज्ञानरूपोनिरन्त रः ॥ १९ ॥ निर्मोहोरूपसम्पन्नांददर्शगिरिजांपुनः ॥ उवाचवाक्यंशबरींप्रस्तावसदृशंमहत् ॥ २० ॥ श्रीमहादेवउवा च ॥ वाक्यंममशृणुत्वंहिश्रुत्वातत्कर्तुमर्हसि ॥ कासिकस्यासितन्वङ्गिकिमर्थमटनंवने ॥ २१ ॥ तत्कथ्यतांमहाभा गेयथातथ्यंसुमध्यमे ॥ २२ ॥ भिल्युवाच ॥ स्वतन्त्रन्निर्विकारञ्चजगतामीश्वरंपरम् ॥ पतिमन्वेषयिष्यामिसर्वज्ञंसक लार्थकम् ॥ २३ ॥ इत्युक्तःप्रत्युवाचेदङ्गिरिजांवृषभध्वजः ॥ २४ ॥ अहंतवोदितोभद्रेपतिर्नान्योस्तिभामिनि ॥ विमृश्य तांवरारोहेतत्त्वतोहिवरानने ॥ २५ ॥ वचोनिशम्यरुद्रस्यस्मितपूर्वमभाषत ॥ ममापिचमहाभागपतिस्त्वंनान्यथा

कर उसको करने के लिये योग्यहो कि हे तन्वंगि ! तुम कौनहो व किसकीहो औरकिसलिये वनमें तुम्हारा विचरना है ॥ २१ ॥ हे सुमध्यमे, महाभागे ! वह यथातथ्य से (सत्यही) कहाजावे ॥ २२ ॥ श्रीशबरीजी बोलीं कि मैं अपने अधीन व विकार से हीन व जगतों के ईश्वर व सब से पर ॥ २३ ॥ व सर्वज्ञ और कलाओंसमेत प्रयोजनवारे या सब सम्पूर्णवाञ्छितों के देनेहारे या सबवचनों के अर्थरूपपतिकोखोजती हूं ऐसा कहेहुये शिवजी श्रीपार्वतीजी के प्रति इस वचनको बोले ॥ २४ ॥ कि हे अच्छीऊरुवोंवाली, श्रेष्ठमुखि, मंगलरूपिणि, भामिनि ! तत्त्व (सत्य) सेही निश्चयसमेत विचाराजावे कि मैंही तुम्हारा कहा हुआ पतिहूं अन्य नहीं है ॥ २५ ॥

ऐसे शिवजी के कहेहुये को सुनकर श्रीपार्वतीजी ने मुसकानपूर्वक वचन को कहाकि हे महाभाग ! तुम मेरे भी स्वामी हो अन्यथा नहीं कहो ॥ २६ ॥ किंतु हे परंतप !
तुम्हारा मंगलहो मैं तुम से कहूंगी कि तुम गुणों से हीनहो और जैसे उत्तमतपसेही आगे मुझकरके वरेगये हो ॥ २७ ॥ व तुमने वेग के साथ छलमात्रसे ही
मुझ भामिनी को छोड़दिया है क्योंकि तुम इसलोक में निरन्तर सबप्राणियोंके दुराराध्य हो याने बड़ेभारी दुःख से पूजनेयोग्यहो ॥ २८ ॥ उसकारण तुमने मेरे
आगे जिसवचनको कहा वहही फिर नहीं कहनाचाहिये ऐसा शबरी का वचन सुनकर उनके प्रति शिवजी बोले ॥ २९ ॥ कि हे शुभमुखि, विशालनेत्रे! जिसलिये
तुमने कृपासमेत जनों के प्यार व कृपावारे मुझको जानकर ऐसा कहाहै इसलिये मेरावचन करनाचाहिये ॥ ३० ॥ इसप्रकार बहुतभांति उन त्रिशूलधारी से प्रार्थित

**वद ॥ २६ ॥ किंतुवक्ष्यामिभद्रन्तेनिर्गुणोसिपरन्तप ॥ यथापुराव्रतोसित्वंतपसापरमेणहि ॥ २७ ॥ त्यक्तात्वयाचत्वरत
श्छलमात्रेणभामिनी ॥ दुराराध्योहिसततंसर्वेषांप्राणिनामिह ॥ २८ ॥ तस्मान्नवाच्यंहिपुनर्यदुक्तन्तेममाग्रतः ॥ शब
र्यावचनंश्रुत्वाप्रत्युवाचवृषध्वजः ॥ २९ ॥ एवंज्ञात्वाविशालाक्षिकृपिणांकृपिणांप्रियम् ॥ तस्मात्त्वयाहिकर्तव्यंवचनंमे
शुभानने ॥ ३० ॥ एवमभ्यर्थितातेनबहुधाशूलपाणिना ॥ प्रहस्यगिरिजाप्राहउपहासकरंवचः ॥ ३१ ॥ तपोधनोसिस
ततंविरक्तोसिनिरञ्जनः ॥ आत्मारामोसिनिर्द्वन्द्वोमदनोयेनघातितः ॥ ३२ ॥ सत्वंसाक्षाद्विरूपाक्षोमयादृष्टोसिचाद्य
वै ॥ अशक्योसिमयाप्राप्तुंसर्वेषांदुरतिक्रमः ॥ ३३ ॥ तस्मात्त्वयानवक्तव्यंयदुक्तंचपुरोमम ॥ तस्याःस्तद्वचनंश्रुत्वा
प्रोवाचमदनान्तकः ॥ ३४ ॥ ममभार्याभवत्वंहिनान्यथाकर्तुमर्हसि ॥ इत्युक्त्वातांकरेगृह्यशिवोसौहृच्छयान्वितः ॥ ३५ ॥**

हुई पार्वतीजी बिहँसकर उपहासकरनेवाले वचनको अधिकता से बोलीं ॥ ३१ ॥ कि तुम निरन्तर तपस्यारूपधनवाले वैरागीमायासे रहित और अपनामेंही रमने
हारेहो व द्विविधा से हीनहो और जिन्होंने कामको मारा याने जलाया है ॥ ३२ ॥ वह साक्षात् विरूपाक्ष अर्थात् कुरूपआखोंवाले तुम आज मुझकरके निश्चयसे
प्रसिद्ध देखेगये हो और सबोंके दुःखसे उल्लङ्घनीय तुम मुझको मिलने के लिये नहीं योग्यहो ॥ ३३ ॥ और उससे तुमने मेरे आगे जिसको कहा वह नहीं कहना
चाहिये उनके उस वचन को सुनकर कामकेविनाशी अविनाशी शिवजी अधिकता से बोले कि ॥ ३४ ॥ तुमही मेरी स्त्रीहोवो और अन्यथा करने के लिये योग्य

नहीं हो ऐसा कहकर उनको हाथ में धरकर यह शिवजी चुयेहुयेवीर्य्य से संयुतहुये ॥ ३५ ॥ और मुसकाती हुई उन्होंने छोंड़ो छोंड़ो ऐसा आदर के साथ कहा कि वनवासी तपस्वी तुमको यह करने के लिये उचित नहीं है ॥ ३६ ॥ और तुम मेरेपितासे मुझको मागो अन्यभाति से नही पावोगे ॥ ३७ ॥ श्रीमहादेवजी बोले कि हे शुभमुखि ! तुम कही भी टिकेहुये अपने पिताको शीघ्रही बतावो ॥३८॥ हे विशालनयने ! मै प्रणामपूर्वक तुमको देखूंगा तब उनसे कहेहुये इस वचन को सुनकर कालीआखोंवाली श्रीपार्वती जी ॥ ३९ ॥ शिवजी को उन अपने पिताके समीपमें लाई जोकि हिमवान्जी कैलास के शिखर में टिकेहुये व पर्वतों के स्वामी है ॥४०॥

उवाचसास्मयन्तीचमुञ्चमुञ्चेतिसादरम् ॥ नोचितंभवताकर्तुंतापसेनवनासिना ॥ ३६ ॥ याचयस्वपितुर्मेत्वंनान्यथा मांचलप्स्यति ॥ ३७ ॥ श्रीमहादेवउवाच ॥ पितरंकथयाशुत्वंस्थितंकुत्रशुभानने ॥ ३८ ॥ द्रक्ष्यामित्वांविशालाक्षिप्र णिपातपुरस्सरम् ॥ एतदुक्तंतदातेननिशम्यासितलोचना ॥ ३९ ॥ आनयामासतंगौरीपितरंवृषभध्वजम् ॥ स्थितं कैलासशिखरेहिमवन्तंनगेश्वरम् ॥ ४० ॥ अद्रिभिर्बहुभिश्चैवसंवृतञ्चमहाप्रभम् ॥ द्वारिस्थितंतयादेव्यादर्शितंश ङ्करस्यहि ॥ ४१ ॥ असौममपितादेवयाचयस्वगतत्रपः ॥ ददातिमांनसंदेहस्तपस्विन्माविलम्बितम् ॥ ४२ ॥ तथेति मत्वासहसाप्रणम्यहिमालयंवाक्यमिदंबभाषे ॥ प्रयच्छतांचाद्यगिरीशमह्यंकन्यांसुरूपांशुभगांमहामते॥४३॥कृपणंवा क्यमाकर्ण्यसमुत्थायहिमालयः॥महेशञ्चसमादायउवाचगिरिराट्स्वयम् ॥४४॥ किंकिंजल्पासिभोदेवतवायुक्तंचसाम्प्र

व बहुते पर्वतोंसे भलीभांति घिरेहुये और बड़ेभारी प्रकाशवाले है वह द्वारमें टिकेहुयेउन देवीजी करके शङ्करजी को निश्चयसे दिखाये गये हैं ॥ ४१ ॥ कि हे तपस्विन् देव ! यहही मेरे पिता हैं तुम लज्जासे हीन होकर मांगो विलम्बको मतकरो और पिताजी मुझको तुम्हारेलिये देतेहैं इसमें सन्देह नही है ॥ ४२ ॥ वैसाहो ऐसामान कर शङ्करजी ने एकाएक प्रणामकर हिमवान्जी से इस वचन को कहा कि हे पर्वतों के स्वामिन् ! आज तुम मेरे लिये उस सुन्दररूपवाली व सुभगा कन्या को देवो ॥ ४३ ॥ ऐसे कृपणवचन को सुनकर भलीभांति उठकर व महेश्वरजीको पकड़कर पर्वतों के राजा हिमालयजी आपही बोले ॥ ४४ ॥ हे प्रभो महादेवजी !

तुम इस समय क्या क्या बकते हो जो कि वचन तुमको अनुचित है क्योंकि हे त्रिलोक के ईश्वर ! तुमही जगत् के दायक और नायकहो ॥ ४५ ॥ व तुमसेही यह सब स्थावर जंगम जगत् पसारा गया है इसभांति बड़ेभारी या, पूजनीय हिमवान्पर्वत स्तुति में परायण हुये ॥ ४६ ॥ और ऋषियों से सबओर घिरे व वहा आये हुये नारदजीने हँसते हुयेकी नाईं वचनको कहा कि हे त्रिशूल हाथवाले प्रभो ! तुम्हारे लिये नमस्कार हो ॥ ४७ ॥ हे शम्भो ! तुम सिद्धान्तसारमय मेरे उत्तम वचन को सुनो कि स्त्रियो के साथ पुरुषों की संगति विडम्बनाके लिये समीप मेंही समर्थ होती है या कीजाती है ॥ ४८ ॥ हे नाथ, देवेश ! तुम जगतोंके स्वामी

तम् ॥ त्वंदातासित्रिलोकेशत्वंस्वामीजगतांविभो ॥ ४५ ॥ त्वयाततमिदंविश्वंजगदेतच्चराचरम् ॥ एवंस्तुतिपरोभूच्चहिमालयगिरिर्महान् ॥ ४६ ॥ आगतोनारदस्तत्रऋषिभिःपरिवारितः ॥ उवाचेवहसन्वाक्यंशूलपाणेनमःप्रभो ॥४७॥ हेशम्भोशृणुमेवाक्यंतत्त्वसारमयंपरम् ॥ योषिद्भिःसङ्गतिःपुंसांविडम्बायोपकल्पते ॥ ४८ ॥ त्वंस्वामीजगतांनाथपराणांपरमंपरः ॥ विमृश्यसर्वंदेवेशतत्त्यक्त्वातर्तुमर्हसि ॥ ४९ ॥ एवंसम्बोधितस्तेननारदेनमहात्मना ॥ प्रबोधमगमच्छम्भुर्जहासपरमेश्वरः ॥ ५० ॥ श्रीशिवउवाच ॥ सत्यमुक्तंत्वयानात्रनान्यथानारदक्वचित् ॥ योषित्सङ्गतिमात्रेणनृणांपतनमेवच ॥ ५१ ॥ भविष्यतिनसंदेहोनान्यथावचनन्तव ॥ अनयामोहितोद्याहमानीतोगन्धमादनम् ॥ ५२ ॥ इत्येवमुपिशाचवत्कृतमिदंचरितम्परमाद्भुतम् ॥ तस्मात्तिष्ठामिगिरेःसमीपंव्रजामिचाद्यैववनान्तरंपुनः ॥ ५३ ॥

व परोंमेंसे पर व उत्तमशक्तिवाले हो इससे सबको विचारकर और उसको त्यागकर तरने के लिये योग्यहो ॥ ४९ ॥ इसभांति उन महात्मा नारदजीसे भलीभांति बोधित याने समझायेहुये परमेश्वर शंकरजी बड़ेभारी ज्ञानको प्राप्तहुये और हँसनेलगे ॥ ५० ॥ श्रीशिवजी बोले कि, हे नारदजी ! तुमने सत्य को कहा है यहां अन्य प्रकार से नही है क्योंकि स्त्रियों के संगमात्रसेही पुरुषोंका गिरना होता है ॥५१॥ तुम्हारावचन अन्यथा नहीं होवेगा इसमें सन्देह नही है आज इनसे मोहित हुआ मैं गन्धमादनको लायागयाहूं ॥५२॥ और पिशाचकी नाईं यह परम अद्भुत चरित कियागया उस लिये मैं पर्वत के समीप में टिकताहूं और आजही वनके बीचको या

दूसरेवनको फिर जाताहूं ॥ ५३ ॥ कारणसमेत ऐसा कहकर वहयोगियों के भी अगम व दुःख से उल्लंघनेयोग्य मार्गको गये और श्रीपार्वतीजी व पर्वतेन्द्र हिमवान् व पार्षदों को बहुतही देखकर ॥ ५४ ॥ व निराधार (आधार से रहित) जैसे हो वैसेही अधिकतासे देखकर नारदजीने वचन को कहा कि वन्दनीय और पूजने योग्य वह परमार्थदृष्टिसे देखेजावें ॥ ५५ ॥ क्योंकि त्रिपुरके वैरी व बड़ेभारीयशवाले यहमहेशजी जगत् के स्वामी हैं श्रीनारदजी के मुखसे निकलेहुये इस वचन को सुनकर ॥ ५६ ॥ श्रीपार्वतीजी को आगे कर बड़ीभारीदीप्तिवाले वे सबपर्वत लोकों के कल्याणकारी शिवजी के प्रति दण्ड के समान गिरे ॥ ५७ ॥ व सब गणों

क्त्वासजगाममार्गंदुरत्ययंयोगिनामप्यगम्यम् ॥ गिरिजांचगिरीद्रंचपार्षदान्प्रेक्ष्यसत्वरम् ॥ ५४ ॥ निरालम्बंसुविज्ञाय नारदोवाक्यमब्रवीत्॥वन्दनीयश्चपूज्यस्सईक्ष्यतांपरमार्थतः ॥ ५५ ॥ महेशोयंजगन्नाथस्त्रिपुरारिर्महायशाः ॥ एतच्छ्रुत्वातुवचनंनारदस्यमुखोद्गतम् ॥ ५६ ॥ गिरिजांपुरतःकृत्वागिरयस्तेमहाप्रभाः॥दण्डवत्पतितास्सर्वेशङ्करंलोकशङ्करम् ॥ ५७ ॥ तुष्टवुःप्रमथास्सर्वेगुह्यकाश्चापिदेवताः ॥ श्रूयमाणोहिभगवानातीतोगन्धमादनम् ॥ ५८ ॥ आगते सहसर्वैस्तैरभिषिक्तोमहात्मभिः ॥ तदादुन्दुभयोनेदुर्वादित्राणिमुहुर्मुहुः ॥ ५९ ॥ इन्द्रादयःसुरास्सर्वेपुष्पवर्षांववर्षिरे॥ ब्रह्मादिभिस्सुरगणैर्बहुभिःपरीतोयोगीश्वरो गिरिजयासहविश्ववन्द्यः ॥ ६० ॥ अभ्यर्थितःपरममङ्गलमङ्गलश्चदिव्यासनेपरिरराजमहाविभूत्या ॥ एवंविधान्यनेकानिचरितानिमहात्मनः ॥ ६१ ॥ महेशस्यचवैविप्राःपापहारीणिश्रृण्वता

गुह्यकों और देवोंने भी स्तुति किया उसको सुनतेहुये या सुनेजातेहुयेही ऐश्वर्य्यसम्पन्न व गन्धमादन को लंघनकर प्राप्तहुये ॥ ५८ ॥ व वहां आयेहुये उन महादेवजी कोही उन सब महात्माओंने अभिषेक किया तब वारंवार नगारियां और बाजे बाजने लगे ॥ ५९ ॥ व इन्द्रादि सबदेवों ने फूलोकी वर्षाको बरसा और ब्रह्मादिक बहुते देव समूहों से सब ओर घिरेहुये व योगियों के स्वामी व श्रीपार्वतीजी के साथ वर्त्तमान व सबजगत् से वन्दनेयोग्य ॥ ६० ॥ और सामने या सब ओर से प्रार्थित (याचित) हुये व परममङ्गलोंके मंगलस्वरूप शिवजी बड़ीभारी शोभा या सम्पत्ति से दिव्य आसन के ऊपर सुशोभित हुये और महात्मा महेशजी के इसभांति के

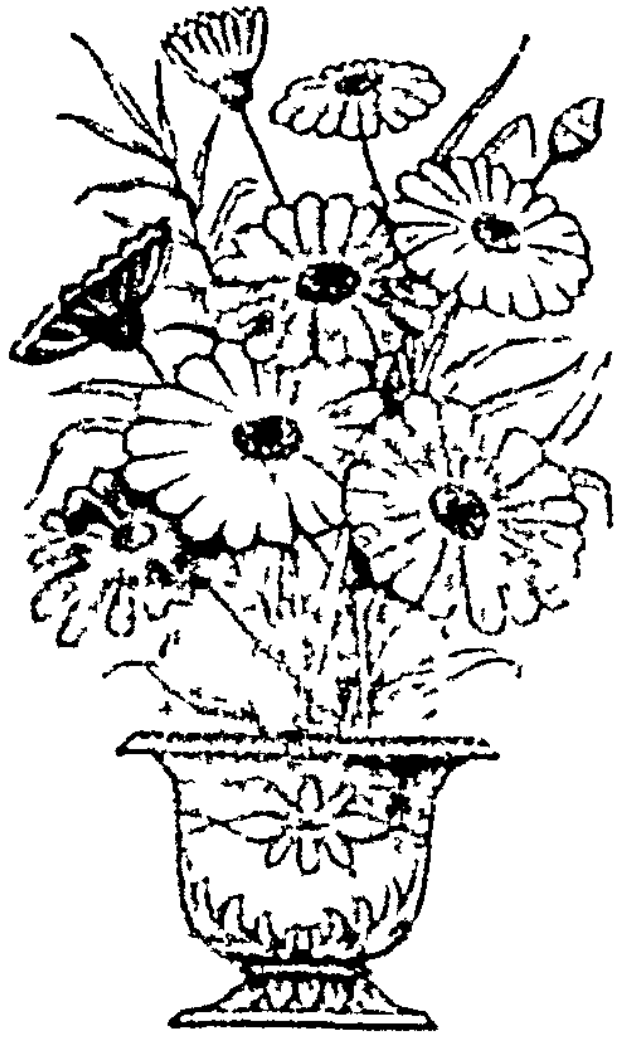
बहुतसे चरितहैं ॥ ६१ ॥ हे ब्राह्मणो ! परमेश्वर रुद्रजी के जे जे चरित यहां सुनतेहुये जनोंके पापहरनेवाले व बड़ेभारी या पूजनीय भी प्रसिद्धहै ॥ ६२ ॥ और उत्तम या दिगम्बर योगियों के रमानेहारे हैं वे सुनेगये हैं अब मैं तुम लोगों से फिर क्या कहूं श्रीशौनकादि ऋषि बोले कि, हे सूतजी ! तुमने शङ्करजी के चरित्र को ऐसा कहा ॥ ६३ ॥ और हमलोग इसचरितसेही भलीभांतितृप्त हैं इसमें संशय नहीं है श्रीसूतजी बोले कि पसराहुआ सब अद्भुत व्रहशङ्करजीका रूप मुझकरके श्रीव्यासजी के प्रसाद (प्रसन्नता) से सुनागया है जो कि अच्छे विस्तार से संयुत व विचित्र व वेदों के भीतर वर्त्तमान या उनको अपने भीतर करनेवाला व

म् ॥ यानियानीहरुद्रस्यचरितानिमहान्त्यपि ॥ ६२ ॥ श्रुतानिपरमाण्येवभूयःकिङ्कथयामिवः ॥ ऋषयऊचुः ॥ एवमुक्तन्त्वयासूतचरितंशङ्करस्यच ॥ ६३ ॥ अनेनचरितेनैवसन्तृप्ताःस्मोनसंशयः ॥ सूतउवाच ॥ व्यासप्रसादाच्छ्रुतमस्ति सर्वंमयाततंशङ्कररूपमद्भुतम् ॥ सुविस्तृतञ्चाद्भुतवेदगर्भंज्ञानात्मकम्परममङ्गलपुण्यरूपम् ॥ ६४ ॥ श्रद्धयापरयोपेताः श्रावयन्तिशिवप्रियाः ॥ ६५ ॥ शृण्वन्तिचैवंयेभक्त्याशम्भोर्माहात्म्यमुत्तमम् ॥ शिवशास्त्रमिदंविप्रास्तेयान्तिपरमाङ्गतिम् ॥ ६६ ॥ नतेषांदुर्लभंकिञ्चित्त्रिषुलोकेषुविद्यते ॥ सर्वंददातिदेवेशोमहेशःसर्वसिद्धिदः ॥ ६७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकेदारखण्डेशैवशास्त्रेपार्वत्यासहशिवसंयोगकथनंनामपञ्चत्रिंशोध्यायः ॥ ३५ ॥ * ॥ * ॥

सर्गमिदंकेदारखण्डम् समाप्तम् ॥

ज्ञानात्मक व परम (उत्तम) मंगलों और पुण्यों का रूपहै या उनका प्रकाशक है उसको बडीश्रद्धासेसंयुत जे शिवजी के प्यारे या उनको प्यारकरनेवाले लोग सुनावेंगे ॥६४।६५॥ और हे विप्रो ! ऐसेही जे कोई शङ्करजीके माहात्म्य इस उत्तम शिवशास्त्रको भक्तिसे सुनते हैं वे परमगतिको याने श्रेष्ठमुक्तिकोप्राप्त होते हैं ॥ ६६ ॥ उनको त्रिलोकों में कुछ भी दुर्लभ नहीं है क्योंकि सबसिद्धिदायक देवों के नायक महेशजी उनको सब देते हैं ॥ ६७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेमाहेश्वरखण्डान्तर्गत केदारखण्डेशैवशास्त्रेभाषाबन्धेसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचितेपार्वत्यासहशिवसयोगकथननामपञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥ ॥ ❋ ॥ ❋ ॥







इति स्कन्दपुराण केदारखण्डः समाप्तः ॥

अथ स्कन्दपुराणअरुणाचलखण्डप्रारम्भः

अथ स्कन्दपुराणमाहेश्वरखण्डान्तर्गतअरुणाचलखण्डस्य सूचीपत्रमाह ॥

इत्यरुणाचलखण्डस्य सूचीपत्रं समाप्तिमगात्

श्रीगणेशाय नमः ॥

अथ स्कन्दपुराणमाहेश्वरखण्डान्तर्गत

अरुणाचलखण्ड सटीक

श्लोक। सिद्धिदं गिरिजापुत्रमादावेव प्रणम्य च। अरुणाचलखण्डस्य भाषार्थः क्रियते मुदा ॥ १ ॥

दो०। ब्रह्मा विष्णु दोऊ यथा तेजस्तंभ प्रमान। ढूंढ्यो सोई प्रथममें कियो चरित्र बखान ॥ चौड़े मस्तक में सुन्दर कस्तूरीका तिलक किये व प्रकाशित चन्द्रमा को धारे और कटिमें कौपीनवस्त्र शोभितवाले तथा मस्तक में ऊपर उठायेहुये नेत्रकी कनीनिकावाले शिवजी को व चन्द्रकला को जो धारे हैं वे अरुणाचल के

ललाटे विस्तीर्णे रुचिरकृतकाश्मीरतिलकःस्फुरच्चन्द्राधारःस्फुरितकटिकौपीनवसनः ॥ दधानश्चोत्तारंशिरसिफणिराजंशशिकलांसईशः सर्वेषामरुणगिरियोगीविजयते ॥ १ ॥ अथाहुर्मुनयःसूतं नैमिषारण्यवासिनः ॥ अरुणाचलमाहात्म्यं त्वत्तःशुश्रूषवोवयम् ॥ २ ॥ तन्माहात्म्यंवदेत्युक्तः सूतःप्रोवाचतान्मुनीन् ॥ श्रीसूतउवाच ॥ एतदर्थंचतुर्वक्त्रं पप्रच्छसनकःपुरा ॥ ३ ॥ शृणुतावहितायूयं तद्वोवक्ष्यामिसाम्प्रतम् ॥ यदाकर्ण्यतांभक्त्या श्रुतांपापनाशनम् ॥ ४ ॥ सत्यलोकेस्थितंपूर्वंब्रह्माणंकमलासनम् ॥ सनकःपरिपप्रच्छ प्रणतःप्राञ्जलिःस्थितः ॥ ५ ॥ सनकउवाच ॥ भगवन्भुवना

योगी व सबोंके स्वामी शिवजी उत्कर्ष को प्राप्तहोवैं ॥ १ ॥ इसके अनन्तर नैमिषारण्य के वासी मुनिलोग सूतजी से बोले कि हमलोग तुमसे अरुणाचलका माहात्म्य सुना चाहते हैं ॥ २ ॥ उस माहात्म्य को कहिये ऐसा कहेहुये सूतजी उन मुनियोंसे बोले श्रीसूतजी बोले कि पुरातन समय सनकजीने इसी वस्तुको ब्रह्मासे पूछाहै ॥ ३ ॥ सावधान होतेहुये तुमलोग सुनो इस समय उसको मैं तुम लोगों से कहूंगा कि जो सुनते व कहते हुये मनुष्यों का पापनाशक है ॥ ४ ॥ पुरातन

समय प्रणामकर हाथ जोड़े बैठेहुये सनकजीने सत्यलोक में स्थित कमल आसनवाले ब्रह्माजी से पूंछा ॥ ५ ॥ सनकजी बोले कि हे जगदाधार, भगवन्, वेदवेद्य, चतुराननजी ! आपकी प्रसन्नतासे मुझको सब ज्ञानहुआहै ॥ ६ ॥ व निर्मल चित्तरूपी दर्पण में भक्तिका ऐश्वर्य होगया और एकहीबार उपदेश से समस्त ज्ञान विदित होगया ॥ ७ ॥ और संसार के गुरु तुम्हारे कटाक्षों से मैंने शिवज्ञान से संयुत समस्त वेदोंके सारांशार्थ को बहुतही पाया है ॥ ८ ॥ हे दयानिधान, सुरनायकजी ! पृथ्वीमें दैविक, सैद्ध (सिद्धोंके थापे) व मानुप तथा भौतिक शिवलिंग हैं ॥ ९ ॥ उनमें जो लिंग निर्मल व, दिव्य तथा अखण्ड ऐश्वर्यवाला हो व आप

धारवेदवेद्यचतुर्मुख ॥ आसीदशेषविज्ञानं प्रसादाद्भवतोमम ॥ ६ ॥ अभवद्भक्तिविभवः शोधितेचित्तदर्पणे ॥ विदितंस कलंज्ञानं सकृदेवोपदेशतः ॥ ७ ॥ सारार्थंसर्ववेदानां शिवज्ञानसमाकुलम् ॥ लब्धवानहमत्यर्थं कटाक्षैस्तेजगद्गुरोः ॥ ८ ॥ लिङ्गानिभुविशैवानि दिव्यानिचकृपानिधे ॥ मानुषाणिचसैद्धानि भौतानिसुरनायक ॥ ९ ॥ यल्लिङ्गममलं दिव्यमपरिच्छेदवैभवम् ॥ स्वयम्भुतेजोवल्लिङ्गं यद्वैत्वंतद्वदस्वमे ॥ १० ॥ नामस्मरणमात्रेण यत्पातकविनाशनम् ॥ शिवसारूप्यदंनित्यं मर्त्यानाञ्चदयानिधे ॥ ११ ॥ अनादिजगदाधारंयत्तेजःशैवमव्ययम् ॥ यच्चदृष्ट्वाकृतार्थःस्यात्तन्म ह्यमुपदिश्यताम् ॥ १२ ॥ इतिभक्तिमतस्तस्य कौतूहलसमन्वितम् ॥ वाक्यमाकर्ण्यभगवान् प्रससादतपोनिधिः ॥ १३ ॥ दध्यौचसुचिरंशम्भुं पङ्कजासनसंस्थितः ॥ अन्तरङ्गसुखाम्भोधिमग्नचेताश्चतुर्मुखः ॥ १४ ॥ दृष्ट्वायच्चपुरादृष्टं तेज

हीसे उत्पन्न तथा तेजस्वी हो उस लिंगको तुम मुझसे कहौ ॥ १० ॥ जोकि नामके स्मरणमात्रसे पातकों का विनाशक हो व हे दयानिधे ! जो मनुष्यों को सदैव शिवसारूप्य का देनेवालाहो ॥ ११ ॥ आदिरहित व संसार का आधार व अविनाशी जो शिवजी का तेजहो और जिसको देखकर मनुष्य कृतार्थ होजावै उसको मुझ से उपदेश कीजिये ॥ १२ ॥ इस प्रकार उन भक्तिमान् सनकजी के कौतुकसंयुत वचन को सुनकर तपस्या के निधान भगवान् ब्रह्माजी प्रसन्नहुये ॥ १३ ॥ व पद्मासन से भलीभांति बैठेहुये ब्रह्माजी ने बहुत देरतक शिवजी को ध्यान किया व अन्तरङ्ग (भीतर) के सुखसमुद्र में डूबेहुये चित्तवाले चतुराननजी ॥ १४ ॥

जिन तेजस्तम्भमय शिवको पहले देखा था उन सर्वाधार को देखकर उतरआये व उन्होंने कुछ नहीं जाना ॥ १५ ॥ फिर वे प्रभु! ब्रह्माजी पालनकरने के लिये
शिवजीसे आज्ञाको पाकर योगसे हृदयमें आनन्द होकर बहुत हर्षको प्राप्तहुये॥१६॥शिवजीके दर्शन से रोमाञ्चित शरीरवाले तथा आनन्द के आंसुओं से संयुत नेत्रोंवाले
ब्रह्माजी गद्गद वचन समेतबोले॥१७॥ब्रह्माजीबोले कि हे पुत्र! आपने प्राचीन शिवयोगको चित्तमें स्मरणकराया कि जिसको तुम्हारे आदरसे ध्यानकरताहुआ मैं स्मरण
करताभया ॥१८॥तुम्हारे बहुत तपोंसे उत्तम शिवभक्ति पैदाहुईहै उसीभक्तिसे मेरा हृदय क्षणभरमें भ्रमितसा होगया॥१९॥वे मनुष्य आकुलतारहित चरितोंसे सब संसार

स्तम्भमयंशिवम् ॥ उत्तीर्णःसकलाधारं नकिञ्चित्प्रत्यबुध्यत ॥ १५ ॥ पुनराज्ञां शिवाल्लब्ध्वा ह्यनुपालयितुंप्रभुः ॥
निर्वर्त्यहृदयेयोगात्परंहर्षमुपागतः ॥ १६ ॥ शिवदर्शनसंजातपुलकाङ्कितविग्रहः ॥ आनन्दबाष्पपूर्णनेत्रः सगद्गदम
भाषत ॥ १७ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ अन्तःसंस्मारितःपुत्र भवताहंपुरातनम् ॥ शिवयोगमनुध्यायन्नस्मार्षंतवचादरात् ॥
१८ ॥ शिवभक्तिःपराजाता तपोभिर्बहुभिस्तव ॥ तयामदीयंहृदयंव्यावर्तितमिवक्षणात् ॥ १९ ॥ पावयन्तिजगत्सर्वं
चरितैस्तेनिराकुलम् ॥ येषांसदाशिवेभक्तिर्वर्धतेसार्वकालिकी ॥ २० ॥ सम्भाषणंसहावासः क्रीडाचैवविमिश्रणम् ॥
दर्शनंशिवभक्तानां स्मरणञ्चाघनाशनम् ॥ २१ ॥ श्रूयतामद्भुतंशैवमाविर्भूतंयथापुरा ॥ अव्ययंकरुणापूर्णं नराणा
मघभिन्महः ॥ २२ ॥ अहंनारायणश्चोभौ जातौविश्वाधिकारिणौ ॥ बहुस्यामितिसङ्कल्पवितन्वानौसदाशिवात् ॥
२३ ॥ प्रभापन्तौसमुद्भूतौ बलवन्तौपरस्परम् ॥ नचश्रान्तौनियुध्यन्तौ साहंकारौरुदाच्चन ॥ २४ ॥ परस्परंरणोत्साह

को पवित्र करतेहैं कि जिनके सब समयवाली याने सनातन भक्ति शिवजीमें बढ़तीहै ॥ २० ॥ शिवभक्तों से सम्भाषण करना व साथ बसना, खेलना, मेलन, दर्शन
व स्मरण पातकों का विनाशक है ॥ २१ ॥ पुरातनसमय जिस प्रकार अविनाशी, दयासे पूर्ण व मनुष्यों के पातकों का विनाशक अद्भुत शैव तेज प्रकटहुआ है उस
को सुनिये ॥ २२ ॥ कि मैं व नारायण ये दोनों संसार के अधिकारी हुये और मैं सदाशिवजी से बहुत हूं इस संकल्प को विस्तार करतेभये ॥ २३ ॥ आपस में
सम्भाषण करतेहुये हम दोनों बलवान् उत्पन्न होकर अहङ्कार समेत युद्ध करतेरहे और कभी नहीं थके ॥ २४ ॥ हम दोनोंका आपसमें बड़ा भयंकर युद्धका उत्साह

देखकर दयाकी मूर्त्ति सदाशिवजी ने चिन्तन किया ॥ २५ ॥ कि मुझ से रचे हुये अहंकार में स्थित इन दोनोंका लोकनाशक युद्ध किस लिये होताहै ॥ २६ ॥ इस समय दोनों अज्ञानियों का बडाभारी युद्ध मना करनेयोग्यहै और यदि मैं युद्धको न रोकूंगा तो संसारका नाश होजायगा ॥ २७ ॥ वेदोंमें सबसे अधिकतासे प्रसिद्ध मेरे माहात्म्य को क्रोधसे नष्ट स्मरणवाले ये दोनों अज्ञानी नहीं जानते हैं ॥ २८ ॥ सबभी प्राणी अपना को बहुत अधिक मानता है और वह दुर्बुद्धि अज्ञानकी अधिकता से नरक में गिरता है ॥ २९ ॥ यदि मैं कहीं भी संसारमें अपनी भक्तिको देऊ तो मेरे रूपके ज्ञानसे वह आत्मा लयको प्राप्तहोताहै ॥ ३० ॥ यह

मानयोरतिभीषणम् ॥ आलोक्यकरुणामूर्त्तिरचिन्तयदथेश्वरः ॥ २५ ॥ किमर्थमनयोर्युद्धं जायतेलोकनाशनम् ॥ मयासृष्टमहङ्कारमप्येवमधितस्थुषोः ॥ २६ ॥ समयेस्मिन्स्वयंवार्यं मुग्धयोरुभयोर्भृशम् ॥ यदियुद्धंनरोत्स्यामि तदास्याद्भुवनक्षयः ॥ २७ ॥ वेदेषुममसाहात्म्यं विश्वाधिकतयाश्रुतम्॥नजानातेइमौमुग्धौक्रोधतोगलितस्मृती॥२८॥ सर्वोपिजन्तुरात्मानमधिकंमन्यतेभृशम् ॥ अविज्ञानसमाधिक्यादधःपततिदुर्मतिः ॥ २९ ॥ यद्यहंकापिभुवने दास्यामिभक्तिमात्मनः ॥ तदामद्रूपविज्ञानात्सआत्मालयतामियात् ॥ ३० ॥ इतिनिश्चित्यसतदा स्वयमेवसदाशिवः ॥ आवयोर्युध्यतोर्मध्येवह्निस्तम्भःसमुद्ययौ ॥ ३१ ॥ अतीत्यसकलाँल्लोकान् सर्वतोग्निरिवज्वलन् ॥ अनाद्यन्ततया चाथ दिगन्तेसंव्यतिष्ठत ॥ ३२ ॥ तेजस्तम्भंज्वलन्तं तमालोक्यशिथिलाशयौ ॥ आवयोःपुरतोजाता वाणीचाप्यशरीरिणी ॥ ३३ ॥ किमर्थंबालकौयुद्धं कल्प्यतेमुग्धमानसौ ॥ युवयोर्बलवैपम्यं शिवएवविचक्षते ॥ ३४ ॥ तेजस्तम्भम

निश्चय कर उस समय आपही सदाशिवजी अग्निस्तम्भरूप होकर युद्ध करते हुये हम दोनोंके बीचमें उत्पन्न हुये ॥ ३१ ॥ सबओर अग्निकी नाईं जलताहुआ वह अग्निस्तम्भ सबलोकों को नांघकर व आदि अन्तसे रहित होकर दिशाओं के अन्ततक स्थितहुआ ॥ ३२ ॥ जलते हुये उस तेजस्तम्भ को देखकर हम दोनों शिथिल आशयवाले होगये और हम दोनोंके आगे आकाशवाणीहुई ॥ ३३ ॥ कि हे अज्ञान मनवाले बालको ! किस लिये युद्ध कियाजाता है तुम दोनोंके बलकी

विषमता को शिवही देखते हैं ॥ ३४ ॥ यह तेजस्तम्भमय रूप शिवजी का स्थित है यदि दोनों इस के आदि अन्तको देखो तो बलमें अधिकहो ॥ ३५ ॥ उससमय
इस प्रकार उस वाणीको सुनकर युद्धसे निवृत्त होगये और हम व गतिमान् विष्णुजी उसको खोजने के लिये स्थित हुये ॥ ३६ ॥ आदि अन्त से रहित शिवजीके
अग्निस्तम्भमय रूपको आदि अन्त के विभाग से देखने के लिये हम दोनोंने उद्योगकिया ॥ ३७ ॥ जैसे आकाश में प्राप्त चन्द्रमा को पकड़ने की इच्छावाले दो
बालक वर्तमान होवैं वैसेही हम दोनों उस तेजको प्रमाण से जानने के लिये उद्योगवान् हुये ॥ ३८ ॥ इसके अनन्तर बड़े उत्साहवाले विष्णुजीने बड़ेभारी शरीर

**यंरूपमिदंशम्भोर्व्यवस्थितम् ॥ आद्यन्तयोर्यदियुवामैक्षिषातांबलाधिकौ ॥ ३५ ॥ इतितांगिरमाकर्ण्य नियुद्धाद्वि
रतौतदा ॥ अहंविष्णुश्चगतिमान्निश्चेतुंतद्व्यवस्थितौ ॥ ३६ ॥ अग्निस्तम्भमयंरूपं शम्भोराद्यन्तवर्जितम् ॥ आलोकि
तुंव्यवसितावावामाद्यन्तभागतः ॥ ३७ ॥ प्रवृत्तौव्योमगंचेन्दुंयथाबालौजिघृक्षतः ॥ तथैवावांसमुद्युक्तौ परिच्छेत्तुञ्च
तन्महः ॥ ३८ ॥ अथविष्णुर्महोत्साहः क्रोडोभूत्वामहावपुः ॥ तन्मूलविचयायाथ भूमिभागंव्यदारयत् ॥ ३९ ॥ अ
हञ्चहंसतांप्राप्तो महावेगंसमुत्पतन् ॥ दिदृक्षुस्तच्छिरोभागं वियदूर्ध्वमगाहिषम् ॥ ४० ॥ अधोधोदारयन्क्षोणिमशेषा
मपिमाधवः ॥ आविर्भूतमिवाधस्तादग्निस्तम्भमवैक्षत ॥ ४१ ॥ अनेककोटिवर्षाणि विचिन्वन्नपितन्नसः ॥ प्रपश्य
न्नादिमक्षय्यमार्तरूपःसविह्वलः ॥ ४२ ॥ विशीर्णदंष्ट्रावलयो विश्लथत्सर्वबन्धनः ॥ श्रमातुरस्तृषाक्रान्तो नोद्धर्तु
मशकद्धरिः ॥४३॥ वाराहंरूपमतुलं सन्धारयितुमक्षमः ॥ विहर्तुमपिविश्रान्तो विषसादरमापतिः ॥ ४४ ॥ अचि**

वाले सूकर होकर उसकी जड़को ढूंढ़ने के लिये भूमिके भागको विदीर्ण किया ॥ ३९ ॥ और हंसरूप को प्राप्तहोकर उसके ऊपर के भागको देखनेकी इच्छावाले मैं
ने बड़ेवेग से उड़कर आकाश के ऊपर खोजकिया ॥ ४० ॥ नीचे २ सब पृथ्वी को खोदते हुये विष्णुजी ने नीचेसे प्रकटहुये से अग्निस्तम्भ को देखा ॥ ४१ ॥ व
अनेकों करोड़ वर्षोंतक ढूंढ़तेहुये भी आदिको अन्तरहित देखकर वे विष्णुजी दुःखितहोकर विकल होगये ॥ ४२ ॥ और टूटीहुई दाढ़ोंकी पंक्तियोंवाले व शि
हुये सब बन्धनोंवाले विष्णुजी श्रमसे विकल व प्याससे संयुतहोकर ऊपर आनेकेलिये न समर्थहुये ॥ ४३ ॥ और अमित सूकररूपको भी धारनेके लिये असम

व विहार करने के लिये भी श्रमित होकर लक्ष्मीनाथ विष्णुजी विषाद को प्राप्त हुये ॥ ४४ ॥ जो अचिन्तनीय व अतुलित बुद्धिवाले हैं वे श्रमित मनवाले होकर श्रमित अङ्गोंवाले व श्रमसे घिरकर विष्णुजी शरणके योग्य शिवजी की शरण में आश्रित हुये ॥ ४५ ॥ व मनमें कहनेलगे कि अहङ्कार से उपजी हुई इस बड़ीभारी मेरी मूढताको धिक्कार है कि जिससे मैंने अपने स्वामी शिवात्माको नहीं जाना॥ ४६ ॥ समस्त वेदों, देवताओं व लोकोंके जो आदिभूत व जो साक्षात् शिवजी मूलभूत हैं इनका आदि कैसे होवै ॥ ४७ ॥ आदि अन्त से रहित इन्हीं शिवजी से मैं पैदाहुआहूं और अग्निरूपधारी इन शिवजी को ढूंढ़ने के लिये मैंने प्रारम्भ

न्त्योयममेयात्मा परिभ्रान्तमनास्सच ॥ गलिताङ्गःश्रमाक्रान्तः शरण्यंशिवमाश्रयत् ॥ ४५ ॥ धिङ्ममेदंमहन्मौढ्यमहङ्कारसमुद्भवम् ॥ येनाहमात्मनोनाथमात्मानंनावबुद्धवान् ॥ ४६ ॥ आदिर्हिसर्ववेदानां देवानांजगतामपि ॥ मूलभूतःशिवःसाक्षान्मूलमस्यकथंभवेत् ॥ ४७ ॥ अस्माद्देवसमुद्भूतोऽस्म्यहमाद्यन्तवर्जितात् ॥एनमन्वेष्टुमारब्धंहुताशनवपुर्धरम् ॥ ४८ ॥ अप्राप्यकरुणाबन्धोः पितुःशम्भोःप्रसादतः ॥ पुनरेवेदृशीलब्धा मतिर्मेचात्मबोधिनी ॥ ४९ ॥ स्वयमेवमहादेवः शम्भुर्यंपातुमिच्छति ॥ तस्यसद्योभवेद्भावमनहङ्कारमात्मजम् ॥ ५० ॥ नशक्तोस्मिपुनःकर्तुं पूजामस्यजगद्गुरोः ॥ निवेदयामिचात्मानं शरण्यामिशङ्करम् ॥ ५१ ॥ इतिदध्यौशिवंविष्णुस्तत्समर्पितचेतनः ॥ तत्प्रसादाच्छुद्धबुद्धिः पुनरेवोद्गतःक्षितेः ॥ ५२ ॥ अहञ्चगगनेभ्राम्यन्ननेकानपिवत्सरान् ॥ आघूर्णमाननयनः श्लथपक्षः

किया ॥ ४८ ॥ और उसके आदिको न पाकर पिता सदाशिवजी के प्रसादसे फिर ऐसी आत्मज्ञानवाली बुद्धि प्राप्तहुई ॥ ४९ ॥ आपही महादेवजी जिसकी रक्षा करना चाहते हैं उसके शीघ्रही बुद्धिसे उपजाहुआ बिन अहङ्कारका भाव होता है ॥ ५० ॥ फिर मैं इन जगद्गुरु की पूजा करने के लिये नहीं समर्थ हूं इससे आत्मा को अर्पण करताहूं व सदाशिवजीकी शरणमें प्राप्तहूं ॥ ५१ ॥ इस प्रकार उनमें समर्पित चित्तवाले विष्णुजी ने शिवजी का ध्यान किया और उनकी प्रसन्नता से शुद्ध बुद्धिवाले विष्णुजी फिर पृथ्वी से ऊपर आये ॥ ५२ ॥ और अनेकों वर्षोंतक आकाशमें घूमताहुआ मैं भ्रमित नेत्रोंवाला तथा परिश्रमित पक्षोंवाला और परिश्रम से

विकलहुआ ॥ ५३ ॥ आगे स्थित व जलतेहुये उस तेजस्तम्भ, देवपूजित लिंगके समान शैव तेजको ऊपर ऊपर देखकर मैं विकलहुआ॥५४॥इसके अनन्तर तेजअंश से उपजेहुये सिद्धलोगों ने मुझ हंसको देखा व उद्यम कियेहुये मुझको देखकर उन्होंने आपस में यह कहा ॥ ५५ ॥ कि हंसकी अज्ञानता को आश्चर्य है कि अब भी खोज करने की इच्छा करता है और समीपही देहपातवाला यह हंस अहङ्कार से नहीं समझता है ॥ ५६ ॥ टूटतेहुये पंखोंवाला व परिश्रम से अमितलोच-नोंवाला यह हंस अपारतेज में गिरताहुआ मोहरहित होगा इसी प्रकार विकल चित्तवाले थे वाराहरूपी विष्णुजी ॥ ५७ ॥ व्याजरहित दयासेवी शिवजी से

श्रमातुरः ॥ ५३ ॥ उपर्युपरिचालक्ष्यंज्वलन्तंपुरतःस्थितम् ॥ तेजस्तम्भञ्चलिङ्गाभं शैवंतेजःसुरार्चितम् ॥ ५४ ॥ मांहंसंददृशुश्चाथ सिद्धास्तेजोंशसम्भवाः ॥ इदमन्योन्यमूचुस्ते दृष्ट्वामान्तुकृतोद्यमम् ॥ ५५ ॥ अहोहंसस्यमुग्धत्व मद्यापिविचिकीर्षति ॥ आसन्नदेहपातोपि नाहङ्कारेणबोधते ॥ ५६ ॥ विशीर्यमाणपक्षोयं श्रान्त्याविभ्रान्तलोचनः ॥ अपारेतेजसिपतन् विमोहोयंभविष्यति ॥ एवंचाकुलचित्तोयं क्रोडरूपीजनार्दनः ॥ ५७ ॥ व्यावर्तितःशिवेनैव निर्व्याज करुणाजुषा ॥ ईदृशांब्रह्ममुख्यानां सुराणांकोटिसञ्चयः ॥ ५८ ॥ यत्तेजःपरमाणुभ्यस्तस्यपारंदिदृक्षते ॥ स्वात्मानौ द्वावितिध्यात्वा समयेभगवाञ्छिवः ॥ ५९ ॥ यदिबुद्धिन्ददात्यस्मै तस्यनश्येदहंक्रिया ॥ इत्येवंवदतान्तेषांसिद्धानां सदयंवचः ॥ ६० ॥ आकर्ण्यशीर्णाहङ्कारोह्यहमात्मन्यचिन्तयम् ॥ नवेदराशिविज्ञानान्नतपस्तीर्थसेवनात् ॥ ६१ ॥ सञ्जा यतेशिवज्ञानमस्यचानुग्रहादृते ॥ शीर्णेपिपक्षयुगले सीदत्यपिकलेवरम् ॥ ६२ ॥ पुनरुत्सहतेचेतः स्वाहङ्कार

लौटायेगये हैं जिनमें ब्रह्मा मुख्यहैं ऐसे देवताओं के करोड़गण ॥ ५८ ॥ यदि तेज की परमाणुओं से उसके पारको देखना चाहै तो नहीं देखसके है ये दोनों अपना आत्मा हैं यह विचारकर इस समय भगवान् शिवजी ॥ ५९ ॥ यदि इसके लिये बुद्धिको देवें तो उसका अहङ्कार नाशहोवै इस प्रकार दया समेत कहते हुये उन सिद्धोंका वचन ॥ ६० ॥ सुनकर नष्ट अहङ्कारवाले मैंने चित्तमें चिन्तन किया कि न वेदसमूह के ज्ञानसे व न तपस्या व तीर्थके सेवन से ॥ ६१ ॥ इन शिवजीकी दयाके विना शिवज्ञान उत्पन्न होताहै दोनों पंखोंके टूटनेपर व शरीर के भी विकलहोनेपर ॥ ६२ ॥ फिरभी चित्त अपने अहङ्कार के ग्रहण में उत्साह करताहै अपने

बलको न जाननेवाले व अहङ्कार से घिरेहुये मुझको धिक्कार है ॥ ६३ ॥ इन शिवभक्त सिद्धोंके लिये सदैव नमस्कार है कि जिन के संसर्ग से मिलेहुये तपसे शोभित चित्तवाला मैं ॥ ६४ ॥ अपनी आत्मा के कारण इन आगे स्थित शिवजीको जानताहूं जिनकी प्रसन्नता के मिलने से ऐश्वर्य से संयुत ॥ ६५ ॥ सब देवता नष्ट शत्रुवोंवाले होते हैं वेद जिनके परमार्थ को बड़े शास्त्रों से नहीं जानत हैं ॥ ६६ ॥ संसार में विलक्षण रूप उन्हीं सदाशिवजी की शरण में मैं प्राप्तहोताहूं समस्त प्राणियोंके स्वामी वे महेश्वर देवजी सब से आराधन करनेयोग्य हैं ॥ ६७ ॥ वे दयानिधान शिवदेवजी मुझको बहुतभांति की भक्तिको देवैं इस प्रकार बहुत भांतिसे

स्यप्रग्रहे॥धिङ्मामहंक्रियाक्रान्तमनात्मबलवेदिनम् ॥ ६३ ॥ शिवभक्तेभ्यएतेभ्यः सिद्धेभ्यःसततंनमः ॥ येषांसंसर्गलब्धेन तपसाशोधिताशयः ॥६४॥ शिवमेनंविजानामिस्वात्महेतुंपुरःस्थितम् ॥ यत्प्रसादावलब्धेन विभवेनसमन्विताः ॥ ६५ ॥ देवाःसर्वेभविष्यन्ति सततंशमितारयः ॥ यस्यवेदानजानन्ति परमार्थंमहागमैः ॥ ६६ ॥ तमेवशरणंयामिशम्भुंविश्वविलक्षणम् ॥ सदेवःसकलाराध्यः सर्वभूतमहेश्वरः ॥६७॥ भक्तिमेवहुधादेवः प्रयच्छतुदयानिधिः ॥ इतिसञ्चिन्त्यबहुधा तदाजयमहंक्रियाम् ॥ ६८ ॥ स्वात्मानमर्पयंस्तस्मै संस्फुरच्चन्द्रमौलये॥ अवतीर्य्यह्यधोभागे यदाश्रान्तकलेवरः ॥ ६९ ॥ अपश्यंचहरिम्प्राप्तं तेजस्तम्भसमीपगम् ॥ अवादिषमधोभागे विष्णुंकमललोचनम्॥७०॥ लब्धदेहःशिवम्भक्त्या संश्रितश्चन्द्रशेखरम् ॥ अहोकिमिदमाश्चर्यमागतंशौर्यशालिना ॥ ७१ ॥ मयाचभवताक्षान्तं शम्भुशक्त्यासमागतम् ॥ तद्वृत्तान्तमहंसर्वमश्रौषंसिद्धवाक्यतः ॥ ७२ ॥ भक्त्यासम्पूजयावाचा अस्मत्पितर

चिन्तन कर उससमय मैंने अहङ्कार को जीतलिया ॥ ६८ ॥ और प्रकाशित चन्द्रमाको मस्तक में धारेहुये उन शिवजी के लिये अपने आत्मा को अर्पण करते हुये थके शरीरवाले मैंने नीचेभाग में उतरकर जब ॥ ६९ ॥ तेजस्तम्भ के समीपगामी प्राप्तहुये विष्णुजी को देखा व नीचे के भाग में कमलसरीखे नेत्रोंवाले विष्णुजी से कहा ॥७०॥ कि शरीरको प्राप्त पुरुष भक्तिसे चन्द्रभालजी के आश्रित होवै अहो यह क्या आश्चर्य आगया कि शूरता स्वभाववाले ॥ ७१ ॥ मैंने व आपने क्षमा किया शिवजी की शक्तिसे प्राप्त उस सब वृत्तान्तको मैंने सिद्धों के वचन से सुनाहै ॥ ७२ ॥ जोकि भक्ति व भलीभांति पूजन और वचन से हमारे पिता शिवजी

को भजते हैं शिवजी की मायासे उपजेहुये अहङ्कार में आश्रित ॥ ७३ ॥ हम तुम दोनोंने आपस में बड़ाभारी युद्ध किया और हम तुम दोनों के सब वृथा अहङ्कार
को उन्हीं सदाशिवजी ने ॥ ७४ ॥ हरलिया जोकि अमित बुद्धिवाले हैं अपने माहात्म्यको प्रकाश करनेवाले इन तेजस्तम्भमय समर्थ सदाशिवजी को पूजकर
सब सिद्धिको पातेहैं ॥ ७५ ॥ संसाररूपी समुद्र की नौकारूप ये सदाशिवजी नित्यही प्रणाम करनेयोग्य हैं ॥ ७६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽरुणाचलखण्डेदेवीदया
लुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांतेजस्तम्भवर्णनंनामप्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

दो० । शिवकी स्तुति कीन्ह जिमि ब्रह्म विष्णु दोउ देव । सो दूजे अध्याय में कह्यो चरित सुखदेव ॥ ब्रह्माजी बोले कि इसके अनन्तर समस्त मुखोंसे वेदोंको

मीश्वरम् ॥ शम्भुमायासमुद्भूतमहङ्कारमुपाश्रितौ ॥ ७३ ॥ आवांपरस्परंयुद्धमकार्षंविपुलंमहत् ॥ सएवशङ्करःसर्व
महङ्कारमुधावयोः ॥ ७४ ॥ अपाहरदमेयात्मा स्वमाहात्म्यप्रकाशकम् ॥ अमुमीश्वरमानर्च तेजस्तम्भमयंशिवम् ॥
७५ ॥ अभिवन्द्योऽस्त्यसौनित्यंसंसारसागरस्यनौः ॥ ७६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽरुणाचलमाहात्म्येप्रथमोऽध्यायः ॥१॥
ब्रह्मोवाच ॥ अथाहमुच्चरन्वेदानशेषैर्वदनैःशिवम् ॥ अस्तौषंभक्तिसम्पूर्णः कृत्वामानसमर्चनम् ॥ १ ॥ नमःशिवा
यमहते सर्वलोकैककहेतवे ॥ येनप्रकाशितंसर्वं तस्मैतेसततंनमः ॥ २ ॥ विश्वव्याप्तमिदंतेजः प्रकाशयतिशाम्भवम् ॥
नैत्तन्तेत्वद्दयाहीना नेत्रान्धइवभास्करम् ॥ ३ ॥ स्वयम्भुलिङ्गममलं दृश्यमध्यात्मचक्षुषा ॥ अथवाशाङ्करीशक्ति
रस्त्यणोरप्यणीयसी ॥ ४ ॥ मत्तोमान्यतरःकश्चिद्योमय्यपिविलीयते ॥ अणुस्तेकरुणापात्र महत्त्वंध्रुवमश्नुते ॥ ५ ॥

उच्चारण करतेहुये व भक्तिसे सम्पूर्ण मैंने मानसी पूजन कर शिवजी की स्तुति किया ॥ १ ॥ कि समस्त लोकोंके एकही कारण व महात्मा शिवजी के लिये नम-
स्कारहै जिन्होंने सब प्रकाशित कियाहै उन आपके लिये प्रणाम है ॥ २ ॥ संसारमें व्याप्त यह सदाशिवजी का तेज प्रकाश करता है इसको तुम्हारी दयासे हीनपुरुष
नहीं देखते हैं जैसे कि नेत्रोंसे अन्ध नर सूर्यको नहीं देखते हैं ॥ ३ ॥ आपही से उपजाहुआ निर्मल लिङ्ग अध्यात्मदृष्टिसे देखनेयोग्य है अथवा शिवजीकी शक्ति
सूक्ष्म से भी अतिसूक्ष्म है ॥ ४ ॥ मुझसे अधिक माननेयोग्य कोई है जोकि मुझमें लीन होजाताहै हे दयापात्र! तुम्हारा सूक्ष्म अंश अचल महत्त्व को भोगताहै ॥५॥

तुम्हारे आश्रयवाले मुझसे व तुमसे कोई अधिक नहीं है तुममें समर्पित मनवाला जो पुरुष है वह भी योगकी अपेक्षा करता है ॥ ६ ॥ हे भुवनाधिक, महादेव ! तुम्हारे नामके कीर्तन विना कैसे वचन की प्रवृत्ति होवैहै हे ईश ! आपही प्रसन्न होवो ॥ ७ ॥ प्रणाम कियेहुये भक्तको अपेक्षित नियोगों में आज्ञा दीजिये नम्रता से बार २ प्रणामकर यह बिनतीकर मैने स्तुति किया ॥ ८ ॥ इसके अनन्तर शुक्र व शङ्कर के कीर्त्तनों से बार २ वाणीको कृतार्थ करतेहुये नवीन मेघोके समान शब्द वाले विष्णुजी ने हाथ जोड़कर देवदेवेश शिवजी से यह कहा कि हे जगदीश, विरूपलोचन, चन्द्रार्धशेखर ! आपकी जयहो ॥ ९ । १० ॥ हे शम्भो ! तुम्हारे

नाधिकोस्तिपरस्त्वत्तो नमत्तोपित्वदाश्रयात् ॥ त्वय्यर्पितमनायश्च सोपियोगमपेक्षते ॥ ६ ॥ वाचःकथंप्रवृत्तिःस्याद्दृतेत्वन्नामकीर्त्तनम् ॥ स्वयमीशमहादेव प्रसीदभुवनाधिक ॥ ७ ॥ आदिशप्रणतंभक्तमपेक्षितनियुक्तिषु ॥ इदंविज्ञाप्यविनयान्नमस्कृत्वापुनःपुनः ॥ ८ ॥ प्राञ्जलिर्देवदेवेशं भीमंदुर्दर्शवैभवम् ॥ अथविष्णुर्नवाम्भोदगम्भीरध्वनिरभ्यधात् ॥ ९ ॥ वाचंकृतार्थयन्भूपः शुक्रशङ्करकीर्त्तनैः ॥ जगन्नाथविरूपाक्षजयचन्द्रार्धशेखर ॥ १० ॥ अव्याजमभितंशम्भो कारुण्यंतववर्धते ॥ येननिर्धूतमखिलं भक्तेपुज्ञानमाहितम् ॥ ११ ॥ पालनंसर्वविद्यानां प्रायशोभूतिसञ्चयैः ॥ ज्ञानादिकंस्वपुत्राणां पितुरेवप्रवर्ध्यते ॥ १२ ॥ शतशस्तवमूर्त्तीनामेकापिनिखिलैःसुरैः ॥ स्तोतुंनशक्याईशान समवायस्तुकिम्पुनः ॥ १३ ॥ त्वमेवत्वामलंवेत्तुं यदिवात्वत्प्रसादभूः ॥ भ्रमरःकीटमाकृष्य स्वात्मानंकिंननानयेत् ॥ १४ ॥ देवास्त्वदंशसम्भूताः प्रभवोनभवन्तिकिम् ॥ अथास्याप्यग्निदेवस्य दाहशक्तिर्नकिम्भवेत् ॥ १५ ॥ देशकालक्रियायोगाद्य

व्याज (बहाना या कपट) रहित अमित दया बढ़ती है कि जिससे प्रेरित समस्त ज्ञान भक्तों में स्थित है ॥ ११ ॥ प्रायशः ऐश्वर्यों के समूहों से सब विद्याओं का पालन व अपने पुत्रोंका ज्ञानादिक पिताही के सकाश से बढ़ता है ॥ १२ ॥ हे ईशान ! आपकी जो सैकड़ों मूर्त्तियां हैं उनमें समस्त देवता एककीभी स्तुति नहीं करसक्ते हैं फिर समूह को क्या कहना है ॥ १३ ॥ तुमको जानने के लिये तुम्हीं समर्थ हो अथवा तुम्हारी प्रसन्नता का पात्र याने जिसके ऊपर तुम प्रसन्नता करो वह तुमको जानसक्ता है क्योंकि भ्रमर कीटको खींचकर क्या अपनी सरूपता में नहीं प्राप्त करता है ॥ १४ ॥ तुम्हारे अंशसे उपजे हुये देवता क्या समर्थ नहीं होतेहैं और

अग्निदेव के क्या दाहशक्ति नहीं होवै है ॥ १५ ॥ जैसे देश व समय व कर्मके संयोग से अग्निके भेदकी उत्पत्ति होतीहै वैसेही एकभी तुम विषयों के भेदसे भेदको प्राप्तहोते हो ॥ १६ ॥ हे दयामें परायण, सदाशिवदेवजी ! हे सबके आधाररूप ! नेत्रोंको आनन्द देनेवाली मूर्त्तिको हम दोनोंको दिखलाइये ॥ १७ ॥ श्रीसूतजी बोले कि इस प्रकार भक्ति व श्रद्धासंयुत प्रणाम करते व स्तुति करतेहुये उन ब्रह्मा व विष्णुजी के ऊपर सदाशिवजी प्रसन्नहुये ॥ १८ ॥ फिर चन्द्रार्द्ध मस्तकवाले सदा-शिवदेवजी उस तेजस्तम्भ से पिंगलवर्ण व श्याम कन्धवाले पुरुषरूप होकर प्रकटहुये ॥ १९ ॥ फरसा, बालहरिन, अभय व विश्रामको हाथोंसे धारण कियेहुये उरा

थाग्नेर्भेदसम्भवः ॥ तथाविषयभेदेन त्वमेकोपिविभिद्यसे ॥ १६ ॥ अनुग्रहप्रदेवमूर्त्तिंदर्शयशङ्कर ॥ आवयोरखिला
घारनयनानन्ददायिनीम् ॥ १७ ॥ श्रीसूतउवाच ॥ एवंतयोःप्रणमतोःश्रद्धाभक्तिसमन्वितम् ॥ प्रससादपरंशम्भुःस्तु
वतोर्ब्रह्मकृष्णयोः ॥१८॥ तेजस्तम्भात्पुनस्तस्माद्देवश्चन्द्रार्द्धशेखरः ॥ आविर्बभूवपुरुषः कपिलःकालकन्धरः ॥ १९ ॥
परशुंबालहरिणं करैरभयविश्रमौ ॥ दधानःपुरुषोवादीत्पुत्रौहेतावितिप्रभुः ॥ २० ॥ परितुष्टोस्मियुवयोर्भक्त्यायुक्ता
त्मनोर्मयि ॥ भवतांसर्वलोकानांसृष्टिरक्षाधिपौयुवाम् ॥२१॥ युवयोरिष्टसिद्ध्यर्थंमाविर्भूतोस्म्यहंयतः ॥ वरंवृणुतम
न्यञ्च वरदोहमुपागतः ॥ २२ ॥ इतिदेवस्यवचनात्सुप्रीतौतौकृताञ्जली ॥ विज्ञापयामासतुस्तौ स्वंस्वमर्थंपृथक्पृ
थक् ॥ २३ ॥ कथयामासतुस्तौच जगत्त्रयविधायकम् ॥ संस्तुवन्वैदिकैर्मन्त्रैरीशानमपराजितम् ॥ २४ ॥ हरसित्वमि
दंरूपनमस्तेभद्रमीश्वर ॥ तेजोमयंमहादेव योगिध्येयंनिरञ्जनम् ॥ २५ ॥ आपूर्यमाणंभवता तेजसागगनान्तरम् ॥

प्रभु पुरुष ने दोनोंसे कहा कि हे पुत्रो ! ॥ २० ॥ भक्तिसे मुझमें युक्त चित्तवाले तुम दोनों के ऊपर मैं प्रसन्नहूं तुम दोनों सब लोकोंकी सृष्टि व रक्षाके स्वामी होवो ॥ २१ ॥ जिस लिये तुम दोनोंके प्रिय कार्यकी सिद्धिके लिये मैं प्रकटहुवाहूं इस कारण अन्य वरदान को मांगिये मैं वरदायक प्राप्तहूं ॥ २२ ॥ शिवदेवजी के इस वचनसे प्रसन्न होकर हाथोंको जोड़हुये उन दोनोंने पृथक् २ अपने अपने प्रयोजन को बतलाया ॥ २३ ॥ और तीनों लोकोंको रचनेवाले व अपराजित शिवजीकी वैदिक मन्त्रोंसे स्तुति करते हुये उन्होंने यह कहा ॥ २४ ॥ कि हे ईश्वर, महादेव ! तुम्हारा कल्याणहोवे योगियों से ध्यान करनेयोग्य व निरञ्जन इस तेजोमय रूपको हर

लीजिये ॥ २५ ॥ आपके तेज से आकाश का अन्तर (मध्य) पूरित है देवताओं का स्थान दीजिये तो क्षणभर में कल्याण होगा ॥ २६ ॥ सिद्ध, चारण, गन्धर्व, देवता व परमर्षि लोग आपके तेजके कारण आकाश में निवास व मार्गको नहीं पाते हैं ॥ २७ ॥ और तुम्हारे तेजसे समस्त पृथ्वी तच रही है व वही पृथ्वी रसोंकी उत्पत्ति में समर्थ न होगी ॥ २८॥ तुम तेजको हरकर लोकोंके ऊपर दयाके कारण से अरुणाचल संज्ञासे अचल लिंग होवो ॥ २९ ॥ अरुणाचल संज्ञक इस ज्योतिर्मय रूपको जो मनुष्य भक्तिसे प्रणाम करते हैं वे सब देवताओं से अधिक हैं ॥ ३० ॥ और सब मनुष्य व सिद्ध और परमर्षि सेवन करैं व मानसीभाव में स्थित होकर

परियच्छसुरावासं क्षणाद्धिशम्भविष्यति ॥ २६ ॥ सिद्धचारणगन्धर्वा देवाश्चपरमर्षयः ॥ नावासंदिविसञ्चारं लभेरं स्तेजसातव ॥ २७ ॥ पृथ्वीचसकलाचैव तप्यमानातवौजसा ॥ साचैवरसप्रोत्पत्तिक्षमानैवभविष्यति ॥ २८ ॥ उप संहृत्यतेजस्त्वमरुणाचलसंज्ञया ॥ भवस्थावरलिङ्गंत्वं लोकानुग्रहकारणात् ॥ २९ ॥ ज्योतिर्मयमिदंरूपमरुणाचल संज्ञितम् ॥ येनमन्तिनराभक्त्या तेसर्वेत्वमराधिकाः ॥३०॥ सेवन्तांसकलालोकाः सिद्धाश्चपरमर्षयः॥ गणाश्चविविधाभू मौमानसम्भावमास्थिताः ॥ ३१ ॥ दिव्यारामसमुद्भूताः कल्पकाद्याःसुरद्रुमाः ॥ सेवितास्त्वांप्रारोहन्तु सम्पूर्णाविविधैः फलैः ॥ ३२ ॥ दिव्यौषधिगणाःसर्वे सिंहाद्यामृगजातयः ॥ सततंपरिवर्तन्तांपापकल्मषनाशनम् ॥३३ ॥ अयनद्वयभि न्नेनगमनेनापिसंयुतः ॥ नलङ्घयिष्यतिरविः शृङ्गंलिङ्गात्मनस्तव ॥ ३४ ॥ दिव्यदुन्दुभिशङ्खानां निर्घोषैःपुष्पवृष्टि भिः ॥ सेवितोभवदेवत्वमप्सरोनृत्यगीतिभिः ॥ ३५ ॥ अमरत्वञ्चसिद्धत्वं रससिद्धिञ्चनिर्वृतिम् ॥ लभतांमानुषानित्यं

भूमि में अनेक भांति के गण आप को सेवैं ॥ ३१ ॥ और दिव्य बगीचों में उपजेहुये कल्पकादिक सेवित देव वृक्ष विविधफलों से पूर्ण होकर तुम्हारे ऊपरजगै॥३२॥ व पातकों तथा अपराधों के नाश करनेवाले तुम्हारे ऊपर दिव्य औषधियों के गण व सिंहादिक सब पशु जातियां सब ओर घूमै ॥ ३३ ॥ और दोनों अयनोंकी भिन्न गति से भी संयुत सूर्यनारायण जी तुम्हारे लिंगात्मक शिखर को न नांघैंगे ॥३४॥ व हे देव ! दिव्य नगारों और शङ्खो के शब्दो तथा पुष्पवृष्टियों से और अप्सराओं के

नृत्य व गानों से सेवित होवो ॥ ३५ ॥ और तुम्हारे समीप आयेहुये पुरुष अमरता सिद्धता, स्वर्ग [illegible]
जी ! तुम्हारे आश्रित होकर मनुष्य ऐश्वर्यता, सौभाग्य, महत्त्व व काल की वंचना को प्राप्त होवैं व [illegible]
और समस्त मनोरथों के दान से पृथ्वी में दृश्य होवो याने देख पड़ो वैसाही होगा ऐसा वर देनेवाले अरुणा[illegible]
करते हुये लक्ष्मीनाथ विष्णुजी यह बोले कि हे अरुणाचलेश्वर, दयापूर्ण, प्रभो ! प्रसन्न होवो ॥ ३६ ॥ हे [illegible]

त्वत्संनिधिमुपागताः ॥ ३६ ॥ ईशानत्वञ्चसौभाग्यं महत्त्वंकालवञ्चनम् ॥ त्वामाश्रित्यनराः [illegible]
सर्वावयवदानेन सर्वव्याधिविनाशतः ॥ ३७ ॥ सर्वाभीष्टप्रदानेन दृश्योभवमहीतले ॥ तथे[illegible]
शिवम् ॥ ३८ ॥ प्रणम्यकमलानाथः प्रार्थयन्निदमब्रवीत् ॥ प्रसीदकरुणापूर्ण शोणशैलेश्वरप्रभो ॥ [illegible]
लोकानां हितायप्रकटोदय ॥ यदाहंत्वामुपाश्रित्य जगद्रक्षणदक्षिणः ॥ ४० ॥ श्रीपतित्वमनुप्राप्तस्तदा[illegible]
ते ॥ नाल्पपुण्यैरुपास्येतत्वद्रूपमहदद्भुतम् ॥ ४१ ॥ मयाचब्रह्मणावेदप्रोक्तस्तोत्रेणत्वंस्तुतः ॥ प्रदक्षिणा[illegible]
त्यगीतैश्चपूजनैः ॥ ४२ ॥ त्वामर्चयन्तियेमर्त्याः कृतार्थास्तेगतांहसः ॥ उपवासैर्ब्रह्मणात्वमर्चितश्चन्द्रशेखर ॥ ४३ ॥
उपहारैरर्चनैश्चत्वामर्चन्तुनराश्चये ॥ अवश्यमेवमनुजाः सार्वभौमाभवन्तुते ॥ आरामंमण्डपंचापि कूपंभूमिविशोध
नम् ॥ ४४ ॥ कुर्वतामरुणाद्रीश संनिधानेपुनर्भवः ॥ अग्रंप्रदक्षिणंकुर्वन्नष्टैश्वर्यसमश्नुताम् ॥ ४५ ॥ अशेषपातकैः

जब मैं तुम्हारे आश्रित होकर संसार की रक्षा में चतुर होऊं ॥ ४० ॥ व श्रीपतित्वको प्राप्त होऊं तब तुम्हारे भक्त होवै क्योंकि बड़े अद्भुत तुम्हारे रूप को थोड़ी
पुण्यवाले लोग न उपासना करैं ॥ ४१ ॥ मैने व ब्रह्मा ने वेद मे कहेहुये स्तोत्र से तुम्हारी स्तुति किया है और प्रदक्षिणा, नमस्कार, नृत्य, गीत व पूजनों से ॥ ४२ ॥
जो मनुष्य तुमको पूजतेहैं वे पापरहित व कृतार्थ होजातेहैं हे चन्द्रभाल ! ब्रह्माने उपवासोंके द्वारा तुम्हारा पूजन कियाहै ॥ ४३ ॥ जो मनुष्य बलि व पूजनों से तुम को
पूजैं वे मनुष्य अवश्यही चक्रवर्तीहोवैं और बगीचा, मण्डप, कूप व भूमिशोधन ॥ ४४ ॥ करतेहुये पुरुषों का अरुणाचल के समीप फिर जन्म होवै, और पर्वत की प्रद-

त्तिणा करताहुआ पुरुष आठों ऐश्वर्यों को भोगकरै ॥ ४५ ॥ व समस्त पातकों से शीघ्रही छूटकर निर्मल चित्तवाला होजावै और तुम्हारे समीप आयेहुये सब पुरुषोंको अहं, मम छोड़कर सदैव तुम्हारे चरणकमलों का ध्यान करना चाहिये वैसाही होगा इस वरदान को विष्णुजी के लिये देकर चन्द्रभाल जी ॥ ४६ । ४७ ॥ अरुणाचल के रूप से अचल लिंगत्व को प्राप्तहुये यह तैजस लिंग सब लोकों का एक कारण है ॥ ४८ ॥ जो कि अरुणाचल ऐसा प्रसिद्ध भूतल में देखपड़ता है युगान्त समय में डूबेहुये लोकान्तोंवाले भी इन चारों समुद्रों से इसके समीपकी भूमि नहीं स्पर्श कीजाती है व हाथी के प्रमाण भर जलबिन्दुवों से त्रिलोक को पूर्ण

सद्यो विमुक्तोनिर्मलाशयः ॥ अहंममविमुच्यैव सदात्वत्पादपङ्कजम् ॥ ४६ ॥ ध्यातव्यंमनुजैःसर्वैस्तवसंनिधिमागतैः ॥ तथास्त्वितिवरंदत्त्वा विष्णवेचन्द्रशेखरः ॥ ४७ ॥ अरुणाचलरूपेण प्राप्तःस्थावरलिङ्गताम् ॥ तैजसंलिङ्गमेतद्धि सर्व लोकैककारणम् ॥ ४८ ॥ अरुणाद्रिरितिख्यातं दृश्यतेवसुधातले ॥ युगान्तसमयेचैतैश्चतुर्भिरपिसागरैः ॥ ४९ ॥ अपि निर्मग्नलोकान्तैरस्पृष्टान्तिकभूतलम् ॥ गजप्रमाणैःपृषतैः पूरयन्तोजगत्त्रयम् ॥ ५० ॥ पुष्कलाद्यामहामेघा विश्रा न्तायस्यसानुनि ॥ प्रवृत्तेभूतसंहारे प्रकृतौप्रतिसञ्चरे ॥ ५१ ॥ भविष्यत्सर्वबीजानि निषेदुर्यत्रनिश्चयम् ॥ ब्रह्मणाहूय मानेभ्यःप्रलयानन्तरम्पुनः ॥ ५२ ॥ यत्पादसेविविप्रेभ्यो वेदाध्ययनसंग्रहः ॥ सर्वासामपिविद्यानां कलानांशास्त्रसंप दाम् ॥ ५३ ॥ आगमानाञ्चवेदानां यत्रचास्तिव्यवस्थितिः ॥ यद्गुहागह्वरान्तस्था मुनयःसंशितव्रताः ॥ ५४ ॥ ज टिलाःसम्प्रकाशन्ते कोटिसूर्याग्नितेजसः ॥ पञ्चब्रह्ममयैर्मन्त्रैःपञ्चाक्षरवपुर्द्धरैः॥ ५५ ॥ सदास्तेपृष्ठमारूढोनगात्मा

करतेहुये ॥ ४९ । ५० ॥ पुष्कलादिक महामेघ जिसके शिखर पै विश्राम को प्राप्त होते हैं और प्रलय में जब मायामें प्राणियों का संहार होता है तब ॥ ५१ ॥ होनेवाले सब बीज जहांपर निश्चयकर स्थित हुये हैं और प्रलय के बाद ब्रह्माजी से बुलायेहुये ॥ ५२ ॥ जिसके समीपवाले पर्वतों के सेवी ब्राह्मणों से वेदपाठका संग्रह होता है और सब विद्याओं तथा कलाओं व शास्त्र की सम्पदा ॥ ५३ ॥ व शास्त्र तथा वेदों की जहांपर स्थिति रहती है व जिसकी कन्दराओं के भीतर टिके हुये प्रशंसित व्रतोंवाले मुनिलोग ॥ ५४ ॥ जटाधारी व कोटि सूर्यों के समान तेजवाले भलीभांति प्रकाशित हैं पञ्चाक्षर के शरीर को धारेहुये पांच ब्रह्ममयमन्त्रों

से ॥ ५५ ॥ संयुत अरुणाचल के पृष्ठ पै चढ़ेहुये जो पर्वतात्मक सदाशिव जी सदैव रहते हैं वे आठों दिक्पालों से पूजित आठों लिंगों से सदैव ॥ ५६ ॥ आठ मूर्तियों के स्वरूप से भी आठ सिद्धियों को देनेवाले हैं व जहांपर टिकेहुये उन सदाशिवजी के भक्त सिद्धलोग सदैव कनकाचल को छोड़कर मुक्ति की नहीं अ-पेक्षा करते हैं इसप्रकार पृथ्वी के पुण्यके परिपाक (फल) की राशि ॥ ५७।५८ ॥ अरुणाचल ऐसा प्रसिद्ध हैं कैलास व सुमेरु पर्वत के शिखर से आयेहुये शिवजी की भक्तिसे संयुत देवगणों से ॥ ५९ ॥ सब वरों के देनेवाले अरुणाचलात्मक शिवदेव जी पूजेजाते हैं ॥ ६० ॥ इसप्रकार उन ब्रह्माजी से कहेहुये समस्तचरित्र

यःसदाशिवः ॥ अष्टभिश्चसदालिङ्गैरष्टदिक्पालपूजितैः ॥ ५६ ॥ अष्टमूर्त्तिस्वरूपेणाप्यष्टसिद्धिप्रदायकः ॥ यत्रसिद्धाः स्थितालोकाभक्तास्तस्येश्वरस्यन ॥ ५७ ॥ अपेक्षन्तिसदामुक्तिं विहायकनकाचलम् ॥ एवंवसुन्धरापुण्यपरिपाकसमुच्चयम् ॥ ५८ ॥ अरुणाद्रिरितिख्यातमजभक्तिसमन्वितैः ॥ कैलासान्मेरुशिखरादागतैर्देवसञ्चयैः ॥ ५९ ॥ पूज्यतेशोणशैलात्मा शम्भुःसर्ववरप्रदः ॥ ६० ॥ इतिकथितमशेषमेवतेनमुदितमनाः सनकोनिशम्यभक्त्या ॥ विरचितविनयःप्रणम्यपुत्रः पितरमपृच्छदशेषवेदसारम् ॥ ६१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽरुणाचलमाहात्म्येद्वितीयोऽध्यायः॥२॥

सनकउवाच ॥ भगवन्नरुणाद्रीश माहात्म्यमिदमद्भुतम् ॥ कृतंशिवप्रसादेन दययातेजगद्गुरोः ॥ १ ॥ आश्चर्यमेतन्माहात्म्यं सर्वपापविनाशनम् ॥ आराधयन्पुनःकेच वरदंशोणपर्वतम् ॥ २ ॥ अनादिरन्तरहितःशिवः शोणाचला

को प्रसन्नमनवाले सनक जीने भक्ति से सुनकर व फिर विनय रचकर पुत्र सनक जीने पिता ब्रह्माको प्रणाम कर समस्त वेदों के सारांश को पूंछा ॥ ६१ ॥ इति श्री स्कन्दपुराणेऽरुणाचलखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांविष्णुकृतारुणाचलस्तुतिवर्णनंनामद्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

दो० । मूंदो जिमि परिहास सों पारवती शिव नैन । सो तीजे अध्याय में चरित अहै सुखऐन ॥ सनकजी बोले कि हे भगवन्! जगद्गुरु तुम्हारे ऊपर दयाके कारण शिवजी की प्रसन्नता से यह अद्भुत अरुणाचलेश का माहात्म्य कियागया ॥ १ ॥ यह माहात्म्य आश्चर्यरूप व सब पातकों का विनाशक है वरदायक अरुणा-

चल को फिर किन्होंने आराधन किया है ॥ २ ॥ हे देव ! आदि व अन्तसे रहित अरुणाचल आकारवाले सदाशिव जी तुम दोनों के वरदान से भलीभांति स्थित हुये हैं ॥ ३ ॥ अरुणाचल ऐसा एकहीबार कहने से मुक्तिदायक है व उसकी समीपता सब कामों को देनेवाली व पातकों की विनाशक है ॥ ४ ॥ कैलासपर्वत से व सुमेरुगिरीश से प्राप्तहोकर देवता अरुणाचल को आराधनकर कृतार्थ व पापरहित हुये हैं ॥ ५ ॥ उस सनकजी के इस वचन को सुनकर अरुणाचल को मॉन्तेहुये वे दयामूर्ति देवदेव ब्रह्माजी बोले ॥ ६ ॥ कि हे वत्स ! पार्वतीजी के प्राचीन चरित्र को सुनिये कि जिसप्रकार अरुणाचलेश के आश्रितहोकर वे पार्वतीजी

कृतिः ॥ युवयोस्तपसादेव वरदानाच्चसंस्थितः ॥ ३ ॥ सकृत्संकीर्त्तनेनैव शोणाद्रिरितिमुक्तिदः ॥ संनिधिःसर्वकामानां जायतेचाघनाशनम् ॥ ४ ॥ कैलासशैलात्संप्राप्ता देवामेरुगिरीश्वरात् ॥ अरुणाचलमाराध्य कृतार्थाविगतांहसः॥५॥ इतितद्वचनंश्रुत्वा देवदेवःपितामहः ॥ उवाचकरुणामूर्त्तिररुणाद्रिंसमानयन् ॥ ६ ॥ श्रूयतांवत्सपार्वत्याश्चरितंयत्पुरा तनम् ॥ अरुणाद्रीशमाश्रित्य यथासानिर्वृताभवत् ॥ ७ ॥ पुराकैलासशिखरे सर्वदेवनमस्कृते ॥ वज्ररत्नगणाकीर्णे कल्पकारामशोभिते ॥ ८ ॥ रत्नस्तम्भसहस्राढ्ये महदास्थानमण्डपे ॥ आससादमहादेवः कदाचित्पार्वतीपतिः ॥ ९ ॥ रत्नसिंहासनंदिव्यं रत्नतोरणसंयुतम् ॥ रत्नपुष्पफलोपेतं कल्पद्रुममनोहरम् ॥ १० ॥ परार्ध्यपदास्तरणं बद्धमुक्तावितानकम् ॥ विमुक्तपुष्पप्राकारं दिव्यधूपोरुसौरभम् ॥ ११ ॥ प्रफुल्लमल्लिकाजालंनिनदद्भृङ्गसंकुलम् ॥ दिव्यतूर्यघनारावप्रति

आनन्दित हुई हैं ॥ ७ ॥ पहले किसी समय पार्वती के पति महादेवजी समस्त देवताओं से नमस्कृत, वज्र (हीरा) रत्नगणों से पूर्ण, कल्पवृक्ष के बगीचों से शोभित व हजाररत्न स्तम्भों से संयुत तथा बडेभारी सभामण्डपवाले कैलासके शिखर पै दिव्यरत्न सिंहासन पै बैठे थे जोकि रत्नों की बन्दनवार से संयुत व रत्नके फल फूलो से युक्त और कल्पवृक्षों से सुन्दर था ॥ ८ । ६ । १० ॥ जो कि बडेमोलवाले वस्त्रों के बिछौनेवाला व बँधेहुये मोतियों के चँदौवावाला था व छोडेहुये पुष्पों से छहरदिवालीवाला तथा दिव्य धूपों से बहुतसुगन्धोंवाला था ॥ ११ ॥ व फूले हुये बेला के गणों से संयुत व शब्दायमान गंगाजी से युक्त तथा दिव्य तुरही के

सघन शब्दसे प्रतिध्वनिवाले कन्दराओं से संयुक्त था ॥ १२ ॥ व पार्वती जी के सिंह के भ्रमण से डरेहुये हाथियोंवाला तथा नाचती व कोमल गाती हुई अप्स-
राओं से ॥ १३ ॥ सेवित अग्रभागवाला था और दिक्पालों से सेवित तथा ऋग् यजुः सामवेद में प्राप्त मन्त्रों से स्तुति करतेहुये मुनिश्रेष्ठों ॥ १४ ॥ और ब्रह्मर्षि,
देवता, सिद्ध व राजर्षियों से घिरा था व भस्म से भूषित अङ्गोंवाले तथा अनेक आकारवाले गणों से ॥ १५ ॥ सबओर पूर्ण था जो कि रुद्राक्ष की माला से सुन्दर
व शिवजी में परायण थे और कल्याणकारी वीणा, वेणु व मृदङ्गों के शब्दों से ॥ १६ ॥ तथा घंटा के टंकार से सुन्दर व वेदध्वनि से मिलेहुये शब्दों से मनोहर महा-

शृङ्गगुहसंयुतम् ॥ १२ ॥ पार्वतीसिंहसंचारपरित्रस्तमहागजम् ॥ अप्सरोभिः प्रनृत्यद्भिर्गायतीभिश्च कोमलम् ॥ १३ ॥ आसेवि
तपुरोभागं दिक्पालकनिषेवितम् ॥ ऋग्यजुःसामजैर्मन्त्रैः स्तुवद्भिर्मुनिपुङ्गवैः ॥ १४ ॥ ब्रह्मर्षिभिस्तथा देवैः सिद्धै राजर्षि
भिर्वृतम् ॥ गणैश्च विविधाकारैर्भस्मालंकृतविग्रहैः ॥ १५ ॥ रुद्राक्षमालासुभगैः पूर्णं शिवतत्परैः ॥ वीणावेणुमृदङ्गा
नां शङ्कराणाञ्च निस्वनैः ॥ १६ ॥ घण्टाटङ्कारसुभगैर्वेदध्वनिविमिश्रितैः ॥ मनोहरं महादिव्यमासनं पार्वतीस
खः ॥ १७ ॥ अलंचकार भगवान् भक्तानुग्रहकाम्यया ॥ अबिभ्रदमलं रूपं सर्वतेजोमयं शिवम् ॥ १८ ॥ अम्बिकास
हितः श्रीमान् विजहार दयानिधिः ॥ सङ्गीतनकथाभेदैर्द्यूतक्रीडाविकल्पनैः ॥ १९ ॥ गणानां विकटैर्नृत्यै रमयामास
पार्वतीम् ॥ विसृज्य सकलान्देवानृषींश्चापि सभासदः ॥ २० ॥ वरान्प्रदाय विविधान् भक्तलोकाय वाञ्छितान् ॥ आरामे
षु विचित्रेषु सर्वर्तुकुसुमेषु च ॥ २१ ॥ विजहार तया सार्द्धं रत्नप्रासादपङ्क्तिषु ॥ वापिकासु मनोज्ञासु रत्नसोपानपङ्क्तिषु ॥ २२ ॥

दिव्य आसन को पार्वती के सखा भगवान् शिवजीने भक्तों के ऊपर दयाकी कामना से अलंकृत किया और उन्हों ने समस्त तेजोमय कल्याणरूपी निर्मलरूपको
धारण किया ॥ १७ । १८ ॥ पार्वती समेत दया के निधान श्रीमान् शिवजीने विहार किया व संगीत तथा कथा के भेदों व द्यूतक्रीडा (जुँवा) के भेदों से ॥ १९ ॥
व भयङ्कर गणों के नृत्यों से शिवजी ने पार्वती को रमाया सब देवों व ऋषियों तथा सभासदों को बिदाकर ॥ २० ॥ व भक्तजन के लिये चाहेहुये अनेकप्रकार के
वरों को देखकर सब ऋतुओं के फलोंवाले विचित्रबगीचों में ॥ २१ ॥ और रत्नके मन्दिरकी पंक्तियों तथा रत्नों से बनीहुई सोपान (सीढ़ी) की पंक्तियोंवाली सुन्दरी

बावलियों में उन पार्वती समेत शिवजीने विहार किया ॥ २२ ॥ व कितने पर्वतों के शिखरों पै और स्वर्णकदलीवन के बीच में विहार किया व श्रीगंगाजी की तरंगों से शीतल व प्रफुल्लित कमलों की सुगन्धिवाले ॥ २३ ॥ और धीरे धीरे चलतेहुये पवनसे शिवजी श्रमरहित हुये व कल्याणकी कामनावाले आपही शिवदेवजीने समस्त सौभाग्यों से सुन्दरी रतिरूपिणी प्यारी पार्वती देवी को बहुत आनन्दित किया किसी समय एकान्त में चित्त को जाननेवाली व प्रसन्न तथा क्रीड़ा करनेवाले शिवजी को वश में प्राप्त जानती हुई मुग्धा पार्वती जीने पीछे आकर स्नेहसमेत कमल के समान हाथों से इन जगद्गुरु शिवजीके नेत्रों को खेल से

कतिपर्वतशृङ्गेषु हेमरम्भावनान्तरे ॥ गङ्गातरङ्गशीतेनफुल्लपङ्कजगन्धिना॥२३॥वातेनमन्दगतिना बभूवविगतश्रमः ॥ शिवकामःस्वयंदेवः प्रेयसीमत्यनन्दयत् ॥ २४ ॥ रतिरूपांशिवांदेवीं सर्वसौभाग्यसुन्दरीम् ॥ कदाचिद्रहसिप्रीता चित्तज्ञावशवर्त्तिनम् ॥ २५॥ रमणंजानतीमुग्धा पश्चादभ्येत्यसादरम् ॥ कराभ्यांकमलाभाभ्यां नेत्राण्यस्यजगद्गुरोः ॥ २६॥ पिदधेलीलयाशम्भोः किमेतदितिकौतुकात् ॥ चन्द्रादित्याग्निरूपेषु पिहितेष्वक्षिषुक्रमात् ॥ २७॥ अन्धकारोभवत्तत्र चिरकालंभयङ्करः ॥ निमिषार्द्धेनदेवस्य जग्मुर्वत्सरकोटयः ॥ २८ ॥ देवीलीलासमुत्थेन तमसाभूज्जगत्त्रयः ॥ तमसापूरितंविश्वमपारेणसमन्ततः ॥ २९ ॥ शून्यंज्योतिःप्रचारेण विनाशंप्रत्यपद्यत ॥ नविजृम्भन्तिविबुधा नचवेदाःप्रकाशिरे ॥ ३० ॥ नापिजीवाःसमभवन् नव्यक्तंकेवलंस्थितम् ॥ जगतामपिसर्वेषामकालेवीक्ष्यसंक्षयम् ॥ ३१ ॥ तपसालब्धभूतीनां विचारःसमपद्यत ॥ किमेतत्तमसोजन्म भुवनत्त्रयकारणम् ॥ ३२ ॥ भगवानपिसर्वा

मूंदलिया ॥ २४ । २५ । २६ ॥ यह क्या है इस कौतुक से सदाशिवजी के क्रम से चन्द्रमा, सूर्य व अग्निरूप नेत्रों के मूंदने पर ॥ २७ ॥ वहां बहुतसमय तक भयङ्कर अन्धकार होगया शिवदेवजी के आधे निमेष से करोड़ों बरस बीतगये ॥२८॥ व देवीजीके लीला से उपजेहुये अन्धकार से संसार का नाश होगया व सबओर अपार अन्धकार से संसारभर पूर्ण होगया ॥ २९ ॥ व आकाश के प्रचार से शून्य संसार विनाश को प्राप्तहुआ और देवता नहीं विजृम्भित होते (बढ़ते) थे व न वेद प्रकाश को प्राप्त हुये ॥ ३० ॥ व जीव भी न हुये और संसार केवल स्थित रहा परन्तु प्रकट न हुआ असमय में समस्त लोको का भी नाश देखकर ॥ ३१ ॥

तपस्या से पायेहुये ऐश्वर्यवाले जनों का विचार हुआ कि संसार के नाशका कारण यह अन्धकार का जन्म क्यों हुआ ॥ ३२ ॥ समयका आक्षेप करते हुये सर्वव्यापी
भगवान्भी क्या नहीं क्लेशित होते हैं पार्वती देवी जी क्रीड़ारूप करके पश्चात्से शिवजी के नेत्रों को मूंदे हैं ॥ ३३ ॥ उस से यह सब त्रिलोक तेजहीन होगया अ-
समय से त्रिलोक में अन्धकार व्याप्त होने पर ॥ ३४ ॥ न यज्ञ वर्त्तमान होतेहैं और न पृथ्वी में देवता पूजेजाते हैं ॥ ३५ ॥ और न वेद वर्तमान होते हैं न प्राणी उ-
त्पन्न कियेजाते हैं संसार के नाश करने में भयंकर यह बहुतसमय व्यतीत होरहा है ॥ ३६ ॥ इसलिये प्रणतप्रिय सदाशिव जी को बड़ेयत्न से बोध कराना चाहिये

त्मा नक्लिश्येत्कालमाक्षिपन् ॥ देवीविनोदरूपेण पिधत्तेऽपरतोदृशौ ॥ ३३ ॥ तेनेदमखिलंजातं निस्तेजोभुवनत्रय
म् ॥ अकालेतमसाव्याप्ते सकलेभुवनत्रये ॥ ३४ ॥ नयज्ञाःसंप्रवर्तन्ते न पूज्यन्तेसुराभुवि ॥ ३५ ॥ नचवेदाःप्रवर्तन्ते
नोत्पाद्यन्तेचजन्तवः ॥ कालोमहानयंयाति भुवनक्षयभीषणः ॥ ३६ ॥ बोधनीयःप्रयत्नेन शिवःप्रणतवत्सलः ॥ इति
निश्चित्यमनसा वीक्ष्यवैज्ञानचक्षुषा ॥ ३७ ॥ नित्यास्तेसूरयोभक्त्या शम्भुमानम्यतुष्टुवुः ॥ नमःसर्वजगत्कर्त्रे शि
वायपरमात्मने ॥ ३८ ॥ माययाशक्तिरूपेण पृथग्भावमुपेयुषे ॥ उमेत्वंभाविनीशक्तिराद्यैकाशिवरूपिणी ॥ ३९ ॥
लीलयाजगदुत्पत्तिरक्षासंहतिकारिणे ॥ मनसावचसादेवशिवभक्त्यात्मकंवपुः ॥ ४० ॥ एकएवमहादेवः परोनेच्छाप्रव
र्त्तकः ॥ इच्छाज्ञानंक्रियाशक्तिर्विद्यामायाकलापरा ॥ ४१ ॥ इतिप्रोक्ताभिधाशम्भो तवनाम्नाशिवाकृतेः ॥ लीलयात

यह निश्चयकर व ज्ञान दृष्टि से देखकर ॥ ३७ ॥ उन अविनाशी विद्वानों ने शम्भु जी को भक्ति से प्रणामकर स्तुति किया कि समस्त संसार के रचनेवाले परमात्मा
शिवजी के लिये नमस्कार है ॥ ३८ ॥ मायासे शक्तिरूप करके पृथक्ताको प्राप्तहोने वाले के लिये प्रणाम है व हे पार्वति ! तुम्हीं एक कल्याणरूपिणी भाविनी शक्ति
हो ॥ ३९ ॥ व लीला से संसार की उत्पत्ति, रक्षा व संहार करनेवाले आपके लिये नमस्कार है हे देव ! मन, वचन व कर्म से शिवभक्त्यात्मक शरीर को हमलोग
प्रणामकरते हैं ॥ ४० ॥ एक महादेवही इच्छा की प्रवृत्ति करानेवाले हैं अन्यनहींहै इच्छाशक्ति, ज्ञानशक्ति व क्रियाशक्ति, विद्या, माया व उत्तम कला ॥ ४१ ॥ हे

शम्भो ! शिवाकारवाले आपके नामों की यह अभिधा (नाम) कहीगईहैं तुम्हारी लीला से यह संसार अकालमें प्रलय को प्राप्तहोगया ॥ ४२ ॥ लोकों को बढ़ाने वाली तुम्हारी व्याजरहित दयावृद्धिको प्राप्तहोवै तेजों के संहार होनेपर आप के आधे निमेष से ॥ ४३ ॥ लोकों के नाश के लिये अनेक वर्ष बीत गये हे काल-रूप, दयामूर्त्ते, सदाशिवजी ! प्रसन्नहोवो ॥ ४४ ॥ व संसार के संहाररूप इसप्रेमाधान से विराम को प्राप्तहोवो सिद्धि से शोभित उन भक्तों के इस प्रकार वचनको सुनकर दयामूर्त्ति सदाशिवजी यह बोले कि हे पार्वति ! नेत्रों को छोड़ दीजिये ॥ ४५ ॥ और उन पार्वती देवीजी ने शिवजी के नेत्रों के आच्छादन को

वल्लोकोयं अकालेप्रलयंगतः ॥ ४२ ॥ करुणातवनिर्व्याजावर्द्धतांलोकवर्द्धिनी ॥ भवतोनिमिषार्द्धेन तेजसामुपसंहृते ॥ ४३ ॥ गतान्यनेकवर्षाणि जगतांनाशहेतवे ॥ प्रसीदकरुणामूर्ते कालरूपसदाशिव ॥ ४४ ॥ विरमप्रणयाधानादमुष्माल्लोकसंक्षयात् ॥ इतितेषांवचःश्रुत्वाभक्तानांसिद्धिशालिनम् ॥ विसृजाक्षीणिगौरीतिकरुणामूर्त्तिरब्रवीत् ॥ ४५ ॥ विससर्जचसादेवी पिधानंहरचक्षुषाम् ॥ सोमसूर्याग्निरूपाणां प्रकाशमभवत्तदा ॥ ४६ ॥ कियान्कालोगतश्चेति पृष्टैः सिद्धैश्चवैनतैः ॥ उक्तंत्वन्निमिषार्द्धेन जग्मुर्वत्सरकोटयः ॥ ४७ ॥ अथदेवःकृपामूर्त्तिरालोक्यविहसन्प्रियाम् ॥ अब्रवीत्परमोदारः परंधर्मार्थसङ्ग्रहम् ॥ ४८ ॥ केयंवात्वादृशीकुर्यादीदृशंसद्विगर्हितम् ॥ कर्मनर्मण्यपियतःसर्वविश्वंचबाध्यते ॥ ४९ ॥ इतिशम्भोर्वचःश्रुत्वा धर्मलोपभयाकुला ॥ किंकरिष्यामिभोदेवइत्यपृच्छत्स्मतंप्रिया ॥ ५० ॥ अथदेवः

छोड़दिया उस समय चन्द्रमा, सूर्य व अग्निरूपी नेत्रों का प्रकाशहुआ ॥ ४६ ॥ कितना समय व्यतीत हुआ इसप्रकार पूंछेहुये उन प्रणाम कियेहुये सिद्धों ने कहा कि तुम्हारे आधे निमेष से करोड़ों वर्ष बीतगये ॥ ४७ ॥ इसके अनन्तर हँसतेहुये दयामूर्ति व बड़ेउदार सदाशिवजीने प्यारी पार्वतीजी को देखकर धर्मार्थके संग्रहवाले वचन को कहा ॥ ४८ ॥ कि तुम्हारी सी कौन स्त्री-हँसी में भी सज्जनों से निन्दित ऐसे कर्म को करै है कि जिस से सब संसार बाधित है ॥ ४९ ॥ शिवजी का यह वचन सुनकर धर्मलोप होने के भय से विकल प्यारी पार्वती देवी ने यह पूंछा कि हे देव ! मैं क्या करूं ॥ ५० ॥ इसके अनन्तर उस सन्ताप के कारण देवीजी

से धर्मके भयसे प्रसन्नकरायेहुये प्रसन्नमनवाले दयानिधान शिवदेवजी बोले॥५१॥ कि तुम सावधान होकर सुनिये यहां प्रायश्चित्त कहाजाता है क्योंकि धर्मकामार्ग
तुम्हीं से पालन कियाजाता है ॥ ५२ ॥ श्रुति, स्मृति, कर्मकाण्ड व अनेकभांति के ऐश्वर्यवाली विद्या यह सब तुम्हारारूप है व अन्य बड़ाभारी अर्थ मैं हूं ॥५३॥
और लोकों की सृष्टि करने की इच्छा से हम तुम दोनों अभिन्न दृष्टि से मानने योग्य हैं इसलिये लोक के अनुसार तुम्हारेलिये प्रायश्चित्त कहाजाताहै ॥ ५४ ॥
श्रुति व स्मृतियों में विचाराहुआ छहप्रकार का धर्म कहागया है और यदि वह स्वामी से न पालन कियाजावै तो सेवकों से त्याग करने योग्य होता है ॥ ५५ ॥

प्रसन्नात्मा व्याजहारदयानिधिः ॥ देव्यास्तेनानुतापेन धर्मभीत्याचतोषितः ॥ ५१ ॥ शृणुत्वमवधानेन प्रायश्चित्त
मिहोच्यते ॥ यतोपिधर्ममार्गोयं त्वयैवपरिपाल्यते ॥ ५२ ॥ श्रुतिस्मृतिक्रियाकल्पाविद्याश्चविविधोदयाः ॥ त्वद्रूपमे
तदखिलंमहदर्थोस्मितन्मयः ॥ ५३ ॥ मान्यौचाभिन्नयादृष्ट्याचावांलोकसिसृक्षया ॥ तस्माल्लोकानुरूपन्ते प्रायश्चित्तं
विधीयते ॥ ५४ ॥ षड्विधोगदितोधर्मः श्रुतिस्मृतिविचारितः ॥ स्वामिनानानुपाल्येत यदित्याज्योनुजीविभिः ५५ ॥
नत्वांविहायशक्नोमि क्षणमप्यासितुंक्वचित ॥ अहमेवतपःसर्वंकरिष्याम्यात्मनिस्थितः ॥ ५६ ॥ पृथ्वीचसकलाभूया
तपसासफलातव ॥ त्वत्पादयोश्चसंस्पर्शात्त्वत्तपोदर्शनादपि ॥ निरस्यन्तिस्वसान्निध्याद्दुष्टजातमुपद्रवम् ॥ ५७ ॥
कर्मभूमेस्त्वमाधिक्यहेतवेपुण्यमाचर ॥ त्वत्तपश्चरणंलोके वीक्ष्यसर्वोपिसन्ततम् ॥ ५८ ॥ धर्मेदृढतरांबुद्धिंनि
बध्नीयान्नसंशयम् ॥ कृतार्थयिष्यतिमहींदयातेधर्मपालनैः ॥ ५९ ॥ त्वमेवैतत्सदाप्रोक्ता वेदैर्देवीसनातनैः ॥ अति

व तुमको छोड़कर कहीं क्षणभर भी मैं बैठने के लिये नहीं समर्थ हूं और आत्मा में स्थित होकर मैंही सब तपस्या को करूंगा ॥ ५६ ॥ सब पृथ्वी तुम्हारे तप से
सफल होगी और तुम्हारे चरणों के स्पर्श से व तुम्हारे तप के भी देखने से अपने समीप से दुष्टों से उपजाहुआ उत्पात नाश होगा ॥ ५७ ॥ तुम कर्मभूमि की अ-
धिकता के लिये पुण्य तप करो क्योंकि संसार में तुम्हारी तपश्चर्या को देखकर सब भी मनुष्य सदैव ॥ ५८ ॥ धर्म में बहुतही दृढ बुद्धि को निस्सन्देह बांधेंगे और

धर्म के पालन से तुम्हारी दया पृथ्वी को कृतार्थ करै गी ॥ ५६ ॥ सनातन वेदों से सदैव तुम्हीं यह संसार कहीगई हो सब ऐश्वर्यों से संयुत काचीपुरी प्रसिद्ध है ॥ ६० ॥ देवताओं से सम्पूर्ण जो यह पुरी पृथ्वी में प्रत्यक्षता को प्राप्तहोगी कि जहापर कुछ भी कियाहुआ तप अमित फलवाला कहाजाता है ॥ ६१ ॥ देवता व मुनि लोग वहां सदैव निवास चाहते है जहांपर महापापों को नाश करनेवाली कम्पा ऐसी प्रसिद्ध नदी है ॥ ६२ ॥ जहापर टिकेहुये मनुष्यों के करोडों पातक नाशहो- जाते है वहां नित्य बढ़नेवाला एक आम्र का वृक्ष शोभित है ॥ ६३ ॥ जो कि शीतल छायावान् व पुष्प, फल तथा पत्तों से सम्पूर्ण है वहां जप,हवन, दान,तप,

काञ्चीपुरीख्याता सर्वभूतिसमन्विता ॥ ६० ॥ याचेयंदेवसम्पूर्णाप्रत्यक्षंयातिभूतले ॥ यत्रक्लृप्तंतपःकिञ्चिदनन्तफल मुच्यते ॥ ६१ ॥ देवाश्चमुनयस्तत्र वासंवाञ्छन्तिसन्ततम् ॥ यत्रकम्पेतिविख्याता महापातकनाशिनी ॥ ६२ ॥ यत्र स्थितानांमर्त्यानां नश्यन्तिपापकोटयः ॥ तत्रचूतद्रुमश्चैको राजतेनित्यवर्धनः ॥ ६३ ॥ सम्पूर्णःशीतलच्छायः प्र सूनफलपल्लवैः ॥ तत्रजप्तंहुतंदत्तं तप्तम्भोजितमर्चितम् ॥ ६४ ॥ यद्वापरंकृतंकर्म तदक्षयफलंभवेत् ॥ तत्राश्रम पदंकृत्वा सखीजनसमावृता ॥ ६५ ॥ तपसामांसमभ्यर्च्यविपापासंभविष्यसि ॥ गणाश्चविविधाकारा डाकिन्योयो गिनीगणाः ॥ ६६ ॥ परितस्त्वांनिषेवन्तां विष्णुख्यातास्तथापराः ॥ अहञ्चनिष्कलोभूत्वा तवमानसपङ्कजे ॥ ६७ ॥ सन्निधास्यामिदेवेशि पश्यंस्तेलिङ्गपूजनम् ॥ इत्यादिश्यमहादेवः प्रियांकामाकुलामपि ॥ ६८ ॥ विहायनिष्कलंरू पं सहसासमपद्यत ॥ देवीचविस्मयाक्रान्तलोचनाविरहाकुला ॥ ६९ ॥ कम्पाख्यांविमलांसिन्धुं मुनिसङ्घनिषेवि

ब्रह्मभोज व पूजन ॥ ६४ ॥ अथवा जो अन्य कियाहुआ कर्म होता है वह अक्षय फलवाला होता है वहां आश्रमस्थान कर सखीजनों से घिरी हुई तुम ॥ ६५ ॥ तपस्या से मुझ को भलीभांति आराधकर पापरहित होओगी और अनेकभाति के आकार वाले गण व डाकिनी तथा योगिनियों के गण ॥ ६६ ॥ और अपर विद्युत नामक गण चारोंओर से तुमको सेवेंगे और तुम्हारे लिंग के पूजन को देखता हुआ मैं निष्कल होकर हे देवेशि ! तुम्हारे मनरूपी कमल में समीपता करूंगा इस प्रकार कामदेव से विकल भी पार्वतीजी को आज्ञा देकर महादेवजी ॥ ६७ । ६८ ॥ त्यागकर अचानकही कलाओं से हीन रूप को प्राप्तहुये और विस्मय से घिरेहुये

लोचनोंवाली व वियोग से व्याकुल पार्वती देवी जीने ॥ ६९ ॥ अति गणों से सेवित कम्पानामक निर्मल नदी को देखकर दृष्टि को मना करनेवाले तथा कोमल
पत्तोंवाले एक आम के वृक्ष को देखा ॥ ७० ॥ जो कि फलों व फूलों से व्याप्त तथा कोकिला के शब्द से संयुत था तब फिर पार्वती जी प्रसन्न हुईं व उन्होंने
महादेवजी को स्मरण किया ॥ ७१ ॥ और कामदेवकी अग्निसे घिरेहुये अंगोंवाली वे पार्वतीजी तपस्या से दुर्बली सी होगईं और बहुतशोक संयुत अंगोंवाली व शिव
जीके वियोग से व्याकुल वे पार्वती जी समीप में वर्तमान विजयानामक सखी से बोलीं ॥ ७२ । ७३ ॥ पातकों के विनाशक आम्रवृक्ष के नीचे हम तपोंसे महादेवजी
को पूजने के लिये आई हैं और नवीन पत्तों व पुष्पोंवाला यह कामदेव का बन्धु एक आम्र मुझको काम से संयुत व महादेवजी को स्मरण कराता है ॥ ७४ ॥

ताम् ॥ आलोक्यकोमलदलं रसालंदृष्टिवारणम् ॥ ७० ॥ फलपुष्पसमाकीर्णं कोकिलालापसङ्कुलम् ॥ प्रससादपुनर्देवं
सस्मारचमहेश्वरम् ॥ ७१ ॥ कामाग्निपरिवीताङ्गी तपःक्षामेवसाभवत् ॥ अभ्यभाषतसागौरी विजयांपार्श्ववर्तिनी
म् ॥ ७२ ॥ अतिशोकपरीताङ्गी शिवस्यविरहाकुला ॥७३॥ द्रुममघहरमागतारसालं वयमभिपूजयितुंतपोभिरीशम् ॥
अयमभिनवपल्लवप्रसूनः स्मरयतिमांस्मरबन्धुरेकचूतः ॥ ७४ ॥ कथमिवविरहःशिवस्य सह्यःक्षुभितमिवात्रभृशं
मनोभवेन ॥ दयिततरुणेन्दुभालयादस्मरणमहौषधमेकमेवदृष्टम् ॥ ७५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेअरुणाचलमाहात्म्ये
तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥
अथाभ्यधत्तविजया प्रणम्यजगदम्बिकाम् ॥ सान्त्वयन्तीस्तुतिशतैरुपायैःशिवदर्शनैः ॥ १ ॥ देवित्वमविताचेह स

शिवजी का वियोग कैसे सहने योग्य है यहांपर हमारामन बहुत क्षोभितसा होता है हे दयिते ! युवावस्थावाले चन्द्रमा जिनके मस्तक में हैं उनके चरणका स्मरण
ही एक बड़ीभारी औषध देखी गई है ॥ ७५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेअरुणाचलखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायाभाषाटीकायांतपश्चर्तुपार्वत्याःकम्पानदीसमीपगमनव
र्णननामतृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । पारबती कम्पानदी तटपै जिमि तपकीन । सो चौथे अध्याय में वर्णित चरित नवीन ॥ इसके अनन्तर शिवशास्त्रवाले सैकड़ों उपायों से समझाती हुई

विजयाने जगदम्बिका पार्वतीजीको प्रणामकर कहा ॥ १ ॥ कि हे देवि ! इस संसार में शिवदेवजी से सदैव तुम रक्षित हुई हो और उन परमात्मा की तुम प्राणेश्वरी मुख्य शक्तिहो ॥ २ ॥ तौ भी अपनी मायाको दिखलाने के लिये वे समर्थ सदाशिवजी आपही भिन्नता को मानो प्रकट करते हैं ॥ ३ ॥ हे पार्वती जी । आज्ञाको ग्रहणकर आईहो और शिवजी की उस आज्ञा को तुम्हैं सदैव उल्लंघन न करना चाहिये ॥ ४ ॥ और सब कामों को निवृत्तकर शिवजी से रचेहुये इस स्थान में प्राप्त होकर शिवजी के आश्रित तुमको तप करना चाहिये ॥ ५ ॥ हे जगन्मये ! अन्यथा भी संसार की रक्षा तुम्हारे वश है फिर शिवजी समेत तुमको धर्म की रक्षाकरना

दादेवेनशम्भुना ॥ प्राणेश्वरीत्वमेकासि शक्तिस्तस्यपरात्मनः ॥ २ ॥ तथापिमायामात्मीयां सन्दर्शयितुमीश्वरः ॥ पृथग्भावमिवेशानः प्रकाशयतिसस्वयम् ॥ ३ ॥ आदेशंप्रतिगृह्यैव समुपेतासिपार्वति ॥ अलङ्घनीयासैवाज्ञा शाम्भवी सर्वदात्वया ॥ ४ ॥ विधातव्यंतपःप्राप्य स्थानेस्मिञ्छिवकल्पिते ॥ निवृत्यनिखिलान्कामाञ्छम्भुमाश्रितयात्व या ॥ ५ ॥ अन्यथापिजगद्रक्षा त्वदधीनाजगन्मये ॥ धर्मसंरक्षणंभूयः शिवेनसहचत्वया ॥ ६ ॥ निष्कलंशिवमत्यन्तं ध्यायन्त्यात्मन्यवस्थितम् ॥ वियोगदुःखंकिञ्चित्वं नस्मरिष्यसिपार्वति ॥ ७ ॥ भक्तानांतवमुख्यानां तवैवाचारसंग्र हः ॥ उपदेशतयालोके प्रथतांधर्मवत्सले ॥ ८ ॥ इतितस्यावचःश्रुत्वा गौरीसुस्थिरमानसा ॥ तपःकर्तुंसमारेभे कम्पान द्यास्तटेशुभे ॥ ९ ॥ विमुच्यविविधाभूषा रुद्राक्षगणभूषिता ॥ विसृज्यदिव्यंवसनं पर्यधाद्वल्कलेशुभे ॥ १० ॥ अलका न्सहसाशीघ्रमानयच्चकपर्दताम् ॥ आलिलिम्पतनूंसर्वांभस्मनामुक्तकुङ्कुमा ॥ ११ ॥ मृगेषुकृतसन्तोषा शिलोञ्छ

चाहिये ॥ ६ ॥ हे पार्वति ! मन में स्थित कलाहीन शिवजीको अत्यन्त ध्यान करती हुई तुम कुछ वियोग के दुःखको स्मरण न करोगी ॥ ७ ॥ हे धर्मप्रिये ! संसार में तुम्हारे मुख्य भक्तों को तुम्हारेही आचार का संग्रह उपदेश के भाव से प्रसिद्धहोवै ॥ ८ ॥ उस विजया सखी के इस वचन को सुनकर अति स्थिरमनवाली पार्वतीजी ने कम्पानदी के किनारे पै तपस्या करने के लिये प्रारम्भ किया ॥ ९ ॥ अनेकभांति के गहनों को छोड़कर रुद्राक्षगण से भूषित पार्वतीजीने उत्तम वसनको त्याग कर दो उत्तम बकलों को धारण किया ॥ १० ॥ और उन पार्वतीजीने शीघ्रही घुंघुवारे बालों को जटाजूट बनाया व कुंकुम को छोड़ेहुई उन्हों ने समस्त शरीर में

भस्मका लेपन किया ॥ ११ ॥ व शिलोंछ से कियेहुये जीविकावाले मृगों में सन्तोष किये हुई पार्वती जी ने नियम से संयुत होकर उत्तम शिवजी के पञ्चाक्षर मन्त्र
का जप किया ॥ १२ ॥ और कम्पा नदीके निर्मल जलमें त्रिकाल स्नानकर व बालू का लिंग बनाकर आदरपूर्वक पूजन किया ॥ १३ ॥ व वृक्ष के लगाने व दानकरने
तथा समस्त अतिथियों को पूजने से उन देवीजीने प्राणियोंकी शान्ति को विस्तार किया और धर्म का पालन किया ॥ १४ ॥ ग्रीष्मऋतु में पञ्चाग्नि के बीच में
स्थित व वर्षा में चौतरे पै शयन करती तथा हेमन्त व शिशिरऋतु में जल के मध्य में स्थित होकर पार्वती जी ने तप किया ॥ १५ ॥ तपस्या के कठिन क्रमोंसे

कृतवृत्तिषु ॥ जजापानियमोपेता शिवपञ्चाक्षरंपरम् ॥ १२ ॥ कृत्वात्रिषवणंस्नानं कम्पापयसिनिर्मले ॥ कृत्वाचसैक
तंलिङ्गं पूजयामाससादरम् ॥ १३ ॥ वृक्षप्ररोपणैर्दानैरशेषातिथिपूजनैः ॥ शान्तिंततानजीवानां देवीधर्ममपालय
त ॥ १४ ॥ ग्रीष्मेपञ्चाग्निमध्यस्था वर्षासुस्थण्डिलेशया ॥ हेमन्तेजलमध्यस्था शिशिरेचाकरोत्तपः ॥ १५ ॥ पुण्या
स्तनांमहर्षीणां दर्शनार्थमुपेयुषाम् ॥ विस्मयञ्जनयामासदुष्करैस्तपसांक्रमैः ॥ १६ ॥ कदाचित्स्वयमुच्चित्य वना
न्तात्पल्लवान्वितम् ॥ पुष्पोत्करंविशेषेणशोधितुंसमुपाविशत् ॥ १७ ॥ कृत्वाचसैकतंलिङ्गंकम्पारोधसिपावने ॥ सम्पूजयि
तुमारेभे न्यासावाहनपूर्वकम् ॥ १८ ॥ सूर्यमभ्यर्च्यविधिनारक्तैःपुष्पैश्चचन्दनैः ॥ पञ्चावरणसंयुक्तं क्रमाद्दानर्चशङ्कर
म् ॥ १९ ॥ धूपैर्दीपैश्चनैवेद्यैर्भक्तिभावसमन्वितैः ॥ अपरोक्षितमीशानमालुलोकेपुरोगतम् ॥ २० ॥ अथदेवःशिवः
साक्षात्संशोधयितुमाम्बिकाम् ॥ कम्पानद्याःप्रवाहेण महतापर्यवेष्टयत ॥ २१ ॥ अथवृद्धंप्रवाहन्तं कम्पायाःसमुपास्थि

उन पार्वती जी ने दर्शन के लिये समीप आयेहुये महर्षियों के आश्चर्य पैदाकिया ॥ १६ ॥ किसी समय वन के मध्य से पत्तों समेत पुष्प की राशिको आपही तोड़कर
पार्वती जी विशेषता से शोधन के लिये बैठी ॥ १७ ॥ और कम्पानदी के पवित्रकारक किनारे पै बालू का लिंग बनाकर न्यास व आवाहन पूर्वक पार्वतीजी ने पूजने
के लिये प्रारम्भ किया ॥ १८ ॥ विधिपूर्वक लालफूलों व चन्दन से सूर्यनारायण जी को पूजकर पांच आवरणों से संयुत सदाशिव जी का पूजन किया ॥ १९ ॥
और भक्तिभाव से संयुत धूप, दीप, व नैवेद्यों से प्रत्यक्ष में प्राप्त उन शिवजी को आगे प्राप्त देखा ॥ २० ॥ इसके अनन्तर साक्षात् सदाशिवदेवजी ने

संशोधन करने के लिये कम्पानदीके बड़ेभारी प्रवाह से घेर लिया ॥ २१ ॥ इस के अनन्तर उस समय कम्पा नदी के बढेहुये उस प्रवाह को समीप में प्राप्त देखकर नियम से बैठीहुई पार्वती जी से सखियों ने कहा ॥ २२ ॥ कि हे देवि ! उठोयह प्रवाह बहुत बढ़रहा है जो कि दिशाओं के मुखों को पूर्णकर वेग से डुबा देगा ॥ २३॥ उनका इसप्रकार वचन सुनकर नेत्रको मूंदे ध्यानकरतीहुई पार्वतीजीने नेत्रोंको उघारकर नदी के उस अमित प्रवाह को देखा ॥ २४ ॥ और पूजनके विघ्नसे विकल उन पार्वती देवीजीने चिन्तवन किया कि क्याकरूं प्रारम्भ कियेहुये पूजनको छोड़नेके लिये नहीं समर्थहूं॥ २५ ॥ प्रायः पृथ्वीमें विना विघ्नके पुण्यात्मा जनोंको

तम् ॥ आलोक्यनियमासीनां ऊचुःसख्यस्तदाम्बिकाम् ॥ २२ ॥ उत्तिष्ठदेविबहुलः प्रवाहोयंविजृम्भते ॥ दिशामुखानुसम्पूर्यतरसाप्लावयिष्यति ॥ २३ ॥ इतितद्वचनंश्रुत्वा ध्यायन्तीमीलितेक्षणा ॥ उन्मील्यवेगमतुलं नद्यास्तंसमवैक्षत ॥ २४ ॥ अचिन्तयच्चसादेवी पूजाविघ्नसमाकुला ॥ किङ्करोमिनशक्नोमि हातुमारब्धमर्चनम् ॥ २५ ॥ श्रेयःप्राप्तमविघ्नेन प्रायःपुण्यात्मनांभुवि ॥ घटतेधर्मसंयोगोमनोरथफलप्रदः ॥ २६ ॥ सैकतंलिङ्गमेतत्तु प्रवाहाल्लयमेष्यति ॥ लिङ्गनाशेविमोक्तव्यं सद्भक्तैःप्राणसंग्रहः ॥ २७ ॥ प्रवाहोयंसमायाति शिवमायाविनिर्मितः ॥ विशोधयितुमात्मानं भक्तियुक्तांनिजेपदे ॥ २८ ॥ आलिङ्ग्यसुदृढंदोर्भ्यामेतल्लिङ्गमनाकुलम् ॥ अहंवत्स्यामियातागुसख्योधूर्यंविदूरितः ॥ २९ ॥ इत्युक्त्वासैकतंलिङ्गं गाढमालिङ्ग्यसाम्बिका ॥ नद्यास्तेनप्रवाहेण प्लाव्यमानापिदेजतः ॥ ३० ॥ स्तनचूचुकनिर्मग्नक्षुद्रयासंयुतेनच ॥ महालिङ्गेनसंयुक्ता वलयस्यापिलाञ्छनात् ॥ ३१ ॥ निमीलितेक्षणाध्याननि

कल्याण प्राप्त होता है और धर्म का संयोग मनोरथ के फलको दायकहोताहै ॥ २६ ॥ और यह बालू का लिंग प्रवाह से नाश को प्राप्तहोगा व लिंगनाशहोने पर उत्तम भक्तों को प्राणों का संग्रह छोड़ना चाहिये ॥ २७ ॥ शिवजी की माया से रचाहुआ यह प्रवाह अपने स्थान में आत्मा को पवित्र करने के लिये आता है॥ २८ ॥ विकलता रहित इस लिंग को दृढ़तापूर्वक चिपटाकरमैं बसूंगी हे सखियो ! तुम शीघ्रही दूरजावो ॥ २९ ॥ यह कहकर नदी के उस प्रवाह के वेग से डुबाई जातीहुई भी वे पार्वती जी बालू के लिंग को दृढ़ता से आलिंगनकर स्थितहुई ॥ ३० ॥ जो पार्वती जी के स्तनके अग्रभाग पर्यन्त डूबेहुये लक्षणसे संयुत व कङ्कण

के भी चिह्न से युक्त महालिंग से संयुत थी ॥ ३१ ॥ नेत्रों को मूंदेहुई व ध्यान में स्थित तथा रोमांच संयुत समस्तअङ्गोंवाली पार्वती जी सदाशिवजी को स्मरण क-
रही थीं ॥ ३२ ॥ और कम्प, पसीना, उदासी, लज्जा व प्रेम से भी अचललिंग के क्षणभर भी पार्वती जी वियोग की अपेक्षा नहीं करतीथीं ॥ ३३ ॥ इसके अनन्तर
उन पार्वती देवी जीसे कोई आकाशवाणी बोली कि हे बालिके ! लिंग को छोड़ देओ यह बड़ाभारी प्रवाह चलागया ॥ ३४ ॥ हे महाभाग्यवती पार्वती जी ! तुमरो
पूजाहुआ यह स्थिर ऐश्वर्यवाला बालूका लिंग वरदायक व देवताओं से पूजित होगा ॥ ३५ ॥ तुम्हारी तपश्चर्या को देखकर धर्मपालन स्थानय है और इस

ष्ठाचहृदयस्थितम् ॥ पुलकाञ्चितसर्वाङ्गी संस्मरन्तीसदाशिवम् ॥ ३२ ॥ कम्पस्वेदपरिग्लानि लज्जाप्रणयकैरपि ॥
क्षणमप्यचलाल्लिङ्गाद्वियोगमपेक्षते ॥ ३३ ॥ अथतामब्रवीत्कापि देवींवागशरीरिणी ॥ विमुञ्चबालिकेलिङ्गं प्रवा
हायंगतोमहान् ॥ ३४ ॥ त्वयार्चितमिदंलिङ्गं सैकतंस्थिरवैभवम् ॥ भविष्यतिमहाभागे वरदंसुरपूजितम् ॥ ३५ ॥ त
पश्चर्यांतवालोक्य रचितंधर्मपालनम् ॥ लिङ्गंचैतन्नमस्कृत्यकृतार्थाःसन्तुमानवाः ॥ ३६ ॥ अहंहितैजसंरूपमास्थाय
वसुधातले ॥ वसामिचात्रसिध्यर्थमरुणाचलसंज्ञया ॥ ३७ ॥ रुणाद्धिसर्वलोकेभ्यः पुरुषंपापसञ्चयः ॥ रुणानविद्य
तेयस्मिन् दृष्टेतेनारुणाचलः ॥ ३८ ॥ ऋषयःसिद्धगन्धर्वामहात्मानश्चयोगिनः ॥ मुक्त्वाकैलासशिखरं मेरुंचैनमुपा
सते ॥ ३९ ॥ मदंशजातयोःपूर्वं युद्धतोर्ब्रह्मकृष्णयोः ॥ अहंमोहमपाकर्त्तुं तेजोरूपोऽव्यवस्थितः ॥ ४० ॥ ब्रह्मणाहंसरू
रूपेण विष्णुनाक्रोडरूपिणा ॥ अदृष्टशेषपरपदःप्रथितोभक्तियोगतः ॥ ४१ ॥ ततःप्रसन्नःप्रत्यक्षस्ताभ्यांत्वरमभी

लिंग को नमस्कार कर मनुष्य कृतार्थ होवेंगे ॥ ३६ ॥ मैं पृथ्वी में तैजसरूप पै स्थित होकर यहां सिद्धिके लिये अरुणाचल नाम से बसता हूं ॥ ३७ ॥ पाप की
राशि पुरुष को सब लोकों से रोंकती है और जिसके देखने पर रुणी (रोंक) नहीं होती है उसकारण अरुणाचल प्रसिद्ध है ॥ ३८ ॥ ऋषि, सिद्ध, गन्धर्व, व महा-
त्मा योगी लोग कैलास के शिखर व सुमेरुगिरि को छोड़कर इसकीउपासनाकरते हैं ॥ ३९ ॥ पुरातन समय मेरे अंश से उत्पन्न युद्धकरतेहुये ब्रह्मा व विष्णुजी के
मोह को दूर करने के लिये तेजरूपवाला मैं स्थितहुआ ॥ ४० ॥ हंसरूपी ब्रह्मा व वाराहरूपी विष्णु जी से न देखतेहुये ऊपर व नीचेभागवाला अरुणाचल पर्वत

भक्ति योग से प्रसिद्धहै ॥ ४१ ॥ तदनन्तर प्रसन्नहो प्रत्यक्षहोकर उन दोनोंके लिये मैंने चाहेहुये वरदान को दिया कि इस त्रिलोक की भलीभाति रक्षा मे निपुणता होवै ॥ ४२ ॥ फिर उन दोनों ने प्रार्थना किया कि अरुणाचल संज्ञा से स्थिरहोवे इसीकारण यह तैजसरूप स्थावर लिंग को प्राप्तहुआ है ॥ ४३ ॥ और मेरेभक्त महाभाग्यवान् व गौतममहामुनि से जाकर अरुणाचलका माहात्म्य पूंछिवे और उस को सुनकर वहा तप कीजिये ॥ ४४ ॥ वहापरमै तुमको सब पापों से छूटने के लिये व सब मनुष्यों के हित के लिये तुमको अपने तैजसरूप को दिखाऊं गा ॥ ४५ ॥ निष्कल शिवजी से कहेहुये इसप्रकारके वचनको सुनकर बहुतअच्छा ऐसाकहकर

प्सितम् ॥ प्रादाञ्जगत्त्रयस्यास्य संरक्षायान्तुकौशलम् ॥ ४२ ॥ प्रार्थितश्चपुनस्ताभ्यामरुणाचलसंज्ञया ॥ गतोत स्तैजसंरूपमिदंस्थावरलिङ्गताम् ॥ ४३ ॥ गत्वापृच्छमहाभागं मद्भक्तंगौतमंमुनिम् ॥ अरुणाचलमाहात्म्यं श्रुत्वात त्रतपश्चर ॥ ४४॥ तत्रतेदर्शयिष्यामि तैजसंरूपमात्मनः॥ सर्वपापनिवृत्त्यर्थंसर्वलोकहितायच ॥४५॥ इतिवाचंसमा कर्ण्य निष्कलात्कथितांशिवात् ॥ तथेतिसहसादेवी गन्तुंसमुपचक्रमे ॥ ४६ ॥ अथदेवानृषीन्सर्वान् पश्चात्सेवार्थमा गतान् ॥ अवादीदम्बिकालोक्य स्नेहपूर्णेनचक्षुषा ॥ ४७ ॥ अत्रैवस्थीयतांदेवा मुनयश्चदृढव्रताः ॥ नियमाश्चाधिति ष्ठन्ति कम्पारोधसिपावने ॥ ४८ ॥ सर्वपापक्षयकरं सर्वसौभाग्यवर्द्धनम् ॥ पूज्यतांसैकतंलिङ्गं कुचकङ्कणलाञ्छित म् ॥ ४९ ॥ अहंचनिष्कलंरूपमास्थायैतद्दिवानिशम् ॥ आराधयेयमत्रैवाम्बिकांशेनवरप्रदा ॥ ५० ॥ मत्तपश्चरणा ल्लोके मद्धर्मपरिपालनात् ॥ मल्लिङ्गदर्शनाच्चैव सिध्यन्त्विष्टविभूतयः ॥ ५१ ॥ सर्वकामप्रदानेन कामाक्षीमितिनाम

पार्वती देवीजी ने अचानक गमन किया ॥४६॥ इसके अनन्तर पश्चात् सेवा के लिये आयेहुये सब देवताओं व ऋषियो को स्नेह से पूरित नेत्रों से देखकर पार्वती जी बोलीं ॥४७॥ कि हे दृढ़व्रतवाले मुनियो ! वा देवताओ ! तुमलोग यहांपरटिको क्योंकि कंपा नदी के पवित्रकारक किनारे पै नियम भी स्थितहैं ॥ ४८ ॥ और तुमलोग समस्त पापोंके क्षयकारक व सब सौभाग्यों को बढानेवाले तथा कुच व कङ्कण से चिह्नित बालू के लिङ्ग को पूजो ॥ ४९ ॥ और मैं भी निष्कलरूप को प्राप्तहोकर यहीं पर अम्बिका के अंशसे वरदायिनी होकर दिनरात इस लिंगका आराधन करूंगी ॥५०॥ मेरी तपश्चर्या व मेरे धर्मके परिपालन तथा मेरे लिंगके दर्शनमे प्यारे ऐश्वर्य

सिद्धि होंगे ॥ ५१ ॥ सब कामनाओं के देने से कामाक्षी ऐसे नामसे मेरी भक्तिसे मुझको प्रणामकर चाहाहुआ वरदान मिलैगा ॥ ५२ ॥ और मैं अरुणाचलपै जाकर अव्यक्त जन्मवाले देव देव शिवजीकी आज्ञाको पालन करूंगी ॥ ५३ ॥ वहां जाकर तीव्र तपस्याकर सदा शिवजीको प्रसन्नकर पायेहुये वरदानवाली मुझको पश्चात् भलीभांति आकर देखोगे ॥ ५४ ॥ इसप्रकार चरणसेवी उत्तम भक्तों को शीघ्रही बिदाकरबाला पार्वतीजी शिवजीकी आज्ञासे अरुणाचलपै चलीगईं ॥ ५५ ॥ और वहां अवियोगसे नित्यही सखियों से सेवित पार्वतीजी दिव्य नगारों से शब्दित अरुणाचलपै स्थितहुईं ॥ ५६ ॥ व भीतर तेजोमय शान्ति व अप्सराओं के

तः॥मांप्रणम्यचमद्भक्त्या लभ्यतांवाञ्छितंवरम् ॥ ५२ ॥ अहंहिदेवदेवस्य शम्भोरव्यक्तजन्मनः ॥ आदेशंपालयिष्यामि गत्वारुणमहीधरे ॥ ५३ ॥ तत्रगत्वातपस्तीव्रं कृत्वाशम्भुंप्रसाद्यच ॥ मान्तुलब्धवरांयूयं पश्चाद्द्रक्ष्यथसङ्गताः ॥ ५४ ॥ इतिसर्वान्विसृज्याशु सद्भक्तान्पादसेविनः ॥ अरुणाद्रिंगताबाला तपसेशङ्कराज्ञया ॥ ५५ ॥ नित्यञ्चसवितातत्र सखीभिरवियोगतः ॥ आससादारुणाद्रीशंदिव्यदुन्दुभिनादितम् ॥ ५६ ॥ अन्तस्तेजोमयंशान्तमरुणाचलनायकम् ॥ अप्सरोनृत्यगीतैश्च पूजितंपुष्पवृष्टिभिः ॥ ५७ ॥ प्रणम्यस्थावरंलिङ्गं कौतूहलसमन्विता ॥ सिद्धानांयोगिनांसार्थं मृषीणांचान्ववैक्षत ॥ ५८ ॥ अत्रिर्भृगुर्भरद्वाजः कश्यपश्चाङ्गिरास्तथा ॥ कुत्सश्चगौतमश्चान्ये सिद्धविद्याधरामराः ॥ ५९ ॥ तपःकुर्वन्तिसततमपेक्षितवराप्तये ॥ गङ्गाद्याःसरितश्चान्याः परितःपर्युपासते ॥६०॥ दिव्यलिङ्गमिदंपूज्यमरुणाद्रिरितिस्मृतम् ॥ वन्दस्वेतिसुरैःप्रोक्ता प्रणनामपुनःपुनः ॥ ६१ ॥ अभ्यर्थितापुनःसर्वैरातिथ्यार्थंमहर्षि

नृत्यगीतों से तथा पुष्प वृष्टियों से पूजित अरुणाचलके नायक ॥ ५७ ॥ स्थावर लिंगको कौतुक संयुत पार्वतीजीने प्रणामकर सिद्धों, योगियों व ऋषियोंके गणको देखा ॥ ५८ ॥ अत्रि, भृगु, भरद्वाज, कश्यप, अंगिरा, कुत्स, गौतम और अन्य सिद्ध, विद्या- धर व देवता ॥ ५९ ॥ वहांपर चाहेहुये वरके मिलने के लिये सदैव तप करते हैं और गंगादिक अन्य नदियां सब ओर समीप स्थितहैं ॥ ६० ॥ अरुणाद्रि ऐसे कहे हुये इस पूजनीय दिव्य लिंगको प्रणामकरो इसप्रकार देवताओं से कहीहुई पार्वतीजीने बार २ प्रणामकिया ॥ ६१ ॥ फिर आतिथ्य (पहुनई) के लिये सब महर्षियों से प्रार्थना कीहुई उन पार्वतीजीने यह कहा कि शिवजीकी आज्ञासे मुझको इन

गौतम मुनिको देखना चाहिये ॥ ६२ ॥ इसके अनन्तर आयेहुये भक्त मुनियों से बतलायेहुये उन गौतममुनिके समीपगई और तपस्याके निधान व शिव भक्तों में
श्रेष्ठ वे मुनि ॥ ६३ ॥ समिधा, कुश व फलोंको लानेके लिये प्रातःकाल वनके मध्य में गये थे आश्रम मे प्राप्तहुये पाहुनोंको पूजियेगा यह दृढ़ व्रतवाले ॥ ६४ ॥ शिष्यों
को आज्ञा देकर वे धर्मात्मा गौतममुनि वनके मध्यमें गयेथे इसके अनन्तर मुनि कहांगये यह कहनेपर गौतमजीको देखने के लिये पर्णशाला में आईहुई उन पार्व-
तीजी से शिष्योंने कहा कि शीघ्रही क्षणभर में आवैगे और उन गौतमजीके शिष्योंने सुगन्धित फल मूलों से पूजनकिया ॥ ६५ । ६६ ॥ शिष्योंकी संपदाने अभ्युत्थान

सिः ॥ शिवाज्ञयागौतमोयंद्रष्टव्यइतिसावदत् ॥ ६२ ॥ आगतैर्मुनिभिर्भक्तैर्निर्दिष्टंतमथाभ्यगात् ॥ समुनिःशिवभक्ता
नां प्रथमस्तपसांनिधिः ॥ ६३ ॥ वनान्तरंगतःप्रातः समित्कुशफलाक्षतैः ॥ अतिथीनाश्रमंप्राप्तानर्चयेतिदृढव्रता
न् ॥ ६४ ॥ शिष्यानादिश्यधर्मात्मा गतःसांवैपिनान्तरम् ॥ अथतांगौतमंद्रष्टुमागतांपर्णशालिकाम् ॥ ६५ ॥
क्वगतोमुनिरित्युक्ते द्रुतमायास्यतिक्षणात् ॥ शिष्यैरभ्यर्चितातस्य फलमूलैस्सुगन्धिभिः ॥ ६६ ॥ अभ्युत्थानेनमाने
न पाद्येनार्घ्येणसूनृतैः ॥ वचनैःफलमूलेन सार्चिताशिष्यसम्पदा ॥ ६७ ॥ क्षणंक्षमस्वेत्यूचुस्ता मन्येजग्मुस्तदन्ति
कम् ॥ देव्यांप्रविष्टमात्रायांमहर्षेराश्रमेतदा ॥ ६८ ॥ अभवत्कल्पकयुतो मणिप्रासादसङ्कुलः ॥ वनान्तरादुपावृत्यसमि
त्कुशफलाहरः ॥ ६९ ॥ अपश्यत्स्वाश्रमंदूरे विमानशतशोभितम् ॥ किमेतदितिसाश्चर्यंचिन्तयन्मुनिपुङ्गवः ॥ ७० ॥
गौर्याःसमागमात्सर्वं मपश्यज्ज्ञानचक्षुषा ॥ शीघ्रंनिवृत्तमानोसौ द्रष्टुंतांलोकमातरम् ॥ ७१ ॥ शिष्यैःशीघ्रचरैर्दृ

(अग्वानी) मान, पाद्य, अर्घ व सत्य प्रियवचन और फल मूलसे उन पार्वतीजी का पूजन किया ॥ ६७ ॥ और क्षणभर क्षमा करिये यह उन पार्वतीजी से कहा व
अन्य शिष्य उनके समीपगये उस समय महर्षि गौतमजीके आश्रम मे जब पार्वती जी पैठीं तब ॥ ६८ ॥ वह आश्रम कल्पवृक्षों से संयुत व मणिमय मन्दिरोंसे व्याप्त
होगया समिधा, कुश व फलोंको लायेहुये गौतमजीने वनके मध्य से लौटकर ॥ ६९ ॥ दूरही से अपने आश्रमको सैकड़ों विमानों से शोभित देखा यह क्याहै इस प्रकार
आश्चर्य समेत चिन्तवन करतेहुये मुनिश्रेष्ठ गौतमजीने ॥ ७० ॥ ज्ञानदृष्टि से सब पार्वतीजीके समागम से देखा व उन जगदम्बिकाको देखने के लिये शीघ्रता से

लौटतेहुये इन गौतमजीने ॥ ७१ ॥ इसके अनन्तर शीघ्रगामी शिष्यों से कहेहुये वृत्तान्तको सुना ॥ ७२ ॥ इसके अनन्तर उस समय आश्चर्य को प्राप्त व आश्रित
प्रिय महर्षि गौतमजी शिवजीकी दयासे शोभित अपनी तपस्याके प्राप्तहुये फलको चिन्तवन करतेहुये आश्रम में आये ॥ ७३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेअरुणाचलखण्डे
देवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांपार्वत्याअरुणाचलगमनवर्णनंनामचतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

दो० । गौतम गिरिजासन कह्यो अरुणाचल परभाव । सो पंचम अध्याय में वर्णित चरित सुहाव ॥ सूतजी बोले कि वनसे मुकुट हारपै आयेहुये शान्त, शिव-

तमावेदितमथाशृणोत ॥ ७२ ॥ अथमहर्षिरुपागतकौतुकोनिजतपः फलमेवतदागतम् ॥ शिवदयाकलितम्परि
चिन्तयन्नभजदाश्रममाश्रितवत्सलः ॥ ७३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेअरुणाचलमाहात्म्येचतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ * ॥

सूतउवाच ॥ अरण्याद्गौतमंशान्तं मुकुटद्वारआगतम् ॥ प्रत्युत्थातुंप्रवृत्तासा शिवभक्तंजगन्मया ॥ १ ॥ आलु
लोकसमायातं गौतमंशिष्यसेवितम् ॥ लम्बमानशिरस्मश्रुसम्पूर्णमुखमण्डलम् ॥ २ ॥ जटाभिरतिताम्राभिस्तीर्थ
स्नानविशुद्धिभिः ॥ न्यस्तरुद्राक्षमणिभिर्ज्वालाभिरिवपावकम् ॥ ३ ॥ भस्मत्रिपुण्ड्रकोपेतं विशालंचास्यमस्तकम् ॥
शुक्लयज्ञोपवीतेन पूर्णरुद्राक्षदामभिः ॥ ४ ॥ दधानंवल्कलेरक्ते तपःकृशितविग्रहम् ॥ जपन्तंवैदिकान्मन्त्रान् रुद्रप्रा
तिकरान्बहून् ॥ ५ ॥ शम्भुनावासितेचित्ते सारूप्यमिवभावितम् ॥ तेजोनिधिंदयापूर्णं प्रत्यक्षमिवभास्करम् ॥ ६ ॥

भक्त गौतमजीके प्रत्युत्थानके लिये वे जगदम्बिकाजी प्रवृत्तहुईं ॥ १ ॥ और उन पार्वतीजीने लम्बे शिर व दाढ़ी मोछसे सम्पूर्ण मुख मण्डलवाले और शिष्यों से
सेवित आयेहुये गौतमजीको देखा २ जोकि तीर्थोंके स्नानसे पवित्र व अति अरुणवर्णवाली तथा न्यास कीहुई रुद्राक्षकी मणियोंवाली जटाओं से ऐसे शोभितथे कि
जैसे ज्वालाओं से अग्निदेवजी शोभित होते हैं ॥ ३ ॥ और इन गौतमजीका चौड़ा मस्तक भस्मके त्रिपुण्ड्र से संयुत था और श्वेत जनेऊ और रुद्राक्षकी मालाओं से
पूर्णथे ॥ ४ ॥ व अरुण वकलों को धारणकिये तथा तपस्या से दुबले शरीरवाले व रुद्रको प्राप्तकरनेवाले बहुत वैदिक मन्त्रों को जपतेहुये ॥ ५ ॥ व शिवजी से

बसेहुये चित्तमें भावना कीहुई सारूप्यकी नाईं तथा तेजो निधान व दयामें पूर्ण प्रत्यक्ष सूर्यनारायणकी नाईं ॥ ६ ॥ भूमिस्थान में आश्रयवाले उन वृद्धमहात्मा गौतमजीको देखकर हाथोंको जोडेहुई पार्वतीजीने प्रणाम करनेकी इच्छा किया ॥ ७ ॥ हाथोंको जोड़ेहुई समस्त संसारकी माताको देखकर उन गौतममुनिने आश्चर्य समेत यह क्याहै इसप्रकार मना करतेहुये प्रणाम किया ॥ ८ ॥ व कहा कि हे दयानिधे, सुभगे, जगदम्बिके, पार्वति ! अच्छा आनाहुआ व्याज (बहाने) से भक्तकी रक्षा करनेकी कामनावाली तुम आईहो ॥ ९ ॥ अहो मैं इस प्रयोजन को मानताहूं कि विज्ञान से मेरे आगे शिवजीकी पृथक्ताको मानो अवलम्बनकर भली

आलोक्यतंमहात्मानं बृंहणंभूयदाश्रयम् ॥ कृताञ्जलिपुटागौरी प्रणन्तुमुपचक्रमे ॥ ७ ॥ कृताञ्जलिंमुनिर्वीक्ष्य समस्तजगदम्बिकाम् ॥ किमेतदितिसाश्चर्यं वारयन्प्रणनामसः ॥ ८ ॥ स्वागतंगौरिसुभगे लोकमातर्दयानिधे ॥ व्याजेनभक्तसंरक्षां कर्त्तुकामागताऽस्यहो ॥ ९ ॥ अहोमन्येमुमर्थंच विज्ञानेनपुरोमम ॥ पृथग्भावमिवालम्ब्य शिवस्यासिसमागता ॥ १० ॥ यद्येवन्नाचरःकिंचिन्मायाविलसितन्निजम् ॥ ततःप्रपञ्चसंसिद्धिः कथमेवभविष्यति ॥ ११ ॥ अतस्त्वशेषंमेवक्तुं मायाविलसितंतव ॥ नशक्यतेयन्नेत्रंत्वंदीपैश्चैवकदाचन ॥ १२ ॥ आस्यतांपावनेशुद्धे आसनेकुशनिर्मिते ॥ गृह्यतांपाद्यमर्घ्यञ्च पूजाचविविधामया ॥ १३ ॥ इतिशिष्यैःसमानीतदर्भाङ्कपरमासने ॥ आसीनामम्बिकांवृद्धो मुनिरानर्चभक्तिमान् ॥ १४ ॥ निवेद्यसकलांपूजाम्भक्तिभावसमन्वितः ॥ गौर्याःसमभ्यनुज्ञातः स्वयमप्यासनेस्थितः ॥ १५ ॥ उवाचदशनज्योत्स्नापरिधौतदिशामुखः ॥ पुलकाञ्चितसर्वाङ्गः सानन्दाश्रुःसगद्गदम् ॥ १६ ॥ अ

भाति आईहो ॥ १० ॥ यदि ऐसे कुछ अपने माया विलासको न करो तो कैसे प्रपंच (संसार) की सिद्धि होगी ॥ ११ ॥ इसलिये तुम्हारी मायाका समस्त विलास नहीं कहा जासक्ताहै क्योंकि दीपोंसे किसीप्रकार नेत्रता नहीं होसक्तीहै ॥ १२ ॥ कुशसे रचेहुये पवित्र आसनपै बैठिये और अर्घ्यपाद्य व मुझसे की अनेक भांतिकी पूजाको ग्रहण कीजिये ॥ १३ ॥ इसप्रकार भक्तिमान् वृद्ध गौतममुनिने शिष्योंसे लायेहुये कुशोंसे रचित उत्तम आसनपै बैठीहुई पार्वतीजीका पूजन किया ॥ १४ ॥ व सब पूजा को निवेदनकर पार्वतीजी से आज्ञाको पायेहुये भक्तिभाव से संयुत आप भी आसनपै बैठे ॥ १५ ॥ आनन्दके आंशुओं समेत व रोमांचित सब अंगोंवाले गौतममुनि

दातोंकी चमक से दिशा मुखोंको उज्वलकर गद्गदी समेत वचनको बोले ॥ १६ ॥ कि अमित तेजवाले सदा शिवदेवजीके माहात्म्यका आश्चर्यहै क्योंकि भक्त प्रिय
शिवजीने भक्तकी रक्षाके लिये तुमको आज्ञा दिया ॥ १७ ॥ हे अम्बिके ! नही तो तुमको अन्य असिद्ध व दुर्लभ क्या विद्यमानहै इस भक्तिके माहात्म्यको दिखलाने
के लिये कैलास पर्वत पै बसतेहुये तपस्या में स्थित वे सदाशिवजी अरुणाचलपै आने की आज्ञा दिया मैंने यह सब जान लिया ॥ १८।१९ ॥ हे महाभागे, दयामूर्ते !
आपही इस भक्त के आश्रम को आईहो स्नेहसे कर्तव्यकार्य को उपदेश कीजिये॥ २० ॥ उन सर्वज्ञ महर्षिका यह वचन सुनकर तदनन्तर उनपार्वतीजीने कौतुक से

होदेवस्यमाहात्म्यं शम्भोरमिततेजसः ॥ यद्भक्तरक्षणायत्वामादिशद्भक्तवत्सलः ॥ १७ ॥ असिद्धञ्चाप्यलभ्यं वा
किंवान्यत्तवविद्यते ॥ अम्बैतद्भक्तिमाहात्म्यं सन्दर्शयितुमीश्वरः ॥ १८ ॥ कैलासशैलेनिवसन्स देवस्तुतपःस्थितः ॥
अरुणाद्रिसमादेशं सर्वज्ञातमिदंमया ॥ १९ ॥ आगतासिमहाभागे भक्ताश्रममिमंस्वयम् ॥ स्नेहेनकरुणामूर्त्ते कर्त्त
व्यमुपदिश्यताम् ॥ २० ॥ इतितस्यवचःश्रुत्वा महर्षेःसर्ववेदिनः ॥ अम्बिकाप्राहकुतकात्ततस्सातंमहामुनिम् ॥ २१ ॥
महावैभवमेतत्ते देवदेवःस्वयंशिवः ॥ मध्येतपस्विनांकर्त्तुंद्रष्टव्यइतिचादिशत् ॥ २२ ॥ आगमानांशिवोक्तानां वेदा
नामपिपारगः ॥ तपसाशम्भुभक्त्याच त्वमेवाशिवसम्मतः ॥ २३ ॥ अरुणाचलनाम्नाहं तिष्ठामीत्यब्रवीच्छिवः ॥ अ
स्याचलस्यमाहात्म्यं श्रोतव्यञ्चभवन्मुखात् ॥ २४ ॥ प्राप्तास्म्यहंतपःकर्त्तुं अरुणाचलसन्निधौ ॥ श्रूयतेदर्शनादेव
स्वयमाशुप्रसीदति ॥२५॥ शिवभक्तेनसम्भाषा शिवसङ्कीर्त्तनंतथा ॥ शिवलिङ्गार्चनंलोके वपुर्ग्रहफलोदयः ॥२६॥ त

उन महामुनि गौतमजी से कहा ॥ २१ ॥ कि देव देव सदाशिव जी ने आपही तपस्वियो के मध्य में तुम्हारे इस महाऐश्वर्य को करने के लिये यह आज्ञा दिया कि
गौतम मुनि देखने योग्य है ॥ २२ ॥ शिवजी से कहेहुये शास्त्रों व वेदों के भी पारगामी तुम्हीं तपस्या व शिवजी की भक्ति से शिव के सम्मत हो ॥ २३ ॥ मैं अरु-
णाचल नाम से स्थित हूं ऐसा सदाशिवजी ने कहा है और आपके मुख से इस पर्वत का माहात्म्य सुनना चाहिये ॥ २४ ॥ मैं अरुणाचलके समीप तपस्याकरने
के लिये प्राप्तहुईहूं क्योंकि यह सुनाजाता है कि यह पर्वत दर्शनहीसे शीघ्रही प्रसन्न होता है ॥ २५ ॥ शिवभक्त से सम्भाषण करना व शिवजी का कीर्तन करना तथा

शिवलिंग का पूजन संसार में शरीर ग्रहण के फल का ऐश्वर्य है ॥ २६ ॥ इसलिये आप के मुख से मुझ को यह माहात्म्य सुनना चाहिये तुम प्रगटतापूर्वक उपदेश
से मेरे ज्ञानदायक पिता हो ॥ २७ ॥ उन पार्वती जी का यह वचन सुनकर शिवजी को ध्यान करते हुये तपस्याके निधान गौतमजीने अरुणाचलके ऐश्वर्य्यको कहा ॥
२८ ॥ कि अज्ञात की नाईं जो कुछ फिर तुम से पूछाजाता है उसको मैं जानताहूं और सब विद्याओं के मध्य में वह शिवजी की आज्ञा तुम्हीं हो ॥ २९ ॥ अथवाभक्तो
के मुख से शिवजी के ऐश्वर्य का सुनना उनकी उत्तम शिक्षा व तुम्हारी प्रसन्नता का कारण है ॥ ३० ॥ जैसे वेदों को पढ़तेहुये मनुष्यों को वेद फलदायक होते हैं

स्मान्ममैतन्माहात्म्यं श्रोतव्यंभवतोमुखात् ॥ सुव्यक्तमुपदेशेन ज्ञानदोसिपितामम ॥ २७ ॥ इतितस्यावचःश्रुत्वा
गौतमस्तपसानिधिः ॥ आचख्योगिरिशन्ध्यायन्नरुणाचलवैभवम् ॥ २८ ॥ अज्ञातमिवयत्किञ्चित्पृच्छ्यतेचपुनस्त्व
या॥जानामिसर्वविद्यानामाज्ञाशैवीत्वमेवसा॥ २९॥ अथवाभक्तवक्त्रेण शिववैभवसंश्रवः ॥ शिक्षणंशोभनंतेषां तवतुष्टे
श्चकारणम् ॥ ३० ॥ पठतांश्चैववेदानां यथावेदाफलावहाः ॥ वदतांशृण्वतांलोके शिवसङ्कीर्तनंतथा ॥ ३१ ॥ सकला
न्यघसर्वाणि तपांसिचरितानिमे ॥ यदहंशम्भुनादिष्टःस्वमाहात्म्यस्यकीर्त्तने ॥ ३२ ॥ श्रुतंशिवप्रसादेन माहात्म्यमि
दमद्भुतम् ॥ अरुणाचलमाहात्म्यं दुरितक्षयकारणम् ॥ ३३ ॥ श्रूयतामनवद्याङ्गि पुरावृत्तमिदंमहत् ॥ अरुणाद्रिम
यंलिङ्गमाविर्भूतंयथापुरा॥ ३४ ॥ नशक्यतेपुनर्वक्तुमिदंवैवक्त्रकोटिभिः ॥ अरुणाचलमाहात्म्यं ब्रह्मणामपिकोटि
भिः ॥ ३५ ॥ ब्रह्मणाविष्णुनापूर्वं शशिभास्करवह्निभिः ॥ इन्द्रादिभिश्चदिक्पालैः पूजितश्चाष्टसिद्धये ॥ ३६ ॥ सिद्ध

वैसेही संसार में शिवकीर्तन कहते व सुनतेहुये लोगों को फलदायक होताहै ॥३१॥ आज मैंने कलाओं समेत सब तपस्याओं को किया जो कि शिवजी ने अपने मा-
हात्म्य को कीर्तन करने में मुझे आज्ञा दिया ॥ ३२ ॥ मैंने शिवजी की प्रसन्नतासे इसअद्भुत माहात्म्य को सुना है अरुणाचल का माहात्म्य पाप के नाश का
कारण है ॥ ३३ ॥ हे निर्दोषाङ्गि ! पुरातन समय वर्तमानहुये इस बड़ेभारी चरित्र को सुनिये कि जिसप्रकार पुरातनसमय अरुणाचलमयलिंग प्रकटहुआ है ॥ ३४ ॥
फिर अरुणाचल का यह माहात्म्य करोड़ों ब्रह्माओं से भी करोड़ों मुखों से नहीकहा जासक्ताहै ॥ ३५ ॥ पुरातन समय ब्रह्मा, विष्णु, चन्द्रमा, सूर्य, अग्नि व इन्द्रादिक

दिक्पालों ने आठ सिद्धियों के लिये इसको पूजाहै ॥ ३६ ॥ सिद्ध, चारण, गन्धर्व, यक्ष, विद्याधर, नाग, ग्रह, व दिव्य मुनियों तथा सिद्ध योगियों से यह अरुणाचल
पूजागया है ॥ ३७ ॥ उन पातकों की निवृत्ति (छूटने) के लिये व उरा उस मनोरथकी सिद्धि के लिये अरुणाचल के स्वामी जो भगवान् शिवजी आराधितहुये
हैं ॥ ३८ ॥ देखतेहुये वे शिवजी पापों को हरते हैं व सेवित होकर मनोरथ को देते हैं तथा दूरमें भी मनुष्यों से अरुणाचल ऐसा कहेहुये शिवजी मुक्तिदायक होते हैं ॥
३९ ॥ अरुणाचल ऐसे प्रसिद्ध तेजस्तम्भमय रूपको चित्त में ध्यान करतेहुये योगी लोग शिवजी की सायुज्य मुक्तिको पाते हैं दान, हवन व जो कुछ जपाहुआ व

चारणगन्धर्वयक्षविद्याधरोरगैः ॥ स्वर्गेश्चमुनिभिर्दिव्यैः सिद्धयोगिभिरर्चितः ॥ ३७ ॥ तत्तत्पापनिवृत्त्यर्थं तत्तदीप्सि
तसिद्धये ॥ आराधितोयोभगवानरुणाद्रिपतिःशिवः ॥ ३८ ॥ दृष्टोहरतिपापानि सेवितोवाञ्छितप्रदः ॥ कीर्तितोपिज
नैर्दूरे शोणाद्रिरितिमुक्तिदः ॥ ३९ ॥ तेजस्तम्भमयंरूपमरुणाद्रिरितिश्रुतम् ॥ ध्यायन्तोयोगिनश्चित्ते शिवसायुज्य
माप्नुयुः ॥ दत्तंहुतञ्चयत्किञ्चिज्जप्तञ्चान्यत्तपःकृतम् ॥ ४० ॥ अक्षयंभवतिप्राप्तमरुणाचलसन्निधौ ॥ पुराब्रह्माचविष्णुश्च
शिवतेजोंशसम्भवौ ॥ ४१ ॥ साहङ्कारौयुयुधतुः परस्परजिगीषया ॥ तदातयोर्गर्वशान्त्यैयोगिध्यायःसदाशिवः ॥ ४२ ॥
अग्निस्तम्भमयंरूपमादिमध्यान्तवर्जितम् ॥ संप्राप्यतस्थौतन्मध्ये दिशोदशविभासयन् ॥ ४३ ॥ तेजस्तम्भ
स्यतस्याथद्रष्टुमाद्यन्तभागयोः ॥ हंसक्रोडतनुंकृत्वाजग्मतुर्द्यौरसातले ॥ ४४ ॥ तौविषण्णमुखौदृष्ट्वा भगवान्करुणा

अन्य कियाहुआ तप होता है ॥ ४० ॥ अरुणाचल के समीप प्राप्त वह अक्षयहोता है पुरातन समय शिवजी के तेज के अंश से उपजेहुये ब्रह्मा व विष्णु ने ॥ ४१ ॥
अहङ्कार समेत होकर आपस में जीतकी इच्छा से युद्ध किया है तब उन दोनों के अहङ्कार की शान्ति के लिये योगियों से ध्यान करनेयोग्य सदाशिवजीने ॥ ४२ ॥
आदि, मध्य व अन्त से रहित अग्निस्तम्भमय रूपको प्राप्त होकर दशों दिशाओं को प्रकाशित करतेहुये उनके मध्य में स्थितहुये ॥ ४३ ॥ इसके अनन्तर उसतेज
स्तम्भ के आदि व अन्त के भागोंको देखने के लिये ब्रह्मा व विष्णुजी हंस तथा शूकर का शरीर धारणकर आकाश व रसातल को गये ॥ ४४ ॥ उन उदासीनमुखवाले

ब्रह्मा व विष्णु जीको देखकर दयानिधान भगवान् शिवजी प्रकटहुये और चाहेहुये वरदान को दिया ॥ ४५ ॥ और उनसे प्रार्थना कियेहुये शान्त शिवदेवजी स्थावर लिङ्गता को प्राप्त होकर अरुणाचल ऐसे प्रसिद्धहोकर भलीभाति प्रकाशितहैं॥४६॥ दिव्य नगारों के शब्दों व अप्सराओं के गान व नृत्य से तथा सैकड़ों पुष्पवृष्टियों से तैजसलिंग सदैव पूजित होता है ॥ ४७ ॥ और वीतेहुये ब्रह्माओंके मध्य में सबों से वे शिवजी पूजित हैं विष्णुजी की नाभि से उपजेहुये ब्रह्मा ने लोकों को रचा है ॥ ४८ ॥ किसी समय योगियो की तपस्या में विघ्न करने की कामनावाले इन्द्र मे प्रार्थना कियेहुये ब्रह्माने उत्तम स्त्री को रचा ॥ ४९ ॥ और सुन्दरताके

निधिः ॥ आविर्बभूवचतयोर्वरंप्रादादभीप्सितम् ॥ ४५ ॥ तत्प्रार्थितश्चदेवोसौ यातःस्थावरलिङ्गताम् ॥ अरुणाद्रिरिति ख्यातःप्रशान्तःसंप्रकाशते ॥४६॥दिव्यदुन्दुभिनिर्घोषैरप्सरोगीतनर्त्तनैः॥पूज्यतेतैजसंलिङ्गंपुष्पवृष्टिशतैःसदा ॥ ४७ ॥ ब्रह्मणामप्यतीतानां सर्वैश्च.प्यर्चितप्रभुः॥ विष्णुनाभिसमुद्भूतो ब्रह्मालोकान्ससर्जहि ॥ ४८ ॥ सकदाचित्तयोर्विघ्नं कर्तुकामेनयोगिनाम् ॥ इन्द्रेणप्रार्थितोब्रह्माससर्जललितांस्त्रियम् ॥ ४९ ॥ लावण्यगुणसम्पूर्णामालोक्यकमलेक्षणाम् ॥ सुमोहकन्दर्पशरैः सविद्धहृदयोविधिः ॥ ५० ॥ स्प्रष्टुकामंतमालोक्य ब्रह्माणंकमलाशनम् ॥ नत्वाप्रदक्षिणव्याजाद्गन्तुमैच्छद्वराप्सराः ॥ ५१ ॥ अस्यांप्रदक्षिणाम्भक्त्या कुर्वाणायांप्रजापतेः ॥ चतसृभ्योपिदिग्भ्योस्य मुखान्युद्भवन्क्षणात् ॥ ५२ ॥ साबालापक्षिणीभूत्वा गगनंसमगाहत ॥ पुनश्चखगरूपेण समायान्तंसमीक्ष्यवै ॥ ५३ ॥ शरणंयाचमानासाशोणाद्रिमिममाश्रयत ॥ ब्रह्मणाविष्णुनाचत्वमदृष्टपदशेखरः ॥ ५४ ॥ रक्षमामरुणाद्रीश शर

गुणों से सम्पूर्ण उस कमलनयनी स्त्री को देखकर कामदेवके बाणों से वेधितहृदय वाले वे ब्रह्मा जी मोहितहुये ॥ ५० ॥ छूने की इच्छावाले उन कमलासन ब्रह्माजी को देखकर प्रणामकर प्रदक्षिणा के बहाने से उत्तम अप्सराने जानेकी इच्छाकिया ॥ ५१ ॥ भक्ति से जब यह प्रदक्षिणा करनेलगी तब इन ब्रह्मा के क्षणभर में चारों दिशाओं से मुख उत्पन्न होगये ॥ ५२ ॥ और वह स्त्री पक्षिणी होकर आकाश मे प्राप्तहुई फिर पक्षीरूप से आतेहुये ब्रह्मा को देखकर ॥ ५३ ॥ शरण को मांगतीहुई वह इस अरुणाचल पै आश्रित हुई व बोली कि ब्रह्मा व विष्णुजी से न देखेहुये नीचे व ऊपरभागवाले तुम ॥ ५४ ॥ हे अरुणाचल! शरणमे आईहुई व रक्षाकरने

के योग्यवाली मेरी रक्षा कीजिये डरसे विकल उस अप्सराके इसप्रकार रोनेपर अरुणाचल ॥ ५५ ॥ स्थावर लिंग से उत्पन्न व धनुष को धारण किये कोई बहेलिया
समीप में उत्पन्नहुआ और धनुषमें बाण को लगाकर वह मारनेके लिये प्राप्तहुआ॥ ५६ ॥ आगे व्याध को देखनेपर उन ब्रह्मा का मोह (अज्ञान) नाशहोगया तद-
नन्तर प्रसन्न हृदय होकर कमल से उपजे हुये ब्रह्मा ने ॥ ५७ ॥ उस समय शरण के योग्य अरुणाचलेशजी के लिये प्रणाम किया कि समस्तपापों के क्षयकारक
व पिनाकधारी आपके लिये प्रणाम है ॥ ५८ ॥ अरुणाचलरूपी भक्तों के वश्य, व जानते हुये अपने भक्तों को अकर्म से निवृत्त करनेवाले शिवजीके लिये नमस्कार

रण्यांशरणागताम् ॥ इतितस्याम्भयार्तायां क्रोशन्त्यामरुणाचलात् ॥ ५५ ॥ उदभूत्स्थावराल्लिङ्गाद्व्याधःकश्चिद्धनुर्द्ध
रः ॥ सन्धायसायकंचापेस हन्तुंसमपद्यत ॥ ५६ ॥ निषादेपुरतोदृष्टेमोहस्तस्यननाशहि ॥ ततःप्रसन्नहृदयो जातस्तुक
मलोद्भवः ॥ ५७ ॥ नमश्चक्रेशरण्याय शोणाद्रिपतयेतदा ॥ सर्वपापक्षयकृते नमस्तुभ्यंपिनाकिने ॥ ५८ ॥ अरुणा
चलरूपाय भक्तवश्यायशम्भवे ॥ अजानतांस्वभक्तानां मकर्मविनिवर्त्तिने ॥ ५९ ॥ त्वदन्यःकःप्रभुःकर्तुं पालनंसर्वदे
हिनाम् ॥ उपसंहरमेदेहतेजसापापनिश्चयम् ॥ ६० ॥ अन्यश्चादिशविश्वात्मन्ब्रह्माणंलोकसृष्टये ॥ अथतस्यवचःश्रुत्वा
शिवोदीनस्यवेधसः ॥ ६१ ॥ उवाचकरुणामूर्त्तिर्भूत्वाचन्द्रार्धशेखरः ॥ दत्तःकालस्तवमयापुरैवनानिवर्त्तते ॥ ६२ ॥
कंवारागादयोदोषानबाधेरन्प्रमादिनम् ॥ तस्माद्दूरस्थितञ्चैतदरुणाचलसंज्ञितम् ॥ अजस्रंतैजसंलिङ्गं सर्वदोषनिवृ
त्तये ॥ ६३ ॥ वाचिकंमानसंपापं कायिकञ्चापियद्भवेत् ॥ विनश्यतिक्षणात्सर्वं मरुणाचलदर्शनात् ॥ ६४ ॥ प्रदक्षि

है ॥ ५९ ॥ तुम्हारे सिवा अन्य कौन देवता समस्त प्राणियों को पालन करने के लिये समर्थ है पाप निश्चयवाले मेरे शरीर को तेज से संहार कीजिये ॥ ६० ॥ व हे
विश्वात्मन् ! संसार की सृष्टि के लिये अन्य ब्रह्मा को आज्ञादीजिये उन दुःखी विधाता के वचन को सुनकर इसके अनन्तर दयामूर्ति शिवजी अर्धचन्द्र भालवाले
होकर बोले कि पहलेही मैंने तुमको समय दिया है वह नहीं निवृत्त होता है ॥ ६१ । ६२ ॥ व स्नेह आदिक दोष किस असावधाननर को दुःखित नहीं करतेहैं इस
लिये हे ब्रह्मन् ! दूरमें स्थित यह अरुणाचल संज्ञक अपना तैजसलिंग समस्त दोषोंकी निवृत्ति केलियेहै ॥ ६३ ॥ वाचिक, मानस व शारीरिक भी जो पापहोवैहै वहसब

अरुणाचल के दर्शन से नाशहोजाता है ॥ ६४ ॥ प्रदक्षिणा, नमस्कार, पूजन, स्मरण, व स्तोत्रोंसे यह अरुणाचल मनुष्यों के सबपातकोंका नाशकहै ॥६५॥ कैलास व मेरुशिखरपर और अपने स्थानों कुलाचलों में मैं कोई स्थित हूं और यह अरुणाचल आपही स्थित है ॥ ६६ ॥ कि जिसके देखने से मनुष्यों को केवल नेत्र लाभ नहीं होता है किन्तु सब पापों का नाश व ज्ञान के नेत्रों का लाभ होता है ॥६७॥ पुरातन समय हे ब्रह्मन्! मेरे अंश से उपजेहुये वे जगदीश ब्रह्माजी अपने नाम से प्रसिद्ध इस ब्रह्मपुष्कर में नहाकर मोहरहित हुये हैं ॥ ६८ ॥ हे संसारको रचनेवाले ब्रह्माजी! तुम ब्रह्मतीर्थ में नहाकर मुझको पूज कर हाथों को जोड़

णानमस्कारैः पूजनैःस्मरणस्तवैः ॥ अरुणाद्रिरयंनृणांसर्वकल्मषनाशनः ॥ ६५ ॥ कैलासेमेरुशृङ्गेवा स्वस्थानेषुकुलाद्रिषु ॥ स्थितश्चःकश्चिदेवाह मरुणाद्रिरयंस्वयम् ॥ ६६ ॥ यस्यैवदर्शनान्नृणाञ्चक्षुर्लाभोनकेवलम् ॥ भवेत्सर्वाघनाशश्च लाभश्चज्ञानचक्षुषाम् ॥ ६७ ॥ मदंशसम्भवोब्रह्मास्वनाम्नाब्रह्मपुष्करे ॥ अत्रस्नात्वापुराब्रह्मन्नमोहोभूज्जगत्पतिः ॥ ६८ ॥ स्नात्वात्वंब्रह्मतीर्थेमांसमभ्यर्च्यकृताञ्जलिः ॥ मौनीप्रदक्षिणांकृत्वा विश्वसृड्भवविज्वरः ॥ ६९ ॥ इति वचनमुदीर्यविश्वनाथं स्थितमरुणाचलरूपतोमहेशम् ॥ अथसरसिनिमज्यपद्मजन्मादुरितहरंसमपूजयत्क्रमेण ॥ ७० ॥ इममरुणगिरीशमेषवेधा यमनियमादिविशुद्धचित्तयोगः ॥ स्फुटतरमभिपूज्यसोपचारं गतदुरितोनिजमापचाधिपत्यम् ॥ ७१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेअरुणाचलमाहात्म्येपञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ * ॥

सूतउवाच ॥ पुरानारायणःकल्पे शयानःसलिलार्णवे ॥ शेषपर्यङ्कशयनेकदाचिन्नावबुध्यत ॥ १ ॥ तमसापूरितं

मौनहो प्रदक्षिणा कर शोचरहित होवो ॥ ६९ ॥ इस के अनन्तर तड़ाग में नहाकर ब्रह्माजीने इस वचन को कहकर अरुणाचल रूप से स्थित पापनाशक निश्वनाथ शिवजी को क्रमसे पूजन किया ॥७०॥ व यम नियमादिकों से शुद्धचित्त योगवाले इन ब्रह्माजीने इस अरुणाचल को उपचारपूर्वक प्रकटता से पूजकर पापरहित हो अपनी स्वामिता को पायाहै ॥ ७१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेअरुणाचलखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांपञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ ❀ ॥

दो० । जिमि पूज्यो अरुणाचलहिं विष्णु आदि सब देव । सोइ छठें अध्याय में अहै चरित सुखमेव ॥ सूतजी बोले कि पहले किसी समय कल्प में जलसमुद्र में

शेषशय्या पै सोतेहुये नारायणजी न जगे ॥ १ ॥ और कल्प के अन्त में भी लक्षणों से रहित व अज्ञात संसारको अन्धकार से पूर्ण देखकर नित्य (सदैव रहनेवाले)
विद्वान् विषाद को प्राप्त हुये ॥ २ ॥ व बोले कि बड़े आश्चर्य की बात है कि अन्धकार से संसार को मोहनेवाला ऐसा कष्टहै कि जिससे कल्पके अन्तमें अबतक
भी विष्णुजी बोधको न प्राप्तहुये ॥ ३ ॥ प्रकाशसे पूर्ण पुरुषको न देखतेहुये होनेवाले देवतालोग भी कैसे अन्धकार की शान्तिको पावेंगे ॥ ४ ॥ इस प्रकार मन
से निश्चय कर उन्होंने चित्तमें टिके हुये तेजराशि निरञ्जन देव देव उमापति शिवजी को मनसे चिन्तवन किया ॥ ५ ॥ तदनन्तर प्रणाम कियेहुये नित्य विद्वानों से

**विश्वमप्रज्ञातमलक्षणम् ॥ वीक्ष्यकल्पावसानेपि विषादुर्नित्यसूरयः ॥ २ ॥ अहोकष्टमिदंरूपं तमसाविश्वमोहनम् ॥
येनकल्पावसानेपि विष्णुर्नाद्यापिबुध्यते ॥ ३ ॥ ज्योतिषःपुरुषंपूर्णमपश्यन्तःसुराअपि ॥ कथंवातमसःशान्तिंलभेरन्
परिभाविनः ॥ ४ ॥ इतिनिश्चित्यमनसादेवदेवमुमापतिम् ॥ चिन्तयामासुरात्मस्थं तेजोराशिंनिरञ्जनम् ॥ ५ ॥ ततःप्र
सन्नोभगवान्तेजोराशिर्महेश्वरः ॥ विश्वंसृजेतिविज्ञप्तःप्रणतैर्नित्यसूरिभिः ॥ ६ ॥ ततस्तेजोमयाच्छम्भोःस्फुलिङ्गे
सुसमुद्भवाः ॥ उत्थिताश्चैवदेवानां त्रयस्त्रिंशतिकोटयः ॥ ७ ॥ बोधितःसकलैर्देवैः समुत्थायरमापतिः ॥ प्रभातंवीक्ष्य
सकलंजगर्हेतत्तमोनिशम् ॥ ८ ॥ मयातमसउद्रेकादकालेशयनंकृतम् ॥ प्रबोधायपरंज्योतिः स्वयंदृष्टःसदाशिवः ॥ ९ ॥
जगदुत्पत्तिकृत्यानिस्वयंकर्तुंव्यवस्थितः ॥ किंमयात्रपुनःकार्यं ब्रह्मणात्मस्वयम्भुवा ॥ १० ॥ धिङ्मांशपन्तंनात्मज्ञं नि
द्रयाहतचेतनम् ॥ अथवासर्वकर्तारंशरणंयामिशङ्करम् ॥ ११ ॥ सर्वदोषप्रशमनंसर्वाभीष्टफलप्रदम् ॥ पवित्रमल्पपुण्या**

संसार को रचो यह विनय कियेहुये तेजकी राशि भगवान् सदाशिवजी प्रसन्न हुये ॥ ६ ॥ उसके उपरान्त तेजमय शिवजी के स्फुलिङ्गों (चिनगारियों) से पैदाहुये
तेंतीस कोटि देवता उठे ॥ ७ ॥ और सब देवताओं से जगायेहुये लक्ष्मीके पति विष्णुजी ने प्रातःकाल को देखकर उस सनातन अन्धकार की निन्दा किया ॥ ८ ॥
कि मैंने अन्धकारकी अधिकता से असमय में शयन किया और प्रबोधके लिये परमज्योति सदाशिवजी आपही देखगये ॥ ९ ॥ जोकि आपही संसारकी उत्पत्ति के
कार्यों को करने के लिये स्थित हैं फिर इस विषय में मुझको व आपही से उपजे हुये ब्रह्माको क्या करना चाहिये ॥ १० ॥ आत्मा को न जाननेवाले तथा निद्रासे

हरीहुई बुद्धिवाले सोतेहुये मुझको धिक्कारहै अथवा सबको रचनेवाले शङ्करजीकी शरणमें जाऊं॥ ११ ॥ सब दोषोंके विनाशक व समस्त मनोरथफलों के दायक तथा पवित्र शिवजी का दर्शन थोड़ी पुण्यवाले जनों को दुर्लभ है ॥ १२ ॥ आत्मा में टिकेहुये ज्योतिर्लिङ्ग सदाशिवदेवजी को इस प्रकार चिन्तवन करतेहुये विष्णुजी ने बार २ भक्तिसे अष्टांग प्रणाम किया ॥ १३ ॥ व पातकोंके विनाशक तथा संसारको रचनेवाले शिवजीकी स्तुति किया इसके अनन्तर शरण के योग्य तेजोमय सदाशिवजी ने शरणमें आयेहुये ॥ १४ ॥ उन विष्णुजी को कटाक्षों से अनुग्रहकर यह कहा कि उठिये तब उठकर विष्णुजीने दयासेपूर्ण व अर्ध चन्द्रभालवाले सदाशिवजी की स्तुति किया ॥ १५ ॥ कि त्रिलोक के स्वामी व त्रिमूर्त्तिगणके धारनेवाले के लिये नमस्कार है व हे देव ! त्रिवेद शरीरवाले तथा त्रिपुर के द्रोही आपके लिये नम-

नां दुर्लभंशम्भुदर्शनम् ॥ १२ ॥ चिन्तयन्नेवमात्मस्थं ज्योतिर्लिङ्गंसदाशिवम् ॥ प्रणनामहरिर्भक्त्या देवमष्टाङ्गयामुहुः ॥ १३ ॥ विश्वस्रष्टारमीशानं तुष्टावदुरितच्छिदम् ॥ अथतेजोमयःशम्भुः शरण्यःशरणागतम् ॥ १४ ॥ अनुगृह्यकटाक्षैस्तं समुत्तिष्ठेत्यभाषत ॥ उत्थायकरुणापूर्णं शम्भुंचन्द्रार्द्धशेखरं ॥ १५ ॥ नमस्त्रिभुवनेशाय त्रिमूर्तिगणधारिणे ॥ त्रिवेदवपुषेतुभ्यं त्रिदशत्रिपुरद्रुहे ॥ १६ ॥ त्वमेवजगतामीशो निजांशैर्देवतामयैः ॥ कार्यकारणरूपेण करोषिस्वेच्छयाक्रियाः ॥ १७ ॥ मांनियुज्यजगद्गुप्तौ परिमोह्यचमायया ॥ नदोषमन्तंसङ्कल्पं विहातुमपिनेच्छसि ॥ १८ ॥ किंकरोमिजगन्मूर्तौन्यस्तभारोस्म्यहंत्वयि ॥ सदोषमिवमन्येहमकालशयनेनस्वम् ॥ १९ ॥ अथशम्भुर्हरेरार्तिमनुतापंसमीक्ष्यसः ॥ आदिदेशहरःश्रीमान् प्रायश्चित्तंहरेरिदम् ॥ २० ॥ अरुणाचलरूपेण तिष्ठामिवसुधातले ॥ तस्यदर्शन

स्कारहै ॥ १६ ॥ व लोकोंके स्वामी तुम्ही देवतामय अपने अंशोंसे अपनी इच्छा के द्वारा कार्य व कारणके रूपसे कर्मों को करते हो ॥ १७ ॥ व संसार की रक्षा में मुझको नियुक्तकर तथा मायासे मोहितकर दोषवाले मानसकर्म को छोड़नेकी भी इच्छा नही करतेहो ऐसा नही है याने उसको छोडते हो ॥ १८ ॥ क्या करूं मैं संसार की मूर्त्ति तुममें भारको धरेहूं और असमयमें शयन से मै अपना को सदोषकी नाई मानताहूं ॥ १९ ॥ इसके अनन्तर उन श्रीमान् सदाशिवजी ने विष्णुके दुःख व सन्ताप को देखकर विष्णुको इस प्रायश्चित्तकी आज्ञा दिया ॥ २० ॥ कि मैं पृथ्वी मैं अरुणाचलरूप से टिकाहूं उसके दर्शनही से तुम्हारे तम (अन्धकार

या अज्ञान) का नाश होगा ॥ २१ ॥ पुरातन समय वहांपर मैंने पहलेवाले विष्णुको वरदान दियाहै वही अरुणाचल संज्ञक तैजस लिंगहै ॥ २२ ॥ यह तेजमय रूप संसारकी रक्षाके कारण हुआहै जोकि अग्निमय, अप्रकट व अपार गुण तथा ऐश्वर्योंवाला है नदी, झरना व देवमुक्त याने स्वयंवृष्टि से गिरेहुये जलोंका भी ॥२३॥ भीतर ज्योतिमयत्वसे उसीमें लय (मिलाप) देख पडता है अन्धों को नेत्रलाभ से व लँगडों को चरणसे चलन से ॥ २४ ॥ व विन पुत्रवाले मनुष्यों को पुत्रके मिलने से तथा गूंगोंके वचन की प्रवृत्तिसे व समस्त सिद्धियों के दानसे व सब रोगोंको छुड़ाने से ॥ २५ ॥ और समस्त पातकोंके नाश करने से जो सब वरदायक

मात्रेण भवितातेतमःक्षयः ॥ २१ ॥ पूर्वस्मैविष्णवेतत्र वरोदत्तोमयापुरा ॥ तदेवतैजसंलिङ्गमरुणाचलसञ्ज्ञितम् ॥२२॥ तेजोमयमिदंरूपंप्रभूतंलोकरक्षणात् ॥ यदाग्निमयमव्यक्तमपारगुणवैभवम् ॥ नदीनांनिर्झराणांचदेवमुक्ताम्भसामपि॥ २३ ॥ अन्तर्ज्योतिर्मयत्वेन लयस्तत्रैवदृश्यते ॥ अन्धानांदृष्टिलाभेनपङ्गूनांपादसञ्चरैः ॥ २४॥ अपुत्राणाञ्चपुत्राप्त्या मूकानांवाक्प्रवृत्तिभिः ॥ सर्वसिद्धिप्रदानेन सर्वव्याधिविमोचनैः ॥ २५ ॥ सर्वपापप्रशमनैर्यत्सर्ववरदंस्थितम् ॥ तदिदंमेपरंरूपंशोणाद्रिःकमलेक्षण ॥ २६ ॥ प्रणम्यतपसाराध्यभवत्त्रैलोक्यपालकः ॥ इत्यादिश्यमहादेवः केशवंभक्तवत्सलः ॥ २७ ॥ अन्तर्दधेहरिश्चैवमरुणाचलमागतः ॥ आगत्यतपआस्थाय शोणाचलमुपागतः ॥ २८ ॥ जघानपरितोदुष्टानसुरान्कानननाश्रयान् ॥ ऋषीणामाश्रमान्पुण्यान्स्थापयामासशोभनान् ॥ २९ ॥ प्रावर्तयन्महायज्ञानरुणाद्रीशतुष्ट्ये ॥ धर्मांश्चविविधान्पुण्यान्स्थापयामासशोभनान् ॥ ३० ॥ अध्यापयामासहरिर्वेदान्साङ्गान्समंततः ॥ ससर्ज

स्थितहै हे कमललोचन ! वही यह मेरा उत्तमरूप अरुणाचल है ॥ २६ ॥ उसको प्रणाम कर व तपस्या से आराधन कर त्रिलोक के पालक होवो भक्तप्रिय महादेवजी इस प्रकार विष्णुजी को आज्ञा देकर ॥ २७ ॥ अन्तर्द्धान होगये और विष्णुभी अरुणाचल पै आये और आकर अरुणाचल पै प्राप्तहुये विष्णुजी ने तपस्या में स्थितहोकर ॥ २८ ॥ चारोंओर वनमें रहनेवाले दुष्ट दैत्योंको मारडाला व ऋषियों के पवित्र तथा उत्तम आश्रमों को स्थापित किया ॥ २९ ॥ और अरुणाचल की प्रसन्नताके लिये बड़ीभारी यज्ञोंको वर्तमान कराया व अनेक भांतिके सुन्दर तथा पुण्यदायक धर्मोंको स्थापित किया और विष्णुजी ने सब ओर अङ्गों समेत वेदोंको

पढ़ाया व दिव्यरूपवाली अप्सराओं के सौ वंशोंको पैदा किया ॥ ३० । ३१ ॥ व यह आज्ञा दिया कि तुम सब नृत्य, गीत व बाजाओ से अरुणाचल की सेवा करो और कमल नयन विष्णुजी ने इस ब्रह्मतडाग में नहाकर ॥ ३२ ॥ इस पूजित अरुणाचल की प्रदक्षिणा किया व पापरहित होकर उन्होंने सब लोकोंकी स्वामिता को पाया ॥ ३३ ॥ व सुन्दरी लक्ष्मीजी समेत सदैव क्रीडा किया और दैत्योंसे पीड़ित तेजराशि सूर्यनारायणजी ने भी ॥ ३४ ॥ ब्रह्माके उपदेश से भक्तिपूर्वक अरुणाचलको पूजकर और ब्रह्मासे रचेहुये पवित्रकारक तीर्थ में नहाकर ॥ ३५ ॥ आपही सूर्यनारायण स्वामीने इस अरुणाचल की प्रदक्षिणा किया और सब दैत्योंसे विजय

दिव्यरूपाणांशतमप्सरसाङ्कुलम् ॥ ३१ ॥ नृत्यैर्गीतैश्चवादित्रैः सेवध्वमितिचादिशत् ॥ स्नात्वाब्रह्मसरस्यस्मिन् विष्णुःकमललोचनः ॥ ३२ ॥ प्रदक्षिणंचकारामुमरुणाद्रिसमर्चितम्॥अपापःसर्वलोकानामाधिपत्यञ्चलब्धवान्॥ ३३ ॥ रमयासहितोनित्यमभिरेमेसुरूपया ॥ भास्करःतेजसांराशिरसुरैरपिपीडितः ॥ ३४ ॥ ब्रह्मोपदेशादानर्च्य भक्त्यारुणगिरीश्वरम् ॥ निमज्यविमलेतीर्थे पावनेब्रह्मनिर्मिते ॥ ३५ ॥ प्रदक्षिणञ्चकारैनमरुणाद्रिंस्वयंप्रभुः ॥ अशेषदैत्यविजयंलब्ध्वामेरुप्रदक्षिणम् ॥ ३६ ॥ लेभेचपरमंतेजः परतेजःप्रणाशनम् ॥ दक्षशापानलाक्रान्तस्सोमःशिववचोबलात् ॥ ३७ ॥ अरुणाचलमभ्यर्च्य लब्धरूपोभवत्पुनः ॥ अग्निर्ब्रह्मर्षिशापेनदधानःसर्वभक्षताम् ॥ ३८ ॥ अपूतोपिपवित्रोभूदरुणाचलसेवया ॥ शक्रोवृत्रंबलंपाकंनमुचिंजम्भमुद्धतम् ॥ ३९ ॥ शिवाल्लब्धवरान्दैत्यान् सर्वान्हत्वाजगत्पतीन्॥पातकैश्चपरिक्षीणस्तथालोकान्तमाश्रितः ॥ ४० ॥ शम्भुंप्रसाद्यतपसा शिवेनपरिचोदितः॥

व सुमेरुकी प्रदक्षिणा को पाकर ॥ ३६ ॥ शत्रुओंके तेजको नाश करनेवाले उत्तम तेजको पाया और दक्षजी की शापाग्नि से घिराहुआ चन्द्रमा शिवजी के वचन के बलसे ॥ ३७ ॥ अरुणाचल को पूजकर फिर रूपको प्राप्तहुआ है और ब्रह्मर्षि के शापसे सर्वभक्षता को धारण कियेहुये अग्निदेवजी ॥ ३८ ॥ अपवित्र भी होकर अरुणाचल की सेवा से पवित्र हुयेहैं और इन्द्रजी वृत्रासुर, बल, पाक, नमुचि व अहङ्कारी जम्भदैत्य को ॥ ३९ ॥ व शिवजी से पायेहुये वरवाले संसार के स्वामी सब दैत्योंको मारकर पातकों से रहितहो लोकान्त में आश्रित हुये ॥ ४० ॥ और तपस्या से शिवजीको प्रसन्न कराकर शिव से प्रेरित इन्द्रजी अरुणाचल को पूजकर

पापरहित हुयेहैं ॥ ४१ ॥ और उन्होंने अश्वमेध से पूजकर शिवजी को प्रसन्न कियाहै व इन्द्रस्थान को पाकर श्रीमान् इन्द्रजी ने उस समय अरुणाचल के लिये सेवा के निमित्त अप्सराओं के सौगणों को आज्ञादिया और पुष्प मेघोंको भली भांति आज्ञा देकर वे देवताओं से प्रणाम कियेहुये अरुणाचल को नित्यही पुष्प वृष्टियों से भलीभांति पूजते हैं॥ ४२ । ४३ ॥ और पृथ्वीमण्डल को धारनेवाले तथा कामरूपी शेषजीने भी शिवजी की आज्ञासे अरुणाचल को पूजकर भजाहै ॥ ४४॥ और अन्य नाग, गन्धर्व, सिद्ध, अप्सराओं के गण व दिक्पालों ने उस अरुणाचल को पूजकर चाहेहुये वरोंको पायाहै ॥ ४५॥ और दैत्यादिकों को जीतने

अरुणाद्रिसमभ्यर्च्य विपापोभूत्सुराधिपः ॥ ४१ ॥ इष्ट्वाचहयमेधेन प्रीणयामासशङ्करम् ॥ लब्ध्वाचेन्द्रपदंशक्रः शतमप्सरसाङ्कुलम् ॥ ४२ ॥ सेवार्थमादिशच्छ्रीमाञ्छोणाद्रिपतयेतदा ॥ पुष्पमेघान्समादिश्यदिव्याभिःपुष्पवृष्टिभिः ॥ समर्चयतिशोणाद्रिं दिव्यैर्नित्यंचवन्दितम् ॥ ४३ ॥ शेषोपिशोणशैलेशं समभ्यर्च्यशिवाज्ञया ॥ अभजत्कामरूपीच महीमण्डलधारकः ॥ ४४ ॥ अन्येनागाश्चगन्धर्वाः सिद्धाश्चाप्सरसाङ्गणाः ॥ दिक्पालाश्चतमभ्यर्च्य लेभिरेप्सितान्वरान् ॥ ४५ ॥ दैवैरशेषैर्दैत्यादीञ्जेतुकामैस्समुद्यतैः ॥ प्रार्दितस्सेवितोभीष्टवरायारुणभूधरः ॥ ४६ ॥ पुराकालेचकस्मिंश्चिदादित्यस्तेजसातपन् ॥ ग्रहनाथस्तुशोणाद्रिंविलङ्घयतुमुद्यतः ॥ ४७ ॥ रथवाहाःपुनस्तस्यशक्तिहीनाःश्रमागताः ॥ सोपिश्रियाविहीनश्च भवच्छोणाद्रितेजसा ॥ ४८ ॥ नाशक्नुवन्दिवङ्गन्तुं सर्वगस्यांशुमालिनः ॥ सतुब्रह्मोपदेशेनसमाराध्यारुणाचलम् ॥ ४९ ॥ प्रीत्यातस्माद्विलेभेमार्गंव्योम्निहयाःशुभाः ॥ ततःप्रभृति

की इच्छावाले समस्त विकल देवताओं ने प्रिय वरदान के लिये अरुणाचल की सेवा कियाहै ॥ ४६ ॥ पुरातन समय किसी कालमें तेजसे तपतेहुये ग्रहोंके स्वामी सूर्यनारायणजी अरुणाचल को नांघने के लिये उद्यत हुये ॥ ४७ ॥ फिर उन सूर्य नारायणके रथको लेचलनेवाले घोड़े शक्तिसे हीन व श्रम में प्राप्तहुये और वे सूर्यनारायण भी अरुणाचल के तेजसे शोभाहीन होगये ॥ ४८ ॥ और किरण माली, सर्वव्यापी सूर्यनारायण के घोड़े आकाश को जानेके लिये न समर्थहुये और उन सूर्यनारायणजी ने ब्रह्मा के उपदेश से अरुणाचल को प्रीति से आराधन कर उससे तेजको पाया तथा आकाश में उत्तम घोड़ों ने मार्गको पाया तब से लगा।

कर प्रचण्ड किरणोंवाले वे सूर्यनारायणजी अरुणाचल पर्वत को ॥ ४९ । ५० ॥ नहीं नांघते हैं किन्तु इस अरुणाचल की दाहिनीओर से परिक्रमाओं से चलते हैं ॥ ५१ ॥ पुरातन समय दक्षजीकी यज्ञसे ध्वस्त कियेहुये हीन अंगोंवाले देवताओं ने अरुणाचल को आराधकर अपने अंगोंको पायाहै ॥ ५२ ॥ पूषा देवताने दांतोंको पाया व दक्षजीने मस्तक को पाया, भगदेव ने सम्पूर्ण नेत्रको पाया अरुणाचल के सेवन से उन सरस्वतीजी ने नासिका को पायाहै ॥ ५३ ॥ और बलिराजा से दिये हुये पृथ्वीदान में जलधारा के रोंकने से विष्णुजी के हाथ से कुशके अग्रभाग से शुक्रजी नेत्ररहित हुये हैं ॥ ५४ ॥ और उन शुक्रजी ने अरुणाचल को

तिग्मांशुःसहिशोणाद्रिपर्वतम्॥५०॥ नलङ्घयतिकिंत्वस्यप्रदक्षिणपरिक्रमैः॥५१॥ दक्षयागपरिध्वस्ताहीनाङ्गास्त्रिदशाः पुरा ॥ अरुणाचलमाराध्य स्वान्यङ्गानिचलेभिरे ॥ ५२ ॥ पूषादन्तंशिरोदक्षो भगोनेत्रंत्वखण्डितम् ॥ घ्राणंवाणीच लेभेसा शोणाचलनिषेवणात् ॥ ५३ ॥ भार्गवःक्षीणनेत्रःसन्विष्णुहस्तकुशाग्रतः ॥ बलिदत्तावनीदानजलधारनिरोधतः ॥ ५४ ॥ सतुशोणाचलंगत्वा तपःकृत्वातिदुष्करम् ॥ लेभेनेत्रंचपूतात्मा भास्कराख्येगिरौस्थितः ॥ ५५ ॥ अरुणोनूरुरुत्पन्नः कश्यपस्योपदेशतः ॥ अरुणाचलमाराध्यसूर्यसारथितांययौ ॥ ५६ ॥ लेभिरेवेदवक्तृत्वंपुराब्रह्मर्षयोखिलाः ॥ अरुणाचलनाथस्य सेवयातपसांक्रमैः ॥ ५७ ॥ प्रतर्दनाख्योनृपतिर्गृहीतुंदेवकन्यकाम् ॥ अरुणाद्रिपतेर्गानं कुर्वन्तींसादरोभवत् ॥ ५८ ॥ क्षणात्कपिमुखोजातोमन्त्रिभिश्चोदितोनृपः ॥ प्रत्यर्प्यतांपुनश्चान्यां प्रादादरुणभूपते ॥ ५९ ॥ ततश्चारुमुखोजातः प्रीतःसधरणीपतिः ॥ सायुज्यमस्मैसकलं दत्तवान्भक्तिभावतः ॥ ६० ॥ अरुणा

जाकर व भास्कर नामक पर्वत पै स्थित होकर बड़ा कठिन तप करके पवित्र चित्तहो नेत्रको पाया है ॥ ५५ ॥ और जङ्घों से रहित उत्पन्न अरुणजी कश्यप के उपदेश से अरुणाचल को आराधकर सूर्यनारायण के सारथी कर्म को प्राप्तहुये ॥ ५६ ॥ पुरातन समय सब ब्रह्मर्षियों ने अरुणाचल नाथकी सेवा से व तपस्याओं के क्रमों से वेद वक्तृताको पायाहै ॥ ५७ ॥ और प्रतर्दन नामक राजाने अरुणाचल को गान करतीहुई देवकन्या को पकड़ने के लिये आदर समेत हुआ ॥ ५८ ॥ तब क्षणभर में वानर मुखवाला होगया फिर मन्त्रियों से प्रेरणा किये हुये राजाने उसको देकर व अरुणाचल के लिये अन्य कन्याको दिया ॥ ५९ ॥

तदनन्तर प्रसन्न होकर वह राजा सुन्दर मुखवाला होगया और भक्तिभाव के कारण इसके लिये समस्त सायुज्य को दिया ॥ ६० ॥ अरुणाचल के समीप स्नानसे दुर्बल व भक्तिहीन पुष्पक नामक गन्धर्व नारदजी से शापित हुआहै ॥ ६१ ॥ तदनन्तर व्याघ्र के समान मुखवाले उसको देखकर उन गन्धर्व दासियों ने आश्चर्य समेत आपस में यह पूंछा कि यह क्या कारण है ॥ ६२ ॥ इसके अनन्तर नारद से बतलाये हुये अपने अपमान के फलको जानकर वह अरुणाचल को पूजकर फिर सुन्दर मुखवाला हुआ है ॥ ६३ ॥ सबओर दो योजनतक यह शिवभूमि प्रसिद्ध है और यहां प्रत्यक्षही मुक्तिहै जहा कि कम्पानामक नदीहै ॥ ६४ ॥ पुरातन

चलनाथस्यसन्निधौज्ञानदुर्बलः ॥ गन्धर्वःपुष्पकाख्यस्तुभक्तिहीनोहिनारदात ॥ ६१ ॥ ततोव्याघ्रमुखंदृष्ट्वा गन्धर्व परिचारिकाः ॥ किमेतदितिसाश्चर्यंपप्रच्छुस्ताःपरस्परम् ॥ ६२ ॥ अथनारदनिर्दिष्टमवज्ञाफलमात्मनः ॥ बुद्ध्वारुणा द्रिसम्पूज्य पुनश्चसुमुखोभवत ॥ ६३ ॥ शिवभूमिरियंख्याता परितोयोजनद्वयम् ॥ मुक्तिस्तत्रतुप्रत्यक्षा कम्पाख्य त्रास्तिवैनदी ॥ ६४ ॥ सप्तर्षयःपुराभूमौशापदोषसमन्विताः ॥ अरुणाद्रिसमीपेस्मिन्नतपश्चक्रुस्समन्विताः ॥ ६५ ॥ विनिवृत्ताःपुनःसर्वे राजद्रव्यपरिग्रहे ॥ कर्त्तुमैच्छंश्चशोणाद्रौस्वप्राणानांचनाशनम् ॥ ६६ ॥ अथशोणाद्रिनाथोयं ज्ञा त्वातेषांविनिश्चयम् ॥ शापमोक्षंददौश्रीमान् सप्तर्षीणांमहात्मनाम् ॥६७॥ सप्तर्षिभिःकृतंतीर्थं सर्वपापविनाशनम् ॥ शोणाचलस्यनिकटे दृश्यतेपावनंशुभम् ॥ ६८ ॥ पङ्गुर्मुनिःशोणशैलात्पादौलब्धुंसमागतः ॥ अन्तर्हितप्रार्थना र्थं दारुहस्तपुटेवहन् ॥ ६९ ॥ जानुचङ्क्रमणोव्यग्रः शोणनद्यास्तटङ्गतः ॥ दारुहस्तपुरेतत्रनिचिक्षेपपिपासितः ॥ ७० ॥

समय शापदोष से संयुत सप्तर्षि लोगों ने पृथ्वी में इस अरुणाचल के समीप मिलकर तपस्या किया है ॥ ६५ ॥ फिर सब राजाओं की द्रव्यलेने में निवृत्त हुये हैं और उन्हों ने अरुणाचल पै अपने प्राणोंको नाश करनेकी इच्छा किया ॥ ६६ ॥ इसके अनन्तर श्रीमान् इस अरुणाचल स्वामीने उनके निश्चयको जानकर सप्तर्षि महर्षियोंको शापकी मोक्ष दिया ॥ ६७ ॥ और सप्तर्षिगों ने समस्त पातकों के विनाशक तीर्थको कियाहै जोकि उत्तम व पवित्र कारक तीर्थ अरुणाचल के समीप देख पड़ ताहै ॥ ६८ ॥ और पंगु मुनि छिपीहुई प्रार्थनाके निमित्त काष्ठके हाथोंको धारणकरते हुये अरुणाचल से चरणों को पानेके लिये भलीभांति आयेहैं ॥ ६९ ॥ जङ्घोंके द्वारा

चलने से विकल उस प्यासे मुनिने शोणनदी के किनारे प्राप्तहोकर उस नदीमें लकड़ी के हाथोंको डाला ॥७०॥ घुटुनुओंसे चलनेवाले उस मुनिने जब नदीके जल
को पीनेकी इच्छा किया इसके अनन्तर अरुणाचल के स्वामी काष्ठके हाथोंको देख कर ॥ ७१ ॥ यह क्या है ऐसा पूंछते हुये कलि (झगड़ा) में तत्पर होकर उसके
सामने दौड़े और क्रोधसे उसको पकड़ने की इच्छावाला वह पंगुमुनि भी उसके सामने दौड़ा ॥ ७२ ॥ और अचानकही चरणों को पायेहुये उसने अपने घरको
प्रयाण किया और वहा पुरुषको न देखा व आगेप्राप्त काष्ठके हाथोंको ॥७३॥ आपही लेकर व देखकर उसने अरुणाचलको प्रणाम किया व चरणों तथा रूपको पाकर

जानुचङ्क्रमणेतस्मिन्नद्यास्तोयंपिपासति ॥ अथशोणाचलपतिर्दृष्ट्वाचदारुहस्तके ॥ ७१ ॥ किमेतदितितंपृच्छन्न
धावत्कलितत्परः ॥ सोपिकोपाज्जिघृक्षुस्तमन्वधावत्तुतत्पुरः ॥ ७२ ॥ लब्धपादश्चसहसा जगामचनिजालयम् ॥
नाद्राक्षीत्पुरुषंतत्र दारुहस्तौपुरोगतौ ॥ ७३ ॥ स्वयंगृहीत्वाचालोक्यववन्देरुणपर्वतम् ॥ ननन्दलब्धचरणोलब्धरू
पोमहामुनिः ॥ ७४ ॥ विस्मयोत्फुल्लनयनैः शिवभक्तैर्महात्मभिः ॥ पूजितोलब्धपादःसञ्जगामचयथेच्छया ॥ ७५ ॥
वालीशक्रसुतःश्रीमाञ्छृङ्गादुदयभूभृतः ॥ अस्ताचलस्यशिखरंप्रतिगन्तुंसमुद्यतः ॥ ७६ ॥ आलुलोकेरुणगिरिं सर्व
देवनमस्कृतम् ॥ ऊर्ध्वंगन्तुंसमुद्युक्तः क्षीणवीर्योपतद्भुवि ॥ ७७ ॥ पित्राशक्रेणसङ्गम्य चोदितःशोणपर्वतम् ॥ लिङ्गन्तै
जसमभ्यर्च्य लब्धवीर्योभवत्पुनः ॥ ७८ ॥ नलःपूर्वंसमभ्यर्च्य कलिदोषप्रशान्तये ॥ लब्धरूपःकृपायुक्तो दमय

महामुनि प्रसन्नहुये ॥ ७४ ॥ और चरणों को पायेहुये वे मुनि विस्मय से प्रफुल्लित लोचनोंवाले महात्मा शिवभक्तोंसे पूजित होकर इच्छापूर्वक चलेगये ॥ ७५ ॥ इन्द्र
के पुत्र श्रीमान् बालिजी उदयाचल के शिखरसे अस्ताचल के शिखर को जानेके लिये उद्यत हुये ॥ ७६ ॥ और उन्होंने सब देवताओं से प्रणाम कियेहुये अरुणाच-
लकोदेखा व ऊपर जानेके लिये उद्यत वे बालि बलरहित होकर पृथ्वीमें गिरपडे॥७७॥ और पिता इन्द्र से समागम को प्राप्त होकर प्रेरणा किये हुए बालिन अरुणाचल
पर्वत पै तैजस लिंग को पूजकर फिर बल को पायाहै ॥ ७८ ॥ पुरातन समय दया संयुत नलराजा ने कलियुग के दोष की शांति के लिये इसअरुणाचल को पूज

कर फिर रूपको प्राप्तहो दमयंती स्त्री से संयोग को पायाहै ॥ ७९ ॥ और नीति के सारांश से संयुत उन धर्मात्मा मनुजी ने अरुणाचल को पूजकर अपनासे रचेहुये
प्यारे मनुष्यों को पालन कियाहै ॥ ८० ॥ और इलाने अचानकही सम्पूर्ण गौरी वन को प्राप्तहोकर प्राप्त हुये स्त्रीत्व को अपने पुरोहित से पूंछा ॥ ८१ ॥ व अरुणा
चल को पूजिये इस प्रकार वशिष्ठजी से आज्ञा दिया हुआ वह तपस्या से अरुणा चल देवेश को आराध कर फिर पुरुषत्व को प्राप्त हुआ है ॥ ८२ ॥ अगस्त्य जी
की शाप से सर्पता को प्राप्तहोकर नहुष ने इसके बाद चन्द्रमा के उपदेश से भक्ति पूर्वक अरुणाचल को स्मरण किया ॥ ८३ ॥ और तपस्या में अधिक उन नहुषने

न्याचसङ्गतः ॥ ७९ ॥ मनुःशोणाद्रिमभ्यर्च्य स्वसृष्टान्मानवान्प्रियान् ॥ पालयामासधर्मात्मा नीतिसारसम
न्वितः ॥ ८० ॥ इलाप्रविश्यसहसा गौरीवनमखण्डितम् ॥ स्त्रीभावंसमनुप्राप्तं पप्रच्छस्वपुरोधसम् ॥ ८१ ॥ वशिष्ठेनस
मादिष्टः शोणाद्रिंपूजयेतिसः ॥ तपसाराध्यदेवेशं पुनःपुंस्त्वमुपागतः ॥ ८२ ॥ नहुषोगस्त्यशापेन भुजगत्वमुपाग
तः ॥ सोमोपदेशाद्भक्त्याथ सस्माराऽरुणपर्वतम् ॥ ८३ ॥ ईशानुग्रहतोलेभे शापमोक्षंतपोधिकः ॥ लेभेचपरमंस्था
नमप्राप्यममरैरपि ॥ ८४ भरतोमृगशावस्य स्मरणादायुषोत्यये ॥ नमुक्तिंप्राप्ययोगेन मृगजन्माभवत्पुनः ॥ ८५ ॥
नारायणोपदेशेन संस्तुत्वारुणपर्वतम् ॥ मुक्तिंप्रापपरांशीघ्रंध्याननिर्धूतकल्मषः ॥ ८६ ॥ भृगुपत्नीवधाद्विष्णुर्दशज
न्मान्यसङ्गतः ॥ पत्नीविरहजन्दुःखप्राप्तवानमितंहरिः ॥ ८७ ॥ पुनर्भृगूपदेशेन शोणाद्रिमिममर्चयन् ॥ अवतारेषुसर्वे
षु सर्वदुःखान्यपाकरोत ॥ ८८ ॥ सरस्वतीचसावित्री श्रीभूमिःसरितस्तथा ॥ अभ्यर्च्यशोणशैलेशमापदोमुक्तिमा

महादेवजी की दयासे शाप की मोक्ष को पाया व देवताओं से भी दुर्लभ उत्तम स्थान को पाया ॥ ८४ ॥ व भरतने मृग के बच्चे के स्मरण से आयुर्बल के अन्त में मुक्ति
को नहीं पाया है किन्तु फिर योग से वे मृग जन्म धारी हुये ॥ ८५ ॥ और नारायण के उपदेश से अरुणाचल की भलीभांति स्तुति कर ध्यान से नष्ट पातकों वाले उन्होंने
शीघ्रही उत्तम मुक्ति को पाया है ॥ ८६ ॥ भृगुजी की स्त्री के वध से विष्णुजी दश जन्मों तक स्त्री से वियोग को प्राप्त हुये व इसी कारण विष्णुजी ने स्त्री के वियोग से
उपजे हुये अमितदुःख को पाया ॥ ८७ ॥ फिर भृगु के उपदेश से इस अरुणाचल को पूजते हुये उन्होंने सब अवतारों में समस्त दुःखों को दूर किया है ॥ ८८ ॥ और

सरस्वती, सावित्री, लक्ष्मी, भूमि व नदिया अरुणाचल पर्वत को पूजकर विपत्तियों से मुक्ति को प्राप्तहुई हैं ॥ ८९ ॥ पूर्व दिशा के भागमे सूर्यनारायण, दक्षिण में वि-
श्वामित्र व पश्चिम भाग मे वरुण तथा महादेवजी उत्तर में आश्रित हैं ॥ ९० ॥ दो योजन तक पर्वत की सीमा (हद्द) स्थित है और टिके हुये ये चारों देवता अरुणा-
चल पर्वत को सेवते है ॥ ९१ ॥ जो कि अरुणाचल के सब ओर सीमाओं के अन्तमें स्थित हैं वे चारों देवता अरुणाचल आकार वाले शिव को प्रणाम करते हैं ॥ ९२ ॥
इसके उत्तरशिखर में बरगद का वृक्ष देख पड़ताहै जिस की जड़ में सिद्ध वेषवाले महादेवजी सदैव रहते है ॥ ९३ ॥ और जिसकी मडलाकार बडी भारी छाया सदैव

गताः ॥८९॥ भास्करःपूर्वदिग्भागे विश्वामित्रस्तुदक्षिणे ॥ पश्चिमेवरुणोभागे त्रिशूलीचोत्तराश्रयः ॥९०॥ योजनद्वय
पर्यन्तं सीमाशैलस्यसंस्थिता ॥ चतस्रोदेवतास्त्वेताःसेवन्तेशोणपर्वतम् ॥ ९१ ॥ स्थिताःसीमावसानेषु शोणाद्रिमर्व
तःस्थिताः ॥ नमन्तिदेवाश्चत्वारः शिवंशोणाचलाकृतिम् ॥ ९२ ॥ अस्योत्तरेस्मिञ्छिखरे दृश्यतेवटभूरुहः ॥ सिद्ध
वेषःसदैवास्ते यस्यमूलेमहेश्वरः ॥ ९३ ॥ यस्यच्छायातिमहती सर्वदामण्डलाकृतिः ॥ लक्ष्यतेविस्मयोपेतैः सर्वदादै
वमानवैः ॥ ९४ ॥ अष्टभिःपरितोलिङ्गैरष्टदिक्पालपूजितैः ॥ अष्टासुसंस्थितैर्दिक्षु शोभतेरूपवर्जितः ॥ ९५ ॥ नृपा
णांशम्भुभक्तानां शङ्कराज्ञानुपालिनाम् ॥ अत्रैवमहदास्थानमादिदेवेननिर्मितम् ॥ ९६ ॥ बकुलश्चमहांस्तत्र सदार्थि
तफलप्रदः ॥ आगमार्थविदामूले वामदेवेनसेव्यते ॥ ९७ ॥ अगस्त्यश्चवशिष्ठश्च सम्पूज्यारुणभूधरम् ॥ संस्थाप्यलि
ङ्गेविमले तेपातेतादृशंतपः ॥ ९८ ॥ हिरण्यगर्भतनयः पुराशोणनदःपुमान् ॥ अत्रतीव्रतपस्तप्त्वा गङ्गाभिमुखगोभ

रहती है व विस्मय से संयुत समस्त देवता व मनुष्य सदैव उस को देखतेहैं ॥ ९४ ॥ और सब ओर आठो दिशाओं मे स्थित व आठ दिक्पालों से पूजित आठ लिंगो
से वह रूपसे रहित पर्वत शोभित है ॥ ९५ ॥ और शिवजी की आज्ञा को पालन करने वाले शिवभक्त राजाओं के लिये यहीपर आदि देव सदा शिवजी ने बड़ाभारी
स्थान निर्माण किया है ॥ ९६ ॥ और सदैव मांगे हुये फलों को देने वाला वहां पर बडाभारी मौलसिरी का वृक्ष है जो कि जड मे शास्त्रार्थ के जानने वाले शिव
जीसे सेवित है ॥ ९७ ॥ और अगस्त्य व वशिष्ठजी ने अरुणाचल को भलीभांति पूजकर व निर्मल लिंगोंको थापकर वैसीही तपस्या कियाहै ॥ ९८ ॥ पुरातन समय

हिरण्यगर्भ का पुत्र शोणानद नामक पुरुष यहां तीव्र तपस्याकर गङ्गाजीके सम्मुख गामीहुये हैं ॥ ९९ ॥ यहांपर पुण्यदायिनी व निर्मलजलवाली शोणनदी बहती है
और पवित्र किनारोंवाली वेणानदी सबओर से सदैव सेवती है ॥ १०० ॥ और स्पर्शसे डरानेवाले सब देवतालोग भीतर तेजको गुप्तकर सदैव पार्वती व अरुणाच-
ल को आराधन करते हैं ॥ १ ॥ और मैंने भी तपस्या से अरुणाचलरूपी शिवजी को पूजकर सब लोगोंके उपकारके लिये सूक्ष्म लिंगको पूजाहै ॥ २ ॥ व पुरातन
समय विश्वकर्माजी ने अनेक भांति के आनन्दवाले दिव्य विमान को बनवाकर फिर सनातन सुखोंको पैदाकिया है ॥ ३ ॥ और भक्तिसे संयुत अन्य मुनिश्रेष्ठोंने

**वत् ॥ ९९ ॥ अत्रशोणनदीपुण्या प्रवहत्यमलोदका ॥ वेणाचपुण्यतटिनी परितःसेवतेसदा ॥ १०० ॥ अन्तर्निगूढते
जस्त्वङ्गत्रायस्सकलैःसुरैः ॥ आराध्यतेसदागौरी शोणाद्रिःस्पर्शभीरुभिः ॥ १ ॥ अहञ्चशम्भुमभ्यर्च्य तपसारुण
पर्वतम् ॥ सर्वलोकोपकारार्थं सूक्ष्मलिङ्गमपूजयम् ॥ २ ॥ विश्वकर्मापुरादिव्यं विमानंविविधोत्सवम् ॥ सङ्कल्पसक
लान्भोगान् नित्यानजनयत्पुनः ॥ ३ ॥ धर्मशास्त्राणिविविधान्यन्येचमुनिपुङ्गवाः ॥ शिवकार्याणिसर्वाणि चक्रुर्भ
क्तिसमन्विताः ॥ ४ ॥ मयाचशम्भुमभ्यर्च्य ततोग्न्याहुतिसम्भवाः ॥ सप्तकन्यावरारोहाः पूजार्थंविनियोजि
ताः ॥ ५ ॥ हतशत्रुगणैर्भूयो लब्धराज्यैःपुरान्नृपैः ॥ प्रत्येकंविविधैर्भोगैः शोणशैलाधिपोर्चितः ॥ ६ ॥ इदमनुभववै
भवंविचित्रं दुरितहरंशिवलिङ्गमद्रिरूपम् ॥ अमलमनभिगम्यनामधेयं वरमरुणंभुवनाधिकंभजध्व ॥ ७ ॥ अवनत
तनरक्षणोचितस्य स्मरणनिराकृतविश्वकल्मषस्य ॥ भजनसमितपुण्यराशियोगादरुणगिरेःकृतिनःपरंलभन्ते ॥ ८ ॥
इति श्रीस्कन्दपुराणेअरुणाचलमाहात्म्येषष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ * ॥ * ॥ * ॥**

अनेक भांतिके धर्मशास्त्रों व समस्त शिवकार्यों को कियाहै ॥ ४ ॥ और मैंने सदाशिवजी को पूजकर तदनन्तर अग्निमें आहुती से उपजीहुई उत्तम कटिवाली
सात कन्याओं को पूजन के लिये युक्तकिया है ॥ ५ ॥ व फिर पुरातन समय शत्रुगणों को मारकर राज्यको पायेहुये प्रत्येक राजाओं ने अनेक भांतिके भोगोंसे
अरुणाचल का पूजन कियाहै ॥ ६ ॥ इस पापहारक पर्वतरूपी निर्मल शिव लिंगको भजिये जोकि ज्ञानव ऐश्वर्यवान् तथा विचित्र व न जानने योग्य नामवाला

और उत्तम व संसारभरमें अधिक तथा अरुणवर्ण है ॥ ७ ॥ प्रणाम कियेहुये जनोंके रक्षणमें योग्य और स्मरणही से संसारके पातक को नाश करनेवाले अरुणाचलकी सेवाको पुण्यवान् पुरुषअतुल पुण्यकी राशिके संयोगसेपाते हैं ॥ ८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेअरुणाचलमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायाषष्ठोऽध्यायः॥६॥

दो० । अरुणाचल पै भयो जिमि सकल तीर्थ समुदाय । सो सतम अध्यायमें कह्यो चरित सुखदाय ॥ पार्वतीजी बोली कि अग्निमय लिंग पृथ्वीमें कैसे जानेयोग्य हुआहै व सब प्राणियों की शाति कैसे हुई है ॥ १ ॥ और किस प्रकार पुण्यदायकअरुणाचल से तीर्थोंकी उत्पत्तिहुई है व सब अंगोंको संहार किये हुये अरुणाचल कैसेहैं ॥ २ ॥ गौतमजी बोले कि सतयुग में अग्निमय पर्वत व त्रेतामें मणिपर्वत द्वापर में सुवर्णाचल व कलियुग में मरकताचल है ॥ ३ ॥ सतयुग में बहुत योज-

गौरीउवाच ॥ कथमग्निमयंलिङ्गमभिगम्यमभूद्भुवि ॥ प्राणिनामपिसर्वेषामुपशान्तिःकथञ्चन ॥ १ ॥ तीर्थानामुद्भवःपुण्यात्कथंचारुणपर्वतात् ॥ उपसंहृतसर्वाङ्गः कथञ्चाप्यरुणाचलः ॥ २ ॥ गौतमउवाच ॥ कृतेत्वग्निमयःशैलः त्रेतायांमणिपर्वतः ॥ द्वापरेहाटकगिरिः कलौमरकृताचलः ॥३॥ बहुयोजनपर्यन्तं कृतेवह्निमयःस्थिते ॥ बहिःप्रदक्षिणं चक्रुः प्रशान्त्यर्थंमहर्षयः ॥४॥ शनैःशान्तोरुणाद्रीशः श्रीमानभ्यर्थितःसुरः ॥ लोकगुप्त्यर्थमत्यर्थमुपशान्तोरुणाचलः ॥ ५ ॥ अथगौरीमुनिंप्राह कथंशान्तोरुणाचलः ॥ कथंवाप्रार्थयामासुर्देवेशंत्रिदशाअमुम् ॥ ६ ॥ इतितस्यावचः श्रुत्वा गौतमस्त्वभ्यभाषत ॥ प्रशस्यभक्तिमतुलान्तस्यास्तत्त्वार्थवेदिनीम् ॥ ७ ॥ गौतमउवाच ॥ अग्निरूपंपुराशैलमासादयितुमक्षमाः ॥ तदासुराःस्तुतिंचक्रुरभ्यर्च्यर्ऋतुसम्भवैः ॥ ८ ॥ देवाऊचुः ॥ भगवन्नरुणाद्रीश सर्वलोकहि

नतक इस पर्वत के अग्निमय स्थित होनेपर शान्ति के लिये महर्षिलोगोंने वाहर प्रदक्षिणा किया ॥ ४ ॥ व देवताओं से प्रार्थना कियाहुआ श्रीमान् अरुणाचल संसारकी रक्षाके लिये बहुतही शान्तहुआ है ॥ ५ ॥ इसके अनन्तर पार्वतीजी ने गौतममुनि से कहा कि अरुणाचल कैसे शान्तहुआ है व किस प्रकार देवताओं ने इस देवेश की प्रार्थना कियाहै ॥ ६ ॥ उन पार्वतीजी के इस वचन को सुनकर उनके तत्त्वार्थको जाननेवाली अतुलभक्तिकी प्रशंसाकर गौतमजी बोले ॥ ७ ॥ गौतमजी बोले कि पुरातन समय अग्निरूपी अरुणाचल के समीप स्थित होनेके लिये असमर्थ देवताओंने उस समय ऋतुवों में उपजेहुये पुष्पोंसे पूजकर स्तुति किया

है ॥ ८ ॥ देवता बोले कि हे समस्त लोकोंके हितदायक, भगवन्, अरुणाचलेशजी ! अग्निरूप भी आप भलीभांति शान्त होकर पृथ्वीमें प्रकाश करो ॥ ९ ॥ जो
यह कि ताम्र व अरुणवर्ण तथा सुमंगल पिंगलवर्ण है इस प्रकार सब देवता शिवशरीर वाले तुम्हारी स्तुति करते हैं ॥ १० ॥ ताम्र, अरुण, परमात्मा शिवजी के
लिये नमस्कारहै और वेदोंसे जाननेयोग्य स्वरूपवाले यज्ञरूपी सोमके लिये नमस्कार है ॥ ११ ॥ हे देव ! यह चराचर सब संसार तुम्हारारूप है यह देवत औ
का रूप तुम्हारा निधान (निधि) सादेखपड़ता है ॥ १२ ॥ बहुत झरनों तथा बरसते हुये मेघोंके जलका संहार युगके नाश होनेपर तुमको योग्यहै ॥ १३ ॥

तावह ॥ अग्निरूपोऽपिसंशान्तः प्रकाशस्वमहीतले ॥ ९ ॥ असौयस्ताम्रोह्यरुण उतबभ्रुःसुमङ्गलः ॥ इतित्वांसकला
देवाः स्तुवन्तिशिवविग्रहम् ॥ १० ॥ नमस्ताम्रायारुणाय शिवायपरमात्मने ॥ वेदवेद्यस्वरूपाय सोमायमखरूपि
णे ॥ ११ ॥ त्वद्रूपमखिलंदेव जगदेतच्चराचरम् ॥ निधानमिवतेरूपं देवानामिदमीक्ष्यते ॥ १२ ॥ वर्षतांश्चपयोदानां
निर्भराणाञ्चभूयसाम् ॥ सलिलानाञ्चसंहारो युक्तस्तेयुगसंक्षये ॥ १३ ॥ अग्नेरापःसमुद्भूतास्त्वत्तोहिपरमात्मनः ॥ वि
श्वसृष्टिंवितन्वन्ति विचित्रगुणवैभवात ॥ १४ ॥ शीतोभवमहादेव शोणाचलकृपानिधे ॥ सर्वेषामपिजीवानां मभि
गम्योभवप्रभो ॥ १५ ॥ इतिस्तुतःसुरैःसर्वैरानतैर्भक्तवत्सलः ॥ सद्यःशीतलतांगच्छन्नभिगम्योभवत्प्रभुः ॥ १६ ॥
प्रावर्तन्तपुनर्नद्यो निर्भराश्चबहूदकाः ॥ वर्षतामपिमेघानां नजग्राहजलंबहु ॥ १७ ॥ तथापितरुणार्कौघकालाग्निश
तकोटिभिः ॥ समानदीप्तिरभजज्जीवानामभ्यगम्यताम् ॥ १८ ॥ विसृज्यविश्वसलिलं नदीश्चरसविद्वरैः ॥ पूजितं

विचित्र गुणों के ऐश्वर्यवाले तुम अग्निरूप परमात्मा से उपजेहुये जल संसारकी सृष्टिको विस्तार करते हैं ॥ १४ ॥ हे महादेव ! दयानिधे, अरुणाचल ! शीतल
होवो हे प्रभो ! सब जीवों के सम्मुख जानेयोग्य होवो ॥ १५ ॥ इस प्रकार नयेहुयेसमस्त देवताओं से स्तुति कियेहुये भक्त प्रिय प्रभु अरुणाचलजी शीघ्रही शीतलता
को प्राप्त होतेहुये सामने जानेयोग्य हुये ॥ १६ ॥ फिर बहुत जलवाली नदियां व झरना वर्तमान हुये और बरसते हुयेभी मेघों के बहुत जलको अरुणाचल
ने नहीं ग्रहण किया ॥ १७ ॥ तौभी तरुण अवस्थावाले सूर्यगण व सौ करोड़ कालाग्नियों के समान शोभावाले अरुणाचलजी ने प्राणियों के सम्मुख न

जानेकी योग्यता को भजा ॥ १८ ॥ जलके प्रवाहों से नदियों में समस्त जलको छोड़कर सब देवताओं से पूजित अरुणाचल सदैव भलीभांति प्रकाशितहै ॥ १९ ॥ और प्रार्थना के वशसे सबओर दिक्पालों, देवताओं व महर्षियों तथा महात्माओं के अनेक भांतिके तीर्थहुये हैं ॥ २० ॥ ब्रह्माजी बोले कि उन गौतमजी के इस वचन को सुनकर कौतुक से पार्वतीजी ने तीर्थोंकी सब उत्पत्ति को सुनने के लिये उनसे प्रारम्भ किया ॥ २१ ॥ पार्वतीजी बोली कि हे भगवन् ! संसार की रक्षाके लिये अरुणाचल से कौन तीर्थ उत्पन्न है मुझ से तीर्थोंकी सब उत्पत्ति को कहिये ॥ २२ ॥ उन पार्वतीजी के इस वचन को सुनतेहुये गौतमजीने पुरातन समय शि-

सकलैर्देवैः सर्वदासंप्रकाशते ॥१९॥ तीर्थानिविविधान्यामन्परितःप्रार्थनावशात् ॥ दिक्पालानांसुराणाञ्च महर्षीणांमहात्मनाम् ॥ २० ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इतितस्यवचः श्रुत्वा गौरीकुतकसंयुता ॥ तीर्थानामुद्भवंसर्वं श्रोतुंतमुपचक्रमे ॥ २१ ॥ गौरीउवाच ॥ कानितीर्थानिजातानि शोणाद्रेर्लोकगुप्तये ॥ भगवन्ब्रूहिसकलं तीर्थानामुद्भवंमम ॥ २२ ॥ इतितस्यावचः शृण्वन् गिरिशात्संश्रुतंपुरा ॥ तीर्थानामुद्भवंसर्वंव्याख्यातुमुपचक्रमे ॥ २३ ॥ गौतमउवाच ॥ परस्त्रीसङ्गमात्पापं वह्निःस्नात्वात्रचात्यजत् ॥ याम्यंनाममहातीर्थं यमभागेविजृम्भते ॥ २४ ॥ अत्रस्नात्वायमोमुञ्चद्भयंब्रह्मास्त्रसम्भवम् ॥ नैर्ऋतन्तुमहातीर्थंनैर्ऋत्यांदिशिशोभते॥२५॥भूतवेतालविजयंतत्रस्नात्वार्षयोगताः ॥ पश्चिमेवारुणंतीर्थं दिग्भागेचप्रकाशते ॥ २६ ॥ स्वीयंकोशंपुरालेभे स्नात्वात्रवरुणोनिजम् ॥ वायव्येतद्दिशोभागे वायुतीर्थञ्चशोभते ॥ २७ ॥ तत्रस्नात्वामरुत्पूर्वं जगत्प्राणत्वमाप्तवान् ॥ उत्तरेर्थपतेस्तीर्थं सुवर्णकमलोज्ज्वलम्॥ २८॥ दिव्यसौगन्ध

वजीमे सुनीहुई तीर्थोंकी सब उत्पति को कहनेके लिये प्रारम्भ किया ॥ २३ ॥ गौतमजी बोले कि अग्निदेवजी ने यहां नहाकर पराई स्त्रीके संगम से उपजेहुये पातकको त्याग कियाहै और याम्यनामक महातीर्थ दक्षिणभाग में विराजताहै ॥२४॥ इसमें यमराजजी ने नहाकर ब्रह्मास्त्र से उपजेहुये भयको छोडाहै और नैर्ऋत्यदिशामें नैर्ऋतनामक महातीर्थ शोभित है ॥ २५ ॥ उसमें नहाकर ऋषिलोग भूतों व वेतालों के विजय को प्राप्तहुये हैं और पश्चिम दिशाके भागमें वारुणतीर्थ प्रकाशितहै ॥ २६ ॥ इसमें नहाकर पुरातन समय वरुण ने अपने कोश (खज़ाना) को पायाहै और उस दिशाके वायव्यभाग में वायुतीर्थ शोभित है ॥ २७ ॥ पुरातन

समय उसमें पवनजी ने नहाकर संसारकी जीवताको पायाहै और उत्तर में सुवर्ण के कमलके समान उज्ज्वल धनेशजी का तीर्थहै ॥ २८ ॥ जोकि दिव्य सौगन्धोंसे
व्याप्त व हंसों तथा भ्रमरों से मनोहर कुबेरजी का तीर्थहै और ईशान दिशामें ऐशान तीर्थहै ॥ २९ ॥ उसीके पश्चिम भागमें कमलनयन विष्णुजी हैं इस तीर्थमें
नहाकर पुरातन समय प्यारकीहुई लक्ष्मीजी को भजाहै ॥ ३० ॥ पुरातन समय उसमें नहाकर नवग्रह ग्रहस्थान को प्राप्तहुये हैं उसमें नहातेहुये मनुष्यों के ऊपर
नवग्रहों की प्रसन्नता होती है ॥ ३१ ॥ दुर्गा, गणेश, स्वामिकार्त्तिकेय, क्षेत्रपाल व सरस्वती ये सबओर से निरन्तर इस ब्राह्मतीर्थ की रक्षा करती हैं ॥ ३२ ॥ और

कार्कीर्णं हंसभृङ्गमनोहरम् ॥ कौबेरन्तीर्थमीशानऐशान्यंतीर्थमुत्तमम् ॥ २९ ॥ तस्यैवपश्चिमेभागे विष्णुःकमललो
चनः॥स्नात्वात्रविष्णुमभजत् कमलालालितापुरा॥ ३०॥ नवग्रहाःपुरातत्र स्नात्वाग्रहपदंगताः॥ नवग्रहप्रसादश्च
जायतेतत्रमज्जताम् ॥ ३१ ॥ दुर्गाविनायकस्कन्दौ क्षेत्रपालस्सरस्वती ॥ रक्षन्तिपरितस्तीर्थम्ब्राह्ममेतदनन्त
रम् ॥ ३२ ॥ गङ्गाचयमुनाचैव गोदावरीसरस्वती ॥ नर्मदासिन्धुकावेर्यः शोणाशोणानदीचसा ॥ ३३ ॥ एताःशुद्धा
निषेवन्ते पूर्वाद्याशासुसर्वतः ॥ नश्यन्त्यःसकलंपापमात्मक्षेत्रसमुद्भवम् ॥ ३४ ॥ अन्याश्चसरितोदिव्याः पा
र्थिव्यश्शुभोदकाः ॥ उद्जृम्भन्तसहसा शोणाद्रीशप्रसादतः ॥ ३५ ॥ अगस्त्यंदक्षिणेभागे तीर्थंमहदुदाहृत
म् ॥ सर्वाभीष्टार्थसंसिद्धिर्जायतेतत्रमज्जताम् ॥ ३६ ॥ अत्रागस्त्यःसमागम्य स्नात्वामुनिगणावृतः ॥ अभ्यर्च्य
तिशोणाद्रिं मासिभाद्रपदेसदा ॥ ३७ ॥ वशिष्ठमुत्तरेभागेतीर्थंदिव्यंशुभोदयम् ॥ सर्ववेदार्थसंसिद्धिर्जायतेतत्रमज्ज

गंगा, यमुना, गोदावरी, सरस्वती, नर्मदा, सिन्धु, कावेरी और शोणाशोणा नामक वह नदी ॥ ३३ ॥ पूर्वादिक दिशाओं में गुप्तहोकर अपने क्षेत्रमें उपजेहुये समस्त
पातकको नाश करतीहुई ये नदियां सबओरसे सेवती हैं ॥ ३४ ॥ और उत्तमजल वाली पृथ्वी सम्बंधिनी उत्तम नदियां आचमन कही अरुणाचलकी प्रसन्नतासे वहीं
हैं ॥३५॥ और दक्षिणभागमें अगस्त्य नामक बड़ाभारी तीर्थ कहागयाहै उसमें नहातेहुयेमनुष्योंके समस्त चाहेहुये प्रयोजनों की सिद्धिहोती है ॥३६॥ मुनिगणों से घिरे
हुये अगस्त्यजी यहां भलीभांति आकर सदैव भादोंके महीने में अरुणाचल को पूजतेहैं ॥ ३७ ॥ व उत्तरभाग में उत्तम ऐश्वर्यवाला दिव्य वशिष्ठतीर्थ है उसमें

नहानेसे सब बेदोंके अर्थोंकी भलीभांति सिद्धि होतीहै ॥३८॥ वहांपर सुमेरुगिरिसे भगवान् वशिष्ठमुनि आकर कुँवार महीनेमें अरुणाचल की सेवा करते हैं ॥ ३९ ॥ व पूर्व तथा उत्तर दिशामें गङ्गानामक महातीर्थ स्थित है उसमें नहाकर मनुष्यों के समस्त पातकों का नाश होताहै ॥ ४० ॥ यहां कार्त्तिक महीने में गंगादिक सब नदिया भलीभाति आकर आदरपूर्वक अरुणाचलेशकी सेवा करती है ॥ ४१ ॥ व अरुणाचलेश के समीप ब्राह्मयनामक महातीर्थ है उसके समीप गमनसे शीघ्रही ब्रह्महत्यादिक पाप नाशहोजाते हैं ॥ ४२ ॥ लोकों के पितामह ब्रह्माजी अगहन महीनेमें यहा आकर प्रतिदिन अरुणाचल को पूजते हैं ॥ ४३ ॥ और पौष महीने में

नात् ॥३८॥ अत्रमेरोःसमागत्य वशिष्ठोभगवानृषिः॥करोत्याश्वयुजेमासे शोणाद्रीशनिषेवणम्॥३९॥गङ्गानाममहातीर्थं पूर्वोत्तरदिशिस्थितम्॥ तत्रस्नानाद्भवेन्नृणां सर्वपातकनाशनम् ॥ ४० ॥ गङ्गाद्याःसरितःसर्वाः कार्त्तिकेमासिसङ्गताः ॥ अत्रारुणाद्रिनाथस्य सेवांकुर्वन्तिसादरम् ॥ ४१ ॥ ब्राह्मचंनाममहातीर्थमरुणाद्रीशसन्निधौ ॥ तस्योपसङ्गमात्सद्यो ब्रह्महत्यादिनश्यति ॥ ४२ ॥ मार्गमासिसमागत्य ब्रह्मालोकपितामहः ॥ स्नात्वात्रप्रत्यहंदेवमर्चयत्यरुणाचलम् ॥४३ ॥ पौषेमासिसमागत्यस्नात्वातीर्थेनिजेसुरैः ॥ महेन्द्रःशोणशैलेशमभ्यर्चयतिशङ्करम् ॥ ४४ ॥ शैवंनाममहातीर्थं सन्निधौदृश्यतेपुरा॥रुद्रोब्रह्मकपालेन सहसात्र्यव्ययुज्यत ॥ ४५ ॥ अत्रशम्भुर्गणैस्सार्द्धं माघेमासिप्रसीदति प्रायश्चित्तानिसर्वाणि नृणांसफलयन्भुवि ॥ ४६ ॥ आग्नेयमग्निदिग्भागे तीर्थंसौभाग्यदायकम्॥ अग्निरत्रपुरास्नात्वा सहसासङ्गतःसुखी ॥ ४७ ॥ अनङ्गेपिस्मरःस्नात्वाफाल्गुनेमासिसङ्गतः ॥ अभ्यर्च्यशोणशैलेशं भूतःसर्वसुखा

देवताओं समेत इन्द्रजी आकर व अपने तीर्थमें नहाकर अरुणाचल के स्वामी सदाशिवजी को पूजते हैं ॥ ४४ ॥ व समीपही शैवनामक महातीर्थ देख पड़ता है यहां पर पुरातन समय शिवजी अचानकही ब्रह्माके कपाल से छूटगये है ॥ ४५ ॥ यहापर पृथ्वीमें मनुष्योंके सब प्रायश्चित्तों को सफल करतेहुये गणोंसमेत शिवजी माघमहीने में प्रसन्न होतेहैं ॥ ४६ ॥ और अग्नेयदिशाके भागमें सौभाग्यको देने वाला आग्नेयतीर्थ है पुरातन समय अग्निदेवजी इसमें नहाकर अचानकही सुखी

हुयेहैं ॥ ४७ ॥ और फाल्गुन महीने में आकर कामदेवभी अनंगतीर्थ में नहाकर व अरुणाचलेश को पूजकर समस्त सुखोंके स्वामी हुयेहैं ॥ ४८ ॥ और दक्षिण व
पूर्व दिशामें अद्भुत वैष्णवतीर्थ है वहापर कौतुक कियेहुये ब्रह्मर्षिलोग सदैव वसतेहैं ॥ ४९ ॥ चैत महीने में लक्ष्मी के पति विष्णुजी वहापर भलीभांति आकर
नहाकर और अरुणाचलेशको पूजकर वे लोकोंके स्वामी हुये हैं ॥ ५० ॥ और उत्तरदिशामें सौर नामक महातीर्थ है उसमें नहाने से सब रोगोंकी शान्ति होजाती
है ॥ ५१ ॥ वैशाख महीने में श्रीमान् सूर्यनारायणजी बालखिल्यादि महर्षियों तथा वेदों समेत अचानकही आकर इसतीर्थमें नहाकर सदाशिवजीको सेवतेहैं॥५२॥

धिपः ॥ ४८ ॥ दिशिदक्षिणपूर्वस्यां वैष्णवंतीर्थमद्भुतम् ॥ ब्रह्मर्षयःसदातत्र वसन्तिकृतकौतुकाः ॥ ४९ ॥ चैत्रेमासि
समागत्य विष्णुस्तत्ररमापतिः ॥ स्नात्वाभ्यर्च्यारुणाद्रीशं सोभवल्लोकनायकः ॥ ५० ॥ सौरंनाममहातीर्थं कौबेर
दिशिजृम्भितम् ॥ सर्वरोगोपशान्तिश्च जायतेतत्रमज्जनात् ॥ ५१ ॥ वैशाखेमासिदिनकृत स्नात्वात्रेशंनिषेवते ॥ बा
लखिल्यैःसमःश्रीमान् वेदैश्चसहसागतः ॥ ५२ ॥ आश्विनंपावनंतीर्थं मीशब्रह्मोत्तरेस्थितम् ॥ आप्लुतोभिषजौदस्रौ
पूतावत्रनिमज्जनात् ॥ ५३ ॥ अत्राश्विनौसमागत्य मासिचारुश्वयुजेशुभे ॥ स्नात्वाशोणाचलपतिंसेवतेप्रतिवत्सरम्॥
५४ ॥ पश्चिमेवारुणंतीर्थं वरुणस्तत्रवारिपः ॥ ज्येष्ठमासिसमागत्य स्नात्वाभ्यर्चतिशङ्करम् ॥ ५५ ॥ दक्षिणेशो
णशैलस्य निकटेवर्ततेशुभम् ॥ कामदंमोक्षदंचैव तीर्थंपाण्डवसंज्ञितम् ॥ ५६ ॥ अत्रधात्रीसमागत्य सर्वौषधिफला
न्विता ॥ ज्येष्ठमासिमहादेवमर्चयत्यरुणाचलम् ॥ ५७ ॥ आषाढेमासिप्राप्ते च विश्वेदेवामहाव्रताः ॥ अभ्यर्च्यशोण

और ईश व ब्रह्मा के उत्तरदिशा में स्थित आश्विन नामक पावन तीर्थ है इसमें नहायेहुये अश्विनीकुमार वैद्य स्नान करने से पवित्र हुयेहैं ॥ ५३ ॥ उत्तम कुँवारके
महीने में अश्विनीकुमार देवता प्रतिवर्ष में आकर व नहाकर अरुणाचल के स्वामीको सेवते हैं ॥ ५४ ॥ और पश्चिम में वारुणतीर्थ है ज्येष्ठ महीने में जलके स्वा-
मी वरुणजी वहा आकर व उसी तीर्थमें नहाकर सदाशिवजी को पूजते हैं ॥ ५५ ॥ और अरुणाचल के दक्षिण में समीपही कामदायक व मोक्षदायक पाण्डव सञ्ज्ञक
तीर्थहै ॥ ५६ ॥ यहापर सब औषधियों व फलोंसे संयुत धात्री (आंवला) ज्येष्ठ महीनेमें अरुणाचल महादेव को पूजती है ॥ ५७ ॥ व आषाढ़ महीना प्राप्त होने

पर महाबलवान् विश्वेदेवता अरुणाचल को पूजकर देवेशता को प्राप्तहुये हैं ॥५८॥ चन्द्रमा, सूर्यके उत्तर में स्थित वैश्वदेव नामक महातीर्थ है उसमें नहानेसे संसारकी अमित स्वामिता मिलती है ॥ ५९ ॥ और पूर्वदिशा में सबओर लक्ष्मीजी का तीर्थ शोभित है पुरातन समय इसमें लक्ष्मीजी ने नहाकर पुरुषोत्तम विष्णुजी को पायाहै ॥ ६० ॥ उत्तर दिशामे पुरातन समय पुण्यदायिनी स्कन्दनामक नदी स्थितहै पहले इस नदीमें नहाकर स्वामिकार्त्तिकेयजी ने बहुत बलको पायाहै ॥ ६१ ॥ व पश्चिदिशा में उत्तम कुम्भनामक नदी प्रसिद्ध है वहापर घटसे उपजेहुये अगस्त्यजी नित्यही टिके रहते हैं ॥ ६२ ॥ और श्रीगंगाजी मूलभाग में स्थित है

शैलेशमगमन्नमरेशताम् ॥ ५८ ॥ वैश्वदेवंमहातीर्थं सोमसूर्योत्तराश्रयम् ॥ विश्वाधिपत्यमतुलं लभ्यतेतत्रमज्जनात् ॥ ५९ ॥ परितोलक्ष्म्यकंतीर्थं पूर्वस्यान्दिशिशोभते ॥ अत्रलक्ष्मीःपुरास्नात्वा लेभेपुरुषमुत्तमम् ॥ ६० ॥ उत्तरस्यान्दिशिपुरा पुण्यास्कन्दनदीस्थिता ॥ अत्रस्नात्वापुरास्कन्दः संप्राप्तोविपुलंबलम् ॥ ६१ ॥ पश्चिमस्यान्दिशिख्याता पराकुम्भनदीशुभा ॥ नित्यंव्यस्थितस्तत्र ह्यगस्त्यःकुम्भसम्भवः ॥ ६२ ॥ गङ्गाचमूलभागस्था यमुनागगनेस्थिता ॥ सोमोद्भवाशिरोभागे सेवन्तेशोणपर्वतम् ॥ ६३ ॥ बह्वन्यपिचतीर्थानि सम्भूतानिसमन्ततः ॥ तेषांभेदान्पुरावेत्तुं मार्कण्डेयस्तुनाशकत् ॥ ६४ ॥ तपोभिर्बहुभिस्सोयं शोणाद्रिंसमतोषयत् ॥ प्रार्थयामासचवरंप्रीतात्मानंमुनीश्वरः ॥ ६५ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ भगवन्नरुणाद्रीश तीर्थभेदाःसहस्रशः ॥ प्रख्याताश्चप्रकाशन्तिदुर्बोध्यास्त्वल्पचेतसाम् ॥ ६६ ॥ कथमेकत्रसान्निध्यं लभेरन्भुविमानवाः ॥ अपर्याप्तिश्चभवति पृथगेषांनिषेवणे ॥ ६७ ॥ इतितस्यवचःश्रुत्वा देव

व यमुनाजी आकाश में स्थित हैं और नर्मदाजी मस्तक भागमे स्थित होकर अरुणाचल को सेवती हैं ॥ ६३ ॥ व सबओर उपजेहुये बहुत से तीर्थहैं पुरातन समय उनके भेदोंको जानने के लिये मार्कण्डेयभी नहीं समर्थ हुयेहैं ॥ ६४ ॥ व उन मार्कण्डेयजीने बहुत तपस्याओंसे अरुणाचलको प्रसन्न कियाहै व प्रसन्नमनवाले उस पर्वत से मुनिनायक ने वरकी प्रार्थना किया ॥ ६५ ॥ मार्कण्डेयजी बोले कि हे भगवन्, अरुणाचलेशजी ! हजारों तीर्थोंके भेद प्रसिद्ध व प्रकाशित हैं जोकि थोड़ी बुद्धिवालों के दुःखसे जाननेयोग्य हैं ॥ ६६ ॥ पृथ्वीमे मनुष्य उनकी समीपता को एक ठौरपै किस तरह पावैंगे क्योंकि इनके पृथक् सेवन में परि पूर्णता नहीं होती

है ॥ ६७ ॥ उन मार्कण्डेयजी के इस वचन को सुनकर प्रसन्न मनवाले देव देव उमापतिजीने मुनिके लिये [illegible] ॥ ६८ ॥ [illegible]
उपहार (बलि) के समय में समस्त तीर्थोंका गण गुप्तरूप से मेरी समीपता को प्राप्त होकर सेवता है ॥ ६९ ॥ [illegible]
चाहिये क्योंकि मेरे उपहार के समय में तीर्थोंका गण देख पड़ता है ॥ ७० ॥ इस लिये भक्तिसे संयुत समस्त मुनियों [illegible]
समागम जानना चाहिये और उसीसे देखाजावै ॥ ७१ ॥ हे देवि ! इस प्रकार पुरातन समय अतुल बुद्धिवाले [illegible]

देवउमापतिः ॥ उपायन्दर्शयामास मुनयेप्रीतमानसः ॥ ६८ ॥ महेश्वरउवाच ॥ सदोप[illegible]
सुव्रय: ॥ सन्निधिंममसंप्राप्तः सेवतेगूढरूपतः ॥ ६९ ॥ नान्यदन्वेषणीयन्ते तीर्थमत्रमहामुने ॥ [illegible] ॥
श्यतेतीर्थसञ्चयः ॥ ७० ॥ तस्माद्भक्तियुतैर्नित्यं सर्वतीर्थसमागमः ॥ मुनिभिश्चसुरैःसर्वै र्वेद्यास्तेनधि[illegible] ॥ ७१ ॥
इतिदेविपुरादेवो मार्कण्डेयायशङ्करः ॥ उपादिशदमेयात्मा तीर्थसन्दर्शनक्रमम् ॥ ७२ ॥ गौतम उवाच ॥ [illegible]
पिचपुराणानि तीर्थानिशिवसन्निधौ ॥ सदोपहारवेलायांदृश्यानिकिलमानवैः ॥७३॥ व्रतंतीर्थंतपोवेदा यज्ञाश्च[illegible]
यः ॥ योगाश्चशोणशैलेशाद्दर्शनाद्दृष्टिसञ्चराः ॥ ७४ ॥ निशम्यवाक्यंमुनिपुङ्गवस्य प्रसेदुषीपर्वतराजपुत्री ॥ [illegible]
चदत्यद्भुतमेतदत्र त्वयोपदिष्टंभुवितीर्थजालम् ॥ ७५ ॥ अहंकृतार्थातपतांवरिष्ठ त्वत्सङ्गमात्संप्रतितीर्थजालम् ॥ [illegible]
तंसमस्तञ्चतपोविशेषं शिवोपिमेह्यादिशदयन्तुसर्वम् ॥७६॥ कथंगिरीशःपुनरत्रदेवः स्फु[illegible] क्लिन्नपुर्दृशोपि ॥ ७७॥

दर्शन के क्रम को उपदेश कियाहै ॥ ७२ ॥ गौतमजी बोले कि पुरातन समय जो सब तीर्थ व सदैव शिवजी की उपहार वेलामें शिवजी के समीप देखनेयोग्यहुये
है ॥ ७३ ॥ व्रत, तीर्थ, तपस्या, वेद, यज्ञ व नियमादिक और योग अरुणाचल के दर्शन से दृष्टिगोचर होतेहैं ॥ ७४ ॥ मुनिश्रेष्ठ गौतमजी के वचनको सुनकर प्र-
सन्न होतीहुई पार्वतीजी बोलीं कि तुमने पृथ्वीमें इस बड़े अद्भुततीर्थ समूह को वर्णन किया ॥ ७५ ॥ हे तपस्वियों में श्रेष्ठ ! मैं कृतार्थ होगई क्योंकि इस समय
तुम्हारे समागम से मैंने तीर्थोंके समूह को सुना व तपस्या विशेष को सुना जो कि सब शिवजी ने भी मुझ से कहाहै ॥ ७६ ॥ और चमकती हुई महाअग्नि के

५७

शरीर को धारेहुये भी शान्त रूपवाले ये परमेश्वर गिरीशदेवजी फिर यहा भूमिमें मनुष्यगणों से किस प्रकार पूजनेयोग्यहैं ॥ ७७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेअरुणाचलखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायाभाषाटीकायासप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । अरुणाचल पै जहांपर अहै जौन से देव । सो अष्टमअध्याय में वर्णितहै सब भेव ॥ गौतमजी बोले कि हे देवि ! पुरातन के चरित्र को सुनिये कि कैलासपर्वत पै मेरुधन्वी ने लिंगोंको देखने के लिये तीर्थयात्रा के निमित्त मुझको आज्ञा दिया ॥ १ ॥ रुद्रक्षेत्र, केदार, बदरिकाश्रम, काशी व पवित्र देशोंमें तथा

न्तरूपःपरमेश्वरोयमभ्यर्चनीयोभुविमर्त्यवर्गैः ॥७७॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेअरुणाचलमाहात्म्येसप्तमोऽध्यायः ॥७॥

गौतमउवाच ॥ शृणुदेविपुरावृत्तं कैलासेमेरुधन्विना ॥ आदिष्टस्तीर्थयात्रार्थमहंलिङ्गानि वीक्षितुं ॥१॥ रुद्रक्षेत्रेच केदारेतथाबदरिकाश्रमे ॥ काश्यांपुण्येषुदेशेषु तथाश्रीपर्वतेशिवे ॥२॥ काञ्चीमुख्यासुपुण्यासु पुरीष्वपिचसप्तसु॥पावनीनांनदीनांच तीरेषुगिरिजेतथा ॥ ३ ॥ कुलशैलेषुपुण्येषुजलधीनांतटेष्वपि ॥ स्थानेष्वन्येषुदेवेशिकल्पितेषुवनेष्वपि ॥ ४ ॥ ऋषिभिःविबुधैःसार्थैर्योगिभिर्मनुजैस्तथा ॥ स्थापितानिचलिङ्गानि स्वयंभूनिचदृष्टवान् ॥ ५ ॥ तत्रतत्रमहाभागे तीर्थानिशिवसन्निधौ ॥ सेवमानःसशिष्योहं पर्यटन्पृथिवीमिमाम् ॥ ६ ॥ एवंतीर्थानिसर्वाणि गाहमानोव्रतान्वितः ॥ तपांसियज्ञकर्माणि कुर्वन्भूमिंसमुच्चरन् ॥ ७ ॥ शिवस्मरणसंयुक्तः शिवलिङ्गानिसन्नमन् ॥ सर्वाणिभुविपु

कल्याणदायक श्रीपर्वत पै ॥ २ ॥ और जिनमें काची मुख्यहै उन सातों पुण्यदायिनी पुरियों में व हे गिरिजे ! पवित्रकारक नदियों के किनारों पै मै गया ॥३॥ हे देवेशि ! पुण्यदायक कुलाचलों व समुद्रों के किनारों तथा अन्य स्थानों में व कल्पितवनों में गया ॥ ४ ॥ और ऋषियों व देवगणों तथा योगियों व मनुष्यों से पाये व आपहीमें उपजेहुये लिंगोंको मैंने देखा ॥ ५ ॥ हे महाभागे ! इसपृथ्वीमें शिष्यसमेत घूमताहुआ मैं वहां वहां शिवजीके समीप तीर्थोंका सेवन करतारहा ॥ ६॥ और इस भांति तपस्या व यज्ञकर्मों को करता व पृथ्वीमें घूमताहुआ मैं व्रतों से संयुतहोकर समस्त तीर्थोंमें स्नान करतारहा ॥ ७ ॥ और शिवजी के स्मरणसे संयुत

व शिवलिंगों को तथा भूमिमें समस्त पुण्यदायक स्थानोंको प्रणाम करताहुआ मैं इस देशमें प्राप्त हुआ ॥ ८ ॥ यहांपर तीननयनोंवाले पार्वती के पति महादेव
अरुणाद्रि ऐसे प्रसिद्ध पर्वत लिंगको देखा ॥ ९ ॥ यहांपर महात्मा सिद्धलोग व दृढ नियमवाले मुनिलोगों को मैंने देखा जोकि कन्दमूल, फलों को खानेवाले व
अरुणाचलके सेवकथे ॥ १० ॥ पहलेवाले ब्रह्माजी से दिव्यदृष्टि से देखेहुये इस बड़ेभारी अरुणाद्रिमय प्रथम लिंगको मैंने स्तुति किया ॥ ११ ॥ हे अरुणाचलेश !
जो यह कि ताम्र, अरुण व सुमंगल बभ्रु (पिंगलवर्ण) हैं इस प्रकार तुमको सदैव स्तुति करतेहैं ॥ १२ ॥ ताम्र, अरुण व मंगलरूप शिवजी के लिये प्रणाम है और

ण्यानि देशमेतदुपाश्रयम् ॥ ८ ॥ अत्रदेवंमहादेवमम्बिकेशंत्रियम्बकम् ॥ अरुणाद्रिरितिख्यातं पर्वतंलिङ्गमैक्षिप
म् ॥ ९ ॥ अत्रसिद्धामहात्मानो मुनयश्चदृढव्रताः ॥ कन्दमूलफलाहारा दृष्टाशोणाद्रिसेवकाः ॥ १० ॥ आस्तौपमा
दिमंलिङ्गमरुणाद्रिमयंमहत् ॥ आद्येनब्रह्मणापूर्वं संदृष्टंदिव्यचक्षुषा ॥ ११ ॥ असौयस्ताम्रोह्यरुण उतबभ्रुःसुमङ्ग
लः ॥ इतिवेदाःस्तुवन्तित्वामरुणाद्रीशसन्ततम् ॥ १२ ॥ नमस्ताम्रायारुणाय शिवायपरमात्मने ॥ सर्ववेदस्वरूपा
य नित्यायामृतमूर्तये ॥ १३ ॥ कालायकरुणार्द्रायदृष्टिपेयामृताङ्घ्रये ॥ भक्तवात्सल्यपूर्णाय पुण्यायपुरभेदि
ने ॥ १४ ॥ दर्शनंतवदेवेश सर्वधर्मफलप्रदम् ॥ भुविलब्धंबलवता नान्यत्कार्यंतपःक्वचित ॥ १५ ॥ भवताकर्मभूरेषा
वर्ततेघनिर्वाधिका ॥ प्रार्थयन्तेस्वसंवासान् देवाश्चात्रत्वदाश्रये॥ १६ ॥ कालसङ्ग्रहसञ्जातं फलंलब्धंमयाधुना॥ आ
न्यत्कृतंतपःसर्वं त्वद्दर्शनफलंमम ॥ १७ ॥ ईदृशंतवदेवेशरूपमत्यद्भुतोदयम् ॥ एकमद्रिमयंलिङ्गं नक्वचिद्दृष्टवान्मु

समस्त वेदस्वरूप व नित्य तथा अमृतमूर्ति के लिये प्रणाम है ॥ १३ ॥ काल व दयासे भीगेहुये तथा नेत्रोंसे पीनेयोग्य अमृतरूपी चरणवाले के लिये प्रणाम है ।
तथा भक्तवत्सलता से पूर्ण व पुण्यरूप और त्रिपुरभेदक के लिये नमस्कार है ॥ १४ ॥ हे देवेशजी ! पृथ्वीमें समस्त धर्मों के फलको देनेवाला तुम्हारा दर्शन
बलवान् को मिलाहै कहीं अन्य कार्यके लिये तप नहीं है ॥ १५ ॥ आपसे यह कर्म भूमि पातकोंको नाशनेवाली वर्तमान है यहां पर देवता तुम्हारे आश्रयमें अपने
निवासों की प्रार्थना करते हैं ॥ १६ ॥ मैंने इस समय कालके संग्रहसे उपजाहुआ फल पायाहै व अन्य कियाहुआ समस्त तप मुझको तुम्हारे दर्शन के फलवाला

हुआ ॥ १७ ॥ हे देवेश ! अत्यन्त अद्भुत ऐश्वर्यवाला ऐसा मुख्य अरुणाचलमय लिंग पृथ्वी मे कहीं नही देखागयाहै ॥ १८ ॥ हे देवेश ! सूर्य, चन्द्रमा व अग्नि से संयुत तथा तीनकोनोंसे सुन्दर तुम्हारी तीन मूर्त्तियोंवाला बड़ाभारी शरीर देखपड़ताहै ॥ १९ ॥ तीन शक्तियों के स्वरूप से तीनों लोकोंको विधान करनेवाला व त्रिवेदात्मक तथा त्रिकोण अङ्गोंवाला तुम्हारा अद्भुत लिंग देखागया ॥ २० ॥ पृथ्वीके भागमें त्रिलोक की रक्षाके लिये आपही विस्तृत होकर स्थित अरुणाचल ऐसा प्रसिद्ध है ॥ २१ ॥ छलरहित दयानिधान तुम अज्ञानी मनुष्यों को दर्शनही से समस्त सुखोंको देतेहो ॥ २२ ॥ पूजन से रहित अन्य लिंग शून्य कहागया है

वि ॥ १८ ॥ सूर्येन्द्वग्निसुसंयुक्तं कोणत्रयमनोहरम् ॥ त्रिमूर्तिरूपंदेवेश दृश्यतेतेवपुर्महत् ॥ १९ ॥ शक्तित्रयस्वरूपे ण कालत्रयविधानकम् ॥ त्रिवेदात्मत्रिकोणाङ्गं लिङ्गन्तेदृष्टमुत्तमम् ॥ २० ॥ त्रैलोक्यरक्षणार्थाय वितत्यस्वयमास्थि तः ॥ दृश्यतेवसुधाभागे शोणाद्रिरितिविश्रुतः ॥ २१ ॥ अजानताञ्चमर्त्यानांसमालोकनमात्रतः ॥ वितरस्याखिलान्भो गानव्याजकरुणानिधिः ॥ २२ ॥ अर्चयारहितंलिङ्गमन्यंशल्यमुदाहृतम् ॥ इदन्तुपूजितंदेवैःसदासर्ववरप्रदम् ॥ २३ ॥ प्रसीदकरुणापूर्ण शोणाचलमहेश्वर ॥ त्रायस्वभवभीतंमांप्रपन्नम्भक्तवत्सल ॥ २४ ॥ दृष्टव्यंदृष्टमेतत्ते रूपमत्यद्भुतं महत् ॥ कृतार्थायकृपासिन्धो शरण्यशरणागतैः ॥ २५ ॥ इतिसंस्तूयमानोमेदेवःशोणाचलेश्वरः ॥ अदर्शयत्परंरूपंदि व्यमेहीत्युवाचमाम् ॥ २६ ॥ प्रीतोस्मिभवतःस्तोत्रैर्भक्त्याचपरयाभृशम् ॥ अत्रैवभवतोवासोनित्यमस्तुममान्तिके ॥ २७ ॥ सम्पूज्यचैवमांनित्यं भुविभोगैःसनातनैः ॥ तपसात्वञ्चसर्वेषांमहत्त्वमिहदर्शय ॥ २८ ॥ पूर्वंकैलासशिखरेवसन्तं त्वांत

और सदैव देवताओं से पूजन कियाहुआ यह लिंग सब वरदानों को देनेवाला है ॥ २३ ॥ हे दयापूर्ण, अरुणाचल, महादेवजी ! प्रसन्नहोवो हे भक्तप्रिय ! संसार से डरेहुये मुझ शरणागत की रक्षा कीजिये ॥ २४ ॥ हे शरण्य, दयासिन्धो ! यह तुम्हारा बड़ाभारी अद्भुत स्वरूप कृतार्थ होनेके लिये शरणागतों से देखनेयोग्य है जिसको मैंने देखाहै ॥ २५ ॥ इस प्रकार मुझसे स्तुति कियेहुये अरुणाचलेश्वरदेवजीने उत्तम दिव्यरूप को दिखाया और यह कहा कि यहां आइये ॥ २६ ॥ बड़ी भक्तिसे तुम्हारे स्तोत्रोंसे मैं बहुत प्रसन्नहूं आपका निवास यहींपर मेरे समीप सदैवहोवै ॥ २७ ॥ और मुझको नित्य पूजकर पृथ्वीमें तुम सनातन सुखोंसे युक्तहोगे

और तपस्या से तुम यहां सबोंको महत्त्व दिखलाइये ॥ २८ ॥ पुरातन समय कैलासपर्वत के शिखर पै बसतेहुये तपसे संयुत तुमको मैंने यह आज्ञा दियाहै कि पृथ्वी
के भागमें अरुणाचल पै मुझको पूजिये ॥ २९ ॥ आकाशमें सप्तर्षियों से पूजीहुई मेरी पूजा प्रकाशित है वैसेही नित्य योग्य पूजन पृथ्वीतल में शोभित होवै ॥३०॥
हे तपस्या में अधिक गौतमजी ! तुम सबही प्राणियों के कल्याण के लिये पृथ्वीमें शास्त्रोक्त पूजनों से आदरपूर्वक पूजन करो ॥ ३१ ॥ मेरी दिव्यपूजा आकाशमें दे-
खनेयोग्य है और तुमको पृथ्वीमें भी पूजन का प्रकाश करना चाहिये ॥ ३२ ॥ मैं ने माहात्म्य को पहलेही कहाहै कि जिस प्रकार मैं अरुणाचल पृथ्वीभागमें स्थित

पोन्वितम् ॥ आदिशंपृथवीभागे शोणाद्रौपूजयेतिमाम् ॥ २९ ॥ सप्तर्षिपूजितापूजा दिविमेसंप्रकाशते ॥ तथानि
त्यार्चनायुक्ता शोभतेवसुधातले ॥ ३० ॥ सर्वेषामेवजन्तूनां हितायत्वंतपोधिक ॥ भुविमांपूजयार्चाभिरागमोक्ताभि
रादरात ॥ ३१ ॥ दिव्याममममहापूजा दृश्याहिदिविदैवतैः ॥ प्रकाशनीयाभवता पूजापिवसुधातले ॥ ३२ ॥ माहात्म्यं
पूर्वमेवोक्तं यथाहमरुणाचलः ॥स्थितोवसुन्धराभागेमयाप्रीतन्तुतेभृशम् ॥ ३३ ॥ येवासंपूजयन्तिस्म पूर्वमांसुकृताधि
काः ॥ तेभ्यस्त्वमधिकोभूमौ प्रकाशस्वशिवार्चनम् ॥ ३४ ॥ इत्यादिशन्तंदेवेशं प्रणम्यभावभक्तितः ॥ व्यज्ञापयं
दयापूर्णमरुणाद्रीशमानमन् ॥ ३५ ॥ अनासाद्यमिमंरूपमग्निरूपंमहेश्वर ॥ कथमभ्यर्चयाम्येतं मर्त्यलोकोचि
तार्चनैः ॥ ३६ ॥ आदेशमिदमन्वर्थं कथंवाकल्पयाम्यहम् ॥ उपायमादिशश्रीमानभिगम्योयथाभवः ॥ ३७ ॥ इति
विज्ञापितोदेवः श्रीमाञ्छोणाचलेश्वरः ॥ अन्वगृह्णादशेषात्माप्रणतंमान्दयानिधिः ॥ ३८ ॥ अहन्तुसूक्ष्मलिङ्गानि प्र

हूं और तुमसे मैं बहुतही प्रसन्नहूं ॥ ३३ ॥ और अधिक पुण्यवाले जिन मनुष्यों ने मुझको पूजाहै उनसे अधिक तुम पृथ्वीमें शिवपूजन को प्रकाश करो ॥ ३४ ॥
यह आज्ञा करते हुये दयासे पूर्ण अरुणाचलेश देवेशजी को भक्तिभाव से प्रणाम कर बहुत झुकतेहुये मैंने विनय किया ॥ ३५ ॥ कि हे महेश्वरजी ! यह अग्निरूपी
तुम्हारा स्वरूप समीप नहीं जानेयोग्यहै इसलिये मनुष्य लोकमें योग्य पूजनों से इसको मैं किस प्रकार पूजूं ॥ ३६ ॥ व इस आज्ञाको मैं किसप्रकारसार्थक करूं आप
यत्नको बतलाइये कि जिस प्रकार शोभा सहित आप सम्मुख जाने योग्य होवो ॥ ३७ ॥ इस प्रकार विनय कियेहुये सर्वव्यापक दयानिधान श्रीमान् अरुणेश्वर

जीने प्रणाम कियेहुये मेरे ऊपर दयाकिया ॥ ३८ ॥ व कहा कि मै पृथ्वीतल में सूक्ष्मलिंगोंको प्रकाश करूंगा उनको शास्त्रोक्त क्रियाओंके भेदो से प्रतिदिन पूजन करिये ॥ ३९ ॥ पाच आवरणों से संयुत व अद्भुत अरुणाद्रीश नामक मेरे सूक्ष्म लिंगको तपोबल से पूजिये ॥ ४० ॥ यह आज्ञा देकर महादेवजी ने सूक्ष्म लिंगात्मा से आपही से उपजेहुये निर्मल शिवरूप को मुझे दिखलाया ॥ ४१ ॥ और आपही उपजेहुये उस निर्मल व सम्पूर्ण आवरणों से संयुत सूक्ष्म लिंगको देखकर मै हृदय में कृतार्थ होगया ॥ ४२ ॥ और फिर वेदोक्त प्रकार से भी न देखनेयोग्य प्राप्तहुये उन प्यारे सदाशिवदेवजी के आश्रित होकर विनय किया ॥ ४३ ॥ कि हे दयामूर्त्ते,

काशिष्येमहीतले ॥ आगमोक्तक्रियाभेदैः पूजयप्रतिवासरम् ॥ ३९ ॥ पञ्चावरणसंयुक्तं लिङ्गमेसूक्ष्ममद्भुतम् ॥ अरुणाद्रीश्वराभिख्यं सम्पूजयतपोबलैः ॥ ४० ॥ इत्यादिश्यमहादेवः स्वयंभुविमलंमहत् ॥ रूपंमेदर्शयामास सूक्ष्मलिङ्गात्मनाशिवम् ॥ ४१ ॥ आलोक्यविमलंलिङ्गं सूक्ष्मन्तत्स्वयमुत्थितम् ॥ अशेषावरणोपेतं कृतार्थहृदयोभवम् ॥ ४२ ॥ पुनर्विज्ञापयंदेवं शम्भुमाश्रित्यवत्सलम् ॥ आगमोक्तप्रकारेणाप्यनिरीक्ष्यन्तमागतम् ॥ ४३ ॥ कथंनुतवरूपाणां नानाभेदान्क्रियोचितान् ॥ जानीयात्करुणामूर्तें स्वयमीश्वरमत्प्रभो ॥ ४४ ॥ पूजकास्तवकेवास्युर्मन्दिरंवात्रकीदृशम् ॥ अथस्तोत्रंकथंपूजा कोवात्रपरिचारकः ॥ ४५ ॥ स्थानरक्षाकथंवास्यात्केवानित्यंचरक्षकाः ॥ कथंवामानुषीपूजा नित्यासंवर्द्धतेतव ॥ ४६ ॥ आगताबहवोदेवा अर्चयेन्मनुजःकथम् ॥ प्रसीदपरमीशान स्वयंमेज्ञापयाखिलम् ॥ ४७ ॥ एवंविज्ञापितोदेवः शोणाद्रीशःस्वयंप्रभुः ॥ आज्ञापयत्तदादेवः विश्वकर्माणमानतम् ॥ ४८ ॥ सृज

मत्प्रभो, सदाशिवजी ! तुम्हारे रूपोंके कर्मयोग्य अनेकों प्रकार के भेदोंको मनुष्य आपही कैसे जानै ॥ ४४ ॥ और तुम्हारे पूजन करनेवाले कौन है व यहांपर कैसा मन्दिरहै और स्तोत्र व पूजन किसप्रकार होताहै और यहांपर कौन सेवकहै ॥४५॥ व किसप्रकार स्थानकी रक्षाहोवैहै और नित्य कौन रक्षकहैं और किसप्रकार तुम्हारी मनुष्योंवाली नित्य पूजा भलीभांति बढ़ती है ॥ ४६॥ और बहुत देवता आयेहैं तो मनुष्य किस प्रकार पूजन करै हे परमेश्वरजी ! प्रसन्न होवो और मुझको आपही सब बतलाइये ॥ ४७ ॥ इस प्रकार विज्ञापित आपही अरुणाचलदेवस्वामी ने उस समय झुकेहुये विश्वकर्मा को आज्ञा दिया ॥ ४८ ॥ कि तुम अधिक गुणोंवा-

ले अरुणानामक दिव्य नगरको रचिये व महामणिगणोंसे उज्ज्वल मेरे उत्तम मन्दिरको बनाइये ॥ ४६ ॥ दयामूर्त्तिवाले श्रीमान् अरुणाचल सदाशिवजीने मुझसे नाम भेदोंके पूजन क्रमकोकहा ॥ ५० ॥ कि मुझसे उसको सुनिये कि जो यहांपरमेरा पूजक व पूजनके लिये सेवकहै ॥ ५१ ॥ हे गौतमजी ! मुझ से समस्त मनुष्यवाले पूजन के क्रमको सुनिये जो यह कि पृथ्वीमें सब मनुष्यों के कल्याण के लिये प्रसिद्धहै ॥ ५२ ॥ सब ऐश्वर्योंसे संयुत यह अरुणाचलेश्वर नामक मेरा बडा भारी अमितलिंग सदैव तुमसे पूजाजावै ॥ ५३ ॥ और मेरे उत्तरभागमें अपीत कुचा नामक नित्य ऐश्वर्यवाली शक्ति सदा पूजनेयोग्य है जोकि स्थान के माहात्म्यको

त्वंनगरंदिव्यमरुणाख्यंगुणाधिकम् ॥ मन्दिरंममदिव्यञ्च महामणिगणोज्ज्वलम् ॥ ४९ ॥ आबभाषेशिवःश्रीमान्
नामभेदार्चनक्रमम् ॥ मह्यञ्चकरुणामूर्त्तिररुणाद्रीश्वरःशिवः ॥ ५० ॥ शृणुतन्मेत्रयष्टायः पूजार्थंपरिचारिकः ॥ ५१ ॥
शृणुगौतमसर्वंमे मानुषंपूजनक्रमम् ॥ यएवसर्वलोकानां क्षेमायप्रथतेभुवि ॥ ५२ ॥ इदंमहल्लिङ्गमतुलं सर्वैश्वर्ययुतंम
हत् ॥ अरुणाद्रीश्वराभिख्यं पूज्यतांसततंत्वया ॥ ५३ ॥ शक्तिर्ममोत्तरेभागे पूज्यानित्योदयासदा ॥ दधातिस्थान
माहात्म्यमपीतकुचनामिका ॥ ५४ ॥ अरुणाचलराजोय मग्रभागःप्रियान्वितः ॥ उत्सवार्थंमहाघोरः पूज्योभोगशता
वृतः ॥ ५५ ॥ बुधस्यभक्तलोकस्य सर्वदाताभयःशिवः ॥ शारङ्गंपरशुंबिभ्रत् प्रसन्नवदनःसदा ॥ ५६ ॥ उमास्कन्देश्व
रः शम्भुर्दिव्यरत्नविभूषणः ॥ व्याप्यैवंसकलाँल्लोकानविकुण्ठश्रियान्वितः ॥ ५७ ॥ शक्तेरुत्सवप्रारम्भे सम्पू
ज्यासुन्दरेश्वरी ॥ सर्वभूषणसंयुक्ता शृङ्गाररसवर्द्धिनी ॥ ५८ ॥ बालोगणपतिःपूज्यः पुरस्ताद्धृतिनन्दनः ॥ सदन्ति

धारण कियेहै ॥ ५४ ॥ और अरुणाचलराजका यह प्रिया समेत महाघोर उत्सवके लिये पूजनीय अग्रभागहै जोकि सैकड़ों भोगों (सुखों) से घिराहै ॥ ५५ ॥ धनुष व परशुको धारेहुये व सदैव प्रसन्न मुखवाले अभय सदाशिवजी बुध भक्तजनको सब कुछ देतेहैं ॥ ५६ ॥ पार्वती, स्कन्देश्वर व दिव्यरत्नों से भूषित तथा उत्तम लक्ष्मीसे संयुत श्रीसदाशिवजी सब लोकोंमें व्याप्त होकर स्थितहैं ॥ ५७ ॥ और शक्तिके उत्सव के प्रारम्भ में शृङ्गाररस को बढ़ानेवाली तथा समस्त भूषणोंसे संयुत सुन्द-

रेश्वरी भलीभांति पूजनेयोग्य है ॥ ५८ ॥ और आगे मेरे समीप बहुत ऐश्वर्योंवाले भक्ष्यों व भोजनोंसे भूषित करतेहुये भूतिनन्दन नामक बालगणपति पूजनेयोग्य हैं ॥ ५९ ॥ और मेरे समीपको न छोड़तीहुई तथा अरुणरेखासे पूजित नेत्रोंवाली समीपही में स्थित उत्सव अर्थवाली उत्तमशक्ति पूजीजावै ॥ ६० ॥ और उछाह के लिये नृत्यमें चतुर अन्य श्रीमान् मुखराङ्घ्रि पतिको पूजकर मनुष्य उत्तमगतिको प्राप्तहोताहै ॥ ६१ ॥ और अन्य महाभाग्यवती भुविनायका नामक शक्ति पूजनेयोग्य है और सूर्यके समीप महाकाल के आगे द्वारपै नन्दी पूजनेयोग्य हैं ॥ ६२ ॥ और मेरे सब भक्तोंका पूजन अपना से कल्पित कियाजाता है कि दक्षिणमें विघ्न-

कमलंकुर्वन् भक्ष्यैर्भोज्यैर्बहुदयैः ॥ ५९ ॥ मत्पार्श्वमविमुञ्चन्ती शोणरेखाञ्चितेक्षणा ॥ उत्सवार्थापराशक्तिरन्ति कस्थैवपूज्यताम् ॥ ६० ॥ मुखराङ्घ्रिपतिःश्रीमानन्यस्ताण्डवपण्डितः ॥ उत्सवार्थंसमभ्यर्च्य उत्तमाङ्गतिमा माप्नुयात् ॥ ६१ ॥ शक्तिश्चान्यामहाभागा सम्पूज्याभुविनायका ॥ द्वारेनन्दीमहाकालः पुरस्तात्सूर्यसन्निधौ ॥ ६२ ॥ भक्तानांममसर्वेषां पूजनंचात्मकल्पितम् ॥ दक्षिणेमातरःपूज्या विघ्नशास्तृसमन्विताः ॥ ६३ ॥ सम्पूज्योनैर्ऋतेको णे विघ्नशास्ताविनायकः ॥ स्कन्दःशक्तिधरःश्रीमान्पश्चिमेभुवनेश्वरः ॥ ६४ ॥ कृष्णसंज्ञानिलिङ्गानि ज्येष्ठावायुदि शिस्थिता ॥ दुर्गाचोत्तरभागस्था भक्ताश्चान्येतपोधिकाः ॥ ६५ ॥ लिङ्गानिचमनोज्ञानि पूजनीयान्यनन्तरम् ॥ म न्दिरंममसम्पूज्यं दक्षिणामूर्त्तिदक्षिणे ॥ ६६ ॥ पश्चिमेविष्णुरूपाङ्कमग्निरूपान्वितन्तथा ॥ उत्तरेब्रह्मरूपाङ्कं पूर्वे

शास्ता से संयुत मातृगणों को पूजना चाहिये ॥ ६३ ॥ व नैर्ऋत्यकोणमें विघ्नशास्ता नामक गणेशको पूजना चाहिये व पश्चिम में शक्तिधारक श्रीमान् जगदीश स्वामिकार्त्तिकेयजी को पूजना चाहिये ॥ ६४ ॥ व कृष्णसंज्ञक लिंगोंको पूजना चाहिये तथा वायव्य दिशामें स्थित ज्येष्ठाशक्ति पूजनेयोग्य है और उत्तरभाग में टिकीहुई दुर्गाजी व अधिक तपस्यावाले अन्य भक्त पूजनेयोग्य हैं ॥ ६५ ॥ इसके अनन्तर मनोहर लिंगोंको पूजना चाहिये व दक्षिणा मूर्त्तिके दक्षिणओर मेरा मन्दिर पूजनेयोग्य है ॥ ६६ ॥ पश्चिम में अग्निरूप से संयुत तथा विष्णुरूप से चिह्नित लिंगको पूजना चाहिये व उत्तर में ब्रह्मरूप से चिह्नित व फिर पूर्वमें शारंग

(धनुष) धारीको पूजना चाहिये ॥ ६७ ॥ और समस्त देवताओंकेगुणोंसे संयुत व समस्त शक्तियों समेत लिंगको पूजना चाहिये व समस्त शक्तियों से संयुत अपीत
कुचनामक को पूजना चाहिये ॥ ६८ ॥ और दिक्पालकों की स्त्रियोंसे घिरेहुये मन्दिरको पूजकर व मन्दिर के पूजन के लिये वैभवनायिका नामक देवीको पूजना
चाहिये ॥ ६९ ॥ और सब आवरणों समेत क्षेत्रपालको पूजकर इनके आगे रक्षाके लिये आतीहुई अरुणाचलेश्वरी पूजनेयोग्य है ॥ ७० ॥ व काली तथा अन्य बहुत
भांतिकी विधिपालिका देवताओं को पूजना चाहिये और कालीके बड़े ऐश्वर्यवाले बहुत उछाहों को प्रत्येक महीने में करना चाहिये ॥ ७१ ॥ और सदाशिवजी

**शारङ्गभृत्पुनः ॥६७॥ सर्वदेवगुणोपेतं सर्वशक्तिसमन्वितम् ॥ अपीतकुचनाथञ्च सर्वशक्तिसमन्वितम् ॥ ६८॥ मन्दिर
ञ्चैवसम्पूज्य दिक्पालकवधूवृतम् ॥ मन्दिरस्यार्चनार्थाय देवीवैभवनायिका ॥ ६९ ॥ क्षेत्रपालन्तुसम्पूज्य सर्वावरण
संयुतम् ॥ पुरोस्यत्रातुमायान्ती पूज्यारुणगिरीश्वरी ॥ ७० ॥ कालीबहुविधाश्चान्या देवताविधिपालिकाः ॥ उत्सवा
विविधाःकाल्याः प्रतिमासंमहोदयाः ॥ ७१ ॥ सृजस्वकन्यकादिव्याः शिवदेवार्हसेविकाः ॥ नृत्यगीतकलाभिज्ञा रूप
सौभाग्यसंयुताः ॥ ७२ ॥ चारुविभ्रमसंयुक्ताः कामदानित्ययौवनाः ॥ शिष्यानादिशवेदज्ञान् सदाचारसमुज्ज्वला
न् ॥ ७३ ॥ दिव्योपचारसंसिध्यै सुभगाञ्छुद्धचेतसा ॥ दीक्षितान्विमलान्तांश्च शैवागमविशारदान् ॥ ७४॥ शैवा
चारप्रसिद्ध्यर्थमादिशाभ्यर्चनायमे ॥ मार्दलाञ्छाङ्खिकान्वीणान् तालिकान्वेणुवादिकान् ॥ ७५ ॥ शैवकान्सृजस**

के योग्य सेवा करनेवाली दिव्यकन्याओं को रचिये जोकि नृत्य व गीतकी कलाओंको जाननेवाली तथा रूप व सौभाग्य से संयुत होवैं ॥ ७२ ॥ व सुन्दर विभ्र-
म (हाव,भाव) से संयुत तथा कामदायिनी व नित्य यौवनवाली होवैं और उत्तम आचार से उज्ज्वल तथा वेदके जाननेवाले शिष्योंको आज्ञादीजिये ॥ ७३ ॥ जो
कि दिव्यपूजन के लिये शुद्धचित्त से सुन्दर व दीक्षित (दीक्षाको लिये) तथा निर्मल अन्तःकरणवाले व शैवशास्त्र में चतुर होवैं ॥ ७४ ॥ और शैवाचार की प्रसि-
द्धिके लिये मेरे पूजन के निमित्त मर्दल (मृदंग के सदृश बाजा भेद) के बजाने वाले तथा वीणा बजानेवाले व ताली बजानेवाले और वेणुवादकों को आज्ञा दी-

जिये ॥ ७५ ॥ और उत्तम विद्यावाले व चारों बाजाओंमें चतुर शिवभक्तों को आज्ञादीजिये व अनेक भातिके क्षत्रिय, वैश्य व शिवजीके सम्मतवाले शूद्रोंको आज्ञा दीजिये ॥७६ ॥ और हे मुनिनाथ ! चारों दिशाओंके तीर्थोंमें बसनेवाले व आशारहित शिवभक्त मुनियोंके लिये चार मठ बनाना चाहिये ॥ ७७ ॥ क्योंकि उनमें स्थित होकर ये सब शिवपूजाकी रक्षा करैंगे और फिर याचना करतेहुये शैव व पाशुपत भक्तभी ॥ ७८ ॥ व अन्य पूजक तथा पालन करनेवाले भी सब पैदा होतेहुये व उत्पन्न हुये तथा पैदा होनेवाले जनोंका सदैव पालन करैंगे ॥ ७९ ॥ और अनष्ट आज्ञावाला मै अरुणाचल के इस स्थानकी रक्षा करता हूँ और बड़ाभारी मौल-

द्विद्यांश्चतुर्वाद्यविशारदान् ॥ क्षत्रियान्विविधान्वैश्याञ्च्छूद्रांश्चशिवसम्मतान् ॥ ७६ ॥ चत्वारश्चमठाःकल्प्याः चतुर्दिक्तीर्थवासिनाम् ॥ मुनीनांशिवभक्तानां निराशानांमुनीश्वर ॥ ७७ ॥ तेषुस्थिताइमेसर्वे रक्षन्तुशिवपूजनम् ॥ भिक्षमाणाःपुनःशैवा भक्ताःपाशुपताअपि ॥ ७८ ॥ पालयन्तुसदान्येच यष्टारोपालिकाह्यपि ॥ सर्वेषाजायमानानां जातानांसम्भविष्यताम् ॥ ७९ ॥ अव्याहताज्ञोरक्षामिस्थानमेतन्महीभृतः ॥ बकुलश्चमहानत्र दृश्यतेदिव्यसुरु हः ॥ ८० ॥ अत्रभक्तावितन्वन्तु शिवकार्येविनिश्चयम् ॥ अत्रमेदीयतेद्रव्यमपेक्षितवराप्तये ॥ ८१ ॥ यस्त्वसावक्षय फलआरक्ष्यःशिवसेवकैः ॥ भक्तैर्विज्ञापितंचार्थं श्रोष्यामिपुरतस्थितैः ॥ ८२ ॥ सर्वंसम्पादयिष्यामि तेषांचित्तानुकूलक म् ॥ अपराधसहस्राणि क्षमिष्येस्वर्चतामहम् ॥ ८३ ॥ आगमोक्तेषुमार्गेषु मानुषैर्निर्मितन्तपः ॥ गृह्णामिचापिसततं स वंसत्रात्मकंयथा ॥ ८४ ॥ सङ्कल्पितम्भवेत्कर्म प्रीतिकृन्ममसेवकैः ॥ आगमार्थानशेषांस्त्वमालोक्यसमयोचि

सिरीका उत्तम वृक्ष यहां देख पडताहै ॥ ८० ॥ यहापर भक्तलोग शिवजीके कार्य में विशेपकर निश्चयको विस्तार करैंगे यहांपर चाहेहुये वरको मिलनेकेलिये सुभ्को द्रव्यदीजातीहै ॥ ८१ ॥ और अक्षयफलवाला जो यह वृक्षहै वह शिवजीके सेवकों से सब ओर रक्षा करनेयोग्य है और इसके आगे स्थितभक्तों से कहेहुये प्रयोजनको मै सुनूंगा ॥ ८२ ॥ और उनके चित्तके अनुकूल सब वस्तुको मैं सिद्धकरूंगा व भलीभाति पूजतेहुये लोगोंके हज़ारो अपराधों को मैं क्षमा करूगा ॥ ८३ ॥ व शास्त्रोक्त मार्गोमे यहापर मनुष्योंसे कीहुई तपस्याको मैं सदैव समस्त यज्ञात्मककी नाई ग्रहणकरताहूं ॥८४॥ मेरे सेवकोंसे प्रीतिकारक सकल्पित कर्म यहांपरहोवैहै तुम

समय में योग्य समस्त आज्ञाओं को [illegible] ॥ ८५ ॥ व [illegible] पूजन के विधानों को देखकर यव, तिल, लाजा व भक्तिपूर्वक [illegible]
से ॥ ८६ ॥ तथा शब्द, घी, वसन, चंदन, [illegible] ज्येष्ठ से आषाढ़ पर्यन्त प्रत्येक महीने में बड़े ऐश्वर्यवाले उत्सव को करें ॥ ८७ ॥ और
पौर्णमासीवाली बड़ीभारी पूजा आदर सहित [illegible] यज्ञोंको करना चाहिये ॥ ८८ ॥ व इस शक्तिके समीप अनेक
के दानों को करनाचाहिये और मेरेसमीप निरन्तर दीपादिक [illegible] ॥ ८९ ॥ [illegible] तेजोमयरूप को निस्सन्देह प्राप्तहोते हैं और जो राजा लोग जल

तान् ॥ ८५ ॥ विधानानर्चनाभेदाँल्लोकरक्षापरायणः ॥ व्रीहिभिश्चतिलैर्लाजैर्भक्त्यादीपैस्तथाघृतैः ॥ ८६ ॥ मद्भ्रा
ज्यवस्त्रश्रीगन्धदेवतान्नफलोच्चयैः ॥ ज्येष्ठाद्यापाढपर्यन्तं प्रतिमासंमहोदयम् ॥ ८७ ॥ कर्त्तव्यामहतीपूजा पौर्णमा
सीतुसादरम् ॥ सत्राणिविविधान्यत्र कर्त्तव्यानिसहस्रशः ॥ ८८ ॥ विविधानिचदानानि शक्तेरस्याश्चसन्निधौ ॥ ग्रानि
च्छिन्नप्रदीपाद्यं दातारोममसन्निधौ ॥ ८९ ॥ तेजोमयमिदंरूपं ममयान्तिनसंशयः ॥ जलजन्तरुजंपुण्यं ददतेयेगही
मुजः ॥ ९० ॥ तेषांपुरोगतःसाक्षादहंजेष्यामिविद्विषः ॥ यस्ययस्यतुदेशस्य योयोराजातपोधिकः ॥ ९१ ॥ तत्तत्स
मद्भितंरम्यं सम्भवन्तुप्रदास्यति ॥ मत्संनिधिमुपागत्य दुरात्मानोपिभूमिपाः ॥ ९२ ॥ शिवभक्ताभृशंपूर्णा भविष्य
न्तिनसंशयः ॥ ९३ ॥ इतिशम्भुमुखोत्थितंवचः समुपश्रुत्यविधूतकल्मषः ॥ अहमानतवान्व्यजिज्ञपं कुतुकाच्छोण
गिरीश्वरंशिवम् ॥ ९४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽरुणाचलमाहात्म्येऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ * ॥ * ॥

से उत्पन्न तथा वृक्षों में उपजे हुये पुष्प को देतेहैं ॥ ९० ॥ उनके आगे प्राप्तहोकर साक्षात् मैं शत्रुवों को जीतूंगा और जिस जिस देशका अधिक तपस्यावाला जो
जो राजा ॥ ९१ ॥ उस उस देशमें उपजीहुई उत्तम बढ़ीहुई वस्तु को देवैगा उसके मनोरथोंको मैं दूंगा और मेरे समीप आकर दुष्टात्माभी शिवभक्त राजालोग बहुत
ही पूर्णहोवेंगे इसमें सन्देह नहीं है ॥ ९२।९३ ॥ इस प्रकार सदाशिवजीके मुखसे कहेहुये वचन को सुनकर पातकों से रहित मैंने प्रणाम किया व कौतुक से अरुणा-
चलेश्वर शिवजीसे निवेदन किया ॥ ९४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽरुणाचलखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायामष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ ॥

दो० । गौतम मुनिसों कह्यो है शंभु आपने नाम । सोइ नवम अध्यायमें अहै चरित सुखधाम ॥ गौतम जी बोले कि हे भगवन्, अरुणाचलेश्वरजी ! इस देव-पूजित स्थानमें तुम्हारे नामोंको मैं बहुत विशेषता से सुना चाहताहूं ॥ १ ॥ महादेवजी बोले कि हे द्विजोत्तम, ब्रह्मन् ! पृथ्वीमें सदैव कामनाओं को देनेवाले तथा थोडी पुण्यवाले जनोंको दुर्लभ मेरे मुख्य नामोंको सुनिये ॥ २॥ कि शोणाद्रीश,अरुणाद्रीश,देवाधीश, नतप्रिय, शरणागतरक्षक,धीर, शिव,सेवकवर्धक ॥ ३ ॥ नेत्रों से पीनेयोग्य अमृतरूप ईशान तथा स्त्री व पुरुषके भावको देनेवाले,भक्तकी बिनतीसे उत्पन्न व दीनजनके कारागृहको छुड़ानेवाले ॥ ४ ॥ व मुखराङ्घ्रिपति,श्रीमान्, मृड,

गौतमउवाच ॥ भगवन्नरुणाद्रीश नामधेयानितेभृशम् ॥ विशेषाच्छ्रोतुमिच्छामि स्थानेस्मिन्सुरपूजिते ॥ १ ॥ शिवउवाच ॥ नामानिशृणुमेब्रह्मन् मुख्यानिद्विजसत्तम ॥ दुर्लभान्यल्पपुण्यानां कामदानिसदाभुवि ॥ २ ॥ शोणाद्रीशोरुणाद्रीशो देवाधीशोनतप्रियः ॥ प्रपन्नरक्षकोधीरः शिवःसेवकवर्धकः ॥ ३ ॥ अक्षिपेयामृतेशानः स्त्रीपुम्भावप्रदायकः ॥ भक्तविज्ञप्तिसंजातो दीनबन्दिविमोचकः ॥ ४ ॥ मुखराङ्घ्रिपतिःश्रीमान् मृडोमृगमदेश्वरः ॥ भक्तप्रेक्षणकृत्साक्षी भक्तदोषनिवर्तकः ॥ ५ ॥ सङ्गीतवेत्तानृत्यज्ञस्त्रिवेदीवृद्धवैदिकः ॥त्यागराजःकृपासिन्धुः सुगन्धीशःखगेश्वरः ॥ ६ ॥ कान्तिवीर्येश्वरःशान्तः कपालीकपिलप्रभुः ॥ ज्ञानसम्बन्धनाथश्च श्रीहालाहलसुन्दरः ॥ ७ ॥ आहूयैश्वर्यदाताच स्मृतेसर्वाघनाशनः ॥ व्यत्यस्तनृत्यध्वजधृक्संक्रान्तिर्नटनेश्वरः ॥ ८ ॥ सामप्रियःकलिध्वंसी वेदमूर्तिर्निरञ्जनः ॥ जगन्नाथोमहादेवस्त्रिनेत्रस्त्रिपुरान्तकः ॥ ९ ॥ भक्तापराधसोढाच योगीशोभोगनायकः ॥ कालमूर्त्तिःक्ष

मृगमदेश्वर, भक्तनिरीक्षणकारी,साक्षी, भक्तदोषनिवर्तक ॥ ५ ॥ व संगीतको जाननेवाले तथा नृत्यज्ञाता, त्रिवेदी, वृद्धवैदिक,त्यागराज, दयासिंधु,सुगंधीश, खगेश्वर ॥ ६ ॥ कांतिवीर्येश्वर, शान्त, कपाली, कपिलप्रभु, ज्ञानसंबन्ध के स्वामी, श्रीहालाहलसुन्दर ॥ ७ ॥ व बुलाकर ऐश्वर्यदायक तथा स्मरण करने पर समस्त पातकों के विनाशक व विपरीत नृत्यके ध्वजाधारी,संक्रान्ति, नटनेश्वर ॥ ८ ॥ और सामप्रिय, कलिध्वंसी,वेदमूर्ति,निरंजन,जगदीश,महादेव, त्रिनेत्र व त्रिपुरविनाशक ॥ ९॥

व भक्तके अपराध को सहनेवाले, योगीश, भोगनायक, कालमूर्ति, क्षमारूप, धर्मरक्षक, वृषध्वज ॥ १० ॥ और हर, ईश्वर, भीम, चन्द्ररेखावतंसक, कामांतक, अन्तकशत्रु, सिद्धराज, दिगम्बर ॥ ११ ॥ व शास्त्रप्रिय, ईशान, भस्मरुद्राक्षचिह्नित, श्रीपति, शंकर, विधाता, सर्वविद्येश्वर, पापरहित ॥ १२ ॥ गंगाधर, क्रतुध्वंसी, निर्मल, नागभूषण, अरूप, बहुरूप, विरूपाक्ष, अक्षराकृति ॥ १३ ॥ अनादि, अन्तरहित, शिवकाम, स्वयंप्रभु, सच्चिदानंदरूप, सर्वात्मा, जीवधारक ॥ १४ ॥ व स्त्री के संगसे वामाङ्गसुन्दरवाले, चन्द्रमाके समानरूप से सुन्दर, ज्ञानदायक, मुक्तिदायक, भक्तमनोरथदायक ॥ १५ ॥ आश्चर्यरूप ऐश्वर्यवाले, कामी, दोषरहित,

मारूपो धर्मरक्षोवृषध्वजः ॥ १० ॥ हरोऽपिचेश्वरोभीमश्चन्द्ररेखावतंसकः ॥ स्मरान्तकोन्तकरिपुः सिद्धराजोदिगम्बरः ॥ ११ ॥ आगमप्रियईशानो भस्मरुद्राक्षलाञ्छनः ॥ श्रीपतिःशङ्करःस्रष्टा सर्वविद्येश्वरोनघः ॥ १२ ॥ गङ्गाधरः क्रतुध्वंसी विमलोनागभूषणः ॥ अरूपोबहुरूपश्च विरूपाक्षोक्षराकृतिः ॥ १३ ॥ अनादिरन्तरहितः शिवकामःस्वयंप्रभुः ॥ सच्चिदानन्दरूपश्च सर्वात्माजीवधारकः ॥ १४ ॥ स्त्रीसङ्गवामसुभगो विधुवद्रूपसुन्दरः ॥ ज्ञानप्रदोमुक्तिदश्च भक्तवाञ्छितदायकः ॥ १५ ॥ आश्चर्यवैभवःकामी निरवद्योनिधिप्रदः ॥ शूलीपशुपतिःशम्भुः स्वयम्भूर्गिरिशोमृडः ॥ १६ ॥ सर्वनामामनश्चारः शिवोरुणगिरीश्वरः ॥ एतानिममुख्यानि नामान्यत्रमहामुने ॥ १७ ॥ अन्यानि दिव्यनामानि पुराणोक्तानिसंस्मर ॥ प्रदक्षिणेनमांनित्यं विशेषात्त्वंसमर्चय ॥ १८ ॥ प्रदक्षिणप्रियोयस्मादहंशोणाचलाकृतिः ॥ इत्याज्ञप्तोमहादेवमर्चयन्नरुणाचलम् ॥ १९ ॥ अविमुक्तस्त्रिहावासं कृतवानहमद्रिजे ॥ २० ॥ गोदृगु

निधिदायक, शूलधारी, पशुपति, शंभु, स्वयंभू, गिरिश, मृड ॥ १६ ॥ गर्वनामक, मनश्चार, शिव, अरुणाचलेश्वर हे महामुने ! यहांपर ये मेरे मुख्य नामहैं ॥ १७ ॥ व पुराणोंमें कहेहुये अन्य मेरे दिव्य नामोंको भलीभांति स्मरण कीजिये और नित्य ही प्रदक्षिणाकेद्वारा विशेषतासे तुम मुझको पूजिये ॥ १८ ॥ क्योंकि अरुणाचलाकारवाला मैं प्रदक्षिणाप्रियहूं हे अद्रिजे ! इस प्रकार आज्ञा पायेहुये मैंने अरुणाचल महादेवजीको पूजते व न छोड़तेहुये महीपर निवास किया ॥ १९।२० ॥ पार्वती

जी बोलीं कि हे समस्त धर्मोंको जाननेवाले आर्य, मुनिनायक, भगवन्, गौतमजी! मुझसे अरुणाचलकी प्रदक्षिणाके माहात्म्यको कहिये ॥ २१ ॥ कि किससमय व किसप्रकार प्रदक्षिणा करनाचाहिये और पहले किन्हों ने अरुणाचल की प्रदक्षिणा किया व प्रियपरमपदको पायाहै ॥ २२ ॥ ब्रह्मा बोले कि इसप्रकार पूछेहुये गौतम मुनिने पर्वत की कन्या पार्वतीजीसे कहा कि हे देवि ! उस माहात्म्यको सुनिये कि जिसको मुझसे महादेवजीने कहाहै ॥ २३ ॥ महादेवजी बोले कि पृथ्वीतल में अरुणाचलात्मक मैं प्रसिद्धहूं और मेरे चारोंओर मुनियों समेत सब देवता वर्तमानहैं ॥ २४ ॥ अन्य जन्मोंमें भी जो कोई कियेहुये पातक होतेहैं वे वे पाप प्रद-

वाच ॥ भगवन्सर्वधर्मज्ञ गौतमार्यमुनीश्वर ॥ प्रदक्षिणस्यमाहात्म्यं ब्रूहिमेशोणभूभृतः ॥ २१ ॥ कस्मिन्कालेक थंकार्यं कैर्वापूर्वंप्रदक्षिणम् ॥ कृतंशोणाद्रिनाथस्य प्राप्तमिष्टंपरम्पदम् ॥ २२ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इतिपृष्टोमुनिःप्राह गौत मःशैलकन्यकाम् ॥ श्रूयतांदेविमाहात्म्यमादिशन्मेमहेश्वरः ॥ २३ ॥ महादेवउवाच ॥ अहंहिशोणशैलात्मा प्रख्या तोवसुधातले ॥ परितोमेसुराःसर्वे वर्तन्तेमुनिभिःसह ॥ २४ ॥ यानिकानिचपापानि जन्मान्तरकृतानिच ॥ तानिता निविनश्यन्ति प्रदक्षिणपदेपदे ॥ २५ ॥ अश्वमेधसहस्राणि वाजपेयायुतानिच ॥ सिध्यन्तिसर्वतीर्थानि प्रदक्षिण पदेपदे ॥ २६ ॥ अविग्रहीनस्यसमस्तलक्षणैः क्रियाविहीनस्यनिकृष्टजन्मनः ॥ प्रदक्षिणीकृत्यशशाङ्कशेखरं प्रयास्य तःकस्यनसिद्धिरग्रतः ॥ २७ ॥ समस्ततीर्थाभिगमेषुपुण्यं समस्तयज्ञागमधर्मजातम् ॥ अवाप्यतेशोणमहीधरस्य प्रदक्षिणाप्रक्रमणेनसत्यम् ॥ २८ ॥ पदेनैकेनभूर्लोकं द्वितीयेनान्तरिक्षकम् ॥ तृतीयेनदिवंमर्त्यो जयत्यस्यप्रद

क्षिणाके पग २ पै नाश होजाते हैं ॥ २५ ॥ हजार अश्वमेध व दशहजार वाजपेय तथा समस्त तीर्थ प्रदक्षिणाके पग २ पै सिद्धहोतेहैं ॥ २६ ॥ समस्त लक्षणोंसे हीन, कर्मोंसे रहित तथा नीच जन्मवाले किस सदाशिवजी की प्रदक्षिणाकर जाते हुये पुरुष के आगे सिद्धि नहीं होतीहै याने सबके आगे सिद्धि प्राप्त होतीहै ॥२७॥ सब तीर्थों के जाने में जो पुण्य होताहै व समस्त यज्ञों व शास्त्रोंके धर्म से उपजाहुआ जो पुण्यहै वह अरुणाचलकी प्रदक्षिणा परिक्रमामें सत्य मिलताहै ॥ २८ ॥ इस

अरुणाचल की प्रदक्षिणामें मनुष्य एक पगसे पृथ्वीलोक व दूसरे से आकाश तथा तीसरे से स्वर्गलोक को जीतलेता है ॥ २९ ॥ व एक पगसे मानसीपाप, दूसरे से वाचिक तथा तीसरे से शारीरक पाप मनुष्योंका क्षीण होजाताहै ॥३०॥ मनुष्य सब पातकोंको एकही पगसे धोडालताहै व दूसरे से सब तपस्या को इस अरुणाचलकी प्रदक्षिणा में प्राप्त होताहै॥३१॥ यहापर महर्षियों व सिद्धों के हजारों पर्णशाला (पत्तोंके घर) और देवताओं के हजारों निवासस्थान विद्यमानहैं ॥ ३२ ॥ इस अरुणाचलरूपे आगे सिद्ध शरीरवाला, देवपूजित मैं नित्यही बसताहूं और मेरे बीचमें भोगों से संयुत दिव्य गुहा ध्यान करने योग्यहै ॥ ३३ ॥ व अरुणाद्रि

क्षिणे ॥ २९ ॥ एकेनमानसंपापं द्वितीयेनतुवाचिकम् ॥ कायिकन्तुतृतीयेन पदेनक्षीयतेनृणाम् ॥ ३० ॥ पातकानिचसर्वाणि पदेनैकेनमार्जयेत ॥ द्वितीयेनतपःसर्वं प्राप्नोत्यस्यप्रदक्षिणे ॥ ३१ ॥ पर्णशालामहर्षीणां सिद्धानाञ्चसहस्रशः ॥ सुराणाञ्चतथावासा विद्यन्तेत्रसहस्रशः ॥ ३२ ॥ अत्रसिद्धवपुर्नित्यं वसाम्यग्रेसुरार्चितः ॥ ममान्तरेगुहादिव्या ध्यातव्याभोगसंयुता ॥ ३३ ॥ अग्निस्तम्भमयंरूपमरुणाद्रिरितिश्रुतम् ॥ ध्यायँल्लिङ्गंममबृहन्मन्दंकुर्यात्प्रदक्षिणाम् ॥३४॥ अष्टमूर्त्तिमयंलिङ्गमिदंमेतैजसंभृशम् ॥ ध्यात्वाप्रदक्षिणांकुर्वन् पातकानिविनिर्दहेत् ॥३५॥ नपुनःसम्भवस्तस्ययः करोतिप्रदक्षिणाम् ॥ शोणाचलाकृतेर्नित्यंनित्यत्वंसुव्रतमश्नुते ॥ ३६ ॥ अस्यपादरजस्स्पर्शात्पूयतेसकलामही ॥ पदमेकन्तुयस्तस्य शोणाद्रीशप्रदक्षिणे ॥ ३७ ॥ नमस्कुर्वन्प्रतिदिशंस्तुवन्ध्यायन्नहस्ताञ्जलिः ॥ असंस्पृष्टकरःकैश्चिन्मन्दंकुर्यात्प्रदक्षिणाम् ॥ ३८ ॥ आसन्नप्रसवानारी यथागच्छेदनाकुलम् ॥ तथाप्रदक्षिणांकुर्याद्दृष्ट

ऐसे प्रसिद्ध अग्निस्तंभमय मेरे बड़ेभारी रूपको ध्यान करताहुआ पुरुष धीरे २ प्रदक्षिणा करै ॥ ३४ ॥ यह मेरा तैजसलिंग अष्टमूर्तिमयहै इसको बहुतही ध्यानकर प्रदक्षिणा करताहुआ पुरुष पातकों को भस्म करदेता है ॥ ३५ ॥ जो पुरुष अरुणाचलकी नित्यही प्रदक्षिणा करताहै उसका फिर जन्म नहीं होताहै व निश्चय कर नित्यताको भोगताहै ॥ ३६ ॥ जो पुरुष अरुणाचलकी प्रदक्षिणामें एक पगकोभी धरता है उसके चरणकी धूलिके स्पर्श से सब पृथ्वी पवित्र होजाती है ॥ ३७ ॥ सब दिशाओं में नमस्कार व स्तुति तथा ध्यान करताहुआ हाथों को जोड़े पुरुष किसी से हाथ को न मिलाकर धीरे २ प्रदक्षिणा करै ॥ ३८ ॥ जैसे थोड़ेही दिनों

में गर्भ की उत्पत्तिवाली स्त्री आकुलतारहित (धीरे) चलती है वैसेही चरणों के शब्दको न सुनता हुआ पुरुष प्रदक्षिणा करै ॥ ३९ ॥ नहाकर पवित्र वेष व भस्म तथा रुद्राक्ष से भूषित और शिवजी के स्मरण से प्रसन्न विद्वान् धीरे २ प्रदक्षिणा करै ॥ ४० ॥ आगे चलते हुये हजारों देवताओं, मुनियों व पवनरूप वाले अन्य अदृश्य सिद्धों के ॥ ४१ ॥ संघट्ट (घिसन) संमर्द (मलन) व मार्ग की रोक को चिन्तन करता हुआ अनुकूलतापूर्वक भक्त होकर विद्वान् धीरे से चरण देवै ॥ ४२ ॥ अथवा उत्तम गीतो से सदाशिवजी के नामों को भलीभांति कीर्तनकर व शिवजी के लिये नृत्य करताहुआ विद्वान् भक्तों के साथ प्रद-

स्वंश्चपदध्वनिम् ॥ ३९ ॥ स्नातोविशुद्धवेषःसन् भस्मरुद्राक्षभूषितः ॥ शिवस्मरणसंहृष्टो मन्दंदद्यात्पदंबुधः ॥ ४० ॥ मुनीनाञ्चरतामग्रे देवानाञ्चसहस्रशः ॥ अदृश्यानाञ्चसिद्धानामन्येषांवायुरूपिणाम् ॥ ४१ ॥ संघट्टमतिसंमर्दमार्गरोधंविचिन्तयन् ॥ अनुकूलेनभक्तःसञ्छनैर्दद्यात्पदंबुधः ॥ ४२ ॥ अथवाशिवनामानि संकीर्त्यवरगीतिभिः ॥ शिवनृत्यञ्चरचयन्भक्तैः सार्द्धंपरिक्रमेत् ॥ ४३ ॥ माहात्म्यंममचशृण्वञ्चनन्यमतिरादरात् ॥ शनैःप्रदक्षिणांकुर्यादानन्दरसनिर्भरः ॥ ४४ ॥ दानैश्चविविधैःपुण्यैरुपकारैस्तथार्थिनाम् ॥ यथामतिदयापूर्ण आस्तिकःपरितोव्रजेत् ॥४५॥ कृतेत्वग्निमयंलिङ्गं त्रेतायांमणिपर्वतः ॥ द्वापरेचिन्तयेद्धैमंकलौमरकताचलम् ॥ ४६ ॥ अथवास्फाटिकंरूपमरुणाद्रेःस्वयंप्रभम् ॥ ध्यायन्विमुक्तःसकलैः पापैःशिवपुरंव्रजेत् ॥ ४७ ॥ अवाङ्मनसगम्यत्वादप्रमेयतयास्वयम् ॥ अग्नि

क्षिणा करै ॥ ४३ ॥ व सावधान बुद्धि तथा आनन्द के रससे परिपूर्ण पुरुष मेरे माहात्म्य को सुनता हुआ आदरसे धीरे २ प्रदक्षिणा करै ॥ ४४ ॥ व अनेक भाति के दानों तथा पुण्यों व याचकों के उपकारों से बुद्धि के अनुसार दया से पूर्ण, आस्तिक (वेदों व देवताओं को माननेवाला) पुरुष प्रदक्षिणा करै ॥ ४५ ॥ सतयुग में अग्निमय लिंग, त्रेता में मणिपर्वत, द्वापर मे सुवर्णाचल और कलियुग में मरकताचल को ध्यान करै ॥ ४६ ॥ अथवा आपही प्रभावान् अरुणाचल के स्फटिक रूपको ध्यान करताहुआ पुरुष समस्त पापों से छूटकर शिवपुर को जाता है॥ ४७॥ वचन व मनके अगोचर होने के कारण व अमित होने से तथा आपही

अग्निमय होने से अरुणाचल नामक लिंगको न प्राप्त होकर ॥ ४८ ॥ ध्यान कर प्रदक्षिणा करनेवाले पुरुष के मैं साक्षात् सम्मुख जाने योग्य होताहूं उसके चरणों
की धूलि मनुष्यों की वृद्धता व मृत्युको हरनेवाली होती है ॥ ४९ ॥ जो कि अरुणाचल की प्रदक्षिणा में एक पग को धरता है देवगणों के वाहन अरुणाचल की
प्रदक्षिणा करते हुये पुरुषों के चरण को लेचलने के लिये आपस में प्रार्थना करतेहैं ॥ ५०।५१ ॥ और पृथ्वी में अरुणाचल की प्रदक्षिणा करते हुये पुरुषों को कल्प-
कालिक देववृक्ष छायादान करते हैं ॥ ५२ ॥ सब ऋतुओं के फूलों से व्याप्त तथा देवताओं व गंधर्वों की हजारों कन्याओं से संयुत सैकड़ों करोड़ विमान प्राप्त होते

त्वांचपरंलिङ्गमनासाद्याचलासिध्रम् ॥ ४८ ॥ ध्यात्वाप्रदक्षिणंकर्तुरभिगम्योहमञ्जसा ॥ तस्यपादरजोनृणां जराम
रणहरकम् ॥ ४९ ॥ पदमेकंतुधत्तेयः शोणाद्रीशप्रदक्षिणे ॥ वाहनानिसुरौघाणां प्रार्थयन्तेपरस्परम् ॥ ५० ॥ कुर्वतां
चरणंवोढुमरुणाद्रिप्रदक्षिणम् ॥ ५१ ॥ छायाप्रदानंकुर्वन्तिकल्पकाद्याःसुरद्रुमाः ॥ कुर्वतामवनिमर्त्यानामरुणा
द्रिप्रदक्षिणम् ॥ ५२ ॥ देवगन्धर्वकन्यानां सहस्रेणसमावृताः ॥ सर्वर्तुकुसुमाकीर्णा विमानशतकोटयः ॥ ५३ ॥ म
मप्रदक्षिणाम्भूमौ कुर्वतांपादपांसुभिः ॥ यातत्रमहतीवीथी दृष्टाशिवपदप्रदा ॥ ५४ ॥ नगप्रदक्षिणांकुर्वन्क्षणा
त्सौम्यतनुर्भवेत ॥ ५५ ॥ प्राप्तोवज्रशरीरत्वं नपतेत्समहीतले ॥ व्योमयानोत्सुकादेवाः सिद्धाश्चपरमर्षयः । ५६ ॥
अदृश्याःसञ्चरन्त्यत्र पश्यन्तोममसन्निधिम् ॥ चिंतयन्तिचमेभक्तिं प्रदक्षिणपरिक्रमे ॥ ५७ ॥ दृष्ट्वाहर्षसमायुक्ता म
र्त्येभ्योददतेवरम् ॥ अत्रदेवास्त्रयस्त्रिंशत्पुराकृत्वाप्रदक्षिणम् ॥ ५८ ॥ प्रत्यहंप्रत्यहंमार्गमासि कोटिशताङ्गताः ॥ आ

हैं ॥ ५३ ॥ और पृथ्वी में मेरी प्रदक्षिणा करते हुये लोगों की चरणधूलियों से जो वहां बड़ाभारी मार्ग है वह देखा हुआ मार्ग शिवस्थान को देनेवाला है ॥ ५४ ॥
और अरुणाचलकी प्रदक्षिणा करता हुआ पुरुष क्षण भरमें सुन्दर शरीरवान् होजाताहै ॥ ५५ ॥ और वज्रशरीरत्व को प्राप्त वह पुरुष भूतल में नहीं गिरताहै
आकाश में वाहनों की उत्कण्ठावाले देवता, सिद्ध व उत्तम ऋषिलोग ॥ ५६ ॥ मेरी समीपता को देखते हुये अदृश्यहोकर यहां घूमते हैं व प्रदक्षिणा के गमन में
मेरी भक्तिको चिन्तन करते हैं ॥ ५७ ॥ व उसको देखकर हर्ष से संयुत मनुष्यों के लिये वर देते हैं पुरातन समय यहां पर अगहन महीने में प्रतिदिन तैंतीस देवता

प्रदक्षिणा कर करोडके स्वामी हुये हैं व पुरातन समय सूर्यादिक सब ग्रह प्रदक्षिणाकर ॥ ५८ । ५९ ॥ व पृथ्वी भाग में संभावनाकर सब ग्रहों के स्थान को प्राप्त हुये हैं पृथ्वी में जो मनुष्य रविवारको प्रदक्षिणा करताहै ॥ ६० ॥ वह मुक्त होकर सूर्यमंडलको भेदनकर शिवपुरको जाताहै और सोमवारको अरुणाचल की प्रदक्षिणा करता हुवा पुरुष ॥ ६१ ॥ अजरता, अमरता को पाकर पृथ्वी में कुरूप नहीं होताहै और मंगल दिन में अरुणाचल की प्रदक्षिणा करता हुवा पुरुष ॥ ६२ ॥ सब उऋणताको प्राप्तहोकर निश्चय कर सार्वभौम (चक्रवर्ती) राजा होताहै और बुध दिन में अरुणाचलकी प्रदक्षिणा करता हुवा पुरुष ॥ ६३ ॥ सर्वज्ञता को पाकर

दित्याद्याग्रहाःसर्वे पुराकृत्वाप्रदक्षिणाम् ॥ ५९ ॥ सम्भाव्यजगतीभागे सर्वेग्रहपदङ्गताः ॥ यःकरोतिनरोभूमौ सूर्यवारेप्रदक्षिणाम् ॥ ६० ॥ ससूर्यमण्डलंभित्त्वा मुक्तःशिवपुरंव्रजेत् ॥ सोमवारेनरःकुर्वन्नरुणाद्रिप्रदक्षिणाम् ॥ ६१ ॥ अजरामरतांप्राप्तो नासौम्योभवतिक्षितौ ॥ भौमवारेनरःकुर्वन्नरुणाद्रिप्रदक्षिणाम् ॥ ६२ ॥ आनृण्यमखिलं प्राप्य सार्वभौमोभवेद्ध्रुवम् ॥ बुधवारेनरःकुर्वञ्छोणाद्रीशप्रदक्षिणाम् ॥ ६३ ॥ सर्वज्ञत्वमनुप्राप्य स्ववाचांस्वामितामियात ॥ गुरुवारेनरःकुर्वन् सर्वदेवनमस्कृतः ॥ ६४ ॥ प्रदक्षिणेनशोणाद्रेः सतुलोकगुरुर्भवेत ॥ भृगुवारेनरःकुर्वन्नरुणाद्रिप्रदक्षिणाम् ॥ ६५ ॥ सम्प्राप्यमहतींलक्ष्मींलभतेवैष्णवंपदम् ॥ मन्दवारेनरःकृत्वा शोणाद्रीशप्रदक्षिणाम् ॥ ६६ ॥ विमुक्तोग्रहपीडाभिः सविश्वविजयीभवेत् ॥ ६७ ॥ नक्षत्राणिचसर्वाणि पुरातुदैवतैःसह ॥ ममप्रदक्षिणांकृत्वा पुण्यानिसहसाव्रजन् ॥ ६८ ॥ तिथयःकरणाश्चैव योगाश्चममसम्मताः ॥ अभीष्टफलदाजाताः कुर्व

वह वचनोंकी स्वामिता को प्राप्त होताहै व बृहस्पति दिन में प्रदक्षिणा करताहुवा पुरुष सब देवताओं से प्रणाम कियाहुवा ॥ ६४ ॥ वह अरुणाचल की प्रदक्षिणासे मनुष्योंका गुरु (शिक्षक) होताहै और शुक्रवार में अरुणाचलकी प्रदक्षिणा करताहुवा पुरुष ॥६५॥ बड़ी लक्ष्मीको प्राप्तहोकर वह विष्णुजी के स्थान को प्राप्त होता है और शनैश्चर दिनमें मनुष्य अरुणाचलकी प्रदक्षिणा कर ॥ ६६ ॥ ग्रहपीड़ाओं से छूटकर वह संसार भरको जीतनेवाला होताहै ॥ ६७ ॥ पुरातन समय देवताओं समेत सब नक्षत्र मेरी प्रदक्षिणा कर अचानकही पुण्यों को प्राप्त हुये हैं ॥ ६८ ॥ और तिथियां करण व योगादिक मेरे सम्मत होकर मेरी प्रदक्षिणा करते हुये वे

चाहे हुये फलों के दायक हुये हैं ॥ ६६ ॥ और अनेक भांतिके मुहूर्त तथा होरा मेरी प्रदक्षिणा करनेवाले जनोंके ऊपर सदैव सौम्य व शुभ तथा निरन्तर ऐश्वर्य
वाले होतेहैं ॥ ७० ॥ प्रकार पातक को काटती है व दकार मनोरथों को देनेवाली है मेरी प्रदक्षिणा कर मनुष्य समस्त पातकों से छूटजाताहै ॥ ७१ ॥ सदैव भक्ति-
पूर्वक चरणसे मेरी प्रदक्षिणा करनेवाले को क्षण भरमें त्रिलोकको प्रदक्षिणा साध्य देखता हूं ॥ ७२ ॥ लोकेश, दिक्पाल और जो अन्य कारणेश्वर हैं वे पुरातन समय
मेरी प्रदक्षिणा कर स्थिर राज्यवाले हुये हैं ॥ ७३ ॥ और समस्त देवर्षियों से संयुत व गणोंसे संयुक्त मैं उत्तरायण के संयोगमें अपनी प्रदक्षिणा करता हूं ॥ ७४ ॥

तोमत्प्रदक्षिणाम् ॥ ६९ ॥ मुहूर्त्ताविविधाहोराः सौम्याश्चसततोदयाः ॥ मत्प्रदक्षिणकर्तॄणांजायन्तेसततंशुभाः ॥ ७० ॥
प्रच्छिनत्तिप्रकारोघन्दकारोवाञ्छितप्रदः ॥ ममप्रदक्षिणांकृत्वा मुच्यतेसर्वदुष्कृतैः ॥ ७१ ॥ ममप्रदक्षिणांकर्तुर्भ
क्त्यापादेनसन्ततम् ॥ क्षणेनसाध्यंपश्यामि त्रैलोक्यस्यप्रदक्षिणाम् ॥ ७२ ॥ लोकेशाश्चदिगीशाश्च येचान्येकारणे
श्वराः ॥ ममप्रदक्षिणांकृत्वा स्थिरराज्याःपुराभवन् ॥ ७३ ॥ अहंचगणसंयुक्तः सर्वदेवर्षिसंयुतः ॥ उत्तरायणसंयोगे क
रोमिस्वप्रदक्षिणाम् ॥ ७४ ॥ मद्रूपंतैजसंलिङ्गमरुणाद्रिरितिश्रुतम् ॥ त्रैलोक्यस्यहितार्थाय करिष्यामिप्रदक्षिण
म् ॥ ७५ ॥ आगत्यद्वापरान्तेच गौरीतपइहाद्भुतम् ॥ कर्तुंप्रदक्षिणांकृत्वा मामेष्यत्यनघापुनः ॥ ७६ ॥ कार्त्तिकेमासि
नक्षत्रे कृत्तिकाख्येमहातपाः ॥ ममप्रदक्षिणांगौरी प्रदोषेरचयिष्यति ॥ ७७ ॥ नराणामल्पपुण्यानां दुर्लभंतत्प्रदक्षि
णाम् ॥ ज्योतिर्लिङ्गस्यदृष्टस्य देवीप्रार्थनयातथा ॥ ७८ ॥ मयासमेतादेवीसा प्राप्तापीतकुचाभिधा ॥ आश्वास्यातिमु

अरुणाद्रि ऐसा प्रसिद्ध मेरा रूप तैजसलिंग है त्रैलोक्य के हितके लिये मैं उस की प्रदक्षिणा करूंगा ॥ ७५ ॥ द्वापरके अन्तमें पार्वती जी यहां अद्भुत तपस्या करने
के लिये आकर व प्रदक्षिणा कर पापरहित होकर फिर मुझको प्राप्तहोंगी ॥ ७६ ॥ कार्तिक महीने में कृत्तिका नामक नक्षत्र में वह तपवाली पार्वतीजी प्रदोष (सं-
ध्या) समय में मेरी प्रदक्षिणा करेंगी ॥ ७७ ॥ थोड़ी पुण्यवाले जनों को उसकी प्रदक्षिणा दुर्लभहै और देखहुये ज्योतिर्लिंग के देवीकी प्रार्थना से ॥ ७८ ॥ मुझ-

समेत देवी अपीतकुचा नामक प्राप्तहुई वे देवी समनर देवताओं को उत्तरायण के संगम में समझावेंगी ॥ ७९ ॥ देवता, गधर्व, यक्ष, सिद्ध व राक्षसो तथा सब देवयोनियों का वहा समागम (मिलाप) होगा ॥ ८० ॥ उस समय जो पुरुष भलीभांति आकर पूजते हैं तपस्या मे अधिक वे लोग सब जन्मों में किये हुये पापसमूह के प्रायश्चित्त को प्राप्त होते है ॥ ८१ ॥ उत्तरायणके सयोग में वह दिन पुरुषों को दुर्लभहै तब मेरे रूपको पूजकर मनुष्य कृतार्थ होवैंगे ॥ ८२ ॥ और जो राजा लोग मेरी उत्तम प्रदक्षिणा करैंगे उनके आगे जाकर साक्षात् मै शत्रुओ को जीतूंगा ॥ ८३ ॥ जिस जिस देशका तपस्या में अधिक जो जो राजा होवै वह

रान्सर्वानुत्तरायणसङ्गमे ॥ ७९ ॥ देवगन्धर्वयक्षाणां सिद्धानामपिरक्षसाम् ॥ सर्वेषांदेवयोनीनाम्भविताचात्रसङ्गमः ॥ ८० ॥ येतदामांस्समागत्य पूजयन्तितपोधिकाः ॥ सर्वजन्मकृताघौघप्रायश्चित्तंव्रजन्तिते ॥ ८१ ॥ दुर्लभंतद्दिनंपुंसामु त्तरायणसङ्गमे ॥ तदामद्रूपमभ्यर्च्य कृतार्थाःसन्तुमानवाः ॥ ८२ ॥ प्रदक्षिणन्तुमेदिव्यंये कुर्वन्तिमहीभुजः ॥ तेषांपु रोगतःसाक्षादहंजेष्यामिविद्विषः ॥ ८३ ॥ यस्ययस्यतुदेशस्य योयोराजातपोधिकः ॥ सकारयेद्द्विप्रमुख्यैः श्रोत्रियै र्मेप्रदक्षिणम् ॥ ८४ ॥ समग्रमण्डलार्थंवासंकल्पविधिपूर्वकम् ॥ तस्यतस्यस्थिरंराज्यं शत्रूणाञ्चपराहतिम् ॥ ८५ ॥ करिष्यामिमुनेसत्यमहमेवपुरःस्थितः ॥ नवाहनेनकुर्वीतममजातुप्रदक्षिणम् ॥ ८६ ॥ धर्मलुब्धमनाजानञ्छिवाचा रपरिप्लवम् ॥ धर्मकेतुःपुराराजा यमलोकादुपागतः ॥ ८७ ॥ ममप्रदक्षिणांकर्तुं तुरगेणसमन्वितः ॥ क्षणेनतुरगोजा तो गणनाथःसुरार्चितः ॥ ८८ ॥ प्रतिपेदेपदंशैवं विमुच्यधरणीपतिम् ॥ वीक्ष्यतंवाहनंभूयो गणनाथवपुर्द्धरम् ॥ ८९ ॥

वेदज्ञाता मुख्य ब्राह्मणों से मेरी प्रदक्षिणा करावै ॥ ८४ ॥ समस्त मण्डलके लिये या संकल्प की विधिपूर्वक उस उसकी स्थिर राज्य व शत्रुवोंका नाश ॥ ८५ ॥ मै ही आगे स्थित होकर करूंगा हे मुने ! यह सत्य है और धर्म में लोभी मनवाला शिवाचार के उत्पात को जानताहुवा नर वाहन (सवारी) के द्वारा कदाचित मेरी प्रदक्षिणा न करै पुरातन समय यमलोक से आये हुये धर्मकेतु नामक राजा ने ॥ ८६ । ८७ ॥ घोडे से संयुत होकर मेरी प्रदक्षिणा करनेके लिय इच्छा किया क्षण भरमे वह घोडा देवताओं से पूजित होकर गणों का स्वामी होगया ॥ ८८ ॥ और राजाको छोड़कर शिवजी के स्थानको प्राप्तहुवा राजा गणनाथ के शरीरधारी

उस वाहन (अश्व) को देखकर ॥ ८९ ॥ चरणों से प्रदक्षिणा कर आपभी गणों का स्वामी हुआ तब से लगाकर विष्णु समेत इन्द्रादिक देवता ॥ ९० ॥ सब चरणों
ही से मेरी प्रदक्षिणा करते हैं तपस्या के नाश से स्वर्ग से गिराया हुआ कोई सिद्ध ॥ ९१ ॥ प्रदक्षिणा करनेवाले पुरुषको देखकर फिर वह स्थानको प्राप्त हुआहै
महर्षे ! मेरी प्रदक्षिणा करनेवाले उस पुरुष के चरणों उपजाहुआ रज देवेन्द्र याने इन्द्र जीके मस्तकमें प्राप्त मन्दार पुष्पके केसरोंसे शुद्ध कियाजाताहै प्रदक्षिणाका
महाभाग पार्वती हीं जी से सिद्ध कियागया है ॥ ९२ । ९३ ॥ मेरी प्रदक्षिणाकरके मनुष्य मणिपर्वत के शिखरों तथा कल्पवृक्ष वन के बीचमें सदैव भलीभांति

**पादप्रदक्षिणांकृत्वा स्वयञ्चगणपोभवत ॥ तदाप्रभृतिशक्राद्याः सुराविष्णुसमन्विताः ॥ ९० ॥ पादाभ्यामेवकुर्वन्ति
ममसर्वेप्रदक्षिणाम् ॥ स्वर्गान्निपातितःकोपि सिद्धःकालेतपःक्षयात ॥ ९१ ॥ प्रदक्षिणकरंवीक्ष्य पुनर्लब्धपदोभवत ।
महर्षेपादजंरक्तं ममकर्तुःप्रदक्षिणाम् ॥ ९२ ॥ मार्ज्यतेतस्यदेवेन्द्रमौलिमन्दारकेसरैः ॥ प्रदक्षिणमहावीर्याशिवयैवत्रो
पपादिता ॥ ९३ ॥ मणिपर्वतशृङ्गेषु कल्पद्रुमवनान्तरे ॥ संचरन्तिसदामर्त्या ममकृत्वाप्रदक्षिणाम् ॥ ९४ ॥ गौर्युवाच ॥
उपचारप्रवृत्तानां फलम्मेशंससुव्रत ॥ जनोयैश्चकृतार्थःस्याद्यथाशक्तिकृतादरः ॥ ९५ ॥ मुनिरुवाच ॥ लूतिका
तन्तुजालानि संसृज्यकश्चिदेवर्द्धि ॥ जातिस्मरोमहीपस्सन्मुक्तःसर्वैश्चपातकैः ॥ ९६ ॥ उपचारफलंदेवि शृणुवक्ष्याम
हेतव ॥ यन्मह्यंकृपयापूर्वमुक्तवान्परमेश्वरः ॥ ९७ ॥ गजःकश्चित्तृषाक्रान्तो विमुच्यचासून्क्वचित् ॥ वनपल्लवमु
त्कीर्य मुक्तोभूद्गणनायकः ॥ ९८ ॥ कृमयोपिलुठन्तोमेपार्श्वेदुरितवर्जिताः ॥ सिद्धवेषाःपुनःसर्वे ममलोकंप्रजन्ति**

घूमते हैं ॥ ९४ ॥ पार्वती जी बोलीं कि हे सुव्रत गौतमजी ! उपचार में प्रवृत्त जनों के फलको कहिये कि जिनसे शक्तिके अनुकूल आदर कियाहुवा पुरुष कृतार्थ
होताहै ॥ ९५ ॥ किसी समय मकरी तन्तुजालोंको रचकर जातिका स्मरण करनेवाला राजा होकर समस्त पापों से छूटगयाहै ॥ ९६ ॥ हे देवि ! उपचार-(पूजन)
केफल को मुनिश्रे मैं तुम से कहूंगा जोकि पुरातन समय सदाशिवजीने दया से मुझ से कहा है ॥ ९७ ॥ कि प्यास से संयुत कोई हाथी किसी समय वन के पत्ते
को फेंककर व शरीर को छोड़कर मुक्त हो गणनायक हुआ ॥ ९८ ॥ मेरे समीप लोटते हुये भी कीड़े पापोंसे रहित होकर फिर वे सिद्धरूप होकर मेरे लोकको

जाते हैं ॥ ९९ ॥ और अभिन्न दीपक की ज्वाला को जो क्षण भर भी धरता है वह आपही प्रकाश होने से मेरी सारूप्यको भोगताहै ॥ १०० ॥ और शाखामें नीड (घोंसला) वाला कोई हारीत पक्षी भी भलीभांति मेरे समीप प्राप्त हुवाहै और खद्योत (जुगुनू) वहा पर दीपक की नाई प्रकाशकर जीताहुवा मुक्तिको प्राप्त हुवा है ॥ १ ॥ और गाइया बछडों के स्मरण से उपजे हुये दूधके प्रवाहों से सीच कर वे मेरे समीप मुक्ति को पाती भई और मेरे लोकमें आश्रित ॥२॥हुई और बलि के ग्रहण में चञ्चल कौवा ने पंखों से उपजे हुये पवनसे मेरे अग्रभाग को बहारता हुवा क्षण भर में श्रेष्ठ मुक्तिको पायाहै ॥ ३ ॥ और मूशने मेरी कन्दरा के भाग में

ते ॥ ९९ ॥ अविच्छिन्नप्रदीपार्चिः क्षणमप्यादधातियः ॥ स्वयंप्रकाशसम्भावान्ममसारूप्यमश्नुते ॥ १०० ॥ हारीतः कोपिसम्प्राप्तः शाखानीडोममान्तिके ॥ खद्योतोदीपवत्तत्र जीवन्मुक्तिसमागतः ॥ १ ॥ गावःप्रस्रवणैःसिक्ता वत्सस्मरणसम्भवैः ॥ मत्पार्श्वमुक्तिमापुस्ता ममलोकंसमाश्रयन् ॥ २ ॥ काकःपक्षजवातेन बलिग्रहणलोलुपः ॥ मार्जयन्मत्पुरोभागं मुक्तिम्प्रापपरांक्षणात् ॥ ३ ॥ मूषकोमद्गुहाभागे मणिसङ्घविकर्षणैः ॥ प्रकाशाद्वीततिमिरो ममरूपमपद्यत ॥ ४ ॥ छायावृक्षत्वमास्थातुं मुनयस्त्रिदशाअपि ॥ प्रार्थयन्त्येवमत्पार्श्वेनपुनःसम्भवेच्छया ॥ ५॥ गोपुरंशिखरंसालं मण्डपंवापिकामपि ॥ कुर्वतांमत्पुरोभागे सिद्ध्यन्तीष्टार्थसम्पदः ॥ ६ ॥ सदामर्त्यैरनासाद्यमग्निलिङ्गमिदंमम ॥ अनासाद्याचलेशाख्यं पूज्यतांवसुधातले ॥ ७ ॥ वीक्षणस्पर्शनध्यानैः स्वभूतंनिखिलंजगत् ॥ पोषयन्तीपराशक्तिः पूज्यापीतकुचाभिधा ॥ ८ ॥ सर्वलोकैकजननी संप्राप्तानित्ययौवनम् ॥ कन्यैवमुनिभिःसेव्या सैवापीतकुचा

मणिगणों के खींचने से प्रकाश होने के कारण अन्धकारहीन होकर मेरे रूप को पाया है ॥ ४ ॥ मुनि व देवतालोग भी फिर न जन्म होने की इच्छा से मेरे समीप वृक्षों की छाया में टिकने के लिये प्रार्थना करते हैं ॥ ५ ॥ पुरद्वार, शिखर, प्राकार, मंडप व बावली को भी मेरे समीप निर्माण करते हुये लोगो की प्रियार्थक सम्पदा सिद्ध होती हैं ॥ ६ ॥ यह मेरा अग्निमय लिंग मनुष्योंमे सदैव समीप जाने योग्य नहीं है इसलिये समीप न जाने योग्य अरुणाचल नामक लिंग पृथ्वीतल में पूजा जावे ॥ ७ ॥ और दर्शन, स्पर्शन व ध्यान से अपना से उपजेहुये समस्त संसार को पोषण करती हुई अपीतकुचानामक उत्तम शक्ति पूजने योग्य है ॥८॥

जोकि सब लोकों की एक माता नित्यही यौवन को प्राप्त है और वह अपीतकुचा नामक कन्याही मुनियों से सेवने योग्य है ॥ ९ ॥ यहां इस अरुणाचल के अग्रभाग पै सदैव बसतेहुये प्राणियों के पुत्र, स्त्री, धन इत्यादिक सब वस्तु वर्तमान होती है ॥ १० ॥ अमित गुणों के आधार व चाहे हुये वरों को देनेवाले तथा समस्त सुखों के स्थान अरुणाचलजी को भलीभांति पूजिये ॥ ११ ॥ हे सुव्रते ! फिर कामनाको पाये हुई तुम सदाशिवजी के आश्रित होगी और तुम्हारा यह तप करना भी संसारके हितको देनेवालाहै ॥ १२ ॥ तुम्हारा तप केवल अपने मनोरथ के फल को देनेवाला नहीहै किन्तु तपस्या करते हुये ऋषियोंके कल्याणकी प्राप्ति

भिधा ॥ ९ ॥ नित्यमस्यपुरोभागे वसतांप्राणिनामिह ॥ पुत्रस्त्रीधनमित्यादि सर्ववस्तुचविद्यते ॥ १० ॥ अप्रमेयगुणाधारमपेक्षितवरप्रदम् ॥ अशेषभोगनिलयं शोणाद्रीशंसमर्चय ॥ ११ ॥ लब्धकामापुनःशम्भुमाश्रयिष्यसिसुव्रते ॥ तपश्चरणमप्येतत्सर्वलोकहितावहम् ॥ १२ ॥ नकेवलंतवतपः स्ववाञ्छितफलप्रदम् ॥ तपस्यतांऋषीणाञ्च क्षेमप्राप्त्यैभविष्यति॥ १३ ॥ कारणान्तरमाशङ्क्यतपःकुर्वन्तिदेवताः ॥ रहस्यंदेवतानान्तु फलेनैवानुमीयते ॥ १४ ॥ अहञ्चसहसंवासात्तवचात्रनिरीक्षणात् ॥ कृतार्थःस्यांमहादेवि तपसात्वंकृतार्थय ॥ १५ ॥ इतितस्यमुनेर्वाक्यमर्थगम्भीरंनिशम्यसा ॥ गौरीकौतुकसंयुक्ता प्रशशंसमहामुनिम् ॥ १६ ॥ तपःकिमन्यत्कर्त्तव्यं लब्धंतवतुदर्शनम् ॥ अरुणाद्रिरयंदृष्टः श्रुतंमाहात्म्यमस्यच ॥ १७ ॥ अहोभूमिरस्तुवैचित्री परदृष्टादिबोधिका ॥ यत्रदैवतैजसंलिङ्गं देवतानांवरप्र

के लिये होगा ॥१३॥ देवता लोग अन्यकारणकी आशंकाकर तपस्याकरतेहैं और देवताओं का रहस्य (गुप्तचरित) फल में नहीं अनुमान कियाजाताहै॥ १४ ॥ हे महादेवि ! मैं तुम्हारे साथ बसने व यहां तुम्हारे देखने से कृतार्थहूंगा इस लिये तुम तपस्या से कृतार्थ करो ॥ १५ ॥ इसप्रकार उन गौतमजी के अर्थगर्भवाले वचन को सुनकर आश्चर्य से संयुत उन पार्वती जी ने महामुनि की प्रशंसा किया ॥१६॥ कि अन्य क्या तप करना चाहिये क्योंकि तुम्हारा दर्शन मिला व यह अरुणाचल देखागया। और इसका माहात्म्य सुनागया ॥ १७ ॥ अहो पराई देखी हुई आदि वस्तुओं को बोध करनेवाली भूमि विचित्र है कि जिसमें देवताओं को वरदायक यह

तैजरा लिंग है ॥ १८ ॥ शिवजी की प्रसन्नताकी सिद्धिके लिये मुझको अपना स्थान दिखलायागया यहीं पर मैं सदाशिवजी को आराधकर संसारके गुरु सदाशिवजी को वश करूंगी ॥ १९ ॥ और रक्षा करनेवाले सदाशिव देवजी से मेरी सदैव एकता होवै यहां पर किये हुये तपसे मैं शिवजी की स्त्री हूंगी ॥ २० ॥ इसप्रकार गौतम जी के समीप उस समय आदर से तप करने के लिये उन पार्वती जी ने प्रतिज्ञा किया और वैसाही होवै इसभाति गौतम मुनिसे भक्तिपूर्वक सम्मति को प्राप्तहुई उन पार्वती जीने सुन्दरी पर्णशालाको भजा ॥ २१ ॥ सुकुमार शरीरवाली व कमलनयनी तथा घन (कठोर) व उन्नत स्तनों पै दुपट्टे को धरे, जटाओंको धारे उत्तम

दम् ॥ १८ ॥ शिवप्रसादसिद्ध्यैमे दर्शितंस्थानमात्मनः ॥ अत्रैवशिवमाराध्य वशीकुर्याज्जगद्गुरुम्॥ १९ ॥ अविता भूतमैक्यंमे देवेनभवतात्सदा ॥ तपसात्रकृतेनाहं भवेयंशिवनायका ॥२०॥ इतिगौतमसन्निधौतदानीं सासंवित्तपआद रेणकर्तुम् ॥ अभजद्रुचिराञ्चपर्णशालां मुनिनाचानुमतातथेतिभक्त्या ॥ २१ ॥ सुकुमारतनुःसरोरुहाक्षी घनतुङ्गस्तन कलितोत्तरीया ॥ जटिलावरनीलरत्नकान्तिः कर्तुंसातपऐच्छदेवबाला ॥ २२ ॥ नियमैर्बहुभिस्तपोविशेषैः क्रतुभुप्राप्त विभिन्नयोगबन्धैः ॥ निगमागमदृष्टधर्ममार्गं सकलंसातुकृतार्थमाप्तुमैषीत् ॥ २३ ॥ तपसाविविधेनतप्यमाना नकदा चित्परिखेदमापतन्वी ॥ हरिरत्नमयीवकापिवल्ली नितरान्दीप्तिमतीबभूवबाला ॥ १२४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽरुणा चलमाहात्म्येनवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

नील रत्नके समान शोभावाली उन पार्वती जी ने तपस्या करने की इच्छा किया ॥ २२ ॥ बहुत नियमों तथा तपभेदों व यज्ञों में प्राप्त भिन्न योग बन्धनों से वेदों व शास्त्रों में देखे हुये सब धर्ममार्ग को कृतार्थतापूर्वक उसने पाने की इच्छा किया ॥ २३ ॥ अनेक भांतिके तपसे तपती हुई उन सूक्ष्म अंगोंवाली पार्वतीजी ने कभी खेद को न पाया और हरित रत्नमयी कोई वल्लीकी नाईं पार्वती जी अत्यन्तही प्रकाशित हुई ॥ १२४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽरुणाचलखण्डेदेवीदयालुमिश्रवि रचितायांभाषाटीकायांनवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

दोहा । महिषासुरको उमासन युद्ध भयो विकराल । सोई दशम अध्याय में वर्णित चरित रसाल ॥ ब्रह्माजी बोले कि इसके अनन्तर महिषासुरसे पीडित वि-
कल देवता पृथ्वी में जाकर तप करती हुई पार्वतीजी को प्रणाम कर शरण में गये ॥ १ ॥ व यह बोले कि हे देवि ! भय से विकल व प्रणाम किये हुये हम
लोगोंको अभय दीजिये देवताओं को देखकर उन देवी ने यह कहा कि क्या कार्य है ॥ २ ॥ तदनन्तर इन्द्र आदिक देवताओं ने हाथों को जोड़कर दैत्येन्द्र महिषा-
सुरसे अपनी भयको देवीजी से कहा ॥ ३ ॥ कि हे देवि ! बल व तपस्यासे संयुत तथा धर्मको तोड़नेवाला महिषासुर नामक बडाभारी दैत्य तीनों लोकोंको पीडित

ब्रह्मोवाच ॥ अथदेवामहीङ्गत्वा महिषासुरपीडिताः ॥ नत्वागौरींतपस्यन्तीं जग्मुःशरणमाकुलाः ॥ १ ॥ आनता
श्चाभयंदेहि देवीतिभयविह्वलान् ॥ अमरान्वीक्ष्यसादेवी किंकार्यमितिचाभ्यधात ॥ २ ॥ ततोविज्ञापयामासुर्दैत्ये
न्द्राद्भयमात्मनाम् ॥ देव्यैबद्धाञ्जलिपुटा देवाइन्द्रपुरोगमाः ॥ ३ ॥ महिषाख्योमहादैत्यो बलेनतपसान्वितः ॥ बाधते
देविलोकांस्त्रीन्वेदधर्मविभेदकः ॥ ४ ॥ देवान्सर्वान्विनिर्धूय देवलोकान्मदाधिकः ॥ अप्सरोभिःपरिवृतः सुखंक्रीड
तिनन्दने ॥५॥ ऐरावतमुखान्सर्वान् दिङ्नागान्निजमन्दिरे ॥ आवासयन्विनोदार्थमङ्गनाभिःसहागतान् ॥ ६॥ उच्चैःश्र
वःपुरोगानामश्वानांद्वीपजन्मनाम् ॥ मन्दिराण्यस्यरम्याणिदृश्यन्तेलक्षकोटयः ॥ ७ ॥ हुताशवाहनंमेषंपुत्रारोहार्थ
मीप्सति ॥ याम्यंमहिषमानीय शकटेचाभ्यवाहयत ॥ ८ ॥ निधीनाकृष्यसकलान् गृहालंकृतयेदिशत ॥ अप्सरःसङ्घ

करता है ॥ ४ ॥ अधिक गर्ववाला वह महिषासुर समस्त देवताओं को सुरलोक से भगाकर अप्सराओंसे संयुत होकर नन्दनवन में सुखपूर्वक क्रीडा करता है ॥ ५ ॥
और उसने स्त्रियों समेत आये हुये ऐरावत इत्यादिक सब दिग्गजों को क्रीडाके लिये अपने मन्दिरमें बसायाहै ॥ ६ ॥ और द्वीपों में पैदाहुये उच्चैःश्रवा इत्यादिक
लाखों व करोडों घोड़ इसके सुन्दर मन्दिरों मे देखपड़ते हैं ॥ ७ ॥ व अग्नि के वाहन मेष (भेडा) को पुत्रको चढ़ने के लिये चाहता है और यमराज के भैंसे को
लाकर उसने गाडीमें प्राप्त कियाहै ॥ ८ ॥ और सब निधियों को खींचकर घरके अलंकार के लिये आज्ञा दियाहै और अपनी सेवा के लिये अप्सराओंके गणों

लायाहै ॥ ९ ॥ व और भी जो कुछ वस्तु त्रिलोकमें रत्नभूत याने सर्वोत्तम है उसके ले आनेपर भी वह क्रोधित महिषासुर विश्रामको नहीं प्राप्त होताहै ॥ १० ॥ और नित्यही डरसे संयुत उसकी आज्ञाको पालतेहुये हम लोग सेवक युक्त होकर अन्यगतिको नही देखते है ॥ ११ ॥ शरणागत की रक्षा करना तपस्या का फल कहागया है और यह उत्तम दैत्य समस्त बलियों को भी दुर्जय है ॥ १२ ॥ व शिवजी से प्राप्त वरके ऐश्वर्यवाला यह दैत्य देवताओं व दैत्यों को भी दुर्जयहै इसके सींगसे ताड़ित समुद्र तिमिंगिलनामक मछली से रहित होगया ॥ १३ ॥ और रत्नरूपी भेंटके दानसे नित्य उसकी प्रीति चाहताहै व बड़ा गर्ववान् वह महिषासुर

मखिलमात्मसेवार्थमानयत् ॥ ९ ॥ अन्यत्किमपियद्वस्तुरत्नभूतंजगत्त्रये ॥ अप्याहृतेपुनस्तस्मिन्नविश्राम्यतिकोप वान् ॥ १० ॥ वयञ्चसेवकायुक्ता नित्यम्भीतिसमन्विताः ॥ पूजयन्तश्चतस्याज्ञां नान्यांवीक्ष्यामहेगतिम् ॥ ११ ॥ शर णागतसन्त्राणं तपःफलमुदाहृतम् ॥ दुर्जयोयंवरोदैत्यः सर्वेषांबलिनामपि ॥ १२ ॥ सुराणामपिदैत्यानां शिवाल्लब्ध वरोदयः ॥ अस्यशृङ्गाहतःसिन्धुर्व्यावर्जिततिमिङ्गिलः ॥ १३ ॥ रत्नोपहारदानेन नित्यंतत्प्रीतिमिच्छति ॥ पर्व तांश्चसमुत्क्षिप्य शृङ्गाग्रेणमहोद्धतः ॥ १४ ॥ क्रीडतिच्चोदिताशेषधातुधूलिविलेपनैः ॥ नशक्यमतुलंतस्य बलंव क्तुंदुरासदम् ॥ १५ ॥ स्वयमेवविजानीहि हत्वात्वंनिजतेजसा ॥ शम्भुशक्तिःपरासेयं स्त्रीरूपेणात्रदृश्यते ॥ १६ ॥ मा ययैवनिहन्तव्यो दैत्योलब्धवरोदयः ॥ नजानीमोवयंकिञ्चिदतः शम्भुविचेष्टितम् ॥ १७ ॥ केवलंपालनीयाःस्मो जग न्मात्रासदात्वया ॥ इतितेषांभयार्तानामाकर्ण्यवचनंशुभम् ॥ १८ ॥ व्याजहारप्रसन्नात्मा देवीदत्ताभयातदा ॥ शर

सींगके अग्रभाग से पर्वतों को ऊपर फेंककर ॥ १४ ॥ टूटी फूटी हुई सब धातुवों की धूलिके लेपनसे क्रीडा करताहै उसका असह्य व अमित बल कहा नहीं जासक्ता है ॥ १५ ॥ तुम अपने तेजसे मारकर आपही जानोगी वह शिवजी की यह उत्तम शक्तिहै जोकि यहां स्त्रीके रूपसे देखपडती है ॥ १६ ॥ वरके ऐश्वर्य को पाय हुय वह दैत्य मायाही से मारन योग्य है इसलिये हम लोग कुछ सदाशिवजीकी इच्छा को नही जानते हैं ॥ १७ ॥ केवल आप जगदम्बिका मे हम लोग सदैव पालने के योग्य हैं डरसे दुःखित उन देवताओं के इसप्रकार वचन को सुनकर ॥ १८ ॥ उस समय अभयको देकर प्रसन्नचित्तवाली देवीजी ने कहा कि तपस्यामे स्थित

मुझको शरणागत की रक्षा ॥ १६ ॥ करना चाहिये हे देवताओ! समय से शत्रु क्षीण होगा यत्नसे खींचकर उस महादैत्यको मारूंगी ॥ २० ॥ आज उस निरपराधी
का मारना मुझको योग्य नहीं है हे सब देवताओ! पहले की नाईं मानसी पीडारहित होकर जाओ ॥ २१ ॥ धर्मको नाश करनेवाले पुरुष धर्मकी अग्नि में पाखी
की नाईं प्राप्त होते हैं उन भगवती जीके वचन को सुनकर देवता लोग गिरिराजकुमारी को प्रणामकर ॥ २२ ॥ सब निर्भय व प्रसन्नचित्त होकर जिसप्रकार
आये थे उसीभांति चलेगये उन देवताओं के चले जानेपर कमलनयनी पार्वतीजी ॥ २३ ॥ शोभासंयुत व कृशोदरी होकर मोहनी शक्ति होगईं और उन देवी ने

णागतसन्त्राणं तपसिस्थितयामया ॥ १९ ॥ कर्त्तव्यममराःकालात् क्षीणःशत्रुर्भविष्यति ॥ उपायेनसमाकृष्य ह
निष्यामिमहासुरम् ॥ २० ॥ निरागसस्तुहननमद्यमेनहियुज्यते ॥ प्रयातदेवाःसकला यथापूर्वंगताध्ययः ॥ २१ ॥ धर्मा
ग्नौधर्मभेत्तारः शलभत्वंव्रजन्तिहि ॥ देवास्तद्वचनंश्रुत्वाप्रणम्यगिरिकन्यकाम् ॥ २२ ॥ जग्मुर्यथागतंसर्वे निर्भया
हृष्टचेतसः ॥ गतेषुतेषुदेवेषु गौरीकमललोचना ॥ २३ ॥ बभूवमोहनीशक्तिः कान्तियुक्ताकृशोदरी ॥ सादेवीदिक्षुशै
लेषु चतुष्कोणेषुभूभृतः ॥ २४ ॥ रक्षार्थंस्थापितवती चतुरोवटुकांश्चरान् ॥ यदाकैलासशिखरादागताशैलकन्य
का ॥ २५ ॥ अन्वगच्छन्नुसेवमानाश्चतस्रोमातरस्तदा ॥ दुन्दुभिः सत्यवत्याख्या तथाचान्नवतीतिच ॥ २६ ॥ सुन्दरी
तिचतस्रस्तु मातरःपरिचारिकाः ॥ विमुच्यत्वतिथिंश्रान्तंक्षुत्पिपासासमन्वितम् ॥ २७ ॥ अरुणाद्रिमिमन्द्रष्टुं नान्य
मित्यब्रवीच्चतान् ॥ सोमाशैलस्थितान्वीरांस्तानादिश्यबलाधिकान् ॥ २८ ॥ तपश्चचारसाकन्या गौतमाश्रमसन्नि

अरुणाचल के चारों कोनों में पर्वतोंपै चारों दिशाओं में ॥ २४ ॥ रक्षाके लिये चार वटुक चरों (भेदिहा दूतों) को स्थापित किया जब कैलासके शिखरसे गिरिराज-
कुमारी पार्वती जी आई थीं ॥ २५ ॥ तब सेवा करती हुई चार मातायें इनके पीछे आई थीं दुंदुभि, सत्यवती नामक व अन्नवती ॥ २६ ॥ सुन्दरी ये चार मातृका
सेवकी थीं क्षुधा प्यास से संयुत व थके हुये अतिथिको छोड़कर ॥ २७ ॥ इस अरुणाचल को देखने के लिये अन्य पुरुष को न आने दीजियेगा यह उनसे उन
पार्वती जीने कहा व उन अधिक बलवाले पर्वत पै टिकेहुये वीरोंको आज्ञा देकर ॥ २८ ॥ उन कन्या पार्वतीजी ने गौतम मुनि के आश्रम के समीप तपस्या

किया व उन सूक्ष्मांगी पार्वतीजी के तप करने पर कोई दुःख नहीं हुवा ॥ २६ ॥ समय में मेघ बरसे व वृक्ष फलों समेत हुये और प्राणी लोगों ने वैर व पहले के मत्सर (ईर्षा) को छोड दिया ॥ ३० ॥ दो योजन पर्यन्त भयदायक आश्रम सब प्राणियोंके शरण के योग्य हुवा और सीमा (हद) वाले पर्वतों पै टिके हुये ॥ ३१ ॥ चारों बटुक वीरोंसे अरुणाचल रक्षित हुवा ॥ ३२ ॥ वहा पर रोगों की पीड़ा व मानसी व्यथाकी बढ़ती न हुई पर्वतकी कन्या पार्वती जी को प्रशंसा करते हुये सब मुनि कृतार्थ होकर ॥ ३३ ॥ कल्याणदायक व सेवा के योग्य तथा देखने योग्य आश्रम स्थान को आये और दिन रात शिवप्रसन्नकारक व

धौ ॥ तस्यान्तपन्त्यांतन्वङ्ग्यान्नतापःकश्चिदुद्बवौ ॥ २९ ॥ ववर्षकालेजलदः सफलाश्चाभवन्द्रुमाः ॥ विरोधानिचसत्त्वानि मुमुचुःपूर्वमत्सरम् ॥ ३० ॥ आश्रमःसर्वजन्तूनां शरण्योभूद्भयावहः ॥ योजनद्वयपर्यन्तं सीमाशैलेषुसंस्थितैः ॥ ३१ ॥ चतुर्भिर्वटुकैःशूरैरक्षितश्चारुणाचलः ॥ ३२ ॥ नव्याधिपीडनञ्चासीत्तत्रनाधिविजृम्भणम् ॥ कृतार्थामुनयःसर्वे प्रशंसन्तोनगात्मजाम् ॥ ३३ ॥ शिवंलोक्यंपदंसेव्यमागताश्चतथाश्रमम् ॥ साचगौरीतपोघोरं कुर्वतीचदिवानिशम् ॥ ३४ ॥ नतृप्तिमाययौबाला शिवसन्तोषकारकम् ॥ महिषश्चमहावीर्यो मृगयांकर्तुमुद्यतः ॥ ३५ ॥ चचार काननंसर्वं विदूरेशोणभूभृतः ॥ दैत्यसैन्यसमायुक्तो मृगयूथान्यनेकशः ॥ वनेषुनिघ्नंस्तरसा विचचाराशुभक्षयन् ॥ ३६ ॥ धन्विभिर्बलिभिर्वीरैर्मृगाःकेचिदनुद्रुताः ॥ भयार्ताःपरिधावन्तः प्राविशंस्तेतदाश्रमम् ॥ ३७ ॥ अनुव्रजन्तोदितिजा मृगांस्तान्हन्तुमुद्यताः ॥ वारितावटुकैर्वीरैर्माहतात्रेतिसत्वरैः ॥ ३८ ॥ किमत्रेतितदापृष्टा वटुकादुष्टदान

भयंकर तपस्या करती हुई वे बाला पार्वतीजी तृप्ति को न प्राप्त हुई और महाबलवान् महिषासुर शिकार खेलने के लिये उद्यतहुवा ॥ ३४ । ३५ ॥ और अरुणाचल के समीप दैत्यों की सेना से संयुत महिषासुर सब वनमे घूमताभया व अनेक मृगगणों को बलसे मारता व खाताहुवा वह वनोंमें भ्रमता भया ॥३६ ॥ धनुष धारेहुये बलवान् वीरों से भगाये हुये कोई मृग भयसे विकल होकर दौडते हुये वे उसके आश्रम में पैठ गये ॥ ३७ ॥ और उन मृगों को मारने के लिये उद्यत व पीछे जाते हुये दैत्य वीरों को शीघ्रतासंयुत बटुक वीरों ने मनाकिया कि यहा पर मत मारिये ॥ ३८ ॥ उस समय यहा क्या है इसप्रकार दुष्ट दानवोंसे पूछे हुये बटुकोंने

यह कहा कि यहा पर उत्तम मध्यभाग (कटि) वाली कन्या साक्षात् पार्वतीजी तप करती हैं ॥ ३९ ॥ इससे किसी बलवान् को मुनियों से सेवित व शरणागत रक्षक इस देवी के तपस्थान में न पैठना चाहिये ॥ ४० ॥ इसप्रकार उनके वचनको सुनकर बलवान् दुष्ट दानवों ने बहुत अच्छा ऐसा कहकर लौटकर करने योग्य कार्य को चिन्तन किया ॥ ४१ ॥ और माया से पक्षीरूपवाले वे दानव आदर से आश्रम में पैठकर यहा पर बगीचों के वृक्षों व शाखाओं में बैठगये ॥ ४२ ॥ उस समय मायारूपधारी दैत्यकी सेनावाले लोगोंने फिर समस्त ऋतुवोंके फूलों से संयुत उस वन में तप करतीहुई उन शोभित देवीजी को देखा ॥ ४३ ॥ रूपकी

वैः ॥ तपस्यन्तीवरारोहा कन्यात्रेत्याहुरञ्जसा ॥३९॥ नकेनचित्प्रवेष्टव्यं बलिनामुनिसेवितम् ॥ तपःस्थानमिदंदेव्याः शरणागतरक्षकम् ॥ ४०॥ इतितेषांवचःश्रुत्वा बलिनोदुष्टदानवाः ॥ तथेतिविनिवृत्याशु कर्त्तव्यंसमचिन्तयन् ॥४१॥ माययापक्षिरूपास्ते प्रविश्याश्रममादरात् ॥ आरामवृक्षशाखासु निषेदुरिहदानवाः ॥४२॥ सापुनर्लासिनारण्ये सर्वर्तु कुसुमान्विते ॥ तपस्यन्तीतदादृष्टा मायादैत्यस्यसैनिकैः ॥४३॥ रूपलावण्ययुक्तायानिश्चयंतपसिस्थितम् ॥ वीक्ष्यते विस्मयोपेता गत्वातस्मैन्यवेदयन् ॥४४॥ अरुणाद्रिस्थितःसोपि स्त्रीरत्नमितिशुश्रुवान् ॥ माययावृद्धवेषोभून्महिषस्त ज्जिघृक्षया ॥ ४५ ॥ निवृत्यसैनिकान्सर्वानध्वश्रान्तिसमन्वितः ॥ तदाश्रमपदंसोथ प्रविवेशदुराशयः ॥ ४६ ॥ पूजि तस्तत्सखीभिश्च गतश्रान्तिरिवस्थितः ॥ वृद्धोपृच्छत्किमर्थन्तु तपोस्याइतितास्तथा ॥ ४७ ॥ सख्यऊचुः ॥ वलका

सुन्दरता से संयुत उन पार्वतीजी की तपस्यामें स्थित निश्चयको देखकर विस्मयसे संयुत उन्होंने जाकर उस महिषासुरके लिये निवेदन किया ॥ ४४ ॥ और अ-रुणाचल पै टिके हुये उसने भी यह सुना कि स्त्रियों में श्रेष्ठ वह स्त्री है उसके ग्रहण करने की इच्छा से महिषासुर मायासे वृद्ध के वेषवाला होगया॥ ४५ ॥ इसके अनन्तर मार्ग के परिश्रमसे संयुत वह महिषासुर सब सेनावाले दैत्यों को लौटाकर दुष्ट आशासे उस आश्रम स्थान में पैठगया ॥ ४६ ॥ और उनकी सखियों से पू-जित वह परिश्रमरहित की नाईं स्थितहुवा और उन सखियों से उस वृद्ध वेषवाले महिषासुर ने पूंछा कि इसका तप किस प्रयोजनके लिये है ॥ ४७ ॥ सखिया बोलीं

कि बल, शोभा व प्रसन्नताके लिये पार्वतीजी यहा बहुत दिनोंसे तप करती है और अपूर्व देखेहुये ऐश्वर्यवाले पुरुषोंसे इसका स्वयंवर करने योग्य है ॥ ४८ ॥ इस प्रकार उन सखियों का वचन सुनकर हँसते हुये महिषासुर ने कहा कि इसकी तपस्याका फल मैं प्राप्तहूं यह सत्य स्थित है ॥ ४९ ॥ हे तपस्विनि, बाले ! मेरे सब ऐश्वर्य को सुनिये कि दैत्यों का स्वामी व देवताओं से वन्दित मैं महाशूर महिषासुरहूं ॥ ५० ॥ और यह सब त्रिलोक मुझही से ग्रहण कियाजाता है व अन्य वीर की नाईं नहीं उत्तम भाववाला व समस्त ऐश्वर्यों से संयुत ॥ ५१ ॥ मैं समय में इच्छा के अनुकूल रूपधारी हूं व सब रोगोंका दायकहूं इससे तपस्या के फलको

न्तिप्रसादार्थं चिरमत्रतपस्यति ॥ अपूर्वदृष्टविभवैःकार्योस्यास्तुस्वयंवरः ॥ ४८ ॥ इतितासांवचःश्रुत्वा विहसन्नसुरो ऽभ्यधात् ॥ तपःफलमहंप्राप्तः सत्यमस्याइतिस्थितम् ॥ ४९ ॥ मदीयांसकलाम्भूतिं शृणुबालेतपस्विनि ॥ महिषोहंम हावीरो दैत्येन्द्रःसुरवन्दितः ॥ ५० ॥ जगत्त्रयमिदंसर्वं मयैवपरिगृह्यते ॥ अनन्यवीरसद्भावः सर्वसम्पत्समन्वितः ॥ ५१ ॥ कामरूपधरश्चाहंकाले सर्वरोगप्रदायकः ॥ भजमान्त्वञ्चभर्त्तारं भाजिनंतपसःफलम् ॥ ५२ ॥ सर्वंसम्पाद यिष्यामि कल्पवृक्षैःसमाहृतैः ॥ सृजामितपसाचाहं विश्वकर्माणमेवच ॥ ५३ ॥ कामधेनुसहस्राणि चिन्तामणिशता निच ॥ कल्पारामसहस्राणि सृजामितपसाक्षणात् ॥ ५४ नवभिर्निधिभिःप्राप्तैः पार्श्वस्थैस्तैर्दिवानिशम् ॥ ॥ अपेक्षि तार्थसंसिद्धिःसहसैवोपपाद्यते ॥५५॥ इतितस्यवचःश्रुत्वा स्मृतदेववचःक्रमात् ॥ विसृज्यमौनंशनकैर्विहसन्तीतमब्रवी त् ॥ ५६ ॥ अहंबलवतोभार्या भवितुञ्चतपश्चिरम् ॥ करोमियद्यसिबली बलंदर्शयमेनिजम् ॥ ५७ ॥ विरुद्धंस्त्रीस्वभाव

भजनेवाले मुझ पतिको तुम भजो ॥ ५२ ॥ मैं लायेहुये कल्पवृक्षोंमे सब सिद्ध करूंगा और तपस्या से मैं विश्वकर्मा को रचताहूं ॥ ५३ ॥ व तपस्या से मैं क्षण भर में हज़ारों कामधेनु व सैकड़ो चिन्तामणि तथा हजारों कल्पवृक्ष के बगीचों को रचताहूं ॥ ५४ ॥ और समीपमें टिकीहुई उन प्राप्त नव निधियों से अहर्निश (दिन रात) चाहे हुये प्रयोजन की सिद्धि अचानकही सिद्धकीजाती है ॥ ५५ ॥ उसके इस वचन को सुनकर स्मरण किये देववचनों के क्रमवाली पार्वती जी मौन को छोड़कर धीरेसे हँसती हुई उससे बोलीं ॥ ५६ ॥ कि मैं बलवान् पुरुषकी स्त्रीहोनेके लिये बहुत दिनों से तप करती हूं यदि बलीहो तो मुझको अपने बलको

दिखलाइये ॥ ५७ ॥ स्त्रीस्वभाव के विरुद्ध उस कहेहुये वचन को सुनकर महिषासुर बड़े खेदकी बात है यह कौन है ऐसा कहकर क्रोध से गरजा ॥ ५८ ॥ पक-
ड़नेकी इच्छावाले उस आतेहुये महिषासुर को देखकर अग्निके समान आकारवाली वे कन्या दुर्गाजी दुरासद (समीप न जाने योग्य) होगईं ॥ ५९ ॥ आगे स्थित
जलती हुई महामाया को देखकर आप भी महिषासुर सुमेरुगिरिकी नाईं बढ़ा ॥ ६० ॥ व सीगों से कुलाचल के शृंगों को बार २ फेंकते हुये उसने दिगन्तरों में
पठाई हुई अपनी सेना को बुलाया ॥६३॥ इसके अनन्तर ब्रह्मादिक देवताओं ने प्रणामकर कालाग्निरूपवाली दुर्गाजी को अपने अनेक अस्त्रोंसे पूजन किया ॥६२॥

स्य श्रुत्वातद्वाक्यमुत्थितम् ॥ हन्तकेयमितिक्रोधान्ननर्दमहिषासुरः ॥ ५८ ॥ जिघृक्षन्तंसमायान्तं वीक्ष्यतम्महिषा
सुरम् । अभूद्दुरासदादुर्गा कन्यासाज्वलनाकृतिः ॥ ५९ ॥ महामायांसमालोक्य ज्वलन्तींपुरतःस्थिताम् ॥ स्वयंच
महिषाकारो वद्दृधेमेरुसन्निभः ॥ ६० ॥ कुलभूधरशृङ्गाणिशृङ्गाभ्यामुहुराक्षिपत् ॥ आजुहावनिजांसेनां संप्रेरितांदिग
न्तराम् ॥ ६१ ॥ अथब्रह्ममुखादेवाः प्रणम्यविविधायुधैः ॥ पूजयामासुरात्मीयैर्दुर्गांकालाग्निरूपिणीम् ॥ ६२ ॥ पञ्च
हेतिर्हरिःप्रादाद्दशचापिसदाशिवः ॥ ब्रह्माचतस्रश्चतदातस्यैमायातिरोहितः ॥ ६३ ॥ दिक्पालाश्चसुराश्चान्ये पर्वता
श्चपयोधयः ॥ स्वीयैराभरणैःशस्त्रैरदृश्यास्तामपूजयन् ॥ ६४ ॥ मायासाबहुभिर्हस्तैर्ज्वलदायुधसञ्चयैः ॥ आबद्धक
वचाचापि दुर्गाभूत्सिंहवाहना ॥ ६५ ॥ आपूरितदिशाभागं तेजस्तस्सोढुमक्षमम् ॥ दुर्गायाघोरमालोक्य महिषस्तुप
लायितः ॥ ६६ ॥ अथतेजोनिजंघोरं प्रज्वलत्सोढुमक्षमम् ॥ पलायमानमालोक्य महिषंसाऽभ्यचिन्तयत् ॥ ६७ ॥ उ

विष्णुने पाँच शस्त्रों को दिया व सदाशिवजी ने भी दश अस्त्रों को दिया और उस समय मायासे छिपे हुये ब्रह्माने उनके लिये चार अस्त्रों को दिया ॥ ६३ ॥ व
दिक्पाल तथा अन्य देवता व पर्वत और समुद्र अदृश्य होकर अपने आभूषणों व शस्त्रों से उन भगवतीका पूजन किया ॥ ६४ ॥ और जलतेहुये शस्त्रसमूहोंवाले
बहुत हाथों से उपलक्षित वे माया दुर्गाजी कवच को बाधकर सिंहके वाहनवाली हुईं ॥ ६५ ॥ पूर्ण कियेहुये दिशाओंके भागवाले दुर्गाजी के उस भयंकर व असह्य
तेज को देखकर सहने के लिये असमर्थ महिषासुर भागगया ॥ ६६ ॥ इसके अनन्तर जलते हुये अपने भयंकर तेजको सहने के लिये असमर्थ उस महिषासुर

को भागते हुये देखकर उस भगवती ने चिन्तन किया ॥ ६७ ॥ कि यह दुष्ट महिषासुर यत्नसे मारने योग्य है क्योंकि बहेलिया लोग कोमलतापूर्वक वनमें मृगों
को बांधते हैं ॥ ६८ ॥ धर्म में बर्तावबाली दूतसे कही हुई अपनी वाणियों से इसको खींचकर व इसके क्रोधको उत्पन्न कराकर क्षणभर में सामना करूंगी ॥ ६९ ॥
अधर्म के आचरण से संयुत पुरुषों के धर्मका वचन सुनने से अपने जीवके नाशका हेतु क्रोध तुरन्तही होजाताहै ॥ ७० ॥ अथवा धर्मबुद्धिवाला होकर यदि शान्त
होवेगा तो हितोपदेश से धर्मका लोप न होगा ॥ ७१ ॥ फलार्थी तपस्वियों को सदैव क्रोध त्यागना चाहिये और धर्मकी हानि नहीं सहने योग्य है इससे क्रोधही

पायेननिहन्तव्यो दुष्टोयंमहिषासुरः ॥ मृदुपूर्वंनिबध्यन्तेमृगामृगयुभिर्वने ॥ ६८ ॥ दूतोक्तिभिःसमाकृष्य स्ववाग्भि
धर्मवृत्तिभिः ॥ कोपमस्यसमुद्भाव्य करिष्येभिमुखंक्षणात् ॥ ६९ ॥ अधर्मवृत्तियुक्तानां धर्मवाक्यपरिश्रवात् ॥ कोपः
समुद्भवेत्सद्यः स्वजीवक्षयकारणम् ॥ ७० ॥ अथवाधर्मबुद्धिस्सन् यदिशान्तोभविष्यति ॥ तदाहितोपदेशेन धर्मलो
पोनसंभवेत् ॥ ७१ ॥ तपस्विभिःसदाकार्यः कोपत्यागःफलार्थिभिः ॥ धर्महानिर्नसोढव्या तत्कोपोहितपःपरम् ॥७२॥
इतिसञ्चिन्त्यसागौरी नाम्नासुरगुरुंमुनिम्॥ आहूयवानरमुखम्प्राहिणोदसुरम्प्रति ॥ ७३ ॥ गच्छत्वंमाययायुक्तो महि
षंवानरानन ॥ महिषंबोधयित्वाच वचनैःशीघ्रमाव्रज ॥ ७४ ॥ मैवन्त्वमरुणाद्रीशमुपपीडयदुर्मते ॥ अत्रदुर्मनसांवी
र्यमदृश्यंभवतिक्षणात् ॥ ७५ ॥ नकलेरुपतापोत्र नासुरैरपिपीडनम् ॥ नसाहसंचशुभदं शिवभक्तिमतामपि ॥ ७६ ॥
पूर्वजन्मकृतैःपुण्यैर्लब्धवीर्यमहोदयः ॥ मात्वंशोणाचलेशाग्नौ शलभत्वंभजासुर ॥ ७७ ॥ शिवेनदत्ताविभवास्त-

उत्तम तप है ॥७२॥ ऐसा भलीभांति चिन्तन कर उन पार्वतीजी ने वानरमुखवाले सुरगुरु नामक मुनिको बुलाकर दैत्य के समीप पठाया ॥ ७३ ॥ कि हे वानरमुख !
मायासे संयुत तुम महिषासुर के समीप जावो और महिषासुर को वचनों से बोध कराकर शीघ्र आवो ॥ ७४ ॥ कि हे दुर्बुद्धे ! तुम अरुणाचल को इसप्रकार मत
पीडित करो क्योंकि यहां पर दुष्ट मनवाले जनोंका वीर्य क्षणभरमें अन्तर्द्धान होजाताहै ॥ ७५ ॥ यहां पर कलियुग का संताप व दैत्यों से पीडा नहीं होती है
और शिवभक्तिवाले जनों का भी साहस शुभदायक नहीं होता है॥ ७६ ॥ हे दैत्य ! पूर्वजन्म में किये हुये पुण्यों से पाये हुये बल व बडे भारी ऐश्वर्यवाले तुम अरुणा-

चलेशकी अग्निमें शलभताको मत भजो ॥ ७७ ॥ पुरातन समय तपोबलसे शिवजीने तुमको ऐश्वर्य दिया है ॥ ७८ ॥ यहां पर शिवभक्तिवाले धर्मात्माओं का सदा निवास रहता है और पीडासे निवृत्तजनों के रोगका नाश होताहै ॥ ७९ ॥ अन्य से असह्य अमित बल व ऐश्वर्य को पाकर किस लिये अल्पबुद्धि होतेहुये तुम अपने दोषों से नाशको प्राप्तहोगे ॥ ८० ॥ मैं कन्या देखीगई जो फिर कि विशेषतासे अबला (बलहीन) मानी गईहै और भीतर प्राप्त जो अरुणाचलेश हैं वे तुमको मारेंगे ॥ ८१ ॥ अथवा युक्ति के भेदोंसे व शिवसंमत शास्त्रों से निग्रह (दंड) के न योग्य मनवाले तुम अपनी सेनाको लावो ॥ ८२ ॥ बलसे गर्वित तुम जिस

वपूर्वंतपोबलात् ॥ ७८ ॥ अत्रधर्मात्मनांवासः शिवभक्तिमतांसदा ॥ परिपीडानिवृत्तानां भवेद्रोगस्यसंक्षयम् ॥ ७९ ॥
ऐश्वर्यमतुलंप्राप्य बलमन्यदुरासदम् ॥ किमर्थमल्पबुद्धिःसन् स्वदोषैर्नाशमेष्यसि ॥ ८० ॥ अहंकन्यापुनर्दृष्टा विशे
षादबलामता ॥ अन्तर्गतोरुणाद्रीशः सएवत्वांहनिष्यति ॥८१॥ अथवायुक्तिभेदैस्त्वं शास्त्रैर्वाशिवसम्मतैः॥ अनिग्राह्यम
नोवृत्तिरात्मसैन्यंसमानय ॥ ८२ ॥ येनलोकान्समस्तांस्त्वंबाधसेबलगर्वितः ॥ तत्सैन्यंतपसासर्वं क्षणाद्धक्ष्यामिते
जसा ॥ ८३ ॥ आनीयसकलंसैन्यंसमग्रस्थापयमायुधम् ॥ सद्यःस्वात्मबलैःसृष्टैः संहरिष्यामितत्क्षणात् ॥ ८४ ॥ स
स्त्रपरिकृतस्य ससैन्यस्यतवायुषः ॥ व्यक्तिरत्रैवभविता कोजानातिशिवेहितम् ॥ ८५ ॥ वार्यमाणोपिपूर्वेण कर्मणाप्रे
रितोजनः ॥ अवश्यंकर्मकुरुते भुङ्क्तेचसदृशंफलम् ॥८६॥ तथापिकुरुवाक्यंत्वं वक्तव्यंकिलसूरिभिः॥अकार्याद्विनिवृ
त्यर्थं नित्यधर्मानुपालनैः ॥ ८७ ॥ इतिगौर्यासमादिष्टांवाचंकपिमुखोमुनिः ॥ इतःमनुःसमाचष्ट महिषस्याग्रतःस्थि

से सब लोकों को पीडित करतेहो उस सब सेनाको मैं क्षणभर में तपस्या व तेजसे जलादूंगी ॥ ८३ ॥ सब अस्त्रों समेत सेनाको लाकर आगे स्थापित करिये मैं शीघ्र ही रचीहुई अपनी सेनाओंसे उसी क्षण उसको संहार करूंगी ॥ ८४ ॥ मेरे शस्त्रों से कटीहुई सेना समेत तुम्हारे आयुर्बल की यहां पर प्रकटता होगी और शिवजी की चेष्टा को कौन जानता है ॥ ८५ ॥ पूर्वकर्मसे प्रेरणा किया मना किया जाताहुआ भी मनुष्य अवश्यही कर्म करताहै व उसीके सदृश फलको भोगताहै ॥ ८६ ॥ तो भी तुम अकार्यसे निवृत्ति के लिये नित्य धर्मपालक विद्वानोंसे कहने योग्य वचन को करिये ॥ ८७ ॥ पार्वतीजी से आज्ञा दीहुई इस वाक्य को कपिमुख मुनि

ने दूतहोकर महिषासुरके आगे स्थित होकर सब कहा ॥ ८८ ॥ और उस सबको भलीभांति सुनकर क्रोधके वेगसे विकल उस महिषासुर ने उसको खाने के लिये इच्छाकिया और मायाके बल से वह भी चलागया ॥ ८९ ॥ इसके अनन्तर दुष्ट आशयवाले महिषासुर ने लोकको भयंकर व अस्त्रों समेत तथा सजीहुई अपनी उस सब सेनाको बुलाकर युद्धके लिये आज्ञादिया ॥ ९० ॥ युगान्त में सीमा को छोडकर चारो समुद्रो के समान दैत्यों की अमित सेनाने अरुणाचलको घेरलिया ॥ ९१ ॥ इसके अनन्तर दैत्यों की अद्भुत सेनाको देखकर पार्वतीजी ने तैजस शूरों व बहुत से विकराल भूतगणों को पैदा किया ॥ ९२ ॥ जोकि एक चरण एक

तः ॥ ८८ ॥ सोपिसर्वंसमाकर्ण्य क्रोधवेगसमाकुलः ॥ तंभक्षयितुमारेभे सोपिमायाबलाद्ययौ ॥ ८९ ॥ अथसैन्यंनिजंसर्वं तदाहूयदुराशयः ॥ सन्नद्धंसायुधंयोद्धुमादिशल्लोकभीषणम् ॥ ९० ॥ युगान्तसमयोद्वेलचतुर्जलधिसन्निभम् ॥ दैत्यानांसैन्यमतुलं शोणाद्रिंपर्यवेष्टयत ॥ ९१ ॥ अथगौरीसमालोक्य दैत्यानांसैन्यमद्भुतम् ॥ ससर्जतैजसाञ्छूरान् घोरान्भूतगणान्बहून् ॥ ९२ ॥ एकपादाश्चिश्रवणालम्बकर्णशिरोधराः ॥ पाणिपादशिरःकुक्षिवक्राःकेचिद्विनिर्गताः ॥ ९३ ॥ अहंग्रसामिसकलमपर्याप्तमिदंमम ॥ अहमेवहनिष्यामि दैत्यसैन्यमशेषतः ॥ ९४ ॥ किंत्वयात्रपुनःकार्यं वीक्ष्यत्वंतिष्ठकेवलम् ॥ अहमेवात्रयोत्स्यामीत्यभाषन्तपरस्परम् ॥ ९५ ॥ तेषांकथयतामेवं गणानांयोगिनीगणैः ॥ आदिशत्सा भगवती निहन्तुंदैत्यमण्डलम् ॥ ९६ ॥ आलोक्यतांतथारूपामायान्तींतस्यसैनिकाः ॥ दर्शयन्तःस्ववीर्याणि स्वामिनोऽग्रेघृतायुधाः ॥ ९७ ॥ ववृषुःशस्त्रवर्षाणि दैत्याःप्रतिदिगन्तरम् ॥ बाणैःकार्मुकनिर्मुक्तैस्त

लोचन व एक कर्णवाले तथा लंबे कान व ग्रीवावाले व कोई टेढे हाथ, पांव, मस्तक व कुक्षि (कोखि) वाले निकले हैं ॥ ९३ ॥ मैं सब को खाजाऊंगा और यह सेना मुझको पूर्ण नहीं है व मैं ही सब असुरसेनाको नाश करूंगा ॥ ९४ ॥ फिर तुमको यहां क्या करना चाहिये केवल देखकर तुम खडेरहो मैं ही इसमें युद्ध करूंगा इस प्रकार से आपस में कहते थे ॥ ९५ ॥ इसप्रकार कहते हुये उन गणों को योगिनीगणों से घिरीहुई उन भगवती ने दैत्यमण्डल को मारने के लिये आज्ञादिया ॥ ९६ ॥ वैसे रूपवाली उन आती हुई सेना को देखकर अस्त्रों को धारे व स्वामीके आगे अपने पराक्रम को दिखाते हुये उस महिषासुर की सेनावाले दैत्यों

ने ॥ ६७ ॥ दिगन्तरों के सामने शस्त्रवृष्टिको बरसाया और उन भगवती ने धनुष से छूटेहुये बाणों से उन अस्त्रों को निवारण किया ॥ ६८ ॥ दुर्गाजीसे रचे
हुये भूत वेतालों के भेदवाले वीरों ने लाखों करोड़ व रथ, हाथी व घोड़ों समेत युद्धकिया॥ ६६ ॥ अनेक भांति के आकारवाली माता डाकिनी व योगिनी के गणों को
रचा फिर तैजस पिशाच,प्रेत व राक्षसोंको रचा ॥१००॥ देवीजीसे रचीहुई दुर्जय सेना से बड़े भारी दैत्य क्षणभर में भक्षित हुये व पीस डाले गये व दोखंड किये गये व
फाड़ डाले गये तथा मारे गये ॥ १ ॥ व समस्त दैत्योंने जलतीहुई व अस्त्रों समेत देवीजी को देखा जो कि मांससे भलीभांति प्रसन्न कराये हुये भक्त भूतगणों से घिरी

निसातुन्यवारयत् ॥ ९८ ॥ रथानांवारणेन्द्राणां हयानांलक्षकोटिभिः ॥ युयुधुर्भूतवेतालभेदाःसृष्टास्तुदुर्गया ॥ ९९ ॥
मातरोविविधाकारा डाकिन्योयोगिनीगणाः ॥ सृष्टाश्चतैजसाभूयः पिशाचाःप्रेतराक्षसाः ॥ १०० ॥ देव्यासृष्टेनसै
न्येनदुर्जयेनमहासुराः ॥ भक्षिताश्चूर्णिताभिन्ना दारितानिहताःक्षणात् ॥ १ ॥ देवींचसायुधांदृष्ट्वा ज्वलन्तीनिखि
लासुरैः ॥ वृताभूतगणैर्भक्तैर्मांसैश्चैवसुतोषितैः ॥ २ ॥ यदाकैलासशिखरात् प्राप्ताकर्तुंतपोवनम् ॥ तदासमागताःका
श्चिन्मातृकाइहगुप्तये ॥३॥ दुन्दुभिःसत्यवत्याख्या तथाचान्नवतीपुरा ॥ सुन्दरीतिचतस्रस्तामन्वयुःपरिचारिकाः ॥ ४ ॥
देव्यासृष्टाचचामुण्डा दंष्ट्रावलयभीषणा ॥ दैत्यमज्जावसामांसं रक्तंपीत्वाचचारसा ॥ ५ ॥ असुरंकञ्चिदाक्रम्य
शूलाग्रेणातिभीषणम् ॥ स्फुरन्तमधितिष्ठन्ती ननर्तहसितैर्भृशम् ॥ ६ ॥ हतदैत्यशरीरमुण्डखण्डप्रतिबद्धातिनवा

थीं ॥२॥ जब कैलासके शिखरसे तपस्या करने के लिये भगवती वनको प्राप्तहुई थीं तब यहां रक्षा करनेके लिये कोई मातृका भलीभांति आईथीं ॥३॥ पुरातनसमय दुंदुभि
व सत्यव्रती नामक तथा अन्नवती, सुंदरी ये चार दासियां इनके पीछे आईथी ॥४॥ व देवीजी से रचीहुई दाढ़ोंकी पंक्तियोंसे भयंकर वे चामुण्डाजी दैत्यों की मज्जा, वसा
मांस व रक्त को पीकर घूमतीथीं ॥ ५ ॥ और त्रिशूलके अग्रभाग से अत्यन्त भयंकर व फरकते हुये किसी दैत्य को आक्रमण कर ऊपर सवार हुई व बहुत हास्यपूर्वक
नाचने लगीं ॥ ६ ॥ मारे हुये दैत्यों के शरीर व मुण्डके खण्डों से बँधेहुये अत्यन्त नवीन अंगभूषणोंवाले तथा भयंकर योगिनियों के नृत्य ने महिषासुर की क्रोधाग्नि

को जलाया ॥ ७ ॥ अत्यन्त तीक्ष्ण व फैलाये हुये चंचल नेत्रोंवाला और जलतीहुई अग्निकी ज्वाला के समान लम्बी जिह्वा के चलाने से घाव संयुत गुहा के समान नासिकावाला महिषासुर चलते हुये सींगों के अग्रभागसे मेघसमूहों को फाड़ रहाथा ॥ ८ ॥ व बाग्बार खुरों की चोट से भूमि को फाड़ते हुये उसने धूलियों से दिगतों को आच्छादित किया व बहुतही घर्घर बडेभारी भयंकर शब्दसे फूटते हुये अण्डकटाहके भ्रमसे सुरसमूहों को मोहित करदिया ॥ ९ ॥ कंपित पूछ के दण्ड से अरुणाचल के सामने शस्त्रवृष्टि के समूह को ताड़ित करताहुआ वह सेना समेत शीघ्रही सिंह पै बैठी हुई दीप्तिमती दुर्गाजी के सामने गया ॥ ११० ॥

ङ्गभूषणम् ॥ नटनंविकटन्तुयोगिनीनां ज्वलयामासलुलायकोपवह्निम् ॥ ७ ॥ अतितीव्रविवृत्ततीक्ष्णनेत्रश्चलशृङ्गाग्र विभिन्नमेघजालः ॥ ज्वलदग्निशिखाभदीर्घजिह्वापरिलीढक्षतगह्वराभघोणः ॥ ८ ॥ अवनींदलयन्खुराभिघातैरस कृत्पांशुभिरास्तृणद्दिगन्तान् ॥ अतिघर्घरदीर्घघोरनादस्फुटदण्डभ्रममोहितामरौघः ॥ ९ ॥ धुतबालधिदण्डता ड्यमानप्रतिशोणाचलशस्त्रवर्षसङ्घः ॥ द्रुतमभ्यगमद्बलेनसार्द्धंमृगराजस्थितभासुरांभवानीम् ॥ ११० ॥ इति श्रीस्क न्दपुराणेऽरुणाचलमाहात्म्येदशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ब्रह्मोवाच ॥ सतुसिंहस्थितांगौरीं ज्वलन्तींविविधायुधाम् ॥ शैलवर्षेणमहताकुपितःसमपूरयत् ॥ १ ॥ शरवर्षेणमहता तन्निवार्याविदूरतः ॥ बिभेदानिशितैःशस्त्रैर्महिषस्यतुविग्रहम् ॥ २ ॥ भिद्यमानोपिदैत्येन्द्रः शैलस्थूलवपुर्धरः ॥ विषा

इति श्रीस्कन्दपुराणेऽरुणाचलखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांमहिषासुरदेवीयुद्धवर्णननामदशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । जिमि महिषासुर दैत्य को हन्यो पारवति देवि। गेरहवें अध्याय में सोइ कथा सुखसेवि ॥ ब्रह्माजी बोले कि क्रोधित होकर उस महिषासुर ने अनेक भांति के अस्त्रोंवाली व जलती हुई तथा सिंहपै स्थित पार्वतीजी को बड़ीभारी पर्वतों की वृष्टिसे पूर्ण करदिया ॥ १ ॥ और भगवती ने अपने बाणोंकी बड़ी भारी वृष्टि से उस शैलवृष्टिको दूरही से वारण कर पैने बाणों से महिषासुर के शरीरको भेदन किया ॥ २ ॥ भेदन कियाजाता हुआ भी पर्वत के समान मोटे शरीर को धारण किये व

युद्ध में दुर्मद महिषासुर कुछ विषाद को न प्राप्तहुआ किन्तु बढ़ता भया ॥ ३ ॥ तलवार, चक्र व बाणवृष्टि, त्रिशूल तथा अन्य अस्त्रों से काटा जाता हुआ वह अन्त-
र्धान को प्राप्तहुआ ॥ ४ ॥ तदनन्तर प्रचण्ड शब्द मुखवाला, भयंकर, तीखीदाढ़ोंवाला व पैने नखोंवाला सिंहाकार महिषासुर सिंह सब ओर घूमनेलगा ॥ ५ ॥
देवी जी के सिंहने समरमें दैत्यको चपेटे से मारा व उस दैत्यरूपी सिंहके वक्षस्थल को नखों से फाड़डाला ॥ ६ ॥ इसके अनन्तर खुले व फैलाये हुये बड़ेभारीमुख-
वाला बड़ाभारी दैत्य व्याघ्रता को प्राप्त हुआ व बलसे उन देवीजी को मारने की इच्छा करते हुये दैत्यने वेगसे हाथ को चलाया ॥ ७ ॥ बड़ी लम्बी नील

दन्नागमत्किञ्चिद्ववृधेयुद्धदुर्मदः ॥ ३ ॥ भिद्यमानःसखड्गेनचक्रेणशरवृष्टिभिः ॥ शूलेनचायुधैश्चान्यैरन्तर्द्धानमगाद
तः ॥ ४ ॥ ततःसिंहाकृतिर्भीमः प्रचण्डनिनदाननः ॥ तीक्ष्णदंष्ट्रःशितनखः परिबभ्रामकेसरी ॥ ५ ॥ देवीसिंहोरणे
दैत्यं ताडयामासपाणिना ॥ दैत्यसिंहस्यचनखैस्तस्यवक्षोऽप्यदारयत् ॥ ६ ॥ अथव्याघ्रतयाप्राप्तस्फुटव्यात्ताननो
महान् ॥ तांवधिष्यन्बलाद्देवीं वेगेनकरमाक्षिपत ॥ ७ ॥ दीर्घाभिर्नीलरेखाभिः पूर्णपिङ्गलविग्रहः॥रोमावलिभिरासी
त्सस्वर्णाद्रिरिवसञ्चरन् ॥ ८ ॥ आगच्छन्तंरयाद्देवीभल्लेनशशिवर्चसा ॥ प्रतिजग्राहतंव्याघ्रं पुरत्रयमिवेश्वरः ॥ ९ ॥
सबाणस्तन्मुखेमग्नस्तद्रक्तेनसमुक्षितः ॥ जगामगगनंभित्त्वा दैत्यंशीघ्रमुपागतः ॥ १० ॥ सदैत्योवारणेन्द्रस्य रूपं
कृत्वासमभ्यगात ॥ बलिभिःपशुभिर्भिन्नैस्तस्याःप्रीतिमिवादधे ॥ ११ ॥ तंगजेन्द्रंसमायान्तं मदाक्लिन्नमहीत
लम् ॥ देवीसिंहस्तदादृष्ट्वा ननर्दचजघानच ॥ १२ ॥ अथखड्गधरोवीरश्चर्मपाणिःसमुद्धतः ॥ वक्त्रंदधानोबभ्रामदं-

रेखाओं से पूरित पिंगल शरीरवाला वह चलताहुआ रोमपंक्तियों से सुवर्णाचलकी नाईं शोभित हुआ ॥ ८ ॥ वेग से आतेहुये उस व्याघ्रको देवीजीने चन्द्रमा के समान
तेजवाले बाणसे मारा जैसे कि सदाशिवजीने त्रिपुर को विनाश कियाहै ॥ ९ ॥ उसके मुख में डूबाहुआ वह बाण उसके रक्तसे भीगकर आकाशको चलागया और
दैत्य को विदीर्णकर शीघ्रही आगया ॥ १० ॥ और वह दैत्य हाथीका रूपकर सामने प्राप्तहुआ उसने मानो कटेहुये बलिवाले पशुओंसे उन भगवती की प्रीति किया ॥ ११ ॥
मदसे पृथ्वी को भिगोते आते हुये उस गजेन्द्र को देखकर देवीजीका सिंह उस समय गरजा व उसने मारा ॥ १२ ॥ इसके अनन्तर तलवारको धारे व दाढ़ों

तथा भौहों से भयानक मुख को धारण किये हुये ढाल को हाथ में लिये वह गर्वित वीर घूमने लगा ॥ १३ ॥ और कमल, तलवार,ढाल व चक्र से शोभित हाथवाली देवी ने उस वीरसे युद्धकिया व टूटे हुये शिरवाला वह वीर मरगया ॥ १४ ॥ और फिर बड़ी मायासे भैंसे के रूप में स्थित होकर पहले की नाईं विकल वह महिषासुर दैत्य देवीजी से युद्ध करने के लिये प्रवृत्तहुआ ॥ १५ ॥ इसके अनन्तर देवताओं व मुनीश्वरों से प्रेरित गौतम मुनिने स्तुतियों से जगदम्बिकाजीको प्रबोधकरनेके लिये प्रारंभ किया ॥ १६ ॥ कि समस्त ससार की उत्तम प्राणशक्ति तुममें मानी गई है व ज्ञानशक्ति, क्रियाशक्ति व बलशक्ति तुम से प्राप्त होती है ॥ १७ ॥ यह

ष्ट्राभ्रुकुटिभीषणम् ॥१३॥ देवीचजलजंखड्गचर्मचक्रलसत्करा ॥ युयोधतेनवीरेणभग्नशीर्षोऽव्यपद्यत ॥१४॥ भूयःसमा हिषरूपमास्थायगुरुमायया ॥ देव्यायोद्धुंप्रवृत्तश्च यथापूर्वंसमाकुलः ॥ १५ ॥ अथदेवैर्मुनीन्द्रैश्च चोदितोगौतमोमु निः ॥ प्रबोधयितुमारेभे स्तुतिभिर्जगदम्बिकाम् ॥ १६ ॥ त्वयिसर्वस्यजगतः प्राणशक्तिःपरामता॥ज्ञानशक्तिःक्रिया शक्तिर्बलशक्तिश्चगम्यते ॥ १७ ॥ किमेतदधमःपापो युद्धमारभतेत्वया ॥ उपसंह्रियतामेष दैत्योभुवनगुप्तये ॥ १८ ॥ भिन्नानामस्यदेहानामुपसंहरणात्तव ॥ बलयश्चोपदिश्यन्ते निगमोक्तावरप्रदाः ॥ १९ ॥ अन्यथातृणकल्पस्य श त्रोरस्यनिबर्हणे ॥ कलानिवर्धतोदेवि बिभर्तिसंभ्रमंजगत ॥ २० ॥ स्वशक्तिमुपतिष्ठन्ती समाकर्षयत्वंरिपोः ॥ प्राण शक्तिंत्रिशूलेन गुणत्रयवपुर्भृता ॥ २१ ॥ इतिस्मबोधितातेन पुराभगवतीतदा ॥ महिषासुरमाक्रम्य त्रिशूलेनाभ्यदा रयत् ॥२२॥ अनेकगिरिसंकाशं दधौविग्रहमात्मनः॥ अशक्नोन्नधारयितुं ससादमहिषासुरः ॥ २३ ॥ निष्पिष्टोविल

क्याहै कि जो नीच व पापी यह महिषासुर तुमसे युद्धका प्रारंभ करताहै संसार की रक्षाके लिये इस दैत्य को संहार कीजिये ॥ १८ ॥ इसकी कटीहुई देहों के संहार से वेदोक्त व वरदायक बलियां तुमको उपदेश कीजाती हैं ॥ १९ ॥ अन्यथा हे देवि ! कलाओं को बढ़ाते हुये इस तिनुका के समान शत्रुके मारने में संसार संभ्रम को धारण करता है ॥ २० ॥ अपनी शक्ति में स्थित होतीहुई त्रिगुण शरीर को धारे हुई तुम त्रिशूलसे शत्रुकी प्राणशक्ति को खींचो ॥ २१ ॥ उस समय पहले उन गौतम जी से इस प्रकार बोध कराई हुई भगवती ने महिषासुर को आक्रमण कर त्रिशूल से फाड़डाला ॥ २२ ॥ व अनेक पर्वतों के समान अपने शरीर को धारण किया

उसको धारण करने के लिये वह महिषासुर समर्थ न हुआ और मरगया ॥ २३ ॥ चरणों से दबा व पिसा हुआ असुरेश महिषासुर विलाप करता व वि-
फरकताहुआ शिरको उठाकर निकलने के लिये न समर्थ हुआ ॥२४॥ भूत, वेताल व राक्षसोंसे त्रिशूल करके भिन्न मुख व अंगोंवाला वह महिषासुर रक्तके धारा
समुद्र की नाईं होगया ॥ २५ ॥ इसके अनन्तर महिषासुर को मारनेवाली उसके शिरपै बैठीहुई भगवती ने पैनी तलवार से बड़ेभारी शिरको काटडाला व नृ-
किया ॥२६॥ और सिद्ध, गंधर्व व महर्षिलोगों ने दुर्गाजीकी प्रशंसा किया व सब ओर देवताओं से छोड़ीहुई बड़ी पुष्पवृष्टिहुई ॥२७॥ और विकलतारहित सब त्रिलोकी

पन्क्रोशन् पदाक्रान्तःपरिस्फुरन् ॥ निर्गन्तुमुद्धतशिरानशशाकासुराधिपः ॥ २४ ॥ त्रिशूलमुखभिन्नाङ्गो रक्तधारा
समुद्गमैः ॥ समुद्रइवसञ्जातो भूतवेतालराक्षसैः ॥२५॥ अथखड्गेनतीक्ष्णेन चकर्तविपुलंशिरः ॥ ननर्ततस्यशिरसिति
छन्तीमहिषार्दिनी ॥ २६ ॥ दुर्गांसिद्धाश्चगन्धर्वाः प्रशशंसुर्महर्षयः ॥ पुष्पवृष्टिश्चमहती देवैर्मुक्तासमन्ततः ॥२७॥ प्रका
शमभवत्सर्वं जगत्त्रयमनाकुलम् ॥ ग्रहावैमानिकादेवास्तुष्टुवुश्चाप्सरोगणाः ॥ २८ ॥ अथशक्रःसमागत्य लोकपालैः
समन्वितः ॥ प्रणतःप्राञ्जलिर्देवीं तुष्टावमुदिताशयः ॥२९॥ नमस्तेजगतांमात्रेभूतानांबीजसंविदे ॥ भक्तिःश्रद्धाचभ
जतामभक्तिश्चासिवैनृणाम् ॥ ३० ॥ करुणापरमाकीर्त्तिःशान्तिर्दान्तिःक्षमा ॥ एकैवविश्वरूपात्वं नामभेदैर्निगद्य
से ॥ ३१ ॥ तेषुतेषुपदेष्वस्मांस्तपोनुगुणसिद्धिषु ॥ नियुज्यशत्रुंनिर्भिद्य शिवाज्ञेवप्रकाशसे ॥ ३२ ॥ अद्यतेमहिषोद्गु

प्रकाशित हुआ और ग्रह व विमानपर चढ़े हुये देवता तथा अप्सराओं के गणों ने भगवती की स्तुति किया ॥ २८ ॥ इसके अनन्तर लोकपालों से संयुत प्रसन्नचित्त
वाले इन्द्र ने आकर हाथोंको जोड़ प्रणामकर देवीजी की स्तुति किया ॥ २९ ॥ कि लोकोंकी माता तुम्हारे लिये नमस्कारहै व प्राणियों के बीज नाम के लिये न-
मस्कार है भजते हुये पुरुषों की तुम भक्ति व श्रद्धाहो और मनुष्यों की अभक्ति भी हो ॥३०॥ उत्तम दया, कीर्ति, शान्ति, दान्ति, क्षला व क्षमा तुम्ही हो व संसार-
रूपिणी तुम एकही नाम भेदों से कही जातीहो ॥३१॥ उन उन तपस्या के अनुसार सिद्धियोंवाले स्थानों में हमलोगों को युक्त कर व शत्रुको नाशकर शिवजीकी आज्ञा

की नाईं प्रकाशित हो ॥ ३२ ॥ हे शिवे ! आज तुमने दुष्ट महिषासुरको काटडाला और इसका कटाहुआ मस्तक सजीव की नाईं देख पड़ता है ॥ ३३ ॥ अरुणनेत्रों वाले तथा पैने सींगोंवाले व जलती हुई जिह्वा से चंचल शिरको दबाकर टिकीहुई तुम्हारा ऐसाही रूप सदैव होवै॥ ३४ ॥ चक्र, शृंग, धनुष, बाण, तलवार, ढाल, वर, अभय, शूल, घंटा, अंकुश, चाबुक, कपाल व वज्रादिक॥ ३५ ॥ समस्त देवास्त्रों से तुम सब देवताओं की मूर्तिहो हे माता ! परिपूर्ण होती हुई तुम हमलोगों के सब शत्रुओं को मारती हो ॥ ३६ ॥ हज़ारों तन्मय अस्त्र व ऐश्वर्य हैं और तुमने अस्त्रों समेत व सवारियों सहित समस्त शत्रुओं को जीतलिया ॥ ३७ ॥ रथ, हाथी

ष्टो विनिकृत्तश्चशाम्भवि ॥ छिन्नमेतस्यतुशिरः सजीवमिवलक्ष्यते ॥ ३३ ॥ रक्तनेत्रंतीक्ष्णशृङ्गं ज्वलज्जिह्वाचलं शिरः ॥ आक्रम्यतवतिष्ठन्त्या रूपमेवसदास्तुनः ॥३४ ॥ चक्रशृङ्गधनुर्बाणखड्गचर्मवराभयैः ॥ शूलघण्टाङ्कुशक शाकपालकुलिशादिभिः ॥ ३५ ॥ अशेषदेवतामूर्तिरशेषैर्देवतायुधैः ॥ आपूरितात्वमेवाम्ब सर्वशत्रून्निहंसि नः ॥ ३६ ॥ आयुधानांसहस्राणि तन्मयानिविभूतयः ॥ त्वज्जितारातयःसर्वे सहायुधसवाहकाः ॥ ३७ ॥ रथनागहयै र्युक्ताः ससैन्याअपिभूभृतः ॥ क्षणेनदग्धवीर्याःस्युस्त्वत्प्रसादविवर्जिताः ॥ ३८ ॥ अल्पदोप्यल्पवीर्योवात्वत्पादाम्बु जसेवकः ॥ त्रिलोकनाथतांप्राप्तः प्राप्यतेकीर्त्तिरुत्तमा ॥ ३९ ॥ त्वद्रूपमिदमत्युग्रं ध्यायतामर्चतांसदा ॥ नशत्रुभ्यो भयंकिंचिद्भवेद्विजयशालिना ॥ ४० ॥ ईदृशंसर्वलोकेषुरूपंतेदैवधन्दितम् ॥ पूज्यतामिष्टसिद्ध्यर्थं देवैर्मर्त्यैश्चसर्व दा ॥४१ ॥ मातरश्चत्वयासृष्टाः सर्वाभीष्टफलप्रदाः ॥ सगणाःप्रतिपूज्यन्तां सर्वस्थानेषुसर्वदा ॥ ४२ ॥ अयञ्चनिहतो

व घोडों से संयुत तथा सेना समेतभी राजा लोग तुम्हारी प्रसन्नता से रहित होकर क्षणभर में जलेहुये बलवाले होतेहैं ॥३८ ॥ थोड़ा देनेवाला व थोड़े बलवाला भी तुम्हारे चरणकमलों का सेवक पुरुष त्रिलोक की स्वामिता को प्राप्त होता है और उत्तम कीर्ति को प्राप्तहोताहै॥ ३९ ॥ तुम्हारे इस अत्यन्त भयंकर रूपको सदैव ध्यान करते व पूजते हुये विजयसे शोभित मनुष्यों को शत्रुवों से कुछ भय नहीं होता है ॥ ४० ॥ देवताओंसे प्रमाण किया हुआ तुम्हारा ऐसा रूप सदैव सब लोकों में प्रिय कार्यकी सिद्धि के लिये देवताओं व मनुष्यों से पूजा जावै॥ ४१ ॥ और तुमसे रची हुई सब मनोरथों को देनेवाली मातृकागणों समेत सदैव समस्त स्थानों मे पूजी

जावै ॥ ४२ ॥ और तुम्हारे चरणों से किये हुये चिह्नवाला यह मारा हुआ दैत्य तुम्हारे प्रसादसे तुम्हारे आगे तुम्हारे भक्तों से सदैव पूजनीय है ॥ ४३ ॥ इसप्रकार समस्त ऋषियों व देवताओं से सेवित तथा प्रणाम किये सुरेशसे वैसाही होवै यह कहकर वरदायिनी देवीजीने स्वर्ग को बिदा किया ॥ ४४ ॥ व आप प्रसन्नमुखी व विविध अस्त्रों से उस रूपवाली मूर्ति को मातृकाओं समेत भलीभाति थाप कर स्थान की रक्षा किया ॥ ४५ ॥ निर्मलरूप को ग्रहणकर सखीजनों से घिरीहुई देवीजीने तलवारकी धारसे कटे हुये महिषासुर के मस्तक को देखा ॥ ४६ ॥ फिर विश्वभयंकर उसके पराक्रम को कहतीहुई उन बाला दुर्गाजी ने सखियों समेत उसके कंठको

दैत्यस्त्वत्पादकृतलाञ्छनः ॥ तवभक्तैःसदापूज्यस्त्वत्प्रसादात्त्वदग्रतः ॥ ४३ ॥ इत्थंसुरेन्द्रंप्रणतं सर्वर्षिसुरसेवितम् ॥ तथेतिवरदादेवी ससर्जचदिवम्प्रति ॥ ४४ ॥ स्वयंचहृष्टवदना तद्रूपांविविधायुधैः ॥ संस्थाप्यमातृभिःसार्द्धं स्थानरक्षणमातनोत् ॥ ४५ ॥ संगृह्यविमलंरूपं सखीजनसमावृता ॥ महिषस्यशिरोपश्यद्विकृत्तंखड्गधारया ॥ ४६ ॥ कथयन्तीपुनस्तस्य विक्रमंलोकभीषणम् ॥ सखीभिःसहसाबाला कण्ठंतस्यव्यलोकयत् ॥ ४७ ॥ अपश्यच्चतदालिङ्गंशिवस्यैतेनपूजितम् ॥ आदत्तसहसागौरी लिङ्गंतस्यगलेस्थितम् ॥ ४८ ॥ आलोकयच्चसुचिरं रक्तधारापरिप्लुतम् ॥ आसज्जतपुनर्लिङ्गमस्याःपाणितलागतम् ॥ ४९ ॥ विमोचयितुमुद्युक्ता नाशक्नोल्लग्नमञ्जसा ॥ अचिन्तयच्चसादेवी किमेतदितिविस्मयात् ॥ ५० ॥ विषादेनचसंयुक्ता महर्षीणांपुरःस्थिता ॥ आहत शिवभक्तोयमितिशोकंसमाविशत् ॥ ५१ ॥ अगर्हतभृशंतावद्धिग्धिङ्मनस्त्रिस्वभावजम् ॥ अविचारसमारब्धं शिवभक्तनिबर्हणम् ॥ ५२ ॥ अनुतापपरीताङ्गी गौ-

देखा ॥ ४७ ॥ और इस महिषासुरसे पूजित शिवलिंग को उस समय पार्वतीजी ने देखा व अचानकही उसके कंठमें स्थित लिंग को ग्रहण किया ॥ ४८ ॥ और रक्तकी धारामें डूबे हुये लिंगको बहुत देरतक देखा फिर इनके हाथमें आयाहुआ वह लिंग चिपटगया ॥ ४९ ॥ और उद्योग करतीहुई पार्वतीजीने साक्षात् चिपटे हुये लिंगको छुड़ाने के लिये न समर्थ हुई और महर्षियों के आगे स्थित उन पार्वतीजीने विषाद संयुत होकर विस्मयसे यह चिन्तन किया कि यह क्या है मैंने इस शिवभक्तको मारडाला इस कारण भगवती शोक में प्राप्त हुईं ॥ ५० । ५१ ॥ और बहुतही निन्दा किया कि स्त्रीके स्वभावसे उपजे हुये मनको धिक्कारहै क्योंकि बिन विचारे शिव-

भक्तके नाशका प्रारंभ कियागया ॥ ५२ ॥ पश्चात्तापसे घिरे हुये अंगोवाली पार्वतीजीने मुनिश्रेष्ठ गौतमजीके समीप जाकर अपना से किये हुये साहस कर्मको कहा कि ॥ ५३ ॥ हे समस्त धर्मोंके जाननेवाले, भगवन्, आर्य, मुनिनायक गौतमजी ! मानने योग्य मैंने धर्मरूप करके किसी अधर्म को किया ॥ ५४ ॥ शरणमें विकल देवताओं को अभय देनेके लिये उद्यत मैंने अज्ञान से शिवभक्त महिष देवको मर्दन किया ॥ ५५ ॥ रजोगुण से आक्रान्त बुद्धिवाले मनुष्यों के धर्मका संग्रह नहीं होताहै और स्फुटित सैकड़ो विघ्नोंसे सयुत गुरुका प्रसाद सुलभहै ॥ ५६ ॥ आचार सहित व आचारहीन जो दुष्ट मदवाले शिवजी के आश्रित व विशेपकर शिवलिंग-

तमंमुनिसत्तमम् ॥ उपगम्याब्रवीद्वाला साहसंकृतमात्मना ॥ ५३ ॥ भगवान्सर्वधर्मज्ञ गौतमार्यमुनीश्वर ॥ मान्य याधर्मरूपेण कोप्यधर्मःप्रकल्पितः ॥ ५४ ॥ देवानांशरणार्त्तानामभयंदातुमुद्यता ॥ अज्ञानान्महिषंदेवं शिवभक्तममर्दयम् ॥ ५५ ॥ रजसाक्रान्तबुद्धीनां नभवेद्धर्मसंग्रहः ॥ गुरुप्रसादःसुलभः स्फुरद्विघ्नशताकुलः ॥ ५६ ॥ साचारावा निराचारा दुर्मदाःशिवसंश्रयाः ॥ विशेषतोलिङ्गधराःशिवस्तान्बहुमन्यते ॥ ५७ ॥ पुरापुरत्रयावासा दैतेयालिङ्गधारकाः ॥ अज्ञाताःशम्भुनापूर्वं मुक्तलिङ्गानिषूदिताः ॥ ५८ ॥ अस्यकण्ठस्थितंलिङ्गंममपाणिंनमुञ्चति ॥ कथंपापंनिरस्यामिशिवभक्तवधाश्रयम् ॥ ५९ ॥ अस्यकण्ठस्थितंलिङ्गंधारयन्तीतपोन्विता ॥ तीर्थयात्रांकरिष्यामि यावच्छम्भुःप्रसीदति ॥ ६० ॥ पुनःकैलासमुख्येषु शम्भुस्थानेषुभूरिषु ॥ तीर्थेषुरचितस्नाना लप्स्येपापविशोधनम् ॥ ६१ ॥ इति तस्याःपरिश्रान्तिं दुर्धर्मपरिशङ्कया ॥ आकर्ण्यशिवधर्मज्ञोभयार्तांतामवोचत ॥ ६२ ॥ माभैषीर्गिरिजेमोहाच्छिव

धारी हैं उनको सदाशिवजी बहुत मानते है ॥ ५७ ॥ पुरातन समय त्रिपुरके बसनेवाले लिंगधारी दैत्य लोग पहले शंभुसे नहीं जानेगये फिर वे च्युत लिंग होकर मारेगये ॥ ५८ ॥ इसके कंठका स्थित लिंग मेरे हाथको नही छोड़ताहै मैं शिवभक्त वध के आश्रयवाले पापको कैसे नाशकरूं ॥ ५९ ॥ इसके कंठस्थ लिंगको धारण करती हुई तपस्या से संयुत मैं तबतक तीर्थयात्रा करूंगी कि जबतक सदाशिवजी प्रसन्न होवैंगे ॥ ६० ॥ फिर जिन में कैलास मुख्य है उन बहुत से शिवस्थानों व तीर्थों में स्नान करती हुई मै पातक की शुद्धि को पाऊंगी ॥ ६१ ॥ इसप्रकार अधर्मकी शंकासे उन पार्वतीजी की विकलता को सुनकर शिवधर्मके जाननेवाले गौतम

जी डर से विकल उन पार्वतीजीसे बोले ॥ ६२ ॥ कि हे गिरिजे ! अज्ञानसे शिवभक्त मारागया इस कारण तुम मतडरो क्योंकि हे गिरिकन्यके ! धर्मके सूक्ष्मार्थको
जाननेवाले प्राणी दुर्लभहैं ॥ ६३ ॥ सद्योजातादिकों में आश्रित सदाशिवजीके पांच मुखों से अट्ठाईस करोड़ आगम (शास्त्र) कहे गये हैं ॥६४ ॥ शिवमार्ग में प्रवृत्ति
से शिवभक्तों का निर्णय होताहै व उन के आपस में शिव में तत्पर बहुत भेद हैं॥६५॥ और उन उन सब भेदों से एक बलवान् सदाशिवजी साधने योग्यहैं और अपने
धर्म में स्थित जनों से सबही भेद पूजनीय हैं ॥ ६६ ॥ ईर्षारहित शिवभक्त व शिव की आज्ञापालन करनेवाले जनों से तथा वेदों व बहुत यज्ञों से परम भक्ति

भक्तोहतस्त्विति ॥ धर्मसूक्ष्मार्थवेत्तारो दुर्लभागिरिकन्यके ॥ ६३ ॥ सदाशिवस्यवदनैः सद्योजातादिसंश्रितैः ॥ आग
माःपञ्चभिःप्रोक्ता अष्टाविंशतिकोटयः ॥ ६४ ॥ निर्णयःशिवभक्तानां शिवमार्गप्रवर्त्तितः ॥ भेदाश्चबहवस्तेषामन्यो
न्यस्यशिवेरताः ॥ ६५ ॥ साध्यएकोहिबलवान् सर्वैस्तैस्तैःसदाशिवः ॥ सर्वएवसदापूज्याः स्वधर्मपरिनिष्ठितैः ॥६६॥
अमत्सरैःशम्भुभक्तैः शिवाज्ञापरिपालकैः ॥ वेदैश्चबहुभिर्यज्ञैर्भक्त्याचपरयाशिवः ॥ ६७ ॥ आराध्यतेमहादेवः स
र्वदासर्वदायकः ॥ जीवहिंसानकर्त्तव्या विशेषेणतपस्विभिः ॥६८॥ शिवधर्मस्यभेत्तारो निहन्तव्यास्तथाञ्जसा ॥ नवे
षमस्यवीक्षेत नलिङ्गंनैवसम्भवम् ॥ ६९ ॥ शिवधर्मस्यभेत्तारं हन्यादेवाविचारयन् ॥ बहुभिःस्फुटयाबुद्ध्या धर्मवि
द्भिर्निरूपिते ॥ ७० ॥ शिवधर्मस्यविषयेसद्यः शक्तिःप्रवर्त्तते ॥ अस्यकर्मपुनर्दृष्टं लिङ्गमैश्वर्यमर्चितम् ॥७१॥ नजेतुंश
क्यतेदेवि तेनासौसर्वदैवतैः ॥ यदयंनिहतोदेवि त्वयाशङ्करभार्यया ॥ ७२ ॥ आक्रान्तःशापदोषेण महर्षीणांशिवाश्र

करके ॥ ६७ ॥ सर्वदायक सदाशिवजी सदैव आराधन किये जातेहैं हे तपस्विनि ! विशेषकर जीवों की हिंसा न करना चाहिये ॥ ६८ ॥ वैसेही शिवधर्म के तोड़ने
वाले पुरुषों को मारना चाहिये इसके वेष, चिह्न व उत्पत्ति को न देखै ॥ ६९ ॥ किन्तु शिवधर्म के भेदक पुरुष को बिन विचारे मारै बहुत धर्मज्ञ जनों से प्रकाशित
बुद्धिके द्वारा निरूपण किये हुये ॥ ७० ॥ शिवधर्मके विषय में शीघ्रही शक्ति वर्तमान होतीहै फिर इसका कर्म व सदाशिवजीका पूजित लिंग देखागया ॥ ७१ ॥ हे देवि !
उसी कारण यह दैत्य सब देवताओंसे नहीं जीता जासक्ताथा हे देवि ! शंकर की स्त्री तुमने जो इस को मारा हैं ॥ ७२ ॥ वह शिवजी के आश्रय के कारण महर्षियों

के शापके दोषसे घिराथा क्योंकि उसकी दुष्टता से अपमानके कारण क्रोधित होतेहुये उन मुनियों ने॥ ७३ ॥ यह शापदिया था कि महिष (भैंसे) की नाईं यह दुष्ट महिष होजावे तदनन्तर महातपस्वी वह उनके वचन से उसी क्षण महिष होगया ॥७४ ॥ और प्रणामकर उसने प्रसन्न कराया व शापकी मुक्तिको मांगा तब प्रसन्न कराये हुये उन्होंने इच्छा के अनुकूल रूपको देकर इसके लिये महिष होने परभी शिवजी की आज्ञा से आपही देवीजी से संहार को दिया लिंग के दर्शन से तुमको विषाद (शोच) न करना चाहिये ॥ ७५ । ७६ ॥ क्योंकि शिवरूपी सिद्धोंका अपमान किसको नहीं पीड़ित करताहै स्नेह से प्राप्त महिषत्व उत्पन्न होनेपर ॥ ७७ ॥

यात ॥ यतस्तेकुपितास्तस्य दौरात्म्यादपमानतः ॥ ७३ ॥ शेपुर्महिषवद्दुष्टो महिषोयंभवत्विति ॥ ततस्तद्वचनात्सद्यो महिषोभून्महातपाः ॥ ७४ ॥ प्रणम्यतोषयामास ययाचेशापमोचनम् ॥ दत्त्वाप्रकामरूपत्वं ददुरस्मैप्रमादितः ॥ ७५ ॥ महिषत्वेपिसंहारः स्वयंदेव्याशिवाज्ञया ॥ विषादोनचकर्त्तव्यो लिङ्गदर्शनतस्त्वया ॥ ७६ ॥ सिद्धानांशिवरूपाणामवज्ञाकंनबाधते ॥ महिषत्वेसमुत्पन्ने रागेणसमुपस्थिते ॥ ७७ ॥ सिद्धप्रसादलब्धोयं शापनाशस्त्वयाकृतः॥ सर्वेलोकाश्चसंतप्ता नष्टेस्मिन्परिरक्षिताः ॥ ७८ ॥ शापदोषसमुत्पन्ने महिषत्वेविमोचिते ॥ त्वयाचगिरिशप्रीत्यै तपःकुर्वाणयाद्रिजे ॥ ७९ ॥ द्रष्टव्यंतैजसंलिङ्गमरुणाचलसंज्ञितम् ॥ पूर्वजन्मनिभक्तोयमरुणाद्रिपतेःस्फुटम् ॥ ८० ॥ महिषत्वेमदाक्रान्तः परालिङ्गेनसङ्गतः ॥ भक्त्यालिङ्गधरंहन्तुं कःसमर्थोजगत्त्रये ॥ ८१ ॥ दृष्टाःपुरत्रयेपूर्वं शैवाश्चपूजिताश्त्रयः ॥ त्वत्खङ्गपरिक्रन्तेन कण्ठेनास्यवरानने ॥ ८२ ॥ दीक्षयारहितंलिङ्गं धृतंहन्तीतिचोदितम् ॥ अनेनमहिषे

तुमने सिद्धो की प्रसन्नता से मिले हुये इस शापको नाश कियाहै और इसके नाशहोनेपर बहुत संतापित सब लोक रक्षा किये गये ॥ ७८ ॥ हे गिरिजे ! शापके दोष से उत्पन्न महिपत्व के छुड़ाने पर शिवजी की प्रीति के लिये तप करती हुई तुमको ॥ ७९ ॥ अरुणाचल सञ्ज्ञक तैजस लिंग देखना चाहिये पूर्व जन्म मे यह प्रगटही अरुणाचलेश का भक्त हुआहै ॥ ८० ॥ और महिपत्व मे मदसे विराहुआ यह उत्तम लिंग से संयोगको प्राप्तहुआहै भक्तिसे लिंगधारक प्राणीको मारनेके लिये त्रिलोक में कौन समर्थ है ॥ ८१ ॥ पुरातन समय त्रिपुरमें पूजेहुये तीन शैव दखे गये हैं हे वरानने ! तुम्हारी तलवार से काटे हुये इसके कंठसे ॥ ८२ ॥ दीक्षारहित लिंग धारण

क्रियागया था इसलिये इस महिषासुर से यह प्रेरणा कीगई कि दीक्षारहित लिंग नाशकरताहै और भक्ति से लिंग को धारनेवाला प्राणी ॥ ८३ ॥ कभी शिवभक्तों के मध्य मे विभास (प्रकाश) से ज्ञानको प्राप्त होताहै और लिंग धारण से पूर्व जन्म के तप के संयोग से स्मरण रहताहै ॥ ८४ ॥ तुम्हारे चरणकमल के स्पर्श से यह निस्सन्देह मुक्त होगया समस्त प्रायश्चित्तों व अग्नियोंके मध्यमें भयंकर ॥ ८५॥ अरुणाचल का दर्शन उत्तम प्रायश्चित्त माना गयाहै शिवसिद्धान्तों के भेद से अनेक भांति के धर्मों को भलीभांति थापकर ॥ ८६ ॥ और सब दोषों से छूटने के लिये सब तीर्थों को आवाहन कर व किसी भी तड़ागको निर्माणकर हे वरानने !

णापि भक्तितोलिङ्गधारकः ॥ ८३ ॥ कदाचिच्छिवभक्तानां विभासात्प्रत्ययङ्गतः ॥ पूर्वजन्मतपोयोगात्स्मरणांलिङ्गधारणात् ॥ ८४ ॥ त्वत्पादपद्मसंस्पर्शादयम्मुक्तोनसंशयः ॥ सर्वेषांनिष्कृतीनान्तु पावकानाञ्चभीषणम् ॥ ८५ ॥ दर्शनंशोणशैलस्य प्रायश्चित्तंपरम्मतम् ॥ संस्थाप्यविविधान्धर्मांञ्शिवसिद्धान्तभेदतः ॥ ८६ ॥ आवाह्यसर्वतीर्थानि सर्वदोषनिवृत्तये ॥ सरःकिमपिसम्पाद्य स्नात्वातत्रवरानने ॥ ८७ ॥ अघमर्षणसंयुक्ता सलिङ्गमासमावस ॥ समुत्थायच मासान्ते देवयागमहोत्सवे ॥ ८८ ॥ आराधयोपचारैस्त्वमरुणाद्रिमयंशिवम् ॥ ८९ ॥ एवंतस्यमुनेर्निशम्यवचनं शैवार्थमाभाषितं प्रीतादेवनमस्कृतागिरिसुता देवीजगद्गुप्तये ॥ शैवंधर्ममथोविधायनिखिलं शोणाचलस्याग्रतस्तीर्थावाहनमप्यसौभगवतीकर्तुंप्रहृष्टाभवत् ॥ ९० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽरुणाचलमाहात्म्यएकादशोऽध्यायः ११॥

उसमें नहाकर ॥ ८७ ॥ अघमर्षण से संयुत तुम लिंग समेत महीनेभर निवास करो और महीनाभरके अन्त में उठकर देवयज्ञके बड़े भारी उछाह में ॥ ८८ ॥ तुम उपचारों से अरुणाचलमय लिंगको पूजो ॥ ८९ ॥ शैवार्थ कहे हुये उन गौतममुनि के वचन को सुनकर प्रसन्न होती हुई सुरवन्दित पार्वती देवी संसार की रक्षा के लिये समस्त शैवधर्म को रचकर इसके उपरान्त अरुणाचल के आगे ये भगवतीजी तीर्थोंका आवाहन करनेके लिये भी प्रसन्न हुई ॥ ९० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽरुणाचलखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांमहिषासुरवधोनामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

दो० । है प्रसन्न शिव देव जिमि दियो उमहि वरदान । बारहवें अध्याय में सोई कीन बखान ॥ ब्रह्माजी बोले कि मुनियों से सेवित महर्षि गौतमजी के ऐसा कहने पर पार्वतीजीने शिव भक्तके वधसे आश्रित सन्देह को त्यागदिया ॥ १ ॥ इसके अनन्तर कोई मनोहर वाणी आकाश से उत्पन्न हुई कि हे शैलपुत्रि ! पापके प्रायश्चित्त के कारण तुम मत शोच करो ॥ २ ॥ क्योंकि गंगा, यमुना, सिन्धु,गोदावरी,सरस्वती, नर्मदा, कावेरी, शोणा और वह शोणनदी ॥ ३ ॥ ये नव तीर्थ तुम्हारी तलवार से काटेहुये इसी शिलामय स्थानमें होवैंगे हे देवि ! उसमें अघमर्षण याने पापकी निवृत्ति के लिये स्नान कीजियेगा ॥ ४ ॥ इस कुँवार महीने में ज्येष्ठा नक्षत्र

ब्रह्मोवाच ॥ इतिसम्भाषमाणेतु महर्षौमुनिसेविते ॥ विजहौगिरिजाशङ्कां शिवभक्तवधाश्रयाम् ॥ १ ॥ अथान्तरिक्षादुदभूद्वाणीकापिमनोहरा ॥ माशोचःशैलकन्येत्वं पापनिष्कृतिकारणात् ॥ २ ॥ गङ्गाचयमुनासिन्धुर्गोदावरिसरस्वती ॥ नर्मदासाचकावेरी शोणाशोणनदीचसा ॥ ३ ॥ अत्रैवनवतीर्थानि सम्भवन्तुशिलामये ॥ त्वत्खड्गदारिते देवि कुरुतत्राघमर्षणम् ॥ ४ ॥ अस्मिन्नाश्वियुजेमासे ज्येष्ठानक्षत्रआगते ॥ निमज्जखड्गतीर्थेत्वं सलिङ्गंमासमावस ॥ ५ ॥ नित्यमेवार्चनंमासं त्रिंशद्दिवससम्मितम् ॥ ततःपाणिस्थितंलिङ्गं लब्धपापविशोधनम् ॥ ६ ॥ प्रतिष्ठापयतीर्थाग्रे लोकानुग्रहकारणात् ॥ निमज्ज्यतीर्थएतस्मिन् मनुष्याणांसुशोभने ॥ ७ ॥ तापत्रयोपिनश्यन्ति त्रैलोक्यस्यनसंशयः ॥ सर्वपापहरंलिङ्गं स्थावरंतीर्थसन्निधौ ॥ ८ ॥ स्थापयस्थिरयाभक्त्या सर्वलोकहितायच ॥ नक्षत्रेवैश्वदैवत्ये देवयागंसमाचर ॥ ९ ॥ महोत्सवसमायुक्तं यावद्दशदिनावधि ॥ कृत्वाचावभृथंपुण्यं नक्षत्रेवह्निदैवते ॥ १० ॥

के आने पर तुम खड्गतीर्थ में स्नान करो व लिंग समेत महीनेभर बसो ॥ ५ ॥ और महीने भर तीस दिनों तक नित्यही पूजन करो तदनन्तर पाये हुये पापशुद्धि वाले हाथ में लगे हुये लिंग को ॥ ६ ॥ लोकों के ऊपर दयाके कारण से तीर्थ के आगे स्थापित करो हे सुशोभने ! इस तीर्थ मे नहाकर मनुष्यों के ॥७॥ तीनों लोकों के तीनों ताप नष्ट होजावैंगे इसमें सन्देह नही है तीर्थ के समीप समस्त पातकोंके नाशक स्थावर लिंग को ॥ ८ ॥ स्थिरभक्तिसे सब लोकोंके हित के लिये स्थापित करो और विश्वेदेवतावाले (उत्तराषाढ) नक्षत्र में बडे उत्सव से संयुत दशदिन तक देवयज्ञ कीजिये और अग्निदेवतावाले (कृत्तिका) नक्षत्र में पुण्यदायक अवभृथ

(यज्ञान्त स्नान) कर ॥ ९।१० ॥ सायंकाल में विधिपूर्वक मेरी अरुणाचल मूर्त्तिको पूजियेगा तदनन्तर मैं अपने तैजस रूप को तुम्हें दिखाऊंगा ॥ ११ ॥ और यह
तुम्हारा नियम लोकों की रक्षा के लिये होगा महर्षिके उस वचन व उस आकाशवाणी को सुनकर ॥ १२ ॥ पर्वत की कन्या पार्वतीजी ने तपसे उसी को करने के
लिये प्रारंभ किया व आकुलतारहित पार्वतीजीने तलवारसे शिलातलको विदारणकिया ॥ १३ ॥ उसी क्षण वहांपर नव तीर्थ ऊपर निकल आये उस महिषासुर के
कंठ में स्थित लिंग को धारती हुई उन पार्वतीजी ने ॥ १४ ॥ मुनियों की आज्ञासे उस तीर्थ में स्नान किया वहां पर बिल्लौर के समान प्रभावान् नव तीर्थोंका समूह

**सायमभ्यर्च्चविधिवच्छोणाचलवपुर्मम ॥ ततस्तेदर्शयिष्यामि तैजसंरूपमात्मनः ॥ ११ ॥ एतद्व्रतन्तेलोकानां रक्षायै
सम्भविष्यति ॥ इतितद्वचनंश्रुत्वा महर्षेर्वचनन्तुतत् ॥ १२ ॥ तदेवकर्तुमारेभे तपसाशैलकन्यका ॥ खड्गेनदारयामा
सशिलातलमनाकुला ॥ १३ ॥ उदजृम्भततीर्थानां नवकंतत्रतत्क्षणात् ॥ तस्यकण्ठस्थितंलिङ्गं धारयन्तीनगात्म
जा ॥ १४ ॥ तीर्थेममज्जतस्मिन्मामुनीनामभ्यनुज्ञया ॥ तीर्थानांनवकंतत्र संजातंस्फटिकप्रभम् ॥ १५ ॥ अन्तर्वस
दुमाकान्त्यामेचकीकृतमञ्जसा॥वसन्त्यांशैलकन्यायां तीर्थेत्रिंशद्दिनावधि ॥ १६ ॥ शम्भोर्विरहसन्तप्तं मनःशीतल
तांययौ ॥ तत्रैवचसरोजाक्षी चक्षुषोत्पलकाननम् ॥ १७ ॥ मन्दस्मितेनकुमुदं ससर्जसलिलेस्यसा ॥ देव्यास्तेनोद्
वासेनलोकास्तुनिरुपद्रवाः ॥ १८ ॥ कृतार्थास्सहसाजातास्तत्तत्कालफलान्विताः ॥ मासान्तेसासमुत्तीर्य कृत्वादेवो
त्सवंतदा ॥ १९ ॥ कार्त्तिकेमासिनक्षत्रे कृत्तिकाख्येनिशोदये ॥ पूजयित्वातपःसिद्धैरुपचारैर्बहूदयैः ॥ २० ॥ अरु**

हुआ ॥ १५ ॥ और भीतर बनती हुई साक्षात् पार्वतीजी की शोभा से श्याम करदियागया जब तीस दिन तक पार्वतीजी ने उस तीर्थ में निवास किया ॥ १६ ॥
तो शिवजी के वियोगसे तचा हुआ मन ठण्ढकताको प्राप्त हुआ और वहीं पर उन कमलनयनी पार्वतीजी ने नेत्रसे कमलवन को ॥ १७ ॥ व मन्द मुसक्यान से
उन्होंने इस तीर्थ के जलमें कोकाबेलीको उत्पन्न किया पार्वती देवीके उस जलवाससे उपद्रवरहित लोक ॥ १८ ॥ अचानकही कृतार्थ होगये व उस उस समय के
अनुसार फलोंसे संयुत हुये महीने के अन्त में वे पार्वतीजी निकलकर व देवोत्सवकर ॥ १९ ॥ कार्तिक महीने में कृत्तिका नामक नक्षत्र में रात्रिके उदय याने

सन्ध्यासमय में तपस्या से सिद्ध बहुत ऐश्वर्यवाले उपचारों से पूजन कर ॥ २० ॥ जगदम्बिकाजी ने अरुणाचलमय लिंगकी स्तुति किया कि हे शोणाचल शरीर धार-
नेवाले! तुम विश्वरूपके लिये नमस्कार है ॥ २१ ॥ व समस्त पातकों के नाशनेवाले तेजोमयलिंग के लिये प्रणाम है तुम ब्रह्मा व विष्णुजी से अज्ञात बिभव
(ऐश्वर्य) वाले हो ॥ २२ ॥ संसारके ऊपर दया करने के लिये अग्निरूपवाले भी तुम भलीभाति शान्त होगये अहो सैकड़ों पातकों के नाशके लिये कलियुग में
कालाग्निरूपवाले शिवजी! ॥ २३ ॥ हे अरुणाचलेश, नेत्रों से पीने योग्य अमृतरूपी समुद्र! मेरी रक्षा कीजिये हे वेदों से जानने योग्य, देवपूजित! तुम्हारा यह

णाद्रिमयंलिङ्गं तुष्टावजगदम्बिका ॥ नमस्तेविश्वरूपायशोणाचलवपुर्भृते ॥ २१ ॥ तेजोमयायलिङ्गाय सर्वपातक
नाशिने ॥ ब्रह्मणाविष्णुनाचत्वमपरिच्छेद्यवैभवः ॥ २२ ॥ अग्निरूपोपिसंशान्तो लोकानुग्रहकल्पये ॥ शतपातकसं
घातकलिकालानलाकृते ॥ २३ ॥ अवमामरुणाद्रीश अक्षिपेयामृताम्बुधे ॥ विचित्ररूपमेतत्तेवेदवेद्यसुरार्चित ॥ २४ ॥
तेजसादेवसर्वेषां बीजभूतोनिगद्यसे ॥ दिदृक्षापरमंतेजस्तवदेवमहेश्वर ॥ २५ ॥ यत्पुराब्रह्मणादृष्टं विष्णुनाचविचि
न्वता ॥ यद्यपापास्मिदेवेश तवसन्दर्शनादहम् ॥ २६ ॥ तेजोदर्शयमेदिव्यं सर्वदोषहरम्परम् ॥ प्रार्थयन्त्यांतदादे
व्यामरुणाद्रिमयःशिवः ॥ २७ ॥ आविर्बभूवतेजोभिरापूर्यभुवनान्तरम् ॥ कोटिसूर्योदयप्रख्यं तुल्यंपूर्णेन्दुकोटि
भिः ॥ २८ ॥ कालाग्निकोटिसंकाशं तेजोपरमदृश्यत ॥ प्रणम्यपरयाभक्त्या मुनिभिःसार्द्धमम्बिका ॥ २९ ॥ विस्म

अद्भुतरूप है ॥ २४॥ हे देव! तुम तेजसे सबों के बीजभूत कहेजाते हो हे महेश्वरदेव! तुम्हारे उत्तम तेजको देखने की इच्छाहै ॥ २५ ॥ जिसको कि पुरातन समय
ढूंढ़ते हुये ब्रह्मा व विष्णु ने देखाहै हे देवेश! तुम्हारे दर्शनसे यदि मैं पापरहित हूं तो ॥ २६ ॥ मुझे समस्त दोषों को हरनेवाले, उत्तम दिव्य तेजको दिखलाइये
उस समय देवीजी के प्रार्थना करने पर अरुणाचलमय सदाशिवजी ॥ २७ ॥ तेजों से लोकोंके मध्यको पूर्णकर प्रकट हुये करोड़ों सूर्योदयके समान व करोड़ों
पूर्ण चन्द्रमाओं के तुल्य ॥ २८॥ व करोड़ों कालाग्नियों के समान उत्तम तेज देखपड़ा उत्तम भक्ति से मुनियों समेत पार्वतीजी उसको प्रणाम कर ॥ २९ ॥ विस्मय

से घिरेहुये चित्तवाली वे कमलनयनी पार्वतीजी प्रसन्न हुईं इसके अनन्तर उस तेजनिधान अरुणाचल से उपजा हुआ ॥ ३० ॥ कालेकन्धेवाला हिरण्मय पुरुष
वचन बोला कि मेरे स्थानों में किये हुये तपोंसे मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्नहूं ॥ ३१ ॥ हे जगन्मयि ! इस समय बहुत कारणों से तुम करके देखाहुआ यह तेजमय लिंग
लोकों की रक्षा करैगा ॥ ३२ ॥ तुम भूमि में तपों को करती हो इसलिये तुम्हारी और क्या प्रार्थना है मेरे नेत्रों के मूंदने से उपजे हुये अन्धकार के ढेरसे उत्पन्न ॥
३३ ॥ तुम्हारा दोष इस तेजके देखने से शान्त होगया और इस दुष्ट महिषासुर ने लिङ्ग को पूजनेवाले मेरे भक्तको मारडाला ॥ ३४ ॥ और गले में स्थित उसके

**याक्रान्तहृदयानन्दनालिनेक्षणा ॥ अथतेजोनिधेस्तस्मादरुणाद्रेःसमुत्थितः ॥ ३० ॥ हिरण्मयोऽब्रवीद्वाचं पुरुषःका
लकन्धरः ॥ प्रसन्नोस्मितपोभिस्ते स्थानेषुममकल्पितैः ॥ ३१ ॥ तेजोमयमिदंरूपमीक्षितंचत्वयाधुना ॥ कारणैर्बहु
भिर्लोकान् रक्षिष्यतिजगन्मयि ॥ ३२ ॥ तपांसिकुरुषेभूमौ किमन्यत्प्रार्थितंतव ॥ मल्लोचनपिधानोत्थतमोराशि
समुद्भवः ॥ ३३ ॥ तवदोषःप्रशान्तोभूत्तेजसोस्यनिरीक्षणात् ॥ अयन्तुमहिषोदुष्टो मद्भक्तंलिङ्गपूजकम् ॥ ३४ ॥ जग्रा
हसहसाहोतत्तस्यलिङ्गंगलेस्थितम् ॥ अनेनभक्षितःसोपि नास्तिकःपापलोलुपः ॥ ३५ ॥ अकरोन्मयिविश्वासं
लिङ्गरूपेकरेस्थिते ॥ क्रमेणसोपिसंप्राप्तो मद्भक्तोमुनिजन्मनि ॥ ३६ ॥ मामेवाभ्यर्चयन्ध्यायन् गणनाथत्वमाप्तवा
न् ॥ पूर्वजन्मनिभक्तोयं महिषोपित्वयाहतः ॥ ३७ ॥ चिरंमल्लिङ्गसंवासात् सिद्धिरस्यापिदर्शिता ॥ शिवलिङ्गेष्ववि
श्वासः शिवभक्तावसादनम् ॥ ३८ ॥ नकर्त्तव्यंसदाभक्तैर्गिरिजेमुक्तिकाङ्क्षिभिः ॥ ३९ ॥ दीक्षयारहितंलिङ्गं येनसन्धा**

लिङ्गको अचानकही लेलिया और इसने उस पापलुब्धक नास्तिक को खालिया ॥ ३५ ॥ और हाथ में स्थित लिङ्गरूपी मुझमें इसने विश्वास किया मेरा भक्त वह
भी क्रमसे मुनि जन्म में भलीभाति प्राप्त हुआ ॥ ३६ ॥ और मुझही को ध्यान करता व पूजताहुआ वह गणों की स्वामिताको प्राप्तभया पूर्वजन्म में भी इस महिषा-
सुर भक्त को तुमने मारा था ॥ ३७ ॥ बहुत दिनों तक मेरे लिंग के भलीभाति निवास से इसको भी सिद्धि दिखलाई गई शिवलिंगों में विश्वास न करना व शिव
भक्तों को क्लेश देना ॥ ३८ ॥ हे गिरिजे ! मुक्तिकी चाहनेवाले भक्तों को यह सदैव न करना चाहिये ॥ ३९ ॥ जो दीक्षासे रहित लिंगको बल से धारण करता है वह

लिङ्ग वैसे फलको नहीं देताहै और वज्रके नाईं उसको मारता है ॥ ४० ॥ अरुणाचलके देखने से उस विषयमें तुमको कुछ दोष नहीं है समस्त दोषोंके विनाश से तुम सफल परिश्रमवाली हो ॥ ४१ ॥ जिसलिये कि पुरातन समय तुम्हारे पुत्रको दूध के दान के लिये ध्यान कीहुई कृत्तिकाओं ने तुम नित्य यौवनवाली प्यारीका अपीतकुचा नाम कियाहै ॥ ४२ ॥ कृत्तिका नक्षत्र में मेरी समीपताके लोभसे तुम्हारे प्रायश्चित्त करने से तुम अपीतकुचा नामक होवो ॥ ४३ ॥ भक्तोंके ऊपर दया की कामना से दयामूर्ति सदाशिवजीका सब पूजन मनसे करके अपीतकुचनामिका होवोगी ॥ ४४ ॥ इसभांति सदाशिव देवजीका अमृतके समान शीतल

र्यतेबलात् ॥ नतादृशंफलंदत्ते वज्रवत्तांनिहन्तिच ॥ ४० ॥ नदोषस्तत्रतेकिञ्चिच्छोणाचलनिरीक्षणात् ॥ सफलश्रमात्वमेवासि सर्वदोषविनाशनात् ॥ ४१ ॥ त्वत्पुत्रस्तन्यदानेन ध्यातायत्कृत्तिकाःपुरा ॥ त्वामपीतकुचांचक्रुर्वत्सलां नित्ययौवनाम् ॥ ४२ ॥ नक्षत्रेकृत्तिकाख्येमे तवसन्निधिलोभतः ॥ प्रायश्चित्तविधानेन भवापीतकुचाभिधा ॥ ४३ ॥ पूजांसर्वांसमाधाय भक्तानुग्रहक्लृप्तये ॥ मनसाकरुणामूर्तेरपीतकुचनामिका ॥ ४४ ॥ इतिदेवस्यवचनमाकर्ण्यामृतशीतलम् ॥ प्रणम्यप्रार्थितवतीतिरोदधतचाम्बिका ॥ ४५ ॥ देवदेवप्रसादेन मय्यनुग्रहशालिना ॥ एतत्तेदर्शितं तेजो द्रष्टव्यंचात्रमानवैः ॥ ४६ ॥ प्रत्यक्षञ्चकृतार्थास्मि त्वद्यागान्तमहोत्सवे ॥ नक्षत्रेकृत्तिकाख्येस्मिस्तेजस्तेदृश्यतांपरम् ॥ ४७ ॥ मद्वीक्षितमिदंतेजः परम्प्रतिवत्सरम् ॥ दृष्ट्वासमस्तैर्दुरितैर्मुच्यन्तांसर्वजन्तवः ॥ ४८ ॥ तथेति देवदेवेतु गिरिरूपेऽव्यवस्थिते ॥ प्रदक्षिणञ्चकारैनं मुनिभिःसार्धमम्बिका ॥ ४९ ॥ घनश्यामलयाकान्त्या परितोजृम्भ

वचन सुनकर अन्तर्धान होते हुये शिवजी को प्रणामकर पार्वतीजी ने प्रार्थना किया॥ ४५ ॥ कि हे देवदेव ! यहां पर मेरे ऊपर दयासे शोभित प्रसन्नताकरके तुम्हारा दिखलाया हुवा यह तेज मनुष्यों से देखने योग्य होवै ॥ ४६ ॥ तुम्हारे यज्ञान्त के बडेभारी उछाह में मैं प्रत्यक्षही कृतार्थ हूं इस कृत्तिकानामक नक्षत्र मे तुम्हारा उत्तम तेज देखपडै ॥ ४७ ॥ मुझसे देखेहुये इस उत्तम तेजको प्रत्येक वर्षमें देखकर सब प्राणी समस्त पातकोंसे छूटजावैं ॥४८॥ बहुत अच्छा ऐसा कहकर पर्वतरूप अरुणाचलके स्थित होनेपर मुनियों समेत पार्वतीजी ने इनकी प्रदक्षिणा किया ॥ ४९ ॥ सब ओर बढ़तीहुई मेघों के समान श्याम शोभासे पार्वतीजीने अरुणाचल-

मय लिंगको मरकत के समान प्रभावान् किया ॥ ५० ॥ धीरे धीरे चलती हुई पार्वतीजी ने चरणकमलों की उत्पन्न शोभा से मानो सब ओर पत्तों समेत कमल पुष्पोंसे भूमिको आच्छादन किया ॥ ५१ ॥ फूले हुये श्वेत कमल व नील कमलदलों की राशिके समान नेत्र शोभाओं से मानो सब ओर अरुणाचलको पूजती थीं ॥ ५२ ॥ इन्द्रादिक लोकपालोंकी स्त्रियोंसे सेवित वे मातृगणों से चन्दन, माला व भूषणों से प्रसन्न कीगई ॥५३॥ छत्र, चँवर, झारी व तालके फलोंको धारण कियेहुई देवस्त्रियों व मुनिस्त्रियों से संयुत वे देवीजी घिरी थीं ॥५४॥ शिव सायुज्यको चाहती हुई पार्वतीजी ने विवाहकी अग्नि की नाईं इन स्वयंस्वामी अरुणाचलजी

माणया ॥ अरुणाद्रिमयंलिङ्गं चक्रेमरकतप्रभम् ॥ ५० ॥ मन्दंचरन्तीजाताभिः प्रभाभिःपादपद्मयोः ॥ तस्ताःपरितो भूमिंपद्मपुष्पैःसपल्लवैः ॥ ५१ ॥ प्रफुल्लकमलाम्भोजनीलोत्पलदलोत्करैः ॥ अर्चयन्तीचशोणाद्रिमभितोदृष्टिकान्तिभिः ॥ ५२ ॥ इन्द्रादिलोकपालानामङ्गनाभिर्निषेविता ॥ प्रसादितामातृगणैर्गन्धदामविभूषणैः ॥ ५३ ॥ छत्रचामरभृङ्गारतालस्यचफलानिवै ॥ वहन्तीभिःसुरस्त्रीभिर्वृतामुनिवधूयुता ॥ ५४ ॥ प्रदक्षिणंचकारैनमरुणाद्रिंस्वयंप्रभुम् ॥ काङ्क्षन्तीशिवसायुज्यं विवाहाग्निमिवाद्रिजा ॥ ५५ ॥ तस्याम्प्रदक्षिणाम्भक्त्या कुर्वाणायाम्पदेपदे ॥ प्रेषिताःशम्भुनादेवा वरिवस्तुमस्मेश्वराः ॥ ५६ ॥ सरस्वतीस्वयंधात्रा विष्णुनाचस्वयंरमा ॥ सार्द्धदिक्पालकान्ताभिः सिषेवाते नगात्मजाम् ॥ ५७ ॥ निरुन्धतीवदेवेशं सलिलैर्वरदानतः ॥ अग्निरूपस्यनाथस्य शीतत्वमिवकुर्वती ॥ ५८ ॥ तपस्याचगिरिजा देवस्यत्रिपुरद्विषः ॥ दुष्करस्योद्वासस्य बोधयन्तीवसाधुना ॥ ५९ ॥ ऋषीणांसेवमानानामुपदेष्टुमि

की प्रदक्षिणा किया ॥५५॥ भक्तिसे पग २ पै उन पार्वतीजी के प्रदक्षिणा करने पर स्वामियों समेत देवताओंको सेवाके लिये शिवजी ने पठाया ॥ ५६॥ ब्रह्मा से पठाई हुई आपही सरस्वतीजी व विष्णुजी से पठाईहुई आपही लक्ष्मी जी ने दिक्पालोंकी स्त्रियों समेत पार्वतीजी की सेवा किया ॥ ५७ ॥ सदाशिवजी को रोकतीहुई सी पार्वतीजी वरदान के जलों से मानो अग्निरूपी सदाशिवजी की शीतता को कररही थीं ॥ ५८ ॥ और उन पार्वतीजी त्रिपुरशत्रु शिवदेवकी तपस्या से इस समय

कठिन जलवासको मानो बोध कराती है ॥ ५९ ॥ सेवा करते हुये ऋषियों को क्रमसे मानो उपदेश करने के लिये पहले अभ्यास की हुई क्रीड़ाको तपस्या से भी
भलीभांति प्राप्त हैं ॥ ६० ॥ वियोग से तचे हुये चित्तको व चित्तमें स्थित वैसे सदाशिवजी को भलीभांति चिन्तन कर मानो दोनों के शीतलता करने के लिये जल
मे स्थित हुई थीं ॥ ६१ ॥ और शिलातल में उपजे हुये सब तीर्थोंकी अधिकताको मानो कहने के लिये इस संसार में स्थित हैं ॥ ६२ ॥ पापाग्नि, पावाग्नि और
पुण्य जलवास को प्राप्तहोकर तप करती हुई पार्वतीजी मानो शान्ति करनेके लिये स्थित हैं ॥ ६३ ॥ और रक्तकी धारा से डूबेहुये व महिषासुर के कण्ठ में स्थित उस

वक्रमात् ॥ क्रीडामिवपुराभ्यस्तां तपसापिचसङ्गता ॥ ६० ॥ आत्मानंविरहोत्तप्तमात्मस्थन्तादृशंशिवम् ॥ सञ्चिन्त्य
चोभयोः कर्तुंशीतलत्वंजलेस्थिता ॥ ६१ ॥ तीर्थानामिवसर्वेषामुद्भूतानांशिलातले ॥ आधिक्यमिवलोकेस्मिन् वक्तु
कामास्वयंस्थिता ॥ ६२ ॥ दुरिताग्निञ्चपावाग्निमपांवासमदुष्कृतम् ॥ अधिगम्यतपस्यन्ती शान्तिंकर्तुमिवस्थि
ता ॥ ६३ ॥ महिषासुरकण्ठस्थं रक्तधारापरिप्लुतम् ॥ क्षालयन्तीचलिङ्गन्तदमलैस्तीर्थवारिभिः ॥ ६४ ॥ अरुणा
ख्यंपुरंरम्यं निर्मितंविश्वकर्मणा ॥ अपीतकुचनाथेश शोणाद्रीश्वरगुप्तये ॥ ६५ ॥ शृङ्गेषुयस्यसौधेषु वसन्त्योवारयो
षितः ॥ अधःकृताभ्रतडितो जिगीषन्तीवचामरीः ॥ ६६ ॥ उत्तुङ्गसौधशृङ्गस्था गायन्त्योवारयोषितः ॥ सिद्धचारण
गन्धर्वा वीणांवैमुखमादधुः ॥ ६७ ॥ अष्टापदमयाकारमष्टदिक्पालपूजितम् ॥ अष्टसिद्धियुतैःसिद्धैरष्टमूर्त्तिपदाश्रि
तैः ॥ ६८ ॥ अष्टाङ्गभक्तिभिर्भक्तैर्युक्तमष्टाङ्गबुद्धिभिः ॥ चातुर्वर्ण्यगणोपेतमुपवर्णपरिष्कृतम् ॥ ६९ ॥ लसत्सुवर्णकुर्व

शिवलिंगको निर्मल तीर्थजलों से धोरही थीं ॥ ६४ ॥ और अपीतकुचनाथेश अरुणाचल की रक्षाके लिये विश्वकर्मा ने अरुणनामक मनोहर नगरको निर्माण
किया ॥६५॥ जिसके शृंगों व राजमन्दिरों में बसती हुई अप्सरायें देवागनाओं को मानो जीतने की इच्छा कररही हैं जोकि मेघोंकी बिजलियों को अपनी शोभा से नीचे
कियेथीं ॥६६॥ और ऊंचे राजमन्दिरों के शिखरों में बैठी अप्सरायें गान कररही थीं और सिद्ध, चारण व गन्धर्व मुख में वीणा को धरे थे ॥ ६७ ॥ और वह नगर
स्वर्णमयागार व आठों दिक्पालों से पूजित तथा अष्टमूर्ति (सदाशिव) जी के स्थानमें आश्रित आठों सिद्धियोंवाले सिद्धोंसे संयुत है ॥६८॥ व अष्टांग भक्तियों तथा

अष्टांग बुद्धिवाले भक्तों से संयुत है और चारों वर्णोंवाले मनुष्य गणों से संयुक्त तथा उपजातियों से संयुत है ॥ ६९ ॥ और सोहते हुये सोने चांदीकी छहरदिवाली
वाला व सुन्दर है व शंख, नगारा, तुरही मृदंग व मुरजादिकों से ॥ ७० ॥ और वीणा व वेणु इत्यादिक बाजाओं से लय समेत तालों करके सब ओर रंजित है
और शिवचित्तवाले महर्षियों की वेदध्वनि के शब्द से ॥ ७१ ॥ सदैव सेवनेयोग्य है नवग्रहोंके समान उदयवाले नवरत्नों की प्रभाराशियों से रात्रि दिनकी
एकताको दिखलाते हुये से वृषध्वज सदाशिवजी को देवी पार्वतीजी ने देखा व सदैव ॥ ७२ ॥ शंख बजानेवाले के भाव को प्राप्त होकर विष्णुजी ने आगे से व्या-
पक शिवजी की सेवाकिया और सुरगणों समेत हजार नेत्रोंवाले इन्द्रजी भली भांति आये ॥ ७३ ॥ और उत्तम सुगन्ध से संयुत फूलोंकी वृष्टि सब ओर से भरी

**र्णसालसद्मनोहरम् ॥ शङ्खदुन्दुभितूर्यैश्च मृदङ्गमुरजादिभिः ॥ ७० ॥ वीणावेणुमुखैस्तालैस्सलयैःसर्वरञ्जितम् ॥
ब्रह्मघोषनिनादेन महर्षीणांशिवात्मनाम् ॥ ७१ ॥ सेवितव्यंसदादेव्या समदर्शिवृषध्वजः ॥ नवरत्नप्रभाजालैर्नवग्र
हसमोदयैः ॥ निशादिवसयोरैक्यं दर्शयन्निवसर्वदा ॥ ७२ ॥ विष्णुःशाङ्खिकतांप्राप्तः सिषेवेपुरतोविभुम् ॥ शक्रःसुरग
णैःसार्द्धं सहस्राक्षःसमाययौ ॥ ७३ ॥ पपातदिव्यगन्धाढ्या पुष्पवृष्टिःसमन्ततः ॥ व्योमगङ्गाजलासङ्गी शीतलोमारुतो
ववौ ॥ ७४ ॥ कुसुमानांनवामोदवासिताखिलदिङ्मुखः ॥ कनकाङ्कितशृङ्गाग्रपरिधूतघनावलिः ॥ ७५ ॥ दर्पसंभ्रमसन्नद्धो
ननादवृषभोमुदा ॥ वसन्तप्रमुखाःसर्वे सहर्षमृतवःपराः ॥ ७६ ॥ आसेवन्तप्रियकरैः पुष्पैःस्वयमुपाचितैः ॥ गणाश्चवि
विधाकाराः सिद्धाश्चपरमर्षयः ॥ ७७ ॥ सुराश्चकुतुकोपेताः समागच्छन्दिदृक्षवः ॥ कुङ्कुमक्षोदसंमिश्रःकर्पूररजसान्वि**

और आकाशगंगा के जलका संगी शीतल पवन बहनेलगा ॥ ७४ ॥ जोकि फूलोंकी नवीन सुगन्धि से सब दिशाओं के मुखों को सुगन्धित कर रहा था और
सुवर्ण से चिह्नित सींगके अग्रभाग से मेघ पंक्तियों को कँपाकर ॥ ७५ ॥ गर्व के संभ्रम से सजाहुआ वृष (नन्दी) प्रसन्नतासे गरजनेलगा और वसन्त इत्यादिक
सब उत्तम ऋतुवें हर्ष समेत ॥ ७६ ॥ प्यारे हाथोंसे आपही तोड़े हुये पुष्पों से सेवते थे और अनेक भांतिके आकारवाले गण व सिद्ध और उत्तम ऋषिलोग ॥ ७७ ॥
व देखने की इच्छावाले कौतुकसंयुत देवतालोग भलीभांति आये व कपूर की धूरिसे संयुत तथा कुंकुम के चूर्ण से मिलीहुई चूर्णमुष्टिकी बड़ीभारी वर्षा सब

भजूं और देखाहुवा हम तुम दोनोंका समागम सब प्रयोजनों को देनेवाला होवै ॥ ९ ॥ और अन्यकी शरण में न जानेवाले तुम्हारे भक्तों के ज्ञान व अज्ञान से किये हुये हजारों अपराध क्षमा कियेजावै ॥ १० ॥ इस प्रकार देवी पार्वतीजी के वचनको सुनकर वरदायक अरुणाचलेश्वर सदाशिवजी ने पार्वती को उसी समस्त मनोरथ को दिया ॥ ११ ॥ और वर देनेकी कामनावाले सदाशिवजी ने आपही कौतुक से पार्वतीजी से कहा कि तुम मृगमद (कस्तूरी)को धारणकरो शिवजी से यह कहागया ॥ १२ ॥ कि बडी] तपस्यावाले पुलकनामक मृगरूपधारी बड़ेभारी दैत्य ने अधर्म में प्राप्तहोकर देवताओं समेत सब संसार को पीड़ित कियाहै ॥१३॥

कः ॥ ९ ॥ ज्ञानाज्ञानकृतंनित्यमपराधसहस्रकम् ॥ क्षम्यतांतवभक्तानामनन्यशरणैषिणाम् ॥ १० ॥ इतिदेव्यावचः श्रुत्वा शम्भुःशोणाचलेश्वरः ॥ तदेववरदःप्रादादुमांसर्वमभीप्सितम् ॥ ११ ॥ उवाचगौरींकुतुकाद्दातुकामःस्वयंशिवः ॥ धारयत्वंमृगमदमिदमुक्तञ्चशम्भुना ॥ १२ ॥ पुलकाख्योमहान्दैत्यो मृगरूपीतपोधिकः ॥ देवैरधर्मसम्प्राप्तो बबाधेसकलंजगत् ॥ १३ ॥ देवैरभ्यर्त्थितःसोहमाहचासुरनायकम् ॥ विमुञ्चलोकरक्षार्थमासुरंदेहमित्यथ ॥ १४ ॥ त्यक्ष्यामिदेवदेवेश देहमेतत्त्वदाज्ञया ॥ प्रणम्यभक्तिमान्सोपि पश्चाचैवेदमूचिवान् ॥ १५ ॥ मदङ्गसम्भवंदिव्यं सौरभं विश्वमोहनम् ॥ धार्यतेदेवदेवेश सदारैःसर्वदाक्षितौ ॥ १६ ॥ पुलकस्नेहनायाख्या सदाप्रख्यायतांतव ॥ अयंमृगमदोलोके शृङ्गाररसवर्द्धनः ॥ १७ ॥ त्वत्प्रियाकान्तिसौभाग्यरूपलावण्यदायकः ॥ विसृजामिनिजंदेहं सदाशिवम

देवताओ से प्रार्थना कियेहुये मैने असुरनायक पुलक से यह कहा कि संसारकी रक्षा के लिये दैत्यवाले शरीरको छोड़ दीजिये इसके उपरान्त ॥ १४॥ उस भक्तिमान् पुलक ने प्रणामकर कहा कि हे देवदेवेश ! तुम्हारी आज्ञा से मैं इस देह को छोड़दूंगा और पश्चात यह कहा ॥ १५ ॥ कि हे देवदेवेश ! मेरे अगरा उपजी हुई संसार को मोहनेवाली उत्तम सुगन्ध पृथ्वी में सदैव स्त्री समेत पुरुषों से धारण कीजाती है इस लिये पुलक के स्नेह के लिये तुम्हारा नाम सदैव प्रसिद्ध होवै यह मृगमद (कस्तूरी) ससार में शृगाररस को बढ़ानेवाली है ॥ १६।१७ ॥ और तुम्हारी प्यारी पार्वती जी को कान्ति (शोभा) सौभाग्य रूप सुन्दरताको देनेवालीहै हे

सदाशिव, महेश्वरजी ! मैं अपनी देह को छोड़ताहूं ॥ १८ ॥ जो शरीर कि दिव्य सुगन्ध की अभिलाषवाली पार्वती जी से बहुत आदर किया गयाहै और मेरे अंग
से उपजेहुये सुगन्धको पायेहुये जो मृग हैं ॥ १९ ॥ वे हे देवेश ! स्थान के छलसे तुम्हारी मूर्त्तिही में लीन होजावैं वैसाही होगा मेरे ऐसा कहनेपर उसपुलक नामक
दैत्यने ॥ २० ॥ मुझमें जीव को धरकर अपने शरीर को छोड़दिया उसी कारण तुम्हारे अंगसे उपजेहुये बहुत सुगन्धवाले तथा शृंगाररस को बढ़ानेवाले मदको
मैंने प्रेमसे धारण किया वैसी तपस्या से तुम्हारा तचाहुआ शरीर दुबलाहै ॥ २१ । २२ ॥ और वियोग से विकल मेरा यह अंगमार्गसे थकितहै इसप्रकार बहुत भांति

हेश्वर ॥ १८ ॥ सदाबहुमतोदेव्या दिव्यसौरभलुब्धया ॥ मदंशसम्भवा येस्युर्मृगाश्चलब्धसौरभाः ॥ १९ ॥ ली
यन्तांतवदेवेश मूर्त्ताविवायनच्छलात ॥ तथेतिमय्युक्तवतिसदैत्यःपुलकाभिधः ॥ २० ॥ विससर्जनिजंदेहं मयिसंन्यस्त
जीवितः ॥ ततस्त्वदङ्गसम्भूतं मदंबहुलसौरभम् ॥ २१ ॥ अधारयमहंप्रेम्णा शृङ्गाररसवर्द्धनम् ॥ तपसातादृशेनेदं तप्तं
तववपुःकृशम् ॥ २२ ॥ मदङ्गञ्चवियोगार्त्तमिदंनिर्वाप्यतेध्वना ॥ इतिप्रशस्यबहुधा पुलकस्नेहमद्भुतम् ॥ २३ ॥ आलि
लिङ्गमहादेवः पार्वतींप्रेममन्दिराम् ॥ अपृच्छच्चपुनर्देवः पार्वतींललिताकृतिम् ॥ २४ ॥ किमेतदितिहस्तस्थं दृष्ट्वातां
जगदम्बिकाम् ॥ साब्रवीदरुणाद्रीशमानम्यजगदम्बिका ॥ २५ ॥ आगमन्तस्यदीपस्य सदास्वकरवर्त्तिनः ॥ २६ ॥
गौर्युवाच ॥ अहंकैलासशिखराद्देवदेवत्वदाज्ञया ॥ तपःकर्तुमनुप्राप्ता काञ्चींकनकतोरणाम् ॥ २७ ॥ अवाप्य
मानसोद्भूतं कह्लारवनमुत्तमम् ॥ आराध्यंमहादेवमम्लानगुहसौरभम् ॥ २८ ॥ यदत्तयमविश्रान्तमर्चनंयोजितंम

से प्रशंसाकर रोमाञ्चसंयुत स्नेह से आश्चर्यपूर्वक ॥ २३ ॥ महादेवजी ने प्रेममन्दिर पार्वती जी को लिपटा लिया और फिर शिवदेवजी ने सुन्दर
स्वरूपवाली जगदम्बिका पार्वतीजी से यह पूछा कि हाथ में स्थित यह क्या है उसको देखकर उन जगदम्बिका जीने अरुणाचल को प्रणामकर सदैव अपने हाथ
में वर्त्तमान उस दीपके आगम को कहा ॥ २४।२५ । २६ ॥ पार्वतीजी बोलीं कि हे देवदेव ! तुम्हारी आज्ञासे मैं कैलास पर्वत के शिखर से तपस्या करने के लिय
सुवर्ण के बहिर्द्वारवाली काञ्चीपुरी में प्राप्तहुई ॥ २७ ॥ और मानसर से उपजेहुये उत्तम कमल वन में प्राप्त होकर मैंने अम्लान बहुतसुगन्धवाले महादेवजीका आरा-

घनकिया ॥२८॥ और जो अविनाशी तथा विश्राम (समाप्ति) रहित पूजन था उसको मैंने युक्त किया और इस दीप को मैंने तुम्हारे आगे स्थापित किया ॥ २९ ॥ जो कि सम्पूर्ण व बहुत जलताहुआ तथा कामधेनु के घी से भराहुआ है राजाओं से यह देखने योग्य व पालने योग्य है ॥ ३० ॥ संसार की रक्षा के लिये आदर से धर्म का लक्षण धारण करना चाहिये और सब मनोरथों की सिद्धिके लिये व मेरी प्रीति करने के निमित्त ॥ ३१ ॥ व संसार की रक्षाके लिये मैंने बत्तीसधर्मोंको भली भांति स्थापन किया है उनको मेरे समीप आयेहुये पुरुषों को बड़े उपाय से रक्षा करना चाहिये ॥ ३२ ॥ और सब अलङ्कारों से संयुत व सब सुखों से किये

या ॥ अयञ्चदीपःपुरतस्त वसंस्थापितोमया ॥ २९ ॥ अव्युच्छिन्नोमहादीप्तः कामधेनुघृताप्लुतः ॥ अवेक्षणीयोभूपालैर्गोपाल्यश्चसर्वदा ॥ ३० ॥ धर्मलक्षणमाधेयंलोकरक्षार्थमादरात् ॥ सर्वाभीप्सितसिद्ध्यर्थं मत्प्रीतिकारणायच ॥ ३१ ॥ मयासंस्थापिताधर्मा द्वात्रिंशल्लोकगुप्तये ॥ रक्षणीयाःप्रयत्नेन मत्सन्निधिमुपागतैः ॥ ३२ ॥ सर्वालङ्कारसंयुक्तं सर्वभोगकृतोत्सवम् ॥ आलोक्यतामिदंरूपं कन्यायाममकान्तिमत् ॥ ३३ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इतिदेव्यावचःश्रुत्वा शम्भुःशोणाचलेश्वरः ॥ तथेतिवरदःप्रादाद्वरंसर्वमभीप्सितम् ॥ ३४ ॥ एषशोणाचलःश्रीमान् दृश्यतेलोकपूजितः ॥ सर्वदापरितोगुप्तः सर्वभोगैश्चसंवृतः ॥ ३५ ॥ यएतच्छाम्भवंरूपमरुणाद्रितयास्थितम् ॥ पश्यन्तियेनमस्यन्ति कृतार्थाःसर्वएवते ॥ ३६ ॥ अरुणाचलमाहात्म्यमेतच्छृण्वन्तियेभुवि ॥ भवन्तिसततंतेषां समग्राःसर्वसम्पदः ॥ ३७ ॥ श्रीमत्त्वंवाक्पतित्वञ्च रूपमव्याहतंबलम् ॥ लभतेपापनाशञ्च माहात्म्यस्यास्यधारणात् ॥ ३८ ॥ सर्वतीर्थाभि

हुये उत्सववाला मुझ कन्या का छविसंयुत यह रूप देखा जावै ॥ ३३ ॥ ब्रह्मा जी बोले कि देवी पार्वतीजी के इस वचन को सुनकर वरदायक अरुणाचलेश्वर सदाशिवजीने वैसाहीहोगा यह कहकर समस्त चाहेहुये वरदानको दिया॥३४॥ कि यह श्रीमान् अरुणाचल संसार में पूजित व सबओर से रक्षित होकर सदैव देख पड़ताहै जोकि सब सुखों से आच्छादित है ॥३५॥ अरुणाचलता से स्थित इस सदाशिवजी के रूपको जो देखते हैं और जो प्रणाम करते हैं वे सबही कृतार्थ होजाते हैं ॥ ३६ ॥ पृथ्वी में जो मनुष्य इस अरुणाचल के माहात्म्य को सुनते हैं उनके सदैव समस्त संपदायें संपूर्ण होतीहैं ॥ ३७ ॥ इस माहात्म्य के धारणसे वाक्पतित्व

रूप व अविनाशी पराक्रम तथा पातकों के नाशको प्राप्तहोता है ॥ ३८ ॥ और अरुणाचल जीका दर्शन समस्त तीर्थों के स्नान के फलको देनेवाला और सब यज्ञ
कर्मों के फलको देनेवाला व सदाशिवजीकी प्रसन्नताका दायकहै ॥ ३९ ॥ इसी कारण शिवकी आज्ञासे कैलासके शिखरसे प्राप्तहुई देवीजी अरुणाचलके दर्शन से शाप
से मुक्तिको प्राप्तहुई ॥४०॥ पृथ्वीमें व आकाशमें बहुत पुण्यवाले सदाशिवजीके अन्य स्थानोंके स्थित होनेपर शिवजी यहींपर प्रसन्नहुये हैं ॥४१॥ ये श्रीक्षितात् सदाशिवजी
अरुणाचल के रूप से स्थित हैं और सृष्टि, पालन व संहारका कारण उत्तम तेज देखपड़ता है ॥ ४२ ॥ सब देवताओं से प्रणामकियाहुआ यह तैजसलिङ्ग देखपड़ताहै,

ष्वपिसर्वयज्ञक्रियाफलम् ॥ सदाशिवप्रसादञ्च तथाशोणाद्रिदर्शनम् ॥ ३९ ॥ इतिकैलासशिखरात् प्राप्तादेवीशिवा
ज्ञया ॥ शापमोक्षङ्गतवती शोणाचलनिरीक्षणात् ॥ ४० ॥ स्थानेष्वन्येषुदेवस्य विद्यमानेषुचक्षितौ ॥ दिविचाप्यन्तपु
ण्येषु शङ्करोत्रप्रसेदिवान् ॥ ४१ ॥ अयंसदाशिवःसाक्षादरुणाचलरूपतः ॥ दृश्यतेपरमंतेजः सर्गस्थित्यन्तकारण
म् ॥ ४२ ॥ एतत्तुतैजसंलिङ्गं सर्वदेवनमस्कृतम् ॥ दृश्यतेकर्मभूरेषा तेनसर्वाधिकामता ॥ ४३ ॥ अरुणाचलनाथस्य
तेजसाधूतकिल्बिषः ॥ भक्तिमांश्चनरोलोके सुखीसर्वमवाप्नुते ॥ ४४ ॥ प्रदक्षिणैर्नमस्कारैस्तपोभिर्नियमैरपि ॥ येर्चय
न्त्यरुणाद्रीशं तेषांशम्भुर्वशङ्गतः ॥ ४५ ॥ नतथातपसायोगैर्दानैःप्रीणातिशङ्करः ॥ यथासकृदपिप्राप्तादरुणाचलदर्श
नात् ॥ ४६ ॥ स्वयम्भुवःसदावेदाः सेतिहासादिविस्थिताः ॥ हृष्टाउपासतेचापि स्तुवन्त्यरुणपर्वतम् ॥ ४७ ॥ एतस्यैव
भवंसर्वं नमयानचशार्ङ्गिणा ॥ वचसाशक्यतेवक्तुं वर्षकोटिशतैरपि ॥ ४८ ॥ देवाश्चहरिमुख्यास्ते कल्पकाद्याःसुरद्रु

उसीकारण यह कर्मभूमि सबसे अधिक मानी गईहै ॥४३॥ भक्तिमान् पुरुष अरुणाचलेश के तेजसे नष्ट पातकोंवाला होकर संसार में सुखी होताहै व सब मनोरथ को
प्राप्तहोताहै ॥ ४४ ॥ जो पुरुष प्रदक्षिणा, नमस्कार तपस्या व नियमों से भी अरुणाचलेशजी को पूजते हैं सदाशिवजी उनके वशमें प्राप्तहोते हैं ॥ ४५ ॥ उसप्रकार
तपस्या, योग व दानों से शंकरजी नहीं प्रसन्न होतेहैं जिसभांति कि एकबारभी पाये हुये अरुणाचलके दर्शन से प्रसन्न होते हैं ॥ ४६ ॥ और इतिहासों समेत आप
हीसे उपजे हुये वेद आकाश में स्थित होकर प्रसन्नहोतेहुये उपासना करते हैं व अरुणाचल की स्तुति करते हैं ॥ ४७ ॥ इस अरुणाचल का सब माहात्म्य मुझसे व

विष्णु जीसे वचनके द्वारा करोडों सौ वर्षों से भी नहीं कहाजासक्ताहै ॥४८॥व विष्णुइत्यादिक देवता व कल्पवृक्षादिक देववृक्ष छिपेहुये रूपवालेहोकर सदैव अरुणाचल की सेवा करते हैं ॥ ४९ ॥ उसके कलियुग का दोष व आधि व्याधियों की वृद्धि नहीं होती है जो कि अरुणाचलसंज्ञक लिंगको पूजता है ॥ ५० ॥ सदाशिवजी के चरणके आश्रयसे यह सब तुमसे कहागया ॥५१॥ हे देवि ! अरुणाचलेशशिवजी के कहेहुये इससमस्त मनोहर माहात्म्यको सदैव वे सनकमुनि दोनों कर्णपुटोंसे पीते हुये तपस्याओं के फलोंको प्राप्त हुये हैं ॥ ५२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽरुणाचलखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायाभाषाटीकायांत्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ ● ॥

माः ॥ प्रच्छन्नरूपाःसेवन्ते सर्वदेवारुणाचलम् ॥ ४९ ॥ नतस्यकलिदोषःस्यान्नाधिव्याधिविजृम्भणम् ॥ येनसम्पूज्यतेलिङ्गमरुणाचलसंज्ञितम् ॥ ५० ॥ इत्येतत्कथितंसर्वं तवशम्भुपदाश्रयात् ॥ ५१ ॥ कथितमिदमशेषमेवदेवि अरुणगिरीशशिवस्यसर्वदेव ॥ श्रुतिपुटयुगलात्पिबन्मनोज्ञंसनकमुनिस्तपसांफलंसलेभे ॥ ५२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽरुणाचलमाहात्म्ये त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ब्रह्मोवाच ॥ वसन्तोनैमिषारण्ये मुनयःसूतमब्रवीत् ॥ स्थानानामुत्तमंशैवं यत्स्थलंतद्वदस्वनः ॥ १ ॥ सूतउवाच ॥ यूयंशृणुतयत्पूर्वं नन्दीश्वरमुखाच्छ्रुतम् ॥ मार्कण्डेयेनतद्वक्ष्ये मुनयःशृणुतादरात् ॥ २ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ नन्दीश्वरत्वयाप्रोक्तो महिमामेद्यभक्तितः ॥ मयाप्यवधृतंसर्वं भक्तिश्रद्धार्द्रचेतसा ॥ ३ ॥ तथापिवदमेभूयो देवदेवदयानिधे ॥ अहंयत्परिपृच्छामि भवन्तंविहितादरः ॥ ४ ॥ त्वयाप्यविदितंकिञ्चिन्नास्त्यत्रभुवनत्रये ॥ सर्वागमपुराणेषु

दो० । नन्दीश्वर से प्रश्नकिय मार्कंडेय मुनीश ! चौदहवें अध्यायमें सोई कथा वरीश ॥ ब्रह्माजी बोले कि नैमिषारण्यमें बसतेहुये मुनिलोग सूतजीसे बोले कि स्थानों के मध्यमें जो उत्तम शिवजीका स्थान हो उस स्थानको हमलोगों से कहिये ॥ १ ॥ सूतजीबोले कि हे मुनियो ! तुमलोग सुनो कि पुरातन समय नंदीश्वर के मुख से सुनेहुये जिस चरित को मैंने मार्कण्डेय मुनिसे सुनाहै उसको मैं कहताहूं तुम लोग आदर से सुनो ॥ २ ॥ मार्कण्डेयजी बोले कि हे नन्दीश्वर ! तुमने भक्ति से आज मुझसे महिमाको वर्णन किया और भक्ति व श्रद्धा से भीगे हुये चित्तसे मैंने भी सब सुना ॥ ३ ॥ तौभी हे दयानिधान, देवदेव ! आदर कियेहुये मैं आप से

जो पूछताहूं उसको मुझसे कहिये ॥ ४ ॥ इस त्रिलोक में तुम से समस्त शास्त्र व पुराणों तथा वेदों के मध्यमें कुछभी अज्ञात नहीं है ॥ ५ ॥ समस्त कर्मोंको करने
वाले पुरुषको उस उस फलके मिलने के लिये स्वर्ग व मोक्ष के मध्य में भूमिही उत्तमहै ॥ ६ ॥ पुरातनसमय तुम्हींने पुरुषों के लिये तीनभांति के फलको कहाहै कि
भूमि में सुख व स्वर्ग भोग और मोक्ष यह कहागयाहै ॥ ७ ॥ बहुधा पुण्य क्षीण होनेपर पहलेवाले दो याने भूमि में सुख व स्वर्ग भोग क्षीण होजाताहै और तीसरा
मोक्ष नहीं नाशहोताहै वही कर्मों की गति है ॥ ८ ॥ और उसकी सिद्धि तो तुमने बुद्धि व विज्ञान के गोचर कहाहै व सबही शरीरधारियों को शुद्ध ज्ञान दुर्लभहै फिर ॥ ९ ॥

वेदेष्वभ्यन्तरेषुच ॥ ५ ॥ स्वर्गापवर्गयोःपुंसो भूमिरेवविशिष्यते ॥ सर्वकर्माणिनिर्मातुस्तत्तत्फलप्रलब्धये ॥ ६ ॥ फ
लन्त्रिविधंपुंसां त्वयैवकथितम्पुरा ॥ भूमौसुखंस्वर्गभोगःकैवल्यमितिचोदितम् ॥ ७ ॥ पुण्यक्षयेचक्षीयेत प्रायः
प्राथमिकंद्वयम् ॥ क्षीयतेनतृतीयन्तु कर्मणामेवसागतिः ॥ ८ ॥ तत्सिद्धिस्तुत्वयाप्रोक्ता बुद्धिविज्ञानगोचरा ॥ सर्वे
षांदुर्लभंशुद्धज्ञानन्देहभृताम्पुनः ॥ ९ ॥ तज्ज्ञानंकुत्रचक्षेत्रे शास्त्रादिपठनंविना ॥ शिवपूजनमात्रेण सिध्येत्सर्वशरी
रिणाम् ॥ १० ॥ ज्ञानयोगक्रियावाचोह्यशेषाणांशरीरिणाम् ॥ अपिशैवागमोक्तेषु नबुद्धिस्साप्रवर्तते ॥ ११ ॥ यस्य
स्थानस्यमाहात्म्यात्सर्वस्यापिशरीरिणः ॥ लभ्यतेनियमैःशुद्धं ज्ञानंतन्मेप्रकथ्यताम् ॥ १२ ॥ भस्मरुद्राक्षवहना
दीश्वरस्मरणात्तथा ॥ यत्रमुग्धैरपिश्रेयो लभ्यन्तत्स्थानमुच्यताम् ॥ १३ ॥ अबुद्धिपूर्वकेणापि यत्रवासेनदेहिनः ॥
अविघ्नंसत्स्यतेश्रेयः स्थानंतन्मेनुगृह्यताम् ॥ १४ ॥ जातानांवर्णसाङ्कर्यैस्तैरश्चांयोनिमायुषाम् ॥ स्थावराणामपिश्रेयोय

वह ज्ञान विन शास्त्रादिकों के पढ़ने से किस क्षेत्रमें मिलै और सब शरीरधारियों को वह ज्ञान शिवजी के पूजनमात्र से सिद्ध होवैहै ॥ १० ॥ ज्ञान, योग, कर्म व
वचन सबही शरीरधारियों के होते हैं परन्तु शैवशास्त्रोक्त कर्मों में वह बुद्धि नहीं वर्तमान होतीहै ॥ ११ ॥ जिस स्थान के माहात्म्यसे सबभी देहधारी को नियमों से
शुद्धज्ञानमिलै उसको मुझसे कहिये ॥ १२ ॥ भस्म व रुद्राक्ष के धारण से तथा ईश्वर के स्मरणसे जहांपर अज्ञानियों को भी ज्ञान मिलने योग्य हो उस स्थान को
कहिये ॥ १३ ॥ और जहांपर अज्ञानपूर्वक भी प्राणी के निवाससे निर्विघ्नपूर्वक कल्याण सिद्ध होजावै है उस स्थान को मुझसे कहिये ॥ १४ ॥ व संकर वर्णमें उपजे

हुये तथा पशु, पक्षी की योनिमें प्राप्त और स्थावर (वृक्षादिकों) को भी जहां कल्याण होवै उस क्षेत्रको कहिये ॥ १५ ॥ उन मृकंडु के पुत्र मार्कण्डेयजी
कहकर अन्य मुनिनायक महात्माओं समेत शिलादके पुत्र उन नन्दीश्वर के दोनों चरणकमलों को सबशास्त्रोंकी प्राप्ति के लिये प्रणाम किया ॥ १६ ॥ इति श्री
पुराणेऽरुणाचलमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायाभाषाटीकायाचतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ ॥ ॥ ॥
दो०। कह्यो मार्कण्डेयसन नन्दीश्वर शिवथान। पंद्रहवें अध्यायमें सोई कथा बखान ॥ नन्दिकेश्वरजी बोले कि हे मुने! आप शैवों में अग्रगण्यहो सब

त्रतत्क्षेत्रमुच्यताम् ॥ १५ ॥ इतीरयित्वासमृकण्डुनन्दनोसमंमुनीन्द्रैरपरैर्महात्मभिः ॥ ननामतस्याङ्घ्रिसरोरुहद्वय
शिलादसूनोरखिलागमाप्तये ॥ १६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽरुणाचलमाहात्म्येचतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ *

नन्दिकेश्वरउवाच ॥ स्थानन्त्वयामुनेपृष्टमस्तिमाहेश्वराग्रणीः ॥ चराचराणांसर्वेषां भूतानामपिशर्मणे ॥ १
प्रकल्पितंहिदेवेन तत्तत्कर्मानुगुण्यतः ॥ शरीरभाजांजननं तासुतास्वपियोनिषु ॥ २ ॥ त्वयाशुश्रूषितंतेषां हिताय
हतेह्यलम् ॥ अन्यथासंसृतेर्हानिः कल्पैःकोटिशतैरपि ॥ ३ ॥ स्वल्पैर्हिकर्मभिर्ज्ञानैरपिप्राप्तैःपुनःपुनः ॥ घटीयन्त्र
वज्जन्ममरणेनैवशाम्यतः ॥ ४ ॥ कथंनुविरतोदेही गर्भशोकसमागमात् ॥ विश्रान्तयेप्रकल्पेत विशुद्धज्ञानतो
ना ॥ ५ ॥ नूनन्तेकथितःपूर्वं प्रसङ्गवशतोमया ॥ नद्यादिभेदकेष्वेव निवासःकृत्तिवाससः ॥ ६ ॥ केचित्तीरेषुगङ्गाय

प्राणियोंके कल्याणके लिये तुमने स्थानको पूंछाहै ॥ १ ॥ सदाशिव देवजीने उन उनकर्मों के अनुसार उनउन योनियों में शरीरधारियोंकी उत्पत्तिको कल्पित कियाहै
उनके बहुत हितकेलिये तुमने सुनने की इच्छा किया अन्यथा करोड़ों सौ कल्पोंसे भी संसृति (जन्म, मरण) की हानि होती है ॥ ३ ॥ पायेहुये ज्ञानों से थोड़े
के द्वारा फिर फिर घटीयंत्र (रहँट) की नाईं जन्म व मरण नहीं शान्त होतेहैं ॥४॥ गर्भशोक के संयोगसे विराग को प्राप्त प्राणी शुद्धज्ञानके विना किसभांति
के लिये समर्थ होवैहै ॥ ५ ॥ पहले प्रसंग के वशसे मैंने नदीआदिकोंके भेदोंमें शिवजी के स्थानको तुमसे निश्चयकर कहाहै ॥ ६ ॥ कोई गंगानदी के किनारे

कोई सरस्वती नदीके किनारे हैं अन्य यमुनानदीके किनारे व कोई शोणनदी के किनारे पर हैं ॥ ७ ॥ अन्य नर्मदानदी के किनारे व और गोदावरी के किनारेहैं
कोई गोमतीनदी के किनारे व अन्य हैमवती के किनारे हैं ॥ ८ ॥ अन्य समुद्रके किनारों में तथा और द्वीपों में हैं व कोई मुख्य तड़ागों में और कोई
अन्य नदियों के किनारोंमें हैं ॥ ९ ॥ कोई कृष्णा व वेणानदी के किनारे अन्य तुंगभद्रा के समीपहैं और कोई उपद्रोणा के समीप व अन्य भद्रानदी के समीपहैं ॥
१० ॥ अन्य कावेरीनदीके किनारे व कोई वेगवती के किनारेपरहैं अन्य ताम्रपर्णीनदी के समीप व कोई सुरसानदी के किनारे हैं ॥ ११ ॥ कोई ऐरावती के किनारे

केचित्सारस्वतेतटे ॥ कालिन्दीतीरयोरन्ये कतिचिच्छोणरोधसि ॥ ७ ॥ अपरेनर्मदातीरे परेगोदावरीतटे ॥ कति
चिद्गोमतीतीरेष्वन्येहैमवतीतटे ॥ ८ ॥ समुद्रपार्श्वेष्वितरेद्वीपेष्वन्येसरस्सुच ॥ मुख्येषुकेचित्सिन्धूनां तटेष्वपिचके
चन ॥ ९ ॥ कृष्णावेणातटेकेचित्तुङ्गभद्रान्तिकेपरे ॥ उपद्रोणांकतिपयाः परेभद्रापगान्तिके ॥ १० ॥ कावेरीतीरइतरे
केचिद्वेगवतीतटे ॥ अन्येतुताम्रपर्ण्याश्च कतिचित्सुरसातटे ॥ ११ ॥ केचिदैरावतीतीरे केचिद्वेणावतीतटे ॥ १२ ॥ क
न्यातटेषुकतिचित्कतिचित्कुमारीतीरपरेतुतमसावरणान्तिकेन्ये ॥ मन्दाकिनीसविधयोरितरेपरेपि शिप्रातटेषुपरि
तोप्यपरेपराख्याः ॥ १३ ॥ विपाशाभ्याशइतरेशतद्र्वाश्चतटेपरे ॥ चर्मण्वत्युपकण्ठेन्ये केचिद्भीमरथीतटे ॥ १४ ॥ केचिद्बि
न्दुसरोभ्यर्णे परेपम्पासरस्तटे ॥ अभ्यर्णेकेपिभैरव्याः कतिचित्कौशिकीतटे ॥ १५ ॥ अपरेमालिनीतीरे परेगन्धव
तीतटे ॥ अन्येवेत्रवतीपार्श्वे कतिचिन्मानसेतटे ॥ १६ ॥ इन्द्रद्युम्नसरस्यन्य एकेतुमणिकर्णिके ॥ परेतुकम्पानद्यावेम

व कोई वेणावती के किनारे परहैं ॥ १२ ॥ कोई कन्या नदीके किनारे व अन्य कुमारी नदीके किनारोंमेंहैं व अन्य तमसावरणा के समीपहैं व अन्य मंदाकिनी व स-
विधानदी के किनारोंपरहैं तथा अन्य शिप्रानदी के किनारे हैं ॥ १३ ॥ व अन्य विपाशानदी के समीप और अन्य शतलजनदी के किनारे
हैं अन्य चर्मण्वतीनदीके किनारे व कोई भीमरथीनदीके किनारेहैं ॥ १४ ॥ व कोई बिंदुसरके समीप तथा और पपासर के किनारे परहैं व कोई भैरवीनदीके किनारे
तथा कोई कौशिकीनदीके किनारे हैं ॥ १५ ॥ अन्यमालिनीनदी के किनारे व अपर गन्धवतीके किनारे हैं और अन्य वेत्रवतीनदीके तटपै तथा कोई मानसरोवर के

किनारेपर हैं ॥ १६ ॥ व अन्य इन्द्रद्युम्नतडाग के किनारे व कोई मणिकर्णीका के किनारे व अन्य कंपानदी के किनारे और अन्य महानदी के किनारेपरहैं ॥ १७ ॥ व कोई लौहितीनदी के किनारे और कोई तुंगमानदी के किनारेहैं अन्य वितस्तानदी के समीपहैं व और चन्द्रभागानदीके समीप हैं॥१८॥ कोई सुरलोपानदी के समीप व अन्य पल्लीवसिनदी के किनारों पै हैं व कोई मधुमतीनदी के किनारे और कोई शोणनद के किनारे पै हैं ॥ १६ ॥ वाराणसी (काशी) क्षेत्र पांच कोसतक पवित्रकारक कहागयाहै जहांपर विमुक्तनामक देव व विशालानामक पूजित देवीजी हैं ॥ २० ॥ और जहांपर कि कपालमोचन नामक तीर्थ व जहां कालभैरवजी हैं हे मुने!

हानद्याश्चकेचन॥१७॥लोहित्याःकूलयोःकेचित्कतिचित्तुङ्गमातटे॥वितस्तायान्तिकेत्वन्ये चन्द्रभागान्तिकेपरे॥१८॥ सुरलोपान्तिकेकेचित्परेपल्लीवसितीरयोः ॥ केचिन्मधुमतीतीरे केचिच्छोणनदेतटे ॥ १९ ॥ उक्तंवाराणसीक्षेत्रं क्रोशपञ्चकपावनम् ॥ देवोयत्रविमुक्ताख्यो विशालाख्यासमर्चिता ॥ २० ॥ कपालमोचनंयत्र यत्रास्तेकालभैरवः ॥ मृतानांयत्ररुद्रत्वं काश्याञ्चविहितम्मुने ॥ २१ ॥ गयाप्रयागौचतथा कथितौसर्वसिद्धिदौ ॥ यत्रपिण्डप्रदानेन तुष्यन्तिपितरःकिल ॥ २२ ॥ गोकर्णञ्चैवकेदारं यस्मिन्महिषरूपधृक् ॥ देवोपिसोधुनास्तेच सर्वश्रेयस्करोनृणाम् ॥ २३ ॥ सर्वसिद्धिकरंपुंसां श्रुतंबदरिकाश्रमम् ॥ अत्रास्तेत्र्यम्बकोदेव्या नरनारायणार्चितम् ॥ २४ ॥ श्रुतंहिनैमिषंक्षेत्रं त्वया यत्रमहेश्वरः ॥ देवदेवोमहादेवस्त्रिपुरस्यान्तकारकः ॥ २५ ॥अमरेशमितिस्थानं प्रोक्तंसर्वार्थसाधकम् ॥ ॐकारनामात्रापि चण्डिकाख्यामहेश्वरी ॥ २६ ॥ पुष्कराख्यंमहास्थानं श्रुतंतेकथितम्मया ॥ यत्रदेवोरुजोगन्धिः पुरुहूताम

जिस काशी में मरेहुये मनुष्यों को शिवत्व कहागयाहै ॥ २१ ॥ वैसेही गया और प्रयाग सर्वसिद्धिदायक कहेगयेहैं जहांपर पिण्डके देनेसे पितर प्रकटही प्रसन्नहोते हैं ॥ २२ ॥ और गोकर्ण व केदारक्षेत्रहै कि जिसमें महिषरूपधारी वे शिव देवजी इस समयहैं जोकि मनुष्योंके सबकल्याणकारक हैं ॥ २३॥ और बदरिकाश्रम मनुष्यों को सब सिद्धियोंका कारकहै यहांपर नरनारायणसे पूजित देवीजी समेत त्रिलोचनजीहैं ॥ २४ ॥ और नैमिष क्षेत्रको तुमने सुनाहै जहां कि त्रिपुरके विनाशकारक देवदेव महादेवजीहैं ॥ २५ ॥ व सब प्रयोजनोंको सिद्धकरनेवाला अमरेश ऐसास्थानहै वहांभी ॐकारनामक महादेवजी और चण्डिकानामक भगवतीहैं ॥२६ ॥ और मुझसे

कहे हुये पुष्करनामक बड़ेभारी स्थानको तुमने सुना है जहां कि रुजोगन्धि नामक शिवदेव व पुरुहूता महेश्वरी हैं ॥ २७ ॥ मैंने आषाढीनामक पवित्रस्थानको तुमसे
कहा है वहां आषाढेश शिवजी हैं व रतिनामक परमेश्वरीहैं ॥ २८ ॥ और मैंने तुमसे दंडिमुंडीनामक स्थानको कहाहै जहांपर कि मुंडी महादेव और दंडिका भगवती
हैं ॥ २९ ॥ और मैंने तुमसे लाकुलिनामक शुद्धस्थान को कहाहै जिसमें लाकुलीश महादेव और सर्वमंगला परमेश्वरीहैं ॥ ३० ॥ और मैंने तुमसे भारभूति ऐसे स्थानको
कहाहै जहांपर भार नामक शिवजी और भूतिनामक पार्वतीजीहैं ॥ ३१ ॥ और मैंने तुमसे अरालकेश्वर नामक स्थानको कहाहै जहां कि सूक्ष्मनामक शिवजी व सूक्ष्मा

**हेश्वरी ॥२७॥ आषाढीनामतेस्थानं पावनंकथितम्मया ॥ आषाढेशोहरस्तत्र रतिश्चपरमेश्वरी॥२८॥दण्डिमुण्डीसमा
ख्यञ्च स्थानंतेकथितम्मया ॥ यत्रमुण्डीमहादेवो दण्डिकापरमेश्वरी ॥ २९ ॥ लाकुलिनामतेस्थानं विशुद्धंकथि
तम्मया ॥ लाकुलीशोहरोयस्मिन् देवीचसर्वमङ्गला ॥ ३० ॥ भारभूतिरितिस्थानं भवतोभिहितम्मया ॥ यत्रभाराभि
धःशम्भुर्भूत्याख्याभूधरात्मजा ॥ ३१ ॥ अरालकेश्वरंनामस्थानंतेकथितम्मया ॥ यत्रसूक्ष्माभिधःशूली सूक्ष्माख्या
शैलनन्दिनी ॥ ३२ ॥ गयानाममहाक्षेत्रं तवप्रस्तावितम्मया ॥ मङ्गलाख्याशिवायत्र शङ्करःप्रपितामहः ॥ ३३ ॥ कु
रुक्षेत्रमितिस्थानं भवतोविनिवेदितम् ॥ यत्रस्थाणुप्रियादेवी देवःस्थाणुसमाह्वयः ॥३४॥ उक्तंकनखलंनाममयास्थानं
तथोत्तमम् ॥ उग्रोयत्रपुरारातिरुमागिरिवरात्मजा ॥ ३५ ॥ तालकाख्यंमहाक्षेत्रं मार्कण्डेयमयोदितम् ॥ देवीस्वयं
भुवीयत्र स्वयंभूःपरमेश्वरः ॥ ३६ ॥ अट्टहासमितिप्रोक्तं महास्थानंमयातव ॥ यत्रार्कःपूजयित्वेशमासीत्पूर्णमनोर**

नामक पर्वतकुमारीहैं ॥ ३२ ॥ व मैंने गयानामक महातीर्थ को तुमसे कहाहै जहां पर मंगला नामक पार्वती व प्रपितामह नामक सदाशिवजीहैं ॥ ३३ ॥ और कुरुक्षेत्र
ऐसा स्थान तुमसे कहागया है जहांपर स्थाणुप्रिया नामक देवी और स्थाणु नामक शिवजीहैं ॥३४॥ वैसेही मैंने तुमसे कनखलनामक उत्तम स्थानको कहाहै जहांपर
उग्रनामक पुराराति याने त्रिपुरविनाशक शिवजी व उमा नामक पार्वतीजी हैं ॥३५॥ हे मार्कंडेयजी! तालक नामक महाक्षेत्रको मैंने कहाहै जहांपर स्वयंभुवी नामक
देवी व स्वयंभू नामक शिवहैं ॥३६॥ और मैंने तुम से अट्टहास ऐसे महास्थानको कहाहै जहांपर सूर्यनारायणजी ईशनामक शिवजीको पूजकर पूर्णमनोरथवाले हुये

है ॥३७॥ हे वेदवित्तम, मार्कंडेयजी ! कृत्तिवासनामक स्थान तुमसे कहागयाहै जो निवास कि शिवजी को कैलास से भी अधिक प्याराहै ॥३८॥ और सृष्टिकी सिद्धि के लिये ब्रह्मा से पूजेहुये श्रीशैलपर भ्रामरीनामक पार्वतीदेवी समेत मल्लिकार्जुन नामक महेशजी है ॥ ३९ ॥ और मुखरिणी नामक देवीसमेत कालहस्तीनामक जो ये शिवजी है वे व्यास से आराधन कियेहुये मुखराल नामक स्थान में हैं॥४०॥ और कांची पुरीमें कामाक्षीदेवी समेत कामशासन कालमूल नामक सदाशिवजीहैं ॥४१॥ जो कि तपस्या करतीहुई पार्वतीजी से डरसे लिपटायेहुये शिवजी कंकण से चिह्नित हुये हैं और सघन वनके बीचमें प्राप्त जो व्याघ्रपुर नामक स्थानहै ॥ ४२ ॥ वहांपर

थः ॥३७॥ कृत्तिवासाभिधंक्षेत्रमुक्तंतेवेदवित्तम ॥ यःकैलासादपिश्लाघ्यो निवासःकृत्तिवाससः ॥ ३८ ॥ भ्रामर्याम्बिकयादेव्या महेशोमल्लिकार्जुनः ॥ श्रीशैलेसृष्टिसिद्ध्यर्थं पूजितःपरमेष्ठिना ॥ ३९ ॥ देव्याचमुखरिण्यावैकालहस्तीतिशङ्करः ॥ व्यासेनाराधितोयोसौ मुखरालेमहेश्वरः ॥ ४० ॥ काञ्च्याञ्चकालमूलोस्तिकामाक्ष्याकामशासनः ॥४१॥ तपस्यन्त्याभियाश्लिष्टो वलयेनाङ्कितोभवत् ॥ अस्तिव्याघ्रपुरंयच्च घनकाननमध्यगम् ॥४२॥ तत्रनृत्यन्तमीशानं पर्युपास्तेपतञ्जलिः ॥ श्वेतारण्यमितिस्थानमुक्तंतवमयापुरा ॥ ४३ ॥ भग्नमैरावतोदन्तं लेभेयत्रशिवार्चनात् ॥ सेतुबन्धमितिस्थानमवोचंयत्रराघवः ॥ ४४ ॥ रामनाथाख्ययादेवो माहेन्द्रमध्यतिष्ठिपत् ॥ गजप्रपाह्वयस्थानं विद्यते वृषभध्वजः ॥ ४५ ॥ यत्राश्वत्थतरोर्मूले जगद्रक्षार्थमाश्रितः ॥ मणिमुक्तानदीचैव क्षेत्रेवृद्धाचलाह्वये ॥ ४६ ॥ नित्यं सन्निहितोदेव इत्याकर्णितएवते ॥ श्रीमन्मध्यार्चनंनाम श्रुतंस्थानमनुत्तमम् ॥ ४७ ॥ यस्मिन्वरप्रदोनित्यं गौरीसहच

नाचतेहुये शिवजीकी पतंजलिजी उपासना करतेहैं पुरातनसमय मैंने तुमसे श्वेतारण्य ऐसे स्थान को कहाहै ॥४३॥ जहांपर कि शिवजी के पूजनसे ऐरावत ने टूटेहुये दांतको पायाहै और मैने सेतुबंध ऐसे स्थानको कहाहै जहांपर श्रीरघुनाथदेवजीने ॥ ४४ ॥ महेन्द्रपर्वतपै रामनाथके नामसे महादेवजीका स्थापन कियाहै और गजप्रपा नामक स्थानपै वृषभध्वजनामक सदाशिवजी विद्यमानहैं ॥ ४५ ॥ जहांपर कि पीपल वृक्ष के नीचे शिवजी संसारकी रक्षाके लिये टिके हैं और वृद्धाचलनामक स्थान में मणिमुक्तानामक नदीहै ॥ ४६ ॥ वहांपर श्रीसदाशिवजी नित्यही टिके रहते हैं इसको तुमने सुनाहीहै और श्रीमान् मध्यार्चन नामक अतिउत्तम स्थानको

तुमने सुनाहै ॥ ४७ ॥ जहांपर कि उत्तम वरदायक सदाशिवजी नित्यही पार्वती समेत टिकेरहते हैं और सोमनाथ से आश्रयकियेहुये सोमतीर्थ को तुमने सुना
है ॥ ४८ ॥ जहांपर देह त्यागनेवाले जनोंको फिर जन्मका बन्धन नहीं होताहै और सिद्धवट नामक स्थानको आपने सुनाहै ॥४९॥ जहांपर सिद्धास्म नामक अति उत्तम
लिंगहै और कमलालय संज्ञक अर्जुनक्षेत्र तुमको सुनायागया ॥ ५० ॥ जहांपर वाल्मीकेश शिवजी के पूजनसे लक्ष्मीजीने अद्भुत ज्ञानको पायाहै और कंकाचल
पर्वतको तुमने सुनाहै जहांपर कि टिकेहुये ब्रह्मा व विष्णुजी मोक्ष के लिये सदाशिवजी की इससमय भी उपासना करतेहैं और श्रीमान् द्रोणपर्वत को जानते हो जिसमें

शेवरः ॥ आश्रितंसोमनाथेन सोमतीर्थंत्वयाश्रुतम् ॥ ४८ ॥ यत्रत्यक्तवतांदेहं नभवेद्भवबन्धनम् ॥ आकर्णितंहिमव
ता क्षेत्रंसिद्धवटाह्वयम् ॥ ४९ ॥ यत्रसिद्धाश्मनामेति श्रितंलिङ्गमनुत्तमम् ॥ श्रावितआर्जुनक्षेत्रं कमलालयसंज्ञिक
म् ॥ ५० ॥ वाल्मीकेशार्चनाल्लक्ष्मी यत्रश्रीर्ज्ञानमद्भुतम् ॥ श्रुतवानसिकङ्काद्रिं यत्रसन्निहितौहरम् ॥ ५१ ॥ इदानीमप्यु
पासाते मोक्षायब्रह्मकेशवौ ॥ श्रीमद्द्रोणपुरंवेत्सियस्मिन्कलियुगक्षये ॥ ५२ ॥ नौकामारूढवानब्धौ क्षुभितेपार्व
तीपतिः ॥ श्रुतंब्रह्मपुरंनाम क्षेत्रंयत्रस्थितःपुरा ॥ ५३ ॥ ब्रह्मापुष्करिणीतीरे स्थापयामासधूर्जटिम् ॥ श्रीकोटिकाख्यं
जानासि क्षेत्रंयत्रेन्दुशेखरः ॥ ५४ ॥ सम्यक्चध्यायतांपुंसांपापकोटिंव्यपोहति ॥ आकर्णितंचगोकर्णं शिवंयत्सन्निधा
नतः ॥ ५५ ॥ आराधयिषुःस्वर्गं जामदग्न्योनकाङ्क्षति ॥ त्रिपुरान्तकमुक्तान्ते क्षेत्रंयत्रत्रियम्बकः ॥ ५६ ॥ निराक
रोतिनिरयाद्भयंदृष्टवतांनृणाम् ॥ उक्तंकालञ्जरंक्षेत्रंयद्दासीकालकन्धरः ॥ ५७ ॥ निवारयतिभक्तानां घोरसंसारसंज्व

कलियुग के नाशहोनेपर ॥ ५१ । ५२ ॥ क्षोभित समुद्र में नावके ऊपर पार्वतीपति सदाशिवजी आरूढ़ हुये हैं और ब्रह्मपुरनामक क्षेत्रको सुना है जहांपर पहले टिके
हुये ॥ ५३ ॥ ब्रह्माजीने पुष्करिणीनदीके किनारे सदाशिवजीका स्थापन कियाहै और श्रीकोटिकनामकक्षेत्र को जानतेहो जहांपर चन्द्रभालजी ॥ ५४ ॥ भलीभांति ध्यान
करतेहुये पुरुषों के करोड़ों पापों को नाश करते हैं और गोकर्णनामक कल्याणदायक क्षेत्रको तुमने सुनाहै जिनकी समीपता से ॥ ५५ ॥ आराधन करनेकी इच्छावाले
परशुरामजी स्वर्गको नहीं चाहते हैं और तुमसे त्रिपुरान्तकनामक क्षेत्र कहागया जहांपर त्रिलोचनजी ॥ ५६ ॥ दर्शन करनेवाले जनों के नरकके डरको नाशकरते हैं व

कालंजर क्षेत्र कहागया जहाके बसनेवाले कालकन्धर शिवजी ॥ ५७ ॥ भक्तोंके भयंकर संसारके दुःखको शान्त करते हैं व प्रियालवनक्षेत्र कहागयाहै जहापर पार्वती पति शिवजी हैं ॥ ५८ ॥ व प्रभासक्षेत्र तुमसे कहागया जहाकि कृष्ण व बलभद्रसे पूजित चन्द्रखण्ड मस्तकवाले शिवजीने अविनाशीफल को दियाहै ॥ ५९ ॥ व वेदारण्य को जानते हो कि जिसमें पहले दक्षजीसे हितकेलिये याचनाकियेहुये वे प्रमथनायक शिवजी मोक्षकेलिये हुये हैं ॥ ६० ॥ व विषमलोचन शिवजीके हेमकूट नामक स्थानको तुमने सुनाहै जहापर तपस्याकरतेहुये पुरुषोंका फिर जन्म नहीं होताहै ॥६१॥ व वेणुवननामक पापनाशकक्षेत्र विद्यमानहै जहापर बासोंके अग्निरूप

रम् ॥ प्रियालवनमाख्यातं क्षेत्रंयत्राम्बिकापतिः ॥ ५८ ॥ क्षेत्रंप्रभासमुक्तन्ते यत्रखण्डेन्दुशेखरः॥ पूजितःशौरिसीरि भ्यान्दत्तवानक्षयंफलम् ॥ ५९ ॥ वेदारण्यंविजानीषे यस्मिन्प्रमथनायकः ॥ अस्त्यर्थितोभून्मोक्षार्थं दक्षेणप्राग् हितायसः ॥ ६० ॥ हेमकूटन्त्वमश्रौषीः स्थानंविषमचक्षुषः ॥ पुंसांतपस्यतांयत्र पुनर्जन्मनविद्यते ॥ ६१ ॥ क्षेत्रंवेणुव नंनाम विद्यतेपापनाशनम् ॥ यत्रवंशानलाद्गर्भाज्जातोमुक्तामणिःशिवः ॥ ६२ ॥ जालन्धरमितिस्थानमन्धकारे स्त्वयाश्रुतम् ॥ लेभेगाणपतंयत्र तपस्याभिर्जलन्धरः ॥ ६३ ॥ ज्वालामुखमितिस्थानमज्ञासीःकथितम्मया ॥ यत्र ज्वालामुखीदेवी कालरुद्रमपूजयत् ॥ ६४ ॥ अस्तिभद्रवटंनाम क्षेत्रमुक्तंश्रुतंत्वया ॥ त्र्यम्बकंयत्रभक्ताश्च सम्पदेपर्यपू जयन् ॥ ६५ ॥ न्यग्रोधारण्यमुक्तञ्च यत्रोग्रःशिवशङ्करः ॥ उच्चण्डताण्डवंकृत्वा साकंसंहर्षमेयिवान् ॥ ६६ ॥ गन्ध मादनसंज्ञन्तु क्षेत्रमाकर्णितंत्वया ॥ कृत्वासुखंलभेदेवयत्रमृत्युंजयार्चनम् ॥ ६७ ॥ गोपर्वतमितिस्थानं शम्भोःप्र

गर्भसे मुक्तामणि नामक शिवजी उत्पन्नहुयेहैं ॥ ६२ ॥ और तुमने अन्धकारि शिव जीके जालंधर नामक स्थान को सुनाहै जहांपर जलंधर ने तपस्याओं से गणाध्य-क्षता को पायाहै ॥६३॥ और मुझसे कहेहुये ज्वालामुख स्थानको तुमने जानाहै जहांपर ज्वालामुखीदेवी ने कालरुद्रजीको पूजाहै ॥ ६४ ॥ तुमने भद्रवटनामक कहे हुये क्षेत्रको सुना है जहांपर भक्तों ने लक्ष्मी के लिये त्रिलोचनजीको पूजाहै ॥ ६५ ॥ व तुमने कहेहुये न्यग्रोधवनको सुनाहै जहांपर उग्रनामक सदाशिवजी प्रचण्ड नृत्यकर पार्वतीजी समेत बड़ीप्रसन्नताको प्राप्तहुयेहैं ॥६६॥ और गन्धमादन नामक क्षेत्रको तुमने सुनाहै जहांपर मृत्युंजयका पूजनकर मनुष्य सुखको अवश्यकर पाता

है॥६७॥व गोपर्व्वत ऐसे शिवजीके स्थानको मैंने कहाहै जहांपर पाणिनिजीने वैयाकरणोंमें मुख्यताको पायाहै॥६८॥और वारकोष्ठ ऐसे क्षेत्रस्थानको तुमने निर[illegible] कर सुना
है जहांपर प्रचेताने जलमें तपस्यासे कवियों में मुख्यताको पायाहै॥ ६९ ॥ व महातीर्थ ऐसे क्षेत्रको जानतेहो जहांपर कि शिवजीमे ब्रह्मादिक सबभी देवता पढ़ायेगये
है ॥७०॥ और मैंने मयूरक्षेत्रको भी कहाहै जहांपर कि व्रतमें स्थित इन्द्रने बिजली को पायाहै ॥७१॥ व वेगवतीनदीके किनारे श्रीसुन्दर ऐसा क्षेत्र कहागयाहै जिस नदी
से संयुत स्थानमें कलियुगमें भी देवदेव शिवजी स्थितहैं ॥ ७२ ॥ और कुंभकोण ऐसे शिवजीके स्थानको तुम जानतेहो जहांपर कि वे गंगाजीहैं और वहां महादेवजी

ख्यापितम्मया ॥ यत्रपाणिनिनालेभे वैयाकरणकाग्रताम् ॥ ६८ ॥ वारकोष्ठमितिक्षेत्रस्थानंनन्ववधारितम् ॥ यत्र
प्रचेताःसलिले तपसाकविमुख्यताम्॥६९॥महातीर्थमितिक्षेत्रं जानीषेयत्रशम्भुना॥ अध्यापिताश्चयत्रैव सर्वेपिद्रुहि
णादयः ॥ ७० ॥ मयूरञ्चापिविहितं क्षेत्रंमाहेश्वरम्मया ॥ लेभेयत्रव्रतस्थेन ह्रादिनीवज्रपाणिना ॥ ७१ ॥ श्रीसुन्दर
मितिक्षेत्रमुक्तंवेगवतीतटे ॥ कलावपियुगेयस्मिन् देवदेवोनदीयुते ॥ ७२ ॥ कुम्भकोणमितिस्थानं शम्भोर्वेत्सिहिय
त्रसा ॥ गङ्गास्तिमाघेसान्निध्यं कुरुतेपापशान्तये ॥ ७३ ॥ स्थानंगोदावरीतीरेत्र्यम्बकंनामतेश्रुतम् ॥ शक्तिंयत्रगुहोले
भे तारकासुरघातिनीम् ॥ ७४ ॥ श्रीपाटलेव्याघ्रपुरमाख्यातंवेदवित्तम ॥ त्रिशङ्कुनाज्ञातिशुद्धो यत्रगङ्गाधरोर्चि
तः ॥ ७५ ॥ क्षेत्रंकदम्बपुर्याख्यं भवताचावधारितम् ॥ त्वत्कृतेयत्रशूलेन कृतान्तंशम्भुरच्छिणोत ॥ ७६ ॥ अविना
शाख्यमुक्तन्ते क्षेत्रंयत्रवृषध्वजः ॥ आस्तेगिरिजयासार्द्धमहादेवोमहेश्वरः ॥ ७७ ॥ रक्तकाननमाख्यातं मयाक्षेत्रं

माघमें पापकी शान्तिकेलिये समीपताकरतेहैं ॥ ७३ ॥ व गोदावरीके किनारेपै त्र्यम्बकनामक स्थानको तुमने सुनाहै जहांपर स्वामिकार्त्तिकेयजीने तारकासुरको मारने
वाली शक्तिको पायाहै ॥ ७४ ॥ व हे वेदवित्तम ! श्रीपाटलपुरमें व्याघ्रपुरनामक स्थानको मैंने तुमसे कहाहै जहांपर त्रिशंकु राजाने ज्ञातिशुद्ध नामक गंगाधरको
पूजाहै ॥ ७५ ॥ और कदम्बपुरीनामक क्षेत्रको आपने सुनाहै जहांपर शिवजीने तुम्हारे लिये त्रिशूल से यमराज का नाश कियाहै ॥ ७६ ॥ और अविनाश नामक क्षेत्र
तुमसे कहागया जहांपर कि पार्वतीजी समेत वृषध्वज महेश्वर महादेवजी स्थितहैं ॥ ७७ ॥ व हे अनघ ! मैंने तुमसे रक्तकानन नामक क्षेत्रको कहाहै जहां कि मित्रावरुण

को वरदेनेवाले शिवजी उत्पन्नहुये हैं ॥ ७८ ॥ व तुमने पातालमें स्थित श्रीहाटकेश्वर क्षेत्रको सुना है जहां कि विरोचनके पुत्र बलि अपने स्थानको पानेके लिये
शिवजी को पूजतेहैं ॥७९॥ और शिवजी के प्रियनिवासस्थान कैलास को जानतेहो जहां कि यक्षेश्वर कुबेरजी सदैव सेवकहोकर भक्तिसे त्रिलोचनजीको पूजतेहैं ॥ ८० ॥
पुरातनसमय मुझसे शिवजीके कहेहुये इनस्थानोंको तुमनेसुनाहीहै फिर क्या सुनना चाहतेहो ॥ ८१ ॥ शिलादकेपुत्र इन नन्दीश्वरजीने मृकण्डुमुनिके पुत्र मुनिनायक
मार्कण्डेयजीसे इसप्रकार कहा व भक्तिसे चरणोंमें प्रणाम करतेहुये उनको करुणारससे भीगेहुये नन्दीश्वरने हाथसे मस्तकमें स्पर्श किया ॥८२॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽरुणा

तवानघ ॥ मित्रावरुणयोर्यत्र रुद्रोजनिवरप्रदः ॥ ७८ ॥ श्रीहाटकेश्वरंक्षेत्रं पातालस्थंत्वयाश्रुतम् ॥ यत्रवैरोचनिर्देवं
स्वपदप्राप्तयेर्चति ॥ ७९ ॥ वेत्सिशम्भोःप्रियावासं कैलासंनित्यसेवकः ॥ यत्रयक्षेश्वरस्त्र्यक्षमभ्यर्चयतिभक्ति
तः ॥ ८० ॥ स्थानानिखण्डपरशोरित्युक्तानिमयापुरा ॥ त्वयाप्यवधृतान्येव किंभूयःश्रोतुमिच्छसि ॥ ८१ ॥ इत्यूचि
वानेषशिलादनन्दनोमुनेर्मृकण्डोस्तनयम्मुनीश्वरम् ॥ भक्त्यानमन्तंपदयोःकरेणपस्पर्शमौलौकरुणारसार्द्रः ॥८२॥
इति श्रीस्कन्दपुराणेऽरुणाचलमाहात्म्येपञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ * ॥ * ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥ भगवन्वञ्चनेनालं त्वदेकप्रवणेमयि ॥ किम्प्रोद्देश्योस्तितेशिष्यस्त्वत्कृपैवात्रसाक्षिणी ॥ १ ॥
स्थानेषुप्राक्त्वदुक्तेषु फलानिचपृथक्पृथक् ॥ यत्रसर्वफलप्राप्तिः स्थानंतद्वदमेविभो ॥ २ ॥ चराचराणाम्भूतानां जा
नतामप्यजानताम् ॥ यस्यस्मरणमात्रेण मुक्तिस्तद्वददेशकम् ॥ ३ ॥ पश्यैतेनमयैकेन भगवन्नानुरोध्यसे ॥ सर्वैरप्ये

चलमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांपञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । जिमि मृकण्डुसुत नन्दिसन पूंछ्यो उत्तम थान । सोलहवें अध्यायमें सोई करत बखान ॥ मार्कंडेयजी बोले कि आपके वचन से तुम्हीं एकमें झुकेहुये मुझ
में क्या उद्देश करनेयोग्यहै मैं तुम्हारा शिष्यहूं इसमें तुम्हारी दयाही साक्षिणी है ॥ १ ॥ पहले तुमसे कहेहुयेस्थानों में भिन्न २ फलहैं हे विभो ! जहां सबफलोंकी प्राप्ति
होवै उस स्थानको मुझसे कहिये ॥ २ ॥ जानते व न जानतेहुयेभी चराचर प्राणियों की जिसके सुमिरनेही से मुक्ति होती है उस स्थानको कहिये ॥ ३ ॥हे भगवन् !

देखिये इस मुझी एकसे तुम नहीं घिरेहो किन्तु इसीके लिये सबभी मुनियोंसे घिरे हुयेहो ॥ ४ ॥ पुलह,पुलस्त्य, वसिठ,मरीचि,अगस्त्य, दधीच,न्यंकु,भृगु व अत्रिसे घिरे
हो ॥ ५ ॥ व जाबालि, जैमिनि, धौम्य, जमदग्नि, उपयाज्ञ, याज व भरतसे घिरेहो ॥ ६ ॥ व पिप्पलाद, कण्व, कुमुद, उपमन्यु, कुमुदाक्ष, कुत्स, वत्स व वर-
तन्तु से घिरेहो ॥ ७ ॥ व विभांडक, व्यास, कण्वरीष, कंडु, माण्डव्य, मतंग, कुक्षि व मांडुकर्णिसे घिरेहुयेहो ॥ ८ ॥ और चंडी, विश्वामित्र, शांडिल्य, शाकटायन,
कैशिक, शातातप, मधुच्छंद, गर्ग, सौभरि व लोमश महर्षि से घिरेहुयेहो ॥ ९ ॥ और आपस्तंब, पृथुस्तंब, भृगु, दंडक, पावित, भारद्वाज, दाम्य, दान्त व श्वेत-

**तदर्थंहि मुनिभिःपरिवार्यसे ॥ ४ ॥ पुलहेनपुलस्त्येन वसिष्ठेनमरीचिना ॥ अगस्त्येनदधीचेन न्यङ्कुनाभृगुणात्रि
णा ॥ ५ ॥ जाबालिनाजैमिनिना धौम्येनजमदग्निना ॥ उपयाज्ञेनयाजेन भरतेनपरीवृतः ॥ ६ ॥ पिप्पलादेनकण्वेन
कुमुदेनोपमन्युना ॥ कुमुदाक्षेणकुत्सेन वत्सेनवरतन्तुना ॥ विभाण्डकेनव्यासेन कण्वरीषेणकण्डुना ॥ ७ ॥ माण्डव्येन
मतङ्गेन कुक्षिणामाण्डुकर्णिना ॥ ८ ॥ चण्डकौशिकशाण्डिल्यशाकटायनकैशिकैः ॥ शातातपमधुच्छन्दगर्ग
सौभरिरोमशैः ॥ ९ ॥ आपस्तम्बपृथुस्तम्बभृगुदण्डकपावितैः ॥ भारद्वाजेनदाम्येन दान्तेनश्वेतकेतुना ॥ १० ॥ कौ
ण्डिन्यपुण्डरीकाभ्यां रैभ्येनतृणबिन्दुना ॥ वाल्मीकिनानारदेन वह्निनादृढमन्युना ॥ ११ ॥ बोधायनसुबोधाभ्यां
हारीतेनमृकण्डुना ॥ दुर्वाससासुतीक्ष्णेन जालपादेनशक्तिना ॥ १२ ॥ काङ्कायनेनदत्तेन देवदत्तेनपङ्गुना ॥ संश्रुते
नाग्निवश्येन गालवेनमरुत्वता ॥ १३ ॥ लोकाक्षिणाविश्रवसा सैन्धवेनसुमन्तुना ॥ शिंशपायनमौद्गल्यपथ्यच्यवन**

केतु से घिरेहुयेहो ॥ १० ॥ और कौंडिन्य, पुंडरीकसे व रैभ्य तथा तृणबिन्दु से और वाल्मीकि व नारदसे व वह्नि तथा दृढमन्यु से घिरेहो ॥ ११ ॥ व बोधा-
यन, सुबोध से व हारीत तथा मृकण्डुसे और दुर्वासा व सुतीक्ष्ण से तथा जालपाद व शक्तिसे घिरेहुयेहो ॥ १२ ॥ व कांकायन,दत्त से तथा देवदत्त व पंगु से और
संश्रुत व अग्निवश्यसे तथा गालव व मरुत्वान् से घिरेहुयेहो ॥१३॥ और लोकाक्षी व विश्रवासे तथा सैंधव व सुमन्तु से और शिंशपायन, मौद्गल्य, पथ्य, च्यवन व

माथुर से घिरेहुयेहो ॥ १४ ॥ और ऋष्यश्रृग, एकपाद, क्रौंच, दृढ़, गोमुख, देवल, अंगिरा, वामदेव, और्व, पतंजलि व कपिंजल से घिरेहुयेहो ॥ १५ व सनत्कुमार, सनक,सनन्दन, सनातन, हिरण्यनाभ, सत्याक्ष, वनाशन व सुहोतृ से घिरेहुयेहो ॥ १६ ॥ और मैत्रेय, पुष्पजित, सत्यवादी व शालीशक, निदाघ, चम्प, सैवर्त, शैलकाय व पराशरसे घिरेहुयेहो ॥ १७॥ व वैश्यायनक, कौशल्य, शारद्वत, कपिध्वज, कुश, चार्विक, कैवल्य, याज्ञवल्क्य व आश्वलायनजीसे घिरेहो ॥ १८ ॥ और कृष्णातप, तमोनुत, सकारुण व आमलकप्रिय,चरक,पवित्र, कपिल व कणाशीरो घिरेहो ॥ १९ ॥ और नरनारायण तथा मेरे प्रश्नोत्तर के सुननेकी इच्छा में लगेहुये अन्य

माथुरैः ॥ १४ ॥ ऋष्यशृङ्गैकपात्क्रौञ्चदृढगोमुखदेवलैः ॥ अङ्गिरोवामदेवौर्वपतञ्जलिकपिञ्जलैः ॥ १५ ॥ सनत्कुमारसनकसनन्दनसनातनैः ॥ हिरण्यनाभसत्याक्षवनाशनसुहोतृभिः ॥ १६ ॥ मैत्रेयपुष्पजित्सत्यवादिशालीशकैस्तथा ॥ निदाघचम्पसैवर्तशैलकायपराशरैः ॥ १७ ॥ वैश्यायनककौशल्यशारद्वतकपिध्वजैः ॥ कुशचार्विककैवल्ययाज्ञवल्क्याश्वलायनैः ॥ १८ ॥ कृष्णातपतमोनुत्सकारुणामलकप्रियैः ॥ चरकेणपवित्रेण कपिलेनकणाशिना ॥ १९ ॥ नरनारायणाभ्याञ्च दिव्यैश्चान्यैर्महर्षिभिः ॥ मत्प्रश्नोत्तरशुश्रूषातत्परैःप्रत्यवेक्ष्यसे ॥ २० ॥ माहेश्वराग्रणीस्त्वञ्च समस्तागमपारगः ॥ व्याप्तश्चसर्वलोकेषु यस्मात्तदनुरोध्यसे ॥ २१ ॥ त्वन्मुखादेवभगवन्वयमेतसुशिक्षिताः ॥ दिव्यागमपुराणेषु द्रष्टव्यःपरमेश्वरः ॥ २२ ॥ कात्यायनीवास्कन्दोवा भगवान्वाथवाभवान् ॥ त्वयियद्यस्तिनोभक्तिर्दयाचास्मासुतेयदि ॥ २३ ॥ रहस्यमिदमुद्घाट्यप्रसादंकर्तुमर्हसि ॥ २४ ॥ इत्थंमृकण्डुतनयेन सनन्दिकेशोवि

दिव्य महर्षियोंमे देखेजातेहो ॥ २० ॥ और जिसलिये सबशास्त्रों के पारगामी तुम शैवों में श्रेष्ठहो और सबलोकों में प्राप्तहो इसीसे घेरेजातेहो ॥ २१ ॥ हे भगवन् ! तुम्हारेही मुखसे ये हमलोग भलीभांति शिक्षितहैं उत्तम शास्त्रों व पुराणोंमें परमेश्वर को देखनाचाहिये ॥२२॥ चाहै भगवतीहों या स्वामिकार्त्तिकेयजी व विष्णुजी तथा आप होवो यदि हमलोगोंकी तुममें भक्ति होवै व यदि हमलोगोंके ऊपर तुम्हारी दयाहोवै ॥ २३ ॥ तो इस गुप्तचरित्रको प्रकाशितकर प्रसन्नता करनेके योग्यहो ॥२४॥ इसप्रकार मृकंडु के पुत्र मार्कंडेयजी से कहेहुये उन नन्दीश्वरने तदनन्तर विनय समेत मुसक्यातेहुये मुखवाले उन मार्कंडेयजीको शरीरकी सिद्धिकेलिये पहले भक्ति

से प्रसन्न करायेहुये शिवदेववाले शिवभक्तिवालों में बहुत माना ॥२५॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽरुणाचलमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायाषोडशोऽध्यायः१६॥

दो० । अरुणाचल पै अहैं जो तीरथ विविध प्रकार । सत्रहवें अध्याय में कथा सो परम उदार ॥ नन्दिकेश्वर जी बोले कि हे मुने ! मैंने मनकी परीक्षाके लिये तुमसे अन्यथा कहा यदि तुमसे उस चरित्र को न कहूंगा तो अन्य किससे कहाजायगा ॥ १ ॥ संसार में शिवजी के धर्म में तत्पर तुम्हारासा अन्य कौन पुरुष है जिससे कि थोड़ी आयुर्बल से भी सनातन शिव जी में भक्ति से अभिलाषाहै ॥ २॥ अन्य किस के लिये शिव देवजी ने अपनेही आज्ञाकारक व चरणों के अंगूठे से

ज्ञापितः सविनयंस्मयभावक्त्रम् ॥ तंबह्वमन्यततततःशिवभक्तिमत्सुप्राग्भक्तितोषितशिवेषुशरीरसिद्धौ ॥ २५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽरुणाचलमाहात्म्येषोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

नन्दिकेश्वरउवाच ॥ मुनेमनःपरीक्षार्थंन्यथात्वंभाषितोमया ॥ तवचेन्नाभिधास्यामि कस्यचान्यस्यकथ्यते ॥ १ ॥ त्वादृगन्योस्तिकोलोके शिवधर्मपरायणः ॥ येनस्वल्पायुषाप्येवं नित्येवीप्सास्तिभक्तितः ॥ २ ॥ कस्यान्यस्यकृते देवः स्वस्यैवाज्ञाकरम्परम् ॥ बोधनबोधयामास चरणाङ्गुष्ठपीडितम् ॥ ३ ॥ त्वमेवशाङ्करान्धर्मान्सर्वान्वेत्सिरहस्यतः॥ योग्योसिकालविभ्रान्तः परिपक्वोसिचेतसा ॥ ४ ॥ त्वयैवान्येनकेनाहमेवंशुश्रूषितश्चिरम् ॥ त्वयीवकस्मिन्नान्यस्मिन्ममापिप्रीतिरीदृशी ॥ ५ ॥ उपदेक्ष्यामितेतत्रं गुह्यंतत्कृत्तिवाससः ॥ भक्त्यावधारणीयंयद्भक्तिकैवल्यकाङ्क्षिभिः ॥ ६ ॥ आदरादनुयुञ्जानं शिष्यंयोदेशिकंस्वयम् ॥ उपदेशेनसन्तुष्टं नकरोतिसकिंगुरुः ॥ ७ ॥ समाहितमनाम्

पीड़ित मुझको उत्तमतासे ज्ञान से बोध कराया है ॥ ३ ॥ रहस्य से तुम्हीं सदाशिवजी के समस्त धर्मों को जानतेहो व कालसे भ्रमित होकर योग्यहो और चित्त से परिपक्व हो ॥ ४ ॥ तुम्हारी नाईं अन्य किसने बहुत दिनों तक मेरी इसप्रकार सेवा कियाहै व तुम्हारी नाईं अन्य किसी में मेरी ऐसी प्रीति नहीं है ॥ ५ ॥ तुमसे सदाशिवजी के उस गुप्तक्षेत्र को कहूंगा जो कि भक्ति से मोक्ष को चाहनेवाले पुरुषों के सुनने योग्यहै ॥ ६ ॥ आदर से पूंछते हुये व आज्ञाकारी शिष्यको जो आपही

उपदेशसे सन्तुष्ट नहीं करताहै वह क्या गुरुहै ॥ ७ ॥ सावधान मनवाले होकर मुझसे उपदेश किये जाते हुये इस गुप्त चरित्र में निरन्तर विश्वास करिये व परमेश्वर ॥ ८ ॥ कामदेव के विनाशक शिवदेवजी को स्मरण कीजिये व पार्वती जी को प्रणाम कीजिये तदनन्तर ॐकार का उच्चारण कीजिये तुम्हारा बडा भारी कल्याण प्राप्त हुआ है ॥ ९ ॥ हे तपोधन ! द्राविड देशों में दक्षिण दिशाके भाग में तरुण चन्द्रभाल शिवजी का अरुण नामक महाक्षेत्रहै ॥ १० ॥ जोकि तीन योजन चौडा व शिवयोगियों से उपासना करने योग्य है पृथ्वीके उस क्षेत्रको शिवजीका प्यारा हृदय जानिये ॥ ११ ॥ वहा पर सदाशिव देवजी आपही पर्वत के आकारको प्राप्त हैं

त्वा विश्वासंकुरुशाश्वतम् ॥ मयोपदिश्यमानेस्मिन् रहस्येपरमेश्वरम् ॥ ८ ॥ स्मरस्मरान्तकंदेवं वन्दस्वचापिशाङ्करीम् ॥ ततउच्चरचोङ्कारं श्रेयस्तेमहदागतम् ॥ ९ ॥ अस्तिदक्षिणदिग्भागे द्राविडेषुतपोधन ॥ अरुणाख्यंमहाक्षेत्रं तरुणेन्दुशिखामणेः ॥ १० ॥ योजनत्रयविस्तीर्णमुपास्यंशिवयोगिभिः ॥ तद्भूमेर्हृदयंविद्धि शिवस्यहृदयंगमम् ॥ ११ ॥ तत्रदेवःस्वयंशम्भुः पर्वताकारताङ्गतः ॥ अरुणाचलसंज्ञावानस्तिलोकहितावहः ॥ १२ ॥ आवासःसर्वसिद्धानां महर्षीणांसुपर्वणाम् ॥ विद्याधराणांयक्षाणां गन्धर्वाप्सरसामपि ॥ १३ ॥ सुमेरोरपिकैलासादप्यसौमन्दरादपि ॥ माननीयो महर्षीणां यःस्वयंपरमेश्वरः ॥ १४ ॥ स्पृहयन्तियदीयेभ्योजन्तुभ्योपिदिवौकसः ॥ स्वयंसुलभ्यमुक्तिभ्यो त्रिदिवावासिनोऽञ्जसा ॥ १५ ॥ नकल्पवृक्षसदृशा यत्रत्यानोमहीरुहाः ॥ तत्रपुष्पफलैर्नित्यं येर्चयन्तिगिरीश्वरम् ॥ १६ ॥ हिंसैकरुचयोऽव्याधा अपिकर्मानुसारतः ॥ अनन्तंयत्रदेवस्य प्रादक्षिण्यफलास्पदम् ॥ १७ ॥ यस्यदेशचरामेघाः शिखरा

व अरुणाचल नामवाले वे शिवजी संसार के हितदायक हैं ॥ १२ ॥ और वह अरुणाचल सब सिद्धों, महर्षियों, देवताओं और विद्याधरों, यक्षों व गधर्वों तथा अप्सराओंका निवास स्थान है ॥ १३ ॥ यह अरुणाचल सुमेरु गिरिसे भी व कैलास से और मन्दराचलसे भी महर्षियोंके मानने योग्य है जो कि आपही परमेश्वर रूपहै ॥ १४ ॥ और आपही सुलभ मुक्तिवाले जिस पर्वतवाले प्राणियोंसे स्वर्गवासी साक्षात् देवता भी इच्छा करते हैं ॥ १५ ॥ और जिस पर्वतवाले वृक्ष कल्पवृक्षोंके समानहै उस पर्वत पै नित्य पुष्पों व फलों से जो सदाशिवजी को पूजते है ॥ १६ ॥ वे केवल हिंसा में रुचिवाले बहेलिया भी कर्म के अनुसार फल को पाते हैं जहा पर कि

प्रदक्षिणा के फलका अनन्त स्थान है ॥ १७ ॥ और जिस स्थान के रहनेवाले मेघ शिखरों के बाधक हैं और जहां पर उत्तम ध्वनिवाले पक्षी व कीचक बाँस शब्द
करते हैं ॥ १८ ॥ व जहां पर कृष्णपक्ष में रात्रि आनेपर चमकते हुये जुगुनू शिव देवजी को आरती देनेवाले जनों के स्थान को भोगते हैं ॥ १९ ॥ और भगवान्
शिवदेवजी जहां पर सौभाग्यवती पार्वती जी को बहुत मानते हैं ॥ २० ॥ और जिसके ऊंचे शृंग के अग्रभाग से मिले हुये तथा चन्द्रमाके समान अपनी समा-
नताको पाये हुये नक्षत्र अपना को बहुत मानते हैं ॥ २१ ॥ और जहां पर शिखरों पै सदैव बसते हुये भी सब मृग शिवजीके हाथ में प्रेमवाले मृग का भी अपमान

यमिबाधकाः ॥ शुभारावाःखगायत्र क्वणन्तःकीचकाअपि ॥ १८ ॥ स्फुरन्तोयत्रखद्योताः कृष्णपक्षेनिशागमे ॥ आ
रातिकप्रदातॄणां देवस्यार्हनुवतेपदम् ॥ १९ ॥ सौभाग्यं भगवान्देवीमपर्णांबहुमन्यते ॥ २० ॥ यस्योत्तुङ्गस्यशृङ्गा
ग्रसङ्गमाश्चापितारकाः ॥ आत्मनोलब्धसामान्याश्चन्द्रेणबहुमन्यते ॥ २१ ॥ मृगाःसर्वेपिसततं वसन्तोयत्रसानुषु ॥
पाणिप्रणयिनंशम्भोरेणमप्यवजानते ॥ २२ ॥ यस्यपादान्तिकचरैः प्रायेणशबरैरपि ॥ निकुम्भकुम्भसादृश्यमा
त्मनश्चोपलभ्यते ॥ २३ ॥ किंबहूक्त्याभ्यसूयन्ते हैमातुरकुमारयोः ॥ यत्रप्ररूढास्तरवो तिर्यञ्चःशबराअपि ॥ २४ ॥
सिंहव्याघ्रादयोयस्मिन् कालेत्यक्तकलेवराः ॥ सेवकाइवमन्यन्ते ध्रुवंशोणाद्रिशम्भुना ॥ २५ ॥ अस्यभास्करनामा
द्रिःपूर्वस्यांदिशिदृश्यते ॥ यत्रस्थितःसदावज्री सेवतेशोणपर्वतम् ॥ २६ ॥ प्रतीच्यान्दिशिदण्डाद्रिरितिकश्चिन्महा

करते हैं ॥ २२ ॥ व जिसके समीपवाले पर्वतों में घूमनेवाले प्राय: शबरों से भी निकुंभ व कुंभगण के समान अपनी समानता पाईजाती है ॥ २३ ॥ और बहुत
कहने से क्या है जिस पर्वत पै जमे हुये वृक्ष, पशु, पक्षी व म्लेच्छजातिवाले लोग भी गणेश व स्वामिकार्त्तिकेय की ईर्षा करतेहैं ॥ २४ ॥ और सिंह व्याघ्र आदिक
जिस पर्वत पै काल में शरीर को छोड़कर सेवकों की नाईं निश्चय कर अरुणाचल शिवजी से मानेजातेहैं ॥ २५ ॥ इसके पूर्वदिशा में भास्कर नामक पर्वत देख पड़ता
है जहांपर सदैव बैठे हुये इन्द्रजी अरुणाचल की सेवा करतेहैं ॥ २६ ॥ व पश्चिम दिशा में दंडाद्रि ऐसा प्रसिद्ध कोई पर्वत है उस पर्वत पै स्थित प्रजेता लोग अरु-

णाचल को सेवते हैं ॥ २७ ॥ और दक्षिण दिशामें श्रेष्ठ अमराचल पर्वत है उसके ऊपर की भूमि में यमराज जी अरुणाचल की सेवाके लिये स्थित हैं ॥ २८ ॥ और इस उत्तर दिशाके भागमें सिद्धों से स्थित कन्दरोंवाला त्रिशूल पर्वत कुबेरजी से पालित होकर शोभित है ॥ २९ ॥ व उस के समीप अन्य भी बहुत से पर्वतों के किनारों में अन्य दिक्पाल उपासना करत हैं ॥ ३० ॥ और संताप से तचे हुये सब भी वृक्ष आराधन से भी अधिक ऐश्वर्यको प्राप्त होते हैं ॥ ३१ ॥ व मेना तथा हिमाचल की समानसंबंधता से जिस पर्वत के देखनेपर अधिक आनन्द बढ़ता है ॥ ३२ ॥ वृक्षों व पत्तों के चिह्न से देखे जाते हुये जटाधारी शिवजी आपही अरुणा-

धरः ॥ प्राचेतसस्तदारूढाः सेवन्तेरुणपर्वतम् ॥ २७ ॥ दक्षिणस्यांदिशिश्रेयानद्रिरस्त्यमराचलः ॥ कालःशोणाद्रिसे वार्थमध्यास्तेतदधित्यकाम् ॥ २८ ॥ उत्तरेस्मिन्हरिद्भागे सिद्धाध्यासितकन्दरः ॥ विराजतेत्रिशूलाद्रिः श्रीदेनपरि पालितः ॥ २९ ॥ तत्पर्यन्तंप्रभूतानामन्येषामपिभूभृताम् ॥ तटेष्वेवापरेचैव दिक्पालाःपर्युपासते ॥ ३० ॥ परितापेनस न्तप्ताः सर्वेपिधरणीरुहाः ॥ आराधनादप्यधिकमधिगच्छन्तिवैभवम् ॥ ३१ ॥ यस्मिन्गिरीशेसंदृष्टे मेनातुहिनभूभृ तोः ॥ समानसम्बन्धतया प्रमोदोवर्धतेतराम् ॥ ३२ ॥ तरुपल्लवलक्ष्येण लक्ष्यमाणोजटाधरः ॥ स्थावरोसिस्वयंश म्भुश्शोणाचलस्वरूपवान् ॥ ३३ ॥ ज्योतिष्मतोस्यश्रृङ्गस्य द्विपार्श्वस्थश्चभास्करः ॥ व्यनक्तिस्वस्थलोकेभ्यस्तेज स्त्रितयनेत्रताम् ॥ ३४ ॥ वर्षासुशिखराधस्तादभिनीलबलाहकः ॥ विराजतेपावकेन कालकूटमिवोद्वहन् ॥ ३५ ॥ सहस्रपातसहस्रैकशीर्षोयःपर्वतेश्वरः ॥ उक्तोनकेवलंश्रुत्वासाक्षादप्युपलक्ष्यते ॥ ३६ ॥ शिरोलिर्नामशिखरी दिशि

चल स्वरूपवाले शिवजी स्थावररूपसे स्थित हैं ॥ ३३ ॥ इस प्रकाशवान् शिखर के दोनों आसपास किनारों में टिके हुये सूर्यनारायणजी अपने लोकों के लिये तेज की त्रिलोचनता को प्रकट करते हैं ॥ ३४ ॥ व वर्षा ऋतु में शिखरके नीचे सामने मेघ अग्निके कारण से विष को धारण करते हुये से शोभित हैं ॥ ३५ ॥ और हज़ार चरणोंवाले व एक हज़ार मस्तकोंवाला जो पर्वत केवल कहा नहीं गयाहै किन्तु सुनकर साक्षात् देख पड़ता है ॥ ३६ ॥ और शिरोलिनामक पर्वत पूर्वदिशा में है

यह हमलोगों ने सुनाहै जो शिखरोंवाला गिरीश अनेक नदियों के समूह से व्याप्त है ॥ ३७ ॥ व जहां मनोहर शिखर पै टिके हुये परमेश्वर महादेवजी स्थावरता से स्थाणुता (अचलता) को धारण करते हैं ॥ ३८ ॥ और जहां पर पर्वत के पिछले भाग में स्थान किये हुये छोटे २ सांप तक्षक अनंतादिक नागेश सर्पादिकों से ईर्षा करते हैं ॥ ३९ ॥ और जो पर्वत सब ओर प्रकट ऐश्वर्योंवाले आठों कोनों से अपनी अष्टमूर्तित्व को मानो विशेष करता है ॥ ४० ॥ और जिस शिवाचल की शक्ति तरंगिणी इडा व पिंगला शिखरों के मध्य में कमलस्थानवाली सुषुम्णा नाड़ी है ॥ ४१ ॥ और जिस ज्योतिःस्तंभ स्वरूप के मूल व अग्रभाग को देखने के लिये

प्राच्याश्चनःश्रुतम् ॥ गिरीशोद्यापियःश्रृङ्गी लीनानेकसरिद्गणः ॥ ३७ ॥ यत्रश्रृङ्गेसुरुचिरे संलग्नोनीललोहितः ॥ स्थाणुत्वंस्थावरत्वेन दधतेपरमेश्वरः ॥ ३८ ॥ क्षुद्रास्सरीसृपायत्र कटकेषुकृतास्पदाः ॥ तक्षकानन्तसर्पाद्यैः स्पर्धते भुजगेश्वरैः ॥ ३९ ॥ अष्टाभिर्योभितःकोणैराविर्भूतविभूतिभिः ॥ सुस्पष्टंविशिनष्टीव स्वकीयामष्टमूर्त्तिताम् ॥ ४० ॥ यस्यशक्तितरङ्गिण्योरिडापिङ्गलयोःस्वयम् ॥ शिवस्यश्रृङ्गयोर्मध्येसुषुम्णाकमलालया ॥ ४१ ॥ ज्योतिःस्तम्भ स्वरूपस्य मूलाग्रेयस्यवीक्षितुम् ॥ कोलहंसाकृतीनालं ब्रह्मविष्णूबभूवतुः ॥ ४२ ॥ ताभ्यांश्चप्रार्थितःशम्भुस्तस्मिन् सान्निध्यवानभूत ॥ अरुणाचलनामासौ महादेवोमहेश्वरः ॥ ४३ ॥ गौतमस्तत्रयोगीन्द्रः सहस्रंपरिवत्सरान् ॥ तप्त्वातपांसितीव्राणि साक्षाच्चक्रेसदाशिवम् ॥ ४४ ॥ प्रालेयशैलकन्यापि तत्रकृत्वातपःपुरा ॥ अलभद्वामदेहार्द्धं मन्मथारेःप्रसेदुषः ॥ ४५ ॥ गौर्याप्रतिष्ठितंतत्र अरुणाद्रीश्वराभिधम् ॥ लिङ्गंभोगप्रदंपुंसां कैवल्यायप्रकल्पते ॥ ४६ ॥

वाराह व हंसस्वरूपवाले विष्णु व ब्रह्माजी समर्थ नहीं हुये हैं ॥ ४२ ॥ और उन दोनों से प्रार्थना किये हुये सदाशिवजी उस अरुणाचल पै समीपतावाले हुये हैं ये अरुणाचल नामक महेश्वर महादेवजी हैं ॥ ४३ ॥ वहां पर योगीराज गौतमजीने हज़ारों वर्षोंतक तीव्रतपों को कर सदाशिवजीको प्रत्यक्ष कियाहै ॥ ४४ ॥ व पुरातन समय हिमाचलकी कन्या पार्वतीजीने भी वहां तपस्या कर प्रसन्न हुये कामदेवारि (सदाशिव) जी के बायें आधे शरीर को पायाहै ॥ ४५ ॥ वहांपर पार्वती जी से

थापा हुआ अरुणाचलेश्वर नामक सुखदायक लिंग पुरुषों के मोक्ष के लिये समर्थ होता है ॥ ४६ ॥ और वहा पार्वतीजीकी आज्ञा से महिषासुर को मर्दन करनेवाली साक्षात् दुर्गाजी भक्तिमानों को निर्विघ्नपूर्वक मंत्रसिद्धि को देती हैं ॥ ४७ ॥ और वहापर पार्वती जी के आश्रम में खड्गतीर्थ ऐसा प्रसिद्ध नवीन स्थान है उसमें एक बार स्नानकरने से पाच पातकोंका नाश होताहै ॥ ४८ ॥ और दुर्गाजीसे पूजित पापनाशन नामक लिंग एकबार प्रणामही करने से मनुष्यों के समस्त पातकों का हारक है ॥ ४९ ॥ वहां पर कुबेर के व्यतिक्रम (अपराध) से वज्रांगद नामक राजा फिर उनकी भक्ति के माहात्म्य से शिवजी की सायुज्य को प्राप्त हुये है ॥ ५० ॥

तत्रगौरीनिदेशेन दुर्गामहिषमर्दिनी ॥ साक्षाद्भक्तिमतांदत्तेमन्त्रसिद्धिमविघ्नतः ॥ ४७ ॥ खड्गतीर्थमितिख्यातं तत्रगौर्याश्रमेनवम् ॥ सकृत्तन्मज्जनान्नृणां पञ्चपातकनाशनम् ॥ ४८ ॥ दुर्गयाचार्चितंलिङ्गं पापनाशननामकम् ॥ सकृत्प्रणाममात्रेण सर्वपापहरंनृणाम् ॥ ४९ ॥ तत्रवज्राङ्गदोराजावित्तपस्यव्यतिक्रमात् ॥ पुनस्तद्भक्तिमाहात्म्याच्छिवसायुज्यमाप्तवान् ॥ ५० ॥ तस्यप्रदक्षिणेनैवकान्तिशालिकलाधरौ ॥ विद्याधरेश्वरौमुक्तौ दुर्वासःशापबन्धनात् ॥ ५१ ॥ नास्तिशोणाद्रितःक्षेत्रं नास्तिचत्र्यक्षरान्मनुः ॥ नास्तिमाहेश्वराद्धर्मो नास्तिदेवोमहेश्वरात् ॥ ५२ ॥ नास्तिज्ञानंशिवज्ञानान्नास्तिश्रीरुद्रतःश्रुतिः ॥ नास्तिशैवाग्रणीर्विष्णोर्नास्तिरक्षाविभूतितः ॥ ५३ ॥ नास्तिभक्तेःसदाचारो नास्तिदीक्षाकराद्गुरुः ॥ नास्तिरुद्राक्षतोभूषा नास्तिशास्त्रंशिवागमात् ॥ ५४ ॥ नास्तिबिल्वदलात्पत्रं नास्तिपुष्पंसुवर्णकात् ॥ नास्तिवैराग्यतःसौख्यं नास्तिमुक्तेःपरम्पदम् ॥ ५५ ॥ नारुणाद्रेःसमोमेरुर्नकैलासोनमन्दरः ॥ तेनिवासागिरीश

और उसकी प्रदक्षिणाही से कांतिशाली व कलाधर नामक विद्याधराधिप दुर्वासाजी के शापबन्धन से छूटे हैं ॥ ५१ ॥ अरुणाचल से परे क्षेत्र नहीं है व त्र्यक्षरसे बढ़कर मंत्र नहीं है और माहेश्वर धर्म से परे अन्य धर्म नहीं है व शिवजी से परे देवता नहीं है ॥ ५२ ॥ और शिवज्ञानसे परे ज्ञान नहीं है व श्रीरुद्र से परे श्रुति नहीं है और विष्णुजी से परे शैवोत्तम नहीं है व विभूतिसे अन्य रक्षा नहींहै ॥ ५३ ॥ भक्तिसे परे उत्तम आचरण नहीं है व दीक्षा करनेवाले से परे गुरु नहीं है और रुद्राक्ष से परे भूषण नहीं है व शिवशास्त्र से उत्तम शास्त्र नहीं है ॥ ५४ ॥ और बिल्वपत्रसे परे पत्र नहीं है व सुवर्णक (धतूरके पुष्प) से परे पुष्प नहीं है

तथा वैराग्य से उत्तम सुख नहीं है व मुक्ति से परे परमपद नहीं है ॥ ५५ ॥ और अरुणाचल के समान न सुमेरुहै न कैलास है और न मंदराचलहै क्योंकि वे पर्वत गिरीश (सदाशिव) जी के निवासस्थान हैं और यह अरुणाचल वे आपही शिवजी हैं ॥ ५६ ॥ शिलाद के पुत्र नन्दीश्वर के ऐसा कहनेपर प्रसन्नमनवाले उन मृकंडु पुत्र मार्कण्डेयजी ने फिर भी चकितमनवाले होकर उनको बहुतही प्रणामकर फिर विनय किया ॥ ५७ ॥ कि मनुष्यों का क्या क्या कर्म किस प्रकार होता है और वह वह कर्म कैसे नरक के लिये सुनाजाता है और उन उन कर्मों की कैसे प्रतिक्रिया (प्रायश्चित्त) होती है और वह २ कर्म कैसे होताहै उसको मुझसे कहिये ॥ ५८ ॥

इति श्रीस्कन्दपुराणेऽरुणाचलखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांसप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

स्यसोयन्तुगिरिशःस्वयम् ॥५६॥ इतिवदतिशिलादनन्दनेमुदितमनाःसमृकण्डुनन्दनः ॥ पुनरपिबहुशःप्रणम्यतन्तु चकितमनाश्चपुनर्व्यजिज्ञपत ॥ ५७ ॥ किंकिन्नृणांकर्मकथञ्चजायतेकथन्तुतत्तन्नरकायश्रूयते ॥ तेषाञ्चतेषाञ्चकथं प्रतिक्रियाकथंतुतत्तन्ममकथ्यतामिति ॥ ५८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽरुणाचलमाहात्म्येसप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

नन्दिकेश्वरउवाच ॥ शुद्धसत्त्वगुणोपेतो लोकेस्मिन्दुर्लभःपुमान् ॥ रजस्तमोगुणोपेता भवन्तिसुलभानराः ॥१॥ सात्त्विकःपुण्यशीलत्वान्निःश्रेयसमवाप्नुयात ॥ त्रैविध्यात्कर्मणामेषामनुभोगायवेधसा ॥ २ ॥ विचित्राण्यपिसृष्टानि नरकाण्यत्रयत्रच ॥ महर्षेमनुजोभूत्वा खरःश्वासूकरोपिवा ॥ ३ ॥ चण्डालोवाभवेत्प्रेत्य पुरुषोब्रह्महत्यया ॥ चिरंरौरवसंशुद्धः कृमिकीटपतङ्गताम् ॥ ४ ॥ प्राप्नुयात्कर्मकर्तृत्वं सुरापानेनचाद्विज ॥ ब्रह्मस्वहरणाद्ब्रह्मराक्षसत्व

दो० । जौन पापकारक पुरुष बसत जौन से नर्क । अठारहें अध्याय में सोई चरित उदर्क ॥ नन्दिकेश्वर जी बोले कि इस संसार में शुद्ध सत्त्वगुण से संयुत पुरुष दुर्लभ है और रजोगुण व तमोगुण से संयुत मनुष्य सुलभहैं ॥ १ ॥ सत्त्वगुणवाला पुरुष पुण्यस्वभाव से कल्याण को प्राप्त होता है त्रिविधि से इन कर्मों के भोगके लिये ब्रह्माने ॥ २ ॥ यहां और वहां विचित्र नरकों को रचाहै हे महर्षे ! मनुष्य, गधा, कुत्ता या सूकर होकर ॥ ३ ॥ अथवा ब्रह्महत्या से पुरुष मरकर चांडाल होता है और बहुत दिनोंतक रौरवनरक में भलीभांति शुद्ध होकर कृमि,कीट व पतंगत्व को प्राप्त होकर ॥ ४ ॥ हे द्विज ! मदिरा के पीने से कर्मकर्तृत्व

को प्राप्त होताहै याने मज़दूरी करनेवाला होताहै और ब्राह्मणका धन हरनेसे मनुष्य ब्रह्मराक्षसत्व को प्राप्त होता है ॥ ५ ॥ व यदि अन्न को चुराता है तो वह अन्य जन्म में उस अन्न से रहित होता है और फिर असिपत्रवनमें बहुत दिनों तक पीड़ाको प्राप्त होकर ॥ ६ ॥ गुरु की शय्या पै बैठनेवाला व स्त्री से भोग करनेवाला वह पुरुष नपुंसकता को प्राप्त होताहै और तचे हुये काले लोह के दंडों से यमदूतों से पीड़ित होकर ॥ ७ ॥ पराई स्त्री से भोग करनेवाला पुरुष कालसूत्र नामक नरकमें बसता है और अग्नि लगानेवाला पुरुष घोरनरक में बसताहै व विषदेनेवाला नर सुघोर नामक नरक में निवास करता है ॥ ८ ॥ और धर्मनिन्दक,निन्दनीय चुगुल पुरुष महाघोरनरक में जाता है और मित्रसे द्रोहकरनेवाला पुरुष कराल नरक में बसताहै और हिंसामें केवल तत्पर पुरुष भीम नामक नरक में बसताहै ॥ ९ ॥ और

मवाप्नुयात् ॥ ५ ॥ यद्यन्नंचोरयेत्तेन शून्यःस्यादन्यजन्मनि ॥ असिपत्रवनेपीडामवाप्यसुचिरंपुनः ॥ ६ ॥ नपुंसकत्वंगच्छेत्सपुरुषोगुरुतल्पगः ॥ तप्तैःकालायसैर्दण्डैःपीडितोयमकिङ्करैः ॥ ७ ॥ नरकेकालसूत्राख्ये निवसेत्परदारगः ॥ अग्निदोनिवसेद्घोरे सुघोरेगरदायकः ॥ ८ ॥ महाघोरेचपिशुनो वाच्योधर्मविनिन्दकः ॥ वसेत्करालेमित्रध्रुग्भीमेहिंसैकतत्परः ॥ ९ ॥ संहारेछन्नपापिष्ठो मृषावादीभयानके ॥ असिघोरेवसेद्दापि परक्षेत्रधनादिहृत् ॥ १० ॥ वज्रेपरद्रोहरतो मांसाशीतरलेद्विजः ॥ तीक्ष्णेमातृपितृद्रोही तापनेजपदूषकः ॥ ११ ॥ अश्वघ्नोपिनिरुच्छ्वासे वसेद्गोघ्नश्चदारुणे ॥ भ्रूणहानिवसेच्चण्डे स्त्रीहत्याकृत्तुकूलके ॥ १२ ॥ देवस्वहारीदहने घोरघोरेपरस्वहृत् ॥ कृतान्तदूतानरके सर्वानेवेहपापिनः ॥ १३ ॥ बध्नन्तिपाशैर्निघ्नन्ति दण्डैर्विध्यन्तिशङ्कुभिः ॥ तीक्ष्णचञ्चुबकाःकङ्का भीमनेत्रामहोर

छिपे पापवाला पुरुष संहार नरक में जाता है व असत्यवादी नर भयानक नरक में पड़ताहै व पराई स्त्री या खेत व धनादिकोंका हरनेवाला पुरुष असिघोर नामक नरक में बसताहै ॥ १० ॥ व पराये वैर में तत्पर पुरुष वज्र नरक में रहता है व मांस खानेवाला ब्राह्मण तरल नामक नरक में पड़ता है माता पिता से द्रोह करनेवाला पुरुष तीक्ष्ण नामक नरकमें पड़ताहै व जपमें दूषण देनेवाला पुरुष तापन नरकमें पड़ताहै ॥ ११ ॥ और घोड़े को मारनेवाला पुरुष निरुच्छ्वास नरक में वसताहै व गोघाती नर दारुण नरक में पड़ताहै व गर्भ को नाशनेवाला पुरुष चण्ड नरक में बसताहै व स्त्रीहत्या करनेवाला पुरुष कूलक नरक में रहता है ॥ १२ ॥ देवता का धन

हरनेवाला पुरुष भयंकर दहन नामक नरकमें बसताहै व पराये धनको हरनेवाला भयंकर घोर नामक नरक में बसताहै यमराजके दूत इस नरकमें सब पापियों को ॥ १३ ॥ फँसरियों से बाँधते हैं व डंडों से मारते हैं तथा कीलों से छेदते हैं और पैनी चोंचवाले बगुला, गीध व भयंकर नेत्रोंवाले बड़े सांप ॥ १४ ॥ व कालेय जातिवाले नाग, व्याघ्र व अन्य हिंसक जीव इस को काटते हैं व शस्त्रों से खण्ड करतेहैं तथा शरीर को जलाते हैं ॥ १५ ॥ और गहरे गढ़े में गाड़ते हैं व चाबुकों से मारते हैं और वे पुरुष तैलके कड़ाहमें पकाये जातेहैं व महीन सूजियों से पीड़ित किये जाते हैं ॥ १६ ॥ व यमदूत पापी पुरुषोंसे दुःख से लेजानेवाले बोझों को ले चलाते हैं ब्रह्मघाती पुरुष क्षयरोगी होताहै व मदिरा पीनेवाला नर श्याम दांतोंवाला होताहै ॥ १७ ॥ और सोना चुरानेवाला पुरुष निन्दित नखोंवाला होताहै और गुरु

गाः ॥ १४ ॥ कालेयाश्चापिव्याघ्राश्च हिंस्राश्चान्येदशन्त्यमुम् ॥ शकलीकुर्वतेशस्त्रैर्दहन्तोदेहमेवच ॥ १५ ॥ खनन्ति गहनेश्वभ्रेकशाभिस्ताडयन्तिच ॥ तैलद्रोण्यांविपच्यन्तेतुद्यन्तेसूक्ष्मसूचिभिः ॥ १६ ॥ वाह्यन्तेदुर्वहान्भारान् यमदूतैर्हिपापिनः ॥ ब्रह्महाक्षयरोगीस्यात्सुरापःश्यावदन्तकः ॥ १७ ॥ स्वर्णापहारीकुनखी दुश्चर्मागुरुतल्पगः ॥ अपस्मारीगुरुद्रोही चाण्डालोमुखरोगवान् ॥ १८ ॥ कूटसाक्षीचाक्षिरोगी मन्दाग्निश्चाग्रभोजनः ॥ विद्यापहारीमूकःस्यादन्धःपुस्तकचोरकः ॥ १९ ॥ परदाररतःपङ्गुर्बधिरःपरनिन्दकः ॥ विड्वराहोनिराचारो जिह्वारोग्यंशतस्करः ॥ २० ॥ अभ्यागतातिथित्यागी कपोलतिलकोभवेत् ॥ पर्वसुस्त्रीरतोमेहीपूत्यास्योभक्ष्यभक्षकः ॥ २१ ॥ मर्यादाभेदको

की शय्या व स्त्री से गमन करनेवाला पुरुष अशुभ चर्मवाला होताहै और गुरुओंसे वैर करनेवाला पुरुष मिरगी रोगवाला व चांडाल पुरुष मुखरोगी होताहै ॥ १८ ॥ और झूठी गवाही देनेवाला नेत्र रोगवान् होता है और सब से पहले भोजन करनेवाला पुरुष मंदाग्नि रोगवाला होताहै व विद्या चुरानेवाला गूंगा होताहै और पुस्तकों को चुरानेवाला नर अन्ध होताहै ॥ १९ ॥ व पराई स्त्री से स्नेह करनेवाला लँगड़ा होताहै और पराई निन्दा करनेवाला बधिर होताहै व आचाररहित पुरुष ग्रामसूकर होता है और भाग को चुरानेवाला पुरुष जिह्वारोगी होताहै ॥ २० ॥ और अभ्यागतों व अतिथियों को त्यागनेवाला पुरुष कपोल में तिलरोगवाला होता है और पर्वों (अमावस्यादि तिथियों) में स्त्री से मैथुन करनेवाला नर प्रमेही होताहै व अभक्ष्य भक्षण करनेवाला नर दुर्गंधि मुखवाला होताहै ॥ २१ ॥ और मर्यादों को नष्ट करने

वाला व तडागों तथा बगीचों को नष्टकरनेवाला पुरुष सेवक होताहै और पहले कहकर जो नहीं देता है वह थोड़ी आयुर्बलवाला व बहुत बकनेवाला होताहै ॥ २२ ॥ और विष्णुसे वैर करनेवाला गिरगिट होताहै व शिवद्रोही वानर होताहै इसप्रकार पातक के फल को जानकर प्रायश्चित्त करै ॥ २३ ॥ व उस विषय में आस्तिक पुरुषों को इस अरुणक्षेत्र में भलीभांति प्रायश्चित्त करना चाहिये ॥ २४ ॥ इसप्रकार नरकों में मनुष्यों के बहुत भांति के कठिन कारण को सुनकर इसके अनन्तर मार्कण्डेयजी चरणोंमें गिरपड़े व उन्होंने उस समय बार २ उसके शान्ति के कर्म की प्रार्थना किया ॥ २५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽरुणाचलखण्डेदेवीदयालु

दासस्तटाकारामहन्नरः ॥ प्रतिश्रुताप्रदोयःस्यादल्पायुश्चविकत्थनः ॥ २२ ॥ विष्णोर्द्रोहीचसरटः शिवद्रोहीचमर्कटः ॥ एवंपापफलंज्ञात्वा प्रायश्चित्तंसमाचरेत् ॥ २३ ॥ तत्रास्मिन्नरुणक्षेत्रे कर्तव्यंसम्यगास्तिकैः ॥ २४ ॥ इतिनिशम्य सुदुष्करकारणम्बहुविधंनरकेषुनृणामथ ॥ चरणयोःपतितश्चतदापुनःपुनरयाचततच्छमनक्रियाम् ॥ २५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽरुणाचलमाहात्म्येऽष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

नन्दिकेश्वरउवाच ॥ विस्तरात्कथयाम्यद्य प्रायश्चित्तमहंहितत ॥ सर्वेषामपिसत्त्वानां शुद्धयेपापचेतसाम् ॥ १ ॥ ब्रह्महाप्राप्यशोणाद्रिं निमग्नःकद्रुतीर्थके ॥ जपन्पञ्चाक्षरंमन्त्रं भस्मरुद्राक्षधारकः ॥ २ ॥ कृतोपवासःसम्पूज्य प्रयतःपरमेश्वरम् ॥ ब्राह्मणान्भोजयेद्वर्षं भिक्षाशीनियतेन्द्रियः ॥ ३ ॥ विशेषपूजामद्रेःस कुर्याद्देवस्यभक्तितः ॥ ब्रह्महत्या

मिश्रविरचितायांभाषाटीकायामष्टादशोऽध्याय. ॥ १८ ॥ ● ॥ ● ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

दो० । जेहि प्रायश्चित के किये होत पाप सों मुक्ति । उनीसवें अध्याय में सोइ कथा की उक्ति ॥ नन्दिकेश्वरजी बोले कि पाप चित्तवाले सर्व प्राणियों की शुद्धि के लिये मैं आज उस प्रायश्चित्त को विस्तार से कहताहूं ॥ १ ॥ कि ब्रह्मघाती पुरुष अरुणाचल पै प्राप्त होकर कद्रु तीर्थ में स्नानकर भस्म व रुद्राक्ष को धारेहुये पंचाक्षर मंत्र को जपताहुआ ॥ २ ॥ उपासकर पवित्र हो सदाशिवजी को पूजकर ब्राह्मणोंको भोजन करावै और इन्द्रियों को रोंककर वर्षभर भिक्षा से भोजन करै ॥ ३ ॥

और भक्तिसे अरुणाचल का विशेष पूजन करे तो वह पुरुष ब्रह्महत्या से छूटकर ब्रह्मलोक में पूजित होताहै ॥ ४ ॥ और मदिरा पीनेवाला भी पुरुष एक वर्ष तक
अरुणक्षेत्र में बसकर पवित्र आचारवाला होकर इस भांति महादेवजीको पूजकर ॥ ५ ॥ शतरुद्रिय को उच्चारण करताहुआ सदाशिव देवजी को दूधसे नहवावै तो
मदिरा पीने से उपजे हुये पापसे वह शीघ्रही छूट जाताहै ॥ ६ ॥ और सोना चुरानेवाला पुरुष अरुणक्षेत्र में सदाशिवजी को बिल्वपत्रों से पूजकर ब्राह्मणों को भोजन
करावै तो कठिन पाप से छूट जाताहै ॥ ७ ॥ और गुरु की स्त्री से रति करनेवाला पुरुष अरुणाचल पै जाकर भक्तिपूर्वक व्रतवान् होकर हज़ार दीपों से ॥ ८ ॥ तीन

विनिर्मुक्तो ब्रह्मलोके महीयते ॥ ४ ॥ सुरापोप्यरुणक्षेत्रे वर्षमेकं वसन्प्रति ॥ प्रविशुद्धसमाचारः सम्पूज्यैवं महेश्वरम् ॥ ५ ॥
क्षीरेण स्नापयेद्देवं शतरुद्रीयमुच्चरन् ॥ सुरापानोद्भवेनाशु पापेन परिमुच्यते ॥ ६ ॥ सुवर्णस्तेयकृच्छोणक्षेत्रे बिल्वद
लैर्हरम् ॥ अभ्यर्च्य भोजयेद्विप्रान् पापान्मुच्येत दुष्करात् ॥ ७ ॥ गुरुदाररतिर्गत्वा पुरुषश्चारुणाचलम् ॥ भक्तिपूर्वं व्रती
भूत्वा सहस्रेण प्रदीपकैः ॥ ८ ॥ मासत्रयं समाराध्य श्रीशोणाचलशङ्करम् ॥ प्रदद्याद्भूषितां कन्यां ब्राह्मणाय सुधीम
ते ॥ ९ ॥ षडक्षरं जपेन्नित्यं तेन मुच्येत पाप्मना ॥ शिवलोके च निवसेद्यावत्संसारं न संशयः ॥ १० ॥ परदारापहर्त्ता च क्षेत्रे
स्मिन्नियतेन्द्रियः ॥ मासमेकं नवैः पुष्पैरभ्यर्च्यारुणशङ्करम् ॥ ११ ॥ माहेश्वराय वितरेद्धनं शक्त्यानुरूपतः ॥ त
त्क्षणेन विनिर्मुक्तस्तस्मात्पापाद्भविष्यति ॥ १२ ॥ गरदोप्यरुणक्षेत्रे व्रती भूत्वा यथा पुरा ॥ सर्वोपहारं देवाय दत्त्वादो
षेण मुच्यते ॥ १३ ॥ पिशुनोप्यरुणक्षेत्रे व्रती वेदरतो नरः ॥ अध्यापयेद्द्विजान्मुख्यांस्ततो निष्कल्मषो भवेत् ॥ १४ ॥

महीने तक श्रीअरुणाचल शिवजी को आराधकर बुद्धिमान् ब्राह्मण के लिये भूषित कन्या को देवै ॥ ९ ॥ और नित्य षडक्षर मंत्र को जपै तो उस पाप से छूटजाताहै
और जबतक संसार रहता है तब तक वह शिवलोक में बसताहै इसमें संदेह नहींहै ॥ १० ॥ और पराई स्त्री को हरनेवाला पुरुष इन्द्रियों को रोंककर इस क्षेत्र में एक
महीने तक नवीन पुष्पों से अरुणशिवजी को पूजकर ॥ ११ ॥ शैव जनके लिये शक्तिके अनुसार धन देवै तो उसी क्षण उस पाप से मुक्त होगा ॥ १२ ॥ और विष
देनेवाला पुरुष भी अरुणक्षेत्र में पहले की नाईं व्रतवान् होकर शिवदेव जी के लिये सब उपहार को देकर दोषसे छूट जाताहै ॥ १३ ॥ और चुगुल पुरुष भी अरुण

क्षेत्र में व्रतवान् व वेद में तत्पर होकर मुख्य ब्राह्मणों को पढ़ावै तो पापरहित होता है ॥ १४ ॥ और आग लगानेवाला पुरुष भी अरुणक्षेत्र में पहले की नाईं तीन महीने तक व्रतवान् होकर उस पाप की शान्ति के लिये मन्दिर को बनवाकर शिवभक्त के लिये देवै ॥ १५ ॥ व धर्मकी निन्दा करनेवाला पुरुष अरुणक्षेत्रमें वर्षभर व्रतवान् हो बसकर पापकी शान्ति के लिये यथाशक्ति यज्ञादिकों को करै ॥ १६ ॥ और पितासे वैर करनेवाला पुरुष एक महीने तक अरुणक्षेत्र में आलस्यरहित टिककर शिवभक्त ब्राह्मणों के लिये हज़ारों गाइयों को देवै ॥ १७ ॥ और सूर्यग्रहण के समयों में बहुत ब्राह्मणों को भोजन कराकर नीले बैल को छोड़े तो उस

अग्निदोप्यरुणक्षेत्रे त्रीन्मासान्पूर्ववद्व्रती ॥ दद्याच्छैवायनिर्माप्य गृहंतत्पापशान्तये ॥ १५ ॥ धर्मनिन्दाकरःशोण
क्षेत्रेवर्षंव्रतीवसन् ॥ सत्रादिकंप्रकुर्वीत यथाशक्त्याघशान्तये ॥ १६ ॥ पितृद्रोह्यरुणक्षेत्रे तिष्ठन्मासमतन्द्रितः ॥
गिरीशेभ्योद्विजेभ्योपि दद्याद्गाश्चसहस्रशः ॥ १७ ॥ सूर्योपरागकालेषु भोजयित्वाद्विजान्बहून् ॥ विमुच्येद्वृषभंनीलं
मुच्यतेचततोहिसः ॥ १८ ॥ स्त्रीघ्नःशिशुघ्नोगोघ्नोपि शोणक्षेत्रमुपेयिवान् ॥ व्यतीपातेतिलंदद्याद्द्विजेभ्योदुरितच्छि
दे ॥ १९ ॥ प्रच्छन्नपापकृच्छोणक्षेत्रेस्मिन्नियतेन्द्रियः ॥ गुप्तदानानिकुर्वीत भवेद्विगतकल्मषः ॥ २० ॥ मृषाभाष्य
रुणक्षेत्रे षण्मासान्निवसन्प्रति ॥ शोणाचलेश्वरस्तोत्रपाठेनस्यादकल्मषः ॥ २१ ॥ कूपादिभेदकृच्छोणक्षेत्रमासा
द्यभक्तितः ॥ तटाकान्खानयेत्तत्र ध्रुवंनिर्वृजिनोभवेत् ॥ २२ ॥ क्षेत्रापहारीदेवाय क्षेत्रंदद्यान्महाफलम् ॥ आरामभेद
कोप्यस्मै दद्यादुद्यानमुत्तमम् ॥ २३ ॥ गृहापहारीकुर्वीतशिवस्यायतनंनवम् ॥ सद्यस्तेननिर्मुक्तः शिवसायुज्यमा

पातकसे वह छूटताहै ॥ १८ ॥ और स्त्रीघाती, बालघाती व गोघातीभी मनुष्य अरुणक्षेत्र में प्राप्त होकर पाप नाश होने के लिये ब्राह्मणों के लिये व्यतीपात योग में तिल को देवै ॥ १९ ॥ और छिपे पाप करनेवाला पुरुष इस क्षेत्र में इन्द्रियों को रोककर गुप्तदानों को करै तो पापरहित होता है ॥ २० ॥ और असत्यवादी पुरुष अरुणक्षेत्र में छह महीने बसकर अरुणाचलेशजीके स्तोत्रके पाठसे पापरहित होताहै ॥ २१ ॥ और कूपादिकों को तोड़नेवाला पुरुष भक्ति से अरुणक्षेत्रमें आकर वहां तड़ागों को खुदावै तो निश्चयकर पापरहित होवैहै ॥ २२ ॥ और क्षेत्र हरनेवाला पुरुष शिवदेवजीके लिये महाफलवाले क्षेत्रको देवै व बग़ीचाको तोड़नेवाला पुरुष भी इन शिव

देवजीके लिये उत्तम बगीचेको देवै ॥२३॥ और घरको हरनेवाला पुरुष शिवजीके नवीन मन्दिरको बनवावै तो वह शीघ्रही उस पापसे छूटकर शिवजीकी सायुज्यको
प्राप्तहोताहै ॥ २४॥ और अन्यसे द्रोह करनेवाला नर अरुणक्षेत्रमें बसकर शिवभक्तों को धनोंसे तृप्तकर उत्तम लोकोंको निस्सन्देह प्राप्त होताहै ॥ २५ ॥ और मोक्षको
चाहनेवाला पुरुष अरुणक्षेत्रमें बसकर सदाशिवजी को पूजै और आदरसे अरुणेश्वर का मंत्र जपै ॥२६॥ और यदि प्रियवस्तुकी प्रार्थना होवै तो चरणोंहीसे अरुणाचल
की प्रदक्षिणा करनेवाले पुरुष को साक्षात् वह शुभ वस्तु प्राप्त होने योग्य होतीहै ॥२७॥ क्षुधित होनेपर व स्खलित होने (गिरने) पर व परवश व दुःस्वप्न दर्शनमें और

प्नुयात् ॥ २४ ॥ परद्रोहीवसञ्छोणक्षेत्रेमाहेश्वरान्धनैः ॥ प्रीणयित्वापराँल्लोकान्निःसंशयमवाप्नुयात् ॥ २५ ॥
निवसन्नरुणक्षेत्रे पूजयेत्परमेश्वरम् ॥ अरुणेश्वरमन्त्रञ्चजपेन्मोक्षेच्छुरादरात् ॥ २६ ॥ प्रार्थ्यमिष्टंयदिस्यात्तत्प
द्भ्यामेवप्रदक्षिणम् ॥ कुर्वतारुणशैलस्यतत्प्राप्यंशुभमञ्जसा ॥ २७ ॥ क्षुधितेस्खलितेचान्यनिघ्नेदुःस्वप्नदर्शने ॥ प्रीत्यु
त्कर्षेपिचबुधैरुच्चार्योरुणशङ्करः ॥ २८ ॥ अपिवर्णाश्रमद्रोही शिवद्रोहरतोपिवा ॥ त्रीण्यहान्यरुणक्षेत्रे वसन्मुच्य
तपातकैः ॥ २९ ॥ पार्थिवःशिवलोकोयं त्रिलोक्यामस्तिभोद्विज ॥ एषदक्षिणकैलासो योसावरुणपर्वतः ॥ ३० ॥
अन्येषुसिद्धिक्षेत्रेषु तपोभिःसिद्धयोनृणाम् ॥ अस्यस्मरणमात्रेण तारतम्यंविचिन्त्यताम् ॥ ३१ ॥ यद्गयायांप्रयागेय
त्काश्यांयत्पुष्करेषुयत् ॥ कर्मसेतौचयत्पुंसां तदेवात्रफलंभवेत् ॥ ३२ ॥ शोणक्षेत्रेहिचात्रैव नरोयःस्याद्दुपोषितः ॥ त

प्रीति की अधिकतामें भी विद्वान् को अरुणशिवजी का उच्चारण करना चाहिये ॥ २८ ॥ वर्णों व आश्रमों से वैर करनेवाला और शिवद्रोहमें तत्पर भी पुरुष तीनदिन
अरुणक्षेत्र में बसकर पातकों से छूट जाता है ॥ २९ ॥ हे द्विज ! त्रिलोक में यह पृथ्वी सम्बन्धी शिवलोकहै और यह दक्षिण कैलासहै जो यह कि अरुणाचल है ॥
३० ॥ अन्य सिद्धिक्षेत्रों में मनुष्यों को तपस्याओं से सिद्धियां होती हैं व इसके स्मरणमात्र से सिद्धियां होती हैं इस तारतम्यता को चिन्तन कीजिये ॥ ३१ ॥
जो गयामें फल होताहै व जो प्रयागमें होताहै और जो काशीमें व जो पुष्करों में हैं व कर्मसेतु में पुरुषों को जो फल होताहै वही फल यहां पर होता है ॥ ३२ ॥ इसी

अरुणक्षेत्र में जो मनुष्य उपास करता है उसके सौ चान्द्रायण व दश हजार सान्तपनादिक व्रत होते हैं ॥ ३३ ॥ और अरुणक्षेत्र के समीप किये हुये सोलहों दान शास्त्र में कहे हुये दुगुने फल को करते हैं ॥ ३४ ॥ इस प्रकार उन मृकंडुपुत्र मार्कंडेयजी ने नन्दिकेश्वर जी के मुख से नरक के प्रायश्चित्त को सुना व उनकी प्रशंसा कर यह कहा कि दिनों व वर्षों में किस प्रकार अरुणेश्वरजी को पूजै ॥ ३५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽरुणाचलखण्डेभाषाटीकायामेकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ ॥

दो० । जेहि दिन अरुणाचल शिवहिं पूजि होत जो काम । सोइ बीस अध्यायमें कह्यो चरित सुखधाम ॥ नन्दिकेश्वरजी बोले कि जो पुरुष रविवारमें अरुण कमलों

स्यचान्द्रायणशतं भवेत्सान्तपनायुतम् ॥ ३३ ॥ षोडशापिमहादानान्यरुणक्षेत्रसन्निधौ ॥ अनुष्ठितानिशास्त्रोक्तं कुर्वन्तिद्विगुणंफलम् ॥ ३४ ॥ इतिनन्दिकेश्वरमुखेनशुश्रुवांस्तत्सुतोपिनिरयप्रतिक्रियाम् ॥ अभिनन्द्यतञ्चदिनवत्सरादिकेष्वर्चयेत्कथमितिव्यजिज्ञपत् ॥ ३५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽरुणाचलमाहात्म्यएकोनविंशोध्यायः ॥ १९ ॥

नन्दिकेश्वरउवाच ॥ रक्तोत्पलैरर्कवारे यःशोणाद्रीशमर्चयेत् ॥ अवश्यंतस्यसिध्यन्ति सर्वकार्याण्यसंशयम् ॥ १ ॥ सोमवारेनरोयश्च कुन्दपुष्पैःसमर्चयेत ॥ अरुणाद्रीशमस्यस्युस्सुलभास्सर्वसम्पदः ॥ २ ॥ सौम्यवारेरुणाद्रीशं कस्तूरीकरवीरकैः॥ यःपूजयतितस्यस्यात्सत्यलोकेचलास्थितिः ॥ ३ ॥ गुरुवारेसिताम्भोजैः शोणेशंवरिवस्यतः ॥ जनलोकेचिरंवासः सिद्धैःसहभविष्यति ॥ ४ ॥ चम्पकैर्मल्लिकाभिश्च शुक्रवारेसमर्चयेत् ॥ तपोलोकेप्रपद्येत ब्रह्मर्षिभिरभिष्टुतः ॥ ५ ॥ सौरवारेचजातीभिः समाराध्यारुणेश्वरम् ॥ नजातुयमलोकाय पापीयानपिकल्पते ॥ ६ ॥ प्रथमा

से अरुणाचलेशजी को पूजता है उस के निस्संदेह सब कार्य सिद्ध होते हैं ॥ १ ॥ व सोमवार के दिन जो पुरुष कुन्दके फूलोंसे अरुणाचलेश जी को पूजता है इसको सब सिद्धिया सुलभ होती हैं ॥ २ ॥ और बुधके दिन करतूरी व कनैर के पुष्पों से जो मनुष्य अरुणाचलेशजी को पूजता है उसकी सत्यलोकमें अचल स्थिति होती है ॥ ३ ॥ और बृहस्पति के दिन श्वेत कमलों से अरुणेश जी को पूजते हुये पुरुष का सिद्धों के साथ जनलोक में बहुत दिनों तक निवास होता है ॥ ४ ॥ और जो पुरुष चंपक व बेला के पुष्पों से शुक्रवार को पूजताहै ब्रह्मर्षियों से स्तुति किया हुआ वह पुरुष तपोलोक में प्राप्त होताहै ॥ ५॥ और शनैश्चर दिन में चमेली के पुष्पों

से अरुणाचलेशजी को भलीभांति आराधन कर बहुत पापी भी मनुष्य कदाचित् यमलोक को नहीं जाताहै ॥ ६॥ और परेवा तिथि में जो पुरुष शिवदेवजीको उप-
हार अर्पण करताहै वह पापों से छूटकर धन,धान्य से बढ़तीवाला होता है ॥ ७ ॥ और दुइज तिथि में जो मनुष्य भक्ति से दही, भात को निवेदन करता है वह
श्रेष्ठ पुरुष भाग्यवान् व निश्चय कर शोभित होताहै ॥ ८ ॥ और तीज तिथि में जो पुरुष गुड़हर के पुष्पों से अरुणाचलेशजी को पूजताहै उसके शरीरपर्यंत इस जन्म
में नीरोगता होतीहै ॥ ९ ॥ और चौथि तिथि में अरुणाचलेशजी के लिये जो पुरुष पूर्ण घट से जलादिक को निवेदन करताहै उसका मनोरथ पूर्ण होताहै ॥१०॥ व

यान्तिथौदेवस्योपहारंसमर्पयेत ॥ यःपापमुक्तःसम्भवेद्धनधान्यसमृद्धिमान् ॥ ७ ॥ द्वितीयस्यान्तिथौ भक्त्यायोद्
ध्यन्नंनिवेदयेत ॥ सम्भवेद्भाग्यवाञ्छ्रेष्ठः शोभितोभवतिध्रुवम् ॥ ८ ॥ तृतीयायांजपापुष्पैःशोणेशंपरितर्पयेत ॥ तस्येह
जन्मनारोग्यमाशरीरम्भविष्यति ॥ ९ ॥ चतुर्थ्यामरुणेशाय पूर्णकुम्भाज्जलादिकम् ॥ निवेदयतियस्तस्य भवेत्पूर्णो
मनोरथः ॥ १० ॥ कुन्दपुष्पैश्चपञ्चम्यामुपहारंप्रकल्पयेत॥ शोणेश्वरायसभक्त्यायः सस्यादव्ययवैभवः ॥ ११ ॥ षष्ठ्यां
गुडौदनंदद्यादरुणाचलशम्भवे ॥ भक्त्यायस्तस्यसन्तानो नकदाचित्प्रहीयते ॥ १२ ॥ तिलौदनंयस्सप्तम्यां शोणे
शायसमर्पयेत ॥ सपापंचाप्यधर्मत्वमयत्नेनव्यपोहति ॥ १३ ॥ अष्टम्यांराजशाल्यन्नं योदद्याच्छोणशम्भवे ॥ तस्य
सेवांविनापिस्याद्राजलोकोवशीकृतः ॥ १४ ॥ गोधूमान्नंनवम्यांच शोणाद्रीशायर्पयेत ॥ राजयक्ष्मादयस्तस्य भ

जो पुरुष पंचमी तिथि में कुन्दपुष्पों से रचे हुये उपहार को अरुणाचलेशजी के लिये भक्ति से कल्पित करता है वह नाशरहित ऐश्वर्यवाला होता है ॥ ११ ॥ और
छठि तिथि में जो मनुष्य भक्ति से अरुणाचल शिवजी के लिये गुड़, भातको देता है उसकी सन्तान कभी नाश नहीं होती है ॥१२ ॥ व सप्तमी तिथि में जो पुरुष
अरुणाचलेशजी के लिये तिल, भात को निवेदन करताहै वह बिन यत्नहीसे पातक व अधर्मता को नाश करताहै ॥ १३ ॥ और अष्टमी तिथि में जो मनुष्य अरुणा-
चल शिवजी के लिये राजशाली (जड़हन धान) के भात को देताहै उसके बिन सेवा भी राजालोग वश होजाते हैं ॥ १४॥ व जो पुरुष नवमी तिथिमें अरुणाचलेश

जी के लिये गेहूं अन्नको अर्पण करै है उसके कभी राजयक्ष्मादिक रोग नहीं होवेंगे ॥ १५ ॥ और दशमी तिथि में जो पुरुष अरुणाचलेशजी के लिये दही सत्तू को निवेदन करताहै वह सदैव सब मनुष्यों की प्रीति का पात्र होताहै ॥ १६ ॥ और एकादशी तिथि में जो मनुष्य अरुणाचलेशजी को चूरों से भेंट कल्पित करताहै उस को कहींसे भय नहीं होताहै ॥ १७ ॥ और जो पुरुष द्वादशी तिथिमें अरुणाचलेश जीके लिये दालि भातको निवेदन करता है उसका विघ्नरहित मनोरथ होता है ॥ १८ ॥ और तेरसि तिथि में जो पुरुष अरुणाचलेशजी के लिये सत्तुवों को निवेदन करता है उसके चित्तको विकलता नहीं होतीहै और परिश्रम भी नहीं

विष्यन्तिनजातुचित् ॥ १५ ॥ दशम्यांशोणनाथाययःकरम्भन्निवेदयेत् ॥ सभवेत्सर्वलोकानांसदैवप्रीतिभाजनम् ॥ १६ ॥ पृथुकैरुपहारंय एकादश्यांप्रकल्पयेत् ॥ अरुणाचलनाथस्य सभवेदकुतोभयः ॥ १७ ॥ द्वादश्यांशोणनाथाय सूपौदननिवेदनम् ॥ यःकरोतिभवेत्तस्य निर्विघ्नेनमनोरथः ॥ १८ ॥ यस्सक्तूनरुणेशाय त्रयोदश्यांसमर्पयेत् ॥ तस्याकुलचित्तत्वमश्रान्तिरपिजायते ॥ १९ ॥ अर्पयेच्छोणनाथाय फलानिविविधानियः ॥ चतुर्दश्यांसमूढोपि सिद्धसारस्वतोभवेत् ॥ २० ॥ यःपौर्णमास्यांशोणाद्रिनाथायविनिवेदयेत् ॥ पनसस्यफलंतस्य चाक्षिरोगोनजायते ॥ २१ ॥ पितॄणाञ्चतिथौभक्त्याकन्दमूलादियोर्पयेत ॥ शोणाचलेश्वरायास्य तुष्यन्तिपितरःकिल ॥ २२ ॥ अश्विन्यामरुणेशायदद्याद्वासांसिभक्तिमान् ॥ भरण्यामरुणेशाय दद्यादाभरणान्यपि ॥ २३ ॥ कृत्तिकासुपदीपांश्च रोहिण्यांरौप्य

होता है ॥ १९ ॥ व जो पुरुष चौदसि तिथि में अरुणाचलेशजी के लिये अनेक भांति के फलोंको देताहै वह मूर्खभी सिद्ध सरस्वती देवतावाला होता है ॥ २० ॥ और जो पुरुष पौर्णमासी तिथिमें अरुणाचलेशजी के लिये कटहर के फलको निवेदन करता है उसके नेत्रोंका रोग नहीं होता है ॥ २१ ॥ और पितरों की तिथि अर्थात् अमावसमें जो पुरुष अरुणाचलेशके लिये भक्तिसे कन्दमूलादिकों को अर्पण करताहै उसके ऊपर पितर प्रसन्न होतेहै ॥ २२ ॥ व भक्तिमान् पुरुष अश्विनीनक्षत्र में अरुणाचलेशजी के लिये बसनों को देवै और भरणीनक्षत्र में अरुणाचलेशजी के लिये गहनोंको भी देवै ॥ २३ ॥ और कृत्तिका में दीपोंको देवै

और रोहिणी नक्षत्र में चांदीको अर्पण करै व मृगशिरा नक्षत्र में मलयज चन्दन तथा आर्द्रा में हरिचन्दन (पीलेचन्दन) को देवै ॥ २४ ॥ व पुनर्वसु नक्षत्र में कस्तूरी और पुष्यमें कर्पूर को चढ़ावै और श्लेषामें केसर व मघानक्षत्र में ठंढेजलको चढ़ावै ॥ २५ ॥ पूर्वाफाल्गुनीमें ताम्बूल व उत्तराफाल्गुनीमें धूपको चढ़ावै और हस्तनक्षत्र में कालागुरु तथा चित्रामें यक्षकर्दम (कपूर, अगुरु, कस्तूरी व कङ्कोलादिक से मिलेहुये चन्दन) को चढ़ावै ॥ २६ ॥ और स्वातीमें कुछेक युवती ब्याही हुई स्त्रियोंको अर्पण करै व विशाखा में चँवर को देवै तथा अनुराधा में मोतियोंका छत्र व ज्येष्ठामें धेनुवों के समूहों को देवै ॥ २७ ॥ और मूलनक्षत्र में मोतियों के भूषणों को व पूर्वाषाढ़ में मुकुट को अर्पण करै व उत्तराषाढ़ में रत्नोंको और श्रवण में सोनेव रत्नोंसे रचेहुये सिंहासनको देवै ॥ २८ ॥ और धनिष्ठानक्षत्रमें सुवर्ण व

मर्पयेत् ॥ मृगशीर्षे मलयजमार्द्रायां हरिचन्दनम् ॥ २४ ॥ पुनर्वसौ मृगमदं पुष्ये कर्पूरमर्पयेत् ॥ काश्मीरोद्भवमाश्लेषे
मघायां तुहिनोदकम् ॥ २५ ॥ ताम्बूलं पूर्वफाल्गुन्यां धूपमुत्तरफाल्गुने ॥ कालागुरुञ्च हस्तर्क्षे चित्रायां यक्षकर्दमम् ॥ २६ ॥
स्वात्यां सुवासिनीवृन्दं विशाखायां प्रकीर्णकम् ॥ मैत्रे मुक्तातपत्रञ्च ज्येष्ठायां धेनुकान्यपि ॥ २७ ॥ मुक्तालङ्कारकान्मू-
ले जलमे मुकुटमर्पयेत् ॥ रत्नानि चोत्तराषाढे श्रवणे भद्रपीठिकाम् ॥ २८ ॥ अष्टापदं धनिष्ठायां वासः शतभिषज्यपि ॥
पूर्वभाद्रपदे नागानुत्तरायां तुरङ्गमम् ॥ २९ ॥ रेवत्यां च रथं हैमं प्रदद्याच्छोणशम्भवे ॥ पूर्वं कृत्वा महापूजामर्पयेच्च ततो
नरः ॥ ३० ॥ पूज्यो राशिषु मेषादिष्वरुणेशो विशेषतः ॥ सिन्दुवारैः कुरुवकैः ककुभैः पाटलैः क्रमात् ॥ ३१ ॥ कुटजै-
र्नीपकुसुमैर्जीवन्तीमल्लिकादिभिः ॥ सरोरुहैर्दमनकैर्नन्द्यावर्त्तसरोरुहैः ॥ ३२ ॥ पञ्चामृतेनस्नपनमुभयोरुपरागयोः ॥

शतभिष में वसन को देवै और पूर्वाभाद्रपद में हाथियों को देवै व उत्तराभाद्रपद में घोड़ों को देवै ॥ २९ ॥ और रेवती नक्षत्रमें अरुणाचलेशजी के लिये सोनेके रथ को देवै पहले बड़ाभारी पूजनकर तदनन्तर मनुष्य इन वस्तुओं को अर्पण करै ॥ ३० ॥ और मेषादिक राशियों में क्रमसे अरुणेशजी को विशेषकर पूजना चाहिये अर्थात् क्रमसे मेषराशिमें मेवड़ी के पुष्पोंसे, वृषमें लाल या बैंजनी रंगवाले पियाबांसाके फूलों से, मिथुनमें अर्जुन के पुष्पोंसे, कर्कमें पाढ़र के पुष्पोंसे पूजनकरै॥३१॥ सिंहराशि में कोरैया के फूलों से, कन्यामें कदम्ब के पुष्पोंसे, तुलामें जीवन्ती के फूलोंसे व वृश्चिक राशिमें वेलाके फूलोंसे पूजन करै और धनराशि में कमलों से

मकर में देउना के पुष्पोंसे, कुम्भराशि में तगर के पुष्पोंसे व मीन में कमलों से अरुणेशजी को पूजै ॥ ३२ ॥ और चन्द्रमा व सूर्य के दोनों ग्रहणोंमें भक्तिसे पञ्चाक्षर मन्त्रके द्वारा अरुणाचलेश को पञ्चामृत से स्नान करावै व दोनों अयनों में भी पंचगव्य से स्नान करावै ॥ ३३ ॥ षडक्षरमन्त्रके द्वारा पञ्चगव्य से स्नान करावै और दिन रातके बराबरवाले समय में अरुणाचलेशजी को भक्तिसे ॐकार के द्वारा जल या दूध से स्नान करावै प्रातःकालसे मध्याह्नतक तुलसी देना चाहिये व मध्याह्न समयमें अमिलतास ॥ ३४ । ३५ ॥ और दुपहर के उपरान्त अरुणाचलेश को बेला उत्तमहै हज़ार कलशोंके जलोंसे अघोरमन्त्रके द्वारा स्नान करावै ॥३६॥

पञ्चाक्षरेणकुर्वीत शोणनाथस्यभक्तितः ॥ स्नपनंपञ्चगव्येन द्वयोरयनयोरपि ॥३३॥ षडक्षरेणकुर्वीत गव्येनस्नपनक्रियाम् ॥प्रणवेनैवकुर्वीत क्षीरेणस्नपनक्रियाम् ॥३४॥ अरुणाचलनाथस्य भक्त्याचविषुवेयने ॥ प्राह्णेदेयाचतुलसी मध्याह्नेकृतमालकः ॥ ३५ ॥ अपराह्णेमल्लिकाच शोणाद्रीशस्यशस्यते ॥ अघोरमन्त्रैःस्नपयेत्सहस्रकलशोदकैः ॥ ३६ ॥ शतरुद्रीयमुच्चार्य श्रीशोणाचलशाम्भवम् ॥ शिवरात्रौविशेषेणाभ्यर्चयेद्बिल्वपत्रकैः ॥ ३७ ॥ कमलैःकर्णिकारैश्च जागरूकोयतेन्द्रियः ॥ गीतवादित्रनृत्यैश्च दिव्यागमविधानतः ॥ ३८ ॥ पूजयेदपवर्गार्थं शोणशैलमहेश्वरम् ॥ मासिपौषेचदेवस्य कुर्यादाग्नेयमुत्सवम् ॥ ३९ ॥ नवान्नैरुपहाराद्यैर्व्याहृतीरुच्चरन्बुधः ॥ वैशाखेचविशाखायां शिवतन्त्रानुसारतः ॥ ४० ॥ शोणाचलेश्वरस्यास्य कुर्याद्दमनकोत्सवम् ॥ प्रबोधकंमार्गशीर्षे प्रातर्निर्मायसामभिः ॥ ४१ ॥ महापूजांप्रकुर्वीत शोणशैलस्यभक्तिमान् ॥ तथाप्रदोषेष्वद्रीशं व्यतीपातेषुपर्वसु ॥ ४२ ॥ सोमार्कवार

और शिवरात्रि में शतरुद्रीको उच्चारण कर विशेषकर बिल्वपत्रों से अरुणाचलेशजी को पूजन करै ॥ ३७ ॥ और इन्द्रियों को रोंकेहुये पुरुष जागरणकर दिव्यशास्त्रों की विधिसे कमलोंसे और कठचम्पा के फूलोंसे तथा गीत,बाजन व नृत्योंसे ॥ ३८ ॥ मोक्षके लिये अरुणाचल पै महादेवजीको पूजै और पौषमहीनेमें शिवदेवजी का आग्नेयोत्सव याने कृत्तिका नक्षत्र में उत्सव करै ॥ ३९ ॥ और ॐकारादिक व्याहृतियों को उच्चारण करताहुआ विद्वान् नवान्नों के उपहारादिकों से पूजन करै और वैशाखमें विशाखा नक्षत्रमें शिवशास्त्र के अनुसार ॥ ४० ॥ इन अरुणाचलेशजी का दमनकोत्सवकरै व अगहनमें प्रातःकाल प्रियवचनोंसे प्रबोधकर ॥ ४१ ॥ भक्ति-

मान् पुरुष अरुणाचल का महापूजन करै और व्यतीपात योगोंमें व पर्वों तथा प्रदोष (सन्ध्याओं) में अरुणाचलेशजीको पूजै ॥ ४२ ॥ और शास्त्रके अनुकूल रवि-
वार व सोमवार को अरुणाचलेशजी को पूजै और दीक्षा, यज्ञोपवीत, विवाह व पुत्रजन्मादिक उत्सवों में ॥ ४३ ॥ भक्तिमान् पुरुष, अरुणाचलेशजी की विशेष पूजा
करै और अपने जन्म के नक्षत्र में, संपत्ति में, विपत्ति में व भयों में ॥ ४४ ॥ और गृहप्रवेश व यात्रा में अरुणाचलेश्वरजी को पूजना चाहिये और पराई सेनाके आने
पर तथा बन्धन व नवीन ऐश्वर्य में ॥ ४५ ॥ और शत्रुवों के सामने प्राप्त होनेपर अरुणाचलेशजी का पूजन करै और अरुणाचलेशजी को स्मरण करै व यदि समीप

योऽर्चयेच्छोणाद्रीशं यथागमात् ॥ दीक्षोपनयनोद्वाहपुत्रजन्मादिकेष्वपि ॥ ४३ ॥ विशेषपूजांकुर्वीत शोणनाथस्य
भक्तिमान् ॥ अपिस्वजन्मनक्षत्रे संपत्स्वापत्सुभीतिषु ॥ ४४ ॥ प्रवेशनिर्गमनयोश्चार्चनीयोऽरुणेश्वरः ॥ परचक्राग
मेचैव बन्धनेनववैभवे ॥ ४५ ॥ अरुणेशार्चनंकुर्यादभियातेषुचद्विषाम् ॥ स्मरेच्चाप्यरुणाद्रीशं पश्येत्पर्यन्तगोय
दि ॥ ४६ ॥ स्थितश्चेदिहक्षेत्रेपि त्रिकालम्पूजयेच्छिवम् ॥ किमन्यद्बहुनोक्तेनह्युद्धृत्यभुजमुच्यते ॥ ४७ ॥ अरुणात्क्षे
त्रतोनान्यद्दलंस्वर्गापवर्गयोः ॥ स्मरणेनमनःश्रोत्रे श्रवणाद्दर्शनाद्दृशौ ॥ ४८ ॥ जिह्वाङ्ककीर्तनाच्छोणक्षेत्रंसद्यःपुना
त्यलम् ॥ अरुणेस्मिन्महाक्षेत्रे देहिभिर्लब्धजन्मनि ॥ ४९ ॥ जीवद्भिर्लभ्यतेभोगो मोक्षश्चोन्मुक्तजीवितैः ॥ ५० ॥ अ
न्यत्रमुक्तदेहानामप्यत्रश्राद्धकर्मणा ॥ अपिपापात्मनांपुंसामपवर्गोभविष्यति ॥ ५१ ॥ अयोध्यांमथुरांमायां का

में स्थित होकर देखै ॥ ४६ ॥ व यदि इस क्षेत्र में स्थित होकर त्रिकाल सदाशिव जी को पूजै तो अन्य बहुत कहने से क्या है भुजाको उठाकर यह कहा जाता
है ॥ ४७ ॥ कि स्वर्ग व मोक्षके सिवाय अन्यक्षेत्र अरुणक्षेत्र से उत्तम नहींहै क्योंकि स्मरण से मन व श्रवण से कानोंको और दर्शन से नेत्रों को ॥ ४८ ॥ और कीर्तन
करने से जिह्वा को अरुणक्षेत्र शीघ्रही बहुत पवित्र करता है इस अरुणमहाक्षेत्र में पाये हुये जन्म में जीते हुये प्राणियों को सुख मिलताहै और जीव को छोड़े हुये
मनुष्यों को मुक्ति मिलती है ॥ ४९ ॥ ५० ॥ और अन्यत्र छोड़े हुये शरीरवाले पापात्माजनोंको भी यहां श्राद्ध कर्म से मोक्ष होगा ॥ ५१ ॥ अयोध्या, मथुरा, माया, काशी,

कांची, उज्जैनी व द्वारकापुरीको उल्लंघनकर याने इनसे अधिक होकर अरुणक्षेत्र वर्तमानहै॥ ५२॥ ऐसा कहते हुये शिलाद के पुत्र नन्दिकेश्वरजीसे फिर भी मृकण्डु जीके पुत्र मार्कण्डेय जी बोले कि हे पूजनीयवंशवाले नन्दिकेश्वर! इस माहात्म्यको मैं भी पूंछताहूं मुझसे कहिये॥ ५३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽरुणाचलखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचितायाभाषाटीकायाविंशोऽध्यायः ॥ २० ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । ब्रह्मा अरु श्रीविष्णु जिमि दोऊ भये सगर्व । इकइसवें अध्यायमें कह्यो चरित सोइ सर्व ॥ नन्दिकेश्वरजी बोले कि हे मार्कंडेयजी! अरुणाचलके माहात्य

शींकाञ्चीमवन्तिकाम् ॥ द्वारकांचारुणक्षेत्रमतिक्रम्यहिवर्त्तते ॥ ५२ ॥ इत्युक्तवन्तञ्चशिलादपुत्रंमृकण्डुसूनुः पुनरप्युवाच ॥ माहात्म्यमेतन्महनीयकीर्तेर्भूयोपिपृच्छामिवदस्वमह्यम् ॥ ५३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽरुणाचलमाहात्म्ये विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

नन्दिकेश्वरउवाच ॥ अरुणाचलमाहात्म्यं विस्तरात्परिपृच्छता ॥ मार्कण्डेयत्वयामन्ये मयिन्यस्तोमहान्भरः ॥ १ ॥ स्थानेकुतूहलात्क्षिप्तं मनस्तेचमहामते ॥ यःशोणाद्रीशचरितं नवेत्तिसनरःपशुः ॥ २ ॥ कथंचशक्यतेवक्तुं मनुजैरपिकात्स्न्यतः ॥ शोणाचलजुषःशम्भोर्माहात्म्यमहिमोदयम् ॥३॥ कथंवाश्रोतुमप्येतदाश्चर्यंशक्यतेनरैः॥अशेषञ्चावधार्यन्तु प्रज्ञावत्प्रवरैरपि ॥४॥ इदानींस्मरतश्चित्ते चारित्रंचन्द्रमौलिनः ॥ परामृतानुभूत्यैव सत्यंतृप्यतिमेमनः ॥ ५॥ अद्भुतंशिवचारित्रं मार्कण्डेयमनोहरम् ॥ समवर्णयितुंकृत्स्नं नैवशक्नोतिवैमुखम् ॥६॥ तथाप्येषप्रवक्ष्येह

को विस्तारमें पूंछते हुये तुमने मेरे ऊपर बड़ाभार धरादिया मैं यह मानताहूं ॥ १ ॥ हे महामते ! तुम्हारा मन कौतुकसे आक्षिप्तहै यह योग्य है क्योंकि जो अरुणाद्रीशजी के चरित्र को नहीं जानताहै वह मनुष्य पशुहै ॥ २ ॥ और अरुणाचलसेवी शिवजी के माहात्म्य की महिमा का ऐश्वर्य सम्पूर्णता से मनुष्योंसे भी कैसे कहा जासक्ता है ॥३॥ और इस आश्चर्यमय चरित्र को मनुष्य कैसे सुन सक्ते हैं परन्तु श्रेष्ठ बुद्धिमानों से सब चरित्र सुनने योग्यहै ॥ ४ ॥ इससमय चन्द्रभालजीके चरित्र को चित्तमें स्मरण करते हुये मेरा मन सत्यही उत्तम अमृतके अनुभोगसे तृप्तहोताहै ॥ ५ ॥ हे मार्कंडेयजी ! अद्भुत व मनोहर शिवजीके समस्त चरित्र को वर्णन

करने के लिये मेरा मुख समर्थ नहीं है॥ ६॥ तौ भी बुद्धि के अनुसार यह मैं अंशांश याने कुछ भाग से कहूंगा। हे मुने! अरुणाचलेश के पुण्यदायक माहात्म्य को सुनिये॥ ७॥ पुरातन समय देवकल्पके आदि में भेदरहित सदाशिवदेवजी अपनी इच्छा से फिर भी समस्त संसार को उत्पन्न कियाहै॥ ८॥ और पैदा हुये उस संसार को सदैव रचने व पालने के लिये इन महादेवजी ने ब्रह्मा व विष्णुजी को बनायाहै॥ ९॥ त्रिलोचनदेवजी ने दाहिने अंग से ब्रह्माजी को बनाया व बायें अंग से विष्णुजी को रचा॥ १०॥ और रजोगुणसे ब्रह्माको व सत्त्वगुण से विष्णुको युक्तकिया और देवदेव सदाशिवजी से नियुक्त किये हुये उन दोनों ब्रह्मा व विष्णुजी

मंशांशेनयथामतिः॥ पुण्यंशोणाद्रिनाथस्य माहात्म्यंश्रूयतांमुने॥ ७॥ पुराहदेवकल्पादौ निर्विकल्पोमहेश्वरः॥ स्वेच्छयासकलंविश्वं पुनरप्युदभावयत॥ ८॥ उद्भावितञ्चतद्विश्वं स्रष्टुंपातुञ्चसर्वदा॥ विनिर्ममेचदेवौसब्रह्मविष्णूमहेश्वरः॥ ९॥ असृजद्दक्षिणाङ्गेन त्र्यम्बकःपरमेष्ठिनम्॥ विष्टरश्रवसन्देवो वामाङ्गेनचसृष्टवान्॥ १०॥ ब्रह्माणं रजसाविष्णुं सत्त्वेनसमयूयुजत॥ नियुक्तौदेवदेवेन तौविरञ्च्यच्युतावुभौ॥ ११॥ ईशात्तेसर्वजगतां सृष्टिरक्षाविधानयोः॥ मनसैवमरीच्याद्याः सृष्टाथब्रह्मणादश॥ १२॥ दक्षञ्चदक्षिणाङ्गुष्ठात्ततोनिर्मितवान्विधिः॥ मुखेनब्राह्मणान्दोर्भ्यां क्षत्रियानूरुतोविशः॥ १३॥ शूद्रांश्चनिर्ममेपद्भ्यांस्वयंचकमलासनः॥ मरीचितनयाज्जाताः कश्यपात्सुरासुराः॥ १४॥ मरुत्फणीशयक्षाश्च गन्धर्वाप्सरसस्तथा॥ मनुश्चयस्यसंजातो मानवोयंप्रवर्तते॥ १५॥ नानाजातित्वमापाद्य नानाकर्मप्रवर्त्तकम्॥ अत्रेश्चसमभूदार्षं क्षात्रञ्चविविधंकुलम्॥ १६॥ पुलस्त्यपुलहाभ्याञ्च जज्ञि

से॥ ११॥ सब लोकोंकी सृष्टि व रक्षा करनेमें समर्थ हुये इसके अनन्तर ब्रह्माजीने मरीचि इत्यादिक दशऋषियोंको मनहींसे उत्पन्न कियाहै॥ १२॥ तदनन्तर ब्रह्माने दाहिने अँगूठे से दक्षजी को उत्पन्नकिया और मुखसे ब्राह्मणों को भुजाओंसे क्षत्रियों तथा जंघों से वैश्यों को पैदा किया॥ १३॥ और आपही ब्रह्माजीने शूद्रों को चरणों से उत्पन्नकिया है और मरीचि के पुत्र कश्यपजीसे देवता व दैत्य उत्पन्नहुये हैं॥ १४॥ और पवन, नाग, यक्ष, गंधर्व, अप्सरा और वैसेही मनुजी उत्पन्न हुये जिनसे कि पैदा हुआ यह मनुजवंश वर्तमानहै॥ १५॥ और अनेक भांति के कर्मों की प्रवृत्ति करनेवाले अनेक प्रकार की जातियों को उत्पन्न कर अत्रिजी के ऋषिवंश

व अनेक प्रकारका क्षत्रिय वंश पैदा हुआ है ॥ १६ ॥ और पुलस्त्य व पुलहजीसे यक्ष व राक्षस उत्पन्न हुये हैं और अंगिरामुनिके उतथ्य व बृहस्पति आदिक महर्षि उत्पन्न हुयेहैं ॥ १७ ॥ और भृगुके अग्नि हुये व च्यवन आदिक ऋषि हुये व वसिष्ठादिके ऋषियों से अन्य महर्षि उत्पन्न हुये ॥ १८ ॥ कि जिनके पुत्रों व पौत्रोंसे यह सब संसार पूर्ण है इसप्रकार ब्रह्माजीने अपने पुत्रोंसे इस संसारको पूर्ण कियाहै ॥ १९ ॥ और समय से व ऐश्वर्य से भी महादेव को भूलगये और भृगुकी कन्या लक्ष्मीजी को व्याहकर विष्णुजीने भी ॥ २० ॥ पृथ्वीमें मत्स्यादि रूप होकर इसी प्रकार सदाशिवजीको स्मरण न किया ॥ २१ ॥ स्वाधीनमें प्राप्त सृष्टि व पालनके कारण दोनो

रेयक्षराक्षसाः ॥ उतथ्यगीष्पतिमुखा जज्ञिरेङ्गिरसोमुनेः ॥ १७ ॥ भृगोरग्निःसमुदभूच्च्यवनाद्यास्तथर्षयः ॥ वसिष्ठप्रमुखेभ्यश्च बभूवुश्चमहर्षयः ॥ १८ ॥ यत्पुत्रपौत्रैर्भुवनमिदमापूर्यतेखिलम् ॥ एवंब्रह्मात्मजैःस्वीयैरिदमापूरयज्जगत् ॥१९॥ कालेनवैभवेनापि विसस्मारमहेश्वरम् ॥ अच्युतोपिभृगोःपुत्रीमुद्वाह्यकमलालयाम् ॥ २० ॥ मत्स्यादिरूपोजगतिचैवन्नास्मरदीश्वरम् ॥ २१ ॥ सृष्टिस्थितिभ्यांद्रुहिणाब्जनाभौ स्वाधीनतांनूनमुपागताभ्याम् ॥ उभौचगर्वंदधतुर्न्नकस्य मदोधिकारेणभवेन्नरस्य ॥ २२ ॥ इतिश्रीस्कन्दपुराणेऽरुणाचलमाहात्म्यएकविंशोऽध्यायः२१ ॥

नन्दिकेश्वर उवाच ॥ अहमेवप्रभुरिति प्ररूढाधिकगर्वतः ॥ विरञ्च्यच्युतयोरासीद्विवादोमोहसम्भवः ॥ १ ॥ रजोविकाराभ्यधिको ब्रह्मानीलइवाबभौ ॥ विश्वसृष्टिकरोविष्णुं विरञ्चोबकगर्हत ॥ २ ॥ कथंत्वमधिकश्चासि विष्णो

ब्रह्मा व विष्णुजी ने अहंकार को धारण किया क्योंकि अधिकारसे किस मनुष्यके अहंकार नहीं होताहै याने सबके होजाता है ॥ २२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽरुणाचलखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायामेकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥

दो० । जिमि ब्रह्मा अरु विष्णु दोउ कीन्हों बहुत विवाद । बाइसवें अध्याय में अहै सोइ संवाद ॥ नन्दिकेश्वरजी बोले कि उपजेहुये अधिक अहंकार के कारण मैंही प्रभुहूं इसप्रकार ब्रह्मा व विष्णुजीका अज्ञानसे उत्पन्न विवाद (बहस) हुआ ॥ १ ॥ रजोगुणके विकार से अधिक ब्रह्माजी नीले से होगये और संसारकी सृष्टि

करनेवाले ब्रह्माने विष्णुजी की बड़ी निन्दा किया ॥ २ ॥ हे विष्णो ! लोकों के पितामह मुझ पितासे तुम कैसे अधिक हो क्या ऐसे मोहित हुयेहो ॥ ३ ॥ तुम्हीं
ने मधुकैटभ दैत्यों को माराहै व उनको मारकर मैं दैत्यारिहूं यह मानकर हे केशवजी ! गर्व धारण करतेहो ॥ ४ ॥ नित्य तुम्हीं को रचते हुये मुझ रचनेवाले के हाथ
आज भी परिश्रम से उत्पन्न पीड़ाको नहीं छोड़तेहैं ॥ ५ ॥ मेरे परिश्रमके जलसे उपजे हुये समुद्र में यदि बरगद न पैदा होता तो डूबते हुये तुम्हारा कहांसे अव-
लंबन होता ॥ ६ ॥ और महासमुद्र में मधु नामक दैत्य पैदा हुआ है व उसी में कोई भी सर्प था तुम उसके आश्रय हुये और तुम्हारे ऊपर कमल उत्पन्न हुआ

जनयितुर्मम ॥ पितामहस्यलोकानां किमेवमसिमोहितः ॥ ३ ॥ त्वत्तएवहतौदैत्यौनिहत्यमधुकैटभौ ॥ दैत्यारिरिति
मत्वाच.गर्ववहसिकेशव ॥ ४ ॥ त्वामेवसृजतोनित्यं बहुधाममवेधसः ॥ अद्याप्यायासजांपीडां नपरित्यजतःकरौ॥५॥
ममश्रमाम्भसोद्भूते महाम्भोधौनिमज्जतः ॥ नैयग्रोधोनचोत्पन्नःकुतस्तेस्त्यवलम्बनम् ॥ ६ ॥ मधुर्जज्ञेमहाम्भोधौ त
त्कोपिचपन्नगः ॥ तदाश्रयस्त्वमूर्ध्वन्ते पद्मतच्चासनंमम ॥ ७॥ कुतस्तमोमयेब्रूहित्वयिमत्तोगुणोदयाः ॥ सर्वेत्वंचैवप्र
कृतिनिद्राजडिमनिर्भरः ॥ ८ ॥ जलाशयेप्रस्वपता दैत्यभीत्याजनार्दन ॥ कथंत्वयारक्षितासौ मदधीनाजगत्त्र
यी ॥ ९ ॥ चतुर्भ्योममवक्त्रेभ्यो वेदाःसमुदयंगताः ॥ चैतन्यरूपिणीशक्तिःकलत्रंमेसरस्वती ॥ १० ॥ मयाहिसृज्यतेवि
श्वमिदंस्थावरजङ्गमम् ॥ रक्ष्यतेचतदिन्द्राद्यैर्मामकैःपुत्रपौत्रकैः ॥ ११ ॥ ततःकथयवैकुण्ठ मान्नियोज्येषुकश्चन ॥
जगतामीश्वरान्मत्तः कथंवाप्यतिरिच्यते ॥ १२ ॥ इत्थंसरोषसंरम्भे विधौपरुषभाषिणि ॥ नारायणोपिसासूयं स्मि

और वह मेरा आसन है ॥ ७ ॥ यह कहिये कि तमोमय तुममें मुझसे अधिक सबगुणों का ऐश्वर्य कहां से है और तुम मायासे निद्रा की जड़ता से पूर्ण हो ॥ ८ ॥
हे जनार्दनजी ! दैत्यों के डरसे जलमें सोते हुये तुमसे यह मेरे वशमें प्राप्त त्रिलोक कैसे रक्षा किया जाता है ॥ ९ ॥ मेरे चारों मुखों से वेद उदयको प्राप्त हुये हैं याने
उत्पन्न हुयेहैं और चैतन्यरूपिणी शक्ति सरस्वतीजी मेरीस्त्री हैं ॥ १० ॥ इस चराचर संसार को मैं रचताहूं और उसको इन्द्रादिक मेरे पुत्र व पौत्र रक्षा करतेहैं ॥ ११ ॥
इस लिये हे विष्णुजी ! कहिये कि लोकोंके मध्यमें मुझसे नियोग (आज्ञा) करनेयोग्य पुरुषोंमें कैसे कोई पुरुष मुझ ईश्वरसे अधिक है ॥ १२ ॥ इस प्रकार क्रोधके

वेग समेत ब्रह्माजीने जब कठोर वचन कहा तब विष्णुजीने भी मुसकराकर ईर्षासमेत उनसे ऐसा वचन कहा ॥ १३ ॥ कि हे ब्रह्माजी ! क्रोध को छोड़ दीजिये वृथा बकते हो तुम मेरी नाभि (तोंदी) के कमलसे पैदा हुये हो यह निश्चय कीजिये ॥ १४ ॥ मैं योगनिद्राको छोड़कर यदि मधुकैटभ दैत्यों को न मारता तो उनसे तुम नाशहोजाते ॥ १५ ॥ सोमक इत्यादिक दैत्यों को मारने के लिये अपनी इच्छा से धारण किये हुये मत्स्यादि रूपवाले मुझसे अन्य कौन सृष्टिका कारण है ॥ १६ ॥ रजोगुणसे गुप्त नेत्रोंवाले पुरुष कुछ भी नहीं देखते हैं इससे रजोमय आपसे क्या देखने योग्यहै ॥ १७ ॥ मुझ रक्षा करनेवालेकी कमलवासिनी लक्ष्मीजी

त्वैवन्तमभाषत ॥ १३ ॥ विरञ्चेमुञ्चसंरम्भं वृथाखलुविकत्थसे ॥ नाभीसरोजसंजातो ममत्वमवधारय ॥ १४ ॥ योगनिद्रांमयोन्मुच्य पुराहिमधुकैटभौ ॥ नचेदुन्मथितौताभ्यांतथैवस्याःप्रणाशितः ॥ १५ ॥ सोमकप्रमुखान्दैत्यान् हन्तुमात्मेच्छयामम ॥ धृतमत्स्यादिरूपस्य कोवान्यःसृष्टिकारणम् ॥ १६ ॥ नकिञ्चिदपिपश्यन्ति रजसागूढदृष्टयः ॥ रजोमयेनभवता किन्नुरूपयितुंक्षमम् ॥ १७ ॥ अविनोभाविनीशक्तिर्ननुमेपद्मवासिनी ॥ यस्याःकटाक्षमात्रेण जगत्रितयमेधते ॥ १८ ॥ भूतानामन्तकालोहमात्मनोप्यहमेवहि ॥ मयाविरहितंकिञ्चित्त्रिलोकेषुनविद्यते ॥ १९ ॥ आदित्यावसवोरुद्रा दिक्पालामनवोप्यहम् ॥ भूर्भुवःस्वस्त्रयीमेनांमदधीनांविचिन्तय ॥ २० ॥ ममैवविनियोगेन सृष्टिशक्तिःस्वयंस्थिता ॥ तन्मेत्रैलोक्यनाथस्य किन्त्वंज्येष्ठःसमोथवा ॥ २१ ॥ एवंमोहान्धमनसोरन्योन्यंप्रतिगर्जतोः ॥ युध्यतोश्चससमयः संवर्त्तसदृशस्तयोः ॥ २२ ॥ उदयास्तमयौस्यातां नतदाचन्द्रसूर्ययोः ॥ नक्षत्राणिचताराश्च ग्रहा

भाविनी (उत्पन्न करनेवाली) शक्ति है कि जिस के कटाक्षहीसे त्रिलोक वृद्धिको प्राप्त होता है ॥ १८ ॥ प्राणियों का व अपना भी मैंही अन्तकाल हूं मुझसे रहित त्रिलोक में कुछ नहीं विद्यमान है ॥ १९ ॥ आदित्य, वसु, रुद्र, दिक्पाल व मनु लोग और मैं भी व भूलोक,भुवर्लोक व स्वर्गलोक इनतीनोंको मेरे अधीनजानिये ॥ २० ॥ और मेरीही आज्ञासे सृष्टि की शक्ति आपही स्थित है इसलिये त्रिलोक के स्वामी मुझसे तुम क्या बड़ेहो या समान हो ॥ २१ ॥ इस प्रकार मोहसे अन्धमनवाले वे ब्रह्मा व विष्णु जब आपस में गरजने तथा युद्ध करने लगे तब वह समय कल्पके समान होगया ॥ २२ ॥ उस समय चन्द्रमा व सूर्य का उदय व अस्त नहीं हुआ

और नक्षत्र, तारा व ग्रह क्षीणताको प्राप्तहुये ॥ २३ ॥ और उस समय पवन नहीं चले व अग्नियां नहीं जलतीं भईं और आकाश, पृथ्वी व दिशायें न प्रकाशित हुईं ॥ २४ ॥ व सब समुद्र क्षोभितहुये और पर्वत कांपतेभये तथा ओषधियां सूखगईं व प्राणी विकलहोगये ॥ २५ ॥ और पाख, महीना, ऋतु व वर्ष आदिका नियम जातारहा व दिनरात्रि की व्यवस्थायें नाश को प्राप्तहुईं ॥ २६ ॥ उस समय इन्द्रादिकलोकपालों ने व मरीचि आदिक सब महर्षियों ने असमयसे प्राप्त कल्पान्त को माना ॥ २७ ॥ इसप्रकार महाक्षोभ होनेपर प्राणियों के दुःखित शब्दसे प्रेरित सदाशिवजीने समस्त संसारको विकल जाना ॥ २८ ॥ व मनमें कहा कि मोहकी महिमा

क्षीणतांययुः ॥ २३ ॥ नववुर्मरुतोवान जज्वलुर्जातवेदसः ॥ नान्तरिक्षंनचक्षोणी नदिशोपिचकाशिरे ॥ २४ ॥ समुद्राश्चुक्षुभुस्सर्वे पर्वताश्चचकम्पिरे ॥ ओषध्यःशोषमासेदुरखसेदुश्चजन्तवः ॥ २५ ॥ पक्षमासर्तुवर्षादिकालस्यनियमोगतः ॥ अहोरात्रव्यवस्थाश्च प्रणाशंसमुपाययुः ॥ २६ ॥ इन्द्रादयोलोकपाला मरीच्याद्यामहर्षयः ॥ सर्वेकालेन संप्राप्तं कल्पान्तंमेनिरेतदा ॥ २७ ॥ एवंजातेमहाक्षोभेभूताक्रन्दप्रचोदितः ॥ भूतनाथोजगत्सर्वं व्याकुलञ्चावबुध्यते ॥ २८ ॥ विस्मृत्यमांचाप्यन्योन्यं शंसन्तौवैजगत्प्रभू ॥ अहोमोहस्यमाहात्म्यं यदिमौद्रुहिणाच्युतौ ॥ २९ ॥ जानन्तावपिमांसम्यगभूतामेवमुद्धतौ ॥ अज्ञानतिमिरोद्भूतदूषिताशयलोचनः ॥ ३० ॥ जनःप्राप्तंस्तुतमपि प्रायोवस्तुनपश्यति ॥ कृतापराधावप्येतौ निमग्नौमोहसागरे ॥ ३१ ॥ मयानापेक्षणीयौहि लोकानांहितकाम्यया ॥ इतिनिश्चित्यमनसा मायावैवश्यमेतयोः ॥ ३२ ॥ देवोदयामहाम्भोधिर्व्यपोहयितुमैहत ॥ ३३ ॥ अहोनुकम्पातरुणेन्दुमौलेः

का यह आश्चर्य है जो कि मुझ को भूलकर आपसमें अपना को संसार के स्वामी कहतेहुये ये ब्रह्मा व विष्णुजी ॥ २९ ॥ मुझको भलीभांति जानते हुये भी इस प्रकार गर्वित होगये अज्ञानरूपी तिमिरकी उत्पत्तिसे दूषित आशयरूपी नेत्रोंवाला ॥ ३० ॥ मनुष्य प्राप्त व प्रशंसित वस्तुको भी प्रायः नहीं देखता है अपराध को किये हुये व मोहके समुद्र में डूबे ये ब्रह्मा व विष्णुजी ॥ ३१ ॥ लोकोंके हितकी कामनासे मुझसे छोड़ने योग्य नहीं हैं इसप्रकार इन दोनोंकी मायासे विवशता को मनसे निश्चय कर ॥ ३२ ॥ दया के महासमुद्र सदाशिव देवजी ने उस मायाको नाशकरनेकी इच्छा किया ॥ ३३ ॥ अहो इस त्रिलोकमें तरुण चन्द्रमालजी की दया

स्वभावहीसे सिद्धहै क्योंकि इन सदाशिवजीने बड़े मोहके समुद्र के जलसे ब्रह्मा व विष्णुजी को निकालने की इच्छा किया ॥ ३४॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽरुणाचल खण्डे देवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांद्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । तेजस्तंभ प्रमाणहित ब्रह्मा अरु भगवान । उद्यत भे तेईस महँ सोइ चरित्र बखान ॥ मार्कंडेयजीबोले कि हे विभो ! मुझसे यह कहिये कि जिसप्रकार अवि-नाशी सदाशिवजीने मोह के समुद्र में विष्णु व ब्रह्माजीके ऊपर दया किया है ॥ १ ॥ नन्दिकेश्वरजी बोले कि सब चरित्र को सुनिये मैं विस्तार से यथायोग्य

स्वभावसिद्धाभुवनत्रयेस्मिन् ॥ असौप्रमोहाम्बुधिमध्यतोयादुद्धर्तुमैच्छच्चविधातृविष्णू ॥ ३४ ॥ इतिश्रीस्कन्दपुराणेऽरुणाचलमाहात्म्येद्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥ आज्ञापयविभोमह्यं यथाशम्भुःसनातनः ॥ अनुजग्राहमोहान्धौ वैकुण्ठपरमेष्ठिनौ ॥ १ ॥ नन्दिकेश्वरउवाच ॥ शृणुष्वसर्ववक्ष्यामि विस्तरेणयथातथम् ॥ यद्देवदेवोविदधे दययाभक्तवत्सलः ॥ २ ॥ उद्भूतश्चोभयोर्मध्ये तथाविवदमानयोः ॥ ज्योतिस्तम्भत्वमभेत्य युद्धारम्भनिरोधकः ॥ ३ ॥ महतोजृम्भमाणस्यतस्यब्रह्माण्डभेदिनः ॥ अन्तरिक्षमतिश्यामं नीलक्षिप्तमिवाभवत् ॥ ४ ॥ विष्वग्विसर्पतातस्य ज्योतिर्लिङ्गस्यतेजसा ॥ दिशोविरेजिरेसद्यो दूरविस्तारिताइव ॥ ५ ॥ तीव्रैस्तस्यमहाजालैःशोषिताइवसागराः ॥ विमुक्तवन्तःसंक्षोभंस्वामेवप्रकृतिंययुः ॥ ६ ॥ व्यद्योततदिविप्राग्वच्चन्द्रस्तारागणैःसह ॥ तेजस्तम्भात्समुद्भिन्नाःस्फुलिङ्गाइवकेचन ॥ ७ ॥ तेजसातस्य

कहताहूं कि भक्तप्रिय शिवदेवजी ने दयासे जो किया है ॥ २ ॥ युद्धके प्रारंभ को रोंकनेवाले शिवजी ज्योतिस्तंभता को प्राप्त होकर उस प्रकार विवाद करते हुये उन दोनों के मध्यमें उत्पन्न हुये ॥ ३ ॥ ब्रह्माण्ड को भेदन करनेवाले उस बडे भारी बढते हुये तेजस्तंभके सकाशसे अतिश्याम आकाश नीलमें फेंका हुआसा हो गया ॥ ४ ॥ सब ओर फैलतेहुये उस ज्योतिर्लिंगके तेजमे उसीक्षण दिशायें दूरतक विस्तारितसी प्रकाशितहुईं ॥ ५ ॥ व उसकी तीक्ष्ण तेज राशियोंसे सोखे हुये समुद्र संक्षोभ को छोडकर अपनेही स्वभावको प्राप्त हुये ॥ ६ ॥ और आकाश में तारागणों समेत चन्द्रमा पहलेकी नाईं प्रकाशित हुआ और कोई नक्षत्र तेजस्तंभसे उत्पन्न

चिनगारियोंकी नाईं देख पड़तेथे ॥ ७ ॥ और उस अरुण तेजसे मानो गेरूसे रंग दियेगये हैं वैसेही भूमि की शोभाको भी नवीन पर्वत की शोभा की नाईं किया ॥ ८ ॥
और उस समय उस तेजस्तंभके प्रतिबिम्बकी अधिक शोभासे समुद्र पद्मराग पत्थरके खण्डमें रचेहुये से शोभित हुये ॥ ९ ॥ और नवीन मूंगोंके गुच्छों से लंबित से
वृक्ष होगये व नदियां बहुत फूले हुये कमलोंवालीसी होगईं ॥ १० ॥ और पृथ्वी कुंकुमसे लिपीसी होगई व दिशायें सिन्दूरसे रँगीसी होगईं और सब ओर आकाश
समस्त अरुणमय देखपड़ा ॥ ११ ॥ वैसेही ब्रह्माण्डकपाल तेजों से पूर्ण अन्तरोंवाला होगया और महादेव जी का कपाल रक्तसे पूर्णसा होगया ॥ १२ ॥ इस प्रकार

शोणेन गैरिकेणेव रञ्जिताः ॥ भूमेरपिश्रियंतद्वद्वहन्नवभूभृतः ॥ ८ ॥ समुद्रास्तत्प्रतिच्छायानिर्भरश्रियायातदा ॥ प
द्मरागशिलाखण्डे घटिताइवरेजिरे ॥ ९ ॥ प्रवालगुच्छैःप्रत्यग्रैर्लम्बिताइवपादपाः ॥ नद्यश्चनिर्भरोत्फुल्लकह्लाराइ
वरेजिरे ॥ १० ॥ महीकुङ्कुमलिप्तेव दिशःसिन्दूरिताइव ॥ सर्वारुणमयंव्योम समन्तात्प्रत्यदृश्यत ॥ ११ ॥ ब्रह्माण्ड
कर्परंतद्वन्महोभिःपूरितान्तरम् ॥ शोणेनेवचसम्पूर्णं कपालंकृत्तिवाससः ॥ १२ ॥ एवंप्रवर्धमानेन तेजस्तम्भेनतेन
च ॥ अरुणाकारताम्भेजे विश्वंस्थावरजङ्गमम् ॥ १३ ॥ तेजोलिङ्गंतदाश्चर्यं दृष्ट्वात्यक्तमिथःक्रुधौ ॥ अचिन्तयेतामेकै
कश्चतुर्मुखचतुर्भुजौ ॥ १४ ॥ किमेषवसुधांभित्त्वा शेषादीनांफणाभृताम् ॥ फणामाणिक्यमहसां राशिरुन्मुखताङ्ग
तः ॥ १५ ॥ किंवाकल्पान्तसुलभाःप्रादुर्भावाःप्रभाकराः ॥ द्वादशापिनभोमध्ये ह्यधुनायुगपदुत्थिताः ॥ १६ ॥ आहो
स्विन्मेघसंघर्षाद्विद्युतोव्योममध्यतः ॥ अन्योन्यंमिलिताःक्षिप्रं निपतन्त्यवनीतले ॥ १७ ॥ प्रत्युद्यन्नेषतेजोभीरक्त

बढ़ते हुये उस तेजस्तंभसे चराचर संसार अरुणाकारत्व को भजताभया याने संसारभर लाल होगया ॥ १३ ॥ उस आश्चर्यमय तेजस्वरूप को देखकर आपसमें क्रोध
को छोड़कर चतुरानन (ब्रह्मा) व चतुर्भुज (विष्णु) जी प्रत्येकने चिन्तनकिया ॥ १४ ॥ कि क्या यह पृथ्वीको फोड़कर शेषादिक सर्पों की फणाओं की
मणियों के तेजों की राशि सम्मुखता को प्राप्तहुई है ॥ १५ ॥ अथवा क्या जिनका कल्पान्त में प्रकट होना सुलभहै वे बारहों सूर्यभी इससमय इकबारगी आकाश से
उत्पन्न हुये हैं ॥ १६ ॥ अथवा मेघों के घिसने से बिजलियां आकाश के बीचसे आपसमें मिलकर शीघ्रही पृथ्वीतलमें गिरतीहैं ॥ १७ ॥ और उदय होती हुई यह अग्नि

प्रतिक्षण शक्ति को तेजोंसे रक्षाकरके अपनी निर्विशेषता से समस्त प्राणियोंको पीड़ित नहीं करती है ॥ १८ ॥ और जलती हुई भी यह अग्नि नाश के लिये नहीं समर्थ होतीहै व जलती हुई भी यह अग्निकी नाईं प्राणियों को नहीं जलाती है ॥ १९ ॥ इसकी शोभाके प्रतिबिम्बसे केवल संसारही नहीं लाल हुआहै किन्तु मेरा भी शरीर इसके तेज से अरुणताको प्राप्त होगया है ॥ २० ॥ यह तेजस्तंभ किससे पैदाहुआ है और किस उपाधिवाला व किस मूलवालाहै और कहांपर यह है और किस कारण बहुत प्रकाशितहै तथा किस शक्ति से प्रकाशितहै ॥ २१ ॥ चारोंओर, तिरछा, नीचे व ऊपर इसका क्या प्रमाणहै और क्या यह पाताल में गड़ाहै व यह

ञ्च्छक्तिमनुक्षणम् ॥ स्वनिर्विशेषताशेषभूतान्नाग्निःप्रबाधते ॥ १८ ॥ एषउद्दीप्यमानोपि संनाशायनकल्पते ॥ प्रोद्यन्नपिचभूतानि नानिर्दहतिवह्निवत् ॥ १९ ॥ एतस्यकान्तिसंक्रान्त्या जगदेवनकेवलम् ॥ मदीयमपिशोणत्वमग मन्महसावपुः ॥ २० ॥ कस्मादेषसमुत्पन्नः किंमूलःकिमुपाधिकः ॥ कुतस्त्यःकिमुप्रोद्दीप्तःकयाशक्त्याप्रकाशते॥२१॥ कियानवधिरेतस्य विष्वक्तिर्यगधोर्ध्वतः ॥ अवगाढश्चपाताले किंमात्रश्चाप्यसाविति ॥ २२ ॥ तदेतदखिलंज्ञातुं मनः पर्युत्सुकंमृदु ॥ इच्छत्युत्पतितुंव्योम प्रवेष्टुंचरसातलम् ॥ २३ ॥ इतिचिन्ताभराक्रान्तौ तेजस्तम्भावलोकनात् ॥ उ भावप्याकुलावास्तां वैकुण्ठपरमेष्ठिनौ ॥ २४ ॥ अथापतच्चगोविन्दः सुतरामेवगर्वितम् ॥ हिरण्यगर्भमालोक्य स्म यमानमुखाम्बुजः ॥ २५ ॥ अधुनैवावयोर्ब्रह्मन्नन्योन्योत्कर्षकाङ्क्षिणोः ॥ अयमेवपरीक्षार्थे निकषःसमुपस्थि तः ॥ २६ ॥ अमुष्यतेजसोराशेरपरिच्छेद्यसम्पदः ॥ आद्यन्तौज्ञातुमेकेन नशक्यंध्रुवमावयोः ॥ २७ ॥ यःपश्येन्मूल

कितना बड़ाहै ॥ २२ ॥ इस लिये इस सबको जानने के लिये उत्कंठित व कोमल मन आकाश को उड़ने के लिये इच्छा करता है व रसातल में पैठने की इच्छा करता है ॥ २३ ॥ इसप्रकार तेजस्तंभ के देखने से चिन्ता के भार से घिरे हुये दोनों ब्रह्मा व विष्णुजी विकलहुये ॥ २४ ॥ और ब्रह्माजी को बहुतही गर्वित देखकर मुसक्यान संयुत मुख कमलवाले विष्णुजीने ब्रह्मा से कहा ॥ २५ ॥ कि हे ब्रह्मन्! इससमय आपस में अधिकता को चाहनेवाले हमारी व तुम्हारी परीक्षा के लिये यह निकष (कसौटी) प्राप्त हुई है ॥ २६ ॥ निश्चयकर हमारे तुम्हारे मध्य में एक से अमितसंपदावाले इस तेज की राशिका आदि अन्त नहीं जाना जासक्ताहै ॥ २७ ॥ जो

पुरुष आपहीसे उपजे हुये इस तेजके मूल व ऊपर को देखै यहां पर लोकों के स्वामी हम तुम दोनों के मध्य में वही अधिकहै॥२८॥ इस प्रकार निश्चय किये आशय
वाले उन दोनों नेभी उस बड़े भारी तेज के मूल व अग्रभाग को भी देखने के लिये आपस में ईर्षासे उद्यमकिया॥ २९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेअरुणाचलखण्डेदेवीदयालु
मिश्रविरचितायांभाषाटीकायांत्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥
दो० । तेजस्तंभ अनादि लखि भयो विकल वाराह । चौबिसवें अध्याय में कह्यो सो सहित उछाह ॥ नन्दिकेश्वरजी बोले कि इसके अनन्तर हंस स्वरूपवाले ब्रह्मा

मग्रंवा तेजसोस्यस्वयंभुवः ॥ सएवनावभ्यधिको जगतांनाथयोरिह ॥ २८ ॥ इत्युभावपिविनिश्चिताशयौमूलमग्रमपि
तस्यवीक्षितुम् ॥ तेजसोतिमहतोबभूवतुःस्पर्द्धयाविरचितोद्यमौमिथः॥२९॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽरुणाचलमाहात्म्ये
त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ ✻ ॥ ✻ ॥ ✻ ॥ ✻ ॥

नन्दिकेश्वरउवाच ॥ अथहंसाकृतिर्ब्रह्मापदवींलङ्घनक्षमाम् ॥ भेजेविरिञ्चिस्तस्याग्रं द्रक्ष्यामीतिकृतोद्यमः ॥ १ ॥
जग्राहविष्णुर्वाराहं विग्रहंदृढविग्रहम् ॥ विश्वम्भराविनिर्भेदक्रीडामूलमवैभवम् ॥ २ ॥ मूलंतस्यापरिज्ञाय प्रत्यभिज्ञा
तुमुत्सुकः ॥ वाराहरूपीभगवान् दंष्ट्राभ्यामभिनन्महीम् ॥ ३ ॥ विदारयन्नपोत्रेण भूतधात्रीमवाङ्मुखः ॥ महावरा
होददृशे तेजस्तम्भंखनन्नपि ॥ ४ ॥ क्रीडाक्रोडःकठोरेण कण्ठघोषेणपूरयन् ॥ पातालंबहुलोत्साहः प्रवेष्टुमुपचक्र
मे ॥ ५ ॥ विवेशयत्रयत्रासौ तत्रतत्रतथास्थितम् ॥ अवैक्षिष्टानलस्तम्भं तमेवकुहरेकिटिः ॥ ६ ॥ विदारितान्मही

जी ने उस तेजस्तंभ के अग्रभाग को देखूंगा। इस लिये उद्यमकर नांघने के योग्य आकाशमार्ग की यात्रा किया ॥ १ ॥ और विष्णुजीने पृथ्वीके तोड़ने में खेल मूल
(जड़) वाले तथा ऐश्वर्य रहित व पुष्ट शरीरवाले वाराह (सूकर) रूपको ग्रहण किया ॥ २ ॥ और उसकी जड़को न जानकर जानने के लिये उत्कंठित वाराहरूपी
भगवानने दाढ़ोंसे पृथ्वी को विदारण किया ॥ ३ ॥ और पृथ्वी को दाढ़ोंसे फाड़ते हुये नीचे मुख किये उन महा वाराहजीने खोदते हुये भी तेजस्तंभको देखा ॥ ४ ॥
व क्रीड़ा से वाराहरूपी तथा बहुत उत्साहवाले विष्णुजीने कंठके कड़े शब्द से दिशाओं को पूर्ण करते हुये पाताल में पैठने का प्रारंभ किया ॥ ५ ॥ जहां जहां ये

वाराहजी पैठे वहा वहा बिल में वैसेही स्थित उसी अग्निस्तंभ को उन्होंने देखा॥ ६ ॥और तोड़ेहुये पृथ्वी के छिद्र से सांप देख पड़े व कोई शेषादिक सर्प तेजस्तंभ के प्ररोह (जडै) सी देख पड़ते थे ॥ ७ ॥ और तेजस्तंभ के उस स्थित मूल को वाराहजी ने न देखा व विष्णुजीसे आदि कच्छप आधारता को प्राप्त हुआ ॥ ८ ॥ व पृथ्वी की जड़ में समीपही जो कि भार के धारण करने से स्थितहैं मदोंसे शिथिल बन्धनों वाले वे दिग्गज देख पड़े ॥ ६ ॥ और मधु दैत्यके मारनेवाले उन विष्णुजीने वडे भारी वाराहजी को भी देखा कि जिन की पीठपै सब पृथ्वीका मंडल धराहै ॥ १०॥ और विष्णुजी ने उस आधार शक्ति को भी देखा कि जिसकी दया से शेष व कच्छप

रन्ध्रात्प्रत्यदृश्यन्तभोगिनः ॥ प्ररोहाइवशेषाद्यास्तेजस्तम्भस्यकेचन॥ ७॥नादृश्यतेवराहेण मूलंस्तम्भस्यचस्थितम् ॥ आधारताङ्गतश्चैव ह्यच्युतेनादिकच्छपः ॥ ८ ॥ आराद्वसुन्धरामूले येधुरन्धरयास्थिताः ॥ दिक्सिन्धुराश्चदृश्यन्ते मदैश्शिथिलबन्धनाः ॥९॥ मधुद्विषाचसमहान्कमठोपिविलोकितः ॥ अखण्डमण्डलंभूमेर्यस्यपृष्ठेप्रतिष्ठितम् ॥१०॥ आधारशक्तिमपितामभ्यपश्यदधोक्षजः ॥ यदनुग्रहतःशेषकूर्माद्याअपिधूर्वहाः ॥ ११ ॥ अतलंवितलंचैव सुतलंनितलंतथा ॥ तलातलञ्चपातालंमहातलमितिक्रमात्॥१२॥ददर्शसप्तपातालानपिवारिजलोचनः ॥ तत्रत्यान्विविधाकारान् सर्वानपिसविस्मयः ॥१३ ॥ अत्यगाद्भोगवत्याख्यां पुरींवैरोचनीमपि ॥ जगाहेन्यांश्चदैत्यानामावासांश्चमनोहरान् ॥ १४ ॥ इदंदृष्टमिदंदृष्टमित्युपारूढकौतुकः ॥ मूलंमुग्धाशयस्तस्य विचिनोतिस्ममाधवः ॥ १५ ॥ अधस्तादपियातेन पयोधेस्तेनपोत्रिणा ॥ तथैवतेजस्तम्भस्य निर्विकारमवैक्षत ॥ १६ ॥ दलिताकेवलंपृथ्वी पाथोराशिर्विलो

इत्यादि कभी भारको धारण किये हैं ॥ ११ ॥ अतल, वितल, सुतल, नितल,तलातल,पाताल व महातल इस क्रमसे ॥१२॥ कमल लोचनवाले विष्णुजी ने सातों पातालों को देखा और वहां रहनेवाले अनेक भांतिके आकारवाले सब प्राणियोंको भी विस्मय समेत उन्होंने देखा ॥ १३ ॥ और भोगवती नामक वलिकी पुरीको भी विष्णुजी नॉघगये और अन्य दैत्यों के भी सुन्दर स्थानोंको मथते भये ॥ १४ ॥ और अज्ञात आशयवाले विष्णुजीने यह देखा इस प्रकार अधिक प्राप्त कौतुक वाले होकर उस तेजस्तंभकी जड़को खोज किया ॥ १५ ॥ और समुद्र से भी नीचेगयेहुये उन बाराहजी ने तेजस्तंभको वैसेही विकार रहित याने पहलेही की नाई

देखा ॥ १६ ॥ केवल पृथ्वी फाड़ डालीगई व जल की राशि चलाई गई परन्तु वाराहरूपी विष्णुजीने उस तेजस्तंभ की जड़ को न देखा ॥ १७ ॥ इस प्रकार
हज़ारों वर्षोंतक भ्रमण करने से विकल मनवाले लीलासे वाराह रूपी विष्णुजीउसके मूल को देखने के लिये समर्थ न हुये ॥ १८ ॥ इसके अनन्तर टूटे खुरोंवाला
व टूटी दाढ़ों वाला तथा थके हुये शरीर व टूटे हुये मुख के अग्रभागवाला वह वाराह बहुत परिश्रमको प्राप्त हुआ ॥ १९ ॥ थके व श्वास लेते हुये उन विष्णुजी
का वैसा बढ़ा हुआ अहंकार उसके मूल के देखने की इच्छा समेत उसी क्षण नाशहोगया ॥ २० ॥ शिथिल प्रतिज्ञावालेभी विष्णुजी लौटने के लिये उत्कंठित हुये

लिता ॥ नैवालोकिचतन्मूलं क्रोडरूपेणविष्णुना ॥ १७ ॥ इत्थंवर्षसहस्राणिभ्रान्त्यासंभ्रान्तमानसः ॥ पातालमस्ति
तन्मूलं लीलाक्रोडोविलोकितुम् ॥ १८ ॥ अथरुग्णखुरःक्षुण्णदंष्ट्रोविध्वस्तविग्रहः ॥ भग्नपोत्रःसमूदारो जगाहेबहुलं
श्रमम् ॥ १९ ॥ श्रान्तस्यश्वसतस्तस्य तादृग्दर्पोविशृङ्खलः ॥ ननाशतत्क्षणात्साकं तन्मूलावेक्षणेच्छया ॥ २० ॥ अ
निर्व्यूढप्रतिज्ञोपि प्रत्यावर्त्तितुमुत्सुकः ॥ नचक्षमेसरोजाक्षश्चलितुञ्चपदात्पदम् ॥ २१ ॥ ततोन्धचक्षुषस्तस्य पाताला
न्तरवर्त्तिनः ॥ तत्तेजएवपन्थानंपुनरप्युदभावयत् ॥ २२ ॥ कथंकथञ्चिदुत्तीर्णोप्यकूपारादुपारतः ॥ स्वेदाम्भःसागरेती
व्रे मग्नोभूच्छलसूकरः ॥ २३ ॥ रज्ज्वेवतेजस्तम्भस्य प्रभयासानुबद्धया ॥ लब्ध्वावलम्बनंकष्टं न्यवर्त्तिष्टजनार्द
नः ॥ २४ ॥ नावेत्तियन्मयामूलममुष्यमहसांनिधेः ॥ ततःस्रष्टापिनोदृष्टो शिरोभागःकथञ्चन ॥ २५ ॥ अमुष्यम
हसांराशेः प्रागभूद्यत्रसम्भवः ॥ ततोनिवृत्ययास्यामि शरणंशिवमीश्वरम् ॥ २६ ॥ सहिविश्वाधिकोदेवश्चिरंमोहा

और कमल लोचन विष्णुजी पगसे पगभर चलनेकेलिये न समर्थहुये २१ ॥ तदनन्तरपाताल के भीतर वर्तमान उन अन्धनेत्रोंवाले विष्णुजीको उसीतेजने फिर मार्ग
को प्रगट किया ॥ २२ ॥ तब किसी किसी विधि से समुद्र से ऊपर निकले और थकित वे छल से सूकररूप वाले विष्णुजी पसीना के तीव्र समुद्र में डूबगये ॥ २३ ॥
ऊपर बँधीहुई रस्सी की नाईं तेजस्तंभकी प्रभा से अवलंब (सहारा) को पाकर विष्णुजी दुःख से लौटतेभये ॥ २४ ॥ व मन में विचारने लगे कि जिसलिये इस
तेजराशि के मूल को मैंने नहीं देखा है उसी कारण ब्रह्माने भी किसी प्रकार ऊपरके भाग को न देखा होगा ॥ २५ ॥ इस तेजराशि की पहले जहांपर उत्पत्ति हुई

है वहा लौटकर मैं शिव शकरजीकी शरणमें जाऊंगा॥२६ ॥ जिसलिये मोहसे नेत्र रहित मैने ससार भर में अधिक उन शिवदेवजी को बहुत दिनों से भुला दिया
उसी कारण यह ऐसा दुष्ट फल प्राप्त हुआ ॥ २७ ॥ ऐसा निश्चयकर गर्वको छोडे हुये कमललोचन विष्णुजी उसी स्थानपर शीघ्रही लौट आये जहां कि तेजकी
अतुलना को धारण किये वह स्तभहुआथा ॥ २८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेअरुणाचलखण्डेदेवीदयालु मिश्रविरचितायाभाषाटीकायांचतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥ ॥

दो० । हंसरूप ब्रह्मा यथा देख्यो केताकिपत्र । पच्चिसने अध्याय में सोई कथाविचित्र ॥ नन्दिकेश्वरजी बोले कि तदनन्तर अवलंब रहित ब्रह्माजी तेजमय स्तंभ

दचक्षुषा ॥ यद्विस्मृतोमयातस्माद्दुर्विपाकोयमीदृशः ॥ २७ ॥ एवंविनिर्धार्यविमुक्तदर्पो निवृत्तवानाशुसरोरुहा
क्षः ॥ तमेवदेशमभवद्यत्रस्तम्भःसतेजोमिततांदधानः ॥ २८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽरुणाचलमाहात्म्येचतुर्विंशो
ऽध्यायः ॥ २४ ॥ * ॥ * ॥ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

नन्दिकेश्वरउवाच ॥ ततस्तेजोमयंस्तम्भमनुसृत्यपितामहः ॥ उत्पपातोन्मुखोवेगान्निरालम्बोनभस्तले ॥ १ ॥
द्रुमाउत्पततस्तस्य पक्षाभ्यांविनिवारिताः ॥ व्यशीर्यन्तसमुद्भूताःप्रणुन्नाइववायुभिः ॥ २ ॥ सचगोरुत्पतन्दूरं नाक्ष्णो
र्विषयतामगात्॥केवलंददृशेव्योम्निसूक्ष्मरूपेणसृष्टिकृत् ॥ ३ ॥ मायामरालोददृशे तेजस्तम्भस्यपार्श्वतः ॥ सन्ध्या
पयोधराभ्यर्णचारीवरजनीकरः ॥ ४ ॥ प्रागत्यगादुत्पतने ततःस्थानंपयोमुचाम् ॥ विमानपदवींपश्चात्तारावर्त्मततःपर
म् ॥ ५ ॥ तेजसांयानिधामानि अत्युच्चात्यूर्ध्वचारिणाम् ॥ अतिचक्रामवेगेन तान्यसौरभसाखगः ॥ ६ ॥ मरुतोमनसो

के समीप जाकर शीघ्रतासे ऊपर मुख करके वेगसे आकाशमें उड़े ॥ १ ॥ ऊपर उड़तेहुये उन हंसरूपी ब्रह्माजीके पंखों से कँपाये हुये वृक्ष निवारित होकर टूटगये मानो
पवनोंसे फेंके गये हैं ॥ २ ॥ और पृथ्वी से दूर उड़ते हुवे वे ब्रह्माजी नेत्र गोचरत्वको न प्राप्त हुये केवल आकाश में सूक्ष्म (छोटे) रूपसे देखपड़े ॥ ३ ॥ तेज
स्तंभ के समीप मायासे हंसरूपी ब्रह्माजी देख पडे जैसे कि संध्या समयके मेघोंके समीपगामी चन्द्रमा होवै ॥ ४ ॥ व पहले उडने में मेघोंके स्थानको नांघगये पश्चात्
विमानों के मार्ग को नांघ उसके उपरान्त नक्षत्रों के मार्ग को नांघगये ॥ ५ ॥ और ऊपर चलनेवाले तेजस्वियों के जो बड़े ऊचे स्थानहैं उनको ये पक्षीरूपवाले ब्रह्मा

जी वेगसे प्रसन्नता पूर्वक नांघगये ॥ ६ ॥ अति सूक्ष्म आकार वाले पवन व मनकाजो वेग है उसको उस हंसने गमनादिक से नीचे करदिया ॥ ७ ॥ श्वेत पंखोंवाले
वे हंसरूपी ब्रह्मा ज्यों ज्यों दूर उड़े त्यों त्यों वह ऊंचा तेजस्तंभ देख पड़ा ॥ ८ ॥ सातों पवन समूहों को नांघकर प्राप्त आश्चर्य वाले ब्रह्माजीने अण्डकटाह को
फोड़कर उस जलते हुये तेजस्तंभ को देखा ॥ ९ ॥और उत्कर्षको चाहतेहुये मुझको शोच न करते व मूल को देखे हुये विष्णुके आगे कैसे स्थित होना चाहिये ॥ १० ॥
विन पुष्ट प्रतिज्ञावाले जीते हुये मेरे प्राणों से क्या प्रयोजन है याने कुछनहीं इसलिये इस विषय में क्या उपाय करना चाहिये व मेरी क्या गति होगी ॥ ११ ॥

योवा जवःसूक्ष्मतराकृतेः ॥ सोभूदधःकृतस्तेन हंसेनगमनादिना ॥ ७ ॥ यथायथाचोत्पपात सहंसःसितच्छदः ॥ त
थातथासदहशे तेजस्तम्भःसमुन्नतः ॥ ८ ॥ अतीत्यमारुतस्कन्धान् सप्तसंप्राप्तविस्मयः॥ विभिद्याण्डकटाहञ्च ज्वल
न्तंतमुदैक्षत ॥ ९ ॥ कथञ्चदृष्टमूलस्य स्थातव्यंपुरतोहरेः ॥अविशोचयतःशौरे मेयाचोत्कर्षमिच्छता॥ १० ॥ अनिव्यूढ
प्रतिज्ञस्य जीवतःकिममासुभिः ॥ तदत्रौपयिकंकिंस्यात्किंकार्यंकागतिर्मम ॥ ११ ॥ अभिसंवाञ्छतोविष्णुं कस्सहा
योभविष्यति ॥ आर्जवेनचनिर्जेतुं प्रतिपादनमक्षमः॥ १२ ॥ छद्मनावातिरस्कुर्यां मनोहिमहतान्धनम् ॥ इतिसञ्चिन्त
यत्येव विरञ्चेव्याकुलात्मनि ॥ १३ ॥ आकाशेददृशेनातिदूरेकिमपिनिर्मलम् ॥ केतकीछदनंतत्रत्वस्याःकथमिहाग
मः ॥ १४ ॥ इतितस्मिंस्तुसन्देहे नेदीयस्तांतदागतः ॥ १५ ॥ अबोधिकेतकीबर्हमितिराजीवजन्मना ॥ तस्याप्यत्य

और विष्णुजी के सामने जाते हुये मेरा कौन सहायक होगा व कोमलता से जीतने के लिये और प्रतिपादन (सिद्धकरने) में असमर्थ मैं ॥ १२ ॥
छलसे अन्तर्द्धानकरूं याने छिपाऊं क्योंकि महात्मा पुरुषों का मनही धन होताहै इसप्रकार विकल चित्तवाले ब्रह्माजी के चिन्तवन करने पर ॥ १३ ॥ आकाश में
थोड़ेही दूर पै वहां केतकीका कोई भी निर्मल पत्र देख पड़ा तब विचार किया कि इस केतकीका यहां कैसे आगमन हुआ ॥ १४ ॥ इसप्रकार उस सन्देह के उत्पन्न
होनेपर उस समय वे समीपताको प्राप्त हुवे ॥ १५ ॥ और कमलसे उपजे हुये ब्रह्माजी ने यह जाना कि यह केतकीका पत्रहै और उसकी अत्यन्त उठतीहुई सुगन्धको,

शक्ति से सूंघकर ॥ १६ ॥ ब्रह्माने निर्मल केतकी पत्र के ग्रहण किया और उनसे ग्रहण करतेही वह चैतन्यता समेत होकर बोला ॥ १७ ॥ कि हे ब्रह्मन् ! मुझको तुम किसलिये ग्रहण करतेहो तब ब्रह्माभी उससे बोले कि सैकड़ों व हज़ारों वर्षतक इसी प्रकार आकाश में उड़कर ॥ १८ ॥ वैसेहीं बढ़तेहुये उस तेजस्तंभ को देखकर मैं श्रमको प्राप्त हुआ और उसकी उत्पत्ति को चिन्तवन करता हुआ मैं अत्यन्त नष्ट आशयवाला हुआ ॥ १९ ॥ और बिन पुष्ट प्रतिज्ञावाला मैं नीचतामें भी स्थित हुआ व इस समय भी नहीं जानागया कि यह तेजों की राशि क्याहै ॥ २० ॥ मैं इसकी परीक्षा में नष्ट बलवाला होगया और मेरे पंख मानो टूटे जातेहैं व नेत्र अन्धे

न्तमप्युद्यत्सौरभंघ्रायशक्तितः ॥ १६ ॥ हिरण्यगर्भोविमलमगृह्णात्केतकच्छदम् ॥ गृहीतमात्रन्तेनैवसचैतन्यःकिलाब्र वीत् ॥ १७ ॥ भोगृह्णासिकिमर्थन्त्वं ब्रह्माचाप्यब्रवीत्तुतम् ॥ वर्षाणांशतसाहस्रमुत्पत्यैवंविहायसा ॥ १८ ॥ तथासमेध मानन्तंदृष्ट्वाश्रममवाप्तवान् ॥ चिन्तयंश्चतदुत्पत्तिमत्यन्तविहताशयः ॥ १९ ॥ अनिर्व्यूढप्रतिज्ञावान्नीचतामपिसं श्रितः ॥ अधुनापिचनज्ञातं काराशिस्तेजसामसौ ॥ २० ॥ अहमेतत्परीक्षायां संपरिच्छिन्नपौरुषः ॥ भज्येतेइवमेपक्षा वन्धायेतेदृशाइव ॥ २१ ॥ प्रध्वंसन्तइवाङ्गानि पतामीवाहमप्यधः ॥ किंवान्यद्बहुनोक्तेन सहैवदशवायुभिः ॥ २२ ॥ मम प्राणाश्चशिथिला निर्गच्छन्तीवसाम्प्रतम् ॥ अहङ्कारमदोग्रेण व्योम्निचोत्पततोऽधुना ॥ २३ ॥ मुकुन्देनसहस्पर्धा साचशीघ्रंननाशहि ॥ औन्नत्यमयतेद्यापि तेजस्तम्भोयथापुरा ॥ २४ ॥ तदिमंतेजसोराशिन्नाहंनारायणोथवा ॥ ज्ञा तुंसमर्थोनान्येच महेन्द्रप्रमुखाःसुराः ॥ २५ ॥ इतोनिवर्तितुंशक्तिरस्तिमेतोनिवर्त्तये ॥ इतितंश्राव्यमनसा विधाताजा

से हुये जाते है ॥ २१ ॥ और अंग नीचे गिरे से पड़ते हैं व मैं भी मानों नीचे गिरता हूं अन्य बहुत कहने से क्याहै दश प्राणों समेत ॥ २२ ॥ मेरे शिथिल प्राण मानों इससमय निकलते से है और अहंकारके भयंकर मदसे इस समय आकाश में उड़तेहुये मेरी ॥ २३ ॥ विष्णु के साथ जो ईर्षा थी वह भी शीघ्रही नाश होगई व जैसा पहले था वैसेही अब भी तेजस्तंभ उन्नति (उंचाई) को प्राप्त होताहै ॥ २४ ॥ इसलिये इस तेजों की राशिको जानने के लिये मै व नारायण भी समर्थ नही है और इन्द्र आदिक देवता भी नहीं समर्थ है ॥ २५ ॥ यहा से लौटने के लिये मेरी शक्ति है इससे मैं लौटताहूं यह उसको सुनाकर मनसे उत्पन्न आश्चर्यवाले

ब्रह्माजी ॥ २६ ॥ उससे बोले कि तुम कौनहो और कहांसे तुम्हारी उत्पत्तिहै उस केतकीपत्रने इन ब्रह्माजीसे कहा ॥ २७ ॥ कि केतकीका पत्रही मैं शिवजी की आज्ञासे
चैतन्यतासंयुतहूं और तेजस्तंभरूपी इन शिवजी के मस्तक पै बहुत दिनों से टिका हूं ॥ २८ ॥ और वहां से पृथ्वीलोक में बसने की इच्छा से भलीभांति प्राप्त
हुआहूं ॥ २९ ॥ इसप्रकार केतकीके पत्रका वचन सुनकर वहां स्वस्थता पाकर कमलसे उपजे हुये ब्रह्माजी ने कहा कि हे केतकीपत्र ! तुम मुझसे तेजस्तंभके इस अग्र
भाग को कहिये ॥ ३० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽरुणाचलखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांपञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

तविस्मयः ॥ २६ ॥ प्रत्यभाषततंकस्त्वं कुतोवाप्रसवश्चते ॥ सचप्रत्यब्रवीदेतंवेधसंकेतकच्छदः ॥ २७ ॥ केतकच्छद
एवासं सचैतन्यःशिवाज्ञया ॥ तेजस्तम्भात्मनःशम्भोरस्यमूर्ध्निचिरंस्थितः ॥ २८ ॥ भूलोकेचेच्छयावस्तुं ततःसंप्रा
प्तवानहम् ॥ २९ ॥ इत्थंश्रुत्वाकेतकिबर्हवाचंलब्ध्वास्वास्थ्यंतत्रचाम्भोजजन्मा ॥ त्वंवैकीर्तयकेतकीपत्रमत्तस्तेज
स्तम्भस्याग्रमित्याबभाषे ॥ ३० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽरुणाचलमाहात्म्येपञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥ ※ ॥
नन्दिकेश्वरउवाच ॥ केतकीबर्हमध्येनं विहस्यपुनरब्रवीत ॥ अपिमूढोनकिञ्चित्त्वं वेत्सियस्माद्ब्रवीषितत ॥ १ ॥ इह
शाःपरितोलग्ना यस्मिन्ब्रह्माण्डकोटयः ॥ तस्यप्रमाणमेतावदितिकोवेदितुंक्षमः ॥ २ ॥ चतुर्युगायुतैर्यातं ततोनिप
ततोमम ॥ इदानीमपिनायातस्तन्मध्येकिलभूतले ॥ ३ ॥ इतिब्रुवाणंपत्रञ्च नमस्कृत्यसरोजभूः ॥ हित्वानिजमहंका
रमभाषतकृताञ्जलिः ॥ ४ ॥ महात्मन्सत्यमेवाभिभूतोहंकेतकच्छद ॥ ब्रह्मणाहिमयास्पर्धा विष्णुनासहनिर्मि

दो० । कह्यो केतकीपत्र जिमि मृषा वचन अज काज । छब्बिसवें अध्यायमें सोइ कथा सुखसाज ॥ नन्दिकेश्वरजी बोले कि केतकीपत्रने भी विहँसकर फिर
इन ब्रह्माजी से कहा कि तुम मूढ़ हो और कुछ नहीं जानते हो क्योंकि उस वचनको कहते हो ॥ १ ॥ जिसमें कि सब ओर ऐसे करोड़ों ब्रह्माण्ड लगे हैं उसकी
इतनी प्रमाणहै इसको जानने के लिये कौन समर्थ है ॥ २ ॥ उसपर से गिरतेहुये मुझको दश हज़ार चतुर्युगी बीतगईं परन्तु इस समय भी पृथ्वीमें उसके बीच में
नहीं आया हूं ॥ ३ ॥ ऐसा कहते हुये केतकीपत्र को प्रणामकर ब्रह्माजीने अपने अहंकार को छोड़ हाथों को जोड़कर कहा ॥ ४ ॥ कि हे महात्मन्, केतकीपत्र !

मैं सत्यही तिरस्कृत होगया क्योंकि मुझ ब्रह्माने विष्णुके साथ ईर्षा किया ॥ ५ ॥ और विष्णु में बँधी हुई ईर्षा से मैं नहीं छूटा हूं महर्षियों से मित्रता सासपदीन
(सात पदों से प्राप्त) कही जाती है ॥ ६ ॥ तुम प्रशंसित बुद्धि से दया करने के योग्य हो तेजस्तंभ के देखने के कारण हंस व वाराहरूपी मैं व विष्णुजी दोनों
आपस में अधिकता की इच्छा से मोह से अन्धे होगये इसके मूल की देखने की इच्छावाले वे किस दशा को प्राप्त हुये हैं ॥ ७ । ८ ॥ इसको मैं नहीं जानता हूं
और इसके अग्रभाग के देखने की इच्छावाले व हजारों योजन ऊपर उड़तेहुये मेरी ऐसी दशा है ॥ ६ ॥ कि प्राणोंसे वियुक्त सा होकर मैं बहुतही परिश्रम को

ता ॥ ५ ॥ स्पर्धयानविमुक्तोस्मि बद्धयागरुडध्वजे ॥ सख्यंसाप्तपदीनंहि कथ्यतेचमहर्षिभिः ॥ ६ ॥ प्रसंस्तुतधियाहि
त्वं कर्त्तुमर्हस्यनुग्रहम् ॥ अहंविष्णुश्चमोहान्धौ तेजस्तम्भस्यवीक्षणात् ॥ ७ ॥ हंसक्रोडाकृतीभूत्वा मिथःस्वोत्कर्षके
च्छया । मूलंदिदृक्षुःसदशां कीदृशींयातवानिति ॥ ८ ॥ नजानेममचास्याग्रं दिदृक्षोरीदृशीदशा ॥ ऊर्ध्वमुड्डीयमा
नस्य योजनानांसहस्रकम् ॥ ९ ॥ जातश्रमोस्मिसुतरां वियुज्यइवचासुभिः ॥ अवलम्बश्चलब्धस्त्वं मयात्रैवावसीद
ता ॥ १० ॥ तन्मेकुरुष्वमित्रस्य सफलांयाचनामिमाम् ॥ त्वयाचकरणीयावै पार्थनैषाकृताञ्जलेः ॥ ११ ॥ यदिप
श्यतिमूलंसजितोहममुनातदा ॥ यद्यनपश्यतितदाप्यस्मिसाम्यमुपेयिवान् ॥ १२ ॥ इदंद्वयमपिप्रायो ममातिहे
पणंसखे ॥ त्वंमदर्थेसहायत्वमिदानींसमुपागतः ॥ १३ ॥ अनृतानभिभाषत्वे प्रार्थितस्त्वंसुहृत्कृते ॥ गिरमेकामिमा
मग्रे चक्रपाणेरुदीरय ॥ १४ ॥ एषहंसाकृतिर्ब्रह्मा तेजस्तम्भस्वरूपिणः ॥ अत्युच्चंदृष्टवानग्रमत्रसाक्षीगतोस्म्यहं

प्राप्त हुआहूं यहीं पर दुःखित मुझको तुम अवलम्ब (सहारा) प्राप्त हुये हो ॥ १० ॥ इस लिये मुझ मित्रकी तुम इस याचना को सफल करो और हाथों को
जोड़े हुये मेरी इस प्रार्थना को तुमको करना चाहिये ॥ ११ ॥ क्योंकि यदि वे विष्णुजी मूलको देखैंगे तो उनसे मैं जीत लिया गया और यदि न देखैंगे तो भी मैं
समता को प्राप्त हूं ॥ १२ ॥ हे मित्र ! ये दोनों भी प्रायः मुझको बहुतही लज्जाकारक है मेरे लिये तुम इस समय सहायता को प्राप्त हो ॥ १३ ॥ तुम मित्र के
लिये असत्य कहने में प्रार्थना किये गये हो कि चक्रपाणि विष्णुजी के आगे इस एक वचन को कहिये ॥ १४ ॥ कि हंसस्वरूपी इन ब्रह्माजी ने तेजस्तंभस्वरूपके

बहुतही ऊंचे भाग को देखाहै इस विषय में मैं साक्षी प्राप्त हूं ॥ १५ ॥ और तेजस्तंभ को प्राप्त हुये पिताकी नाईं भलीभांति उन चन्द्रभाल शिवजी से ये ब्रह्माजी कल्पित हुये हैं ॥ १६ ॥ इस लिये मैंनेही विष्णुजीको अधिक कल्पित कियाहै ऐसा कहकर तुम मेरी बड़ी भारी सहायता को करो ॥ १७ ॥ इस प्रकार बार २ ब्रह्माजी से चतुरतापूर्वक प्रार्थना किये हुये इस केतकीपत्रने भी ब्रह्माके समस्त वचन को तेजस्तंभ के समीपसेवी विष्णुजी से वैसेही कहा ॥ १८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽरुणाचलखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांषड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

म् ॥ १५ ॥ तेनापितेजस्तम्भत्वमीयुषाचन्द्रमौलिना ॥ संभावितोयंसुतरां पित्रेवहिपितामहः ॥ १६ ॥ अतोमयैवाभ्यधिको भावितोविष्टरश्रवाः ॥ इत्युक्त्वाममसाहाय्यं सुमहत्क्रियतांत्वया ॥ १७ ॥ एवंभूयःप्रार्थितोयंविधात्रा दाक्षिण्येनकेतकीबर्हकोपि ॥ तेजस्तम्भाभ्यर्णभाजेतथैव प्राहाशेषंविष्णवेब्रह्मवाक्यम् ॥ १८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽरुणाचलमाहात्म्येषड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

नन्दिकेश्वरउवाच ॥ सोपिब्रह्माणमुद्वीक्ष्य स्वतोपिद्विगुणश्रमम् ॥ नाग्रंदृष्टमनेनेति निश्चिकायविवेकवान् ॥ १ ॥ अनुग्रहीतुंमांमुग्धं हर्तुंचास्यविधेर्मदम् ॥ देवदेवःसएवाद्यनदृष्टइत्यमन्यत ॥ २ ॥ मूलसन्दर्शनेशक्त्यातेजस्तम्भस्यमेमदः ॥ गतएवमन्येद्य ब्रह्मणोपितथैवच ॥ ३ ॥ स्तूयतेवीतगर्वत्वात्सइदानींमहेश्वरः ॥ यस्यदक्षिणवामाभ्याम

दो० । तेजस्तंभ अनादि लखि विष्णु शिवस्तुति कीन । सत्ताइस अध्याय में सोइ चरित्र नवीन ॥ नन्दिकेश्वरजी बोले कि अपनासे भी दूने परिश्रमवाले ब्रह्माको देखकर उन ज्ञानवान् विष्णुजीने भी यह निश्चय किया कि तेजस्तंभ के अग्रभागको इन्होंने नहीं देखाहै ॥ १ ॥ मुझ अज्ञानी के ऊपर दया करने के लिये व इन ब्रह्माके गर्व को हरने के लिये आज वेही देवदेव शिवजी न देख पड़े उन्होंने यह माना ॥ २ ॥ बलसे तेजस्तंभके मूल देखने में मेरा अभिमान तो नाशही होगया और वैसेही ब्रह्मा का भी अभिमान जातारहा मैं यह मानताहूं ॥ ३ ॥ गर्व नाश होने के कारण इस समय उन महादेवजी की स्तुति कीजाती है कि जिन के दाहिने व बायें

अंग से हम दोनों पैदाहुये हैं ॥ ४ ॥ अहंकार नाश होनेसे अबभी ये ब्रह्माजी झूंठे साक्षी (गवाही) को पाकर मुझही को उल्लंघन करना चाहते हैं ॥ ५ ॥ इस लिये आज मुझको सबभी दुःख के दूर करने में समर्थ उन्ही शंकरजी की शरण में प्राप्त होना चाहिये ॥ ६ ॥ क्योंकि अपराध को किये व कृतघ्न तथा गुरुद्रोही की रक्षा करनेवाला उनके सिवाय अन्य कौनहै उन्हीं सदाशिवजीकी मैं स्तुति करताहूं ॥ ७ ॥ हे पृथ्वीमयाकार ! आपकी जयहो हे जलाकार,शंभो ! आपकी जयहो हे सूर्याकार ! आपकी जयहो हे भीममयाकार ! तुम्हारी जयहो ॥ ८ ॥ हे अनलाकार ! आपकी जयहो हे पवनाकार ! जयहो हे होतामय आकारवाले ! आपकी जयहो हे आकाश-

ङ्गाभ्यान्द्वौसमुद्भवौ ॥ ४ ॥ अद्याप्यवीतगर्वत्वाल्लब्ध्वासौकूटसाक्षिणम् ॥ हिरण्यगर्भोमामेवमतिसंक्रान्तुमिच्छति ॥ ५ ॥ तदद्यसकलस्यापि दुःखस्यापनयेक्षमः ॥ सएवशरणत्वेन प्राप्तव्यःशङ्करोमया ॥ ६ ॥ यतःकृतापराधस्य कृतघ्नस्यगुरुद्रुहः ॥ तमृतेरक्षिताकोन्यस्तमेवस्तौमिशङ्करम् ॥७॥ जयपृथ्वीमयाकारजयशम्भोजलाकृते॥जयप्रभाकराकारजयभीममयाकृते ॥ ८ ॥ जयवैश्वानराकारगन्धवाहाकृतेजय ॥ जयहोतृमयाकार जयाकाशमयाकृते॥९॥ रक्षमांत्रिगुणातीत रक्षमांकालविग्रह॥ रक्षमामक्षयैश्वर्य रक्षमाङ्करुणाकर ॥ १० ॥ स्रष्टात्वंसर्वजगतां रक्षितासर्वदेहिनाम् ॥ हर्ताचसर्वभूतानां त्वांविनैवास्तिकोपरः ॥ ११ ॥ अणूनामप्यणीयांस्त्वं महांस्त्वंमहतामपि ॥ अन्तर्बहिस्त्वमेवैतज्जगदाक्रम्यवर्तसे ॥ १२ ॥ निगमास्तवनिश्वासाविश्वन्तेशिल्पवैभवम् ॥ सर्वंत्वदीयमेवास्ति ज्ञानंदेहिचमे प्रभो ॥ १३ ॥ अमरादानवादैत्याः सिद्धाविद्याधरानराः ॥ पशवःपक्षिणःशैलाः शाखिनोपित्वमेवहि ॥ १४ ॥ स्वर्ग

मयाकार ! आपकी जयहो ॥ ९ ॥ हे तीनों गुणोंसे परे शिवजी ! हमारी रक्षा कीजिये व हे कालशरीर ! मेरी रक्षा कीजिये हे अविनाशी ऐश्वर्यवाले शिवजी ! मेरी रक्षा कीजिये हे कृपाकर ! हमारी रक्षा कीजिये ॥१०॥ तुम सब लोकोंके रचनेवालेहो और सब देहधारियों के रक्षकहो और तुम्हारे विना अन्य कौन सब प्राणियों का नाशकारक है ॥ ११ ॥ सूक्ष्मोंके मध्यमें भी तुम बहुत सूक्ष्महो व बड़ोंमें भी तुम बड़े हो भीतर व बाहर इस संसार को तुम्हीं आक्रमण कर वर्तमानहो ॥ १२ ॥ वेद तुम्हारे श्वास हैं व संसार तुम्हारी कारीगरीका ऐश्वर्य है और सब तुम्हाराही है हे प्रभो ! हमको ज्ञान दीजिये ॥ १३ ॥ देवता,दानव,दैत्य, सिद्ध, विद्याधर, मनुष्य, पशु, पक्षी,

पर्वत व वृक्षभी तुम्हींहो ॥ १४ ॥ तुम्हीं स्वर्ग हो तुम्हीं मोक्षहो तुम ॐकारहो और तुम्हीं यज्ञहो तुम योगहो व तुम उत्तम शक्तिहो हे महेश्वर ! तुम क्या नहीं हो
अर्थात् सब तुम्हीं हो ॥ १५ ॥ व स्थावर तथा जंगम प्राणियों का आदि मध्य व अन्त तुम्हींहो और कालस्वरूप को प्राप्त होकर तुम समस्त संसारकी कलना
(नाश) करतेहो ॥ १६ ॥ परेसे भी परे ईश्वर, शास्ता (शिक्षक) व जो सबोंके ऊपर दया करनेवाले शिवजी हैं वे जटाधारी ये महादेवजी कैसे मेरे सामने होवेंगे ॥
१७ ॥ कि जिनको देखकर शरणमें प्राप्त मनुष्य कल्याण को प्राप्त होताहै अथवा बुद्धि के अनुसार उन संसार के रचनेवाले शिवजी की स्तुति करताहूं ॥ १८ ॥ उनको

स्त्वमपवर्गस्त्वं त्वमोङ्कारस्त्वमध्वरः ॥ त्वंयोगस्त्वंपराशक्तिः किंत्वंनहिमहेश्वर ॥ १५ ॥ त्वमादिर्मध्यमन्तश्च तस्थु
षांजग्मुषामपि ॥ कालस्वरूपतांप्राप्य कलयस्यखिलंजगत ॥ १६ ॥ परेशःपरतःशास्ता सर्वानुग्रहकःशिवः ॥ सएष
मेकथंकारं साक्षाद्भवतिधूर्जटिः ॥ १७ ॥ यंदृष्ट्वाशरणंप्राप्तो निश्श्रेयःसमवाप्नुयात ॥ अथवास्तौमितंविश्वकर्त्ता
रंचयथामति ॥ १८ ॥ तच्छुत्वैषकृपांकुर्यादवश्यंसर्वतःशुचिः ॥ इतिनिश्चिन्त्यवैकुण्ठः स्तोतुंसमुपचक्रमे ॥ १९ ॥
तमवंतेजसंस्तम्भं प्रणम्यपरमेश्वरम् ॥ आदिमध्यान्तरहितं मत्वातंजगदीश्वरम् ॥ २० ॥ तदातेनविरञ्चेन वार्यमा
णोपिसस्मितम् ॥ २१ ॥ श्रीविष्णुरुवाच ॥ जयदेवमहादेववामदेववृषध्वज ॥ कालान्तकक्रतुध्वंसिन्नीलकण्ठउमेश्व
र ॥ २२ ॥ जयशम्भोशिवेशान शर्वत्र्यम्बकधूर्जटे ॥ स्मरवैरिन्पुराराते स्थाणोभवमहेश्वर ॥ २३ ॥ जयेशखण्डपर

सुनकर सब ओर से पवित्र ये शिवजी अवश्य कृपा करेंगे ऐसा निश्चयकर विष्णुजीने स्तुति करने का प्रारंभ किया ॥ १९ ॥ उस समय उन ब्रह्माजी से मुसक्यान
समेत मना किये हुयेभी विष्णुजीने उसी तेजस्तंभ परमेश्वर को प्रणामकर व उसको आदि, मध्य तथा अन्तसे रहित संसार के स्वामी मानकर स्तुति किया ॥
२० । २१ ॥ श्रीविष्णुजी बोले कि हे वामदेव, वृषध्वज, महादेव ! आप की जयहो हे कालांतक, यज्ञध्वंसक, नीलकंठ, पार्वतीपते ! आपकी जयहो ॥ २२ ॥ हे
शंभो, शिव, ईशान ! आपकी जयहो हे शर्व, त्रिलोचन, धूर्जटे ! आपकी जयहो हे कामशत्रु, त्रिपुरारे, स्थाणो, भव, महेश्वर ! आपकी जयहो ॥ २३ ॥ हे ईश,

खण्डपरशो, शूलिन्, पशुपते, हर! आपकी जयहो हे सर्वज्ञ,भार्गव, उर्वीश, कपालिन्, नीललोहित! आपकी जयहो ॥ २४ ॥ हे गंगाधर, ईशान, पिनाकिन्,प्रमथा-
धिपते ! आपकी जयहो हे गंगाधर, व्योमकेश, गिरीश,परमेश्वर ! आपकी जयहो ॥ २५ ॥ हे भीम,मृगव्याघ्रचर्मवसनवाले,दयानिधे ! तुम्हारी जयहो हे कृशानुरेतः !
तुम सदैव कैलासमें वर्तमान रहतेहो ॥ २६ ॥ तुम्हारी आज्ञा से वायु चलती है व शेषजी पृथ्वी के भारको धारे हैं और सूर्य,चन्द्रमा ब्रह्माण्ड में प्रकाशितहैं व समुद्र
वहताहै हे शर्व,प्रभो ! तुम्हारी आज्ञासे नक्षत्र चलतेहैं ॥ २७ ॥ हम और ब्रह्मा लोकोंकी सृष्टि व पालनमें समर्थ हैं व कल्पके अन्तमें निद्रा को छोड़कर मैं पृथ्वी को

शो शूलिन्पशुपतेहर ॥ सर्वज्ञभार्गवोर्वीश कपालिन्नीललोहित ॥ २४ ॥ जयगङ्गाधरेशान पिनाकिन्प्रमथाधिप ॥ ग
ङ्गाधरव्योमकेश गिरीशपरमेश्वर ॥ २५ ॥ जयभीममृगव्याघ्रकृत्तिवासःकृपानिधे ॥ कृशानुरेतःकैलासे नैरन्तर्ये
णवर्तसे ॥ २६ ॥ त्वदाज्ञयामरुद्वाति फणीवहतिभूभरम् ॥ दीप्यतःसूर्यशशिनौ ब्रह्माण्डंस्रवतेम्बुधिः ॥ ज्योतींषिसं
चरन्त्येव शर्वत्वच्छासनात्प्रभो ॥ २७ ॥ अहंब्रह्माचजगतांसर्जनत्राणयोरलम् ॥ विहायनिद्रांकल्पान्ते पालयामि
चमेदिनीम् ॥ २८ ॥ तवाद्यन्तेनमिलिते यच्चत्वन्महिमैवसः॥अणिमादिमहासिद्धेरसाधरणवैभवम् ॥ २९ ॥ कथंत्वा
ममरैरन्यैरधिकंस्तौमिशङ्कर ॥ विभवेविस्मरामस्त्वां स्मरामःसङ्कटेपिच ॥ ३० ॥ नरोषोजातुभक्तेषु प्रसादःसर्वदैव
ते ॥ यदाविश्वसेभक्तिंत्वं यदाचप्रावृणोषिताम्॥ ३१॥ मोहबोधौतदापुंसां कल्पेतेबन्धमोक्षयोः ॥ ३२ ॥ इतिस्तुतःप्राञ्ज

पालनकरताहूं ॥ २८ ॥ जो कि तुम्हारा आदि व अन्त नहीं मिला वह आपकी महिमाही है क्योंकि आप अणिमादि महासिद्धियोंसे साधारण ऐश्वर्यवाले नहीं हो ॥
२९ ॥ हे शंकर ! अन्य देवताओं से अधिक तुम्हारी किस प्रकार स्तुति करूं हमलोग ऐश्वर्य में तुमको भूलजातेहैं और संकटमे स्मरण करतेहैं ॥ ३० ॥ कभी
भक्तो के ऊपर तुम्हारा क्रोध नहीं होताहै किन्तु सदैव प्रसन्नता रहती है जब तुम भक्तिको देते हो और जब उसको आच्छादित करलेतेहो ॥ ३१ ॥ तब अज्ञान व
ज्ञान पुरुषों के बन्धन व मोक्ष के लिये समर्थ होते हैं ॥ ३२ ॥ इस प्रकार हाथ जोड़े हुये चक्रपाणि विष्णुजी से स्तुति किये हुये दयानिधान पशुपतिजी कमलसे

उपजे हुये ब्रह्माके उपहास करनेपर प्रकट हुये ॥ ३२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽरुणाचलखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायाभाषाटीकायांसप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

दो० । ब्रह्मा अरु केतकी कहँ शाप दीन शिव देव । अट्ठाइस अध्याय में सोइ चरित सुखसेव ॥ नन्दिकेश्वरजी बोले कि तदनन्तर जैसे संध्यासमय के मेघ से चन्द्रमा निकलै वैसेही स्तंभ को तोडकर शिवजी कैलास के शिखर के समान श्वेतबैल पै चढ़े हुये देखपड़े ॥ १ ॥ जो कि जटाजूटवाले तथा बालचन्द्रमा की गति से संयुत मस्तक से उपलक्षितथे और मुण्डोंकी माला व शम्पाक (अमिलतास)की माला को धारे थे ॥ २ ॥ और विषसे काले कन्धोंवाले व प्रकाशित पाचमुखोंसे

लिनाचविष्णुनापतिःपशूनामथचक्रपाणिना ॥ कृतापहासेचसरोजसम्भवे सईश्वरःप्रादुरभूद्दयानिधिः ॥ ३२ ॥

इति श्रीस्कन्दपुराणेऽरुणाचलमाहात्म्येसप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

नन्दिकेश्वरउवाच ॥ ततःस्तम्भंविनिर्भिद्य सन्ध्याभ्रादिवचन्द्रमाः ॥ कैलासकूटधवलंवृषेन्द्रमधितस्थिवान् ॥ १ ॥ जटाजूटवताबालचन्द्रचारेणमौलिना ॥ कपालमालिकांबिभ्रन् स्रजञ्चारग्वधान्दधन् ॥ २ ॥ पञ्चभिर्वदनैर्दीप्तैः क्ष्वेडकल्माषकन्धरैः ॥ शूलंकपालंडमरुं सारङ्गंपरशुंधनुः ॥ ३ ॥ खट्वाङ्गमभयंखड्गं दोर्भिश्चर्मचधारयन् ॥ भस्मनोद्धूलिताकारःस्वावासंद्योतयञ्छिवः ॥ ४ ॥ सर्वालङ्कारसम्पन्नः सर्वदेवैरभिष्टुतः ॥ परिधानीकृतव्याघ्रचर्मताभ्यामदर्शिसः ॥ ५ ॥ रूपंदृष्ट्वासआनन्दं ननर्तनलिनेक्षणः ॥ नकिञ्चिदपिजानन्स मुमोहचसरोजभूः ॥ ६ ॥ दृशाभिनन्द्यसाध्व्यातं तदानींसमहेश्वरः ॥ अथोदतिष्ठिपत्तच्च साहङ्कारंचतुर्मुखम् ॥ ७ ॥ जगादचाधिकारितान्मदाघुवांस

उपलक्षितथे व शूल, कपाल, डमरू, बाण, फरसा, धनुष ॥ ३ ॥ खट्वांग, अभय, तलवार व ढाल को हाथोंसे धारण कियेथे और भस्मसे धूसरित आकारवाले सदाशिवजी अपने स्थान को प्रकाशित करते हुये ॥ ४ ॥ सब भूषणों से संयुत व सबदेवताओं से स्तुति कियेहुये थे और जो कि व्याघ्र चर्मको पहनेथे उन शिवजी को उन ब्रह्मा व विष्णुजीने देखा ॥ ५ ॥ आनन्दमयरूप को देखकर वे कमलनयन विष्णुजी नाचनेलगे और कुछ न जानते हुये वे ब्रह्माजी मोहित हुये ॥ ६ ॥ उस समय उन महादेवजीने उत्तम दृष्टि से उनकी देखकर इसके अनन्तर अहंकार समेत चतुराननजी को उठाया ॥ ७ ॥ व कहा कि अधिकार के गर्व से तुम दोनों

गर्वित होगये इस विषय में तुम दोनों को लज्जा न करना चाहिये क्योंकि यह अधिकारियों का क्रम है ॥ ८ ॥ मेरे ऐश्वर्यकी परीक्षाकर विष्णुजी ज्ञानवान् होगये और इन दुष्ट चित्तवाले छलात्मक ब्रह्माने नहीं जाना ॥ ९ ॥ और मैंने शिक्षा दिया परन्तु यह अहंकार से टेढ़ाईको प्राप्तहुआ फिर मैंनेही अपनी कन्या से स्नेह करने वाले ब्रह्मा को शिक्षा दिया ॥ १० ॥ अहो आश्चर्यकी बातहै कि यह तीसरा अपराध कैसे सहाजावै इस लिये इन ब्रह्मा की कहीं प्रतिष्ठा न होवै ॥ ११ ॥ और जिस लिये यह केतकीका पत्र असत्यसाक्षित्व को प्राप्तहुआहै इस कारण इसके उपरान्त कभी मेरे मस्तक पै स्थित न होवै ॥ १२ ॥ इस प्रकार इन दोनों को शाप देकर

मुद्धतौ ॥ नलज्जितव्यमत्रवामयंक्रमोधिकारिणाम् ॥ ८ ॥ परीक्ष्यवैभवंममप्रबोधवानभूद्धरिः ॥ अयंनज्ञानवानज
श्छलात्मकोदुरात्मवान् ॥ ९ ॥ अशासिषञ्चवक्रतामुपेयिवानहंकृतेः ॥ पुनःस्वपुत्रिकारतिर्मयैवशिक्षितोभवत् ॥ १० ॥
तृतीयएषमन्तुरप्यहोकथंनुसह्यते ॥ तदस्यतुप्रतिष्ठया क्वचिन्नभूयतांविधेः ॥ ११ ॥ अयंचकेतकच्छदैर्यदापकू
टसाक्षिताम् ॥ अतःपरंनजातुतन्ममैतुमूर्द्धिसंस्थितिम् ॥ १२ ॥ शप्त्वैवमेतौगिरिशः प्रीत्याविष्णुमभाषत ॥ विष्णो
माभैःप्रसन्नोस्मि भवतोभक्तिशालिनः ॥ १३ ॥ ननुत्वमङ्गान्मेजातस्सात्त्विकोसिविशेषतः ॥ माहेश्वराग्रगण्योसि
जगत्यांहियथापुरा ॥ १४ ॥ नतवातःपरंजातु भक्तिहानिर्भवेन्मयि ॥ प्रत्यहंवर्धमानासा कल्पतेचविमुक्तये ॥ १५ ॥
इत्यनुग्रहकृतंत्रिलोचनंभक्तिभाजिनिरहंक्रियेहरौ ॥ भीतिमानवनतःस्वयंविधिःस्तोतुमारभतकृप्तचन्दनम् ॥ १६ ॥
इति श्रीस्कन्दपुराणेऽरुणाचलमाहात्म्येऽष्टाविंशोध्यायः ॥ २८ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

शिवजी प्रेमसमेत विष्णुजीसे बोले कि हे विष्णुजी ! तुम मतडरो मैं भक्तिसे शोभित आपके ऊपरप्रसन्नहूं ॥ १३ ॥ तुम मेरे अंगसे उत्पन्नहो और विशेषकर सत्त्वगुणी हो और पहले की नाईं तुम पृथ्वी में शैवों में पहले गिनने योग्य हो ॥ १४ ॥ इसके उपरान्त तुम्हारी मुझ में कभी भक्तिकी हानि न होगी और प्रतिदिन बढ़ती हुई वह भक्ति मुक्तिकेलिये समर्थ होगी ॥ १५ ॥ इसप्रकार अहंकाररहित व भक्तिसेवी विष्णुजीके ऊपर दया कियेहुये त्रिलोचन तथा चन्दन लगाये शिवजीको प्रणामकर डरेहुये आपही ब्रह्माने स्तुति करनेका प्रारंभ किया ॥ १६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽरुणाचलखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायामष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

दोहा ॥ ब्रह्मा जिमि शिवदेवकी कीन्हीं स्तुतिहि विचित्र । उन्तिसवँ अध्यायमें सोई सुखद चरित्र ॥ नन्दिकेश्वरजी बोले कि हे देवदेव ! केवल भक्तिसे सुलभ वि-
आपकी दयाके तुम्हारे ऐश्वर्यको कौन जानसक्ता है ॥ १ ॥ अकर्तृक वाक्य याने वेदवचन तुम्हारे अविनाशी ऐश्वर्यको स्तुति करने के लिये नहीं समर्थहैं किन्तु वे
दूरहीसे प्रणाम करतेहैं ॥ २ ॥ क्या विष्णु व क्या हम और क्या ये इन्द्रादिक दिक्पाल हे देव ! संसारकी सृष्टि व रक्षा के तुम्हीं करनेवालेहो ॥ ३ ॥ हे पार्वतीपते !
तुम पतिहो और हमभी पशुहैं कि जिन हम लोगोंको फँसरीसे बांधने व छोड़नेके लिये तुम्हीं धृष्ट (ढीठ) हो ॥ ४ ॥ और छब्बीस तत्त्वोंसे स्वरूपवाले तुम सबओर

**नन्दिकेश्वरउवाच ॥ देवदेवतवैश्वर्यंकेनशक्यंतवेदितुम् ॥ विनाभक्त्यैकसुलभं भवदीयमनुग्रहम् ॥ १ ॥ अकर्तृ-
काणिवाक्यानिऐश्वर्यंतेनिरत्ययम् ॥ नस्तोतुमीशतेकिन्तुनमस्कुर्वन्तिदूरतः ॥ २ ॥ कोविष्णुःकोहमेतेवा दिक्पाला
वासवादयः ॥ त्वमेवदेवकर्तासि जगत्सर्जनरक्षयोः ॥ ३ ॥पतिस्त्वंपार्वतीनाथ पशवोवयमप्यमी ॥ बन्धुंपाशेनमोक्तुंवा
त्वमेवास्मान्प्रगल्भसे ॥ ४ ॥ षड्विंशतिस्वरूपस्त्वमभितश्चाभिवर्तसे ॥ कोविदःकोविनिर्णेतुंतवयाथार्थ्यमीश्वरः ॥५॥
किरातःकिलदेवत्वं सारमेयैःकिलागमैः ॥ षड्वर्गहिंस्रान्संहर्तुं करोष्याखेटकौतुकम् ॥६॥ देवदक्षाध्वरेपूर्ववीरभद्रस्त्व
दाज्ञया ॥ काङ्क्षांशिक्षांनकृतवानितिकापिविडम्बना ॥ ७ ॥ तवकालाग्निरूपस्य सर्वब्रह्माण्डदाहितः ॥ पोषणात्पुष्प
चापस्य प्रायोजिहेतिशेमुषी ॥ ८ ॥ कृतापराधःशूलेन त्वयादीर्णोजलन्धरः ॥ त्रिपुरोन्धकदैत्यश्च नाशितोभवताक्षणा
त् ॥ ९ ॥ अधारयिष्यत्कण्ठेनकालकूटंनचेद्भवान् ॥ कथञ्चाधारयिष्यामवयंसर्वेपिजीवितम् ॥ १० ॥ देवदारुवनेपूर्वं**

से वर्तमानहो कौन पण्डित तुम्हारी यथार्थताको निर्णय करनेके लिये समर्थहै ॥५॥ व हे देव ! आप किरात (बहेलिया) होकर प्रसिद्धमें शास्त्ररूपी कुत्तोंके द्वारा षड्-
वर्ग (काम, क्रोध, लोभादि) रूपी हिंसक जीवोंको नाश करने के लिये शिकारका खेल करतेहो ॥ ६ ॥ हे देव ! पहले दक्षकी यज्ञमें तुम्हारी आज्ञासे वीरभद्र ने
कौनकौनसी शिक्षाको नहीं किया यहभी कोई विडंबनाहै ॥७॥ समस्त ब्रह्माण्डको जलानेवाले कालाग्निरूप तुम्हारे पुष्पधनुष(कामदेव)के पोषणासे प्रायः बुद्धि लज्जित
होतीहै॥८॥तुमने अपराध कियेहुये जलंधरको त्रिशूलसे फाड़डाला व आपने त्रिपुर तथा अन्धक दैत्यको क्षण भरमें नाश करदिया ॥ ९ ॥ यदि आप गलेसे विषको न

धारण करते तो हम सब लोगभी कैसे प्राणको धारण करते ॥१०॥ पुरातनसमय देवदारुवनमें कंबल व कर्मठ मुनियोंको धूर्त्त वेषवाले तुम तो
कारण तुमने अनुग्रहकिया॥११॥ यदि तुम चरणसे अतिभयंकर अपस्मृति (भूल)को न आक्रमण करते तो उससे घिराहुआ यह सब संसार अन्धे
करता ॥ १२ ॥यदि अर्धनारीश्वररूप तुमसे न प्रकाशित होता तो इस चराचर संसारको रचनेके लिये मैं कैसे समर्थ होता॥ १३ ॥ हे शंभो ! आपने क्रोधसे
जीतनेवाले इन्द्रकी भुजाको स्तंभितकर दिया था वह भुजा कितनेही समयतक तुम्हारे जय खंभकी नाईं स्थितरही ॥१४॥ हे भिक्षुक ! रक्तसे अपने सुन

मुनीन्कम्बलकर्मठान् ॥ प्रक्षोभ्यधूर्तवेषस्त्वं दययान्वग्रहीस्ततः ॥ ११ ॥ अङ्घ्रिणाक्रान्तवान्नोचेदत्युग्रान्तस्मृ
तिम् ॥ तयाक्रान्तमिदंकृत्स्नमन्धकारायतेजगत् ॥ १२ ॥ अर्धनारीश्वरंरूपं त्वयाचेन्नप्रकाशितम् ॥ प्रभवामिकथंस्र
ष्टुंजगदेतच्चराचरम् ॥ १३ ॥ भवतास्तम्भितःशम्भो संरम्भाज्जम्भजिद्भुजः ॥ कियन्तमेवकालन्तेजयस्तम्भइवास्थि
तः ॥ १४ ॥ भिक्षो कपालमापूर्य रुधिरेणमनोहरम् ॥ शूलेनोत्क्षिप्यमोह्यन्ते त्वमेतदवधारय ॥ १५ ॥ नचेदशिक्षयः
सर्वशस्त्राण्यप्यनुकम्पया ॥ निर्यापयेत्कथंवैरं क्रुद्धोपिजमदग्निभूः ॥ १६ ॥ पुरात्रिपुरमीशान अवधिष्यन्नचेद्भवा
न् ॥ सएवसंहरेद्विश्वं हिरण्यकशिपोरिव ॥ १७ ॥ एकोनपद्मसाहस्रे स्वनेत्रेणकृतार्चने ॥ शूलिन्सुदर्शनंदत्त्वा दै
त्यद्विषमतोषयत् ॥ १८ ॥ स्तुत्यैवमस्यविष्णोश्च प्रार्थनेनप्रसेदिवान् ॥ सृष्टिंकर्तुधूर्जटिस्तंपुनरप्यभ्यमन्यत ॥१९॥

को भरकर व त्रिशूलसे फेंककर दैत्य मोहित कियेजाते हैं तुम यह निश्चय करो ॥ १५ ॥ यदि दयासे तुम समस्त शस्त्रों को भी न सिखाते तो क्रोधित भी जमदग्नि
जी के पुत्र परशुरामजी कैसे बैरको दूरकरते ॥ १६ ॥ हे ईशान ! पुरातन समय यदि आप त्रिपुरासुर को न मारते तो हिरण्यकशिपुकी नाईं वही संसारको संहार
करता ॥ १७ ॥ हे त्रिशूलधारी ! जब हज़ार कमलोंमें एक न्यून हुआ तो विष्णु जी से अपने नेत्र कमल के द्वारा पूजन करनेपर आपने दैत्यों के शत्रु उन विष्णु
जी को सुदर्शन चक्र देकर प्रसन्न किया ॥ १८ ॥ इन ब्रह्माकी इस प्रकार स्तुति से व विष्णुजीकी प्रार्थनासे प्रसन्नहुये सदाशिवजी ने फिर उनको सृष्टि करने के

लिये आज्ञादिया ॥ १९ ॥ और देवोंकी सभामें पूजनकी आज्ञादिया व चन्द्रमालजीने प्यारसे इनदोनोंसे भी कहा ॥२०॥ कि हे पुत्रो! ऐसा जानकर फिर तुम दोनों गर्वित न होना और मुझही गुरुको याद करतेहुये तुमदोनों सृष्टि व रक्षा में जागतेरहना ॥ २१ ॥ जिसलिये इस स्थानमें मैंने तुमदोनोंके ऊपर दयाकिया उसी कारण यह पुण्यक्षेत्र पुरुषोंके मोक्षके लिये कल्पितहोवै ॥ २२ ॥ और तीन योजनतक इस क्षेत्र मे बसतेहुये मनुष्यों को बिन दीक्षादिकके भी मेरी आज्ञासे मेरी सायुज्य मुक्तिहोवै ॥ २३ ॥ अथवा पशु पक्षियोंको व स्थावर वृक्षादिकों तथा सब प्राणियों को भी वह बुद्धि मोक्षकी होवै ॥ २४ ॥ और मनुष्यों को दर्शनही से व स्मरण से

समज्ञयासुचदेवानां पूजनंचानुशिष्टवान् ॥ उमावप्यब्रवीदेतौ वात्सल्याच्चन्द्रशेखरः ॥ २० ॥ वत्सौयुवांनजात्वेवं भूयोभवतमुद्धतौ॥गुरुंस्मरन्तौमामेवजागृतंसृष्टिरक्षयोः॥२१॥इहप्रदेशेयुवयोर्यन्मयानुग्रहःकृतः॥ पुण्यक्षेत्रमिदंपुंसां ततोमोक्षायकल्पताम् ॥ २२ ॥ योजनत्रयमात्रेणास्मिन्क्षेत्रेवसतांनृणाम् ॥ दीक्षादिकंविनाप्यस्तु मत्सायुज्यंममाज्ञया ॥ २३ ॥ यद्वातिरश्चामप्यत्र स्थावराणाञ्चदेहिनाम् ॥ सर्वेषामपिसाबुद्धिरपवर्गस्यजायताम् ॥ २४ ॥ नृणाञ्चदर्शनादेव कैवल्यंस्मरणेनवा ॥ अस्तुवेदान्तविज्ञानसंसाध्यंश्रेयसेसतः ॥ २५ ॥ संभूयतेजसांमूर्त्तिः स्थावराममशाश्वती ॥ अरुणाद्रिरितिख्याता नित्यमेवात्रवर्त्तताम् ॥ २६ ॥ युगात्ययेपिनैनन्तु मज्जयेयुर्महाब्धयः॥ नचालयेयुर्मरुतो नदहेयुश्चवह्नयः ॥ २७ ॥ ज्योतिर्मयमिदंलिङ्गं ज्योतिश्छन्नंनजातुचित ॥ क्रमन्तुनिगमेनैव खेचराणिसमन्ततः ॥ २८ ॥ यस्यानुग्रहमिच्छामि जन्तोस्तस्यात्रसम्भवः ॥ देहान्तःकल्पताम्मुक्त्यै विनोपनिषदी

कैवल्य (मोक्ष) होवै और विद्वान्की वेदान्त के ज्ञान का साधन कल्याणके लिये होवै ॥ २५ ॥ तेजसे मेरी स्थावरी (अचल) व सदैव रहनेवाली मूर्ति अरुणाचल ऐसी प्रसिद्धहोकर सदैवही यहां वर्तमान होवै ॥ २६ ॥ और युगके नाशमें भी इस अरुणाचलको महासागर न डुबावैं व पवन न चलावैं तथा अग्नियां इसको न जलावैं ॥ २७ ॥ और यह ज्योतिर्मय लिंग कभी ज्योति (प्रकाश) से आच्छादित न होवै और वेदकी गतिसे नक्षत्र सबओर से परिक्रमाकरैं ॥ २८ ॥ व जिसप्राणी

के ऊपर दयाकी इच्छा करूं उसका यहांपर देहान्तहोना बिन वेदवाणीके मुक्तिके लिये समर्थहोवै ॥ २९ ॥ व यह अरुणाचल दूरसे प्रसंगसे व समीपमें प्रदक्षिणा
से पापात्मा प्राणियों को भी कल्याणदायकहोवै ॥ ३० ॥ और यहीं पर निश्चय कर महात्मा जनों के निवास होवैंगे इसलिये इस स्थानको छोड़कर कभी न जाना
चाहिये ॥ ३१ ॥ क्योंकि अरुणाचल को अनादर कर कहां टिककर मुक्तिके लिये समर्थहोवोगे इसकारण ब्रह्मा व विष्णु तुम दोनों यहां नित्य बसो॥३२॥ऐसाकहते
हुये कामदेवविनाशक सदाशिवदेव जी को प्रणामकर दूरहुये अहंकारवाले उन ब्रह्मा व विष्णुजी ने विनय किया ॥ ३३ ॥ कि हे जगदीश्वर जी ! यह संसारकी

गिरः॥२९ ॥ एषदूरात्प्रसङ्गेन निकर्षाच्चप्रदक्षिणात् ॥ अपिपापात्मनांपुंसामस्तुनिश्रेयसप्रदः ॥ ३० ॥ अत्रैवनियतंवा
साः सम्भवन्तुमहात्मनाम् ॥ तस्मात्स्थलमिदंहित्वा नगन्तव्यंकदाचन ॥ ३१ ॥ शोणाचलमनादृत्य क्वचस्थित्वा
पिमुक्तये ॥ तस्माद्युवांविधिहरी वसतामत्रनित्यशः ॥३२॥इत्युक्तवन्तंकामारिं प्रणम्यविधिमाधवौ ॥ तौव्यज्ञापयता
न्देवं दूरीभवदहंक्रियौ ॥३३॥ एवमेवजगन्नाथ जगदाधारताङ्गतः॥आस्ताङ्गिरिरसौकिन्तु तेजोप्यस्यसुदुस्सहः॥३४॥
अतोयमेवरुद्रस्य तेजसानान्यशैलवत् ॥ तिष्ठत्वभेद्यमहिमः श्रेयसेसमहाखनिः ॥ ३५॥ विवृणोतुनिजंज्योतिर्विश्व
स्यास्यसमृद्धये ॥ प्रत्यहंकार्त्तिकेमासि कृत्तिकासुदिनात्यये ॥ ३६ ॥ शर्मदोपिनृणांदेव शोणाद्रिस्तवशासनात् ॥ म
हत्त्वादर्चितुंशक्यो नह्यभक्तस्यकस्यचित ॥ ३७ ॥ एतस्योपत्यकायान्तदद्यारभ्यास्मदर्थनात् ॥ देवेनसन्निधातव्य
मवनीलिङ्गरूपिणा ॥ ३८ ॥ तच्चारुणगिरीशेशमावामाराधयावहे ॥ अभिषेकानुलेपाद्यैरुपचारैर्यथाविधि ॥ ३९ ॥

आधारताको प्राप्त पर्वत ऐसाहीहोवै परन्तु इसका तेज असह्यहै ॥ ३४ ॥ इसकारण शिवजी के तेजसे अन्य पर्वत की नाईं साधारण न होकर यह अखण्ड महिमा
वाला पर्वत कल्यान के लिये बड़ी खानियों से संयुतहोवै ॥ ३५ ॥ और इस संसार की वृद्धिके लिये अपने तेज को छिपालेवै और प्रतिवर्ष कार्त्तिकमहीने में कृत्तिका
नक्षत्रमे दिन वीतनेपर ॥ ३६ ॥ हे देव ! तुम्हारी आज्ञा से अरुणाचल मनुष्योंको कल्याणदायकहोवै व तेजके कारण किसी अभक्त के पूजने योग्य न होवै ॥ ३७ ॥
और आजसे लगाकर हमारी प्रार्थना से इस अरुणाचल की समीपवाली भूमिमे लिंगरूपी सदाशिवजीको टिकना चाहिये ॥ ३८ ॥ और उस अरुणाचलेश लिंग

को हमदोनों अभिषेक व अनुलेपनादिक उपचारोंसे विधिपूर्वक आराधनकरैं ॥ ३९ ॥ और यहांपर मौलसिरी, आम, [illegible]
पाड़रवृक्षहोवैं ॥ ४० ॥ हे दयानिधान, देवदेवजी! आपको यहीं टिकना चाहिये क्योंकि तुम्हारे समीप आने से [illegible]
अन्यथा यहां पर चित्तकी पवित्रता कैसे होवैहै और आदि अन्तरहित आपकी भक्ति सदैवहीहोवै ॥ ४२ ॥ और [illegible]
दिशा के भागमें सरवाके आकार ऊंचा व सुन्दर शिखर होवै ॥ ४३ ॥ हे भव! इससमय अंगोंसमेत वेद, धर्मशास्त्र, पुराण व [illegible]

संवत्रकेशराश्चूताः पुन्नागानागकेशराः ॥ आरग्वधाःकुरबकामाल्लूराःपाटलाअपि ॥ ४० ॥ अ[illegible] ॥ आ
वदयानिधे ॥ यतस्त्वद्भक्तिदार्ढ्यञ्चाप्यभवत्त्वदुपासरात ॥ ४१ ॥ नान्यथाचित्तशुद्धिश्च भवे[illegible]
नाद्यन्तस्यतेभक्तिर्भविष्यतिचनित्यशः ॥ ४२ ॥ शोणाद्रेःपूर्वदिग्भागे शरावाकारउन्नतः ॥ शिखरो[illegible]
स्यहृदयङ्गमः ॥ ४३ ॥ साङ्गावेदाधर्मशास्त्रं पुराणानिशिवागमाः ॥ कृत्वाचसकलाःप्रोक्ता भवतैवभवाधुना ॥ ४४ ॥ [illegible]
यसायभक्तानां त्वयैवगुरुरूपिणा ॥ अष्टावपिपुराख्याताआगमाःशैवसंज्ञिताः ॥ ४५ ॥ तेषुकस्यप्रकारेण कुर्मो[illegible]
दुपासनाम् ॥ कदाप्यज्ञानजाम्भीतिं नाधिगच्छावशङ्कर ॥ ४६ ॥ इतितौधातृगोविन्दौ पादपद्मावलम्बिनौ ॥ ज
गादकरुणामूर्त्तिर्जगतीभृद्रुमापतिः ॥ ४७ ॥ श्रीमहादेवउवाच ॥ युक्तंयुक्तमिदंभद्रौ ममाप्येवंमनीषितम् ॥ कामिको
क्तेनमार्गेण मामर्चयितुमर्हथः ॥ ४८ ॥ मोहतोविस्मृतामन्ये भवद्भ्यांशैवसंहिता ॥ अधुनामत्प्रसादेन पुनरुद्भासतां

हैं ॥ ४४ ॥ और पुरातन समय भक्तोंके कल्याणकेलिये गुरुरूपी तुम्हींने आठों शैवनामक शास्त्रोंकोकहाहै ॥ ४५ ॥ हे शंकरजी! उनमें किसकी विधिसे तुम्हारी उपासना
करतेहुये हमदोनों कभी अज्ञान से उपजेहुये भयको न प्राप्तहोवैंगे ॥ ४६ ॥ इस प्रकार चरणकमलों का अवलम्बन करनेवाले उन ब्रह्मा व विष्णुजीसे दयाकी मूर्त्ति,
संसारपोषक पार्वती के पति शिवजी बोले ॥ ४७ ॥ श्रीमहादेवजी बोले कि हे कल्याणरूपी ब्रह्मा व विष्णुजी! यह योग्यहै योग्यहै मेरा भी ऐसीही इच्छा है तुम
दोनों कामिक शास्त्र में कहेहुये मार्ग से मुझको पूजने के योग्यहो ॥ ४८ ॥ मैं यह जानताहूं कि आप दोनोंको मोहसे शैवसंहिता भूलगई है इस समय मेरी

प्रसन्नता से वह फिर हृदय मे भासित होवै ॥ ४९ ॥ यह कहकर जब शिवदेवजी अन्तर्द्धान हुये तब वहा कोई भी अपूर्व कल्याणरूप लिंग प्रकट हुआ ॥ ५० ॥
उसको देखकर आश्चर्य समेत विष्णु व ब्रह्माजी ने बार २ प्रणामकर आनन्द समेत प्रेमसे बड़ी देरतक स्तुति किया ॥ ५१ ॥ और उन दोनोंने विश्वकर्मा व यम
से अनेक भांतिकी कारीगरी से अद्भुत अरुणाचलेशजीके स्थानको निर्माण कराया ॥५२॥ और शिवजीके स्नानके लिये समस्त तीर्थमय किसीभी अद्भुत व पवित्र
नये तड़ाग को वहीं खुदाया ॥ ५३ ॥ और बहुत दिनोंमे अरुणनामक सुन्दर नगरको बनवाया उसको पाकर उस समय सदाशिवजी ने कैलास के लिये भी इच्छा

हृदि ॥ ४९ ॥ इत्युक्त्वाश्रीशिवोदेवोयदाह्यन्तर्हितोऽभवत् ॥ तदाप्रादुरभूत्तत्र लिङ्गंकिमपिमङ्गलम् ॥ ५० ॥ तदावलोक्य
साश्चर्यौमुकुन्दकमलासनौ ॥ मुहुःप्रणम्यसानन्दं प्रेम्णातुष्टुवतुश्चिरम् ॥ ५१ ॥ तावकारयतांशोणगिरिनाथस्य
चालयम् ॥ नानाशिल्पाद्भुतंविश्वकर्मणाचयमेनच ॥५२॥ खानयामासतुस्तत्र सरःकिमपिपावनम् ॥ अभिषेकायदेव
स्य सर्वतीर्थमयंनवम् ॥ ५३ ॥ अरुणाख्यंपुरंरम्यं कल्पयामासतुश्चिरम् ॥ नैच्छत्तदाचतंलब्ध्वाकैलासायापिधूर्जटिः ॥
५४ ॥ तस्यांब्रह्मर्षयोदेवा गन्धर्वादिव्ययोषितः ॥ सिद्धाविद्याधरायक्षाः पौरत्वंसमुपाययुः ॥ ५५ ॥ तीर्थानिवापीकू
पत्वं गङ्गाद्याःसरितस्तथा ॥ नन्दनादीन्युपवनान्यभवन्निष्कुटत्वतः ॥ ५६ ॥ गोलोकश्चगोष्ठतया नैगमत्वंकिलाग
माः ॥ शैलाश्चगोपुरादित्वंसरस्त्वंस्मृतयोययुः ॥ ५७ ॥ भूतप्रेताःपिशाचाश्चवेतालाःकटपूतनाः ॥ प्रपन्नामानुषन्देहं त
स्यांकिलपृथग्जनाः ॥ ५८ ॥ देवोपिधूर्जटिस्तस्यांकौतुकीसिद्धरूपधृक् ॥ योगित्वंसमुपास्थायतत्रकौपीनचन्द्रधृ

न किया ॥५४॥ उसमें ब्रह्मर्षि,देवता,गन्धर्व व दिव्य स्त्रियां तथा सिद्ध, विद्याधर,यक्ष नगरताको प्राप्तहुये॥ ५५ ॥ और तीर्थ व गङ्गादिक नदियां बावली तथा कूपताको
प्राप्तहुई और नन्दनादिक उपवन घरके समीपवाले बगीचेहुये ॥५६॥ और गोलोक गोष्ठता (गौवोंके स्थान) को प्राप्तहुवा व शास्त्र वेदताको प्राप्तहुये और पर्वत पुरके
द्वारत्वादिको प्राप्तहुये तथा स्मृतियां तड़ागत्वको प्राप्तहुईं ॥५७॥ भूत,प्रेत, पिशाच, वेताल, कटपूतना उस पुरीमें मनुजकी देहमें प्राप्त होकर सामान्य नर हुये ॥५८॥
और उस नगरमें सदाशिवदेवजी भी सिद्धरूपधारी कौतुकी (खेल करनेवाले) हुये जोकि कौपीन व चन्द्रमाको धारण कर व योगित्व को प्राप्त होकर वहां स्थित

हुये ॥ ५९ ॥ और किसी से भी न जानेहुये सूर्यनारायण वहां सब कहीं प्रकाश करते हैं व भस्मको लगाये तथा जटाधारण किये उन ब्रह्मा व विष्णुजी ने ॥६०॥ उस समय बहुत दिनोंतक उन अरुणाचलेशजीको पूजन किया और वहां बसनेवाले सब लोगोंकी जाति व नामके अनुसार ॥ ६१ ॥ आपही आचार्यता को प्राप्त होकर दीक्षादि कर्मोंको किया और सब शास्त्रोंके रहस्यको जाननेवाले ब्रह्मा व विष्णुने क्रमसे निर्माल्यको हरकर ॥ ६२ ॥ और प्रातःकाल नहाकर व पुष्प, पत्रा-दिक तथा फलोंको लाकर तदनन्तर महादेवजी से सुनेहुये सब मन्त्रोंसे अधिक अरुणेशजी के मन्त्रको बहुतही जपनेवाले उन दोनों ने सदैव जप किया व धूप,

क ॥५९॥ नकेनचिदविज्ञातः सूर्यःसर्वत्रदीप्यति ॥ तौचकेशवलोकेशौजटिलौभस्मगुण्ठितौ ॥ ६० ॥ तदाशोणाद्रिना-थं तमर्चयामासतुश्चिरम् ॥ तत्रत्यानाञ्चसर्वेषां वर्णनामानुरूपयतः ॥ ६१ ॥ दीक्षादिकानिचक्राते स्वयमाचार्यताङ्गतौ ॥ क्रमेणहृतनिर्माल्यौ सर्वागमरहोविदौ ॥ ६२ ॥ प्रातःस्नात्वासमाहृत्य पुष्पपत्रादिकंफलम् ॥ मन्त्रञ्चारुणनाथस्य ततएवहरश्रुतम् ॥ ६३ ॥ जजल्पाकौचजपतुः सर्वमन्त्राधिकंसदा ॥ धू'प्रदीपनैवेद्यैर्गीतवादित्रनर्तनैः ॥ प्रदक्षिणनमस्कारैर्मुद्राबन्धैःस्तवैर्नवैः ॥ ६४ ॥ आसनेनचमूर्त्याच मूलेनचयथाविधि ॥ अर्चांब्रह्मषडङ्गाद्यैरर्चयामासतुः शिवम् ॥ ६५ ॥ एवंवर्षसहस्राणि षोडशारुणशङ्करम् ॥ वेधाविष्णुःसमाराध्य शिवज्ञानमवापतुः ॥ ६६ ॥ इतीदमाविस्मयारहस्यं पितुःशिलादस्यमुखात्सुपुण्यात् ॥ निवेदितञ्चाद्यतदेवतुभ्यं किमन्यदाकर्णयितुंमनीषा ॥ ६७ ॥

इति श्रीस्कन्दपुराणेऽरुणाचलमाहात्म्यएकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

* ॥ *

दीप, नैवेद्य, गीत, बाजा व नृत्य तथा प्रदक्षिणा व नमस्कारों से और मुद्राबन्धन व नवीन स्तोत्रोंसे ॥ ६३ । ६४ ॥ व आसन, मूर्ति तथा मूल व विधिपूर्वक पूजन और वेदके षडंगादिकों रो शिवजी को पूजन किया इस प्रकार सोलह हजार वर्ष तक ब्रह्मा व विष्णुजी ने अरुणशिवजी को भलीभांति आराधकर शिवजी के ज्ञानको पाया ॥ ६५ । ६६ ॥ पुरातन समय पिता शिलादजी के पवित्र मुख से मैंने जिस चरित्र को सुनाथा उसीको आज तुमसे निवेदन किया और अन्य क्या सुननेकी इच्छा है ॥ ६७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽरुणाचलखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायामेकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

॥

दो० । पारवती अरु शिव यथा कीन्ह्यो खेल अनेक । सोइ तीस अध्यायमें वर्णित चरित सुनेक ॥ इन नन्दीश्वरजी के ऐसे वचनको सुनकर मार्कण्डेयजी बोले कि सुनने योग्य चरित्रको मैंने आपके मुखसे सुनाहीहै ॥ १ ॥ तौभी मैं व मुनिलोग भी आश्चर्य से घिरे है कि यहापर पार्वती महादेवजीने किस प्रकार तप कियाहै यह कहिये ॥ २ ॥ नन्दिकेश्वरजीबोले कि हे महामते,मार्कण्डेयजी!मैने जिस प्रकार सुनाहै उसीभाति उसको भी यह मैं कहताहूं तुम सावधानता से सुनो ॥ ३ ॥ निश्चय कर तुम उसको जानते हो कि जिस प्रकार विरूपलोचन सदाशिवजी ने सतीनामक दक्षकी कन्या अपनी प्यारीको व्याहाहै ॥ ४ ॥ और जिस प्रकार दक्षप्रजापति

इतिश्रुत्वास्यवचनं मार्कण्डेयोभ्यभाषत ॥ श्रुतमेवमयादेव श्रोतव्यंभवतोमुखात् ॥ १ ॥ तथापिकौतुकेनाहमाक्रान्तोमुनयोप्यमी ॥ गौर्याकथंतपस्तप्तंमहादेव्यात्रकथ्यताम् ॥ २ ॥ नन्दिकेश्वरउवाच ॥ कथयामितदप्येष यथाधिगतमात्मना ॥ शृणुत्वमवधानेन मार्कण्डेयमहामते ॥ ३ ॥ ननुजानासितत्पूर्वंयथादाक्षायणींशिवः ॥ उपयेमेविरूपाक्षो सतीनाम्नींस्वकांप्रियाम् ॥ ४ ॥ यथाचसाक्रुधाभर्तुर्द्रुहिदक्षप्रजापतौ ॥ योगादहासीदात्मीयं वपुरित्यपितेश्रुतम् ॥ ५ ॥ तदाहराज्ञानिघ्नेन वीरभद्रेणयत्कृतम् ॥ अध्वरध्वंसनन्दक्षस्यापितेविदितम्महत् ॥ ६ ॥ अश्रौषीस्तस्यदक्षस्य गणैःशीर्षस्यखण्डनम् ॥ ब्रह्माच्युतेन्द्रमुख्यानां देवानामपिशिक्षणम् ॥ ७ ॥ दन्तानांपातनंपूष्णः पाणेश्चजातवेदसः ॥ अदितिप्रभृतीनाञ्च दिव्यस्त्रीणांपराभवम् ॥ ८ ॥ साचदेवीपुनर्जन्म लेभेहिमवतोगृहे ॥ उमेतिपार्वतीत्या

जीको पतिके द्रोही होनेपर उन सतीजीने योगसे अपने शरीर को छोडाहै इसको भी तुमने सुनाहै ॥ ५ ॥ और उस समय शिवजी की आज्ञाके अधीन वीरभद्रने जो दक्षजीकी यज्ञको विध्वंस कियाहै उस बड़ेभारी चरित्र को भी तुमने जानाहै ॥ ६ ॥ और तुमने गणोंसे उन दक्षजी के मस्तक काटने को सुनाहै और ब्रह्मा, विष्णु व इन्द्र जिनमें मुख्यहैं उन देवताओंकी शिक्षाको भी सुनाहै ॥ ७ ॥ और पूषाके दन्त गिराने को सुनाहै व अग्निके हाथ टूटने को सुनाहै व अदिति इत्यादिक दिव्य स्त्रियोंके तिरस्कार (अनादर) को सुनाहै ॥ ८ ॥ और उन देवीजी ने फिर हिमाचल के घरमें जन्म पाया है फिर उमा व पार्वती ऐसे दूसरे नामको धारण

करतीहुई ॥ ९ ॥ वनमें सेवामें तत्पर उन सतीजी की एकान्तमें रुचि कराते हुये कामदेव को महादेवजी ने कालाग्निसे जलाया है ॥ १० ॥ व किसी समयमें प्यारे गणों समेत उन शिवदेवजी को वनमें बसनेवाली पार्वतीजीने तपस्याओं से प्रसन्न कियाहै ॥ ११ ॥ इसके अनन्तर विचित्र मयूरों से घिरीहुई उन बिलास करनेवाली पार्वतीजीको ब्याहकर आनन्द से एकान्त में रमण किया ॥ १२ ॥ और वैधव्यता से दुःखित रतिसे कामदेव की प्राप्तिके लिये प्रार्थना कीहुई पर्वत की कन्या पार्वतीजी ने तपस्या में इन शिवजी के कामका उद्दीपन किया ॥ १३ ॥ और फिर माता मेना व पिता हिमाचलजी से पति समेत घरमें लाईहुई उन पार्वतीजी ने बहुत

ण्यां द्वितीयांबिभ्रतींपुनः ॥ ९ ॥ देवःस्थाणुर्वनेतांश्चपरिचर्य्यापरांरहः ॥ प्ररोचयिषुंकाममधाक्षीत्कालवह्निना ॥ १० ॥ जितेन्द्रियंचदेवन्तं कापिप्रियगणैस्सह ॥ तपोभिस्तोषयामास गौरीवननिवासिनी ॥ ११ ॥ उपयम्याथतांदेवो वृताश्चित्रशिखण्डिभिः ॥ रमयामासहोकान्ते मुदाहोवंविलासिनीम् ॥ १२ ॥ वैधव्यखिन्नयारत्या प्रार्थिताशैलनन्दिनी ॥ कामप्राप्त्यैतपस्येनं कामंप्रत्युद्दीपयत् ॥ १३ ॥ पुनश्चमेनयामात्रा पित्राचहिमभूभृता ॥ आनीताभवनंभर्त्रा साकंचिरमरंस्तसा ॥ १४ ॥ तदाशुम्भनिशुम्भाख्यौ लेभातेवधसोवरम् ॥ देवदानवमर्त्येषु मास्तुनोपुरुषान्मृतिः ॥ १५ ॥ इतितद्वचनंश्रुत्वा जातत्रासैःसुपर्वभिः ॥ अभ्यर्थितोमहादेवो रहश्चक्रधरादिभिः ॥ १६ ॥ माभैष्टभद्रंकालेन तथाप्रतिविधीयते ॥ यथानिषूदितौस्यातां तादृशौदानवाविति ॥ १७ ॥ दत्त्वाभयानमुकुन्दादीनविसृज्यान्धकसूदनः ॥ अन्तःपुरगतोरेमे देव्यासहयथापुरा ॥ १८ ॥ कदाचिच्चर्मलक्ष्येण मातुकालीननन्दिता ॥ तस्यप्रीत्यैचरयामास्वां त्वंच

दिनोंतक रमणकिया ॥ १४ ॥ उस समय शुम्भ निशुम्भ नामक दैत्योंने ब्रह्मासे वरको पायाहै कि देवता, दानव व मनुष्यों में पुरुष से मृत्यु न होवै ॥ १५ ॥ उनके ऐसे वचन को सुनकर उत्पन्न डरवाले चक्रधारी (विष्णु) आदिक देवताओं से एकान्त में प्रार्थना कियेहुये महादेवजी बोले ॥ १६ ॥ कि मतडरो तुमलोगों का कल्याणहोगा और समयमें वैसाही किया जायगा कि जिस प्रकार वैसे दानव मारे जावैंगे ॥ १७ ॥ अन्धक दैत्यके नाशक शिवजीने दियेहुये निडरवाले विष्णुआदिक देवताओं को बिदाकर रनिवास में जाकर पहलेकी नाईं रमण किया ॥ १८ ॥ किसी समय चर्मके चिह्नसे वे कालि शरीरवाली प्रशंसित न हुईं तब उन्होंने उन

शिवजी की प्रसन्नता के लिये अपनी काली त्वचा (खाल) को छोड़ दिया ॥ १९ ॥ परमेश्वरी पार्वतीजी ने जहांपर अपनी इच्छासे चर्मको फेकदिया वहांपर महाकाशी ऐसा प्रसिद्ध उत्तम क्षेत्र होगया ॥ २० ॥ और वह कौशिकी नामक शोभितहुई व तप करतीहुई विन्ध्याचलवासिनी कालीने रतिकी इच्छा करतेहुये उन शुम्भ निशुम्भ बड़ेभारी दैत्योंको माराहै ॥ २१ ॥ और गौरी देवीजीने उसी सुन्दर शिखरपै गौरता पाने के कारण पतिको प्रसन्न किया ॥ २२ ॥ और क्रमसे गर्भवती होकर पार्वतीजीने उन गणेशजी को व सेनापति षडानन स्वामिकार्त्तिकेयजीको पैदा किया ॥ २३ ॥ पहले अपराधकी पवित्रता के लिये देवीजी के गर्भसे उपजेहुये

मेवजहौनिजा ॥ १९ ॥ यत्रोत्क्षिप्तवतीचर्मस्वेच्छयापरमेश्वरी ॥ महाकाशीतिप्रख्यातंतत्राभूतक्षेत्रमुत्तमम् ॥ २० ॥ साबभौकौशिकीनाम्नी कालीविन्ध्याद्रिवासिनी ॥ तपस्यन्तीवृषस्यन्तौ तौजघानमहासुरौ ॥ २१ ॥ देवीचगौरीशिखरे तस्मिन्नेवमनोहरे ॥ तपोभिर्लब्धगौरत्वाद्भर्त्तारंसमतोषयत् ॥ २२ ॥ क्रमेणदोहदवती भूत्वाप्रासूतपार्वती ॥ जानतश्चहेरम्बं सेनान्यञ्चषडाननम् ॥ २३ ॥ प्रादुर्बभूवतुस्तौच नारायणचतुर्मुखौ ॥ पूर्वापराधशुद्ध्यर्थं देवीगर्भसमुद्भवौ ॥ २४ ॥ वर्धमानौचतौबालौ पित्रोरालोकमानयोः ॥ मग्नयोरिवहर्षाब्धौ प्रेमपङ्क्तिरभूद्दृढा ॥ २५ ॥ जातुवीणानिनादेन कदाचिच्चित्रलेखनैः ॥ विजहतुःशिवौस्वैरमेकदामण्डनैर्मिथः ॥ २६ ॥ जातुदिव्यागमालापैःकदाचिच्चित्रवस्तुभिः ॥ एकदालोकवृत्तान्तैः केषामपिविनिन्दतः ॥ २७ ॥ पुष्पावचयनैर्जातु कदाचिद्वारिवेतसैः ॥ अदीव्यतांचारुणाद्रौ लीलाकेलिभिरेकदा ॥ २८ ॥ मैनाकेनार्चितौजातुमेनयाजातुपूजितौ ॥ जात्वर्हितौहिमवतादम्पतीतौविनोदितौ ॥ २९ ॥

वे विष्णु व चतुरानन ब्रह्माजी प्रकटहुयेहैं ॥ २४ ॥ बढ़तेहुये उन बालकोंको देखतेहुये व हर्षके समुद्रमें डूबेहुयेसे माता पिताओंकी प्रेमपंक्ति पुष्टहुई ॥२५॥ पार्वती व शिवजी अपनी इच्छासे कभी वीणाके शब्दसे व कभी चित्र (तसवीर) के लिखनेसे और एकसमय आपस से भूषणो से क्रीड़ा करतेभये ॥ २६ ॥ उन्होंने कभी दिव्य शास्त्रों के आलापोंसे व कभी विचित्र वस्तुओंसे क्रीड़ा किया तथा वे एक समय लोकके वृत्तान्तों से किसीकी भी निन्दा करतेथे ॥ २७ ॥ व कभी फूलों के तोडनेसे उन्होंने क्रीड़ा किया और कभी जलके बेतोंसे क्रीड़ाकिया व एक समय उन्होंने अरुणाचल पै लीलापूर्वक खेलोंसे क्रीड़ा किया ॥ २८ ॥ कभी मैनाक से पूजितहुये

व कभी मेनासे पूजित भये और कभी क्रीड़ा करनेवाले वे शिवाशिव स्त्री पुरुष हिमवान् से पूजितहुये ॥ २९ ॥ कभी जुवाके खेलसे व कभी गीत, बाजनों से क्रीड़ा किया और किसी समय पार्वती व शिवजीने जुवाके खेलोंसे बहुत समय तक क्रीड़ा किया ॥ ३० ॥ और जुवामें जीतेहुये पतिकी गोदीमें प्राप्त जोकि कङ्कण कियाहुआ नागथा उसको लेकर पार्वतीजी ने कर्णभूषण किया ॥ ३१ ॥ इसप्रकार सुमेरुगिरि आदिक सुन्दर स्थानोंमें बसतेहुये चराचरके माता पिता उन दोनोंने अत्यन्त मनोहर कामके सुखोंको बहुत दिनोंतक भोगकिया ॥ ३२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽरुणाचलखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांत्रिंशत्तमोऽध्यायः॥३०॥

जातुद्यूतविनोदेन गीतवाद्यैःकदाचन ॥ एकदाद्यूतलीलाभिःशिवौचिक्रीडतुश्चिरम् ॥ ३० ॥ द्यूतनिर्जितमाच्छिद्यपत्युरुत्सङ्गताङ्गतम् ॥ वलयीकृतनागंवै ताटङ्कीकृतवत्युमा ॥ ३१ ॥ इतितौपितरौचराचराणां निवसन्तौकनकाचलादिकेषु ॥ रुचिरेषुपदेषुकामभोगानतिहृद्यान्सुचिरंकिलान्वभूताम् ॥ ३२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽरुणाचलमाहात्म्येत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३० ॥

* ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

नन्दिकेश्वरउवाच ॥ गार्हस्थ्यंबिभ्रतीभर्तुररुणाद्रिनिवासिनः ॥ अन्नपानैश्चसातत्र पर्यतर्पयतप्रजाम् ॥ १ ॥ जातुचिद्ब्रह्मसन्ध्यानमुकुलीकृतलोचनम् ॥ बद्धाञ्जलिपुटंदेवमद्राक्षीदद्रिनन्दिनी ॥ २ ॥ ध्यायतेनूनमधुना कापि सौभाग्यशालिनी ॥ क्रियतेयन्मयिप्रेम तन्मन्येवञ्चनंमहत् ॥ ३ ॥ अस्यविज्ञायतेपुंसां कुटिलामानसीगतिः ॥ मिथ्यो

दो० । अरुणाचल के ढिग यथा पारवती तप कीन । इकतिसवें अध्याय में सोइ चरित रसभीन ॥ नन्दिकेश्वरजी बोले कि अरुणाचलनिवासी पतिकी गृहस्थीको धारण करती हुई उन पार्वतीजी ने वहां अन्नपानों से सन्तान को तृप्तकिया ॥ १ ॥ किसी समय गिरिराजकुमारी पार्वतीजीने ब्रह्मके ध्यानमें नेत्रोंको मूंदे व हाथोंको जोड़ेहुये सदाशिवदेवजी को देखा ॥ २ ॥ व मनमें विचार किया कि इस समय शिवजी निश्चय कर किसी भी सौभाग्य से शोभित स्त्रीका ध्यान करते हैं और जो मुझमें स्नेह कियाजाता है उसको मैं बड़ीभारी वंचना (कपट) मानतीहूं ॥ ३ ॥ पुरुषोंके मध्यमें इनके मनकी गति कुटिल (टेढ़ी) जान पड़ती है

झूठे प्रेममें चतुर इन शिवजीसे मैं बहुतही छलीगई ॥ ४ ॥ इसकी चतुरताहीको मैं मनमे कपट मानतीहूं क्योंकि इनके स्नेहका पात्र सौभाग्यवान् अन्य जनहै ॥ ५ ॥ आजसे लगाकर तुम्हारा दासहूं और तुम्हारे तपोंसे मोल लियागयाहूं इसप्रकार अज्ञानवती मैं कामदेवनाशक चन्द्रभालजीसे छलीगईहूं ॥ ६ ॥ अज्ञान चित्तवाली स्त्रियोंका अपने समान न प्रेमकरनेवाले मनुष्यों में सौभाग्यका अभिमान केवल परिहास (हँसौवा) के लिये होताहै ॥ ७ ॥ इसप्रकार प्रेमकेकारण क्रोधसे उदासीन चित्तवाली पार्वतीदेवीका मुख पाला से सूखेहुये कमल की नाईं देखपड़ा ॥ ८ ॥ और आसुवों के जलसे भरेहुये उन पार्वतीजीके नेत्र जलसे पूर्ण कमलों की नाईं

पचारदक्षेण वञ्चितास्म्यमुनाभृशम् ॥४॥ मयिदाक्षिण्यमेवास्य मन्येमनसिवञ्चनाम् ॥ जनःसौभाग्यवानन्यश्चास्यै वस्नेहभाजनम् ॥ ५ ॥ अद्यप्रभृतितेदासस्तपोभिःक्रीतइत्यहम् ॥ मुग्धेन्दुशेखरेणास्मि विप्रलब्धास्मरारिणा ॥६॥ असमानानुरागेषु नारीणांमूढचेतसाम् ॥ सौभाग्यगर्वोलोकेषु परिहासायकेवलम् ॥ ७ ॥ इतिप्रणयरोषेण देव्याकलु षचेतसः ॥ पद्मंतुषारगलितमिवाननमलक्ष्यत ॥ ८ ॥ बाष्पवारिप्लुतेतस्या गिरिजायाविलोचने ॥ नीलोत्पलेजलापूर्णे इवभूम्नाविरेजतुः ॥ ९ ॥ आननञ्चवितिलकं भ्रुवोर्युगमभज्यत ॥ द्विधाकृतमिवासीच्च मन्मथस्यशरासनम् ॥ १० ॥ अन्तर्मन्युभरेणास्याः कम्पतेह्यधरच्छदः ॥ मृदुःप्रवालइवसरक्ताशोकस्यपल्लवः ॥ ११ ॥ अतीवकोपमानन्तत्पार्व त्यागण्डमण्डलम् ॥ शाणावघर्षमाणिक्यदर्पणप्रतिमंबभौ ॥ १२ ॥ अन्तर्विधूनितौतस्याश्चकम्पातेपयोधरौ ॥ पद्मकोशाविवान्तस्थवायुनाचप्रचालितौ ॥ १३ ॥ अचिन्तयच्चसाभूयः सौभाग्याभावतोमम ॥ अन्यास्त्रियमयंचित्तेकुरु

बहुतही शोभित हुये ॥ ९ ॥ और तिलकरहित मुख व दोनों भौंहें टूटगईं मानो दोखण्ड कियाहुआ कामदेव का धनुष होगया है ॥ १० ॥ भीतर क्रोधके भारसे इनका नीचेका ओंठ कँपता है मानो लालअशोक का मूंगेकी नाईं वह अरुण पत्ता हिलरहाहै ॥ ११ ॥ व बहुतही क्रोध करताहुआ वह पार्वती का कपोलमण्डल कसौटी में घिसनेसे माणिक्य की नाईं शोभित हुआ ॥ १२ ॥ और भीतर से कँपायेहुये उन पार्वतीजी के स्तन कांपनेलगे मानो भीतर टिकेहुये पवन से कमल की कली कँपाईगई हैं ॥ १३ ॥ फिर उन पार्वती देवीजी ने चिन्तन किया कि मेरे सौभाग्य के अभाव से ये चन्द्रभूषण शिवजी चित्तमें अन्य स्त्रीको

करतेहैं ॥ १४ ॥ इसलिये यह मैं कहीं जाऊंगी क्योंकि अन्यथा कार्य न होगा और तपकरतीहुई मुझको इससमय सौभाग्य इकट्ठा करना चाहिये ॥ १५ ॥ और यह प्यारी गङ्गाजी दोनों लड़कोंको बढ़ावैंगी और अन्य स्त्रीमें तत्पर ये शिवजी मुझको स्मरण नहीं करते हैं ॥ १६ ॥ यह निश्चयकर शिवदेवजीके समीप से शीघ्रही लौटकर वे पार्वतीजी विकल होकर किसी दिशाको निर्देश न कर जानेका प्रारम्भकिया ॥ १७ ॥ और चलावती, माल्यवती, मालिनी, विजया व जया क्रोधसे मना कीहुई भी ये सखियां स्वामिनी पार्वतीजी के पीछे आपही चलती भईं ॥ १८ ॥ वहांपर वे पार्वतीजी भी पुण्यदायक वनों, नगरों, तड़ागों और नदियों में सबओर

तेचन्द्रभूषणः ॥ १४ ॥ तदेषाक्वापियास्यामि कार्यंनैवान्यथाभवेत् ॥ तपस्यन्त्यैवसौभाग्यमर्जनीयंमयाधुना ॥ १५ ॥ वत्सौतुवर्धयत्येव गङ्गेयमपिवत्सला ॥ देवस्तुनस्मरत्येष मामन्यस्त्रीपरायणः ॥ १६ ॥ इतिनिश्चित्यदेवस्य पार्श्वादाशुनिवृत्यसा ॥ अनिर्दिश्यदिशङ्काञ्चिद्यातुंव्यग्राप्रचक्रमे ॥ १७ ॥ चलावतीमाल्यवती मालिनीविजयाजया ॥ चारिताअपिसंरम्भात्स्वामिनीमन्वगुःस्वयम् ॥ १८ ॥ तत्रसापिगिरीन्पुण्यान्वनानिनगराणिच ॥ सरांसिसरितश्चैषा विचचारसमन्ततः ॥ १९ ॥ भ्रमन्तीसह्यमद्रेषु द्राविडाख्येषुनिर्वृतिम् ॥ तीर्त्वाशक्त्यापगान्देवी विजयांसमभाषत ॥ २० ॥ दृश्योयंनातिदूरेण पुरस्तात्सकलारुणः ॥ शृङ्गैस्संलक्ष्यतेष्टाभिर्नूनं माहात्म्यवान्गिरिः ॥ २१ ॥ उपत्यकासुचैतस्य दृश्यतेतापसाश्रमम् ॥ अतीवपावनंशान्तं पुण्यारण्यमनोहरम् ॥ २२ ॥ गत्वानिरूपयामस्तत्तपःपुण्याश्रमान्वयम् । प्रसीदतितरांचेतो येषांसन्दर्शनेनमे ॥ २३ ॥ एवमालापयन्त्यालिं क्रमेणगिरिनन्दिनी ॥ तस्याद्रेर्जग्मु

भ्रमण किया ॥ १९ ॥ सह्य, मद्र, व द्राविड़नामक देशों में घूमतीहुई वे देवी शक्तिसे निर्वृति नदीको उतरकर विजयासखी से बोलीं ॥ २० ॥ कि आगे समीपही यह देखनेयोग्य व आठ शिखरों से सब अरुण निश्चयकर माहात्म्यवान् पर्वत देख पड़ताहै ॥ २१ ॥ इस पर्वतकी समीप भूमियों में तपस्वियों का आश्रम देखपड़ताहै क्योंकि अत्यन्तही पवित्रकारक व शान्त तथा पवित्र वनोंसे सुन्दर है ॥ २२ ॥ इस लिये पुण्यदायक आश्रमों में जाकर हम तपस्या करैंगी कि जिनके भलीभांति

दर्शनसे मेरा चित्त बहुत प्रसन्न होताहै ॥ २३ ॥ इसप्रकार सखी से कहतीहुई पर्वतकुमारी पार्वतीजी ने क्रमसे उस पर्वत के समीप जाकर किसी आश्रमको देखा ॥ २४ ॥ जहां कि जिस पर्वत की भूमिको भैंसा सींगोंके अग्रभाग से बराबर करते हैं और वानर व रीछ फल व फूलों तथा महुवों को लातेहैं ॥ २५ ॥ और ये वाराह जहापर स्नानके योग्य मिट्टीको ऋषियों के लिये लाते हैं और काले कौवों और शुकों व मृगों, व्याघ्रोंसे तथा सिंहों और हाथियोंसे ॥ २६ ॥ और मयूर व सर्पों तथा मूश व बिलारों से जहां मैत्रीका आश्रयहै और पुरोडाशसे हवन कीहुई वस्तुकी सुगन्ध को हरनेवाली ॥ २७ ॥ पवित्र धूमराशि जहांपर वृक्षोंके मध्योंसे निकलती है और

·धीपार्श्वमपश्यत्कञ्चिदाश्रमम् ॥ २४ ॥ समीकुर्वन्तियद्भूमिं विषाणैर्यत्रसैरिभाः ॥ वानराःफलपुष्पाणि मधूकानिच भल्लुकाः ॥ २५ ॥ क्रोडाःस्नानीयमृत्स्नाञ्च यत्रर्षिभ्योनयन्त्यमी ॥ काकोलकैःशुकैश्चैव मृगव्याघ्रैर्हरिद्विपैः ॥ २६ ॥ कलापिसर्पैर्यत्राखुमार्जारैःसौहृदाश्रयम् ॥ हूयमानपुरोडाशद्रव्यसौरभ्यहारिणी ॥ २७ ॥ यत्रद्रुमान्तरालेभ्यो धूम्यानिर्यातिपावनी ॥ पठन्तिशतरुद्रीयं यत्रवायसवैरिणः ॥ २८ ॥ गृणन्तिकाकाःस्तोत्राणि सामगायन्तिपक्षिणः ॥ शूकशालिषुशार्दूलाश्चारयन्तितथैवगाः ॥ २९ ॥ सिञ्चन्तिपुष्करम्भोभिरिभाश्चयत्रपादपान् ॥ क्वचिच्चशोभनेदेशे पुण्यापुण्यमनोहरे ॥ ३० ॥ ददर्शसातपस्यन्तं यंकञ्चिदृषिसत्तमम् ॥ बद्धवीरासनंसम्यक् पावनेकुशविष्टरे ॥ ३१ ॥ रुचिराभिःपिशङ्गाभिर्जटाभिर्भस्मपाण्डुरम् ॥ अचञ्चलाभिर्विद्युद्भिरिवशारदवारिदम् ॥ ३२ ॥ शान्तञ्चनिश्चलदृशं समप्रस्फुरिताधरम् ॥ जपन्तञ्चैवरुद्राक्षमालिकामग्रपाणिना ॥ ३३ ॥ वसानंवल्कलयुगे सन्ध्याभ्रेभूभृतंय

जहांपर कौवों के वैरी (घुघुवा) शतरुद्रीयको पढ़ते हैं ॥ २८ ॥ और कौवा स्तोत्रों को पढ़ते हैं व पक्षी सामवेद को गाते हैं वैसेही व्याघ्र यवों व धानोंमें गौवें को चरातेहैं ॥ २९ ॥ और जहापर हाथी सूंडके अग्रभाग द्वारा जलसे वृक्षोंको सींचतेहैं कहींपर सुन्दर शोभित स्थानमें पुण्यरूपिणी ॥ ३० ॥ उन पार्वतीजीने तप करते हुये जिस किसी ऋषिश्रेष्ठ को देखा जोकि पवित्र कुशासन पै भलीभांति स्थान वीरासन को बांधेथे ॥ ३१ ॥ व सुन्दरी पिंगल वर्णवाली जटाओं से भस्मकी नाईं श्वेतवर्णवाले जो मुनि निश्चल बिजलियों से शरद्ऋतु के मेघके समानथे ॥ ३२ ॥ और जो शान्त व अचल लोचनोंवाले तथा समान फरकते हुये ओठोंवाले और

हाथके अग्रभागसे रुद्राक्ष की मालाको जपतेथे ॥ ३३ ॥ और दो बकलों के वसन पहने थे जैसे कि सन्ध्यासमय के मेघों को पर्वत धारण कियेहोवै ॥ ३४ ॥ और षड्वर्ग (कामक्रोधादि) रूपी हिंसक जीवोंको मारनेके लिये मानो बौर (जाल) स्थापित है व उस समय तीन यज्ञोपवीतों को धारण कियेथे ॥ ३५ ॥ योग्य उपचार (पूजन) को लियेहुई उन पार्वतीजीने उन तपस्यारूपी धनवाले मुनिसे पूंछा कि तुम कौनहो और यह उत्तम पर्वत कौनहै जिसपै कि तुम तप करतेहो ॥ ३६॥ उन्होंने कहा कि पवित्र क्षेत्रों में पूजित यह अरुणाचल है और गौतमनामक मुनि मैं भी शिवजी का आराधन करताहूं ॥ ३७ ॥ यह कहकर विजयादिक सखियों

था ॥ ३४ ॥ षड्वर्गहिंस्रान्हन्तुञ्च स्थापितांवागुराभिव ॥ उपवीतत्रयीञ्चापि तदानीमुपधारिणम् ॥ ३५ ॥ कृतोचितोपचारासा तमपृच्छत्तपोधनम् ॥ कस्त्वंकोयंगिरिवरो यत्रत्वंकुरुषेतपः ॥ ३६ ॥ सचाहारुणशैलोयं पुण्यक्षेत्रेषुपूजितः ॥ गौतमोहंमुनिश्चापितपसाराधयंशिवम् ॥ ३७ ॥ इत्युक्त्वाविजयादीनांमुखेनैतामुमांविदन् ॥ प्रणम्यभक्त्याबहुशोनीतवानुटजन्निजम् ॥ ३८ ॥ कन्दमूलफलाद्यैश्च कृतातिथ्यामिमांमुनिः ॥ जगन्मङ्गलमूलाय तपसेचान्वमन्यत ॥ ३९ ॥ ज्योतिस्तम्भस्यसम्भूतिमारभ्यानुक्रमेणसः ॥ जगादचास्यैशोणाद्रेर्महिमानमशेषतः ॥ ४० ॥ शोणाद्रेःपूर्वदिग्भागेस्थलीश्वरमितिस्थलम् ॥ यत्रसन्निहितःशम्भुर्ज्योतिर्लिङ्गेमहेश्वरि ॥ ४१ ॥ वैकुण्ठपरमेस्थाने गीर्वाणनिविडीकृते ॥ नतत्रतुतपःकर्तुमण्याक्षेपेणशक्यते ॥ ४२ ॥ अन्यःशोणगिरेःपादः प्रवालाचलनामवान् ॥ पु

के मुख से इनको पार्वती जानतेहुये गौतमजी भक्तिसे बहुतही प्रणामकर अपनी कुटीको लाये ॥ ३८ ॥ और कन्द, मूल व फलादिकों से पहुनई कर इन पार्वतीजीको मुनिने संसार की मंगलमूल तपस्या के लिये आज्ञा दिया ॥ ३९ ॥ और ज्योतिस्तम्भकी उत्पत्ति से लगाकर क्रमसे उन गौतममुनिने इनसे अरुणाचलकी सब महिमा को कहा ॥ ४० ॥ और अरुणाचल के पूर्वदिशा के भागमें स्थलीश्वर ऐसा स्थलहै जहांपर हे महेश्वरि ! ज्योतिर्लिङ्ग में सदाशिवजी भलीभांति टिके हैं ॥ ४१ ॥ देवताओंसे सघन कियेहुये उस वैकुण्ठसे उत्तमस्थान में निर्विघ्नता से तप नहीं किया जासक्ता है ॥ ४२ ॥ और अरुणाचल के समीप का प्रवालाचल

नामवाला अन्य पर्वत पुण्यदायक वनों से आच्छादित होनेके कारण सुन्दरता को धारण करता है ॥ ४३ ॥ उसी कारण मैं यहींपर त्रिलोचनजी को थापकर पवित्र चित्तसे तपोंके द्वारा शक्तिके अनुसार आराधन करताहूं ॥ ४४ ॥ हे देवि ! इस मेरे आश्रम के समीप यह बड़ाभारी पुण्यक्षेत्र है यहींपर आश्रम कियाजावै व बहुत दिनोंतक तपस्या करनेयोग्यहै ॥ ४५ ॥ मुनिजी से इस प्रकार आज्ञापाईहुई पार्वती जीने आश्रमरूपी परिग्रह (परिवार) को कर बड़ी तपस्या करनेके लिये उद्योग किया ॥ ४६ ॥ और प्राणियों से आश्रम की रक्षाके लिये वनवासिनी पार्वतीजी ने सुभङ्गा व धुन्धुमारी को पूर्वादिक दिशाओं में स्थापन किया ॥ ४७ ॥ और तपोवन

ण्यारण्योपरुद्धत्वात्सुन्दरत्वंविगाहते ॥ ४३ ॥ ततएवाहमत्रैव प्रतिष्ठाप्यत्रिलोचनम् ॥ आराधयेयथाशक्ति तपोभिः प्रयतात्मना ॥ ४४ ॥ ममाश्रमसमीपेस्मिन् पुण्यक्षेत्रमिदंमहत् ॥ क्रियतामाश्रमोदेवि कर्तव्यंहितपश्चिरम् ॥ ४५ ॥ मुनिनैवमनुज्ञाता कृताश्रमपरिग्रहा ॥ उदयुङ्क्ततपःकर्तुं सुमहत्पर्वतात्मजा ॥ ४६ ॥ आश्रमंरक्षितुंसत्त्वैरुमाकाननवासिनी ॥ सुभङ्गान्धुन्धुमारीञ्च प्रागाद्याशास्वतिष्ठिपत् ॥ ४७ ॥ तपोवनस्यसर्वस्य रक्षार्थंसासमादिशत् ॥ दुर्गामनर्गलस्फूर्तिमाज्ञानिर्वहणक्षमाम् ॥ ४८ ॥ अनन्तरंसाधम्मिल्लंमन्दारप्रसवोचितम् ॥ जटाभरत्वंतपसे गमयामासपार्वती ॥ ४९ ॥ हंसचिह्नदशंहित्वा दुकूलंचाप्युमालघु ॥ परुषंसुकुमाराङ्गी परिधत्तेस्मवल्कलम् ॥ ५० ॥ अपिप्रसूनापचये निस्सहाङ्गुलिपल्लवा ॥ अलावीदतितीक्ष्णाग्राण्यविकारंकुशानिसा ॥ ५१ ॥ शिरीषसदृशीशाण्डिल्यपल्लवान्युच्चिकायसा ॥ ५२ ॥ पावन्यांतत्रनद्यांसा प्रातर्विहितमज्जना ॥ अर्चयामासरक्ताक्षैर्यथाविधिविभाकरम् ॥ ५३ ॥

की रक्षाके लिये उन्होंने दुर्गा व अनर्गल स्फूर्ति तथा आज्ञानिर्वहणक्षमा को आज्ञा दिया ॥ ४८ ॥ इसके बाद उन पार्वतीजी ने मन्दार के फूलोंके योग्य वेणी को तपस्या के लिये जटाभारत्व को प्राप्तकिया ॥ ४९ ॥ और हंससे चिह्नित किनारोंवाले रेशमी वसनको छोडकर सुकुमार अंगोंवाली पार्वतीजी ने कठोर बकलेको धारण किया ॥ ५० ॥ व फूलोंके तोड़नेमें न सहनेवाली अंगुलिरूपी पत्तोंवाली उन पार्वतीजी अतिपैने अग्रभागवाले कुशोंको विकाररहित छेदन किया ॥ ५१ ॥ और सिरसा के फूलकी नाईं कोमल उन पार्वतीजी ने बिल्वपत्रों को तोड़ा ॥ ५२ ॥ और वहापर पवित्रकारक नदीमें प्रातःकाल स्नान कियेहुई उन पार्वतीजी ने विधि-

पूर्वक लालचन्दनों से सूर्यनारायणका पूजन किया ॥ ५३ ॥ व कुश, अक्षत तथा तिलों से मिलेहुये श्रीनन्दिनामक नदीके जलों से पार्वतीदेवीजी ने देवता, ऋषि व
पितरोंका तर्पण किया ॥ ५४ ॥ और मण्डलसे बालरूपी सूर्यनारायणको आवाहनकर व कमलों से पूजकर पार्वतीजी ने प्रदक्षिणाकर हज़ारों बार प्रणाम किया ॥
५५ ॥ और किसी भी शिवलिंगको आपही थापकर पार्वतीजी ने शास्त्र में कहीहुई विधिसे पूजनकिया ॥ ५६ ॥ व उन पार्वतीजीने आसन, मूर्ति, मूल व फूलोंसे सूर्य-
नारायण व दंडी, पिंगल जिनमें मुख्य हैं उन आदित्यों को तथा दीप्तिआदिक शक्तियों का भी पूजन किया ॥ ५७ ॥ तदनन्तर पूर्वादि दिशाओं में धेनुआदिक मुद्रा

दर्भाक्षततिलोन्मिश्रैर्गौरीश्रीनन्दिवारिभिः ॥ देवीनिर्वर्तयामास देवर्षिपितृतर्पणम् ॥ ५४ ॥ बालकंमण्डलेसूर्यमावा
ह्याभ्यर्च्यपङ्कजैः॥कृत्वाप्रदक्षिणांगौरीप्रणनामसहस्रशः ॥ ५५ ॥ स्वयमेवप्रतिष्ठाप्यलिङ्गंकिमपिशङ्करम् ॥ आगमो
क्तेनविधिना पूजयामासपार्वती ॥ ५६ ॥ आसनेनचमूर्त्याच मूलेनकुसुमैरविम् ॥ दण्डिपिङ्गलमुख्यांश्च शक्तीर्दीप्त्या
दिकाअपि ॥ ५७॥ ततोदिक्षुचसोमादीन् ग्रहान्धेन्वादिमुद्रया ॥ ततश्चाग्रेचार्चयित्वा नैवेद्यंचन्यवेदयत् ॥ ५८ ॥ भू
तशुद्धिंविधायान्वगन्तर्यागञ्चकारसा ॥ हृदिपद्मासनेचाथ सर्वान्धर्मादिकानक्रमात् ॥ ५९ ॥ शक्तीर्दलेषुवामाद्या
दलाग्रेसूर्यवेधसौ ॥ केसराग्रेसोमविष्णूकर्णिकाग्रेग्निधूर्जटी॥ ६० ॥ तदूर्ध्वंशक्तिचक्रत्वं विन्यस्यगिरिजातदा ॥ अर्घं
दत्त्वाचपाद्यादीनद्रिजाचाभिषिच्यसा ॥ ६१ ॥ अदाच्चन्दनपुष्पादिधूपदीपप्रदायिनी ॥ भूयःपञ्चोपचारैश्च षडङ्गान्य

के द्वारा चन्द्रादिक ग्रहोंको पूजन किया तदनन्तर आगे पूजनकर नैवेद्य को निवेदनकिया ॥ ५८ ॥ व उन पार्वतीजी ने भूतशुद्धिकर अन्तर्यज्ञ को किया इसके
अनन्तर हृदय में कमलासन पै सब धर्मादिकों को पूजन किया ॥ ५९ ॥ और दलोंमें वामादिक शक्तियों को व दलोंके अग्रभाग में सूर्यनारायण व ब्रह्माका पूजन
किया और केसर के अग्रभाग में चन्द्रमा व विष्णुको पूजा तथा गुजरी के आगे अग्नि व सदाशिवजी को पूजा ॥ ६० ॥ उसके ऊपर शक्तिकी चक्रता को धरकर
अर्घ देकर व पाद्यादिकों को देकर उस समय उन पार्वतीजीने अभिषेककर ॥ ६१ ॥ चन्दन, पुष्पादिकोंको दिया और फिर धूप दीप देनेवाली पार्वतीजी ने पञ्चोपचारों

से षडगोंको भी पूजन किया ॥ ६२ ॥ तदनन्तर पूर्वादिक दिशाओ मे इन्द्रादिकों व वज्रादिक अस्त्रोंको विधिसे पूजा और सब उपचारोंको कर दक्षिणादिया ॥ ६३ ॥
और पाचों चक्रोंको पूजकर शिव पूजनकियेहुई उनपार्वतीजी ने नित्यही प्रदक्षिणा व प्रणामादिकों से शिवजीको पूजा ॥ ६४ ॥ और पूजन के अन्तमे उन पार्वतीजी
ने शिवशास्त्र में कहीहुई विधि से सौभाग्य को देनेवाली वस्तुओ से अग्निमे हवन किया ॥ ६५ ॥ और कन्द, मूल, फलादिकों से पूजनकर आपही कियेहुई पूजन
वाली इसने अतिथियोंको पूजनकिया ॥ ६६ ॥ और ग्रीष्मऋतुमें पञ्चाग्निके मध्यमे अंगूठेके अग्रभागसे खडीहुई वे पार्वतीजी हृदयमें प्राप्त चन्द्रभालजीसे मानो रक्षित

प्यपूजयत् ॥ ६२ ॥ ततोदिक्षुचशक्रादीन्वज्रादींश्चविधानतः ॥ कृत्वासर्वोपचारांश्च वितताररचदक्षिणाम् ॥ ६३ ॥
पञ्चचक्राणिचाभ्यर्च्य कृतमाहेश्वरार्चना ॥ प्रदक्षिणाप्रणामाद्यैर्नित्यंशिवमपूजयत् ॥ ६४ ॥ शिवागमोक्तविधि
ना द्रव्यैःसौभाग्यदायिभिः ॥ साजुहावचयज्ञान्ते प्रणवैर्जातवेदसि ॥ ६५ ॥ परिकल्पितोप धाराचकन्दमूलफलादि
कैः ॥ स्वयंकृतोपचारैयमतिथीनभ्यपूजयत् ॥ ६६ ॥ अङ्गुष्ठाग्रेणतिष्ठन्ती ग्रीष्मेपञ्चाग्निमध्यतः ॥ हृद्गतेनशिरश्च
न्द्रेणेवसाप्यविताभवत ॥ ६७ ॥ वर्षारात्रिषुधाराभिः सहवारिधरेणसा ॥ सौदामिनीवदहशे तमसिस्तिमिताकृ
तिः ॥ ६८ ॥ पाणिपादेनवपुषा मुखेनचगिरीशजा ॥ प्रदर्शयन्त्यनायासन्निन्येसाहैमिनीर्निशाः ॥ ६९ ॥ नीवारबीज
दानेन सामृगानप्यपोषयत् ॥ अज्ञातहिंसाभिभवानाश्रमोपान्तवर्तिनः ॥ ७० ॥ कृतालवालसलिलैः सुबालाकल
शाहृतैः ॥ वात्सल्याद्वर्द्धयामासापर्णात्वाश्रमपादपान् ॥ ७१ ॥ प्रदक्षिणांकृतवती शोणशैलंगिरीशजा ॥ सामनोर

हुई ॥ ६७ ॥ व वर्षाकी रात्रियों में निश्चल आकारवाली वे पार्वतीजी धाराओं से मेघोंकरके बिजलीसी देखपडीं ॥ ६८ ॥ व हाथ, पांव, शरीर व मुख से अपरिश्रम
को दिखलातीहुई उन पार्वतीजी ने हेमन्तऋतु की रात्रियों को व्यतीत किया ॥ ६९ ॥ और उन पार्वतीजी ने तिन्नी व पसहीके बीजोंके दानसे मृगोंकोभी पोषणकिया
जोकि हिंसकों के तिरस्कार को नहीं जानते थे व आश्रम के समीप वर्तमान थे ॥ ७० ॥ और उत्तम बाला पार्वतीजी ने कलशों से लायेहुये निर्मित थलहों के जलो

से प्रेमपूर्वक आश्रमवाले वृक्षोंको बढ़ाया ॥ ७१ ॥ और मनोरथकी भलीभांति सिद्धिके लिये सखीजनों समेत उन पार्वतीजी ने अरुणाचल की प्रदक्षिणा किया ॥
७२ ॥ और इसने पञ्चाक्षर मन्त्रको जपा व शिवजी के स्तोत्रों को वर्णन किया तथा अरुणाचलरूपवाले देवको मनसे ध्यान किया ॥ ७३ ॥ कीहुई प्रदक्षिणादि-
कोंसे उन पर्वतकी कन्या पार्वतीजी ने अरुणाचल को प्रतिदिन प्रणाम किया व शिवशास्त्रकी विधिको जाननेवाली उन्होंने बहुत दिनोंतक तपस्या किया ॥ ७४ ॥
इति श्रीस्कन्दपुराणेऽरुणाचलखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायाभाषाटीकायामेकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥ ❀ ॥

थसंसिद्धौ नित्यंसहसखीजनैः ॥ ७२ ॥ पञ्चाक्षरंजजापैषाशिवस्तोत्राण्युदीरयत ॥ दध्यौचदेवंमनसा शोणपर्वतरू
पिणम् ॥ ७३ ॥ अनुदिनमरुणाचलेश्वरंसाप्रणतवतीविहितप्रदक्षिणाद्यैः ॥ शिवनिगमविधानवेदिनीसाऽप्यरचयदद्रि
सुताचिरन्तपांसि ॥ ७४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽरुणाचलमाहात्म्येएकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥ * ॥
नन्दिकेश्वरउवाच ॥ तावत्कुतश्चिदाकर्ण्य तत्रस्थांमहिषासुरः ॥ अवज्ञातासुराराातिर्विध्वंसितपुरन्दरः ॥ १ ॥
सर्वलोकजयीसिद्धविद्याधरभयावहः ॥ दुर्निग्रहोवरादासमशस्त्रैरखिलैरपि ॥ २ ॥ तीक्ष्णानामपिशापानामप्यगो
चरताङ्गतः ॥ दृप्यद्भिर्दानवैर्दैत्यैःकौणपैश्चनिषेवितः ॥ ३ ॥ दूषकोमुनिपत्नीनां धर्ममार्गोपघातकः ॥ बलात्पुलोम्नोन
मुचेर्वृत्रादपिबलाधिकः ॥ ४ ॥ हिरण्यकशिपोर्वंशो हिरण्याक्षइवापरः ॥ तांविलोभयितुङ्काञ्चित्प्राहिणोत्किलदूति

दो० । जिमि महिषासुर को हन्यो श्रीदुर्गा महरानि । बत्तिसवें अध्यायमें सोइ चरित सुखदानि ॥ नन्दिकेश्वरजी बोले कि तबतक दैत्यों के शत्रु याने देवताओं
के अपमान किये व इन्द्रको विध्वंस किये महिषासुर वहां टिकीहुई देवीजी को किसीसे सुनकर ॥ १ ॥ जोकि सब लोकोंको जीतनेवाला और सिद्धों व विद्याधरों
को भयदायक था और वरदानके कारण सब शस्त्रोंसे भी वह दण्ड देनेयोग्य न था ॥ २ ॥ और तीक्ष्णशापोंकी भी अगोचरताको प्राप्तथा याने शाप नहीं लगते थे
व गर्व करतेहुये दानव, दैत्य तथा राक्षसों से सेवित था ॥ ३ ॥ व मुनिस्त्रियों का दूषक तथा धर्ममार्ग का नाशक था और बल, पुलोमा, नमुचि व वृत्रासुर से

भी अधिक बलवान् था ॥ ४ ॥ व जोकि हिरण्यकशिपु के वंशवाला दूसरा हिरण्याक्ष है उसने उन पार्वतीजी को लुभाने के लिये दूतीको पठाया ॥ ५ ॥ तदन-
न्तर तपस्विनीके रूपको धारण कियेहुई उस दूतीने सखियोंके सामनेही पार्वतीजीसे समझानेवाले इस वचनको कहा ॥ ६ ॥ कि हे वरोरु, भीषणे,भीरो ! बड़ेखेदकी
बात है कि मनोहर-अन्तःपुर (रनिवास मन्दिरों) में विहार करनेके योग्य तुम यहां क्यों बसतीहो ॥ ७ ॥ और आज भोगोंमें निःस्पृह (इच्छारहित) तुम्हारे चित्त
ने देवताओं से भी कठिन तपस्या मे किसलिये प्रवेश किया ॥ ८ ॥ और हे सुकुमाराङ्गि ! मुक्तामय चँदोवोंवाली हंसचिह्नित तूलमयी शय्याको छोड़कर कठोर आ-

कामू ॥ ५ ॥ ततःसातापसीरूपधारिणीगिरिजाम्प्रति ॥ सखीसमक्षएवेदमुवाचानुनयंवचः ॥ ६ ॥ वरोरुभीषणेभीरो निवसस्यत्रकिंबत ॥ विहर्तुमुचितारम्येष्ववरोधनवेश्मसु ॥ ७ ॥ किमर्थंवाद्यचित्तन्ते यौवनेभोगनिःस्पृहम् ॥ निवेशितंतपसिच देवतैरपिदुष्करे ॥ ८ ॥ हंसतूलमयींशय्यां मुक्तामयवितानकाम् ॥ हित्वाकिमितिमृद्वङ्गि सुप्यतेपरुषाश्रमे ॥ ९ ॥ तपोमयःशिवोदिष्ट्या प्रागेवासीत्त्वयार्चितः ॥ तवानुरूपोनैवान्यो विद्यतेदिविषत्सुच ॥ १० ॥ किन्तुत्रैलोक्यनाथोस्ति महिषोदानवेश्वरः ॥ यदिद्रक्ष्यसितंसुभ्रु त्यक्ष्यस्येवक्षणात्तपः ॥ ११ ॥ आगतामत्रत्वामेष श्रुत्वासर्वेश्वरःप्रभुः ॥ संप्राहिणोदुपानेतुं दूतिकांमांस्मरातुरः ॥ १२ ॥ इत्थमेवविरुद्धेन ब्रुवाणामसमञ्जसम् ॥ देव्याश्चित्तस्थितिंज्ञात्वा विजयानिरकासयत् ॥ १३ ॥ साचातिरोषेणकृतप्रतिज्ञंदैत्यरूपिणम् ॥ गत्वाविदितवृत्तान्तमकरोन्महिषा

श्रममें किस लिये सोतीहो ॥ ९ ॥ अहोभाग्य है कि तुमने पहलेही तपस्यामय शिवजीको पूजाहै देवताओं के मध्यमें तुम्हारे समान अन्य नहीं विद्यमान है ॥१०॥
किन्तु महिषनामक दानवों का स्वामी त्रिलोकनाथ है हे सुभ्रु ! यदि तुम उसको देखोगी तो क्षणभरमें तपस्याको अवश्य छोड़ोगी ॥ ११ ॥ यहां आईहुई तुमको
सुनकर सबोंके स्वामी इस महिषासुर प्रभुने कामदेवसे विकल होकर तुमको लानेकेलिये मुझ दूतीको पठाया है ॥ १२ ॥ इस प्रकार अन्यायपूर्वक विरोध से कहती
हुई उस दूतीको विजयासखी ने देवीजी के चित्तकी स्थितिको जानकर निकाल दिया ॥ १३ ॥ और उस दूतीने जाकर अतिक्रोधमे प्रतिज्ञा कियेहुये दैत्यरूपी महि-

प्रासुरसे वृत्तान्तको विदितकिया ॥१४॥ और वह भी उस सब वृत्तान्तको सुनकर आकाशके मध्यमें कूदपड़ा व क्रीडा तथा बाजों के शब्दोंसे आकाश पूर्णसा होंगया ॥ १५ ॥ और दैत्योंके चरणघात से पृथ्वी फटगई व कराल, दुर्धर, विचष्णु, विकरालय ॥ १६॥ वाष्कल, दुर्मुख, चण्ड, प्रचण्ड व चामर तथा महाहनु, महामौलि, उग्रास्य व विकटेक्षण ॥ १७ ॥ ज्वालास्य, दण्डक ये सेनाध्यक्ष चलतेभये और इस बड़ेभारी शब्दको सुनकर देवीजी नियमों के विघ्नसे ॥ १८ ॥ शंकितहुई और दैत्योंके संहार के लिये उन्होंने सिंहनाद किया व फरकते हुये ओंठों तथा चलतीहुई अंगुलीरूपी पत्तोंवाली पार्वतीजीने ॥ १९ ॥ क्रोधसे अपने अंगोंसे

सुरम् ॥ १४ ॥ सोपितत्सर्वमाकर्ण्यप्रोद्गतोगगनान्तरम् ॥ क्ष्वेलितैर्वाद्यघोषैश्च नभःपूर्णमिवाभवत् ॥ १५ ॥ पादाघातैश्चदैत्यानां विदद्रेवसुधातलम् ॥ करालोदुर्धरश्चैव विचष्णुर्विकरालयः॥१६॥वाष्कलोदुर्मुखश्चण्डःप्रचण्डश्चामरस्तथा ॥ महाहनुर्महामौलिरुग्रास्योविकटेक्षणः ॥ १७॥ ज्वालास्योदण्डकश्चेमे सेनान्योपिप्रतस्थिरे ॥ कोलाहलमिमं श्रुत्वा देवीनियमविघ्नतः ॥ १८ ॥ शङ्कितादैत्यसंहृत्यै सिंहनादमचीकरत् ॥ स्फुरद्दन्तच्छदोपान्ता चलदङ्गुलिपल्लवा ॥ १९ ॥ स्वाङ्गेभ्योयोगिनीचक्रं मातरोप्यसृजन्रुषा ॥ देव्याःप्रियायदैत्यसंहारार्हाःसहस्रशः ॥ २० ॥ काश्चित्त्ररुणच्छायादण्डिन्योहंसवाहनाः ॥ मुखैश्चतुर्भीराजन्त्यःकोपप्रस्फुरिताधरैः ॥ २१ ॥ निर्ययुःकाश्चनक्रुद्धा ज्वलद्दिशिखपाणयः ॥ निश्वासाभीषणायासा ललाटावृषवाहनाः ॥ २२ ॥ निर्जग्मुरपरास्तद्वत् संस्थिताःशिखिवाहने ॥ शक्तिदण्डाभयकराः शतशःषड्भिराननैः ॥ २३ ॥ निश्चक्रमुःपरास्तार्क्ष्यमधिरुह्याधिकक्रुधा ॥ शङ्खचक्रधराःसूर्यच

योगिनीगण व मातृगणोंको उत्पन्नकिया और देवीजीके प्रियकेलिये दैत्योंके संहारके योग्य हजारों ॥ २० ॥ अरुणछायावाली कोई योगिनी वहां दण्डको धारे व हंस पै सवार तथा क्रोधसे चलतेहुये ओंठोंवाले चार मुखोंसे शोभितथीं ॥ २१ ॥ और जलतेहुये बाणोंको हाथमें लिये कोई क्रोधित योगिनी निकलीं कि जिनके मस्तक श्वास से भयङ्कर और बैलपर चढ़ीहुई थीं ॥ २२ ॥ वैसेही मयूरकी सवारी पै बैठीहुई अन्य योगिनी निकली और सैकड़ों योगिनी शक्ति, दण्ड व अभयको हाथमें लिये छह मुखोंसे उपलक्षित थीं ॥ २३ ॥ व अधिक क्रोधसे अपर योगिनी शङ्ख व चक्रको धारे गरुड़ पै सवार होकर निकलीं जैसे कि सूर्य व चन्द्रमा से

संयुक्त आकाश होवै ॥ २४ ॥ व्याघ्र पै सवार व कमलके समान कान्तिवाली योगिनी वर्घरशब्द समेत गणोंसहित मुसल व हलको धारण कियेथीं ॥ २५ ॥ क्रोधसे अरुण हज़ार नेत्रोंवाली व श्वेत हाथियों पै सवार तथा अस्त्रोंको धारे वे अन्य श्रेष्ठ सौकरोड़ मातृका चलतीभई ॥ २६ ॥ और बिजली के समान कितेक मातृका घोड़ो पै सवार होकर प्राप्तहुई जोकि तलवार व खेटकअस्त्र को धारे तथा क्रोधसे पीले वर्णवाली थीं ॥ २७ ॥ चन्द्रमा की नाईं उत्तम शोभावाली उन मातृकाओं ने हठसे चौसठि करोड़ दैत्योंको आश्रम के बाहर घेरलिया ॥ २८ ॥ तदनन्तर योगिनीगण व दानवों की सेनाका आपस में समस्त प्राणियों को भयकारक विक-

न्द्रमोभ्यांदिवोयथा ॥ २४ ॥ प्रातिष्ठन्तव्याघ्रवाहास्तावैकुवलयत्विषः ॥ गणैःसघर्घरारावैर्बिभ्रत्योमुसलंहलम् ॥ २५ ॥ रोषारुणसहस्राक्ष्यो वलक्षद्विपवाहनाः ॥ प्रस्थिताःशतकोट्यस्तामातरोस्त्रधराःपराः ॥ २६ ॥ अश्वारूढाः समापेतुरेकास्ताः शामिनीनिभाः ॥ खड्गखेटकधारिण्यःकोपेनकपिलाननाः ॥ २७ ॥ काश्चकोटिचतुःषष्टिमसुराना श्रमाद्बहिः ॥ अरुन्धन्प्रसभेनैव तारापतिवरत्विषः ॥ २८ ॥ ततश्चयोगिनीचक्रदानवानीकयोर्मिथः ॥ वर्ततेतरणंघोरं सर्वप्राणिभयङ्करम् ॥ २९ ॥ सायकैर्योगिनीमुक्तैर्दलितादैत्यमौलयः ॥ आच्छादयन्महीपृष्ठं स्थलजानीवसर्वतः ॥ ३० ॥ प्रसस्रूरक्तसरितो नरकेशिकशैवलाः ॥ विलूनपादपाठीनाःस्मेरदेवीमुखाम्बुजाः ॥ ३१ ॥ उत्तुङ्गतुण्डान्यारुह्य सौधानीवपिशाचिकाः ॥ प्रचण्डताण्डवाःपीतरक्तमद्याश्चकाशिरे ॥ ३२ ॥ कपालैर्दैत्यवीराणामपिबन्नसृगासवान् ॥ क्रीडन्तश्चडमरुकाकारैर्मुण्डैश्चतद्गणाः ॥ ३३ ॥ परितोवर्त्तमानास्ते काकौघाःपाशशङ्कया ॥ क्षुधिताअपिमांसस्य पिण्डा

राल युद्ध वर्तमान हुआ ॥ २९ ॥ योगिनियोंसे छोड़हुये बाणोंसे कटेहुये दैत्योंके मस्तकों ने स्थलमें उत्पन्न कमलों की नाईं सबओर से भूमिको आच्छादन किया ॥ ३० ॥ और मनुष्यों के केशरूपी सेवारवाली तथा कटेहुये चरणरूपी पढिन मछलियोंवाली और हास्ययुक्त भगवती के मुखरूपी कमलोंवाली रक्तकी नदिया बहने लगीं ॥ ३१ ॥ व राजमन्दिरों की नाईं ऊची चोंचोंके ऊपर चढ़कर पिये रक्तरूपी मदिरावाली पिशाचिनी प्रचण्ड ताण्डव (नृत्य) कर शोभित हुई ॥ ३२ ॥ और वीरदैत्यों के कपालों से उन्होंने रक्तरूपी मदिराओं को पिया और उनके गण डमरू के समान आकारवाले शिरों से खेलरहे हैं ॥ ३३ ॥ सब ओर वर्त्तमान व

क्षुधित भी वे कंकपक्षियों के समूह व सियारियां ने [illegible]
फूलों के आसवों (मद्यों) से इधर उधर चलने से उपजी हुई पथ्यों की नाईं [illegible]
शत्रुओं के घोड़े बड़े क्रोधसे फेंकेहुये बाणों से वेधित मृगों की नाईं [illegible]
से और कितेक पैने किनारोंवाले हलों से ॥ ३७ ॥ तथा योगिनियों की तलवारों से [illegible]

नितत्युः शिवाः ॥ ३४ ॥ सिद्धविद्याधरोन्मुक्तमन्दारप्रसवासवैः ॥ [illegible] ॥ ३५ ॥
विरेजुर्योगिनीमुक्तैर्हलनैर्दिपांहयाः ॥ अमर्षातिशयोद्विद्धैः शूलैर्योगि[illegible] ॥
शितैः केपिशक्तिभिः ॥ वज्रैरन्येहलैरके कतिचिच्छिन्नकोटिभिः ॥ ३७ ॥ योगि[illegible]
निःशेषतामुपाजग्मुर्विनासेनाधिपाइव ॥ ३८ ॥ ब्राह्मीस्वयमुपागम्य विहितायोधनावघात् ॥ [illegible]
नाद्यवधीद्द्रुतम् ॥ ३९ ॥ माहेश्वरीत्रिशूलेन सुचिरंकृतसङ्गरा ॥ चकर्तदुर्घटस्याशु मूर्द्धानमतिरोषणा ॥ ४० ॥ शा
कन्याभुजनकौमारी चिक्षुरासुरमस्तकम् ॥ चक्रेणचाभुनान्मौलिं विकरालस्यवैष्णवी ॥ ४१ ॥ विडालस्याशु वाराही
मुसलेनाभुनाच्छिरः ॥ दुर्मुखंचाशुवज्रेण व्यधादैन्द्रीगतायुषम् ॥ ४२ ॥ हत्वातमस्याश्चनामेदं तयोरेवनिषूदनात् ॥
चामुण्डाचण्डमुण्डौच खड्गाग्रेणाचिच्छिदे ॥ ४३ ॥ प्रचण्डचण्डमार्गौ तावीशौ महामौलिर्महाहनुः ॥ उग्रास्यविकटाक्षौ

मारने के लिये युद्ध कियेहुई ब्राह्मी ने आपही आकर भयङ्कर दण्डसे शीघ्रही कराल नामक दैत्य को मारा ॥ ३९ ॥ और बहुत समय तक युद्ध कियेहुई बड़े [illegible]
वाली माहेश्वरी ने शीघ्रही दुर्घट के मस्तक को काटडाला ॥ ४० ॥ और कौमारी ने शक्तिसे चिक्षुरदैत्य के मस्तक को काटडाला व वैष्णवी जीने चक्र से विकराल-
दैत्यके मस्तक को काटडाला ॥ ४१ ॥ और वाराही ने मुसलसे शीघ्रही विडाल दैत्य के शिर को काटडाला व ऐन्द्रीजी ने शीघ्रही वज्र से दुर्मुखदैत्य को आयुर्बल
हीन करदिया ॥ ४२ ॥ व चामुण्डाजी ने तलवार के अग्रभाग से चण्ड मुण्डको काटडाला और उन्हीं के मारने से इनका यह नाम प्रसिद्ध हुआ ॥ ४३ ॥ [illegible]

व चामरवीर तथा महामौलि, महाहनु, उग्रास्य, विकटाक्ष, ज्वालास्य व दहन भी ॥ ४४ ॥ व कालनेमि आदिक दैत्य काल के मुखकी नाईं क्रोध से महिषासुर के सामने युद्धके लिये आतीहुई भगवती के पीछे गये ॥ ४५ ॥ टोप को धारण किये तथा तरकसोको बाधे व धनुषधारे रथीलोग कवच को बाँधकर चलती हुई ध्वजा वाली युद्धभूमिको प्राप्तहुये ॥ ४६ ॥ भयंकर सिंहनादोंसे सबओर दिशाओंको पूर्णकरनेवाले व बाण बरसानेवाले दैत्य मातृमण्डलोंके सामने दौडे ॥ ४७ ॥ और उन बलवान् दैत्योंसे युद्धकर उस समय उन्होंने स्तुतिकिया कि योगनिद्रा ऐसे रूपसे विष्णुजीके नेत्रकमलोंसे ॥ ४८ ॥ हे देवि ! लीलासे मधुकरी (भ्रमरी) की नाईं तुम

च ज्वालास्यदहनावपि ॥ ४४ ॥ अनुजग्मुःक्रुधायातां युद्धायमहिषासुरम् ॥ कालनेमिप्रभृतयो कालाननमिवासुरः ॥ ४५ ॥ शिरस्त्रवन्तोरथिनः सुनिषङ्गाधनुर्धराः ॥ उद्बद्धकण्टकाःप्रापुर्युद्धभूमिंचलध्वजाम् ॥ ४६ ॥ समन्तात्पूरितदिशः सिंहनादैर्भयङ्करैः ॥ पृषत्कवर्षिणोमातृमण्डलान्यभिदुद्रुवुः ॥ ४७ ॥ ताश्चतैर्बलिभिःकृत्वा संग्राममीडिरे तदा ॥ योगनिद्रेतिरूपेण विष्णोर्नयनपद्मयोः ॥ ४८ ॥ त्वयानिलीयतेदेवि मधुकर्य्येवलीलया ॥ अमूमुहस्त्वंनयदि मातश्चमधुकैटभौ ॥ ४९ ॥ कथंजघानतौविष्णुस्तयोरेवाभ्यनुज्ञया ॥ त्वंकौशिकीनचेज्जाता पुराशुम्भनिशुम्भयोः ॥ ५० ॥ कथंनुलोकपालानामैश्वर्यंदेविचैष्यति ॥ विन्ध्यवासिनिविन्ध्येन किमवन्ध्यंकृतन्तपः ॥ ५१ ॥ यत्रमैत्रीचसर्वेषां पुंसांलभ्यात्वयासमम् ॥ ५२ ॥ त्वयाविनीतदैत्यानां दण्डमेवधृतंसदा ॥ ब्रह्मणःसृष्टिशक्तिस्त्वं स्थितिशक्तिर्मधुद्विषः ॥ ५३ ॥ अम्बसंहारशक्तिश्च रुद्रस्यापिप्रजल्प्यसे ॥ यशोदानन्दजातात्वमेकानंशेतिनामतः ॥ ५४ ॥

लीन होजातीहो हे मातः ! यदि मधुकैटभ दैत्योंको तुम न मोहित करती ॥४९॥ तो विष्णुजी उन्हींकी आज्ञासे उनको कैसे मारते यदि पुरातन समय तुम कौशिकी न उत्पन्न होती तो शुम्भ निशुम्भको ॥ ५० ॥ हे देवि ! लोकपालों का ऐश्वर्य कैसे प्राप्तहोता हे विन्ध्यवासिनि ! विन्ध्याचलने क्या अमोघ तप कियाहै ॥ ५१ ॥ कि जहांपर सब पुरुषों कोभी तुम्हारे साथ मित्रता मिलनेयोग्य होतीहै ॥५२॥ तुमने विनयवाले दैत्योंके ऊपर सदैव दण्ड धारण कियाहै और ब्रह्माकी सृष्टिशक्ति व विष्णुजी की पालनशक्ति ॥ ५३ ॥ व हे मातः ! शिवजीकी भी संहारशक्ति कही जातीहो और यशोदाके गर्भसे नन्दसे उत्पन्नहुई तुम्ही एक अंशरहित ऐसे नाम से

कहीजाती हो ॥ ५४ ॥ और कंसादिक दैत्यों के नाशकेलिये विष्णुकी सहायता करोगी हे देवि ! तुम महामाया हो व तुम्हीं लक्ष्मी और सरस्वती हो ॥ ५५ ॥ हे दुर्गे ! क्या तुम वे पार्वती भी नहीं उत्पन्न होतीहो याने पार्वती तुम्हींहो उससमय इस स्तोत्रसे अभयको दियेहुई आपही दुर्गाजी ॥ ५६ ॥ प्रसन्न होकर महिषासुर से युद्धके लिये उस समय चलतीभई और हलके अग्रभाग से प्रचण्ड को व भिन्दिपाल से चामरको मारा ॥ ५७ ॥ और महामौलिको छुरीसे व महाहनुको तलवार से मारा तथा उग्रास्य को कुठार (फरसा) से व विकटलोचन को शक्ति से मारा ॥५८॥ व मुद्गर से ज्वालामुख को तथा दहनको मुसल से मारकर रोषसमेत

कंसाद्यसुरसंहारे हरेःसाह्यंकरिष्यसि ॥ त्वंहिदेविमहामायात्वंलक्ष्मीस्त्वंसरस्वती ॥ ५५ ॥ त्वंदेवीपार्वतीसापि दुर्गेकिं वानजायसे ॥ स्तोत्रेणानेनचतदा दुर्गादत्ताभयास्वयम् ॥ ५६ ॥ महिषासुरयुद्धाय संतुष्टानिर्ययौतदा ॥ प्रचण्डञ्चहलाग्रेण भिन्दिपालेनचामरम् ॥ ५७ ॥ महामौलिंछुरिकया कृपाणेनमहाहनुम् ॥ उग्रवक्त्रंकुठारेणशक्त्याविकटचक्षुषम्॥ ५८ ॥ ज्वालामुखंमुद्गरेण दहनंमुसलेनच ॥ निहत्यमहिषस्याग्रे सरोषंयुद्ध्यतीस्वयम् ॥ ५९ ॥ सिंहनादंमहाघोरं चक्रेप्रमुदिताशया ॥ अथात्यमर्षितोदुर्गां विशिखैर्महिषासुरः ॥ ६० ॥ विव्याधतालफलके नेत्रयोरुभयोरपि ॥ ततोदुर्गाथसंरम्भात्प्रजहारासुरेश्वरम् ॥ ६१ ॥ बाह्वोर्वक्षसिवक्त्रेच क्षुरप्रैःप्रज्वलत्फलैः ॥ ततोदैत्यस्त्रिभिर्दुर्गां जघान विशिखैर्मुखे ॥ ६२ ॥ पञ्चभिःपञ्चभिर्बाह्वोर्द्वाभ्याञ्चनेत्रयोःद्वयोः ॥ एकेनसारथिञ्चाश्वानष्टभिःकार्मुकंत्रिभिः ॥ ६३ ॥

युद्धकरतीहुई दुर्गाजी आपही महिषासुर के आगे ॥ ५९ ॥ प्रसन्न आशयवाली होकर बड़े भयङ्कर सिहनाद को किया इसके अनन्तर बड़े क्रोधी महिषासुर ने बाणोंसे दुर्गाजी के मस्तक में व दोनों नेत्रोंमें मारा तदनन्तर दुर्गाजी ने क्रोधसे असुरेश महिषासुर की भुजाओं में व छातीमें तथा मुखमें जलतेहुये बाणोंसे मारा तदनन्तर महिषासुर दैत्यने तीन बाणोंसे दुर्गाके मुखमें मारा ॥६०।६१।६२॥ और दुर्गाजीने पांच पांच बाणोंसे उसकी भुजाओंमें मारा व दो बाणोंसे दोनों नेत्रोंमें

मारा व एकबाणसे सारथिकोमारा और आठ बाणों से घोड़ोंको मारा व तीन बाणोंसे धनुषको काटडाला ॥ ६३ ॥ व दुर्गाजीने चार बाणोंसे उसके ध्वजाको काटडाला
इसके अनन्तर पैदल होकर दैत्यो के स्वामी महिषासुर ने जलतेहुये आकारवाली शतघ्नी (चुभेहुये कीलोंवाला दण्ड) ॥ ६४ ॥ जोकि कालदण्डके समान थी उस
को दुर्गाजी के ऊपर छोड़ा देवताओं के हाहाकार करने पर व मातृगणों के भगनेपर ॥ ६५ ॥ आतीहुई उसको दुर्गाजी ने लीला से पकड़लिया तब धनुष, फँस-
री, बन्दूक, तलवार ॥ ६६ ॥ शंकु (बाणविशेष) शक्ति, गदा, चक्र, तोमर, ढाल, अंकुश, परश्वध, भिन्दिपाल, पट्टिश व दण्डको ॥ ६७ ॥ महिषासुरने प्रलय

चतुर्भिश्च ध्वजं तस्य दुर्गाञ्छिच्छेद सायकैः ॥ पदातिरथ दैत्येन्द्रः शतघ्नीं ज्वलदाकृतिम् ॥ ६४ ॥ कालदण्डप्रतीकाशां
दुर्गाम्प्रति विमुक्तवान् ॥ हाहाकुर्वत्सु देवेषु विद्रुते मातृमण्डले ॥ ६५ ॥ तामापतन्तीमादाय दुर्गा जग्राह लीलया ॥ का
र्मुकञ्चैव पाशञ्च भुशुण्डीं करवालिकाम् ॥ ६६ ॥ शङ्कुं शक्तिं गदां चक्रं तोमरं फलकं सृणिम् ॥ परश्वधं भिन्दिपालं प
ट्टिशं लगुडं तथा ॥ ६७ ॥ दुर्गाम्प्रति चिक्षेप क्षयाम्भोद इवासुरः ॥ आपतन्त्येव शस्त्राणि क्षिप्तान्यादाय वैरिणा ॥ ६८ ॥
बभञ्ज पाणिभिः स्वैरं करिणीव मृणालकम् ॥ दुर्गापवाह्यः सिंहोऽपि लाङ्गूलाग्रेण मुद्रितम् ॥ ६९ ॥ दंष्ट्रया दारयामास स प्रह
रन्मुखपञ्चकैः ॥ क्षणं सिंहः क्षणं क्रोडः क्षणं व्याघ्रः क्षणं गजः ॥ ७० ॥ क्षणञ्च महिषो भूत्वा दैत्यो दुर्गामयोधयत् ॥ स
हिषोऽपि विषाणाभ्यां तीक्ष्णाभ्यां सत्वमर्षितः ॥ ७१ ॥ ताडयामास सिंहञ्च देवीमपि मुहुर्मुहुः ॥ क्षणं गगनमध्यस्थः क्ष
णं प्राप्तमहीतलः ॥ ७२ ॥ क्षणं दिक्षु भ्रमन्प्राप्तः क्षणं नदति दानवः ॥ तावद्देवासुरेन्द्रोऽसौ नेत्रगोचरतामगात् ॥ ७३ ॥

कालके मेघकी नाईं दुर्गाजी के ऊपर चलाया शत्रुसे चलाये व आयेहुयेही शस्त्रों को लेकर ॥ ६८ ॥ दुर्गाजीने इच्छाके अनुकूल हाथोसे तोडडाला जैसे कि हथिनी
कमलकी जड़को तोड़डालै और दुर्गाजी की सवारीवाले सिंहने पूंछके अग्रभाग से लपेटकर ॥ ६९ ॥ पांचो मुखो से प्रहार करते हुये उसने दाढ़ोंसे विदारण किया
क्षणमें सिंह व क्षणभरमे वाराह, क्षण मे व्याघ्र, क्षणभर में हाथी ॥ ७० ॥ और क्षण भरमें भैंसा होकर उस क्रोधित महिषासुरने भी पैने सींगोसे दुर्गाजीसे युद्धकिया ॥
७१ ॥ और बार २ सिंह व देवीजी को भी ताड़न किया क्षणमे आकाश के बीचमें स्थित होकर व क्षणभरसें पृथ्वीमे प्राप्तहोकर ॥ ७२ ॥ व क्षणभरमें दिशाओमे

घूमता हुआ वह दानव प्राप्तहोकर गर्जता है तबतक यह महिषासुर नेत्रोंके सामने प्राप्तहुआ ॥ ७३ ॥ उस समय दुर्गाजी ने तलवारहीसे इसके शिरको काटडाला
और हाथमें कटेहुये मस्तकको लेकर उन दुर्गाजीने नृत्य किया ॥ ७४ ॥ इसप्रकार जब दुर्गाजीने युद्धमें सब लोकों के एकही कण्टकरूप महिषासुर को मारडाला
तब देवताओं ने नृत्य किया व महर्षिलोग प्रसन्नहुये और मेघोंने दिव्यपुष्पों की वर्षा किया ॥ ७५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽरुणाचलखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचि-
तायांभाषाटीकायांद्वात्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀

**खड्गेनैवतदादुर्गा शिरश्चास्यचकर्तहि ॥ छिन्नमूर्द्धानमादाय पाणिनाथननर्तसा ॥ ७४ ॥ इतिदुर्गयासमितिकासरासुर
दलितेसमस्तभुवनैककण्टके ॥ ननृतुःसुराःप्रजहृषुर्महर्षयो ववृषुश्चदिव्यकुसुमानिवारिदाः ॥ ७५ ॥ इति श्रीस्कन्द
पुराणेऽरुणाचलमाहात्म्येद्वात्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३२ ॥**

* ॥ * ॥ * ॥ *

**मार्कण्डेयउवाच ॥ अहोमहिषदैत्यस्यदुराचारत्वमीदृशम् ॥ अहोदुरितहारिण्या दुर्गायाश्चपराक्रमः ॥ १ ॥ एवं
तदाभद्रकाल्या निहतेमहिषासुरे ॥ किञ्चकारगिरीन्द्रस्य नन्दिनीतपसिस्थिता ॥ २ ॥ नन्दिकेश्वरउवाच ॥ अन
न्तरंसाहस्तेन दधतीदैत्यमस्तकम् ॥ ननामगौरीमन्येनपाणिनाखड्गधारिणी ॥ ३ ॥ अथहर्षेणानृत्यन्तीं तामालो
क्यदयार्द्रया ॥ दृशादेवीजगादेनां दन्तांशुद्योतिताम्बरा ॥ ४ ॥ त्वयातिदुष्करंकर्म निर्मितंविन्ध्यवासिनि ॥ जातंतवप्र**

दो० । पारवती अरु देव सब देख्यो ज्योति प्रकाश । तैंतिसवें अध्याय में सोई चरित विलाश ॥ मार्कण्डेयजी बोले कि अहो महिषासुरका ऐसा दुराचार व
आश्चर्य है कि पापहारिणी दुर्गाजी का ऐसा पराक्रम है ॥ १ ॥ इस प्रकार जब उस समय भद्रकाली ने महिषासुर को मारा है तब तपस्या में स्थित गिरिराजकु-
मारी पार्वतीजी ने क्या कियाहै ॥ २ ॥ नन्दिकेश्वरजी बोले कि इसके अनन्तर हाथसे दैत्यके मस्तक को धारेहुई उन दुर्गाजीने तलवार को धारण कियेहुये दूसरे
हाथसे पार्वतीजी को प्रणाम किया ॥ ३ ॥ इसके अनन्तर हर्षसे नाचतीहुई उन दुर्गाजी को दयासे भीगीहुई दृष्टिसे देखकर दन्तोंकी किरणोंसे प्रकाशित आकाश

वाली पार्वतीजी ने इनसे कहा ॥ ४ ॥ कि हे विन्ध्यवासिनि ! तुमने बहुत कठिनकामको किया और तुम्हारे प्रभाव से मेरा तप विघ्नरहित होगया ॥ ५ ॥ इसके अनन्तर हे संसारमें पवित्र चरित्रवाली दुर्गाजी ! इस महिषासुरके अशुद्ध व भयङ्कर शिरको तुम हाथ से त्याग करनेयोग्य हो ॥ ६ ॥ इसप्रकार पार्वतीजी से कही हुई व घृणासे विकल मनवाली दुर्गाजीने उस मस्तक के गिराने के लिये हाथको बहुतही कँपाया॥७॥पार्वतीजी बोली कि हे देवि ! पापविनाशक नवीन तीर्थको उत्पन्न करिये हे दुर्गे ! उसमें स्नान करने से प्रायश्चित्त होवेगा ॥ ८ ॥ इस प्रकार पार्वतीजी से कहीहुई पापकी शङ्कावाली प्रवीण दुर्गाजी ने तलवार से पत्थर की

भावेण निष्प्रत्यूहश्चमेतपः ॥ ५ ॥ अथैतन्माहिषंशीर्षमपवित्रंभयङ्करम् ॥ जगत्पवित्रचारित्रे त्यक्तुमर्हसिहस्ततः॥६॥ इतिगौर्योदितादुर्गा जुगुप्साकुलमानसा ॥ मूर्द्धस्तस्यनिपाताय व्यधुनोद्बहुशःकरम् ॥७॥ गौर्युवाच ॥ तीर्थमुत्पादयता न्देवि नवंपापविनाशनम् ॥ तस्मिन्निमज्जनाद्दुर्गेप्रायश्चित्तंभविष्यति ॥ ८ ॥ इतीरितातदागौर्या दुर्गादुरितशङ्किनी ॥ पाटयामासखड्गेन शिलापट्टंपटीयसी ॥९॥ पातालावधिनिर्भिन्नात्पाषाणतलतस्ततः ॥ उदजृम्भत्तरङ्गाम्भःपवित्रमतिनिर्मलम् ॥ १० ॥ ममज्जसापिगम्भीरे तस्मिन्नम्भसिपावने ॥ नमःशोणाद्रिनाथायेत्युक्त्वामन्त्रमनुत्तमम् ॥११॥ तावन्माहिषकण्ठस्थं लिङ्गन्तद्गलितन्तदा ॥ तटेप्रतिष्ठितंजातं पापनाशनसंज्ञया ॥ १२॥ उन्ममज्जततोदुर्गातीर्थाम्भोधूतकल्मषा ॥ निपपाताथतत्पाणेर्महिषासुरमस्तकम् ॥ १३ ॥ कृतप्रदक्षिणानत्वा पापनाशनमीश्वरम् ॥ पुरस्तादाससागौर्या गौतमेनाभिनन्दिता ॥ १४ ॥ एवंप्रत्यक्षनिहतपापान्तांवीक्ष्यपार्वती ॥ जगाददीर्घतपसं गौतमंमुनि

शिलाको विदारण किया ॥ ९ ॥ तदनन्तर पातालतक फूटेहुये पत्थर से अतिनिर्मल व पवित्र तरंगों से जल उत्पन्न हुआ ॥ १० ॥ और उन दुर्गाजीने भी अरुणाचलके लिये नमस्कार है ऐसा अतिउत्तम मन्त्र कहकर उस पवित्र जलमें स्नान किया ॥ ११ ॥ तबतक महिषासुर के गलेमे स्थित लिग उस समय उसमें गिरकर पापनाशक संज्ञासे किनारे पै स्थापित हुआ ॥ १२ ॥ तदनन्तर तीर्थ के जलसे पापरहित दुर्गाजी स्नानकर ऊपर निकलीं इसके अनन्तर उसके हाथसे महिषासुरका मस्तक गिरपड़ा ॥ १३ ॥ प्रदक्षिणा को कियेहुई पार्वती व गौतमजी से प्रशंसित वे दुर्गाजी पापनाशक ईश्वर को प्रणामकर आगे बैठगई ॥ १४ ॥ इस प्रकार प्रत्यक्ष

हीं नष्ट पातकोंवाली उन दुर्गाजी को देखकर उत्तम नितम्बवाली पार्वतीजी बड़ी तपस्यावाले गौतमजी से बोलीं ॥१५॥ कि महिषासुर के नाश करनेके लिये यथार्थ
बुद्धि कीगई और इस विन्ध्यवासिनीने दुष्ट महिषासुर के शरीर को ॥१६॥ ग्रहणकर भक्षण किया उसीका यह शिवलिंग है इस लिये हे मुनिश्रेष्ठ ! मेरे भी प्रायश्चित्तको
कहिये ॥ १७ ॥ गौतमजी बोले कि हे सब संसारकी सृष्टि व पालन तथा संहार करनेवाली देवि ! हे अम्ब ! तुम्हारा ध्यान सब लोकोंके पातकों का नाशक है ॥ १८ ॥
इसपर भी संसार के चरित्र का अवलम्बनकर तुमने कहाहै क्योंकि अपनी कीहुई भी मर्यादा महात्माओं से उल्लंघन नहीं कीजाती है ॥१९॥ हे मातः ! चित्तको शुद्ध

तम्बिनी ॥ १५ ॥ महिषासुरसंहारेऽस्मसाहन्तुम्मतिःकृता ॥ विन्ध्यवासिन्यसावेव दुष्टमाहिषविग्रहम् ॥ १६ ॥ गृहीत्वा
भक्षयामास तस्यलिङ्गमिदंशिवम् ॥ प्रायश्चित्तंततोब्रूहि ममापिमुनिसत्तम ॥ १७ ॥ गौतमउवाच ॥ देविसर्वजगत्स
र्गस्थितिसंहारकारिणि ॥ त्वद्ध्यानमम्बजगतां सर्वपातकनाशनम् ॥ १८ ॥ अथापिलौकिकंवृत्तमवलम्ब्यत्वये
रितम् ॥ स्वकृतापिहिमर्यादा नमहद्भिर्विलङ्घ्यते ॥ १९ ॥ अन्तःकरणकालुष्यक्षालिनीकापिसाक्रिया ॥ कथ्यतेद्य
मयामातस्त्वधानंविधीयताम् ॥ २० ॥ अरुणाद्रिरयंसाक्षादनलाद्रिस्तिरोहितः ॥ ज्वलतेज्योतिषास्वेन कृत्तिकापू
र्णिमानिशि ॥ २१ ॥ तत्सपर्यातपश्चर्या कार्याकात्यायनित्वया ॥ तज्ज्योतिदर्शनात्सर्वमभीष्टन्तवसिद्ध्यति ॥ २२ ॥
इत्युक्तागौतमेनाम्बा तदाप्रभृतिदारुणम् ॥ इयंचशिवभक्ताहि शिवपूजारतासदा ॥ २३ ॥ तपश्चचारपञ्चानामग्नी
नांमध्यमाश्रिता ॥ चतुर्णांशिखिनांमध्ये स्थितासूर्यनिविष्टदृक् ॥ २४ ॥ रेजेहैमीशलाकेव द्योतमानागिरीन्द्रजा ॥

करनेवाला वह कर्म आज मुझसे कहाजाता है सावधान विधान होवे याने उसको सावधान होकर सुनिये ॥२०॥ कि छिपाहुआ अग्निपर्वत यह साक्षात् अरुणाचल
कृत्तिका नक्षत्रसंयुत पूर्णमासी में अपने तेजसे प्रकाशितहोताहै ॥२१॥ हे कात्यायनि ! उसकी सेवा व तपस्या तुमको करनाचाहिये क्योंकि उसकी ज्योतिके दर्शन से
तुम्हारा सब मनोरथ सिद्धहोगा ॥ २२ ॥ गौतमजी से ऐसा कहीहुई इन शिवभक्त पार्वतीजी ने तबसे लगाकर सदैव शिवजी के पूजन में परायण होकर व पांचों
अग्नियोंके मध्यमें स्थित होकर भयङ्कर तप किया चार अग्नियों के बीचमें स्थित व सूर्यनारायणमें दृष्टिको लगायेहुई ॥ २३। २४ ॥ प्रकाशित होती हुई गिरिराज-

नन्दिनी पार्वतीजी सोनेकी सलाईकीनाई शोभितहुई इसके अनन्तर पार्वतीजी के बड़ेलम्बे प्रेमपाशों से खींचीहुईसी वह कार्त्तिकी पौर्णमासी उत्तम तिथि भलीभाति प्राप्तहुई ॥ २५ ॥ तदनन्तर उस दिनके अन्तमें अरुणाचलके शिखरपै उपाधिरहित ऐश्वर्यवाली कोईभी अपूर्व ज्योति देखपड़ी ॥ २६ ॥ और उसके लिये आयेहुये देवर्षियों समेत ब्रह्मा विष्णु व इन्द्रादिक देवताओं से उपासना किये जाते हुये ॥ २७ ॥ उस बिन इन्धन व बिन स्नेह (तैल) वाले व बिन रुई की बत्ती से उत्पन्न बड़ेभारी दीपक को देखकर पार्वतीजी विस्मयको प्राप्तहुईं ॥ २८ ॥ इसके अनन्तर पगपग पै प्रणाम करती प्रदक्षिणा को कियेहुई पर्वतनन्दिनीजी ने उस

अथाकृष्टेवपार्वत्याः प्रेमपाशैर्निरायतैः ॥ साकार्त्तिकीपौर्णमासी समापेदेशुभातिथिः ॥ २५ ॥ ततस्तस्यदिनस्यान्ते शृङ्गेशोणमहीभृतः ॥ अदर्शिकिमपिज्योतिरनुपाधिकवैभवम् ॥ २६ ॥ तदर्थोपागतैर्ब्रह्ममधुभिद्वासवादिभिः ॥ उपास्यमानमभितो देवैर्दिव्यर्षिसङ्गतैः ॥ २७ ॥ तदनिन्धनमस्नेहमतूलवर्त्तिसम्भवम् ॥ महाप्रदीपमालोक्य विस्मयं प्रापपार्वती ॥ २८ ॥ कृतप्रदक्षिणासाथ प्रणमन्तीपदेपदे ॥ अरुणाद्रीश्वरंनाथं तदातुष्टावशैलजा ॥२९ ॥ नमस्तेमेरुवामाय कैलासाचलवासिने ॥ नीहारशैलजामात्रे शोणक्ष्माधररूपिणे ॥ ३० ॥ वरुणादिसुरार्च्याय तरुणादित्यवर्चसे ॥ अरुणाचलनाथाय करुणामूर्त्तयेनमः ॥ ३१ ॥ जयजह्नुसुताचन्द्रलेखालंकृतशेखर ॥ सौन्दर्यमोहिताशेषमुनिपत्नीजनाशय ॥ ३२ ॥ जयशैलसुतासङ्गसंभृतानङ्गवैभव ॥ मायानारायणाभोगक्रीडाकरणपण्डित ॥ ३३ ॥ ज

समय उन अरुणाचलेश्वरजी की स्तुतिक्रिया ॥ २९ ॥ कि सुमेरुगिरिवासी आपके लिये प्रणाम है व कैलासपर्वत पै बसनेवाले हिमाचलके दामाद अरुणाचलरूपी आपके लिये प्रणाम है ॥ ३० ॥ वरुणादिक देवताओं से पूजनीय व मध्यदिन में सूर्यनारायण के समान तेजवाले दयामूर्त्ति अरुणाचलेशजी के लिये नमस्कार है ॥ ३१ ॥ हे जह्नुकी कन्या श्रीगंगाजी से व चन्द्रमा की कलासे शोभित मस्तकवाले ! आपकी जयहो हे सौंदर्य से मुनिपत्नियों के आशय को मोहनेवाले ! आपकी जयहो ॥ ३२ ॥ हे पार्वतीजीके संगमें कामदेवके ऐश्वर्यको धारण करनेवाले,मायासे नारायणकी परिपूर्णतामें क्रीड़ा करनेके लिये चतुर ! आप

की जयहो ॥ ३३ ॥ हे शम्भो, ईशान, अपने आनन्दके लिये ताण्डव (नृत्य) करनेवाले शिवजी ! आपकी जयहो हे देवता, गन्धर्व, सिद्ध व विद्याधरों से पूजित ! आपकी
आपकी जयहो ॥ ३४ ॥ हे गणेशके पिताजी । जयहो हे स्वामिकार्त्तिकेयप्रिय ! आपकी जयहो हे हैमवती (पार्वती) जी से प्रार्थना करनेयोग्य ! आपकी
जयहो हे नृपतिदुर्लभ ! आपकी जयहो ॥ ३५ ॥ इस प्रकार प्रसन्नता से स्तुतिकर उस ज्योतिमें नेत्रोंको लगायेहुई पार्वतीदेवीजी को देखकर सदाशिवजी दयाके
बहानेसे अन्तर्द्धानहोगये ॥३६॥ और लीनहोकर अपने अत्यन्त सुन्दररूप को प्राप्त होकर व दिव्य बैलपर सवार होकर इन उत्तम पार्वतीजीको देखकर ॥३७॥ मान

यशम्भोशिवेशान स्वानन्दकृतताण्डव ॥ जयगीर्वाणगन्धर्वसिद्धविद्याधरार्चित ॥ ३४ ॥ जयहेरम्बजनक जयषण्मु
खवत्सल ॥ जयहैमवतीप्रार्थ्य जयपार्थिवदुर्लभ ॥ ३५ ॥ इतिस्तुत्वामुदातस्मिञ्ज्योतिषिन्यस्तलोचनाम् ॥ दृष्ट्वादे
वीन्दयाव्याजान्निलिल्येवृषभध्वजः ॥ ३६ ॥ लयित्वानिजमास्थाय रूपमत्यन्तसुन्दरम् ॥ आस्थायवृषभंदिव्यमि
मान्दृष्ट्वाशिवांशुभाम् ॥ ३७ ॥ मानातिरेकादपहायसर्वमैश्वर्यमेवंतपसिस्थितांताम् ॥ मुग्धांपुनःसान्त्वयितुंगिरी
शः प्रचक्रमेपर्वतराजपुत्रीम् ॥ ३८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽरुणाचलमाहात्म्येत्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥ * ॥
नन्दिकेश्वरउवाच ॥ तदाब्रह्मासरस्वत्या महाविष्णुश्चपद्मया ॥ शक्रःपुलोमसुतया परेदिक्पालकाअपि ॥ १ ॥
गन्धर्वाप्सरसांसङ्घा वसवोपिसुराअपि ॥ त्रयस्त्रिंशतकोटिगणाः सुरामुनिगणास्तथा ॥ २ ॥ एकादशमहारुद्रा आदि

की अधिकता से सब ऐश्वर्य को छोड़कर इस प्रकार तपस्या में स्थित मुग्ध थोड़ी अवस्थावाली पार्वतीजीको फिर समझाने के लिये सदाशिवजीने प्रारम्भ किया ॥
३८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽरुणाचलमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांत्रयस्त्रिंशोऽध्यायः॥ ३३ ॥ ⊛ ॥
दो० । तब प्रसन्न ह्वै शिव यथा कह्यो उमासन बैन। चौतिसवें अध्यायमें सोइ चरित सुखऐन । नन्दिकेश्वरजी बोले कि उस समय सरस्वती समेत ब्रह्मा व लक्ष्मी
समेत विष्णु तथा इन्द्राणी समेत इन्द्रजी और दिक्पालभी ॥१॥ व गन्धर्व तथा अप्सराओंके गण व वसु देवता भी और तैंतीस कोटि देवगण व मुनिगणभी॥ २ ॥

और गेरह महारुद्र व बारह सूर्य तथा भैरव पिशाच, वेताल व कटपूतना ॥ ३ ॥ यक्ष, राक्षस, प्रेत, भूत व जो अन्य शिवजी के सेवक थे वे सब सन्तोषभागी हजारोंगण भयङ्कररूप से संयुत होकर शिवजी को घेरकर प्राप्तहुये ॥ ४ ॥ और योगिनी व दानवोंसे कीहुई अतिभयदायिनी उस युद्धभूमि को कल्पान्तके समान भयानक देखकर सब बहुतही, विस्मय को प्राप्तहुये ॥ ५ ॥ व समीपता कियेहुये शिवजी को देखकर आनन्द देतीहुई पार्वतीजीने बहुत दिनो से दृढ़ उस वियोग के दुःखको त्याग किया ॥ ६ ॥ और रोमाञ्च संयुत व पसीना संयुत मुखवाली तथा कापतीहुई व कठोर स्तनोंवाली उन पार्वतीजीने चरणोंकी अंगुलियोंमें नेत्रों

त्याद्वादशाअपि ॥ भैरवाश्चपिशाचाश्च वेतालाःकटपूतनाः ॥ ३ ॥ यक्षरक्षःप्रेतभूता येचान्येशिवकिङ्कराः ॥ सन्तोषभाजःसर्वेपि भीमरूपेणसंयुताः ॥ परिवार्य्यमहेशानं समाजग्मुःसहस्रशः ॥ ४ ॥ तद्वीराःसंशयंदृष्ट्वा योगिनीदानवैः कृतम् ॥ अतीवविस्मयम्भेजुः सर्वेकल्पान्तभीषणम् ॥ ५ ॥ कृतसान्निध्यमालोक्य देवमानन्दयत्युमा ॥ चिररात्रप्ररूढाञ्च तद्वियोगव्यथाञ्जहौ ॥ ६ ॥ रोमाञ्चितास्विन्नमुखीवेपमानाघनस्तनी ॥ पादाङ्गुलीषुनयने विनिवेशयतिस्मसा ॥ ७ ॥ वृषभादवरुह्याथ गृहीत्वैनांकरेशिवः ॥ स्मयमानमुखाम्भोजः प्रणयेनैवमब्रवीत् ॥ ८ ॥ व्याकुलीक्रियतेदेवि किमेतत्कारणंविना ॥ सर्वैराराधनीयेति मयापिघटिताञ्जलिः ॥ ९ ॥ किंनवेत्स्यावयोरैक्यं ज्योत्स्नाचन्द्रमसोरिव ॥ आनीतंप्रथमंदेवि तवेदम्भोग्यमीदृशम् ॥ १० ॥ केदंशिरीषमृद्वाङ्गि शरीरन्तेगिरीन्द्रजे ॥ पुनःसमाधयश्चेति क्व कर्कशजनोचिताः ॥ ११ ॥ नारायणोहंलक्ष्मीस्त्वं ब्रह्मास्मित्वंसरस्वती ॥ वारुणीत्वंफणीन्द्रोहं रोहिणीत्वमहंश

को लगाया ॥ ७ ॥ इसके अनन्तर बैलसे उतरकर इन पार्वतीजी के हाथको पकड़कर मुसक्यातेहुये मुखकमलवाले सदाशिवजी प्रेमहीसे इसप्रकारबोले ॥८॥ कि हे देवि ! यह क्याहै कि बिन कारण चित्त व्याकुल कियाजाताहै तुम सबोंसे आराधन कीजातीहो इसलिये मैंनेभी अंजलि किया याने हाथोंको जोडा ॥ ९ ॥ क्या उजियाली व चन्द्रमाकीनाईं जो हमारी तुम्हारी एकता है उसको नहीं जानतीहो हे देवि ! पहले तुम्हारे भोगनेयोग्य यह ऐसा शरीर प्राप्त कियागयाहै ॥ १० ॥ हे सिरसा के फूलके समान कोमल अङ्गोंवाली, गिरिराजकुमारि ! कहां तुम्हारा यह शरीर और फिर कठोरजनोंके योग्य कहा समाधियाहैं ॥ ११ ॥ मै नारायणहूं तुम

लक्ष्मीहो व मैं ब्रह्माहूं और तुम सरस्वतीहो व तुम वारुणीहो मैं सर्पराजहूं तुम रोहिणीहो और मैं चन्द्रमाहूं ॥१२॥ तुम स्वाहाहो मैं अग्निहूं और म… हूं तुम सुवर्चला
हो और तुम पुलोमादैत्यकी कन्याहो मैं इन्द्रहूं तुम रतिहो व मैं कामदेवहूं ॥१३॥ तुम बुद्धिहो और मैं राजराजहूं तुम शिवाहो और मैं पवनहूं मैं जलजन्तुओंका स्वामी
हूं तुम वीचि (लहरी) हो व तुम प्रकृतिहो और मैं पुरुषहूं ॥ १४ ॥ तुम विद्याहो और मैं जाननेयोग्यहूं व हे पार्वति ! तुम वाणीहो मैं अर्थहूं और मैं ईश्वरहूं और
मेरे अंशवाली तुम्हीं आज्ञारूपिणी हो ॥ १५ ॥ हे सृष्टि, पालन व संहार करने में अनुग्रहेश्वरि ! हममें व तुममें किसीको साधारणजनों की नाईं भेद न करना

शी ॥ १२ ॥ स्वाहात्वंहव्यवाहोहं सूर्योहन्त्वंसुवर्चला ॥ पुलोमजात्वंशक्रोहं त्वंरतिश्चित्तभूरहम् ॥ १३ ॥ बुद्धिस्त्वंराज
राजोहं त्वंशिवाहंसमीरणः ॥ यादोऽधिपोहंत्वंवीचिस्त्वं प्रकृतिस्त्वंपुमानहम् ॥ १४ ॥ विद्यात्वंवेदितव्योहं वाक्त्वमर्थो
स्मिपार्वति ॥ ईश्वरोहंमदंशासि त्वमेवाज्ञास्वरूपिणी ॥ १५ ॥ सृष्टिस्थित्युपसंहारविधानानुग्रहेश्वरि ॥ नभेदःकेनचि
त्कार्यः प्राकृतजनवदावयोः ॥ १६ ॥ चित्प्रकाशात्मनोर्देविस्वेच्छाधृतशरीरयोः ॥ व्याकुलीकुरुषेशश्वत्कथन्त्वंगि
रिनन्दिनि ॥ १७ ॥ इत्युक्त्वेशोनिषसस्तांपार्श्वदेशेन्यवेशयत ॥ १८ ॥ गौरींस्वकीयवामाङ्गेगूहमानामिवाह्रिया ॥ अ
ङ्गद्वयंतयोरैक्यमगात्प्रेम्णाचलीनयोः ॥ १९ ॥ अर्थद्वयमिवाभाति सन्निकर्षोपलम्भतः ॥ अर्द्धकर्पूरधवलमर्द्धसिन्दूर
पाटलम् ॥ २० ॥ तद्विचित्रमभूदङ्गं शिवयोरेकतागतम् ॥ अर्द्धंकुन्तलदामार्द्धे हारमर्द्धेतुकाञ्चिका ॥ २१ ॥ एकनूपुर

चाहिये ॥ १६ ॥ हे देवि ! जोकि हम तुम अपनी इच्छासे शरीरको धारणकियेव चित्प्रकाशात्मक हैं हे गिरिनन्दिनि ! सदैव तुम क्यों चित्तको व्याकुल करतीहो ॥
१७ ॥ ऐसा कहकर बैठेहुये सदाशिवजी ने उन पार्वतीजी को समीपही अपने बायें भागवाले अङ्गमें बिठालिया जोकि लज्जा से मानो छिपीजाती थी प्रेमसे मिले
हुये उन दोनोंके अङ्गोंकी एकता होगई ॥ १८ । १९ ॥ मानो समीपहीमें प्राप्तिसे दो अर्थ शोभितहैं आधाअंग कपूरके समान श्वेत व आधा सिन्दूरकेसमान श्वेत तथा
अरुणवर्ण है ॥ २० ॥ एकतामें प्राप्त पार्वती व शिवजीका वह अंग विचित्र होगया कि आधे शिरमें घुंघुवारे बालोंमें फूलोंकी माला व आधेमें हार और आधेमें क्षुद्रघ-

रिटका है ॥२१॥ व एकओर घुंघुरू झुमका तथा कङ्कणसे मनोहरहै सदाशिवजीने अपने बायें अर्द्धांगको देवीजीकेलिये देकर उनसे बोले ॥ २२ ॥ कि हे देवि ! इसके उपरान्त तुम्हारे क्रोधका अवकाश मत होवे जिस लिये तुम दूधको चाहनेवाले स्वामिकार्त्तिकेयजी को छोड़कर तपस्या के लिये गईथी ॥ २३ ॥ इस लिये अपीतस्तनी नामसे यहां मेरे समीप बसिये और हे देवि ! अपीतस्तनी नामक तुमको व अरुणाचलेश नासक मुझकोभी ॥२४॥ भलीभांति आराधनकर सब मनुष्य भोग व मोक्षमें रमणकरैं और मनुष्यों की मन्त्रसिद्धिको देनेवाली व महिषासुरको मारनेवाली तुम्हारे अंशसे उत्पन्न ये दुर्गादेवीजी यहीपर भलीभांति साधनाकरैं और

ताटङ्कपारिहार्यमनोहरम् ॥ देव्यैदत्त्वास्ववामार्धं वामदेवोजगादताम् ॥२२॥ अवकाशोरुषोदेवि माभून्नातःपरन्तव ॥ स्तन्यार्थिनंगुहंहित्वा यातासितपसेयतः ॥ २३ ॥ तदपीतस्तनीनाम्ना निवसात्रममान्तिके ॥ त्वामपीतस्तनीन्देवि शोणाद्रीशञ्चमामपि ॥ २४ ॥ जनाःसर्वेसमाराध्य रमन्ताम्भोगमोक्षयोः ॥ इयन्त्वदंशजादेवी दुर्गामहिषसूदिनी ॥ २५ ॥ अत्रैवसंसाधयतां मन्त्रसिद्धिप्रदान्नृणाम् ॥ खड्गतीर्थमिदंपुण्यं सकृदेवनिमज्जनात ॥ २६ ॥ सर्वरोगहरंपुंसामस्तुसर्वाघनाशनम् ॥ प्रवालगिरिनाथश्च देवोयंपापनाशनः ॥ २७ ॥ भक्तिश्रद्धावतांनृणाम्भूयाद्भैभूतयेभृशम् ॥ अयञ्च गौतमोदेवि त्वदनुग्रहभाजनम् ॥ २८ ॥ तपोनुरूपम्भजताल्लोकेह्याचन्द्रतारकम् ॥ इमाश्चमातरःसप्त सप्तलोकैकमातरः ॥ २९ ॥ अद्यप्रभृतिकुर्वन्तु सान्निध्यञ्चतवाश्रये ॥ शास्तारोभैरवाःक्षेत्रपालकाबटुकाअपि ॥ ३० ॥ अरुणक्षेत्रएवात्र नित्यंकुर्वन्तिसन्निधिम् ॥ अत्राहमरुणक्षेत्रे सुलभाःसर्वसिद्धयः ॥ ३१ ॥ इदंकृतंपर्वतराजपुत्र्या प्रसादनंशोणगि

यह पुण्यदायक खड्गतीर्थ एकही बार स्नान करने से ॥ २५ । २६ ॥ मनुष्यों के समस्त रोगोंको हरनेवाला व समस्त पातकों का नाशक होवैगा और ये प्रवालाचलेश शिवदेवजी पापनाशक ॥ २७॥ व भक्ति श्रद्धावाले पुरुषों के बहुतही ऐश्वर्य के लिये होवैंगे व हे देवि ! तुम्हारी दयाके पात्र ये गौतमजी ॥ २८ ॥ तपस्या के अनुसार तबतक भजैं संसार मे जबतक चन्द्रमा व नक्षत्र रहैं और सातोंलोकों की एकमातायें ये सात मातृका ॥ २९ ॥ आजसे लगाकर तुम्हारे आश्रय में समीपता करैं और शिक्षा करनेवाले भैरव क्षेत्रपाल व बटुक भी ॥३०॥ नित्य इस अरुणक्षेत्रहीमें समीपता करतेहैं और यहां पर मैं स्थितहूं व इस अरुणक्षेत्र में सब सिद्धियां

सुलभ है ॥ ३१ ॥ पर्वतराज हिमालयकी कन्या से अरुणाचलेशजी की कीहुई इस प्रसन्नताको जो सुनता है वह शत्रुओं को नाशकर सुलभ स्वर्ग मोक्षको प्राप्तहोता है ॥ ३२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽरुणाचलमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांचतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । सूत अरु अश्व दोउ यथा छोड़्यो निज निज रूप । पैंतिसवें अध्याय में सोई चरित अनूप ॥ मार्कण्डेयजी बोले कि हे स्वामिन्, नित्यशिवानन्द, भगवन्, नन्दिकेश्वरजी ! तुमने अरुणाचलेशजी के माहात्म्यरूपी अमृतसे मुझ को प्रसन्न किया ॥ १ ॥ पाण्ड्यदेश के राजा वज्रांगद ने किस प्रकार अरुणाचल

रीश्वरस्य ॥ शृणोतियःसद्विषतोवधूय स्वर्गापवर्गौसुलभावुपेयात् ॥ ३२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽरुणाचलमाहात्म्ये ॥

चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥ स्वामिन्नित्यशिवानन्द भगवन्नन्दिकेश्वर ॥ आह्लादितोस्मिशोणेशमाहात्म्यसुधयात्वया ॥ १॥ कथंवज्राङ्गदःपाण्ड्यराजःशोणंव्यतिक्रमम् ॥ चक्रेकथंतद्धकत्यैव प्राप्तवान्सम्पदम्पुनः ॥ २॥ कथंविद्याधराधीशौ कान्तिशालिकलाधरौ ॥ दुर्वासःशापनिर्बन्धान्मोचितौशोणशम्भुना ॥ ३ ॥ नन्दिकेश्वरउवाच ॥ दीर्घायुष्मन्त्वसाफल्यंलब्धवांस्त्वंमृकण्डुज ॥ यदिदंश्रेयसीभक्तिर्भवतोभूतनायके ॥४॥ वक्ष्येवज्राङ्गदोदन्तमहंविद्याभृतोह्यपि ॥ यतोभून्महितंलोके शोणाद्रीश्वरवैभवम् ॥ ५ ॥ आसीद्वज्राङ्गदोनाम पाण्ड्यदेशेषुपार्थिवः ॥ आस्तेयस्यभुजःस्तम्भेव सुधासागरान्तका ॥६॥ धार्मिकोन्यायविद्दान्तो गम्भीरोदाक्षिणःक्षमः॥ शान्तोविनयवान्धीमानेकदारव्रतःकृती॥७॥

का व्यतिक्रम किया है व फिर किसप्रकार उनकी भक्तिसे लक्ष्मीको पायाहै ॥२॥ और कान्तिशाली व कलाधर विद्याधरों के स्वामीभी किस प्रकार अरुणाचलेशजी से दुर्वासाजी के शापके निबन्धन से छुड़ायेगये है ॥ ३ ॥ नन्दिकेश्वरजी बोले कि हे मृकण्डुजी के पुत्र मार्कण्डेयजी ! तुमने दीर्घायुबल की सफलता को पाया जोकि भूतनाथ शिवजी में आपकी यह कल्याणकारिणी भक्ति है ॥ ४ ॥ मैं वज्रांगद के वृत्तान्त को कहताहूं कि जिस विद्याधर से संसार में अरुणाचलेशजी का ऐश्वर्य पूजितहुआहै ॥ ५ ॥ पाण्ड्यदेशों में वज्रांगद नामक राजा हुआहै कि जिसके भुजारूपी स्तम्भमें समुद्र अन्तवाली पृथ्वी हुईहै ॥ ६ ॥ वह राजा धर्मवान्, न्यायका

जाननेवाला तथा इन्द्रियजित् व गम्भीर, चतुर व समर्थ था और शान्त, विनयसयुत, बुद्धिमान् व पुण्यवान् और एकही स्त्रीसे भोग करनेवाला था ॥ ७ ॥ शिवपूजन में तत्पर, श्रीमान् व शीलवालों में श्रेष्ठ तथा शत्रुवों को जीतेहुये उसने इस समस्त पृथ्वीका पालन किया ॥ ८ ॥ किसी समय घोड़े समेत शिकार खेलताहुआ वह अरुणाचल तक वनमें भ्रमताभया ॥ ९ ॥ वहांपर उसने बहुत सुगन्धवाले किसी कस्तूरीवाले मृगको देखकर उसके पीछे कौतुक से घोड़ेको प्रवृत्त कराया याने चलाया ॥ १० ॥ सबओर घेरतेहुये उन राजा से घिराहुआ वह पवन व मनके समान वेगवाला मृग अरुणाचल की प्रदक्षिणा से सबओर चलताभया ॥ ११ ॥ तदन-

शिवपूजासुनिरतः श्रीमाञ्छीलवतांवरः ॥ पृथ्वीमिमाञ्चसकलां शशासजितशात्रवः ॥ ८ ॥ सकदाचिन्मृगव्यान्तु सञ्चरन्सतुरङ्गमः ॥ अरुणाचलपर्यन्तं कान्तारंसमगाहत ॥ ९ ॥ सतत्रबहुलामोदं कञ्चित्कस्तूरिकामृगम् ॥ दृष्ट्वातमन्वकुरगं प्रावर्तयतकौतुकात् ॥ १० ॥ समृगोरुन्धतातेनभ्रमितःशोणपर्वतम् ॥ प्रादक्षिणात्परीयाय पवमानमनोजवः ॥ ११ ॥ ततोवज्राङ्गदोनाम राजाजातश्रमस्त्वरन् ॥ पपातवाहाद्विच्छायः क्षीणपुण्यइवाभ्रतः ॥ १२ ॥ मध्यंदिनगतेनैव मार्तण्डेननिपीडितः ॥ नाज्ञासीत्क्षणमात्मानंराजाग्रहगृहीतवत् ॥ १३ ॥ अचिन्तयच्चकायंमे निर्हेतुःसत्त्वविप्लवः ॥ क्वगतःसमृगःस्थेयान् मामद्राविहत्यज्यच ॥ १४ ॥ इतिचिन्ताकुलेतस्मिन्नज्ञानेनचदुःखिते ॥ तडित्पुञ्जैश्चव्याप्तेव सहसाद्यौरदृश्यत ॥ १५ ॥ निरीक्षमाणएवास्मिन्हित्वातिर्यक्कलेवरम् ॥ क्षणात्तुरङ्गसारङ्गौ खेचरत्वमुपा

न्तर शीघ्रता करतेहुये वज्रागद नामक राजा परिश्रमसंयुत होकर घोड़े से कान्तिहीन होकर गिरपड़े जैसे कि क्षीणपुण्यवाला पुरुष आकाश से गिरै ॥ १२ ॥ और दुपहरके मध्यमें प्राप्त सूर्यनारायणजी से पीड़ित राजाने ग्रह (भूतादि) से पकड़े हुये की नाईं क्षणभर अपना को नहीं जाना ॥१३॥ और चिन्तन किया कि यह मेरे बलका नाश कहांसे होगया और अत्यन्त स्थिर वह मृग इस पर्वत पै मुझको छोड़कर कहांगया ॥ १४ ॥ इस प्रकार जब अज्ञान से दुःखित वह राजा चिन्तासे विकल हुआ तब बिजली के समूहों से व्याप्तसा आकाश देखपड़ा ॥ १५ ॥ और इस के देखनेही पर पशुवाले शरीर को छोड़कर क्षणभर में घोडा व मृग आकाशगा-

अ
अ
२

मिलको प्राप्तहुये ॥ १६ ॥ व किरीट तथा कुण्डलको धारे और हार व बजुल्लाको धारण किये व रेशमी धोती पहने और मालाओं को धारेहुये वे दोनों शोभित
हुये ॥ १७ ॥ इसके अनन्तर दाँतों के किरणसमूहों से उसके बड़ेभारी अन्धकार को हरते हुयेसे वे दोनों आश्चर्य से खींचेहुये मनवाले राजासे बोले ॥ १८ ॥ कि
हे राजन्! विषादसे कुछ कार्य नहीं है हम दोनोंही की पैदाहुई इस ऐसी दशाको ग्रहणाचलके प्रभावसे जानिये ॥ १९ ॥ उस समय उन दोनोंके वचनसे कुछ सहँ-
तायेहुयेसे नम्रता समेत राजा हाथोंको जोड़कर उन दोनोंसे बोले ॥ २० ॥ कि हे कल्याणरूप! तुम दोनों कौन हो और मेरा यह तिरस्कार किस कारण हुआ इसको

गतौ ॥ १६ ॥ किरीटिनौकुण्डलिनौ हारकेयूरधारिणौ ॥ क्षौमान्तरीयौद्वौचापि स्रग्विणौचविरेजतुः ॥ १७ ॥ अथो
चतुस्तंनृपतिमाश्चर्याकृष्टमानसम् ॥ हरन्ताविवदन्तांशुजालैस्तस्यमहत्तमः ॥ १८ ॥ राजन्नलंविषादेन शोणाद्रीश
प्रभावतः ॥ एतांजानीहिसञ्जातां द्वयोश्चैवदशान्दशाम् ॥ १९ ॥ तदावाचातयोःकिञ्चिदाश्वस्तइवपार्थिवः ॥ कृता
ञ्जलिरभाषिष्ट तावुभौविनयान्वितः ॥ २० ॥ कौयुवांकिंनिमित्तोयमभिषङ्गोममेदृशः ॥ भद्रौमणतमार्तानां त्राणोहि
महतांगुणः ॥ २१ ॥ इतितेनकृतप्रश्ने तमुवाचकलाधरः ॥ राजानंजनिताश्चर्यं निर्दिष्टःकान्तिशालिना ॥ २२ ॥
अवैहिराजन्नावांहि पुराविद्याधरेश्वरौ ॥ परस्परातिसौहार्दौवसन्तमदनाविव ॥ २३ ॥ एकदातुसुवर्णाद्रेः पार्श्वेदुर्वाससो
मुनेः ॥ तपोवनमगच्छाव मनसापिदुरासदम् ॥ २४ ॥ क्रोशेचतपसस्तस्य शिवाराधनसाधनीम् ॥ पुष्पोज्ज्वलामप
श्याव पुण्यामारामवाटिकाम् ॥ २५ ॥ वनेद्वावपिसञ्जातौ तत्त्वचिन्तननैपुणौ ॥ प्रविशावस्तदुद्यानं प्रसूनापचयो

कहिये क्योंकि दुःखियों की रक्षा करना महात्माओं का गुणहै ॥ २१ ॥ जब उस राजाने ऐसा प्रश्न किया तब कांतिशाली से बतलायेहुये कलाधरने पैदाहुये आश्चर्य
वाले उस राजा से कहा ॥ २२ ॥ कि हम दोनोंको पुरातन समयके विद्याधर जानिये जोकि आपस में बड़ी मित्रतासे वसन्त व कामदेवकी नाईं थे ॥ २३ ॥ एकसमय
सुमेरुगिरि के समीप मनसे भी दुःखसे जानेयोग्य दुर्वासामुनि के तपोवन को गये ॥ २४ ॥ और कोसभर पै शिवजी के आराधनको साधन करनेवाली उन मुनिकी
तपस्या से पुण्यदायिनी व पुष्पोंसे उज्ज्वल बगीचा को हम दोनों ने देखा ॥ २५ ॥ और यथार्थ की चिन्ता में निपुण हम दोनों जन वनमें गये व फूलों के

तोड़ने में उत्कण्ठित हम दोनों उस वनमें पैठगये ॥ २६ ॥ उस स्थान के प्रेम से यह गर्वित कांतिशाली बार बार चरणों के धरने से पृथ्वीको घिसताहुआ भ्रमता भया ॥ २७ ॥ और वहां पुष्पोंकी बड़ीभारी सुगन्ध से मोहित तथा दुष्ट आशयवाला मैं फूलनेवाले फूलों में हाथों को धरताभया ॥ २८ ॥ तदनन्तर बिल्वकी जड़में स्थित व व्याघ्रचर्म के आसन पै बैठेहुये तपस्या की राशि दुर्वासाजी जलतीहुई अग्नि की नाईं टिकेथे ॥ २९ ॥ और क्रोधकी अधिकता के वशसे चलतेहुये ओंठोंवाले व भयानक भौंहोंके बन्धन से चलायमान लोचनोंवाले ॥ ३० ॥ दुर्वासामुनिजी ने नेत्रसे जलातेहुये से देखा तदनन्तर समीप आये ॥ ३१ ॥ व बोले कि हे पापियो!

त्सुकौ ॥ २६ ॥ स्थलस्यतस्यसौहार्दात्कान्तिशाल्येषगर्वितः ॥ सञ्चारमुहुःपादन्यासैराघट्टयन्महीम् ॥ २७ ॥ अहन्तुतत्रपुष्पाणां गन्धातिशयमोहितः ॥ विकस्वरेषुपुष्पेषु न्यस्तहस्तोदुराशयः ॥ २८ ॥ ततःशाण्डिल्यमूलस्थो व्याघ्रचर्मासनेस्थितः ॥ दुर्वासास्तपसांराशिर्ज्वलन्निवहुताशनः ॥ २९ ॥ अमर्षोत्कर्षवशतः स्यन्दमानाधरच्छदः ॥ करालभ्रूकुटीबन्धसञ्चालितविलोचनः ॥ ३० ॥ दहन्निवदृशापश्यन्नुपासर्पत्ततोमुनिः ॥ ३१ ॥ आःपापौप्रच्युताचारौ युवामत्यन्तगर्वितौ ॥ ज्वलतःकोपवह्नेर्मे शलभत्वमुपागतौ ॥ ३२ ॥ तपोवनमिदंमह्यं पावनम्भूतभावनम् ॥ पादैर्नस्पृशतःक्वापि सूर्याचन्द्रमसावपि ॥ ३३ ॥ नस्यन्दतेत्रवातोपि नलीयन्तेत्रषट्पदाः ॥ ३४ ॥ तदेतत्पादसञ्चारैर्दूषयन्नेषपातकी ॥ हयोभवतुभूर्लोके परारोहेणपीडितः ॥ ३५ ॥ अपरोप्ययमत्युग्रः पतत्वचलकन्दरे ॥ प्रसूनगन्धलोभार्थं गन्धसारङ्गतांगतः ॥ ३६ ॥ इतितेनोग्ररोषेण वचोवज्रेनिपातिते ॥ तत्क्षणाद्विगलद्गर्वावावान्तच्छरणङ्गतौ ॥ ३७ ॥

छूटेहुये आचारवाले तुम दोनों गर्वित होकर मेरी जलतीहुई कोपाग्नि की शलभताको प्राप्तहुये ॥३२॥ प्राणियों को उत्पन्न करनेवाले इस मेरे पवित्रकारक वनको कभी सूर्य चन्द्रमा भी चरणों से नहीं स्पर्श करतेहैं ॥ ३३ ॥ यहां पवन भी नहीं चलता है व यहां भ्रमर भी नहीं लीन होतेहैं ॥ ३४ ॥ इस लिये चरणों के चलानेसे वनको दूषित करताहुआ यह पापी पृथ्वीलोक में अन्य की सवारी से पीडित होकर घोड़ा होवै ॥ ३५ ॥ व अत्यन्त उग्र यह अन्य भी फूलोंके लोभके लिये सुगन्धवाले मृगत्वको प्राप्त होकर पर्वतकी कन्दरामें गिरै ॥ ३६ ॥ इसप्रकार उनसे उग्ररोषकरके वचनरूपी वज्रके गिरानेपर उसीक्षण अहङ्काररहित होकर हमदोनों उनकी शरण

में प्राप्तहुये ॥ ३७ ॥ और उन देवताके समीप जाकर व चरणकमलोंको पकड़कर कहा कि तुम्हारा शाप व्यर्थ नहीं होताहै इसलिये इसके अन्तको कहिये ॥३८॥ इस
के अनन्तर हे राजन्! बहुत उदासीनमनवाले हम दोनोंको देखकर दयाकी वृष्टिसे शीतल वे मुनि दयासंयुतहुये॥३९॥ और बोले कि हे दुर्बुद्धियो! इसप्रकार कभी मत
होना और अरुणाचल की प्रदक्षिणासे शापका अन्तहोगा ॥ ४० ॥ पुरातन समय सैकडों वर्षतक इन्द्र, उपेन्द्र व यमादिक दिग्पालों ने अरुणाचल शिवजीकी उपा-
सना कियाहै ॥ ४१ ॥ और उससमय नन्दनवनके देवताने किसी श्वेत व अरुणवर्णवाले फलको उपायन किया याने भेंटमें दिया ॥ ४२ ॥ शिशुताके कारण कौतुकसे

अभिसृत्यचतन्देवं गृहीत्वाङ्घ्रिसरोरुहौ ॥ अमोघएषत्वच्छापस्तदस्यान्तोनिवेद्यताम् ॥ ३८ ॥ अथार्तिदीनमनसा
वावामालोक्यपार्थिव ॥ सानुग्रहोऽभूत्समुनिः कारुण्यासारशीतलः ॥ ३९ ॥ अभाषतचमैवम्भो भवतःकापिदुर्धियौ ॥
शापस्यभविताशान्तिररुणाद्रेःप्रदक्षिणात् ॥ ४० ॥ पुराखलुपुरारातिररुणाद्रिःशतंसमाः ॥ पर्युपास्यतदिक्पालै
रिन्द्रोपेन्द्रयमादिभिः ॥ ४१ ॥ तदाचदेवदेवाय नन्दनारण्यदेवताम् ॥ उपायनंकृतवती फलंकिमपिपाटलम् ॥ ४२ ॥
बाल्यात्कुतूहलाकृष्टौ गजाननषडाननौ ॥ पितरंतदयाचेतां लोभनीयतरंफलम् ॥ ४३ ॥ अथतावबदद्देवस्तनयौफ
लतर्षितौ ॥ गोपयित्वाफलंपाणिसम्पुटेनकुमारकौ ॥ ४४ ॥ इमांसमस्तांपृथिवीं लोकालोकेनवेष्टिताम् ॥ योवांप्रदक्षि
णीकर्तुमीष्टेतस्मैददाम्यहम् ॥ ४५ ॥ इत्युक्तेपार्वतीशेन स्मयमानमुखेन्दुना ॥ स्कन्दःप्रदक्षिणीकर्तुं मेदिनीमुपच
क्रमे ॥ ४६ ॥ लम्बोदरस्तुदेवस्य शोणशैलाकृतेःपितुः ॥ प्रदक्षिणक्रियांकृत्वा पुरस्तादासतत्क्षणात् ॥ ४७ ॥ तद्दृ

खींचे हुये गणेश व स्वामिकार्त्तिकेयजी ने उस बहुतही लुभानेवाले फलको पितासे मांगा ॥४३॥ इसके अनन्तर हाथके सपुटसे फलको छिपाकर शिवदेवजीने फलको
चाहनेवाले उन कुमार पुत्रोंसे कहा ॥ ४४ ॥ कि लोकालोक पर्वत से घिरीहुई इस समस्त पृथ्वीकी प्रदक्षिणा करनेके लिये तुम दोनोंके मध्यमें जो समर्थ होवै उस
के लिये मैं इस फलको दूंगा ॥ ४५ ॥ मुसक्यातेहुये मुख चन्द्रमावाले शिवजी के ऐसा कहनेपर स्वामिकार्त्तिकेयजी ने पृथ्वीकी प्रदक्षिणा करने के लिये प्रारम्भ
किया ॥ ४६ ॥ और गणेशजीने अरुणाचल आकारवाले पिता शिवदेवजी की प्रदक्षिणाकर उसी क्षण आगे प्राप्तहुये ॥ ४७ ॥ उन गणेशजीकी उस चतुरताको देख

कर स्नेहसे मस्तकको झुकायेहुये त्रिलोचनजी ने इन गणेशजी के लिये फलको दिया ॥ ४८ ॥ आजसे लगाकर तुम सब फलोंके स्वामी होवो गणेशजी के लिये इस वरदान को देकर तदनन्तर फैलीहुई दांतोंकी उजियाली से कन्दरा को श्वेत कियेहुये सदाशिवजीने वहां सबभी देवताओं व दैत्योंसे कहा ॥ ४९।५० ॥ कि यह अरुणाचल मेरा स्थिरस्वरूप है जो पुरुष भक्ति से इसकी प्रदक्षिणा करता है वह समस्त ऐश्वर्यों का भागी होताहै ॥ ५१ ॥ इस पर्वतकी प्रदक्षिणासे जो पुरुष परिक्रमा करताहै वह चक्रवर्ती होकर सबसे उत्तम अविनाशी पदको प्राप्तहोताहै ॥५२॥ सदाशिवजीकी इस आज्ञासे सब देवताओंने अरुणाचलकी प्रदक्षिणाकर अपने२

ष्ट्वातस्यचातुर्यं हेरम्बायत्रियम्बकः ॥ फलंवितीर्णवानस्मै प्रणयानतमस्तकः ॥ ४८ ॥ अद्यप्रभृतिसर्वेषां फलानान्त्वं विनायकः ॥ भवेरितिवरंदत्त्वा चैकदन्तायशङ्करः ॥ ४९ ॥ बभाषेचततस्तत्र सर्वानपिसुरासुरान् ॥ प्रसरद्दशनज्योत्स्नः कर्बुरीकृतकन्दरः ॥ ५० ॥ स्थावरोयंममाकारः शोणाद्रिर्योस्यभक्तितः ॥ प्रदक्षिणांवितनुते समस्तैश्वर्य्यभाग्भवेत् ॥ ५१ ॥ गिरेःप्रदक्षिणेनास्य यःपरिक्रमातेपुमान् ॥ सम्राट्सकलोत्कृष्टं लभतेशाश्वतंपदम् ॥ ५२ ॥ इतिशासनतःशम्भोः शोणशैलप्रदक्षिणम् ॥ विधायसर्वगीर्वाणा लेभिरेस्वंस्वमीप्सितम् ॥ ५३ ॥ युवामपिमदोद्भूतमालिन्यौशिक्षितौमया ॥ प्रदक्षिणेनशोणाद्रेः शापान्तोवांभविष्यति ॥ ५४ ॥ तिरश्चोरपिवांसिध्येदरुणाद्रेःप्रदक्षिणा ॥ वज्राङ्गदस्यपाण्ड्यस्य नृपतेरनुबन्धतः ॥ ५५ ॥ इत्यमर्षणमहर्षिमहाग्नेःशापहलाहलशोषितसत्त्वौ ॥ पातितौ बहुलपातकभारौ क्षिप्रमेवमृगजातिषुजातौ ॥ ५६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽरुणाचलमाहात्म्येपञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥३५॥

मनोरथको पाया ॥५३॥ और मदसे उपजीहुई मलिनतावाले तुम दोनोंभी मुझसे शिक्षितहुयेहो और अरुणाचलकी प्रदक्षिणासे तुम दोनोंके शापका अन्तहोगा॥५४॥ पाण्ड्यदेश के राजा वज्रांगद के अनुबन्ध (संयोग) से पशुयोनिवाले भी तुम दोनोंकी अरुणाचलकी प्रदक्षिणा सिद्ध होगी ॥ ५५ ॥ इस प्रकार क्रोधी दुर्वासा महर्षिकी बड़ीभारी अग्निसे व शापरूपी विषसे शोषित उद्यमवाले व बहुत पापके भारवाले वे गिरायेहुये दोनों शीघ्रही पशुओं की जातियों में उत्पन्न हुये ॥ ५६ ॥

इति श्रीस्कन्दपुराणेऽरुणाचलखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायापञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

दो० । कान्तिशालि तजि अश्ववपु पायो उत्तमरूप । छत्तिसवें अध्यायमें सोई चरित अनूप ॥ कलाधर बोला कि हे नृपश्रेष्ठ ! कांतिशाली नामक मेरा मित्र कां-म्बोजदेशों में घोड़ा होकर इसके उपरान्त आपकी सवारीमें हुआ ॥ १ ॥ और मैं सुगन्धिवाली मृगजातिको प्राप्तहोकर अपने अंगसे उपजीहुई सुगन्धके मद्मे इस अरुणाचल पै भ्रमता भया ॥ २ ॥ हे धर्मात्मन् ! इस समय शिकार के बहाने से आयेहुये तुमसे हम दोनों अरुणाचलनाथ की प्रदक्षिणा को प्राप्त करायेगये ॥ ३ ॥ घोड़ेपर सवारी के दोषसे तुम्हारी ऐसी दशाहुई और चरणों से चलने के पुण्य से हम दोनोंको पहलेवाला स्थान मिला ॥ ४ ॥ हे नृपेन्द्र ! तुम्हारे सम्बन्ध से हम

कलाधरउवाच ॥ काम्बोजेषुहयोभूत्वा कान्तिशालीसुहृन्मम ॥ अथासीदौपवाह्यत्वे भवतोराजपुङ्गव ॥ १ ॥ अहंच गन्धमृगतां गतः स्वाङ्गप्रसूतिना ॥ सुगन्धिनामदेनास्मिन्विचचारारुणाचले ॥ २ ॥ धर्मात्मन्मृगयाव्याजादागतेनत्वयाधुना ॥ आवांशोणाद्रिनाथस्य प्रापितौहिप्रदक्षिणम् ॥ ३ ॥ वाहारोहणदोषेण तत्रासीदीदृशीदशा ॥ याद्दक्प्रचारपुण्येन प्राप्तौनौप्राक्तनम्पदम् ॥ ४ ॥ राजेन्द्रतवसम्बन्धादस्मात्तिर्यक्त्वबन्धनात् ॥ मुक्तावावांस्वकन्धामप्रापौस्वस्त्यस्तुतेसदा ॥ ५ ॥ इत्युदीर्यनिजंधाम यियासन्तंकलाधरम् ॥ कान्तिशालिसखंराजा जगादरचिताञ्जलिः ॥ ६ ॥ एवंयुवांशोणशैलशङ्करस्यप्रभावतः ॥ शापार्णवंसमुत्तीर्णौ पुनःस्वीयंपदंगतौ ॥ ७ ॥ आम्यतीवममस्वान्तमन्धायतइवेक्षणम् ॥ निर्यान्तीवममप्राणास्तत्रदैवंबलम्महत् ॥ ८ ॥ कलाधरउवाच ॥ अवधारयविस्तारात्कथयामितवापियत् ॥ समाहितेनमनसा निर्धूतनिखिलाधिना ॥ ९ ॥ जगत्सर्गस्थितिध्वंसविधायिनिमहेश्वरे ॥ अरुणाद्रीश्वर

दोनों इस पशुयोनि के बन्धन से छूटकर अपने स्थान को प्राप्तहुये तुम्हारा सदैव कल्याण होवै ॥ ५ ॥ ऐसा कहकर अपने स्थानको जातेहुये कान्तिशाली के मित्र कलाधर से हाथोंको जोड़कर राजा बोले ॥ ६ ॥ कि इस प्रकार अरुणाचल शिवजीके प्रभाव से तुम दोनों शापरूपी समुद्रको उतरकर फिर अपने स्थानको प्राप्तहुये ॥ ७ ॥ मेरा मन भ्रमितसा होताहै व नेत्र अन्धे से होतेहैं और मेरे प्राण निकलते से हैं परन्तु उस विषयमें दैवबल बड़ाभारी है ॥ ८ ॥ कलाधर बोला कि तुम से मैं जिसको विस्तार से कहता हूं उसको सब मानसी व्यथाओं से रहित व सावधान मन से सुनिये ॥ ९ ॥ व संसार की सृष्टि, पालन व संहार करनेवाले

तथा दयानिधान अरुणाचलेश महादेवजी में चित्तको लगाइये ॥ १० ॥ इस समय इन अरुणाचलेश देवजी के ऐश्वर्य्य को हम दोनों पशुवों के प्रत्यक्ष किया है इसलिये तुम ऐसे इस कार्य को कीजिये ॥ ११ ॥ और कस्तूरी से संयुतहो चरणों से चलकर प्रदक्षिणा कीजिये व कस्तूरीप्रियवाले शिवदेवजी को कमलों से पूजिये ॥ १२ ॥ हे विभो ! तुम्हारे जितनी लक्ष्मी है उस सबको छहरदिवाली, पुरद्वार, मन्दिर व अँगनाई के लिये कल्पित कीजिये ॥ १३ ॥ तो शीघ्रही मनु, मान्धाता, नाभाग व भगीरथ के पदसे अधिक तुम्हारी बडीभारी सिद्धिहोगी ॥१४॥ शीघ्रही अपने स्थान को पायेहुये उन विद्याधरों के ऐसे वचनको सुनकर उससमय

चित्तं निधेहिकरुणानिधौ ॥ १० ॥ प्रत्यक्षितंत्वयेदानीमस्यदेवस्यवैभवम् ॥ तिरश्चोरावयोरेतदीदृशन्त्वंवितन्वतः ॥ ११ ॥ कुरुप्रदक्षिणम्पादचारीमृगमदान्वितैः ॥ कह्लारैःपूजयेशानं देवंमृगमदप्रियम् ॥ १२ ॥ यावतीतवसम्पत्तिस्तावतीमखिलांविभो ॥ प्राकारगोपुरागाराजिरार्थायप्रकल्पय ॥ १३ ॥ अचिरादेवसिद्धिस्ते भविष्यतिगरीयसी ॥ मनुमान्धातृनाभागभगीरथपदाधिका ॥ १४ ॥ इत्थंनिशम्यचतयोर्निजमेवधाम विद्याभृतोःसपदिसङ्गतयोर्नरेन्द्रः ॥ निःसंशयेनमनसानियतस्तदानीं भक्तिंविधायभगवत्यरुणाद्रिनाथे ॥ १५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽरुणाचलमाहात्म्येषट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥ भगवन्भवमाहात्म्यरत्नाकरसुधाकरम् ॥ नन्दीशचित्रंचारित्रं श्रुतंविद्याभृतोर्द्वयोः ॥ १ ॥ कदा वज्राङ्गदःपाण्ड्यः कथन्देवमपूजयत् ॥ कथंचान्वग्रहीत्प्रह्वं देवस्तमरुणेश्वरः ॥ २ ॥ नन्दिकेश्वरउवाच ॥ निवर्तने

राजा सन्देहरहित मनसे अरुणाचलेशजी में भक्तिकर नियत (नियमसंयुत) हुये ॥१५॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽरुणाचलखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकाया षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

दो० । वज्रांगदनृप पूजि शिव पायो सुख अधिकाइ । सैंतिसवें अध्यायमें सोइ चरित सुखदाइ ॥ मार्कण्डेयजी बोले कि हे भगवन्, नन्दीश्वरजी ! शिवजी के माहात्म्यरूपी समुद्र के चन्द्रमारूपी दोनों विद्याधरों के अद्भुत चरित्रको मैंने सुना ॥ १ ॥ और पाण्ड्यदेशवाले वज्रांगद राजाने किस समय और किस भांति शिव

देवजी को पूजा है और प्रणाम करनेवाले उस राजा के ऊपर किस प्रकार अरुणेश्वरजी ने दया किया है ॥ २ ॥ नन्दिकेश्वर जी बोले कि इसके अनन्तर अपने नगर को लौटने की इच्छा को छोड़कर राजा ने उसी के समीपवाले पर्वत पै अपने निवासकी रुचि किया ॥ ३ ॥ इसके अनन्तर घोड़े के मार्ग के पीछे चलती हुई रथ, हाथी, घोड़ों व वीरों से संयुत इसकी बड़ीभारी सेना प्राप्त हुई ॥ ४ ॥ और पुरोहित, मन्त्री, छोटे राजा, सेनाध्यक्ष व मित्रवर्गों ने वैसे धैर्य के समुद्र राजा को देखा ॥ ५ ॥ तदनन्तर आईहुई उस सेना को आदरपूर्वक पूजित राजा ने अरुणक्षेत्र के शिखर से बाहरही टिकाया ॥ ६ ॥ व उस भक्तिमान् राजाने अपने

च्छांहित्वाथ नृपोनिजपुरम्प्रति ॥ तस्यैवपादपर्यन्ते स्वस्यवासमरोचयत ॥ ३ ॥ अथास्यमहतीसेना वाहमार्गानुसारिणी ॥ प्राप्ताशताङ्गमातङ्गतुरङ्गभटसंकुला ॥ ४ ॥ समदृश्यतभूपालस्तादृशोधैर्यसागरः ॥ पुरोधोमन्त्रिसामन्तसेनापतिसुहृद्गणैः ॥ ५ ॥ ततस्तामागतांसेनामवनीपतिरादृतः ॥ अरुणक्षेत्रशिखराद्बहिरेवन्यवेशयत ॥ ६ ॥ स्वकीयमखिलंकोशं देशानपिमहाफलान् ॥ शोणाद्रिनाथपूजायै कल्पयामासभक्तिमान् ॥ ७ ॥ गौतमस्याश्रमाभ्याशे स्वयंकृततपोवनः ॥ पुरोधउक्तःसामात्यः शिवार्चनरतोभवत् ॥ ८ ॥ रत्नाङ्गदाख्यंतनयं स्थापयित्वानिजेपदे ॥ तत्प्रेषितैरपिधनैः शोणेशंपर्यतर्पयत् ॥ ९ ॥ परितःशोणशैलस्य परिपूर्णजलाशयान् ॥ खानयामासदानानि ब्राह्मणेभ्योविसृष्टवान् ॥ १० ॥ तेजसारुणनाथस्य ज्वलनस्तम्भरूपिणः ॥ धन्वप्रायेपिदेशेऽस्मिन् दीर्घिकाःशतशोऽयथात ॥ ११ ॥ सौन्दर्यशालिनीरात्मपरिवारपरङ्गतः ॥ सेवार्थशोणनाथस्य दत्तवान्दीर्घदर्शनः ॥ १२ ॥ अथागतेना

सब खज़ाने को व महाफलवाले याने सम्पन्न देशों को भी अरुणाचल की पूजा के लिये कल्पित किया ॥ ७ ॥ और पुरोहित से कहेहुये मन्त्री समेत राजा गौतम मुनिके आश्रम के समीप आपही तपोवनकर शिवपूजन में परायण हुआ ॥ ८ ॥ और रत्नांगदनामक पुत्रको अपने स्थान पै बिठाकर उस से पठाये हुये धनों से अरुणाचलेशजी को तृप्त किया ॥ ९ ॥ और अरुणाचल के सब ओर परिपूर्ण जलाशयों को खुदाया व ब्राह्मणों के लिये दानों को दिया ॥ १० ॥ अग्निस्तम्भरूपी अरुणेशजी के तेज से इस निर्जल देशमें भी सैकड़ों बावलियों का निर्माण किया ॥ ११ ॥ और अपने वंशमें उत्तमता को प्राप्त इस बुद्धिमान् राजाने अरुणाचल

की सेवा के लिये सुन्दरता से शोभित स्त्रियों को दिया ॥ १२ ॥ इस के अनन्तर आयेहुये लोपामुद्रा के सखा अगस्त्यजी ने अरुणाचलेशजी के पूजन में तत्पर उन राजा की प्रशंसा किया ॥ १३ ॥ प्रतिदिन नवतीर्थ नामक तडाग में स्नान करते हुये राजा ने पापनाशक प्रवालेश्वरजी का पूजन किया ॥ १४ ॥ और कठिन दुःख को हरनेवाली व महिषासुर को संहार करनेवाली दुर्गाजी को वज्रागद राजाने नित्य आराधन किया ॥ १५ ॥ व ब्रह्मा तथा विष्णुजी की प्रार्थना से लिंगरूपी आदिदेव शिवजीकी प्रतिक्षण अनेक भांतिकी सेवाकिया ॥१६॥ प्रातःकाल उठकर उस तडाग मे नहाये हुये राजा ने पञ्चाक्षर मन्त्र को जपते हुये तीन प्रदक्षिणा

गस्त्येन लोपामुद्रासखेनमः ॥ अभिनन्दितस्तुशोणाद्रीशपूजापरायणः ॥ १३ ॥ प्रत्यहंनवतीर्थाख्ये सरसिस्नानमाचरन् ॥ पापनाशप्रवालेशं प्रत्यहम्पर्यपूजयत् ॥ १४ ॥ महिषासुरसंहारकारिणींमानवेश्वरः ॥ नित्यमाराधयामास दुर्गांदुर्गार्तिहारिणीम् ॥ १५ ॥ प्रतिक्षणंब्रह्मविष्णुप्रार्थनालिङ्गरूपिणः ॥ आदिदेवस्यविविधाः सपर्याःपर्यकल्पयत ॥ १६ ॥ प्रत्युषस्युत्थितःस्नातस्तदम्भसिचपार्थिवः ॥ जपन्पञ्चाक्षरंमन्त्रमकार्षीत्त्रिःप्रदक्षिणाम् ॥ १७ ॥ पौर्णमास्यांसकार्त्तिक्यां पार्वतीवल्लभस्यच ॥ महादीपोत्सवंचक्रेमहितंभुवनत्रये ॥ १८ ॥ सगन्धसारकह्लारकर्पूरजलपूरितैः ॥ सहस्रैःस्वर्णकुम्भानामभ्यषिञ्चत्त्रियम्बकम् ॥ १९ ॥ प्रतिमासंध्वजारोहपूर्वंतीर्थोत्सवादिकम् ॥ त्रैलोक्याम्महितंचक्रे रथारोहमहोत्सवम् ॥ २० ॥ अथप्रदक्षिणञ्चास्य विदधेविशदाशयः ॥ योजनत्रितयायामविस्तृतस्यचभूभृतः ॥ २१ ॥ अरुणाचलनाथेति करुणामृतसागर ॥ अरुणावासनाथेति तुष्टावचमुहुर्मुहुः ॥ २२ ॥ संलिप्यविविधैर्द्रव्यै

किया ॥ १७ ॥ व कार्त्तिकी पौर्णमासी में उस राजा ने पार्वतीप्रिय शिवजी के महादीपोत्सव को किया जो कि त्रिलोक में पूजित है ॥ १८ ॥ व चन्दन, कमल व कपूर समेत जलमे भरेहुये हज़ार सोनेके घटों से त्रिलोचन जीको नहवाया ॥ १९ ॥ व प्रत्येक महीने, में ध्वजारोहपूर्वक तीर्थोत्सवादिक व त्रिलोक में पूजित रथारोह महोत्सव को किया ॥ २० ॥ इसके अनन्तर निर्मल अभिप्रायवाले वज्रागद राजा ने तीन योजन (बारह कोस) लम्बे चौडे इस अरुणाचलकी प्रदक्षिणा किया ॥ २१ ॥ व हे अरुणाचलनाथ, हे करुणामृतसागर, हे अरुणावासनाथ ! इस प्रकार बार २ स्तुति किया ॥ २२ ॥ और कर्पूरकी नाई श्वेत चन्दन के कीचड़ों से नित्य भली

भांति लीपकर पञ्चामृत आदिक अनेक भांति की वस्तुवों से नित्य पूजन किया ॥ २३ ॥ और पीठसे लगाकर केवल अरुणाचलेश मुख्य लिंगरूपी शिवजीको गिरते
हुये कस्तूरी के प्रवाहोंवाले कमलों से पूजन किया ॥ २४ ॥ इस प्रकार सेवासे तीनवर्ष तक बैठे हुये उस राजा के ऊपर प्रसन्न होतेहुये सदाशिव जी प्रत्यक्षता को
प्राप्त हुये ॥ २५ ॥ जो कि हिमाचल के समान श्वेत उत्तम बैल पै चढ़े व पीछे बैठी हुई पार्वती जीसे दृढ़तापूर्वक आलिंगित थे ॥ २६ ॥ व वसिष्ठादिक ब्रह्मर्षियों
तथा नारदादिक महर्षियों से व निकुम्भ कुम्भादिक गणोंसे जिनकी जयस्तुति की जाती थी ॥ २७ ॥ व कमलदल की नाईं लम्बे नेत्रों के दयारूपी सागरकी बड़ी

**नित्यंपञ्चामृतादिभिः ॥ अभ्यर्चयद्गन्धसारपङ्कैःकर्पूरपाण्डुरैः ॥ २३ ॥ अपूजयत्तुकह्लारैर्गलन्मृगमदद्रवैः ॥ पी
ठादारभ्यशोणाद्रिनाथैकलिङ्गरूपिणम् ॥ २४ ॥ इतिवर्षत्रयंतस्य विशतोवरिवस्यया ॥ अरुणाद्रीश्वरस्तुष्टः प्रत्यक्ष
त्वमगाहत ॥२५॥ तुषाराचलसंकाशमारूढोवृषपुङ्गवम् ॥ अन्वगासीनयादेव्या कृतगाढोपगूहनः ॥ २६ ॥ ब्रह्मर्षिभि
र्वसिष्ठाद्यैर्नारदाद्यैर्महर्षिभिः ॥ गणैर्निकुम्भकुम्भाद्यैःक्रियमाणजयस्तुतिः ॥ २७ ॥ करुणासिन्धुकल्लोलैः कम
लायामनेत्रयोः ॥ कटाक्षपातैर्जगतां कालुष्यमिववारयन् ॥ २८ ॥ दृष्ट्वाचदेवदेवन्तमष्टाङ्गस्पृष्टभूतलः ॥ प्रणना
मपरंहृष्टो वज्राङ्गदमहीपतिः ॥ २९ ॥ व्यजिज्ञपच्चभूपालोमौलौविरचिताञ्जलिः ॥ क्षालयन्निवदन्तांशुजालैस्तत्पाद
पङ्कजौ ॥ ३० ॥ देवेशयदहंमोहाद्द्रोहेनत्वदुपान्तिके ॥ व्यचारिषंमएकोहि क्षम्यतांमेव्यतिक्रमः ॥ ३१ ॥ इतिवादित
मत्यन्तं दीनमेवदयानिधिः ॥ जगादजगतांनाथो देवःशोणाचलेश्वरः ॥ ३२ ॥ माभैर्षीर्वत्सभद्रन्ते सन्त्यष्टौममभू**

भारी लहरीरूप कटाक्षपातों से संसार के पातकको मानो मना कर रहेथे ॥ २८ ॥ उन देवदेव शिवजी को देखकर आठ अंगों से पृथ्वी को छुये व बहुत प्रसन्न वज्रां-
गद राजाने प्रणाम किया ॥ २९ ॥ व मस्तकपै हाथों को जोड़कर दांतों की किरणराशियों से उनके चरणकमलों को धोतेहुये से राजाने विनय किया ॥ ३० ॥ कि
हे देवेश ! अज्ञान के कारण जो मैंने तुम्हारे समीप घोड़े के द्वारा भ्रमण किया वह मेरा एक अपराध क्षमा कियाजावै ॥ ३१ ॥ ऐसा कहतेहुये व अत्यन्तही उदार
राजासे लोकोंके स्वामी व दयानिधान अरुणाचलेश्वर देवजीने कहा ॥ ३२ ॥ कि हे वत्स ! मतडरो तुम्हारा कल्याणहोवै मेरी आठ मूर्त्तियांहैं वे सब प्राणियोंके ऐश्वर्य

के लिये कल्पित है ॥ ३३ ॥ पुरातन समय तुम गर्वित इन्द्र ने कैलास पर्वत के शिखर पै टिकेहुये मेरा अनादर किया है और उसी क्षण मुझ
उससमय क्षणभरमें गर्वरूपी पातकके भारसे रहित होकर अत्यन्तही लज्जित तुम समस्त ऐश्वर्यों के कारणरूप शिवके ज्ञान को प्राप्तहुये हो ॥ ३५
मैंने तुम से यह कहा कि आप पृथ्वी में अवतार लेकर वज्रांगदनामक राजा होकर मेरी कृपा को पावोगे ॥ ३६ ॥ तुम्हारे प्रभाव से यह क्षेत्र मेरे र
मूढ तुम मुझसे शिक्षित हुयेहो जो कि मेरे उत्तम भक्तहो ॥ ३७ ॥ हे राजन् ! इस समय दिन रात कीहुई तुम्हारी सेवाओं से मैं प्रसन्न हूं इस

र्त्तयः ॥ ताःसर्वाःसर्वजन्तूनाम्भूत्यर्थपरिकल्पिताः ॥ ३३ ॥ पुरापुरंदरस्त्वंहि कैलासशिखरेस्थितम् ॥ गर्वितोमामवामं स्थास्तम्भितस्तत्क्षणान्मया ॥ ३४ ॥ क्षणंगलितगर्वाघभारस्त्वंव्रीडितस्तदा ॥ उपविष्टःशिवज्ञानमखिलैश्वर्यकारण म् ॥ ३५ ॥ आदिष्टस्त्वंमयावज्रिन्नवतीर्यावनौभवान् ॥ राजावज्राङ्गदोभूत्वा लप्स्यसेमत्कृपामिति ॥ ३६ ॥ जात न्तवप्रभावेण क्षेत्रमेतन्मदास्पदम् ॥ शिक्षितोसिचमुग्धस्त्वं भक्तोसिचपरोमम ॥ ३७ ॥ अधुनातिसपर्याभिस्त्वत्कृ ताभिरहर्निशम् ॥ परितुष्टोस्म्यहंराजन्नतस्त्वांबोधयाम्यहम् ॥ ३८ ॥ खंवायुरनलोवारिभूस्सूर्यशशिनौपुमान् ॥ इतिमन्मूर्त्तिभिर्विश्वं भासतेसचराचरम् ॥ ३९ ॥ तत्त्वातीतःशिवश्चाहं नमत्तोन्यच्चकिञ्चन ॥ ४० ॥ पूरयन्तिचिदा नन्दसिन्धोर्मेकेचिदूर्मयः ॥ वेधोमुकुन्दरुद्रेन्द्रमुखास्सर्वाश्चदेवताः ॥ ४१ ॥ वाणीलक्ष्मीक्षमाश्रद्धाप्रज्ञास्वाहास्व धादिभिः ॥ असंख्येयमहाशक्तिभिश्चेदम्पूरितंजगत् ॥ ४२ ॥ इयंममममहाशक्तिर्गौरीमायाजगत्प्रभोः ॥ अनया

करताहूं ॥ ३८ ॥ कि आकाश, पवन, अग्नि, जल, पृथ्वी, सूर्य, चन्द्रमा व पुरुष इन मेरी मूर्त्तियों से स्थावर जंगम समेत संसार प्रकाशितहै ॥ ३९ ॥ और मैं तत्त्वों से परे शिवहूं व मुझसे अन्य कुछ नहीं है ॥ ४० ॥ कोई लहरियां चिदानन्दरूपी मुझ समुद्र को पूर्ण करती हैं और ब्रह्मा, विष्णु, शिव व इन्द्रादिक जो सब देवता हैं ॥ ४१ ॥ और सरस्वती, लक्ष्मी, क्षमा, श्रद्धा, प्रज्ञा, स्वाहा व स्वधा आदिक असंख्य महाशक्तियों से यह संसार पूर्ण है ॥ ४२ ॥ संसार के स्वामी मेरी यह गौरी

महाशक्ति माया है इस से सदैव संसार आच्छादित होताहै व विस्तार किया जाताहै ॥ ४३ ॥ इस शक्ति से नित्य [illegible]
संसार को मैं अपनी इच्छा से आश्चर्यपूर्वक देखताहूं ॥ ४४ ॥ मोहरहित होकर तुम मेरी महिमा से आत्मा को [illegible] ॥ ४५ ॥
इस लिये हे राजेन्द्र ! मेरे रूप से शोभित पृथ्वी मे स्वामिताको प्राप्त तुम मेरी प्रसन्नता से सुखपूर्वक भोगोंको भोग करोगे ॥ ४६ ॥ [illegible]
दिव्य सुखोंवाले भोगों को प्राप्त होवोगे व हे राजन् ! मेरी एकरूपता व चैतन्यताको प्राप्त होवोगे ॥ ४७ ॥ ऐसा कहकर शिवदेव [illegible]

च्छाद्यतेविश्वं शश्वद्विस्तारएवच ॥ ४३ ॥ शक्त्यानयानित्यसर्गरक्षासंहृतिविभ्रमैः ॥ विचित्रमतल[illegible]
त्वंनिजेच्छया ॥ ४४ ॥ अपवाहितमोहस्त्वं महिम्नामेविचारय ॥ आत्मानमविभिन्नन्तु तरङ्गमिववारिधेः ॥ ४५ ॥ त
तोमद्रूपशालिन्यामाधिपत्यंक्षितौगतः ॥ मत्प्रसादेनराजेन्द्र भुङ्क्ष्वभोगान्यथासुखम् ॥ ४६ ॥ पुनःपुरन्दर[illegible]
दिव्यसुखांश्चिरम् ॥ मदेकरूपतांराजंश्चिन्मयत्वमवाप्स्यसि ॥ ४७ ॥ इत्युक्त्वान्तर्हितेदेवे राजावज्राङ्गदः कृती ॥
कोणेशम्पूजयन्नेव सर्वान्भोगानवाप्तवान् ॥ ४८ ॥ इत्थन्तेकथितंसाधो शिवभक्तिविजृम्भणम् ॥ प्रदक्षिणाफल[illegible]
शैलस्यशश्वत्तंफलम् ॥ ४९ ॥ किंवाचविस्तरेणात्र कथितेनप्रदक्षिणा ॥ महतामपिदानानां शतादपिविशिष्यते ॥
५० ॥ विषुवायनसंक्रान्तिव्यतीपातादिपर्वसु ॥ प्रदक्षिणांशोणगिरेरसंख्येयफलंलभेत ॥ ५१ ॥ नक्षेत्रमरुणादस्ति
नास्तिदेवोरुणेश्वरात् ॥ नास्तिप्रदक्षिणादन्यत्त्रिलोक्यम्यधिकंतपः ॥ ५२ ॥ इतिकथयतिनन्दिकेश्वरेस्मिन् पुलाकि

शिवजी को पूजतेही हुये पुण्यवान् राजा वज्राङ्गद ने सब सुखों को पाया ॥ ४८ ॥ हे साधो ! शिवजी के भक्त की यह उन्नति कही गई और प्रदक्षिणा का फल व
उत्तम आचरण का अविनाशी फल कहा गया ॥ ४९ ॥ इस विषय में विस्तारपूर्वक कहने से क्या है याने कुछ नहीं क्योंकि बडे भारी सैकड़ों दानों से भी प्रद-
क्षिणा विशेष है ॥ ५० ॥ (विषुवायन) दिनरात बराबरवाले समयमें व संक्रान्ति तथा व्यतीपातादिक पर्वों में अरुणाचलकी प्रदक्षिणा असंख्य फलको प्राप्त होती
है ॥ ५१ ॥ अरुणक्षेत्र से उत्तम अन्य क्षेत्र नहीं है व अरुणेश्वर से श्रेष्ठ देवता नहीं है और त्रिलोक में अरुणाचल की प्रदक्षिणा से अधिक अन्य तपस्या नहीं

है ॥ ५२ ॥ इन नन्दिकेश्वर जी के ऐमा कहनेपर रोमाञ्चित समस्त शरीर वाले मृकण्डुजी के पुत्र मार्कण्डेयजी बार २ आनन्द से आंसुवों की वृष्टि को पाकर बड़े
भारी अमृत के समुद्र में मग्नसे होगये ॥ ५३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽरुणाचलखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायासप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥ ❀ ॥
दो० । गौतम सो शिव जिमि कह्यो मुख्य आपने नाम । अरतिसवें अध्याय मे सोइ चरित सुखधाम ॥ गौतमजी बोले कि हे देवपूजित, भगवन्, अरुणेश्वरजी!
जो तुम्हारे नामहैं उनको विशेपता से मै इस स्थान में सुनना चाहताहूं ॥ १ ॥ श्रीमहादेवजी बोले कि हे द्विजोत्तम ! तुम से मैं मुख्यनामों को कहूंगा जोकि थोड़ी

तसर्ववपुर्मृकण्डुपुत्रः ॥ मुहुरधिगतहर्षबाष्पवृष्टिर्महतिनिमग्नइवाभवत्सुधाब्धौ ॥ ५३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽरुणाचलमाहात्म्येसप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

गौतमउवाच ॥ भगवन्नरुणाद्रीशनामधेयानियानिते ॥ विशेषाच्छ्रोतुमिच्छामि स्थानेस्मिन्सुरपूजित ॥ १ ॥ श्रीमहादेवउवाच ॥ नामानितेहंवक्ष्यामि मुख्यानिद्विजसत्तम ॥ दुर्लभान्यल्पपुण्यानां कामदानिसदाभुवि ॥ २ ॥ शोणाद्रीशोरुणाद्रीशो देवाधीशोनतप्रियः ॥ प्रपन्नरक्षकोधीरः शिवःसेवकवर्द्धकः ॥ ३ ॥ अक्षिपेयामृतेशानः स्त्रीपुंभावप्रदायकः ॥ भक्तविज्ञप्तिसन्धाता दीनबन्दिविमोचकः ॥ ४ ॥ अरुणाद्रिपतिर्भीमस्तथामृगमदेश्वरः ॥ भक्तानांप्रेमकृत्साक्षाद्भक्तदेवस्त्वनिन्दकः ॥५ ॥ सङ्गीतप्रियदेवश्च त्रिवेदीवृद्धवैदिकः ॥ देवराजःकृपासिन्धुः सुगन्धिःसौरभोवरः ॥ ६ ॥ कार्त्तवीर्येश्वरःशान्तः कपालीकलशप्रभुः ॥ ज्ञानसम्बन्धनाथश्च श्रीहालाहलसोदरः ॥ ७ ॥ आहूयैश्वर्य

पुण्यवाले जनोंको दुर्लभ व सदैव पृथ्वी में कामदायक हैं ॥ २ ॥ शोणाद्रीश, अरुणाद्रीश, देवाधीश, नतप्रिय, शरणागतरक्षक, धीर, शिव व सेवकवर्द्धक ॥
३ ॥ व नेत्रोंसे पीनेयोग्य अमृत, ईशान, स्त्री पुरुषता को देनेवाले, भक्त विनयको सन्धान करनेवाले व दीनकारागृहमोचक ॥ ४ ॥ अरुणाद्रिपति, भीम व मृगमदेश्वर,
भक्तों के प्रेमकारक तथा भक्तके प्रत्यक्ष देवता व अनिन्दक ॥ ५ ॥ व संगीतप्रियदेवता तथा त्रिवेदी व वृद्धवैदिक, देवराज, दयासमुद्र, सुगन्धि, सौरभ, वर ॥ ६ ॥
व कार्त्तवीर्येश्वर, शान्त, कपाली, कलशप्रभु, ज्ञानसंबंधनाथ व श्रीहालाहलसहोदर ॥ ७ ॥ व बुलाकर ऐश्वर्य देनेवाले तथा स्मरण करनेवाले के समस्त

पातकों के नाशक ॥ ८ ॥ व नृत्यमें उलटे ध्वजाको धारनेवाले, सकीर्त्ति व नटनेश्वर, सामप्रिय, कलिध्वंसी, वेदमूर्त्ति व निरञ्जन ॥ ९ ॥ जगदीश, महादेव, त्रिलो-
चन, त्रिपुरान्तक, भक्तके अपराध को सहनेवाले, योगेश, भोगनायक ॥ १० ॥ काममूर्त्ति, क्षमारूप, धर्मरक्षक,वृषध्वज, हर,अपीतस्तनीभाग व चन्द्ररेखावतंसक ॥
११ ॥ कामान्तक, अन्धकशत्रु, सिद्धराज, महेश्वर, अरूप, बहुरूप, विरूपलोचन, अक्षराकृति ॥ १२ ॥ अनादि, अन्तरहित, शिव, काम, स्वयंप्रभु, सच्चिदानन्दरूप,
सर्वात्मा, जीवधारक ॥ १३ ॥ व स्त्रीसंगी, वामदेव, विधि व अत्यन्तसुन्दर, ज्ञानदायक, मुक्तिदायक, व भक्ताभीष्टदायक ॥ १४ ॥ व आश्चर्य विभववाले,कामी, निर्दोष,

**दाताच स्मर्तृसर्वाघनाशनः ॥ ८॥ व्यत्यस्तनृत्यध्वजधृक् सकीर्त्तिर्नटनेश्वरः ॥ सामप्रियःकलिध्वंसी वेदमूर्त्तिर्निरञ्ज
नः ॥ ९ ॥ जगन्नाथोमहादेवस्त्रिनेत्रस्त्रिपुरान्तकः ॥ भक्तापराधसोढाच योगेशोभोगनायकः ॥ १० ॥ काममूर्त्तिःक्ष
मारूपो धर्मरक्षोवृषध्वजः ॥ हरोपीतस्तनीभागश्चन्द्ररेखावतंसकः ॥ ११ ॥ स्मरान्तकोन्धकरिपुः सिद्धराजोमहेश्व
रः ॥ अरूपोबहुरूपश्च विरूपाक्षोक्षराकृतिः ॥१२॥ अनादिरन्तरहितः शिवःकामःस्वयंप्रभुः॥ सच्चिदानन्दरूपश्च सर्वा
त्माजीवधारकः ॥ १३ ॥ स्त्रीसङ्गीवामदेवश्च विधिश्चैवातिसुन्दरः ॥ ज्ञानप्रदोमुक्तिदश्च भक्तवाञ्छितदायकः ॥ १४ ॥
आश्चर्यवैभवःकामी निरवद्योनिधिप्रदः ॥शूलीपशुपतिःशम्भुः स्वयम्भूर्गिरिशोमृडः ॥ १५ ॥ सर्वमनोभवध्वंसी श
र्वोरुणगिरीश्वरः ॥ एतानिममसुख्यानि नामान्यत्रमहामुने ॥१६॥ अन्यानिदिव्यनामानि पुराणोक्तानिसंस्मर ॥
प्रदक्षिणेनमांनित्यं विशेषात्त्वंसमर्चय॥ १७॥ प्रदक्षिणप्रियोयस्मादहंशोणाचलाकृतिः ॥ इत्याज्ञप्तोमहादेवमर्चयन्न**

निधिदायक, त्रिशूलधारी, पशुपति, शम्भु, स्वयंभू, गिरिश, मृड ॥ १५ ॥ सर्वकामध्वंसी, शर्व व अरुणाचलेश्वर हैं, महामुने ! यहां ये मेरे मुख्य नामहैं ॥ १६ ॥ व
पुराणों में कहेहुये अन्य उत्तम नामों को स्मरण कीजिये व विशेषकर प्रदक्षिणासे तुम नित्य मेरा पूजन करो ॥ १७ ॥ क्योंकि अरुणाचल आकारवाला मैं प्रद-
क्षिणाप्रियहूं अर्थात् मुझको प्रदक्षिणा प्यारी है हे पार्वतीजी ! इस प्रकार आज्ञाको पाकर अरुणाचल महादेव को पूजते व न छोड़तेहुये मैंने यहां निवास

किया॥ १८।१९ ॥ पार्वतीजी बोलीं कि हे सब धर्मोंके जाननेवाले,भगवन्,आर्य,मुनिनायक,गौतमजी ! मुझसे अरुणाचल की प्रदक्षिणाके माहात्म्य को कहिये ॥२०॥ कि किस समय व किसभाति करना चाहिये व परमपद प्राप्तहोने के लिये किन प्राचीनजनों ने अरुणाचलनाथ की प्रदक्षिणाकियाहै ॥२१॥ इस प्रकार पूंछेहुये गौतम मुनिने पार्वतीजी से कहा कि हे देवि ! महादेवजीने जिसको कहाहै उस माहात्म्यको सुनिये ॥२२॥ श्रीमहादेवजी बोले कि अरुणाचलात्मक मैं पृथ्वी में प्रसिद्धहूं और मुनियों समेत सब देवता मेरे चारोंओर वर्तमानहैं ॥ २३ ॥ जो कोई पाप जन्मों के बीचमें कियेहोते हैं वे प्रदक्षिणाके पगपग पै नष्टहोतेहैं ॥२४॥ और हजारों अश्वमेध व सैकड़ों

रुणाचलम् ॥ १८॥ अविमुश्चन्निहावासं कृतवानहमद्रिजे ॥ १९॥ गौर्युवाच ॥ भगवन्सर्वधर्मज्ञ गौतमार्यमुनीश्वर ॥ प्रद क्षिणस्यमाहात्म्यं ब्रूहिमेशोणभूभृतः ॥ २० ॥ कस्मिन्कालेकथंकार्यं कैर्वापूर्वैःप्रदक्षिणम् ॥ कृतंशोणाद्रिनाथस्यप्रा प्तुमिष्टंपरम्पदम् ॥ २१ ॥ इतिपृष्टोमुनिःप्राह गौतमःशैलकन्यकाम् ॥ श्रूयतान्देविमाहात्म्यं आदिशद्यन्महेश्वरः ॥ २२ ॥ श्रीमहादेवउवाच ॥ अहंहिशोणशैलात्मा प्रख्यातोस्मिमहीतले ॥ परितोमांसुराःसर्वे वर्त्तन्तेमुनिभिःसह ॥२३॥ यानिकानिचपापानि जन्मान्तरकृतानिच ॥ तानितानिविनश्यन्ति प्रदक्षिणपदेपदे ॥ २४॥ अश्वमेधसहस्राणि वाज पेयशतानिच ॥ सिध्यन्तिसर्वतीर्थानि प्रदक्षिणपदेपदे ॥ २५ ॥ अविप्रहीनस्यसमस्तलक्षणैः क्रियाविहीनस्यनिकृष्ट जन्मनः ॥ प्रदक्षिणीकृत्यशशाङ्कशेखरं प्रयास्यतःकस्यनसिद्धिरग्रतः ॥२६॥ समस्ततीर्थाभिगमेषुपुण्यंयच्चागमानां पठनेपिपुण्यम् ॥ अवाप्यतेशोणमहीधरस्य प्रदक्षिणप्रक्रमणेनसत्यम् ॥ २७॥ पदेनैकेनभूलोकं द्वितीयेनान्तरिक्ष कम् ॥ तृतीयेनदिवंमर्त्यो जयत्यस्यप्रदक्षिणे ॥ २८ ॥ एकेनमानसंपापं द्वितीयेनतुवाचिकम् ॥ कायिकन्तुतृतीयेन पदे

वाजपेययज्ञ तथा समस्ततीर्थ प्रदक्षिणा के पगपग पै सिद्धहोते हैं ॥ २५ ॥ शिवजी की प्रदक्षिणाकर जातेहुये सब लक्षणों से हीन व कर्महीन तथा नीचजन्मवाले भी किस पुरुष के आगे सिद्धि नहीं होती है ॥२६॥ सब तीर्थों की यात्राओंमें व शास्त्रों के पढ़ने में भी जो पुण्य मिलती है वही पुण्य अरुणाचल की प्रदक्षिणासे सत्य मिलती है ॥२७॥ इसकी प्रदक्षिणामें मनुष्य एक पगसे भूलोक व दूसरे से आकाश तथा तीसरेसे स्वर्गलोक को जीतता है ॥ २८ ॥ एकपग से मनुष्यों का मानसी

पाप व दूसरे से वाचिक तथा तीसरे पगसे शारीरक पाप नष्टहोता है ॥ २६ ॥ महर्षियों के हज़ारों पर्णशाला (पत्तोंकेघर) व सिद्धों तथा देवताओं के हज़ारों
निवासस्थान यहां वर्तमानहैं ॥३०॥ यहांपर देवताओं से पूजित सिद्ध शरीरवाला मैं सदैव आगे बसताहूं व मेरे बीचमें सुखोंसे संयुत उत्तम कन्दरा ध्यान करनेयोग्यहै ॥
३१ ॥ अरुणाचल ऐसे प्रसिद्ध अग्निस्तम्भमयरूपी इस लिंगको ध्यान करताहुआ पुरुष धीरेही से प्रदक्षिणाकरै ॥ ३२ ॥ अष्टमूर्त्तिमय जो यह प्रसिद्ध तैजस लिंग है
इसको ध्यानकर प्रदक्षिणा करताहुआ पुरुष पातकों को जलाता है ॥ ३३ ॥ और अरुणाचलाकार की जो नित्य प्रदक्षिणा करता है उसका फिर जन्म नहीं होताहै

नश्चीयतेनृणाम् ॥ २९ ॥ पर्णशालामहर्षीणां सिद्धानाञ्चसहस्रशः ॥ ३० ॥ सुराणांचतथावासा विद्यन्तेत्रसहस्रशः ॥
अत्रसिद्धवपुर्नित्यंवसाम्यग्रेसुरार्चितः ॥ममान्तरेगुहादिव्याध्यातव्याभोगसंयुता ॥३१॥ अग्निस्तम्भमयंरूपमरुणाद्रि
रितिश्रुतम् ॥ ध्यायल्लिँङ्गमिदंमन्दं कुर्याद्देवप्रदक्षिणाम् ॥ ३२ ॥ अष्टमूर्त्तिमयंलिङ्गमिदंयत्तैजसंश्रुतम् ॥ ध्यात्वाप्रद
क्षिणांकुर्वन् पातकानिविनिर्दहेत ॥ ३३ ॥ नपुनःसम्भवस्तस्य यःकरोतिप्रदक्षिणम् ॥शोणाचलाकृतेर्नित्यंनित्यत्वंध्रु
वमश्नुते ॥ ३४ ॥ अस्यपादरजःस्पर्शात्पूयतेसकलामही ॥ पदमेकन्तुधत्तेयः शोणाद्रीशप्रदक्षिणे ॥ ३५ ॥ नमस्कुर्व
न्प्रतिदिशं ध्यायन्माञ्चकृताञ्जलिः ॥ असंस्पृष्टकरःकैश्चिन्मन्दंकुर्यात्प्रदक्षिणाम् ॥ ३६ ॥ आसन्नप्रसवानारी यथाग
च्छेदनाकुलम् ॥ तथाप्रदक्षिणांकुर्यादशृण्वन्स्वपदध्वनिम् ॥ ३७॥ स्नातोविशुद्धवेषःसन् भस्मरुद्राक्षभूषितः ॥ शि
वस्मरणसंहृष्टो मन्दंदद्यात्पदम्बुधः ॥ ३८ ॥ अथवाशिवनामानि संकीर्त्यवरगीतिभिः ॥ शिवनृत्यञ्चविदधन् भक्तैः

व अचल नित्यता को भोग करता है ॥ ३४ ॥ व इसके चरणकी धूलिके स्पर्शसे सब पृथ्वी पवित्र होती है जोकि अरुणाचलेशकी प्रदक्षिणामें एक पग धरता है ॥
३५॥ हाथोंको जोड़कर मेरा ध्यान करते व प्रत्येक दिशामें प्रणाम करतेहुये किसी से भी हाथ को न मिलाकर धीरेसे प्रदक्षिणाकरै ॥ ३६ ॥ जैसे थोड़ेही दिनोंमें गर्भको
उत्पन्नकरनेवाली स्त्री धीरे चलती है वैसेही अपने चरणों के शब्दको न सुनताहुआ पुरुष प्रदक्षिणा करै ॥३७॥ नहाकर पवित्र स्वरूपहो भस्म व रुद्राक्ष से भूषित तथा
शिवजी के स्मरण से प्रसन्न विद्वान् धीरे से चरण देवै ॥ ३८ ॥ अथवा सदाशिव जीके नामोंको कहकर व उत्तम गानोंसे शिवनृत्य करताहुआ पुरुष भक्तों के साथ

प्रदक्षिणाकरै ॥ ३९ ॥ और सावधान बुद्धिवाला पुरुष आदर से मेरे माहात्म्य को सुनताहुआ आनन्दके रससे पूर्ण होकर धीरे से प्रदक्षिणाकरै ॥ ४० ॥ और याचकों को अनेक प्रकारके दानों से तथा पवित्र भेंटों से आस्तिक (वेदों व देवताओं में श्रद्धावाला) पुरुष बुद्धिके अनुकूल दया करताहुआ परिक्रमा करै ॥ ४१ ॥ सतयुग में अग्निमयलिंग व त्रेतामें मणिपर्वत तथा द्वापर में सुवर्णाचल व कलियुग में मरकताचलको ध्यानकरै ॥ ४२ ॥ अथवा स्फटिक (बिल्लौरी पत्थर) के समान व अरुण रंगवाले आपही प्रकाशकारक पर्वतको ध्यान करताहुआ पुरुष सब पातकों से छूटकर शिवपुरको जाताहै ॥ ४३ ॥ व वचन तथा मनसे अगम्य (न पाने योग्य)

सार्धंपरिक्रमेत् ॥ ३९ ॥ माहात्म्यंममचाश्रृण्वन्ननन्यमतिरादरात् ॥ शनैःप्रदक्षिणांकुर्यादानन्दरसनिर्भरः ॥ ४० ॥ दानैश्चविविधैःपुण्यैरुपहारैस्तथार्थिनाम् ॥ यथामतिदयांकुर्वन्नास्तिकःपरितोव्रजेत् ॥ ४१ ॥ कृतेत्वग्निमयंलिङ्गं त्रेतायांमणिपर्वतम् ॥ द्वापरेचिन्तयेद्धैमं कलौमरकताचलम् ॥ ४२ ॥ अथवास्फाटिकंरूपमरुणञ्चस्वयंप्रभम् ॥ ध्यायन्विमुक्तःसकलैः पापैःशिवपुरंव्रजेत् ॥ ४३ ॥ अवाङ्मनोभ्यांगम्यत्वादप्रमेयतयास्वयम् ॥ अग्नित्वाचपरंलिङ्गमानमेदचलाभिधम् ॥ ४४ ॥ अग्निस्तम्भमयंलिङ्गं मानसादचलाभिधम् ॥ ध्यात्वाप्रदक्षिणाकर्तुमभिगम्योहमञ्जसा ॥ ४५ ॥ अस्यपादरजोनृणामजरामरकारणम् ॥ छायाप्रदानंकुर्वन्ति कल्पकाद्याःसुरद्रुमाः ॥ ४६ ॥ कुर्वताम्भुविमर्त्यानामरुणाद्रिप्रदक्षिणाम् ॥ देवगन्धर्वकन्यानां सहस्रेणसमावृताः ॥ सेवन्तेतंगणाकीर्णा विमानशतकोटयः ॥ ४७ ॥ ममप्रदक्षिणाम्भूमौ कुर्वताम्पादपांसुभिः ॥ पावितामहतीवीथिरिष्टाशिवपदप्रदा ॥ ४८ ॥ अगप्रदक्षि

के कारण व अमित होने से तथा आपही अग्निरूप होने से अचल नामक उत्तम लिंगको प्रणामकरै ॥ ४४ ॥ अग्निस्तम्भमय अचलनामक लिंगको मनसे ध्यानकर मैं प्रदक्षिणा करने के लिये साक्षात् अभिगम्य (जाने योग्य) हूं ॥ ४५ ॥ और इसके चरणोंकी धूलि मनुष्यों के अजर अमरका हेतुहै पृथ्वी में अरुणाचलकी प्रदक्षिणा करतेहुये पुरुषों को कल्पादिक देववृक्ष छायादान करते हैं और देवताओं व गन्धर्वोंकी हजारों कन्याओं से घिरे व गणों से व्याप्त सैकड़ों करोड़ विमान उसकी सेवाकरते हैं ॥ ४६।४७ ॥ पृथ्वी में मेरी प्रदक्षिणा करतेहुये पुरुषोंकी चरणधूलियों से बड़ा प्यारा मार्ग पवित्र कियाजाता है जोकि शिवजीके स्थानको देनेवालाहै ॥४८॥

पर्वतकी प्रदक्षिणा करताहुआ पुरुष क्षणभरमें पुष्ट शरीरवाला होता है और वज्रके शरीरको प्राप्त होकर भूतलमें न घिसै ॥ ४९ ॥ विमानों की उत्कण्ठावाले देवता सिद्ध व उत्तम ऋषिलोग अदृश्य होकर मेरी समीपताको देखतेहुये वहां भलीभांति भ्रमण करते हैं ॥ ५० ॥ और प्रदक्षिणाकी परिक्रमा में मुझमें विनय व भक्ति को देखकर हर्षसमेत देवता मनुष्यों के लिये वरदान देते हैं ॥ ५१ ॥ पुरातन समय यहांपर तैंतीस देवता अगहन महीने में प्रतिदिन प्रदक्षिणाकर प्रत्येक करोड़ देवताओंकी स्वामिताको प्राप्तहुये हैं ॥ ५२ ॥ व पुरातन समय सूर्यादिकग्रह प्रदक्षिणाकर पृथ्वीभाग में उत्पन्न होकर सब ग्रह स्थानको प्राप्तहुये हैं ॥ ५३ ॥ जो मनुष्य

णांकुर्वन् क्षणात्पुष्टतनुर्भवेत् ॥ प्राप्तोवज्रशरीरत्वं नघृष्येतमहीतले ॥ ४९ ॥ व्योमयानोत्सुकादेवाः सिद्धाश्चपरमर्षयः ॥ अदृश्याःसञ्चरन्त्यत्र पश्यन्तोममसन्निधिम् ॥ ५० ॥ विनयंमयिभक्तिञ्च प्रदक्षिणपरिक्रमे ॥ दृष्ट्वाहर्षसमायुता मर्त्येभ्योददतेवरम् ॥ ५१ ॥ अत्रदेवास्त्रयस्त्रिंशत्पुराकृत्वाप्रदक्षिणाम् ॥ प्रत्येकंप्रत्यहंमार्गे मासिकोटीशताङ्गताः ॥ ५२ ॥ आदित्याद्याग्रहास्सर्वे पुराकृत्वाप्रदक्षिणाम् ॥ सम्भूयजगतीभागे सर्वेग्रहपदंगताः ॥ ५३ ॥ यःकरोतिनरोभूमौ सूर्यवारेप्रदक्षिणाम् ॥ ससूर्यमण्डलम्भित्त्वा मुक्तःशिवपुरंव्रजेत् ॥ ५४ ॥ सोमवारेनरःकुर्वन्नरुणाद्रिप्रदक्षिणम् ॥ अजरामरतांप्राप्तः ससौम्योभवतिक्षितौ ॥ ५५ ॥ भौमवारेनरःकुर्वन्नरुणाद्रिप्रदक्षिणाम् ॥ आनृण्यमखिलंप्राप्य सार्वभौमःसवैध्रुवम् ॥ ५६ ॥ बुधवारेनरःकृत्वा शोणाद्रीशप्रदक्षिणाम् ॥ शास्त्रज्ञतामनुप्राप्तः सवाचांपतिमियात् ॥ ५७ ॥ गुरुवारेनरःकुर्वन् सर्वदेवनमस्कृतः ॥ प्रदक्षिणान्तुशोणाद्रेः सतुलोकगुरुर्भवेत् ॥ ५८ ॥ भृगुवारेनरःकुर्व

पृथ्वी में रविवारके दिन प्रदक्षिणा करताहै वह सूर्यमण्डलको भेदनकर मुक्तहो शिवपुरको जाताहै ॥ ५४ ॥ और सोमवारके दिन अरुणाचलकी प्रदक्षिणा करताहुआ वह पुरुष अजरता व अमरताको प्राप्तहोकर पृथ्वी में सौम्य होताहै ॥ ५५ ॥ और मंगलके दिन अरुणाचलकी प्रदक्षिणा करताहुआ वह पुरुष सब उऋणताको प्राप्त होकर निश्चयकर महाराजाधिराज होताहै ॥ ५६ ॥ और बुध दिनमें प्रदक्षिणाकर वह मनुष्य शास्त्रज्ञताको प्राप्त होकर वाक्पतित्वको प्राप्त होताहै याने बृहस्पतिके समान विद्वान् होताहै ॥ ५७ ॥ और बृहस्पतिके दिन अरुणाचलकी प्रदक्षिणा करताहुआ वह पुरुष सब देवताओंसे प्रणाम कियाहुआ होकर संसारमें गुरू (शिक्षक)

होताहै ॥ ५८ ॥ और शुक्रवारको अरुणाचल की प्रदक्षिणा करताहुआ पुरुष बडी भारी लक्ष्मी को प्राप्त होकर विष्णुजी के स्थानको प्राप्तहोताहै ॥ ५९ ॥ और श-
निश्चर के दिन अरुणाचल की प्रदक्षिणाकर ग्रहोंकी पीडाओं से छूटाहुआ वह पुरुष संसारभरको जीतनेवाला होताहै ॥ ६० ॥ पुरातन समय देवताओं समेत सब
नक्षत्र मेरी प्रदक्षिणाकर अचानकही पुण्यों को प्राप्तहुये हैं ॥ ६१ ॥ तिथियां व करणों के स्वामी और योग मेरे सम्मत होकर मेरी प्रदक्षिणा करतेहुये प्यारे फल
देनेवाले हुयेहैं॥ ६२ ॥ और मुहूर्त्त व अनेक भांतिके तारा मेरी प्रदक्षिणा करनेवाले पुरुषोंके सदैव ऐश्वर्यवाले व सौम्य तथा निरन्तर शुभहोते हैं ॥ ६३ ॥ प्रकार

न्नरुणाद्रिप्रदक्षिणाम् ॥ सम्प्राप्यमहतींलक्ष्मीं लभतेवैष्णवंपदम् ॥ ५९ ॥ सन्दवारेनरःकृत्वा शोणाद्रीशप्रदक्षिणाम्॥
विमुक्तोग्रहपीडाभिः सविश्वविजयीभवेत् ॥ ६० ॥ नक्षत्राणिचसर्वाणि पुरातुदैवतैःसह ॥ ममप्रदक्षिणांकृत्वा पुण्या
निसहसाव्रजन् ॥ ६१ ॥ तिथयःकरणाधीशा योगाश्चममसम्मताः ॥ अभीष्टफलदाजाताः कुर्वंतोमत्प्रदक्षिणा
म् ॥ ६२ ॥ मुहूर्त्ताविविधास्तारा: सौम्याश्चसततोदयाः ॥ मत्प्रदक्षिणकर्तॄणां जायन्तेसततंशुभाः ॥ ६३ ॥ प्रच्छिन्न
त्तिप्रकारोघं दकारोवाञ्छितप्रदः ॥ क्षिकारात्क्षीयतेकर्मणकारोमुक्तिदायकः ॥ ६४ ॥ दुर्बलाःकार्श्यसंयुक्ता आधिव्याधि
विजृम्भिताः ॥ ममप्रदक्षिणांकृत्वा मुच्यन्तेसर्वदुष्कृतैः ॥६५॥ आगत्यद्वापरान्तेच तपोऽत्राद्भुतमद्रिजा ॥ ममप्रदक्षि
णांकृत्वा मामेष्यत्यनघापुनः ॥ कार्त्तिकेमासिनक्षत्रे कृत्तिकाख्येमहामुने ॥ ६६ ॥ ममप्रदक्षिणांगौरी प्रदोषेरचयत्पु
रा ॥ नराणामल्पपुण्यानां दुर्लभंतत्प्रदक्षिणम् ॥ ६७ ॥ ज्योतिर्लिङ्गस्यबहुशो देवीप्रार्थनयातदा ॥ मयासमेतादेवी

पापको काटती है व दकार चाहेहुये मनोरथ को देनेवाली है और क्षिकार से कर्म क्षीणहोता है व णकार मुक्तिदायक है ॥ ६४ ॥ दुर्बल व कृशता से संयुत तथा मा-
नसी विथा व रोगोंसे पीड़ित पुरुष मेरी प्रदक्षिणा करके सब पापोंसे छूटजाते है ॥ ६५ ॥ द्वापरके अन्तमें यहां पार्वतीजी आकर व अद्भुत तप तथा मेरी प्रदक्षिणा
कर फिर पापहीन होकर मुझको प्राप्तहोंगी हे महामुने ! कातिक महीने व कृत्तिकानामक नक्षत्र में ॥ ६६ ॥ पार्वतीजी ने पुरातन समय मेरी प्रदक्षिणा कियाहै
थोड़ी पुण्यवाले मनुष्यों को उसकी प्रदक्षिणा दुर्लभ है ॥ ६७ ॥ उस समय ज्योतिर्लिङ्ग की देवीजी की बहुत प्रार्थना से मुझ समेत अपीतकुचा नामक वे देवी

प्राप्त हुई हैं ॥ ६८ ॥ उत्तरायण के संयोगमें सब देवताओं को आश्वासनकर याने समझाकर वहांपर देवता,गन्धर्व,यक्ष, व सिद्धों तथा राक्षसों और सबही देवताओं का समागम होगा ॥ ६९ ॥ उससमय अधिक तपवाले जो पुरुष भलीभांति आकर मुझको पूजते हैं वे सब जन्मोंमें कियेहुये पापपुञ्जके प्रायश्चित्तको प्राप्तहोतेहैं ॥७०॥ उत्तरायणके संयोगमें पुरुषोंको वह दिन दुर्लभहै क्योंकि उस समय मेरे स्वरूपको पूजकर मनुष्य कृतार्थ होवैंगे ॥ ७१ ॥ धर्मके लोपको व शिवजीके आचार भङ्गको जानता हुआ वह पुरुष सवारीके द्वारा मेरी कभी प्रदक्षिणा न करै ॥ ७२ ॥ पुरातन समय यमलोकसे आयेहुये धर्मकेतु नामक राजाने घोड़ेकेद्वारा मेरी प्रदक्षिणा करने

सा प्राप्तापीतकुचाभिधा ॥ ६८ ॥ आश्वास्यचसुरान्सर्वानुत्तरायणसङ्गमे ॥ देवगन्धर्वयक्षाणां सिद्धानामपिरक्षसाम् ॥ सर्वेषांदेवयोनीनां भवितातत्रसङ्गमः ॥ ६९ ॥ येतदामांसमागत्य पूजयन्तितपोधिकाः ॥ सर्वजन्मकृताघौघप्रायश्चित्तंव्रजन्तिते ॥ ७० ॥ दुर्लभंतद्दिनंपुंसामुत्तरायणसङ्गमे ॥ तदामद्रूपमभ्यर्च्य कृतार्थास्सन्तुमानवाः ॥ ७१ ॥ न वाहनेनकुर्वीत ममजातुप्रदक्षिणम् ॥ धर्मलोपंसजानंस्तु शिवाचारपरिप्लुवम् ॥ ७२ ॥ धर्मकेतुःपुराराजा यमलोकादुपागतः ॥ ममप्रदक्षिणांकर्तुं तुरङ्गेणाभिरोचयन् ॥ ७३ ॥ क्षणेनतुरगोजातो गणनाथःसुरार्चितः ॥ प्रतिपेदेपदंशैवं विमुच्यधरणीपतिम् ॥ ७४ ॥ वीक्ष्यतंवाहनंभूपो गणनाथवपुर्धरम् ॥ तदाप्रदक्षिणांकर्तुं चरणाभ्यामरोचयत् ॥ पद्भ्यांप्रदक्षिणांकृत्वा तत्क्षणाद्गणपोभवत् ॥ ७५ ॥ तदाप्रभृतिशक्राद्याः सुराविष्णुपुरोगमाः ॥ पादाभ्यामेवकुर्वन्ति ममसर्वेप्रदक्षिणम् ॥ ७६ ॥ स्वर्गोपपतितःकोपि सिद्धःकालेतपःक्षयात् ॥ प्रदक्षिणाकरंवीक्ष्य पुनर्लब्धपदोभव

के लिये रुचि किया ॥ ७३ ॥ क्षणभरमें वह घोड़ा देवताओंसे पूजितहोकर गणनायक होगया और राजाको छोड़कर शिवजीके स्थानको प्राप्तहुआ ॥ ७४ ॥ गणनायक शरीरधारी उस सवारीको देखकर राजाने उस समय चरणोंसे प्रदक्षिणाकरनेकीरुचि किया और चरणों से प्रदक्षिणाकर वह उसी समय गणनायक हुआ ॥ ७५ ॥ तबसे लगाकर विष्णुपूर्वक इन्द्रादिक सब देवता चरणोंही से मेरी प्रदक्षिणा करते हैं ॥७६॥ तपस्या क्षय होनेके कारण स्वर्गसे गिराहुआ कोई सिद्ध समयमें प्रदक्षिणा

करनेवाले पुरुषको देखकर फिर स्थानको प्राप्तहुआहै ॥ ७७ ॥ मेरी प्रदक्षिणा करके मनुष्य मणिपर्वत के शिखरोंपै व कल्पवृक्षों के वनके मध्यमें सदैव घूमते हैं ॥७८॥ पार्वतीजी बोलीं कि हे सुव्रत, गौतमजी ! सेवामें लगेहुये प्राणियों के फलको मुझसे कहिये ॥ ७९ ॥ गौतमजी बोले कि हे गिरिजे ! मुझ से पूंछेहुये महादेवजीने जो कहा है उसको सुनिये कि किसीसमय मकड़ी तागोंके जालोंको मेरे ऊपर रच कर जातिका स्मरण करनेवाला राजा होकर उसने मुझको वस्त्रोंसे वेष्टित किया ॥८०॥ और मार्गमें प्यास से बिकल होकर जाताहुआ कोई हाथी कभी वनके पत्तेको फेंककर मुक्तहो गणनायक हुआ है ॥ ८१ ॥ और मेरे समीप लोटतेहुये कीड़े भी पाप

त् ॥ ७७ ॥ मणिपर्वतशृङ्गेषु कल्पद्रुमवनान्तरे ॥ सञ्चरन्तिसदामर्त्या ममकृत्वाप्रदक्षिणाम् ॥ ७८ ॥ गौर्य्युवाच ॥ उपचारप्रवृत्तानां फलम्मेशंससुव्रत ॥ ७९ ॥ गौतमउवाच ॥ मयापृष्टोमहादेवो यदाहगिरिजेशृणु ॥ लूतिकातन्तुजालानि संसृज्यकचिदेवमे ॥ जातिस्मरोमहीपःसन् सोंशुकैर्मामवेष्टयत ॥ ८० ॥ गजःकश्चित्तृषाक्रान्तो मार्गेतुविचरन् कचित् ॥ वनपल्लवमुत्कीर्य मुक्तोभूद्गणनायकः ॥ ८१ ॥ कृमयोविलुठन्तोमे पार्श्वेदुरितवर्जिताः ॥ सिद्धवेषाःपुनःसर्वे ममलोकंव्रजन्तिते ॥ ८२ ॥ अपिच्छिन्नप्रदीपार्चिः क्षणमप्यादधातियः ॥ स्वयंप्रकाशसम्भावान्ममसारूप्यमश्नुते ॥ ८३ ॥ हारीतःकोपिसंप्राप्तः शाखानीडोममान्तिके ॥ खद्योतःस्वार्चिषोनक्तंजीवन्मुक्तःसमागमात ॥ ८४ ॥ गावः प्रस्रवणैःसिक्त्वा वत्सस्मरणसम्भवैः ॥ मत्पार्श्वम्मुक्तिमापुस्ताममलोकंसमाश्रिताः ॥ ८५ ॥ वायसःपक्षवातेन बलिग्रहणलोलुपः ॥ मार्ज्जयन्मत्पुरोभागं मुक्तिंप्रापचतत्क्षणात् ॥ ८६ ॥ मूषकोमद्गुहाभागं मणिसङ्घनिकर्षणैः ॥ प्रका

रहित होकर वे फिर सब सिद्धवेष होकर मेरेलोकको जातेहैं ॥ ८२ ॥ और सम्पूर्ण दीप के प्रकाश को जो क्षणभर भी धरता है वह आपही प्रकाश के होनेसे मेरी सरूपता को भोगता है ॥ ८३ ॥ शाखामें घोंसला कियेहुये कोई हारीत पक्षी मेरे समीप भलीभांति प्राप्तहुआ है और रातमें जूगुनू अपने प्रकाश के संयोग से जीवन्मुक्त होगया ॥ ८४ ॥ और बछड़ाके स्मरणसे उपजेहुये दूधके प्रवाहों से मेरे समीप सींचकर वे गाइयां मेरे लोकमें टिककर मुक्तिको प्राप्तहुई हैं ॥ ८५ ॥ और बलिके लेनेमें चञ्चल कौवाने पंखोंके पवनसे मेरे आगे के भागको बटोरतेहुये उसी क्षण मुक्तिको पायाहै ॥ ८६ ॥ और मणिसमूहोंके खींचनेसे मेरी कन्दरा के विभाग

को प्रकाश से अन्धकार रहितकर मूपने मेरे स्वरूप को पायाहै ॥८७॥और मेरे समीप छायावाले वृक्षोंकी योनिमें टिकनेके लिये मुनि व देवताभी फिर न उत्पन्न होने
की इच्छा से प्रार्थना करतेही हैं ॥ ८८ ॥ और मेरे आगे पुरद्वार, शिखर, मण्डप व बावली करतेहुये पुरुषों के मनोरथकी सम्पदायें सिद्ध होतीहैं ॥ ८९ ॥ यह मेरा
अग्निमय लिंग मनुष्योंसे सदैव जाननेयोग्य नहीं है इसलिये अचलेश नामक लिंग भलीभांति प्राप्तहोकर पृथ्वीमें पूजन कियाजावै ॥९०॥ वे शिवदेवजी दर्शन,स्पर्श

**शनाद्वितिमिरं मद्रूपंसमपद्यत ॥ ८७ ॥ छायावृक्षत्वमास्थातुं मुनयस्त्रिदशाअपि ॥ प्रार्थयन्त्येवमत्पार्श्वे नपुनस्सम्भ
वेच्छया ॥ ८८ ॥ गोपुरंशिखरञ्चापि मण्डपंवापिकामपि ॥कुर्वताम्मत्पुरोभागे सिध्यन्तीष्टार्थसम्पदः ॥ ८९ ॥ सदाम
र्त्यैस्त्वनासाद्यमग्निलिङ्गमिदंमम ॥ समासाद्याचलेशाख्यंपूज्यतांवसुधातले ॥ ९० ॥ वीक्षणस्पर्शनध्यानैः ससूते
निखिलंजगत् ॥ पोषयन्तीपराशक्तिः पूज्यापीतकुचाभिधा ॥ ९१ ॥ सर्वलोकैकजननी संप्राप्तानित्ययौवनम् ॥ क
न्यैवमामभिप्रेत्य सैवापीतकुचाभिधा ॥ ९२ ॥ क्षणमस्याःपुरोभागे वसतांप्राणिनामिह ॥ परत्रचापिदुष्प्रापमिष्टंव
स्तुनविद्यते ॥ ९३ ॥ अप्रमेयगुणाधारमपेक्षितवरप्रदम् ॥ अशेषभोगनिलयं शोणाद्रिन्त्वंसमर्चय ॥ ९४ ॥ लब्धका**

ध्यान से सब संसार को उत्पन्न करते हैं और पालन करती हुई अपीतकुचा नामक उत्तमशक्ति पूजन करनेयोग्यहै ॥ ९१ ॥ जोकि सब लोकोंकी एक माता व नित्य
युवावस्थाको प्राप्त वह कन्याही मुझको प्राप्त होकर अपीतकुचानामक है ॥ ९२ ॥ इस भगवती के आगे क्षणभर भी निवास करतेहुये पुरुषों को इसलोक व परलो-
कमें प्रिय वस्तु दुर्लभ नहीं होतीहै ॥ ९३ ॥ अमित गुणोंके आधार व चाहेहुये वर को देनेवाले तथा सब सुखोंके स्थान अरुणाचल को तुम भलीभांति पूजो ॥९४॥

हे सुव्रते ! मनोरथको प्राप्त होतीहुई तुम फिर शिवदेवजीके आश्रित होगी और यह तुम्हारा तप करना भी लोकों के हितको देनेवाला है ॥ ९५ ॥ तुम्हारा तप केवल अपने मनोरथ को देनेवाला नहीं है किन्तु तप करतेहुये ऋषियों की शिक्षाके लिये होगा ॥ ९६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेअरुणाचलखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायामष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

मापुनर्देवमाश्रयिष्यसिसुव्रते ॥ तपश्चरणमप्येतत्तवलोकहितावहम् ॥ ९५ ॥ नकेवलंतवतपः स्ववाञ्छितफलप्रदम् ॥ तपस्यतामृषीणाञ्च शिक्षणायभविष्यति ॥ ९६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽरुणाचलमाहात्म्येऽष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

॥ ॥ ॥ ॥

दो० । श्रीगणपति के दोउ चरण कमलनमें शिरनाइ । यहि अरुणाचलखण्ड की टीका रचेहुँ बनाइ ॥ १ ॥

समाप्तोयमरुणाचलखण्डः ॥

प्रथमबार

लखनऊ

मुंशी नवलकिशोर (सी, आई, ई) के छापेखाने में छपा
सन् १९०८ ई० ॥

इति स्कन्दपुराण अरुणाचलखण्ड समाप्तः ॥

अथ स्कन्दपुराणकुमारिकाखण्डप्रारम्भः॥

अथ स्कन्दपुराणमाहेश्वरखण्डान्तर्गत कुमारिकाखण्डस्य सूचीपत्रमाह ॥

इति कुमारिकाखण्डस्यसूचीपत्रंसमाप्तम् ॥

अथ स्कन्दपुराणमाहेश्वरखण्डप्रारम्भः॥

श्रीगणेशाय नमः ॥

स्कन्दपुराणमाहेश्वरखण्डान्तर्गत

कुमारिकाखण्ड सटीक

दो० । ग्राहरूप अप्सरन जिमि अर्जुन कीन उधार । सोई प्रथम अध्याय में वर्णत चरित उदार ॥ १ ॥ मुनिलोग बोले कि हे विशाललोचन ! दक्षिण समुद्रके कि-
नारोंमें जो पांच तीर्थ हैं उनको कहिये क्योंकि महर्षिलोग उनको अत्यन्त वर्णन करते हैं ॥ १ ॥ नारदादिक मुनिलोग जिनमें सब तीर्थोंका फल कहते हैं उन के
चरित्र का माहात्म्य हमलोग सुना चाहते हैं ॥ २ ॥ उग्रश्रवा मुनि बोले कि स्वामिकार्त्तिकेय जीके अत्यन्त आश्चर्यमय व पुण्यरूप उत्तम कथावाले बड़े प्रभावको तुम

**शिवायनमः ॥ मुनयऊचुः ॥ दक्षिणार्णवतीरेषु यानितीर्थानिपञ्चच ॥ तानिब्रूहिविशालाक्ष वर्णयन्त्यतितानि
च ॥ १ ॥ सर्वतीर्थफलंयेषु नारदाद्यावदन्तिच ॥ तेषांचरितमाहात्म्यं श्रोतुमिच्छामहेवयम् ॥ २ ॥ उग्रश्रवाउवाच ॥
शृणुध्वमत्यद्भुतपुण्यसत्कथं कुमारनाथस्यमहाप्रभावम् ॥ द्वैपायनोयन्ममचाहपूर्वं हर्षाम्बुरोमोद्गमचर्चिताङ्गः ॥ ३ ॥
कुमारगीतागाथात्र श्रूयतांमुनिसत्तमाः ॥ यासर्वदेवैर्मुनिभिः पितृभिश्चप्रपूजिता ॥ ४ ॥ साध्वाचारःस्तम्भतीर्थं यो
निषेवेतमानवः ॥ नियतंतस्यवासःस्यान्ममलोकेयथामम ॥ ५ ॥ ब्रह्मलोकाद्विष्णुलोकस्तस्मादपिमहेशितुः ॥ पुत्र**

लोग सुनो जिसको पहले प्रसन्नता से उठेहुये रोमोंवाले व्यासजीने मुझसे कहाथा ॥ ३ ॥ हे मुनिश्रेष्ठो ! इस विषयमें स्वामिकार्त्तिकेय जी से गाईहुई कथाको सुनिये
जोकि समस्त देवताओं, मुनियों व पितरों से पूजित है ॥ ४ ॥ उत्तम आचारवाला जो पुरुष स्तम्भतीर्थ को सेवन करता है उसका निवास निश्चयकर मेरेलोकमें वैसे
ही होताहै जैसा कि मेराहै ॥ ५ ॥ ब्रह्मलोक के ऊपर विष्णुलोक व उसके भी ऊपर शिवजीका लोकहै और पुत्रप्रिय होनेके कारण से उसके भी ऊपर बड़ा उत्तम

स्वामिकार्त्तिकेय जीका लोकहै ॥६॥ हे मुनिश्रेष्ठो ! पुरातनसमय इस विषयमें नारदमुनिने जो अर्जुनजीकी आश्चर्यमयी कथाको कहाहै मैं तुमलोगों से उसको विस्तार
पूर्वक कहूंगा ॥ ७ ॥ पुरातन समय किसी कारण से मणिपूरक वे अर्जुनजी समुद्रके दक्षिण किनारे पै उन पाचोंतीर्थों को नहाने के लियेगये ॥ ८ ॥ कि तपस्वी लोग
जिन तीर्थोंको डरसे छोडदेते हैं स्वामिकार्त्तिकेयजी का पहला तीर्थ जोकि मुनिको प्यारा है वह विद्यमान है ॥ ९ ॥ व समुद्रके किनारे मुनिको प्रिय दूसरा स्तम्भेश
का तीर्थहै और तीसरा पुलोमा को प्रिय उत्तम वर्करेश्वर तीर्थ है ॥ १० ॥ और करन्धम के पुत्रको प्यारा चौथा महाकालतीर्थ है व पांचवां भारद्वाज जी का सिद्धेश

प्रियत्वात्तस्यापि गुहलोकोमहोत्तमः ॥ ६ ॥ अत्राश्चर्यकथायाच फाल्गुनस्यपुरेरिता ॥ नारदेनमुनिश्रेष्ठास्तांवोवक्ष्या
मिविस्तरात् ॥ ७ ॥ पुरानिमित्तेकस्मिंश्चित्किरीटीमणिपूरकः ॥ समुद्रदक्षिणेभागे स्नातुन्तीर्थानिपञ्चशः ॥ ८ ॥ वर्ज
यन्तिसदायानि भयात्तीर्थानितापसाः ॥ कुमारेशस्यपूर्वंचतीर्थमस्तिमुनेःप्रियम् ॥ ९ ॥ स्तम्भेशस्यद्वितीयञ्च समुद्रस्यमु
नेःप्रियम् ॥ वर्करेश्वरमन्यच्च पुलोमप्रियमुत्तमम् ॥ १० ॥ चतुर्थञ्चमहाकालं कारन्धमनृपप्रियम् ॥ भारद्वाजस्यती
र्थञ्च सिद्धेशाख्यंहिपञ्चमम् ॥ ११ ॥ एतानिपञ्चतीर्थानिददर्शकुरुपुङ्गवः ॥ तपस्विभिर्वर्ज्जितानि महापुण्यानिता
नि च ॥ १२ ॥ दृष्ट्वापार्थोनारदाद्यानपृच्छत्समहामुनीन् ॥ तीर्थानीमानिरम्याणि प्रभावाद्भुतवन्तिच ॥ १३ ॥ किमर्थं
ब्रूतवर्ज्यन्ते सदैवब्रह्मवादिभिः ॥ १४ ॥ तापसाऊचुः ॥ ग्राहाःपञ्चवसन्त्येषु हरन्तिचतपोधनान् ॥ अतएतानिवर्ज्य
न्ते तीर्थानिकुरुनन्दन ॥ १५ ॥ इति श्रुत्वामहाबाहुर्गमनायमहोदधेः ॥ ततस्तन्तापसाःप्रोचुर्गन्तुन्नार्हसिफाल्गुन ॥ १६ ॥

नामक तीर्थहै ॥ ११ ॥ इन पांचों तीर्थोंको कौरवों में श्रेष्ठ अर्जुनजीने देखा जो वे बड़े पुण्यदायक तीर्थ तपस्वियोंसे रहितथे ॥ १२ ॥ और उनको देखकर उन अर्जुन
जी ने नारदादिक महामुनियों से पूछा कि प्रभावसे आश्चर्यवाले जो ये मनोहर तीर्थ हैं ॥ १३ ॥ ब्रह्मवादी लोग सदैव इनको किसलिये त्याग करतेहैं यह कहिये ॥
१४ ॥ तपस्वी लोग बोले कि हे कुरुनन्दन ! इन तीर्थों में पांच ग्राह बसते हैं वे तपस्वियों को हरलेजाते हैं इससे ये तीर्थ वर्जित कियेजाते हैं ॥ १५ ॥ यह सुनकर
महाभुज अर्जुनजी ने समुद्रके किनारे जानेके लिये इच्छा किया तब उनसे तपस्वियों ने कहा कि हे अर्जुनजी ! तुम जानेके योग्य नहीं हो ॥ १६ ॥

क्योंकि उन ग्राहोंने बहुतसे राजा व मुनिलोगोंको मारडालाहै इस लिये तुम बारहवर्षतक अर्बुद भी तीर्थोंमें स्नान करोगे इन तीर्थोंसे तुम्हारा क्या प्रयोजनहोगा।
पतंगके समान व्रतवाले मतहोवो याने पांखीकी तरह अग्निमें मतजलो॥१७।१८॥अर्जुनजी बोले कि दया सारांशवालोंने जो सारांश कहाहै वह क्या कहाजाताहै और
हे मुनियो ! जो धर्मका अर्थीहो उसे महात्माओं को न मना करना चाहिये॥१९॥ क्योंकि मूढबुद्धिवाला जो पुरुष धर्मकी इच्छावाले मनुष्य को मना करताहै आश्रय
कियेहुये उस मनुजके श्वासों से पृथ्वी भस्मताको प्राप्त होती है॥२०॥ जो जीवन बिजुली की चमक के समान चलायमान कहाजाताहै यदि धर्मके लिये वह जीव

बहवोघातितास्तैस्तु राजानोमुनयस्तथा ॥ तत्त्वंद्वादशवर्षाणि तीर्थानामर्बुदेष्वपि ॥ १७ ॥ स्नातःकिमेतैस्ती
र्थैस्ते मापतङ्गव्रतोभव ॥ १८ ॥ अर्जुनउवाच ॥ यदुक्तंकरुणासारैस्सारंतत्किन्तुप्रोच्यते ॥ धर्मार्थीमुनयोयश्च न
सवार्योमहात्मभिः ॥ १९ ॥ धर्मकामंहिमनुजं योवारयतिमन्दधीः ॥ तस्याश्रितस्यजगती निश्वासैर्भस्मतामिया
त ॥ २० ॥ यज्जीवितन्तुविद्युच्चंचलंस्यमानंक्षणभङ्गुरम् ॥ तच्चेद्धर्मकृतेयाति यातुदोषोस्तिकोननु ॥ २१ ॥ जीवितञ्च
धनन्दाराः पुत्राःक्षेत्रंगृहाणिच ॥ यातियेषान्धर्मकृते तएवभुविमानवाः ॥ २२ ॥ तापसाऊचुः ॥ एवन्तेकुर्वतःपार्थ दी
र्घमायुःप्रवर्द्धताम् ॥ सदाधर्मरतिर्भूयाद् याहित्वंकुरुवाञ्छितम् ॥ २३ ॥ एवमुक्तःप्रणम्यैतानाशीर्भिरभिसंस्तुतः॥
जगामतानितीर्थानि द्रष्टुंभरतसत्तमः ॥ २४ ॥ ततोसौसद्रमासाद्य महर्षेस्तीर्थमुत्तमम् ॥ विगाह्यतरसावीरः स्नानंच
क्रेपरन्तपः ॥ २५ ॥ अथतंपुरुषव्याघ्रमन्तर्जलचरोमहान् ॥ निजग्राहजलेग्राहः कुन्तीपुत्रंधनंजयम् ॥ २६ ॥ तमा

जाताहै तो जावै उसमें कौनसा दोषहै यह मैं पूछता हूं ॥ २१ ॥ जिन मनुष्यों का जीव, धन, स्त्री, पुत्र, खेत व घर धर्म के लिये जाताहैं वेही पृथ्वीमें मनुजहैं॥२२॥
तपस्वी लोग बोले कि हे अर्जुन ! ऐसा करते हुये तुम्हारी बड़ी आयुर्बल बढ़े व सदैव धर्ममें स्नेहहोवै तुम जावो व अपना मनोरथ करो॥२३॥ ऐसा कहेहुये भरतश्रेष्ठ
अर्जुन जी इन मुनियों को प्रणामकर व आशीर्वाद पाकर उन तीर्थोंको देखने के लियेगये ॥ २४ ॥ उसके बाद शत्रुओं के तापक वीर अर्जुनजी ने कल्याणकारक
व उत्तम महर्षिके तीर्थ में जाकर व शीघ्रता से पैठकर स्नान किया ॥ २५ ॥ इसके अनन्तर जलके भीतर पुरुषों में श्रेष्ठ उन कुन्तीके पुत्र अर्जुनजी को बड़ाभारी जल-

चारी ग्राह पकड़लिया ॥ २६ ॥ बलिष्ठोंमें श्रेष्ठ महाभुज अर्जुनजी पराक्रमसे उस ग्राहको लेहीकर उठपड़े ॥ २७ ॥ और यशस्वी अर्जुन जी से खींचाहुआ वह ग्राह समस्त
भूषणों से भूपित व कल्याणकारिणी स्त्री होगई ॥ २८ ॥ हे ब्राह्मणो ! जोकि दिव्यरूपिणी वह सुन्दरी नारी जलती हुई ज्वालाओंसे युक्त थी वह बड़े आश्चर्यको दे-
खकर कुन्तीजी के पुत्र अर्जुनजी ॥ २९ ॥ उस बड़ी प्रसन्न स्त्रीसे यह वचन बोले कि हे कल्याणि ! तुम कौन हो और किस कारण से जलचारिणी हुई हो ॥ ३० ॥
और किसलिये तुमने ऐसा बड़ापाप कियाहै ॥ ३१ ॥ स्त्री बोली कि-हे अर्जुन ! देववन में बसनेवाली मैं वर्चा अप्सराहूं व हे महाबल ! कुबेर की प्रसन्नतासे मैं नित्य

दायैवकौन्तेयो विस्फुरन्तञ्जलेचरम् ॥ उदतिष्ठन्महाबाहुर्बलेनबलिनांवरः ॥ २७ ॥ उत्कृष्टएवतुग्राहः सोर्जुनेनयश
स्विना ॥ बभूवनारीकल्याणी सर्वाभरणभूषिता ॥ २८ ॥ दीप्यमानशिखाविप्रा दिव्यरूपामनोरमा ॥ तदद्भुतंमहद्दृ
ष्ट्वा कुन्तीपुत्रोधनञ्जयः ॥ २९ ॥ तांस्त्रियंपरमप्रीतामिदंवचनमब्रवीत् ॥ कावैत्वमसिकल्याणिकुतोवाजलचारिणी ॥
३० ॥ किमर्थञ्चमहत्पापमिदंकृतवतीह्यसि ॥ ३१ ॥ नार्य्युवाच ॥ अप्सराह्यस्मिकौन्तेय देवारण्यनिवासिनी ॥ इ
ष्टाधनपतेर्नित्यं वर्चानाममहाबल ॥ ३२ ॥ ममसख्यश्चतस्रोन्याः सर्वाःकामगमाःशुभाः ॥ ताभिस्सहप्रयातास्मि
देवराजनिवेशनात् ॥ ३३ ॥ ततःपश्यामहेसर्वा ब्राह्मणंतांविकेतकम् ॥ रूपवन्तमधीयानमेकमेकान्तचारिणम् ॥
३४ ॥ तस्यवैतपसोवीर तद्वनंतेजसावृतम् ॥ आदित्यइवतन्देशं कृत्स्नमत्यवभासयत् ॥ ३५ ॥ तस्यदृष्ट्वावपुस्तादृग्
पंचाद्भुतदर्शनम् ॥ अवतीर्णास्मितन्देशं तपोविघ्नचिकीर्षया ॥ ३६ ॥ अहञ्चसौरभेयीच सामधीबुद्बुदालता ॥ यौगप

ही प्रसन्न रहतीहूं ॥ ३२ ॥ और इच्छापूर्वक चलनेवाली मेरी और उत्तम चार सखियां है उन सबों समेत मैं सुरराज के स्थान से चली ॥ ३३ ॥ तदनन्तर एकान्त में
रहनेवाले व पढ़तेहुये रूपवान् तांविकेतक नामक एक ब्राह्मणको हमसबोंने देखा ॥ ३४ ॥ हे वीर ! उनकी तपस्याके तेजसे वह वन घिराहुआथा और सूर्यकी तरह वे उस
समस्त स्थानको प्रकाशित कररहे थे ॥ ३५ ॥ उनके वैसे शरीर व आश्चर्यमय दर्शनवाले रूपको देखकर तपमें विघ्नकरने की इच्छा से उस स्थान में मैं उतरती भई ॥ ३६ ॥

हे भारत ! मैं व सौरभेयी और सामधी, बुद्बुदा व लता एकही साथ उस ब्राह्मणके समीप प्राप्तहुईं ॥ ३७ ॥ हे वीर ! खेलती व गाती और उस ब्राह्मण को लुभाती हुई
हमसब गईं परन्तु उसने हमसबों में किसी प्रकार से मन न किया ॥ ३८ ॥ और बड़ी तपस्या में टिकाहुआ वह महातेजस्वी ब्राह्मण चलायमान न हुआ व हे क्षत्रियों में
श्रेष्ठ ! हम सबों पै क्रोधितहो उस ब्राह्मणने शापदिया ॥३९॥ कि तुमसब ग्राहहोकर सौ वर्षतक जलमें होवोगी उसकेउपरान्त हेभरतसत्तम! हम सब बहुत दुःखीहुईं॥४०॥
और तपोरूप धनवाले व पापरहित तथा रूप व अवस्था से कामदेव की नाईं भलीभांति बैठेहुये उस ब्राह्मण की शरण में आईं ॥ ४१ ॥ व प्रार्थना किया कि हे

येनतंविप्रमभ्यगच्छामभारत ॥ ३७ ॥ गायन्त्योललमानाश्च लोभयन्त्यश्चतंद्विजम् ॥ सचनास्मासुकृतवान् मनो
वीरकथञ्चन ॥ ३८ ॥ नाकम्पतमहातेजाः स्थितस्तपसिनिर्मले ॥ सोशपत्कुपितोस्मासु ब्राह्मणःक्षत्रियर्षभ ॥ ३९ ॥
ग्राहभूताजलेयूयं भविष्यध्वंशतंसमाः ॥ ततोवयंप्रव्यथितास्सर्वाभरतसत्तम ॥ ४० ॥ आगताःशरणंविप्रं तपोधनम
कल्मषम् ॥ रूपेणवयसाचैव कन्दर्पमिवसंस्थितम् ॥ ४१ ॥ अयुक्तंकृतवत्यःस्मक्षन्तुमर्हसिनोद्विज ॥ एषएववधोस्मा
कं सम्पर्याप्तस्तपोधनम् ॥ ४२ ॥ यद्वयंशंसितात्मानं प्रलोब्धुंत्वामुपागताः ॥ अवध्याश्चस्त्रियइशिष्टा मन्यन्तेधर्मचि
न्तकाः ॥ ४३ ॥ तस्माद्धर्मेणधर्मज्ञ नास्मान्हिंसितुमर्हसि ॥ सर्वभूतेषुधर्मज्ञ मैत्रोब्राह्मणउच्यते ॥ ४४ ॥ सत्योभ
वतुधर्मज्ञ एषवादोमनीषिणाम् ॥ शरणञ्चप्रपन्नानांशिष्टाःकुर्वन्तिपालनम् ॥ ४५ ॥ शरणंत्वांप्रपन्नाःस्म तस्मात्त्वंक्ष
न्तुमर्हसि ॥ एवमुक्तस्तुधर्मात्मा ब्राह्मणःशुभकर्मकृत ॥ ४६ ॥ प्रसादंकृतवाञ्छूर रविसोमसमप्रभः ॥ ४७ ॥ ब्राह्म

द्विज ! हम सबोंने अयोग्य कियाहै तुम क्षमा करनेकेयोग्यहो हे तपोधन ! हमलोगोंका यही वध अच्छीतरह पूर्ण होगया ॥ ४२ ॥ जोकि प्रशंसित मनवाले तुमको
लोभने के लिये हम सबआई थीं और धर्मके चिन्तक उत्तम पुरुष स्त्रियोंको अवध्य (न मारनेयोग्य) मानते हैं ॥ ४३ ॥ इस लिये हे धर्मज्ञ ! धर्मके कारण से तुम हम
लोगोंको मारने के योग्य नहींहो क्योंकि हे धर्मज्ञ ! सम्पूर्ण प्राणियोंमें मित्र ब्राह्मण कहाजाता है ॥ ४४ ॥ हे धर्मज्ञ ! विद्वानों का यह कहना सत्यहोवै और शरण
में प्राप्तहुये प्राणियों का उत्तमजन पालन करते हैं ॥ ४५ ॥ और हम सब तुम्हारी शरण में प्राप्तहैं इस लिये तुमको क्षमा करना चाहिये ऐसा कहेहुये उस उत्तम कर्म-

कारी ब्राह्मण ने ॥ ४६ ॥ हे वीर ! प्रसन्नता किया जोकि चन्द्रमा व सूर्यके समान प्रकाशमान था ॥ ४७ ॥ ब्राह्मण बोला कि आप सबों के चरित्र से चित्तमें मोहको प्राप्तहोताहूं कि ऐसी धृष्टताको आश्चर्य है व जो पापके लिये वर्तमान होनाहै यह बड़े अज्ञानकी बात है ॥ ४८ ॥ यदि यह मनुष्य मस्तक पै बैठेहुये कालको देखै तो भोजनभी न रुचै अकार्य करनेको क्या कहनाहै ॥ ४९ ॥ मनुष्य का जन्म समस्तरत्नोंमें अतिदुर्लभ है परन्तु बड़े आश्चर्यकी बातहै कि उस नरजन्मको स्त्रियोंमें अज्ञानी होकर नीचनर तिनुका के समान करदेते हैं ॥ ५० ॥ व हम तुम से पूंछते हैं कि तुमलोगों का जन्म किसलिये होताहै और कौन लाभ है मनसे यह विचार करके कहि-

णउवाच ॥ भवतीनाञ्चरित्रेण परिमुह्यामिचेतसि ॥ अहोधाष्ट्र्यंमहामोहो यत्पापायप्रवर्त्तनम् ॥४८॥मस्तकस्थापिनं मृत्युं यदिपश्येदयञ्जनः ॥ आहारोपिनरोचेत किमुताकार्यकारिता ॥ ४९ ॥ अहोमानुष्यकंजन्म सर्वरत्नसुदुर्लभम्॥ तृणवत्क्रियतेकैश्चिद्योषिन्मूढैर्नराधमैः ॥५०॥ त्वांवयंसमपृच्छामोजनिर्वःकिन्निमित्ततः ॥ कोवालाभोभिचार्यैतन्मनसासहप्रोच्यताम् ॥ ५१ ॥ नचैताःपरिनिन्दामोजनिर्याभ्यःप्रवर्त्तते ॥ केवलंतान्विनिन्दामोयेचतासुनिर्गलाः ॥ ५२ ॥ यतःपद्मभुवासृष्टंमिथुनंविश्ववृद्धये ॥ तत्तथापरिपाल्यंवैनात्रदोषोस्तिकश्चन ॥ ५३ ॥ याबान्धवैःप्रदत्तास्याद्वह्निद्विजसमागमे ॥ गार्हस्थ्यपालनंधन्यंतयासाकंहिसर्वदा ॥५४॥यथाप्रकृतिसंयोगोयत्नेनापिपरस्परम् ॥ साध्यमानो गुणायस्यादगुणायाप्यसाधितः ॥ ५५ ॥ एवंयत्नात्साध्यमानंस्वकंगार्हस्थ्यमुत्तमम् ॥ गुणायमहतेभूयादगुणाया

ये ॥ ५१ ॥ हम इन स्त्रियोकी निन्दा नहीं करते है कि जिनसे जन्म होताहै केवल उनकी निन्दा करते हैं जो पुरुष कि उन स्त्रियोंमें बिन रोंक टोंक प्राप्त होतेहैं ॥५२॥ जिससे कि स्त्री पुरुषका जोड़ा संसारकी वृद्धिके लिये ब्रह्माने रचाहै उसीलिये वैसाही परिपालन करना चाहिये इसमें कोई दोष नहीं है ॥ ५३ ॥ जो स्त्री अग्नि व ब्राह्मण के संयोगमें बन्धुओं से दीजाती है उसके साथ सदैव गृहस्थी का पालन करना प्रशंसित है ॥ ५४ ॥ व यत्नसे भी आपस में साधन कियाहुआ संयोग स्वभाव के अनुसार गुणके लिये होताहै व नही साधन कियाहुआ संयोग अवगुण के लिये होताहै ॥ ५५ ॥ इसीप्रकार यत्नसे साधित अपनी उत्तम गृहस्थी बड़े गुणके

लिये होतीहै और बिनसाधीहुई गृहस्थी अवगुण के लिये भी होती है ॥ ५६ ॥ पांचमुखों से संयुत और द्वारोंपै टिकेहुये गेरह योधाओं से युक्त जो पुरुषहै वह स्त्री
समेत गृहस्थी में कैसे अचेत होजाताहै ॥ ५७ ॥ और जो स्त्रीसे संयुक्त करके पंचयज्ञादिकर्मों से संसार के उपकार के लिये रचागया है वह मूर्खोंकरके अन्यथा सा-
धन कियाजाता है ॥ ५८ ॥ अहो स्त्रियो ! सुनिये नहीं तो तुम्हारी सेवा अशुभहोगी परन्तु तौभी भुजाको उठाकर कहताहूं तुम सुनो ॥ ५९ ॥ कि उत्तम धातुओंमें
सारांश जो वीर्य समानवर्णवाली स्त्रीको छोड़कर निन्दित योनिमें फेंकैगा उसको यमराज ने ऐसा कहाहै ॥ ६० ॥ कि पहले औषधियों का द्रोही व फिर आत्मद्रोही

**ष्यसाधितम् ॥५६॥ पुरंपञ्चमुखंद्वाःस्थैरेकादशभटैर्युतम् ॥ सार्कंनार्यागार्हपत्येसकथंस्यादचेतनम् ॥५७॥ यश्चस्त्रिया
समायुज्यपञ्चयज्ञादिकर्मभिः ॥ विश्वोपकृतयेसृष्टोमूढैर्हासाध्यतेन्यथा ॥ ५८ ॥ अहोशृणुध्वंनोचेद्वःशुश्रूषाजायते
शुभा ॥ तथापिबाहुमुद्धृत्यकथयामिशृणोषित्वम् ॥ ५९ ॥ सद्धातुसारंयद्वीर्यंसमानांपरिहायच ॥ विनिक्षिपेत्कुयोनौ
तुतस्यैवंप्रोक्तवान्यमः ॥ ६० ॥ प्रथमंचौषधीद्रोग्धाआत्मद्रोग्धाततःपुनः ॥ पितृद्रोग्धाविश्वद्रोग्धायात्यन्धंशा
श्वतीःसमाः ॥ ६१ ॥ मानुष्यंपितरोदेवामुनयोमानवास्तथा ॥ भूतानिचोपजीवन्तितदर्थंनियतोभवेत ॥ ६२ ॥ वच
सामनसाचैवजिह्वयाकरश्रोत्रकैः ॥ दान्तमाहुर्हंसतीर्थंकाकतीर्थमतःपरम् ॥ ६३ ॥ काकप्रायेनयेयस्मिन्रमन्तेतामसा
जनाः ॥ हंसोपमेतुदेवानांकोर्थस्तेनेतिचिन्त्यताम् ॥६४॥ एवंविधंहिविश्वस्यनिर्माणंस्मरतोहृदि ॥ आपिक्तेत्रिलोक्यां
रचकथंपापेरमेन्मनः ॥६५॥ तदिदंवान्यमर्त्यानांशास्त्रदृष्टवतास्त्रियः ॥ यमलोकेमयादृष्टं मुह्येप्रत्यक्षतःकथम् ॥६६॥**

और पितृद्रोही और विश्वद्रोही ये सैकड़ों बरसतक अन्धतामिस्रनरकमें प्राप्तहोते हैं॥ ६१॥ पितर, देवता, मुनि व मनुष्य व अन्यप्राणी मनुष्यके समीपसे जीतेहैं उसके
लिये नियत (तैयार) होवै ॥ ६२ ॥ और मन, वचन, जीभ, हाथ व कानोंकरके जितेन्द्रिय पुरुषको विद्वान्लोगोंने हंसतीर्थ कहाहै व इसके उपरान्त अन्य पुरुषको
काकतीर्थ कहाहै ॥ ६३ ॥ और कौवा के सदृशनीतिवाले जिसतीर्थ में तामसीजन रमणकरते हैं हंसोंकी उपमावाले देवताओं के तीर्थमें उनका कौन प्रयोजन है उसीसे
यह विचार कियाजावै ॥ ६४ ॥ संसारके इस प्रकारके निर्माणको हृदयमें स्मरणकरतेहुये पुरुषका मन त्रिलोक के लियेभी कैसे पापमें स्नेह करेगा ॥ ६५ ॥ और शास्त्रको

देखे हुये मैंने यमलोकमें स्त्री व अन्य पुरुषोंका यह चरित्र प्रत्यक्ष देखाहै इस लिये कैसे मोहितहोऊं ॥६६॥ व आपसबोंमें कौन क्रोधहै जो जिसलिये बनायेगये हैं वे उसी प्रयोजन को करते हैं और मेरा पराक्रम सत्यहोवै ॥ ६७ ॥ कृत्स्न, समस्त विश्व और सब ये शब्द अक्षयअर्थको कहनेवाले हैं परन्तु यह सौका शब्द अक्षय का वाचक नहींहै ॥ ६८ ॥ जब वनमें ग्राहरूपहो पुरुषों को जलमें पकडतीहुई तुमको पुरुषोंमें श्रेष्ठ कोई मनुष्य जलसे स्थलमें ऊपर खीचैगा ॥ ६६ ॥ तब फिर तुम सब अपने रूपको पावोगी हँसतेहुये भी मैंने पहले कभी झूंठ नहीं कहाहै ॥ ७० ॥ जैसे निन्दित वस्तु के पीने व अशुद्धवस्तु के छूनेकी शुद्धिहोती है वैसेही तुम सबोंकी

भवतीषुचकःकोपोयेतादर्थ्यविनिर्मिताः ॥ तेतमर्थंप्रकुर्वन्ति सत्यमस्तुचमेबलम् ॥ ६७ ॥ कृत्स्नंसमस्तंविश्व ञ्च सर्वमक्षयवाचकाः ॥ परिमाणंशतन्त्वेषनैतदक्षय्यवाचकम् ॥ ६८ ॥ यदावनेग्राहभूतां गृह्णन्तींपुरुषाञ्जले ॥ उत्कर्षतिजलात्कश्चित्स्थलंपुरुषसत्तमः ॥ ६९ ॥ तदायूयंपुनस्सर्वाः स्वरूपम्प्रतिपत्स्यत ॥ अनृतंनोक्तपूर्वम्मे हसतापि कदाचन ॥ ७० ॥ कुपानस्यकुष्टक्तस्य शुद्धिस्तद्वद्वराहिवः ॥ ७१ ॥ नार्युवाच ॥ ततोभिवाद्यतंविप्रं कृत्वाचैवप्रदक्षिणाम् ॥ अचिन्तयामोपसृत्य तस्माद्देशात्सुदुःखिताः ॥ ७२ ॥ चिन्तयामोवयंसर्वाः कालेनाल्पेनतन्नरम् ॥ समागच्छेम योनःस्वं रूपमापादयेत्पुनः ॥ ७३ ॥ तावयंचिन्तयित्वेह मुहूर्तादिवभारत ॥ दृष्टवन्त्योमहाभागा देवर्षिमथनारदम् ॥ ७४ ॥ सर्वाहृष्टाःस्मतन्दृष्ट्वादेवर्षिममितद्युतिम् ॥ अभिवाद्यचतम्पार्थ स्थिताःस्मव्यथिताननाः ॥ ७५ ॥ सनोपृच्छद्दुःखमूलमुक्तवत्योवधञ्चतम् ॥ सश्रुत्वातद्यथातथ्यमिदंवचनमब्रवीत ॥ ७६ ॥ दक्षिणेसागरानूपे पञ्चतीर्थानि

उत्तम शुद्धि कहीगई है ॥ ७१ ॥ स्त्री बोली कि उसके उपरान्त उस द्विजको प्रणाम व प्रदक्षिणाकरके उस स्थान से आकर दुःखितहोतीहुईं चिन्तन करतीरही ॥ ७२ ॥ हम सब यही विचारतीरही कि थोड़ेही समय के बाद उस मनुष्यके समीप जावैं जो निजरूप को फिर सिद्ध करदेवै ॥७३॥ हे भारत ! यहां महाभागवती हम सब चिन्तनकर के कच्ची दोही घड़ीके बाद देवर्षि नारदजी को देखा ॥ ७४ ॥ व अमितछविवाले उन नारदजी को देखकर हमसब प्रसन्नहोगईं और हे अर्जुन ! उन नारदजीको प्रणामकर विकलमुखवाली हम सब खड़ीहोगईं ॥ ७५ ॥ उन नारदजी ने हम सबोंसे दुःखका मूल पूंछा तब उस वधको हम सबोंने कहा और

उन नारदजीने उस यथार्थवृत्तान्तको जानकर यह वचन कहा ॥ ७६ ॥ कि दक्षिण दिशामें समुद्र के किनारे जो पुण्यदायक व मनोहर पांचतीर्थ हैं उनतीर्थों को
तुमसब शीघ्रही जावो ॥ ७७ ॥ वहां पाण्डुके पुत्र अर्जुनजी स्थितहोकर शुद्धमनवाले वे इस दुःखसे निस्सन्देह छुड़ावैंगे ॥ ७८ ॥ हे वीर ! उन नारदजी के वचनको
सुनकर हम सब यहांआई हैं हे पाण्डव ! तुम इस वचनको सत्यकरनेयोग्यहो ॥ ७९ ॥ तुम्हारे समान साधुजनों का जन्म दीनजनोंका उपकारक होताहै उसके यह
वचन सुनकर अर्जुनजी ने क्रमसे तीर्थों में स्नानक्रिया ॥ ८० ॥ व उन पाण्डवने ग्राहहुई उन अप्सराओं को कृपापूर्वक ऊपर लेआये उसके उपरान्त अर्जुन वीर

सन्निवे ॥ पुण्यानिरमणीयानि तानिगच्छतमाचिरम् ॥ ७७ ॥ तत्रस्थःपुरुषव्याघ्रःपाण्डवेयोधनञ्जयः ॥ मोक्षयि
ष्यतिशुद्धात्मा दुःखादस्मान्नसंशयः ॥ ७८ ॥ तस्यसर्वावयंवीर श्रुत्वावाक्यमिहागताः ॥ त्वमिदंसत्यवचनं कर्तुमर्ह
सिपाण्डव ॥ ७९ ॥ त्वद्विधानांहिसाधूनां जन्मदीनोपकारकम् ॥ श्रुत्वेतिवचनंतस्याः सस्नौतीर्थेष्वनुक्रमात ॥ ८० ॥
ग्राहभूताश्चोज्जहार कृपापूर्वंसपाण्डवः ॥ ततःप्रणम्यतावीरं प्रोच्यनानाजयाशिषः ॥ ८१ ॥ गन्तुंकृताभिलाषिण्यः
प्राहपार्थोधनञ्जयः ॥ एषमेहृदिसन्देहः सुदृढःपरिवर्तते ॥ ८२ ॥ कस्माद्वोनारदमुनिरनुगृह्णन्नशंसत ॥ सर्वःकोप्य
तिहीनोपिस्वपूज्यस्यार्थसाधकः ॥ ८३ ॥ स्वपूज्यतीर्थेष्वावासे प्रोक्तवान्नारदःकथम् ॥ एकैकएषांशक्तोहि अपि
देवान्निवारितुम् ॥ ८४ ॥ तीर्थसंरोधकारिण्यः सर्वेनावारयत्कथम् ॥ इतिचिन्तयतोमह्यं भृशन्दोलायतेमनः ॥ ८५ ॥

को प्रणामकर व बहुतप्रकार के जयके आशीर्वाद देकर उन अप्सराओं ने ॥ ८१ ॥ जब जानेका अभिलाष किया तब कुन्तीके पुत्र अर्जुनजी ने कहा कि मेरे चित्तमें
यह बड़ीपुष्टसन्देह है ॥ ८२ ॥ कि नारद मुनिने तुम सबों के ऊपर क्यों कृपा नहीं किया यह कहिये क्योंकि सब पुरुषभी चाहै अतिनीच भी होवै अपने पूजने
योग्यके प्रयोजन का सिद्धकारक होताहै ॥ ८३ ॥ और नारद ने अपने पूज्यतीर्थों में निवासके निमित्त कैसे कहा क्योंकि इनके मध्यमें देवताको भी निवृत्ति के लिये
एक २ समर्थ है ॥ ८४ ॥ और सबोंने तीर्थको रोकनेवाली तुम सबोंको क्यों नहीं मनाकिया यह चिन्तन करतेहुये मेरा मन बहुत सन्देह में प्राप्तहै ॥ ८५ ॥

और इस विषयमें मुझको बड़ाआश्चर्यहै इससे तुम सब सच कहनेके योग्यहो॥८६॥अप्सरायें बोलीं कि हे अर्जुनजी ! तुम योग्य पूंछतेहो फिर उत्तरदिशामेंदेखो ॥८७॥ कि उत्तम ब्राह्मणों से घिरेहुये जो ये नारद मुनि आते हैं तुम्हारी इच्छाकी प्रियवार्त्ताको ये कहैंगे ऐसा कहकर वे अप्सरायें आकाशतलको चलीगई ॥ ८८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेसपादलक्षसंहितायांकुमारिकाखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांप्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । नारद सन अर्जुन यथा बहुत बतकही कीन । सो दूजे अध्यायमें वरणत चरित नवीन ॥ मुनि बोले कि उसके उपरान्त ब्राह्मणोंसे घिरेहुये सुरपूजित नारदजीके

महन्मेकौतुकंचात्र सत्यंव्याकर्तुमर्हथ ॥ ८६ ॥ अप्सरसऊचुः ॥ योग्यंपृच्छसिकौन्तेय पुनःपश्योत्तरांदिशम् ॥ ८७ ॥ अयंसुविप्रैरभिसंवृतोयो मुनिस्समायातिचनारदःप्रियम् ॥ सर्वंतवैषख्याञ्किलचैषवक्ता प्रोक्त्वैवमाकाशतलङ्गतास्ताः ॥ ८८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेसपादलक्षसंहितायांकुमारिकाखण्डेप्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ ❀ ॥

मुनिरुवाच ॥ ततोद्विजैःपरिवृतन्नारदन्देवपूजितम् ॥ अभिगम्योपजग्राह सर्वान्पार्थःपृथक्पृथक् ॥ १ ॥ ततस्तन्नारदःप्राह जयारातीन्धनंजय ॥ धर्मेभवतुतेबुद्धिर्देवेषुब्राह्मणेषुच ॥ २ ॥ कच्चिदेतांमहायात्रां वीरद्वादशवार्षिकीम् ॥ आचरन्खिद्यसेनैवमयिवाकुप्यसेनच ॥३॥ मुनीनामपिचेतांसितीर्थयात्रासुफाल्गुन ॥ खिद्यन्तिपरिकुप्यन्ति श्रेयसांविघ्नमूलतः ॥ ४ ॥ कश्चिन्नतेनदोषेण समाविष्टोसिपाण्डव ॥ अत्रचाङ्गिरसागीतां गाथामेतांहिशुश्रुम ॥ ५ ॥ यस्यहस्तौचपादौच मनश्चैवसुसंयतम् ॥ निर्विकाराःक्रियास्सर्वास्सतीर्थफलमश्नुते ॥ ६ ॥ तदियंहृदिधार्य्यंते किंवा

समीप जाकर अर्जुनजीने अलग २ सबोंको प्रणामकिया॥ १ ॥ उसके उपरान्त नारदजीने उनसे कहा कि हे अर्जुनजी ! शत्रुओंको जीतिये व देवताओं तथा ब्राह्मणों व धर्म में तुम्हारी बुद्धिहोवै ॥ २ ॥ हे वीर ! बारहवर्ष की इस बड़ी तीर्थयात्राको करतेहुये क्या तुम क्लेशको तो नहीं प्राप्तहोते हो और मेरेऊपर क्रोध तो नहीं करतेहो ॥ ३ ॥ हे अर्जुनजी ! मुनियों के चित्तभी तीर्थयात्रा में क्लेशित होते हैं व विघ्नहोने के मूलकारण से कल्याणकारी वस्तुओंके ऊपर क्रोधितहोते हैं ॥ ४ ॥ हे पाण्डव ! उस दोषसे क्या तुम तो संयुक्त नहींहो इस विषय में अंगिरा महर्षिसे गाईहुई इस गाथाको मैंने सुनाहै ॥ ५ ॥ कि जिसके हाथ, पांव व मन अच्छीतरह

से बंधे हैं उसके सब कर्म विकाररहित हैं और वह सब तीर्थोंका फल भोगता है ॥ ६ ॥ इस लिये तुमको यह बात हृदयमें धारण करनाचाहिये या हम तुमसे क्या कहैं कि युधिष्ठिरजी जिसके भाई व वे कृष्णजी जिसके मित्र हैं ॥ ७ ॥ परन्तु फिर मनुष्यों को जो यह ब्राह्मणों का सिखावन है वह योग्य है क्योंकि उन विष्णुजी से हमलोग धर्म के गुरु (उपदेशक) थापेगये हैं ॥ ८ ॥ इस विषयमें ब्राह्मणों प्रति जो गाथा विष्णुने गाया है उसको मुझसे सुनो ॥ ९ ॥ जिस के अमृतरूप निर्मलयश में सुनने से प्रवेशहोना चाण्डालतक संसारको पवित्र करताहै आपलोगोंसे पायेहुये तीर्थरूप यशवाला वही मैं आपलोगों से प्रतिकूल आ-

त्वांवच्मिहेवयम् ॥ युधिष्ठिरोयस्यभ्राता सखायस्यसकेशवः ॥ ७ ॥ पुनरेतत्समुचितं यद्विप्रैःशिक्षणंनृणाम् ॥ वयंहि धर्मगुरवः स्थापितास्तेनविष्णुना ॥ ८ ॥ विष्णुनाचात्रशृणुमे गीताङ्गाथांद्विजान्प्रति ॥ ९ ॥ यस्यामृतामलयशः श्रवणावगाहस्सद्यःपुनातिजगदाश्वपचाद्विकुण्ठः ॥ सोहंभवद्भ्यउपलब्धसुतीर्थकीर्तिश्छिन्द्यांस्वबाहुमपिवःप्रतिकूलवृत्तिम् ॥ १० ॥ प्रियञ्चपार्थतेब्रूमोयेषांकुशलकामुकः ॥ ११ ॥ सर्वेकुशलिनस्तेच यादवाःपाण्डवास्तथा ॥ अधुनाभीमसेनेन कुरूणामुपतापकः ॥ १२ ॥ शासनाद्धृतराष्ट्रस्य वीरवर्मान्नृपोहतः ॥ सहिराज्ञामजेयोभूद्यथापूर्वंबलिर्बली ॥ १३ ॥ कण्टकंकण्टकेनैव धृतराष्ट्रोजिगायतम् ॥ इत्यादिनारदप्रोक्तां वाचमाकर्ण्यफाल्गुनः ॥ १४ ॥ अतीवमुदितःप्राह तेषामकुशलंकुतः ॥ येब्राह्मणमतेनित्यं येचब्राह्मणपूजकाः ॥ १५ ॥ अहञ्चसततन्नियतस्तीर्थानिविचरन्ननु ॥ आग

चरणवाली भुजाको भी काटडालूं ॥ १० ॥ हे अर्जुनजी ! तुम्हारी प्रियवार्ताको मैं कहताहूं कि तुम जिनकी कुशल की इच्छा रखतेहो ॥ ११ ॥ वे सब यादव व पांडव कुशलसमेत हैं और इस समय धृतराष्ट्र की आज्ञा से कौरवोंके सन्तापकारक वीरवर्मा राजाको भीमसेन ने मारडाला है जिसप्रकार पहले पराक्रमी बलि थे उसी भांति वह राजाओं के न जीतनेयोग्यथा ॥ १२ । १३ ॥ जैसे चुभाहुआ कांटा कांटे से निकालाजाता है वैसेही धृतराष्ट्र ने उसको जीतलिया इत्यादि और भी नारदकी कहीहुई वाणीको सुनकर अर्जुन ॥ १४ ॥ बहुतप्रसन्न होकर बोले कि उनका अकुशल कहांसे होवै जोकि नित्य ब्राह्मणोंके मतमें होते हैं और जो ब्राह्मणोंके पूजक हैं ॥ १५ ॥

और सदैव नियममें बंधकर तीर्थों में घूमताहुआ मैं इसतीर्थको आया और मेरेहृदय में बड़ा आनन्द है ॥ १६ ॥ तीर्थोंका दर्शन धन्यहै व उससे अधिक तीर्थ स्नान धन्यहै, उससे अधिक तीर्थोंका माहात्म्यसुनना धन्यहै यही मनुजीने कहाहै ॥ १७ ॥ इसलिये हे मुने ! मैं इसतीर्थ के गुणोंको सुना चाहताहूं व हे मुने ! जो तुमने स्वीकार कियाहै इसको आपही को सुनानाचाहिये ॥ १८ ॥ क्योंकि त्रिलोक में घूमतेहुये तुम सब सारांशभूत वस्तुको जानते हो इसलिये आपके आदरसे इस को सवतीर्थों से अधिक मानते है ॥ १९ ॥ नारद बोले कि हे गुणिन, अर्जुनजी ! तुमको यह उचितहै जोकि गुणोंको पूंछतेहो और धर्म से उपजेहुये गुण सुनने के

तस्तीर्थमेतद्धि प्रमोदोतीवमेहृदि ॥ १६ ॥ तीर्थानान्दर्शनंधन्यमवगाहस्ततोधिकः ॥ माहात्म्यश्रवणंतस्मादित्येव मुनिरब्रवीत ॥ १७ ॥ तदहंश्रोतुमिच्छामि तीर्थस्यास्यगुणान्मुने ॥ भवतैवश्राव्यमेतद्यत्त्वयाङ्गीकृतम्मुने ॥ १८ ॥ त्वंहित्रिलोकींविचरन्वेत्सिसर्वांहिसारताम् ॥ तदेतत्सर्वतीर्थेभ्योधिकंमन्येत्वदादृतेः ॥ १९ ॥ नारदउवाच ॥ उचितन्त वपार्थैतद्यत्पृच्छसिगुणिन्गुणान् ॥ गुणिनामेवयुज्यन्ते श्रोतुन्धर्मोद्भवान्गुणान् ॥ २० ॥ साधूनान्धर्मश्रवणैःकीर्तनैर्या तिचान्वहम् ॥ पापानाममदालापैरायुर्यातिवृथात्ययम् ॥ २१ ॥ तदहंकीर्तयिष्यामि तीर्थस्यास्यगुणान्बहून् ॥ यथाश्रुत्वा विजानासियुक्तमङ्गीकृतम्मया ॥ २२ ॥ पुराहंविचरन्पार्थत्रिलोकींकपिलानुगः ॥ गतवान्ब्रह्मणोलोकं तत्रापश्यंपिता महम् ॥ २३ ॥ सहिराजर्षिदेवर्षिमूर्त्तामूर्तैस्सुसंवृतः ॥ विभातिविमलोब्रह्मा नक्षत्रैरुडुराडिव ॥ २४ ॥ तमहंप्रणि पत्याथ चक्षुषाकृतस्वागतः ॥ उपविष्टःप्रमुदितः कपिलेनसहैवच ॥ २५ ॥ एतस्मिन्नन्तरेतत्र ब्राह्मणास्समुपागताः ॥

लिये गुणीहीजनों को योग्यहै ॥ २० ॥ उत्तम जनोंकी आयुर्बल प्रतिदिन धर्म के सुनने व कहने से बीतती है व पापियों की आयु अशुभ बातचीतों से वृथा व्यतीत होतीहै ॥ २१ ॥ इसलिये मैं इसतीर्थ के बहुत गुणोंको कहूंगा जिसको सुनकर तुमजानोगे कि मैंने योग्य अङ्गीकार कियाहै ॥ २२ ॥ हे अर्जुनजी ! पुरातनसमय कपि- लदेवजी के पीछे त्रिलोकमे घूमताहुआ मैं ब्रह्माके लोकको गया वहां ब्रह्माको देखा ॥ २३ ॥ कि वे ब्रह्माजी मूर्त्तिको धारेव बिनमूर्त्तिवाले राजर्षि व देवर्षियों से घिरे ऐसे शोभित थे जैसे कि नक्षत्रों से घिराहुआ निर्मल चन्द्रमा शोभितहोता है ॥ २४ ॥ इसके अनन्तर उनको प्रणामकरके नेत्रोंसे कुशल पूंछाहुआ मै हर्षितहो कपिलदेव

जी समेत समीप बैठगया ॥ २५ ॥ इसी अवसर में वहां ब्राह्मणलोग आये क्योंकि वे ब्राह्मण संसारको देखने के लिये नित्य हितके निमित्त घूमते हैं ॥ २६ ॥ इसके अनन्तर प्रणाम किये बैठेहुये उन ब्राह्मणों को अमृत के समान नेत्रोंसे आनन्दित करतेहुये से ब्रह्माजी बोले ॥ २७ ॥ कि तुमलोगों ने किस २ जगह पयान कियाहै और जो कुछ आश्चर्य देखा या सुनाभी हो उसको कहिये जिसके सुनने से बहुत पुण्यहोती है ॥ २८ ॥ जब भगवान् ब्रह्माने उन सबों से ऐसा कहा तब उनके मध्य में जो श्रेष्ठ मानेगये थे वे शुभ्रवानामक ब्राह्मण ब्रह्माको प्रणामकरके यह बोले ॥ २९ ॥ कि समर्थ के आगे विज्ञापनकरना वैसेही है जैसे कि सूर्यको दीपक दिखाना

विचरन्तिहितेनित्यं जगद्द्रष्टुंहिब्राह्मणाः ॥ २६ ॥ कृतप्रणामानथतान्समासीनान्पितामहः ॥ चक्षुषामृतकल्पेन ह्लादयन्निवचाब्रवीत् ॥ २७ ॥ कुत्रकुत्रविचरितं दृष्टंश्रुतमथापिच ॥ किञ्चिदेवाद्भुतंब्रूत श्रवणाद्येनपुण्यता ॥ २८ ॥ एवमुक्ता भगवता तेषांयःप्रवरोमतः ॥ शुभ्रवानामब्रह्माणंप्रणिपत्येदमूचिवान् ॥ २९ ॥ प्रभोरग्रेचविज्ञप्तिस्तथादीपोरवेर्यथा ॥ तथापिखलुवाच्यस्मे पुण्यार्थंप्रेरितेनते ॥ ३५ ॥ मुनिःकात्यायनोनाम श्रुत्वाधर्म्मान्बहून्द्विजः ॥ सारजिज्ञासयातस्थावेकाङ्गुष्ठःशतंसमाः ॥३१॥ ततःप्रोवाचतंदिव्यावाणीकात्यायनशृणु॥पुण्येसरस्वतीतीरे पृच्छसारस्वतम्मुनिम् ॥ ३२ ॥ सतेसारस्वतोधर्मं धर्म्मज्ञोभिवदिष्यति ॥ इतिश्रुत्वामुनिवरोमुनिश्रेष्ठमुपेत्यतम् ॥ ३३ ॥ प्रणम्यशिरसाभूमौ पप्रच्छेदंहृदिस्थितम् ॥ सत्यंकेचित्प्रशंसन्ति तपःशौचेतथापरे ॥ ३४॥ साङ्ख्यंकेपिप्रशंसन्ति योगमन्येप्रचक्रमे॥

परन्तु तौभी तुमसे पुण्यके लिये प्रेरणाकियेहुये मुझको निश्चयकर कहनाचाहिये ॥ ३० ॥ कात्यायननामक ब्राह्मण मुनि बहुतेरे धर्मोंको सुनकर सारवस्तु जानने की इच्छाकरके सौवरसतक एक अंगूठाके सहारे खड़ेरहे ॥ ३१ ॥ उसके उपरान्त उनसे आकाशवाणी बोली कि हे कात्यायनजी ! सुनिये पुण्यदायक सरस्वतीनदी के किनारे पै सारस्वतमुनि से पूँछिये ॥ ३२ ॥ धर्मके जाननेवाले वे सारस्वत तुमसे धर्मको कहैंगे यह सुनकर मुनिवर कात्यायनजी उन मुनिश्रेष्ठ सारस्वत के समीप जाकर ॥ ३३ ॥ व मस्तक से भूमिमें गिरकर प्रणामकरके हृदय में टिकीहुई यह बात पूँछा कि कोई सत्यकी प्रशंसा करते हैं व अन्य पुरुष तपस्या व पवित्रता

की प्रशंसा करते हैं ॥ ३४ ॥ व कोई साख्य व अन्य नर योग की प्रशंसा करते हैं और कोई सहनशीलता वैसेही अन्य इन्द्रिय को जीतना व नम्रता की प्रशंसा करते हैं ॥ ३५ ॥ और कोई मौनकी प्रशंसा करते हैं व कोई शास्त्रको उत्तम कहते है व कोई ज्ञानकी अच्छीतरह प्रशंसा करते है और कोई वैराग्यको उत्तम कहते हैं ॥ ३६ ॥ वैसेही कोई नरोंने अग्निष्टोमादिक कर्मोंको उत्तम कहाहै व ढेला, पत्थर व सुवर्ण में समदृष्टिवाले कोई पुरुष आत्मज्ञानको उत्तम कहते हैं ॥ ३७ ॥ संसारमें कार्याकार्य की विधिमें ऐसी व्यवस्था होनेपर क्या कल्याणदायकहै ऐसा कहनेवाले पुरुष विशेपकर मोहहीको प्राप्तहोते है ॥ ३८ ॥ हे सर्वज्ञ ! इन कार्यों में महात्माओं

क्षमांकेचित्प्रशंसन्ति तथैवदममार्जवे ॥ ३५ ॥ केचिन्मौनंप्रशंसन्ति केचिदाहुःपरंश्रुतम् ॥ सम्यग्ज्ञानंप्रशंसन्ति केचिद्वैराग्यमुत्तमम् ॥ ३६ ॥ अग्निष्टोमादिकर्म्माणि तथाकेचित्परंविदुः ॥ आत्मज्ञानंपरंकेचित्समलोष्टाश्मकाञ्चनाः ॥ ३७ ॥ इत्थंव्यवस्थितेलोके कृत्याकृत्यविधौजनाः ॥ व्यामोहमेवगच्छन्ति किंश्रेयइतिवादिनः ॥ ३८ ॥ यदेतेषुपरंकृत्यमनुष्ठेयंमहात्मभिः ॥ वक्तुमर्हसिसर्वज्ञमसर्वार्थसाधकम् ॥ ३९ ॥ सारस्वतउवाच ॥ यन्मांसरस्वतीप्राह सारंवक्ष्यामितच्छृणु ॥ छायाकारंजगत्सर्वमुत्पत्तिक्षयधर्मिच ॥ ४० ॥ बुद्धावराङ्गनानेत्रभङ्गभङ्गुरमन्तवत् ॥ धनानियौवनंभोगान्जलचन्द्रवदस्थिरान् ॥ ४१ ॥ बुद्धासम्यक्परामृश्य स्थाणुन्देवंचसंश्रयेत् ॥ दानंवापुरुषःपापं नालंकर्तुमितिश्रुतिः ॥ ४२ ॥ स्थाणुभक्तोजन्ममृत्युं नाप्नोतीतिश्रुतिस्तथा ॥ सावर्णिनाचगाथेद्वे कीर्तितेश्रु

को जो सब प्रयोजनों का साधक उत्तमकार्य अनुष्ठान करनेयोग्यहो उसको मुझ से तुम कहनेयोग्यहो ॥३९॥ सारस्वत बोले कि मुझ से सरस्वतीजी ने जो सारवस्तु कहाहै उसको मैं कहूँगा सुनो कि उत्पत्ति व नाशधर्मवाला सब संसार छायाके समान आकारवालाहै ॥ ४० ॥ व उत्तम स्त्रियोंकी मित्रता के नाशहोने के समान भङ्गहोनेवालाहै और धन,यौवन व सुखोंको जलमें चन्द्रमाकी नाईं चञ्चल जानकर ॥४१॥ व भलीभांति विचारकर मनुज शिवदेवके आश्रितहोवै या दानकरै व पाप करने के योग्य नहीं है यह वेद कहता है ॥ ४२ ॥ वैसेही यह श्रुतिहै कि शिवजीका भक्त जन्म व मृत्यु को नहीं प्राप्तहोता है पुरातनसमय सावर्णिमनु ने जो दो गीतोंको

गायाहै उनकोसुनो ॥ ४२ ॥ कि भगवान् धर्म वृष कहेजाते हैं और वृषभ (बैल) जिनका वाहन है वे महादेव पूजेजाते हैं व वही उत्तम धर्म्म कहाजाता है ॥
४४ ॥ दुःखरूपी भँवर अज्ञानरूपी प्रवाह व धर्माधर्मरूपी जल, क्रोधरूपी कीचड़, मदरूपी ग्राह व लोभरूपी बुलबुला से संयुत ॥ ४५ ॥ और ज्ञानरूपी पाता-
लतक गहरे व सत्त्वगुणरूपी जहाजसे भूषित संसाररूपी समुद्र में डूबतेहुये जनों को एक सदाशिवजी पार उतारते हैं ॥ ४६ ॥ दान व चिन्तवन, प्रियवचन, यश
वैसेही धर्म व फिर परोपकार यही सारांश इस विनसारवाले शरीर से पैदाकरै ॥ ४७ ॥ व धर्ममें स्नेह और वेदमें चिन्तवन व दानमें व्यसन (शौक़) उत्तम है व

गुण्येपुरा ॥ ४३ ॥ वृषोहिभगवान्धर्मोवृषभोयस्यवाहनम् ॥ पूज्यतेसमहादेवः सधर्मःपरउच्यते ॥ ४४ ॥ दुःखावर्ते
तमोवाहे धर्माधर्मजलेतथा ॥ क्रोधपङ्केमदग्राहे लोभबुद्बुदसंयुते ॥ ४५ ॥ ज्ञानगम्भीरपाताले सत्त्वयानविभूषिते ॥
मज्जतस्तारयत्येकोहरस्संसारसागरे ॥ ४६ ॥ दानंचिन्ता प्रियंवाक्यं कीर्तिधर्मस्तथापुनः ॥ परोपकरणंकायादना
सारात्समुद्धरेत ॥ ४७ ॥ धर्म्मेरागःश्रुतौचिन्ता दानेव्यसनमुत्तमम् ॥ इन्द्रियार्थेषुवैराग्यं सम्प्राप्तंजन्मनःफलम् ॥
४८ ॥ वर्षेस्मिन्भारतेजन्म प्राप्यमानुष्यमध्रुवम् ॥ नकुर्यादात्मनःश्रेयस्तेनात्मावञ्चितश्चिरम् ॥ ४९ ॥ देवासुराणां
सर्वेषां मानुष्यमतिदुर्लभम् ॥ तत्सम्प्राप्यतथाकुर्यान्नगच्छेन्नरकंयथा ॥ ५० ॥ सर्वस्वमूलंमानुष्यं तथासर्वार्थसाध
कम् ॥ यदिलाभेस्तियत्नस्ते मूलंरक्षप्रयत्नतः ॥ ५१ ॥ महतापुण्यमूलेन क्रियतांकापिनौस्त्वया ॥ गन्तुंदुःखोदधेःपा
रं तवयानन्नविद्यते ॥ ५२ ॥ अविकारिशरीरत्वं दुष्प्राप्यंप्राप्यवैततः ॥ नापक्राम्यतिसंसारादात्महासनराधमः ॥ ५३ ॥

इन्द्रियार्थों याने शब्दस्पर्शादिकों में वैराग्यहोवै तो जन्मका फल भलीभांति प्राप्त हुआ ॥ ४८ ॥ इस भारतवर्ष में विनाशहोनेवाला मनुष्यका जन्मपाकर जो अपना
कल्याण न करै उसने बहुत दिनोंतक जीवात्मा को छलाहै ॥ ४९ ॥ समस्त सुरासुरों के मध्यमें मनुष्यका जन्म अतिदुर्लभ है उसको पाकर वैसेही करै कि जिसप्रकार
नरकको न जावै ॥ ५० ॥ सर्वस्वकी जड तथा सब प्रयोजनों का साधक मनुष्यका जन्महै यदि लाभ में तुम्हारा यत्नहोवै तो मूलको बड़ेउपायसे रक्षाकरो ॥ ५१ ॥
बड़े पुण्यरूपी मूलसे तुम किसी भी नौकाको करो क्योंकि दुःखरूपी समुद्रके पार जाने के लिये तुम्हारे वाहन नहीं है ॥ ५२ ॥ विनविकारवाले दुर्लभशरीरको पाकर

तदनन्तर जो संसार से नहीं निकलता है वह नीच नर आत्मघाती है ॥ ५३ ॥ इस संसार में परलोक के लिये यतीलोग तपस्या करते हैं व यज्ञकरनेवाले होमकरते हैं व यहां आदर से दान दियेजाते हैं ॥ ५४ ॥ कात्यायनजी बोले कि हे भगवन्, मुने! दान व तपस्या का भी क्या क्या लोकका साक्षीफलहै इनको प्रत्यक्ष दिखलाइये ॥ ५५ ॥ सारस्वत बोले कि मनुष्य प्रियप्राणों के पालने के निमित्त धनके लिये बड़े डरको छोड़कर महालोभ से समुद्र व जंगल और पर्वतमें पैठजाते हैं ॥ ५६ ॥ और अन्य मनुष्य नौकरीमें प्राप्तहोते हैं जोकि कुत्तेकी ऐसी जीविका कहीगई है वैसेही और मनुष्य बहुत क्लेशोंवाली खेतीको करते हैं जोकि हिंसाप्रायहै ॥ ५७॥

तपस्तप्यन्तियतयोजुह्वतेचात्रयज्विनः ॥ दानानिचात्रदीयन्ते परलोकार्थमादरात् ॥ ५४ ॥ कात्यायनउवाच ॥ दानस्यतपसोवापि भगवन्किञ्चकिञ्चन ॥ मुनेप्रत्यक्षमेतानि दर्शयलोकसाक्षिकम् ॥ ५५ ॥ सारस्वतउवाच ॥ परित्यज्यप्रियान्प्राणान्धनार्थैतिमहाभयम् ॥ प्रविशन्तिमहालोभात्समुद्रमटवींगिरिम् ॥ ५६ ॥ सेवामन्येप्रपद्यन्ते श्ववृत्तिरिवयास्मृता ॥ हिंसाप्रायांबहुक्लेशां कृषिञ्चैवतथापरे ॥ ५७ ॥ तस्यदुःखार्जितस्येहप्राणेभ्योपिगरीयसः ॥ आयासशतलब्धस्य परित्यागस्सुदुष्करः ॥ ५८ ॥ यद्ददातियदश्नाति तदेवंधनिनांधनम् ॥ अन्येमृतस्यक्रीडन्ति दारैरपिधनैरपि ॥ ५९ ॥ अहन्यहनिपाचन्तमहंमन्येगुरुन्तथा ॥ मार्जनंदर्पणस्येव यःकरोतिदिनेदिने ॥ ६० ॥ दीयमानंहिनोपैति भूयएवाभिवर्द्धते ॥ कूपउत्सृज्यमानोहिभवेच्छुद्धोबहूदकः ॥ ६१ ॥ एकजन्मसुखस्यार्थे सहस्राणिनलोपयेत ॥ प्राप्तोजन्मसहस्रेषु शश्विनोत्येकजन्मनि ॥ ६२॥ मूर्खोहिनददात्यर्थानिहदारिद्र्यशङ्कया ॥ किन्धनेनकरि

प्राणों से भी अधिक प्यारे व सैकड़ों परिश्रमों से पाये व क्लेशसे इकट्ठा कियेहुये उस धनका छोडना बहुतकठिन है ॥ ५८ ॥ जिस धनको देता है व जिसको भोगताहै वही धनियों का धनहै क्योंकि मरेहुये पुरुषकी स्त्रियों व धनोंसे भी अन्य मनुष्य क्रीडा करते हैं ५९ ॥ प्रतिदिन मांगतेहुये पुरुष को हम गुरु (उपदेशक) मानते है जोकि हररोज दर्पणकी नाईं साफकरता है ॥ ६० ॥ दियाहुआ धन नाश नहीं होता किन्तु फिरभी बढ़ताही है क्योंकि जिसकुयें का जल निकलता रहताहै वह शुद्ध व बहुतजलवाला होता है ॥ ६१ ॥ एकजन्म के सुखके लिये हजारों जन्मोंको नष्ट न करै किन्तु हजारों जन्मों में प्राप्तहोकर एकजन्म में कल्याण को

इकट्ठाकरै ॥ ६२ ॥ इस संसारमें मूर्ख दरिद्रता के डरसे धनोंको नहीं देते हैं और नष्टआशयवाले मनुष्य धनसे क्या करैंगे ॥ ६३ ॥ मनुष्य जिसके लिये धन चाहते हैं
वह शरीर नाशवान् है जिसलिये पहले नास्ति नास्ति याने नहीं है २ ये दो अक्षर अभ्यास कियेगये ॥ ६४ ॥ उसी से देहि २ याने दीजिये २ यह उलटा
फल प्राप्तहुआ याचकजन कृपणजन से दीजिये यह कहकर याचना नहीं करतेहैं किन्तु ज्ञानदेते हैं ॥ ६५ ॥ कि यह मेरीदशा बिनदानही के कारण से है ऐसेही
आपभी मत होवो मुझको दीजिये यह दाताही के उपकार के लिये याचक कहता है ॥ ६६ ॥ जिससे कि दाता ऊपरको जाताहै और लेनेवाला नीचे खड़ारहता है

**ष्यन्ति देहिनोभङ्गुराशयाः ॥ ६३ ॥ यदर्थंधनमिच्छन्तितच्छरीरमशाश्वतम् ॥ अक्षरद्वयमभ्यस्तं नास्तिनास्ती
तियत्पुरा ॥ ६४ ॥ तदिदन्देहिदेहीति विपरीतमुपस्थितम् ॥ बोधयन्तिनयाचन्ते देहीतिकृपणंजनाः ॥ ६५ ॥ अवस्थे
यमदानस्य मामूदेवंभवानपि ॥ दातुरेवोपकाराय वदत्यर्थीतिदेहिमे ॥ ६६ ॥ यस्माद्दाताप्रयात्यूर्ध्वमधस्तिष्ठेत्प्रति
ग्रही ॥ दरिद्राव्याधितामूर्खाः परप्रेष्यकरास्सदा ॥ ६७ ॥ अदत्तदानाजायन्ते दुःखस्यैवहिभाजनाः ॥ धनवन्तमदा
तारन्दरिद्रंचातपस्विनम् ॥ ६८ ॥ उभावम्भसिमोक्तव्यौगलेबद्ध्वामहाशिलाम् ॥ शतेषुजायतेशूरः सहस्रेषुचपण्डि
तः ॥ ६९ ॥ वक्ताशतसहस्रेषु दाताजायेतवानवा ॥ गोभिर्विप्रैश्चवेदैश्च सतीभिस्सत्यवादिभिः ॥ ७० ॥ अलुब्धैर्दा
नशीलैश्च सप्तभिर्धार्यतेमही ॥ शिविरौशीनरोगाणिसुतञ्चप्रियमौरसम् ॥ ७१ ॥ ब्राह्मणार्थमुपाकृत्य नाकपृष्ठ**

उसी से जिन्हों ने दान नहीं दियाहै वे सदैव निर्धनी, रोगी, मूर्ख व परायेसेवक तथा दुःखही के पात्रहोते हैं धनवान् अदाता हो व निर्धनी जो तपस्वी न होवै ॥
६७ । ६८ ॥ ये दोनों गले में पत्थल की बड़ीशिला बांधकर जलमें छोड़नेयोग्य हैं सैकड़ों जनों में शूर व हजारों में पण्डित होताहै ॥ ६९ ॥ व लाखों में वक्ता
होता है परन्तु दाता होवै या न होवै गऊ, ब्राह्मण, वेद व पतिव्रता और सत्यवादी ॥ ७० ॥ व बिनलालचवाले व दानस्वभाववाले यही सातों मनुष्य पृथ्वीको धारते
हैं उसी नरदेशका राजा शिवि अपने अंगोंको व विवाहिता स्त्री में पैदाहुये प्यारे पुत्रको ॥ ७१ ॥ ब्राह्मण के लिये देकर यहां से स्वर्गस्थान को चलेगये व काशी

के स्वामी प्रतर्दन राजाने अपने दोनोंनेत्रों को ब्राह्मण के लिये देकर यहां व वहां अतुलयशको भोगकिया है और विदेह के वंशमें उत्पन्न निमीरोह व परशुरामजी ने पृथ्वीको ब्राह्मणों के लिये दियाहै व गाधिराजाने शहरोंसमेत पृथ्वीको दियाहै जब बहुत बार मेघनहीं बरसे तब समस्तप्राणियों को ॥ ७२ । ७३ । ७४ ॥ वसिष्ठ ने जिलाया है जैसे कि ब्रह्मा प्रजाओं को पालते हैं व बुद्धिमानों में श्रेष्ठ पाचालदेशका राजा ब्रह्मदत्त ॥ ७५ ॥ श्रेष्ठब्राह्मणों के लिये शंखनिधिको देकर स्वर्गको प्राप्तहुआ है व बड़ेयशस्वी सहस्रजित् राजर्षि प्यारेप्राणोंको ॥ ७६ ॥ ब्राह्मण के लिये त्यागकरके अतिउत्तम लोकोंको गये हैं ये और अन्य बहुतसे राजा-

मितोगतः ॥ प्रतर्द्दनःकाशिपतिः प्रदाय नयनत्वके ॥ ७२ ॥ ब्राह्मणायातुलांकीर्तिमिहचामुत्रचाश्नुते ॥ निमीरोहश्चवैदेहोजामदग्न्योवसुन्धराम् ॥ ७३ ॥ ब्राह्मणेभ्योददौचापि गाधिश्चोर्व्वीसपत्तनाम् ॥ अवर्षतिचपर्जन्ये सर्वभूतानिचासकृत् ॥ ७४ ॥ वसिष्ठोजीवयामास प्रजापतिरिवप्रजाः ॥ ब्रह्मदत्तश्चपाञ्चाल्योराजाबुद्धिमतांवरः ॥ ७५ ॥ निधिशङ्खंद्विजाग्रेभ्योदत्त्वास्वर्गमवाप्तवान् ॥ सहस्रजिच्चराजर्षिः प्राणानिष्टान्महायशाः ॥ ७६ ॥ ब्राह्मणार्थेपरित्यज्य गतोलोकाननुत्तमान् ॥ एतेचान्येचबहवोदानेनस्थाणुभक्तितः ॥ ७७ ॥ रुद्रलोकंगमिष्यन्ति नित्यंशान्तंचस्थानकम् ॥ एषांप्रतिष्ठिताकीर्तिर्यावत्स्थास्यतिमेदिनी ॥ ७८ ॥ इतिसंचिन्त्यसारार्थी स्थाणुदानपरोभव ॥ सोपिमोहंपरित्यज्य तथाकात्यायनोभवत् ॥ ७९ ॥ बहुप्रकारदेशाश्च ग्रामांश्चनगराणिच ॥ ८० ॥ आश्रमान्बहूनहंपर्यटन्नाप्नुयामिस्थानंहितंस्थापयेयत्रविप्रान् ॥ ८१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेद्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ * ॥ * ॥

लोग दान व शिवभक्ति से रुद्रलोकको जातेहैं जो स्थान कि नित्य व शान्तहै इन लोगोंका यश तबतक रहैगा जबतक कि पृथ्वीरहैगी ॥ ७७ । ७८ ॥ ऐसा भलीभांति विचारकर सारांशके चाहनेवाले तुम शिवभक्ति व दानमें तत्पर होवो वे कात्यायन भी मोहको छोड़कर वैसेही होगये ॥ ७९ ॥ और मैं बहुतप्रकार के देशों व ग्रामों व बहुतआश्रमों में घूमताहुआ प्रियस्थानको नहीं पाताहूं कि जहां ब्राह्मणों को स्थापितकरूं ॥ ८० । ८१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांद्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

दो०। धर्मवर्म सन नारद कह्यो श्लोकको अर्थ। सोइ तीजे अध्याय में कीन्हो सुगम समर्थ॥ नारदजी बोले कि हे वीरवर! इस तरह पृथ्वीमें जो जो पुण्यदायक स्थानहैं यहां २ उनको देखताहुआ मैं नारद॥ १॥ समस्त पृथ्वीको घूमताहुआ भृगुके आश्रममें प्राप्तहुआ जहांपर सातकल्पोंके स्मरणवाली व उत्तमपुण्यदायिनी नर्मदा नदी है॥ २॥ जोकि महापुण्यकारिणी व पवित्र और समस्ततीर्थमयी तथा शुभहै और जो कीर्त्तनही करने व विशेषकर देखने से पवित्र करती है॥ ३॥ हे अर्जुनजी! उसमें स्नानकरने से प्राणी पातकसे छूटजाताहै जैसे देहके मध्य में पिंगला नाड़ी कहीगई है॥ ४॥ वैसेही ब्रह्माण्डपिण्डके उस स्थानमें यह कहीगई

नारदउवाच॥ एवंस्थानानिपुण्यानि यानियानीहवैभुवि॥ निरीक्षंस्तत्रतत्राहं नारदोवीरसत्तम॥ १॥ विचरन्मेदिनींसर्वां प्राप्तोहमाश्रमंभृगोः॥ यत्ररेवानदीपुण्या सप्तकल्पस्मरावरा॥ २॥ महापुण्यापवित्राच सर्वतीर्थमयीशुभा॥ पुनातिकीर्त्तनेनैव दर्शनेनविशेषतः॥ ३॥ तत्रावगाहनात्पार्थ मुच्यतेजन्तुरंहसा॥ यथास्मपिङ्गलानाडी देहमध्येप्रचक्षते॥ ४॥ इयंब्रह्माण्डपिण्डस्य स्थानेतस्मिन्प्रकीर्तिता॥ तत्रास्तेशुक्लतीर्थाख्यं रेवायांपापनाशनम्॥ ५॥ यत्रवैस्नानमात्रेण ब्रह्महत्याप्रणश्यति॥ ६॥ तस्यापिसन्निधौपार्थ रेवायामुत्तरेतटे॥ नानावृक्षसमाकीर्णं लतागुल्मोपशोभितम्॥ ७॥ नानापुष्पफलोपेतं कदलीषण्डमण्डितम्॥ ८॥ अनेकश्वापदाकीर्णं विहगैरनुनादितम्॥ सुगन्धपुष्पशोभाढ्यं मयूरस्वनादितम्॥ ९॥ भ्रमरैःसर्वमुत्सृज्य नलिनंरावसंयुतम्॥ यथासंसारमुत्सृज्य भक्तेनहरपादयोः॥ १०॥ कोकिलामधुरैःस्वानैर्ह्लादयन्तितथामुनीन्॥ यथाकथामृताख्यानैर्ब्राह्मणाभवभीरुकान्॥ ११॥

है उसी रेवानदी में पापनाशक शुक्लनामक तीर्थ है॥ ५॥ जिसमें स्नानहीमात्र करनेसे ब्रह्महत्या नाश होजाती है॥ ६॥ हे अर्जुन! उसके भी समीप रेवानदीके उत्तर किनारेपै अनेकप्रकारके वृक्षोंसे परिपूर्ण व लताओं व छोटे २ वृक्षों से शोभित॥ ७॥ और अनेकप्रकारके फूलों व फलोंसे संयुत व केलाके समूहसे विभूषित॥ ८॥ और अनेकभांति के जंगली हिंसकजीवों से व्याप्त व पक्षियों से कूजित तथा सुगन्धवाले पुष्पों से शोभासंयुत व मोर के शब्दों से परिपूरित आश्रम था॥ ९॥ भ्रमरोंने सब छोड़कर कमलको शब्दसंयुत किया जैसे संसार को छोड़कर भक्त शिवचरणों में स्थितहोता है॥ १०॥ व कोकिला मीठे शब्दोंसे वैसेही मुनियोंको आ-

नन्द करते हैं जैसे कि ब्राह्मणलोग संसार से डरेहुये जनोंको कथारूपी अमृतके कहने से आनन्द करते हैं ॥ ११ ॥ और जहां वृक्ष पत्तों व फलों और फूलोंसे तथा छाया व काठोंसे मनुष्यों को शिवके नियमीजनों की नाईं आनन्द करतेहैं ॥ १२ ॥ व जहां जिनको पुत्र प्यारे हैं वे पक्षी हे पुत्र, पुत्र ! ऐसा कहतेहैं जैसे कि शिवप्रिय शैवजन नित्यही हे शिव, शिव ! कहते हैं ॥ १३ ॥ इसप्रकारका उन भृगुमुनिका आश्रम कल्याणरूप था जोकि त्रयीविद्या से संयुत ब्राह्मणों करके सबओर भली भांति भूषितथा ॥ १४ ॥ व ऋग्वेद, यजुर्वेद व सामवेदके शब्दोंसे दिशाओंका मध्यपूर्ण था जैसे शिवजीके भक्त बुद्धिमान्करके तीनों भुवन शब्दसे पूर्ण होवैं ॥ १५ ॥

यत्रवृक्षाह्लादयन्ति फलैःपुष्पैश्चपत्रकैः ॥ छायाभिरपिकाष्ठैश्च लोकानिवहरव्रताः ॥ १२ ॥ पुत्रपुत्रेतिवाश्यन्ते यत्र पुत्रप्रियाःखगाः ॥ यथाशिवप्रियाःशैवा नित्यंशिवशिवेतिच ॥ १३ ॥ एवंविधंमुनेस्तस्य भृगोराश्रममङ्गलम् ॥ विप्रैस्त्रैविद्यसंयुक्तैस्सर्वतस्समलंकृतम् ॥ १४ ॥ ऋग्यजुःसामनिर्घोषैरापूरितदिगन्तरम् ॥ रुद्रभक्तेनधीरेणयथैवभुवनत्रयम् ॥ १५ ॥ तत्राहंचापिसम्प्राप्तो यत्रास्तेमुनिसत्तमः ॥ भृगुःपरमधर्मात्मा तपसाद्योतितप्रभः ॥ १६ ॥ आगच्छन्तन्तुमांदृष्ट्वा दीनंतुष्टंचवैतदा ॥ अभ्युत्थानंकृतंसर्वैर्विप्रैर्भृगुपुरोगमैः ॥ १७ ॥ कृत्वासुस्वागतंदृष्ट्वासर्वेचभृगुणासह ॥ आसनेषूपविष्टास्ते मुनीन्द्रास्सहितामया ॥ १८ ॥ विश्रान्तन्तुततःकृत्वाभृगुर्मामभ्युवाचह ॥ क्वगन्तव्यंमुनिश्रेष्ठ कस्मादिहसमागतः ॥ १९ ॥ आगमेकारणंसर्वं समाचक्ष्वपरिस्फुटम् ॥ ततस्तंचिन्तयाविष्टो भृगुंपार्थाहमब्रवम् ॥ २० ॥ श्रूयतामभिधास्या

जहांपर वे मुनिश्रेष्ठ भृगुजी थे वहां मैं भी प्राप्तहुआ जो भृगु कि बड़े धर्मात्मा व तपस्या से प्रकाशितछविवाले थे ॥ १६ ॥ उस समय दीन व सन्तुष्ट आतेहुये मुझको देखकर भृगुआदि सब ब्राह्मणो ने अभ्युत्थान किया याने उठपड़े ॥ १७ ॥ व सब देखके सुस्वागत याने अच्छीतरह से आपका आनाहुआ इत्यादि कुशल प्रश्न करके मुझ समेत वे मुनीन्द्रलोग आसनों पै बैठगये ॥ १८ ॥ उसके उपरान्त विश्राममें प्राप्त करके मुझसे भृगुजी बोले कि हे मुनिश्रेष्ठ! कहांको जाइयेगा व यहां किसलिये आयेहो ॥ १९ ॥ आनेमें जो हेतुहो उस सबको प्रकटकहो तदनन्तर हे अर्जुन ! चिन्तासे संयुक्त मैंने भृगुजीसे कहा ॥ २० ॥ कि जिसलिये मैं आयाहूं उस

को कहताहूं सुनिये कि समुद्रके अन्ततक मैंने सम्पूर्ण पृथ्वीका पर्यटन किया ॥ २१ ॥ व ब्राह्मणों को भूमिदान के लिये मैं पग पग ढूंढा ॥ २२ ॥ परन्तु निर्दोष व पवित्र और तीर्थोंसे संयुत रमणीक मनोहर पृथ्वीको किसी प्रकारसे नहीं देखताहूं ॥ २३ ॥ भृगुजी बोले कि ब्राह्मणोंको थापनेकेलिये पहले घूमतेहुये मैंने भी समुद्रतक सम्पूर्ण उत्तम पृथ्वीको देखाहै उससमय ॥ २४ ॥ सबतीर्थमयी महीनामक पुण्यदायिनी उत्तम नदीको देखा जोकि मनोहर व सौम्य तथा महापापोंको नाशनेवाली है ॥ २५ ॥ वहीपर नदीरूप से वह पृथ्वीहै इसमें सन्देह नहीं है हे नारद जी ! पृथ्वी में देखे व बिनदेखे जो तीर्थ है ॥ २६ ॥ वे सब वहीं महीनदी के जल

मियदर्थमहमागतः॥ मयापर्यटितासर्वा समुद्रान्ताचमेदिनी ॥ २१ ॥ द्विजानांभूमिदानार्थं मार्गमाणापदेपदे ॥ २२ ॥ निर्दोषांचपवित्रांच तीर्थैश्चापिसमन्विताम् ॥ रम्यांमनोरमांभूमिं नपश्यामिकथंचन ॥ २३ ॥ भृगुरुवाच ॥ विप्राणां स्थापनार्थाय मयापिभ्रमतापुरा ॥ पृथ्वीसागरपर्यन्ता दृष्टासर्वातदाशुभा ॥ २४ ॥ महीनामनदीपुण्या सर्वतीर्थमयीशुभा ॥ दृष्टामनोरमासौम्यामहापापप्रणाशिनी ॥ २५ ॥ नदीरूपेणतत्रैव पृथ्वीसानात्रसंशयः ॥ पृथिव्यांयानितीर्थानि दृष्टादृष्टानिनारद ॥ २६ ॥ तानिसर्वाणितत्रैव निवसन्तिमहीजले ॥ सासमुद्रेस्तिसम्प्राप्ता पुण्यतोयामहीनदी ॥ २७ ॥ सञ्जातस्तत्रदेवर्षे महीसागरसङ्गमः ॥ स्तम्भाख्यंतत्रतीर्थंतु त्रिषुलोकेषुविश्रुतम् ॥ २८ ॥ तत्रयेमनुजाःस्नानं प्रकुर्वन्तिविपश्चितः ॥ सर्वपापविनिर्मुक्ता नोपसर्पन्तितेयमम् ॥ २९ ॥ तत्राद्भुतंचयद्दृष्टं स्नातुंतत्रगतेनमे ॥ तदहंकीर्तयिष्यामि मुनेशृणुमहाद्भुतम् ॥ ३० ॥ यावत्स्नातुंव्रजाम्यस्मिन्महीसागरसङ्गमे ॥ तीरेस्थितंप्रपश्यामि मुनिंतपा

में बसते हैं और पवित्रजलवाली वह महीनदी समुद्रमें प्राप्तहुई है ॥ २७ ॥ हे देवर्षे ! वहां महीनदी व समुद्रका सगम हुआ है और वहींपर तीनों लोकों में प्रसिद्ध स्तम्भनामक तीर्थ है ॥ २८ ॥ उस तीर्थ में जो विद्वान् मनुष्य स्नान करते हैं वे सब पापों से छूटकर यमराजके समीप नहीं जाते हैं ॥ २९ ॥ हे मुने ! वहां स्नानके लिये गयेहुये मैंने जो आश्चर्य देखा है उस बड़े अद्भुत चरितको मैं कहताहूं सुनिये ॥ ३० ॥ कि महीनदी व समुद्र के सगममें जबतक स्नानके लिये जाऊं तबतक किनारे

पै टिकेहुये अग्निके समान उन मुनि को देखा ॥ ३१ ॥ जोकि बड़ेलम्बे व वृद्ध तथा अस्थिमात्रशेषवाले व तपस्याकी शोभासे भूषित और ऊपरको भुजायें करके बार बार रोरहे थे ॥३२ ॥ उन मुनिको वैसे दुःखित देखकर इसके अनन्तर मैं दुःखीहुआ क्योंकि सज्जनों का यही लक्षणहै जोकि दुःखित जनको देखकर ॥ ३३ ॥ कलि-युगके पापको दूरकरके उसकी मित्रतामें प्राप्तहोवै तदनन्तर उससमय उनके समीप जाकर मैंने पूंछा ॥ ३४ ॥ कि हे मुने ! तुम किसलिये रोतेहो व तुम्हारे शोचका क्या कारणहै मेरे बड़ी जानने की इच्छाहै बहुत गुप्तभी उस वृत्तान्तको कहिये ॥ ३५ ॥ तदनन्तर मुनिने मुझसे कहा कि हे भृगुजी ! मैं भाग्यहीन हूं उससे रोताहूं

पकोपमम् ॥ ३१ ॥ प्रांशुंवृद्धंचास्थिशेषं तपोलक्ष्म्याविभूषितम् ॥ भुजावूर्द्ध्वतथाकृत्वा प्ररुदन्तंमुहुर्मुहुः ॥ ३२ ॥ तन्तथादुःखितंदृष्ट्वा दुःखितोहमथाभवम् ॥ सतांलक्षणमेतद्धि यद्दृष्ट्वादुःखितंजनम् ॥ ३३ ॥ तत्सख्यंजायते पश्यन्नयास्यकलिकल्मषम् ॥ ततस्तमुपसङ्गम्य पर्यपृच्छमहन्तदा ॥ ३४ ॥ किमर्थंरोदिषिमुने शोकोकिंकारणंतव ॥ सुगुह्यमपिमेब्रूहि जिज्ञासामहतीहिमे ॥ ३५ ॥ मुनिस्ततोमामवदद् भृगोनिर्भाग्यवानहम् ॥ तेनरोदिमिमापृच्छ दुर्भाग्यंचालयेत्किः ॥३६॥ तमहंविस्मयाविष्टः पुनरेवेदमब्रुवम् ॥ ३७॥ दुर्लभंभारतेजन्म तत्रापिचमनुष्यता ॥ मनुष्यत्वेब्राह्मणत्वंमुनित्वंतत्रदुर्लभम् ॥३८॥ तत्रापिचतपःसिद्धिःप्राप्यतांत्वंचकिम्परम् ॥ किमर्थंरोदिषिमुने विस्मयोत्रमहान्मम ॥ ३९ ॥ एवंसम्पृच्छतेमह्यमेतस्मिन्नेवचान्तरे ॥ सुभद्रोभद्रनाम्नाच मुनिस्तत्राभ्युपाययौ ॥ ४० ॥ सनिकेतंपरित्यज्य ज्ञात्वातीर्थस्यसारणम् ॥ स्नातस्मवैपूजयतितदास्तम्भेश्वरंमुनिः ॥ ४१ ॥ अहंहिदेवशर्म्माख्यो मुनि

मत पूंछिये क्योंकि दुर्भाग्यको कौन चलासक्ता है ॥ ३६ ॥ विस्मयसे सयुक्त मैंने फिरभी उनसे यह कहा ॥ ३७ ॥ कि भारतवर्ष में जन्म दुर्लभहै उसमें भी मनुष्य होना व मनुष्यता में भी ब्राह्मण होना व उसमें भी मुनि होना दुर्लभहै ॥ ३८ ॥ व उस मुनिहोने में भी तपस्याकी सिद्धि दुर्लभहै हे मुने ! उसको पाकर अन्य क्या चाहतेहो और किसलिये रोतेहो इसमें मुझको बड़ा आश्चर्य है ॥ ३९ ॥ मेरे इस प्रकार पूंछतेहुये इसीअवसरमें भद्रनामक सुभद्रमुनि वहां आये ॥ ४० ॥ वे तीर्थका

सारांश जानकरके स्थानको छोडकर उससमय वे मुनि नहाकर स्तम्भेश्वर देवकोपूजते थे ॥ ४१ ॥ व उस रोतेहुये पुरुषने कहा कि वाणी व मनको रोंकेहुये देवशर्मा-
नामक ब्राह्मण मैं गंगा व समुद्रके संगममें स्थानको किये निवास करताथा ॥४२॥ व सदैव अमावसमें मैं उस गंगासागर के संगममें पितरोंको तर्पण करताथा उसके
अन्त में प्रत्यक्ष होकर वे पितर मुझको आशीर्वाद देते थे ॥ ४३ ॥ उसके उपरान्त किसी समय प्रसन्न होतेहुये पितर मुझसे बोले कि हे देवशर्मन् ! मैं सदैव यहां
तुम्हारे समीप आताहूं ॥ ४४ ॥ हे पुत्र ! हम लोगों के स्थानको तुम कभी क्यों नहीं आतेहो उसके उपरान्त इस स्थान को छोड़कर पितरों के साथ मैं चन्द्रलोक में

स्संयतवाग्मनाः ॥ निवसामिकृतस्थानो गङ्गासागरसङ्गमे ॥ ४२ ॥ तत्रदर्शेतर्पयामि सदैवचपितॄनहम् ॥ तदन्तेतेचप्र
त्यक्षा ह्याशिषोमेवदन्तिच ॥ ४३ ॥ ततःकदाचित्पितरःप्रहृष्टामामथाब्रुवन् ॥ वयंसदात्रचायामो देवशर्मस्तवान्ति
के ॥ ४४ ॥ स्थानेस्माकंकदाचित्त्वं नचायासिकुतस्सुत ॥ ततःपरमसुंत्यक्त्वा गतवान्पितृभिस्सह ॥ ४५ ॥ पितॄणाम
न्दिरंपुण्यं सोमलोकसमास्थितम् ॥ अथतत्रस्थितश्चाहंतेजोमण्डलदुर्दशान् ॥ ४६ ॥ दृष्ट्वायातान्पूजयाढ्यानपृ
च्छंस्वान्पितॄनिति ॥ केह्यमीसमुपायान्तिभृशंतृप्ताभृशार्चिताः ॥ ४७ ॥ भृशंप्रमुदितानैवतथायूयंयथाह्यमी ॥ ४८ ॥
पितरऊचुः ॥ पुत्रतेपितरःपुण्याः सुभद्रस्यमहामुनेः ॥ तर्पितास्तेनमुनिना महीसागरसङ्गमे ॥ ४९ ॥ सर्वतीर्थमयी
यत्र निलीनासुनदीमही ॥ तत्रदर्शेतर्पयति सुभद्रस्तेत्वमीसुतः ॥ ५० ॥ इत्याकर्ण्यवचस्तेषां लज्जितोहंभृशंतदा ॥

स्थित पुण्यदायक पितरों के घरको गया इसके अनन्तर वहां बैठेहुये मैंने तेज के मण्डल से दुर्दर्श ॥ ४५ । ४६ ॥ व पूजा से संयुत आतेहुये पितरों को देखकर
अपने पितरोंसे यह पूंछा कि बहुत तृप्त व बहुतही पूजित ये कौन भलीभांति आरहे हैं ॥ ४७ ॥ और ये जिसप्रकार प्रसन्न हैं वैसे तुमलोग नहीं हो ॥ ४८ ॥ पितर
बोले कि हे पुत्र ! वे सुभद्र महामुनि के पितर हैं जिनको उन सुभद्रमुनि ने महीनदी व समुद्रके संगम में तृप्तकिया है ॥ ४९ ॥ जहां समस्त तीर्थमयी महीनामक
उत्तम नदी मिली है वहां सुभद्रपुत्र अमावस में तर्पण करताहै ये वही पितर हैं ॥ ५० ॥ उनके यह वचन सुनकर उस समय मैं लज्जित व विस्मित होगया और

इन अपने पितरों को प्रणामकरके मैं अपने स्थान में आया ॥ ५१ ॥ और उस समय मैंने विचारकिया कि मैं वहां अवश्य जाऊंगा जहां कि पितरों का प्रसिद्ध तीर्थ मही व समुद्रका संगमहै ॥ ५२ ॥ और वही स्नानकरके अमावस तिथि में इस लिये पितरोंका तर्पण करूंगा कि जिस प्रकार यह सुभद्र सत्यनामी हुआ वैसाही मै भी होऊं ॥ ५३ ॥ निश्चयकर कुल में अंगाररूपी उस पापी के पैदा होने से क्या है कि जिसके जीतेहुये भी अपने पितर औरोंकी इच्छा करते है ॥ ५४ ॥ यह विचार कर इसके अनन्तर प्रसन्न होता हुआ मैंने रुचि स्त्री से कहा कि हे रुचे ! तुम से संयुत होकर मैं मही व सागर के संगम में जाकर वहीं स्नान करूंगा तुम शीघ्रही

विस्मितश्चप्रणम्यैतान् पितॄन्स्वंस्थानमागतः ॥ ५१ ॥ मयातदाचिन्तितञ्चतत्रयास्याम्यहंस्फुटम् ॥ पुण्योयत्रपितृख्यातोमहीसागरसङ्गमः ॥ ५२ ॥ कृतस्नानश्चतत्रैव तर्पयिष्येपितॄनिति ॥ दर्शेहञ्चयथाचासौ सत्यनामासुभद्रकः ॥ ५३ ॥ किन्तेननतुजातेन कुलाङ्गारेणपापिना ॥ यस्मिञ्जीवत्यपिनिजाः पितरोन्यस्पृहाकटाः ॥ ५४ ॥ इतिसंचिन्त्यमुदितो रुचिंभार्यामथाब्रवम् ॥ रुचेत्वयासमायुक्तोमहीसागरसङ्गमम् ॥ ५५ ॥ गत्वास्नास्यामितत्रैव शीघ्रंत्वंसम्मुखीभव ॥ पतिव्रतासिशुद्धासि कुलीनासियशस्विनि ॥ ५६ ॥ तस्मादेतन्ममशुभे कर्तुमर्हसिचिन्तितम् ॥ ५७ ॥ रुचिरुवाच ॥ हातातस्यजनिर्मेभूत्कथंतस्यदुरात्मना ॥ दुःखैःप्रतप्तायेनाहं दत्त्वातुभ्यंकृताह्यहम् ॥ ५८ ॥ इहकन्दफलाहारैर्यत्किन्तेननपूर्यते ॥ नेतुमिच्छसिमांतत्र यत्रक्षारोदकंसदा ॥ ५९ ॥ त्वमेवतत्रसंयाहि नन्दन्तुतवपूर्वजाः ॥ गच्छवाशिष्टवद्वृद्धवसवाकाकवच्चिरम् ॥ ६० ॥ तथाब्रुवत्यास्तस्याश्चकर्णौतत्रपिधायच ॥ विपुलांशिष्यमादिश्य गृहएकोत्र

सम्मुखी होवो क्योंकि हे यशस्विनि ! तुम पतिव्रताहो व पवित्र तथा कुलीना हो ॥ ५५ । ५६ ॥ इस लिये हे शुभे ! मेरा चिन्तवन कियाहुआ यह कार्य तुम करने के योग्यहो ॥ ५७ ॥ रुचि बोली कि उस पिता के मेरा जन्म क्यो हुआ था कि जिस दुष्टात्मा ने तुम्हारे लिये देकर मै दुःख से तप्त कीगई ॥ ५८ ॥ यहा कन्द, फलके भोजनों से जो तुमने कियाहै क्या उससे नहीं पूर्ण होताहै जो मुझको वहा लेजानेकी इच्छा करतेहो जहां कि सदैव खारी जल है ॥ ५९ ॥ तुम्ही वहा जावो और तुम्हारे पहले पैदाहुये लोग प्रसन्न होवै हे वृद्ध ! चाहै सज्जन की नाई जावो व कौवाकी तरह बहुत दिनोंतक वसो ॥ ६० ॥ उसको उस तरह कहतेहुये वहां मै

कानों को मूंदकर व विपुल शिष्य को घरमें आज्ञा देकर यहां अकेला आया ॥ ६१ ॥ व श्रद्धा में तत्परहो सो मैं नहाकर व पितरों का तर्पणकर बड़ी चिन्ताको प्राप्तहुआ जैसे कि नरकमें पापी चिन्ताको प्राप्तहोताहै ॥ ६२ ॥ यदि मैं यहीं टिकूं तो आधी देहवालाहूं क्योंकि स्त्री से हीन नर अर्धदेह ऐसा कहागयाहै ॥ ६३ ॥ जैसे देहमें जीवात्मा के विना कुछ कार्य नहीं सिद्धहोताहै ऐसेही स्त्री से हीन जन करके पुण्य का कार्य नहीं सिद्ध होताहै ॥ ६४ ॥ जो मनुष्य देहों व स्त्रियों में अनुरागी है यह पशुहै इन दोनों का फल ग्रहण करनेयोग्यहै व इसमें कुछ सारांश नहीं है॥६५॥ अर्धदेहीवाला मनुष्य सज्जनों से न छूने योग्य मानागयाहै जैसे कि उत्तानपादका

चागतः ॥ ६१ ॥ सोहंस्नात्वाचसन्तर्प्य पितॄञ्छ्रद्धापरायणः ॥ चिन्तांसुविपुलांप्राप्तो नरकेदुष्कृतीयथा ॥ ६२ ॥ यदिति
ष्ठामिचात्रैव अर्द्धदेहीततोह्यहम् ॥ नरोहिगृहिणीहीनो ह्यर्द्धदेहइतिस्मृतः ॥ ६३ ॥ यथात्मनाविनादेहे कार्यंकिञ्चिन्नसि
द्ध्यति ॥ एवंगृहिण्याहीनेन पुण्यकार्यंनसाध्यते ॥ ६४ ॥ योनरःस्त्रीषुदेहेषु अनुरक्तस्त्वसौपशुः ॥ अनयोर्हिफलंग्राह्यं
सारतानात्रकाचन ॥ ६५ ॥ अर्द्धदेहीतिमनुजस्त्वसंस्पृश्यःसतांमतः ॥ औत्तानपादिरस्पृश्यउत्तमोहियथाकृतः ॥ ६६ ॥
अथचेत्तत्रसंयामि नमहीसागरस्ततः ॥ यामिवानकथंपादौ चलतोमेकथञ्चन ॥ ६७ ॥ एतस्मिन्मेमनोविद्धं तत्क्ष
तेज्ञानसङ्कटे ॥ अतोहमतिमुह्यामिभृशंशोचिमिरोदिमि ॥ ६८ ॥ इतिश्रुत्वावचस्तस्य भृशंरोमाञ्चपूरितौ ॥ साधुसा
ध्वित्यवोचावतंसुभद्रोप्यहंतथा ॥ ६९ ॥ दण्डवच्चप्रणमितौ महीसागरसङ्गमम् ॥ चिन्तयावःस्वमनसि प्रतीकारं
तुतौहुमौ ॥ ७० ॥ येहिमानुष्यमासाद्य जलबुद्बुदभङ्गुरम् ॥ परार्थायभवन्तेते पुरुषान्यपुरीषकाः ॥ ७१ ॥ ततस्सञ्चिन्त्य

पुत्र उत्तम नहीं छूने के योग्य किया गयाहै॥६६॥ इसके अनन्तर यदि मैं वहां जाऊं तो महीसागर का संगम नहीं है व यदि जाऊं तो कैसे जाऊं मेरे पांव किसी तरह नहीं चलते हैं ॥६७॥ व उसीसे कियेहुये इस अज्ञानके संकट में मेरा मन वेधितहै इसीसे मैं बहुत मोहितहूं और अत्यन्त शोचता व रोताहूं ॥६८॥ उसके ऐसे वचन सुनकर बहुतही रोमांचसे पूरित हम और सुभद्र दोनों ने उनसे बहुत अच्छा बहुत अच्छा ऐसा कहा ॥६९॥ व दण्डाके समान गिरकर प्रणाम किया व वे दोनों हमलोग अपने मनमें महीसागरके संगमको व उसके प्रतीकार (प्रतिद्वन्द्वी) को चिन्तन करतेरहे ॥ ७० ॥ जो मनुष्य जलके बुल्लाके समान नाश होनेवाले मनुज जन्मको पाकर दूसरे

के प्रयोजन के लिये होते हैं वे पुरुष हैं अन्य मल हैं ॥ ७१ ॥ तदनन्तर भलीभांति विचारकर सुभद्रने मुनिश्रेष्ठ देवशर्मा से यह कहा कि हे देवशर्मन् ! मत खेदको प्राप्त होवो स्थिर हूजिये ॥ ७२ ॥ जैसे सूर्य अँधियालेको नाशतेहैं वैसेही मैं तुम्हारे शोचको नाश करूंगा तुम शीघ्रही अपने घरकोजावो और वहां शोच मत कीजिये-गा ॥ ७३ ॥ मैं तुम्हारे लिये महीसागरसंगम तीर्थ के खारी जल से तुम्हारे पितरों को तर्पण करूंगा ॥ ७४ ॥ देवशर्मा बोले कि ऐसा कहते हुये तुम्हारा आयुर्बल सैकड़ों वर्षका होवै क्योंकि जो करने के असमर्थ है मेरे लिये उस बड़े कार्यको करने के योग्यहो ॥ ७५ ॥ और हर्षके स्थानमें फिर मुझको विषाद बाधा करताहै

प्रादेहं सुभद्रोमुनिसत्तमम् ॥ मासुनेपरिखिद्यस्व देवशर्मन्नुस्थिरोभव ॥ ७२ ॥ अहन्तेनाशयिष्यामि शोकंसूर्यस्तमो यथा ॥ गमिष्यस्याशुस्वंगेहं तत्रमापरितप्स्यसे ॥ ७३ ॥ तीर्थक्षारोदकंतुभ्यं तर्पयिष्येपितॄनहम् ॥ ७४ ॥ देवशर्मो वाच ॥ एवन्तेवदमानस्य आयुरस्तुशतंसमाः ॥ यदशक्यंमहत्कर्म कर्त्तुमर्हसिमत्कृते ॥ ७५ ॥ हर्षस्थानेविषादश्च पुनर्मांबाधतेश्रृणु ॥ अपिवाक्यंशुभंसन्तो नगृह्णन्तिमुधामुने ॥ ७६ ॥ कथमेतन्महत्कर्म्म कारयामिमुधावद ॥ पु नःकिञ्चिद्वक्ष्यामि यथामेनिर्वृतिर्भवेत ॥ ७७ ॥ शापितोसिमयाप्राणैर्यथावच्मितथाकुरु ॥ अहंसदाकरिष्यामि द र्शेचोद्दिश्यतेपितॄन् ॥ ७८ ॥ श्राद्धंमह्यर्णवेचात्र मत्पितॄणांत्वमाचर ॥ हीनत्वेचापितपसस्संचितस्यापिजन्मना ॥ ७९ ॥ चतुर्भागंप्रदास्यामि एवमेवैतदाचर ॥ ८० ॥ सुभद्रउवाच ॥ यद्येवंतवसन्तोषस्त्वेवमस्तुमुनीश्वर ॥ ८१ ॥ साधूनां

इसको सुनो कि हे मुने ! सज्जन शुभवाक्य भी वृथा नहीं ग्रहण करते हैं ॥ ७६ ॥ इस लिये कहिये कि इस बड़े कर्मको मैं वृथा कैसे करवाऊं और फिर भी कुछ कहताहूं कि जिस प्रकार मुझको आनन्द होवै ॥ ७७ ॥ मैं प्राणोंसे तुमको शापित करताहूं यों न सौगन्द दिलाताहूं कि जैसा कहताहूं वैसाकरो कि मैं सदैव अमा-वसमें तुम्हारे पितरोंको उद्देशकरके श्राद्ध करूंगा ॥ ७८ ॥ और तुम इस महीसागर में मेरे पितरों की श्राद्धकरो व तपस्याकी कम होनेपर भी जन्मभर मे जो तपस्या इकट्ठाकीगई है ॥ ७९ ॥ उसका चतुर्थांश दूंगा इसको ऐसाही करो ॥ ८० ॥ सुभद्र बोले कि यदि ऐसा तुम्हारे सन्तोषहै तो हे मुनिनाथ ! ऐसाही होवै ॥ ८१ ॥ जिस

प्रकार उत्तमजनों को प्रसन्नताहोवै वैसाही जानतहुये पुरुषको करना चाहिये ॥ ८२ ॥ भृगुजी बोले कि तदनन्तर प्रसन्नहोकर देवशर्मा चतुर्थांश पुण्यको त्रिवाचिक करके देकर अपने घरको चलेगये व सुभद्रभी स्थितरहे ॥ ८३ ॥ हे नारद! इसप्रकारका यह महीसागरसंगमहै जिसको स्मरण करतेहुये मेरे आजभी रोमांच होताहै ॥ ८४ ॥ नारद बोले कि हे अर्जुनजी! ऐसा सुनकर विस्मय से युक्त मैंने प्रसन्नतासे गद्गदावाणी करके उन भृगुसे बहुत अच्छा २ ऐसा कहा ॥ ८५ ॥ और यह कहा कि तुमलोग व हम उत्तम महीनदी के किनारे जावैंगे व हम तुम दोनों बड़ेउत्तम समस्त स्थानको देखेंगे ॥ ८६ ॥ नारदके वचन सुनकर भृगुजी उन समेत आये व

हियथाहर्षस्तथाकार्यंविजानता ॥ ८२ ॥ भृगुरुवाच ॥ देवशर्माततोहृष्टो दत्त्वापुण्यंत्रिवाचिकम् ॥ चतुर्थांशंययौधा
म स्वंसुभद्रोप्यवस्थितः ॥ ८३ ॥ एवंविधोनारदासौ महीसागरसङ्गमः ॥ यमनुस्मरतोमह्यं रोमाञ्चोद्यापिवर्त्तते ॥ ८४ ॥
नारदउवाच ॥ इतिश्रुत्वाफाल्गुनाहं हर्षगद्गदयागिरा ॥ विस्मयाविष्टएवाहं साधुसाध्वितितंभृगुम् ॥ ८५ ॥ यूयंवयङ्ग
मिष्यामो महीतीरंसुशोभनम् ॥ आवाभ्यांत्वावहेसर्वंस्थानंमहदनुत्तमम् ॥ ८६ ॥ नारदस्यवचःश्रुत्वा भृगुस्तेन
महाययौ ॥ समस्तन्तुमहापुण्यं महीकूलंनिरीक्षितम् ॥ ८७ ॥ तदृष्ट्वाचातिहृष्टोहमासंरोमाञ्चकञ्चुकः ॥ अब्रवंमु
निशार्दूलं हर्षगद्गदयागिरा ॥ ८८ ॥ त्वत्प्रसादात्करिष्यामि भृगोस्थानमनुत्तमम् ॥ स्वस्थानंगम्यतांब्रह्मन्नतःकृत्यं
विचिन्तये ॥ ८९ ॥ एवंभृगुंचास्मिविसर्ज्जयित्वा कल्लोलकोलाहलकौतुकीतटे ॥ ततस्त्वहंचिन्तयामिकथंस्थानमि
दम्भवेत ॥ ९० ॥ ममायत्नंयतोराज्ञां भूमिरेषासदावशे ॥ यद्यहंधर्मवर्माणं गत्वायाचामिमेदिनीम् ॥ ९१ ॥ अपंय

बड़े पुण्यदायक समस्त महीनदी के किनारे को देखा ॥ ८७ ॥ व उसको देखकर अतिप्रसन्न मैं रोमांचसे आच्छादित होगया और हर्षसे गद्गदावाणी करके मुनिश्रेष्ठ से कहा ॥ ८८ ॥ कि हे भृगुजी! तुम्हारी प्रसन्नता से अतिउत्तम स्थान करूंगा इस लिये हे ब्रह्मन्! आप अपने स्थानको जाइये मैं कार्यका विचार करताहूं ॥ ८९ ॥ इस प्रकार भृगुजी को बिदाकरके मैं कल्लोल के कोलाहल से कौतुकयुक्त होके उस नदीके किनारे टिकारहा तदनन्तर मैं चिन्तन करतारहा कि यह स्थान कैसे होवै ॥ ९० ॥ व मेरा उपाय नहीं है क्योंकि यह भूमि सदैव राजाओंके वशमें है यदि मैं धर्मवर्मा राजाके यहां जाकर पृथ्वीको मांगूं ॥ ९१ ॥ तो मेरे मांगने से

वह अवश्यकर देवैगा परन्तु मुनियों ने यह कहा है कि द्रव्य तीनभांति की उत्तम होतीहै ॥ ९२ ॥ याने शुक्ल, मध्य व चित्रवर्ण और उनका फलभी यहहै कि और जो जो बहाने से धन इकट्ठा कियाजाता है वह कृष्णवर्ण कहागया है ॥ ९३ ॥ श्रद्धासंयुत जो पुरुष शुक्लचित्त (सत्त्वस्वभाव) से तीर्थ व पात्रको पाकर धर्मकरता है उसको देवयोनि में भोग करता है ॥ ९४ ॥ व रजोगुण चित्तकरके इकट्ठा किये हुये धनसे याचकों के लिये जो दानदेताहै उसको मनुजयोनिमें भोग करताहै ॥ ९५ ॥ व तमोगुण से संयुत जो मनुष्य कृष्णचित्त से दान देताहै वह नीच नर मरकर उस फलको पशु पक्षीकी योनिमें भोगताहै ॥ ९६ ॥ और मेरी मागीहुई वह

त्येवसचमे याचितेनपरंत्विदम् ॥ तथाहिमुनिभिःप्रोक्तं द्रव्यंत्रिविधमुत्तमम् ॥ ९२ ॥ शुक्लंमध्यञ्चशबलं तेषामपिफ लंत्विदम् ॥ व्याजेनोपार्जितंयद्यत्तत्कृष्णंसमुदाहृतम् ॥ ९३ ॥ शुक्लचित्तेनयोधर्मं प्रकुर्याच्छ्रद्धयान्वितः॥तीर्थपात्रं समासाद्य देवत्वेतत्समश्नुते ॥ ९४॥ रजसान्वितचित्तेनसंचितेनधनेनच ॥ प्रदद्याद्दानमर्थिभ्यो मानुषत्वेतदश्नुते ॥ ९५ ॥ तमोवृतस्तुयोदद्यात्कृष्णचित्तेनमानवः ॥ तिर्यक्त्वेतत्फलंप्रेत्य समश्नातिनराधमः॥ ९६ ॥ तत्तुमेयाचितंद्र व्यं राजसंहिस्फुटम्भवेत् ॥ अथब्राह्मण्यभावेन नृपंयाचेप्रतिग्रहम् ॥ ९७ ॥ तदप्यहोचातिकष्टं हेतुनानेनमेमतम् ॥ अयंप्रतिग्रहोघोरो मध्वास्वादोविषोपमः ॥ ९८ ॥ प्रतिग्रहेणसंयुक्तो नरकंप्रविशेद्द्विजः ॥ तस्मादहंनिवृत्तश्च पापाद स्मात्प्रतिग्रहात् ॥९९ ॥ तत्तुकेनाभ्युपायेन दानेनान्यतरेणच ॥ स्वायत्तंस्थानकंकर्म इदंसञ्चिन्तयेमुहुः ॥१००॥ यथा कुभार्यःपुरुषः चिन्तान्तन्नप्रपद्यते ॥ तथैवविमृशंश्चिन्तांचिन्तान्तन्नलभाम्यनु ॥ १ ॥ एतस्मिन्नन्तरेपार्थ स्नातुंत

द्रव्य प्रकटही राजसी होगी और ब्राह्मणताके भावसे जो राजासे दान मांगूं ॥ ९७ ॥ इस कारण से वह भी मेरे मत में बड़ेकष्टकी बातहै यह दान भयङ्कर व मधुके समान स्वादवाला है परन्तु विषके तुल्यहै ॥ ९८॥ व दान लेनेसे संयुक्त ब्राह्मण नरक में प्रवेश करता है इस लिये मैं इस पापरूपी प्रतिग्रह से अलगहूं ॥ ९९ ॥ और दानके सिवाय अन्य किस उपाय से वह स्थान अपने अधीन होवै इसी कार्यको मैं बार २ चिन्तन करताथा ॥ १०० ॥ जैसे दुष्टा स्त्रीवाला पुरुष चिन्ताके अन्त को नहीं प्राप्तहोता है वैसाही विचार करताहुआ मैं, चिन्ताकी समाप्तिको नहीं प्राप्त होताथा ॥ १ ॥ इसी अवसर में हे अर्जुन ! पुण्यदायक महीसागर के संगम में

नहानेके लिये वहां बहुतसे मुनिलोग आये ॥ २ ॥ उन सबोंसे मैंने कहा कि तुमलोग कहांसे आयेहो इसके अनन्तर उन्होंने मुझसे कहा कि हे मुने ! सौराष्ट्र देशमें
हम लोग रहतेहैं ॥ ३ ॥ जिस देशका धर्मवर्मा ऐसा राजा है और दानके तत्त्वको चाहनेवाले उसने बहुत वर्षसमूहों तक तपस्या कियाहै ॥४॥ उसके उपरान्त उन
राजासे आकाशवाणी बोली उसको सुनिये कि दोकारण व छह स्थान और छहअङ्ग व दोफलों से संयुत ॥ ५ ॥ व चार प्रकारका तथा त्रिविध व त्रिनाश दान कहा
जाता है यह एक श्लोक कहकर आकाशमें वाणी चुपहोगई ॥ ६॥ हे नारद ! पूंछी हुईभी उस आकाशवाणी ने श्लोकका अर्थ नहीं कहा तदनन्तर धर्मवर्मा राजाने

त्रसमागताः ॥ बहवोमुनयःपुण्ये महीसागरसङ्गमे ॥ २ ॥ तानहंचाब्रवंसर्वान्कुतोयूयंसमागताः ॥ तेमामूचुःप्रणम्या
थसौराष्ट्रविषयेमुने ॥ ३ ॥ धर्मवर्मेतिनृपतिर्यस्यदेशस्यभूपतिः ॥ सतुदानस्यतत्त्वार्थीतेपेवर्षगणान्बहून् ॥ ४ ॥ तत
स्तंप्राहखेवाणीश्लोकमेकंनृपंशृणु ॥ द्विहेतुषडधिष्ठानं षडङ्गंद्विपाकयुक् ॥ ५ ॥ चतुष्प्रकारंत्रिविधंत्रिनाशंदानमु
च्यते ॥ इत्येकंश्लोकमाभाष्यखेवाणीविररामह ॥ ६ ॥ श्लोकस्यार्थंबभाषेनपृच्छ्यमानापिनारद ॥ ततोराजाधर्म
वर्मापटहेनाप्यघोषयत ॥ ७ ॥ यस्तुश्लोकस्यचैवास्यलब्धस्यतपसामया ॥ करोतिसम्यग्व्याख्यानंतस्यचैतद्ददा
म्यहम् ॥ ८ ॥ गवांवैसप्तनियुतंसुवर्णंचैतदेवच ॥ सप्तग्रामान्प्रयच्छामिश्लोकव्याख्यांकरोतियः ॥ ९ ॥ पटहेनेतिनृ
पतेःश्रुत्वाराज्ञोवचोमहत ॥ आजग्मुर्बहुदेशीया ब्राह्मणाःकोटिशोमुने ॥ १० ॥ वयंचतत्रयाताःस्मधनलोभेननारद ।
दुर्बोधत्वान्नव्याख्यायश्लोकंचात्रसमागताः ॥ ११ ॥ दुर्व्याख्येयस्त्वयंश्लोकोधन्यैर्लभ्योनचैवनः ॥ तीर्थयात्राकृतेया

नगारा पिटवादिया ॥ ७॥ कि मुझको तपस्या से मिलेहुये इस श्लोक का जो अच्छीतरह से व्याख्यान करै उसको मैं यह दूंगा ॥ ८ ॥ कि सात लाख गऊ व
इतनीही अशर्फियां और सात गांव दूंगा जो श्लोकका अर्थ करैगा ॥ ९ ॥ नगारा के द्वारा राजाके इस बड़ेभारी वचन को सुनकर हे मुने ! बहुत से देशोंके करोड़ों
ब्राह्मण आये ॥ १० ॥ हे नारद ! हम लोगभी धनके लालच से वहांगयेथे परन्तु दुर्बोधके कारणसे श्लोकका अर्थ न कहकर यहां आयेहैं ॥ ११ ॥ और यहश्लोक
दुर्व्याख्येय यानै कठिनता से अर्थ करनेयोग्य है व धन्य जनों को सुलभ है हमलोगों को नहीं है तीर्थयात्रा के लिये जाते हैं ऐसा चिन्तन करके हमलोग यहां

आयेहैं ॥ १२ ॥ हे अर्जुनजी ! इस प्रकार उन महात्माओं के वचन सुनकर मै बहुतही प्रसन्न हुआ व उनको बिदाकरके यह चिन्तन करनेलगा ॥ १३ ॥ कि बड़े
विस्मयकी बातहै मैंने स्थान के मिलने में यत्न पाया इसमें सन्देह नहीं कि श्लोकका अर्थ कहकर राजासे स्थान व धनको विद्या के मूल्य से पाऊंगा व इसतरहसे
मांगा हुआ प्रतिग्रह न होगा जगत् के गुरु पुराने ऋषि विष्णुजी ने सच कहाहै ॥ १४ । १५ ॥ कि जिसके धर्मकी श्रद्धा होती है वह नहीं पूर्ण होती है ऐसा नहीं है
याने पूरी होतीहै व जिसके पापकी श्रद्धाहै वह नही पूर्ण होती ऐसा नही है अर्थात् पूरी होती है ॥ १६ ॥ ऐसा चिन्तनकरके विद्वान् रुचि के अनुकूल करते हैं यह

मएवंचिन्त्यात्रचागताः ॥ १२ ॥ एवंफाल्गुनतेषांतुवचःश्रुत्वामहात्मनाम् ॥ अतीवासंप्रहृष्टोहंतान्विसृज्येत्यचिन्त
यम् ॥१३॥ अहोप्राप्तउपायोमेस्थानप्राप्तौनसंशयः ॥ श्लोकंव्याख्यायनृपतेर्लप्स्येस्थानंधनंतथा ॥ १४ ॥ विद्यामूल्येन
नैवंचयाचितंस्यात्प्रतिग्रहः ॥ सत्यमाहपुराणर्षिर्वासुदेवोजगद्गुरुः ॥ १५ ॥ धर्मस्ययस्यश्रद्धास्यान्नचसानैवपूर्यते ॥
पापस्ययस्यश्रद्धास्यान्नचसापिनपूर्यते ॥ १६ ॥ एवंविचिन्त्यविद्वांसःप्रकुर्वन्तियथारुचि ॥ सत्यमेतद्विभोर्वाक्यंदुर्लभ
भोतितथाहिमे ॥ १७ ॥ मनोरथोयंसकलः संभूतोङ्कुरितःस्फुटम् ॥ एवंसप्तविधंश्लोकमहंजानामिसस्फुटम् ॥ १८ ॥
अमूर्तैःपितृभिःपूर्वंयद्व्याख्यातोहिमेपुरा ॥ एवंहर्षान्वितःपार्थसंचिन्त्याहंततोमुहुः ॥ १९ ॥ प्रणम्यतीर्थंचलितोमहीसा
गरसङ्गमम् ॥ वृद्धब्राह्मणरूपेणततोहंयातवान्नृपम् ॥ २० ॥ इदंभणितवानस्मिश्लोकव्याख्यांनृपंशृणु ॥ यत्तेपटहविख्या
तंदानंचप्रकटीकुरु ॥ २१ ॥ एवमुक्तेनृपः प्राहप्रोचुरेवंहिकोटिशः ॥ द्विजोत्तमाः पुनर्नास्यप्रोक्तुमर्थोहिशक्यते ॥ २२ ॥

विभु (विष्णु) जी का वचन सत्यहै वैसेही मेरा बहुत दुर्लभ ॥ १७ ॥ यह समस्त मनोरथ प्रकटही अंकुरित होगया क्योंकि ऐसे सात प्रकार के श्लोकको मैं प्रकटता
समेत जानताहूं ॥ १८ ॥ क्योंकि पहले बिन मूर्तिवाले पितरो ने मुझसे व्याख्यान कियाहै हे अर्जुनजी ! इसप्रकार चिन्तनकर तदनन्तर बार २ महीसागर के सगम
तीर्थ को प्रणामकरके उसके उपरान्त बूढ़े ब्राह्मणके रूपसे राजाके समीप गया ॥ १९ । २० ॥ व मैंने राजा से यह कहा कि श्लोक का व्याख्यान सुनिये और तुमने
जो दान नगारे से प्रसिद्ध किया था उसको प्रकट कीजिये ॥ २१ ॥ ऐसा कहनेपर राजाने कहा कि ऐसाही करोड़ों ब्राह्मणोंने कहा फिर इसका अर्थ कहने के लिये समर्थ न

हुये ॥ २२ ॥ दो हेतु कौन हैं व छह अधिष्ठान कौन कहेगयेहैं और छह अंग कौनहैं व दो फल कौन कहेगयेहैं ॥ २३ ॥ और चार प्रकार कौनहैं व हे द्विज ! वह तीन प्रकारका क्या है और तीन नाश कौन कहेगये हैं दान के इस विषय को प्रकट कहिये ॥ २४ ॥ हे ब्राह्मण ! यदि इन सात वस्तुवोंको प्रकट कहिये तो सात लाख गऊ व इतनीही अशर्फ़िया ॥ २५ ॥ और सात ग्रामोंको दूंगा नहीं तो अपने घर को जाइयेगा। हे अर्जुनजी! उनके ऐसा कहनेपर सौराष्ट्रदेश के स्वामी धर्मवर्मा राजा से यही मैंने कहा। कि सुनिये मैं श्लोककी व्याख्या कहूंगा दो दानके कारण सुनो ॥ २६ । २७ ॥ कि दानकी न्यूनता व अधिकता ऐश्वर्य्यदायक नहीं होतीहै किन्तु

कौद्वौहेतुषडाख्यातान्यधिष्ठानानिकानिच ॥ कानिचैवषडङ्गानि कौद्वौपाकौतथास्मृतौ ॥ २३ ॥ केप्रकाराश्चचत्वा रः किंवातत्त्रिविधंद्विज ॥ त्रयोनाशाश्चकेप्रोक्ता दानस्यैतत्स्फुटंवद ॥ २४ ॥ स्फुटानीमानिसप्तत्वं यदिवक्ष्यसिब्रा ह्मण ॥ तद्गवांसप्तनियुतं सुवर्णंचैतदेवच ॥ २५ ॥ सप्तग्रामांश्चदास्यामि नोचेद्यास्यसिस्वंगृहम् ॥ इत्युक्तेवचनंपार्थ सौ राष्ट्रस्वामिनंनृपम् ॥ २६ ॥ धर्मवर्माणमित्येव प्रावोचमवधारय ॥ श्लोकव्याख्यांस्फुटांवक्ष्ये दानहेतूचद्वौशृणु ॥ २७ ॥ नाल्पत्वंवाबहुत्वंवा दानस्याभ्युदयावहम् ॥ श्रद्धाशक्तिश्चदानानां वृद्धिक्षयकरेहिते ॥ २८ ॥ श्रद्धाविष येश्लोकाभवन्ति ॥ कायक्लेशैश्चबहुभिर्नचैवार्थस्यराशिभिः ॥ २९ ॥ धर्म्मस्संप्राप्यतेसूक्ष्मः श्रद्धाधर्मोद्भुतन्तपः॥ श्रद्धास्वर्गश्चमोक्षश्च श्रद्धासर्वमिदंजगत् ॥ ३० ॥ सर्वस्वंजीवितंचापि दद्यादश्रद्धयायदि ॥ नाप्नुयात्सफलंकिञ्चि च्छ्रद्दधानस्ततोभवेत्॥३१॥श्रद्धयासाध्यतेधर्मो महद्भिर्नार्थराशिभिः॥निष्किञ्चनाहिमुनयः श्रद्धावन्तोदिवङ्गताः॥३२॥

श्रद्धा व शक्ति वेही दानों की वृद्धि व क्षयकारक हैं ॥ २८ ॥ श्रद्धाविषय के ये श्लोकहोते हैं कि बहुत शरीरके क्लेशोंसे व धनकी राशियों से सूक्ष्मधर्म भलीभांति नहीं प्राप्त होता है किन्तु श्रद्धा धर्म व अद्भुत तपस्या है व श्रद्धा स्वर्ग, मोक्ष है और यह सब संसार श्रद्धाहै ॥ २९ । ३० ॥ यदि अश्रद्धा से जो सर्वस्व व प्राण भी कुछ फल नहीं पाताहै इस लिये श्रद्धावान् होवै ॥ ३१ ॥ श्रद्धासे धर्म साधन कियाजाता है व बड़ी धर्मकी राशियों से नहीं क्योंकि निष्किञ्चन (धन-

हीन) मुनिलोग श्रद्धावान् होकर स्वर्गको गये हैं ॥ ३२ ॥ मनुष्यों की श्रद्धा तीन प्रकारकी है और वह स्वभावसे पैदाहोती है सात्त्विकी, राजसी व तामसी है उस श्रद्धाको सुनो ॥ ३३ ॥ कि सात्त्विकी श्रद्धावाले लोग देवताओंको पूजतेहैं व राजसी श्रद्धावान् यक्षों व राक्षसों को पूजते हैं और तामसीजन प्रेतो, भूतों, पिशाचों को पूजते हैं ॥ ३४ ॥ इस लिये जो न्याय से इकट्ठा कियाहुआ धनहै श्रद्धावान् पुरुषसे जो वह पात्रमें दियागयाहै उसी थोडीभी द्रव्य से भगवान् शिवजी प्रसन्न होते हैं ३५ ॥ शक्तिके विषय में ये श्लोकहैं कि कुटुम्ब व सेवक के पालन से जो अधिक धनहो उसको देना चाहिये ॥ ३६ ॥ जैसे मदिराका पीना पीछे विप होजाता है

त्रिविधाभवतिश्रद्धा देहिनांसास्वभावजा ॥ सात्त्विकीराजसीचैव तामसीचैवतांशृणु ॥ ३३ ॥ यजन्तेसात्त्विका देवान्यक्षरक्षांसिराजसाः ॥ प्रेतान्भूतान्पिशाचांश्च यजन्तेतामसाजनाः ॥ ३४ ॥ तस्माच्छ्रद्धावतापात्रे दत्तंन्याया र्जितंहियत् ॥ तेनैवभगवान्रुद्रः स्वल्पकेनापितुष्यति ॥ ३५ ॥ शक्तिविषयेचश्लोकाभवन्ति ॥ कुटुम्बभक्तभरणा द्देयंयदतिरिच्यते ॥ ३६ ॥ मध्वास्वादोविषंपश्चाद्दातुर्द्धर्मोन्यथाभवेत् ॥ शक्तेपरजनेदाता स्वजनेदुःखजीविनि॥३७॥ मध्वादनेविषास्वादो धर्म्माणांप्रतिरूपकः ॥ भृत्यानामपराधेन यःकरोत्यौर्ध्वदैहिकम् ॥ ३८ ॥ तद्भवत्यसुखोदर्कं जीवतस्यमृतस्यच ॥ सामान्यंयाचितंन्यासमाधेर्दानञ्चतद्धनम् ॥ ३९ ॥ अन्वाहितञ्चनिक्षिप्तं सर्वस्वंचान्वयेसति ॥ आपत्स्वपिनदेयानि नववस्तूनिपण्डितैः ॥ ४० ॥ योददातिसमूढात्मा प्रायश्चित्तीभवेन्नरः ॥ इतितेगदितौराजन् द्वौ

वैसेही दाताका धर्म अन्यथा होताहै जबकि स्वजन दुःख से जीतेहों और समर्थ अन्यजनको देवै ॥ ३७ ॥ मदिरा पीनेमें विषका आस्वादन अधर्मों का रूपक है याने जैसे मद्यपीने में पहले अच्छा व पीछे विपसा होजाताहै ऐसेही अधर्मों में है सेवकोंके अपराधसे जो मृतक पुरुष के कर्म करताहै ॥ ३८ ॥ वह जीते व मरेहुये पुरुषका आगे फलदायक नहीं होताहै और साधारण व मांगीहुई वस्तु, धरोहरि और मानसी व्यथासे दान व उसी दान लेनेवालेका धन ॥ ३९ ॥ व मासिक श्राद्धवाला धन व फेंकाहुआ धन और वशहोनेपर सर्वस्व (सब कुछ) ये नव वस्तुवें विपत्तिमें भी पण्डितों को न देना चाहिये ॥ ४० ॥ और जो इन नव वस्तुवोंको देताहै वह मूढ़

चित्तवाला पुरुष प्रायश्चित्ती होताहै हे राजन् ! तुमसे ये दो कारण कहेगये व इस के उपरान्त सुनिये ॥ ४१ ॥ अधिष्ठानों को कहताहूं उन छहोंको सुनिये धर्म, अर्थ,
काम, लज्जा, हर्ष व भय ॥ ४२ ॥ विद्वान् जन इन छहोंको दानके अधिष्ठान कहते हैं नित्यही प्रयोजन की अपेक्षा न करके सुपात्र ब्राह्मणों के लिये जो केवल धर्म
की बुद्धिसे दियाजाता है वह धर्मदान कहाजाताहै व प्रयोजनकी अपेक्षा करके जो प्रसंग से दियाजाता है ॥ ४३ । ४४ ॥ इस लोकमें फलहेतुवाले उस दानको मुनि-
लोगोंने अर्थदान कहाहै व स्त्री, मद्यपान, शिकार व पांसा के प्रसंगसे जो अयोग्यजनोंको उत्तमयत्नसे दियाजाताहै वह कामदान कहाजाताहै व सभामें याचनाकरने

हेतूश्रूयतामतः ॥ ४१ ॥ अधिष्ठानानिवक्ष्यामि षडेवशृणुतानिच ॥ धर्ममर्थञ्चकामंच व्रीडाहर्षभयानिच ॥ ४२ ॥
अधिष्ठानानिदानानां षडेतानिप्रचक्षते ॥ पात्रेभ्योदीयतेनित्यमनपेक्ष्यप्रयोजनम् ॥ ४३ ॥ केवलंधर्मबुद्ध्यायद्धर्म
दानंतदुच्यते ॥ प्रयोजनमपेक्ष्यैव प्रसङ्गाद्यत्प्रदीयते ॥ ४४ ॥ तदर्थदानमित्याहुरैहिकंफलहेतुकम् ॥ स्त्रीपानमृगयाक्षा
णां प्रसङ्गाद्यत्प्रदीयते ॥ ४५ ॥ अनर्हेषुसुयत्नेन कामदानंतदुच्यते ॥ संसदिव्रीडयाश्रुत्य अर्थोर्थिभ्यःप्रयाचितः ॥
४६ ॥ प्रदीयतेतुतद्दानं व्रीडादानमितिश्रुतम् ॥ दृष्ट्वाप्रियाणिश्रुत्वावा हर्षेणायत्प्रदीयते ॥ ४७ ॥ हर्षदानमितिप्राहुर्दा
नंतद्धर्मचिन्तकाः ॥ आक्रोशनस्यहासतां प्रतीकाराययद्भवेत् ॥ ४८ ॥ दीयतेनुपकर्तृभ्यो भयदानन्तदुच्यते ॥ प्रोक्ता
निषडधिष्ठानि दानाङ्गानिचषट्शृणु ॥ ४९ ॥ दाताप्रतिग्रहीताच शुद्धिर्देयंचधर्मयुक् ॥ देशकालौचदानानामङ्गान्ये
तानिषड्विदुः ॥ ५० ॥ अपरोगीचधर्मात्मा दित्सुरव्यसनःशुचिः ॥ अनिन्द्योनित्यकर्माच षड्भिर्दाताप्रशस्यते ॥ ५१ ॥

पर सुनकरके लज्जासे जो धन याचकों के लिये दियाजाताहै ॥ ४५ । ४६ ॥ वह व्रीडादान ऐसा सुनागया है और प्रियवस्तुवों को देखकर व सुनकरके आनन्द से जो
दियाजाता है ॥ ४७ ॥ धर्मचिन्तकजनोंने उसको हर्षदान ऐसा कहाहै और दुष्टोंके गालियां देनेकी निवृत्तिके लिये जो होताहै ॥ ४८ ॥ व अनुपकारियोंके लिये जो दान
दियाजाता है वह भयदान कहाजाताहै ये छह अधिष्ठान कहेगये और दानके छह अङ्गोंको सुनो ॥ ४९ ॥ कि दाता, प्रतिग्रह लेनेवाला व पवित्रता और धर्मसंयुत
देनेयोग्य द्रव्य व देश, काल विद्वानों ने दानके इन छह अंगोंको कहाहै ॥ ५० ॥ अरोगी व धर्मात्मा व देनेकी इच्छावाला व व्यसनहीन व पवित्र और अनिन्दनीय व

नित्यकर्मोंका करनेवाला छह वस्तुवों करके दानी उत्तम होताहै॥५१॥व अकोमल, श्रद्धाहीन, दुष्टात्मा व जो व्यसनी व झूंठी प्रतिज्ञावाला व बहुत सोनेवालाहै वे दाता महानीच हैं ॥ ५२ ॥ व त्रिशुक्ल याने विद्या, तपस्या व उत्तम-आचरणवान् व सात्त्विकी जीविकावाला, दयालु व इन्द्रियजित् और योनिके दोषो से छूटाहुआ ब्राह्मण पात्र कहाजाता है ॥ ५३ ॥ व सदैव याचकों के देखने में सामनेहीसे भलीभांति प्रीतिहोवै व सत्कार व ईर्षा न होवै दानमें यह शुद्धि कहीगई है ॥ ५४ ॥ व बिन कलंकवाली द्रव्य व विना क्लेशके अपने उपाय से इकट्ठा कियाहुआ थोड़ा या बहुतभी धन देय ऐसा कहाजाता है ॥ ५५ ॥ और किसी भी धर्मसमेत

अनृजुश्चाश्रद्दधानो दुष्टात्माऽव्यसनीचयः ॥ असत्यसन्धोनिद्रालुर्दातारस्तेमहाधमाः ॥ ५२ ॥ त्रिशुक्लः शुक्लवृत्तिश्च घृणालुस्संयतेन्द्रियः ॥ विमुक्तोयोनिदोषेभ्यो ब्राह्मणःपात्रमुच्यते ॥ ५३ ॥ सम्मुखाद्यदिसम्प्रीतिरर्थिनांदर्शनेसदा ॥ सत्कृतिश्चानसूयाच दानेशुद्धिरितिस्मृता ॥ ५४ ॥ अपरीवाद्यमक्लेशं स्वयत्नेनार्जितंधनम् ॥ स्वल्पंवाविपुलंचापि देयमित्यभिधीयते ॥ ५५ ॥ केनापिसहधर्मेण उद्दिश्यकिलकिञ्चन ॥ देयंतद्धर्मयुगिति शून्येशून्यफलंमतम् ॥ ५६ ॥ यद्यद्यद्दुर्लभंद्रव्यं देशेकालेपिवापुनः ॥ दानार्हौदेशकालौतौ स्यातांश्रेष्ठौनचान्यथा ॥ ५७ ॥ षडङ्गानीतिचोक्तानि द्वौचपाकावतःशृणु ॥ द्वौपाकौदानजौप्राहुः परत्रार्थमिहोच्यते ॥ ५८ ॥ सद्भ्योयद्दीयतेकिञ्चित्तत्परत्रोपभुज्यते ॥ असत्सुदीयतेयत्तु तद्दानमिहभुज्यते ॥ ५९ ॥ द्वौपाकावितिनिर्दिष्टौ प्रकारांश्चतुरःशृणु ॥ ध्रुवमाहुस्त्रिकंकाम्यं नैमि

प्रसिद्धमें जो कुछ उद्देशाकरके देय होता है वह धर्मयुक् ऐसा कहाजाता है और शून्यमें शून्यफल मानागया है ॥ ५६ ॥ और देश या फिर समयमे भी जो जो वस्तु दुर्लभ हैं वे दोनों देशकाल दान के योग्य श्रेष्ठहै अन्यथा नहीं ॥ ५७ ॥ ये छह अङ्ग कहेगये इसके उपरान्त दो पाकों (फलों) को सुनिये विद्वानो ने दानसे उपजेहुये दो फलोंको कहाहै परलोक के लिये व इस लोकके लिये वे कहेजाते हैं ॥ ५८ ॥ जो कुछ उत्तमजनों के लिये दियाजाता है वह परलोक में भोग कियाजाता है व असत् पुरुषों को जो दियाजाता है वह दान यहीं भोगाजाता है ॥ ५९ ॥ ये दोनों पाक कहेगये और चार प्रकारों को सुनिये मुनियों ने ध्रुव, त्रिक, काम्य व

नैमित्तिक इस क्रमसे कहाहै ॥ ६० ॥ ब्राह्मणों से यह वैदिक दानमार्ग चार प्रकार का कहाजाता है सब कामनाओं के फलवाले कूप, बगीचा व तडागादि ध्रुव हैं ॥
६१ ॥ और जो प्रतिदिन दियाजाताहै उसको विद्वानोंने त्रिक कहाहै और पुत्र,विजय,ऐश्वर्य, स्त्री व पराक्रम के लिये इच्छासे टिकाहुआ जो दानदियाजाताहै वह काम्य
ऐसा कहाजाता है व कालकी अपेक्षा करके व क्रियापेक्ष और गुणापेक्ष यह स्मृतिमें ॥ ६२ । ६३ ॥ सदैव होमसे रहित तीनप्रकार का नैमित्तिक कर्म कहागयाहै ये तुम
से प्रकार कहेगये अब त्रिविधि कहीजाती है ॥ ६४ ॥ कि आठ दान उत्तम हैं व विधिसे चार दान मध्यम हैं व शेष लघुहैं इसको विद्वानों ने त्रैविध्य कहाहै ॥६५॥

**त्तिकमितिक्रमात ॥ ६० ॥ वैदिकोदानमार्गोयंचतुर्द्धावर्ण्यतेद्विजैः ॥ कूपारामतडागादिसर्वकामफलंध्रुवम् ॥ ६१ ॥
तदाहुस्त्रिकमित्येव दीयतेयद्दिनेदिने ॥ अपत्यविजयैश्वर्यस्त्रीबलार्थंचदीयते॥६२॥ इच्छासंस्थंचयद्दानं काम्यमित्य
भिधीयते ॥ कालापेक्षंक्रियापेक्षं गुणापेक्षमितिस्मृतौ ॥ ६३ ॥ त्रिधानैमित्तिकंप्रोक्तं सदाहोमविवर्जितम् ॥ इतिप्रो
क्ताःप्रकारास्ते त्रैविध्यमभिधीयते॥ ६४ ॥ अष्टोत्तमानिचत्वारि मध्यमानिविधानतः ॥ कनीयसानिशेषाणि त्रिवि
धत्वमिदंविदुः ॥ ६५ ॥ गृहप्रासादविद्याभूगोकूपतृणहाटकम् ॥ एतान्युत्तमदानानि उत्तमान्यन्यदानतः ॥ ६६ ॥
अन्नारामौचवासांसि हयप्रभृतिवाहनम् ॥ दानानिमध्यमानीति मध्यमद्रव्यदानतः ॥ ६७ ॥ उपानच्छत्रपात्रादिदधि
मध्वासनानिच ॥ दीपकाष्ठोपलादीनि चरमान्याहुरुत्तमाः ॥६८॥ इतितेत्रिविधंप्रोक्तंदाननाशत्रयंशृणु ॥ यद्दत्त्वातप्य
तेपश्चादपात्रेभ्यस्तथाचयत्॥ अश्रद्धयाचयद्दानं दाननाशास्त्रयस्त्वमी ॥६९॥ इतिसप्तपदैर्बद्धं दानमाहात्म्यमुत्तमम् ॥**

घर व देवमन्दिर या राजगृह, विद्या, भूमि, गऊ, कूप, तृण, सुवर्ण ये दान अन्य दानों से उत्तम हैं ॥ ६६ ॥ और अन्न, बगीचा, वसन व घोडा इत्यादि सवारी
मध्यमद्रव्य के दान के कारण से ये दान मध्यम हैं ॥ ६७ ॥ व पनहीं, छतुरी व पात्रादिक और दही शहद या मिठाई व आसन, दिया, काठ और पत्थर इत्यादिक
उत्तमजनोंने पिछले दान कहा है ॥ ६८ ॥ यह तुमसे त्रिविधि कहीगई है और दान के तीन नाश सुनिये कि जिस दान को देकर पीछे पछतावै और अपात्रों के लिये
जो दान दियाजाताहै व जो अश्रद्धासे दियाजाताहै ये तीन दानके नाशहैं ॥६९॥ हे राजन्! इसप्रकार सातपदोंसे बँधाहुआ उत्तम दानका माहात्म्य मैंने तुमसे कहा

अच्छा या असाधु कहिये ॥ ७० ॥ धर्मवर्मा बोले कि हे कीर्तिमानोंमें श्रेष्ठ ! आज मेरा जन्म सफल हुआ व आज मेरी तपस्याका फल प्राप्तभया व आज मैं कृतार्थ करदियागया हूँ ॥ ७१ ॥ पढ़करके दुराचारी पुरुष का जन्म वृथा है व बहुत क्लेशसे मिलीहुई स्त्री यदि अप्रिय बोलै तो वह वृथा है ॥ ७२ ॥ व क्लेश से कुँवा बनाकर यदि वह खारीजलवाला हुआ तो वृथा है जैसे कि बहुत क्लेशों से जन्म पाकर धर्म के विना वृथा होता है ॥ ७३ ॥ इसप्रकार प्रसिद्धि में जिसप्रकार मेरी जो तपस्या वृथा थी उसको जिसलिये फलीभूत किया उसीलिये तुम्हारेलिये नमस्कार है व ब्राह्मणों के लिये प्रणामहै ॥ ७४ ॥ पुरातनसमय वैकुण्ठमें विष्णुजीने सनकादिकों

मयातेकीर्तितंराजन् साधुवासाधुवावद ॥ ७० ॥ धर्मवर्मोवाच ॥ अद्यमेसफलंजन्म अद्यमेतपसःफलम् ॥ अद्यवै कृतकृत्योस्मि कृतःकीर्तिमतांवरः ॥ ७१ ॥ पठित्वासकलंजन्म दुराचारस्यनुर्वृथा ॥ बहुक्लेशाच्चलब्धास्त्री सावृथाप्रियवादिनी ॥ ७२ ॥ क्लेशेनकृत्वाकूपंवा सचक्षारोदकोवृथा ॥ बहुक्लेशैर्जन्मनीत्वा विनाधर्मंवृथायथा ॥ ७३ ॥ एवंमेयद्वृथानाम तपस्तस्यफलंयतः ॥ कृतंतस्मान्नमस्तुभ्यं द्विजेभ्यश्चनमोनमः ॥ ७४ ॥ सत्यमाहपुराविष्णुः कुमारान्विष्णुसद्मनि ॥ ७५ ॥ नाहंतथाद्मियजमानहविर्वितानेश्च्योतद् घृतप्लुतमदन्हुतभुग्मुखेन ॥ यद्ब्राह्मणस्यमुखतश्चरतोनुघासंतुष्टस्यमय्यवहितैर्निजकर्मपाकैः ॥ ७६ ॥ तन्मयाकर्म्मणाचापि यद्विप्रेभ्योप्रियंकृतम् ॥ ७७ ॥ सर्वस्यप्रभवोविप्रास्तत्त्वमन्तुप्रसादतः ॥ त्वञ्चकोसिनसामान्यः प्रणम्याहंप्रसादये ॥ ७८ ॥ आत्मानंख्यापयमुने प्रोक्तश्चेत्यब्रवंतदा ॥ नारदोस्मिनृपश्रेष्ठस्थानस्यार्थेसमागतः ॥ ७९ ॥ प्रोक्तञ्चदेहिमेद्रव्यं भूमिञ्चस्थानहेतवे ॥ यद्यपीयंदेवतानांभूमिर्द्र

से सत्य कहा है ॥ ७५ ॥ कि जिसमें घी टपकता है ऐसी यजमानकी खीरको मैं उसतरह यज्ञमें नहीं ग्रहण करता हूं जैसे कि मुझमें अर्पण कियेहुये अपने कर्म फलों से संतुष्ट ब्राह्मण के मुखसे प्रति ग्रासमें भोजन करता हूं ॥७६॥ इसलिये मैंने कर्म से भी जो ब्राह्मणोंका अप्रिय किया हो ॥ ७७ ॥ सबोंके स्वामी ब्राह्मण प्रसन्नता से उस को क्षमाकरैं मैं प्रणाम करके प्रसन्न करताहूं आप साधारण द्विज नहीं हो कौनहो॥७८॥हे मुने ! अपनाको कहिये उससमय इसप्रकार कहेहुये मैंने यह कहा कि हे नृपश्रेष्ठ !

नारद हूं स्थानके लिये यहां आया हूं ॥ ७९ ॥ मुझको कहीहुई द्रव्य व स्थान के लिये पृथ्वी देवो हे राजन् ! यद्यपि यह भूमि व धन देवताओंका है ॥ ८० ॥ तिसे
पर भी जिससमय में जो राजा होता है निश्चयकर उससे मांगना चाहिये क्योंकि वह ईश्वर का अवतार होता है और वह पृथ्वीका स्वामी व दाता होता है ॥ ८१ ॥
इसलिये द्रव्यकी शुद्धि की इच्छासे मैं तुमसे पृथ्वी को मांगता हूं वैसेही पहले घोड़े के लिये गालवमुनि याचना में तत्परहुये हैं ॥ ८२ ॥ राजा बोले कि हे विप्रजी !
यदि तुम नारद हो तो सबराज्य तुम्हारा होवे और मैं ब्राह्मणों का व तुम्हारा निस्सन्देह सेवक हूंगा ॥ ८३ ॥ नारद बोले कि तदनन्तर मैंने धर्मवर्मा राजासे यह कहा कि

व्यञ्चपार्थिव ॥ ८० ॥ तथापियस्मिन्कालेयो राजाप्रार्थ्यःसनिश्चितम् ॥ सहीश्वरस्यावतारोभर्त्तादाताभुवश्चसः ॥ ८१ ॥
तद्भवंत्वामहंयाचेद्रव्यशुद्धिपरीप्सया ॥ तथैवगालवःपूर्वं हयार्थेप्रार्थनापरः ॥ ८२ ॥ राजोवाच ॥ यदित्वंनारदोविप्र रा
ज्यमस्त्वखिलंतव ॥ अहञ्चब्राह्मणानान्ते दास्यंकर्त्तानसंशयः ॥ ८३ ॥ नारद उवाच ॥ ततोहंधर्म्मवर्म्माणं प्रोक्त्वा
तिष्ठद्धनंत्वयि ॥ कृत्यकालेग्रहीष्यामि प्रययौरैवतंगिरिम् ॥ ८४ ॥ आसंप्रमुदितश्चाहं पश्यंस्तंगिरिसत्तमम् ॥ आह्वय
न्तंनरान्साधून् भूमेर्भुजमिवोच्छ्रितम् ॥ ८५ ॥ यस्मिन्नानाविधावृक्षाःप्रकाशन्तेसमन्ततः ॥ साधुंगृहपतिंप्राप्यपुत्रभा
र्यादयोयथा ॥ ८६ ॥ मुदितायत्रसंतृप्ता वसन्तेकोकिलादयः ॥ सद्गुरोर्ज्ञानसंतृप्ता यथाशिष्यगणाभुवि ॥ ८७ ॥ यत्र
तप्त्वातपोमर्त्या यथेप्सितमवाप्नुते ॥ श्रीमहादेवमासाद्यभक्तोयद्वन्मनोरथम् ॥ ८८ ॥ तस्याहंचगिरेःपार्श्वं समासा

धन तुम्हारे पास रहै मैं कार्य्य के समय लेलूंगा यहकहकर रैवतकपर्व्वत पै चला गया ॥ ८४ ॥ और उस उत्तमपर्वत को देखताहुआ मैं प्रसन्नहुआ जो कि पृथ्वी
की भुजाकीनाईं ऊंचाहोकर मानो उत्तमजनों को बुलारहा है ॥ ८५ ॥ व जिस पर्वत पै सबओर अनेकप्रकार के वृक्ष शोभित हैं जैसे घरके उत्तमस्वामी को पाकर पुत्र
व स्त्री आदिक सोहते हैं ॥ ८६ ॥ व जहांपर भलीभांति तृप्तहोकर कोकिलाआदिक पक्षी बसते हैं जैसे कि पृथ्वी में उत्तमगुरु से ज्ञानकरके अच्छीतरह तृप्तकिये
हुये शिष्य समूहरहते हैं ॥ ८७ ॥ व जहां तपस्याकरके मनुष्य चाहेहुये मनोरथ को प्राप्तहोता है जैसे श्री महादेवजी के समीप जाकर भक्त अभिलाष को प्राप्तहोता ।

है ॥ ८८ ॥ हे अर्जुनजी ! उस पर्वत की बड़ी शिलापै प्राप्तहोकर शीतल, मन्द, सुगन्ध पवनसे प्रसन्न कियेहुये मैंने हृदय में चिन्तवन किया ॥ ८९ ॥ कि जो अ-
त्यन्त दुर्लभ था उसस्थानको मै तब तक पागया इससमय मैं ब्राह्मणों के लिये तबतक स्थानका प्रारम्भकरूं ॥ ९० ॥ और जो उत्तमपात्र मानेगये हैं वे ब्राह्मण
मुझको देखना चाहिये क्योंकि यहां श्रुतिवादियों के ये वचन सुनेजाते है ॥ ९१ ॥ जैसे खेवैया से रहित नाव प्राणियों को पारउतारने में समर्थ नहीं होती है वैसेही
उत्तमब्राह्मण आचार से रहित उधारने में समर्थ नहीं होता है ॥ ९२ ॥ विनपढा हुआ ब्राह्मण तिनुका की आग की नाईं तेजहीन होजाता है उसमें हव्य न देना

घमहाशिलाम्॥शीतसौरभ्यमन्देन प्रीणितोचिन्तयन्हृदि ॥ ८९ ॥ तावन्मयाऽस्थानमाप्तं यदतीवसुदुर्लभम् ॥ इदा
नींब्राह्मणार्थेहं कुर्वेतावदुपक्रमम् ॥ ९० ॥ ब्राह्मणाश्चविलोक्यामे येहिपात्रतमामताः ॥ तथाहिचात्रश्रूयन्ते वचां
सिश्रुतिवादिनाम् ॥ ९१ ॥ नजन्तोस्तारणेशक्ता यद्वन्नौःकर्णवर्जिता ॥ तद्वच्छ्रेष्ठोप्यनाचारो विप्रोनोद्धरणक्षमः ॥९२॥
ब्राह्मणोह्यनधीयानस्तृणाग्निरिवशाम्यति ॥ तस्मैहव्यन्नदातव्यं नहिभस्मनिहूयते ॥ ९३ ॥ दानंपात्रमतिक्रम्य य
दपात्रेप्रदीयते ॥ तदन्तर्गामतिक्रम्य गर्दभस्यगवाह्निकम् ॥ ९४ ॥ ऊपरेवापितंबीजं भिन्नभाण्डेषुगोदुहम् ॥ भस्म
नीवहुतंहव्यं मूर्खदानमशाश्वतम् ॥ ९५ ॥ विद्याहीनेतथापात्रे योददातिप्रतिग्रहम् ॥ नकेवलंहितद्याति शेषंपुण्यंप्र
णश्यति ॥ ९६ ॥ भूरात्मानंगौश्चभोगान्सुवर्णन्देहमेववा ॥ अश्वश्चक्षुःस्त्रियंवासो घृतंतेजस्तिलाःप्रजाम् ॥ ९७ ॥ घ्न

चाहिये क्योंकि भस्म में होम नहीं कियाजाता है ॥ ९३ ॥ पात्रको छोड़कर जो दान दियाजाता है वह वैसाही है जैसे कि भीतर गऊको उल्लंघन करके गऊका प्रति
दिनवाला भाग गदहे को दियाजाय ॥ ९४ ॥ ऊसर में बोवायेहुये बीज व फूटे बरतनमें गऊ दुहना व भस्म में हवन कीहुई हव्यकी नाईं मूर्खको दानदेना नाश
होजाता है ॥ ९५ ॥ विद्याहीन व पात्ररहित में जो दानदेता है केवल वही नहीं जातारहता किन्तु बचीहुई पुण्यभी नाशहोजाती है ॥ ९६ ॥ भूमिकादान शरीर
को व गऊ सुखोंको व सुवर्ण देहको नाश करता है और घोड़ा नेत्रको व वसन स्त्रीको व घी तेजको व तिल प्रजाओं को नाश करतेहैं ॥ ९७ ॥ इसलिये अविद्वान

(मूर्ख) दानलेने से डरै क्योंकि थोड़ेभी दानसे मूर्ख कीचड़ में गऊकी तरह दुःखी होताहै ॥ ९८ ॥ इसलिये जिनकी तपस्या छिपीहै व गुप्तही वेदपाठके करनेवाले हैं और जो अपनी स्त्रीमें अनुरागी व शान्तहैं उनमें दियाहुआ दान सदैव अविनाशी होताहै ॥ ९९ ॥ देश व समय के उपाय से श्रद्धासंयुक्त जो द्रव्य पात्रमें दीजाती है वह सब धर्मका लक्षणहै ॥ २०० ॥ केवल विद्या या तपस्यासे पात्रता नहीं होतीहै किन्तु जिसमें आचरण व ये दोनों होवैं वह पात्र कहाजाता है ॥ १ ॥ व इन तीनोंके भी मध्यमें विद्या मुख्य बडाभारी गुणहै विद्याके विना ब्राह्मण अन्धकी समान होताहै क्योंकि वे विद्यावान् मनुष्य नेत्रोंवाले मानेगयेहैं ॥ २ ॥

न्तितस्माद्विद्वांस्तु बिभियाच्चप्रतिग्रहात् ॥ स्वल्पकेनाप्यविद्वांस्तु पङ्केगौरिवसीदति ॥ ९८ ॥ तस्माद्वेगूढतपसो गूढस्वाध्यायसाधकाः ॥ स्वदारनिरताश्शान्तास्तेषुदत्तंसदाक्षयम् ॥ ९९ ॥ देशकालउपायेन द्रव्यंश्रद्धासमन्वितम् ॥ पात्रेप्रदीयतेयत्तत्सकलंधर्मलक्षणम् ॥ २०० ॥ नविद्ययाकेवलया तपसावापिपात्रता ॥ यत्रवृत्तमिमेचोभे तद्धिपात्रं प्रचक्ष्यते ॥ १ ॥ एतेषांतिसृणाञ्चापि विद्यामुख्योमहान्गुणः ॥ विद्याविनान्धवद्विप्रश्चक्षुष्मन्तोहितेमताः ॥ २ ॥ तस्माच्चक्षुष्मतोविप्रान्देशेदेशेपरीक्षये ॥ प्रश्नांश्चेन्ममवक्ष्यन्ति तेभ्योदास्याम्यहन्ततः ॥ ३ ॥ इतिसञ्चिन्त्यमनसा तस्माद्देशात्समुत्थितः ॥ आश्रमेषुमहर्षीणां विचरामिस्मफाल्गुन ॥ ४ ॥ इमाञ्छ्लोकान्गायमानः प्रश्नरूपाञ्छृणुष्व तान् ॥ मातृकाङ्कोविजानाति कतिवाकीदृशाक्षराम् ॥ ५ ॥ पञ्चपञ्चाद्भुतंगेहं कोविजानातिवाद्विजः ॥ बहुरूपांस्त्रियंकर्तुमेकरूपांचवेत्तिकः ॥ ६ ॥ कोवाचित्रकथंबन्धं वेत्तिसंसारगोचरः ॥ कोविप्रश्चमहाग्राहं वेत्तिविद्यापरायणः ॥ ७ ॥

इसलिये देश देशमें मैं नेत्रवान् याने विद्वान् द्विजों को परखता हूं यदि मेरे प्रश्नोंको कहैंगे तो मैं उनके लिये दानदूंगा ॥ ३ ॥ ऐसा मनसे चिन्तवन करके मैं उस स्थान से उठा व हे अर्जुनजी ! महर्षियों के आश्रमों में घूमतारहा ॥ ४ ॥ व प्रश्नरूपी इन श्लोकोंको गाताथा उनको सुनिये कि मातृका को कौन जानताहै व कितनी है और कैसे अक्षरोंकी है ॥ ५ ॥ अथवा कौन ब्राह्मण पचीस वस्तुवोंसे बने हुये अद्भुत घरको जानताहै और बहुतरूपोंवाली स्त्रीको एकरूपवाली करना कौन जानता है ॥ ६ ॥ अथवा, अद्भुत कथावाले वचन को कौन जानता है व संसार में प्राप्त कौन मनुष्य-बन्धन को जानता है और विद्यामें तत्पर कौन पुरुष बडे ग्राह

को जानता है ॥ ७ ॥ और कौन द्विजोत्तम आठ प्रकारकी ब्राह्मणता को जानता है और चारोंयुगों के मूल दिनोंको कौन कहैगा ॥ ८ ॥ और चौदहों मनुवों के मूल
दिनों को कौन जानता है अथवा सूर्यनारायण किसदिन पहले रथ पर प्राप्तहुये हैं ॥ ९ ॥ और काले सापकी तरह कौन प्राणियों को डरवाता है और इस विकराल
संसार में कौन प्रवीणों के मध्यमें बडा चतुरहै ॥ १० ॥ व दोनोंभी मार्गोंको कोई ब्राह्मण जानता है व कहता है मेरे इन बारह प्रश्नोंको जो द्विजोत्तम जानते
हैं ॥ ११ ॥ वे हमारे बहुत पूजनेयोग्यहैं व उनका मैं बहुत दिनोंतक सेवकहूंगा यही गाताहुआ मैं समस्त पृथ्वीमें फिरतारहा ॥ १२ ॥ और जिनको इनका व्याख्यान

कोनाष्टविधब्राह्मण्यं वेत्तिब्राह्मणसत्तमः ॥ युगानाञ्चचतुर्णांवा कोमूलदिवसान्वदेत् ॥ ८ ॥ चतुर्दशमनूनाञ्च मूल
वारञ्चवेत्तिकः ॥ कस्मिंश्चैवदिनेप्राप पूर्वंवाभास्करोरथम् ॥ ९ ॥ उद्वेजयतिभूतानि कृष्णाहिरिववेत्तिकः ॥ कोवास्मि
न्घोरसंसारे दक्षदक्षतमोभवेत् ॥ १० ॥ पन्थानावपिद्वौकश्चिद्वेत्तिवक्तिचब्राह्मणः ॥ इतिमेद्वादशप्रश्नान् येविदुर्ब्रा
ह्मणोत्तमाः ॥ ११ ॥ तेमेपूज्यतमास्तेषामहमाराधकश्चिरम् ॥ इत्यहंगायमानोवै भ्रमितस्सकलांमहीम् ॥ १२ ॥
तेचाहुर्दुःखव्याख्यानाः प्रश्नांस्तेकुर्महेनमः ॥ १३ ॥ इत्यहंसकलांपृथ्वीं भ्रमित्वागत्यपाण्डव ॥ हिमाद्रिशिखरासी
नो भूयश्चिन्तामवाप्तवान् ॥ १४ ॥ सर्वेविलोकिताविप्राः किमतःकर्तुमुत्सहे ॥१५॥ ततोमेचिन्तयानस्य पुनर्जाताम
तिस्त्वियम् ॥ अद्यापिनगतश्चाहं कलापग्राममुत्तमम् ॥ १६ ॥ यस्मिन्विप्रास्संवसन्ति मूर्तानीवतपांसिच ॥ चतुर
शीतिसाहस्राः श्रुताध्ययनशालिनः ॥ १७ ॥ स्थानेतस्मिन्गमिष्यामियुक्त्याहंचलितस्तदा ॥ खेचरोहिसमाक्रम्य प

कठिन था उन द्विजों ने कहा कि हमलोग तुम्हारे प्रश्नोंको प्रणाम करते हैं ॥१३॥ हे पांडव ! इस प्रकार समस्त पृथ्वीमें घूमकर आकर हिमाचल पर्वतके शिषरपै बैठ
करके मैं फिर चिन्ताको प्राप्तहुआ ॥ १४ ॥ कि समस्त ब्राह्मण तो देखगये इसके उपरान्त मैं क्या करने के लिये उत्साह करूं ॥ १५ ॥ तदनन्तर चिन्ता करतेहुये
मेरे यह बुद्धि उत्पन्नहुई कि आजतकभी मैं उत्तम कलापनगर को नहीं गयाहूं ॥१६॥ कि जिसमें मूर्तिमती तपस्याओंकी नाई चौरासीहज़ार ब्राह्मण शास्त्रके पठनसे

शोभित भलीभाति बसते हैं ॥ १७ ॥ उस स्थानमें मैं जाऊंगा यह विचारकर उस समय चला व आकाशगामी मैं चलकर तदनन्तर बहुत दूरगया ॥ १८ ॥ और पुण्य,
भूमिमें बसेहुये उस उत्तमग्राम को मैंने देखा जोकि सौयोजन चौंडा व अनेक प्रकारके वृक्षों से व्याप्तथा ॥ १९ ॥ जैसे सुखोंसे संयुत व विस्तारित पुण्यवान् का
जन्महोवै वैसाही था जिसमें पुण्यवानों के सैकड़ों आश्रमथे ॥ २० ॥ व जिस ग्राममें सबजीवोंके भी समागम होतेहैं और जहां उत्तममुनियोंके घरमें आनेपर जैसे
सत्कार होताहै वैसेही वहांहोता है ॥ २१ ॥ और अग्निहोत्र से उठाहुआ धूम व प्रवाह जहा शान्त नहीं होताहै हे अर्जुन ! जिस ग्राममें सतयुग के लिये सूर्यवंश

रंपारंगतस्ततः ॥ १८ ॥ अद्राक्षंपुण्यभूमिस्थं ग्रामरत्नमहंहितत् ॥ शतयोजनविस्तीर्णं नानावृक्षसमाकुलम् ॥ १९ ॥
यथापुण्यवतोजन्म विस्तीर्णंभोगसंकुलम् ॥ यत्रपुण्यवतांसन्ति शतशःप्रवराश्रमाः ॥ २० ॥ सर्वेषामपिजीवानांमु
नीनांयत्रसङ्गमाः ॥ मुनीनांयत्रसाधूनां गृहेयद्वद्गुणागते ॥ २१ ॥ अग्निहोत्रोत्थितोधूमःप्रवाहश्चनशाम्यति ॥ यस्मि
न्कृतयुगस्यार्थे बीजंगाथावशिष्यते ॥ २२ ॥ सूर्यस्यसोमवंशस्य यादवानान्तथैवच ॥ स्थानकंतत्समासाद्य प्रविष्टो
ऽहंपत्सभाम् ॥ २३ ॥ तत्रतेविविधान्वादान्विवदन्तिद्विजोत्तमाः ॥ वाचामधुरयासूक्त्या वेदामूर्तिधरायथा ॥ २४ ॥
तत्रमेधाविनःकेचिदर्थमन्यैःप्रपूरितम् ॥ चिचिक्षिपुर्महाप्रज्ञानानाभोगांश्चचामिषम् ॥ २५ ॥ तत्राहंबाहुमुद्यम्य प्रावो
चंपूर्यतान्द्विजाः ॥ काकरवैःकिमेतैर्वा यद्यस्तिज्ञानशालिता ॥ २६ ॥ अपाकुरुध्वंवैप्रश्नान्ममदुर्विषहानमून् ॥ २७ ॥
ब्राह्मणाऊचुः ॥ वदब्राह्मणप्रश्नान्स्वाञ्छ्रुत्वाव्याख्यामहेवयम् ॥ परमोह्येषनोलाभः प्रश्नान्पृच्छतियद्भवान् ॥ २८ ॥

व चन्द्रवंश और यादवों का बीज शेषहै उस स्थानमें जाकर मैं मनुष्यों की सभा में पैठगया ॥ २२ । २३ ॥ वहां वे द्विजोत्तमलोग उत्तमउक्ति व मीठीवाणी से अ-
नेक प्रकार के विवादों को कहतेथे जैसे कि मूर्त्तिको धारेहुये वेदहोवैं ॥ २४ ॥ वहां बड़ी बुद्धिवाले विद्वान्लोग औरोंसे पूरण कियेहुये अर्थको व अनेकप्रकार के भोगों
व मांसको निराकरण करते थे ॥ २५ ॥ वहां भुजाको उठाकर मैंने कहा कि हे ब्राह्मणो ! मेरे प्रश्नको पूर्णकीजिये यदि ज्ञानकी शोभाहोवै तो इन काकशब्दों से
क्या है ॥ २६ ॥ तो मेरे इन असह्यप्रश्नों को कहकर सन्देह दूरकीजिये ॥ २७ ॥ ब्राह्मणलोग बोले कि हे द्विज ! अपनी प्रश्नों को कहिये उनको सुनकर हमलोग

कहैंगे यह हम सबोंको बड़ालाभ है जो आप प्रश्नोंको पूंछतेहैं ॥ २८ ॥ मैं पहले कहूंगा मैं पहले कहूंगा इसप्रकार आपस में निषेध किया जैसे कि युद्धमें मैं पहले मैं पहले मारूंगा यह कहकरशूर मना करते हैं॥२९॥ तदनन्तर मैंने बारहसंख्यक प्रश्नों को उनसे कहा व उन मुनीश्वरों ने सुनकर विलाप करते हुये मुझसे बोले ॥ ३० ॥ कि हे बालक द्विजोत्तम ! तुम्हारी इन छोटी बारह प्रश्नोंसे क्याहै तुम हम सबोंके मध्यमेंसे जिसको कम मानतेहो वह इनप्रश्नोंकोकहै ॥ ३१ ॥ तदनन्तर कृतार्थताको मानता हुआ बड़े विस्मयमें प्राप्त मैंने उनके मध्यमें न्यूनको विचारकर कहा कि यह कहै ॥ ३२ ॥ तदनन्तर सुतनुनामक उस बालक द्विजने मु-

अहंपूर्वंकयातेवै न्यषेधन्तपरस्परम् ॥ अहंपूर्वमहंपूर्वमितिवीरायथारणे ॥ २९ ॥ ततस्तानब्रवंप्रश्नानहंद्वादश संख्यकान् ॥ श्रुत्वातेमामवोचन्त लीलायन्तोमुनीश्वराः ॥ ३० ॥ किन्तेबालद्विजप्रश्नैरमीभिःस्वल्पकैरिति ॥ त्वमस्माकंयन्निहीनं मन्यसेसब्रवीत्वमून् ॥ ३१ ॥ ततोतिविस्मितश्चाहं मन्यमानःकृतार्थताम् ॥ तेषान्निहीनंसञ्चिन्त्य प्रावोचंचब्रवीत्वयम् ॥ ३२ ॥ ततस्सुतनुनामास बालोविप्रोभ्युवाचमाम् ॥ मममन्दायतेवाणी प्रश्नैःस्वल्पैस्तवद्विज ॥ ३३ ॥ तथापिवच्मिमांयस्मान्निहीनंमन्यतेभवान् ॥ ३४ ॥ सुतनुरुवाच ॥ अक्षरास्तुद्विपञ्चाशन्मातृकायांप्रकीर्तिताः ॥ ॐकारःप्रथमस्तस्य चतुर्दशस्वरास्तथा ॥ ३५ ॥ वर्णाश्चैवत्रयस्त्रिंशदनुस्वारस्तथैवच ॥ विसर्जनीयश्चपरो जिह्वामूलीयएवच ॥ ३६ ॥ उपध्मानीयएवापि द्विपञ्चाशदमीस्मृताः ॥ इतितेकथितासंख्या अर्थंचैषांशृणुद्विज ॥ ३७ ॥ अस्मिन्नर्थेचेतिहासं तववक्ष्यामियःपुरा ॥ मिथिलायांप्रवृत्तोभूद्ब्राह्मणस्यनिवेशने ॥ ३८ ॥ मिथिलायांपुरापु

झसे कहा, कि हे द्विज ! तुम्हारी छोटी प्रश्नोसे मेरीवाणी मन्दसी होतीहै ॥३३॥ तौभी जिसलिये आप मुझको न्यूनमानते हो उससे कहूंगा ॥ ३४ ॥ सुतनु बोले कि मातृकामें बावन अक्षर कहेगये हैं पहला ॐकार है व उसके चौदहस्वर हैं ॥ ३५ ॥ और तेंतीसवर्ण हैं व वैसेही अनुस्वार, विसर्ग व अन्य जिह्वामूलीय ॥ ३६ ॥ और उपध्मानीय भी ये बावन अक्षर कहेगये हैं हे द्विज ! यह संख्या तुमसे कही गई और इनका अर्थ सुनिये ॥ ३७ ॥ व इस अर्थमें इतिहास तुमसे कहूगा जोकि

पुरातन समय मिथिलापुरी में ब्राह्मणके घरमें वर्तमान हुआहै ॥ ३८ ॥ हे ब्राह्मण! पहले मिथिलापुरी में कौथुमनामक ब्राह्मण हुआहै जिसने उन सब विद्याओं को पढ़ाथा जोकि भूमिमें वर्तमान हैं ॥ ३९ ॥ इसका इकतीस हजार वर्षों में एकक्षण नहीं कटाथा आदर कियेहुये वह इतने दिनोंतक पढ़कर गृहस्थ हुआ ॥ ४० ॥ तदनन्तर किसीभी समय के बाद कौथुमके पुत्र हुआ जड़की नाईं वर्तमान उसने मातृका को पढ़ा किया ॥ ४१ ॥ और मातृका याने बावनअक्षरोंको पढ़कर वह किसीप्रकार अन्य कुछ नहीं पढ़ताथा तदनन्तर दुःखितरूप होकर पिताने उस जड़से कहा ॥ ४२ ॥ कि हे पुत्र ! पढ़ो पढ़ो मैं तुमको लड्डू दूंगा नहीं तो अन्यके लिये मोदक

यां ब्राह्मणःकौथुमाभिधः ॥ येनविद्याःप्रपठिताभुविवर्तन्तियाद्विज ॥ ३९ ॥ एकत्रिंशत्सहस्राणि वर्षाणांसकृतादरः ॥ क्षणमस्यनचच्छिन्नं पठित्वागेहवानभूत ॥४०॥ ततःकेनापिकालेन कौथुमस्याभवत्सुतः ॥ जडवद्वर्त्तमानःसमात्कांप्रत्यपठ्यत ॥ ४१ ॥ पठित्वामातृकामन्यन्नाध्येतिसकथञ्चन ॥ ततःपिताखिन्नरूपो जडन्तंसमभाषत ॥ ४२ ॥ अधीष्वपुत्रकाधीष्व तवदास्यामिमोदकम् ॥ नत्वन्यस्मैप्रदास्यामिकर्णावुत्पाटयामिते ॥ ४३ ॥ पुत्रउवाच ॥ तात किंमोदकार्थाय पठ्यतेलोभहेतवे ॥ पठनंनामयत्पुंसां परत्रार्थंहिततस्मृतम् ॥ ४४ ॥ कौथुमउवाच ॥ एवन्तेवदमानस्य आयुर्भवतुवाडव ॥ साध्वीबुद्धिरियन्तेच कुतोनाध्येष्यतःपरम् ॥ ४५ ॥ पुत्रउवाच ॥ तत्तुसर्वंपरिज्ञेयं ज्ञातमत्रैववैयतः ॥ ततःपरंकण्ठशोषःकिमर्थंक्रियतेवद ॥ ४६ ॥ पितोवाच ॥ विचित्रंभाषसेबाल ज्ञातोत्रार्थश्चकस्त्वया ॥ ब्रूहिब्रूहिपुनर्वत्स श्रोतुमिच्छामितेगिरम् ॥ ४७ ॥ पुत्र उवाच ॥ एकविंशत्सहस्राणि पठतापित्वयापितः ॥ नान्यतर्कानुश्रा

दूंगा और तुम्हारे कान उखाडूंगा ॥ ४३ ॥ पुत्र बोला कि हे पिताजी ! क्या लोभ के निमित्त मोदकके लिये पढ़ाजाता है किन्तु जो पढ़ना है वह प्रसिद्ध में पुरुषोंके परलोक के निमित्त कहागया है ॥ ४४ ॥ कौथुम बोले कि हे द्विज ! ऐसा कहते हुये तुम्हारा आयुर्बलहोवै और तुम्हारी यह अच्छी बुद्धिहै किसलिये इसके उपरान्त नहीं पढ़तेहो ॥ ४५ ॥ पुत्र बोला कि वह तो सब जाननेयोग्य है जिसलिये इसी में जानागयाहै इससे इसके उपरान्त किसलिये कंठशोष कियाजाय कहिये ॥ ४६ ॥ पिता बोला कि हे बालक ! तुम अद्भुत वस्तुको कहते हो इसमें तुमने किस अर्थ को जाना है वत्स ! कहिये फिर कहिये तुम्हारी वाणीको मैं सुनना चाहता हूं ॥ ४७ ॥

पुत्रबोला कि हे पिताजी ! इक्कीसहजार वर्षोंतक पढ़तेहुये भी तुमने अन्य तर्कों को नहीं किन्तु अपने मनमें भ्रमही साधनकिया है ॥ ४८ ॥ यहहै यहहै व यहहै इसप्रकार शास्त्रमें कहाहुआ जो धर्महै उनमें तुम्हारा चित्त इधर उधर भ्रमता है तुम्हारे उस भ्रमको मैं नाश करूंगा ॥ ४६ ॥ उपदेश को पढतेही हो परन्तु यथार्थ से अर्थ के ज्ञाता न होग क्योंकि जो ब्राह्मण पाठमात्र पढ़ते हैं वे दो पैरवाले पशु हैं ॥ ५० ॥ इस लिये मोहरूपी अज्ञान के लिये अद्भुत सूर्यरूपी उस वाक्यको कहताहूं अ-कार ब्रह्मा कहेगये हैं व उकार विष्णु कहाजाता है ॥ ५१ ॥ व मकार रुद्र कहागया है ये तीनोंगुण कहेगये हैं और मस्तक पै जो उत्तम आधीमात्रा है वे सदाशिव

न्तिरेव साधितामनसिस्वके ॥ ४८ ॥ अयमयंचायामितिधर्मोयोदर्शनोदितः ॥ तेषुवातायतेचेतस्तवतन्नाशयामिते ॥ ४९ ॥ उपदेशंपठस्येव नैवार्थज्ञोसितत्त्वतः ॥ पाठमात्राहियेविप्राद्विपदाःपशवोहिते ॥ ५० ॥ तत्तेब्रवीमितद्वाक्यं मोहमार्तण्डमद्भुतम् ॥ अकारःकथितोब्रह्मा उकारोविष्णुरुच्यते ॥ ५१ ॥ मकारश्चस्मृतोरुद्रस्त्रयश्चैतेगुणाःस्मृताः ॥ अर्द्धमात्राचयामूर्ध्निपरमाससदाशिवः ॥ ५२ ॥ एवमोङ्कारमाहात्म्यं याथात्म्येननशक्यते ॥ वर्षाणामयुतेनापि ग्रन्थकोटिभिरेवच ॥ ५३ ॥ पुनर्यत्सारसर्वस्वं प्रोक्तंतच्छ्रूयतांपरम् ॥ औकारान्ताअकाराद्या मनवस्तेचतुर्द्दश ॥ ५४ ॥ स्वायम्भुवश्चस्वारोचिरौत्तमोरैवतस्तथा ॥ तामसश्चाक्षुषःषष्ठस्तथावैवस्वतोधुना ॥ ५५ ॥ सावर्णिर्ब्रह्मसावर्णी रुद्रसावर्णिरेवना ॥ दत्तसावर्णिरेवापि धर्मसावर्णिरेवच ॥ ५६ ॥ रौच्यौभौत्यस्तथैवापिमनवोमीचतुर्द्दश ॥ श्वेतःपाण्डुस्तथा रक्तस्ताम्रःपीतश्चकापिलः ॥ ५७ ॥ कृष्णःश्यामस्तथाधूम्रः सुपिशङ्गःपिशङ्गकः ॥ त्रिवर्णःशबलोवर्णैः कर्बुरश्चइति

जीहैं ॥ ५२ ॥ इस प्रकार ॐकारका माहात्म्य यथार्थता से दशहजार वर्षों व करोडों ग्रन्थोंमे भी नहीं कहाजासक्ता है ॥ ५३ ॥ फिर जो सारांश का सर्वस्व कहागया है उस उत्तमवस्तु को सुनिये अकार से लगाकर औकार के अन्ततक वे चौदहों मनुहैं ॥ ५४ ॥ स्वायम्भुव, स्वारोचिष, उत्तम, रैवत, तामस व छठें चाक्षुष व इस समय वैवस्वतहैं ॥ ५५ ॥ व सावर्णि, ब्रह्मसावर्णि और रुद्रसावर्णि व दत्तसावर्णि भी व धर्मसावर्णि ॥ ५६ ॥ व रौच्य और भौत्य भी ये चौदह मनुहैं और श्वेत,पाण्डु

व लाल, पीला व कपिल ॥ ५७ ॥ व काला, श्याम और धूमिल व पिंगल और तीनों वर्णवाला व विचित्र रंग और कबरा ये क्रमसे चौदहों मनुओं के रंगहैं ॥५८॥
हे पिताजी ! सूर्यदेवतावाली ऋकार काले वर्ण की पढ़ीजाती है और ककार से लगाकर ह अक्षर के अन्ततक तैंतीस देवताहैं ॥ ५९ ॥ व क अक्षर से लगाकर ठकार
के अन्ततक बारह सूर्य कहेगये हैं व डकार से बकार के अन्ततक वे गेरहों रुद्र हैं ॥ ६० ॥ व भकार से लगाकर षकार के अन्ततक आठ वसु मानेगये हैं और स
ह ये अश्विनीकुमारहैं येही तैंतीस देवता कहेगयेहैं ॥ ६१ ॥ व अनुस्वार, विसर्ग, जिह्वामूलीय और उपध्मानीय इतने ये जरायुज (मनुष्यादि) व अण्डज (अण्डे

क्रमात् ॥ ५८ ॥ वैवस्वतऋकारश्च तातकृष्णःप्रपठ्यते ॥ ककाराद्याहकारान्तास्त्रयस्त्रिंशच्चदेवताः ॥ ५९ ॥ ककारा
द्याष्ठकारान्ता आदित्याद्वादशस्मृताः ॥ डकाराद्याबकारान्ता रुद्राश्चैकादशैवते ॥ ६० ॥ भकाराद्याःषकारान्ता अ
ष्टौहिवसवोमताः ॥ सहौचेत्यश्विनौख्यातौ त्रयस्त्रिंशदितिस्मृताः ॥ ६१ ॥ अनुस्वारोविसर्गश्च जिह्वामूलीयएवच ॥
उपध्मानीयइत्येते जरायुजतथाण्डजाः ॥ ६२ ॥ स्वेदजाश्चोद्भिजश्चापि पितर्जीवाःप्रकीर्तिताः ॥ भावार्थःकथित
श्चायं तत्त्वार्थंशृणुसाम्प्रतम् ॥ ६३ ॥ येपुमांसस्त्वमून्देवान् समाश्रित्यक्रियापराः ॥ अर्द्धमात्रात्मिकेनित्ये पदेली
नास्तएवहि ॥ ६४ ॥ चतुर्णांजीवयोनीनां तदेवपरमुच्यते ॥ यदमून्मनसावाचा कर्मणाचभजेत्सुरान् ॥ ६५ ॥ यस्मि
ञ्छास्त्रेत्वमीदेवा मानितानैवपापिभिः ॥ नतच्छास्त्रंहिमन्तव्यं यदिब्रह्मास्वयंवदेत् ॥ ६६ ॥ अमीचदेवास्सर्वत्र श्रौते
मार्गेप्रतिष्ठिताः ॥ पाखण्डशास्त्रेसर्वत्र निषिद्धाःपापकर्मभिः ॥ ६७ ॥ तदमूल्येऽयतिक्रम्य तपोदानंतथाजपम् ॥ कुर्व

से पैदा होनेवाले) ॥ ६२ ॥ व स्वेदज (कीट डांस इत्यादि) और उद्भिज (वृक्षादि) हे पिताजी ! ये जीव कहेगये हैं यह भावार्थ कहागया व इस समय तत्त्वा
र्थको सुनिये ॥ ६३ ॥ जो पुरुष इन देवताओं के आश्रित होकर कार्य्योंमें तत्पर होतेहैं वेही अर्द्धमात्रात्मक नित्यपद याने सदाशिव में लीन होजाते हैं ॥ ६४ ॥
चारों जीवयोनियों के मध्यमें वही उत्तम कहाजाता है जोकि इन देवताओं को मन, वचन व कर्मसे भजे ॥ ६५ ॥ और जिस शास्त्रमें पापियों से देवता नहीं माने
गयेहैं उस शास्त्रको न मानना चाहिये यदि आपही ब्रह्माजी कहैं ॥ ६६ ॥ व ये सब देवता वेदवाले मार्गमें प्रतिष्ठित हैं और पापकर्मियों से सब कहीं पाखण्ड के शास्त्र

में निषिद्ध हैं ॥ ६७ ॥ इस लिये जो इन देवोंको छोड़कर तपस्या, दान अथवा जप करते हैं वे दुष्टात्मा लोग पवन के रास्तेमें जातेहैं ॥ ६८ ॥ बड़े आश्चर्य की बातहै कि बिन जीतेहुये इन्द्रियोंवाले जनोंके अज्ञान के माहात्म्य को देखिये कि वे पापी मातृका को पढ़तेहैं और इन देवोंको नहीं मानते हैं ॥ ६९ ॥ सुतनु बोले कि उसके यह वचन सुनकर पिताने बड़े विस्मय में प्राप्तहोकर बहुत प्रश्नोंको पूंछा व उसनेभी वैसाही वैसा कहा ॥७०॥ व मैंनेभी तुमसे इस उत्तम मातृका प्रश्नको कहा और पच्चीस वस्तुओं से बनाहुआ घर इस दूसरे प्रश्न को सुनिये ॥ ७१ ॥ कि पांच महाभूत याने पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश व पांच कर्मेन्द्रिय पांच ज्ञानेन्द्रिय

न्तितेदुरात्मानो व्रजन्तिमरुतःपथि ॥ ६८ ॥ अहोमोहस्यमाहात्म्यंपश्यत्वंविजितात्मनाम् ॥ पठन्तिमातृकांपापा मन्यन्तेमून्सुरान्नच ॥ ६९ ॥ सुतनुरुवाच ॥ इतितस्यवचःश्रुत्वा पिताभूदतिविस्मितः ॥ पप्रच्छचबहून्प्रश्नान् सोप्य वादीतथातथा ॥ ७० ॥ मयापितवप्रोक्तोयं मातृकाप्रश्नउत्तमः ॥ द्वितीयंशृणुप्रश्नंच पञ्चपञ्चाद्भुतंगृहम् ॥ ७१ ॥ पञ्चभूतानिपञ्चैव कर्म्मज्ञानेन्द्रियाणिच ॥ पञ्चपञ्चापिविषया मनोबुद्ध्यहमेवच ॥ ७२ ॥ प्रकृतिःपुरुषश्चैव पञ्चविं शस्सदाशिवः ॥ पञ्चपञ्चभिरेतैस्तु निष्पन्नंगृहमुच्यते ॥ ७३ ॥ देहमेतदिदंवेदतत्त्वतोयात्यसौशिवम् ॥ बहुरूपांस्त्रि यंप्राहुर्बुद्धिंवेदान्तवादिनः ॥ ७४ ॥ साहिनानार्थभजनान्नानारूपंप्रपद्यते ॥ धर्मस्यैकस्यसंयोगाद्बहुधाप्येककैवसा ॥ ७५ ॥ इतियोवेदतत्त्वार्थं नासौनरकमाप्नुयात् ॥ मुनिभिर्यच्चनप्रोक्तं यन्नमन्येतदेवताम् ॥ ७६ ॥ वचनंतद्बुधाःप्राहुर्बन्धंचित्र कथन्त्विति ॥ यच्चकामान्वितंवाक्यं पञ्चमंचाप्यतःशृणु ॥ ७७ ॥ एकोलोभोमहान्ग्राहो लोभात्पापंप्रवर्तते ॥ लोभा

व पांच विषय याने शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध और मन, बुद्धि, अहङ्कार ॥ ७२ ॥ व प्रकृति और पचीसवें सदाशिवजी पुरुष इन पचीसों वस्तुवोंसे बनाहुआ यह शरीर गृह कहाजाता है इसको तत्त्वसे जो जानता है वह शिवको प्राप्तहोता है और वेदान्तके वादीजनोंने बुद्धिको बहुरूपी स्त्री कहाहै ॥ ७३ । ७४ ॥ वही अनेक विषयों के सेवन से अनेकप्रकार के रूपको प्राप्तहोती है व एक धर्मके संयोग से बहुत प्रकारकी भी वह एकहीहै ॥ ७५ ॥ जो इस तत्त्वार्थ को जानता है वह नरकको नहीं प्राप्तहोताहै मुनियों से जो नहीं कहागयाहै व जो वचन देवता को नहीं मानैहै ॥७६॥ उस वचनको विद्वानों ने बन्धन कहाहै और अद्भुत कथावाला यह वचन है जो

कि कामनाओं से संयुतहै इसके उपरान्त पांचवें भी प्रश्नको सुनिये ॥ ७७ ॥ एक लोभ बड़ाभारी ग्राहहै लोभसे पाप वर्तमान होताहै व लोभसे मोह, माया, मान व
गर्व, मृत्यु ॥ ७८ ॥ और अविद्या व मूर्खता सब लोभसे वर्त्तमान होताहै पराये धनोंको हरना व पराईस्त्री की धर्षणाकरना ॥ ७९ ॥ व सब अकार्य साहसोंके कर्म
व मोहसमेत उस लोभको जितेन्द्रिय पुरुषको विशेषकर जीतना चाहिये ॥ ८० ॥ ये और वैर व निन्दा, चुगुली और ईर्षा ये सब दुष्टात्मा लोभियों के होतेहैं ॥ ८१ ॥
सन्देहोंके नाशनेवाले बहुत शास्त्रोंको पढ़ेहुये लोग बड़े भी शास्त्रोंको धारतेहैं परन्तु लोभसे गँसकर नरकको जातेहैं ॥ ८२ ॥ लोभ व क्रोधसे संयुक्त व उत्तमआचरण से

न्मोहश्चमायाच मानःस्तम्भःपरासुता ॥ ७८ ॥ अविद्याअज्ञताचैव सर्वंलोभात्प्रवर्त्तते ॥ हरणंपरवित्तानां परदाराभि
मर्शनम् ॥ ७९ ॥ साहसानांचसर्वेषामकार्याणांक्रियास्तथा ॥ सलोभःसहमोहेन विजेतव्योजितात्मना ॥ ८० ॥ द
म्भोद्रोहश्चनिन्दाच पैशुन्यंमत्सरस्तथा ॥ भवन्त्येतानिसर्वाणि लुब्धानामकृतात्मनाम् ॥ ८१ ॥ सुमहान्त्यपिशास्त्रा
णि धारयन्तिबहुश्रुताः ॥ छेत्तारस्संशयानांच लोभग्रस्ताव्रजन्त्यधः ॥ ८२ ॥ लोभक्रोधप्रशक्ताश्च शिष्टाचारबहि
ष्कृताः ॥ अन्तःक्षुरावाग्मधुराः कूपाश्छन्नास्तृणैरिव ॥ ८३ ॥ सर्वमार्गविलुम्पन्ति लोभाज्जातिषुनिष्ठुराः ॥ धर्मवैतं
सिकाःक्षुद्रामुष्णन्तिध्वजिनोजगत् ॥ ८४ ॥ एतेतिपापिनःसन्ति नित्यंलोभसमन्विताः ॥ जनकोयुवनाश्वश्च वृषाद
र्भिःप्रसेनजित् ॥ ८५ ॥ लोभक्षयाद्दिवंप्राप्तास्तथैवान्येजनाधिपाः ॥ तस्मात्त्यजन्तियेलोभं तेतिक्रामन्तिसागरम् ॥ ८६ ॥
८६ ॥ संसाराख्यमतोन्येये ग्राहग्रस्तानसंशयः ॥ अथब्राह्मणवेद्यन्त्वमष्टौविप्रावधारय ॥ ८७ ॥ मात्रश्चब्राह्मणश्चैव

अलग कियेहुये जन भीतर छुरेकी धार ऐसे व वचनमें मीठेहोते हैं जैसे कि तिनुकों से छिपेहुये कूप होते हैं ॥ ८३ ॥ व लोभसे जातियों में निठुर मनुष्य सब मार्गको
नाशकरते हैं व नीच पाखण्डीलोग धर्मवानों में उत्तम ऐसे होकर संसार में उत्तम कर्मको चुराते हैं ॥ ८४ ॥ ये नित्यही लोभसे संयुत बड़ेपापी हैं और जनक, युवना-
श्व, वृषादर्भि, प्रसेनजित ॥ ८५ ॥ व वैसेही और भी राजालोग लोभके नाशहोने से स्वर्गको प्राप्तहुये हैं इस लिये जो लालच को छोड़देते हैं वे संसारनामक समुद्रको

नांधजाते हैं इसके उपरान्त हे विप्रजी ! ब्राह्मण के जाननेयोग्य आठ वस्तुवोंको तुम सुनो ॥ ८६।८७ ॥ कि मात्र, ब्राह्मण उसके उपरान्त श्रोत्रिय व अनूचान, भ्रूण, ऋषिकल्प व ऋषि और मुनि ॥ ८८ ॥ इतने ये आठ ब्राह्मण वेदमें पहले कहेगये हैं व उनके मध्यमे विद्या व आचरणकी विशेषता से पिछला पिछला उत्तमहै ॥ ८९ ॥ जब ब्राह्मणों के कुलमें पैदाहोकर जातिमात्र होवै व संस्कारके कर्मोंसे रहितहो वह मात्र ऐसा कहाजाताहै ॥ ९० ॥ व एकोद्दिश्य को नाघकर जो विनीत व कोमल तथा सत्यवक्ता व दयालु द्विज वेदके आचरणवाला होवै वह ब्राह्मण ऐसा कहागयाहै ॥ ९१ ॥ व जो ब्राह्मण कल्पसमेत छह अङ्गोंकरके एक शाखाको पढ़कर छह कर्मोंमें तत्परहोवै

श्रोत्रियश्चततःपरम् ॥ अनूचानस्तथाभ्रूणो ऋषिकल्पोऋषिर्मुनिः ॥ ८८ ॥ इत्येतेष्टौसमुद्दिष्टा ब्राह्मणाःप्रथमंश्रुतौ ॥ तेषांपरःपरःश्रेष्ठो विद्यावृत्तविशेषतः ॥ ८९ ॥ ब्राह्मणानांकुलेजातो जातिमात्रोयदाभवेत् ॥ अनुपेतक्रियाहीनो मात्रइत्यभिधीयते ॥ ९० ॥ एकोद्दिश्यमतिक्रम्यवेदस्याचारवान्नृजुः ॥ सब्राह्मणइतिप्रोक्तो निभृतस्सत्यवाग्घृणी ॥ ९१ ॥ एकांशाखांसकल्पाञ्च षड्भिरङ्गैरधीत्यच ॥ षट्कर्मनिरतोविप्रः श्रोत्रियोनामधर्मवित् ॥ ९२ ॥ वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञः शुद्धात्मापापवर्जितः ॥ श्रेष्ठःश्रोत्रियवत्प्राज्ञः सोनूचानइतिवैस्मृतः ॥ ९३ ॥ अनूचानगुणोपेतो यज्ञस्वाध्याययन्त्रितः ॥ भ्रूणइत्युच्यतेशिष्टैः शेषभोजीजितेन्द्रियः ॥ ९४ ॥ वैदिकंलौकिकञ्चैव सर्वज्ञानमवाप्ययः ॥ आश्रमस्थोवशीनित्यमृषिकल्पइतिस्मृतः ॥ ९५ ॥ ऊर्ध्वरेताभवत्यग्रेनियताशीनसंशयी ॥ शापानुग्रहयोःशक्तः सत्यसन्धो

वह धर्मज्ञ श्रोत्रियनामकहै ॥ ९२ ॥ व वेद वेदांगों के तत्त्वका जाननेवाला व पापसेरहित शुद्धचित्तवाला व उत्तम और श्रोत्रियकी नाईं बुद्धिमान् जो द्विजहोवै वह अनूचान ऐसा कहागयाहै ॥ ९३ ॥ व अनूचानके गुणोंसे संयुत व यज्ञ तथा वेदपाठके नियममें बँधाहुआ व जितेन्द्रिय और पञ्चयज्ञादिकों से बचेहुये अन्नका भोजन करनेवाला उत्तमजनों से भ्रूण ऐसा कहाजाता है ॥ ९४ ॥ और वेद व लोकके समस्त ज्ञानको पाकर जो आश्रममें प्राप्त होवै व इन्द्रियोंको वशकिये है वह ऋषिकल्प ऐसा कहागया है ॥ ९५ ॥ व पहले ऊर्ध्वरेताहोवै याने वीर्यको नीचे न गिरनेदेवै किन्तु ऊपर चढ़ावै व नियमभोजी और निस्संदेह व शाप और कृपाकरनेमें समर्थ व सत्य

प्रतिज्ञावाला ऋषिहोता है ॥ ९६ ॥ और सब कर्मोंसे अलग व सब यथार्थका जाननेवाला तथा काम, क्रोधसे रहित व ध्यानमें टिका व कर्महीन व इन्द्रियजित और मिट्टी व सुवर्णमें समभाववाला मुनिहै ॥ ९७ ॥ इसीप्रकार वंश व विद्या व उत्तम आचरणसे उन्नत द्विजेन्द्र त्रिशुक्ल कहेजातेहैं वेही यज्ञादिकों में पूजेजाते हैं ॥ ९८ ॥ यह इस प्रकारकी ब्राह्मणता कहीगई व युगादिकोंको सुनिये कि वैशाखकी जो तीज है वह सतयुग की आदितिथि कहीगई है ॥ ९९ ॥ और कातिककी भी शुक्ल पक्षवाली नवमी त्रेतायुग की आदि कहाती है व माघमें कृष्णपक्षकी पन्द्रसि याने अमावस द्वापर की आदितिथि कहलाती है ॥ १०० ॥ व भादोंकी कृष्णपक्षवाली

भवेदृषिः ॥९६॥ निवृत्तःसर्वतत्त्वज्ञः कामक्रोधविवर्जितः ॥ ध्यानस्थोनिष्क्रियोदान्तस्तुल्यमृत्काञ्चनोमुनिः ॥९७॥ एवमन्वयविद्याभ्यां वृत्तेनचसमुच्छ्रिताः ॥ त्रिशुक्लानामविप्रेन्द्राः पूज्यन्तेसवनादिषु ॥ ९८ ॥ इत्येवंविविधंविप्रत्वमुक्तंशृणुयुगादयः ॥ वैशाखस्यतृतीयाया कृतस्यादिःप्रकीर्तिता ॥ ९९ ॥ कार्त्तिकस्यापिनवमी शुक्लात्रेतादिरुच्यते ॥ माघेपञ्चदशीकृष्णा द्वापरादिस्स्मृताबुधैः ॥ १०० ॥ त्रयोदशीनभस्येच कृष्णासादिःकलेस्स्मृता ॥ युगादयःस्मृताह्येता दत्तस्याक्षयकारिकाः ॥ १ ॥ एताश्चतस्रस्तिथयोयुगाद्या दत्तंहुतंचाक्षयमासुविन्द्यात् ॥ युगेयुगेवर्षशतेनदानंयुगादिकालेदिवसेनतत्फलम् ॥२॥ युगाद्याःकथिताह्येता मन्वाद्याःशृणुसाम्प्रतम् ॥ अश्वयुक्शुक्लनवमीद्वादशीकार्त्तिकीतथा ॥ ३ ॥ तृतीयाचैत्रमासस्य तथाभाद्रपदस्यच ॥ श्रावणस्यत्वमावस्या पौषस्यैकादशीतथा ॥ ४ ॥ आषाढस्यापिदशमीमाघमासस्यसप्तमी ॥ श्रावणस्याष्टमीकृष्णातथाषाढीचपूर्णिमा ॥ ५ ॥ कार्त्तिकीफाल्गुनीचैत्रीज्येष्ठप

तेरसि कलियुग की आदितिथि है ये युगादितिथियां कहीगई हैं जोकि दियेहुये दानको नहीं नाश करनेवाली हैं ॥ १ ॥ ये चार युगादितिथियां हैं इनमें दान व हवन कियाहुआ अक्षयको प्राप्तहोवै है युगयुग में जो सैकडों वर्ष करके दानका फल होता है युगादिसमय में वह फल दिनभर से होताहै ॥ २ ॥ ये युगादितिथियां कहीगई इस समय मन्वादितिथियोंको सुनिये कि कुँवारकी उजेरी नवमी, द्वादशी व कार्त्तिकी ॥ ३ ॥ और चैत महीने की तीज व भादोंकी तृतीया व सावनकी अमावस वैसेही पूसकी एकादशी॥४॥व आषाढकी भी दशमी और माघकी सप्तमी व सावनकी कृष्णपक्षवाली अष्टमी और आषाढी पौर्णमासी॥५॥व कातिकी, फागुनी,

चैती और जेठकी उजेरी पन्द्रसि याने पूर्णमासी ये मन्वन्तरकी आदितिथियां दानके अक्षय करनेवाली हैं ॥ ६ ॥ व जिस तिथिमें सूर्यदेवजी पहले रथपर प्राप्तहुये हैं वह तिथि ब्राह्मणों से वही कहीगई है जो माघमे रथसप्तमी होती है ॥ ७ ॥ उसमे दिया व यज्ञ कियाहुआ सबही अविनाशी मानागया है व सब दरिद्रों का नाशक और सूर्यकी प्रसन्नता के लिये मानागया है ॥ ८ ॥ विद्वानो ने जिसको नित्यही उद्वेगकारक कहाहै उसको यथार्थता से सुनिये कि जो नित्यही मांगनेवाला है वह स्वर्गका पात्र नहीं होताहै ॥ ९ ॥ जैसे चोर प्राणियो को भय देताहै वैसेही वह है यह नित्यही उद्वेगकारक पापात्मा नरकको जाताहै ॥ १० ॥ मेरी उत्पत्ति यहां

ञ्चदशीसिता ॥ मन्वन्तरादयश्चैता दत्तस्याक्षयकारिकाः ॥ ६ ॥ यस्यान्तिथौरथंपूर्वं प्रापदेवोदिवाकरः ॥ सातिथिःक थिताविप्रैः माघेयारथसप्तमी ॥ ७ ॥ तस्यांदत्तंतुचेष्टंयत्सर्वमेवाक्षयंमतम् ॥ सर्वदारिद्र्यशमनं भास्करप्रीतयेमतम् ॥ ८ ॥ नित्योद्वेजकमाहुर्यं बुधास्तंशृणुतत्त्वतः ॥ यश्चयाचनको नित्यन्नसस्वर्गस्यभाजनम् ॥ ९ ॥ उद्वेजयतिभूतानिय थाचौरस्तथैवसः ॥ नरकंयातिपापात्मा नित्योद्वेगकरस्त्वसौ ॥ १० ॥ इहोपपत्तिर्ममकेनकर्मणा क्वचप्रयातव्यमितो भवेन्मया ॥ विचार्य्यचैवंप्रतिकारकारी बुधैस्सचोक्तोद्विजदक्षदक्षः ॥ ११ ॥ मासैरष्टभिरह्नाच पूर्वेणवयसायुषा ॥ तत्क रोतिभवेदन्ते सुखीयेनसबुद्धिमान् ॥ १२ ॥ अर्चिर्धूमश्चद्वौमार्गावाहुर्वेदान्तवादिनः ॥ अर्चिषायातिमोक्षंच धूमेना वर्त्ततेपुनः ॥ १३ ॥ यज्ञैरासाद्यतेधूमो नैष्कर्म्येणार्चिराप्यते ॥ एतयोरपरोमार्गः पाखण्डइतिकीर्त्यते ॥ १४ ॥ योदेवा न्मन्यतेनैव धर्मांश्चमनुसूचितान् ॥ नतौसयातिपन्थानौतत्त्वार्थोयंनिरूपितः ॥ १५ ॥ इतितेकीर्तिताःप्रश्नाः शक्त्या

किसकर्म से है और यहां से मुझको कहा जाना चाहिये ऐसा विचारकर जो उपाय करनेवाला है वह विद्वानों से ब्राह्मणों में दक्षदक्ष कहागया है ॥ ११ ॥ आठ महीने व दिन और पहली अवस्था के आयुर्बल से जो उस कर्मको करता है कि जिससे अन्तमें सुखी होवै वह बुद्धिमान्है ॥ १२ ॥ वेदान्तवादी जनोंने अर्चि व धूम दो मार्गोंको कहाहै अर्चिमार्गसेमोक्षको प्राप्तहोताहै और धूममार्गसे फिर लौटआताहै ॥ १३ ॥ यज्ञोसे धूममार्ग प्राप्त होताहै और निष्कर्मतासे अर्चिमार्ग मिलता है व इन दोनोंसे अन्य मार्ग पाखण्ड ऐसा कहाजाताहै ॥ १४ ॥ जो मनुसे बतलायेहुये धर्मों व देवताओंको नही मानताहै वह उनदोनों मार्गोंको नही जाताहै यह तत्त्वार्थनिरूपण कियागया

है ॥ १५ ॥ हे द्विजोत्तम ! शक्तिके अनुसार ये प्रश्न तुमसे कहेगये अच्छा या अनुत्तम कहिये व अपनाको भी कहिये ॥ ३१६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डे
देवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांतृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥
दो० । नारद अर्जुन सों कह्यो ग्राम कलापहवाल । सो चौथे अध्यायमें वर्णत चरित रसाल ॥ नारदजी बोले कि हे अर्जुन ! ऐसा सुनकर रोमांच से पुलकित
कियाहुआ मैं स्वरूप को प्रकट करके ब्राह्मणों से यह बोला ॥ १ ॥ कि बड़ी प्रसन्नताकी बातहै कि मेरा पिता धन्य है जिसकी सृष्टिसे तुमलोगोंके सम्मान बालक

ब्राह्मणसत्तम ॥ साधुर्वासाधुर्वाब्रूहिख्यापयात्मानमेवच ॥ ३१६ ॥ इतिश्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेतृतीयोऽध्यायः ३ ॥
नारदउवाच ॥ इतिश्रुत्वाफाल्गुनाहंरोमाञ्चपुलकीकृतः ॥ स्वरूपंप्रकटीकृत्यब्राह्मणानिदमब्रवम् ॥ १ ॥ अहोधन्यः
पितास्माकं यस्यसृष्टेस्सुबालकाः ॥ युष्मद्विधाब्राह्मणेन्द्राःसत्यमाहपुराहरिः ॥ २ ॥ मत्तोप्यनन्तात्परतः परस्मात्स
मस्तभूताधिपतेर्नकश्चित् ॥ तेषांकिमुस्यादितरोहिपुंसां द्विजेश्वराणांममामार्गवादिनाम् ॥ ३ ॥ ततसर्वथाचधन्योस्मि
सम्प्राप्तंजन्मनःफलम् ॥ यद्भवन्तोमयादृष्टाः पापोपद्रववर्जिताः ॥ ४ ॥ ततस्तेसहसोत्थाय शातातपपुरोगमाः ॥ अ
र्घपाद्यादिसत्कारैःपूजयन्तिस्ममान्द्विजाः ॥ ५ ॥ प्रोक्तवन्तश्चमांपार्थ वचस्साधुजनोचितम् ॥ धन्यावयंहिदेवर्षिस्त्वम
स्मान्यदिहागतः ॥ ६ ॥ कुतोवागमनन्तेत्र गन्तव्यंकुत्रसाम्प्रतम् ॥ अत्राथागमनेकार्यमुच्यतांमुनिसत्तम ॥ ७ ॥ नार

द्विजेन्द्रहैं पुरातन समय विष्णुने सचकहाहै ॥ २ ॥ कि समस्त प्राणियोंके स्वामी मुझ श्रेष्ठ अनन्त से कोई परे नहींहै फिर मेरे मार्गको कहनेवाले उन द्विजेन्द्र पुरुषों
के मध्यमें से अन्य मनुष्य को क्या कहना है ॥ ३ ॥ इस लिये मैं सर्वथा धन्यहूं व जन्मका फल भलीभांति मिलगया जोकि पाप व उपद्रव से रहित आपलोगोंको
मैंने देखा ॥ ४ ॥ तदनन्तर अचानक उठकर शातातप अग्रगामी द्विजों ने अर्घपाद्यादिक सत्कारों से मुझको पूजन किया ॥ ५ ॥ व हे अर्जुनजी ! उत्तमजनोंके
योग्य वचनको उन्होंने मुझसे कहा कि हमलोग धन्यहैं जोकि देवर्षि तुम हमलोगोंके समीपआयेहो ॥ ६ ॥ और तुम्हारा आगमन यहां कहांसे होताहै व इससमय

कहां जानाहोगा व हे मुनिश्रेष्ठ ! यहां आनेमें कार्य कहिये ॥ ७ ॥ नारदजी बोले कि ब्रह्माजी के वचनसे मैं ब्राह्मणोंको उत्तम स्थान देनेकी इच्छासे महीसागर के
सङ्गम महातीर्थमें गयाथा ॥ ८ ॥ और ब्राह्मणोंकी परीक्षा लेनेके लिये यहा आया व तुमलोगोंकी परीक्षा लीगई हे ब्राह्मणो ! मै तुमलोगों को स्थापन करूंगा इस
से आज्ञादीजिये ॥ ९ ॥ ऐसा कहेहुये शातातप ब्राह्मणों को देखकरके बोले कि हे नारद ! यह सत्यहै कि देवताओं को भी भरतखण्ड दुर्लभ है ॥ १० ॥ उसमेंभी
फिर महीसागर संगम को क्या कहना है कि जिसमें नहायाहुआ पुरुष समस्त महातीर्थ के फलको भोग करता है ॥ ११ ॥ फिर एक बड़ादोष है जिससे हमलोग

द उवाच ॥ अहंहिब्रह्मणोवाक्याद्विप्राणांस्थानकंशुभम् ॥ दातुकामोमहातीर्थे महीसागरसङ्गमे ॥ ८ ॥ परीक्षितुंद्विजान
त्र प्राप्तोयूयंपरीक्षिताः ॥ अहंवःस्थापयिष्यामि नोनुजानीतताद्विजाः ॥ ९ ॥ एवमुक्तोविलोक्यैव द्विजाञ्छातातपोब्रवी
त् ॥ देवानामपिदुष्प्राप्यंसत्यन्नारदभारतम् ॥ १० ॥ किंपुनश्चैवतत्रापि महीसागरसङ्गमः ॥ यत्रस्नातोमहातीर्थफलंस
र्वमुपश्नुते ॥ ११ ॥ पुनरेकोमहान्दोषो बिभीमोतितरांयतः ॥ तत्रचौरास्सुबहवो निर्घृणाःप्रियसाहसाः ॥ १२ ॥ स्पर्शेषु
षोडशंचैकविंशंगृह्णन्तिनोधनम् ॥ धनेनतेनहीनानां कीदृशंजन्मनोभवेत् ॥ १३ ॥ वरंबुभुक्षापापासा माचौरकरगा
वयम् ॥ १४ ॥ अर्जुनउवाच ॥ अद्भुतंवर्ण्यतेविप्र केनुचौराःप्रकीर्तिताः ॥ किन्धनञ्चहरन्त्येते येभ्योबिभ्यतिब्राह्म
णाः ॥ १५ ॥ नारदउवाच ॥ कामक्रोधादयश्चौरास्तपएवधनन्तथा ॥ तस्यापहारभीतास्ते मामूचुरितियद्विजाः ॥ १६ ॥

बहुत डरतेहैं क्योंकि सहसाकर्म प्रियवाले व निर्दयी बहुतसे चोर वहांहैं ॥ १२ ॥ स्पर्शोंमें सोलहवां वर्ण याने त और इक्कीसवां याने प अर्थात् तपरूपी धन हमलोगों
का व लेलेतेहैं व उस धनसे रहित हमलोगों का जन्म कैसाहोगा ॥ १३ ॥ वह पापिनी क्षुधा अच्छी है परन्तु हमलोग चोरोंके हाथमें न जावैं ॥ १४ ॥ अ-
र्जुनजी बोले कि हे विप्रजी ! यह आश्चर्य कहाजाता है और वे चोर कौन कहेगये हैं व ये चोर किस धनको लेतेहैं कि जिनसे ब्राह्मणलोग डरतेहैं ॥ १५ ॥ नारदजी बोले।

१ कादयो मावसानाः स्पर्शाः ॥ क से म तक स्पर्श कहेजाते हैं ॥

किकाम, क्रोधादिक चोरहैं वैसेही तपही धनहै उसीके चुराजाने से डरेहुये वे ब्राह्मणलोग जोकि मुझसे कहतेभयेहैं ॥ १६ ॥ शातातप बोले कि चोरोंके डरसे डरेहुये
हमलोग वहां सदैव भलीभांति साधना करैंगे इसलिये जागरण कैसे स्वीकार करने के लिये होसक्ता है ॥ १७ ॥ जिसलिये वह भूमि चोरोंसे व्याप्तहै इससे हमलोग
नहीं जावैंगे हे मुने ! उसीसे भयभीत हमलोग सबको त्यागेदेते हैं ॥ १८ ॥ और विकराल प्रतिग्रह तुमको छठे भागका फलदायक होगा उन शातातपके ऐसा कहते
हुये हारीतनामक मुनि बोले ॥ १९ ॥ कि प्रसिद्धिमें मूर्खबुद्धि से कौन महीसागर के संगम को छोड़ैगा जहा कि स्वर्ग व मोक्ष करतलमें प्राप्तहोताहै ॥ २० ॥ यदि

**शातातपउवाच ॥ वयञ्चौरभयाद्भीतास्तत्रसंसाधनंसदा ॥ ततःकथंशक्यमङ्गीकर्तुंजागरणंतथा ॥ १७ ॥ चौरै
र्व्याप्तासियद्भूमिस्तेनगच्छेमनोवयम् ॥ तस्मात्सर्वंसंत्यजामोभयभीतावयम्मुने ॥ १८ ॥ प्रतिग्रहश्चवैघोरःषष्ठांशःफल
दस्तव ॥ एवंब्रुवतितस्मिंश्च हारीतोनामचाब्रवीत् ॥ १९ ॥ मूढबुद्ध्याकोहिनाम महीसागरसङ्गमम् ॥ त्यजेतयत्रमोक्ष
श्च स्वर्गश्चकरगस्तथा ॥ २० ॥ कलापादिपुग्रामेषु कोत्रसेतविचक्षणः ॥ यदिवासस्स्तम्भतीर्थे क्षणार्द्धमपिलभ्यते ॥
२१ ॥ भयञ्चचौरजंसर्वं किङ्करिष्यतितत्रनः ॥ उमानाथञ्चमनसि पालकंकुर्वतान्दृढम् ॥ २२ ॥ साहसञ्चविनाभूतिर्न
कथञ्चनप्राप्यते ॥ तस्मान्नारदतत्राहमायास्येतववाक्यतः ॥ २३ ॥ षाड्विंशतिसहस्राणि ब्राह्मणामेपरिग्रहे ॥ षट्कर्म
निरताश्शुद्धा लोभदम्भविवर्जिताः ॥ २४ ॥ तैस्सार्द्धमागमिष्यामि ममेदंमतमुत्तमम् ॥ इत्युक्तेवचनेतांश्च कृत्वाहृद
ण्डमूर्द्धनि ॥ २५ ॥ निवृत्तस्सहसापार्थ खेचरोतिमुदान्वितः ॥ शतयोजनमात्रन्तु हिममार्गमतीत्यच ॥ २६ ॥ के**

आघात्तण भी स्तम्भतीर्थ में निवास मिलै तौ कौन विद्वान् कलापादिक ग्रामोंमें बसैहै ॥ २१ ॥ और दुष्टता से पार्वतीपति को मनमें पालक करतेहुये हमलोगोंका
वहां चोरोंसे उपजाहुआ डर क्या करैगा ॥ २२ ॥ और साहसके विना ऐश्वर्य किसी प्रकार से नही मिलता है इस लिये हे नारदजी ! तुम्हारे वचन से वहां मैं आऊंगा
२३ ॥ व मेरे कुटुम्ब में छब्बिसहज़ार ब्राह्मण छहोंकर्मों में तत्पर और शुद्ध व लोभ तथा पाखण्ड से रहित हैं ॥ २४ ॥ उन समेत मैं आऊंगा यह मेरा उत्तममत
है ऐसा वचन कहनेपर दण्डके शिरपै उनको करके ॥ २५ ॥ हे अर्जुनजी ! बड़े आनन्द से युक्त मैं आकाशगामी होकर सौयोजनकी प्रमाणभर पालाके मार्गको

नांघकर ॥२६॥ उन द्विजोत्तमोंसे संयुक्त मैं केदारक्षेत्रको भलीभांति आया वह देश आकाश या गढा व स्वामिकार्त्तिकेयजीकी प्रसन्नतासे नांघा जासक्ताहै और प्रकारसे
नहीं ॥२७।२८॥ अर्जुनजी वोले कि हे नारदजी ! वह कलापग्राम कहा है व विलकेद्वारा कैसे वहा मनुष्य जासक्ताहै व स्वामिकार्त्तिकेयजीकी प्रसन्नता कैसे होतीहै यह
मुझसे कहिये॥२६॥नारदजी वोले कि पालासे संयुत केदारक्षेत्र सौयोजनका कहागयाहै उसके अन्तमें चारसौ कोस चौडा वह कलापग्रामहै॥३०॥उसके अन्तमें चारसौ
कोस वालुकार्णव कहाजाताहै उसके उपरान्त चारसौ कोसतक वह स्वर्गीभूमि कहीगईहै ॥३१॥ वहा विल याने गढ़ेकेद्वारा जिसतरह जाना होसक्ताहै उसको सुनिये

दारंसमुपायातो युक्तस्तैर्द्विजसत्तमैः ॥ आकाशेनतुशक्यश्चविलेनाथसदेशकः ॥ २७ ॥ अतिक्रान्तुंनान्यथाचतथास्क
न्दप्रसादतः ॥ २८ ॥ अर्जुनउवाच ॥ कक्लापञ्चतद्ग्रामं कथंशक्यंविलेनच ॥ कथंस्कन्दप्रसादःस्यादेतन्मेब्रूहि
नारद ॥ २९ ॥ नारदउवाच ॥ केदारंहिमसंयुक्तं योजनानांशतंस्मृतम् ॥ तदन्तेयोजनशतं विस्तृतंतत्कलापकम् ॥
३० ॥ तदन्तेयोजनशतं वालुकार्णवउच्यते ॥ शतयोजनमात्रंसा भूमिःस्वर्गात्ततःस्मृता ॥ ३१ ॥ विलेनचयथाशक्यं
गन्तुंतत्रशृणुष्वतत् ॥ निरन्नोवैनिरुदको देवमाराधयेद्गुहम् ॥ ३२ ॥ दक्षिणायान्दिशिततो निष्पापंमन्यतेयदा ॥
तदागुहोस्यादिशति स्वप्नेगच्छतिभारत ॥ ३३ ॥ ततोगुहात्पश्चिमतो विलमस्तिमहत्तरम् ॥ तत्रप्रविश्यगन्तव्यं यो
जनंशतसप्तकम् ॥ ३४ ॥ तत्रमारकतंलिङ्गमस्तिसूर्यसमप्रभम् ॥ तदग्रेमृत्तिकाचास्ति स्वर्णवर्णासुनिर्मला ॥ ३५ ॥
नमस्कृत्यचतंलिङ्गं गृहीत्वामृत्तिकाञ्चताम् ॥ आगन्तव्यंस्तम्भतीर्थे समाराध्यकुमारिकम् ॥ ३६ ॥ जलंवाकूपतो

कि विनअन्न व निर्जल रहकर स्वामिकार्त्तिकेय देवका आराधन करै ॥ ३२ ॥ तदनन्तर दक्षिण दिशामें जब अपनाको पापरहित मानताहै तब हे भारत ! स्वप्नमें
इसको स्वामिकार्त्तिकेयजी यह आज्ञा देतेहैं कि चलो ॥ ३३ ॥ उसके उपरान्त स्वामिकार्त्तिकेयजीके पश्चिम ओर वडाभारी गढा सातसौ योजन का है उसमें पैठकर
जाना चाहिये ॥ ३४ ॥ वहां सूर्यके समान प्रकाशमान मरकतमणि का लिंगहै उसके आगे सोनेके रंगकी वडी निर्मल मिट्टी है ॥ ३५ ॥ उस लिंगको प्रणाम करके व

उस मिट्टीको लेकर कुमारिकेश्वरको भलीभांति आराधन कर स्तंभतीर्थ में आना चाहिये ॥ ३६ ॥ अथवा कुवांसे जलको ग्रहणकरै व रात होनेपर उस जल व मिट्टी
से कज्जल बनाके व दोनों आंखें आंजकर ॥ ३७ ॥ व शरीरका उबटन करके केदारसे छठें स्थानमें नेत्रके अंजनके प्रभावसे उत्तम बिलको देखताहै ॥ ३८ ॥ तदन-
न्तर उसके बीचसे जाताहै व शरीरमें उबटनके प्रभावसे कारीषनामक बड़े विकराल कीड़े उसको नहीं खाते हैं॥ ३९ ॥ बिलके बीचमें सूर्योंके समान प्रकाशित
सिद्धोंको देखता हुआ वह जाताहै हे अर्जुनजी ! इसप्रकार वह उत्तम कलापग्रामको जाताहै ॥ ४० ॥ और उसमें चारहज़ार वर्ष आयुर्बल कहीगई हैं व फलोंका

**ग्राह्यंभूतायांनिशिकज्जलम् ॥ तेनोदकेनमृत्तिकया कृत्वानेत्रद्वयाञ्जनम् ॥ ३७॥ उद्वर्त्तनञ्चदेहस्यकेदारात्षष्टिकेप
दे ॥ नेत्राञ्जनप्रभावाच्च बिलंपश्यतिशोभनम् ॥ ३८ ॥ तन्मध्येनततोयाति गात्रोद्वर्तनभावतः ॥ कारीषैर्नामकैरुग्रै
र्भक्ष्यतेनैवकीटकैः ॥ ३९ ॥ बिलमध्येचसम्पश्यन् ससिद्धान्भास्करप्रभान् ॥ यात्येवंयात्यसौपार्थ कलापग्राममु
त्तमम् ॥ ४० ॥ तत्रवर्षसहस्राणिचत्वार्यायुःप्रकीर्त्तितम् ॥ फलानांभोजनंचस्यात्पुनःपुण्यंचनार्जयेत् ॥ ४१ ॥ इत्येवं
तत्रकथितमतश्चापूच्छृणुष्वतत् ॥ तपस्सामर्थ्यतस्सूक्ष्मान् दण्डस्याग्रेनिधायतान् ॥ ४२ ॥ द्विजानहंसमाया
तो महीसागरसङ्गमम् ॥ तत्रोत्तार्यमयायुक्तास्तीरेपुण्यजलाश्रये ॥ ४३ ॥ ततोमयाकृतंस्नानं सहतैर्द्विजसत्तमैः ॥
निश्शेषदोषदावाग्नौ महीसागरसङ्गमे ॥ ४४ ॥ पितृणान्देवतानाञ्च कृत्वातर्पणसत्क्रियाः ॥ जपमानाःपरंजप्यं
निविष्टास्सङ्गमेवयम् ॥ ४५ ॥ भास्करंसमवेक्षन्तश्चिन्तयन्तोहरिंहृदि ॥ तस्मिंश्चैवान्तरेपार्थ देवाःशक्रपुरोगमाः ॥ ४६ ॥**

भोजन होताहै व फिर पुण्यको नहीं इकट्ठा करताहै ॥ ४१ ॥ यही वृत्तान्त कहा गयाहै इसके उपरान्त वहां जो हुआहै उसको सुनिये कि तपस्याकी शक्तिसे सूक्ष्म
उन द्विजोंको दण्डके आगे धरकर ॥ ४२ ॥ मैं महीसागरके संगमको भलीभांति आया व वहां पुण्यदायक जलाश्रयवाले किनारे पै उतारकर मुझसमेत वे बैठे ॥
४३ ॥ तदनन्तर उन द्विजोत्तमों समेत मैंने समस्त दोषोंके जलानेके लिये वनकी अग्निकी नाईं महीसागरके संगममें स्नान किया ॥ ४४ ॥ व पितरों और देवों
का तर्पण व उत्तम कर्मोंको करके उत्तम जपनेकेयोग्य मंत्रको जपतेहुये हमलोग उस संगममें बैठगये ॥ ४५ ॥ व सूर्यको देखतेहुये हम लोग हृदयमें विष्णुका ध्यान

करतेरहे हे अर्जुनजी ! उसी अवसर में इन्द्रआदिक देवता ॥ ४६ ॥ व सूर्य्यादिक ग्रह और लोकपाल व आठ देवताओं की जातियां और गन्धर्व व अप्सराओं के समूह भलीभाति प्राप्तहुये ॥ ४७ ॥ तदनन्तर गाने व बजानेसे अतिउत्तम उस बड़े उछाहमें ब्राह्मणोंके चरण धोनेके लिये मैं आपही उद्यतहुआ ॥ ४८ ॥ उसीसमय में तृतीयस्वर याने गान्धर्वस्वर से शब्दायमान व सामवेद की ध्वनिसे संयुत मैंने अतिथि के वचनको सुना ॥ ४९ ॥ जो वचन कि शिवभक्ति की नाईं उत्तम व मन को अत्यन्तही प्रियथा ब्राह्मणोंने उठकर पूंछा कि हे विप्रजी ! तुम कौनहो व कहांसे आयेहो ॥५०॥ व क्या मागतेहो तुम्हारे मनमें जो वर्तमानहो उसको कहो ॥५१॥

आदित्याद्याग्रहास्सर्वे लोकपालाश्चसङ्गताः ॥ देवयोनयइत्यष्टौ गन्धर्वाप्सरसाङ्गणाः ॥ ४७ ॥ महोत्सवेततस्त स्मिन् गीतवादित्रकोत्तमे ॥ पादप्रक्षालनंकर्तुं विप्राणामुद्यतःस्वयम् ॥ ४८ ॥ तस्मिन्कालेचाश्रृणवमहमातिथ्यवा क्यताम् ॥ सामध्वनिसमायुक्तां तृतीयस्वरनादिताम्॥४९॥अतीवमनसोरम्यां शिवभक्तिमिवोत्तमाम् ॥ विप्रैरुत्थायसं पृष्टः कस्त्वंविप्रकुत्रागतः ॥ ५० ॥ किंवाप्रार्थयसेब्रूहि यत्तेमनसिवर्त्तते ॥ ५१ ॥ विप्रउवाच ॥ मुनिःकपिलनामाहं नारदायनिवेद्यताम् ॥ आगतःप्रार्थनायैव तच्छ्रुत्वाहमथाब्रवम् ॥ ५२ ॥ धन्योहंयदिहायातः कपिलस्त्वंमहामुने ॥ नास्त्यदेयंतवास्माभिः पात्रंनास्तितवाधिकम् ॥ ५३ ॥ कपिलउवाच ॥ ब्रह्मपुत्रत्वयादेयं यदिमेत्वंश्रृणुष्वतत् ॥ अ ष्टौविप्रसहस्राणि समदेहीतिनारद ॥ ५४ ॥ भूमिदानंकरिष्यामि कलापग्रामवासिनाम् ॥ ब्राह्मणानामहंचैषां तदिदं क्रियतांविभो ॥ ५५ ॥ ततोमयाप्रतिज्ञातमेवमस्तुमहामुने ॥ त्वयापिक्रियतांस्थानं कापिलंकपिलोत्तमम् ॥ ५६ ॥

ब्राह्मण बोला कि मैं कपिलनामक मुनि मांगनेही के लिये आयाहूं नारदसे आपलोग यह कहदीजिये उस वचनको सुनकर इसके उपरान्त मैंने कहा ॥ ५२ ॥ कि हे महामुने ! मैं धन्यहूं जोकि आप कपिलदेवजी यहा आयेहो हमलोगों से तुमको न देनेयोग्य नहीं है क्योंकि तुम से अधिक पात्र नहींहै ॥ ५३ ॥ कपिलजी बोले कि हे ब्रह्मपुत्र ! यदि तुमको मुझे देनेयोग्य है तो तुम सुनो कि हे नारद ! आठहजार ब्राह्मण मुझको दीजिये ॥ ५४ ॥ हे विभो ! कलापग्राम के वासी इन ब्रा- ह्मणोंको मैं भूमिदान करूंगा इस लिये यह कीजिये ॥ ५५ ॥ तदनन्तर मैंने प्रतिज्ञा किया कि हे महामुने ! ऐसाही होगा हे कपिलजी ! तुमभी उत्तम कापिलस्थान

को करो ॥ ५६ ॥ श्राद्धमें या समय प्राप्तहोनेपर जिसके आश्रम में आयाहुआ अतिथि (पाहुन) विमुख होजावै उसका सब कर्म विफल होजाता है ॥ ५७ ॥ जो अतिथि को नहीं पूजता है वह रौरवनरकवाले लोकोंको जाताहै व जिससे अतिथि पूजागया है वह देवोंसे भी पूजाजाता है ॥ ५८ ॥ उसके उपरान्त उस दानपक्ष में कपिलमुनि नहीं जीतेगये तदनन्तर उस समय मैंने श्रीमान् हारीतमुनि को सिद्ध व देवोंके संयोगमें चरणधोनेके लिये बुलाया व उस समय हारीत बाया चरण आगे करके बैठगये ॥५९।६०॥ तदनन्तर अप्सराओं व सिद्धोंकी उत्तम सभामें बड़ा हास्यहुआ व बहुत प्रकारसे विचार करके भूमिमें ब्राह्मण साधु साधु याने बहुत अच्छे२

श्राद्धेवाप्राप्तकालेवा ह्यतिथिर्विमुखोभवेत् ॥ यस्याश्रममुपायातस्तस्यसर्वंहिनिष्फलम् ॥ ५७ ॥ सगच्छेद्रौरवाँल्लोकान् योतिथिन्नाभिपूजयेत् ॥ अतिथिःपूजितोयेन सदेवैरपिपूज्यते ॥ ५८ ॥ दानपक्षेततस्तस्मिन्नोजितःकपिलोमुनिः॥ ततोमयामुनिःश्रीमान् हारितोह्वयितस्तदा ॥ ५९ ॥ पादप्रक्षालनार्थाय सिद्धदेवसमागमे ॥ हारीतश्चपुरस्कृत्य वामं पादंतदास्थितः ॥ ६० ॥ ततोहासोमहाञ्जज्ञे ह्यप्सरःसिद्धसंसदि ॥ विचिन्त्यबहुधापृथ्वीं साधुसाधुकृताद्विजाः ॥ ६१ ॥ ततोममापिमनसि शोकवेगोमहानभूत् ॥ सत्यंचैवतथामेने गाथांपूर्वंबुधेरिताम् ॥ ६२ ॥ सर्वेष्वपिचकार्येषु हासशब्दोविगर्हितः ॥ मयिकुर्वतिकार्याणि शिलापातोध्रुवम्भवेत् ॥ ६३ ॥ ततोहमब्रवंविप्रान् यूयंमूर्खाभविष्यथ ॥ धनधान्याल्पसंयुक्ता दरिद्राःकलिनावृताः ॥ ६४ ॥ एवमुक्तेप्रहस्यैव हारीतःप्राब्रवीदिदम् ॥ तवैवेयंमुनेहानिर्यदस्माञ्छपतेभवान् ॥ ६५ ॥ करुशापोदीयतेतुभ्यं शापोयदयमेवते ॥ ततोविमृश्यभूयोहमब्रवंकिमिदंद्विज ॥ ६६ ॥ तथाविधस्य

कियेगये ॥ ६१ ॥ इसके उपरान्त मेरे भी मनमें बड़ाशोक का वेग हुआ व पहले विद्वानों से गाईहुई गाथाको मैंने सत्यमाना ॥ ६२ ॥ कि सबही कार्योंमें हांसे शब्द निन्दित है इसलिये कार्योंको करतेहुये भी मेरे ऊपर निश्चयकर शिलापात होगा ॥ ६३ ॥ तदनन्तर मैंने ब्राह्मणोंसे कहा कि तुमलोग थोड़े धनधान्य से संयुत व निर्धन व कलह से घिरेहुते तथा मूर्खहोगे ॥ ६४ ॥ ऐसा कहनेपर हारीत हँसकर यह बोले कि हे मुने ! आप जो हमलोगोंको शापदेते हो तो यह तुम्हारीही हानिहै ॥ ६५ ॥ व जिसलिये यही तुमको शापहै इससे तुम्हारे लिये क्या शाप दियाजाय उसके उपरान्त फिर विचारकर मैंने कहा कि हे द्विज ! वैसे आपको

बायें चरणका देना यह क्या है ॥ ६६ । ६७ ॥ हारीत बोले कि हे बुद्धिमन् ! जिससे मेरे शून्यता हुई है इस कारणको सुनिये कि हा यह दान लेना दुःखरूप है ऐसा चिन्तन करतेहुये मेरे चित्तमें शून्यताहै ॥ ६८ ॥ दान लेनेसे जो द्विजोंका ब्राह्मणवाला तेज शान्त होजाताहै व महादान को लेताहुआ ब्राह्मण जो अपना उत्तमकर्म होताहै ॥ ६९ ॥ उसे दाताको देताहै और दाता अपने पापको उसे देदेताहै इसलिये दाता व दान लेनेवाला दोनों आपस में छलीहैं ॥ ७० ॥ इन दोनोंके मध्यमें जिस को जो हीन मानताहै वह थोड़ी बुद्धिवाला कहाजाताहै हे नारद ! ऐसा चिन्तन करतेहुये मेरे शून्यताहुई है ॥ ७१ ॥ निद्रासे दुःखी व डरसे क्लेशित और कामदेव

भवतो वामपादप्रदानता ॥ ६७ ॥ हारीतउवाच ॥ शृणवैतत्कारणंधीमाञ्छून्यतामेयतोभवत ॥ इतिचिन्तयतश्चित्ते हाद्दुःखोयंप्रतिग्रहः ॥ ६८ ॥ प्रतिग्रहेणविप्राणां ब्राह्मयंतेजोहिशाम्यति ॥ महादानंहिगृह्णानो ब्राह्मणःस्वंशुभंहियत् ॥ ६९ ॥ ददातिदातुर्दाताच अशुभंयच्छतिस्वकम् ॥ दाताप्रतिग्रहीताच वञ्चकौहिपरस्परम् ॥ ७० ॥ मन्यतेधोनयोर्यस्य सोल्पबुद्धिःप्रणीयते ॥ इतिचिन्तयतोमह्यं शून्यताभूद्धिनारद ॥ ७१ ॥ निद्रार्तश्चभयार्तश्च कामार्तश्शोकपीडितः॥ हृतसर्वस्ववित्तश्च शून्याह्येतेभवन्तिच ॥ ७२ ॥ तदेषुमतिमान्कोपं नकुर्वीतयतस्त्वया ॥ कृतःकोपस्ततस्तुभ्यमेव हानिरियम्मुने ॥ ७३ ॥ ततस्तापान्वितश्चाहं तान्विप्रानब्रवम्पुनः ॥ धिग्मामस्तुसुदुर्बुद्धिमविमृश्यार्थकारिणम् ॥ ७४ ॥ कुर्वतामविमृश्येव तत्किमस्तिनयद्भवेत् ॥ सहसानक्रियांकुर्याद्यातिकुर्वन्महापदम् ॥ ७५ ॥ विमृश्यकारिणन्धीरं वृणवतेसर्वसम्पदः ॥ सत्यमाहमहाबुद्धिश्चिरकारःपरेहितम् ॥ ७६ ॥ पुराहब्राह्मणःकश्चित्प्रख्यातोङ्गिरसाङ्कु

से पीड़ित व शोकसे विकल और जिसकी सब द्रव्य लेलीगई है ये शून्य होते हैं ॥ ७२ ॥ इस लिये बुद्धिमान् इन मनुष्यों पर क्रोध न करै जिसलिये तुमने क्रोधकिया उसीसे हे मुने ! तुम्हारेही लिये हानि है ॥ ७३ ॥ तदनन्तर सन्तापसे संयुत मैंने उन ब्राह्मणों से फिर कहा कि बिन विचारे कार्य करनेवाले मुझ दुष्टबुद्धि को धिक्कार है ॥ ७४ ॥ बिन विचारकर करनेवालोंको वह क्याहै जो नहीं होता याने सब कुछ होताहै सहसाकर्म न करै क्योंकि सहसा करताहुआ पुरुष बड़ी विपत्तिको प्राप्तहोताहै ॥ ७५ ॥ व विचारकर करनेवाले बुद्धिमान्को समस्त सम्पदायें स्वीकार करती हैं बड़े बुद्धिमान् चिरकारकने पराये प्रियको सत्य कहाहै ॥७६॥

पुरातन समय अङ्गिरा के वंशमें प्रसिद्ध कोई बडा बुद्धिमान् चिरकारी गौतमका पुत्र हुआ है ॥ ७७ ॥ जोकि विचारकर सबकर्मों को करता था और बहुत कार्यकी सिद्धिसे चिरकारी कहाजाता था ॥ ७८ ॥ दीर्घदर्शना याने बहुत देरतक देखतीहुई किसी व्यभिचार में उसकी माताके ऊपर क्रोधित व बुद्धिकी उत्तमतासे युक्त पिताने अन्य पुत्रोंको छोडकर चिरकारी से यह कहा कि इस माताको मारडालो तथा याने वैसाही होगा यह देरमें कहकर स्वभावही से उस चिरकारी ने ॥ ७९ । ८० ॥ बहुत देरमें करने के प्रयोजन को विचारकर बडेसमय तक चिन्तन किया कि कैसे पिताकी आज्ञाकरूं व किसप्रकार माताको न मारूं ॥ ८१ ॥ व

ले ॥ चिरकारीमहाप्राज्ञो गौतमस्याभवत्सुतः ॥ ७७ ॥ चिरेणसर्वकार्याणि योविमृश्यप्रकुर्वते ॥ चिरङ्कार्याभिनिष्पत्तेश्चिरकारीतथोच्यते ॥ ७८ ॥ बुद्धिलाघवयुक्तेन जननींदीर्घदर्शनाम् ॥ व्यभिचारेचकस्मिंश्च व्यतिक्रम्यापरान्सुतान् ॥ ७९ ॥ पित्रोक्तःकुपितोनाथ जहीमांजननीमिति ॥ सतथेतिचिरेणोक्त्वा स्वभावाच्चिरकारकः ॥ ८० ॥ विमृश्याचिरकारित्वं चिन्तयामासवैचिरम् ॥ पितुराज्ञांकथंकुर्यां नहन्यांमातरंकथम् ॥ ८१ ॥ कथन्धर्मच्छलेनास्मिन्निमज्जेयमसाधुवत् ॥ पितुराज्ञापरोधर्मः स्वधर्मोमातृरक्षणम् ॥ ८२ ॥ अस्वतन्त्रञ्चपुत्रत्वं तेनमांसोत्रपीडयेत् ॥ स्त्रियंहत्वामातरंच कोहिजातुसुखीभवेत् ॥ ८३ ॥ पितरंचाप्यवज्ञाय कःप्रीतित्वमवाप्नुयात् ॥ अनवज्ञापितुर्युक्तं युक्तंमातुश्चरक्षणम् ॥ ८४ ॥ क्षमायोग्यावुभावेतौ नातिवर्तेतवैकथम् ॥ पिताह्यात्मानमाधत्ते जायायांजज्ञिवानिति ॥ ८५ ॥ शीलचारित्रगोत्रस्य धारणार्थंकुलस्यच ॥ सोहमात्मास्वयंपित्रापुत्रत्वेपरिकल्पितः ॥ ८६ ॥ जातकर्मणियत्प्राह पितायज्ञो

धर्मके छलसे कैसे दुष्टकी नाईं इस संसारसागर में न डूबूं धर्म पिताकी आज्ञापर है व माताकी रक्षाकरना अपना धर्म है ॥ ८२ ॥ पुत्रता अपने अधीन नहीं होती याने पुत्र पिताके वश होताहै उसीसे वे पिताजी मुझको दुःखदेते हैं स्त्री व माताको मारकर कभी कौन सुखी होगा ॥ ८३ ॥ व पिताका भी अनादर करके कौन स्नेहत्व को प्राप्तहोगा पिताका सन्मान योग्यहै व माताकी रक्षाकरना उचितहै ॥ ८४ ॥ ये दोनों क्षमाके योग्यहैं इससे किसीप्रकार उल्लङ्घन न करै पिता इस लिये स्त्रीमें आत्माको आधान करताहै व इसीकारण स्त्रीमें पैदाहुआहै शील, चरित्र, गोत्र व कुलके धारणके लिये सो मैं पिताकरके आपही आत्मा पुत्रतामें कल्पित कियागया ॥ ८५।८६ ॥

यज्ञके उपकर्म जातकर्म्म में पिताने जो कहाथा उसी से पिताके गौरव की इच्छा से पुत्र दृढ़तापूर्वक परिपूर्ण होगया ॥ ८७ ॥ शरीरादिक देनेयोग्य पदा-
र्थोंको अकेले पिता देताहै उसीलिये पिताका वचन करनेयोग्य है किसीप्रकार विचार, न करना चाहिये ॥ ८८ ॥ पिताके वचन करनेवाले मनुष्य के पापभी पवित्र
होजाते हैं पिता स्वर्गहै पिता धर्म्महै व पिता उत्तम तपस्या है ॥ ८९ ॥ पिताके प्रसन्न होनेपर समस्त देवता प्रसन्न होतेहैं व उन आशीर्वादों को देतेहैं कि जिनको
पिताने कहाहै ॥९०॥ यदि पिता प्रसन्नहोवै तो सब पापोंका प्रायश्चित्त होजाय व बन्धन से इसीप्रकार छूटजावै जैसे कि टेभुवा से फूल, फल अलग होजाते हैं ॥९१॥

पकर्मणि ॥ पर्याप्तःसदृढंपुत्रः पितुर्गौरवलिप्सया ॥ ८७ ॥ शरीरादीनिदेयानि पितात्वेकःप्रयच्छति ॥ तस्मात्पितुर्व
चः कार्यंनविचार्यंकथञ्चन ॥८८॥ पातकान्यपिपूयन्तेपितुर्वचनकारिणः॥ पितास्वर्गःपिताधर्मःपितापरमकंतपः॥८९॥
पितरिप्रीतिमापन्ने सर्वाःप्रीयन्तिदेवताः ॥ आशिषस्ताभजन्त्येनंपुरुषंप्राहयाःपिता ॥९०॥ निष्कृतिःसर्वपापानां पिता
यदाभिनन्दति ॥ मुच्यतेबन्धनात्पुष्पंफलंवृन्ताद्विमुच्यते ॥९१॥ क्लिश्यन्नपिसुतस्नेहैः पितास्नेहंनमुञ्चति ॥ एतद्वि
चिन्तितंतावत्पुत्रेणपितृगौरवम् ॥ ९२ ॥ पितानाल्पतरंस्थानंचिन्तयिष्यामिमातरम् ॥ योह्ययंमयिसङ्घातोमर्त्यत्वेपा
ञ्चभौतिकः ॥ ९३ ॥ अस्यमेजननीहेतुः पावकस्ययथारणिः ॥ मातादेहारणिःपुंसः सर्वस्यार्तस्यतनुभृतः ॥ ९४ ॥
मातृलाभेसनाथत्वमनाथत्वंविपर्यये ॥ नसशोचतिनाप्येनंस्थाविर्यमपकर्षति ॥ ९५ ॥ श्रियोहीनोपियोगेहे अम्बेति

पुत्रके स्नेहों से क्लेश पाता हुआ भी पिता प्रेमको नहीं छोडता है तब तक पुत्र करके यही पिताका गौरव चिन्तन कियागया है ॥ ९२ ॥ पिता बहुत कम स्थान
नहीं है और मैं माता का चिन्तन करताहूं क्योंकि मनुष्यतामें जो यह मुझ में पञ्चभूत याने पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश का समूह है ॥ ९३ ॥ मेरे इस
शरीर का माता कारण है जैसे अग्नि का हेतु अरणी होती है समस्त शरीरधारी पुरुषकी माता शरीर के लिये अरणी (अग्नि पैदाहोनेवाली लकडी) की नाईहै॥
९४ ॥ माता का मिलना सनाथता है व विपरीत याने न मिलने में अनाथताहै वह शोचता नहीं है और इसको वृद्धता नहीं खींचती है ॥ ९५ ॥ जो कि लक्ष्मीहीन

भी पुरुष घर में माता ऐसी वस्तुको प्राप्त होताहै पुत्रों व पौत्रों से संयुक्त सौ वर्ष के अन्त में भी जो माता के भलीभांति आश्रितहै वह वो वर्ष की अवस्थाकी नाईं
आचरण करताहै समर्थ या असमर्थ व दुबले तथा मोटे ॥ ९६ । ९७ ॥ पुत्र को माता पालती है विधि से दूसरा पालक नहीं होता है तब वह बूढ़ा होताहै व तब
दुःखी होताहै ॥ ९८ ॥ और तब उसको संसार शून्य होताहै जब कि माता से अलग होताहै माताके बराबर तीर्थ नहीं है व माता के समान गति नहीं है ॥ ९९ ॥ व
माता के बराबर रक्षा नहीं है व माता के समान प्रकाश नहीं है कोखिमें भलीभांति धारण करने से धात्री व पैदा करने से जननी ॥ १०० ॥ और अङ्गों के बढ़ने से

प्रतिपद्यते ॥ पुत्रपौत्रसमापन्नो जननींयःसमाश्रितः ॥९६॥ अपिवर्षशतस्यान्ते सद्विहायनवच्चरेत् ॥ समर्थंवासमर्थंवा
कृशंवाप्यकृशंतथा ॥ ९७ ॥ रक्षत्येवसुतंमाता नान्यःपोष्टाविधानतः ॥ तदासवृद्धोभवति तदाभवतिदुःखितः ॥
९८ ॥ तदाशून्यंजगत्तस्य यदामात्राविमुच्यते ॥ नास्तिमात्रासमंतीर्थं नास्तिमात्रासमंगतिः ॥ ९९ ॥ नास्तिमात्रा
समन्त्राणं नास्तिमात्रासमंप्रभा ॥ कुक्षौसन्धारणाद्धात्रीजननाज्जननीतथा ॥ १०० ॥ अङ्गानांवर्द्धनादम्बा वीरसूत्वे
नवीरसूः ॥ शिशोःशुश्रूषणाच्छक्तिर्मातास्यान्माननाच्चसा ॥ १ ॥ देवतानांसमंलोके मुनयःपितरंविदुः ॥ मर्त्यानान्दे
वतानांच पूगोनाभ्येतिमातरम् ॥ २ ॥ पतितागुरवस्त्याज्या मातानकथञ्चन ॥ गर्भाधारपोषाभ्यां तेनमातागरी
यसी ॥ ३ ॥ यतस्साकौशिकीतीरे बलिराजानमीक्षती ॥ स्त्रीवृतंचिरकालत्वाद्धन्तुंदिष्टःस्वमातरम् ॥४॥ विमृशंश्चिरका
रित्वाच्चिन्तान्तंनाभ्यपद्यत ॥ एतस्मिन्नन्तरेशक्रो ब्राह्मणंरूपमाश्रितः ॥ ५ ॥ गायन्गाथामुपायातः पितुस्तस्याश्रमा

अम्बा व वीर पैदाकरनेसे वीरसू और बालकके सेवनसे शक्ति और माननेसे वह माता कहाती है ॥ १ ॥ मुनियोंने लोकमें पिताको देवताओंके बराबर कहाहै व मनुष्यों
व देवताओं का समूह माता के बराबर नहीं है ॥ २ ॥ धर्म से भ्रष्ट गुरुलोग त्यागने के योग्य हैं व माता किसी प्रकार नहीं है व उसी कारण से गर्भ में धारण
करना व पालन से माता गरिष्ठ है ॥ ३ ॥ जिस लिये कौशिकीनदीके किनारे स्त्रियोंसे विरहुये बलिराजाको वह देखती रही उसीसे बहुत समयके कारणसे अपनी
माताको मारने के लिये मुझको आज्ञादीगई ॥ ४ ॥ बहुत देरमें कार्य करनेके कारणसे विचारते हुये उस चिरकारी ने चिन्ताके अन्तको न पाया इसी अवसर में

इन्द्र ब्राह्मण के रूपको प्राप्तहुये ॥५॥ व गाथाको गातेहुये उसके पिताके आश्रम के समीप आये कि सब स्त्रियां असत्य होतीहैं जोकि सूत्रकार ने कहाहै ॥ ६ ॥ इससे उनसे फल ग्रहण करनेयोग्यहैं विद्वान् पत्तोंको न देखै यह सुनकर उसको पूजकर उदारबुद्धिवाले मेधातिथि ॥ ७ ॥ बुद्धिमान् बहुत आंसुवों को बहातेहुये दुःखित होकर चिन्तन करतेभये कि बडे आश्चर्य की बातहै कि ईर्षा से फेंकाहुआ मैं पाप के समुद्र में डूबगया ॥ ८ ॥ क्योंकि पतिव्रता स्त्रीको मारकर मुझको कौन तारैगा मैंने शीघ्रतासे उदारबुद्धिवाले चिरकारी को आज्ञादिया ॥ ९ ॥ यदि यह चिरकारी होवै तो मुझको पापसे रक्षाकरै हे चिरकारिक ! तुम्हारा कल्याणहोवै हे चिरकारि-

न्तिके ॥ अनृताहिस्त्रियस्सर्वाःसूत्रकारोयदाब्रवीत् ॥ ६ ॥ अतस्ताभ्यःफलंग्राह्यं नपत्राणीक्षयेत्सुधीः ॥ इतिश्रुत्वात मानर्च्य मेधातिथिरुदारधीः ॥७॥ दुःखितोचिन्तयत्प्राज्ञोभृशमश्रूणिवर्त्तयन् ॥ अहोहमीर्ष्ययाक्षिप्तो मग्नोदुष्कृत सागरे ॥ ८ ॥ हत्वानारींचसाध्वींच कोनुमान्तारयिष्यति ॥ सत्वरेणमयाज्ञप्तश्चिरकारीह्युदारधीः ॥९॥ यद्ययंचिरका रीस्यात्समांत्रायेतपातकात् ॥ चिरकारिकभद्रन्ते भद्रन्तेचिरकारिक ॥ १० ॥ यदद्यचिरकारीत्वं ततोसिचिरकार कः ॥ त्राहिमांमातरंचैव तपोयच्चार्जितंमया ॥ ११ ॥ आत्मानंपातकेभ्यश्च भयेभ्यश्चिरकारिक ॥ एवंसुदुःखितःप्रा प्तो गौतमश्चिन्तयंस्तथा ॥ १२ ॥ चिरकारिकंददर्शाथ पुत्रंमातुरुपान्तिके ॥ चिरकारीतुपितरं दृष्ट्वापरमदुःखितः ॥ १३ ॥ शस्त्रंत्यक्त्वास्थितोमूर्द्ना प्रसादायोपचक्रमे ॥ मेधातिथिस्सुतन्दृष्ट्वा शिरसापतितम्भुवि ॥ १४ ॥ पत्नीञ्चैवच जीवन्तीं परामभ्यगमन्मुदम् ॥ हन्यादितिनसावेद शस्त्रपाणौस्थितेशुभे ॥ १५ ॥ बुद्धिरासीत्सुतन्दृष्ट्वा पितुश्चरण

क ! तुम्हारा कल्याण हो ॥ १० ॥ यदि तुम आज चिरकारी होवो तो चिरकारीहो मैंने जो तपस्या इकट्ठा कियाहै उसको व मुझे और माताकी रक्षा कीजिये ॥ ११ ॥ व हे चिरकारिक ! भयसे व पापों से अपनी रक्षा कीजिये इस प्रकार चिन्तन करतेहुये बड़े दुःखित गौतमजी प्राप्तहुये ॥ १२ ॥ इसके अनन्तर चिरकारिक पुत्र को माताके समीप देखा और चिरकारी पिताको देखकर बडा दुःखित हुआ ॥१३॥ व शस्त्रको छोड़कर खडाहोकर मस्तक से प्रसन्नता करानेके लिये प्रारम्भ किया और मेधातिथि मस्तक से भूमिमें गिरेहुये पुत्रको देखकर ॥ १४ ॥ व जीतीहुई स्त्रीको देखकर बड़े हर्षको प्राप्तहुये और शस्त्रको हाथमें लियेहुये उत्तम पुत्रको देखकर

उस भाँति यह न जाना कि मारैगा ॥१५॥ पिताके चरणोंमें झुकेहुये पुत्रको देखकर यह बुद्धिहुई कि शस्त्र लियेहुये पुरुष भयसे चञ्चलता को नहीं छिपाता है ॥ १६ ॥
तदनन्तर पिताने देरतक देखकर व देरतक माथेमें सूँघकर व बहुत समयतक भुजाओं से लिपटाकर चिरंजीव यह कहा ॥ १७ ॥ व बड़ी देरतक प्रसन्नता से सं-
युत मेधातिथि पुत्र से बोले कि हे चिरकारिक ! तुम्हारा कल्याण व आयुर्बल बहुत दिनोंतक होवै ॥ १८ ॥ व हे सौम्य ! देरमें जो कियागया है इसमें बहुत देरतक
दुःखी नहीं होताहै जिस प्रकार कि पहलेवाले श्रेष्ठ गौतम विद्वान्ने कहाहै ॥१९॥ कि बहुतदेरमें मित्रकर व कियेहुये मित्रको देरमें छोड़ै क्योंकि देरमें कियाहुआ मित्र

योर्नतम् ॥ शस्त्रग्रहोनचापल्यं संवृणोतिभयादिति ॥ १६ ॥ ततःपित्राचिरन्दृष्ट्वा चिरंचाघ्रायमूर्द्धनि ॥ चिरन्दोर्भ्यां
परिष्वज्य चिरञ्जीवेत्युदाहृतः ॥ १७ ॥ चिरंमुदान्वितःपुत्रं मेधातिथिरथाब्रवीत् ॥ चिरकारिकभद्रन्ते आयुश्चैवभवे
चिरम् ॥ १८ ॥ चिरायमत्कृतंसौम्य चिरमस्मिन्नदुःखितः ॥ यथाचाद्योब्रवीद्विद्वान् गौतमोमुनिसत्तमः ॥ १९ ॥ चि
रेणमित्रंसन्धायचिरेणचकृतन्त्यजेत् ॥ चिरेणविहितंमित्रं चिरन्धारणमर्हति ॥ २० ॥ रागेदर्पेचमानेच द्रोहेपापेच
कर्मणि ॥ अप्रियेचैवकर्त्तव्ये चिरकारीप्रशस्यते ॥ २१ ॥ बन्धूनांसुहृदांचैव भृत्यानांस्त्रीजनस्यच ॥ अव्यक्तेष्वपराधेषु
चिरकारीप्रशस्यते ॥ २२ ॥ चिरन्धर्मान्निषेवेत कुर्य्याच्चान्वेषणंचिरम् ॥ चिरमन्वास्यविदुषां चिरमिष्टानुपास्यच ॥
२३ ॥ चिरमुन्नीयचात्मानं चिरंयात्यनवज्ञताम् ॥ ब्रुवतश्चपरस्यापि वाक्यन्धर्मोपसंहितम् ॥ २४ ॥ चिरंपृच्छेच्चब्रू
याच्च चिरन्नपरिभूयते ॥ धर्मेशत्रौशस्त्रहस्ते पात्रेचनिकटस्थिते ॥ २५ ॥ भयेचसाधुपूजायां चिरकारीनशस्यते ॥

बहुत दिन धारण के योग्य होता है ॥ २० ॥ स्नेह व गर्व, मान, द्रोह व पापकर्ममें और अप्रिय कार्य करनेमें बहुत देरमें करनेवाला प्रशसनीय होताहै ॥ २१ ॥ भाई,
मित्र, नौकर व स्त्रीजनके अप्रकट अपराधों में देरमें कार्य करनेवाला प्रशसनीय होताहै ॥ २२ ॥ बहुत दिनोंतक धर्मसेवै व बहुत देरतक खोजकरै व विद्वानों के
समीप बहुत दिन बैठकर और बहुत समयतक मित्रोंकी उपासनाकर ॥ २३ ॥ व बहुत दिनोंतक अपना को उन्नति में प्राप्तकर बहुत समय के बाद आदरता को
प्राप्तहोताहै और जो धर्मसे संयुत वाक्यको अन्यके भी कहेहुये बहुत समयतक पूँछै व कहै वह बहुत दिनोंतक तिरस्कारको नहीं प्राप्तहोताहै धर्म व शस्त्रहस्तवाले शत्रुमें व

समीपही प्राप्त पात्रमें ॥ २४ । २५ ॥ व हर और सज्जनकी पूजामें चिरकारी नहीं प्रशंसितहै ऐसा कहकर पुत्र व स्त्रीसमेत मुनि शान्ति को प्राप्तहुये ॥ २६ ॥ इसके अनन्तर बहुत दिनोंतक तपस्या करके बहुत समय के बाद स्वर्गको प्राप्तहुये ऐसा कहतेहुये भी हम मोहसे ऐसे करायेगये ॥ २७ ॥ व मैंने समस्त गुणोंसे संयुत ब्राह्मणोंसे यह कहा कि हे ब्राह्मणो ! कलियुगमें मेरा शाप आपलोगोंके ऊपर पड़ैगा ॥ २८ ॥ तदनन्तर मैंने धर्मवर्मा राजाके समीप ब्राह्मणों के चरण धोकर देवोंको साक्षीकरके संकल्पपूर्वक सुवर्ण, गोदान, गृहदान व धनादिको से ॥ २९ । ३० ॥ और स्त्री व गहने तथा वसनों से ब्राह्मणों को कृतार्थ किया उसके उपरान्त हाथ

एवमुक्त्वापुत्रभार्य्यासहितःप्राप्तवाञ्छमम् ॥ २६ ॥ तपश्चिरमुपास्याथ दिवंयातश्चिरम्मुनिः ॥ वयन्त्वेवंब्रुवन्तोपि मोहेनैवंप्रकारिताः ॥२७॥ कलौचभवतांविप्रा मच्छापोनिपतिष्यति ॥ इत्युक्तन्तुमयातत्रविप्रान्सर्वगुणैर्युतान् ॥ २८ ॥ पादप्रक्षालनंकृत्वा ततोहन्धर्म्मवर्म्मणः ॥ २९ ॥ समीपेसाक्षिणोदेवान् कृत्वासङ्कल्पपूर्वकम् ॥ काञ्चनैर्गोप्रदानैश्चगृहदानैर्धनादिभिः ॥३०॥ भार्याभूषणवस्त्रैश्च कृतार्थाब्राह्मणाःकृताः ॥ ततःकरंसमुद्यम्य प्राहेदन्देवसङ्गमे ॥३१॥ हराङ्गेधृतवामार्द्धायाचद्देवीगिरेस्सुता ॥ ब्रह्मशापोविष्णुशापो रुद्रशापस्तथैवच ॥ ३२ ॥ द्विजशापस्तथाभूयादिदंस्थानंविलुम्पतः ॥ यत्तीर्थेदेवविप्राणां द्रव्यहर्त्रनुमोदकाः ॥ ३३ ॥ रुद्रतालेनहन्यन्ते नरकेशाश्वतीःसमाः ॥ ततस्तथेतितैस्सर्वैर्हृष्टैस्तत्रतथोदितम्॥३४॥एवंमयास्थापितेस्थानकेस्मिन्संस्थापयामासचकापिलम्मुनिः॥स्थानंसुतोदेवहूतेःप्रती

उठाकर देवताओं के समागम में यह कहा ॥ ३१ ॥ कि महादेवजी को अङ्गमें धारण कियेहुये वामभागवाली जो पर्वतकी कन्या पार्वती देवीहैं उनका शाप व ब्रह्मशाप, विष्णुशाप वैसेही रुद्रशाप ॥ ३२ ॥ व ब्राह्मणों का शाप इस स्थान के नष्ट करनेवाले पुरुषको होवै क्योंकि तीर्थमें देवों व ब्राह्मणों की द्रव्य लेनेवाले व उसको अच्छा माननेवाले पुरुष ॥ ३३ ॥ नरकमें सैकड़ो वर्षतक रुद्रचपेटे से मारेजाते हैं तदनन्तर वहां प्रसन्न होतेहुये सबोंने तथा याने वैसाही होगा यह कहा ॥ ३४ ॥ इस प्रकार मुझसे इस स्थान के स्थापित होनेपर देवहूती के पुत्र कपिल मुनिने प्रसन्न होकर कापिलनामक स्थानको स्थापित किया उसके उपरान्त देवता

देवस्थान को चलेगये ॥ १३५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे कुमारिकाखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायांनारदीयस्थानप्रतिष्ठानाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥
दो० । बगुला भूपतिसों कह्यो आपन चरित सुनाय । सो पञ्चमअध्यायमें चरित अहै सुखदाय ॥ अर्जुनजी बोले कि तुमने महीसागरके आश्चर्यमय माहात्म्यको कहा
मुझको बड़ाविस्मयहै व अतिआनन्द पैदाहोताहै ॥१॥ हेनारद ! मैं उसको विस्तारपूर्वक तुमसे सुनना चाहताहूं कि किसकी यज्ञमें अग्निसे जलाईहुई भी वह महीना-
मक नदीहुई है ॥२॥ नारदजी बोले कि बड़े कथानकको मैं कहूँगा कि जिसप्रकार महीनदी उत्पन्न हुईहै हे पाण्डव ! इस पुण्यदायिनी कथाको सुनतेहुये तुम पुण्य

तस्ततोययुर्देवतादेवसद्मनि॥१३५॥इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेनारदीयस्थानप्रतिष्ठानामचतुर्थोऽध्यायः॥४॥
अर्जुनउवाच ॥ महीसागरमाहात्म्यमद्भुतंकीर्तितंत्वया ॥ विस्मयःपरमोमह्यं प्रहर्षश्चोपजायते ॥ १ ॥ तदहंवि
स्तरात्त्वत्तः श्रोतुमिच्छामिनारद ॥ कस्ययज्ञेमहीजाता वह्निनाज्वालितापिसा ॥ २ ॥ नारदउवाच ॥ महदाख्यानमा
ख्यास्ये यथाजातामहीनदी ॥ शृण्वन्नेतांकथांपुण्यांपुण्यमाप्स्यसिपाण्डव ॥ ३ ॥ पुराभूद्भूपतिर्भूमाविन्द्रद्युम्नइति
श्रुतः ॥ वदान्यस्सर्वधर्मज्ञो मान्यमानयिताप्रभुः ॥ ४ ॥ उचितज्ञोविवेकस्य निवासोगुणसागरः ॥ नतदस्तिधरापृष्ठे
नगरग्रामपत्तनम् ॥ ५ ॥ तदीयकृतधर्मस्य चिह्नेननयदङ्कितम् ॥ कन्यादानानिबहुधा ब्राह्मणान्विधिनाऽव्ययात् ॥६॥
भूपालोसौनतद्दानमासहासाङ्गनार्थिनाम् ॥ दशमीदिवसेरात्रौ गजपृष्ठेनदुन्दुभिः ॥ ७ ॥ ताड्यतेतत्पुरेप्रातः कार्यमे
कादशीव्रतम् ॥ यज्वनातेनभूपेनाविच्छिन्नंसोमपीथिना ॥ ८ ॥ स्तरणैराचितादर्भैर्दूर्वाङ्कुलोत्सन्धितामही ॥ गङ्गा

पावेंगे ॥ ३ ॥ पुरातन समय इन्द्रद्युम्न ऐसा सुनाहुआ राजाहुआहै जोकि मनोहर वाक्यवाला व समस्त धर्मोंका ज्ञाता और मान्यजनों को माननेवाला तथा समर्थ
था ॥ ४ ॥ योग्यवस्तुका ज्ञाता तथा विवेकका स्थान व गुणोंका समुद्रथा भूतलमें वह नगर व ग्राम तथा शहर न था ॥५॥ जोकि उसके कियेहुये धर्मके चिह्नसे चिह्नित
न होवै और इस राजाने विधिपूर्वक बहुत प्रकारसे ब्राह्मणोंको कन्यादान दिया और धनके चाहनेवालोंको उसका दान ह्राससे न हुआ व दशमीके दिन रातमें हाथीकी
पीठपरसे नगारा ॥ ६ । ७ ॥ उसके पुरमें बजाया जाताथा कि प्रातःकाल एकादशीव्रत करना चाहिये व निरन्तर सोमपीनेवाले उस यज्ञकारी राजाने ॥ ८ ॥ कुशोंके

बिन्दौनों से व्याप्त पृथ्वीको दो अंगुल ऊंचीकरदिया गङ्गाके समीपवाले बालू के किनुके व बरसतेहुये मेघकी धारा और आकाश के नक्षत्र ॥ ९ ॥ विद्वानों से गिनेजासक्के हैं परन्तु उसका पुण्य नहीं गिनाजासक्ता है ऐसे पुण्योंकरके उसी शरीर से वह राजा ॥ १० ॥ हे कुरुवंशनायक ! विमान के द्वारा ब्रह्माके स्थानमें प्राप्तहुआ व उसने उस समय देवताओंके भी दुर्लभभोगोंको भोगकिया ॥ ११ ॥ इसके उपरान्त सौ कल्पका अन्त बीत जानेपर प्रजाओंके पति ब्रह्माजी उससमय अपने मन्दिर मे टिकेहुये उन इन्द्रद्युम्न राजासे बोले ॥ १२ ॥ ब्रह्मा बोले कि हे नृपोत्तम, इन्द्रद्युम्न ! शीघ्रही धरातलको जाओ आज क्षणभरभी तुमको मेरेलोक

यांसिकताधारा वर्षतोदिवितारकाः ॥ ९ ॥ शक्यागणयितुंप्राज्ञैस्तदीयंसुकृतन्नतु ॥ ईदृशैस्सुकृतैरेव तेनैववपुषान्नृपः ॥ १० ॥ धामप्रजापतेःप्राप्तो विमानेनकुरूद्वह ॥ बुभुजेसतदाभोगान्दुर्लभानमरैरपि ॥ ११ ॥ अथकल्पशतस्यान्ते व्यतीतेतंमहीपतिम् ॥ प्राहप्रजापतिर्ब्रह्मा तदास्वेसदनास्थितम् ॥ १२ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इन्द्रद्युम्नद्रुतंगच्छ धरापृष्ठंनृपोत्तम ॥ नस्थातव्यंमदीयेद्य लोकेक्षणमपित्वया ॥ १३ ॥ नपुण्यंकेवलंराजन् गुप्तंस्वर्गस्यसाधकम् ॥ विनानिष्कल्मषांकीर्तिं त्रिलोकीतलविस्तृताम् ॥ १४ ॥ तवकीर्तिसमुच्छेदः साम्प्रतंवसुधातले ॥ सञ्जातश्चिरकालेन गत्वातांकुरु शीघ्रतः ॥ १५ ॥ यदिवाञ्छामहीपाल ममधामनिसंस्थितौ ॥ १६ ॥ इन्द्रद्युम्न उवाच ॥ मदीयंसुकृतंब्रह्मन् कथंभूमौभवेदिति ॥ छन्नंतथाकृतंनैतन्ममचेतसितिष्ठति ॥ १७ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ बलवानेषभूपाल कालःकलयतिस्वयम् ॥ ब्रह्माण्डान्यपिमाञ्चैव गणनाकाभवादृशाम् ॥ १८ ॥ तदेतदेवमन्येहं तवभूपालसाम्प्रतम् ॥ यत्कीर्तिमात्मनोव्यक्तिं

में न टिकना चाहिये ॥ १३ ॥ हे राजन् ! त्रिलोकी में विस्तारको प्राप्त व निष्पाप यशके विना केवल छिपीहुई पुण्य स्वर्गकी सिद्धि करनेवाली नहीं होती है ॥१४॥ इस समय पृथ्वीतल में बहुत समयसे तुम्हारा यश नाशहोगया इससे हे भूपाल ! यदि मेरे घर में भलीभांति टिकनेकी इच्छा होवै तो कीजिये शीघ्रही जाकर उस कीर्तिको ॥ १५ । १६ ॥ इन्द्रद्युम्न बोले कि हे ब्रह्मन् ! किसप्रकार वैसा कियाहुआ मेरा पुण्य भूमि में छिपाहोवैगा यह बात मेरे चित्तमें नहीं टिकतीहै ॥ १७ ॥ ब्रह्मा बोले कि हे राजन् ! यह समय बलीहै जो काल कि आपही ब्रह्माण्डों व मुझको भी गिनताहै आपके सरीखे जनों की क्या गिनती है ॥१८॥ हे भूपाल ! इसलिये मै

यही तुम्हारे लिये जानताहूं जिससे कि अपना यश प्रकटकरके फिर स्वर्गको आइये ॥१६॥ उन भूपतिने ब्रह्माके ऐसे वचनको सुना और वैसेही भूमिमें आयेहुये अपने को देखा॥२०॥व काम्पिल्य नगरमें उन इन्द्रद्युम्न राजाने अतिविस्मित होकर अपनाको व नगर तथा देशको मनुष्यों से आदरपूर्वक पूंछा व देखा॥२१॥मनुष्य बोले कि हे भद्ररूप ! हमलोग इन्द्रद्युम्न राजा व उसके नगरको नहीं जानतेहैं जो तुम हम सबोंसे पूंछतेहो उसको किसी बड़ी आयुर्बलवालेसे पूंछो॥२२॥इन्द्रद्युम्न बोले कि हे मनुष्यो! इस समय पृथ्वीमें भूपति की इस राज्य में कौन दीर्घायु प्रसिद्धहै तुम लोग शीघ्रही यह कहो ॥ २३ ॥ मनुष्य बोले कि नैमिषारण्य में सात कल्पांतक

नीत्वाभ्येहिपुनर्दिवम् ॥ १९ ॥ शुश्रुवानितिवाचंस ब्रह्मणःपृथिवीपतिः ॥ पश्यतिस्मतथात्मानं महीतलमुपागतम् ॥ २० ॥ काम्पिल्यनगरेभूपः पप्रच्छात्मानमादरात् ॥ नगरंसतथादेशमद्राक्षीदतिविस्मितः ॥ २१ ॥ जनाऊचुः ॥ न जानीमोवयंभूपमिन्द्रद्युम्नंनतत्पुरम् ॥ यत्त्वंपृच्छसिनोभद्रकञ्चित्पृच्छचिरायुषम् ॥ २२ ॥ इन्द्रद्युम्न उवाच ॥ कःसम्प्रतिधरापृष्ठेचिरायुःप्रथितोजनाः॥पृथिवीशस्यराज्येस्मिन्नित्यत्रब्रूतमाचिरम् ॥ २३ ॥ जनाऊचुः ॥ श्रूयतेनैमिषारण्ये सप्तकल्पस्मरोमुनिः ॥ मार्कण्डेयइतिख्यातोगत्वातंपृच्छसंशयम् ॥ २४ ॥ ततोपदिष्टस्तैर्गत्वा तत्रतंमुनिपुङ्गवम् ॥ निशम्यप्रणिपत्याह नृपःस्वहृदयस्थितम् ॥ २५ ॥ चिरायुर्भगवान्भूमौ यतस्मृतःसाम्प्रतंततः ॥ पृच्छाम्यहं भवान्वेत्ति इन्द्रद्युम्नंनृपंनवा ॥ २६ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ मासाहसमिदंकार्षीर्भद्रवाचंश्रृणुष्वमे ॥ एतिजीवन्तमानन्दो नरंवर्षशतादपि ॥२७॥ तत्करोमिप्रतीकारं तवदुःखोपशान्तये ॥ श्रृणुभद्रममास्तीह बकोमित्रंचिरन्तनः ॥२८॥

स्मरणवाले मार्कण्डेय ऐसे प्रसिद्ध मुनिहैं उनसे जाकर सन्देहको पूछो ॥ २४ ॥ तदनन्तर उन लोगोंसे उपदेशपाकर वहा उन मुनिश्रेष्ठको सुनकर राजाने जाकर उनको प्रणाम करके अपने हृदय में टिकीहुई बातको कहा॥२५॥ कि जिसलिये आप भूमिमें इस समय दीर्घायु स्मरण कियेजाते हो इससे मैं पूंछताहू कि आप इन्द्रद्युम्न राजाको जानते हो या नहीं ॥ २६ ॥ मार्कण्डेयजी बोले कि हे कल्याणरूप ! ऐसा साहस मत करो किन्तु मेरा वचन सुनो कि सौ वर्ष के आदमी जीतेहुये पुरुष के समीप आनन्द आताहै ॥२७॥ इस लिये तुम्हारे दुःख दूर होनेके लिये मैं यत्न करूंगा। हे कल्याणमय ! उसको सुनिये कि पुराना बगुला मेरा मित्र है ॥२८॥

जो कि नाडीजंघ ऐसा प्रसिद्ध है वह तुमको निरसन्देह जानैगा इस से शीघ्रही आइये जब तक हम तुम दोनो वहां चलें ॥ २९ ॥ क्योंकि परया उपकार करना इसी एक फलवाला महात्माओं का जीवन होताहै इस से यदि वह जानैगा तो निरसन्देह इन्द्रद्युम्न को कहैगा ॥ ३० ॥ उस समय द्विजेन्द्र व नृपोत्तम ने प्रसन्न होकर हिमालय पर्वतपै नाडीजंघ के स्थान को इस प्रकार प्रयाण किया ॥ ३१ ॥ इसके अनन्तर बहुत दिनों मे आयेहुये अपने मार्कण्डेय मित्रको देखकर प्रीति के कारण से उत्कण्ठित बगुला पक्षी उनके सामने गया ॥ ३२ ॥ पहले कुशल व स्वागत इत्यादि प्रश्नसे सम्भाषण हुआ इसके बाद उनके आनेके हेतु

नाडीजङ्घइतिख्यातः सत्वांज्ञास्यत्यसंशयम् ॥ तस्माद्देहिद्रुतंयावद्यावांतत्रव्रजावभोः ॥ २९ ॥ परोपकारैकफलं जीवितंहिमहात्मनाम् ॥ यदिज्ञास्यत्यसंदिग्धमिन्द्रद्युम्नंसवक्ष्यति ॥ ३० ॥ तौप्रस्थितावितितदाविप्रेन्द्रन्नृपपुङ्गवौ ॥ हिमाचलंप्रतिप्रीतौ नाडीजङ्घालयम्प्रति ॥ ३१ ॥ बकोथमित्रंस्वंवीक्ष्यचिरकालादुपागतम् ॥ मार्कण्डेयंययौप्रीत्युत्कण्ठितःसम्मुखंद्विजः ॥ ३२ ॥ कृतसंविदभूत्पूर्वंकुशलस्वागतादिना ॥ पप्रच्छानन्तरंकार्यं तदागमनकारणम् ॥ ३३ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ नृपोयंत्यजतिप्राणान्पुरावह्निप्रवेशनात् ॥ एतस्यप्राणरक्षार्थं ब्रूहिजानासिचेन्नृपम् ॥ ३४ ॥ इतिपृष्टस्सविमना मित्रकार्यप्रसाधनात् ॥ कौशिकःप्राहजानामिनेन्द्रद्युम्नमहन्नृपम् ॥ ३५ ॥ चतुर्द्दशप्रमाणामे कल्पाजातस्यभूतले ॥ नदृष्टोनश्रुतोवास इन्द्रद्युम्नोन्नृपःक्षितौ ॥ ३६ ॥ तच्छ्रुत्वाविस्मितोभूपस्तस्यायुरतिमात्रतः ॥ दुःखितोपितदाहेतुं पप्रच्छासौतदायुषः ॥ ३७ ॥ एवमायुर्यदितव कथंप्राप्तंब्रवीहितत् ॥ बकस्त्वंचैकथमिदं जुगु

वाला कार्य पूछा॥३३॥मार्कण्डेयजी बोले कि पहले यह राजा अग्निमें पैठनेसे प्राणोंको छोड़ताथा यदि इन्द्रद्युम्न राजाको जानतेहो तो इसकी प्राणरक्षाके लिये कहो ॥ ३४ ॥ इस प्रकार पूछेहुये उस बगुलाने मित्रकार्य के सिद्ध करनेके कारणसे उदासीन होकर कहा कि इन्द्रद्युम्न राजाको मैं नहीं जानताहूं ॥ ३५ ॥ पृथ्वीमे पैदाहुये मुझको चौदहसंख्यक कल्प बीते हैं परन्तु भूमिमें वह इन्द्रद्युम्न राजा न देखागया न सुनागयाहै ॥ ३६ ॥ उसकी उस बडी आयुर्बल को सुनकर विस्मय को प्राप्त

इस राजाने दुःखित भी उस समय उसकी आयुका कारण पूंछा ॥ ३७ ॥ कि यदि तुम्हारा ऐसा आयुर्बल है तो अत्यन्त ही निन्दित यह बगुलापन कैसे प्राप्त हुआ ॥
३८ ॥ बगुला बोला कि हे कल्याणरूप ! सुनिये कि जिसप्रकार शिवजी के पूजनसे बड़ी आयुर्बल मेरे है व हे महामुने ! शापसे निन्दित बकत्व हुईहै ॥ ३९ ॥
त्रिशूलधारी शिवजी के घृतकम्बल के माहात्म्य से मेरे यह दीर्घआयु है व ब्राह्मणके शापसे बगुला का शरीरहै उसको सुनिये ॥ ४० ॥ हे सन्मुने ! पहले जन्म में
पृथ्वीतलमें पाराशरी गोत्रवाले विश्वरूप ब्राह्मणके वृद्धतामें बक ऐसा प्रसिद्ध बालक हुआहूं हे भद्रक ! जो मैं कि पिताको बड़ा प्रिय व शिशुतामें स्वभावहीसे अत्यन्त

प्सितमतीवच ॥ ३८ ॥ बकउवाच ॥ शृणुभद्रयथादीर्घमायुर्मेशिवपूजनात् ॥ जुगुप्सितंबकत्वंच शापेनचमहामुने ॥
३९ ॥ घृतकम्बलमाहात्म्यान्ममदेवस्यशूलिनः ॥ दीर्घमायुरिदंविप्र शापाद्बकवपुःशृणु ॥ ४० ॥ पुराजन्मन्यहंबालो
ब्राह्मणस्याभवम्भुवि ॥ पाराशर्यस्यगोत्रस्य विश्वरूपस्यसन्मुने ॥ ४१ ॥ वृद्धत्वेबकइत्येवं प्रतीतोतिप्रियःपितुः ॥
चपलोतीवबालत्वे निसर्गादेवभद्रक ॥ ४२ ॥ अथमारकतंलिङ्गं देवतामन्दिरात्पितुः ॥ चापल्याद्बालभावाच्चापहृत्य
निहितम्मया ॥ ४३ ॥ घृतस्यकुम्भेसंक्रान्तौ मकरस्योत्तरायणे ॥ अथप्रातर्व्यतीतायां निशियावत्पितामम ॥ ४४ ॥
निर्माल्यापनयंचक्रे तावच्छून्यंशिवालयम् ॥ निशम्यकान्दिशीकोमां पप्रच्छमधुरस्वरम् ॥ ४५ ॥ वत्साद्यैवत्वया
लिङ्गं नूनंविनिहितंवद ॥ दास्यामिवाञ्छितंयत्तेभक्ष्यमन्यत्तवेप्सितम् ॥ ४६ ॥ ततोमयाबालभावाद्भक्ष्यलुब्धेनतत्पि
तुः ॥ घृतकुम्भान्तरात्कृष्य भद्रलिङ्गंसमर्पितम् ॥ ४७ ॥ अथकालेतुसम्प्राप्ते प्रमृतोहंनृपालये ॥ जातोजातिस्मरस्ता

चञ्चल था ॥ ४१ । ४२ ॥ इसके अनन्तर मरकतमणिवाले शिवजी के लिंगको पिताके देवमन्दिर से लेकर मैंने चञ्चलता व शिशुता से उत्तरायण मकरकी स-
क्रान्तिमें घीके घड़े में डालदिया इसके बाद रात बीतनेपर प्रातःकाल जबतक मेरे पिताने ॥ ४३ । ४४ ॥ निर्माल्यको दूर किया तबतक शिवालयको शून्य देख
करहेहुये उनने मीठे स्वरसे मुझसे पूंछा ॥ ४५ ॥ कि हे वत्स ! आज निश्चयकर तुमने लिंगको धराहै कहिये जो तुम्हारा चाहाहुआ भोजन या और तुम्हारा अभिलाष
[illegible] मैं दूंगा ॥ ४६ ॥ तदनन्तर शिशुता से भोजनके लालचवाले मैंने घीके घड़े के भीतर से खींचकर उस कल्याणकारी लिंगको पिताको देदिया ॥ ४७ ॥

इसके अनन्तर काल प्राप्तहोनेपर मैं मरगया व हे तात ! राजाके मन्दिर में जातिके स्मरणवाला मैं आनर्त देशके स्वामीका पुत्र पैदाहुआ ॥ ४८ ॥ घीके व घडेके संयोग से शिशुता व अज्ञानसेभी मकरराशि में सूर्यके टिकने पर घृतकम्बल के माहात्म्यसे मैं जातिस्मरण करनेवाला हुआ ॥ ४९ ॥ तदनन्तर पूर्वजन्मको स्मरण करतेहुये मैंने शिवलिंग को भलीभांति थापन किया व तब से लगाकर मैं घृतसे आच्छादन करताथा ॥५०॥ और पिता,पितामहवाली राज्यको पाकर मै शक्तिके अनुसार प्रजापालन करताथा तदनन्तर प्रसन्न होकर पार्वतीजी के पति सदाशिवजीने मुझसे कहा ॥ ५१ ॥ कि पहले जन्ममें घृतकम्बलवाली पूजासे प्रसन्न होकर मैंने

तआनर्ताधिपतेस्सुतः॥४८॥घृतकम्बलमाहात्म्यान्मकरस्थेदिवाकरे॥ अपिबाल्यादवज्ञानात्संयोगाद्घृतकुम्भयोः ॥ ४९ ॥ ततस्संस्थापितंलिङ्गं प्राग्जन्मस्मरतामया ॥ ततःप्रभृतिलिङ्गानि घृतेनाच्छादयाम्यहम् ॥ ५० ॥ पितृपैतामहंप्राप्य राज्यंशक्त्यनुरूपतः ॥ ततःप्रसन्नोभगवान् पार्वतीपतिराहमाम् ॥ ५१ ॥ पूर्वजन्मनितुष्टोहं घृतकम्बलपूजया ॥ प्रयच्छामिस्मतेराज्यमधुनाभिमतंवृणु ॥ ५२ ॥ ततोमयावृतःप्रादाद्गाणपत्यंमदीप्सितम् ॥ कैलासेमांशिवोनित्यं सन्तुष्टःप्राहचेतिमाम् ॥ ५३ ॥ तेनैवहिशरीरेणप्रणतंपुरतःस्थितम् ॥ अद्यप्रभृतिसंक्रान्तौ मकरस्यापरोपियः ॥ ५४ ॥ घृतेनपूजांकर्त्तासौ भावीममगणःस्फुटम् ॥ इत्युक्त्वामांशिवोभद्र गणकोटीश्वरंव्यधात् ॥ ५५ ॥ प्रतीपपालकन्नाम संस्थितंशिवशासने॥ ततःकामादिभिःषड्भिःपदैश्चङ्क्रमणात्मिकाम् ॥ ५६ ॥ निसर्गचपलाम्प्राप्य भ्रम

तुमको राज्य दिया इससमय अभिलाषित वस्तु को मांगिये ॥ ५२ ॥ तदनन्तर मुझसे मांगेहुये शिवजी ने गणपाति होनेवाले मेरे मनोरथको मुझे दिया व कैलास में नित्यही प्रसन्न शिवजी ने उसी शरीरसे प्रणाम कियेगये व आगे खड़ेहुये मुझ से यह कहा कि आजसे लगाकर मकरकी संक्रान्ति मे और भी जो मनुष्य ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ घृतसे पूजन करैगा वह मेरा गण होगा यह प्रकटतासे मुझसे कहकर शिवजीने कल्याणकारक कोटिगणों का स्वामी किया ॥ ५५ ॥ व शिवजी की आज्ञा में टिकेहुये मुझको प्रतीपनाम पालक किया तदनन्तर कामादिक छह चरणोंसे बहुत चलनेवाली ॥ ५६ ॥ व स्वभावही से चञ्चल उस लक्ष्मी को भ्रमरी की नाईं

पाकर दैवयोग से उसके धारनेमें मैं समर्थ न हुआ ॥ ५७॥ उस समय चारणकी नाईं मस्त व अत्यन्तही गर्वित तथा कार्य, अकार्यके विचारसे छूटाहुआ मैं घूमने लगा ॥ ५८ ॥ विद्या, कुलीनता व उस लक्ष्मीको यथायोग्य पाकर मनुष्य विपत्तियोंकी पात्रता को प्राप्तहोता है जैसे कि नदियों की पात्रताको समुद्र प्राप्त होताहै॥ ५९ ॥ इसके अनन्तर कुछ समय बीतनेपर इच्छापूर्वक घूमताहुआ मैं बर्फकी राशिसे छिपेहुये कन्दराओंवाले (हिमवान्) पर्वत पै गया ॥ ६० ॥ वहां स्त्रीसमेत गालवमुनि तप करतेथे जोकि सदैव तेज तपस्यासे दुबलेथे व जिनकी नसें देखपड़तीथीं ॥ ६१ ॥ क्योंकि ब्राह्मणका यह शरीर इस लोकमें फलदायक नहीं है

रीमिवतांश्रियम् ॥ नैवालममवंतस्या धारणेदैवयोगतः ॥ ५७ ॥ विचचारतदामत्तः किलाहञ्चारणोयथा ॥ कृत्याकृत्यविचारेण विमुक्तोतीवगर्वितः ॥ ५८ ॥ विद्यामभिजनंलक्ष्मींप्राप्यतांश्चनरोयथा ॥ आपदांपात्रतामेति सिन्धूनामिवसागरः ॥ ५९ ॥ अथकालेव्यतिक्रान्ते किञ्चिन्मात्रेयदृच्छया ॥ विचरन्नगमंशैलं हिमानीरुद्धकन्दरम् ॥ ६० ॥ तपस्यतिमुनिस्तत्र गालवोभार्ययासह ॥ सदैवतीव्रतपसाकृशोधमनिसन्ततः ॥ ६१ ॥ ब्राह्मणस्यहिदेहोयं नैवेहिकफलप्रदः ॥ कृच्छ्रायतपसेचेह प्रेत्यानन्त्यसुखायच ॥ ६२ ॥ तस्यभार्यातिरूपेण विजिग्येविश्वमेवहि॥ तन्वीश्यामामृगाक्षीसा पीनोन्नतपयोधरा ॥ ६३ ॥ हास्यगद्गदसम्भाषामत्तमातङ्गकामिनी ॥ विस्तीर्णजघनामध्यक्षामादीर्घशिरोरुहा ॥ ६४ ॥ निम्नानाभिर्निधात्रैषा निर्मितासन्दिदृक्षुणा ॥ विकीर्णमिवसौन्दर्यमेकपात्रमिवस्थितम् ॥ ६५ ॥ ततो विनीतस्तांवीक्ष्य भद्रगालववल्लभाम् ॥ अहमासंशरव्रातैस्ताडितःपुष्पधन्वना ॥ ६६ ॥ विवेकिनोपिमुनयस्तावदे

किन्तु यहां कष्ट व तपस्या के निमित्त और मरकर अमित सुखके लियेहै ॥ ६२ ॥ उसकी स्त्रीने बड़ेरूपसे संसारको जीतलियाथा जोकि सूक्ष्म अंगोंवाली व श्यामा (सोलहवर्ष की) और मृगनयनी और बहु स्थूल व ऊंचे स्तनोंवालीथी ॥ ६३ ॥ व जोकि हास्यसंयुत गद्गद सम्भाषणवाली व मस्तीलेहाथी के समान चालवाली तथा चौड़े जङ्घोंवाली और पतली कटिवाली थी और जिसके बाल लम्बे थे ॥ ६४ ॥ व जिसकी तोंदी गहरी थी फैलीहुई सुन्दरता को मानो एकही पात्रमें स्थित भलीभांति देखनेकी इच्छावाले ब्रह्माने इसको रचाहै ॥ ६५ ॥ तदनन्तर हे कल्याणरूप ! नम्रतासंयुत मैं गालवकी स्त्रीको देखकर कामदेव करके शरसमूहों

से ताड़ित हुआ ॥ ६६ ॥ ज्ञानीभी मुनिलोग तभीतक ज्ञानी होतेहैं जबतक कि मृगनयनियों के कटाक्षों से नहीं देखेजातेहैं ॥६७॥ उससमय उसको हरनेकी इच्छा वाले मैंने यही चित्तमें विचार किया कि मुनिकी तपस्यासे रक्षित इस स्त्रीको जो मैं हरूंगा ॥ ६८ ॥ और यदि इसके लिये मुनि शाप देवैं तो उसमें मेरा अनादर होगा या यह स्त्री मेरी मृत्यु है ॥ ६९ ॥ इस लिये सेवामें तत्पर मैं इस मुनिका शिष्य होऊं और समय पाकर हरूंगा इसके योग्य यह स्त्री नहीं है ॥ ७० ॥ ऐसा विचार कर विद्यार्थी के रूपमें प्राप्त होकर होनहार प्रयोजन से प्रेरणा किया हुआ मैं गालवजी को प्रणामकर यह वचन बोला ॥ ७१ ॥ वैसीही बुद्धि व वैसाही

यविवेकिनः ॥ यावन्नहरिणाक्षीणामपाङ्गैरभिलक्षिताः ॥ ६७ ॥ मयाऽव्यवसितंचित्ते तदानींतांजिहीर्षुणा ॥ इतिचेति हरिष्यामि तपसारक्षिताम्मुनेः ॥ ६८ ॥ अस्याः कृतेयदिशपेन्मुनिस्तत्रपराभवः ॥ ममभावीभवेदेषा भार्यामृत्युर्ममा पिवा ॥ ६९ ॥ तस्माच्छिष्योभवाम्यस्य शुश्रूषानिरतोमुनेः ॥ प्राप्यान्तरंहरिष्यामि नास्ययोग्येयमङ्गना ॥ ७० ॥ इ तिव्यवस्यविद्यार्थिमूर्त्तिमास्थायगालवम् ॥ नमस्कृत्यवचोवोचमितिभाव्यर्थनोदितः ॥ ७१ ॥ तथामतिस्तथामि त्रं व्यवसायस्तथान्नृणाम् ॥ भवेदवश्यंतद्भावि यथापुम्भिःपुराकृतम् ॥ ७२ ॥ नमस्येचेतनंब्रह्म प्रत्यक्षंगालवाख्य या ॥ अविद्याकृष्णसर्प्पेण दष्टंतद्विषपीडितम् ॥ ७३ ॥ उपदेशमहामन्त्रैर्मांजाङ्गुलिकजीवय ॥ महामोहमहावृ क्षो हृदावापसमुत्थितः ॥ ७४ ॥ त्वद्वाक्यतीक्ष्णधारेण कुठारेणक्षयंव्रजेत ॥ अपवर्गपथव्यापी मूढसंसर्गसेचनः ॥ ७५ ॥ छिद्यतांसूत्रधारेण विद्यापरशुनाधुना ॥ भजामितवशिष्योहं वरिवस्यापरश्चिरम् ॥ ७६ ॥ समिद्दर्भःफलंपुष्पं

मित्र और वैसाही मनुष्यों का उद्यम होता है व अवश्यकर वही होनहार होवै है जिस प्रकार कि पुरातन समय मनुष्यों से किया गयाहै ॥ ७२ ॥ हे विषवैद्य ! गालवनाम से दृष्टिगोचर चेतन ब्रह्मको मैं प्रणाम करताहूं अविद्यारूपी काले साप से काटे व उसके विषसे दुःखित मुझको शिक्षारूपी महामन्त्रों से जिलाइये हृदय रूपी थाल्हा में उपजाहुआ महामोहरूपी बडा भारी वृक्ष ॥ ७३ । ७४ ॥ तुम्हारे वचनरूप तेजधारवाले फरसे से नाश होजायगा जो वृक्ष कि मोक्षमार्ग में व्याप्त व मूर्ख के सङ्ग से सींचा गयाहै ॥ ७५ ॥ उसको इस समय सूत्ररूपी धारवाले विद्या रूप फरसे से काटिये सेवा में तत्पर होकर तुम्हारा शिष्य मैं बहुत दिनों तक सेवा

करूंगा ॥ ७६ ॥ और समिधा, कुश, फल व फूल, लकड़ियां और जल लाऊंगा मुझ प्राप्त हुये को ग्रहण करिये ॥ ७७ ॥ इस प्रकार पुरातन समय बकनामक व बगुला के से आचरणवाले मेरे ऊपर उस समय कोमलता में प्राप्त मुनिने अनुग्रह किया ॥ ७८ ॥ तदनन्तर अत्यन्तही नम्रहोकर मैं ब्राह्मणी से संयुत उसके विश्वास के लिये दिन २ बहुत दृढ़तापूर्वक प्रसन्न करता रहा ॥ ७९ ॥ और स्त्रीचरित्र को जाननेवाला व पात्रभूत स्त्री को जानता व न विश्वास करता हुआ वह ब्राह्मण मुनि उस स्त्री को गोद में करके सोताथा ॥ ८० ॥ इस के अनन्तर अन्य दिन में वह ब्राह्मणी रजस्वला हुई इससे मेरे विश्वास के कारण रात्रि में वह तपस्विनी अलग

दारुणिजलमेवच ॥ आहरिष्येतुगृह्णीष्व विनीतंमामुपस्थितम् ॥ ७७ ॥ इत्थंपुराबकाभिख्यं बकवृत्तिमुपाश्रितम्॥ तदार्जवेकृतमतिरनुजग्राहमाम्मुनिः ॥ ७८ ॥ ततोतीवविनीतोहं भूत्वातंब्राह्मणीयुतम् ॥ विश्वासनायसुदृढं तोषयामिदिनेदिने॥७९॥ सचजानन्मुनिःपत्नीं पात्रभूतामविश्वसन् ॥ स्त्रीचरित्रविदङ्केतां विधायस्वपितिद्विजः॥८०॥ अथान्यस्मिन्दिनेसाभूद्ब्राह्मण्यथरजस्वला॥ तत्पृथक्शायिनीरात्रौ विश्वासान्मेतपस्विनी॥ ८१ ॥ इदमन्तरमित्येव विचिन्त्याहंप्रहर्षितः ॥ मलिम्लुचाकृतिर्भूत्वा निशीथेतामथाहरम् ॥ ८२ ॥ विललापतदाबाला ह्रियमाणामयोच्चकैः॥ मैवंमैवमितिज्ञात्वा मांस्वरेणाब्रवीन्मुनिम् ॥ ८३ ॥ बकवृत्तिरयंदुष्टो धर्मकञ्चुकमाश्रितः ॥ हरतेमांदुराचारस्तस्मात्त्वंरक्षगालव ॥ ८४ ॥ तवशिष्यःपुराभूत्वा कोप्येषोद्यमलिम्लुचः ॥ मांजिहीर्षतितद्ब्रह्मन् शरण्यशरणंभव ॥ ८५ ॥ तद्वाक्यसमकालंस प्रबुद्धोगालवोमुनिः ॥ तिष्ठतिष्ठेतिमामुक्त्वा गतिस्तम्भंव्यधान्मम ॥ ८६ ॥ ततश्चिन्ताकृति

सोरही ॥ ८१ ॥ यही समय है यह विचार कर मैं प्रसन्न हुआ व चोर के आकारवाला होकर आधीरात को मैंने उसको हरलिया ॥ ८२ ॥ तब मुझसे हरी जाती हुई उस स्त्री ने ऐसा मत ऐसा मतकर इसतरह विलाप किया व मुझको जानकर मुनि से कहा ॥ ८३ ॥ कि हे गालवजी ! धर्मकी कवचमें आश्रित होकर दुष्ट आचरणवाला यह बगुले के से बर्तावबाला दुष्ट मुझको हरताहै इसलिये तुम रक्षाकरो ॥ ८४ ॥ पहले तुम्हारा शिष्य होकर कोई भी यह चोर आज मुझको हरताहै इससे रक्षा कीजिये व शरणागत के रक्षक होवो ॥ ८५ ॥ उसके वचनहीके समान समय में वे गालवमुनि जगे व खड़े हो २ ऐसा मुझ से कहकर मेरी चाल को

रोंकदिया ॥ ८६ ॥ तदनन्तर मुनिसे रोंकाहुआ मैं चिन्ता से संयुत आकारवाला हुआ व लज्जित मैं प्रसिद्ध मैं लाजसे अपने अंगोंमें पैठासा जाताथा ॥ ८७ ॥ तदनन्तर क्रोधितहो मेरे पास आकर गालव ने वज्रके समान असह्य उस वचन को मुझ से कहा कि जिससे मैं बगुलाहुआ ॥ ८८ ॥ गालवजी बोले कि बगुलेके ऐसे बर्तावमें वर्तमान होकर मैं जिसलिये तुझसे छलागया उसीकारणसे हे नीचनर ! तुम बहुत समयतक बगुला होगे ॥ ८९ ॥ अधर्ममें प्राप्त मैं इसप्रकार मुनिसे शापितहुआ जो मैं कि पराई स्त्रीमें स्नेह करताहुआ इस अनर्थको प्राप्तहुआ ॥ ९० ॥ संसार में ऐसी कुछ आयुर्बल न्यूनकारक वस्तु नहीं है जैसा कि यहां पराई स्त्रीका

रहंस्तम्भितोमुनिनाभवम् ॥ व्रीडितःप्रविशामीव स्वाङ्गानिकिललज्जया ॥ ८७ ॥ ततःप्रकुपितःप्राह मामभेत्याथ गालवः ॥ तद्वज्रदुःसहंवाक्यं येनाहमभवंबकः ॥ ८८ ॥ गालव उवाच ॥ बकवृत्तिमुपाश्रित्य वञ्चितोहंयतस्त्वया ॥ तस्माद्बकस्त्वंभविता चिरकालंनराधम ॥ ८९ ॥ इतिशप्तोहमभवं मुनिनाधर्म्ममाश्रितः ॥ परदारेरमन्योहमनर्थमिममागतः ॥ ९० ॥ नहीदृशमनायुष्यं लोकेकिञ्चनविद्यते ॥ यादृशंपुरुषस्येह परदारोपसेवनम् ॥ ९१ ॥ ततःसतीमत्संस्पर्शदूषिताङ्गीतपस्विनी ॥ मयाविमुक्तास्नात्वामां तथैवानुशशापह ॥ ९२ ॥ एवंताभ्यामहंशप्तोश्वत्थपर्णोपमोभयात् ॥ कम्पमानःप्रणम्योभाववोचंतत्रदम्पती ॥ ९३ ॥ गणोहमीश्वरस्यैव दुर्विनीततरोयुवा ॥ विरोधएवकुरुतो भगवन्तावनुग्रहम् ॥ ९४ ॥ नवनीतमिवप्रोक्तं हृदयंहिद्विजन्मनाम् ॥ प्रकुप्यन्तिप्रसीदन्ति क्षणेनापिप्रसादिताः ॥ ९५ ॥ त्वयिविप्रप्रपन्नस्य त्वमेवशरणंमम ॥ भूमौस्खलितपादानां भूमिरेषावलम्बनम् ॥ ९६ ॥ गणाधिपत्यमपिमे

समीप सेवन है ॥ ९१ ॥ तदनन्तर मेरे छूनेसे दूषित अंगोंवाली वह तपस्विनी पतिव्रता मुझ से छूटकर नहाकर वैसेही मुझको शाप देतीभई ॥ ९२ ॥ इसप्रकार उन दोनोंसे शापित होकर डरसे पीपलके पत्तेके समान कांपताहुआ मैं प्रणामकर वहां दोनों स्त्री पुरुषोंसे बोला ॥ ९३ ॥ कि नम्रतारहित व विनय से हीन युवावस्था वाला मैं शिवही का गणहूं आप दोनों विरोधही में दयाकीजिये ॥ ९४ ॥ ब्राह्मणोंका हृदय नैनूका ऐसा कहागयाहै क्योंकि वे क्रोधित होतेहैं व क्षणहीभर से प्रसन्न करायेहुये वे प्रसन्नहोजाते है ॥ ९५ ॥ हे विप्रजी ! आपकी शरणमें प्राप्तहुये मेरे आपही रक्षकहैं क्योंकि भूमिमें लरखरायेहुये चरणोंवाले जनोंकी भूमिही सहारा होती

है ॥ ९६ ॥ गर्वोंकी स्वामिता भी मुझको तिरस्कार का स्थान है दुष्ट विनयवाले मनुष्य की सम्पत्तियां विपत्ति के अन्तवाली होती हैं ॥ ९७ ॥ इसप्रकार भली भांति वे पुरुष जानते हैं जोकि विवेकी हैं और आत्मा के ज्ञान विना नीचजन दोनों वस्तुओं को नहीं जानते हैं ॥ ९८ ॥ दुष्ट विनयवाला पुरुष लक्ष्मी, ऐश्वर्य व विद्याको पाकर बहुत समयतक स्थान पै नहीं टिकता है जैसे कि अहंकारसे गर्वित मैं हुआ ॥ ९९ ॥ विद्याका मद व धनका गर्व और तीसरा कुलीनता का गर्व मदान्ध मनुष्योंके ये मदहोतेहैं और येही सज्जनोंके शान्तिकारक होतेहैं॥१००॥नहीं जीतेहुये चित्तवाले जिन मनुष्योंकी बुद्धि भविष्यत्कालके फलसे शोभित नहीं

जातंपरिभवास्पदम् ॥ विपदन्ताहिजायन्ते दुर्विनीतस्यसम्पदः ॥ ९७ ॥ विदुरेवंविधंसम्यक् पुरुषायेविवेकिनः ॥ नैवोभयंविदुर्नीचा विनानुभवमात्मनः ॥ ९८ ॥ दुर्विनीतःश्रियंप्राप्य विद्यामैश्वर्यमेवच ॥ नतिष्ठतिचिरंस्थानं यथाहं मदगर्वितः ॥ ९९ ॥ विद्यामदोधनमदस्तृतीयोभिजनोमदः ॥ एतेमदामदान्धानामेतएवसतान्दमाः ॥ १०० ॥ नोदर्कशालिनीबुद्धिर्येषामविजितात्मनाम् ॥ श्रियश्चचपलास्तैर्हिनीयन्तेमाद्दृशैर्जनैः ॥ १ ॥ तत्प्रसीदमुनिश्रेष्ठ शापान्तंमेधुनाकुरु॥दुर्विनीतेष्वपिसदाक्षमासाराहिसाधवः ॥२॥ इत्थं०यवस्यविज्ञप्तो विनीतेनापिवैमया प्रसादप्रवणोभूत्वा शापान्तंमेतदा०यधात ॥ ३ ॥ छन्नकीर्तिसमुद्धारसहायस्त्वंभविष्यसि ॥ यदेन्द्रद्युम्नभूपस्यतदामोक्षमवाप्स्यसि ॥ ४ ॥ इत्यहंमुनिशापेन तदाप्रभृतिपर्वते ॥ हिमाचलेबकोभूत्वा काश्यपेयोवसामिच ॥ ५ ॥ राज्यंचिरायुरितिमे घृतकम्बलस्य जातिस्मरत्वमधुनापि तथानुभावात् ॥ शापाद्बकत्वमभवन्मुनिगालवस्य तद्भद्र सर्वमुदितं

होतीहै उन्हीं मेरे समान पुरुषों से लक्ष्मी चञ्चलता में प्राप्त कीजाती है ॥ १ ॥ इस लिये हे मुनिश्रेष्ठ ! प्रसन्न होवो व इस समय मेरे शापका अन्त कीजिये क्योंकि नम्रतारहित पुरुषों में भी साधुलोग क्षमाके सारांशवाले होतेहैं ॥ २ ॥ ऐसा यत्नकरके नम्रतासंयुत भी मुझसे विज्ञापित (खुशामद कियेहुये) उन गालव मुनिने उस समय प्रसन्नता की ओर झुँककर मेरे शापका अन्त किया ॥ ३ ॥ कि जब इन्द्रद्युम्न राजाके नष्टहुये यशके उधारनेमें तुम सहाय होगे तब मोक्ष पावोगे॥ ४ ॥ इस प्रकार मुनिके शापसे कश्यपका पुत्र मैं तब से लगाकर बगुला होकर हिमाचल पर्वत पै बसता हूं ॥ ५ ॥ हे कल्याणरूप ! राज्य व इस भांति मेरी बहुत

दिनोंतक आयुर्बल और वैसेही इस समय भी जातिका स्मरण होना घृतकम्बल के प्रभावसे है व गालवमुनि के शापसे बगुलापन हुआ आपने आज जो कुछ पूंछा वह सब कहागया ॥ १०६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांमहीप्रादुर्भावेपञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

दो० । घुघुवा इन्द्रद्युम्न सन कह्यो अपन सब हाल । सो छठवें अध्यायमें वर्णित कथा रसाल ॥ नारदजी बोले कि नाड़ीजङ्घनामक बगुले से कहाहुआ वचन सुन कर मार्कण्डेय समेत राजा बड़े दुःखी हुये ॥ १ ॥ व उस वचन को सुनकर तुल्य दुःखवाले गालवमुनि ने आंसुवों समेत आंखोंवाले व दुःखित राजाको देखकर फिर उनके लिये बगुलेसे कहा ॥२॥ कि हे महाभाग, पक्षिन् ! आशाको करके हमदोनों तुम्हारे समीप आयेथे और यह इन्द्रद्युम्न ऐसा राजा हम तुम दोनोंको बहुत

भवताद्य पृष्टम् ॥ १०६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे कुमारिकाखण्डे महीप्रादुर्भावे पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

नारदउवाच ॥ नाडीजङ्घबकेनोक्तांवाचमाकर्ण्यभूपतिः ॥ मार्कण्डेयेनसंयुक्तो बभूवातीवदुःखितः ॥ १ ॥ तन्निशम्यमुनिर्भूपं दुःखितंसाश्रुलोचनम् ॥ समानव्यसनःप्राहतदर्थेसपुनर्बकम् ॥ २ ॥ विधायाशांमहाभाग त्वदन्तिकमुपागतौ ॥ आवाञ्चिरायुर्ज्ञात्वासाविन्द्रद्युम्नइतिद्विजः ॥ ३ ॥ निष्पन्नंनास्यतत्कार्य्यं प्राणान्नेष्यतिसंक्षयम् ॥ वह्निप्रवेशनपरं वैराग्यंसमुपागतः ॥ ४ ॥ तन्मामुपागतोहञ्चत्वांसिद्धंनास्यवाञ्छितम् ॥५॥ तदेनमनुयास्यामि मरणेनत्वयाशपे ॥ आशांकृत्वाभ्युपाघातं निराशन्नेक्षितुंसमाः ॥ ६ ॥ जीवन्तिसाधवस्तस्माज्जीवितान्मरणंवरम् ॥ प्रार्थितंचामुनाहृत्स्थं मयाचास्मैप्रतिश्रुतम् ॥ ७ ॥ त्वांमित्रंतत्परिज्ञाने धृत्वाहृदिचिरायुषम् ॥ असम्पादयतोनार्थः प्रतिज्ञात

आयुर्बलवाले जानकर आयाथा ॥ ३ ॥ और इसका वह कार्य नहीं सिद्धहुआ इससे प्राणोंको नाशमें प्राप्तकरैगा क्योंकि अग्निप्रवेशपरायण वैराग्यको यह प्राप्तहुआ है ॥ ४ ॥ इसीलिये यह मेरे समीप आयाथा और मैं तुम्हारे पास आया परन्तु इस का मनोरथ नहीं सिद्धहुआ ॥ ५ ॥ इससे मृत्यु करके मैं इसका अनुगामीहूंगा यह तुम्हारी सौगन्द करताहूं क्योंकि आशाको नाशकरके निराश पुरुष को देखने के लिये समदर्शी सज्जनलोग नहीं जीतेहैं इस कारणसे जीनेसे मरना उत्तम है और इसने हृदय में टिकीहुई बातकी प्रार्थना किया व मैंने इससे प्रतिज्ञा कियाथा ॥ ६ । ७ ॥ और उसके जानने में तुझ मित्रको हृदयमें दीर्घ आयुर्बलवाला जानकर

यह आयाया व प्रतिज्ञा कीहुई वस्तुको न सिद्ध करतेहुये मेरा आयुर्बल से प्रयोजन नहीं है ॥ ८ ॥ हे मित्र ! इस समय याचकों की आशा न पूर्ण करनेवाले पापके कारण प्रतिज्ञा कियेहुये मेरी प्रशंसा प्राणोंके त्यागने से है ॥ ९ ॥ व हरिश्चन्द्रकी नाईं सत्यप्रतिज्ञा होना मनुष्यों के मध्यमें प्रशंसित नहीं है मित्रोंमें स्नेहका कम होताहै और वह मित्र सातपद कहागया है ॥ १० ॥ वह स्नेह कैसा है कि जिसमें मित्र दुःखित देखाजाता है ऐसा देखताहुआ मैं यशरूपी शरीरके लिये इसके समेत अग्निसाधन करूंगा हे मित्र ! यह सत्य कहताहूं मुझको आज्ञादीजिये हे पक्षियों में उत्तम, महाभाग, नाडीजङ्घ ! मेरे साथ यह तुम्हारा दर्शन पिछला

ममायुषा ॥ ८ ॥ कलुषेणार्थिनामाशापूरकेणसखेधुना ॥ प्रतिश्रुतकृतःश्लाघ्या ह्यसूनांत्यजतश्च मे ॥ ९ ॥ हरिश्चन्द्रस्येवनृणां नश्लाघ्यासत्यसन्धता ॥ मित्रेस्नेहस्यपर्यायस्तच्चसाप्तपदंस्मृतम् ॥ १० ॥ स्नेहस्सकीदृशोमित्रंदुःखितोयत्रदृश्यते ॥ एवंपश्यन्नहंसाकममुनावह्निसाधनम् ॥ ११ ॥ करिष्येकीर्तिवपुषः कृतेसत्यमिदंसखे ॥ अनुजानीहिमामेतद्दर्शनंतवपश्चिमम् ॥१२॥ मयासहमहाभाग नाडीजङ्घद्विजोत्तम ॥१३॥ नारदउवाच ॥ वज्रवद्दुस्सहांवाचं मार्कण्डेयसमीरितम् ॥ शुश्रावसत्वरंध्यात्वा प्रतीतःप्राहतावुभौ ॥१४॥ नाडीजङ्घउवाच ॥ यद्येवन्तदिमंमित्रं निशन्तंज्वलनेधुना ॥ निवारयमुनिश्रेष्ठ मत्तोस्तिचिरजीवितः ॥ १५ ॥ प्राकारकर्णनामासावुलूकश्शिवपर्वते ॥ सज्ञास्यतिमहीपालमिन्द्रद्युम्नमसंशयम् ॥ १६ ॥ तस्मादहंत्वयासार्द्धममुनाचशिवालयम् ॥ व्रजामितंशिखरिणां मित्रकार्यप्रसिद्धये ॥ १७ ॥ इतीदमुक्त्वातेजग्मुस्त्रयोपिद्विजपुङ्गवाः ॥ कैलासंददृशुस्तत्र तमुलूकंस्वनीडगम् ॥ १८ ॥ कु

है॥११।१२।१३॥ नारद बोले कि मार्कण्डेयसे कहेहुये वज्रके समान असह्यवचन उसने सुना व क्षणभर ध्यानकर प्रसन्नहो उन दोनोंसे कहा ॥ १४ ॥ नाडीजङ्घ बोला कि यदि ऐसा है तो हे मुनिश्रेष्ठ ! इससमय अग्निमें पैठतेहुये इस मित्रको मना करिये क्योंकि प्राकारकर्णनामक यह घुघुवा मुझसे बड़ी उमरवाला शिवपर्वत (कैलास) पै है वह इन्द्रद्युम्न राजाको निस्सन्देह जानैगा ॥ १५ । १६ ॥ इस लिये मित्रकार्य की सिद्धिके निमित्त तुम्हारे व इसके साथ मैं उस शिवजी के स्थान वाले पर्वत पै जाऊंगा ॥ १७ ॥ इस तरह यह कहकर वे तीनोंभी द्विजोत्तम कैलासपर्वत को गये वहां अपने घोंसले में प्राप्त उस घुघुवेको देखा ॥ १८ ॥ इस

घुघुवे ने उस बगुला से सम्भाषण किया व स्वागत याने अच्छीतरह के आने के प्रश्नसे पूँछा तब उन दोनों ने होनेवाले मनोरथ को कहा ॥ १९ ॥ कि तुम दीर्घ आयुवाले हो क्या इन्द्रद्युम्न राजाको जानतेहो उलूक बोला कि पृथ्वीमें मुझको पैदाहुये अट्ठाईस कल्पहुयेहैं ॥२०॥ और यह इन्द्रद्युम्न राजा पृथ्वीमें न देखागया न सुनागया उसकी उस बडी आयुर्बल को सुनकर राजा विस्मय में प्राप्तहुआ ॥ २१ ॥ व उस समय दुःखी हुआ और इसने उसकी आयुर्बल का कारण पूंछा कि यदि तुम्हारा ऐसा आयुर्बल है तो तुमको कैसे प्राप्तहुआ उसको कहिये ॥ २२ ॥ और अत्यन्तही निन्दित यह घुघुवापन कैसे हुआ उलूक बोला कि हे कल्याणरूप!

तसंविदसौतेन बकःस्वागतपूजया ॥ पृष्टश्चतावुभौप्राह तत्सर्वम्भाविवाञ्छितम् ॥ १९ ॥ चिरायुरसिजानीषे त्वमिन्द्रद्युम्नकंनृपम् ॥ उलूकउवाच ॥ अष्टाविंशत्प्रमाणामे कल्पाजातस्यभूतले ॥ २० ॥ नदृष्टोनश्रुतोवासाविन्द्रद्युम्नो नृपःक्षितौ ॥ तच्छ्रुत्वाविस्मितोभूपस्तस्यायुरतिमात्रतः ॥ २१ ॥ दुःखितोभूत्तदाहेतुं पप्रच्छासौतदायुषः ॥ एवमायुर्यदितव कथंप्राप्तंब्रवीषितत् ॥ २२ ॥ उलूकत्वंकथमिदंजुगुप्सितमतीवच ॥ उलूकउवाच ॥ शृणुभद्रयथादीर्घमायुर्मेशिवपूजनात् ॥ २३ ॥ जुगुप्सितमुलूकत्वं शापेनचमहामुनेः ॥ वसिष्ठकुलसम्भूतः पुराहमभवंद्विजः ॥ २४ ॥ घण्ट इत्येवविख्यातोवाराणस्यांशिवेरतः ॥ धर्म्मंश्रवणप्रीतश्चसाधूनांसंसदिस्वयम् ॥ २५ ॥ श्रुत्वास्मिपूजयामीशं बिल्वपत्रैरखण्डितैः ॥ नमालतीनमन्दारः शतपत्रन्नमल्लिका ॥ २६ ॥ तथाप्रियाणिश्रीवृक्षो यथामदनविद्विषः ॥ अखण्ड बिल्वपत्रेणाप्येकेनशिवमूर्द्धनि ॥ २७ ॥ निहितेननरैःपुण्यंप्राप्यतेलक्षपुष्पजम् ॥ अखण्डितैर्बिल्वपत्रैः श्रद्धयास्वय

सुनिये कि जिसप्रकार मेरे दीर्घआयुर्बल शिवजी के पूजन से हुआ ॥ २३ ॥ व महामुनि के शापसे निन्दित घुघुवापन हुआ है पुरातन समय वसिष्ठके वंशमें उपजाहुआ मैं ब्राह्मणहुआहूं ॥२४॥ जो मैं कि घण्ट इसीनामसे प्रसिद्ध व शिवपूजनमें परायण काशीपुरी में रहताथा और साधुवों की सभामें आपही धर्मके सुनने से प्रसन्न रहताथा ॥ २५ ॥ और सुनकर बिन कटेहुये बिल्वपत्रों से शिवको पूजता था न मालती और न मन्दार व न शतपत्र (कमल) और न चमेली ॥ २६ ॥ उस प्रकार कामदेवके वैरी (शिव) जीको प्रियहै जैसा कि बिल्वका वृक्ष प्याराहै एक भी अखण्डित बिल्वपत्र शिवजी के मस्तक पै धरने से मनुष्योंको लाख फूलों से

उपजाहुआ पुण्य प्राप्तहोता है श्रद्धासे आपही करके लायेहुये अखण्डित बिल्वपत्रों से ॥ २७ । २८ ॥ लिंगका पूजन करके लाख वर्षतक स्वर्गमें बसता है उत्तम शास्त्रों से यह सुनकर मैं शिवजी को श्रद्धासे तीन २ बिल्वके पत्रोंसे त्रिकाल पूजताथा तदनन्तर सौवर्षके अन्तमें चन्द्रभालजी प्रसन्नहुये ॥ २९ । ३० ॥ व प्रत्यक्षहो-कर मेघके समान गम्भीरवाणी करके मुझसे बोले ॥ ३१ ॥ शिवजी बोले कि हे द्विजेन्द्र! अखण्डित बिल्वपत्रके पूजनसे मैं तुम्हारेऊपर प्रसन्नहूं जो तुम्हारा मनोरथ हो उसको मांगो मैं दुर्लभभी वस्तुको दूंगा ॥३२॥ जिस प्रकार एकभी अखण्डित बिल्वपत्रसे मेरी प्रसन्नता होतीहै उसप्रकार उन करोड़ों बिल्वपत्रों से नहीं होती ॥३३॥

[illegible] माशतैः ॥ २८ ॥ लिङ्गप्रपूजनंकृत्वा वर्षलक्षंवसेद्दिवि ॥ सच्छास्त्रेभ्यइतिश्रुत्वा पूजयाम्यहमीश्वरम् ॥ २९ ॥ त्रिकालं [illegible] श्रीवृक्षस्यत्रिभिस्त्रिभिः ॥ ततोवर्षशतस्यान्तेतुतोषशशिशेखरः ॥ ३० ॥ प्रत्यक्षीभूयमामाह मेघग[illegible] ॥ ३१ ॥ ईश्वरउवाच ॥ तुष्टोस्मितवविप्रेन्द्राखण्डबिल्वदलार्चनात् ॥ वृणीष्वाभिमतंयत्ते प्रदास्याम्य[illegible] पत्रेण यथातुष्टिःप्रजायते ॥ एकेनापिभवेत्तेषां तथानममकोटिभिः ॥ ३३ ॥ इत्यु[illegible] चरणाभिरवरन्देव कुरुमामजरामरम् ॥ ३४ ॥ अथलीलाविलासोमां तथे[illegible] ॥ ३५ ॥ कृतकृत्यन्तदात्मानं ज्ञातवांश्चाप्यहंस्थितौ ॥ एत[illegible] विद्याक्षरार्थवित् ॥ सुदर्शनेतिप्रथिता प्रियात[illegible] रूपेणाप्रतिमाभुवि ॥३८॥ तस्यांत[illegible]

[illegible] कि मुझको अजर अमर कीजिये ॥ ३४ ॥ इसके अनन्तर [illegible] मैंने अपना को भी कृतार्थ जाना इसीसमय [illegible] ऋग्वेद, यजुर्वेद व सामवेद का ज्ञाता और अत्र- [illegible] प्रसन्न रहतीथी पृथ्वीमें रूपसे एककी य[illegible]

[illegible] क्रमण याने विव[illegible] विचारकर उस द्विजने [illegible] समय मित्रोंके आगे मैं अत्यन्त[illegible] ही विकल मैंने उत्तम अङ्गोंवाली, [illegible]तीहुई उ[illegible]

देवलकी कन्याथी ॥ ३८ ॥ उसमें उस देवलसे कन्याहुई जोकि अपने वंशमें विशेषरहित थी वह शिशुता के निवृत्त होनेसे क्रमकरके युवावस्था के सम्मुखहुई ॥ ३९ ॥ गुणों से शोभित उस कन्याको देखने के लिये ब्रह्माके पिताभी न समर्थहुये, अवस्था के मिलापमें याने शिशुता के अलग होने व युवावस्था के आगमन में मैंने उसको देखा ॥ ४० ॥ जोकि यौवन के शरीर में पैठकर निकालेहुये अन्य भावोंसे सुन्दरी व तिलके समान श्याम आखोंवाली ॥ ४१ ॥ सखियों के साथ वह खेलतीथी जोकि सुन्दरता की मूर्त्तिसी थी हे कल्याणरूप ! उस उत्तम कटिवाली स्त्रीको देखकर मैंने चिन्तन किया ॥ ४२ ॥ कि यह ब्रह्मा और है जिससे अति-

स्मादभूत्कन्या निर्विशेषानिजान्वये ॥ निवृत्तबालभावाभूत्क्रमात्संयौवनोन्मुखी ॥ ३९ ॥ नालंबभूवतांद्रष्टुं तन यांगुणशालिनीम् ॥ कस्यापिजनकस्साच वयस्सन्धौमयेक्षिता ॥ ४० ॥ प्रविश्ययौवनाभोगे भावैरतिमनोहरा ॥ निर्वास्यमानैरपरैस्तिलसन्तुलिताक्षिभिः ॥ ४१ ॥ क्रीडमानावयस्याभिर्लावण्यप्रतिमेवसा ॥ व्यचिन्तयमहंभद्र ता न्निरीक्ष्यसुमध्यमाम् ॥ ४२ ॥ अनन्याकृतमन्योसौ विधिर्येनातिनिर्मिता ॥ ततस्सात्त्विकभावानां तत्क्षणादस्मिगो चरम् ॥ ४३ ॥ प्रापितोलीलयाहत्य बाणैःकुसुमधन्वना ॥ ततोमयास्खलद्वाचां पृष्टाकस्येतितत्सखी ॥ ४४ ॥ प्राहेति भृगुवंशस्य कन्येयंद्विजजन्मनः ॥ अनूढाद्यापिकेनापि समायातात्रखेलितुम् ॥ ४५ ॥ श्रुत्वैतत्कामदेवस्य शरव्रातै र्भृशंहतः ॥ पितरंप्रणतोगत्वा ययाचेतांभृगूद्वहम् ॥ ४६ ॥ सचमांसदृशंज्ञात्वा शीलेनचकुलेनच ॥ श्रियाचैवार्थिनेम

शय करके बनाईहुई यह सबसे उत्तम कीगईहै तदनन्तर उसीक्षण कामदेव के बाणोंसे लीलाकरके ताड़ित होकर मैं सात्त्विकभावों के दृष्टिगोचर प्राप्त कियागया उसके उपरान्त मुझसे लरखराती हुई वाणीकरके उसकी सखी यह पूंछीगई कि यह किसकी कन्याहै ॥ ४३ । ४४ ॥ उसने यह कहा कि भृगुवंशवाले ब्राह्मण की यह कन्याहै जोकि आजभी किसीसे भी नहीं ब्याहीगई है वह यहां खेलनेके लिये भलीभांति आईहै ॥ ४५ ॥ यह सुनकर कामदेव के शरसमूहों से बहुतही ताडित मैंने भृगुवंशनायक उसके पिताके समीप जाकर प्रणामकर उस कन्याको मांगा ॥ ४६ ॥ और उनने शील, कुल व लक्ष्मीकरके मुझको तुल्य जानकर पूर्वके क्रमसे

मुग्ध याचकके लिये वचनसे देदिया ॥ ४७ ॥ तदनन्तर याचना कियेहुये भार्गव को यह कहतेहुये उसने सुना कि उस कुरूप ब्राह्मणके लिये मैं दीगईहूं ॥ ४८ ॥
तब बहुत रोतीहुई उसने मातासे कहा कि देखिये वैसेही कियागया जैसा कि अनुचित करतेहुये जनकने स्वयंवरमें कियाथा ॥ ४९ ॥ विष घोलकर पीऊंगी व
अग्निमें पैठूंगी यह अच्छाहै परन्तु कुरूप पतिका विवाह करनेकेलिये स्त्री किसीप्रकार अच्छी नहीं होती ॥ ५० ॥ तदनन्तर माताने उस कन्याको समझाकर भार्गव
से कहा कि तुमको आग्रह (हठ) से इस कन्याको कुरूप के लिये न देनाचाहिये ॥ ५१ ॥ उसने प्यारीके वचन सुनकर धर्मशास्त्रों को देखकरके कहा कि

हां ददौवाचापुरःक्रमात् ॥ ४७ ॥ ततस्तयायाच्यमानस्य भार्गवस्याशृणोदिति ॥ दत्तास्मितस्मैविप्राय निरूपायेति
जल्पतः ॥ ४८ ॥ रोरूयमाणाजननीमाहपश्यतथाकृतम् ॥ अयोग्यंवैविदधता जनकेनयथावरे ॥ ४९ ॥ विषमालो
ड्यपास्यामि प्रवेक्ष्यामिहुताशनम् ॥ वरन्नतुविरूपस्योद्वोढुंभार्याकथञ्चन ॥ ५० ॥ ततस्संबोध्यजननी तांसुतामाह
भार्गवम् ॥ नदेयास्मैत्वयाकन्या विरूपायेतिचाग्रहात् ॥ ५१ ॥ सवल्लभावचःश्रुत्वा धर्म्मशास्त्राण्यवेक्ष्यच ॥ दत्ताम
पिहरेत्पूर्वा श्रेयांश्चेदाव्रजेद्वरः ॥ ५२ ॥ अर्वाक्शिलाक्रमणतो निष्ठास्यात्सप्तमेपदे ॥ इतिव्यवस्यप्रददावन्यस्मैतां
द्विजस्सुताम् ॥ ५३ ॥ श्वोभाविनिविवाहेतु तच्चसर्वंमयाश्रुतम् ॥ ततोतीवविलज्जोहं वयस्यानांपुरस्तदा ॥ ५४ ॥ नश
क्तोवदनंभद्रे तथादर्शयितुंनिजम् ॥ कामार्त्तातीवतांसुप्तामुत्तमाङ्गींतदाहरम् ॥ ५५ ॥ नीत्वादुर्गतमेदेशे कृत्वाचोद्वाहि

शिलाक्रमण याने विवाह में पत्थर टालनेके पहले यदि उत्तम वर आवै तो पहले मनसे दीहुई कन्याको भी लेलेवै क्योंकि सप्तपदी होनेपर विवाहकी सिद्धिहोती है
ऐसा विचारकर उस द्विजने अन्यवर के लिये उस कन्याको देदिया ॥ ५२ । ५३ ॥ जब दूसरे दिन विवाह होनेवालाथा तब मैंने उस सब वृत्तान्त को सुना तदनन्तर
उस समय मित्रोंके आगे मैं अत्यन्तही लज्जितहुआ ॥ ५४ ॥ और वैसेही हे कल्याणकारक ! अपना मुख दिखानेकेलिये न समर्थ हुआ उससमय कामदेवसे अत्यन्त
ही विकल मैंने उत्तम अङ्गोंवाली, सोतीहुई उस कन्याको हरलिया ॥ ५५ ॥ व बड़े दुर्गम देशमें लेजाकर व गन्धर्व विवाह से विवाहवाली धिकर तदनन्तर हृदय

में चाहाहुआ मैथुनसेवनकार्य उससमय न चाहतीहुई स्त्रीसे किया इसके अनन्तर प्रातःकालही उसका पिता चरणों के पीछेसे मेरे समीप आकर ॥ ५६ । ५७ ॥ व निवृत्ति (मोक्षपरक) कर्मों से घिरेहुये उन भार्गव द्विजने विवाह कीहुई उस कन्याको देखकर हे कल्याणरूप ! क्रोधितहो उस समय मुझको शापदिया ॥ ५८ ॥ भार्गवजी बोले कि जिसलिये तुमने राक्षस के धर्मसे मेरी कन्याका विवाह कियाहै इससे पापके कारण तुम शीघ्रही राक्षस होवो ॥ ५९ ॥ ऐसा शापित मैंने चरण ग्रहणपूर्वक इसको प्रणामकर आंसूसमेत नेत्रोंकरके गद्गदवचन समेत हाय हाय ऐसाकहा ॥ ६० ॥ तदनन्तर मैंने कहा कि दोषरहित मुझको आप किसलिये ऐसा

कंविधिम् ॥ गान्धर्वेणविवाहेन ततोकार्यंहृदीप्सितम् ॥ ५६ ॥ अनिच्छन्तींतदाबालां बलात्सुरतसेवनम् ॥ अथानुप दमागत्य तत्पिताप्रातरेवमाम् ॥ ५७ ॥ निवृत्तिसंवृतोविप्रस्तांवीक्ष्योद्वाहितांसुताम् ॥ शशापकुपितोभद्र मान्तदा नींसभार्गवः ॥ ५८ ॥ भार्गवउवाच ॥ निशाचरस्यधर्मेणत्वयोद्वोढासुताममम ॥ तस्मान्निशाचरःपापाद्भवत्वमवि लम्बितम् ॥ ५९ ॥ इतिशप्तःप्रणम्यैनं पादोपग्रहपूर्वकम् ॥ हाहेतिचाब्रवमहंसाश्रुनेत्रंसगद्गदम् ॥ ६० ॥ ततोहमब्रवंक स्मादद्दोषंमाम्भवानिति ॥ शपतेभवतादत्ता ममवाचापुरासुता ॥ ६१ ॥ सोद्वोढातेमयाकन्या दानंसकृदितिस्मृत म् ॥ सकृज्जल्पन्तिराजानः सकृज्जल्पन्तिचद्विजाः ॥ ६२ ॥ सकृत्प्रदीयतेकन्या त्रीण्येतानिसकृत्सकृत् ॥ प्रतिश्रु तात्वयालब्धा तदाकालमियंमया ॥ ६३ ॥ उद्वोढाचाधुनानाहमुचितश्शापभाजनम् ॥ वृथाकुप्यन्तिमह्यंच भवन्त स्तद्विचार्यताम् ॥ ६४ ॥ योदत्त्वाकन्यकांवाचा पश्चाद्धरतिदुर्म्मतिः ॥ सयातिनरकंचेति धर्म्मशास्त्रेषुनिश्चितम् ॥ ६५ ॥

शाप देतेहो आपने पहले वाणी से मुझको कन्या दियाथा ॥ ६१ ॥ मैंने उसी तुम्हारी कन्याको ब्याहाहै व ऐसा कहाहै कि दान एकहीबार होताहै व राजा एकही बार कहते हैं और ब्राह्मण एकही बार कहते हैं ॥ ६२ ॥ व कन्या एकही बार दीजातीहै ये तीनों एकही एकबार होतेहैं तुमसे उस समय प्रतिज्ञा कीहुई यह कन्या मुझको मिलीथी ॥ ६३ ॥ व इससमय मने ब्याह किया इससे मैं शापका पात्र योग्य नहींहूं मेरे ऊपर आप वृथा कोप करतेहैं उसको विचारिये ॥ ६४ ॥ जो दुर्बुद्धि

पुरुष वाणी से कन्याको देकर पीछे हरलेता है वह नरकको जाताहै यह धर्मशास्त्रों में निश्चय कियागया है ॥ ६५ ॥ इस मेरे सत्यवचन को सुनकर व हृदयसे विचारकर पश्चात्ताप से संयुक्त इस मुनिने मुझसे यह कहा ॥ ६६ ॥ कि मेरा वचन अन्यथा न होगा तुम घुघुवा होगे हे द्विजोत्तम ! घुघुवाभी निशाचर कहाजाता है ॥ ६७ ॥ व जब इन्द्रद्युम्न के जानने में तुम सहायी होगे तब हे विप्रजी ! अपने स्वरूपको पावोगे उन मुनिने यह मुझसे कहा ॥ ६८ ॥ उनके वचन के समान समय में मेरे यह घुघुवापन हुआहै कि जिसको ब्रह्माके इतने अट्ठाईस दिन हुये हैं ॥ ६९ ॥ पुरातन समय बिल्वपत्रों करके चन्द्रभालजी का बहुत पूजन करनेसे प्र-

तदाकर्ण्यवचस्यासौ तथ्यंमद्वचनंहृदा ॥ पश्चात्तापसमोपेतो मुनिर्मामितिचाब्रवीत् ॥ ६६ ॥ नमेस्यादन्यथा वाक्यमुलूकस्त्वंभविष्यसि ॥ निशाचरोह्युलूकोपि प्रोच्यतेद्विजसत्तम ॥ ६७ ॥ यदेन्द्रद्युम्नविज्ञाने सहायीत्वंभविष्यसि ॥ तदास्वांप्रकृतिंविप्र प्राप्स्यसीत्यब्रवीत्समाम् ॥ ६८ ॥ तद्वाक्यसमकालंच कौशिकत्वमिदंमम ॥ एतावन्तिदिनान्यासीदष्टाविंशतिकंविधेः ॥ ६९ ॥ बिल्वीदलैरतिपुराशशिशेखरस्यसम्पूजनेनममदीर्घतरंकिलायुः ॥ सञ्जातमत्रचजुगुप्सितमस्यशापात कैलासरोधसिनिशाचररूपमासीत् ॥ ७० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेमहीप्रादुर्भावेषष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

उलूकउवाच ॥ इतीदमुक्तमखिलं पूर्वजन्मसमुद्भवम् ॥ स्वरूपमायुषोहेतुः कौशिकत्वस्यचेतिमोः ॥ १ ॥ इत्युक्त्वा विरतेतस्मिन् कौशिकस्यसनामनि ॥ नाडीजङ्घोबकोमित्रमाहतंदुःखितोवचः ॥ २ ॥ नाडीजङ्घउवाच ॥ यदर्थंवयमा

सिद्धमें मेरी बड़ीभारी आयुर्बल है व इनके शापसे यहां कैलासके किनारे पै निन्दित निशाचररूप हुआ है ॥ ७० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेदेवीदयालुमिश्र विरचितायांभाषाटीकायांमहीप्रादुर्भावेषष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥

दो० । वानर शिवहिं झुलाय जिमि नृपति भयो सो आय । सोइ सप्तम अध्यायमें चरित अहै सुखदाय ॥ उलूक बोला कि पूर्वजन्म में उपजाहुआ यह समस्त चरित्र कहागया व हे मित्र ! स्वरूप व आयुर्बल का कारण और घुघुवा होने का वृत्तान्त वर्णन कियागया ॥ १ ॥ यह कहकर जब कौशिक का सनामा वह घुघुवा

चुपारहा तब नाडीजङ्घ बगुला दुःखितहोकर उस मित्रसे वचन बोला ॥ २ ॥ नाडीजङ्घ बोला कि हे महामुने ! जिसलिये हमलोग आयेथे वह कार्य न सिद्धहुआ इस लिये तीनोंकाभी मरण निश्चयकर प्राप्तहुआ ॥ ३ ॥ इन्द्रद्युम्नके न ज्ञातहोनेपर यह कल्याणरूप राजामरनेकी इच्छा करताहै व उसके पीछे मित्र मार्कण्डेयजी व उन का मित्र मैंभी प्रकटही मृत्युको प्राप्तहूंगा ॥ ४ ॥ मित्रके कार्य में परायण जो पुरुष मरतेहुये मित्रको देखता है उस दुष्टात्मा के जीनेको धिक्कार है धिक्कार है ॥ ५ ॥ इसलिये हे द्विज ! मरतेहुये इन दोनोंका मैं अनुगामी हूँगा और तुमसे मैं पूंछता हूं क्योंकि नमस्कार व लिपटना भी पिछला है ॥ ६ ॥ मित्र व अतिथि से प्रतिज्ञा

यातास्तन्नसिद्धंमहामते ॥ कार्यंतन्मरणंनूनं त्रयाणामभ्युपागतम् ॥ ३ ॥ इन्द्रद्युम्नापरिज्ञाने भद्रकोयंमुमूर्षति ॥ त स्यानुमित्रंमार्कण्डस्तस्यत्वहमपिस्फुटम् ॥ ४ ॥ मित्रकार्येविनिर्वृत्तो म्रियमाणन्निरीक्षते ॥ योमित्रंजीवितन्तस्यधि गस्तिधिग्दुरात्मनः ॥ ५ ॥ तदेतावनुयास्यामि म्रियमाणावहंद्विज ॥ आपृच्छेत्वांनमस्कार आश्लेषश्चापिपश्चिमः ॥ ६ ॥ प्रतिज्ञातमनिष्पाद्य मित्रस्याभ्यागतस्यच ॥ कथन्नरानलज्जन्ते हताशाजीवितेप्सवः ॥७॥ तस्माद्वह्निंप्रवेक्ष्या मि सार्द्धमाभ्यामसंशयम् ॥ आपृष्टोस्यधुनास्नेहान्ममदेहिजलाञ्जलीम् ॥ ८ ॥ इत्युक्तवत्युलूकोसौ नाडीजङ्घेसगद्ग दम् ॥ साश्रुनेत्रंस्थितंभूपं प्राहवाचंसुधामिव ॥ ९ ॥ उलूकउवाच ॥ मयिजीवतिमित्रेते भवान्मृत्युमुपैतिचेत् ॥ अद्य प्रभृतिकस्तर्हि सुहृदोभिलषिष्यति ॥ १० ॥ अस्त्युपायोमहानत्र गन्धमादनपर्वते ॥ चिरायुर्ममगृध्रोस्तिमित्रंप्राण समस्सुहृत् ॥ ११ ॥ सविज्ञास्यतिवोभीष्टमिन्द्रद्युम्नंमहीपतिम् ॥ इत्युक्त्वापुरतस्तस्थावुलूकस्सचभूपतिः ॥ १२ ॥

कीहुई वस्तुको न सिद्धकर आशाको नाश करनेवाले व जीनेकी इच्छावाले मनुष्य क्यों नहीं लज्जित होतेहैं ॥ ७ ॥ इस लिये इन दोनों समेत निस्सन्देह अग्नि में पैठूंगा इस समय स्नेहसे पूंछे जातेहो मुझको जलकी अञ्जली दीजिये ॥ ८ ॥ नाडीजङ्घके ऐसा कहनेपर यह उलूक स्थितहोकर आंसूसमेत नेत्रोंकरके गद्गदवचन समेत राजासे अमृतकी नाईं वचन बोला ॥ ९ ॥ उलूक बोला कि मुझ तेरे मित्रके जीतेहुये यदि आप मृत्युको प्राप्तहोतेहो तो आजसे लगाकर कौन मित्रकी अभिलाषा करैगा ॥ १० ॥ इस विषय में बड़ीयत्न है कि गन्धमादनपर्वत पै दीर्घ आयुर्बलवाला व प्राणोंके समान प्यारा गीध मेरा मित्रहै ॥ ११ ॥ वह तुम लोगों

क प्रिय इन्द्रद्युम्न राजाको विशेषकर जानैगा यह कहकर उलूक आगे खड़ा होगया और वह राजा॥ १२ ॥ व मार्कण्डेय और बगुला गन्धमादनपर्वत पै गये इस
के अनन्तर आतेहुये व आगे स्थित उस मित्रको देखकर ॥ १३ ॥ यह गीध प्रसन्नहोके अपने घोंसले से सामने आया व पहले सम्भाषणाकर और कुशल प्रश्न
आसन, भोजनों से सत्कार करके इस गीधराज ने उस उलूक व उन सबोंसे कार्य पूंछा और उसने कहा कि यह बगुला मेरा व इन मुनिका प्रसिद्धमें मित्रहै ॥
१४।१५ ॥ व यह तीसरा भी मुनिका मित्रहै और यह उद्योग मित्रके लियेहै इन्द्रद्युम्न के जाननेपर यह जियैगा अन्यथा न जियैगा ॥ १६ ॥ व यह बगुला अग्निमें

**मार्कण्डेयोबकश्चैव प्रययुर्गन्धमादनम् ॥ तमायान्तमथालोक्य वयस्यंपुरतःस्थितम् ॥ १३ ॥ स्वकुलायात्प्रहृष्टोसौ
गृध्रस्सम्मुखमाययौ ॥ कृतसंविदसौपूर्वं स्वागतासनभोजनैः ॥ १४ ॥ उलूकंगृध्रराजस्तं कार्यंपप्रच्छतांस्तथा ॥ स
चाचख्यावयंमित्रो बकोमेस्यमुनेःकिल ॥ १५ ॥ मुनेरपितृतीयोयं मित्रस्यार्थेयमुद्यमः ॥ इन्द्रद्युम्नपरिज्ञाने ह्ययंजी
वतिनान्यथा ॥ १६ ॥ वह्निंप्रवेक्ष्यतिबकस्त्वयंतदनुवैवयम् ॥ मयानिषिद्धोयंज्ञात्वा त्वांचिरंतनमात्मनः ॥ १७ ॥ तच्चे
ज्जानासितंब्रूहि चतुर्णांन्देहिजीवितम् ॥ संरक्ष्याप्नुहिसत्कीर्तिं क्षयंचशीघ्रमंहसाम् ॥ १८ ॥ गृध्रउवाच ॥ षट्पञ्चा
शद्व्यतीतामे कल्पाजातस्यकौशिक ॥ नदृष्टोनश्रुतोस्माभिरिन्द्रद्युम्नोमहीपतिः ॥ १९ ॥ तच्छ्रुत्वाविस्मयाविष्ट
इन्द्रद्युम्नोपिदुःखितः ॥ पप्रच्छजीवितेहेतुमतिमात्रंविहङ्गमम् ॥ २० ॥ गृध्रउवाच ॥ शृणुभद्रपुराजात्या मर्कटोह
न्तुचापलः ॥ आसंकदाचिदभवद्वसन्तोथऋतुःक्रमात् ॥ २१ ॥ तत्राग्रेदेवदेवस्य वनमध्येशिवालये ॥ भवोद्भवस्यपु**

पैठेगा उसके पीछे हम लोग पैठेंगे क्योंकि अपना से पुराने तुमको जानकर मैंने इसको मना कियाथा ॥१७॥ इसलिये यदि तुम उसको जानतेहो तो कहिये व चारोंको
जीव दीजिये और भलीभांति रक्षाकर उत्तम यश पावोगे व शीघ्रही पापोंके नाशको प्राप्त होगे॥ १८॥ गीध बोला कि हे कौशिक ! मुझको पैदाहुये छप्पन कल्प बीते हैं
परन्तु हमने इन्द्रद्युम्न राजाको न देखाहै न सुनाहै ॥१९॥ उसको सुनकर विस्मयसे संयुत इन्द्रद्युम्नजी दुःखितहुये और बहुतही जीनेमें पक्षीसे कारण पूंछा ॥ २०॥
गीध बोला कि हे कल्याणरूप ! सुनिये कि पुरातन समय मैं जातिकरके चञ्चल बन्दर हुआहूं इसके अनन्तर किसी समय क्रमसे वसन्तऋतुहुई ॥ २१ ॥ उस वसन्त

ऋतुमें पहले समय चैत्रके शुक्लपक्षमें चौदसिदिन, चित्रानक्षत्र व हर्षणनामक योगमें वनके बीच शिवालयमें संसार के पैदा करनेवाले देवदेव जगत् योगेश्वरजीके आगे दमनकोत्सव हुआ ॥ २२।२३ ॥ उस उत्सवमे मनुष्योंने सोनेके झूलेमें शिवलिङ्गको धरदिया और रातमे उस झूले पै चढ़कर स्वभावही से चञ्चलजाति की चपलता से बार २ बडी देरतक चलाया इसके अनन्तर प्रातःकाल पूजा के लिये मनुष्य आये व झूलेपै चढेहुये मुझ बन्दर को देखकर दण्डोंसे मारा और वज्रके समान असह्य व बड़ेपुष्ट उनके प्रहारों से ॥ २४ । २५ । २६ ॥ झूलनपै बैठाही हुआ मैं शिवजी के मन्दिर मे मरगया और शिवके झुलाने के माहात्म्य से मैं राजाके घर

रतो जगद्योगेश्वरस्यहि ॥ २२ ॥ चतुर्द्दशीदिनेचित्रानक्षत्रेहर्षणाभिधे ॥ योगेचैत्रेसितेपक्षे आसीद्दमनकोत्सवः ॥ २३ ॥ तत्रसौवर्णदोलायां लिङ्गमारोपितञ्जनैः ॥ निशायामधिरुह्याहं दोलांताञ्चव्यचालयम् ॥ २४ ॥ निसर्गजातिचापल्याच्चिरकालंपुनःपुनः ॥ अथप्रभातआयाता जनाःपूजाकृतेकपिम् ॥ २५ ॥ दोलाधिरूढमालोक्य लगुडैर्मांव्यताडयत् ॥ तेषांप्रहारैस्सुदृढैर्बहुभिर्वज्रदुस्सहैः ॥ २६ ॥ दोलासंस्थितएवाहं प्रमृतश्शिवमन्दिरे ॥ शिवान्दोलनमाहात्म्याज्जातोहंनृपमन्दिरे ॥ २७ ॥ काशीश्वरस्यतनयःप्रतीतोस्मिकुशध्वजः ॥ जातिस्मरस्ततोराज्यं क्रमात्प्राप्याहमैश्वरम् ॥ २८ ॥ कारयामिधरापृष्ठे चैत्रेदमनकोत्सवम् ॥ यथायथान्दोलयति शिवन्दोलास्थितन्नरः ॥ २९ ॥ तथातथाशुभंयातिपुण्यमायातिभद्रक ॥ शिवदीक्षामुपागम्याखिलसंस्कारसत्कृतः ॥ ३० ॥ शिवाचार्यैर्विमुक्तोहं पशुपाशैस्तदागमात् ॥ विवाहदीक्षापर्यन्तान् संस्कारान्प्राप्यसर्वतः ॥ ३१ ॥ आराधयामिदेवेशं चन्द्रभालमुमापतिम् ॥

में पैदाहुआ ॥ २७ ॥ और काशीश्वर का पुत्र मैं जातिका स्मरणकरनेवाला कुशध्वज विख्यातहुआ, तदनन्तर क्रमसे राज्यपाकर मैं भूपृष्ठमें चैतके महीने मे शिवजी का दमनकोत्सव कराताथा मनुष्य दोलापै बैठेहुये शिवजी को ज्यों २ झुलाताहै ॥ २८ । २९ ॥ हे कल्याणरूप ! त्यों २ अमङ्गल नाश होताहै व पुण्य आती है शिवकी दीक्षा (मन्त्र) को पाकर समस्त संस्कारों से संस्कार कियाहुआ ॥ ३० ॥ मैं उस समय शिवके आचार्यो करके शास्त्र के द्वारा पशुओं की नाईं फँसरियों से छोडागया व विवाह और दीक्षातक समस्त संस्कारों को पाकर मैं ॥ ३१ ॥ देवताओंके स्वामी, पार्वती के पति शिवजीका आराधन करतारहा जोकि सब दुःखोंके

नाशके कारण व लोकोंके गुरु (माता, पिता) हैं ॥ ३२ ॥ और चित्तकी वृत्तियों के रोंकसे वैराग्य में अभ्यास के योग करके रुद्र के माहात्म्य को जपते व आठवें (रौद्र) रसकी भावना करतेहुये मैंने शिवजी का आराधन किया ॥ ३३ ॥ तदनन्तर पुष्ट स्थानवाले समाधान के अभ्यास के कारण विघ्नोंसे न ध्वस्त कियेहुये मुझको जानकर प्रसन्नहो शिवजीबोले ॥ ३४ ॥ महादेवजी बोले कि हे कुशध्वज ! मैं प्रसन्नहूं चाहेहुये वरदान को मांगो क्योंकि पृथ्वीमें किसीका भी ऐसा अनुष्ठान नहीं है ॥ ३५ ॥ यह सुनकर मैंने शिवजी से मांगा कि मैं इसी देहसे तुम्हारा गण होऊं महादेवजी ने ऐसाही होगा यह मुझ से कहा ॥ ३६ ॥ तदनन्तर कैलास को

समस्तक्लेशविच्छेदकारणंजगतांगुरुम् ॥ ३२ ॥ चित्तवृत्तिनिरोधेन वैराग्याभ्यासयोगतः ॥ जपन्रुद्रीयमाहात्म्यं भावयन्नष्टमंरसम् ॥ ३३ ॥ ततोमांप्रणिधानेनाभ्यासेनदृढभूमिना ॥ अन्तरायानुपहतं ज्ञात्वातुष्टोब्रवीद्धरः ॥ ३४ ॥ ईश्वरउवाच ॥ कुशध्वजाहंतुष्टोद्य वरंवरयवाञ्छितम् ॥ नहीदृशमनुष्ठानं कस्याप्यस्तिमहीतले ॥ ३५ ॥ इतिश्रुत्वा वृतश्शम्भुर्मयाभूयांगणस्तव ॥ अनेनैवशरीरेण तथेत्येवाहमांप्रभुः ॥ ३६ ॥ ततःकैलासमानीय विमानंसममादिशत ॥ सर्वरत्नमयंदिव्यं दिव्यैश्वर्यसमावृतम् ॥ ३७ ॥ विचरामिप्रतीतोहं तदारूढोयथेच्छया ॥ अथकालेकचिन्मात्रे व्यतीतेत्रैवपर्वते ॥ ३८ ॥ गवाक्षाधिष्ठितोपश्यं वसन्तेमुनिकन्यकाम् ॥ प्रवातिदक्षिणेवायौ मदनाग्निप्रदीपने ॥ ३९ ॥ अग्निवेश्यसुतांभद्र विवस्त्राञ्जलमध्यगाम् ॥ उद्भिन्नयौवनांश्यामां मध्यक्षामांमृगेक्षणाम् ॥ ४० ॥ विस्तीर्णजघनाभोगां रम्भोरुंसंहतस्तनीम् ॥ तामङ्कुरितलावण्यांजलसेकादिनाग्रतः ॥ ४१ ॥ प्रोन्निद्रपङ्कजमुखीं वर्णनीयत

लाकर उन शिवजी ने समस्त रत्नमय व दिव्य ऐश्वर्यों से घिराहुआ उत्तम विमान मुझको दिया ॥ ३७ ॥ उसीपै चढ़कर प्रसन्नहो मैं इच्छाके अनुकूल घूमताथा इसके अनन्तर कुछ समय बीतनेपर इसी पर्व्वत पै ॥ ३८ ॥ विमान के गवाक्ष (खिरकी) में बैठेहुये मैंने वसन्तऋतुमें कामदेवकी अग्निको बढ़ानेवाले दक्षिणपवन के चलनेपर मुनिकी उस कन्याको देखा ॥ ३९ ॥ हे कल्याणरूप ! जोकि अग्निवेश्यकी कन्या पानीके बीचमें प्राप्त व वसनहीन व उठे यौवनवाली और श्यामा व बीच में पतली व मृगनयनी थी ॥ ४० ॥ व चौंड़े जघनस्थलवाली व केलाकीसी जङ्घोंवाली व कड़े कुचोंवाली और आगेसे पानी इत्यादि के छिड़काव से उत्पन्नहुई

शोभावाली थी ॥ ४१ ॥ और खुलेहुये कमल के समान मुखवाली व अत्यन्त वर्णन करनेके योग्य आकारवाली व ज्ञानकी यथात्मता के अनुकूल विद्वानोंसे भी वर्णन करनेयोग्य थी ॥ ४२ ॥ शरसमूहों के समान उठायेहुये कटाक्षों के चलाने से आपही कामदेव ने उसके अङ्गोंमें टिककर मुझको दृढ़तापूर्वक ताड़न किया ॥ ४३ ॥ इस प्रकार सखियों से संयुत व इच्छा के अनुकूल खेलतीहुई उसको कामदेवसे विकल मैंने विमानपर से उतरकर हरलिया ॥ ४४ ॥ हे कल्याणमय ! मुझसे पकडी व विमान पै बैठीहुई उस कन्या ने बड़े उच्चस्वर से हे तात ! ऐसा बड़ाभारी शब्द करती हुई बहुतही रोदन किया ॥ ४५ ॥ तदनन्तर उदासीन होकर दौडतीहुई

माकृतिम् ॥ यथाविज्ञानयाथात्म्याद्विद्वद्भिरपिवर्ण्यकाम् ॥ ४२ ॥ प्रोद्यत्कटाक्षविक्षेपैः शरव्रातैरिवस्मरः ॥ स्वयंत दङ्गमास्थाय ताडयामासमान्दृढम् ॥ ४३ ॥ वयस्यासंवृतामेवं खेलमानांयथेच्छया ॥ अवतीर्याहमहरं विमानान्मद नातुरः ॥ ४४ ॥ साग्रहीतामयादीर्घं प्रकुर्वाणामहारवम् ॥ तातेतिचविमानस्था रुरोदातीवभद्रक ॥ ४५ ॥ ततोवय स्यास्तादीना मुनिमाहुःप्रधाविताः ॥ वैमानिकेनकेनापि ह्रियतेतवपुत्रिका ॥ ४६ ॥ रुदन्तींभगवन्नेतां त्रातुंयोग्योसि सर्वतः ॥ तासान्तदाकर्ण्यवचो मुनिर्भद्रतपोनिधिः ॥ ४७ ॥ अग्निवेश्योभ्यगात्तस्या व्योमन्यनुपदन्त्वरन् ॥ तिष्ठति ष्ठेतिमामुक्त्वा संस्तभ्यतपसागतिम् ॥ ४८ ॥ ततःप्रकुपितःप्राह मुनिर्मामितिदुस्सहम् ॥ यस्मान्मदीयातनया मां सपेशीवतेहृता ॥ ४९ ॥ गृध्रेणेवाधुनाव्योम्नि तस्माद्गृध्रोभवद्रुतम् ॥ अनिच्छन्तीमदीयेयं सुताबालातपस्विनी ॥ ५० ॥ त्वयाहृताधुनासीत्तच्छापमाप्नुहिदुर्मते ॥ इत्याकर्ण्यभयाविष्टो लज्जयाधोमुखोमुनेः ॥ ५१ ॥ पादौप्रगृह्य

उन कन्याओं ने मुनिसे कहा कि कोई विमानवाला पुरुष तुम्हारी कन्याको हरता है ॥ ४६ ॥ हे भगवन् ! रोतीहुई उस कन्याको तुम सब भांतिसे रक्षाकरने के योग्यहो हे कल्याणमय ! उनके उस वचन को सुनकर तपस्या के निधान ॥ ४७ ॥ अग्निवेश्यजी शीघ्रता से आकाश में उसके चरणों के पीछेगये व खडेहो २ यह मुझसे कहकर तपस्या से चालको रोंककर ॥ ४८ ॥ तदनन्तर क्रोधित होतेहुये मुनिने मुझसे यह असह्य वचन कहा कि बड़े खेदकी बातहै जिसलिये मांसके पिंड वाली मेरी कन्याको तुमने इस समय आकाश में गीधकी नाईं हराहै उसीकारण शीघ्रही गीधहोवो न चाहतीहुई मेरी यह छोटीकन्या तपस्विनी ॥ ४९ । ५० ॥ इस

समय तुमसे हरीगई है इस लिये हे दुर्बुद्धे ! शापको प्राप्तहोवो ऐसा सुनकर डर से संयुत मैं लज्जासे नीचेमुख करके मुनिके ॥ ५१ ॥ चरण पकड़कर गिरपड़ा व उससमय बहुतही रोतेहुये मैंने कहा कि मैंने जानकर इसको नहीं हराहै व आज भी धर्षणा नही कियाहै ॥ ५२ ॥ हे तपस्या के निधान ! प्रसन्नता करिये व मेरे शापको नाश कीजिये क्योंकि जिनके तपही धनहै वे सज्जन प्रणाम कियेहुये पुरुषोंके ऊपर स्वभावहीसे क्षमावान् होतेहैं इस लिये मैं गीध मत होऊं मेरे ऊपर प्रसन्न होवो इसप्रकार शरण में प्राप्त मैंने इन मुनिका प्रणाम किया ॥ ५३ । ५४ ॥ और प्रसन्न होतेहुये मुनिने कहा कि मेरा वचन कभी झूंठ नहीं होवै है परन्तु इन्द्रद्युम्न

न्यपतद्रुदन्नतितरान्तदा ॥ नमेयेयंपरिज्ञाय हतानाद्यापिधर्षिता ॥ ५२ ॥ प्रसादंकुरुमेशापं व्यावर्त्तयतपोनिधे ॥ प्रणतेषुक्षमावन्तो निसर्गेणतपोधनाः ॥ ५३ ॥ भवन्तिसन्तस्तद्गृध्रो माभवेयंप्रसीदमे ॥ इतिप्रपन्नेनमया प्रणतोसौ महामुनिः ॥ ५४ ॥ प्रसन्नःप्राहनोमिथ्या ममवाक्यंभवेत्क्वचित् ॥ किन्त्विन्द्रद्युम्नभूपालपरिज्ञानेसहायताम् ॥ ५५ ॥ यदायास्यसिशापस्य तदामुक्तिमवाप्स्यसि ॥ ५६ ॥ इत्युक्त्वासमुनिःप्रायाद्गृहीत्वानिजकन्यकाम् ॥ अखण्डशीलांस्वंस्थानमहंगृध्रोभवन्तदा ॥ ५७ ॥ एवंतदादमनकोत्सवईश्वरस्य आन्दोलनेननृपवेश्मनिमेवतारः ॥ शम्भोर्गणत्वमभवच्चतदाग्निवेश्यशापेनगृध्र इह भद्र तवेदमुक्तम् ॥ ५८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डे महीप्रादुर्भावेदमनकस्यमाहात्म्यन्नामसप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

* ॥ * ॥ * ॥

राजाके जानने में जब तुम सहायता को प्राप्तहोगे तब शापकी मुक्तिको पावोगे ॥ ५५ । ५६ ॥ यह कहकर वे मुनि उत्तम आचरणवाली अपनी कन्याको लेकर अपने स्थानको चलेगये व मैं उससमय गीधहोगया इसप्रकार उस समय दमनकोत्सव में शिवजी के झुलाने से राजा के घरमें मेरा जन्महुआ व शिवजीकी गणता हुईहै और उससमय अग्निवेश्य के शापसे यहां गीधहुआ हे कल्याणमय ! तुमसे यह चरित्र कहागया ॥ ५७।५८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेमहीप्रादुर्भावे देवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांदमनकस्यमाहात्म्यंनामसप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

● ॥ ● ॥ ● ॥

दो० । कछुवा इन्द्रद्युम्न कर कह्यो चरित्र अपार । सो अष्टमअध्याय में वर्णित कथाउदार ॥ नारदजी बोले कि गीधका यह वचन सुनकर दुःख व आश्चर्य से संयुत इन्द्रद्युम्नजी उससे पूँछकर मरनेके लिये प्रारम्भ किया ॥ १ ॥ तदनन्तर घुघुवा आदिकों समेत मरनेकी इच्छावाले उस राजाको देखकरके अपनासे दीर्घआयुबलवाले को भलीभांति विचारकर गीधने कहा ॥ २ ॥ कि ऐसा मतकरो वचन सुनो जोकि हे कल्याणमय ! मुझसे भी प्राचीन है वह तुम्हारे मनोरथ को प्रकटही जानैगा ॥ ३ ॥ मानसर में मन्थरनाम से प्रसिद्ध कछुवा है इस संसार में उसको कुछ अप्रकट नहीं है यहां चलैं ॥ ४ ॥ तदनन्तर घुघुवासमेत प्रसन्न होतेहुये वे

नारदउवाच ॥ गृध्रस्यैतद्वचःश्रुत्वा दुःखविस्मयसंयुतः ॥ इन्द्रद्युम्नस्तमापृच्छ्य मरणायोपचक्रमे ॥ १ ॥ ततस्तमालोक्यतथा मुमूर्षुंकौशिकादिभिः ॥ सहितंसंविचिन्त्याहदीर्घायुषमथात्मनः ॥ २ ॥ मैवंकार्षीःशृणुगिरं भद्रयस्त्वंचिरन्तनः ॥ मत्तोप्यस्तिस्फुटश्चैव यास्यतित्वदभीप्सितम् ॥ ३ ॥ मानसेसरसिख्यातः कूर्मोमन्थरकाख्यया ॥ तस्यनाविदितंकिञ्चिदिहतत्रव्रजामहे ॥ ४ ॥ ततःप्रतीतास्तेभूप मुनिगृध्रबकास्तथा ॥ उलूकसहिताजग्मुस्सर्वेकूर्म्मदिदृक्षवः ॥ ५ ॥ सरःस्थितस्तत्रकूर्मस्तान्निशम्यविहङ्गमान् ॥ कान्दिशीकोविवेशासौ जलंशीघ्रतरन्तदा ॥ ६ ॥ कौशिकोथतमाहेदं प्रहस्यवचनंस्वयम् ॥ कस्मात्कूर्म्मप्रणष्टोद्यविमुखोभ्यागतेष्वपि ॥ ७ ॥ अग्निर्द्विजानांविप्रश्च वर्णानां रमणःस्त्रियः ॥ गुरुःपिताचपुत्राणां सर्वस्याभ्यागतोगुरुः ॥ ८ ॥ विहायतदिमंधर्ममातिथ्यंविमुखःकथम् ॥ गृह्णासिपापंसर्वेषां ब्रूहिकूर्माधुनोत्तरम् ॥ ९ ॥ कूर्मउवाच ॥ चिरन्तनोहिजानामि कर्तुमातिथ्यसत्क्रियाम् ॥ अभ्यागतेष्वप

कछुवा के देखने की इच्छावाले राजा, मुनि, गीध व बगुला सब गये ॥ ५ ॥ वहां तड़ाग में बैठाहुआ यह कछुवा उन पक्षियों को देखकर डरसे भगकर बहुतही शीघ्र उससमय पानीमें पैठगया ॥ ६ ॥ इसके अनन्तर घुघुवा ने हँसकर आपही उस कछुवे से कहा कि हे कूर्म ! आज पाहुनों के आनेपर भी तुम किसलिये विमुखहुयेहो ॥ ७ ॥ ब्राह्मणोंका गुरु अग्नि व सब जातियों का ब्राह्मण व स्त्रीका पति और पुत्रोंका पिता गुरुहै व अभ्यागत (अतिथि) सबका गुरुहै ॥ ८ ॥ इसलिये पहुनईका धर्म छोड़कर विमुख होकर तुम कैसे सबका पाप ग्रहण करोगे हे कूर्म ! इससमय प्रत्युत्तर कहिये ॥ ९ ॥ कूर्म बोला कि बहुत प्राचीन मैं पहुनईका सत्कार

करना जानताहूं कि अतिथियों का पूजन धर्मशास्त्रों में निश्चय कियागयाहै ॥ १० ॥ और इस विषयमें बड़ाभारी कारण है उसको मैं तुमलोगों से कहताहूं मुनिय
समस्त संस्कार व उत्तम नियमोंवाला मैं इतने दिनोंतक अतिथि मनुष्यके भी निश्चयकर विमुख नहीं हुआहूं परन्तु सांखू के ऐसे आकारवाला जो यह पांचवां इ
न्द्रद्युम्न राजा देखपड़ता है इससे मैं बहुतही डरताहूं पुरातनसमय रोचकनामक नगरमें इस राजाके यज्ञ करनेपर ॥११।१२।१३॥ यज्ञकी अग्निसे जलीहुई मेरी
पीठ आजभी बिन घाव नहीं हुईहै इसलिये फिर मुझको डरहुआ कि क्या फिरभी यह बड़ीयत्न करके भूमिमें इस समय मुझको जलावैगा हे कुरुश्रेष्ठ ! कछुवे की

चितिर्धर्म्मशास्त्रेषुनिश्चिता ॥ १० ॥ सुमहत्कारणंचात्र श्रूयतांतद्वदामिवः ॥ नाहंपराङ्मुखोजात एतावन्तिदिनान्यपि॥
११ ॥ अभ्यागतनरस्यापि सर्वसंस्कारसद्व्रती ॥ किन्त्वेषपञ्चमोयोवै दृश्यतेसरलाकृतिः ॥ १२ ॥ इन्द्रद्युम्नोमहीपा
लो बिभेत्यस्मान्महत्तरम् ॥ अमुनायजमानेन रोचकाख्येपुरापुरे ॥ १३ ॥ यज्ञपावकदग्धामे पृष्ठिर्नाद्यापिनिर्व्रणा ॥
तन्मेभयंपुनर्जातं किमयंपुनरेवमाम् ॥ १४ ॥ अतीवयत्नमाध्यायभुविधक्ष्यतिसम्प्रति ॥ इतिवाक्यावसानेतु कूर्मस्य
कुरुसत्तम ॥ १५ ॥ पपातपुष्पवृष्टिस्तु विमुक्ताप्सरसाङ्गणैः ॥ सस्वनुर्देववाद्यानि कीर्त्युद्धारेमहीपतेः ॥ १६ ॥ विस्मिता
स्तेचददृशुर्विमानंपुरतःस्थितम् ॥ इन्द्रद्युम्नकृतेदेव दूतेनाधिष्ठितन्तदा ॥ १७ ॥ अयातयामाःप्रददुराशिषोऽस्मैसुर
द्विजाः ॥ साधुवादोदिविमहानासीत्तस्यमहीपतेः ॥ १८ ॥ ततोविमानमालम्ब्य देवदूतस्तमुच्चकैः ॥ इन्द्रद्युम्नमुवाचे
दं शृण्वतांनाकवासिनाम् ॥ १९ ॥ देवदूतउवाच ॥ नवीकृताधुनाकीर्त्तिस्तवभूपालनिर्मला ॥ त्रिलोक्यामपितच्छ्री

इस वाक्यके अन्तमें ॥ १४।१५ ॥ अप्सराओं के समूहों से छोड़ीहुई फूलोंकी वृष्टि गिरी व राजाके यशउद्धार में देवताओं के बाजाबजे ॥ १६ ॥ उससमय देवदूत जिस
पर बैठाथा इन्द्रद्युम्न के लिये आगे प्राप्त उस विमान को विस्मयमें प्राप्त होतेहुये उन्होंने देखा ॥ १७ ॥ व देवता और ब्राह्मणोंने इसके लिये सफल आशीर्वाद दिया
व आकाश में उस राजाकी बड़ी प्रशंसाहुई ॥ १८ ॥ तदनन्तर विमानको रोककर स्वर्गवासियों के सुनतेहुये देवदूत ने उच्चस्वर से उस इन्द्रद्युम्न से यह कहा ॥ १९॥

देवदूत बोला कि हे राजन्! तुम्हारा निर्मल यश इस समय त्रिलोकमें भी नवीन कियागया इस लिये शीघ्रही इस विमान पै चढ़िये ॥ २० ॥ व चढ़कर तपस्यासे कमायेहुये ब्रह्माके लोकको चलिये मैं तुम्हारे लानेके लिये उन्हीं ब्रह्मासे पठाया गयाहूं ॥ २१ ॥ जबतक मनुष्यका यश पृथ्वीमें प्रसिद्ध होताहै तभीतक अनन्त पुण्य होनेपर स्वर्गीपुरुष स्वर्गमे बसताहै ॥ २२ ॥ देवालय, तड़ाग, बावली, कुवां व बगीचा इत्यादिका लगाना इसीलिये पहले कहेहुये धर्मशास्त्रोंमे निश्चय कियागया है ॥ २३ ॥ इन्द्रद्युम्न बोले कि मेरे प्यारे कछुवा, गीध व मार्कण्डेय, बगुला और घुघुवा ये पांचों मेरे मित्रहैं और इन्हींका यह प्रभावहै ॥ २४ ॥ इसलिये

घ्रं विमानामिदमारुह ॥ २० ॥ गच्छत्वंब्रह्मणोलोकमारुह्यतपसार्जितम् ॥ सम्प्रेषितोहंतेनैव तवानयनकारणात् ॥ २१ ॥ यावत्कीर्त्तिर्मनुष्यस्य पृथिव्यांप्रथिताभवेत् ॥ तावदेवभवेत्स्वर्गी सतिपुण्येत्वनन्तके ॥ २२ ॥ सुरालयसरोवापीकूपारामादिकल्पना ॥ एतदर्थंहिपूर्वाख्यधर्म्मशास्त्रेषुनिश्चिता ॥ २३ ॥ इन्द्रद्युम्नउवाच ॥ अमीमेपञ्चसुहृदो मार्कण्डबककौशिकाः ॥ कूर्म्मगृध्रौप्रभावोयममीषाञ्चममप्रियौ ॥ २४ ॥ तच्चेदमीमयासाकं ब्रह्मलोकंप्रयान्त्युत ॥ पुरःस्थितास्तदायास्ये ब्रह्मलोकन्नचान्यथा॥२५॥ परेषामनपेक्ष्यैव कृतप्रतिकृतंहियः ॥ प्रवर्ततेहितायैव स सुहृत्प्रोच्यतेबुधैः ॥ २६ ॥ स्वार्थेयुक्तधियोयेस्युः परार्थकरणव्रताः ॥ तेपिश्लाघ्याःकिमुतार्थ प्रहाणेनाथसौहृदाः ॥ २७ ॥ प्रतिज्ञातार्थनिर्वाहव्रतालंकृतविग्रहाः ॥ स्वयशोन्नतिदायेस्युरन्वर्थातैर्वसुन्धरा ॥ २८ ॥ मरणायप्रतिज्ञातमघातिनश्चगुरुद्रुहः ॥ पित्रावमानिनःपापाः प्रायोनरकमण्डनाः ॥ २९ ॥ परार्थसाध्यास्तदमी पञ्चसम्प्रतिसाधवः ॥

यदि आगे बैठकर ये मेरे साथ ब्रह्मलोक को चलैं तो मैं ब्रह्मलोकको जाऊंगा अन्यथा न जाऊंगा ॥ २५ ॥ अन्य लोगोंका कियेका बदला न देखकर जो हितही के लिये वर्त्तमान होताहै वह विद्वानों से मित्र कहाजाता है ॥ २६ ॥ व स्वार्थमें लगीहुई बुद्धिवाले जो पुरुष पराया प्रयोजन करनेके नियमवाले होते हैं वेभी प्रशंसनीय हैं और स्वार्थकी हानिसे जो मित्रकार्य करतेहैं उनको क्या कहनाहै ॥ २७ ॥ प्रतिज्ञा कियेहुये प्रयोजन के निबाहने के नियम से भूषित देहवाले जो अपने यश को उन्नतिदायक होतेहैं उन्हीं से वसुन्धरा सत्यनामवाली है ॥ २८ ॥ व मरने के लिये प्रतिज्ञावाले आत्मघाती और गुरुवों के द्रोही व पिताका अपमान करनेवाले

पापी प्रायः नरकके भूषण होतेहैं ॥ २९ ॥ इस लिये इस समय पराये प्रयोजनके सिद्ध करनेवाले ये पांचों साधुहैं जो मेरे यशका उद्धार हुआ वह इन महात्माओं का प्रभाव है ॥ ३० ॥ यदि मेरे साथ वे स्वर्गको जावैंगे तो मैं भी जाऊंगा हे देवदूत ! अन्यथा न जाऊंगा ॥ ३१ ॥ देवदूत बोला कि हे राजन् ! ये सब महादेवजी के गण शापसे भ्रष्टहोकर पृथ्वीमें प्राप्तहुये हैं व शाप के अन्तमें शिवजी के समीप जाना चाहिये ॥ ३२ ॥ इस लिये हे राजन् ! इनको छोड़कर मेरे साथ चलो और शिवदेवको छोड़कर इनको स्वर्ग नहीं रुचता है ॥ ३३ ॥ इन्द्रद्युम्न बोले कि हे कल्याणमय ! यदि ऐसा है तो जाइये मैं स्वर्गको न जाऊंगा किन्तु वैसीही वैसी

ममकीर्तिसमुद्धारः सप्रभावोमहात्मनाम् ॥ ३० ॥ अमीषांयदितेस्वर्गं प्रयास्यन्तिमयासह ॥ तदाहमपियास्यामि देवदूतान्यथानहि ॥ ३१ ॥ देवदूतउवाच ॥ एतेहरगणास्सर्वेशापभ्रष्टाःक्षितिङ्गताः ॥ शापान्तेहरपार्श्वंतु गन्तव्यंपृथिवीपते ॥ ३२ ॥ विहायेमानतोभूपत्वमागच्छमयासह ॥ नचैषांरोचतेस्वर्गो हित्वादेवंमहेश्वरम् ॥ ३३ ॥ इन्द्रद्युम्नउवाच ॥ यद्येवंगच्छतद्भद्र नयास्येहंत्रिविष्टपम् ॥ तथातथायतिष्यामि भविष्यामियथागणः ॥ ३४ ॥ अविशुद्धिन्यूनाधिक्यदूषणैरेषनिन्दितः ॥ स्वर्गस्सदानुअविकस्तस्मादेनंनकामये ॥ ३५ ॥ तत्रस्थस्यपुनःपातभयन्नव्येतिमानसात् ॥ अहर्निशंयतःपुंसस्तस्मात्स्वर्गन्नकामये ॥३६ ॥ सतिपुण्यक्षयेतेन पातितोनिजलोकतः ॥ चतुर्मुखेनवैलक्ष्यं गतोस्मिकथमोमितम् ॥ ३७ ॥ इतीदमुक्त्वातन्दूतं श्रृण्वतोस्यैवविस्मयात् ॥ अप्राक्षीद्भूपतिःकूर्म्मं त्वमायुःकारणंवद॥ ३८ ॥ इदमायुःकथंजातं कूर्मदीर्घतमन्तव ॥ सुहृन्मित्रंगुरुस्त्वंमे येनकीर्त्तिर्ममोद्धृता ॥ ३९ ॥ कूर्म्मउवाच ॥ श्रृणु

यत्यकरूंगा कि जिस प्रकार गणहोऊं ॥ ३४ ॥ अपवित्रता व न्यूनाधिक्य के दोषोंसे यह स्वर्ग सदा निन्दित सुनाजाता है इस लिये मैं इसको नहीं चाहताहूं ॥ ३५ ॥ फिर जिसलिये वहां टिकेहुये पुरुष के मनसे गिरने का डर दिनरात नहीं जाताहै उसी कारण मैं स्वर्गको नहीं चाहताहूं ॥ ३६ ॥ पुण्यनाश होने पर उन चतुरानन से अपने लोकसे गिरायाहुआ मैं विलक्षणता को प्राप्तहूं उसी लोक को मैं किसप्रकार जाऊं ॥ ३७ ॥ इसप्रकार आश्चर्यसे इसीको सुनतेहुये उस दूतसे यह कहकर कछुवेसे राजाने पूँछा कि हे कूर्म ! तुम आयुर्बल का कारण कहो ॥ ३८ ॥ हे कूर्म ! तुम्हारी यह बड़ीभारी आयुर्बल किसप्रकार हुई है स्नेही, मित्र व मेरे गुरु तुमहो

कि जिनने मेरे यशको प्रकट किया ॥३९॥ कूर्म बोला हे राजन् ! सुनने से पापको नाश करनेवाली पुण्यदायिनी कथाको सुनिये जो यह कथा कि बहुत मीठी व शिवजी के माहात्म्यसे संयुत है ॥ ४०॥ हे राजन् ! उत्तम श्रद्धा से इस कथाको सुनताहुआ भी पुरुष पापसे छुटेहुये शरीरवाला होताहै जिसप्रकार कि पुरातनसम य शिवजीकी प्रसन्नता को पाकर मेरे इसप्रकार की यह आयुर्बल व ब्राह्मणता हुई है ॥ ४१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांमहीप्राद्रुर्भावेऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । कछुवा अपनो चरित सब भूपति सों कहि दीन । सोइ नवम अध्याय में वर्णित चरित नवीन ॥ कछुवा बोला कि हे राजन् ! पुरातन समय मैं शांडिल्य

भूपकथांपुण्यां श्रवणात्पापनाशिनीम् ॥ कथांसुमधुरामेतांशिवमाहात्म्यसंयुताम् ॥ ४० ॥ शृण्वन्निमामपिकथांन्नृपतेमनुष्यः सुश्रद्धयाभवतिपापविमुक्तदेहः ॥ शम्भोःप्रसादमधिगम्ययथापुरेवमासीत्प्रसादतइदंममभूद्विजत्वम् ॥ ४१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे कुमारिकाखण्डेमहीप्राद्रुर्भावेऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

कूर्मउवाच ॥ शाण्डिल्यइतिविख्यातः पुराहमभवन्द्विजः ॥ बालभावेमयाभूप क्रीडमानेननिर्मितम् ॥ १ ॥ पुराप्रावृषिपांशूत्थं शिवायतनमुत्तमम् ॥ जलार्द्रावालुकाप्रायंप्रांशुप्राकारशोभितम् ॥ २ ॥ पञ्चायतनविन्यासमनोहरतरन्नृप ॥ विनायकशिवासूर्यमधुसूदनमूर्तिमत् ॥ ३ ॥ पीतमृन्मत्स्वर्णकलशं ध्वजमालाविभूषितम् ॥ कोष्ठतोरणविन्यस्तं दोलकेनविभूषितम् ॥ ४ ॥ दृढपांशुसमुद्भूतसोपानश्रेणिमत्पुरात् ॥ बकपुष्पैस्तथान्यैश्च केदारोत्थैस्समा

ऐसा प्रसिद्ध ब्राह्मण हुआहूँ और शिशुता में खेलते हुये मैंने पहले समय वर्षाऋतु में धूलि से उठा हुआ उत्तम शिवमन्दिर बनाया है जो कि जल से भीगी हुई बालुका से मिलित व ऊँची छहरदिवाली से शोभित था ॥ १ । २ ॥ व हे राजन् ! जो मन्दिर कि पंचगृहों के स्थापन से बड़ा सुन्दर व गणेश, पार्वती, सूर्य और विष्णु की मूर्तियोंसे संयुक्त था ॥ ३ ॥ और पीली मिट्टी से संयुक्त व सोने के कलशोंवाला और ध्वजा व मालाओं से शोभित था और जिस में कोठों से बन्दनवार बँधी थी व भूले से भूषित था ॥ ४ ॥ और नगर से पुष्ट मिट्टी से उपजी हुई सीढ़ियों की पंक्तियों से संयुत था व कियारियोंमें उत्पन्न लाये हुये मरुवा के फूलों से

तथा और फूलों से व हे राजन् ! मन्दार, बिल्वपत्र और दूब से पैदा हुये नवीन अंकुरों करके मैं ने इस प्रकार महादेवजी का सुन्दर पूजन किया ॥ ५ । ६ ॥
तदनन्तर उत्तम क्रियाकी अपेक्षारहित नृत्य शिवजी के आगे प्रारम्भ किया व बालपन में बालगणों से घिरेहुये मैंने शिशुता से एकही वार स्वरसहित गान
किया तदनन्तर हे राजन् ! मरकर मैं वैदिशनगर में जातिके स्मरणवाला ब्राह्मण हुआ व शिवशास्त्रों से दया किये हुये मैं ने शिवमंत्रको पाकर विशेषता से शिव-
पूजन किया ॥ ७ । ८ । ६ ॥ व श्रद्धासंयुत होकर महादेवजी की प्रसन्नता को पाकर शिवलिंग की पूजा किया जो शिवालय का निर्माण करता है वह करोड़

हतैः ॥ ५ ॥ मन्दारैर्बिल्वपत्रैश्च दूर्वोत्थैश्चनवाङ्कुरैः ॥ पूजाविरचितास्म्याशम्भोरितिमयान्नृप ॥ ६ ॥ ततस्ताण्डवमार
ब्धमनपेक्षितसत्क्रियम् ॥ शिवस्यचाग्रतोबाल्याद्गीतञ्चस्वरवर्जितम् ॥ ७ ॥ अकार्षंसकृद्देवाहं बाल्येशिशुगणा
वृतः ॥ ततोमृतोहंजातश्च विप्रोजातिस्मरोनृप ॥ ८ ॥ वैदिशेनगरेकार्षं शिवपूजांविशेषतः ॥ शिवदीक्षामुपागम्यानु
गृहीतश्शिवागमैः ॥ ९ ॥ शिवप्रसादमागम्यलिङ्गंश्रद्धासमन्वितः ॥ कल्पकोटिंवसेत्स्वर्गे यःकरोतिशिवालयम् ॥ १० ॥
अकारिचमहारम्यं विश्वकर्म्मविधानतः ॥ मृन्मयंकाष्ठनिष्पन्नं पक्वेष्टशैलमेवच ॥ ११ ॥ फलमायतनन्दद्यात्क्रमा
द्दशगुणंफलम् ॥ भस्मस्नायीत्रिषवणं भिक्षान्नकृतभोजनः ॥ १२ ॥ जटाधरश्चपश्यंश्च शिवाराधनतत्परः ॥ इत्थंमे
कुर्वतोजातं पुनर्भूपप्रमापणम् ॥ १३ ॥ जातोजातिस्मरस्तत्र तृतीयेहंभवान्तरे ॥ सार्वभौमोमहीपालः प्रतिष्ठानेपुरोत्त
मे ॥ १४ ॥ जयदत्तइतिख्यातस्सूर्यवंशसमुद्भवः ॥ ततोमयाबहुविधाः प्रासादाःकारितान्नृप ॥ १५ ॥ तस्मिन्भवान्तरे

कल्पों तक स्वर्ग में बसताहै ॥ १० ॥ मैंने विश्वकर्मा की विधि से बडा सुन्दर मंदिर बनाया मिट्टी से बना हुआ व काठ से सिद्ध और पक्की ईंट व पत्थर से बनाया
हुआ घर दिये कि जिनमें क्रमसे दश गुना फल है भस्म से नहानेवाला व तीनबार स्नान करनेवाला और भिक्षान्नसे भोजन करनेवाला मैं ॥ ११ । १२ ॥ जटाधारी
शिवजी को देखता हुआ महादेव की आराधना करने में परायण भया हे राजन् ! इस प्रकार करते हुये मेरी फिर मृत्यु हुई ॥ १३ ॥ व उस तीसरे जन्म के बीच में
प्रतिष्ठान नामक उत्तम नागर में जाति के स्मरणवाला, सूर्यवंश में उत्पन्न मैं जयदत्त ऐसा प्रसिद्ध चक्रवर्ती राजा हुआ तदनन्तर हे राजन् ! मैंने बहुत प्रकार के

मन्दिर निर्माण कराया ॥ १४ । १५ ॥ तदनन्तर उस जन्म के बीचमें शिवजीके आराधन में परायण मैंने मरुवा के पुष्पपूर्वक पूजन किया ॥ १६ ॥ व हे राजन्! सोने चांदी व रत्नों के बनायेहुये फूलों से पूजन किया हे नृपश्रेष्ठ! मैं उसप्रकार दानादिको नहीं करताथा ॥ १७ ॥ केवल मैं फूलोंसे शिवलिंगों का पूजन करता था तदनन्तर भगवान् शिवजी प्रसन्नहोकर मुझको अजर-अमर होना वरदान दिया तदनन्तर हे राजन्! उसी शरीर से संयुत मैं और की नाईं असामान्य उस प्रकार के वरको पाकर ॥ १८ । १९ ॥ मदसे अन्ध हाथी की नाईं इस पृथ्वी में घूमता था इसके उपरान्त शिवभक्ति को छोड़कर कामदेव से विकल मैंने ॥ २० ॥ पराये

शम्भोराराधनपरेणच ॥ ततोनिरूपितापूजा बकपुष्पपुरस्सरा ॥ १६ ॥ सौवर्णैराजतैरत्ननिर्मितैःकुसुमैर्नृप ॥ तथा विधन्नदानादि करोमि नृपसत्तम ॥ १७ ॥ केवलंशिवलिङ्गानांपूजांपुष्पैःकरोम्यहम् ॥ ततोमेभगवाञ्छम्भुस्संतुष्टोथ वरन्ददौ ॥ १८ ॥ अजरामरतांराजंस्तेनैववपुषावृतः ॥ ततस्तथाविधं प्राप्यानन्यसाधारणंवरम् ॥ १९ ॥ विचगामि महीमेतां मदान्धइववारणः ॥ शिवभक्तिंविहायाथ नृपाहंमदनातुरः ॥ २० ॥ प्रधर्षयितुमारब्धः स्त्रियःपरपरिग्रहे ॥ आयुषस्तपसःकीर्त्तेस्तेजसोयशसःश्रियः ॥ २१ ॥ विनाशकारणंमुख्यं परदारप्रधर्षणम् ॥ सकर्णःश्रुतिहीनोसौ पश्य न्नन्धोवदञ्जडः ॥ २२ ॥ अचेतनश्चेतनावान् मूर्खोविद्वानपिस्फुटम् ॥ तदाभवतिभूपाल पुरुषःक्षणमात्रतः ॥ २३ ॥ यदैवहरिणाक्षीणां गोचरंयातिचक्षुषाम् ॥ मृतस्यनिरयेवासो जीवतश्चेश्वराद्भयम् ॥ २४ ॥ एवंलोकद्वयहरं परदारप्रधर्ष णम् ॥ यदामरणहीनोहमितिनिश्चयमास्थितः ॥ २५ ॥ ऐहिकामुष्मिकभयं विहायाहंततःपरम् ॥ प्रधर्षयितुमारब्ध

कुटुम्ब में स्त्रियों की धर्षणा करनेका प्रारम्भ किया आयुर्बल, तपस्या, यश, तेज, कीर्त्ति व लक्ष्मी के ॥ २१ ॥ नाशका मुख्य कारण पराई स्त्रीकी धर्षणा करना है यह कानों समेत कर्णहीन व देखताहुआ अन्धा व कहताहुआ गूँगा है ॥ २२ ॥ व चैतन्यतासंयुत अचैतन्य है हे राजन्! विद्वान्भी पुरुष तब क्षणभर में मूर्ख होजाता है ॥ २३ ॥ जब कि मृगनयनियों के नेत्रों के सामने प्राप्त होता है मरेहुये नरक में निवास व जीतेहुये को ईश्वर से डरहोता है ॥ २४ ॥ इसप्रकार पराई स्त्रीकी धर्षणा करना दोनों लोकोंका हरनेवाला है जब कि मैं मृत्यु से हीनहूं इस निश्चय में स्थित हुआ ॥ २५ ॥ उसके उपरान्त इस लोक व परलोक का डर छोड़

कर मैं उससमय हे राजन्! परस्त्रियों की घर्षणा करनी प्रारम्भ किया ॥ २५ ॥ इसके उपरान्त महादेव के वर देने के कारण मर्यादासे रहित मुझको भलीभांति जान
कर यमराज उन शिवजी के समीप गये ॥ २७ ॥ व मेरे धर्मका उलटना शिवजी से उन्होंने कहा कि हे देव ! तुम्हारे प्रभाव से रक्षित इस बड़े पापकारी के दण्डकरने
में मैं नहीं समर्थहूँ तुम मेरे अधिकारमें और को आज्ञा देवो हे ईश ! तुमने संसारके आधाररूपिणी पतिव्रता को कहाहै ॥ २८। २९ ॥ हे स्वामिन् ! गऊ, ब्राह्मण व
उत्तम नियमवाले और लोभहीन व दानके स्वभाववाले और सत्यमें स्थित ये जो पुरुषहैं उनके मध्यमें पतिव्रता अतिमुख्य है ॥ ३० ॥ उसने उन पतिव्रताओं की

स्तदाभूपपरस्त्रियः ॥ २६ ॥ अथमांसपरिज्ञाय मर्यादारहितंयमः ॥ वरप्रदानादीशस्य तदन्तिकमुपाययौ ॥ २७ ॥
व्यजिज्ञपन्मदीयंच शम्भोर्धर्मव्यतिक्रमम् ॥ नाहंतवानुभावेन गुप्तस्यास्यविनिग्रहे ॥ २८ ॥ अतिपापकृतोदेव म
न्नियोगेन्यमादिश ॥ जगदाधाररूपाहि त्वयेशोक्तापतिव्रता ॥ २९ ॥ गावोविप्रास्सुनियमा अलुब्धादानशीलिनः ॥
सत्यनिष्ठाइतिस्वामिंस्तेषांमुख्यतमासती ॥ ३० ॥ तास्तेनधर्षितालुप्तं मदीयन्धर्मशासनम् ॥ वरप्रदानमत्तेनतवैव
परिभूयमाम् ॥ ३१ ॥ जयदत्तेनदेवेश प्रतिष्ठानाधिवासिना ॥ इमान्धर्मस्यभगवान् गिरमाकर्ण्यकोपितः ॥ ३२ ॥ श
शापमांसमानीय वेपमानंकृताञ्जलिम् ॥ ३३ ॥ ईश्वरउवाच ॥ यस्माद्दुष्टसमाचारधर्षितास्तेपतिव्रताः ॥ कामा
त्तेनमयाशप्तस्तस्मात्कूर्म्मःक्षणाद्भव ॥ ३४ ॥ ततःप्रणम्यविज्ञप्तः शापान्तायहरोमया ॥ प्राहषष्टितमेकल्पे विपापो
भवितागणः ॥ ३५ ॥ प्रदीपइतिनामोक्त्वा जगामादर्शनंशिवः ॥ अहंकूर्मस्तदाजातो दशयोजनविस्तृतः ॥ ३६ ॥

घर्षणा किया व हे सुरेश ! तुम्हारेही वर देनेसे मत्त,प्रतिष्ठाननगरमें बसनेवाले जयदत्तने मेरा अनादरकर मेरी धर्मकी आज्ञाका लोप करदिया धर्मराजकी इस वाणीको
सुनकर क्रोधितहो भगवान् शिवजीने ॥ ३१ । ३२ ॥ हाथोंको जोड़े व कांपतेहुये मुझको भलीभांति आनकर शाप दिया ॥ ३३ ॥ महादेवजी बोले कि हे दुष्टआच-
रणवाले ! कामदेव से विकल तुमने जिसलिये पतिव्रताओं की घर्षणा कियाहै उसीकारण मुझ से शापित तुम क्षणभर में कछुवा होवो ॥ ३४ ॥ तदनन्तर प्रणाम
कर मैंने शापके लिये महादेवजी से विनय किया व उन्होंने कहा कि साठिवें कल्प में पापरहित होकर प्रदीपनामक गण होगे यह कहकर शिवजी अन्तर्द्धान होगये

उससमय चालीसकोस चौड़ा मैं कछुवा होगया ॥ ३५। ३६ ॥ व पुरातन समय में यज्ञके सिद्ध करने में यज्ञ करनेवाले तुमने मुझको समुद्रके जल से आना उसको स्मरण करताहुआ मैं तुमसे डरताहूं ॥ ३७॥ क्योंकि तुमने मुझको यहां पीठमें जलाया है व तुम मेरे इन घावोंको देखो यहां कल्पसूत्र की विधिसे बहुत यज्ञोंको ॥ ३८ ॥ हे इन्द्रद्युम्न ! उससमय तुमने पीठपै किया है फिर हे राजन् ! यज्ञ करते हुये तुमकरके विस्तारित यज्ञों से समस्त तीर्थोंके मध्यमें सारांशभूत महीनदी बह चली उसमें केवल नहानेसे मनुष्य सब पापोंसे छूटजाताहै ॥३९।४०॥ तदनन्तर हे राजन् ! किसीभी नैमित्तिक प्रलय में तैरताहुआ मैं सौयोजनवाले इस मानसरो-

समुद्रसलिलान्नीतस्त्वयाहंयज्ञसाधने ॥ पुरस्ताद्यायजूकेन स्मरंस्तच्चबिभेमिते ॥ ३७ ॥ दग्धस्त्वयाहंपृष्ठेत्र व्रणान्येतानिपश्यमे ॥ सवनानिबहून्यत्र कल्पसूत्रविधानतः ॥ ३८ ॥ पृष्ठोपरिकृतान्यासन्निन्द्रद्युम्नतदात्वया ॥ भूयस्संवितैर्यज्ञैर्यजतापृथिवीपते ॥ ३९ ॥ सुस्रावसर्वतीर्थानां सारभूतामहीनदी ॥ तस्यांचस्नानमात्रेण सर्वपापैःप्रमुच्यते ॥ ४० ॥ ततोनैमित्तिकेकस्मिन्नपिप्रलयआगतः ॥ प्लवमानइदंराजन् मानसंशतयोजनम् ॥ ४१ ॥ षट्पञ्चाशत्प्रमाणेन कल्पाममपुरानृप ॥ व्यतीताइहचत्वारः शेषामोक्षस्ततःपरम् ॥ ४२ ॥ एवमायुरिदन्दीर्घमेवंशापाच्चकूर्मता ॥ ममभूदीश्वरस्यैव सतीधर्मद्रुहोनृप ॥ ४३ ॥ ब्रूहिकिंक्रियतांशत्रोरपितेगृहगामिनः ॥ ममपृष्ठिश्चिरंभूप त्वयादग्धाग्निनापुरा ॥ ४४ ॥ अहंज्वलन्तीमिवतां पश्याम्यद्यापिसन्नृप ॥ इदंविमानमायातं त्वयाकस्मान्निराकृतम् ॥ देवदूतसमायुक्तं भुङ्क्ष्वभोगान्निजार्जितान् ॥ ४५ ॥ इन्द्रद्युम्नउवाच ॥ चतुर्मुखेनतेनाहं स्वर्गान्निर्वासितःस्वयम् ॥

वर में आया ॥ ४१ ॥ हे राजन् ! प्रमाणसे छप्पनकल्प मेरे पहले बीतचुके हैं व यहां चार बाकीहैं उसके उपरान्त मोक्ष होगी ॥ ४२ ॥ हे राजन् ! इसप्रकार मेरी यह बड़ी आयुर्बलहुई है व इसप्रकार महादेवही के शापसे मुझ पतिव्रताधर्मके वैरी को कच्छपताहुई ॥ ४३ ॥ हे राजन् ! कहिये कि घरमें आयेहुये तुझ शत्रुका भी क्या कार्य्य किया जाय पुरातन समय तुमने अग्नि से बहुत समयतक मेरी पीठ जलायाहै ॥ ४४ ॥हे उत्तम भूप ! उस पीठ को जलती हुई सी मैं आज भी देखता हूं तुमने देवदूत संयुत आये हुये इस विमान को क्यों निराकरण किया अपनेसे इकट्ठा किये हुये भोगों को भोग कीजिये ॥ ४५ ॥ इन्द्रद्युम्न बोले कि उन्हीं चतुरानन से मैं आपही

स्वर्गसे निकालागया इससे मोक्षके लिये ज्ञान पाकर कर्मोंके नाशको प्राप्तहूंगा ॥ ४६ ॥ इस लिये यदि आप आज घरमें आये हुये मेरी पहुनई करनेवाले हो तो कहिये कि जिसप्रकार कोई भी गुरु मुझ को पारदायक होवै ॥ ४७ ॥ कच्छुवा बोला कि हे राजन्! लोमश नामक महामुनि मुझसे भी बड़ी आयुर्बलवाले हैं मैंने कभी कलापग्राम में उनको पहले देखा है ॥ ४८ ॥ इन्द्रद्युम्न बोले कि इस लिये आइये हमलोग साथही उनके पास चलैं विद्वानों ने तीर्थ से भी अतिपवित्र सत्संगति को कहाहै ॥ ४६ ॥ उससमय इस प्रकार राजाके वचन सुनकर वे सब भी वहाँ शीघ्र ही मुनियों में प्रसिद्ध उन लोमश द्विजेन्द्र को चित्तमें धारणाकर प्रसन्न हो चले जो

कर्मत्त्रयंप्रयास्यामि प्राप्यबोधंविमुक्तये ॥ ४६ ॥ तन्मेगृहागतस्याद्ययदातिथ्यकरोभवान् ॥ तदादिशयथाभूयात्पारदःकोपिमेगुरुः ॥ ४७ ॥ कूर्म्मउवाच ॥ लोमशोनामदीर्घायुर्मत्तोप्यस्तिमहामुनिः ॥ मयाकलापग्रामेस पूर्वदृष्टःकचिन्नृप ॥ ४८ ॥ इन्द्रद्युम्नउवाच ॥ तस्मादागच्छगच्छामस्तमेवसहितावयम् ॥ प्राहुःपूततमांतीर्थादपिसत्सङ्गतिंबुधाः ॥ ४६ ॥ इत्थंनिशम्यनृपतेर्वचनंतदानीं सर्वेपितेषडथतं मुनिमुख्यमाशु ॥ चित्तेविधायमुदितांप्रययुर्द्विजेन्द्रं जिज्ञासवस्सुचिरजीवितहेतुमस्य ॥ ५० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डे महीप्रादुर्भावेकूर्माख्यानन्नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

नारदउवाच ॥ अथतेददृशुःपार्थ संयमस्थंमहामुनिम् ॥ क्रियायोगसमायुक्तं तपोमूर्तिधरंयथा ॥ १ ॥ जटास्त्रिषवणस्नानकपिलाःशिरसातदा ॥ धारयन्तंलोमशाख्यमाज्यासिक्तमिवानलम् ॥ २ ॥ स०यहस्तेतृणौघञ्च छाया

कि इसके बहुत समय तक जीने के कारण को जानने की इच्छावाले थे ॥ ५० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांमहीप्रादुर्भावेकूर्माख्यानंनामनवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दो० । इन्द्रद्युम्न महीपसन लोमश कह निजहाल । सोई दशम अध्याय में वरणत-चरित रसाल ॥

नारद जी बोले कि हे अर्जुनजी ! इस के उपरान्त कर्मयोग से संयुत व संयम में टिके हुये लोमश महामुनिको उन्हों ने देखा जैसे कि मूर्तिधारी तपस्या होवै ॥ १ ॥ उससमय तीन बार स्नान करने से मस्तक करके पिंगल

वर्ण की जटायें धारणकिये थे घी से सींची हुई अग्नि की नाईं लोमश नामक मुनि को देखा ॥ २ ॥ जो द्विजश्रेष्ठ कि छाया के लिये बायें हाथमें तृणसमूह व दाहिने में रुद्राक्षमालाको धारण किये व मैत्र मार्ग में प्राप्त थे ॥ ३ ॥ ब्रह्मचारियों के मध्य में जो पुरुष चन्द्रमा से उपजे हुये प्राणियों की अहिंसा करके जप से सिद्धि को प्राप्त होताहै वह मुनि मैत्र कहलाता है ॥ ४ ॥ बगुला, राजा, ब्राह्मण, मार्कण्डेयजी, घुघुवा, गीध व कछुवा ने उन लोमश को कलापग्राम में देखकर तपस्या के निधान व बड़े प्राचीन उन मुनि को प्रणाम किया ॥ ५ ॥ व इन मुनि से स्वागत याने कुशलप्रश्न और आसन व सत्कार करके वे प्रसन्न किये गये और यथायोग्य

र्थंविप्रसत्तमम् ॥ दक्षिणेचाक्षमालाञ्च बिभ्रतंमैत्रमार्गगम् ॥ ३ ॥ अहिंसयेन्दुसञ्जातप्राणिनांब्रह्मचारिणाम् ॥ यस्सिद्धिमेतिजप्येन समैत्रोमुनिरुच्यते ॥ ४ ॥ बकभूपद्विजोलूकगृध्रकूर्माविलोक्यतम् ॥ नेमुःकलापग्रामेतं चिरन्तनतपोनिधिम् ॥ ५ ॥ स्वागतासनसत्कारेणामुनातेभिनन्दिताः ॥ यथोचितंप्रतीतास्तमाहुःकार्यंहृदिस्थितम् ॥ ६ ॥ कूर्म उवाच ॥ इन्द्रद्युम्नोयमवनीपतिस्सात्रिजनाग्रणीः ॥ कीर्तिलोपान्निरस्तोवै वेधसानाकपृष्ठतः ॥ ७ ॥ मार्कण्डेयादिभिः प्राप्य कीर्त्युद्धारेपिसत्तम ॥ नायंकामयतेस्वर्गं पुनःपातादिभीषणम् ॥ ८ ॥ भवतानुगृहीतोयमिहेच्छतिमहोदयम् ॥ मोक्षाख्यंतदयंभूपः शिष्यस्तेभगवन्मया ॥ ९ ॥ त्वत्सकाशमिहानीतो ब्रूहित्वंचास्यवाञ्छितम् ॥ परोपकरणन्नाम साधूनांव्रतमाहितम् ॥ १० ॥ विशेषात्प्रणतिप्राप्तंशिष्यवृत्तिमुपेयुषम् ॥ सर्वप्राणिष्वपापेषु साधुप्रोक्तमसंश

प्रसन्न होतेहुये उन्होंने हृदय में टिके हुये कार्य्य को कहा ॥ ६ ॥ कछुवा बोला कि यज्ञ करनेवाले जनों में अग्रगण्य ये इन्द्रद्युम्न राजा यश के लोप होजाने के कारण स्वर्ग से ब्रह्मा करके निकाल दियेगये हैं ॥ ७ ॥ हे सत्तम! मार्कण्डेयादिकों करके प्राप्त होकर यशके उधारने पर भी यह राजा फिर गिरने इत्यादि से भयानक स्वर्ग की नहीं इच्छा करताहै ॥ ८ ॥ हे भगवन्! आपसे दया कियाहुआ यह यहां मोक्ष नामक बड़े ऐश्वर्य्य की इच्छा करता है इसलिये तुम्हारे शिष्य इस राजा को मैं ॥ ९ ॥ यहां तुम्हारे समीप लाया शीघ्रही आप इसका मनोरथ कहिये परोपकार नामक सज्जनों का व्रत कहागया है ॥ १० ॥ नम्रता व शिष्यवृत्ति में प्राप्त पुरुष को विशेष

कर उपकार करना चाहिये यह पापरहित सब प्राणियों में साधुओं करके निस्सन्देह कहागया है ॥ ११ ॥ व पूर्वोक्त से अन्य मनुष्य का वैर व मृत्यु की जाती है व नम्र
पुरुष के लिये न देना नरक को देता है ॥ १२ ॥ आप उसको व इस अधर्म्म को जानते हो और हमलोग कैसे जानैं ॥ १३ ॥ लोमशजी बोले कि हे कूर्म्म ! तुमने
यह सब आज हमलोगों से योग्य कहा व धर्म्मशास्त्रसे युक्त उस पुराने चरित्र को मैं स्मरण करायागया ॥ १४ ॥ हे राजन् ! हृदय में टिके हुये सन्देह को भलीभांति
विश्वासपूर्वक कहो कि तुम्हारे क्या संदेह है व क्या कहते हो उसको सुनकर मैं निस्सन्देह कहूंगा ॥ १५ ॥ इन्द्रद्युम्न बोले कि हे भगवन् ! तबतक मेरा पहला

यम् ॥ ११ ॥ विद्वेषंमरणंवापि क्रियतेन्यनरस्यच ॥ अप्रदत्तंप्रणयिने निरयंसंप्रयच्छति ॥ १२ ॥ तद्वेत्तिभवान्नेतं
धर्म्मंवेत्तिकुतोवयम् ॥ १३ ॥ लोमशउवाच ॥ कूर्मयुक्तमिदंसर्वं त्वयाभिहितमद्यनः ॥ धर्म्मशास्त्रानपेतन्तत्स्मारितोस्मि
पुरातनम् ॥ १४ ॥ ब्रूहिराजन्सुविश्रब्धं सन्देहंहृदयस्थितम् ॥ कस्तेकिमब्रवीःश्रुत्वा वक्ष्याम्यहमसंशयम् ॥ १५ ॥
इन्द्रद्युम्नउवाच ॥ भगवन्प्रथमःप्रश्नस्तावदेषममोच्यताम् ॥ ग्रीष्मकालेपिमध्यस्थे रवौकिन्नतवाश्रमः ॥ १६ ॥ कु
टीमात्रोपियच्छायातृणैश्शिरसिपाणिगैः ॥ लोमशउवाच ॥ मर्तव्यमस्त्यवश्यञ्च कोयमस्मैयतिष्यति ॥ १७ ॥
कस्यार्थेक्रियतेगेहमनित्यभवमध्यगैः ॥ यस्यमृत्युर्भवेन्मित्रं पीतंवामृतमुत्तमम् ॥ १८ ॥ तस्यैतद्धुचितंवक्तुमिदं
मेश्वोभविष्यति ॥ इदंयुगसहस्रेषु भविष्यत्यन्वहन्धनम् ॥ १९ ॥ तदप्यल्पत्वमापन्नं काकथामरणावधेः ॥ कारणा
नुगतंकार्यमिदंशुक्रादभूद्वपुः ॥ २० ॥ कथंविशुद्धिमायातिन्तालिताङ्गमतङ्गवत ॥ तदस्यापिकृतेपापंशत्रुषड्वर्गनिर्जि

प्रश्न यह कहाजावै कि ग्रीष्म समय में भी सूर्य्य के मध्यस्थहोनेपर तुम्हारा आश्रम कुटीमात्र भी क्यों नहीं है जोकि हाथ में प्राप्त तिनुकों से मस्तकपै छाया किये हो
लोमश बोले कि अवश्यही मरना है यह कौन पुरुष इसके लिये यत्न करैगा ॥१६।१७॥ नाशहोनेवाले संसार के बीचमें प्राप्त पुरुषों करके किसके लिये घर कियाजाता है
जिस की मृत्यु मित्र होवै व जिसने उत्तम अमृत पियाहो ॥ १८ ॥ उसको यह कहना योग्यहै यह मेरे कल होगा व यह धन हजारों युगों में होगा इसप्रकार प्रति-
दिन होताहै ॥ १९ ॥ मृत्युकी अवधि तक वह भी अल्पता को प्राप्त होता है क्या कथा कही जावै कारणका अनुगामी कार्य होताहै यह शरीर वीर्यसे हुआहै ॥२०॥

वह धोये अङ्गोंवाले हाथीके समान कैसे पवित्रताको प्राप्तहोवै यह कहिये इस लिये शत्रुवों के छह वर्ग से जीतेहुये पुरुष इसके लिये भी पातक करते हैं ॥ २१ ॥ वेदोक्त पढ़ते व सुनतेहुये यह शरीर कैसे जियैगा हे राजन् ! दांत चलायमान होते हैं व लक्ष्मी यौवन व जीवन चञ्चलहै ॥२२॥ मनुष्यों का यह शरीर अत्यन्तही चलाचल व बहुत हीनहीं है इस प्रकार संसार को सारांशहीन व चलाचल जानकर ॥ २३ ॥ हे राजन् ! किसके लिये कुटीआदि का ग्रहण होताहै ॥ २४ ॥ इन्द्रद्युम्न बोले कि त्रिलोक में दीर्घ आयुर्बलवाले आपही सुने जाते हैं उस के लिये मैं आयाहूं तो इसप्रकार तुम्हारा वचन कैसे है ॥ २५ ॥ लोमशजी बोले कि प्रतिकल्प में मेरे

तः ॥ २१ ॥ निगमोक्तंपठञ्छृण्वन्निदंजीविष्यतेकथम् ॥ दन्ताश्चलाश्चलालक्ष्मीर्यौवनंजीवितंनृप ॥ २२ ॥ चलाचलमतीवेदंहीनमेवनृणाम्परम् ॥ इतिविज्ञायसंसारमसारञ्चचलाचलम् ॥ २३ ॥ कस्यार्थेक्रियतेराजन्कुटजादिपरिग्रहः ॥ २४ ॥ इन्द्रद्युम्न उवाच ॥ चिरायुर्भगवानेवश्रूयतेभुवनत्रये ॥ तदर्थमहमायातस्तत्किमेवंवचस्तव ॥ २५ ॥ लोमशउवाच ॥ प्रतिकल्पंमेशरीरादेकरोमपरिक्षयः ॥ जायतेसर्वनाशेचममभाविप्रमापणम् ॥ २६ ॥ पश्यजानुप्रदेशेमेद्व्यङ्गुलंरोमवर्जितम् ॥ जातंवपुस्तद्बिभेमिमर्तव्येसतिकिंगृहैः ॥ २७ ॥ नारदउवाच ॥ इत्थंनिशम्यतद्वाक्यं सप्रहस्यातिविस्मितः ॥ भूपालस्तस्यपप्रच्छ कारणन्तादृशायुषः ॥ २८ ॥ इन्द्रद्युम्नउवाच ॥ पृच्छामित्वामहंब्रह्मन् यदायुरितिमीदृशम् ॥ तवदीर्घप्रभावोसौदानस्यतपसोपिवा ॥ २९ ॥ लोमशउवाच ॥ शृणुभूपप्रवक्ष्यामि पूर्वजन्मसमुद्भवम् ॥ शिवधर्मयुतांपुण्यांकथांश्रवणमात्रतः ॥ ३० ॥ अहमासंपुराशूद्रोदरिद्रोतीवभूतले ॥ अमामिवसुधापृष्ठेक्षु

शरीर से एक रोमका नाश होताहै और सबके नाशमें मेरी मृत्यु होगी ॥ २६ ॥ मेरे जंघस्थल में देखिये मेरा शरीर दो अंगुल रोमसे रहित होगया है इस लिये डरताहूं कि जब मरना है तब घरोसे क्याहै ॥ २७ ॥ नारद बोले कि इसप्रकार उसका वचन सुनकर बडे विस्मय में प्राप्त उन राजाने वैसे आयुर्बलका कारण उन से पूंछा ॥ २८ ॥ इन्द्रद्युम्न बोले कि हे ब्रह्मन् ! मैं तुमसे यह पूछताहूं जो कि तुम्हारा ऐसा बडा आयुर्बलहै यह दानका अथवा तपस्याका प्रभावहै ॥ २९ ॥ लोमशजी बोले कि हे राजन् ! सुनिये पहले जन्म में उपजा हुआ चरित्र कहूंगा क्योकि शिवधर्मसे संयुत पुण्यदायिनी कथा के सुननेही से पाप नाश होते है ॥ ३० ॥ पुरातन

समय भूमि में मैं अत्यन्तही निर्धन शूद्र हुआ व भूंखसे बहुतही विकल मैं भूतल में घूमता था ॥ ३१ ॥ तदनन्तर उस समय दुपहर में मैंने जलके बीच में प्राप्त बड़े
भारी जलाधीश लिंग को समीपही देखा ॥ ३२ ॥ तदनन्तर उस जल में पैठकर व नहाकरके उस जल को पीकर मैंने उस शिव जी के लिंग को नहवाया व उत्तम
कमलों से पूजा किया ॥ ३३ ॥ इसके अनन्तर हे नृपश्रेष्ठ! क्षुधा से दुबले कण्ठ वाला मैं शिवजी को प्रणाम कर फिर चला और राह में मरगया ॥ ३४ ॥ तदनन्तर
[illegible] शिवलिंग के नहवाने व उन्हीं के पूजनेसे जाति के स्मरण वाला मैं ब्राह्मणके घरमें पुत्रपैदाहुआ ॥ ३५ ॥ व सत्य भासित इससंसारको झूंठ खेलवाला

[illegible]पीडितोभृशम् ॥ ३१ ॥ ततोमयामहल्लिङ्गंजलमध्यगतन्तदा ॥ मध्याह्नेवैजलाधीशंदृष्टञ्चैवाविदूरतः ॥ ३२ ॥
[illegible]रिपीत्वास्नात्वाचशाम्भवम् ॥ तल्लिङ्गंस्नापितम्पूजाविहिताकमलैःशुभैः ॥ ३३ ॥ अथक्षुत्क्षामक
[illegible]च ॥ पुनःप्रचलितोमार्गेप्रमीतोनृपसत्तम ॥ ३४ ॥ ततोहंब्राह्मणगृहेजातोजातिस्मरःसुतः ॥
[illegible]स्यैवपूजनात् ॥ ३५ ॥ स्मरन्विलसितंमिथ्यासत्यभासमिदंजगत् ॥ अविद्यामयमित्ये
[illegible] ॥ तेनविप्रेणवार्द्धक्येसमाराध्यमहेश्वरम् ॥ प्राप्तोहमितिमेनामईशानइतिकल्पित
[illegible]न्मम ॥ चकारव्यपनेष्यामिमूकत्वमितिनित्यशः ॥ ३८ ॥ मन्त्रवादान्
[illegible]मन्त्रन्मनसोस्तथा ॥ ३९ ॥ निरीक्ष्यमूढतांहास्यमासीन्मनसिमे
[illegible] ॥ ४० ॥ सम्पूज्यकमलैःशम्भुं पुनःशयनमभ्यगाम् ॥ ततःप्रमीते

[illegible] भलीभांति आराधकर मुझको पायाथा इससे
[illegible] मैं नित्यही गूंगा पनको दूरकरदूंगा।
[illegible] को देखकर उससमय मेरे मनमें हा-
[illegible] तदनन्तर पिताके मर-

[illegible]

ई है शिवजी
की पूजासे नन्दीश्वर
को प्राप्तहोगई है उन शिवजी

जानेपर गूंगाहै इसकारण से मुझको छोडदिया इसके अनन्तर प्रसन्नहोकर फलाहारी स्थितहोतेहुये मैंने उससमय अनेक भांतिके कमलोंसे शिवजीका पूजनाकिया ॥ ४१।४२ ॥ इसके अनन्तर सौवर्षके अन्तमें आखोंके सामनेप्राप्त वरदायक चन्द्रभालजीसे मैंने वृद्धता व मृत्युका नाशमांगा॥४३॥ शिवजीबोले कि जिसलिये नाम रूपके धारनेवालेकी अजरामरता नहीं होतीहै व मेरे भी देहका नाशहोताहै इससे जीनेमें अवधि कीजिये ॥ ४४॥ ऐसेशिवजीके वचन सुनकर उससमय यह मागा कि कल्प के अन्तमें रोमगिरै व सबरोमोंके नाशमें मृत्युहोवै॥ ४५॥ तदनन्तर तुम्हारा गणहोऊं यह वर मुझकोप्रियहै वैसाही होगा यह कहकर वे भगवान् शिवजी अन्तर्द्धान होग-

पितरिमूकइत्यहमुज्झितः ॥ ४१ ॥ सम्बन्धिभिःप्रतीतोथफलाहारोऽव्यवस्थितः ॥ पूजयामासभूतेशंपङ्कजैर्विविधैस्त दा ॥ ४२ ॥ अथवर्षशतस्यान्ते वरदःशशिशेखरः ॥ प्रत्यक्षोयाचितोमेभूज्जरामरणसंक्षयम् ॥ ४३ ॥ ईश्वरउवाच ॥ अजरामरतानास्तिनामरूपभृतोयतः ॥ ममापिदेहपातःस्यादवधिंकुरुजीविते ॥ ४४ ॥ इतिशम्भोर्वचःश्रुत्वामयावृत मिदंतदा ॥ कल्पान्तेरोमपातोस्तुमरणंसर्वसंक्षये ॥ ४५ ॥ ततस्तवगणोभूयामितिमेभीप्सितोवरः ॥ तथेत्युक्त्वासभग वान्हरश्चादर्शनङ्गतः ॥ ४६ ॥ अहंतपसिनिष्ठश्चततःप्रभृतिचाभवम् ॥ ब्रह्मघातादिकैःपापैर्मुच्यतेशिवपूजनात् ॥ ४७ ॥ ब्रह्माब्जैरितरैर्वापिकमलैर्नात्रसंशयः ॥ एवंकुरुमहाराजत्वमप्याप्स्यसिवाञ्छितम् ॥ ४८ ॥ हरभक्तस्यलोक स्यत्रिलोक्यांनास्तिदुर्लभम् ॥ वहिःप्रवृत्तिंसंहृत्यज्ञानेन्द्रियगणस्यच ॥ ४९ ॥ लयःसदाशिवेनित्यमन्तर्योगोयमुच्य ते ॥ दुष्करत्वाद्वहिर्योगं शिवएवस्वयंजगौ ॥ ५० ॥ पञ्चभिश्चाननैर्भूमौ विशिष्टफलदन्ध्रुवम् ॥ क्लेशकर्मविपाका

ये ॥ ४६ ॥ तब से लगाकर मैं तपस्यामें स्थितहुआ ब्रह्म कमल व अन्यभी कमलों के द्वारा शिवजी को पूजने से ब्रह्महत्यादिक पापोंसे छूटजाता है हे महाराज ! तुम भी ऐसा कीजिये तो मनोरथ को पाइयेगा ॥ ४७।४८ ॥ शिवजी के भक्त मनुष्य को त्रिलोकमें कुछ दुर्लभ नहीं है ज्ञानेन्द्रिय समूहकी बाहरी प्रवृत्तिरोंककर ॥ ४९ ॥ सदैव सदाशिवजी में लीनहोना यह अन्तर्योग कहाजाता है बाहरीयोग की कठिनतासे शिवही ने आपही पांचोंमुखों से गाया है जोकि भूमि में उत्तम फलदायक व

अचल और क्लेशके कर्मोंके फलादिक व आशयोंसे भी असंयुतहैं ॥ ५० । ५१ ॥ उन शिवजीकी आराधनाकर ॐ कारको जपताहुआ पुरुष मोक्षको प्राप्तहोता है व
सबपापों के नाशहोजाने पर शिवमें भक्तिहोती है ॥ ५२ ॥ पापसे नष्ट बुद्धिवाले जनोंको शिवजीकी वार्ताभी दुर्लभ है भरतखण्ड में जन्म दुर्लभहै व शिवजी का
पूजन दुर्लभहै ॥ ५३ ॥ गंगाजी में स्नान दुर्लभ है व शिवमें भक्ति दुर्लभ है व ब्राह्मण के निमित्त दान दुर्लभहै व अग्निकी पूजा दुर्लभहै ॥ ५४ ॥ व थोड़ी पुण्य-
वालोंको पुरुषोत्तमका पूजन दुर्लभ है लाख धनुषोंसे योग व उसके आधेयाने पचास हज़ार धनुषोंसे अग्नि ॥ ५५ ॥ और पचीसहज़ारसे नर्मदा व बारहहज़ार धनु-

**धैराशयैश्चाप्यसंयुतम् ॥ ५१ ॥ ईशानमाराध्यजपन् प्रणवंमुक्तिमाप्नुयात् ॥ सर्वपापक्षयेजाते शिवेभवतिभावना ॥
५२ ॥ पापोपहतबुद्धीनां शिववार्त्तापिदुर्लभा ॥ दुर्लभम्भारतेजन्म दुर्लभंशिवपूजनम् ॥ ५३ ॥ दुर्लभंजाह्नवीस्नानं
शिवेभक्तिःसुदुर्लभा ॥ दुर्लभंब्राह्मणेदानं दुर्लभंवह्निपूजनम् ॥ ५४ ॥ अल्पपुण्यैश्चदुष्प्राप्यं पुरुषोत्तमपूजनम् ॥ लक्षे
णधनुषांयोगस्तदर्द्धेनहुताशनः ॥ ५५ ॥ पञ्चविंशत्सहस्रेणरेवारुद्रश्चषड्द्विभिः ॥ इतीदमुक्तमखिलंमयातवमहीपते ॥
५६ ॥ यथापुराभवद्दीर्घं ममाराध्यमहेश्वरम् ॥ नदुर्लभन्नदुष्प्राप्यं नवासाध्यंमहात्मनाम् ॥ ५७ ॥ शिवभक्तिकृतां
पुंसां त्रिलोक्यामितिनिश्चितम् ॥ नन्दीश्वरस्यतेनैव वपुषाशिवपूजनात् ॥ ५८ ॥ सिद्धिमालोक्यकोराजञ्छङ्कर
न्ननमस्यति ॥ श्वेतस्यचमहीपस्य शितिकण्ठन्नमस्यतः ॥ ५९ ॥ कालोपिप्रलयंयातः कस्तमीशन्नपूजयेत् ॥ यदि
च्छयाविश्वमिदं जायतेऽथवतिष्ठति ॥ ६० ॥ तथासंक्षीयतेचान्ते कस्तन्नशरणंव्रजेत् ॥ ६१ ॥ एतद्रहस्यमिदमेवन्न**

षोंसे शिवजी पुण्यदायक होते हैं हे राजन् ! इसप्रकार मैंने यह सब वृत्तान्त तुमसे कहा ॥ ५६ ॥ कि जिसप्रकार पुरातन समय महादेवजीको आराधनकर मेरीबड़ी
आयुर्बलहुई है शिवजीकी भक्ति करनेवाले महात्मा पुरुषोंको त्रिलोकमें दुर्लभ व दुःखसे मिलने योग्य और असाध्य नहीं है यह निश्चय कियागया है उसी शरीरसे
शिवजीकी पूजासे नन्दीश्वर की ॥ ५७ । ५८ ॥ सिद्धिको देखकर हे राजन् ! कौन शिवको नहीं प्रणाम करताहै और शिवजीका प्रणाम करतेहुये श्वेतराजाकी मृत्युभी
नाशको प्राप्तहोगई है उन शिवजीको कौन नहीं पूजैहै जिनकी इच्छासे यह संसार पैदाहोता है व स्थित होता है ॥ ५९ । ६० ॥ वैसेही अन्तमें नाशहोता है उनकी

शरणमें कौननहीं जावैहै ॥ ६१ ॥ हे राजन्। यह गुप्तचरित्रहै व इस संसार में यही शिव पूजनही मनुष्यों को मुख्य करनाचाहिये जिस शिव पूजनके मध्यमें मनुष्य नरोंसे सेवनेयोग्य स्थानको प्राप्तहोता है व शिवको प्रणाम करने वाला पुरुष सत्यही शिवजीको पाताहै ॥ ६२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेदेवीदयालुमिश्र विरचितायांभाषाटीकायांमहीप्रादुर्भावेदशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

दो०। जौनदेव जेहिलिंगको पूजतहै मनलाय। गेरहवें अध्याय मेंसोइ चरित सुखदाय ॥ नारदजी बोले कि उन मुनिनायक के ऐसे वचन सुना व उनने कहा

णांप्रधानं कर्तव्यमत्रशिवपूजनमेवभूप ॥ यस्यान्तराथपदवीमुपयातिलोकः सेव्यान्नरैश्शिवनतश्शिवमेतिसत्यम् ॥ ६२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डे महीप्रादुर्भावेदशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ * ॥ * ॥

नारदउवाच ॥ इतितस्यमुनीन्द्रस्य भूपतिश्श्रुतवान्वचः ॥ प्राहनाहङ्गमिष्यामि त्वांविहायेतरंकचित् ॥ १ ॥ लिङ्गमाराधयाम्यद्य सर्वसिद्धिप्रदंनृणाम् ॥ त्वयैवानुगृहीतेद्यपान्तुसर्वेतवागतम् ॥ २ ॥ तद्भूपतिवचःश्रुत्वा बकोगृध्रोथ कच्छपः ॥ उलूकश्चतथैवोचुः प्रणतालोमशम्मुनिम् ॥ ३ ॥सचसर्वसुहृद्विप्रस्तथेत्येवाहतांस्तदा ॥ प्रणामप्रणतान्सर्वाननुजग्राहशिष्यवत् ॥ ४ ॥ शिवदीक्षाविधानेन लिङ्गपूजांसमादिशत् ॥ तेषामनुग्रहपरो मुनिःप्रणतवत्सलः ॥ ५ ॥ तीर्थादप्यधिकःस्थाने सतांसाधुसमागमः ॥ पचेलिमफलस्सद्यो दुरन्तकलुषापहः ॥ ६॥ अपूर्वःकोपिसद्गोष्ठीसहस्रकि

कि मैं तुमको छोडकर अन्यके समीप कहीं न जाऊगा ॥ १॥ व मनुष्योंको समस्त सिद्धिदायक शिवजीके लिंगका आज आराधनकरूंगा आज तुम्हारेही दयाकरनेपर तुम्हारे समीपआये हुये मेरी सब रक्षाकरैंगे ॥ २ ॥ राजाके उस वचनको सुनकर बगुला, गीध व कच्छप व घुघुवाने प्रणामकर उसीप्रकार लोमश मुनिसे कहा ॥ ३ ॥ और सबोंके मित्र उस ब्राह्मण ने उस समय प्रणाम से झुकेहुये उन सबोंसे यह कहा कि वैसाही होगा और शिष्यकी नाई कृपाकिया ॥ ४ ॥ व दयामें परायण तथा प्रणत प्रिय मुनिने शिवजीकी दीक्षाकी विधिमे उनको लिंग पूजनका उपदेश किया ॥ ५ ॥ स्थान में सज्जनों का साधुसे संयोग होना तीर्थ से भी उत्तम फलवाला और शीघ्रही अन्तमें दुखदायक व पातकका नाशकहै ॥ ६ ॥ व उत्तम सभामें हज़ार किरणोंसे उदयवाला जो कोई भी अपूर्व नर एकान्त में भीतरी तप करता है वह

बीचमें प्राप्त अन्धकार (अज्ञान) का नाशक होताहै ॥ ७ ॥ व साधुजनोंकी सभामें पैदाहुये सुखके द्वारा अमृत रससे ये सब मनुष्य अमृतसमुद्र में शङ्कर व सहदके
रामान छवों रसवाले होते हैं ॥ ८ ॥ तदनन्तर साधु संगतिको भलीभांति पाकर मार्कण्डेय व राजा पूर्वक उन्होंने शिवजीकी आज्ञासे कर्मयोग का आरम्भ किया ॥ ९ ॥
किसी समय उन के तपस्या करतेही हुये लोमश मुनिके देखने की उत्कण्ठा वाला मैं तीर्थयात्रा के प्रसंगसे इस स्थानपै आया ॥ १० ॥ क्योंकि तीर्थयात्रा के प्रसंगसे
पुरुषोंकी यात्रा मुख्यहै उत्तम जनोंसे भलीभांति बैठागया भूमिभाग तीर्थतासे कहाजाताहै ॥ ११ ॥ हे अर्जुन ! पूजन व पाहुनकी विधिको किये व सहँतायेहुये मुझ

रणोदयः ॥ यएकान्तेतपत्यन्तरन्तर्गततमोपहः ॥ ७ ॥ साधुगोष्ठीसमुद्भूतसुखामृतरसादमी ॥ सर्वेनरास्सुधासिन्धुश
र्करामधुषड्रसाः ॥ ८ ॥ ततस्तेसाधुसंसर्गं सम्प्राप्यशिवशासनात ॥ आरेभिरेक्रियायोगं मार्कण्डनृपपूर्वकाः ॥
९ ॥ तेषान्तपस्यतामेवाजगामास्मिन्कदाचन ॥ तीर्थयात्रानुषङ्गेण लोमशालोकनोत्सुकः ॥ १० ॥ मुख्यापुरुषया
त्राहि तीर्थयात्रानुषङ्गतः ॥ सद्भिस्समाश्रितोभूमिभागस्तीर्थतयोच्यते ॥ ११ ॥ कृतार्हणातिथ्यविधिं विश्रान्तमाश्र
फाल्गुन ॥ प्रणम्यतेथपप्रच्छुर्नाडीजङ्घपुरस्सराः ॥ १२ ॥ भक्ताऊचुः ॥ शापभ्रष्टावयंब्रह्मंश्चत्वारोपिस्वकर्म्मणा ॥
तन्मुक्तिसाधनार्थाय स्थानंकिञ्चित्समादिश ॥ १३ ॥ इयंहिनिष्फलाभूमिस्सकलेभारतेमुने ॥ तत्रापिक्वचिदेकत्र
सर्वतीर्थफलंवद ॥ १४ ॥ इतिपृष्टस्त्वहंतैश्च तानब्रवमिदंतदा ॥ संवर्तंपरिपृच्छध्वं सवोवक्ष्यतितत्त्वतः ॥ १५ ॥ सर्वती
र्थफलावाप्तिकारकंभूप्रदेशकम् ॥ १६ ॥ तेऊचुः ॥ कुत्रासौतप्यतेयोगी नजानीमोवयञ्चतम् ॥ संवर्तदर्शनान्मुक्ति

को प्रणामकर नाड़ीजंघ पूर्वक उन्होंने कहा ॥ १२ ॥ भक्तबोले कि हे ब्रह्मन् ! हमलोग चारोंभी अपने कर्मकरके शापसे भ्रष्टहुये हैं इसलिये मोक्ष साधन के लिये
किसी स्थानको भलीभांति कहिये ॥ १३ ॥ हे मुने ! सब भरतखण्डमें यहभूमि निःफलहै व उसीमें भी कहीं एक ठिकाने समस्त तीर्थोंका फलकहिये ॥१४॥ उनसे इस
प्रकार पूंछेहुये मैंने उस समय यह उनसे कहा कि संवर्त्त से पूंछो वे तुमलोगों से समस्त तीर्थों के फलको प्राप्ति कारक भूमिका स्थान यथार्थ कहैंगे ॥ १५ । १६ ॥

वे बोले कि ये योगी कहां तप करते हैं हमलोग उनको नहीं जानते हैं संवर्त्त के देखनेसे मोक्षहोगा यह दया होवैगी ॥ १७ ॥ यदि जानतेहो तो कहिये मित्रका संग निःफल नहीं होता है तदनन्तर मैंने बार २ विचारकर उन से यह कहा ॥ १८ ॥ कि गुप्त चिह्नके धारी वे संवर्त्तजी काशीमें टिकेहैं जोकि मलसे संयुत व वसनहीन और कुतुप समय के बाद भिक्षान्न से भोजन करनेवाले ॥ १९ ॥ व हाथरूपी पात्र में भोजन करनेहारे और सबप्रकार से सामग्री हीन व ॐकार नामक परब्रह्म ईश्वर की भावनाकर रहेहैं ॥ २० ॥ और सायाह्न समयमें अन्नपान भोजन करके ये योगीश्वर वनमें मनुष्यों से नहीं जानेजाते हैं व उसी रूपवाले अन्य चिह्नधारी हैं ॥

रितिचस्यादनुग्रहः ॥ १७ ॥ यदिजानासितद्ब्रूहि सुहृत्सङ्गोननिष्फलः ॥ ततोहमब्रवंतांश्च विचार्येदंपुनःपुनः ॥ १८ ॥ वाराणस्यांसत्रास्तेवै संवर्त्तोगुप्तलिङ्गभृत् ॥ मलदिग्धोविवसनो भिक्षाशीकुतुपादनु ॥ १९ ॥ करपात्रकृताहारस्सर्वथानिष्परिग्रहः ॥ भावयन्ब्रह्मपरमं प्रणवाभिधमीश्वरम् ॥ २० ॥ भुक्त्वान्नपानंसायाह्ने वनेनज्ञायतेजनैः ॥ योगीश्वरोसौतद्रूपास्सन्त्यन्येलिङ्गधारिणः ॥ २१ ॥ वक्ष्यामिलक्षणंतस्ययथाज्ञास्यथतंमुनिम् ॥ प्रतोल्यांराजमार्गेतु निशिभूमौशवज्जनैः ॥ २२ ॥ अज्ञातंस्थापनीयंच स्वयन्तदविदूरतः ॥ यस्तास्म्भूमिमुपागम्य अकस्माद्विनिवर्त्तते ॥ २३ ॥ ससंवर्त्तोनुचाक्राम्यत्येषशल्यमसंशयम् ॥ प्रष्टव्योभिमतञ्चासात्तुपाश्रित्यविनीतवत् ॥ २४ ॥ तच्छ्रुत्वातेतथाचक्रुस्सप्तापिवचनंमम ॥ प्राप्यवाराणसीन्दृष्ट्वा संवर्त्तन्तेतथाविधम् ॥ २५ ॥ शवन्दृष्ट्वाचतैर्न्यस्तं संवर्तोथन्यवर्तत ॥

२१ ॥ उनका लक्षण मैं कहता हूं कि जिसप्रकार उन मुनिको तुमलोग जानोगे राजा के मार्ग में नगरके चौराहे के बीच रात को न जानाहुआ मुरदा भूमिमें जनों को धरना चाहिये व आप उसके कुछ दूर पै टिके उस भूमिके समीप आकर जो अचानक लौटपड़ै ॥ २२ । २३ ॥ वह संवर्त्त है क्योंकि यह मुनि निस्सन्देह मुरदे को नहीं नांघता है और नम्र की नाईं समीप जाकर इससे चाहाहुआ वृत्तान्त पूंछना चाहिये ॥ २४ ॥ उस वचन को सुनकर उन सातो ने भी वैसाही मेरा वचन किया कि काशी मे प्राप्त होकर वे उसप्रकार के संवर्त्त को देखकर खड़ेहुये ॥ २५ ॥ इसके उपरान्त उनसे धरेहुये मुर्दे को देखकर क्षुधा से घिरेहुये भी संवर्त्त

लौट पड़े उनको जानकर उन्हों ने उन शीघ्रगामी के पीछे गमन किया ॥ २६ ॥ और राजमार्गगामी उन मुनिसे यह कहरहेहैं कि हे ब्रह्मन् ! क्षणभर खड़ेहोवो और लौटजावो ऐसा कहते व घुड़कते हुये मुनि जारहेहैं ॥२७॥ व कहते हैं कि हे मूर्खों ! मेरे समीप नहीं आने योग्यहै व तुम लोगों का हित नहीं है तदनन्तर हे ब्रह्मन् ! इसने बहुत दूरतक भागके जाकर ॥ २८ ॥ क्रोधितहो उनसबोंसे कहा कि मुझको किसने कहाहै यह शीघ्रही मुझसे बतलाइये कि जिसप्रकार उसको जलादूं ॥२९॥ अथवा यदि सत्य न कहोगे तो शाप की अग्नि से तुम लोगों को जलाऊंगा। इस के अनन्तर कांपते हुये उन्होंने उन मुनि से यह कहा कि नारद ने बतलाया है ॥ ३० ॥

क्षुत्परीतोपितंज्ञात्वा जग्मुस्तमनुशीघ्रगम् ॥ २६ ॥ तिष्ठब्रह्मन्क्षणमिति जल्पन्तोराजमार्गगम् ॥ यातिनिर्भर्त्सयन्नेष निवर्तध्वमितिब्रुवन् ॥ २७ ॥ समयाममरेमूढा नागन्तव्यन्नवोहितम् ॥ पलायनन्नसौब्रह्मन् गत्वादूरतरन्ततः ॥ २८ ॥ कुपितःप्राहतान्सर्वान् केनाख्यातोहमित्युत ॥ निवेदयतशीघ्रम्मे यथाभस्मकरोमितम् ॥ २९ ॥ शापाग्निनाथवायुष्मान् यदिसत्यन्नवक्ष्यथ ॥ अथप्रकम्पिताःप्राहुर्नारदेनेतितम्मुनिम् ॥ ३० ॥ सतानाहपुनर्यान्तं पिशुनानांकसम्प्रति ॥ लोकानांयेनशापाग्नौ भस्मशेषंकरोमितम् ॥ ३१ ॥ ब्रह्मबन्धुंमहाबाहुमतस्त्वंवदतम्मुनिम् ॥ ३२ ॥ तेऊचुः ॥ त्वान्निवेद्यसचास्माकं प्रविष्टोहव्यवाहनम् ॥ तत्कालमेवविप्रेन्द्र नविद्मस्तत्रकारणम् ॥ ३३ ॥ अर्जुनउवाच ॥ यदि नारददेवर्षे प्रविष्टोसिहुताशनम् ॥ जीवितस्तत्कथंभूय आश्चर्यमितिमेवद ॥ ३४ ॥ नारदउवाच ॥ नहुताशस्समुद्रो वा वायुर्वावृक्षपर्वताः ॥ आयुषोनाशनेशक्ता देहपातायभारत ॥ ३५ ॥ पुनरेतत्कृतञ्चातस्संवर्त्तोमन्यतेयथा ॥ अहं

उन मुनि ने फिर उनसे कहा कि पिशुन (चुगुल) लोकों के मध्य में इस समय कहाँ गया है कि जिस से ब्राह्मणों में नीच उस महाभुज को शाप की अग्निमें भस्म-मात्र शेषकरूं इससे तुम उस मुनि को कहो ॥ ३१ । ३२ ॥ वे बोले कि वे हम लोगों से तुम को बतलाकर उसी समयही अग्नि में पैठ गये हे द्विजेन्द्र ! उसमें हमलोग कारण नहीं जानते हैं॥ ३३ ॥ अर्जुन जी बोले कि हे देवर्षे नारद जी ! यदि अग्नि में तुम पैठ गये थे तो फिर जीना कैसे हुआ यह आश्चर्य मुझसे कहो॥ ३४॥ नारद जी बोले कि हे भारत ! अग्नि, समुद्र, पवन व वृक्ष, पहाड़ मेरे शरीरपात के लिये आयुर्बल के नाशने में समर्थ नहीं हैं ॥ ३५ ॥ फिर जिस प्रकार इस

किये हुये को संवर्त मानैं व मेरा आदर किया जावै उस प्रकार अग्नि में प्राप्त हूंगा ॥ ३६ ॥ हे अर्जुन जी ! जैसे कोई फूल के घरमें पैठना है वैसेही मैं अग्नि मे पैठ कर चलागया अब इसके उपरान्त का वृत्तान्त सुनिये ॥ ३७ ॥ कि संवर्त्तमुनि ने उन मार्कण्डेयादिकोंसे फिर यह कहा कि मार्ग शल्यहीन कियाजावै क्योंकि भूंखा मैं फिर पुरीको भिक्षाके लिये जाऊंगा और मुझसे प्रश्न कहिये ॥ ३८ । ३६ ॥ वे बोले कि हे महामुने ! शापसे भ्रष्टहुये हमलोग तुम्हारी दयासे मोक्षको पावैं प्रणाम किये हुयें हमलोगों से उस यत्नको कहिये ॥ ४० ॥ हे संवर्त्त ! मनुष्य जिस तीर्थ में समस्त तीर्थोंका फल पाता है उस तीर्थ को कहिये कि जहां हमलोग टिकैं ॥ ४१ ॥

सम्मानितश्चेति वह्निंप्राप्स्याम्यहंतथा ॥ ३६ ॥ यथापुष्पगृहेकश्चित् प्रविशत्यङ्गफाल्गुन ॥ तथाहमग्निंसंविश्ययात वानुत्तरंशृणु ॥ ३७ ॥ संवर्त्तस्तान्पुनःप्राह मार्कण्डेयमुखानिति ॥ विशल्यःक्रियतांपन्थाःक्षुधितोहंपुनःपुरीम् ॥ ३८ ॥ भिक्षार्थंपर्यटिष्यामिप्रश्नंप्रब्रूतवैचमे ॥ ३९ ॥ तेऊचुः ॥ शापभ्रष्टावयंमोक्षंप्राप्स्यामस्त्वदनुग्रहात् ॥ प्रतीका रंतदाख्याहिप्रणातानांमहामुने ॥ ४० ॥ यत्रतीर्थेसर्वतीर्थफलंप्राप्नोतिमानवः ॥ तत्तीर्थंब्रूहिसंवर्त्ततिष्ठामोयत्रवैवयम् ॥ ४१ ॥ संवर्तउवाच ॥ नमस्कृत्यकुमारायदुर्गाभ्यश्चनरोत्तमाः ॥ तीर्थंवःसंप्रवक्ष्यामि महीसागरसङ्गमे ॥ ४२ ॥ अमु नाराजसिंहेन इन्द्रद्युम्नेनधीमता ॥ यजताद्व्यङ्गुलोत्सेध्याकृतेयंवसुधायदा ॥ ४३ ॥ तदासन्तप्यमानाया भुवःकाष्ठस्य वैयथा ॥ सुस्रावयोजलौघश्च सर्वदेवनमस्कृतः ॥ ४४ ॥ महीनामनदीसाच पृथिव्यांयानिकानिच ॥ तीर्थानितेषांस लिलसम्भवन्तज्जलंविदुः ॥ ४५ ॥ महीनामसमुत्पन्ना देशमालवकाभिधात् ॥ दक्षिणंसागरंप्राप्ता पुण्योभयतटाशि

संवर्त्त बोले कि हे नरोत्तमो ! स्वामिकार्त्तिकेय व दुर्गा देवियों के लिये प्रणामकर महीसागरसंगम में तीर्थ कहूंगा ॥ ४२ ॥ यज्ञ करते हुये इस बुद्धिमान् नृपोत्तम ने जब इस पृथ्वीको दो अंगुल ऊंची कियाहै ॥ ४३ ॥ तब जैसे कि काठ से जल बहै वैसेही बहुत तचीहुई भूमिसे सबदेवों करके प्रणाम कियाहुआ जो जल का प्रवाह बहा ॥ ४४ ॥ वही महीनामक नदीहुई उसका जल पृथ्वी मे जितने कुछ तीर्थहैं उनके जलसे उपजाहुआ प्राचीन जनोंने कहाहै ॥ ४५ ॥ मालवनामक देश से उत्पन्न

वह नदी दक्षिण समुद्रमें प्राप्तहुई हैं जिसके दोनों किनारे पवित्र और वह कल्याणमयी है ॥ ४६ ॥ पहलेही महीनामक महानदी सर्वतीर्थमयी थी फिर उसका व
समुद्र का जो संगम हुआ उसको क्या कहना है ॥ ४७ ॥ काशी, कुरुक्षेत्र, गंगा, नर्मदा, सरस्वती, तापी, पयोष्णी, निर्विन्ध्या, चन्द्रभागा व इरावती ॥ ४८ ॥ और
कावेरी, सरयू, गण्डकी व नैमिष, गोदावरी, अरुणा व वरुणा ॥ ४९ ॥ ये और अन्य जो कोई सैकडों नदियां भूमिमें हैं वैसेही बीसहज़ार छहसौ जो नदियां हैं ॥ ५० ॥
उनके सारांश से उपजाहुआ महीनदी का जल कहागया है पृथ्वी में समस्त तीर्थों में नहाकर जो फल मिलताहै ॥ ५१ ॥ वह महीसागर में कहागयाहै जैसाकि स्वामि-

वा ॥ ४६ ॥ सर्वतीर्थमयीपूर्वं महीनाममहानदी ॥ किंपुनर्यःसमायोगस्तस्याश्चसरितांपतेः ॥ ४७ ॥ वाराणसीकुरुक्षेत्रं
गङ्गारेवासरस्वती ॥ तापीपयोष्णीनिर्विन्ध्या चन्द्रभागाइरावती ॥ ४८ ॥ कावेरीसरयूश्चैव गण्डकीनैमिषंतथा ॥ गया
गोदावरीचैव अरुणावरुणातथा ॥ ४९ ॥ एताश्चशतशोन्याश्चयाःकाश्चित्सरितोभुवि ॥ सहस्रविंशतिश्चैव षट्शतानित
थैवच ॥ ५० ॥ तासांसारसमुद्भूतं महीतोयंप्रकीर्तितम् ॥ पृथिव्यांसर्वतीर्थेषु स्नात्वायत्फलमाप्यते ॥ ५१ ॥ तन्मही
सागरेप्रोक्तं कुमारस्यवचोयथा ॥ एकत्रसर्वतीर्थानां यदिसंयोगमिच्छथ ॥ ५२ ॥ तद्गच्छतमहापुण्यं महीसागरसङ्गम
म् ॥ अहंचापिच्नतत्रैव बहून्वर्षगणान्पुरा ॥ ५३ ॥ अवसञ्चागतश्चात्रनारदस्यभयात्तथा ॥ सहितत्रसमीपस्थः पिशुनश्चवि
शेषतः ॥ ५४ ॥ मरुत्तंकथयत्येव तस्मैरूपादिदम्भयम् ॥ अत्रदिग्वाससांमध्ये बहूनांतैःसमन्त्वहम् ॥ ५५ ॥ निवसा
मिप्रतिच्छन्नो मरुत्तादतिभीतवान् ॥ पुनस्स्चापिमांनूनंकथयिष्यतिनारदः ॥ ५६ ॥ तथाविधाहिचेष्टास्य पिशुनस्यप्र

कार्त्तिकेय जीका वचन है तुमलोग यदि सबतीर्थों का संगम एकठौर में चाहतेहो ॥ ५२ ॥ तो पुण्यदायक महीसागर के संगमको जावो पुरातन समय बहुत वर्षस-
मूहोंतक मैंने भी वहीं ॥ ५३ ॥ निवास कियाहै और नारदके डरसे मैं यहां आया क्योंकि वहां समीपमें टिके व विशेषता से पिशुन (चुगुल) वे नारदजी ॥ ५४ ॥
मरुत्तसे रूपादिदायक डरको अवश्य कहते हैं यहां बहुतसे वसनहीन मनुष्यों केबीच में मरुत्तसे बहुत डरा व छिपाहुआ मैं उनके साथ बसताहूं और फिरभी वह नारद

निश्चयकर मुझको कहैगा ॥ ५५ । ५६ ॥ क्योंकि इस पिशुनकी वैसीही चेष्टा देखपड़ती है और आपलोगों को भी कहीं किसीसे यह न कहना चाहिये ॥ ५७ ॥ मरुत्तराजा यज्ञकी सिद्धिके लिये उपाय करताहै देवताओं के आचार्य मेरे पिताने दूसरे कारणमें उसको छोड़दिया है ॥ ५८ ॥ और यज्ञकी ऋत्विक्ताके कारण मुझ गुरुके पुत्रको जानकर उसने यह विचार किया है और मायावीचवाले जीवघातात्मक सचेत वस्तुवों करके यज्ञ व कर्मोंसे मेरा प्रयोजन नहीं है यदि वेदमें कहीहुई जड़रूपी समिधा, फूल व कुशादिक अचैतन्य सामग्रियों से यज्ञ कीजातीहै क्योंकि मनुष्योंका वैसा होनेवाला कार्य हेतुमान् होताहै इसलिये राजाके पीछे होकर तुम

दृश्यते ॥ भवद्भिश्चनचाप्येतद्वक्तव्यःकस्यचित्कचित् ॥ ५७ ॥ मरुत्तःकुरुतेयत्नं भूपालोयज्ञसिद्धये ॥ देवाचार्येणसंत्यक्तो पित्रामेकारणान्तरे ॥ ५८ ॥ गुरुपुत्रञ्चमांज्ञात्वा यज्ञार्त्विज्यस्यकारणात् ॥ अविद्यान्तर्गतैर्यज्ञैः कर्मभिर्नप्रयोजनम् ॥ ५९ ॥ ममहिंसात्मकैरस्ति निगमोक्तैस्सचेतनैः ॥ समित्पुष्पकुशप्रायैस्साधनैर्यद्यचेतनैः ॥ ६० ॥ क्रियतेतत्तथाभावि कार्यकारणवन्नृणाम् ॥ तद्यूयंतत्रगच्छध्वं शीघ्रमेवनृपानुगाः ॥ ६१ ॥ अस्तिविप्रःस्वयंब्रह्मा याज्ञवल्क्यश्चतत्रवै ॥ सहिपूर्वंमधोःपुर्यां वसन्नाश्रमउत्तमे ॥ ६२ ॥ आगच्छमानन्नकुलं दृष्ट्वागार्गीवचोब्रवीत् ॥ गार्गिरत्त्वपयोभद्रे नकुलोयमुपैतिच ॥ ६३ ॥ पयःपातुंकृतमतिः नकुलंतन्निराकुरु ॥ इत्युक्तोनकुलःक्रुद्धस्सहक्रोधपरोभवत् ॥ ६४ ॥ जमदग्नेःपूर्वजैश्च शप्तःप्रोवाचतंमुनिम् ॥ अहोत्वांधिग्धिगित्येवं भूयोधिगितिचैवहि ॥ ६५ ॥ निर्लज्जतामनुष्याणां दृश्यतांपापकर्म्मिणाम् ॥ कथन्तेनामपापानि प्रकुर्वन्तिनराधमाः ॥ ६६ ॥ मरणान्तरितायेषां नारकेतीव्र

लोग शीघ्रही वहां जावो ॥ ५९ । ६० । ६१ ॥ वहां याज्ञवल्क्य ब्राह्मण आपही ब्रह्माहैं पुरातनसमय मधुपुरी में उत्तम आश्रममें बसते हुये उन्होंने ॥ ६२ ॥ आते हुये नेउलेको देखकर गार्गीजी से वचन कहा कि हे कल्याणरूपे, गार्गि ! जलपीने के लिये बुद्धिको किये यह नेउला समीपआता है इसलिये नकुल को निकालिये ऐसा कहाहुआ वह नेउला क्रोधमें तत्परहुआ ॥ ६३ । ६४ ॥ व जमदग्नि के पहले पैदाहुये नरोंसे शापित नेउलेने उन मुनिसे कहा कि अहो तुमको धिक्कारहै २ व फिर धिक्कारहै ॥ ६५ ॥ पापकर्मी मनुष्यों की निर्लज्जता देखीजाय कि प्रसिद्ध में मृत्युसे घिरे वे नीचनर कैसे पाप करतेहैं कि जिनको नरकमें बड़ी पीड़ाहोगी जिस

के निश्चय कियेहुये जीनेमें पलभर भी नहीं नांघता है॥ ६६॥६७॥ उतनी ही आयुर्बलवाला जो पुरुष पापकरता है वह कैसा है हे मुने ! तुम यह मानतेहो कि
मैं बुद्धिमान् व कुलीनहूं ॥६८॥ उसीसे हे मूढ़ ! यह नकुलहै ऐसा गर्व करतेहुये तुम मुझको तिरस्कार करतेहो हे याज्ञवल्क्यजी ! तुमने क्यापढ़ाहै व तुम्हारे क्या योगेश्वर-
ताहै॥६९॥जो विना अपराधके तिरस्कार करतेहो उस तुम्हारे पढ़ेहुयेको धिक्कारहै क्योंकि किस वेद व किस स्मृति में यह कहाहै इसको मुझसे कहिये ॥७०॥ जोकि बड़े
कठोर वचनों से मुझको नकुल ऐसा कहतेहो क्या यह नहीं जानतेहो कि जितनी कठोरवाणी ॥ ७१ ॥ दूसरोंको जो सुनाताहै उतनी कीलैं उसके कानमें प्राप्तहोती

वेदना ॥ निमेषोपिनलङ्घयेत जीवितंयस्यनिश्चिते ॥ ६७ ॥ तन्मात्रपरमायुर्यः पापंकुर्यात्कथंसच ॥ त्वंमुनेमन्यसेचे
दं कुलीनोस्मीतिबुद्धिमान् ॥ ६८ ॥ ततःक्षिपसिमांमूढ नकुलोयमितिस्मयन् ॥ किमधीतंयाज्ञवल्क्य कायोगेश्वर
तातव ॥ ६९ ॥ विनापराधंक्षिपसि धिगधीतंहितत्तव ॥ कस्मिन्वेदेस्मृतौकस्यां प्रोक्तमेतद्ब्रवीहिमे ॥ ७० ॥ परुषैरतिवाक्यै
र्मान्नकुलेतिब्रवीषियत ॥ किमिदन्नैवजानासि यावत्यःपरुषागिरः ॥ ७१ ॥ पराञ्छ्रावयतेतावच्छङ्कवस्तस्यश्रोत्रगाः॥
कण्ठेयमानुगःपादं कृत्वातस्यसुदुर्मतेः ॥ ७२ ॥ अतीवतुदतेलोहशङ्कून्तेदस्यतिकर्णयोः ॥ वाग्दूकाश्वध्वजिनो
मुष्णन्तिकृपणाञ्जनान् ॥ ७३ ॥ स्वयंहस्तसहस्रेण धर्मंचैवंभवद्विधाः ॥ वज्रस्यदिग्धशस्त्रस्य कालकूटस्यचाप्यु
त ॥ ७४ ॥ समेनवचसातुल्यं मृत्योर्दुःखंममाभवत ॥ कर्णेष्वलीकनाराचान्योनिहन्तिशरीरिणः ॥ ७५ ॥ साक
ल्पेनैवनिर्दग्धुं योग्योहन्निर्दहोहिसः ॥ यन्त्रपीडैस्समाक्रम्य वरमेषहतोनरः ॥ ७६ ॥ नतुतंपरुषैर्वाक्यैर्जिघांसीत

हैं व उस दुर्बुद्धि के गलेपै चरण धरके यमदूत ॥ ७२ ॥ बहुतही पीड़ादेता है और कानोंमें लोहकी कीलैं डालताहै व आपके समान बहुत कहनेवाले पाखण्डी लोग
आपही हज़ार हाथोंसे दुखिया जनोंके धर्मको चुराते हैं व वज्र और कालकूट विष से बुझायेहुये शस्त्र के ॥ ७३ । ७४ ॥ समान वचन करके मुझको मृत्युके बराबर
दुःख हुआ जो अप्रिय वचन रूप बाणों को प्राणीके कानोंमें मारता है ॥ ७५ ॥ वह सम्पूर्णता से जलाने के योग्य है क्योंकि वह पुरुष हृदयका दाहक है कोल्हू में
डालकर माराहुआ यह मनुष्य श्रेष्ठहै ॥ ७६ ॥ परन्तु उस मनुष्य को कठोर वचनों से किसीप्रकार न मारै हे याज्ञवल्क्य जी ! अपना को पण्डित मानते हुये तुमने

मुझको नकुलहो ऐसे तीव्र वचनसे क्यों ताड़न किया ॥ ७७ । ७८ ॥ संवर्त्त बोले कि उनके ऐसे वचन सुनकर बहुत विस्मयमनवाले याज्ञवल्क्य जी हाथोंको बांध के यह बोले ॥ ७९ ॥ कि बड़े धर्म के लिये नमस्कार है कि जिसके सूक्ष्मअंश को भी हमलोग नहीं जानते हैं यहा सज्जनोंके खुलेहुये मतको कौन जानताहै ॥८०॥ क्योंकि ब्रह्मा, विष्णु आदिक व चन्द्रमा, इन्द्रादि जो सर्वज्ञ देवता हैं वे भी मोहित होते हैं और हमारे सरीखेजनों की क्या गिनती है ॥ ८१ ॥ मैं धर्मज्ञहूं इस प्रकार जो अपना को प्राप्त होता है वह दुष्ट मनुष्य मुष्टिका से पातकको बांधने कीइच्छा करनाहै ॥ ८२ ॥ कोई अज्ञान से व कोई ज्ञानके गर्वसे भी नष्ट होजाते हैं और कोई

कथञ्चन ॥ त्वयात्वहंयाज्ञवल्क्य नित्यंपण्डितमानिना ॥ ७७ ॥ नकुलोसीतितीव्रेण वचसाताडितःकुतः ॥ ७८ ॥ संवर्तउवाच ॥ इतिश्रुत्वावचस्तस्य भृशंविस्मितमानसः ॥ याज्ञवल्क्योब्रवीदेतत्प्रबद्धकरसम्पुटः ॥ ७९ ॥ नमोध र्मायमहते न विद्मोयस्यवैवयम् ॥ परमाणुमपिव्यक्तं कोत्रविद्यान्मतंसताम् ॥ ८० ॥ विरञ्चिविष्णुप्रमुखास्सोमेन्द्रप्र मुखास्तथा ॥ सर्वज्ञास्तेपिमुह्यन्ति गणनास्मादृशाञ्चका ॥ ८१ ॥ धर्मज्ञोस्मीतियोमोहादात्मानंप्रतिपद्यते ॥ सपापंमु ष्टिनाबद्धुमिच्छेद्धिकृपणोनरः ॥ ८२ ॥ केचिदज्ञानतोनष्टाःकेचिज्ज्ञानमदादपि ॥ ज्ञानंप्राप्यापिनष्टाश्च केचिदालस्य तोधमाः ॥ ८३ ॥ वेदस्मृतीतिहासेषु पुराणेषुप्रकल्पितम् ॥ चतुष्पादन्तुयोधर्मं नाचरत्यधमःपशुः ॥ ८४ ॥ सपुरा शोचतेव्यक्तं प्राप्यतचान्तकंगृहम् ॥ तथाहिगृह्यकारेण श्रुतौप्रोक्तमिदंवचः ॥ ८५ ॥ नकुलंसकुलंब्रूयात् नकञ्चिन्म र्माणिस्पृशेत् ॥ प्रपठन्नपिचैवाहमिदंसर्वंयथाशुकः ॥ ८६ ॥ आलस्येनाप्यनाचाराद्वृथाकरवमङ्गतत् ॥ केवलंपाठ

नीच नर ज्ञानको पाके भी आलस्यसे नष्ट होते हैं ॥ ८३ ॥ वेद, स्मृति, इतिहास व पुराणों में चार चरणवाला धर्म कल्पना किया है उसको जो नीच मनुष्य नहीं करता है वह पशुहै ॥८४॥ और अगाडी वह यमराजके घरमें प्राप्तहोकर शोचताहै क्योंकि वैसेही गृह्यसूत्रकारक आचार्यने वेदमें यह वचन कहाहै ॥८५॥ कि जो कुलीन हो उसको कुलवान् कहै व किसी को मर्मस्थान याने नाजुक अंगोंमें न छुवै जैसे सुवाहो वैसेही यह सब पढ़ते हुये भी मैंने ॥८६॥ हे विद्वन्! आलस्यके कारण अनाचार

से उस धर्मको वृथा करदिया केवल पढ़नेहीसे जो मनुष्य संतोष को प्राप्तहोताहै ॥ ८७ ॥ व वैसेही जो अपनाको पण्डित मानताहै उससे अन्य कौन पशु मानागयाहै ॥
८८ ॥ मायामें वर्त्तमान मनुष्य को वेद नहीं तारते हैं अन्तसमय में वेद इस मनुष्य को वैसेहीं छोड़देते हैं जैसे कि जमे पंखवाले पक्षी घोंसले को छोड़ते हैं ॥८९॥
जो ब्राह्मण केवल पढ़नेसे स्वर्गके लिये जाना चाहता है माताकी गोदमें बैठाहुआ वह बालक चन्द्रमा पकडना चाहता है ॥ ९० ॥ इसलिये मेरा अन्याय आप सब
प्रकार से क्षमा करनेयोग्यहो क्योंकि सबकोई भी ऐसा कहते हैं उसी से मैंने इस प्रकार कहा ॥ ९१ ॥ नेउला बोला कि यह तुम्हारा कहना वृथाहै जोकि सब मनुष्यों

**मात्रेण यश्चसन्तुष्यतेनरः ॥ ८७ ॥ तथापण्डितमानीच कोन्यस्तस्मात्पशुर्मतः ॥ ८८ ॥ नच्छन्दांसिवृजिनात्तारय
न्ति मायायांवर्त्तमानंमनुष्यम् ॥ नीडंशकुन्ताइवजातपक्षाश्छन्दांस्येनंप्रजहत्यन्तकाले ॥ ८९ ॥ स्वर्गायगन्तुंका
ङ्क्षते द्वयः पाठमात्रेणवाडवः ॥ सबालोमातुरङ्कस्थो ग्रहीतुंसोममिच्छति ॥९०॥ तद्भवान्सर्वथामह्यमनयंसोढुमर्हति ॥
सर्वकोपिवदत्येवं तन्मयैवमुदाहृतम् ॥ ९१ ॥ नकुलउवाच ॥ वृथेदम्भाषितन्तुभ्यं सर्वलोकेनयत्समम् ॥ आत्मानं
मन्यसेनैतद्वक्तुंयोग्यंमहात्मनाम् ॥ ९२ ॥ वाजिवारणलोहानां काष्ठपाषाणवाससाम् ॥ नारीपुरुषतोयानामन्तरंमह
दन्तरम् ॥ ९३ ॥ अन्येचेत्प्राकृतालोका बहुपापानिकुर्वते ॥ प्रधानपुरुषेणापि कार्यंतत्पृष्ठतोमुने ॥ ९४ ॥ सर्वार्थेनि
र्मितंशास्त्रं मनोबुद्धिस्तथैवच ॥ दत्तेविधातासर्वेषां तथापियदिपापिनः ॥ ९५ ॥ ततोविधातुःकोदोषस्तएवखलुदुर्भ
गाः ॥ ब्राह्मणेनविशेषेण किंमान्यंलोकवद्यतः ॥ ९६ ॥ यद्यदाचरतिश्रेष्ठस्तत्तदेवेतरोजनः ॥ सयत्प्रमाणंकुरुते लो**

के समान अपनाको तुम मानते हो यह महात्माओं को कहना योग्य नहीं है ॥ ९२ ॥ क्योंकि घोडा, हाथी, लोह, काठ, पत्थर, कपड़ा, स्त्री, पुरुष व जल के
बीच में बडाभेद है ॥ ९३ ॥ यदि और पामर (सामान्य) मनुष्य बहुत पापोंको करैं तो हे मुने ! क्या उसके पीछे मुख्य पुरुषको भी करना चाहिये ॥ ९४ ॥ व शास्त्र
सबके लिये बनायागयाहै और वैसेही ब्रह्मा मन, बुद्धि सबको देतेहैं तौ भी यदि पापी होवैं ॥ ९५ ॥ तो ब्रह्माका कौन दोषहै निश्चय करके वेही दुष्ट हैं व ब्राह्मण
को विशेषकर क्या सब मनुष्यकी नाईं होना चाहिये क्योंकि ॥ ९६ ॥ श्रेष्ठ मनुष्य जो जो आचरण करताहै और मनुष्य भी उसीको करताहै और वह जिसको प्रमाण

करताहै संसार उसी के पीछे बर्ताव करताहै ॥ ९७ ॥ इसलिये सदैव अपने व पराये लिये महात्माओंको सज्जनों का धर्म न छोडना चाहिये इससे तुमको उसे सिखाना उचितहै ॥ ९८ ॥ हे मुने ! जिसलिये तुमने भयंकर वचनसे मुझको पीडितकिया इसलिये तुमको शीघ्रही शापदूंगा क्योंकि तुम शापके योग्य मानेगयेहो ॥ ९९ ॥ जिसलिये आपने मुझसे यह कहा कि तुम नकुलहो इसलिये तुम शीघ्रही नीचकुलको प्राप्तहोगे फिर हे मुने ! तुम्हीं नकुल होगे ॥ १०० ॥ संवर्त्त बोले कि होनहार वस्तुमें निश्चय किये याज्ञवल्क्य जी ऐसा वचन सुनकर मरुदेश में ब्राह्मण के पुत्र पैदा हुये ॥ १ ॥ उस समय दुष्ट आचरणवाले व पापी, निर्दयी व

कस्तदनुवर्त्तते ॥ ९७ ॥ तस्मात्सदामहद्भिश्च आत्मार्थञ्चपरार्थतः ॥ सतान्धर्मोनसन्त्याज्यो न्याय्यंतच्छिक्षणन्त व ॥ ९८ ॥ यस्मात्त्वयापीडितोहंघोरेणवचसामुने ॥ तस्माच्छप्स्यामित्वांशीघ्रं शापयोग्योहित्वम्मतः ॥ ९९ ॥ नकुलोसीतियत्प्राह भवांस्तस्मात्कुलाधमम् ॥ शीघ्रंप्रपत्स्यतेभूयस्त्वमेवनकुलोमुने ॥ १०० ॥ संवर्तउवाच ॥ इतिवाचंसमाकर्ण्य भाव्यर्थकृतनिश्चयः ॥ याज्ञवल्क्योमरौदेशेविप्रस्याजायतात्मजः ॥ १ ॥ दुराचारस्यपापस्य निर्घृणस्यातिवादिनः ॥ दुष्कुलीनस्यजातोसौ तदाजातिस्मरस्सुतः ॥ २ ॥ सोथज्ञानात्समालोक्य भर्तृयज्ञइतिद्विजः ॥ गुप्तक्षेत्रंसमापन्नो महीसागरसङ्गमम् ॥ ३ ॥ तत्रपाशुपतोभूत्वा शिवाराधनतत्परः ॥ स्वायम्भुवंमहाकालंपूजयन्वर्त्ततेधुना ॥ ४ ॥ योहिनित्यंमहाकालं श्रद्धयापूजयेत्पुमान् ॥ सदौष्कुलीनदोषेभ्यो मुच्यतेहिरिवत्वचः ॥ ५ ॥ यथायथा श्रद्धयासौ तल्लिङ्गंपरिपश्यति ॥ तथातथाविमुच्येत दोषैर्जन्मशतोद्भवैः ॥ ६ ॥ भर्तृयज्ञस्तुतस्यैव लिङ्गस्याराधना

बहुत बोलनेवाले और दुष्टकुलवालेके पैदाहुआ यह पुत्र जातिके स्मरणवाला भया ॥ २ ॥ इसके अनन्तर भर्तृयज्ञ ऐसा वह ब्राह्मण भलीभांति देखकर छिपेहुये मही-सागर के संगमवाले क्षेत्रमें प्राप्तहुआ ॥ ३ ॥ वहां शैवहोकर शिवजी के आराधन में परायण वे स्वायम्भुव महाकाल को पूजतेहुये इस समय वर्त्तमान हैं ॥ ४ ॥ जो पुरुष श्रद्धासे नित्य महाकाल को पूजता है वह दुष्कुलीनता के दोषों से वैसेही छूटजाता है जैसे कि सांप केंचुलि से छूटताहै ॥ ५ ॥ श्रद्धासे यह पुरुष ज्यों २ उस महाकाल लिंगको देखता है त्यों २ सैकड़ों जन्मोंसे उपजेहुये पापोंसे छूटताहै ॥ ६ ॥ और भर्तृयज्ञ क्रमसे उसी लिंगके आराधन से बीज दोषकरके छूट

गये यह उस लिंगकी महिमाहै ॥ ७ ॥ प्राचीन जनोंने नकुलको बभ्रु कहा है जिस लिये वे भर्तृयज्ञ दुष्कुलीनता से छूटेहैं उसीकारण यह तीर्थ बभ्रुपावन प्रसिद्धहै ॥
८ ॥ इसलिये तुमलोग वहीं महीसागरसंगम तीर्थको जाओ व पांच तीर्थोंको सेवते हुये तुमलोग निश्चय करके मोक्षपावोगे ॥ ९ ॥ संवर्त्त ब्राह्मण इसप्रकार यह कह
कर इच्छापूर्वक चलेगये व भर्तृयज्ञ मुनिको पाकर वे वहां स्थितहुये ॥ १० ॥ तदनन्तर ज्ञानसे उन्होंने उनको शिवजीके गण जानकर कहा कि तुमलोगों को बड़ा
भारी निर्मल पुण्यहुआ जोकि इस गुप्तक्षेत्र में ॥ ११ ॥ आपलोग आये जहां कि महीसागर का संगम है क्योंकि स्नान, दान, जप, होम व विशेषकर पिण्डद-

त्कमात् ॥ बीजदोषादिनिर्मुक्तस्तल्लिङ्गमहिमात्वसौ ॥ ७ ॥ बभ्रुंचनकुलंप्राहुर्विमुक्तोदुष्कुलीनतः ॥ यस्मात्तस्मादिदं
तीर्थं ख्यातंवैबभ्रुपावनम् ॥ ८ ॥ तस्माद्व्रजध्वंतत्रैव महीसागरसङ्गमम् ॥ पञ्चतीर्थानिसेवन्तो मुक्तिमाप्स्यथनिश्चि
तम् ॥ ९ ॥ इतीदमुक्त्वासंवर्त्तो ययावभिमतंद्विजः ॥ भर्तृयज्ञमुनिंप्राप्य तेचतत्रस्थिताभवन् ॥ १० ॥ ततस्तानाहस
ज्ञात्वा गणाञ्ज्ञानेनशाम्भवान् ॥ महद्वोविमलंपुण्यं गुप्तक्षेत्रेयदत्रवै ॥ ११ ॥ भवन्तोभ्यागतायत्र महीसागरसङ्गम
म् ॥ स्नानंदानंजपोहोमः पिण्डदानंविशेषतः ॥ १२ ॥ अक्षयञ्जायतेसर्वं महीसागरसङ्गमे ॥ पौर्णमास्याममाव
स्यां महीसागरसङ्गमे ॥ १३ ॥ कृतंतच्चाक्षयंसर्वं स्नानदानजपादिकम् ॥ यदात्रस्थानकंचक्रे देवर्षिर्नारदःपुरा ॥ १४ ॥
तदाग्रहैर्वरोदत्तः शनिनाचवरस्त्वसौ ॥ शनैश्चरेणसंयुक्ता अमावस्यायदाभवेत् ॥ १५ ॥ श्राद्धंतत्रप्रकुर्वीत स्नानदा
नपुरस्सरम् ॥ यदिश्रावणमासस्य शनैश्चरदिनेशुभा ॥ १६ ॥ कुहूर्भवतितस्यान्तु संक्रान्तिकुरुतेरविः ॥ तस्यामे

न ॥ १२ ॥ सब महीसागरसंगम में अक्षय होताहै पौर्णमासी व अमावसमें महीसागरसंगम में ॥ १३ ॥ कियाहुआ, स्नान, दान, जपादिक वह सब अक्षय होजाताहै
पुरातन समय जब देवर्षि नारदजीने यहां स्थान किया ॥ १४ ॥ तब ग्रहोंने वरदान दिया व शनैश्चरने यह वरदान दिया कि शनैश्चर से संयुत अमावस्या जब होवे ॥
१५ ॥ तब स्नान, दानपूर्वक श्राद्धको वहां करै यदि शनैश्चर के दिन श्रावण मासकी उत्तम ॥ १६ ॥ अमावस होवै व उसमें सूर्य संक्रमण करैं और यदि उसी

तिथिमें व्यतीपात योगहोवै ॥ १७ ॥ तो सौ सूर्यग्रहणोंसे अधिक पुष्कर नामक पर्वहोताहै सब योगों का समूह किसी प्रकारसे भी मिलता है ॥ १८ ॥ उस दिन मही-सागर के संगम में लोहेके शनैश्चर व सोनेके सूर्यको विधिपूर्वक पूजना चाहिये ॥ १९ ॥ शनैश्चर के मन्त्रोंसे शनिको व सूर्यके मन्त्रों करके सूर्यनारायणको ध्यान करके सबपापों की शान्तिके लिये सूर्यको अर्घदेवै ॥ २० ॥ हे पाण्डुके पुत्र अर्जुन जी । वहां प्रयाग से अधिक स्नान व कुरुक्षेत्र से भी अधिक दान और गयाक्षेत्र से अधिक पिण्डदान है ॥ २१ ॥ बड़े पुण्यराशिवाले मनुष्यों को यह सब भलीभांति मिलताहै व स्वर्गमें निश्चयकर पितरोंकी अक्षयतृप्ति होती है ॥ २२ ॥

वतिथौयोगो व्यतीपातोभवेद्यदि ॥ १७ ॥ पुष्करन्नामकंपर्वसूर्यपर्वशताधिकम् ॥ सर्वयोगसमावायः कथञ्चिदपिलभ्यते ॥ १८ ॥ तस्मिन्दिनेशनिंलौहं काञ्चनंभास्करन्तथा ॥ महीसागरसंसर्गे पूजयेतयथाविधि ॥ १९ ॥ शनिमन्त्रैश्शनिंध्यात्वा सूर्यमन्त्रैर्दिवाकरम् ॥ अर्घंदद्याद्भास्करस्य सर्वपापप्रशान्तये ॥ २० ॥ प्रयागादधिकंस्नानं दानंक्षेत्रात्कुरोरपि ॥ पिण्डदानंगयाक्षेत्रादधिकंपाण्डुनन्दन ॥ २१ ॥ इदंसम्प्राप्यतेसर्वं महद्भिःपुण्यराशिभिः ॥ पितॄणामक्षयातृप्तिर्जायतेदिविनिश्चितम् ॥ २२ ॥ यथागयाशिरःपुण्यंपितॄणांतृप्तिदंपरम् ॥ तथासमधिकःपुण्यो महीसागरसङ्गमः ॥ २३ ॥ अग्निश्चतेयोनिरिडाचदेहो रेतोधाविष्णोरमृतस्यनाभिः ॥ एतद्ब्रुवञ्छ्रद्धयासत्यवाक्यं ततोवगाहेतमहीसमुद्रम् ॥ २४ ॥ मुख्यश्चयस्सर्वनदीषुचैकः पाथोधिरम्बुप्रचुरामहीच ॥ समस्ततीर्थीकृतयोर्द्वयोश्चावगाह्यचाहंप्रणमामिनौमि ॥ २५ ॥ कङ्कणंराजतंचापि योत्रनिक्षिपतेनरः ॥ सजायतेमहीपृष्ठेधनधान्ययुतेकुले ॥ २६ ॥ महीञ्चसा

जैसे पुण्यदायक गयाशिरक्षेत्र पितरोंको परमतृप्तिदायक है वैसेही अधिकपुण्यरूप महीसागर का संगम है ॥ २३ ॥ अग्नि व इडा (यज्ञ) तुम्हारा उत्पत्तिस्थान है व विष्णु के वीर्य्यरूपी जीव को धारनेवाली तुम्हारी देह है व अमृत के तुम नाभि(गर्भस्थान) हो इस सत्यवचनको श्रद्धा से कहताहुआ वह उसके उपरान्त महीसागर में स्नानकरै ॥ २४ ॥ व सबनदियों में जो एक मुख्य समुद्र है व बहुत जलवाली जो महीनदी है सबतीर्थ कियेहुये इन दोनोंमें स्नानकर मैं बार २ प्रणामकरताहू ॥ २५ ॥ व इस महीसागर में जो मनुष्य चांदीका कंकण फेंकता है वह धरातलमें धन, धान्यवाले वंशमें पैदा होताहै ॥ २६ ॥ मही व सागर को मैं चांदी के कंकण की पूजासे

पूजताहूं मेरे द्रव्यका नाश व दरिद्रता मतहोवै ॥ २७ ॥ यह कंकण फेंकनेका मंत्रहै समस्त तीर्थों व सब यज्ञोंमें जो फल होता है ॥ २८ ॥ वही फल महीसागर के संगम
में स्नान, दान से होताहै व झगड़ा उत्पन्न होनेपर जो अपराधी मानागयाहै ॥ २९ ॥ वह नाभिकी प्रमाणभर जलमें खडाहोकर व महीसागर के सगममें अघोर मंत्रसे
नहाकर व जलमें हाथडुबाकर ॥ ३० ॥ व पानी में दाहिनाहाथ उछालकर उससे मांगै कि यदि यहां उत्तमधर्म है व यह संगम सत्यहै ॥ ३१ ॥ और यदि यज्ञके
करनेवाले सत्यहैं तो शीघ्रही मेरा शुभ व अशुभ होवै ऐसा कहकर तदनन्तर सब दाहिनाहाथ झिटककर ॥ ३२ ॥ निकलआवै यदि पापकारी होगा तो क्षणभरमें उसी

गरश्चैव रौप्यकङ्कणपूजया ॥ पूजयामिभवेन्मामे द्रव्यनाशोदरिद्रता ॥ २७ ॥ इति कङ्कणक्षेपमन्त्रः ॥ यत्फलंसर्व
तीर्थेषुसर्वयज्ञेषुयत्फलम् ॥ २८ ॥ तत्फलंस्नानदानेन महीसागरसङ्गमे ॥ विवादेचसमुत्पन्नेअपराधीचयोमतः ॥ २९ ॥
जलेहस्तंसमावाप्य महीसागरसङ्गमे ॥ संस्नात्वाघोरमन्त्रेण स्थित्वानाभिप्रमाणके ॥ ३० ॥ जलेकरंसमुत्पत्य
दक्षिणंयाचयेततम् ॥ यदिधर्मोत्तमोस्त्यत्र सत्यश्चेत्सङ्गमस्त्वसौ ॥ ३१ ॥ सत्याश्चेत्क्रतुयष्टारस्सद्यःस्यान्मेशुभाशु
भम् ॥ एवमुक्त्वाकरंक्षिप्य दक्षिणंसकलन्ततः ॥ ३२ ॥ निस्सृतःपापकारीचेद्दारेणापीड्यतेक्षणात् ॥ सप्ताहाद्दृश्य
तेवापि नोचेन्निर्दोषवान्मतः ॥ ३३ ॥ अत्रस्नात्वाचजप्त्वाच तपस्तप्त्वातथैवच ॥ रुद्रलोकंसुबहवो गताःपुण्येनकर्म
णा ॥ ३४ ॥ सोमवारेविशेषेण स्नात्वायोत्रसुभक्तितः ॥ पञ्चतीर्थानिकुरुते मुच्यतेपञ्चपातकैः ॥ ३५ ॥ इत्याद्युक्त्वा
बहुविधं तीर्थमाहात्म्यमुत्तमम् ॥ भर्तृयज्ञःशिवस्योच्चैस्तेषामाराधनक्रमम् ॥ ३६ ॥ शिवागमोक्तमादिश्य पूजायो

दिन पीड़ितहोगा अथवा सातदिनमें भी देखपड़ैगा नहींतो निर्दोषवान् मानागया है ॥ ३३ ॥ यहां नहाकर व जपकरके और तपस्या तपके बहुत मनुष्य पुण्यकर्म से
शिवलोक को गये हैं ॥ ३४ ॥ व विशेषकर उत्तम भक्ति से जो यहां नहाकर पांच तीर्थों में स्नान करता है वह पांच पापों से छूटजाता है ॥ ३५ ॥ इत्यादिक बहुत
प्रकार से उत्तम तीर्थ का माहात्म्य व शिवजीके आराधन का क्रम उन से उच्चप्रकार से कहकर भर्तृयज्ञजी ॥ ३६ ॥ शिवशास्त्र में कहाहुआ विधिपूर्वक पूजन योग

को कहकर फिर शिवभक्तिरूपी केवल समुद्रमें पूर्ण भर्तृयज्ञजी उनसे बोले ॥ ३७॥ कि हे शिवके व्रतवाले लोगो ! शिव से परे देवता नहीं है यह सत्यहै जो शिव जीको छोड़कर अन्य किसी असत् की उपासना करता है ॥ ३८ ॥ वह हाथ में धरेहुये अमृत को छोड़ मृगतृष्णाके समीप दौड़ता है यह प्रत्यक्ष संसार शिवशक्तिमय देखपड़ता है ॥ ३९ ॥ जो लिंगाक व भगांक है कहीं और अन्य देवसे चिह्नित नहीं है और जो उन रुद्र जी पिता व पार्वती माताको छोड़कर ॥ ४० ॥ वर्त्तमान होता है यह अपने पिताको छोड़ अन्य पिताको पिंडदेताहै ॥ ४१ ॥ उन शिवजी के उत्तम शतरुद्रियमाहात्म्यको ॥४१॥ सुनिये यदि पापोंको अच्छेप्रकारसे धोना चा-

गंयथाविधि ॥ शिवभक्तसमुद्रेकपूरितःप्राहतान्पुनः ॥ ३७ ॥ नशिवात्परमोदेवस्सत्यमेतच्छिवव्रताः ॥ शिवंविहाय योह्यन्यदसत्किञ्चिदुपासते ॥ ३८ ॥ करस्थंसोमृतन्त्यक्त्वा मृगतृष्णांप्रधावति ॥ शिवशक्तिमयंह्येतत्प्रत्यक्षंदृश्यतेजगत् ॥ ३९ ॥ लिङ्गाङ्कञ्चभगाङ्कञ्च नान्यदेवाङ्कितंक्वचित् ॥ यश्चतंपितरंरुद्रं त्यक्त्वामातरमम्बिकाम् ॥ ४० ॥ वर्त्ततेसौस्वपितरं त्यक्त्वोपपितृपिण्डदः ॥ तस्यरुद्रस्यमाहात्म्यंशतरुद्रियमुत्तमम्॥४१॥शृणुध्वंयदिपापानामिच्छथध्वंक्षालनंपरम् ॥ ब्रह्माहाटकलिङ्गंच समाराध्यकपर्दिनः ॥ ४२ ॥ जगत्प्रधानमितिच नामजप्त्वाविराजते ॥ कृष्णःस्थलेकृष्णलिङ्गं नामचोर्जितमेवच ॥ ४३ ॥ सनकाद्याश्चहल्लिङ्गं पूज्यप्रापुर्जगद्गतिम् ॥ दर्भाङ्कुरमयंसप्तमुनयोविश्वयोनिकम् ॥ ४४ ॥ नारदस्त्वन्तरिक्षेच जगद्बीजमितिगृणन् ॥ वज्रमिन्द्रोलिङ्गमेवं विश्वात्मानञ्चनामच ॥ ४५ ॥ सूर्यस्ताम्रंतथालिङ्गं नामविश्वसृजञ्जपन्॥ चन्द्रश्चमौक्तिकंलिङ्गं जपन्नामजगत्पतिम् ॥ ४६ ॥ इन्द्रनीलमयंवह्निर्नामविश्वे

हतेहो कि ब्रह्मा शिवजीके हाटकेश्वर लिंगको भलीभांति आराधनकर ॥ ४२ ॥ व जगत्प्रधान ऐसा नाम जपकर शोभित हैं व कृष्णजी स्थल में कृष्णलिंगको पूजकर व ऊर्जितनामको जपके विराजते हैं ॥ ४३ ॥ व सनकादिकोंने हल्लिंगको पूजकर संसारमें गति पाया है व सातमुनि कुशोंके अंकुरमय लिंगको पूजके व विश्वयोनिनाम को जपकर शोभितहैं ॥ ४४ ॥ व जगद्बीज ऐसा कहतेहुये नारदजी आकाशमें लिंगको पूजतेहैं व इन्द्र हीराका लिंग पूजकर व ऐसेही विश्वात्मा नाम जपते हैं ॥ ४५ ॥ और विश्वसृज् नामको जपतेहुये सूर्य तांबे के लिंगको पूजते हैं व जगत्पति नामको जपताहुआ चन्द्रमा मोतीके लिंगको पूजते हैं ॥ ४६ ॥ और विश्वे-

श्वर नामको जपतेहुये अग्निजी इन्द्रनीलमणिके लिंगको पूजते हैं व विश्वयोनि नामको जपतेहुये बृहस्पतिजी शिवजीके पुखराजमणि के लिंगको पूजते हैं ॥ ४७ ॥ व शुक्रजी विश्वकर्मा ऐसे नामसे पद्मरागमणि के लिंगको पूजते हैं और ईश्वरनाम को जपतेहुये कुबेर सुवर्ण के लिंगको पूजते हैं ॥ ४८ ॥ व विश्वेदेवा चांदीका लिंग पूजते हैं व जगत्पति के नाम को भी जपते हैं व यमराज पित्तल से उपजेहुयेलिंग व शंभु इसीनाम को जपते हैं ॥ ४९ ॥ व वसुदेवता कांस्यसे उपजेहुये लिंगको पूजते और स्वयंभु ऐसे नामको जपतेहैं और मरुत देवता तीन धातुओं के लिंग को पूजते व उमेश नामको जपते हैं ॥ ५० ॥ व राक्षस लोहके लिंगको पूजते और भूतभव्य भवोद्भवनामको जपते हैं और गुह्यक सीससे उपजे हुये लिंगको पूजते व योग नामको जपते हैं ॥ ५१ ॥ व जैगीषव्य ब्रह्म रंध्रलिंगको पूजते व योगेश्वर

श्वरं जपन् ॥ पुष्परागं गुरुर्लिङ्गं विश्वयोनिं जपन्हरम् ॥ ४७ ॥ पद्मरागमयंशुक्रो विश्वकर्मेतिनामतः ॥ हेमलिङ्गंच धनदोजपन्नाम्नातथेश्वरम् ॥ ४८ ॥ रौप्यजंविश्वदेवाश्च नामापिजगतांपतिम् ॥ यमश्चरीतिजंलिङ्गं शम्भुमित्येवना मच ॥ ४९ ॥ कांस्यजंवसवोलिङ्गं स्वयम्भुमितिनामच ॥ त्रिलोहंमरुतोलिङ्गं नामतूमेशमेवच ॥ ५० ॥ लोहञ्चराक्षसा नाम भूतभव्यभवोद्भवम् ॥ गुह्यकासीसजंलिङ्गं नामयोगंजपन्तिच ॥ ५१ ॥ जैगीषव्योब्रह्मरन्ध्रं नामयोगेश्वरंजप न् ॥ निमिर्नयनयोर्लिङ्गं जपञ्चैवेतिनामच ॥ ५२ ॥ धन्वन्तरिर्गोमयंच सर्वलोकसुरेश्वरम् ॥ गन्धर्वादानुजंलिङ्गं सर्वं श्रेष्ठेतिनामच ॥ ५३ ॥ वैदूर्यंराघवोलिङ्गं जप्त्वाज्येष्ठेतिनामच ॥ बाणोमारकतंलिङ्गं वसिष्ठमितिनामच ॥ ५४ ॥ वरु णःस्फाटिकंलिङ्गं नाम्नाचपरमेश्वरम् ॥ नागाविद्रुमलिङ्गंचनामलोकत्रयङ्करम् ॥ ५५ ॥ भारतीतनुलिङ्गंच नामलिङ्ग

नाम को जपते हैं और शैव ऐसे नामको जपतेहुये निमि नेत्रों के लिंगको पूजते हैं ॥ ५२ ॥ व धन्वन्तरि गोमय लिंगको पूजते व सर्वलोक सुरेश्वर नामको जपते हैं और गंधर्व दानुजलिंगको पूजते व सर्व श्रेष्ठ ऐसे नामको जपते हैं ॥५३॥ व राघवजी ज्येष्ठ इस नामको जपकर वैदूर्यलिंगको पूजते हैं व बाणासुर मरकतके लिंग को पूजता व वशिष्ठ ऐसे नामको जपता है ॥ ५४ ॥ वरुणजी बिल्लौर के लिंग को पूजते व परमेश्वर नामको जपते हैं और नाग मूंगासे उपजेहुये लिंगको पूजते व त्रिलोक कारक नामको जपते हैं ॥ ५५ ॥ और सरस्वती शरीररूपलिंगको पूजती व लिंगत्रयेश्वरनामको जपती हैं व शनिश्चर के दिन अमावस होनेपर आधीरात के

बीच महीसागर के संगममें शनिश्चरजी आवर्त्तलिंग को पूजते और जगन्नाथ ऐसे नामको जपते हैं व रावणच्चमेलीसे उपजेहुये लिंगको पूजता व सुदुर्जय नामको जपताहै ॥ ५६ । ५७ ॥ व सिद्ध मानसलिंगको पूजते व काममृत्यु जरातिग नामको जपतेहैं और बलियज्ञसे उपजेहुये लिंगको पूजते व इनका ज्ञानात्मा ऐसा नाम जपतेहैं ॥ ५८ ॥ व मरीचि आदिक ऋषि पुष्पसे उपजेहुये लिंगको पूजते व ज्ञान गम्य ऐसे नामको जपतेहैं और सकृतदेवता कियेहुये लिंगको पूजते व ज्ञानज्ञेय ऐसे नामको जपतेहैं ॥ ५९ ॥ व फेनप फेनासे उपजेहुये लिगको पूजते और सुदुर्विद नामको जपतेहैं व वरदायक शिवजीको जपतेहुये कपिलजी बालूके लिंगकोपूजते

त्र्येश्वरम् ॥ शनिश्चलिङ्गमावर्तं जगन्नाथेतिनामच ॥ ५६ ॥ शनौदर्शेमध्यरात्रौ महीसागरसङ्गमे ॥ जातीजंरावणो लिङ्गं जपन्नामसुदुर्ज्जयम् ॥ ५७ ॥ सिद्धाश्चमानसंलिङ्गंकाममृत्युजरातिगम् ॥ यज्ञजंचबलिर्लिङ्गं ज्ञानात्मेत्यस्यनामच ॥ ५८ ॥ मरीच्याद्याःपुष्पजातंज्ञानगम्येतिनामच ॥ सकृताश्चकृतंलिङ्गं ज्ञानज्ञेयेतिनामच ॥ ५९ ॥ फेनपाःफेनजंलिङ्गं नामचापिसुदुर्विदम् ॥ कपिलोबालुकालिङ्गं वरदञ्चजपन्हरम् ॥ ६० ॥ सारस्वतोवाचिलिङ्गं नामवागीश्वरेति च ॥ गणामूर्तिमयंलिङ्गं नामरुद्रेतिचप्रभोः ॥ ६१ ॥ जाम्बूनदमयन्देवाः शितिकण्ठेतिनामच ॥ शङ्खलिङ्गंबुधोनाम कनिष्ठमितिसंजपन् ॥ ६२ ॥ अश्विनौमृन्मयंलिङ्गं नाम्नाचैवसुवेधसम् ॥ विनायकःपिष्टलिङ्गं नाम्नाचापिकपर्द्दिनम् ॥ ६३ ॥ नवनीतंकुजोलिङ्गं नामगम्येतिकीर्त्तयन् ॥ लेप्यलिङ्गंतथालक्ष्मीर्हरिनेत्रेतिनामच ॥ ६४ ॥ योगिनस्सर्वभूतस्थं स्थाणुरित्येवनामच ॥ विश्वकर्माचप्रासादालिङ्गंयाम्येतिनामच ॥ ६५ ॥ वंशाङ्कुरोत्थंसगरो नामसाङ्गवमेव

हैं ॥ ६० ॥ व सारस्वत देवता वचनमें लिंगको पूजतेहैं और वागीश्वर ऐसा नाम जपतेहैं व गण मूर्त्तिमय लिंगको पूजते और प्रभुके रुद्र ऐसे नामको जपतेहैं ॥ ६१ ॥ देवता सुवर्णमय लिंगको पूजने व शितिकण्ठ ऐसे नामको जपतेहैं व कनिष्ठ ऐसानाम जपते हुये बुध शङ्खके लिंगको पूजते हैं ॥ ६२ ॥ अश्विनीकुमार देवता मिट्टीके लिंगको पूजते व नामसे सुवेधाको जपते हैं व गणेशजी पिष्ट (आटा) के लिगको पूजते व नामसे कपर्दीको जपते हैं ॥ ६३ ॥ मंगलगम्य ऐसे नामको कहतेहुये नैनूके लिंगको पूजते हैं और लक्ष्मी लिखेहुये लिंगको पूजती व हरिनेत्र ऐसें नामको जपती हैं ॥ ६४ ॥ योगीलोग सम्पूर्ण प्राणियोंमें टिकेहुये लिंगको पूजते व स्थाणु

इसीनाम को जपते हैं और विश्वकर्मा मन्दिर के लिंगको पूजते व याम्य इस नामको जपते हैं ॥ ६५ ॥ और सगरजी बांसके अंकुरासे उठेहुये लिंगको पूजते व
सांगत्र नामको जपते हैं और गम्य ऐसानाम कहताहुआ राहु हिंगुके लिंगको पूजताहै ॥ ६६ ॥ व मनुष्य अनेक प्रकारके लिंगको पूजते व पुरुष नामक नामको ज-
पते हैं व नक्षत्र तेजोमय लिंगको पूजते व भग नामक सूर्यको जपते हैं ॥ ६७ ॥ व किन्नर धातुके लिंगको पूजते व सुदीप्त ऐसे नामको जपते हैं और ब्रह्मराक्षस
हड्डियों के लिंगको पूजते व देव देव ऐसे नामको जपते हैं ॥ ६८ ॥ और चारण दांतोंसे उत्पन्न हुये लिंगको पूजते व रंहस नामको जपते हैं और साध्य सात धातुओं
के लिंगको पूजते व बहुरूप ऐसे नामको जपते हैं ॥ ६९ ॥ और ऋतुवें दूबके अंकुरा का लिंग पूजती हैं व सर्वनामको जपती हैं व अप्सरायें कुंकुमके लिंगको

च ॥ राहुश्चरामठंलिङ्गं नामगम्येतिकीर्त्तयन् ॥ ६६ ॥ नानाविधंमनुष्याश्च पुरुषन्नामनामच ॥ तेजोमयञ्च नक्षत्राणि
भगन्नामचभास्करम् ॥ ६७ ॥ किन्नराधातुलिङ्गञ्च सुदीप्तमितिनामच ॥ देवदेवेतिनामास्थिलिङ्गञ्चब्रह्मराक्षसाः ॥
६८ ॥ दन्तजंचारणालिङ्गं नामरंहसमेवच ॥ सप्तलोहमयंसाध्या बहुरूपेतिनामच ॥ ६९ ॥ दूर्वाङ्कुरमयंलिङ्गं ऋतव
स्सर्वनामच॥ कौङ्कुमंवैचाप्सरसो लिङ्गंचाभूषणंविदुः ॥७०॥ अलक्तकञ्चयोगिन्यो नामचास्यसुचक्रकम् ॥ श्रीखण्डं
सिद्धयोगिन्यस्सहस्राख्येतिनामच ॥ ७१ ॥ डाकिन्योमांसलिङ्गंच नामचास्यसुमीढुषम् ॥ अप्फेनजञ्चमनवो गिरि
शेतिचनामतः ॥ ७२ ॥ अगस्तिर्व्रीहिजञ्चापि सुशान्तमितिनामच ॥ यवजंदेवलोलिङ्गं पतिमित्येवनामच ॥ ७३ ॥
वल्मीकजञ्चवाल्मीकिश्चीरवासेतिनामच ॥ प्रतर्द्दनोवाणरूपं हिरण्यभुजनामच ॥ ७४ ॥ राजिकञ्चतथादैत्या नाम

पूजती हैं व आचार्यों ने उनका भूषण नामकहा है ॥ ७० ॥ और योगिनी महावर के लिंगको पूजती और इनका सुचक्रक नाम जपती हैं व सिद्ध योगिनी चन्दनका
लिंग पूजती व सहस्राख्यनाम को जपती हैं ॥७१॥ और डाकिनियां मांसका लिंग पूजती व इनका सुमीढुष नाम जपती हैं और मनुलोग जलके फेनासे उपजे हुये
लिंगको पूजते व गिरिश ऐसे नामको जपते हैं ॥ ७२ ॥ अगस्ति जी धान्यसे उपजेहुये लिंगको पूजते व सुशान्त ऐसे नामको जपते हैं व देवलजी यवोंसे उत्पन्न
लिंगको पूजते व पति इसी नामको जपते हैं ॥ ७३ ॥ व वाल्मीकि जी. बँबोरिसे उपजे हुये लिंगको पूजते और चीरवासा ऐसे नामको जपते हैं व प्रतर्द्दनजी बाण

रूप को पूजते व हिरएय भुजनाम को जपते हैं ॥ ७४ ॥ व दैत्य राईके लिंगको पूजते हैं व उग्र ऐसा नाम कहागया है व दानव धान्य पवित्र करने से उपजे हुये लिंगको पूजते और दिक्पति नामको जपते हैं ॥ ७५ ॥ व मेघ जलमय लिंगको पूजते और पर्जन्य ऐसे नामको जपते हैं और यक्ष कुरथी के लिंगको पूजते हैं व नाम भूतपति कहागयाहै ॥७६॥ और पितर तिलात्मक लिंगको पूजते व वृषपति नामको जपतेहैं व गौतम गोरजके लिंगको पूजते और गोपतिही नामको जपतेहैं॥ ७७ ॥ और वानप्रस्थ फलमय लिंगको पूजते व वृक्षावृत ऐसे नामको जपते हैं व स्वामिकार्त्तिकेय जी पत्थल का लिंग पूजते और सेनान्यही नामको ज-

उग्रेतिकीर्तितम् ॥ निष्पावजंदानवाश्च लिङ्गंनामचदिक्पतिम् ॥ ७५ ॥ मेघानीरमयंलिङ्गं पर्ज्जन्यमितिनामच ॥ राजमाषमयंयक्षा नामभूतपतिःस्मृतम् ॥ ७६ ॥ तिलात्मकञ्चपितरो नामवृषपतिस्तथा ॥ गौतमोगोरजमयं नाम गोपतिरेवच ॥ ७७ ॥ वानप्रस्थाःफलमयन्नामवृक्षावृतेतिच ॥ स्कन्दःपाषाणलिङ्गंच नामसेनान्यएवच ॥ ७८ ॥ नागश्चाश्वतरोधान्यं मध्यमेतस्यनामतः ॥ पुरोडाशमयंयक्षाःस्रुचहस्तेतिनामच ॥ ७९ ॥ यमःकालायसमयं नाम प्राहचधन्विनम् ॥ यवाङ्कुरंजामदग्न्यो भार्गवस्तस्यनामतः॥ ८० ॥ पुरूरवाश्चाज्यमयं बहुरूपेतिनामच ॥ मान्धाताशर्करालिङ्गं नामविश्वपतिःस्मृतम् ॥ ८१ ॥ नारायणनरौमौञ्जं सहस्रशिरनामच ॥ ध्यात्वापृथुस्तथालिङ्गं सहस्रचरणाभिधम् ॥ ८२ ॥ पक्षिणोऽव्योमलिङ्गंच नामवाहयुतेतिच ॥ गावःपयोमयंलिङ्गं नामनेत्रसहस्रकम् ॥ ८३ ॥ सा

पते हैं ॥ ७८ ॥ व अश्वतर नाग धान्यको पूजते व इनका मध्य नाम जपतेहैं और यक्ष पुरोडासके लिंगको पूजते वस्रुचहस्त ऐसे नामको जपतेहैं ॥ ७९ ॥ व यमराज लोहमय काले लिंगको पूजतेहैं व धन्वीनाम आचार्यने कहाहै और जामदग्न्यजी यवके अंकुर को पूजते व इनका भार्गव नाम जपते हैं ॥ ८० ॥ और पुरूरवा घी के लिगको पूजते व बहुरूप ऐसे नामको जपते हैं व मांधाता शक्करके लिंगको पूजते हैं व विश्वपति नाम कहागयाहै ॥ ८१ ॥ व नरनारायण मौंजीमय लिंगको पूजते और सहस्र शिर नामको जपते हैं वैसेही पृथुजी लिंगको ध्यानकर सहस्र पाद नामको जपते हैं ॥ ८२ ॥ व पक्षी आकाशके लिंगको पूजते और बाहयुत नाम

को जपते हैं और गाइयां दूधके लिंगको पूजती व नेत्र सहस्रक नामको जपतीहैं ॥ ८३ ॥ पतिव्रता स्त्रियां पतिमय लिंगको पूजती और सर्वात्मक नामको जपती हैं
और पृथ्वी गन्ध लिंगको पूजती व इनके ह्रितनु नामको जपती हैं ॥ ८४ ॥ और शैव भस्मके लिगको पूजते व इनका महेश्वर नाम जपते हैं व ऋषिलोग ज्ञानके
लिगको पूजते व वीरस्थान ऐसे नामको जपते हैं ॥ ८५ ॥ व ब्राह्मण ब्रह्मलिंग को पूजते हैं व ज्योतिर्मय नाम कहागया है और शेषजी गोरोचन के लिगको पूजतेहैं
और पशुपति नाम कहागया है ॥ ८६ ॥ व बासुकि विषके लिंगको पूजते व शङ्कर ऐसे नामको जपते हैं व तक्षक कालकूट नामक लिगको पूजते और बहुरूप ऐसे

ऽप्योभर्तृमयंलिङ्गं नामसर्वात्मकेतिच ॥ पृथिवीगन्धलिङ्गंच ह्रितनुश्चास्यनामच ॥ ८४ ॥ भस्मलिङ्गंपाशुपतानाम
चास्यमहेश्वरः ॥ ऋषयोज्ञानलिङ्गंच वीरस्थानेतिनामच ॥ ८५ ॥ ब्राह्मणाब्रह्मलिङ्गंच नामज्योतिर्मयंविदुः ॥ गोरोच
नमयंशेषो नामपाशुपतिःस्मृतम् ॥ ८६ ॥ वासुकिर्विषलिङ्गंच नामवैशङ्करेतिच ॥ तक्षकःकालकूटाख्यं बहुरूपेति
नामच ॥ ८७ ॥ हालाहलंचकर्कोटः पिङ्गाक्षइतिनामच ॥ शृङ्गीविषमयंलिङ्गं नामधूर्जटिरेवच ॥ ८८ ॥ पुत्रःपितृम
यंलिङ्गं विश्वरूपेतिनामच ॥ पारदश्चशिवादेवी नामत्र्यम्बकमेवच ॥ ८९ ॥ मत्स्याद्याश्शस्त्रलिङ्गंच नामचापिवृषाक
पिम् ॥ एवंकिंबहुनोक्तेन यद्यत्सत्त्वंचभूतिमत् ॥ ९० ॥ जगत्यामस्तितज्जातं शिवाराधनयोगतः ॥ भस्मत्वेयदिवृक्ष
त्वं जायतेनाशसेचनात् ॥ ९१ ॥ शिवभक्तिविहीनस्य ततोस्यफलमुच्यते ॥ धर्मार्थकाममोक्षाणां यदिप्राप्तौभवेन्म

नामको जपतेहैं ॥८७॥ और कर्कोटक नाग हालाहल लिंगको पूजता व पिंगाक्ष ऐसे नामको जपताहै व शृङ्गी विषमय लिंगको पूजने और धूर्जटिही नामको जपतेहैं ॥
८८ ॥ व पुत्र पितृमय लिंगको पूजता व विश्वरूप ऐसे नामको जपता है और शिवादेवी पाराके लिंगको पूजती व त्र्यम्बक ऐसे नामको जपतीहैं ॥ ८९ ॥ और मछली
इत्यादिक शस्त्रलिंगको पूजती व वृषाकपि नामको जपती हैं ऐसेही बहुत कहनेसे क्याहै जो जो जीव ऐश्वर्यवान् है ॥ ९० ॥ वह शिवजी के आराधन के योगसे
पैदाहुआ है यदि जलके सींचने से भस्म में वृक्षता होवै ॥ ९१ ॥ तो शिवभक्ति से हीन इस पुरुषको फल कहाजाता है यदि धर्म, अर्थ, काम व मोक्षके मिलने में

बुद्धिहोवै ॥ ९२ ॥ तो शिवजी की भलीभांति आराधना करना चाहिये क्योंकि वे त्रिलोकमें कामदायक हैं नित्यही प्रातःकाल जो इस शतरुद्री को पढ़ैगा ॥ ९३ ॥ प्रसन्नहोतेहुये शिवदेवजी उसको सब वरदान देते हैं पृथ्वीतल में इससे अधिक पुण्यदायक दूसरी कुछवस्तु नहीहै ॥ ९४ ॥ सूर्यनारायणने मुझसे यह सबवेदों का गुप्त चरितकहाहै व जो पापवाणीसे कियागयाहै व मन और कर्मसे कियागयाहै॥९५॥वह पाप शतरुद्रीके कहनेपर नाशको प्राप्तहोताहै रोगसे विकल पुरुषरोगसे छूटताहै व बन्धुवा बन्धनसे छूटताहै ॥९६॥ और डरापुरुष डरसे छूटजाताहै जोकि शतरुद्रीको जपताहै व सौनामोंसे व उतनेही फूलोंसे शिवजीको पूजताहै॥९७॥ व सौ प्रणामों

तिः ॥ ९२ ॥ ततोहरस्समाराध्यस्त्रिजगत्यर्थदोमतः ॥ यइदंशतरुद्रीयं प्रातर्नित्यंपठिष्यति ॥ ९३ ॥ तस्यप्रीतश्शिवोदेवः प्रदास्यत्यखिलान्वरान् ॥ नातःपरंपुण्यतमं किञ्चिदस्तिमहीतले ॥ ९४ ॥ सर्ववेदरहस्यंच सूर्येणोक्तमिदं मम ॥ वचसायत्कृतंपापं मनसाकर्मणाकृतम् ॥ ९५ ॥ पापंतन्नाशमायाति कीर्तितेशतरुद्रिये ॥ रोगार्तोमुच्यतेरोगाद्बद्धोमुच्येतबन्धनात ॥ ९६ ॥ भयान्मुच्येतभीतस्तु जपेद्यश्शतरुद्रियम् ॥ नाम्नांशतेनयोविद्वान् पुष्पैस्तावद्भिरीश्वरम् ॥ ९७ ॥ प्रणामानांशतेनापि मुच्यतेसर्वपातकैः ॥ लिङ्गानांशतमेतच्च शतमाराधकस्तथा ॥ ९८ ॥ नामानि चशतंसर्वदोषस्यनाशकाःस्मृताः ॥ विशेषादेषुलिङ्गेषु यःपठिष्यतिपञ्चसु ॥ ९९ ॥ पञ्चवर्षसमुद्भूतैस्सदोषैःपरिमुच्यते ॥ २०० ॥ नारद उवाच ॥ निशम्यैवंपार्थतेपिगुप्तक्षेत्रेमुदायुताः ॥ पञ्चलिङ्गान्यर्चयन्तः शिवध्यानपराभवन् ॥ १ ॥ ततोबहुतिथेकाले प्रत्यक्षोभूयशङ्करः ॥ प्राहतान्मुदितोदेवस्तेषांभक्तिविशेषतः ॥ २ ॥ बकोलूकगृध्रकूर्मा इन्द्रद्युम्न

से भी सब पातकों करके छूटजाता है यह लिंगोंका सैकड़ा व सौ आराधक ॥ ९८ ॥ और सौ नाम सब दोषों के नाशक कहेगये हैं व इन लिगोंके मध्यमें जो विशेषकर पांच लिगोंके आगे पढ़ैगा ॥ ९९ ॥ वह पांचवर्ष में उपजेहुये दोषोसे छूटजाताहै ॥ २०० ॥ नारदजी बोले कि हे अर्जुन ! ऐसा सुनकर प्रसन्नतासे संयुत वे भी गुप्तक्षेत्र में पाच लिंगोंको पूजतेहुये शिवजीके ध्यानमें परायणहुये ॥ १ ॥ तदनन्तर बहुत तिथियों वाले समय के बीतने पर उनकी भक्तिकी विशेषता से प्रसन्न

होते हुये शिवदेवजीने उनसे कहा ॥ २ ॥ कि हे बगुला, घुघुवा, गीध, कछुवा ! व हे इन्द्रद्युम्न राजन् ! सारूप्य मुक्तिको प्राप्तहोकर तुमलोग मेरेलोक में बसोगे ॥
३ ॥ व लोमश और मार्कण्डेय भी जीवन्मुक्त होवैंगे देवदेव शिवजीसे ऐसा कहेहुये राजाने महाकालके पूर्व ओर इन्द्रद्युम्नेश्वर नामक लिंगको स्थापन किया व तीर्थ
के गुणोंको जानकर बहुत दिनवाले यशको चाहते हुये राजाने ॥ ४ । ५ ॥ बहुत सुन्दर व अचल लिगको भलीभांति थापकर यह कहा कि जबतक चन्द्रमा व सूर्य
रहैंगे व जबतक पृथ्वी स्थित रहैगी ॥ ६ ॥ तबतक इन्द्रद्युम्न इन्द्रद्युम्नेश्वर लिग को पूजैंगे और फिर शिवजी बोले कि जो पुरुष इस लिंगको पूजैगा वह मेरा गण

चपार्थिव ॥ सारूप्यमुक्तिमापन्ना ममलोकेनिवत्स्यथ ॥३॥ लोमशश्चापिमार्कण्डो जीवन्मुक्तोभविष्यतः ॥ इत्युक्तो
देवदेवेन लिङ्गंस्थापितवान्नृपः ॥ ४ ॥ इन्द्रद्युम्नेश्वरंनाममहाकालाच्चपूर्वतः॥ ज्ञात्वातीर्थगुणान्राजाकीर्तिमिच्छुश्चि
रन्तनीम् ॥ ५ ॥ सुरम्यमचलंलिङ्गं संस्थाप्येदमुवाचह॥ यावच्चन्द्रश्चसूर्यश्च यावत्तिष्ठतिमेदिनी ॥ ६ ॥ इन्द्रद्युम्नेश्वरं
लिङ्गमिन्द्रद्युम्नःप्रपूजयेत ॥ पुनश्चप्रोवाचशिवोयएतत्परिपूजयेत् ॥ सगणोजायतेमह्यं ममलोकेनिवत्स्यति ॥ ७ ॥
इत्युक्त्वासहितश्चैव पञ्चभिःशशिशेखरः ॥ रुद्रलोकमगाद्देवस्तेपिजातागणाःपुनः ॥ ८ ॥ एवंप्रभावोराजासीदिन्द्रद्यु
म्नोमहीपतिः ॥ यजतायेनवीरेण निर्मितेयंमहीनदी ॥ ९ ॥ एवंविधःसुपुण्योयं महीसागरसङ्गमः ॥ बभूवतेनसंक्षेपा
त्तवपार्थप्रकीर्तितम् ॥ १० ॥ स्नात्वात्रसंगमेयश्च इन्द्रद्युम्नेश्वरन्नरः ॥ पूजयेत्तस्यवासःस्याद्यत्रेशःपार्वतीपतिः ॥
११ ॥ सर्वबन्धहरंलिङ्गं गाणपत्यप्रदंत्विदम् ॥ यतोबन्धान्विहायैव स्थापितंतेनफाल्गुन ॥ १२ ॥ इतीदमुक्तंतववपु

होगा व मेरे लोक में बसैगा ॥ ७ ॥ यह कहकर चन्द्रभाल देवजी पांचों समेत शिवलोक को चलेगये और फिर वे भी गण हुये ॥ ८ ॥ इन्द्रद्युम्न भूपति ऐसे प्रताप
वाले राजाहुये कि यज्ञकरते हुये जिस वीर से यह महीनदी बनाईगई ॥ ९ ॥ इस प्रकार का यह सुन्दर पुण्यदायक महीसागर का संगम हुआहै उससे हे अर्जुनजी !
तुमसे संक्षेप से कहाहै ॥ १० ॥ इस संगममें नहाकर जो पुरुष इन्द्रद्युम्नेश्वर को पूजैहै उसका निवास वहां होगा जहां कि पार्वतीके पति शिवजी हैं ॥ ११ ॥ यह
लिंग समस्त बन्धनों का हरनेवाला व गणेशता को देनेवाला है जिससे कि हे अर्जुन ! बन्धनों को छोड़कर उसने स्थापन कियाहै ॥ १२ ॥ हे अर्जुनजी ! इस

प्रकार इनका यह पुण्यकारक माहात्म्य तुमसे कहागया और इन्द्रद्युम्नेश्वर के पुण्य पैदा करनेवाले चरित्रको जो कहैगा उसको बड़ी पुण्यहोगी ॥२१३॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायाभाषाटीकायांमहीसागरमाहात्म्यवर्णनंनामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । वज्रांगक दानव यथा कीन्हो तप बहुकाल । बारहवें अध्यायमें सोई चरित रसाल ॥ अर्जुन जी बोले कि हे महामुने ! जो तुमने कथाके बीचमें कुमार नामक माहात्म्य को कहाहै उसको मैं विस्तारसे सुनना चाहता हूं ॥ १ ॥ नारद बोले कि हे अर्जुन ! स्वामी स्वामिकार्त्तिकेय जीने वज्रांगके पुत्र तारकको मारकर

एयकारि माहात्म्यमस्योत्तमसंगमस्य ॥ पुण्योद्भवंचेन्द्रद्युम्नेश्वरस्य यःकीर्त्तयेत्तस्यपुण्यंमहत्स्यात ॥ २१३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेमहीसागरमाहात्म्यन्नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ * ॥ * ॥

अर्जुन उवाच ॥ कुमारंनाममाहात्म्यं यत्त्वयोक्तंकथान्तरे ॥ तदहंश्रोतुमिच्छामि विस्तरेणमहामुने ॥ १ ॥ नारद उवाच ॥ तारकंविनिहत्यैव वज्राङ्गतनयंप्रभुः ॥ गुहःसंस्थापयामास लिङ्गमेतच्चफाल्गुन ॥ २ ॥ अर्जुन उवाच ॥ अत्याश्चर्यमयीरम्या कथेयंपापनाशिनी ॥ विस्तरेणचमेब्रूहि याथातथ्येननारद ॥ ३ ॥ वज्राङ्गःकोमहादैत्यः किंप्रभावश्चतारकः ॥ कथंसनिहतश्चैव जातश्चैवकथंगुहः ॥ ४ ॥ कथंसंस्थापितंलिङ्गं कुमारेश्वरसंज्ञितम् ॥ नारद उवाच॥ प्रणिपत्यकुमाराय सेनान्येचेश्वरायच ॥ ५ ॥ शृणुचैकमनाःपार्थ कुमारचरितंमहत् ॥ मानसोब्रह्मणःपुत्रो दक्षोनामप्रजापतिः ॥ ६ ॥ षष्टिंसोजनयत्कन्या वीरिण्यांनामफाल्गुन ॥ ददौसदशधर्माय कश्यपायत्रयोदश ॥ ७ ॥

इस लिंग को भलीभांति स्थापन कियाहै ॥ २ ॥ अर्जुन बोले कि हे नारद ! यह पापनाशिनी कथा बड़ी आश्चर्यमयी है इसको यथार्थतासे विस्तारपूर्वक मुझसे कहिये ॥ ३ ॥ कि वज्रांग कौन महादैत्य है व तारक किस प्रभाववाला था और वह कैसे मारागया व स्वामिकार्त्तिकेय जी कैसे पैदाहुये ॥ ४ ॥ और कुमारेश्वर नामक कैसे स्थापित हुये नारद बोले कि स्वामिकार्त्तिकेय सेनाध्यक्ष व ईश्वरके लिये प्रणामकर ॥ ५ ॥ हे अर्जुनजी ! एकाग्र मनवाले हो स्वामिकार्त्तिकेय का चरित सुनिये कि ब्रह्माके मानसी पुत्र दक्ष नामक प्रजापतिहुये ॥६॥ हे अर्जुन ! उन्होंने वीरिणी नामक स्त्रीमें साठिकन्या पैदाकिया और दश धर्म व तेरह कश्यपके लिये दिया॥७॥

व स्वामी दक्ष जीने सत्ताईस चन्द्रमा और चार अरिष्टनेमिको दिया और भृगु, अंगिरा व कृशाश्व के लिये दो दो कन्याओं को दिया ॥ ८ ॥ इन सौतियोंके नाम तुम मुझ से सुनो कि जिनकी सन्तान की उत्पत्तियों से तीनों लोक पूर्णहैं ॥ ९ ॥ भानु, लम्बा, ककुत, भूमि, विश्वा, साध्या, मरुत्वती, वसु, मुहूर्त्ता व संकल्पा धर्मकी स्त्रियाहैं व पुत्रोंको सुनिये ॥ १० ॥ कि सुवेद, ऋषभ व इन्द्रसेन भानुके पुत्रहुये व लम्बाके विद्योत और उनके स्तनयित्नु हुये ॥ ११ ॥ और ककुतके शकट पुत्रहुआ व इसके भी कीकट हुआ और भूमिके दुर्ग पुत्रहुआ व उनके स्वर्ग व नन्दीपुत्र हुये ॥ १२ ॥ व विश्वाके विश्वेदेवता हुये उनको विद्वान् सन्तानहीन कहतेहैं व

सप्तविंशंचसोमाय चतस्रोरिष्टनेमये ॥ भृग्वङ्गिरःकृशाश्वेभ्यो द्वेद्वेचददौप्रभुः ॥ ८ ॥ नामधेयान्यमूषांत्वं सापत्न्यानाञ्चमेशृणु॥ यासांप्रसूतिप्रभवैर्लोकाआपूरितास्त्रयः ॥ ९ ॥ भानुर्लम्बाककुद्भूमिर्विश्वासाध्यामरुत्वती ॥ वसुर्मुहूर्त्तासङ्कल्पा धर्मपत्न्यःसुताञ्छृणु ॥ १० ॥ भानोःसुवेदऋषभ इन्द्रसेनःसुताभवन् ॥ विद्योतआसील्लम्बायां ततश्चस्तनयित्नवः ॥ ११ ॥ककुदःशकटःपुत्रः कीटकस्तनयोयतः ॥ भुवोदुर्गस्तथास्वर्गो नन्दिश्चैवततोभवत्॥१२॥ विश्वेदेवास्तुविश्वाया अप्रजांस्तान्प्रचक्षते ॥ साध्याद्द्वादशसाध्याया अर्द्धसिद्धस्तुतत्सुतः ॥ १३ ॥ मरुत्वांश्चजयन्तश्च मरुत्वत्यांबभूवतुः ॥ नरनारायणौप्राहुर्जातौज्ञानविदोद्विजाः ॥ १४॥ वसोश्चवसवश्चाष्टौ मुहूर्त्तायामुहूर्त्तकाः॥ येवैफलंप्रयच्छन्ति भूतानांस्वस्वकालजम् ॥ १५ ॥सङ्कल्पायाश्चसङ्कल्पः कामःसङ्कल्पजःसुतः ॥ सुरूपायाःसुताआसन् रुद्राएकादशैवच ॥ १६ ॥ कपालीपिङ्गलोभीमो विरूपाक्षोविलोहितः ॥ अजकःशासनःशास्ता शम्भुश्चण्डो

साध्याके बारह साध्य देवताहुये व उनके पुत्र अर्द्धसिद्ध हुये ॥ १३ ॥ मरुत्वती के मरुत्वान् व जयन्त पुत्र हुये ज्ञानके जाननेवाले ब्राह्मणोंने उत्पन्नहुये उन दोनोंको नरनारायण कहाहै ॥ १४ ॥ व वसुके आठ मुहूर्त्त हुये और मुहूर्त्ता के मुहूर्त्तहुये जोकि प्राणियों को अपने २ समय में पैदाहुआ फलदेते हैं ॥ १५ ॥ संकल्पाके संकल्प और संकल्पसे पैदाहुआ पुत्र कामहै और सुरूपाके पुत्र गेरह रुद्र हुयेहैं ॥ १६ ॥ जोकि कपाली, पिंगल,भीम, विरूपाक्ष, विलोहित, अजक, शासन, शास्ता, शम्भु,

चण्ड व भव नामकहैं ॥ १७ ॥ व विरूपाके अन्य पुत्र शिवजी के पार्षद कहेगये हैं इसके अनन्तर अंगिराकी स्त्री स्वधाने पितरोंको पैदाकिया है ॥ १८ ॥ व शचीने अथर्वांगिरस प्रभुको पुत्र उत्पन्न किया और कृशाश्वकी अर्चि व धिषणा दो स्त्रियां हुई हैं॥ १९ ॥ जिनके संहार समेत अस्त्रसमूह पुत्र कहा गयाहै व पतंगी, यामिनी, ताम्रा व तिमि अरिष्टनेमिकी स्त्रियां हुईं ॥ २० ॥ पतंगीने पक्षी व यामिनीने पांखियोंको उत्पन्न किया और ताम्राके बाज, गीध आदिक व तिमिके जलजन्तु समूहहुये हैं ॥ २१ ॥ इसके अनन्तर कश्यपकी स्त्रियोंके नाम सुनिये कि जिनसे यह संसार पैदाहै व जो नाम मनुष्यो व मातृगणोंके कल्याणकारकहैं ॥ २२॥ अदिति, दिति,

भवस्तथा ॥ १७ ॥ रुद्रस्यपार्षदाश्चान्ये विरूपायाःसुतास्स्मृताः ॥ प्रजापतेरङ्गिरसः स्वधापत्नीपितॄनथ ॥ १८ ॥ जज्ञे शचीतथापुत्रमथर्वाङ्गिरसंप्रभुम् ॥ कृशाश्वस्यचद्वेभार्येअर्चिश्चधिषणातथा ॥ १९ ॥ अस्त्रग्रामोययोःपुत्रः ससंहारःप्रकीर्तितः ॥ पतङ्गीयामिनीताम्रा तिमिश्चारिष्टनेमिनः ॥ २० ॥ पतङ्ग्यसूतपतगान् यामिनीशलभानथ ॥ ताम्रायाःश्येनगृध्राद्यास्तिमेर्यादोगणास्तथा ॥ २१ ॥ अथकश्यपपत्नीनां यत्प्रसूतमिदंजगत् ॥ शृणुनामानिलोकानां मातॄणांशङ्कराणिच ॥ २२ ॥ अदितिर्दितिर्दनुःसिंहीह्यनायुःसुरभिस्तथा ॥ अरिष्टाविनताप्राधा तथाक्रोधवशाइरा ॥ २३ ॥ कद्रूर्मुनिश्चलोकानां मातरस्ताःप्रकीर्तिताः ॥ आदित्याश्चादितेःपुत्रा दितेर्दैत्याःप्रकीर्तिताः ॥ २४ ॥ दनोश्च दानवाःपुत्रा राहुःसिंहीसुतोग्रहः ॥ अनायुषस्तथाजातोह्यनायोश्चगणोबली ॥ २५ ॥ गावश्चसुरभीजातारिष्टापुत्राश्चकन्धराः ॥ अरुणंविनतासूत गरुडञ्चमहाबलम् ॥ २६ ॥ प्राधायाःश्वापदाःपुत्रा गणःक्रोधवशस्तथा ॥ जातःक्रोध

दनु, सिंही, अनायु,सुरभि, अरिष्टा, विनता, प्राधा व क्रोधवशा, इरा ॥ २३ ॥ कद्रू व मुनि वे लोकोंकी मातायें कहीगई हैं और अदितिके पुत्र आदित्य व दितिके पुत्र दैत्य कहेगये हैं ॥ २४ ॥ व दनुके पुत्र दानव व सिंहीका पुत्र राहु ग्रह हुआहै और अनायुपके बलिष्ठ अनायुका समूह हुआहै ॥ २५ ॥ व सुरभी के गौवें पैदाहुईं और अरिष्टा के कन्धर पुत्र हुये विनताने अरुण व बड़े बलिष्ठ गरुड़को पैदाकिया ॥२६॥ प्राधाके हिंसक जंगली जीव पुत्र हुये वैसेही क्रोधवशाके क्रोधवश गण पैदाहुआ

और इसके वृत्त पुत्र कहेगयेहैं ॥ २७ ॥ व कद्रूके पुत्र नाग कहेगये हैं और मुनिके अप्सराओंके गण हुये उनमें दितिके जो दो पुत्रथे वे विष्णुजी से मारेगये ॥ २८ ॥
एकवीर हिरण्यकशिपु व दूसरा हिरण्याक्ष तदनन्तर मारेहुये पुत्रोंवाली उस दिति ने कश्यपकी सेवाकर ॥ २९ ॥ व देवी दितिने उनके समीप जाकर बडेबली पुत्रको
मांगा जोकि युद्धमें इन्द्रको मारै उन स्वामी कश्यपजीने उसको दिया ॥ ३० ॥ कि हज़ार वर्षतक नियममें वर्त्तमानहोवो तो ऐसा पुत्रहोगा ऐसा कहीहुई उसने सावधान
हो पुष्करमें टिककर वैसाही किया ॥ ३१ ॥ व सावधान होतेहुये इन्द्रजीने नियममें वर्त्तमान उस दितिकी भक्तिसे सेवाकिया व उसने इनको माना ॥ ३२ ॥ उन

वशायाश्च इरायाश्च द्रुमाःस्मृताः ॥ २७ ॥ कद्रूसुताःस्मृतानागा मुनेरप्सरसांगणाः ॥ तत्रद्वौतनयौयौच दितेस्तौवि
ष्णुनाहतौ ॥ २८ ॥ हिरण्यकशिपुर्वीरो हिरण्याक्षस्तथापरः ॥ ततोनिहतपुत्रासा दितिराराध्यकश्यपम् ॥ २९ ॥ अ
याचतवरंदेवी पुत्रमेत्यमहाबलम् ॥ समरेशक्रहन्तारं सतस्याअददत्प्रभुः ॥ ३० ॥ नियमेचाभिवर्त्तस्व वर्षाणाञ्चस
हस्रकम् ॥ इत्युक्तासातथाचक्रे पुष्करस्थासमाहिता ॥ ३१ ॥ वर्त्तन्त्यानियमेतस्याः सहस्राक्षःसमाहितः ॥ उपासा
माचरन्भक्त्या साचैनमनुमन्यत ॥ ३२ ॥ तस्यवत्सरशेषस्य सहस्रस्यतदादितिः ॥ उवाचशक्रंसुप्रीता भक्त्याशक्र
स्यतोषिता ॥ ३३ ॥ दितिरुवाच ॥ पुत्रोत्तीर्णव्रतप्रायांविद्धिमांदेवसत्तम ॥ भविष्यतितवभ्राताते नसार्द्धमिमांश्रियम् ॥
३४ ॥ भोक्ष्यसेत्वंयथान्यायं त्रैलोक्यंहतकण्टकम् ॥ इत्युक्त्वानिद्रयाविष्टाचरणाक्रान्तमूर्द्धजा ॥ ३५ ॥ दिवासुप्तादि
तिर्देवी भाव्यर्थबलनोदिता ॥ तत्तुरन्ध्रमवेक्ष्यैव योगमूर्तिस्तदाविशत् ॥ ३६ ॥ जठरेतंदितेर्गर्भंचक्रेवज्रेणसप्तधा ॥

हज़ारवर्षों में जब एक साल शेष रहा तब इन्द्र की भक्ति से प्रसन्न कीहुई व अतिआनन्दित दिति ने इन्द्रसे कहा ॥ ३३ ॥ दिति बोली कि हे देवोत्तम पुत्र ! तुम
उतरे याने समाप्त हुये व्रतवाली मुझको जानो जो तुम्हारा भाई होगा उस समेत तुम इस लक्ष्मी को ॥ ३४ ॥ भोगोगे व न्यायपूर्वक नष्टकंटकोंवाले त्रिलोक को
भोग करोगे यह कहकर नींदसे संयुत व चरणों के स्थान को घेरेहुये बालोंवाली व होनहार वस्तु से प्रेरणा कीहुई दिति देवी दिन में सोगई उससमय उस छिद्र

को देखकर योग से मूर्तिधारी इन्द्रजी उसके पेट में पैठ गये ॥ ३५।३६ ॥ व दितिके उस गर्भ को वज्र से सात खण्ड करडाला तदनन्तर इन्द्रने कोप से फिर एक २ खण्डके सात २ खण्ड किया उसके उपरान्त दिति जागपड़ीं व उस दिति ने इन्द्रसे यह कहा कि न मारना चाहिये न नाशना चाहिये ॥ ३७ । ३८ ॥ जो दिति कि वज्र से काटेजातेहुये बालकों के रोने से जागी थीं तदनन्तर मत रोवो यह वचन उन से कहते हुये इन्द्रजी ॥ ३९ ॥ उस दिति के पेटसे निकलकर हाथजोड़ आगे खड़े होगये व डरकर क्रोध से पूर्ण मातासे वचन बोले ॥ ४० ॥ कि हे माता ! तुमने दिन को शयन किया व चरणों के स्थान को घेरेहुये बालोंवाली तुम देरतक

एकैकंचपुनःखण्डञ्चकारमघवाततः ॥ ३७ ॥ सप्तधासप्तधाकोपाद्बुद्बुध्यतततोदितिः ॥ नहन्तव्योनहन्तव्य इति साशक्रमब्रवीत् ॥ ३८ ॥ वज्रेणकृत्यमानानांबुद्धायारोदनेनच ॥ ततःशक्रश्चमारोदीरितितान्वचनंवदन् ॥ ३९ ॥ निर्गत्यजठरात्तस्याःस्थितःप्राञ्जलिनाग्रतः ॥ उवाचवाक्यंचत्रस्तोमातरंरोषपूरिताम् ॥ ४० ॥ दिवास्वापंकृतंमातः पादाक्रान्तशिरोरुहा ॥ सुप्ताचसुचिरंचातश्छिन्नोगर्भोमयातव ॥ ४१ ॥ एकोनपञ्चाशत्कृताभागावज्रेणतेसुताः ॥ सत्यंभवतुतेवाक्यंसार्द्धंभोक्ष्यामितैःश्रियम् ॥ ४२ ॥ दास्यामितेषांस्थानानिदिवियावदहन्दिते ॥ मारोदीरितिमेप्रोक्ताः ख्यातास्त्रमरुतस्त्विति ॥ ४३ ॥ इत्युक्तासाचसव्रीडादितिर्जातानिरुत्तरा ॥ तैःसार्द्धंगतवानिन्द्रोदिवन्तेवायवःस्मृताः ॥ ४४ ॥ ततःपुनश्चभर्त्तारंदितिःप्रोवाचदुःखिता ॥ पुत्रंमेभगवन्देहिशक्रजेतारमूर्जितम् ॥ ४५ ॥ योस्त्रशस्त्रैरवध्यत्वङ्गच्छेत्त्रिदिववासिनाम् ॥ नददास्युत्तरंविद्धि मृतामेवप्रजापते ॥ ४६ ॥ इत्युक्तस्सततोवाचतां पत्नीमतिदुःखिताम् ॥ दशवर्षसहस्रा

सोती रही इससे मैंने तुम्हारा गर्भ काटडाला ॥ ४१ ॥ व वज्र से काटे हुये तुम्हारे पुत्र उंचास भाग कियेगये तुम्हारा वचन सत्यहोवै उन समेत मैं लक्ष्मी को भोग करूंगा ॥ ४२ ॥ हे दिते ! जबतक मैं स्वर्ग में रहूंगा तबतक उनको स्थान दूंगा मैंने जो इनसे यह कहा कि मतरोवो इस से मरुत् ऐसे प्रसिद्ध होंगे ॥ ४३ ॥ ऐसी कहीहुई लज्जा समेत वे दिति जी उत्तररहित होगईं और उनसमेत इन्द्रजी स्वर्गको चलेगये और वे पवन कहेगयेहैं ॥ ४४ ॥ तदनन्तर दुःखित होतीहुई दिति ने फिर पति से कहा कि हे भगवन् ! इन्द्र के जीतनेवाले बढ़ेहुये पुत्र को मुझे दीजिये ॥ ४५ ॥ जो कि स्वर्गवासियों के अस्त्र शस्त्रों से अवध्यता को प्राप्त होवै हे प्रजापते !

उत्तर नहीं देते हो तो मुझको मरीहुई जानिये ॥ ४६ ॥ तदनन्तर ऐसा कहेहुये उन कश्यपजीने बड़ीदुःखित उस स्त्री से कहा कि शीघ्रही तुम दशहज़ार वर्षतक तप में स्थितहोवो ॥ ४७ ॥ वज्र के सारांशमय वन कटनेयोग्य लोह के तुल्य पुष्टअङ्गोंसे संयुत व धर्मप्रिय वज्रांग नामक तुम्हारे पुत्र होगा ॥ ४८ ॥ वर पायेहुई वे देवी तपस्या के लिये वनको चलीगई ॥ ४९ ॥ व दशहज़ार वर्षतक भयंकर तपस्या किया व तपस्याके अन्तमें भगवती दितिने दुःखसे जीतने योग्य व जिसके बराबर दूसरा कर्म करनेवाला नहींथा व न जीतने योग्य व वज्रसे न कटनेवाले पुत्र को पैदाकिया पैदाहुआ ही वह पुत्र सब शास्त्रका पारगामी हुआ ॥ ५० । ५१ ॥ और

णि तपोनिष्ठाभवाशुत्वम् ॥ ४७ ॥ वज्रसारमयैरङ्गैरच्छेद्यैरायसैर्दृढैः ॥ वज्राङ्गोनामपुत्रस्ते भविताधर्मवत्सलः ॥ ४८ ॥ सातुलब्धवरादेवी जगामतपसेवनम् ॥ ४९ ॥ दशवर्षसहस्राणि तपोघोरंसमाचरत् ॥ तपसोन्तेभगवती जनयामासदुर्जयम् ॥ ५० ॥ पुत्रमप्रतिकर्माणमजेयंवज्रदुश्छिदम् ॥ सजातमात्रएवाभूत्सर्वशास्त्रस्यपारगः ॥ ५१ ॥ उवाचमातरंभक्त्या मातःकिङ्करवाण्यहम् ॥ तमुवाचततोहृष्टा दितिर्दैत्याधिपंसुतम् ॥ ५२ ॥ बहवोमेहताःपुत्राः सहस्राक्षेणपुत्रक ॥ तेषामपचितिङ्कर्तुमिच्छुःशक्रवधादहम् ॥ ५३ ॥ बाढमित्येवतामुक्त्वा जगामत्रिदिवंबली ॥ सम्प्राप्यसमरेशक्रं सचबाह्वायुधोजयत् ॥ ५४ ॥ पादेनाकृष्यचैवेन्द्रं सिंहःक्षुद्रमृगंयथा ॥ मातुरन्तिकमापृच्छ्याचमानंभयातुरम् ॥ ५५ ॥ एतस्मिन्नन्तरेब्रह्मा कश्यपश्चमहातपाः ॥ आगतौतत्रसंत्रस्तावथोब्रह्माजगादतम् ॥ ५६ ॥ मुञ्चामुंपुत्रजीवन्तं किमनेनप्रयोजनम् ॥ अवमानंवधःप्रोक्तो वीरसम्भावितस्यच ॥ ५७ ॥ अस्मद्वाक्येनयोमुक्तो जीवन्नपिमृतोहि

भक्ति करके वह मातासे बोला कि हे माता ! मैं क्याकरूं तदनन्तर प्रसन्न होतीहुई दितिने दैत्योंके स्वामी पुत्रसे कहा ॥ ५२ ॥ कि हे पुत्र ! इन्द्रने मेरे बहुत पुत्रोंको माराहै मैं इन्द्रके मारने से उनकी पूजा करना चाहती हूं ॥ ५३ ॥ बहुत अच्छा यही उनसे कहकर बलिष्ठ पुत्र स्वर्गको चलागया व युद्धमें इन्द्रको पाकर भुजारूपी शस्त्रोंवाले उसने इन्द्रको जीतलिया ॥ ५४ ॥ जैसे सिंह क्षुद्रमृग को खींचै वैसेही याचना करतेहुये व डरसे विकल इन्द्रको चरणसे खींचकर माताके समीप लाकर रक्खा ॥ ५५ ॥ इसी अवसरमें बड़े तपस्वी कश्यप व ब्रह्मा डरकर वहांआये व इसके अनन्तर ब्रह्मा उनसे बोले ॥ ५६ ॥ कि हे पुत्र ! जीतेहुये इसको छोड़दो इससे क्या

प्रयोजन है क्योंकि हे वीर ! मर्यादिक पुरुषका अपमान होना वध कहागया है ॥ ५७ ॥ हमारे वचनके कारण जो छोड़ागया जीताहुआ भी वह मराहै संग्राम में जो शत्रुको मारतेहैं वे वीर नहीं कहेगये हैं ॥ ५८ ॥ व मानमर्दनकर शत्रुको जो छोड़देते हैं वे श्रेष्ठहैं जैसे अत्यन्त श्रेष्ठ मानकर तुमने माताका वचन किया है ॥ ५९ ॥ हे पुत्र ! वैसेही पिताका वचन करना चाहिये इन इन्द्रको छोड़देवो यह सुनकर प्रणाम कियेहुये वज्रांगने वचन कहा ॥ ६० ॥ कि इससे मेरा कार्य नहींहै मैंने माता की आज्ञाकिया है और देवता दैत्योंके स्वामी तुम मेरे प्रपितामहहो ॥ ६१ ॥ हेदेव ! तुम्हारा वचन करैंगे इससे इन्द्रको छोड़दिया व इन्द्रकी भोगीहुई इस त्रिलोकीकी

सः ॥ शत्रुंयेघ्नन्तिसमरे नतेवीराःप्रकीर्तिताः ॥ ५८ ॥ कृत्वामानपरिम्लानं येमुञ्चन्तिवराहिते ॥ यथामान्यतमांम त्वा त्वयामातुर्वचःकृतम् ॥५९॥ तथापितुर्वचःकार्यं मुञ्चाशुंपुत्रवासवम् ॥ एतच्छ्रुत्वातुवज्राङ्गः प्रणतोवाक्यमब्रवी त् ॥ ६० ॥ नमेकृत्यमनेनास्ति मातुराज्ञाकृतामया ॥ त्वंसुरासुरनाथोवै ममचप्रपितामहः ॥ ६१ ॥ करिष्येत्वद्वचो देव अतोमुक्तश्शतक्रतुः ॥ नचकाङ्क्षेशक्रभुक्तमिमंत्रैलोक्यराज्यकम् ॥ ६२ ॥ परभुक्तायथानारी परभुक्तामिवस्र जम् ॥ यच्चात्रिभुवनेप्यस्ति सारंतन्ममकथ्यताम् ॥ ६३ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ तपसोनपरंकिञ्चित्तपोहिमहतान्धनम् ॥ तप सात्राप्यतेसर्वं तपोयोग्योसिपुत्रक ॥ ६४ ॥ वज्राङ्गउवाच ॥ तपसोमेरतिर्देव नविघ्नंतत्रमेभवेत् ॥ त्वत्प्रसादेनभगव न्नित्युक्त्वाविरराम सः ॥ ६५ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ क्रूरभावम्परित्यज्ययदिच्छसितपस्सुत ॥ अनयाचित्तशुद्ध्याते पर्याप्तंज न्मनःफलम् ॥ ६६ ॥ इत्युक्त्वापद्मज कन्यां कमलायतलोचनाम् ॥ तामस्मैप्राददद्देवः पत्न्यर्थंपद्मसम्भवः ॥६७॥

राज्यको पराईभोगी हुई मालाकी नाईं मैं नहीं चाहताहूं जैसे कि पराईभोगी स्त्री होवै और जो त्रिलोकमें भी सारांशहोवै मुझसे वह कहाजावै ॥ ६२ । ६३ ॥ ब्रह्मा बोले कि तपस्यामे परे कुछ नहीं है व तप महात्माओं का धनहै हे पुत्र ! यहां तपस्यासे सब मिलताहै व तुम तपस्याके योग्यहो ॥ ६४ ॥ वज्रांग बोला कि हे देव ! तपस्यामें मेरा स्नेह होवै व हे भगवन् ! तुम्हारी प्रसन्नतासे मेरे उस तपमें विघ्न न होवै यह कहकर वह चुपारहा ॥ ६५ ॥ ब्रह्मा बोले कि हे पुत्र ! यदि तप चाहते हो तो क्रूरस्वभाव को छोडकर वर्त्तमान होवो इसी चित्तकी पवित्रता से तुमको जन्मका फल परिपूर्ण होगा ॥ ६६ ॥ ऐसा कहकर कमलसे पैदाहुये ब्रह्मादेव ने स्त्री के

लिये कमललोचनोंवाली उस कन्याको इसके निमित्त दिया ॥ ६७॥ व पितामहने इसका वरांगी ऐसा नाम किया तदनन्तर कश्यप के साथ ब्रह्मा स्वर्गको चलेगये ॥ ६८ ॥ और उस स्त्री समेत वज्रांग भी तपके लिये बनको चलागया और वह दैत्येन्द्र ऊपर भुजा उठाकर हज़ारवर्ष के समय तक खड़ारहा ॥ ६९ ॥ व कमल सरीखे नेत्रोंवाला व बड़ा तपस्वी और पवित्र बुद्धिवाला वह वज्रांग उतनेही समय तक नीचे मुख करके खड़ारहा व उतनेही समय तक पंचाग्नि का साधक हुआ ॥ ७० ॥ व निराहार और भयकर तपवाला वह तपस्याकी राशि होगया तदनन्तर हज़ारवर्षके समय तक उसने जलके भीतर तपस्या किया ॥ ७१ ॥ व जलके भीतर पैठे

वराङ्गीतिचनामास्याः कृतवांश्चपितामहः ॥ जगामचततोब्रह्मा कश्यपेनसमन्दिवि ॥ ६८ ॥ वज्राङ्गोपितयासार्द्धं जगामतपसेवनम् ॥ ऊर्द्ध्वबाहुस्सदैत्येन्द्रोतिष्ठदब्दसहस्रकम् ॥ ६९ ॥ कालंकमलपत्राक्षः शुद्धबुद्धिर्महातपाः ॥ तावदधोमुखःकालं तावान्पञ्चाग्निसाधकः ॥ ७० ॥ निराहारोघोरतपास्तपोराशिरजायत ॥ ततस्सोन्तर्जलेचक्रे कालंवर्षसहस्रकम् ॥ ७१ ॥ जलान्तरंप्रविष्टस्य तस्यपत्नीमहाव्रता ॥ तस्यैवतीरेसरसस्तत्परामौनमाश्रिता ॥ ७२ ॥ निराहारंपतिंमत्वा तपस्तेपेपतिव्रता ॥ तस्यास्तपसिवर्तन्त्या इन्द्रश्चक्रेविभीषणाः ॥ ७३ ॥ भूत्वातुमर्कटाकारं तस्याश्रमपदम्महत ॥ अपविद्धमपःकुम्भं शून्यतोयंचकारसः ॥ ७४ ॥ तथाविलोलनयनां विलोलवदनांतथा ॥ विलोलकेशान्ताञ्चक्रे विधित्सुस्तपसःक्षतिम् ॥ ७५ ॥ ततश्चमेषरूपेण भयंतस्याश्चकारसः ॥ ततोभुजङ्गरूपेण बद्धाचरणयोर्द्वयोः ॥ ७६ ॥ अपाकर्षततद्दूरं स तस्मादेवमहीभृतः ॥ तपोबलाच्चसातस्य नबन्धत्वंजगामह ॥ ७७ ॥ दमयाचमहाभागा क्रो

हुये उसकी बडे व्रतवाली स्त्री उसी तड़ाग के किनारे मौनमें प्राप्तहोकर पतिमें परायणाहुई ॥ ७२ ॥ व पतिको निराहार मानकर पतिव्रताने तपस्या किया उसको तपस्यामें वर्त्तमान होतेहुये इन्द्रने डरावने आकारोंको किया ॥ ७३ ॥ व बन्दर का आकार कर उसके बडेभारी आश्रमको विकलकिया और उनने जलके घड़ेको शून्य जलवाला करदिया ॥ ७४ ॥ वैसेही तपके भंगकी इच्छावाले इन्द्रने उसको चंचलनेत्रोंवाली व चपल मुखवाली और चंचलबालोंवाली किया ॥ ७५ ॥ तदनन्तर भेड़ाके रूपसे उसको भयकिया उसके उपरान्त सर्परूप से दोनों चरण बांधलिया ॥ ७६ ॥ व उस पर्वत से उसने दूरतक खींचा परन्तु तपस्या के बलसे वह उसके

बन्धनता में न प्राप्तहुई ॥ ७७ ॥ व महाभाग्यवती उसने क्षमासे थोडाभी क्रोध न किया तदनन्तर सियार के रूपसे उस आश्रमको दूषित किया ॥ ७८ ॥ व उसने अग्निरूपसे उसके बड़े आश्रमको जलाया और बडे अंगवाले पवनरूप से उस उत्तम स्त्रीको खींचा ॥ ७९ ॥ इस प्रकार बार २ सिंह, भेंड़िया इत्यादि डरपानेवाले जीवोंसे जब वज्रांग की स्त्रीने तपस्याको न छोडा तब ॥८०॥ पर्वतकी दुष्टता मानकर उसने शाप देनेका विचार किया व शापकी ओर सम्मुख उस कन्याको देखकर पुरुषशरीरवाला पर्वत ॥ ८१ ॥ उत्तम कटिवाली व वरके योग्य और डरेहुये नेत्रोंवाली उस स्त्री से बोला ॥ ८२ ॥ पर्वत बोला कि हे महाव्रते ! मैं दुष्ट नहींहूं किन्तु

धर्मएवपिनाकरोत् ॥ ततोगोमायुरूपेण तदद्दूपयदाश्रमम् ॥ ७८ ॥ अग्निरूपेणतस्याश्च सददाहमहाश्रमम् ॥ चकर्षवायुरूपेण महांगेनचतांशुभाम् ॥ ७९ ॥ एवंसिंहवृकाद्याभिर्भीषिकाभिःपुनःपुनः ॥ विरराम यदानैव वज्राङ्गमहिषीतदा ॥ ८० ॥ शैलश्चदुष्टतांमत्वा शापंदातुंव्यवस्यत ॥ तांशापाभिमुखीन्दृष्ट्वा शैलःपुरुषविग्रहः ॥ ८१ ॥ उवाचच वरारोहां वरार्हांभीरुलोचनाम् ॥ ८२ ॥ शैलउवाच ॥ नाहंमहाव्रतेदुष्टस्सेव्योहंसर्वदेहिनाम् ॥ अतिखेदंकरोत्येष तवक्रुद्धस्तुवृत्रहा ॥ ८३ ॥ एतस्मिन्नन्तरेयातः कालोवर्षसहस्रकः ॥ तस्मिन्यातेतुभगवान् कालेकमलसम्भवः ॥ ८४ ॥ तुष्टःप्रोवाचवज्राङ्गं तमागत्यजलाशयम् ॥ ८५ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ ददामिसर्वकामांस्त उत्तिष्ठदितिनन्दन ॥ एवमुक्तस्ततोत्थाय दैत्येन्द्रस्तपसोनिधिः ॥ ८६ ॥ उवाचप्राञ्जलिर्वाक्यं सर्वलोकपितामहम् ॥ वज्राङ्गउवाच ॥ आसुरोमेस्तुमाभावो शक्रराज्येचमारतिः ॥ तपोधर्मेरतिश्चास्तुवृणोम्येतत्पितामह ॥ ८७ ॥ एवमस्त्वितितंब्रह्मा प्राहवि

समस्त देहधारियों से सेवनीय हूं और क्रोधितहोकर यह इन्द्र तुमको अतिखेदकारक है ॥ ८३ ॥ इसी अवसर में हजारवर्ष का समय बीतगया व उस समय के बीतने पर कमल से उपजेहुये भगवान् ब्रह्माजी ॥ ८४ ॥ प्रसन्न होकर उस जलाशय के समीप आकर वज्रांगसे बोले ॥ ८५ ॥ ब्रह्मा बोले कि हे दितिपुत्र ! उठो मैं तुमको सब कामनाओं को दूंगा तदनन्तर ऐसा कहेहुये तपस्याके निधान दैत्येन्द्र ने उठकर ॥ ८६ ॥ हाथ जोडकर समस्त लोकोंके पितामहसे वचन कहा वज्रांग बोला कि हे पितामह ! मेरा दैत्य का स्वभाव मतहो व इन्द्रकी राज्यमे स्नेह न हो और तपस्या व धर्म में प्रीतिहो यह तुमसे मांगताहूं ॥ ८७ ॥

विस्मय में प्राप्त मनवाले ब्रह्माने उससे यह कहा कि ऐसाही होगा उससमय इन्द्र को समीप देखा क्योंकि होनहार वस्तुको कौन उल्लंघन करताहै ॥ ८८ ॥ ऋषि, मनुष्य, देवता व, शिव, ब्रह्मादिक भी होनहार वस्तुको नही नाघते जैसे कि समुद्र अपनी हद्दको नही नांघताहै ॥ ८९ ॥ ऐसा विचार कर ब्रह्माजी वहीं अन्तर्द्धान हो-गये व छोड़े हुये संयमोंवाले वज्रांग ने भी तपके समाप्त होजानेपर ॥९०॥ भोजन को चाहतेहुये अपने आश्रममें अपनी स्त्रीको न देखा व फलकी इच्छावाले उस स्त्री-हीनने यह विचारकर व इधर उधर ॥ ९१ ॥ अपनी स्त्रीको देखा इसके अनन्तर देखतेहुये नित्य कर्म करनेकी इच्छावाले उस वज्रांगने इस लोक व परलोकमें सहा-

स्मितमानसः ॥ उपैक्षत्तदाशक्रं भाव्यर्थंकोतिवर्तते ॥ ८८ ॥ ऋषयोमनुजादेवाः शिवब्रह्ममुखाअपि ॥ भाव्यर्थंना-
तिवर्त्तन्ते वेलामिवमहोदधिः ॥ ८९ ॥ इतिचिन्त्यविरिञ्चोपि तत्रैवान्तरधीयत ॥ वज्राङ्गोपिसमाप्तेतु तपसित्यक्तसं-
यमः ॥ ९० ॥ आहारमिच्छन्स्वाम्भार्यां नददर्शाश्रमेस्वके ॥ भार्याहीनःफलेच्छुश्च संचिन्त्येदमितस्ततः ॥ ९१ ॥
अलोकयत्स्वकांभार्यां विधित्सुःकर्मनैतिकम् ॥ विलोकयन्ददर्शाथ इहामुत्रसहायिनीम् ॥ ९२ ॥ रुदन्तींस्वांप्रियान्दी-
नां तरुभिश्छादिताननाम् ॥ तांविलोक्यततोदैत्यः प्रोवाचपरिसान्त्वयन् ॥ ९३ ॥ वज्राङ्गउवाच ॥ केनतेपकृतम्भीरु
वर्त्तन्त्यास्तपसिस्वके ॥ कथंरोदिषिवाबाले मयिजीवतिभर्तरि ॥ ९४ ॥ कंवाकामंप्रयच्छामि शीघ्रंप्रब्रूहिभामिनि ॥
९५ ॥ गृहेश्वरींसद्गुणभूषितांशुभां पङ्ग्वन्धयोगेनगतंविहीनाम् ॥ नलालयेत्पूरयेन्नैवकामं सकिंपुमान्नपुमान्मेमते-
सो ॥ ९६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेकुमारेशमाहात्म्यवर्णनंनामद्वादशोध्यायः ॥ १२ ॥ * ॥

यिनी स्त्री को देखा ॥ ९२ ॥ व वृक्षों से छिपे मुखवाली और दुःखित व रोती हुई उस अपनी प्यारी को देखकर तदनन्तर समझाते हुये दैत्यने कहा ॥ ९३ ॥ वज्रांग बोला कि हे भीरु ! अपने तप में वर्तमान होती हुई तुम्हारा किसने अपकार किया हे बाले ! मुझ पति के जीने पर तुम क्यों रोती हो ॥ ९४ ॥ हे भामिनि! अथवा कौन कामना को देऊं यह शीघ्रही कहिये ॥ ९५ ॥ उत्तम गुणों से भूषित व पंगु और अन्ध के योगसे गति रहित उत्तम स्त्री को जो प्यार नहीं करताहै व कामना नहीं पूर्ण करता वह क्या पुरुष है किन्तु मेरे मत में यह पुरुष नहीं है ॥ ९६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेकुमारेशमाहात्म्यवर्णनंनामद्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

दो० । तप करि तारक जिमि लह्यो ब्रह्मा सों वरदान । तेरहवें अध्याय में सोई करत बखान ॥ वरांगी बोली कि भयङ्कर इन्द्र से अनाथ की नाईं मैं नाशित व फेंकी गईहूं व बहुत डरपाई तथा पीड़ित कीगईहूं ॥ १ ॥ दुःख का व्यापार देखती हुई मैं प्राणों को त्यागने के लिये प्राप्तहूं यदि कृपा होवै तो भयङ्कर दुःखवाली मुझको तारक पुत्र दीजिये ॥ २ ॥ ऐसा कहेहुये दैत्येन्द्र ने दुःखितहो हृदय में चिन्तन किया कि यद्यपि दैत्यों के स्वभाव में मेरी इच्छा नहीं है ॥ ३ ॥ तौ भी अन्य शास्त्रों से मानताहूं कि स्त्री दया करने के योग्य होती है क्योंकि सब आश्रमों को ग्रहण कर अपनेही आश्रम से स्त्रीवाला पुरुष ॥ ४ ॥ दुःख के समुद्र को नांघजाता

वराङ्ग्युवाच ॥ नाशितास्म्यपविद्धास्मित्रासितापीडितास्मिच ॥ रौद्रेणदेवनाथेननष्टनाथेवभूरिशः ॥ १ ॥ दुःखव्यापारपश्यन्ती प्राणांस्त्यक्तुंव्यवस्थिता ॥ पुत्रंमेघोरदुःखस्यतारकंदेहिचेत्कृपा ॥ २ ॥ एवमुक्तस्तुदैत्येन्द्रोदुःखितोचिन्तयद्धृदि ॥ आसुरेचापिमेभावेस्पृहायद्यपिनास्तिच ॥ ३ ॥ तथापिमन्येशास्त्रेभ्यस्त्वनुकम्प्याप्रियेतियत् ॥ सर्वाश्रमानुपादायस्वाश्रमेणकलत्रवान् ॥ ४ ॥ व्यसनार्णवमत्येतिजलपानैरिवार्णवम् ॥ यामाश्रित्येन्द्रियारातीन् दुर्जयांनितराश्रमैः ॥ ५ ॥ गेहिनोहेलयाजिग्युर्दस्यून्दुर्गपतिर्यथा ॥ नकेपिप्रभवस्ताञ्चाप्यनुकर्तुंगृहेश्वरीम् ॥ ६ ॥ अथार्थीकामधर्मादीच्छुर्यतोनरः ॥ यस्यांभवतिचात्मैवततोजायानिगद्यते ॥ ७ ॥ भर्तुर्बिभर्त्तीयायस्मात्तस्माद्भार्येतिसास्मृता ॥ साएवगृहमुक्तञ्चगृहिणीसाततःस्मृता ॥ ८ ॥ संसारकल्मषात्त्रात्री कलत्रमितिसाततः ॥ एवंविधांप्रियांकोवैनानुकम्पितुमर्हति ॥ ९ ॥ त्रीणिज्योतींषिपुरुषइतिवैदेवलोब्रवीत् ॥ भार्याकर्मचविद्याचसंसाध्यंयतत

है जैसे कि नाव इत्यादिकों से समुद्र को नांघता है व जिस स्त्री के आश्रित होकर और आश्रमोंसे दुर्जय इन्द्रियरूप शत्रुवोंको गृहस्थों ने लीलासे जीतलियाहै जैसे कि किले का स्वामी शत्रुवो को जीतताहै उस घरकी स्वामिनी का अनुकार करनेकेलिये कोईभी समर्थ नहीं हैं ॥ ५।६ ॥ इसके अनन्तर धर्मादिक चाहनेवाला पुरुष जिसलिये सम्पूर्ण अवस्था से अपनाही जिसमें होताहै उसी से जाया कहीजाती है ॥ ७ ॥ व जिसलिये जोकि पति को धारण करती है उसी से वह भार्या कही गई है और वही घर कही गई है उसी कारण वह गृहिणी कहीजातीहै ॥ ८ ॥ व जिस लिये संसार के पातकसे रक्षा करती है उसी कारण वह कलत्र कही गई है इस

प्रकारकी स्त्री को कौन वृथा करने के योग्य नहीं है ॥ ६ ॥ पुरुष में तीन प्रकाशक वस्तुयें होती हैं ऐसा देवल ने कहाहै कि स्त्री, कर्म व विद्या तीनोंको यत्नसे भली भांति साधन करना चाहिये ॥ १० ॥ इसलिये उन इन्द्रसे पीड़ित इस स्त्रीको यदि न पालूं तो रौरवादिक नरकोंको जाऊंगा इसमें सन्देह नहींहै ॥ ११ ॥ व मैं भी तिनुका की नाई इसको जीतने के लिये समर्थ हूं फिर इसकी कामना करूंगा कि बड़े बली पुत्रको इसे दूंगा ॥ १२ ॥ ऐसा चिन्तनकर क्रोधसे विकल लोचनोंवाला वज्राग इन्द्रसे बदला लेनेके लिये फिर तपस्या करनेका विचार करताभया ॥ १३ ॥ और उसका बहुत क्रूर संकल्प जानने के लिये शीघ्रतासंयुत ब्रह्माजी फिर वहां

स्वयम् ॥ १० ॥ तदिमांपीडितान्तेनपतिर्भूत्वानपालये॥ ततोयास्येरौरवादीन्नरकान्नात्रसंशयः॥ ११ ॥ अहमप्येनमिन्द्रं वैशक्तोजेतुंतृणंयथा॥ पुनःकामंकरिष्येस्यादास्येपुत्रंमहाबलम् ॥ १२॥ इतिसञ्चिन्त्यवज्राङ्गःकोपव्याकुललोचनः प्रतिकर्तुमहेन्द्रायतपोभूयोऽव्यवस्यत॥ १३ ॥ ज्ञात्वातस्यचसङ्कल्पंब्रह्माक्रूरतरंपुनः॥ आजगामत्वरायुक्तोयत्रासौदितिनन्दनः॥ १४॥उवाचैनंसभगवान्प्रभुर्मधुरयागिरा॥१५॥ ब्रह्मोवाच॥ किमर्थंभूयएवत्वंनियमंक्रूरमिच्छसि॥ आहाराभिमुखोदैत्यतन्मेब्रूहिमहाव्रत ॥ १६ ॥ यावदब्दसहस्रेण निराहारेणवैफलम्॥ त्यजताप्राप्तमाहारंलब्धन्तेक्षणमात्रतः॥ १७॥ त्यागोह्यप्राप्तकामानांनतथाचगुरुःस्मृतः॥ यथाप्राप्तंपरित्यज्य कामंकमललोचन॥ १८ ॥ श्रुत्वैतद्ब्रह्मणोवाक्यं दैत्यःप्राञ्जलिरब्रवीत् ॥ पत्न्यर्थेहङ्करिष्यामितपोघोरंपितामह ॥ १९ ॥ पुत्रार्थमुद्यतश्चाहंयःस्याद्गीर्वाणदर्पहा॥ एत

आये जहां कि यह दितिका पुत्रथा ॥ १४ ॥ और उन प्रभु भगवान् ब्रह्माने मीठी वाणी करके इससे कहा ॥ १५ ॥ ब्रह्मा बोले कि हे महाव्रतवाले, दैत्य ! भोजन के सम्मुख तुम फिर किस लिये भयंकर नियमको चाहतेहो उसको मुझसे कहिये ॥ १६॥ हज़ार वर्षतक निराहार से जितना फल मिलताहै पायेहुये भोजन को त्यागनेवाले तुमको क्षणभर में वही फल मिला ॥ १७ ॥ हे कमललोचन ! नहीं प्राप्त कामनावालोंका त्याग वैसा गुरु नहीं कहागया है जैसा कि पायेहुये कामको छोड़कर होताहै ॥ १८ ॥ ब्रह्माका यह वचन सुनकर हाथ जोड़कर दैत्यने कहा कि हे पितामह ! मैं स्त्री के लिये विकराल तपस्या करूंगा ॥ १९ ॥ और मैं पुत्रके लिये उद्यतहूं

जोकि देवताओ के गर्वका नाशक हो यह वचन सुनकर कमल के गर्भसे उपजेहुये चतुर्मुख देवजी प्रसन्नहो उस समय दैत्यराज से बोले ॥ २० । २१॥ ब्रह्मा बोले कि हे वत्स ! तुम्हारी तपस्या से कुछ साध्य नहीं है विस्तारवाले क्लेशमें मत बसो और बडाबली तारक नामक तुम्हारे पुत्रहोगा ॥ २२ ॥ जोकि देवस्त्रियों की वेणीका छुडानेवाला होगा ऐसा कहे हुये दैत्यराज ने प्रणामकर व ब्रह्माको ॥ २३ ॥ विदा करके प्रसन्नता से उस स्त्रीको हर्षितकिया व प्रसन्न होतेहुये वे स्त्री पुरुष उस समय अपने आश्रमको गये ॥ २४ ॥ तदनन्तर उत्तमवर्णवाली वरांगी ने पूर्णहजार वर्षतक धारेहुये गर्भको पेटही में धारण किया ॥ २५ ॥ तदनन्तर हजारवर्ष के अन्तमें

श्रुत्वावचोदेवःपद्मगर्भोद्भवस्तदा ॥ २० ॥ उवाचदैत्यराजानंप्रसन्नश्चतुराननः ॥ २१ ॥ ब्रह्मोवाच॥ अलन्तेतपसाव त्समाक्लेशेविस्तरेवश ॥ पुत्रस्तेतारकोनाम भविष्यतिमहाबलः ॥ २२ ॥ देवसीमन्तिनीनांयोधम्मिल्लकविमोक्षकः ॥ इत्युक्तोदैत्यनाथश्चप्रणम्यचपितामहम् ॥ २३ ॥ विसर्जयित्वामहिषींनन्दयामासतांमुदा ॥ तौदम्पतीकृतार्थौचजग्म तुःस्वाश्रमन्तदा ॥ २४ ॥ आहितञ्चततोगर्भं वराङ्गीवरवर्णिनी ॥ पूर्णंवर्षसहस्रन्तुदधारोदरएवहि ॥ २५ ॥ ततोवर्षसह स्रान्तेवराङ्गीसम्प्रसूयत ॥ जायमानेतुदैत्येन्द्रे तस्मिँल्लोकभयङ्करे ॥२६॥ चचालसकलापृथ्वीप्रोद्भूताश्चमहार्णवाः ॥ चेलुर्द्धराधराश्चापिववुर्वाताअतिभीषणाः ॥ २७ ॥ जेपुर्जप्यंमुनिवराव्याधविद्धामृगाइव ॥ जहुःकान्तिञ्चसूर्याद्यानीहारा च्छादितादिशः ॥ २८ ॥ जातेमहासुरेतस्मिन्सर्वएवमहासुराः ॥ आजग्मुर्हर्षितास्तत्रतथाचासुरयोषितः ॥ २९ ॥ जगु र्हर्षसमाविष्टानन्नृतुश्चासुराङ्गनाः ॥ ततोमहोत्सवोजातोदानवानांपृथासुत ॥ ३० ॥ विषण्णमनसोदेवाःसमहेन्द्राभवंस्त

वरांगी ने पुत्र पैदाकिया और लोकोंको भय करनेवाले उस दैत्येन्द्र के उत्पन्न होनेपर ॥२६॥ सब भूमि चलायमान हुई व बड़े समुद्र खलभलाने लगे व पर्वतभी चल उठे और बड़े भयंकर पवन चलनेलगे ॥ २७ ॥ और बहेलियोंसे बेधित हिरनोंकी नाई मुनिश्रेष्ठ मन्त्र जपनेलगे व सूर्यादिकों ने शोभाको छोड़दिया व दिशायें कुहरे से आच्छादित होगई ॥ २८ ॥ जब वह महासुर पैदाहुआ तब प्रसन्न होतेहुये सब ही महासुर वहांआये व वैसेही दैत्योंकी स्त्रियां आई ॥ २९ ॥ और दैत्योंकी कन्यायें हर्षसंयुत होकर गाने व नाचनेलगीं तदनन्तर हे कुन्तीपुत्र ! दानवोंके यहां बड़ा उछाह हुआ ॥ ३० ॥ उस समय इन्द्र समेत देवता दुःखित मनवाले हुये और

पैदाहुआही प्रचण्ड पराक्रमवाला तारकासुर ॥ ३१ ॥ समस्त दैत्योंकी महाराज्यपै कुरंग महिषादिक प्रसिद्ध दैत्योंकरके अभिषेक कियागया जोकि समस्त महागुणों
से संयुत था ॥ ३२ ॥ हे पाण्डुसत्तम ! बड़ी राज्यको पाकर तारकासुर उत्तम दैत्यों से युक्तिसंयुत यहवचन बोला ॥ ३३ ॥ कि ऐ बड़ेबलिष्ठ सब दैत्यलोगो ! मेरे वचन
सुनो व सुनकर मेरे वचन में दृढबुद्धि करो ॥ ३४ ॥ कि जातिके धर्म से हमलोगोंका देवताओं के साथ अविनाशी वैर बढ़ाहै इसलिये उनके विजय के लिये यत्न
करेंगे ॥ ३५ ॥ परन्तु देवताओं के समरसे वह विजय तपसे होसक्ती है मैं यह मानताहूं इसलिये हे दनुपुत्रो ! पहले विकराल तपस्या करूंगा ॥ ३६ ॥ तदनन्तर,

दा ॥ जातमात्रस्तुदैत्येन्द्रस्तारकश्चण्डविक्रमः ॥ ३१ ॥ अभिषिक्तोसुरैर्मुख्यैः कुरङ्गमहिषादिभिः ॥ सर्वासुरमहारा
ज्येयुतःसर्वैर्महागुणैः ॥ ३२ ॥ सतुप्राप्तमहाराज्यस्तारकःपाण्डुसत्तम ॥ उवाचदानवाञ्छ्रेष्ठान्युक्तियुक्तमिदंवचः ॥
३३ ॥ शृणुध्वमसुराःसर्ववाक्यंममहाबलाः ॥ श्रुत्वाचस्थेयसीबुद्धिःक्रियतांवचनेमम ॥ ३४ ॥ अस्माकंजातिध
र्मेणविरुद्धंवैरमव्ययम् ॥ सुरैःसार्द्धंयतिष्यामस्तत्तेषांविजयायच ॥ ३५ ॥ किन्तुतत्तपसाशक्यं मन्येहंसुरसङ्गरे ॥ त
स्मादादौकरिष्यामितपोघोरन्दनोःसुताः ॥ ३६ ॥ ततःसुरान्विजेष्यामोभोक्ष्यामोथजगत्त्रयम् ॥ युक्त्योपयोगिपुरुषे
स्थिराश्रीर्वैजायते ॥ ३७ ॥ अयुक्तश्चपलःप्राप्तमपिरक्षितुमक्षमः ॥ तच्छ्रुत्वादानवाःसर्वेवाक्यंतस्यासुरस्यतु ॥ ३८ ॥
साधुसाध्वित्यथोचुस्तेवचनंतस्यविस्मिताः ॥ सोगत्वापारियात्रस्यगिरेःकन्दरमुत्तमम् ॥ ३९ ॥ सर्वर्त्तुकुसुमाकीर्णंनानौ
षधिविदीपितम् ॥ नानाधातुरसस्रावंविचित्रनानागृहाश्रयम् ॥ ४० ॥ अनेकाकारबहुलमृगपक्षिकुलाकुलम् ॥ नानाप्र

देवताओं को जीतेंगे व त्रिलोक भोगेंगे क्योंकि युक्तिसे उपयोगी पुरुषमें लक्ष्मी निश्चयकर अचल होतीहै ॥ ३७ ॥ व अयोग्य चंचल पुरुष पाई हुईभी लक्ष्मी रक्षा
करने के लिये समर्थ नहीं होताहै उस दानवका वह वचन सुनकर उन सब दैत्यों ने ॥ ३८ ॥ विस्मित होकर उससे बहुत अच्छा २ ऐसा वचन कहा और वह पारि
यात्र पर्वतकी उत्तम कन्दराको गया ॥ ३९ ॥ जो कन्दरा कि सब ऋतुओं के फूलोंसे व्याप्त व अनेक प्रकारकी ओषधियों से प्रकाशित और अनेक प्रकारके धातु
(गेरू आदिकों) के रसोंको बहानेवाली व विचित्र अनेक भांतिके गृहरूप आश्रयवाली थी ॥ ४० ॥ व अनेक रूपवाले बहुत मृग व पक्षियों के कुलोंसे व्याप्तथी

श्रौर अनेक भांतिके झरनों से संयुत व अनेक प्रकारके जलाश्रयवालीथी ॥४१॥ उस कन्दराको पाकर दैत्यने बहुत तपकिया श्रौर शैवी दीक्षाको धारेहुये उसने पांच मन्त्रोंका जपकिया ॥ ४२ ॥ व प्रसिद्धमें वह निराहार होकर दशहज़ार वर्षतक पंचाग्नि का तापनेवाला हुश्रा तदनन्तर प्रतिदिन उसने श्रपने शरीरसे तोला २ भर मांसको काटकर अग्निमें होमकिया उसके उपरान्त मांसहीन होगया तदनन्तर बिनमास की देहवाला वह तपस्या की राशि होगया ॥ ४३ । ४४ ॥ व उसके तेजसे सबश्रोर समस्त प्राणी जलनेलगे श्रौर उसकी तपस्या से डरायेहुये सबदेवता ऊबगये ॥ ४५ ॥ इसी श्रवसर में बड़ी प्रसन्नताको प्राप्त ब्रह्माजी तारकको वरदेने के

स्रवणोपेतंनानाविधजलाश्रयम् ॥ ४१ ॥ प्राप्यतत्कन्दरंदैत्यश्चकारविपुलंतपः ॥ वहन्पाशुपतींन्दीक्षांपञ्चमन्त्रा ञ्जजापसः ॥ ४२ ॥ निराहारःपञ्चतपावर्षायुतमभूत्किल ॥ ततःस्वदेहादुत्कृत्यकर्षंकर्षंदिनेदिने ॥ ४३ ॥ मांसस्याग्नौ जुहावैवततोनिर्मांसताङ्गतः ॥ ततोनिर्मांसदेहःसतपोराशिरजायत ॥ ४४ ॥ जज्वलुःसर्वभूतानितेजसातस्यसर्वतः ॥ उ द्विग्नाश्चसुराःसर्वेतपसातस्यभीषिताः ॥ ४५ ॥ एतस्मिन्नन्तरेब्रह्मापरमंतोषमागतः ॥ तारकस्यवरंदातुंजगामशिखरं गिरेः ॥ ४६ ॥ प्राप्यतंशैलराजानंहंसस्यन्दनमास्थितः ॥ उवाचतारकंदेवोगिरामधुरयातदा ॥ ४७ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ उ त्तिष्ठपुत्रतपसानास्त्यसाध्यन्तवाधुना ॥ वरंवृणीष्वाभिमतंयत्तेमनसिवर्त्तते ॥ ४८ ॥ इत्युक्तस्तारकोदैत्यः प्राञ्जलिः प्राहतंविभुम् ॥ तारक उवाच ॥ वयंप्रभोजातिधर्मात्कृतवैराःसहामरैः ॥ ४९ ॥ तैश्चनिःशेषतोदैत्याःकृताःक्रूरैर्नृशंसव त् ॥ तेषामहंसमुद्धर्ता भवेयमितिमेमतिः ॥ ५० ॥ अवध्यःसर्वभूतानामस्त्राणाञ्चमहौजसाम् ॥ स्यामहञ्चामरश्चैषवरो

लिये पर्वतके शिखरपै गये ॥ ४६ ॥ व हंसरूपी रथपै चढ़ेहुये ब्रह्मादेव जी उस पर्वतराजको प्राप्तहोकर उस समय मीठीवाणी करके तारकासुर से बोले ॥ ४७ ॥ ब्रह्मा बोले कि हे पुत्र ! उठो इस समय तपसे तुमको कुछ श्रसाध्य नहीं है जो तुम्हारे मनमें वर्त्तमान हो चाहेहुये उस वरको मांगिये ॥ ४८ ॥ ऐसा कहाहुआ तारकदैत्य हाथजोड़कर उन व्यापक ब्रह्मा से बोला तारक बोला कि हे प्रभो ! जातिके धर्मसे हमलोग देवताओं के साथ वैरकिये हैं ॥ ४९ ॥ व उन क्रूरदेवोंने घातुक की नाईं दैत्योंको निःशेष करदिया मैं उनका उद्धार करनेवाला होऊं यह मेरी बुद्धिहै ॥५०॥ व बड़े पराक्रमवाले समस्त प्राणियों श्रौर अस्त्रोंका अवध्य व अमर होऊं यह वरमेरे

हृदय में टिकाहै ॥ ५१ ॥ हे देवेश ! यह मुझको दीजिये और वरको मैं नहीं चाहताहूं तदनन्तर देवोंके स्वामी ब्रह्माजी उस दैत्यसे बोले ॥ ५२ ॥ कि शरीरधारी का
मृत्युके विना देह धारण युक्त नहीं है क्योंकि पैदाहुये की मृत्यु होती है यह वेदमें कहाहुआ सत्यहै ॥ ५३ ॥ ऐसा विचारकर किसलिये अपने प्यारे वरको नहीं मांगतेहो
तदनन्तर विचारकर दैत्यों के राजा उस महादैत्यने गर्व से मोहितहो सातदिनवाले बालक के द्वारा मृत्युको ब्रह्मासे मांगा और महादेवजी के वचन से ब्रह्माने वैसाही
होगा यह उस दैत्यसे कहा ॥ ५४ । ५५ ॥ व ब्रह्मादेव जी स्वर्गको गये व दैत्यभी अपने स्थानको चलागया और उस समय तपस्यासे उतरेहुये उनदैत्यको दैत्येश्वरों

**ममहृदिस्थितः ॥ ५१ ॥ एतन्मेदेहिदेवेशनान्यंवैरोचयेवरम् ॥ तमुवाचततोदैत्यंविरिञ्चिरमरनायकः ॥ ५२ ॥ नयुज्य
तेविनामृत्युंदेहिनोदेहधारणम् ॥ जातस्यहिध्रुवोमृत्युः सत्यमेतच्छ्रुतीरितम् ॥ ५३ ॥ इतिसञ्चिन्त्यवरयवरंकस्मान्न
स्वंप्रियम् ॥ ततःसञ्चिन्त्यदैत्येन्द्रःशिशुतःसप्तवासरात् ॥ ५४ ॥ वव्रेमहासुरोमृत्युंब्रह्माणंमानमोहितः ॥ ब्रह्माप्रावोच
तच्चतंतथेतिहरवाक्यतः ॥ ५५ ॥ जगामत्रिदिवंदेवोदैत्योपिस्वकमालयम् ॥ उत्तीर्णतपसस्तन्तुदैत्यन्दैत्येश्वरास्त
दा ॥ ५६ ॥ परिवव्रुःफलाकीर्णवृक्षंशकुनयोयथा ॥ तस्मिन्महतिराज्यस्थेतारकेदितिनन्दने ॥ ५७ ॥ ब्रह्मणाभिहित
स्थानेमहार्णवतटोत्तरे ॥ तरवोजज्ञिरेपार्थततःसर्वर्त्तवःशुभाः ॥ ५८ ॥ कान्तिःस्मृतिर्धृतिर्मेधाश्रीरखण्डाचदानवम् ॥ परि
वव्रुर्गुणाकीर्णानिश्छिद्राःसर्वएवहि ॥ ५९ ॥ कालागुरुविलिप्ताङ्गंमहामुकुटबृंहिणम् ॥ रुचिराङ्गदबद्धाढ्यंमहासिंहासने
स्थितम् ॥ ६० ॥ नृत्यन्तिचाप्सरःश्रेष्ठागन्धर्वागाययन्तिच ॥ चन्द्रार्कौदीपमार्गेषुव्यजनेषुचमारुताः ॥ ६१ ॥ ग्रहा**

ने ॥ ५६ ॥ घेरलिया जैसे कि फलोंसे व्याप्त वृक्षको पक्षी घेरते हैं उस बड़ेभारी दैत्यपुत्र तारकको राज्यपै बैठनेपर ॥ ५७ ॥ हे पार्थ ! ब्रह्मासे कहेहुये स्थान महीसा-
गर के किनारेके ऊपर वृक्ष पैदाहुये तदनन्तर उत्तम सब ऋतुवें हुईं ॥ ५८ ॥ व शोभा, स्मरण, धैर्य, बुद्धि व अखण्ड लक्ष्मीने दानवको घेरलिया और गुणों से भरे
व निर्दोष सबही जन हुये ॥ ५९ ॥ और कालागुरुमर्दित अंगवाले व महामुकुटसे शोभित और बँधेहुये सुन्दर बहूंटेसे संयुत व बड़े सिंहासनपै बैठेहुये दानव के
गी ॥ ६० ॥ उत्तम अप्सरायें नाचतीथीं व गन्धर्वगाते थे और दीपकके स्थानों में चन्द्रमा सूर्य व व्यजनों के स्थानमें पवनथे ॥ ६१ ॥ व ग्रहादिक उसके अग्रगामी

थे और जीव देशके कहनेवाले थे॥६२॥ इस प्रकार उत्कृष्ट आचरण व रामरत अंगके बलसे प्रकाशित वह दैत्य अपनी भुजाओंके बलसे राज्यको भलीभांति पाकर प्रस-न्नहो किसी समय मन्त्रियों को बुलाकर बोला॥६३॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांकुमारेशमाहात्म्येत्रयोदशोऽध्यायः॥१३॥ दो०। सजि सजि निजसेना सबै जुरे दैत्य अरु देव। चौदहवें अध्याय में सोई वरणत भेव॥ तारक बोला कि जलके बुल्ले के समान राज्य, स्त्री, पांसा व मद्यपान से मोहित जो मनुष्य यहां जन्म पाकर पौरुषको छोड़देता है॥१॥ कल्पपर्यन्त उसका जन्म वृथाहै इसमें सन्देह नहींहै॥२॥ माता, पिताके लिये जो कार्य नहीं

द्याग्रेसरास्तस्यजीवादेशप्रभाषिणः॥ ६२॥ एवंस्वकाद्वाहुबलात्सदैत्यः सम्प्राप्यराज्यंपरिमोदमानः॥ कदाचिदाहूय जगादमन्त्रिणः प्रोद्दत्तसर्वाङ्गबलेनदीपितः॥६३॥ इति कुमारिकाखण्डेकुमारेशमाहात्म्येत्रयोदशोध्यायः॥१३॥ तारक उवाच॥ राज्येनबुद्बुदाभेनस्त्रीभिरक्षैश्चपानकैः॥ मोहितोजन्मलब्ध्वात्रत्यजतेपौरुषंनरः॥१॥ जन्मत स्यवृथाभूतमाकल्पान्तंनसंशयः॥२॥ मातापितृभ्यांनकरोतिकार्यंभृत्यानशोकान्नकरोतियोवा॥ कीर्तिंहिवानार्ज यतेनमानन्नरःसजातोपिमृतोत्रलोके॥३॥ तस्माज्जयायामरपुङ्गवानांत्रैलोक्यलक्ष्मीहरणायशीघ्रम्॥ संयोज्यतां मेरथमष्टचक्रंबलञ्चमेदुर्ज्जयदैत्यचक्रम्॥४॥ ध्वजंचमेकाञ्चनपट्टबद्धंछत्रञ्चमेमौक्तिकजालबद्धम्॥ अद्याहमासांसुर कामिनीनां धम्मिल्लकांश्चोद्ग्रथितान्करिष्ये॥५॥ यथापुरामर्कटकाःकृतासुरास्तथा हनिष्येद्यबलंदिवौकसाम्॥ ६॥ नारदउवाच॥ तारकस्यवचःश्रुत्वाग्रसनोनामदानवः॥ सेनानीर्दैत्यराजस्यतथाचक्रेविलम्बितम्॥७॥ आहत्य

करताहै अथवा सेवकों को शोचरहित नहीं करता है अथवा जो यश व मानको नहीं इकट्ठा करताहै पैदाहुआ भी वह मनुष्य संसार में मराहै॥३॥ इसलिये उत्तम देवताओं के जीतने के निमित्त व त्रिलोक की लक्ष्मीको हरने के लिये शीघ्रही आठ पहियोंवाला मेरा रथ तैयार कियाजाय व न जीतने योग्य दैत्योंका समूह मेरी सेना तैयारहोवै॥४॥ व सोनेकी पट्टीमें बँधा मेरा ध्वजा व मोतियो की झालर जिसमें बँधीहै ऐसा छत्र तैयारहो आज मैं इन देवस्त्रियों की वेणियोंकी ग्रन्थि को छुड़ाऊंगा॥५॥ पुरातन समय जिस प्रकार मैंने देवताओं को वानर कियाहै वैसेही आज देवताओंकी सेनाको मारूंगा॥६॥ नारद बोले कि तारकका वचन सुनकर दैत्यराज

की सेनाका स्वामी ग्रसन नामक दानव शीघ्रही वैसाही करताभया ॥ ७ ॥ व गम्भीर नगारेको बजाकर शीघ्रतासंयुत दैत्यने दैत्योंको बुलाकर बुद्धिमान् दैत्यराज तारक का रथ तैयार किया ॥ ८ ॥ जो रथ कि गरुड़के समान शोभावाले हज़ार गरुड़ों से संयुत था वे गरुड़ सुपर्ण (गरुड़ जी) के पुत्र मेरुकी कन्दरा में भलीभांति टिके थे ॥ ९ ॥ जिनको दैत्योंके राजा (तारक) ने वाहन बजायाथा उस रथमें चौंसठि पहिया थे व सोलह कोस चौड़ाथा ॥ १० ॥ व जोकि अनेक भांतिके क्रीडागृहों से संयुत व गाने, बजानेसे मनोहर था व संयुक्त वह रथ गन्धर्वनगरके आकारवाला देख पड़ताथा ॥ ११ ॥ और प्रचण्ड पराक्रमवाले दशदैत्य वहांआये कि जिनके

भेरींगम्भीरां दैत्यानाहूयसत्वरः ॥ सज्जंचक्रेरथंदैत्यो दैत्यराजस्यधीमतः ॥ ८ ॥ गारुडानांसहस्रेण गरुडोपमित विपाम् ॥ तेहिपुत्राःसुपर्णस्य संस्थितामेरुकन्दरे ॥ ९ ॥ विजित्यदैत्यराजेन वाहनत्वेप्रकल्पिताः ॥ अष्टाष्टचक्रःस रथश्चतुर्योजनविस्तृतः ॥ १० ॥ नानाक्रीडागृहयुतो गीतवाद्यमनोहरः ॥ गन्धर्वनगराकारः संयुक्तःप्रत्यदृश्यत ॥ ११ ॥ आजग्मुस्तत्रदैत्याश्च दशचण्डपराक्रमाः ॥ कोटिकोटिर्विशेयेषां सेनाक्षौहिणिसम्मिता ॥ १२ ॥ तेषामग्रेस रःकुम्भः कुजम्भोनन्तरस्ततः ॥ महिषःकुञ्जरोमेषः कालनेमिर्निमिस्तथा ॥ १३ ॥ ग्रसनोजम्भकःशुम्भो दैत्येन्द्रा दशनायकाः ॥ अन्येचशतशस्तत्र पृथिवीतोलनक्षमाः ॥ १४ ॥ दैत्येन्द्रागिरिवर्ष्माणः सन्तिचण्डपराक्रमाः ॥ ना नाविधप्रहरणा नानाशस्त्रास्त्रपारगाः ॥ १५ ॥ तारकस्याभवत्केतुर्बहुरूपोमहाभयः ॥ कचिद्वराक्षसोघोरः पिशाचो ध्वाङ्क्षगृध्रकः ॥ १६ ॥ एवंबहुविधाकारः सकेतुःप्रत्यदृश्यत ॥ केतुनाविकरेणापि सेनानीर्ग्रसनोबभौ ॥ १७ ॥ पिशा

नशमें कोटि २ अक्षौहिणी सेनाथी ॥ १२ ॥ उनके आगे चलनेवाला कुम्भ व उसके बाद कुजम्भ, महिष, कुंजर, मेष, कालनेमि व निमि ॥ १३ ॥ ग्रसन, जम्भक और शुम्भ ये दश दैत्येन्द्र सेनाके स्वामीथे और प्रचण्ड पराक्रमवाले सैकड़ों दैत्येन्द्र पर्वतके समानवाले जोकि पृथ्वी के तौलने में समर्थ थे वहां आये जोकि अनेक भांतिके शस्त्रोंवाले और अनेक प्रकारके शस्त्रास्त्रोंमें पारगामी थे ॥ १४।१५ ॥ बहुत रूपोंवाला महाभय नामक दैत्य तारकका केतु हुआ जोकि कभी भयंकर राक्षस, पिशाच व कभी कौवा और गीध होजाताथा ॥ १६ ॥ इस प्रकार बहुत भांति के आकारवाला वह केतु देखपड़ता था व विकर राक्षस के ध्वजा से सेनाध्यक्ष ग्रसन

शोभितहुआ ॥ १७ ॥ व पिशाच के तुल्य मस्तक व मुखवाला अयोमय जम्भका ध्वजाहुआ व पूंछको कँपाताहुआ गधा कुजम्भके ध्वजामें हुआ ॥ १८ ॥ व उस समय महिष दैत्यके सोनेवाले केतुमें सियार शोभितहुआ व कुंजरकी ध्वजामें गीध व मेष दैत्यके केतुमें राक्षस हुआ ॥ १९ ॥ व कालनेमिकी ध्वजा में बड़ा सांप व निमिकी ध्वजामें महातिमि मछलीहुई और मथनकी ध्वजामें राक्षसी व जम्भकके केतुमें ध्वाक्ष (काक) शोभित हुआ ॥ २० ॥ और शुम्भकी ध्वजामें महावृक्ष हुआ इस प्रकार के ध्वजा शोभितहुये व अन्य दैत्योंके ध्वजा अनेक भातिके आकारों से विन्यस्त होकर शोभितहुये ॥ २१ ॥ व शीघ्रगतिवाले तथा सोनेकीमालावाले सौ

चमूर्द्धवदनं जम्भस्यासीदयोमयम् ॥ खरोविधूतलाङ्गूलःकुजम्भस्याभवद्ध्वजे ॥ १८ ॥ महिषस्यचगोमायुः केतौहेम्नस्तदाबभौ ॥ गृध्रोवैकुञ्जरस्यासीन्मेषस्याभूच्चराक्षसः ॥ १९ ॥ कालनेमेर्महाव्यालो निमेरासीन्महातिमिः ॥ राक्षसीमथनस्यापि ध्वाङ्क्षोभूज्जम्भकस्यच ॥ २० ॥ महावृक्षश्चशुम्भस्य ध्वजास्त्वेवंविधाबभुः ॥ अनेकाकारविन्यासा ह्यन्येषाञ्चध्वजाबभुः ॥२१॥ शतेनशीघ्रगानांच व्याघ्राणांहेममालिनाम् ॥ ग्रसनस्यरथोयुक्तो महामेघरवोबभौ ॥ २२ ॥ शतेनचापिसिंहानां रथोजम्भस्ययोजितः ॥ कुजम्भस्यरथोयुक्तः पिशाचवदनैःखरैः ॥ २३ ॥ तावद्भिर्म्महिषस्योष्ट्रैःकुम्भस्यचहयैर्युतम् ॥ मेषस्यद्वीपिभिर्भीमैः कुञ्जरैःकालनेमिनः ॥ २४ ॥ पर्वतोवैसमारूढो निश्चित्यविधृतंगजैः ॥ चतुर्दन्तैर्गन्धवद्भिश्चतुर्भिर्मेघसन्निभैः ॥ २५ ॥ शतहस्तायतेकृष्णे तुरङ्गेहेमभूषणे ॥ सितचामरजालेन शोभितेपुष्पदामनि ॥ २६ ॥ मथनोनामदैत्येन्द्रः पाशहस्तोव्यराजत ॥ किङ्किणीमालिनंचोष्ट्रमारूढोभूच्चजम्भकः ॥ २७ ॥

व्याघ्रोंसे संयुत व महामेघों की नाईं शब्दवाला ग्रसनका रथ शोभितहुआ ॥२२॥ और जम्भका रथभी सौ सिंहोंसे युक्त कियागया व पिशाच मुखवाले गधोंसे कुजम्भका रथ युक्तहुआ ॥ २३ ॥ व महिषका रथ उतनेही ऊंटोंसे व कुम्भका रथ घोड़ों से संयुत हुआ और मेष दैत्यका रथ भयंकर व्याघ्रोंसे व कालनेमिका रथ हाथियों से युक्तहुआ ॥ २४ ॥ व मेघोंके समान और चार दातोंवाले, गन्धवान् हाथियों से धारेहुये रथपै वह पर्वत दैत्य निश्चयकर सवार हुआ ॥ २५॥ व पुष्पमयी रस्सीवाले और श्वेत चंवर समूहसे शोभित व सोनेकी मालावाले व सौ हाथ विस्तारवाले कालेघोड़ेपर ॥२६॥ मथन नामक दैत्येन्द्र फँसरी हाथमें लेकर शोभित हुआ व घण्टियों

की मालावाले ऊंटपै जम्भक सवारहुआ॥२७॥ और कालके तुल्य बड़े भैंड़ेपै शुम्भ दानव सवार हुआ व अनेक प्रकारकी सवारी व ध्वजावाले अन्य शूरवीर दानव॥ २८ ॥ जोकि प्रचण्ड व विचित्र कवचोंवाले थे कुण्डल व किरीटों से शोभित हुये और वे अनेक भांतिके कांधा सूती दुपट्टे डाले व अनेक प्रकारके माला व भूषण धारेथे ॥ २९ ॥ व अनेक भांतिकी सुगन्धियों की गन्धसे संयुत और अनेक प्रकार के सैकड़ों बन्दियों से स्तुति किये जाते थे व अनेक प्रकारके बाजों से चलते हुये अग्रगामियों समेत महारथी जिनमें थे ॥ ३० ॥ व उस सेनामें महारथी अनेक प्रकार की शूरताकी कथामें लगेथे पर्वतों के समान हाथी, घोड़े, रथ व पैदलोंवाली वह

कालतुल्यंमहामेषमारूढःशुम्भदानवः ॥ अन्येचदानवावीरा नानावाहनकेतवः ॥ २८ ॥ प्रचण्डाश्चित्रवर्मा
णः कुण्डलोष्णीषभूषिताः ॥ नानाविधोत्तरासङ्गा नानामाल्यविभूषणाः ॥ २९ ॥ नानासुगन्धिगन्धाढ्या नानावन्दि
शतस्तुताः ॥ नानावाद्यैःपरिस्पन्दसाग्रेसरमहारथाः ॥ ३० ॥ नानाशौर्यकथाशक्तास्तस्मिन्सैन्येमहारथाः ॥ तद्बलं
दैत्यसिंहस्य भीमरूपंव्यदृश्यत ॥ ३१ ॥ महीध्रसममातङ्गतुरङ्गरथपत्तिकम् ॥ सचदैत्येश्वरःक्रुद्धः समारूढोमहारथः॥
३२ ॥ दशभिःसहितोदैत्यैर्दशबाहुरिवेश्वरः ॥ जगद्धर्त्तुंप्रवृत्तोवा प्रतस्थेसौसुरान्प्रति ॥ ३३ ॥ एतस्मिन्नन्तरेवायुर्देव
बन्धुःसुरालयम् ॥ दृष्ट्वातद्दानवबलं जगामेन्द्रस्यशंसितुम् ॥ ३४ ॥ सगत्वातुसभांदिव्यां महेन्द्रस्यमहात्मनः ॥ श
शंसमध्येदेवानामिदंकार्यमुपस्थितम् ॥ ३५ ॥ तच्छ्रुत्वादेवराजश्च निमीलितविलोचनः ॥ बृहस्पतिमुवाचेदं वाक्यं
कालेमहामतिः ॥ ३६ ॥ इन्द्र उवाच ॥ सम्प्राप्तोतिविमर्द्दोयं देवानांदानवैःसह ॥ कार्यंकिमत्रतद्ब्रूहि नीत्युपायोपबृं

दैत्योत्तम की सेना भयानक रूप देखपड़ी व क्रोधित होकर वह दैत्यनायक बड़े रथपै सवारहुआ ॥ ३१ । ३२ ॥ दशदैत्यों समेत दश भुजाओंवाले ईश्वर (शिव) की नाईं यह संसारको हरने के लिये उद्यतहुआ इस प्रकार इसने देवताओं प्रति यात्रा किया ॥ ३३ ॥ इसी अवसर में देवताओंके भाई पवन दानवोंकी उस सेना को देख कर इन्द्रसे कहने के लिये देवस्थान को गये ॥ ३४ ॥ व महात्मा इन्द्रकी दिव्य सभामें जाकर देवोंके मध्यमें उन पवन ने कहा कि यह कार्य प्राप्त हुआहै ॥ ३५ ॥ उस वचनको सुनकर आंखोंको मूंदेहुये बड़े बुद्धिमान् इन्द्रने समयमें बृहस्पति से यह वचन कहा ॥३६॥ इन्द्र बोले कि दानवों के साथ दैत्योंका यह बडा संग्राम प्राप्त

हुआहै इसमें क्या करना चाहिये नीतिके उपाय से बढ़ीहुई उस यत्नको कहिये ॥ ३७ ॥ इन्द्रका यह वचन सुनकर वाणीके स्वामी व उदार बुद्धिवाले महाभाग्यवान् बृहस्पति जीने प्रत्युत्तर दिया ॥ ३८ ॥ बृहस्पतिजी बोले कि हे सुरश्रेष्ठ ! चतुरंगिणीसेनाको जीतने की इच्छावालों को प्रियवचनपूर्वक नीति कहीगई है यह सदैव वाली मर्यादाहै ॥ ३९ ॥ साम, दान, दण्ड व चौथा विभेदहै देश व समयकी विशेषतासे नीतिमें क्रमपूर्वक युक्त करना चाहिये ॥ ४० ॥ उनमेंसे गुणवान् श्रेष्ठजनो में साम युक्त करना चाहिये व लोभियों में दान और शंकितजनों में भेद यह निश्चय कियागया है ॥ ४१ ॥ व नीतिके समय में दुष्टजनों मे दण्डभी युक्त करना चाहिये

हितम् ॥ ३७ ॥ एतच्छ्रुत्वातुवचनं महेन्द्रस्यगिरांपतिः ॥ प्रत्युवाचमहाभागो बृहस्पतिरुदारधीः ॥ ३८ ॥ बृहस्पतिरुवाच ॥ सामपूर्वस्मृतानीतिश्चतुरङ्गांपताकिनीम् ॥ जिगीषतांसुरश्रेष्ठस्थितिरेषासनातनी ॥ ३९ ॥ सामदानञ्चभेदश्च चतुर्थोदण्डएवच ॥ नीतौक्रमात्प्रयोज्याःस्युर्देशकालविशेषतः ॥ ४० ॥ तत्रसामप्रयोक्तव्यमार्येषुगुणवत्सुच ॥ दानंलुब्धेषुभेदश्च शङ्कितेष्वितिनिश्चयः ॥ ४१ ॥ दण्डश्चापिप्रयोक्तव्यो नीतिकालेदुरात्मसु ॥ सामदैत्येषुनैवास्ति निर्गुणत्वाद्दुरात्मसु ॥ ४२ ॥ श्रियाह्येषाञ्चकिंकार्यं समृद्धानांतवापियत् ॥ जातिधर्मेणचाभेद्या विधातुरपितेमताः ॥४३॥ एकोह्युपायोदण्डोत्र भवतांयदिरोचते ॥ दुर्ज्जनःसुजनत्वाय नकल्पेतकदाचन ॥ ४४ ॥ लालितःपालितोवाकिं श्वा स्वभावंविमुञ्चति ॥ एवंमेमन्यतेबुद्धिः भवन्तोपिव्यवस्यथ॥ ४५ ॥ एवमुक्तःसहस्राक्ष एवमेवेत्युवाचह ॥ कर्त्तव्यतां ससंचिन्त्य प्रोवाचामरसंसदि ॥ ४६ ॥ बहुमानेनमेवाचंश्शृणुध्वंनाकवासिनः ॥ भवन्तोयज्ञभोक्तारः सतामिष्टाश्च

निर्गुणता के कारण दुष्टात्मा दैत्योंमें साम उपाय नहीं है ॥ ४२ ॥ व इन समृद्ध (लक्ष्मीवान्) दैत्योंका लक्ष्मीसे क्या कार्य है याने कुछ नहीं जोकि तुम्हारे भी है और जातिके धर्म से वे ब्रह्माके द्वाराभी भेदरहित मानेगये हैं ॥ ४३ ॥ यदि आप लोगों को अच्छा लगे तो इस विषयमें एकही दण्ड उपायहै क्योंकि दुर्जन सुजनता के लिये कभी नहीं समर्थ होताहै ॥४४॥ क्या लालन व पालन कियाहुआ कुत्ता अपने स्वभावको छोड़ताहै मेरी बुद्धि ऐसा मानती है आपलोग भी विचार कीजिये ॥ ४५ ॥ ऐसा कहेहुये इन्द्रजीने यह कहा कि ऐसाही होगा व उन इन्द्रने कर्त्तव्यताको विचारकर देवसभामें कहा ॥ ४६ ॥ कि हे स्वर्गवासियो ! मेरे वचनको बहुत

...दरसे सुनिये कि सत्पुरुषों के प्यारे आपलोग यज्ञके भोगी व सत्त्वस्वभाववाले हैं ॥ ४७ ॥ य नित्यही संसारके पालनमें परायणहोकर अपने २ स्थानपै टिकेहैं और आपलोगों के कारण दानवेश्वर दुःख देतेहैं ॥ ४८ ॥ व उनके लिये सामादिक उपाय नहींहै दण्डही कियाजाय व युद्धमें बुद्धि कीजाय और सेना तैयार कीजावै ॥ ४९ ॥ और शस्त्रोंका आवाहन कियाजाय व शस्त्रोंके देवता पूजे जावें और शान्तिमें परायण देवता सवारी व विमानोंको योजितकरें ॥ ५० ॥ हे देवताओ ! यमको सेनाध्यक्ष करके शीघ्रही चलो ऐसे कहेहुये देवता तैयारहुये जोकि देवोंके बीचमें मुख्यथे ॥ ५१ ॥ सुवर्णके घण्टोंसे सबओर संयुत व अनेक प्रकारके आश्चर्यवाले गुणोंसे युक्त

सात्त्विकाः ॥ ४७ ॥ स्वेस्वेपदेस्थितानित्यं जगतःपालनेरताः ॥ भवतामनिमित्तेन बाधन्तेदानवेश्वराः ॥ ४८ ॥ तेषां सामादिर्नैवास्ति दण्डएवविधीयताम् ॥ क्रियतांसमरेबुद्धिःसेनासंयोज्यतामिति ॥ ४९ ॥ आवाह्यन्तांचशस्त्राणि पूज्यन्तांशस्त्रदेवताः ॥ वाहनानिविमानानि योजयन्तुशमेरताः ॥ ५० ॥ यमंसेनापतिंकृत्वा शीघ्रंनिर्यातदेवताः ॥ इत्युक्ताःसमनह्यन्तदेवानांयेप्रधानतः ॥ ५१ ॥ वाजिनामयुतेनाजौ हेमघण्टापरिष्कृतः ॥ नानाश्चर्यगुणोपेतो दुर्जयो देवदानवैः ॥ ५२ ॥ रथोमातलिनायुक्तो महेन्द्रस्यव्यदृश्यत ॥ यमोमहिषमास्थाय सेनाग्रेसमवर्त्तत ॥ ५३ ॥ चण्डकिङ्किणिवृन्देन सर्वतःपरिवारितः ॥ कल्पकालोद्धतज्वालःपूरिताम्बरगोचरः ॥ ५४ ॥ हुताशनःशुकारूढः शक्तिहस्तोव्यवस्थितः ॥ पवनोङ्कुशपाणिस्तुविस्तारितमहाजवः ॥ ५५ ॥ महाराजसमारूढः सेनाग्रेसमदृश्यत ॥ भुजगेन्द्रसमारूढो जलेशोभगवान्स्वयम् ॥ ५६ ॥ महापाशधरोवीरःसेनायांसमवर्त्तत ॥ नरयुक्तरथेदिव्ये धनाध्यक्षोविचचरः ॥ ५७ ॥

और देवता दानवोंसे न जीतने योग्य ॥ ५२ ॥ व मातलि सारथीसे संयुत इन्द्रका रथ देखपड़ा और यमराज भैंसेपर चढ़कर सेनाके आगे वर्त्तमान हुये ॥ ५३ ॥ जोकि भयंकर घण्टियों के गणसे सबओर घिरेथे व कल्पसमय के समान प्रचण्डज्वालाओंवाले और पूरित आकाशवाले ॥ ५४ ॥ अग्निजी सुवापै चढ़कर व शक्तिको हाथ में लेकर प्राप्तहुये और विस्तारित महावेगवाले पवन अंकुशको हाथमें लेकर ॥ ५५ ॥ महाराजसपै सवारहो सेनाके आगे देखपड़े व सर्पराजपै सवार भगवान् वरुण देव शूरवीर आपही बड़ी फँसरी को धारणकर सेनामें वर्त्तमानहुये व मनुष्योंसे युक्त दिव्य रथपै आकाशचारी कुबेरजी सवारहुये ॥ ५६ । ५७ ॥

और महासिंह के समान शब्दवाले कुबेरजी गदाको हाथमें लेकर प्राप्तहुये व राक्षसेश निर्ऋति राक्षसमुखवाले घोड़ोंसे संयुत रथपै सवारहुये ॥ ५८॥ जोकि राक्षसगणोंमे घिरे व धनुषको धारे और बड़े शब्दवाले देखपड़े और चन्द्रमा,सूर्य,अश्विनीकुमार,वसु व साध्य देवता ॥ ५९ ॥ व विश्वेदेवा और रुद्र तैयारहोकर युद्धमें खड़ेहुये जो कि सोनेकेसमान पीले उत्तरीय(दुपट्टे)वाले व चित्र विचित्र कवच,अस्त्र व पताकावालेथे॥६०॥और विश्वावसुको आगेकर गन्धर्व देखपड़े जोकि एककांधा सूती दुपट्टेवाले व निर्मल अंगोंमें गहनोंको पहनेथे ॥ ६१ ॥ व लालबालोंवाले तथा गीधों के पताकावाले राक्षस देखपड़े जोकि भयंकर भोजन करनेवाले व काले वस्त्रोंवाले और बड़े

महासिंहरवोयुद्धे गदाहस्तोऽव्यवस्थितः ॥ राक्षसेशोथनिर्ऋती रथेरक्षोमुखैर्हयैः ॥ ५८ ॥ धन्वीरक्षोगणवृतो महारावोऽव्यदृश्यत ॥ चन्द्रादित्यावश्विनौच वसवःसाध्यदेवताः ॥ ५९ ॥ विश्वेदेवाश्चरुद्रश्च सन्नद्धास्तस्थुराहवे ॥ हेमपीतोत्तरासङ्गाश्चित्रवर्मायुधध्वजाः ॥ ६० ॥ गन्धर्वाःप्रत्यदृश्यन्त कृत्वाविश्वावसुंमुखे ॥ तथाचैकोत्तरासङ्गा निर्मलाङ्गविभूषणाः ॥ ६१ ॥ गृध्रध्वजाव्यदृश्यन्त राक्षसारक्तमूर्द्धजाः ॥ तथाभीमाशनकराः कृष्णवस्त्रामहारवाः ॥६२॥ यक्षास्तत्रव्यदृश्यन्त मणिभद्रादिकोटिशः ॥ गृध्रोलूकध्वजारौद्रा द्वीपिचर्माम्बरास्तथा ॥ ६३ ॥ पिशाचास्तत्रराजन्ते कृत्वाग्निमुखमादितः ॥ गार्द्धपक्षध्वजप्राया दुष्प्रेक्ष्यामुसलायुधाः ॥ ६४ ॥ गुह्यकास्तत्रराजन्ते महावेगपुरःसराः ॥ तथैवश्वेतवसनाः सितपट्टपताकिनः ॥ ६५ ॥ मत्तेभवाहनप्रायाः किन्नरास्तस्थुराहवे ॥ मुक्ताजालपरिष्कारो हंसहारसमप्रभः ॥ ६६ ॥ केतुर्जलधिनाथस्य सौम्यरूपोऽव्यराजत ॥ पद्मरागमहारत्नभूपितोधनदस्यच ॥ ६७ ॥

शब्दवाले थे ॥ ६२ ॥ और मणिभद्रादिक करोड़ों यक्ष वहां देखपड़े जोकि गीध व घुघुवाके ध्वजावाले और भयंकर व व्याघ्र चर्मके वसनवाले थे ॥ ६३ ॥ व अग्निमुखको आगेकर वहा पिशाच शोभित होते हैं जोकि गीधके पंखोके ध्वजावाले व मुसल अस्त्रवाले और दुःखसे देखेजाते थे ॥ ६४ ॥ व बडे वेगपूर्वक गुह्यक वहां सोहते थे वैसेही श्वेत वसनवाले व श्वेत पट्टी और ध्वजावाले ॥ ६५ ॥ तथा मत्तहाथियों की सवारीवाले किन्नर युद्धमे खडेहुये व मोतियो के गुच्छोसे गूंथा और हंस व हारके समान प्रकाशित ॥ ६६ ॥ वरुणका सौम्यरूपवाला ध्वजा शोभित हुआ व पांचरंग और महारत्नों से भूपित कुबेरका ऊंचा ध्वजा उस समय तारकके

युद्धमें शोभितहुआ व काठ और लोहका बनाहुआ कौवा यमराज का बड़ाभारी ध्वजाहुआ ॥ ६७ । ६८ ॥ व निर्ऋति के ध्वजामें प्रेतका मुख शोभितहुआ व सोने और सिंहकी ध्वजावाले चन्द्रमा व सूर्यदेवता बड़े छविवान् होकर प्रकाशित हुये ॥६९॥ व रत्नोंसे विचित्र घट करके अश्विनीकुमार की ध्वजाहुई और विचित्र रत्नोंसे बना व सोनेसे रचाहुआ हाथी ॥ ७० ॥ इन्द्रका ध्वजाहुआ जोकि श्वेत चँवरसे शोभित था व उस युद्धमें अन्य देवताओं के ध्वजा अनेक प्रकारके रूपवाले शोभितहुये ॥ ७१॥ नागों समेत यक्ष, गन्धर्व, महासर्प व निशाचरोंवाली वह इन्द्रकी सेना दुर्जय देखपड़ी ॥ ७२ ॥ और अनेक प्रकारके देवगण तेंतीस करोड़ थे ॥ ७३ ॥ व

ध्वजःसमुच्छ्रितोरेजे तदातारकसंयुधि ॥ काष्ठलोहमयध्वाङ्क्षोयमस्याभून्महाध्वजः ॥६८॥ राक्षसेशस्यवदनं प्रेतस्य ध्वजश्चाभवौ ॥ हेमसिंहध्वजोदेवौ चन्द्रार्कावमितद्युती ॥ ६९ ॥ कुम्भेनरत्नचित्रेण केतुरश्विनयोरभूत ॥ मातङ्गोहेम रचितश्चित्ररत्नपरिष्कृतः ॥ ७० ॥ ध्वजःशतक्रतोरासीत्सितचामरमण्डितः ॥ अन्येषाञ्चध्वजास्तत्र नानारूपाबभूर णे ॥ ७१ ॥ सनागयक्षगन्धर्वमहोरगनिशाचरा ॥ सेनासादेवराजस्य दुर्जयाप्रत्यदृश्यत ॥ ७२ ॥ कोटयश्चत्रयस्त्रिं शन्नानादेवनिकायिनाम् ॥७३॥ हिमाचलाभेसितवर्णचामरे सुवर्णपद्मामलसुन्दरध्वजे ॥ कृताभिरामेबहुकुङ्कुमारुणे कपोलवलीलालिसमूहमस्तके ॥ ७४ ॥ श्रितस्तथैरावतनामकुञ्जरे महाबलश्चित्रविभूषिताम्बरः ॥ विशालवज्रास्त्र वितानभूषितः प्रकीर्णकेयूरभुजाग्रमण्डलः ॥ सहस्रदृग्वन्दिसहस्रसंस्तुतस्त्रिविष्टपेशोभतपाकशासनः ॥ ७५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेचतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

हिमाचलके समान शोभावाले, श्वेत रंगके चँवरवाले व निर्मल सुवर्ण व कमल के ध्वजावाले और कीहुई सुन्दरतावाले व बहुत कुंकुम से लाल और कपोलमें लीलापूर्वक भ्रमरसमूह युक्त माथावाले ॥ ७४ ॥ ऐरावत नामक हाथीपै बैठेहुये बड़े बली व विचित्र शोभित बसनवाले इन्द्र स्वर्ग में शोभित हुये जोकि बड़े वज्र अस्त्र के विस्तारसे शोभित व बाहुके अग्रमण्डल मे बजुल्ले को बांधे व हज़ार नेत्रोंवाले और हज़ारों वन्दियोंसे प्रशंसित होतेथे ॥ ७५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांचतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

दो० । ग्रसन दैत्यसों भांति जेहि कीन युद्ध यमराज । पन्द्रहवें अध्यायमें सोइ कहत मुनिराज ॥ नारदजी बोले कि तदनन्तर उन दोनों सेनाओंका वैराही संयोग हुआ जैसे कि युगान्त प्राप्तहोने पर क्षोभित समुद्रोंका मेलहोवै ॥ १ ॥ उस देवता दैत्योंकी बड़ी भयानक सेनामें दोनों सेनाओं का भी बड़ाभारी शब्दहुआ ॥ २ ॥ देवता, दैत्योंको गर्जतेहुये शंख व नगारे के शब्द से और तुरुहियों के शब्दो व हाथियोंकी गर्जनसे ॥ ३ ॥ और अश्वसमूहो के हिनहिनाने से व रथके पहियो के शब्द करके और शूरवीरोके शब्दसे युगान्त ऐसा होगया ॥ ४ ॥ व चित्तसे जीव को त्यागेहुये क्रोधसे घिरे अंगोंवाले देवता, दैत्य तैयारहुये और आपसमे युद्धके

नारद उवाच ॥ ततस्तयोःसमायोगः सेनयोरुभयोरभूत ॥ युगान्तेसमनुप्राप्ते यथाक्षुब्धसमुद्रयोः ॥ १ ॥ सुरासुराणांसंमर्द्देतस्मिन्परमदारुणे ॥ तुमुलंसुमहज्जातं सेनयोरुभयोरपि ॥ २ ॥ गर्ज्जतांदेवदैत्यानां शङ्खभेरीरवेणच ॥ तूर्य्याणांचैवनिर्घोषैर्मातङ्गानाञ्चबृंहितैः ॥ ३ ॥ हेषितैर्हयवृन्दानां रथनेमिस्वनेनच ॥ घोषेणचैवशूराणां युगान्तइवचाभवत् ॥ ४ ॥ रोषेणाभिपरीताङ्गास्त्यक्तजीवितचेतसः ॥ समासज्जंस्ततोन्योन्योपक्रमेणातिकोपिताः ॥ ५ ॥ रथारथैः समासक्ता गजाश्चापिमहागजैः ॥ पत्तयःपत्तिभिश्चैव हयाश्चापिमहाहयैः ॥ ६ ॥ ततःप्रासाशनिगदाभिन्दिपालपरश्वधैः ॥ शक्तिभिःपट्टिशैःशूलैर्मुद्गरैर्लगुडैस्तथा ॥ ७ ॥ चक्रैश्चशक्तिभिश्चैव तोमरैरङ्कुशैरपि ॥ कर्णमाकृष्टनाराचैर्वत्सदन्तार्द्धचन्द्रकैः ॥ ८ ॥ भल्लैर्वेतसपत्रैश्च शुकतुण्डैश्चनिर्मलैः ॥ वृष्टिरत्यद्भुताकारा गगनेसमपद्यत ॥ ९ ॥ संप्रच्छाद्यदिशःसर्वास्तमोमयमिवाभवत् ॥ प्राज्ञायन्तनतेन्योन्यं तस्मिंस्तमसिसंकुले ॥ १० ॥ अदृश्यभूतास्तम

प्रारम्भ से क्रोधित हुये ॥ ५ ॥ रथोंसे रथ व बड़े हाथियोंसे हाथी, पैदलोसे पैदल व बड़े घोड़ोंसे घोडे मिलगये ॥ ६ ॥ तदनन्तर फँसरी, वज्र, गदा, भिन्दिपाल, (गोफना) व परश्वध, शक्ति, पट्टिश, शूल, मुद्गर व दण्डोंसे ॥ ७ ॥ और चक्र, शक्ति, तोमर व अंकुशो से भी और कानोतक खींचेहुये बाणोसे और वत्सदन्त व अर्द्धचन्द्रसे ॥ ८ ॥ और बरछी, वेतसपत्र व निर्मल शुक तुण्डोंसे आकाशमें अद्भुत आकारवाली वर्षा प्राप्तहुई ॥ ९ ॥ व सब दिशाओं को आच्छादित करके अन्धकारमय ऐसा होगया व उस अन्धकार के व्याप्त होनेपर आपसमें वे नहीं जानेजाते थे ॥ १० ॥ व अन्धकार में न देखेहुये सब आपसमें काटते थे त० नन र ग्रहे -

हुये भी ध्वजा, भुजा, छत्र व कुण्डल समेत मस्तक, हाथी, घोड़े व पैदलों करके आकाशके ऊपर से गिरेहुये कमलोंकी नाईं पृथ्वी शोभितहुई ॥ ११ । १२ ॥ और टूटे दन्त व फूटे मस्तकाश और कटीहुई बड़ी लम्बी सूंड़वाले रक्तको बहातेहुये हाथी पर्वतों के समान पृथ्वीमें गिरपड़े ॥१३॥ व टूटे तरौंचे और टूटेहुये आंकवाले रथ खण्ड खण्ड होकर गिरपड़े व करोड़ों पैदल और हज़ारों घोड़े गिरपड़े॥१४॥ वैसे उस युद्धमें ग्रसन नामक शत्रुनाशक सेनापति ने बाणोंकी बड़ी वृष्टिसे देवताओं की सेनाको कँपादिया ॥ १५ ॥ तदनन्तर ग्रसनको देखकर यमराज कोपसे मूर्च्छितहुये व विशेषकर अग्निके समान तेजवाली बाणवृष्टिकी वर्षाकिया ॥ १६ ॥ बहुत बाणों

सि निकृन्तन्तिपरस्परम् ॥ ततोध्वजैर्भुजैश्छत्रैः शिरोभिश्चसकुण्डलैः ॥ ११ ॥ गजैस्तुरङ्गैःपादातैः पतद्भिःपतितैरपि ॥ आकाशशिरसोभ्रष्टैः पङ्कजैरिवभूषिता ॥ १२ ॥ भग्नदन्ताभिन्नकुम्भाश्छिन्नदीर्घमहाकराः ॥ गजाःशैलनिभाःपेतुर्धरण्यांरुधिरस्रवाः ॥ १३ ॥ भग्नेषाश्चरथाःपेतुर्भग्नाद्धाःशकलीकृताः ॥ पत्तयःकोटिशःपेतुस्तुरङ्गाश्चसहस्रशः ॥ १४ ॥ तस्मिंस्तथाविधेयुद्धे सेनानीर्ग्रसनोरिहा ॥ बाणवर्षेणमहता देवसैन्यमकम्पयत् ॥ १५ ॥ ततोग्रसनमालोक्य यमःक्रोधविमूर्च्छितः ॥ ववर्षशरवर्षेण विशेषादग्निवर्च्चसा ॥ १६ ॥ सविद्धोबहुभिर्बाणैर्ग्रसनोतिपराक्रमः ॥ कृतप्रतिकृताकाङ्क्षी धनुराकृष्यभैरवम् ॥ १७ ॥ शरैःपञ्चसहस्रैश्च लक्षैश्चैवव्यताडयत् ॥ ग्रसनेनविमुक्तानां शराणां सोप्यचिन्त्यच ॥ १८ ॥ बाणवृष्टिभिरुग्राभिर्यमोग्रसनमार्दयत् ॥ कृतान्तशरवृष्टीनां सन्ततिंप्रतिसर्पतीम् ॥ १९ ॥ चिच्छेदशरवर्षेण ग्रसनोदानवेश्वरः ॥ विफलांतांसमालोक्य यमःस्वांशरसन्ततिम् ॥ २० ॥ प्राहिणोन्मुद्गरंदीप्तं ग्रस

से बेधेहुये उस बड़े बलिष्ठ ग्रसन ने किये के बदले की इच्छा करके भयंकर धनुष को खींचकर ॥ १७ ॥ लाख व पांचहज़ार बाणोंसे मारा व ग्रसन से छोड़ेहुये बाणों को विचार कर ठन ॥ १८ ॥ यमराज ने बाणोंकी वृष्टिसे ग्रसनको विकल किया व आतीहुई यमराजके बाणवृष्टिकी पातिको ॥ १९ ॥ दानवेश्वर ग्रसन ने बाणवृष्टि से काटडाला यमराज ने अपनी उस शरपंक्तिको निष्फल देखकर ॥ २० ॥ ग्रसनके रथपै प्रकाशित मुद्गरको पठाया और शत्रुके नाशक उस ग्रसन ने उत्तम रथपर से

लीलापूर्वक बायें हाथ से आतेहुये उस मुद्गरको लेलिया व क्रोधकरके उसी मुद्गरसे यमराजके भैंसेको वेगसे मारा ॥ २१ । २२ ॥ और वह पृथ्वीमें गिरपड़ा इसकेअनन्तर गिरतेहुये उस भैंसे से कूदकर यमराज ने ॥ २३ ॥ ग्रसनके मुखमें बड़े ज़ोरसे भाला मारा उस प्रहार से मूर्च्छित होताहुआ ग्रसन भूमिमें गिरपड़ा ॥२४ ॥ गिरेहुये ग्रसनको देखकर प्रचण्ड पराक्रमवाले जम्भने यमराजके हृदय में भिन्दिपाल से मारा ॥ २५ ॥ उस प्रहारसे यमराजने मुखसे रक्त गिराया व बडे वेगके प्रहार से विकल यमराज मूर्च्छित होगये ॥ २६ ॥ यमराजको विकल देखकर गदा हाथमें लिये व दशहज़ार यक्षगणोंसे घिरेहुये कुबेर क्रोध से जम्भके समीप आये॥ २७ ॥ व

नस्यरथंप्रति ॥ सतंमुद्गरमायान्तमुपेत्यरथसत्तमात् ॥ २१ ॥ जग्राहवामहस्तेन लीलयाग्रसनोरिहा ॥ तेनैवमुद्गरेणाथ यमस्यमहिषन्तुवा ॥ २२ ॥ ताडयामासवेगेन सपपातमहीतले ॥ उत्पत्याथयमस्तस्मान्महिषान्निपतिष्यतः ॥ २३ ॥ प्रासेनताडयामास ग्रसनंवदनेदृढम् ॥ सततप्रासप्रहारेण मूर्च्छितोन्यपतद्भुवि ॥ २४ ॥ ग्रसनंपतितंदृष्ट्वा जम्भोभीमपराक्रमः ॥ यमस्यभिन्दिपालेन प्रहारमकरोद्धृदि ॥ २५ ॥ यमस्तेनप्रहारेण प्रोद्गिरद्रुधिरंमुखात् ॥ अतिवेगप्रहारार्त्तः कृतान्तोमूर्च्छितोभवत् ॥ २६ ॥ कृतान्तमर्द्दितंदृष्ट्वा गदापाणिर्धनाधिपः ॥ वृतोयक्षायुतगणैर्जम्भंप्रत्याययौरुषा ॥ २७ ॥ जम्भोरुषातमायान्तं दानवानीकसंवृतः ॥ जग्राहवाक्यंप्राज्ञस्तु यथास्निग्धेनभाषितम् ॥ २८ ॥ ग्रसनोलब्धसंज्ञोथ यमस्यप्राहिणोद्गदाम् ॥ मणिहेमपरिष्कारां गुर्वीपरिघमर्द्दिनीम् ॥ २९ ॥ समापतन्तींसंप्रेक्ष्य गदांमहिषवाहनः ॥ गदायाःप्रतिघातार्थं ज्वलज्ज्वलनभैरवम् ॥ ३० ॥ दण्डंमुमोचकोपेन ज्वालामालासमाकुलम् ॥ सगदांवियतिप्राप्य ररासाम्बुधरोद्धतम् ॥ ३१ ॥ संघट्टश्चाभवत्ताभ्यां शैलाभ्यामिवद्रुःसहः ॥ ताभ्यांनिःशेष

दानवों की सेनासे घिरेहुये जम्भने आतेहुये उसको ग्रहण किया जैसे कि विद्वान् स्नेहीसे कहेहुये वचनको ग्रहण करताहै ॥ २८ ॥ इसके अनन्तर चैतन्यता को पाये हुये ग्रसन ने परिघको मर्दनेवाली व मणियों तथा सोनेसे सजीहुई गरुई गदाको यमराज के ऊपर चलाया ॥ २९ ॥ आतीहुई उस गदाको देखकर गदाके नाशनेके लिये जलतीहुई अग्निसे भयंकर दण्डको क्रोधसे यमराजने चलाया जोकि ज्वालाओं की मालासे घिराथा और वह आकाश में गदाको पाकर मेघोंकी नाईं कराल

शब्दायमान हुआ ॥३० । ३१॥ व उन दोनोंका एकमें मिलना पर्व्वतोंकी नाईं दुःसहहुआ और उन दोनोंका सब शब्द जलतीहुई उल्काके समान शोभितहुआ ॥३२॥
व आकाश में प्राप्त उन दोनोंका घिसना भयानक हुआ और प्रलय आनेकी शङ्कासे संसार विकलताको प्राप्तभया ॥ ३३ ॥ व क्षणभर में आकाश शब्दरहित प्राप्त
हुआ इसके अनन्तर दण्ड गदाको नाशकरके तदनन्तर ग्रसन के माथेपै गिरपडा ॥३४॥ जैसे कि पहले इकट्ठा कीहुई भाग्य पौरुष करके शान्तहोजावै और उस प्रहार
से वह ग्रसन अन्धकार समेत दिशाओं को देखकर ॥ ३५ ॥ पृथ्वीकी धूलिसे शोभित व मूर्च्छितहो भूमिमें गिरपड़ा तदनन्तर दोनों सेनाओं में भयकर हाहा शब्द

निर्ह्रादो ज्वलदुल्कासमोबभौ ॥ ३२ ॥ निष्पेषणंतयोर्भीममभूद्गगनगोचरम् ॥ जगद्व्याकुलतांयातं प्रलयागमश
ङ्कया ॥ ३३ ॥ क्षणात्प्रशान्तनिर्ह्रादं गगनंसमपद्यत ॥ निहत्याथगदांदण्डस्ततोग्रसनमूर्द्धनि ॥ ३४ ॥ पपातपौरुषं
कृत्वा यथादैवंपुरार्ज्जितम् ॥ सतुतेनप्रहारेण दृष्ट्वासतिमिरादिशः ॥ ३५ ॥ पपातभूमौनिःसंज्ञो भूमिरेणुविभूषि
तः ॥ ततोहाहारवोघोरस्सेनयोरुभयोरभूत ॥ ३६ ॥ ततोमुहूर्त्तमात्रेण ग्रसनःप्राप्यचेतनाम् ॥ अपश्यत्स्वान्तनुंध्व
स्तां विलोलाभरणाम्बराम् ॥ ३७ ॥ सचापिचिन्तयामास कृतप्रतिकृतक्रियाम् ॥ धिगस्तुपौरुषंमह्यं प्रभोरग्रेसरःकथ
म् ॥ ३८ ॥ मय्याश्रितानिसैन्यानि जितेमयिजितानिच ॥ असम्भावितरूपोहि सजनोमोदतेसुखम् ॥ ३९ ॥ सम्भा
वितस्तुशत्रूश्चेत्तस्यनायंपरोपिवा ॥ एवंसंचिन्त्यवेगेन समुत्तस्थौमहाबलः ॥ ४० ॥ मुद्गरंकालदण्डाभं गृहीत्वागिरि
सन्निभम् ॥ ग्रसनोघोरसङ्कल्पः संदष्टौष्ठपुटच्छदः ॥ ४१ ॥ रथेनत्वरितोगच्छद्दासमादान्तकंरणे ॥ समासाद्ययमंयु

हुआ ॥ ३६ ॥ उसके बाद मुहूर्तभर में ग्रसन ने चैतन्यताको पाकर चञ्चल गहनों व वसनोंवाली अपनी देहको ध्वस्त देखा ॥ ३७ ॥ और किये के बदले कार्यको भी
उसने चिन्तन किया कि मेरे पुरुषार्थ को धिक्कारहै मैं कैसे स्वामीका अग्रगामी हुआ ॥ ३८ ॥ क्योंकि मेरे हारजाने पर मेरे आश्रित सेनाभी जीतीगईं व अमर्याद
रूप वह मनुष्य सुखसे प्रसन्न रहताहै ॥ ३९ ॥ व यदि मर्यादिक समर्थहोवै तो उस का यह पुरुष शत्रुभी नहीं होता है ऐसा विचारकर महाबली वह ग्रसन उठपडा ॥
४० ॥ और कालदण्ड के समान व पर्वतकी नाईं मुद्गरको लेकर ओठोंके पुटकोंको दाबेहुये घोरसंकल्पवाला वह ग्रसन दैत्य ॥ ४१ ॥ शीघ्रता समेत रथसे चला व युद्ध

में यमराजके समीपआया व समर में यमराज के समीप प्राप्तहोकर ग्रसनने भयंकर मुद्गरको घुमाकर ॥ ४२ ॥ बड़े वेगसे यमके माथेपै फेंका व प्रकाशित मुद्गर को देखकर घूमेहुये नेत्रोंवाले व बड़े बलिष्ठ यमराज उस असह्य मुद्गर को बचागये और उन यमराजके दूर भगजानेपर भयंकर कर्मवाले प्रचण्ड ॥ ४३ । ४४ ॥ दश हज़ार यमदूतोंको पीसडाला तदनन्तर उन दशहज़ार यमदूतों को मरे जानकर यमदूतो की सेना ॥ ४५ ॥ जोकि दशहज़ार अर्बुद थी क्रोधितहो ग्रसनके सामने दौड़ी और यमदूतमयी उस सेनाको देखकर ग्रसनने ॥ ४६ ॥ हज़ारों यमोंको माना क्योंकि वैसेरूप व पराक्रमवाली वह सेनाथी और ग्रसनको पीड़ितकर सेनाने बाणवृष्टि

द्धे ग्रसनोभ्राम्यमुद्गरम् ॥ ४२ ॥ वेगेनमहतारौद्रं चिक्षेपयममूर्द्धनि ॥ विलोक्यमुद्गरंदीप्तं यमःसम्भ्रान्तलोचनः ॥ ४३ ॥ वञ्चयामासदुर्द्धर्षं मुद्गरन्तंमहाबलः ॥ तस्मिन्नपद्रुतेदूरं चण्डानांभीमकर्म्मणाम् ॥ ४४ ॥ याम्यानांकिङ्कराणाम्प्ययुतंनिष्पिपेषह ॥ ततस्तदयुतंदृष्ट्वा हतांकिङ्करवाहिनी ॥ ४५ ॥ दशार्बुदमिताक्रुद्धा ग्रसनस्यान्वधावत ॥ ग्रसनस्तुसमालोक्य तांकिङ्करमयींचमूम् ॥ ४६ ॥ मेनेयमसहस्राणि तादृग्रूपबलाहिसा ॥ विगाह्यग्रसनंसेना ववर्षशरवृष्टिभिः ॥ ४७ ॥ घोरकल्पान्तसङ्काशो बभूवसमहारणः ॥ केचिच्छैलेनबिभिदुः केचिद्बाणैरजिह्मगैः ॥ ४८ ॥ पिपिषुर्गदयाकेचित्केचिन्मुद्गरवृष्टिभिः ॥ कैश्चित्प्रासप्रहारैश्च दारुणैस्ताडितःसच ॥ ४९ ॥ अपरेकिङ्करास्तस्य ललम्बुर्बाहुमण्डले ॥ शिलाभिरपरेजघ्नुर्द्रुमैरन्येमहोच्छ्रयैः ॥ ५० ॥ तस्यापरेचगात्रेषु दशनानिव्यपातयन् ॥ अपरेमुष्टिभिःपृष्ठं किङ्करास्ताडयन्तिच ॥ ५१ ॥ एवंचाभिहतस्तैस्स ग्रसनःक्रोधमूर्च्छितः ॥ उत्सृज्यगात्रंभूपृष्ठे निष्पिपेषसहस्र

से वर्षाकिया ॥ ४७ ॥ वह बड़ाभारी युद्ध भयंकर कल्पांत के समान हुआ कोई पर्वतों से व कोई सीधे जानेवाले बाणों से काटडाला ॥ ४८ ॥ व कोई गदासे और कोई मुद्गरों की वृष्टिसे पीसडाला और कितनों के भालाकी भयकर चोटोंसे वह ग्रसन मारागया ॥४९॥ व अन्य दूतोने उसकी भुजाओं को पकडा और अन्य यमदूतों ने शिलाओ व अपर यमदूतों ने बड़े ऊचे वृक्षोंसे मारा ॥५०॥ व अन्य यमदूतों ने उसके अंगोमें दातोंसे काटखाया व अन्य यमदूत मुष्टिकाओसे पीठमें मारतेथे ॥५१॥

इस प्रकार उनसे मारेहुये उस ग्रसन ने क्रोधसे मूर्च्छित होकर शरीर छोडकर धरातल में हज़ारों यमदूतों को पीसडाला ॥ ५२ ॥ और कितने यमदूतों को उ-
ठाकर इस ग्रसनने युद्धमें मुष्टिकाओं से मारा व कितने अन्य यमदूतों को चरण के प्रहार से चूर्णकिया ॥ ५३ ॥ हे भारत ! उस ग्रसन ने उनको एकही क्षणभर में
यमलोक में प्राप्तकिया और यमदूतोंके युद्धसे वह बढ़ा जैसे कि लकड़ीसे अग्नि बढ़ती है ॥ ५४ ॥ मारेहुये अपने गणोंको व आतेहुये उस ग्रसनको देखकर यमराज
दण्डको उठाकर आये ॥ ५५ ॥ और ग्रसनने आयेहुये यमराज की छातीमें गदासे मारा ग्रसनके उस कर्मको विचारकर शत्रुनाशक यमराज ने ॥ ५६ ॥ व्याघ्रदण्ड

श: ॥ ५२ ॥ कांश्चिदुत्थायजघ्नेसौ मुष्टिभिः किङ्करान्रणे ॥ कांश्चित्पादप्रहारेण याम्यानन्यानचूर्णयत ॥ ५३ ॥ क्षणेनैकेनसता
न्निन्ये यमलोकायभारत ॥ सचकिङ्करयुद्धेन ववृधेग्निरिवैधसा ॥ ५४ ॥ तमालोक्यसमायान्तं गणांश्चप्रहतान्स्वका
न् ॥ आजगामसमुद्गम्य दण्डंमहिषवाहनः ॥ ५५ ॥ ग्रसनस्तुसमायान्तमाजघ्नेगदयोरसि ॥ विचिन्तयित्वातत्क
र्म्म ग्रसनस्यान्तकोरिहा ॥ ५६ ॥ व्याघ्रदण्डेनसञ्जघ्ने सरथान्न्यपतद्भुवि ॥ ततःक्षणेनचोत्थाय सञ्चिन्त्यात्मानमुद्ध
तम् ॥ ५७ ॥ वायुवेगेनसहसा ययौयमरथम्प्रति ॥ पदातिस्सरथंतञ्च समारुह्ययमंतदा ॥ ५८ ॥ योधयामासबाहु
भ्यामाकृष्यबलिनांवरः ॥ यमोपिशस्त्राण्युत्सृज्य बाहुयुद्धेप्रवर्त्तितः ॥ ५९ ॥ ग्रसनःकटिदेशेतु यमंगृह्यबलोद्धतः ॥
भ्रामयामासवेगेन संभ्रमाविष्टमानसम् ॥ ६० ॥ विमोच्याथयमःकष्टात् कण्ठेवष्टभ्यचासुरम् ॥ बाहुभ्यांभ्रामयामा
स सोप्यात्मानममोचयत ॥ ६१ ॥ ततोजघ्नतुरन्योन्यं मुष्टिभिर्निर्दयौचतौ ॥ दैत्येन्द्रस्यातिवीर्यत्वात्तारिश्रान्ततरो

से मारा और वह रथ से भूमिमें गिरपड़ा तदनन्तर क्षणभरमें उठकर व अपनाको गर्वित चिन्तनकर ॥ ५७ ॥ पवनके तुल्य वेगसे अचानक यमके रथ समीप गया
व पैदल उसने उस रथपै चढ़कर उस समय खींचकर यमराज से भुजाओंसे युद्ध किया व बलिष्ठोंमें श्रेष्ठ यमराज भी शस्त्रोंको छोडकर बाहुयुद्धमें वर्त्तमान हुये ॥
५८ । ५९ ॥ और बलसे गर्वित ग्रसनने कटिके स्थानमें यमराज को पकड़कर व संभ्रमयुक्त मनवाले यमको वेगसे घुमाया ॥ ६० ॥ इसके अनन्तर यमराजने कष्टसे
छुड़ाकर गलेमें भुजाओंसे पकड़कर घुमाया तब उसने भी अपनाको छुड़ालिया ॥ ६१ ॥ तदनन्तर निर्दयी उनदोनोंने आपसमें मुष्टिकाओंसे मारा व दैत्येन्द्रके बड़े बल

के कारण यमराज बहुत थकगये ॥ ६२ ॥ व दैत्यके कांधे पै मुखको धरकर यमने सहँतानेकी इच्छा किया उसके उपरान्त उन यमराजको थके देखकर बलसे उठा कर ग्रसन दैत्यने ॥ ६३ ॥ ऍंडी व हाथोंसे मारतेहुये भूतलमें पटकदिया तदनन्तर यमराजके मुखसे बहुत रक्तबहा ॥ ६४ ॥ तदनन्तर निर्जीव ऐसा उन यमराज को देखके छोड़कर जीतको पाकर बडा शब्दकर व देवताओं को डराकर ॥ ६५ ॥ अपनी सेनामें प्राप्तहोकर न चलनेवाले पर्वतकी नाईं वह खडा होगया ॥ ६६ ॥ बडे अस्त्रोंसे आच्छादित अंगोंवाले व शोभाहीन यमराजके पृथ्वीमें प्राप्तहोनेपर समर में उस ग्रसन के शब्द से वे देवता कांपउठे व भयभीत हुये ॥ ६७ ॥ इति श्रीस्क

यमः ॥ ६२ ॥ स्कन्धेनिधायदैत्यस्य मुखंविश्रान्तुमैच्छत ॥ तमालक्ष्यततोदैत्यः श्रान्तमुत्थायचौजसा ॥ ६३ ॥ निष्पिपेषमहीपृष्ठे विनिघ्नन्पार्ष्णिपाणिभिः ॥ ततोयमस्यवदनात्सुस्रावरुधिरंबहु ॥ ६४ ॥ निर्जीवमितितंदृष्ट्वा ततस्संत्यज्यदानवः ॥ जयंप्राप्योद्धतन्नादं कृत्वासंत्रास्यदेवतान् ॥ ६५ ॥ स्वकंसैन्यंसमासाद्यतस्थौगिरिरिवाचलः ॥ ६६ ॥ नादेनतस्यग्रसनस्यसंख्ये महायुधैश्छादितसर्वगात्रे ॥ गतेकृतान्तेवसुधाञ्चनिष्प्रभे चकम्पिरेकान्दिशकास्सुरास्ते ॥ ६७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेपञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ * ॥ * ॥

नारदउवाच ॥ धनाधिपस्यजम्भेन सायकैर्मर्मभेदिभिः ॥ दिशोपरुद्धाःक्रुद्धेन सैन्यंचाप्यर्दितंभृशम् ॥ १ ॥ तद्दृष्ट्वाकर्म्मदैत्यस्य धनाध्यक्षःप्रतापवान् ॥ आकर्णाकृष्टचापस्तु जम्भमाजौमहाबलम् ॥ २ ॥ हृदिविव्याधबाणानांसहस्रेणाग्निवर्चसाम् ॥ सप्रहस्यततोवीरो बाणानामयुतत्रयम् ॥ ३ ॥ नियुतञ्चतथाकोटिमर्बुदंचाक्षिपत्क्षणात् ॥

न्दपुराणेकुमारिकाखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांपञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

दो० । जम्भादिक दानव सबै कीन्ह्यो जिमि संग्राम । सोलहवे अध्याय में सोइ कथा अभिराम ॥ नारदजी बोले कि सुकुमार स्थान काटनेवाले क्रोधित जम्भ के बाणोंसे दिशायें आच्छादित होगईं व कुबेर की सेना बहुत विकलहुई ॥ १ ॥ दैत्यके उस कर्मको देखकर समरमे कानोंतक धनुष खीचेहुये प्रतापी कुबेरजी ने बडेबली जम्भकेहृदयमें ॥ २ ॥ अग्नि समान तेजवाले हजार बाणोंका मारा तदनन्तर हँसकर उस जम्भवीरने तीसहज़ार बाण ॥ ३ ॥ व लक्ष,करोड और अर्बुद बाणोंको क्षण

सरसे चलाया उसकी उस शीघ्रताको देखकर क्रोधित होतेहुये बड़ी गदाको लेकर ॥ ४ ॥ कुबेरजीने चलाया जैसे कि स्वर्गका चाहनेवाला पुरुष अपना धन देता है और गदा छोडने पर प्रलयकासा शब्दहुआ ॥ ५ ॥ व आकाश में प्राणियों के बड़े भयवाले बहुत प्रकार के शब्दहुये व बड़ाभारी पवन पैदाहुआ और आकाश मेघों से भरगया ॥ ६ ॥ जोकि त्रिलोकके पूजित कुबेर की गदाथी बिजुलीके समूहों के समान न देखीजाती हुई उस गदाको देखकर ॥ ७ ॥ दैत्यने गदाके नाशनेके लिये शस्त्रवृष्टिको छोड़ा, और चक्र, गदा, भाला, बन्दूक, पट्टिश ॥ ८ ॥ परिघ, मूसल, वृक्ष व पर्वतोंको अतुल बलवाले दैत्यने चलाया और उन सब शस्त्रोंको नाशकर वह

तस्यतल्लाघवंदृष्ट्वा क्रुद्धोगृह्यमहागदाम् ॥ ४ ॥ धनाध्यक्षःप्रचिक्षेप स्वर्गेप्सुस्स्वधनंयथा ॥ मुक्तायाञ्चगदायांवै नादो
भूत्प्रलयेयथा ॥ ५ ॥ भूतानांबहुधारावाजज्ञिरेखेमहाभयाः ॥ वायुश्चसुमहाञ्जज्ञे खमासीन्मेघसंकुलम् ॥ ६ ॥ या
हिवैश्रवणस्यास्ते त्रैलोक्याभ्यर्चितागदा ॥ आयान्तींतांसमालोक्य तडित्सङ्घातदुर्दृशाम् ॥ ७ ॥ दैत्योगदाभिघाता
र्थं शस्त्रवृष्टिंमुमोचह ॥ चक्राणिचगदाःप्रासान् भुशुण्डीःपट्टिशांस्तथा ॥ ८ ॥ परिघान्मुसलान्वृक्षान् गिरींश्चातुल
विक्रमः ॥ कदर्थीकृत्यशस्त्राणि तानिसर्वाणिसागदा ॥ ९ ॥ कल्पान्तभास्करोयद्वन्न्यपतद्दैत्यवक्षसि ॥ सतयागाढ
भिन्नस्सन्सफेनंरुधिरंवमन् ॥ १० ॥ निष्पपातरथाज्जम्भोवसुधाङ्गतचेतनः ॥ जम्भंनिपतितन्दृष्ट्वा कुजम्भोघोरनिश्च
यः ॥ ११ ॥ धनाधिपस्यसंक्रुद्धो नादेनापूरयन्दिशः ॥ चक्रेबाणमयंजालं शकुन्तमिवपञ्जरम् ॥ १२ ॥ विच्छिद्यबाण
जालन्तं मायाजालमिवोत्कटम् ॥ मुमोचबाणानपरांस्तस्ययक्षाधिपोबली ॥ १३ ॥ चिच्छेदलीलयातांश्च दैत्यः

गदा ॥ ९ ॥ कल्पान्तके सूर्यकी नाई दैत्यकी छातीपै गिरपड़ी, उस गदासे बहुतही भेदित होताहुआ वह जम्भदैत्य फेनासमेत रुधिरको उगिलताहुआ चैतन्यतारहित होकर रथसे भूमिमें गिरपड़ा व गिरेहुये जम्भको देखकर विकराल निश्चयवाले कुजम्भने ॥ १० । ११ ॥ क्रोधित होकर शब्दसे दिशाओं को पूर्णकरते हुये कुबेरके ऊपर बाणमय जाल किया जैसे कि पक्षियों के ऊपर पिंजरा कियाजावे ॥ १२ ॥ बड़े उग्र मायाजालकी नाई उस बाणसमूहको काटकर यक्षोंके स्वामी बलिष्ठ कुबेरने

और बाणोंको उसके ऊपर छोड़ा ॥ १३ ॥ व क्रोधवश में प्राप्त दैत्यने लीलासे उन बाणोंको काटडाला इसके अनन्तर अपने बाणोंको विफल देखकर क्रोधित कुबेर जीने ॥ १४ ॥ सौ घण्टोंसे बड़े शब्दवाली असह्य शक्तिको लेलिया इसके उपरान्त उससमय पठाई हुई उस शक्तिने उसका हृदय फाडडाला ॥ १५ ॥ जैसे कि संसार से उपजाहुआ दुःख थोड़े ज्ञानवाले पुरुषका हृदय विदारण करडालता है इसके अनन्तर इसका हृदय फाड़कर वह शक्ति भूतलमें प्राप्तहुई ॥ १६ ॥ व पलभर रुक कर भयानक आकारवाले उस दैत्यने पर्वतों के भी तोड़नेवाले पट्टिशको लिया ॥ १७ ॥ उसने समरमें उस पट्टिशसे कुबेर की छातीके बीचको काटडाला जैसे कि

क्रोधवशङ्गतः ॥ निष्फलान्स्वानथोदृष्ट्वा बाणान्क्रुद्धोधनाधिपः ॥ १४ ॥ शक्तिंजग्राहदुर्द्धर्षां शतघण्टामहास्वनाम् ॥ प्रेषितासातदाशक्तिर्दारयामासतंहृदि ॥ १५ ॥ यथाल्पबोधंपुरुषं दुःखंसंसारसम्भवम् ॥ अथास्यहृदयंभित्त्वा जगामध रणीतलम् ॥ १६ ॥ निमेषात्सोपिसंस्तभ्य दानवोदारुणाकृतिः ॥ जग्राहपट्टिशन्दैत्यो गिरीणामपिभेदनम् ॥ १७ ॥ सतेनपट्टिशेनाजौ धनदस्यस्तनान्तरम् ॥ वाक्येनतीक्ष्णरूपेण मर्मस्थानविसर्पिणा ॥ १८ ॥ निर्बिभेदसुजातस्य हृदयंदुर्जनोयथा ॥ तेनपट्टिशपातेन धनेशःपरिमूर्च्छितः ॥ १९ ॥ निषसादरथोपस्थे दुर्वाचासुजनोयथा ॥ तथाभूतं तुतंदृष्ट्वा धनेशंवैमृतंयथा ॥ २० ॥ राक्षसोनिर्ऋतिर्देवोनिशाचरबलानुगः ॥ अभिदुद्राववेगेन कुजम्भंभीमविक्र मम् ॥ २१ ॥ अथदृष्ट्वातिदुर्द्धर्षः कुजम्भोराक्षसेश्वरम् ॥ नोदयामासदैत्यौघान् राक्षसेशरथम्प्रति ॥ २२ ॥ सदृष्ट्वा नोदितांसेनां प्रबलान्तांसुभीषणाम् ॥ रथादाप्लुत्यवेगेननिर्ऋतीराक्षसेश्वरः ॥ २३ ॥ खड्गेनतीक्ष्णधारेण चर्मपा

दुष्ट पुरुष सुकुमार स्थानमें जानेवाले तीक्ष्णरूप वचन से सज्जन का हृदय काटता है उस पट्टिशके गिरने से कुबेर मूर्च्छित होगये ॥ १८ । १९ ॥ व रथके ऊपर गिर पडे जैसे कि दुष्ट वचन से सज्जन गिरपड़ै वैसे कुबेरको मरेहुये की नाई देखकर ॥ २० ॥ निशाचरोंकी सेना पीछे लिये राक्षस निर्ऋति देवजी वेगसे भयकर पराक्रम वाले कुजम्भके सामने दौड़े ॥ २१ ॥ इसके अनन्तर राक्षसेश निर्ऋतिको देखकर असह्य कुजम्भने निर्ऋति के रथके समीप दैत्यगणों को पठाया ॥ २२ ॥ व पठाई हुई उस प्रबल व भयंकर सेनाको देखकर राक्षसोंके स्वामी निर्ऋति देवजी वेगसे रथसे कूदकर ॥ २३ ॥ तेजधारवाली तलवार समेत ढालको हाथमें लियेहुये दौड़े

व जैसे कमलोंके तड़ागमें हाथी पैठताहै वैसेही दानवों की सेनामें पैठकर उन्हों ने बहुतही पीड़ित किया व हज़ारों दैत्योंको काटडाला किसीको तिल २ भर काट डाला व अन्य दैत्योंको उत्तम तलवार से काटा ॥ २४।२५ ॥ उन निर्ऋतिने दैत्यों के कटेहुये ओंठ व मुखोंसे पृथ्वीको पूर्ण करदिया तदनन्तर बहुतही निःशेष अपनी सेनाको देखकर उससमय ॥ २६ ॥ कुजम्भ दैत्य कुबेरको छोड़कर निर्ऋतिके निकटगया व चैतन्यता पाकर उस जम्भने भी जीतेहुये हज़ारों कुबेरके चरणानुगा-मियोंको फँसरियों से बांधकर पकड़ लिया व मूर्त्तिमान् रत्नों तथा पद्मादि निधियों को लेलिया ॥ २७ । २८ ॥ व दिव्य सवारियों और समस्त विमानों को लेलिया

णिरधावत ॥ प्रविश्यदानवानीकं गजःपद्मसरोयथा ॥ २४ ॥ लोडयामासबहुधान्यकृन्ततसहस्रशः ॥ चिच्छेदकांश्चित्तिलशो बिभेदान्यान्वरासिना ॥ २५ ॥ संछिन्नौष्ठमुखैःपृथ्वी दैत्यानांसोभ्यपूर्यत ॥ ततोनिश्शेषितप्रायांविलोक्य स्वाञ्चमून्तदा ॥ २६ ॥ मुक्त्वाधनपतिन्दैत्यः कुजम्भोनिर्ऋतिंययौ ॥ लब्धसंज्ञश्चजम्भोपि धनाध्यक्षपदानुगान् ॥ २७ ॥ जीवग्राहान्सजग्राह बद्ध्वापाशैस्सहस्रशः ॥ मूर्त्तिमन्तिचरत्नानि पद्मादींश्चनिधींस्तथा ॥ २८ ॥ वाहनानिचदिव्यानि विमानानिचसर्वशः ॥ धनेशोलब्धसंज्ञोथ तामवस्थांविलोक्यच ॥ २९ ॥ निःश्वसन्दीर्घमुष्णाञ्च रोषताम्रविलोचनः ॥ ध्यात्वास्त्रङ्गारुडंदिव्यं बाणंसन्धायकार्मुके ॥ ३० ॥ मुमोचदानवानीके तंबाणंशत्रुदारणम् ॥ प्रथमंकार्मुकंतस्य वह्निज्वालमदृश्यत ॥ ३१ ॥ निस्सृताश्चस्फुलिङ्गानांकोटयोधनुषस्ततः ॥ ततोज्वालाकुलंव्योमचक्रेचास्त्रंसमन्ततः ॥ ३२ ॥ तदस्त्रंसहसादृष्ट्वाजम्भोभीमपराक्रमः ॥ सांवर्तममुचेतेजस्तच्छान्तंगारुडन्तदा ॥ ३३ ॥ ततस्तदा

इसके अनन्तर चैतन्यता पाकर व उस दशाको देखकर बहुतही गरम सांस लेतेहुये क्रोधसे अरुण नेत्रोंवाले कुबेरजी ने गारुड अस्त्रको ध्यानकर दिव्यबाण को धनुष पै सन्धान कर ॥ २९।३० ॥ व शत्रुको काटनेवाले उस भयंकर बाणको दैत्योंकी सेनामें छोड़ा पहले उनका धनुष अग्निकी ज्वालावाला देखपड़ा ॥ ३१ ॥ तदनन्तर धनुष से करोड़ों चिनगारियां निकलीं उसके उपरान्त अस्त्रने सब ओर से आकाशको ज्वालाओं से व्याप्त करदिया ॥ ३२ ॥ अचानकही उस अस्त्रको देखकर भयानक

बलवाले जम्भने सांवर्च अस्त्र को छोड़ा तब गरुड़ अस्त्रका वह तेज शान्त होगया ॥ ३३ ॥ तदनन्तर क्रोधसे विकल दैत्य उन कुबेरजीको देखकर शब्द करता हुआ पैदल वेगसे कुबेरजीके सामने दौड़ा ॥ ३४ ॥ तदनन्तर भागते हुये उन कुबेरका रत्नोंसे शोभित व प्रकाशित मुकुट आकाशसे सूर्यबिम्बकी नाईं पृथ्वी में गिरपड़ा ॥ ३५ ॥ और कुलीन यक्षोंकी सेना समरसे न भगी क्योंकि समरशिरमें हमलोगों का मरना योग्य भूषणहै ॥ ३६ ॥ यह विचारकर अनेक भांतिके शस्त्रास्त्रोंको हाथमें लिये युद्धकी इच्छावाले असह्य यक्ष मुकुटके चारों ओर वर्त्तमान होकर खड़ेहुये ॥ ३७ ॥ जो कि कुबेर के चरणानुगामी वीर अभिमानरूप धनवालेथे उनको क्रोध

नवोदृष्ट्वाकुबेरंरोषविह्वलः ॥ अभिदुद्राववेगेन पदातिर्धनदंनदन् ॥ ३४ ॥ ततःपलायतस्तस्य मुकुटोरत्नमण्डितः ॥ पपातभूतलेदीप्तोरविबिम्बमिवाम्बरात् ॥ ३५ ॥ यक्षाणामभिजातानांभग्नंसैन्यंनवैरणात् ॥ मर्त्तुंसंग्रामशिरसियुक्तंनोभूषणंयतः ॥ ३६ ॥ इतिव्यवस्यदुर्द्धर्षानानाशस्त्रास्त्रपाणयः ॥ युयुत्सवःस्थितायक्षा मुकुटंपरिवर्तिनः ॥ ३७ ॥ अभिमानधनावीरा धनदस्यपदानुगाः ॥ तानमर्षाक्षमंप्रेक्ष्यदानवश्चण्डपौरुषः ॥ ३८ ॥ भुशुण्डींभीषणाकारांगृहीत्वाशैलगौरवाम् ॥ रक्षिणोमुकुटस्याथनिष्पिपेषनिशाचरान् ॥ ३९ ॥ तान्प्रमथ्याथनियुतंमुकुटन्तंस्वकेरथे ॥ समारोप्यामररिपुर्जित्वाधनदमाहवे ॥ ४० ॥ धनानिचनिधीन्गृह्यस्वसैन्येनसमायुतः ॥ नादेनमहतादेवान्द्रावयामाससर्वशः ॥ ४१ ॥ मायाममोघामाश्रित्यतामसींराक्षसेश्वरः ॥ मोहयामासदैत्येन्द्रान्जगत्कृत्वातमोमयम् ॥४२॥ ततोविफलनेत्राणिदानवानांबलानिच ॥ नशेकुश्चलितुन्तत्रपदादपिपदन्तदा ॥ ४३ ॥ ततोनानास्त्रवर्षेण दानवानां

से देखकर प्रचण्ड पराक्रमवाले दानवने ॥ ३८ ॥ भयानकरूपवाली व पर्वत के समान गरुई बन्दूक को लेकर इसके उपरान्त मुकुट के रक्षक निशाचरोंको मारा ॥ ३९ ॥ और उन लक्ष वीरों को मारकर उस मुकुट को अपने रथपै धरकर उस देवशत्रु ने रामर मे कुबेरको जीतकर ॥ ४० ॥ धन व निधियों को लेकर अपनी सेना से संयुतहो बड़े शब्द से सब देवताओं को भगादिया ॥ ४१ ॥ व राक्षसेश निर्ऋतिने सफल तामसी माया के आश्रित होकर संसार को अन्धकारमय करके दैत्योत्तमोंको मोह कराया ॥ ४२ ॥ तदनन्तर दानवों की सेनायें विफल नेत्रवाली होगईं व उससमय समरमें पगसे पगभर भी चलने के लिये न समर्थ हुईं ॥ ४३ ॥

तदनन्तर निर्ऋतिदेव ने अन्धकारसे बहुतही पूर्ण दानवों की बड़ी सेनाको अनेक प्रकार के अस्त्रोंकी वर्षा से मारा ॥ ४४ ॥ दैत्यों के मारेजानेपर जब कुजम्भ का चित्त मोह गया तब कल्पान्त मेघोंके समान दानवेन्द्र महिषने ॥ ४५ ॥ उल्का के समूह से शोभित सावित्र (सूर्यवाला) अस्त्र प्रयोग किया इसके अनन्तर प्रतापी सावित्र परमास्त्र के बढ़नेपर ॥ ४६ ॥ बड़ा विकराल अन्धकार नाश होगया तदनन्तर अस्त्रकी चिनगारियों से अन्धकार श्वेत होगया ॥ ४७ ॥ जैसे कि शरद्ऋतुमें फूलेहुये लाल कमलसमूहोंवाला निर्मल तड़ाग श्वेत होताहै तदनन्तर अन्धकार शान्त होनेपर प्राप्त दृष्टिवाले दैत्येन्द्रोंने ॥ ४८ ॥ क्रूर मनसे देवसेनामें बड़ा आश्चर्य

महाचमूम् ॥ जघाननिर्ऋतिर्देवस्तमसासम्भृतांभृशम् ॥ ४४ ॥ हन्यमानेषुदैत्येषुकुजम्भेमूढचेतसि ॥ महिषोदानवेन्द्रस्तु कल्पान्ताम्भोदसन्निभः ॥ ४५ ॥ अस्त्रञ्चकारसावित्रमुल्कासङ्घातमण्डितम् ॥ विजृम्भत्यथसावित्रे परमास्त्रेप्रतापि नि ॥ ४६ ॥ प्रणाशमगमत्तीव्रन्तमोघोरमनन्तरम् ॥ ततोस्त्रनिस्फुलिङ्गैस्स्यस्तमःशुक्लंव्यजायत ॥ ४७ ॥ प्रोत्फुल्लारु णपद्मौघंशरदीवामलंसरः ॥ ततस्तमसिसंशान्तेदैत्येन्द्राःप्राप्तचक्षुषः ॥ ४८ ॥ चक्रुःक्रूरेणमनसादेवानीकंमहाद्भुतम् ॥ अथादायधनुर्घोरमिषुंचाशीविषोपमम् ॥ ४९ ॥ कुजम्भेधावतिक्षिप्रं रक्षोराजबलम्प्रति ॥ राक्षसेन्द्रस्तथायान्तं दृ ष्ट्वातंसपदानुगैः ॥ ५० ॥ विव्याधनिशितैर्बाणैः कालाशनिसमप्रभैः ॥ नादानञ्चसन्धानं नमोक्षंचास्यलक्ष्यते ॥ ५१ ॥ चिच्छेदसशरव्रातैस्तांश्छूराननतिलाघवात् ॥ ध्वजंशरेणतीक्ष्णेन निचकर्त्तामरद्विषः ॥ ५२ ॥ सारथिञ्चास्यभ ल्लेन रथनीडादपाहरत ॥ कालकल्पेनबाणेन तञ्चवक्षस्यताडयत् ॥ ५३ ॥ सतुतेनप्रहारेण चकम्पेपीडितोदृढम् ॥ दै

किया इस के उपरान्त भयङ्कर धनुष व सांप के समान बाणको लेकर ॥ ४९ ॥ जब कुजम्भ निर्ऋति के सेना के सामने शीघ्रही दौड़ा तब चरणानुगामियों समेत आते हुये उस दैत्य को देखकर निर्ऋतिने ॥ ५० ॥ काल व वज्रके समान छविवाले पैने बाणोंसे बेधित किया इनका लेना व सन्धान करना व छोडना नहीं देखपड़ ताहै ॥ ५१ ॥ उन निर्ऋति ने बड़ी शीघ्रता से उन शूरोंको शरसमूहों से काटा व देवशत्रुका ध्वजा पैनेबाण से काटडाला ॥ ५२ ॥ व रथपरसे इनके सारथीको भल्ल

अस्त्रसे मारडाला और कालके समान बाणकरके उनकी छातीमें मारा ॥ ५३ ॥ निर्ऋतिके उस प्रहारसे बहुतही व्यथित वह दैत्येन्द्र कांपताभया जैसे कि भूकम्पसे गऊ कांपती है ॥ ५४ ॥ व मुहूर्त्त (कच्ची दो घड़ी) मे सहँताकर उस शत्रुको संग्राममें न जीतने योग्य मानकर पैदलही उस दैत्यने रथपै चढ़कर बाये हाथसे निर्ऋति राक्षस के बालोंको पकड़कर व घुटुनुवों से दबाके बैठगया तदनन्तर उस क्रोधी दैत्यने तलवारसे शिर काटनेकी इच्छा किया ॥ ५५ । ५६ ॥ तदनन्तर कुजम्भके वशमें प्राप्त निर्ऋति को देखकर उस समय देवताओं में बड़ा कोलाहल हुआ ॥ ५७ ॥ इसी अवसर में पाशधारी वरुणदेवजी ने दौडके दानवेन्द्रकी दोनों

त्येन्द्रोराक्षसेन्द्रेण क्षितिकम्पेनगौर्यथा ॥ ५४ ॥ समुहूर्त्तात्समाश्वस्य मत्वातंदुर्ज्जयंरणे ॥ पदातिरारुह्यरथं रक्षोवामकरेणच ॥ ५५ ॥ केशेषुनिर्ऋतिंगृह्य जानुनाक्रम्यचास्थितः ॥ ततःखड्गेनचशिरश्छेत्तुमैच्छदमर्षणः ॥ ५६ ॥ ततःकलकलोजज्ञे देवानांसुमहांस्तदा ॥ कुजम्भस्यवशंप्राप्तं दृष्ट्वानिर्ऋतिमाहवे ॥ ५७ ॥ एतस्मिन्नन्तरेदेवो वरुणःपाशभृद्द्रुतः ॥ पाशेनदानवेन्द्रस्य बबन्धाशुभुजद्वयम् ॥ ५८ ॥ ततोबद्धभुजन्दैत्यं विफलीकृतपौरुषम् ॥ ताडयामासगदया पाशमुत्सृज्यपाशभृत् ॥ ५९ ॥ सतुतेनप्रहारेण स्रोतोभिःक्षतजंस्रवन् ॥दधारकालेमेघस्य रूपंविद्युल्लताभृतः॥ ६० ॥ तदवस्थागतंदृष्ट्वा कुजम्भंमहिषासुरः ॥ व्यावृत्तवदनोभूत्वा भोक्तुमैच्छत्सुरावुभौ ॥ ६१ ॥ निर्ऋतिंवरुणञ्चैव तीक्ष्णदंष्ट्रोत्कटाननः ॥ तावभिप्रायमालक्ष्य तस्यदैत्यस्यदूषितम् ॥ ६२ ॥ त्यक्त्वारथावुभौभीतौ पदातीप्रद्रुतौद्रुतम् ॥ जग्मतुर्महिषाद्भीतौशरणंपाकशासनम् ॥ ६३॥ क्रुद्धोथमहिषोदैत्योवरुणंसमुपाद्रवत् ॥ तमन्तकमुखाकारमालो

भुजाओं को शीघ्रही फँसरी से बाध लिया ॥ ५८ ॥ तदनन्तर पाशधारी वरुण ने फँसरी छोड़कर विफल किये पौरुषवाले व बँधीहुई भुजाओंवाले दैत्यको गदासे मारा ॥५९॥ और उस प्रहारके कारण स्रोत याने कर्ण व नासादिकोंसे रक्तको बहातेहुये उस दैत्यने समयमें बिजुलीरूप लताको धारनेवाले मेघकारूप धारण किया ॥ ६० ॥ उस दशामें प्राप्त कुजम्भ को देखकर फैलाये मुखवाला होकर तेजदाढ़ों से भयानक मुख वाले महिषासुर ने निर्ऋति व वरुण दोनों देवताओं को खानेकी इच्छा किया उस दैत्यका दूषित प्रयोजन देखकर वे ॥ ६१ । ६२ ॥ दोनों देवता डर कर रथ छोड़कर शीघ्रही पैदल भगे और महिषासुर से डरेहुये दोनों इन्द्रकी शरण

मेंगये ॥ ६३ ॥ इसके अनन्तर क्रोधित होताहुआ महिषासुर दैत्य वरुण के सामने दौड़ा यमराज के मुखकी आकृतिवाले उस दैत्यको देखकर चन्द्रमाने ॥ ६४ ॥ शस्त्रसे रचित बडा तीव्र हिमसमूह किया व चन्द्रमा ने दूसरा अतुल वायव्य अस्त्र किया ॥ ६५ ॥ उस प्रचण्ड पवन व सूखेपाला के कारण जाड़ेसे छिपे पराक्रमवाले सब दानव दुःखित होगये ॥ ६६ ॥ व उस युद्धमें चलने व शस्त्रलेने को भी न समर्थहुये बडे पालाके गिरने व चन्द्रमा से चलायेहुये शस्त्रोंसे ॥ ६७ ॥ असुरसेनाओं के अङ्ग सबओर से जलगये और जाड़ेसे कम्पित मुखवाला महिषासुर उपायहीन होकर ॥ ६८ ॥ हाथोंसे कन्धोंको पकड़कर नीचे मुखकरके बैठगया

क्षयहिमदीधितिः ॥ ६४ ॥ चक्रेशस्त्रविसृष्टंहि हिमसङ्घातमुल्बणम् ॥ वायव्यंचास्त्रमतुलं चन्द्रश्चक्रेद्वितीयकम् ॥ ६५ ॥ वायुनातेनचण्डेन संशुष्केणहिमेनच ॥ व्यथितादानवास्सर्वेशीताच्छादितपौरुषाः ॥ ६६ ॥ नशेकुश्चलितुंतत्र नास्त्राण्यादातुमेवच ॥ महाहिमनिपातेन शस्त्रैश्चन्द्रप्रणोदितैः ॥ ६७ ॥ गात्राण्यसुरसैन्यानामदह्यन्तसमन्ततः ॥ महिषोनिष्प्रयत्नस्तु शीतेनकम्पिताननः ॥ ६८ ॥ अंसावालम्ब्यपाणिभ्यामुपविष्टोह्यधोमुखः ॥ सर्वेतेनिष्प्रतीकारा दैत्याश्चन्द्रमसाजिताः ॥ ६९ ॥ रणेच्छान्दूरतस्त्यक्त्वा तस्थुस्तेजीवितार्थिनः ॥ तत्राब्रवीत्कालनेमिर्दैत्यान्क्रोधविदीपितः ॥ ७० ॥ भोभोःशृङ्गारिणःशूराः सर्वशस्त्रास्त्रपारगाः ॥ एकैकोपिजगत्कृत्स्नं शक्तस्तुलयितुंभुजैः ॥ ७१ ॥ एकैकोपित्वमोग्रस्तुं जगत्सर्वंचराचरम् ॥ एकैकस्यापिपर्याप्ता नसर्वेपिदिवौकसः ॥ ७२ ॥ किन्त्रस्तनयनाश्चैवं समरेपरिनिर्जिताः॥ नयुक्तमेतच्छूराणां विशेषाद्दैत्यजन्मनि ॥ ७३ ॥ राज्ञश्चतारकस्यापि दर्शयिष्यथकिंमुखम् ॥ विरतानांरणाच्चासौक्रु

और उपायहीन वे सब दैत्य चन्द्रमा से जीतेगये ॥ ६९ ॥ और युद्धकी इच्छाको दूर छोड़कर जीवके चाहनेवाले वे दैत्य खड़ेहोगये वहां क्रोधसे प्रज्वलित कालनेमिने दैत्योंसे कहा ॥ ७० ॥ कि अहो सब शस्त्रास्त्रों के पारगामी, शृङ्गारवाले वीरो ! एक २ भी भुजाओं से सब संसार को तोलने के लिये समर्थहो ॥ ७१ ॥ व एक २ भी सब चराचर संसारको ग्रसनेके लिये समर्थहो व एक २ के भी आगे सब देवता नहीं समर्थ हैं ॥ ७२ ॥ ऐ डरेहुये नेत्रोंवाले! समर में इस प्रकार हारेहुये क्योंहो यह वीरोंको योग्य नहीं है व दैत्यके जन्ममें विशेषतासे योग्य नहीं है ॥ ७३ ॥ और तुम लोग तारक राजाकोभी कौन मुख दिखावोगे व क्रोधित होकर यह समर से शान्त

दैत्योंके प्राणोंको हरैगा ॥ ७४ ॥ इस प्रकार कहेहुये भी उन महासुरों ने कुछ नहीं कहा जोकि जाड़ासे नष्ट कानोंवाले व भ्रष्टवचनादिवाले थे ॥ ७५ ॥ और वैसेही महायुद्ध में मरेहुये से दैत्य बावले होगये जाड़ेसे पीडित व नष्ट चैतन्यतावाले उन दैत्योंको देखकर ॥ ७६ ॥ समयके योग्य कार्यको मानकर महादैत्य कालनेमि ने बडेभारी शरीर को विस्तारकर सूर्यकी मायाको रचकर ॥ ७७ ॥ आकाश, दिशा व विदिशाओं को पूर्णकरादिया व इस दानवेन्द्रने शरीर में दश हजार सूर्यनारायण बनाया ॥ ७८ ॥ और दिशा, विदिशाओं को प्रचण्ड अग्नियोंसे पूर्णकिया तदनन्तर क्षणभर में समस्त त्रिलोक ज्वालाओं से व्याप्त होगया ॥ ७९ ॥ व उस ज्वाला

द्धः प्राणान्हरिष्यति ॥ ७४ ॥ इतितेप्रोच्यमानापि नोचुःकिञ्चिन्महासुराः ॥ शीतेननष्टश्रुतयो भ्रष्टवाक्यादयस्तथा ॥ ७५ ॥ मूकास्तथाभवन्दैत्या मृतकल्पामहारणे ॥ तान्दृष्ट्वानष्टचेतस्कान्दैत्याञ्च्छीतेनपीडितान् ॥ ७६ ॥ मत्वाका लक्षमंकार्यं कालनेमिर्महासुरः ॥ विसृज्यभानवींमायां वितत्यचमहावपुः ॥ ७७ ॥ पूरयामासगगनंदिशोविदिशएव च ॥ निर्ममेदानवेन्द्रोसौ शरीरेभास्करायुतम् ॥ ७८ ॥ दिशश्चविदिशश्चण्डैः पूरयामासपावकैः ॥ ततोज्वालाकुलं सर्वं त्रैलोक्यमभवत्क्षणात् ॥ ७९ ॥ तेनज्वालासमूहेन हिमांशुमगमच्छमम् ॥ ततःक्रमेणविभ्रष्टशीतदुर्दिनमाव भौ ॥ ८० ॥ तद्बलंदानवेन्द्राणां माययाकालनेमिनः ॥ तन्दृष्ट्वादानवानीकं लब्धसंज्ञंदिवाकरः ॥ ८१ ॥ उवाचारु णमत्यर्थं कोपरक्तान्तलोचनः ॥ दिवाकरउवाच ॥ नयत्वंमेरथंशीघ्रं कालनेमिरथोयतः ॥ ८२ ॥ विमर्दस्तत्रविषमो भविताभूतसंक्षयः ॥ एपोजितश्शशाङ्कोत्र वयंयद्बलमाश्रिताः ॥ ८३ ॥ इत्युक्तोनोदयामास रथंगरुडपूर्वजः ॥ रश्मे

समूहसे चन्द्रमा शान्तिको प्राप्तहोगया तदनन्तर क्रमसे कालनेमिकी मायासे नष्ट हुये जाड़ेके दुर्दिनवाली दानवेन्द्रकी सेना शोभितहुई व चैन्यता पायेहुई उस दैत्य की सेना को देखकर सूर्यदेवजी ॥ ८० । ८१ ॥ बहुतही लाललोचनोंवाले होकर अरुण सारथीसे बोले सूर्यनारायण बोले कि जहां कालनेमिका रथहै वहां तुम मेरे रथको शीघ्र लेचलो ॥ ८२ ॥ वहां प्राणियोंके नाशवाला बड़ा युद्धहोगा इस युद्धमें ये चन्द्रमा जीतेगये कि जिनके बलमें हम आश्रितहैं ॥ ८३ ॥ ऐसा कहेहुये गरुड़के बड़े भाई

अरुणने रथको चलाया व श्वेत चँवर धारनेवाले उत्तम घोड़ोंसे संयुत रथपै बैठे हुये ॥ ८४ ॥ संसारके दीपकरूप भगवान् सूर्यनारायण ने बड़े धनुषको लिया व हे पाण्डुपुत्र ! विषधारी सर्पोंके समान शोभावाले दो बाणोंको लिया ॥ ८५ ॥ एक बाण को शम्बरास्त्र (शाम्बरीमाया) से सन्धानकर छोडा व इन्द्रजाल से लगाये हुये दूसरे बाणकोछोडा ॥ ८६ ॥ क्षणभर में शम्बरास्त्रने उनके रूपको उलटा किया कि देवताओं का दानवरूप व दानवों का देवरूप होगया ॥ ८७ ॥ अपनेही दैत्योंको देवता मानकर क्रोधसे संयुत कालनेमि भयंकर अस्त्रोंकी शीघ्रतासे संहारमें यमराजकी नाईं मारा ॥ ८८ ॥ कितनों को तेज तलवार व कितने दैत्यों को बाणवृष्टि और

स्थितोंशुमैरश्वैः सितचामरधारिभिः ॥ ८४ ॥ जगद्दीपोथभगवाञ्जग्राहविततंधनुः ॥ शरौचद्वौपाण्डुपुत्र विषमाशीविषद्युती ॥ ८५ ॥ शम्बरास्त्रेणसन्धाय बाणमेकंससर्ज्जह ॥ द्वितीयंचेन्द्रजालेन योजितंप्रमुमोचह ॥ ८६ ॥ शम्बरास्त्रंक्षणाच्चक्रे तेषांरूपविपर्ययम् ॥ देवानान्दानवंरूपं दानवानाञ्चदैविकम् ॥ ८७ ॥ मत्वासुरान्स्वकानेव जघ्नेघोरास्त्रलाघवात् ॥ कालनेमीरुषाविष्टः कृतान्तइवसंक्षये ॥ ८८ ॥ कांश्चित्खड्गेनतीक्ष्णेन कांश्चिन्नाराचवृष्टिभिः ॥ कांश्चिद्गदाभिर्घोराभिः कांश्चिद्घोरैःपरश्वधैः ॥ ८९ ॥ शिरांसिकेषाञ्चिदपातयत्सभुजान्रथान्सारथींश्चोग्रवेगः ॥ कांश्चित्पिपेषाथरथस्यवेगात्कांश्चित्तथात्यद्भुतमिष्टघातैः ॥ ९० ॥ कालनेमीरुषाविष्टस्तेषांरूपंनबुद्धवान् ॥ ततोनिमिश्चदैत्येन्द्रंमत्वादेवंमहाजवः ॥ ९१ ॥ केशेषुगृह्यतंवीरं चकर्षचननादच ॥ ततोनिमिरुवाचेदंकालनेमिंमहाबलम् ॥ ९२ ॥ अहंनिमिःकालनेमेसुरंमत्वावधस्स्वमा ॥ भवतामोहितेनाजौदेवान्मत्वासुराःस्वकाः ॥ ९३ ॥ सुरैःसुदुर्जयाःकोट्योनिहतादशविद्धितत ॥ सर्वास्त्र

किसीको भयानक गदाओं व कितने देवरूपधारी दैत्यों को भयंकर परश्वधोंसे मारा ॥ ८९ ॥ व भयकर वेगवाले उसने किसीके मस्तकों व भुजाओंको गिरादिया और रथों व सारथियों को काटडाला व कितनोंको रथके वेगसे पीसडाला और कितने दैत्योंको अद्भुत ईटकी चोटोंसे मारा ॥ ९० ॥ क्रोधसे सयुत कालनेमि ने उनका रूप नही जाना और तदनन्तर बड़े वेगवान् कालनेमी ने दैत्येन्द्र निमिको देवता मानकर ॥ ९१ ॥ उस वीर के बाल पकड कर खींचा व शब्द किया तदनन्तर निमि ने बड़े बलिष्ठ कालनेमिसे कहा ॥ ९२ ॥ कि हे कालनेमि ! मैं निमिहूं देवता मानकर मतमारो संग्राममें मोहित आपने अपने दानवों को देवता मानकर माराहै ॥ ९३ ॥

व देवताओंने दश करोड़ दैत्यों को माराहै उसको जानिये व शीघ्रतासंयुत होकर समस्त अस्त्रों के रोंकनेवाले ब्राह्मय अस्त्रको छोड़िये ॥ ९४ ॥ उनसे जनायेहुये भ्रमसे विकल कालनेमि दैत्यने शीघ्रतासंयुत होकर उसको छोड़के ब्रह्मास्त्रसे किये हुये अस्त्रको छोड़ा ॥ ९५ ॥ तदनन्तर बहुतही आश्चर्यमय ब्रह्मास्त्र आकाशमें जलताभया व देवताओं की सबही सेना भयसे विकलहुई ॥ ९६ ॥ तदनन्तर उस समय ब्राह्मय अस्त्रसे ताड़ित शम्बरास्त्र शान्तहोगया उस अस्त्रके ताड़ित होनेपर बहुतही क्रोधित सूर्यदेव स्वामीने ॥ ९७ ॥ बड़े इन्द्रजाल मे प्राप्तहोकर अपना शरीर भयंकर किया जो सूर्य कि चमकती हुई किरणों के समूहसे त्रिलोकको घेरेथे ॥ ९८ ॥

वारणंमुञ्चब्राह्मयमस्त्रंत्वरान्वितः ॥९४॥ सतेनबोधितोदैत्योमुक्त्वातंसंभ्रमाकुलः ॥ बाणंब्रह्मास्त्रविहितंमुमोचत्वरयान्वितः ॥ ९५ ॥ ब्रह्मास्त्रंसंप्रजज्वालततःखेसुमहाद्भुतम् ॥ देवानाञ्चाभवत्सैन्यंसर्वमेवभयाकुलम् ॥ ९६ ॥ शम्बरास्त्रंततः शान्तंब्राह्मयप्रतिहतन्तदा ॥ तस्मिन्प्रतिहतेह्यस्त्रेसंक्रुद्धोभास्करःप्रभुः ॥ ९७ ॥ महेन्द्रजालमाश्रित्य चक्रेस्वांभीषणान्तनुम् ॥ विस्फूर्ज्जत्करसंघातसमाक्रान्तजगत्त्रयः ॥ ९८ ॥ ततापदानवानीकंगलन्मज्जाङ्घ्रिशोणितम् ॥ चक्षूंषिदानवेन्द्राणाञ्चकारान्धानिसप्रभुः ॥ ९९ ॥ गजानामगलन्मेदःपेतुश्चापिरथाभुवि ॥ तुरङ्गमाश्श्वसन्तश्चघर्मार्त्तारथिनोपि च ॥ १०० ॥ इतश्चेतश्चसलिलंप्रार्थयन्तस्तृषातुराः ॥ गिरिद्रोणीश्चपादांश्च गिरीणाङ्गहनानिच ॥ १ ॥ तेषांप्रार्थयतां शीघ्रमन्योन्यस्यविसर्प्पिणाम् ॥ दावाग्निरज्वलत्तीव्रोघोरार्चिर्दग्धपादपः ॥ २ ॥ तोयार्थिनःपुरोदृष्ट्वातोयंकल्लोलमालिनम् ॥ पुरःस्थितमपिक्षीरंनशेकुरुपपादितुम् ॥ ३ ॥ अप्राप्यसलिलम्भूमावभ्याशेहतमेवते ॥ यत्रतत्रव्यदृश्यन्त

उन स्वामी सूर्यनारायण ने गिरतीहुई मज्जा, चरण व रक्तवाली सेनाको जलाया व दानवेन्द्रों के नेत्र अन्धे किया ॥ ९९ ॥ हाथियों की मेदा गिरी व रथभी भूमिपे गिरे और घामसे विकल हाथी व रथीभी श्वासलेते हैं व प्यासते विकलहोकर इधर उधर जल व पर्वतकी कन्दरा व समीपके छोटे पहाड और पर्वतोंके वनोंको चाहते थे ॥ १०० । १ ॥ आपसमें इधर उधर घूमतेहुये उन सबोंके चाहनेपर बडा तीव्र दौरहा जला जिसने कि भयानक तापसे वृक्षोंको जलादिया था ॥ २ ॥ व जलके चाहनेवाले प्राणी बड़ी लहरियों की मालावाले जलको आगे देखकर अगाड़ी प्राप्त भी जलको पानेके लिये न समर्थहुये ॥ ३ ॥ भूमिमें समीपही जलको न पाकर वे

दैत्येश्वर शीघ्रही जहां तहां भूमिमे मरे देखपड़े ॥ ४ ॥ और घोड़ों समेत रथ व हाथी गिरपड़े व गिरतेहुये मज्जा, मेदा व रक्तको उगिलते तथा दौड़ते हुये ॥ ५ ॥ करोड़ २ दानव मरे देखपडते है उस बडे युद्धमें इस प्रकार दानवों के नाशहोनेपर ॥ ६ ॥ बड़े क्रोधसे घूमे लोचनोंवाला क्रोध संयुत यह कालनेमि चमकतीहुई भयंकर विजुलीवाला कालमेघ होगया ॥ ७ ॥ जोकि गम्भीर तालके शब्दवाला व संसारके हृदयको कँपानेवाला था उसने आकाशको आच्छादित कर सब सूर्यका प्रकाश नाश करदिया ॥८॥ और दानवेन्द्रकी सेनामे ठण्ढा जल बरसाया तदनन्तर उस वृष्टिको पाकर दैत्य क्रमसे स्वस्थ हुये ॥ ९ ॥ जैसे कि कुम्हिलाये हुये बीजके

मृतादैत्येश्वराभुवि ॥ ४ ॥ रथागजाश्चपतितास्तुरङ्गैश्चसमन्विताः ॥ स्थितावमन्तोधावन्तोगलन्मज्जावसासृजम् ॥
५ ॥ दानवानांकोटिकोटिर्व्यदृश्यन्तमृताइव ॥ एवंक्षयेदानवानांतस्मिन्महतिसंयुधि ॥ ६ ॥ प्रकोपोद्वृत्तताम्राक्षः
कालनेमीरुषान्वितः ॥ बभूवकालमेघोसौस्फुरद्भीमशतह्रदः ॥ ७॥ गम्भीरास्फोटनिर्ह्रादोजगद्धृदयकम्पनः ॥ प्रच्छा
द्यगगनंसूर्यप्रभांसर्वांव्यनाशयत ॥ ८ ॥ ववर्षशीतञ्चजलंदानवेन्द्रबलंप्रति ॥ दैत्यास्तांवृष्टिमासाद्यसमाश्वस्तास्त
तःक्रमात् ॥ ९ ॥ बीजाङ्कुराइवम्लानाः प्राप्यवृष्टिंन्धरातले ॥ ततःसमेघरूपीतु कालनेमिर्महासुरः ॥ १० ॥ शस्त्रवृ
ष्टिंववर्षोग्रां देवानीकेषुदुर्जयाम् ॥ तयावृष्ट्यापीड्यमानादैत्यैरन्यैश्चदेवताः ॥ ११ ॥ गतिंकाञ्चिन्नपश्यन्तिगावःशी
तार्दिताइव ॥ परस्परंविलीयन्तोगजेषुतुरगेषुच ॥ १२ ॥ रथेषुचभयत्रस्तास्तत्रतत्रनिलिल्यिरे ॥ एवंतेलीयमानाश्चनि
हताःकालनेमिना ॥ १३ ॥ दृश्यन्तेपतितादेवाःशस्त्रभिन्नाङ्गसन्धयः ॥ विभिन्नाभिन्नमूर्धानस्तथाभिन्नोरुजानवः॥१४॥

अखुवा भूतलमें वृष्टि पाकर चैतन्य होजाते हैं उसके उपरान्त मेघरूपी उस कालनेमि महादैत्य ने ॥ १० ॥ देवसेनाओं मे असह्य व भयंकर शस्त्रवृष्टिकी वर्षाकिया अन्य दैत्योंकरके उग्र वृष्टिसे पीडित देवता ॥ ११ ॥ जाडे से विकल गाइयों की नाई किसी गतिको नही देखतेथे व आपसमे हाथी घोडोंके समीप छिपतेथे ॥१२॥ व भयभीत होकर जहां तहां रथोंमें छिपतेथे इस प्रकार छिपेहुये वे देवता कालनेमिसे मारेगये ॥ १३ ॥ और शस्त्रोंसे कटेहुये अंगके जोडोंवाले व कटेहुये देवता गिरे

देखपडते हैं कि जिनके मस्तक कटेहैं व जंघा और घुटुना कटगये हैं ॥१४॥ जोकि गिरेहुये ध्वजाके दण्डोंसे लौटेहुये रथोंके समानथे व हज़ार घोडों और दशहजार हाथियो को ॥ १५ ॥ वैसेही दशहजार रथ व एक लक्ष गन्धर्व, पांच लक्ष यक्ष व वैसेही किन्नरोंको ॥ १६ ॥ व स्वर्गमे प्रसिद्ध सात लक्ष देवताओ को उस निडर दैत्यने माग और अन्य सुरजातिगणवालोंकी गिनती नहीं है ॥ १७ ॥ गर्वसे उग्र उस कालनेमिने क्रोधित होकर करोडों दैत्योको मारा उस समय देवताओंके बहुत नाशवाले उस युद्धके इसप्रकार वर्त्तमान होनेपर ॥१८॥ विचित्र माला व कवचोसे उज्ज्वल उन अश्विनीकुमार देवताओने क्रोधित होकर समरमें एक२ दैत्यको साठे

विपर्यस्तरथाभानिपतितध्वजयष्टिभिः ॥ तुरङ्गाणांसहस्राणिगजानामयुतानिच ॥ १५ ॥ रथानामयुतंतद्वद्गन्धर्वाणांदशायुतम् ॥ यक्षाणांपञ्चलक्षाणिकिन्नराणान्तथैवच ॥ १६ ॥ जघ्नेचनाकमुख्यानांसप्तलक्षाणिनिर्भयः ॥ इतरेषान्नसंख्यास्तिसुरजातिनिकायिनाम् ॥ १७ ॥ जघ्नेसकोटिशःक्रुद्धःकालनेमिर्मदोत्कटः ॥ एवंप्रवर्तितेयुद्धेतदामरमहाक्षये ॥१८॥ संक्रुद्धावश्विनौवीरौचित्रस्रक्कवचोज्ज्वलौ ॥ जघ्नतुस्तौरणेदैत्यमेकैकंषष्टिभिःशरैः ॥ १९ ॥ निर्भिद्यतौमहादैत्याननेकानश्विनौमुदा ॥ ताभ्यांबाणप्रहारैस्तु किञ्चिद्विक्लवचित्ततः ॥ २० ॥ जग्राहचक्रंलक्षारं सूर्यबिम्बशताधिकम् ॥ तेनचक्रेणसोश्विभ्यां चिच्छेदरथकूबरम् ॥ २१ ॥ जग्राहाथधनुर्दैत्यश्शरांश्चाशीविषोपमान् ॥ ववर्षभिषजोर्मूर्ध्निसञ्छाद्याकाशगोचरम् ॥ २२ ॥ तावप्यस्त्रैःस्मृतैस्सर्वांश्छिच्छिदुर्दैत्यसायकान् ॥ तच्चकर्मतथादृष्ट्वा विस्मितःकोपमाविशत् ॥ २३ ॥ जग्राहमुद्गरंभीमं कालदण्डविभीषणम् ॥ सतमुद्भ्राम्यवेगेन चिक्षेपास्यरथंप्रति ॥२४॥

साठि बाणोसे मारा ॥ १९ ॥ व उन अश्विनीकुमार देवताओने अनेको महादैत्यो को काटकर प्रसन्नतासंयुत हुये और उन दोनोंके शरप्रहारोंसे कुछ विकल चित्त करके उस दैत्यने ॥ २० ॥ सौ सूर्यबिम्बो से अधिक लाख कोटियोंवाले चक्रको लिया व उसने उस चक्रसे अश्विनीकुमारके रथके जुवांको काटडाला॥ २१॥ इसके अनन्तर दैत्यने धनुष व सर्पोंके समान बाणो को लिया व आकाशतल को आच्छादित कर वैद्योकें मस्तकपै बाणवृष्टि किया ॥ २२ ॥ उन दोनोंने भी स्मरण कियेहुये अस्त्रोसे दैत्योंके बाणोंको काटडाला व वैसे उस कर्मको देखकर विस्मितहो दैत्य क्रोधमें पैठ गया ॥ २३ ॥ व कालदण्ड के समान भयंकर कराल मुद्गरको लिया और उग

ने उसको वेगसे घुमाकर इसके रथपै फेंकदिया ॥ २४ ॥ और आतेहुये उस मुद्गर को आकाशतल में देखकर दोनों अश्विनीकुमार वेगसे रथको छोड़कर शीघ्रता से कूदपडे ॥ २५ ॥ व स्वर्णजाल से भूषित तथा पर्वत के समान उस मुद्गर ने उन दोनों रथों को पीसकर पृथ्वीको फाडडाला ॥ २६ ॥ इसके अनन्तर युद्ध करतेहुये दानवेन्द्र के उस कर्म को देखकर विचित्र युद्ध करनेवाले वे वैद्य वज्रास्त्र को करते भये ॥ २७ ॥ व भयानक वज्रास्त्रों के प्रहारों से दानव विकल करदिये गये व रथ, ध्वजा, धनुष, छत्र और सोनेकी कवच ॥ २८ ॥ क्षण भर में सब सेना के देखते हुये सौ खण्ड होगई अश्विनीकुमार के उस कठिन कर्म को देखकर उस बड़े परा-

तंतुमुद्गरमायान्तमालोक्याम्बरगोचरे ॥ मुक्त्वारथावुभौवेगादाप्लुतौतरसाश्विनौ ॥ २५ ॥ तौरथौसतुनिष्पिष्यमुद्गरोचलसन्निभः ॥ दारयामासधरणीं हेमजालपरिष्कृतः ॥ २६ ॥ तस्यकर्माथतद्दृष्ट्वा भिषजौचित्रयोधिनौ ॥ वज्रास्त्रन्तुप्रकुर्वाणौ दानवेन्द्रस्ययुध्यतः ॥ २७ ॥ घोरवज्रप्रहारैस्तु दानवाविकलीकृताः ॥ रथोध्वजोधनुश्छत्रं कवचंचापिकाञ्चनम् ॥ २८ ॥ क्षणेनशतधाभूतं सर्वसैन्यस्यपश्यतः ॥ तद्दृष्ट्वादुष्करंकर्म सोऽश्विभ्यामतिविक्रमः ॥ २९ ॥ नारायणास्त्रंबलवान् मुमोचरणमूर्द्धनि ॥ ततश्शशामवज्रास्त्रं कालनेमिस्ततोरुषा ॥ ३० ॥ जीवग्राहेग्रहयितुमश्विनौतौप्रचक्रमे ॥ तावभिप्रायमालक्ष्य सन्त्यज्यसमराङ्गणम् ॥ ३१ ॥ पदातीवेपमानाङ्गौ प्रद्रुतौवासवोद्यतः ॥ तयोरनुगतोदैत्यः कालनेमिर्नदन्मुहुः ॥ ३२ ॥ प्राप्येन्द्रस्यबलंक्रूरो दैत्यानीकपदानुगः ॥ कृतान्तइवकल्पान्ते सदावासवमागतः ॥ ३३ ॥ तन्दृष्ट्वासर्वभूतानि विनेशुर्विकलानितु ॥ हाहारवंप्रकुर्वाणास्तदादेवाश्चमेनिरे ॥ ३४ ॥ प

क्रमी ॥ २९ ॥ व बलिष्ठ दैत्यने रणशीर्ष में नारायणास्त्र को छोडा उससे वज्रास्त्र शान्त होगया तदनन्तर कालनेमि ने क्रोध से ॥ ३० ॥ जीतेहुये उन अश्विनीकुमार को पकडने की इच्छा किया उस प्रयोजनको देखकर समरका आगन छोडकर कांपतेहुये अङ्गोंवाले वे दोनों पैदल होकर वहां भगगये जहां कि इन्द्र थे व बार २ शब्द करता हुआ कालनेमि दैत्य उनका अनुगामी होकर ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ व इन्द्र की सेना को प्राप्त होकर दैत्यसेनाचरणानुगामीवाला वह क्रूर दैत्य कल्पान्त में यमराज की नाईं जब इन्द्र के समीप आया ॥ ३३ ॥ तब उसको देखकर सब विकल प्राणी भगगये व उस समय हाहा शब्द करते हुये देवताओं ने सब लोकों

की जय कारक इन्द्रकी हार माना व मुख्यपर्वत कांपने लगे और आकाशतल से उल्का गिरनेलगीं ॥ ३४ । ३५ ॥ व मेघ गरजने लगे और दिशाओं में बड़ा भारी शब्दहुआ उस प्राणियोंके निकारको देखकर भयसे विकल इन्द्रसमेत देवता ॥ ३६॥ मन करके संसार के स्वामी विष्णुकी शरणगये व स्तुति करने लगे कि ब्राह्मण को माननेवाले देवता के लिये व गऊ, ब्राह्मण के हितकारी के निमित्त नमस्कार है ॥ ३७ ॥ वही गोविन्दजी हम लोगों की रक्षा करैं भय से विकल वे देवता इस तरह कहते भये देवताओ का विचार जानकर गरुडध्वज विष्णुजी ॥ ३८ ॥ यह जानकर व शय्या से योगनिद्रा को छोड़कर जो विष्णु कि लक्ष्मीजी के दोनों हाथों से

राजयंमहेन्द्रस्य सर्वलोकक्षयावहम् ॥ चेलुश्शिखरिणोमुख्याः पेतुरुल्कानभस्तलात् ॥ ३५ ॥ जगर्जुर्जलदादिक्षुस म्भूतश्चमहारवः ॥ ताम्भूतविकृतिन्दृष्ट्वा देवास्सेन्द्राभयाकुलाः ॥ ३६ ॥ मनसाशरणंजग्मुर्वासुदेवंजगत्पतिम् ॥ नमोब्रह्मण्यदेवाय गोब्राह्मणहितायच ॥ ३७ ॥ सनोरक्षतुगोविन्दो भयार्तास्तेजगुस्सुराः ॥ सुराणांचिन्तितंज्ञात्वा भ गवान्गरुडध्वजः ॥ ३८ ॥ विबुध्येदंहिपर्यङ्काद्योगनिद्रांविहायच ॥ लक्ष्मीकरयुगाजस्रलालिताङ्घ्रिसरोरुहः ॥ ३९ ॥ शरदीवचनीलाब्जकान्तिदेहच्छविर्विभुः ॥ कौस्तुभोद्भासितोरस्कः कान्तकेयूरभास्करः॥ ४० ॥ विमृश्यसरसंक्षोभं वै नतेयमथाह्वयत् ॥ आहूतेचास्थितेतस्मिन् गरुडेदुःखितेभृशम् ॥ ४१ ॥ दिव्यनानास्त्रतीक्ष्णार्चिरारुह्यगरुडोपरि ॥ तत्रापश्यत्सदेवेन्द्रं भयभीतमभिद्रुतम् ॥ ४२ ॥ दानवेन्द्रैर्नवाम्भोदसच्छायैस्सर्वतोत्कटैः ॥ यथाहिपुरुषंघोरैरभा ग्यैःपूर्वसञ्चितैः ॥ ४३ ॥ तत्राणायाव्रजद्विष्णुः स्तूयमानोमुहुस्सुरैः ॥ अभाग्येभ्यःपरित्रातं सुकृतंनिर्मलंयथा ॥४४॥

सदैव दुलरायेहुये चरण कमलोंवाले थे ॥ ३९ ॥ व शरद्ऋतु में नील कमल की छवि के समान देहकी शोभावाले थे और कौस्तुभमणि से जिनका वक्षस्थल शोभित था व सुन्दर बजुल्ले से प्रकाशकारक थे ॥ ४० ॥ उन विष्णुजी ने देवताओं का क्षोभ विचारकर गरुड़ को बुलाया व बुलाने पर उन गरुड़ के बहुतही दुःखित स्थित होनेपर ॥ ४१ ॥ अनेक प्रकार के दिव्य अस्त्रोंसे तीक्ष्ण शोभावाले उन विष्णु जीने गरुड के ऊपर सवार होकर वहां भयसे डरेहुये देवेन्द्र को देखा जो कि नये मेघों के समान कान्तिवाले व सब प्रकार से उग्र दानवेन्द्रों करके घिरे थे जैसे कि पहले इकट्ठा किये हुये भयानक भाग्यों से पुरुष घिरा होवै ॥ ४२ । ४३ ॥ बार बार

देवताओं से स्तुति किये जाते हुये विष्णु जी उनकी रक्षा के लिये गये जैसे कि अभाग्यों से घिरेहुये पुरुषकी रक्षाके लिये निर्मल पुण्यहोवै ॥ ४४ ॥ इस के अनन्तर प्रकाशमण्डलवाले आकाश में दैत्येन्द्र को देखा जैसे कि उदयाचल पै प्राप्त सुन्दर सौ सूर्य होवैं ॥ ४५ ॥ उन विष्णु के तेज का प्रभाव जानने की इच्छावाले दानव कल्पान्त अग्नि की नाईं भयङ्कर गरुड़को देखा ॥ ४६ ॥ व उस गरुड पै बैठेहुये अनूप शोभावाले उन चतुर्भुज विष्णु को देखकर दानवेन्द्र हर्ष से पूरित मनवाले होगये ॥ ४७ ॥ और बोले कि ये शत्रुनाशक व सबों के रक्षक वही केशव देव हैं इनके जीत लेनेपर सब देवता जीतेगये इस में सन्देह नहीं है ॥ ४८ ॥ इनके

अथापश्यतदैत्येन्द्रो वियतिद्युतिमण्डले ॥ स्फुरन्तमुदयाद्रिस्थं कान्तंसूर्यशतंयथा ॥ ४५ ॥ प्रभावंज्ञातुमिच्छन्तो दानवास्तस्यतेजसः ॥ गरुत्मन्तंतथापश्यन् कल्पान्तानलभैरवम् ॥ ४६ ॥ तत्रस्थितञ्चतुर्बाहुं हरिञ्चानुपमद्युतिम् ॥ तमालोक्यासुरेन्द्रास्तु हर्षसम्पूर्णमानसाः ॥ ४७ ॥ अयंहिदेवस्सर्वेषां शरणंकेशवोरिहा ॥ अस्मिञ्जितेजितास्सर्वे देवाश्चनात्रसंशयः ॥ ४८ ॥ एनमाश्रित्यलोकेशायज्ञभागभुजोमराः ॥ इत्युक्त्वातेसमागम्य सर्वएवयतस्ततः ॥ ४९ ॥ कालनेमिप्रभृतयोदशदैत्यमहारथाः ॥ षष्ट्याविव्याधबाणानां कालनेमिर्जनार्दनम् ॥ ५० ॥ निमिश्शतेनबाणानां मथनोदशभिश्शरैः ॥ जम्भकश्चैवविंशत्याशुम्भोदशभिरेवच ॥ ५१ ॥ शेषादैत्येश्वरास्सर्वे विष्णुमेकैकबाणतः ॥ दशभिर्दशभिर्बाणैर्जघ्नतुर्गरुडंरणे ॥ ५२ ॥ तेषामामृश्यतत्कर्म्म विष्णुर्दानवसूदनः ॥ एकैकंदानवंजघ्ने षड्भिःषड्भिरजिह्मगैः ॥ ५३ ॥ आकर्णाकृष्टैर्भूयश्च कालनेमिस्त्रिभिश्शरैः ॥ विष्णुंविव्याधहृदये रोषाद्रक्तविलोचनः ॥५४॥

आश्रित होकर लोकपाल देवता यज्ञभागों के भोगी हैं यह जहां तहां कहकर व भलीभांति आकर वे सबही ॥ ४९ ॥ कालनेमि इत्यादिक दश महारथी दैत्य थे और कालनेमि ने साठि बाण विष्णु के मारा ॥ ५० ॥ व निमि ने सौ बाण और मथन दश बाण व जम्भक बीसबाण और शुम्भ दशबाण विष्णुके मारा ॥ ५१ ॥ व शेष सब दानवेन्द्रों ने विष्णुको एक २ बाणसे मारा व युद्धमें दश २ बाणोंसे गरुडको मारा ॥ ५२ ॥ उनके उस कर्मको विचारकर दैत्योंके मारनेवाले विष्णुने एक २ दानवको छह छह बाणोंसेमारा ॥ ५३ ॥ फिर कानतक खींचेहुये तीनबाणोंके क्रोधसे कारण लाललोचनोंवाले कालनेमिने विष्णुके हृदयमें बेधन किया ॥ ५४ ॥

तचाये हुये सोनेके समान वे बाण उन विष्णुके हृदय में प्रकट छविवाली व प्रकाशित कौस्तुभमणिकी किरणोंकी नाईं शोभित हुये ॥ ५५ ॥ उन बाणोंसे कुछ शिथिल उन विष्णुजी ने मुद्गरको लिया व उसको वेगसे घुमाकर दानव के लिये छोड दिया ॥ ५६ ॥ और हाथकी शीघ्रता को दिखाते हुये क्रोधित दानवेन्द्र ने न पहुँच हुये मुद्गरको विपसे बुझाये पैने बाणोंसे तिल २ भर काटडाला ॥५७॥ तदनन्तर बहुत क्रोधितहो विष्णुजी ने कराल भालाको लिया व उससे बेग करके दैत्य के हृदय में मारा ॥ ५८ ॥ व क्षणभर मे चैतन्यता पाकर दैत्यपुत्रने सुवर्ण के घण्टे मे अट्टहास शब्दवाली व तेज अग्रभागवाली शक्तिको लिया व उससे विष्णुकी

तस्याशोभन्ततेबाणा हृदयेतप्तकाञ्चनाः ॥ मयूखाइवसन्दीप्ताः कौस्तुभस्यस्फुटत्विपः ॥ ५५ ॥ तैर्बाणैःकिञ्चिदायस्तो हरिर्जग्राहमुद्गरम् ॥ सतमुद्भ्राम्यवेगेनदानवायमुमोचवै ॥ ५६ ॥ दानवेन्द्रस्तमप्राप्तं विषदग्धैःशितैश्शरैः ॥ चिच्छेदतिलशःक्रुद्धो दर्शयन्पाणिलाघवम् ॥ ५७ ॥ ततोविष्णुःप्रकुपितःप्रासंजग्राहभैरवम् ॥ तेनदैत्यस्यहृदयं ताडयामासवेगतः ॥ ५८ ॥ क्षणेनलब्धसंज्ञस्तुकालनेमिर्महासुरः ॥ शक्तिंजग्राहतीक्ष्णाग्रां हेमघण्टाट्टहासिनीम् ॥ तयावामंभुजंविष्णोर्बिभेददितिनन्दनः ॥ ५९ ॥ भिन्नंशक्त्याभुजंतस्य स्रुतशोणितमाबभौ ॥ नीलेबलाहकेविद्युद्विद्योतन्तीयथामुहुः ॥ ६० ॥ ततोविष्णुःप्रकुपितो जग्राहविपुलंधनुः ॥ सप्तदशचनाराचांस्तीक्ष्णाग्रान्मर्मभेदिनः ॥ ६१ ॥ दैत्यस्यहृदयंषड्भिर्विव्याधचशिरस्त्रिभिः ॥ चतुर्भिस्सारथिञ्चास्य ध्वजंचैकेनपत्त्रिणा ॥ ६२ ॥ द्वाभ्यांधनुर्ज्यांधनुषो भुजंचैकेनपत्त्रिणा ॥ सविद्धोहृदयेगाढं दोषैर्मूढोयथानरः ॥ ६३ ॥ स्रुतरक्तौघरन्ध्रस्तुस्रुतधातुरिवाच

बाईं भुजाको छेदन किया ॥ ५९ ॥ बहतेहुये रक्तवाली शक्तिसे छेदित उनकी भुजा शोभितहुई जैसे कि बार २ चमकती हुई बिजुली नील मेघमें शोभित होती है ॥ ६०॥ तदनन्तर बहुत क्रोधित विष्णुने बडा धनुप लिया व सुकुमार अंग काटनेवाले और पैने अग्रभागवाले सत्रह बाणोंकोलिया ॥ ६१ ॥ व इस दैत्यके हृदयको छह बाणो व मस्तकको तीन बाणोंसे ताडन किया और चारबाणोंसे सारथी व एक बाण से ध्वजाको काटा ॥ ६२ ॥ व दो बाणोसे धनुप व धनुपकी पंच और एक बाणसे भुजाको काटडाला व हृदयमें बहुतही बेधित वह दोपोंसे संयुत मूर्ख पुरुपकी नाईं हुआ ॥ ६३ ॥ व बहते हुये रुधिर प्रवाह छिद्रोवाला वह बहती हुई गैरिक, मैन-

शिला धातुवोंवाले पर्वतकी नाईं टूटे रथपै चैतन्यताहीन व जीव शेष होकर गिरपड़ा ॥ ६४ ॥ व रथके ऊपर गिरेहुये दैत्यसे शत्रुनाशक व चक्रास्त्रवाले विष्णु स्वामीने मुसक्यानपूर्वक यह वचन कहा ॥ ६५ ॥ कि हे असुर! जाइये इससमय जीव से मुखी तुम छोड़ेगये हो तदनन्तर थोड़ेही दिनोंमें मैं तुम्हारा नाशक हूंगा ॥ ६६ ॥ सबोंके स्वामी उन विष्णुके ऐसे वचन सुनकर उस समय क्षणभर में संसारके स्वामी विष्णुसे डराहुआ यह कालनेमि रथको दूरलेगया ॥ ६७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांकुमारेशमाहात्म्येषोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

लः ॥ पपातचरथेभग्ने विसंज्ञःशिष्टजीवितः ॥ ६४ ॥ पतितस्यरथोपस्थे दानवस्याच्युतोरिहा ॥ स्मितपूर्वमुवाचेदं वाक्यंचक्रायुधःप्रभुः ॥ ६५ ॥ गच्छासुरविमुक्तोसि साम्प्रतंजीवनिर्वृतः ॥ ततःस्वल्पैरेवदिनैरहमेवतवान्तकः ॥ ६६ ॥ एवंवचस्तस्यनिशम्यविष्णोः सर्वेश्वरस्याथरथन्निमेषात् ॥ निनायदूरंकिलकालनेमिर्भीतस्तदासौहरिलोकनाथात् ॥ ६७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डे कुमारेशमाहात्म्ये षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ * ॥

नारदउवाच ॥ तन्दृष्ट्वादानवास्सर्वे क्रुद्धास्तेस्वबलैर्युताः ॥ सरघाइवमाक्षीकं रुरुधुस्सर्वतस्ततः ॥ १ ॥ पर्वताभगजेर्भीमे मदस्राविणिदुर्द्धरे ॥ अतिचित्रपताकेतु मुक्ताजालविभूषिते ॥ २ ॥ स्वर्णवर्मान्वितेयद्वन्नगेदावाग्निसंवृते ॥ आरुह्याजौनिमिर्दैत्यो हरिंप्रत्युद्ययौबली ॥ ३ ॥ तस्यासन्दानवारौद्रा गजस्यपरिरक्षिणः ॥ सप्तविंशतिकोट्यश्च किरीटकवचोज्ज्वलाः ॥ ४ ॥ अश्वमारुह्यशैलाभं मथनोहरिमद्रवत ॥ अपरेदानवेन्द्राश्च शूरानानास्त्रपाणयः ॥ ५ ॥

दो० । मथन आदि दैत्याधिपन मार्यो जिमि भगवान । सत्रहवें अध्यायमें सोई करत बखान ॥ नारदजी बोले कि तदनन्तर उसको देखकर क्रोधितहो अपनी सेनासे संयुत उन सब दानवोंने सब ओरसे घेरलिया जैसे कि मक्खियां शहदको घेरलेती हैं ॥ १ ॥ पर्वतके समान भयंकर व मद बहानेवाले, दुर्धर्ष व बड़े विचित्र ध्वजावाले व मोतियों की झालररो शोभित और सोनेकी कवचसे संयुत दावाग्नि से संयुक्त पर्वतकी नाईं हाथीपै सवार होकर पराक्रमी निमि दैत्य समरमें विष्णुके सामने गया ॥ २। ३ ॥ किरीट व कवचसे उज्ज्वल सत्ताईस करोड़ भयङ्कर दैत्य उस हाथीके चारों ओर रक्षक थे ॥ ४ ॥ और पहाड़के समान घोड़ेपै सवार होकर मथन दैत्य

विष्णुके समीपगया व अन्य शूर दैत्येन्द्र अनेक भांतिके अस्त्र हाथोंमें लेकर ॥ ५ ॥ क्रोधितहो युद्धमें आये व सबोंने महासमर में बलसे नारायण जी को मारा व शेष दैत्योंने तेज़ बाणोंसे मारा ॥ ६ ॥ चलायेहुये वे अस्त्र विष्णुमें कैसे पैठगये जैसे कि गुरूसे बहुत प्रकारके कहेहुये उपदेश उत्तम शिष्यमें प्रवेशहोवैं ॥ ७ ॥ तदनन्तर क्रोधित होकर विष्णुने बलसे धनुप बाणोंको लेकर उस दैत्योकी सेनाको नाश किया जैसे कि झूंठा वचन धर्मको नाशकरता है ॥ ८ ॥ विष्णुजी ने अग्निके समान तेजवाले बीस बाणोंसे निमिके मारा और दशबाणोंसे मथन के मारा व पांचबाणों से शुम्भके मारा ॥ ९ ॥ व क्रोधितहो विष्णुने सौ बाणोंसे महिषासुर के हृदयमें मारा

आजग्मुस्समरेक्रुद्धाः सर्वेशक्त्यामहारणे ॥ जघ्नुर्नारायणंशेषा विशिखैस्तीक्ष्णमार्गणैः ॥ ६ ॥ तान्यस्त्राणिप्रयुक्तानि विविशुःपुरुषोत्तमम् ॥ उपदेशागुरोर्यद्वत् सच्छिष्यंबहुधेरिताः ॥ ७ ॥ ततःक्रुद्धोहरिर्गृह्य धनुर्बाणांश्चवैबलात् ॥ व्यध मद्दैत्यसैन्यंतद्धर्म्ममिथ्यावचोयथा ॥ ८ ॥ निमिंविव्याधविंशत्या बाणैरनलवर्च्चसैः ॥ मथनंदशभिश्चैव शुम्भंपञ्च भिरेवच ॥ ९ ॥ शतेनमहिषंक्रुद्धो विव्याधोरसिमाधवः ॥ जम्भंद्वादशभिस्तीक्ष्णैः सर्वांश्चैकैकशोष्टभिः ॥ १० ॥ तस्य तल्लाघवंदृष्ट्वा दानवाःक्रोधमूर्च्छिताः॥ चक्रुर्गाढतरंयत्नमाच्छादनायहरिंशरैः ॥ ११ ॥ चिच्छेदचधनुर्ज्यांच निमिर्भ ल्लेनदानवाः ॥ हस्ताच्चापञ्चसंरम्भाच्चिच्छेदमहिषासुरः ॥ १२ ॥ पीडयामासगरुडं जम्भोबाणायुतैस्त्रिभिः ॥ भुजाव स्यचविव्याध शुम्भोबाणायुतेनच ॥ १३ ॥ ततोविस्मितचित्तश्च गदांजग्राहमाधवः ॥ तांप्राहिणोत्सवेगेन मथनाय महाहवे ॥ १४ ॥ तामप्राप्तांनिमिर्बाणैर्मुसलाभैस्सहस्रशः ॥ आहत्यपातयामास व्यनदत्कालमेघवत् ॥ १५ ॥ ततो

व जम्भको बारह पैने बाणोंसे मारा और सबोको प्रत्येकता से आठ २ बाणों से मारा ॥ १० ॥ उसकी उस शीघ्रताको देखकर बाणों से विष्णुको आच्छादन करते हुये कोपसे मूर्च्छित दैत्योंने बडी दृढ़ यत्नकिया ॥ ११ ॥ व निमि दैत्यने भल्ल अस्त्रसे धनुपकी पचको काटडाला व महिपासुर ने क्रोधसे हाथके धनुषको काटा ॥ १२ ॥ जम्भने तीसहज़ार बाणोंसे गरुडको मारा व शुम्भ ने दशहज़ार बाणोंसे इनकी भुजाओं को बेधित किया ॥१३ ॥ तदनन्तर विस्मित चित्तवाले विष्णुने गदालिया व उन्होंने महायुद्धमें वेगसे उस गदाको मथनके लिये पठाया ॥१४॥ उस न पहुँची हुई गदाको निमिने मुसलके समान हज़ारों बाणोंसे मारकर गिरादिया व कालमेघ

के समान शब्दकिया ॥ १५ ॥ तदनन्तर आकाशमें प्राणियों की हाय २ ऐसी कथायें हुईं यह सेना नहींथी जोकि प्रकटतासे भयहीन न हुईहो ॥ १६ ॥ विष्णुजी ने
अयोग्य में याचनाकी नाईं उस गदाको गिरी देखकर दिव्यरत्नों से शोभित भयंकर मुद्गर को लिया ॥ १७ ॥ व निमि दानवको उद्देशकरके बड़े वेगसे उसको छोड़
दिया आतेहुये उस मुद्गरको देखकर आकाशही में तीनों दैत्योंने रोंकदिया ॥१८॥ व बड़ाशब्द करतेहुये जम्भ दैत्यने गदासे व ग्रसनने पट्टिशसे व शक्तिसे महिषदैत्य
ने रोंका ॥ १९ ॥ दुर्जनोंसे सुजनकी नाईं दूरकिये हुये मुद्गरको देखकर सौ घण्टोंसे बड़े शब्दवाली बड़ी विकराल शक्तिको लिया ॥ २० ॥ व भयंकर समरमें उसको

न्तरिक्षेहाहेति भूतानांजज्ञिरेकथाः ॥ नैतदस्तिबलंव्यक्तं यन्नासीद्गतसाध्वसम् ॥ १६ ॥ तांहरिःपतितान्दृष्ट्वा नस्था
नेप्रार्थनामिव ॥ जग्राहमुद्गरंघोरं दिव्यरत्नपरिष्कृतम् ॥ १७ ॥ तम्मुमोचातिवेगेन निमिमुद्दिश्यदानवम् ॥ तमाया
न्तंवियत्येव त्रयोदैत्याह्यवारयन् ॥ १८ ॥ गदयाजम्भदैत्यस्तु ग्रसनःपट्टिशेनतु ॥ शक्त्याचमहिषोदैत्यो विनद
न्तोमहारवम् ॥ १९ ॥ निराकृतंतमालोक्य दुर्जनैस्सुजनंयथा ॥ जग्राहशक्तिमत्युग्रां शतघण्टामहारवाम् ॥२०॥
जम्भायतांसमुद्दिश्य प्राहिणोद्भीषणेरणे ॥ तमायान्तीमथालक्ष्य जम्भोतितरसासुरः ॥ २१ ॥ आप्लुत्यलीलयागृ
ह्णात् कामिनींकामुकोयथा ॥ तयैवगरुडंमूर्ध्नि जघ्नेसप्रहसन्बली ॥ २२ ॥ ततोभूयोरथंप्राप्य धनुर्गृह्याभ्ययोधयत ॥
विचेताश्चाभवद्युद्धे गरुडश्शक्तिपीडितः ॥ २३ ॥ ततःप्रहस्यतंविष्णुस्साधुसाध्वित्यभाषत ॥ करस्पर्शेनकृतवान् त्रि
मोहंविनतात्मजम् ॥ २४ ॥ समाश्वास्यचतंताभिश्शक्तिन्दृष्ट्वाचनिष्फलाम् ॥ कुमार्यस्ययथापुंसः सर्वस्याश्चिन्ति

जम्भके लिये उद्देश करके चलाया इसके अनन्तर आतीहुई उस शक्तिको देखकर बड़े वेगसे जम्भ दैत्यने ॥ २१ ॥ कूदकर लीलासे पकड़ लिया जैसे कि कामी नर
कामिनी को पकड़ता है और हँसतेहुये उस बलिष्ठने उसी गदासे गरुड़के माथेपै मारा ॥ २२ ॥ तदनन्तर फिर रथपै प्राप्तहोकर धनुषको लेकर युद्धकिया और शक्ति
से पीड़ित गरुड़ युद्धमें चैतन्यतारहित होगये ॥ २३ ॥ तदनन्तर हँसकर विष्णुने उससे बहुत अच्छा २ ऐसा कहा व हाथ के स्पर्शसे गरुड़को मूर्च्छारहित किया ॥ २४ ॥

और वचनोंसे उसको समझाकर व शक्तिको वैसेही निष्फल देखकर जैसे कि निन्दित नारीके पुरुषका सब चिन्तित कार्य वृथा होजाता है ॥ २५ ॥ तदनन्तर दृढ़ सारांशयुक्त अन्य पंचको युक्तकिया और तालियों का शब्दकरके उसने रौद्र अस्त्र को छोड़ा ॥ २६ ॥ तदनन्तर अस्त्रके तेजसे सब आकाश नहीं देख पड़ताथा भूमि, दिशा व विदिशायें बाणजालमय शोभित हुई ॥ २७ ॥ उस अस्त्रके माहात्म्य को देखकर सेनापति ग्रसनदैत्यने शीघ्रही सब अस्त्रोंके निवारण करनेवाले ब्राह्मय अस्त्रको किया ॥ २८ ॥ उससे लोकोंका विनाशक वह रौद्र अस्त्र शान्तिको प्राप्तहुआ उस अस्त्रके नाश होनेपर दानवों के नाशक विष्णुजीने ॥ २९ ॥ सबलोकों के भय-

तंतथा ॥ २५ ॥ दृढसारयुतांमौर्वीमन्यांसंयोजयेत्ततः ॥ कृत्वाचतलनिर्घोषं रौद्रमस्त्रंमुमोचसः ॥ २६ ॥ ततोस्त्रतेजसात्सर्वमाकाशन्नैवदृश्यते ॥ भूमिर्दिशश्चविदिशो बाणजालमयाबभुः ॥ २७ ॥ दृष्ट्वातदस्त्रमाहात्म्यं सेनानीर्ग्रसनोसुरः ॥ ब्राह्मयमस्त्रंचकाराशुसर्वास्त्रविनिवारणम् ॥ २८ ॥ तेनतत्प्रशमंयातं रौद्रास्त्रंलोकघस्मरम् ॥ अस्त्रेप्रतिहतेतस्मिन् विष्णुर्दानवसूदनः ॥ २९ ॥ कालदण्डास्त्रमकरोत्सर्वलोकभयङ्करम् ॥ सन्धीयमानेतस्मिंस्तु मारुतःपरुषंववौ ॥ ३० ॥ चकम्पेचमहादेवी भिन्नाश्चाम्बुधयोभवन् ॥ तमस्त्रमुग्रंदृष्ट्वातु दानवायुद्धदुर्म्मदाः ॥ ३१ ॥ चक्रुरस्त्राणिदिव्यानि नानारूपाणिसंयुगे ॥ ३२ ॥ नारायणास्त्रंग्रसनस्तुचक्रे त्वाष्ट्रंनिमिश्चास्त्रवरंमुमोच ॥ ऐषीकमस्त्रंचचकारजम्भो युद्धेतु दण्डास्त्रनिवारणाय ॥ ३३ ॥ यावच्चसन्धानवशंप्रयान्तिनारायणादीनिनिवारणाय ॥ तावत्क्षणेनैवजघानकोटिं दैत्येश्वराणांकिलकालदण्डः ॥ ३४ ॥ अनन्तरंशान्तभयन्तदस्त्रं दैत्यास्त्रयोगेनतुकालदण्डम् ॥ शान्तंतदालोक्य

कारक कालदण्डास्त्र को किया उस अस्त्रके सन्धान करनेपर कठोर पवन चलने लगी ॥ ३० ॥ व महादेवी भूमि कांपनेलगी समुद्र क्षोभको प्राप्तहुये व उस उग्र अस्त्र को देखकर युद्धसे दुष्ट मदवाले दैत्योंने ॥ ३१ ॥ युद्धमें अनेक रूपवाले दिव्यअस्त्रों को किया ॥ ३२ ॥ और ग्रसनने नारायणास्त्र किया व निमिने त्वाष्ट्र नामक उत्तम अस्त्रको छोड़ा व दण्डास्त्र के निवारण करनेके लिये युद्धमें जम्भने ऐषीक अस्त्रको किया ॥ ३३ ॥ जबतक निवारण करने के लिये नारायण इत्यादिक अस्त्र सन्धान के वशमें प्राप्तहोते हैं तबतक क्षणहीभर में कालदण्ड ने करोड़ों दैत्येश्वरों को नाशकिया ॥ ३४ ॥ इसके उपरान्त दैत्यास्त्र के योगसे वह कालदण्ड अस्त्र शान्त भय-

वालाहोगया, तब क्रोध से कालाग्नि के तुल्य मूर्त्तिवाले विष्णुजीने अपने अस्त्रको शान्त देखकर ॥ ३५ ॥ दशहजार सूर्यों की कांतिवाले व उग्र धारवाले दूसरे आत्मा की नाईं चक्रको लिया व युद्धमें चतुर्भुज विष्णुने जलतेहुये अस्त्रको सेनापति के लिये फेंकदिया व प्रणामकर ॥ ३६ ॥ उस समय चक्र चला इसके अनन्तर दैत्योंसमने देखकर अपने पराक्रम से सर्वात्मा करके उस प्रचण्ड अस्त्रको प्राप्तहुये पूर्वभाग्य के नाईं मना करने के लिये न समर्थ हुये ॥ ३७ ॥ वह अस्त्ररूप चक्र निस्सन्देह ग्रसनके कण्ठपै गिरा व उसके रक्तकी धारासे लाल व भयंकर नाहवाला चक्र फिरभी विष्णुके हाथमें प्राप्तहुआ ॥ ३८ ॥ व युद्धमें चक्रसे माराहुआ दैत्य भूमिमें गिरा व

हरिःस्वमस्त्रं कोपेनकालानलतुल्यमूर्त्तिः ॥ ३५ ॥ जग्राहचक्रंतपनायुताभमुग्रारमात्मानमिवद्वितीयम् ॥ चिक्षेपसेनापतयेज्वलन्तं चतुर्भुजःसंयतिसम्प्रणम्य ॥ ३६ ॥ तदाव्रजच्चक्रमथोविलोक्य सर्वात्मनादैत्यवराःस्ववीर्यात् ॥ नाशक्नुवन्वारयितुंप्रचण्डं दैवंयथापूर्वमिवोपपन्नम् ॥ ३७ ॥ तदप्रतर्क्यंनचहेतिरूपं चक्रंपपातग्रसनस्यकण्ठे ॥ तद्रक्तधारारुणघोरनाभिजगामभूयोपिकरंमुरारेः ॥ ३८ ॥ चक्राहतःसंयतिदानवश्च पपातभूमौप्रममारचापि ॥ दैत्याश्चशेषाभृशमाप्यशोकं क्रोधंचकेचित्पिपिषुर्भुजाश्च ॥ ३९ ॥ ततोविनिहतेदैत्ये ग्रसनेबलनायके ॥ निर्मर्यादमयुध्यन्त हरिणासहदानवाः ॥ ४० ॥ पट्टिशैर्मुसलैःप्रासैर्गदाभिःकणपैरपि ॥ तीक्ष्णाग्रभागनाराचैश्चक्रशक्तिभिरेवच ॥ ४१ ॥ तदस्त्रजालैर्मुक्तं लुब्धलक्ष्योजनार्दनः ॥ एकैकंशतधाचक्रे बाणैरग्निशिखोपमैः ॥ ४२ ॥ जघानतेषांसंक्रुद्धः कोटिकोटिंजनार्दनः ॥ ततस्तेसंघशोभूत्वान्यपतत्केशवोपरि ॥ ४३ ॥ गरुडंजगृहुःकेचित्पादयोःशतशोसुराः ॥ ललम्बिरेचपक्षौ

मरगया व कोई शेष दैत्य बड़े शोच व क्रोधको पाकर भुजाओं को पीसने लगे ॥ ३९ ॥ तदनन्तर सेनापति ग्रसनदैत्य के मरजाने पर दानवों ने पट्टिश, मुसल, भाला, गदा, कणप व पैने अग्रभागवाले बाणों और चक्र तथा शक्तियों से सीमारहित विष्णुसे युद्धकिया ॥ ४० । ४१ ॥ उन सबोंसे छोड़ेहुये अस्त्र समूहको निशाना पायेहुये विष्णुने अग्निकी ज्वालाके समान बाणोंसे एक एक को सौ सौ खण्ड किया ॥ ४२ ॥ और विष्णुने क्रोधितहो उन करोड़ २ दैत्योंको मारा तदनन्तर वे समूह

होकर विष्णुके ऊपर गिरे ॥ ४३ ॥ व कोई सैकड़ों दैत्योंने गरुड़के चरण पकड़लिया व अन्यदैत्य पखनों में लटके और अन्य असुर मुखमें लटकरहे ॥ ४४ ॥ व वार वार शब्द करतेहुते महादैत्य विष्णुके भी धनुष, भुजा व मस्तकोंमें लटकगये ॥४५॥वह वडा अद्भुद देखकर सिद्ध, चारण, गुह्यकों ने युद्धमें विष्णुकी स्तुतिकर हाहा शब्दकिया ॥ ४६ ॥ तदनन्तर विष्णुने उनको झिटक कर भूमिमें गिरादिया जैसे कि ज्ञानी पुरुष संसारमें उपजेहुये दोषोंको अलगकर देताहै ॥ ४७ ॥ तदनन्तर मियान से अलग कर उत्तम नन्दक तलवार व निर्मल ढालको लेकर पैदलही विष्णुजी उनके सामने दौड़े ॥ ४८ ॥ तदनन्तर मुहूर्त्तभरमें दौड़े वहुत पैंतरों से घूमते हुये

भ्यांमुखेचान्येललम्बिरे ॥ ४४ ॥ केशवस्यापिधनुपिभुजयोःशीर्षएवच ॥ ललम्बिरेमहादैत्याविनदन्तोमुहुर्मुहुः ॥ ४५ ॥ तदद्भुतंमहद्दृष्ट्वासिद्धचारणगुह्यकाः ॥ हाहेतिमुमुचुर्नादंसङ्गरेस्तुत्यतंहरिम् ॥ ४६ ॥ ततोहरिर्विनिर्धूयपातयामासतान्भुवि ॥ यथाप्रबुद्धःपुरुषोदोषान्संसारसंभवान् ॥ ४७ ॥ विकोशञ्चततःकृत्वा नन्दकंखड्गमुत्तमम् ॥ चर्मचाप्यमलंविष्णुः पदातिस्तानधावत ॥ ४८ ॥ ततोमुहूर्त्तमात्रेणपद्मानिदशकेशवः ॥ चकर्त्तमार्गैर्वहुभिर्विचरन्दैत्यसत्तमान् ॥ ४९ ॥ ततोनिमिप्रभृतयोविनद्यासुरसत्तमाः ॥ अधावन्तमहेष्वासाःकेशवम्पादचारिणम् ॥ ५० ॥ गरुत्मांश्चाभ्ययाच्छीघ्रमारुरोहचतंहरिः ॥ उवाचचगरुत्मन्तंतस्मिंश्चतुमुलेरणे ॥ ५१ ॥ अश्रान्तोयदितार्क्ष्योसिमथनंप्रतितव्रज ॥ श्रान्तश्चेच्चमुहूर्त्तात्त्वंरणादपसृतोभव ॥ ५२ ॥ तार्क्ष्यउवाच ॥ नमेश्रमोस्तिलोकेशकिन्तुसस्मारतच्चवै ॥ यन्मेसुतान्वाहनत्वे कल्पयामासतारकः ॥ ५३ ॥ इतिब्रुवन्रणेदैत्यं मथनंप्रतिसोगमत् ॥ दैत्यस्त्वभिमुखंदृष्ट्वा शङ्खचक्रगदाधरम् ॥ ५४ ॥

विष्णुजीने दशपद्म दैत्योत्तमों को काटडाला ॥ ४९ ॥ तदनन्तर निमि आदिक वडे धनुषवाले दैत्योत्तमों ने शब्द करके पैदल चलनेवाले विष्णुके सामने दौडे ॥ ५० ॥ व गरुड भी शीघ्रही आये और विष्णुजी उसपै चढे व उस वडे युद्धमें गरुड़ से बोले ॥ ५१ ॥ कि हे गरुड़जी ! यदि थके न होवो तो मथन के सामने चलो व यदि थके होतो मुहूर्त (कच्ची दो घडी) के बाद युद्धसे भागजाना ॥ ५२ ॥ गरुड जी बोले कि हे लोकेश ! मेरे श्रम नहीं है किन्तु मैंने उसको स्मरण किया जोकि तारक ने मेरे पुत्रोंको सवारीमें कल्पना कियाहै ॥ ५३ ॥ ऐसा कहते हुये उन गरुड़ ने युद्धमें मथन दैत्यपै गमन किया व दैत्यने शङ्ख, चक्र, गदाधारी विष्णुको सामने

देखकर पैनी धारवाले भिन्दिपाल से छातीमें मारा उस प्रहारको न चिन्तन करके उस महासमर में विष्णुजीने ॥ ५४ । ५५ ॥ पर्वतराजको भी तोड़नेवाले वे कान
तक खींचेहुये पांच बाणोंसे मारा व फिर दश बाणों से छाती के बीचमें मारा ॥५६॥ व मूर्च्छित होकर उस मथनने मुहूर्त्तभर में सहताकर फिर परिघ (दुहमर्द) को
लेकर विष्णुके माथेमें मारा ॥ ५७ ॥ व उस प्रहारसे विष्णुजी कुछ घुमगये तदनन्तर क्रोधसे फैलाये हुये नेत्रोंवाले विष्णुने गदाको लिया ॥ ५८ ॥ व उस गदासे
मथनके हृदय में बड़ी निष्ठुरता से मारा वह भूमिमें, गिरपड़ा व चूर्ण अंगोंवाला होकर मरगया ॥ ५९ ॥ बहुतही मथित उस मथन दैत्यके भूमिमें गिरनेपर अकेले

जघानभिन्दिपालेनशितधारेणवक्षसि ॥ तंप्रहारमचिन्त्यैव विष्णुस्तस्मिन्महारणे ॥ ५५ ॥ जघानपञ्चभिर्बाणै
र्गिरीन्द्रस्यापिभेदकैः ॥ आकर्णाकृष्टैर्दशभिःपुनर्विद्धःस्तनान्तरे ॥ ५६ ॥ विचेतनोमुहूर्त्तात्सविश्रम्यमथनःपुनः ॥ गृही
त्वापरिघंमूर्ध्निजनार्दनमताडयत ॥ ५७॥ विष्णुस्तेनप्रहारेण किञ्चिदाघूर्णितोभवत ॥ ततःकोपविवृत्ताक्षोगदांजग्राह
माधवः ॥ ५८ ॥ तयासन्ताडयामास मथनंहृदयेदृढम् ॥ सपपाततथाभूमौचूर्णिताङ्गोममारच ॥ ५९ ॥ तस्मिन्निपति
तेभूमौ मथनेमथितेभृशम् ॥ अवसादंययुर्दैत्याः कर्मचैकाकिनंयथा ॥ ६० ॥ ततस्तेषुविपन्नेषुदानवेष्वतिमानिषु ॥
चुकोपरक्तनयनोमहिषोदानवेश्वरः ॥ ६१ ॥ प्रत्युद्ययौहरींरौद्रः स्वबाहुबलमाश्रितः ॥ तीक्ष्णधारेणशूलेनमहिषोहरि
मार्दयत ॥ ६२॥ शक्त्याचगरुडंवीरोहृदयेभ्यहनद्दृढम् ॥ ततोविवृत्यवदनंमहाचलगुहानिभम् ॥ ६३ ॥ ग्रस्तुमैच्छ
द्रणेदैत्यःसगरुत्मन्तमच्युतम् ॥ अथाच्युतोपिविज्ञायदानवस्यचिकीर्षितम् ॥ ६४ ॥ वदनंपूरयामासदिव्यैरस्त्रैर्महाब

कर्मकी नाई दैत्य क्लेश को प्राप्तहुये ॥ ६० ॥ तदनन्तर बडे मानी उन दानवों के दुःखित होनेपर लाललोचनोंवाले दानवेश्वर महिषासुर ने क्रोधकिया ॥ ६१ ॥ व
अपने बाहुबलमें आश्रित होकर भयङ्कर विष्णुजी दैत्यके सामने गये और महिषासुरने पैनीधारवाले शूलसे विष्णु के मारा ॥ ६२ ॥ व वीर दैत्यने शक्तिसे गरुड़
के हृदयमे दृढ़तासे मारा तदनन्तर बड़े पर्वत के समान मुखको फैलाकर ॥ ६३ ॥ दैत्यने युद्धमें गरुड़ समेत विष्णुको खाजानेकी इच्छाकिया इसके उपरान्त महाब-

लिष्ठ विष्णुने भी दानवकी करनेकी इच्छाको जानकर दिव्यअस्त्रोंसे मुख भरदिया उन बाणोंसे माराहुआ वह पर्वतके समान महिषासुर ॥ ६४ । ६५ ॥ घूमीहुई आधी
देहवाला होकर गिरपडा व मरगया गिरेहुये महिषासुरको देखकर विष्णुजीने फिर जिलाकर ॥६६॥ महिषासुर से कहा कि हे दानव ! मुझ से तुम मारने के योग्य नही
हो क्योंकि पुरातन समय साक्षात् ब्रह्माजीसे तुम स्त्रीकरके मारने योग्य कहेगयेहो ॥६७॥ उठो व मुझ से छोड़े हुये तुम इस महायुद्ध से शीघ्रही चलेजावो ऐसा विष्णु से
कहाहुआ दैत्य उस स्थान से चलागया ॥ ६८ ॥ उस महिषदैत्य के विमुख होने पर ओंठ से आच्छादित ओठवाले व क्रोधसे भौंहों करके भयानक मुखवाले शुम्भदैत्य

लः ॥ सतैर्बाणैरभिहतो महिषोचलसन्निभः ॥ ६५ ॥ परिवर्तितकायार्द्धःपपातचममारच ॥ महिषंपतितंदृष्ट्वाजीवयि
त्वापुनर्हरिः ॥ ६६ ॥ महिषंप्राहमत्तस्त्वंवधनार्हसिदानव ॥ योषिद्वध्यःपुरोक्तस्त्वंसाक्षात्कमलयोनिना ॥ ६७ ॥ उत्ति
ष्ठगच्छमत्त्यक्तो द्रुतमस्मान्महारणात् ॥ इत्युक्तोहरिणातस्माद्देशादपगतोसुरः ॥ ६८ ॥ तस्मिन्पराङ्मुखेदैत्येमहि
षेशुम्भदानवः ॥ संछन्नौष्ठपुटोरोषाद्भृकुटीविकटाननः ॥ ६९ ॥ निर्मथ्यपाणिनापाणिंधनुरादायभैरवम् ॥ सज्जीकृ
त्वामहाघोरान्मुमोचशतशःशरान् ॥ ७० ॥ सचित्रयोधीदृढमुष्टिपातैस्ततक्षविष्णुंगरुडञ्चदैत्यः ॥ क्षुप्रैरसंख्यैःप्रतिघा
तहीनैर्विष्णुश्चदैत्येन्द्रशरार्दितोभूत् ॥ ७१ ॥ भुशुण्डिमादायकृतान्ततुल्यां तयाभुशुण्ड्यास्यपिपेषसङ्ख्ये ॥ शुम्भस्य
पुत्रंधरणीधराभं ततस्त्रिभिःशुम्भभुजंबिभेद ॥ ७२ ॥ षष्ट्यास्यशीर्षंदशभिश्चकेतुं विष्णुर्विकृष्टैःश्रवणावसानम् ॥ दैत्य
स्यबाणैर्ज्वलनार्ककान्तैः सतैश्चविद्धोऽव्यथितोबभूव ॥ ७३ ॥ दैत्येश्वरोविस्रुतशोणितौघो बभूवदुःखीसतुदैत्यसत्त

ने ॥६९॥ हाथसे हाथको मलकर व भयंकर धनुप लेकरके चढ़ाकर बड़े कराल सैकडो बाणोंको छोडा ॥ ७० ॥ विचित्र युद्ध करनेवाले उस दैत्यने मुष्टिप्रहारोंसे विष्णु
को मारा व प्रहारहीन असंख्य क्षुप्र अस्त्रो से गरुड़ को मारा व विष्णुजी दैत्येन्द्रके बाणों से दुःखी हुये ॥७१॥ व यमराज के समान बन्दूक को लेकर व उस बन्दूक
से समर में पर्वतके समान इस शुम्भ के पुत्रको मारा तदनन्तर तीन बाणों से शुम्भकी भुजा को काटडाला ॥ ७२ ॥ व साठिबाणों से मस्तक व कानतक खींचे
हुये दश बाणों से विष्णुजी ने इसके ध्वजा को काटडाला व अग्नि के समान छविवाले दैत्य के उन बाणों से बेधित होते हुये वे विष्णु दुःखी हुये ॥ ७३ ॥ व

बहते हुये रक्तके प्रवाहवाला दैत्यों का स्वामी वह श्रेष्ठ दानव दुःखीहुआ तदनन्तर शंख, कमल व शार्ङ्गधनुष हाथवाले विष्णुजी ने धैर्य से कुछ चलेहुये इस दैत्य से कहा ॥ ७४ ॥ कि हे मूढ़; शुम्भदैत्य ! थोड़ेही दिनोंमें तुम स्त्री से मारे जावोगे युद्ध छोड़दो मुझ से वृथाही युद्ध करने के लिये तुम योग्य नहीं हो तदनन्तर वह शुम्भदानव चलागया ॥ ७५ ॥ इसके अनन्तर उस वचन को विष्णुके मुख से सुन सिंहनाद करताहुआ वह दैत्य उच्च प्रकार से गरजा व बड़े अट्टहास से संसार को कँपाकर युद्ध में लीला समेत वचन बोला ॥ ७६ ॥ कि न्यूनबलवाले इन जलवासी दैत्यों से तुम्हारा क्या प्रयोजन है यदि तुम्हारे कुछ बल होवै तो इस युद्ध

मः ॥ ततोऽस्यकिञ्चिच्चलितस्य धैर्याद्दुवाचशङ्खाब्जभुजशार्ङ्गपाणिः ॥ ७४ ॥ योषित्सुवध्योसिरणंविमुञ्च शुम्भासुरस्व ल्पतरैरहोभिः ॥ मत्तोर्हसित्वंनवृथैवमूढ ततोपयातस्सचशुम्भदानवः ॥ ७५ ॥ जम्भोथतद्विष्णुमुखान्निशम्य जगज्जं चोच्चैःकृतसिंहनादः ॥ प्रोवाचवाक्यंचसलीलमाजौ महाट्टहासेनजगद्विकम्प्य ॥ ७६ ॥ किमेभिस्तेजलावासिदैत्यैर्हीन पराक्रमैः ॥ मामासादययुद्धेस्मिन्यदितेपौरुषंक्वचित् ॥ ७७ ॥ यत्तेपूर्वंहतादैत्या हिरण्याक्षमुखाःकिल ॥ जम्भस्तदा भवन्नैव पश्यमामद्यसंस्थितम् ॥ ७८ ॥ पश्यतालप्रतीकाशौ भुजावेतौहरेमम ॥ वक्षोवावज्रकठिनं ममप्रहरतत्सुख म् ॥ ७९ ॥ इत्युक्तःकेशवस्तेन सृक्किणीसलिहन्रुषा ॥ मुमोचपरिघङ्घोरं गिरीणामपिदारणम् ॥ ८० ॥ ततस्तस्या द्यनुपदं कालायसमयंदृढम् ॥ मुमोचमुद्गरंविष्णुर्द्वितीयंपर्वतंयथा ॥ ८१ ॥ तदायुद्धद्वयंदृष्ट्वा जम्भोन्यस्यरथेधनुः ॥ विप्लुत्यपरिघंगृह्य गरुडन्तेनजघ्निवान् ॥ ८२ ॥ द्वितीयंमुद्गरंचानुगृहीत्वाविनदन्रणे ॥ ८३ ॥ सर्वप्राणेनगोविन्दं तेन

में मुझे मारिये ॥ ७७ ॥ पुरातन समय जो तुम ने हिरण्याक्षादिक दैत्यों को मारा है तब जम्भ नहीं था आज भलीभाति टिकेहुये मुझ को देखो ॥ ७८ ॥ हे हरे ! ताल वृक्ष के समान हमारी इन भुजाओं को देखिये व मेरे वज्र के समान कठोर वक्षस्थलमें मारिये तो सुख होगा ॥ ७९ ॥ उससे ऐसा कहेहुये उन विष्णुजी ने क्रोध से ग-लफड़ों को चाटते हुये पर्वतों को भी तोड़नेवाले कराल दहमर्द को छोड़ा ॥ ८० ॥ तदनन्तर उसके भी पीछे कालके समान लोहमय दृढ मुद्गर को विष्णुजी ने दूसरे पर्वतकी नाई छोड़ा ॥ ८१ ॥ उस समय दोनों युद्ध देखकर रथपै धनुष धरके जम्भने कूदकर दहमर्द लिया व उससे गरुड़ को मारा ॥ ८२ ॥ व उसके पीछे दूसरा

मुद्गरलेक युद्धमें शब्द करते हुये उसने सब बलसे उस मुद्गर करके विष्णु के माथे पै मारा उन बडे प्रहारों से गरुड व विष्णु दोनों ॥ ८३ । ८४ ॥ मूर्च्छा में प्राप्त होकर चैतन्यतारहित हो मरे से होगये वह बडा आश्चर्य देखकर दैत्योत्तम गरजे ॥ ८५॥ उस समय हर्षके गर्वसे गर्वित इन दैत्यों को संसार ने नहीं सहा व सिंहनाद, तालशब्द, धनुष शब्द व बाणों से उपजे हुये शब्द करके॥ ८६ ॥ उन्होंने जम्भको प्रसन्न किया और वस्त्रों को हिलाया व शंखों को पूर्ण किया व देवताओं को बहुतही फेंका ॥ ८७ ॥ इसके अनन्तर महायुद्धमें गरुड समेत विष्णुजीने जम्भ को देखकर असह्य युद्धसे विमुख होकर वेगवान् हो पलायन किया याने

मूर्द्ध्निजघानसः ॥ ताभ्यांचातिप्रहाराभ्यामुभौगरुडकेशवौ ॥ ८४ ॥ मोहाविष्टौविचेतस्कौ मृतकल्पाविवासतुः ॥ तदद्भुतंमहद्दृष्ट्वाजगर्ज्जुर्दैत्यसत्तमाः ॥ ८५ ॥ नैतान्हर्षमदोद्भूतानिहसेहेजगत्तदा ॥ सिंहनादैस्तालनादैर्धनुर्नादैश्चबाणजैः ॥८६॥ जम्भंतेहर्षयामासुर्वासांस्यादुधुवुश्चते॥ शङ्खांश्चपूरयामासुश्चिक्षिपुर्देवता भृशम् ॥ ८७॥ संज्ञामवाप्याथमहारणेहरिः सवैनतेयःपरिदृश्यजम्भम् ॥ पराङ्मुखःसंयुगादप्रधृष्यात्पलायनंवेगपरश्चकार ॥ ८८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे कुमारिकाखण्डेकुमारेशमाहात्म्येसप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

नारदउवाच ॥ तमालोक्यपलायन्तं विभ्रष्टध्वजकार्मुकम् ॥ दैत्यान्विमुदितानिन्द्रः कर्त्तव्यंनाभ्यगच्छत ॥ १ ॥ अथायान्निकटंविष्णोः सुरेशस्त्वरयान्वितः ॥ उवाचचैनंमधुरमुत्साहपरिबृंहितम् ॥ २ ॥ किमेभिःक्रीडनैर्देव दानवैर्दुष्टमानसैः ॥ दुर्ज्जनैर्लब्धरन्ध्रस्यपुरुषस्यकुतःक्रिया ॥ ३ ॥ शक्तेनोपेक्षितोनीचोमन्यतेबलमात्मनः॥ तस्मान्नेनी

भगगये ॥ ८८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांकुमारेशमाहात्म्येसप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ ❀ ॥

दो० । जीत्यो इन्द्रादिकन कहँ तारक दानवराय । अठारहें अध्यायमें सोइ चरित सुखदाय ॥ नारदजी बोले कि गिरेहुये ध्वजा व धनुषवाले भागतेहुये उन विष्णुको देखकर इन्द्रजी प्रसन्न हुये दैत्यों प्रति कर्त्तव्यता को न प्राप्तहुये ॥ १ ॥ इसके अनन्तर शीघ्रतासंयुत इन्द्रजी विष्णुके समीप आये व उत्साह से बढ़ेहुये इन से मीठे वचन बोले ॥ २ ॥ कि हे देव ! दुष्टमनवाले इन दुर्जन दानवोंसे खेल करके क्या है व पाये हुये छिद्रवाले पुरुष का कर्म किस लिये होताहै ॥ ३ ॥

समर्थ पुरुष से छोड़ा हुआ नीचनर अपना बल मानताहै इस लिये बुद्धिमान् मनुष्य किसी प्रकार नीचको न छोड़ै ॥ ४ ॥ और अग्रगामी की सम्पदासे रथी पुरुष जयको प्राप्त होते हैं हे विभो ! पुरातन समय हिरण्याक्ष के मारने में तुम्हारा कौन मित्रहुआहै ॥ ५ ॥ पराक्रम से शोभित व गर्वसे बढ़ाहुआ हिरण्यकशिपु दैत्य तुमको पाकर-तिनुकाकी नाईं नष्टहोगया वहां तुम्हारा कौन अग्रगामीथा ॥ ६ ॥ पहले मधुकैटभ इत्यादिक बड़े बली दैत्य तुमको पाकर नष्टहोगये जैसे कि अग्निको प्राप्त होकर पांखी मरजाती हैं ॥ ७ ॥ हे हरे ! युग २ में दैत्योंका नाश तुमसे हुआहै वैसेही हे विष्णो ! यहा आज डरेहुये लोगोंके देवाश्रय आपही हो ॥ ८ ॥ इस प्रकार

चेन्मतिमानुपेक्षेतकथञ्चन ॥ ४ ॥ अथाग्रेसरसंपत्त्या रथिनोजयमाप्नुयुः ॥ कस्तेसखाभवत्पूर्वं हिरण्याक्षवधेविभो॥ ५ ॥ हिरण्यकशिपुर्दैत्यो वीर्यशालिमदोद्धतः ॥ त्वांप्राप्यतृणवन्नष्टस्तत्रकोग्रेसरस्तव ॥ ६ ॥ पूर्वेप्रतिबलादैत्या मधुकैटभसम्मुखाः ॥विनष्टास्त्वान्तुसम्प्राप्य शलभाइवपावकम् ॥ ७॥ युगेयुगेचदैत्यानां त्वत्तोनाशोभवद्धरे ॥ तथैवाद्येहभीतानां त्वंहिविष्णोसुराश्रयः ॥ ८ ॥ एवंशक्रोदितोविष्णुर्व्यवर्द्धतमहाभुजः ॥ बलेनतेजसाक्रुद्ध्या सर्वभूताश्रयोरिहा ॥ ९ ॥ अथोवाचसहस्राक्षं केशवःप्रहसन्निव ॥ एवमेतद्यथाप्राह भवानस्मद्गतंवचः ॥ १० ॥ त्रैलोक्येदानवान्सर्वान् दग्धुंशक्तःक्षणादहम् ॥ दुर्जयस्तारकःकिन्तु मुक्त्वासप्तदिनंशिशुम् ॥ ११ ॥ महिषश्चैवशुम्भश्चाप्युभौवध्यौचयोषिता ॥ जम्भोदुर्वाससाशप्तःशक्रवध्योभवानिति ॥ १२ ॥ तस्मात्त्वंदिव्यवीर्येण जहिजम्भंमदोत्कटम् ॥ अवध्यःसर्वभूतानां त्वामृतेसतुदानवः ॥ १३ ॥ मयागुप्तोरणेजम्भंजगत्कण्टकमुद्धर ॥ तदैकुण्ठवचःश्रुत्वासहस्राक्षस्सुरारिहा॥१४॥

इन्द्रसे कहेहुये महाबाहु विष्णुजी बल, तेज व क्रोध से बढ़े जोकि सब प्राणियों के आश्रयभूत व शत्रुनाशक हैं ॥ ९ ॥ इसके अनन्तर हँसतेहुयेसे विष्णुजी इन्द्रसे बोले कि यह ऐसाही है जैसा कि आपने हमसे वचन कहाहै ॥ १० ॥ मैं त्रिलोकमें सब दानवों को क्षणभर में जलाने के लिये समर्थ हूं परन्तु सात दिनवाले लड़के को छोड़कर तारक दुर्जयहै ॥ ११ ॥ और महिषासुर व शुम्भ दोनों भी स्त्रीसे वध्य हैं और जम्भको दुर्वासाने यह शापदिया है कि आप इन्द्रसे वध्यहोंगे ॥ १२ ॥ इस लिये दिव्य बलसे तुम मदसे उग्र जम्भ दानव को मारो क्योंकि वह दानव तुमको छोड़कर सब प्राणियों से अवध्यहै ॥ १३ ॥ मुझसे रक्षित होकर तुम संसारके कंटक

रूप जम्भ दानवको नाशकरो विष्णुजी का वह वचन सुनकर दैत्योंके नाशक इन्द्रने ॥ १४ ॥ सुराध्यक्षों को सेनाकी रचनाके लिये आज्ञादिया तदनन्तर देवताओं से याचित विष्णुजी ने सेनाको रचा ॥ १५ ॥ समस्त लोक, बल व तपस्याका जो सारांश था उससे गेरह रुद्रोंको विष्णुजी ने अग्रगामी किया ॥ १६ ॥ जो रुद्र कि सांपोंसे संयुत अंगोंवाले व बड़े वेगवान् और जलतेहुये व नील कन्धोंवाले और चन्द्रखण्ड, त्रिपुण्ड्र वाले व पिंगलोचनोंवाले और शूलधारीथे ॥ १७ ॥ व पीले, ऊंचे जटाजूटोंवाले, सिंहचर्म के वस्त्रवाले और भस्मसे मर्दित अंगवाले व विकट भुजमण्डलवाले थे ॥ १८ ॥ और बड़े दैत्योंको भगानेवाले कपाली आदिक रुद्र

समादिशत्सुराध्यक्षान्सैन्यस्यरचनाम्प्रति ॥ ततश्चाभ्यर्थितोदेवैर्विष्णुस्सैन्यमकल्पयत् ॥ १५ ॥ यत्सारंसर्वलोकस्य वीर्यस्यतपसोपिच ॥ तदेकादशरुद्रांस्तु चकाराग्रेसरान्हरिः ॥ १६ ॥ व्यालाढ्याङ्गामहावेगा ज्वलिनोनीलकन्धराः ॥ चन्द्रखण्डत्रिपुण्ड्राश्च पिङ्गाक्षाःशूलधारिणः ॥ १७ ॥ पिङ्गोत्तुङ्गजटाजूटाः सिंहचर्म्मवसानिनः ॥ भस्मोद्धूलितगात्राश्च भुजमण्डलभैरवाः ॥ १८ ॥ कपालीत्यादयोरुद्राविद्रावितमहासुराः ॥ कपालीपिङ्गलोभीमो विरूपाक्षोविलोहितः ॥ १९ ॥ अजैकपाच्छिवःशास्ता शम्भुश्चण्डोभवस्तथा ॥ एतएकादशानान्तु बलारुद्रप्रभाविनः ॥ २० ॥ अपालयन्तत्रिदशान्विगर्जन्तइवाम्बुदाः ॥ हिमाचलाभेमहतिकाञ्चनस्यशुभासने ॥ २१ ॥ प्रचलत्सुमहाहेमघण्टासंहतिमण्डिते ॥ ऐरावतेचतुर्दन्तेमत्तमातङ्गआस्थितः ॥ २२ ॥ महामदजलस्रावेकामरूपेशतक्रतुः ॥ आदित्यावसवोविश्वेमरुतश्चाश्विनावपि ॥ २३ ॥ गन्धर्वाराक्षसायक्षाःसकिन्नरमहोरगाः ॥ कोटिशःकोटिशःकृत्वा वृन्दश्चि

थे, कपाली, पिंगल, भीम, विरूपाक्ष, विलोहित ॥ १९ ॥ अजैकचरण, शिव, शास्ता, शम्भु, चण्ड व भव ये शिवजीके प्रभाववाले गेरहों रुद्रोंकी सेनाहैं ॥ २० ॥ और हिमाचल के समान शोभावाले सोनेके बडेभारी उत्तम आसनपै मेघोंके समान गर्जते हुये वे देवताओं को पालन करतेथे ॥२१॥ व चलतेहुये बड़े सोनेके घण्टा समूहों से शोभित व महामदके जलको बहानेवाले, इच्छारूपधारी व चारदांतोवाले ऐरावत नामक मत्तहाथीपे इन्द्रजी सवारहुये व आदित्य, वसु, विश्वेदेवता, मरुत्

व अश्विनीकुमार भी ॥ २२ । २३ ॥ व गन्धर्व, राक्षस, यक्ष व किन्नरों समेत महानाग चिह्नसे लक्षित करोड़ों करोड़ यूथ करके ॥ २४ ॥ अपने यशको सुनातेहुये अनेक रंगके अस्त्र व ध्वजावाले देवता वन्दीगण अग्रगामियों समेत दैत्योंके मारने के लिये चले ॥ २५ ॥ व देवसमूहोंसे शोभित व हाथी, रथोंके शब्दसे शब्दित और श्वेत व ऊंचे कोटियों ध्वज पटों से भूषित वह इन्द्रकी सेना दितिपुत्रोंके शोचको बढ़ानेवाली हुई ॥ २६ ॥ इसके अनन्तर आतीहुई देवसेनाको देखकर संहार समयके समुद्रके पराक्रमवाले व ओठपुटोंको काटते हुये परश्वध अस्त्रवाले हाथीरूपी बड़ेभारी गजासुर दैत्यने समरमें देवताओं को मर्दन किया व अन्य दैत्योंको

होपलक्षितम् ॥ २४ ॥ विश्रावयन्तः स्वांकीर्तिं वन्दिवृन्दैः पुरस्सरैः ॥ चेलुर्दैत्यवधे देवा नानावर्णायुधध्वजाः ॥ २५ ॥ शतक्रतोरमरनिकायपालिता पताकिनी गजरथनादनादिता ॥ सितोन्नतध्वजपटकोटिमण्डिता बभूव सादितिसुतशोकवर्द्धनी ॥ २६ ॥ आयान्तीमवलोक्याथ सुरसेनां गजासुरः ॥ गजरूपी महांश्चैव संहाराम्भोधिविक्रमः ॥ २७ ॥ परश्वधायुधो दैत्यो दशन्नोष्ठकसम्पुटः ॥ ममर्द्द चरणे देवांश्चिक्षेपान्यान् करेण च ॥ २८ ॥ परान् परशुना जघ्ने दैत्येन्द्रो रौद्रविक्रमः ॥ तस्यैवं निघ्नतः क्रुद्धा देवगन्धर्वकिन्नराः ॥ २९ ॥ मुमुचुः सहिताः सर्वे चित्रशस्त्रास्त्रसंहतिम् ॥ परश्वधांश्च चक्राणि भिन्दिपालान्समुद्गरान् ॥ ३० ॥ कुन्तान्प्रासानसींस्तीक्ष्णान् मुकुटांश्चातिदुःसहान् ॥ तान्सर्वानग्रसद्दैत्यः कवलानिवयूथपः ॥ ३१ ॥ कोपस्फुरितदीर्घाग्रकरस्फोटेन नादयन् ॥ सुरान्निघ्नंश्चचाराजौ दुष्प्रेक्ष्यो गजदानवः ॥ ३२ ॥ यस्मिन्यस्मिन्निपतिते सुरवृन्दे गजासुरः ॥ तस्मिंस्तस्मिन्महाशब्दो हाहाकारः प्रजायते ॥ ३३ ॥ कपाल्युवाच ॥ भोभोगृहीत

हाथसे फेंकदिया ॥ २७ । २८ ॥ व कराल बलवाले दैत्येन्द्र ने अन्य दैत्योंको फरसासे मारा इस प्रकार उसको मारते हुये क्रोधित होकर साथही सब देवता गन्धर्व किन्नरोंने विचित्र शस्त्रास्त्रोंके समूहको छोड़ा व परश्वध, चक्र, भिन्दिपाल, मुद्गर ॥ २९ । ३० ॥ भाला, प्रास व पैनी तलवार और असह्य मुकुटोंको चलाया व उन सब अस्त्रोंको दैत्यने लीललिया जैसे कि हाथियों का स्वामी ग्रासोंको खाताहै ॥ ३१ ॥ क्रोधसे फरकते हुये बड़े अग्रभागवाली सूंडके शब्दसे शब्द करता व समर में देवताओंको नाश करता हुआ वह गज दानव दुःखसे देखने योग्यहुआ ॥ ३२ ॥ जिस २ सुरसमूहमें गजासुर गिरताहै उस २ मे बड़ा हाहाकार शब्द होताहै॥३३॥

कपाली बोले कि हे महाबलिष्ठ देवताओ ! दैत्येन्द्रको पकडो व इसको काटडालो और इसे खींचो व पैने शूलोंसे इसके सुकुमार स्थानोंमें मारो ॥ ३४ ॥ कपालीका वचन सुनकर तीक्ष्णता से श्वेत मुखवाले शूलको बायें हाथसे पोंछकर क्रोध से फैलाये हुये लोचनोंवाला ॥ ३५ ॥ व फूलेहुये लाल व नील कमलवाला दैत्य सब दिशाओं में मारताहुआ शोभित भया इसके अनन्तर टेढ़ी भौंहों के मुखवाले कपाली युद्धमे दैत्येन्द्रके सामनेगये ॥ ३६ ॥ व युद्धमें पर्वतके समान शरीरवाले दैत्येन्द्रको शूलोंसे मारा पश्चात् उसके सब छिद्रोंमें रक्त बहा ॥ ३७ ॥ और बहते हुये भयङ्कर रक्तमें गज दानव शरद्ऋतुमे फूलेहुये लाल व नील कमलवाले निर्मल

दैत्येन्द्रं भिन्तचैनंमहाबलाः ॥ कर्षतैनंशितैश्शूलैर्भङ्क्तचैनंहिमर्म्मसु ॥ ३४ ॥ कपालीवाक्यमाकर्ण्य शूलंशातसितंमुखम् ॥ सम्मार्ज्यवामहस्तेन संरम्भाविवृतेक्षणः ॥ ३५ ॥ प्रोत्फुल्लारुणनीलाब्जः संहनन्सर्वतोदिशः ॥ अथागाद्भृकुटीवक्त्रोदैत्येन्द्राभिमुखोरणे ॥ ३६ ॥ जघ्नेशूलैश्चदैत्येन्द्रं शैलवर्ष्माणमाहवे ॥ सुस्रावशोणितंपश्चात्सर्वस्रोतस्सुतस्यवै ॥ ३७ ॥ स्रवद्रक्तेनरौद्रेण शुशुभेगजदानवः ॥ प्रोत्फुल्लारुणनीलाब्जं शरदीवामलंसरः ॥ ३८ ॥ भस्मशुभ्रतनुच्छाये रुद्रैर्हंसैरिवावृतम् ॥ क्रुद्धंकपालिनन्दैत्यः प्रचलत्कर्णपल्लवः ॥ ३९ ॥ स्वयंचदन्तैर्बिभिदे नाभिदेशेगजासुरः ॥ दृष्ट्वातुशक्रंरुद्राभ्यां नवरुद्रास्ततोद्रुतम् ॥ ४० ॥ ततक्षुर्विशिखैःशूलैश्शरीरममरद्विषः ॥ ततःकपालिनंत्यक्त्वा शक्रंचासुरपुङ्गवः ॥ ४१ ॥ वेगेनकुपितोदैत्यो नवरुद्रानुपाद्रवत ॥ ममर्द्दचरणाघातैर्द्दन्तैश्चापिकरेणच ॥ ४२ ॥ ततोसौशूलयुद्धेन श्रममापादितोयदा ॥ तदाकपालीजग्राह करमस्यामरद्विषः ॥ ४३ ॥ भ्रामयामासचातीववेगेनचमहा

तडागकी नाईं शोभित हुआ ॥ ३८ ॥ व हंसोंके समान भस्मसे उत्तम शरीरकी शोभावाले रुद्रों करके घिरेहुये क्रोधित कपालीको चलते हुये कर्णपल्लववाले गजासुर दैत्यने आपही दांतो से नाभिके स्थान में विदारण किया व दो रुद्रों समेत इन्द्रको देखकर तदनन्तर शीघ्रही नव रुद्रो ने ॥ ३९ । ४० ॥ देवशत्रु गजासुरके शरीर को बाणों व शूलोंसे भेदन किया तदनन्तर कपाली व इन्द्रको छोड़कर दैत्योत्तम ॥ ४१ ॥ गजासुर दैत्य क्रोधित होकर वेगसे नवरुद्रों के समीप गया व चरणप्रहार, दन्त और हाथसे मर्दनकिया ॥ ४२ ॥ तदनन्तर जब शूलके युद्धसे यह परिश्रम को प्राप्तहुआ तब कपालीने इस देवशत्रु गजासुर की सूंड़ पकड़ लिया ॥ ४३ ॥ व

बड़े वेगसे महादैत्य को घुमाया और कुछ शेष जीववाले व परिश्रमसे विकल दैत्यको उस युद्धमें उत्साहहीन देखकर कपाली जी युद्धके उछाहसे रहितहुये तदनन्तर घूमते हुये इसका भयंकर चर्म उखाड़ कर ॥ ४४ । ४५ ॥ व सब अंगोंसे बहतेहुये रक्तप्रवाहवाले चर्मको अपना वसन किया तदनन्तर बहुत स्तोत्रों करके देवता उनको बहुत प्रकार से स्तुति किया ॥ ४६ ॥ व कहा कि जो इसको इस प्रकार से न मारता तो यह नहीं मरता और हाथीके चर्मरूप वसन से घिरा कपाली का रूप देखकर ॥४७॥ हज़ारों दानव डरे व भगे और मारा व गिरे इसप्रकार उस बड़ेबली दानवेन्द्रके मरजाने पर ॥४८॥ इसके अनन्तर सैकड़ों नगारोंसे शब्दायमान मत्त

सुरम् ॥ दृष्ट्वाश्रमातुरन्दैत्यं किञ्चिच्छ्वसितजीवितम् ॥४४॥ निरुत्साहंरणेतस्मिन् गतयुद्धोत्सवोभवत् ॥ ततोभ्रम
तएवास्य चर्मचोत्कृत्यभैरवम् ॥ ४५ ॥ स्रवत्सर्वाङ्गरक्तौघंचकाराम्बरमात्मनः ॥ तुष्टुवुस्तंततोदेवा बहुधाबहुभिःस्त
वैः ॥ ४६ ॥ ऊचुश्चैनंवयोहन्यान्नम्रियेतततस्त्वसौ ॥ दृष्ट्वाकपालिनोरूपंगजचर्माम्बरावृतम् ॥ ४७ ॥ वित्रेसुर्दुद्रुवुर्जघ्नु
र्निपेतुश्चसहस्रशः ॥ एवंविलुलितेतस्मिन्दानवेन्द्रेमहाबले ॥ ४८ ॥ गजंमत्तमथारुह्य शतदुन्दुभिनादितम् ॥ निमिर
भ्यापतत्तूर्णं सुरसैन्यान्यलोडयत ॥ ४९ ॥ यांयांनिमेर्गजोयातिदिशंतांतांसवाहनाः ॥ दुद्रुवुश्चुक्रुशुर्देवा भयेनाकम्पि
तामुहुः ॥ ५० ॥ गन्धेनसुरमातङ्गा दुद्रुवुस्तस्यहस्तिनः ॥ पलायितेषुसैन्येषु सुराणांपाकशासनः ॥ ५१ ॥ तस्थौदि
क्पालकैस्सार्द्धमष्टभिःकेशवेनच ॥ सम्प्राप्तस्तस्यमातङ्गोयावच्छक्रगजंप्रति ॥ ५२ ॥ तावच्छक्रगजोभीतो मुक्त्वा
नादंसुभैरवम् ॥ म्रियमाणोपियत्नेन नचकौरवतिष्ठति ॥ ५३ ॥ पलायतिगजेतस्मिन्नारूढःपाकशासनः ॥ विपरीतमु

थी पै चढ़कर निमिदैत्य शीघ्रही इसके समीप प्राप्तहुआ व देवसेनाओंको मारा ॥ ४९ ॥ निमिका हाथी जिस जिस दिशाको जाताहै उस उस दिशा में भय से बार र कँपाये हुये देवता सवारियों समेत भगे व चिल्लाने लगे ॥ ५० ॥ व उस के हाथी की सुगन्ध से देवताओं के हाथी भगे और देवताओं की सेना भागने पर इन्द्र ॥५१॥ दिक्पाल व विष्णु समेत खड़ेरहे व जबतक उसका हाथी इन्द्रके हाथीके सामने भलीभांति प्राप्तहुआ ॥ ५२ ॥ तबतक हे कौरव ! डराहुआ इन्द्रका हाथी भयंकर शब्द

से इसके सुकुमार स्थानोंमें मारो।
व फूलेहुये लाल व नील

करके उपाय से धारण कियाजाता भी वह न खड़ाहुआ॥ ५३॥ उस भगेहुये हाथी पर इन्द्रजी चढ़ेथे व उस दानवने६ ॥ व युद्धमें पर्वइन्द्र से युद्ध नहीं किया॥ ५४॥
और इन्द्रने निमिकी छाती में शूल से मारा व गदा से उसके हाथी के कपोल में बड़े ज़ोर से मारा॥ ५५॥ उस प्रहार ने फिर चिन्तन कर निडर बलवाले निमि ने
ऐरावतके काटि में मुद्गर से मारा॥ ५६॥ इस के अनन्तर मुद्गर से मारा हुआ पर्वतके आकारवाला इन्द्र का हाथी समर में पांवों से पीछे पृथ्वी में प्राप्तहुआ॥ ५७॥
तदनन्तर शीघ्रता से जल्दी उठकर इन्द्र देवका वह बडा हाथी निमि के हाथी से डरकर युद्ध से शीघ्रही भग गया॥ ५८॥ उसके उपरान्त बहुत कंकरीली धूलि

खंयुद्धं दानवेन्द्रोनसोकरोत्॥ ५४॥ शतक्रतुश्चशूलेन निमिंवक्षस्यताडयत्॥ गदयादन्तिनंतस्य गण्डदेशेहनद्भृश
म्॥ ५५॥ तंप्रहारमचिन्त्यैव निमिर्निर्भयपौरुषः॥ ऐरावतंकटीदेशे मुद्गरेणाभ्यताडयत्॥ ५६॥ सहतोमुद्गरेणाथ
शक्रकुञ्जरआहवे॥ जगामपश्चात्पद्भ्यांच पृथिवींभूधराकृतिः॥ ५७॥ लाघवात्क्षिप्रमुत्थाय ततोमरमहागजः॥
रणादपससाराशु भीषितोनिमिहस्तिना॥ ५८॥ ततोवायुर्ववौरूक्षो बहुशर्करपांशुलः॥ सम्मुखोनिमिमातङ्गं कम्प
न्निवप्रकम्पनः॥ ५९॥ स्नुतरक्तोबभौशैलः स्नुतधातुह्रदोयथा॥ धनेशोपिगदांगुर्वीं तस्यदानवहस्तिनः॥ ६०॥ मु
मोचवेगान्न्यपतत्सागदातस्यमूर्द्धनि॥ गजोगदानिपातेनसतेनपरिमूर्च्छितः॥ ६१॥ दन्तैर्भित्त्वाधरांवेगात्पपाताच
लसन्निभः॥ पतितेतुगजेतस्मिन् सिंहनादोमहानभूत्॥ ६२॥ सर्वतस्सुरसैन्यानां गजबृंहितबृंहितः॥ हेषारवेणचा
श्वानां गुणास्फोटैश्चधन्विनाम्॥ ६३॥ गजंतंनिहतंदृष्ट्वानिमिश्चापिपराङ्मुखम्॥ सुराणांसिंहनादश्च सन्नादितदिग

संयुत बडा भारी व कठोर पवन निमि के हाथी को कँपाता हुआ सामने चलता भया॥ ५९॥ व बहतेहुये रक्तवाला वह हाथी बहतेहुये धातुवों के कुण्डवाले पर्वत
की नाईं शोभितहुआ व कुबेर ने भी गरुई गदाको उस दानव के हाथी के ऊपर॥ ६०॥ छोडा और वह गदा उसके माथे पै वेग से गिरी व उस गदाके गिरने से
वह हाथी मूर्च्छित हुआ॥ ६१॥ और दांतों से पृथ्वी को फोडकर पर्वत के समान वह हाथी वेगसे गिरपड़ा उस हाथी के गिरने पर हाथियों की गर्जन से बढ़ाहुआ
सुरसेनाओं का बडाभारी सिंहनाद सब ओर हुआ जो कि घोड़ोंके हिनहिनानेके शब्दसे व धनुर्द्धारियों की पंचके शब्दसे संयुत था॥ ६२। ६३॥ और दिशाओं के

मध्यको शब्दायमान करनेवाले देवताओं के सिंहनाद को व विमुख निमि तथा उस मरेहुये हाथीको देखकर ॥ ६४ ॥ जम्भ घीको पियेहुये अग्निकी नाईं जल उठ[illegible]
तदनन्तर क्रोध से लाल लोचनोंवाले उस दैत्यने धनुषमें बाण लगाकर ॥ ६५ ॥ खडेहो ऐसा इन्द्रसेकहा व सारथिको प्रेरणा किया और धनुषमें बाणलगाकर आते
हुये उस दैत्यको सामने देखकर ॥ ६६ ॥ अन्यूनबुद्धिवाले इन्द्रने पुष्ट धनुष व तेलसे धोयेहुये अग्रवाले व सीधेजानेवाले अर्द्धचन्द्र बाणकोलिया ॥ ६७ ॥ व उस
से बल व वृत्रासुर के विनाशक इन्द्रने इसका बाण समेत धनुष काटडाला उस धनुषको शीघ्रही छोड़कर दानवके पुत्र जम्भने वेगवान् बाणके साधनेवाले दूसरे

न्तरम् ॥ ६४ ॥ जम्भोजज्वालकोपेन पीताज्यइवपावकः ॥ ततस्सकोपरक्ताक्षो धनुष्यारोप्यसायकम् ॥ ६५ ॥ तिष्ठेति
चाब्रवीच्छक्रं सारथिञ्चाप्यचोदयत ॥ तमायान्तमभिप्रेक्ष्य धनुष्यारोप्यसायकम् ॥ ६६ ॥ शतक्रतुरहीनात्मा दृढ
मादत्तकार्म्मुकम् ॥ बाणंचतैलधौताग्रमर्धचन्द्रमजिह्मगम् ॥ ६७ ॥ तेनास्यसशरंचापं चिच्छेदबलवृत्रहा ॥ अपा
स्यतद्धनुःक्षिप्रं जम्भोदानवनन्दनः ॥ ६८ ॥ अन्यत्कार्मुकमादाय वेगवद्बाणसाधनम् ॥ शरांश्चाशीविषाकारांस्तैल
धौतानजिह्मगान् ॥ ६९ ॥ शक्रंविव्याधदशभिर्जत्रुदेशेसपत्रिभिः ॥ हृदयेचत्रिभिश्चैव द्वाभ्यांचस्कन्धयोर्द्वयोः ॥ ७० ॥
शक्रोपिदानवेन्द्राय बाणजालमधारयत ॥ अप्राप्तान्दानवेन्द्रस्तु शरांश्छक्रभुजेरितान् ॥ ७१ ॥ चिच्छेदशतधाका
शेशरैरग्निशिखोपमैः ॥ ततश्चशरजालेन देवेन्द्रोदानवेश्वरम् ॥ ७२ ॥ आच्छादयद्यथाशीघ्रं वर्षास्विवघनैर्नभः ॥
दैत्योपिबाणजालेन व्यधमत्सायकैस्सितैः ॥ ७३ ॥ यथावायुर्घनाटोपं यदवार्यनिशामुखे ॥ दानवेन्द्रन्तथाचक्रे ग

धनुषको व तैलसे धोयेहुये सीधे जानेवाले बाणोंको लिया ॥ ६८ । ६९ ॥ व उस दानवने दश बाणोंसे इन्द्रके कन्धेकी सन्धि (हँसियों) में मारा व तीन बाणोंसे
हृदय और दोसे दोनों कन्धोंमें मारा ॥ ७० ॥ व इन्द्रने भी दानवेन्द्रके लिये बाणसमूहको पठाया और दानवेन्द्रने इन्द्रकी भुजासे पठाये व न पहुँचेहुये बाणोंको ॥
७१ ॥ आकाशमें अग्निकी ज्वालाके समान बाणोंसे सौ खण्ड करके काटडाला तदनन्तर देवेन्द्र ने शरसमूह से दानवेश्व[illegible] वैसेही छिपा लिया जैसे कि वर्षा में
शीघ्रही मेघोंसे आकाश आच्छादित होजाता है और दैत्यने भी बाणसमूह से पैने बाणोंसे सब शरोंको नाश करदिया [illegible] और दव[illegible] व जैसे वायु सन्ध्यामें न मना
[illegible] क हे कौरव ! डराहु[illegible]

करने योग्य घटाटोप को करती है वैसेही बडे अद्भुत गन्धर्वास्त्र ने दानवेन्द्र को किया ॥ ७४ ॥ तदनन्तर इस अस्त्रके तेजसे आकाशमण्डल व्याप्त होगया व अनेक भांतिकी छहरदिवाली व बाहरी द्वारोंवाले गन्धर्वनगरों से व्याप्त हुआ ॥ ७५ ॥ जोकि सब ओरसे अद्भुत आकारवाले बाणों करके अस्त्रकी वृष्टिको छोडतेथे उस अस्त्रकी वर्षासे मारी जातीहुई बडीभारी सेना ॥ ७६ ॥ हे भारत ! त्राहि २ ऐसा कहकर जम्भकी शरणमें गई तदनन्तर बार २ हँसतेहुये बड़े पराक्रमी जम्भने शब्द करके ॥ ७७ ॥ व सज्जनों का आचरण स्मरण करतेहुये दैत्योंको अभय दिया तदनन्तर बडे भयवाले मौसल नामक अस्त्रको छोड़ा ॥ ७८ ॥ उसके उपरान्त कराल

न्धर्वास्त्रंमहाद्भुतम् ॥ ७४ ॥ ततोऽस्यतेजसाव्याप्तमभूद्गगनगोचरम् ॥ गन्धर्वनगरैश्चापि नानाप्राकारतोरणैः ॥ ७५ ॥ मुञ्चद्भिरद्भुताकारैरस्त्रवृष्टिंसमन्ततः ॥ तयास्त्रवृष्ट्यादैत्यानां हन्यमानामहाचमूः ॥ ७६ ॥ जम्भंशरणमागच्छत त्राहित्राहीतिभारत ॥ ततोजम्भोमहावीर्यो निनद्यप्रहसन्मुहुः ॥ ७७ ॥ स्मरन्साधुसमाचारं दैत्यानामभयन्ददौ ॥ ततोऽस्त्रंमौसलन्नाम मुमोचसुमहाभयम् ॥ ७८ ॥ ततोऽग्रमुसलैस्सर्वमभवत्पूरितंजगत् ॥ तैर्भग्नानिचसर्वाणि गन्धर्वनगराणिवै ॥ ७९ ॥ अथोग्रैकप्रहारेण गजमश्वंरथंसुरम् ॥ चूर्णयामासतत्क्षिप्रं शतशोथसहस्रशः ॥ ८० ॥ ततस्सुराधिपःशक्रस्त्वाष्ट्रमस्त्रमुदैरयत् ॥ सन्धायमानेचततोनिश्चेरुःपावकार्चिषः ॥ ८१ ॥ ततोयन्त्रमयाविद्याः प्रादुरासन्सहस्रशः ॥ तैर्यन्त्रैरभवद्बद्धमन्तरिक्षेवितानकम् ॥ ८२ ॥ तैर्यन्त्रैर्मौसलंभग्नं हन्यन्तेचासुरास्ततः ॥ शैलास्त्रंमुमुचेजम्भो यन्त्रसङ्घाततोदनम् ॥ ८३ ॥ व्यामप्रमाणैरुपलैस्ततोवर्षःप्रवर्तते ॥ त्वाष्ट्रेणनिर्मितान्याशुयानियन्त्रा

मुसलों से सब संसार पूर्णहोगया और उन्होंने सब गन्धर्वनगरोंको तोड़डाला ॥ ७९ ॥ इसके अनन्तर वह अस्त्र एक भयंकर प्रहारसे हाथी, घोड़ा, रथ व देवताको शीघ्रही चूर्ण करडाला और सैकडो व हजारों देवोंको मारा ॥ ८० ॥ तदनन्तर देवताओं के स्वामी इन्द्रने त्वाष्ट्र अस्त्रको चलाया तदनन्तर उसके सन्धान करने पर अग्निकी ज्वालायें निकलीं ॥ ८१ ॥ उसके उपरान्त हजारो यन्त्रमय विद्या प्रकट हुई व उन यन्त्रोंसे आकाश मे वितान (सामियाना) बँधगया ॥ ८२ ॥ और उन यन्त्रों से मुसल टूटगया व देवता मारेजानेलगे तदनन्तर जम्भने यन्त्रसमूह को नाशनेवाले शैलास्त्रको छोड़ा ॥ ८३ ॥ तदनन्तर व्याम प्रमाणभर पत्थरों से वर्षा

१ भुजाओं को तिरछा फैलाने से जो अन्तर होताहै वह व्याम है ॥

भयानक युद्ध को न छोड़ना चाहिये हे प्रभो, इन्द्र ! मोह को मत प्राप्त होवो व शीघ्रही अस्त्र को स्मरण कीजिये ॥ १५॥ यह सुन पवित्र होकर उसने नारायणास्त्र
को छोड़ इसी अवसर में मुख को फैलाये हुये दैत्यने क्षणभर में तीन तीन लाख किन्नर सर्प व राक्षसों को निगल गया तदनन्तर नारायणास्त्र इसकी छातीपै गिरा ॥
१६ । १७ ॥ और बड़े अस्त्र से कटे हृदयवाले उसने बहुत रुधिर बहाया व उस अस्त्रके तेजसे उस दैत्य का रूप नाश होगया ॥ १८ ॥ तदनन्तर बड़ाउग्र
हास्य करके दैत्य अन्तर्द्धान होगया व आकाशमें खड़ेहुये उस दैत्येन्द्रने इन्द्रियों के अगोचर शस्त्र, अस्त्रको ॥ १९ ॥ छोड़ा जो कि देवों की सेनाओं का बहुतही

प्रभो ॥ १५ ॥ नारायणास्त्रंप्रयतः श्रुत्वेतिमुमुचे हरिः ॥ एतस्मिन्नन्तरे दैत्यो विवृतास्योग्रसत्क्षणात् ॥ १६ ॥ त्रीणि
त्रीणि चलक्षाणि किन्नरोरगराक्षसाम् ॥ ततोनारायणास्त्रंच निपपातास्यवक्षसि ॥१७॥ महास्त्रभिन्नहृदयः सुस्रावरुधिरं
चसः ॥ तदस्त्रतेजसारूपं तस्यदैत्यस्यनाशितम् ॥ १८ ॥ ततश्चान्तर्दधेदैत्यः कृत्वाहासंमहोत्कटम् ॥ गगनस्थस्स
दैत्येन्द्रः शस्त्रमस्त्रमतीन्द्रियम् ॥ १९ ॥ मुमोचासुरसैन्यानां संहारकरणंपरम् ॥ तथापरश्वधांश्चक्रवज्रबाणान्समुद्ग
रान् ॥ २० ॥ कुन्तान्खड्गान्भिन्दिपालान्लोहमुखयुतांस्तथा ॥ ववर्षदानवोरोषाद्विविधानक्षयानपि ॥ २१ ॥ तैरस्त्रैर्दान
वोन्मुक्तैर्देवानीकेषुभीषणैः ॥ बाहुभिर्द्धरणीपूर्णा शिरोभिश्चसकुण्डलैः ॥ २२ ॥ ऊरुभिर्गजहस्ताभैः करीन्द्रैश्चाचलो
पमैः ॥ भग्नेषदण्डचक्राद्यै रथैस्सारथिभिस्सह ॥ २३ ॥ दुस्सञ्चाराभवत्पृथ्वी मांसशोणितकर्द्दमा ॥ रुधिरौघह्रदाव
र्त्ता गजदेहशिलोच्चया ॥ २४ ॥ कबन्धनृत्यबहुधा महासुरप्रवाहिनी ॥ शृगालगृध्रध्वाङ्क्षाणां परमानन्दकारिणी ॥२५॥

नाशक था वैसेही परश्वध व मुद्गरों समेत चक्र, वज्र, बाण ॥ २० ॥ भाला, तलवार, भिंदिपाल व लोहमुख संयुत अनेक प्रकार के व अविनाशी भी अस्त्रोंकी दानव ने
क्रोध से वृष्टि किया ॥ २१ ॥ व सुरसेनाओं में दानवों से छोड़हुये उन अस्त्रों से कटीहुई भयंकर भुजाओं से व कुण्डल समेत मस्तकों से पृथ्वी पूर्ण होगई ॥ २२ ॥
व हाथियों की सूंड़के समान जघस्थल और पर्वतों की नाईं हाथियों व सारथि समेत टूटीहुई दसी, गज व आंकवाले रथोंसे ॥ २३ ॥ मांस व रक्तके कीचड़वाली
पृथ्वी दुःखसे चलने योग्य हुई जो कि रुधिरप्रवाहके कुण्डरूप भँवरवाली व हाथियोंकी देहरूपी पर्वतोंवाली थी ॥ २४ ॥ और कबंधों के नृत्य समेत बहुत भांति के

हुये इन्द्रने त्रिलोकीको असह्य नारसिंह अस्त्र छोडा ॥ ४ ॥ तदनन्तर मन्त्रके तेजसे पुष्ट दाढ़ोंसे अट्टहास शब्दवाले व आरोंके समान नखोंवाले हज़ारोंसिंह निकले ॥ ५ ॥ उनसे फाडेहुये अंगवाले इसने हाथीकी मायाको नष्ट कर दिया तदनन्तर प्राणोंसे विकल यह भयंकर सर्प हुआ ॥ ६ ॥ कि जिसकी विषसयुत श्वाससे देवताओंकी सेनाके महारथी जलते थे तदनन्तर इन्द्रने समरमें गरुड़वाले अस्त्रका प्रहारकिया ॥ ७ ॥ उसके उपरान्त उस अस्त्रसे हज़ारों गरुड़ निकले उन गरुड़ोंसे सर्परूपवाले जंभ को प्राप्त होकर ॥ ८ ॥ वह दैत्य खंडर किया गया और इसकी वह माया नष्ट होगई तदनन्तर माया नाश होने पर महादैत्य जंभने ॥ ९ ॥ चंद्रमा,

पुष्टदंष्ट्राट्टहासानिक्रकचाभनखानिच ॥ ५ ॥ तैर्विपाटितगात्रोसौ गजमायांव्यपोहयत् ॥ ततश्चाशीविषोघोरोभवत्प्राणसमाकुलः ॥ ६ ॥ विषनिःश्वासनिर्दग्धसुरसैन्यमहारथः ॥ ततोस्त्रंगारुडंचक्रे शक्रःप्रहरणंरणे ॥ ७ ॥ ततोगरुत्मतांतस्मात्सहस्राणिविनिर्ययुः ॥ तैर्गरुत्मभिरासाद्य जम्भंभुजगरूपिणम् ॥ ८ ॥ कृतस्तुखण्डशोदैत्यः सास्यमायाव्यनश्यत ॥ मायायांचप्रणष्टायां ततोजम्भोमहासुरः ॥ ९ ॥ चकाररूपमतुलं चन्द्रादित्यपदानुगम् ॥ विवृत्तनयनोग्रस्तुमियेषसुरपुङ्गवान् ॥ १० ॥ ततोस्यवितितेवक्त्रे समहारथकुञ्जरा ॥ सुरसेनाविशद्भीमं पातालोज्ज्वलतालुकम् ॥ ११ ॥ सैन्येषुग्रसमानेषु दानवेनबलीयसा ॥ शक्रोदीनत्वमापन्नः श्रान्तवाहनवाहनः ॥ १२ ॥ कर्तव्यंनाधिगच्छत्सप्रोवाचेदंजनार्द्दनम् ॥ किमनन्तरमेवास्ति कर्त्तव्यमवशेषतः ॥ १३ ॥ तदादिशघटामोस्य दानवस्ययुयुत्सतः ॥ ततोहरिरुवाचेदं वज्रायुधमुदारधीः ॥ १४ ॥ नसाम्प्रतंरणंत्याज्यंशक्रकातरभैरवम् ॥ माशक्रमोहमागच्छ क्षिप्रमस्त्रंस्मर

सूर्य के चरणों का अनुगामी अतुलितरूप किया व आखोंको फैलाये हुये उसने सुरश्रेष्ठों को ग्रसनेकी इच्छा किया ॥ १० ॥ उसके उपरान्त पातालसे उज्ज्वल तालुवाले इसके फैलाये मुखमें बडेरथी व हाथियों समेत भयानक सेना पैठगई ॥ ११ ॥ बलिष्ठ दैत्य से सेनाओं के ग्रसित होनेपर थकीहुई सवारी व सेनावाले इन्द्रजी दीनता को प्राप्त हुये ॥ १२ ॥ और वे कर्तव्यता को न प्राप्त हुये व विष्णु से यह बोले कि इसके अनन्तर क्या कर्तव्य शेष है ॥ १३ ॥ उसको कहिये क्योंकि युद्ध करते हुये इस दानवके विषयमें मैं उसको करूं तदनन्तर उदार बुद्धिवाले विष्णु जी ने वज्रअस्त्रवाले इन्द्र से यह कहा ॥ १४ ॥ कि हे इन्द्र ! इस समय कायरोंके

धाराओंसे संसार भरगया ॥ ६४ ॥ व आग्नेय अस्त्रको शान्त देखकर इन्द्रने अतुलित वायव्यअस्त्रकोकिया उससे मेघ नाशको प्राप्तहुये ॥ ६५ ॥ इसके अनन्तर वायव्या-
स्त्रके बलसे मेघ मण्डल के नाश होनेपर नील कमल दलके समान शोभावाला आकाश निर्मल होगया ॥ ६६ ॥ बड़े रूपवाले वायुसे कँपाये हुये जो बड़े बलीभी
दानव थे वे समरमें आगे खड़े होनेके लिये न समर्थ हुये ॥ ६७ ॥ तदनन्तर पवनके नाशके लिये दानवोंकी सेनाका स्वामी जम्भ चालीस कोसकी चौड़ाईवाला पर्वत
होगया ॥ ६८ ॥ जोकि अनेक प्रकारके आश्चर्यों से युक्त व अनेक भांतिकेवृक्ष व लताओंसे घिराथा तदनन्तर दैत्येन्द्रको पर्वताकार होनेपर जब पवन शान्तहोगया तब ॥ ६९ ॥

लोक्येन्द्रश्चकारह ॥ वायव्यमस्त्रमतुलं तेनमेघाययुःक्षयम् ॥ ९५ ॥ वायव्यास्त्रबलेनाथ निर्द्धूतेमेघमण्डले ॥ बभू
वानाविलंव्योम नीलोत्पलदलप्रभम् ॥ ९६ ॥ वायुनाचातिरूपेण कम्पिताश्चैवदानवाः ॥ नशेकुरग्रतःस्थातुं रणेतिब
लिनोपिये ॥ ९७ ॥ ततोजम्भोभवच्छैलो दशयोजनविस्तृतः ॥ मारुतप्रतिघातार्थं दानवानाबलाधिपः ॥ ९८ ॥ ना
नाश्चर्यसमायुक्तो नानाद्रुमलतावृतः ॥ ततःप्रशमितेवायौदैत्येन्द्रेपर्वताकृतौ ॥ ९९ ॥ महाशनीवज्रमसौ मुमोचाशु
शतक्रतुः ॥ तयाशन्यापतितया दैत्यस्योपलरूपिणः ॥ १०० ॥ कन्दराणिव्यशीर्यन्त समन्तान्निकराणिच ॥ तत
स्सादानवेन्द्रस्य शैलमायान्यवर्त्तत ॥ १ ॥ निवृत्तशैलमायोथ दानवेन्द्रोमदोत्कटः ॥ बभूवकुञ्जरोभीमो महाशैल
मयाकृतिः ॥ २ ॥ ममर्दचसुरानीकंदन्तैरभ्यहनत्सुरान् ॥ बभञ्जपृष्ठतःकांश्चित्करेणाकृष्यदानवः ॥ ३ ॥ ततःस्त्रय
यतस्तस्य सुरसैन्यानिवृत्रहा ॥ अस्त्रंत्रैलोक्यदुर्द्धर्षं नारसिंहंमुमोचह ॥ ४ ॥ ततःसिंहसहस्राणि निश्चेरुर्मन्त्रतेजसा ॥

इन इन्द्रने शीघ्रही महाशनिरूप वज्र छोडा व उस गिरहुये वज्रसे पत्थररूपी दैत्यके ॥ १०० ॥ सब ओर बहुतसे कन्दरा टूटगये तदनन्तर दानवेन्द्र की वह पर्वत
वाली माया निवृत्त होगई ॥ १ ॥ इसके अनन्तर निवृत्तहुई पर्वती मायावाला वह मदसे उग्र दानवेन्द्र बड़े शैलकी आकृतिवाला भयानक हाथी होगया ॥ २ ॥ और
उस दानव ने देवसेनाको मर्दन किया व देवताओं को दांतोंसे मारा व कितनोंको सूंड़से खींचकर पीठ तोड़डाला ॥ ३ ॥ तदनन्तर उसे सुरसेनाओं को नाश करते

वर्त्तमान हुई हे भारत ! त्वाष्ट्र अस्त्रसे रचित जो यन्त्रथे वे शीघ्रही ॥ ८४ ॥ उस पत्थर के गिरने से तदनन्तर तिल २ भर होगये उसके उपरान्त देवताओं के मस्त-
कों में बड़े भयदायक पत्थर गिरने लगे ॥ ८५ ॥ इसके अनन्तर वे पत्थर के टुकड़े पृथ्वी व उस चतुरंगिणी सेनाको काटनेलगे तदनन्तर सहस्रलोचनोंवाले इन्द्र
ने वज्रास्त्र को बनाया ॥ ८६ ॥ तदनन्तर सब ओर पत्थर की बड़ी वर्षा टूटगई उसके उपरान्त शैलास्त्रके शान्त होजानेपर पर्वत के समान व बड़े पराक्रमी तथा
शीघ्रतासंयुत जम्भने ऐषीक अस्त्रका निर्माण किया व ऐषीक अस्त्र से पर्वतों का भेदक वज्रास्त्र नाशहोगया ॥ ८७ । ८८ ॥ इसके अनन्तर अतिभयंकर ऐषीक परमास्त्र

णिभारत ॥ ८४ ॥ तेनोपलनिपातेनगतानितिलशस्ततः ॥ ततःशिरस्सुदेवानांशिलाःपेतुर्म्महाभयाः ॥ ८५ ॥ तादारय
न्तिवसुधाञ्चतुरङ्गंबलञ्चतत् ॥ ततोवज्रास्त्रमकरोत्सहस्राक्षःपुरन्दरः ॥ ८६ ॥ ततोपलमहावर्षंव्यशीर्यतसमन्ततः ॥
ततःप्रशान्तेशैलास्त्रेजम्भोभूधरसन्निभः ॥ ८७ ॥ ऐषीकमस्त्रमकरोत्त्वरितोतिपराक्रमः ॥ ऐषीकेणागमन्नाशंवज्रास्त्रं
गिरिदारणम् ॥ ८८ ॥ विजृम्भत्यथचैषीकेपरमास्त्रेतिदारुणे ॥ जज्वलुर्देवसैन्यानिसस्यन्दनगजानितु ॥ ८९ ॥ दह्यमा
नेष्वनीकेषुतेजसास्त्रस्यसर्वतः ॥ आग्नेयमस्त्रमकरोद्बलहापाकशासनः ॥ ९० ॥ तेनास्त्रेणचतन्नाशमैषीकमगमत्त
दा ॥ तस्मिन्प्रतिहतेचास्त्रे पावकास्त्रोव्यजृम्भत ॥ ९१ ॥ जज्वालसेनाजम्भस्यरथःसारथिरेवच ॥ ततःप्रतिहतास्त्रोसौ
दैत्येन्द्रःप्रतिभानवान् ॥ ९२ ॥ वारुणास्त्रंमुमोचाथशमनंपावकार्चिपः ॥ ततोजलधरैर्व्योमस्फुरद्विद्युल्लताकुलैः ॥ ९३ ॥
गम्भीरैरम्बुधारैश्च अभ्यपूर्यतमेदिनी ॥ करीन्द्रकरतुल्याभिर्धाराभिःपूरितंजगत् ॥ ९४ ॥ शान्तमाग्नेयमस्त्रंच वि

के बढ़नेपर रथ व हाथियों समेत देवताओं की सेना जलनेलगी ॥ ८९ ॥ अस्त्रके तेजसे सब ओर सेनाओं के जलने पर बल दैत्यके नाशक इन्द्रने आग्नेय अस्त्र
किया ॥ ९० ॥ उस समय उस अस्त्रसे वह ऐषीक अस्त्र नाश होगया और उस अस्त्र के नाश होजाने पर आग्नेयास्त्र बढताभया ॥ ९१ ॥ और जम्भकी सेना, रथ
व सारथी जलनेलगा तदनन्तर नष्ट हुये अस्त्रोंवाले इस बुद्धिमान् दैत्येन्द्र ने ॥ ९२ ॥ अग्निकी ज्वालाओं के नाशक आग्नेयास्त्र को छोड़ा तदनन्तर चमकती हुई
बिजुली की लताओं से संयुत मेघों से आकाश आच्छादित होगया ॥ ९३ ॥ व जलकी गम्भीर धाराओं से पृथ्वी पूर्ण होगई और हाथी की सूंड के समान

बड़े दैत्यों के प्रवाहवालीथी और सियार, गीध व कौवोंको बड़ी आनन्दकारक थी॥ २५ ॥ व साथ नाचती हुई संभ्रम समेत स्त्रियों सहित मांस व रक्त पीकर दुर्द्धर्ष
पिशाच जातियों से वह युद्ध व्याप्त था ॥ २६ ॥ जिस युद्धमें पतियों से कियेहुये घोड़ोंके खुरों से कर्णफूलोंकरके पिशाचिनी भलीभांति प्रसन्न होती हैं व और पिशा-
चिनी क्रोधसे देखती हैं ॥ २७ ॥ व मोतियों समेत हाथियों के मस्तकों को स्त्रियोंसे चुराये देखकर कर्णफूल बनाने में चतुर पिशाच स्त्रियों को प्रसन्न करते हैं ॥ २८ ॥
कोई कहते हैं कि हे देवताओ, हे दैत्यो ! हमलोग प्रार्थना करते हैं कि हमारी तृप्ति के लिये कल्पपर्यन्त युद्ध करना चाहिये॥ २९ ॥ कोई कहते हैं कि यह दैत्य व बड़े

**पिशाचजातिभिःकीर्णं पीत्वामिषसुशोणितम् ॥ असंभ्रमाभिर्भार्याभिस्सहनृत्यद्भिरुद्धतैः ॥ २६ ॥ पिशाच्यो
यत्रचाश्वानां खुराग्रैर्भर्तृभिःकृतैः ॥ कर्णपूरेषुमोदन्ते पश्यन्त्यन्यास्सरोषतः ॥ २७ ॥ केचित्पत्नीप्रमुषितान् गजकु
म्भान्समौक्तिकान् ॥ प्रसादयन्तिबहुधा कर्णपूरार्थकोविदाः ॥ २८ ॥ केचिद्वदन्तिभोदेवाभोदैत्याःप्रार्थयामहे ॥ आक
ल्पमेवंयोद्धव्यमस्माकंतृप्तिहेतवे ॥ २९ ॥ केचिदाहुरयंदैत्योदेवोयमतिमांसलः ॥ म्रियतेयदिसंग्रामेधातुर्दद्मोऽपयाचित
म् ॥ ३० ॥ केचिद्युद्धयत्सुवीरेषुसृक्किणीसंलिहन्तिच ॥ पतेदयंसपत्नोवैदुर्जनःसुजनंयथा ॥ ३१ ॥ केचिद्रक्तनदीनांचती
रेनास्तिकबुद्धयः ॥ पितॄन्देवांस्तर्पयन्तिशोणितैश्चामिषैःशुभैः ॥ ३२ ॥ केचिदामिषराशिस्थाद्दृष्ट्वान्यस्यकरामिष
म् ॥ देहिदेहीतिवाशन्ते कृपणाधनिनोयथा ॥ ३३ ॥ केचित्स्वयमथातृप्ताद्दृष्ट्वावैखादतःपरान् ॥ सरोषमोष्ठौनिर्भज्य
पश्यन्तीवान्यसूचकाः ॥ ३४ ॥ केचित्स्वमुदरंक्रुद्धानिन्दन्तेताडयन्तिच ॥ सर्वमत्रह्यभीप्सन्तःस्वतृप्तोन्यधनंयथा ॥ ३५ ॥**

मांसवाला यह देवता यदि समर में मरै तो ब्रह्माको प्रार्थित वस्तु देवैंगे ॥ ३० ॥ वीरोंके युद्ध करने पर कोई गलफडों को चाटतेहैं व कहते हैं कि यह शत्रु गिरै जैसे
कि दुर्जन सुजन को कहताहै ॥ ३१ ॥ रक्तकी नदियोंके किनारे नास्तिक बुद्धिवाले कोई रक्त व उत्तम मासोंसे पितरों तथा देवताओं का तर्पण करते हैं ॥३२॥ व मांस
के ढेरपै बैठेहुये कोई दूसरे के हाथमें मांस देखकर दीजिये २ ऐसा कहते हैं जैसे कृपण धन को मांगते हैं ॥ ३३ ॥ व आप तृप्तिरहित कोई खातेहुये औरों को देख
कर क्रोधसे ओंठ काटके अन्य पिशुनों की नाईं देख रहेहैं॥ ३४॥ व क्रोधित होतेहुये कोई अपने पेटकी निन्दा करते व पीटते हैं जैसे कि यहां यशआदिक सब वस्तुको

चाहताहुआ द्रव्यसे तृप्त मनुष्य दूसरे के धनको नहीं चाहता है ॥ ३५ ॥ कोई कहते हैं कि हमलोगोंवाली ब्रह्माकी सृष्टि प्रशंसनीय है जैसे कि उत्तम प्रभात व
अच्छे नक्षत्रोंवाली पौर्णमासीकी रात प्रशंसितहै ॥ ३६ ॥ इसप्रकार इधर उधर मांसभक्षियोंका कहना सुनकर युद्ध में जम्भने शस्त्रोंसे देवताओं को चूर्ण करदिया ॥
३७॥ व आकाश में इन्द्र, कुबेर, वरुण, अग्नि, पवन, यमराज व निर्ऋति सब बड़े बलिष्ठ देवताओं ने दानवकी सन्धियों (अंगों के जोड़ों) में दिव्य अस्त्रोंको
छोड़ा और देवताओंके अस्त्र दानवपर कैसे व्यर्थताको प्राप्तहुये ॥ ३८ । ३९ ॥ जैसे कि बड़े क्रूरचित्तवाली स्त्री में सैकड़ों भी उपाय व्यर्थ होजाते हैं व दैत्यके अस्त्रसे

केचिदाहुर्मदीयैवश्लाघ्यासृष्टिस्तुवेधसः ॥ सुप्रभातासुनक्षत्रापौर्णमास्यानिशायथा ॥ ३६ ॥ एवंबहुविधालापं
पलादानांततस्ततः ॥ निशम्यसमरेजम्भोदेवाञ्छस्त्रैरचूर्णयत् ॥ ३७ ॥ संक्रन्दनोधनेशश्चवरुणःपावकोनिलः ॥ य
मोथनिर्ऋतिश्चापिदिव्यास्त्राणिमहाबलाः ॥ ३८ ॥ आकाशेमुमुचुःसर्वेदानवायासिसन्धिषु ॥ व्यर्थतांजग्मुरस्त्राणिदे
वानांदानवम्प्रति ॥ ३९ ॥ यथातिक्रूरचित्तायांनार्य्यांयत्नशतान्यपि ॥ गतिंनविविदुश्चापिभीतादैत्यस्यदेवताः ॥ ४० ॥
दैत्यास्त्रभिन्नसर्वाङ्गागावःशीतार्दिताइव ॥ परस्परंव्यलीयन्तहाहाशब्दाववादिनः ॥ ४१ ॥ तामवस्थांहरिर्दृष्ट्वादेवा
ञ्छक्रमुवाचह ॥ ४२ ॥ अघोरमस्त्रंस्मरदेवराजशस्त्रंहियत्पाशुपतप्रभावम् ॥ रुद्रेणतुष्टेनतवप्रदत्तमव्याहतंवीरवराभि
घातम् ॥ ४३ ॥ एवंसशक्रोहरिबोधितस्तदा प्रणम्यदेवंवृषकेतुमीश्वरम् ॥ समाददेबाणममित्रघातिनं तमर्द्धचन्द्रंप्र
तिपूजितंसुरैः ॥ ४४ ॥ धनुष्यजय्येविनियोज्यबुद्धिमान् न्ययोजयत्तत्रअघोरमन्त्रम् ॥ ततोवधायाशुमुमोचतस्य

कटेहुये सब अंगो वाले डरे देवता दैत्यकी गतिको न जाना जैसे कि जाड़ेसे विकल गाइयां होवैं और हाहाशब्द को कहतेहुये देवता आपसमे छिपने लगे ॥ ४० । ४१ ॥
उस दशामें देवताओं को देखकर विष्णुजी इन्द्रसे बोले ॥ ४२ ॥ कि हे सुरराज ! अघोर अस्त्रको स्मरण कीजिये जोकि उत्तम वीरोंका नाशक व अक्षय, शिवजी के
प्रभाववाला शस्त्र प्रसन्नहोते हुये शिवजीने तुमको दियाहै ॥ ४३ ॥ विष्णुजीसे इसप्रकार जनाये हुये इन्द्रने उस समय शिवदेव को प्रणाम कर देवताओं से पूजित
शत्रुघाती उस अर्द्धचन्द्र बाणकोलिया ॥ ४४ ॥ व बुद्धिमान् इन्द्रने न जीतने योग्य धनुषमें उसको लगाकर और उसमें अघोरमन्त्रयुक्त किया तदनन्तर पैनीधारवाले

उस बाणको कानोंतक खींचकर उसके मारने के लिये शीघ्रही छोड़ा ॥ ४५ ॥ इस के अनन्तर इस महास्त्रको देखकर अचानकही मायाको छोड़कर वह दैत्य स्थित
हुआ जोकि सूखेहुये मुख व पराक्रम तथा कांपतेहुये अंग करके संभ्रम से विकल था ॥ ४६ ॥ तदनन्तर महायुद्ध में उत्तम अस्त्रसे अभिमन्त्रित अर्द्धचन्द्र बाण शरीर
से दुपहर के सूर्यबिम्बकी हठसे विडम्बना करता हुआ उन इन्द्रके धनुषसे छोड़ा गया ॥ ४७ ॥ व किरीट, कुण्डल, बहूंटा से संयुत व सुगन्धवाले अनेक भांतिके
फूलोंसे सुगन्धित और धुँवासे व्याप्त अग्नि के समान बालोंवाले, कुण्डल समेत जम्भके मस्तक को उस बाणने गिरादिया ॥ ४८ ॥ उस जम्भके मरजानेपर देवता-

**विकृष्यकर्णान्तमकुण्ठदीधितिम् ॥ ४५ ॥ अथासुरःप्रेक्ष्यमहास्त्रमेतद्विमृज्यमायांसहसाव्यवस्थितः ॥ प्रवेपमानेनमु
खेनशुष्यता बलेनगात्रेणचसम्भ्रमाकुलः ॥ ४६ ॥ ततस्तुतस्यास्त्रवराभिमन्त्रितः शरोर्द्धचन्द्रःप्रसभंमहारणे ॥ पुर
न्दरस्येष्वसनप्रमुक्तो मध्यार्कबिम्बवपुषाविडम्बयन् ॥ ४७॥ किरीटकुण्डाङ्गदकान्तिसंकुलंसुगन्धिनानाकुसुमाधिवा
सितम् ॥ प्रकीर्णधूमज्वलनाभमूर्द्धजं न्यपातयज्जम्भशिरःसकुण्डलम् ॥ ४८ ॥ तस्मिन्विनिहतेजम्भे प्रशशंसुःसु
राद्दु ॥ ४९ ॥ वासुदेवोपिभगवान्साधुसाध्वितिचाब्रवीत ॥ ततोजम्भंहतंदृष्ट्वा दानवेन्द्राःपराङ्मुखाः ॥ ५० ॥ सर्वेते
भग्नसङ्कल्पा दुद्रुवुस्तारकंप्रति॥सन्त्रस्तान्ससमालोक्यश्रुत्वाचचतुरोहतान्॥५१॥सारथिंप्रेरयामास याहीन्द्रंलघुसङ्ग
रे ॥ तथेत्युक्तःसचप्रायात्तारकेरथमास्थिते ॥ ५२ ॥ सावलेपञ्चसक्रोधं सबलंसपराक्रमम् ॥ सवाहनंसाधिकारं प्रया
तोदानवेश्वरः ॥ ५३ ॥ संयुक्तंरथमास्थाय सहस्रेणगरुत्मताम् ॥ सर्वायुधपरिष्कारं सर्वास्त्रपरिरक्षितम् ॥ ५४ ॥ त्रै**

ओंने बड़ी प्रशंसा किया ॥ ४९ ॥ और विष्णु भगवान्ने भी बहुत अच्छा २ ऐसा कहा तदनन्तर मारेहुये जम्भको देखकर नष्टसंकल्पवाले वे सब दानवेन्द्र विमुख
होकर तारकके समीप दौड़गये व डरेहुये उन दैत्योंको देखकर और मारेहुये चार दैत्योंको सुनकर उस तारकने ॥ ५० । ५१ ॥ सारथिको प्रेरणा किया कि युद्धमें शी-
घ्रही इन्द्रके सामने चलो बहुत अच्छा यह कहकर वह सारथि तारकके रथपै बैठने पर चला ॥५२॥ गर्व समेत व क्रोधसहित, सेना समेत,पराक्रम सहित व सवारी
समेत और अधिकार सहित वह दानवेश्वर चलताभया ॥ ५३॥ त्रिलोककी ऋद्धि के सम्बन्धवाले व कल्पांत के मेघोंके समान शब्दवाले तथा सब अस्त्रों से रक्षित

और समस्त शस्त्रोंसे भूषित व जिसमें हज़ार गरुड़ जुतेहैं उस रथपै बैठकर दशोदिशाओं को शब्दायमान करताहुआ बडी सेनासे संयुत होकर वह तारकासुर चला ॥
५४ । ५५ ॥ उसको देखकर इन्द्रजी हाथीकी सवारीको छोडकर तचायेहुयें सोनेसे शोभित रथपै सवारहुये ॥ ५६ ॥ जिसमें गन्धर्व, किन्नर गातेथे व जो कि अप्सराओं
के नृत्य-से संयुत व समस्त शस्त्रो से युक्त और बडे रत्नों से व्याप्तथा ॥ ५७ ॥ इन्द्रके उस रथ को चारो ओर से घेरकर विष्णु समेत कवच पहनेहुये लोकपाल खड़े
हुये ॥ ५८ ॥ तदनन्तर पृथ्वी कांपनेलगी व रूखे पवनगण चलने लगे व सातो समुद्र कांप उठे और पर्वत हिलने लगे ॥ ५९ ॥ तदनन्तर रत्न जलने लगे व उस

लोक्यत्रद्धिसंबन्धं कल्पान्ताम्भोदनादिनम् ॥ सैन्येनमहतायुक्तो नादयंश्चदिशोदश ॥ ५५ ॥ सहस्राक्षश्चतन्दृष्ट्वा
त्यक्त्वावाहनदन्तिनम् ॥ रथंमातलिनायुक्तं तप्तहेमपरिष्कृतम् ॥ ५६ ॥ गन्धर्वकिन्नरोद्गीतमप्सरोनृत्यसंकुलम् ॥ स
र्वायुधसमायुक्तं महारत्नसमाचितम् ॥ ५७ ॥ तंरथन्देवराजस्यपरिवार्यसमन्ततः ॥ दंशितालोकपालास्तु तस्थुस्सग
रुडध्वजाः ॥ ५८ ॥ ततश्चचालवसुधा वबूरूक्षामरुद्गणाः ॥ चेलुश्चसागरास्सप्त तथाचेलुश्चभूधराः ॥ ५९ ॥ ततोज्वल
न्तरत्नानिततोकम्पन्तवाहनाः ॥ ततःसमस्तमुद्भूतंततोदृश्यन्ततारकाः ॥ ६० ॥ एकतस्तारकोदैत्यः सुरसङ्घास्तथैकतः॥
लोकत्रासदमेकत्र लोकोद्धारणमेकतः ॥ ६१ ॥ चराचराणिभूतानि भयविस्मयवन्तिच ॥ प्रशशंसुस्तदापार्थ ततस्त
स्मिन्समागमे ॥ ६२ ॥ अस्त्राणितेजांसिधनानिचेयं शोभाबलंवीरपराक्रमश्च ॥ सत्त्वौजसामङ्गबभूवुरेषां देवासुरा
णांतपसःपरंस्तुमः ॥ ६३ ॥ अथाभिमुखमायान्तं देवाविनतपर्वभिः ॥ बाणैश्चफणकल्पाग्रैर्विव्यधुस्तारकंप्रति ॥ ६४ ॥

के उपरान्त सवारियां कांप उठीं उसके उपरान्त सब संसार कांपने लगा तदनन्तर नक्षत्र देख पड़ने लगे ॥ ६० ॥ एक ओर तारकासुर व एक ओर सुरसमूह थे, एक
ओर संसारको भयदायक व एक ओर लोकको उद्धारकारक थे ॥ ६१ ॥ हे अर्जुन ! तदनन्तर उससमय उस युद्धके संयोगमें भय व विस्मयवाले चराचर प्राणी प्रशसा
करते भये ॥ ६२ ॥ कि हे प्राणियो ! उद्यम व पराक्रमवाले इन देवता दैत्यों की तपस्या की तत्परताको हमलोग प्रशंसा करतेहैं कि जिनके अस्त्र, तेज, धन व यह
शोभा, बल और वीरों का पराक्रम हुआ है ॥ ६३ ॥ इस के अनन्तर देवताओं ने फणा के समान अग्रभागवाले व झुकीहुई ग्रन्थियोंवाले बाणों से सामने आतेहुये

उस तारकको मारा ॥ ६४ ॥ उस दैत्येन्द्र दानवने हृदय में देवताओं के बाणों से उन घावों को न चिन्तन कर बाणोंसे आकाश व पृथ्वीको पूरित किया ॥ ६५ ॥
जो बाण कि बँधीहुईं फोंकवाले व कानोंतक खींचेहुये और पर्वतोंके तोड़ने वालेथे तदनन्तर तारक दैत्यने सौ बाणोंसे इन्द्रको मारा ॥ ६६ ॥ व सतहत्तरि बाणोंसे
विष्णु और नब्बे बाणोंसे अग्निको मारा और दश बाणों से पवनके मस्तकपै व दशही बाणोंसे यमराज के मारा ॥६७॥ दैत्यने सत्तर बाणोंसे कुबेरको, आठ बाणोंसे
वरुण के फिर अट्ठाईस बाणोंसे निर्ऋतिको मारा ॥ ६८ ॥ फिर दैत्यने सुकुमार स्थानको काटनेवाले दश बाणों से एक २ देवता को मारा वैसेही तीन बाणों से

सतानचिन्त्यदैत्येन्द्रः सुरबाणक्षतान्हृदि ॥ बाणैर्व्योमतथापृथ्वीं पूरयामासदानवः ॥ ६५ ॥ पुङ्खैर्निबद्धैःकर्णान्त
माकृष्टैर्नगभेदिभिः ॥ ततःशतेनबाणानां शक्रंविव्याधदानवः ॥ ६६ ॥ नारायणञ्चसप्तत्या नवत्याचहुताशनम् ॥
दशभिर्मारुतंमूर्ध्नि यमंदशभिरेवच ॥ ६७ ॥ धनदंचैवसप्तत्या वरुणंचतथाष्टभिः ॥ विंशत्यानिर्ऋतिन्दैत्यः पुनश्चा
ष्टभिरेवच ॥ ६८ ॥ विव्याधपुनरेकैकं दशभिर्मर्मभेदिभिः ॥ तथाचमातलिन्दैत्यो विव्याधत्रिभिराशुगैः ॥ ६९ ॥
गरुडंदशभिश्चैव महिषंनवभिस्ततः ॥ पुनर्दैत्योथदेवानांतिलशोनतपर्वभिः ॥ ७० ॥ चकारवर्म्मजालानि चिच्छेद
चधनूंषिच ॥ ततोविकवचादेवा विधनुष्काःप्रपीडिताः ॥ ७१ ॥ चापान्यस्त्राणिसंगृह्य यावन्मुञ्चन्तिसायकान् ॥ ताव
द्बाणंसमादाय कालनेत्रसमप्रभम् ॥ ७२ ॥ ताडयामासशक्रंस विदिशश्चमुमोचह ॥ ततइत्थंसमालोक्य दृष्ट्वासूर्य
शताकृती ॥ ७३ ॥ तार्क्ष्यविष्णूसमाजघ्ने शराभ्यांतावमुह्यताम् ॥ प्रेतनाथस्यवह्नेश्च वरुणस्यशितैश्शरैः ॥ ७४ ॥

मातलि सारथि के मारा ॥ ६९ ॥ व दशबाणों से गरुड़को तदनन्तर नवबाणों से महिष के मारा इसके अनन्तर फिर दैत्यने झुके ग्रन्थियोंवाले बाणोंसे देवताओंकी
कवचसमूहों को तिल २ भर करदिया और धनुषों को काटडाला तदनन्तर कवचविहीन व धनुषरहित देवता पीड़ित हुये ॥ ७० । ७१ ॥ व धनुष और अस्त्रों को ले
२ जबतक बाणोंको छोड़ैं तबतक कालनेत्रों के समान प्रकाशवान् बाणको लेकर ॥ ७२ ॥ उसने इन्द्रको मारा व विदिशाओं में बाणों को छोड़ा तदनन्तर इस प्रकार
करोंव सौ सूर्योंके समान आकारवाले गरुड़ व विष्णुजी को देखकर दो बाणों से मारा और वे मोहित होगये व यमराज, अग्नि व वरुण और निर्ऋतिका शरीर

पैनेबाणों से बहुत डरमुत किया और चक्र व बाणों से मारकर पवनको श्वासरहित मोहित किया ॥ ७३ । ७४ । ७५ ॥ तदनन्तर विष्णु ने चैतन्यता को पाकर व दिक्पालों को उत्साहित कर बाणसे कुण्डल समेत सारथिका मस्तक देहसे गिरादिया ॥ ७६ ॥ व क्रोधित होतेहुये अग्निने उसके ध्वजाको काटकर गिरादिया उसके उपरान्त इन्द्रने दैत्यराज के किरीट को काटडाला ॥ ७७ ॥ व क्रोधित कुबेर ने बहुत प्रकार के बाणोंसे धनुष को काटडाला और पवनने रथ, आक व जुवोंको तिल तिल भर२कर दिया ॥ ७८ ॥ तदनन्तर युद्धमें निर्ऋति ने बाणों से कवच तिल २ भर करादिया यह अतुलित कर्मकर गलफड़ों को चाटते हुये विष्णु आदिक देवताओं

निर्ऋतेश्चाकरोत्कायं भीतभीतंव्यमोहयत् ॥ निरुच्छ्वासंसमाहत्य चक्रबाणैस्समीरणम् ॥७५॥ ततःप्राप्यहरिस्संज्ञां प्रोत्साह्यचदिशांपतीन् ॥ बाणेनसारथेःकायाच्छिरोहार्षीत्सकुण्डलम् ॥७६॥ धूमकेतुर्ध्वजंक्रुद्धस्तस्यच्छित्त्वान्यपातयत् ॥ दैत्यराजकिरीटञ्च चिच्छेदवासवस्ततः ॥ ७७ ॥ धनेशश्चधनुःक्रुद्धो विभेदबहुधाशरैः ॥ वायुश्चचक्रेतिलशो रथंचाक्षाणिकूवरम् ॥ ७८ ॥ निर्ऋतिस्तिलशोवर्म्म चक्रेबाणैस्ततोरणे ॥ कृत्वैतदतुलंकर्म्मतिष्ठतिष्ठेतिप्रोचिरे ॥ ७९ ॥ लिहन्तःसृक्किणीदेवा वासुदेवादयस्तथा ॥ दृष्ट्वातत्कर्मदेवानां तारकोतुलविक्रमः ॥ ८० ॥ मुमोचमुद्गरंभीमं सहस्राक्षायसङ्गरे ॥ दृष्ट्वामुद्गरमायान्तमनिवार्यंरणाध्वरे ॥ ८१ ॥ रथादाप्लुत्यधरणीमगमत्पाकशासनः ॥ मुद्गरोपि रथोपस्थे पपातपरुषस्वनः ॥८२॥ सरथंचूर्णयामास नममारचमातलिः ॥ गृहीत्वापट्टिशन्दैत्यो जघानोरसिकेशवम् ॥ ८३ ॥ स्कन्धेगरुत्मतःसोपि निषसादविचेतनः ॥ खड्गेनराक्षसेन्द्रंच भित्त्वाभूमावपातयत् ॥ ८४ ॥ यमञ्चपातयामास

ने खड़ेहो २ ऐसा कहा देवताओं के उस कर्म को देखकर अतुल बलवाले तारकासुरने ॥ ७९ । ८० ॥ समरमें इन्द्रके लिये भयानक मुद्गरको छोड़ा व युद्धयज्ञ में न रोंकने योग्य आतेहुये मुद्गरको देखकर ॥ ८१ ॥ रथसे कूदकर इन्द्र पृथ्वीमें प्राप्तहुये व कठोर शब्दवाला मुद्गर भी रथके ऊपर गिरपड़ा ॥ ८२ ॥ व उसने रथको चूर्ण करदिया और मातलि नहीं मरे व तारक दैत्यने पट्टिशाको लेकर विष्णुकी छाती में मारा ॥ ८३ ॥ और वे विष्णु भी मूर्च्छित होकर गरुडके कन्धेपै बैठरहे और

तलवारसे निर्ऋति देवको काटकर भूमिमें गिरादिया ॥ ८४ ॥ व दैत्यने बन्दूकसे यमराज को भूमिमें गिरादिया और अग्निको भिंदिपालसे मारकर मूर्च्छित किया ॥
८५ ॥ व क्रोधित दानवने पवन को ऊपर फेंककर पृथ्वी में गिराया व धनुष के किनारेसे कुबेरको कूटदिया ॥ ८६ ॥ तदनन्तर युद्धमें पृथ्वीनिवासवाले उन्हीं
देवताओं में से एक २ को क्षणभर में शस्त्रोंसे मारा जैसे कि गुरु बालकों को मारताहै ॥ ८७ ॥ तदनन्तर चैतन्यताको पायेहुये विष्णुजीने दानवेन्द्रों की चर्बी, मेदा व
रक्तसे रँगेहुये असह्य चक्रको लिया ॥ ८८ ॥ व विष्णुजीने दानवेन्द्र के वक्षस्थलमें बड़े ज़ोरसे छोड़दिया व सूर्य के समान कान्तिवाला वह चक्र दैत्य के हृदय

भूमौदैत्योभुशुण्डिना ॥ वह्निंचभिन्दिपालेन चक्रेहत्वाविचेतसम् ॥ ८५ ॥ वायुंदानवउत्क्षिप्य पातयामासभूतले ॥
धनेशन्तुधनुष्कोट्या कुट्टयामासकोपनः ॥ ८६ ॥ ततोवनिनिकायानामेकैकंक्षणमात्रतः ॥ तेषामेवजघानाजौ शस्त्रै
र्बालान्यथागुरुः ॥ ८७ ॥ लब्धसंज्ञस्ततोविष्णुश्चक्रंजग्राहदुर्द्धरम् ॥ दानवेन्द्रवसामेदोरुधिरेणाभिरञ्जितम् ॥ ८८ ॥
मुमोचदानवेन्द्रस्य दृढंवक्षसिकेशवः ॥ पपातचक्रंदैत्यस्यहृदितद्भास्करद्युति ॥ ८९ ॥ ऽव्यशीर्यताथकायेस्य नीलोत्प
लमिवाश्मनि ॥ ततोवज्रंमहेन्द्रोपि प्रमुमोचार्चितंचिरम् ॥ ९० ॥ यस्मिञ्जयाशाशक्रस्य दानवेन्द्रस्यसंयुगे ॥ तारक
स्यचसम्प्राप्य शरीरंशौर्यशालिनः ॥ ९१ ॥ ऽव्यशीर्यतविकीर्णार्चिः शतधाखण्डशोगतम् ॥ ततोवायुरदीनात्मा
वेगेनमहतानदन् ॥ ९२ ॥ ज्वलितज्वलनाभासमङ्कुशंप्रमुमोचह ॥ विशीर्णंतस्यतत्राङ्गे दृष्ट्वावायुर्महारुषा ॥ ९३ ॥
ततश्शैलेन्द्रमुत्पाट्य पुष्पितद्रुमकन्दरम् ॥ चिक्षेपदानवेन्द्रायदशयोजनविस्तृतम् ॥ ९४ ॥ महीधरन्तमायान्तं स

में गिरपड़ा ॥ ८९ ॥ इसके अनन्तर इसके शरीर में वह चक्र टूटगया जैसे कि नीलकमल पत्थर में प्राप्तहोकर टूटजाता है तदनन्तर बहुत समय से पूजित वज्रको
इन्द्रने भी छोड़ा ॥ ९० ॥ कि जिस वज्रमें दानवेन्द्र के युद्धमें इन्द्रको जीत की आशा थी शूरतासे शोभित उस तारकके शरीर में प्राप्त होकर ॥ ९१ ॥
फैलीहुई लपकोंवाला वह वज्र सौ खण्ड होकर टुकड़े २ होगया तदनन्तर बड़े वेगसे शब्द करतेहुये प्रसन्न चित्तवाले पवन ने ॥ ९२ ॥ जलती हुई अग्निके समान
प्रकाशवाले अंकुशको छोड़ा और उसके उस अंगमें वह टूटगया यह देखकर तदनन्तर पवन ने बड़े क्रोधसे फूलेहुये वृक्षोंसे संयुत कन्दरावाले चालीस कोस चौड़े

पर्वतराज को उखाडकर दानवेन्द्र के ऊपर फेंका ॥ ९३ । ९४ ॥ श्रेष्ठ दैत्यने आते हुये उस पर्वतको बालकोंकी नाईं गेंदके खेलकी तरह मुसक्यानपूर्वक बायें हाथ से पकड़लिया ॥ ९५ ॥ तदनन्तर उसीसे मारकर यमराजको गिरादिया उसके उपरान्त क्रोधसे मूर्च्छित यमराजने दण्डको उठाकर ॥ ९६ ॥ व वेगसे घुमाकर उस दुर्जय दण्डको दैत्येन्द्र के माथेपै फेंका और वह दैत्येन्द्रकेमाथेपैगिरा व हँसतेहुये दैत्यने उसको पकडलिया ॥ ९७ ॥ व क्रोधसे जलते हुये कल्पान्त में लोकोंको जलानेवाले अग्निने युद्धमें दानवेन्द्र के निमित्त असह्य शक्तिको फेंका ॥ ९८ ॥ तदनन्तर वह शक्ति सिरसाके फूलकी मालाकी नाईं इसके हृदय में शोभित हुई उस

स्मितंदैत्यपुङ्गवः ॥ जग्राहवामहस्तेन बालकन्दुकलीलया ॥९५॥ ततस्तेनैवचाहत्य पातयामासचान्तकम् ॥ दण्डंत तःसमुद्यम्यकृतान्तःक्रोधमूर्च्छितः ॥ ९६ ॥ दैत्येन्द्रमूर्द्ध्निचिक्षेपभ्राम्यवेगेनदुर्ज्जयम् ॥ सोसुरस्यापतन्मूर्ध्नि दै त्यस्तंजगृहेस्मयन् ॥ ९७ ॥ कल्पान्तलोकदहनो ज्वलनोरोषसंज्वलन् ॥ शक्तिंचिक्षेपदुर्द्धर्षां दानवेन्द्रायसंयुगे ॥ ९८ ॥ ततःशिरीषमालेव साऽस्यवक्षस्यराजत ॥ ततःखड्गंसमाकृष्य कोशादाकाशनिर्म्मलम् ॥ ९९ ॥ द्युतिभासित त्रैलोक्यं लोकपालोपिनिर्ऋतिः ॥ चिक्षेपदानवेन्द्राय तस्यमूर्ध्निपपातच ॥ २००॥ पतितश्चागमत्खड्गः सशीघ्रंशत खण्डताम् ॥ जलेशश्चततःक्रुद्धो महाभैरवरूपिणम् ॥ १ ॥ मुमोचपाशंदैत्येन्द्र भुजबन्धाभिलाषुकः ॥सदैत्यभुजमा साद्य पाशस्सद्योऽव्यपद्यत ॥ २ ॥ स्फुटितक्रकचक्रूरदशनालिरहीश्वरः ॥ ततोऽश्विनौसचन्द्रार्कौ साध्याश्चवसवश्च ये ॥ ३ ॥ यक्षराक्षसगन्धर्वास्सर्वैश्चास्त्रैःपृथग्विधैः ॥ जघ्नुर्दैत्येश्वरंसर्वे भूतयक्षामहाबलाः ॥ ४ ॥ नचास्याण्यस्यम

के उपरान्त आकाश के समान निर्मल तलवारको मियानसे खींचकर ॥९९॥ निर्ऋति लोकपाल ने भी छविसे प्रकाशित त्रिलोकवाली उस तलवार को दानवेन्द्रके लिये फेंका और वह उसके मस्तकपै गिरी ॥ २०० ॥ व गिरीहुई वह तलवार शीघ्रही सौ खण्डहोगई तदनन्तर दैत्येन्द्र की भुजाओंको बांधने की इच्छावाले वरुण ने क्रोधित होकर बडी भयानक फँसरीको छोडा और दैत्यकी भुजाओंको प्राप्त होकर वह फँसरी शीघ्रही टूटगई ॥ १।२ ॥ व सर्पराज टूटीहुई आरोंके समान दन्त पङ्क्ति वाले होगये तदनन्तर चन्द्रमा, सूर्योसमेत अश्विनीकुमार, साध्य व जो वसु देवताथे ॥ ३ ॥ व यक्ष, राक्षस, गन्धर्व इन बड़े बलिष्ठ सब भूत, यक्षादिकोंने अनेक

प्रकारके सब अस्त्रोंसे दैत्येन्द्रको मारा ॥ ४ ॥ और वज्र के समान पर्वत के सदृश इसके अंगमें अस्त्र नहीं लगते थे तदनन्तर दानवोंके स्वामी तारकासुर ने कूदकर क्रोधितहो करोड़ों देवोंको मुष्टिका व एँड़ियों से मारा उसके उस प्रकारके बलको देखकर भगवान् विष्णुजी ॥ ५।६ ॥ यह कहते हुये अन्तर्द्धान होगये कि हे महा-देवताओ! भागिये तदनन्तर भागने में आदर कियेहुये इन्द्रादिक देवता॥ ७॥ मदसे उग्र कालनेमि इत्यादिक दैत्यों से घेरे गये व बालोंको खींचकर उन्होंने प्रसन्नता से मुष्टिका व चरण प्रहारों से ॥ ८॥ रक्तकी नदीमें गिरादिया व देवमार्ग (आकाश) दिखलायागया व लोकपालों समेत देवता बांधकर खींचे गये ॥ ६ ॥ तदनन्तर

उजन्ते गात्रेवज्राचलोपमे ॥ ततोदेवानवप्लुत्यतारकोदानवाधिपः ॥ ५ ॥ जघानकोटिशःक्रुद्धो मुष्टिपार्ष्णिभिरेव च ॥ तथाविधंतस्यवीर्यमालोक्यभगवान्हरिः ॥ ६ ॥ पलायध्वंमहादेवा वदन्नन्तर्हितोभवत् ॥ शक्रादयस्ततोदेवाः पलायनकृतादराः ॥ ७ ॥ कालनेमिमुखैर्दैत्यैरुपरुद्धामदोत्कटैः ॥ मुष्टिभिःपादघातैश्चकेशेष्वाकृष्यतैर्मुदा ॥ ८ ॥ पातितारक्तसरिति देवमार्गश्चदर्शितम् ॥ बद्धाचापिह्यकृष्यन्त लोकपालैस्सहामराः ॥ ९ ॥ ततोनिनादस्संजज्ञे दैत्यानां बलशालिनाम् ॥ कोपेनपृथिवीमध्ये पातालतलवासिनाम् ॥ १० ॥ जयेतिमुदितादैत्यास्तुष्टुवुस्तारकन्तदा ॥ शङ्खांश्चपूरयामासुः कुन्देन्दुसदृशप्रभान् ॥ ११ ॥ गन्धर्वान्रुरुधुश्चोग्रान् कराघातांश्चचक्रिरे । भृशंहर्षान्विता दैत्या नेदुश्चननृतुर्मुहुः ॥ १२ ॥ ततोदेवान्पुरःकृत्वा पशुपालःपशूनिव ॥ दैत्येन्द्रोरथमास्थाय जगामसहितोसुरैः ॥ १३ ॥ महासागरकूलस्थं सतारकपुरंबली ॥ योजनद्वादशायामं ताम्रप्राकारशोभितम् ॥ १४ ॥ प्रासादैर्बहुभिःकी

पातालतल में रहनेवाले व पराक्रमसे शोभित दैत्यों का शब्द क्रोध से पृथ्वी के बीचमें हुआ ॥ १० ॥ उस समय तुम्हारी जयहो इसप्रकार प्रसन्न होतेहुये दैत्यों ने तारक की स्तुति किया व कुन्द तथा चन्द्रमा के समान शोभावाले शङ्खों को पूर्ण किया याने बजाया ॥ ११ ॥ और गन्धर्वों को घेरलिया व उग्र हाथके प्रहारों को किया और बहुतही प्रसन्नतासे संयुत दैत्योंने शब्द किया और नृत्य किया ॥१२॥ तदनन्तर जैसे पशुपालक पशुओं को आगे करताहै उसी प्रकार देवताओं को आगेकर दैत्यों समेत यह बलिष्ठ दैत्येन्द्र रथपै बैठकर महासागरके किनारे बसेहुये तारकपुरको गया जो कि अड़तालीस कोस चौड़ा व तांबेकी शहर दिवाली से शोभितथा ॥१३।१४॥

व-बहुत मन्दिरों से पूर्ण और दिव्य आश्चर्योंसे शोभित था व जिस पुर में गीत का शब्द व पंच का शब्द और विषय भोग किये जावैं ये तीन शब्द सदैव नहीं पृथक् होते थे उस पुरमें पैठकर तारक राजा अपने घरको गया ॥ १५। १६ ॥ व बड़े भारी उंछाह से वह नर नारियो से आनन्दित हुआ वहां उत्तम सभामें प्राप्त होकर राजा सिंहासन पै बैठा ॥ १७ ॥ दैत्योंसे स्तुति किया जाताहुआ व अप्सराओं से क्रीडित वह सिंहों की नाईं उत्तम आसनों पै बैठेहुये दैत्येन्द्रोंसे घिराथा ॥ १८ ॥ इसी अवसर मे कोई दिव्य स्त्री उसके आगे प्राप्त हुई जो कि अनूपरूप से संयुत और अनेकप्रकार के गहनों से भूषित थी ॥ १९॥ उसको देखकर तारकराजा विस्मय

र्णं दिव्याश्चर्योपशोभितम् ॥ यत्रशब्दास्त्रयोनैव वियुज्यन्तेनिशम्पुरे ॥ १५ ॥ गीतघोषश्चज्याघोषो भुज्यन्तांविषयांस्त्विति ॥ तत्प्रविश्यपुरंराजा जगामस्वकमालयम् ॥ १६ ॥ महोत्सवेनमहता पुंस्त्रीभ्यांप्रतिनन्दितः ॥ तत्रदिव्यांसभांराजा प्राप्यसिंहासनस्थितः ॥ १७ ॥ स्तूयमानोदितिसुतैरप्सरोभिर्विनोदितः ॥ दिव्यासनस्थैर्दैत्येन्द्रैर्वृतःसिंहैरिवप्रभुः ॥ १८ ॥ एतस्मिन्नन्तरेकाचिद्दिव्यास्त्रीतत्पुरोभवत् ॥ रूपेणानुपमानार्थां नानाभरणभूषिता ॥ १९॥ तान्दृष्ट्वातारकोराजा भृशंवैविस्मितोभवत ॥ विस्मितैस्तैर्वृतोदैत्यैः प्रोवाचेदंस्मयान्निव ॥ २० ॥ कासिदेवीममब्रूहि कामंत्वंरूपसुन्दरि ॥ त्वत्समांयोषितंनैव दृष्टवन्तःपुरावयम् ॥ २१ ॥ स्त्र्युवाच ॥ अहंत्रैलोक्यलक्ष्मीति विद्धिमान्दैत्यसत्तम ॥ अर्जितातपसाचास्मि त्वयावीर्येणचापिभोः ॥ २२ ॥ वीर्यवन्तंत्वनलसं तपस्विनमकातरम् ॥ दातारञ्चापिभोक्तारं युक्त्यासेवाम्यहंनरम् ॥ २३ ॥ भीरुंनिर्घृणमत्यर्थं साधुपीडाकरन्नरम् ॥ सर्वाभिशङ्कितंसद्यस्त्यजामि

में प्राप्त हुआ व उन विस्मित दैत्योंसे घिराहुआ वह हँसताहुआ सा बोला ॥ २० ॥ कि हे रूपसुन्दरि ! तुम कौन देवीहो मुझसे इच्छापूर्वक कहो पुरातनसमय हमलोगोंने तुम्हारे समान स्त्रीको नहीं देखाहै ॥ २१ ॥ स्त्री बोली कि हे दैत्यसत्तम ! मैं त्रिलोककी लक्ष्मीहूं यह मुझे जानो और तुमसे मैं तपस्या व पराक्रम से इकट्ठाकी गई हूं ॥ २२ ॥ पराक्रमी, निरालसी, तपस्वी, दृढ़, दाता व भोगी मनुष्यको मैं युक्ति से सेवती हूं ॥ २३ ॥ हे दितिपुत्र ! डरपुत, बड़े निर्दयी व सज्जनो को दुःखदायी

और सब ओरसे शंकित मनुष्य को मैं शीघ्रही छोडदेती हूं ॥ २४ ॥ और जब तुम्हारी पतिव्रता माता इन्द्रसे अपमान कीगई तब इसको छोडदिया था व इस समय
तुममें बसती हूं ॥ २५ ॥ तदनन्तर उस समय तारक ने उस से यह कहा कि चुपरहो और तीनोंलोकों से पूजेहुये मुखवाली वे देवी उसमें पैठगई ॥ २६ ॥ तदन-
न्तर शोभित होतीहुई दानवों की स्त्रियोंने वीर वचनों को लेकर हर्षमे दैत्याधिपति को बढ़ाया ॥ २७ ॥ और दैत्योंसे बाधेहुये बडे विकल देवता द्वारपै टिकेथे जोकि
स्त्रियोंसे व नगरवाले अन्य दैत्यो से हँसे जातेथे ॥ २८ ॥ इसी अवसरमें दैत्यके रूपमें प्राप्त व हास्य करनेवालोंके बीचमें टिकेहुये विष्णुने दो कथाओंको कहा॥२९॥

दितिनन्दन॥ २४ ॥ महेन्द्रेणचमातात्ते यदासाध्व्यपमानिता ॥ तदैवत्यक्तप्रायोमाविदानींत्वयिसंवसे ॥ २५ ॥ तार
कश्चततःप्राह विरमस्वेतितान्तदा ॥ साचाविवेशतन्देवीत्रिजगत्पूजितानना ॥ २६ ॥ ततोदैत्याधिपन्नार्यो दानवा
नांविभूषिताः ॥ वीरवाक्यान्युपादाय वर्द्धयाञ्चक्रिरेमुदा ॥ २७ ॥ देवाश्चद्वारितिष्ठन्ति बद्धादैत्यैर्भृशातुराः ॥ उपहासं
गताःस्त्रीभिर्दैत्यैरन्यैश्चनागरैः ॥ २८ ॥ एतस्मिन्नन्तरेविष्णुर्दैत्यरूपंसमास्थितः ॥ उपहासकमध्यस्थो गाथेद्वेप्राह
बुद्धिमान् ॥ २९ ॥ इदमल्पतरन्नाम यदमीषांप्रदृश्यते ॥ मातृक्रोधंस्मरन्राजा किङ्किंयत्नंकरिष्यति ॥ ३० ॥ बली
यांसंसमासाद्य नानामेघैरिवास्थितम् ॥ मर्कवत्खलनैःस्वीयैरुपायैःस्थीयतांसुराः ॥ ३१ ॥ उपहासमिषेणामुमुपदे
शंहरेर्मुखात् ॥ समाकर्ण्यततोदेवा मर्करूपेणसंस्थिताः ॥ ३२ ॥ नृत्यन्तस्तेचबहुधा दैत्यांश्चासुरयोषितः ॥ भृशंवि
नोदयामासुर्मुदाभोज्यानितेददुः ॥ ३३ ॥ विष्णुर्दैत्यप्रतीहारं ततःप्रोवाचबुद्धिमान् ॥ विनोदायमहाराज्ञो मर्कानेता

कि इनके यह बहुत थोडा कर्म प्रसिद्ध में देखपडता है क्योंकि माताके क्रोधको स्मरण करताहुआ राजा क्या क्या यत्न नहीं करैगा ॥ ३० ॥ हे देवताओ !
अनेक प्रकारके मेघोंकी नाईं स्थित बलिष्ठ के समीप जाकर बन्दरों की नाईं अपने खलरूप यत्नोंसे स्थितहोवो ॥ ३१ ॥ हँसौवा के बहाने से इस उपदेश को विष्णुके
मुखसे सुनकर तदनन्तर देवता बन्दरके रूपसे भलीभांति स्थितहुये ॥ ३२ ॥ व बहुत भांति से नाचते हुये उन्होंने दैत्यों व दैत्यों की स्त्रियोंको बहुत प्रसन्न कराया व उन
दैत्योंने हर्षसे भोजनों को दिया ॥ ३३ ॥ तदनन्तर बुद्धिमान् विष्णुजी ने दैत्य के द्वारपालक से कहा कि क्रीड़ाके लिये इन बन्दरों को महाराज तारक

से कहो ॥३४॥ तदनन्तर प्रसन्न होताहुआ द्वारपाल सभाके बीचमें पैठगया व घुटनुवोंसे पृथ्वी में प्राप्तहोकर व हाथोंके संपुट को बांधकर वह ॥ ३५ ॥ थोड़े अक्षरों से प्रकट व निर्मल वचनको बोला कि हे दैत्येन्द्र,प्रभो ! तुम्हारे द्वारपै बहुत विनोद करनेवाले बन्दरोंके गण टिकेहैं यदि इच्छाहो तो तुम देखने के योग्यहो उस वचनको सुनकर राजाने कहा कि तुम क्यों विलम्ब करतेहो ॥ ३६।३७ ॥ द्वारपालने यह वचन सुनकर उस समय कालनेमि से कहा कि महाराज इन बन्दरों को शीघ्रही देखना चाहते हैं ॥ ३८ ॥ तुम इन समस्त वानरों से राजाको प्रसन्न करिये तदनन्तर बन्दरों को लेकर कालनेमि राजा के समीप गया ॥ ३९ ॥ व बन्दरों के बीचमें वानररूप

न्प्रकीर्त्तय ॥ ३४ ॥ प्रतीहारस्ततोहृष्टः सभामध्येविवेशच ॥ सजानुभ्यांमहींगत्वा बद्ध्वाचकरसम्पुटम् ॥ ३५ ॥ उवाचानाविलंवाक्यमल्पाक्षरपरिस्फुटम् ॥ दैत्येन्द्रमर्कवृन्दानि द्वारितिष्ठन्तितेप्रभो ॥ ३६ ॥ भृशंविनोदकारीणि स्पृहाचेद्द्रष्टुमर्हसि ॥ तन्निशम्याब्रवीद्राजा किञ्चिरंक्रियतेत्वया ॥ ३७ ॥ क्षत्ताचेतिवचःश्रुत्वा कालनेमिन्तदाब्रवीत् ॥ मर्कानेतान्महाराजो द्रष्टुमिच्छतिशीघ्रतः ॥ ३८ ॥ कीशैस्समस्तैरेभिस्त्वं राजानमनुकूलय ॥ कालनेमिरुपादाय मर्कान्यातोनृपन्ततः ॥ ३९ ॥ मर्कमध्येविष्णुमर्कोयातस्त्यक्त्वाचदैहिकीम् ॥ ततस्तारकदैत्यस्य पुरतोननृतुर्भृशम् ॥ ४० ॥ मर्कादैत्यसभामध्ये हर्षनादविनोदितैः ॥ ततोतिमुदितोराजा तेषांनृत्येनसोब्रवीत् ॥ ४१ ॥ अभयंवोमर्कदेवास्तुष्टोयच्छाम्यहंत्विदम् ॥ मद्गृहेस्थीयतामेवं नचकार्यंभयंहृदि ॥ ४२ ॥ इतिश्रुत्वाविष्णुमर्कः प्रहसन्नमुमब्रवीत् ॥ राजन्विज्ञातुमिच्छामस्तवगेहान्वयंवयम् ॥४३॥ एवमुक्तःप्रहस्याहतारकोदैत्यसत्तमः ॥ त्रिभूमिकंहिमेगेहाभि

विष्णुजी देहकी गतिको छोडकर प्राप्तहुये तदनन्तर प्रसन्नता से गान शब्दके खेलोंसे बन्दरोंने दैत्योंकी सभाके बीचमें तारक दैत्यके आगे बहुतही नृत्यकिया तदनन्तर उनके नाचने से बहुतही प्रसन्न उस राजाने कहा ॥ ४०।४१ ॥ कि हे मर्कट देवताओ ! प्रसन्न होताहुआ मैं तुमलोगों को यह अभय देताहूं कि ऐसेही मेरे घर मे टिको व हृदयमें डर न करना चाहिये ॥४२॥ यह सुनकर हँसतेहुये वानररूप विष्णुजी इससे बोले कि हे राजन् ! हमलोग तुम्हारे घरके वंशको जाननेकी इच्छा करतेहैं ॥ ४३॥

ऐसा कहेहुये दैत्योत्तम तारक ने कहा कि यह जो त्रिलोक है वही त्रिभूमिक तीन स्थानोंवाला मेरा घरहै ॥ ४४ ॥ तदनन्तर वानररूप विष्णुजी ने कहा
कि यदि ऐसाहै तो अपना वचन स्मरण कीजिये हे राजन् ! निडर होकर ये वानर त्रिलोक में घूमैंगे ॥ ४५ ॥ राजा सौ अश्वमेधों से भी सत्यको विशेषकर मानताहै
हे दैत्यपते ! इस धर्मको स्मरण करतेहुये वचनको सत्य कीजिये ॥ ४६॥ तदनन्तर उस समय विस्मय में प्राप्त दैत्यने यह वचन कहा कि अहो तुम वानर जानेगये
हो सत्य कहिये कि आप कौनहैं ॥ ४७ ॥ विष्णुजी बोले कि यदि तुम्हारे कान में प्राप्तहुआ होऊं तो मैं नारायण नामकहूं और देवताओं की रक्षाके लिये वानर के

दंयद्भुवनत्रयम् ॥ ४४ ॥ हरिमर्कस्ततःप्राह यद्येवंस्ववचःस्मर ॥ त्रैलोक्येविचरन्त्वेते मर्काराजन्सुनिर्भयाः ॥ ४५ ॥
अश्वमेधशतस्यापि सत्यंराजाविशिष्यते ॥ धर्म्ममेनंस्मरन्सत्यंवचनंकुरुदैत्यप ॥ ४६ ॥ ततःसुविस्मितोदैत्यः
प्राहेदंवचनंतदा॥ मर्कश्चाहोप्रबुद्धोसिसत्यंब्रूहिचकोभवान् ॥४७॥ हरिरुवाच ॥ अहंनारायणोनामयदितेश्रोत्रमागतः॥
देवानांरक्षणार्थाय मर्करूपमुपाश्रितः ॥ ४८ ॥ ततश्चेन्मन्यतेधर्म्मस्त्वयातद्वचनंस्वकम् ॥ परिपालयतेगेहंविचरन्तु
सुरास्त्वमी ॥ ४९ ॥ अवलेपश्चराजेन्द्र नकर्त्तव्यस्त्वयाहृदि ॥ वीरोहमितिसञ्चिन्त्यपश्यतांकालजंबलम् ॥ ५० ॥ प
र्य्यैर्हन्यमानानामभिहन्तानविद्यते॥ मान्यमेतन्नरोयद्वैकर्त्ताहमितिमन्यते॥ ५१ ॥ ऋषींश्चदेवांश्चमहासुरांश्चत्रैविद्यव
द्धांश्चमहामुनींश्च ॥ कंनापदोनोभिभवन्तिकाले कालस्यवीर्य्येणनतुकर्त्तुरेतत ॥ ५२ ॥ नमन्त्रबलवीर्येण प्रज्ञयापौरुषेण

रूपमें प्राप्तहुआ ॥ ४८ ॥ इस लिये यदि तुमसे धर्म मानाजाता है तो अपना वचन पालिये कि ये देवता तुम्हारे घरमें घूमैं ॥ ४९ ॥ हे राजेन्द्र ! मैं वीरहूं यह विचार
कर तुमको हृदय में गर्व न करना चाहिये व समय से उपजाहुआ बल तुम देखो ॥ ५० ॥ क्रम या समय से मारेजाते हुये पुरुषोंका नाशक नही विद्यमान है और
यह मूर्खता है जोकि मैं कर्त्ताहूं यह मनुष्य मानताहै ॥ ५१ ॥ और ऋषि, देवता, महादैत्य व वेदत्रयीके कर्म में बँधेहुये महामुनियो व किसको समय में विपत्तियां
तिरस्कार नहीं करती हैं यह समय का बलहै कर्त्ताका नहीं है ॥ ५२ ॥ मन्त्र व पराक्रम के बलसे व बुद्धि तथा पराक्रमसे दुर्लभ वस्तुको नही पाताहै व समय २ में

सोताहुआ भी पुरुष प्राप्त होता है ॥ ५३ ॥ माता, पिताकी सेवा व देवता की पूजा और गुण व भलीभांति आचरण पुरुपको सुखदायक नहीं होता है ॥ ५४ ॥ और समय से पीड़ित मनुष्यको रक्षा करने के लिये विद्या, तपस्या, दान, मित्र व भाई लोग समर्थ नहीं होते हैं ॥ ५५ ॥ मनुष्य कालबल के विना आनेवाले अनर्थ को सैकड़ों प्रहारोंसे भी नाश करने के लिये नहीं समर्थ होते हैं ॥ ५६ ॥ हे दैत्य ! पुण्य कर्म देहकी नाईं व समय जीवकी भांति कहाजाता है और कार्योंकी सिद्धि दोनोंके संयोगमें इच्छा कीजाती है ॥ ५७ ॥ हे दैत्य ! पुरातन समय तुमसे उत्तम करोड़ों दैत्य कालरूपी पवनसे सेमरकी रुईकी नाईं दुर्दशामे फेकेगये ॥ ५८ ॥ और तुम

वा ॥ अलभ्यंलभतेकाले कालेसुप्तोपिविन्दति ॥ ५३ ॥ नमातृपितृशुश्रूषानचदैवतपूजनम् ॥ नगुणोनसमाचारःपुरुषस्यसुखावहः ॥ ५४ ॥ नविद्यानतपोदानंनमित्राणिनबान्धवाः ॥ शक्नुवन्तिपरित्रातुं नरंकालेनपीडितम् ॥ ५५ ॥ नागामिनमनर्थंहिप्रतिघातशतैरपि ॥ शक्नुवन्तिक्षपयितुमृतेकालबलंनराः ॥ ५६ ॥ देहवत्पुण्यकर्माणि जीववत्कालउच्यते ॥ द्वयोस्समागमेदैत्यकार्याणांसिद्धिरिष्यते ॥ ५७ ॥ अहोदैत्यत्वद्विशिष्टा दैत्यानांकोटयःपुरा ॥ शाल्मलीतूलवत्क्षिप्ताः कालवातेनदुर्दशाम् ॥ ५८ ॥ इदंतुलब्ध्वात्वंस्थानमात्मानंबहुमन्यसे ॥ सर्वभूतभवन्देवं ब्रह्माणमिवशाश्वतम् ॥ ५९ ॥ नचेदमचलंस्थानमनन्तंवापिकस्यचित् ॥ त्वन्तुबालिशयाबुद्ध्या ममेदमितिमन्यसे ॥ ६० ॥ अविश्वास्येविश्वसिषि मन्यसेचाध्रुवंध्रुवम् ॥ ममेयमितिमोहात्त्वं त्रैलोकीप्रियमीप्ससि ॥ ६१ ॥ नेयंतवनचास्माकं नचान्येषांस्थिरामता ॥ अतिक्रम्यबहूनन्यांस्त्वयितावदियंस्थिता ॥ ६२ ॥ कञ्चित्कालमियंस्थित्वा त्वयितारकचञ्चला ॥

इस स्थानको पाकर समस्त प्राणियो के पैदा करनेवाले सदैव रहनेवाले ब्रह्माकी नाईं अपनाको बहुत मानतेहो ॥ ५९ ॥ और किसीको यह स्थान अचल व अनन्त नहीं है व यह मेराहै इस बातको तुम मूर्खबुद्धिसे मानतेहो ॥ ६० ॥ व विश्वास न करने योग्यमें विश्वास करतेहो और विनाशवान् वस्तुको अविनाशी मानतेहो व यह त्रिलोक मेराहै इस मोहसे तुम प्रियको चाहतेहो ॥ ६१ ॥ यह त्रिलोकी न तुम्हारी न मेरी और न अन्य पुरुषोंकी अचल मानीगई है बहुत जनोंको नाघकर तब

तक यह तुममें स्थितहै ॥ ६२ ॥ हे तारक ! कुछ समय तक तुममें टिककर यह चंचल व बड़ी चपल और पुंश्चली त्रिलोकी फिर और के समीप जावैगी ॥ ६३ ॥
रत्नों समेत ओषधियों से सयुत व नदी, पर्वतादिकों सहित त्रिलोकको जिन्हों ने भोग कियाहै इस समय मैं उनको नहीं देखता हू ॥ ६४ ॥ व वीर हिरण्यकशिपु
और दुःखसे जीतने योग्य हिरण्याक्ष व प्रह्लाद और नमुचि वीर व विप्रचित्ति, विरोचन ॥ ६५ ॥ कीर्त्ति, चर, बर्हि, वातापि व इल्वल, अश्वग्रीव, शम्बर, पुलोमा
और मधुकैटभ ॥ ६६ ॥ व विश्वजित् इत्यादिक अन्य बड़े बली सब दानवेन्द्र कालसे नष्ट कियेगये क्योंकि काल बडा बलिष्ठहै ॥ ६७ ॥ सबोंने अर्ब वर्षोंतक तप

पुंश्चलीचातिचपला पुनरन्यांगमिष्यति ॥ ६३ ॥ सरत्नौषधिसम्पन्नं ससरित्पर्वतादिकम् ॥ तानिदानीन्नपश्यामि
यैर्भुक्तंभुवनत्रयम् ॥ ६४ ॥ हिरण्यकशिपुर्वीरो हिरण्याक्षश्चदुर्जयः ॥ प्रह्लादोनमुचिर्वीरो विप्रचित्तिर्विरोचनः॥६५॥
कीर्त्तिश्चरश्चबर्हिश्च वातापिरिल्वलस्तथा ॥ अश्वग्रीवःशम्बरश्च पुलोममधुकैटभौ ॥ ६६ ॥ विश्वजित्प्रमुखाश्चान्ये दा
नवेन्द्रामहाबलाः ॥ कालेनाभ्याहतास्सर्वे कालोहिबलवत्तरः ॥ ६७ ॥ सर्वैर्वर्षार्बुदंतप्तं नत्वमेकोमहातपाः ॥ सर्वेसत्य
व्रतपरास्सर्वेचासन्बहुश्रुताः ॥ ६८॥ ज्वलनप्रतिरूपेणकालेनप्रतिसंहताः ॥ मुञ्चेच्छांकामभोगेषु मुञ्चेमंश्रीभवंमदम् ॥
६९ ॥ एवंस्वराज्यनाशेत्वां शोकस्सम्पीडयिष्यति ॥ शोककालेशुचोमात्वं हर्षकालेचमाहृषः ॥ ७० ॥ अतीता
नागतेहित्वा प्रत्युत्पन्नेनवर्त्तय ॥ इन्द्रमप्यागतःकालः सदायुक्तमतन्द्रितम् ॥ ७१ ॥ त्वमप्यनचिराद्दैत्य त्वामप्युप
गमिष्यति ॥ कोहिस्थातुमलंलोके ममक्रुद्धस्यसंयुगे ॥ ७२ ॥ कालस्तुबलवान्प्राप्तस्तेननतिष्ठसितारक ॥ त्वमेवंवेत्सिमा

कियाथा व सब सत्यके नियममे तत्पर थे और सब बहुत शास्त्रोको पढ़ेथे तुम्ही एक बड़े तपस्वी नहीं हो ॥ ६८ ॥ वे सब दैत्य अग्निके समान रूपवाले कालमे
नष्टकर दियेगये कामनाओंके भोगोंमें इच्छाको छोडदो व लक्ष्मीसे उपजेहुये इस गर्वको छोडो ॥ ६९ ॥ इस प्रकार निज राज्यके नाश होजानेपर तुमको शोच पीडित
करैगा तुम शोचके समयमे मत शोचो व हर्षके समय में प्रसन्न न होवो ॥ ७० ॥ भूत, भविष्य को छोडकर उत्पन्न वस्तुमे वर्त्तमानहोवो और सदैव युक्त व निरालसी
इन्द्रके भी समीप काल आगयाथा ॥ ७१ ॥ हे दैत्य ! क्षमा कीजिये थोड़ेही समयमें काल तुम्हारे समीप भी आवैगा संसारमें मुझ क्रोधित के युद्धमे कौन खड़ेहोने के

लिये समर्थ है ॥ ७२ ॥ हे तारक! बलवान् काल प्राप्त है उसीसे तुम खड़े होतेहो हे दैत्य! तुम मुझको ऐसा जानतेहो कि मैं जो हूं व जैसे बलवालाहूं ॥ ७३ ॥ मैंने प्रतिकल्पमें करोडों दैत्योंका नाश कियाहै और प्रत्येक कल्पमें मैं ब्रह्मा इत्यादिक इस समस्त संसारको रचताहूं ॥ ७४ ॥ इस प्रकार इससमस्त संसारको मैं दृष्टि से जिलाताहूं और हे दैत्येन्द्र! सब दैत्योंसे संयुत तुमको मैं अंगुली के अग्रभागसे मारने के लिये उत्साह करताहूं परन्तु फिर धर्म का लोप न करूंगा यदि श्रेष्ठ होकर मैं ब्रह्माके वरदानात्मक धर्मका ॥ ७५ । ७६ ॥ लोप करूं तो यह धर्म किस की शरणमें जायगा मैं कर्ताहूं तुम यह जानो जो कर्त्ता

न्दैत्य योहंयादृक्पराक्रमः ॥ ७३ ॥ कल्पेकल्पेमहादैत्याःकोटिशोपहृतामया ॥ कल्पेकल्पेसृजामीदं ब्रह्मादिसकलं जगत् ॥ ७४॥ इत्थंसंजीवयाम्येतदहंसकलमीक्षणात् ॥ अहंत्वांप्रोत्सहेहन्तुं सर्वदैत्यसमायुतम् ॥ ७५ ॥ अङ्गुल्यग्रेणदैत्येन्द्रपुनर्द्धर्मंनलोपये ॥ यद्यहंप्रवरोभूत्वा धर्म्मंब्रह्मवरात्मकम् ॥ ७६ ॥ लोपयामिततःकंच धर्मोयंशरणंव्रजेत् ॥ अहंकर्तेतिमन्यस्व कर्त्तायस्तुसदाप्रभुः ॥ ७७ ॥ सोयंकालेपचेद्विश्वं वृक्षेफलमिवागतम् ॥ यैरेवकर्म्मभिस्सौख्यं दुःखंतैरेवकर्म्मभिः ॥ ७८ ॥ प्राप्नोतिपुरुषोदैत्य पश्यकालस्यचित्रताम् ॥ सर्वंकालवशादेव बोद्धव्यंधीयुतैर्नरैः ॥ ७९ ॥ स्वकर्म्मपरिपाकस्य फलंसर्वेविदुर्बुधाः ॥ तस्मात्कर्म्मदृढंकार्यं पुण्यापुण्यात्मकंचतत् ॥ ८० ॥ पुण्येनतत्र सौख्यंस्याद्दुःखंपापेननिश्चितम् ॥ इतिसंचिन्त्यदैत्येन्द्रस्ववचःपरिपालय ॥ ८१ ॥ मदुक्तवचनंसर्वं यदिमन्तुमिहार्हसि ॥ तारकउवाच ॥ मामत्रसंस्थितंदृष्ट्वा कालनेमिमुखैर्युतम् ॥ ८२ ॥ कस्येहयततेबुद्धिर्समदुष्करसंयुगे ॥ साते

कि सदैव स्वामीहै ॥ ७७ ॥ वही यह वृक्षमें आयेहुये फलकी नाईं समयमें संसारको पकाताहै जिन कर्मों से सुख होताहै उन्हीं कर्मोंसे पुरुष दुःखको पाताहै हे दैत्य! कालकी विचित्रता को देखो, बुद्धिमान् मनुष्योंको सब कालहीके वशसे जानना चाहिये ॥ ७८ । ७९ ॥ सब विद्वानोंने अपने कर्मके फलको कहाहै इससे पुण्य व पापात्मक वह कर्म पुष्ट करना चाहिये ॥ ८० ॥ उन दोनोंमें पुण्यसे सुख व पापसे दुःख निश्चय कियागयाहै हे दैत्येन्द्र! ऐसा विचारकर अपने वचनको पालिये ॥ ८१ ॥ यदि यहां मुझसे कहेहुये समस्त वचनको मानने के लिये योग्यहो तारक बोला कि यहां कालनेमि इत्यादिकों से संयुत टिकेहुये मुझको भलीभांति देखकर

मेरे इस कठिन युद्धमें किसकी बुद्धि यत्नकरैगी उसीसे मारने की इच्छावाले मृत्यु की भी बुद्धि डरतीहै ॥ ८२ । ८३ ॥ और मैं जो कहताहूं वह मेरा वचन निस्सन्देह वैसाहीहै और संसारमें चलायमान जगत् को देखकर कौन शरीरधारी वस्तुवों व देहमें विश्वास करने के लिये उत्साह करताहै व अहंकाररूप वस्तुसे इस विनाशी संसारको सदैव सामने प्राप्त व विकराल और गुप्तकालरूपी अग्निमें धराहुआ जानता हूं इसको आज करूंगा व कल करूंगा यह कहतेहुये पुरुषको ॥ ८४ । ८५ । ८६ ॥ भलीभाति प्राप्त होताहुआ काल हरलेताहै जैसे कि नदी का वेग वृक्षोंको नाश करताहै इससमय तबतक मैंने इसको देखाथा कैसे मरगया ॥ ८७ ॥ व

न०यथतेबुद्धिर्मृत्योरपिजिघांसतः ॥ ८३ ॥ ब्रवीमियच्चमद्वाक्यं तत्तथैवनसंशयः ॥ कोहिविश्वासमर्थेषु शरीरेवाशरीरभृत ॥ ८४ ॥ कर्तुमुत्सहतेलोके दृष्ट्वासंप्रस्थितंजगत् ॥ अहमर्थेनचैवैनं लोकंजानाम्यशाश्वतम् ॥ ८५ ॥ कालाग्नावाहितंघोरे गुह्येसततगोचरे ॥ इदमद्यकरिष्यामि श्वःकर्त्तास्मीतिवादिनः ॥ ८६ ॥ कालोहरतिसम्प्राप्तो नदीवेगइवाङ्घ्रिपान् ॥ इदानींतावदेवासौ मयादृष्टःकथंमृतः ॥ ८७ ॥ कालेनह्रियमाणानां प्रलापःश्रूयतेनृणाम् ॥ ईर्ष्याभिमानशोकेषु कामक्रोधभयेषुच ॥ ८८ ॥ स्पृहामोहातिवादेषु लोकःसक्तोनबुध्यते ॥ तारकउवाच ॥ गुरुंवाप्यगुरुंवापि कृत्याकृत्यंचकेशव ॥ ८९ ॥ जानामित्वामहंविष्णो सर्वभूतवरंप्रभुम् ॥ किंकुर्म्मःस्वस्वभावेन बलिनंत्वान्तुमन्महे ॥ ९० ॥ केचिद्भजन्तित्वांभक्त्या वैरेणाहेलयापरे ॥ सर्वेनुकम्प्यास्तेवश्यमन्तरात्मन्सुदेहिनाम् ॥ ९१ ॥ पुराणःशाश्वतोधर्म्मः सर्वप्राणभृतांसमः ॥ तमालम्ब्यमयामुक्ता यान्तुसर्वेदिवौकसः ॥ ९२ ॥ पुनर्स्वर्कस्वरूपेण आन्त०यंभुवनत्रये ॥

काल से हरेजातेहुये मनुष्योंका प्रलाप सुनपड़ताहै ईर्षा, अभिमान, शोच व काम, क्रोध, भयमें ॥ ८८ ॥ और इच्छा, मोह व विवादों मे लगाहुआ मनुष्य नहीं जानताहै तारक बोला कि हे केशव ! गुरु व अगुरु और कार्य व अकार्य को ॥ ८९ ॥ हे विष्णो ! समस्त प्राणियोंमें श्रेष्ठ व स्वामी तुमको मै जानताहू अपने स्वभाव से हमलोग क्या करैं परन्तु तुमको बलिष्ठ मानतेहैं ॥ ९० ॥ हे उत्तम शरीरधारियों के अन्तरात्मा ! कोई तुमको भक्तिसे व कोई वैरसे भजतेहैं व कोई अनादरसे भजते हैं वे सब अवश्य दयाकरनेके योग्य होतेहैं ॥ ९१ ॥ प्राचीन सनातनधर्म समस्त प्राणधारियोंको समानहै उसका अवलम्बन करके मुझसे छोडेहुये सब देवताजावैं ॥ ९२ ॥

और फिर वानरके स्वरूपसे तुमलोगोंको त्रिलोकमें घूमना चाहिये व यज्ञभागों की इच्छा भी न करना चाहिये यह शपथ है ॥ ९३ ॥ तारकसे ऐसा कहहुये देवता हर्षको प्राप्तहुये क्योंकि हरेहुये रोमोंवाला मेष (भेंडा) सौनिक (कसाई)से छोड़ाजाताहै यह भी लाभहै ॥ ९४ ॥ विष्णु बोले कि हे दैत्येन्द्र ! विद्या, ज्ञान व तपस्या से ... तुम तत्त्व (यथार्थ)के ज्ञाता होवो जैसे कि हाथमें आंवलाहो वैसेही प्रकट कालको तुम देखतेहो ॥ ९५ ॥ हे कालचरित्रतत्त्वज्ञ, शिवभक्त, महामते, वज्रांग ... बुद्धिमानो से चाहने योग्यहो ॥ ९६ ॥ जबतक तुम्हारी तपस्या का बल है तबतक त्रिलोकको भोगकरो व ये देवता इस शपथसे संसार में

स ... र्यासमयस्त्वयम् ॥ ९३ ॥ एवमुक्तास्तारकेण देवाहर्षप्रपेदिरे ॥ मुच्यतेहृतलोमापि मेषोला ...
... ाच ॥ दैत्येन्द्रभवतत्त्वज्ञोविद्याज्ञानतपोन्वितः ॥ कालंपश्यसिसुव्यक्तं पाणावामलकं ...
... हामते ॥ वज्राङ्गसुतधन्योसिस्पृहणीयोसिधीमताम् ॥ ९६ ॥ यावत्तेतपसो ...
... न्तिसुराजगत् ॥ ९७ ॥ इत्युक्त्वामर्कयूथेन वृतोनारायणःप्रभुः ॥
... गम्य प्रोवाचवचनंहरिः ॥ भवन्तोयातब्रह्माणं सदा ...
... इत्युक्त्वाभगवान्विष्णुस्तत्रैवान्तरधीयत ॥
... दीप्ततेजाभुवनत्रयेपि ॥ वज्राङ्गपुत्रो ...
... ॥ जम्भश्चानिर्ऋतिस्थाने ...

... गिरिपै जाकर विष्णुजीबोले
... चाहिये यह कहकर
... हुआ

वे सब पूर्वोक्त मेरी भुजाके स्थान में हैं ॥ १६ ॥ इसलिये निश्चयकर उस दुष्टात्माने मेरी भुजाओंको नष्ट करदिया हे देवताओ ! जिसने तुमलोगों का अपकार कियाहो उसको मुझसे कहनेके योग्यहो ॥ १७ ॥ देवता बोले कि हे प्रभो ! तुमने जिसको वरदिया है यह जो वज्रांग का पुत्रहै उससे हमलोग बहुतही तिरस्कृतहुये तुम यथार्थसे नहीं जानतेहो ॥१८॥ हे प्रभो! जो वह समस्त तीर्थोंवाला महीसागर का किनारा है उसको घेरकर उसने सुमेरुकी भूमि के समान किया है ॥ १९ ॥ व उसने समस्त देवताओं की सब ऋद्धियों को लेलिया है और महाभूतों के स्वरूपसे वही संसार की रक्षा करताहै ॥ २० ॥ चन्द्रमा, सूर्य, नक्षत्र व जो और देवताके

देवास्तन्ममाख्यातुमर्हथ ॥ १७ ॥ देवाऊचुः ॥ योसौवज्राङ्गतनयस्त्वयादत्तवरःप्रभो ॥ भृशंविप्रकृतास्तेन न त्वंजानासितत्त्वतः ॥ १८ ॥ यत्तन्महीसमुद्रस्य तटंसार्वकतीर्थकम् ॥ तदाक्रम्यकृतन्तेन मेरुभूमिसमंप्रभो ॥ १९ ॥ ऋद्धयस्सर्वदेवानां गृहीतास्तेनसर्वशः ॥ महाभूतस्वरूपेण जगत्पातिसएवच ॥ २० ॥ चन्द्रसूर्यौग्रहास्तारा यच्चान्यद्देवपक्षतः ॥ तच्चसर्वंनिराकृत्य स्थापितोदैत्यपक्षकः ॥ २१ ॥ वयञ्चविधृतास्तेन बहूपहसितास्तथा ॥ विष्णोः प्रसादान्मुक्ताश्च कथंचिदपिकष्टतः ॥ २२ ॥ सुरानुवाचभगवानन्तस्माच्चिन्त्यतत्त्वतः ॥ अवध्यस्तारकोदैत्यः सर्वैरपि सुरासुरैः ॥ २३ ॥ यस्यवध्यश्चनाद्यापि सजातोभुवनेपुमान् ॥ मयाचवरदानेन छन्दयित्वानिवारितः ॥ २४ ॥ तपसासहिदीप्तोभूत्त्रैलोक्यदहनात्मकः ॥ सचवव्रेवधन्दैत्यः शिशुतस्सप्तवासरात् ॥ २५ ॥ सचसप्तदिनोबालः शङ्करां शोभविष्यति ॥ सतीनामातुयादेवी विनष्टादक्षहेलया ॥ २६ ॥ साभविष्यतिकल्याणी हिमाचलशरीरजा ॥ शङ्कर

पक्षसे था उस सबको निकालकर दैत्योंका पक्ष थापा गयाहै ॥ २१ ॥ और उससे हम लोग पकड लियेगये थे व बहुत हँसेगये परन्तु किसी प्रकारसे भी कष्ट करके विष्णुकी प्रसन्नता से छूटे हैं ॥ २२ ॥ भगवान् ब्रह्माजी चित्तमें यथार्थ विचारकर देवताओंसे बोले कि सब भी देवता दैत्योंसे तारकासुर अवध्य है ॥ २३ ॥ व जिसके वध्यहै संसारमें वह पुरुष अभीतक नहीं पैदाहुआ है और मैंने वरदानसे इच्छा कराकर उसको तपस्यासे निवृत्त किया क्योंकि तपसे त्रिलोक का जलानेवाला वह हुआथा और उस दैत्यने सात दिनवाले बालकसे वध मांगा है ॥ २४ ।२५ ॥ और वह सात दिनवाला बालक शिवाश्च होगा दक्षके अपमानसे सती नामक जो

अतल निरोह (जंघस्थल) हैं और भूमि पेंडूहै व आकाश इसकी नाभिहै ॥ ७ ॥ और ज्योतिः पद (नक्षत्रों का स्थान) इन विराट् जी का वक्षस्थल है और महर्लोक ग्रीवाहै व जनलोक मुख कहाजाता है ॥ ८ ॥ व तपोलोक मस्तक है और सत्यलोक शिर कहागया है व चन्द्रमा, सूर्य नेत्रहैं और दिशायें विराट्जी के कर्ण व अश्विनीकुमार नासिका में हैं ॥ ९ ॥ व वेदवादी जनोंने ब्रह्मछिद्रमें टिके हुये परमात्मा को तुम्हैं कहाहै इस प्रकार तुम्हारे विराट् रूपको स्मरण करतेहुये जो मनुष्य उपासना करते हैं ॥ १० ॥ जन्मके बन्धन से छूटकर वे परमपद को प्राप्तहोते हैं ॥ ११ ॥ इस प्रकार स्थूल व हाथके बीचमें प्राप्त सूक्ष्म और प्रत्येक वस्तुमें

लातले ॥ महीतलञ्जघनं नाभिश्चास्यनभस्थलम् ॥ ७ ॥ ज्योतिःपदमुरःस्थानं स्वर्लोकोबाहुरुच्यते ॥ ग्रीवामहश्च वदनंजनोलोकःप्रकीर्त्यते ॥ ८ ॥ ललाटञ्चतपोलोकः शीर्षसत्यमुदाहृतम् ॥ चन्द्रसूर्यौचनयने दिशःश्रोत्रेश्विनौनसि ॥ ९ ॥ आत्मानंब्रह्मरन्ध्रस्थमाहुस्त्वांवेदवादिनः ॥ एवंयेतेविराड्रूपं संस्मरन्तउपासते ॥ १० ॥ जन्मबन्धविनिर्मुक्तास्तेयान्तिपरमंपदम् ॥ ११ ॥ एवंस्थूलंपाणिमध्यंचसूक्ष्मं भावेभावेभावितंत्वांगृणन्ति ॥ सर्वत्रस्थंत्वामतःप्राहुर्वेदस्तस्मैतुभ्यंपद्मजईड्विधेम ॥ १२ ॥ एवंस्तुतोविरञ्चिस्तुकृपयाभिपरिप्लुतः ॥ जानन्नपितदाप्राह तेषामाश्वासहेतवे ॥ १३ ॥ सर्वेभवन्तोदुःखार्ताः परिम्लानमुखाम्बुजाः ॥ भ्रष्टायुधास्तथाकस्माद्भ्रष्टाभरणवाससः ॥ १४ ॥ ममैवापकृतिर्देवा भवतांयद्विडम्बनम् ॥ यतोविराट्शरीरेमे भवन्तोबाहुसंज्ञकाः ॥ १५ ॥ यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं धार्म्मिकंचोर्ज्जितंमहत् ॥ तन्नाशाद्बाहुनाशोमे बाहुस्थानेचतेमम ॥ १६ ॥ तन्नूनंममभग्नौच बाहूतेनदुरात्मना ॥ येनवोपकृतं

होनेवाले तुमको विद्वान् लोग कहते हैं इसी से वेदने सब स्थानोंमें टिकेहुये तुमको कहाहै हे ब्रह्माजी ! उन तुम्हारे लिये हमलोग स्तुति करते है ॥ १२ ॥ इस प्रकार स्तुति कियेहुये व दयासे संयुत ब्रह्माजीने जानते हुये भी उस समय उनके समझाने के लिये कहा ॥ १३ ॥ कि दुःखसे विकल व कुम्हिलाये हुये मुख कमल वाले तथा छुटेहुये अस्त्रों व भ्रष्टहुये आभूषण, वसनवाले तुमलोग किसलिये हुये हो ॥ १४ ॥ हे देवताओ ! आपलोगों का जो तिरस्कारहुआ यह मेराही अपकारहै क्योंकि मेरे विराट् शरीरमें आपलोग बाहुसञ्ज्ञक हैं ॥ १५ ॥ जो जो प्राणी ऐश्वर्यवान् व बहुत बढ़ेहुये व धार्मिक हैं उनके नाशसे मेरी भुजाका नाश होता है और

ये सब पूर्वोक्त मेरी भुजाके स्थान में हैं ॥ १६ ॥ इसलिये निश्चयकर उस दुष्टात्माने मेरी भुजाओंको नष्ट करदिया है देवताओ ! जिसने तुमलोगों का अपकार
कियाहो उसको मुझसे कहनेके योग्यहो ॥ १७ ॥ देवता बोले कि हे प्रभो ! तुमने जिसको वरदिया है यह जो वज्रांग का पुत्रहै उससे हमलोग बहुतही तिरस्कृतहुये
तुम यथार्थसे नहीं जानतेहो ॥१८॥ हे प्रभो! जो वह समस्त तीर्थोंवाला महीसागर का किनारा है उसको घेरकर उसने सुमेरुकी भूमि के समान किया है ॥ १९ ॥ व
उसने समस्त देवताओं की सब ऋद्धियों को लेलिया है और महाभूतों के स्वरूपसे वही संसार की रक्षा करताहै ॥ २० ॥ चन्द्रमा, सूर्य, नक्षत्र व जो और देवताके

देवास्तन्ममाख्यातुमर्हथ ॥ १७ ॥ देवाऊचुः ॥ योसौवज्राङ्गतनयस्त्वयादत्तवरःप्रभो ॥ भृशंविप्रकृतास्तेन न
त्वंजानासितत्त्वतः ॥ १८ ॥ यत्तन्महीसमुद्रस्य तटंसार्वकतीर्थकम् ॥ तदाक्रम्यकृतन्तेन मेरुभूमिसमंप्रभो ॥ १९ ॥
ऋद्धयस्सर्वदेवानां गृहीतास्तेनसर्वशः ॥ महाभूतस्वरूपेण जगत्पातिसएवच ॥ २० ॥ चन्द्रसूर्यौग्रहास्तारा यच्चा
न्यद्देवपक्षतः ॥ तच्चसर्वंनिराकृत्य स्थापितोदैत्यपक्षकः ॥ २१ ॥ वयञ्चविधृतास्तेन बहूपहसितास्तथा ॥ विष्णोः
प्रसादान्मुक्ताश्च कथंचिदपिकष्टतः ॥ २२ ॥ सुरानुवाचभगवानन्तस्मिञ्चिन्त्यतत्त्वतः ॥ अवध्यस्तारकोदैत्यः सर्वैरपि
सुरासुरैः ॥ २३ ॥ यस्यवध्यश्चनाद्यापि सजातोभुवनेपुमान् ॥ मयाचवरदानेन छन्दयित्वानिवारितः ॥ २४ ॥ तप
सासहिदीप्तोभूत्त्रैलोक्यदहनात्मकः ॥ सचवव्रेवधन्दैत्यःशिशुतस्सप्तवासरात् ॥ २५ ॥ सचसप्तदिनोबालः शङ्करां
शोभविष्यति ॥ सतीनामातुयादेवी विनष्टादक्षहेलया ॥ २६ ॥ साभविष्यतिकल्याणी हिमाचलशरीरजा ॥ शङ्कर

पक्षसे था उस सबको निकालकर दैत्योंका पक्ष थापा गयाहै ॥ २१ ॥ और उससे हम लोग पकड लियेगये थे व बहुत हँसेगये परन्तु किसी प्रकारसे भी कष्ट करके
विष्णुकी प्रसन्नता से छूटे हैं ॥ २२ ॥ भगवान् ब्रह्माजी चित्तमें यथार्थ विचारकर देवताओंसे बोले कि सब भी देवता दैत्योंसे तारकासुर अवध्य है ॥ २३ ॥ व जिस
के वध्यहै संसारमे वह पुरुष अभीतक नहीं पैदाहुआ है और मैंने वरदानसे इच्छा कराकर उसको तपस्यासे निवृत्त किया क्योंकि तपसे त्रिलोक का जलानेवाला
वह हुआथा और उस दैत्यने सात दिनवाले बालकसे वध मांगा है ॥ २४ ।२५ ॥ और वह सात दिनवाला बालक शिवांश होगा दक्षके अपमानसे सती नामक जो

देवी नष्टहोगईं हैं ॥ २६ ॥ वे कल्याणकारिणी हिमाचल के शरीर से पैदा होवैंगी उनके व शिवजी के संयोग में यत्न करना चाहिये ॥ २७ ॥ व मैं भी इस कार्यके शेष कर्मका करनेवाला निरसन्देह हूंगा साक्षात् कमलसे पैदाहुये उन ब्रह्माजीसे यह कहेहुये देवता ॥ २८ ॥ ब्रह्माको प्रणामकर सुमेरु गिरिपर चलेगये जो देवता कि वानरों के रूपसे घिरेथे तदनन्तर जब देवता चलेगये तब लोकों के पितामह भगवान् ब्रह्माजीने रात्रिको स्मरण किया जोकि पहले पैदाहुई अपनी देहथी तदनन्तर रात्रि भगवती ब्रह्मा के समीप प्राप्त हुईं ॥ २६ ।३० ॥ तदनन्तर एकान्तमें उस रात्रिको देखकर ब्रह्माजी रात्रिसे बोले॥३१॥कि हे विभावरि देवि ! देवताओंका बड़ा कार्य

स्यचतस्याश्च यत्नःकार्यस्समागमे ॥ २७ ॥ अहमप्यस्यकार्यस्य शेषकर्तानसंशयः ॥ इत्युक्तास्त्रिदशास्तेन साक्षात्कमलयोनिना ॥ २८ ॥ जग्मुर्मेरुंप्रणम्येशं मर्करूपेणसंवृताः ॥ ततोगतेषुदेवेषु ब्रह्मालोकपितामहः ॥ २६ ॥ निशांसस्मारभगवान् स्वान्ततनुंपूर्वसम्भवाम् ॥ ततोभगवतीरात्रिरुपतस्थेपितामहम् ॥ ३० ॥ तांविविक्तेसमालोक्य ततोवाचविभावरीम् ॥ ३१ ॥ विभावरिमहत्कार्यं विबुधानामुपस्थितम् ॥ तत्कर्तव्यंत्वयादेवि शृणुकार्यस्यनिश्चयम् ॥ ३२ ॥ तारकोनामदैत्येन्द्रोसुरकेतुरनिर्जितः ॥ तस्याभवायभगवाञ्जनयिष्यतिचेश्वरः ॥ ३३ ॥ सतुसम्भवितातस्य तारकस्यान्तकारकः ॥ अहञ्चादौयदाजातस्तदापश्यंपुरास्थितम् ॥ ३४ ॥ अर्द्धनारीश्वरन्देवं व्याप्यविश्वमवस्थितम् ॥ दृष्ट्वातमब्रवन्देवं विभजस्वेतिभक्तितः ॥ ३५ ॥ ततोनारीपृथग्जाता पुरुषश्चतथापृथक् ॥ तस्याश्चैवांशजास्सर्वाः स्त्रियस्त्रिभुवनेश्वराः ॥ ३६ ॥ एकादशचरुद्राश्च पुरुषास्तस्यवंशजाः ॥ ताञ्नारीमहमालो

प्राप्तहुआ है वह तुम को करना चाहिये और कार्य का निश्चय सुनिये ॥ ३२ ॥ कि तारक नाम दैत्येन्द्र जो कि दैत्यों में श्रेष्ठ व नहीं जीतागयाहै उसके नाशके लिये भगवान् शिवजी पुत्र को पैदा करेंगे ॥ ३३॥ और वह उस तारक का अन्तकारक होगा व पहले जब हम पैदा हुये तब आगे खडेहुये अर्द्धनारीश्वर देव (शिव) जी को मैंने देखा जो कि संसार में व्याप्त होकर स्थित थे उन देव को देखकर भक्ति से मैंने यह कहा कि विभाग कीजिये ॥ ३४ । ३५ ॥ तदनन्तर स्त्री अलग होगई व वैसेही पुरुष भिन्न होगया उस स्त्री के अंश से उपजी हुईं सब स्त्रियां हुईं और उस पुरुष के वंश में पैदा हुये ग्यारह रुद्र पुरुष त्रिलोक के स्वामी हुये इसके

अनन्तर मैंने उस स्त्री को देखकर दक्ष पुत्रसे कहा ॥ ३६ । ३७ ॥ कि पुत्रीको लीजिये यह मुझे व तुझ को भी लोकों में पुन्नामक नरकसे रक्षा करनेवाली तुम्हारी पुत्री होगी ॥ ३८ ॥ मुझ से ऐसा कहे हुये उन दक्ष जीने उसको कन्या के स्थान में कल्पित कर सती ऐसा नाम कर भक्ति से शिवजी के लिये दे दिया ॥ ३९ ॥ तदनन्तर किसी समय पिताने उसका अपमान किया जो कि पाप मानसकर्मवाला व दुष्टात्मा व मरने की इच्छावाला और कुल में कज्जल रूप था ॥ ४० ॥ जिस प्रकार उस दक्ष के अपमान से सती देवी ने शरीर को त्याग किया ॥ ४१ ॥ व जिस प्रकार शिव जीने उस यज्ञ को विध्वंस किया वह तुम को प्रकट है और इससमय

क्य पुत्रंदक्षमथाब्रवम् ॥ ३७ ॥ भजस्वपुत्रींजगतां ममापितवापिच ॥ पुन्नामनरकात्त्रात्री पुत्रीतेभाविनीत्वियम् ॥ ३८॥ एवमुक्तोमयादक्षः पुत्रीत्वेपरिकल्पयताम् ॥ रुद्रायदत्तवान्भक्त्या नामकृत्वासतीतितिसः ॥ ३९॥ ततःकालेचकस्मिंश्चि दवमेनेचतांपिता ॥ मुमूर्षुःपापसङ्कल्पो दुरात्माकुलकज्जलः ॥ ४० ॥ अवमानेनतस्यापि यथादेवीजहौतनुम् ॥ ४१ ॥ यथायज्ञस्सचध्वस्तो भवेनविदितंहिते ॥ अधुनाहिमशैलस्य भवित्रीदुहिताचसा ॥४२॥ महेश्वरंपतिंसाच पुनः प्राप्स्यतिनिश्चितम् ॥ एतदेवत्वयाकार्यं मेनागर्भंप्रविश्यच ॥ ४३ ॥ तस्याश्छविंकुरुकृष्णां यथाकालीभवेच्चसा ॥ यथा रौद्रोपहसिता तपस्तप्स्यतिसामहत् ॥ ४४ ॥ समाप्तनियमादेवी यदाचोमाभविष्यति ॥ स्वमेवचतदारूपं सुगौरम्प्र तिपत्स्यते ॥ ४५ ॥ तयोस्सुतस्ततपसोर्भविताद्योमहान्सुतः ॥ भविष्यतिसदैत्यस्य तारकस्यविनाशकः ॥ ४६ ॥ तपसो हिविनानास्ति सिद्धिःकुत्रापिशोभने ॥ सर्वासांकर्मसिद्धीनां मूलंहितपउच्यते ॥ ४७ ॥ त्वयापिदानवादेवि देहान्निर्ग

वह हिमाचल की कन्या होगी ॥ ४२ ॥ और वह फिर निश्चय कर महादेव जी को पति पावैगी व तुम को यही करना चाहिये कि मेना के गर्भ में पैठकर ॥ ४३ ॥ उसकी छवि श्याम कीजिये कि जिस प्रकार वह कालीहोवै व जिस भाति शिवजी से हँसीहुई वह बड़ी तपस्या करै ॥ ४४ ॥ और जब पार्वतीदेवी समाप्तहुये नियमों वाली होवैंगी तब अपनेही सुन्दर गौर वर्णको प्राप्तहोंगी ॥ ४५ ॥ अच्छीभाति तपस्या कियेहुये उन दोनोंके जो बडाभारी पुत्रहोगा वह तारक दैत्यका नाशक होगा ॥ ४६ ॥ हे शोभने ! बिन तपस्या के कहीं भी सिद्धि नहीं होती है क्योंकि कर्मोंकी सब सिद्धियों की जड तप कहीजाती है ॥ ४७ ॥ हे देवि ! उस समय देहसे निकली

हुई तुमको भी संसारमें दुर्जय चण्ड मुण्ड अग्रगामीवाले दानवों को मारना चाहिये ॥ ४८ ॥ हे देवि ! जिससे तुम चण्ड व मुण्डको मारोगी उसी लिये हे देवि ! संसार में चामुण्डा ऐसी प्रसिद्ध होगी ॥ ४९ ॥ तदनन्तर हे वरदायिनि, देवि ! बहुत भांतिके आकारवाले भेदोंसे सब मे प्राप्त व कामोंको सिद्ध करनेवाली तुमको संसार पूजैगा ॥ ५० ॥ ब्राह्मण लोग ॐकार मुखवाली गायत्रीरूपिणी तुमको पूजते हैं व बड़े बली राजा लोग भी बढ़ीहुई बलदायिनी तुमको, पूजते हैं ॥ ५१ ॥ व वैश्य ऐश्वर्यरूपिणी तुम्हींको पूजते हैं और हे शुभे ! शूद्र शिवा नामक तुमको पूजते हैं मुनियों की तुम स्थिर क्षमाहो व नियमियों की भी दयाहो ॥ ५२ ॥ व

तयातदा ॥ चण्डमुण्डपुरोगाश्च हन्तव्यालोकदुर्ज्जयाः ॥४८॥ यस्माच्चण्डञ्चमुण्डञ्च त्वंदेविनिहनिष्यसि ॥ चामुण्डेतिततोलोके ख्यातादेविभविष्यसि ॥ ४९ ॥ ततस्त्वांवरदेदेवि लोकस्सम्पूजयिष्यति ॥ भेदैर्बहुविधाकारैस्सर्वगांकामसाधनीम् ॥ ५० ॥ ॐकारवक्त्रांगायत्रीं त्वामर्चन्तिद्विजोत्तमाः ॥ ऊर्ज्जितांबलदाञ्चापि राजानस्सुमहाबलाः ॥ ५१ ॥ वैश्याश्चभूतिमित्येव शिवांशूद्रास्तथाशुभे ॥ क्षान्तिर्मुनीनामक्षोभ्या दयानियमिनामपि ॥ ५२ ॥ त्वंमोहःपापचित्तानां नीतिर्नयविसर्प्पिणाम् ॥ संहर्त्रींशुम्भरूपाणांत्वंशान्तिःशुभकर्म्मणाम् ॥ ५३ ॥ त्वंभ्रान्तिर्मूढचित्तानां त्वंफलंक्रतुयाजिनाम् ॥ जलधीनांमहावेला त्वंचलीलाविलासिनाम् ॥ ५४ ॥ सम्भूतिस्त्वंपदार्थानां स्थितिस्त्वंलोकपालिनी ॥ त्वंकालरात्रिर्निश्शेषभुवनावलिनाशिनी ॥ ५५ ॥प्रियभक्तजनानन्ददायिनीत्वंविभावरि ॥ प्रसीदप्रणतानाञ्च सौम्यदृष्ट्यावलोकय ॥ ५६ ॥ इतिस्तुवन्तोयेदेवि पूजयिष्यन्तित्वांशुभाम् ॥ तेसर्वकामानाप्स्यन्ति नियतन्नात्रसं

पाप चित्तवालो के अज्ञान व नीतिसे चलनेवालों की नीति तुम्हीं हो और शुम्भसरीखे दैत्योंकी संहार करनेवाली व उत्तम कर्मोंकी शान्ति तुमहो ॥ ५३ ॥ व अज्ञानियों का भ्रम तुम्हींहो व यज्ञ करनेवालों का फल तुम्हींहो और समुद्रों की तुम मर्यादहो व विलासी पुरुषोंकी क्रीडा तुम्हींहो ॥ ५४ ॥ और तुम पदार्थों का ऐश्वर्यहो व लोकोंको पालनेवाली स्थिति तुम्हींहो और समस्त लोकपंक्तियोंको नाशनेवाली तुम कालरात्रि हो ॥ ५५ ॥ हे विभावरि ! तुम प्यारे भक्त जनोंको आनन्द देनेवालीहो व प्रणाम कियेहुये लोगोंके ऊपर प्रसन्न होवो और सौम्य दृष्टिसे देखो ॥ ५६ ॥ हे देवि ! ऐसी स्तुति करतेहुये जो लोग तुमको पूजैंगे वे निश्चय कर

समस्त कामनाओं को पावैंगे इसमें सन्देह नहीं है ॥ ५७ ॥ इस प्रकार कहीहुई रात्रिदेवी ऐसाही होगा हाथोंको जोड़े हुई यह कहकर शीघ्रता समेत उस समय प्रस-
न्नतासे हिमाचल पैचलीगई ॥५८॥ वहां रत्नोंकी भित्तियोंसे आश्रित बड़े भारी मन्दिर में पाण्डुवर्णकी छवि संयुत मुख कमलवाली उन मेनाको देखा ॥ ५९ ॥ जोकि
कुछ काले मुखवाले ऊंचे कुचोंके भारसे झुकाई जातीथीं व बड़े मोलवाले भूषणोसे भूषित स्त्रियोंसे सेवितथीं ॥६०॥ जो संसारकी माताके जन्मको देनेवाली हैं उन
के पेटमें पैठकर स्वामिकार्त्तिकेय की माताकी छविको रात्रिने क्रमसे रंग दिया ॥ ६१ ॥ तदनन्तर उत्तम मुखवाली हिमाचल की स्त्री मेनाने उत्तम ब्राह्मय मुहूर्त्तमें

**शयः ॥ ५७ ॥ इत्युक्तातुनिशादेवी तथेत्युक्त्वाकृताञ्जलिः ॥ जगामत्वरितातूर्णं तदाहिमगिरिंमुदा ॥ ५८ ॥ तत्रा
सीनांमहाहर्म्ये रत्नभित्तिसमाश्रये ॥ ददर्शमेनांतांपाण्डुच्छविवक्त्रसरोरुहाम् ॥ ५९ ॥ किञ्चिच्छ्याममुखोदग्रस्तनभा
रावनामिताम् ॥ महार्हभूषणैर्युक्तां ताभिःस्त्रीभिर्निषेविताम् ॥ ६० ॥ जन्मदायाजगन्मातुः प्रविश्यजठरान्तरे ॥
अरञ्जयच्छविन्देव्यागुहमातुर्विभावरी ॥ ६१ ॥ ततोजगन्मङ्गलदांमेनाहिमगिरेःप्रिया ॥ ब्राह्मयेमुहूर्त्तेशुभकेप्रासूयत
शुभानना ॥ ६२ ॥ तस्यान्तुजायमानायां जन्तवःस्थाणुजङ्गमाः ॥ अभवन्सुखिनःसर्वे सर्वलोकनिवासिनः ॥ ६३ ॥
अभवत्क्रूरसत्त्वानां चेतःशान्तञ्चदेहिनाम् ॥ ज्योतिषामपिचेतस्त्वमभवत्सुतरान्तदा ॥ ६४ ॥ वनाश्रिताश्चौषधयः
स्वादुवन्तिफलानिच ॥ गन्धवन्तिचमाल्यानि विमलञ्चनभोभवत् ॥ ६५ ॥ मारुतश्चसुखस्पर्शो दिशश्चसुमनोहराः ॥
विस्मृतानिचशास्त्राणि प्रादुर्भावंप्रपेदिरे ॥ ६६ ॥ प्रभावस्तीर्थमुख्यानां तदापुण्यतमोभवत् ॥ सत्येदमेचाद्यय**

संसारको कल्याण देनेवाली पार्वती जीको पैदा किया ॥ ६२ ॥ उनके उत्पन्न होने पर समस्त लोकोंके निवासी सब चराचर जीव सुखी हुये ॥ ६३॥ और दुष्ट प्राणियों
का चित्त शांत होगया व उस समय देहधारी व नक्षत्रों के भी अत्यन्त चैतन्यता हुई ॥ ६४ ॥ व वनमें प्राप्त ओषधियां व फल स्वादिष्ठ हुये और माला सुगन्धितहुये
तथा आकाश निर्मल होगया ॥ ६५ ॥ व पवन सुखस्पर्शी और दिशायें अतिमनोहर हुईं व भूलेहुये शास्त्र प्रकटताको प्राप्तहुये ॥ ६६ ॥ व उस समय मुख्यतीर्थों

का प्रभाव अत्यन्त पुण्य हुआ और सत्य, इन्द्रियनिग्रह, वेदपाठ, यज्ञ, दान व तपस्या में भी ॥ ६७ ॥ स्वामिकार्त्तिकेय जी की माताके जन्मसमय में सबकी बुद्धि हुई व आकाशमें देवता भी आनन्द से हर्षित लोचनोंवाले हुये ॥ ६८॥ व विष्णु, ब्रह्मा, इन्द्र, पवन, अग्नि इत्यादिक देवताओंने उससमय उस मेनाके घरमें फूलों की वृष्टिको छोडा ॥ ६९ ॥ और बिजुलीकी सी छविसे शोभित सुमेरु इत्यादिक मूर्त्तिधारी पर्वत उस बड़े उछाह में प्राप्तहुये ॥ ७० ॥ व समस्त समुद्र व नदियां भलीभांति आई उस समय हे भारत ! संसार में हिमाचल सब चराचर जीवोंसे सेवनीय व जानेयोग्य और पूजने योग्य हुआ और वे सब उछाह को भोगकर उस

ने यज्ञेदानेतपस्यपि ॥ ६७ ॥ सर्वेषामभवद्बुद्धिः जन्मकालेगुहारणेः ॥ अन्तरिक्षेमराश्चापि प्रहर्षोत्फुल्ललोचनाः ॥ ६८ ॥ हरिब्रह्मामरेन्द्रार्कवायुवह्निपुरोगमाः ॥ पुष्पवृष्टिंप्रमुमुचुस्तस्मिन्मेनागृहेतदा ॥ ६९ ॥ मेरुप्रभृतयश्चापि मूर्तिमन्तोमहानगाः ॥ तस्मिन्महोत्सवेप्राप्ता विद्युत्कान्त्योपशोभिताः ॥ ७० ॥ सागराःसरितश्चैव समाजग्मुश्चसर्वशः ॥ हिमशैलोभवल्लोके तदासर्वैश्चराचरै ॥ ७१ ॥ सेव्यश्चाप्यभिगम्यश्च पूजनीयश्चभारत ॥ अनुभूयोत्सवन्तेच जग्मुः स्वानालयांस्तदा ॥ ७२ ॥ ततश्चशैलजादेवी चिक्रीडेशुभगातदा ॥ देवगन्धर्वकन्याभिर्नागकिन्नरसम्भवाः ॥ ७३ ॥ मुनीनांचापियाकन्यास्ताभिःसार्द्धसुशोभना ॥ कदाचिदथमेरुस्थो वासवःपाण्डुनन्दन ॥ ७४ ॥ सस्मारमांययौचाहं संस्मृतोवासवन्तदा ॥ मान्दृष्ट्वाचसहस्राक्षः समुत्थायातिहर्षितः ॥ ७५ ॥ पूजयामासताम्पूजाम्प्रतिगृह्याहमब्रवम् ॥ महासुरमहोन्मादकालानलदिवस्पते ॥ ७६ ॥ कुशलंविद्यतेकच्चित्त्वयिचैवसनन्दने ॥ पृष्टोह्येवंमयाशक्रः प्रोवाच

समय अपने २ घरोंको गये ॥ ७१ । ७२ ॥ तदनन्तर उस समय शुभगामिनी पार्वती देवीने देवता व गन्धर्वकी कन्याओं के साथ क्रीडा किया व नाग और किन्नरों से उपजी हुई जो कन्यायीं व मुनियोंकी जो कन्यायीं उनके साथ सुन्दरी पार्वती ने क्रीडा किया हे पाण्डुपुत्र ! इसके अनन्तर किसी समय सुमेरु गिरि पै टिकेहुये इन्द्रने ॥ ७३ । ७४ ॥ मुझको स्मरण किया व उस समय याद कियाहुआ मैं इन्द्रके समीपगया और मुझको देखकर बड़े प्रसन्न इन्द्रजीने उठकर ॥ ७५ ॥ मेरा पूजन किया उस पूजनको ग्रहण कर मैंने कहा कि हे महादैत्यो के बड़ेभारी उन्माद के लिये कालाग्नि, इन्द्रजी ! ॥ ७६ ॥ क्या नन्दनवन समेत तुम्हारे कुशल विद्यमान

है और क्या नन्दनवन में कुशल है मुझसे इस प्रकार पूंछेहुये इन्द्रने हँसते हुये वचन कहा ॥ ७७ ॥ कि हे मुने ! निश्चयकर तीनोंलोकों में कुशल का अंकुर उ-
त्पन्न हुआ क्योंकि उसके फलके उदयकी लक्ष्मीमें आप स्मरण कियेगये ॥ ७८ ॥ तुम सब सम्मत निश्चयकर जानतेहो तौ भी पूछनेवाला मित्रजन आधे क्षणभर
बडे आनन्दको प्राप्त होताहै ॥ ७९ ॥ इसलिये आप पार्वतीदेवी व हिमाचल व हिमाचलकी स्त्री मेनाको शिवजी को वर सुनाइये कि जिसमें वे उन शिवजीकी रुचि
करें ॥ ८० तदनन्तर उस वचनको सुनकर मैं औषधियों व पत्थलों के स्थान वाले पर्वतोत्तम हिमाचलपै गया जोकि साक्षात् सुरेशकी नाईं है ॥ ८१ ॥ वहां उससे

**वचनंस्मयन् ॥ ७७॥ कुशलस्याङ्कुरस्तावत्सम्भूतोभुवनत्रये ॥ तत्फलोदयसम्पत्तौ यद्भवान्संस्मृतोमुने ॥ ७८ ॥ वे
त्सिसर्वंमतन्त्वंवैतथापिपरिपृच्छकः ॥ निर्वृतिंपरमांयातिनिमेषार्धंसुहृज्जनः ॥७९॥ तद्भवाञ्छैलजान्देवीं शैलेन्द्रंशै
लवल्लभाम् ॥ हरंसंश्रावयवरं यस्मात्तंरोचयन्तिते ॥ ८० ॥ ततस्तद्वाक्यमाकर्ण्य गतोहंशैलसत्तमम् ॥ ओषधिप्रस्थ
निलयंसाक्षादिवदिवस्पतिम् ॥ ८१ ॥ तत्रहैमेस्वयन्तेनमहाभक्त्यानिवेदिते ॥ महासनेपूजितोहमुपविष्टोमहासुख
म् ॥८२ ॥गृहीत्वार्घंततोमाञ्च पप्रच्छश्लक्ष्णयागिरा ॥ कुशलन्तपसःशैलो शनैःफुल्लाननाम्बुजः ॥ ८३ ॥ अहमप्य
स्यतत्प्रोच्यप्रत्यवोचाङ्गिरीश्वरम् ॥ त्वयाशैलेन्द्रपूर्वाञ्चह्यपराञ्चदिशन्तथा ॥ ८४ ॥ अभिव्याप्यास्थितवताक्रियतेप्रा
णिपालनम् ॥अहोधन्योसिविप्रेन्द्राः साहाय्येनतवाचल ॥८५॥ तपोजपव्रतस्नानैः साधयन्त्यात्मनःपरम् ॥ यज्ञाङ्गसा
धनैःकांश्चित्कन्दादिफलदानतः ॥ ८६ ॥ समुद्धरसिविप्रांस्त्वं किमतःप्रोच्यतेतव ॥ अन्येपिजीवावहुधात्वामुपाश्रि**

आपही बडीभक्ति करके बतलाये हुये सोनेके बडेभारी आसन पै पूजा कियाहुआ मैं अर्घको ग्रहणकर बडे सुखसे बैठा तदनन्तर फूलेहुये मुख कमल वाले हिमाचल
ने नम्रवाणी करके धीरेसे तपस्याकी कुशल मुझसे पूंछा ॥ ८२ । ८३ ॥ मैंने भी इससे उस कुशलको कहकर गिरिराज से कहा कि हे शैलेन्द्र ! पूर्व व पश्चिम दि-
शाको व्याप्त करके स्थितहोते हुये तुमसे जन्तुवों का पालन कियाजाता है हे अचल ! धन्यहो क्योंकि तुम्हारी सहायतासे द्विजेन्द्र ॥ ८४ । ८५ ॥ तपस्या, जप, व्रत
व स्नान व यज्ञाग के उपायों करके अपने लिये उत्तम स्थानको साधन करते हैं और कितेक ब्राह्मणों को तुम कन्द इत्यादिक फलोके दानसे उद्धार करतेहो इससे

तुम्हारे लिये क्या कहा जाय व हे भूधर ! और भी प्राणी बहुत भांति से तुम्हारे आश्रित होकर ॥ ८६ । ८७ ॥ प्रसन्न होतेहुये वर्त्तमान होते हैं जैसे कि गृहस्थ के आश्रित होकर प्राणी स्थित होते हैं और जाडा, घाम, वर्षा व नानाप्रकार के दुःखोंको सहते हुये तुम ॥ ८८ ॥ प्राणियों का उपकार करते हो ऐसेही साधुजन होते हैं हे पर्वतोत्तम ! इस से हमलोगों से तुम्हारे लिये क्या कहा जाय ॥ ८९ ॥ कि जिसकी कन्दरा में आपही शिवजी बैठे हैं हे अर्जुनजी ! ऐसी यथार्थ वाक्य मेरे कहनेपर ॥ ९० ॥ हिमाचलकी स्त्री मेना दासियों समेत देखनेकी इच्छा से मेरे समीप आई कि जिसके पीछे कन्या आई ॥ ९१ ॥ व लज्जा से झुकेहुये सब अङ्गो

त्यभूधर ॥ ८७ ॥ मुदिताःप्रतिवर्त्तन्ते गृहस्थमिवप्राणिनः ॥ शीतमातपवर्षांश्च क्लेशान्नानाविधान्सहन् ॥ ८८ ॥ उपाकरोषिजन्तूनामेवंरूपाहिसाधवः ॥ किमतःप्रोच्यतेतुभ्यमस्माभिःश्रेष्ठभूधर ॥ ८९ ॥ कन्दरंयस्यचाध्यास्ते स्वयमेवमहेश्वरः ॥ इत्युक्तवतिवाक्यञ्च यथार्थंमयिफाल्गुन ॥ ९० ॥ हिमशैलस्यमहिषी मेनाचागाद्दिदृक्षया ॥ अनुयाताढुहित्राच तथासपरिचारिका ॥ ९१ ॥ लज्जाविनतसर्वाङ्गी प्रविवेशसदोमहत् ॥ ततोमांशैलमहिषी ववन्दे प्रणिपत्यसा ॥ ९२ ॥ वस्त्रैर्निगूढवदना पाणिपद्मकृताञ्जलिः ॥ तामहंसत्यरूपाभिराशीर्भिस्समवर्द्धयम् ॥ ९३ ॥ पतिव्रताशुभाचारा सुभगावीरसूश्शुभे ॥ सदावीरवतीचापिभववंशोन्नतिप्रभा ॥ ९४ ॥ ततोहंविस्मिताक्षींच हिमवद्गिरिपुत्रिकाम् ॥ मृदुवाण्याप्रत्यवोचमेहिबालेममान्तिके ॥ ९५ ॥ ततोदेवीजगन्माता बालभावंस्वकंमम ॥ दर्शयन्ती स्वपितरं कण्ठेगृह्याङ्कमाविशत् ॥ ९६ ॥ उवाचमातातांमन्दं मुनिंवन्दाद्यपुत्रिके ॥ मुनेःप्रसादतोवश्यं पतिमाप्स्य

वाली मेनाने बडेभारी मन्दिरमें प्रवेश किया तदनन्तर उस पर्वतकी स्त्री ने गिरकर मेरा प्रणाम किया ॥ ९२ ॥ जो कि वस्त्रों से मुखको छिपाये व करकमलों को जोडेथी उसको मैंने सत्यरूपी आशीर्वादों से बढ़ाया ॥ ९३ ॥ कि हे शुभे ! पतिव्रता व शुभ आचरणोंवाली व सौभाग्यवती और वीर पुत्र पैदा करनेवाली व सदैव वीरवती और वंशकी उन्नति से शोभित होवो ॥ ९४ ॥ तदनन्तर विस्मित लोचनों वाली हिमाचलकी कन्या से मैंने कोमलवाणी करके कहा कि हे बाले ! मेरे समीप आइये ॥ ९५ ॥ तदनन्तर संसारकी माता पार्वती देवी अपनी शिशुता मुझको दिखलाती हुई पिताका कण्ठ पकडकर गोदमें बैठगई ॥ ९६ ॥ उनसे माता ने धीरे

से कहा कि हे कन्ये ! आज मुनि को प्रणाम कीजिये क्योंकि मुनिकी प्रसन्नतासे चाहेहुये पति को अवश्य पावोगी ॥ ९७ ॥ इस प्रकार कहीहुई वसन के अंचल से
छिपेहुये मुखवाली उस कन्या ने कुछ हुंकार पूर्वक कांपकर कुछ न कहा ॥ ९८ ॥ तदनन्तर उपचार के जानने वालों में श्रेष्ठ व विस्मित चित्तवाला मैं फिर देवी से
बोला कि हे शुभे ! आइये ! तुमको मनोहर रत्नोंका खिलौना दूंगा। जिसको कि मैंने बहुत दिनों से धराहै उससमय ऐसा कहीहुई वह पिताकी गोदसे बडे वेगपूर्वक
उठकर ॥ ९९ ।१००॥ मेरे चरणोंका प्रणाम करतीभई और संसारकेपूजनीय उसकोमानतेहुये मैंने उसको अपनी गोदमें लिया व उससे यह कहा कि हे बाले ! तुम्हारे

सिसम्मतम् ॥ ९७ ॥ इत्युक्तासाततोबाला वस्त्रान्तपिहितानना ॥ किञ्चित्सुहुंकृतोत्कम्पं प्रोच्यनोवाचकिञ्चन ॥
९८ ॥ ततोविस्मितचित्तोहमुपचारविदांवरः ॥ प्रत्यवोचंपुनर्देवीमेहिदास्यामितेशुभे ॥ ९९ ॥ रत्नक्रीडनकंरम्यं स्था
पितंसुचिरम्मया ॥ इत्युक्तासातदोत्थाय पितुरङ्कात्सुवेगतः ॥ १०० ॥ वन्दमानाचमेपादौ मयानीताङ्कमात्मनः ॥
मन्यतातांजगत्पूज्यामुक्तंवालेतवोचितम् ॥ १ ॥ नतत्पश्यामियत्तुभ्यं दद्म्याशीःकातवोचिता ॥ इत्युक्तेमातृवात्स
ल्याच्छैलेन्द्रमहिषीतदा ॥ २ ॥ नोदयामाससमांमन्दं ममाशिःशङ्कितातदा ॥ भगवन्वेत्सिसर्वंत्वमतीतानागतंप्र
भो ॥ ३ ॥ तदहंज्ञातुमिच्छामि कीदृशोस्याःपतिर्भवेत् ॥ श्रुत्वेतिसस्मितमुखः प्रावोचंनर्मवल्लभः ॥ ४ ॥ नजातोऽ
स्याःपतिर्भद्रे वर्त्ततेचकुलक्षणः ॥ नग्नोतिनिर्द्धनःक्रोधीवृतःक्रूरैश्चसर्वतः ॥ ५ ॥ श्रुत्वेतिसंभ्रमाविष्टो ध्वस्तवीर्योहि
माचलः ॥ मान्तदाप्रत्युवाचेदं साश्रुकण्ठोमहागिरिः ॥ ६ ॥ अहोविचित्रस्संसारो दुर्वेद्योमहतामपि ॥ सुतारत्त्वपिश्र

योग्य ॥ १ ॥ उस आशीर्वादको नहीं देखतीहू जोकि तुम्हारे लिये देऊं और तुम्हारेयोग्य कौन आशीर्वाद है ऐसा कहने पर उस समय मातृ वत्सलता से पर्वतराज की
स्त्रीने ॥ २ ॥ मेरे आशीर्वादसे शंकितहोकर उससमय मुझको धीरेसे प्रेरणाकिया कि हे भगवन्, प्रभो ! तुम भूत भविष्य सब जानतेहो ॥ ३॥ इसलिये मैं यह जाननेकी
इच्छा करती हू कि इसका पति कैसाहोगा। यह सुनकर मुसक्यान संयुत मुखवाले व हास्य प्रिय मैंने कहा ॥४॥ कि हे कल्याण कारिणी ! इसका पति पैदानहीं हुआ
है और कुलक्षणी विद्यमान है जोकि नग्न, बड़ा निर्धनी, क्रोधी और सब ओर से दुष्टजनों से घिराहै ॥ ५ ॥ यह सुनकर भ्रमसे सयुत व नष्ट बलवाले हिमाचलहुये

और उस समय आंसुवों समेत कण्ठवाले महाचल ने मुझसे यह कहा ॥ ६ ॥ कि अहो विचित्र संसार महात्माओं से भी दुःख करके जानने योग्यहै और शक्तिसे अच्छीभांति स्वीकार किया हुआ भी जो नीचोंमें दया नहीं करता है ॥ ७ ॥ निश्चयकर बडी यत्न व अनेकभातिके पुण्यों से भी मनुष्य अपने लिये बडी दुर्लभ मनुष्यता सिद्ध करता है ॥ ८ ॥ और वह विनाशी शरीर किसीप्रकार अविनाशित्वमें कल्पित कियाजाताहै व उस मनुजता में भी तुल्य नियम करनेवाली, उत्तम आचरणवती व बडे कुलमें उत्पन्न स्त्री प्रसिद्धि में दुर्लभहै जोकि पतिव्रताहोवै व उसमे भी उस स्त्रीसे धर्मका विचार दुर्लभ है ॥ ९ । १० ॥ जो धर्म कि वेदों समेत पु-

क्त्यायोवरेषुनक्कपायते ॥ ७ ॥ यत्नेनमहतातावत्पुण्यैर्बहुविधैरपि ॥ साधयत्यात्मनोलोको मानुष्यमतिदुर्लभम् ॥ ८ ॥ अध्रुवन्तद्ध्रुवत्वेच कथञ्चित्परिकल्प्यते ॥ तत्रापिदुर्ल्लभानामसमानव्रतचारिणी ॥ ९ ॥ साध्वीमहाकुलोत्पन्ना भार्यायास्यात्पतिव्रता ॥ तत्रापिदुर्ल्लभंचैतत्तयाधर्म्मविचारणम् ॥ १० ॥ सहवेदैःपुराणोक्तं जगत्त्रयहितार्थदम् ॥ एतत्सुदुर्ल्लभंयच्च तस्यायदिप्रजायते ॥ ११ ॥ तदापत्यमपत्यार्थसंयुक्तंकिलनारद ॥ एतेषांदुर्ल्लभानांहि किञ्चित्प्राप्नोतिपुण्यवान् ॥ १२ ॥ सर्वमेतदवाप्नोति एकोपियदिवानवा ॥कश्चित्केनापितन्मूलं संसारःकुरुतेनरम् ॥ १३ ॥ वासंसारस्यकोदोषः स्वकृतंयत्रभुज्यते ॥ गार्हस्थ्यञ्चप्रशंसन्ति वेदास्सर्वेपिनारद ॥ १४ ॥ नेतिकेचित्तत्रपुनः कथन्तेयदिनो गृही ॥ अतोधात्राचशास्त्रेषु सुतलाभःप्रशंसितः ॥ १५ ॥ पुनश्चसृष्टिवृद्ध्यर्थं नरकात्त्रायणायच॥ तत्रस्त्रीणांसमुत्पत्तिं

राणोंमें कहाहुआ व त्रिलोकके लिये हित वस्तुका दायकहै और यह जो बडा दुर्लभहै यदि उसके उत्पन्नहोवै ॥ ११ ॥ तो हे नारद जी ! सन्तान रूप अर्थ से सयुत पुत्र या कन्याहोना दुर्लभहै यह प्रसिद्ध है इन दुर्लभोंके बीचमें कुछ वस्तुको पुण्यवान् पुरुषपाता है ॥ १२ ॥ व इस सब वस्तुको एकभी पुरुष पाताहै और नही पाता है व संसार किसी कारणसे किसी पुरुषको उसकी मूल करताहै ॥ १३ ॥ अथवा संसारका क्या दोषहै कि जिसमें अपना कियाहुआ कर्म भोगाजाता है हे नारद ! सब भी वेद गृहस्थाश्रम की प्रशंसा करते हैं ॥ १४ ॥ और कोई नहीं फिर उस विषयमें यहहै कि यदि गृहस्थ न होवै तो वे कैसे होवैं इसलिये ब्रह्माने फिर सृष्टि बढ़नेके

लिये व नरकसे रक्षाके निमित्त शास्त्रोंमें पुत्र लाभकी प्रशंसा किया है व उस विषय में स्त्रियोंकी उत्पत्ति के विना सृष्टि नहीं होती है ॥ १५ । १६ ॥ और वह जाति स्वभावही से विचारी व दीनता युक्त होतीहै उनके ऊपर अपमान न होवै इस कारण से ब्रह्माने ॥ १७ ॥ शास्त्रोंमें बड़े फलवाला यह वचन निस्सन्देह कहाहै कि दश पुत्रोंके समान कन्याहोती है और दश पुत्रोंको बढ़ाताहुआ ॥ १८ ॥ मनुष्य जिस फलको पाता है वह एक कन्यासे मिलने योग्य है इसलिये सदैव दुःख को बढ़ानेवाली कन्या पिताके शोचने योग्य होतीहै ॥ १९ ॥ यदि वह सब वस्तुवो से पूर्ण व पति, पुत्र धनोसे संयुत होवै और तुमने इसके लिये जो कहा है वह वचन

विनासृष्टिर्नजायते ॥ १६ ॥ साचजातिःप्रकृत्यैव कृपणादैन्यभागिनी ॥ तासामुपरिमावज्ञा भवेदितिचवेधसा ॥ १७ ॥ शास्त्रेषूक्तमसंदिग्धं वाक्यमेतन्महाफलम् ॥ दशपुत्रसमाकन्या दशपुत्रान्प्रवर्द्धयन् ॥ १८ ॥ यत्फलंलभतेमर्त्य स्तल्लभ्यंकन्ययैकया ॥ तस्मात्कन्यापितुःशोच्या सदादुःखविवर्द्धनी ॥ १९ ॥ यदिस्यात्पूर्णसर्वार्था पतिपुत्रधना न्विता ॥ त्वयोक्तंचकृतेह्यस्यास्तद्वाक्यंममशोकदम् ॥ २० ॥ केनदोषेणमेपुत्री नयोग्याचाशिषांमता ॥ नजातोऽस्याः पतिःकस्माद्वर्ततेवाकुलक्षणः ॥ २१ ॥ निर्द्धनश्चमुनेकस्मात्सर्वेषांसर्वदःकुतः ॥ इतिदुर्घटवाक्यन्ते मनोमोहयतीवमे ॥ २२ ॥ इतितंपुत्रवात्सल्यात्सभार्यंशोकसम्प्लुतम् ॥ अहमाश्वासयंवाग्भिः सत्याभिःपाण्डुनन्दन ॥ २३ ॥ माशुचःशै लराजत्वं हर्षस्थानेतिपुण्यभाक् ॥ शृणुत्वंवचनंमह्यं यन्मयोक्तंह्यनर्थवत ॥ २४ ॥ जगन्मातात्वियंबाला पुत्रीतेसर्व सिद्धिदा ॥ पुराभवेभवद्भार्या सतीनाम्नाभवत्तया ॥ २५ ॥ तदस्याःकिमहंदद्मिरवेर्दीपमिवाल्पकम् ॥ सञ्चिन्त्येतिमहादे

मुझको शोचदायकहै ॥ २० ॥ और मेरी कन्या किस दोषसे आशीर्वादोंके योग्य नहीं मानीगई है व किसलिये इसका पति नही पैदाहुआ है व किस कारण कुलक्षणी है ॥ २१ ॥ और हे मुने ! किसलिये निर्धनी है व किससे सबोंको सब कुछ देनेवाला है यह तुम्हारी असम्भव वाक्यमेरे मनको मोहतीसी है ॥ २२ ॥ हे पाण्डु-पुत्र ! इस प्रकार पुत्र प्रिय होनेके कारण स्त्री समेत शोचसे डूबेहुये उन हिमाचलको मैंने सत्य वचनों से समझाया ॥ २३ ॥ कि हे शैलराज ! बड़े पुण्यभागी तुम हर्ष के स्थानमें मत शोचकरो व मेरा वचन सुनो जोकि मुझसे अनर्थ की नाईं कहागया है ॥ २४ ॥ संसार की माता व समस्त सिद्धियों की देनेवाली यह तुम्हारी

बाल कन्याहै जोकि पहले जन्ममें सतीनामक शिवजी की स्त्री हुई है ॥ २५ ॥ इसलिये मैं सूर्यको दीपककी नाईं इसे क्या अल्प आशीर्वाद देऊं यह विचारकर मैंने महादेवी को आशीर्वाद न दिया ॥ २६ ॥ और इसका पति नहीं पैदाहुआ है वह आज भी पिताकी नाईं विद्यमान है व भूत, भविष्य और वर्त्तमान को उत्पन्नकरने वाले वे महादेवजी उत्पन्न नहींहुये हैं ॥ २७ ॥ जोकि शरणागत के रक्षक व अविनाशी, शिक्षक, कल्याणकारक व परमेश्वर हैं २८ ॥ हे अचल ! जिसके चरण का सब वेद ध्यान करते हैं व सब वेदों से भी जो नहींपाये गयेहैं और ब्रह्मासे लगाकर संसार जिसका बालकके खेलकी नाईं विद्वान् कहतेहैं ॥ २९ ॥ और अशुभ शील

न्या नाशिषंदत्तवानहम् ॥ २६ ॥ जातोनास्याःपतिश्चेति वर्त्ततेद्यपितेवसः ॥ नसजातोमहादेवो भूतभव्यभवोद्भवः ॥ २७ ॥ शरण्यःशाश्वतःशास्ता शङ्करःपरमेश्वरः ॥ २८ ॥ सर्वेवेदायत्पदमामनन्तिवेदैश्चसर्वैश्चनयोपिलब्धः ॥ ब्रह्मादिनिश्वंननुयस्यशैल बालस्यचक्रीडनकंवदन्ति ॥ २९ ॥ सचामङ्गल्यशीलोपि मङ्गलायतनोहरः ॥ भविष्यतिपतिस्सोस्यास्तत्किमर्थंनुशोचसि ॥ ३० ॥ एवंश्रुत्वासभार्यस्सप्रमोदप्लुतमानसः ॥ प्रणम्यमामितिप्राह यद्येवंपुण्यवानहम् ॥ ३१ ॥ पुनःकिञ्चित्प्रवक्ष्यामि पुत्र्यामेदक्षिणःकरः ॥ उत्तानःकारणंकिञ्चिच्छ्रोतुमिच्छामिनारद ॥ ३२ ॥ इति पृष्टोस्मिशैलेन प्रावोचंकारणन्तदा ॥ सर्वदैवकरोह्यस्यास्सर्वेषांप्राणिनाम्प्रति ॥ ३३ ॥ अभयस्यप्रदातासावुत्तानस्तुकरस्ततः ॥ एषाभार्याजगद्भर्तुर्वृषाङ्कस्यमहीधर ॥ ३४ ॥ जननीसर्वलोकस्य भाविनीभूतभाविनी ॥ तद्यथाभूतमेवैषा

वाले भी वे शिवजी कल्याण के स्थानहैं वही इसके पति होवैंगे तो किसलिये शोचते हो ॥ ३० ॥ ऐसा सुनकर स्त्री समेत वे हिमाचल आनन्द से डूबेहुये मनवाले होगये व मुझको प्रणामकर यह बोले कि यदि ऐसाहै तो मैं पुण्यवान् हूं ॥ ३१ ॥ हे नारदजी ! फिर कुछ कहताहूं कि मेरी कन्याका दाहिना हाथ उतान है उसका कुछ कारण सुना चाहताहूं ॥ ३२ ॥ पर्वतसे मैं इसप्रकार पूंछागया तब कारणकहा कि इसका हाथ सब प्राणियोंको सदैवही ॥ ३३ ॥ अभयको देनेवाला है इससे यह हाथ उतानहै हे भूधर ! समस्त संसार की माता व प्राणियों को पैदा करनेवाली यह संसार के स्वामी शिवजी की स्त्री होगी इसलिये जैसा कि हुआ है वैसही शिवजी

के साथ संयोगको प्राप्तहोवै ॥ ३४ । ३५ ॥ हे पर्वतोत्तम ! तुमको विधिपूर्वक वैसाही करना चाहिये हे हिमाचल ! इस विवाह में देवताओं का बड़ाभारी कार्य है ॥
३६ ॥ ऐसा कहकर उनसे पूंछकर जाकर उस वृत्तान्त को मैंने इन्द्रसे कहा कि मुझको जो कार्य हुआथा उसको मैंने किया ॥३७॥ परन्तु हे इन्द्रजी ! इस शेषकार्य
में कामदेव पठाने योग्यहै हे अर्जुनजी ! ऐसा कहकर कलह प्यारी होनेके कारण मैं तारक के समीप गया व तारक से प्रकटतापूर्वक इस वृत्तान्तको भी कहा और
उस समय मेरे वचनसे प्रेरणा कियेहुये उन हिमाचलने भी पार्वतीजीको ॥३८।३९॥ उससमय शिवजी की आराधना करने के लिये चुपके से आज्ञा दिया और उन

योगंयातिपिनाकिना ॥ ३५ ॥ त्वयाविधेयंविधिवत्तथाशैलेन्द्रसत्तम ॥ अस्त्यत्रसुमहत्कार्यं देवानांहिमभूधर ॥ ३६॥
इतिप्रोक्त्वातमापृच्छ्य प्रावोचंवारवायतत ॥ ममाभूद्यत्तुकर्त्तव्यं तन्मयाकृतमेवहि ॥ ३७ ॥ किन्तुपञ्चशरःप्रेर्यः
कार्यशेषेचवासव ॥ इत्यादिश्यगतश्चाहं तारकंप्रतिफाल्गुन ॥ ३८ ॥ कलिप्रियत्वात्तस्यैनं वृत्तमुक्तमपिस्फुटम् ॥
हिमाद्रिरपिमेवाक्यप्रेरितःपार्वतींतदा ॥ ३९ ॥ भवस्याराधनांकर्तुं सतूष्णीमादिशत्तदा ॥ सातंपरिचचारेशं तस्यदृ
ष्ट्वासुशीलताम् ॥ ४० ॥ पुण्यतोयफलाद्यानि नियुक्तापार्वतीव्यधात् ॥ महेन्द्रोपिचतद्वाक्यात्स्मरंसस्मारभारत ॥
४१ ॥ सचतत्स्मरणाज्ज्ञात्वा वसन्तरतिसंयुतः ॥ चूताङ्कुरस्तस्सहसा प्रादुरासीन्मनोभवः ॥ ४२ ॥ तमाहवासवोधी
मान् स्मयन्निववचःशनैः ॥ उपदेशेनबहुना किन्त्वांप्रतिरतिप्रिय ॥ ४३ ॥ चित्तेवससितेनत्वं वेत्सिभूतमनोगतम् ॥
तथापित्वांवदिष्यामि स्वकार्यपरतांस्मर ॥ ४४॥ मयैकंसुमहत्कार्यं कर्तुमर्हसिमन्मथ ॥ महेश्वरंभूतनाथं सतीभार्यावि

पार्वतीजी ने उनकी सुशीलताको देखकर उन शिवजी की सेवा किया ॥ ४० ॥ व आज्ञा दीहुई पार्वती जीने पवित्र जल व फलादिकों को लाती थीं हे भारत ! उन
नारदजी के वचन से इन्द्रने भी कामदेव को स्मरण किया ॥ ४१ ॥ और वह कामदेव उनका स्मरण जानकर वसन्त व रति समेत अचानकही आम्र के अकुर
(अखुवा) से प्रकट हुआ ॥ ४२ ॥ बुद्धिमान् इन्द्र ने मुसक्याते हुये से उस कामदेव से धीरेसे कहा कि हे रतिप्रिय ! तुमको बहुत सिखलाने से क्या है याने
कुछ नहीं ॥ ४३ ॥ हे स्मर ! चित्तमें बसते हो उसी से प्राणियों के मन में प्राप्त वस्तु को जानते हो तिसपर भी तुम से अपने कार्यकी आवश्यकताको कहूंगा ॥४४॥

हे कामदेव ! तुम मेरा एक बडा भारी कार्य करने के योग्य हो कि सती स्त्रीसे वियोगी भूतनाथ महादेवजी को ॥ ४५ ॥ युक्त कीजिये क्योंकि हिमाचल के घर मे पैदाहुई अविनाशी पार्वती देवी फिर युक्त करने योग्य हैं और प्रसन्न होतेहुये शिवदेवजी तुम्हारे बड़े मनोरथको करैंगे ॥ ४६ ॥ कामदेव बोला कि हे देवेन्द्र ! यह सत्य है परन्तु वे शिव देवजी तपस्या में स्नेह किये हैं और मनुजी ने कहा है कि तेज क्लेश देने योग्य नही है ॥ ४७ ॥ और ब्राह्मण लोग वेदान्तों में बार २ मेरी निन्दा करते हैं कि बहुत भोजन करनेवाला व बड़ा पापी यह कामदेव बड़ी भारी अग्नि है ॥ ४८ ॥ व नित्यही शत्रु इस कामदेवसे ज्ञानियों का ज्ञान आच्छा-

योजितम् ॥ ४५ ॥ संयोजयपुनर्योज्या हिमाद्रिगृहजाव्यया ॥ देवीदेवश्चतुष्टस्ते करिष्यतिमहेप्सितम् ॥ ४६ ॥ नारदउवाच ॥ अलीकमेतद्देवेन्द्र सहिदेवस्तपोरतिः ॥ नात्यासादयितव्यानितेजांसिमनुरब्रवीत् ॥ ४७ ॥ वेदान्तेषुचमांविप्रा गर्हयन्तिपुनःपुनः ॥ महाशनोमहापाप्मा कामोयमनलोमहान् ॥ ४८ ॥ आवृतंज्ञानमेतेन ज्ञानिनांनित्यवैरिणा ॥ तस्मादयंसदात्याज्यः कामोहिरिवसत्तमैः ॥ ४९ ॥ एवंशीलस्यमेकस्मात्प्रतुष्यतिमहेश्वरः ॥ मद्यपस्येवपापस्य वासुदेवोजगद्गुरुः ॥ ५० ॥ इन्द्रउवाच ॥ मैवंब्रूहिमहाभागत्वंविनाकःपुमान्भुवि ॥ धर्म्ममर्थन्तथाकामं मोक्षंवाप्राप्तुमीश्वरः ॥ ५१ ॥ यत्किञ्चित्साध्यतेलोकैर्मूलंतस्यचकामना ॥ कामनांहिविनासाध्यं यदिकिञ्चिद्ब्रवीतुमे ॥ ५२ ॥ मोक्षोमयासाधनीयश्चित्तेनस्मरकामिना ॥ कथंकामंविनिन्दन्ति तस्मात्तेमोक्षसाधकाः ॥ ५३ ॥ सत्यञ्चापिश्रुतेर्वा

दित होता है इस लिये श्रेष्ठ पुरुषों से यह कामदेव सदैव त्यागने योग्य है ॥ ४९ ॥ इस स्वभाववाले मुझ पर कैसे शिवजी प्रसन्न होवैंगे जैसे कि मदिरा पीनेवाले पापी के ऊपर संसार के गुरु विष्णु जी नहीं प्रसन्न होते हैं ॥ ५० ॥ इन्द्रजी बोले कि हे महाभाग ! ऐसा मत कहिये पृथ्वी मे तुम्हारे विना कौन पुरुष धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष को पानेके लिये समर्थ है ॥ ५१ ॥ मनुष्यों से जो कुछ साधन कियाजाता है उसकी जड़ कामना है यदि कामना के विना कुछ साधन करने योग्य हो तो मुझसे कहिये ॥ ५२ ॥ हे कामदेव ! मुझसे कामी चित्त करके मोक्ष साधने योग्य है इस लिये मोक्ष साधन करनेवाले काम को वे मोक्ष साधन करनेवाले कैसे

निन्दा करते हैं ॥ ५३ ॥ हे कामदेव ! वेदका भी वचन सत्य है कि तुम्हारा रूप तीन प्रकारका मानागयाहै तामस, राजस व सात्त्विक भी है ॥ ५४ ॥ कामनाके अयोग से
तुम्हारा वह रूप तामस है और सुखकी बढ़ती से इच्छा में तुम्हारा वह राजसरूप है ॥ ५५ ॥ व जितने अर्थ के लिये जो काम है वह तुम्हारा सात्त्विकरूपहै इसलिये
तुम्हारे इनतीनों रूपोंको जो न उपासना करताहो उसको कहिये ॥५६॥ तुम साक्षात् (प्रत्यक्ष) परमपूज्यहो हम लोगोंका यह कार्यकरो अथवा दुःखित देखकर साधारण
पुरुषों को भी पण्डित अपने प्राणों से भी पालतेहैं यह बड़ा भारी उत्तम फलहै ऐसा विचारकर तुम प्रकटही मेरा कार्य सब प्रकारसे कीजिये ॥ ५७ । ५८ ॥ यह सुनकर

क्यं तवरूपंत्रिधामतम् ॥ तामसंराजसंचैव सात्त्विकंचापिमन्मथ ॥ ५४ ॥ अयुक्तितःकामनया रूपंतत्तामसन्तव ॥
सुखवृद्ध्यास्पृहायाञ्च रूपंतद्राजसन्तव ॥ ५५ ॥ केवलंयावदर्थार्थं तद्रूपंसात्त्विकन्तव ॥ तत्तेरूपत्रयमिदं ब्रूहिनोपास
तेहियः ॥ ५६ ॥ त्वंसाक्षात्परमःपूज्यः कुरुकार्यमिदंहिनः ॥ अथवापीडितान्दृष्ट्वा सामान्यानपिपण्डिताः ॥ ५७ ॥ स्व
प्राणैरपित्रायन्ति परमेतन्महत्फलम् ॥ इतिसंचिन्त्यत्वंकार्यं सर्वथाकुरुनःस्फुटम् ॥ ५८ ॥ इत्याकर्ण्यतथेत्युक्त्वा व
सन्तरतिसंयुतः ॥ पिकादिसैन्यसम्पन्नो हिमाद्रिंप्रययौस्मरः ॥ ५९ ॥ तत्रापश्यत्स्मरःशम्भोः पुण्यमाश्रममण्डल
म् ॥ नानावृक्षसमाकीर्णं शान्तसत्त्वसमाकुलम् ॥ ६० ॥ तत्रापश्यत्त्रिनेत्रस्य वीरकन्नामद्वारपम् ॥ यथासाक्षान्महे
शानं गणांश्चायुतशस्सच ॥ ६१ ॥ ददर्शचमहेशानं नासाग्रकृतलोचनम् ॥ देवदारुद्रुमच्छायावेदिकामध्यमाश्रि
तम् ॥ ६२ ॥ समकायंसुखासीनंसमाधिस्थंमहेश्वरम् ॥ निस्तरङ्गंविनिर्गृह्यस्थितमिन्द्रियगोचरान् ॥ ६३ ॥ आत्मानमात्म

बहुत अच्छा ऐसा कहकर वसन्त व रति समेत तथा कोकिलादिक सेनासे संयुत कामदेव हिमाचल पै गया ॥ ५९ ॥ वहां कामदेव ने अनेक वृक्षों से व्याप्त व
शान्त प्राणियों से भरेहुये पुण्यदायक शिवजी के आश्रममण्डल को देखा ॥ ६० ॥ और उसने वहां त्रिलोचनजीके वीरक नामक द्वारपाल व हज़ारों गणों को वैसेही
देखा जैसे कि साक्षात् शिवजी होवैं ॥ ६१ ॥ और नासिका के अग्रभाग में किये हुये लोचनोंवाले शिवजी को देखा जो कि देवदारु वृक्षकी छायामें वेदिका के बीच
बैठे हुये थे ॥ ६२ ॥ व जो महादेव कि सीधे शरीरसे सुखपूर्वक बैठेहुये व समाधि में टिके तथा इन्द्रियों के विषयों को रोंककर अचल बैठे थे ॥ ६३ ॥ व चित्त से

परमात्मा में पैठेहुये व तपस्या के निधान थे उस प्रकारके उन शिवदेव को देखकर वह कामदेव भीतर भेदकरने के लिये यत्नवान् हुआ ॥ ६४ ॥ व भँवरही के बहाने से कामदेवने मनमें प्रवेश किया इसी अवसर में खुलेनयनोंवाले शिवदेवजीने ॥६५॥-अनुरागी मनवाले होकर पर्वतराज की कन्या का स्मरण किया और वीरक से बतलाई हुई महाभाग्यवती उन पार्वतीजी ने उसी प्रकार उस समय में प्रवेश किया जिस भांति कि सदैव समीप आतीथी तदनन्तर इन शिवदेवजी ने उस के मनको अनुरागी देखकर ॥ ६६ । ६७ ॥ व लीलापूर्वक पकड़कर अपने पीछे देखा तब तक धनुष को खींचे हुये रति के प्यारे कामदेव को देखा ॥ ६८ ॥ तदनन्तर

नादेवं प्रविष्टंतपसान्निधिम् ॥ तन्तथाविधमालोक्य सोन्तर्भेदाययत्नवान् ॥ ६४॥ भ्रमस्यैवेतिव्याजेन विवेशमदनोमनः ॥ एतस्मिन्नन्तरेदेवो विकासितविलोचनः ॥ ६५ ॥ सस्मारनगराजस्य तनयांरक्तमानसः ॥ निवेदितावीरकेण विवेशचगिरेस्सुता ॥ ६६ ॥ तस्मिन्कालेमहाभागा सदायद्वदुपैतिसा ॥ ततस्तस्यामनश्चायमनुरक्तमवेक्ष्यच ॥ ६७ निगृह्यलीलयादेवः स्वकंपृष्ठमवैक्षत ॥ तावदाकृष्टधनुषमपश्यतरतिप्रियम् ॥ ६८ ॥ ततश्चलज्जयादेवो नानास्थानेषुसोगमत् ॥ ६९ ॥ तावत्पश्यतिपृष्ठस्थमाकर्णधनुषंस्मरम् ॥ सनदीपर्वतांश्चैव आश्रमान्सरसीस्तथा ॥ ७० ॥ परिभ्रमन्महादेवः पृष्ठस्थंतमवैक्षत ॥ जगत्रयंपरिभ्रम्य पुनरागात्स्वमाश्रमम् ॥ ७१ ॥ पृष्ठस्थमेवतंवीक्ष्य निःश्वासंमुमुचेहरः ॥ ततस्तृतीयनेत्रोत्थवह्निनानाकवासिनः ॥ ७२ ॥ ज्वलतागमितःकामो भस्मत्वंपाण्डुनन्दन ॥ सतुतंभस्मसात्कृत्वाहरनेत्रोद्भवोनलः ॥ ७३ ॥ व्यजृम्भतजगद्दग्धुं ज्वालापूरितदिङ्मुखः ॥ ततोभवोजगद्धेतोर्व्यभजज्जातवेद

वे शिवदेव जी लज्जासे अनेक भांति के स्थानोंमें गये ॥ ६९ ॥ तबतक पीठ में प्राप्त व कानतक धनुषको खींचेहुये कामदेव को देखतेभये व नदी, पर्वत, आश्रम व तडागों में घूमते हुये उन शिवदेव जी ने पीठमें प्राप्त उस कामदेवको देखा व तीनोंलोकमें घूमकर फिर अपने आश्रम-को आये ॥ ७० । ७१ ॥ व पीठमे टिके ही हुये उस कामदेव को देखकर शिवजी ने श्वासको छोड़ा तदनन्तर हे पाण्डुपुत्र ! तीसरे नेत्रसे उठी व जलतीहुई अग्निसे कामदेव भस्मताको प्राप्तहोगया और शिवजी के नेत्रसे उपजीहुई वह अग्नि उस कामदेव को भस्मकर ॥ ७२ । ७३ ॥ संसारको जलाने के लिये बढ़ी कि जिसकी ज्वालाओं से दिशाओं के मुख पूर्णहों-

गये तदनन्तर शिवदेवजी ने संसारके लिये अग्निका विभाग किया ॥ ७४ ॥ व अहंकार समेत मनुष्य, चन्द्रमा, पुष्प व गीत व भ्रमर तथा कोकिलाओंके सुखों और विहारों में कामाग्नि को स्थापित किया ॥ ७५ ॥ दुःखसे ओषधि करने योग्य व क्लेशदायक वह अग्नि उन वस्तुवों की प्राप्ति में कामियों के स्नेहसंयुत हृदयको निरन्तर जलाती है ॥ ७६ ॥ महादेवकी ज्वालाओंसे भस्म कियेहुये कामदेवको देखकर प्रियसे वियोगिनी रतिने उदास होकर विलापकिया ॥७७॥ व बहुत विलाप करती हुई रति चैत्रमास से समझाई गई व रतिका विलाप सुनकर देवदेव शिवजी ॥ ७८ ॥ कामकी स्त्रीको देखकर बड़ी कृपासे बोले कि हे कल्याणकारिणी ! बिन

सम् ॥ ७४ ॥ साहङ्कारेजनेचन्द्रेसुमनस्यथगीतके ॥ भृङ्गेषुकोकिलास्येषुविहारेषुस्मरानलम् ॥ ७५ ॥ तत्प्राप्तौस्नेहसंयुतं कामिनांहृदयंकिल ॥ ज्वालयत्यनिशंसोग्निर्दुश्चिकित्स्योऽसुखावहः ॥ ७६ ॥ विलोक्यहरनिश्वासज्वालाभस्मीकृतंस्मरम् ॥ विललापरतिर्दीना विधुराबन्धुनासह ॥ ७७ ॥ विलपन्तीसुबहुशो मधुनापरिसान्त्विता ॥ रत्याःप्रलापमाकर्ण्य देवदेवोवृषध्वजः ॥ ७८ ॥ कृपयापरयाप्राहकामपत्नींनिरीक्ष्यच ॥ अमूर्त्तोपिह्ययंभद्रे कार्यंसर्वंकरिष्यति ॥ ७९ ॥ रतिकालेध्रुवंबाले करिष्यतिनसंशयः ॥ यदाविष्णुश्चभविता वासुदेवात्मकोविभुः ॥ ८० ॥ तदातस्यसुतोयंस्यात्सपतिस्तेभविष्यति ॥ ८१ ॥ साप्रणम्यततोरुद्रमितिप्रोक्तारतिस्ततः ॥ जगामस्वेच्छयागत्या वसन्तादिभिरन्विता ॥ १८२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेकामदेवभस्मवर्णनंनामैकोनविंशोऽध्यायः १९ ॥

अर्जुनउवाच ॥ देवर्षेवर्णितंचेदं कथापीयूषमादरात ॥ पुनरेवमुनेब्रूहियद्दिवेत्तिमहेश्वरः ॥ १ ॥ कथमापसतींभा

शरीरवाला भी यह सब कार्य करैगा ॥ ७९ ॥ व हे बाले ! रतिके समय में निश्चय कर समस्त काम करैगा इसमे सन्देह नहीं है और जब वसुदेवके पुत्र विष्णुजीहोवैंगे ॥ ८० ॥ तब यह उनका पुत्र होवैहै वही तुम्हारा पति होवैगा ॥ ८१ ॥ तदनन्तर ऐसा कहीहुई वह रति शिवजीको प्रणामकर उसके उपरान्त वसंतादिकों समेत अपनी चाहीहुई गतिसे चलीगई ॥ १८२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायाकामदेवभस्मवर्णनंनामैकोनविंशोऽध्यायः १९ ॥

दो० । महादेव पति होन हित पारवती तपकीन । सोइ बीस अध्यायमें वर्णित कथा नवीन ॥ अर्जुन बोले कि हे नारदजी ! यह कथामृत तुमसे वर्णनकियाजाता

हे बाले ! शरीरको छोड़नेकी इच्छावाली तुम नहीं समझतीहो ॥ ५७ ॥ जिसलिये कि मनुष्यों में कामदेव वाम (कठिन) होताहै इससे सबोंके चाहने योग्यहो और किसलिये शरीरको दुःखित करतीहो ॥ ५८ ॥ व तुमने शिवजी को नहीं जानाहै जोकि नग्न, त्रिशूलधारी, प्रेत गणोंसे घिरे व श्मशान में रहनेवाले और भस्मको लगाये व बैल जिनकी सवारी है ॥ ५९ ॥ और हाथीके चर्मको धारे व सांपों से शोभित अंगवाले और जटाओंको धारे व विरूपनयन और निर्गुण हैं वे कैसे तुम्हारे योग्य हैं ॥ ६० ॥ कुल व शीलवती स्त्री के वरोंके जो गुण विद्वानों से कहेगये हैं उन में एकभी शिवजी के नहीं है इससे वे शिवजी तुम्हारे योग्य नही हैं ॥ ६१ ॥

तः ॥ स्पृहणीयासिसर्वेषां कथंपीडयसेवपुः ॥ ५८ ॥ अविज्ञातस्त्वयानग्नःशूलीप्रेतगणावृतः ॥ श्मशाननिलयोभस्मो
द्धूलनोवृषवाहनः ॥ ५९ ॥ गजाजिनीद्विजिह्वेभ्योलंकृताङ्गोजटाधरः ॥ विरूपाक्षःकथङ्कारं निर्गुणःस्यात्तवोचितः ॥
६० ॥ गुणायेकुलशीलाया वराणामुदितावुधैः ॥ तेषामेकोपिनैवास्ति नास्तितन्नोचितस्सते ॥ ६१ ॥ शोचनीयतमापू
र्वमासीत्पार्वतिकौमुदी ॥ तमोवृताद्वितीयासित्वन्तुतत्सङ्गमाशया ॥ ६२ ॥ तपोधनास्सर्वसमा वयंयद्यपिपार्वति ॥ दु
नोत्येवतवारम्भः शूलिनोयदसत्क्रियाः ॥ ६३ ॥ वृषभारोहणंवासः श्मशानेपाणिसंग्रहः ॥ सव्यालपाणिनाक्षौम
गजत्वग्बन्धनःकथम् ॥ ६४ ॥ जनहास्यकरंसर्वं त्वयारब्धमसाम्प्रतम् ॥ स्त्रीस्वभावाद्भूतपतिः कथंचाभिमतस्तव ॥
६५ ॥ निवर्त्तयमनस्तस्मादस्मात्सर्वविरोधिनः ॥ मृगाक्षिमदनारातेर्मर्कटाक्षस्यपर्यये ॥ ६६॥ विरुद्धवादिनंचैवं ब्रह्म

हे पार्वती जी ! पहले अन्धकार से घिरीहुई उजियाली बहुत शोचने योग्य थी और उसके संयोगकी आशासे दूसरी तुमहो ॥ ६२ ॥ हे पार्वती जी ! तपस्यारूप धनवाले हमलोग तपस्वी यद्यपि सबोंमे समान होतेहैं तथापि तुम्हारा प्रारम्भ दुःख देताहै क्योंकि शिवजीके कर्म अशुभ हैं ॥ ६३ ॥ कि बैलकी सवारी व श्मशानमें बास और जो रेशमी वसनकी नाईं हाथीके चर्मको बांधे हैं उनके सर्पसयुत हाथ से तुम्हारा पाणिग्रहण कैसे होगा ॥ ६४ ॥ तुमने स्त्री के स्वभावसे मनुष्यों के हास्यकारक सब अयोग्यको प्रारम्भ कियाहै नहीं तो वे प्रेतपति तुमसे कैसे चाहेजाते ॥ ६५ ॥ इस लिये हे मृगनयनि ! सबोंके विरोधी इन शिवजीसे मनको लौटारिये

कामदेवके वैरी व मर्कटाक्ष शिवजी के विषयमें ॥ ६६ ॥ विरुद्ध कहनेवाले ब्रह्मचारी शिवजी को देखकर देवीने गद्गद समेत वचन कहा ॥ ६७ ॥ कि हे ब्राह्मण ! शिवजी में विरोध बुद्धिवाले मतहोवो क्योंकि देव देव शिवजी की निन्दासे पुरुष बड़े नरकमें प्राप्तहोता है ॥ ६८ ॥ तुम उन शिवजीका कर्म भलीभांति नहीं जानते हो हे ब्राह्मण ! सुनिये कि जिस प्रकार तुम इस पापसे छूटोगे ॥ ६९ ॥ सबलोकों के वे शिवजी आदिभूत हैं इससे उनका वंश कौन जानता है व सब संसार जिन का रूपहै उसी से नग्न कहेजाते हैं ॥ ७० ॥ व ऐश्वर्य विभूति कहेगये हैं उनको धारण करते हैं इससे वे भूतिधारी हैं और वृष धर्म ऐसा कहागया है उसपै सवार

चारिणमीश्वरम् ॥ निशम्यकुपितादेवी प्राहवाचंसगद्गदम् ॥ ६७ ॥ मामाब्राह्मणभूयास्त्वं विरुद्धमतिरीश्वरे ॥ महतमोयातिपुमान् देवदेवस्यनिन्दया ॥ ६८ ॥ नसम्यगभिजानासि तस्यदेवस्यचेष्टितम् ॥ शृणुब्राह्मणपापात्त्वं यथास्मात्परिमुच्यसे ॥ ६९ ॥ आदिस्ससर्वजगतां कोऽस्यवेदान्वयन्ततः ॥ सर्वंजगद्यस्यरूपं दिग्वासाःकीर्त्यतेततः ॥ ७० ॥ भूतयःकथितोभूतिस्तांबिभर्त्तिसभूतिभृत् ॥ वृषोधर्म्मइतिप्रोक्तस्तमारूढस्ततोवृषी ॥ ७१ ॥ सर्पाश्चदोषाःक्रोधाद्यास्तान्बिभर्त्तिजगन्मयः ॥ नानाविधान्कर्म्मयोगान् जटारूपान्बिभर्त्तिसः ॥ ७२ ॥ वेदत्रयीत्रिनेत्राणि निर्गुणं त्रिगुणंवपुः ॥ भस्मीकरोतियद्देवस्त्रिपुरारिस्ततस्मृतः ॥ ७३ ॥ एवंविधंमहादेवं विदुर्येसूक्ष्मदर्शिनः ॥ कथंकारंहितेनाम भजन्तेनैवतंहरम् ॥ ७४ ॥ अथबिभ्येतिसंसारात्सर्वोविप्रयतोजनः ॥ सर्वोविमृश्यकुरुते विमृश्यैतन्मयाकृतम् ॥ ७५ ॥ शुभंवाप्यशुभंवाशु त्वमप्येनंप्रपूजय ॥ एवंब्रुवंत्यांतस्यान्तु किञ्चित्प्रस्फुरिताधरम् ॥ ७६॥ विज्ञायतंसखीमाह

हैं इससे वृषी हैं ॥ ७१ ॥ और सर्प क्रोधादिक दोषहैं जगन्मय शिवजी उनको धारण करते हैं और वे शिवजी जटारूपी अनेक प्रकार के कर्मयोगो को धारण करते हैं ॥ ७२ ॥ व जो तीन नेत्रोंवाले सदाशिव जीहैं ये ऋग् यजुः व सामवेदको धारण करते हैं और उनका त्रिगुण शरीर निर्गुण है और जिसलिये त्रिलोकको भस्म करते हैं उसीकारण त्रिपुरारि कहेगये हैं ॥ ७३ ॥ जो सूक्ष्मदर्शी है वे इस प्रकार के महादेवजी को जानते हैं और वे कैसे उन शिवजी को नहीं भजते हैं ॥ ७४ ॥ हे विप्रजी ! अथवा जिसलिये सब मनुष्य संसार (जन्म, मरण) से डरताहै व विचारकर करताहै उसीकारण मैंने विचारकर यह किया ॥ ७५ ॥ शुभहो या अशुभ

भी हो परन्तु तुमभी शीघ्रही इन शिवजी को पूजो ऐसा उन पार्वती जी के कहने पर कुछ चलते हुये ओंठोंवाले ॥ ७६ ॥ उस ब्राह्मण को जानकर पार्वतीजी सखी से बोलीं कि हे सखी यहकुछभी कहनेकी इच्छावाला ब्राह्मण मनाकिया जावै क्यों कि बडे दूषणों को कहनेवाला केवल पापभागी नहीं होताहै किन्तु सुननेवाला भी होता है इसमें सन्देह नहीं है अथवा ब्राह्मणोंके साथ विवादसे से मेरा क्या कार्यहै ॥ ७७।७८ ॥ कानोंको मूंदकर हमचली जावैगी जो जैसा हो वह वैसाहोवै यह कहकर उठकर दोनोंकानोंको मूंदकर जब पार्वतीजी चलीं तब ॥ ७९ ॥ स्वरूपको प्राप्तहोकर सदाशिवजी ने वसन पकडलिया तदनन्तर उन सदाशिवजीको देखकर परमेश्वरी पार्वतीजी

किमप्येषविवक्षुकः ॥ वार्यतामालिविप्रोयं महद्दूषणभाषकः ॥ ७७ ॥ नकेवलंपापभाजी श्रोतावैस्यान्नसंशयः ॥ अथवाकिञ्चनःकार्यं वादेनब्राह्मणैस्सह ॥ ७८ ॥ कर्णौपिधाययास्यामो यथायःस्यात्तथास्तुसः ॥ इत्युक्त्वोत्थायगच्छन्त्यां पिधायश्रवणावुभौ ॥ ७९ ॥ स्वरूपंसमुपाश्रित्यजगृहेवसनंहरः ॥ ततोनिरीक्ष्यतन्देवं संभ्रान्तापरमेश्वरी ॥ ८० ॥ प्रणिपत्यमहेशानं तुष्टावावनताउमा ॥ प्राहताञ्चमहादेवो दासोस्मितवशोभने ॥ ८१ ॥ तपोद्रव्येणक्रीतश्च समादिश यथेप्सितः ॥ देव्युवाच ॥ मनसस्त्वंप्रभुःशम्भो दत्तंतच्चमयातव ॥ ८२ ॥ वपुषःपितरावेतौ सन्मानयितुमर्हसि ॥ श्रीमहादेवउवाच ॥ पित्राहितेप्रतिज्ञातं दृष्ट्वात्वांरूपशालिनीम् ॥ ८३ ॥ वालांस्वयंवरेपुत्रीमहंदास्यामिनान्यथा ॥ तत्तस्यसर्वमेवास्तु वचनंत्वंहिमाचलम् ॥ ८४ ॥ स्वयंवरार्थंसुश्रोणिप्रेरयत्वांवृणेततः ॥ इत्युक्त्वातांमहादेवः शुचिःशु

संभ्रम में प्राप्तहुई ॥ ८० ॥ व नीचेझुंकीहुई पार्वतीजीने महादेवजीको प्रणामकर स्तुति किया और शिवजीने उन पार्वतीजीसे कहा कि हे शोभने ! मैं तुम्हारा दास हूं ॥ ८१ ॥ और तपस्यारूपी धन से मैं मोललेलिया गयाहूं जैसीइच्छा है वैसी आज्ञा दीजिये पार्वती देवीबोली कि हे शंभो ! तुम मनके प्रभुहो मैने तुमको वह मन देदिया ॥ ८२ ॥ और शरीर के स्वामी ये माता पिता हैं उनका तुम सन्मान करने के लिये योग्यहो श्रीमहादेवजी बोले कि रूप से शोभित तुमको देखकर तुम्हारे पिताने यह प्रतिज्ञाकीहै ॥ ८३ ॥ कि मैं अपनी बालकन्याको स्वयंवर में दूंगाअन्यथा न दूंगा उनका वह सब वचन वैसाहीहोवै और हे सुमध्यमे !

तुम स्वयंवर के लिये पिताकी प्रेरणाकरो तदनन्तर मैं तुमको स्वीकार करूंगा उन पार्वतीजीसे ऐसा कहकर पवित्र व अन्तःकरणमें टिकनेवाले व्यापक महादेवजी ॥ ८४।८५॥ उससमय प्रियदेशको चलेगये और वे पार्वतीजी अपने नगरको चली गईं उससमय पार्वतीदेवीको देखकर मेनासमेत हिमाचलजी प्रसन्नहुये ॥ ८६॥ और लिपटाकर हिमालयजीने वृत्तान्तकोपूंछा व उस कन्याने देव देव शिवजीसे कहे हुये सबवृत्तान्त को निवेदनकिया तब उन हिमाचलने ॥ ८७ ॥ प्रसन्नहोकर सब लोगोंको मैं स्वयंवर को कहलाया तब अश्विनी कुमार व बारहसूर्य, गरुड़, सर्प ॥ ८८ ॥ यक्ष, सिद्ध, साध्य, दैत्य, किंपुरुष, पर्वत और समुद्रादिक जोकोई थे

चिषदोविभुः ॥ ८५ ॥ जगामैवंतदादेशं स्वपुरंप्रययौचसा ॥ दृष्ट्वादेवींतदाहृष्टो मेनयासहितोचलः ॥ ८६ ॥ आलिङ्गयाघ्रायपप्रच्छ सर्वंसाचन्यवेदयत् ॥ दुहितादेवदेवेन आज्ञप्तःसहिमाचलः॥ ८७॥ स्वयंवरंप्रणुदितः सर्वलोकेष्वघोषयत्॥ आश्विनौद्वादशादित्या गन्धर्वगरुडोरगाः ॥ ८८ ॥ यक्षाःसिद्धास्तथासाध्या दैत्याःकिम्पुरुषानगाः ॥ समुद्राश्चयेकेचित त्रैलोक्यप्रवराश्चये ॥ ८९ ॥ त्रयस्त्रिंशत्सहस्राणि त्रयस्त्रिंशच्छतानिच ॥ त्रयस्त्रिंशच्चयेदेवा स्त्रयस्त्रिंशच्चकोटयः ॥ ९० ॥ जग्मुर्गिरीन्द्रपुत्रास्तु स्वयंवरमनुत्तमम् ॥ आमंत्रितस्तदाविष्णुर्मेरुमाहहसन्निव ॥ ९१ ॥ मातास्माकंहिमादेवी मेरोगत्वानमामिताम् ॥ अथशैलसुतादेवीहेममारुह्यशोभनम् ॥ ९२ ॥ विमानंसर्वतोभद्रं सर्वरत्नैरलङ्कृतम् ॥ अप्सरोभिःप्रणृत्यद्भिस्सर्वाभरणभूषिता ॥ ९३ ॥ गन्धर्वसङ्घैर्विविधैः किन्नरैश्चसुशोभनैः॥ वन्दिभिस्तूयमाना च दिव्यवस्त्रधरास्थिता ॥ ९४॥ सितातपत्रंरत्नैस्सुमिश्रितंचाप्यभूत्तदा॥ शुशुभेपार्वतीतेन यथापूर्णेन्दुमण्डलम् ॥९५॥

और त्रिलोकमें जो श्रेष्ठ थे वे ॥ ८९ ॥ और तैंतिसहज़ार, तैंतीससौ, तैंतीस व तैंती सकरोड़ जो देवता थे ॥ ९० ॥ वे पर्वत राजहिमालयकी कन्या के स्वयंवर में गये व उससमय बुलायेहुये विष्णुजीने हँसतेहुये से सुमेरुगिरिसे कहा ॥ ९१ ॥ कि हे सुमेरु ! हमलोगोंकी वे पार्वतीदेवी माताहैं मैं जाकर उनको प्रणामकरूंगा इसके अनन्तर नाचतीहुई अप्सराओं से घिरी पर्वतकी कन्या पार्वतीदेवी सब रत्नों से भूषित सोनेके उत्तम सर्वतोभद्र विमानपै चढ़कर प्राप्तहुईं ॥ ९२ । ९३ ॥ जोकि अनेक प्रकारके गंधर्व गणों व उत्तम किन्नरों तथा वन्दियों से स्तुति कीजाती थीं और दिव्य वसनोंको धारणकर स्थितहुईं ॥ ९४ ॥ उससमय रत्नों से मिलाहुआ श्वेत छत्र

होताभया उससे पार्वतीजी इसप्रकार शोभितहुई जैसे कि पूर्णचन्द्र मण्डलहोवे ॥ ९५ ॥ चामरोंको हाथमें लियेहुई दिव्य स्त्रियों से घिरीहुई वे पार्वतीदेवीजी कल्प-वृक्ष से उपजीहुई मालाको लेकर स्थितहुई ॥ ९६ ॥ इसप्रकार उनपार्वतीजीके स्थित होनेपर जबतीनोंलोक स्थित थे तब वृषभध्वज शिवभगवान् क्रीडा के लिये बालक होकर ॥ ९७ ॥ उनपार्वतीजीकी गोदीमे भलीभाति सोगये जाया ऐसाजोपद कहा गयाहै उसके सत्यअर्थ को प्रसिद्ध करने के लिये ईश्वर शिवजीने ऐसाकिया ॥ ९८ ॥ इसके अनन्तर उन पार्वतीजीकी गोदमें प्राप्त बालकको देखकर यहां यह कौनहै ऐसी भलीभांति सम्मति कर बहुत गर्वीले देवताओं ने बड़ा शब्द किया ॥ ९९ ॥

चामरासक्तहस्ताभिर्दिव्यस्त्रीभिश्चसंवृता ॥ मालांप्रगृह्यसातस्थौ सुरद्रुमसमुद्भवाम् ॥ ९६ ॥ एवंतस्यांस्थिता यान्तु स्थितेलोकत्रयेतदा ॥ शिशुर्भूत्वामहादेवः क्रीडार्थंवृषभध्वजः ॥ ९७ ॥ उत्सङ्गतलसंसुप्तो बभूवभगवान्भवः ॥ जायेतियत्पदंख्यातुं तस्यसत्यार्थमीश्वरः ॥ ९८ ॥ अथदृष्ट्वाशिशुन्देवास्तस्याउत्सङ्गवर्त्तिनम् ॥ कोयमत्रेतिसं मन्त्र्य चुक्रुशुर्भृशमुद्धताः ॥ ९९ ॥ वज्रमाहारयत्तस्य बाहुमुद्यम्यवृत्रहा ॥ सबाहुरुद्यतस्तस्य तथैवसमतिष्ठत ॥ १०० ॥ स्तम्भितःशिशुरूपेण देवदेवेनलीलया ॥ वज्रंक्षेप्तुन्नशक्नोति बाहुंचालयितुंतदा ॥ १ ॥ वह्निःशक्तिन्तदाक्षेप्तुं नाश कत्तत्रचास्थितः ॥ यमोपिदण्डंखड्गंच निर्ऋतिस्तंशिशुम्प्रति ॥ २ ॥ पाशञ्चवारुणोराजा ध्वजयष्टिंसमीरणः ॥ सोमो गदामिषुञ्चैव शूलमीशानएवच ॥ ३ ॥ स्तम्भितादेवदेवेनतथान्यभुवनेषुये ॥ पूषादन्तान्दशन्दन्तै र्बालमैक्षतमोहि

और वृत्रासुरके नाशक इन्द्रने भुजाको उठाकर बडे वज्रको चलाया व वज्रको उबाये हुये उनकी वह भुजा वैसीही रहगई ॥ १०० ॥ बालक रूपवाले देवदेव शिवजी से लीला करके रोंकीहुई वह भुजा उस समय वज्र फेंकने के लिये नहीं समर्थहुई ॥ १ ॥ और वहीं प्राप्त अग्निजी उस समय शक्तिको चलाने के लिये न समर्थहुये व यमराज ने भी दण्ड व निर्ऋति ने उस बालकके ऊपर चलाने के लिये तलवार लिया ॥ २ ॥ राजा वरुण ने फसरी व पवन ने ध्वजाका दण्ड और चन्द्रमा ने गदा व बाण और ईशान देवने शूलको लिया ॥ ३ ॥ ये और लोकोंमें और जो देवोंके अस्त्र थे वे रोंकेगये व दांतोसे दांतोको पीसते हुये मोहित होकर पूषा देवताने

बालक को देखा ॥ ४ ॥ और शिवजी से देखेहुये उसके भी दांत गिरपडे व भगदेवने नेत्रोंको कुटिल किया और वे फूटगये ॥५॥ स्वामी शिवजीने सबोंका बल, तेज
व योग लेलिया इसके अनन्तर उन मनुष्य, दैत्य व देवताओं के भी इस प्रकार स्थित होनेपर ॥ ६ ॥ ब्रह्माने ध्यान में प्राप्तहोकर शिवजीका कर्मजाना व पवित्र
होतेहुये उन ब्रह्माने शिवजी के समीप जाकर पुराण व सामवेद के गान व वेदोंवालेगुप्त नामोंसे स्तुति किया कि हे महादेव ! तुम्हारे लिये प्रणाम है व महादेवीके
लिये बार २ नमस्कार है ॥ ७ । ८ ॥ तुम्हारी प्रसन्नता से ब्रह्मादिक यह संसार उत्पन्न होताहै व हे मूढ़ देवताओ ! तुम सब ऐसे शिवजी को नहीं जानतेहो ॥ ९ ॥

**तः ॥ ४ ॥ तस्यापिदशनाःपेतुर्दृष्टमात्रस्यशम्भुना ॥ भगश्चनेत्रेविकृते चकारस्फुटितेचते ॥ ५ ॥ बलन्तेजश्चयोगश्च स
र्वेषांजगृहेप्रभुः ॥ अथतेषुस्थितेष्वेवं मर्त्यासुरसुरेष्वपि ॥ ६ ॥ ब्रह्माध्यानमुपाश्रित्य बुबोधहरचेष्टितम् ॥ सोभिगम्य
महादेवं तुष्टावप्रयतोविधिः ॥ ७ ॥ पौराणैस्सामसङ्गीतैर्वैदिकैर्गुह्यनामभिः ॥ नमस्तुभ्यंमहादेवमहादे०व्यैनमोनमः ॥ ८ ॥
प्रसादात्तवब्रह्मादि जगदेतत्प्रवर्त्तते ॥ मूढास्तुदेवतास्सर्वेनैवंबुध्यतशङ्करम् ॥ ९ ॥ महादेवमिहायातं सर्वदेवनमस्कृ
तम् ॥ गच्छध्वंशरणंशीघ्रं यदिजीवितुमिच्छथ ॥ १० ॥ततस्संभ्रमसम्पन्नास्तुष्टुवुःप्रणतास्सुराः ॥ नमोनमोमहा
देव पाहिपाहिजगत्पते ॥ ११ ॥ दुराचारभवानस्मानात्मद्रोहपरायणान् ॥ अहोपश्यतनोमौढ्यं जानतस्तत्प्रभाविनी
म् ॥ १२ ॥ भार्यामुमांमहादेवीं तथाप्यत्रसमागताः ॥ युक्तमेतद्यदस्माकं राज्यमादत्तमासुरैः ॥ १३ ॥ येषामेवंवि
धाबुद्धिः कृतमेभिश्चकिन्तव ॥ अथवानोनदोषोस्ति पशवोहिवयंयतः ॥ १४ ॥ त्वयैवपातिनासर्वे प्रेरिताःकुर्महेविभो**

यदि जीनेकी इच्छा करतेहो तो समस्त देवताओं से नमस्कार किये व यहां आयेहुये महादेव की शरण में शीघ्रही जाओ ॥ १० ॥ तदनन्तर संभ्रममें प्राप्त व प्रणाम
कियेहुये देवताओं ने स्तुति किया कि हे महादेव ! आपके लिये बार २ प्रणामहै हे जगत्पते ! अपनेही बैरमें तत्पर व दुराचार की उत्पत्ति वाले हमलोगोंकी रक्षा की-
जिये रक्षाकीजिये ॥ ११ ॥ अहो हमलोगों की मूर्खता देखिये कि स्तम्भ उत्पन्न करने वाली महादेवी पार्वती स्त्री को हमलोग जानतेथे तो भी यहांआये यह योग्य है
जोकि दैत्योंने हमारी राज्यको लेलिया ॥ १२ । १३ ॥ जिन हमलोगों की ऐसी बुद्धि है इन्होंने तुम्हारा क्या कार्य किया अथवा हमलोगों का दोष नहीं है क्योंकि हम

लोग पशुहैं ॥ १४ ॥ हे विभो ! तुम्हीं स्वामीसे प्रेरणा कियेहुये हमलोग सब करते हैं हे परमेश्वर ! सम्पूर्ण प्राणियों के तुम स्वामी व ईश्वरहो ॥ १५ ॥ और यन्त्रपै-चढ़ेहुये सब संसारको तुम घुमातेहो कि जिन से घुमायेहुये मूर्ख हमलोग स्वयंवर में आये ॥ १६ ॥ उन तुम्हारे पशुपति के लिये नमस्कार है हमलोगों के ऊपर प्रस-न्न हूजिये इसके अनन्तर देव देव त्रिलोचन जी उनके ऊपर प्रसन्न हुये ॥ १७ ॥ व ब्रह्माकी स्तुति से स्वामी शिवजी ने इन देवोंको पहलेकी नाईं किया और वहां क्रोधित होतेहुये तारकादिक दैत्योंने कहा ॥ १८ ॥ कि हे देवताओ ! ये महादेव कौन हैं हमलोग उनको नहीं मानते हैं तदनन्तर हँसकर इस बालक ने लीलासे

ईश्वरस्सर्वभूतानां पतिस्त्वंपरमेश्वर ॥ १५ ॥ भ्रामयस्यखिलंविश्वं यन्त्रारूढंसमायया ॥ येनविभ्रामितामूढाः समायाताःस्वयंवरम् ॥ १६ ॥ तस्मैपशूनाम्पतये नमस्तुभ्यंप्रसीदनः ॥ अथतेषांप्रसन्नोभूद्देवदेवस्त्रियम्बकः ॥ १७ ॥ यथापूर्वञ्चकारैतान्संस्तवाद्ब्रह्मणःप्रभुः ॥ तारकप्रमुखादैत्याः संक्रुद्धास्तत्रप्रोचिरे ॥ १८ ॥ कोयमङ्गमहादेवो नमन्यामोवयञ्चतम् ॥ ततःप्रहस्यबालोसौ हुङ्कारंलीलयाऽव्यधात् ॥ १९ ॥ हुङ्कारेणचतेदैत्याः स्वमेवनगरङ्गताः ॥ विस्मृतंसकलन्तेषां स्वयंवरमखञ्चतत् ॥ २० ॥ महादेवप्रभावेण दैत्यानांघोरकर्म्मणाम् ॥ एवंयस्यप्रभावोहि घोरदैत्ये षुफाल्गुन ॥ २१ ॥ कथमीश्वरवाक्यार्थस्तस्मादन्यत्रचोच्यते ॥ असंशयंविमूढास्ते पश्चात्तापंपुरामहान् ॥ २२ ॥ ईश्वरंभुवनस्यास्ययेभजन्तेनत्र्यम्बकम् ॥ ततस्संस्तूयमानःससुरैःपद्मभवादिभिः ॥ २३ ॥ वपुश्चकारदेवेशस्त्र्यम्बकः परमाद्भुतम् ॥ तेजसातस्यदेवास्ते सेन्द्रचन्द्रदिवाकराः ॥ २४ ॥ सब्रह्मकाःससाध्याश्च वसुविश्वेचदेवताः ॥ सयमाश्च

हुँकार किया ॥ १९ ॥ व हुँकार से वे दैत्य अपनेही नगरको गये व घोर कर्मी उन दैत्यों को वह स्वयंवर यज्ञ सब महादेव जी के प्रभाव से भूलगई हे अर्जुनजी ! भयंकर दैत्यों में जिन शिवजी का ऐसा प्रतापहै ॥ २० । २१ ॥ उनसे अन्यत्र ईश्वर वचन का अर्थ कैसे कहाजाता है निस्सन्देह वे मूर्ख आगे बडे पश्चात्ताप को प्राप्तहोते हैं ॥ २२ ॥ जोकि इस संसार के स्वामी त्रिलोचन जी को नही भजते हैं तदनन्तर ब्रह्मादिक देवताओं से स्तुतिकिये जातेहुये उन ॥ २३ ॥ देवेश त्रिलोच-न जीने बड़ा अद्भुत शरीर किया और उस शरीर के तेजसे चन्द्रमा, सूर्य व इन्द्र समेत वे देवता ॥ २४ ॥ व ब्रह्मादिक व साध्य सहित वसु और विश्वेदेवता तथा

यमराज सहित सुरोत्तमों ने बार २ नेत्रोंकी प्रार्थना किया ॥ २५ ॥ व पार्वती समेत उन अंबिका पति शिवजी ने उन देवोंके लिये अपने शरीर को देखनेकी शक्तिवा
ले बहुत उत्तम नेत्रोंको दिया ॥ २६ ॥ और शिवजी की प्रसन्नतासे अति उत्तम दिव्य नेत्रोंको पाकर उस समय ब्रह्मादिक देवताओं ने उन शिवजीको देखा ॥ २७ ॥
तदनन्तर मुनिलोग जप करनेलगे व आकाश चारियों ने फूलोंकी वृष्टि छोड़ा और उस समय देवताओंने बहुतही नगारा बजाया ॥२८॥ और मुख्य गन्धर्वों ने गाया
व अप्सराओंने नृत्यकिया व सब गणनायक प्रसन्नहुये तथा अम्बा पार्वती जी हर्षित हुईं ॥२९॥ व ब्रह्मादिक देवता भवानी पार्वती व हिमाचल को मानतेभये उस

सुरेन्द्राश्च चक्षुरप्रार्थयन्मुहुः ॥ २५ ॥ तेभ्यःपरतमञ्चक्षुःस्ववपुर्दृष्टिशक्तिमत् ॥ ददावम्बापतिःशर्वो भवान्यासहित
स्मच ॥ २६ ॥ लब्ध्वारुद्रप्रसादेन दिव्यञ्चक्षुरनुत्तमम् ॥ सब्रह्मकास्तदादेवास्तमपश्यन्महेश्वरम् ॥ २७ ॥ ततोज
पेयुर्मुनयः पुष्पवृष्टिञ्चखेचराः ॥ मुमुचुश्चतदानेदुर्देवादुन्दुभयोभृशम् ॥ २८ ॥ जगुर्गन्धर्वमुख्याश्च ननृतुश्चाप्सरोग
णाः ॥ मुमुदुर्गणपास्सर्वे मुमोदाम्बाचपार्वती ॥ २९ ॥ ब्रह्माद्यामेनिरेऽपर्णां भवानींचगिरीश्वरम् ॥ तस्यदेवीततोहृष्टा
समर्चत्रिदिवौकसाम् ॥ ३० ॥ पादयोःस्थापयामास मालांदिव्यांसुगन्धिनीम् ॥ साधुमाध्वितिसंप्रोच्य तयातत्रैव
चार्चितः ॥ ३१ ॥ सहदेव्यानमश्चक्रुः शिरोभिर्भूतिमाश्रितैः ॥ सर्वेसब्रह्मकादेवा जयेतिमुदिताजगुः ॥ ३२ ॥ इति
श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डे कुमारेशमाहात्म्ये विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥ * ॥ * ॥
नारदउवाच ॥ अथब्रह्मामहादेवमभिगम्यकृताञ्जलिः ॥ उद्वाहःक्रियतान्देव इत्युवाचमहेश्वरम् ॥ १ ॥ तस्यतद्

के उपरान्त प्रसन्न होतीहुई पार्वती देवीने देवताओं के सामने उन शिवजी के चरणों में सुगन्धित उत्तम मालाको स्थापित किया और बहुत अच्छा २ ऐसा कहकर
वहीं उन पार्वतीदेवी से शिवजीपूजित हुये ॥ ३०।३१ ॥ और ब्रह्मादिक समस्त देवताओं ने विभूति लगायेहुये मस्तकोंसे पार्वती समेत शिवजीको प्रणाम किया व प्रस-
न्न होतेहुये जयहो ऐसा कहा ॥ ३२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेदेवीदयालु मिश्रविरचितायांभाषाटीकायांकुमारेशमाहात्म्येविंशोऽध्यायः ॥ २० ॥ ❀ ॥
दो० । पारवती शिव देवकर जेहि विधिभयो विवाह । इकइसवें अध्याय में वर्णित सोइ उछाह ॥ इसके अनन्तर हाथजोड़े हुये ब्रह्माने महादेवके समीप जाकर व

शिवजी से यह कहा कि हे देव ! विवाह कीजिये ॥ १ ॥ उनके उस वचन को सुनकर शिवजीने आपही ब्रह्मा देवसे कहा कि हे ब्रह्मन् ! जिस लिये हम हिमाचल व तुम्हारे भी वशहैं ॥ २ ॥ इससे जो कहाहै वह कियाजाय इस समय हम तुम्हारे वशहैं तदनन्तर ब्रह्माने आपही रत्नमय उत्तम दिव्य नगर ॥ ३ ॥ उसीक्षण शिव जीके विवाह के लिये बनाया जोकि चारसौ कोस चौडा व सैकडों राज मन्दिरोंसे शोभित था ॥ ४ ॥ उस नगरमें महादेव जी आपही टिके उसके उपरान्त शिवदेव जीने चिन्तवन किये व फिर आयेहुये सप्तर्षियों को ॥ ५ ॥ पार्वतीजी की लगनकेलिये पठाया व अरुंधती समेत उन्होंने वहां शिवजीके गुणोंसे स्त्री समेत हिमाचल

चनंश्रुत्वा प्राहदेवंस्वयंहरः ॥ पराधीनावयंब्रह्मन्हिमाद्रेस्तवचापियत् ॥ २ ॥ यदुक्तंक्रियतांतद्धिवयंयुष्मद्वशेधुना ॥ ततोब्रह्मास्वयंदिव्यंपुरंरत्नमयंशुभम् ॥ ३ ॥ उद्वाहार्थंमहेशस्य तत्क्षणात्समकल्पयत् ॥ शतयोजनविस्तीर्णं प्रासाद शतशोभितम् ॥ ४ ॥ पुरेतस्मिन्महादेवः स्वयमेवव्यतिष्ठत ॥ ततःसप्तमुनीन्देवश्चिन्तितानागतान्पुनः ॥ ५ ॥ प्रा हिणोदम्बिकायाश्च स्थिरपत्रार्थमीश्वरः ॥ सारुन्धतीकास्तेतत्र ह्लादयन्तोहिमाचलम् ॥ ६ ॥ सभार्यमीश्वरगुणैः स्थि रपत्राणिचादधुः ॥ ततस्सम्पूजितास्तेन पुनरागम्यतेचतत् ॥ ७ ॥ न्यवेदयत्त्र्यम्बकाय सचतानभ्यनन्दत ॥उद्वाहा र्थंततोदेवो विश्वंसर्वंन्यमन्त्रयत् ॥ ८ ॥ समागतंचतत्सर्वंविनादैत्यैर्दुरात्मभिः ॥ स्थावरंजङ्गमंश्चापि विश्वंविष्णुपुरो गमम् ॥ ९ ॥ सब्रह्मकंपुराराातिः महिमानमवर्द्धयत ॥ ततस्तंविधिराहेदं गन्धमादनपर्वते ॥ १० ॥ पुरेस्थितंविवाह स्य देवकालःप्रवर्तते ॥ ततस्तस्यजटाजूटे चन्द्रखण्डंपितामहः ॥ ११ ॥ बबन्धप्रणयोदारो विस्फारितविलोचनः ॥

को प्रसन्न करतेहुये लगनको धरा तदनन्तर उनसे पूजेहुये उन सप्तर्षियों ने फिर आकर उस वृत्तान्त को ॥ ६ । ७ ॥ त्रिलोचन जीसे कहा व उन शिवजीने उन सप्तर्षियों की प्रशसा किया उसके उपरान्त शिवदेवजी ने विवाह के लिये सब संसार का निमन्त्रण किया ॥ ८ ॥ व दुष्टात्मा दैत्यों के विना विष्णु पूर्वक भलीभाति आये हुये ब्रह्मा समेत चराचर उस संसार की महिमा को शिवजी ने बढ़ाया तदन्तर गन्धमादन पर्वतपै नगर में टिके हुये उन शिवजी से यह कहा ॥ ९ १० ॥ कि हे देव ! विवाह का समय वर्त्तमानहै तदन्तर फैलाये हुऐ लोचनों वाले व नम्रता से उदार ब्रह्मा जी ने उनके जटा जूट में चन्द्रमा के खंड को बांधा और प्रसन्न होते

हुये विष्णु जीने आपही इन शिवजी के जटा जूटको बनाया ॥ ११ ॥ १२ ॥ व चामुण्डा ने मस्तक में बड़ी भारी मुंड माला को बांधा व शिवजी से यह कहा कि हे शकर जी ! पुत्र को पैदा कीजिये ॥ १३ ॥ जो कि दैत्येन्द्रवंश को नाशकर मुझ को रक्तसे तृप्त करैगा व जलती हुई किरणों वाले आपही सूर्य जी ने प्रसन्नता से प्रकाशित त्रिलोक वाले रत्न को देय देव शिवजी के बांधा और वासुकी जिन में प्रसिद्ध हैं उन तेजसे जलते हुये उत्तम नागोंने ॥ १४ । १५ ॥ अपनाको शिवजी के भूषणोंके स्थान में आपही किया तदनन्तर पवनों ने हिमाचल के समान समस्त तीक्ष्ण शिखरको अनेक भांतिकी सिद्धियों से विभूषित किया और इन्द्र हाथी का

कपर्दशोभनंविष्णुः स्वयञ्चक्रेस्यहर्षितः ॥ १२ ॥ कपालमालांविपुलां चामुण्डामूर्द्ध्न्यबन्धत ॥ उवाचचापिगिरिशंपुत्रंजनयशङ्कर ॥१३॥ योदैत्येन्द्रकुलंहत्वा मांरक्तैस्तर्पयिष्यति ॥ सूर्योज्वलच्छिखोरत्नं प्रभासितजगत्त्रयम् ॥१४॥ बबन्धदेवदेवस्य स्वयमेवप्रमोदतः ॥ शेषावासुकिमुख्याश्चज्वलन्तस्तेजसःशुभाः ॥ १५॥ आत्मानंभूषणस्थाने तेस्वयंचक्रुरीश्वरम् ॥ वायवश्चततस्तीक्ष्णशृङ्गंहिमगिरिप्रभम् ॥ १६ ॥ सर्वविभूषयामासुर्नानाभिरुपपत्तिभिः ॥ शक्रोगजाजिनंगृह्य स्वयमग्रेऽग्यवस्थितः ॥ १७ ॥ चिताभस्मसमादाय कपालेरजतप्रभे ॥ मनुजास्थिमयींमालां प्रेतनाथश्चचन्दनम् ॥ १८ ॥ वह्निस्तेजोमयंदिव्यमजिनंप्रददौस्थितः ॥ एवंविभूषितस्सर्वैर्भृत्यैरीशोबभौभृशम् ॥ १९ ॥ ततोहिमाद्रेःपुरुषा वीरकम्प्रोचिरेवचः ॥ माभूत्कालात्ययःशीघ्रंभवस्यैतन्निवेद्यताम् ॥ २० ॥ ततोदेवंप्रणम्याह वीरकःकरसम्पुटी ॥ त्वारयन्तिमहेशान हिमाद्रेःपुरुषास्त्वमी ॥ २१ ॥ इतिश्रुत्वावचोदेवः शीघ्रमित्येवचाब्रवीत ॥ समन्नारिध

चर्म लेकर आपही आगे खडेहुये ॥ १६ । १७ ॥ व चांदी के समान शोभित कपाल में धरकर व मनुष्यकी हड्डियों की माला और चन्दनको यमराज ने दिया ॥ १८॥ और खडेहुये अग्नि ने तेजोमय उत्तम मृग चर्मको दिया इस प्रकार समस्त सेवकों से विभूषित शिवजी बहुतही शोभित हुये ॥ १९ ॥ तदनन्तर हिमाचल के पुरुषों ने वीरक से वचन कहा कि समय का उल्लंघन मतहोवै यह शिवजीसे शीघ्रही बतलाइये ॥ २० ॥ तदनन्तर हाथोंको जोडेहुये वीरकने शिवदेव को प्रणाम कर कहा

कि हे महेशजी ! हिमाचल के ये पुरुष शीघ्रता करते हैं ॥ २१ ॥ यह वचन सुनकर शीघ्रही है यही शिवजीने कहा उन शिवजी को सातों समुद्रों ने दर्पण दिखा या ॥ २२ ॥ महादेव जी उसमें संसारमय अपने रूपको देखा तदनन्तर हाथ जोड़े हुये बुद्धिमान् विष्णुने शिवजी से कहा ॥ २३ ॥ कि हे देव देव, महादेव, त्रिपुर नाशक, शंकरजी ! संसार को आनन्द देनेवाले इस रूपसे वैसेही सोहतेहो ॥ २४ ॥ जैसे कि हे महेश्वरजी ! पहले जो तुम महादेव जी थे तदनन्तर मुसक्याते हुये महादेव जीने जयहो ऐसा वचनकहा ॥ २५ ॥ व विष्णुका हाथ अवलंबनकर धीरेसे बैलपै चढ़े उसके उपरान्त वसु देवताओं ने उसको शूलदिया ॥ २६ ॥ तदनन्तर

यस्तस्य चक्रुर्द्दर्प्पणदर्शनम् ॥ २२ ॥ तत्रैक्षतमहादेवः स्वरूपञ्जगन्मयम् ॥ ततोबद्धाञ्जलिर्धीमान् स्थाणुंप्रोवाचकेशवः ॥ २३ ॥ देवदेवमहादेव त्रिपुरान्तकशङ्कर ॥ शोभसेनेनरूपेणजगदानन्ददायिना ॥ २४ ॥ महेश्वरःयथासाक्षादादौयस्त्वंमहेश्वर ॥ ततःस्मयन्महादेवो जयेतिवचनंजगौ ॥ २५ ॥ करमालंब्यविष्णोश्च वृषमारुरुहेशनैः ॥ ततश्चवसवोदेवाः शूलंतस्यन्यवेदयत् ॥ २६ ॥ धनदोनिधिभिर्युक्तः समीपस्थस्ततोभवत् ॥ सशूलपाणिर्विश्वात्मा सञ्चचालततोहरः ॥ २७ ॥ देवदुन्दुभिनादैश्च पुष्पासारैश्चदीपकैः ॥ नृत्यद्भिरप्सरोभिश्च जयेतिचमहाध्वनैः ॥ २८ ॥ सव्यदक्षिणसंस्थानौ ब्रह्माविष्णुश्चजग्मतुः ॥ हंसञ्चगरुडञ्चैव समारुह्यमहत्प्रभौ ॥ २९ ॥ अथादितिर्दितिस्साच दनुर्कद्रूसुपर्णका ॥ पौलोमीसुरसाचैव सिंहिकासुरभीमुनिः ॥ ३० ॥ सिद्धिर्म्मायाक्षमादुर्गा देवीस्वाहासुधास्वधा ॥ सावित्री चैवगायत्री लक्ष्मीसादक्षिणाद्युतिः ॥ ३१ ॥ स्पृहामतिर्धृतिर्बुद्धिर्ग्रन्थिरिक्षिस्सरस्वती ॥ राकाकुहूःसिनीबाली देवी

निधियों से संयुत कुबेरजी समीप में स्थितहुये तदनन्तर शूल हाथमें लियेहुये वे विश्वात्मा महादेव जी भलीभांति चले ॥ २७ ॥ देवताओं के नगारोंके शब्द व फूलोंकी वृष्टि, दीपक व नाचती हुई अप्सराओंसे तथा जय ऐसे महाशब्दों समेत शिवजी चले ॥ २८ ॥ और हंस व गरुडपै चढ़कर बडे प्रकाश वाले ब्रह्मा व विष्णु बायें, दाहिने ओर स्थितहोकर चले ॥ २९ ॥ इसके उपरान्त आदिति, दिति और वह दनु, कद्रू, सुपर्णा पौलोमी, सुरसा, सिंहिका, सुरभी, मुनि ॥ ३० ॥ सिद्धि, माया

क्षमा,दुर्गा,देवी,स्वाहा,सुधा,स्वधा, सावित्री, गायत्री, लक्ष्मी व वे दक्षिणा, धृति ॥३१॥ स्पृहा, मति, धृति, बुद्धि,ग्रंथि, रिद्धि, सरस्वती, राका,कुहू, सिनीवाली और भा
नुमतीदेवी ॥ ३२ ॥ व धरणी, धारणी, वेला, राज्ञी व रोहिणी इतनी ये और देवता ओं की माता व स्त्रियां ॥ ३३ ॥ सब प्रसन्नता संयुत होतीहुई देव देव शिवजीका
विवाह गातीभई नाग, गरुड़, यक्ष गन्धर्व, किन्नर, नर ॥ ३४ ॥ समुद्र, पर्वत,मेघ मास व साल, वेद और मन्त्र, यज्ञ और सब वेद सम्बन्धी धर्म ॥ ३५ ॥ व हुंकार
प्रणव और हज़ारों द्वार पालक तथा महेन्द्रादिक सवारियों समेत करोड़ों देवता ॥ ३६ ॥ महादेवके पीछे चले और शंखकी नाईं श्वेत वर्णवाले करोड़ों व अर्बुदों गण

भानुमतीतथा ॥ ३२ ॥ धरणीधारणीवेला राज्ञीचापिचरोहिणी ॥ इत्येताश्चान्यदेवानां मातरःपत्नयस्तथा ॥ ३३ ॥
उद्वाहंदेवदेवस्य जगुस्सर्वामुदान्विताः ॥ उरगागरुडायक्षागन्धर्वाःकिन्नरानराः ॥ ३४ ॥ सागरागिरयोमेघा मासास्सं
वत्सरास्तथा ॥ वेदमन्त्रास्तथायज्ञाः श्रौताधर्माश्चसर्वशः ॥ ३५ ॥ हुङ्काराप्रणवाश्चैव प्रतिहाराःसहस्रशः ॥ कोटिश
श्चतथादेवा महेन्द्राद्यास्सवाहनाः ॥ ३६ ॥ अनुजग्मुर्महादेवं कोटिशोर्बुदशश्चहि ॥ गणाश्चपृष्ठतोजग्मुः शङ्खवर्णा
श्चकोटिभिः ॥ ३७ ॥ दशभिःकेकराक्षश्च विद्युतोष्टाभिरेवच ॥ चतुःषष्ट्याविशाखश्च नवभिःपारियात्रिकः ॥ ३८ ॥ ष
ड्भिस्सर्वान्तकःश्रीमान् तथैवविकृताशनः ॥ ज्वालाकेशोद्वादशभिः कोटिभिस्संवृतोययौ ॥ ३९ ॥ सप्तभिस्समदः
श्रीमान् दुन्दुभोष्टाभिरेवच ॥ पञ्चभिश्चकपालीशः षड्भिस्संह्लादकश्शुभः ॥ ४० ॥ कोटिकोटिभिरेवेह कुण्डकःकुम्भ
कस्तथा ॥ विष्टम्भोष्टाभिरेवेह गणपस्सर्वसत्तमः ॥ ४१ ॥ पिप्पलश्चसहस्रेण सन्नादश्चतथाबली ॥ आवेशनस्तथाष्टा

पीछे से चले ॥ ३७ ॥ व दश करोड़ गणोंसे केकराक्ष, आठ करोड़से विद्युत, चौंसठि करोड़ से विशाख और नव करोड़ गणों समेत पारि यात्रिक चला ॥ ३८ ॥ व
श्रीमान् सर्वान्तक छः करोड़ वैसेही विकृताशन छः करोड़ से व ज्वालाकेश बारह करोड़ से घिरकर चला ॥ ३९ ॥ और श्रीमान् समद सात करोड़ से व दुन्दुभ आठ
करोड़, कपालीश पांच करोड़ और उत्तम संह्लादक छः करोड़ गणोंको लेकरचला ॥ ४० ॥ और कुण्डक व कुम्भक करोड़ करोडही गण लेकरचले व सबोंमें उत्तम
विष्टम्भ गणनायक आठही करोड़ गण लेकरचला ॥ ४१ ॥ और पिप्पल व वैसेही बलिष्ठ सन्नाद दश हज़ार गणोंको लेकरचला वैसेही आवेशन आठ करोड़ व चन्द्र

तापन सात करोड़ गणों समेत चला ॥ ४२ ॥ व महाकेश हज़ार और तंड़ी बारह करोड़ गणों समेत चला और नग, काल, काशक, महाकाल सौ गणोंको लेकर चला ॥ ४३ ॥ व अग्निक सौ करोड़ और अग्निमुख करोड़ गणलेकर चला और अग्निमूर्द्धा करोड़ गणोंसे वधनावह करोड़ गणों समेत चला ॥ ४४ ॥ व सन्नाद सौ गणों समेत और सुमन्त्रक काकपाद करोड़ २ गणों समेत चले वैसेही करण व व्यालक साठि गणोंको लेकरचला ॥ ४५ ॥ और पंचाक्ष, शत मन्यु व मेघा मन्यु बीस गणोंको लेकरचले और काष्ठ सुकेश व वृषभ चौंसाठि करोड़ गणोंको लेकर चले ॥ ४६ ॥ व विश्वरूप, तालकेतु, पंचास्य, शतानन ईशान, वृद्धदेव, दीप्तात्मा

भिस्सप्तभिश्चन्द्रतापनः ॥ ४२ ॥ महाकेशस्सहस्रेण तण्डीद्वादशभिस्तथा ॥ नगःकालःकाशकश्च महाकालःशतेन च ॥ ४३ ॥ अग्निकःशतकोट्यावै कोट्याग्निमुखएवच ॥ अग्निमूर्द्धातुकोट्याच कोट्याचैवधनावहः ॥ ४४ ॥ सन्नाद श्चशतेनैव कोटिकोट्यासुमन्त्रकः ॥ काकपादस्तथापष्ट्याकरणोव्यालकस्तथा ॥ ४५ ॥ पञ्चाक्षःशतमन्युश्च मेघाम न्युस्सविंशतिः ॥ काष्ठकोटिचतुःषष्ट्या सुकेशोवृषभस्तथा ॥ ४६ ॥ विश्वरूपस्तालकेतुः पञ्चास्यश्चशताननः ॥ ईशानोवृद्धदेवश्च दीप्तात्मामृत्युहातथा ॥ ४७ ॥ विपादोयमहाचैव गणोभृङ्गीरिटिस्तथा ॥ अशनिर्हासकश्चैव चतुःष ष्ट्यासहस्रपात ॥ ४८ ॥ एतेचान्येचगणपास्त्वसङ्ख्यातामहाबलाः ॥ सर्वेसहस्रहर्त्तारो जटामुकुटधारिणः ॥ ४९ ॥ चन्द्रलेपावतंसाश्च नीलकण्ठास्त्रिलोचनाः ॥ हारकुण्डलकेयूरमुकुटाद्यैरलङ्कृताः ॥ ५० ॥ अणिमादिगणैर्युक्ताश्श क्ताःशापप्रसादयोः ॥ सूर्यकोटिप्रतीकाशास्तत्राजग्मुर्गणेश्वराः ॥ ५१ ॥ पातालाम्बरभूमिस्थाःसर्वलोकनिवासिनः ॥

व मृत्युहा ॥ ४७ ॥ व विषाद, यमहा व भृंगी और रिटिगण व अशनि, हासक और सहस्रपात् चौंसाठि करोड गणोंको लेकरचले ॥ ४८ ॥ ये और अन्य बडे बली असंख्य गणनायक सब हजारोंको मारनेवाले व जटा मुकुटधारीथे ॥ ४९ ॥ वे चन्द्र लेपाको मस्तक में धारे और नीलकण्ठ व तीन नयनों वारेथे और हार, कुण्डल, बहूंटा व मुकुटादिकों से भूषितथे ॥ ५० ॥ और अणिमादिक सिद्धियों के समूहों से संयुत व शाप और आशीर्वाद देनेमें समर्थ तथा करोड सूर्योके समान प्रकाश वालेथे ऐसे

गणनायक वहां आये ॥ ५१ ॥ व पाताल,आकाश और भूमिमें टिकने वाले सब लोकोंके निवासी प्राप्तहुये व सामवेदके गानेवाले तुम्बुरु, नारद व हाहाहूहू ॥ ५२ ॥ वीणा और अन्य बाजाओं को लेकर बजाते हुये शिवजी के उछाह में आये व तपस्या रूप धनवाले सम्पूर्ण ऋषि वहां वेदमें गायेहुये व पुण्यदायक विवाह वाले मन्त्रोंको प्रसन्न मनहोकर जपतेभये इस प्रकार गंगा व यमुनासे वीजित याने गंगा व यमुनाजी जिन के चँवर डुलारही हैं वे शिवजी चले ॥ ५३ । ५४ ॥ और जल पति (वरुण) ने उनके ऊपर छत्र धारण किया व स्त्रियोंसे अनेक प्रकार के आलाप व लाजा करके प्रसन्न होतेहुये ॥ ५५ ॥ वे देवेश शिवजीके बड़े उत्सव समेत

तुम्बुरुर्नारदोहाहाहूहूश्चैवतुसामगाः ॥ ५२ ॥ तन्त्रीमादायवाद्यांश्च वादयन्छङ्करोत्सवे ॥ ऋषयःकृत्स्नशस्तत्र वेदगीतान्तपोधनाः ॥ ५३ ॥ पुण्यान्वैवाहिकान्मन्त्राञ्जेपुस्संहृष्टमानसाः ॥ एवंप्रतस्थेगिरिशो वीज्यमानश्चगङ्गया ॥ ५४ ॥ तथायमुनयाचापाम्पतिनाधृतछत्रकः ॥ स्त्रीभिर्नानाविधैर्लापैर्लाजाभिश्चानुमोदितः ॥ ५५ ॥ महोत्सवेनदेवेशो गिरिस्थानंविवेशसः ॥ प्रभास्वत्स्वर्णकलशतोरणानांशतैर्युतम् ॥ ५६ ॥ वैडूर्यबद्धभूमिस्थं रत्नैश्चगृहैर्युतम् ॥ तत्प्रविश्यस्तूयमानो द्वारमस्याससादसः ॥ ५७ ॥ ततोहिमाचलस्तत्र दृश्यतेऽव्याकुलाकुलः ॥ आदिशन्नात्मभृत्यानां महादेवउपस्थिते ॥ ५८ ॥ ततोब्रह्माणमचलो गुरुत्वेप्रार्थयत्तदा ॥ कृत्यानांसर्वभारेषु वासुदेवंचबुद्धिमान् ॥ ५९ ॥ प्रत्याहचविवाहेस्मिन् कुमारीभ्रातरंविना ॥ भविष्यतिकथंविष्णोलाजाहोमादिकर्म्मसु ॥ ६० ॥ सुतोहिममैनाकस्सम्प्रतिह्य

हिमाचलके स्थानमें पैठगये जो स्थान कि प्रकाशित सोनेके कलशों व बन्दन वारोंसे संयुतथा ॥ ५६ ॥ व वैदूर्यसे बंधीहुई भूमिमें प्राप्त और रत्नोंसे उपजेहुये गृहों से संयुत था स्तुति कियेजाते हुये वे शिवजी उस स्थान में पैठकर इन हिमाचलके द्वारपै प्राप्तहुये ॥ ५७॥ तदनन्तर वहां महादेवजी के प्राप्तहोने पर अपने सेवकों को आज्ञा देतेहुये हिमाचल विकलता से संयुत देखपड़ते थे ॥ ५८ ॥ तदनन्तर सब सामग्रियोंके मध्यमें कार्य्यों की गुरुता में हिमाचल ने उस समय ब्रह्माकी प्रार्थना किया और बुद्धिमान् हिमाचल ने विष्णु जी से ॥ ५९ ॥ कहा कि हे विष्णो इस विवाह में कन्या के भाई के विना लाजा होमादिक कर्म कैसे भली भांति

पर शिवजीने पाणि ग्रहण किया शिवदेवजी हिमाचल से पैदाहुई लज्जा समेत देवी को देखकर ॥ ७९ ॥ न तृप्त होतेथे न प्रसन्नहोतेथे और वह भी शिवजी को देख कर तृप्तनहीं होतीथी वहां अद्भुत रूपवाली पार्वतीदेवीको देखतेहुये ब्रह्मादिक मुनिलोग ॥ ८० ॥ मनसे परमेश्वरकी शरणमें गये कि पार्वतीको देखकर मत मोहि तहोवैं जैसे कि नारद व हिमाचलहैं वैसेही होवै ॥ ८१ ॥ तदनन्तर शिवजीने वैसाही सबोंका मनोरथ किया उसके उपरान्त देवताओं व मुनियों से प्रणाम व स्तुति कियेहुये शिवजीने ॥ ८२ ॥ मूर्त्तिमान् अग्नि के समीप बैठीहुई पार्वतीदेवी में प्रवेश किया और ब्रह्माने मूर्त्तिमान् होकर समीपमें प्राप्त वेदोक्त मन्त्रोंसे ॥ ८३ ॥ मूर्त्ति

तिनचाह्लादी साचदेवंवृषध्वजम् ॥ तत्रब्रह्मादिमुनयो देवीमद्भुतरूपिणीम् ॥ ८० ॥ पश्यन्तःशरणंजग्मुर्मनसापरमेश्वरम् ॥ मामुह्यामःपार्वतीञ्च यथानारदपर्वतौ ॥ ८१ ॥ ततस्तथैवतच्चक्रे सर्वेषामीप्सितम्भवः ॥ ततोदेवैश्चमुनिभिः प्रणतःसंस्तुतोहरः ॥ ८२ ॥ प्रविवेशशुभान्देवीं मूर्तिमज्ज्वलनाश्रिताम् ॥ वेधाश्रुतीरितैर्म्मन्त्रैर्मूर्त्तिमद्भिरुपस्थितैः ॥ ८३ ॥ मूर्त्तिमग्निंजुहावाज्यं परिचक्रामतंहरः ॥ लाजाहोमेउमाभ्राता प्राहतंसस्मितंहरिः ॥ ८४ ॥ बहवोमिलितास्सन्ति लोकास्समरईश्वर ॥ सावधानेनरक्ष्याणि भूषणानिचयानिभो ॥ ८५ ॥ ततोहरस्तदाप्राह स्वजनेमाविगोपय ॥ किञ्चित्प्रार्थयदास्यामि प्राहविष्णुस्ततोनतः ॥ ८६ ॥ त्वयिभक्तिर्दृढामेस्तु सचतद्दुर्लभंददौ ॥ ददतुस्सृष्टिसंरक्षां ब्रह्मणेदक्षिणामुभौ ॥ ८७ ॥ अग्नयेयज्ञभागांश्च प्रीतौहरजनार्द्दनौ ॥ भृग्वादीनांततोदत्त्वा श्रुतिरक्षणदक्षिणाम् ॥ ८८ ॥

ता अग्निम घृतको हवन किया व शिवजीने उस अग्निकी परिक्रमा किया और लाजा होममें विष्णुजीने मुसक्यान समेत उन शिवजी से कहा ॥ ८४ ॥ कि हे श्वर ! युद्धमें हमको बहुत लोक मिलेहैं इससे जो भूषणहैं वे सावधानता से रक्षा करने योग्यहैं ॥ ८५ ॥ तदनन्तर उस समय शिवजी बोले कि निजजन मे मत छिपाइये कुछ मागिये उसको दूंगा तदनन्तर झुकेहुये विष्णुजीने कहा ॥ ८६ ॥ कि तुममें मेरी दृढ़ भक्तिहोवै उनशिवजीने उसदुर्लभ वरको दिया और विष्णु व महा व दोनोंने ब्रह्माको सृष्टिकी रक्षा दक्षिणा दिया ॥ ८७ ॥ व प्रसन्नहोने हुये शिव व विष्णुने अग्निके लिये यज्ञभागों को दिया तदनन्तर भृगु आदिको को वेदकी रक्षा

...रूप दक्षिणा देकर ॥ ८८ ॥ उसके उपरान्त गीत, नृत्य व इच्छानुसार भोजन और अनेकों बडेभारी उछाहों से विस्मय को प्राप्तहुये ॥ ८९ ॥ तदनन्तर दानवों
...के डरसे चाहते हुये सब जनोंको विदाकर इन देवीके माता, पिता दुःखीहुये ॥ ९० ॥ तदनन्तर पार्वती समेत शिवजी जब निर्मल कैलास पर्वतपै चलेगये तब भा-
...ईयों समेत हिमाचल रोनेलगे क्योंकि संसारमें किसकन्याके पिताका मन स्थिरता रहित नहीं होताहै ॥ ९१ ॥ पर्वतराज हिमाचलकी कन्याके इस विवाहको जो पवित्र
मनुष्य सुनता या पढ़ताहै वह भी विशेषतासे विवाहके मंगलमें वृद्धिको प्राप्तहोताहै व बहुत दिनोंतक प्रसन्न रहताहै ॥ ९२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेदेवी

ततोगीतैश्चनृत्यैश्च भोजनैश्चयथेप्सितैः ॥ महोत्सवैरनेकैश्च विस्मयंसमपद्यत ॥ ८९ ॥ ततश्चसर्वंतलोकमिच्छन्तं
दानवैर्भयात ॥ विसर्जयित्वापितरौ देव्याश्चास्यास्सुदुःखितौ ॥ ९० ॥ ततोगतेभगवतिनीललोहितेसहोमयागि
रिमलंहिभूधरः ॥ सबान्धवोरोदितिकस्यनो मनोविसंस्थितंजगतिहिकन्यकापितुः ॥ ९१ ॥ इमंविवाहंगिरिराजपु
ञ्याः शृणोतिवाध्येतिचयोनरःशुचिः ॥ विशेषतश्चापिविवाहमङ्गले सवृद्धिमाप्नोतिचिरञ्चमोदते ॥ ९२॥ इति श्रीस्क
न्दपुराणेकुमारिकाखण्डेकुमारेशमाहात्म्यएकविंशोध्यायः ॥ २१ ॥ * ॥ * ॥

नारदउवाच ॥ ततोनिरुपमंदिव्यं सर्वरत्नमयंशुभम् ॥ ईशेननिर्म्मितंसाक्षात्सहदेव्याभगात्तिहा ॥ १ ॥ प्रासादेत
त्रचोद्याने रेमेसंहृष्टमानसः ॥ एतस्मिन्नन्तरेदेवास्तारकेनापिपीडिताः ॥ २ ॥ प्रोत्साहितेनचात्यर्थं मिथ्याकलिंचिकी
र्षुणा ॥ आसाद्यतेभवन्देवंस्तुवन्तिस्मबहुस्तवैः ॥ ३ ॥ एतस्मिन्नन्तरेदेवी चोद्वर्त्तयतगात्रकम् ॥ उद्वर्त्तनमलेनाथ

दयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांकुमारेशमाहात्म्यएकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ * ॥ * ॥

दो० । गई क्रोधकरि शम्भुसन पारवती तपकाज । बाइसवें अध्याय में सोइ चरित सुखसाज ॥ नारदजी बोले कि तदनन्तर समस्त रत्नमय व उत्तम तथा उपमा
रहित दिव्य मन्दिर साक्षात् शिवजीसे निर्मित हुआ व पार्वतीदेवी समेत भगनयननाशक शिवजीने ॥ १ ॥ प्रसन्न मनहोकर उस मन्दिर व बगीचे में रमण किया
इसी अवसरमें देवता भी अत्यन्त उत्साहित व मिथ्या कलह करनेकी इच्छावाले तारकासुर से पीड़ित हुये और उन्होंने शिवदेवजी के समीप जाकर बहुत स्तोत्रोंसे

स्तुति किया ॥ २ । ३ ॥ इसी अवसरमें पार्वतीदेवी ने अंगको मला व इसकेअनन्तर उबटनके मलसे गजानन (गणेश) जी को बनाया ॥ ४ ॥ तदनन्तर देवताओं के पुण्यदायक स्तोत्रोंसे दयासे संयुत व प्रसन्न मनवाली पार्वतीदेवी ने उसको पुत्रऐसा कहा ॥ ५ ॥ इसी अवसर में शिवजी वहा आकर वचन बोले कि हे पार्वती जी ! सुनिये कि तुम्हारा यह पुत्र जिस प्रकार का होगा ॥ ६ ॥ कि बल, प्रभाव वदयासे मेरे समान होगा व जैसा मैं हूं वैसाही गुणोंसे होगा और उसी कारण रक्षक होगा ॥ ७ ॥ और जो दुष्ट आचरण वाले पापी वेद व धर्म से वैर करते हैं उन देववैरियो का यह विघ्न करैगा ॥ ८ ॥ और हे शुभे ! सब धर्म वैसेही अनेक नातिके

बालञ्चक्रेगजाननम् ॥ ४ ॥ देवानांसंस्तवैःपुण्यैः कृपयाभिपरिप्लुता ॥ पुत्रेत्युवाचतन्देवी ततःसंहृष्टमानसा ॥ ५ ॥ एतस्मिन्नन्तरेशर्वः तत्रागत्यवचोब्रवीत् ॥ पुत्रस्तवायंगिरिजे शृणुयादृग्भविष्यति ॥ ६ ॥ विक्रमेणचवीर्येण कृपया सदृशोमया ॥ यथाहन्तादृशश्चासौ पुत्रस्तेनाविताशुभैः ॥ ७ ॥ येचपापादुराचारा वेदान्धर्म्मंद्विषन्तिच ॥ तेषाममरशत्रूणां विघ्नान्येषकरिष्यति ॥ ८ ॥ सर्वेधर्माश्चकर्म्माणि तथानानाविधानिच ॥ सविघ्नानिभविष्यन्ति पूजयास्यविना शुभे ॥ ९ ॥ एवंश्रुत्वाउमाप्राह एवमस्त्वितिशङ्करम् ॥ ततोबृहत्तनुस्सोभूत तेजसाद्योतयन्दिशः ॥ १० ॥ ततोगणैस्समंसर्वैस्सुराणांप्रददौचतम् ॥ यावत्तारकहन्तावो भवेत्तावदयंप्रभुः ॥ ११ ॥ ततोविघ्नपतिर्देवैस्संस्तुतःप्रणतार्त्तिहा ॥ चकारतेषांकृत्यानि विघ्नानिदितिजन्मनाम् ॥ १२ ॥ पार्वतीचपुनर्देवी पुत्रत्वेपरिकल्प्यच ॥ अशोकस्यांकुरन्नीरैरवर्द्धयतस्वाहृतैः ॥ १३ ॥ सप्तर्षीनथचाहूय संस्कारंमङ्गलन्तरोः ॥ कारयामासतन्वङ्गी ततस्तांमुनयोब्रुवन् ॥ १४ ॥

कर्म इनकी पूजाके विना विघ्न सहित होवैंगे ॥ ९ ॥ ऐसा सुनकर पार्वती जीने कहा कि हे शङ्कर ! ऐसाही हो तदनन्तर तेजसे दिशाओ को प्रकाशित करताहुआ यह बडे शरीर वाला होगया ॥ १० ॥ तदनन्तर सब गणो समेत उन गणेशको देवताओं को दिया कि जबतक तारकको मारैगा तबतक यह तुम लोगोंका स्वामीहोवेहै॥ ११ ॥ तदनन्तर देवताओं से स्तुति कियेहुये प्रणत दुःख नाशक विघ्नराज ने उन दिति पुत्रों (दैत्यों) के कार्योंमे विघ्न किया ॥ १२ ॥ व फिर पार्वती देवी ने अशोकके अंकुर को पुत्रता मे कल्पित करके अपनारो लायेहुये जलोंसे बढ़ाया ॥ १३ ॥ व इसके अनन्तर सप्तर्षियोको बुलाकर सूक्ष्मांगी पार्वती देवीने वृक्षके संस्कार

व मंगलको कराया तदनन्तर मुनियों ने उससे कहा ॥ १४ ॥ कि हे देवि ! तुम्हीं से दिखलाये हुये मार्ग में मर्यादा करने के लिये योग्यहो व कल्पना किये हुये वृक्ष-
रूपी पुत्रोंसे क्या फल होगा ॥ १५ ॥ देवी जी बोलीं कि जो विद्वान् बिन जलवाले ग्राममें कुँआ बनवाता है वह तबतक स्वर्ग में सुखी रहता है कि जबतक कूपमें
जल रहता है ॥ १६ ॥ दश कूपोंके समान बावली है व दश बावलियों के बराबर तड़ागहै व दश तड़ागों के तुल्य पुत्र और दश पुत्रोंके समान वृक्षहै ॥ १७ ॥ लोकों
को पैदा करनेवाली यही मनुजी से मर्यादा नियत की गई है व जीर्णोद्धार करनेपरभी उसका दूना फल माना गया है ॥ १८ ॥ तदनन्तर किसी समय भगवान् शिव

**त्वयैवदर्शितेमार्गे मर्यादांकर्तुमर्हसि ॥ किंफलम्भवितादेविकल्पितैस्तरुपुत्रकैः ॥ १५ ॥ देव्युवाच ॥ योवैनिरुदकेग्रामे
कूपंकारयतेबुधः ॥ यावत्तोयंभवेत्कूपे तावत्स्वर्गेषुमोदते ॥ १६ ॥ दशकूपसमावापी दशवापीसमंसरः ॥ सरोदशस
मःपुत्रो दशपुत्रसमोद्रुमः ॥ १७ ॥ एषैवमनुमर्यादा नियतालोकभाविनी ॥ जीर्णोद्धारेकृतेचापि फलंतद्द्विगुणंमतम्॥
१८॥ ततःकदाचिद्भगवाञ्छम्भुश्चिक्रीडमन्दिरे ॥ मन्दरेहर्षजनने कलधौतमयेशुभे ॥ १९ ॥ प्रकीर्णकुसुमामोदम
हालिकूलकूजिते ॥ किन्नरोद्गीतसङ्गीतप्रतिशब्दितमध्यके ॥ २० ॥ क्रीडामयूरैर्हंसैश्च शुकैश्चैवाभिनादितैः ॥ मौक्तिकै
र्विविधैरत्नैर्विनिर्मितगवाक्षके ॥ २१ ॥ तत्रपुण्यकथाभिश्चक्रीडतोरुमयोस्तयोः ॥ प्रादुर्भूतोमहाञ्छब्दः पूरिताम्बर
गोचरः ॥ २२ ॥ तंश्रुत्वाकौतुकाद्देवी किमेतदितिशङ्करम् ॥ पर्यपृच्छच्छुभतनुं हरंविस्मयपूर्वकम् ॥ २३ ॥ तामाहदे
वोगिरिशो दृष्टपूर्वास्त्वमेत्वया ॥ एतेगणामेक्रीडन्ते शैलेस्मिंस्त्वत्प्रियाःशुभाः ॥ २४ ॥ तपसाब्रह्मचर्येण क्लेशेनचै**

[illegible] स्वर्णी व [illegible] तथा हर्ष उत्पन्न करनेवाले उत्तम मन्दराचलपै मन्दिरमें क्रीडा किया ॥ १९ ॥ जोकि फैलेहुये फूलों की सुगन्धके कारण बडे भ्रमर गणों
से शब्दायमान था व किन्नरों करके उच्चस्वर से गायेहुये संगीत रागसे बीचमे पहाक पडती थी ॥ २० ॥ और क्रीडाके मयूर, हंस व शुकों से शब्दायमान
था व जिस में मोती व अनेक प्रकारके रत्नोंसे झरोखा बने थे ॥ २१ ॥ वहां पुण्यदायक कथाओं से दोनो के क्रीडा करते हुये बडा भारी शब्द हुआ कि जिस
से आकाश पूर्ण होगया ॥ २२ ॥ उस शब्द को सुन कर पार्वती देवी ने शुभ श्रृंगवाले व भक्तदुःखहारक शंकर जी से विस्मयपूर्वक कौतुक से पूंछा कि यह

क्या है ॥ २३ ॥ उन पार्वती जी से शिवने कहा कि तुमने इनको पहले देखाहै इस पर्वत पै तुम्हारे प्यारे ये उत्तम गण खेलते हैं ॥ २४ ॥ पृथ्वी में जिन्होंने तपस्या व क्लेशरूप ब्रह्मचर्य और क्षेत्रसाधन (तीर्थगमन) करके मुझको प्रसन्न किया है ये वे नरोत्तम ॥ २५ ॥ हे सुन्दरमुखि ! मेरे लोक में हमारे समीप प्राप्त हुये हैं जो कि चराचर संसार की सृष्टि के नाश करने में समर्थ हैं ॥ २६ ॥ इन के विना मेरी प्रसन्नता नहीं होती व इन से रहित मैं क्रीड़ा नहीं करता हूं ये मैं हूं व मैं ये हूँ हे पार्वती जी ! उन इन गणों को देखिये ॥ २७ ॥ ऐसा कहीहुई विस्मय में प्राप्त देवी ने उनको देखा जो कि कमलपत्र के समान नयनोंवाली पार्वती जी महादेव समेत झरोखे में बैठी थीं ॥ २८ ॥ कोई गण दुबले व छोटे व बड़े थे व कोई मोटे व बड़े पेटवालेथे और बाघ, हाथी, भेंड़ व छाग के समान मुखवाले

त्रसाधनैः ॥ यैरहंतोषितःपृथ्व्यांतएतेमनुजोत्तमाः ॥ २५ ॥ मत्समीपमनुप्राप्ता ममलोकेवरानने ॥ चराचरस्यजगतः सृष्टिसंहरणक्षमाः ॥ २६ ॥ विनैतान्नैवमेप्रीतिर्नैभिर्विरहितोरणे ॥ एतेह्यहमहञ्चैते तानेतान्पश्यपार्वति ॥ २७ ॥ इत्युक्ताविस्मितादेवी ददृशेतान्गवाक्षके ॥ स्थितापद्मपलाशाक्षी महादेवेनसंयुता ॥ २८ ॥ केचित्कृशाह्रस्वदीर्घाः केचित्स्थूलमहोदराः ॥ व्याघ्रेभमेषाजमुखा नानाप्राणिमहामुखाः ॥ २९ ॥ व्याघ्रचर्मपरीधाना नग्नाव्यालमुखाः परे ॥ गोकर्णगजकर्णाश्च बहुपादमुखेक्षणाः ॥ ३० ॥ विचित्रवाहनाश्चैव नानायुधधरास्तथा ॥ गीतवादित्रतत्त्वज्ञाः सत्त्वगीतरसप्रियाः ॥ ३१ ॥ तान्दृष्ट्वापार्वतीप्राह कतिसंख्याभिधास्त्वमी ॥ ३२ ॥ शङ्करउवाच ॥ असंख्येयास्त्वमीदेवि असंख्येयाभिधास्तथा ॥ जगदापूरितंसर्वं एतैर्भीमैर्महाबलैः ॥ ३३ ॥ सिद्धिक्षेत्रेषुरथ्यासु जीर्णोद्यानेषुवेश्मसु ॥ दान

तथा अनेक भांति के प्राणियों के तुल्य बड़े मुखवालेथे ॥ २९ ॥ व कोई बाघके चमडे को पहने व नग्न थे और अन्य सर्पोंके समान मुखवाले थे व कोई गऊ हाथी के कर्णों के समान कानोंवाले और बहुत चरण, मुख व नेत्रोंवालेथे ॥ ३० ॥ कोई विचित्र सवारियोंवाले व अनेक प्रकारके अस्त्रों को धारे थे और गाने बजाने के तत्त्वके ज्ञाता व प्राणियों के गानके रस जिनको प्रियथे ॥ ३१ ॥ उनको देखकर पार्वतीने कहा कि ये गण कितने संख्यक व कितने नामक हैं ॥ ३२ ॥ शिवजी बोले कि हे देवि ! ये अनगिनती व असंख्यनामकहैं इन बड़ेबली भयंकर गणों से सब संसार पूर्णहै ॥ ३३ ॥ और सिद्धिक्षेत्रों व गांव के बीच चौराहों तथा टूटे फूटे

पुराने बगीचों व घरों में और दानवों के शरीरों तथा बालों व उन्मत्तोंमें ॥ ३४ ॥ अनेक भांतिके आहार, विहारवाले ये प्रसन्नहोकर पैठते हैं व उष्णता पीनेवाले, फेना पीनेवाले और धुवां, मेघ, मदिरा पीनेवालेहैं ॥ ३५ ॥ व चर्बी खानेवाले और सर्वभक्षीहैं व अन्यगण भोजन नहीं करतेहैं व गीत,नृत्य भेंटवाले और अनेक भांतिके शब्दप्रिय हैं ॥ ३६ ॥ व अन्त न होनेके कारण इनके गुणोंको कहने के लिये हम समर्थ नहीं हैं ॥ ३७ ॥ देवीजी बोलीं कि मैनशिलके चूर्णसे पूर्णमुखवाला व तेजकरके सूर्य के समान व रूपसे तुम्हारे तुल्य जो यहहै ॥ ३८ ॥ हे देव ! गणों से गायेहुये गीतोंको सुन २ कर बार २ नाचताहै व बार २ हास्य करताहै ॥ ३६ ॥ और जो

वानांशरीरेषु बालेषून्मत्तकेषुच ॥ ३४ ॥ एतेविशन्तिमुदिता नानाहारविहारिणः ॥ उष्णपाःफेनपाश्चैव धूम्राभ्रमधुपायिनः ॥ ३५ ॥ मेदाहाराःसर्वभक्षास्तथान्येचाप्यभोजनाः ॥ गीतनृत्योपहाराश्च नानावाद्यरवप्रियाः ॥ ३६ ॥ अनन्तत्वादमीषाञ्च वक्तुंशक्तानवैगुणान् ॥ ३७ ॥ देव्युवाच ॥ मानःशिलेनकल्केन यएषःपूरिताननः॥ तेजसाभास्कराकारो रूपेणासदृशस्तव ॥ ३८ ॥ आकर्ण्याकर्ण्यमोदेवगणैर्गीतान्महागुणान् ॥ मुहुर्नृत्यतिहासञ्च विदधातिमुहुर्मुहुः ॥ ३९ ॥ सदाशिवशिवेत्युक्तो विह्वलोवक्तियोमुहुः ॥ धन्योयमीदृशीयस्य भक्तिस्त्वयिमहेश्वर ॥ ४० ॥ एनंविज्ञातुमिच्छामिकिन्नामासौगणस्ततः ॥ ४१ ॥ ईदृशस्ययसुतस्यास्तिममेच्छात्रिपुरान्तक॥ कदाहमीदृशंपुत्रं लप्स्याम्यानन्ददायकम् ॥ ४२ ॥ शर्वउवाच ॥ एषएवसुतस्तेस्तु यावदीदृक्सुतोभवेत् ॥ इत्युक्त्वाविजयांप्राह शीघ्रमानयवीरकम्॥४३॥विजयाचततोगत्वा वीरकंवाक्यमब्रवीत्॥ एहिवीरकतेदेवी गिरिजातोषिताशुभा॥४४॥ त्वामाह्वयतिसादेवी

विह्वलहोकर उत्कंठा से हे सदाशिव ! ऐसा बार २ कहताहै यह धन्यहै हे महेश्वर ! जिसकी तुममें ऐसी भक्तिहै ॥ ४० ॥ इसलिये इसे जानना चाहती हूं कि कौन नामक यह गणहै ॥ ४१ ॥ हे त्रिपुरनाशक ! मेरे ऐसे पुत्र की इच्छाहै मैं कब ऐसा आनन्ददायक पुत्र पाऊंगी ॥ ४२ ॥ शिवजी बोले कि जबतक ऐसा पुत्र होवे तबतक यही तुम्हारा पुत्र होवै ऐसा कहीहुई पार्वती देवीने विजया से कहा कि वीरकको शीघ्रही लाइये॥४३॥तदनन्तर विजया जाकर वीरक से वचन बोली कि ऐ वीरक! आइये तुम्हारे

लिये उत्तम पार्वतीदेवी बहुतही प्रसन्न कराईगई हैं ॥ ४४ ॥ वे देवी आपही शिवजी के संमत में तुमको बुलाती हैं ऐसा कहेहुये शीघ्रता समेत वीरकजी हाथ से मुख को धोकर ॥ ४५ ॥ देवी के समीप आये कि जिनके पीछे धीरे २ विजया चली आती थी उन वीरक को देखकर पार्वतीजी प्रियवाणी से बोलीं ॥ ४६ ॥ कि हे पुत्र ! आइये २ शिवजीसे तुम मुझको पुत्र दिये गये हो ऐसा कहेहुये वीरक दंडाकी नाई झुँककर देवीजीको प्रणामकर खडे हुये ॥ ४७ ॥ तदनन्तर माताने उस वीरकको लिपटाकर व गोदमें कर उनके कपोलमें चुंबन किया व अंगोंको झाड़दिया ॥ ४८ ॥ व आपही अनेक भांतिके दिव्य भूषणों से भूषित किया इसप्रकार उन वीरक को

भवस्यानुमतेस्वयम् ॥ इत्युक्तःसंभ्रमयुतो मुखंसम्मार्ज्यपाणिना ॥ ४५ ॥ देव्याःसमीपमागच्छद्विजयानुगतःशनैः ॥ तन्दृष्ट्वावीरकंप्राह गिरिजाप्रियया गिरा ॥ ४६ ॥ एह्येहिपुत्रदत्तस्त्वम्भवेनममपुत्रकः ॥ इत्युक्तोदण्डवद्देवींप्रणम्यावस्थितोभवत् ॥ ४७ ॥ मातातस्तमालिङ्ग्य कृत्वोत्सङ्गेचवीरकम् ॥ चुचुम्बचकपोलेतं गात्राणिचह्यमार्ज्जयत् ॥ ४८ ॥ भूषयामासदिव्यैस्तं स्वयंनानाविभूषणैः ॥ एवंसङ्कल्प्यतंपुत्रंलालयित्वाह्युमाचिरम् ॥ ४९ ॥ उवाचपुत्रक्रीडेति गच्छसार्द्धंगणैरिति ॥ ततश्चिक्रीडमध्येच गणानांपार्वतीसुतः ॥ ५० ॥ मुहुर्मुहुःस्वमनसिस्तुवन्भक्तिञ्चशाङ्करीम् ॥ प्रणम्यसर्वभूतानि प्रार्थयामिस्मदुष्करम् ॥ ५१ ॥ भक्त्याभजध्वमीशानं यस्यभक्तेरिदंफलम् ॥ क्रीडितुंवीरकेजाते ततोदेवीच पार्वती ॥ ५२ ॥ नानाकथाभिश्चिक्रीड पुनरेवजटाभृता ॥ ततोगिरिसुताकण्ठे क्षिप्यबाहुंमहेश्वरः ॥ ५३ ॥ तपसस्तु विशेषार्थं नर्मदेवींवचोब्रवीत् ॥ सहिगौरतनुश्शर्वो विशेषाच्छशिशोभितः ॥ ५४ ॥ रञ्जिताचविभावर्या देवीनीलोत्प

पुत्र कल्पना करके पार्वती जीने देरतक प्यारकर ॥ ४९ ॥ यह कहा कि हे पुत्र ! जाइये गणोंके साथ क्रीड़ा करिये तदनन्तर पार्वतीजी के पुत्र वीरकने गणोंके बीच में क्रीड़ा किया ॥ ५० ॥ व बार २ अपने मनमें शिवकी भक्तिको स्तुतिकर कहा कि समस्त भूतोंको प्रणामकर मैं कठिन वस्तुकी याचना करताहूं ॥ ५१ ॥ कि भक्तिसे शिवजी को भजिये कि जिनकी भक्तिका यह फलहै तदनन्तर जब वीरक खेलने चलेगये तब पार्वती देवीने ॥ ५२ ॥ अनेक प्रकारकी कथाओं से फिरभी जटाधारी शिवजी के साथ क्रीडा किया तदनन्तर पार्वती के कण्ठमें भुजाको धरकर महादेवने ॥ ५३ ॥ तपस्याकी विशेषता के लिये देवीसे हँसीवाला वचन कहा क्योंकि वे

शिवजी गौरशरीर व विशेषता से चन्द्रमा करके शोभित थे ॥ ५४ ॥ और रात्रिसे रंगीहुई देवी नील कमल की छविके तुल्य शोभावाली थीं ॥ ५५ ॥ शिवजी बोले कि हे तन्वङ्गि ! काली छविवाली तुम मेरे श्वेत शरीरमें वैसेही शोभित होतीहो जैसे कि श्वेत चन्दन वृक्षमें श्याम सर्पिणी लिपटीहो ॥ ५६ ॥ और जैसे चन्द्रमा की उ-जियाली में मिलीहुई अन्धकार की पंक्तिया होवै वैसेही हो व कृष्णपक्ष में रात्रिकी नाईं मुझको दृष्टिदोष देती हो ॥ ५७ ॥ उन शिवजी से इस भांति कहीहुई वे पार्वती देवी क्रोधसे लाल लोचनोंवाली व भौंहोंसे कुटिल मुखवाली होकर शिवजी से कण्ठको छुडाकर बोलीं ॥ ५८ ॥ कि अपने कियेहुये कर्म से सब प्राणी मनुष्य से

लच्छविः ॥ ५५ ॥ शर्वउवाच ॥ शरीरेममतन्वङ्गि सितेभासिचतद्द्युतिः ॥ भुजगीवासिताशुभ्रे संश्लिष्टाचन्दनेतरौ ॥ ५६ ॥ चन्द्रज्योतिषिसंपृक्तास्तामसीराजयोयथा ॥ रजनीवासितेपक्षे दृष्टिदोषंददासिमे ॥ ५७ ॥ इत्युक्तागिरिजाने न कण्ठंशर्वाद्विमोच्यसा ॥ उवाचकोपरक्ताक्षी भ्रुकुटीविकृतानना ॥ ५८ ॥ स्वकृतेनजनस्सर्वो जनेनपरिभूयते ॥ अवश्यमर्थमाप्नोतिकर्मणाशशिखण्डभृत् ॥ ५९ ॥ तपोभिर्दीप्तचरितैर्यत्त्वांप्रार्थितवत्यहम् ॥ तस्यमेनियमस्यैव मम मातापदेपदे ॥ ६० ॥ नैवाहंकुटिलाशर्व विषमानचधूर्जटे ॥ स्वदोषैस्त्वद्गतःख्याति तथादोषाकराश्रयः ॥ ६१ ॥ नाहंमुष्णामिनयने नेत्रहन्ताभवान्भव ॥ भगस्तत्त्वेविजानाति तथैवेदंजगत्त्रयम् ॥ ६२ ॥ मूर्ध्निशूलंजनयसे स्वैर्दोषैर्मामधिक्षिपन् ॥ यत्त्वंमामाहकृष्णेति महाकालेतिविश्रुतः ॥ ६३ ॥ यास्याम्यहंपरित्यक्तुमात्मानंतपसागिरिम् ॥ जी

निन्दित होताहै हे चन्द्रखण्डधारी ! कर्मोंके प्रयोजन को अवश्य मनुष्य प्राप्तहोताहै ॥ ५९ ॥ जोकि प्रकाशित चरित्रोंवाली तपस्याओं से मैंने तुमको याचना कियाहै मेरे उस नियम ही के पग२ पै मेरी माता साक्षिणी है ॥६०॥ हे शिवजी ! मैं न कुटिलहूं और न विषम हूं हे धूर्जटे ! तुम अपने दोषों से प्रसिद्धिको प्राप्तहुये हो और वैसेही दोषाकर (चन्द्रमा) के आश्रयभूत हो ॥६१॥ हे शिव ! मैं नेत्रोंको नहीं हरती हूं व आप नेत्रनाशक हैं तुम्हारे उस कर्मको भगदेवता व वैसेही यह त्रिलोक जानताहै ॥६२॥ अपने दोषोंसे मुझको तिरस्कार करतेहुये तुम मस्तक में पीड़ा पैदा करतेहो जो तुमने मुझे काली ऐसा कहाहै तो आप महाकाल ऐसे प्रसिद्धहो॥६३॥

मैं तपस्यासे शरीर त्यागने के लिये पर्वतपै जाऊंगी क्योंकि धूर्त्त शिवजी से निन्दितहो जीतीहुई मेरा कार्य नहीं है ॥ ६४ ॥ कोपसे तीक्ष्ण अक्षरोंवाला उन देवीका वचन सुनकर अशुभ से भ्रमित व दुःखसे जानने योग्य चरितोंवाले सदाशिव जी बोले ॥ ६५ ॥ कि हे गिरिजे ! तुम यथार्थकी जाननेवाली नहींहो और मैं तुम्हारी निन्दामें तत्पर नहीं हूं किन्तु विवाद होनेकी बुद्धिसे मैंने यह पार्वती मेरी प्यारी है स्वस्थ चित्तसे यह कल्पितकर तुमसे हँसौवाका कीर्त्तन किया और प्रायः ऐश्वर्य से गर्वित जनोंके हृदय में तुम अन्यथा चिन्तन कीगईहो ॥ ६६ । ६७ ॥ हे कृष्णांगि ! हम सरीखे पुरुषोंकी वाणी अन्यथा वर्त्तमान होती हैं हे भीरु ! यदि

वत्यानास्तिमेकृत्यं धूर्त्तेनपरिभूतया ॥ ६४ ॥ निशम्यतस्यावचनंकोपतीक्ष्णाक्षरम्भवः ॥ उवाचारिष्टसम्भ्रान्तो दुर्ज्ञेयचरितोहरः ॥ ६५ ॥ नतत्त्वज्ञासिगिरिजे नाहंनिन्दापरस्तव ॥ वादस्यबुद्ध्याकृतवांस्तवाहंनर्म्मकीर्तनम् ॥ ६६ ॥ विकल्प्यस्वस्थचित्तेहि गिरिजैपाममप्रिया ॥ प्रायेणभूतिलिप्तानामन्यथाचिन्तिताहृदि ॥ ६७ ॥ अस्मादृशानांकृष्णाङ्गि प्रवर्त्तन्तेन्यथागिरः ॥ यद्येवंकुपितासीरु त्वमेवाहंनतेपुनः ॥ ६८ ॥ नर्मवादीभविष्यामि जहिकोपंशुचिस्मिते ॥ शिरसाप्रणतस्तेहं रचितस्तेमयाञ्जलिः ॥ ६९ ॥ हीनेनाप्ययमानेन निन्दितोनैमिविक्रियाम् ॥ वरमेवास्मिविगुणो न त्वंदेविगुणान्विता ॥ ७० ॥ इत्यनेकैश्चाटुसूक्तैर्देवेनप्रतिबोधिता ॥ कोपंतीव्रंनतत्याज सतीमर्मणिताडिता ॥ ७१ ॥ अवबद्धावथक्षिप्त्वा पादौशङ्करपाणिना ॥ विपर्यस्तालकावेगाद्गन्तुमैच्छतशैलजा ॥ ७२ ॥ सत्यांव्रजन्त्याङ्कोपेन पुनराहपुरान्तकः ॥ सत्यंसर्वैरवयवैः सुतेतिसदृशीपितुः ॥ ७३ ॥ हिमाचलस्यश्रृङ्गैस्ते मेघजालाकुलैर्म्मनः ॥ तथाद्गुरव

तुम ऐसी क्रोधित होतीहो तो फिर तुमसे मैं ॥ ६८ ॥ नर्मवादी (हास्यकर्त्ता) न हूंगा हे शुचिस्मिते ! कोपको नाश करिये मै शिरसे तुम्हारे प्रणाम करताहूं व तुम्हारे मैं हाथ जोडताहू ॥ ६९ ॥ और तुच्छ अपमान से निन्दित मैं विकारको न प्राप्तहूंगा मैं गुणहीनहू यह श्रेष्ठ बातहै और हे देवि ! गुणोसे संयुत तुम गुणहीन नहींहो ॥ ७० ॥ इस प्रकार शिवदेवजी से अनेक प्रिय वचनो करके देवीजी न समझी और सुकुमार स्थानो में ताडित पार्वती ने तीक्ष्ण क्रोधको नही छोडा ॥ ७१ ॥ इसके अनन्तर शिवजीके हाथसे बँधेहुये चरणोको झिटककर उलटे पुलटे बालोंवाली पार्वती ने जानेकी इच्छा किया ॥ ७२ ॥ जब पार्वती जी चली तब क्रोधसे फिर शिव

जीने कहा कि यह सत्यहै कन्या सबअंगों करके पिताके तुल्य होती है ॥ ७३ ॥ मेघसमूहों से व्याप्त हिमाचल के शिखरोंके समान तुम्हारा मनहै वैसेही यह पर्वत
कुण्डों से दुःख करके अवगाहन करने योग्यहै व तुम्हारा आशय दुःखसे अवगाहने योग्यहै ॥ ७४ ॥ तुममें वनोंसे इस काष्ठ करके बहुत भांतिकी कठिनता आई है
और नदियों से तुममें कुटिलता और पालासे तुममें दुःखसेवन योग्यता आई है ॥ ७५ ॥ हे देवि ! यह सब तुममें हिमाचल से भलीभांति प्राप्तहुआ है उससमय इस
प्रकार कहीहुई उन पार्वती जीने शिवसे कहा ॥ ७६ ॥ जोकि क्रोधसे कांपते हुये व धूमसमान मुख व फरकते हुये ओंठोंवाली थीं कि हे शिवजी ! अपने अपमान से

**गाह्योसौ ह्रदेभ्यश्चतवाशयः ॥ ७४ ॥ काठिन्यंकाष्ठतोस्मात्ते वनेभ्योबहुधागतम् ॥ कुटिलत्वंनदीभ्यस्ते दुस्सेव्य
त्वंहिमादपि ॥ ७५ ॥ संक्रान्तंसर्वमेवैतत्तवदेविहिमाचलात् ॥ इत्युक्तासापुनःप्राह गिरिशंशैलजातदा ॥ ७६ ॥ कोप
कम्पितधूम्रास्या प्रस्फुरद्दशनच्छदा ॥ माशर्वात्मापमानेन निन्दत्वंगुणिनोजनान् ॥ ७७ ॥ तवापिदुष्टसम्पर्कात्सं
क्रान्तंसर्वमेवहि ॥ व्यालेभ्योनेकजिह्वत्वं भस्मनास्नेहबन्धता ॥ ७८ ॥ हृत्कालुष्यंशशाङ्कात्ते दुर्बोधत्वंवृषादपि ॥
अथवाबहुनोक्तेन अलंबहुश्रमेणमे ॥ ७९ ॥ श्मशानवासाच्चाभीस्त्वं नग्नत्वान्नतवत्रपा ॥ निर्घृणत्वंकपालित्वादेवं
कःशक्नुयात्तव ॥ ८० ॥ इत्युक्त्वामन्दिरात्तस्मान्निर्जगामहिमाद्रिजा ॥ तस्यांव्रजन्त्यांचुक्रुशु एतेकिलकिलाध्वनिम् ॥
८१ ॥ क्वमातर्गच्छसीत्युक्त्वा रुन्धन्तोधाविताःपुरः ॥ विष्टम्भचरणौदेव्यावीरकोबाष्पगद्गदम् ॥ ८२ ॥ प्रोवाचमातः**

गुणीजनो की मत निन्दा करिये ॥ ७७ ॥ तुम्हारे भी सब कुछ दुष्टोंके मेलसे भलीभांति आयाहै सर्पोंसे अनेक जीभोंका होना व भस्मसे स्नेहका न होना ॥ ७८ ॥ व
चन्द्रमासे तुम्हारे हृदयकी मलिनता व अज्ञानता भी बैलसे आईहै अथवा बहुत कहना व्यर्थ है व बहुत परिश्रम से मेरा कुछ कार्य नहीं है ॥ ७९ ॥ तुम श्मशान में
रहने से निडर व नंगे होनेके कारण तुम्हारे लज्जा नहीं है और कपाल धारण करने से घृणा नहीं है इसप्रकार तुम्हारे अवगुण कहनेको कौन समर्थ है ॥ ८० ॥ यह
कहकर पार्वती जी उस मन्दिर से निकलीं जब वे पार्वती चलीं तब इन गणों ने किलकिला शब्द किया ॥ ८१ ॥ व दौड़ते हुये उन्होंने यह कहकर आगे रोंका कि

हे माता ! कहां जातीहो और पार्वती देवी के चरण पकड़कर वीरक ने आंसुवों से गद्गद वचन कहा ॥ ८२ ॥ कि हे माता ! यह क्या है कि जो मुझको छोड़कर
शीघ्रता समेत जातीहो स्नेहप्रिय मैं तुम माता के पीछे जाऊंगा ॥ ८३ ॥ और तुमसे छोड़ाहुआ मैं शिवजी के आश्रय न हूंगा क्योंकि माताके बिना पुत्र पिताकी
कठोरताका पात्र होता है ॥ ८४ ॥ पश्चात् दाहिने हाथसे मुखको स्पर्शकर पार्वती माताने शोच समेत पुत्रसे कहा ॥ ८५ ॥ कि मेरे साथ तुम पर्वतो के अग्रभागपै
आनेके योग्य नहीहो हे पुत्र ! कहतीहूं कि जो कार्य तुमसे करने योग्य है उसको सुनिये ॥८६॥ कि शिवजी ने मुझे काली ऐसा कहा व तृणकी नाई निन्दा कियाहै

किन्न्वेतत्त्यक्त्वायास्यसिसत्वरा ॥ अहन्त्वामनुयास्यामिमातरंस्नेहवत्सलः ॥ ८३ ॥ नाहंश्रयिष्येपरुषं गिरिशंचैत्व
योज्झितः ॥ पुत्रःपारुष्यपात्रंहि भवेन्मात्राविनापितुः ॥ ८४ ॥ उन्माज्र्यंवदनंपश्चाद्दक्षिणेनतुपाणिना ॥ उवाचवीर
कंमाता सशोकंपुत्रमम्बिका ॥ ८५ ॥ शैलाग्रान्प्रतित्वंचैवनाप्यागन्तुंमयासह ॥ वक्ष्यामिपुत्रतेयोग्यं यत्तुकार्यंत्वया
शृणु ॥ ८६ ॥ कृष्णेत्युक्ताहरेणाहं निन्दिताचतृणंयथा ॥ साहंतपःकरिष्यामि यथागौरीत्वमाप्नुयाम् ॥ ८७ ॥ गौ
राङ्गोलम्पटोह्येष यातायांमय्यनन्तरम् ॥ द्वाररक्षात्वयाकार्या नित्यंरन्ध्रस्यवीक्षणात् ॥ ८८ ॥ यथानकाचित्प्रविशे
द्योषिदत्रहरान्तिके ॥ दृष्ट्वापरांस्त्रियञ्चात्र वदस्वममपुत्रक ॥ ८९ ॥ शीघ्रमेवंकरिष्यामि तपोयुक्तमनन्तरम् ॥
एवमस्त्वितितांदेवीं वीरकःप्राहसाम्प्रतम् ॥ ९० ॥ मातुराज्ञामृतह्रदे प्लाविताङ्गोगतज्वरः ॥ जगामगिरिशंद्रष्टुं प्र
णिपत्यचमातरम् ॥ ९१ ॥ ततःगजाननंप्राह प्रणम्यसमवस्थितम् ॥ साश्रुकण्ठमयाचन्तं नयमामपिपार्वति ॥ ९२ ॥

सो मैं तपस्या करूंगी कि जिस प्रकार गौरशरीरत्वको प्राप्तहूंगी ॥ ८७ ॥ ये गौर शरीरवाले शिवजी लम्पट हैं इससे मेरे जाने पर उसके उपरान्त छिद्रावलोकन से
तुमको नित्यही द्वार रक्षा करना चाहिये ॥ ८८ ॥ कि जिस प्रकार शिवजीके समीप यहां कोई स्त्री न पैठे और यहां अन्य स्त्रीको देखकर हे पुत्र ! मुझसे कहियेगा ॥
८९ ॥ और इसके बाद मैं शीघ्रही योग्य तपस्या करूंगी वीरक ने उन पार्वती देवीसे यह कहा कि इस समय ऐसाही होगा ॥ ९० ॥ व माता की आज्ञारूप अमृत
के कुंड मे डूबे हुये अंगोंवाले वीरक जी दु:खरहित होकर माता को प्रणाम कर शिवजी को देखने के लिये गये ॥ ९१ ॥ तदनन्तर हे पार्वती जी ! मुझको भी ले

नलिये यह याचते हुये व प्रणाम कर भलीभाँति खड़े व आसुओं सहित कंठवाले गणेश जी से पार्वती जी बोलीं ॥ ६२ ॥ कि हाथी के मुखवाले पुत्र [illegible]
मेरी नाई हँसैंगे इस लिये मेरे साथ आइये जो मेरी दशा होगी वह तुम्हारी भी होगी ॥ ६३ ॥ हे पुत्र ! तिरस्कार से निन्दित जनों को [illegible]
उन गणेशजी को लेकर वे पार्वती जी हिमाचल पै चली गई ॥ ६४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे कुमारिकाखण्डे [illegible] ॥ नारद जी [illegible]
दो० । महादेव के पुत्र जिमि भये षडानन देव । तेइसवें अध्याय में सोइ चरित सुखमे [illegible]

गजवक्त्रंहित्वांवासो मामिवोपहसिष्यति ॥ तदागच्छमयासार्द्धं यागतिर्म्मेतवापिसा ॥ ६३ ॥ [illegible]
णांसाधुपुत्रक॥ एवमुक्त्वातमादाय हिमाद्रिंप्रतिसाययौ ॥ ६४ ॥ इतिश्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेकुमारेशमाहात्म्ये
पार्वत्यास्तपोर्थगमनंनामद्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

* ॥ * ॥ *

नारदउवाच ॥ व्रजन्तींगिरिजांपश्यत्सखींमातुर्म्महाप्रभाम् ॥ कुसुमामोदिनीनाम तस्यशैलस्यदेवताम् ॥ १ ॥ सा
सापिदृष्ट्वागिरिसुतां स्नेहविक्लवमानसा ॥ क्वपुनर्गच्छतीत्युच्चैरालिङ्ग्योवाचदेवता ॥ २ ॥ साचास्यैसर्वमाचख्यौ शं
ङ्करात्कोपकारणम् ॥ पुनश्चोवाचगिरिजादेवतांमातृसम्मताम् ॥ ३ ॥ नित्यंशैलाधिराजस्य देवतात्वमनिन्दिता ॥
सर्वत्रसन्निधानञ्च मयिचातीववत्सला ॥ ४ ॥ तदहंसम्प्रवक्ष्यामि यद्विधेयंत्वयाधुना ॥ अन्यस्त्रीसंप्रवेशोतु [illegible]
पिनाकिनः ॥ ५ ॥ त्वयारक्ष्यंयमशुभे गुरुंकंपश्चात्करोम्यहम् ॥ तथेत्युक्तेतयादेव्या ययौदेवीगिरिंप्रति ॥ ६ ॥ [illegible]

[illegible] की सखी बड़ी शोभावाली कुसुमामोदिनी नामक को देखा ॥ १ ॥ व उस शैल देवता ने भी पार्वती जी को देखकर विकलमन होती हुई [illegible]
[illegible] से यह कहा कि कहा जाती हो ॥ २ ॥ व इन पार्वती ने सब शिव जी करके क्रोध का कारण इस सखी से कहा व फिर माता से [illegible] उस देवता [illegible]
कहा ! [illegible] हे अनिन्दिते ! तुम नित्यही पर्वताधिराज की देवता हो व शिव जी के समीप तुम्हारी समीपता रहती है व मुझ में बड़ा प्यार करती हो ॥ ३ ॥
[illegible] तुम्हें इस समय जो करना चाहिये उसको मैं कहती हूं कि शिव के समीप और स्त्री के प्रवेश में ॥ ५ ॥ हे शुभे ! तुम को मुझ से कहना [illegible]

म योग्य कार्य को करूंगी जब उस देवी ने यह कहा कि वैसाही होगा तब पार्वती देवी हिमाचल पै चली गई ॥ ६ ॥ वहां अनेक प्रकार के आश्चर्यों से शोभित व मनोहर बड़भारी शिखर पै भूषणादिकों को धरकर वृक्षों के बकलों को धारण किया ॥ ७ ॥ व पुत्र से पालन कीहुई पार्वतीने तपस्या किया कि ग्रीष्म ऋतु में पंचाग्नि को तापा व वर्षा में जलवास किया ॥ ८ ॥ व हेमन्त ऋतु में निराहार होती हुई उन पार्वती जीने चौतरे पै स्थित होती हुई तपस्या किया इसी अवसर में अंधक का पुत्र बली दैत्य ॥ ९ ॥ पार्वती जी को गई हुई जानकर पिता का वैर स्मरण करता हुआ बक का भाई आडि नामक शिवजी के छिद्र को देख

तत्रमहाशृङ्गे नानाश्चर्योपशोभिते ॥ विभूषणादिसंन्यस्यवृत्तवल्कलधारिणी ॥ ७ ॥ तपस्तेपेगिरिसुता पुत्रेणपरिपालिता ॥ ग्रीष्मेपञ्चाग्निसन्तप्ता वर्षासुचजलोषिता ॥ ८ ॥ स्थण्डिलस्थाचहेमन्ते निराहारातताापसा ॥ एतस्मिन्नन्तरेदैत्यो ह्यन्धकस्यसुतोबली ॥ ९ ॥ ज्ञात्वागताङ्गिरिसुतांपितुर्वैरमनुस्मरन् ॥ आडिनामाबकभ्राता हरस्यान्तरप्रेक्षकः ॥ १० ॥ जितेकिलान्धकेदैत्ये गिरिशेनामरद्विषि ॥ आडिश्चकारविपुलं तपोहरजिगीषया ॥ ११ ॥ तमागत्याब्रवीद्ब्रह्मातपसापरितोषितः ॥ ब्रूहिकिंवासुरश्रेष्ठतपसाप्राप्तुमिच्छसि ॥ १२ ॥ ब्रह्माणमाहदैत्यस्तु निर्मृत्युत्वमहंवृणे ॥ १३॥ब्रह्मोवाच ॥नकश्चिच्चविनामृत्युंजन्तुरासुरविद्यते ॥ यतस्ततोपिदैत्येन्द्रमृत्युःप्राप्यःशरीरिणा ॥१४॥इत्युक्तोदैत्यसिंहस्तुनोवाचाम्बुजसम्भवम् ॥ इत्युक्तोमरतांमेने दैत्यराजःस्थितोसुरः ॥ १५ ॥ आजगामसचस्थानन्तदात्रिपुरघाति

रहाथा ॥ १० ॥ यह प्रसिद्ध है कि जब शिवजी ने देवताओं के वैरी अंधक को जीत लिया तब महादेव को जीतने की इच्छा से आडि ने बडी तपस्या किया ॥ ११ ॥ व तपस्यासे प्रसन्न किये हुये ब्रह्माजी उसके समीप आकर बोले कि हे दैत्योत्तम ! तपस्या से तुम क्या पाने की इच्छा करते हो ॥ १२ ॥ दैत्यने ब्रह्मा से कहा कि मैं अमरता को मांगता हूं ॥ १३ ॥ ब्रह्मा बोले कि हे दैत्य ! जिस लिये कोई प्राणी मृत्यु के विना नहीं वर्तमान है इससे हे दैत्येन्द्र ! देहधारीको मृत्यु प्राप्तहोने योग्य होती है ॥ १४ ॥ इस प्रकार कहे हुये दैत्योत्तमने ब्रह्मा से कुछ न कहा व इस भांति कहे हुये दैत्यों के राजा आडि दैत्यने स्थित होकर अमरता माना ॥ १५ ॥

व॰ उस समय वह त्रिपुरनाशक शिवजी के स्थान पर आया व द्वार स्थान पै आने पर उसने बैठे हुये द्वारपालक वीरक जी को देखा ॥ १६ ॥ व उसको छल कर वीरक से न मना किये हुये सर्पशरीरधारी इस आडि ने शिवजी के समीप प्रवेशकिया ॥ १७ ॥ इस के अनन्तर मूर्ख बुद्धिवाला यह महादैत्य शिव के छलने के लिये सांप का रूप छोड़ कर पार्वतीरूप होगया ॥ १८ ॥ तदनन्तर तर्कणा से रहित व सुन्दर और समस्त अंगों से पूर्ण व सब ज्ञानों से छिपा हुआ पार्वती का रूप कर ॥ १९ ॥ दैत्य ने पैने अग्रभागवाले व वज्र के समान कठोर दांतोंको भग के बीच में किया और बुद्धिके मोह से शिवजी को मारने के लिये उद्यत हुआ ॥२०॥

नः ॥ आगतेद्वारदेशेतं वीरकंद्वारपंस्थितम् ॥ १६ ॥ तंचासौवञ्चयित्वाच आडिःसर्पशरीरभृत ॥ अवारितोवीरकेण प्रविवेशहरान्तिकम् ॥ १७ ॥ भुजङ्गरूपंसन्त्यज्यबभूवाथमहासुरः ॥ उमारूपीछलयितुं गिरिशंमूढचेतनः ॥ १८ ॥ कृत्वोमायास्ततोरूपमप्रतर्क्यमनोहरम् ॥ सर्वावयवसम्पूर्णंसर्वाभिज्ञानसंवृतम् ॥ १९ ॥ चक्रेभगान्तरेदैत्योदन्तान् वज्रोपमान्दृढान् ॥ तीक्ष्णाग्रान्बुद्धिमोहेन गिरिशंहन्तुमुद्यतः ॥ २० ॥ कृत्वोमारूपमेवं स स्थितोदैत्योहरान्तिके ॥ तान्दृष्ट्वागिरिशस्तुष्टः समालिङ्ग्यमहेश्वरः ॥ २१ ॥ मन्यमानोगिरिसुतांसर्वैरवयवान्तरैः ॥ अपृच्छत्साधुतेभावो गिरिपुत्रिह्यकृत्रिमः ॥ २२ ॥ यात्वंमदाशयंज्ञात्वा प्राप्तैववरवर्णिनि ॥ त्वयाविरहितःशून्यं मन्येहंभुवनत्रयम् ॥ २३ ॥ प्राप्ताप्रसन्नायन्मान्त्वं युक्तमेवंविधन्तव ॥ सत्कृतोयंहरेणैवमुमारूपासुरोब्रवीत ॥ २४ ॥ यातास्म्यहंतपश्चर्तुंकालीवाक्यात्त

इस प्रकार पार्वती का रूप कर शिव के समीप वह दैत्य स्थित हुआ उस को देखकर प्रसन्न होते हुये गिरिश महादेव जी भलीभांति लिपट कर ॥ २१ ॥ व समस्त अंगों के भेदों से पार्वती को जानते हुये शिव ने पूछा कि हे पर्वतपुत्रि ! तुम्हारा स्वभाव बिन बनावट का अच्छा है ॥ २२ ॥ हे उत्तमवर्णावाली ! जो तुम कि मेरे आशय को जान कर प्राप्तही हुई तुमसे रहित मैं त्रिलोकीको शून्य मानता हूं ॥२३॥ प्रसन्न होतीहुई जो तुम मेरे समीप प्राप्तहुई ऐसा तुमको योग्यही है शिव से इस भांति आदर कियेहुये पार्वतीरूप दैत्य ने कहा ॥ २४ ॥ कि तुम्हारे काली ऐसे वचन से मैं बड़ीभारी तपस्या करने के लिये गई थी परन्तु उस तपस्या

में मेरा स्नेह न हुआ उसीसे तुम्हारे समीप प्राप्तहुई ॥ २५ ॥ ऐसा कहेहुये उन शिवजीने वहां कुछ शंका किया कि मेरे सामने छोटे अंगोंवाली व पुष्ट नियमवा-ली पार्वती जी क्रोधित हुई थीं ॥ २६ ॥ बिन कामना पाये वे पार्वती जी क्यों भलीभांति प्राप्तहुई यह मेरे सन्देह है एकान्त में ऐसा विचार कर इसके बाद ज्ञान से चिन्तन करतेहुये शिवजी ने ॥ २७ ॥ उसकी बाईं बगलमें कमल के लक्षणवाले चिह्नको न देखा कि जिस में लोमोंका भँवर का सा चरित्र था तदनन्तर पि-नाकधारी शिवजी ने ॥ २८ ॥ उसको दानवी माया जानकर कुछ मुसक्यान समेत मुखवाले होकर लिंगमें रौद्रास्त्र धरकर दैत्यका अभिलाष किया ॥ २९ ॥ व भ-

वातुलम् ॥ रतिश्चतत्रमेनाभूत्ततः प्राप्तातवान्तिकम् ॥ २५ ॥ इत्युक्तःशङ्करःशङ्काङ्किञ्चित्तत्राकरोच्चसः ॥ कुपितामयि तन्वङ्गी प्रत्यक्षाचदृढव्रता ॥ २६ ॥ अप्राप्तकामासंप्राप्ता किमेतत्संशयोमम ॥ रहसीतिविचिन्त्याथ अभिज्ञानादि चारयन् ॥ २७ ॥ नापश्यद्वामपार्श्वेतु तस्याङ्कम्पद्मलक्षणम् ॥ लोम्नामावर्तचरितं ततोदेवःपिनाकधृक् ॥ २८ ॥ बुद्धा तान्दानवींमायां किञ्चित्प्रहसिताननः ॥ मेढ्रेरौद्रास्त्रमाधाय चक्रेदैत्यमनोरथम् ॥ २९ ॥ सकुर्वन्भैरवान्नादानवसा दङ्गतोसुरः ॥ अबुद्धंवीरकेणैतदसुरेन्द्रनिषूदनम् ॥ ३० ॥ कथितामारुतेनाशुगामिनानगदेवता ॥ अपरिच्छिन्नतत्त्वा थ शैलपुत्र्यैन्यवेदयत् ॥ ३१ ॥ श्रुत्वावायुमुखाद्देवीक्रोधसंरक्तलोचना ॥ अशपद्वीरकंपुत्रं हृदयेनविदूयता ॥ ३२ ॥ मातरंमांपरित्यज्य यस्मात्त्वमतिचञ्चलः ॥ विहितावसरःस्त्रीणांशङ्करस्यरहोविधौ ॥ ३३ ॥ तस्मात्तेपरुषारूक्षा जडा हृदयवर्जिता ॥ गणेशक्षारसदृशा शिलामाताभविष्यति ॥ ३४ ॥ एवमुत्सृष्टशापाया गिरिपुत्र्यास्त्वनन्तरम् ॥

यङ्कर शब्दोको करताहुआ वह दैत्य मृत्युको प्राप्तहुआ यह दैत्यका मारना वीरक ने नहीं जाना ॥ ३० ॥ और शीघ्र चलनेवाले पवनने अखण्ड तत्त्ववाली पर्वत के देवता कुसुमामोदिनी से कहा इसके अनन्तर पार्वती जीसे निवेदन किया ॥३१॥ पवनके मुखसे सुनकर क्रोधसे लाल लोचनोंवाली देवीने दुःखित हृदयसे वीरक पुत्रको शापदिया ॥ ३२ ॥ कि जिस लिये मुझ माताको छोडकर बडे चंचल तुमने शिवजी के एकान्त विधान मे स्त्रियोंको समय दिया ॥ ३३ ॥ इसलिये हे गण-नायक ! कठोर, स्नेहरहित, जड, हृदयवर्जित व क्षारके समान तुम्हारी माता शिलाहोगी ॥ ३४ ॥ इसके अनन्तर इस प्रकार शाप देतीहुई पार्वती जीके मुखसे बडा

बलिष्ठ सिंहरूपी क्रोध निकला ॥ ३५ ॥ जोकि पश्चात्ताप से घिरकर उन देवी से रचागया था व जिसके कन्धेपै बड़े २ आलोंके बालथे वह भयानक मुखवाला
सिंह ॥ ३६ ॥ जोकि बलसे पूंछको झिटकताहुआ व दाढ़ोंसे भयङ्कर गुहाके समान मुखवाला था व जीभको चाटताहुआ तथा मुखको फैलाये व दुबली कुक्षिवाला
तथा खानेकी इच्छाकरताथा ॥ ३७ ॥ जब देवीने उसके मुखसे वर्त्तमान होनेका विचारकिया तब उसके मनमें प्राप्त वस्तुको जानकर भगवान् ब्रह्माजी ॥३८॥ सम्पदाओं
के आश्रयरूप आश्रम स्थानको आये व आकर तदनन्तर ब्रह्माजी उन पार्वती से सत्यवाणी बोले ॥ ३९ ॥ कि हे देवि ! तुम क्या पाने के लिये चाहती हो व मैं

निर्जगाममुखात्क्रोधः सिंहरूपीमहाबलः ॥ ३५ ॥ पश्चात्तापंसमावृत्य तयादेव्याविसर्जितः ॥ सतुसिंहःकरालास्यो
महाकेशरकन्धरः ॥ ३६ ॥ प्रोद्धूतवललाङ्गूलो दंष्ट्रोत्कटगुहामुखः ॥ व्यावृतास्योल्ललज्जिह्वःक्षामकुक्षिश्चिखादिषुः ॥
३७ ॥ तस्यास्येवर्तितुन्देवी व्यवस्यतसतीतदा ॥ ज्ञात्वामनोगतंतस्या भगवांश्चतुराननः ॥ ३८ ॥ आजगामाश्रम
पदं सम्पदामालयन्ततः ॥ आगत्योवाचतांब्रह्मा गिरिजामृतयागिरा ॥ ३९ ॥ किन्देविप्राप्तुकामासि किमलभ्यंद
दामिते ॥ तच्छ्रुत्वोवाचगिरिजा गुरुगौरवगर्भितम् ॥ ४० ॥ तपसादुश्चरेणाशः पतिर्लेशङ्करोमया ॥ समांश्यामलवर्णा
ति बहुशःप्रोक्तवान्भव ॥ ४१ ॥ श्यामाहंकाञ्चनाकारा वाल्लभ्येनचसंयुता ॥ भर्त्तुर्भूयात्परस्याङ्गेएकत्वेनिर्विशङ्किता ।
४२ ॥ तस्यास्तद्भाषितंश्रुत्वा प्रोवाचजलजासनः ॥ एवंभवतुभूयास्त्वं भर्त्तुर्देहार्धधारिणी ॥ ४३ ॥ ततस्तस्याःशरीरात्तु
नारीनीलोत्पलत्वचा ॥ निर्गताचशुभापाङ्गी घण्टाहस्तात्रिलोचना ॥ ४४ ॥ नानाभरणपूर्णाङ्गी पीतकौशेयवासिनी ॥

तुमको किस दुर्लभ वस्तुको देऊं उस वचनको सुनकर गुरुतासे भरेहुये ब्रह्मासे पार्वतीजी बोलीं ॥ ४० ॥ कि मैंने कठिन तपस्या से पतिहोने में शिवजी को स्वीकार
किया उन शिवजीने मुझे श्यामरंगवाली ऐसा बार २ कहा ॥ ४१ ॥ इससे श्याम रंगवाली मैं सुवर्णके स्वरूपवाली व प्रियत्व से संयुत होऊं और श्रेष्ठ पति के अंग
में सन्देहरहित एकत्व होवै ॥ ४२ ॥ उसके उस वचनको सुनकर कमलासन ब्रह्माजी बोले कि ऐसाही होवै तुम पतिके आधे शरीरको धारनेवाली होगी ॥ ४३ ॥
तदनन्तर उन पार्वतीजीकी देहसे नील कमलके समान त्वचावाली स्त्री निकली जोकि तीन नयनोंवाली व हाथमें घण्टाको लिये और उत्तम नेत्रान्तोंवाली थी ॥४४॥

और अनेक प्रकार के गहनों से पूर्ण अंगोंवाली व पीत रेशमी वसन पहनेथी तदनन्तर ब्रह्माने नील कमलके तुल्य छविवाली उस देवीसे कहा ॥ ४५ ॥ कि पार्वतीजी के देहके इस मेलसे तुम मेरी आज्ञा करके भलीभाति प्राप्तहुईहो और तुम आगे अंशरहित व एकही तथा कृतकृत्य होवोगी ॥ ४६ ॥ हे वरानने ! देवी के क्रोधसे जो यह सिंह पैदाहुआहै हे देवि ! वह बड़ाबलिष्ठ सिंह तुम्हारी सवारी व ध्वजामें होगा ॥ ४७ ॥ और यहां तारकासुरके सेनापति शुम्भ निशुम्भको मारकर विन्ध्याचलपै जावो वहां देवताओं का कार्य करोगी ॥ ४८ ॥ हे देवि ! लाख यक्ष जिसके चरणानुगामी है यह सैकडों बड़ीभारी मायाओं से संयुत पाचाल नामक

तामब्रवीत्ततोब्रह्मा देवींनीलाम्बुजत्विषम् ॥ ४५ ॥ अस्माद्भूधरजादेहसम्पर्कात्त्वंममाज्ञया ॥ सम्प्राप्ताकृतकृत्यात्व मेकानंशापुराह्यसि ॥ ४६ ॥ यएषसिंहःप्रोद्भूतो देव्याःक्रोधाद्वरानने ॥ सतेस्तुवाहनेदेवि केतौचास्तुमहाबलः ॥४७॥ गच्छविन्ध्याचलेतत्र सुरकार्यंकरिष्यसि ॥ अत्रशुम्भनिशुम्भौच हत्वातारकसैन्यपौ ॥ ४८ ॥ पाञ्चालोनामयक्षोयं य क्षलक्षपदानुगः ॥ दत्तस्तेकिङ्करोदेवि महामायाशतैर्युतः ॥४९ ॥ इत्युक्ताब्रह्मणादेवी तथेत्याहपितामहम् ॥ निर्ग तायाञ्चकौशिक्यां ज्ञानाद्यैराश्रितागुणैः ॥ ५० ॥ सर्वैःपूर्वभवोत्पन्नैस्तदास्वयमुपस्थितैः ॥ उमापिप्राप्तसङ्कल्पा पश्चा त्तापपरायणा ॥५१॥ मुहुःस्वंपरिनिन्दन्ती जगामगिरिशान्तिकम् ॥ विप्रायान्तिचतांद्वारि परिवार्यसमाहिताः॥५२॥ रुरोधवीरकोदेवी हेमवेत्रलताधरः ॥ तामुवाचचकोपेन तिष्ठतिष्ठकयास्यसि ॥ ५३ ॥ प्रयोजनंनतेस्तीह गच्छयातुन्न चार्हसि ॥ देव्यारूपधरोदैत्यो देवंवञ्चयितुंत्विह ॥ ५४ ॥ प्रविष्टोनचदृष्टोसौ सचदेवेनघातितः ॥ घातितेचाहमाज्ञप्तो

सेवक तुमको दियागया ॥ ४९ ॥ ब्रह्मासे इस प्रकार कहीहुई देवीने ब्रह्मासे यह कहा कि वैसाही होगा व कौशिकी देवीके निकलने पर पूर्वजन्ममे उत्पन्न व आपही से उस समय प्राप्त ज्ञानादिक गुणोंसे टिकीहुई पार्वती जी संकल्पित वस्तुको पाकर पश्चात्ताप में तत्परहुई ॥ ५० । ५१ ॥ व बार २ अपनाको निन्दती हुई पार्वती शिव जी के समीपगई और द्वारपै सावधान होतेहुये ब्राह्मण उसको घेरकर जारहे थे ॥ ५२ ॥ सोनेकी बेतरूपी लताको धारण किये वीरकने देवीको रोंका व उससे क्रोध कर कहा कि खड़ीहो २ कहां जावोगी ॥ ५३ ॥ तुम्हारा प्रयोजन नहीं है जाइये यहा जाने के लिये तुम योग्य नहीं हो देवीके रूपको धारे दैत्य शिवदेवजी को

छलनेके लिये यहां ॥ ५४ ॥ पैठाथा व इसको मैंने नहीं देखा और शिवदेवजी ने उसको मारडाला व मार डालने पर बुद्धिमान् शिवनें मुझे आदर समेत वह आज्ञा दिया है कि हे पुत्र ! किसी भी स्त्रीको तुम्हैं प्रवेश न करानाचाहिये इसलिये अनेकवर्ष गणोंतक तुम इसद्वारपै खड़ी ॥ ५५ । ५६॥ होवोगी और यहां पैठने न पावोगी इससे जावो जो स्नेहके प्यारवाली मेरी माताहै वही एक यहां प्रवेश करैगी ॥ ५७ ॥ जोकि पर्वतराज हिमाचलकी कन्या पार्वती जी शिवको प्यारी हैं तदनन्तर ऐसी कहीहुई पार्वती देवीने चित्तसे विचारकिया ॥ ५८ ॥ कि वह स्त्री नहीं किन्तु वह तो दैत्यथा और यह दैत्य मिथ्याभाससे नहीं रोंकने योग्यहुआ क्रोधसे घिरीहुई

नीलकण्ठेनधीमता ॥ ५५ ॥ क्वापिस्त्रीनप्रवेष्टव्या त्वयापुत्रेतिसादरम् ॥ तस्मात्त्वमत्रद्वारिस्था वर्षपूगान्यनेकशः ॥ ५६ ॥ भविष्यसिनचाप्यत्र प्रवेशंलप्स्यसेव्रज ॥ एकामेप्रविशेदत्र मातायास्नेहवत्सला ॥ ५७ ॥ नगाधिराजतनया पार्वतीरुद्रवल्लभा ॥ इत्युक्तातुततोदेवी चिन्तयामासचेतसा ॥ ५८ ॥ नसानारीसदैत्योसौ वार्योनैवावभासतः ॥ वृथैववीरकःशप्तो मयाक्रोधपरीतया ॥ ५९ ॥ अकार्यंक्रियतेमूढैः प्रायःक्रोधसमन्वितैः ॥ क्रोधेननश्यतेकीर्तिःक्रोधोहन्तिस्थिरांश्रियम् ॥६०॥ आयुश्छिन्नंनतत्त्वार्थं पुत्रंशापितवत्यहम् ॥ विपरीतार्थबोद्धॄणां सुलभोविपदोदयः ॥ ६१ ॥ सञ्चिन्त्यैवमुवाचेदंवीरकंप्रतिशैलजा ॥ शङ्करस्यास्मिदयितासुतातुहिनभूभृतः ॥ ६२ ॥ ममगात्रच्छविभ्रान्त्यामाशङ्कां पुत्रभावय ॥ तुष्टेनगौरतादत्ता ममेयंपद्मयोनिना ॥ ६३ ॥ मयाशप्तोस्यविदिते वृत्तान्तेदैत्यनिर्मिते ॥ कृत्वानारीप्रवेशन्तु शङ्करेरहसिस्थिते ॥ ६४ ॥ ननिवर्तयितुंशक्यःशापःकिन्तुब्रवीमिते ॥ मानुष्यन्तुशिलायान्त्वं शिलादात्म

मैंने वृथाही वीरकको शापदिया ॥ ५९ ॥ प्रायः क्रोधसंयुत मूर्ख जनोंसे अकार्य किया जाताहै क्रोधसे यश नाश होजाताहै व क्रोध अचल लक्ष्मीको नष्टकर देताहै ॥ ६० ॥ आयुर्बल व टगई क्योंकि यथार्थके लिये मैंने पुत्रको नहीं शापदिया है व उलटी वस्तुके जाननेवाले पुरुषोंको विपत्तिका उदय सुलभ होताहै ॥ ६१ ॥ ऐसा विचारकर पार्वतीजी वीरक से यह बोलीं कि मैं हिमाचल की कन्या व शिवजीकी स्त्री हूं ॥ ६२ ॥ हे पुत्र ! मेरे शरीरकी शोभाके भ्रमसे मत शङ्काकरो मुझको प्रसन्न होतेहुये ब्रह्माने यह गौरतादी है ॥ ६३ ॥ जब शिवजी एकान्तमें स्थितथे तब स्त्रीके रूपसे प्रवेशकर दैत्यसे कीहुई मायाके न जाननेपर मुझसे शापितहुयेहो ॥ ६४ ॥

वह शाप निवृत्त नहीं होसक्ता है किन्तु तुमसे कहताहूं कि तुम मानुषी शिलासे शिलाद से मनुष्यों को स्वर्ग व मोक्षदायक पवित्र अर्बुदारण्य में उत्पन्न होगे जहा कि हे वीरक ! स्वबलेश्वर लिंग वर्त्तमान है ॥ ६५ । ६६ ॥ वह लिंग काशीजीमें विश्वनाथके बराबर फलदायकहै प्रभास क्षेत्रकी दशयात्राओं से मनुष्योंको जो फलहोता है ॥ ६७ ॥ वह फल अर्बुद महापर्वतकी एक यात्रा से कहागया है जहापर मनुष्य तपस्या करके देहकी धातुवों को छोडकर ॥ ६८ ॥ फिर संसारी नहीं होता है जैसा कि शिवजी का वचन है कि यदि सौ जन्मोंसे अर्बुद सेवने के लिये मिलै ॥ ६९ ॥ तौ वे मनुष्य काशी व केदार क्षेत्रको वृथाही क्यों स्मरण करते है उस

स्मविष्यसि ॥ ६५ ॥ पुण्येचाप्यर्बुदारण्ये स्वर्गमोक्षप्रदेन्नृणाम् ॥ स्वबलेश्वरलिङ्गन्तु वर्ततेयत्रवीरक ॥ ६६ ॥ वाराणस्यांविश्वनाथसमंतत्फलदंन्नृणाम् ॥ प्रभासस्यचयात्राभिर्दशभिर्यत्फलंन्नृणाम् ॥ ६७ ॥ तदेकयात्रयाप्रोक्तमर्बुदस्यमहागिरेः ॥ यत्रतप्त्वातपोमर्त्यो देहधातून्विहायच ॥ ६८ ॥ संसारीनपुनर्भूयान्महेश्वरवचोयथा ॥ अर्बुदोयदिलभ्येत सेवितुंजन्मनांशतैः ॥ ६९ ॥ वाराणसींचकेदारं किंस्मरन्तिवृथैवते ॥ तत्राराध्यभवन्देवं भवान्नन्दीतिनामभृत् ॥ ७० ॥ शीघ्रमेष्यसिचात्रैव प्रतीहारत्वमाप्स्यसि ॥ एवमुक्तेहृष्टरोमा वीरकःप्रणिपत्यताम् ॥ ७१ ॥ संस्तूयविविधैर्वाक्यैर्मातरंसमभाषत ॥ धन्योहंदेवियोलप्स्ये मानुष्यमतिदुर्लभम् ॥ ७२ ॥ शापोनुग्रहरूपोयं विशेषादर्बुदाचले ॥ समीपेयस्यपुण्योस्ति महीसागरसंगमः ॥ ७३ ॥ ऊर्ध्वंपृथिव्यादेशोयंयोगिरेश्चार्णवान्तरे ॥ तत्रगत्वामहापुण्यमवाप्यभवभक्तितः ॥ ७४ ॥ पुनरेष्यामिभोगान्ते इत्युक्त्वाभूच्छिलासुतः ॥ देवीचप्रविवेशाथ भवनंशशिमौ

अर्बुद पर्वतपै शिवदेव को आराधन कर आप नन्दी ऐसे नामको धारने वाले होगे ॥ ७० ॥ और यहां शीघ्रही आवोगे व द्वारपालकत्व को पावोगे ऐसा कहनेपर प्रसन्न रोमोंवाले वीरकने उन पार्वतीजीको प्रणामकर ॥ ७१ ॥ व अनेक प्रकारके वचनोंसे भलीभाति स्तुतिकर मातासे कहा कि हे देवि ! मैं धन्यहूं जोकि बडी दुर्लभ मनुजताको पाऊगा ॥ ७२ ॥ और अर्बुद पर्वतपै यह शाप अनुग्रहरूपहै कि जिसके समीप पुण्यदायक महीसागर का संगमहै ॥ ७३ ॥ यह स्थान पृथ्वी के ऊपरहै जोकि पर्वत व समुद्र के बीचमेंहै वहा जाकर शिवजीकी भक्तिसे बडी पुण्य पाकर ॥ ७४ ॥ व भोगोंके अन्तमें फिर आऊंगा यह कहकर शिलाका पुत्र होगया इसके अनन्तर

पार्वती देवी शिवजी के मन्दिर में पैठगई ॥ ७५ ॥ तदनन्तर उनको देखकर शङ्करजी ने यह कहा कि वीर्यको धिक्कार है व उसने प्रणामकर उन शिवजी से कहा कि यह सत्य है झूंठ नहीं है ॥ ७६ ॥ यह महायशवाला मूर्ख पुरुष अनिन्दित स्त्री के योग्य है व पुरुषोंकी प्रसन्नतासे भवसागर से छूटजाता है ॥ ७७ ॥ तदनन्तर प्रसन्न होतेहुये शिवदेव ने उनसे कहा कि हे शुभे ! इसमय पुत्र दूंगा कि जिससे हे शोभने ! तुम प्रसिद्धि को प्राप्त होगी ॥ ७८ ॥ तदनन्तर पार्वती देवीको व शिवजी अनेक प्रकारके आश्चर्यों का स्थान हुये तदनन्तर हजार वर्षोंके अन्तमें शीघ्रता मनवाले देवोंने ॥ ७९ ॥ शिवका कर्म जानने के लिये अग्निकी प्रेरणा किया और

लिनः ॥ ७५ ॥ ततोदृष्ट्वाचतांप्राह धिग्वीर्यमितिशङ्करः ॥ साचप्रणम्यतंप्राह सत्यमेतन्नमिथ्यया ॥ ७६ ॥ जडःप्रकृतिभागोयं नारीमर्हत्यनिन्दिताम् ॥ पुरुषाणांप्रसादेन मुच्यतेभवसागरात् ॥ ७७ ॥ ततःप्रहृष्टस्तामाह हरोदेवोधुनाशुभे ॥ पुत्रंदास्यामियेनत्वं ख्यातिंप्राप्स्यसिशोभने ॥ ७८ ॥ ततोबभूवदेव्यास्सनानाश्चर्यालयोहरः ॥ ततोवर्षसहस्रान्ते देवास्त्वरितमानसाः ॥ ७९ ॥ ज्वलनन्नोदयामासुर्ज्ञातुंशङ्करचेष्टितम् ॥ द्वारस्थितंप्रतीहारं वञ्चयित्वाचपावकः ॥ ८० ॥ पारावतस्यरूपेण प्रविवेशहरान्तिकम् ॥ ददर्शतंचदेवेशो विनतंप्रेक्ष्यपार्वतीम् ॥ ८१ ॥ ततस्तंज्वलनंप्राहनैतद्योग्यंत्वयाकृतम् ॥ यदिदंक्षुभितंस्थानान्मममतेजस्त्वनुत्तमम् ॥ ८२ ॥ गृहाणत्वंसुदुर्बुद्धेनोवाधक्ष्यामित्वांरुषा ॥ भीतस्ततोसौजग्राह सर्वदेवमुखंसच ॥ ८३ ॥ तेनतेवह्निसहिताविकलाश्चसुराःकृताः ॥ विषादाच्चसुरान्सर्वान् वीर्यमाहेश्वरन्ततः ॥ ८४ ॥ निष्क्रान्तंततस्सरोजातंपारदंशतयोजनम् ॥ वह्निश्चव्याकुलीभूतोगङ्गायांमुमुचेसकृत ॥ ८५ ॥

अग्निने द्वारपै बैठेहुये द्वारपालको छलकर ॥ ८० ॥ कबूतर के रूपसे शिवजी के समीप प्रवेश किया और देवेश शिवने उन अग्निको देखा व झुँकीहुई पार्वती जीको देखकर ॥ ८१ ॥ उसके उपरान्त उन अग्निसेकहा कि तुमने यह योग्य नहीं किया और स्थानसे चलाहुआ जो यह मेरा अति उत्तम वीर्य है ॥ ८२ ॥ हे दुर्बुद्धे! तुम इसको ग्रहणकरो नहीं तो तुमको क्रोधसे जलादूंगा तदनन्तर डरेहुये इन अग्निने उसको ग्रहण किया जो वे अग्नि कि सब देवताओं का मुखहैं ॥ ८३ ॥ उस वीर्य से अग्नि समेत वे देवता विकल कियेगये सब देवताओं को दुःखितकर तदनन्तर शिवजी का वीर्य ॥ ८४ ॥ निकलतामया और वह सौ योजन का पारावाला तड़ाग

होगया और अग्निने भी विकलहोकर एकहीबार उसको गंगामें छोड़दिया ॥ ८५ ॥ और जलतीहुई उन गंगादेवीने तरंगोंसे बाहर छोड़दिया उससे त्रिलोकमें प्रसिद्ध श्वेतपर्वत होगया ॥ ८६ ॥ इसी अवसर में हिमालयपै अग्निमें होम करते हुये सप्तर्षियोंने अग्निको बुलाया व मन्त्रके बलसे ॥ ८७ ॥ अग्निने वहां आकर हवन कियेहुये उस भागको ग्रहण किया व उस कर्मके समाप्त होनेपर वहां टिकेहुये अग्निने उन सप्तर्षियों की स्त्रियोंको देखा ॥ ८८ ॥ व सुवर्ण व केला के बीचकी नाईं गौरतावाली और चन्द्रलेखा के समान उन स्त्रियों को देखते हुये विकसित नयनोंवाले अग्निजी कामके वश होगये ॥ ८९ ॥ फिर उन अग्निने चिन्तन किया

दह्यमानाचसादेवी तरङ्गैर्बहिरुत्सृजत् ॥ जातस्त्रिभुवनख्यातस्तेनचश्वेतपर्वतः ॥ ८६ ॥ एतस्मिन्नन्तरेवह्निराहूतश्च हिमालये ॥ सप्तर्षिभिर्वह्निहोमं कुर्वद्भिर्मन्त्रवीर्यतः ॥ ८७ ॥ आगत्यतत्रजग्राहे अग्निर्भागश्चतंहुतम् ॥ गतेतस्मिंश्च तत्रस्थः पत्नीतेषामपश्यत ॥ ८८ ॥ सुवर्णकदलीगर्भनिभास्ताश्चन्द्रलेखया ॥ पश्यमानःप्रफुल्लाक्षो वह्निःकामवशङ्गतः ॥ ८९ ॥ सम्भूयश्चिन्तयामास नन्वहंक्षुभितोस्मियत् ॥ साध्वीःपत्नीर्द्विजेन्द्राणामकामाःकामयाम्यहम् ॥ ९० ॥ पापमेतत्कर्म्मचोग्रं नश्यामितृणवत्स्फुटम् ॥ कृत्वैतन्नश्यतेकीर्त्तिर्यावदाचन्द्रतारकम् ॥ ९१ ॥ एवंसञ्चिन्त्यबहुधा गत्वाचैववनान्तरे ॥ वशीकर्तुंसनाशक्नोद्धुपायैर्बहुभिर्म्मनः ॥ ९२ ॥ ततःसकामसन्तप्तो मूर्च्छितःसमपद्यत ॥ ततःस्वाहाचभार्यास्य बुबुधेतद्विचेष्टितम् ॥९३ ॥ ज्ञात्वाचचिन्तयामास प्रहृष्टामनसिस्वयम् ॥ स्वांभार्यामेषमान्त्यक्ताबहुवासा

कि मैं निश्चयकर क्षोभित होगया और जिस लिये मैं न चाहतीहुई द्विजेन्द्रों की पतिव्रता स्त्रियोंको मैं चाहता हूं ॥ ९० ॥ यह कर्म बड़ा उग्र पापहै इससे यह प्रकट है कि मैं तिनुकाकी नाईं नाश होजाऊंगा यह कर्म करके तबतक यश नाश होजाताहै कि जबतक चन्द्रमा व सूर्य रहतेहैं ॥ ९१ ॥ इसभांति बहुत प्रकारसे विचारकर व वनके बीचमें जाकर वे अग्निजी बहुत यत्नोंसे मनको वश करने के लिये न समर्थ हुये ॥ ९२ ॥ तदनन्तर कामदेव से बहुतही तचेहुये वे अग्निजी मूर्च्छितहुये उसके उपरान्त इनकी स्त्री अग्निने उनका कर्मजाना ॥ ९३ ॥ व जानकर मन में आपही हर्षित होतीहुई चिन्तन किया कि बहुत दिनोंतक निवाससे मुझ अपनी

स्त्री को अपमानसे छोडकर ॥ ९४ ॥ निश्चयकर जिसलिये सप्तर्षि महात्माओंकी स्त्रियोंकी इच्छाकरताहै इससे इनके रूपको प्राप्त होकर मैं इनकी सेवाकरूं ॥९५॥ तदनन्तर जो अंगिराकी उत्तम स्त्री शिवा नामकथी उसका रूपधर अग्निके समीप प्राप्तहोकर वह बोली ॥ ९६ ॥ कि हे अग्ने ! कामसे तचीहुई मुझको तुम चाहने योग्यहो हे देव ! यदि ऐसा न करोगे तो मुझको मरी जानिये ॥९७॥ हे हुताशन ! शिवानामक मैं अंगिरा की स्त्री सबों समेत प्राप्तहुई हूं और वे क्रमसे आवेंगी ॥ ९८ ॥ हम सबोंको तुम नित्यही प्यारेहो जो योग्यहो उसको कीजिये तदनन्तर उस स्त्री समेत वे अग्निजी कामदेवसे संतप्त हुये ॥ ९९ ॥ और उनके प्रसन्न होनेपर

दवज्ञया ॥ ९४ ॥ भार्याःकामयतेनूनंसप्तर्षीणांमहात्मनाम् ॥ यदासांरूपमाश्रित्यभजिष्येतेनचाप्यहम् ॥ ९५ ॥ तत स्त्वंगिरिशोभार्या शिवानामेतिशोभना ॥ तस्यारूपंसमाधाय पावकंप्राप्यसाब्रवीत् ॥ ९६ ॥ मामग्नेकामसन्तप्तां त्वंकामयितुमर्हसि ॥ नचेत्करिष्यसेदेव मृतांमामुपधारय ॥ ९७ ॥ अहमङ्गिरसोभार्या शिवानामहुताशन ॥ सर्वाभि स्सहिताप्राप्ता ताश्चायास्यन्त्यनुक्रमात् ॥ ९८ ॥ अस्माकंत्वंप्रियोनित्यमुचितंयत्तदाचर ॥ ततस्सकामसंतप्तः संब भूवतयासह ॥ ९९ ॥ प्रीतप्रीताचसादेवी निर्जगामवनान्तरात् ॥ चिन्तयन्तीममेदंच रूपंद्रक्ष्यन्तिकानने ॥ १०० ॥ तेब्राह्मणीनांपतयो दोषंवक्ष्यन्तिपावकात् ॥ तस्मादेतद्रक्ष्यमाणांगरुडंसम्भवाम्यहम् ॥ १ ॥ सुपर्णीसाततोभूता दद र्शश्वेतपर्वतम् ॥ शरस्तंबैसुसंपृक्तं रक्षोभिश्चपिशाचकैः ॥ २ ॥ सातत्रसहसागत्वा शैलपृष्ठंसुदुर्गमम् ॥ प्राक्षिपत्का ञ्चनेकुण्डे शुक्रंतद्धारणाक्षमा ॥ ३ ॥ शिष्टानामपिदेवीनांसप्तर्षीणांमहात्मनाम् ॥ पत्नीसरूपतांकृत्वा कामयामास

प्रसन्न होगई याने रमण किया और यह विचारती हुई वनके बीचसे निकली कि वनमें ब्राह्मणियों के पति वे सप्तर्षि मेरा यह रूप देखैंगे व अग्निसे दोषको कहैंगे इस लिये जो यह गरुड देख पडताहै मैं वही होजाऊं ॥ १०० । १ ॥ तदनन्तर वह गरुडी होगई और राक्षसों व पिशाचोंसे व्याप्त उस तडाग और श्वेतपर्वतको उसने देखा ॥ २॥ व उस वीर्यके धारने में असमर्थ उसने वहां बड़े दुर्गम पर्वतके पृष्ठमें अचानकही जाकर व सोनेके कुण्डमें उसको फेंक दिया ॥ ३ ॥ और सप्तर्षि

महात्माओं की शेष जो देवी स्त्री थीं उनके भी स्वरूपको करके अग्निको काम के संयुत कराया ॥ ४ ॥ और उसके तपके प्रभावसे और पतिकी सेवासे अरुंधती का दिव्यरूप वह न धारण करसकी ॥ ५ ॥ हे कुरुनायक ! अग्निने उनमें छह बार करके वीर्यको प्रक्षेप किया और स्वाहासे उस कुंड को अधिकतामें प्राप्त होनेपर ॥ ६ ॥ तदनन्तर अग्नि ने दुःख से शोचा व मोहित हुये कि अहो मैंने पाप किया व इसीकारण शरीरके त्यागने में बुद्धि की ॥ ७ ॥ तदनन्तर उनसे आकाशवाणी बोली कि मरण मत कीजिये क्योंकि यह होनहार था व हे अग्ने ! भावी वस्तु से कौन छूटता है ॥ ८ ॥ व होनहार वस्तु से भी तुम ने जिस लिये चित्त से उस

पावकम् ॥ ४ ॥ दिव्यंरूपमरुन्धत्याः कर्तुन्नशकितंतया ॥ तस्यास्तपःप्रभावेण भर्तुःशुश्रूषणेनच ॥ ५॥ षट्कृत्वस्ता सुविक्षिप्तमग्निरेतःकुरूद्वह ॥ तस्मिन्कुण्डेचबहुले प्रतिपाद्येचस्वाहया ॥ ६ ॥ ततश्चपावकोदुःखाच्छुशोचचमुमो हच ॥ अहोपापंकृतमित्येव देहन्यासेकरोन्मतिम् ॥ ७ ॥ ततस्तंखेचरीवाणी प्राहमामरणंकुरु ॥ भाव्यमेतच्चभाव्यर्था त् कोहिपावकमुच्यते ॥ ८ ॥ भाव्यर्थेनापियत्तेच परदारोपसेवनम् ॥ कृतंतच्चेतसातेन त्वामजीर्णम्भविष्यति ॥ ९ ॥ श्वेतकेतोर्महायज्ञे घृतधाराभितर्पणात् ॥ शोकंचत्यजनैतास्ताः स्वाहैवेयंतवप्रिया ॥ १० ॥ श्वेतपर्वतकुण्डस्थं पु त्रञ्चद्रष्टुमर्हसि ॥ ततोवह्निस्तत्रगत्वा ददृशेतनयंप्रभुम् ॥ ११ ॥ अर्जुनउवाच ॥ कस्मात्स्वाहाकरोद्रूपं षण्णांतासां महामुने ॥ यास्ताभर्तृपरास्साध्व्यस्तपस्विन्योऽग्निसन्निभाः ॥१२॥ नबिभेतिचकिन्ताभ्यः षड्भ्यःस्वाहापराधिनी ॥ भर्तृभक्त्याजगद्दग्धुं यतःशक्ताश्चतामुने ॥ १३ ॥ नारदउवाच ॥ सत्यमेतत्कुरुश्रेष्ठ शृणुतच्चापिकारणम् ॥ येनतासां

पराई स्त्री का सेवन किया उस से श्वेतकेतु की बड़ी भारी यज्ञ में घृतधारा की तृप्ति से तुम को अजीर्ण होगा और शोच छोड़िये क्योंकि ये सप्तर्षियो की वे स्त्रियां नहीं है किन्तु यह तुम्हारी स्त्री स्वाहा ही है ॥ ९ । १० ॥ व श्वेतपर्वत के ऊपर कुंड में टिके हुये पुत्र को देखने के योग्यहो तदनन्तर अग्नि ने वहां जाकर समर्थ पुत्र को देखा ॥ ११ ॥ अर्जुन जी बोले कि हे महामुने ! स्वाहा ने किस लिये उन छहों स्त्रियों का रूप किया जो वे किं पति में परायण व उत्तम आचार वाली तथा तपस्विनी व अग्निके समान थीं ॥ १२ ॥ हे महामुने ! अपराधवाली स्वाहा क्या उन छहों से नहीं डरती थीं क्योंकि पति की भक्ति से वे संसार को जलाने

के लिये समर्थ हैं ॥ १३ ॥ नारद जी बोले कि हे कुरुश्रेष्ठ । यह सत्य है उस कारण को भी सुनिये कि जिस से उन का रूप कियागया व उन्होंने शाप न दिया ॥ १४ ॥
जोकि पहले अग्निने एकही बार शिवजीका वीर्य उन गंगामे फेंकदिया था उसको ज्ञानभावसे उन छहों स्त्रियोंने धारण किया ॥ १५ ॥ तदनन्तर उस तेजसे मोहित
होती हुई विकलहोकर वे अपने २ पतियों की लज्जासे एकान्त में गंगाके किनारे बैठगईं ॥१६॥ इस समयको देखकर मनोरथ को चाहती हुई स्वाहाने उनके शरीर
में पैठकर उस वीर्यको हरलिया ॥१७॥ व जिस प्रकार मैंने तुमसे कहाहै वैसेही अग्निके साथ क्रीड़ा किया हे भारत ! इस उपकारको स्मरण करतीहुई उन्होंने ॥१८॥

कृतंरूपं नवाशापंददुश्चताः ॥ १४ ॥ यत्तुतद्वह्निनाक्षिप्तंरुद्रतेजःसकृत्पुरा ॥ गङ्गायांतत्रदधुस्ताः षट्पत्न्योज्ञानभाव
तः ॥ १५ ॥ ततस्ताविह्वलीभूतास्तेजसातेनमोहिताः ॥ लज्जयास्वस्वभर्तॄणां गङ्गातीरस्थितारहः ॥ १६ ॥ एतदन्त
रमालोक्य चिकीर्षन्तीमनीषितम् ॥ स्वाहाशरीरमाविश्यतासान्तेजोजहारतत् ॥ १७ ॥ चिक्रीडवह्निनाचापि यथाते
कथितम्मया ॥ उपकारमिमन्ताभिःस्मरन्तीभिश्चभारत ॥ १८ ॥ नशप्तासायतःशापो नदेयश्चोपकारिणे ॥ ततस्स
मर्षयोज्ञात्वा ज्ञानेनशुचिताङ्गताः ॥ १९ ॥ तत्यजुस्तेतदापत्नीर्विनादेवीमरुन्धतीम् ॥ विश्वामित्रस्तुभगवान् कुमारंश
रणङ्गतः ॥ २० ॥ स्तवंदिव्यंसम्प्रचक्रे महासेनस्यचापिसः ॥ अष्टोत्तरशतन्नाम्नां शृणुत्वंतानिफाल्गुन ॥ २१ ॥ ज
पेनयेषांपापानि यान्तिज्ञानमवाप्नुयात ॥ त्वंब्रह्मवादीत्वंब्रह्मा ब्रह्मब्राह्मणवत्सलः ॥ २२ ॥ ब्रह्मण्योब्रह्मदेवश्च ब्रह्मदो
ब्रह्मसंग्रहः ॥ त्वंपरंपरमन्तेजो मङ्गलानाञ्चमङ्गलम् ॥ २३ ॥ अप्रमेयगुणश्चैव मन्त्राणांमन्त्रगोभवान् ॥ त्वंसावित्रीम

उसको शाप नहीं दिया क्योंकि उपकारी के लिये शाप न देना चाहिये तदनन्तर उन सप्तर्षियों ने पवित्रताको प्राप्तहुई उन स्त्रियोंको ज्ञानसे जानकर उस
समय अरुंधती देवीको छोडकर स्त्रियोंको त्यागदिया और भगवान् विश्वामित्रजी स्वामिकार्त्तिकेयकी शरणामें गये ॥ १९ । २० ॥ व उन्होंने स्वामिकार्त्तिकेय जी के
एकसौ आठ नामोंसे दिव्य स्तुतिभी किया हे अर्जुन ! उन नामोंको सुनिये ॥ २१ ॥ कि जिनके जपसे पाप चले जातेहैं व ज्ञानको प्राप्त होताहै तुम ब्रह्मवादी हो और
तुम ब्रह्मा व ब्रह्म तथा ब्राह्मणप्रिय हो ॥ २२ ॥ व ब्राह्मणों को माननेवाले, ब्रह्मदेव, ब्रह्मदायक व ब्रह्म (वेद) के संग्रहकर्त्ताहो तुम श्रेष्ठहो व उत्तम तेज तथा

मंगलोंके भी मंगलहो ॥२३॥ व असंख्य गुणोंवाले तथा मन्त्रोंके मध्यमें मन्त्रगामी आपहो हो व सावित्रीमय देवता तुम्हींहो और सब कहीं शत्रुवोंसे अजितहो ॥२४॥ व छह अक्षरवाले मन्त्रोंमे सर्वात्मक मन्त्रदेव तुम्हीं हो व गौवोंके पुत्र, दैत्यनाशक, सम्भव व संसारको उत्पन्न करनेवाले तुम्हीं हो ॥ २५ ॥ व पिनाकधारी, शत्रुनाशक, कूटस्कन्द व सुरों के अग्रगामी और द्वादश, भूर्भुवभावी व भूमिके पुत्र तथा नमस्कृतहो ॥ २६ ॥ नागराज, सुधर्मात्मा, स्वर्गपृष्ठ, सनातन,हेमगर्भ, महागर्भ, जय व विजयेश्वर तुम्हींहो ॥२७॥ और तुम कर्त्ता व तुम्हीं विधाता व नित्य, अनित्य व शत्रुनाशक तुम्हींहो और महासेन, महातेजस्वी वीरसेन व भूपति तुम्हीं

योदेवः सर्वत्रैवपराजितः ॥ २४ ॥ मन्त्रस्सर्वात्मकोदेवः षडक्षरवतांवरः ॥ गवाम्पुत्रःसुरारिघ्नस्सम्भवोभवभावनः ॥ २५ ॥ पिनाकीशत्रुहाचैव कूटस्कन्दस्सुराग्रणीः ॥ द्वादशोभूर्भुवोभावीभुवःपुत्रोनमस्कृतः ॥ २६ ॥ नागराजःसुधर्मात्मा नाकपृष्ठस्सनातनः ॥ हेमगर्भोमहागर्भो जयश्चविजयेश्वरः ॥ २७ ॥ त्वङ्कर्त्तात्वंविधाताच नित्योऽनित्योऽरिनिर्द्दनः ॥ महासेनोमहातेजा वीरसेनश्चभूपतिः ॥ २८ ॥ सुरसेनस्सुराध्यक्षो भीमसेनोनिरामयः ॥ शौरिर्यदुर्महातेजा वीर्यवान्सत्यविक्रमः ॥ २९ ॥ तेजोगर्भोसुररिपुस्सुरमूर्तिःसुरोर्जितः ॥ कृतज्ञोवरदःसत्यः शरण्यस्साधुवत्सलः ॥ ३० ॥ सुव्रतः सूर्यसङ्काशो वह्निगर्भोरणोत्सुकः ॥ पिप्पलीशीघ्रगोरौद्रिर्गाङ्गेयोरिपुदारणः ॥ ३१ ॥ कार्त्तिकेयःप्रभुःक्षान्तो नीलदंष्ट्रो महामनाः ॥ निग्रहोनिग्रहाणाञ्च नेतात्वंदैत्यसूदनः ॥ ३२ ॥ प्रग्रहःपरमन्दानः क्रोधघ्नस्तारकोच्छिदः ॥ कुक्कुटीबहुलोवादी कामदोभूरिवर्द्धनः ॥ ३३ ॥ अमोघोमृतदोह्यग्निश्शत्रुघ्नस्सर्वबोधनः ॥ अनघोह्यमरःश्रीमानुन्नतोह्यग्निस

हो ॥ २८ ॥ व सुरसेन, सुराध्यक्ष, भीमसेन, निरामय, शौरि, यदु, महातेजा, वीर्यवान् व सत्यविक्रम तुम्हींहो ॥ २९ ॥ और तेजोगर्भ, असुररिपु,सुरमूर्त्ति, सुरोर्जित. कृतज्ञ, वरद, सत्य, शरण्य व साधुवत्सल तुम्ही हो ॥ ३० ॥ व सुव्रत, सूर्यसंकाश, वह्निगर्भ, रणोत्सुक, पिप्पली, शीघ्रगामी, रौद्रि, गांगेय व शत्रुदारण तुम्हींहो ॥३१॥ व कार्त्तिकेय, प्रभु, क्षान्त, नीलदंष्ट्र, महामन, निग्रह व निग्रहों के स्वामी व दैत्यनाशक तुम्हींहो ॥ ३२ ॥ व प्रग्रह, परमंदान, क्रोधघ्न व तारकनाशक,कुक्कुटी, बहुल, वादी, कामदायक व भूरिवर्द्धन तुम्हींहो ॥ ३३ ॥ व अमोघ,अमृतदाता, अग्नि, शत्रुनाशक, सर्वबोधन, अनघ, अमर, श्रीमान्, उन्नत, व अग्निसम्भव

हो ॥ ३४ ॥ व पिशाचराज, सूर्याभ, शिवात्मा व सनातन तुम्हींहो इस प्रकार समस्त प्राणियों के ईश्वर उन स्वामिकार्त्तिकेय जी की स्तुति विश्वामित्र महर्षिने एक सौ आठ नामोंसे किया व प्रसन्नमूर्त्तिवाले इन स्वामिकार्त्तिकेय ने मुनिनायकसे यह कहा कि वर मांगिये ॥ ३५ । ३६ ॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! तुमसे बनाई हुई यह स्तुति पृथ्वीमें मनुष्योंके अभिलाषकी प्राप्तिके लिये होगी ॥ ३७ ॥ जो मनुष्य इस स्तोत्रको पढ़ेगा उसके वंशमें लक्ष्मी बढ़ेगी और न राक्षस, न भूत, पिशाच और न विपत्तिया ॥ ३८ ॥ उस घरमें विघ्नकारक होवैंगी कि जहां मनुष्य इस प्रकार मेरी स्तुति करते हैं वह पुरुष दुःस्वप्न नहीं देखताहै व बँधाहुआ पुरुष बंधन से छूटजाता

स्तवः ॥ ३४ ॥ पिशाचराजस्सूर्याभः शिवात्मात्वंसनातनः ॥ एवंससर्वभूतानांसंस्तुतःपरमेश्वरः ॥ ३५ ॥ नाम्नामष्टशतेनायं विश्वामित्रमहर्षिणा ॥ प्रसन्नमूर्त्तिराहेदं मुनीन्द्रंव्रियतामिति ॥ ३६ ॥ ममत्वयाद्विजश्रेष्ठस्तुतिरेषाविनिर्मिता ॥ भविष्यतिमनोभीष्टप्राप्तयेप्राणिनाम्भुवि ॥ ३७ ॥ विवर्द्धतेकुलेलक्ष्मीस्तस्ययःप्रपठेदिमम् ॥ नराक्षसाःपिशाचावा नभूतानिनचापदः ॥ ३८ ॥ विघ्नकारीणितद्गेहे यत्रैवंसंस्तुवन्तिमाम् ॥ दुःस्वप्नंनचपश्येत्सबद्धोमुच्येतबन्धनात् ॥ ३९ ॥ स्तवस्यास्यप्रभावेण दिव्यभावःपुमान्भवेत् ॥ त्वंचमांश्रुतिसंस्कारैःसर्वैःसंस्कर्तुमर्हसि ॥ ४० ॥ संस्काररहितंजन्म यतश्चपशुवत्स्मृतम् ॥ त्वंचमद्वरदानेन ब्रह्मर्षिश्चभविष्यसि ॥ ४१ ॥ ततोमुनिस्तस्यचक्रे जातकर्मादिकाःक्रियाः ॥ पौरोहित्यंतथाभेजे स्कन्दस्यैवाज्ञयाप्रभोः ॥ ४२ ॥ ततस्तंवह्निरभ्यागाद्ददर्शचसुतंगुहम् ॥ षट्शीर्षद्विगुणश्रोत्रंद्वादशाक्षिभुजंक्रमात् ॥ ४३ ॥ एकग्रीवञ्चैककायं कुमारंसव्यलोकयत् ॥ प्रथमेहनिकललं द्वितीयेविक्रियां

है ॥ ३९ ॥ इस स्तोत्रके प्रभावसे पुरुष देवभाव होजाता है और तुम सब वेदों के संस्कारों से संस्कार करने योग्यहो ॥ ४० ॥ क्योंकि संस्कार से रहित जन्म पशुकी नाईं कहागया है व तुम मेरे वरदान से ब्रह्मर्षि होगे ॥ ४१ ॥ तदनन्तर विश्वामित्र मुनिने उनकी जातकर्मादिक क्रियाओं को किया व स्वामिकार्त्तिकही स्वामी की आज्ञासे पुरोहिती सेवन किया ॥ ४२ ॥ तदनन्तर अग्निजी उनके समीप आये व छह शिरों तथा दूने याने बारह कानोंवाले व क्रमसे बारह नेत्रों व भुजाओंवाले स्वामिकार्त्तिकेय पुत्रको देखा ॥ ४३ ॥ और एक ग्रीवा व एकही देहवाले स्वामिकार्त्तिकेय जीको उन अग्निने देखा पहले दिन कललहुआ व दूसरे दिन विकारको प्राप्तभया।

यानं अंगवान् होगया ॥ ४४ ॥ तीजको बालक होगया व चौथिको पूर्णही हुआ इसके अनन्तर वे पंचमी में संस्कार कियेगये व अग्निकोभी देखा ॥ ४५ ॥ तदनन्तर हे अर्जुनजी ! अग्निने उनको लिपटालिया व चुम्बन किया और हे पुत्र ! ऐसा कहकर आपही उनके लिये अस्त्रदिया ॥ ४६ ॥ व उन स्वामिकार्त्तिकेय ने शक्तिको लेकर अग्निको प्रणामकर श्वेतपर्वतके शिखरपै भलीभाति चढ़कर मुखों से दशों दिशाओं को देखते हुये ॥ ४७ ॥ और दैत्यों समेत संसारको डरवाते हुये भयंकर शब्द किया उसके उपरान्त दश पद्म राक्षसोंसे घिराहुआ श्वेतपर्वतके शिखरको ॥ ४८ ॥ बलसे शक्तिके द्वारा तोडडाला जोकि चारसौ कोस चौंडाथा वह एकही प्रहारसे खण्ड २

गतम् ॥ ४४ ॥ तृतीयेह्निशिशुर्जातश्चतुर्थेपूर्णएवच ॥ पञ्चमेसंस्कृतस्सोभूत् पावकंचाप्यपश्यत् ॥ ४५ ॥ ततस्तंपावकःपार्थ आलिलिङ्गचुचुम्बच ॥ पुत्रेतिचोक्त्वातस्मैसशक्त्यस्त्रमददात्स्वयम् ॥ ४६ ॥ सचशक्तिंसमादाय नमस्कृत्यचपावकम् ॥ श्वेतशृङ्गंसमारूढो मुखैःपश्यन्दिशोदश ॥ ४७ ॥ व्यनदद्भैरवन्नादं त्रासयन्सासुरंजगत् ॥ ततःश्वेतगिरेःशृङ्गं रक्षःपद्मदशावृतम् ॥ ४८ ॥ बिभेदतरसाशक्त्या शतयोजनविस्तृतम् ॥ तदेकेनप्रहारेण खण्डशःपतितंभुवि ॥ ४९ ॥ चूर्णीकृताराक्षसास्ते सततंधर्म्मशत्रवः ॥ ततःप्रव्यथिताभूमिर्व्यशीर्यतसमन्ततः ॥ ५० ॥ भीताश्चपर्वतास्सर्वे चुक्रुशुःप्रलयेयथा ॥ सर्वेदेवास्समाजग्मुरिन्द्रेन्दुवरुणादयः ॥ ५१ ॥ नेशुश्चभूतानिभृशं त्राहित्राहीतिचाजगुः ॥ एवंश्रुत्वा ततोदेवा वासवन्तेतदाब्रुवन् ॥ ५२ ॥ येनैकेनप्रहारेण त्रैलोक्यंव्याकुलीकृतम् ॥ सतुक्रुद्धःक्षणाद्विश्वं संहरिष्यतिवासव ॥ ५३ ॥ वयञ्चपालनार्थाय सृष्टादेवेनवेधसा ॥ तच्चत्राणंसदाकार्यं प्राणैःकण्ठगतैरपि ॥ ५४ ॥ अस्माकंपश्यतामे

होकर भूमिमे गिरपडा ॥ ४९ ॥ और सदैव धर्मके वैरी वे राक्षस चूर्ण करदियेगये तदनन्तर बहुत दुःखित होतीहुई पृथ्वी सब ओर फटगई ॥ ५० ॥ व डरेहुये समस्त पर्वत प्रलयके समान चिल्लानेलगे और इन्द्रादिक व वरुणादिक सब देवता भलीभांति आये ॥ ५१ ॥ व बहुत प्राणी नाशहोगये व उन्होंने रक्षा कीजिये २ ऐसा कहा ऐसा सुनकर तदनन्तर उस समय वे देवता इन्द्रसे बोले ॥ ५२ ॥ कि जिसने एक ही प्रहारसे त्रिलोक को विकल करदिया है इन्द्रजी ! क्रोधित होताहुआ वह संसार को क्षणभरमे संहार करैगा ॥ ५३ ॥ और ब्रह्मादेवसे हमलोग पालने के लिये रचेगये हैं इससे प्राणोंके कण्ठगत होनेपर भी वह रक्षा सदैव करना चाहिये ॥ ५४ ॥

व हमलोगों के देखते हुये यदि संसार इस प्रकार क्षोभित होताहै तो वीरोंके जन्मको धिक्कारहै और क्षणभर में मरना प्रशंसा के योग्यहै ॥ ५५ ॥ इस लिये हे इन्द्र जी ! हम सबों समेत तुम इसके समीप चलने योग्यहो ऐसा कहेहुये व उसके बलको जानने की इच्छावाले इन्द्र बहुत अच्छा यह कहकर देवों समेत उस समय बहुत शीघ्रगये दुर्द्धर्ष व बड़े वेगवाली तथा शब्दकरती हुई उस सुरसेनाको देखकर स्वामिकार्त्तिकेय जीने समुद्रकी नाईं शब्दकिया व उनके बड़े शब्दसे क्षोभित समुद्र की नाईं ॥ ५६ । ५७ । ५८ ॥ चैतन्यताहीन सुरसेना जहां तहां ही घूमने लगी व उन स्वामिकार्त्तिकेय जीने मारनेकी इच्छावाले समीपमें प्राप्त देवताओं को देख

वं यदिसंक्षोभ्यतेजगत ॥ धिक्ततोजन्मवीराणां श्लाघ्यंहिमरणंक्षणात ॥ ५५ ॥ तदस्माभिस्सहैनंत्वं गन्तुमर्हसि वासव ॥ एवमुक्तस्तथेत्युक्त्वा देवैस्सार्द्धंतमभ्ययात ॥ ५६ ॥ विवित्सुस्तस्यवीर्यञ्च शक्रस्तूर्णंतरन्तदा ॥ उग्रंतच्चमहा वेगं देवानीकंदुरासदम् ॥ ५७ ॥ नर्दमानंगुहःप्रेक्ष्य ननादजलधिर्यथा ॥ तस्यनादेनमहता समुद्भूतोदधिप्रभम् ॥ ५८ ॥ बभ्रामयत्रतत्रैव देवसैन्यमचेतनम ॥ जिघांसूनुपसंप्राप्तान्देवान्दृष्ट्वासपावकिः ॥ ५९ ॥ विससर्जमुखात्तत्र प्रवृद्धाः पावकार्चिषः ॥ अदहद्देवसैन्यानि चेष्टमानानिभूतले ॥ ६० ॥ तेप्रदीप्तशिरोदेहाः प्रदीप्तायुधवाहनाः ॥ प्रच्युताःसहसा भान्तिदिवस्तारागणाइव ॥ ६१ ॥ दह्यमानाःप्रपन्नास्ते शरणंपावकात्मजम् ॥ देवावज्रधरंत्यक्त्वा ततःशान्तिमुपाग ताः ॥ ६२ ॥ त्यक्तोदेवैस्तदाशक्रः स्कन्दंवज्रमवासृजत ॥ तद्विसृष्टंजघानाशु पार्श्वंस्कन्दस्यदक्षिणम् ॥ ६३ ॥ बिभेदच कुरुश्रेष्ठ पार्श्वंतस्यमहात्मनः ॥ वज्रप्रहारात्स्कन्दस्य संजातःपुरुषोपरः ॥ ६४ ॥ युवाकाञ्चनसन्नाहःशक्तिधृग्दिव्य

कर ॥ ५९ ॥ वहां मुखसे बढ़ीहुई अग्निकी ज्वालाओं को पैदा किया और पृथ्वी में चेष्टा करती हुई देवसेनाओंको जलाया ॥ ६० ॥ और प्रकाशित शिर व शरीरवाले तथा प्रदीपित अस्त्रों व सवारियोंवाले वे देवता अकस्मात् आकाशसे गिरेहुये नक्षत्रगणोंकी नाईं शोभित होतेथे ॥ ६१ ॥ व जलते हुये वे देवता स्वामिकार्त्तिकेय जी की शरणमें प्राप्तहुये तदनन्तर वज्रधारी इन्द्रको छोड़कर देवता शान्तिको प्राप्तहुये ॥ ६२ ॥ व देवताओं से त्यागहुये इन्द्रने उस समय स्वामिकार्त्तिकेय जी के ऊपर वज्रको छोड़ा व उनसे छोड़हुये उस वज्रने शीघ्रही स्वामिकार्त्तिकेय जी के दाहिने पांजरको हननकिया ॥ ६३ ॥ व हे कुरुश्रेष्ठ ! उन स्वामिकार्त्तिकेय महात्मा के पांजर

को फाडडाला व स्वामिकार्त्तिकेय जीके ऊपर वज्रके प्रहारसे और पुरुष पैदाहुआ॥ ६४ ॥ जोकि युवा व सोनेकी कवच पहने, शक्तिको धारे और उत्तम कुण्डलों को पहने था व शाख ऐसे प्रसिद्ध उस पुरुषने भी बहुतही अद्भुत शब्दकिया॥ ६५॥ तदनन्तर क्रोधित होतेहुये इन्द्रने फिर स्कन्दके हृदयको विदीर्ण किया उसमें भी नैगमेय ऐसा प्रसिद्ध वैसाही पुरुष पैदाहुआ ॥ ६६ ॥ तदनन्तर शीघ्रता समेत स्वामिकार्त्तिकेयादिक जब शब्दकर उन इन्द्रके समीपआये तब वज्रको छोडकर इन्द्र हाथजोडके शरणमें प्राप्तहुये ॥ ६७ ॥ व श्रेष्ठ स्वामिकार्त्तिकेय जी ने सेनासमेत उसको अभय दिया तदनन्तर प्रसन्न होतेहुये देवताओं ने बाजोंको बजाया॥ ६८॥

कुण्डलः॥ शाखइत्यभिविख्यातःसोपिनानद्यतेद्भुतम्॥ ६५॥ ततश्चेन्द्रःपुनःक्रुद्धो हृदिस्कन्दंव्यदारयत्॥ तत्रापितां द्दशोजज्ञे नैगमेयइतिश्रुतः ॥ ६६ ॥ ततोविनद्यस्कन्दाद्याःसत्वरास्तंयदाययुः॥ तदेन्द्रोवज्रमुत्सृज्य प्राञ्जलिःशरणं ययौ ॥ ६७ ॥ तस्याभयंददौस्कन्दः सहसैन्यस्यसत्तमः ॥ ततःप्रहृष्टास्त्रिदशा वादित्राण्यभ्यवादयन् ॥ ६८ ॥ वज्रप्र हारात्कन्याश्च जज्ञिरेचमहाबलाः ॥ हरन्तिताःसृष्टिजातान् गर्भस्थांश्चैवदारुणाः ॥६९॥ काकीचहिलिमाचैव रुद्राच वृषलांतथा ॥ आर्यापलालावैचित्रा सप्तैताःशिशुमातरः ॥ ७० ॥ एतासांवीर्यसम्पन्नः शिशुश्चाभूत्सुदारुणः ॥ स्क न्दप्रसादजःस्कन्दं हिरण्यकवचंसुरम् ॥ ७१ ॥ लोहिताम्बरसंवीतं त्रैलोक्यस्यापिसुप्रियम्॥ युवानंश्रीःस्वयंभेजे तंप्र णम्यशरीरिणम् ॥ ७२ ॥ श्रियाजुष्टंचतंप्राहुस्सर्वेदेवाःप्रणम्यवै॥ हिरण्यवर्णभद्रन्ते लोकानांशङ्करोभव ॥ ७३ ॥ भ

और वज्रके मारनेसे बडी बलिष्ठ कन्यायें पैदाहुई थीं वे भयंकर कन्यायें गर्भ में टिकेहुये सृष्टिमें उत्पन्न जीवोंको हरती हैं ॥ ६९ ॥ काको, हिलिमा, रुद्रा, वृषला व आर्या, पलाला और वैचित्रा ये सातों बालमातायें है ॥ ७० ॥ इन सबों के पराक्रम से संयुत बडा भयंकर पुत्र हुआ जोकि स्वामिकार्त्तिकेय की प्रसन्नतासे पैदाहुआ था और सुवर्णकी कवचवाले व लाल वसन पहने तथा त्रिलोक के भी बडे प्यारे व युवा, शरीरधारी उन स्वामिकार्त्तिकेय देवजी को आपही लक्ष्मीजी ने प्रणामकर सेवन किया ॥ ७१ । ७२ ॥ लक्ष्मीसे सेवित उन स्वामिकार्त्तिकेय जीको समस्त देवताओं ने प्रणामकर कहा कि हे स्वर्णवर्ण ! तुम्हारा कल्याण होवै तुम लोकोंके

कल्याणकारक होवो ॥ ७३ ॥ हे स्वामिन् ! त्रिलोक के कल्याण के लिये आप हम सबोंके इन्द्र होवो ॥ ७४ ॥ स्वामिकार्त्तिकेयजी बोले कि हे सुरश्रेष्ठो ! सब लोकों
के इन्द्र यहा क्या करते हैं व सुरेश्वर किस प्रकार सुरसमूहों को नित्यही पालते हैं ॥ ७५ ॥ देवता बोले कि देवोंके स्वामी इन्द्र प्राणियों तथा समस्त देवताओं को
बल, तेज, सन्तान सुख व बुद्धिको देते हैं ॥ ७६ ॥ व अत्यन्त बलिष्ठ इन्द्र दुष्टोंको नाशते हैं और उत्तम आचरणवालोंको सुखदेते हैं और कार्योंमें प्राणियोंके अनु-
गामी होते हैं ॥ ७७ ॥ सूर्य न होनेपर सूर्य व चन्द्रमा न होनेपर वे इन्द्र चन्द्रमा होते हैं और अग्नि तथा पृथ्वीमें जीने का कारण पवन होते हैं ॥ ८८ ॥ इन्द्र रो

वानिन्द्रोस्तुनोनाथ त्रैलोक्यस्यहितायवै ॥ ७४ ॥ स्कन्दउवाच ॥ किमिन्द्रस्सर्वलोकानां करोतीहसुरोत्तमाः ॥ कथन्देव
गणांश्चैव पातिनित्यंसुरेश्वरः ॥ ७५ ॥ देवाऊचुः ॥ इन्द्रोददातिभूतानां बलंतेजःप्रजांसुखम् ॥ प्रज्ञांप्रयच्छतितथासर्वा
न्देवान्सुरेश्वरः ॥ ७६ ॥ दुर्वृत्तानांसंहरति वृत्तस्थानांप्रयच्छति ॥ अनुयातिचभूतानि कार्येषुबलवत्तरः ॥ ७७ ॥ अ
सूर्येसभवेत्सूर्यस्तथाचन्द्रेचचन्द्रमाः ॥ भवत्यग्निश्चवायुश्च पृथिव्यांजीवकारणम् ॥ ७८ ॥ एतदिन्द्रेणकर्त्तव्यमि
न्द्रेहिविपुलंबलम् ॥ त्वंचेन्द्रोभवनोवीर तारकंजहितेनमः ॥ ७९ ॥ इन्द्रउवाच ॥ भवस्त्वेन्द्रोमहाबाहो सर्वेषान्नःसुखाव
हः ॥ प्रणम्यप्रार्थयेस्कन्द तारकंजहिरक्षनः ॥ ८० ॥ स्कन्दउवाच ॥ शाधित्वमेवत्रैलोक्यं भवानिन्द्रोस्तुसर्वदा ॥
करिष्येचेन्द्रकर्माणि नमसेन्द्रत्वमीप्सितम् ॥ ८१ ॥ त्वमेवराजाभद्रन्ते त्रैलोक्यस्यममैवच ॥ करोमिकिञ्चतेशक्र
शासनंब्रूहितन्मम ॥ ८२ ॥ इन्द्रउवाच ॥ यदिसत्यमिदंवाक्यं निश्चयात्कथितंत्वया ॥ अभिषिञ्चामिदेवानां सेनापत्ये

यही करने योग्य कार्य है और इन्द्रमे बडा पराक्रम होताहै हे वीर ! हमलोगों के तुम इन्द्र होवो व तारकासुर को मारो तुम्हारे लिये प्रणामहै ॥ ७९॥ इन्द्र बोले कि
हे महाबाहो ! हम सबोंके सुखदायक इन्द्र होवो हे स्कन्दजी ! प्रणाम करके प्रार्थना करते हैं किं तारकको मारिये व हमलोगों की रक्षा कीजिये ॥ ८० ॥ स्वामिकार्त्तिकेय
जी बोले कि तुम्हीं त्रिलोक की राज्यकरो व आप सदैव इन्द्रहोवो और मैं इन्द्र के कर्मोंको करूंगा मुझको इन्द्र होना प्यारा नहीं है ॥ ८१ ॥ हे इन्द्रजी ! तुम्हारा
कल्याण होवै त्रिलोक के व मेरे तुम्हीं राजा होवो तुम्हारा क्या कार्य करूं उस आज्ञाको मुझसे कहिये ॥ ८२ ॥ इन्द्र बोले कि निश्चय से तुम करके कहाहुआ

यदि यह वचन सत्यहै तो हे महाबल! देवोंकी सेनाध्यक्षता में अभिषेक करूं ॥८३॥ तुम्हारे वचनसे मैं इन्द्रहूंगा तुमको यशहोवै ॥ ८४ ॥ स्वामिकार्त्तिकेय जी बोले
कि दानवों के विनाशके लिये व देवोंके प्रयोजन की सिद्धिके लिये तथा गऊ, ब्राह्मण के लिये तुम्हारा वचन ऐसाही होवै ॥८५॥ ऐसा कहने पर देवताओं का बड़ाभारी
शब्दहुआ व त्रिलोक को कम्पकारक सब भी प्राणियों का शब्दहुआ ॥ ८६ ॥ व जयहो इस प्रकार इनकी स्तुति किया व बाजाओं को बजाया और नृत्य तथा गान
व प्रणाम किया ॥ ८७ ॥ उस बड़ेभारी शब्दसे विस्मय में प्राप्तहोती हुई पार्वती ने शिवजी से कहा कि हे देव! यह कौन बड़ाभारी शब्द होता है ॥ ८८ ॥ शिवजी

महाबल ॥ ८३ ॥ अहमिन्द्रोभविष्यामि तववाक्याद्यशोस्तुते ॥ ८४ ॥ स्कन्दउवाच ॥ दानवानांविनाशाय देवाना
मर्थसिद्धये ॥ गोब्राह्मणस्यचार्थाय एवमस्तुवचस्तव ॥ ८५ ॥ इत्युक्तेतुमहान्नादः सुराणामभ्यजायत ॥ भूतानांचा
पिसर्वेषां त्रैलोक्याःकम्पकारकः ॥ ८६ ॥ जयेतितुष्टुवुश्चैनं वादित्राण्यभ्यवादयन् ॥ नन्तृतुश्चजगुश्चैनं नमस्कारांश्च
चक्रिरे ॥८७॥ तेनशब्देनमहता विस्मितानगनन्दिनी ॥ शङ्करंप्राहकोदेव नादोयमतिवर्त्तते ॥ ८८ ॥ रुद्रउवाच ॥ अ
द्यनूनंप्रहृष्टानां सुराणांविविधागिरः ॥ श्रूयन्तेचततोदेवि यतोजातःसुतस्तव ॥ ८९ ॥ गवाञ्चब्राह्मणानांच साध्वीना
ञ्चदिवौकसाम् ॥ मार्जयिष्यतिचाश्रूणि पुत्रस्तेपुण्यवत्यसि ॥ ९० ॥ एवंवदतिसादेवीद्रष्टुमत्युत्सुकाभवत् ॥ शङ्क
रश्चमहातेजाः पुत्रस्नेहोधिकोयतः ॥ ९१ ॥ वृषभन्तुसमारुह्य देव्यासहसमुत्सुकः ॥ सगणोभवआगच्छत्पुत्रदर्शन
लालसः ॥९२॥ ततोब्रह्मामहासेनं प्रजापतिरथाब्रवीत् ॥ अभिगच्छमहादेवं पितरंमातरम्प्रभो ॥ ९३ ॥ अनयोर्वीर्यसंयो

बोले कि निश्चयकर आज प्रसन्न हुये देवताओं की अनेक प्रकारकी वाणी उसी कारणसे सुन पड़ती हैं कि जिस लिये हे देवि! तुम्हारा पुत्र पैदाहुआ है ॥ ८९ ॥
और तुम्हारा पुत्र गौवों और ब्राह्मणों तथा पतिव्रताओं व देवताओं के आंसुवों को पोंछैगा इससे तुम पुण्यवती हो ॥ ९० ॥ ऐसा कहने पर वे देवी पुत्रको देखने
के लिये उत्कण्ठित हुई और बडे तेजस्वी शिवभी उत्कण्ठित हुये क्योंकि पुत्रका स्नेह बहुत होता है ॥ ९१ ॥ पुत्रके देखने की अति इच्छावाले, उत्कण्ठित
शिवजी पार्वती देवी समेत बैलपै चढ़कर गणों समेत आये ॥ ९२ ॥ तदनन्तर प्रजापति ब्रह्माजी स्वामिकार्त्तिकेय से बोले कि हे प्रभो! महादेव जी पिता व माता के

समीप जावो ॥ ९३ ॥ इन्हीं दोनों के वीर्य के संयोगसे तुम्हारी उत्पत्ति कहीगई है ऐसाही होगा यह कहकर बड़े बुद्धिमान् स्वामिकार्त्तिकेय जीने पिता महादेव व
माता को पूजन किया उसके उपरान्त उस पुत्रको लिपटाकर व बहुत देरतक आशीर्वादोंको युक्तकर ॥ ९४ । ९५ ॥ व पार्वती तथा शिवजी दोनों बहुत देरतक प्रसन्नहुये
व प्रसन्न होतेहुये शिवजी इन स्वामिकार्त्तिकेय को सिद्धके साराशका तत्त्व दिया ॥ ९६ ॥ और हर्षसे व्याप्त पार्वती देवीने प्रसन्न होकर मायासे मुक्तिको दिया इसी
अवसरमें ऋषियों से छोड़ीहुई छह देवी वहां आईं व उस समय उन स्वामिकार्त्तिकेयको हे पुत्र ! ऐसा कहकर तदनन्तर पार्वती ने यही कहा उसी बीचमें इन्द्रजी

गात तवोत्पत्तिरुदाहृता ॥ एवमस्त्वितिचाप्युक्त्वा महासेनोमहेश्वरम् ॥ ९४ ॥ अपूजयदमेयात्मापितरंमातरंतथा ॥
ततस्तमालिङ्ग्यसुतं चिरंसंयोज्यचाशिषः ॥ ९५ ॥ चिरंजहृषतुश्चोभौपार्वतीपरमेश्वरौ ॥ सिद्धसारस्यतत्त्वञ्च ददौ
तुष्टोस्यशङ्करः ॥ ९६ ॥ देवीप्रकृतिमोक्षञ्च तुष्टाहर्षपरिप्लुता ॥ एतस्मिन्नेवकालेच षड्देव्यश्चसमागमन् ॥ ९७ ॥
ऋषिभिःसम्परित्यक्तास्तं पुत्रेतिजगुस्तदा ॥ पार्वतीचततःप्राह शक्रस्तत्रान्तरेब्रवीत ॥ ९८ ॥ रोहिण्याश्चानुजास्क
न्दस्पर्द्धमानाभिजित्स्वसा ॥ इच्छन्तीज्येष्ठतान्देवी पृथक्त्वञ्चतपोरता ॥ ९९ ॥ ततःप्रभृतिमूढोस्मितत्स्थानेस्थापयप्र
भो ॥ ततस्तथेतिप्रोक्तेच कृत्तिकास्तादिवङ्गताः ॥ २०० ॥ नक्षत्रंसर्पशीर्षाभम्माततदग्निदैवतम् ॥ अथैनमब्रवीत्स्वा
हा प्रियाचाहंमहार्चिषः ॥ १ ॥ तदग्नेःप्रियतान्देहि सहवासंसदैवच ॥ २ ॥ स्कन्दउवाच ॥ हव्यकव्यञ्चयत्किञ्चिद्
द्विजाहोष्यन्तिपावके ॥ तत्तेनाम्नाप्रदास्यन्ति वासःसार्द्धंभवेच्चवै ॥ ३ ॥ पावकःप्रार्थयामास यज्ञभागान्पुनःसुरम् ॥

बोले ॥ ९७।९८ ॥ कि हे स्वामिकार्त्तिकेय जी ! अभिजित की बहन व रोहिणी की छोटी भगिनी याने कृत्तिका देवी ईर्षाको करके अलग ज्येष्ठता को चाहती हुई तपस्यामें
तत्पर है ॥ ९९ ॥ हे प्रभो ! तबसे लगाकर मैं मूढ़हूं इस लिये स्थान में स्थापित कीजिये तदनन्तर वैसाही होगा यह कहने पर वे कृत्तिकायें स्वर्गको चलीगईं ॥
२०० ॥ और अग्निदेवतावाला वह नक्षत्र सांपके मस्तक की नाईं शोभित है इसके अनन्तर स्वाहा ने इनसे कहा कि बड़ी ज्वालाओंवाले अग्नि की मैं स्त्री हूं ॥
१ ॥ इस लिये अग्निदेवको प्यारी होना व सदैवही समीप वास दीजिये ॥ २ ॥ स्वामिकार्त्तिकेयजी बोले कि ब्राह्मणलोग जो कुछ हव्य कव्य अग्निमें होम करेंगे वह

अभिषेक करावैंगे उस विषय में तुम आज्ञादेने योग्यहो जैसे कि हाथीके पांवमें सब पैरोंका अन्तर्भाव इच्छित होताहै ॥ ११॥ वैसेही महीसागर के जलमें समस्त तीर्थों का मध्य स्थानहै जैसे कि शिवजी समस्त देवमय कहेजाते हैं ॥१२॥ वैसेही महीसागर का संगम समस्त तीर्थों का स्थानहै व शिवजी अर्धनारीश्वर रूप जैसे सब कुछ देनेवाला है १३ ॥ वैसेही महीसागर का स्नान समस्त फलोंका दायक है हे स्कन्दजी ! जिसने यहा भक्तिभावमे पितरोंको तृप्त किया है ॥ १४ ॥ उससे सब तीर्थों में पितर तृप्त करायेगये इसमें सन्देह नही है और हृदय में यह न मानना चाहिये कि यह जल खारी है क्योंकि ॥ १५॥ जैसे कडुवा व तीखा आदि गौवोंका

च्यामहेत्वांच तत्रचादेष्टुमर्हसि ॥ यथाहस्तिपदेसर्वपदान्तर्भावइष्यते ॥ ११ ॥ सर्वतीर्थान्तरस्थानं तथार्णवमहीजले॥ सर्वभूतमयोयद्वत्त्र्यम्बकःपरिकीर्त्यते ॥१२॥ सर्वतीर्थपदस्तद्वन्महीसागरसङ्गमः ॥ अर्द्धनारीश्वरंरूपं यथारुद्रस्य सर्वदम् ॥ १३ ॥ तथामहीसमुद्रस्य स्नानंसर्वफलप्रदम् ॥ येनात्रपितरःस्कन्दतर्पिताभक्तिभावतः ॥ १४ ॥ तेनसर्वेषुतीर्थेषु तर्पितानात्रसंशयः ॥ नचैतद्धृदिमन्तव्यं क्षारमेतज्जलंहियत् ॥ १५ ॥ यथाकटुचतिक्तादि गवांग्रस्तंच क्षीरदम् ॥ एवमेवत्विदन्तोयं पितॄणांतृप्तिदायकम् ॥ १६ ॥ एवंब्रुवत्सुदेवेषुकपिलोपिमुनिर्जगौ ॥ सत्यमेतद्वुमापुत्र सर्वतीर्थमयीतदा ॥ १७ ॥ कर्दमेयस्त्वहमपि श्रुत्वातीर्थमहागुणान् ॥ सर्वांभुवंपरित्यज्य कृत्वात्राश्रममाश्रितः ॥ १८ ॥ ततोमहेश्वरःप्राह सत्यमेतत्सुरोदितम् ॥ ब्रह्मादयस्ततःप्राहुस्सर्वेभूयोपितेगुहम् ॥ १९ ॥ अत्राभिषेकंतेवीर करिष्यामस्समादिश ॥ ततस्सुविस्मितस्तत्र स्नात्वास्कन्दोमहामनाः ॥ २० ॥ अभिषिञ्चन्तुमान्देवा इतितानब्र

खायाहुआ तृणादि दूधदायक है ऐसेही यह जल पितरोंको परम तृप्तिदायक है ॥ १६ ॥ देवताओं के ऐसा कहते हुये उससमय कपिलमुनिने भी कहा कि हे पार्वतीपुत्र ! यह सत्यहै कि महीनदी समस्ततीर्थमयी है ॥ १७ ॥ कर्दम का पुत्र मैं भी तीर्थोंके बड़े गुणोंको सुनकर समस्त पृथ्वीको छोड़कर यहां आश्रम बनाकर स्थित होगया ॥ १८ ॥ तदनन्तर महादेव ने कहा कि देवताओं से कहाहुआ यह सत्यहै उसके उपरान्त उन ब्रह्मादिक सब देवताओं ने फिर भी स्वामिकार्त्तिकेय से कहा ॥ १९ ॥ कि हे वीर ! यहां हमलोग तुम्हारा अभिषेक करैंगे आज्ञा दीजिये तदनन्तर बड़े विस्मय में प्राप्त व उदार मनवाले स्वामिकार्त्तिकेय जीने उस में

नहाकर ॥ १० ॥ देवताओं से यह वचन कहा कि देवतालोग मेरा अभिषेक करैं तदनन्तर शास्त्रके द्वारा अभिषेक की सब सामग्रियों को मँगाकर ॥ २१ ॥ मुख्य
चार ऋत्विजों ने मन्त्रसे पवित्र अग्निमें हवन किया ब्रह्मा, कपिल, बृहस्पति व चौथे विश्वामित्र थे ॥ २२ ॥ और अन्यभी वेदके पारगामी सैकड़ों मुनि वहा थे व
हे भारत ! उस मन्त्रने वहां अद्भुत वस्तुको दिखलाया ॥२३॥ जो कि कुण्डके बीचमें प्राप्त अग्नि लिंगमूर्त्तिवाली देखपड़ी अग्निके बीचमें टिकाहुआ मैं ही नित्य
हव्यको ग्रहण करताहूं ॥ २४ ॥ यह दिखाने के लिये व्यापक महादेव जी लिंगमूर्त्तिधारी हुये तदनन्तर प्रसन्न होतेहुये देवताओं ने उस बडे भारी लिंगको प्रणाम

**वीद्वचः ॥ ततोभिषेकसम्भारान्सर्वान्संभृत्यशास्त्रतः ॥ २१ ॥ जुहुवुर्म्मन्त्रपूतेग्नौ चत्वारोमुख्यऋत्विजः ॥ ब्रह्माचक
पिलोजीवो विश्वामित्रश्चतुर्थकः ॥ २२ ॥ अन्येचशतशस्तत्र मुनयोवेदपारगाः ॥ तत्राद्भुतञ्चमन्त्रस्स दर्शयामासभा
रत ॥ २३ ॥ यदग्निकुण्डमध्यस्थो लिङ्गमूर्त्तिर्व्यदृश्यत ॥ अहमेवाग्निमध्यस्थो हविर्गृह्णामिनित्यशः ॥ २४ ॥ ए
तत्सन्दर्शनार्थाय लिङ्गमूर्त्तिरभूद्विभुः ॥ तल्लिङ्गमतुलंदेवा नमश्चक्रुर्मुदान्विताः ॥ २५ ॥ सर्वपापापहंपार्थ सर्वकामफ
लप्रदम् ॥ तत्रहोमावसानेच दत्तेहिमवताशुभे ॥ २६ ॥ दिव्यरत्नान्वितेस्कन्दो निषण्णःपरमासने ॥ सर्वमङ्गलसम्भारै
र्विधिमन्त्रपुरस्कृतः॥ २७ ॥ अभ्यषिञ्चंस्ततोदेवाः कुमारंशङ्करात्मजम् ॥ इन्द्रोविष्णुर्महावीर्यो ब्रह्मरुद्रौचफाल्गुन॥
२८ ॥ आदित्याद्याग्रहास्सर्वे तथोभावनिलानलौ ॥ आदित्यावसवोरुद्राः साध्याश्चैवाश्विनावुभौ ॥ २९ ॥ विश्वेदेवा
श्चमरुतो गन्धर्वाप्सरसस्तथा ॥ देवब्रह्मर्षयश्चैव बालखिल्याःसरीसृपाः ॥ ३० ॥ विद्याधरायोगसिद्धाः पुलस्त्यपुल**

किया ॥ २५ ॥ हे अर्जुन ! जोकि सब पापोंका विनाशक व समस्त कामनाओं का फलदायकहै और वहां होमके अन्तमें जब हिमवान् ने दिव्य रत्नोंसे संयुत उत्तम
वस्तु दिया तब समस्त मंगल की सामग्रियों से विधिपूर्वक पूजित स्वामिकार्त्तिकेयजी उत्तम आसनपै बैठे ॥ २६ ।२७ ॥ तदनन्तर देवोंने शिवजीके पुत्र स्वामिकार्त्ति-
कजी का अभिषेक किया हे अर्जुन जी ! इन्द्र व बडे पराक्रमी विष्णु, ब्रह्मा, महादेव ॥ २८ ॥ व सूर्यादिक समस्त ग्रह वैसेही पवन, अग्नि, आदित्य, वसु, रुद्र, सा-
ध्य व दोनों अश्विनीकुमार ॥ २९ ॥ व विश्वेदेवा, मरुत, गन्धर्व, अप्सरा व देवर्षि, ब्रह्मर्षि व बालखिल्य मुनि और सर्पादिक ॥ ३० ॥ विद्याधर, योगसिद्ध पुलस्त्य

व पुलहादिक और पितर, कश्यप, विश्वेदेवता, मरीचि, भृगु, अंगिरा ॥ ३१ ॥ व दक्ष और जो मनुथे व नक्षत्र, ऋतुयें व मही इत्यादिक मूर्त्तिमती नदियां ॥ ३२ ॥ व लवण सागरादिक समुद्र और प्रभासादिक तीर्थ व पृथ्वी, आकाश, स्वर्ग, वृक्ष व पर्वत ॥ ३३ ॥ व पुत्रका मंगल करतीहुई अदिति इत्यादिक मातायें और वासुकि इत्यादिक नाग व गरुड, अरुण ये दोनों ॥ ३४ ॥ व वरुण कुबेर यम और वैसेही सेवक तथा राक्षस, निर्ऋति व मांसभक्षी प्राणी ॥ ३५ ॥ व धर्म, बृहस्पति, कपिल, विश्वामित्र तथा बहुल होनेके कारण जो अनेक भांतिके देवगण नहीं कहेगये ॥ ३६ ॥ वे सब महीनदी के किनारे प्रसन्नता से स्वामिकार्त्तिकेयजीको अभिषेककर

हादयः ॥ पितरःकश्यपोविश्वेमरीचिर्भृगुरङ्गिराः ॥ ३१ ॥ दक्षोथमनवोयेच ज्योतींषिऋतवस्तथा ॥ मूर्तिमत्यश्चस रितोमहीप्रभृतिकास्तथा ॥ ३२ ॥ लवणाद्यास्समुद्राश्च प्रभासाद्याश्चतीर्थकाः ॥ पृथिवीद्यौर्दिवश्चैव पादपाःपर्वतास्त था॥३३॥ अदित्याद्यामातरश्चकुर्वत्यस्सूनुमङ्गलम् ॥ वासुकिप्रमुखानागास्तथोभौगरुडारुणौ ॥ ३४ ॥ वरुणोधनदश्चै व यमश्चानुचरास्तथा॥राक्षसोनिर्ऋतिश्चैव भूतानिपललाशनाः ॥ ३५ ॥ धर्म्मोबृहस्पतिश्चैव कपिलोगाधिनन्दनः ॥ बहुलत्वाच्चनोक्तायेविविधादेवतागणाः ॥ ३६ ॥ तेचसर्वेमहीकूले ह्यभिषिच्यमुदागुहम् ॥ ततोमहासेनमुग्रांदेवदैत्या दिदर्प्पहा ॥ ३७ ॥ ददौपशुपतिस्तस्मै सर्वभूतमहाचमूम् ॥ विष्णुर्ददौवैजयन्तीं मालांबलविवर्द्धिनीम् ॥३८॥ उमाद दौचरभसा वाससीसूर्यसप्रभे ॥ गङ्गाकमण्डलुंदिव्यममृतोद्भवमुत्तमम् ॥ ३९ ॥ महीमहानदीतस्य चाक्षमालांस सागरा ॥ ददौमुदाकुमाराय दण्डंचैवबृहस्पतिः ॥ ४० ॥ गरुडोदयितंपुत्रं मयूरंचित्रबर्हणम् ॥ अरुणस्ताम्रचूडञ्च प्र

तदनन्तर देवों व दैत्यादिकों के गर्वनाशक शिवजीने उनके लिये समस्त प्राणियोंवाली बड़ी सेना जोकि भयंकर थी दी व विष्णुने बलको बढ़ानेवाली वैजयन्ती माला दिया ॥ ३७।३८ ॥ व पार्वती ने प्रसन्नता से सूर्यके समान प्रकाशित दो वसनोंको दिया व गंगाने अमृतसे उपजे हुये उत्तम कमण्डलु को दिया ॥ ३९ ॥ व सागरसमेत मही महानदी ने रुद्राक्षमाला को दिया व बृहस्पति ने प्रसन्नता से स्वामिकार्त्तिकेयजो के लिये दण्डको दिया ॥ ४० ॥ व गरुड़ ने विचित्र पंखोंवाले प्यारे मयूर

को पुत्रको दिया और अरुण ने लालशिखावाले मुर्गेको दिया ॥ ४१ ॥ और बल व प्रभावसे संयुत वरुण राजाने छागदिया वैसेही ब्रह्माने ब्रह्मण्य स्वामिकार्त्तिकजी
के लिये मृगचर्म दिया ॥ ४२ ॥ व मनसे पैदाहुये बड़े पराक्रमी तथा बलसे उग्र चार अनुचरों (सेवकों) को दिया नन्दिसेन, लोहिताक्ष, घण्टाकर्ण ॥ ४३ ॥ व
चौथा भी बड़ाबली कुमुदमाली प्रसिद्धथा तदनन्तर शिवदेवजी ने बलिष्ठ क्रतुपार्षद को दिया ॥ ४४ ॥ जिसने कि भलीभाँति क्रोधित होकर देवासुरसंग्राम में एक
करोड चालीस लाख भयंकर कर्मोंके करनेवाले दैत्यों को भुजाओं से माराहै ॥ ४५ ॥ तदनन्तर यमराज ने बडे शोभायमान व बडे पराक्रमी तथा यमराज के समान

ददौचरणायुधम् ॥ ४१ ॥ छागञ्चवरुणोराजा बलवीर्यसमन्वितः ॥ कृष्णाजिनंतथाब्रह्मा ब्रह्मण्यायददौतथा ॥ ४२ ॥
चतुरोनुचरांश्चैव महावीर्यान्बलोत्कटान् ॥ नन्दिसेनंलोहिताक्षं घण्टाकर्णञ्चमानसान् ॥ ४३ ॥ चतुर्थंचाप्यतिबलं
ख्यातंकुमुदमालिनम् ॥ ततःस्थाणुर्ददौदेवो बलिनंपार्षदंक्रतुम् ॥ ४४ ॥ यश्चदेवासुरेयुद्धे दैत्यानांभीमकर्मणाम् ॥
जघानदोर्भ्यांसंक्रुद्धः प्रयुतानिचतुर्दश ॥ ४५ ॥ यमःप्रादादनुचरौ यमकालोपमौततः ॥ उन्मथञ्चप्रमाथञ्च महावी
र्यौमहाद्युती ॥ ४६ ॥ सुभ्राजोभास्करश्चैव यौसदाचानुयायिनौ ॥ तौसूर्यःकार्त्तिकेयाय ददौपार्थमुदान्वितः ॥ ४७ ॥
कैलासखण्डसङ्काशौ श्वेतमाल्यानुलेपनौ ॥ सोमोप्यनुचरौप्रादान्मणिंसुमणिमेवच ॥ ४८ ॥ ज्वालाजिह्वंज्योतिषञ्च
ददावग्निर्महाबलौ ॥ परिघञ्चबलंचैव भीमंचापिमहाबलम् ॥ ४९ ॥ स्कन्दायत्रीननुचरान् ददौविष्णुरुरुक्रमः ॥ ५० ॥
उत्क्रोशंपङ्कजंचैव वज्रदण्डधरावुभौ ॥ ५१ ॥ ददौमहेशपुत्राय वासवःपरवीरहा ॥ तौहिशत्रून्महेन्द्रस्य जघ्नतुस्सम

उन्मथ व प्रमाथ सेवकोंको दिया ॥ ४६ ॥ हे अर्जुनजी ! जोकि सदैव अनुगामी थे उन सुभ्राज व भास्कर अनुचरोंको प्रसन्नता से संयुत सूर्यने स्वामिकार्त्तिकके लिये
दिया ॥ ४७ ॥ जो अनुचर कि कैलास के खण्डके समान व श्वेत मालाओं तथा वसनोंको धारेथे और चन्द्रमा ने मणि व सुमणि सेवकोंको दिया ॥ ४८ ॥ और अ-
ग्निने ज्वालाजिह्व व ज्योतिष बडे बलिष्ठ सेवकों को दिया और उरुक्रम विष्णुजी ने परिघ, बल व भीम तीन सेवको को स्वामिकार्त्तिक के लिये दिया ॥ ४९ । ५० ॥
और उत्क्रोश व पंकज दोनों दण्डधारियों को शत्रु वीरों के नाशनेवाले इन्द्रने शिवजी के पुत्र के लिये दिया उन्हों ने समर में बहुतेरे इन्द्र के शत्रुओं को

माराहै ॥ ५१।५२ ॥ व हे भरतर्षभ! प्रसन्न होतेहुये आयुर्वेद (वैद्यकी) में चतुर अश्विनीकुमारने स्कन्दजीके लिये वर्द्धन व वंचन सेवकों को दिया ॥ ५३ ॥ व पवन ने स्वामिकार्त्तिकेय जीके लिये बडे चक्रधारी व बड़े बली बल तथा अतिबल दो सेवकोंको दिया ॥ ५४ ॥ और वरुण स्वामीने प्रास व अतिबल सेवकों को दिया और और सुवर्चस, महात्मा व अतिवर्द्धन को ॥ ५५ ॥ हे अर्जुन ! साक्षात् हिमवान्ने नाती (स्वामिकार्त्तिकेयजी) के लिये दिया और सुमेरुने कांचन तथा मेघमाली को दिया ॥५६॥ व बड़े पत्थरों से युद्ध करनेवाले तथा प्रसन्न उच्छ्रित व अतिशृङ्ग उत्तम पार्षदों को उस विन्ध्याचल ने स्वाहा के पुत्र स्कन्दजीके लिये दिया ॥५७॥

रेबहून् ॥ ५२ ॥ वर्द्धनंवञ्चनंचैव आयुर्वेदविशारदौ ॥ स्कन्दायददतुःप्रीतावश्विनौभरतर्षभ ॥ ५३ ॥ बलंचातिबलंचैव महाचक्रौमहाबलौ ॥ प्रददौकार्त्तिकेयाय वायुश्चानुचरावुभौ ॥ ५४ ॥ प्रासञ्चातिबलंचैवं वरुणश्चददौप्रभुः ॥ सुवर्चसंम हात्मानं तथैवाप्यतिवर्द्धनम् ॥ ५५ ॥ हिमवान्प्रददौपार्थसाक्षाद्दौहित्रकायवै ॥ काञ्चनंचददौमेरुर्मेघमालिनमेव च ॥ ५६ ॥ उच्छ्रितंचातिशृङ्गञ्च महापाषाणयोधिनौ ॥ स्वाहेयायददौप्रीतौ सविन्ध्यःपार्षदौशुभौ ॥ ५७ ॥ संग्रहं विग्रहंचैव समुद्रोपिगदाधरौ ॥ प्रददौपार्षदौवीरौ महीनद्यासमन्वितः ॥ ५८ ॥ उन्मादंपुष्पदन्तञ्च शङ्कुकर्णं तथैवच ॥ प्रददावग्निपुत्राय पार्वतीशुभदर्शना ॥ ५९ ॥ जयंमहाजयंचैव नागाज्वलनसूनवे ॥ प्रददुर्बलिनांश्रेष्ठौ सु वर्णौपार्षदावुभौ ॥ ६० ॥ एवंसाध्याश्चरुद्राश्च वसवःपितरस्तथा ॥ सर्वेजगतियेमुख्या ददुःस्कन्दायपार्षदान् ॥ ६१ ॥ नानावीर्यान्महावीरान् नानायुधविभूषणान् ॥ बहुलत्वान्नशक्यन्ते संख्यातुन्तेचफाल्गुन ॥ ६२ ॥ मातरश्चददु

और महीनदी से संयुत समुद्र ने भी संग्रह व विग्रह गदाधारी, वीर पार्षदों को दिया ॥ ५८ ॥ व उत्तम दर्शनोवाली पार्वती ने उन्माद, पुष्पदन्त व शंकुकर्ण को अग्निपुत्र स्कन्दजी के लिये दिया ॥५९॥ और नागोने जय व महाजयको स्वामिकार्त्तिकके लिये दिया जो दोनो पार्षद कि बलिष्ठोंमें श्रेष्ठव उत्तम रंगकेथे ॥६०॥ इसीप्रकार साध्य रुद्र, वसु व पितर जो सब कि संसार में प्रसिद्ध थे उन्होंने स्वामिकार्त्तिकके लिये पार्षदोंको दिया ॥ ६१ ॥ हे अर्जुन ! जोकि अनेक भांतिके पराक्रमवाले, बड़े वीर व अनेक भाति के अस्त्ररूप गहनोंवाले थे वे अधिकता से नहीं गिनेजासक्के हैं ॥ ६२ ॥ व माताओं ने उस समय उन स्वामी स्कन्दजीके लिये

मातृगणों को दिया जिन सबोंसे चराचर तीनों लोक व्याप्त हैं ॥ ६३ ॥ प्रभावती, विशालाक्षी, गोपाली, गोनसा व अप्सुजाता, बृहद्दण्डी, कालिका, बहुपुत्रिका ॥
६४ ॥ भयंकरी, वक्रांगी, तीर्थनेमि व धाविनी, गीतप्रिया, अलाताक्षी, चटुला व शलभामुखी ॥ ६५ ॥ और विद्युज्जिह्वा, भद्रकाली, शीता, उलूखलमेखला, शतघ-
ण्टारवा, वेणी, चक्राक्षी व रक्तपा ॥ ६६ ॥ पूतना, रोदना, वामा, कोटरा, मेघवाहिनी ऊर्ध्ववेणी, धरा, जरायु व जर्जरानना ॥६७॥ व वेटाखटी, दहदहा, धमधमा-
पदा व बहुवेणी, बहुशिरा, बहुपादा और बहुस्तनी ॥ ६८॥ व शतोलूकमुखी, कृष्णा और कर्णप्रावरणा, शून्यालया, धान्यवासा, पशुदा, अन्नदा व सदा ॥ ६९ ॥ हे भ-

**स्तस्य तदामातृगणान्प्रभोः॥याभिर्व्याप्तास्त्रयोलोकाः सकलाश्चराचराः ॥ ६३ ॥ प्रभावतीविशालाक्षी गोपालीगो
नसातथा ॥ अप्सुजाताबृहद्दण्डी कालिकाबहुपुत्रिका ॥ ६४ ॥ भयंकरीचवक्राङ्गी तीर्थनेमिश्चधाविनी ॥ गीतप्रिया
ह्यलाताक्षी चटुलाशलभामुखी ॥ ६५ ॥ विद्युज्जिह्वाभद्रकाली शीतोलूखलमेखला ॥ शतघण्टारवावेणीचक्राक्षी
चैवरक्तपा ॥ ६६ ॥ पूतनारोदनावामा कोटरामेघवाहिनी॥ ऊर्ध्ववेणीधराचैव जरायुर्जर्जरानना ॥ ६७॥ वेटाखटीदह
दहा तथाधमधमापदा ॥ बहुवेणीबहुशिरा बहुपादाबहुस्तनी ॥ ६८ ॥ शतोलूकमुखीकृष्णा कर्णप्रावरणातथा ॥
शून्यालयाधान्यवासा पशुदाचान्नदासदा ॥ ६९ ॥ एताश्चान्याश्चबह्वयोपि मातरोभरतर्षभ ॥ बहुलत्वादहंतासां नसं
ख्यातुमिहोत्सहे ॥ ७० ॥ वृक्षचत्वरवासिन्यश्चतुष्पथनिवेशनाः ॥ गुहाश्मशानवासिन्यः शैलप्रस्रवणालयाः ॥
७१ ॥ नानाभरणवस्त्राढ्या नानामूर्त्तिधरास्तथा ॥ नानावेषायुधधराः परिवव्रुस्तदागुहम् ॥ ७२ ॥ सशुभेशुशुभेश्री**

रतर्षभ! ये और अन्यभी बहुत मातायेंहैं बहुत होनेके कारण मैं यहां उनकी संख्या करनेके लिये उत्साह नहीं करताहूं ॥ ७० ॥ जो मातृगण कि वृक्षो व चौतरोंमें रहने
वाली तथा चौराहेमें स्थानवाली व कन्दरा और श्मशानवासिनी व पर्वत तथा झरनोंमें रहनेवाली हैं ॥ ७१ ॥ व अनेक प्रकार के वसन व गहनेवाली और अनेक
भांतिकी मूर्त्तिधारिणी हैं व अनेक वेष तथा अस्त्रोंको धारनेवाली उन माताओं ने उस समय स्वामिकार्त्तिकेय जी को घेरलिया ॥ ७२ ॥ और वे स्वामिकार्त्तिकेय जी

उत्तम पर्वतपै दूसरे महासेनकी नाईं शोभितहुये व सैनाध्यक्षता में देवताओं तथा अनेक मुनीश्वरों ने जब अभिषेक किया ॥ ७३ ॥ उसके उपरान्त स्वामिकार्त्तिकेय
ने एक एक मुखसे शिव ब्रह्मापूर्वक उन सबोंको प्रणाम कर यह कहा कि वरदान को मांगिये ॥ ७४ ॥ व उन्होने इन महासेन को आशीर्वादों से युक्तकर वरदान
मांगा कि यही हमलोगों का वरदानहै कि जिससे पापी तारकको मारिये ॥ ७५ ॥ ऐसाही होगा यह उनसे कहकर योग योग ऐसा कहतेहुये बड़े तेजस्वी तारकशत्रु
स्वामिकार्त्तिकेयजी मयूरपै सवारहुये ॥ ७६ ॥ इसके अनन्तर शक्तिको हाथमे लेकर उस समय स्वामिकार्त्तिकेय जी देवताओं से बोले कि हे सुरोत्तमो ! जो आज मैं

मान् गुहोगुहइवापरः ॥ सेनापत्येचाभिषिक्तैर्देवैर्नानामुनीश्वरैः ॥ ७३ ॥ ततःप्रणम्यसर्वांस्तानेकैकास्येनपावकिः ॥
व्रियतांवरइत्याह भवब्रह्मपुरोगमान् ॥ तेचैनंयोज्यचाशीर्भिरयाचन्तवरंगुहम् ॥ ७४॥ एषएववरोस्माकं यत्पापंतारकं
जहि ॥ ७५ ॥ एवमस्त्वितितानुक्त्वा योगोयोगइतिब्रुवन् ॥ तारकारिर्महातेजा मयूरंचाध्यरोहत ॥ ७६ ॥ शक्तिंहस्ते
विगृह्याथ गुहोदेवांस्तदाब्रवीत् ॥ यद्यद्यतारकंपापं नाहंहन्मिसुरोत्तमाः ॥ ७७ ॥ गोब्राह्मणावमन्तॄणां ततोयामिगतिं
स्फुटम् ॥ एवन्तेनप्रतिज्ञाते शब्दोतिसुमहानभूत् ॥ ७८ ॥ योगोयोगइतिप्राहुराज्ञयाशरजन्मनः ॥ अजरेवाससीरक्ते
वसानःपार्वतीसुतः ॥ ७९ ॥ अथाग्रेसर्वदेवानां स्थितोवीरोययौमुदा ॥ तस्यकेतुरलंभाति चरणायुधशोभितः ॥ ८० ॥
चरणाभ्यांगिरीन्क्षुब्धो योविदारयितुंरणे ॥ याचेष्टासर्वभूतानां प्रभाशान्तिर्बलंतथा ॥ ८१ ॥ तन्मयागुहशक्तिस्सा
भृशंहस्तेऽभ्यरोचत ॥ यदाद्यंसर्वलोकेषु तन्मयंकवचंतथा ॥ ८२ ॥ योत्स्यमानस्यवीरस्य देहेप्रादुरभूत्स्वयम् ॥ धर्मस्स

पापी तारकको न मारूं ॥ ७७ ॥ तो गऊ व ब्राह्मणोंके अपमान करनेवालोंकी गतिको प्रकटही प्राप्तहोऊं इसप्रकार उनके प्रतिज्ञा करनेपर बडाभारी शब्दहुआ ॥ ७८ ॥
और स्वामिकार्त्तिकेय जी की आज्ञासे देवोंने योग २ ऐसा कहा इसके अनन्तर नवीन अरुण वसन पहने पार्वती जीके पुत्र स्वामिकार्त्तिकेय वीर सब देवताओ के
आगे प्राप्तहोकर प्रसन्नतासे चले और चरणायुध (मुर्गे) से शोभित उनका पताका बहुतही शोभित था ॥ ७९ । ८० ॥ जोकि युद्धमे चरणो से पर्वतोको फोडने के
लिये समर्थथा और सम्पूर्ण प्राणियों की जो चेष्टा, प्रकाश, शान्ति व बलहै ॥ ८१ ॥ तन्मयी वह स्वामिकार्त्तिकेयजी की शक्ति हाथमे बहुतही शोभितहुई वैसेही समस्त

लोकोंमें जो आदिभूत है ॥ ८२ ॥ तन्मय कवच युद्ध करतेहुये वीर स्वामिकार्त्तिकेयजी के शरीर में आपही प्रकटहुईं और धर्म,सत्य, ज्ञान,तेज,कान्ति, वीरता ॥
८३ ॥ व पराक्रम, प्रभाव, दया ये सब उस समय दोनों हाथ जोड़कर आज्ञाकारी हो आपही उन स्वामिकार्त्तिकेय महात्मा के आगे खड़ेहुये ॥ ८४ ॥ आगे जाते
हुये भी उन स्वामिकार्त्तिकेयजीके पीछे सूर्यवर्णवाले रथ करके पार्वती समेत महादेव स्वामी चले ॥ ८५ ॥ जो रथ कि लीलासे आपही ऐश्वर्यवान् शिवजीने रचाथा व
उस समय उस उत्तम रथमें हजार सिंह युक्त कियेगये ॥ ८६ ॥ और इस रथके मनोरथको महर्षियों समेत ब्रह्माजी देकर उस रथपै पार्वती समेत शिवजी ऐसे शो-

**त्यमसंमोहस्तेजःकान्तिश्चशूरता ॥ ८३ ॥ बलमोजःकृपाचैवबद्धाकरयुगन्तदा ॥ आदेशकारीण्यग्रेस्य स्वयंतस्थुर्महा
त्मनः ॥ ८४ ॥ तमग्रेचापिगच्छन्तंपृष्ठतोनुययौहरः ॥ रथेनादित्यवर्णेनपार्वत्यासहितःप्रभुः ॥ ८५ ॥ निर्म्मितेनहरेणैव
स्वयमीशेनलीलया ॥ तदासहस्रसिंहानांतस्मिन्युक्तेरथोत्तमे ॥ ८६ ॥ अभीष्टंचरथस्यास्यब्रह्मादत्त्वामहर्षिभिः ॥ तस्मिन्
रथेपशुपतिःस्थितोभात्युमयासह ॥ ८७ ॥ प्रभयामण्डितस्सूर्यः सेन्द्रचापघनोयथा ॥ अग्रतस्तस्यभगवान् धनेशोगु
ह्यकैस्सह ॥ ८८ ॥ आस्थायसत्वरंयातिपुष्पकंनरवाहनः ॥ ८९ ॥ ऐरावतंसमास्थायशक्रश्चापिसुरैस्सह ॥ ९० ॥ पृष्ठतोनु
ययौयस्तुवरदोवृषभध्वजः ॥ तस्यदक्षिणतोदेवामरुतश्चित्रयोधिनः ॥ ९१ ॥ गच्छन्तिवसुभिस्सार्द्धंरुद्रैश्चसहसंगताः ॥
यमश्चमृत्युनासार्द्धंसर्वतःपरिवारितः ॥ ९२ ॥ घोरैर्व्याधिशतैश्चापि सहितोयातिकोपनः ॥ यमस्यपृष्ठतश्चापि घोर
स्त्रिशिखरःस्थितः ॥ ९३ ॥ विजयोनामरुद्रस्ययातिशूलःस्वयंकृतः ॥ तमुग्रपाशोभगवान् वरुणस्सलिलेश्वरः ॥ ९४ ॥**

भितथे ॥ ८७ ॥ कि जैसे प्रभासे शोभित सूर्य व इन्द्रधनुष समेत मेघ होवै और उन स्वामिकार्त्तिकेयजी के आगे गुह्यकों समेत नरवाहन भगवान् कुबेरजी पुष्पकपै
चढ़कर शीघ्रही चले ॥ ८८।८९ ॥ और ऐरावतपै चढ़कर इन्द्रभी देवताओं समेत ॥ ९० ॥ पीछे चले और जो वरदायक शिवजीथे उनके दाहिने विचित्र युद्ध करनेवाले
पवनदेवता वसुवोंसमेत व रुद्रोंसे मिलकर चले और मृत्यु समेत तथा भयंकर दूतोंसे सब ओर घिरे व सैकड़ों रोगों सहित क्रोधी यमराजजी चले और यमराज के भी
पीछे भयंकर त्रिशिखर स्थित हुआ ॥ ९१ । ९२ । ९३ ॥ और आपही से कियाहुआ विजय नामक शिवजी का शूल चला व अनेक भांतिके जलजन्तुओं से घिरे भय-

कर फँसरीवाले भगवान् जलेश वरुणजी उस शूलको घेरकर धीरे २ चले इसकेबाद विजयके पीछे शिवजीका पट्टिशचला ॥ ६४ । ६५ ॥ जोकि गदा, मुशल व शक्ति आदिक अस्त्रों से घिराथा व हे अर्जुन जी ! पट्टिश के पीछे बड़ा भारी पाशुपत अस्त्र चला ॥ ६६॥ जोकि बहुत मस्तकोंवाला व बड़ा विकराल और एक चरणवाला व बहुत पेटोंवालाथा और महर्षिगणों से घिराहुआ कमण्डलु भी चला ॥ ६७ ॥ उसके दाहिने शोभासे घिरा व चलता हुआ दण्ड शोभित था जोकि भृगु, अंगिरा समेत देवताओं से भी पूजितथा ॥६८॥ इसके अनन्तर राक्षस, देवता, गन्धर्व, सर्प व नदियां, नद, समुद्र व अप्सराओं के गण ॥ ६९ ॥ और नक्षत्र ग्रह व स्थावर,

परिवार्यशनैर्याति यादोभिर्विविधैर्वृतः ॥ पृष्ठतोविजयस्याथ यातिरुद्रस्यपट्टिशः ॥ ९५ ॥ गदामुशलशक्त्याद्यैर्वृतः प्रहरणैश्चयः ॥ पट्टिशंचान्वगात्पार्थ अस्त्रंपाशुपतंमहत् ॥ ९६ ॥ बहुशीर्षमहाघोरमेकपादंबहूदरम् ॥ कमण्डलुश्चा पियथौ महर्षिगणसंवृतः ॥ ९७ ॥ तस्यदक्षिणतोभातिदण्डोगच्छञ्छ्रियावृतः ॥ भृग्वङ्गिरोभिस्सहितो देवैश्चाप्य भिपूजितः ॥ ९८ ॥ राक्षसाश्चाथदेवास्तु गन्धर्वाभुजगास्तथा ॥ नद्योनदास्समुद्राश्च मुनयोप्सरसाङ्गणाः ॥ ९९ ॥ नक्षत्राणिग्रहाश्चैव स्थावरंजङ्गमंतथा ॥ मातरश्चमहादेवमनुजग्मुःक्षुधान्विताः ॥ १०० ॥ सर्वेषांपृष्ठतश्चासीत्तार्क्ष्य स्थोबुद्धिमान्हरिः ॥ पालयन्पृतनांसर्वांस्वपरीवारसंवृतः ॥ १ ॥ एवंसैन्यसमोपेत उत्तरंतटमागतः ॥ ताम्रप्राकारमा श्रित्य तस्थौत्र्यम्बकनन्दनः ॥ २ ॥ सतारकपुरस्यापि पश्यन्नृद्धिंमहोत्तमाम् ॥ विसिस्मियेमहासेनः प्रशशंसत पोस्यच ॥ ३ ॥ स्थितःपश्यन्सशुशुभे मयूरस्थोगुहस्तदा ॥ छत्रेणध्रियमाणेन स्वयंसोमसमत्विषा ॥ ४ ॥ वीज्य

जंगम तथा क्षुधासे संयुत मातृगण महादेवके पीछे चले ॥ १०० ॥ और समस्त सेनाकी रक्षा करतेहुये अपने कुटुम्बसे संयुत बुद्धिमान् विष्णुजी गरुड़पै चढ़कर सबके पीछे हुये ॥ १ ॥ इस प्रकार सेनासे संयुत शिवजी के पुत्र स्वामिकार्त्तिकेय जी उत्तर किनारेपै आये व ताम्रकी छहरदिवाली पै आश्रित होकर टिके ॥ २ ॥ और तारक नगरकी भी बड़ी उत्तम ऋद्धिको देखतेहुये उन स्वामिकार्त्तिकेय जी विस्मय में प्राप्तहुये व इसकी तपस्याकी प्रशंसा किया ॥ ३ ॥ उस समय मयूरपै प्राप्त व

टिके, देखते हुये वे स्वामिकार्त्तिकेय जी शोभित हुये व घेरेहुये छत्र करके शोभासे आपही चन्द्रमाके समानथे ॥ ४ ॥ और सुन्दर पवन तथा अग्निसे महाछविवाले स्वामिकार्त्तिकेय जी वीजित थे याने पवन व अग्नि इनके चँवर डुलारहेथे और मातृगण व सब देवों तथा अपने गणोंसे घिरेथे ॥ ५ ॥ तदनन्तर देवताओं के बीच में इन्द्रजी उन स्वामिकार्त्तिकेय को प्रणामकर वचन बोले कि बलसे शोभित दैत्योंकी सेना को देखिये देखिये ॥ ६ ॥ जोकि गेहमें स्नेही पुरुषों की नाईं कालरूप तुमको नहीं जानते हैं इनके समीप दूत युक्त किया (पठाया) जावै जोकि तुमको तारकासुर से कहै ॥ ७ ॥ क्योंकि वीरोंको यह उचित है व महात्मा पुरुषमें यश-

मानश्चरम्याभ्यां वाय्वग्निभ्यांमहाद्युतिः ॥ मातृभिश्चसुरैस्सर्वैः स्वगणैरभिसंवृतः ॥ ५ ॥ ततःप्रणम्यतंशक्रो देवमध्येवचोब्रवीत ॥ पश्यपश्यमहासेनां दैत्यानांबलशालिनाम् ॥ ६ ॥ त्वांयेकालंनजानन्ति मर्त्यागेहरताइव ॥ एतेषां युज्यतान्दूतो यस्त्वांशंसेततारके ॥७॥ वीराणामुचितंत्वेतत्कीर्तिदञ्चमहाजने ॥ अनुज्ञयाततःस्कन्दभक्तःशक्रोधनंजय ॥ ८ ॥ मामादिश्यासुरेन्द्राय प्राहिणोद्दौत्ययौगिकम् ॥ अहंस्वयंभर्तृकामः शक्रेणापिचप्रेषितः ॥ ९ ॥ प्रासादेस्त्रीसहस्राणां मध्येप्रोवाचचैवतम् ॥ असुराधमदुर्बुद्धेशक्रस्त्वामाहतच्छृणु ॥ १० ॥ यज्जन्मदुर्लभादाप्तं किल्बिषंदानवत्वया ॥ तस्याहंनाशकस्तेद्य पुरुषश्चेद्भविष्यसि ॥ ११ ॥ शीघ्रंनिस्सरपापिष्ठनिस्सरिष्यसिचेन्नहि ॥ क्षणात्त्वत्पुरंक्षेप्स्ये पावित्र्यायचसागरम् ॥ १२ ॥ इतिश्रुत्वारूक्षवाचंक्रुद्धःस्त्रीगणसंवृतः ॥ मुष्टिमुद्यम्यमाधावद्भीतश्चाहंपला

दायकहै तदनन्तर हे अर्जुनजी ! आज्ञासे स्वामिकार्त्तिकेय जी के भक्त इन्द्रने ॥ ८ ॥ दूत कर्मके योग्यवाले मुझको आज्ञादेकर दैत्यराज तारकासुरके लिये पठाया और इन्द्रसे पठाये हुये भी स्वामी की कामनावाले मैंने ॥ ९ ॥ हजारों स्त्रियों के बीचवाले मन्दिर में उससे कहा कि हे नीच दैत्य,दुर्बुद्धे ! इन्द्रने जो तुमसे कहा है उसको सुनिये॥ १० ॥ हे दानव ! जोकि दुर्लभ जन्म से पातक तुमने ग्रहण कियाहै आज उसी तुमको मैं नाश करूंगा यदि पुरुष होतो ॥ ११ ॥ हे पापी ! शीघ्र निकलिये और यदि न निकलेगा तो पवित्रता के लिये क्षणभर में तेरे नगरको समुद्रमें फेंकदूंगा ॥१२॥ ऐसी कठोरवाणी सुनकर स्त्रीगणोंसे घिराहुआ वह तारक

क्रोधितहो मुष्टिका उठाकर मेरे सामने दौड़ा और मैं डरकर भगा ॥१३॥ और दुःखितहोकर उस वृत्तान्तको स्वामिकार्त्तिकेय जी से बतलाया व मेरे आनेपर दैत्यने चित्त में चिन्तन किया ॥१४॥ कि बिन आश्रयवाले इन्द्र यह कहने के लिये नहीं योग्य हैं और भयंकर अशकुन मेरे डर पैदा करते हैं ॥ १५ ॥ ऐसा विचारकर व उठकर वह झरोखापै चढ़गया व अचानकही भूमिवासी उसने झरोखे के ऊपर बैठकर ॥ १६ ॥ देवताओं की सेनाओं से आकाश व पृथ्वी को अच्छादित देखा और रथ, हाथी व घोड़ों से भी दशों दिशायें शब्दायमान थीं ॥ १७ ॥ और अद्भुत आकारवाले विमानों व किन्नरों के उच्चस्वर के गानेवाले शब्दों तथा नगारों व गोश्रृंगों

यितः ॥१३॥ व्याकुलस्तत्रवृत्तान्तं कुमारायन्यवेदयम् ॥ मयिचाप्यागतेदैत्यश्चिन्तयामासचेतसि ॥१४॥ अनालब्धाश्रयःशक्रो वक्तुमेतन्नचार्हति ॥ निमित्तानिचघोराणि त्रासंसंजनयन्तिमे ॥ १५ ॥ एवंविचिन्त्यचोत्थाय गवाक्षंसोध्यरोहत ॥ सहसाभौमिकावासः शृङ्गवातायनास्थितः ॥ १६ ॥ अपश्यद्देवसैन्यैस्सदिवंभूमिञ्चसंवृताम् ॥ रथैर्गजैर्हयैश्चापि नादिताश्चदिशोदश ॥ १७ ॥ विमानैश्चाद्भुताकारैःकिन्नरोद्गीतनादितैः ॥ दुन्दुभिभिर्गोविषाणैस्तालैःशङ्खैश्चनादितैः ॥ १८ ॥ अक्षोभ्यामिवतांसेनां दृष्ट्वासोचिन्तयत्तदा ॥ एतेमयाजिताःपूर्वं कस्माद्भूयस्समागताः ॥ १९ ॥ इतिचिन्तापरोदैत्यः शुश्रावकटुकाक्षरम् ॥ देवबन्धुभिरुद्घुष्टं घोरंहृदयदारणम् ॥ २० ॥ जयातुलशक्तिदीधितिपिञ्जररुचारुणमण्डल ॥ जयभुजोद्भासितसैन्यसुखाय कुमुदकाननविकसनेन्दो ॥२१॥ कुमारवरजयदितिकुलमहोदधिवडवानलमधुररव ॥ जयासुरमुकुटमयूखकुटिलरञ्जितचरणनखमहासेन ॥ २२ ॥ तारकवंशशुष्कतृणदावानलयो

व तालियों और बाजते हुये शंखोंसे ॥ १८ ॥ क्षोभरहित सी उस सेना को देख कर उसने उस समय चिन्तन किया कि पहलेही मुझ से जीतेहुये ये फिर क्यों भलीभांति आये ॥ १९ ॥ इस चिन्ता में लगेहुये दैत्यने देवबन्धुवों से उच्चप्रकार करके कहीहुई व भयानक तथा हृदयको फाडनेवाली कडुवे अक्षरों की वाणी को सुना ॥ २० ॥ याने यह शब्द होरहाथा कि हे अतुलित शक्तिकी किरणों के पिंजर की शोभासे लाल मण्डलवाले ! तुम्हारी जयहो व हे भुजाओं से शोभित सेनाके सुखकेलिये कोकाबेली के समूहको फुलानेवाले चन्द्रमा ! तुम्हारी जयहो ॥ २१ ॥ हे कुमारवर ! तुम्हारी जयहो व हे दितिवंशरूपी महासमुद्र के लिये बडवानल

तुम्हारी जयहो हे मधुर शब्दवाले ! हे दैत्यों के मुकुटोंकी कुटिल किरणोंसे रंगेहुये चरण नखवाले, महासेन ! तुम्हारी जयहो ॥ २२ ॥ हे सूखे तिनुकाकी नाईं तारक
वंशके लिये दावानल ! हे योगीश्वर ! व हे योगीजनों के हृदयरूपी आकाश में निस्तारपूर्वक पूजित महासेन ! तुम्हारी जयहो व हे नखकी किरणोंसे संयुत कल्याण
की खानि करनेवाले शोभित चरणकमलवाले, स्कन्दजी ! तुम्हारी जयहो व हे सात दिनके बालक ! हे भुवन पंक्तियोंके शोचको जलानेवाले ! तुम्हारे लिये वारवार
नमस्कारहै व मनोहररूप तथा साधुत्रोंके डरको नाशकरनेवाले तुम्हारेलिये नमस्कारहै ॥ २३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीका
याकुमारेशमाहात्म्येचतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

गीश्वरयोगिजनहृदयगगनविततार्चितमहासेन ॥ जय नखकिरणकल्याणखानिकरविराजितचरणकमलस्कन्द ॥ ज
यबालसप्तवासरभुवनावलिशोकसन्दहन ॥ नमोनमस्तेस्तुमनोरमायनमोस्तुतेसाधुभयापहाय ॥ २३ ॥ इति श्री
स्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेकुमारेशमाहात्म्ये चतुर्विंशोध्यायः ॥ २४ ॥

नारदउवाच ॥ श्रुत्वैवंसंस्तवन्दैत्यस्तद्घुष्टंदेववन्दिभिः ॥ सस्मारब्रह्मणोवाक्यं वधंबालादुपस्थितम् ॥ १ ॥
श्रुत्वासक्लिष्टसर्वाङ्गोद्वास्थंराजावचोब्रवीत ॥ अमात्यान्द्रष्टुमिच्छामि शीघ्रमानयमाचिरम् ॥ २ ॥ ततस्तेराजव
चनात्कालनेमिमुखागताः ॥ प्राहतांस्तारकोदैत्यः किमिदंवोविचेष्टितम् ॥ ३ ॥ यैःशत्रुसम्भवावार्ता क्वापिनश्रावि
तामम ॥ मदिराकाममत्तानां मन्त्रित्वंवोनयुज्यते ॥ ४ ॥ हितंमन्त्रयतेराज्ञां तेनमन्त्रीनिगद्यते ॥ ५ ॥ अमात्याहु

तारकको मारो यथा शिवसुत षण्मुख देव । पचीसवें अध्याय में सोइ चरित सुखमेव ॥ नारदजी बोले कि इस प्रकार देवताओं के वन्दीजनों से कहेहुये स्तोत्र
को सुनकर तारक दैत्यने बालकसे वधरूप प्राप्त ब्रह्माके वचनको स्मरण किया ॥ १ ॥ व सुनकर क्लेशित सब अङ्गोंवाले उस तारक राजाने द्वारपै टिकेहुये पुरुष से
वचन कहा कि मैं मन्त्रियों को देखना चाहताहू शीघ्रही लाओ देर मतकरो ॥ २ ॥ तदनन्तर राजाके वचन से वे कालनेमि इत्यादिक आये उनमे तारकासुरने कहा
कि तुमलोगों का यह क्या कर्म है ॥ ३ ॥ कि जिनसे शत्रुओं से उत्पन्न हुई कोई भी वार्ता मुझको न सुनाई गई इससे मदिरारूपी कामसे मत्त तुमलोगों का मन्त्री

होना योग्य नहीं है॥४॥जिस लिये कि राजासे हितका सम्मत करताहै उसीसे मन्त्री कहाजाताहै॥५॥मन्त्री बोले कि इन देवताओंको कौन जानताहै व हमलोग दैत्योंकी यह बुद्धिहै कि हे महाराज! शोच मत कीजिये हमलोग देवोंको जीतैंगे ॥ ६ ॥ क्या बालकसे भी डरहै यह चिन्तन करना लज्जाके लियेहै यह सब भलीभांति साध्यहै नगारा दृढ़तासे बजायाजावै ॥ ७ ॥ तदनन्तर दैत्यराजके वचनसे उस समय तैयार होनेके मातारूप नगारा बहुतही बजायागया व उसने हाथियोंको कँपादिया ॥ ८ ॥ व दैत्यराज तारकासुरके स्मरण करनेसे बडेभारी दैत्य पर्वत, नदी, समुद्र, पाताल व गढ़ोंसे भी ॥९॥ अचानकही भलीभांति प्राप्तहुये जोकि युगान्तकी अग्निके समान

चुः ॥ कोजानातिसुरानेतान् दैत्यानामितिनोमतिः ॥ माविषीदमहाराज वयंजेष्यामहेसुरान् ॥ ६ ॥ बालादपिभयं किंवा लज्जायैचिन्तितंत्विदम् ॥ सर्वमेतत्सुसाध्यञ्च भेरीसन्ताड्यतांदृढा ॥ ७ ॥ ततोदैत्येन्द्रवचनात्सन्नाहजननी तदा ॥ भृशंसन्ताडिताभेरी कम्पयामाससागजान् ॥ ८ ॥ स्मरणाद्दैत्यराजस्य पर्वतेभ्योमहासुराः ॥ निम्नगाभ्यस्समुद्रेभ्यः पातालेभ्योबिलादपि ॥ ९ ॥ सहसासमनुप्राप्ता युगान्तानलसप्रभाः ॥ कोटिकोटिसहस्रैश्च परार्द्धैर्दशभिश्शतैः ॥ १० ॥ सेनापतिःकालनेमिः शीघ्रन्देवानुपाययौ ॥ चतुर्योजनविस्तीर्णे नानाश्चर्यसमन्विते ॥ ११ ॥ रथेस्थितो मनाग्दीनस्तारकःसम्प्रदृश्यते ॥ एतस्मिन्नन्तरेपार्थ क्रुद्धैःस्कन्दस्यपार्षदैः ॥ १२ ॥ प्राकारःपातितस्सर्वो भग्नान्युपवनानिच ॥ ततश्चचालवसुधा देवीसवनकानना ॥ १३ ॥ जज्वालखंसनक्षत्रं प्रमूढंभुवनंभृशम् ॥ तमोभूतंजगच्चासीद् गृध्रैर्व्याप्तंनभोभवत् ॥ १४ ॥ ततोनानाप्रहरणं प्रलयाम्बुदसन्निभम् ॥ कालनेमिमुखंपार्थप्रादृश्यतमहच्छविः ॥१५॥

प्रकाशितथे और करोड़ कोटि हजार व दश सौ परार्द्ध दैत्यो समेत॥१०॥सेनापति कालनेमि शीघ्रही देवताओं पै प्राप्तहुआ और सोलह कोस चौंडे व अनेक आश्चर्योंसे सयुत॥११॥ रथपै बैठाहुआ कुछ उदास तारकासुर देख पडताथा इसी अवसरमें हे अर्जुन! स्वामिकार्त्तिकेयजीके क्रोधित पार्षदोंने ॥ १२ ॥ सब शहरदिवाली गिरादिया व बगीचोंको तोडडाला उसके उपरान्त जल व जंगलो समेत पृथ्वी देवी कापने लगी ॥१३॥ व नक्षत्रों समेत आकाश जल उठा व संसार बहुतही मोहित होगया व जगत् अन्धकारमय होगया और आकाश गीधोंसे पूर्ण होगया ॥ १४ ॥ तदनन्तर हे अर्जुन जी! प्रलयके मेघोंके समान व अनेक अस्त्रोंवाला और बडी शोभावाला

कालनेमि का मुख देखपड़ा ॥ १५ ॥ और असंख्य व अनेक प्रकारकी बाणियों से गर्जताहुआ वह युद्धमें देवताओं तथा भगवान् शिवजी के सामने दौड़ा ॥ १६ ॥ तदनन्तर गर्जते हुये दैत्यों करके बड़े अस्त्र व पर्वत, तोप व लोहेके दहमदों से क्षणभर मे सब देवताओं की सेना भगादीगई व अग्नियों से नाशित वनकी नाईं दैत्यों से मारीजाती हुई सुरसेना विमुख भी देखपड़ी ॥ १७ ॥ १८ ॥ व पृथ्वी में अग्नि से जलाहुआ जैसे बड़ेभारी वृक्षोंका वन होवै वैसेही वह देवसेना होगई और कटीहुई हड्डी, मस्तक व देहवाले वे देवता भगे ॥ १९ ॥ और महासुरोसे मारे जातेहुये वे स्वामीको न प्राप्तहुये इसके अनन्तर उस भगीहुई सेनाको देखकर

सतुघोरससंख्येया गर्ज्जंश्चविविधागिरः ॥ अभ्यद्रवद्रणेदेवान् भगवन्तञ्चशङ्करम् ॥ १६ ॥ विनदद्भिस्ततोदैत्यैर्देवानीकंमहायुधैः ॥ पर्वतैश्चशतघ्नीभिरायसैःपरिघैरपि ॥ १७ ॥ क्षणेनद्रावितंसर्वं विमुखंचाप्यदृश्यत ॥ असुरैर्वध्यमानन्तु पावकैरिवकाननम् ॥ १८ ॥ अग्निदग्धंचभूपृष्ठे महाद्रुमवनंयथा ॥ तेभिन्नास्थिशिरोदेहाः प्राद्रवन्तदिवौकसः ॥ १९ ॥ ननाथमध्यगच्छन्त वध्यमानामहासुरैः ॥ अथतद्विद्रुतंसैन्यं दृष्ट्वादेवःपुरन्दरः ॥ २० ॥ आश्वासयन्नुवाचेदं बलंतद्दानवार्दितम् ॥ भयंत्यजतभद्रंवः शूराःशस्त्राणिगृह्णत ॥ २१ ॥ कुरुध्वंविक्रमेबुद्धिं माकाचिज्जाड्यतास्तुवः ॥ एपकालानलप्रख्यो मयूरंसमुपस्थितः ॥ २२ ॥ रक्षितावोमहासेनः कथंभीतिस्तथापिवः ॥ शक्रस्यवचनंश्रुत्वा समाश्वस्तादिवौकसः ॥ २३ ॥ दानवंप्रत्ययुध्यन्त शक्रंकृत्वाव्यपाश्रमम् ॥ कालनेमिर्महेन्द्रेण संयुगेसमयुध्यत ॥ २४ ॥ सहस्राक्षौहिणीयुक्तो जम्भकःशङ्करेणच ॥ कुजम्भोविष्णुनाचैव तावत्यक्षौहिणीवृतः ॥ २५ ॥ अन्येचत्रिदशाःसर्वे

इन्द्रजीने ॥ २० ॥ दानवोंसे विकल उस सुरसेना को समझाते हुये यह कहा कि हे वीरो ! डरको छोड़िये तुमलोगों का कल्याण होगा शस्त्रोंको लीजिये ॥ २१ ॥ व पराक्रम में बुद्धि कीजिये तुमलोगों के कोई जड़ता मत होवै क्योंकि कालाग्नि के समान मयूरपै भलीभांति बैठेहुये ये ॥ २२ ॥ स्वामिकार्त्तिकेय जी तुम्हारे रक्षक हैं तौभी तुमलोगो के कैसे डरहै इन्द्रके वचन सुनकर समझे हुये देवताओंने ॥ २३ ॥ इन्द्रको परिश्रमरहित करके दानवों से युद्धकिया युद्धमे कालनेमि इन्द्रके साथयुद्ध करताथा ॥ २४ ॥ व हजार अक्षौहिणीसे संयुत जम्भक शिवजीसे लड़नेलगा। और उतनीही अर्थात् हज़ार अक्षौहिणीसे घिराहुआ कुजम्भ विष्णुसे युद्ध करनेलगा॥ २५ ॥

और अन्य सब देवता व बड़े बलिष्ठ पवन व वसुवों समेत साध्य दैत्योंसे युद्ध करनेलगे ॥ २६ ॥ तदनन्तर हे अर्जुन ! कालनेमि बहुत प्रकारका युद्ध कर के अचानक कूदकर ऐरावतके माथेपै बैठगया ॥ २७ ॥ और चरणकी चोट से व मुष्टिका से उस हाथी व इन्द्रजी को गर्जते हुये उस कालनेमि ने मारा व वे दोनों भूमि में गिरपड़े ॥ २८ ॥ तदनन्तर चैतन्यतारहित इन्द्रको लेकर व रथपै बैठकर कालनेमि फिरभी तारकासुरके सामने प्राप्तहुआ ॥ २९॥ इसके अनन्तर उस समय अचानकही यमराज इत्यादि देवता चिल्लानेलगे कि राजा हराजाताहै २ कोई भी रक्षक नहीं विद्यमान है ॥ ३० ॥ इसी अवसर में रथपै बैठेहुये शिवजी पिनाक

मरुतश्चमहाबलाः॥प्रत्ययुध्यन्तदैत्येन्द्रैःसाध्याश्चवसुभिस्सह ॥ २६ ॥ ततोबहुविधंयुद्धं कालनेमिर्विधायच ॥ उत्प्लु त्यसहसापार्थ ऐरावतशिरंश्रितः ॥ २७ ॥ सतुपादप्रहारेणमुष्टिनाचैवतंगजम् ॥ शक्रञ्चजघ्नेविनदन् पेततुस्तावुभौ भुवि ॥ २८ ॥ ततःशक्रंसमादाय कालनेमिर्विचेतसम् ॥ रथमाश्रित्यभूयोपि तारकाभिमुखोययौ ॥ २९ ॥ अथोत्क्रु ष्टंतदादैवैस्सहसाचान्तकादिभिः ॥ ह्रियतेह्रियतेराजा त्राताकोपिनविद्यते ॥ ३० ॥ एतस्मिन्नन्तरेशर्वः पिनाकधनुष च्युतैः ॥ बाणैस्ससैन्यंकृत्वाच जम्भंयुद्धपराङ्मुखम् ॥ ३१ ॥ कालनेमिंसमागम्य रथस्थोवाक्यमब्रवीत् ॥ किमेते नमहेन्द्रेण मयायुध्यस्वदानव ॥ ३२ ॥ वीरमन्यसुदुर्बुद्धेततोज्ञास्यसिवीरताम् ॥ ३३ ॥ कालनेमिरुवाच ॥ नग्नेनस हकोयुध्येद्घ्ननेनापियेनच ॥ संसत्सुदैत्यवीराणामुपहासःप्रजायते ॥ ३४ ॥ आत्मनस्तुसमंकश्चिद्विलोकयसुदुर्मते ॥ तदाकर्ण्यचसावज्ञं वचःशर्वोविसिष्मिये ॥ ३५ ॥ ततःकुमारस्सहसा मयूरस्थोऽभ्यधावत ॥ कुजम्भंसानुगंहत्वा वा

धनुष से छोड़े हुये बाणों करके सेनासमेत जम्भको युद्धसे विमुखकर कालनेमिके समीप भलीभांति आकर वचन बोले कि हे दानव! इन इन्द्रसे क्याहै मेरे साथ युद्ध कीजिये ॥३१॥३२ ॥ हे अपनाको वीर माननेवाले, दुर्बुद्धे ! तदनन्तर वीरताको जानोगे ॥३३॥ कालनेमि बोला कि नग्नके साथ कौन युद्धकरे कि जिसके मारने से भी वीर दैत्योंकी सभाओं में उपहास होवैगा ॥ ३४ ॥ हे दुष्टबुद्धे! अपने समान किसी को देखो अपमान समेत उस वचनको सुनकर शिवजी विस्मय में प्राप्तहुये ॥३५॥

तदनन्तर मयूरपै बैठेहुये स्वामिकार्त्तिकेय जी अचानक दौड़े व अनुगामियों समेत कुजम्भको मारकर विष्णुजी दौड़े ॥ ३६ ॥ तदनन्तर विष्णु ने स्वामिकार्त्तिकेय से कहा कि हे प्रभो ! इस पापी व नीच दैत्यसे तुम्हारा क्या कार्य है याने तुम न लड़ो किन्तु थोड़ीदेर मेरा पराक्रम देखो ॥ ३७ ॥ ऐसा कह इन स्कन्दजी को मनाकर गरुड़पै बैठेहुये विष्णुने शार्ङ्गधनुष से छूटेहुये बाणोंको दैत्यके ऊपर चलाया ॥ ३८ ॥ व वज्रोंकी नाईं उन बाणोंसे ताडित महादैत्य कोपित होकर इन्द्रको छोड़कर उन बाणोंको बाणोंसे नाशकिया ॥ ३९ ॥ विष्णुने जिन दिव्य बाणों व अस्त्रोंको छोड़ा उनको हँसतेहुये दैत्यने खेलहीसे निवृत्तकिया ॥४०॥ तदनन्तर शीघ्रकारी

मुदेवोभ्यधावत ॥ ३६ ॥ ततोहरिःस्कन्दमाह किमेतेनतवप्रभो ॥ दैत्याधमेनपापेन मुहूर्त्तंपश्यमेबलम् ॥ ३७ ॥ एवमुक्त्वानिवार्य्यैनं केशवोगरुडस्थितः ॥ शार्ङ्गकोदण्डनिर्मुक्तैर्बाणैर्दैत्यमवाकिरत् ॥ ३८ ॥ सतैर्बाणैस्ताड्यमानोवज्रैरिवमहासुरः ॥ विमुच्यवासवंक्रुद्धो बाणांस्तान्व्यधमच्छरैः ॥ ३९ ॥ यांश्चबाणान्हरिर्दिव्यानस्त्राणिचमुमोचह ॥ न्यवारयत्तैर्दैत्यस्तान् प्रहसँल्लीलयैवच ॥ ४० ॥ ततःकौमोदकींगृह्य क्षिप्रकारीजनार्द्दनः ॥ मुमोचसेनानाथायससारथिंचव्यचूर्णयत् ॥ ४१ ॥ ततोरथादवप्लुत्य विवृत्यवदनंमहत् ॥ गरुडंत्वरयादायसविष्णुर्दिधवान्मुखे ॥ ४२ ॥ ततोभूत्सर्वदेवानां विमोहोजगतामपि ॥ चचालवसुधाचेलुः पर्व्वतास्सप्तचार्णवाः ॥ ४३ ॥ कालनेमिर्नदंश्चैव प्रानृत्यतमहारणे ॥ असंमूढस्ततोविष्णुस्त्वराकालेत्वरान्वितः ॥ ४४ ॥ कुक्षिंविदार्य्यचक्रेण भास्करोऽभ्रादिवोदितः ॥ बहिर्भूतोहरिश्चैतं मोहयित्वास्वनिद्रया ॥ ४५ ॥ पातालस्यतलंनिन्ये तत्राशिश्येसकाष्ठवत् ॥ ततश्चक्रेणदैत्यानां निहतादश

विष्णुने कौमोदकी गदाको लेकर सेनापति के लिये छोड़ा व सारथीको चूर्णकिया ॥ ४१ ॥ तदनन्तर रथसे कूदकर बड़े भारी मुखको फैलाकर शीघ्रतासे विष्णु समेत गरुड़को लेकर मुखमें धरलिया ॥ ४२ ॥ तदनन्तर सब देवताओं व लोकोंको भी मोहहुआ व पृथ्वी कांपउठी और पर्वत तथा समुद्र चलनेलगे ॥ ४३ ॥ और गर्जताहुआ कालनेमि महासमर में नाचनेलगा उसके उपरान्त ज्ञानवान् विष्णुजी शीघ्रता के समय में शीघ्रतासंयुत होकर ॥ ४४ ॥ चक्रसे कोखीको फाड़कर मेघ से सूर्यकी नाईं उदयहुये व बाहरहुये विष्णुजी अपनी नींदसे इसको मोहकर ॥ ४५ ॥ पातालके नीचे लेगये वहां वह काठकी नाईं सोरहा तदनन्तर चक्रसे दश करोड़

दैत्योंको मारा ॥ ४६ ॥ व उसीक्षण प्रसन्न होतेहुये देवता मोहरहितहो शोभितहुये तदनन्तर शिवजी ने उन विष्णुको लिपटाकर कहा कि हे जनार्दन ! तुमने बहुत अच्छा किया ॥ ४७ ॥ तुमने जो कर्मकिया है उसका करनेवाला दूसरा नहीं है जो महिषासुर आदिक दुःखसे जीतने योग्यथे उनको देवीने नाशकिया है ॥ ४८ ॥ हे विष्णो ! उनके मध्यमें यह बडा बलीथा जिसको तुमने जीताहै हे जनार्दन ! तारकामय युद्धमें यह तुम्हारे मारनेयोग्यथा ॥४९॥ व फिर आठवें जन्ममें कंसरूप यह आपसे मारने योग्यहै संसारके गुरु विष्णुको इस प्रकार प्रशंसा करतेहुये॥५०॥चैतन्यताको प्राप्त उन देवताओंने दैत्योंकी सेनाओं को गिरादिया व महास्त्रोंसे जर्जर वे

कोटयः ॥ ४६ ॥ प्रमोदितास्तथादेवा विमोहास्तत्क्षणाद्बभुः ॥ ततःशर्वस्तमालिङ्ग्य साधुसाधुजनार्द्दन ॥ ४७ ॥ त्वयायद्विहितंकर्म्म तत्कर्त्तान्योनविद्यते ॥ महिषाद्यास्सुदुर्ज्जेया देव्यायेविनिपातिताः ॥ ४८ ॥ तेषामतिबलोह्येष त्वयाविष्णोविनिर्जितः ॥ तारकामयसंग्रामे वध्यस्तेसोजनार्द्दन ॥ ४९ ॥ कंसरूपःपुनस्तेयं हन्तव्योष्टमजन्मनि ॥ एवंप्रशंसमानास्ते वासुदेवंजगद्गुरुम् ॥ ५० ॥ अस्त्रजालैर्लब्धसंज्ञा दैत्यसैन्यान्यपातयन् ॥ तानिदैत्यशरीराणि जर्जराणिमहायुधैः ॥ ५१ ॥ अपतन्भूतलेपार्थ पर्वताइवसर्वतः ॥ ततस्तुदानवंसैन्यं हतसेनापतिन्तदा ॥ ५२ ॥ देवैः स्कन्दानुगैश्चैव कृतंशस्त्रैःपराङ्मुखम् ॥ अथोत्कुष्टंतदाहृष्टैस्सर्वैर्देवैर्मुदायुतैः ॥ ५३ ॥ दैवतानिचसर्वाणि तदातूर्याण्यवादयन् ॥ अथभग्नंबलंप्रेक्ष्य हतवीर्यंमहारणे ॥ ५४ ॥ देवानांचमहामोदं तारकःप्राहसारथिम् ॥ सारथेपश्यसैन्यानि द्राव्यमाणानिमेसुरैः ॥ ५५ ॥ येस्माभिस्तृणवन्नष्टाः पश्यकालस्यचित्रताम् ॥ तन्मेवाहयशीघ्रंत्वं रथमेनं

दैत्यों के शरीर ॥ ५१ ॥ हे अर्जुन ! कटेहुये पर्वतोंकी नाईं सब ओर गिरपडे तदनन्तर उस समय मरेहुये सेनाध्यक्षवाली दानवोंकी सेनाको ॥ ५२ ॥ स्वामिकार्त्तिकेयजी के अनुगामी देवताओं ने शस्त्रोंसे विमुखकर दिया और उस समय प्रसन्नतासे संयुत सब हर्षित दैत्योंने उच्चस्वर से शब्द किया ॥ ५३ ॥ व उस समय सब देवताओं ने तुरहियों को बजाया इसके अनन्तर नष्टबलवाले महायुद्धमें भगी हुई सेनाको देखकर ॥ ५४ ॥ व देवताओं के बडे हर्षको देखकर तारकासुर ने सारथी से कहा कि हे सारथे ! उन्हीं देवोंसे भगाई हुई मेरी सेनाओंको देखिये ॥५५॥ कि जिनको हमने तिनुकाकी नाईं नाशकर दियाथा यह समय की विचित्रता देखिये

इसलिये तुम इस मेरे रथको देवताओं के सामने शीघ्रही पहुँचावो ॥ ५६ ॥ मेरी भुजाओं के बलको नीच देवता लोग देखैं व भागैं सारथी से इस प्रकार कहते व
बडेभारी धनुषको कँपातेहुये उस ॥ ५७ ॥ क्रोधसे लाल लोचनोंवाले तारक राजा ने देवसेना में प्रवेश किया इसके अनन्तर आतेहुये उस तारकासुर को देखकर
विष्णुजी स्वामिकार्त्तिकेयसे बोले ॥ ५८ ॥ कि हे कुमार ! जैसे युगान्तमे काल होताहै वैसेही दैत्यराज तारकको देखिये यह वही है कि जिसने भयकर तपसे शिवजी
का आराधन कियाहै ॥ ५९ ॥ यह वही है कि जिससे इन्द्रादिक देवता अर्बुद वर्षोंतक वानर कियेगये हैं और यह वहीहै कि जो युद्धमें हमलोगों से सब शस्त्रसमू-

**सुरान्प्रति ॥ ५६ ॥ पश्यन्तुमेबलंबाह्वोर्द्रवन्तुचसुराधमाः ॥ ब्रुवन्नेवंसारथिंतुसधुन्वन्सुमहाधनुः ॥ ५७ ॥ क्रोधरक्तेक्ष
णोराजा देवसैन्यंसमाविशत् ॥ आगच्छमानन्तंदृष्ट्वाहरिःस्कन्दमथाब्रवीत् ॥ ५८ ॥ कुमारपश्यदैत्येन्द्रं कालंयद्वद्
युगात्यये ॥ अयंसयेनतपसाघोरेणाराधितःशिवः ॥ ५९ ॥ अयंसयेनशक्राद्याः कृतामर्कास्समार्बुदम् ॥ अयंससर्वश
स्त्रौघैर्योस्माभिर्नजितोरणे ॥ ६० ॥ नावज्ञयाहसितव्यस्तारकोयंमहासुरः ॥ सप्तमंहिदिनन्त्वद्य मध्याह्नोयञ्चवर्तते ॥
६१ ॥ अर्कादस्तमितादेनं जहिवध्योन्यथानहि ॥ एवमुक्त्वासशक्रादींस्त्वरितःकेशवोब्रवीत् ॥ ६२ ॥ आसाद्य
तदैत्येन्द्रं सुखवध्योयथाभवेत ॥ ततस्तेविष्णुवचनाद्विनदन्तोदिवौकसः ॥ ६३ ॥ तमासाद्यशरव्रातैर्मुदितास्स
मवाकिरन् ॥ प्रहसन्निवदेवांस्तान् द्रावयामासतारकः ॥ ६४ ॥ यथानास्तिकदुर्वृत्तो नानाशास्त्रोपदेशकान् ॥ सोऽंश**

हों करके नहीं जीतागया है ॥ ६० ॥ यह तारक महासुर अपमानसे हँसने योग्य नहीहै तुम्हारा आज सातवां दिनहै व यह दुपहर की बेला वर्तमान है ॥ ६१ ॥
और सूर्यास्त होनेतक इसको मारिये अन्यथा मारने योग्य न होगा ऐसा कहकर शीघ्रता संयुत विष्णुजी इन्द्रादिक देवताओंसे बोले ॥ ६२ ॥ कि दैत्येन्द्रको पीडित
करिये जिस प्रकार सुखपूर्वक मारने योग्य होवै तदनन्तर विष्णुजीके वचन से गर्जते हुये उन देवताओ ने ॥ ६३ ॥ उसके समीप प्राप्तहोकर प्रसन्न होतेहुये शर
समूहोंको चलाया और हँसते हुये से तारकासुर ने उन देवोंको वैसेही भगादिया ॥ ६४ ॥ जैसे कि दुराचारी नास्तिक अनेक प्रकारके शास्त्रके उपदेश करनेवालों को

भगा देताहै बडेभारी रथपै बैठेहुये उस तारक वीरको सहनेकेलिये वे देवता न समर्थहुये ॥ ६५ ॥ जैसे कि बडेभारी अपस्मार (मिरगी)रोगसे घिरे व कटुवादी पुरुषको सज्जन लोग नहीं सहसक्ते हैं क्षणभर में सब देवताओं को कँपाकर तारकासुर ॥ ६६ ॥ बडेभारी धनुषको कँपाताहुआ स्वामिकार्त्तिकेय जीके समीप आया तदनन्तर आते हुये उस तारकासुर को देखकर स्वामिकार्त्तिकेय जी आगे प्राप्तहुये ॥ ६७ ॥ उन महासेन के दाहिने बगलको शिवने व वामको विष्णुने रक्षा किया और वैसे ही करोडों व अरबों पार्षदों ने उनकी पीठकी रक्षाकी ॥ ६८॥ तदनन्तर संसारको आश्चर्य करानेवाले वे देवपालक व दैत्यपति उग्र धर्म, अधर्मकी नाईं बड़े युद्धमे

क्षानतेवीरं महतिस्यन्दनेस्थितम् ॥ ६५ ॥ महापस्मारसंक्रान्तं यथैवाप्रियवादिनम् ॥ विधूयसकलान्देवान् क्षण मात्रेणतारकः ॥ ६६ ॥ आजगामकुमाराय विधुन्वन्सुमहाधनुः ॥ आगच्छमानन्तंदृष्ट्वा स्कन्दःप्रत्युद्ययौततः ॥ ६७ ॥ तस्यारक्षद्भवःपार्श्वं दक्षिणंचेतरंहरिः ॥ पृष्ठंवापार्षदास्तस्य कोटिशोर्बुदशस्तथा ॥ ६८ ॥ ततस्तौसुमहायुद्धे संसक्तौदेवदैत्यपौ ॥ धर्माधर्माविवोदग्रौजगदाश्चर्यकारकौ ॥ ६९ ॥ ततःकुमारमासाद्य लीलयातारकोब्रवीत् ॥ अहो बालातिबालस्त्वं यत्त्वंगीर्वाणवाक्यतः ॥ ७० ॥ आसादयसिमांयुद्धे पतङ्गइवपावकम् ॥ वधेनतवकोलाभो ममयुक्तो सिबालकः ॥ ७१ ॥ पिबक्षीरंगृहाणेमं कन्दुकंक्रीडलीलया ॥ एवमुक्तेप्रहस्याह तारकंयोगिनांगुरुः ॥ ७२ ॥ शिशुत्वं मावमंस्थामे शिशुःकष्टोभुजङ्गमः ॥ दुष्प्रेक्ष्योभास्करोबालो दुःस्पृश्योऽल्पोपिपावकः ॥ ७३ ॥ अल्पाक्षरोनमन्त्रः

लगगये ॥ ६९ ॥ तदनन्तर स्वामिकार्त्तिकेयजीके समीप लीलासे प्राप्तहोकर तारकासुर बोला कि हे बालक ! तुम बहुतही मूर्खहो जोकि देवताओं के वचनसे ॥ ७० ॥ युद्धमें मेरे समीप वैसेही प्राप्त होतेहो जैसे कि पांखी अग्निमें प्राप्तहोवै तुमको मारने से मुझको क्या लाभ योग्य होगा तुम बालकहो ॥ ७१ ॥ दूधपियो व इस गेंदकोलेवो व लीलासे खेलो ऐसा कहनेपर योगियों के गुरु स्वामिकार्त्तिकेयजी तारकासुर से बोले ॥ ७२ ॥ मेरी शिशुता मत मानिये क्योंकि छोटा साप दुःखदायक होताहै व उदयको प्राप्त सूर्यनारायणजी दुःखसे देखने योग्य होते हैं व थोडी भी अग्नि क्लेश से छूने योग्य होती है ॥ ७३ ॥ हे दैत्य ! थोड़े अक्षरोंवाला मंत्र क्या

सफल नहीं होता है ऐसा कहकर व दैत्य से छोडेहुये उस गेंदको लेकर ॥ ७४ ॥ व उसमें शक्ति अस्त्र को धरकर दैत्य के ऊपर छोडदिया उस प्रहार से उस का रथ चूर्ण करदिया गया ॥ ७५ ॥ जोकि अनेक आश्चर्यों से संयुत व सोलह कोस का था जब उत्तम रथ टूटगया तब जो गरुड़ के पुत्र थे वे ॥ ७६ ॥ किसीप्रकार छूटकर कूदकर समुद्र के बीचमें पैठगये तदनन्तर क्रोधित होतेहुये तारकासुरने स्वामिकार्त्तिकेय के ऊपर मुद्गर फेंका ॥ ७७ ॥ व विन्ध्याचल की नाईं उसको लेकर स्वामिकार्त्तिकेयने उस तारकासुरको मारा व उसके पुष्ट तथा स्थूल वक्षस्थलमें मुद्गर सौ खंड होगया ॥ ७८ ॥ उस समय तारकासुरने छहमुखवाले महासेन जी

किं सफलोदैत्यदृश्यते ॥ एवमुक्त्वादैत्यमुक्तं गृहीत्वाकन्दुकञ्चतम् ॥ ७४ ॥ तस्मिञ्छक्त्यस्त्रमाधाय दैत्यायप्रमुमोचह ॥ तस्यतेनप्रहारेण रथश्चूर्णीकृतोभवत् ॥ ७५ ॥ चतुर्योजनमात्रोयो नानाश्चर्यसमन्वितः ॥ गरुडस्यसुतायेच शीर्यमाणेरथोत्तमे ॥ ७६ ॥ मुक्ताःकथंचिदुत्पत्य सागरान्तरमाविशन् ॥ ततःक्रुद्धस्तारकश्च मुद्गरंक्षिप्तवान्गुहे ॥ ७७ ॥ विन्ध्याद्रिमिवतंस्कन्दो गृहीत्वातंव्यताडयत् ॥ स्थिरेतस्योरसिव्यूढे मुद्गरःशतधागमत् ॥ ७८ ॥ मेनेचदुर्जयंदैत्यस्तदाषड्वदनंरणे ॥ चिन्तयामासबुद्ध्याच प्राप्तंतद्ब्रह्मणोवचः ॥ ७९ ॥ तमन्तकमिवालक्ष्य दैत्यवीराश्चकोटिशः ॥ नदन्तोतिमहासेनं नानाशस्त्रैरवाकिरन् ॥ ८० ॥ क्रुद्धस्तेषुततःस्कन्दस्त्वमोघांशक्तिमाददे ॥ अभ्यस्यमानेशक्त्यस्त्रे स्कन्देनामिततेजसा ॥ ८१ ॥ उल्काजालंमहाघोरं पपातवसुधातले ॥ चाल्यमानातथाशक्तिः सुघोराभवत्सूनुना ॥ ८२ ॥ ततःकोटिसहस्राणि ततःकोटिशतानिच ॥ तथानियुतसाहस्रं प्रयुतंकोटिरेवच ॥ ८३ ॥ हृदोदरश्चदैत्येन्द्रं

को युद्धमें दुर्जय माना और प्राप्तहुये ब्रह्माके उस वचनको बुद्धि से चिन्तन किया ॥ ७९ ॥ व यमराज की नाईं उन स्वामिकार्त्तिकेय जी को देखकर बहुत गर्जते हुये करोड़ों वीरदैत्यों ने महासेन के ऊपर अनेक भांति के शस्त्रों को चलाया ॥ ८० ॥ तदनन्तर उनके ऊपर क्रोधित होतेहुये स्वामिकार्त्तिकेय ने सफल शक्तिको लिया व अतुल तेजवाले स्वामिकार्त्तिकेयजी ने जब शक्तिअस्त्रको चलाया तब ॥ ८१ ॥ बड़ा भयानक उल्का का समूह पृथ्वी में गिरा व शिवजी के पुत्र से चलाई हुई जो अतिविकराल शक्तिथी ॥८२॥ उससे करोडों हज़ार व करोड़सौ वैसेही हजारों लाख व दश लाख और करोड़ शक्तियां उत्पन्न हुईं ॥८३॥ और हृदोदर दैत्यराज

को दश निखर्वसे घेरदिया उससमय हे अर्जुन ! स्वामिकार्त्तिकेयजीके सेवकोंने रोमहर्षण युद्ध किया व मैं शत्रुवोंके मध्यमे मरनेयोग्य नहींहूं इस शब्दसे दशोंदिशाओं को पूर्णकर रहे थे और शक्ति अस्त्रकी ज्वालाओं से उपजी हुई शक्तियों से कोई दैत्य मारे गये ॥ ८४ । ८५ ॥ व कोई हजारो दैत्य अग्निसे ताड़ित होकर नष्ट होगये और कोई अमरदैत्य घण्टाके शब्दसे डरकर फटेहुये हृदयोंवाले होगये ॥ ८६ ॥ अभाग्यों से नाशित मनुष्यों की नाई इस प्रकार गणादिकों से दानवों के मारेजाने पर तारकासुर स्वामिकार्त्तिकेयजीके सामने आया ॥८७॥ व लाख घण्टोंवाली असह्य दिव्य गदाको लिया व उससमय मयूरके मारा और मयूर विमुख होगया ॥८८॥

निखर्वैर्दशभिर्वृतम् ॥ तत्राकुर्वन्सुतुमुलं नाहंवध्यस्तुशत्रुषु ॥ ८४ ॥ कुमारानुचराःपार्थ पूरयन्तोदिशोदश ॥ शक्त्यस्त्रस्यार्चिसम्भूतशक्तिभिःकेपिसूदिताः ॥ ८५ ॥ पावकादवधूताश्च हताःकेचित्सहस्रशः ॥ केचिद्घण्टारवत्र स्ता विभिन्नहृदयाःपरे ॥ ८६ ॥ एवंनिहन्यमानेषु दानवेषुगणादिभिः ॥ अभाग्यैरिवलोकेषु तारकःस्कन्दमाययौ ॥ ८७ ॥ जग्राहचगदांदिव्यां लक्षघण्टांदुरासदाम् ॥ तदामयूरमाजघ्नेमयूरोविमुखोभवत् ॥ ८८ ॥ दृष्ट्वापराङ्मुखंस्क न्दं वासुदेवोब्रवीत्त्वरन् ॥ देवसेनापतेशीघ्रं शक्तिंमुञ्चमहासुरे ॥ ८९ ॥ प्रतिज्ञामात्मनःपाहिलम्बतेरविमण्डलम् ॥ ९० ॥ स्कन्दउवाच ॥ त्वयैवरुद्रभक्तोयं जनार्द्दनममेरितः ॥ वधार्थंरुद्रभक्तस्य बाहुःशक्तिंनमुञ्चति ॥ ९१ ॥ नारुद्रः पूजयेद्रुद्रं भक्तरूपमयोहरः ॥ रुद्ररूपममुंहत्वा कीदृशंजन्ममेभवेत् ॥ ९२ ॥ तिरस्कृताविप्रलब्धाः शप्ताःक्षिप्ताःप्र

व स्वामिकार्त्तिकेय जी को विमुख देखकर शीघ्रता करते हुये विष्णुजी बोले कि हे सुरसेना के स्वामी ! शीघ्रही महादैत्यके ऊपर शक्तिको छोड़िये ॥ ८९ ॥ व अपनी प्रतिज्ञाको पालिये सूर्य्यमण्डल जाताहै अर्थात् अस्त होता है ॥ ९० ॥ स्वामिकार्त्तिकेय जी बोले कि हे जनार्दन जी ! तुम्हीने इसको मुझसे शिवजी का भक्त कहाहै इससे शिवभक्तको मारनेके लिये भुजा शक्तिको नहीं छोडती है ॥ ९१ ॥ क्योंकि बिन रुद्रके पुरुष शिवजीको न पूजैगा व शिवजी भक्तरूपमय हैं और इस रुद्ररूप दैत्यको मारकर मेरा जन्म कैसाहोगा ॥ ९२ ॥ क्योंकि तिरस्कार किये हुये व छलित, शापित, प्रेरित व बहुतही पीड़ित कियेहुये शिवजीके भक्त सब

वंश को जलादेते हैं फिर मारेहुये उन शिवभक्तों को क्या कहना है ॥ ९३ ॥ यदि यह मुझको मारे तो मेरा कल्याण होगा इससे युद्धमें यह मुझको मारे न निर्वेद को प्राप्त मैं शिवजी के भक्तोंके निमित्त शस्त्रको न लूंगा ॥ ९४ ॥ विष्णुजी बोले कि हे स्वामिकार्त्तिकेयजी ! यह तुमको योग्य नहीं है व जिस प्रकार यह दानव शिवजीका भक्तहै उसको सुनिये कि वेदके जाननेवाले मुनियों ने पार्वतीपति शिवके दोतनुओं को कहाहै ॥ ९५ ॥ उन दोनोंमें एक जीवात्मिका व दूसरी प्रत्यक्षहै और प्राणियों में जो भक्तद्रोही है वह शिवजीका भक्त नहीं कहा गया है ॥ ९६ ॥ और शिवजीमें जो भक्त पुरुष प्राणियों के ऊपर दयावान् होवै यह

पीडिताः॥ रुद्रभक्ताःकुलंसर्वं निर्दहन्तिहताःकिमु ॥ ९३ ॥ एषचेद्धन्तिमद्यंमेहन्यतामेषमांरणे ॥ रुद्रभक्तेषुनिर्विण्णो नाहंशस्त्रमुपाददे ॥ ९४ ॥ विष्णुरुवाच ॥ नैतत्तवोचितंस्कन्दरुद्रभक्तोयथाशृणु ॥ द्वेतनूगिरिजाभर्त्तुर्वेदज्ञामुनयोविदुः ॥ ९५ ॥ एकाजीवात्मिकातत्र प्रत्यक्षाचतथापरा ॥ द्रोग्धाभूतेषुभक्तश्च रुद्रभक्तोनसस्मृतः ॥ ९६ ॥ भक्तोरुद्रेकृपावांश्च जन्तुष्वेषहरव्रतः ॥ तदेनंभूतमूर्त्तेश्च द्रोग्धारंतुपिनाकिनः ॥ ९७ ॥ जहिहैवात्रपश्यामि दोषंकञ्चनतेप्रभो ॥ श्रुत्वेतिवाचंगोविन्दात् सत्यार्थामपिभारत ॥ ९८ ॥ हन्तुंनकुरुतेबुद्धिं रुद्रभक्तइतिस्मरन् ॥ तारकस्तुततःक्रुद्धो ययौवेगेनकेशवम् ॥ ९९ ॥ प्राहचैनंसुदुर्बुद्धे हन्मित्वांपश्यमेबलम् ॥ देवानांचापिधर्माणां मूलमस्तिभवानतः ॥ १०० ॥ हत्वात्वामद्यसर्वांस्तांश्छेत्स्येपश्याद्यमेबलम् ॥१॥ विष्णुरुवाच ॥ दैत्येन्द्रतववचास्माभिः किमहोशृणुतत्त्वतः ॥ स्थेय

शिवव्रत भक्त है इसलिये प्राणियोंकी मूर्तिवाले पिनाकधारी शिवजी के इस द्रोही दैत्यको ॥ ९७ ॥ मारिये हे प्रभो ! इसमें तुम्हारे किसी दोष को मैं नहीं देखता हूं हे भारत ! सत्यअर्थवाली भी इस वाणी को विष्णु से सुनकर ॥ ९८ ॥ शिवजीका भक्त है यह स्मरण करतेहुये स्कन्दजी मारने के लिये बुद्धि नहीं करते हैं तदनन्तर क्रोधित होताहुआ तारकासुर वेगसे विष्णुजीके समीप गया ॥ ९९ ॥ व इनसे बोला कि हे दुर्बुद्धे ! मैं तुमको मारताहूं मेरे पराक्रमको देखिये देवताओं व धर्मों की जड़ आपही हरारे ॥ १०० ॥ आज तुमको मारकर उन समस्त देवताओंको काटूंगा आज मेरे बलको देखिये ॥ १ ॥ विष्णुजी बोले कि हे दैत्येन्द्र ! हम लोगों से

तुम्हारा क्या प्रयोजन है किन्तु यथार्थता से सुनिये कि रथपै जो ये शिवजी हैं इन के मारने पर सब मारेहुये हैं ॥ २ ॥ यह सुनकर क्रोधित होताहुआ तारकासुर शीघ्र ही शिवजी के रथके समीप गया व जाकर उसनें शिवजी के रथकी सगुनी को पकड लिया ॥ ३ ॥ जब उस क्रोधित तारक ने अचानक सगुनी को पकड लिया तब आकाश व पृथ्वी विस्मय में प्राप्तहुई व महर्षिलोग मोहित हुये ॥ ४ ॥ व मेघों के समान बड़े शरीर वाले दैत्य गर्जनेलगे हमलोगों ने जीतलिया उन दैत्योंके इस निश्चयको प्राप्तहोकर ॥ ५ ॥ व तारकासुर के भी प्रयोजन को देखकर भगवान् शिवजी पार्वती समेत रथको छोड़कर बैलपर चढ़े ॥ ६ ॥ इसके अनन्तर ॐ इस

एषशर्वोयं हतेस्मिन्सकलंहतम् ॥ २ ॥ श्रुत्वेतितारकःक्रुद्धस्तूर्णंरुद्ररथंययौ ॥ अभिसृत्यसजग्राह रुद्रस्यरथकूबरम् ॥ ३ ॥ यदासकूबरंक्रुद्धस्तारकस्सहसाग्रहीत् ॥ विस्मितेरोदसीतूर्णं मुमुहुश्चमहर्षयः ॥ ४ ॥ विनदन्तोमहाकाया दैत्या जलधरोपमाः ॥ आसाद्यनिश्चितंतेषां जितमस्माभिरित्युत ॥ ५ ॥ तारकस्याप्यभिप्रायं भगवान्वीक्ष्यशङ्करः ॥ उमयासहतत्त्यक्त्वा रथंवृषभमारुहत् ॥ ६ ॥ ॐमित्यथजपन्ब्रह्म आकाशंसहसाश्रितः ॥ ततस्तंशतसिंहञ्च रथंरुद्रेणनिर्मितम् ॥ ७ ॥ उत्क्षिप्यपृथ्व्यामास्फोट्य चूर्णयामासतारकः ॥ शूलपाशुपतादीनि सहसोपस्थितानिच ॥ ८ ॥ वारयामासगिरिशो नवस्साध्यइतिब्रुवन् ॥ ततस्सवञ्चितंज्ञात्वारुद्रेणात्मानमीर्ष्यया ॥ ९ ॥ विनदन्सहसाधावद्वृषभस्थं महेश्वरम् ॥ ततोजनार्दनोधावच्चक्रमुद्यम्यवेगतः ॥ १० ॥ वज्रमिन्द्रस्तथोद्यम्य दण्डंचापियमोनदन् ॥ गदान्ध

ब्रह्माक्षर को जपते हुये अचानकही आकाश मे स्थित हुये तदनन्तर शिवजी से बनाये हुये उस सौ सिंहोंवाले रथको ॥ ७ ॥ तारकासुर ने ऊपर फेंककर व पृथ्वी में पटककर चूर्णकर दिया व अचानकही समीप प्राप्तहुये त्रिशूल व पाशुपत इत्यादिक अस्त्रोंको ॥ ८ ॥ शिवजीने यह कहकर मनाकिया कि तुमलोगोंके साध्य नहीं है उसके उपरान्त शिवजीसे अपनाको छलाहुआ जानकर ईर्षासे गर्जताहुआ वह तारकासुर बैलपै बैठेहुये शिवजी के सामने अचानक दौडा तदनन्तर चक्रको उठाकर विष्णुजी वेगसे दौड़े ॥ ९ । १० ॥ वैसेही वज्रको उठाकर इन्द्र व गर्जते हुये यमराजभी दण्डको उठाकर दौडे व क्रोधित होतेहुये कुबेरजी गदाको व गर्जतेहुये

वरुण फँसरीको उठाकर दौड़े ॥ ११ ॥ व पवन विकराल तथा बड़ेभारी अंकुशको व अग्नि बड़े प्रकाशवाली शक्तिको उठाकर दौड़े और निर्ऋति पैनी तलवार को व क्रोधित होतेहुये रुद्र पर्वतों को उठाकर चले ॥ १२ ॥ व साध्य देवता धनुषों को लेकर और वसु देवता दहमर्दों को व विश्वेदेवता मुशल को और चन्द्रमा सूर्य भी प्रभाको उठाकर दौड़े ॥ १३ । और अश्विनीकुमार देव ओषधियों को व नाग जलते हुये विषको तथा हिमाचल आदिक भी व समुद्र पर्वतों को उठाकर दौड़े ॥ १४ ॥ हे अर्जुन ! बहुतही गर्जते व दौड़ते हुये देवताओ को देखकर बड़े हाथीकी नाईं गर्जताहुआ तारकासुर अचानकही लौटा ॥ १५ ॥ व भुजामें मूकासे

**नेश्वरःक्रुद्धःपाशञ्चवरुणोनदन् ॥ ११ ॥ वायुर्म्महाङ्कुशञ्चोरं शक्तिंवह्निर्महाप्रभाम् ॥ निर्ऋतिर्निशितंखड्गं रुद्राःशैलाँ
श्चकोपिताः ॥ १२ ॥ धनूंषिसाध्यादेवाश्च परिघान्वसवस्तथा ॥ विश्वेदेवाश्चमुशलं चन्द्रार्कौचप्रभामपि ॥ १३ ॥ ओ
षधीश्चाश्विनौदेवौ नागाश्चज्वलितंविषम् ॥ हिमाद्रिप्रमुखाश्चापि समुद्राश्चमहीधरान् ॥ १४ ॥ भृशमुन्नदतोदेवान्
धावतोवीक्ष्यतारकः ॥ निवृत्तस्सहसापार्थ महागजइवोन्नदन् ॥ १५ ॥ सवज्रंमुष्टिनाहत्य भुजेशक्रमपातयत् ॥ दण्डं
यमादुपादाय मूर्ध्निहत्यन्यपातयत् ॥ १६ ॥ उरस्याहत्यसगदं धनदंभुव्यपातयत् ॥ वरुणात्पाशमादाय तेनबद्ध्वान्य
पातयत् ॥ १७ ॥ महाङ्कुशेनवायुञ्च वीरंमूर्ध्निजघानसः ॥ फूत्कारैरुद्यतंवह्निं शमयामासतारकः ॥ १८ ॥ निर्ऋतेःख
ड्गमादाय हत्वातेनन्यपातयत् ॥ शूलैरेवतथारुद्राः साध्याश्चधनुषार्दिताः ॥ १९ ॥ परिघैरेववसवोमुशलैरेवविश्वकाः ॥
रेणुनाच्छाद्यचन्द्रार्कौ वल्मीकस्थौकृताविव ॥ २० ॥ महोग्राश्चौषधीस्तालैरश्विनौसोद्यताडयत् ॥ सविषाश्चकृ**

मारकर वज्र समेत इन्द्रको गिरादिया व यमराज से दण्डको लेकर और माथेमें मारकर गिरादिया ॥ १६ ॥ और वक्षस्थल से मारकर गदा समेत कुबेरको भूमिमें गिराया व वरुण से फँसरीको लेकर उससे बांधकर उनको गिरादिया ॥ १७ ॥ और उस तारकने पवन वीरको मस्तकमें बड़े भारी अंकुशसे मारा व जलतीहुई अग्नि को फूत्कार (मुखकी वायु) से शान्त करदिया ॥ १८ ॥ व निर्ऋति की तलवारको लेकर उससे मारकर उनको गिराया व वैसेही रुद्रोंको शूलोंसे और साध्य देवोंको धनुष से व्याकुल किया ॥ १९ ॥ व दहमर्दोंसे वसुवोंको और मुशलोंसे विश्वेदेवताओंको मारा और चन्द्रमा व सूर्यको धूलिसे आच्छादितकर बँबौरीमें करदिया ॥२०॥

व बड़ी उग्र ओषधियों व अश्विनीकुमार देवताओं को भी उसने चपोटों से मारा व विप समेत नागोंको चरण मे कूट कर विषहीन करदिया ॥ २१ ॥ व पर्वत पर्वतोंही से अत्यन्त श्वासरहित करदिये गये इसप्रकार थोड़ी देरमें उसी सेनाको चैतन्यताहीन व हाहाभूत करके गर्जताहुआ वह चक्रधारी विष्णुजीके सामने दौडा तदनन्तर उस समय बुद्धिमानो मे श्रेष्ठ विष्णु स्वामी जी उसी क्षण हँसते हुये से उसीभांति अन्तर्द्धान होगये जैसे कि कुयोगी पुरुषसे अदृश्य होजाते हैं विष्णुको न देखता हुआ तारकासुर क्रोधित व वेगमें प्राप्तहोकर फिर शिवजीके सामने मूका उठाकर दौडा इसके अनन्तर विष्णुभगवान् जी बिजुली की नाईं अदृश्य व दृश्य

तानागा निर्विषाःपादकुट्टनैः ॥ २१ ॥ पर्वताःपर्वतैरेव निरुच्छ्वासाभृशंकृताः ॥ एवंतदेवसैन्यञ्च हाहाभूतमचेतनम् ॥ २२ ॥ कृत्वामुहूर्तंसोधावच्चक्रपाणिन्तमुन्नदन् ॥ ततश्चान्तर्दधेसद्यः प्रहसन्निवकेशवः ॥ २३ ॥ कुयोगिनइवस्वामी तदाबुद्धिमतांवरः ॥ अपश्यंस्तारकोविष्णुं पुनर्वृषभवाहनम् ॥ २४ ॥ अधावत्कुपितोदैत्यो मुष्टिमुद्यम्यवेगितः ॥ आचण्डांशुरिवालक्ष्यो लक्ष्योथभगवान्हरिः ॥ २५ ॥ आबभाषेततोदेवान् बाहुमुद्यम्यचोच्चकैः ॥ पलायध्वंमहादेवाः शक्तिश्चेद्विपलायितुम् ॥ २६ ॥ विमूढाहिवयंसर्वे येबालवचसागताः ॥ किन्नःश्रुतःपुरागीतः श्लोकःस्वायम्भुवेरितः ॥ २७ ॥ येर्थाबालेषुनिक्षिप्तास्स्त्रीष्वपण्डितकेषुच ॥ अपस्मारिषुवैचापि सर्वेनिस्संशयङ्गताः ॥ २८ ॥ प्रत्यक्षंतदिदंसर्व मधुनाचात्रदृश्यते ॥ अज्ञासिष्मपुरैवैतद्रुद्रभक्तंनहन्त्यसौ ॥ २९ ॥ यत्प्रतिज्ञांकरिष्येन ततोनःकदनंमहत् ॥ अ

हुये ॥ २२ । २३ । २४ । २५ ॥ तदनन्तर भुजाको उठाकर देवताओं से उच्चप्रकार करके बोले कि हे महादेवताओ ! यदि भागनेकी शक्ति होवै तो तुमलोग भागिये ॥ २६ ॥ हमलोग सब बड़े अज्ञानी हैं जोकि बालक के वचन से आये क्या पुरातनसमय का गाया स्वायम्भुव मनुसे कहाहुआ श्लोक नहीं सुनागयाहै ॥ २७ ॥ कि जो वस्तुवें बालक, स्त्री, मूर्ख व मिरगीवाले मनुष्यों में भी धरीजाती हैं वे सब निस्सन्देह नष्ट होजाती हैं ॥ २८॥ इस लिये यह सब यहा इस समय प्रत्यक्ष देखपड़ता है हमने पहलेही इस बातको जानाथा कि यह शिवजीके भक्तको नहीं मारता है ॥ २९ ॥ यदि प्रतिज्ञा न करूं तो हमलोगों का बड़ा विनाश होताहै इसके अनन्तर

यदि कुबुद्धिवाला यह दैत्येन्द्र को न मारैगा ॥ ३० ॥ तो हे महाभाग्यवानो ! तुम लोग मतडरो मैं तुमलोगों के शत्रुको मारूंगा हे देवताओ ! आज मेरे सफल बाहु
बलको देखिये ॥ ३१ ॥ इस दैत्यको मैं एकही मूकासे मारूंगा इसको तुमलोग देखो मैंने आपलोगोंको सदैव दाहिनी भुजा दिया है ॥ ३२ ॥ उस सत्यको मैं पालन
करूंगा व तुमलोगों के शत्रुको मारूंगा जो दैत्य आकाशमें हैं जो पातालमें और जो महादैत्य भूमिमेंहैं ॥ ३३ ॥ क्षणभर में उनको नाश करूगा जैसे कि बडी वायु
मेघोंको नाश करदेती है ऐसा कहकर अस्त्ररहित जगदीशजी दाहिना मूका उठाकर व गरुडकी पीठसे उतरकर दौडे उन गोविन्दजीके दौडनेपर तीनोंलोक का०

थैषयदिदैत्येन्द्रं ननिहन्तिकुबुद्धिमान् ॥ ३० ॥ माबिभीथमहाभागा निहनिष्यामिवोरिपून् ॥ अद्यमेसफलंबाह्वोर्बलं
पश्यतदेवताः ॥ ३१ ॥ दैत्यञ्चैमंनाशयामि मुष्टिनैकेनपश्यत ॥ मयाहिदक्षिणोबाहुर्दत्तश्चभवतांसदा ॥ ३२ ॥
रिपून्वोनिहनिष्यामि सत्यंतत्परिपालये ॥ येम्बरेयेचपाताले भुवियेचमहासुराः ॥ ३३ ॥ क्षणात्तान्नाशयिष्यामि म
हावातोघनानिव ॥ एवमुक्त्वाजगन्नाथो मुष्टिमुद्यम्यदक्षिणाम् ॥ ३४ ॥ निरायुधस्ताक्ष्यपृष्ठादवप्लुत्याभ्यधावत ॥
तस्मिन्धावतिगोविन्दे चचालभुवनत्रयम् ॥ ३५ ॥ विमूर्च्छितमभूद्विश्वं देवाभीतिपरांययुः ॥ धावतश्चापिकल्पा
न्ते रुद्रकल्पस्यतस्ययाः ॥ ३६ ॥ मुखात्समुद्ययुर्ज्वालास्ताभिःसर्वशतंहतम् ॥ ततोन्तरिक्षेचागत्याभ्याशंसाध्यः
स्वयन्तदा ॥ ३७ ॥ जहिकोपंवासुदेव त्वयिक्रुद्धेद्यवैजगत् ॥ अनादृत्यैवतद्वाक्यं ब्रुवन्नान्यत्करोम्यहम् ॥ ३८ ॥ आह्व
यंश्चमहादैत्यं क्रुद्धोहरिरधावत ॥ उवाचचासौसाध्यञ्च यत्स्यात्पालयतांफलम् ॥ ३९ ॥ दुष्टान्विनिघ्नतांश्चैव तत्फलं

उठे ॥ ३४ । ३५ ॥ व सरार मूर्च्छित होगया और देवता बडे डरको प्राप्तहुये व कल्पान्त में शिवजी के समान दौडते हुये उन विष्णुजी के मुखसे जो ॥ ३६ ॥
ज्वालायें उत्पन्नहुईं उनसे सौ खर्व दैत्य नाशहोगये तदनन्तर उस समय आकाश में समीप आकर आपही साध्यदेवजी बोले ॥ ३७ ॥ कि हे वासुदेवजी ! क्रोधको
नाशकीजिये क्योंकि तुम्हारे क्रोधित होनेपर आज संसारभर मूर्च्छित होगया उस के वचन का अनादर ही करके बोले कि कहताहुआ मैं अन्य कर्म नहीं करता हूं
याने जो कहताहूं उसीको करताहूं ॥ ३८ ॥ और महादैत्य को पुकारतेहुये क्रोधित विष्णुजी दौड़े व इन विष्णुने साध्यदेवसे कहा कि उत्तम जनोंको पालतेहुये पुरुषो

को जो फल होताहै ॥ ३९ ॥ व दुष्टोंको मारनेवाले जनोंको जो फल होता है वह फल मुझको होगा इसके अनन्तर शिवजीके पीछे जातेहुये तारकको स्वामिकार्त्तिकेय जीने देखा ॥ ४० ॥ व तारकासुर के पीछे दौड़ते हुये पुराणपुरुष विष्णुजीको देखा व संसारको अत्यन्तही व्याकुल और पहले कीहुई अपनी प्रतिज्ञाको स्मरण कर ॥ ४१ ॥ व पश्चिम दिशामें जातेहुये अरुण सूर्यनारायण को देखकर व यह आकाशवाणी सुनतेहुये कि हे स्कन्दजी ! तुम क्यों व्याकुल होतेहो ॥ ४२ ॥ यदि ब्रह्मवधकर पश्चात्ताप होवै तो शिवजी का लिंग स्थापित करना क्योंकि उससे मारकर सैकड़ों भी ब्रह्मघातों से मुक्ति होजाती है ॥ ४३ ॥ यह सुनकर पृथ्वी को

ममजायताम् ॥ अथापश्यन्महासेनो रुद्रंयान्तञ्चतारकम् ॥ ४० ॥ तारकंचान्वधावन्तं पुराणपुरुषंहरिम् ॥ जगच्च क्षुब्धमत्यर्थं स्वाम्प्रतिज्ञांपुराकृताम् ॥ ४१ ॥ पश्चिमांप्रतिलम्बन्तं भास्करञ्चापिलोहितम् ॥ आकाशवाणीं शृण्वंश्च किंस्कन्दत्वंविषीदसि ॥ ४२ ॥ पश्चात्तापोयदिभवेत् कृत्वाब्रह्मवधंतव ॥ स्थापयेर्लिङ्गमीशस्य मोक्षोहत्वाशतैरपि ॥ ४३ ॥ आविवेशमहाक्रोधं दिधक्षुरिवमेदिनीम् ॥ अथप्लुत्यमयूरात्स प्रहसन्निवकेशवम् ॥ ४४ ॥ बाहुभ्यामभ्युपादाय प्रोवाचभवनन्दनः ॥ जानामित्वामहंविष्णो महाबुद्धिपराक्रमम् ॥ ४५ ॥ भूतभव्यभविष्यांस्त्वं दैत्यान्हंस्यपि हुंकृतैः ॥ त्वमेवहन्तादैत्यानां देवानांपरिपालकः ॥ ४६ ॥ धर्मसंस्थापकश्चत्वमेपतेरचितोञ्जलिः ॥ क्षणार्द्धंपश्यमेवीर्यं भास्करोलोहितायते ॥ ४७ ॥ एवंप्रणम्यस्कन्देन वासुदेवःप्रसादितः ॥ विरोषोभूत्तमालिङ्ग्य वचनंकेशवोब्रवी

जलाते हुये से स्वामिकार्त्तिकेय जी बड़े क्रोधमें प्राप्तहुये इसके अनन्तर मयूरसे कूदकर हँसते हुये से वे शिवजी के पुत्र स्वामिकार्त्तिकेय जी विष्णु को भुजाओं से लिपटाकर बोले कि हे विष्णो ! बड़ी बुद्धि व बलवाले तुमको मैं जानताहूं ॥४४।४५॥ और तुम भूत, भविष्य, वर्त्तमान दैत्योंको भी हुंकारोंसे नाश करतेहो दैत्योंके नाशक व देवताओं के रक्षक तुम्हींहो ॥ ४६ ॥ और धर्मके भलाभांति स्थापन करनेवाले तुम्हींहो तुम्हारे लिये मैंने यह अंजली रचा है याने हाथ जोड़ताहूं कि आधे क्षणभर मेरा पराक्रम देखिये सूर्य अरुणताको प्राप्तहैं ॥ ४७ ॥ इस प्रकार प्रणामकर स्वामिकार्त्तिकेय जीने विष्णुको प्रसन्न किया और उनको लिपटकर विष्णुजी क्रोध

रहित हुये व यह वचन बोले ॥ ४८ ॥ कि हे स्वामिकार्त्तिकेयजी ! यह सनातन धर्महै और देवता तुमसे रक्षा करने योग्य हैं अपना को स्मरण कीजिये कि जिस
लिये तुम शिवजीसे पैदाहुये हो ॥ ४९ ॥ महात्माओ का जीवन व जन्म साधुवों के पालने के निमित्त व दुष्टोंके नाश के लिये व देवताओ तथा ब्राह्मणो के हित
के लिये होताहै ॥ ५० ॥ और शिवजीके गंगादेवी से व कृत्तिकाओ के तेजसे स्वाहा तथा अग्निसे तुम पैदाहुये हो उस तेजको सफल कीजिये ॥ ५१ ॥ हे शिवपुत्र !
जिराका धन, बल व सम्पदायें साधुवोंके लिये होती हैं उसका वह सब सफल है अन्यथा नहीं ॥ ५२ ॥ आज धर्म, देवता, गौवें, साध्य व ब्राह्मण तुम्हारे पराक्रम

त ॥ ४८ ॥ सनातनस्तुधर्म्मोयं सुराश्चैवत्वयागुह ॥ स्मरात्मानंयदर्थन्त्वमुत्पन्नोसिमहेश्वरात् ॥ ४९ ॥ साधूनांपा
लनार्थाय दुष्टसंहरणायच ॥ सुरविप्रकृतेजन्म जीवितंचमहात्मनाम् ॥ ५० ॥ रुद्रस्यदेव्यागङ्गायाः कृत्तिकानांच
तेजसा ॥ स्वाहावह्निश्चजातस्त्वं तत्तेजस्सफलीकुरु ॥ ५१ ॥ साधूनांहितकृतेयस्य धनंवीर्यंचसम्पदः ॥ सफलंतस्यत
त्सर्वं नान्यथारुद्रनन्दन ॥ ५२ ॥ अद्यधर्माश्चदेवाश्च गावस्साध्याश्चब्राह्मणाः ॥ नन्दन्तुतववीर्येण तद्दर्शयबलंनिज
म् ॥ ५२ ॥ स्कन्दउवाच ॥ यागतिःशिवसंत्यागे त्वत्त्यागेनचकेशव ॥ ताङ्गतिंप्राप्नुयांक्षिप्रं हन्मिचेन्नाद्यतारकं ॥
५४ ॥ यागतिर्धर्मसन्त्यागे साध्वीभार्यातिपीडनात् ॥ साधूनाञ्चपरित्यागे वृथाजीवितहिंसनात् ॥ ५५ ॥ निष्ठुर
स्यगतिर्यान्च ताङ्गतिंयामिकेशव ॥ इत्युक्तेसुमहानादः सम्प्रजज्ञेदिवौकसाम् ॥ ५६ ॥ प्रशशंसुर्गुहंकेचित्केचिन्नाराय
णंप्रभुम् ॥ ततस्तार्क्ष्यरथारूढो हरिस्तस्मिन्महारणे ॥ ५७ ॥ ताम्रचूडंमहासेनस्तारकंचाप्यधावत ॥ लोहिताम्बरसंवीतो

से प्रसन्नहोगैं इस लिये आपने तारका[illegible] ॥ ५३ ॥ स्वामिकार्त्तिकेय जी बोले कि हे केशव ! शिवजी के त्यागने में व तुम्हारे त्यागसे जो दशा होती है उसी
गतिको मैं शीघ्रही प्राप्तहोऊं यदि आज तारकासुरको न मारूं ॥५४॥ व धर्मके छोडनेमें जो गतिहोती है तथा पतिव्रता स्त्रीको अतिदुःख देनेसे व साधुवोंको त्यागने
में और वृथा जीवहिंसा से जो गतिहोती है ॥ ५५ ॥ व हे केशव ! निठुर पुरुषकी जो गति होती है उसीदशा को मैं प्राप्तहोऊं यदि तारकासुर को न मारूं यह
कहने पर देवताओंका बड़ाभारी शब्दहुआ ॥ ५६ ॥ कोई स्वामिकार्त्तिकेय और कोई नारायण स्वामी की प्रशंसा करनेलगे तदनन्तर उस महायुद्ध में विष्णुजी गरुड़पै

चढ़े ॥ ५७ ॥ और अरुण वसन पहने लाल माला तथा भूपणोंवाले स्वामिकार्त्तिकेय जी मुर्गेपर सवार हुये व तारकके सामने दौडे ॥ ५८ ॥ जोकि अरुण नयनों वाले व बडी भुजाओंवाले व सोनेकी कवचवाले थे उन स्वामी स्वामिकार्त्तिकेयजीने बाहुसे शक्तिको तोलते व सब प्राणियों को कँपातेहुये उस तारकको प्राप्तहोकर हँसते हुये से कहा कि हे दुर्बुद्धे ! खडेहो २ तुम्हारे जीवनको मैं नाश करताहूं ॥ ५९ । ६० ॥ संसार प्रसन्न कियाजावै तुम्हारा जीवन दुर्लभ है जो दुष्टगर्वसे धर्म व देवोंमें तुम्हारी निठुरता है ॥ ६१ ॥ उसी तुम्हारे ऊपर मैं आज प्रहार करता हूं भलीभांति सीखेहुये शस्त्रको स्मरण कीजिये ऐसा स्वामिकार्त्तिकेय जी के कहनेपर

लोहितस्रग्विभूषणः ॥५८॥ लोहिताक्षोमहाबाहुर्हिरण्यकवचःप्रभुः॥भुजेनतोलयञ्छक्तिं सर्वभूतानिकम्पयन् ॥५९॥ प्राप्यतंतारकंप्राह महासेनोहसन्निव ॥ तिष्ठतिष्ठसुदुर्बुद्धेजीवितन्तेहराम्यहम् ॥ ६० ॥ सुहृष्टःक्रियतांलोकोदुर्लभंजी वनन्तव॥यत्तेतुनिष्ठुरत्वंचधर्मेदेवेषुदुर्मदात्॥६१॥तस्यतेप्रहराम्यद्यस्मरशस्त्रंसुशिक्षितम्॥ एवमुक्तेगुहेनाथनिवृत्तस्या स्यभारत॥ ६२ ॥ तारकस्यशिरोदेशात् कापिनारीविनिर्ययौ ॥ तेजसाभासयन्तींतामधऊर्द्ध्वंदिशोदश ॥ ६३ ॥ दृष्ट्वा नारींगुहःप्राह कासिकस्माद्विनिर्गता ॥ ६४॥ नार्युवाच ॥ अहंशक्तिर्गुहाख्याता भूतेषुचसदास्थिता ॥ अनेनदैत्यरा जेन महतातपसार्जिता ॥ ६५ ॥ शूरेषुसर्वेषुवसामिचाहं विप्रेषुशास्त्रार्थपरेषुचैवम् ॥ साध्वीषुनारीषुतथावसामि विना गुणान्नैववसामिकुत्र ॥ ६६ ॥ यद्स्यपुण्यसङ्घस्य सम्प्राप्तोस्यावधिर्गुह ॥ तदेनंत्यज्ययास्यामि जह्येनंविश्वहे

इसके उपरान्त हे अर्जुन ! लौटेहुये इस ॥ ६२ ॥ तारकके मस्तक स्थानसे कोई अदृष्ट स्त्री निकली नीचे व ऊपर दशों दिशाओं को तेजसे प्रकाशित करती हुई उस ॥ ६३ ॥ स्त्रीको देखकर स्वामिकार्त्तिकेयजी बोले कि तुम कौनहो व किसलिये निकलीहो ॥ ६४ ॥ स्त्री बोली कि हे स्वामिकार्त्तिकेयजी ! सदैव प्राणियोंमें टिकी हुई मैं शक्ति ऐसी प्रसिद्ध हूं जोकि इस दैत्योंके राजासे बड़ो तपस्या करके इकट्ठा कीगईहूं ॥ ६५ ॥ सब वीरोंमे मैं बसतीहूं व शास्त्रार्थ में परायण ब्राह्मणोंमें बसती हूं वैसही पतिव्रता स्त्रियोंमे रहती हूं और गुणोंके विना कहीं नहीं बसती हू ॥ ६६ ॥ हे स्कन्दजी ! जिस लिये इसके पुण्यपुञ्जकी अवधि प्राप्तहुई है उसीकारण इस

को छोडकर जाऊंगी अब संसारके लिये इसको मारिये ॥ ६७ ॥ जब वह शक्ति निकली तब जिसलिये कि दैत्यका मस्तक कांपउठा व इसकी वह देह कांपतीभई
उसीसे क्षणभर में वह बलहीन होगया ॥ ६८ ॥ इसी अवसर में शिवजी के पुत्र उन स्वामिकार्त्तिकेयजी ने शक्तिको लिया और उल्काके समान ज्वालाओं को छो-
डतीहुई व सूर्य और अग्निके समान प्रकाशवाली ॥ ६९ ॥ व शब्दमें कल्पान्त के मेघोंके समान और संसारको जलाने की इच्छावाली सी व तारकके विनाश के
लिये अभाग्य की दशाके समान ॥ ७० ॥ व पर्वतों को तोड़नेवाली और समस्त प्राणियों से बलमें अधिक उस शक्तिको ऊपर फेंककर क्रोधित स्वामिकार्त्तिकेयजी

**तवे ॥ ६७ ॥ तस्यांशक्तौनिर्गतायां दैत्यशीर्षञ्चकम्पयन् ॥ कम्पितंवास्यतद्देहं गतवीर्योभवत्क्षणात् ॥ ६८ ॥ एतस्मि
न्नन्तरेशक्तिं सोऽभ्यसद्गिरिशात्मजः ॥ उल्काज्वालाविमुञ्चन्तीं तथासूर्याग्निसप्रभाम् ॥ ६९ ॥ कल्पाम्भोभृत्समाना
न्दे दिधक्षन्तींजगद्यथा ॥ तारकस्यान्तकालाय अभाग्यस्यदशामिव ॥७०॥ दारणींपर्वतानांच सर्वसत्त्वबलाधिकाम् ॥
उत्क्षिप्यतांविनद्योच्चैरमुञ्चत्कुपितोगुहः ॥ ७१ ॥ धर्मश्चेद्बलवाँल्लोके धर्मोजयतिचेत्सदा ॥ तेनसत्येनदैत्योयं प्र
लयंयात्विंतीरयन् ॥ ७२ ॥ साकुमारभुजोत्सृष्टा दुर्निवार्यादुरासदा ॥ बिभेदहृदयंतस्य भित्त्वाचधरणीङ्गता ॥ ७३ ॥
निःस्पृश्यजलकल्लोलपूर्वकंस्कन्दमाययौ ॥ सचसन्ताडितःशक्त्या विभिन्नहृदयोऽसुरः ॥ ७४ ॥ नादयन्वसुधांसर्वां
पपाताधोमुखोमृतः ॥ एवंप्रतापस्त्रैलोक्यां निर्जित्यबहुशस्सुरान् ॥ ७५॥ महारणेकुमारेण निहतःपार्थतारकः ॥ तस्मि
न्विनिहतेदैत्ये प्रहर्षंविश्वमाययौ ॥ ७६ ॥ बभुर्वातास्तथारम्याः सुप्रभोभूद्दिवाकरः ॥ जज्वलुश्चाग्नयःशान्ताः शा**

ने उच्चप्रकार से गर्जकर छोडदिया ॥ ७१ ॥ यदि संसार में धर्म बलिष्ठ है व यदि सदैव धर्म जय को प्राप्तहोताहै उस सत्यसे यह दैत्य नाशको प्राप्तहोवै यह कहते
हुये स्वामिकार्त्तिकेय ने शक्तिको छोडा ॥ ७२ ॥ स्वामिकार्त्तिकेय की भुजासे छोडी हुई असह्य व न रोकने योग्य उम शक्तिने हृदयको फाडडाला व फाडकर पृथ्वीमें
चलीगई ॥ ७३ ॥ व पृथ्वीसे जलके कल्लोल (लहरी) पूर्वक निकलकर स्वामिकार्त्तिकेय जीके समीप आई व शक्तिसे माराहुआ टूटे हृदयवाला वह तारकासुर ॥
७४ ॥ समस्त पृथ्वीको शब्दायमान करताहुआ मरकर नीचे मुखकरके गिरपड़ा हे अर्जुन ! ऐसे प्रतापवाला तारकासुर त्रिलोक में बहुत देवताओं को जीतकर समर

पातक नाश होजाता है ॥ ९ ॥ इसप्रकार शोचते हुये बुद्धिमान् शिवजी के पुत्र स्वामिकार्त्तिकेय जीसे पुरुषोंके गुरु विष्णुजी देवताओं के बीचमें वचन बोले ॥१०॥ कि हे शिवपुत्र ! यदि श्रुति, स्मृति, इतिहास व पुराणोंका प्रमाणहै तो दुष्टके मारनेमें दोष नहीं है ॥ ११ ॥ क्योंकि जो निर्दयी पुरुष पराये प्राणों से अपने प्राणों को पालता है उसका मारडालना उसके लिये कल्याणहै कि जिसके दोषसे पुरुषनरक को जाताहै ॥ १२ ॥ गर्भघाती पुरुष अन्नादिकों में व दुराचारवती स्त्री पतिमें और यज्ञ कराने योग्य शिष्य गुरुमें व चोर राजा में अपना पाप शुद्ध करताहै ॥ १३ ॥ व जो समर्थ पुरुष पापीको नहीं मारता है तो उसके जितने पाप होते हैं उनके

तोपिमहदर्जितम् ॥ ९ ॥ इति संशोचतस्तस्य शिवपुत्रस्यधीमतः ॥ वासुदेवोगुरुःपुंसां देवमध्येवचोऽब्रवीत् ॥१०॥ श्रुतिःस्मृतिश्चेतिहासाःपुराणञ्चशिवात्मज ॥ प्रमाणंचेत्ततोदुष्टवधेदोषोनविद्यते ॥ ११ ॥ स्वप्राणान्यःपरप्राणैःप्रपुष्णात्यघृणःपुमान् ॥ तद्वधस्तस्यहिश्रेयो यद्दोषाद्यात्यधःपुमान् ॥ १२ ॥ अन्नादेभ्रूणहामार्ष्टि पत्यौभार्यापचारिणी ॥ गुरौशिष्यश्चयाज्यश्चस्तेनोराजनिकिल्बिषम् ॥ १३ ॥ पापिनंपुरुषंयोहि समर्थोननिहन्तिच ॥ तस्ययावन्तिपापानि तदर्द्धसोप्यवाप्नुते ॥ १४ ॥ पापिनोयदिवध्यन्ते नैवपालनसंस्थितैः ॥ ततोयमक्षमोलोकः कंयातिशरणंगुह ॥ १५ ॥ कथंयज्ञाश्चवेदाश्च वर्तन्तेविश्वधारकाः ॥ तस्मात्त्वयापुण्यमाप्तं नचपापंकथञ्चन ॥ १६ ॥ अथचेद्रुद्रभक्तेषु बहुमानंतवप्रभो ॥ तदहंकीर्तयिष्यामि प्रायश्चित्तंमहोत्तमम् ॥ १७ ॥ आजन्मसम्भवैःपापैः पुमान्येनविमुच्यते ॥ आकल्पान्तंचकायेन रुद्रलोकेप्रमोदते ॥१८॥ कृतेपापेनुतापोवै यस्यस्कन्दप्रजायते॥रुद्राराधनतोन्यच्च प्रायश्चित्तंपरन्नहि॥१९॥

आधेभागको वह भी पाताहै ॥ १४ ॥ हे स्वामिकार्त्तिकेयजी ! पालन करनेमें भलीभांति टिकेहुये पुरुष यदि पापियों को न मारें तो यह असमर्थ पुरुष किसकी शरण में जावै ॥ १५ ॥ व संसारको धारनेवाले यज्ञ व वेद किस प्रकार वर्त्तमान होवैं इसलिये तुमने पुण्यको पायाहै पाप किसी प्रकारसे नहीं ॥ १६ ॥ अथवा हे प्रभो ! यदि शिवभक्तों में तुम्हारा बहुत आदरहै तो मैं बड़े उत्तम प्रायश्चित्त को कहूंगा ॥ १७ ॥ कि जिससे पुरुष जन्मसे लगाकर पापों से छूटजाता है व कल्पान्त तक शरीरसे शिवलोकमें प्रसन्न रहताहै ॥ १८ ॥ हे स्वामिकार्त्तिकेय जी ! पाप करनेपर जिसको पश्चात्ताप होवै तो शिवाराधन से बढ़कर और प्रायश्चित्त नहीं है ॥१९॥

कि जिनकी महिमा कहनेके लिये ब्रह्माभी समर्थ नहीं हैं व जिसको कहनेके लिये वेद डरताहै उनसे उत्तम क्या होवै है ॥ २० ॥ पृथ्वी रथ व ब्रह्मा सारथी बाण मैं व धनुष मन्दराचल और पहिया भी चन्द्रमा, सूर्य त्रिलोकमें अन्य किस देवताकेहैं॥ २१ ॥ उन शिवजी का आराधन कोई मुनिलोग योगमार्गके द्वारा कहते हैं परन्तु वह तुमको दुःखसे साधने योग्य है क्योंकि वह आराधन नित्यही शून्यके उपासक उन योगियों का है ॥ २२ ॥ इस लिये जो भोग व मोक्षको चाहै वह उन शिवजी के लिंगको पूजे सृष्टिके आदिमें मेरे व ब्रह्मा के विवाद में ये शिवजी लिंगरूप हुये हैं ॥२३॥ कि जिसकी प्रमाण में हमदोनों न समर्थ हुये जिस लिये सदैव

नयस्यालमपिब्रह्मा महिमानंविवर्णितुम् ॥ श्रुतिश्चभीतायंवक्तुंकिंतस्मात्परमंभवेत् ॥ २० ॥ क्षोणीरथोविधिर्यन्ता
शरोहंमन्दरोधनुः ॥ रथाङ्गेचापिचन्द्रार्कौ कस्यान्यस्यचत्रैपुरे ॥ २१ ॥ आराधनंतस्यकेचिद्योगमार्गेणचक्षते ॥
दुःखसाध्यंहितत्तेषां नित्यंशून्यमुपासताम् ॥ २२ ॥ तस्मात्तस्यार्चयल्लिँङ्गं भुक्तिमुक्तियइच्छति ॥ सृष्ट्यादौलिङ्गरूपो
सौ विवादेममवेधसः ॥ २३ ॥ अभूद्यस्यपरिच्छेदे नालमावांबभूविव ॥ चराचरंजगत्सर्वं यतोलीनंसदात्रच ॥ २४ ॥
तस्माल्लिङ्गमितिप्रोक्तं वेदेरुद्रस्यधीमतः ॥ तोयेनस्नापयेल्लिङ्गं श्रद्धयाशुचिनाचयः ॥२५॥ ब्रह्मादितृणपर्यन्तं तेनेदं
तर्पितंजगत् ॥ पञ्चामृतेनतल्लिङ्गं स्नापयेद्यश्चबुद्धिमान् ॥ २६ ॥ तर्पितंतेनविश्वंस्यात् सुधयापितृभिस्समम् ॥ पुष्पै
रभ्यर्चयेल्लिङ्गं यथाकालोद्भवैश्चयः ॥ २७॥ तेनवैपूजितंविश्वं सकलंनात्रसंशयः ॥ नैवेद्यंतत्रयोदद्याल्लिङ्गस्याग्रेवि
चक्षणः ॥ २८ ॥ भोजितंतेनविश्वंस्याल्लिङ्गस्यैवंफलंमहत् ॥ किमत्रबहुनोक्तेन स्वल्पंवायदिवाबहु ॥ २९ ॥ लिङ्ग

इस लिंगमें सब स्थावर, जंगम संसार व्याप्तहै ॥ २४ ॥ इसलिये वेदमें लिंग ऐसा कहागया है और जो मनुष्य श्रद्धासे बुद्धिमान् शिवजीके लिंगको पवित्र जल से स्नान कराता है ॥ २५ ॥ उससे ब्रह्मासे लगाकर तृणपर्यन्त यह संसार तृप्त किया गया और जो बुद्धिमान् पञ्चामृत से उन शिवजी के लिंगको स्नान कराता है ॥ २६ ॥ उससे पितरों समेत संसार अमृत करके तृप्त कियागयाहै व समय के अनुकूल उपजे हुये फूलोंसे जो लिंगको पूजताहै ॥ २७ ॥ उससे समस्त संसार पूजित हुआ, इसमें सन्देह नहीं है व जो चतुर मनुष्य वहीं शिवलिंग के आगे नैवेद्य को निवेदन करताहै ॥ २८ ॥ उससे संसार भोजन करायागया लिंगका ऐसा बड़ाभारी

फलहै यहां बहुत कहने से क्याहै याने कुछ नहीं थोड़ा या बहुत ॥ २९ ॥ जो कुछ लिंगका पूजनादिक कियाजाताहै वह सब संसारको प्रीतिदायकहै और जो मनुष्य पवित्र देशमें उत्तम भक्तिसे उस लिंगका स्थापन करता है ॥ ३० ॥ वह सब पापोंसे छूटकर शिवलोक में प्रसन्न रहताहै नित्यही यज्ञोंसे पूजतेहुये पुरुषको जो फल विद्वानों ने कहाहै ॥ ३१ ॥ वह वैसेही शिवजी के उत्तम लक्षणोंवाले लिंग को देखते हुये पुरुषको होताहै हे स्वामिकार्त्तिकेय जी ! जैसे सब देवताओंका मुख अग्नि कहीजाती है ॥ ३२ ॥ वैसेही समस्त लोकों का मुख शिवलिंगहै इसमे सन्देह नहीं है व शिवलिंग के पूजने से सात जन्मोंमें भी कियेहुये पापोंसे छूटजाता

स्यक्रियतेयच्चतत्सर्वंनिश्वप्रीतिदम् ॥ तच्चल्लिङ्गंस्थापयेद्यःशुचौदेशेसुभक्तितः ॥ ३० ॥ ससर्वपापनिर्मुक्तोरुद्रलोकेप्रमोदते ॥ यन्नित्यंयजतोयज्ञैःफलमाहुर्मनीषिणः ॥ ३१ ॥ तत्तथापश्यतोलिङ्गंशिवस्यशुभलक्षणम् ॥ यथाग्निस्सर्वदेवानां मुखंस्कन्दप्रकीर्त्यते ॥ ३२ ॥ तथैवसर्वजगतां मुखंलिङ्गंनसंशयः ॥ अर्चनान्मुच्यतेपापैस्सप्तजन्मकृतैरपि ॥ ३३ ॥ अतीतंचतथागामिकुलानांतारयेच्छतम् ॥ मृन्मयंकाष्ठनिष्पन्नं यच्चेष्टंशैलमेवच ॥ ३४ ॥ कृतमायतनंदद्यात् क्रमाच्छतगुणंफलम् ॥ कलशंतत्रचारोप्य एकविंशाकुलैर्युतः ॥ ३५ ॥ आकल्पान्तंरुद्रलोके मोदतेरुद्रवत्सुखम् ॥ एवंविधंफलंलिङ्गे नत्वतोर्हसिशोचितुम् ॥ ३६ ॥ तस्मादत्रमहासेन लिङ्गंस्थापितुमर्हसि ॥ यदुक्तमेतदश्लीलं यदिकिञ्चन वात्रचेत् ॥ ३७ ॥ तद्ब्रवीतुमहासेन स्वयंसाक्षीमहेश्वरः ॥ एवंवदतिगोविन्दे साधुसाधुसुराजगुः ॥ ३८ ॥ महादेवश्च

है ॥ ३३ ॥ और वैसेही भूत व भविष्य सौ पुश्तियों को तारताहै मिट्टीसे बनाहुआ व काष्ठसे सिद्ध तथा जो ईंटसे निर्मित व पत्थरही से ॥ ३४ ॥ बनाये हुये मन्दिरको जो उसमें कलश धरकर देताहै उसको क्रमसे सौगुना फल होताहै व इक्कीस पुश्तियों से संयुत वह ॥ ३५ ॥ कल्पपर्यन्त शिवलोकमे प्रसन्न रहताहै व शिवकी नाईं उसको सुख होता है इस प्रकारका शिवलिंगमे फलहै इससे शोचने के लिये तुम नही योग्यहो ॥ ३६ ॥ इसलिये हे महासेन ! तुम यहां लिंगको थापने के लिये योग्यहो और यदि इस विषय मे जो यह कुछ निन्दित या अमंगल कहागया हो ॥ ३७ ॥ हे महासेन ! उसको कहिये इसमें आपही महादेव साक्षी हैं विष्णुके ऐसा

कहने पर देवताओं ने बहुत अच्छा २ ऐसा कहा॥ ३८॥ और महादेवजी स्वामिकार्त्तिकेयको लिपटाकर वचन बोले कि जिस लिये मेरे भक्तोंके ऊपर आप बड़ी दया करतेहो ॥ ३९ ॥ उससे तुम्हारे ऊपर मेरी बड़ीभारी प्रसन्नता हुईहै किन्तु संसारकेगुरु विष्णुभगवान् ने जो कहाहै ॥ ४० ॥ वह वैसाही है इसमें विष्णु ने अन्यथा कुछ नहीं कहाहै क्योंकि जो मैं हूं वे विष्णु जानने योग्यहैं व जो विष्णुहैं वे मैं हूं ॥ ४१ ॥ हे सुव्रत ! हमदोनोंमें दो दीपकोंकी नाईं कुछ भेद नहीं है जो इनसे वैर करता है वह मुझसे शत्रुता करताहै और जो इनका अनुगामी है वह मेरा अनुचरहै ॥ ४२ ॥ हे स्कन्दजी ! जो ऐसा जानताहै वह मेरा भक्तहै अन्यथा नहीं है ॥४३॥

आलिङ्ग्य स्कन्दं वचनमब्रवीत् ॥ यद्भवान्ममभक्तेषु प्रकरोतिकृपांपराम् ॥ ३९ ॥ तेनातिपरमाप्रीतिर्ममजातातवोपरि ॥ किन्तुयद्भगवानाह वासुदेवोजगद्गुरुः ॥ ४० ॥ तत्तथानान्यथाकिञ्चिदत्रप्रोक्तंहिविष्णुना ॥ योह्यहंसहरिर्ज्ञेयो योहरिस्सोहमित्युत ॥ ४१ ॥ नावयोरन्तरंकिञ्चिद्दीपयोरिवसुव्रत ॥ एनंद्वेष्टिसमांद्वेष्टि योवान्वेनंसमामनु ॥ ४२ ॥ इतिस्कन्दविजानाति समद्भक्तोन्यथानहि ॥ ४३ ॥ कुमारउवाच ॥ एवमेवास्तिजानामि त्वांचविष्णुञ्चशङ्कर ॥ यच्च लिङ्गकृतेप्राह हरिर्मान्धर्मवत्सलः ॥ ४४ ॥ खवाणीतारकवधे एवमेवपुराहमाम् ॥ लिङ्गंसंस्थापयिष्यामि सर्वपापापहं ततः ॥ ४५ ॥ एकायत्रप्रतिज्ञामे गृहीतास्यवधायच ॥ द्वितीयंयत्रनिस्सत्त्वस्त्यक्तःशक्त्यापुराभवत् ॥ ४६ ॥ तृतीयं यत्रनिहतो दैत्यःपापोपशान्तिदम् ॥ इत्युक्त्वाविश्वकर्म्माणमाहूयप्राहपावकिः ॥ ४७ ॥ त्रीणिलिङ्गानिशुद्धानि शी

स्वामिकार्त्तिकेय जी बोले कि हे शिवजी ! ऐसाहीहै मैं तुमको व विष्णुजीको जानताहूं और धर्मप्रिय विष्णुजीने जो लिंगके लिये मुझसे कहाहै॥ ४४ ॥ पुरातन समय तारकासुर के मारने में आकाशवाणीने मुझसे ऐसाही कहाथा इस लिये समस्त पातकों के नाशक एक लिंगको मैं वहां थापूंगा कि जहां इसके मारनेके लिये प्रतिज्ञा को ग्रहण कियाथा व दूसरा लिंग वहां थापूंगा जहां कि पहले शक्तिसे छोड़ाहुआ दैत्य निर्बल भया था ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ व पापको शान्तिदायक तीसरे लिंगको वहां थापूंगा जहां कि दैत्यको मैंने मारा है यह कहकर स्वामिकार्त्तिकेय जी ने विश्वकर्माको बुलाकर कहा ॥ ४७ ॥ कि तुम तीन शुद्ध लिंगोंको शीघ्रही करने के लिये

योग्यहो स्वामिकार्त्तिकेय जीके वचन से उन विश्वकर्मा ने बनाया ॥ ४८ ॥ और उन विश्वकर्मा ने उन तीन पवित्र लिंगोंको दिया तदनन्तर ब्रह्मादिक देवताओं व विष्णु तथा शिव समेत ॥ ४९ ॥ पहले समीप पश्चिम दिशामें प्रतिज्ञेश्वरही ऐसे अति उत्तम लिंगको महासेनने भलीभांति थापा ॥ ५० ॥ कार्त्तिक व चैत्रमें अष्टमी तिथिमें यहा नहाकर पूजन तथा जागरणकर मनुष्य मृत्युको भी उल्लंघन करैगा ॥ ५१ ॥ वहा आपही शिवजीने स्वामिकार्त्तिकेय की प्रसन्नता के लिये यह कहा है तदनन्तर दूसरे लिंगको आग्नेय दिशामें आश्रितकर वहा स्थापन किया जहां कि मस्तक से शक्ति निकली थी व कपालेश्वर ऐसाही पापनाशक वह उत्तम लिंग

र्त्वंकर्तुमर्हसि ॥ वचनाद्बाहुलेयस्य निर्ममेचैववार्धुकिः ॥ ४८ ॥ त्रीणिलिङ्गानिशुद्धानि न्यवेदयततानिसः ॥ ततोब्र
ह्मादिभिस्सार्द्धं विष्णुनाशङ्करेणच ॥ ४९ ॥ पूर्वंसंस्थापयामास पश्चिमायामदूरतः ॥ प्रतिज्ञेश्वरमित्येव लिङ्गंपरमशो
भनम् ॥ ५० ॥ अष्टम्यांबाहुलेचात्र चैत्रेस्नात्वानुपोष्यच ॥ पूजाञ्चजागरंकृत्वा मृत्युमप्युत्क्रमिष्यति ॥ ५१ ॥ इत्या
हस्कन्दप्रीत्यर्थं स्वयंतत्रमहेश्वरः ॥ ततोद्वितीयलिङ्गन्तु वह्निकोणाश्रितन्ततः ॥ ५२ ॥ स्थापयामासशिरसो यत्रश
क्तिर्विनिर्ययौ ॥ कपालेश्वरमित्येव लिङ्गंपापापहंशुभम् ॥५३॥ शक्तिञ्चतामभिष्टूय स्थापयामासतत्रच ॥ कपालेशस्य
सान्निध्ये देवीकापालिकेश्वरी ॥ ५४ ॥ तत्रचोत्तरदिग्भागेशक्तिच्छिद्रंप्रचक्ष्यते॥पातालगङ्गायत्रास्ति सर्वपापहराशि
वा ॥ ५५ ॥ तत्रस्नात्वाततःस्कन्दः कृपयाभिपरिप्लुतः ॥ ददौतोयंतारकाय सहितस्सर्वदैवतैः ॥ ५६ ॥ काश्यपेयाय
वज्राङ्गतनयायमहात्मने ॥ रुद्रभक्तायसतिलमक्षय्योदकमस्त्विति ॥ ५७ ॥ ततोमहेश्वरःप्रीतः प्राहस्कन्दस्यशृ

प्रसिद्ध हुआ ॥ ५२ । ५३ ॥ व उस शक्तिकी स्तुतिकर वहीं कपालेश्वर के समीप स्थापन किया वे कापालिकेश्वरी देवी प्रसिद्ध हुईं ॥ ५४ ॥ और वहां उत्तर दिशाके भागमें शक्तिका छिद्र कहाजाता है जहां कि सब पापोंको नाशनेवाली कल्याणदायिनी पातालगंगा हैं ॥ ५५ ॥ उसमें नहाकर तदनन्तर सब देवताओं समेत दया से व्याप्त स्वामिकार्त्तिकेय ने तारकासुर के लिये जलको दिया ॥ ५६ ॥ कश्यपके वंशमें उत्पन्न व वज्रांगके पुत्र शिवभक्त महात्मा तारकके लिये तिल समेत यह

अघ्र्योदक हो वै यह कहकर तिलांजलीदी ॥ ५७ ॥ तदनन्तर प्रसन्न महादेवजीने सुनते हुये महासेनसे कहा कि चैतके कृष्णपक्षमें जो मनुष्य यहां ॥ ५८ ॥ नहाकर
व उपास रहकर कपालेश्वर शिवको भलीभांति पूजैगा वह तेजस्वी के वधसे पैदा हुये पापसे छूट जावैगा ॥ ५९ ॥ इसी तिथिमें सोमवार के दिन शिवयोग व तैतिल
करणा इस षड्योगमें जो पुरुष इस पातालगंगा में नहाकर शक्तिछिद्र के समीप रुद्रिय (षडंग) को रातमें पढ़ैगा वह शरीर समेत शिवलोकको जावैगा कपाले-
श्वर के समीप जो शक्तिछिद्र कहाजाता है ॥ ६० ॥ ६१ ॥ पृथ्वीमें उसके बराबर दूसरा तीर्थ नहीं विद्यमान है यह शिवजीका वचन सुनकर स्वामिकार्त्तिकेय जी

रावत: ॥ चतुर्दश्यांकृष्णपक्षे मधौचैवात्रयोनरः ॥ ५८ ॥ स्नात्वोपोष्यसमभ्यर्च्चेत्कपालेश्वरमीश्वरम् ॥ तेजोवधस
मुद्भूतपातकेनसमुच्यते ॥ ५९ ॥ अस्यामेवतिथौसोमे शिवयोगेचतैतिले ॥ षड्योगेशक्तिछिद्रेयो रुद्रियंप्रजपेन्नि
शि ॥ ६० ॥ स्नात्वात्रसशरीरोवै रुद्रलोकंव्रजिष्यति ॥ कपालेशस्यसान्निध्ये शक्तिच्छिद्रंहिकीर्त्यते ॥ ६१ ॥ तस्यतु
ल्यंपरंतीर्थंपृथिव्यान्नैवविद्यते ॥ इतिश्रुत्वारुद्रवः स्वयंस्कन्दःप्रीतोभवद्भृशम् ॥ ६२ ॥ देवाश्चमुदितास्सर्वेसाधुसाध्विति ते
जगुः ॥ ६३ ॥ इतिश्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेप्रतिज्ञेश्वरशक्तिच्छिद्रमाहात्म्यवर्णनंनामषड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

नारदउवाच ॥ ततस्तृतीयलिङ्गस्य चिकीर्षुस्थापनंगुहम् ॥ ब्रह्माप्राहास्यप्रीत्यर्थं स्वयमन्यत्करोम्यहम् ॥ १ ॥
यद्यप्येतच्छुभंलिङ्गं सर्वदोषविवर्जितम् ॥ तथाप्यन्यत्करिष्येहं सर्वश्रेष्ठतमंहियत् ॥ २ ॥ ततोब्रह्मासर्वदोषविमुक्तं

बहुत प्रसन्न हुये ॥ ६२ ॥ व प्रसन्न होतेहुये उन सब देवताओंने बहुत अच्छा २ ऐसा कहा ॥ ६३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभा
षाटीकायाप्रतिज्ञेश्वरशक्तिच्छिद्रमाहात्म्यवर्णननामषड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

दो० । महासेन थाप्यो शिवहिं कुमारेश अस नाम । सत्ताइस अध्याय में सोइ चरित सुखधाम ॥ नारदजी बोले कि तदनन्तर तीसरे लिंगका स्थापन करनेकी
इच्छावाले स्वामिकार्त्तिकेय जैसे इनकी प्रीतिके लिये ब्रह्माने आपही कहा कि अन्य तीसरे लिंगको मैं निर्माण करूंगा ॥ १ ॥ यद्यपि सब दोषोंसे रहित यह लिंग

ाप्तहोता है ॥ २१ ॥ याने तांबे चांदी व सुवर्ण के घटसे क्रम करके सौगुना फलहोताहै और चन्दन, अगुरु, कस्तूरी व कपूरसे क्रम करके अधिक फलको प्राप्तहोता है ॥ २२ ॥ और वे वस्तुयें मुझमें लगाकर ऐश्वर्यवान्, शोभावान् व सुखी होताहै गुग्गुलुकी धूप उत्तमहै व उससे अगुरु श्रेष्ठहै ॥२३॥ इन धूपोंको देकर मनुष्य सुख व स्वर्गको प्राप्तहोता है और दीपक देनेवाला पुरुष यश व उत्तम नेत्रोंको प्राप्त होता है ॥ २४ ॥ व नैवेद्यके देने से मनुष्य मिष्टान्नभोजी होता है और तोलाभर सोनेका फूल देनेपर दशगुना फल होता है ॥ २५ ॥ व पुरुष फलको प्राप्तहोता है और सत्यप्रतिज्ञावान् होता है व सम्पूर्ण बिल्वपत्रों और अनेक भांति के फूलो

तगुणंफलम् ॥ श्रीखण्डागुरुकाश्मीरशशिभिःक्रमशोधिकम् ॥ २२ ॥ माञ्चतैश्चसमालिप्य स्याच्छ्रीमान्सुभगस्सुखी ॥ प्रशस्तोगुग्गुलोर्धूपस्तस्माच्चैवागुरुर्वरः ॥ २३ ॥ धूपानेतान्नरोदत्त्वा सुखंस्वर्गमवाप्नुयात् ॥ दीपदःकीर्तिमाप्नोति चक्षुरुत्तममेवच ॥२४॥ नैवेद्यस्यप्रदानेन नरोमिष्टाशनोभवेत् ॥ पुष्पेणहेमकर्षस्य दत्तेदशगुणंफलम् ॥२५॥ फलंप्राप्नोतिपुरुषः सत्यसन्धश्चजायते ॥ अखण्डैर्बिल्वपत्रैश्च पुष्पैर्वाविविधैरपि ॥ २६ ॥ लिङ्गप्रपूजनंकृत्वा लक्षमेकंवसेद्दिवि ॥ यस्तुपुष्पगृहंकुर्यान्नरःशुद्धाशयोभुवि ॥ २७ ॥ पुष्पकेणविमानेन दिविसंक्रीडतेचिरम् ॥ भूषणाम्बरदानेन नरोभवतिभोगभुक् ॥ २८ ॥ सचामरप्रदानेन जायतेपार्थिवोनरः ॥ रम्यंवितानकंदत्त्वा शत्रुभिर्नाभिभूयते ॥ २९ ॥ गीतंवाद्यञ्चनृत्यञ्च कृत्वाशुद्धोव्रजेत्समाम् ॥ शङ्खघण्टाप्रदानेन विद्वान्भवतिचध्रुवम् ॥ ३० ॥ विधायरथयात्रांच चिरंशोकैःप्रमुच्यते ॥ नमस्कारंप्रणामंच कृत्वाजायेन्महाकुले ॥ ३१ ॥ वाचयंश्चाग्रतःशास्त्रं समज्ञानीप्र

से ॥ २६ ॥ लिंग को पूजकर एकलाख वर्ष तक स्वर्ग में बसता है और जो पुरुष फूलका घर बनाता है वह भूमि में पवित्र आशयवाला होताहै ॥ २७ ॥ और स्वर्ग में वह बहुत दिनो तक पुष्पक विमानके द्वारा क्रीडा करता है व भूषण, वसन के दानसे मनुष्य सुखोंका भोगी होता है ॥ २८ ॥ और चॅवरके देने से वह मनुष्य श्रेष्ठ राजा होताहै व सुन्दर चँदोवा देकर शत्रुवोंसे नहीं हारताहै ॥ २९ ॥ व गीत, वाजन, नृत्यको कर वह शुद्ध मनुष्य मेरे समीप प्राप्तहोताहै और शङ्ख व घण्टाके देनेसे अवश्य विद्वान् होताहै ॥ ३० ॥ व रथयात्रा को कर बहुत दिनोतक शोचोसे छूटजाता है व नमस्कार, प्रणाम करके बडेभारी कुलमे पैदाहोता है ॥३१॥

और मेरे आगे शास्त्रको पढ़ता या पढ़ाता हुआ पुरुष ज्ञानी होताहै व मेरी भक्ति व स्तुतिसे मनुष्य मनके मोहोंसे छूटजाता है॥ ३२ ॥ और मेरे निर्माल्यके हरने से मनुष्य गोदान के फलको प्राप्त होताहै व आरती को घुमाकर मनुष्य दुःखरहित होताहै ॥ ३३ ॥ व चन्दन को देकर मनुष्य दुःखसे उपजेहुये तापों से छूटजाता है वैसेही लिंगके समीप अपनी शक्तिके अनुसार दान देकर ॥ ३४ ॥ सौगुने फलको पाकर इस लोक व परलोकमें प्रसन्न रहता है और प्रणामसे पंद्रह स्नान कराने से बीस व यथोक्त विधिसे पूजन करनेसे मैं सौ अपराधोंको क्षमाकरूंगा हे स्वामिकार्त्तिकेयजी ! जैसा कि फल कहागयाहै वह सब उनको यहां वैसाही होगा ॥ ३५।३६॥

जायते ॥ विमुच्यतेमनोमोहैर्भक्त्यास्तुत्याचमेनरः ॥ ३२ ॥ गोदानफलमाप्नोति निर्माल्यहरणान्मम ॥ आरात्रिकं भ्रामयित्वा आर्तिहीनःप्रजायते ॥ ३३ ॥ दत्त्वाशीतलकन्तापैर्मुच्यतेदुःखसम्भवैः ॥ तथादत्त्वास्वशक्त्याच दानं लिङ्गस्यसन्निधौ ॥ ३४ ॥ फलंशतगुणंप्राप्य इहचामुत्रमोदते ॥ प्रणामात्पञ्चदशच स्नानाद्विंशतिपूजया ॥ ३५ ॥ शतंयथाप्रोक्तविधेरपराधानहंक्षमे ॥ एतत्सर्वंयथोद्दिष्टं कुमारात्रभविष्यति ॥ ३६॥ येमांप्रपूजयिष्यन्ति कुमारेश्वर संज्ञितम् ॥ वाराणस्यांयथावत्स विश्वनाथोस्मिसंस्थितः ॥ ३७ ॥ गुप्तक्षेत्रेतथास्थास्ये कुमारेश्वरसंज्ञितः ॥ श्रुत्वेति वचनंरुद्राद्देवानांशृण्वतांगुहः ॥ ३८ ॥ विस्मितःप्रणिपत्यैनं तुष्टावगिरिजापतिम् ॥ ३९ ॥ नमःशिवायास्तुनिरामयाय नमःशिवायास्तुमनोमयाय ॥ नमःशिवायास्तुसुरार्चिताय तुभ्यंसदाभक्तकृपापराय ॥ ४० ॥ नमोभवायाग्रहणाश्रयाय नमोस्तुशर्वायनमःशिवाय ॥ नमोस्तुसिद्धायपुरातनाय नमोस्तुकालायनमःकलाय ॥ ४१ ॥ नमोस्तुते

जोकि कुमारेश्वर संज्ञक मुझको पूजैंगे हे पुत्र ! काशीजी में जैसे मैं विश्वनाथ नामक भलीभांति टिकाहूं ॥ ३७ ॥ वैसेही गुप्तक्षेत्र में कुमारेश्वर संज्ञक मैं टिकूंगा देवताओं के सुनते हुये इस वचनको महादेव जी से सुनकर स्वामिकार्त्तिकेय जीने ॥ ३८ ॥ विस्मयमें प्राप्तहोकर इन पार्वती जी के पति सदाशिव जी को प्रणामकर स्तुति किया ॥ ३९ ॥ कि व्याधिरहित शिवजी के लिये नमस्कारहोवे व मनोमय शिवजी के लिये प्रणाम है व सदैव भक्तके ऊपर दयापरायण और देवताओं से पूजित जो तुम सदाशिवजी हो उनके लिये प्रणाम है॥ ४० ॥ आश्रय को न ग्रहण करनेवाले याने अनाश्रय शिवजी के लिये प्रणाम है व

शर्वनामक शिवजी के लिये प्रणाम है व सिद्ध और पुराणपुरुष के लिये नमस्कार है व कालरूप के लिये नमस्कार है और कल याने तेजस्वरूप आपके लिये प्रणाम है ॥ ४१ ॥ व भयंकर गुणों के अनुगामी जो तुमहो उनके लिये प्रणामहै व सृष्ट्यात्मक ऐश्वर्यरूपके लिये प्रणामहै अनेक भुवनों के रचनेवाले व भक्तके मनोरथको देनेवाले आपके लिये प्रणाम है ॥ ४२ ॥ कर्मोंको उत्पन्न करनेवाले व विधातारूप आपके लिये सदैव प्रणामहै व हे भगवन् ! अपने को भी करनेवाले आपके लिये प्रणाम है अनन्तरूप आपके लिये सदैव प्रणाम है और न सहने योग्य क्रोधवाले आपके लिये प्रणाम है ॥ ४३ ॥ व अपरिमित प्रमाण वाले आपके लिये प्रणाम है और बैल जिनकी सवारी है उन आपके लिये प्रणामहै व प्रसिद्ध और संसार की ओषधिरूप आपके लिये प्रणाम है व रोगसमूहों

भीमगुणानुगाय नमोस्तुसर्गात्मकभूतिकाय ॥ नमोस्तुनानाभुवनाधिकर्त्रे नमोस्तुभक्ताभिमतप्रदाने ॥ ४२ ॥ नमोस्तुकर्म्मप्रसवायधात्रे नमःसदातेभगवन्स्वकर्त्रे ॥ अनन्तरूपायसदैवतुभ्यमसह्यकोपायनमोस्तुतुभ्यम् ॥ ४३ ॥ अमेयमानायनमोस्तुतुभ्यं वृषेन्द्रयानायनमोस्तुतुभ्यम् ॥ नमःप्रसिद्धायभवौषधाय नमोस्तुतेव्याधिगणापहाय ॥ ४४ ॥ चराचरायत्वमृतप्रदाय कुमारनाथायनमःशिवाय ॥ ममेशभूतेशमहेश्वरेश कामेशवागीशबलेशधीश ॥ ४५ ॥ क्रोधेशमोहेशपरावरेश नमोस्तुमोक्षेशगुहाशयेश ॥ ४६ ॥ इतिसंस्तूयवरदं शूलपाणिमुमापतिम् ॥ प्रणिपत्यउमापुत्रो नमोनमउवाचच ॥ ४७ ॥ एवंभक्तिभराक्रान्तमात्मयोग्यंसुतंशिवः ॥ अभिनन्द्यचिरङ्कालमिदंवचन

के नाशक तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥ ४४ ॥ चराचररूपवाले के लिये व मोक्ष देनेवाले आपके लिये प्रणाम है और स्वामिकार्त्तिकेय जी के स्वामी शिवजी के लिये प्रणामहै हे मेरे स्वामी, प्राणियों के पति, महेश्वर, ईश, कामेश, सरस्वतीश, बलेश, बुद्धीश ! आपके लिये प्रणामहै ॥ ४५ ॥ हे क्रोधके स्वामी, मोहके ईश, परावरेश, मोक्षेश, गुहाशयेश ! आपके लिये प्रणामहै ॥ ४६ ॥ इस प्रकार वरदायक पार्वती के पति त्रिशूल हाथमें धारनेवाले शिवजी की भलीभांति स्तुतिकर पार्वती के पुत्र सदाशिवजी को प्रणामकर यह बोले कि नमस्कार है नमस्कार है ॥ ४७ ॥ इस भांति भक्तिके भारसे घिरे व अपने योग्य पुत्रको बहुत समय तक प्रशंसाकर

सदाशिवजी यह वचनबोले ॥ ४८ ॥ कि मेरे भक्तका वधात्मक दुःख तुमको न चिन्तन करना चाहिये हे पुत्र ! इस कर्म से तुम मुनियोंके भी प्रशंसनीयहो ॥ ४९॥
सायंकाल व प्रातःकाल में जो मनुष्य बड़ी भक्तिसे तुमसे कियेहुये स्तोत्र करके मेरी स्तुति करैंगे उनको जो फल होगा उसे सुनिये ॥ ५०॥ कि न रोग होगा न
दरिद्रता होगी और न प्रियका वियोग होगा और दुर्लभ सुखों को भोगकर वे मेरे स्थानको जावैंगे ॥ ५१ ॥ और वैसेहीं अन्य भी बड़े दुर्लभ वरोंको दूंगा हे पुत्र !
तुम्हारी भक्तिसे मैं बहुत प्रसन्नहूं और तुम्हारी प्रसन्नता के लिये ॥५२॥ महीसागर के किनारेपै जो मनुष्य मेरी स्तुति करैंगे वैशाखी में उनका वह सब दान पूजन

मब्रवीत् ॥ ४८ ॥ त्वयादुःखन्नसंचिन्त्यं ममभक्तवधात्मकम् ॥ कर्मणानेनश्लाघ्योसि मुनीनामपिपुत्रक ॥ ४९ ॥
येचसायंतथाप्रातस्त्वत्कृतेनस्तवेनमाम् ॥ स्तोष्यन्तिपरयाभक्त्या शृणुतेषांचयत्फलम् ॥ ५० ॥ नव्याधिर्नचदा
रिद्र्यंनचैवेष्टवियोजनम् ॥ भुक्त्वाभोगान्दुर्लभांश्च ममायास्यन्तिसद्मते ॥ ५१ ॥ तथान्यानपिदास्यामि वरान्परमदु
र्लभान् ॥ भक्त्यातवातितुष्टोहं प्रीत्यर्थंतवपुत्रक ॥ ५२ ॥ महीसागरकूलेतु येमांस्तोष्यन्तिमानवाः ॥ तेषांतदक्षयं
सर्वं वैशाख्यांदानपूजनम् ॥ ५३ ॥ सरस्यत्रचयेस्नानं प्रकरिष्यन्तिमानवाः ॥ सर्वतीर्थफलावाप्तिर्वैशाख्यांप्रभवि
ष्यति ॥ ५४ ॥ कुमारेशञ्चमांभक्त्या महीसागरसङ्गमे ॥ स्नात्वायःपूजयेन्नित्यंतस्यजातिस्मृतिर्भवेत् ॥ ५५ ॥ जातिस्मृ
तिरियंपुत्र यस्यांजातौप्रजायते ॥ स्मरेत्तस्याःप्रकर्तव्यं श्रेयोरूपंसुदुर्लभम् ॥ ५६ ॥ यस्मिन्कालेत्वनावृष्टिर्जायतेकृ
त्तिकासुत ॥ स्नापयेद्विधिवन्मांच कलशैर्विविधैःशुभैः ॥ ५७ ॥ एकरात्रंत्रिरात्रंवा पञ्चरात्रञ्चसप्तवा ॥ स्नापयेद्गन्ध

अक्षयहोगा ॥ ५३ ॥ व वैशाखी पूर्णमासी में इस तड़ागमें जो मनुष्य स्नान करैंगे उनको सबतीर्थोंके फलोंकी प्राप्तिहोगी ॥ ५४ ॥ और महीसागरसंगममें स्नानकर
जो मुझ कुमारेश को भक्तिसे नित्यहीं पूजता है उसको जातिका स्मरण होवै है ॥ ५५ ॥ हे पुत्र ! यह जातिका स्मरण जिस जातिमें उत्पन्न होवै उससे अतिदुर्लभ
कल्याणरूप कर्तव्यता को स्मरणकरै ॥ ५६ ॥ हे कृत्तिका के पुत्र ! जिस समय में अनावृष्टि होवै उस समय अनेक भांति के उत्तम कलशों से विधिपूर्वक मुझको

स्नान करावै॥ ५७॥ एकरात व तीनरात व पांच रातों तथा सात रातोंतक चन्दन युक्त जल से स्नान करावै व कुंकुमसे लेपन करै ॥५८॥ और लालकनैर के फूलों
ते व गुडहर या जपा नामक वृक्षके फूलोंसे पूजन करै व वस्त्रोंको पहनाकर फूलों की मालाओं से पूजन करै ॥ ५९ ॥ और ब्राह्मणों व प्रशंसित व्रतोंवाले तपस्वियो
को भोजन करावै और शिवजी का लक्षहोमकरै व ग्रहादिकों का हवनकरै ॥ ६० ॥ तदनन्तर भूमिदान करै व उसके उपरान्त गवाह्निककर्मकरै व कल्याणदायिनी
शान्तिको पढ़वावै व रुद्रजाप्य करवावै ॥६१॥ ब्राह्मणोत्तमो को इस विधि के करनेसे जब मेघ अगर्भित होते हैं याने मेघोंके गर्भमें जल नहीं होताहै तबभी बरसते है

तोयेन कुङ्कुमेनविलेपयेत् ॥ ५८ ॥ करवीरैरक्तपुष्पैर्जपापुष्पैस्तथैवच ॥ अर्चयेत्पुष्पमालाभिः परिधाप्यचवाससी॥ ५९ ॥ भोजयेद्ब्राह्मणांश्चैव तापसान्संशितव्रतान् ॥ लक्षंहोमंप्रकुर्वीत शिवहोमंग्रहादिकम् ॥ ६० ॥ भूमिदानंततःकुर्यात् ततोदद्याद्गवाह्निकम् ॥ आघोषयेच्छिवांशान्तिं रुद्रजाप्यन्तुकारयेत् ॥ ६१ ॥ अनेनैवविधानेन कृतेनतुद्विजोत्तमैः ॥ अगर्भितायदामेघा वर्षन्तेनात्रसंशयः ॥६२ ॥ विविधैःपूर्य्यतेधान्यैः शाद्वलैश्चवसुन्धरा ॥ आरोग्यत्वंभवेच्चैव जनेपशुकुलेतथा ॥ ६३ ॥ धर्मयुक्तोभवेद्राजा परचक्रैर्नपीड्यते ॥ घृतेनस्नापयेन्मांच भक्तियुक्तोनरोत्रयः ॥ ६४ ॥ कन्यादानफलंतस्य नात्रकाचिद्विचारणा ॥ क्षीरेणस्नापयेद्देवं तथापञ्चामृतेनच ॥ ६५ ॥ अग्निष्टोमस्ययज्ञस्य फलंतस्योपजायते ॥ कुमारेश्वरतीर्थेच प्राणत्यागंकरोतियः ॥ ६६ ॥ ममलोकेवसेत्तावद्यावदाभूतसम्प्लवम् ॥ अयनेवि

इसमें सन्देह नहीं है ॥ ६२ ॥ और अनेक प्रकारके अन्नों व हरित तृणोंसे पृथ्वी पूर्ण होजाती है व मनुष्यो और पशुसमूह में नीरोगता होती है ॥ ६३ ॥ और यदि
राजा धर्म से संयुत होवै तो पराई सेना से पीड़ित नहीं होता है और यहां भक्तिसे संयुत जो मनुष्य मुझको घृतसे नहवाता है ॥ ६४ ॥ उसको कन्यादानका फल
प्राप्तहोता है इसमें कुछ विचार नहीं है और दूधसे व पंचामृतसे जो शिवदेवजीको स्नान कराता है ॥ ६५ ॥ उसको अग्निष्टोम यज्ञका फल होता है और कुमारेश्वर
तीर्थमें जो प्राणोंको त्याग करताहै ॥६६॥ वह तबतक मेरे लोक में बसताहै कि जब तक प्रलयहोती है व विषुव अयन (दिनरात बराबरवाले समय) में और चन्द्रमा

व सूर्यके ग्रहणमें ॥६७॥ और पौर्णमासी व अमावस में और संक्रान्ति व वैधृति योग में जो मनुष्य महीसागरसंगम में नहाकर कुमारेश देवजीको भक्तिसे पूजता है उसके पुण्यके फलको सुनिये कि पृथ्वीतलके तीर्थों में स्नानका जो बडाभारी फल होताहै ॥६८।६९॥ और समस्त लिंगोंके पूजित होनेपर जो फल होताहै वह उस फलको प्राप्तहोता है व नीरोगता, पुत्रलाभ, धनलाभ व उत्तम सुखको ॥ ७० ॥ मनुष्य कुमारेश्वर की सेवासे निश्चयकर प्राप्तहोता है और जो तपस्वी ब्रह्मचारी पवित्र होकर यहां टिकता है ॥ ७१ ॥ वह उत्तम शैव योगको पाकर उन शिवजी के स्थानको प्राप्त होता है और पापात्मा मनुष्यों को उसी क्षण फल दिखलानेवाला

षुवैचैव ग्रहणेचन्द्रसूर्ययोः ॥ ६७ ॥ पूर्णमास्याममावस्यांसंक्रान्तौवैधृतेतथा ॥ कुमारेशंनरःस्नात्वा महीसागरसङ्गमे ॥६८॥ भक्त्यायोभ्यर्चयेद्देवं तस्यपुण्यफलंशृणु ॥ यन्महीतलतीर्थेषु स्नानस्यसुमहत्फलम् ॥६९॥ यच्चार्चितेषुलिङ्गेषु सर्वेषुस्यात्फलञ्चतत् ॥ आरोग्यंपुत्रलाभंच धनलाभंसुखंशुभम् ॥ ७० ॥ निश्चितंलभतेमर्त्यः कुमारेश्वरसेवया ॥ ब्रह्मचारीशुचिर्भूत्वा यस्तिष्ठेदत्रतापसः ॥ ७१ ॥ परंपाशुपतंयोगं प्राप्ययातितदालयम् ॥ पापात्मनांचमर्त्यानां सद्योस्तिफलदर्शकः ॥ ७२ ॥ दिव्येनाष्टविधेनैव कोशस्साधारणोत्रच ॥ अघोराद्यैःपञ्चमन्त्रैः स्नापयल्लिङ्गमहत्प्रभम्॥ ७३ ॥ अघोरेणैवतत्तापं दद्यादादेश्यकारिणे ॥ पिबेदेतदुदीर्य्यासौ प्रसृतित्रयमेवच ॥ ७४ ॥ यदिधर्म्मस्तथासत्यमीश्वरोत्रजगत्त्रये ॥ कोशपानात्फलंसद्यो द्रक्ष्याम्यस्मिञ्छुभाशुभम् ॥७५॥ पानेचैवकुलंहन्याद्गमनेचकुटुम्बकम् ॥ दर्शनेचशुभंपाने हन्यादेवञ्चमिथ्यया ॥ ७६ ॥ त्रिभिर्दिनैस्त्रिभिःपक्षैस्त्रिभिर्मासैस्त्रिभिस्समैः ॥ अत्युग्रपुण्यपापानां पाने

होताहै ॥ ७२ ॥ व उत्तम आठ प्रकार से यहां साधारण शपथ होती है कि अघोरादिक पांच मन्त्रोंसे बडे प्रकाशवान् लिंगको नहवाकर ॥ ७३ ॥ अघोरही मन्त्र से उस जलको आज्ञाकारी के लिये देवै और यह पुरुष इस श्लोकको उच्चारणकर तीन पसर जलको पिये ॥ ७४ ॥ कि यदि धर्म वैसेही सत्यहै जैसे कि त्रिलोक में ईश्वर सत्य है तो कोशपान याने शपथवाले जलके पीने से मैं इसी क्षण इसमें शुभाशुभ फलको देखूं ॥ ७५ ॥ कि पान में कुल को नाश करै व गमन में कुटुंब को नाश करै व दर्शन में शुभको नाश करै इस भांति पानमें मिथ्यासे नाश करै ॥७६॥ तीन दिन, तीन पक्ष; तीन महीना व तीन वर्षोंसे बड़े उग्र पुण्य पापोंके फल

को इस जल के पान से भोग करता है ॥ ७७ ॥ हे पुत्र ! तुम्हारी प्रीति की वृद्धि के लिये तुम से यहां थापे हुये लिंगमें मैंने इन वरदानों को दिया व मुझसे फिर कुछ कहिये ॥ ७८ ॥ स्वामिकार्त्तिकेय जी बोले कि हे महेश्वर ! तुम्हारे इन वरदानों के देने से मैं कृतार्थ होगया तुम्हारे लिये नमस्कार है नमस्कार है नमस्कार है हे विभो ! तुमको यहां इस स्थान को न छोड़ना चाहिये ॥ ७९ ॥ इस प्रकार देवेश शिवजी को प्रणाम कर माता को प्रणाम करते हुये स्वामिकार्त्तिकेय जी बोले कि हे माता ! मेरे प्रिय की इच्छासे तुम को भी यहां यह स्थान न छोड़ना चाहिये ॥८०॥ हे पार्वतीजी ! तुम को भी मैं यहां स्थापन करूंगा वरदायिनी हूजि-

नफलमश्नुते ॥ ७७ ॥ एतेपरामयालिङ्गे दत्तात्रस्थापितेत्वया ॥ तवप्रीत्यभिवृद्ध्यर्थं ब्रूहिभूयोममात्मज ॥ ७८ ॥ स्कन्दउवाच ॥ कृतकृत्योवरैर्दत्तैस्त्वयाचैतैर्महेश्वरः ॥ नमोनमोनमस्तेस्तु नात्रत्याज्यंत्वयाविभो ॥ ७९ ॥ एवंप्रणम्यदेवेशं मातरंप्रणतोब्रवीत ॥ त्वयापिमातर्नैवात्र त्याज्यंममप्रियेप्सया ॥ ८० ॥ त्वामप्यत्रस्थापयिष्ये वरदाभव पार्वति ॥ ८१ ॥ पार्वत्युवाच ॥ यत्रशर्वःस्वभावेन तत्रातिष्ठाम्यहंसुत ॥ तवभक्त्याविशेषेण स्थास्येस्त्रीणांवरप्रदा ॥ ८२ ॥ युद्धेषुतवकर्म्माणि रुद्रभक्तेषुवैकृपा ॥ पश्यन्तिपुत्रिणीमुख्याः प्रीणिताचभृशन्त्वया ॥ ८३ ॥ गर्भक्लेशंस्त्रियो मन्ये साफल्यंभजतेतदा ॥ सुतोयदारुद्रभक्तः सानन्दंसद्भिरीर्यते ॥ ८४ ॥ तवैवाहंप्रियार्थाय तिष्ठाम्यत्रषडानन ॥ स्त्रीभिराराधितादास्ये सौभाग्यंसुपतिंसुतान् ॥ ८५ ॥ चैत्रेवापितृतीयायां स्नात्वाशीतेनवारिणा ॥ अर्चयिष्यतिमां

ये ॥ ८१ ॥ पार्वती जी बोलीं कि हे पुत्र ! जहां शिव जी हैं वहां मैं स्वभावही से टिकती हूं और तुम्हारी भक्ति से विशेष कर स्त्रियों को वरदेनेवाली मैं टिकूंगी ॥ ८२ ॥ पुत्रवती स्त्रियों में मुख्य स्त्रियां युद्ध में तुम्हारे कर्मों को व शिव जी के भक्तों में दया को देखती हैं और तुमसे बहुतही तृप्त कीहुई ॥ ८३ ॥ मैं स्त्रियों के गर्भ के क्लेश को मानती हूं और वह क्लेश तब सफलता को भजता है जब कि विद्वानों से आनन्दपूर्वक पुत्र शिवभक्त कहाजाता है ॥ ८४ ॥ हे षडानन ! तुम्हारेही प्रिय के लिये मैं यहां टिकूंगी और स्त्रियों से आराधना कीहुई मैं सौभाग्य, उत्तम पति व पुत्रों को दूंगी ॥ ८५ ॥ और चैत में तीज तिथि में ठंढे जलसे

नहाकर जो स्त्री मुझको फूल, धूप व चन्दनादिक लेपनों से पूजैगी ॥ ८६ ॥ व भक्तिसे संयुत जो स्त्री अष्टसौभाग्यको देवैगी उसको पिता, माता, सासु, ससुर,
पुत्र, पति, उत्तम भाग्य व लक्ष्मी इन आठोंको मैं दूंगी ॥ ८७ ॥ कुंकुम, फूल, चन्दन, ताम्बूल, जल, अक्षत व सातवां लोन कहागया है और आठवां जीरा है ॥
८८ ॥ इन सबों को तौलासे तौलावै व इनसे पूजनकरै तो वह ससार में अनुपम स्त्री होती है और सुवर्ण व सुगन्धित वस्तुओं और उत्तम फलोंसे भी पूजन करनेसे
उत्तम फलको प्राप्तहोती है ॥ ८९ ॥ और पश्चात् जो लोनको भोजन करती है वह संसार में विधवा नहीं होती है माघ व कार्त्तिकमें भी और चैत्रमें स्नान कर

यावै पुष्पैर्धूपैर्विलेपनैः ॥ ८६ ॥ दास्यतेचाष्टसौभाग्यं यानारीभक्तिसंयुता ॥ पितरौश्वशुरौपुत्रान्पतिंसौभाग्यसम्प
दम् ॥ ८७ ॥ कुङ्कुमंपुष्पश्रीखण्डं ताम्बूलंजलमक्षतान् ॥ सप्तमंलवणंप्रोक्तमष्टमंचैवजीरकम् ॥ ८८ ॥ तोलयेत्तो
लयाचापि साविश्वंतुलिताभवेत् ॥ सुवर्णेनाथसौगन्धद्रव्यैःशुभफलैरपि ॥ ८९ ॥ भुक्तेवालवणंपश्चान्नसास्याद्विध
वाभवे ॥ माघेवाकार्त्तिकेवापि चैत्रेस्नात्वार्थयेतमाम् ॥ ९० ॥ दौर्भाग्यदुःखदारिद्र्यैर्नसासंयोगमाप्नुयात् ॥ श्रुत्वेति
गिरिजावाचं सानन्दःपार्वतीसुतः ॥ ९१ ॥ स्थापयित्वागिरिसुतां विनायकमथाब्रवीत् ॥ पुष्पैर्धूपैर्मोदकैश्च पूर्वमभ्य
र्चयेत्वामपि ॥ पूजयन्तिकुमारेशं तेषांविघ्नहरोभव ॥ ९२ ॥ गणेशउवाच ॥ भ्रातस्त्वयास्थापितेस्मिँल्लिङ्गेभ
क्ताश्चयेनराः ॥ नतेषांममविघ्नानि ममचाप्यनुगामिनाम् ॥ ९३ ॥ एवमुक्तेविघ्नराजे प्रसन्नेस्थापितस्त्वसौ ॥ तस्मा
दसौसदाभ्यर्च्यश्चतुर्थ्यांचविशेषतः ॥ ९४ ॥ एवंस्थाप्यकुमारेशं लब्ध्वाचैतान्वराञ्छिवात् ॥ मुदितःकृतकृत्यज्ञा

जो मुझको पूजती है ॥ ९० ॥ वह दुर्भाग्यता, दुःख व दरिद्रोंसे संयोग को नहीं प्राप्तहोती है यह पार्वतीजी का वचन सुनकर आनन्द समेत पार्वती के पुत्र स्वा-
मिकार्त्तिकेयजी ॥ ९१ ॥ गिरिनन्दिनी पार्वती जीको थापकर इसके उपरान्त गणेशजी से बोले कि पुष्प, धूप व लड्डुओंसे पहले तुमको भी पूजकर जो कुमारेशको
पूजैं तुम उनके विघ्नहारक हो ॥ ९२ ॥ गणेशजी बोले कि हे भाई ! तुमसे थापेहुये इस लिंगमें जो नर भक्तहैं उनको मेरे विघ्न न होवैंगे और मेरे अनुगामियों को
भी विघ्न न होवैंगे ॥ ९३ ॥ प्रसन्न गणेशजीके ऐसा कहनेपर ये स्थापन कियेगये इसलिये ये गणेशजी सदैव पूजने योग्यहैं व चौथिमें विशेषकर पूजनीय हैं ॥ ९४ ॥

इस भांति कुमारेशको थापकर व शिवजी से इन वरदानों को पाकर प्रसन्न स्वामिकार्त्तिकेय जी ने अपनाको कृतार्थ माना ॥ ९५ ॥ और वहीं कुमारेश्वर के समीप अंशसे टिके व यहां टिकेहुये शिवजीको स्वामिकार्त्तिकेयकी यात्रावाले जो मनुष्य देखतेहैं हे भारत ! उनकी स्वामियात्रा सफल होतीहै॥९६॥और कार्त्तिकी पौर्णमासीमें यदि विशेषकर स्वामिकार्त्तिकेय जी का पूजनकरै तो स्वामिकार्त्तिकेय जी की यात्रामें जो फल मिलताहै उस फलको भलीभांति प्राप्तहोता है ॥ ९७ ॥ और रोगोंसे विकल मनुष्य रोगोंसे छूटजाता है और पवित्रहोकर ब्रह्मचारी एकसौ आठ नामों को जपकर महीनेभर में संकट से छूटजाता है ॥ ९८ ॥ हे अर्जुनजी ! इस प्रकारका

त्मानंमेनेषडाननः ॥ ९५ ॥ तस्थावंशेनतत्रैव कुमारेश्वरसन्निधौ ॥ अत्रस्थितंहरंयेये पश्यन्तिस्वामियात्रिणः ॥ सफलास्वामियात्राच तेषांभवतिभारत ॥ ९६ ॥ कार्त्तिक्याञ्चविशेषेण कार्त्तिकेयंसमर्चयेत् ॥ यत्फलंस्वामियात्रायां तत्फलंसमवाप्नुते ॥ ९७ ॥ रोगाभिभूतोरोगैर्वा नाम्नामष्टोत्तरंशतम् ॥ जप्त्वाशुचिर्ब्रह्मचारी मासंमुच्येतसंकटात् ॥ ९८ ॥ एवंविधमिदंपार्थ महीसागरसङ्गमम् ॥ निर्मलीकृत्यचात्मानं साधवर्थेलिङ्गमर्पितम् ॥ ९९ ॥ एतदाराध्यसंजातं रेजूरामादयःपुरा ॥ शतसंख्याबलंराज्यं रुद्रलोकञ्चलेभिरे ॥ १०० ॥ जामदग्न्यस्त्विदंलिङ्गमाराध्यचसमाहितः ॥ लेभेकुठारमुज्जह्रे येनार्ज्जुनभुजान्युधि ॥ १ ॥ अग्रतोदेवदेवस्य ज्ञात्वातीर्थमहागुणान् ॥ रामेश्वरमितिख्यातं स्थापितंलिङ्गमुत्तमम् ॥ २ ॥ तच्चयोभ्यर्चयेद्भक्त्यारुद्रलोकंसगच्छति ॥ प्रीतश्चतस्यरामश्च कुमारेशश्चफा

यह महीसागरसंगम है स्वामिकार्त्तिकेय जीने जीवात्मा को निर्मलकर साधुजनों के लिये लिंगको स्थापन कियाहै ॥ ९९ ॥ व भलीभांति पैदाहुये इस लिंगको आराधकर रामादिक मनुष्य शोभित हुये हैं और सैकड़ों संख्यक पुरुषोंने बल, राज्य व शिवलोक को पायाहै ॥ १०० ॥ और जमदग्नि के पुत्र परशुरामजी ने सावधान होकर इस लिंगको आराधकर फरसाको पायाहै कि जिससे युद्धमे सहस्रार्जुन की भुजाओंको काटडाला है ॥ १ ॥ व देवदेव शिवजी के आगे तीर्थके बड़भारी गुणो को जानकर रामेश्वर ऐसे प्रसिद्ध उत्तम लिंगको स्थापन किया है ॥ २ ॥ जो पुरुष भक्तिसे उसको पूजता है वह शिवलोक को जाताहै व हे अर्जुनजी ! उसके ऊपर

रामेश्वर व कुमारेशजी प्रसन्न होते हैं ॥ ३ ॥ यह संक्षेप से कुमारेश का वर्णन कहागया जो पुरुष कुमारेशके माहात्म्य को उनके आगे कहता है ॥ ४ ॥ और जो सु-
नतेहैं व सुनकर प्रसन्न होते हैं वे शिवजी के लोकमें बसते हैं व श्राद्धके समय में जो मनुष्य इस लिंगके माहात्म्य को पढ़ताहै ॥ ५ ॥ उसकी वह श्राद्ध अक्षय होती
है इसमें सन्देह नहीं है और यदि इस लिंगके माहात्म्यको गर्भिणी स्त्रीको सुनावै ॥६॥ तो गुणवान् पुत्र पैदाहोताहै और कन्याभी पतिव्रता होती है यह चरित्र पवित्र
व पापहारक, धर्मदायक व आनन्दकारकहै और पढ़ते व सुनते हुये भी पुरुषोंके सब मनोरथोंका दायकहै ॥१०७॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेदेवीदयालुमिश्र

ल्गुन ॥ ३ ॥ इतिसंक्षेपतःप्रोक्तं कुमारेशस्यवर्णनम् ॥ कुमारेशस्यमाहात्म्यं कीर्त्तयेद्यस्तदग्रतः॥ ४॥ येचशृण्वन्ति
नन्दन्ति रुद्रलोकेवसन्तिते ॥ अस्यलिङ्गस्यमाहात्म्यं श्राद्धकालेचयःपठेत॥५॥ पितॄणामक्षयंश्राद्धं जायतेनात्रसंश
यः॥अस्यलिङ्गस्यमाहात्म्यंगुर्विणींश्रावयेद्यदि॥६॥ गुणवाञ्जायतेपुत्रःकन्याचापिपतिव्रता ॥ एतत्पुण्यंपापहरं धर्म्यं
चाह्लादकारकम् ॥ पठतांशृण्वतांवापि सर्वाभीष्टफलप्रदम् ॥१०७॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डे श्रीकुमारेश
माहात्म्यवर्णनन्नामसप्तविंशोध्यायः ॥ २७ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

नारदउवाच ॥ कुमारेणस्थापितेत्र कुमारेशेततस्सुराः ॥ प्रणम्यगुहमूचुश्च संबद्धकरसम्पुटाः ॥ १ ॥ किञ्चिद्विज्ञाप
यिष्यामो वयंत्वांशृणुतत्प्रभो ॥ पूर्वप्रसिद्धआचारः प्रोच्यतेजयिनामयम् ॥ २ ॥ जयन्तियेरणेशत्रूंस्तैःकार्यस्तत्रचि
ह्नकः ॥ तस्मात्त्वजयोद्योतनिमित्तंस्तम्भमुत्तमम् ॥ ३ ॥ निक्षिपामःस्वयंयावत्तदनुज्ञातुमर्हसि ॥ विश्वकर्मोऽत्र ॥

विरचितायाभाषाटीकायांश्रीकुमारेश्वरमाहात्म्यवर्णनंनामसप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥ ॥

दो० । स्तम्भेश्वर नामक शिवहि थाप्यो षण्मुख देव । अट्ठाइस अध्यायमें सो सुखदायक भेव ॥ नारदजी बोले कि यहांपर स्वामिकार्त्तिकेयजीसे कुमारेशके स्था-
पित होनेपर तदनन्तर हाथोंको जोड़ेहुये देवता स्वामिकार्त्तिकेय जीको प्रणामकर बोले ॥ १ ॥ कि हे प्रभो ! हमलोग कुछ विनय करते हैं उसको सुनिये कि जीत-
वाले जनोंको पहले से प्रसिद्ध यह आचार कहाजाता है ॥ २ ॥ कि जो संग्राम में शत्रुवों को जीतते हैं उनको वहां चिह्न करना चाहिये इसलिये तुम्हारी जीत के

प्रकाश के निमित्त उत्तम स्तम्भको ॥ ३ ॥ जबतक हमलोग आपही जलमें डालैं तबतक तुम उसको आज्ञा देने के लिये योग्यहो और विश्वकर्मा से रचाहुआ जो तीसरा उत्तम लिंगहै ॥ ४ ॥ उसको हे शिवात्मज ! उस स्तम्भके आगे स्थापन कीजिये देवताओंके ऐसा कहने पर उदारमनवाले स्वामिकार्त्तिकेय जीने यह कहा कि वैसाही होवै ॥५॥ तदनन्तर प्रसन्न होतेहुये इन्द्रादिक देवताओं ने सुवर्णमय सुन्दर व रत्नमय स्तम्भको जलमें फेंक दिया ॥ ६ ॥ और उसके आगे उन देवताओं ने चारों दिशाओं में समस्त रत्नमय चौतरेको बनाया उसपै प्रसन्न होतीहुई उत्तम अप्सराओं ने दश प्रकार से नृत्य किया और प्रसन्न होतीहुई मातृदेवता-

तंयच्च तृतीयंलिङ्गमुत्तमम् ॥ ४ ॥ तस्यस्तम्भस्याग्रतश्च संस्थापयशिवात्मज ॥ एवमुक्तस्सुरैःस्कन्दस्तथेत्याहमहामनाः ॥ ५ ॥ ततोहृष्टास्सुरगणाः शक्राद्याःस्तम्भमुत्तमम् ॥ जाम्बूनदमयंशुभ्रं रत्नमप्सुनिचिक्षिपुः ॥ ६ ॥ पुरतःस्थण्डिलंदिक्षु सर्वरत्नमयन्तुते ॥ तत्रहृष्टाश्चाप्सरसो नन्नृतुर्दशधाशुभाः ॥ मातरोमङ्गलान्यस्यजगुःस्कन्दस्यहर्षिताः ॥ ७ ॥ इन्द्राद्यानन्नृतुस्तत्र स्वयंविष्णुश्चवादकः ॥ पेतुःखात्पुष्पवर्षाणि देववाद्यानिसस्वनुः ॥ ८ ॥ एवंस्तम्भंसमारोप्य यच्चाख्यंविश्वनन्दकम् ॥ स्तम्भेश्वरस्ततोदेवः स्थापितश्चैवपश्चिमे ॥ ९ ॥ विरञ्चिप्रमुखैर्देवैर्जातानन्दैस्समन्तदा ॥ हरीशादित्यसंयुक्तैस्सेन्द्रैर्मुनिगणैरपि ॥ १० ॥ तस्यैवपश्चिमेभागे शक्त्यग्रेणमहात्मना ॥ गुहेनानिर्मितःकूपो गङ्गातत्रातलोद्भवा ॥ ११ ॥ माघस्यचचतुर्दश्यां कृष्णायांपितृतर्पणम् ॥ कूपेस्नानन्नरःकृत्वा कुर्याद्यःपाण्डुनन्द

ओं ने इन स्वामिकार्त्तिकेय जीके मंगलों को गाया ॥ ७ ॥ और वहां इन्द्रादिकों ने नृत्य किया और आपही विष्णु बाजाको बजानेवाले हुये आकाश से फूलों की वृष्टिझरी व देवताओं के बाजा बजे ॥ ८ ॥ जो विश्वनन्दक नामक है उस स्तम्भको भलीभांति आरोपणकर तदनन्तर पश्चिम दिशामें स्तम्भेश्वर देवजी थापेगये ॥ ९ ॥ व उस समय प्राप्त आनन्दवाले ब्रह्मादिक देवताओं समेत और विष्णु, शिव, सूर्य संयुत इन्द्र समेत देवताओं सहित और मुनिगणों से भी संयुत ॥ १० ॥ महात्मा स्वामिकार्त्तिकेय जीने उसीके पश्चिम भागमें शक्तिके आगे कूपका निर्माण किया और वहां अतल से उपजीहुई गंगाजी प्राप्त हैं ॥ ११ ॥

हे पाण्डुपुत्र ! माघकी कृष्णपक्षवाली चौदसिमें जो मनुष्य उस कूपमें नहाकर पितरोंका तर्पण करताहै ॥ १२ ॥ तो गयाजीमें श्राद्धसे जो पुण्य मिलती है उसी फल
को वह प्रकटहो प्राप्तहोता है तदनन्तर स्तम्भेश्वर देवको जो मनुष्य चन्दनादिक सुगंधित वस्तुओं और फूलों से पूजता है ॥१३॥ वह वाजपेय यज्ञके फलको पाकर
शिवजीके स्थानमें सुखको प्राप्तहोताहै पौर्णमासी व अमावसमें जो पापहीन पुरुष महीसागर के संगममें श्राद्धकर स्तंभेश्वरको पूजताहै उसके पितर तृप्तहोते हैं व तृप्त
होकर आशीर्वादोंको देतेहैं ॥१४।१५॥ और वह सब पातकों को नाशकर शिवजीके लोकमें पूजित होताहै पुरातन समय स्वामिकार्त्तिकेय जीकी प्रसन्नताकेलिये सदा-

नः ॥ १२ ॥ गयाश्राद्धेनयत्पुण्यंतत्फलंलभतेस्फुटम् ॥ स्तम्भेश्वरंततोदेवं गन्धैःपुष्पैःप्रपूजयेत् ॥ १३॥ वाजपेयफलं
प्राप्यमोदतेरुद्रसद्मनि ॥ पूर्णामास्याममायाञ्चमहीसागरसङ्गमे ॥१४॥ श्राद्धंकृत्वाचयोऽभ्यर्चेत् स्तम्भेश्वरमकल्मषः ॥
पितरस्तस्यतृप्यन्ति तृप्तायच्छन्तिचाशिषः ॥ १५ ॥ सभित्त्वासर्वपापानि रुद्रलोकेमहीयते ॥ इत्याहभगवान्रुद्रः स्क
न्दस्यप्रीतयेपुरा ॥ १६ ॥ एवमेवचतुर्थञ्च स्थापितंलिङ्गमुत्तमम् ॥ प्रणेमुर्देवतास्सर्वे साधुसाध्वितिवेजगुः ॥ १७ ॥
इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डे स्तम्भेश्वरमाहात्म्यन्नामाष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥ * ॥ * ॥
नारदउवाच ॥ एवंदृष्ट्वातितानि लिङ्गानिहरसूनुना ॥ हरिब्रह्मेन्द्रप्रमुखा देवाःप्रोचुःपरस्परम् ॥ १ ॥ अहोधन्यः
कुमारोयं महीसागरसङ्गमे ॥ येनचत्वारिलिङ्गानिस्थापितानिसुदुर्लभे ॥ २ ॥ वयमप्यत्रशुद्ध्यर्थंतोषार्थंस्कन्दरुद्रयोः ॥

शिवजी ने यह कहाहै ॥ १६ ॥ ऐसेही जो चौथा उत्तम लिंग स्थापन किया गयाहै उसको सब देवताओंने प्रणामकिया व बहुतअच्छा बहुतअच्छा ऐसा कहा ॥ १७ ॥
इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायाभाषाटीकायांस्तम्भेश्वरमाहात्म्यंनामाष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥
दोहा। सकल सुरन लिंगहि थप्यो सिद्धेश्वर अस नाम। उन्तिसवें अध्यायमें सोईचरित ललाम ॥ १ ॥ नारदजी बोले कि शिवजी के पुत्रसे थापेहुये पृथ्वी में उन
लिंगोंको देखकर विष्णु, ब्रह्मा व इन्द्रादिक देवताओंने आपसमें कहा ॥ १ ॥ कि अहो ये स्वामिकार्त्तिकेयजी धन्य हैं कि जिन्होंने अत्यन्तदुर्लभ महीसागरसंगम

तीर्थमें चारलिंगोंको स्थापन किया ॥ २ ॥ हमलोगभी शुद्धि के लिये व स्वामिकार्त्तिकेय और शिवजीकी प्रसन्नता के निमित्त यहां भलाई के लिये और आत्मलाभ के लिये लिंगोंकी परंपराको करैंगे ॥ ३ ॥ अथवा करोड़ों देवता व मुनिलोग सब यदि इस महीसागर के किनारे पै असंख्य लिंगोंको स्थापन करैंगे ॥ ४ ॥ तो हे देवताओ ! बहुत होनेके कारण से उनका पूजन कैसे होगा और जिसकी राज्यमें शक्ति से एक लिंग नहीं पूजाजाता है ॥५॥ उसकी वह राज्य दुर्भिक्ष, रोग व चोरोंसे पीड़ित होती है इसलिये मिलकर हमलोग एक उत्तम लिंगको थापैंगे ॥ ६ ॥ यह सम्मनिकर व शिवजी से आज्ञाको पाकर प्रसन्न होतेहुये सब देवताओं ने और

साध्वर्थेचात्मलाभाय कुर्मोलिङ्गपरम्पराम् ॥ ३ ॥ अथवाकोटिशोदेवा मुनयश्चैवसंख्यया ॥ सर्वेचेत्स्थापयिष्यन्ति लिङ्गान्यत्रमहीतटे ॥ ४ ॥ पूजातेषांकथंभावी बहुत्वाचात्रभोःसुराः ॥ यस्यराष्ट्रेलिङ्गमेकं पूज्यतेनैवशक्तितः ॥ ५ ॥ तस्यसीदतितद्राष्ट्रं दुर्भिक्षव्याधितस्करैः ॥ सम्भूयस्थापयिष्यामो लिङ्गमेकंततःशुभम् ॥ ६ ॥ इतिकृत्वामतिंसर्वे प्राप्यानुज्ञांमहेश्वरात् ॥ प्रहर्षितागुहश्चैव हरिब्रह्ममुखाःसुराः ॥ ७ ॥ भूमिभागंशुभंवीक्ष्य विजनेलिङ्गमुत्तमम् ॥ स्थापयामासुरथते स्वयंब्रह्मविनिर्मितम् ॥ ८ ॥ सिद्धार्थैस्थापितंयस्माद्देवैर्ब्रह्मादिभिःस्वयम् ॥ सिद्धेश्वरमितिप्राहुर्नामलिङ्गस्यतस्यवै ॥ ९ ॥ सर्वैर्देवैस्तत्रदिव्यं खानितंसरउत्तमम् ॥ सर्वतीर्थोदकैःशुभ्रैःपूरितञ्चमहात्मभिः ॥ १० ॥ एतस्मिन्नन्तरेपार्थ पातालाच्छेषनन्दनः ॥ कुमुदोनामचागत्य प्राहशेषादिपन्नगान् ॥ ११ ॥ अस्मिंस्तारकयुद्धेतु प्रलम्बोनाम दानवः ॥ पलायित्वास्कन्दभीत्यायःपातालंसमाविशत् ॥ १२ ॥ सर्वोवसूनिपुत्रांश्च भार्याःकन्यागृहाणिच ॥ विध्वंस

स्वामिकार्त्तिकेयजी व विष्णु और ब्रह्मा इत्यादिक देवताओं ने ॥ ७ ॥ उत्तम भूमिभागको देखकर इसके अनन्तर आपही ब्रह्मासे निर्मित लिंगको उन्हों ने एकान्त स्थापन किया ॥ ८ ॥ जिसलिये सिद्ध प्रयोजनोंवाले समस्त देवताओं ने आपही लिंगको स्थापन किया इससे उस लिंगका सिद्धेश्वर ऐसा नाम कहा है ॥ ९ ॥ और वहांपर सब देवताओं ने उत्तम तडागको खुदाय व महात्माओं ने सब तीर्थों के उत्तम जलोंसे उसको पूर्णकिया ॥ १० ॥ इसी अवसर मे हे अर्जुनजी ! कुमुद नामक शेषके पुत्रने पातालसे आकर शेषादिक सर्पोंसे कहा ॥ ११ ॥ कि इस तारक युद्धमे स्वामिकार्त्तिकेयके डरसे भगकर जो प्रलम्ब नामक दानव पातालमें पैठगयाहै ॥ १२ ॥

वह तुमलोगों के धन, पुत्र, स्त्री, कन्या व घरोंको विध्वंस करता है इससे हे नागेन्द्रो ! शीघ्रही दौड़िये २ ॥ १३ ॥ शेषके पुत्र कुमुद की उस वाक्य को सुनकर उन नागेन्द्रों ने उत्कण्ठताको पाया व जायँगे २ ऐसा कहने लगे ॥१४॥ तदनन्तर उनको रोंककर इसके उपरान्त क्रोधित होतेहुये स्वामिकार्त्तिकेयजी ने शक्तिको लिया व दैत्य माराजावै यह कहकर पातालके लिये उस शक्तिको छोड़दिया ॥ १५॥ तदनन्तर स्वामिकार्त्तिकेय जी की भुजासे छूटीहुई वह शक्ति वेगसे पृथ्वीको फो-ड़कर अचानकही पैठ गई जैसे कि भाग्य मनुष्य में पैठ जाती है ॥ १६ ॥ और दश करोड़ दैत्यों से संयुत उरा प्रलम्ब को जलाकर व नागों को प्रसन्न कर जल

यतिनागेन्द्राः शीघ्रंधावतधावत ॥ १३ ॥ शेषात्मजस्यतद्वाक्यं कुमुदस्यनिशम्यते ॥ औत्सुक्यमापुर्नागेन्द्रा याम यामेतिवादिनः ॥ १४ ॥ तन्निवार्यततःस्कन्दः क्रुद्धःशक्तिमथाददे ॥ पातालायमुमोचाथ प्रोक्त्वादैत्योनिहन्यताम् ॥ १५ ॥ ततःस्कन्दभुजोत्सृष्टा भुवंनिर्भिद्यवेगतः ॥ प्रविष्टासहसाशक्तिर्यथादैवंनरम्प्रति ॥ १६ ॥ सातंदग्ध्वाप्रलम्बञ्च कोटिभिर्दशभिर्युतम् ॥ नन्दयित्वागतानागाञ्जलकल्लोलपूर्णिका ॥ १७ ॥ यान्त्याशक्त्यातथामार्गे यत्कृतंविवरम्भुवि ॥ पातालगङ्गातोयेन पूरितंपापहारिणा ॥ १८ ॥ तस्यनामददौस्कन्दः सिद्धकूपइतिप्रभुः ॥ कृष्णाष्टम्यांचतुर्दश्यामुपवासीनरश्चयः ॥ १९ ॥ स्नात्वाकूपेर्चयेद्देवं सिद्धेश्वरमनन्यधीः ॥ अनेकभवसम्भूतं पापंतस्यपलायते ॥ २० ॥ सिद्धकुण्डेचयःस्नानं कुरुतेश्रद्धयायुतः ॥ सर्वकल्मषनिर्मुक्तो भक्तियोग्योभवेद्ध्रुवं ॥ २१ ॥ वटश्चाप्यक्षयस्तस्य तुष्टोहरोवरन्ददौ ॥ प्रयागवटतुल्योयमत्रश्राद्धंकरोतियः ॥ २२ ॥ पितृणामक्षयंदानं सर्वेषांपिण्डपातनात् ॥

की बड़ी भारी लहरियोंपूर्वक वह शक्ति आगई ॥ १७ ॥ वैसेही मार्ग मे जाती हुई शक्ति से भूमि में जो गढ़ा किया गया वह पातालगंगा के पापहारी जल से पूर्ण होगया ॥ १८ ॥ उस का नाम स्वामिकार्त्तिकेय प्रभु ने सिद्धकूप ऐसा दिया कृष्णपक्ष की अष्टमी व चौदसि मे जो उपवासी पुरुष ॥ १९ ॥ उस कूपमें नहाकर अनन्यबुद्धिहोकर सिद्धेश्वर देवजीको पूजन करैगा अनेक जन्मों से उपजाहुआ उसका पाप भगजावैगा ॥ २० ॥ और श्रद्धासंयुत जो पुरुष सिद्धकुण्डमे स्नान करता है वह सब पातकोसे छूटकर संसार में भक्तिके योग्य होताहै ॥ २१ ॥ और अक्षयवट भी है उसको प्रसन्न होतेहुये शिवजी ने वर दियाहै कि यह प्रयागके वट

की नाईं है यहां जो श्राद्ध करता है ॥ २२ ॥ पिण्डके पातन से उस के सब पितरोंको अक्षयदान होताहै तदनन्तर उस समय स्वामिकार्त्तिकेय समेत ब्रह्मादिक देवताओं ने ॥२३॥ बडीभारी शक्ति सिद्धाम्बिका ईश्वरीकी प्रार्थना किया कि तुमरो प्रवेश कियेहुये मत्स्यरूपी जनार्दन भगवान् ने ॥ २४ ॥ संसारके उधारने के लिये अनेकों कर्मोंको कियाहै इस प्रकार उन भगवती से देवताओं ने प्रार्थना किया कि हे शुभे ! तुमको यहां छोडना न चाहिये ॥ २५ ॥ यहांपर टिकीहुई तुम इस समस्त क्षेत्रको दुष्टसे रक्षाकरो हे शुभे ! अष्टमी व चौदसि में बलिप्रदान व पुष्पों से तुमको ॥ २६ ॥ जो मनुष्य पूजें वे समस्त विपत्तियों से सदैव तुमसे रक्षा करने

ततो ब्रह्मादयोदेवाः स्कन्देनसहितास्तदा ॥२३॥ सिद्धाम्बिकांमहाशक्तिं प्रार्थयामासुरीश्वरीम्॥त्वयाविष्टोहिभगवान् मत्स्यरूपीजनार्द्दनः ॥ २४ ॥ जगदुद्धारणार्थाय चक्रेकर्माण्यनेकशः ॥ इतितांप्रार्थयामासुरत्रत्याज्यंनतेशुभे ॥ २५ ॥ अत्रास्थितासर्वमिदं क्षेत्रंपालयदुष्टतः ॥ अष्टम्यांचचतुर्द्दश्यां बलिपुष्पैश्चत्वांशुभे ॥ २६ ॥ येपूजयन्तितेपाल्यास्सर्वापद्भ्यस्त्वयासदा ॥ एवमुक्तासिद्धमाता तथेतिप्रत्यवोचत ॥ २७ ॥ स्थापयामासुरथतां लिङ्गादुत्तरभागतः॥तत्रक्षेत्रेपितन्देवाश्चतुःषष्टिमहेश्वरम् ॥ २८ ॥ सिद्धेशंनामक्षेत्रस्य रक्षार्थंनिदधुःस्वयम्॥ तंचयेपूजयिष्यन्ति कार्यारम्भेषुसर्वदा ॥ २९ ॥ वर्षेवर्षेराजमाषबलिनाचविशेषतः ॥ तानसौपालयेत्तुष्टः पितातोकानिवस्वकान् ॥ ३० ॥ ततः सिद्धिकृतेदेवास्तत्रसिद्धविनायकम् ॥ कपर्दितनयंपार्थ स्थापयाञ्चक्रिरेमुदा ॥ ३१ ॥ तञ्चयेपूजयन्त्यत्र कार्यारम्भेषु

योग्यहैं इस प्रकार कहीहुई सिद्धमाताने यह कहा कि वैसाही होगा ॥ २७ ॥ इसके अनन्तर लिंगसे उत्तर भागमें देवताओं ने उन भगवती को स्थापन किया व उस क्षेत्रमें भी देवताओं ने चतुःषष्टिमहेश्वर ॥ २८ ॥ सिद्धेश्वर नामकको क्षेत्रकी रक्षा के लिये आपही स्थापन किया सदैव जो मनुष्य कार्यके प्रारम्भ में उन सिद्धेश्वर को पूजैंगे ॥ २९॥ व वर्ष २ में जो विशेषता से लोबिया की बलिसे पूजन करतेहैं उनको प्रसन्न होतेहुये ये शिवजी पालन करते हैं जैसे कि पिता अपने पुत्रोंको पालता है ॥ ३० ॥ तदनन्तर हे अर्जुन जी ! देवताओं ने वहां सिद्धिके लिये शिवजीके पुत्र सिद्धविनायक को हर्षसे स्थापन किया ॥ ३१ ॥ इस संसारमें जो मनुष्य

कार्यके प्रारम्भों में सदैव उनको पूजते हैं उनकी सिद्धिको ये प्रबल विघ्नराज जी देते हैं ॥ ३२ ॥ इस प्रकार यहां सिद्धसप्तकको जो सदैव पूजताहै व देखताहै और स्मरण करता है वह समस्त दोषोंसे छूटजाता है ॥ ३३ ॥ सिद्धेश्वर, सिद्धवट व साक्षात् सिद्धाम्बिका, सिद्धविनायक, सिद्धेशक्षेत्राधिपति व सिद्धसर और सिद्धकूप ये सातों सिद्धक्षेत्र हैं ॥ ३४ ॥ यहापर प्रसन्न होतेहुये शिवजी ने देवताओं को दुर्लभ वरों को दिया है कि वैशाख महीनेकी कृष्णपक्षवाली अष्टमीमें जो सिद्धकूप में ॥ ३५ ॥ नहाकर व वटके नीचे पिण्डोंको देकर मुझे पूजताहै वह सिद्धिका भागी होताहै और जो ब्रह्मचारी जितेन्द्रिय होकर ॥ ३६ ॥ मुझको सदैव पूजताहै उसके

सर्वदा ॥ तेषांसिद्धिंददात्येष प्रबलोविघ्नराड्भवे ॥ ३२ ॥ इत्यत्रपूजयेद्यस्तु सततंसिद्धसप्तकम् ॥ पश्येद्वास्मरतेवापि
सर्वदोषैर्विमुच्यते ॥ ३३ ॥ सिद्धेश्वरःसिद्धवटश्चसाक्षात्सिद्धाम्बिकासिद्धविनायकश्च ॥ सिद्धेशक्षेत्राधिपतिश्चसिद्धस
रस्तथासिद्धकूपश्चसप्त ॥ ३४ ॥ अत्रतुष्टोददौरुद्रस्सुराणांदुर्लभान्वरान् ॥ वैशाखमासस्याष्टम्यां कृष्णायांसिद्धकूप
के ॥ ३५ ॥ स्नात्वापिण्डान्वटेदत्त्वापूजयेन्मांश्चसिद्धिभाक् ॥ सदायोभ्यर्चयेन्मांच ब्रह्मचारीजितेन्द्रियः ॥ ३६ ॥
अष्टाविष्टकरानित्यं भवेयुस्तस्यसिद्धयः ॥ मन्त्रजाप्यंबलिंहोमममन्त्रयःकुरुतेनरः ॥ ३७ ॥ एकचित्तःशुचिर्भूत्वा सोमी
ष्टांसिद्धिमाप्नुयात् ॥ समाहितमनावाथ सिद्धेशंयस्तुपश्यति ॥ ३८ ॥ तस्यसिद्धिर्भवत्येव विघ्नैर्यदिनहन्यते ॥ सिद्धा
म्बिकामहादेवी चात्रसन्निहितास्तिया ॥ ३९ ॥ सिद्धिदासाधकेन्द्राणां महाविद्यांयजन्तिये ॥ धीरेभ्योब्रह्मचारिभ्यः शु
द्धचित्तेभ्यएवच ॥ ४० ॥ मन्त्रजप्याद्ददात्येषा सर्वसिद्धिंयथेप्सिताम् ॥ पातालस्यबिलंचैतद्गुहशक्त्याकृतंमहत् ॥ ४१ ॥

नित्यही प्रियकारिणी आठ सिद्धियां होती हैं व एकचित्त और पवित्र होकर जो मनुष्य यहां मन्त्रका जप, बलि व होम करता है वह प्यारी सिद्धिको प्राप्तहोता है अथवा सावधानमनवाला जो पुरुष सिद्धेशजी को देखता है ॥ ३७ । ३८ ॥ उसकी सिद्धि होतीही है यदि विघ्नोंसे नाश न कियाजावे और जो यहां सिद्धाम्बिका महा-देवी भलीभांति स्थितहै ॥ ३९ ॥ वे साधकोंमें उत्तम जनोंको सिद्धि देनेवाली हैं उन महाविद्या को जो पूजते हैं उन धीर, ब्रह्मचारी व शुद्धचित्तवाले जनोंके लिये ॥ ४० ॥ यह भगवती मन्त्रके जपसे अभिलाष के अनुकूल सब सिद्धिको देतीहैं और स्वामिकार्त्तिकेय जी की शक्तिने पाताल के इस बड़ेभारी गढ़ेको किया है ॥ ४१ ॥

और वहां जो विघ्नक्षेत्र है यहां सिद्धाम्बिका जीके प्रसादसे बहुत से अनेक भांतिके ऐश्वर्यों को मनुष्य पाते हैं ॥ ४२ ॥ हे देवताओ ! यहां करोड़ों पुरुष सिद्धिको प्राप्त होवैंगे और विद्याधरता, देवत्व, गन्धर्वत्व व नागता को ॥ ४३ ॥ और यक्षत्व व अमरता को साधक लोग पावैंगे व यहां विजय नामक चौतराहै उसके प्रभाव से ॥ ४४ ॥ सिद्धाम्बिका को भलीभांति आराधकर मनुष्य दुर्लभ सिद्धिको पावैंगे और यहां टिकेहुये मुझको जो देखैगा व जो मुझको पूजैगा॥४५॥ और चरणके चलाने से याने तीर्थयात्राके निमित्त चलनेसेभी पुण्यकी प्राप्तिहोगी ॥४६॥ नारदजी बोले कि इसभांति त्रिलोचनजी के इन वरदानोंके देनेपर देवतोत्तम प्रसन्नता को प्राप्तहुये

सिद्धाम्बिकाप्रसादेन विघ्नक्षेत्रंचतत्रयत ॥ प्रत्यक्षंप्राप्नुवन्त्यत्र नानाश्चर्याणिभूरिशः ॥ ४२ ॥ अत्रसिद्धिंप्रयास्यन्ति कोटिशःपुरुषाःसुराः ॥ विद्याधरत्वंदेवत्वंगन्धर्वत्वंचनागताम् ॥ ४३ ॥ यक्षत्वंचामरत्वंच प्राप्स्यन्त्यत्रचसाधकाः ॥ अत्रवैविजयोनाम स्थण्डिलस्तत्प्रभावतः ॥ ४४ ॥ सिद्धाम्बिकांसमाराध्य सिद्धिंप्राप्स्यतिदुर्लभाम् ॥ योमांद्रक्ष्यतिचात्रस्थं यश्चमांपूजयिष्यति ॥ ४५ ॥ पादप्रचारतोवापि पुण्यावाप्तिर्भविष्यति ॥ ४६ ॥ नारदउवाच ॥ त्र्यम्बकेणवरेष्वेवं दत्तेष्वेवंसुरोत्तमाः ॥ प्रहर्षंसमपद्यन्त गाथांचेमांजगुस्तदा ॥ ४७ ॥ तेनयज्ञैर्जपैःस्तोत्रैस्तपोभिस्तोषिता वयम् ॥ सर्वेदेवाःसिद्धलिङ्गं योनरःपूजयिष्यति ॥ ४८ ॥ इत्युक्त्वातेमुदंप्राप्य स्कन्देनसहितास्सुराः ॥ करोतिरम्यप्रासादान् योत्रवैशरजन्मनः ॥ ४९ ॥ चतुर्वर्गफलावाप्तिं दत्त्वाक्षेत्राच्चसंययुः ॥ केचित्स्कन्दंप्रशंसन्तस्तीर्थमन्येहरिंपरे ॥ ५० ॥ केचिल्लिङ्गानिपञ्चापि युद्धेकेचिद्दिवंययुः ॥ ततोन्तरिक्षेचालिङ्ग्य महासेनंहरोब्रवीत् ॥ ५१ ॥ सप्तमेम

व उस समय उन्होंने इस गाथाको गाया ॥ ४७ ॥ उससे यज्ञों, जपों, स्तोत्रों व तपोंसे हम सब देवता प्रसन्न करायेगये जो मनुष्य सिद्धलिंग को पूजैगा ॥ ४८ ॥ ऐसा कहकर हर्षको प्राप्तहोकर स्वामिकार्त्तिकेय समेत वे देवता जो यहां स्वामिकार्त्तिकेयजीके उत्तम मन्दिरोंको करता है ॥ ४९ ॥ उसको धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष की प्राप्तिको देकर क्षेत्रसे चलेगये कोई स्वामिकार्त्तिकेयजीकी प्रशंसा करतेहैं अन्य तीर्थकी व दूसरे विष्णुकी प्रशंसा करतेहैं ॥५०॥ व कोई पांचोंलिंगोंकी प्रशंसाकरतेहुये व कोईयुद्धको प्रशंसतेहुये स्वर्गको चलेगये तदनन्तर आकाशमें स्वामिकार्त्तिकेयजी को लिपटाकर महादेवजी बोले ॥ ५१ ॥ कि हे प्रपालक ! सातवें पवनसमूह

पै नित्यही बसिये व हे पुत्र ! कार्यों में मैं सदैवही तुमसे पूछने योग्यहूं ॥ ५२ ॥ तुम मेरे दर्शन व भक्तिसे परमकल्याण को पावोगे हे वत्स ! मैं स्तम्भतीर्थ को कभी
न छोड़ूंगा ॥ ५३ ॥ यह कहकर व लिपटाकर महादेवजी ने इन स्वामिकार्त्तिकेयको बिदाकिया और ब्रह्मा व विष्णु आदिक देवता उन शिवजीसे भक्तिके कारण प्रशंसित
हुये ॥ ५४ ॥ तदनन्तर बिदाकिये हुये वे देवता अपने २ स्थानोंको चलेगये शिवजी कैलासको गये व सातवे पवनसमूहपै स्वामिकार्त्तिकेयजी गये ॥५५॥ हे अर्जुनजी !
पाचलिंगों से उपजे हुये इस वृत्तान्तको मैंने तुमसे कहा जो महाबुद्धिमान् मनुष्य स्वामिकार्त्तिकेयसम्बन्धिनी कथाको पढ़ता है ॥ ५६ ॥ व सुनताहै या सुनाताहै वह मनुष्य

स्तः स्कन्धे वसनित्यंप्रपालक ॥ कार्येष्वहंत्वयापुत्र संप्रष्टव्यस्सदैवहि ॥ ५२ ॥ दर्शनान्ममभक्त्याच श्रेयःपरमवा
प्स्यसि ॥ स्तम्भतीर्थंचवत्साहं नविमोक्ष्यामिकर्हिचित् ॥ ५३ ॥ इत्युक्त्वाविसृज्यैनं परिष्वज्यमहेश्वरः ॥ ब्रह्मविष्णु
मुखाश्चैवं भक्त्यातेनाभिनन्दिताः ॥ ५४ ॥ विसर्जितास्ततोजग्मुः स्वानिस्वान्यालयानिते ॥ शर्वोजगामकैलासं
स्कन्धंवैसप्तमंगुहः ॥५५॥ इत्येतत्कथितंपार्थ लिङ्गपञ्चकसम्भवम् ॥ यःपठेत्स्कन्दसंबद्धां कथांमर्त्योमहामतिः ॥५६॥
शृणुयाच्छ्रावयेद्वापि सभवेत्कीर्तिमान्नरः ॥ बह्वायुःसुभगःश्रीमान् कान्तिमाञ्छुभदर्शनः ॥५७॥ भूतेभ्योनिर्भयश्चापि
सर्वदुःखविवर्जितः ॥ शुचिर्भूत्वापुमान्यश्च कुमारेश्वरसन्निधौ ॥ ५८ ॥ शृणुयात्स्कन्दचरितं महाधनपतिर्भवेत् ॥
बालानांव्याधिदुष्टानां राजद्वारोपसेविनाम् ॥ ५९ ॥ इदन्तुपरमंधन्यं सर्वदोषहरंसदा ॥ तनुत्यजेतुसायोज्यं षण्मुख
स्यव्रजेन्नरः ॥६०॥ वरमेनंददुर्देवाःस्कन्दस्याथगतादिवम् ॥६१॥ इति पञ्चलिङ्गोपाख्यानंनामैकोनत्रिंशोध्यायः॥२९॥

कीर्तिमान् होताहै व बहुतआयुर्बलवाला व सुन्दर व लक्ष्मीवान् और छविवान् व उत्तम दर्शनोंवाला होताहै ॥ ५७ ॥ व प्राणियों से निडर और समस्त दुःखो से
रहित होताहै और पवित्रहोकर जो पुरुष कुमारेश्वरजीके समीप ॥ ५८ ॥ स्वामिकार्त्तिकेयजीके चरितको सुनताहै वह बहुतधनवान् होताहै रोगसे दूषित बालक व राज-
द्वारसेवी जनोंको ॥ ५९ ॥ यह चरित परमधन्यहै व सदैव समस्त दोषोंको हरनेवालाहै और शरीरनाश होनेपर मनुष्य स्वामिकार्त्तिकेयजीकी सायुज्यताको प्राप्त
होताहै ॥६०॥ देवताओंने स्वामिकार्त्तिकेयजीको यह वरदान दियाहै इसके उपरान्त स्वर्गको चलेगये ॥६१॥ इति कुमारिकाखण्डेभाषाटीकायामेकोनत्रिंशोऽध्यायः॥२९॥

दो०। सातो द्वीपन मध्यमहँ अहैं चरित सब जौन। कहत तीस अध्याय में कथा रुचिर अति तौन॥ नारदजी बोले कि हे अर्जुन! इसके उपरान्त मैं तुमसे बर्करीतीर्थका माहात्म्य कहताहूं कि जिसप्रकार हे राजकुमार! सौ सींगोंवाली बर्करिका हुई है॥ १॥ जिसके नामसे यह कुमारिका खण्ड प्रसिद्ध है जोकि धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष चारों पदार्थों को देनेवालाहै॥ २॥ और जिसने पृथ्वीमें अनेक ग्रामोंकी कल्पना कियाहै और जिससे यह भरतखण्ड भलीभांति कल्पित हुआहै॥ ३॥ अर्जुनजी बोले कि हे मुने! यह मुझको बड़ा आश्चर्य है इससे उत्तम सुनने योग्य इस समस्त कुमारीचरित को विस्तार समेत कहिये॥ ४॥ कैसे यह संसार

नारदउवाच॥ बर्करीतीर्थमाहात्म्यमथोवक्ष्यामितेर्ज्जुन॥ यथाबर्करिकाजाताशतशृङ्गान्नृपात्मज॥ १॥ कुमारिकेतिविख्यातं यस्यानाम्नाप्रकथ्यते॥ इदंकुमारिकाखण्डंचतुर्वर्गफलप्रदम्॥ २॥ ययाकृतातुपृथ्व्याञ्च नानाग्रामादिकल्पना॥ इदंभरतखण्डंच ययासम्यक्प्रकल्पितम्॥ ३॥ अर्ज्जुनउवाच॥ महदेतन्ममाश्चर्यं श्रोतव्यंपरंमुने॥ कुमारीचरितंसर्वं कथयस्वसविस्तरम्॥ ४॥ कथंविश्वमिदंजातं कथंचास्तिप्रकल्पितम्॥ कथंचभरतंखण्डंशुश्रूषेयंसदामम॥ ५॥ नारदउवाच॥ अव्यक्तेस्मिन्नृलोकेच प्रकृतिःपुरुषश्चद्वौ॥ अजौसनातनावेकौ केवलंशृणुमोवयम्॥ ६॥ ततःस्वभावकालाभ्यां स्वरूपाभ्यांसमीरिते॥ ईक्षणेनैवप्रकृतेर्महत्तत्त्वमजायत॥ ७॥ महत्तत्त्वाद्विकुर्वाणादहंतत्त्वंव्यजायत॥ त्रिधातन्मुनिभिःप्रोक्तं सत्त्वंराजसतामसम्॥ ८॥ तामसात्पञ्चजातानितन्मात्राणि

उत्पन्न हुआ है व कैसे कल्पित हुआ है और कैसे भरतखंड हुआ है मेरे यह सदैवसे सुनने की इच्छा थी॥ ५॥ नारदजी बोले कि इस अप्रकट मनुष्यलोक में प्रकृति (माया) व पुरुष (परमात्मा) दोनों अज (जन्मरहित) व सनातन (सदैव रहनेवाले) हैं व केवल एक याने अद्वितीय है हम यही सुनते हैं॥ ६॥ तदनन्तर स्वरूपवाले स्वभाव व समय से प्रेरणा करने पर प्रकृति (माया) के देखनेहीसे महत्तत्त्व पैदा हुआ॥ ७॥ व महत्तत्त्व को विकार में प्राप्त होने से अहंकार तत्त्व पैदा हुआ यह अहंकार तत्त्व मुनियों से सत्त्व, राजस व तामस तीनप्रकारका कहागया है॥ ८॥ तामस से पांच तन्मात्रायें (शब्द, स्पर्श, रूप, रस,

गन्ध) उत्पन्न हुई यह विद्वानों ने कहा है और तन्मात्राओं से पांच भूत (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश) पैदा हुये और इन में जो विशेष याने पृथ्वी है उस से पांचों गुण याने शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध उत्पन्न हैं ॥ ९ ॥ व तैजस (राजस) से, अहंकार से पांच ज्ञान इन्द्रियां व पांच कर्म इन्द्रियां उत्पन्न हुईं व गेरहवें मनको विद्वानों ने सात्त्विक कहाहै याने मन सात्त्विक अहंकार से पैदा हुआहै ॥१०॥ पहले चौबिस तत्त्व उत्पन्न हुये हैं ऐसा विद्वानों ने कहाहै हे भारत (अर्जुन) जी! भक्तिसे सदाशिवजी से देखेहुये वे तत्त्व ॥ ११ ॥ बुल्लेके आकार को प्राप्तहुये तदनन्तर उत्तम अण्डा होगया और ब्रह्माण्डका भेद सौ करोड प्रमाण वाला कहा गयाहै ॥ १२ ॥ इस ब्रह्माण्ड के जीवात्मा ब्रह्मा कहे गये हैं उन्होंने इस अण्ड के तीन विभाग किया उसमें ऊपरके विभागमें देवता स्थित हुये और मध्य

विदुर्बुधाः ॥ तन्मात्राभ्यश्चभूतानि विशेषाःपञ्चतद्भवाः ॥ ९ ॥ तैजसाच्चाप्यहङ्काराद् बुद्धिःकर्मेन्द्रियाणि च ॥ एकादशंमनश्चैव सात्त्विकंकवयोविदुः ॥ १० ॥ चतुर्विंशतितत्त्वानि जातानीतिपुराविदुः ॥ सदाशिवेनवैभक्त्यातानिदृष्टानि भारत ॥११॥ बुद्बुदाकारतांजग्मुरण्डंयाततःशुभम् ॥ शतकोटिप्रमाणञ्च ब्रह्मण्डाभेदमुच्यते ॥१२॥ आत्मास्यकथितोब्रह्मा व्यभजत्सत्रिधात्विदम् ॥ ऊर्द्ध्वंतत्रस्थितादेवामध्येचैवचमानवाः ॥ १३ ॥ नागदैत्याश्चपाताले त्रिधैतत्परिकल्पितम् ॥ एकैकंसप्तधाभूयस्ततस्तेनप्रकल्पितम् ॥ १४ ॥ पातालानिचद्वीपानि स्वर्लोकास्सप्तसप्तच ॥ सप्तद्वीपानिवक्ष्यामि शृणुतेषांप्रकल्पनम् ॥ १५ ॥ लक्षयोजनविस्तारं जम्बूद्वीपंप्रकीर्त्यते ॥ सूर्यबिम्बसमाकारं तावत्क्षीरार्णवावृतम् ॥१६॥ शाकद्वीपंद्विगुणतो जम्बूद्वीपात्ततःपरम् ॥ तावताक्षीरतोयेन समुद्रेणपरीवृतम् ॥ १७ ॥ सुरातोयेनदैत्यानां

में मनुष्य स्थितहुये ॥१३॥ और नाग व दैत्य पातालमें स्थितहुये इस प्रकार यह तीन खण्डका कल्पित हुआ तदनन्तर उन ब्रह्माजीने एक एकको फिर सात सात २ खण्डों से कल्पित किया ॥ १४ ॥ सात पाताल, सातद्वीप व सात स्वर्गादिक लोक हुये सात द्वीपों को मैं कहताहूं उनकी कल्पना को सुनिये ॥ १५ ॥ कि लाख योजन विस्तारवाला जम्बूद्वीप कहाजाता है जोकि सूर्यबिम्ब के समान गोल आकार का है और उतनेही प्रमाणवाले क्षीरसागर से घिरा है ॥ १६ ॥ उस जम्बूद्वीप के उपरान्त द्विगुण प्रमाण से याने दोलाख योजन चौड़ा शाकद्वीप है और उतनेही याने दोलाख चौडे दूधके समुद्र से वह घिराहै ॥ १७ ॥

उसके उपरान्त उससे दुगुना पुष्करद्वीप है व उतनेही चौंड़े मदिरा के समुद्र से वह द्वीप घिरा है जोकि दैत्योंको मोह कराता है ॥ १८ ॥ उसके उपरान्त उस द्वीपसे दुगुना कुशद्वीप कहागया है और वह उतनेही प्रमाणवाले दही के समुद्र से चारों ओर घिराहै ॥ १९ ॥ तदनन्तर उससे दुगुना क्रौंचसंज्ञक द्वीपहै जोकि घींके समुद्रसे घिरा है उसके उपरान्त उससे दुगुना शाल्मलि द्वीप है और उतनेही ॥ २० ॥ ऊखके रस स्वरूपवाले समुद्र से चारों ओर घिरा है उसके उपरान्त उससे दूना गोमेदद्वीप है और उतनेही स्वादिष्ठ जलवाले सुन्दर पर्वत से चारोंओर घिराहै इस प्रकार हे अर्जुन जी ! दो करोड़ पांच लाख तीनसौ ॥ २१ । २२ ॥ पचास

मोहकेनार्णवेनहि ॥ पुष्करञ्चततोद्वीपंद्विगुणंतावतावृतम् ॥ १८ ॥ कुशद्वीपंद्विगुणतस्ततस्तत्परतःस्मृतम् ॥ दधितोयेनपरितस्तावदर्णवसंवृतम् ॥ १९ ॥ ततःपरंक्रौञ्चसंज्ञं द्विगुणंहिघृतावृतम् ॥ ततःशाल्मलिद्वीपञ्च द्विगुणंतावतैवच ॥ २० ॥ इक्षुसारस्वरूपेण समुद्रेणपरीवृतम् ॥ गोमेदंतस्यपरितोद्विगुणंतावतावृतम् ॥ २१ ॥ स्वादुतोयेनरम्येण समुद्रेणसमन्ततः ॥ एवंकोटिद्वयंपार्थ लक्षपञ्चशतन्त्रयः ॥ २२ ॥ पञ्चाशच्चसहस्राणि सप्तद्वीपाससागरा ॥ दशोत्तराणिपञ्चैव अङ्गुलानांशतानिच ॥ २३ ॥ अपांवृद्धिक्षयौदृष्टौ पक्षयोःशुक्लकृष्णयोः ॥ ततोहेममयीभूमिर्दशकोट्यःकुरूद्वह ॥ २४ ॥ देवानांक्रीडनस्थानं लोकालोकस्ततःपरम् ॥ पर्वतोवलयाकारो योजनायुतविस्तृतः ॥ २५ ॥ अस्यबाह्येतमो घोरं दुष्प्रेक्ष्यंजीववर्जितम् ॥ चतुर्विंशत्स्मृताःकोट्यो लक्षाण्येकोनविंशतिः ॥ २६ ॥ चत्वारिंशत्सहस्राणि योजनानाञ्चफाल्गुन ॥ सप्तसागरमानस्तु गर्तोदस्तदनन्तरम् ॥ २७ ॥ कोटियोजनविस्तारः कटाहःसंव्यवस्थितः ॥ ब्रह्मणोऽण्डक

हज़ार योजन समुद्रों समेत सब पृथ्वी है व पांच सौ दश अंगुल जलकी वृद्धि व क्षय शुक्लपक्ष व कृष्णपक्ष मे देखीगई है याने शुक्लपक्ष में पांचसौ दश अंगुल जल बढता है और कृष्णपक्ष में इतनाही घटताहै और उसके उपरान्त हे अर्जुनजी ! दश करोड़ योजन सुवर्णमयी भूमिहै ॥२३।२४॥ वह देवताओंका क्रीड़ा स्थान है उसके उपरान्त दश हज़ार योजन चौंड़ा लोकालोक पर्वत कंकण के आकारवाला है ॥ २५ ॥ इसके बाहर जीवोंसे रहित व दुःख से देखने योग्य अन्धकार है हे अर्जुन जी ! वह अन्धकार चौबीस करोड़ उन्नीस लाख योजन ॥ २६ ॥ व हे अर्जुन ! चालीस हज़ार योजन है तदनन्तर सात समुद्रों के प्रमाणभर गर्तोद है ॥ २७ ॥

और करोड़ योजन चौड़ा अण्डकटाह प्राप्तहै जोकि पृथ्वी के आवरणरूप ब्रह्मा के अण्डकटाह सें घिराहै ॥ २८ ॥ और सुमेरुगिरि के बीचसे सबओर दशों दिशाओं
में पचास करोड योजन जानने योग्यहै जम्बूद्वीपके बीचमें सुमेरु नामक पर्वतहै ॥ २९ ॥ वह नीचे व ऊंचे प्रमाणसे एकलक्ष योजन है और नीचे सोलहही हज़ार
योजन स्थितहै ॥ ३० ॥ व चौरासी हज़ार योजन ऊंचाहै और माथेपै बत्तीसहज़ार योजन चौड़ाहै और तीन शिखरों से संयुक्त व प्यालेके आकारकी नाईं मस्तक है ॥
३१ ॥ बीचके शिखरपै ब्रह्माका निवास व ईशानमें त्रिलोचन जीका स्थान है व नैर्ऋत्यदिशामें विष्णुजी का निवासहै और सोनेके शिखरपै ब्रह्माका स्थानहै ॥ ३२ ॥

टाहेन संवृतोमेरुमध्यतः ॥ २८ ॥ पञ्चाशत्कोटयोज्ञेया दशदिक्षुसमन्ततः ॥ जम्बूद्वीपस्यमध्येतु मेरुर्नामास्तिपर्व
तः ॥ २९ ॥ सलक्षयोजनोज्ञेयो ह्यधश्चोर्द्ध्वप्रमाणतः ॥ षोडशैवसहस्राणि योजनानामधःस्थितः ॥ ३० ॥ उच्छ्रयाच्च
तुरशीतिर्द्वात्रिंशन्मूर्द्ध्निविस्तृतः ॥ त्रिभिःशृङ्गैःसमायुक्तःशरावाकृतिमस्तकः ॥ ३१ ॥ मध्यशृङ्गेब्रह्मवास ऐशान्यां
त्र्यम्बकस्यच ॥ नैर्ऋतेवासुदेवस्य हेमशृङ्गेचवेधसः ॥ ३२ ॥ रत्नजेशङ्करस्यापिवासोऽस्तिकेशवस्यच ॥ मेरोर्दिक्षुचतुर्ष्वेव
विष्कुम्भागिरयःस्मृताः ॥ ३३ ॥ पूर्वेतुमन्दरोनाम दक्षिणेमेरुमन्दरः ॥ सुपार्श्वःपश्चिमेज्ञेयः कुमुदस्तुतथोत्तरे ॥ ३४ ॥
कदम्बोमन्दरोज्ञेयो जम्बूर्वैमेरुमन्दरे ॥ अश्वत्थोथसुपार्श्वेतु कुमुदेचवटोमतः ॥ ३५ ॥ एकादशशतायामाश्चत्वा
रोगिरिकेतवः ॥ एतेषांसन्तिचत्वारि वनानिगिरिमूर्द्धसु ॥ ३६ ॥ पूर्वेवैनन्दनन्नाम दक्षिणेचैत्ररथन्दनम् ॥ वैभ्राजंप

व रत्नोंसे उपजे हुये शिखरपै शिवजीका भी स्थानहै और चांदीके शिखरपै विष्णु जीका स्थानहै और सुमेरुगिरिके चारों दिशाओं में विष्कुम्भ याने रोंकनेवाले
पर्वत कहेगये हैं ॥ ३३ ॥ पूर्वदिशा में मन्दर नामक पहाड़है व दक्षिणमें मेरुमन्दरहै और पश्चिममें सुपार्श्व जानने योग्यहै वैसेही उत्तरमें कुमुद नामक पर्वतहै ॥
३४ ॥ और मन्दर पर्वतपै कदम्ब का वृक्ष जानने योग्यहै व मेरुमन्दरपै जामुन और सुपार्श्वपर्वतपर पीपल व कुमुद पर्वतपै बरगद का वृक्ष है ॥ ३५ ॥ पर्वतों के
केतुरूप ये चारों वृक्ष गेरह सौ योजन लम्बे हैं इन चारों पर्वतों के ऊपर चार वनहैं ॥ ३६ ॥ पूर्व में नन्दनवन, दक्षिणमें चैत्ररथ, पश्चिम में वैभ्राज और उत्तरमें सर्व-

तोभद्र वन है ॥ ३७ ॥ और इन चारोंमें चार तड़ाग हैं उनको मुझसे सुनिये कि पूर्वदिशामें अरुणोद नामक तडागहै व दक्षिणमें मानसरोवरहै ॥३८॥ और पश्चिम में शीतोदक नामक और उत्तर में महाह्रद नामक तड़ागहै ये अडानेवाले पर्वत पचीस हजार योजन ऊंचे हैं और हज़ार योजन चारों ओर कहागया है और वहां बहुत से अन्यभी बड़ेभारी पर्वतहैं ॥ ३९ । ४० ॥ सुमेरु पर्वत के दक्षिण ओर तीनपर्वत खण्डोंकी सीमावाले है निषध, हेमकूट व हिमवान् येही वे तीन पर्वत हैं ॥ ४१ ॥ ये लक्ष योजन लम्बे और दो हज़ार योजन चौंड़े हैं और सुमेरुगिरिके उत्तर नील, श्वेत व शृंगवान् ये पर्वत हैं ॥४२॥ और सुमेरुगिरि के पूर्व ओर माल्यवान्

श्चिमेज्ञेयमुत्तरेसार्वभद्रकम् ॥ ३७ ॥ सरांसिचापिचत्वारिचतुर्ष्वेषुनिबोधमे ॥ पूर्वेरुणोदसंज्ञन्तु मानसंदक्षिणेसरः ॥ ३८ ॥ प्रत्यक्शीतोदकंनाम उत्तरेचमहाह्रदः ॥ विष्कुम्भगिरयोह्येतेउच्छ्रिताःपञ्चविंशतिः ॥३९॥ योजनानांसहस्राणि सहस्रंपरितःस्मृतम् ॥ अन्येचसन्तिबहुशस्तत्रैवचमहाचलाः ॥ ४० ॥ मेरोर्दक्षिणतश्चैव त्रयोमर्यादपर्व्वताः ॥ निषधोहेमकूटश्चहिमवानितितेत्रयः ॥ ४१ ॥ लक्षयोजनदीर्घाश्चविस्तीर्णाद्विसहस्रकम्॥त्रयश्चोत्तरतोमेरोर्नीलःश्वेतोथशृङ्गवान् ॥ ४२ ॥ माल्यवान्पूर्वतोमेरोर्गन्धाख्यःपश्चिमेतथा ॥ इत्येतेगिरयःप्रोक्ता जम्बूद्वीपेसमन्ततः ॥ ४३ ॥ मेरुमन्दरसंस्थाया महागजप्रमाणतः॥फलानिजम्ब्वास्तन्नाम्ना जम्बूद्वीपमिदंस्मृतम् ॥ ४४ ॥ आसीत्स्वायम्भुवोनाम मनुराद्यःप्रजापतिः ॥ प्रियव्रतोत्तानपादौ तस्यास्तांतनयावुभौ ॥ ४५ ॥ ध्रुवश्चोत्तानपादस्य पुत्रःपरमधार्मिकः ॥ भक्त्यासविष्णुमाराध्यस्थानञ्चैवाक्षयङ्गतः ॥ ४६ ॥ प्रियव्रतस्यराजर्षेरुत्पन्नादशसूनवः ॥ त्रयःप्रव्रजितास्तत्र परंब्र

व पश्चिममें गन्धमादन है जम्बूद्वीप में चारोंओर ये पर्वत कहेगये हैं ॥ ४३ ॥ मेरुमन्दरपर्वतके ऊपर प्राप्त जामुनके वृक्षके फल बडे हाथियोंके बराबरहैं इसलिये उसीके नामसे यह जम्बूद्वीप कहागया है ॥ ४४ ॥ पहलेवाले प्रजापति स्वायम्भुव नामक हुये हैं उनके प्रियव्रत व उत्तानपाद दो पुत्र हुये ॥ ४५ ॥ और उत्तानपाद के बड़े धर्मवान् ध्रुव पुत्र पैदाहुये वे भक्तिसे विष्णुका आराधनकर अविनाशी स्थानपै गये ॥ ४६ ॥ राजर्षि प्रियव्रतके दश पुत्र पैदाहुये उनमें से तीन संन्यासी होकर

परब्रह्ममें प्राप्त होगये ॥ ४७ ॥ और उन्होंने सात पुत्रोंको सातों द्वीपों में स्थापित किया सबसे बड़े आग्नीध्र ऐसे प्रसिद्ध जम्बूद्वीप के स्वामी हुये ॥ ४८ ॥ और उन
के नव पुत्र नवों खण्डों के स्वामी कहे गये हैं व उनके नाम से चिह्नित वे खण्ड आज भी स्थित हैं ॥ ४९ ॥ और प्रत्येक खण्ड का नवहजार योजन विस्तार कहा
गया है व सुमेरुगिरिकी चारों दिशाओंमें गंधमादन व माल्यवान् पर्वत के ॥ ५० ॥ बीचमें सुवर्ण की भूमिवाला इलावृतखण्ड यहां कहा जाता है और माल्यवान् से
समुद्र के अन्त तक भद्राश्व ऐसा खण्ड कहा जाता है ॥ ५१ ॥ व गंधमादन से समुद्र के अन्ततक केतुमाल ऐसा खण्ड कहा गया है और शृङ्गवान् से समुद्र के

ह्मसमाश्रिताः ॥४७॥ सप्तसप्तसुद्वीपेषु तेनपुत्राःप्रतिष्ठिताः॥जम्बूद्वीपाधिपोज्येष्ठश्चाग्नीध्रइतिविश्रुतः॥ ४८ ॥ तस्यैव
वैनवसुता नववर्षेश्वराःस्मृताः ॥ तेषांनाम्नाचतेवर्षास्तिष्ठन्त्यद्यापिचाङ्किताः ॥ ४९ ॥ योजनानांसहस्राणिनवप्रत्येक
शःस्मृताः ॥ मेरोश्चतुर्दिशंखण्डं गन्धमाल्यवतोर्द्वयोः ॥ ५० ॥ अन्तरेहेमभूमिष्कमिलावृतमिहोच्यते ॥ माल्यव
त्सागरान्तश्च भद्राश्वमितिचोच्यते ॥ ५१ ॥ गन्धवत्सागरान्तश्च केतुमालमितिस्मृतम् ॥ शृङ्गवज्जलधेरन्तः कुरु
खण्डमितिस्मृतम् ॥ ५२ ॥ शृङ्गवच्छ्वेतमध्येच खण्डंप्रोक्तंहिरण्मयम् ॥ सुनीलश्वेतयोर्म्मध्ये खण्डमाहुश्चरम्यक
म् ॥ ५३ ॥ निषधोहेमकूटश्च हरिखण्डंतदन्तरा ॥ हिमवद्धेमकूटान्तः खण्डंकिम्पुरुषंस्मृतम् ॥ ५४ ॥ हिमाद्रिज
लधेरन्तर्नाभिखण्डमितिस्मृतम् ॥ नाभिखण्डश्चकुरवोद्वेवर्षेधनुषाकृती ॥ ५५ ॥ हिमवांश्चगिरिःशृङ्गीज्यास्थाने
परिकीर्तितौ ॥ नाभेःपुत्रश्चऋषभ ऋषभाद्भरतोभवत् ॥ ५६ ॥ तस्यनाम्नात्विदंवर्षं भारतंचेतिकीर्त्यते ॥ अत्रवर्मा

बीचतक कुरुखण्ड ऐसा कहा गयाहै ॥ ५२ ॥ और शृङ्गवान् व श्वेतपर्वत के बीच में हिरण्मयखण्ड कहा गयाहै व सुनील और श्वेतपर्वत के बीचमें विद्वान् रम्यक
खण्ड कहते हैं ॥ ५३ ॥ और निषध व हेमकूट जो पर्वत हैं उन दोनों के बीच में हरिवर्षहै व हिंमवान् और हेमकूट के बीच में किंपुरुषखण्ड कहा गयाहै॥ ५४॥
और हिमाचल व समुद्र के बीच में नाभिखण्ड ऐसा कहा गया है नाभिखण्ड व कुरुखण्ड ये दो वर्ष धनुषके खण्डके समानहैं॥ ५५॥ और हिमवान् व शृङ्गवान्
पर्वत गुण के स्थान में कहे गये हैं नाभि के पुत्र ऋषभ हुये और ऋषभ के भरत हुये ॥ ५६ ॥ उनके नाम से यह भारतखण्ड ऐसा कहा जाता है इस भरतखण्ड में

धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष चारोंका उपार्जन (इकट्ठा करना) होता है ॥ ५७ ॥ हे कुरुनन्दन, अर्जुन जी ! अन्यत्र सब कहीं सुख भोग करने की भूमि है शाक-द्वीप में हजार योजन का शाकवृक्ष है ॥ ५८ ॥ उस के नाम से वह वर्ष शाकद्वीप ऐसा कहा गयाहै और उस द्वीप के स्वामी मेधातिथि नामक प्रियव्रत के पुत्र हैं ॥ ५९ ॥ और उनके पुरोजव, मनोजव, पवमान, धूम्रानीक, चित्ररेफ, बहुरूप, विश्वधार नामक पुत्र हुये व इन्हीं के नामो से सात खण्ड हुये हैं और शाकद्वीप में ऋतव्रत, सत्यव्रत, दानव्रत, अनुव्रत, नामक वर्ण पवनात्मक भगवान् को जपते हैं ॥ ६० ॥ कि भीतर पैठकर जो आत्मकेतु याने प्राणादिक वृत्तियों से प्राणियों

र्थकामानां मोक्षस्यचउपार्ज्जनम् ॥ ५७ ॥ अन्यत्रभोगभूमिश्च सर्वत्रकुरुनन्दन ॥ शाकद्वीपेचशाकोस्ति योजनानांसहस्रकः ॥५८॥ तस्यनाम्नाचतद्वर्षं शाकद्वीपमितिस्मृतम् ॥ तस्यचप्रैयव्रतएवाधिपतिर्नाम्नामेधातिथिरिति ॥ ५९ ॥ तस्यपुरोजवमनोजवपवमानधूम्रानीकचित्ररेफबहुरूपविश्वधारसंज्ञानि पुत्रनामानिसप्तवर्षाणि शाकद्वीपे चवर्णाऋतव्रतसत्यव्रतदानव्रतानुव्रतनामानोवाय्वात्मकंभगवन्तंजपन्ति ॥ ६० ॥ अन्तःप्रविश्यभूतानि योबिभर्त्यात्मकेतुभिः ॥ अन्तर्यामीश्वरःसाक्षात्पातुनोयद्वशेजगत् ॥६१॥ कुशद्वीपेकुशस्तम्बो योजनानांसहस्रकः ॥ तच्चिह्नचिह्नितंयस्मात् कुशद्वीपंततःस्मृतम् ॥ ६२ ॥ तद्द्वीपपतिश्चप्रैयव्रतोहिरण्यरोमातत्पुत्रवसुवसुदानदृढरुचिनाभिगुप्तस्तुत्यव्रतविविक्तवामदेवनामाङ्कितानिसप्तवर्षाणि ॥ ६३ ॥ वर्णाश्चकुशलकोविदाभियुक्तकुलकसंज्ञाजातवेदसम्भगवन्तंस्तुवन्ति॥ ६४॥ परस्यब्रह्मणःसाक्षाज्जातवेदोसिहव्यवाट् ॥ देवानांपुरुषाङ्गानां यज्ञेनपुरुषंयजेतिस्तुतिः ॥६५॥

को पालन करता है वह साक्षात् अन्तर्यामी ईश्वर पवन हमलोगों की रक्षा करे कि जिसके वशमें संसारहै ॥ ६१ ॥ कुशद्वीपमें हजार योजन कुशाका गुच्छाहै जिसलिये उसी चिह्नसे चिह्नितहै उसीकारण कुशद्वीप कहागयाहै ॥ ६२ ॥ उस द्वीप के स्वामी प्रियव्रतके पुत्र हिरण्यरोमा हुये और उनके पुत्र वसु, वसुदान, दृढरुचि, नाभिगुप्त, स्तुत्यव्रत, विविक्त व वामदेव के नामों से चिह्नित सातखण्ड हुये ॥ ६३ ॥ और कुशल, कोविद, अभियुक्त, कुलकसंज्ञकवर्ण भगवान् अग्निदेवकी स्तुति करतेहैं ॥ ६४ ॥ कि हे अग्निदेव ! तुम साक्षात् परब्रह्मको हव्य प्राप्त करतेहो इसलिये पुरुषके अंगभूत देवताओंके यज्ञसे पुरुष (परमेश्वर) को पूजिये यह स्तुति है ॥६५॥

क्रौञ्चद्वीपेक्रौञ्चनामा पर्वतोयोजनायुतः ॥ योसौगुहेननिर्भिन्नः स्वचिह्नंक्रौञ्चद्वीपकम् ॥ ६६ ॥ तत्रच्चैप्रियव्रतोघृत
पृष्ठनामातत्पुत्रा आममधुरुहमेघपृष्ठसुधामभ्राजिष्ठलोहितार्णववनस्पतयइतिनामानिसप्तवर्षाणिवर्षाश्च पुरुषऋषभ
भद्रविणदेवकसंज्ञा आपोमयंभगवन्तंस्तुवन्ति ॥ ६७ ॥ आपःपुरुषवीर्याःस्थपुनन्तीर्भूर्भुवःसुवः ॥ तानःपुनीतामीव
ध्नीःस्पृशतात्मनाभुवःइतिजपः ॥ ६८ ॥ शाल्मलिर्नामवृक्षश्च तार्क्ष्यावासस्सहस्रकम् ॥ योजनानांचतच्चिह्नंशा
ल्मलीद्वीपमुच्यते ॥ ६९ ॥ तस्याधिपतिःप्रैयव्रतोयज्ञबाहुस्तत्पुत्रास्सुरोचनसौमनस्यरमणकदेववर्षपारिभद्राप्या
यनाविज्ञातनामानि सप्तवर्षाणिवर्णाश्चश्रुतधरवीर्यधरवसुन्धरेषन्धरसंज्ञाभगवन्तंसोमंयजन्ते ॥ ७० ॥ स्वगोभिः
पितृदेवेभ्यो विभजन्कृष्णशुक्लयोः ॥ अन्धःप्रजानांसर्वासां राजानस्सोमआस्त्विति ॥ ७१ ॥ गोमेदनामाप्लक्षो

क्रौंचद्वीप में दश हजार योजन ऊंचा क्रौंच नामक पर्वतहै जो यह कि स्वामिकार्त्तिकेय जीसे तोड़ागया है उसी अपने चिह्नसे क्रौंचद्वीप कहाजाता है ॥ ६६ ॥
वहा भी प्रियव्रतके पुत्र घृतपृष्ठ नामक उस द्वीपके स्वामी हुये हैं उनके पुत्र आममधुरुह, मेघपृष्ठ, सुधामा, भ्राजिष्ठ, लोहितार्णव और वनस्पति नामक हुये व इ-
न्हीके नामोंसे सात खण्ड हुये और पुरुष, ऋषभ, द्रविण और देवकसंज्ञक वर्ण भगवान् जलमय (वरुण) देवकी स्तुति करते हैं ॥ ६७ ॥ हे जलो ! आप लोग
ईश्वरसे सामर्थ्यको पायेहो इसीलिये भूर्भुवःस्वः तीनोंलोकों को पवित्र करतेहुये वे आपलोग हमलोगों को स्पर्श कीजिये व शरीरों को पवित्र कीजिये क्योंकि आप
लोग आत्मा (स्वरूपही) से पापनाशकहो यह जपहै ॥ ६८ ॥ जिसपर गरुड़जी का स्थानहै ऐसा शाल्मलि (सेमर) नामवाला वृक्ष हजार योजन ऊंचा है उसी
चिह्नवाला शाल्मली द्वीप कहाजाता है ॥ ६९ ॥ उसके स्वामी प्रियव्रत के पुत्र यज्ञबाहुहुये उनके पुत्र सुरोचन, सौमनस्य, रमणक, देववर्ष, पारिभद्र, आप्यायन, अ-
विज्ञात नामक हुये व इन्होंके नामोंसे सात खण्ड हुये और श्रुतधर, वीर्यधर, वसुन्धर, इषंधर संज्ञक वर्ण भगवान् चन्द्रमा का पूजन करते हैं ॥ ७० ॥ कि कृष्ण
व शुक्लपक्ष में पितरों और देवताओं के लिये अपनी किरणों से अन्नको बांटतेहुये सब प्रजाओं के राजा चन्द्रमा हमारी सम्मुखता से होवें ॥७१॥ गोमेद नामक एक

पकरिया का वृत्त है कि जिसकी सुगन्धित छायासे सुखके कारण मेदा (चर्बी) वृद्धिको प्राप्तहोती है इस लिये वह गोमेद नामक द्वीप कहाजाता है॥ ७२॥ और
वहा प्रियव्रतके पुत्र इध्मजिह्व स्वामी हुये हैं उनके पुत्र शिव, यवस,सुभद्र,शान्त,क्षेम, अमृत व अभय नामक हुये और इन्हीं नामोंवाले इस द्वीप में सात खण्डहुये
और हंस, पतंग, ऊर्ध्वायन, सत्यागसंज्ञक चार वर्ण सूर्यभगवान् का पूजन करते हैं ॥ ७३ ॥ व यह जपते हैं कि जो पुराणपुरुष विष्णुजी का स्वरूप हैं उन सत्य
(अनुष्ठित धर्म) व ऋत (प्रमाण कियेजातेहुये धर्म) और इनदोनोंके बोधक ब्रह्म याने वेद व अमृत (शुभफल) और मृत्यु (अशुभफल) के अधिष्ठाता सूर्यकी
शरणमे हमलोग प्राप्त होते हैं यह जपहै ॥ ७४ ॥ जिसमें एकलाख सोनेके से पत्तेहैं ऐसा हज़ार योजन ऊंचा व अग्निके समान जलता हुआ पुष्कर (कमल) है

स्ति सुरभ्यायस्यच्छायया ॥ मेदावृद्धिङ्गतासौख्याद्गोमेदंद्वीपमुच्यते ॥ ७२ ॥ तत्रप्रैयव्रतइध्मजिह्वः पतिस्तत्पु
त्राःशिवयवससुभद्रशान्तक्षेमामृताभयनामानिसप्तवर्षाणिवर्णाश्चहंसपतङ्गोर्ध्वायनसत्याङ्गसंज्ञाश्चत्वारो भगवन्तंसूर्यं
यजन्ते ॥ ७३ ॥ पुराणस्यविष्णोरूपंयत्सत्यस्यर्तस्यब्रह्मणोमृतस्यच मृत्योश्चसूर्यमात्मानमीमहीतिजपः ॥ ७४ ॥
स्वर्णपत्राणिनियुतं योजनानांसहस्रकम् ॥ पुष्करंज्वलदाभाति तच्चिह्नंद्वीपपुष्करम् ॥ ७५ ॥ तस्याधिपतिःप्रैयव्रतो
वीतिहोत्रनामातत्पुत्रौरमणकधातकिनौ तन्नामचिह्नितंखण्डद्वयञ्चतयोरन्तरालेमानसोत्तरनामाचलोवलयाकारः
पर्वतोयस्मिन्भ्रमतिभगवान्भास्करइति ॥ ७६ ॥ तत्रवर्णाश्चनसन्तिकेवलंसमानास्तेब्रह्मध्यायन्ति ॥ ७७ ॥ यत्त
त्कर्ममयंलिङ्गं ब्रह्मलिङ्गंजनोर्चयेत ॥ एकान्तमद्वयंशान्तंतस्मैभगवतेनमइतिजपः॥७८॥ एषुक्रोधोनमात्सर्यं पुण्य

इससे उस चिह्नवाला पुष्करद्वीप कहाजाता है ॥ ७५ ॥ उसके स्वामी प्रियव्रत के पुत्र वीतिहोत्र नामक हुये और उनके पुत्र रमणक व धातकि नामक हुये और
उन्हीं के नामसे चिह्नित दो खण्ड होगये उनके बीचमें मानसोत्तर नामक पर्वत कंकण के आकारवाला है कि जिसमें सूर्यनारायण भगवान् घूमते हैं ॥ ७६ ॥ और
वहां जातिया नहीं हैं केवल समान वर्णवाले वे पुरुष ब्रह्मका ध्यान करते हैं ॥ ७७ ॥ कि कर्मफलदायक जो वह प्रसिद्ध मूर्त्ति है कि जिससे ब्रह्म जाना जाता है
और जिसको मनुष्य पूजते हैं व एक परमेश्वरमें जिसकी स्थितिहै और जो अद्वितीय व शान्तहै उन ब्रह्ममूर्त्तिधारी भगवान् के लिये नमस्कारहै (यह जपहै) ॥७८॥

इनमें क्रोध, ईर्षा व पुण्य, पाप का इकट्ठा करना यह कुछ नहीं है और क्रमसे दश हज़ार गुना आयुर्बल कहागया है ॥ ७९ ॥ उपर्युक्त मन्त्रको जपते हुये स्त्रियोंसे सयुत वे पुरुष देवताओंकी नाईं विहार करते हैं इसके उपरान्त मैं ऊपरके लोककी प्रमाणको तुमसे कहूंगा ॥ ८० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेदेवी दयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांभूमिविभागवर्णनंनामत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥ ॥

दो० । नभमण्डल में है यथा सूर्यादिक का थान । इकतिसवें अध्याय में सोई चरित बखान ॥ नारदजी कहते हैं कि हे कौरव्य (अर्जुन) जी ! भूमिसे लाख

पापार्ज्जनंनच ॥ अयुतंद्विगुणंचापि क्रमादायुःप्रकीर्त्तितम् ॥७९॥ जपन्तःकामिनीयुक्ता विहरन्त्यमराइव ॥ अथतेसम्प्रवक्ष्यामि ऊर्द्ध्वलोकस्यसंस्थितिम् ॥ ८० ॥ इतिश्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेभूसंस्थितिर्नामत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

नारदउवाच ॥ भूमेर्योजनलक्षेच कौरव्यरविमण्डले ॥ योजनानांसहस्राणि भास्करस्यरथोनव ॥ १ ॥ ईषादण्डस्तथैवास्य द्विगुणःपरिकीर्त्तितः ॥ सार्द्धकोटिस्तथासार्द्धं सप्तलक्षाणिचार्जुन ॥ २ ॥ योजनानान्तुतस्याक्षस्तत्रचक्रंप्रतिष्ठितम् ॥ त्रिनाभिमतिचपञ्चारं षण्नेमिपरिकीर्त्तितम् ॥ ३ ॥ चत्वारिंशत्सहस्राणि द्वितीयोक्षोविवस्वतः ॥ पञ्चचान्यानिसार्द्धानि स्यन्दनस्यतुपाण्डव ॥४॥ अक्षप्रमाणमुभयोः प्रमाणन्तद्युगार्द्धयोः ॥ ह्रस्वोक्षस्तद्युगार्द्धंच ध्रुवाधारंरथस्यवै ॥५॥ द्वितीयेक्षेतथासव्ये चक्रंतन्मानसेस्थितम् ॥ हयाश्चसप्तछन्दांसि तेषांनामानिमेशृणु ॥ ६ ॥ गायत्रीच

योजन रविमण्डल पर सूर्यनारायण का रथ अठारह हज़ार योजन चौड़ाहै ॥ १ ॥ और रथके दसाका दण्ड इसका दुगुना याने अठारह हजार योजन कहागया है और हे अर्जुन ! इसका आंक डेढकोटि साढ़े सात लाख ॥ २ ॥ योजन है उसमें पहिया लगाहै उस पहिये में तीन नाभि और पांच आरा व छह पुट्ठी कहीगई हैं ॥ ३ ॥ और हे पाण्डव ! सूर्य के रथका दूसरा आंक भी चालीस हज़ार योजन व अर्धसमेत पांच याने साढ़े पैंतालीस हज़ार योजनहै ॥ ४ ॥ जो दोनों आंकोंकी प्रमाण है वही दोनों युगोंकी प्रमाणहै और छोटाआंक व छोटा जुवां रथका ध्रुवके आधार (आश्रित) है ॥ ५ ॥ और दूसरे बायें आंकमें वह पहियाहै जोकि मानसाचल पर्वत

१ पुट्ठीसे लगाकर जिस आधार में आरा लगाये जाते हैं उसको नाभि कहते हैं ॥

पै स्थितहैं और सूर्यके घोडे सातों छन्दैं हैं उनके नामोंको मुझसे सुनिये ॥ ६ ॥ कि गायत्री, बृहती, उष्णिक्, जगती, त्रिष्टुप्, अनुष्टुप् व पंक्ति ये छंदैं सूर्यनारायण के घोड़े कहेगये हैं ॥ ७ ॥ सदैव विद्यमान इन सूर्यनारायण का अस्त व उदय नहीं होताहै किन्तु सूर्यनारायण का देखपडना व न देखपड़नाही उदय व अस्त कहाजाताहै ॥८॥ इन्द्रादिकों की पुरीमें स्थित होतेहुये ये सूर्य तीनपुरी व दो विकर्णों (कोनों) का स्पर्शकरते हैं याने प्रकाश करते हैं और विकर्ण (कोने) में स्थित होकर तीनों कोणों व दो पुरोंका स्पर्श करते हैं ॥ ९ ॥ उत्तरायण के आदिमें सूर्य नारायण मकरराशि में जाते हैं तदनन्तर कुम्भ व मीनमें प्राप्त होतेहैं वैसेही एक

बृहत्युष्णिग्जगतीत्रिष्टुबेवच ॥ अनुष्टुप्पङ्क्तिरित्युक्ताश्छन्दांसिहरयोरवेः ॥ ७ ॥ नैवास्तमनमर्कस्य नोदयस्सर्वदासतः ॥ उदयास्तमनाख्यंहि दर्शनादर्शनंरवेः ॥ ८ ॥ शक्रादीनांपुरेतिष्ठन् स्पृशत्येषपुरत्रयम् ॥ विकर्णौद्वौविकर्णस्थस्त्रीन्कोणान्द्वेपुरेतथा ॥ ९ ॥ अयनस्योत्तरस्यादौ मकरंयातिभास्करः ॥ ततःकुम्भंचमीनंचराशेराश्यन्तरन्तथा ॥ १० ॥ त्रिष्वेतेष्वथभुक्तेषु ततोवैषुवतींगतिम् ॥ प्रयातिसविताकुर्वन्नहोरात्रंचततस्समम् ॥ ११ ॥ ततोरात्रिःक्षयंयाति वर्द्धतेनुदिनंदिनम् ॥ ततश्चमिथुनस्यान्ते पराङ्काष्ठामुपागतः ॥ १२ ॥ राशिंकर्कटकंप्राप्य कुरुतेदक्षिणायनम् ॥ कुलालचक्रपर्यन्तो यथाशीघ्रंनिवर्त्तते ॥ १३ ॥ दक्षिणेप्रचलेत्सूर्यस्तथाशीघ्रंनिवर्तते ॥ अतिवेगतयाकालं वायुमार्गबलाच्चरन् ॥ तस्मात्प्रकृष्टांभूमिंस कालेनाल्पेनगच्छति ॥ १४ ॥ कुलालचक्रमध्यस्थोयथामन्दंप्रसर्प

राशिसे दूसरी राशिको प्राप्तहोते हैं ॥ १० ॥ इन तीनराशियोंके भोगने पर उसके उपरान्त सूर्यनारायण दिन व रात उन दोनों को बराबर करते हुये वैषुवती गतिको प्राप्तहोते हैं ॥ ११ ॥ तदनन्तर याने मेषसंक्रान्ति के उपरान्त रात्रि न्यूनता को प्राप्तहोती है और दिन प्रतिदिन बढ़ताहै तदनन्तर मिथुनराशि के अन्तमें परा काष्ठा याने उत्तरायणके अन्तको प्राप्त ॥ १२ ॥ सूर्यनारायण कर्कराशिमें प्राप्त होकर दक्षिणायन करते हैं जैसे कुम्हार के चाकका अन्तभाग शीघ्र चलता है ॥ १३ ॥ वैसेही दक्षिणायन की गतिमें सूर्यनारायण शीघ्र चलते हैं जिस लिये उस दक्षिणायन समय में बड़े वेगसे पवन मार्ग के बलसे चलते हैं इसलिये वे सूर्यनारायण

थोडेही समय से बहुत घूमि जाते हैं ॥ १४ ॥ जैसे कुम्हारके चाकके बीचमें टिकाहुआ जन्तु धीरे २ चलताहै वैसेही मन्दगतिवाले सूर्यनारायण उत्तरायणमें मन्द गतिसे चलते हैं ॥ १५ ॥ इसीकारण बहुत समय से सूर्यनारायण थोडी भूमि जातेहैं और सन्ध्याके समयमें मन्देहा संज्ञक राक्षस सूर्यको खानेकी इच्छा करते हैं ॥ १६ ॥ और उन पापी राक्षसोंको ब्रह्मासे कियाहुआ यह शापहै कि शरीरका नाश न होना और प्रतिदिन में मरणहोना ॥ १७ ॥ इसलिये उन राक्षसोंसे सूर्यनारायण का बड़ा भयंकर युद्धहोता है और गायत्रीके मन्त्रसे जिस पवित्र जलको ब्राह्मण लोग फेंकते हैं ॥ १८ ॥ उससे वे पापी राक्षस जलजाते हैं उसी कारण सदैव स-

ति ॥ तथोदगयनेसूर्यस्सर्पतेमन्दविक्रमः ॥ १५ ॥ तस्माद्दीर्घेणकालेन भूमिमल्पान्तुगच्छति ॥ संध्याकालेचमन्देहाः सूर्यमिच्छन्तिखादितुम् ॥ १६ ॥ प्रजापतिकृतःशापस्तेषांकलुषरक्षसाम् ॥ अक्षयत्वंशरीराणांमरणञ्चदिनेदिने ॥ १७ ॥ ततस्सूर्यस्यतैर्युद्धं भवत्यत्यन्तदारुणम् ॥ गायत्रीमन्त्रपूतंयद्द्विजास्तोयंक्षिपन्तिच ॥ १८ ॥ तेनदह्यन्ति तेपापाः सन्ध्योपास्याततस्सदा ॥ येसन्ध्यांनह्युपासन्ति कृतघ्नायान्तिरौरवम् ॥ १९ ॥ प्रतिमासंपृथक्सूर्य ऋषिगन्धर्वराक्षसैः ॥ अप्सरोग्रामणीसर्पैरथोयातिचसप्तभिः ॥ २० ॥ धातार्यमामित्रवरुणौ विवस्वानिन्द्रएवच ॥ पूषाचसवितासाक्षो भगस्त्वष्टाचकीर्तितः ॥ २१ ॥ विष्णुश्चैत्रादिमासेषुत्रादित्याद्वादशस्स्मृताः ॥ ततोदिवाकरस्थानान्मण्डलंशशिनःस्थितम् ॥ २२ ॥ लक्षमात्रेणतस्यापि त्रिचक्रोरथउच्यते ॥ कुन्दाभादशचैवाश्वा वामदक्षिणतोयुताः ॥ २३ ॥

न्ध्योपासन करना चाहिये जो पुरुष सन्ध्योपासन नहीं करते हैं वे कृतघ्नी नर रौरव नरकको जाते हैं ॥ १९ ॥ प्रत्येक महीनेमें भिन्न भिन्न सूर्य, ऋषि, गन्धर्व, राक्षस, अप्सरा, ग्रामणी (यक्ष), सर्प इन सातोंसे संयुक्त सूर्यनारायण का रथ गमन करताहै ॥ २० ॥ व धाता, अर्यमा, मित्र, वरुण, विवस्वान्, इन्द्र व पूषा, सविता, साम्ब भग व त्वष्टा कहेगये हैं ॥ २१ ॥ और विष्णु ये चैत्रादिक महीनों में बारह आदित्य कहेगये हैं तदनन्तर सूर्यके स्थानसे लक्ष योजनकी प्रमाणसे चन्द्रमा का मण्डल स्थितहै उन चन्द्रमा का भी रथ तीन पहियावाला कहाजाताहै और बायें व दाहिने ओर कुन्दके समान श्वेत दश घोड़े संयुत (जुतेहुये) हैं ॥ २२ । २३ ॥

पर कि सनक, सनन्दन, सनातन व सनत्कुमार बसते हैं उसके उपरान्त चारकरोड़ योजन तपोलोक कहागयाहै ॥४२॥ जहांपर कि सन्तापसे रहित वे वैराज देवता विराजतेहैं और तपोलोकसे छहगुने याने चौबीस हजार योजन सत्यलोक शोभितहै ॥४३॥ जहांके बसनेवाले पुरुष फिर नहीं मरतेहैं वही ब्रह्मलोक मानागया है और अठारह करोड़ व पचासी लाख ॥ ४४ ॥ योजन उसके उपरान्त अनुपम उत्तम स्थान भलीभांति शोभित है भूर्भुवःस्वः ये तीनोंलोक कृतक याने सृष्टिके आदिमें ये तीनो लोक रचेजाते है ॥ ४५ ॥ जन, तप व सत्य ये तीनोंलोक अकृत्रिम हैं और कृत्रिम व अकृत्रिम लोकोंके बीचमें महर्लोक ऐसा कहागया है ॥ ४६ ॥ जोकि कल्पान्त

वैराजायत्रतेदेवाः स्थितादाहविवर्जिताः ॥ षड्गुणेनतपोलोकात् सत्यलोकोविराजते ॥ ४३ ॥ अपुनर्मारकायत्र ब्रह्मलोकोहिसम्मतः ॥ अष्टादशतथाकोट्यो लक्षाश्चाशीतिपञ्चच ॥ ४४ ॥ शुभंनिरुपमंस्थानं तदूर्द्ध्वसम्प्रकाशते ॥ भूर्भुवःस्वरितिप्रोक्तं त्रैलोक्यंकृतकंविदम् ॥ ४५ ॥ जनस्तपस्तथासत्यमितिवाकृतकत्रयम् ॥ कृतकाकृतयोर्म्मध्ये महर्लोकइतिस्मृतः ॥ ४६ ॥ शून्योभवतिकल्पान्तेयोत्यन्तंनविनश्यति ॥ एतेसप्तसमाख्याता लोकाःपुण्यैरुपार्ज्जिताः ॥ ४७ ॥ यज्ञैर्दानैर्जपैर्होमैस्तीर्थैर्ब्रह्मसमुच्चयैः ॥ वेदादिप्रोक्तैरन्यैश्च साध्याँल्लोकानिमान्विदुः ॥ ४८ ॥ ततश्चाण्डश्चशिरसो धारानीरमयीशिवा ॥ सर्वलोकान्समाप्लाव्य गङ्गामेरुमुपागता ॥ ४९ ॥ ततोमहीतलंसर्वं पातालञ्चयथाक्रमम् ॥ अण्डमूर्द्धिस्थितादेवी सततंद्वारवासिनी ॥ ५० ॥ देवानांकोटिकोटीभिः संवृतापिङ्गलेनच ॥ तत्रस्थि

में शून्य होजाता है परन्तु अत्यन्त नष्ट नहीं होताहै ये पुण्यों से इकट्ठा कियेहुये सातलोक कहेगये ॥ ४७ ॥ विद्वानोंने इन लोकों को यज्ञ, दान, जप, होम, तीर्थ व ब्रह्मसमूह याने गायत्री के बहुत जपसे व वेदादिकों में कहेहुये अन्य स्तोत्रों से साधन करने योग्य कहा है ॥ ४८ ॥ उसके उपरान्त ब्रह्माण्ड के मस्तक से कल्याणकारिणी जलमयी धारा श्रीगंगाजी सबलोकों में होकर सुमेरु गिरिपै प्राप्तहुईं ॥ ४९ ॥ तदनन्तर समस्त भूतल व पाताल में क्रमपूर्वक प्राप्तहुई सदैव द्वारपै बसनेवाली श्रीगंगादेवी ब्रह्माण्ड के मस्तकपै स्थितहैं ॥ ५० ॥ जोकि करोड़ों करोड़ देवता व पिंगल से घिरीहुई वे उत्तम गंगाजी वहां स्थित होकर सदैव

ब्रह्माण्डकी रक्षा करती हैं ॥५१॥ व बडेभारी बलवान् दुष्ट गणोंको नाश करती हैं और जिस प्रकार सातोंभी पवनके समूह स्थित हैं उनको सुनिये ॥५२॥ कि पृथ्वी को उल्लंघनकर मेघमण्डल में प्रवह नामक पवन स्थित है जोकि बडा बलवान् पवन मेघोंको लेजाता है ॥ ५३ ॥ हे अर्जुन जी ! धूमसे उत्पन्न व गरमीसे उपजे हुये जो मेघ समुद्र के जलोंसे नहीं पूर्ण होते हैं वे नीले अंगवाले होकर बरसनेवाले होतेहैं ॥ ५४ ॥ दूसरा वह नामक पवन सूर्यमण्डल में बँधा है उससे बँधा हुआ यह सूर्यमण्डल ध्रुवसे घुमाया जाता है ॥ ५५ ॥ और तीसरा उद्वह नामक पवन चन्द्रमा के स्थानमे स्थित है कि जिससे बँधाहुआ यह चन्द्रमण्डल ध्रुव से

तासदारक्षां कुरुतेऽण्डस्यसाशुभा ॥५१॥ निहन्तिदुष्टसङ्घातान् महाबलपराक्रमान् ॥ वायुस्कन्धानिसप्तापि शृणुयद्व त्स्थितान्यपि ॥ ५२ ॥ पृथिवींसमतिक्रम्य संस्थितोमेघमण्डले ॥ प्रवहोनामयोमेघान् प्रवहत्यतिशक्तिमान् ॥ ५३ ॥ धूमजाश्चोष्णजामेघाः सामुद्रैर्येनपूरिताः ॥ तोयैर्भवन्तिनीलाङ्गा वर्षिष्ठाश्चैवभारत ॥ ५४ ॥ द्वितीयश्चवहोनाम निबद्धस्सूर्यमण्डले ॥ तेनबद्धंध्रुवेनेदं भ्राम्यतेसूर्यमण्डलम् ॥ ५५ ॥ तृतीयश्चोद्वहोनाम चन्द्रस्कन्धेप्रतिष्ठितः ॥ बद्धंध्रुवेणयेनेदं भ्राम्यतेचन्द्रमण्डलम् ॥ ५६ ॥ चतुर्थस्संवहोनाम स्थितोनक्षत्रमण्डले ॥ वातरश्मिभिराबद्धं ध्रुवेण सहभ्राम्यते ॥ ५७ ॥ ग्रहेषुपञ्चमस्सोपि विवहोनाममारुतः ॥ ग्रहचक्रमिदंयेन भ्राम्यतेध्रुवसन्धितम् ॥ ५८ ॥ षष्ठःप रिवहोनाम स्थितस्सप्तर्षिमण्डले ॥ भ्रमन्तिध्रुवसंबद्धायेनसप्तर्षयोदिवि ॥ ५९ ॥ सप्तमश्चध्रुवेबद्धो वायुर्नाम्नापराव हः ॥ येनसंस्थापितंध्रौव्यं चक्रंचान्यानिभारत ॥ ६० ॥ यंसमासाद्यवेगेन दिशामन्तंप्रपेदिरे ॥ दक्षस्ययदशपुत्राणां स

घुमाया जाताहै ॥ ५६ ॥ चौथा संवह नामक पवन नक्षत्रमण्डल में स्थित है उस पवनकी रस्सियों से बँधाहुआ यह ज्योतिश्चक्र ध्रुवसे घुमाया जाताहै ॥ ५७ ॥ और वह पांचवा विवह नामक पवनभी ग्रहोंके मण्डलमें स्थित है कि जिससे ध्रुवमें बँधाहुआ यह ग्रहचक्र घुमाया जाता है ॥ ५८ ॥ छठा परिवह नामक पवन सप्तर्षि मण्डल में टिकाहै कि जिससे ध्रुवमें बँधेहुये सप्तर्षि आकाश में घूमते हैं ॥५९॥ हे अर्जुन ! सातवां परावह नामक पवन ध्रुवमें बँधाहै कि जिससे ध्रुवचक्र भलीभांति

स्थापित है व और भी चक्र स्थापित हैं ॥ ६० ॥ दक्षप्रजापति के दश हज़ार पुत्र जिस पवनमें प्राप्तहोकर दिशाओं के अन्तमें प्राप्तहुये ॥ ६१ ॥ इस प्रकार दितिके पुत्र ये उंचाम पवन विशेषता से टिके हैं न रसतेहुये जोकि सर्वव्यापी व सर्वधारी होकर भलीभांति चलते है ॥ ६२ ॥ ध्रुवसे ऊपर बिन सूर्य, बिन नक्षत्र व बिन ताराओ का स्थानहै वहां के वे पुरुष नित्यही अपने तेज व अपनी शक्तिसे टिके हैं ॥६३॥ तुमसे यह वृत्तान्त कहागया इसके उपरान्त पातालोंको भलीभांति सुनिये ॥ ६४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांनक्षत्रादिसंस्थानवर्णनंनामैकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

हस्राणिप्रजापतेः ॥ ६१ ॥ एवमेतेदितेःपुत्राः सप्तसप्तव्यवस्थिताः ॥ अनारमन्तःसंयान्ति सर्वगास्सर्वधारिणः ॥६२॥ ध्रुवादूर्ध्वमसूर्यंचअनक्षत्रमतारकम् ॥ स्वतेजसास्वशक्त्याचाधिष्ठितास्तेहिनित्यदा ॥ ६३ ॥ इत्यूर्ध्वंतेसमाख्यातं पातालान्यथसंशृणु ॥ ६४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेनक्षत्रादिसंस्थानवर्णनंनामैकत्रिंशोध्यायः ॥ ३१ ॥

नारदउवाच ॥ सहस्रसप्तत्युच्छ्राये भूमेरस्तिकुरूद्वह ॥ दशसाहस्रमेकैकं पातालानिपरस्परम् ॥ अतलंवितलंचैव नितलंचरसातलम् ॥ १ ॥ तलातलंचसुतलं पातालंचापिसप्तमम् ॥ कृष्णशुक्लारुणाःपीताः शर्कराःशैलकाञ्चनाः ॥ २ ॥ भूमयोयत्रकौरव्य वरप्रासादशोभिताः ॥ तेषुदानवदैतेयनागाश्चशतसङ्घशः ॥ ३ ॥ स्वर्लोकादपिरम्याणि दृष्टानिबहुशोमया ॥ आह्लादकारिणोनाम गणकायत्रपन्नगाः ॥ ४ ॥ दैत्यदानवकन्याभिर्महारूपाभिरन्विते ॥ पाताले

दो० । अतल वितल आदिक यथा राजत हैं पाताल । बत्तिसवे अध्यायमे सोई रुचिर हवाल ॥ नारदजी बोले कि हे अर्जुन ! पृथ्वीकी ऊँचाई सत्तर हजार योजन है व सब पाताल परस्पर दश हजार योजन ऊंचेहै अतल, वितल, नितल, रसातल ॥१॥ तलातल व सुतल और सातवां पाताल भी है हे अर्जुन! जहांपर कि श्याम, श्वेत, अरुण, पीत, ककरीली, पहाडी और सोनेकी पृथ्वी है जोकि उत्तम मन्दिरों से शोभित हैं उनमे सैकडों गण दानव, दैत्य व नाग ॥ २ । ३ ॥ मैने बहुत से देखेहै जोकि स्वर्गलोकसे भी सुन्दर है जहांपर आह्लादकारी नामक सर्पगण हैं ॥ ४ ॥ बड़ी रूपवती दैत्यों व दानवों की कन्याओं से संयुत उस पाताल में मुक्तहुये

भी जिस पुरुषकी प्रीति नहीं होतीहै ॥ ५ ॥ जहांपर न गरमीहै न जाडाहै न वर्षाहै और न दुःखहै व भक्ष्य भोजन के महासुखोंसे भी जहांपर समय व्यतीत होताहै ॥ ६ ॥ हे अर्जुन जी ! सातवें पाताल में श्रीहाटकेश्वर लिंग है ब्रह्मासे थापाहुआ जोकि हजार योजन ऊंचा है ॥ ७ ॥ और हाटकेश्वर लिंगका दिव्य मन्दिर दश हजार योजन ऊंचाहै जोकि समस्तरत्नमय व अनेक आश्चर्यों से शोभित है ॥ ८ ॥ वहां अनेक श्रेष्ठ नागेन्द्र उस लिंगको पूजते हैं उसके नीचे बहुत जलहै व उस के नीचे नरक कहेगये हैं ॥ ९ ॥ हे महामते ! जिनमें पापी पुरुष गिराये जाते हैं उनको सुनिये कि पचपन करोड नरकहैं उनमेंसे इक्कीस राजा याने मुख्यहैं ॥ १० ॥

कस्यनप्रीतिर्विमुक्तस्यापिजायते ॥ ५ ॥ यत्रनोष्णंनवाशीतं नवर्षंदुःखमेववा ॥ भक्ष्यभोज्यमहाभोगैः कालोयत्रापिजायते ॥ ६ ॥ पातालेसप्तमेचास्ति लिङ्गंश्रीहाटकेश्वरम् ॥ ब्रह्मणास्थापितंपार्थ साहस्रंयोजनोच्छ्रितम् ॥ ७ ॥ हाटकस्यचलिङ्गस्य प्रासादोयोजनायुतः ॥ सर्वरत्नमयोदिव्योनानाश्चर्यविभूषितः ॥ ८ ॥ तत्रार्चयन्तितल्लिङ्गं नानानागेन्द्रसत्तमाः ॥ तदधश्चजलंभूमिस्तस्याधोनरकाःस्मृताः ॥ ९ ॥ पापिनोयेषुपात्यन्ते ताञ्छृणुष्वमहामते ॥ कोटयः पञ्चपञ्चाशद्राजानश्चैकविंशतिः ॥ १० ॥ रौरवःशूकरोरोधस्तालोविशसनस्तथा ॥ महाज्वालस्तप्तकुम्भो लवणोथविमोहनः ॥ ११ ॥ रुधिरान्धोवैतरणी कृमिशः कृमिभोजनः ॥ असिपत्रवनंकृष्णो लालाभक्षश्चदारुणः ॥ १२ ॥ तथापूयवहःपापो वह्निज्वालोप्यधःशिराः ॥ सन्दंशःकृष्णसूत्रश्च तमश्चावीचिरेवच ॥ १३ ॥ श्वभोजनोऽथाप्रतिभस्त्ववीचिश्चतथापरः ॥ कूटसाक्षीरौरवंच रोधङ्गोविप्ररोधकः ॥ १४ ॥ सुरापःशूकरंयाति तालंमिथ्यामनुष्यहा। गुरुतल्पी

रौरव, शूकरमुख, रोध, ताल व विशसन, महाज्वाल, तप्तकुम्भ, लवण व विमोहन ॥ ११ ॥ रुधिरगन्ध, वैतरणी, कृमिश, कृमिभोजन, असिपत्रवन, कृष्ण व भयंकर लालाभक्ष ॥ १२ ॥ वैसेही पापी पूयवह, वह्निज्वाल, अधःशिरा, सन्दंश, कृष्णसूत्र, तम व अवीचि ॥ १३ ॥ श्वभोजन, अप्रतिभ व दूसरा अवीचि है झूठी गवाही देनेवाला रौरवको जाताहै और गऊ व ब्राह्मणको रोकमें रखनेवाला रोध नामक नरक को जाता है ॥ १४ ॥ मदिरा पीनेवाला नर शूकरमुख नरक को जाताहै और वृथाही मनुष्यको मारनेवाला ताल नामक नरकको जाताहै और गुरु की शय्यापर बैठनेवाला या गुरु की स्त्री से व्यभिचार करनेवाला पुरुष तप्तकुंभ

नरकको जाताहै और भक्तको मारनेवाला मनुष्य तप्तलोह नरकको जाता है॥ १५॥ जो गुरुका अपमान करताहै वह महाज्वाल नामक नरक में गिरायाजाता है और शास्त्रों को नाश करनेवाला लवण नामक नरकको जाता है व मर्यादरहित मनुष्य बिमोहन नरक में जाताहै ॥ १६ ॥ देवताओंका वैरी कृमिभक्ष नरक में जाता है व दुष्ट पूजन करनेवाला नर कृमिशनरक में जाताहै और पितरों व देवताओं से पहले भोजन करनेवाला नर लालाभक्षनरक में जाता है ॥ १७ ॥ वृथाही जीवों से वैर करनेवाला और कपट के शास्त्र बनानेवाला नर शसन नामक नरक को जाताहै और निषेध वस्तुका ग्रहण करनेवाला अधोमुख नरक को जाता है व अकेलही भोजन करनेवाला मनुष्य पूयवाहक नरक में जाताहै ॥ १८ ॥ व मुर्गा, कुत्ता, बिलार और पक्षियों को सेवनेवाला पुरुष तथा घर, खेत, तृण व अन्नादि को जलाने

तप्तकुम्भं तप्तलोहञ्चभक्तहा ॥ १५ ॥ गुरूणामवमन्तायो महाज्वालेनिपात्यते ॥ लवणंशास्त्रहन्ताच निर्मर्यादीविमोहके ॥ १६ ॥ कृमिभक्षेदेवद्वेष्टा कृमिशेचदुरिष्टिकृत् ॥ पितृदेवात्पूर्वमश्नँल्लालाभक्षेप्रयातिच ॥ १७ ॥ मिथ्याजीवविरोधीचशसनेकूटशास्त्रकृत् ॥ अधोमुखेचासद्ग्राहीएकाशीपूयवाहके ॥ १८ ॥ तथाचकुक्कुटश्वौतुपक्षिजोष्टा प्रयातिच ॥ रुधिरान्धेगृहक्षेत्रतृणधान्यादिदाहकः ॥ १९ ॥ नक्षत्ररङ्गजीवीच यातिवैतरणींनरः ॥ धनयौवनमत्तोयोधनहाकृष्णमेतिसः ॥२०॥ असिपत्रवनेयातिवृक्षच्छेदीवृथैवच ॥ कुहकाजीविनस्सर्वे वह्निज्वालेपतन्तिच ॥ २१ ॥ परस्त्रीचपरान्नञ्च गच्छन्सन्दंशमेतिच ॥ दिवास्वप्नपरायेच व्रतलोपपराश्चये ॥ २२ ॥ शरीरमदमत्ताश्च यान्तिचैतेश्वभोजनम् ॥ शिवंहरिन्नमन्यन्ते यान्त्यवीचिनमेवच ॥ २३ ॥ इत्येवमादिभिःपापैरशास्त्रीयस्यसेवनैः ॥ पतन्त्येत्र

वाला पुरुष रुधिरान्ध नरकमें जाता है ॥ १९ ॥ नक्षत्रों, व नटकार्य और मल्लादिकों के कर्म से जीविका करनेवाला पुरुष वैतरणी नदीवाले नरक को जाताहै और धन व यौवनसे जो मतवाला है और जो धन को हरलेताहै वह पुरुष कृष्ण नामक नरक को जाताहै ॥ २० ॥ और वृथाही वृक्षों को काटनेवाला पुरुष असिपत्रवन नामक नरकमें जाताहै व कपटसे जीविकावाले सब पुरुष वह्निज्वाल नरकमें गिरतेहैं ॥ २१॥पराये अन्न व पराई स्त्री के समीप जाता हुआ पुरुष सन्दंश नरक को जाताहै और जो दिन में स्वप्नपर याने सोते है और जो व्रतके भङ्ग करने मे तत्परहैं ॥ २२ ॥ और जो शरीर के गर्व से मतवालेहैं ये पुरुष श्वभोजन नामक नरकमें जातेहैं जो सदा-

शिव व विष्णुजी को नहीं मानते हैं वे अवीचि नामक नरक को जाते हैं ॥ २३ ॥ इत्यादिक पापों से व बिनशास्त्रवाली वस्तुके सेवन से पुरुष हज़ारों भयंकर नरकों
में गिरतेही हैं ॥ २४ ॥ इस लिये जो बुद्धिमान् मनुष्य इन नरकों से अलग होनाचाहै तो उससे वेदमार्ग के द्वारा विष्णु व महादेवजी दोनों देवता पूजनीयहैं ॥ २५ ॥
नरकों के नीचे भागमें कालाग्निसंज्ञक स्थित है उस के नीचे कच्छप व उस के नीचे शेषजी कहेगये हैं ॥ २६ ॥ जिन शेषजी के मस्तक के अग्रभागपै यह समस्त
संसार सरसों की नाई धराहै इस अमित प्रभावसे वे अनन्त ऐसे कहेजाते हैं॥२७॥तदनन्तर पद्म, कुमुद, अंजन व वामन ये दिशाओं के हाथी हैं उसके नीचे अण्ड

महाघोरनरकेषुसहस्रशः ॥ २४ ॥ तस्माद्यइच्छेदेतेभ्योविमोक्षंबुद्धिमान्नरः ॥ श्रुतिमार्गेणतेनार्च्यौ देवौहरिहरावु
भौ ॥ २५ ॥ नरकाणामधोभागे स्थितःकालाग्निसंज्ञकः ॥ तदधश्चैवमण्डूको ह्यनन्तस्तदधःस्मृतः ॥ २६ ॥ यस्यैत
त्सकलंविश्वं मूर्द्धाग्रेसर्षपायते ॥ इत्यनन्तप्रभावात्सोनन्तश्चेत्यत्रकीर्त्यते ॥ २७ ॥ दिशाङ्गजास्ततःपद्मकुमुदाञ्जन
वामनाः ॥ तदधोण्डकटाहश्च एकवीरास्तितत्रच ॥ २८ ॥ चतुर्लक्षसहस्राणि तावन्त्येवशतानिच ॥ एतेनैवप्रमाणेन उ
दकश्चततःस्मृतम् ॥ २९ ॥ तदधोनरकाःकोट्यो द्विकोट्यग्निस्ततोमहान् ॥ ३० ॥ चत्वारिंशतिसाहस्रैस्तदधस्तम
उच्यते ॥ चत्वारिंशच्चकोट्यस्तु चतस्रश्चतथापराः ॥ ३१ ॥ एकोननवतिर्लक्षाः सहस्राशीतिरेवच ॥ तदधोण्डकटाहेथ
कोटिमात्रेस्थितापरा ॥ ३२ ॥ देवीयुक्ताकपालीशा दण्डहस्तेनचापिसा ॥ देवीनांकोटिकोटीभिस्संवृतातत्रपालिनी ॥
३३ ॥ सङ्कर्षणास्यनिःश्वासप्रेरितोदाहकोनलः ॥ कालाग्निप्रेरयत्येष कल्पान्तेदहतेजगत् ॥ ३४ ॥ एवंविधमध

कटाह है वहां एकवीर है ॥ २८ ॥ उसके उपरान्त चार लाख हजार व उतनेही याने चार लाखसौ इसी प्रमाणसे जल कहागया है ॥ २९ ॥ उसके नीचे करोड़ों
नरकहैं उसके उपरान्त दो करोड योजन तक बड़ीभारी अग्नि है ॥ ३० ॥ उसके नीचे चालीस हज़ार योजन अन्धकार कहाजाता है चालीस व चार और याने च-
वालिस करोड ॥ ३१ ॥ नवासी लाख अस्सीहज़ार योजन पर करोड़ योजनवाले अण्डकटाह मे उत्तम कपालीशा देवी युक्तहैं वे हाथमें दण्डसे भी उपलक्षित हैं
और करोड़ों करोड़ देवियोंसे घिरीहुई वह देवी वहा पालन करती है ॥ ३२। ३३ ॥ और शेषजीके श्वास से प्रेरित यह जलानेवाली अग्नि कल्पान्त मे संसार को ज-

लाती है ॥ ३४॥ हे भारत! इस संसार में वहां नीचे इस प्रकारका सब निर्मित स्थानहै और मध्यसूत्र कटाह में जो पालकहैं उनको मुझसे सुनिये ॥ ३५ ॥ पूर्वमें वसुधामा स्थितहै व दक्षिण में शंखपाल, पश्चिम में तक्षकेश व उत्तर मे केतुमान् हैं ॥ ३६ ॥ हरसिद्धि, सुवर्णाक्षी, भास्करा व योगनन्दिनी करोड करोड़ देवियोंसे संयुत ये देवियां इस संसारको पालन करती हैं ॥ ३७ ॥ इस प्रकार बड़े आश्चर्यवाले ब्रह्माण्ड को जिन्होंने स्थापन कियाहै मैं उन ब्रह्मा, विष्णु व महेश को नित्य नमस्कार करताहूं ॥ ३८ ॥ विष्णुलोक व रुद्रलोक, इससे बाहर कहा जाता है उसका वर्णन करने के लिये न ब्रह्मा समर्थ हैं और न हमलोग समर्थ हैं ॥ ३९ ॥ विष्णु

स्तत्र निर्मितंचात्रभारत ॥ मध्यसूत्रेकटाहेच पालकास्ताञ्छृणुष्वमे ॥ ३५ ॥ वसुधामास्थितःपूर्वे शङ्खपालश्चदक्षिणे ॥ तक्षकेशःस्थितःपश्चादुत्तरेकेतुमानिति ॥ ३६ ॥ हरसिद्धिस्सुवर्णाक्षी भास्करायोगनन्दिनी ॥ कोटिकोटियुता देव्यो देवीनांपालयन्त्यदः ॥ ३७ ॥ एवमेतन्महाश्चर्यं ब्रह्माण्डंस्थापितंचयैः ॥ नमामितानहंनित्यं ब्रह्मविष्णुमहेश्वरान् ॥ ३८ ॥ विष्णुलोकोरुद्रलोको बहिश्चात्माप्रकीर्त्यते ॥ तञ्चवर्णयितुंब्रह्मा शक्तोनैवास्मदादयः ॥ ३९ ॥ विमुक्तायत्रसंयान्ति नित्यंहरिहरव्रताः ॥ ब्रह्माण्डंसंवृतंह्येतत् कटाहेनसमन्ततः ॥ ४० ॥ कपित्थस्ययथाबीजंकटाहेनसुसंवृतम् ॥ दशोत्तरेणपयसा वृतंतच्चापितेजसा ॥ ४१ ॥ तेजश्चवायुनावायुर्नभसाहन्तयाचतत् ॥ अहङ्कारश्चमहता तच्चापिप्रकृतिःपरा ॥ ४२ ॥ दशोत्तराणिसर्वाणि षडाहुःसप्तमञ्चयत् ॥ प्राकृतावरणंपार्थ तदनन्तंप्रकीर्तितम् ॥ ४३ ॥ अण्डानान्तुसहस्राणां सहस्राण्ययुतानिच ॥ ईदृशानांतथातत्र कोटिकोटीशतानिच ॥ ४४ ॥ सर्वाण्येवंविधान्येव

व महादेव के नियमोवाले पुरुष मुक्त होकर जहां जाते है यह ब्रह्माण्ड सबओर कटाह से घिराहुआ है ॥ ४० ॥ जैसे कि कटाह याने कैथाके गोलाकार बकले से भलीभांति घिराहुआ कैथाका बीजहोवै वह अण्डकटाह अपनी प्रमाण के दशगुने जलसे घिराहै और वह जलभी तेज अग्निसें घिरा है ॥ ४१ ॥ और अग्नि पवनसे घिरीहै और पवन आकाश से और वह आकाश अहंकार से घिराहै और अहंकार महत्तत्त्व से घिराहै व उस महत्तत्त्व को परम प्रकृति घेरेहै॥४२॥ विद्वानों ने सब छह आवरणों को दशोत्तर याने दश दश गुना अधिक कहा है और हे अर्जुन जी! जो सातवां प्राकृत आवरण है वह अनन्त कहागया है ॥४३॥ और उस प्रकृति

में ऐसे हज़ारों हजार व दशहजार और करोडों करोड सैकड़ों ब्रह्माण्ड स्थित हैं ॥ ४४ ॥ और समस्त ब्रह्माण्ड ऐसेही हैं जैसा कि यह कहागया है हे पार्थ ! जिसका ऐसा ऐश्वर्य है उन सदाशिव जीको मैं प्रणाम करताहूं ॥ ४५ ॥ इसलिये बडे आश्चर्य की बातहै कि वह कौन पापात्मा निर्बुद्धि पुरुषहै कि जो इस प्रकार के मोहमें प्राप्तहोकर तारनेवाले शिवको न भजै ॥ ४६ ॥ इसके अनन्तर मैं तुमसे समयका प्रमाण कहताहूं कि उसको सुनिये ॥ ४७ ॥ कि पद्रह निमेषकी काष्ठा विद्वानों ने कही है और तीस काष्ठाकी कला गनै और तीस कलाओंका मुहूर्त्त होताहै व तीसमुहूर्त्तों का दिन रात दोनों होतेहैं ॥ ४८ ॥ एक दिन में तीन तीन मुहूर्त्तोंवाले पांच

यादृशंकीर्तितंविदम् ॥ यस्यैवंवैभवंपार्थ तन्नमामिसदाशिवम् ॥ ४५ ॥ अहोमन्दःसपापात्मा कोवातस्मादृतेत नः ॥ यएवंविधसम्मोहस्तारकंनशिवंभजेत् ॥ ४६ ॥ अथतेकीर्तयिष्यामिकालमानंनिबोधतत् ॥ ४७ ॥ काष्ठानिमे पादशपञ्चाहुस्त्रिंशच्चकाष्ठागणयेत्कलांहि ॥ त्रिंशत्कलाश्चापिभवेन्मुहूर्तस्तैस्त्रिंशताराज्यहनीउभेच ॥४८॥ दिवसे प[ञ्च]कालाःस्युस्त्रिमुहूर्ताःशृणुष्वतान् ॥ प्रातस्तयासङ्गवश्चमध्याह्नश्चापराह्णिकः ॥ ४९ ॥ सायाह्नःपञ्चमश्चापि मुहूर्तांद शपञ्च[illegible] ॥ अहोरात्राःपञ्चदश पक्षइत्यभिधीयते ॥ ५० ॥ मासःपक्षद्वयेनोक्तो द्वौमासौचार्कजावृतुः ॥ ऋतुत्रयंचा [illegible]मुच्यते ॥ ५१ ॥ चतुर्भेदंमासमाहुः पञ्चभेदंचवत्सरम् ॥ संवत्सरस्तुप्रथमे द्वितीयःपरिवत्सरः ॥ [illegible]स्तृतीयस्तु चतुर्थश्चानुवत्सरः ॥ पञ्चमश्चयुगोनाम गणनानिश्चयोहिसः ॥ ५३ ॥ मासेनचमनुष्याणाम ५२ ॥ [illegible]पक्षस्त्वहःप्रोक्तः शुक्लपक्षश्चशर्वरी ॥ ५४ ॥ मानुषेणचवर्षेण दैविकोदिवसःस्मृतः ॥ अहस्त होरात्रंन[illegible] ॥

[illegible] हैं उनको सुनिये कि प्रातः, संगव, मध्याह्न, अपराह्न ॥ ४९ ॥ व पांचवा सायाह्नहै और दिनमें पंद्रह मुहूर्त्त होते हैं व पद्रह दिनरात का पक्ष ऐसा कहाजाता [illegible] दो पक्षोंका मास कहागया है और दो महीनों की ऋतु होती है और तीन ऋतुवोंका अयन होताहै व दो अयनो का साल कहाजाता है ॥ [illegible] ॥ विद्वानों ने महीने के चार भेद कहा है और पांच भेदवाले सालको कहा है पहला संवत्सर दूसरा परिवत्सर ॥ ५२ ॥ तीसरा इद्वत्सर और चौथा अनुवत्सर है [illegible] वही गणना का निश्चय है ॥५३॥ मनुष्यों के एक महीने से पितरों का दिनरात होताहै कृष्णपक्ष दिन कहागया है व शुक्लपक्ष रात्रिहै ॥५४॥

और मनुष्यों के एक वर्ष से देवताओं का दिनरात कहागया है उसमें उत्तरायण दिनहै व दक्षिणायन रात्रिहै ॥ ५५ ॥ और देनताओं के वर्ष से सप्तर्षियों का दिन मानागया है व सप्तर्षियों के वर्ष से ध्रुवका दिन कहागया है ॥ ५६ ॥ मनुष्यों के सत्रह लाख व अट्ठाईस हज़ार वर्षका सतयुग होताहै ॥ ५७ ॥ व मनुष्यों ही के वर्ष प्रमाण से बारहलाख छानबे हजार वर्षका त्रेतायुग कहागया है और अठारहलाख चौंसठि हज़ार वर्षका द्वापर युग होता है ॥ ५८ ॥ व चारलाख, बत्तीसहज़ार वर्षकी कलियुग कहागयाहै इन चारों से देवताओंका युग ऐसा कहाजाता है ॥ ५९ ॥ और मनुका आयुर्बल इकहत्तरि युगोंका होताहै और चौदह मनुवों के समय

त्रोदगयनं रात्रिःस्याद्दक्षिणायनम् ॥ ५५ ॥ वर्षेणचैवदेवानांमतःसप्तर्षिवासरः ॥ सप्तर्षीणांचवर्षेण ध्रौवश्चदिवसःस्मृतः ॥ ५६ ॥ मानुषाणांचवर्षाणि लक्षास्सप्तदशैवच ॥ अष्टाविंशतिचैवापि सहस्राणिकृतंयुगम् ॥ ५७॥ लक्षाद्वादशसाहस्राः षण्णवत्यधिकःपरः ॥ मानुषेणैवमानेन त्रेतायुगउदीरितः ॥ अष्टौलक्षाश्चतुःषष्टिसहस्राणिचद्वापरः ॥ ५८ ॥ चतुर्लक्षश्चद्वात्रिंशत्सहस्राणिकलिःस्मृतः ॥ चतुर्भिरेतैर्देवानां युगमित्यभिधीयते ॥ ५९ ॥ आयुर्मनोर्युगानांच साधिकाह्येकसप्ततिः ॥ चतुर्द्दशमनूनांच कालेनब्रह्मणोदिनम् ॥ ६० ॥ युगानांचसहस्रेण सचकल्पःशृणुष्वतत् ॥ भवोद्भवस्तथाभव्य ऋतुर्वह्निर्वराहकः ॥६१॥ सावित्रऔसिकश्चापि गान्धारःकुशिकस्तथा ॥ ऋषभश्चतथाखड्गो गान्धारीयश्चमध्यमः ॥ ६२ ॥ वैराजश्चनिषादश्च मेघवाहनपञ्चमौ ॥ चित्रकोज्ञानआकूतिर्मनोदर्शश्चबृंहिकः ॥ ६३ ॥ श्वेतरोहितरक्तौच पीतवासाःशिवःप्रभुः ॥ सर्वरूपश्चमानोयमेवंवर्षशतावधिः ॥ ६४ ॥ पूर्वार्द्धमपरार्धञ्च ब्रह्ममानमिदंस्मृ

से ब्रह्माका दिन होताहै ॥६०॥ और हज़ार युगोंसे कल्पहोता है उसको सुनिये कि भवोद्भव, भव्य, ऋतु, वह्नि, वराहक ॥ ६१ ॥ सावित्र, औसिक, गान्धार, कुशिक, ऋषभ व खड्ग, गांधारी जोकि मध्यम है ॥ ६२ ॥ वैराज, निषाद, मेघवाहन, पंचम, चित्रक, ज्ञान, आकूति, मनोदर्श व बृंहिक ये नामहैं ॥ ६३॥ श्वेत, अरुण, लाल व पीले वसनवाले शिव स्वामी होते हैं जोकि समस्त रूपधारी हैं यह ब्रह्माके दिनकी प्रमाणहै इसी प्रकार सौ वर्ष ब्रह्माके आयुर्बल की अवधि है ॥६४॥ पूर्वार्द्ध

व परार्द्ध यही ब्रह्माकी आयुर्बल का प्रमाण है और विष्णु व शङ्करजीकी आयुर्बलके वर्णन करने में मैं समर्थ नहीं हूं ॥ ६५ ॥ कहां तो थोड़ी बुद्धिवाला मैं और कहां अपार विष्णु व त्रिलोचनजी हैं देवताओंवाले प्रमाणसे पातालों में गिनाजाता है ॥ ६६ ॥ यह तुमसे बुद्धिके द्वारा सूचित कियागया इसके उपरान्त फिर प्रकरण (पहले सम्बन्ध की कथा) को सुनिये ॥ ६७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेभाषाटीकायांभुवनकोशेकालादिवर्णननामद्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

दो० । बर्बरेश्वरहि लिंग जिमि थाप्यो राजकुमारि । तैंतिसवें अध्याय में सोइ चरित सुखकारि ॥ नारदजी बोले कि हे अर्जुन जी ! ऋषभ नामक वे हुये हैं कि

तम् ॥ विष्णोश्चशङ्करस्यापि नाहंशक्तोस्मिवर्णने ॥ ६५ ॥ काहमल्पमतिःपार्थ क्कापारौहरित्र्यम्बकौ ॥ दैविकेनैवमाने न पातालेष्वपिगण्यते ॥ ६६ ॥ इति तेसूचितंबुद्ध्या शृण्वतःप्रकृतंपुनः ॥ ६७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डे भुवनकोशेकालादिवर्णननामद्वात्रिंशोध्यायः ॥ ३२ ॥

* ॥ * ॥ * ॥

नारदउवाच ॥ ऋषभोनामयन्नाम्ना नानापाखण्डकल्पनाः ॥ कलौपार्थभविष्यन्ति लोकानांमोहनात्मिकाः ॥ १ ॥ तस्यपुत्रश्चभरतः शतशृङ्गश्चतत्सुतः ॥ तस्यपुत्राष्टकंजातंतथैकाचकुमारिका ॥ २ ॥ इन्द्रद्वीपःकसेरुश्च ताम्रद्वीपोगभस्तिमान् ॥ नागस्सौम्यश्चगन्धर्वो वरुणश्चकुमारिका ॥ ३ ॥ वदनंवापिकन्यायाः पार्थबर्करिकाकृति ॥ शृणुतत्कारणंसर्वं महाश्चर्यसमन्वितम् ॥ ४ ॥ महीसागरपर्यन्ते वृक्षराजीविराजिते ॥ जालिगुल्मलताकीर्णे स्तम्भतीर्थस्यसन्निधौ ॥ ५ ॥ अजासमागतामध्यात्काचिदेकातुबर्करी ॥ भ्रान्तासतीसमायाता प्रदेशेतत्रदुश्चरे ॥ ६ ॥ इतस्ततोभ्रम

जिनके नाम से कलियुग में मोह करानेवाले अनेक भांति के पाखण्ड कल्पना होते हैं ॥ १ ॥ उनके पुत्र भरत हुये और उनके पुत्र शतशृंग हुये और उनके आठ पुत्र तथा एक कन्या हुई ॥ २ ॥ इन्द्रद्वीप, कसेरु, ताम्रद्वीप, गभस्तिमान्, नाग, सौम्य, गंधर्व व वरुण और एक कन्या थी ॥ ३ ॥ हे अर्जुन जी ! कन्याका मुख भी बकरी के मुख के आकार समान था उस बड़े आश्चर्य से संयुत कारणको सुनिये ॥ ४ ॥ कि वृक्षों की पंक्तियोंसे शोभित व झरोखादार छोटे वृक्षों व लताओं से पूर्ण महीसागर के किनारे स्तंभतीर्थ के समीप ॥ ५ ॥ कोई एक बकरी आगई जो वह बकरी कि अपने यूथ से भूल कर उस कठिन स्थान में आई थी ॥ ६ ॥

वह इधर उधर जालवाले शाखारहित-वृक्षोंके बीचमें घूमती थी उस समय क्षुधा, प्याससे व्याकुल वह निकलने के लिये न समर्थ हुई ॥ ७ ॥ तदनन्तर जालवाले वृक्षों के बीचमें वह लगगई और मृत्युको प्राप्तहुई कुछ समयके उपरान्त उसके शिरसे टूटकर वह शरीर नीचे ॥ ८ ॥ शनैश्चर अमावस के दिन समस्त तीर्थमय व सब पापों के छुडानेवाले महीसागर संगम में गिरपड़ा ॥ ९ ॥ और वह शिर उन्हीं वृक्षों में स्थित रहा जो कि उन लतादिकों में लगा हुआ भली भाति स्थित था जिस लिये कि जालवाले शाखारहित वृक्षों में वह शिर लगाहुआ था उसी कारण जलमें नहीं गिरा ॥ १० ॥ हे कुरुनायक अर्जुन जी ! महीसागर

न्तीसा जालिमध्येसमन्ततः ॥ निर्गन्तुंनैवशक्नोति क्षुत्पिपासार्दितातदा॥ ७ ॥ विलग्नाजालिमध्येचततःपञ्चत्वमागता ॥ कालेनकियतातस्यास्त्रुटित्वाशिरसोप्यधः ॥ ८ ॥ पपातशनिदर्शेचमहीसागरसङ्गमे ॥ सर्वतीर्थमयेतत्र सर्वपापप्रमोचने ॥ ९ ॥ शिरस्तुतदवस्थंहि संलग्नंतत्रसंस्थितम् ॥ जालिगुल्मावलग्नंच तस्मान्नैवापतज्जले ॥ १० ॥ शेषकायप्रपातेन महीसागरसङ्गमे ॥ तस्यतीर्थप्रभावेन वर्करीसाकुरूद्वह ॥ ११ ॥ शतशृङ्गस्यवैराज्ञः सिंहलेष्वभवत्सुता ॥ मुखंबर्करिकातुल्यं ततस्तस्याऽव्यजायत॥ १२ ॥ दिव्यनारीशुभाकारा शेषकायंबभौशुभम् ॥ पूर्वंतस्याप्यपुत्रस्य राज्ञःपुत्रशतोपमा ॥ १३ ॥ पुत्रीजाताप्रमोदेन स्वजनानन्दवर्द्धिनी ॥ ततस्तस्याविलोक्याथ मुखंबर्करिकाकृति ॥ १४ ॥ विस्मयंसमनुप्राप्ताःसर्वेतेराजपूरुषाः ॥ विषादंपरमापन्नो राजास्वान्तःपुरस्तदा ॥ १५ ॥ खिन्नाःप्रकृतयःसर्वास्ताद्दग्रूपविलोकनात ॥ तत्किमित्येतदाश्चर्यमूचुःपौरास्सुविस्मिताः ॥ १६ ॥ ततःसायौवनंप्राप्ता साक्षाद्देवसुतो

संगममें शेष शरीर के गिरने के कारण उस तीर्थ के प्रभाव से वह बकरी ॥ ११ ॥ सिंहल देश में शतशृंगनामक राजा की कन्या हुई और उसी कारण उसका मुख बकरी के नाईं हुआ ॥ १२ ॥ और उत्तम आकारवाली वह दिव्य स्त्री हुई व मुख को छोडकर शेष शरीर उत्तम शोभित हुआ पुत्रहीन उस राजाके पहलेही सौपुत्रों के समान ॥ १३ ॥ वह कन्या पैदाहुई जो कि हर्ष से निज जनों के आनन्द को बढानेवाली थी तदनन्तर बकरी के आकारवाले उसके मुख को देखकर ॥ १४ ॥ वे सब राजपुरुष बड़े विस्मयको प्राप्तहुये व उससमय राजा व रनिवास सब बड़े दुःखको प्राप्तहुआ ॥ १५ ॥ और वैसे रूपको देखनेसे सब प्रजाये दुःखितहुई और बड़े

विस्मय में प्राप्त होतेहुये पुरवासी जनोंने उस समय यह कहा कि यह क्या आश्चर्य है ॥ १६ ॥ तदनन्तर साक्षात् देवकन्याके समान वह युवावस्थाको प्राप्तहुई व उसने अपने मुखको शीशे में देखकर पहले जन्मको स्मरण किया ॥ १७ ॥ और उस तीर्थके प्रभावको माता, पितासे बतलाया व यह कहा कि हे पिताजी! मेरे लिये शोच न करना चाहिये ॥ १८ ॥ हे माता ! शोच मत कीजिये क्योंकि पहले जन्ममें इकट्ठा कियाहुआ यह फलहै तदनन्तर उसने पहले के उत्तम वृत्तान्तको कहकर ॥ १९ ॥ पूर्व जन्म में पैदाहुआ उसका शरीर जहां गिराथा उस स्थानको जाने के लिये उसने पिता, मातासे कहा ॥ २० ॥ कि हे पिताजी! मैं महीसागरके संगम में जाऊंगी हे

पमा ॥ स्वमुखंदर्पणेवीक्ष्य स्मृतःपूर्वोभवस्तया ॥ १७ ॥ तस्यतीर्थप्रभावन्तु मातृपित्रोर्निवेदितम् ॥ विषादोनैवकर्त्तव्यो मदर्थंतातनिश्चितम् ॥ १८ ॥ माशोकंकुरुमेमातः पूर्वजन्मार्जितंफलम् ॥ ततःपूर्वंसुवृत्तान्तमुक्त्वासाचकुमारिका ॥ १९ ॥ पूर्वजन्मोद्भवःकायस्तस्यायत्रापतत्तथा ॥ गमनायतमुद्देशं विज्ञप्तौपितरौतया ॥ २० ॥ अहंतातगमिष्यामि महीसागरसङ्गमे ॥ भवामितत्रसम्प्राप्ता यथाकुरुतथान्नृप ॥ २१ ॥ ततःपित्राप्रतिज्ञातं शतशृङ्गेणतत्तथा ॥ तस्याःसंवाहनंचक्रे राजापोतैस्सरत्नकैः ॥ २२ ॥ स्तम्भतीर्थंततस्सापि प्राप्यपोतार्थसंयुता ॥ भूरिदानंतत्रचक्रे दानंसर्वस्वदक्षिणम् ॥ २३ ॥ जालिगुल्मान्तरेन्विष्य ततोदृष्टंनिजंशिरः ॥ अस्थिचर्मावशेषन्तु तदादायप्रयत्नतः ॥ २४ ॥ दग्ध्वासङ्गमसान्निध्ये क्षिप्तान्यस्थीनिसागरे ॥ ततस्तीर्थप्रभावेण मुखंजातंशशिप्रभम् ॥ २५ ॥ नतादृग्देवकन्यानां

राजन्! वहांपर भलीभांति प्राप्तहुई मैं जिसप्रकार होऊं वैसाही कीजिये ॥ २१ ॥ तदनन्तर शतशृंग पिताने उसकी प्रतिज्ञाकिया कि वैसाही होगा और राजाने रत्नों समेत नावों के द्वारा उसको प्राप्तकिया याने पहुँचाया ॥ २२ ॥ तदनन्तर नावों की द्रव्यसे संयुत वह कन्याभी स्तम्भतीर्थमें प्राप्तहुई व उसने वहां बहुतसा दान किया और सर्वस्व दक्षिणावाला दान किया ॥ २३ ॥ तदनन्तर जालवाले शाखारहित वृक्षोंके बीचमें ढूंढ़कर उसने अपने शिरको देखा कि जिस में हड्डी व चर्ममात्र शेषथा और उसको बड़े यत्नसे लेकर ॥ २४ ॥ व संगमके समीप जलाकर हड्डियोंको समुद्रमें फेंकदिया तदनन्तर तीर्थके प्रभावसे मुख चन्द्रमाके समान शोभावान्

होगया ॥ २५ ॥ वैसा मुख न देवकन्याओं का था न वैसा नागपत्नियों का था और न वैसा मनुष्य की स्त्रियोंका था जैसा कि उसका उत्तम मुख था ॥ २६ ॥ देवता, दैत्य व मनुष्य सब उसके रूपसे मोहित होगये और बहुत भांतिसे इनकी प्रार्थना करते थे परन्तु वह वर (पति) को नहीं चाहती थी ॥ २७ ॥ और उसने वहां बडे क्लेशदायक कठिन तपका प्रारम्भ किया तदनन्तर वर्ष पूर्ण होने पर देवताओं के देवता महादेवजी ॥ २८ ॥ उसके सामने प्राप्तहुये व यह बोले कि मैं वरदायक हूं तदनन्तर उन शिवजीको पूजकर कुमारी वचनको बोली ॥ २९ ॥ कि हे देवेश ! यदि प्रसन्नहो और यदि मुझको वरदान देने योग्यहै तो हे शंकरजी !

नतादृग्नागयोषिताम् ॥ नतादृग्मर्त्यनारीणां तस्यायादृग्मुखंशुभम् ॥ २६ ॥ सुरासुरनरास्सर्वे तस्यारूपेणमोहिताः ॥ बहुधाप्रार्थयन्त्येनां नसावरमभीप्सति ॥ २७ ॥ कष्टंतयामुदातत्र प्रारब्धंदुश्चरन्तपः ॥ ततस्संवत्सरेपूर्णे देवदेवोमहेश्वरः ॥ २८ ॥ प्रत्यक्षतांगतस्तस्या वरदोस्मीतिचाब्रवीत् ॥ ततस्तंपूजयित्वातु कुमारीवाक्यमब्रवीत् ॥ २९ ॥ परितुष्टोसिदेवेश यदिदेयोवरोमम ॥ ३० ॥ सान्निध्यंक्रियतामत्र सर्वकालंहिशङ्कर ॥ एवमस्त्वितिशर्वेण प्रोक्तेहृष्टाकुमारिका ॥ ३१ ॥ यत्रदग्धंशिरस्तस्या बर्कर्याःकुरुसत्तम ॥ बर्करेशःशिवस्तत्र तथासंस्थापितस्तया ॥ ३२ ॥ सम्मुह्यतुतदाश्चर्यं श्रुत्वेदञ्चतलातलात् ॥ स्वस्तिकोनामनागेन्द्रः कुमारींद्रष्टुमाययौ ॥ ३३ ॥ शिरसागच्छतातेन यत्रभित्त्वाचभूतलम् ॥ ईशानेबर्करेशस्य कूपोभूत्स्वस्तिकाभिधः ॥ ३४ ॥ पूरितोगङ्गयापार्थ सर्वतीर्थफलप्रदः ॥ दृष्ट्वा

यहां सब समय में आप समीपता कीजिये ऐसाही होगा शंकरजीके ऐसा कहनेपर कुमारी प्रसन्नहुई ॥ ३०।३१ ॥ हे कुरुश्रेष्ठ अर्जुनजी ! जहां उस बकरी का शिर जलायागया था वहां उसने बर्करेश नामक शिवजीको भलीभांति स्थापित किया ॥ ३२ ॥ इस आश्चर्यको सुनकर उस समय भलीभांति मोहित होकर स्वस्तिक नामक नागोंका राजा तलातल से कुमारीको देखने के लिये आया ॥ ३३ ॥ मस्तकके द्वारा गमन करताहुआ वह पृथ्वीको फोडकर जहां निकला वहां बर्करेश्वर के ईशान कोणमें स्वस्तिक नामक कूप हुआ ॥ ३४ ॥ हे अर्जुनजी ! गंगाजी से पूर्ण किया हुआ वह कूप समस्त तीर्थोंके फलोंको देताहै थापेहुये लिंगको देखकर प्रसन्न होते

हुये शिवजीने वरदान दियाहै ॥ ३५ ॥ कि जिन मृतक शरीरों का यहां दाह होगा समुद्रमें फैंकेहुये हड्डियोंवाले उनकी अविनाशिनी गति होगी ॥ ३६ ॥ और बहुत
समय तक स्वर्गमें बसकर वे यहां भलीभांति प्राप्तहोकर सब वस्तुओं से सम्पूर्ण व प्रताप समेत राजाहोंगे ॥ ३७ ॥ और जो मनुष्य महीसागर के जलमें नहाकर भक्ति
[illegible] मर्करेश्वरको पूजताहै उसके मनका अभिलाष होताहै ॥ ३८ ॥ और कार्त्तिकमहीने में कृष्णपक्षवाली चौदसि में श्रद्धासंयुत जो मनुष्य कूपमें नहाकर व अपने पि-
[illegible] पूजनकर ॥ ३९ ॥ जो बर्करेशको पूजैगा वह सब पापों से छूटजायगा इस प्रकार समस्त वरोंको पाकर वह फिर सिंहलदेश को चलीगई ॥ ४० ॥ हे अर्जुन

[illegible] लिङ्गं शिवस्तुष्टोवरन्ददौ ॥ ३५ ॥ येषांमृतशरीराणामत्रदाहःप्रजायते ॥ प्रक्षिप्तसागरास्थीनां तेषांस्याद
[illegible] ॥ ३६ ॥ तेस्वर्गेसुचिरङ्कालं वसित्वात्रसमागताः ॥ राजानस्सर्वसम्पूर्णाः सप्रतापाभवन्तुते ॥ ३७ ॥ बर्करेश
[illegible] तिमानवः ॥ स्नात्वार्णवमहातोये तस्यस्यान्मनसेप्सितम् ॥ ३८ ॥ कार्त्तिकेचचतुर्दश्यां कृष्णा
[illegible] नन्तरः कृत्वा सन्तर्प्यचपितृन्निजान् ॥ ३९ ॥ पूजयेद्बर्करेशंयः सर्वपापैःप्रमुच्यते ॥ एवंल
[illegible] ॥ ४० ॥ शतशृङ्गायपित्रेच वृत्तान्तंस्वंन्यवेदयत ॥ तच्छ्रुत्वाविस्मितोराजा लोका
[illegible] महातीर्थमाजग्मुश्चकृतादराः ॥ स्नात्वात्रदत्त्वादानानि विविधानिचतेततः ॥ ४२ ॥
[illegible] च्छन्त्यांकुमार्यांच वरंदत्त्यज्ञ्चपार्थिवः ॥ ४३ ॥ तथान्यदपिप्रीत्यासौ
[illegible] रूपसः ॥ ४४ ॥ ददावष्टौस्वपुत्राणां कुमार्यैनवमंतथा ॥ तेषांवि

[illegible] राजा व समस्त मनुष्य विस्मय में प्राप्तहुये ॥ ४१ ॥ और उन्होंने महातीर्थ की प्रशंसा
[illegible] व अनेक प्रकारके दानोंको देकर वे लोग ॥ ४२ ॥ तीर्थमाहात्म्य से प्रसन्नहोकर
[illegible] राजाने प्रसन्नता से इसको जो दियाहै उसको सुनिये कि उस राजाने इस भर-
[illegible] कुमारीके लिये दिया पर्वतोंसे शोभित उनके विभागों को

[illegible] म उसने
[illegible] कहाहै और चारही लाख

मैं कहूंगा ॥ ४५ ॥ पुत्रोंके नामोंवाले खण्डों व पर्वतोंको मुझसे सुनिये कि महेन्द्र, मलय, सह्य, शक्तिमान् व ऋच्छ पर्वत ॥ ४६ ॥ और विन्ध्य व पारियात्र ये सात इस खण्डमें कुलपर्वत हैं महेन्द्र के उपरान्त इन्द्रद्वीप खण्ड कहाजाता है ॥ ४७ ॥ और पारियात्रके इस पार विद्वानों ने कुमारिकाखण्ड कहा है ये सब खण्ड एक एक हजार योजन हैं ॥ ४८ ॥ हे अर्जुन ! नदियों की उत्पत्तिको भी संक्षेप से सुनिये कि वेदस्मृति इत्यादिक नदियां पारियात्र पर्वत से उपजीहुई मानीगई हैं ॥ ४९ ॥ और नर्मदा व सुरसादिक नदियां विन्ध्याचल से निकली हैं और शतद्रू (सतलज) व चन्द्रभागादिक नदियां ऋच्छपर्वत से उपजी हैं ॥ ५० ॥ और ऋषि-

भेदान्वक्ष्यामि पर्वतैरुपशोभितान् ॥ ४५ ॥ पुत्रनामानिवर्षाणि पर्वतांश्चशृणुष्वमे ॥ महेन्द्रोमलयःसह्यः शुक्तिमान्नृच्छपर्वतः ॥ ४६ ॥ विन्ध्यश्चपारियात्रश्च सप्तात्रकुलपर्वताः ॥ महेन्द्रपरतश्चैव इन्द्रद्वीपंनिगद्यते ॥ ४७ ॥ पारियात्रस्यचैवार्वाक् खण्डंकौमारिकंविदुः ॥ सहस्रमेकमेकञ्च सर्वखण्डान्यमूनिच ॥४८॥ नदीनांसम्भवञ्चापि संक्षेपाच्छृणु फाल्गुन ॥ वेदस्मृतिमुखानद्यः पारियात्रोद्भवामताः ॥ ४९ ॥ नर्मदासुरसाद्याश्च नद्योविन्ध्याद्विनिर्गताः ॥ शतद्रूचन्द्रभागाद्या ऋच्छपर्वतसम्भवाः ॥ ५० ॥ ऋषिकूलाकुमार्याद्याः शुक्तिमत्पादसम्भवाः ॥ तापीपयोष्णीनिर्विन्ध्या कावेरीचमहानदी ॥ ५१ ॥ कृष्णावेणाभीमरथीसह्यपादोद्भवाःस्मृताः ॥ कृतमालाताम्रपर्णीप्रमुखामलयोद्भवाः ॥ ५२ ॥ त्रिसामाऋषिकुल्याद्यामहेन्द्रप्रभवाःस्मृताः ॥ एवंविभज्यपुत्रेभ्यः कुमार्यैचमहीपतिः ॥ ५३ ॥ शतशृङ्गंगिरिंगत्वा उदीच्यांतप्तवांस्तपः ॥ तत्रतप्त्वातपोघोरं ब्रह्मलोकंजगामसः ॥ ५४ ॥ शतशृङ्गोनृपश्रेष्ठ शतशृङ्गेनगोत्तमे ॥ यत्रया

कूला व कुमारी आदिक नदियां शुक्तिमान् पर्वतके समीपवाले पहाड से उत्पन्न हुई हैं और तापी, पयोष्णी, निर्विन्ध्या, कावेरी और महानदी ॥ ५१ ॥ व कृष्णा, वेणा भीमरथी ये नदियां सह्य पर्वत के समीपवाले पहाडसे उत्पन्न हुईहैं और कृतमाला व ताम्रपर्णी इत्यादिक नदियां मलय पर्वतसे उपजी हैं ॥ ५२ ॥ और त्रिसामा व ऋषिकुल्यादिक नदिया महेन्द्र पर्वत से उपजी हुई कहीगई है इस प्रकार पुत्रों व कुमारी के लिये विभागकर राजाने ॥ ५३ ॥ उत्तर दिशामें शतशृंग पर्वतपै जाकर तपस्या किया उस शतशृंग पर्वतोत्तमपै भयानक तपस्याकर वह नृपोत्तम शतशृंग ब्रह्मलोक को चलागया हे कौन्तेय, पाण्डुपुत्र, अर्जुनजी ! जिस पर्वतपै कि सगे

भाइयों समेत तुम गये थे ॥ ५४ । ५५ ॥ और महाभाग्यवती, उत्तम आचरणोंवाली कुमारी ने खण्डमें उपजेहुये धनसे दानोंको देती हुई तपस्या किया ॥ ५६ ॥ तदनन्तर किसी समय के उपरान्त आठों भाइयों से बडे प्रभाव, बल व उत्साहवाले नव नव पुत्र पैदाहुये ॥ ५७ ॥ तदनन्तर वे पुत्र भलीभांति आकर कुमारी से बोले कि हे शुभे ! तुम हम सबोंकी कुलदेवीहो इसलिये हमलोगोंके ऊपर प्रसन्नता कीजिये ॥ ५८ ॥ और आपही आठों खण्डोंको बांटकर हम सब बहत्तरजनों को दीजिये कि जिस प्रकार हमसबों का भेद न होवै ॥ ५९ ॥ समस्त धर्मोंको जाननेवाली व ज्ञानमें ब्रह्माके बराबर ऐसा कहीहुई उस कन्याने नव खण्डों के

तोसिकौन्तेयपाण्डोतैस्सोदरैस्सह ॥ ५५ ॥ कुमारीचमहाभागास्तम्भतीर्थतथासती ॥ खण्डोद्भवेनद्रव्येण तेपेदानानियच्छती ॥ ५६ ॥ ततःकेनापिकालेन भ्रातृभ्योष्टभ्यएवच ॥ महावीर्यबलोत्साहा जातानवनवात्मजाः ॥ ५७ ॥ तेसमेत्यसमागत्य कुमारींप्रोचिरेततः ॥ कुलदेवीत्वमस्माकंप्रसादंकुरुनःशुभे ॥ ५८ ॥ अष्टौखण्डानिवास्माकं त्रिभज्यस्वयमेवच ॥ देहिद्विसप्ततीनांनो विभेदःस्याद्यथाननः ॥ ५९ ॥ इत्युक्तासर्वधर्मज्ञा विज्ञानेब्रह्मणस्समा ॥ द्वासप्ततिविभेदैस्सानवखण्डान्यचीकरत ॥ ६० ॥ तेषांनामानिग्रामाश्च पत्तनानिचफाल्गुन ॥ वेलाकुलानिसंख्याय वक्ष्यामितत्त्वतः ॥ ६१ ॥ कोटिश्चतस्रोग्रामाणां विदधेसाथमण्डले ॥ सार्द्धकोटिद्वयग्रामैर्देशोबालकउच्यते ॥ ६२ ॥ सपादकोटिग्रामाणां खुरासाहणकंविदुः ॥ लक्षाश्चत्वारएवापि ग्रामाणामन्धलेस्मृताः ॥ ६३ ॥ एकलक्षश्चनेपालो ग्रामाणांपरिकीर्त्तितः ॥ षट्त्रिंशल्लक्षमानञ्च कान्यकुब्जंप्रकीर्तितम् ॥ ६४ ॥ द्वासप्ततिस्तथालक्षा ग्रामाणांजनकेस्मृ

बहत्तर विभाग किया ॥ ६० ॥ हे अर्जुन ! उनके नाम व ग्राम और शहर जोकि समुद्र के किनारों में प्राप्त हैं उनको गिनकर तुमसे यथार्थता से कहूंगा ॥ ६१ ॥ मण्डल में उसने चारकरोड़ ग्रामोंको बनाया ढाई करोड़ ग्रामोंसे बालक देश कहा जाताहै ॥ ६२ ॥ और विद्वानों ने सवादो करोड़ ग्रामोंका खुरासाहणक (खुरासान) देश कहाहै और चारही लाख ग्राम अन्धलक देशमें कहेगये हैं ॥ ६३ ॥ व एक लाख ग्रामोंका नैपाल देश कहागया है और छत्तीस लाख ग्रामोंकी प्रमाणवाला

कान्यकुब्ज देश कहागयाहै ॥ ६४ ॥ वैसेही बहत्तर लाख ग्राम जनक देशमें कहेगये हैं और अठारह लाख ग्राम गौडदेश में हैं ॥ ६५ ॥ और कामरूप देशमें नव लाख ग्राम कहेगये है और लाहर्वे व माल संज्ञक देश में नव लाख ग्राम हैं ॥ ६६ ॥ व कान्तिपूर देशमें नवही लाख ग्राम कहेगये हैं व नवलाख ग्राम पाचिपूरदेश में कहेगये हैं ॥ ६७ ॥ वैसेही जालन्धरदेश में नव लाख ग्राम कहेगये हैं और लोहपूर देश में नव लाख ग्राम कहे हैं ॥ ६८ ॥ और हरीपाल देश पाच लाख ग्रामों का माना गया है ॥ ६९ ॥ वैसेही इडके देश मे साढ़े तीनलाख ग्राम कहेगये है वैसेही पांभणग्राहक देश में साढे तीनलाख ग्राम कहे हैं ॥ ७० ॥ और नीलपूरक

ताः ॥ अष्टादशतथालक्षाग्रामाणांगौडदेशके॥ ६५ ॥ कामरूपेचग्रामाणां नवलक्षाःप्रकीर्तिताः ॥ लाहर्वेमालसंज्ञेच ग्रामाणांनवलक्षकम् ॥ ६६ ॥ नवैवलक्षाग्रामाणां कान्तिपूरेप्रकीर्तिताः ॥ ग्रामाणांनवलक्षञ्च पाचिपूरेप्रकीर्तितम् ॥ ६७ ॥ जालन्धरेतथादेशे नवलक्षाःप्रकीर्त्तिताः ॥ लोहपूरेतथादेशे लक्षाःप्रोक्तानवैवच ॥ ६८ ॥ हरीपालञ्चग्रामाणां लक्षपञ्चकसम्मितम् ॥ ६९ ॥ सार्द्धलक्षत्रयंप्रोक्तमिडस्यविषयेतथा ॥ सार्द्धलक्षत्रयंप्रोक्तंतथापाम्भणवाहके ॥ ७० ॥ एकविंशतिसाहस्रं ग्रामाणांनीलपूरके ॥ तथाम्लविषयेपार्थ ग्रामाणामेकलक्षकम् ॥ ७१ ॥ नरेन्दुनामदेशेच लक्षमेकंसपादकम् ॥ तिलङ्गदेशेचतथालक्षःप्रोक्तस्सपादकः ॥ ७२ ॥ लक्षाष्टादशसाहस्रनवतिर्विश्वमालयम् ॥ सयम्भरंतथादेशो लक्षःप्रोक्तःसपादकः ॥ ७३ ॥ मेवाडश्चतथाप्रोक्तो लक्षश्चैकःसपादकः ॥ अशीतिश्चसहस्राणि वागुरिःपरिकीर्त्तितः ॥ ७४ ॥ ग्रामैस्सप्ततिसाहस्रैर्गुर्ज्जराख्यःप्रकीर्त्यते ॥ तथासप्ततिसाहस्रः पाण्डुर्विषयएवच ॥ ७५ ॥ तेजाकु

देश में इक्कीस हज़ार ग्राम हैं वैसेही हे अर्जुनजी ! अम्लदेश में एक लाख ग्रामहैं ॥ ७१ ॥ और नरेन्दुनामक देश में सवालाख ग्राम है वैसेही तैलङ्गदेश में एक लाख पच्चीस हज़ार ग्राम हैं ॥ ७२ ॥ व अठारह लाख नब्बेहजार ग्राम विश्वमालयदेश में है और सवालाख ग्रामों का सयंभर देश कहागया है ॥ ७३ ॥ वैसेही मेवाड देश सवालाख ग्रामों का कहा गया है व असी हज़ार ग्रामोंका वागुरिदेश कहा गया है ॥ ७४ ॥ और सत्तरहज़ार ग्रामों से गुर्जरनामक कहाजाता है वैसेही

सत्तर हज़ार ग्रामों का पाण्डु देशहै ॥ ७५ ॥ और बयालीस हज़ार ग्रामों का तेजाकुति देश कहा गया है व अरसठि हज़ार ग्रामों का काश्मीरमण्डल कहा गयाहै ॥ ७६ ॥ व विद्वानों ने बत्तीस हज़ार ग्रामों को कौंकण देश में कहा है और चौदह सौ चालीस ग्रामों का लघुकौंकण देश है ॥ ७७ ॥ और पचपन हज़ार ग्रामों से सौराष्ट्र देश कहा जाताहै और इक्कीस हज़ार ग्रामोंवाला ताडदेश कहा गया है ॥७८॥ और दश हज़ार ग्रामों का अतिसिन्धु देश कहाजाता है वैसेही हे अर्जुन ! दश हज़ार ग्रामों का अश्वमुख देश कहा जाता है ॥ ७९ ॥ और सजाणुहूति देश में दशहज़ार ग्राम है वैसेही दश हज़ार ग्रामों का वेणु नामक देश कहा गया है ॥ ८० ॥

तिःसहस्राणिद्वाचत्वारिंशएवच ॥ अष्टषष्टिसहस्राणि प्रोक्तंकाश्मीरमण्डलम् ॥७६॥ षट्त्रिंशच्चसहस्राणि ग्रामाणांकोङ्कणोविदुः ॥ चतुर्दशशतंचैव विंशतीलघुकौङ्कणम् ॥७७॥ पञ्चपञ्चाशत्साहस्रं ग्रामैस्सौराष्ट्रमुच्यते ॥ एकविंशतिसाहस्रस्ताडदेशःप्रकीर्तितः ॥ ७८ ॥ अतिसिन्धुश्चग्रामाणांदशसाहस्रमुच्यते ॥ तथाचाश्वमुखंपार्थ दशसाहस्रमुच्यते ॥ ७९ ॥ सहस्रदशकंचैव सजाणुहूतिदेशकः ॥ वेणुनामातथादेशो सहस्रदशकःस्मृतः ॥ ८० ॥ सहस्राणिदशख्यातं तथाकलहजन्तथा ॥ देशोद्राविडमाख्यातं सहस्राणिदशैवच ॥ ८१ ॥ भद्राश्वदेवभद्राश्वौसहस्रदशकौस्मृतौ॥ षट्त्रिंशच्चसहस्राणि स्मृतश्चापिचिरायुषः ॥ ८२ ॥ षट्त्रिंशच्चसहस्राणि यमकोटिःप्रकीर्त्यते ॥ अष्टादशतथाकोट्यो रामकोदेशउच्यते ॥ ८३ ॥ कामरूश्चापिकर्णाटो जाङ्गलश्चत्रयस्त्विमे ॥ सपादलक्षंग्रामाणां प्रत्येकंपरिकीर्तितम् ॥ ८४ ॥ पञ्चलक्षाश्चग्रामाणां स्त्रीराज्येपरिकीर्तिताः ॥ पुलस्तिविषयश्चापि दशलक्षकउच्यते ॥ ८५ ॥ प्रत्येकंलक्षद

वैसेही कलहज देश दश हज़ार ग्रामों का कहा गया है और दशही हजार ग्रामों का द्राविड देश कहा गया है ॥ ८१ ॥ और भद्राश्व व देवभद्राश्व देश दश हज़ार ग्रामों के कहेगये हैं और चिरायुष देश भी छत्तीस हज़ार ग्रामों का कहा गया है ॥ ८२ ॥ और छत्तीस हज़ार ग्रामों का यमकोटि देश कहा जाता है वैसेही अठारह करोड ग्रामों का रामक देश कहा जाताहै ॥ ८३ ॥ कामरू, कर्णाट व जांगल ये तीनों देश प्रत्येक सवालाख ग्रामों के कहेजाते हैं ॥ ८४ ॥ और पांचलाख ग्राम स्त्री के राज्य में कहे है व पुलस्तिका देश भी दश लक्ष ग्रामों का कहा जाता है ॥ ८५ ॥ और काम्बोज व कौशल प्रत्येक दश लाख ग्रामों के कहे हैं व चारलाख

ग्रामों का बाह्लीक देश कहा गया है ॥ ८६ ॥ और छत्तीस हजार ग्रामों का लङ्का देश कहा गया है व चौंसठि हजार ग्रामों का वर्द्धमान देश कहा गया है ॥ ८७ ॥ और दश हज़ार ग्रामों का सिंहलद्वीप कहा जाता है व छत्तीस हजार ग्रामों का पाड्य देश है ॥ ८८ ॥ और एक लाख ग्रामों का भयानक देश है व छाछठि हज़ार ग्रामों का मागध देश कहा जाताहै ॥ ८९ ॥ वैसेही साठि हजार ग्रामों का पंगुदेश है और वरेन्दक देश तीस हजार ग्रामों का कहा गया है ॥ ९० ॥ व पचीस हजार ग्रामों का मूलस्थान देश कहा गया है और चालीस हज़ार ग्रामों का यवन देश कहा गया है ॥ ९१ ॥ और पत्तबाहु देश चारही हजार ग्रामों का कहा गया है ये

शकौ देशौकाम्बोजकौशलौ ॥ ग्रामाणांचचतुर्लक्षो बाह्लीकःपरिकीर्तितः ॥ ८६ ॥ षट्त्रिंशच्चसहस्राणि लङ्कादेशः प्रकीर्तितः ॥ चतुःषष्टिसहस्राणि वर्द्धमानंप्रकीर्तितम् ॥ ८७ ॥ सहस्रदशकञ्चापि सिंहलद्वीपमुच्यते ॥ षट्त्रिंशच्चसहस्राणि ग्रामाणांपाण्ड्यदेशकः ॥ ८८ ॥ लक्षैकंचतथाप्रोक्तंग्रामाणांचभयानकम् ॥ षट्षष्टिश्चसहस्राणिदेशोमागध उच्यते ॥ ८९ ॥ तथाषष्टिसहस्राणिग्रामाणांपङ्गुदेशकः ॥ त्रिंशत्साहस्रउक्तश्च ग्रामाणांचवरेन्दकः ॥ ९० ॥ पञ्चविंशतिसाहस्रं मूलस्थानंप्रकीर्तितम् ॥ चत्वारिंशत्सहस्राणि ग्रामाणांयवनःस्मृतः ॥ ९१ ॥ चत्वार्यैवसहस्राणि पत्तबाहुरुदीर्यते ॥ द्वासप्ततिरिमेदेशाग्रामसंख्याचकीर्तिता ॥ ९२ ॥ एवंभरतखण्डस्य षण्णवत्येवकोटयः ॥ द्वासप्ततिस्तथालक्षाः पत्तनानांप्रकीर्तिताः ॥ ९३ ॥ षट्त्रिंशच्चसहस्राणि वेलाकूलानिभारत ॥ एवंविभज्यखण्डानि भ्रातृजानांददौततः ॥ ९४ ॥ आत्मीयमपिसादेवीअनिच्छत्स्वपितेषु च ॥ यतोमान्येषुभगिनीं प्रतिकुप्यन्तुभारत ॥ ९५ ॥ भ्रातॄन्प्रतिभगिन्यश्चविचार्यैवंददौशुभा ॥ तत्कृत्वासानुमान्यैतान्कृतार्थत्वमुपागता ॥ ९६ ॥ तदेतेषुचदेशेषु चतुर्वर्ग

बहत्तरि देश हैं और ग्रामों की संख्या कही गई ॥ ९२ ॥ इस प्रकार भरतखण्ड के ग्रामों की संख्या छानवे करोड बहत्तरि लाख छत्तीस हज़ार कहीगई है हे भारत ! इस प्रकार समुद्र के किनारे तक नवों खण्डोंको विभागकर उस कुमारी ने अपने भाइयों के पुत्रोंको देदिया ॥ ९३ । ९४ ॥ और उन लोगों के न चाहनेपर भी उस देवीने अपने भी अंशको देदिया हे अर्जुनजी ! जिसलिये कि धनके कारण मान्यजनों व बहन के ऊपरभी ॥ ९५ ॥ व भाइयों के ऊपर भगिनी भी क्रोध करती हैं

इसलिये ऐसा विचारकर उसने अपने भी भागको देदिया उस कर्मकोकर व इन भाइयों को मानकर वह कृतार्थता को प्राप्तहुई ॥ ९६ ॥ इसलिये इन समस्त देशोंके बीचमें धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष चारों वस्तुओं के साधनवाला कुमारीखण्डही है जोकि समस्त खण्डों के बीचमें श्रेष्ठ कहागया है ॥ ९७ ॥ उसमें भी जो गुप्तक्षेत्र था उसको भी देदिया और बड़े नियमोंवाली वह कुमारिका गुप्तक्षेत्र में कुमारेशदेवको पूजती हुई गुप्तक्षेत्र में टिकी ॥ ९८ ॥ व कुण्डों में उसने स्नान किया और संगम में तपस्याको किया तदनन्तर समयकी अधिकता से स्वामिकार्त्तिकेय जीसे रचाहुआ जो मन्दिर ॥ ९९ ॥ पुराना होगयाथा उस मन्दिरको नवीन स्वर्णमय करा दिया उसके उपरान्त उसकी भक्तिसे भी प्रसन्न कराये हुये महादेव जी प्रसन्न हुये ॥ १०० ॥ व कुमारेश्वर लिंगसे उठकर प्रत्यक्ष प्राप्तहो शिवजी उससे बोले कि हे

स्यसाधनम् ॥ सर्वेषांप्रवरंप्रोक्तं कुमारीखण्डमेवच ॥ ९७ ॥ तत्रापिगुप्तक्षेत्रंचददौतत्साकुमारिका ॥ गुप्तक्षेत्रेकुमारे
शं पूजयन्तीमहाव्रता ॥ ९८ ॥ तस्थौहृदेषुस्नातासा तप्तुंचैवापिसङ्गमे ॥ ततःकालप्रकर्षाच्च प्रासादेस्कन्दनिर्मिते ॥
९९ ॥ जीर्णनवंस्वर्णमयं प्रासादंचाप्यकारयत ॥ ततस्तुष्टोमहादेवस्तस्याभक्त्यापितोषितः ॥ १०० ॥ कुमारलिङ्गादु
त्थाय प्रत्यक्षस्तामवोचत ॥ भद्रेतवाहंभक्त्याच विज्ञानेनचतोषितः ॥ १ ॥ जीर्णस्यपुनरुद्धारो यत्प्रासादस्यतेकृतः ॥
तवनाम्नाचविख्यातं भविष्यामिकुमारिके ॥ २ ॥ कर्ताचापितथोद्धर्त्ता द्वौवैसमफलौस्मृतौ ॥ कुमारीशःकुमारीश
इतिवक्ष्यन्तिसन्ततम् ॥ ३ ॥ बर्करेशेचयेदत्ता वराभाव्यास्सदैवते ॥ तवापिप्रान्तकालश्च समीपेवरवर्णिनि ॥ ४ ॥ अभ
र्तृकायानार्याश्चनस्वर्गोमोक्षएवच ॥ यथैववृद्धकन्यायाः सरस्वत्यास्तटेशुभे ॥ ५ ॥ तस्मात्त्वमत्रतीर्थेच महाकाल

भद्रे ! तुम्हारी भक्ति व विज्ञान से मैं प्रसन्न होगया ॥ १ ॥ हे कुमारिके ! जोकि पुराने मन्दिर का तुमने फिर उद्धारक्रिया याने नवीन बनादियाहै वह मन्दिर तुम्हारे नामसे प्रसिद्ध होगा ॥ २ ॥ मन्दिर का बनवानेवाला व जीर्णोद्धार करनेवाला दोनों समान फलवाले कहेगये हैं सब मनुष्य इसलिंग को सदैव कुमारीश २ ऐसा कहैंगे ॥ ३ ॥ और बर्करेश्वरमें जो वरदान दिये गये वे सदैव होनेवाले हैं हे उत्तम रंगवाली कुमारिके ! तुम्हारा भी अन्तका समय समीपहै ॥ ४ ॥ और बिन पति-वाली कुँवारी कन्याको स्वर्ग और मोक्ष नहीं होता है जैसे कि सरस्वतीके उत्तम किनारेपै वृद्धकन्याको नहीं हुआहै ॥ ५ ॥ इसलिये हे शुभे, वरवर्णिनि ! सिद्धिको

प्राप्तहोने के लिये इसी तीर्थमें महाकाल ऐसे कहेहुये पुरुषको पतिभाव में स्वीकारकरो ॥ ६ ॥ तदनन्तर शिवजी के वचन से उसने उन महाकाल नामक को पति स्वाकार किया और महाकाल सयुक्त वह शिवलोक को चलीगई ॥ ७ ॥ वहां उस को लिपटाकर प्रसन्न होती हुई पार्वती जीने कहा कि हे शुभे ! जिसलिये तुमने पृथ्वी को चित्रपद्मा लिखा है ॥ ८ ॥ इस कारण नामसे चित्रलेखा होकर तुम मेरी सखी होवो तदनन्तर वह शुभदायिनी कुमारी चित्रलेखा ऐसी सखी हुई ॥ ९ ॥ जिसने कि ऊषासे अनिरुद्ध नामक उत्तम पतिको कहाहै व जोकि योगिनियों में श्रेष्ठ महाकाल की प्यारी स्त्री थी ॥ १० ॥ जिस लिये कि तड़ागोंके जलोंमें तपस्या कर-

मितिस्मृतम् ॥ सिद्धिङ्गतंवृणुशुभे पतित्वेवरवर्णिनि ॥ ६ ॥ ततःसारुद्रवाक्येन वरयामासतम्पतिम् ॥ रुद्रलोकंययौचापि महाकालसमन्विता ॥ ७ ॥ तत्रतांपार्वतींप्राह समालिङ्ग्यचहर्षिता ॥ यस्मात्त्वयाचित्रपद्मा लिखिताप्टथिवीशुभे ॥ ८ ॥ चित्रलेखेतिनाम्नात्वंतस्माद्भवसखीमम ॥ ततस्सखीसम्भवच्चित्रलेखेतिसाशुभा ॥ ९ ॥ययानिरुद्धःकथित ऊषायाःपतिरुत्तमः ॥ योगिनीनांवरिष्ठाया महाकालस्यवल्लभा ॥ १० ॥ अप्सुसासरसांबिन्दुं पूर्णेवर्षशतेययौ ॥ तपश्चरन्तीतस्मात्सा प्रोच्यतेवाप्सरादिवि ॥ ११ ॥ एवंविधंकुमारीशं लिङ्गमेतद्धिफाल्गुन ॥ स्थापयामासशिवदं बर्करेश्वरसंज्ञितम् ॥ १२ ॥ तस्माद‌त्रनृणांदाहश्चास्थिक्षेपश्चभारत ॥ प्रयागादधिकौप्रोक्तौ महेशस्यवचोयथा ॥११३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेबर्करेश्वरमाहात्म्यंनामत्रयस्त्रिंशोध्यायः ॥ ३३ ॥ * ॥ * ॥

अर्जुनउवाच ॥ महाकालस्त्वसौकश्च कथंसिद्धिमुपागतः ॥ अस्मिंस्तीर्थेमुनिश्रेष्ठ महदाश्चर्यमत्रमे ॥ १ ॥ सर्व

तीहुई उसने सौ वर्ष पूर्णहोने पर जलका बूंदपिया इसलिये वह स्वर्ग में अप्सरा कहीजाती है ॥ ११ ॥ हे अर्जुन जी ! इस प्रकार का यह कुमारीश लिंग और इसने कल्याणदायक बर्करेश्वर संज्ञक लिंगको थापाहै ॥ १२ ॥ इस लिये हे भारत! यहां मनुष्यों का दाह करना व अस्थियों का फेंकना प्रयाग से अधिक कहागया है जैसे कि शिवजी के वचनहैं ॥ ११३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायाभाषाटीकायांबर्करेश्वरमाहात्म्यवर्णनंनामत्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

दो० । महाकाल नामक यथा भयो लिंग उत्पन्न । चौंतिसवें अध्याय में सोइ कथासम्पन्न ॥ अर्जुनजी बोले कि हे मुनिश्रेष्ठ ! यह महाकाल कौनहै व इस तीर्थमें

वह कैसे सिद्धिको प्राप्तहुआहै इस विषयमें मुझको बड़ा आश्चर्य है ॥१॥ श्रद्धावान् व पूंछतेहुये मेरे लिये इस समस्त चरितको कहिये नारदजीबोले कि हे पाण्डुवंश
के नायक ! वरदायक व अविनाशी महाकाल शिवजीको प्रणामकर अपनी सामर्थ्यसे उनका चरित कहूंगा पुरातन समय काशीपुरीमें जपनेवालोंमें श्रेष्ठ शिवजीका
जप करनेवाला महाभाग्यवान् व बड़ा यशस्वी माटि नामक हुआ है पुत्रके लिये रुद्रोंको जपते हुये बिन पुत्रवाले उसके प्रसिद्धमें ॥ २ । ३ । ४ ॥ सौवर्ष बीतगये
तदनन्तर प्रसन्न होतेहुये शिवजी ने उससे कहा कि हे मांटे ! मेरे समान प्रभाव व पराक्रमवाला तथा बुद्धिमान् तुम्हारे पुत्र ॥ ५ ॥ होगा जोकि तुम्हारे समस्त वंशको

**मेतत्समाख्याहि श्रद्दधानायपृच्छते ॥ नारदउवाच ॥ नमस्कृत्यमहाकालं वरदंस्थाणुमव्ययम् ॥ २ ॥ शक्तितश्च
रितंतस्य वक्ष्येपाण्डुकुलोद्वह ॥ वाराणस्यांपुरिपुरा बभूवजपतांवरः ॥ ३ ॥ रुद्रजापीमहाभागो माण्टिर्नाममहाय
शाः ॥ तस्यापुत्रस्यपुत्रार्थंरुद्रान्संजपतःकिल ॥ ४ ॥ गतंवर्षशतंतुष्टस्ततस्तंप्राहशङ्करः ॥ माण्टेतवसुतोधीमान् म-
त्प्रभावपराक्रमः ॥ ५ ॥ वंशस्यतवसर्वस्यसमुद्धर्ताभविष्यति ॥ इतिश्रुत्वारुद्रवचो माण्टिर्हर्षपरङ्गतः ॥ ६ ॥ ततःकाले
कियन्मात्रेपत्नीमाण्टेर्महात्मनः ॥ दधारगर्भंवटिकातपोमूर्त्तिधरायथा ॥ ७ ॥ तस्यगर्भस्यवर्षाणि चत्वारिकिलसंय
युः ॥ नपुनर्मातुरुदरंत्यक्त्वानिर्गच्छतेबहिः ॥ ८ ॥ ततोमाण्टिस्तमामन्त्र्यसामभिस्तमवोचत ॥ वत्ससामान्यपुत्रोपि
पित्रोस्सम्पूजकस्सदा ॥ ९ ॥ शुद्धायांमातरिभवो मांत्वंकिम्पीडयस्यलम् ॥ वत्समानुष्यवासस्यस्पृहातवकथन्नहि ॥ १० ॥
यत्रधर्मार्थकामानांमोक्षस्यापिचसङ्गतिः ॥ कदामनुष्याजायेम पूजायत्रमहाफला ॥ ११ ॥ पितॄणांदेवतानांच नानाध**

उद्धारनेवाला होगा श्रीशिवजी के इस वचनको सुनकर मांट बड़े हर्षको प्राप्तहुये ॥ ६ ॥ तदनन्तर कुछ समय के बीतने पर महात्मा माटिजीकी वटिका नामक
स्त्रीने गर्भको धारणकिया जैसे कि तपस्याकी मूर्त्तिको धारेहोवै ॥ ७॥ उस गर्भके चारवर्ष बीतगये परन्तु फिर वह माताके पेटको छोड़कर बाहर नहीं निकलता था॥
८ ॥ तदनन्तर मांटिजी ने उसका संबोधनकर प्यारे वचनोंके द्वारा उससे कहा कि हे पुत्र ! साधारण पुत्रभी सदैव माता पिताका भलीभांति पूजक होताहै ॥ ९ ॥
शुद्ध मातामें होकर तुम मुझको क्यों बहुत पीड़ित करतेहो हे पुत्र ! मनुष्ययोनिमें बसनेकी इच्छा तुम्हारे क्यों नहीं है ॥ १० ॥ कि जिस मनुष्ययोनि में धर्म, अर्थ,

काम व मोक्षकी भी प्राप्ति होती है कब मनुष्य होकर हम पैदा होवैंगे कि जिस मनुष्ययोनिमें बडे फलवाला पूजनहै ॥ ११ ॥ और जिसमें पितरों व देवताओं के अनेक भांतिके धर्म हैं इस प्रकार अनेक योनियों में प्राप्तभी प्राणी शोचते हैं ॥ १२ ॥ देवताओं के भी इच्छा करने योग्य उस मनुष्य जन्मको अनादरकर तुम पेट हीमें क्यों टिकेहो यह कहिये ॥ १३ ॥ गर्भ बोला कि हे पिताजी ! यह सब मैं जानताहूं कि यह मनुष्यजन्म परमदुर्लभ है परन्तु कालमार्गको मैं नित्यही डरताहूं ॥ १४ ॥ वेदों मे दोमार्ग प्रसिद्ध कहे हैं एक काल व दूसरा अर्चिहै अर्चिमार्ग के द्वारा मोक्षवाले पुरुष जाते हैं व कर्मवाले पुरुष कालमार्गमें जाते हैं ॥ १५ ॥ कालमार्ग

र्माश्चयत्रहि ॥ इतिभूतानिशोचन्ति नानायोनिगतान्यपि ॥ १२ ॥ तत्तुमानुष्यजन्मत्वं स्पृहणीयंदिवौकसाम् ॥ अनादृत्यकथंब्रूहि स्थितश्चोदरएवच ॥ १३ ॥ गर्भउवाच ॥ तातजानाम्यहंसर्वमेतत्परमदुर्लभम् ॥ किन्तुबिभेम्यतिमात्रं कालमार्गस्यनित्यशः ॥ १४॥ द्वौमार्गौकिलवेदेषु प्रोक्तौकालोर्चिरेवच ॥ अर्चिषामोक्षिणोयान्तिकालमार्गेणकर्मिणः ॥ १५ ॥ स्वर्गेवानरकेवापि कालमार्गगतोह्ययम् ॥ नशर्मलभतेकापि व्याधविद्धोमृगोयथा ॥ १६ ॥ तस्यैवहेतोःप्रयतेत् कोविदोयन्नदुःखवत् ॥ कालेनघोररूपेण गम्भीरेणसमाहतम् ॥ १७ ॥ तच्चेन्ममनस्तातनानादोषैर्नमोह्यते ॥ ततोहं दुर्लभंजन्म मानुष्यंशीघ्रमाप्नुयाम् ॥ १८ ॥ ततस्तस्यपितापार्थ कान्दिशीकोमहेश्वरम् ॥ जगामशरणन्देव त्राहि त्राहिमहेश्वर ॥ १९ ॥ त्वांविनाकोपरोदेव पुत्रस्याभीष्टदोस्तिमे ॥ त्वयैवदत्तस्त्वंचामुं जन्मप्रापयमेसुतम् ॥ २० ॥

से गयाहुआ यह पुरुष स्वर्ग या नरक मे भी होवै परन्तु कहीं भी कल्याणको नहीं पाताहै जैसे कि बहेलियेमे बेधाहुआ मृग होवै ॥ १६ ॥ विद्वान् उसीवस्तु के लिये यत्नकरै कि जो दुःखवान् न होवै भयंकर रूप गम्भीर कालसे ताडित ॥ १७ ॥ मेरा मन यदि हे पिताजी ! अनेक भांतिके दोषोंसे मोहको न प्राप्तहोवै तो मैं दुर्लभ मनुष्यजन्म को शीघ्रही प्राप्त होऊं ॥ १८ ॥ तदनन्तर हे अर्जुन जी ! डराया हुआ उसका पिता श्रीसदाशिव जी की शरण मे गया व बोला कि हे महेश्वर जी ! रक्षा कीजिये रक्षा कीजिये ॥ १९ ॥ हे देव ! तुम्हारे विना दूसरा कौन मेरे पुत्रको मनोरथको दायक है तुम्हीने उस पुत्रको दिया है और तुम्हीं इस मेरे पुत्रका जन्म

प्राप्त कराइये ॥ २० ॥ तदनन्तर उस की बड़ी भक्ति से प्रसन्न होते हुये ये सदाशिवजी अपनी विभूतियों और ज्ञान, धर्म, वैराग्य व ऐश्वर्य से बोले ॥ २१ ॥
कि हे विभूतियो ! विलोमतासे शीघ्रही मांटिपुत्र का प्रबोध कीजिये तदनन्तर बोध कराती हुईं उन विभूतियों ने गर्भ से कहा ॥ २२ ॥ कि हे महामते, मांटिपुत्र !
तुम को हृदय में डर न धारण करना चाहिये धर्मादिक चारों और हम तुम्हारे मनको नहीं छोड़ेंगे ॥ २३ ॥ और अन्य अधर्मादिकों ने तुम से जैसा कहा है हम लोग
उस भांति नहीं कहते हैं व हमलोग तुम को भजैंगे तुम्हारे लिये नमस्कार है हमलोगों से तुम को डर न होगा ॥ २४ ॥ विभूतियों से ऐसा कहा हुआ वह कुमार

ततस्तस्यातिभक्त्यासौ तुष्टःप्राहमहेश्वरः ॥ विभूतीःस्वाज्ञानधर्मवैराग्यैश्वर्यमेवच ॥ २१ ॥ विपरीताश्चशीघ्रंभो मा
ण्टिपुत्रःप्रबोध्यताम्॥ततस्ताबोधयन्त्यश्चविभूत्योगर्भमूचिरे ॥२२॥ महामतेमाण्टिपुत्र नधार्यन्तेभयंहृदि ॥ चत्वा
रस्त्वांहिधर्माद्यामनस्त्यक्ष्यामहेनते॥२३॥त्वत्तोपरेत्वधर्माद्याःप्रोचुर्नैवतथावयम् ॥ भजिष्यामोनमस्तुभ्यमस्माभि
स्तेभयंनहि ॥ २४ ॥ इत्युक्तेसविभूतीभिः शीघ्रमेवकुमारकः ॥ निस्ससारबहिर्जातः चकम्पेतिरुरोदच ॥ २५ ॥ ततो
विभूतयःप्राहुर्माण्टेतवसुतस्त्वसौ॥अद्यापिकालमार्गस्यभीतःकम्पतिरोदिति ॥ २६ ॥ कालभीतिरितिख्यातस्तस्मादे
षभविष्यति ॥ इतिदत्त्वावरंताश्चमहादेवान्तिकंययुः ॥२७॥सोपिबालःप्रववृधे शुक्लपक्षइवोडुराट् ॥ संस्कृतस्सचसंस्का
रैर्धीमान्पाशुपतव्रती ॥ २८ ॥ पञ्चमन्त्राञ्जपञ्छुद्धस्तीर्थयात्रापरोभवत् ॥ रुद्रक्षेत्रेषुस्नातोयं जपन्मन्त्रांश्चभारत ॥
२९ ॥ कालभीतिर्गुप्तक्षेत्रगुणाञ्छ्रुत्वाभ्युपाययौ ॥ स्नात्वाततोमहीतोये जप्त्वामन्त्रांश्चकोटिशः ॥ ३० ॥ निवृत्तो

शीघ्रही निकला और बाहर पैदा होकर वह कांपा व बहुत रोदन करने लगा ॥ २५ ॥ तदनन्तर विभूतियों ने कहा कि हे माण्टे ! तुम्हारा यह पुत्र अबभी कालमार्ग
से डरकर कांपता व रोता है ॥ २६ ॥ इस लिये यह कालभीति ऐसा प्रसिद्धहोगा यह वरदान देकर वे विभूतियां श्रीमहादेव जी के समीप चली गईं ॥ २७ ॥
और वह बालक भी वैसेही बढ़नेलगा जैसे कि शुक्लपक्ष में चन्द्रमा बढ़ता है और संस्कारों से संस्कार किया हुआ वह बुद्धिमान् शिव जी के नियमों को ग्रहण
कर ॥ २८ ॥ व पवित्र होकर पांच मन्त्रों को जपता हुआ तीर्थयात्रा में तत्पर हुआ हे भारत ! मन्त्रों को जपता हुआ रुद्रतीर्थों में नहाकर यह ॥ २९ ॥ कालभीति

तो मैं किसी प्रकार तुम्हारे जलको न ग्रहण करूंगा इस विषयमें मुझसे जो गुरु ने कहाहै इस श्रुति के वचनको सुनिये ॥ ४९ ॥ कि जिसका वंश नहीं जानाजाता है उसीकारण वीर्यशुद्धिके विना उसके अन्नको खाता व जल पीता हुआ भी साधुजन उसीक्षण दुःखी होता है ॥ ५० ॥ और जो शिवजीको नहीं जानता है व जो शिवभक्त नहीं है उसके अन्न व जलको खाताहुआ पुरुष पातकी होताहै इसमें सन्देह नहीं है ॥५१॥ जो शिवको न जानकर इस संसार मे भोजन करता है वह ब्रह्म-घाती कहाजाता है और ब्रह्मघाती का अन्नादिक दूषित है इसलिये उसके अन्नादिको न खावै ॥५२॥ जैसे कि गंगाजल का घडा मदिराके बूंदसे तन्मय याने मदिरा

राहश्रुतेरिदम् ॥ ४९ ॥ नज्ञायतेकुलंयस्यबीजशुद्धिंविनाततः ॥ तस्यखादन्पिबन्वापि साधुःसीदतितत्क्षणात् ॥ ५० यश्चरुद्रंनजानाति रुद्रभक्तश्चयोनहि ॥ अन्नोदकंतस्य भुञ्जन्पातकीस्यान्नसंशयः ॥ ५१ ॥ अज्ञात्वायःशिवंभु ङ्क्ते कथ्यतेसोत्रब्रह्महा ॥ दूषितंब्रह्महान्नादितस्मात्तस्यनभक्षयेत् ॥५२॥ गङ्गोदकुम्भस्स्याद्यद्वत्तन्मयोमद्यबिन्दुना ॥ अशिवज्ञस्ययोभुङ्क्ते शिवज्ञोपितथैवसः ॥ ५३ ॥ हीनवर्णश्चयःस्याद्धि शिवभक्तोपिनैवयः ॥ तावप्रतिग्राह्यगुणौ विलो क्यौद्वौप्रतिग्रहे ॥ ५४ ॥ नरउवाच ॥ एतेनतववाक्येनहास्यंसंजायतेमम ॥ अहोमुग्धोसिमिथ्यात्वमपस्मारीजडो पिवा ॥ ५५ ॥ यदासर्वेषुभूतेषु शिवोवसतिनित्यशः ॥ साध्वसाधुततोवाच्यं नैवनिन्दाशिवस्यसा ॥ ५६ ॥ आत्मन श्चपरस्यापि यःकरोत्यन्तरान्तरम् ॥ तस्यभिन्नदृशोमृत्युर्विदधेभयमुल्बणम् ॥ ५७ ॥ अथवाकातुपानीये भवेद

ही के समान होजाता है ऐसेही शिवको न जाननेवाले पुरुषका अन्नादि जो भोजन करता है वह शिवका ज्ञाताभी वैसाही होजाताहै ॥ ५३ ॥ जो हीनवर्ण है और जो शिवभक्त भी नहीं है उन दोनोंके गुण ग्रहण करने योग्य नहीं हैं और वे दोनों प्रतिग्रहमें देखने योग्य होतेहैं ॥ ५४ ॥ मनुष्य बोला कि तुम्हारे इस वचन से मेरे हास्य उत्पन्न होता है अहो बड़े आश्चर्य की बात है कि तुम वृथाही अज्ञानहो अथवा अपस्मारी (मिर्गी रोगवाले) या मूर्खहो ॥ ५५ ॥ जब समस्त प्राणियों में श्रीशिवजी नित्य बसते हैं तो अच्छा व खोंटा न कहना चाहिये क्योंकि वह शिवजी की निन्दाहोती है ॥ ५६ ॥ जो अपनासे दूसरे के भीतरका अन्तर करता है

उस भिन्नदर्शीके बडे डरको मृत्यु करती है ॥ ५७ ॥ अथवा जलमें क्या अपवित्रता होवै है इसको कहिये क्योंकि मिट्टीसे बनाया हुआ यह घट अग्निसे पकाया गया है ॥ ५८ ॥ और जलसे भरा है इनमें कोई अपवित्रता नहीं है अथवा यदि मेरे संसर्ग से अशुद्धता है तो प्रकटही नहीं है ॥५९॥ क्योंकि इस पृथ्वीमें भलीभांति टिकेहुये हम व तुम किसभांतिसे हैं यह कहिये और तुम किसलिये पृथ्वी में चलतेहो आकाशमें नहीं जातेहो इस कारण ॥६०॥ ऐसा विचार करनेपर तुम्हारा कहना अज्ञानकी नाईं होताहै ॥ ६१ ॥ कालभीति बोले कि यदि सब प्राणियोंमें शिवदेव ही हैं ऐसा कहाजाताहै तो नास्तिक लोग किसलिये भोजन में मिट्टी को नहीं खाते

शुचितावद ॥ मृत्तिकामयकुम्भोयं पावकेनापिपाचितः ॥ ५८ ॥ पूर्णश्चपयसाकाचिन्नेतेषामस्त्यशुद्धिता ॥ अथचेन्ममसंसर्गादशुचित्वंनचस्फुटम् ॥ ५९ ॥ तदस्यांसंस्थितःपृथ्व्यामहंत्वञ्चकुतोवद ॥ कुतःपृथिव्यांचरसि खेत्वंनैवचरस्यतः ॥ ६० ॥ एवंविचार्यमाणेते भाषितंमुग्धवद्भवेत् ॥६१ ॥कालभीतिरुवाच ॥ सर्वभूतेषुयद्देवः शिवएवेतिचोच्यते ॥ नास्तिकामृत्तिकांकस्माद्भक्षयन्तिनभोज्यके ॥६२॥शुद्ध्यर्थेतेनविश्वस्य स्थापितासंस्थितिर्यथा ॥ कालेनफलितासाच नान्यथातांशृणुष्वच ॥ ६३ ॥ ससर्ज्जचपुराधाता भूतात्मकमिदंजगत ॥ तच्चनामप्रपञ्चेन बद्धंदाम्नाचगौर्यथा ॥ ६४ ॥ सच्चनामप्रपञ्चस्तु चतुर्धाविद्यतेकिल ॥ ध्वनिर्वर्णाःपदंवाक्यमित्यास्पदचतुष्टयम् ॥ ६५ ॥ तत्रध्वनिर्नादमयो वर्णाश्चोङ्कारपूर्वकाः ॥ पदंशिवमितिप्रोक्तं वाक्यञ्चेतिशिवंभजेत् ॥ ६६ ॥ तच्चापिवाक्यंत्रिविधं भवेदितिश्रुतेर्मतम् ॥ प्रभुसंमतमेकञ्च सुहृत्संमतमेवच ॥ ६७ ॥ कान्तासम्मतमेवापि वाक्यंहित्रिविधंविदुः ॥ प्रभुःस्वामीयथाभृत्य

हैं ॥ ६२ ॥ उसी कारण संसारकी मर्यादा शुद्धिकेलिये थापीगई है और वह यथाकाल याने समय के अनुकूल फलित होती है अन्यथा नहीं होती है उसको सुनिये ॥ ६३ ॥ कि पुरातन समय विधाता ने इस भूतात्मक संसार को रचाहै और वह नाम के प्रपंच से बँधाहै जैसे कि रस्सीसे पशु बाधेजाते हैं ॥ ६४ ॥ और वह नामका प्रपंच प्रसिद्धमें चारप्रकारसे भेदको प्राप्त होताहै कि ध्वनि, अक्षर, पद व वाक्य यह चार स्थानहैं ॥ ६५ ॥ उनमें से ध्वनि शब्दमयी है और अक्षर ॐकारपूर्वक हैं और पद शिव ऐसा कहागयाहै और शिवको भजै यह वाक्यहै ॥ ६६ ॥ और वह वाक्य भी तीन भांतिकी है यह वेदका मत है कि एक स्वामीसे सम्मत दूसरा मित्रसे

सम्मत ॥ ६७ ॥ और तीसरा स्त्री से भी सम्मतहै विद्वानोंने इस तीन भांतिके वचनको कहाहै प्रभु याने स्वामी जिस प्रकार सेवक से आज्ञा करताहै कि इस कर्मको कीजिये ॥ ६८ ॥ वैसेही श्रुति स्मृति दोनों स्वामीके तुल्य वचनको कहते हैं और इतिहास पुराणादिक सुहृत्संमत कहेजाते हैं ॥ ६९ ॥ ये मित्र की नाईं यथार्थ समझाकर इस मनुष्य को वर्तमान कराते हैं और जो काव्यालापादिक है वह स्त्रीसम्मत वचन कहा जाता है ॥ ७० ॥ जो स्वामी की वाक्य कही गई है वह बाहर व भीतर पवित्र होती है और मित्र की वाक्य दो प्रकार की पवित्र होती है कि स्वर्ग की कामना से इस वचन को पालन करै ॥ ७१ ॥ इस लिये यह पालन करने योग्य है और भूमि में ज्ञान के कारण यह वेद कहता है व यदि तुम से नास्तिक्य के वचन के द्वारा यह कहा जाता है ॥ ७२ ॥ तो इस से वेद, शास्त्र व पुराण क्या

मादिशत्येतदाचर ॥ ६८ ॥ तथाश्रुतिस्मृतीचोभे प्राहतुःप्रभुसंमितम् ॥ इतिहासपुराणादिसुहृत्संमतउच्यते ॥ ६९ ॥ सुहृद्वत्प्रतिबोध्यैनं प्रवर्तयतितत्त्वतः ॥ काव्यालापादिकंयच्चकान्तासम्मतउच्यते ॥७०॥ प्रभुवाक्यंस्मृतंतच्च सबाह्याभ्यन्तरंशुचि ॥ सुहृद्वाक्यंद्विधाशौचंपालयेत्स्वर्गकाङ्क्षया ७१ ॥ तदेतत्पालनीयंस्याद्भुविज्ञानाच्छ्रुतिर्वदेत् ॥ त्वया नास्तिक्यवाक्येन चेदेतदभिधीयते ॥ ७२ ॥ एतेनश्रुतिशास्त्राणिपुराणञ्चवृथैवकिम् ॥ अग्रेसप्तर्षिपूर्वाये ब्राह्मणाःक्षत्रियाभवन् ॥ ७३ ॥ मुग्धास्सर्वेभवान्दक्षो येहिवेदाङ्गतोह्यनु ॥ तथावेदान्तवचनं सत्त्वस्थाऊर्ध्वगामिनः ॥ ७४ ॥ तिष्ठन्तिमध्येरजसाःह्यधोगच्छन्तितामसाः ॥ सत्त्वाहारैस्सत्त्ववृत्त्या स्वर्गगामीभवेत्ततः ॥ ७५ ॥ नचैतदप्यसूयामो यद्भूतेषुशिवोनहि ॥ अस्त्येवसर्वभूतेषु शृणुत्राप्युपमानकम् ॥ ७६ ॥ यथासुवर्णजातानि भूषणानिबहूनिच ॥

वृथाही हैं पुरातन समय सप्तर्षिपूर्वक जो ब्राह्मण व क्षत्रियहुये हैं ॥ ७३ ॥ वे सब अज्ञान हुये जो कि वेदांगों के पीछे व वेदान्तों के वचन को करतेथे और आप चतुर हो सत्त्वगुण में टिकेहुये पुरुष ऊर्ध्वगामी याने स्वर्गादिको को जाते हैं॥ ७४ ॥ और रजोगुण से मध्य मनुष्यलोक में टिकते हैं और तमोगुणी पुरुष नरक को जाते है सत्त्वगुणी भोजनवाला सत्त्ववृत्तिसे स्वर्गगामी होताहै इसलिये ॥ ७५ ॥ हम इसकी ईर्षा नही करते हैं क्योंकि प्राणियोंमें शिव नही है और समस्त प्राणियों में सदाशिवजी अवश्यकर हैं इस विषयमें भी उपमाको सुनिये ॥ ७६ ॥ कि जैसे सोनेसे बनेहुये बहुत भूषण हैं उन में से कोई सिद्धिरूपवाले है और कोई हीन

रूपवाले हैं परन्तु ॥ ७७ ॥ सुवर्ण समस्त गहनोंमें अवश्यकर है वैसेही वे सदाशिवजी हैं हीनरूपवाला सुवर्ण जैसे शोधित होकर भलीभांति शुद्ध सुवर्ण के साथ
एकताको प्राप्त होताहै ॥ ७८ ॥ वैसेही शोधित होतीहुई यह देह शुद्धहोकर प्रकट ही स्वर्गको जाती है इसलिये बुद्धिमान् करके सब यत्नसे हीनको न ग्रहण करना
चाहिये ॥ ७९ ॥ यदि इस शरीर को शोधनकरै तो शुद्ध होकर प्रकटही स्वर्गको चलाजावै जो सब किसी से जलको ग्रहण करता है इसके एक दिन संसर्ग से जो
निराहारी पुरुष पवित्रहोवै यह भी प्रकटही धर्मसे भ्रष्ट होजाता है इसलिये सब उपायसे मैं जलको नहीं ग्रहण करूंगा यह प्रकटही कहताहूं ॥ ८० । ८१ ॥ चाहै

कानिचित्सिद्धरूपाणि हीनरूपाणिकानिचित् ॥७७॥ स्वर्णंसर्वेषुचास्त्येव तथैवससदाशिवः ॥ हीनरूपंशोधितंसत् सु
शुद्धेनैतिचैवताम् ॥ ७८ ॥ तथेदंशोधितंदेहं शुद्धोदिविव्रजेत्स्फुटम् ॥ तस्मात्सर्वात्मनाहीनं नग्राह्यंबतधीमता ॥७९॥
चेदिदंशोधयेद्देहं शुद्धोदिविव्रजेत्स्फुटम् ॥ सर्वतोयप्रतिग्राही निराहारीचयःपुमान् ॥ ८० ॥ शुचिःस्यादस्यदिवसा
त्पतितोसौभवेत्स्फुटम् ॥ तस्मात्सर्वात्मनानैवग्रहीष्येहंजलंस्फुटम् ॥८१॥ साधुवाप्यथवासाधु प्रमाणंनःश्रुतिःपरा ॥
एवमुक्तेसचनरः प्रहसन्दक्षिणेनच ॥ ८२ ॥ अङ्गुष्ठेनालिखन्भूमिं चक्रेगर्त्तमहोत्तमम् ॥ तत्रचिक्षेपतत्तोयं तेनगर्त्तस्स
पूरितम् ॥ ८३ ॥ अत्यरिच्यततोयंच ततःपादेनसंलिखन् ॥चक्रेसरःपूरितञ्च अतिरिक्तजलेनतत् ॥ ८४ ॥ तदद्भुतंमहद्
दृष्ट्वा नैवविप्रोविसिष्मिये ॥ यतोबहुविधंचित्रं भवद्भूताद्युपासिषु ॥८५॥ तच्चित्रेणानजहाच्च श्रुतिमार्गंसनातनम् ॥८६॥
नरउवाच ॥ अतिमूर्खोसिविप्रत्वं प्रज्ञावादांश्चभाषसे ॥ किन्नश्रुतस्त्वयाश्लोकः पुराविद्भिरीरितः ॥ ८७ ॥ कूपो

अच्छाहो या अनभला हमको वेद परम प्रमाण है ऐसा कहनेपर हँसते हुये उस पुरुषने दाहिने ॥ ८२ ॥ अंगूठे से भूमिको लिखते हुये बडे उत्तम गढ़ेको किया व उस
में वह जल फेंकदिया उससे वह गढ़ा पूर्णहोगया ॥ ८३ ॥ और जल बढ़ा तदनन्तर चरणसे लिखते हुये उसने बढ़ेहुये जलसे उस तडागको पूर्णकरदिया ॥८४॥
उस बडे आश्चर्य को देखकर ब्राह्मण विस्मय को न प्राप्तहुआ क्योंकि भूतादिकों की उपासनावाले जनोंमें बहुत प्रकारका आश्चर्य होताहै ॥ ८५ ॥ इस लिये आश्चर्य
के कारण सदैववाले वेदमार्गको न छोड़ै ॥ ८६ ॥ मनुष्य बोला कि हे विप्रजी! तुम बड़े मूर्खहो और बुद्धिमानी की वार्त्ताको कहतेहो पुरातन समय विद्वानो से

कहेहुये श्लोकको क्या तुमने नहीं सुनाहै ॥ ८७ ॥ कि हे भारत ! कुँवा अन्य नर का व घडा और का तथा रस्सी अन्यकी है और एक पियाता है व एक पीताहै वे सब समभागी होते हैं ॥ ८८ ॥ इसलिये धर्म के जाननेवाले तुम किस २ कारण मेरे जलको नहीं पियोगे ॥ ८९ ॥ नारदजी बोले कि तदनन्तर उसने बहुत प्रकारसे समभागियों के श्लोकको विचार किया व न निश्चय होनेके कारण घटादिकों से समभागी पुरुषको विचारकर यह निश्चय किया कि ॥ ९० ॥ बहुत वस्तु व जहाज, द्रव्य और क्षेत्र इन सबोंमें जैसे समभागत्व है ऐसेही सबके बराबर कर्त्ताको फल होताहै बारबार ॥ ९१ ॥ यह निश्चयकर कालभीति उस मनुष्य से बोले कि यह

न्यस्यघटोन्यस्य रज्जुरन्यस्यभारत ॥ पाययत्येकःपिबत्येकः सर्वेतेसमभागिनः ॥ ८८ ॥ तज्जलंममकस्मात्त्वं धर्मज्ञोनैवपास्यसि ॥ ८९ ॥ नारदउवाच ॥ ततोविममृशेश्लोकं बहुधासमभागिनाम् ॥ अनिश्चयाद्विचार्य्यासौ घटाद्यैः समभागिनम् ॥ ९० ॥ बहुपोतद्रव्यक्षेत्रेषु सर्वेपुसमभागता ॥ एवंकर्त्तुःफलंसर्वं समंस्याच्चपुनःपुनः ॥ ९१ ॥ इतिनिश्चित्यप्रोवाचकालभीतिर्नरंचतम् ॥ सत्यमेतत्किन्तुकुम्भपयसागर्त्तपूरणम् ॥ ९२ ॥ दृष्ट्वाप्रत्यक्षतोमादृक्कथंपिबतिभो वद ॥ साधुवाप्यथवासाधु नपिबेयंकथञ्चन ॥ ९३ ॥ एवंविनिश्चयेतस्य संस्थितेकुरुनन्दन ॥ पुरुषोसौप्रहस्यैव क्षणादन्तर्दधेततः ॥ ९४ ॥ कालभीतिश्चपरमं विस्मयंसमुपागतः ॥ वृत्तान्तःकोयमित्येव चिन्तयामासभूयशः ॥ ९५ ॥ तस्यचिन्तयतःपार्थ बिल्वाधस्तात्सुशोभनम् ॥ उत्थितंसहसालिङ्गं पृथिव्याद्योतयन्दिशः ॥ ९६ ॥ प्रादुर्भावेततस्तस्य महालिङ्गस्यभारत ॥ ननृतुःखेप्सरोवृन्दा गन्धर्वाललितंजगुः ॥ ९७ ॥ पारिजातमयींपुष्पवृष्टिमिन्द्रोमुमोचच ॥ जये

सत्यहै परन्तु घडेके जल से गढ़ाका पूर्णहोना प्रत्यक्षही देखकर ॥ ९२ ॥ मेरे समान पुरुष कैसे पियैगा हे मनुष्य ! यह कहिये चाहै अच्छाहो या न अच्छाहो मैं किसी प्रकार जलको न पियूंगा ॥ ९३ ॥ हे कुरुनन्दन ! उसके ऐसे निश्चयके स्थित होने पर यह पुरुष हँसकर तदनन्तर क्षणभर में अन्तर्द्धान होगया ॥ ९४ ॥ और कालभीति बडे विस्मयको प्राप्तहुये व उन्होंने यही बहुत चिन्तन किया कि यह क्या वृत्तान्त है ॥ ९५ ॥ हे अर्जुन जी ! उसके चिन्तन करते हुये बिल्व वृक्षके नीचे दिशाओं को प्रकाशित करताहुआ अचानकही पृथ्वीसे अति उत्तम लिंग निकला ॥ ९६ ॥ तदनन्तर हे भारत ! उस महालिंग के प्रकट होनेपर आकाशमें अप्सराओं

के गण नाचने लगे व गन्धर्वों ने सुन्दर गानकिया ॥९७॥ और इन्द्रने पारिजात के फूलोंकी वृष्टि छोड़ा व देवताओं ने जय ऐसा कहा और मुनिलोगों ने अनेक प्र-
कार के स्तोत्रों से स्तुति किया ॥ ९८ ॥ हे कौरव्य ! उस बडेभारी उत्साहके वर्त्तमान होनेपर प्रसन्न होतेहुये कालभीति ने प्रणामकर स्तोत्र किया ॥ ९९ ॥ कि पापके
कालरूप व संसाररूपी कीचडके काल व कालके काल, कालमार्ग के काल, शोभा समेत कालेकण्ठवाले व संसार के कालरूप महाकाल देवको मैं प्रणाम करताहूं ॥
१०० ॥ हे सर्वविद्येश्वर ! मैं ईशानवक्त्र नामक तुमको प्रणाम करताहूं कि जिन आपकी वेद स्तुति करता है तुम भूतेश्वरहो व प्रपितामहहो उन आप महेश्वर जी
के लिये प्रणामहोवै ॥ १ ॥ जिनकी वेद स्तुति करताहै उन द्वितीयतत्पुरुष संज्ञक आपकी शरणमें मैं प्राप्तहूं व तुमको जानताहूं हे देवेश ! मैं तुम्हारा ध्यान करताहूं

तिदेवामुनयस्तुष्टुवुर्विविधैःस्तवैः ॥ ९८ ॥ तस्मिन्महतिकौरव्य वर्तमानेमहोत्सवे ॥ कालभीतिःप्रमुदितः प्रणम्य
स्तोत्रमैरयत ॥ ९९ ॥ पापस्यकालंभवपङ्ककालं कालस्यकालंकालमार्गस्यकालम् ॥ देवंमहाकालमहंप्रपद्ये श्रीका
लकण्ठंभवकालरूपम् ॥ १०० ॥ ईशानवक्त्रंप्रणमामित्वामहं स्तौतिश्रुतिस्सर्वविद्येश्वरंत्वाम् ॥ भूतेश्वरस्त्वंप्रपिता
महस्त्वं तस्मैनमस्तेस्तुमहेश्वराय ॥ १ ॥ यंस्तौतिवेदस्तमहंप्रपद्ये तत्पुरुषसंज्ञंशरणंद्वितीयम् ॥ त्वांविद्महेधीमहेतद्विन
स्त्वं प्रदेहिदेवेशनमोनमस्ते ॥ २ ॥ अघोरवक्त्रंत्रितयंप्रपद्ये अथर्वजुष्टंतवरूपकाणि ॥ अघोरघोराणिचघोरघोराण्यहं
सदानौमिभूतानितुभ्यम् ॥ ३ ॥ चतुर्थवक्त्रंचसदाप्रपद्ये सद्योभिजातायनमोनमस्ते ॥ भवेभवेभूयभवंभजामि भवोद्भव
त्वांशिवतत्रतत्र ॥ ४ ॥ नमोस्तुतेवामदेवायज्येष्ठरुद्रायकालायकलाविकारिणे ॥ बलंकरायापिबलप्रमाथिने भूता

इसलिये मुझे शरण दीजिये याने रक्षा कीजिये तुम्हारे लिये नमस्कार है नमस्कारहै ॥ २ ॥ व अथर्ववेदसे सेवित तीसरे अघोरवक्त्रकी शरणमें मैं प्राप्तहूं अघोर घोर
व घोरसे भी घोर प्राणी तुम्हारे रूप हैं मैं आपके लिये सदैव प्रणाम करताहूं ॥ ३ ॥ व चौथे मुखकी शरणमें मैं सदैव प्राप्तहूं और सद्योभिजात संज्ञक तुम्हारे लिये
नमस्कार है नमस्कार है हे संसार के उत्पन्न करनेवाले शिवजी ! जन्म जन्ममें मैं जहां जहां उत्पन्न होऊं वहां वहां तुम सदाशिवजी को मैं भजूं ॥ ४ ॥ व वामदेव
नामक ज्येष्ठरुद्र, कालसंज्ञक आपके लिये प्रणाम है और कलाओंके विकारसंयुत बलकारक व बल दैत्यके नाशनेहारे, प्राणियों के नाशक और कामदेव के विनाशक

आपके लिये मैं प्रणाम करताहूं ॥ ५ ॥ सुन्दर पुण्य गन्धवाले व तीन नयनोंवाले और कल्याण व पुष्टिको बढ़ानेहारे आपका मैं पूजन करता हूं हे उग्र, त्रिलोचनजी ! जैसे पकाहुआ पेंहटुवा बन्धन (टेंभुवा) से छूटजाता है ऐसेही मुझे मृत्यु के मार्गसे रक्षा कीजिये याने छुडाइये ॥६॥ हे ईश ! स्नेह से रहित जो मुनिलोग यज्ञ में मन्त्रोत्तम तुम्हारे षडक्षर मन्त्रको जपते हैं उनके तुम शरण (रक्षक) हो उस ॐकारपूर्वक नमः शिवाय ऐसे मन्त्रको मैं पूजताहूं ॥ ७ ॥ हे भारत ! इस प्रकार स्तुति कियेहुये महादेव जीने लिंगसे निकलकर त्रिलोकको प्रकाशसे प्रकाशित करते हुये प्रत्यक्ष होकर उस ब्राह्मणसे कहा ॥ ८ ॥ हे द्विज ! इस महातीर्थ में तुमने

निहन्त्रेमदनोन्मथाय ॥ ५ ॥ त्रियम्बकंत्वांचयजामहेवयंसुपुण्यगन्धंशिवपुष्टिवर्द्धनम् ॥ उर्वारुकम्पक्वमिवोग्रबन्धना
द्रक्षस्वमांत्र्यम्बकमृत्युमार्गात् ॥ ६ ॥ षडक्षरंमन्त्रवरंतवेशजपन्तियज्ञेमुनयोवीतरागाः ॥ तेषांप्रपन्नोसियजामहेतमो
ङ्कारपूर्वंचनमःशिवाय ॥७॥ एवंस्तुतोमहादेवो लिङ्गान्निःसृत्यभारत ॥ त्रिजगद्द्योतयन्भासा प्रत्यक्षःप्राहतंद्विजम् ॥८॥
यत्त्वयात्रमहातीर्थे भृशमाराधितोद्विज ॥ तेनातितुष्टस्तेवत्स नेशःकालःकथञ्चन ॥ ९ ॥ अहञ्चनररूपीयो द्रष्टुंतेध
र्म्मसंस्थितिम् ॥ धन्यस्तुधर्म्ममार्गोयं पाल्यतेयद्भवद्विधैः ॥ १० ॥ सर्वतीर्थोदकैर्गर्तः पूरितोमेसरस्तथा ॥ जलमेतन्म
हापुण्यं त्वदर्थंमेसमाहृतम् ॥ ११ ॥ सप्तमन्त्रंरहस्यंच यत्कृतंस्तवनंमम ॥ अनेनपठ्यमानेन सप्तमन्त्रफलंलभेत् ॥
१२ ॥ अभीष्टंचवरंमत्तो वृणीष्वमनसेप्सितम् ॥ त्वयातितोषितोह्यस्मि नादेयंविद्यतेतव ॥ १३ ॥ कालभीतिरुवा

जो मेरा बहुत ही आराधन किया उससे मैं बडा प्रसन्नहूं व हे वत्स ! काल तुम्हारे लिये किसी प्रकार समर्थ न होगा ॥ ९ ॥ व मनुष्यरूपवाला मैं वहीहूं जोकि तुम्हारे धर्मकी स्थितिको देखने के लिये प्राप्तहुआ था और यह धर्मका मार्ग धन्यहै जोकि आप सरीखे पुरुषोंसे पालन किया जाताहै ॥ १० ॥ मैने समस्त तीर्थों के जलोंसे जो इस गढ़को पूर्ण किया है इस महापवित्र जलको मैं तुम्हारे लिये भलीभांति लायाहूं ॥ ११ ॥ सात मन्त्रोंवाला जो यह मेरा गुप्त स्तोत्र कियागया है पढ़ेजाते हुये इस स्तोत्र से मनुष्य सातो मन्त्रो के फलोंको प्राप्तहोता है ॥ १२ ॥ और मनसे चाहेहुये प्रिय वरदानको तुम मुझ से मांगो मैं तुमसे बहुतही प्रसन्न हूं

इसलिये तुमको कुछ न देने योग्य नहीं है ॥ १३ ॥ कालभीति बोले कि हे शङ्कर जी! मैं धन्यहूं व मेरे ऊपर आपने दया किया तुम्हारी प्रसन्नता से अन्यथा सब धर्म केवल परिश्रमही के लिये होते हैं ॥ १४ ॥ यदि तुम प्रसन्न हो तो यहां सदैव समीपता कीजावै और तुम्हारे लिंग में जो पूजनादिक किया जावै वह अविनाशी होवै ॥ १५ ॥ हे देव ! जो फल दश हजार पांच मंत्रों के जपनेवाले पुरुष को होवै वही फल मनुष्यों को इस लिंग के देखने से होवै ॥ १६ ॥ हे महेश्वर ! जिस लिये मैं कालमार्ग से छुड़ाया गया उसी कारण यह लिंग महाकाल ऐसा प्रसिद्ध होवै ॥ १७ ॥ और इस कुयें में नहाकर जो मनुष्य पितरों का तर्पण करै

च ॥ धन्योस्म्यनुगृहीतोस्मि यत्त्वंतुष्टोसिशङ्कर ॥ त्वत्तोषात्सकलाधर्म्माः श्रमायैवान्यथामताः ॥ १४ ॥ यदितुष्टोसि सान्निध्यमिहत्वंक्रियतांसदा ॥ अक्षयंतत्कृतंचास्तु यल्लिङ्गेक्रियतेतव ॥ १५ ॥ जपतोयत्फलन्देव पञ्चमन्त्रायुतेनच ॥ तत्फलंजायतांनृणामस्यलिङ्गस्यदर्शने ॥ १६ ॥ कालमार्गादहंयस्मान्मोचितोस्मिमहेश्वर ॥ महाकालमितिख्यातं लिङ्गंतस्माद्भवत्विदम् ॥ १७ ॥ अस्मिंश्चकूपेयोमर्त्यः स्नात्वातर्पयतेपितॄन् ॥ सर्वतीर्थफलंचास्तु पितॄणामक्षयागतिः ॥ १८ ॥ इतितस्यवचःश्रुत्वा प्रीतस्तंशङ्करोब्रवीत ॥ स्वयम्भुवंयत्रलिङ्गं तत्रनित्यंवसाम्यहम् ॥ १९ ॥ स्वयम्भुवं चरत्नोत्थं धातुपाषाणलेपजम् ॥ लिङ्गंक्रमेणफलदमन्त्यात्पूर्वंदशोत्तरम् ॥ २० ॥ आकाशेतारकालिङ्गं पातालेहाटकेश्वरम् ॥ स्वयम्भुवंधरापृष्ठे तदेतत्त्रितयंशुभम् ॥ २१ ॥ विशेषात्प्रार्थितंयच्च तच्चसर्वंभविष्यति ॥ अत्रपुष्पंफलंपूजा नैवेद्यंस्तवनक्रिया ॥ २२ ॥ दानंचान्यच्चयत्किञ्चिदक्षयंतद्भविष्यति ॥ माघासितचतुर्दश्यां शिवयोगेचपुत्रक ॥ २३ ॥

उसको सब तीर्थों का फल होवै व पितरों की अविनाशिनी गति होवै ॥ १८ ॥ उसके यह वचन सुनकर प्रसन्न होते हुये शिवजी उससे बोले कि आपही उपजा हुआ जहां लिंग है वहां मैं नित्यही बसता हूं ॥ १९ ॥ आपही पैदा हुआ व रत्नों से उत्पन्न और धातुओं व पत्थर और लेपसे उपजा हुआ लिंग क्रमसे अन्तवाले से पहला दश गुना फलदायक है ॥ २० ॥ आकाश में तारकालिंग पाताल में हाटकेश्वर और भूतल में आपही उपजा हुआ लिंग ये तीनों उत्तम हैं ॥ २१ ॥ विशेषतासे जो प्रार्थना किया गया वह सब होगा और यहांपर पुष्प, फल, पूजन, नैवेद्य व स्तोत्रकर्म ॥ २२ ॥ दान और अन्य जो कुछ होगा वह अक्षय होगा

हे पुत्र ! माघकी कृष्णपक्ष चौदसि शिवयोग में ॥ २३ ॥ लिंगार्चनपूर्वक जो कूप में नहाकर पितरों का तर्पण करैगा उसको समस्त तीर्थोंके फलकी प्राप्ति होगी और पितरों की अविनाशिनी गति होगी ॥ २४ ॥ और उस रात्रिमें प्रत्येक पहरमें जो पुरुष महाकालजीको पूजैगा वह समस्त लिंगोके समीप जागरणके फलको पावैगा॥ २५ ॥ और जो जितेन्द्रिय पुरुष इस लिंगमें मुझको नित्यही पूजैगा हे द्विजोत्तम ! उसको नित्यही भुक्ति मुक्ति दूर में नहीं स्थित है ॥ २६ ॥ चौदसि अष्टमी, सोमवार व पर्वों में जो पुरुष तडाग मे नहाकर इस लिंगको पूजैगा वह शिवको प्राप्तहोगा ॥ २७ ॥ और यहां पर जप, तप, रुद्रजप यह सब अक्षयही होगा और तुम नन्दी

लिङ्गार्चापूर्वतःकूपे स्नात्वायस्तर्पयेत्पितॄन् ॥ सर्वतीर्थफलावाप्तिःपितॄणांचाक्षयागतिः ॥ २४ ॥ तस्यारात्रौमहाकालं यामेयामेप्रपूजयेत् ॥ यःपुमान्सर्वलिङ्गेषु सजागरफलंलभेत् ॥ २५ ॥ जितेन्द्रियश्चयोनित्यं मांलिङ्गेत्रप्रपूजयेत् ॥ भुक्तिमुक्तीनदूरस्थे तस्यनित्यंद्विजोत्तमाः ॥ २६ ॥ चतुर्दश्यामथाष्टम्यां सोमवारेचपर्वसु ॥ स्नात्वासरसियोभ्यर्चेल्लिङ्गमेतच्छिवंव्रजेत् ॥ २७ ॥ जपस्तपोरुद्रजपः सर्वमक्षयमेवच ॥ त्वंचनन्दीद्वितीयोमे प्रतिहारोभविष्यसि॥ २८ ॥ कालमार्गजपाद्वत्स महाकालाभिधेश्वरम् ॥ करन्धमोत्रराजर्षिश्चिरादागमिष्यति ॥ २९ ॥ तस्यप्रोक्त्वाभवान्धर्मांस्ततोमल्लोकमाव्रज ॥ इत्युक्त्वाभगवान्रुद्रो लिङ्गमध्येन्यलीयत ॥ ३० ॥ महाकालोपिमुदितस्तत्रतेपे महातपः ॥ १३१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे कुमारिकाखण्डेमहाकालप्रादुर्भावोनामचतुस्त्रिंशोध्यायः ॥ ३४ ॥ * ॥

नारदउवाच ॥ अथकेनापिकालेन पार्थराजाकरन्धमः ॥ विशेषमिच्छुर्धर्मेषु श्रुत्वातीर्थमहागुणान् ॥ १ ॥ महाका

नामक मेरे दूसरे द्वारपाल होगे हे वत्स ! कालमार्ग के जपसे यह महाकालेश्वरनामक लिंग प्रसिद्ध होगा यहां पर करंधम नामक राजर्षि शीघ्रही आवैगा ॥ २८ । २९ ॥ उससे शैवधर्मोको कहकर तुम मेरे लोकको आइयेगा ऐसा कहकर भगवान् शिवजी लिंग के बीच में लीन होगये ॥ ३० ॥ और प्रसन्न होतेहुये महाकालने भी वहा बडा भारी तप किया ॥ १३१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायाभाषाटीकायांमहाकाललिङ्गप्रादुर्भाववर्णनंनामचतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

दो० । चारोयुग के आचरण अहैं जौन परकार । पैंतिसवें अध्याय मे सोई चरित उदार ॥ नारदजी बोले कि हे अर्जुन ! इसके अनन्तर कुछ समय के उपरान्त धर्मो

के मध्य में विशेषधर्म की इच्छावाला राजा करन्धम तीर्थ के बड़े भारी गुणों को सुनकर ॥ १ ॥ व महाकालजी के चरित्र को सुनकर एकही आया तदनन्तर इसने महीसागर के जलमें नहाकर लिंगों को पूजन किया ॥ २ ॥ व महाकाल लिंग के समीप प्राप्त होकर बड़ी प्रसन्नता को प्राप्त हुआ और महालिंग को देखता हुआ वह राजा तृप्त न हुआ ॥ ३ ॥ जैसे निर्धनी कृपण जन खज़ाना का घड़ा पाकर जीवनको सफल मानै ऐसेही महाकालजी को देखकर उसने जीवन सफल माना ॥ ४ ॥ व जिनके दर्शन से यह फल प्राप्त होताहै उनके समीप दशहज़ार पंचमंत्रों को जपकर तदनन्तर बड़ी सेवासे पूजन कर व प्रणाम कर यह राजा करन्धम ॥ ५ ॥

लचरित्रंचतथैकःसमुपाययौ ॥ महीसागरतोयेसौ स्नात्वालिङ्गान्यथार्चयत् ॥ २ ॥ महाकालमनुप्राप्य परमांप्रीति मागतः ॥ सपश्यन्सुमहालिङ्गं नातृप्यतजनेश्वरः ॥ ३ ॥ यथादरिद्रःकृपणो निधिकुम्भमवाप्यच ॥ सफलंजीवितं मेने महाकालंनिरीक्ष्यच ॥ ४ ॥ पञ्चमन्त्रायुतंजप्त्वाफलंयस्येहदर्शनात् ॥ ततःसपर्ययाभ्यर्च्यमहत्यासौप्रण म्यच ॥ ५ ॥ स्तुत्वाचलिङ्गप्रवरं महाकालमुपासदत् ॥ ६ ॥ ततोरुद्रवचःस्मृत्वा महाकालःस्मयन्निव ॥ प्रत्युद् [illegible]मार्घ्यंचप्रत्यपादयत् ॥ ७ ॥ ततःकुशलप्रश्नादिकृत्वासीनःसुखंनृपः ॥ महाकालमुपामन्त्र्यकथान्तेवाक्य माब्रवीत् ॥ ८ ॥ भगवन्संशयोमेहं सदायंपरिवर्त्तते ॥ यदिदंतर्पणन्नाम पितॄणांक्रियतेनृभिः ॥ ९ ॥ जलमध्येज लंयाति कथंतृप्यन्तिपूर्वजाः ॥ एवंपिण्डादिदानञ्च सर्वमत्रैवदृश्यते ॥ १० ॥ मन्यामहेकथंचैवं पित्राद्यैरुपभुज्य

लिंगों में श्रेष्ठ महाकालजी की स्तुति करके पास में चलेगया ॥ ६ ॥ तदनन्तर शिवजीका वचन सुनकर मुसकराते हुये महाकालजी ने राजाके समीप प्राप्तहोकर पूजन व अर्घ्य को ग्रहण किया ॥ ७ ॥ तदनन्तर कुशलप्रश्नादिक कर सुख से बैठे हुये राजाकरन्धम महाकाल को सम्बोधन कर कथा के अन्त में वचन बोले ॥ ८ ॥ कि हे भगवन् ! मेरे मन [illegible] संशय [illegible] कि जो यह प्रसिद्ध है मनुष्यों से तर्पण कियाजाताहै ॥ ९ ॥ तो जलके मध्य में जल जाताहै और पितर कैसे तृप्त [illegible] पिण्डादिक दान सब यहीं देख पड़ताहै ॥ १० ॥ इस लिये हम यह कैसे मानैं कि पित्रादिकों से भोजन क्रिया जाताहै और यह नहीं है कि जो कुछ

उनके समीप न प्राप्त होवै ॥ ११ ॥ इस लिये स्वप्न में मनुष्य के पास आकर वे याचक होकर वृथाही देख पडते हैं ॥ १२ ॥ और सदैव देवताओं के भी प्रत्यक्षही विश्वास देख पड़तेहैं तो कैसे वे ग्रहण करते हैं इस विषयमें मेरा मन मोहको प्राप्तहोताहै ॥ १३ ॥ महाकालजी बोले कि उन पितरों व देवताओं की योनि इसी प्रकार की है कि जो दूर में कहा हुआ व दूर में पूजन और दूर में स्तुति होती है इसपरभी जो ॥ १४ ॥ होने योग्य, भूत व भविष्य सब को जानते हैं व उसको प्राप्तहोते है पाच तन्मात्रारूप याने शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध व मन, बुद्धि, चित्त व जड़अहंकार ॥ १५ ॥ इन नवो तत्त्वों से बनी हुई देह है और इस देह में दशम पुरुषो-

ते ॥ नचैतदस्तियत्तेषां नोपतिष्ठतिकिञ्चन ॥ ११ ॥ स्वप्नेयथाक्रम्यनरं दृश्यन्तेयाचकाश्चते ॥ १२ ॥ देवानांचापिदृश्यन्ते प्रत्यक्षाःप्रत्ययास्सदा ॥ तत्कथंपरिगृह्णन्ति मनोमेत्रप्रमुह्यति ॥ १३ ॥ महाकालउवाच ॥ योनिरेवंविधातेषां पितॄणांचदिवौकसाम् ॥ दूरोक्तंदूरपूजाच दूरस्तुतिरथापियत् ॥ १४ ॥ भाव्यंभूतंभविष्यञ्च सर्वंजानन्तियान्तिच ॥ पञ्चतन्मात्ररूपञ्च मनोबुद्धिरहंजडः ॥ १५ ॥ नवतत्त्वमयन्देहंदशमःपुरुषोत्तमः ॥ तस्माद्गन्धेनतृप्यन्ति रसतत्त्वेनतेतथा ॥ १६ ॥ शब्दतत्त्वेनतुष्यन्ति स्पर्शतत्त्वञ्चगृह्णते ॥ शुचिन्दृष्ट्वाचतुष्यन्ति नात्रराजन्भवेन्मृषा ॥ १७ ॥ यथातृणंपशूनाञ्च नराणामन्नमुच्यते ॥ एवंदैवतयोनीनामन्नसारञ्चभोजनम् ॥ १८ ॥ शक्तयस्सर्वदेवानामचिन्त्याज्ञानगोचराः ॥ तस्मात्तत्त्वंप्रगृह्णन्ति शेषमत्रैवदृश्यते ॥ १९ ॥ करन्धमउवाच ॥ पितृभ्योदीयतेश्राद्धं स्वकर्मवशगाश्चते ॥ स्वर्गस्थानरकस्थावा कथन्तैरुपभुज्यते ॥ २० ॥ अथस्वर्गेचनरकेस्थिताःकर्माभियन्त्रिताः ॥ शक्नुवन्तिवरानेतान्दा

त्तम (परमेश्वर) है इस लिये वे गन्ध से व रसतत्त्व से तृप्त होते हैं ॥ १६ ॥ व शब्द तत्त्वसे प्रसन्न होते हैं और स्पर्शतत्त्व को ग्रहण करते है और पवित्र वस्तु को देखकर प्रसन्न होते हैं हे राजन्! इसमें झूंठ नहीं है ॥ १७ ॥ जैसे पशुओंका भोजन तृण व मनुष्यों का अन्न कहा जाताहै ऐसेही देवयोनियोंका भोजन अन्नका सारांश है ॥ १८ ॥ सब देवताओं की शक्तियां अचिन्त्य व ज्ञान से देखने योग्य है इसलिये वे तत्त्व (यथार्थ) वस्तुको ग्रहण करतेहैं और शेष वस्तु यहीं देख पडतीहै ॥ १९ ॥ करन्धम बोले कि जिन पितरों के लिये श्राद्ध दीजाती है वे अपने कर्म के वश में प्राप्त होतेहैं चाहै स्वर्ग में टिके हों या नरक में स्थित होवैं तो उनसे किस प्रकार

भोजन किया जाताहै ॥२०॥ और स्वर्ग व नरकमें अपने कर्मोंसे बँधेहुये वे स्थित होते हैं तो वे समर्थ देवता व पितर इन वरोंको देनेके लिये कैसे समर्थ होतेहैं ॥२१॥ क्यों कि यह लिखाहै कि प्रसन्न होते हुये पितृ पितामह लोग मनुष्यों को आयुर्बल, पुत्र, धन, विद्या, स्वर्ग, मोक्ष व सुख और राज्य को देते हैं ॥ २२ ॥ महाकालजी बोले कि हे नृपोत्तम ! यह सत्य है कि पितरभी अपने कर्म में टिके होतेहैं परन्तु देवता, दैत्य व यक्षादिकों के पितर विना मूर्त्तिवाले होतेहैं ॥ २३ ॥ और चारों वर्णों के पितर मूर्त्तिमान् होते हैं इस भांति सात प्रकार के पितर कहे गये हैं वे सब कुछ देतेहैं और वैसेही सब देनेके लिये समर्थ हैं ॥ २४ ॥ हे राजन् ! जिन पितरों के प्रबल इकतीस

तुंवैचेश्वराःकथम् ॥ २१ ॥ आयुःप्रजांधनंविद्यां स्वर्गमोक्षंसुखानिच ॥ प्रयच्छन्तितथाराज्यं प्रीतानृणांपितामहाः ॥ २२ ॥ महाकालउवाच ॥ सत्यमेतत्स्वकर्मस्थाः पितरोपिनृपोत्तम ॥ किन्तुदेवासुराणांच यक्षादीनाममूर्त्तकाः ॥ २३ ॥ मूर्त्ताश्चतुर्णांवर्णानां पितरस्सप्तधास्मृताः ॥ तेहिसर्वंप्रयच्छन्ति दातुंसर्वंतथेश्वराः ॥ २४ ॥ एकत्रिंशद्गणायेषां पितॄणांप्रबलान्नृप ॥ कृतञ्चतदिदंश्राद्धं तर्पयेत्तान्नरान्पितॄन् ॥ २५ ॥ तेतृप्तास्तर्पयन्त्यस्य पूर्वजान्यत्रसंस्थितान् ॥ एवंस्वानाञ्चोपतिष्ठेच्छ्राद्धंयच्छन्तितेवरान् ॥ २६ ॥ राजोवाच ॥ भूतादिभ्योयथाविप्रनाम्नाचोद्दिश्यदीयते ॥ सुरादीनांकथंचैवं संक्षेपेणनदीयते ॥ २७ ॥ इदंपितृभ्योदेवेभ्यो द्विजेभ्यःपावकायच ॥ एवंकस्माद्विस्तराःस्युर्मनःकायातिकष्टदाः ॥ २८ ॥ महाकालउवाच ॥ उचिताप्रतिपत्तिश्च वार्यासर्वेषुनित्यशः ॥ प्रतिपत्तिंचोचितान्ते विना

गण हैं उन्हीं उत्तम पितरों को यह की हुई श्राद्ध तृप्त करती है ॥ २५ ॥ और तृप्त होते हुये वे पितर इसके उन पितरों को वहीं तृप्त करते हैं कि वे जहां टिके होते हैं इस प्रकार अपने पितरों के समीप श्राद्ध प्राप्त होती है और वे वरों को देते हैं ॥२६॥ राजा बोले कि हे विप्रजी ! जैसे भूतादिकों के लिये नामसे उद्देश कर दिया जाता ऐसेही देवादिकों को संक्षेप से क्यों नहीं दिया जाता है ॥ २७ ॥ यह पितरों, देवताओं, ब्राह्मणों और अग्नि के लिये दिया जाता है इस प्रकार मन व शरीर को बड़े [illegible] विस्तार किस लिये होते हैं ॥ २८ ॥ महाकालजी बोले कि नित्यही सबोंमें योग्य प्रतिपादन करना चाहिये क्योंकि योग्य प्रतिपादन के विना वे नहीं ग्रहण

करते हैं ॥ २६ ॥ जैसे घर के द्वारपै बैठा हुआ कुत्ता बलि (भोजन) को ग्रहण करता है हे राजन् ! वैसेही क्या प्रधान पुरुष भी ग्रहण करैगा ॥ ३० ॥ इसीप्रकार वे देवता भूतों की नाईं किसी प्रकार नहीं ग्रहण करते हैं पवित्र कामनाओंको सेवते हुये वे विना श्रद्धावाले पुरुष से हव्यको नहीं ग्रहण करते हैं ॥३१॥ और विन मंत्रों से जो दीहुई वस्तु होती है उसको वे निर्मल देवता नहीं ग्रहण करते है हे राजन् ! मंत्रोंके इस विषय में वेद ने भी ऐसा कहा है ॥ ३२ ॥ कि मंत्र देवता हैं इसलिये जो विद्वान् इस प्रकार मंत्रपूर्वक जो करता है उसको देवपंक्ति प्रसिद्धही ग्रहण करती है इसलिये विन मंत्र के कुछ न ग्रहण करै और न विन मंत्र के प्रतिपादन

गृह्णन्तिनैवच ॥२९॥ यथाश्वागृहद्वारस्थो बलिंगृह्णातिकिन्तथा ॥ प्रधानपुरुषोराजन् गृह्णातिचतथासमम् ॥ ३० ॥ एव न्तेभूतवद्देवा नहिगृह्णन्तिकर्हिचित् ॥ शुचिकामाञ्जुषन्तस्ते हविरश्रद्धधानतः ॥ ३१ ॥ विनामन्त्रैश्चयद्दत्तं नतद्गृ ह्णन्तितेमलाः ॥ श्रुतिरप्यत्रप्राहेदं मन्त्राणांविषयेनृप ॥ ३२ ॥ मन्त्रादेवतास्तस्माद्य एवंविद्वान्मन्त्रवत्करोति देव तालिरेवतत्प्रसिद्धंगृह्णाति तस्मान्नामन्त्रवत्प्रतिगृह्णीयान्नामन्त्रवद्वाप्रतिपादयेदिति ॥ ३३ ॥ तस्मान्मन्त्रैस्सदादेयं पौरा णैर्वैदिकैरपि ॥ अन्यथातेनगृह्णन्ति भूतानामुपतिष्ठति ॥ ३४ ॥ राजोवाच ॥ दर्भास्तिलाअक्षताश्च तोयंचैतैस्तुसंयु तम् ॥ कस्मात्प्रदीयतेदानं ज्ञातुमिच्छामिकारणम् ॥३५॥ महाकालउवाच ॥ पुराकिलप्रदत्तानि न्टभिर्दानानिभूरिशः॥ असुराःप्रत्यगृह्णन्त प्रविश्याभ्यन्तरंबलात् ॥ ३६ ॥ ततोदेवाश्चपितरः प्रत्यूचुःपद्मसम्भवम् ॥ स्वामिन्नःपश्यतामेव सर्वंदैत्यैःप्रगृह्यते ॥ ३७ ॥ विधेहितेषांरक्षांत्वं विनष्टाश्चान्यथावयम् ॥ ततोब्रह्माविमृश्यैव रक्षोपायमचीकरत् ॥ ३८ ॥

करै॥३३॥ उसी कारण सदैव पुराणके ज्ञाता व वैदिकोंसे भी मंत्रों करके देना चाहिये अन्यथा वे नहीं ग्रहण करते हैं और वह भूतों को प्राप्त होताहै ॥ ३४ ॥ राजा बोले कि कुश, तिल, अक्षत व जल इन सबों से संयुत दान किस लिये दियाजाताहै मैं इस कारण को जानना चाहताहूं ॥ ३५ ॥ महाकाल जी बोले कि पुरातन समय प्रसिद्ध में मनुष्यों ने अनेकों दानों को दिया तब उसके अन्तर में बल से पैठकर दैत्यों ने उस को ग्रहण किया ॥ ३६ ॥ तदनन्तर देवताओं व पितरों ने ब्रह्मा जी से कहा कि हे स्वामिन् ! हम सबों के देखतेही हुये समस्त दैत्यों से दानादिक वस्तु ग्रहण कीजाती है ॥ ३७ ॥ तुम उनके सकाश से रक्षा कीजिये नहीं तो हम

लोग नाश होजावैंगे तदनन्तर ब्रह्मा ने विचार कर रक्षा का यत्न किया ॥ ३८ ॥ कि पितरों को तिलों से संयुत वस्तु देवै और देवों को अक्षतों से संयुक्त देवै और
जल व कुश सब कहीं संयुक्त करै तो इस प्रकार दैत्य नहीं ग्रहण करते हैं ॥ ३९ ॥ इन वस्तुवों के विना जो दीहुई वस्तु है उसको बल से दैत्य ग्रहण करते हैं और
पितर व देवता शोच से श्वास लेकर चलेजाते हैं और फलको देने के लिये वे समर्थ नहीं होते हैं ॥ ४० ॥ इसलिये कुशों में सब से दान दिया जाता है करन्धम
बोले कि चतुर्युग की व्यवस्थाको मैं यथार्थ सुना चाहताहूं ॥ ४१ ॥ मेरे यह बड़ी जाननेकी इच्छा सदैवही वर्त्तमान रहती है ॥ ४२ ॥ महाकालजी बोले कि पहिला

**तिलैर्युतिंपितॄणांचदेवानामक्षतैस्सह ॥ तोयंदर्भश्चसर्वत्रएवंगृह्णन्तिनासुराः ॥ ३९ ॥ एतान्विनाप्रदत्तंयद्बलाद्दैत्यैःप्र
गृह्यते ॥ निःश्वस्यपितरोदेवा यान्तिदातुंफलंनहि ॥४०॥ तस्माद्दर्भेषुसर्वैश्च दानमेवंप्रदीयते ॥ करन्धमउवाच ॥ चतु
र्युगव्यवस्थांच श्रोतुमिच्छामितत्त्वतः ॥ ४१ ॥ महतीयंविवित्सामे सदैवपरिवर्त्तते ॥ ४२ ॥ महाकालउवाच ॥ आद्यं
कृतयुगंविद्धि ततस्त्रेतायुगंस्मृतम् ॥ द्वापरन्तिष्यमेवेति चत्वारश्चसमासतः ॥ ४३ ॥ सत्त्वंकृतंरजस्त्रेता द्वापरश्चरजस्त
मः ॥ कलिस्तमस्तुविज्ञेयं युगावर्त्तयुगेषुच ॥ ४४ ॥ ध्यानम्पुरःकृतयुगे त्रेतायांयज्ञउच्यते ॥ द्वापरेसत्यं दा
नमेवकलौयुगे ॥ ४५ ॥ कृतेतुमानसीसृष्टिर्वृत्तिस्साक्षाद्रसोल्लसा ॥ तेजोमय्यःप्रजास्तृप्ताः सदानन्दाश्चभोगिनः ॥
४६ ॥ अधमोत्तमौनतत्रास्तां निर्विशेषाःप्रजाःशुभाः ॥ तुल्यमायुस्सुखंरूपं तासांतस्मिन्कृतेयुगे ॥४७॥ नचप्रीतिर्न**

सतयुग जानिये तदनन्तर त्रेतायुग कहा गया है और द्वापर व कलियुग ये चारों युग संक्षेप से कहे गये ॥ ४३ ॥ सतयुग सत्त्वगुण, त्रेतायुग रज, द्वापर रजोगुण
तमोगुण और युगों के आवर्त (भ्रमण) वाले युगों में कलियुग तमोगुण जानने योग्य है ॥ ४४ ॥ पुरातन समय सतयुग में ध्यान, त्रेता में यज्ञ कहा जाता है
और द्वापर में उत्तम आचरण व कलियुग में दानही कहा गया है ॥ ४५ ॥ सतयुगमें मानसी सृष्टि होती है और जीविका साक्षात् रससे शोभित होती है और तेजो-
मयी प्रजायें होती हैं वे तृप्तहोकर सदैव आनन्द व भोगी होते हैं ॥ ४६ ॥ उस युग में नीच व उत्तम नहीं होते हैं याने सब सम होते हैं और सब उत्तम प्रजा भेद

रहित होते हैं और उस सतयुग में उन प्रजाओं का आयुर्बल, सुख व रूप समान होताहै ॥ ४७ ॥ और न अप्रीति होती है न उद्वेग (क्लेश) होताहै न वैर होताहै और न ग्लानि होती है व पर्वत और समुद्र के समीप रहनेवाले उन प्रजाओं को दया प्यारी होती है ॥ ४८ ॥ उस समय वर्ण व आश्रम की व्यवस्था नहीं होतीहै और संकरवर्ण नहीं होताहै और वे एक बुद्धि से उत्तम सदाशिव जी का ध्यान करते हैं ॥ ४९ ॥ तदनन्तर चौथेचरण में वह रससे शोभित जीविका नष्ट होगई उसके उपरान्त उन प्रजाओं के लिये गृहसंज्ञक वृक्ष उत्पन्न हुये ॥ ५० ॥ वे वृक्ष वस्त्रों व फलों और आभूषणों को पैदा करते हैं व उन में उन प्रजाओं के लिये

चोद्वेगोनद्वेषोनापिचक्लमः ॥ पर्वतोदधिवासिन्योह्यनुक्रोशप्रियास्तुताः ॥ ४८ ॥ वर्णाश्रमव्यवस्थाच तदासीन्नचसङ्करः ॥ ऐकमत्येनध्यायन्ति परमन्तेसदाशिवम् ॥ ४९ ॥ चतुर्थेचततःपादे नष्टासाभूद्रसोल्लसा ॥ प्रादुरासंस्ततस्तासां वृक्षाश्चगृहसंज्ञिताः ॥ ५० ॥ वस्त्राणितेप्रसूयन्ते फलान्याभरणानिच ॥ तेष्वेवजायतेतासां गन्धवर्णरसान्वितम् ॥ ५१ ॥ अमाक्षिकंमहावीर्यं पुटकेपुटकेमधु ॥ तेनतावर्त्तयन्तिस्मकृतस्यान्तेप्रजास्तदा ॥ ५२ ॥ हृष्टपुष्टास्तयासिद्ध्याप्रजावैविगतज्वराः ॥ ततःकालेनकेनापि तासांवृद्धेरसेन्द्रिये ॥ ५३ ॥ युगभावात्तथाध्याने स्वल्पीभूतेपरस्यच ॥ वृक्षास्तत्पर्यगृह्णन्त मधुचामाक्षिकंबलात् ॥ ५४ ॥ तासान्तेनापचारेण लोभदोषकृतेनवै ॥ प्रणष्टामधुनासार्द्धं कल्पवृक्षाःक्वचित्क्वचित् ॥ ५५ ॥ तस्यांचाप्यल्पशिष्टायां द्वन्द्वान्यभ्युत्थितानिच ॥ शीतातपैर्मनोदुःखैस्ततस्तादुःखिता

सुगन्ध, वर्ण व रस से संयुक्त ॥ ५१ ॥ बिन मक्षिकावाला और बड़े प्रभाव या बलसंयुत शहद पत्ते पत्ते में उत्पन्न होताहै उससे सतयुग के अन्त मे उस समय वे प्रजा जीविका करते हैं ॥ ५२ ॥ व उस सिद्धि से प्रजा ज्वर (दुःख) से रहित व हृष्ट पुष्ट होते हैं तदनन्तर कुछ समय के उपरान्त रस इन्द्रिय के वृद्ध होने पर ॥ ५३ ॥ युग के भाव से परपुरुष का ध्यान कम होने पर बिन मक्षिकावाले शहद को वे वृक्ष बल से ग्रहण कर लेते हैं ॥ ५४ ॥ उन प्रजाओ के लोभ व दोष से कियेहुये अपचार (अपराध) करके शहद समेत कल्पवृक्ष नष्टहोगये व कहीं कहीं ॥ ५५ ॥ उस सिद्धिके अल्पशेष रहनेपर द्वन्द्व (दुःख सुख) उत्पन्न हुये तद-

नन्तर शीत व घाम इत्यादिक मनके दुःखों से वे प्रजा बहुत दुःखी हुये ॥ ५६ ॥ तदनन्तर आच्छादन के लिये उन्होंने स्थानों को बनाया तब त्रेतायुग में उनके लिये फिर सिद्धि उत्पन्न हुई ॥ ५७ ॥ और वृक्ष व ग्राम तथा जङ्गली चौदह ओषधियां उत्पन्न हुईं जोकि जल व भूमिके संयोग से बिन जोते व बिन बोये पैदा होतीथीं ॥ ५८ ॥ और वृक्ष व बिन शाखाओंवाले छोटे वृक्ष ऋतु के अनुकूल फूलों व फलोंसमेत पैदाहुये और उन प्रशंसनीय फूलों व फलोंसे उनकी जीविका हुई ॥ ५९ ॥ तदनन्तर फिर उनके सब ओरसे स्नेह व लोभहुआ तब कालके बलसे उन्होंने नदी, क्षेत्रों व पर्वतोंको ग्रहण किया ॥ ६० ॥ और हठसे बलके अनुसार

भृशम् ॥ ५६ ॥ चक्रुरावरणार्थंहि निकेतानिततस्तुताः ॥ तदाप्रादुरभूत्तासां सिद्धिस्त्रेतायुगेपुनः ॥ ५७ ॥ वृक्षावभूवु रोषध्योग्रामारण्याश्चतुर्दश ॥ अकृष्टपच्याश्चानुप्तास्तोयभूमिसमागमात् ॥ ५८ ॥ ऋतुपुष्पफलैश्चैव वृक्षगुल्माश्च जज्ञिरे ॥ तैश्चवृत्तिरभूत्तासां धन्यैःपुष्पैःफलैस्तथा ॥५९॥ ततःपुनरभूत्तासां रागोलोभश्चसर्वतः ॥ कालवीर्येणचागृह्णन् नदीक्षेत्राणिपर्वतान् ॥ ६० ॥ वृक्षगुल्मौषधीश्चैव प्रसह्याशुयथाबलम् ॥ विपर्ययेणचौषध्यः प्रणष्टाश्चचतुर्दश ॥ ६१ ॥ गत्वाधरांप्रविष्टास्ता ओषध्यःपीडिताःप्रजाः ॥ दुदोहगांपृथुर्वैन्यस्सर्वभूतहितायवै ॥ ६२ ॥ तदाप्रभृतिवौषध्यः फलाकृष्टाःप्रजास्ततः ॥ वार्तयावर्त्तयन्तिस्म पाल्यमानाश्चक्षत्रियैः ॥ ६३ ॥ वर्णाश्रमप्रतिष्ठाच यज्ञस्त्रेतासुचोच्यते ॥ सदाशिवध्यानमयं त्यक्त्वामोक्षमचेतनाः ॥६४॥ पुष्पितांवाचमाश्रित्य रागात्स्वर्गमसाधयन् ॥ द्वापरेचप्रवर्त्तन्ते मतिभेदास्ततोनृणाम् ॥ ६५ ॥ मनसाकर्मणावाचाकृच्छ्राद्वार्त्ताप्रसिद्ध्यति ॥ लोभोधृतिःशिवन्त्यक्त्वा धर्म्मा

वृक्ष, गुल्म व ओषधियों को ग्रहण किया व कालके विपरीतसे चौदह ओषधियां नष्टहोगई ॥ ६१ ॥ व जाकर पृथ्वी में पैठगई तब प्रजा पीडित हुये उस समय वेनके पुत्र पृथुने गऊ रूपवाली पृथ्वीको दुह लिया ॥ ६२ ॥ तब से लगाकर फालसे जोतीहुई ओषधियां उत्पन्न हुईं तदनन्तर क्षत्रियों से पालन किये जातेहुये प्रजा जीविका से वर्तमान हुये ॥ ६३ ॥ त्रेतायुगों में वर्ण व आश्रम की प्रतिष्ठा व यज्ञ कहीजाती हैं और निर्बुद्धि पुरुष सदाशिवजी के ध्यानमय मोक्षको छोड़कर ॥ ६४ ॥ पुष्पित वाणीके आश्रितहोकर स्नेहसे स्वर्ग का साधन करतेभये हैं तदनन्तर द्वापर में मनुष्यों के बुद्धिभेद वर्तमान होते हैं ॥ ६५ ॥ और मन,

कर्म व वचन से क्लेशकरके जीविका सिद्ध होती है लोभ, धैर्य व कल्याण को छोड़कर धर्मोंका संकर ॥ ६६ ॥ व वर्ण, आश्रम का विध्वंस द्वापर में वर्त्तमान होताहै तब द्वापरके अन्तमें एकवेद चार प्रकारसे विभाग कियाजाताहै ॥ ६७ ॥ ब्राह्मणोंके लिये एक वेद चतुष्पाद यानी चार चरणों मे संयुक्त कियाजाता है कि जिस में गौरवसे इतिहास पुराण भेदको प्राप्तहोते हैं याने उत्पन्न होतेहैं ॥ ६८ ॥ ब्राह्म, पाद्म, विष्णुपुराण, शिवपुराण, भागवत वैसेही अन्य नारदपुराण व सातवां मार्कण्डेयपुराण ॥ ६९ ॥ और आठवा अग्निपुराण कहागया है वैसेही नवां भविष्यपुराणहै और दशम ब्रह्मवैवर्त्त, गेरहवां लिंगपुराण है ॥ ७० ॥ और बारहवा वाराह-

णांसंकरस्तथा ॥ ६६ ॥ वर्णाश्रमपरिध्वंसाः प्रवर्त्तन्तेचद्वापरे ॥ वेदोव्यासैश्चतुर्द्धाच व्यस्यतेद्वापरान्ततः ॥ ६७ ॥ एकोवेदश्चतुष्पादः क्रियतेद्विजहेतवे ॥ इतिहासपुराणानिभिद्यन्तेयत्रगौरवात् ॥ ६८ ॥ ब्राह्मंपाद्मंवैष्णवञ्च शैवंभागवतंतथा ॥ तथान्यन्नारदीयञ्च मार्कण्डेयंचसप्तमम् ॥ ६९ ॥ आग्नेयमष्टमंप्रोक्तं भविष्यंनवमंतथा ॥ दशमंब्रह्मवैवर्तं लिङ्गमेकादशंस्मृतम् ॥ ७० ॥ वाराहंद्वादशंप्रोक्तं स्कान्दंचैवत्रयोदशम् ॥ चतुर्दशंवामनाख्यं कौर्म्यंपञ्चदशंस्मृतम् ॥ ७१ ॥ मात्स्यंषोडशमंचैव गारुडञ्चततःपरम् ॥ अतःपरञ्चब्रह्माण्डमेवमष्टादशानिच ॥ ७२ ॥ अस्मिन्वाराहकल्पेच व्यासेनकारितान्नृप ॥ ७३ ॥ ऋतुस्सत्योभार्गवश्च अङ्गिरास्सवितातथा ॥ मृत्युःशतक्रतुर्धीमान् वसिष्ठोभविताधुना ॥ ७४ ॥ सारस्वतस्त्रिधामाच वेदवित्त्रिवृतोमुनिः ॥ शततेजाःस्वयंविष्णुः नारायणइतिस्मृतः ॥ ७५ ॥ करकश्चारुणिर्धीमांस्तथादेवोऋतञ्जयः ॥ ऋतञ्जयोभरद्वाजोगौतमःकृतिसत्तमः ॥ ७६ ॥ वाचःश्रवामुनिश्चैव तथाशुष्या

पुराण कहा है और स्कन्द तेरहवा है व चौदहवां वामन नामक पुराण व पन्द्रहवा कूर्मपुराण कहागया है ॥ ७१ ॥ सोलहवां मत्स्यपुराण तदनन्तर गरुडपुराण है व इसके उपरान्त ब्रह्माण्ड पुराण है इस प्रकार अठारह पुराण हुये ॥ ७२ ॥ हे राजन् ! इस वाराहकल्पमें ये पुराण व्यास से बनायेगये हैं ॥ ७३ ॥ ऋतु व सत्य, भार्गव, अङ्गिरा, सविता, मृत्यु व बुद्धिमान् शतक्रतु व वसिष्ठ महर्षि इस समय होवेंगे ॥ ७४ ॥ और सारस्वत त्रिधामा व वेदके जाननेवाले त्रिवृतमुनि, शततेजा व आपही विष्णुनारायण ऐसे कहेगये हैं ॥ ७५ ॥ करक व बुद्धिमान् अरुणि वैसेही ऋतञ्जयदेव व ऋतञ्जय, भरद्वाज, गौतम और कृतिसत्तम ॥ ७६ ॥ व वाचःश्रवामुनि

तथा शुष्यायनमुनि, तृणबिन्दु, ऋक्षशक्ति व पाराशर ॥ ७७ ॥ जातूकर्ण्य, विष्णु और द्वैपायन (वेदव्यास) मुनि और अश्वत्थामा इत्यादिक ये भविष्य (होने वाले) मुनिलोग तुमसे सूचित कियेगये ॥ ७८ ॥ और लोकके लिये द्वापर में धर्मशास्त्रभी उत्पन्न होतेहैं मनु, अत्रि, विष्णु, हारीत, याज्ञवल्क्य, उशना, अङ्गिरा ॥ ७९ ॥ यम, आपस्तम्ब, संवर्त, कात्यायन, बृहस्पति, पराशर, व्यास, शङ्ख, लिखित, दक्ष, गौतम ॥ ८० ॥ शातातप, वसिष्ठ ये धर्मशास्त्र के प्रयोजक (बनानेवाले) हैं तदनन्तर द्वापर की सन्ध्या में कलियुग वर्तमान होनेपर ॥ ८१ ॥ शैवयोग नष्ट होजानेपर योगियों के आनन्ददायक मुनि उत्पन्न होतेहैं पहले श्वेत, कल, रुद्र,

यनोमुनिः ॥ तृणबिन्दुस्तथाऋक्षशक्तिःपाराशरस्तथा ॥७७॥ जातूकर्ण्योथविष्णुश्च स्वयंद्वैपायनोमुनिः ॥ अश्वत्थामसुखाश्चैते भविष्याःसूचितास्तव ॥ ७८ ॥ धर्म्मशास्त्राणिलोकार्थं भिद्यन्तेचापिद्वापरे ॥ मन्वत्रिविष्णुहारीतयाज्ञवल्क्योशनोङ्गिराः ॥७९॥ यमापस्तम्बसंवर्त्ताः कात्यायनबृहस्पती ॥ पराशरव्यासशङ्खलिखितादक्षगौतमौ ॥ ८० ॥ शातातपोवसिष्ठश्च धर्म्मशास्त्रप्रयोजकाः ॥ ततोद्वापरसन्ध्यायां प्रवर्त्ततिकलौयुगे ॥ ८१ ॥ नश्यमानेशैवयोगे जायन्तेयोगिनन्दन ॥ आद्यश्वेतकलोरुद्रः सुतारस्तारणस्तथा ॥८२॥ सुहोत्रःकङ्कणश्चैव लौगाक्षिश्चमहामुनिः॥ जैगीषव्यश्चभाव्योवै भगवान्दधिवाहनः ॥ ८३ ॥ ऋषभश्चमुनिर्धीमानुग्राहस्त्रिसुबालकः ॥ गौतमोवेदशीर्षश्च गोकर्णश्चशिखण्डभृत ॥ ८४ ॥ गुहावासीजटामाली अट्टहासश्चदारुकः ॥ लाङ्गलीसंयमीशूली डिण्डीमुण्डीश्वरःस्त्रयम् ॥ ८५ ॥ सहिष्णुस्सोमशर्माच नकुलीशश्चपार्थिव ॥ कायावरोहणोभावीत्याद्यायोगेश्वराःक्रमात् ॥ ८६ ॥ एते वक्ष्यन्तिसंक्षिप्तं शिवधर्म्मंकलौयुगे ॥ एवंकलियुगेराजञ्छास्त्रंसंक्षेपउच्यते ॥ ८७॥ शृणुतिष्यप्रवृत्तिञ्च हर्षोद्वेग

सुतार, तारण ॥ ८२ ॥ सुहोत्र, कंकण, लौगाक्षि महामुनि व जैगीषव्य व होनेवाले भगवान् दधिवाहन ॥ ८३ ॥ ऋषभ व बुद्धिमान् उग्राह और त्रिसुबालक, गौतम व वेदशीर्ष, गोकर्ण व शिखंडिभृत ॥ ८४ ॥ गुहावासी, जटामाली, अट्टहास, दारुक, लांगली, संयमी, शूली, डिण्डी व आन्ही मुण्डीश्वर ॥ ८५ ॥ सहिष्णु, सोमशर्मा नकुलीश व हे राजन् ! कायावरोहण होवैंगे इत्यादिक योगीश्वर क्रमसे होंगे ॥ ८६ ॥ ये सब कलियुगमें संक्षेपमें प्राप्त शिवधर्म को कहेंगे हे राजन् ! इस

प्रकार कलियुगमें शास्त्रका संक्षेप कहाजाताहै ॥ ८७ ॥ हर्ष व शोचकरनेवाले कलियुगकी प्रवृत्तिको सुनिये कि उस कलियुग में अज्ञान से व्याकुल इन्द्रियोंवाले मनुष्य तमस्विनी (अज्ञानवती) माया व ईर्षा और वधसाधन करते हैं और कलियुग में मारनेवाला रोग होताहै व सदैव क्षुधाके भय होते हैं ॥ ८८ । ८९ ॥ और भयङ्कर अनावृष्टि भयहोगी व देशोंका विपर्यय (उलटपुलट) होजायगा और अधर्मके सेवन से मनुष्यों को वेदका प्रमाण नहीं होताहै ॥ ९० ॥ और अधर्मी, अनाचारी, बड़े क्रोधी व न्यून तेजवाले लालची मनुष्य झूंठ कहते हैं व स्त्रियोंके समान और दुष्ट सन्तानवाले होतेहैं ॥ ९१ ॥ दुष्टयज्ञों व दुष्ट पढ़नेसे और दुराचार

करींकिल ॥ तिष्येमायामसूयाञ्च वधञ्चैवतमस्विनीम् ॥८८॥ साधयन्तिनरास्तत्र तमसाव्याकुलेन्द्रियाः ॥ कलौप्रमा यकोरोगःसततंक्षुद्भयानिच ॥८९॥ अनावृष्टिभयञ्चोरं देशानाञ्चविपर्य्ययः ॥ नप्रमाणंश्रुतेरस्ति नृणाञ्चाधर्मसेवनात् ॥ ९० ॥ अधार्मिकास्त्वनाचारा महाकोपाल्पतेजसः ॥ अनृतंब्रुवतेलुब्धानारीप्रायाश्चदुष्प्रजाः ॥ ९१ ॥ दुरिष्टैर्दुरधीतै श्च दुराचारैर्दुरागमैः ॥ विप्राणांकर्म्मदोषैश्च प्रजानांजायतेक्षयः ॥ ९२ ॥ उत्सीदन्तिक्षत्रिविप्रा वर्द्धन्तेशूद्रवैश्यकाः ॥ शूद्राविप्रैस्सहासन्ते शयनासनभोजनैः ॥९३॥ शूद्राश्चब्राह्मणाचाराः शूद्राचाराश्चब्राह्मणाः ॥ राजवृत्त्यांस्थिताश्चौ राश्चौराचाराश्चपार्थिवाः ॥ ९४ ॥ एकपत्न्योविनश्यन्तिवर्द्धयन्त्यभिसारिकाः ॥ तदाह्यल्पफलाभूमिः क्वचिच्चापि महाफला ॥९५॥ अरक्षितारोहर्त्तारो राजानःपापनिर्दयाः ॥ अक्षत्रियास्तुराजानो विप्राःशूद्रोपजीविनः ॥ ९६ ॥ शूद्रा

व दुष्टशास्त्र और ब्राह्मणों के कर्मोंके दोषोंसे सन्तान का नाश होता है ॥ ९२ ॥ और क्षत्रिय व ब्राह्मण क्लेशको प्राप्त होतेहैं और शूद्र, वैश्य बढ़ते हैं व शूद्र लोग ब्राह्मणों के साथ शय्या, आसन व भोजन करने में बैठते हैं ॥ ९३ ॥ शूद्र ब्राह्मणों की नाईं आचारवाले होते हैं और ब्राह्मण शूद्रों की नाईं आचार करते हैं चोर राजाओंकेसे आचरण में स्थित होवैंगे व राजा लोग चोरोंकेसे आचार करैंगे ॥९४॥ और पतिव्रता स्त्री नाश होजावैंगी और अभिसारिका[1] स्त्रिया बढ़ैंगी उस समय पृथ्वी थोड़े फलोंवाली होगी व कहीं बहुत फलोंवाली होगी ॥ ९५ ॥ और पापी व निर्दयी राजा लोग रक्षा करनेवाले न होवैंगे किन्तु द्रव्य लेनेवाले होंगे व राजालोग

१ कान्तार्थिनी तु या याति सकेत साभिसारिकेति ॥

अक्षत्रिय होंगे याने दुःख से न छुडावैंगे व ब्राह्मण शूद्रकी जीविकावाले होंगे ॥ ९६ ॥ और ब्राह्मणों से प्रणाम कियेहुये सब शूद्र विवाद करैंगे और ब्राह्मणों को देख कर आसन पै बैठे हुये थोडी बुद्धिवाले शूद्र लोग न चलैंगे ॥ ९७ ॥ और मुखपै हाथ धरकर ब्राह्मण लोग उस समय नीचभी शूद्रके कान में नम्रतापूर्वक उससे वचन कहैंगे ॥ ९८ ॥ ब्राह्मणों के देखते हुये भी शूद्र ऊंचे आसन पै बैठे रहैंगे हे राजन् ! यह जानकर राजा उनको नहीं मारैगा हे राजन् ! काल के बलको देखिये॥ ९९ ॥ थोड़े शास्त्र व थोड़ी भाग्य व बलसे संयुत ब्राह्मण लोग फूलों व उत्तम आसनों और गहनों से शूद्रों को पूजैंगे ॥ १०० ॥ और ब्राह्मण

विवादिनस्सर्वे ब्राह्मणैरभिवन्दिताः ॥ आसनस्थान्द्विजान्दृष्ट्वा नचलन्त्यल्पबुद्धयः ॥ ९७ ॥ आस्येनिधायवैहस्तंकर्णे शूद्रस्यचद्विजाः ॥ नीचस्यापितदावाक्यं वक्ष्यन्तिविनयेनतम् ॥ ९८ ॥ उच्चासनस्थाःशूद्राश्चद्विजानांपश्यतामपि ॥ ज्ञात्वानहिंसतेराजा पश्यकालबलंनृप ॥ ९९ ॥ पुष्पैःशुभासितैश्चैव तथान्यैर्मण्डलैर्द्विजाः ॥ शूद्रानभ्यर्चयन्त्यल्पश्रुतभाग्यबलान्विताः ॥ १०० ॥ पाखण्डिनांचगृह्णन्ति ब्राह्मणाःकुप्रतिग्रहान् ॥ येनतेरौरवंयान्ति सुदुस्तारंद्विजाधमाः ॥ १ ॥ तपोयज्ञफलानाञ्च विक्रेतारोद्विजास्तथा ॥ अनयाश्चभविष्यन्ति बहवःकोटिशःकलौ ॥ २ ॥ पुरुषाल्पबहुस्त्रीको नृणांचापत्यसम्भवः ॥ निन्दन्तिवेदवाक्यानि वेदार्थांश्चकलौयुगे ॥ ३ ॥ शूद्रैःस्वयंनिर्मितंयत्प्रमाणंशास्त्रमेव तत् ॥ श्वापदप्रबलत्वंच गवांचाप्युपक्षयः ॥ ४ ॥ कस्यचिद्दानप्रभृतिधर्मस्यास्तिनशुद्धता ॥ साधूनांबहवोनाशाः

लोग पाखंडियों के दुष्ट दानों को ग्रहण करते हैं जिससे कि वे अधम ब्राह्मण दुःखसे पार होने योग्य रौरव नरक को प्राप्त होते हैं ॥ १ ॥ और तपस्या व यज्ञके फलों को बेंचनेवाले ब्राह्मण होवैंगे व कलियुग में बहुत से करोड़ों अन्याय होवैंगे ॥ २ ॥ और मनुष्योंके सन्तान की उत्पत्ति में पुत्र थोडे होवैंगे और कन्या बहुत होंगी व कलियुग में पुरुष वेदवाक्यों की निन्दा करते हैं व वेदार्थों को निन्दते हैं ॥ ३ ॥ और जो आपही शूद्रों से निर्माण किया गया है वही शास्त्र प्रमाण होगा और हिंसक जीवों की प्रबलता होगी व गौवों का भी विनाश होगा ॥ ४ ॥ दान इत्यादिक किसी धर्म की शुद्धता न होगी व साधुवों के मध्य में बहुत नाश

होजावैंगे और राजालोग अपनेही रक्षक होंगे ॥ ५ ॥ युगान्त प्राप्तहोने पर देश अट्ट (अन्न) विक्रयवाले और ब्राह्मण वेंद बेंचनेवाले व स्त्रियां केश (भग) बेंचनेवाली याने पुंश्चली होवैंगी ॥६॥ और घर स्त्रीप्रधान होवैंगे याने घरोंमें स्त्रियां प्रधानहोंगी और वे कर्कशा व कुवसन होंगी व बहुत भक्षणकरनेवाली और अहंकारिणी व कृत्या (अभिचार से उत्पन्न स्त्री) के समान होंगी ॥ ७ ॥ और सब वणिग्जन होंगे याने बनियाका काम करैंगे और इन्द्र चित्रवर्षी होंगे याने कहीं २ वृष्टि करेंगे और कुशीलसेवन व वृथारूपवाले पाखण्डों से घिरेहुये मनुष्य होवैंगे ॥ ८ ॥ आपस में मनुष्य बहुत याचना करनेवाले होंगे और उससमय मनुष्य पापों में निःशङ्क

पार्थिवाश्चस्वरक्षिणः ॥ ५ ॥ अट्टशूलाजनपदाः शिवशूलाश्चब्राह्मणाः ॥ प्रमदाःकेशशूलिन्यो युगान्तेसमुपस्थिते ॥ ६ ॥ स्त्रीप्रधानानिगेहानि कुचैलास्ताश्चकर्कशाः ॥ बहुभक्षाचलिप्ताश्च कृत्याइवभवन्तिच ॥ ७ ॥ सर्वेवणिग्जनाश्चापि चित्रवर्षीचवासवः ॥ कुशीलचर्यापाखण्डैर्वृथारूपैस्समावृता ॥ ८ ॥ बहुयाचनकोलोको भविष्यतिपरस्परम् ॥ अशङ्कश्चैवपापेषु तदालोकोभविष्यति ॥ ९ ॥ हर्त्तारःपररत्नानांपरदारप्रधर्षकाः ॥ ऊनषोडशवर्षाश्च प्रजायन्तेयुगक्षये ॥ १० ॥ तथाद्वादशवर्षाश्च प्रसवन्तिस्त्रियस्तदा ॥ चौराश्चौरस्यहर्त्तारो हर्त्तुर्हर्त्तातथापरः ॥ ११ ॥ दानकर्म्मण्युपरते लोकेनिष्क्रियताङ्गते ॥ कीटमूषकसर्पाश्च धर्षयिष्यन्तिमानवान् ॥ १२ ॥ वर्णाश्रमाणांयेचान्ये पाखण्डाःपरिपन्थिनः ॥ तेतदाप्रोद्भविष्यन्तितेषांवृद्धिश्चपार्थिव ॥ १३ ॥ दुःखंपुत्रकलत्राच्च देहोत्सादस्सरोगता ॥ अधर्माभि

होवैंगे ॥ ९ ॥ और पराये रत्नोंके हरनेवाले व पराई स्त्रियोंकी धर्षणा करनेवाले पुरुष होंगे व युगक्षय में पुरुष पन्द्रहही वर्ष के होवैंगे ॥ १० ॥ व उससमय बारह वर्षवाली स्त्रियां सन्तान पैदा करैंगी व चोरकी वस्तुको भी चोर हर लेवैंगे वैसही हरनेवाले से अन्य हरलेगा ॥ ११ ॥ दान कर्म के नाश होनेपर व मनुष्य के कर्महीन होनेपर कीड़े, मूश व साप मनुष्यों को क्लेश देवैंगे ॥ १२ ॥ हे राजन् ! वर्ण व आश्रमों के शत्रु जो अन्य पाखण्ड हैं वे उस समय उत्पन्न

१ अट्टमन्नशिवोवेद शूलोविक्रयउच्यते । केशोभगमितिप्रोक्तमृषिभिस्तत्वदर्शिभिरिति ॥

होंगे और उनकी वृद्धिहोगी ॥ १३ ॥ और पुत्रों व स्त्रियों से दुःखहोगा व देहको क्लेश होगा और सरोगता होगी कलियुग में क्रमसे अधर्मका प्रवेशहोगा ॥ १४ ॥
और दोषोंके निधान कलियुग के एक बड़ेभारी गुणको सुनिये कि जिससे थोड़ेही समय करके मनुष्य सिद्धिको प्राप्तहोते हैं ॥ १५ ॥ सतयुगादिक तीनोंयुगोंवाले
पुरुष ऐसा कहतेहैं कि वे धन्यहैं जोकि श्रद्धासंयुत पुरुष कलियुग में श्रुति, स्मृति पुराणोंमें कहेहुये धर्मको करते हैं ॥ १६ ॥ त्रेतामें वर्षभर व द्वापरमें महीनेभरवाला
जिस प्रकार धर्म कहागया है वैसेही क्लेश करता हुआ पुरुष उस धर्मको मनुष्य कलियुग में एक दिन से प्राप्त होता है ॥ १७ ॥ हे राजन्! तीनों युगोंमें उतने

निवेशस्त्वक्रमशोजायतेकलौ ॥ १४ ॥ कलेर्दोषनिधेश्चैवशृणुचैकंमहागुणम् ॥ यदल्पेनतुकालेन सिद्धिङ्गच्छन्ति
मानवाः ॥ १५ ॥ त्रियुगीयावदन्त्येवं धन्याधर्मंचरन्तिये ॥ श्रुतिस्मृतिपुराणोक्तं कलौश्रद्धापरायणाः ॥ १६ ॥ त्रेतायां
वार्षिकोधर्मो द्वापरेमासिकःस्मृतः ॥ यथाक्लेशंचरन्प्राज्ञस्तदह्नाप्राप्यतेकलौ ॥ १७ ॥ युगत्रयेणतावन्तः सिद्धिङ्ग
च्छन्तिपार्थिव ॥ यावन्तःसिद्धिमायान्ति कलौहरिहरव्रताः ॥ १८ ॥ अष्टाविंशेकलौयच्च भवितातन्निबोधमे ॥ त्रिषु
चैवसहस्रेषु कलेर्यातेषुपार्थिव ॥ १९ ॥ चर्चितायांसमाराध्य लप्स्यतेभूधरापहः ॥ त्रिशतेषुदशन्यूनेष्वस्यांभुवि
भविष्यति ॥ २० ॥ शूरकोनामवीराणामधिपःसिद्धमन्त्रकः ॥ २१ ॥ ततस्त्रिषुसहस्रेषु विंशत्याचाधिकेषुहि ॥ भ
विष्यतिविक्रमार्को राज्यंसोथप्रलप्स्यते ॥ २२ ॥ सिद्धिप्रसादाद्विपादि दीनान्यउद्धरिष्यति ॥ ततस्त्रिषुसहस्रेषु

पुरुष सिद्धि को प्राप्तहैं जितने कि कलियुग में विष्णु व शिवके नियमवाले पुरुष सिद्धिको प्राप्त होतेहैं ॥ १८ ॥ और अट्ठाईसवें कलियुग में जो होगा उसको मुझ
से सुनिये कि हे राजन्! कलियुग के तीन हजार वर्ष बीतने पर ॥ १९ ॥ पूजित भूमिमें शिवजी को आराधकर भूधरापह नामक राजा भूमिको पावैगा और दश
न्यून तीनसौ वर्ष बीतनेपर इस पृथ्वीमें वीरोंका स्वामी शूरकनामक होगा जोकि सिद्धमन्त्रवाला होगा ॥ २० । २१ ॥ तदनन्तर बीस अधिक तीन हजार वर्ष
कलियुग बीतनेपर विक्रमादित्य होवैंगे और वे राज्यको प्राप्तहोंगे ॥ २२ ॥ जोकि सिद्धिके प्रसाद से विपत्ति में दीनजनों को उधारैंगे तदनन्तर तीन हजार व सौ

अधिक वर्ष बीतनेपर ॥ २३ ॥ प्रजाओं के दरिद्र को हरनेवाले शुकनामक राजा होंगे तदनन्तर तीन हज़ार व छह सौ अधिक वर्ष बीतनेपर ॥ २४ ॥ मगधदेश में हेमसदन नामक पुरुषसे अंजनी स्त्री में विष्णुके अंश,धर्मरक्षक आपही साक्षात् बुध जी होवैंगे ॥ २५ ॥ व उन महात्मा के बडेभारी कर्म होवैंगे और वे ज्योतिर्विद इत्यादिक करोड़ों उग्र मनुष्यों को मारैंगे ॥ २६ ॥ और चौंसठि वर्षतक वे सातों द्वीपोंको भोगकर भक्तोंके लिये अपना यश छोड़कर पश्चात् स्वर्गको जावैंगे ॥ २७ ॥ जिस लिये सब अवतारों के गुणों से वे अधिक थे इस लिये भक्तलोग उन को समस्त पापोंके विनाशक बुध कहैंगे ॥ २८ ॥ और चार हजार चार सौ अधिक

शतेनाभ्यधिकेषुच ॥ २३ ॥ शुकोनामभविष्यश्चप्रजादारिद्र्यहारकः ॥ ततस्त्रिषुसहस्रेषु षट्शतैरधिकेषुच ॥ २४ ॥ मागधेहेमसदनादञ्जन्यांप्रभविष्यति ॥ विष्णोरंशोधर्मपाताबुधस्साक्षात्स्वयंप्रभुः ॥ २५ ॥ तस्यकर्माणिभूरीणि भविष्यन्तिमहात्मनः ॥ ज्योतिर्विदमुखानुग्रान् सहनिष्यतिकोटिशः ॥ २६ ॥ चतुःषष्टिंसवर्षाणि भुक्त्वाद्वीपानिसप्तच ॥ भक्तेभ्यःस्वयशोमुक्त्वा दिवंपश्चाद्व्रजिष्यति ॥ २७ ॥ सर्वेषाञ्चावताराणां गुणैस्समधिकोयतः ॥ ततोवक्ष्यन्तितंभक्ताः सर्वपापहरंबुधम् ॥ २८ ॥ चतुर्षुचसहस्रेषु शतेष्वपिचतुर्षुच ॥ साधिकेषुमहान्राजा प्रमतिःप्रभविष्यति ॥ २९ ॥ गोत्रेषुवैचन्द्रमसो बहुसेनापतिर्बली ॥ म्लेच्छान्सकोटिशोहत्वा पाखण्डानिचसर्वशः ॥ ३० ॥ वैदिकंकेवलंशुद्धं सद्धर्मवर्त्तयिष्यति ॥ गङ्गायमुनयोर्मध्ये निष्ठांयास्यतिपार्थिव ॥ ३१ ॥ ततःप्रजाश्चकालेन केनापिभृशपीडिताः ॥ घोरञ्चाधर्म्ममाश्रित्य शाठ्येनचभवन्तिताः ॥ ३२ ॥ अप्रग्रहास्ततस्तावै लोभाविष्टाश्चवृन्दशः ॥ उपहिंसन्तिचान्यो

वर्ष बीतनेपर बड़ेभारी प्रमतिनामक राजाहोंगे ॥ २९ ॥ जोकि चन्द्रमा के वंशोंमें होकर बहुत सेनाओं का स्वामी व बलवान् वह करोड़ों म्लेच्छों व सब पाखण्डों को नाशकर ॥ ३० ॥ केवल वैदिक शुद्ध उत्तमधर्म को चलावैगा और हे राजन् ! वह गङ्गा यमुनाके बीचमें नाशको प्राप्तहोगा ॥ ३१ ॥ तदनन्तर किसी समय से बहुतही पीड़ितहोकर वे प्रजा भयङ्कर धर्ममें आश्रितहोकर शठतासे युक्तहोवैंगे ॥ ३२ ॥ तदनन्तर बन्धन से रहित वे प्रजागण व्याकुल व श्रमसे पीड़ित तथा लोभमें

प्राप्तहोकर आपसमें हिंसा करैंगे ॥ ३३ ॥ श्रौत व स्मार्तधर्म नष्टहोजाने पर उस समय आपस में नष्ट व मर्यादरहित, दयाहीन स्नेहहीन और लज्जारहित ॥ ३४ ॥ व
छोटे और पच्चीसही वर्ष की अवस्थावाले प्रजालोग घरों व स्त्रियोंको छोड़कर विषादसे व्याकुल इन्द्रियोंवाले वे हाहाभूत होकर भ्रमण करैंगे ॥ ३५ ॥ और अना-
वर्षासे नष्ट प्रजालोग जीविका को छोड़कर दुःखित होवैंगे और वे प्रजा अपने देशोंको छोड़कर पर्वतोंको सेवते हैं ॥ ३६ ॥ व नदी, समुद्र, कूपों और पर्वतों को सेवते
हैं तथा बहुत दुःखी होकर मांस, मूल और फलोंसे जीविका करते हैं ॥ ३७ ॥ और फटे कपड़े, पत्तों और मृगचर्मोंको धारणकिये वे कार्यरहित व परिग्रहहीन होवैंगे

न्यं व्याकुलश्रमपीडिताः ॥ ३३ ॥ नष्टे श्रौतेतथास्मार्त्तेपरस्परहतास्तदा ॥ निर्मर्यादानिष्करुणानिःस्नेहानिरपत्रपाः ॥
३४ ॥ गृहान्दाराणिसंत्यज्य ह्रस्वकाःपञ्चविंशकाः ॥ हाहाभूताश्चरिष्यन्ति विषादव्याकुलेन्द्रियाः ॥ ३५ ॥ अ
नावृष्टिहताश्चैव वार्त्तामुत्सृज्यदुःखिताः ॥ पर्वतांस्तेनिषेवन्ते हित्वाजनपदान्स्वकान् ॥ ३६ ॥ सरित्सागरकूपांश्च से
वन्तेपर्वतांस्तथा ॥ मांसैर्मूलफलैश्चैव वर्त्तयन्तिसुदुःखिताः ॥ ३७ ॥ चीरपत्राजिनधरानिष्क्रियानिष्परिग्रहाः ॥ धर्मस्य
नाशनायैव शाल्योम्लेच्छोहनिष्यति ॥ ३८ ॥ उत्तमाधममध्यत्वं सर्वमुच्छिद्यघोरकृत ॥ ततस्तस्यवधार्थाय विष्णु
स्साक्षाज्जगत्पतिः ॥ ३९ ॥ सम्भलेविष्णुयशसोभूत्वापुत्रोद्विजोत्तमः ॥ द्विजोत्तमैःपरिवृतःशाल्यान्तंसविधास्यति ॥
४० ॥ कोटिशोर्बुदशःपापान्निहत्यसचसर्वशः ॥ पालयिष्यतितद्धर्मं योधर्मःश्रुतिपूर्वकः ॥ ४१ ॥ कृत्वापोतंधर्म्म
रूपं साधूनांपरमेश्वरः ॥ गमिष्यतिपरंलोकं कृत्वाकर्माणिभूरिशः ॥ ४२ ॥ ततःकृतयुगंभूयः प्रवर्तिष्यतिपार्थिव ॥

तब धर्मके नाशने के लिये शाल्य म्लेच्छ उनको मारैगा ॥ ३८ ॥ जोकि उत्तम, अधम व मध्य सबको नाशकर घोरकर्मकारी होगा तदनन्तर उसके मारने के
लिये संसारके स्वामी साक्षात् विष्णुजी ॥ ३९ ॥ सम्भलनगर में विष्णुयशा के पुत्र होकर द्विजोत्तमों से घिरेहुये वे द्विजोत्तम विष्णु शाल्यका अन्त करैंगे ॥ ४० ॥
करोड़ों व अर्बुदों सब पापियोंको मारकर वे कल्किरूपी विष्णुजी उस धर्मको पालैंगे जोकि वेदपूर्वक है ॥ ४१ ॥ वे परमेश्वर साधुओंके लिये धर्मरूपी जहाज़ को करके

व बहुत से कर्मोंको कर परलोक को जावैंगे ॥ ४२ ॥ तदनन्तर हे राजन्! फिर सतयुग वर्तमान होगा पहलेवाला सतयुग व अन्तवाला वह अन्य युगोंसे विशेष है ॥ ४३ ॥ और अट्ठाईसवां शेष कलियुग अन्यसे वर्तमान होकर तदनन्तर सूर्यवंश व चन्द्रवंश वर्त्तमान होगा ॥ ४४ ॥ मनुके पुत्र देवापि से व श्रुतदेव ब्राह्मण से फिर सृष्टि पैदाहोगी हे राजन्! इस प्रकार चारों युगोंकी व्यवस्था परिक्रमण करतीहै ॥ ४५ ॥ चारोंयुगों में वे धन्यहैं जोकि शिव व विष्णुजीको भजतेहैं ॥ ४६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांयुगव्यवस्थावर्णनंनामपञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥ ॥ ॥

आद्यंकृतयुगंचान्त्यं तदन्येभ्योविशिष्यते ॥ ४३ ॥ अष्टाविंशःकलिश्चैव शेषःप्रावर्त्यचान्यतः ॥ ततःकृतेसूर्यवंशः सोमवंशःप्रवर्त्स्यति ॥ ४४ ॥ मन्वात्मजाच्चदेवापेः श्रुतदेवाच्चब्राह्मणात् ॥ इतिचातुर्युगीराजन् व्यवस्थापरिवर्त्तते ॥ ४५ ॥ चतुर्युगेतेधन्यावै जेभजन्तिहराच्युतौ ॥ ४६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डे युगव्यवस्थावर्णनंनामपञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

करन्धमउवाच ॥ केचिच्छिवंसमाश्रित्य विष्णुमाश्रित्यवेधसम् ॥ वर्णयन्तिपरंमोक्षं त्वन्तुकस्मात्प्रमन्यसे ॥ १ ॥ महाकालउवाच॥ अपारवैभवादेवास्त्रयोप्येतेनरर्षभ॥ योगीन्द्राणामपितत्र चेतोमुह्यतिकिंमम ॥ २ ॥ पुराकिलैवंमुनयोनैमिषारण्यवासिनः ॥ सन्दिहानाःश्रेष्ठतायां ब्रह्मलोकमुपागमन् ॥ ३ ॥ तस्मिन्क्षणेविरञ्चोपि श्लोकञ्चप्रब्रवीत्किल ॥ अनन्तायनमस्तस्मै यस्यान्तोनोपलभ्यते॥ ४ ॥ महेशायचह्यावेतौ मयिस्तांसुमुखौसदा ॥ ततःश्रेष्ठौच

दो॰। नृपति करन्धम सन कह्यो महाकाल जिमि हाल। छत्तिसवें अध्याय में सोई चरित रसाल ॥ करंधम बोले कि कोई शिवके आश्रित होकर और कोई विष्णु व कोई ब्रह्माके आश्रित होकर उत्तम मोक्षको वर्णन करते हैं और तुम किससे मानते हो ॥ १ ॥ महाकालजी बोले कि हे नरश्रेष्ठ! ये तीनों देवता अपार ऐश्वर्य वालेहैं उस विषय में योगीन्द्रों का भी चित्त मोहित होताहै फिर मुझको क्या कहनाहै ॥ २ ॥ पुरातन समय इस प्रकार नैमिषारण्य के बसनेवाले मुनिलोग श्रेष्ठत्व में सन्देह करतेहुये ब्रह्मलोक को गये ॥ ३ ॥ उस समय में ब्रह्माने भी प्रसिद्ध में इस श्लोकको कहा कि उन अनन्त के लिये नमस्कार है कि जिनका अन्त नहीं

मिलता है ॥ ४ ॥ व महेशजी के लिये नमस्कारहै ये दोनों सदैव मेरे ऊपर सुमुख (प्रसन्न) रहैं तदनन्तर मुनिलोग उन दोनोंको श्रेष्ठ मानकर क्षीरसागर को गये॥
५ ॥ वहां योगेश्वर विष्णुजी इस श्लोकको पढ़तेहुये बोले कि समस्त प्राणियों में परमब्रह्मरूपी ब्रह्मा व सदाशिवजीको मैं प्रणाम करताहूं वे दोनों मेरे मंगलके लिये
होवैं तदनन्तर विस्मय में प्राप्त होतेहुये वे मुनिलोग विष्णु के यहांसे लौटकर फिर चलेगये ॥ ६ । ७ ॥ और उन्होंने कैलास में पार्वती से यह कहतेहुये शिवजी
को देखा कि एकादशी में विष्णुजी के मन्दिर के बीच जागरण में मैं नाचताहूं ॥ ८ ॥ व विष्णु और ब्रह्माकी प्रसन्नता के लिये मैं सदैव तपस्या करताहूं यह सुनकर

तौमत्वा क्षीरोदंमुनयोययुः ॥ ५ ॥ तत्रयोगेश्वरःश्लोकं प्रपठन्नमुमब्रवीत ॥ ब्रह्माणंसर्वभूतेषु परमंब्रह्मरूपिणम् ॥
६ ॥ सदाशिवञ्चवन्देतौ भवेतांमङ्गलायमे ॥ ततस्तेविस्मिताविष्णोरपसृत्यययुःपुनः ॥ ७ ॥ कैलासेददृशुःस्थाणुं व
दन्तंगिरिजाम्प्रति ॥ एकादश्यांप्रनृत्यामि जागरेविष्णुसद्मनि ॥ ८ ॥ सदातपस्याञ्चरामिप्रीत्यर्थंहरिवेधसोः ॥ श्रु
त्वेतिचापसृत्यैव खिन्नास्तेमुनयोब्रुवन् ॥ ९ ॥ यदादेवानसंयान्ति पारंचैवपरस्परम् ॥ तत्सृष्टस्सृष्टसृष्टेषु गणनाकास्म
दादिषु ॥ १० ॥ उत्तमाधममध्यत्वममीषांवर्णयन्तिये ॥ असत्यवादिनःपापास्तेयान्तिनिरयंध्रुवम् ॥ ११ ॥ एवन्ते
निश्चयामासुर्नैमिषेयास्तपस्विनः ॥ सत्यमेतन्नृराजेन्द्र ममापीदंस्फुटम्मतम् ॥ १२ ॥ जापकानांसहस्राणि वैष्ण
वानांतथैवच ॥ शैवानांचविधिविष्णु स्थाणुंचाप्यन्नदात्रिदम् ॥ १३ ॥ तस्माद्यस्यमनोरागोयस्मिन्देवेभवेत्स्फुटम् ॥
सतंभजेद्धिपापःस्यान्ममेदंमतमुत्तमम् ॥ १४ ॥ करन्धमउवाच ॥ कानिपापानिविप्रेन्द्र यैस्तुसम्मूढचेतसः ॥ नदेवेषुन

लौटकरके दुःखित होतेहुये वे मुनिलोग बोले ॥ ६ ॥ कि जब देवता लोग आपस में पारको नहीं प्राप्तहोते हैं तो उनसे रचित से पैदा किये जनों से उत्पन्नहुये हम
लोगोंकी क्या गिनती है ॥ १० ॥ इन तीनों में जो पुरुष उत्तम, अधम व मध्यमताको वर्णन करते हैं वे असत्यवादी निश्चयकर नरकको जाते हैं ॥ ११ ॥ इसप्रकार
नैमिषारण्य में रहनेवाले उन तपस्वियों ने निश्चय किया और हे राजेन्द्र ! यह सत्यहै क्योंकि मेराभी यही प्रकटही मतहै ॥ १२ ॥ क्योंकि हज़ारों जापक वैष्णव
व शैवोंने ब्रह्मा,विष्णु व शिवजीको यही कहाहै ॥ १३ ॥ इसलिये जिसके मनका स्नेह जिस देवतामें प्रकटही होवै वह उसको भजै तो पापहीन होगा यह मेरा उत्तम

मतहै ॥ १४ ॥ करन्धम बोले कि हे द्विजेन्द्र ! वे कौन पातकहैं कि जिनसे मूढ़ चित्तवाले मनुष्यका मन देवताओंमें और धर्मोंमें स्नेह को नहीं प्राप्त होताहै ॥ १५ ॥ महाकालजी बोले कि चित्तकी वृत्तियों के भेद से अधर्म के भेद जानने योग्य हैं और वे अनेकों करोड़ भेदोंसे स्थूल, सूक्ष्म व अतिसूक्ष्म हैं ॥ १६ ॥ उनमे जो पापसमूह नरकहेतुवाले स्थूल (मोटे) हैं वे संक्षेप से कहेजाते हैं जोकि मन, वचन, कर्मसे साधन कियेजाते हैं ॥ १७ ॥ पराई स्त्री व द्रव्यमें मनसे इच्छा करना व चित्तसे अशुभ चिन्तन करना और चित्तमें अकार्यका प्रवेशहोना यह चार प्रकारका मानसकर्म है ॥ १८ ॥ और असंबद्ध वचन कहना व असत्य और जो अप्रिय

धर्मेषु रतिमापद्यतेमनः ॥ १५ ॥ महाकालउवाच ॥ अधर्मभेदाविज्ञेयाश्चित्तवृत्तिप्रभेदतः ॥ स्थूलाःसूक्ष्माःसुसूक्ष्माश्च कोटिभेदैरनेकशः ॥ १६ ॥ तत्रयेपापनिचयाः स्थूलानरकहेतवः ॥ तेसमासेनकथ्यन्ते मनोवाक्कायसाधनाः ॥ १७ ॥ परस्त्रीद्रव्यसङ्कल्पश्चेतसानिष्टचिन्तनम् ॥ अकार्याभिनिवेशश्च चतुर्द्धाकर्ममानसम् ॥ १८ ॥ असंबद्धप्रलापित्वम सत्यंचाप्रियञ्चयत् ॥ परापवादंपैशुन्यं चतुर्द्धाकर्मवाचिकम् ॥ १९ ॥ अभक्ष्यभक्षणंहिंसा मिथ्याकामस्यसेवनम् ॥ परस्वानामुपादानं चतुर्द्धाकर्मकायिकम् ॥ २० ॥ इत्येतद्द्वादशविधं कर्मप्रोक्तंत्रिसम्भवम् ॥ अस्यभेदान्पुनर्वच्मियेषां फलमनन्तकम् ॥ २१ ॥ येद्विषन्तिमहादेवं संसारार्णवतारकम् ॥ सुमहत्पातकोपेतास्तेयान्तिनरकाग्निषु ॥ २२ ॥ म हान्तिपातकान्याहुर्निरन्तरफलानिषट् ॥ नाभिवन्दन्तियेदृष्ट्वा शङ्करंनस्तुवन्तिच ॥ २३ ॥ यथेष्टचेष्टानिश्शङ्कास्सं

होताहै व पराई निन्दा व चुगुली करना यह चार प्रकारका वाचिककर्म है ॥ १९ ॥ अभक्ष्य का भोजन करना, जीवमारना व मिथ्या कामका सेवन और पराई द्रव्य का ग्रहण करना यह चार प्रकार का शारीरककर्म है ॥ २० ॥ मन वचन व कर्मसे उपजाहुआ यह बारह प्रकारका कर्महै फिर इसके भेदोंको कहताहूं कि जिनका अमित फलहै ॥ २१ ॥ संसार समुद्र के पार उतारनेवाले महादेवजी से जो वैर करते हैं वडेभारी पातकों से संयुक्त वे नरक की अग्नियों में प्राप्त होतेहै ॥ २२ ॥ और विद्वान्लोग निरन्तर फलोंवाले छह बडे पातकोंको कहते हैं कि जो शिवजीको देखकर न प्रणाम करते है और न स्तुति करतेहैं ॥ २३ ॥ और अपनी इच्छा

के अनुसार कर्म करनेवाले निस्सन्देह जो मनुष्य भलीभांति टिकते व रमण करते हैं और शिव व गुरुके सामने पूजन से रहित रहते हैं ॥ २४ ॥ व जो शिवजी के आचार को नहीं मानते हैं ये छह सदाशिवजी की भक्तिसे वैर करते हैं और गुरु, दुःखी व अशक्त व विदेश में टिकेहुये ॥ २५ ॥ और शत्रुओं से हारेहुये मनुष्य को जो पापकारी नर छोड़ता है और उनकी स्त्री पुत्र व मित्रोंमें जो अपमान करता है ॥ २६ ॥ यह गुरुकी निन्दाके बराबर बड़ाभारी पातक जाननेयोग्य है ब्रह्मघाती, मदिरा पीनेवाला, चोर व गुरुकी तल्प (शय्या व स्त्री) में गमन करनेवाला ॥ २७ ॥ ये महापातकी हैं और उनका साथ करनेवाला पांचवां पापी है क्रोध से या

तिष्ठन्तिरमन्तिच ॥ उपचारविनिर्मुक्ताः शिवस्यगुरुसन्निधौ ॥ २४ ॥ शिवाचारन्नमन्यन्ते शिवभक्तंद्विषन्तिषट् ॥ गुरुमार्तमशक्तञ्चविदेशप्रस्थितन्तथा ॥ २५ ॥ अरिभिःपरिभूतंवा यस्सन्त्यजतिपापकृत ॥ तद्भार्यापुत्रमित्रेषु यश्चावज्ञांकरोतिवा ॥ २६ ॥ इत्येतत्पातकंज्ञेयं गुरुनिन्दासमंमहत ॥ ब्रह्मघ्नश्चसुरापश्चस्तेयीचगुरुतल्पगः ॥२७॥ महापातकिनस्त्वेते तत्संसर्गीचपञ्चमः ॥ क्रोधाद्द्वेषाद्भयाल्लोभाद्ब्राह्मणस्यवदन्तिये ॥२८॥ मर्मान्तकंमहादोषं ब्रह्मघ्नास्सम्प्रकीर्त्तिताः ॥ ब्राह्मणंयस्समाहूय याचमानमकिञ्चनम् ॥२९॥ पश्चान्नास्तीतियोब्रूयात्सचवैब्रह्महास्मृतः ॥ यश्चविद्याभिमानेन नित्यंजयतिसद्द्विजम् ॥ ३० ॥ उदासीनंसभामध्ये ब्रह्महासप्रकीर्त्तितः ॥ मिथ्यागुणैःस्वमात्मानं नयत्युत्कर्षतां बलात ॥ ३१ ॥ विरुद्ध्यगुरुभिस्सार्द्धं ब्रह्मघ्नःसचकीर्त्तितः ॥ क्षुत्तृषातप्तदेहानां द्विजानांभोक्तुमिच्छताम् ॥ ३२ ॥ यस्स

वैर, भय व लोभसे जो मनुष्य ब्राह्मण के मर्म (सुकुमारस्थान) के नाशक महादोषको कहते हैं वे ब्रह्मघाती कहेगये हैं जो कोई अकिंचन याने धनरहित मांगतेहुये ब्राह्मण को बुलाकर ॥ २८ । २९ ॥ और पश्चात् जो यह कहता है कि नहीं है वह ब्रह्मघाती कहागयाहै और जो विद्याके अभिमान से नित्य सभाके बीच में शत्रुता, मित्रता से रहित उत्तम ब्राह्मण को जीतता है वह ब्रह्मघाती कहागया है व वृथाही गुणोंसे जो बल करके गुरु याने उत्तमजनों से विरोधकर अपनी आत्माको उच्चता में प्राप्त करता है वह ब्रह्मघाती कहागया है और क्षुधा व प्याससे सन्तप्त शरीर वाले तथा भोजन चाहते हुये ब्राह्मणों के विषय में ॥३०।३१॥३२॥

जो विघ्न करता है विद्वानों ने उसको ब्रह्मघाती कहाहै और समस्त मनुष्यों की जो चुगुली करता है व छिद्र (दोषों) के ढूंढने में लगारहता है ॥ ३३ ॥ और जो दुष्ट उद्वेग याने ऊब या दुःखको करता है वह ब्रह्मघाती कहागया है और प्याससे व्याकुल व जलके लिये समीप जातीहुई गौवोंका ॥ ३४ ॥ जो विघ्न करता है विद्वानों ने उसको ब्रह्मघाती कहाहै व पराये दोषको जानकर जो राजाके कानमें कहता है ॥ ३५ ॥ वह चुगुल बड़ा पापी व दुष्टहै विद्वानों ने उसको ब्रह्मघाती कहाहै ब्राह्मणों से न्यायकरके जो द्रव्य इकट्ठा कीजाती है छलसे या बलसे जो उसका हरलेना है वह ब्रह्महत्या के समान मानागया है और मूढबुद्धिवाला जो शास्त्रोंको पढ़कर

माचरतेविघ्नं तमाहुर्ब्रह्मघातकम् ॥ पिशुनस्सर्वलोकानां छिद्रान्वेषणतत्परः ॥ ३३ ॥ उद्वेगजननः क्रूरस्सचवैब्रह्महास्मृतः ॥ गवांतृषाभिभूतानां जलार्थमुपसर्पताम् ॥ ३४ ॥ यस्समाचरतेविघ्नं तमाहुर्ब्रह्मघातकम् ॥ परदोषंपरिज्ञाय नृपकर्णेजपेत्तुयः ॥ ३५ ॥ पापीयान्सपिशुनः क्रूरस्तमाहुर्ब्रह्मघातकम् ॥ न्यायेनोपार्जितंविप्रैस्तद्द्रव्यहरणञ्चयत् ॥ ३६ ॥ छद्मनावाबलाद्वापि ब्रह्महत्यासमस्मृतम् ॥ अधीत्ययश्चशास्त्राणि परित्यजतिमूढधीः ॥ ३७ ॥ सुरापानसमंज्ञेयं जीवनायैववापठेत् ॥ अग्निहोत्रपरित्यागस्तथायज्ञीयकर्मणाम् ॥ ३८ ॥ मातापितृपरित्यागः कूटसाक्ष्यंसुहृद्वधः ॥ ३९ ॥ अभक्ष्यभक्षणंचैव जन्तूनांकाम्ययाचयः ॥ ग्रामंवनंगवांवासं यःस्वक्रोधेनदीपयेत् ॥ ४० ॥ अतिपापानिघोराणि सुरापानसमानिच ॥ दीनसर्वस्वहरणं नरस्त्रीगजवाजिनाम् ॥ ४१ ॥ गोभूरत्नसुवर्णानामोषधीनांरसस्यच ॥ चन्दनागुरुकर्पूरकस्तूरीपट्टवाससाम् ॥ ४२ ॥ हस्तन्यासापहरणं रुक्मस्तेयसमंस्मृतम् ॥ कन्यानांवरयोग्यानामदानं

छोडदेता है ॥ ३६ । ३७ ॥ अथवा जीविकाही के लिये जो पढ़ता है वह मदिरा पीनेके समान जाननेयोग्य है व यज्ञवाले कर्मों और अग्निहोत्र का छोडना ॥ ३८ ॥ और माता, पिताका छोडदेना व झूंठी गवाही देना व मित्रका मारना ॥ ३९ ॥ और अभक्ष्यका भोजन करना व प्राणियोंकी कामना से जो ग्राम, वन और गौवों के स्थानको क्रोधसे जलाता है ॥ ४० ॥ ये बडे भयङ्कर पातक हैं और मदिरा पीने के समान हैं दीनजन का सर्वस्व हरलेना और मनुष्य, स्त्री, हाथी व घोडोंका हरलेना ॥ ४१ ॥ और गऊ, भूमि, रत्न, सोना, ओषधी, रस, चन्दन, अगुरु, कपूर, कस्तूरी और रेशमी वस्त्रोंका ॥ ४२ ॥ व हाथमें धरीहुई वस्तुका हरलेना सुवर्ण

की चोरीके समान मानागया और वरकेयोग्य कन्याओं का समान वरके लिये न देना ॥ ४३ ॥ व पुत्र और मित्र की स्त्रियोंमें गमन करना व बहिनियों में गमन और कन्याके साथ घोर साहस करना व चाण्डाल की स्त्रीका सेवन ॥ ४४ ॥ और समान जातिवाली स्त्रीके साथ गमन (दुष्टकर्म) करना यह सब गुरुकी शय्या व स्त्रीके साथ दुष्कर्म करने के बराबर मानागया है और ब्राह्मणके लिये द्रव्य देनेके लिये प्रतिज्ञा कर फिर जो नहीं देताहै ॥ ४५ ॥ और जो ब्राह्मण स्मरण नहीं करता है वह पातक तुल्यहै अहंकार, बड़ा क्रोध, पाखण्डता व कृतघ्नता ॥ ४६ ॥ और विषयोंमें बहुत आसक्त रहना, कृपणता, शठता, ईर्षा व विन दोषमें पुत्र, मित्र व स्वामी

सदृशेवरे ॥ ४३ ॥ पुत्रमित्रकलत्रेषु गमनंभगिनीषुच ॥ कुमारीसाहसङ्घोरमन्त्यजस्त्रीनिषेवणम् ॥ ४४ ॥ सवर्णाया चगमनं गुरुतल्पसमस्मृतम् ॥ द्विजायार्थंप्रतिश्रुत्य नप्रयच्छतियःपुनः ॥ ४५ ॥ नचस्मारयतेविप्रस्तुल्यंतदुपपातकम् ॥ अभिमानातिकोपश्च दाम्भिकत्वंकृतघ्नता ॥ ४६ ॥ अत्यन्तविषयासक्तिःकार्पण्यंशाठ्यमत्सरम् ॥ पुत्रमित्रकलत्राणामदोषेस्वामिनस्तथा ॥ ४७ ॥ भृत्यानाञ्चपरित्यागस्साधुबन्धुतपस्विनाम् ॥ गवांक्षत्रियवैश्यानां स्त्रीशूद्राणाञ्चताडनम् ॥ ४८ ॥ शिवाश्रमतरूणाञ्च पुष्पारामविनाशनम् ॥ अयाज्यानांयाजनञ्च अयाच्यानाञ्चयाचनम् ॥ ४९ ॥ यज्ञारामतडागादिदारापत्यस्यविक्रयः ॥ तीर्थयात्रोपवासानां व्रतायतनकर्मणाम् ॥ ५० ॥ स्त्रीधनाद्युपजीवन्ति स्त्रीभिरत्यन्तनिर्जिताः ॥ अरक्षणञ्चनारीणां मद्यपस्त्रीनिषेवणम् ॥ ५१ ॥ ऋणानामप्रदानञ्च मिथ्यावृत्त्युप

का छोड़ना ॥ ४७ ॥ और सेवकों को त्याग करना व साधु, भाई, तपस्वियों और गऊ, क्षत्रिय, वैश्य व स्त्री और शूद्रोंको मारना ॥ ४८ ॥ व शिवजी के आश्रमवाले वृक्षोंका और फुलवारी का नाश करना व न यज्ञ करानेयोग्य जनोंको यज्ञकराना और न मांगनेयोग्य जनोंसे मांगना ॥ ४९ ॥ और यज्ञ, बगीचा, तडागादिक व स्त्री और पुत्रोंका बेंचना व तीर्थयात्रा, उपास व व्रत और देवमन्दिरादिक कर्मोंका बेंचना समान है ॥ ५० ॥ और स्त्रीके धन से जो जीविका करते हैं व स्त्रियों से अत्यन्तही जीतेहुये बराबर हैं स्त्रियोंकी रक्षा न करना और मदिरा पीनेवालेकी स्त्री का सेवन ॥ ५१ ॥ और ऋणोंको न देना व मिथ्यावृत्तिसे जीविका करना और

निन्दितजनों के धनका लेना और पतिव्रता व कन्याका वचन से दूषण देना ॥ ५२ ॥ व विष मारनेवाले यन्त्रों (कलों) का प्रयोग व नाशका कर्म करना व उच्चाटन प्रयोग और मोहन व वैरकर्म ॥ ५३ ॥ और जिह्वाके कामको भोगनेके लिये जिस का निजकर्मों में प्रारम्भ होवै व मूल्यसे जो पढ़ाता है व मूल्य देकर जो पढताहै ॥ ५४ ॥ और संस्कारहीनता, व्रतों का छोडना, सब भोजनों का सेवन और असत् शास्त्रों के सम्मुख जाना व सूखी तर्कों याने सन्देहों का अवलम्बन करना ॥ ५५ ॥ व देवता, अग्नि, गुरु व साधुवों की निन्दा तथा गऊ और ब्राह्मण, राजाओं व मण्डलेश्वरों की भी सामने या पीछे निन्दा करना ॥ ५६ ॥ और पितरों व

जीवनम् ॥ निन्दितानांधनादानं साध्वीकन्योक्तिदूषणम् ॥ ५२ ॥ विषमारणयन्त्राणां प्रयोगोन्मूलकर्मणी ॥ उच्चाटनाभिचारश्च रागविद्वेषणक्रिया ॥ ५३ ॥ जिह्वाकामोपभोगार्थं यस्यारम्भःस्वकर्म्मसु ॥ मूल्येनाध्यापयेद्यस्तु मूल्येनाधीयतेचयः ॥ ५४ ॥ व्रात्यताव्रतसन्त्यागः सर्वाहारनिषेवणम् ॥ असच्छास्त्राभिगमनं शुष्कतर्कावलम्बनम् ॥ ५५ ॥ देवाग्निगुरुसाधूनांनिन्दागोब्राह्मणस्यच ॥ प्रत्यक्षंचपरोक्षंवा राज्ञांमण्डलिनामपि ॥ ५६ ॥ उत्सन्नपितृदेवेज्याः स्वकर्मत्यागिनश्चये ॥ दुःशीलानास्तिकाःपापास्सदाचासत्यवादिनः ॥ ५७ ॥ पर्वकालेदिवावाप्सु वियोनौपशुयोनिषु ॥ रजस्वलायायोनौवा मैथुनंयस्समाचरेत् ॥ ५८ ॥ स्त्रीपुत्रमित्रसुहृदामाशाच्छेदकराश्चये ॥ जनस्याप्रियवक्तारः क्रूराःसमयभेदिनः ॥ ५९ ॥ भेत्तातडागकूपानां विक्रेतारोरसस्यच॥एकपङ्क्तिस्थितानाञ्चपङ्क्तिभेदंकरोतियः ॥ ६० ॥ इत्येतैश्चनराःपापैरुपपातकिनःस्मृताः ॥ युक्तास्तद्वनकैःपापैः पापिनस्तान्निबोधमे ॥ ६१ ॥ येगोब्राह्म

देवताओं की यज्ञोंको जो छोडेहुये हैं और जो अपने कर्मोंके त्याग करनेवाले हैं और दुःशील, नास्तिक, पापी व सदैव झूठ कहनेवाले ॥ ५७ ॥ और पर्व (ग्रहण या अमावस्या इत्यादिक) समय में और दिनमें व जलमें और अपना से भिन्न जातिमें तथा पशुयोनियों व रजस्वला की योनिमें जो मैथुन करता है ॥ ५८ ॥ और स्त्री, पुत्र, मित्र, स्नेहीजनों की आशाको जो नाश करते हैं जो मनुष्यको अप्रियवचन कहनेवाले और क्रूर व प्रतिज्ञाका नाश करनेवाले ॥ ५९ ॥ व तडाग और कूपोंको तोड़नेवाले और रसके बेंचनेवाले व एक पंक्तिमें बैठेहुये जनोंका जो पंक्तिभेद करता है ॥ ६० ॥ इन पातकों से मनुष्य उपपातकी कहेगये हैं उनसे न्यून

पापोंसे जो संयुक्तहैं उन पापियोंको मुझसे सुनिये ॥ ६१ ॥ कि गऊ, ब्राह्मण, कन्या और स्वामी, मित्र व तपस्वियोंके बीचमें जो कार्योंके निमित्त जातेहैं वे मनुष्य पापी कहेगये हैं ॥ ६२ ॥ जो पराई लक्ष्मीसे जलते हैं और जो हीन स्त्रीको सेवते हैं और जो फलके लिये दान व यज्ञादिक कर्मोंको करते हैं ॥ ६३ ॥ गोष्ठ (गोशाला) व जल और गांवके बीच चौराहों में व वृक्षकी छाया व पहाड़ों तथा बगीचा व देवमन्दिरों में जो विष्ठादिक त्यागते हैं ॥ ६४ ॥ जो नित्यही गान बजाने में तत्पर हैं व मत्तहोकर जो किलकिला शब्द में तत्पर हैं और कपटसे वेष कर्म व आचारवाले व कपट के व्यवहारवाले ॥ ६५ ॥ व कपटसे आज्ञा करनेवाले तथा कपट से

णकन्यानां स्वामिमित्रतपस्विनाम् ॥ अन्तरं यान्ति कार्येषु ते स्मृताः पापिनो नराः ॥ ६२ ॥ परश्रियाभितप्यन्ते हीनां सेवन्ति ये स्त्रियम् ॥ फलत्यर्थं ये च कुर्वन्ति दानयज्ञादिकाः क्रियाः ॥ ६३ ॥ गोष्ठाग्निजलरथ्यासु तरुच्छायानगेषु च ॥ त्यजन्ति ये पुरीषाद्यमारामायतनेषु च ॥ ६४ ॥ गीतवाद्यरता नित्यं मत्ताः किलकिलापराः ॥ कूटवेषक्रियाचाराः कूटसंव्यवहारिणः ॥ ६५ ॥ कूटशासनकर्त्तारः कूटयुद्धकराश्च ये ॥ निर्दयोतीव भृत्येषु पशूनां दमनश्च यः ॥ मिथ्याप्रवदते वाक्यमाकर्णयति यः शनैः ॥ ६६ ॥ यो भार्यापुत्रमित्राणि बालवृद्धकृशातुरान् ॥ भृत्यानतिथिबन्धूंश्च त्यक्त्वाश्नाति बुभुक्षितान् ॥ ६७ ॥ यः स्वयं मिष्टमश्नाति विप्रायान्यत्प्रयच्छति ॥ वृथापाकः स विज्ञेयो ब्रह्मवादिविगर्हितः ॥ ६८ ॥ नियमान्स्वयमादाय ये त्यजन्त्यजितेन्द्रियाः ॥ ये ताडयन्ति गां नित्यं त्रासयन्ति मुहुर्मुहुः ॥ ६९ ॥ दुर्बलान्नैव पुष्णन्ति पुष्ट्यर्थं द्विषन्ति च ॥ पीडयन्त्यतिभारेण सक्षतान्वाहयन्ति च ॥ ७० ॥ तासामदत्त्वा चाश्नन्ति चिकित्सन्ति न नरो

जो युद्ध करनेवाले हैं और सेवकों के ऊपर जो बड़ा निर्दयी है व जो पशुओं को दमन (शान्त) करनेवाला है और जो झूठ कहता है व जो धीरेसे सुनता है ॥ ६६ ॥ और जो स्त्री, पुत्र, मित्र, बालक, वृद्ध, दुबले, रोगी, सेवक, पाहुन, भाई इन सबों को क्षुधित छोड़कर भोजन करताहै ॥ ६७ ॥ और जो आप मीठा भोजन खाताहै व ब्राह्मण के लिये अन्य देता है वह ब्रह्मवादियों से निन्दित वृथापाक जानने योग्यहै ॥ ६८ ॥ आपही नियमों को लेकर इन्द्रियों को न जीतेहुये जो लोग छोड़देते हैं और जो नित्य गऊको पीटते हैं व बार बार दुःख देतेहैं ॥ ६९ ॥ जो दुबलोंको पुष्ट नहीं करते हैं व पुष्ट करनेके लिये जो वैर करते हैं व घावसमेत पशुओंको बड़े

बोझसे जो पीड़ित करते हैं व उनसे बोझ लेचलवाते हैं ॥ ७० ॥ और उनको न देकर आप भोजन करते हैं व जो रोगियोंकी ओषधि नहीं करते हैं व छगड़ी तथा भेंडियोंसे जीविका करनेवाला और भैंसियों से जीविकावाला व शूद्राका पति ॥ ७१ ॥ और हीनजातिसे अपनी जीविकावाला, वैद्य व जो पाखण्डी है और जो शास्त्रका उल्लघनकर अपनी इच्छा से कर लेता है ॥ ७२ ॥ व सदैव दण्डकी रुचिवाला और जिसको दण्डकी रुचि न हो तथा जिस राजाकी राज्यमे घूसलेनेवाले अधिकारियों से और चोरोंसे प्रजा पीड़ित होतीहै वह नरक मे पचता है व जो बेचोर को चोरकी नाई देखता है और चोरको बेचोर की नाई देखता है ॥ ७३ । ७४ ॥

गिणः ॥ अजाविकोमाहिषिकस्सामुद्रीवृषलीपतिः ॥ ७१ ॥ हीनवर्णात्मवृत्तिश्च वैद्योधर्मध्वजीचयः ॥ यश्चशास्त्रमतिक्रम्य स्वेच्छयाचाहरेत्करम् ॥ ७२ ॥ सदादण्डरुचिर्यश्चयोवादण्डरुचिर्नहि ॥ उत्कोचकैरधिकृतैस्तस्करैश्चप्रपीड्यते ॥ ७३ ॥ यस्यराज्ञःप्रजाराष्ट्रे पच्यतेनरकेषुसः ॥ अचौरंचौरवद्यश्च चौरंवाचौररूपिणम् ॥७४॥ आलस्योपहतोराजा व्यसनीनरकंव्रजेत् ॥ एवमादीनिचान्यानि पापान्याहुःपुराविदः ॥ ७५ ॥ यद्वातद्वापरद्रव्यमपिसर्षपमात्रकम् ॥ अपहृत्यनरःपापो नारकीनात्रसंशयः ॥ ७६ ॥ एवमाद्यैर्नरःपापैरुत्क्रान्तेस्समनन्तरम् ॥ शरीरंपातनार्थाय पूर्वाकारमवाप्नुयात् ॥ ७७ ॥ तस्मात्त्रिविधमप्येतन्नारकीयंविवर्ज्जयेत् ॥ सदाशिवंचशरणं व्रजेत्सश्रद्धयायुतः ॥ ७८ ॥ नमस्कारःस्तुतिःपूजा नामसङ्कीर्त्तनंतथा ॥ सम्पर्कात्कौतुकाल्लोभान्नतस्यविफलंभवेत् ॥ ७९ ॥ करन्धमउवाच ॥ संक्षे

और आलस्य से नाशित व व्यसनी राजा नरकको जाताहै इत्यादिक पापोंको पुरातन समय के जाननेवालों ने कहाहै ॥ ७५ ॥ अथवा सरसोंभरभी पराई द्रव्यको हरकर मनुष्य पातकी होताहै इसमें सन्देह नहीं है ॥ ७६ ॥ इत्यादिक पापों से मनुष्य प्राण निकलने के उपरान्त नरक के दुःखों के लिये पहलेवाले आकार के समान शरीर को प्राप्तहोता है ॥ ७७ ॥ इस लिये नरकवाले इस तीनों प्रकारके कर्मको वर्जित करै और श्रद्धासंयुत वह मनुष्य सदाशिवजीकी शरणमें जावै ॥ ७८ ॥ और नमस्कार स्तुति, पूजन व नामकीर्तन करै क्योंकि मेल, कौतुक (खेल) व लोभसे उसका वह पाप निष्फल न होगा ॥ ७९ ॥ करंधम बोले कि तुम संक्षेप से

शिवपूजाकी विधिको कहने के योग्यहो कि जिसके करने से मनुष्य शिवपूजन के फलको प्राप्तहोता है ॥ ८० ॥ महाकाल बोले कि प्रातःकाल, मध्याह्न व सायङ्काल
में सदैव शिवजी को भजै क्योंकि उनके दर्शन व स्पर्श से मनुष्य प्रकटही कृतार्थ होजाता है ॥ ८१ ॥ पहले स्नान करै अथवा विपत्ति से संयुत मनुष्य भस्मस्नान
व कण्ठ से स्नानकरै अथवा मन्त्रही से स्नान करै ॥ ८२ ॥ तदनन्तर भेंड़की ऊन से बनाहुआ या श्वेतवसन पहनै और गेरू इत्यादि धातुओं से रंगा व बहुत
मलिन व सिलाहुआ वसन न पहनै ॥ ८३ ॥ और कांधासूती दुपट्टा या अँगौछा धारण करै क्योंकि उसके बिना पूजन निष्फल होजाता है और मस्तक व कन्धों

**पाच्छिवपूजाया विधानंवक्तुमर्हसि ॥ कृतेनयेनमनुजःशिवपूजाफलंलभेत् ॥ ८० ॥ महाकालउवाच ॥ प्रातर्मध्याह्न
सायाह्ने शङ्करंसर्वदाभजेत् ॥ दर्शनात्स्पर्शनान्मर्त्यः कृतकृत्योभवेत्स्फुटम् ॥ ८१ ॥ आदौस्नानंप्रकुर्वीत भस्मस्ना
नमथापिवा ॥ आपद्गतःकण्ठस्नानं मन्त्रस्नानमथापिवा ॥ ८२ ॥ आविकम्पारिदध्याच्च ततोवासःसितंचवा ॥ धातुर
क्तमथोत्यर्थमलिनंसन्धितंनच ॥ ८३ ॥ उत्तरीयञ्चसन्दध्याद्विनातन्निष्फलार्चनम् ॥ भस्मत्रिपुण्ड्धारीच ललाटे
हृदिचांसयोः ॥ ८४ ॥ पूजयेद्योमहादेवं प्रीतःपश्यतितंमुहुः ॥ सर्वदोषान्विनिर्मुच्य शिवायतनमाविशेत् ॥ ८५ ॥ प्रवि
श्यचप्रणम्येशं ततोगर्भगृहंविशेत ॥ पाणीप्रक्षाल्यतच्चित्तो निर्माल्यमवरोपयेत् ॥ ८६ ॥ योरुद्रायतनेभक्त्या कुरु
तेमार्ज्जनक्रियाम् ॥ तस्यात्मामार्ज्यतेतत्त्वं स्थाणुनैतत्परस्परम् ॥ ८७ ॥ रुद्रभक्तेनसन्तिष्ठेन्मालिन्यंमार्जितंक्वचि
त् ॥ भक्तद्वेषेनतिष्ठेन्नो मालिन्यंमार्ज्जितंक्वचित् ॥ ८८ ॥ गडुकान्पूरयेत्पश्चान्निर्मलेनजलेनवै ॥ गडुकास्तुसमास्स**

में भस्म के त्रिपुण्ड्र को धारनेवाला ॥ ८४ ॥ जो पुरुष श्रीसदाशिवजी को पूजताहै और प्रसन्न होकर बार २ उनको देखता है वह सब दोषों को छोडकर शिवमन्दिर
में पैठे ॥ ८५ ॥ और पैठकर शिवजी को प्रणामकर उसके उपरान्त निवासमन्दिर में पैठे और हाथोंको धोकर उन्हीमें चित्त लगायेहुये वह पुरुष निर्माल्य अलग
करै ॥ ८६ ॥ जो पुरुष भक्तिसे शिवजी के मन्दिरमें झार बहोर करता है उसकी आत्मा शिवजी से यथार्थ शुद्ध कीजाती है यह परस्पर कर्म होताहै ॥ ८७ ॥ शिवजी के
भक्तसे शुद्ध कीहुई मलिनता चाहै कहीं स्थित होवै परन्तु भक्तके द्वेष सदाशिव जीसे शुद्ध कीहुई मलिनता कहीं नही रहती है ॥ ८८ ॥ पश्चात् निर्मल जलसे गडुओं

को पूर्णकरै और गडुवा सब बराबर होवैं और देखने में सुन्दर होवैं ॥ ८९ ॥ और फूटे न होवैं तथा सुन्दर रूपवाले होवैं व सब जलसे पूर्णहोवैं और वसन से पवित्र जल यानै छानेहुये जलोंसे पूर्ण व चन्दन और धूपसे अधिवासित (सुगन्धित) होवैं ॥ ९० ॥ और षडक्षर मन्त्रसे धोये व पूर्ण किये और लायेगये होवैं इस प्रकार एकसौ आठ गडुवों को करै अथवा अट्ठाईस करै ॥ ९१ ॥ अथवा अठारह या चार ही होवैं उससे न्यून न करावै और दूध, दही, घृत, शहद, व ऊखका रस ॥९२॥ इस प्रकार वह सब वस्तु शिवजी से बाईंओर धरै तदनन्तर बाहर निकलकर द्वारपालोंको पूजै ॥ ९३ ॥ इसके उपरान्त सबोंके पढ़नेवाले मन्त्र कहेजाते हैं ॥ ९४ ॥

वै सर्वेचक्षुभदर्शनाः ॥ ८९ ॥ निर्व्रणास्सौम्यरूपाश्च सर्वेचोदकपूरिताः ॥ वस्त्रपूतजलैःपूर्णा गन्धधूपाधिवासिताः ॥ ९० ॥ क्षालिताःपूरितानीताः षडक्षरजपेनच ॥ गडुकाष्टशतंकुर्यादथवाचाष्टविंशतिम् ॥ ९१ ॥ अष्टादशापिचतुरस्त तोन्यूनन्नकारयेत् ॥ पयोदधिघृतंचैव क्षौद्रमिक्षुरसन्तथा ॥ ९२ ॥ एवंसर्वंचतद्द्रव्यंवामतस्संन्यसेद्भवात् ॥ ततोबहि र्विनिष्क्रम्य पूजयेत्प्रतिहारकान् ॥ ९३ ॥ सर्वेषांवाचकामन्त्राःकथ्यन्तेतःपरंक्रमात् ॥ ९४ ॥ ॐगंगणपतयेनमः ॐक्षेंक्षेत्र पालायनमः ॐगुंगुरुभ्योनमः इत्याकाशे ॥ ॐकुंकुलदेवतायैनमः ॐनंनन्दिनेनमः ॐमंमहाकालायनमः ॥ ९५ ॥ ततःप्रविश्यलिङ्गाच्च किञ्चिद्दक्षिणतःशुचिः ॥ उदङ्मुखःक्षणन्ध्यायेत्समकायासनस्थितः ॥ ९६ ॥ धर्मादिभिः परिवृतं मध्येपद्मार्कमण्डलम् ॥ सोममण्डलमध्यस्थंध्यायेद्वैवह्निमण्डलम् ॥ ९७ ॥ तन्मध्येविश्वरूपन्तं वामा ज्येष्ठादिशक्तिकम् ॥ पञ्चवक्त्रंदशभुजं त्रिनेत्रंचन्द्रभूषितम् ॥ ९८ ॥ वामाङ्कगिरिजन्देवं ध्यायेत्सिद्धैःस्तुतंमुहुः ॥ त

ॐगं गणपतयेनमः ॐक्षें क्षेत्रपालायनमः ॐगुं गुरुभ्योनमः इन मन्त्रोंसे आकाश में पूजन करै और कुं कुलदेवतायैनमः ॐनं नन्दिनेनमः ॐमं महाकालाय नमः ॥९५॥ तदनन्तर भीतर पैठकर लिंगके दक्षिणओर बैठकर पवित्र हो उत्तर मुख होकर समशरीर से आसनपै बैठकर क्षणभर ध्यानकरै ॥ ९६ ॥ कि धर्मादिकों से घिराहुआ बीचमें कमल के नाई सूर्यमण्डल है और चन्द्रमण्डल के बीचमें स्थित अग्निमण्डल का ध्यानकरै ॥ ९७ ॥ उसके बीचमें वामा व ज्येष्ठा इत्यादिक शक्तियोंसे संयुत उन विश्वरूप पांच मुखवाले दश भुजाओंवारे, तीन नयनोंवाले और चन्द्रमा से भूषित सदाशिव को ॥ ९८ ॥ कि जिनके बाईंओर गोदीमें पार्वती

जोहैं व सिद्धोंसे बार बार स्तुति कियेजाते हैं उन शिवदेव का ध्यानकरै तदनन्तर हे राजन् ! सम्भव होनेपर पहले पादार्घ देवै ॥ ९९ ॥ जल, अक्षत, कुश, चन्दन व घी समेत पुष्प, दूध दही और फिर शहद यह नवाङ्ग अर्घ कहागयाहै ॥ १०० ॥ तदनन्तर श्रद्धासे भीगे चित्तवाला पुरुष लिंगस्नान का आरम्भ करै पहले गडुवा को लेकर मलस्नान करावै ॥ १ ॥ पहले आधेजल से नहवावै और मलको रगड़ै तदनन्तर सब से स्नान करावै पश्चात् पूजन करै उसके उपरान्त धूप देवै ॥ २ ॥ तदनन्तर भक्तिसे प्रणामकर मूलमन्त्र से स्नान करावै ॐवं विश्वमूर्तये शिवायनमः यह बारह अक्षरवाला मूलमन्त्रहै ॥ ३ ॥ जल व धूपके पूजन से अलग फिर मूल

त:पूर्वंप्रदद्याच्च पादार्घंशम्भवेन्नृप ॥ ९९ ॥ पानीयमक्षतादर्भागन्धपुष्पंससर्पिषा ॥ क्षीरंदधिमधुपुनर्नवाङ्गोर्घ्यःप्रकीर्तितः ॥ १०० ॥ ततःश्रद्धार्द्रचित्तश्च स्नानंलिङ्गस्यचारभेत ॥ गृहीत्वागडुकंपूर्वं मलस्नानंसमाचरेत ॥ १ ॥ अर्द्धेनस्नापयेत्पूर्वं कुर्याच्चमलघर्षणम् ॥ सर्वेणस्नापयेत्पश्चात् पूजयेद्धूपयेत्ततः ॥ २ ॥ प्रणम्यचततोभक्त्या स्नापयेन्मूलमन्त्रतः ॥ ॐवंविश्वमूर्त्तयेशिवायनमः इतिद्वादशाक्षरोमूलमन्त्रः ॥ ३ ॥ वारिक्षीरदधिक्षौद्रघृतेनेक्षुरसेनच ॥ स्नापयेन्मूलमन्त्रेण जलधूपार्चनात्पृथक् ॥ ४ ॥ गडुकैःस्नापयेत्सर्वैस्ततोगन्धैर्विरूक्षयेत् ॥ विरूक्षितंततःस्नाप्य श्रीखण्डेनविलेपयेत् ॥ ५ ॥ पूजयेद्विविधैःपुष्पैर्विधिनायेनतच्छृणु ॥ ॐऐश्वर्यायनमः आग्नेयपादे ॥ ॐधर्मायनमः नैर्ऋत्यके ॥ ६ ॥ ॐशान्तायनमः वायव्ये ॥ ॐवैराग्यायनमः ईशानगादे ॥ ॐऐश्वर्यायनमः पूर्वपादे ॥ ७ ॥ ॐधर्मायनमः दक्षिणे ॥ ॐअज्ञानायनमःपश्चिमे ॥ ॐअवैराग्यायनमःउत्तरे ॥ ८ ॥ ॐअनन्तायनमः ॐपद्मायनमः ॥ ॐअर्क

मन्त्रके द्वारा जल, दूध, दही, शहद, घी व ऊखके रससे स्नान करावै ॥ ४ ॥ व सब गडुवों से स्नान करावै तदनन्तर सुगन्धित वस्तुओं से उबटन लगावै उसके उपरान्त उबटन लगायेहुये लिंगको नहवाकर चन्दन से लेपकरै ॥ ५ ॥ और जिस विधिसे अनेकभांति के फूलों करके पूजन करै उसको सुनिये कि ॐऐश्वर्यायनमः इस मन्त्रसे आग्नेयस्थान में पूजै और धर्मायनमः इस मन्त्रसे नैर्ऋत्यदिशा में पूजनकरै ॥ ६ ॥ ॐशान्तायनमः इस मन्त्रसे वायव्यमें व ॐवैराग्यायनमः इस मन्त्रमे ईशान स्थान में पूजनकरै और ॐऐश्वर्यायनमः इस मन्त्रसे पूर्वस्थान में पूजन करै ॥ ७ ॥ ॐधर्मायनमः इस मन्त्रसे दक्षिण में और ॐअज्ञानायनमः इस मंत्र

से पश्चिममें पूजन करै ॐ अवैराग्यायनमः इस मन्त्रसे उत्तर में पूजनकरै ॥ ८ ॥ ॐ अनन्तायनमः ॐ पद्मायनमः ॐ अर्कमण्डलायनमः ॐ सोममण्डलायनमः ॥९॥ ॐ वह्निमण्डलायनमः ॐ वामाज्येष्ठादिपञ्चमन्त्रशक्तिभ्योनमः ॐ परमप्रकृत्यैदेव्यै नमः इन मन्त्रोंसे चारों दिशाओं में पूजनकरै ॥ १० ॥ ॐ ईशान, तत्पुरुष, अघोर वामदेव व सद्योजात इन मन्त्ररूप पञ्चमुख के लिये और रुद्र, साध्य, वसु, आदित्य व विश्वेदेवादि देवरूप के लिये नमस्कार है और अण्डज, स्वेदज, उद्भिज व जरायुज चार प्रकारके सृष्टिरूप और स्थावर जंगम मूर्त्तिवाले परमेश्वर के लिये नमस्कार है ॥ ११ ॥ ॐ हूं विश्वमूर्त्तये शिवायनमः ॐ त्रिशूलधनुःखड्गकपालकु-

मण्डलायनमः॥ॐसोममण्डलायनमः॥९॥ॐवह्निमण्डलायनमः॥ ॐवामाज्येष्ठादिपञ्चमन्त्रशक्तिभ्योनमः॥ ॐप रमप्रकृत्यैदेव्यैनमश्चतुर्दिक्षु ॥ १० ॥ ॐईशानतत्पुरुषअघोरवामदेवसद्योजातपञ्चवक्त्राय रुद्रसाध्यवस्वादित्यावि श्वेदेवादिदेवरूपाय॥ अण्डजस्वेदजोद्भिजजरायुजरूपायस्थावरजङ्गममूर्त्तये परमेश्वरायनमः ॥ ११ ॥ ॐहूंविश्वमू र्त्तयेशिवायनमः ॥ त्रिशूलधनुःखड्गकपालकुठारेभ्यः नमइति ॥ १२ ॥ ततोजलाधारमुखचण्डीश्वरायनमः ॥ एवं सम्पूज्यविधिवत्ततोर्घंसन्निवेशयेत् ॥ १३ ॥ पानीयमक्षताःपुष्पमेतैर्युक्तंफलोत्तमम् ॥ गृहाणार्घंमहादेव पूजासम्पूर्त्ति हेतवे ॥ १४ ॥ अर्घादनन्तरंशक्तः पूजयेद्वसनपूजया ॥ धूपंदीपञ्चनैवेद्यं क्रमात्पश्चान्निवेदयेत् ॥ १५ ॥ घण्टाञ्चवाद येत्तत्र ततोनीराजनंचरेत् ॥ भ्रामयेद्देवदेवस्य शङ्खवादित्रनिःस्वनैः ॥ १६ ॥ नीराजनञ्चयःपश्येद्देवदेवस्यशूलिनः ॥

ठारेभ्योनमः इन मन्त्रोंसे अस्त्रोंका पूजनकरै ॥ १२ ॥ तदनन्तर जलाधारमुखचण्डीश्वरायनमः इस मन्त्रसे पूजन करै इसप्रकार विधिपूर्वक भलीभांति पूजकर तदनन्तर अर्घधरै ॥ १३ ॥ जल, अक्षत व फूल इनसे संयुक्त उत्तम फलवाले अर्घको हे महादेवजी ! पूजन के पूर्ण होनेके लिये ग्रहण कीजिये ॥ १४ ॥ अर्घ के उपरान्त समर्थ पुरुष वसन के पूजन से पूजै पश्चात् क्रमसे धूप, दीप व नैवेद्य निवेदन करै ॥ १५ ॥ और वहां घण्टा बजावै उसके उपरान्त नीराजन करै व उस नीराजनको शङ्ख इत्यादिक बाजाओं के शब्दोंसे देवदेव शिवजी के ऊपर घुमावै ॥ १६ ॥ जो पुरुष त्रिशूलधारी देवदेव शिवजी के नीराजन को देखता है वह समस्त

पातकोंसे छूटजाता है फिर जो करताहै उसको क्या कहनाहै ॥ १७ ॥ नाचना, गाना व बजाना इन तीनोंको जो करता है उसके ऊपर शिवजी प्रसन्न होतेहैं क्योंकि गाने बजाने में बहुत फलहै ॥ १८ ॥ उसके उपरान्त स्तोत्रोंसे स्तुतिकर दण्डाकी नाईं भूमिमें गिरकर प्रणामकरै तदनन्तर देवेश शिवजी से क्षमापन करावै कि सुकृत याने जो अच्छीतरह से कियागया हो व दुष्कृतहो उसको क्षमा कीजिये ॥ १९ ॥ इस प्रकार जो शिवजीको व विशेषकर इस लिंग में पूजता है वह पिता, बाबा व परबाबा को ॥ २० ॥ सब पातक से उधारकर बहुत दिनोंतक शिवलोक में बसताहै इस प्रकार शैवहोकर उत्तम आचारकी स्थितिमें नियमवाला जो पुरुष ॥ २१ ॥

समुच्येत्पातकैस्सर्वैः किम्पुनर्यःकरिष्यति ॥ १७ ॥ नृत्यंगीतञ्चवाद्यञ्च त्रितयंचापियश्चरेत् ॥ तस्यतुष्येदनन्तांहि गीतवाद्येफलंयतः ॥ १८ ॥ स्तोत्रैस्स्तुतश्चसंस्तूय दण्डवत्प्रणमेद्भुवि ॥ क्षमापयेच्चदेवेशं सुकृतंदुष्कृतंक्षम ॥ १९ ॥ यएवंयजतेरुद्रमस्मिँल्लिङ्गेविशेषतः ॥ पितरंपितामहंचैव तथैवप्रपितामहम् ॥ २० ॥ सर्वपापात्समुत्तीर्य रुद्रलोकेवसेच्चिरम् ॥ एवंमाहेश्वरोभूत्वासदाचारस्थितिव्रतः ॥ २१ ॥ पशुपाशविमोक्षार्थं पूजयेत्तन्मनायदि ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तःशिवलोकंसगच्छति ॥ यएवंपूजयेद्रुद्रं तेनैवतर्पितंजगत् ॥ २२ ॥ किन्त्वेतत्सफलंराजन्नाचारंयोनलङ्घयेत् ॥ आचारात्फलतेधर्मोह्याचारात्स्वर्गमश्नुते ॥ २३ ॥ आचाराल्लभतेचायुराचारोहन्त्यलक्षणम् ॥ यज्ञदानतपांसीह पुरुषस्यनभूतये ॥ २४ ॥ भवन्तियःसदाचारं समुल्लङ्घ्यप्रवर्त्तते ॥ तस्यकञ्चित्समुद्देशं वक्ष्येतंशृणुपार्थिव ॥ २५ ॥ त्रिवर्गसा

यदि पशुकी नाईं फँसरी से छूटने के लिये उनमें मन लगाकर पूजन करै तो सब पापोंसे छूटकर वह शिवलोक को जाता है जो इस प्रकार शिवजी को पूजताहै उसीने संसारभर को तृप्तकर दिया ॥ २२ ॥ परन्तु हे राजन्! यह उसका सफल होताहै कि जो आचारको नहीं नांघताहै क्योंकि आचारसे धर्म फलताहै और आचारसे मनुष्य स्वर्गको भोगताहै ॥ २३ ॥ और आचारसे आयुर्बल को प्राप्तहोता है व आचार अलक्षणको नाशकरदेताहै इस लोकमें उस पुरुषकी यज्ञ, दान व तपस्या ऐश्वर्यके लिये नहीं होतीहैं ॥२४॥ जो कि उत्तम आचारको छोड़कर वर्तमानहोताहै हे राजन्! मैं उसके कुछ उद्देशको कहताहूं उसको सुनिये ॥ २५॥ कि त्रिवर्ग याने

धर्म, अर्थ व कामके साधनमें गृहस्थको यत्न करना चाहिये क्योंकि उसकी भलीभांति सिद्धि होने पर इस लोक व परलोकमें गृहस्थ की सिद्धिहोती है॥२६॥ ब्राह्मयमुहूर्त में जागै और धर्म व अर्थका चिन्तन करै इसके अनन्तर उठकर दन्तधावनपूर्वक आचमनकर ॥ २७ ॥ शान्तचित्तवाला विद्वान् पवित्र होकर सन्ध्योपासन करै पहली याने प्रातःकाल की सन्ध्या नक्षत्रों समेत व पिछली सन्ध्या सूर्य समेत ॥ २८ ॥ न्यायपूर्वक उपासन करै इसको विन विपत्तिमें न छोडै और झूंठ व असत निरर्थक वचन व कठोरवचन को वर्जित करै ॥ २९ ॥ व हे राजन् ! दुष्टकी सेवा, और असतवार्ता व असत् शास्त्रको वर्जित करै शीशा देखना, दतून व बालों में

धनेयत्नः कर्त्तव्योगृहमेधिना॥ तत्संसिद्धौगृहस्थस्य सिद्धिरत्रपरत्रच ॥२६॥ ब्राह्मेमुहूर्त्तेबुध्येत धर्म्मार्थौचापिचिन्तयेत् ॥ समुत्थायतथाचम्य दन्तधावनपूर्वकम् ॥ २७ ॥ सन्ध्यामुपासीतबुधः शान्तान्तःप्रयतःशुचिः॥ पूर्वांसन्ध्यांसनक्षत्रां पश्चिमांसदिवाकराम् ॥ २८ ॥ उपासीतयथान्यायंनैनांजह्यादनापदि ॥ वर्ज्जयेदनृतंचासत्प्रलापंपरुषंतथा ॥ २९ ॥ असत्सेवामसद्वादस्त्वसच्छास्त्रंचपार्थिव॥ आदर्शदर्शनंदन्तधावनंकेशसाधनम् ॥ ३० ॥ देवार्चनंचपूर्वाह्णे कार्याण्याहुर्महर्षयः॥ पालाशमासनंचैवपादुकेदन्तधावनम् ॥ ३१ ॥ वर्जयेदासनंचैव पदानाकर्पयेद्बुधः ॥ जलमग्निञ्चनयेत युगपच्चविचक्षणः ॥ ३२ ॥ पादौप्रसारयेन्नैव गुरुदेवाग्निसम्मुखे ॥ चतुष्पथंचैत्यतरुं देवागारंतथायतिम् ॥ ३३ ॥ विद्याधिकंगुरुंवृद्धं कुर्यादेतान्प्रदक्षिणान् ॥ ३४ ॥ आहारनीहारविहारयोगास्सुसंवृता धर्म्मविदातुकार्याः ॥ वाग्बुद्धिवीर्याणितपस्तथैवदानायुषीगुप्ततमेचकार्ये ॥ ३५ ॥ उभेमूत्रपुरीषेतु दिवाकुर्यादुदङ्मुखः ॥ दक्षिणाभिमुखो

कङ्घी करना ॥ ३० ॥ और देवपूजन इनको महर्षियों ने पूर्वाह्ण याने दुपहर के पहलेवाले कार्य कहाहै और छिउलाका आसन, खडाऊं और दतून ॥ ३१ ॥ वर्जित करै व विद्वान् आसन को पैरसे न खींचै और चतुर मनुष्य एकही साथ जल व अग्निको न लेजावै ॥ ३२ ॥ और गुरु, देवता व अग्निके सामने पांवों को न फैलावै व चौराहा, देवमन्दिर के समीप वृक्ष, देवमन्दिर व संन्यासी ॥३३॥ और विद्यामें अधिक व गुरु तथा वृद्ध इनकी प्रदक्षिणा करै ॥ ३४ ॥ और धर्म जाननेवाले पुरुष को भोजन, दस्तलाना व विहार के योग बहुतही छिपेहुये करने चाहिये और वाणी व बुद्धिके पराक्रम तथा तपस्या व दान और आयुर्बल अत्यन्त

ही गुप्त करना चाहिये ॥ ३५ ॥ और मल व मूत्र त्याग दोनों दिनमें उत्तरमुख होकर करना चाहिये और रात्रिमें दक्षिणमुख होकर करना चाहिये इस प्रकार आयुर्बल नहीं घटती है ॥ ३६ ॥ अग्नि के सामने, सूर्य के सम्मुख व गऊके सामने, ब्रह्मचारी के सम्मुख और चन्द्रमा व जलके सामने तथा सन्ध्यामें मल त्याग करने से बुद्धि नाश होती है ॥ ३७ ॥ भोजन, शयन, स्नान करनेपर व मल मूत्र त्यागने पर और गात्रके बीच चौराहा नांघनेपर इन पाचों कर्मोंमें सदैव आचमन करै ॥ ३८ ॥ नदीमें मल त्याग न करै और श्मशान व भस्ममें न करै तथा गोमय व जोते, बोयेहुये खेतमें और घाससे हरी भूमि में मल त्याग न करै ॥ ३९ ॥ और

रात्रौह्येवमायुर्नरिष्यते ॥ ३६ ॥ प्रत्यग्निंप्रतिसूर्यञ्च प्रतिगांप्रतिनम्प्रति ॥ प्रतिसोमोदकंसन्ध्यां प्रज्ञानश्यतिमेहतः ॥ ३७ ॥ भोजनेशयनेस्नाने उत्सर्गेमलमूत्रयोः ॥ रथ्याचङ्क्रमणेचैव पञ्चस्वाचमेत्सदा ॥ ३८ ॥ ननद्यांमेहनंकुर्यान्न श्मशानेनभस्मनि ॥ नगोमयेनचकृष्टे नैवोप्तेनैवशाद्वले ॥ ३९ ॥ उद्धृताभिस्तथाद्भिस्तु शौचंकुर्याद्विचक्षणः ॥ अन्तर्जलाद्देवकूलाद्वल्मीकान्मूषिकस्थलात् ॥ ४० ॥ अपविद्धापशौचाच्च वर्जयेत्पञ्चमृत्तिकाः ॥ गन्धलेपापहरणं शौचंकुर्यात्तथाबुधः ॥ ४१ ॥ नात्मानंताडयेन्नैव दद्याद्दुःखंस्त्र्ययएवच ॥ नोभाभ्यामपिपाणिभ्यां कण्डूयेदात्मनःशिरः ॥ ४२ ॥ रक्षेद्दारांस्त्यजेदीर्षा तांस्तुनिष्कारणांबुधः ॥ सूर्यार्घ्यंचविनाकाश्चित्क्रियांनैवाचरेत्तथा ॥ ४३ ॥ अद्रोहेणैवभूतानामल्पद्रोहेणवापुनः ॥ शिवचित्तोर्जयेद्वित्तं नचातिकृपणोभवेत ॥ ४४ ॥ नेर्ष्यःस्यान्नकृतघ्नःस्यान्नपरद्रोहकर्मधीः ॥

ऊपर खींचेहुये जलोंसे चतुर नर शौचकरै और जलके बीचसे व देवस्थान के किनारेसे और बँबौरि व मूसाके स्थानसे ॥ ४० ॥ व शौचसे फेंकीहुई इन पाचों मिट्टियोंको वर्जितकरै और विद्वान् चन्दनादिक गन्ध लेपके हरणपर्यन्त शौचकरै ॥ ४१ ॥ आत्माको ताडन न करै न दुःखोंकेलिये देवै और दोनों हाथोंसे अपने शिरको न खुजलावै ॥ ४२ ॥ विद्वान् स्त्रियोंकी रक्षाकरै व उनमें विनकारण ईर्षाको छोडदेवै वैसे ही सूर्यनारायण को अर्घ दिये विना कोई कर्म न करै ॥ ४३ ॥ प्राणियों के अवैरसे या अल्प वैरसे शिवचित्तवाला मनुष्य द्रव्यको इकट्ठाकरै और अत्यन्तकृपण न होवै ॥ ४४ ॥ ईर्षावान् न होवै न कृतघ्न होवै न पराये वैरकर्ममें बुद्धिको लगावै

और हाथ पांवसे चञ्चल न होवै न नेत्र चञ्चलहोवै न शठ होवै ॥ ४५ ॥ और वाणी व अङ्गसे चञ्चल न होवै और दुष्ट के गोचर न होवै याने सामने न जावै और शुष्कवाद अर्थात् वृथा वार्त्ता न करै न वृथा वैरकरै ॥ ४६ ॥ व उपायों से प्रयोजनों को सिद्धकरै और दण्ड उपाय तो अगतिक गतिहै याने जब और उपायों से कार्य न होवै तो दण्डकरै और टूटाआसन व टूटीशय्या व फूटा वर्तन त्याग करै ॥ ४७ ॥ और अग्नि व लिंगके बीचसे न जावै हे नृपोत्तम ! व दो अग्नियों व ब्राह्मणों व स्त्री पुरुषों के बीचमें होकर न जावै ॥ ४८ ॥ और चन्द्रमा व सूर्यकी प्रतिमा के बीचमें न निकले और गधा व बैलके बीचमें न जावै क्योंकि इनके बीच

नपाणिपादचपलो ननेत्रचपलोऽनृजुः ॥ ४५ ॥ नचवागङ्गचपलो नचाशिष्टस्यगोचरः ॥ नशुष्कवादंकुर्वीत शुष्कवैरन्तथैवच ॥ ४६ ॥ उपायैस्साधयेदर्थान् दण्डस्त्वगतिकागतिः ॥ भिन्नासनंभिन्नशय्यां वर्ज्जयेद्भिन्नभाजनम् ॥४७॥ अन्तरेणनगच्छेच्च द्वयोर्ज्वलनलिङ्गयोः ॥ नाग्न्योर्नविप्रयोश्चैव नदम्पत्योर्नृपोत्तम ॥ ४८ ॥ नसूर्यसोमयोश्चैव खरस्यवृषभस्यच ॥ एतेषामन्तरंगच्छन् यतःपापमवाप्नुयात ॥ ४९ ॥ नैकवस्त्रश्चभुञ्जीत नाग्नौहोममथाचरेत् ॥ नार्चयेद्द्विजान्नैव कुर्याद्देवार्चनंबुधः ॥ ५० ॥ खण्डनंपेषणंमार्ष्टि जलसंशोधनंतथा ॥ रन्धनंभोजनंस्वाप उत्थानंगमनंक्षुतम् ॥ ५१ ॥ कार्यारम्भंसमाप्तिंच वचःप्रोक्त्वातथाप्रियम् ॥ पिबञ्जिघ्रन्स्पृशञ्छृण्वन् त्रिवक्षुमैथुनंतथा ॥ ५२ ॥ शुचित्वंचजपेत्स्थाणुं यःकृत्वाविंशतिसदा ॥ माहेश्वरस्सहिज्ञेयः शेषोन्योनामधारकः ॥ ५३ ॥ सवैरुद्रमयो

में जाताहुआ पुरुष पापको प्राप्त होताहै ॥ ४९ ॥ व एकवस्त्र होकर भोजन न करै और न अग्निमें होमकरै और एक वस्त्रवाला होकर विद्वान् ब्राह्मणों को न पूजै न देवपूजनकरै ॥ ५० ॥ खण्डन (काटना), पेषण (पीसना), झाडबुहार, जलशोधन (जल छानना) व पाककर्म्म, भोजन, शयन, उठना, जाना, छींकना ॥५१॥ व कार्यारम्भ, कार्यसमाप्ति और अप्रियवचन कहकर व पीताहुआ, सूंघता हुआ, छूताहुआ, सुनताहुआ, कहताहुआ और मैथुन ॥ ५२ ॥ व पवित्रता इन बीस कर्मों को करके जो सदैव शिवजी को जपता है वह शैव जाननेयोग्य है और शेष नाम धारनेवाला है ॥ ५३ ॥ और निश्चयकर शिवमय होकर तदनन्तर अन्त में

शिवजी के समीप प्राप्त होता है और पराई स्त्रीसे सम्भाषण न करै और यदि वार्त्ता करै ॥ ५४ ॥ तो विद्वान् हे माता ! हे बहन ! हे पुत्रि ! हे आर्ये ! ऐसा कहै और जूंठ
होकर कुछ न कहै न सूर्यनारायण को देखै ॥ ५५ ॥ और न चन्द्रमा को देखै न नक्षत्रोंको न देवताको और न अपने शिरको देखै तथा बहन, कन्या व माता इनके साथ
एकान्तमें आसन न करै ॥ ५६ ॥ क्योंकि इन्द्रियों का समूह दुर्जय होताहै उससे पण्डितभी होकर मोहित होजाता है घरमें आयेहुये गुरुको देखकर आपही
यत्नसे उठकर ॥ ५७ ॥ उसको आसन देवै और चरणों का प्रणाम करै और विद्वान् उत्तर ओर शिर करकेन सोवै न पश्चिम शिरकरके सोवै ॥ ५८ ॥ किन्तु दक्षिण

भूतस्ततश्चान्तेशिवंव्रजेत् ॥ परास्त्रियंनाभिभाषेत्तथासम्भाषयेद्यदि ॥ ५४ ॥ मातःस्वसरथोपुत्रि आर्येतिचवदेद्बुधः ॥
उच्छिष्टोनालपेत्किञ्चिन्नचसूर्यंविलोकयेत् ॥ ५५ ॥ नेन्दुन्नतारकांश्चैव नदेवंनात्मनःशिरः ॥ स्वसादुहित्रामात्रावा
नैकान्तासनमाचरेत् ॥ ५६ ॥ दुर्जयोहीन्द्रियग्रामो मुह्यतेपण्डितोपिसन् ॥ गुरुमभ्यागतंगेहे स्वयमुत्थाययत्नतः ॥
५७ ॥ आसनंकल्पयेत्तस्य कुर्यात्पादाभिवन्दनम् ॥ नोदक्शिराःस्वपेज्जातु नचप्रत्यक्शिराबुधः ॥ ५८ ॥ शिरस्य
गस्तिमाधाय शयीताथपुरन्दरम् ॥ उदक्यादर्शनंस्पर्शं वर्ज्यंसम्भाषणंतथा ॥ ५९ ॥ नाप्सुमूत्रंपुरीषंवा मैथुनंवासमा
चरेत् ॥ कृत्वाविभवतोदेवमनुष्यर्षिसमर्पितम् ॥ ६० ॥ पितॄणाञ्चततःशेषं भोक्तुंमाहेश्वरोर्हति ॥ वाग्यतःशुचिराचा
न्तः प्राङ्मुखोदङ्मुखोपिवा ॥ ६१ ॥ अन्तर्जानुश्चतच्चित्तोभुञ्जीतान्नमकुत्सयन् ॥ नोपघातंविनादोषान्नतस्योदीरयेत्त
तः ॥ ६२ ॥ नग्नःस्नानन्नकुर्वीत नशयीतव्रजेतवा ॥ दुष्कृतन्नगुरोर्ब्रूयात्क्रुद्धंचैनंप्रसादयेत् ॥ ६३ ॥ परिवादन्नशृणुया

ओर शिर धरकर या पूर्व शिरकरके सोवै और रजस्वला का दर्शन, छूना व सम्भाषण वर्जित करनेयोग्य है ॥ ५९ ॥ और जलोंमें मूत्र, विष्ठा व मैथुन न करै व
ऐश्वर्य के अनुसार देवता, मनुष्य व ऋषियों को समर्पणकर ॥ ६० ॥ व पितरों को देकर तदनन्तर शेष अन्नको शैव भोजन करनेके लिये योग्य होता है वाणीको
रोंके, पवित्र व आचमन कियेहुये पुरुष पूर्वमुख या उत्तरमुख होकर ॥ ६१ ॥ और दोनों जङ्घोंके बीचमें हाथकर व उसीमें चित्त लगाकर व निन्दा न करताहुआ
मनुष्य अन्नको भोजन करै तदनन्तर नष्ट होने के विना उस अन्नके दोषों को न कहै ॥ ६२ ॥ व नंगे होकर स्नान न करै न सोवै और न गमनकरै और गुरुका

पातक न कहै व क्रोधितहुये इस गुरुको प्रसन्न करावै ॥ ६३ ॥और अन्य पुरुषोंकी भी कहीहुई निन्दाको न सुनै व सैकडों कार्योंको भी छोडकर धर्मोंको सुनै ॥६४॥ क्योंकि नित्य नित्य वह पवित्रता घर व शीशाकी नाईं होतीहै और शुक्लपक्षवाली चौदसि में सदैव रात्रिभोजी होवै ॥ ६५ ॥ और गूझा, गुझिया व मांस अपने लिये न बनवावै और सायंकाल व प्रातःकाल में अतिथि का पूजनकरके भोजन करना चाहिये ॥६६॥और दोनों सन्ध्याओंमें सोना,पढ़ना व भोजन विशेषकर वर्जित करै क्योंकि अज्ञान से सन्ध्याओं में भोजन करता हुआ मनुष्य मदिरा पीनेवाले के समान होताहै ॥ ६७ ॥ और नहायाहुआ पुरुष बालोंको न हिलावै व मार्गमें छींकने और

दन्येषामपिजल्पितम् ॥ सदाचाकर्णयेद्धर्मांस्त्यक्त्वाकृत्यशतान्यपि ॥ ६४ ॥ नित्यंनित्यंहिसाशुद्धिः गेहदर्पण योरिव ॥ शुक्लायाञ्चचतुर्दश्यां नक्तभोजीसदाभवेत् ॥ ६५ ॥ संयावंकृशरंमांसं नात्मार्थमुपसाधयेत ॥ सायंप्रातश्च भोक्तव्यं कृत्वाह्यतिथिपूजनम् ॥ ६६ ॥ स्वप्नाध्ययनभोज्यानि सन्ध्ययोश्चविवर्ज्जयेत् ॥ भुञ्जानस्सन्ध्ययोर्म्मो हात्सुरापसदृशोभवेत् ॥ ६७ ॥ स्नातोनधूनयेत्केशान् क्षुतेनिष्ठीवितेध्वनि ॥ आलभेद्दक्षिणंकर्णं सर्वभूतानिक्षामये त् ॥ ६८ ॥ नचापिनीलीवासःस्यान्नविपर्यस्तवस्त्रभृत ॥ वर्ज्यञ्चमलिनंवस्त्रं दशाभिश्चविवर्ज्जितम् ॥ ६९ ॥ प्रक्षाल्य मुखहस्तौच पादौचाप्युपविश्यतु ॥ अन्तर्ज्जानुस्त्रिराचामेद्द्विर्मुखंपरिमाज्र्जयेत् ॥ ७० ॥ तोयेनस्पर्शयेत्खानि स्वमू र्द्धानन्तथैवच ॥ आचम्यपुनराचम्य क्रियाःकुर्वीतसर्वशः ॥ ७१ ॥ क्षुतेनिष्ठीवितेचैव दन्तलग्नेतथैवच ॥ पतिताना ञ्चसम्भाषेत्कुर्यादाचमनक्रियाम् ॥ ७२ ॥ अध्येतव्यात्रयीनित्यं भूतयेचविपश्चिता ॥ धर्मतोधनमाहार्यं यष्टव्यंचा

थूकनेपर दाहिने कान को छूलेवै और समस्त प्राणियों का क्षमापन करै ॥ ६८ ॥ और नीलेवसन को भी न पहनै न उलटा वस्त्र धारणकरै और मलिन व किनारों से रहित वसन वर्जित करनेयोग्य है ॥ ६९ ॥ मुख व हाथ और चरणों को धोकर बैठकर व जङ्घोंके बीचमें हाथकर तीनवार आचमन करै व दोबार मुखधोवै ॥७०॥ और जलसे इन्द्रियों को स्पर्शकरावै और अपने मस्तक को छिडकै व आचमनकर फिर आचमन करके संपूर्णकर्मों को करै ॥ ७१ ॥ छींकने, थूकने और दांतमे अन्नादि लगेरहने पर और धर्मसे भ्रष्टजनोंके सम्भाषण करनेपर आचमनकरै ॥ ७२ ॥ और विद्वान् को ऐश्वर्यके लिये नित्यही वेदत्रयी पढ़ना चाहिये और धर्मसे धनको

वाना चाहिये व यत्नसे यज्ञ करना चाहिये ॥ ७३ ॥ और विद्वान् हीनजनोंके लिये भी त्वंकार कभी न युक्तकरै याने तुकारकर न बोले क्योंकि त्वंकार या वध गुरुत्रों
को दोनों बराबर हैं ॥ ७४ ॥ सत्य बोलना चाहिये व मित्रभाव से बर्ताव करना चाहिये व नित्य आश्वासनकारी (सम्भानेवाले) वचन बोलना चाहिये
और इसलोक में जो हितहोवै इसी योगमें गम्भीरजनों को आत्मा युक्त करना चाहिये ॥ ७५ ॥ तीर्थस्नान व उपाससमेत व्रतोंसे और पात्रमें दानदेने से और
होम,जप व यज्ञोंसे और शिवपूजन व देवपूजन के विशेषों से निर्मल इन्द्रियोंवाले जनोंको जीवात्मा शोधना चाहिये ॥ ७६ ॥ हे राजन् ! जिस कर्मको करतेहुये मनुष्य

पियत्नतः ॥ ७३ ॥ हीनेभ्योपिनयुञ्जीत त्वङ्कारं कर्हिचिद्बुधः ॥ त्वङ्कारोवावधोवेति गुरूणामुभयंसमम् ॥ ७४ ॥ सत्यं
वाच्यंमित्रभावेनभाव्यंवाक्यंवाच्यंनित्यमाश्वासकारि ॥ लोकेमुष्मिन्यद्धितंस्यात्तथास्मिन्नात्मायोगेयोजनीयोगभी
रैः ॥ ७५ ॥ तीर्थस्नानैस्सोपवासैर्व्रतैश्च पात्रेदानैर्होमजाप्यैश्चयज्ञैः ॥ भवार्चनैर्देवपूजाविशेषैरात्मानित्यंशोधनीयोमला
क्षैः ॥ ७६ ॥ यच्चापिकुर्वतोनात्मा जुगुप्सामेतिपार्थिव ॥ तत्कर्तव्यमसङ्गेन यन्नगोप्यंमहात्मने ॥ ७७ ॥ इतितेदिष्टउ
द्देशः कीर्तितःकिञ्चिदेवच ॥ शेषःस्मृतिपुराणेभ्यस्त्वयाश्रोतव्यएवच ॥ ७८ ॥ एवमाचरतोधर्मं महेशस्यगृहेस
तः ॥ धर्मार्थकामसम्प्राप्त्या परत्रेहचशोभनम् ॥ ७९ ॥ एवंनानाविधान्धर्मान् महाकालस्यफाल्गुन ॥ वदतोध्वनि
राकाशे सुमहानभ्यजायत ॥ ८० ॥ यावत्पश्यन्तियेतत्र समाजग्मुःशृणुष्वतान् ॥ ब्रह्माविष्णुःस्वयंरुद्रो देवीरुद्रग
णास्तथा ॥ ८१ ॥ इन्द्रादयस्तथादेवा वसिष्ठाद्यामुनीश्वराः ॥ तुम्बुरुप्रमुखाश्चापि गन्धर्वाप्सरसाङ्गणाः ॥ ८२ ॥ तान्म

का मन घृणाको न प्राप्तहोवै वह निस्संग होकर करना चाहिये और जो महात्मा के लिये गुप्त करने योग्य न हो उसको भी करना चाहिये ॥ ७७ ॥ यह उद्देश तुम
से बतलायागया व कुछ कहागया और शेष स्मृति, पुराणों से तुमको सुननाही चाहिये ॥ ७८ ॥ इस प्रकार धर्म करतेहुये घरमें वर्तमान शैव पुरुषको धर्म, अर्थ
व कामकी भलीभांति प्राप्तिसे परलोक व इस लोकमें शुभफल होताहै ॥ ७९ ॥ हे अर्जुनजी ! इस प्रकार महाकालजी के अनेकभांति के धर्मोंको कहतेहुये आकाश
में बड़ाभारी शब्दहुआ ॥ ८० ॥ और जबतक देखैं तबतक वहांपर जो आये उनको सुनिये कि ब्रह्मा, विष्णु व आपही शिवजी पार्वती देवी और शिवजीके गण ॥ ८१ ॥

वैसेही इन्द्रादिक देवता व वसिष्ठादिक मुनीश्वर और तुम्बरु इत्यादिक गन्धर्व व अप्सराओं के गण ॥ ८२ ॥ भक्तिकी आधिक्यता से अतिपूर्ण महाबुद्धिमान् महाकालजी ने उन महेश्वर आदिक सब देवताओं को बहुतभांति से पूजन किया ॥ ८३ ॥ तदनन्तर महीसागर के सङ्गममें उत्तम रत्नासन पै बैठेहुये महाकालका ब्रह्मादिक देवताओं ने अभिषेक किया ॥ ८४ ॥ तदनन्तर बडेभारी पदको पाकर श्रीमान् महाकालजीने देवेश शिवजी को प्रणामकर पार्वतीजीको मस्तक से प्रणाम किया ॥ ८५ ॥ तदनन्तर हे अर्जुन ! पार्वतीदेवीजी ने आनन्द से बड़ेबुद्धिमान् महाकालजी को अपनी गोदीमें लेलिया व पुत्रता में कल्पित किया ॥ ८६ ॥

हेशमुखान्सर्वान् महाकालोमहामतिः ॥ अर्चयामासबहुधाभक्त्युद्रेकातिपूरितः ॥ ८३ ॥ ततोब्रह्मादिभिर्देवैः शुभेर त्नासनेसच ॥ उपविष्टश्चाभिषिक्तो महीसागरसङ्गमे ॥ ८४ ॥ ततःश्रीमान्महाकालःप्राप्यचैवंपदंमहत् ॥ मूर्ध्नाप्रणम्य देवेशं गिरिजांचाभ्यवादयत् ॥ ८५ ॥ ततोदेव्यासमालिङ्ग्यनीतोत्सङ्गंस्वकम्मुदा ॥ पुत्रत्वेकल्पितःपार्थ महाकालोम हामतिः ॥ ८६ ॥ उक्तश्चयावद्ब्रह्माण्डमिदमास्तेशिवव्रत ॥ ८७ ॥ तावत्तिष्ठशिवस्थाने शिववच्छिवभक्तितः ॥ देवे नचवरोदत्तस्त्वल्लिङ्गंयोर्चयिष्यति ॥ ८८ ॥ जितेन्द्रियःशुचिर्भूत्वा अद्धामल्लोकमाप्स्यति ॥ दर्शनंस्तवनंपूजाप्रणाम श्चततोजपः ॥ ८९ ॥ दत्तंचान्यत्कृतंलिङ्गे ममातितृप्तिकारकम् ॥ इत्युक्तेविस्मितादेवाः साधुसाध्वितितेजगुः ॥ ९० ॥ ब्र ह्मविष्णुमुखाश्चैव महाकालंप्रतुष्टुवुः ॥ ततस्सुरैःस्तूयमानोवन्द्यमानश्चचारणैः ॥ ९१ ॥ नृत्यद्भिरप्सरोभिश्च गीतैर्ग

व कहा कि हे शिवव्रतवाले महाकालजी ! जबतक यह ब्रह्माण्ड है ॥ ८७ ॥ तबतक तुम शिवजी की भक्तिसे शिवके नाईं शिवस्थान में टिको और शिवदेवजी ने यह वरदान दिया कि जो तुम्हारे लिंगको जितेन्द्रिय व पवित्र होकर पूजैगा वह साक्षात् मेरे लोकको प्राप्तहोगा और दर्शन,स्तुति,पूजन, प्रणाम और जप ॥८८॥८९॥ व दान और लिंगमें अन्यभी कियाहुआ कर्म मुझको बहुतही तृप्तिकारक होगा ऐसा कहनेपर विस्मयको प्राप्त होतेहुये उन देवताओं ने बहुत अच्छा बहुत अच्छा ऐसा कहा ॥ ९० ॥ और ब्रह्मा, विष्णु आदिक देवताओ ने महाकाल की स्तुति किया तदनन्तर देवताओं से स्तुति कियेजाते व चारणों से प्रणाम कियेजाते

हुये महाकालजी ॥ ६१ ॥ नाचतीहुई अप्सराओं व गन्धर्वों से उत्पन्न उत्तम गीतों को गातेहुये गन्धर्वों और स्तुति करतेहुये करोड़ों करोड़ गणों से सब ओर घिरे हुये ॥ ६२ ॥ शिव अग्रगामीवाले महाकालजी शिवजीके स्थानको चलेगये हे कुरुनन्दन ! इस प्रकार यह महालिंग उत्पन्न हुआहै ॥ ६३ ॥ और महाकाल का कूप व तड़ाग भी सिद्धिदायक है हे अर्जुनजी ! यहांपर जो मनुष्य लिंगके आराधन में तत्पर होतेहैं ॥ ६४ ॥ उनको महाकालजी भलीभांति लिपटाकर सदाशिव के लिये निवेदन करते हैं यह अतिअद्भुत लिंग तीनों लोकों में प्रसिद्ध है ॥ ६५ ॥ जिन्हों ने इस लिंगको देखा व स्पर्श किया और पूजन कियाहै वे शिवजी के मन्दिर को चलेगये हैं हे अर्जुन ! इस प्रकार ये सातलिंग उत्पन्न हुयेहैं ॥ ६६ ॥ इस चरित्र को जो सुनते व पढ़तेहैं वे भी उत्तम मनुष्य धन्यहैं ॥ ६७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे

न्धर्वजैःशुभैः ॥ कोटिकोटिगणैश्चैव स्तुवद्भिस्सर्वतोवृतः ॥ ६२ ॥ महाकालोरुद्रधामगतोभवपुरस्सरः ॥ एवमेतन्महा लिङ्गमुत्पन्नंकुरुनन्दन ॥ ६३ ॥ कूपश्चापिसरःपुण्यं महाकालस्यसिद्धिदम् ॥ अत्रयेमनुजाःपार्थलिङ्गस्याराधनेरताः ॥ ६४ ॥ महाकालस्समालिङ्ग्य तांश्छिवायन्यवेदयत् ॥ एतदत्यद्भुतंलिङ्गं त्रिषुलोकेषुविश्रुतम् ॥ ६५ ॥ दृष्टंस्पृष्टंपूजितंवै गतास्तेभवसद्मनि ॥ एवमेतानिलिङ्गानि सप्तजातानिफाल्गुन॥ ६६ ॥ येश्रृण्वन्तिगृणान्त्येतत्तेपिधन्यानरोत्तमाः ॥ ६७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेमहाकालमाहात्म्यन्नामषट्त्रिंशोध्यायः ॥ ३६ ॥ * ॥ * ॥

नारदउवाच ॥ ततोमयास्थापितेच स्थानेकालान्तरेणाह ॥ चिन्तितंहृदयेभूयो द्विजानुग्रहकाम्यया ॥ १ ॥ वासुदेवंविहीनंहि तीर्थमेतन्नरोचते ॥ असूर्यंहिजगद्यद्वत्सहिभूषणभूषणः ॥ २ ॥ यत्रनैवहरिःस्वामी तीर्थेगेहेथमानसे ॥ शा

कुमारिकाखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांमहाकालमाहात्म्यवर्णनंनामषट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥

दो० । वृद्धवासुदेवहिं यथा थाप्यो है ब्रह्मर्षि । सैंतिसवें अध्याय में कह्यो सो चरित महर्षि ॥ नारदजी बोले कि तदनन्तर कुछ समय के बाद मैंने जब लिंगका स्थापन किया तब फिर ब्राह्मणों के ऊपर दयाकी कामना से हृदय में चिन्तन किया कि ॥ १ ॥ विष्णुजी के विना यह तीर्थ नहीं अच्छा लगताहै जैसे कि विना सूर्यके संसार नहीं अच्छा लगताहै क्योंकि वे विष्णुजी भूषणके भी भूषणरूपहैं ॥ २ ॥ जिस तीर्थ, घर, मन व शास्त्रमें विष्णुस्वामी नहीं हैं वह सब असत है और

हंसतीर्थ है नहीं है किन्तु काकतीर्थ है ॥ ३ ॥ इस लिये पुरुषोत्तम वरदायक विष्णुको प्रसन्न कराकर संसार के ऊपर दयाकी कामना से उनको साक्षात् कलासे लाऊं-
गा ॥ ४ ॥ हे अर्जुनजी ! ऐसा चिन्तनकर तदनन्तर यहीं भलीभांति टिकेहुये मैंने ज्ञानयोग से योगीन्द्र विष्णुजीको सौवर्षतक प्रसन्न किया ॥ ५ ॥ इन्द्रियों को
रोंककर अष्टाक्षरमन्त्र को जपताहुआ मैं वासुदेव मे तन्मय होकर समस्त प्राणियों के ऊपर दया करने में परायण हुआ ॥ ६ ॥ इस प्रकार मुझसे आराधन कियेहुये
करोड़ों गणोंसे घिरे विष्णुजी गरुड पै बैठकर प्रत्यक्षहुये ॥ ७ ॥ तदनन्तर हाथ जोड़कर मैंने विधिपूर्वक विष्णुजी को अर्घ देकर इसके अनन्तर जुड़ेहुये हाथोंवाले

स्त्रेवातदसत्सर्वंहंसतीर्थंनवायसम् ॥ ३ ॥ तस्मात्प्रसाद्यवरदंतीर्थेस्मिन्पुरुषोत्तमम् ॥ आनेष्येकलयासाक्षाद्विश्वानुग्रह
काम्यया ॥ ४ ॥ इतिसञ्चिन्त्यकौरव्य ततोहञ्चात्रसंस्थितः ॥ ज्ञानयोगेनयोगीन्द्रं शतंवर्षाण्यतोपयम् ॥ ५ ॥ अष्टाक्ष
रंजपन्मन्त्रं सन्निगृह्येन्द्रियाणिच ॥ वासुदेवमयोभूत्वा सर्वभूतकृपापरः ॥ ६ ॥ एवंमयाराध्यमानो गरुडेहरिरास्थि
तः ॥ गणकोटीपरिवृतः प्रत्यक्षस्समजायत ॥ ७ ॥ ततोहंप्राञ्जलिर्भूत्वा दत्त्वार्घंविधिवद्धरेः ॥ प्रत्यवोचंप्रणम्याथ
प्रबद्धकरसम्पुटः ॥ ८ ॥ श्वेतद्वीपेपुरादृष्टं मयारूपंतवप्रभो ॥ अजंसनातनंविष्णो नरनारायणात्मकम् ॥ ९ ॥ तद्रू
पस्यकलामेकां स्थापयात्रजनार्द्दन ॥ यदितुष्टोसिमेविष्णोतदिदंक्रियतान्त्वया ॥ १० ॥ एवंमयाप्रार्थितःस प्रोवाचग
रुडध्वजः ॥ एवमस्तुब्रह्मपुत्र यत्त्वयाभीप्सितंहृदि ॥ ११ ॥ तत्तथाभवितासर्वं मयास्थेयंसदैवहि ॥ एवमुक्त्वागतेवि
ष्णौ निवेश्यस्वकलांप्रभौ ॥ १२ ॥ मयासंस्थापितोविष्णुर्लोकानुग्रहकाम्यया ॥ यस्मात्स्वयंश्वेतद्वीपनिवास्यत्र

मैंने प्रणामकर यह कहा ॥ ८ ॥ कि हे प्रभो, विष्णो ! पुरातन समय मैंने श्वेतद्वीपमें तुम्हारे जन्मरहित व सदैव रहनेवाले नरनारायणात्मकरूपको देखाहै ॥ ९ ॥
हे जनार्दनजी ! उस रूपकी एक कलाको यहा स्थापन कीजिये हे विष्णो ! यदि मेरे ऊपर प्रसन्नहो तो तुम यह करो ॥ १० ॥ मुझ से इस प्रकार प्रार्थना किये
हुये वे गरुडध्वज विष्णुजी बोले कि हे ब्रह्मपुत्र नारदजी ! ऐसाही होगा तुमने जो हृदय में इच्छा किया ॥ ११ ॥ वह सब वैसाही होगा मै सदैवही यहां टिकूंगा
ऐसा कहकर व अपनी कलाको स्थितकर जब विष्णु प्रभु चलेगये तब ॥ १२ ॥ संसारभर के ऊपर दयाकी कामना से मैंने विष्णुजी का स्थापन किया-जिस लिये

कि श्वेतद्वीपनिवासी विष्णुजी आपही यहां स्थित हैं ॥ १३ ॥ उसीकारण संसार भरके वृद्ध (बड़े) वृद्धनामक वासुदेव कहेगये हैं कार्त्तिक के शुक्लपक्ष में जो उत्तम एकादशी होती है ॥ १४ ॥ उसमें जलप्रस्रवण याने झरनाआदिकों में विधि से स्नानकर जो पुरुष भक्तिसे पंचोपचार पूजन करके अच्युत विष्णुजी को पूजन करै ॥ १५ ॥ व उपासकर जागरण करै और पाखण्ड व क्रोधसे रहित मनुष्य विष्णुके आगे गाना, बजाना व विष्णुजीकी कथाको करै ॥ १६ ॥ व नियममें प्राप्तहोकर प्रसन्नमनवाला मनुष्य यथाशक्ति से दानदेवै तो अनेक जन्मों से उपजेहुये समस्त पातकों से भी ॥ १७ ॥ यह पुरुष निस्संदेह छूटजाता है यद्यपि ब्रह्मघाती

हरिःस्थितः ॥ १३ ॥ वृद्धोविश्वस्यवृद्धाख्यो वासुदेवस्ततःस्मृतः ॥ कार्त्तिकेशुक्लपक्षेया भवत्येकादशीशुभा ॥ १४ ॥ स्नानंकृत्वाविधानेन तोयप्रस्रवणादिषु ॥ योर्चयेदच्युतंभक्त्या पञ्चोपचारपूजया ॥ १५ ॥ उपोष्यजागरं कुर्याद्गीतवाद्यंहरेःपुरः ॥ कथांवावैष्णवींकुर्याद्दम्भक्रोधविवर्जितः ॥ १६ ॥ दानंदद्याद्यथाशक्त्या नियतोहृष्टमानसः ॥ अनेकभवसम्भूतात्कल्मषादखिलादपि ॥ १७ ॥ मुच्यतेसौनसन्देहो यद्यपिब्रह्मघातकः ॥ गरुडेनविमानेन वैकुण्ठंपदमाप्नुयात् ॥ १८ ॥ कुलानांतारयेत्पार्थ शतमेकोत्तरंसतु ॥ श्रद्धायुक्तंमुदायुक्तंसोत्साहंसस्पृहंतथा ॥ १९ ॥ अहङ्कारविहीनञ्चस्नानंधूपानुलेपनम् ॥ पुष्पनैवेद्यसंयुक्तमर्घदानसमन्वितम् ॥ २० ॥ यामेयामेमहाभक्त्या कृत्वा रार्तिकसंयुतम् ॥ चामराह्लादसंयुक्तं भेरीनादपुरस्कृतम् ॥ २१ ॥ पुराणश्रुतिसम्पन्नं भक्तिनृत्यसमन्वितम् ॥ विनिद्रंक्षु तृषास्वादास्पृहणीयंचभारत ॥ २२ ॥ तत्पादसौरभाघ्राणसंयुक्तंविष्णुवल्लभम् ॥ सङ्गीतंशार्वरंकृतं तत्क्षेत्रगमनान्वि

होवै तौ भी गरुडरूपी विमान के द्वारा वह वैकुण्ठस्थान को प्राप्तहोवैगा ॥ १८ ॥ और हे अर्जुनजी ! वह एकसौ एक पुश्तियों को तारता है व श्रद्धायुक्त, प्रसन्नतायुक्त, उत्साह समेत और अभिलाष समेत ॥ १९ ॥ व अहङ्कारहीन, स्नान, धूप, चन्दन व पुष्प नैवेद्यसंयुक्त, अर्घ दानसंयुत ॥ २० ॥ और बड़ीभक्तिसे प्रत्येक पहर में आरतीसंयुत करके व चँवर के आनन्दसंयुत और भेरी शब्दपूर्वक ॥ २१ ॥ व पुराण, वेदसे संयुत, भक्तिसे नृत्य समेत, निद्रारहित व हे अर्जुन ! क्षुधा, प्यास के आस्वादन की इच्छा न करना ॥ २२ ॥ और उनके चरण सुगन्ध के आघ्राण संयुक्त व विष्णुके प्यारे रात्रिमें कियेहुये गानसंयुत और उनके तीर्थों में गमन

संयुत ॥ २३ ॥ व पवनकी रोंकसंयुक्त, ब्रह्मचर्य समेत स्तुतिवादसंयुक्त और चरणोदकसे भूषित ॥२४॥ सत्यसंयुक्त व उत्तमजनोंके संयोगसंयुत और पवित्र वार्त्तासमेत
इन पचीस विशेषों समेत जो मनुष्य एकादशी में जागरण करताहै वह फिर भूमि में नहीं उत्पन्न होताहै और यहींपर पहले ऐतरेयनामक उर्वीधर ब्राह्मण ॥२५।२६॥
महाभाग्यवान् विष्णुजी की प्रसन्नता से सिद्धिको प्राप्तहुआ है ॥ २७ ॥ अर्जुनजी बोले कि हे मुने ! ऐतरेय किसका पुत्रथा व इसका कहां निवासथा और विष्णुजी
की प्रसन्नता से वह बुद्धिमान् कैसे सिद्धिको प्राप्तहुआ है ॥ २८ ॥ नारदजी बोले कि इसी मेरे स्थानमें हारीतके वंशमें मांडूकि ऐसा वेदवेदांगों का पारगामी श्रेष्ठ

तम् ॥ २३ ॥ वायुरोधेनसंयुक्तं ब्रह्मचर्यसमन्वितम् ॥ स्तुतिवादेनसंयुक्तंपादोदकविभूषितम् ॥ २४ ॥ सत्यान्वितंसतां
योगसंयुतंपुण्यवार्तया ॥ पञ्चविंशतिभिर्युक्तं विशेषैर्जागरंनरः ॥ २५ ॥ एकादश्यांप्रकुर्वीत नपुनर्जायतेभुवि ॥ अत्रै
वोर्वीधरःपूर्वमैतरेयइतिद्विजः ॥ २६ ॥ सिद्धिंप्राप्तोमहाभागो वासुदेवप्रसादतः ॥ २७ ॥ अर्जुनउवाच ॥ ऐतरेयःकस्य
पुत्रो निवासःकास्यवामुने ॥ कथंसिद्धिमगाद्धीमान् वासुदेवप्रसादतः ॥ २८ ॥ नारदउवाच ॥ अस्मिन्नेवममस्थानेहा
रीतस्यान्वयेभवत् ॥ माण्डूकिरितिविप्राग्र्यो वेदवेदाङ्गपारगः ॥ २९ ॥ तस्यासीदितरानाम भार्यानारीगुणैर्युता ॥
तस्यामजायतसुतस्त्वैतरेयइतिस्मृतः ॥ ३० ॥ सचबाल्यात्प्रभृत्येव प्राग्जन्मन्यनुशिक्षितम् ॥ जजापमन्त्रंत्वनिशं
द्वादशाक्षरसंज्ञितम् ॥ ३१ ॥ नशृणोतिनवक्त्येव नचाध्येतिकथञ्चन ॥ ततोमूकोयमित्येव नानोपायैःप्रबोधितः ॥
३२ ॥ पित्रायदानकुरुते व्यवहारायमानसम् ॥ ततोनिश्चित्यमाण्डूकिर्जडोयमितिभारत ॥ ३३ ॥ अन्यान्विवाहया

ब्राह्मणहुआ है ॥ २९ ॥ उसके स्त्रियोंके गुणोंसे संयुत इतरा नामक स्त्री हुई उसमें ऐतरेय ऐसा कहाहुआ पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ ३० ॥ और वह बाल्यावस्था से लगाकर
ही पहले जन्ममें सीखेहुये द्वादशाक्षर मन्त्रको सदैव जपताभया ॥ ३१ ॥ और न सुनताथा न कहता था व न किसीप्रकार से कुछ पढ़ता था तदनन्तर इस कारण
से वह अनेक उपायों करके समझायागया कि यह गूंगाहै ॥ ३२ ॥ जब पिताके साथ व्यवहार के लिये उसने मन नहीं किया तदनन्तर हे अर्जुनजी ! मांडूकि ने

यह मूर्खहै ऐसा निश्चयकर ॥ ३३ ॥ अन्य पुत्रोंका विवाह किया व उनको स्त्री समेत किया और जो पिंगानामक स्त्रीथी उसके कर्मकाण्डमें चतुर व वेदों व वेदांगों
के कहनेवाले चार पुत्र पैदाहुये जोकि यज्ञों और शांतिक होमों में सब कहीं ब्राह्मणोंसे पूजितहुये ॥ ३४ । ३५ ॥ और ऐतरेयने भी नित्यही त्रिकाल विष्णुजी के
मन्दिरमें उत्तम जप करनेयोग्य मन्त्रका जपकिया और वह अन्यत्र परिश्रम नहीं करता था ॥ ३६ ॥ तदनन्तर ऐतरेय की माता ने सौति के पुत्रोंको वैसे देखकर
दुःखित मनमें पुत्रसे यह वचन कहा ॥ ३७ ॥ कि क्लेशही के लिये तुम पैदा हुये हो मेरे जन्म व जीवन को धिक्कार है क्योंकि इस मनुष्यलोक में उस स्त्री का पैदा

**मास दारान्पुत्रांस्तथाऽदधे ॥ पिङ्गानामचयाभार्या तस्याःपुत्राश्चजज्ञिरे ॥ ३४ ॥ चत्वारःकर्मकुशला वेदवेदाङ्गवादि
नः ॥ यज्ञेषुशान्तिहोमेषु द्विजैस्सर्वत्रपूजिताः ॥ ३५ ॥ ऐतरेयोपिनित्यञ्च त्रिकालंहरिमन्दिरे ॥ जजापपरमंजाप्यं ना
न्यत्रकुरुतेश्रमम् ॥ ३६ ॥ ततोमातानिरीक्ष्यैव सपत्नीतनयांस्तथा ॥ दूयमानेनमनसा तनयंवाक्यमब्रवीत् ॥ ३७ ॥
क्लेशायैवचजातोसि धिग्मेजन्मचजीवितम् ॥ नार्यास्तस्यान्नलोकेत्र वृथैवजननंस्फुटम् ॥ ३८ ॥ विमानिताचयाभर्त्रा
यत्पुत्रोनगुणैर्युतः ॥ पिङ्गेयंकृतपुण्यावै यस्याःपुत्रामहागुणाः ॥ ३९ ॥ वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञास्सर्वत्राभ्यर्चिताद्विजैः ॥
तदहंपुत्रदुर्भाग्या महीसागरसङ्गमे ॥ ४० ॥ निमज्जिष्येवरंमृत्युर्जीवितेकिम्फलंमम ॥ त्वमप्येवंमहामौनी नन्दश
त्रोहरिंचिरम् ॥ ४१ ॥ नारदउवाच ॥ इतिमातुर्वचःश्रुत्वाप्रहसन्नैतरेयकः ॥ ध्यात्वामुहूर्त्तंधर्मज्ञो मातरंप्रणतोब्रवी
त् ॥ ४२ ॥ मातर्मिथ्याभिमूढासि अज्ञानेज्ञानवत्यसि ॥ अशोच्येशोचसिशुभे शोच्यैनैवापिशोचसि ॥ ४३ ॥ देह**

होना प्रकटही वृथाहै ॥ ३८ ॥ कि जो पतिसे अपमान कीगई हो और जिसका पुत्र गुणोंसे संयुत न होवै इस पिंगाने पुण्यको कियाहै कि जिसके पुत्र बड़ेगुणी हैं ॥ ३९ ॥
जो कि वेद वेदांगों के तत्त्व (यथार्थ) को जाननेवाले व सब कहीं ब्राह्मणों से पूजित हैं इस लिये हे पुत्र ! अभाग्यवती मैं महीसागर के संगम में ॥ ४० ॥ डूब
जाऊँगी मृत्यु उत्तम है क्योंकि मेरे जीने में क्या फल है और समर्थ तुमभी महामौनी होकर विष्णु जीको बहुत दिन तक प्रसन्न करो ॥ ४१ ॥ नारद जी बोले कि
माताके यह वचन सुनकर हँसते हुये धर्मज्ञ ऐतरेय मुहूर्तभर ध्यान कर व माता को प्रणाम कर बोले ॥ ४२ ॥ कि हे माता ! तुम वृथाही मूढ़हो व अज्ञान में ज्ञानः

बती होती हो और न शोचने योग्य में शोचती हो हे शुभे ! शोचने योग्य वस्तुमें नहीं शोचती हो ॥ ४३ ॥ झूंठे संसार में इस देह के लिये तुम क्यों मोहित होती हो यह तो मूर्खों का आचरण है विद्वानों को यह नहीं योग्य है ॥ ४४ ॥ संसारमें सारांश वस्तु अन्य है और मोहित मनुष्य अन्य सारांश देखते हैं जैसे कि दीपकके नाईं स्थित जुगुनूको देखते हैं ॥ ४५ ॥ इस जिस वस्तु को तुम सारांश मानती हो उसकी भी असारताको सुनिये कि इसप्रकार की मनुष्यता गर्भ से लगाकर बड़ी कष्टदायक है ॥ ४६ ॥ हड्डी व पैररूपी तुला (घरके काष्ठ बंधनके लिये पीठ याने बेंड़र) व खंभोंवाले और नसों के बंधन से बँधे हुये व रक्त मांस रूपी मिट्टीसे लीपे और विष्ठा व मूत्ररूपी वस्तु पात्रवाले ॥ ४७ ॥ और बाल व रोमरूपी तृणों से आच्छादित व सुवर्णरूपी त्वचा युक्त उत्तम धातुवाले और मुख रूपी एक बड़े द्वारवाले

स्यास्यकृतेमिथ्या संसारेकिंविमुह्यसि ॥ मूर्खाचरितमेतद्धिविदुषामुचितन्नहि ॥ ४४ ॥ अन्यत्संसारसारञ्च सारमन्यद्विमोहिताः ॥ प्रपश्यन्तियथारात्रौ खद्योतंदीपवत्स्थितम् ॥ ४५ ॥ यदिदंमन्यसेसारंशृणुतस्याप्यसारताम् ॥ एवंविधंहिमानुष्यमागर्भादतिकष्टदम् ॥ ४६ ॥ अस्थिपादतुलास्तम्भे स्नायुबन्धेनयन्त्रिते ॥ रक्तमांसमृदालिप्ते विण्मूत्रद्रव्यभाजने ॥ ४७ ॥ केशरोमतृणच्छन्ने सुवर्णत्वक्सुधातुके ॥ वदनैकमहाद्वारे पञ्चवातविभूषिते ॥ ४८ ॥ अक्षिद्वयकपाटेच तथादन्तार्गलान्विते ॥ नाडीस्वेदप्रवाहेचकालवक्त्रानलस्थिते ॥ ४९ ॥ एवंविधेशुभेगेही जीवोनामास्तिशोभने ॥ गुणत्रयमयीभार्या प्रकृतिस्तस्यतत्रच ॥ ५० ॥ क्रोधाहङ्कारकामाश्च ईर्ष्यालोभादयोपिच ॥ अपत्यान्यस्यहाकष्टमेवंमूढःप्रवर्त्तते ॥ ५१ ॥ यस्ययोयोयथामोहस्तथातंशृणुतत्त्वतः ॥ स्रोतांसियस्यसततं प्रस्रवन्तिगिरेरिव ॥ ५२ ॥

तथा छहझरोखों से शोभित ॥ ४८ ॥ व दोनों नेत्ररूपी किवाड़वाले और दंतरूपी अर्गला (बेडकन) से संयुत और नाड़ियों से पसीना रूप प्रवाहवाले व कालके मुखरूपी अग्नि में स्थित ॥ ४९ ॥ इसप्रकार के उत्तम घरमे घरवाला जीव रहता है और उसमें उस जीव की त्रिगुणमयी प्रकृति स्त्री है ॥ ५० ॥ और क्रोध, अहंकार, काम, ईर्ष्या, व लोभादिक इसके पुत्र है हाय बडे कष्टकी बातहै कि इसप्रकार वह मूढ़ जीव वर्तमान होताहै ॥ ५१ ॥ जिसका जो जो मोह जिस प्रकार होताहै उस को उसी प्रकार से यथार्थ सुनिये कि जिसके कफ व मूत्रादिक झरना पहाड़ों की नाईं झरा करते हैं इसी देह के लिये मनुष्य मोहित होता है समस्त अपवित्र वस्तु

का निधान, विष्ठा व मूत्र से संयुत शरीर का एक अंग भी पवित्र नहीं विद्यमानहै अपने शरीर के सोतों (नाक, कान इत्यादिकों) को छूकर मिट्टी व जल से हाथ पवित्र किया जाता है ॥ ५२ । ५३ । ५४ ॥ परन्तु अपने स्वभाव को नहीं छोड़ता है जैसे कि नवाई हुई कुत्ते की पूँछ कितनीही सीधी कीजाय परन्तु अपनी टेढ़ाई रूप स्वभाव को छोड़कर वह सीधी न होगी अपने शरीर की दुर्गन्ध से जो पुरुष नहीं विराग को प्राप्त होता है ॥ ५५ ॥ उसको अन्य वैराग्य का कारण क्या उपदेश दियाजाय दुर्गन्ध व लेपन कीहुई वस्तुके दूर करनेके लिये शरीर का शौच कहा गयाहै ॥५६॥ इन दोनों के नाश होने पर पश्चात् स्वभाव की शुद्धि से पवित्र होता

कफमूत्रादिकान्यस्य क्लेदेहस्यमुह्यति ॥ सर्वाशुचिनिधानस्य शरीरस्यनविद्यते ॥ ५३ ॥ शुचिरेकःप्रदेशोपि विण्मूत्रस्ययुतस्यच ॥ स्पृष्ट्वास्वदेहस्रोतांसि मृत्तोयैश्शोध्यतेकरः ॥ ५४ ॥ नजहातिस्वकंभावं श्वपुच्छमिवनामितम् ॥ स्वदेहाशुचिगन्धेन नविरज्येतयोनरः ॥ ५५ ॥ विरागकारणंतस्य किमन्यदुपदिश्यते ॥ गन्धलेपापनोदार्थंशौचंदेहस्यकीर्त्तितम् ॥ ५६ ॥ द्वयस्यापगमात्पश्चाद्भावशुद्ध्याविशुध्यति ॥ गङ्गातोयेनसर्वेण मृद्भारैश्चनगोपमैः ॥ ५७ ॥ सदैवह्याचरञ्छौचंभावदुष्टोनशुध्यति ॥ श्वायदिक्षालितस्तीर्थे किंशुद्धिमधिगच्छति ॥ ५८ ॥ अन्तर्भावप्रदुष्टस्यविशतोपिहुताशनम् ॥ नस्वर्गोनापवर्गश्च देहनिर्दहनंपरम् ॥ ५९ ॥ भावशुद्धिःपरंशौचं प्रमाणंसर्वकर्मसु ॥ अन्यथालिङ्ग्यतेकान्ता भावेनदुहितान्यथा ॥ ६० ॥ अन्यथैवस्तनंपुत्रश्चिन्तयत्यन्यथापतिः ॥ चित्तंविशोधयेत्तस्मात् किमन्यै

है क्योंकि समस्त गङ्गाजल से और पर्वत के समान मिट्टियोंके भारोंसे ॥ ५७ ॥ सदैवही शौच करताहुआ दुष्टस्वभाववाला पुरुष नहीं शुद्ध होताहै जैसे कि यदि कुत्ता तीर्थमें धोयाजावै तो क्या शुद्धिको प्राप्तहोगा यानें नहीं शुद्धहोगा ॥५८॥ वैसेही अग्निमें भी पैठतेहुये भीतर दुष्टभाववाले मनुष्यको न स्वर्ग होताहै और न मोक्ष होताहै केवल देहका जलनाही होताहै ॥ ५९ ॥ समस्त कर्मोंमें भावकी शुद्धि परमशौच प्रमाण (मानीगई) है क्योंकि स्त्री और भावसे लिपटाई जातीहै और कन्या अन्यभाव से ॥ ६० ॥ व पुत्र व माताके स्तनको और भावसे चिन्तन करता है व पति स्त्री के स्तनको अन्यभाव से देखताहै इस लिये चित्तको विशेषकर पवित्रकरै अन्य बाहरी

शोधनों से क्या है याने कुछ नहीं ॥ ६१ ॥ क्योंकि भावसे पवित्र जीवात्मावाला वह पुरुष आपही मोक्षको प्राप्तहोता है और ज्ञानरूपी निर्मलजल व फिर उत्तम वैराग्यरूपी मिट्टी से पुरुषके ॥ ६२ ॥ अविद्या व रागरूपी विष्ठा, मूत्रके लेप व दुर्गन्धका शोधन होताहै ऐसेही इस शरीर को विद्वानों ने स्वभावसे अपवित्र कहाहै ॥ ६३ ॥ यह निस्सार शरीर त्वचामात्र सारांशवाला केलाके सारांश के समानहै इसप्रकार दे.पश्चात् शरीरको जानकर जो विद्वान् शिथिल होजावै ॥ ६४ ॥ वह संसार से निकलजाता है और जो दृढ़ता से ग्रहण कियेहै वह संसार में टिकताहै ऐसाही यह बड़ा कष्टवाला जन्मका दुःख कहागया है ॥ ६५ ॥ जोकि पुरुषों के

बाह्यशोधनैः ॥ ६१ ॥ भावतस्सविशुद्धात्मा स्वयंमोक्षञ्चविन्दति ॥ ज्ञानामलाम्भसापुंसस्सद्वैराग्यमृदापुनः ॥ ६२ ॥ अविद्यारागविण्मूत्रलेपगन्धविशोधनम् ॥ एवमेतच्छरीरंहि निसर्गादशुचिंविदुः ॥ ६३ ॥ त्वङ्मात्रसारंनिस्सारं कदलीसारसन्निभम् ॥ ज्ञात्वैवन्दोषवद्देहं यःप्राज्ञःशिथिलीभवेत ॥ ६४ ॥ सनिष्कामतिसंसाराद् दृढग्राहीसतिष्ठति ॥ एवमेतन्महाकष्टं जन्मदुःखंप्रकीर्त्तितम् ॥ ६५ ॥ पुंसामज्ञानदोषेण नानाकर्म्मवशेनच ॥ यथागिरिवराक्रान्तः कश्चिदुःखेनतिष्ठति ॥ ६६ ॥ तथाजरायुनादेही दुःखन्तिष्ठतिवेश्मसु ॥ पतितस्सागरेयद्वद्दुःखंतिष्ठतिव्याकुलः ॥ ६७ ॥ गर्भोदकेनसिक्ताङ्गस्तथास्तेव्याकुलःपुमान् ॥ ६८ ॥ लोहकुम्भेयथान्यस्य पच्यतेकश्चिदग्निना ॥ गर्भकुम्भेतथाक्षिप्तः पच्यतेजठराग्निना ॥ ६९ ॥ सूचीभिरग्निवर्णाभिर्विभिन्नस्यनिरन्तरम् ॥ यावद्दुःखंभवेत्तस्य तद्गर्भेष्टगुणंभवेत ॥७० ॥ इत्येतद्गर्भदुःखंहि प्राणिनांपरिकीर्तितम् ॥ चरस्थिराणांसर्वेषामात्मागर्भानुतापतः ॥ ७१ ॥ तत्रस्थस्यास्य

अज्ञान के दोषसे व अनेकभांति के कर्मवश से होताहै जैसे बड़ेभारी पर्वत से दबायाहुआ कोई पुरुष दुःखसे स्थित होताहै ॥ ६६ ॥ वैसेही जरायु (झोरी) से देहधारी पुरुष पेटरूपी घरमे दुःखसे टिकताहै जैसे समुद्र में गिराहुआ पुरुष व्याकुल होकर स्थित रहता है ॥ ६७ ॥ वैसेही गर्भके जलसे सींचेहुये अङ्गोंवाला पुरुष व्याकुल होकर रहता है ॥ ६८ ॥ जैसे लोहेके घड़ेमे धरकर कोई अग्निमें पकाया जाताहै वैसेही गर्भरूपी घड़ेमें फेंकाहुआ पुरुष जठराग्नि से पक्ता है ॥ ६९ ॥ अग्निके समान रंगवाली सूजियों से सदैव छेदतेहुये पुरुष को जितना दुःखहोताहै उसके अठगुना वह दुःख पेटमें होताहै ॥ ७० ॥ इस प्रकार प्राणियों का यह गर्भ

दुःख कहागया है और स्थावर जंगम सबही प्राणियों का जीवात्मा गर्भके दुःखसे विकल होताहै ॥ ७१ ॥ और उस पेटमें टिकेहुये इस पुरुषको सब जन्मोंका स्मरण होताहै कि मरकर मैं फिर पैदाहुआ व पैदाहोकर मैं फिर मरगया ॥ ७२ ॥ और पैदाहोतेहुये मैंने अनेकप्रकार की हज़ारों योनियों को देखाहै व इस समय पैदाहोकर मैं संस्कारों को पाकर ॥ ७३ ॥ तदनन्तर ऐसा पुण्यकर्म करूंगा कि जिससे गर्भ न होवै और संसार में वर्तमान होनेको हरनेवाले वेदको पढूंगा ॥ ७४ ॥ इस प्रकार चिन्तन करता व मोक्षके यत्नको विचारताहुआ वह कहताहै फिर पैदा होते हुये उस को गर्भसे कोटिगुना दुःखहोता है ॥ ७५ ॥ और गर्भवास में जो स्मरण होता है

सर्वेषां जन्मनांस्मरणंभवेत् ॥ मृतश्चाहंपुनर्जातो जातश्चाहंपुनर्मृतः ॥ ७२ ॥ नानायोनिसहस्राणि मयादृष्टानिजायता ॥ अधुनाजातमात्रोहं प्राप्तसंस्कारएवच ॥ ७३ ॥ ततःश्रेयस्करिष्यामि येनगर्भोनसम्भवेत् ॥ अध्येष्यामिचहरणं संसारविनिवर्तनम् ॥ ७४ ॥ एवंसञ्चिन्तयन्नाह मोक्षोपायंविचिन्तयन् ॥ गर्भात्कोटिगुणंदुःखं जायमानस्यजायते ॥ ७५ ॥ गर्भवासेस्मृतिर्यातु जायमानस्यनश्यति ॥ स्पृष्टमात्रश्चबाह्येतु वायुनामूढतांभजेत् ॥ ७६ ॥ सम्मूढस्यस्मृतिभ्रंशः शीघ्रंसञ्जायतेपुनः ॥ स्मृतिभ्रंशात्ततस्तस्य पूर्वकर्मवशेनच ॥ ७७ ॥ रतिस्सञ्जायतेतूर्णं जन्तोस्तत्रैवजन्मनि ॥ रक्तोमूढश्चलोकोयमकार्येसम्प्रवर्त्तते ॥ ७८ ॥ तत्रात्मानंविजानाति नपरञ्चदैवतम् ॥ नशृणोतिपरंश्रेयः सतिचक्षुषिनेक्षते ॥ ७९ ॥ समेपथिशनैर्गच्छंश्चलतीवपदेपदे ॥ सत्यांबुद्धौनजानाति बोध्यमानोबुधैरपि ॥ ८० ॥ संसारेक्लि

वह पैदा होतेहुये पुरुषका नष्ट होजाताहै और बाहर पवनसे छुवाही हुआ वह पुरुष अज्ञानताको भजताहै ॥ ७६ ॥ व बहुतही अज्ञानी उस प्राणीका फिर शीघ्रही स्मरण नाश होजाताहै तदनन्तर स्मरण नाशहोनेसे पूर्वकर्मवशके कारण उस ॥७७॥ प्राणी का स्नेह शीघ्रही उसी जन्ममें भलीभांति होजाता है और उसी जन्ममें स्नेहवाला यह मूढ मनुष्य न करनेयोग्य कर्ममें वर्तमान होताहै ॥ ७८ ॥ उसमें न अपनाको जानताहै और न दूसरे को व देवता को नहीं जानता है और उत्तम कल्याणदायक वस्तुको नहीं सुनता है व नेत्रोंके होनेपर भी नहीं देखता है ॥ ७९ ॥ और सम मार्गमें धीरे धीरे चलताहुआ वह पुरुष मानो पग पगभर चलता है और बुद्धिहोने

पर विद्वानों से बोध कराया जाताहुआ भी वह नहीं जानता है ॥ ८० ॥ और लोभके वश उसका अनुगामी होकर संसारमें भोगगण याने सुखसमूहों से क्लेशित होता है गर्भका स्मरण न रहने से उसके दुःखको कहनेके लिये महर्षियों ने स्वर्ग व मोक्षके साधन करनेवाले शास्त्रको कहा है परन्तु मनुष्य अपने कल्याणको नहीं करते हैं वह इस संसार में बडा अद्भुत चरितहै ॥८१।८२॥ फिर अप्रकट इन्द्रियों की वृत्तिके कारण बाल्यावस्था में बडाभारी दुःख होता है क्योंकि इच्छा करता हुआभी वह पुरुष कुछ कहने व करने के लिये समर्थ नहीं होताहै ॥ ८३ ॥ वैसेही दांतोंके उठने में बडा दुःखहोता है और मूढ़ता विधान से व अनेक भांतिके बाल

श्यतेभोगगणैर्लोभवशानुगः ॥ गर्भस्मृतेरभावेन शास्त्रमुक्तंमहर्षिभिः ॥ ८१ ॥ तद्दुःखकथनार्थाय स्वर्गमोक्षंप्रसाधकम् ॥ नकुर्वन्त्यात्मनःश्रेयस्तदत्रमहदद्भुतम् ॥ ८२ ॥ अव्यक्तेन्द्रियवृत्तित्वाद्बाल्येदुःखंमहत्पुनः ॥ इच्छन्नपिनशक्नोति वक्तुंकर्तुञ्चकिञ्चन ॥ ८३ ॥ दन्तोत्थानेमहादुःखं मौढ्येनविधिनातथा ॥ बालरोगैश्चविविधैःपीडाबालग्रहैरिव ॥८४॥ तृड्बुभुक्षापरीताङ्गः क्वचित्तिष्ठतिरारटन् अक्षराध्ययनाद्यैश्च दुःखंस्याद्गुरुशासनात् ॥८५॥ प्रमत्तेन्द्रियवृत्तेश्चकामरागप्रपीडनात् ॥ ८६ ॥ रागोद्धतस्यसततं कुतस्सौख्यंहियौवने ॥ ईर्ष्ययासुमहद्दुःखं मोहोद्रिक्तस्यजायते ॥ ८७ ॥ मत्तस्यकुपितस्यैव रागोदुःखायकेवलम् ॥ नरात्रौविन्दतेनिद्रां कामानांपरिखेदतः ॥ ८८ ॥ दिवापिहिकुतस्सौख्यं द्रव्योपार्ज्जनचिन्तया ॥ नारीषुभ्रूणहत्याच सर्वदोषाश्रयासुच ॥ ८९ ॥ विण्मूत्रोत्सर्गसदृशं सौख्यंमैथुनतोम

रोगोंसे बालग्रहों (पूतनादिकों) की नाईं पीडाहोती है ॥ ८४ ॥ और प्यास व भूंखसे घिरेहुये अंगोंवाला वह कहीं बार २ रटताहुआ स्थित होताहै और गुरुकी आज्ञासे अक्षरों के पठनादिकों करके दुःख होता है ॥ ८५ ॥ और असावधान इन्द्रियों की वृत्तिमे काम व स्नेहकी पीड़ासे दुःखहोता है ॥ ८६ ॥ और युवावस्था में अनुराग से बढ़ेहुये पुरुष को सदैव कहासे सुखहोवै और मोह बढेहुये पुरुषको ईर्षामे बडा भारी दुःखहोता है ॥ ८७ ॥ असावधान व क्रोधित का अनुराग केवल दुःखहीके लिये होताहै और कामनाओंके दुःख मे रात्रिमें पुरुष निद्राको नहीं प्राप्तहोता है ॥ ८८ ॥ और दिनमें भी द्रव्य इकट्ठा करने की चिन्ता से कहांसे सुख होवै और समस्त दोषों की आश्रयरूप स्त्रियों में भ्रूण (गर्भ) की हत्या होती है ॥ ८९ ॥ और मैथुन से विष्ठा व मूत्रके त्यागने के समान सुख मानागया है व

सन्मान, अपमान, वियोग व प्रियवस्तु के प्राप्तहोने से ॥ ९० ॥ यौवन वृद्धता से ग्रसगया तो मनुष्य कहांपर सुखको भजै सिमटे और पकेहुये बालोंसे संयुत शरीर करके शिथिल देहवाला ॥ ९१ ॥ और वृद्धतासे जर्जर कियाहुआ मनुष्य समस्त कर्मोंमें अशक्त होगया और पहले स्त्री पुरुषों का जो यौवन व रूप आपस में प्रिय था ॥ ९२ ॥ वृद्धतासे ग्रसाहुआ वही दोनोंकोभी अप्रियहोगया और वृद्धतासे तिरस्कृत पुरुषका स्त्री पुत्रादिक व भाइयों ॥ ९३ ॥ और दुष्टकर्मी नौकरों से निःशक्ति के कारण अपमान कियाजाताहै धर्म, अर्थ, काम और मोक्षको भी चौथी अवस्थासे ॥ ९४ ॥ मनुष्य साधनकरनेकेलिये समर्थ नहीं होताहै इसलिये युवावस्थामें प्राप्तहोकर मनुष्य

तम् ॥ सन्मानेनापमानेन वियोगेनष्टसङ्गमैः ॥ ९० ॥ यौवनंजरयाग्रस्तं सौख्यंकुत्रभवेन्नरः ॥ वलीपलितकायेन शिथिलीकृतविग्रहः ॥ ९१ ॥ सर्वक्रियास्वशक्तश्च जरयाजर्जरीकृतः ॥ स्त्रीपुंसोर्यौवनंरूपं यदन्योन्यप्रियम्पुरा ॥ ९२ ॥ तदेवजरयाग्रस्तमुभयोरपिनप्रियम् ॥ जराभिभूतःपुरुषः पत्नीपुत्रादिबान्धवैः ॥ ९३ ॥ अशक्तत्वाद्दुराचारैर्भृत्यैश्च परिभूयते ॥ धर्ममर्थञ्चकामञ्च मोक्षञ्चनतुरीयतः ॥ ९४ ॥ शक्तस्साधयितुंतस्माद्युवाधर्मंसमाचरेत ॥ वातपित्तकफादीनां वैषम्यंव्याधिरुच्यते ॥ ९५ ॥ वातादीनांसमूहश्च देहोयंपरिकीर्तितः ॥ तस्माद्व्याधिमयंज्ञेयं शरीरमिदमात्मनः ॥ ९६ ॥ भोगैर्नानाविधैर्यान्ति देहीदुःखान्यनेकधा ॥ तानितुस्वात्मवेद्यानि किमन्यत्कथयाम्यहम् ॥ ९७ ॥ एकोत्तरं व्याधिशतमस्मिन्देहेप्रतिष्ठितम् ॥ तत्रैकःकालसंयुक्तः शेषास्त्वागन्तवःस्मृताः ॥ ९८ ॥ येत्विहागन्तवःप्रोक्तास्तेप्रशाम्यन्तिभेषजैः ॥ जपहोमप्रदानैश्च कालमृत्युर्नशाम्यति ॥ ९९ ॥ विविधाव्याधयःसर्वास्सर्पाद्याःप्राणिनस्तथा ॥ वि

धर्मकरै वात, पित्त व कफकी विषमता व्याधि कहीजाती है ॥ ९५ ॥ और वातपित्तादिकोंके समूहवाला यह शरीर कहागयाहै इसलिये यह अपना शरीर रोगमय जानने योग्यहै ॥ ९६ ॥ अनेक प्रकारके भोगोंसे मनुष्य अनेकभांतिके दुःखोंको प्राप्तहोताहै और वे अपनी आत्मासे जाननेयोग्यहैं मैं अन्य क्या कहूँ ॥ ९७ ॥ इस देहमें एक अधिक सौ रोग टिकेहैं उनमें एकरोग मृत्युसे संयुक्तहै और शेष आनेवाले कहेगये हैं ॥ ९८ ॥ इस शरीर में जो रोग आनेवाले कहेगये हैं वे औषधियों से शान्त होजाते हैं

और जप व होम और दानों से कालमृत्यु नहीं शान्त होतीहै ॥ ९९ ॥ और अनेक प्रकार के सब रोग व सर्प इत्यादिक प्राणी, विष और प्रयोग ये शरीरधारियों के मृत्यु के द्वार हैं ॥ १०० ॥ कालसे पीड़ित मनुष्य की रक्षा करने के लिये न औषध न तपस्या न दान न मित्र और न भाई समर्थ होते हैं ॥ १ ॥ रसायन, तपस्या, जप व योगसिद्धवाले महात्मा विद्वान् व संयमी पुरुषों से भी कालमृत्यु नहीं हटती है ॥ २ ॥ मृत्यु के समान दुःख नहीं है व मृत्यु के तुल्य भय नहीं है और सौ वर्ष आयुर्बलवाले मनुष्य होते हैं परन्तु उस आयुर्बल को प्राप्त होते हैं और नहीं होते हैं ॥ ३ ॥ कोई मनुष्य तो अस्सी वर्ष के होकर मरजाते हैं व कोई सत्तर

षाणिचाभिचारश्च मृत्योर्द्वाराणिदेहिनाम् ॥ १०० ॥ नौषधन्नतपोदानं नमित्रानचबान्धवाः ॥ शक्नुवन्तिपरित्रातुं नरं कालेनपीडितम् ॥ १ ॥ रसायनतपोजप्यैर्योगसिद्धैर्म्महात्मभिः ॥ कालमृत्युरपिप्राज्ञैर्नीयतेनापिसंयतैः ॥ २ ॥ नास्तिमृत्युसमंदुःखं नास्तिमृत्युसमंभयम् ॥ जनाःशतायुषस्तत्र भवन्तिनभवन्तिच ॥ ३ ॥ अशीतिकाविपद्यन्ते केचित्सप्ततिकानराः ॥ परमायुःस्थिताःसृष्टौ तदप्यस्तिनधिष्ठितम् ॥ ४ ॥ यस्ययावद्भवेदायुर्देहिनःपूर्वकर्म्मभिः ॥ तस्यार्द्धमायुषोरात्रिर्हरतेमृतरूपिणः ॥ ५ ॥ बालभावेनमोहेन वार्द्धक्येजरयातथा ॥ वर्षाणिविंशतिर्याति धर्म्मकामार्थवर्जिताः ॥ ६ ॥ आगन्तुकैर्भयैःपुंसां व्याधिशोकैरनेकधा ॥ ह्रियतेर्द्धंहितत्रापि यच्छेषंतद्धिजीवितम् ॥ ७ ॥ जीवितान्तेचमरणं महाघोरमवाप्नुयात् ॥ जायतेयोनिकोटीषु मृतःकर्म्मवशात्पुनः ॥ ८ ॥ देहभेदेनयःपुंसां वियोगः

ही वर्ष के होकर मरते हैं केवल सौ वर्ष परमायु के सृष्टि में स्थित हैं परन्तु उस परमायु में कोई नहीं स्थित होता है ॥ ४ ॥ पूर्वजन्मके कर्मों से जिस प्राणी की जितनी आयुर्बल होती है मृतक के समान रूपवाले पुरुष के उस आयुर्बल के आधे भागको रात्रि हरलेती है ॥ ५ ॥ और अज्ञान से बाल्यावस्था करके व वृद्धता में बुढ़ापे से धर्म, अर्थ व कामरहित बीस वर्ष बीत जातेहैं ॥ ६ ॥ और उसमें भी पुरुषों की आधी आयुर्बल को आनेवाले अनेक प्रकारके भय रोग व शोक हरलेते हैं और जो शेषहै वही जीवन होता है ॥ ७ ॥ और जीने के अन्त में मनुष्य बड़ी भयानक मृत्यु को प्राप्त होता है व मरकर कर्म के वश से फिर करोड़ों योनियों में

उत्पन्न होता है ॥ ८ ॥ कर्म की संख्या से पुरुषों का जो शरीर के भेदसे वियोग है वह मरण कहागयाहै और परमार्थ से नाश नहीं होता है ॥ ९ ॥ बड़े अज्ञानमें पैठे हुये प्राणी के मरने में सुकुमार अंगों को काटे जाने पर जो दुःख होताहै उसकी उपमा इस संसार में कहीं नहीं है ॥ १० ॥ हा पिता ! हा माता ! हा कान्ते ! इस प्रकार कहता हुआ बड़ा दुःखी व मृत्युका भोजन पुरुष सर्पसे मेढ़क की नाईं निगललिया जाता है ॥ ११ ॥ भाइयों से छोड़ा व प्रियों से घिराहुवा वह मनुष्य बड़ी लम्बी व गरम श्वासों को लेता है और सूखे हुये मुखसे उपलक्षित होताहै ॥ १२ ॥ और खट्वा के चारों ओर अन्त तक बार बार लोटताहुवा अज्ञानी पुरुष इधर उधर

कर्मसंख्यया ॥ मरणंतद्विनिर्दिष्टं ननाशःपरमार्थतः ॥ ९ ॥ महातमःप्रविष्टस्य छिद्यमानेषुमर्मसु ॥ यद्दुःखंमरणे जन्तोर्नतस्येहोपमाक्वचित् ॥ १० ॥ हातातमातर्हाकान्ते वदन्नेवंसुदुःखितः ॥ मण्डूकइवसर्पेण गीर्यतेमृत्युभोजनः ॥ ११ ॥ बान्धवैस्सम्परित्यक्तः प्रियैश्चपरिवारितः ॥ निःश्वसन्दीर्घमुष्णाञ्च मुखेनपरिशुष्यता ॥ १२ ॥ चतुरन्तेषुखट्वायाः परिवर्त्तन्मुहुर्मुहुः ॥ सम्मूढःक्षिपतेत्यर्थं हस्तपादावितस्ततः ॥ १३ ॥ खट्वातोवाञ्छतेभूमिं भूमेःखट्वांपुनर्महीम् ॥ विवस्त्रस्त्यक्तलज्जश्च मूत्रविष्ठानुलेपनः ॥ १४ ॥ याचमानश्चसलिलं शुष्ककण्ठोष्ठतालुकः ॥ चिन्तयानःस्ववित्तानि कस्यैतानिमृतेमयि ॥ १५ ॥ पञ्चावटानूखनमानःकालपाशेनकर्षितः ॥ म्रियतेपश्यतामेव गलेतुघुर्घुरायते ॥ १६ ॥ जीवस्तृणजलौकेवदेहाद्देहंविशेत्क्रमात् ॥ सम्प्राप्योत्तरमंशेन देहंत्यजतिपूर्वकम् ॥ १७ ॥ मरणात्प्रार्थनाद्दुःख

[illegible] बहुत फेंकता है ॥ १३ ॥ और खट्वा से भूमिको चाहता है व भूमिसे खट्वाको और फिर पृथ्वी की इच्छा करताहै व वसनहीन लज्जाको छोड़े [illegible] ॥ १४ ॥ और जलको मांगताहुआ व सूखे कण्ठ, ओंठ और तालुवाला पुरुष अपने धनोंको चिन्तन कररहाहै कि मेरे मरनेपर ये धन [illegible] से खींचाहुआ पांच गढ़ोंको खोदताहुआ वह मनुष्यों के देखतेहुये मरजाता है और गलेमें घुरघुर शब्द होता है ॥ १६ ॥ फिर [illegible] शरीर में क्रमसे पैठता है याने अंशसे अगले शरीर को प्राप्तहोकर पहली देहको त्याग देताहै ॥ १७ ॥ ज्ञानीपुरुषको [illegible] से पांच गढ़े से खुद जाते हैं ॥

मरने से मांगने में अधिक दुःख होताहै क्योंकि मरने में क्षणभर दुःख होताहै और याचना से कियाहुआ दुःख अनन्त होताहै ॥ १८ ॥ मैंने इस समय इसको जाना है इसी प्रकार दुःखकी परम्परा (शैली) है और सब रोगोंके मध्यमें भूंख रोगोंसे बहुत अधिक कहीगई है ॥ १९ ॥ और वह क्षुधा ओषधियों के लेपन से क्षणभर भी नहीं शान्तहोती है व क्षुधारूपी रोगकी पीड़ा बड़ी कठिन व सब पराक्रम को काटनेवाली है ॥ २० ॥ व उस क्षुधासे परास्त मनुष्य वैसेही मरजाता है जैसे कि अन्य रोगोंसे मरता है राजाको यह केवल अभिमानही होताहै कि मेरे घरमें यह वस्तु शोभित है ॥ २१ ॥ क्योंकि समस्त आभूषण भारकी नाईंहैं और सब विले-

मधिकंहिविवेकिनः ॥ क्षणिकंमरणेदुःखमनन्तंप्रार्थनाकृतम् ॥ १८ ॥ ज्ञानंमयेदमधुना इत्थंदुःखपरम्परा ॥ क्षुधाच सर्वरोगाणां व्याधिश्रेष्ठतमास्मृता ॥ १९ ॥ सानैवौषधिलेपेन क्षणमात्रंप्रशाम्यति ॥ क्षुद्व्याधिवेदनातीव्रा निःशेषबलकृन्तनी ॥ २० ॥ तयाभिभूतोम्रियते यथान्यैर्व्याधिभिर्नरः ॥ राज्ञोभिमानमात्रंहि ममैतद्राजतेगृहे ॥ २१ ॥ सर्वमाभरणंभारं सर्वमालेपनंमलम् ॥ सर्वंप्रलपितंगीतं नृत्यमुन्मत्तचेष्टितम् ॥ २२ ॥ इत्येवंराज्यसम्भोगैः कुतःसौख्यंविचारतः ॥ नृपाणांव्यग्रचित्तानामन्योन्यंविजिगीषया ॥ २३ ॥ प्रायेणश्रीमहालेपान्नहुषाद्यामहान्नृपाः ॥ स्वर्गंप्राप्यापि पतिताः कःश्रियाविन्दतेसुखम् ॥ २४ ॥ नरैःपुण्यफलंस्वर्गे मूलोच्छेदेनभुज्यते ॥ नचान्यत्क्रियतेकर्म्म सोत्रदोषस्सुदारुणः ॥ २५ ॥ छिन्नमूलस्तरुर्यद्वदवशःपतितिक्षितौ ॥ पुण्यमूलक्षयेतद्वद्वांपतन्तिदिवौकसः ॥ २६ ॥ इतिस्वर्गेपिदे

पन मलहैं व सब गान अनर्थक वचनहैं व नृत्य मतवाले का कर्महै ॥ २२ ॥ इस प्रकार विचारसे आपस में जीतकी इच्छा से विकल चित्तवाले राजाओं को राज्यके सुखोंसे किस कारण सुख होताहै ॥ २३ ॥ प्रायः लक्ष्मी के बड़े अहङ्कार से नहुषादिक बड़ेभारी राजालोग स्वर्गको प्राप्त होकर भी गिरपड़े तो भला लक्ष्मीसे कौन सुखको प्राप्तहोता है ॥ २४ ॥ स्वर्गमें मनुष्यों से स्वर्गका फल मूल याने इकट्ठा कियेहुये पुण्यके नाशसे भोगाजाता है और अन्यकर्म नहीं कियाजाता है वह बड़ा दारुण दुःख इस स्वर्गमें है ॥ २५ ॥ जैसे कटीहुई जड़वाला वृक्ष विवश होकर भूमिमें गिरपड़ता है वैसेही पुण्यरूपी मूलधनके नाश होनेपर स्वर्गीपुरुष पृथ्वी में

गिरपड़तेहैं ॥ २६॥ इसविचारसे स्वर्गमें देवताओंको भी सुख नहींहै वैसेही नरकी मनुष्योंका दुःख प्रसिद्धहीहै क्या कहाजावे ॥ २७ ॥ स्थावर प्राणियोंमें भी दावानल,
जाड़ा व शोषण,कुल्हाड़ीसे काटना और बकलोंका काटना ये बड़े दुःखहैं ॥२८ ॥और प्रचण्ड पवनसे पत्ते, शाखा व फलोंका गिराना और सदैव हाथियों तथा अन्य
देहधारियोंसे मर्दन करना येदुःखहैं ॥ २९ ॥ और सर्पोंको प्यास भूख तथा भयङ्करक्रोधका दुःखहै और संसारमें दुष्टोंको मारना व फँसरी से बांधना दुःखहै ॥ ३० ॥ हे
माता ! ऐसेही बार बार सर्प वृश्चिकोंको अचानकही जन्म मरण दुःख होताहै और वैसाही कीटादिकोंको दुःख होताहै ॥३१ ॥ और वर्षा,जाड़ा,व घामसे पशु,पक्षियों

वानां नास्तिसौख्यंविचारतः ॥ तथानरकिणांदुःखं प्रसिद्धंकिञ्चवर्ण्यते ॥ २७ ॥ स्थावरेष्वपिदुःखानि दावाग्निर्हिम
शोषणम् ॥ कुठाराच्छेदनन्तीव्रं वल्कलानाञ्चतक्षणम् ॥ २८ ॥ पर्णशाखाफलानाञ्च पातनंचण्डवायुना ॥ अपमर्द
श्चसततं गजैरन्यैश्चदेहिभिः ॥ २९ ॥ तृड्बुभुक्षाचसर्पाणां क्रोधदुःखञ्चदारुणम् ॥ दुष्टानांघातनंलोके पाशेनचनिब
न्धनम् ॥ ३० ॥ एवंसरीसृपाणाञ्च दुःखंमातर्मुहुर्मुहुः ॥ अकस्माज्जन्ममरणं कीटादीनांतथाविधम् ॥ ३१ ॥ वर्षशी
तातपैर्दुःखं सुकष्टंमृगपक्षिणाम् ॥ क्षुत्तृट्क्लेशेनमहता संत्रस्ताश्चसदामृगाः ॥ ३२ ॥ पशुनागनिकायानां शृणुदुःखा
नियानिच ॥ क्षुत्तृट्शीतादिसहनं वधबन्धनताडनम् ॥ ३३ ॥ भारोद्वहनसंक्लेशं शिक्षायुद्धादिपीडनम् ॥ आत्मयूथ
वियोगश्च वनानयनमादितः ॥ ३४ ॥ दुर्भिक्षंदुर्भगत्वञ्चमूर्खत्वञ्चदरिद्रता ॥ अधरोत्तरभावश्च मरणंराष्ट्रविप्लवः ॥
३५ ॥ अन्योन्याभिभवाद्दुःखमन्योन्यातिशयात्पुनः ॥ अनित्यताप्रभावाणामुच्छ्रायाणाञ्चपातनम् ॥ ३६ ॥ इत्येव

को दुःखहोता है व क्षुधा, प्यास के बडेभारी दुःख से पशु सदैव व्याकुल रहते हैं ॥ ३२ ॥ और पशुओं व हाथियों के समूहों को जो दुःखहोते हैं उनको सुनिये कि
क्षुधा, प्यासादिकका सहना और वध बन्धन व मारना ॥३३॥ और बोझलेजाने का दुःख व युद्धादिकों में पीड़ा और अपने यूथ से वियोग होना और जो वनसे ले
आना इत्यादिक है ॥३४॥ और दुर्भिक्ष, दुर्भाग्यता, मूर्खता, दरिद्रता व नीच या उच्चहोना, मरना और राज्यभंग होना ॥ ३५॥ और आपस में तिरस्कार से दुःख

फिर परस्पर में अधिकता से दुःख व अनित्य प्रभाववाले उच्चजनों का गिरना ॥ ३६ ॥ इत्यादिक के दुःखोंसे जिस लिये चराचर व्याप्तहै उसी कारण नरक से लगाकर मनुष्य पर्यंत सबको विद्वान् त्याग देवै ॥ ३७ ॥ जिस प्रकार एक कन्धे से दूसरे कन्धेपर जो भार आजाताहै उसको मनुष्य विश्राम मानताहै वैसेही संसारमे यह सब दुःख दुःखसे शान्त होताहै ॥ ३८ ॥ इसप्रकार परस्पर अधिकतामें स्थित इस सब संसारको दुःखसे विकल जानकर उत्तम निर्वेदको प्राप्तहोवै ॥ ३९ ॥ और निर्वेदसे विराग (स्नेहराहित्य) होताहै व विराग से ज्ञान उत्पन्न होताहै व ज्ञानसे उन परम विष्णुको जानकर मुक्तिको प्राप्तहोता है ॥ ४० ॥ हे माता ! मैं ऐसे संसार

माद्भिर्दुःखैर्यस्माद्व्याप्तंचराचरम् ॥ निरयादिमनुष्यान्तंतस्मात्सर्वंत्यजेद्बुधः ॥ ३७ ॥ स्कन्धात्स्कन्धंचयद्भारं वि श्रामंमन्यतेयथा ॥ तद्वत्सर्वमिदंलोके दुःखंदुःखेनशाम्यति ॥ ३८ ॥ एवमेतज्जगत्सर्वमन्योन्यातिशयस्थितम् ॥ दुःखैराकुलितंज्ञात्वा निर्वेदंपरमाव्रजेत् ॥ ३९ ॥ निर्वेदाच्चविरागःस्याद्विरागाज्ज्ञानसम्भवः ॥ ज्ञानेनतम्परंज्ञात्वा वि ष्णुंमुक्तिमवाप्नुयात् ॥ ४० ॥ नाहमेतादृशेलोके रमेयंजननिकचित् ॥ राजहंसोयथाशुद्धः काकामेध्यप्रदेशके ॥४१॥ शृणुमातर्यत्रसंस्थो रमेयंनिरुपद्रवः ॥ अविद्यावनमत्युग्रं नानाकर्म्मातिशाखिमत् ॥ ४२ ॥ सङ्कल्पदंशमशकं शोक हर्षहिमातपम् ॥ मोहान्धकारतिमिरं लोभव्यालसरीसृपम् ॥ ४३ ॥ विषयानल्पकाध्वानं कामक्रोधविशोधकम् ॥ तदतीत्यमहादुःखं प्रविष्टोस्मिमहद्वनम् ॥ ४४ ॥ नतत्प्रविश्यशोचन्ति नप्रहृष्यन्तितद्विदः ॥ नचबिभ्यतिकेषांचि

म कहीं नहीं रमूंगा जैसे कि राजहंस कौवोंवाले अशुद्ध देशमें नहीं रमताहै ॥ ४१ ॥ हे माता ! सुनिये कि जहांपर मैं उपद्रवरहित होकर रमण करूंगा कि अनेक प्रकार के कर्मरूपी बडे वृक्षोंवाला जो बड़ाकराल अविद्या (माया) का वनहै ॥४२॥ और जो वन कि संकल्परूपी मच्छड़ व डासोंवाला शोक हर्षरूपी जाड न घामवाला और मोहसे अज्ञानरूपी अन्धकारवाला व लोभरूपी सर्प, बिच्छूवाला है ॥ ४३॥ और विषयरूपी बहुत मार्गोंवाला, काम क्रोधरूपी विशोधकोंवालाहै उस बडे दुःखों वाले वनको नाघकर मैं बडेभारी वनमें पैठाहू ॥ ४४ ॥ उस वनके जाननेवाले मनुष्य उसमें पैठकर न शोचते हैं और न प्रसन्न होंते है और न किसीको डरतेहैं व कोई

उनसे भी नहीं डरतेहैं ॥ ४५॥ उस वनमें सात बड़ेभारी वृक्षहैं और सातही शाखाहैं व सात फलहैं और सात आश्रम व सात समाधियां और सातदीक्षा (मन्त्र) हैं यह
वनका रूपहै ॥ ४६ ॥ और दिव्य फूल व फल कोई पंचरंगे और कोई चार रंगके हैं व कोई तीन, दो व एकही रंगवाले हैं ॥ ४७ ॥ ऐसे फूलों व फलोंको पैदा करते
हुये वृक्ष वहां व्याप्तहोकर उस वनमें स्थित हैं ॥ ४८ ॥ और उसमें सात पतिव्रता स्त्रियां बसती हैं जोकि किरणोंवाली हैं और प्रजाओं से ऊपर रसोंको खीचती हैं
उन सबोंको यथार्थ से कोई नहीं जानताहै ॥ ४९॥ और इन वनमें सातही पर्वतहैं कि जिनसे त्रिलोक धारण कियागया है व सातही नद और नदियां हैं कि जिन

नचबिभ्यतिकेचन ॥ ४५ ॥ तस्मिन्वनेसप्तमहाद्रुमास्तु सप्तैवशाखाश्चफलानिसप्त ॥ सप्ताश्रमास्सप्तसमाधयश्च दी-
क्षाश्चसप्तैतदरण्यरूपम् ॥ ४६ ॥ पञ्चवर्णानिदिव्यानि चतुर्वर्णानिकानिचित ॥ त्रिद्विचैवैकवर्णानि पुष्पाणिचफला
निच ॥ ४७ ॥ सृजन्तःपादपास्तत्र व्याप्यतिष्ठन्तितद्वनम् ॥ ४८ ॥ सप्तस्त्रियस्तत्रवसन्तिसत्यस्त्ववाङ्मुखाभानुमती
र्भवन्ति ॥ ऊर्ध्वंरसानाददतेप्रजाभ्यस्सर्वानतास्तत्त्वतःकोपिवेद ॥ ४९ ॥ सप्तैवगिरयश्चात्र धृतंयैर्भुवनत्रयम् ॥ नदा
श्चसरितस्सप्त ब्रह्मवारिवहास्सदा ॥ ५० ॥ तेजश्चाभयदातृत्वमद्रोहःकौशलंतथा ॥ अचापल्यंतथाक्रोधः प्रियवाद
श्चसप्तमः ॥ ५१ ॥ इत्येतेगिरयोज्ञेयास्तस्मिन्विद्यावनेस्थिताः ॥ सुनिश्चयस्तथासर्वैः समतानिग्रहोगुणः ॥ ५२ ॥ नि
र्ममत्वंतपश्चात्र सन्तोषस्सप्तमोह्रदः ॥ भगवद्गुणविज्ञानाद्भक्तिःस्यात्प्रथमानदी ॥ ५३ ॥ वैराग्यंममतात्यागस्तथेशा
राधनंसदा ॥ ईशार्पणंपञ्चमीस्यात् षष्ठीब्रह्मैकतामता ॥ ५४ ॥ सिद्धिश्चसप्तमीप्रोक्ता सप्तनद्योत्रसप्तयाः ॥ ५५ ॥ न

में सदैव ब्रह्मरूप जल बहता है ॥ ५० ॥ तेज व अभय देना, अद्रोह, निपुणता, अचंचलता, अक्रोध और सातवां प्रिय कहना ॥ ५१ ॥ उस विद्यावन में स्थित
ये पर्वत जाननेयोग्य हैं व दृढ निश्चय, सबोंमे समता, इन्द्रियों को रोकना, गुण ॥ ५२ ॥ व ममत्वहीनता, तपस्या व सन्तोष इस वनमें सातवां कुण्डहै और भग-
वान्के गुणोंके ज्ञानसे भक्तिहोना पहली नदी है ॥५३॥ और वैराग्य, ममताका त्याग व सदैव परमेश्वरका आराधन करना और ईश्वर में कर्मोंका समर्पण करना पांचवीं
नदी है व छठी नदी ब्रह्ममें एक होजाना मानीगई है ॥ ५४ ॥ और सातवीं सिद्धि कहीगई है इस वनमें जो सात नदियां कहीगई हैं वे यही सातौंहैं ॥ ५५ ॥ और

नदियों का सङ्गम वहां वैकुण्ठ के समीप है जिससे कि आत्मा में तृप्त, शान्त व इन्द्रियोंको जीतेहुये मनुष्य परेसेभीपरे स्थानको प्राप्तहोते हैं॥ ५६ ॥ कोई वृक्षोंको कोई स्त्रियोंको कोई पर्वतोंको और कोई नदोंको और कोई श्रेष्ठ ज्ञानियोंने उन सातों नदियोंको कहाहै ॥५७॥ व्रत न छूटनेकी कामनावाला मैं इसी विद्यारूप वनमें ब्रह्मचर्य करताहूं उसमें ब्रह्महो समिधा है ब्रह्महो अग्नि व ब्रह्महो यज्ञहै ॥ ५८ ॥ जल ब्रह्म है व गुरु ब्रह्महै यही मेरा ब्रह्मचर्य है विद्वानोंने ऐसे इसी सूक्ष्म ब्रह्मचर्य को कहा है ॥ ५९ ॥ हे माता ! मेरे गुरुको सुनिये कि जो मुझको विद्यादायक हुआहै ॥ ६० ॥ एकही शिक्षक है दूसरा सिखलानेवाला नहीं है हृदयही मे टिकाहुआ शिक्षक

दीनांसङ्गमस्तत्र वैकुण्ठसमुपह्वरे ॥ आत्मतृप्तायतोयान्तिशान्तादान्ताःपरात्परम् ॥ ५६ ॥ केचिद्द्रुमान्स्त्रियःकेचित् गिरीन्केचिन्नदान्परे ॥ सरितःकेचिदाहुस्ताःसप्तैवज्ञानवित्तमाः ॥ ५७ ॥ अपेतव्रतकामोत्र ब्रह्मचर्यञ्चरामिच ॥ ब्रह्मैव समिधस्तत्र ब्रह्माग्निर्ब्रह्मसंस्तरः ॥ ५८ ॥ आपोब्रह्मगुरुर्ब्रह्मब्रह्मचर्यामिदंमम ॥ एतदेवेदृशंसूक्ष्मं ब्रह्मचर्यंविदुर्बुधाः ॥ ५९ ॥ गुरुञ्चश्रृणुमेमातर्योमेविद्याप्रदोभवत् ॥ ६० ॥ एकःशास्तानद्वितीयोऽस्तिशास्ता हृद्येवतिष्ठन्पुरुषःशास्तिशास्ता ॥ तेनाभियुक्तःप्रस्रवणादिवोदकं यथानियुक्तोस्मितथाचरामि ॥ ६१ ॥ एकोगुरुर्नास्तिततोद्वितीयो योहृद्गतस्तमहंवैनमामि ॥ यञ्चावमन्यैवगुरुंमुकुन्दंपराभूतादानवास्सर्वएव ॥ ६२ ॥ एकोबन्धुर्नास्तिततोद्वितीयो योहृद्गतस्तमहंवैनमामि ॥ तेनानुशिष्टाबान्धवाबन्धुमन्तः सप्तर्षयस्सप्तदिविप्रभान्ति ॥ ६३ ॥ ब्रह्मचर्यञ्चसंसेव्यं गार्हस्थ्यंश्रृणुयादृशम् ॥ पत्नीप्रकृतिरूपामे तच्चित्तोनास्मिकर्हिचित् ॥ ६४ ॥ मच्चित्तासासदामातर्ममसर्वार्थसाधनी ॥ घ्राणंजिह्वाच

पुरुष शिक्षा देताहै झरना से जलकी नाई उससे युक्त मैं जैसा नियुक्त कियागयाहूं वैसाही करताहूं ॥ ६१ ॥ एकही गुरुहै उससे दूसरा नहीं है जोकि हृदय में प्राप्तहै उसको मैं प्रणाम करताहूं कि जिन मुकुन्द गुरुको अपमानकर सबही दानव पराभव को प्राप्तहुये हैं ॥ ६२ ॥ वह एकही बन्धुहै उससे दूसरा नहीं है जोकि हृदय में प्राप्तहै उसको मैं प्रणाम करताहूं और उनसे सिखलायेहुये बन्धुमान् सात सप्तर्षि भाई स्वर्गमें शोभित हैं ॥ ६३ ॥ ब्रह्मचर्य भलीभांति सेवनेके योग्यहै और जिस प्रकारकी गृहस्थी है उसको सुनिये कि प्रकृतिरूपी मेरी स्त्री है मैं कभी उसमें चित्त नहीं लगाता हूं ॥ ६४ ॥ व हे माता ! मेरे समस्त अर्थोंको साधनेवाली वह

सदैव मुझमें चित्त लगाये रहती है और नासिका, जिह्वा, नेत्र, त्वचा व पांचवां कान ॥ ६५ ॥ और मन व बुद्धि ये सात अग्नियां मेरे जलती हैं और गन्ध, रस,
रूप, शब्द और पांचवां स्पर्श ॥ ६६ ॥ माननेयोग्य व जाननेयोग्य ये सात समिधा मानीगई हैं याने उपर्युक्त क्रमसे एक एक अग्निमें एक, एक यह समिधा
जलती है और हवन करनेवाला नारायण (जीव) है और ध्यानसे आपही नारायण भोग करताहै ॥ ६७ ॥ ऐसे यज्ञसे इस वनमें मैं उस ईश्वर को पूजताहूं ॥
६८ ॥ सब कामोंको न चाहते और सब दोषोंसे द्वेष न करतेहुये मेरे स्वभावों में लेप आसक्त होना नहीं होताहै जैसे कि जलके बूंदका लेप कमल के पत्तोंमें नहीं

**चक्षुश्च त्वक्चश्रोत्रचपञ्चमम् ॥ ६५ ॥ मनोबुद्धिश्चसप्तैते दीप्यन्तेपावकाममम ॥ गन्धोरसश्चरूपंच शब्दःस्पर्शश्चपञ्च
मः॥ ६६॥ मन्तव्यमथबोद्धव्यं सप्तैताःसमिधोमताः ॥ होतानारायणोध्यानाद्भुङ्क्तेनारायणःस्वयम् ॥ ६७॥ एवंविधेन
यज्ञेन यजाम्यस्मिंस्तमीश्वरम् ॥ ६८ ॥ अकामयानस्यचसर्वकामान्नविद्विषाणस्यचसर्वदोषान् ॥ नमेस्वभावेषुभव
न्तिलेपास्तोयस्यबिन्दोरिवपुष्करेषु ॥ ६९ ॥ नित्यस्यमेनैवभवन्त्यनित्या निरीक्षमाणस्यबहुस्वभावान् ॥ नसज्ज
तेकर्म्मसुभोगजालं दिवीवसूर्य्यस्यमयूखजालम् ॥ ७० ॥ एवंविधेनपुत्रेण मातर्मादुःखिनीभव ॥ तत्पदंत्वाञ्चनेष्या
मि नचक्रतुशतैरपि ॥ ७१ ॥ इतिपुत्रवचःश्रुत्वा विस्मिताचेतराभवत ॥ चिन्तयामासयद्येवं विद्वान्ममसुतोदृढम् ॥
७२ ॥ लोकेषुख्यातिमायाति ततोमेस्याद्यशःपरम् ॥ इत्यादिचिन्तयन्त्याञ्च जनन्यांभगवान्हरिः ॥ ७३ ॥ प्र.
हृष्टस्तस्यतैर्वाक्यैर्विस्मितःप्रादुरासत ॥ मूर्त्तेःस्वयंविनिष्क्रम्यशङ्खचक्रगदाधरः ॥ ७४ ॥ जगदुद्भासयद्भासा सूर्यको**

होताहै ॥ ६९ ॥ बहुत स्वभावों को देखते हुये मुझ नित्यके कार्य अनित्य (नाश) नहीं होतेहैं और मेरे भोगका समूह कर्मोंमें नहीं संग करताहै जैसे कि सूर्यकी कि-
रणोंका समूह आकाश में नहीं लगता है ॥ ७० ॥ हे माता ! मुझ ऐसे पुत्र से तुम मत दुःखी होवो क्योंकि मैं तुमको उस स्थान पै प्राप्तकरूंगा। जोकि सैकड़ों यज्ञों
से भी नहीं मिलता है ॥ ७१ ॥ यह पुत्रके वचन सुनकर इतरा विस्मय में प्राप्तहुई व उसने चिन्तन किया कि यदि ऐसा मेरा पुत्र दृढ़ विद्वान्है ॥ ७२ ॥ तो लोकमें प्रसिद्धि-
को प्राप्तहोगा तदनन्तर मेरा उत्तम यशहोवैगा। माताके इत्यादिक चिन्तन करने पर भगवान् विष्णुजी ॥७३॥ उसकी उन वाक्योंसे प्रसन्न होकर मूर्त्तिसे निकलकर

विस्मय में प्राप्त आपही शङ्ख,चक्र व गदाको धारणकर प्रकटहुये ॥ ७४ ॥ और करोड सूर्यों के समान प्रकाशवान् विष्णुजी ने दीप्तिसे संसारको प्रकाशित करदिया तदनन्तर पृथ्वीमें गिरकर प्रसन्न रोमोंवाले बुद्धिमान् ऐतरेयजी ने गद्गदवचन होकर मस्तक पै अञ्जलिको बाधकर स्तुतिकिया कि तुम वासुदेव भगवान्के लिये नमस्कार है मैं आपका ध्यान करताहूं ॥ ७५ । ७६ ॥ व प्रद्युम्नके लिये व अनिरुद्ध के लिये नमस्कार है और संकर्षण के लिये नमस्कार है व विज्ञानमात्र के लिये और परमानन्द मूर्त्तिके लिये प्रणाम है ॥ ७७ ॥ व आत्माराम याने अपनाही में रमनेवाले व शान्त और निवृत्त भेददृष्टिवाले के लिये नमस्कारहै और आत्मानन्द के अनुभवही से भलीभाति छोडीहुई विषयवासना की ऊर्मियोंवाले के लिये नमस्कार है ॥ ७८ ॥ हृषीकेश (इन्द्रियों के स्वामी) के लिये व महान् तथा

टिसमप्रभः ॥ ततोनिपत्यधरणीं हृष्टरोमाश्रुगद्गदः ॥ ७५ ॥ मूर्द्धिबद्ध्वाञ्जलिंधीमानैतरेयोऽथतुष्टुवे ॥ ॐनमस्तुभ्यं भगवते वासुदेवायधीमहि ॥ ७६ ॥ प्रद्युम्नायानिरुद्धाय नमःसङ्कर्षणायच ॥ नमोविज्ञानमात्राय परमानन्दमूर्त्तये ॥ ७७ ॥ आत्मारामायशान्ताय निवृत्तद्वैतदृष्टये ॥ आत्मानन्दानुभूत्यैव सम्यक्त्यक्तोर्मयेनमः ॥ ७८ ॥ हृषीकेशायमह तेनमस्तेनन्तशक्तये ॥ वचस्युपरतेप्राप्यो विरामेमनसासह ॥ ७९ ॥ अनामरूपश्चिन्मात्रस्सोऽव्यान्नस्सदसत्परः ॥ च तुर्भिश्चत्रिभिर्द्वाभ्यामेकधाप्रणमामितम् ॥ ८० ॥ पूर्वापरापरयुगे शास्तारंपरमेश्वरम् ॥ हित्वागतिंमोक्षकामा यम्भ जन्तिदशात्मकम् ॥ ८१ ॥ तम्परंसत्यममलं त्वांवयंपर्युपास्महे ॥ ८२ ॥ ॐनमोभगवतेमहापुरुषाय महानुभावायम हाविभूतिपतये सकलसात्वतनिकरकरकमलकुड्मललालितचरणारविन्दयुगलपरमपरमेष्ठिन्नमस्ते ॥ ८३ ॥ तवा

अनन्तशक्तिवाले आपके लिये नमस्कारहै मन समेत वचन के शान्त होनेपर आप मिलनेयोग्य हैं ॥ ७९ ॥ सदसत् (कार्यकारण) से परे जो अनाम अरूप चैतन्यमात्रहै वह हमारी रक्षाकरै चार, तीन, दो समेत एक प्रकार याने दशात्मक उन विष्णुको मैं प्रणाम करताहूं ॥ ८० ॥ पूर्व, पर व अन्य युगमें आज्ञा करनेवाले जिन दशात्मक ईश्वरको मोक्ष चाहनेवाले पुरुष अन्यगतिको छोड़कर भजते हैं ॥ ८१ ॥ उन सत्य, पर, निर्मल तुमको हमलोग उपासना करते हैं ॥ ८२ ॥ हे समस्त देवता या भक्तसमूहों के करकमलकलियों से दुलरायेहुये चरण कमल युगलवाले परम परमेष्ठिन् ! आपके लिये नमस्कार है व महापुरुष महानुभाववाले तथा महाविभूतियो

के स्वामी व ऐश्वर्यवान् आपके लिये नमस्कार है ॥ ८३ ॥ अग्नि तुम्हारा मुखहै व पृथ्वी दोनों चरण हैं, आकाश शिर है और चन्द्रमा, सूर्य नेत्रहैं व समस्त लोक
आपका शरीर है और चारों दिशायें आपकी भुजाहैं हे भगवन् ! आपके लिये नमस्कार है ॥ ८४ ॥ हे स्तुति करनेयोग्य, नाथ ! सब समयमें सब समुद्रों में भी
उतने जल नहीं हैं जितने कि इस भयङ्कर संसाररूपी महासमुद्र में मुझसे प्राणी हुयेहैं ॥ ८५ ॥ हे ईश ! हिमाचल, महेन्द्र कैलास व सुमेरु आदिकों में वैसी शिलाओं
की सम्पत्ति नहीं है जैसी कि अनेकों देहोंको ग्रहण करतेहुये मेरे बड़ीभारी सम्पत्तिहै ॥८६॥ हे देव ! भूमिमें वे देश नहीं हैं कि जिनमें मैं नहीं पैदाहुआ हूं और न स्थित

ग्निरास्यंवसुधाङ्घ्रियुग्मं नभःशिरश्चन्द्ररवीचनेत्रे ॥ समस्तलोकास्तुवपुर्भुजाश्च दिशश्चतस्रोभगवन्नमस्ते ॥ ८४ ॥ न
सन्तितावन्तिजलान्यपीड्य सर्वेषुनाथाब्धिषुसर्वकालम् ॥ भूतानियावन्तिमयात्रभीमे यातानिसंसारमहासमुद्रे ॥८५॥
सम्पच्छिलानांहिमवन्महेन्द्रकैलासमेर्वादिषुनैवताहक् ॥ देहान्यनेकानितुगृह्णतोमे प्राप्तासिसंपन्महतांयथेश ॥८६॥
नसन्तितेदेवभुविप्रदेशा नयेषुजातोस्मितथानिविष्टः ॥ अतोमयायेषुनजन्तवश्च सम्भक्षितोवानचभूतसङ्घैः ॥ ८७ ॥
शोकाभिभूतस्यममाशुदेव यावत्प्रमाणंपतितंभवेतु ॥ तावत्प्रमाणंनजलंपयोदामुञ्चन्तिदिव्यैरपिवर्षलक्षैः ॥८८॥ म
न्येधरित्रीपरमाणुसंख्यामुपैतिपित्रोर्गणनाचमह्यम् ॥ मित्राण्यमित्राणिनुजीवबन्धून् संख्यातुमीशोऽस्मिनदेवदेव ॥
८९ ॥ त्वय्यर्पितन्नाथपुनःपुनर्मे मनस्समाक्षिप्यसुदुर्द्धरारिम् ॥ कामोवशंक्रोधमुखैस्सहायैः करोतिकिन्तद्भगवान्क
रोमि ॥ ९० ॥ सोहंभृशार्तःकरुणांकुरुत्वं संसारगर्त्तेपतितस्यविष्णो ॥ महात्मनांसंश्रयमभ्युपेतो नैवावसीदत्यपिदु

हुआहूं और जिनमें जन्तु न भक्षण कियेगये हों और भूतसमूहोंसे मैं नहीं भक्षणहुआहूं ॥ ८७ ॥ हे देव ! शोकसे तिरस्कृत मेरे जितने संख्यक आंसू संसार में गिरतेहैं
उतनी प्रमाणभर जलको मेघ देवताओंवाले लाखवर्षोंसे भी नहीं छोड़ते हैं ॥ ८८ ॥ हे देवदेव ! मेरे माता पिताओं की गणना पृथ्वी के परमाणुओं की संख्याको
प्राप्तहोती है मैं यह मानताहूं और इस जीवके बन्धुवों तथा मित्रों और शत्रुओं की गणना करने के लिये मैं नहीं समर्थ हूं ॥ ८९ ॥ हे नाथ, भगवन् ! तुम में अर्पण
कियेहुये मेरे बड़े कठिन, शत्रुरूप मनको क्रोधआदिक सहायों करके काम खींचकर वशमें करता है इसलिये मैं क्या करूं ॥ ९० ॥ सो मैं बहुतही दुःखीहूं हे विष्णो !

संसाररूपी गढ़ेमें गिरेहुये मेरे ऊपर आप कृपा कीजिये क्योंकि अत्यन्त दुर्गति में प्राप्तभी मनुष्य महात्माओं के आश्रय में प्राप्तहोकर क्लेशको नहीं प्राप्त होता है ॥ ९१ ॥ रोगी मनुष्योंकी शरण वैद्यहै और महासमुद्र के बीचमें डूबतेहुये पुरुष की शरण नौका होतीहै और बालक की शरण माता पिताहैं व हे हरे ! संसार में दुःखित मनुष्यकी शरण एक आपहीहो ॥ ९२ ॥ हे सर्वेश्वर, सर्वभूत व सबके कारण, परमार्थरूप साराशवाले ! आप इस बड़े दुःखसमूहोंवाले संसाररूपी गढ़ेसे अपने ग्रहण करनेसे मुझको ऊपर निकालिये ॥ ९३ ॥ हे उरुक्रम, अच्युत ! क्षुधा,प्यास व तीन धातुओं से बार २ दुःखित व जाड़ा, गरमी तथा वर्षा व अन्य अन्य

गतोपि ॥ ९१ ॥ परायणंरोगवतांहिवैद्यो महाब्धिमग्नस्यचनौर्नरस्य ॥ बालस्यमातापितरौचघोरसंसारखिन्नस्यह रेस्त्वमेकः ॥ ९२ ॥ प्रसीदसर्वेश्वरसर्वभूत सर्वस्यहेतोपरमार्थसार ॥ मामुद्धरास्माद्गुरुदुःखसङ्घातसंसारगर्त्तात्स्वपरिग्र हेण ॥ ९३ ॥ क्षुत्तृट्त्रिधातुभिरिमंमुहुरर्द्यमानं शीतोष्णवातवर्षैरितरेतराच्च॥ कामाग्निनाच्युतरुषाचसुदुर्भरेण सम्प श्यतोमनउरुक्रमदुःखितंमे ॥ ९४ ॥ भवन्तुभद्राणिसमस्तदोषाः प्रयान्तुनाशंजगतोखिलस्य ॥ मयाद्यशक्त्यापरमे श्वरेप्रभौ स्तुतेजगद्धातरिवासुदेवे ॥ ९५ ॥ येभूतलेयेदिवियेन्तरिक्षे रसातलेप्राणिगणाश्चकेचित् ॥ भवन्तुतेसिद्धियु जोमयाद्यस्तुतेजगद्धातरिवासुदेवे ॥ ९६ ॥ शृण्वन्तियेमेपठतस्तथान्ये पश्यन्तियेमामिदमीरयन्तम् ॥ देवासुरा मानुजास्तिरश्चो भवन्तुतेप्यच्युतज्ञानभाजः ॥ ९७ ॥ येचापिमूकाविकलेन्द्रियाश्चशृण्वन्तिनोनैवविलोकयन्ति ॥ प

कारणों और दुःखसे पूर्ण होनेवाली कामाग्नि व क्रोधसे क्लेशित इस संसार को देखतेहुये मेरा मन दुःखी होताहै ॥ ९४ ॥ आज शक्तिसमेत व संसारके धरनेवाले परमेश्वर वासुदेव स्वामीको मेरे स्तुति करनेपर समस्त संसार के कल्याण होवें व सब दोष नाशको प्राप्तहोवें ॥ ९५ ॥ जो भूतल मे और जो स्वर्गमे व जो आकाश में तथा जो कोई प्राणियों के गण रसातलमें हैं वे आज संसार के धारनेवाले वासुदेवको मेरे स्तुति करनेपर सिद्धिसे युक्तहोवैं ॥ ९६ ॥ पढ़तेहुये मेरे इस स्तोत्रको जो सुनते हैं और अन्य जो पुरुष इसको कहतेहुये मुझको देखते हैं वे देव, दैत्यादिक व मनुष्य और पक्षीआदिक विष्णुजीके ज्ञानके भागी होवैं ॥ ९७ ॥ और जो

गूँगे व विकल इन्द्रियोंवाले पशुआदिक तथा कीड़े व चींटी आदि जीव न सुनते हैं न देखते हैं वे भी विष्णुजीके ज्ञानके भागीहोवैं ॥ ९८ ॥ और संसारमें दुःख नाश हो-
जावै व प्रजाओं से लोभादि दोषोंका गण जाता रहै जैसे अपने शरीरमें भाईमें और पुत्रमें भाव होता है वैसेही मनुष्यका भाव समस्तजन में भी होवै ॥ ९९ ॥ समस्त
दोषोंके नाश करनेमें चतुर व आनन्द के हेतुभूत तथा संसारके वैद्य विष्णुजी के हृदय में टिकनेपर समस्त मनुष्यों के संसारवाले बन्धन ढीले होजावैं ॥ २०० ॥
संसारके धारनेवाले वासुदेवजी के स्मरण करनेपर मेरा जो मानसपाप होवै और जो वाणीसे करताहूं व कियाहुआ जो शरीरवाला पापहै वह नाश होजावै ॥ १ ॥

श्वादयःकीटपिपीलिकाद्या भवन्तुतेप्यच्युतयोगभाजः ॥ ९८ ॥ नश्यन्तुदुःखानिजगत्यपैतुलोभादिकोदोषगणःप्रजा
भ्यः ॥ यथात्मनिभ्रातरिचात्मजेषु तथानरस्यास्तुजनेपिभावः ॥ ९९ ॥ संसारवैद्येखिलदोषहानिविचक्षणेनिर्वृतिहे
तुभूते ॥ संसारबन्धाःशिथिलीभवन्तुहृदिस्थितेसर्वजनस्यविष्णौ ॥ २०० ॥ पापंप्रणाशंममचप्रयातु यन्मानसंयच्चक
रोमिवाचा ॥ शारीरमप्याचरितंचयन्मे स्मृतेजगद्धातरिवासुदेवे ॥ १ ॥ यथाहिमोवासुदेवेतिप्रोक्ते सङ्कीर्त्तनेविष्णुभक्त
स्यचापि ॥ स्मृतेहरौवापिप्रयातिपापं सत्येनमेनश्यतान्तेनपापम् ॥ २ ॥ मूढोयमल्पमतिरल्पविचेष्टितोयं क्लिष्टंम
नोस्यविषयैर्मयिनप्रसङ्गि ॥ इत्थंकृपांकुरुमयिप्रणतेखिलेशत्वांस्तोतुमम्बुजभवोपिहिदेवनेशः ॥ ३ ॥ सत्वंप्रसीदभग
वन्कुरुमय्यनाथे विष्णोकृपांपरमकारुणिकःकिलत्वम् ॥ संसारसागरनिमग्नमनन्तदीनमुद्धर्त्तुमर्हसिहरेपुरुषोत्तमो

जिस प्रकार हे वासुदेव ! ऐसा कहनेपर व विष्णुभक्त के कीर्तन करने और विष्णु जीको स्मरण करनेपर पाप चलाजाताहै उसी सत्यसे मेरा पाप नाश होजावै ॥ २ ॥
[illegible] ! आप प्रणाम कियेहुये मेरे ऊपर इस कारणसे दया कीजिये कि यह मूढ़ (अज्ञानी) है व थोड़ी बुद्धिवाला और थोड़े व्यापारवाला है और विषयोंसे
[illegible] मन मुझमें नहीं लगाहै हे देव ! तुम्हारी स्तुति करने के लिये कमल से उपजेहुये ब्रह्माभी नहीं समर्थ हैं ॥ ३ ॥ हे भगवन् ! सो तुम प्रसन्नहोवो हे
[illegible] ऊपर आप दयाकीजिये क्योंकि प्रसिद्धमें तुम बड़े दयालुहो हे हरे ! तुम पुरुषोत्तमहो इससे संसाररूपी सागरमें डूबतेहुये व बहुत दुःखी मुझको

उद्धारनेके योग्यहो॥ ४ ॥ हे अर्जुन ! इस प्रकार स्तुति कियेहुये बड़े शरीरवाले वे वासुदेव भगवान् आनन्दपूर्वक उससे यह बोले ॥ ५ ॥ कि हे वत्स, ऐतरेय ! भक्ति पूर्वक इस स्तुतिमे मैं प्रसन्नहूं तुम मुझसे उस दुर्लभ वरदान को मांगो जोकि प्रियहो ॥ ६ ॥ ऐतरेयजी बोले कि हे नाथ ! मुझको यही वरदान नित्य प्यारा है कि हे हरे ! भयङ्कर संसाररूपी समुद्र में डूबतेहुये मेरेलिये आप कर्णधार (खेवैया) होवो ॥ ७ ॥ वासुदेवजी बोले कि जिनके तुम्हारे ऐमी भक्तिहै वे तुम संसार से मुक्तहीहो और महाग्रहों समेत तेरह ग्रहों से तुम्हारा बन्धन न होगा ॥ ८ ॥ और गुप्तक्षेत्र में टिकेहुये मुझ वासुदेव को जो सदैव इस स्तोत्रसे स्तुति करैगा उसके पाप

सि ॥ ४ ॥ इत्थंस्तुतस्सभगवानैतरेयेणभारत ॥ वासुदेवोविशालात्मा सानन्दमिदमाहतम् ॥ ५ ॥ वत्सैतरेयतुष्टो स्मि भक्त्यानेनस्तवेनते ॥ वरंवृणुष्वत्वंमत्तो दुर्लभंयदभीप्सितम् ॥ ६ ॥ ऐतरेयउवाच ॥ एषएववरोनाथ ममानित्य मभीप्सितः ॥ मज्जतोघोरसंसारे कर्णधारोहरेभव ॥ ७ ॥ वासुदेवउवाच ॥ मुक्तएवासिसंसाराद्यस्यतेभक्तिरीदृशी ॥ ग्रहैर्म्महाग्रहैर्बन्धो नैवतेस्यात्त्रयोदशैः ॥ ८ ॥ यश्चस्तोत्रेणसततं गुप्तक्षेत्रसमास्थितम् ॥ स्तोष्यतेवासुदेवंमां सपापक्ष यमाप्स्यति ॥ ९ ॥ यस्मादनेनस्तोत्रेण पापंनाशमवाप्स्यति ॥ अघनाशनमित्येव तस्मात्ख्यातिमवाप्स्यति ॥१०॥ एकादश्यामुपोष्यैव ममाग्रेयःपठिष्यति ॥ स्तवमेनंसपूतात्मा ममलोकमवाप्स्यते ॥ ११ ॥ सर्वेषामेवक्षेत्राणां गुप्तक्षे त्रंप्रियंयथा ॥ तथासर्वस्तवानाञ्चस्तवोयंसुप्रियोमम ॥ १२ ॥ यानिचोद्दिश्यभूतानि जप्यतेसौमहात्मभिः ॥ तानिशा न्तिभगंप्रज्ञां प्राप्स्यन्तिकृपयाममम ॥ १३ ॥ त्वञ्चवत्सश्रौतधर्मान्सम्यगाचरश्रद्धया ॥ नतैर्बन्धमपिन्यस्तैराप्स्यस्य

नाश होजावैंगे ॥ ९ ॥ जिसलिये कि इस स्तोत्रसे पाप नाशको प्राप्तहोगा उसीकारण यह अघनाशन ऐसी प्रसिद्धिको प्राप्तहोगा ॥ १० ॥ और एकादशीमें उपासकर जो मनुष्य मेरे आगे इस स्तोत्रको पढ़ैगा वह पवित्र मनवाला पुरुष मेरे लोकको प्राप्तहोगा ॥ ११ ॥ सबही क्षेत्रोंके मध्यमें जैसे गुप्तक्षेत्र प्रियहै वैसेही सब स्तोत्रोंके मध्य में मुझको यह स्तोत्र प्याराहै ॥ १२ ॥ और जिन प्राणियोंका उद्देशकर यह स्तोत्र महात्माओंसे जपाजाता है वे शान्ति, ऐश्वर्य व बुद्धिको मेरी दयासे पातेहै ॥ १३ ॥

हे वत्स ! तुम श्रद्धासे वेदवाले धर्मों को भलीभांति करो मुझमें अर्पण कियेहुये उन फलरहित धर्मों से तुम बन्धन को न प्राप्तहोगे ॥ १४ ॥ यज्ञोंसे पूजन
करो व स्त्रीको प्राप्तहोकर माताको प्रसन्नकरो और मुझमें तीव्रध्यानसे निस्सन्देह मुझको प्राप्तहोगे ॥ १५ ॥ बुद्धि, मन, अहङ्कार व ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय इन तेरह
ग्रहों से जो संयुक्त हैं वेही तेरह महाग्रह हैं ॥ १६ ॥ याने जानना, मानना, अहङ्कार होना, शब्द, स्पर्श, रस, रूप, गन्ध व वचन कहना, ग्रहण करना, गमन, मल
त्याग व रतिका आनन्द ये तेरह महाग्रह हैं ॥ १७ ॥ हे पुत्र ! इन महाग्रहों को जानकर अपने शुद्धग्रहों से ध्यान योगकरके मुझको ग्रहण करो तो इस

**नभिसन्धितैः ॥ १४ ॥ यजयज्ञैरवाप्यैव दारान्नन्दयमातरम् ॥ मयिध्यानेनतीव्रेण मामेवाप्स्यस्यसंशयम् ॥ १५ ॥ बु
द्धिर्मनोप्यहङ्कारो बुद्धिकर्मेन्द्रियैरिह ॥ त्रयोदशग्रहैर्यैस्युस्त्रयोदशमहाग्रहाः ॥ १६ ॥ बोद्धव्यमथमन्तव्यमहन्ताशब्दए
व च ॥ स्पर्शोरसोरूपगन्धौ वचनादानकर्मच ॥ गमनोत्सर्गावानन्दस्त्रयोदशमहाग्रहाः ॥ १७ ॥ एतान्महाग्रहान्पुत्रबुद्
ध्वाशुद्धैस्स्वकैर्ग्रहैः ॥ गृहाणध्यानयोगेन मामेवंमोक्षमाप्स्यसि ॥ १८ ॥ एवन्त्वंकर्मभिर्वीर नैष्कर्म्यंसमवाप्स्यसि ॥ शुल्वं
रसेनसंबद्धं दत्तोहेमंयथाश्नुते ॥ १९ ॥ वर्णाश्रमाचारवतामपिसंन्यस्तकर्मणाम् ॥ मदनुध्यानयुक्तेन मोक्षोनास्तीहदुर्ल
भः ॥ २० ॥ तस्मादेवंवर्त्तमानो नन्दाव्रतपरायणः ॥ उद्धृत्यसप्तपुरुषाँल्लयंमयिगमिष्यसि ॥ २१ ॥ साम्प्रतंप्रतिभास्य
न्ति वेदाश्चापठितापिते ॥ ततस्त्वंकोटितीर्थेच यज्ञेवैहरिमेधसः ॥ २२ ॥ याहितत्रभविष्यन्ते सर्वमातुरभीप्सितम् ॥
इत्युक्त्वाभगवान्विष्णुर्मूर्त्तिमध्यंविवेशह ॥ २३ ॥ विलोक्यमानोनिमिषं मात्राचैवसुतेनच ॥ ततोमूर्त्तिनमस्कृत्य**

प्रकार तुम मोक्षको पावोगे ॥ १८ ॥ हे वीर ! इस प्रकार तुम कर्मोंसे निष्कर्मत्व को पावोगे जैसे कि चतुर मनुष्य पारासे कलई कियेहुये तांबेको सुवर्ण बनाताहै ॥ १९ ॥
वर्णाश्रम में उचित आचारवाले व मुझमें अर्पण कर्मवाले तथा मेरे ध्यानमें युक्त मनुष्य को इस संसार में मोक्ष दुर्लभ नहीं होता है ॥ २० ॥ इस लिये इस प्र
कार एकादशी के व्रत में परायण तुम इस प्रकार वर्तमान होकर सात पुरुषों को उद्धारकर मुझमें लयको प्राप्तहोगे ॥ २१ ॥ और बिन पढ़ेहुये भी वेद इस समय
तुमको भासितहोंगे इस लिये तुम कोटितीर्थ में हरिमेधाकी यज्ञमें ॥ २२ ॥ जाओ वहां तुम्हारी माताका सम्पूर्ण मनोरथहोगा। ऐसा कहकर भगवान् विष्णुजी मूर्त्ति

के बीचमें पैठगये ॥ २३ ॥ जोंकि माता व पुत्र से बिन पलकलगाने से देखेजाते थे तदनन्तर विष्णुजी की मूर्त्तिको प्रणामकर विस्मयमें प्राप्त होतेहुये ॥ २४ ॥ ऐतरेय प्रसन्न होकर अपनी माता से वचन बोले कि पुरातन समय मैं शूद्र हुआहूं और संसार के दोषोंसे डराहुआ मैं ॥ २५ ॥ धर्ममें सिद्धिको प्राप्त ब्राह्मण की शरण में गया और उस दयालु ब्राह्मण ने मुझसे द्वादशाक्षर मन्त्रको कहा ॥ २६ ॥ व यह कहा कि इसको सदैव जपकरो और मैंने सदैव उसको जप किया उसी जप के प्रभाव से तुम्हारे पेटसे मेरी उत्पत्तिहुई ॥ २७॥ और जातिका स्मरण व विष्णु जीकी भक्ति और सदैव यहीं स्थिति रहतीहै मातासे यह कहकर उन्होंने यज्ञमें जाकर

वासुदेवस्यविस्मितः ॥२४॥ ऐतरेयःस्वजननींमुदितोवाक्यमब्रवीत् ॥ पुराहमभवंशूद्रो भीतस्संसारदोषतः ॥ २५ ॥ परिनिष्ठागतंधर्म्मे ब्राह्मणंशरणङ्गतः ॥ सकृपालुर्म्ममप्राहमन्त्रंवैद्वादशाक्षरम् ॥ २६ ॥ सदैवंजपचेत्युक्तस्तमहंजप्तवान्सदा ॥ तेनजप्यप्रभावेण ममोत्पत्तिस्तवोदरात् ॥ २७ ॥ जातिस्मृतिर्विष्णुभक्तिस्थितिरत्रचसर्वदा ॥ इत्युक्त्वा मातरंगत्वा सयज्ञेप्रोक्तवान्वचः ॥ नमस्तस्मैभगवते विष्णवेऽकुण्ठमेधसे ॥ २८ ॥ यन्मायामोहितधियो भ्रमामःकर्म्मसागरे ॥ इतिश्लोकंमहार्थंते हरिमेधमुखाद्द्विजाः ॥ २९ ॥ आकर्ण्यासनपूजाद्यैः पूजयामासुरङ्गतः ॥ ततोवेदार्थनिपुणास्तेनतेतोषिताद्द्विजाः ॥ ३० ॥ प्रददुर्दक्षिणांसर्वे हरिमेधास्सुतामपि ॥ द्रव्यंकन्याञ्चसंगृह्य स्वगृहंसमुपागमत् ॥ ३१ ॥ नन्दयित्वास्वजननीं पुत्रानुत्पाद्यचामलान् ॥ इष्ट्वायज्ञैरैतरेयो द्वादशीव्रततत्परः ॥ ३२ ॥ वासुदेवानुध्या

यह वचन कहा कि तीक्ष्णबुद्धिवाले उन विष्णुभगवान् के लिये नमस्कार है ॥ २८ ॥ कि जिनकी मायासे मोहित बुद्धिवाले हमलोग कर्मोंके समुद्र में घूमते हैं इस बडेभारी अर्थवाले श्लोकको हरिमेधा इत्यादिक ब्राह्मण ॥ २९ ॥ सुनकर आसन, पूजनादिकों से अङ्गोंमें पूजन करतेभये तदनन्तर वेदार्थों से निपुण ब्राह्मण उन ऐतरेय से प्रसन्न कियेगये ॥ ३० ॥ व उन सबोंने दक्षिणा दिया और हरिमेधा कन्याको भी देदिया तब ऐतरेयजी द्रव्य व कन्याको लेकर अपने घरको भली भांति प्राप्तहुये ॥ ३१ ॥ व अपनी माताको प्रसन्नकर तथा निर्मल पुत्रोंको उत्पन्नकर ऐतरेयजी यज्ञोंसे पूजनकर द्वादशीके व्रतमें तत्पर हुये ॥ ३२ ॥ और विष्णुजीके

ध्यान से पश्चात् मोक्षको प्राप्तहुये हे भारत ! इस प्रकारके वासुदेव आपही यहां हैं ॥ ३३ ॥ उनको जो अर्चन करता है व पूजता है व स्तुति करता है विद्वानोंने
उसके सब कर्मको अक्षय कहाहै शिवधर्मों में मैंने जिस फलको पहले तुमसे कहा है ॥ ३४ ॥ वैसेही फलको मनुष्य वासुदेवजीकी प्रसन्नता से प्राप्त होताहै ॥ २३५ ॥
इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांवृद्धवासुदेवमाहात्म्यवर्णनंनामसप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥
दो० । थाप्यो भट्टादित्य को जिमि नारदमुनिनाथ । अतिसवें अध्याय में सोई वर्णत गाथ ॥ नारदजी बोले कि हे अर्जुनजी ! तदनन्तर मैंने फिरभी मनुष्यों के

नेन मोक्षंपश्चादुपागतः ॥ एवंविधोवासुदेवः स्वयमत्रास्तिभारत ॥ ३३ ॥ योर्चयेत्पूजयेत्स्तौति सर्वतस्याक्षयंविदुः ॥
शिवधर्म्मेषुयत्प्रोक्तं फलंपूर्वंमयातव ॥ ३४ ॥ तादृशंलभतेमर्त्यो वासुदेवप्रसादतः ॥ २३५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमा
रिकाखण्डेवृद्धवासुदेवमाहात्म्यन्नामसप्तत्रिंशोध्यायः ॥ ३७ ॥ * ॥ * ॥ * ॥
नारदउवाच ॥ ततोहंपार्थभूयोपिजनानुग्रहकाम्यया ॥ प्रत्यक्षदेवंमार्तण्डमत्रानेतुमियेषवै ॥ १ ॥ सर्वेषांप्राणि
नांयस्मादुदयोभगवान्रविः ॥ इहामुत्रचकौन्तेय विश्वाधारोरविर्मतः ॥ २ ॥ येस्मरन्तिरविंभक्त्या कीर्त्तयन्तिच
येनराः ॥ प्रपूजयन्तियेनित्यं कृतार्थास्तेनसंशयः ॥ ३ ॥ आत्मद्रोहःकृतस्तेन जातेनात्रभवेस्फुटम् ॥ नार्चितोयेनदे
वेशः सहस्रकिरणोरविः ॥ ४ ॥ सूर्यभक्तिपरायेतु नित्यंतद्गतमानसाः ॥ येस्मरन्तिसदासूर्यं नतेदुःखस्यभाजनम् ॥ ५ ॥

ऊपर दयाकी कामना से सूर्यनारायण प्रत्यक्षदेवको यहां लानेके लिये इच्छाकिया ॥ १ ॥ जिसलिये भगवान् सूर्यनारायण सब प्राणियों के यहां व परलोक में उदय
(ऐश्वर्य) दायक हैं हे अर्जुनजी ! इसीसे सूर्य संसारके आधाररूप मानेगये हैं ॥ २ ॥ जो मनुष्य भक्तिसे सूर्यनारायण को स्मरण करते हैं व जो कीर्तन करते हैं
और जो नित्यही पूजते हैं वे कृतार्थ होजाते हैं इस में सन्देह नहीं है ॥ ३ ॥ इस संसारमें पैदाहुये उस पुरुष से अपनाही वैर कियागया कि जिसने हजार किरणों
वाले सूर्यनारायण देवेश को नहीं पूजाहै ॥ ४ ॥ जो सूर्यनारायण की भक्तिमें परायणहैं और नित्यही उनमें मनको लगायेहुये जो मनुष्य सदैव सूर्यनारायण को

स्मरण करते हैं वे दुःखके पात्र नहीं होते हैं ॥ ५ ॥ मनोहर मन्दिर व अनेक प्रकार के आभूषण और स्त्रियां व तृप्तिपर्य्यन्त धन सूर्यनारायण के पूजनविधिका फलहै ॥ ६ ॥ सूर्यनारायण में भक्ति दुर्लभ है व उनका पूजन दुर्लभ है और उनके लिये दान दुर्लभ है व उनका होम भी दुर्लभहै ॥ ७ ॥ नमस्कारादि से संयुक्त रवि ये दो अक्षर जिसकी जिह्वाके अग्रभाग में वर्तमान हैं उसका जीवन सफलहै ॥ ८ ॥ मैंने सूर्यनारायण से पैदाहुये इस बड़ेभारी माहात्म्य को हृदय में भलीभांति विचारकर हे अर्जुनजी ! पूर्ण सौ वर्षतक पवनभोजी होकर छन्दोंके शुद्ध जपसे भक्तिके द्वारा सूर्यको प्रसन्न किया तदनन्तर योगके बलसे व्यापक सूर्यनारायणजी आकाश से

भवनानिमनोज्ञानि विविधाभरणास्त्रियः ॥ धनंचतृप्तिपर्य्यन्तं सूर्य्यपूजाविधेःफलम् ॥ ६ ॥ दुर्लभाभास्करेभक्तिर्दुर्लभंतस्यचार्चनम् ॥ दानञ्चदुर्लभंतस्मै तद्धोमश्चसुदुर्लभः ॥ ७ ॥ नमस्कारादिसंयुक्तं रविरित्यक्षरद्वयम् ॥ जिह्वाग्रेवर्त्ततेयस्य सफलंतस्यजीवितम् ॥ ८ ॥ इत्यहंहृदिसञ्चिन्त्य माहात्म्यंरविजंमहत् ॥ पूर्णंवर्षशतंपार्थ रविंभक्त्याह्यतोषयम् ॥ ९ ॥ जपेनसुविशुद्धेन छन्दसांवायुभोजनः ॥ ततःखाद्धितयंमूर्त्तिं कृत्वायोगबलाद्विभुः ॥ १० ॥ तेजसा दुर्दृशोभास्वान् प्रत्यक्षस्समजायत ॥ तमहंप्राञ्जलिर्भूत्वानमस्कृत्यरविंप्रभुम् ॥ ११ ॥ सामभिर्विविधैर्देवं पर्यतोषयमीश्वरम् ॥ तुष्टोमामाहवरदो देवर्षेसुचिरन्त्वया ॥ १२ ॥ तपसाराधितोस्मीति वरंवृणुयथेप्सितम् ॥ इत्युक्तोहंलोकनाथं प्राञ्जलिःप्राब्रवंवचः ॥ १३ ॥ यदितुष्टोभवान्मह्यं यदिदेयोवरोमम ॥ ततस्तेकामरूपाया कलानाथप्रवर्त्तते ॥ १४ ॥

दूसरी मूर्त्तिको कर ॥ ९ । १० ॥ व आंखोंके सामने प्राप्तहुये जो सूर्यनारायण कि तेजके कारण दुःखसे देखेजाते थे उन स्वामी सूर्यनारायण को हाथोंको जोडकर प्रणामकरके मैंने ॥ ११ ॥ ईश्वर सूर्यदेव को अनेक भांतिके सामवेदोक्त मन्त्रोंसे प्रसन्न किया तब प्रसन्न होतेहुये वरदायक सूर्यनारायणजी ने मुझ से कहा कि हे नारदजी ! तुमने बहुत दिनोंतक ॥ १२ ॥ तपस्या से मेरा आराधन किया इस से अभिलाषके अनुसार वरदान को मांगिये ऐसा कहेहुये मैंने हाथोंको जोडकर संसार के स्वामी सूर्यनारायणजीसे यह वचन कहा ॥ १३ ॥ कि यदि आप मेरे ऊपर प्रसन्न हो और यदि मुझको वर देनेयोग्य है तो हे नाथ ! तुम्हारी जो कामरूपिणी कला

वर्तमान है ॥ १४ ॥ जोकि राजा राजवर्द्धन व अन्यजनों से पहले आराधन कीगई है हे सूर्यनारायणजी ! उस कलासे आप सदैव हमको रक्षाकरने के लिये योग्यहो ॥१५॥ तदनन्तर हे अर्जुनजी ! वैसाही होगा यह सूर्यदेव के कहनेपर मैंने भट्टादित्यनामक सूर्यनारायण को थापा ॥ १६ ॥ जिसलिये मुझ भट्टसे सूर्यनारायण थापेगये उसीकारण भट्टादित्य ऐसे रवि कहेगये तदनन्तर फूलोंसे पूजित व कियेहुये प्रवेशवाले उन सूर्यनारायणजी को ॥ १७ ॥ भक्तिकी अधिकतासे डूबेहुये अङ्गोंवाले मैंने समस्त वेदोंमें छिपेहुये एकसौ आठ नामोंसे इस स्तुतिको किया ॥ १८ ॥ कि आप सात घोड़ोंवाले व अचिन्त्य शरीरवाले तथा महादयालुवोंमें उत्तम

राजवर्द्धनराज्ञायाराधिताचजनैःपुरा ॥ तयाचकलयाभानोसदानस्त्रातुमर्हसि ॥ १५ ॥ ततस्तथेतिदेवेन प्रोक्तेतुष्टेनभारत ॥ आस्थापयमहंसूर्यं भट्टादित्याभिधानकम् ॥ १६ ॥ भट्टेनस्थापितंयस्मान्मयातस्माद्रविर्जगौ ॥ ततस्सम्पूजितेपुष्पैःकृतावेशमहंरविम् ॥ १७ ॥ भक्त्युद्रेकप्लुताङ्गोथ स्तुतिमेतांसमाचरम् ॥ सर्ववेदरहस्यैश्च नामभिश्चशताष्टभिः ॥ १८ ॥ सप्तसप्तिरचिन्त्यात्मा महाकारुणिकोत्तमः ॥ संजीवनोजयोजीवो जीवनाथोजगत्पतिः ॥ १९ ॥ कालाश्रयःकालकर्त्ता महायोगीमहामतिः ॥ भूतान्तःकरणोदेवः कमलानन्दनन्दनः ॥ २० ॥ सहस्रपाच्चवरदोदिव्यमण्डलमण्डितः ॥ धर्मप्रियोचितोनात्मा सवितावायुवाहनः ॥ २१ ॥ आदित्यःक्रोधनःसूर्यो रश्मिमालीविभावसुः ॥ दिनकृद्दिनहृन्मौनी सुरथोरथिनांवरः ॥ २२ ॥ राज्ञांपतिःस्वर्णरेताःपूषात्वष्टादिवाकरः ॥ आकाशतिलकोधाता संवि

हो और भलीभांति जिलातेहो व जय, जीव व जीव के स्वामी तथा जगदीश्वर हो ॥ १९ ॥ और कालके आश्रय कालकर्त्ता, महायोगी व महाबुद्धिमान् हो और प्राणियों के अन्तःकरणरूपी देव और कमलों को आनन्ददायक हो ॥ २० ॥ और हजार चरणोंवाले व वरदायक और उत्तम मण्डल से भूषित हो और धर्मप्रिय उचित व शरीररहित, सविता और पवन आपके वाहन हैं ॥ २१ ॥ आदित्य, क्रोधी, सूर्य, किरणों की मालावाले, विभावसु, दिन करनेवाले व दिन हरनेवाले, मौनी, सुरथ व रथियों में श्रेष्ठहो ॥२२॥ और राजाओं के स्वामी, स्वर्ण वीर्यवाले,पूषा, त्वष्टा, दिनकर व आकाश में तिलकरूप, धारण करनेवाले, भलीभांति त्रिभाग

करनेवाले व मनोहर हो ॥ २३ ॥ बुद्धिमान्, बुद्धिके पति, धन्य, विष्णु, लक्ष्मीपति व वैद्योत्तम, प्रकाशकारी, लोकनाथ व लोकपालों से नमस्कार कियेजाते हो॥२४॥ और विदितासन, सुलोचन, महात्मा व भक्तप्रियहो और यश व यशकारक, नित्य, प्रकाशवाले और पातकनाशकहो ॥ २५ ॥ व आनन्द को जीतेहुये, बडे पराक्रमी, हंस व संहार करनेवाले, कृतार्थ, निस्संग बहुज्ञाता व वाणीके पतिहो ॥ २६ ॥ संसारके पूजनीय, मृत्युहारक, किरणवान् व धर्मका कारणहो और प्रणत दुःखहारी, नीरोग, आयुष्मान्, सुखदायक व सुखीहो ॥ २७ ॥ मण्डलरूप, कमललोचन, व्रती व व्रतोंके फलको देनेवालेहो व पवित्र, पूर्ण, मोक्षमार्गवाले, दाता,

भागीमनोहरः ॥२३॥ प्राज्ञःप्रज्ञापतिर्धन्यो विष्णुःश्रीशोभिषग्वरः ॥ आलोककृल्लोकनाथो लोकपालनमस्कृतः॥२४॥ विदितासनःसुनयनो महात्माभक्तवत्सलः ॥ कीर्त्तिःकीर्त्तिकरोनित्योरोचिष्णुःकल्मपापहः ॥ २५ ॥ जितानन्दोमहावीर्यो हंसस्संहारकारकः ॥ कृतकृत्यस्त्वसङ्गश्च बहुज्ञोवचसाम्पतिः ॥ २६ ॥ विश्वपूज्योमृत्युहारी घृणीधर्म्मस्यकारणम् ॥ प्रणतार्तिहरोरोग आयुष्मान्सुखदस्सुखी ॥ २७ ॥ मण्डलंपुण्डरीकाक्षो व्रतीव्रतफलप्रदः ॥ शुचिःपूर्णोमोक्षमार्ग्गो दाताभोक्तामहेश्वरः ॥ २८ ॥ धन्वन्तरिःप्रियाभासो धनुर्वेदविदेकराट् ॥ जगत्पिताधूमकेतुर्विद्युतोध्वान्तहागुरुः ॥ २९ ॥ गोपतिश्चतथातिथ्यश्शुभाचारश्शुचिःप्रियः॥ सामप्रियोलोकबन्धुर्नैकरूपोयुगादिकृत ॥ ३० ॥ धर्म्मसेतुर्लोकसाक्षी खेटोर्कस्सर्वदाप्रभुः ॥ मयैवंसंस्तुतोभानुर्नाम्नामष्टशतेनच ॥ ३१ ॥ तुष्यतांसर्वलोकानां सर्वलोकप्रियोविभुः ॥ इत्येवंसंस्तवात्प्रीतो भास्करोमामवोचत ॥ ३२ ॥ सदात्रकलयास्थास्ये देवर्षेत्वत्प्रियेप्सया ॥ योमामत्रमहाभ

भोक्ता व महेश्वरहो ॥ २८ ॥ और धन्वन्तरि, प्रियाभास, धनुर्वेदज्ञाता व एकराजा हो व संसारके पिता, धूमकेतु, विद्युत, अन्धकारनाशक व गुरुहो ॥ २९ ॥ और किरणों के स्वामी, आतिथ्य, शुभ आचरणवाले, शुचि व प्यारेहो व सामप्रिय, लोकबन्धु, अनेकरूपवाले व युगादिकारकहो ॥ ३० ॥ धर्मसेतु, लोकसाक्षी, आकाशचारी, अर्क व सदैव स्वामीहो मुझ से इस भांति एकसौ आठ नामों करके स्तुति कियेहुये सूर्यनारायण ॥ ३१ ॥ सब मनुष्यों के ऊपर प्रसन्न होवैं जोकि समस्तलोकप्रिय व व्यापकहैं इसी स्तोत्रसे प्रसन्न होतेहुये सूर्यनारायणजी मुझसे बोले ॥३२॥ कि हे नारदजी ! तुम्हारे प्रियकी इच्छा से मैं सदैव कला करके यहां टिकूंगा जो

मनुष्य यहां बड़ीभक्ति से मुझ भद्रादित्य को पूजैगा ॥ ३३ ॥ वह उसी फलको प्राप्तहोवैगा जोकि कामरूप सूर्यनारायण को पूजकर मिलता है और मुझको उद्देश करि जो मनुष्य थोड़ा या बहुत दान ॥ ३४॥ यहां देवैगा उस अक्षयदानको मैं हाथहीसे लियेहुये दानकी नाईं ग्रहण करूंगा लालकमल, श्वेतकमल, मौलसिरी और कनैर ॥ ३५ ॥ व सौपत्तोंवाले महाकमलों से रविवार के दिन जो मनुष्य मुझको यहां सप्तमी या छठिको पूजैंगे ॥३६॥ वे जिन जिन कामनाओंकी प्रार्थना करैंगे उन उन मनोरथों को निश्चयकर पावैंगे व मेरी भक्तिसे दर्शन करके रोग व दरिद्रका नाशहोगा ॥३७॥ और प्रणामसे मनुष्य स्वर्गको प्राप्तहोताहै और नित्य स्तुतिकर मोक्षको

कृत्या भद्रादित्यंप्रपूजयेत् ॥ ३३ ॥ सहस्रांशुंकामरूपं सम्पूज्याप्नोतितत्फलम् ॥ मामुद्दिश्यचयोमर्त्यः स्वल्पंवायदि वांबहु ॥ ३४ ॥ दास्यतेत्राक्षयन्तच्च ग्रहीष्येकरजंयथा ॥ रक्तोत्पलैश्चकह्लारैः केसरैःकरवीरकैः ॥ ३५ ॥ शतपत्रैर्महापद्मै रविवारेणमानवाः ॥ सप्तम्यामथषष्ठ्यांवा येर्चयिष्यन्तिमामिह ॥ ३६ ॥ यान्यान्प्रार्थयतेकामांस्तांस्तानाप्स्यन्तिनिश्चितम् ॥ दर्शनान्ममभक्त्याचनाशोव्याधिदरिद्रयोः ॥ ३७॥ प्रणामात्स्वर्गमाप्नोतिस्तुत्वामोक्षंनित्यशः॥ अभक्तियश्चकर्त्तामे सगच्छेन्निश्चितंक्षयम् ॥ ३८ ॥ अष्टोत्तरशतंनाम्नां ममाग्रेयत्त्वयेरितम् ॥ त्रिकालमेककालंवा पठतःशृणुयत्फलम् ॥ ३९ ॥ कीर्तिमान्सुभगोविद्वान्सुमुखीप्रियदर्शनः ॥ भवेद्वर्षशतायुश्च सर्वरोगविवर्जितः ॥ ४० ॥ यस्त्विदंशृणुयान्नित्यं पठेद्वाप्रयतश्शुचिः ॥ अक्षयंस्वल्पमप्यन्नं भवेत्तस्योपसाधितम् ॥ ४१ ॥ विजयीचभवेन्नित्यंतथाजातिस्मरोभवेत् ॥ तस्मादेतत्सदाजप्यं परंस्वस्त्ययनंमहत् ॥ ४२ ॥ तथाममाग्रेकुण्डञ्च कुरुस्नानार्थं

पाताहै और जो मेरी भक्तिको नहीं करताहै वह निश्चयकर नाशको प्राप्तहोताहै ॥३८॥ तुमसे मेरे आगे कहेहुये इन एकसौ आठ नामोंको त्रिकाल या एक समयमें पढ़तेहुये मनुष्यको जो फल होताहै उसको सुनिये ॥ ३९ ॥ कि वह मनुष्य यशस्वी, सुन्दर ऐश्वर्यवान्, विद्वान्, सुन्दर मुखवाला और प्रियदर्शन तथा सौवर्ष आयुर्बलवाला व समस्त रोगोंसे रहित होवै है ॥४०॥ और जो पवित्र होकर इस स्तोत्रको नित्य पढ़ता या सुनताहै उसका थोड़ाभी साधित (बनायाहुआ) अन्न अक्षय होताहै ॥४१॥ व नित्यही विजयवान् होताहै और जातिका स्मरण करनेवाला होताहै इस लिये यह बड़ाभारी कल्याणकारक उत्तम स्तोत्र सदैव जपनेयोग्य है ॥ ४२ ॥

और स्नान के लिये मेरे आगे उत्तमकुण्ड कीजिये जहां कामरूपिणी कला है वहां वनमें कुण्ड होवै है ॥ ४३ ॥ इस प्रकार वरोंको देकर सूर्यनारायणजी वहीं अन्तर्द्धान होगये तदनन्तर सूर्यनारायण के वचनसे सिद्धेशजीके बाईंओर ॥ ४४ ॥ कुशकी शलाका से वनके मध्यमें कुण्ड कियागया हे भारत ! यहां कामरूप से उपजाहुआ कुण्ड और वे वृक्ष ॥ ४५ ॥ भलीभांति लगेहैं वह मेरे चित्तमें बड़ा आश्चर्यहुआ है माघमहीने की शुक्लपक्षवाली सप्तमी में जो स्त्री या पुरुषभी ॥ ४६ ॥ उत्तमकुण्ड मे नहाकर भट्टादित्य को देखता है उसको अमितपुण्य होती है और जो रथको पूजता है ॥ ४७ ॥ व जिस किसी मार्गमें यह रथयात्रा करता है उसको

सुत्तमम् ॥ कामरूपाकलायत्र तत्रकुण्डंवनेभवेत् ॥ ४३ ॥ एवंदत्त्वावरान्भानुस्तत्रैवान्तरधीयत॥ ततोभास्करवाक्ये न सिद्धेशस्यचसव्यतः ॥ ४४ ॥ वनमध्येमहाकुण्डं कृतन्दर्भशलाकया ॥ कामरूपभवंकुण्डं वृक्षास्तेचात्रभारत॥ ४५ ॥ संलीनास्तन्महाश्चर्यं ममाजायतचेतसि ॥ माघमासस्यशुक्लायां सप्तम्यांस्त्रीनरोपिवा ॥ ४६ ॥ स्नानंकुण्डेशुभेकृत्वा भट्टादित्यंप्रपश्यति ॥ तस्यानन्तंभवेत्पुण्यं रथंयश्चप्रपूजयेत् ॥ ४७ ॥ रथयात्रांचकुरुतेयस्मिन्कस्मिन्नसौपथि ॥ येचपश्यन्तिलोकास्ते धन्यास्सर्वेनसंशयः ॥ ४८ ॥ पुत्रधान्यधनैर्युक्ता नीरुजस्तेजसान्विताः ॥ भविष्यन्तिनरास्तेये कारयन्तिरथोत्सवम् ॥ ४९ ॥ गङ्गादिसर्वतीर्थेषु यत्फलंकीर्तितंबुधैः ॥ भट्टादित्यस्यकुण्डेतु तत्फलंसप्तमीदिने ॥ ५० ॥ तत्रकुण्डेचयःस्नात्वा सूर्यायार्घंप्रयच्छति ॥ कपिलागोशतस्यासौ दत्तस्यफलमश्नुते॥५१॥ अर्जुनउवाच ॥ वासुदेवादयस्सर्वे वदन्त्येवंमहामुने ॥ भास्करार्घंविनाप्रातः कृतंसर्वञ्चनिष्फलम्॥५२॥तस्याहंश्रोतुमिच्छामि

जो मनुष्य देखते हैं वे सब धन्यहैं इसमें सन्देह नहीं है ॥ ४८ ॥ और वे मनुष्य पुत्र, धान्य व धनोंसे संयुक्त और नीरोग व तेजसे संयुक्त होतेहै जोकि रथोत्सवको करते हैं ॥ ४९ ॥ गङ्गादिक समस्त तीर्थों में विद्वानों से जो फल कहागया है वह फल उपर्युक्त सप्तमी के दिनमें भट्टादित्य के कुण्डमें होताहै ॥ ५० ॥ और उस कुण्डमें नहाकर जो पुरुष सूर्यनारायण के लिये अर्घ देताहै यह सौ कपिला गऊ दानके फलको भोगता है ॥ ५१ ॥ अर्जुनजी बोले कि हे महामुने ! वासुदेवादिक सब इस प्रकार कहते हैं कि सूर्यनारायण के अर्घके विना प्रातःकालमें कियाहुआ सब निष्फल होजाता है ॥ ५२ ॥ हे विधि जाननेवालों में श्रेष्ठ नारदजी !

उसकी विधिको मैं सुना चाहता हूं ॥ ५३ ॥ नारदजी बोले कि जिस प्रकार ब्रह्मादिक देवता महात्मा सूर्यनारायणजी के लिये अर्घदेते हैं उस समस्त पातकों के
नाशनेवाली विधिको सुनिये ॥ ५४ ॥ पहले तबतक प्रातःकाल में सूर्योदय होनेपर पवित्र होकर गोमयसे क्रियेहुये मण्डलके ऊपर लालचन्दनसे मण्डलकर तदन-
न्तर तांबेके पात्रमें लालचन्दन, जल, श्वेतचन्दनादिक वस्तुवोंसे पूर्णकरके उस के बीचमें सुवर्ण, अक्षत, दूब, दही, घी, डालकर स्थापन करै ॥ ५५ ॥ तदनन्तर
अपने शरीरको इस मन्त्रसे स्पर्शकरै कि "ॐखंखोल्कायनमः" यह सातबार कहना चाहिये उससे देहकी शुद्धिरूपत्व होतीहै व अर्घकी योग्यता होती है पश्चात् आसन

**विधिंविधिविदांवर ॥ ५३ ॥ नारदउवाच ॥ यथाब्रह्मादयोदेवा यच्छन्त्यर्घंमहात्मने ॥ भास्करायशृणुत्वन्तं विधिं
सर्वाघनाशनम् ॥५४॥ प्रथमंतावत्प्रत्यूषे उदितेसूर्येशुचिर्भूत्वागोमयकृतमण्डलस्योपरिरक्तचन्दनेन मण्डलंकृत्वा
ततस्ताम्रपात्रे रक्तचन्दनोदकश्वेतचन्दनादिद्रव्यैः प्रपूरणं कृत्वा तन्मध्ये हेमाक्षतदूर्वादधिसर्पिषीपरिक्षिप्यस्था
पयेत् ॥ ५५ ॥ ततःस्वशरीरमालभेदनेनमन्त्रेण ॥ ॐखंखोल्कायनमः ॥ सप्तवारानुच्चारितव्यं तेनशुद्धिरूपत्वं जाय
तेदेहस्यार्घार्हताचभवति ॥ पश्चादासनस्थंसवितारं मण्डलमध्येद्वादशात्मकंसुरादिभिः सम्पूज्यमानंध्यात्वा पूर्वोक्त
मर्घपात्रं शिरसिकृत्वा भूमौजानुनीनिपात्यसूर्याभिमुखस्तद्गतमनाभूत्वा अर्घमन्त्रमुदाहरेत्तदुच्यते ॥ ५६ ॥ सूर्यवक्त्रा
द्विनिर्गतामिति ॥ यस्योच्चारणशब्देन रथंसंस्थाप्यभास्करः ॥ ५७ ॥ प्रतिगृह्णातिचैवार्घं वरमिष्टञ्चयच्छति ॥ ॐय
स्याहस्सप्तछन्दांसि रथेतिष्ठन्तिवाजिनः ॥ ५८ ॥ अरुणस्सारथिर्यस्य रथवाहाग्रतःस्थितः ॥ जयाचविजयाचैव ज**

में स्थित व मण्डल के बीचमें देवादिकों से पूजन कियेजाते हुये द्वादशात्मक सूर्यनारायण को ध्यानकर पूर्वोक्त अर्घके पात्रको मस्तक पै करके घुटनुवों को भूमिमें
गिराकर सूर्यकेसामने उनमें मन लगायेहुये होकर अर्घके मन्त्रको कहै वह कहा जाताहै ॥ ५६ ॥ "सूर्यवक्त्राद्विनिर्गतां" यह मन्त्रहै जिसके उच्चारणके शब्दसे रथको
भलीभांति खड़ाकर सूर्यनारायण ॥ ५७ ॥ अर्घको ग्रहण करतेहैं व प्रिय वरदानको देतेहैं जिनके रथमें सात छन्दैं घोड़े होकर स्थितहैं ऐसा मुनिलोगकहते हैं ॥५८॥

व जिनके रथको चलानेवाले सारथी अरुणजी आगे स्थित हैं और जया, विजया, जयन्ती, अपराजिता ॥ ५९ ॥ व दण्ड, पिंगल, हरित, अश्वमुख, डिंडि, शेषनाग व गणाध्यक्ष ॥ ६० ॥ स्कन्द इसी प्रकार गरुड़ व कल्माष,पक्षी और राज्ञी, तिक्षुभादेवी, लुलिता व श्वेतसंज्ञका ॥ ६१ ॥ वैसेही यज्ञभोजी जो अन्य देवता कहेगये हैं नीचे व ऊपर चलनेवाले इनसे घिरेहुये जो ये सूर्यनारायण हैं उन अन्धकारनाशक संसारकारक सूर्यनारायण को मैं आह्वान करताहूं हे भगवन्, सूर्यनारायण ! आइये व इस यज्ञको वर्तमान करिये ॥ ६२ । ६३ ॥ इस अर्घ व पाद्य को ग्रहण कीजिये आपके लिये नमस्कारहै नमस्कारहै आवाहनको कहते हैं कि

यन्तीचापराजिता ॥ ५९ ॥ दण्डश्चपिङ्गलश्चैव हरितोश्वमुखस्तथा॥डिण्डिश्चशेषनागश्च गणाध्यक्षस्तथैवच ॥ ६० ॥ स्कन्दएवंतुताक्ष्यश्च तथाकल्माषपक्षिणौ॥राज्ञीचतिक्षुभादेवी लुलिताश्वेतसंज्ञका ॥ ६१ ॥ तथायज्ञभुजोदेवा येचान्येपरिकीर्तिताः ॥ एभिःपरिवृतोयोसावधरोत्तरचारिभिः॥ ६२ ॥ तमहंलोककर्त्तारमाह्वयामितमोपहम् ॥ आयाहि भगवन्भानो अमुंयज्ञंप्रवर्त्तय ॥ ६३ ॥ इदमर्घञ्चपाद्यञ्च प्रगृहाणनमोनमः॥अथावाहनम्॥सहस्रकिरणवरदखंखोल्कायनमइति ॥ ६४ ॥ सान्निध्यकरणं ॐवषटइत्युच्चार्य्यसूर्यस्यचरणयुगलं पश्यन्भुविपदयोर्वापात्रंनिधापयेत् ॥ पाद्यन्तदुच्यतेएवंपाद्यं दत्त्वाबद्धाञ्जलिःसुस्वागतमितिकुर्यात् ॥ ६५ ॥ स्वागतंभगवन्नेहि प्रसादायास्यतांमम ॥ इहगृहाणपूजान्नः प्रसादञ्चधियाकुरु ॥ ६६ ॥ तिष्ठतावदथात्रैव यावत्पूजांकरोम्यहम् ॥ एवंविज्ञापनन्दत्त्वा आसनंदद्यादनेनमन्त्रेण ॥ ६७ ॥ ॐकमलासनकमलनन्दनोपाविशेति ॥ आसनमुपविष्टस्यशेषांपूजांनियोजयेदनेनन्यायेन ॥ ६८ ॥

हे सहस्र किरणोंवाले, वरदायक ! खंखोल्कायनमः यह आवाहन का मन्त्रहै ॥ ६४ ॥ अब समीपकरण कहते हैं कि ॐवषट् ऐसा उच्चारणकर सूर्यनारायण के दोनों चरणों को देखताहुआ पुरुष भूमि व चरणो के समीप पात्र धर देवै वह पाद्य कहाजाताहै इस प्रकार पाद्यको देकर हाथोंको जोडेहुये पुरुष सुस्वागतकरै याने आनेका कुशल प्रश्न पूछै ॥ ६५ ॥ हे भगवन् ! तुम्हारा आना अच्छा हुआ मेरे ऊपर प्रसन्नता के लिये बैठिये व यहां हमारे पूजनको ग्रहण कीजिये और बुद्धिसे प्रसन्नता कीजिये ॥ ६६ ॥ और जबतक मैं पूजन करूं तबतक यहींपर स्थित हूजिये इस प्रकार विज्ञापन देकर इस मन्त्रसे आसन देवै ॥ ६७ ॥ कि हे

कमलासन, कमलानन्ददायक ! बैठिये यह मन्त्रहै और आसन पै बैठेहुये सूर्यनारायण का शेषपूजन इस न्यायसे नियुक्तकरैं ॥६८॥ कि सोममूर्त्तिधारी क्षीरोदधिपति के लिये नमस्कार है यह क्षीरादि स्नानका मन्त्र है व नीरवसु भास्करके लिये नमस्कारहै इस मन्त्रसे जलस्नान करावै ॥ ६९ ॥ तदनन्तर दो श्वेतवसन इस मन्त्र से देवै कि हे सूर्य ! इन दो वस्त्रोंको दयासे ग्रहण कीजिये तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥ ७० ॥ एक वसन कटिभूषण है और दूसरा अङ्गमें दुपट्टे के स्थान में है तद-नन्तर इस मन्त्रसे यज्ञोपवीत देवै ॥ ७१ ॥ कि हे देवेश ! सूतके तागों से बनेहुये इस श्वेत व पवित्र तथा उत्तम यज्ञोपवीत को ग्रहण कीजिये आपके लिये नमस्कार

ॐसोममूर्त्तिक्षीरोदधिपतयेनमः ॥ इतिक्षीरादिस्नानम् ॥ भास्करायनीरवसवेनमः ॥ इतिजलस्नानम् ॥ ६९ ॥ ततो वासोयुगं शुभ्रंदद्यादनेनमन्त्रेण ॥ इदंवासोयुगंसूर्य गृहाणकृपयानमः ॥ ७० ॥ कटिभूषणमेकन्ते द्वितीयंचाङ्गप्रावरणम् ॥ ततोयज्ञोपवीतं दद्यादनेनमन्त्रेण ॥ ७१ ॥ सूत्रतन्तुमयंशुभ्रं पवित्रमिदमुत्तमम् ॥ यज्ञोपवीतंदेवेश प्रगृह्यणनमोस्तुते ॥ ७२ ॥ ततःशक्तिश्चेन्मुकुटमुद्रिकादिभूषणानिदद्यादनेनमन्त्रेण ॥ ७३ ॥ मुकुटोयंरत्नबद्धो मुद्रिकाभूषणानिच ॥ अलङ्कारंगृहाणेमं मयाभक्त्यासमर्पितम् ॥ ७४ ॥ एवमलङ्कारंनिवेद्यं पश्चात्केसरकुङ्कुमकर्पूररक्तचन्दनमिश्रमनुलेपनंदद्यात् ॥ ७५ ॥ ॐतवातिप्रियवृक्षाणां रसोयंतिग्मदीधिते ॥ ७६ ॥ तवैवचोचितःस्वामिन् गृहाणकृपयामम ॥ ततश्चपङ्कजकरवीरवर्णककेसरकोकनदादिभिः पूजांकुर्यात् ॥ ७७ ॥ ॐवनस्पतिरसोदिव्यो गन्धाढ्योगन्ध

है ॥ ७२ ॥ तदनन्तर यदि शक्तिहोवै तो मुकुट, मुन्दरी आदिक भूषणों को इस मन्त्रसे देवै ॥ ७३ ॥ कि रत्नोंसे गूँथाहुआ यह मुकुट, मुद्रिका व भूषणों को और मुझसे भक्तिकरके अर्पण कियेहुये इस अलङ्कार को ग्रहण कीजिये ॥ ७४ ॥ इसप्रकार अलङ्कार देनेयोग्य है पश्चात् केसर, कुंकुम, कपूर व लालचन्दन से मिले हुये अनुलेपन को देवै ॥ ७५ ॥ हे तीक्ष्ण किरणोंवाले सूर्यनारायणजी ! तुमको अत्यन्त प्यारे वृक्षोंका यह रस है ॥ ७६ ॥ हे स्वामिन् ! यह तुम्हारेही योग्य है इससे मेरे ऊपर दयाकरके ग्रहण कीजिये तदनन्तर कमल, कनैर, वर्णाक (चन्दन) मौलसिरी लालकमल आदिक फूलों से पूजन करै ॥ ७७ ॥ वनस्पति का उत्तम

रस जोकि सुगन्ध से संयुत व उत्तम सुगन्धवाला है और यह सब देवताओं के सूंघने योग्य है इस धूपको आप ग्रहण कीजिये ॥ ७८ ॥ यह धूपका मन्त्र समाप्त हुआ ॥ तदनन्तर खीर आदिक हविष्यान्नको इस मन्त्रसे निवेदन करै ॥ ७९ ॥ कि समस्त प्राणियों के बलको बढ़ानेवाली अमृत के समान नैवेद्य जोकि मुझसे पूर्णपात्र में दीगई है उसको ग्रहणकर मेरे ऊपर प्रसन्नहोवो ॥ ८० ॥ तदनन्तर पवित्र होने के लिये जल, ताम्बूल, दीप आरती व सूर्यमुखीका फूल देवै और बार बार पूजन से लगाकर नैवेद्य पर्यन्त यथाशक्तिसे देकर व स्तुतिकर ॥ ८१ ॥ अच्छीभांति किया गयाहो व भलीभाति न कियागयाहो उसको क्षमाकरिये यह कहकर विसर्जन करै

उत्तमः ॥ आघ्रेयःसर्वदेवानां धूपोयंप्रतिगृह्यताम् ॥ ७८ ॥ इतिधूपमन्त्रः॥ततःपायसादिहविष्यान्नंनिवेदयेदनेनमन्त्रेण ॥ ७९ ॥ नैवेद्यममृतंसर्वभूतानांप्राणवर्द्धनम् ॥ पूर्णपात्रेमयादत्तं प्रतिगृह्यप्रसीदमे ॥ ८० ॥ ततःशौचोदकताम्बूलदीपारार्त्तिकतोलिकादद्यात् ॥ पुनःपुनःपूजादिनैवेद्यंयथाशक्त्यादत्त्वास्तुत्वा ॥ ८१ ॥सुकृतंदुष्कृतंवाक्षमस्वेतिप्रोक्त्वा विसर्जयेत् ॥ ततोभूयोनमेद्देवमेवंवस्त्रोपवीतालङ्कारान्ब्राह्मणायनिवेद्य ॥ ८२ ॥ निर्म्माल्यंसंहृत्याम्भसिनिक्षिपेदित्यर्घदानविधिः ॥ ८३ ॥ यएवंभास्करायार्घं मूर्त्तौमण्डलकेपिवा ॥ नित्यंनिवेदयेत्प्रातः स्याद्रवेरात्मवत्प्रियः ॥ ८४ ॥ अनेनविधिनाकर्णोभास्करार्घंप्रयच्छति ॥ ततःसूर्यस्यपार्थासावात्मवद्वल्लभोमतः ॥ ८५ ॥ अशक्तश्चेन्नित्यमेवमर्घं दातुंदिवाकरे ॥ ततोत्ररथसप्तम्यांकुण्डेदेयःप्रयत्नतः ॥ ८६ ॥ अश्वमेधफलंप्राप्यसूर्यलोकमवाप्नुयात् ॥ तस्मात्सर्वं

तदनन्तर फिर सूर्यदेवको प्रणामकरै और इसीप्रकार वसन, यज्ञोपवीत, आभूषणों को ब्राह्मण के लिये देकर ॥ ८२ ॥ और निर्माल्य बटोरकर जलमें फेंकदेवै यह अर्घ दान की विधि है ॥ ८३ ॥ इस प्रकार प्रातःकाल जो मनुष्य नित्य सूर्यनारायण के लिये अर्घको मूर्ति या मण्डल में भी देताहै वह सूर्यनारायण को आत्माकी नाईं प्यारा होता है ॥ ८४ ॥ इस विधि से कर्णजी सूर्यनारायण को अर्घ देते हैं उसी कारण हे अर्जुनजी ! ये कर्ण सूर्यनारायण को अपने समान प्यारे मानेगये हैं ॥८५॥ यदि इसप्रकार सूर्यनारायण में नित्यअर्घ देनेके लिये असमर्थ होवै तो रथसप्तमीमें इस कुण्डमें बड़े उपाय से अर्घ देनाचाहिये ॥ ८६ ॥ क्योंकि अर्घदेनेवाला

पुरुष अश्वमेधके फलको पाकर सूर्यलोकको प्राप्तहोता है इस लिये हे भारत ! यहां सब यत्नसे अर्घ देनाचाहिये ॥ ८७ ॥ इसप्रकारके ये भट्टादित्य देव यहां स्थित हैं इनसे भी बहुत पापहारी व धर्म बढ़ानेवाला न होगा ॥ ८८ ॥ और हे अर्जुनजी ! यहां शीघ्रही विश्वास करानेवाली आठ प्रकारकी सौगन्द होती है कि जिससे हलाहल विषकी नाईं पापोंका भोग होताहै ॥ ८९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेद्विवेदीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायामष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

दो० । होत आठविधि शपथ जिमि भट्टादित्य समक्ष । उन्तालिस अध्याय में सोइ चरित परतक्ष ॥ अर्जुनजी बोले कि हे मुनिनाथजी ! इसमें दिव्य याने सौगन्द के प्रकारको सुनाचाहता हूँ कि कौन सौगन्दैं किस प्रकार करना चाहिये कि जिनसे पुण्य व पाप प्रकट होता है ॥ १ ॥ नारदजी बोले कि कोश (दिव्यशपथ) घट,

प्रयत्नेनदातव्योऽर्घोऽत्रभारत ॥ ८८ ॥ दिव्यमष्टविधंचात्रसद्यःप्रत्ययकारकम् ॥ पापानांचोपभुक्तंहियथापार्थहलाहलम् ॥ ८९ ॥ इति श्री स्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेभट्टादित्यमाहात्म्यंनामाष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

*

अर्जुनउवाच ॥ दिव्यप्रकारमिच्छामिश्रोतुमस्मिन्मुनीश्वर ॥ कथंकार्याणिकानीहस्फुटंयैःपुण्यपातकम् ॥ १ ॥ नारदउवाच ॥ शपथाःकोशघटकौविषाग्नीतप्तमाषकौ ॥ फालंचतण्डुलंचैवदिव्यान्यष्टौविदुर्द्विजाः ॥ २ ॥ असाक्षिकेषु चार्थेषुमिथोविवदमानयोः ॥ राजद्रोहाभिशापेषुसाहसेषुतथैवच ॥ ३ ॥ अविन्दंस्तत्त्वतः सत्यंशपथैर्नामिलङ्घयेत ॥ महर्षिभिश्चदेवैश्चसत्यार्थाःशपथाःकृताः ॥ ४ ॥ यवनोनृपतिःक्षीणोमिथ्याशपथमाचरन् ॥ वसिष्ठाग्रेवर्षमध्येसान्वयःकिलभारत ॥ ५ ॥ अन्धःशत्रुगृहंगच्छेद्योमिथ्याशपथांश्चरेत् ॥ रौरवस्यस्वयंद्वारमुद्घाटयतिदुर्मतिः ॥ ६ ॥ मन्यन्तेवैपापकृ

विष, अग्नि, तप्तमाष फाल, चावल इन आठ दिव्य सौगन्दों को ब्राह्मणों ने कहा है ॥ २ ॥ वस्तुओं में साक्षी न होनेपर व आपस में दो पुरुषों के विवाद करनेपर व राजद्रोह अभिशाप (असत्य मदिरापानादि दोष लगाना) व साहस कार्यों में ॥ ३ ॥ और यथार्थतासे सत्यको न जाननेपर शपथको न उल्लंघनकरै क्योंकि महर्षियों व देवताओं से सत्य के लिये सौगन्दैं कीगई हैं ॥ ४ ॥ हे भारत ! यह प्रसिद्ध है कि वसिष्ठजी के आगे झूठी सौगन्द करता हुआ यवनराजा वंश समेत वर्षही भरके बीचमें नाश होगयाहै ॥ ५ ॥ जो मिथ्या सौगन्दोंको करताहै वह अन्ध होकर शत्रु के घरमें प्राप्तहोता है और वह दुर्बुद्धि पुरुष रौरव नरकके द्वारको आपही उघारता

है ॥ ६ ॥ पाप करनेवाले मनुष्य यह मानते हैं कि हमको कोई नहीं देखता है और उन मनुष्योंको अपने अपने समय में देवता देखते हैं ॥ ७ ॥ सूर्य, चन्द्रमा, पवन अग्नि, आकाश, भूमि, जल, हृदय, यमराज, दिन व रात और दोनो सन्ध्या व धर्म मनुष्य के आचरणको जानता है ॥ ८ ॥ इस लिये ऐसा जानकर सत्यार्थक सौगन्दोंको करै क्योंकि मिथ्या शपथों को करता हुआ मनुष्य मरकर व इस लोकमें भी नष्टहोजाता है ॥ ९ ॥ मैं यह सत्य कहता हूँ क्योंकि आप साक्षी हैं इससे शुभाशुभ फलको दीजिये ऐसा कहता हुआ पवित्र मनुष्य सूर्यनारायण के चरणों को छुवै ॥ १० ॥ इसके अनन्तर ब्राह्मण भी शास्त्रको छुवै और क्षत्रिय शस्त्रको छुवै

तोनकश्चित्पश्यतीतिनः ॥ तांश्चदेवाःप्रपश्यन्तिस्वेस्वेचैवान्तरेनरान् ॥ ७ ॥ आदित्यचन्द्रावनिलोनलश्चद्यौर्भूमिरापो हृदयंयमश्च ॥ अहश्चरात्रिश्चउभेचसन्ध्येधर्म्मोहिजानातिनरस्यवृत्तम् ॥ ८ ॥ एवंतस्मादभिज्ञायसत्यार्थाञ्छपथांश्चरेत् ॥ वृथाहिशपथान्कुर्वन्प्रेत्यचेहविनश्यति ॥ ९ ॥ इदंसत्यंवदामीतिब्रुवन्साक्षीभवान्यतः ॥ शुभाशुभफलं देहिशुचिःपादौरवेःस्पृशेत् ॥ १० ॥ अथशास्त्रस्यविप्रोपिशस्त्रस्यापिचक्षत्रियः ॥ माषंस्पृशेत्तथावैश्यः शूद्रःस्वगुरुमेवच ॥ ११ ॥ मातरंपितरंपूज्यं स्पृशेत्साधारणंत्विदम् ॥ कोशस्वरूपंपूर्वंते व्याख्यातंपाण्डुनन्दन ॥ १२ ॥ विप्रवर्य्यस्तथाकोशंवर्णानांदापयेन्नृप ॥ योयोयद्देवताभक्तो दापयेत्तस्यतन्नरम् ॥ १३ ॥ समभक्तञ्चदेवानामादित्यस्यैव दापयेत् ॥ सर्वेषांचोग्रदेवानां स्नापयेदायुधंस्वकम् ॥ १४॥ स्नानोदकंचसकलं गृहीत्वापाययेन्नरम् ॥ त्रिसप्तरात्रिमध्ये च फलंकोशस्यनिर्दिशेत् ॥ १५ ॥ अतःपरंमहादिव्यविधानंशृणुभारत ॥ शपथांश्चापिकोशञ्च विज्ञात्यंदिव्यमेव

व वैश्य उडदछुवै और शूद्र अपने गुरुको छुवै ॥ ११ ॥ और माता, पिता व पूजनीय का स्पर्शकरै यह साधारण है और हे पाण्डुपुत्र ! कोशस्वरूपको तुममे पहले कहाहै ॥ १२ ॥ और हे राजन् ! श्रेष्ठ ब्राह्मण कोश (दिव्य शपथ) को वर्णोंको दिलावै और जो जो मनुष्य जिस देवताका भक्त है उस मनुष्यको उसकी सौगन्द दिलावै ॥ १३ ॥ और देवताओं के समभक्तवाले पुरुषको सूर्यही की सौगन्द दिलावै और समस्त उग्र देवताओं को नहवावै और अपना अस्त्र लेवै ॥ १४ ॥ और सब स्नानका जल लेकर मनुष्यको पिलावै व तीन और सात रात्रियों के मध्य में दिव्य शपथ का फल कहदेवै ॥ १५ ॥ इसके उपरान्त हे भारत ! महादिव्य विधिको

सुनिये और सौगन्दों तथा कोश और जो दिव्य त्रिजातीयहै उसको सुनिये ॥१६॥ कि पुरातन समय ब्रह्माने यह कहा है कि शिर समेत सौगन्द देना चाहिये और
बड़े उग्र देवताओं के प्रकटही शिररहित भी सौगन्दको देना चाहिये ॥ १७ ॥ और ब्रह्मचारी साधुओं को राजा बिन शिरके सौगन्दको न दिलावै और बड़े पवन
में घट न देना चाहिये और गरमी समय में आग न देना चाहिये ॥ १८ ॥ व ब्रह्मचारियोंको फाल न देना चाहिये और मुखके रोगवाले मनुष्यों को चावल न देना
चाहिये और कुष्ठ व पित्तसे विकल मनुष्यों को और ब्राह्मणों को विष न देनाचाहिये ॥ १९ ॥ और ऐरके नामक तृणविशेषवाले देशमें दिव्य और सौगन्दों तथा कोश

यत् ॥ १६ ॥ सशिरस्कंप्रदातव्यमितिब्रह्मापुराब्रवीत् ॥ महोग्राणांचदातव्यमशिरस्कमपिस्फुटम् ॥ १७ ॥ साधू
नांवर्णिनांराजा नाशिरस्कंप्रदापयेत् ॥ नप्रवातेघटन्देयं नोष्णकालेहुताशनम् ॥ १८ ॥ वर्णिनाञ्चतथाफालंतण्डुलं
मुखरोगिणाम् ॥ कुष्ठपित्तार्दितानाञ्च ब्राह्मणानाञ्चनोविषम् ॥ १९ ॥ नदिव्यमैरकेदेशे शपथान्कोशमेवच ॥ २० ॥
मन्त्रैस्तथासुरैर्दिव्यान्स्तम्भयन्तीहकेचन ॥ प्रतिघातविदस्तेषांयोजयेद्धर्म्मवत्सलम् ॥ २१ ॥ दिव्यानांस्तम्भकंज्ञात्वा
पापनीत्यंमहीपतिः ॥ विवासयेत्स्वकाद्राष्ट्रात्तेहिलोकस्यकण्टकाः ॥ २२ ॥ तेषामन्वेषणेयत्नं राजानित्यंसमाचरेत् ॥
तेहिपापसमाचारास्तस्करेभ्योपितस्कराः ॥ २३ ॥ प्राग्दृष्टदोषान्स्वल्पेपि दुर्गेषुविनियोजयेत् ॥ महत्स्वपिनचा
र्थेषु धर्म्मज्ञान्धर्मवत्सलान् ॥२४॥नमिथ्यावचनंयेषांजन्मप्रभृतिविद्यते॥ अश्रद्धयात्पार्थिवस्तेषां वचनादेवभारत॥२५॥

(दिव्य सौगन्द) को न देना चाहिये ॥ २० ॥ और प्रतिघात याने उन सौगन्दवाली वस्तुवों के नाशक यत्नोंको जाननेवाले कोई आसुर मन्त्रों से सौगन्दों को रोक
लेते हैं इससे उनके मध्य में जो धर्म्म प्रियहो उसको नियुक्त करै ॥ २१ ॥ और दिव्य सौगन्दों के स्तंभकरनेवाले पापनीतिमान् पुरुषको जानकर राजा अपने राज्य
से निकाल देवै क्योंकि वे संसारके कण्टकरूप हैं ॥ २२ ॥ और राजा उनके ढूँढने में नित्यही यत्नकरै क्योंकि पाप आचरणवाले चोरों से भी चोर हैं ॥ २३ ॥ और
पहले देखे हुये दोषोंवाले उनको थोड़े पाप करनेपर भी कठिन बन्दीगृहों में नियुक्त करै और धर्मप्रिय, धर्मज्ञ जनों को बड़े भी अकार्यों में दण्ड से न युक्त

करै ॥ २४ ॥ जन्म से लगाकर जिनका झूंठा वचन नहीं विद्यमान है हे अर्जुन जी ! उनके वचन से राजा विश्वास करै ॥ २५ ॥ क्योंकि पुरुष की धर्मिष्ठता को जानकर चतुर राजा क्रोध व लोभ से दण्ड को कराताहुवा आपही दूषित होता है ॥ २६ ॥ इस लिये उस विषयमें पहले पापीकी सौगन्दका घट कहा जाता है कि बराबर भूमि में पूर्व व दक्षिण दिशाके भागमें ॥ २७ ॥ यज्ञवाले वृक्षके दो स्तम्भ स्थापित करना चाहिये और खम्भा की प्रमाण सात हाथ कहीगई है ॥ २८ ॥ दो हाथ काठको गाड़देवै और पांचहाथ देखने योग्यरहै व उन दोनोंका अन्तर (बीच) चार हाथ करना चाहिये ॥ २९ ॥ और चतुर मनुष्य मस्तक के ऊपर दृढ़ काठ

ज्ञात्वाधर्म्मिष्ठतांराजा पुरुषस्यविचक्षणः ॥ क्रोधाल्लोभात्कारयंश्च स्वयमेवप्रदुष्यति ॥ २६ ॥ तस्मात्पापिष्ठदिव्यस्यतत्रादौप्रोच्यतेघटः ॥ सुसमायांपृथिव्याञ्च दिग्भागेपूर्वदक्षिणे ॥ २७ ॥ यज्ञियस्यतुवृक्षस्य स्थाप्यंचस्तम्भकद्वयम् ॥ स्तम्भकस्यप्रमाणञ्च सप्तहस्तंप्रकीर्त्तितम् ॥ २८ ॥ द्वौहस्तौनिखनेत्काष्ठं दृश्यंस्याद्धस्तपञ्चकम् ॥ अन्तरन्तु तयोःकार्यं तथाहस्तचतुष्टयम् ॥ २९ ॥ मुण्डकोपरिकाष्ठञ्च दृढंकुर्याद्विचक्षणः ॥ चतुर्हस्तंतुलाकाष्ठमग्रण्यंकारयेत्स्थितम् ॥ ३० ॥ खदिरार्जुनवृक्षाणां शिंशपासालजंतथा ॥ तुलाकाष्ठेतुकर्तव्यं तथावैशिक्यकद्वयम् ॥ ३१ ॥ प्राङ्मुखोनिश्चलःकार्यः शुचौदेशेघटस्तथा ॥ पाषाणस्यापिजायेतस्तम्भेषुचघटस्तथा ॥ ३२ ॥ वणिक्सुवर्णकारोवा कुशलःकांस्यकारकः ॥ तुलाधारधरःकार्यो रिपौमित्रेचयःसमः ॥ ३३ ॥ श्रावयेत्प्राड्विवाकोपि तुलाधारंविचक्षणः ॥ ब्रह्मघ्नायेस्मृतालोका येचस्त्रीबालघातिनः ॥ ३४ ॥ तुलाधारस्यतेलोकास्तुलान्धारयतोमृषा ॥ एकस्मिंस्तोलयेच्छिक्ये

करै और अग्रभागमें रहनेवाले तुलाका पुष्टकाठ चारहाथ बनवाना चाहिये ॥ ३० ॥ जोकि खैर अर्जुन वृक्षोंका और सीसम व साखूसे उपजाहोवै और तुलाके काठमें दो सिकहर करना चाहिये ॥ ३१ ॥ और पवित्र स्थान में पूर्वमुख निश्चलघट करना चाहिये व पत्थर के भी स्तम्भों में घट होता है ॥ ३२ ॥ बनिया, सोनार व चतुर कांस्यकारक (ठठेर) तुलाधारका धारी करना चाहिये जोकि शत्रु व मित्रमें सम होवै ॥ ३३ ॥ और चतुर न्यायाधीश भी तुलाधारण करनेवाले को यह सुनावै कि जो लोक ब्रह्मघातीको कहे गये हैं और जो लोक स्त्री व बालघातकको होते हैं ॥ ३४ ॥ वेही लोक असत्य तुलाको धारते हुये तुलाधारको होते हैं एक सिकहर में स्नान

क्रिये व उपासे मनुष्य को तौले ॥ ३५ ॥ और दूसरे में विद्वान् उनम व श्वेत मृत्तिकाको तोले और ईंट, भस्म, पत्थर, खोपड़ी व हड्डियों को वर्जित करै ॥ ३६ ॥ तो
लकर उसके उपरान्त उस सिकहर से पहले उस मनुष्यको उतार लेवै तदनन्तर पत्रको लिखकर उसके माथेपै धरै ॥ ३७ ॥ और पत्रमें यह मन्त्र लिखना चाहिये
जोकि पुरातन समय ब्रह्माजीसे कहागया है कि तुम ब्रह्माकी कन्याहो और नामसे तुला ऐसी कहीजातीहो ॥ ३८ ॥ तुकार नित्यही गुरुमें कही गई है और लकार लघु
में कहागयाहै उसी कारण गुरु और लघुके संयोगसे तुला कहा जाताहै ॥ ३९ ॥ हेशुभे! बुद्धिसे उत्तम इस मनुष्यको सन्देह से छुड़ाइये यह कहकर फिर पत्र समेत

स्नातंसूपोषितन्नरम् ॥ ३५ ॥ द्वितीयेमृत्तिकांशुभ्रां गौरांवैतोलयेद्बुधः ॥ इष्टकाभस्मपाषाणकपालास्थीनिवर्ज्जये
त् ॥ ३६ ॥ तोलयित्वाततःपूर्वं तस्मात्तमवतारयेत् ॥ मूर्द्धिपत्रंततस्तस्यसंप्रलिख्यनिवेशयेत् ॥ ३७ ॥ पत्रेमन्त्रस्त्वयंले
ख्योयःपुरोक्तःस्वयंभुवा ॥ ब्रह्मणस्त्वंसुतादेवि तुलानाम्नेतिकथ्यसे ॥ ३८ ॥ तुकारोगौरवेनित्यं लकारोलघुनिस्मृतः ॥
गुरुलाघवसंयोगात्तुलातेननिगद्यते ॥ ३९ ॥ संशयान्मोचयस्वैनं मतिशस्तंनरंशुभे ॥ भूयस्त्वारोपयेत्तन्तुनरंतास्मि
न्सपत्रकम् ॥ ४० ॥ तुलितोयदिवर्द्धेत शुद्धोभवतिधर्म्मतः ॥ हीयमानोनशुद्धःस्यादितिधर्म्मविदोविदुः ॥ ४१ ॥ शिक्य
च्छेदेतुलाभङ्गे पुनरारोपयेन्नरम् ॥ एवंनिस्संशयंज्ञानं यच्चात्मानन्नचालयेत् ॥ ४२ ॥ एतत्सर्वंरवौवारे कार्यंसम्पूज्य
भास्करम् ॥ अथातस्सम्प्रवक्ष्यामि विषदिव्यंशृणुष्वमे ॥ ४३ ॥ द्विप्रकारंचयत्प्रोक्तं घटसर्पविषंतथा ॥ शृङ्गिणोवत्स
नागस्य हिमशैलभवस्यच ॥ ४४ ॥ यवास्सप्तप्रदातव्याअथवाषड्घृतप्लुताः ॥ मूर्द्धिविन्यस्यपत्रन्तु मन्त्रंचैनमु

उस मनुष्यको उस तुलापै आरोपण करै ॥ ४० ॥ यदि तोलाहुआ वह मनुष्य बढ़ै तो धर्म्म से शुद्ध होताहै और न्यून होता हुआ पुरुष शुद्ध नहीं होवै है यह धर्म्मके
जाननेवाले लोग कहते हैं ॥ ४१ ॥ और सिकहर कटनेपर व तुला टूटनेपर फिर मनुष्यको आरोपण करै इस प्रकार निस्सन्देह ज्ञान होजाता है यदि शरीर को न
चलावै ॥ ४२ ॥ व सूर्यनारायणजी को पूजकर यह सब रविवार को करना चाहिये अब इसके अनन्तर विष सौगन्दको कहताहूं उसको मुझसे सुनिये ॥ ४३ ॥ जोकि
दो प्रकारका कहागया है एक घटके भीतर सर्प और दूसरा विष जोकि शृङ्गवान् हिमाचल और वत्सनाग के होता है ॥ ४४ ॥ घीसे डूबे हुये सात या छह यव देना

चाहिये और मस्तकपै पत्रको धरकर इस मन्त्रको कहै ॥ ४५ ॥ कि हे विषे ! तुम ब्रह्माके पुत्रहो इस लिये सत्य व धर्म्ममें प्राप्तहोकर इस मनुष्यकी पापसे रक्षाकीजिये और इसकी सत्यसे अमृतहोवो ॥ ४६ ॥ जिस विषके वेगों से बिनजीर्ण और जो छर्दि व मूर्च्छा से रहितहो उस मनुष्यको शुद्धजानै यह धर्म्म के जाननेवाले लोग कहते हैं ॥ ४७॥ व क्षुधित मनुष्य घटके भीतर बैठेहुये भूँखे सर्पसे पहलेकी नाईं कहकर सातबार उसकी तालुको छुवै यदि वह सर्प न काटै तो वह शुद्धहोताहै॥४८ ॥ और जिसप्रकार ब्रह्माने अग्निदिव्य (सौगन्द) को कहाहै उसको मुझसे सुनिये कि सूर्यनारायणके आगे सात मण्डलोंको करै ॥ ४९ ॥ और पूर्वसे लगाकर मण्डल

दाहरेत् ॥ ४५ ॥ त्वंविषब्रह्मणःपुत्रस्सत्यधर्म्मेव्यवस्थितः॥त्रायस्वैनंनरंपापात्सत्येनास्यभवामृतम् ॥ ४६ ॥ यस्यवेगै र्विनाजीर्णं छर्दिमूर्च्छाविवर्ज्जितम् ॥ तन्तुशुद्धंविजानीयादितिधर्म्मविदोविदुः ॥ ४७ ॥ क्षुधितःक्षुधितंसर्प्पं घटस्थं प्रोच्यपूर्ववत् ॥ संस्पृशेत्तालुकंसप्त नदशेत्क्षुद्ध्यतीतिसः ॥ ४८ ॥ अग्निदिव्यंयथाप्राहविरञ्चिस्तच्छृणुष्वमे ॥ सप्तम ण्डलकान्कुर्याद्देवस्याग्रेरवेस्तथा ॥ ४९ ॥ मण्डलान्मण्डलंकार्यंपूर्वेणेतिविनिश्चयः ॥ षोडशाङ्गुलकङ्कार्यं मण्डला न्मण्डलान्तरम् ॥ ५० ॥ आर्द्रवासंसमाहूय तथाचैवाप्युपोषितम् ॥ कारयेत्सर्वदिव्यानि देवब्राह्मणसन्निधौ ॥ ५१ ॥ प्रत्यक्षंकारयेद्दिव्यं राज्ञोवाधिकृतस्यच ॥ ब्राह्मणानांश्रुतिविदां प्रकृतीनान्तथैवच ॥ ५२ ॥ पश्चिमेदिनकालेहि प्राङ्मु खःप्राञ्जलिःशुचिः ॥ चतुरस्रेमण्डलेन्ये कृत्वाचैवसमौकरौ ॥ ५३ ॥ लक्षयेयुःक्षतादीनि हस्तयोस्तस्यकारिणः ॥ सप्ताश्वत्थस्यपत्राणि बध्नीयुःकरयोस्ततः ॥ ५४ ॥ नवेनसितसूत्रेण कार्पासेनदृढंयथा ॥ ततस्तुसुसमंकृत्वा अष्टाङ्

से मण्डल करना चाहिये यह निश्चय है और एक मण्डल से दूसरे मण्डल का अन्तर सोलह अंगुल करना चाहिये ॥ ५० ॥ और उपास कियेहुये और भीगे वसन वाले पुरुषको बुलाकर देवता व ब्राह्मण के समीप सब सौगन्दों को करावै ॥ ५१ ॥ अथवा राजा या अधिकारीके सामने व वेद जाननेवाले ब्राह्मणों और प्रजाओं के सामने सौगन्द करावै ॥ ५२ ॥ व पश्चिम दिनके समय मे पूर्वमुखहो हाथ जोड़कर पवित्र पुरुष अन्य चौकोन मण्डलमें बराबर हाथकर ॥ ५३ ॥ और उस शपथ करने वालेके हाथों में घाव आदिकों को देखलेवैं और पीपलके सात पत्तोंको कपासके नवीन सूतसे उसके हाथो मे दृढ़तासे विद्वान् बांधदेवै तदनन्तर आठ अंगुल लोहे

का बराबर पिण्डकर ॥ ५४ । ५५ ॥ व पचासपलभर उस दृढ़ पिण्डको अग्निमें तचावै और पहले सूर्यनारायण को पूजनकर इस अग्निका भी पूजन लालचन्दन
धूप और लाल फूलों से करावै व अभिशस्त याने असत्यही मदिरापानादि दोष लगाये हुये पुरुषके मस्तक में पत्रको बांधै ॥ ५६ । ५७ ॥ जोकि ब्रह्मासे कहेहुये इस
मन्त्रसे संयुक्त होवै कि हे अग्नि ! तुम चारों वेदहो और यज्ञों में तुम हवन किये जातेहो ॥ ५८ ॥ और जिस लिये पापको पवित्र करतेहो उसी कारण पावक कहे
जातेहो व समस्त देवताओं का तुम मुख हो और तुम ब्रह्मवादियों का मुख हो ॥ ५९ ॥ और प्राणियों के पेटमें स्थितहो इससे शुभाशुभ को जानतेहो हे पावक !

गुलकमायसम् ॥ ५५ ॥ पिण्डंहुताशसंतप्तं पञ्चाशत्पलिकंदृढम् ॥ आदौपूजांरवेःकृत्वा हुताशस्यास्यकारयेत् ॥
५६ ॥ रक्तचन्दनधूपाभ्यां रक्तपुष्पैस्तथैवच ॥ अभिशस्तस्यपत्रञ्च बध्नीयात्तस्यमूर्द्धनि ॥ ५७ ॥ मन्त्रेणानेनसंयुक्तं
ब्रह्मणाभिहितेनतु ॥ त्वमग्नेवेदाश्चत्वारस्त्वञ्चयज्ञेषुहूयसे ॥ ५८ ॥ पापंपुनासिवैयस्मात्तस्मात्पावकउच्यसे ॥ त्वं
मुखंसर्वदेवानां त्वंमुखंब्रह्मवादिनाम् ॥ ५९ ॥ जठरस्थोसिभूतानामतोवेत्सिशुभाशुभम् ॥ पापेषुदर्शयात्मानमर्चि
ष्मान्भवपावक ॥ ६० ॥ अथवाशुद्धभावेषु शीतोभवमहाबल ॥ ततोभिशस्तश्शनकैर्म्मण्डलानिपरिक्रमेत् ॥ ६१ ॥ प
रिक्रम्यशनैर्जह्याल्लोहपिण्डंततःक्षितौ ॥ विपन्नहस्तंतंपश्चात्कारयेद्व्रीहिमर्दनम् ॥ ६२ ॥ निर्विकारौकरौदृष्ट्वा शु
द्धोभवतिधर्म्मतः ॥ भयाद्वापातयेद्यस्तु दग्धोवानविभाव्यते ॥ ६३ ॥ पुनस्तंधारयेल्लोहं विधिरेषप्रकीर्तितः ॥ अथा
तस्सम्प्रवक्ष्यामि तप्तमाषविधिंशृणु ॥ ६४ ॥ कारयेदायसम्पात्रं ताम्रंवाषोडशाङ्गुलम् ॥ चतुरङ्गुलखातन्तु मृन्मयं

पापियों में अपना को दिखलाइये और ज्वालावान्होवो ॥ ६० ॥ अथवा हे महाबलवान् अग्ने ! शुद्ध भाववाले जनों मे शीतल होवो तदनन्तर दूषित पुरुष धीरेसे
मण्डलोंकी परिक्रमाकरै ॥ ६१ ॥ और धीरेसे परिक्रमाकर तदनन्तर भूमिमें लोहका पिण्ड छोड़देवै पश्चात् बिन पत्र हाथवाले उसके धान्यमर्दन करावै ॥ ६२ ॥ और
विकाररहित हाथोंको देखकर धर्म्म से शुद्ध होताहै और डरसे गिरा देता है और जलाहुआ नहीं प्रकट होताहै ॥ ६३ ॥ उसके हाथमें फिर लोहको धरावै यह विधि
कहीगई है इसके अनन्तर तचेहुये उड़दोंकी विधिको कहताहूं उसको सुनिये ॥ ६४ ॥ कि लोहे या तांबे अथवा मिट्टीके सोलह अंगुल पात्रको बनवावै व चारअंगुल

गहरा बनवावै ॥ ६५ ॥ व उराको बीसपल घी और तैलमें पूर्णकरै तदनन्तर बहुतही तचेहुये कुण्ड में सुवर्ण के माष (उड़द) को फेंकै ॥ ६६ ॥ व उस कहे हुये पत्रको दूषित पुरुषके मस्तकपै धरै और अँगूठा व अंगुली के मिलापसे तचेहुये माष (उड़द) को उठावै ॥ ६७ ॥ और फलका इत्यादिकों से रहित व बिन जले हुये पुरुषको शुद्ध जानना चाहिये हे धनञ्जय ! फालशुद्धिको कहताहूँ उसको तुम सुनो ॥ ६८ ॥ बारह पलका बनायाहुआ लोह फाल कहा जाताहै वह आठ अंगुल बराबर लम्बा व चार अंगुल चौडाहोवै ॥ ६९ ॥ और उस कहेहुये पत्रको दूषित पुरुषके मस्तकपै धरै और इसमेंसे छह अंगुल फालको चाटता हुआ पुरुष तीनबार

चापिकारयेत् ॥ ६५ ॥ पूरयेद्घृततैलाभ्यां पलैर्विंशतिभिस्ततः ॥ सुतप्तेविक्षिपेत्तत्र सुवर्णस्यतुमाषकम् ॥ ६६ ॥ तदुक्तंविन्यसेत्पत्रमभिशस्तस्यमूर्द्धनि ॥ अङ्गुष्ठाङ्गुलियोगेनतप्तमाषंसमुद्धरेत् ॥ ६७ ॥ शुद्धंज्ञेयमसंदग्धं विस्फोटादिविवर्जितम् ॥ फालशुद्धिंप्रवक्ष्यामि तांशृणुत्वंधनञ्जय॥ ६८ ॥ आयसंद्वादशपलं घटितंफालमुच्यते ॥ अष्टाङ्गुलंसमन्दीर्घं चतुरङ्गुलविस्तृतम् ॥ ६९ ॥ तदुक्तंविन्यसेत्पत्रमभिशस्तस्यमूर्द्धनि ॥ त्रिःपरावर्त्तयेज्जिह्वां लिहन्तस्मात्षडङ्गुलम् ॥ ७० ॥ गवांक्षीरंप्रदातव्यं जिह्वाशोधनमुत्तमम् ॥ जिह्वापरीक्षणंकुर्याद्दग्धंचेन्नविभाव्यते ॥ ७१ ॥ तंविशुद्धं विजानीयाद्विशुद्धंचैवमोक्षयेत् ॥ तण्डुलस्याथवक्ष्यामिविधिंधर्म्मंसनातनम् ॥ ७२ ॥ चौर्येतुतण्डुलंदेयं नचान्यत्र कथञ्चन ॥ तण्डुलानुदकेस्थित्वा रात्रौतत्रैवस्थापयेत् ॥ प्रभातेकारिणोदेया भक्षणायनसंशयः ॥ ७३ ॥ त्रिःकृत्वाप्राङ्मुखस्यैव पत्रेनिष्ठीवयेत्ततः ॥ पिप्पलस्याथभूर्जस्य नचान्यस्यकथञ्चन ॥ ७४ ॥ तांस्तुवैकारयेच्छुद्धांस्तण्डुलाञ्छा

जिह्वाको घुमावै ॥ ७० ॥ और उत्तम जिह्वाका शोधन करनेवाला गौवोंका दूधदेना चाहिये और जिह्वाकी परीक्षा करै यदि जलीहुई जीभ न प्रकटहोवै ॥ ७१ ॥ तो उस पुरुषको विशेषकर शुद्ध जानकर छुडादेवै इसके अनन्तर चावलकी सनातन धर्म्मवाली विधिको कहताहूं ॥ ७२ ॥ कि चोरीमें तण्डुल देना चाहिये अन्यत्र किसी प्रकारसे न देना चाहिये रात्रिमें चावलोंको जलमें धरकर वहीं स्थापितकरै ॥ ७३ ॥ और प्रातःकाल में पूर्वमुख बैठे हुये सौगन्द करनेवाले को वे चावल भक्षणके निमित्त तीनबारकरके देना चाहिये तदनन्तर पीपल या भोजके पत्ते में थुँकावै अन्यवृक्षके पत्ते में किसी प्रकारसे न थुँकावै ॥ ७४ ॥ और शालीधानोंसे उपजेहुये उन

चावलों को शुद्ध करावै कि सूर्यनारायण के आगे बैठाहुआ पुरुष मिट्टीके पात्रमें शुद्ध चावलोंको कर धर्म्मसे इस मन्त्रके द्वारा अभिमन्त्रित करै कि धर्म्म के यथार्थ
को जाननेवाले पुरुषों से मनुष्यों को पवित्रता दीजाती है ॥७५।७६॥ हे तण्डुल! तुम धर्म्म से रक्षा करने के लिये योग्यहो सूर्यनारायण के आगे बैठेहुये उन मनुष्यों के
थूकनेपर ॥७७॥ जिस मनुष्यके रक्त देखपडै उसको अपवित्र बतलावै इसप्रकार पापके सन्देह को नाशनेवाली आठ प्रकारकी सौगन्द है ॥ ७८ ॥ हे कुरुनन्दन!
जोकि भट्टादित्य के आगे होतीहै और वैसेही जाननेवाले पुरुषोंने दो भातिकी जलकी सौगन्द कहा है ॥ ७९ ॥ एक जल हाथवाली और दूसरी जलमें स्नान कहा है

लिसम्भवान् ॥ मृन्मयेभाजनेकृत्वा सवितुःपुरतःस्थितः ॥ ७५ ॥ तण्डुलान्मन्त्रयेच्छुद्धान्मन्त्रेणानेनधर्म्मतः ॥ दीयते
धर्म्मतत्त्वज्ञैर्म्मानुषाणांविशोधनम् ॥ ७६ ॥ त्वन्तुतण्डुलसत्येन धर्म्मतस्त्रातुमर्हसि ॥ निष्ठीवनेकृतेतेषां सवितुःपुर
तस्सदा ॥ ७७ ॥ शोणितंदृश्यतेयस्य तमशुद्धंविनिर्दिशेत् ॥ एवमष्टविधंदिव्यं पापसंशयछेदनम् ॥ ७८ ॥ भट्टादि
त्यस्यपुरतो जायतेकुरुनन्दन ॥ जलदिव्यंतथाप्राहुर्द्विप्रकारंतथाविदः ॥ ७९ ॥ जलहस्तंस्मृतंचैकं मज्जनंचापरंवि
दुः ॥ बाणक्षेपस्तथादानं यावद्दीर्घवतांकृतम् ॥ ८० ॥ तावत्तंमज्जयेज्जीवेच्चेत्ततःशुद्धिमादिशेत् ॥ एवंविधमिदंस्थानं
भट्टादित्यस्यभारत ॥ ८१ ॥ ममैवकृपयाभानोर्जातमेतन्महीतले ॥ ८२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डे दि
व्यवर्णनन्नामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥
नारद उवाच ॥ तथाबहूदकस्थाने कथामाकर्ण्याद्भुतम् ॥ यस्माद्बहूदकंकुण्डं कामरूपेयदस्तिच ॥ १ ॥ तदस्ति

जबतक पराक्रमी पुरुषोंका बाणका चलाना व लेना किया जाय ॥ ८० ॥ तबतक उसको जलमें डुबावै यदि वह जियै तो शुद्धि कहै हे भारत! ऐसा यह भट्टादित्य का
स्थानहै ॥८१॥ और यह सूर्यका स्थान मेरीही दयासे भूतलमें हुआहै ॥८२॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांदिव्यवर्णनन्नामै
कोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥
दो०। नन्दभद्र सत्यव्रत कीन बतकही जौन। चालिसवें अध्याय में कही कथा सब तौन ॥ नारदजी बोले कि वैसेही बहूदकके स्थानमें अद्भुत कथाको सुनिये जिस

लिये कि कामरूपमें जो बहूदक कुण्ड है ॥ १ ॥ वह यहां भलीभांति घिराहै इस लिये बहूदक कहागया है कपिलदेवजी ने बहुतवर्षोंतक तपस्या कर ॥ २ ॥ कपि-लेश्वर संज्ञक उत्तम लिङ्गको थापा है हे अर्जुनजी ! और उस लिङ्ग को सदैव नन्दभद्र ऐसे प्रसिद्ध ॥ ३ ॥ बनिया ने आदरकर त्रिकाल पूजन किया है जोकि सब धर्म्मों की विशेषता को जाननेवाला और साक्षात् दूसरे धर्म्मकी नाईं था ॥ ४ ॥ धर्म्मों में जो कुछ कहा जाता है वह उसको कुछ अज्ञात न था और सबोंका मित्र नित्यही सबों के हितमें परायण था ॥ ५ ॥ और कर्म, मन व वचन से इस धर्म्म के आश्रित था जोकि न हुआहै न होगा और वह कोई धर्म्म है ॥ ६ ॥ जोकि सर्वत्र

चात्रसंक्रान्तं तस्मात्प्रोक्तंबहूदकम् ॥ कपिलेनतपस्तप्त्वा वर्षाणिसुबहून्यपि ॥ २ ॥ स्थापितंशोभनंलिङ्गं कपिलेश्वर संज्ञितम् ॥ तच्चलिङ्गंसदापार्थ नन्दभद्रइतिश्रुतः ॥ ३ ॥ वणिक्सम्पूजयामास त्रिकालञ्चकृतादरः ॥ सर्वधर्म्मविशेषज्ञः साक्षाद्धर्म्मइवापरः ॥ ४ ॥ नाज्ञातंतस्यकिञ्चिच्चयद्धर्म्मेषुप्रकीर्त्यते ॥ सर्वेषांचसुहृन्नित्यं सर्वेषाञ्चहितेरतः ॥ ५ ॥ कर्म्मणामनसावाचा धर्ममेनमुपाश्रितः ॥ नभूतोनभविष्यश्चसवैधर्म्मोस्तिकश्चन ॥ ६ ॥ नदोषोयोहिसर्वत्र निश्चित्यैवं व्यवस्थितः ॥ अस्यधर्मसमुद्रस्य सम्प्रवृद्धस्यसर्वतः ॥ ७ ॥ निर्मथ्यनन्दभद्रेण आहृतंतन्निशामय ॥ वाणिज्यंमन्यतेश्रेष्ठं जीवनायतदास्थितः ॥ ८ ॥ परिच्छिन्नैःकाष्ठतृणैःशरणन्तेनकारिते ॥ मद्यवर्ज्यंभेदवर्ज्यंकूटवर्ज्यंसमन्तथा ॥ ९ ॥ सर्वभूतेषुवाणिज्यमन्नलाभेनसोचरत् ॥ अमाययापरेभ्योसौ गृहीत्वैवक्रयाणकम् ॥ १० ॥ अमाययैवभूतेभ्यो विक्रीणात्येवसद्व्रतः ॥ केचिद्यज्ञंप्रशंसन्ति नन्दभद्रोनमन्यते ॥ ११ ॥ दोषमेनंविनिश्चित्य शृणुतंपाण्डुन

बिन दोषहो ऐसा निश्चयकर विशेषतासे स्थितहुआ सब ओर से बढ़ेहुये इस धर्म्मरूपी समुद्रको ॥ ७ ॥ मथकर नन्दभद्र ने जो आहरण किया उसको सुनिये कि उससमय में स्थित वह जीविका के लिये वाणिज्यको श्रेष्ठ मानता था ॥ ८ ॥ और कटेहुये काठ व तिनुकों से उसने घर बनवाया था और मदिरारहित व भेदहीन और कपटरहित समतासे ॥ ९ ॥ उसने अन्नके लाभ से समस्त प्राणियों में वाणिज्य किया और यह बिन छलसे दूसरोंसे मोललेनेवाली वस्तुको लेकर ॥ १० ॥ और बिन छलही से उत्तम व्रतवाला यह प्राणियों के लिये बेंचता था और कोई यज्ञकी प्रशंसा करते हैं परन्तु नन्दभद्र इस दोषको निश्चयकर नहीं मानता है हे पाण्डु-

नन्दन ! उसको सुनिये लोभी, असत्यवादी, पाखण्डी व अपनी प्रशंसा में परायण पुरुष ॥ ११ । १२ ॥ यज्ञों से पूजन करता हुआ संसारको मारता है और
अपना को अन्धतम नरकमें लेजाता है जिस लिये कि अग्नि में प्राप्त आहुति सूर्यनारायणको प्राप्त होती है ॥१३॥ उसीसे सूर्यनारायण से वर्षा होती है और वृष्टि से
अन्न व उस अन्न से प्रजा होते हैं तब यजमान ऋत्विजोको द्रव्य देताहै ॥ १४ ॥ दक्षिणारहित व अविधि से वृथा यज्ञ करनेपर ॥ १५ ॥ मारेहुये पशु मरे-यजमान
को दण्डोंसे मारते हैं इस लिये शुद्ध ब्राह्मण, द्रव्य व यजमान से यज्ञ उत्तम कहीगई है ॥ १६ ॥ इसको विचारकर यह बनिया यज्ञके सारांश में स्थित था श्रद्धासे

न्दन ॥ लुब्धोऽनृतीदाम्भिकश्च स्वप्रशंसापरायणः ॥ १२ ॥ यजन्यज्ञैर्जगद्धन्ति स्वञ्चान्धतमसन्नयेत् ॥ अग्निप्राप्ताहु
तिर्यस्मादादित्यमुपतिष्ठति ॥ १३ ॥ आदित्याज्जायतेवृष्टिर्वृष्टेरन्नंततःप्रजाः ॥ तदादाद्यजमानश्च ऋत्विजोद्रव्यमे
वच ॥ १४ ॥ अदक्षिणेवृथायज्ञे कृतेचाप्यविधानतः ॥ १५ ॥ पशवोलगुडैर्हन्युर्यजमानंमृतंहताः ॥ तस्माच्छुद्धैर्द्विज
द्रव्ययजमानैःशुभःस्मृतः॥१६॥ यज्ञएतद्विचार्यासौ यज्ञसारंसमास्थितः॥श्रद्धयादेवपूजायां नमस्कारस्तुतिःशुभा॥१७॥
नैवेद्येहविषश्चैव सयज्ञोहिविकल्मषः ॥ सएवयज्ञःप्रोक्तोवै येनतुष्यन्तिदेवताः ॥ १८ ॥ केचिच्छ्लाघ्यन्तिसंन्यासं नन्द
भद्रोनमन्यते ॥ योहिसंन्यस्यविषयान् मनसागृह्यतेपुनः ॥१९॥ उभयभ्रष्टएवासौ छिन्नाभ्रमिवनश्यति ॥ संन्यासस्य
तुयत्सारं तत्तेनादृतमुत्तमम् ॥ २० ॥ कस्यचिन्नैवकर्माणिशपतेनाप्रशंसति ॥ नानामार्गस्थितंलोकं चन्द्रवल्लीलये
क्षते ॥ २१ ॥ नद्वेष्टिनोकामयते नानुरुध्यविरुध्यते ॥ समाश्मकाञ्चनोधीरस्तुल्यनिन्दात्मसंस्तुतिः ॥ २२ ॥ अभय

देवपूजन में उत्तम नमस्कार व स्तुति ॥ १७ ॥ और हविष्यान्न की नैवेद्य वही पापहीन यज्ञ है वही यज्ञ कहीगई है कि जिस से देवता प्रसन्नहोते हैं ॥ १८ ॥ कोई
संन्यास की प्रशंसा करते हैं परन्तु नन्दभद्र नहीं मानता था क्योंकि जो संन्यास लेकर फिर मनसे विषयों को ग्रहण करता है ॥ १९ ॥ दोनों ओर से भ्रष्ट हुआ यह
पुरुष कटे मेघकी नाईं नष्ट होजाता है और जो संन्यास का उत्तम सारांश था उसने उसका आदर किया ॥ २० ॥ और यह किसीके कर्मोंकी न निन्दा करताथा और न
प्रशंसा करता था और अनेक प्रकारके मार्गों में स्थित संसारको चन्द्रमा की नाईं लीलासे देखता था ॥ २१ ॥ न वैर करता था न कामना करताथा और न अनुरोध

कर विरोध करता था व पत्थर और सुवर्ण में समभाववाला पुरुष ज्ञानीथा और उसको अपनी निन्दा व प्रशंसा समान थी ॥ २२ ॥ और समस्त प्राणियों से निडर और अन्धे बहरे की नाईं आकारवाला था और कर्मोंके फलमें उसकी इच्छा नहीं थी उसी कारण शिवजी का आराधन करता था ॥ २३ ॥ और कारण से धर्म्म को चाहता हुआ वह तदनन्तर मनुष्यलोकमें घूमता था व विचारकर उस पुरुषने मोक्षके इस सारांश को ग्रहण किया ॥ २४ ॥ कोई कृषीकी प्रशंसा करता है परन्तु नन्दभद्र नहीं मानताथा जिस लिये कि वे अण्डकोशों को काटडालते हैं व नासिकाको छेदते हैं ॥ २५ ॥ और बहुत भारोंको खिंचवाते हैं व बांधते हैं और शान्त

स्सर्वभूतेभ्यो यथान्धबधिराकृतिः ॥ नकर्म्मणांफलेकाङ्क्षाशिवस्याराधनंहितत् ॥ २३ ॥ कारणाद्धर्म्ममन्विच्छन्नृलो कञ्चततश्चरन् ॥ विविच्यसनरस्त्वेतत्सारंमोक्षस्यचाददे ॥ २४ ॥ कृषिङ्केचित्प्रशंसन्ति नन्दभद्रोनमन्यते ॥ यस्मा च्छिन्दन्तिवृषणांस्तथाभिन्दन्तिनासिकाम् ॥ २५ ॥ कर्षयन्तिमहाभारान्बध्नन्तिदमयन्तिच ॥ बहुदंशमशान्देशा न् नयन्तिबहुकर्दमान् ॥ २६ ॥ वाहसम्पीडिताधुर्य्यास्सीदन्त्यविधिनापरे ॥ मन्यन्तेनात्महन्तारं विशिष्टेनास्यकर्म णः ॥ २७ ॥ अघ्न्याइतिगवांनाम श्रुतौताःपीडयेत्कथम् ॥ भूमिंभूमिशयांश्चैव हन्तिकाष्ठमयोमुखम् ॥ २८ ॥ पञ्चे न्द्रियेषुजीवेषु सर्व्वंवसतिदैवतम् ॥ आदित्यश्चन्द्रमावायुः प्रभृत्येवञ्चतांस्तुयः ॥ २९ ॥ विक्रीणातिचकूटेतु तस्यका नुविचारणा ॥ अजोवह्निर्वरुणोमेषः सूर्योश्वःपृथिवीविराट् ॥ ३० ॥ धेनुर्वत्सश्चसोमोवै विक्रयीतन्नसिध्यति ॥ एवंविध

करते हैं और बहुत डांस मसावाले व बहुत कीचडवाले देशोंमें ले जाते हैं ॥ २६ ॥ और अन्य धुरीवाले बैल अविधि करके बोझसे पीडितहोकर क्लेशित होते हैं और इस कर्म के विशेषसे जीवात्मा के मारनेवाले को नहीं मानते हैं ॥ २७ ॥ वेदमें अघ्न्या याने अवध्य यह गौवोंका नामहै इससे उनको कैसे पीड़ितकरै और पृथ्वी तथा भूमि में सोनेवाले जन्तुवोंको लोहमुखवाले काठमे मारता है ॥ २८ ॥ व जिस लिये कि इन्द्रियों व जीवोंमें सब देवता बसते हैं कि सूर्य, चन्द्रमा व पवन आदिक देवता रहते हैं उसी कारण जो मनुष्य उनको ॥ २९ ॥ बेचता है उसके कपटमे क्या विचार है याने कुछ नहीं छाग सूर्य हैं व भेड़ा वरुण हैं और घोडा सूर्य हैं व

पृथ्वी विराट् रूपहै ॥ ३० ॥ और गऊ व बछड़ा चन्द्रमा हैं इससे इनका बेंचनेवाला मनुष्य सिद्ध नहीं होता है इसप्रकार के हजारों दोषोंसे संयुत कृषी सदैव होती
है ॥ ३१ ॥ आठबैल, दोहल और बीस बीघावाली पृथ्वी कृषी होती है व यह किसान मनुष्य वृद्ध पशुवोंको धर्म्मसे देवै याने बेंचै नहीं ॥ ३२ ॥ यह कृषीका सारांश
है उस लिये नन्दभद्र ने इसका आदर किया है और देवताओं व पितरोंके कार्योंमें अन्न विशेषकर पवित्र करने के लिये योग्य हैं ॥ ३३ ॥ और सदैव मनुष्य ब्राह्मण
व भूतों के लिये अन्नका नियोगकर भोजन करता है कोई ऐश्वर्य की प्रशंसा करते हैं परन्तु नन्दभद्र नहीं मानता है ॥ ३४ ॥ क्योंकि ऐश्वर्यवाले पुरुष सबही मनुष्यों

**सहस्रैस्तु युतादोषैः कृषिस्सदा ॥ ३१ ॥ अष्टौगावश्चद्विहलंविंशत्याबाभवेत्कृषिः ॥ धर्म्मेणदद्यात्संवृद्धान् पशूनेषकृषी
बलः ॥ ३२ ॥ सारमेतत्कृषेस्तेन नन्दभद्रेणचादृतम् ॥ विशोधनीयान्यन्नानि स्वशक्त्यादैवपैतृषु ॥ ३३ ॥ मनुष्य
द्विजभूतेषुनियुञ्ज्यास्नातिसर्वदा ॥ केचिच्छ्लंसन्तिचैश्वर्यंनन्दभद्रोनमन्यते ॥ ३४ ॥ मानुषानखिलानेव दासमानेन
भुञ्जते ॥ वधबन्धविरोधेन पीडयन्तिदिवानिशम् ॥ ३५ ॥ देहंकिमेतद्धातुःस्वमातुर्वाजनकस्यवा ॥ मातुःपितुर्वा
क्रेतुर्वाबलिनोग्नेश्शुनोपिवा ॥ ३६ ॥ इतिसञ्चित्यविहरंत्यमराइवचेश्वराः ॥ ऐश्वर्यमदमाविष्टामत्ताःपानमदादिव ॥
३७ ॥ ऐश्वर्यमदमत्तोहि पतितत्वाद्विमाद्यति ॥ आत्मवत्सर्वभूतेषु श्रियानैवचमाद्यति ॥ ३८ ॥ नात्मप्रत्ययवद्देहे ई
श्वरश्चेदृशोस्तिहि ॥ ऐश्वर्यस्यापियत्सारं सजग्राहनिशामय ॥ ३९ ॥ स्वशक्त्यासर्वभूतेषु यदसौनपराङ्मुखः ॥ ती**

को दासमानसे भोगते हैं और वध व बन्धन तथा शत्रुतासे अहर्निश पीड़ित करतेहैं ॥ ३५ ॥ और क्या यह देहधारण करनेवाले अपने माता पिताकी है या मोललेने
वाले माता पिताकी है अथवा बलवान् अग्नि या कुत्तेकी है ॥ ३६ ॥ यह भलीभांति विचारकर समर्थ जन देवताओं की नाईं विहार करते हैं व ऐश्वर्य के मदमें प्राप्त
होकर मदिराके मदकेनाईं मतवाले होतेहैं ॥ ३७ ॥ और ऐश्वर्यके मदसे मतवाला पुरुष पतित होनेके कारण मत्तहोताहै व समस्त प्राणियोंमें अपनी आत्माकी नाईं जो
बर्ताव करता है वह लक्ष्मी से मत्त नहीं होता है ॥ ३८ ॥ और जो जन यह नहीं समझते हैं कि अपने ज्ञानके नाईं शरीर में ऐसा ईश्वर है वह लक्ष्मीसे मत्त होताहै

और उसने ऐश्वर्य के भी जिस सारांशको ग्रहण किया है उसको सुनिये ॥ ३९ ॥ कि अपनी शक्तिके अनुसार यह समस्त प्राणियों मे विमुख नहीं होताथा कितेक पुरुष तीर्थोंकी प्रशंसा करते हैं परन्तु नन्दभद्र नहीं मानता था ॥ ४० ॥ क्योंकि परिश्रम से व पसीनाके किनुकों से और ताप, शीत, पवन, भूँख और प्यास से व क्रोधसे मनुष्य घरमें धर्म्म के नाशको प्राप्तहोता है ॥ ४१ ॥ और सुख से धनके नाशको भी प्राप्तहोता है और श्रद्धासे थोड़ी द्रव्यवाला समर्थ पुरुष बडी पुण्यकरने के लिये समर्थ होताहै परन्तु वह श्रद्धा शीघ्रही कहां होती है ॥ ४२ ॥ उस नन्दभद्र ने सदैव पवित्र व देव पूजक होकर घरमें तीर्थका सारांश किया है जल पापोंको

र्थान्येकेप्रशंसन्ति नन्दभद्रोनमन्यते ॥ ४० ॥ श्रमेणशीकरात्तापशीतवातक्षुधातृषा ॥ क्रोधेनगेहधर्मस्य चापिना शमवाप्नुयात् ॥ ४१ ॥ सौख्येनचधनस्यापि श्रद्धयास्वल्पकोर्थवान् ॥ समर्थोहिमहत्पुण्यं शक्तआशुकचास्तिसा॥ ४२ ॥ सदाशुचिर्देवयाजी तीर्थसारंगृहेऽव्यधात् ॥ नापःपुनन्तिपापानि नशैलानमहाश्रमाः ॥ ४३ ॥ आत्मापुनातिपापानि यदिपापान्निवर्त्तते ॥ एवमेवसमाचारं प्रादुर्भूतमितस्ततः ॥ ४४ ॥ एकीकृत्यसदाधीमान् नन्दभद्रस्समास्थितः ॥ तस्यैवंवर्ततस्साधोःस्पृहयन्त्यपिदेवताः ॥ ४५ ॥ वासवप्रमुखास्सर्वे विस्मयंचपरंययुः ॥ अत्रैवस्थानकेचापि शूद्रोभूत्प्रान्तिवेश्मकः ॥ ४६ ॥ सनन्दभद्रंधर्म्मस्थं पुनःपुनरसूयति ॥ नास्तिकस्सुदुराचारस्सत्यव्रतइतिश्रुतः ॥ ४७ ॥ ससदानन्दभद्रस्य विलोकयतिचान्तरम् ॥ छिद्रंचेदस्यपश्यामि ततोधर्म्मान्निवर्त्तते ॥ ४८ ॥ स्वभावएषक्रूराणां ना

नहीं पवित्र करते हैं न पर्वत और न बड़े आश्रम पवित्र करते हैं ॥ ४३ ॥ किन्तु यदि पापसे निवृत्त होवै तो आत्मा (मन या बुद्धि) पापोंको पवित्र करती है इधर उधर ऐसेही प्रकटहुये आचरण को ॥ ४४ ॥ इकट्ठाकर नन्दभद्र सदैव स्थितथा इस प्रकार वर्तमान होतेहुये उस साधुकी देवता भी इच्छा करते थे ॥ ४५ ॥ और इन्द्र आदिक सब देवता बडे विस्मयको प्राप्तहुये और इसी स्थानमें समीप मन्दिरवाला शूद्रहुआ है ॥ ४६ ॥ वह धर्म्ममें टिकेहुये नन्दभद्रकी बार बार ईर्षा करताथा जोकि नास्तिक व दुराचारी सत्यव्रत ऐसा प्रसिद्धथा ॥ ४७ ॥ वह सदैव नन्दभद्रका अन्तर (दोष) देखताथा कि यदि इसके छिद्रको देखूं तो यह धर्म्मसे निवृत्तहोगा ॥ ४८ ॥

दुष्टात्मा क्रूर नास्तिकों का यह स्वभाव होताहै कि जिससे अपनी परिपूर्णता होतीहै उसी कारण अन्यको भी पतित करते हैं ॥४९॥ तदनन्तर इसप्रकार वर्तमान होते
हुये उस बुद्धिमान् नन्दभद्र के वृद्धता में क्लेशसे एकपुत्र हुआ और वह भी नाशहोगया ॥ ५० ॥ और उसको भाग्य से किया हुआ जानकर बड़े बुद्धिमान् नन्दभद्र
ने शोच न किया क्योंकि देवता हो या मनुष्य भी हो दैव (भाग्य) से कौन छूटताहै ॥५१॥ तदनन्तर पतिव्रताके समस्त गुणों से संयुक्त व बड़ी प्यारी इसकी स्त्री
जोकि घरके धर्म्म की मूर्ति साक्षात् अरुन्धती की नाईं थी ॥ ५२ ॥ हे अर्जुनजी ! नामसे कनका नामक वह नाशको प्राप्तहुई तदनन्तर घरके धर्म्मके नाशसे इस जि-

स्तिकानांदुरात्मनाम् ॥ आत्मनोयेनपर्याप्तिः पातयन्त्यपरञ्चतत् ॥ ४९ ॥ ततस्त्वेवंवर्त्ततोस्य नन्दभद्रस्यधीमतः ॥
एकोभूत्तनयःकष्टाद्वार्द्धक्येसोप्यनश्यत ॥ ५० ॥ तच्चदैवकृतंमत्वा नशुशोचमहामतिः ॥ देवोवामानवोवापि कोहिदैवा-
द्विमुच्यते ॥ ५१ ॥ ततोस्यसुप्रियाभार्या सर्वैस्साध्वीगुणैर्युता ॥ गृहधर्मस्यमूर्त्तिर्या साक्षादिवअरुन्धती ॥ ५२ ॥ वि
नाशमागतापार्थ कनकानामनामतः ॥ ततोजितेन्द्रियस्त्वेष गेहधर्म्मविनाशतः ॥ ५३ ॥ शुशोचचमहाकष्टं पापोहं
मितिचासकृत् ॥ तत्तस्यचान्तरंदृष्ट्वा हृष्यत्सत्यव्रतश्चिरात् ॥ ५४ ॥ उपाव्रजत्सहाकष्टं ध्रुवंस्तन्नन्दभद्रकम् ॥ आशु
मित्रइवासाद्य नन्दभद्रमुवाचसः ॥ ५५ ॥ हानन्दभद्रयद्येवंतवाप्येवंविधंफलम् ॥ एतेनमन्येमनसि धर्म्मोद्येषवृथैव
हि ॥ ५६ ॥ इत्यादिबहुधाप्रोच्य तत्तद्वाक्यंततस्ततः ॥ सत्यव्रतस्ततःप्राह नन्दभद्रंकृपान्वितः ॥ ५७ ॥ नन्दभद्रस
दातुभ्यं वक्तुकामोस्मिकिञ्चन ॥ प्रस्तावस्याप्यभावाच्च नोदितञ्चमयाक्वचित् ॥ ५८ ॥ अप्रस्तावेश्रुत्वातुवाक्यं बृहस्पति

तेन्द्रियने ॥ ५३ ॥ हा बड़े कष्टकी बातहै ऐसा कहकर शोचकिया कि मैं पापी हूँ यह बार बार कहा उसके उस छिद्रको देखकर सत्यव्रत बहुतदिनोंसे प्रसन्नहुआ ॥५४॥
व हा कष्ट ऐसा कहताहुआ वह उस नन्दभद्र के समीप आया व शीघ्रही मित्रकी नाईं आकर वह नन्दभद्र से बोला ॥ ५५ ॥ कि हा नन्दभद्र ! यदि ऐसा है कि तुम
कोभी इस प्रकारका फल मिला तो इससे मैं मनमें मानताहूँ कि यह धर्म्मभी वृथाहै ॥ ५६ ॥ इत्यादिक उन उन वचनों को बहुत प्रकार से उससे कहकर तदनन्तर
दयासंगत सत्यव्रत ने नन्दभद्र से कहा ॥ ५७ ॥ कि हे नन्दभद्र ! मैं तुमसे सदैव कुछ कहनेकी इच्छावालाथा और प्रस्तावके अभावसे मैंने कभीकुछ नहीं कहा ॥५८॥

क्योंकि अप्रस्ताव में वचनको कहते हुये आपही बृहस्पति भी बुद्धिके अज्ञान व हीनकी नाईं अपमान को प्राप्तहोता है ॥ ५९ ॥ नन्दभद्र बोले कि कहिये कहिये मुझको सज्जनोंकी सभा से कुछ अन्य प्रिय नहींहै क्योंकि शुद्ध प्राणियोंके वचनों से अज्ञान दूरकर दिया जाताहै ॥ ६० ॥ सत्यव्रत बोले कि नव नव दोषों से छूटे हुये और नव बुद्धिके दोषों से अदूषित वचन को कहूंगा ॥ ६१ ॥ कि सूक्ष्म, संख्या, क्रम, निर्णय व प्रयोजन अर्थसे उपजे हुये ये पांच वस्तुवें जिसमें होवैं वह वाक्य कही जाती है ॥ ६२ ॥ धर्म्म, अर्थ, काम व मोक्षको उद्देशकर जो वचन कहा जाता है वह प्रयोजन ऐसा पहला वाक्य का लक्षण है ॥ ६३ ॥ व धर्म्म, अर्थ, काम

रपिस्वयम् ॥ लभतेबुद्ध्यविज्ञानं अवमानञ्चहीनवत् ॥ ५९ ॥ नन्दभद्रउवाच ॥ ब्रूहिब्रूहिनमेकिञ्चित्साधुगोष्ठ्याःप्रियं परम् ॥ वचोभिःशुद्धसत्त्वानां तमश्चैवापनीयते ॥ ६० ॥ सत्यव्रतउवाच ॥ नवभिर्नवभिश्चैव विमुक्तञ्चापिदूषणैः ॥ नवभि र्बुद्धिदोषैश्च वाक्यंवक्ष्याम्यदोषवत् ॥ ६१ ॥ सूक्ष्मसंख्याक्रमाश्चापि निर्णयःसप्रयोजनः ॥ पञ्चैतान्यर्थजातानि यत्रत द्वाक्यमुच्यते ॥ ६२ ॥ धर्ममर्थञ्चकामञ्च मोक्षमुद्दिश्यचोच्यते ॥ प्रयोजनमितिप्रोक्तं प्रथमंवाक्यलक्षणम् ॥ ६३ ॥ धर्मार्थकाममोक्षेषु प्रतिज्ञायविशेषतः ॥ इदंतदितिवाक्यंयत् प्रोच्यतेसविनिर्णयः ॥ ६४ ॥ इदंपूर्वमिदंपश्चाद्वक्तव्यं यत्क्रमेणहि ॥ क्रमयोगन्तदप्याहुर्वाक्यतत्त्वविदोबुधाः ॥ ६५ ॥ दोषाणाञ्चगुणानाञ्च प्रमाणंप्रविभागशः ॥ उभया र्थमभिप्रेक्ष्य सङ्क्षेपादवधारणम् ॥ ६६ ॥ वाक्ययज्ञेषुभिन्नेषु यत्रभेदःप्रदृश्यते ॥ तत्रतत्रार्थहेतुत्वं तत्सूक्ष्ममितिनिर्दि शेत् ॥ ६७ ॥ इतिवाक्यगुणानाञ्च वाग्दोषादिनवश्शृणु ॥ यत्त्याज्यार्थमभिन्नार्थं अप्रवृत्तंतथाधिकम् ॥ ६८ ॥ अश्लक्ष

व मोक्षों में विशेषता से जानकर यह वह है ऐसा जो वचन है वह निर्णय कहा जाता है ॥ ६४ ॥ यह पहले और यह पीछे कहने योग्यहै ऐसा जो क्रम से कथन है वाक्यतत्त्व के जानने वालों ने उसको भी क्रम योग कहा है ॥ ६५ ॥ दोषों और गुणों के विभाग से जो प्रमाणहै व दोनों के अर्थ को देखकर संक्षेप से निश्चय करना संख्या है ॥ ६६ ॥ भिन्न वाक्य यज्ञों में जहां भेद देखपड़ता है वहां वहांजो अर्थ का कारण है वह सूक्ष्म ऐसा कहाजाता है ॥ ६७ ॥ ये वाक्य गुणों के मध्य

में कहेगये हैं और वचनके नव दोषादिकों को सुनिये कि जो त्यागकरने के योग्य अर्थ वाला है व अभिन्न अर्थवाला, अप्रवृत्त, अधिक ॥ ६८ ॥ और कठोर, सन्देह
युक्त व चरण के अन्तमें गुरुअक्षर, पराङ्मुख याने विमुख मुख से जो कहाजाय व जिस में असत्यहो और संस्कार हीन ॥ ६९ ॥ और जो वर्ग से विरुद्ध हो, न्यून,
काष्ठादि शब्दवाला व अकारण और बुद्धि से उपजेहुये उन वाणी के दोषों को सुनिये ॥ ७० ॥ कि काम, क्रोध, भय, लोभ, दीनता, मूर्खता और दया से रहित व मान
से हीन और धर्म से रहित ये दोष हैं ॥ ७१ ॥ जब वक्ता और श्रोता और वचन विकलता रहित होवे और वक्ता की इच्छा में साम याने प्रिय वचन समेत होवे तब वह

**क्ष्णं चापिसन्दिग्धं पादान्तेगुरुवाक्षरम् ॥ पराङ्मुखमुखंयत्रअनृतंचाप्यसंस्कृतम् ॥ ६९ ॥ विरुद्धंयच्चवर्गेण न्यूनंकाष्ठा
दिशब्दकम् ॥ निष्कारणंचवाग्दोषान् बुद्धिजाञ्छृणुत्वञ्चतान् ॥ ७० ॥ कामात्क्रोधाद्भयाच्चैव लोभाद्दैन्यादनार्यका
त् ॥ हीनोनुक्रोशतोमानाद्धर्माद्देतेचदोषकाः ॥ ७१ ॥ वक्ताश्रोताचवाक्यञ्च यदात्वविकलंभवेत् ॥ समामेतिविवक्षा
यां तदासोर्थंप्रकाशते ॥ ७२ ॥ वक्तव्येतुयदावक्ता श्रोतारमवमन्यते ॥ श्रोतावाप्यथवक्तारं तदावाक्यन्नरोहति ॥७३॥
अथयःस्वप्रियंब्रूयाच्छ्रोतुश्चोत्सृज्ययद्धितम् ॥ विशङ्काजायतेयस्मिन्वाक्यंतदपिदोषवत् ॥ ७४ ॥ तस्माद्यःस्वप्रियं
त्यक्त्वा श्रोतुश्चाप्यथयत्प्रियम् ॥ सत्यमेवप्रभाषेत सवक्तानेतरोभुवि ॥ ७५ ॥ मिथ्यावादाञ्छास्त्रजालसम्भवानूयदि
हायच ॥ सत्यमेवव्रतंयस्मात्तस्मात्सत्यव्रतस्त्वहम् ॥ ७६ ॥ सत्यन्तेसम्प्रवक्ष्यामि मन्तुमर्हसितत्तथा ॥ यदाप्रभृति**

अर्थ को प्रकाश करता है ॥ ७२ ॥ और कहने योग्य वचन में जब वक्ता श्रोता का अपमान करता है अथवा श्रोता वक्ता का अपमान करै तब वचन प्रगट नहीं होता
है ॥७३॥ अथवा जो श्रोताके हित को छोड़कर अपने प्रिय जिसवचन को कहता है व जिसमें विशेषकर शङ्का उत्पन्न होती है वह भी वचन दोषवान् होताहै ॥ ७४ ॥
इसलिये जो अपने प्रिय को छोड़कर और श्रोता को जो प्रिय है उसको भी छोड़कर सत्यही कहता है वह पृथ्वी में वक्ता है और नहीं है ॥ ७५ ॥ जिसलिये शास्त्र
समूहों से उपजेहुये मिथ्यावादोंको छोड़कर जिस से कि सत्यहीं व्रत है उसीकारण मैं सत्यव्रत हूं ॥ ७६ ॥ मैं तुम से सत्य कहता हूं उसको वैसेही मानने के योग्यहो

हे भद्र ! जब से लगाकर तुम पाषाण (पत्थल) के पूजन में परायण हुये हो ॥ ७७ ॥ तब से लगाकर मैं कुछ उत्तम नहीं देखता हूं क्योंकि एक भी वह पुत्र नष्ट होगया व श्रेष्ठ स्त्री नाश होगई ॥ ७८ ॥ हे साधो ! कपट कर्मों का ऐसाही फल होवै है देवता कहा हैं यह मिथ्याहै क्योंकि यदि वे होते तो देख भी पड़ते ॥ ७९॥ कपटी ब्राह्मणों की यह सब मिथ्याही कल्पनाहै पितरों को उद्देश कर मनुष्य देते हैं परन्तु मुझको हँसी आती है ॥ ८० ॥ अन्न के उपद्रव को देखताहुआ मरामनुष्य क्या भोजन करै गा और जो यह मूर्ख नीच ब्राह्मण समस्त संसार के निर्माण को बहुतभांति से वर्णन करते हैं तौ भी सत्यता से सुनिये कि संसार की उत्पत्ति व

भद्रत्वं पाषाणस्यार्चनेरतः ॥ ७७ ॥ तदाप्रभृतिकिञ्चिच्च नहिपश्यामिशोभनम् ॥ एकस्सोपिसुतोनष्टो भार्याचार्य्यातथैवच ॥ ७८ ॥ कूटानांकर्मणांसाधो फलमेवंविधंभवेत् ॥ क्वदेवास्सन्तिमिथ्यैव दृश्यन्तेचेद्भवन्त्यपि ॥ ७९ ॥ सर्वाचकूटविप्राणां मिथ्यैवैषाविकल्पना ॥ पितृनुद्दिश्ययच्छन्ति ममहासःप्रजायते ॥ ८० ॥ अन्नस्योपद्रवंपश्यन् मृतोहिकिमशिष्यति ॥ यच्चेदंबहुधामूढा वर्णयन्तिद्विजाधमाः ॥ ८१ ॥ विश्वनिर्माणमखिलं तथापिशृणुसत्यतः ॥ उत्पत्तिश्चापिभङ्गश्च विश्वस्यैतद्वयंमृषा ॥ ८२ ॥ एवमेवंहिसर्वञ्च सदैवंवर्त्ततेजगत् ॥ स्वभावतोविश्वमिदं वर्त्ततेहिस्वभावतः ॥ ८३ ॥ स्वभावतस्सूर्य्यमुखाभ्रमन्त्यमी स्वभावतोवायवोवान्तिनित्यम् ॥ स्वभावतोवर्षतिचाम्बुदस्त्वयं स्वभावतोरोहतिधान्यमुप्तम् ॥ ८४ ॥ स्वभावतस्संस्थितामेदिनीच स्वभावतस्सरितस्संस्रवन्ति ॥ स्वभावतःपर्वताभान्तिनित्यंस्वभावतश्चाम्बुधिरेषसंस्थितः ॥ ८५ ॥ स्वभावतोजनयतिगर्भिणीसुतं स्वभावतोमीबहवश्चजीवाः ॥ यथास्वभावेनभव

नाश ये दोनों झूंठ हैं ॥ ८१ । ८२ ॥ ऐसेही स्वर्गसमेत सब संसार स्वभावही से वर्तमान है यह संसार स्वभावही से वर्तमान है ॥ ८३ ॥ ये सूर्यादिक ग्रह स्वभावही से घूमते हैं और पवन नित्यही स्वभावसे चलते हैं व यह मेघ स्वभावसे बरसते हैं और बोयाहुआ अन्न स्वभावही से जमता है ॥ ८४ ॥ स्वभावही से पृथ्वी भलीभांति स्थितहै और नदियां स्वभाहीसे बहती हैं व पर्वत नित्यही स्वभाव से शोभित हैं और स्वभावही से यह समुद्र स्थितहै ॥ ८५ ॥ व गर्भिणी स्वभावहीसे पुत्रको पैदाकरती

है और ये जीव स्वभाव से वर्तमान हैं जैसे कुटिल स्वभाववाले कण्टक स्वभाव से बेरके वृक्षों में टेढ़े होते हैं ॥ ८६ ॥ वैसेही स्वभावही से यह धर्म्म प्रकाश करता है
क्योंकि कोई कर्ता नहीं देख पडता है ॥ ८७ ॥ इस लिये संसारको इसप्रकार स्थितहोने पर मूर्ख मनुष्य मतवालेकी नाईं मोहको प्राप्तहोता है और जो धूर्त लोग
मनुष्यताको भी श्रेष्ठ कहते हैं उसको सुनिये ॥ ८८ ॥ कि मनुष्यसे अधिक वह कष्ट वैरियों को न होवै क्योंकि क्षणा क्षणभर में मनुष्यों के हजारों शोकस्थान हैं ॥ ८९ ॥
मनुष्य होना बन्दीगृह कहागया है इससे सभाग्य पुरुष इस मनुष्यतासे छूटिजाता है क्योंकि पशु, पक्षी, कीट, कीडे सुखपूर्वक ॥ ९० ॥ ये बिन बँधेहुये विहार

न्तिवक्रा वक्रस्वभावाबदरीषु कण्टकाः ॥ ८६ ॥ तथास्वभावेनहिधर्ममेतत् प्रकाशतेकोपिकर्त्तानदृश्यः ॥ ८७ ॥ तदे
वंसंस्थितेलोके मूढोमुह्यतिमत्तवत् ॥ मानुष्यमपियेधूर्ता वदन्त्यग्रंशृणुष्वतत् ॥ ८८ ॥ मनुष्यान्नपरंकष्टं वैरिणान्नो
भवेच्चतत् ॥ शोकस्थानसहस्राणि मनुष्याणांक्षणेक्षणे ॥ ८९ ॥ मानुष्यंहिस्मृताकारा सभाग्योस्मात्प्रमुच्यते ॥ पश
वःपक्षिणःकीटाः कृमयश्चयथासुखम् ॥ ९० ॥ अबद्धाविहरन्त्येते योनिरेषासुदुर्लभा ॥ निश्चिन्ताःस्थावराह्येते सौख्य
मेषांमहद्भुवि ॥ ९१ ॥ बहुनाकिंमनुष्येभ्यस्सर्वेधन्यान्ययोनिजाः ॥ स्वभावमेनंजानीहि पुण्यापुण्यादिकल्पना ॥
९२ ॥ यदेकेस्थावराःकीटाः पतङ्गामनुजादिकाः ॥ तस्मान्मिथ्यांपरित्यज्य नन्दभद्रयथासुखम् ॥ पिबक्रीडतथा
भुङ्क्ष्वभोगान्सत्यमिदम्भुवि ॥ ९३ ॥ नारदउवाच ॥ इत्येतैरसुखैर्वाक्यैरयुक्तैरसमञ्जसैः ॥ सत्यव्रतस्यनाकम्पन्न
न्दभद्रोमहामतिः ॥ प्रहसन्निवतंप्राह त्वत्तोभ्यस्सागरोयथा ॥ ९४ ॥ यद्भवानाहधर्मिष्ठास्सदादुःखस्यभागिनः ॥ तं

करते हैं इससे यह योनि अत्यन्त दुर्लभहै ये स्थावर (वृक्षादिक) निश्चिन्त रहते हैं और इनको भूमि में बड़ासुख होताहै ॥ ९१ ॥ और बहुत कहने से क्याहै मनुष्यों
से अन्य योनि में पैदाहुये सब प्राणी धन्य हैं और पुण्य व पापादिक कल्पना इसको स्वभावही जानिये ॥ ९२ ॥ जिसलिये स्थावर, कीट, पतङ्ग व मनुजादिक मुख्यहैं
इसलिये हे नन्दभद्र ! मिथ्याको छोड़कर सुखपूर्वक पियो व क्रीडाकरो और भोगोंको भोगो भूमिमें यही सत्यहै ॥ ९३ ॥ नारदजीबोले कि सत्यव्रतके इन अयोग्य व सुखर
हित तथा अन्यायक वचनोंसे बड़े बुद्धिमान् नन्दभद्रजी चलायमान न हुये और हँसते हुयेसे वे क्षोभरहित समुद्रकी नाईं उससे बोले ॥ ९४ ॥ कि जो आपने कहा

कि धर्मिष्ठ लोग सदैव दुःख के भागी होते हैं वह झूठहै क्योंकि पापियोंके भी मैं दुःखसमूहों को देखताहूँ ॥ ९५ ॥ और संसारके बन्धनके दुःख व पुत्र स्त्री आदिको का मरना ये पापियोंके भी देखेजाते हैं इस लिये धर्म्म गुरु मानागया है ॥ ९६ ॥ यह साधु है अहो बडे कष्टकी बात है कि इस साधु को दुःख होता है इस बातको महात्मा लोग जानते हैं परन्तु पापियों को यह भी दुर्लभ है ॥ ९७ ॥ और स्त्री आदिक बन्धनके लोभके लिये घरमें बैठे हुये पापी जनसे आपभी डरते हैं और इस से द्वेष करतेहो व क्रोध करतेहो वह वृथाहै ॥ ९८ ॥ इस संसारके महेश्वर कारण नहीं हैं जो यह तुम कहते हो तुम्हारा वह बालकों कासा वचन है क्योंकि राजाके

न्मिथ्यादुःखजालानि पश्यामःपापिनामपि ॥ ९५ ॥ भवबन्धपरिक्लेशाः पुत्रदारादिपञ्चता ॥ पापिनामपिदृश्यन्ते त स्माद्धर्मोगुरुर्मतः ॥ ९६ ॥ अयंसाधुरहोकष्टं कष्टमस्यमहाजनाः ॥ साधोर्विदन्त्येतदपि पापानांदुर्लभंत्विदम् ॥ ९७ ॥ दारादिद्रव्यलोभार्थं पापिनोविशतोगृहे ॥ भवानपिबिभेत्यस्माद्द्वेष्टिकुप्यतितद्वृथा ॥ ९८ ॥ यदस्यजगतोरूपे नास्तिहेतु र्महेश्वरः ॥ तद्बालभाषितंतुभ्यं किंराजानंविनाप्रजाः ॥ ९९ ॥ यच्चब्रवीषिपाषाणं मिथ्यालिङ्गंसमर्चसि ॥ तद्भवाल्लिङ्ग माहात्म्यं वेत्तिनान्धोयथारविम् ॥ १०० ॥ ब्रह्मादयस्सुरास्सर्वे राजानश्चमहर्द्धिकाः ॥ मानवामुनयश्चैव सर्वेलिङ्गंय जन्तिच ॥ १ ॥ स्वनामाख्यानचिह्नानि तेषांलिङ्गानिसन्तिच ॥ एतेकिन्न्वभवन्मूर्खास्त्वन्तुसत्यव्रतस्सुधीः ॥ २ ॥ प्रति ष्ठाप्यपुराब्रह्मा पुष्करेनीललोहितम् ॥ प्राप्तवान्परमांसिद्धिंससर्जेमाःप्रजाःप्रभुः ॥ ३ ॥ विष्णुनाचनिहत्याजौ रावणं पयसान्निधेः ॥ तीरेरामेश्वरंलिङ्गं स्थापितंचास्तिकिंमुधा ॥ ४ ॥ वृत्रंहत्वापुराशक्रो महेन्द्रेस्थाप्यशङ्करम् ॥ लिङ्गंवि

विना प्रजा नहीं होते हैं ॥ ९९ ॥ और जो कहतेहो कि पत्थरके लिङ्गको मिथ्या पूजतेहो तो आप लिङ्गके माहात्म्यको नहीं जानते हो जैसे कि अन्ध सूर्य को नहीं जानता है ॥ १०० ॥ ब्रह्मादिक सब देवता व बड़ी ऋद्धिवाले राजालोग, मनुष्य व मुनि ये सब लिङ्गको पूजते हैं ॥ १ ॥ और उनके लिंग अपने नामकी प्रसिद्धि से चिह्नित हैं क्या येसब मूर्ख हुये हैं और तुम सत्यव्रत विद्वान्हो ॥ २ ॥ पुरातन समय ब्रह्माने पुष्करमें सदाशिवजीको थापकर बड़ी सिद्धिको पायाहै और उन प्रभुने इन प्रजाओं को रचाहै ॥ ३ ॥ और विष्णुने भी समर में रावणको मारकर समुद्रके किनारे रामेश्वर लिंगको स्थापन किया है क्या यह वृथाही है ॥ ४ ॥ व पुरातन समय

वृत्रासुर को मारकर महेन्द्र पर्वतपै शङ्करलिंग को थापकर पापोंसे छूटकर ये इन्द्र आजभी स्वर्ग में प्रसन्न हैं ॥ ५ ॥ और गंगा व समुद्रके संगममें शिवजीको स्थापित
कर सूर्य रोगरहित हुये हैं और चन्द्रमाने पश्चिम समुद्र के समीप प्रभासक्षेत्रमें शिवको स्थापन किया है ॥ ६ ॥ और यमराज व कुबेर ने काशीमें तथा गरुड़ व
कश्यपजी ने सह्य पर्वतपै लिंगको थापाहै और वायु व वरुण नैमिष क्षेत्रमें लिंगको थापकर आनन्दित हैं ॥ ७ ॥ व इसी स्तम्भतीर्थ में स्वामी स्वामिकार्त्तिकेयजी ने
कुमारेश नामक लिंगको थापा है क्या वह लिंग समस्त पातकोंका नाशक नहीं है ॥ ८ ॥ इसप्रकार अन्य देवताओं व राजाओं तथा मुनियों ने जिन लिंगोंको स्थापन

मुक्तपापोयं त्रिदिवेद्यापिमोदते ॥ ५ ॥ स्थापयित्वाशिवंसूर्यो गङ्गासागरसङ्गमे ॥ निरामयोभवत्सोमः प्रभासेपश्चि
मोदधौ ॥६॥ काश्यांयमश्चधनदः सह्येगरुडकश्यपौ ॥ नैमिषेवायुवरुणौ स्थाप्यलिङ्गंप्रमोदतः ॥७॥ अस्मिन्नेवस्तम्भ
तीर्थे कुमारेशंगुहोविभुः ॥ लिङ्गंसंस्थापयामास सर्वपापहरन्नकिम् ॥ ८ ॥ एवमन्यैस्सुरैर्यानि पार्थिवैर्मुनिभिस्तथा ॥
संस्थापितानिलिङ्गानि नाहंवक्तुंसमुत्सहे ॥ ९ ॥ पृथिवीवासिनस्सर्वे येचस्वर्गनिवासिनः ॥ पातालवासिनस्तृप्ता जा
यन्तेलिङ्गपूजनात् ॥ १० ॥ यच्चब्रवीषिगीर्वाणास्सन्तिनोसन्तिचेत्कुतः ॥ कुत्रापिनैवदृश्यन्ते तेनमेविस्मयोमहा
न् ॥ ११ ॥ एवंत्वकस्माच्चान्देवान्याचन्तेऽव्याकुलाःकथम् ॥ यानित्थंसिमहाप्राज्ञ साधुःकोस्तिगुरुस्तव ॥ १२ ॥ स्व
भावेनैवसर्वार्थास्संसिद्धायदितेमते ॥ भोजनंहिकथंसिद्धेच्चेन्नैवकर्तारमन्तरा ॥१३॥ बदरीमन्तरेणापि दृश्यन्तेकण्टकान
हि ॥१४॥ तस्मात्कर्तास्तिनिर्माणे यस्ययावत्तथैवतत् ॥ यच्चब्रवीषिषड्वाद्यास्सुखिनोधन्यकास्त्वमी ॥१५॥ त्वद्दतेनैवमु

कियाहै उनको मैं कहने के लिये नहीं उत्साह करताहूँ ॥ ९ ॥ सब पृथ्वीके बसनेवाले और जो स्वर्गके वासी हैं व पातालवासी ये सब लिंगके पूजनसे तृप्तहोते हैं ॥ १० ॥
और जो कहतेहो कि देवता नहीं हैं यदि हैं तो कहीं भी क्यों नहीं देखपड़ते हैं इससे मेरे बड़ा विस्मय है ॥ ११ ॥ क्योंकि यदि ऐसा होवै तो उन देवताओं से व्याकुल
पुरुष अचानक कैसे याचना करैं कि जिनका हे महाप्राज्ञ ! तुम चाहतेहो और तुम्हारा कौन साधु गुरु है ॥ १२ ॥ यदि तुम्हारे मतमें स्वभावही से सब वस्तुवें भली
भांति सिद्धहैं तो कर्त्ताके विना भोजन क्यों नहीं सिद्धहोताहै॥१३॥व बेरिके विना कांटे नहीं देखपड़ते हैं ॥१४॥ इस लिये जिसकी जितनी निर्माण करोगे वह वैसाही

होगा और जो कहतेहो कि पशुआदिक ये धन्य व सुखी हैं ॥ १५ ॥ सो तुम्हारे विना किसीने न ऐसा कहाहै न सुना है व तामसी और जो विकल हैं उन जीवोंको कष्ट होताहै ॥ १६ ॥ कि समस्त इन्द्रियोंसे संयुक्त सब धन्यहैं परन्तु मनुष्य प्रशंसनीय नहींहैं तुममे इकट्ठा कियेहुये इस सत्यव्रतको मैं नरकके लिये मानताहूँ ॥ १७॥ इस प्रयोजन मे तुमको भय न करना चाहिये यह आपका काम शीघ्रही होगा और पहले प्रारम्भही में ज्ञानहीको कहते हुये ॥ १८ ॥ तुम्हारी यह निस्सारता है क्योंकि यह प्रकटहै कि पहले आडम्बर के लिये जो वचनहै उसको कहतेहुये मायावियोंका वचन आडम्बरसे विरा होताहै ॥१९॥ और प्रज्वलित सोनेकी नाई सज्जनोंकी यह

क्त्न्न केनापिश्रुतमेवच ॥ तामसाविकलायेच कष्टन्तेषाञ्चजन्मिनाम् ॥ १६ ॥ सर्वेन्द्रिययुताःश्रेष्ठास्सर्वेधन्यानमानुषाः॥ सत्यंतवव्रतंमन्ये नरकायत्वयाहृतम् ॥ १७ ॥ अस्मिन्नर्थेनभीःकार्या कामोयंभविताचिरात् ॥ आदावाडम्बरेचैव ब्रुवतोज्ञानमेवच ॥ १८ ॥ इयंनिस्सारताव्यक्तमादावाडम्बरायत ॥ मायाविनांहिब्रुवतां वाक्यंचाडम्बरावृतम् ॥ १९ ॥ सुवर्णकमिवोद्दीप्तं परीक्षेयंसतांसदा ॥ आदौमध्येतथाचान्ते तेषांवाक्यमदोषवत् ॥ २० ॥ कसेदादौस्वर्णमिव च्छेदेपिस्याच्छुभाशुभम् ॥ त्वयान्यथाप्रतिज्ञातमुक्तंचैवान्यथापुनः ॥ २१ ॥ मोहयस्यपरंयच्च दोषेणैवपरस्यतु ॥ अपोवस्त्रन्तिलांस्तैलं गन्धोवासयतेयथा ॥ २२ ॥ पुष्पाणामधिवासेन तथासंसर्गजागुणाः ॥ मोहजालस्ययोनिर्हि मूढैरेवसमागमः ॥ २३ ॥ अहन्यहनिधर्मस्य योनिस्साधुसमागमः ॥ तस्मात्प्राज्ञैश्चवृद्धैश्च शुद्धभावैस्सहास्थितिः ॥ २४ ॥ सद्भिश्चसहसंसर्गः कार्य्यःशमपरायणैः ॥ ननीचैर्नाप्यविद्वद्भिर्नानात्मज्ञैर्विशेषतः ॥ २५ ॥ यस्यत्रीण्यवदातानि यो

सदैव परीक्षाहै कि आदि मध्य व अन्तमें उनका वचन दोषहीन होताहै ॥२०॥पहले सोनेकी नाई कसै तो फिर कटने पर शुभ व अशुभ होता है और तुमने अन्यथा प्रतिज्ञा किया व फिर अन्यथा कहा ॥ २१ ॥ क्योंकि पराये दोषसे अन्यको मोहते हो फूलों के अधिवाससे सुगन्ध जिसप्रकार जल, वसन, तिल व तैलको सुगन्धित करता है वैसेही संसर्ग (सङ्गति) से पैदाहुये गुण होते हैं और मूर्खों से संयोग मोहसमूह की खानि है ॥ २२ । २३ ॥ और साधुवों का समागम दिन दिनमें धर्म का उत्पत्तिकारक है इस लिये बुद्धिमान् व शुद्ध स्वभाववाले वृद्धोंके साथ बैठना ॥ २४ ॥ और सज्जनों व शान्तिमें परायण पुरुषों से संसर्ग (संगति) करनाचाहिये

और न नीचों, न मूर्खों से व विशेषकर आत्माके न जाननेवालोंसे संसर्ग न करना चाहिये ॥ २५ ॥ जिसकी उत्पत्ति, विद्या व कर्म तीनों शुद्धहोवैं और जिनके शास्त्र विद्यमान हैं उनको विशेषकर सेवन करै ॥ २६ ॥ क्योंकि दुष्टोंके दर्शन, स्पर्श, वार्तालाप व साथ बैठने से धर्म्मके आचार न्यून होजाते हैं और वे मनुष्य सिद्ध नहीं होते हैं ॥ २७ ॥ और नीचोंके समागम से पुरुषोंकी बुद्धि नष्टहोती है और मध्यम पुरुषों के साथसे मध्यताको प्राप्तहोती है व उत्तम जनोंकी संगति से उत्तमता को प्राप्तहोती है ॥ २८ ॥ इसप्रकार धर्म्मको स्मरण करता हुआ मैं फिर तुम्हारे संगको नहीं चाहता हूँ क्योंकि ब्राह्मणों की तुम निन्दा करतेहो जिन्हों ने कि समुद्रको न

निर्विद्याचकर्मच ॥ तान्सेवेतविशेषेण शास्त्रंयेषांहिविद्यते ॥ २६ ॥ असतांदर्शनस्पर्शसञ्जल्पनसहासनैः ॥ धर्माचाराःप्रहीयन्ते नचसिद्ध्यन्तिमानवाः ॥ २७ ॥ बुद्धिश्चहीयतेपुंसां नीचैस्सहसमागमात् ॥ मध्यस्थैर्मध्यतांयाति श्रेष्ठतांयातिचोत्तमैः ॥ २८ ॥ इतिधर्मंस्मरन्नाहं सङ्गमार्थीपुनस्तव ॥ यन्निन्दसिद्विजानेव यैरपेयोर्णवःकृतः ॥ २९ ॥ वेदाःप्रमाणंस्मृतयःप्रमाणं धर्मार्थयुक्तंवचनंप्रमाणम् ॥ नैतत्त्रयंयस्यभवेत्प्रमाणं कस्तस्यकुर्याद्वचनप्रमाणम् ॥ ३० ॥ इतीरयित्वावचनंमहात्मा सत्यव्रतस्तंसहसातदैव ॥ गृहाच्चनिस्सृत्यजगामपुण्यं बहूदकंभद्रस्वेस्सुपुण्यम् ॥ १३१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे कुमारिकाखण्डेसत्यव्रतनन्दभद्रविवादवर्णनन्नामचत्वारिंशोध्यायः ॥ ४० ॥ * ॥ * ॥

नारदउवाच ॥ बहूदकस्यकुण्डस्य तीरस्थंलिङ्गमुत्तमम् ॥ कपिलेश्वरमभ्यर्च्य नन्दभद्रस्ततस्सुधीः ॥ १ ॥ प्रण

पीने योग्य करदिया है ॥ २९ ॥ वेद प्रमाण हैं व स्मृतियां प्रमाण हैं और धर्म्म व अर्थसे संयुत वचन प्रमाण हैं और ये तीनों जिसके प्रमाण न होवैं उसके वचनका प्रमाण कौन करैगा ॥ ३० ॥ महात्मा नन्दभद्र इसप्रकार उस सत्यव्रत से वचन कहकर उसी समय अचानकही घर से निकलकर महादित्य के पुण्यदायक पवित्र बहूदक कुण्डको चलेगये॥१३१॥इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांसत्यव्रतनन्दभद्रविवादवर्णनंनामचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥

दो० । नन्दभद्र थाप्यो यथा बालादित्य दिनेश । इकतालिस अध्याय में सोई शुभ उपदेश ॥ नारदजी बोले कि बहूदककुण्ड के किनारे पै स्थित कपिलेश्वर

नामक उत्तम लिङ्ग को पूजकर तदनन्तर विद्वान् नन्दभद्र ॥ १ ॥ प्रणाम कर हाथों को जोड़कर आगे स्थित हुये और संसार के चरित्रों से कुछ दुःखी उन्होंने गाथा को गाया कि ॥ २ ॥ संसारके रचनेवाले सदाशिवको यदि देखूं तो अनेकों प्रश्नों से मैं उनसे शीघ्रही पूंछूं ॥३॥ कि तुम्हारे रचेहुये विना क्या चेष्टारहित संसार पूर्ण है जो सब संसार कि ज्ञानसमेत, शुद्ध व स्नेहादिक से रहित आप से बहुत भांति का रचा गया है ॥ ४ । ५ ॥ और वैररहित व समदर्शी आप से जड़ निर्माण किया हुआ यह संसार अपने समान क्यों नहीं रचागया और सुख, दुःख व जन्म, मरण से ॥ ६ ॥ ब्रह्मादिक कीटपर्यन्त यह संसार क्यों दुःखी है हे सदाशिवजी ! तुम

म्यचाग्रतस्तस्थौ प्रबद्धकरसम्पुटः ॥ संसारचरितैःकिञ्चिद्दुःखीगाथामगायत ॥ २ ॥ स्रष्टारमस्यजगतश्चेत्पश्यामिसदाशिवम् ॥ नानापृच्छाभिरथतंपृच्छाम्येवाविलम्बितम् ॥३॥ आपूर्यमाणंतवकिंजगत्संसर्जनंविना ॥ निरीहंबहुधा यत्तु सृष्टमेषाखिलंजगत् ॥ ४ ॥ सचेतनेनशुद्धेन रागादिरहितेनच ॥ ५ ॥ अथकस्मादात्मसमं नसृष्टंनिर्मितंजडम् ॥ निर्वैरेणसमेनाथ सुखदुःखभवाभवैः ॥ ६ ॥ ब्रह्मादिकीटपर्यन्तं किमिदंक्लिश्यतेजगत् ॥ कांश्चित्स्वर्गेथनरके पातयेस्त्वंसदाशिव ॥ ७ ॥ किंफलंसमवाप्नोषि किमेवंकुरुषेवद ॥ हृष्टैःपुत्रादिभिर्नाथ वियुक्तामानवाह्यमी ॥ ८ ॥ क्रन्दन्तिकरुणासार किंघृणापिभवेन्नते ॥ ९ ॥ अतीवनोचितंतुभ्यमेतदीश्वरसर्वथा ॥ यत्तेभक्ताःसमंपापैर्मज्जन्तेदुःखसागरे ॥ १० ॥ एवंविधेनसंसारचारित्रेणविमोहितः ॥ स्थानान्तरन्नयास्यामि भोक्ष्येपास्यामिनोदकम् ॥ ११ ॥ सप्राणान्तमपिचात्रैवस्थास्येसञ्चिन्तयन्नहम् ॥ सएवंविमृशन्नेवनन्दभद्रस्त्वथस्थितः ॥ १२ ॥ ततश्चतुर्थदिवसे वह्नदकतटे

कितनों को स्वर्ग व कितनों को नरक में गिराते हो ॥ ७ ॥ और किस फलको प्राप्त होतेहो व ऐसा क्यों करतेहो यह कहिये हे नाथ ! प्रसन्न पुत्रादिको से बिछुड़े हुये ये मनुष्य ॥ ८ ॥ रोते हैं हे दयासार शिवजी ! क्या तुम्हारे दया भी नहीं होवे है ॥ ९ ॥ हे ईश्वर ! तुम को यह सब प्रकार से बहुतही अयोग्य है जो कि तुम्हारे भक्त पापों समेत होकर दुःखसागर में डूबते हैं ॥ १० ॥ इस प्रकार के संसार के चरित्र से मोहित मैं दूसरे स्थान को न जाऊंगा न भोजन करूंगा न जल पियूंगा ॥ ११ ॥ और इस प्रकार चिन्तन करता हुआ मैं मरणपर्यन्त तक भी यहीं टिकूंगा इस प्रकार विचार करता हुआ नन्दभद्र स्थित हुआ ॥ १२ ॥ उसके चौथे दिन उत्तम

बहूदक के किनारे पै सात वर्षवाला कोई बालक पीड़ा से पीड़ित होकर आया ॥ १३ ॥ जो कि बहुतही दुबला व गलत्कुष्ठी और पगपग पै मूर्च्छित होताथा ॥१४॥
वह बालक क्लेश से हँसकर नन्दभद्र से यह बोला कि अहो स्वरूपवान् सब अङ्गोंवाले ! आप किस कारण दुःखी हो ॥ १५ ॥ तदनन्तर नन्दभद्र ने इस के सब
कारण को कहा व उस समस्त कारण को सुनकर उदासीनमनवाला बालक बोला ॥ १६ ॥ कि अहो हा बड़ा उग्र कष्ट है कि वह विद्वान् भी यदि नहीं जानता है जो
कि संपूर्ण इन्द्रिय व अङ्गोंवाला मरने के लिये वृथा इच्छा करताहै ॥ १७ ॥ जहां मुहूर्त्त भरमें खट्वांग राजा मोक्षमार्ग को प्राप्त होगया उसी भरतखण्ड को आयुर्बल

शुभे ॥कश्चिद्बालःसप्तवर्षःपीडापीडितआययौ॥१३॥कृशोतीवगलत्कुष्ठी प्रमुह्यंश्चपदेपदे॥ १४ ॥ नन्दभद्रमुवाचेदं कृ
च्छ्रात्संस्तभ्यबालकः ॥ अहोस्वरूपसर्वाङ्ग कस्माद्दुःखीभवानपि ॥ १५ ॥ ततोस्यकारणंसर्वं व्याचष्टनन्दभद्रकः ॥
श्रुत्वातत्कारणंसर्वं बालोदीनमनाब्रवीत ॥ १६ ॥ अहोहाकष्टमत्युग्रं बुधोपिनसबुद्ध्यते ॥ सम्पूर्णेन्द्रियगात्रोयो मर्तु
मिच्छतिवैवृथा ॥ १७ ॥ मुहूर्त्ताद्यत्रखट्वाङ्गोमोक्षमार्गमुपागतः ॥ तदेवभारतंखण्डंमर्त्यायुषित्यजेद्धिकः ॥ १८ ॥ अ
हमेवदृढंमन्ये पितृभ्यांयोविवर्जितः ॥ नशक्तश्चलितुंवापिमर्तुमिच्छामिनापिच ॥ १९ ॥ सर्वेलाभाःसत्त्वमत इतिस
त्यंवचः श्रुतेः ॥ सन्तोषोप्युचितस्तुभ्यं देहंयस्यदृढंत्विदम् ॥ २० ॥ शरीरंनिरुजंचेन्मेभवेदपिकथंचन ॥ क्षणेक्षणेच
तत्कुर्याम्भुज्यतेयद्युगेयुगे ॥ २१ ॥ इन्द्रियाणिवशेयस्यशरीरंचदृढम्भवेत ॥ सोप्यन्यदिच्छतेचेच्चकोन्यस्तस्मादचेत
नः ॥ २२ ॥ शोकस्थानसहस्राणि हर्षस्थानशतानिच ॥ दिवसेदिवसेमूढमाविशन्तिनपण्डितम् ॥ २३ ॥ नहिज्ञा

होनेपर कौन छोड़ता है ॥ १८ ॥ मैंही दृढ मानताहूं जो कि माता, पिता से रहित व चलने के लिये भी नहीं समर्थहूं और मरनेकी इच्छा भी नहीं करताहूं ॥ १९ ॥
बलवान् मनुष्य को सब लाभ होतेहैं यह वेदका वचन सत्य है इस से तुम को सन्तोष भी उचित है कि जिनका यह शरीर पुष्ट है ॥ २० ॥ यदि किसी प्रकार मेरा
भी शरीर नीरोग होवै तो क्षण क्षण भरमें उस कर्मको करूं कि जो युग युगमें भोग किया जाता है ॥ २१ ॥ इन्द्रियां जिसके वशमें हैं और शरीर पुष्टहै वह यदि अन्य
की इच्छा करै तो उससे अन्य कौन मूर्ख है ॥ २२ ॥ हज़ारों शोक स्थान व सैकड़ों हर्ष स्थान प्रतिदिन मूर्खमें प्रवेश करते हैं पण्डित में नहीं प्रवेश करते हैं ॥ २३ ॥

और आपके समान बुद्धिमान् मनुष्य जड़को नाशनेवाले व ज्ञानका अवरोध करनेवाले वड़े पापकर्मोंमें नहीं संग करते हैं ॥ २४ ॥ सब कल्याण को करनेवाली जिस बुद्धिको आठ अंगोंवाली कहते हैं वह श्रुति स्मृति से विरुद्ध तुम्हारी बुद्धि निर्मल नहीं है ॥ २५ ॥ कठिन क्लेशोंमें और स्वजनकी विपत्तियों में आपके समान मनुष्य शरीरवाले और मानसी दुःखों से पीडित नहीं होते हैं ॥ २६ ॥ और सत् असत् विवेकसंयुत बुद्धिवाले मनुष्य मिलने योग्य वस्तुको भी नहीं चाहते हैं और नष्ट वस्तुको शोचने के लिये नहीं इच्छा करते हैं व विपत्तियों में मोहित नहीं होने हैं ॥ २७ ॥ मन व देहसे उठेहुये दुःखों से संसार दुःखितहै उनके शान्तिके इस उपाय

नावरुद्धेषु बहुपापेषुकर्मसु ॥ मूलघातिषुसज्जन्ते बुद्धिमन्तोभवद्विधाः ॥ २४ ॥ अष्टाङ्गांबुद्धिमाहुर्यां सर्वश्रेयोविधायिनीम् ॥ श्रुतिस्मृतिविरुद्धासानबुद्धिस्तवनिर्मला॥२५॥ अथकृच्छ्रेषुदुर्गेषुह्यापत्सुस्वजनस्यच ॥ शारीरैर्मानसैर्दुःखैर्नसीदन्तिभवद्विधाः ॥ २६ ॥ नप्राप्यमपिवाञ्छन्तिनष्टंनेच्छन्तिशोचितुम् ॥ आपत्सुचनमुह्यन्तिनराःपण्डितबुद्धयः ॥ २७ ॥ मनोदेहसमुत्थाभ्यां दुःखाभ्यामर्दितंजगत् ॥ तयोर्व्याससमासाभ्यांशमोपायमिमंशृणु ॥ २८ ॥ व्याधेरनिष्टसंस्पर्शाच्छ्रमादिष्टविवर्जितात् ॥ द्विप्रकारंमहाकष्टं द्वयोरेतदुदाहृतम् ॥ २९ ॥ मानसेनहिदुःखेन शरीरमुपतप्यते ॥ अयःपिण्डेनतप्तेन कुम्भसंस्थमिवोदकम् ॥ ३० ॥ तदाशुप्रतिकाराच्च सततञ्चविवर्जनात् ॥ व्याधेराधेश्चप्रशमःक्रियायोगद्वयेनतु ॥ ३१ ॥ मानसंशमयेत्तस्माज्ज्ञानेनाग्निमिवाम्बुना ॥ प्रशान्तेमानसेह्यस्य शारीरमुपशाम्यति ॥ ३२ ॥ मनसोदुःखमूलन्तु स्नेहइत्युपलभ्यते ॥ स्नेहाच्चसज्जतेजन्तुर्दुःखयोगमुपैतिच ॥ ३३ ॥ स्नेहमूलानि

को विस्तार व संक्षेपसे सुनिये ॥ २८ ॥ कि व्याधिसे व अनिष्ट वस्तुके स्पर्शसे और परिश्रम तथा प्रियके वर्जित से दोनोंको यह दो प्रकारका महाकष्ट कहागयाहै ॥२९॥ मानस दुःख से शरीर संतप्त होताहै जैसे कि तचेहुये लोहपिण्डसे घड़ामें प्राप्त जल सन्तप्त होताहै ॥ ३० ॥ इस लिये शीघ्रही प्रतिकार (उपाय) से और सदैव त्यागसे इन दोनों क्रियाओंके योगकरके रोग व मानसी व्यथाकी शान्ति होती है ॥ ३१ ॥ इस लिये ज्ञानसे मानसी क्लेशको शान्तकरै जैसे कि जलसे अग्नि शान्त कीजाती है इस मनुष्यके मानस क्लेशका नाशहोनेपर शरीरवाला दुःख शान्त होजाताहै ॥३२ ॥ मनके दुःखकी जड़ स्नेह ऐसा पायाजाता है और स्नेहसे प्राणी सङ्ग करताहै और

दुःखके योगको प्राप्तहोता है ॥ ३३॥ स्नेह जड़वाले दुःख होते हैं और भय स्नेह से पैदा होते हैं और शोच, हर्ष व परिश्रम सब स्नेहसे वर्तमान होताहै ॥ ३४ ॥ और स्नेहसे इन्द्रियों में प्रीति और विषयोंमें स्नेह होता है ये दोनों अकल्याणदायक हैं और उनमें पहला गुरु मानागया है ॥ ३५ ॥ इस लिये त्यागी, वैररहित व अग्रहण करनेवाला दुःखी नहीं होताहै और अत्यागी मनुष्य यहां बार बार जन्म मरणको प्राप्त होता है ॥ ३६ ॥ इस लिये मित्रों से व धन इकट्ठा करने से स्नेहमें न लिप्तहोवै और अपने शरीर से उपजेहुये स्नेहको ज्ञानसे निवृत्त करै ॥ ३७ ॥ ज्ञानसे संयुत, सिद्ध व शास्त्रज्ञ और कृतात्म (चतुर) इन मनुष्यों में स्नेह नहीं लगता है जैसे

दुःखानि स्नेहजानिभयानिच॥ शोकहर्षौतथायासं सर्वस्नेहात्प्रवर्त्तते ॥३४॥ स्नेहादिन्द्रियरागश्च प्रजज्ञेवैषयस्तथा॥ अश्रेयस्काउभावेतौ पूर्वस्तत्रगुरुर्मतः॥ ३५ ॥ त्यागीतस्मान्नदुःखीस्यान्निर्वैरोनिरवग्रहः ॥ अत्यागीजन्ममरणे प्राप्नोतिहपुनःपुनः ॥ ३६ ॥ तस्मात्स्नेहेनलिप्येत मित्रेभ्योधनसंचयात ॥ स्वशरीरसमुत्थञ्च ज्ञानेनविनिवर्तयेत ॥ ३७ ॥ ज्ञानान्वितेषुसिद्धेषु शास्त्रज्ञेषुकृतात्मसु॥ नैतेषुसज्जतेस्नेहः पद्मपत्रेष्विवोदकम् ॥३८॥ रागाभिभूतःपुरुषः कामेनपरिकृष्यते ॥ इच्छासंजायतेचास्य ततस्तृष्णाप्रवर्तते ॥३९ ॥ तृष्णाहिसर्वपापिष्ठा नित्योद्वेगकरीमता ॥ अधर्मबहुलाचैव घोररूपानुबन्धिनी ॥ ४० ॥ यादुस्त्यजादुर्मतिभिर्यानजीर्यतिजीर्यतः ॥ योसौप्राणान्तकोरोगस्तान्तस्मात्यजतस्सुखम् ॥ ४१॥ अनाद्यन्तातुसातृष्णा ह्यन्तर्देहगतान्नृणाम् ॥ विनाशयतिभूतानि लोहंलोहमलोयथा ॥ ४२ ॥

कि कमल के पत्तोंमें जल नहीं लगता है ॥ ३८ ॥ स्नेह से तिरस्कृत पुरुष कामसे खींचाजाताहै व इसके इच्छा उत्पन्न होतीहै तदनन्तर तृष्णा वर्तमान होतीहै ॥ ३९ ॥ और तृष्णा सबसे पापिष्ठ होती है और वह नित्यही उद्वेग करनेवाली मानीगई है और बहुत अधर्मवाली व घोररूपिणी तथा दोषोंको उत्पन्न करनेवाली है ॥ ४० ॥ जो दुर्बुद्धियोंसे दुःख करके छोड़ने योग्य है और जो जीर्ण पुरुषकी भी जीर्ण नहीं होती है और जो यह प्राणान्तक रोगहै उस तृष्णा को छोड़ते हुये पुरुष को सुख होता है ॥ ४१ ॥ मनुष्यों के देह भीतरमें प्राप्त वह तृष्णा आदि अन्तसे रहित है और प्राणियोंको वह नाश करतीहै जैसे कि लोहका मल (मुरचा) लोहको नाशता

है ॥ ४२ ॥ जैसे ईंधन से उठीहुई अग्नि करके काष्ठ नाशको प्राप्तहोता है वैसेही पापी मनुष्य उत्पन्नहुये लोभसे नाश होजाता है ॥ ४३ ॥ इस लिये शरीर में और अपने बन्धुवोंमें लोभ न करनाचाहिये इसी कारण इनमें मैं प्रसन्न नहीं होताहूं और प्राणोंके नाशमें शोक करनेवाला नहीं हूं ॥ ४४ ॥ नन्दभद्र बोले कि अहो बाल ! मेरे मतमें तुम बालक नहींहो मैं तुमको प्रणाम करताहूँ और तुम्हारे वचनों से अत्यन्त तृप्त मैं तुमसे कुछ पूँछताहूँ ॥ ४५ ॥ कि अहंकार, काम व क्रोध और इन्द्रियों को मनुष्य निन्दते हैं और उस विषय में मेरे यह कहनेकी इच्छा होती है ॥ ४६ ॥ यह मैं हूँ और मेरा यह कार्य व वस्तु है व मैं ऐसाहूँ इत्यादिक अपनेको जानना

यथैधसासमुत्थेन वह्निनानाशमृच्छति ॥ तथाकृतात्मालोभेन समुत्पन्नेननश्यति ॥ ४३ ॥ तस्माल्लोभोनकर्तव्यः शरीरेचात्मबन्धुषु ॥ इत्येषुनाहंहृष्येयं प्राणनाशेनशोककृत् ॥ ४४ ॥ नन्दभद्रउवाच ॥ अहोबालनबालस्त्वं मतोमेत्वान्नमाम्यहम् ॥ त्वद्वाक्यैरतितृप्तोहं त्वान्तुपृच्छामिकिञ्चन ॥ ४५ ॥ अहङ्कारःकामक्रोधौ इन्द्रियाणिचमानवाः ॥ निन्दन्तितत्रमेनित्यं विवक्षेयंप्रजायते ॥ ४६ ॥ अहमेषममेदञ्च कार्यमीदृक्चवस्त्वहम् ॥ इत्यादिचात्मविज्ञानमहङ्कारइतिस्मृतः ॥ ४७ ॥ परिहार्य्यमहेयञ्च विनोन्मत्तःप्रकीर्त्यते ॥ कामोभिलाषइत्युक्तः सचेत्पुंसाविवर्जितः ॥ ४८ ॥ कथंस्वर्गोमुमुक्षाच साध्यतेहृष्यताकथम् ॥ क्रोधोवायदिसंत्याज्यस्ततःशत्रुक्षयंकथम् ॥ ४९ ॥ ब्रह्माण्डस्यनराणाञ्च विंनातंतृणवद्विदुः ॥ इन्द्रियाणिनिगृह्यैव दुष्टानीतिनपीडयेत् ॥ ५० ॥ कथंस्याद्धर्मश्रवणं कथंवाजीवनंभवेत् ॥ एतस्मिन्नेमनोविद्वन् खिद्यतेज्ञानसङ्कटे ॥ ५१ ॥ तथाकस्मादिदंसृष्टं जडेविश्वंचिदात्मना ॥ एवंयद्बहुधाक्लेशैः पीड्यतेहाकु

अहंकार ऐसा कहागया है ॥ ४७ ॥ और छोड़ने योग्य व न त्यागने योग्य वस्तुके विना उन्मत्त कहा जाता है और काम अभिलाष ऐसा कहागया है यदि वह मनुष्य से रहित होवै ॥ ४८ ॥ तो प्रसन्न होतेहुये मनुष्यसे स्वर्ग व मुक्तिकी इच्छा कैसे साधन कीजाय और यदि क्रोध छोड़ने के योग्य होवै तो किस प्रकार शत्रुका नाश होवै ॥ ४९ ॥ और उस क्रोधके विना ब्रह्माण्ड के मनुष्यों को विद्वानोंने तिनुकाके नाईं कहाहै और इन्द्रियों का निग्रहकर दुष्टहैं इसकारण यदि उनको न पीड़ित करै ॥ ५० ॥ तो किस प्रकार धर्म्म का श्रवणहो और किस प्रकार जीवन होवै हे विद्वन्! इस ज्ञानके सङ्कटमें मेरा मन क्लेशित होताहै ॥ ५१ ॥ वैसेही चैतन्यात्मा शङ्कर

जैसे यह संसार जड़ क्यों रचागया जोकि इसभांति बहुत प्रकारके क्लेशोंसे पीड़ित होताहै हाय यह किस कारण हुआ ॥ ५२ ॥ बालक बोला कि भलीभांति यह जैसा पूँछागया कि जिसमें प्राणी मोहित होते हैं उसको सावधान मनवाले होकर सुनिये कि जिसप्रकार मैंने व्यासजी से जानाहै ॥ ५३ ॥ प्रकृति व पुरुष ये दोनों अनादि हैं मैंने पुरातन समय यह सुना है और सृष्टिके पहले वे दोनों अजर अमर होकर धर्मसे स्थितहुये ॥ ५४ ॥ तदनन्तर पहले काल व स्वभाव से प्रकृति प्रेरितहुई और उसने देव (पुरुष) के साथ संयोग की इच्छा किया व उस संयोगके अभाव से क्रोधितहुई ॥ ५५ ॥ तदनन्तर लीलासे देवता करके वह देखीहुई तमोमयीहुई और

तदिस्त्वदम् ॥ ५२ ॥ बालउवाच ॥ सम्यगेतद्यथापृष्टं यत्रमुह्यन्तिजन्तवः ॥ शृणवेकाग्रमनाभूत्वा ज्ञातंद्वैपायनान्मया ॥ ५३ ॥ प्रकृतिःपुरुषश्चैव अनादीशृणुमःपुरा ॥ तौधर्म्मेणावतिष्ठेते सृष्टेःप्रागजरामरौ ॥ ५४ ॥ ततःकालस्वभावाभ्यां प्रेरिताप्रकृतिःपुरा ॥ संयोगमैच्छद्देवेन तदभावात्प्रकुप्यति ॥ ५५ ॥ ततस्तमोमयीसाच लीलयादेववीक्षिता ॥ राजसीसमभूद्दुष्टा सात्त्विकीसमजायत ॥ ५६ ॥ तस्याःप्रधारणार्थंच प्रवृत्तःस्वांशकंततः ॥ असूयतमहत्तत्त्वं त्रिगुणं तद्विदुर्बुधाः ॥ ५७ ॥ अहङ्कारस्ततोजातः सत्त्वराजसतामसः ॥ तमोरजस्त्वमापाद्य रजस्सत्त्वगुणान्नयेत ॥ ५८ ॥ शुद्धसत्त्वततोमोक्षंप्रवदन्तिमनीषिणः ॥ तमसोरजसस्तस्मात्तंशुद्ध्यर्थञ्चसर्वशः ॥ ५९ ॥ जीवात्मसंज्ञान्स्वीयांशानभजत्परमेश्वरः ॥ तेजःक्षेत्राणितानन्तो देहायावन्तएवहि ॥ ६० ॥ निस्सरन्तियथालोहात्तप्तलिङ्गात्स्फुलिङ्गकाः ॥ तन्मात्रभूतसर्गोयमहङ्कारात्तुतामसात् ॥ ६१ ॥ इन्द्रियाणांसात्त्विकाच्च निर्गुणान्यपितान्यपि ॥ एतेसंसिद्धयन्त्येनं

वह दुष्टा राजसीहुई और फिर सात्त्विकी होगई ॥ ५६ ॥ तदनन्तर अपने अंशको उससे धारणके लिये प्रवृत्त हुये और उसने महत्तत्त्व को पैदा किया विद्वानोंने उस को त्रिगुण कहा है ॥ ५७ ॥ तदनन्तर सत्त्व, रज व तमोगुणवाला अहंकार पैदा हुआ उसीकारण तमोगुण को रजोगुणत्व सिद्धकर रजोगुण को सत्त्वगुण में प्राप्त करै ॥ ५८ ॥ तदनन्तर शुद्ध सत्त्व होनेपर विद्वान् मोक्षको कहते हैं इस लिये तमोगुण व रजोगुणसे भलीभांति शुद्धिके लिये सब ॥ ५९ ॥ अपने अंशवाले जीवात्म-संज्ञकों को परमेश्वरने भजाहै तेजके शरीर उतनेहीं हैं जितने कि देहहैं ॥ ६० ॥ तचेहुये लोहसे जैसे चिनगारियां निकलती हैं यह तन्मात्र (शब्द, स्पर्श, रूप, रस,

गन्ध) व भूतसर्ग याने पृथ्वी, जल, अग्नि, पवन, आकाश तामस अहंकार से हैं ॥ ६१ ॥ व इन्द्रियोंकी उत्पत्ति सात्त्विकसे है वेभी निर्गुणी हैं परन्तु सच्चिदानन्द परमेश्वर के देखने से ये इस संसारको भलीभांति सिद्ध करते हैं ॥ ६२ ॥ मुक्त होनेकी इच्छावाले जनों से रजोगुण व तमोगुण सत्त्वगुणही से शोधन किये जाते हैं इस लिये काम, क्रोध व इन्द्रियों का प्रवृत्तहोना ॥ ६३ ॥ और अहंकारको भलीभांति शोधन कर शुद्ध सात्त्विक को भोगता है और राजसी व तामसी ये कामादिक त्यागने योग्यहैं॥६४॥ व संसारको जीतनेकी इच्छावाले पुरुषको सात्त्विक वस्तुवें सदैव सेवने योग्यहैं कि जिस सत्त्वगुणके गुण और उस लक्षणको संक्षेपसे कहूँगा॥ ६५॥

सच्चिदानन्दवीक्षणात् ॥ ६२॥ रजस्तमश्चशोध्येते सत्त्वेनैवमुमुक्षुभिः ॥ तस्मात्कामश्चक्रोधश्चइन्द्रियाणांप्रवर्तनम् ॥ ६३ ॥ अहङ्कारश्चसंशोध्य सात्त्विकंशुद्धमश्नुते ॥ राजसास्तामसाश्चैव त्याज्याःकामादयस्त्वमी ॥ ६४ ॥ सात्त्विकास्सर्वदासेव्याः संसारविजिगीषुणा ॥ गुणश्चयस्यवक्ष्यामिसंक्षेपाल्लक्षणंचतत् ॥ ६५॥ शास्त्राभ्यासस्ततोज्ञानं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ॥ धर्मक्रियात्मचिन्ताच सात्त्विकंगुणलक्षणम् ॥६६॥ आरम्भश्चरतिर्गानं तथासत्कार्य्यनिग्रहः ॥ विषयोपासनाजस्रं राजसंगुणलक्षणम् ॥ ६७॥ अन्यायेनधनादानं तीव्रनास्तिक्यमेवच ॥ क्रौर्य्यञ्चयाचकाद्यंचतामसंगुणलक्षणम् ॥ ६८ ॥ तस्माद्बुद्धिमुखैश्चैतैः सात्त्विकैर्देवताम्भजेत् ॥ राजसैर्मानुषत्वञ्चतामसैःस्थाणुयोनिताम् ॥ ६९ ॥ बुद्ध्याद्यैरेवमुक्तिःस्यादेतैरेवचयातना ॥ अमीषांचाप्यभावेवै नकिञ्चिदुपपद्यते ॥ ७० ॥ कलादोहिकलाहीनं

कि शास्त्रका अभ्यास व ज्ञान, शौच, इन्द्रियों का जीतना, धर्म्म कार्य व परमात्मा का चिन्तन करना यह गुण व लक्षण सात्त्विक है ॥ ६६ ॥ व कार्यका आरम्भ, रति, गान व उत्तम कार्योंका निग्रह (मना करना) और सदैव विषयोंकी उपासना यह रजोगुणका गुण लक्षणहै ॥६७॥ व अन्याय से धनलेना, तीव्रनास्तिकता क्रूरता व याचनादिक तामस गुण लक्षण हैं ॥ ६८ ॥ इस लिये बुद्धि आदिक इन सात्त्विक गुणोंमे देवताको भजै और राजसों से मनुजता व तामसो से स्थावरयोनि को भजै ॥ ६९ ॥ बुद्धि आदिकों से मुक्ति होती है व इन्हीं से यातना (नरकका दुःख) होता है और इनके अभावमें कुछ नहीं सिद्धहोता है ॥ ७० ॥ जैसे सोनार

कान्तिरहित सुवर्णको शोधता है वैसेही सात्त्विक गुणोंसे रजोगुण व तमोगुण संशोधन करै ॥ ७१ ॥ इसीकारण गुणों के सम्बन्धादिकको कहनेवालों के मध्य में सुखी व दुःखी प्राणीको शास्त्र देखना चाहिये ॥ ७२ ॥ परमेश्वर ने एक एक गुणको अट्ठाईस लक्षों से विभाग किया तो वे चौरासीलाख जीवयोनि होगईं ॥ ७३ ॥ ईश्वरके अंश वे सब जीव मायाके गुणों से मोहित हैं व हे विभो ! जैसे कि पहले कियेगये हैं वैसेही क्लेशोंको प्राप्तहोते हैं ॥ ७४ ॥ अन्न जल व जीवोंके कल्याण के लिये तत्त्वज्ञाता पुरुष मनुष्ययोनिको शिवभाव से भावित (प्रकट कीहुई) कहा है ॥ ७५ ॥ नन्दभद्र बोले कि यह ऐसाही है परन्तु हे महामते ! फिर मैं इसको

सुवर्णंशोधयेद्यथा ॥ तथारजस्तमश्चैव संशोधयेत्सात्त्विकैर्गुणैः ॥ ७१ ॥ अस्मादेवगुणानाञ्च समवायादिवादिनाम् ॥ सुखिनोदुःखिनश्चैव प्राणिनःशास्त्रदर्शनम् ॥ ७२ ॥ अष्टाविंशतिलक्षैश्च गुणमेकैकमीश्वरः ॥ व्यभजच्चतुरशीतिलक्षास्ताजीवयोनयः ॥ ७३ ॥ ईश्वरांशाश्चतेसर्वे मोहिताःप्रकृतेर्गुणैः ॥ क्लेशानासादयन्त्येव यथैवादिकृताविभो ॥७४॥ अन्नानांपयसांचापि जीवानाञ्चापिश्रेयसे ॥ मानुष्यमाहुस्तत्त्वज्ञाः शिवभावेनभावितम् ॥ ७५ ॥ नन्दभद्रउवाच ॥ एवमेतत्किन्तुभूयः पृच्छाम्येतन्महामते ॥ ईश्वरास्सर्वदातारः पूज्यन्तेयैश्चदेवताः ॥ ७६ ॥ स्वभक्तांस्तान्नदुःखेभ्यः कस्माद्रक्षन्तिमानवान् ॥ विशेषात्केपिदृश्यन्ते दुःखमग्नास्सुरास्ततः ॥ ७७ ॥ इतिमेमुह्यतेबुद्धिस्तत्त्वंकिंबालमन्यसे ॥ बालउवाच ॥ अशुचिस्तुशुचिश्चापि देवभक्तोद्विधास्मृतः ॥ ७८ ॥ कर्मणामनसावाचा तद्भक्तोसक्तउच्यते ॥ अशुचिर्देवताश्चैव यदापूजयतेनरः ॥ ७९ ॥ तदाभूतान्याविशन्ति ततोमुह्यतितत्क्षणात् ॥ विमूढश्चाप्यकार्याणि

पूँछताहूँ कि ईश्वर सब कुछ दाता होतेहैं परन्तु जिनसे देवता पूजेजाते हैं ॥ ७६ ॥ उन अपने भक्त मनुष्यों को वे देवता क्यों नहीं रक्षा करते हैं व उसीकारण कोई देवता भी दुःख में मग्न देखे जाते हैं ॥ ७७ ॥ इसकारण मेरी बुद्धि मोहित होती है हे बालक ! उसको तुम क्या मानतेहो बालक बोला कि अपवित्र व पवित्र भी दो प्रकार का देवभक्त कहागया है ॥ ७८ ॥ कर्म, मन व वचन से उस देवताका भक्त भक्त कहा जाता है और अपवित्र मनुष्य जब देवताओं को पूजता है ॥ ७९ ॥ तब

भूत प्रवेश करते हैं उसीकारण वह उसी क्षण मोहित होताहै और मोहितहुआ भी मनुष्य अनेकभांति के इन अकार्यौंको सेवता है ॥ ८० ॥ तदनन्तर शीघ्रही नाश होजाता है इसकारण अपवित्र मनुष्य पूजन न करै और जो शुचि मनुष्य पूजता है उसका इस लोकमें कल्याण होता है ॥ ८१ ॥ और उसका पूर्वजन्म मे कियाहुआ कर्म प्रकटहोता है क्योंकि कर्म से कौन छूटता है देखिये महादेवजी ब्रह्महत्या के डरसे इधर उधरगये हैं ॥ ८२ ॥ व उन्होंने तीर्थोंमें स्नान किया तो अन्य मनुष्य किस लिये किये हुये कर्म से छूटैं अम्बरीष की कन्याको पर्वत गन्धर्व व नारद ने हरकर फलको पायाहै ॥ ८३ ॥ और रामचन्द्रजी सीताहरण को प्राप्तहुये तो अन्य

नानैतानिनिषेवते॥ ८०॥ ततोविनश्यतिक्षिप्रं नाशुचिःपूजयेत्ततः ॥ शुचिर्वाभ्यर्चयेद्यश्च तस्यचेहशुभंभवेत् ॥ ८१ ॥ तस्यपूर्वकृतंव्यक्तं कर्मणाकोहिमुच्यते ॥ महेश्वरोब्रह्महत्याभयाद्यातइतस्ततः ॥ ८२ ॥ सस्नौतीर्थेषुकस्माच्च इतरोमुच्यतेकृतात् ॥ अम्बरीषसुतांहृत्वा पर्वतोनारदस्तथा ॥ ८३ ॥ सीतापहारमापेदे रामोन्योमुच्यतेकथम् ॥ ब्रह्मापि शिरसश्छेदं कामयित्वासुतामगात् ॥ ८४ ॥ इदंचन्द्ररवीधिष्ण्यप्रमुखाःप्राप्नुयुःकृतम् ॥ तस्मादवश्यंस्वकृतं भोज्यमेवनरैस्सदा ॥ ८५ ॥ मुच्यतेसोपिस्वकृतान्नैवेतिश्रुतिनिर्णयः ॥ किन्तुदेवप्रसादेन लभ्यसेकंसुरव्रतैः ॥ ८६ ॥ बहुभिर्जन्मभिर्भोज्यं भुक्तमेकेनजन्मना ॥ तच्चभुक्त्वाततःस्वर्गं भवेदितिविनिश्चयः ॥ ८७ ॥ येतप्यन्तेकृतैःपापैः शुचयोदेवताव्रताः ॥ इहतेपुत्रपौत्रैश्च मोदन्तेमुत्रचेहच ॥ ८८ ॥ तस्माद्देवास्सदापूज्याःशुचिभिःश्रद्धयान्वितैः ॥प्रकृतिःशोध

मनुष्य कैसे छूटै ब्रह्माभी कन्याकी इच्छाकर शिरके छेदको प्राप्तहुये हैं ॥ ८४ ॥ और चन्द्रमा, सूर्य व नक्षत्र इत्यादिक इस कियेहुये फलको प्राप्तहोते हैं इसकारण अवश्य मनुष्यों को सदैव अपना किया हुआ कर्म भोगना होताहै ॥ ८५ ॥ और यही वेदमें निर्णय है कि वह मनुष्यभी अपने किये हुये कर्म से नहीं छूटता है परन्तु देवताकी प्रसन्नता से देवता के व्रतवाले मनुष्यों से एक वस्तु मिलने योग्य है ॥ ८६ ॥ कि जो बहुत जन्मों से भोगने योग्य होता है वह एकही जन्मसे भुक्त होजाता है और उसको भोगकर तदनन्तर स्वर्ग होवै है यह निश्चयहै ॥८७॥ जो पवित्र देवव्रतवाले मनुष्य किये हुये पातकों से दुःखित होते हैं वे इस लोक व परलोकमें पुत्रों और

पौत्रों से प्रसन्न होतेहैं ॥ ८८ ॥ इस लिये श्रद्धासंयुत पवित्र मनुष्योंसे सदैव देवता पूजने योग्य हैं और अपनी जाति में कहेहुये कर्मोंके द्वारा प्रकृति शोधने योग्य होती है ॥ ८९ ॥ सदाशिवजी के बिना भलीभांति कियाहुआ भी दुराचारी का धर्म क्लेशही के लिये होताहै ऐसा भगवान् शिवदेवजी ने कहा है ॥ ९० ॥ अपनासे किया हुआ कर्म भोगने योग्य होताहै इस लिये सदाशिवजी पूजने योग्य हैं और अपने आचार से स्नेह व वैर सदैव छोड़ने योग्य है ॥ ९१ ॥ नन्दभद्र बोले कि हे शुद्ध बुद्धिवाले बालक ! यह क्या है कि पापी भी विपत्तिरहित होते हैं और स्त्रियों व धनोंसे भी प्रसन्न होतेहुये देख पड़ते हैं ॥ ९२ ॥ बालक बोला कि यह तो प्रकटही

नीयाचस्ववर्णोदितकर्मभिः ॥ ८९ ॥ स्वनुष्ठितोपिधर्मःस्यात् क्लेशायैवविनाशिवम् ॥ दुराचारस्यदेवोपि प्राहेतिभगवा न्हरः ॥ ९० ॥ भोक्तव्यंस्वकृतंतस्मात्पूजनीयस्सदाशिवः ॥ स्वाचारेणपरित्याज्यौ रागद्वेषौनिरन्तरम् ॥ ९१ ॥ नन्दभ द्रउवाच ॥ शुद्धप्रज्ञकिमेतच्च पापिनोपिनिरापदः ॥ मोदमानाःप्रदृश्यन्ते दारैरपिधनैरपि ॥ ९२ ॥ बालउवाच ॥ व्यक्तं येस्तमसादत्तं दानंपूर्वेपुजन्मसु ॥ प्राप्तैतस्तस्यदानस्य फलमत्रनसंशयः ॥ ९३ ॥ किन्तुयत्तमसाकर्म कृतंतस्यप्रभाव तः ॥ धर्मस्यनरतिर्भूयात्तत्रास्यसदैवहि ॥ ९४ ॥ भुक्त्वापुण्यफलंयाति नरकंनात्रसंशयः ॥ अस्मिन्नर्थेसमयेपूर्वं मा र्कण्डेयेनश्रूयते ॥ ९५ ॥ इहचैकस्यनामुत्र अमुत्रैकस्यनत्विह ॥ इहचामुत्रचैकस्य नामुत्रैकस्यनत्विह ॥ ९६ ॥ पू र्वोपात्तंभवेत्पुण्यं भुङ्क्तेनैवार्जयत्यपि ॥ इहभोगस्सवैप्रोक्तोदुर्भगस्याल्पमेधसः ॥ ९७ ॥ पूर्वोपात्तंयस्यनास्ति तपोभि

है कि जिन्हों ने तमोगुण से पूर्वजन्म में दान दिया है उन्होंने उस दानके फलको यहां पाया है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ९३ ॥ परन्तु जिसलिये तमोगुणासे कर्म किया है उसके प्रभाव से इसकी सदैवही धर्म्म में प्रीति नहीं होतीहै ॥ ९४ ॥ और पुण्य के फलको भोगकर वह नरकको जाताहै इसमें सन्देह नहीं है और इस सिद्धान्त में पहले मार्कण्डेयजी से यह सुना जाता है ॥ ९५ ॥ कि एक पुरुषको इस लोकमें परलोकमें नहीं व एकको परलोकमें इस लोक में नहीं व एकको इस लोकमें व पर- लोकमें भी और एकको न परलोकमें न इस लोक में सुख होता है ॥ ९६ ॥ पहले इकट्ठा कीहुई जो पुण्यहोती है उसको जो मनुष्य भोगताहै और इकट्ठा नहीं करता

है इस लोकमें वह भोग थोडीबुद्धिवाले दुर्भाग्य मनुष्यको कहागया है ॥ ९७॥ और पूर्वजन्म में जिसका इकट्ठा कियाहुआ पुण्य नहीं होताहै व इस लोकमें तपस्याओं से इकट्ठा करताहै उस बुद्धिमान्को परलोकमें सदैव प्रकटही सुख होताहै ॥ ९८ ॥ और पहले जन्म में इकट्ठा कीहुई पुण्य जिसके होती है और तपस्याओं से इकट्ठा भी करताहै उस किसी विद्वान्को इस लोक व परलोकमें भी सुख होताहै ॥ ९९ ॥ और पूर्वजन्ममें इकट्ठा कियाहुआ पुण्य जिसके नहींहै व इस लोकमें इकट्ठा भी नहीं करताहै उसको इस लोक व परलोकमे भीं सुख नहीं होताहै उस नीचनरको धिक्कार है ॥ १०० ॥ ऐसा जानकर हे महाभाग ! सब कार्योंको छोड़कर शिवजीको भजिये

श्चार्जयत्यपि ॥ परलोकेतस्यभोगो धीमतःसततंस्फुटम् ॥ ९८ ॥ पूर्वोपात्तंयस्यचास्ति तपोभिश्चार्जयत्यपि ॥ इहचा मुत्रतस्यस्याद्भोगःकस्यापिधीमतः ॥ ९९ ॥ पूर्वोपात्तंयस्यनास्तिपुण्यंचेहनवार्जयेत् ॥ नतस्येहामुत्रचापि भोगो धिक्तंनराधमम् ॥१००॥ इतिज्ञात्वामहाभाग त्यक्त्वाकार्याणिकृत्स्नशः ॥ भजरुद्रंवर्णधर्मं पालयास्मात्परन्नहि ॥ १ ॥ योहिनष्टेष्वभीष्टेषु प्राप्तेष्वपिचशोचति ॥ तृप्येन्नवासवेबद्धो निश्चितंसोन्यजन्मनि ॥ २ ॥ नन्दभद्रउवाच ॥ नमस्तु भ्यमबालाय बालरूपायधीमते ॥ कोभवांस्तत्त्वतोवेत्तुमिच्छामित्वांसुविस्मितः ॥ ३ ॥ बहवोपिमयावृद्धा दृष्टाश्चोपा सितास्सदा ॥ तेषामीदृशकीबुद्धिर्नदृष्टानश्रुतामया ॥ ४ ॥ येनमेजन्मसन्देहा नाशितालीलयैवच ॥ तस्मात्सामान्य रूपीत्वंनिश्चितंनमतंमम ॥ ५ ॥ बालउवाच ॥ महदेतत्समाख्येयमेकाग्रःशृणुतत्त्वतः ॥ इतस्सप्तान्तिमेचापि ह्यष्ट

व जातिके धर्म्मको पालिये इससे परे धर्म्म नहीं है ॥ १ ॥ और जो प्रिय वस्तुवों के नाशहोने व प्राप्तहोनेपर भी शोचता है और तृप्त नहीं होता है वह निश्चयकर अन्य जन्ममें बँध जाताहै ॥ २ ॥ नन्दभद्र बोले कि बालक रूप तुम्हारे अबालक बुद्धिमान् के लिये नमस्कारहै आप कौनहो बडे विस्मयमें प्राप्त मैं तुमको यथार्थता से जानना चाहताहूँ ॥ ३ ॥ मैंने बहुत वृद्धोंको देखा व उपासना किया है परन्तु उनकी ऐसी बुद्धिको मैंने न देखा है न सुना है ॥ ४ ॥ जिससे कि मेरे जन्म के सन्देह खेलहींसे नाश करदियेगये इस लिये साधारणरूपवाले तुम नहींहो यह निश्चयकर मेरा मत है ॥ ५ ॥ बालक बोला कि यह कथानक बड़ाभारी है इसको

एकाग्र मन होकर यथार्थ से सुनिये कि इससे सातके अन्त में आठवें जन्म में मैं ॥ ६ ॥ सुन्दर वैदिश नगरमें वेद वेदांगों के यथार्थ का जाननेवाला और धर्म्म
शास्त्रार्थ के अर्थको जाननेवालों में श्रेष्ठ धर्म्मजालिक नामक हुआहूं ॥ ७ ॥ और धर्म्मशास्त्रों के कहने में जैसे साक्षात् बृहस्पतिजी होवैं वैसाही था परन्तु मनुष्यों
को अनेक भातिके धर्मोंको मैं बहुत कहता था ॥ ८ ॥ और मैं आप बड़ा दुराचारी व पापियोंके भी पापी राजाथा जोकि मांसभक्षी मदिरासेवी और सदैव पराई स्त्रियों
से स्नेही था ॥ ९ ॥ और असत्य कहनेवाला व छली सदैव पाखण्डी और दुष्ट था तथा लोभी, दुष्टात्मा और शठ था व कभी कुछ नहीं करताथा ॥ १० ॥ जिस लिये

सेजन्मनित्वहम् ॥ ६ ॥ वैदिशेनगरेरम्ये नाम्नासंधर्मजालिकः ॥ वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञः स्मृतिशास्त्रार्थविद्वरः ॥ ७ ॥ व्या
ख्यानेधर्म्मशास्त्राणां यथासाक्षाद्बृहस्पतिः ॥ किन्त्वहंविविधान्धर्माँल्लोकानांवर्णयेभृशम् ॥ ८ ॥ स्वयञ्चातिदुरा
चारः पापिनामपिपापिराट् ॥ मांसाशीमद्यसेवीच परदाररतस्सदा ॥ ९ ॥ असत्यवाचीदम्भीच सदाधर्मध्वजीख
लः ॥ लोभीदुरात्माचशठो नकर्त्ताकर्हिचित्कचित ॥ १० ॥ यस्माज्जालिकवज्जालं लोकेभ्यःशिक्षयामिच ॥ तत्त्व
ज्ञामान्ततःप्राहुर्धर्मजालिकमित्युत ॥ ११ ॥ सोहंतैर्बहुभिश्चीर्णैः पातकैरन्तआगते ॥ मृतोगतोयमस्थानं पातितःकूट
शाल्मलीम् ॥ १२ ॥ यमदूतैस्ततःकृष्टःस्मार्यमाणःस्वचेष्टितम् ॥ खड्गैःश्वभिःकृत्यमानो जीवामिप्रम्रियामिच ॥ १३ ॥
आत्मानंबहुभिर्निन्दञ्छश्वतीर्न्यवसंसमाः ॥ नरकेयामतिर्भूयाद्धर्मदूतप्रपीडनात ॥ १४ ॥ साचेन्मुहूर्त्तमात्रंस्यादपिध

बहेलिया की नाईं जालको मनुष्यों के लिये भी सिखलाता था उसी कारण तत्त्वको जाननेवाले लोग मुझको धर्म्मजालिक ऐसा कहते थे ॥ ११ ॥ बहुत इकट्ठाकिये
हुये पातकों से संयुत मैं मृत्यु आनेपर मरकर यमराजके स्थानको गया व कूटशाल्मली नामक नरकमें गिरायागया ॥ १२ ॥ तदनन्तर यमदूतों से अपने कर्मको
स्मरण कराया जाता हुआ मैं खींचा जाताथा और तलवारों व कुत्तों से काटाजाता हुआ मैं जीताथा व मरजाताथा ॥ १३ ॥ बहुत बातोंसे अपनी निन्दा करता हुआ
मैं सैकड़ों वर्षतक वहां बसा यमराज के दूतोंकी पीड़ासे नरक में जो बुद्धि होवै है ॥ १४ ॥ वही यदि मुहूर्त्तमात्रभी होवै तो पुरुष धन्य (प्रशंसनीय) होता है

तदनन्तर उन यमदूतों से पीड़ित मैं किसी प्रकार छोड़ागया॥ १५ ॥ इसके अनन्तर स्थावरताको भोगकर और बहुतसे क्लेशोंको प्राप्तहोकर मैं पश्चात् उत्तम सारस्वत किनारे पै कीड़ा हुआ ॥ १६ ॥ और उस मार्ग में सुखपूर्वक इच्छासे भलीभाति सोताथा इसके अनन्तर मैंने आतेहुये रथके ऊंचे शब्दको सुना ॥ १७ ॥ और उसी शब्दको सुनकर अचानकही डरगया और वेगसे मार्गको छोड़कर भगा ॥ १८ ॥ इसी अवसर में इच्छासे व्यासजी वहां प्राप्तहुये व दयासंयुत उन मुनिने वहां पै स्थित मुझको देखा ॥ १९ ॥ मैंने ब्राह्मणजन्म में जो सब मनुष्योंके अनेक प्रकार के धर्मोंको कहाथा उसीके प्रभाव से व्यासजीका समागम हुआ॥ २० ॥ तदनन्तर

न्यस्ततःपुमान् ॥ तैस्ततोहंप्रमुक्तश्च कथंचिदपिपीडितः ॥ १५ ॥ स्थाणुत्वमनुभूयाथ क्लेशानासाद्यभूरिशः ॥ कीटोहमभवंपश्चात्तीरेसारस्वतेशुभे ॥ १६ ॥ तत्रमार्गेसुखमिवसंसुप्तोहंयदृच्छया ॥ आगच्छतोरथस्याथ शब्दमश्रौषमुन्नतम् ॥ १७ ॥ तमेवनिनदंश्रुत्वा भीतोहंसहसाजवात् ॥ मार्गमुत्सृज्यदूरेण प्रपलायनमाचरम् ॥ १८ ॥ एतस्मिन्नन्तरेव्यासस्तत्रप्राप्तोयदृच्छया॥ समामपश्यत्तत्रस्थं कृपयासंयुतोमुनिः ॥ १९ ॥ यन्मयासर्वलोकानां नानाधर्म्माःप्रकीर्तिताः ॥ विप्रजन्मनितस्यैव प्रभावाद्व्याससङ्गमः ॥ २० ॥ ततस्सर्वरुतज्ञोमां प्राहार्यःकीटभाषया॥ किमेवन्नश्यसेकीटकस्मान्मृत्योर्बिभेषिच ॥ २१ ॥ अहोसमुचिताभीतिर्मनुष्यस्यकुतस्ततः ॥ इत्युक्तोमतिमान्पूर्वपुण्याद्व्यासंतदोचिवान् ॥ २२ ॥ नमेभयंजगद्वन्द्य मृत्योरस्मात्कथञ्चन ॥ एतदेवभयंमन्येगच्छेयमधमाङ्गतिम् ॥ २३ ॥ अस्याअपिकुयोनेश्च सन्त्यन्याःकोटिशोधमाः ॥ तासुगर्भादिकक्लेशभीतस्त्रस्तोस्मिनान्यथा ॥ २४ ॥ व्यासउवाच ॥ माभयंकुरु

सब जीवोंके शब्दको जाननेवाले वे श्रेष्ठ व्यासजी कीट की भाषासे मुझमे बोले कि हे कीट! इस प्रकार क्यों भगते हो और मृत्युसे किस कारण डरतेहो ॥ २१ ॥ अहो मनुष्यके सकाशसे किस लिये भययोग्य है तदनन्तर पूर्वके पुण्यसे ऐसा कहा हुआ बुद्धिमान् मैं उस समय व्यासजी से बोला ॥ २२ ॥ कि हे संसारके प्रणाम करने योग्य व्यासजी! इसमृत्युमे मुझको किसी प्रकार भय नहीं है किन्तु यही भय मानताहूं कि नीचगति मे जाऊंगा॥ २३ ॥ क्योंकि इस कुयोनिसे भी अन्य करोड़ो योनि नीचहै उनमे गर्भादिकके क्लेशके डरसे डराहूं अन्यथा नहीं डरताहूं ॥ २४ ॥ व्यासजी बोले कि डर मत कीजिये क्योंकि सब योनियोंसे मैं शीघ्रही छुड़ाऊंगा। कि

जबतक निश्चयकर ब्राह्मणताको प्राप्त करूंगा ॥ २५ ॥ उनसे ऐसा कहेहुये मैंने उस समय संसारके गुरु व्यासजीको प्रणामकर व मार्गमें आकर पहिया से पीड़ित होकर मृत्यु किया ॥ २६ ॥ तदनन्तर कौवा व सियार आदिकी योनियों में मैं जब हुआ तब तब भलीभांति आकर व्यासजी ने मुझको वह स्मरण कराया ॥ २७ ॥ तदनन्तर बहुत भांतिकी योनि में घूमकर मैं दुबला होगया और इस ब्राह्मण के घरमें बड़ा दुःखित मैं इस योनि में प्राप्तहुआ ॥ २८ ॥ तदनन्तर जन्मसे लगाकर मैं माता, पिता से रहितहुआ और बहुत पीड़ादेनेवाली इसी योनिमें गलत्कुष्ठवाला मैं हुआ ॥ २९ ॥ तदनन्तर पांचवें वर्ष में व्यासजी ने मेरे समीप आकर कान में

सर्वाभ्यो योनिभ्यश्चाचिरादिव ॥ मोक्षयिष्यामिब्राह्मण्यंयावन्नैष्यामिनिश्चितम् ॥ २५ ॥ इत्युक्तोऽहंतदातेन तम्प्रणम्यजगद्गुरुम् ॥ मार्गमागत्यचक्रेण पीडितोमृत्युमाचरम् ॥ २६ ॥ ततःकाकशृगालादियोनिष्वत्रयदाभवम् ॥ तदातदासमागत्य व्यासोमास्मारयच्चतत् ॥ २७ ॥ ततोबहुविधांयोनिं परिक्रम्यास्मिकर्शितः ॥ ब्राह्मणस्यास्यगेहेस्यां योनौयातोतिदुःखितः ॥ २८ ॥ ततोजन्मप्रभृत्यस्मिपितृभ्यांपरिवर्जितः ॥ गलत्कुष्ठीमहापीडामेतांयोनिंमवामिच ॥ २९ ॥ ततोमांपञ्चमेवर्षे व्यासआगत्यजप्तवान् ॥ कर्णेसारस्वतंमन्त्रं तेनाहंसंस्मरामिच ॥ ३० ॥ अनधीतानिशास्त्राणि वेदान्धर्माश्चकृत्स्नशः ॥ उक्तंव्यासेनचेदम्मे गच्छक्षेत्रंगुहस्यच ॥ ३१ ॥ तत्रत्वंनन्दभद्रञ्च आश्वासयमहामतिम् ॥ त्यक्त्वाबहूदकेप्राणानस्थिक्षेपोमहीजले ॥ ३२ ॥ कारयत्वंततोभावी मैत्रेयइतिसन्मुनिः ॥ गमिष्यसिततोमोक्षमितिमांव्यासउक्तवान् ॥ ३३ ॥ आगतश्चततश्चात्र वाहकेभ्योतिक्लेशतः ॥ इतितेकथितंसर्वमात्मनश्चरितं

सरस्वतीजी का मन्त्र जपदिया उसी कारण मैं बिन पढ़ेहुये शास्त्रोंको और सम्पूर्ण वेदों व धर्मोंको भलीभांति स्मरण करताहूँ और व्यासजी ने मुझसे यह कहा कि स्वामिकार्त्तिकेयजी के क्षेत्रको जाइये ॥ ३० । ३१ ॥ और वहां बड़े बुद्धिमान् नन्दभद्रको तुम समझाओ व बहूदकतीर्थ में प्राणोंको छोड़कर महीनदीके जलमें अस्थि-क्षेप ॥ ३२ ॥ कराकर तदनन्तर तुम मैत्रेय ऐसे उत्तम मुनिहोगे उसके उपरान्त मोक्षको प्राप्तहोवोगे व्यासजीने मुझसे यह कहा है ॥ ३३ ॥ तदनन्तर भारवाहकों से

मैं यहां बड़े क्लेशसे आया इस समस्त अपने चरितको मैंने तुमसे कहा ॥ ३४ ॥ हे नन्दभद्र ! इस प्रकारके कष्टदायक पापको सदैव त्यागिये नन्दभद्र बोले कि अहो तुम्हारा बड़ा अद्भुत चरित है कि जिससे मेरे हृदय में ॥ ३५ ॥ फिर सौगुना दृढ़ मन धर्म्म के लिये होगया परन्तु तुमसे कहेहुये धर्म्मके कर्मको करना चाहता हूँ ॥ ३६ ॥ इस लिये आप धर्म्मको स्मरण कीजिये और कुछ निश्चित धर्म्मको आज्ञा कीजिये बालक बोला कि इस तीर्थमे सातदिनतक निराहार स्थितहोकर मैं ॥ ३७ ॥ सूर्यनारायण के मन्त्रोंको जपूंगा तदनन्तर शरीरको त्यागूंगा तदनन्तर तुमसे बर्करिकातीर्थमें मैं किनारे पै जलाने योग्यहूं ॥ ३८ ॥ और मेरे सब अस्थिभी इसी

मया ॥ ३४ ॥ पापमेवंविधंकष्टं नन्दभद्रसदात्यज ॥ नन्दभद्रउवाच ॥ अहोमहाद्भुतंतुभ्यं चरितंयेनमेहृदि ॥ ३५ ॥ भूयःशतगुणंजातं धर्म्मायदृढमानसम् ॥ किन्तुत्वयोक्तधर्म्मस्य कर्तुकामोस्मिकर्मच ॥ ३६ ॥ धर्मस्मरभवांस्तस्मात्किञ्चिदादिशनिश्चितम् ॥ बालउवाच ॥ अत्रतीर्थेचसप्ताहं निराहारस्त्वहंस्थितः ॥ ३७ ॥ सूर्यमन्त्राञ्जपिष्यामि त्यक्ष्यामिचततस्तनुम् ॥ ततोबर्करिकातीर्थे दग्धव्योहंत्वयातटे ॥ ३८ ॥ अस्थीनिसर्वाण्यपिच ममाक्षेप्याणिचात्र हि ॥ यदिसापह्नवंचित्तं मयातवनचास्तिचेत् ॥ ३९ ॥ ततस्त्वांगुरुकार्य्यार्थमादिशामिशृणुष्वतत् ॥ अस्मिन्बहूदकेतीर्थे यत्रप्राणांस्त्यजाम्यहम् ॥ ४० ॥ तत्रमन्नामचिह्नस्ते संस्थाप्योभास्करोविभुः ॥ आरोग्यंधनधान्यञ्च पुत्रदारादिसम्पदः ॥ ४१ ॥ भास्करोभगवांस्तुष्टोदद्यादेतच्छ्रुतेर्वचः ॥ सवितापरमोदेवस्सर्वदोवोद्विजन्मनाम् ॥ ४२ ॥ वेदवेदाङ्गगीतश्च त्वमप्येनंसदाभज ॥ बहूदकमिदंकुण्डं संसेव्यञ्चसदात्वया ॥ ४३ ॥ माहात्म्यंयस्यवक्ष्यामि संक्षे

तीर्थ में फेंकने योग्य हैं और यदि तुम्हारा चित्त मुझसे छल समेत न होवै ॥ ३९ ॥ तो तुमको गुरु (बड़े) कार्यके लिये आज्ञा करताहूँ उसको सुनिये कि इस बहूदक तीर्थ में मैं जहां प्राणोंको छोड़ूं ॥ ४० ॥ वहांपर मेरे नामसे चिह्नित सूर्यनारायण स्वामी स्थापन करने योग्य हैं क्योंकि नीरोगता, धन, धान्य व पुत्र, स्त्री आदिक सम्पदाको ॥ ४१ ॥ प्रसन्न होतेहुये भगवान् सूर्यनारायण देते हैं यह वेदका वचनहै और श्रेष्ठ देव सूर्यनारायणजी तुम लोगों ब्राह्मणोंको सब कुछ देनेवाले हैं ॥ ४२ ॥ जोकि वेदों व वेदागों से गायेगये हैं इन सूर्यनारायणको तुमभी सदैव भजो और यह बहूदक कुण्ड सदैव तुमसे सेवने योग्य है ॥ ४३ ॥ कि जिसके व्यासजी से

सूचित माहात्म्यको मैं तुमसे संक्षेपसे कहताहूँ कि बहूदक नामक उत्तम कुण्डमें जो मनुष्य विधिपूर्वक नहाता है ॥ ४४ ॥ उसके सब जन्मोंमें नीरोगता, धन व
धान्यादिक होती है और माघमहीने में सप्तमी तिथिमें जो मनुष्य बहूदक कुण्ड में नहाकर ॥ ४५ ॥ पितरों को पिण्ड देता है उसके वे पितर अविनाशिनी तृप्तिको
प्राप्तहोते हैं और बहूदक कुण्डके किनारे पै पितरोंको उद्देशकर जो कुछ दिया जाताहै वह अक्षय उनको प्राप्तहोता है अन्यथा नहीं है स्नान, दान, जप, होम, वेदपाठ
व पितरोंका तर्पण ॥ ४६ । ४७ ॥ बहूदक कुण्डमें कियाहुआ यह सब बहुत फलवाला होता है हे अर्जुनजी ! व्याससे कहा हुआ यह तुमको हृदय में भलीभांति धारण

पादव्याससूचितम् ॥ बहूदकेकुण्डवरे स्नातियोविधिवन्नरः ॥ ४४ ॥ आरोग्यधनधान्याद्यं तस्यस्यात्सर्वजन्मसु ॥ ब
हूदकेचयःस्नात्वा सप्तम्यांमासमाघके ॥ ४५ ॥ दद्यात्पिण्डंपितॄणाञ्च तेऽक्षयांतृप्तिमाप्नुयुः ॥ बहूदकस्यतीरेच प्रेता
नुद्दिश्ययदीयते ॥ ४६ ॥ यत्किञ्चिदक्षयंतेषामुपतिष्ठेन्नचान्यथा ॥ स्नानन्दानंजपोहोमः स्वाध्यायःपितृतर्पणम् ॥
४७ ॥ कृतंबहूदकेकुण्डे सर्वस्यात्सुमहत्फलम् ॥ त्वयैतद्धृदिसन्धार्यं फाल्गुनव्याससभाषितम् ॥ ४८ ॥ नारदउवाच ॥
इत्युक्त्वासोभवन्मौनी स्नात्वाकुण्डेततःशुचिः ॥ ४९ ॥ तीरेस्यतरुमाश्रित्य स्वयंमन्त्राञ्जजापच ॥ ततस्तुसप्तरात्रा
न्ते जहौबालोनिजानसून् ॥ ५० ॥ संस्कारितोयथोक्तंच नन्दभद्रेणब्राह्मणैः ॥ यत्रबालस्सचप्राणाञ्जहौजपपराय
णः ॥ ५१ ॥ बालादित्यमितिख्यातं तत्रस्थापयतंप्रभुम् ॥ बहूदकेचयःस्नात्वा बालादित्यंप्रपूजयेत् ॥ ५२ ॥ तस्य
स्याद्भास्करस्तुष्टो मोक्षोपायञ्चविन्दति ॥ नन्दभद्रोप्यथान्यस्यां भार्यायामपरान्सुतान् ॥ ५३ ॥ उत्पाद्यात्मसमा

करना चाहिये ॥ ४८ ॥ नारदजी बोले कि इसप्रकार कहकर वह बालक मौन होगया तदनन्तर कुण्डमें नहाकर पवित्रहोकर ॥ ४९ ॥ इसके किनारे वृक्षके आश्रितहोकर
आपही मन्त्रोंको जपा उसके उपरान्त उस बालक ने सात रातों के अन्तमें अपने प्राणों को छोड़दिया ॥ ५० ॥ व जैसा कि कहा था वैसेही नन्दभद्र व ब्राह्मणों से
संस्कार कियागया और जपमें परायण उस बालकने जहांपर प्राणोंको छोड़ाथा ॥ ५१ ॥ वहांपर नन्दभद्र ने बालादित्य ऐसे प्रसिद्ध उन सूर्यनारायण को स्थापन किया
जो मनुष्य बहूदक कुण्ड में नहाकर बालादित्यको पूजता है ॥ ५२ ॥ उसके ऊपर सूर्यनारायणजी प्रसन्न होते हैं व मोक्षके उपायको प्राप्तहोताहै व बुद्धिमान् नन्दभद्र

भी अन्य स्त्रीमें अपने समान और पुत्रोंको उत्पन्नकर शिव व सूर्यनारायणमें परायण हुये व हे अर्जुनजी ! शिवजी के शरीरको प्राप्तहुये कि जिससे फिर लौटना दुर्लभ होताहै ॥ ५३ । ५४ ॥ इस प्रकारका यह बहूदक ऐसा कहा हुआ महाकुण्ड है इस के किनारे पै वल्लीनाथ अपने अंशको छोड़ैगा ॥ ५५ ॥ जो योगी कि दत्तात्रेय का अवतार होगा उन देवको पूजकर योगी सिद्धिको प्राप्तहोताहै ॥ ५६ ॥ और पशुओं की वृद्धिको प्राप्तहोता है व यह प्रभु गऊके शरण्य (रक्षक) हैं हे भारत ! वैसेही इस क्षेत्रमें पश्चिम दिशामें बुधके पुत्र पुरूरवाजी हैं ॥ ५७ ॥ इस तीर्थका माहात्म्य पुत्र व शिष्यके कर्णमूल में जपना चाहिये और नास्तिकको किसी प्रकारसे न सु-

न्धीमाञ्छिवसूर्य्यपरायणः ॥ रुद्रदेहंययौपार्थ पुनरावृत्तिदुर्लभम् ॥ ५४ ॥ एवमेतन्महाकुण्डंबहूदकमितिस्मृतम् ॥ अस्यतीरेस्वमंशञ्च वल्लीनाथःप्रमोक्ष्यति ॥ ५५ ॥ दत्तात्रेयस्ययोयोगी ह्यवतारोभविष्यति ॥ अर्चयित्वाचतन्देवं योगीसिद्धिमवाप्नुयात् ॥ ५६ ॥ पशूनामृद्धिमाप्नोति गोशरण्योस्त्यसौप्रभुः ॥ पश्चिमायांबुधसुतस्तथाक्षेत्रेत्रभारत ॥ ५७ ॥ अस्यतीर्थस्यमाहात्म्यं जप्तव्यंकर्णमूलके ॥ पुत्रस्यचापिशिष्यस्य नकथञ्चननास्तिकम् ॥ ५८ ॥ शृणोतीदंश्रद्धयायस्तस्यतुष्येच्चभास्करः ॥ धारयन्हृदयेमोक्षं मुच्यतेभवसागरात् ॥ ५९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेभद्रादित्यमाहात्म्यन्नामैकचत्वारिंशोध्यायः ॥ ४१ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

नारदउवाच ॥ ततोमयास्यतीर्थस्य रक्षणायधनञ्जय ॥ समाराध्ययथादेव्यः स्थापितास्तच्छृणुष्वमे ॥ १ ॥ यथात्मासर्वभूतेषु व्यापकःपरमेश्वरः ॥ तथैवप्रकृतिर्नित्याव्यापका परमेश्वरी ॥ २ ॥ शक्तिप्रसादादाप्नोति सुखंस

नाना चाहिये ॥ ५८ ॥ जो मनुष्य श्रद्धासे इस चरित्रको सुनताहै उसके ऊपर सूर्यनारायणजी प्रसन्नहोते हैं व हृदय में मोक्षको धारता हुआ पुरुष भवसागर से छूट जाता है ॥ ५९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांभद्रादित्यमाहात्म्यकथनन्नामैकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥ ॥

दो० । थाप्यो नवदुर्गादिकन जिमि नारद मुनिनाथ । बयालिसें अध्यायमें सोई वर्णत गाथ ॥ नारदजी बोले कि हे अर्जुनजी ! तदनन्तर इस तीर्थकी रक्षाके लिये मैंने जिसप्रकार आराधनकर देवियोंको स्थापन कियाहै उसको मुझसे सुनिये ॥ १ ॥ जैसे कि आत्मा परमेश्वर समस्त प्राणियो में व्यापी है वैसेही प्रकृति परमेश्वरी

नित्या (नाशरहित) व व्यापिनी है ॥ २ ॥ हे अर्जुनजी ! शक्तिकी प्रसन्नता से मनुष्य सुख व समस्त सम्पदाओं को प्राप्तहोता है इसप्रकार वह परमेश्वरी सम्पूर्ण
प्राणियोंमें भलीभांति टिकीहै ॥ ३ ॥ बुद्धि, ह्री, पुष्टि, लज्जा, तुष्टि, शान्ति, क्षमा, स्पृहा, श्रद्धा, चेतना, शक्ति ये मन्त्रोत्साहसे उपजीहुई शक्तियाहैं ॥ ४ ॥ यही प्रकृति
सदैव बन्धन के लिये व मोक्षके लिये होती है और इसको आराधनकर इन्द्रादिक देवता ऐश्वर्यको पाते हैं ॥ ५ ॥ और जो नीचनर शक्तिको नहीं मानते हैं और तिर-
स्कार करते हैं वे योगीन्द्रभी अव्यक्त (मोक्ष) से आकाशमें प्राप्त वस्तुओंकी नाईं गिरपड़ते हैं ॥ ६ ॥ पुरातन समय काशीजी में सिद्ध योगीश्वर फिर उस शक्तिका

र्वांश्चसम्पदः ॥ ईश्वरीसर्वभूतेषु साचैवंपार्थसंस्थिता ॥ ३ ॥ बुद्धिर्ह्रीःपुष्टिर्लज्जेच तुष्टिःशान्तिःक्षमास्पृहा ॥ श्रद्धाचचे
तनाशक्तिर्मन्त्रोत्साहसमुद्भवाः ॥ ४ ॥ इयमेवचबन्धायमोक्षायेयञ्चसर्वदा ॥ एतामाराध्यचैश्वर्यमिन्द्राद्यास्सम
वाप्नुयुः ॥ ५ ॥ येचशक्तिन्नमन्यन्ते तिरस्कुर्वन्तिचाधमाः ॥ योगीन्द्राअपितेऽव्यक्ताद्भ्रश्यन्त्याकाशगायथा ॥ ६ ॥
वाराणस्यांकिलपुरा सिद्धायोगीश्वराःपुनः ॥ अवमन्यचतांशक्तिं पुनर्भ्रंशमुपागताः ॥ ७ ॥ तस्मात्सदादेहि
नेयं शक्तिःपूज्येतिनित्यदा ॥ तुष्टाददातिसाकामान् रुष्टासंहरतेक्षणात् ॥ ८ ॥ परमाप्रकृतिस्साचबहुभेदैर्व्यवस्थिता ॥
तस्मान्मयामहादेव्योयत्रसंस्थापिताःशृणु ॥ ९ ॥ चतस्रस्तुमहाशक्त्यश्चतुर्दिक्षुव्यवस्थिताः ॥ सिद्धाम्बिकातुपूर्वस्यां
स्थापितासागुहेनच ॥ १० ॥ जगदादौमूलप्रकृतिरुत्पन्नासाप्रकीर्त्यते ॥ आराधितायतःसिद्धैस्तस्मात्सिद्धाम्बिकास्मृ
ता ॥ ११ ॥ दक्षिणस्यान्तथातारासंस्थितास्थापितामया ॥ तारणार्थायदेवानां यास्यात्कूर्मसमाश्रिता ॥ १२ ॥

अपमानकर भ्रष्टताको प्राप्त हुये हैं ॥ ७ ॥ इस लिये शरीरधारीसे सदैवही यह शक्ति नित्य पूजने योग्य है क्योंकि प्रसन्नहोती हुई वह मनोरथों को देती है और
क्रोधित होकर उसीक्षण संहार करती है ॥ ८ ॥ और वह उत्तम प्रकृति बहुत भेदों से स्थितहै इस लिये मैंने महादेवियोंको जहां स्थापन कियाहै उसको सुनिये ॥ ९ ॥
कि चार महाशक्तियां चारों दिशाओं में स्थित हैं उस सिद्धाम्बिका शक्तिको स्वामिकार्त्तिकेयजी ने पूर्वदिशामें स्थापन कियाहै ॥ १० ॥ संसारके आदिमें उत्पन्न
हुई वह मूलप्रकृति कही जाती है व जिस लिये सिद्धों से आराधन कीगई है उसी कारण सिद्धाम्बिका कहीगईहै ॥ ११ ॥ और वैसेही दक्षिणामें मुझसे थापीहुई तारा

शक्ति स्थित है जोकि देवताओं के तारने के लिये कच्छप पै भलीभांति आश्रित है ॥ १२ ॥ और जिससे प्रवेशकिये हुये जगद्गुरु कूर्मावतार विष्णुजी देवताओं को उधारा है और इसीसे पैठीहुई देहवाले बुद्धजी वेदमार्गको नष्टकरनेवाले करोड़ों पापकर्मी योद्धाओं को मारैंगे मैं इन पर्वतकन्याको भलीभाति आराधन कर लाया हूं ॥ १३ । १४ ॥ और बड़ी भयंकर वह देवी करोड़ संख्यक देवियोंसे घिरीहै और मेरे गौरवके कारण दक्षिण दिशामें आश्रितहोकर भलीभाति टिकीहै ॥ १५ ॥ वैसेही पश्चिम दिशामें उत्तम भास्वरादेवी स्थितहै कि जिससे पैठेहुये सूर्य्यादिक ग्रह प्रकाशित हैं ॥ १६ ॥ और सब नक्षत्रोंके सम्पूर्ण विम्ब जिससे जाते व आते हैं हे कुरु-

ययाविष्टस्ससमुज्जहे देवान्कूर्मोजगद्गुरुः ॥ अनयाविष्टदेहश्च बुद्धोयोधान्हनिष्यति ॥ १३ ॥ कोटिशोवेदमार्गस्य ध्वंसकान्यायकर्मिणः ॥ इयंमयासमाराध्य समानीतागिरेस्सुता ॥ १४ ॥ कोटिसंख्याभिरत्युग्रादेवीभिस्संवृताचसा ॥ दक्षिणान्दिशमाश्रित्य संस्थितामनगौरवात् ॥ १५ ॥ पश्चिमायान्तथादेवी संस्थिताभास्वराशुभा ॥ ययाविष्टानि भासन्ते भास्करप्रमुखानिच ॥ १६ ॥ बिम्बानिसर्वताराणांगच्छन्त्यायान्तिसर्वशः ॥ सावैमहाबलाशक्तिर्भास्वराकुरुनन्दन ॥ १७ ॥ मयाराध्यसमानीता कटाहादत्रसंस्थिता ॥ कोटिदेवीवृतानित्यं त्रायतेपश्चिमान्दिशम् ॥ १८ ॥ उत्तरस्यान्तथादेवी संस्थितायोगनन्दिनी ॥ परमप्रकृतेर्देहात्पूर्वंनिस्सृतयायया ॥ दृष्ट्वादृष्टानिर्मलयायोगिनस्तेचतुःसनाः ॥ १९ ॥ योगीश्वरीचसादेवी सनकाद्यैस्तथोदिता ॥ साचाण्डस्यकटाहान्मे समाराध्यात्रप्रापिता ॥ २० ॥ योगिनीभिःपरिवृतासंस्थिताचोत्तरान्दिशम् ॥ एवमेतामहाशक्तयश्चतस्रःसंस्थितास्सदा ॥ २१ ॥ पूजिताःकामदानित्यं

नन्दन ! वह भास्वरा शक्ति महाबलवती है ॥ १७ ॥ जोकि मुझसे भलीभाति आराधकर अण्डकटाह से लाई हुई यहां भलीभांति टिकी है और करोड़ देवियोंसे घिरीहुई वह पश्चिमदिशाकी रक्षा करती है ॥ १८ ॥ और वैसेही उत्तर दिशा में योगनन्दिनी देवी स्थित हैं पुरातन समय उत्तम प्रकृतिकी देहसे निकलीहुई जिस भगवतीने निर्मल दृष्टिसे उन सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमारको देखाहै ॥ १९ ॥ वैसेही सनकादिकोंने उस देवीको योगीश्वरी कहा है और मैंने उसको आराधनकर अण्डकटाहसे यहां प्राप्तकराया है ॥ २० ॥ योगिनियों से घिरीहुई वह उत्तर दिशामें भलीभांति स्थितहै इसप्रकार ये चार महाशक्तियां सदैव स्थित रहती हैं ॥ २१ ॥

पूजित होती हुई वे नित्यही मनोरथोंको देती हैं और क्रोधितहोकर संहार करनेमें समर्थ हैं और तदनन्तर मैं नवदुर्गाओंको लायाहूं उनको सुनिये ॥ २२ ॥ कि एक त्रिपुरा
नामक उत्तम देवी है कि पुरातन समय जिससे पैठेहुये जगदीश्वर शिवजीने त्रिपुरको भस्मतामें प्राप्त किया ॥ २३ ॥ उसी कारण भगवान् शिवजीने उसको त्रिपुरा ऐसा
कहाहै व उन्होंने आपही स्तुतिकिया उसी कारण सब लोकों के भी वह शक्ति पूजनेयोग्य है ॥ २४ ॥ और मैं उसको आराधनकर अमरेश पर्वत से लायाहूं और भद्रा-
दित्यके समीप वह देवी कामदायिनी है ॥ २५ ॥ और अन्यभी कोलम्बा नामक सनातनी शक्तिहै जिससे कि पैठेहुये वाराहरूपी विष्णुजी पृथ्वीको ऊपरलाये हैं ॥ २६ ॥

रुष्टास्संहरणक्षमाः ॥ ततश्चनवमेदुर्गास्समानीताः शृणुष्वताः ॥ २२ ॥ त्रिपुरानामपरमा देवीस्थाणुर्ययापुरा ॥ आवि
ष्टस्त्रिपुरन्निन्ये भस्मत्वंजगदीश्वरः ॥ २३ ॥ त्रिपुरेतिततस्तांच प्रोक्तवान्भगवान्हरः ॥ तुष्टावचस्वयंतस्मात् पूज्या
साजगतामपि ॥ २४ ॥ साचाराध्यसमानीतामरेशपर्वतान्मया ॥ भक्तानांकामदासास्ति भद्रादित्यसमीपतः ॥ २५ ॥
अपराचापिकोलम्बा महाशक्तिःसनातनी ॥ कोलरूपीययाविष्टः केशवश्चोज्जहारगाम् ॥ २६ ॥ तस्मात्साविष्णु
नाचोक्ता कोलम्बेतिस्तुतार्चिता ॥ साचदेवीमयापार्थ शक्तियोगेनतोषिता ॥ २७ ॥ वाराहगिरिसंस्थामां समानीतांच
साब्रवीत् ॥ यत्राहंनारदस्यदा तिष्ठामिकूपयार्थिनाम् ॥२८॥ तत्रकूपेनसंस्थाहं रुद्राणीसंस्थितेनवै ॥ तंहिकूपंविनामह्यं
नरतिर्जायतेक्वचित ॥ २९ ॥ तस्माद्भवान्कूपवरं स्वयमत्रखनद्विज ॥ एवमुक्तेपार्थदेव्या दर्भमूलेनमेतदा ॥ ३० ॥ कू
पोखानियत्रसाक्षाद्रुद्राणीकूपआबभौ ॥ ततोमयातत्रदेव्याः स्नात्वाजप्ताचतर्पिता ॥ ३१ ॥ पूजिताचततोदेवी प्रणतंसा

उसी लिये विष्णुजी से पूजित व स्तुति कीहुई वह देवी कोलम्बा ऐसी कहीगई व हे अर्जुनजी ! मैंने शक्तिके योगसे उस देवीको प्रसन्न किया ॥ २७ ॥ और वाराह
पर्वत पै टिकी व लाईहुई उस देवीने मुझसे कहा कि हे नारदजी ! जहां याचकों के ऊपर कृपाके कारण मैं सदैव स्थित होती हूँ ॥ २८ ॥ वहां रुद्राणी करके स्थित
कूप समेत मैं टिकती हूँ क्योंकि उस कूपके विना मुझको कहीं प्रीति नहीं होती है ॥ २९ ॥ इस लिये हे द्विज ! यहां उत्तम कूपको आपही खोदिये हे अर्जुनजी !
देवीजी के ऐसा कहने पर उस समय मैंने कुशकी जड़से ॥ ३० ॥ वहीपर कूपको खोदा जहां कि साक्षात् पार्वतीजी का कूप शोभितथा तदनन्तर देवीजीके उस कूप

में नहाकर मैंने जप किया व तृप्तकिया ॥ ३१ ॥ तदनन्तर पूजीहुई देवीजी ने उस समय प्रणाम कियेहुये मुझसे कहा कि तुमसे प्रसन्नतः मैं प्रासकराई हुई मैं सदैव यहां टिकूंगी ॥ ३२ ॥ और विशेषकर माघकी अष्टमी में जो मनुष्य इस कूपमें नहाकर मुझको पूजैंगे उनके पापको मैं नाश करूंगी ॥ ३३ ॥ जोकि समस्ततीर्थमय और जो सब ऋतुवोंवाला वनहै वही यह पार्वतीजी का कूप निर्जल देशके समीप है ॥ ३४ ॥ और हे नारदजी ! प्रयाग, गङ्गा व विशेषकर गयाजीसे भी अधिक इस कूप में स्नानको मैंने कहा है ॥ ३५ ॥ इस लिये हे तपोधन ! तुम्हारे वचन से मैं यहां भलीभाति टिकीहूं और पुण्यदायक तड़ागको स्वामिकार्त्तिक संयुक्त निरालसी

तदाब्रवीत् ॥ सदात्रचाहंस्थास्यामि प्रसादंप्रापितात्वया ॥३२॥ येचकूपेत्रसंस्नात्वा माघाष्टम्यांविशेषतः ॥ पूजयिष्यन्तिमांमर्त्यास्तेषांछेत्स्यामिदुष्कृतम् ॥ ३३ ॥ सर्वतीर्थमयोयश्च सर्वर्तुकवनोस्तियः ॥ मरोस्समीपेरुद्राण्याः कूपएषसएवच ॥ ३४ ॥ प्रयागादपिगङ्गाया गयायाश्चविशेषतः ॥ कूपेस्मिन्नधिकंस्नानं मयानारदकीर्त्तितम् ॥ ३५ ॥ तदहन्तववाक्येन संस्थितात्रतपोधन ॥ गुहेनाथसरःपुण्यं पालयिष्याम्यतन्द्रिता ॥ ३६ ॥ कुमारेशंपूजयित्वा पूजयिष्यतियश्चमाम् ॥ देवीभिःषष्टिकोटीभिर्युतातस्यास्म्यभीष्टदा ॥ ३७ ॥ श्रीनारदउवाच ॥ इत्युक्तोहंपार्थदेव्या तदानींप्रीयमाणया ॥ प्रत्यब्रवंप्रमुदितः कोलम्बांविश्वमातरम् ॥ ३८ ॥ अत्रास्यमातस्त्वन्देवी गुप्तक्षेत्रस्यकारणम् ॥ तीर्थयात्रावृथातेषां नार्चयन्तीहयेचत्वाम् ॥ ३९ ॥ इदञ्चयत्सरःपुण्यं त्वन्नाम्नाख्यातिमेष्यति ॥ ईश्वरीसरसोऽस्यत्वं तीर्थस्यास्यतथेश्वरी ॥ ४० ॥ एवंदीर्घंतपस्तप्त्वा स्थापितासामयाशुभा ॥ महादुर्गानैरस्तस्मात्पूज्यास्तिसततंबुधैः ॥ ४१ ॥ तृ

होतीहुई मैं रक्षाकरूंगी ॥ ३६ ॥ कुमारेश शिवको पूजकर जो मनुष्य मुझको पूजैगा साठ करोड़ देवियोंसे संयुत मैं उसके मनोरथ को दूंगी ॥ ३७ ॥ श्रीनारदजी बोले कि हे अर्जुनजी ! प्रसन्न होती हुई देवीजी से इस प्रकार कहेहुये मैंने प्रसन्नहोकर संसारकी माता कोलम्बीजी से कहा ॥ ३८ ॥ कि हे माता ! यहां इस गुप्तक्षेत्रकी तुम देवी कारणभूतहो इस लिये इस लोकमें जो तुमको नहीं पूजते हैं उनकी तीर्थयात्रा वृथा होती है ॥ ३९ ॥ और यह जो पवित्र तड़ाग है वह तुम्हारे नामसे प्रसिद्धिको प्राप्तहोगा और इस तड़ागकी स्वामिनी व इस तीर्थकी ईश्वरीहो ॥ ४० ॥ इसप्रकार बड़ी तपस्याकर मैंने उन उत्तम महादुर्गाको थापाहै इस लिये विद्वान् मनुष्यों से

वह सदैव पूजने योग्यहै ॥ ४१॥ और तीसरी इस दिशामें मुझसे व स्वामिकार्त्तिकेयजी से भलीभांति थापीहुई कपालेशा देवी टिकी हैं इनका प्रभाव पहले कहा गया
है ॥ ४२ ॥ कि जो उत्तम मनुष्य नित्यही कपालेश्वरजी को पूजकर इस देवी को देखते हैं वे धन्य हैं और वह संसारकी शक्ति है ॥ ४३ ॥ इस प्रकार वे तीन दुर्गा
पूर्व दिशामें भलीभांति स्थितहैं और पश्चिम दिशामें बड़ी उत्तम तीन दुर्गाओं को कहताहूं ॥ ४४ ॥ ब्रह्माण्डको पालन करनेवाली जो सुवर्णाक्षी देवीहै उस देवीको
मैंने आराधनकर इस तीर्थमें स्थापित कियाहै ॥४५॥ और जो इसको प्रणाम करैंगे व शक्तिसे पूजैंगे वे तेंतीस करोड़ देवियोंसे पूजित होते हैं ॥ ४६ ॥ और वीरत्वको

तीयाचदिशित्वस्यां स्थितासंस्थापितामया ॥ गुहेनचकपालेशा प्रभावोस्याःपुरेरितः ॥ ४२ ॥ धन्यास्तेयेप्रपश्यन्ति
नित्यमेनांनरोत्तमाः ॥ कपालेश्वरमभ्यर्च्य विश्वशक्तिरियन्तुसा ॥ ४३ ॥ एवंतुतिस्रोदुर्गास्ताःपूर्वस्यान्दिशिसंस्थि
ताः ॥ पश्चिमायांप्रवक्ष्यामि तिस्रोदुर्गामहोत्तमाः ॥ ४४ ॥सुवर्णाक्षीतुयादेवी ब्रह्माण्डपरिपालिनी॥सामयात्रसमारा
ध्य तीर्थेदेवीनिवेशिता ॥ ४५ ॥येचैनांप्रणमिष्यन्ति पूजयिष्यन्तिभक्तितः ॥ त्रयस्त्रिंशतिकोटीभिर्देवीभिःपूजिताश्च
ते ॥ ४६ ॥ इयमार्याचर्चिताच वीरत्वंसमभीप्सुभिः ॥ बहुभिर्देवदैतेयैर्ददौतेभ्यश्चवीरताम् ॥ ४७ ॥ एवमेवमहादुर्गा
शूद्रकंवीरसत्तमम् ॥ चौरैर्बद्धंकलावग्रे मोक्षयिष्यतिविक्रमात् ॥ ४८ ॥ ततस्तुतांसमाराध्य वीरेन्द्रत्वमवाप्स्यति ॥
निहनिष्यतिचाक्रम्य कालसेनमुखान्रिपून् ॥ ४९ ॥ तस्मादियंसमाराध्या वीर्यकामैर्नरैस्सदा ॥ चर्चितायामहादु
र्गा पश्चिमायांदिशिस्थिता ॥ ५० ॥ तथात्रैलोक्यविजयाविजयास्यांस्थितासदा ॥ यामाराध्यजयंप्राप त्रैलोक्येरोहि

चाहनेवाले बहुत देवता दैत्योंने इस उत्तम देवीका पूजन कियाहै और उनके लिये इसने वीरता दी है ॥ ४७ ॥ इसीप्रकार आगे कलियुग में चोरों से बँधेहुये शूद्रक
उत्तम वीरको महादुर्गा पराक्रम से छुडावैंगी ॥ ४८ ॥ तदनन्तर उनको भलीभांति आराधकर वीरेन्द्रताको पावैगा और कालमुख इत्यादिक शत्रुवोंको घेरकरमारैगा॥४९॥
इस लिये पराक्रम को चाहनेवाले पुरुषों से यह सदैव आराधन करने योग्य है जोकि पूजीहुई महादुर्गा पश्चिम दिशामें स्थित है ॥ ५० ॥ वैसेही इस दिशामें

त्रिलोककी विजय देनेवाली विजया सदैव स्थित हैं जिनको आराधकर रोहिणी के पति बलभद्रजी ने त्रिलोकमें जीतको पायाहै ॥ ५१ ॥ सदैव जयको देनेवाली उस भगवती को मैं पूजकर चन्द्रलोक से लाया हूं इस प्रकार ये शक्तियां पश्चिम दिशामें स्थित हैं इसके उपरान्त उत्तर दिशामे देवियो को सुनिये ॥ ५२ ॥ कि उत्तर दिशामें एकवीरा इत्यादिक तीन देवियां स्थित हैं एकवीरा ऐसी जो देवी है वह साक्षात् शिवजी से पूजित है ॥ ५३ ॥ जिससे कि पैठेहुये ये भूतराज शिवजी सब संसारको संहारते हैं अपने पराक्रम से एकवीरा समस्त लोकों को भस्मकर स्थित होती है ॥ ५४ ॥ इसप्रकार की यह सदैववाली एकवीरा शक्ति है ॥ ५५ ॥ जोकि

णीपतिः ॥ ५१ ॥ सोमलोकान्मयानीता पूजिताजयदासदा ॥ एवमेताःपश्चिमायामुत्तरस्यामतःशृणु ॥ ५२ ॥ तिस्रोदे
व्यश्चोत्तरस्यामेकवीरामुखाःस्थिताः ॥ एकवीरेतियादेवीसासाक्षाच्छिवपूजिता ॥ ५३ ॥ ययाविष्टोजगत्सर्वं संहरत्ये
षभूतराट्॥एकवीरास्ववीर्येण कृत्वालोकांश्चभस्मसात् ॥५४॥ एवंविधात्वेकवीरा शक्तिरेषासनातनी॥५५॥पूजिताराधि
ताचैव सर्वाभीष्टप्रदानृणाम् ॥ ब्रह्मलोकात्समानीता मयाराध्यतुभारत ॥ ५६ ॥ नामकीर्त्तनमप्यस्या दुष्टानांघात
नंविदुः ॥ द्वितीयाहरसिद्ध्याख्यादेवीदुर्गामहाबला ॥५७॥ शाकोत्तरात्समाराध्य मयानीतात्रपाण्डव ॥ यदाशाकोत्त
रस्थाने पार्वत्याप्रार्थितेनच ॥५८॥रुद्रेणडाकिनीमन्त्रःप्रोक्तोदेव्याकृपालुना॥ तदामन्त्रप्रभावेणमोहितागिरिजासती॥
५९ ॥ तमेवाक्रम्यमांसञ्च शोणितञ्चनवंपपौ ॥ ततोरुद्रशरीरात्तुविनिष्क्रान्तार्तिनाशिनी ॥ ६० ॥ हरसिद्धिर्महादुर्गा
महामन्त्रविशारदा ॥ सासहस्रभुजादेवी समाक्रम्याभ्यपीडयत् ॥ ६१ ॥ मोच्चयामासगिरिशमशामयततांतथा ॥

पूजन व आराधन कीहुई शक्ति मनुष्यों के सब मनोरथों को देनेवाली है हे भारत ! मैं उसको आराधकर ब्रह्मलोक से लायाहूं ॥ ५६ ॥ विद्वानोंने इसके नामका कीर्तनभी दुष्टोंको नाश करनेवाला कहा है और दूसरी हरसिद्धि नामक महाबलवती दुर्गादेवी हैं ॥ ५७ ॥ हे पाण्डव ! शाकोत्तर स्थानसे मैं आराधनकर यहां लायाहूं जब शाकोत्तर स्थान में पार्वतीजी से प्रार्थना कियेहुये ॥ ५८ ॥ दयालु शिवजी ने देवीसे डाकिनीमन्त्रको कहा है तब मन्त्रके प्रभाव से पतिव्रता पार्वतीजी मोहित हुई ॥५९॥ और उनने उन शिवजी को आक्रमणकर मांस व रक्तको पिया तदनन्तर शिवजी के शरीरसे हरसिद्धि नामक क्लेशको नाशनेवाली महादुर्गा निकलीं और

होमन्त्र में चतुर व हजारभुजाओंवाली उन देवीने दबाकर उसको पीड़ित किया ॥ ६० । ६१ ॥ और शिवजी को छुड़ाया व उसको शान्त किया तबसे लगाकर वह संसारमें हरसिद्धि ऐसी कही जाती है ॥ ६२ ॥ और साठ करोड़ देवियों से संयुत वह देवताओं से पूजीजाती है दोषोंको नाशनेवाली इस भगवती को आराध कर सुग्रीव इत्यादिक ॥ ६३ ॥ बड़े बलवान् हुये व डाकिनीगणों के नाशक हुये इस लिये मन, वचन व कर्म से इस देवीका पूजनकरै ॥ ॥ ६४ ॥ हरसिद्धि में परायण पुरुषके समीप डाकिनी इत्यादिक नहीं जाती हैं और तीसरी ईशानकोण में टिकीहुई नवीं दुर्गा स्थित है ॥ ६५ ॥ जिनके वर्णन करनेमें सरस्वतीजी भी पारको नहीं

ततःप्रभृतिसालोके हरसिद्धिःप्रकीर्त्यते ॥ ६२ ॥ देवीनांषष्टिकोटीभिरावृतापूज्यतेसुरैः ॥ एतामाराध्यसुग्रीवप्रमुखादोषनाशिकाम् ॥ ६३ ॥ अभवन्सुमहावीर्य्या डाकिनीसङ्घनाशकाः ॥ तस्मादेतांपूजयेत मनोवाक्कायकर्मभिः ॥ ६४ ॥ डाकिन्याद्यानसर्पन्ति हरसिद्धिरतन्नरम् ॥ तृतीयेशानकोणस्था चण्डिकानवमीस्थिता ॥ ६५ ॥ वागीशापि लभेत्पारं नैवयस्याःप्रवर्णने ॥ माद्रुतंपार्वतीदेहाद्विनिःसृत्यमहासुरौ ॥ ६६ ॥ चण्डमुण्डौनिहत्यैव भक्षयामासरोषतः ॥ अक्षौहिणीशतन्तेषां चण्डमुण्डौचतावुभौ ॥ ६७ ॥ नापूर्यतैकदेशोऽस्या विशालाक्ष्यास्त्वियंहिसा ॥ इयमेवान्धकानाञ्च तृषिताशोणितम्पुनः ॥ ६८ ॥ पपौततोनिजग्राहान्धकन्तुभगवान्भवः ॥ इयञ्चरक्तबीजानां कृत्वापानञ्चरक्तकम् ॥ ६९ ॥ अर्पयामासतन्देव्याश्चामुण्डापीतशोणितम् ॥ एषातृप्यतिभक्तानां प्रणामेनातिभारत ॥ ७० ॥ अर्बुदानाञ्चकोटीभिर्दैत्यानांपापकर्मणाम् ॥ कुण्डंचात्रमहादेव्या पुण्यंनिष्पादितंशुभम् ॥ ७१ ॥ यत्रवैस्पर्शमात्रे

पाती है जिसने कि शीघ्रही पार्वतीजी की देहसे निकलकर बड़ेभारी दैत्य ॥ ६६ ॥ चण्ड व मुण्डको मारकर क्रोधसे उन दैत्योंकी सौ अक्षौहिणी व उन दोनों चण्ड, मुण्डको भक्षण करलियाहै ॥ ६७ ॥ और इस विशालाक्षी के मुखका एक देश (स्थान) भी न पूर्णहुआ यह वह भगवती है और प्यासी होतीहुई इसी देवीने फिर अन्धक दैत्योंका रक्त ॥ ६८ ॥ पिया तदनन्तर भगवान् शिवजीने अन्धकको पकड़ लिया और इसीने रक्तबीज दैत्योंका रक्त पीकर ॥ ६९ ॥ चामुण्डा मे पियेहुये रक्त वालेउसको देवी को दे दिया हे भारत ! भक्तों के प्रणाम से यह बहुत प्रसन्न होती है ॥७०॥ और पापकर्म्म करोड़ों अर्बुद दैत्योंको मारकर महादेवीने यहां पवित्र व उत्तम

कुण्डको रचा है ॥ ७१ ॥ जिसमें स्पर्शमात्रही से मनुष्य समस्त तीर्थों के फलको पाताहै व हे भारत! रसकी सिद्धि, देहसिद्धि व धर्म्मकी सिद्धि होती है ॥ ७२ ॥ और चण्डिकासे रचेहुये इस तीर्थ में अनेक भांतिकी सिद्धि प्राप्त होती है थोड़े या बहुत उपचारसे भी जो मनुष्य देवीको पूजता है ॥ ७३ ॥ उसको करोड़ सौ देवियों से घिरीहुई वह शक्ति ऐश्वर्यको देतीहै इस प्रकार ये नव महादुर्गा इस तीर्थमें भलीभाति स्थित हैं ॥ ७४ ॥ और दिशाओं की चारों देवियां कल्याण चाहनेवाले नरोंसे नित्यही पूजने योग्य हैं और कुँवार व माघ के नवरात्रमें विशेषकर ॥ ७५ ॥ उपासकर या एक बार भोजनकर इन देवियोंको बलि और पुवाकी नैवेद्य तर्पण, धूप और

ण सर्वतीर्थफलंलभेत् ॥ रससिद्धिर्देहसिद्धिर्धर्मसिद्धिश्चभारत ॥ ७२ ॥ विविधाप्राप्यतेसिद्धिस्तीर्थेस्मिंश्चण्डिकाकृते॥ यश्चपूजयतेदेवीं स्वल्पेनबहुनापिवा ॥ ७३ ॥ कात्यायनीकोटिशतवृतातस्यविभूतिदा ॥ एवमेतामहादुर्गानवती र्थेत्रसंस्थिताः ॥ ७४ ॥ चतस्रश्चापिदिग्देव्यो नित्यमर्च्याःशुभेप्सुभिः ॥ आश्विनस्यचमाघस्य नवरात्रेविशेषतः ॥ ७५ ॥ उपोष्यचैकभक्तोवादेवीस्त्वेताःप्रपूजयेत् ॥ बलिपूपकनैवेद्यैस्तर्पणैर्धूपगन्धकैः ॥ ७६ ॥ तासामिष्टिंचचरतांर थ्यासुत्रिकचत्वरे ॥ भूतप्रेतपिशाचाद्या नापिकुर्युःप्रपीडनम् ॥ ७७ ॥ आपदोविद्रवन्त्याशुयोगिन्योनन्दयन्तिच ॥ पुत्रार्थीलभतेपुत्रान्धनार्थीधनमाप्नुयात् ॥ ७८ ॥ रोगार्त्तोमुच्यतेरोगाद्बद्धो मुच्येतबन्धनात् ॥ आसांयःकुरुतेभक्तिं नरोनार्यथश्रद्धया ॥ ७९ ॥ सर्वान्कामानवाप्नोति यांश्चिन्तयतिचेतसि ॥ कामगम्यद्रुमादेव्यश्चिन्तामणिनिभा स्तथा ॥ ८० ॥ तथात्रभूतमातास्ति हरसिद्धेस्तुदक्षिणे ॥ ८१ ॥ तस्यामाहात्म्यमतुलंसंक्षेपात्प्रब्रवीमिते ॥ पूर्वं

चन्दन से पूजनकरै ॥ ७६ ॥ और गावँके बीच चौराहों में व त्रिक तथा चौराहे में भूत, प्रेत व पिशाचादिक पीड़ा नहीं करते हैं ॥ ७७ ॥ और विपत्तियां नष्ट होजाती हैं व वे योगिनियां प्रसन्न होजाती हैं पुत्र चाहनेवाला पुरुष पुत्रोंको पाताहै व धन को चाहनेवाला धन पाताहै ॥ ७८ ॥ व रोगसे विकल मनुष्य रोगसे छूट जाता है व बँधाहुआ मनुष्य बन्धनसे छूट जाताहै जो पुरुष या स्त्री श्रद्धासे इनकी भक्तिको करता है ॥ ७९ ॥ वह जिन जिन मनोरथो को चित्तमें चिन्तन करताहै उन सब मनोरथोंको प्राप्तहोता है वे देवियां मनमें प्राप्त मनोरथोंको देनेके लिये कल्पवृक्ष व चिन्तामणि के समानहैं ॥ ८० ॥ वैसेही हरसिद्धिके दक्षिणओर यहांपर भूतमाता

हैं ॥ ८१ ॥ उनके अतुल माहात्म्य को मैं संक्षेपसे तुमसे कहताहूँ पुरातन समय प्रसिद्धि में पुण्यदायक सारस्वत किनारे पै विद्वान् स्वामिकार्त्तिकेयजी ने ॥ ८२ ॥ भूत, प्रेत व पिशाचों की राज्य पै उसका अभिषेक कियाहै और उन्हों ने सब भूतों को मर्यादा में धारण किया है ॥ ८३ ॥ व भगवान् स्वामिकार्त्तिकेयजी ने दयासे भूतोंको इस अन्नको दिया है कि जो बिन मन्त्रसे हवन किया गयाहो व जो कुछ वेदबाह्य कियाहो ॥ ८४ ॥ व अश्रद्धा तथा क्रोधसे जो कर्म किया गयाहो वह तुम लोगोंकी तृप्तिके लिये होगा तदनन्तर वे भूत इस भोगसे प्रसन्नहोते थे ॥ ८५ ॥ तदनन्तर कुछ समय के बाद श्रद्धा व अश्रद्धासे कीहुई पुण्यको देवताओं को आक्र-

किलगुहोविद्वान् पुण्येसारस्वतेतटे ॥ ८२ ॥ भूतप्रेतपिशाचानामधिराज्येभ्यषिञ्चत ॥ सचसर्वाणिभूतानि मर्यादा यामधारयत ॥ ८३ ॥ एतच्चदत्तवानन्नं कृपयाभगवान्गुहः ॥ यदमन्त्रहुतंकिञ्चिद्वेदबाह्यञ्चयत्कृतम् ॥ ८४ ॥ अश्रद्ध याचक्रोधेन तद्वस्तृप्त्यैभविष्यति ॥ ततस्त्वनेनभोगेन तानिनन्दन्तिकृत्स्नशः ॥८५॥ ततःकेनापिकालेन श्रद्धयाश्र द्धयाकृतम् ॥ पुण्यंतान्येवभूतानि ग्रसन्त्याक्रम्यदेवताः ॥८६॥ ततोदेवाःक्षुधार्तास्ते गुहायैतन्न्यवेदयन् ॥ क्रुद्धस्सचै तदाकर्ण्य गुहःकालइवाभवत् ॥ ८७ ॥ तस्यक्रुद्धस्यभ्रुवयोर्मध्यात्काचिद्विनिर्गता ॥ ज्वालामालासुदुर्दर्शा नारीद्वाद शलोचना ॥ ८८ ॥ साचप्रणम्यतम्प्राह तवशक्तिरहंप्रभो ॥ शीघ्रमादिशमांकृत्ये किङ्करोमितवेप्सितम् ॥ ८९ ॥ का र्त्तिकेयउवाच ॥ एतैर्भूतगणैःपापैर्लङ्घ्यतेममशासनम् ॥ मनुष्यदत्तंसकलं भुज्यतेस्वेच्छयाधमैः ॥ ९० ॥ तस्मात्त्वंशी

मणकर वे भूत ग्रसलेते थे ॥ ८६ ॥ तदनन्तर भूँखसे विकल देवताओं ने उस वृत्तान्तको स्वामिकार्त्तिकेयजी से निवेदन किया और इसको सुनकर क्रोधित होतेहुये स्वामिकार्त्तिकेयजी कालके नाईं हुये ॥ ८७ ॥ व उन क्रोधित स्वामिकार्त्तिकेयजी के भौंहों के बीचसे कोई स्त्री निकली जोकि ज्वालाओं की मालासे दुःख करके देखने योग्य व बारह नेत्रोंवाली थी ॥ ८८ ॥ उसने प्रणामकर उन स्वामिकार्त्तिकेयजी से कहा कि हे प्रभो ! मैं तुम्हारी शक्तिहूं मुझको कार्य्य में शीघ्रही आज्ञा दीजिये कि तुम्हारे किस मनोरथको करूं ॥ ८९ ॥ स्वामिकार्त्तिकेयजी बोले कि इन पापी व नीच भूत गणोंसे मेरी आज्ञा उल्लंघन कीजाती है कि मनुष्यों से दियेहुये राब दानादिको

अपनी इच्छासे भोगते हैं ॥ ९० ॥ इस लिये तुम शीघ्रही इनको मर्यादामें प्राप्तकरो हे शुभे ! इस मर्यादा में सौ करोड़ देवियां अनुगामिनी होवैंगी ॥ ९१ ॥ तदनन्तर वैसाही होगा यह कहकर उस समय देवियोंसे घिरीहुई स्वामिकार्त्तिकेयजीकी शक्ति मयूर पै भलीभांति चढकर आगई ॥ ९२ ॥ और अटारी पै प्राप्तहोकर भूतगणोंको उस देवीने देखा व उनके समीप प्राप्तहोकर अनेक प्रकारके अस्त्रोंसे मारा ॥ ९३ ॥ तदनन्तर महासमरमें मारेजातेहुये प्रेत, पिशाचादिक अनेकभांति के वेषों से दीनकी नाईं उन देवीको प्रसन्न करानेलगे ॥ ९४ ॥ कोई ब्राह्मणों के वेषोंसे व तपस्वियों की उक्तियों से प्रसन्न करानेलगे व हे कमललोचनि ! प्रसन्न हूजिये ऐसा बारबार

ह्येतानि मर्यादायामुपानय ॥ एतामनुव्रजिष्यन्ति देव्यःकोटिशतंशुभे ॥ ९१ ॥ ततस्तथेतिसाचोक्त्वा देवीभिस्संवृतातदा ॥ मयूरंसमुपास्थाय गुहशक्तिस्समागता ॥ ९२ ॥ शिरोभवनमासाद्य भूतसङ्घानपश्यत॥जघानतान्समासाद्य देवीनानाविधायुधायुधैः॥९३॥ततःप्रेतपिशाचाद्याहन्यमानामहारणे॥ प्रसादयन्तितान्देवीं नानावेषैस्सुदीनवत्॥९४॥ केचिद्ब्राह्मणवेषैश्च तापसानांतथोक्तिभिः ॥ नृत्यन्तितत्रपद्माक्षिप्रसीदेतिपुनःपुनः ॥ ९५ ॥ ततःप्रसन्नासादेवी व्रियतांस्वेच्छयाहतान् ॥ तेचप्रोचुस्ततोनस्त्वं भूतमाताभवेश्वरि ॥९६ ॥ मर्यादांनैवत्यक्ष्यामो वयंस्कन्दविनिर्मिताम् ॥ येचैवंत्वांतोषयन्तु तेषांदेहभृतांसदा ॥९७॥ देव्युवाच ॥ वैशाखेदर्शदिवसे येचैवंतोषयन्तिमाम्॥ अरिष्टवृक्षजैःपुष्पैर्दधिभक्तैश्चपूजनैः ॥ ९८॥ तेषांसर्गोपसर्गावै यास्यन्तिविलयंस्फुटम् ॥ एवंदत्त्वावरन्देवी मुमुदेभूतसंवृता ॥ ९९ ॥ इतिप्रभा

कहकर नाचते हैं ॥ ९५ ॥ तदनन्तर प्रसन्न होती हुई उन देवीने अपनी इच्छासे उनसे यह कहा कि वरदानको मांगिये तदनन्तर उन्हों ने कहा कि हे ईश्वर ! तुम हमलोगों की भूतमाता होवो ॥ ९६ ॥ और स्वामिकार्त्तिकेयजी से बनाईहुई मर्यादा को हमलोग नहीं छोड़ैंगे और जो तुमको इसप्रकार प्रसन्न करै उन शरीरधारियों के ऊपर तुम सदैव प्रसन्न होवो ॥ ९७ ॥ देवीजी बोलीं कि वैशाखमें अमावस्या के दिन जो इसप्रकार मुझको प्रसन्न करावैंगे और नींबके वृक्षसे उपजेहुये फूलोंसे व दही भातके पूजन से ॥ ९८ ॥ उनके मोह व उपद्रव प्रत्यक्ष नाशको प्राप्तहोवैंगे इस प्रकार वरदानको देकर भूतों से घिरीहुई देवीजी प्रसन्न हुईं ॥ ९९ ॥ हे भारत !

ऐसे प्रकार प्रभाववाली उस देवीको मैं यहां लायाहूं जो मनुष्य इन देवीको प्रणाम करताहै वह सब अरिष्टोंसे छूट जाताहै ॥ १०० ॥ मैंने उत्तम तीर्थमें इसप्रकार प्रभाव
वाली देवियोंको चारों दिशाओं के श्रेष्ठ स्थान में संक्षेप से कहा जोकि हे अर्जुनजी ! चारों युगोंमें मुख्य मनुष्योंसे पूजितहुई हैं ॥१०१॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाख-
ण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायादेव्युपाख्यानन्नामद्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । सोमनाथ शिव भे यथा सिद्धेश्वर के पास । तैंतालिस अध्याय में वर्णत सहित हुलास ॥ नारदजी बोले कि इसके अनन्तर मैं सोमनाथजी को प्रकट कहता

**वासादेवी मयानीतात्रभारत ॥ यएतांप्रणमेन्मर्त्यः सर्वानिष्टैर्विमुच्यते ॥१००॥ एवंप्रभावाःपरिकीर्तितामया समासत
स्तीर्थवरेचदेव्यः॥ चतुर्युगेचार्जुनपूजितायाश्चतुर्दिशस्थानवरेषुमुख्यैः ॥ १०१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेदे
व्युपाख्यानन्नामद्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥ * ॥ * ॥ * ॥**

**नारदउवाच ॥ अथातःसम्प्रवक्ष्यामि सोमनाथमहंस्फुटम् ॥ शृणुयात्कीर्तयेच्चापि पापक्षोभस्ततोभवेत् ॥ १ ॥
पुरात्रेतायुगेपार्थ गौडदेशसमुद्भवौ ॥ ऊर्जयन्तश्चप्रालेयो विप्रावास्तांमहाद्युती ॥ २ ॥ तावेकदापुराणान्तःश्लोकमे
कमपश्यताम् ॥ तन्दृष्ट्वासर्वशास्त्रज्ञावास्तांकण्टकिततत्वचौ ॥ ३ ॥ प्रभासाद्यानितीर्थानि पुलस्त्यायाहपद्मभूः ॥ नयै
स्तत्राप्लुतञ्चैव नतैस्तीर्थमुपासितम् ॥ ४ ॥ इतिश्लोकंपठित्वातु पुनःपुनरघुष्यताम् ॥ ५ ॥ तावेवचप्रभासस्य निस्सृ
तौस्नातुमुत्तमौ ॥ तौवनानिनदीश्चैवाप्यतिक्रम्यशनैःशनैः ॥ ६ ॥ महर्षिगणसङ्कीर्णामुत्तीर्णौनर्मदांशिवाम् ॥ गुप्त**

हूँ इस चरित्रको जो सुनता या कीर्तन करता है उसके पापोंका नाश होताहै ॥ १ ॥ हे पार्थ ! पुरातन समय त्रेतायुगमें गौड़देश में उपजेहुये बड़ी शोभावाले ऊर्जयन्त
व प्रालेय नामक ब्राह्मणहुये हैं ॥ २ ॥ एक समय उन दोनोंने एक श्लोकको देखा व उसको देखकर समस्त शास्त्रके जाननेवाले वे दोनों पुलकितहुये ॥ ३ ॥ व ब्रह्माने
पुलस्त्यजी के लिये कहा है कि प्रभासादिक जो तीर्थ हैं उनमें जिन्हों ने नहीं नहाया है उनसे तीर्थ नहीं सेवन कियागया है ॥ ४ ॥ इस श्लोकको पढकर उन दोनों
ने बार बार घोषणा किया ॥ ५ ॥ और वे दोनों उत्तम जन प्रभासक्षेत्रके स्नान के लिये निकले और वे दोनों वनों व नदियोंको धीरे धीरे नांघकर ॥ ६ ॥ महर्षि गणों

से व्याप्त व कल्याणदायिनी तथा गुप्त क्षेत्रके माहात्म्यवाली नर्मदा नदीको उतरे तदनन्तर महीसागर से उपजे हुये तीर्थको नहाकर उन दोनोंने प्रभासक्षेत्र नहाने के लिये मार्ग में प्रस्थान किया तदनन्तर मार्ग शून्य होनेके कारण प्यास व भूँखसे बहुत व्याकुलहुये ॥ ७ । ८ ॥ और सिद्धलिंगके समीप वे ब्राह्मण चैतन्यतारहित होगये व सिद्धनाथ को प्रणामकर वे दोनों बडे धैर्यसे चले ॥ ९ ॥ और भूँखके बडे वेगसे व प्यास तथा दुपहर के सूर्यनारायण से सन्तापित व शून्य चरणोंवाले वे दोनों मूर्च्छित होकर अचानकही भूमि में गिरपड़े ॥ १० ॥ तदनन्तर मुहूर्त्तमात्र में उठकर व धैर्य्य से कुछ समाधानकर प्रालेयने ऊर्जयन्त से कहा कि हे मित्र! मैंने

क्षेत्रस्यमाहात्म्यां महीसागरसम्भवम् ॥ ७ ॥ ततःस्नात्वाप्रभासाय तौमार्गेतुप्रतस्थतुः ॥ ततोमार्गस्यशून्यत्वात्तृट् क्षुधापीडितौभृशम् ॥ ८ ॥ आस्तांविचेतनौविप्रौ सिद्धलिङ्गसमीपतः ॥ सिद्धनाथंनमस्कृत्य सम्प्रयातौसुधैर्यतः ॥ ९ ॥ क्षुधावेगेनतीक्ष्णेन तृषामध्यार्कतापितौ ॥ सहसापतितौभूमौ शून्यपादौविमूर्च्छितौ ॥१०॥ ततोमुहूर्तात्प्रालेय ऊर्जयन्तमभाषत ॥ किञ्चिदाश्वस्यधैर्याच्च सखेकिञ्चिच्छ्रुतम्मया ॥ ११ ॥ यथायथाविवर्णाङ्गो जायतेतीर्थयात्रया ॥ तथातथाभवेद्दानैस्तुष्टस्सोमेश्वरोहरः ॥ १२ ॥ तथास्तांलब्धसंज्ञौतावेवमुक्तेनचश्रुतेः ॥ ततश्चसजगामैव प्रालेयःकिञ्चिदन्तरे ॥ १३ ॥ उत्थितंसहसालिङ्गंभूमिंभित्त्वासुदुर्दृशम् ॥ खेवाणीचाभवत्तत्र पुष्पवर्षपुरस्सरा॥ १४॥प्रालेयतवहेतोस्तु सोमनाथसमंफलम् ॥ उत्थितंसागरतटे लिङ्गंतिष्ठात्रसुव्रत ॥१५॥ प्रालेयउवाच॥ यद्येवंसत्यमेतच्च तथाप्यात्मा प्रकल्पितः ॥ १६ ॥ प्रभासायप्रयातव्यं यदामृत्युर्मयास्फुटम् ॥ दर्शमात्रेणभावेन तपोदेहेदृढीकृतम् ॥ १७ ॥ तत

कुछ सुना है ॥ ११ ॥ कि तीर्थयात्रासे ज्यों ज्यों रङ्गहीन अङ्गोंवाला होता है त्यों त्यों सोमेश्वर महादेवजी दानो से प्रसन्न होतेहैं ॥ १२ ॥ तदनन्तर वह प्रालेय कुछ अन्तर पै गया ॥१३॥ व भूमिको फोडकर अचानकही दुर्दर्श (तेजस्वी) लिंग उत्पन्नहुआ और वहां पुष्पवृष्टिपूर्वक आकाशवाणी हुई ॥ १४ ॥ कि हे प्रालेय! तुम्हारे लिये सोमनाथके समान फलवाला लिंग समुद्रके किनारे उत्पन्न हुआहै हे सुव्रत ! यहां टिकिये ॥ १५ ॥ प्रालेय बोले कि यदि ऐसा यह सत्य है तौभी आत्मा प्रभास के लिये कल्पित कियागयाहै इसलिये यदि मृत्युभी होवै तौभी मुझको जाना चाहिये क्योंकि दर्शनमात्र भाव से शरीर में तपस्या दृढ़ कीगई है ॥ १६ । १७ ॥ तद-

नन्तर मूर्च्छा के अभाव से आगे जातेहुये ऊर्जयन्त ने भी उन्नत लिंगको देखा और वहभी इसी प्रकार प्राप्तहुआ ॥ १८ ॥ तदनन्तर उन दोनोंकी प्रत्यक्षतामें प्राप्त होकर शिवजी ने दृढ़ विश्वास किया और उन्हों ने देखकर तदनन्तर शिवजी के प्रभासस्थानको चलेगये ॥ १९ ॥ और वे दोनों सोमनाथ सिद्धेश्वरजी के समीप हैं ऊर्जयन्त पश्चिम में व प्रालेयेश्वर पूर्वदिशामें हैं ॥ २० ॥ सोमकुण्डके जलमें नहाकर व महीसागर के जलमें धीरे २ नहाकर जो दोनों सोमनाथों को देखताहै वह जन्मभर के पातकसे छूट जाता है ॥ २१ ॥ हे पाण्डव! यहांपर हाटकेश्वर संज्ञक लिंगको थापकर ब्रह्माजी पवित्रहोकर स्तुति कियाहै उसको सुनिये ॥ २२ ॥

श्चैवोर्जयन्तोपि मूर्च्छाभावाच्छरन्पुरः ॥ अपश्यदुच्छ्रितंलिङ्गं सचैवंप्रत्यपद्यत ॥ १८ ॥ ततःप्रत्यक्षतांप्राप्तो भवश्चक्रेत योर्दृढम् ॥ दृष्ट्वातुतौततोयातौ प्रभासंशिवसद्मच ॥ १९ ॥ तावेतौसोमनाथौद्वौ सिद्धेश्वरसमीपतः ॥ ऊर्जयन्तःप्रती च्यांच प्रालेयश्चेश्वरःपुरः ॥ २० ॥ सोमकुण्डाम्भसिशनैः स्नात्वार्णवमहीजले ॥ सोमनाथद्वयंपश्येज्जन्मपापाद्विमु च्यते ॥ २१ ॥ ब्रह्मात्रस्थापयित्वातु हाटकेश्वरसंज्ञितम् ॥ लिङ्गन्तुष्टावप्रयतः स्तुतिंतांशृणुपाण्डव ॥ २२ ॥ नमस्ते भगवन्रुद्र भास्करामिततेजसे ॥ नमोभवायरुद्राय रसायाम्बुमयायते ॥ २३ ॥ शर्वायक्षितिरूपाय सदासुरभिणे नमः ॥ ईशायवायवेतुभ्यं स्मरनाशायतेनमः ॥ २४ ॥ पशूनांपतयेचापि पालकायातितेजसे ॥ भीमायव्योमरूपाय शब्दमात्रायतेनमः ॥ २५ ॥ महादेवायसोमाय अमृतायनमोस्तुते ॥ उग्रायययजमानाय नमस्तेकर्मयोगिने ॥ २६ ॥ इत्येवनामभिर्दिव्यैःस्तोत्रमेतदुदीरितम् ॥ यःपठेच्छृणुयाद्वापि पितामहकृतंस्तवम् ॥ २७ ॥ हाटकेश्वरलिङ्ग

हे भगवन्, रुद्रजी! प्रकाश करनेवाले व अतुल तेजवाले आपके लिये नमस्कार है भव, रुद्रके लिये प्रणाम है व रसरूपी, जलमय आपके लिये प्रणाम है ॥ २३ ॥ व पृथ्वीरूप, शर्वके लिये नमस्कार है व सदैव सुरभि आपके लिये प्रणाम है व ईश, पवनरूप आपके लिये प्रणामहै और कामदेवके नाशक आपके लिये नमस्कार है ॥ २४ ॥ पशुपति व अमित तेजवाले पालकके लिये नमस्कार है और भीम, आकाशरूपी तुम्हारे लिये प्रणाम है व शब्दमात्र तुम्हारे लिये प्रणाम है ॥ २५ ॥ महादेव, सोम व अमृतरूप तुम्हारे लिये प्रणाम है व उग्र, यजमानमूर्ति के लिये और कर्मयोगी आपके लिये प्रणाम है ॥ २६ ॥ इन्हीं दिव्यनामों से यह स्तोत्र

कहा गयाहै जो पुरुष पवित्र होकर नित्यही ब्रह्मासे किये हुये हाटकेश्वर लिंगके इस स्तोत्रको पढ़ता या सुनता है वह अष्टमूर्ति सदाशिवजी में सायुज्य मुक्तिको प्राप्तहोता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ २७ । २८ ॥ महीसागर सङ्गम में इस प्रकार के बहुत से पवित्र तीर्थ हैं जोकि मुझसे संक्षेप से वर्णन कियेगये ॥ २९ ॥ इति श्री स्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांत्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । अतिथिरूप दिनकर यथा कीन्हो प्रश्नक दोइ । चवालिसें अध्याय में कह्यो चरित सब सोइ ॥ अर्जुनजी बोले कि हे महामुने ! इन अद्भुत तीर्थों व लिंगोंको

स्य नित्यञ्चप्रयतोनरः ॥ अष्टमूर्तौससायुज्यं लभतेनात्रसंशयः ॥ २८ ॥ एवंविधानितीर्थानि महीसागरसङ्गमे ॥ बहूनिसन्तिपुण्यानि संक्षेपाद्वर्णितानिमे ॥ २९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डे त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥

अर्जुनउवाच ॥ इत्यद्भुतानितीर्थानि लिङ्गानिचमहामुने ॥ श्रुत्वातवमुखाम्भोजाद्भृशंहृष्यतिमेमनः ॥ १ ॥ महीसागरकस्यापि स्थापितस्यत्वयामुने ॥ यानितीर्थानिमुख्यानि तानिवर्णयमेप्रभो ॥ २ ॥ नारदउवाच ॥ श्रीमन्महीसागरकेयानितीर्थानिफाल्गुन ॥ ३ ॥ तानिवक्ष्यामियत्रास्ते जयादित्योरविःप्रभुः ॥ जयादित्यस्ययोनाम कीर्त्तयेद्यदिमानवः ॥ ४ ॥ सर्वरोगविनिर्मुक्तो लभतेहृदयेप्सितम् ॥ यस्यसन्दर्शनादेव कल्याणैरपिपूर्यते ॥ ५ ॥ मुच्यतेचाप्यकल्याणैः श्रद्धावान्पार्थमानवः ॥ तस्यदेवस्यचोत्पत्तिं शृणुपार्थवदामिते ॥ ६ ॥ शृण्वन्वाकीर्त्तयन्वापि प्रसादं

तुम्हारे मुख कमलसे सुनकर मेरा मन बहुतही प्रसन्न होता है ॥ १ ॥ हे प्रभो ! तुमसे थापेहुये महीसागर के जो मुख्य तीर्थ होवैं उनको मुझसे वर्णन कीजिये ॥ २ ॥ नारदजी बोले कि हे अर्जुनजी ! श्रीमन्महीसागर तीर्थमें जो तीर्थहैं ॥ ३ ॥ उनको मैं कहताहूं जहांपर कि जयादित्यस्वामी सूर्यनारायण हैं यदि जयादित्यके नामको जो मनुष्य कीर्तन करता है ॥ ४ ॥ तो वह सबरोगों से छूटकर हृदयके मनोरथ को प्राप्तहोताहै व जिनके भलीभांति दर्शनही से मनुष्य सुखोसे भी पूर्णहोजाताहै ॥ ५ ॥ और हे अर्जुनजी ! श्रद्धावान् पुरुष अकल्याणों से छूटजाताहै हे पार्थ ! उन सूर्यदेव की उत्पत्तिको सुनिये उसको मै तुमसे कहताहूं ॥ ६ ॥ उस चरित्रको सुनना व

कहता हुआ पुरुष सूर्यनारायण से प्रसन्नताको प्राप्तहोता है मैं इस स्थानको भलीभांति थापकर किसी समय ॥ ७ ॥ स्वच्छन्दता से सूर्यनारायण के दर्शनों का चाहने
वाला मैं सूर्यलोक को गया और प्रणाम किये व बैठेहुये मुझको अर्घ्य से पूजकर सूर्यनारायण ॥ ८ ॥ देवजी हँसते हुये से मीठे वचन से यह बोले कि हे विप्रजी !
कहां से आतेहो और कहां जावोगे ॥ ९ ॥ व हे नारदमुने ! विहार कियाहुआ यह तुम्हारा समय कहां व्यतीत हुआ नारदजी बोले कि सूर्यनारायण से इसप्रकार कहे
हुये मैंने प्रणामकर उससमय यह कहा ॥ १० ॥ कि हे विभो, भास्करजी ! पृथ्वीके भरतखण्ड में महीनगरसे तुम्हारे दर्शनों का चाहनेवाला मैं आयाहूं ॥ ११ ॥ सूर्य-

**भास्करालभेत ॥ अहंसंस्थाप्यसंस्थानमेतत्कालेनकेनचित् ॥७॥ प्रयातोभास्करंलोकं दर्शनार्थीयदृच्छया ॥ समांप्रण
तमासीनमभ्यर्च्यार्घ्येणभास्करः ॥ ८ ॥ प्रहसन्निवप्राहेदं देवोमधुरयागिरा ॥ कुतआगम्यतेविप्र क्ववाप्रतिगम्यते ॥
९ ॥ क्वचायन्नारदमुने कालस्तेविहृतोऽभवत् ॥ नारदउवाच ॥ एवमुक्तोभास्करेणतत्तदाप्राब्रवन्नतः ॥ १० ॥ भारतेजग
तीखण्डे महीनगरकादपि ॥ दर्शनार्थीतवविभो समायातोऽस्मिभास्कर ॥ ११ ॥ रविरुवाच ॥ यत्त्वयास्थापितंस्थानं तत्रयेस
न्तिब्राह्मणाः ॥ तेषांगुणान्ममब्रूहि किंगुणाननुतेद्विजाः ॥ १२ ॥ नारदउवाच ॥ एवंपृष्टोभगवता पुनरेवाब्रवंवचः ॥
यदितान्भोःप्रशंसामि स्वीयान्स्तौतीतिवाच्यता ॥ १३ ॥ निन्दाम्यनर्हान्कस्माद्वाकष्टमेवोभयत्रच ॥ अथवापारमा
हात्म्ये मतिस्तेषांमहात्मनाम् ॥ १४ ॥ अल्पेकृतेवर्णनेस्याद्दोषएवमहान्मम ॥ मदर्चितद्विजेन्द्राणां यदिस्याच्छ्रवणे
च्छुता ॥ १५ ॥ ततःस्वयंविलोक्यास्तेगत्वेदंसम्मतंरवे ॥ इतिश्रुत्वाममवचो रविरासीत्सुविस्मितः ॥ १६ ॥ स्वयन्द्र**

नारायणजी बोले कि तुमसे जो स्थान थापा गया है उसमें जो ब्राह्मण हैं उनके गुणोंको मुझसे कहिये कि वे ब्राह्मण किस गुणवाले हैं ॥ १२ ॥ नारदजी बोले कि
इसप्रकार भगवान् सूर्यनारायणसे पूँछेहुये मैंने फिर वचन कहा कि हे सूर्यनारायणजी ! यदि मैं उनकी प्रशंसा करूं तो यह कहने की योग्यता होगी कि अपने द्विजों
की प्रशंसा करते हैं ॥ १३ ॥ और न निन्दने के योग्य उन ब्राह्मणोंकी निन्दा किस लिये करूं इससे दोनों ओर कष्टहै अथवा उन महात्माओं की बुद्धि अपार माहात्म्यमें
है ॥ १४ ॥ इससे थोड़ा वर्णन करने में मुझको बडा दोषहोगा यदि मुझसे पूजे हुये ब्राह्मणों के सुननेकी इच्छाहोवै ॥ १५ ॥ इसकारण हे सूर्यनारायणजी ! आपही

जाकर वे ब्राह्मण देखने योग्यहैं मेरा यह संमतहै मेरे इस प्रकार वचनको सुनकर सूर्यनारायण बडे विस्मय मे प्राप्तहुये ॥ १६ ॥ व दिननायक ने बार बार कहा कि आपही देखूंगा इसके अनन्तर ब्राह्मणका शरीरकर सूर्यनारायणजी मुझको बिदाकर ॥ १७ ॥ तपतेहुये से आकाशमार्ग से समुद्रके किनारे प्राप्तहुये इसके अनन्तर त्रिकाल स्नानसे पीली जटाओ को धारेहुये ॥ १८ ॥ बड़े तेजस्वी, वृद्धब्राह्मण वे सूर्यनारायण मेरे ब्राह्मणों से देखेगये तदनन्तर बडे हर्षसे प्रफुल्लित लोचनोवाले हारीत इत्यादिक ॥ १९ ॥ वे ब्राह्मण ब्रह्मसभासे उठकर ब्राह्मण के सामने शीघ्रता से गये व उत्तम ब्राह्मणको प्रणामकर उन्होने प्रसन्नतासे यह कहा ॥ २० ॥ ब्राह्मण

क्ष्यामिचोवाच पुनःपुनरहर्पतिः ॥ सोथविप्रान्तनुंकृत्वा मांविसृज्यैवभास्करः ॥ १७ ॥ प्रतपन्दिवमार्गाञ्च प्रयातोर्णवरो धसि ॥ जटांत्रिषवणस्नानपिङ्गलान्धारयन्नथ ॥ १८ ॥ वृद्धद्विजोमहातेजा दृदृशेब्राह्मणैर्मम ॥ ततोहारीतप्रमुखाः प्र हर्षोत्फुल्ललोचनाः ॥ १९ ॥ उत्थायब्रह्मशालायास्तेद्विजाद्विजमद्रवन् ॥ नमस्कृत्यद्विजाग्र्यन्ते प्रहर्षादिदमब्रुवन् ॥ २० ॥ द्विजाऊचुः ॥ अद्यनोदिवसःपुण्यस्सफलंजीवनञ्चनः ॥ यत्त्वयाविप्रप्रवर स्वयमागमनंकृतम् ॥ २१ ॥ धन्यस्य हिगृहस्थस्य कृपयैवद्विजोत्तमाः ॥ आतिथ्यवेषेणायान्ति पावनार्थन्नसंशयः ॥ २२ ॥ तत्त्वंगेहानिचास्माकं पादच ङ्क्रमणेनच ॥ दर्शनाद्भोजनात्स्नानादस्माभिस्सहपावय ॥ २३ ॥ अतिथिरुवाच ॥ भोजनंद्विविधंविप्राः प्राकृतंपर मंपरम् ॥ तदहंसम्यगिच्छामि दत्तंपरमभोजनम् ॥ २४ ॥ इत्येतदतिथेःश्रुत्वा हारीतःपुत्रमब्रवीत् ॥ प्रश्नद्वयन्तुकम ठ वेत्सिपुत्रद्विजोदितम् ॥ २५ ॥ कमठउवाच ॥ द्रुतंप्रणम्यत्वांवक्ष्ये यादृक्परमभोजनम् ॥ २६ ॥ तर्पयिष्यामिचद्वि

लोग बोले कि आज हमारा पुण्य दिन है और हमलोगोंका जन्म सफल होगया जोकि हे द्विजोत्तम ! आपही आगमन किया ॥ २१ ॥ धन्य गृहस्थके ऊपर दयाके कारण द्विजोत्तम लोग पाहुनके वेषसे पवित्र करने के लिये आते हैं इसमें सन्देह नहीं है ॥ २२ ॥ इस लिये तुम हमलोगों के साथ चरणों से गमन, दर्शन, भोजन व स्नान से हमारे घरोंको पवित्र कीजिये ॥ २३ ॥ अतिथि बोला कि हे ब्राह्मणो ! भोजन दो प्रकारकाहै एक प्राकृत व दूसरा परम भोजनहै इसलिये मैं दियेहुये परम भोजनको भलीभाति चाहताहूं ॥ २४ ॥ अतिथि के इस वचन को सुनकर हारीत पुत्र से बोले कि हे कमठपुत्र ! ब्राह्मण से कियेहुये दो प्रश्नों को जानते हो ॥ २५ ॥

कमठ बोला कि तुमको प्रणाम कर मैं शीघ्रही कहूंगा कि जैसा परम भोजनहै ॥ २६ ॥ और परमभोजन को देकर ब्राह्मण को तृप्तकरूंगा क्योंकि पुत्र पैदाहोने से
मनुष्योंको सुख होता है ॥ २७ ॥ उत्तम अतिथि को भलीभांति तृप्तकर तुम्हारा वचन सत्यकरूंगा दो प्रकारका भोजनहै उनका विभाग यहहै कि एक प्राकृत भो-
जन कहाजाताहै और दूसरा परम भोजनहै ॥ २८।२९॥ कि परम आत्मा कहाजाता है और उसका वह भोजन होवैहै ॥ ३० ॥ कि जिससे अनेक प्रकारके धर्मका जो
श्रवणहै और उसमें जो प्राकृत नाम भोजनहै वह पुरुषकी जो प्रकृति है ॥ ३१ ॥ और चौबीस तत्त्वोंके समूह का जो तर्पण है वह प्राकृत भोजन है विद्वान् लोग

जं दत्त्वापरमभोजनम् ॥ सुतेनकिलजातेन जायतेचनृणांसुखम् ॥ २७ ॥ सत्यङ्करिष्येतेवाक्यं सन्तर्प्यातिथिमुत्तम
म् ॥ भोजनंद्विप्रकारञ्च प्रविभागस्तयोरयम् ॥ २८ ॥ प्राकृतंप्रोच्यतेत्वेकमन्यत्परमभोजनम् ॥ २९ ॥ परमःप्रोच्य
तेचात्मा तस्यतद्भोजनंभवेत् ॥ ३० ॥ यतोनानाप्रकारस्य धर्मस्यश्रवणंहियत् ॥ तत्रयत्प्राकृतन्नाम प्रकृतिःपुरुषस्यत
त् ॥ ३१ ॥ चतुर्विंशतितत्त्वानां गणस्योक्तस्यतर्पणम् ॥ षट्पञ्चभेदमदनं कोविदाःप्रवदन्तितत ॥ ३२ ॥ येनभुक्ते
नतृप्तंस्यात क्षेत्रंयद्देहलक्षणम् ॥ ३३ ॥ यथापरम्पदन्नामप्रोक्तंपरमभोजनम् ॥ तदन्नंप्रोच्यतेभोक्तुः क्षेत्रज्ञश्रवणा
त्सुखम् ॥ ३४ ॥ तद्दास्यामिद्विजाग्रयाय पृच्छविप्रयदिच्छसि ॥ शक्तितस्तर्पयिष्यामि त्वामहंविप्रसंसदि ॥ ३५ ॥ नारद
उवाच ॥ कमठस्यैतदाकर्ण्य सोतिथिर्वचनंमहत् ॥ मनसैवप्रशस्यामुं प्रश्नमेनमथाकरोत् ॥ ३६ ॥ कथंसञ्जायतेज
न्तुः कथञ्चापिप्रलीयते ॥ भस्मनामथसंप्राप्य क्वचायंप्रतिपद्यते ॥ ३७ ॥ कमठउवाच ॥ गुरवेप्राङ्नमस्कृत्य धर्मायत

उस भोजनको छप्पन प्रकार का कहते हैं ॥ ३२ ॥ कि जिसके भोजन करने से देहलक्षणोंवाला क्षेत्र (शरीर) तृप्त होजाता है ॥ ३३ ॥ और जैसे परमपदना-
मक परम भोजन कहागया है वह अन्न भोजन करनेवाले का है कि जिससे आत्माके श्रवणसे सुख होता है ॥ ३४ ॥ हे विप्रजी ! उसको द्विजोत्तम के लिये दूंगा जो
इच्छा हो उसको पूंछिये ब्राह्मणों की सभा में मैं तुमको शक्ति के अनुसार तृप्त करूंगा ॥ ३५ ॥ नारदजी बोले कि कमठ के इस बड़े भारी वचन को सुनकर उस
अतिथि ने मनही से इसकी प्रशंसा कर इस प्रश्न को किया ॥ ३६ ॥ कि किस प्रकार प्राणी उत्पन्न होताहै व किस भांति नष्ट होताहै व इसके उपरान्त भस्मत्व-

को प्राप्त होकर यह कहां प्राप्त होताहै ॥ ३७ ॥ कमठ बोला कि पहले गुरु के लिये प्रणाम कर उसके उपरान्त धर्म के लिये नमस्कार कर हे द्विज ! वेद में कहे हुये इस प्रश्न को मैं तुमसे कहताहूं ॥ ३८ ॥ कि प्रसिद्धि में प्राणी के जन्म में तीन भांति का कर्म कारण है पुण्य, पाप व मिश्रित और वह कर्म सत्त्वगुणी, रजोगुणी और तामसी होताहै ॥ ३९ ॥ उनमे जो सात्त्विक पुरुष होताहै वह स्वर्ग को प्राप्त होता है और स्वर्ग से समय में गिरकर धनवान् धर्मवान् व सुखी होता है ॥ ४० ॥ वैसेही जो तामस प्राणी है वह नरक में प्राप्तहोता है और बहुत पीड़ाओं को भोगकर स्थावरता (वृक्षत्व) को प्राप्तहोताहै ॥ ४१ ॥ और महा-

दनन्तरम् ॥ छन्दोगीतममुंप्रश्नं शक्त्यावक्ष्यामितेद्विज ॥ ३८ ॥ जननेत्रिविधंकर्महेतुर्जन्तोर्भवेत्किल ॥ पुण्यंपापञ्चमिश्रञ्च सत्त्वंराजसतामसम् ॥ ३९ ॥ तत्रयस्सात्त्विकोनाम सस्वर्गंप्रतिपद्यते ॥ स्वर्गात्कालपरिभ्रष्टो धनीधर्मीसुखीभवेत् ॥ ४० ॥ तथायस्तामसोनाम नरकम्प्रतिपद्यते ॥ भुक्त्वाबह्वीर्यातनाश्च स्थावरत्वंप्रपद्यते ॥ ४१ ॥ महतान्दर्शनस्पर्शैरुपभोगसहासनैः ॥ महताकालयोगेन संमुक्तोमानवोभवेत् ॥ ४२ ॥ सोपिदुःखदारिद्राद्यैर्वेष्टितोविकलेन्द्रियः ॥ प्रत्यक्षंसर्वलोकानां पापस्यैतद्धिलक्षणम् ॥ ४३ ॥ अथयोमिश्रकर्मास्यात्तिर्यक्त्वंप्रतिपद्यच ॥ महतामेवसंसर्गात संसरन्मानवोभवेत् ॥ ४४ ॥ यस्यपुण्यंपृथुतरं पापमल्पंहिजायते ॥ सपूर्वंदुःखितोभूत्वा पश्चात्सौख्यायकल्पते ॥ पापंपृथुतरंयस्य पुण्यमल्पतरम्भवेत् ॥ ४५ ॥ पूर्वंसुखीततोदुःखी मिश्रस्यैतद्धिलक्षणम् ॥ ताञ्चमानुषसम्भूतिं शृणुया

त्माओं के दर्शन, स्पर्श, भोग व समीप बैठने से बहुत समय के बाद छूटा हुआ वह पुरुष होता है ॥ ४२ ॥ और वह भी दुःख दरिद्रादिकों से घिरा व विकल इन्द्रियों वाला होता है सब मनुष्यों के सामने पापी का यह लक्षण है ॥ ४३ ॥ और जो मिश्रित कर्मवाला होता है तिर्यक् योनि को प्राप्त होकर घूमताहुआ वह महात्माओं के संसर्ग से मनुष्य होता है ॥४४॥ जिसके पुण्य बहुत अधिक होती है व पाप थोड़ा होताहै वह पहले दु:खी होकर पश्चात् सुखके लिये समर्थ होता है और पाप जिसके बहुत अधिक होता है व पुण्य बहुत कम होती है ॥ ४५ ॥ वह पहले सुखी तदनन्तर दुःखी होताहै यह मिश्रित कर्मवाले का लक्षणहै और

मनुष्यकी उस उत्पत्ति को सुनिये कि जैसी वह होतीहै ॥ ४६ ॥ पुरुष व स्त्री के वीर्य तथा रक्तके मिलने में समस्त दोषोंसे छूटा हुआ जीव प्रकटही प्राप्त होता
है ॥ ४७ ॥ गुणोंसे संयुत व शब्द,स्पर्श,रूप,रस, गन्ध व मन तथा बुद्धि समेत जीव गर्भ में पैठकर कललमें स्थित होताहै ॥ ४८ ॥ और वह अज्ञानी पुरुष उस कलल
में महीने भर टिकता है वैसेही दूसरे महीना भर कड़ा होकर स्थित होताहै ॥ ४९ ॥ और तीसरे महीने में उसके अंगोंका निर्माण होताहै व सातवें महीने में वह प्राणी
माताकी खाई पी हुई वस्तु को भोजन करताहै ॥ ५० ॥ तदनन्तर आठवें व नवें महीने में वह बहुत विकल होताहै जो कि झोरी से घिरे अंगोंवाला होताहै और हाथकी

**दृगसौभवेत् ॥ ४६ ॥ पुरुषस्यास्त्रियश्चैव शुक्रशोणितसङ्गमे ॥ सर्वदोषविनिर्मुक्तो जीवःसंसरतेस्फुटम् ॥ ४७ ॥ गुणा
न्वितस्सतन्मात्रो मनोबुद्धिसमन्वितः ॥ जीवःप्रविष्टोगर्भन्तु कललेप्रतितिष्ठति ॥ ४८ ॥ मूढश्चकललेतत्र मासमा
त्रञ्चतिष्ठति ॥ द्वितीयन्तुतथामासं घनीभूतस्सतिष्ठति ॥ ४९ ॥ तस्यावयवनिर्माणं तृतीयेमासिजायते ॥ मातुराहा
रपीतञ्च सप्तमेमासिसोऽश्नुते ॥ ५० ॥ अष्टमेनवमेचापि भृशमुद्विजतेततः ॥ जरायुणावेष्टिताङ्गो मुखबद्धकराङ्गुलिः ॥
५१ ॥ मध्येक्लीबस्तुवामेस्त्री दक्षिणेपुरुषस्तथा ॥ तिष्ठत्युदरभागेच सृष्टेरभिमुखःकिल ॥ ५२ ॥ यास्वतिष्ठत्यसौयोनी
स्ताश्चवेत्तिनसंशयः ॥ सर्वंस्मरतिवृत्तान्तंबहूनांजन्मनामपि ॥ ५३ ॥ अन्धेतमसिकिंद्रष्टव्यमन्धेमोहंदृढंलभेत् ॥ शी
तेमात्राजलेपीतं शीतमुष्णंतथोष्णके ॥ ५४ ॥ व्यवायेलभतेमातुः क्लेशंव्याधेश्चवेदनाम् ॥ अलक्ष्याःपितृमात्रो
श्च जायन्तेव्याधयःपराः ॥ ५५ ॥ सौकुमार्याद्रुजंतीव्रां जनयन्तिचतस्यताः ॥ स्वल्पमप्यथतत्कालं वेत्तिवर्षशतो**

अंगुली मुखमें बँधी होती हैं ॥ ५१ ॥ बीचमें नपुंसक, बाईं ओर कन्या व दाहिने पुरुष होताहै इसप्रकार सृष्टिके संमुख प्राप्त जीव पेटके विभाग में टिकता है ॥ ५२ ॥
और जिन योनियों में यह टिकता भया है उनको निस्सन्देह जानताहै और बहुत जन्मों के भी सब वृत्तान्त को स्मरण करताहै ॥ ५३ ॥ और बड़े अन्धकार में क्या
देखपड़ै वह प्राणी सघन अन्धकार में मोहको प्राप्त होताहै और माताके ठंढा जल पीने से ठंढे जलको पीताहै व गरम जल पीने पर गरम जलको पीता है ॥ ५४ ॥
... माताके मैथुनकर्म में क्लेश पाता है व रोग की पीड़ा को प्राप्त होताहै व माता पिताओं के न देखने योग्य अन्य रोग उत्पन्न होते हैं ॥ ५५ ॥ सुकुमारता

से वे व्याधियां उस पुरुष के तीव्ररोग को पैदा करती हैं इसके अनन्तर वह प्राणी थोड़े भी उस समय को सौ वर्षों के समान मानता है ॥ ५६ ॥ और प्राचीन
कर्मों से प्राणी गर्भ में बहुत संतप्त होताहै और पुण्य के लिये बारबार मनोरथोंको करता है ॥ ५७ ॥ कि मैं यदि मनुष्य योनि में जन्म व जीवन पाऊंगा तो
उस कर्मको करूंगा कि जिससे प्रकटही मोक्ष होजावै ॥ ५८ ॥ सीमन्तोन्नयन कर्म के पश्चात् इस प्रकार चिन्तन करते हुये उसको पीड़ा के कारण तीन
महीना तीन युगों के समान होजाते हैं ॥ ५९ ॥ तदनन्तर अपना समय प्राप्त होने पर प्रसूतिपवन से चलाया वह पुरुष पीड़ा को भोगता हुवा नीचे

पमम् ॥५६॥ सन्तप्यतेभृशंगर्भे कर्मभिश्चपुरातनैः॥ मनोरथांश्चकुरुते सुकृतार्थंपुनःपुनः ॥५७॥जन्मचेदहमाप्स्यामि
मानुष्यंजीवितंतथा ॥ ततःकृत्यंकरिष्यामि येनमोक्षोभवेत्स्फुटम् ॥५८॥ एवन्तुचिन्तयानस्य सीमन्तोन्नयनादनु॥
मासत्रयन्तद्व्रजति पीडातस्त्रियुगैस्समम् ॥ ५९ ॥ ततःस्वकालेसम्प्राप्ते सूतिमारुतचालितः ॥ भवत्यवाङ्मुखोजन्तुः
पीडामनुभवन्सवै ॥ ६० ॥ अधोमुखस्सङ्कटेन योनिद्वारेणनिस्सरेत् ॥ पीडयापीड्यमानोपि चर्मकर्तनतुल्यया ॥ ६१ ॥
करपत्रसमस्पर्शं करसंस्पर्शनादिकम् ॥ जातमात्रोविजानाति स्तनमात्रंविमोहितः ॥ ६२ ॥ प्राक्कर्मवशगस्यास्य ग
र्भज्ञानञ्चनश्यति ॥ ततःकरोतिकर्माणि शितिरक्तसितानिच ॥ ६३ ॥ अस्थिपादतुलास्तम्भं स्नायुबन्धेनयन्त्रितम् ॥
रक्तमांसमृदालिप्तं विण्मूत्रद्रव्यभाजनम् ॥ ६४ ॥ सप्तभित्तिसुसंबद्धंछिन्नंरोमतृणैरपि ॥ वदनैकमहाद्वारं गवाक्षाष्ट

मुखवाला होताहै ॥ ६० ॥ और चर्म काटने के तुल्य पीड़ासे पीडित भी नीचे मुखवाला वह प्राणी योनि के द्वारसे क्लेश करके निकलता है ॥ ६१ ॥ और
हाथका स्पर्श आदिक उसको आराके समान स्पर्श होताहै व पैदा हुवा यह मोहित प्राणी स्तनमात्र को जानता है ॥ ६२ ॥ पूर्व कर्मके वश में प्राप्त इस
मनुष्य का गर्भवाला ज्ञान नष्ट होजाता है तदनन्तर काले (तामसी) अरुण (राजसी) श्वेत (सात्त्विकी) कर्मों को करता है ॥ ६३ ॥ अस्थि व चरणरूपी
तुला, स्तंभवाला व नसों के बन्धन से बँधा हुवा रक्त, मांस रूपी मिट्टी से लीपा व विष्ठा, मूत्ररूप वस्तुवोंका पात्र ॥ ६४ ॥ व सात धातुरूपी भीतियों से बँधा तथा

रोमरूपी तृणोंसे आच्छादित व मुखरूपी एक बड़े द्वारवाला और आठ झरोखोंसे शोभित ॥ ६५ ॥ दोनों ओंठरूपी किंवाड़वाला व दन्तरूपी दहमर्दे से मूँदा और नसोंके पसीने से प्रवाहवाला व कफ, पित्तसे संयुत ॥ ६६ ॥ वृद्धता, शोचसे पैठा हुआ और कालमुखरूपी अग्निमें प्राप्त तथा स्नेह व वैरादिकों से गँसाहुआ और बहुत शोकोंसे उत्पन्न ॥६७॥ हे द्विज ! पुरुषोंका यह देहरूपी घर इस प्रकार उत्पन्न होताहै कि जिसमें बुद्धिरूपी स्त्रीवाला जीवात्मारूप गृहस्थ बसता है ॥ ६८ ॥ और मृत्युको प्राप्तहोकर मोक्ष, स्वर्ग व नरक को प्राप्तहोता है ॥ ६९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेगर्भवासादिवर्णनंनामचतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥ ❀ ॥

...पितम् ॥ ६५ ॥ ओष्ठद्वयकपाटंच दन्तार्गलविमुद्रितम् ॥ नाडीस्वेदप्रवाहञ्च कफपित्तपरिप्लुतम् ॥ ६६ ॥ जरा... कालवक्त्रानलेस्थितम् ॥ रागद्वेषादिभिर्ग्रस्तंबहुशोकसमुद्भवम् ॥ ६७ ॥ एवंसञ्जायतेपुंसां देहगेहमिदं... क्षेत्रज्ञो गृहस्थोबुद्धिगेहिनी ॥ ६८ ॥ मोक्षेस्वर्गञ्चनरकमास्तेपञ्चत्वमागतः ॥ ६९ ॥ इति श्री... गर्भवासादिवर्णनन्नामचतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

... कमठैतत्त्वयोदितम् ॥ शरीरलक्षणंश्रोतुं पुनरिच्छामितद्वद ॥ १ ॥ ... शरीरञ्चतथोच्यते ॥ पादमूलञ्चपातालं प्रपदञ्चरसातलम् ॥ २ ॥ तलातल ... चोरू वितलञ्चातलंस्मृतम् ॥ ३ ॥ नाभिर्महीतलंप्राहुर्भुवर्लोकम ... ॥ ४ ॥ नेत्रेतपस्सत्यलोकं शीर्षदेशंवदन्तिच ॥ यथाचसप्तद्वीपा...

... अतिथि बोला कि हे बालकके मतमें बालक कमठ ! तुमने यह बहुत ... कि जैसे यहां यह ब्रह्माण्ड है वैसेही शरीर कहाजाता है कि पा- ... और वितल व अतल ऊरू (मोटीजाँघें) ... ॥ ४ ॥ व तपलोक नेत्र व सत्यलोक ...

एक उपांग व दू...
देहधारियों की जिह्वा ...
... ॥ २३ ॥ हे ...
में जीव स्थित है ॥ ... और मेदा, मज्जा व आस्थ ...
तेहैं ॥ २४ ॥ ...

को मस्तक स्थान कहतेहैं जिस प्रकार पृथ्वी के सात द्वीप स्थित हैं ॥ ५ ॥ वैसेही इस शरीर में सात धातु हैं उनके नामोको मुझ से सुनिये कि त्वचा, रक्त, मांस, मेदा (चर्बी), अस्थि, मज्जा व वीर्य ये धातु हैं ॥ ६ ॥ व इस देहमें तीनसौ साठ अस्थिहैं और तीन लाख नसें कहीगई हैं ॥ ७ ॥ और छप्पन हजार अन्य नसैंहै वे देहमें रसको प्राप्तकरती है जैसे कि नदिया भूमिमें जलको बहाती हैं ॥८॥ और मोटे व महीन साढ़े तीन करोड रोमोंसे शरीर सबओर आच्छादित है और वे रोम दृश्य व अदृश्य कहेगये है याने कुछ देखपड़ते हैं और कुछ नहीं देख पड़तेहैं ॥ ९ ॥ व मुझसे कहेजातेहुये छह मुख्य अङ्गोको सुनिये कि दो भुजायें और दो ऊरू

नि पृथिव्याःसंस्थितानिच ॥ ५ ॥ तथात्रधातवःसप्त नामतस्तान्निबोधमे ॥ त्वगसृङ्मांसमेदोऽस्थिमज्जाशुक्राणिधातवः ॥ ६ ॥ अस्थीन्यत्रशतानिस्युस्त्रीणिषष्ट्यधिकानिच ॥ त्रिंशच्छतसहस्राणि नाडीनांकथितानिच ॥ ७ ॥ षट्पञ्चाशत्सहस्राणि तथान्यानितुचैवहि ॥ तावहन्तिरसन्देहे जलंनद्योयथाभुवि ॥ ८ ॥ सार्द्धाभिस्तिसृभिश्छन्नं समन्ताद्रोमकोटिभिः॥शरीरंस्थूलसूक्ष्माभिर्दृश्यादृश्याहितेस्मृताः॥९॥षडङ्गानिप्रधानानि कथ्यमानानिमेशृणु ॥ द्वौबाहूसक्थिनीद्वेच मूर्द्धाजठरमेवच ॥ १० ॥ अन्त्राण्यत्रतथात्रीणि सार्द्धायुतयुतानिच ॥ पुरुषाणांतथास्त्रीणांप्राहुर्वेदविदोद्विजाः ॥ ११ ॥ ऊर्द्धनालमधोवक्त्रं हृदिपद्मंप्रकीर्त्यते ॥ १२ ॥ हृत्पद्मवामतःप्लीहा दक्षिणेस्मात्तथायकृत ॥ मज्जातोमेदसश्चैव वसायाश्चतथाद्विज ॥ १३ ॥ मूत्रस्यचैवपित्तस्य श्लेष्मणःशकृतस्तथा ॥ रक्तस्यचरसस्यात्र गर्ताःशारीरकेस्मृताः ॥ १४ ॥ तेभ्यःप्रवर्तमानास्ते देहंसन्धारयन्त्युत ॥ धमन्यश्चतथासप्त पञ्चमूर्द्धानमास्थिताः ॥ १५ ॥ एकामेढ्र

(मोटीजाघैं) व मस्तक और पेट ॥ १० ॥ और वेदके जाननेवाले ब्राह्मण पुरुषों व स्त्रियों के इस शरीर में पैंतीस हजार आंतैं कहते हैं ॥ ११ ॥ और ऊपर नाल व नीचे मुखवाला कमल हृदयमे कहाजाता है ॥ १२ ॥ व हृदय कमल के बाईओर प्लीहा व इससे दाहिनेओर यकृत् है और हे द्विज ! मज्जा, मेदा व वसा ॥ १३ ॥ और मूत्र, पित्त, श्लेष्मा व विष्ठा, रक्त व रसके गढ़ा इस शरीरमे कहेगये हैं ॥१४॥ उनसे वर्तमान होकर वे देहको धारण करते है और वैसेही बाहर नाड़ी मस्तक में

स्थितहैं ॥ १५ ॥ हे द्विज ! एक नाड़ी लिंगमें प्राप्तहै व एक जिह्वामें स्थितहै और इस देहमें सब नाडियां नाभिकमलसे वर्तमानहैं ॥१६॥ कि जिनके मध्यमें शिरमें प्राप्त
सुषुम्णा व पिंगला श्रेष्ठहै जोकि नासिकाद्वार में प्राप्तहोकर शरीर के बढ़ाने में भलीभांति स्थित हैं ॥ १७ ॥ और इस देहमें पवन, अग्नि व चन्द्रमा पाच पांच प्र-
कारका है प्राण, अपान, समान, उदान व व्यानहैं ॥ १८ ॥ और पवनमण्डल कृष्णवर्ण व मातृक होता है एक पलकों का मण्डल, दूसरा चर्ममण्डल ॥ १९ ॥
तीसरा श्वेतमण्डल कहाहै व चौथा कृष्णमण्डल है और पांचवां नेत्रमण्डल है इस प्रकार पांच मण्डलोंवाला नेत्र होताहै ॥ २० ॥ और दो नेत्रके भाग अन्य हैं

गताचैकातथाजिह्वागताद्विज ॥ नाड्यःसर्वाःप्रवर्तन्ते नाभिपद्मात्तथात्रच ॥ १६ ॥ यासांश्रेष्ठाशिरोयाता सुषुम्णाचे
तिपिङ्गला ॥ नासिकाद्वारमासाद्य संस्थितेदेहवर्धने ॥ १७ ॥ वायुरग्निश्चन्द्रमाश्च पञ्चधापञ्चधात्रच ॥ प्राणापानस
मानाश्च उदानोव्यानएवच ॥ १८ ॥ कृष्णञ्चमण्डलंवातं तथाभवतिमातृकम् ॥ यक्ष्ममण्डलमेकन्तु द्वितीयंचर्म
मण्डलम् ॥ १९ ॥ शुक्लंतृतीयंकथितं चतुर्थंकृष्णमण्डलम् ॥ दृग्मण्डलंपञ्चमन्तु नेत्रंस्यात्पञ्चमण्डलम् ॥ २० ॥
अपरेनेत्रभागेद्वे उपाङ्गोपाङ्गएवच ॥ अपाङ्गोनेत्रपर्यन्तो नासामूलमुपाङ्गकः ॥ २१ ॥ वृषणौचतथाप्रोक्तौ मेदासृक्कफमांस
कौ ॥ असृग्मांसमयीजिह्वा सर्वेषामेवदेहिनाम् ॥ २२ ॥ हस्तयोरोष्ठयोर्मेढ्रे ग्रीवायाञ्चर्मपूर्वकम् ॥ एवमत्रस्थितोजीवो दे
हेस्मिन्सप्तधातुके ॥ २३ ॥ पञ्चविंशतिकेपार्थ देहेवासोस्यकथ्यते ॥ त्वगसृग्मांसमित्याहुस्त्रिकंमातृसमुद्भवम् ॥ २४ ॥
मेदोमज्जास्थिकंप्रोक्तं पितृजंषट्कौशिकम् ॥ एवंभूतमयन्देहं पञ्चभूतसमुद्भवैः ॥ २५ ॥ अन्नैर्यथावृद्धिमेति तदहंव

एक उपांग व दूसरा अपाङ्ग नेत्रान्त भाग अपांग है और नासिका की जड़का भाग उपांग है ॥ २१ ॥ और अण्डकोश मेदा, रक्त, कफ व मांससंयुत होते हैं व सबही
देहधारियों की जिह्वा रक्त व मांसमयी होतीहै ॥ २२ ॥ व हाथों, ओठोंमें व लिंग और ग्रीवामें चर्मपूर्वक मांस व रक्त होताहै इस प्रकार इस सात धातुओंवाले शरीर
में जीव स्थित है ॥ २३ ॥ हे अर्जुनजी ! पचीस तत्त्ववाले शरीर में इस जीवका वास कहाजाताहै त्वचा, रक्त व मास इन तीनोंको विद्वान् मातासे उत्पन्नहुये कह-
तेहैं ॥ २४ ॥ और मेदा, मज्जा व अस्थि पितासे उत्पन्न हुये कहेजाते हैं इस प्रकार छह पिण्डोंवाला भूतमय शरीर पञ्चभूतों से उपजे हुये ॥ २५ ॥ अन्नोंसे जिस

प्रकार वृद्धिको प्राप्तहोता है उसको मैं तुमसे कहता हूं कि पिण्डमय ग्रास कवलों के द्वारा शरीरधारियों से भोजन कियेहुये उस अन्नको ॥ २६ ॥ पहले स्थूलाशयमें प्राण पवन दो प्रकारका करताहै कि अन्नके मध्यमे पैठकर अन्नको पृथक् करताहै व जलको भिन्न करताहै ॥२७॥ व अग्निके ऊपर जलको स्थापितकर और उस जल के ऊपर उस अन्नको धरकर और जलके नीचे आपही प्राण पवन स्थितहोकर अग्निको धीरेसे फूंकताहै ॥२८॥ पवनसे धौंकीहुई अग्नि जलको अत्यन्त गर्म करती है और गर्मजल से वह अन्न फिर सबओर से पकता है ॥ २९ ॥ व पकाहुआ अन्न दो प्रकार का होताहै कि कीट अलग होताहै व रस पृथक् होजाता है और बारह

र्णयामिते ॥ तदन्नंपिण्डकवलैर्ग्रासैर्भुक्तञ्चदेहिभिः ॥ २६ ॥ पूर्वंस्थूलाशयेवायुप्राणःप्रकुरुतेद्विधा ॥ सम्प्रविश्यान्नमध्येतु पृथगन्नंपृथग्जलम् ॥ २७ ॥ अग्नेरूर्ध्वंजलंस्थाप्यतदन्नंतज्जलोपरि ॥ जलस्याधःस्वयंप्राणःस्थित्वाग्निंधमतेशनैः ॥ २८ ॥ वायुनाधाम्यमानोग्निरत्युष्णंकुरुतेजलम् ॥ तदन्नमुष्णतोयेन समन्तात्पच्यतेपुनः ॥ २९ ॥ द्विधाभंवतितत्पक्वं पृथक्किट्टंपृथग्रसम् ॥ मलैर्द्वादशभिःकिट्टमन्नंदेहाद्बहिर्व्रजेत् ॥ ३० ॥ कर्णाक्षिनासिकाजिह्वादन्ताःशिश्नोगुदन्नखाः ॥रोमकूपाणिचैवस्युर्द्वादशैतेमलाशयाः ॥३१ ॥ हृत्पद्मेप्रतिबद्धाश्च सर्वानाड्यस्समन्ततः ॥ तासांमुखेषुतंसूक्ष्मं व्यानःस्थापयतेरसम् ॥ ३२ ॥ रसेनतेनतानाडीः समानःपूरयेत्पुनः ॥ ततःप्रयान्तिसम्पूर्णास्ताश्चदेहंसमन्ततः ॥ ३३ ॥ ततस्सनाडीमध्यस्थो रञ्जकेणोष्मणारसः ॥ पच्यतेपच्यमानस्तु रुधिरंत्वग्भवेत्पुनः ॥ ३४ ॥ ततस्त्वग्रोमकेशाश्च प्राणकर्मप्रकीर्त्तितम् ॥ त्यागोविण्मूत्रशुक्राणां गर्भनिर्मोक्षणंतथा ॥ ३५ ॥ अपानकर्मनिर्दिष्टं स्था

मलोंसे भिन्न होकर कीट शरीरसे बाहर चलाजाताहै ॥ ३० ॥ कान, नेत्र, नासिका, जिह्वा, दांत, लिंग, गुदा, नख व रोमोंके छिद्र ये बारह मलके आशय हैं ॥ ३१ ॥ सबओरसे सब नाड़िया हृदय कमलमें बँधी हैं उनके मुखोंमें उस सूक्ष्म रसको व्यानपवन स्थापित करता है ॥ ३२ ॥ फिर समान पवन उस रससे नाडियों को पूर्ण करता है तदनन्तर पूर्णहुई वे नाड़िया सबओर देहमें जातीहैं ॥ ३३ ॥ तदनन्तर नाडियोंके मध्यमें प्राप्त वह रस रंजक ऊष्मासे पकताहै और पकताहुआ वह रस रुधिर होताहै फिर चर्म होताहै ॥ ३४ ॥ इस लिये त्वचा, रोम व केश प्राण पवन का कर्म कहागया है और विष्ठा, मूत्र व वीर्य का त्याग करना व गर्भमोक्ष ॥ ३५ ॥

अपानका कर्म कहागयाहै और गुदाके ऊपर इसका स्थानहै व समान पवन अन्नको धारण करता है व भिन्न करताहै ॥ ३६ ॥ व वचनकी प्रवृत्ति का दायक व सब
कर्मोंके बड़े यत्नमें होताहै ॥ ३७ ॥ और हृदय से लगाकर कण्ठतक उदान पवन का स्थान कहागयाहै और हृदय में नित्यही स्थित होकर व्यानपवन देहका भरण
पोषण करताहै ॥ ३८ ॥ और धातुवृद्धि को देनेवाला व नेत्रका खोलना, मूँदना इस कर्मको करनेवाला है व पाचक, रंजक और साधक व आलोचक ॥ ३९ ॥ और
भ्राजक यह पांच प्रकार की अग्नि शरीर में स्थित हैं नित्यही पक्काशय में स्थित होकर पाचक अग्नि अन्नको पचाती है ॥ ४० ॥ और आमाशय में स्थित रंजक

**नमस्थगुदोपरि ॥ समानोधारयत्यन्नं विवेचयतिचाप्यथ ॥३६ ॥ वाक्प्रवृत्तिप्रदश्चैव प्रयत्नेसर्वकर्मणाम् ॥ ३७॥ आक
ण्ठमुरसःस्थानमुदानस्यप्रकीर्तितम् ॥ व्यानोहृदिस्थितोनित्यं तथादेहभरोपिच ॥ ३८ ॥ धातुवृद्धिप्रदश्चैष नेत्रोन्मे
षनिमेषकृत् ॥ पाचकोरञ्जकश्चैव साधकालोचकस्तथा ॥ ३९ ॥ भ्राजकश्चतथादेहे पञ्चधापावकःस्थितः ॥ पाचकस्तु
पचत्यन्नं नित्यंपक्काशयस्थितः ॥४०॥ आमाशयस्थश्चरसंरञ्जकःकुरुतेत्वसृक् ॥ साधकोहृदिसंस्थश्च बुद्ध्याद्युत्साह
कारकः ॥ ४१ ॥ आलोकश्चहृदिसंस्थो रूपदर्शनशक्तिकृत् ॥ त्वक्संस्थोभ्राजकोदेहं भ्राजयेन्निर्मलीकृतम् ॥ ४२ ॥
क्लेदकोबोधकश्चैवतर्पणःश्लेष्मकस्तथा॥४३॥अलम्बकस्तथादेहे पञ्चधासोमउच्यते॥ क्लेदकःक्लेदयत्यन्नं नित्यंपक्का
शयस्थितः ॥ ४४ ॥ बोधकोरसनास्थश्च रसानामवबोधकः ॥ शिरस्थश्चक्षुरादीनां तर्पणात्तर्पणःस्मृतः ॥ ४५ ॥ सर्व
सन्धिगतश्चैव श्लेष्मणःश्लेष्मणांतथा ॥ उरस्थस्सर्वगात्राणामवलम्बमलम्बकः ॥ ४६ ॥ एवंवाय्वग्निसोमैश्च देहीस**

अग्नि रस व रक्तको करतीहै व हृदयमें स्थित साधक अग्नि बुद्धिआदिक उत्साहको करती है ॥ ४१ ॥ व हृदयमें भलीभांति टिकीहुई आलोक अग्नि रूप के दर्शनकी
शक्ति करनेवाली है और त्वचामें स्थित भ्राजक अग्नि निर्मल कीहुई देहको शोभित करती है व क्लेदक, बोधक, तर्पण व श्लेष्मक ॥ ४२ । ४३ ॥ और अलम्बक
यह पांच प्रकारका चन्द्रमा देहमें स्थितहै पक्काशय में स्थित क्लेदक नित्यही अन्न को भिगोता है ॥ ४४ ॥ व जिह्वामें टिकाहुआ बोधक रसोंका ज्ञान करानेवाला है
और चक्षुआदिकोंकी तृप्ति करनेसे शिरमें टिकाहुआ तर्पण कहागयाहै॥४५॥ व सबजोड़ोंमें प्राप्त श्लेष्मण श्लेष्म करताहै याने सन्धियों को जोड़ता है और हृदय में

टिकाहुआ अवलम्बक सब शरीरका अवलम्ब करताहै ॥ ४६ ॥ इस प्रकार पवन,अग्नि व चन्द्रमासे यह जीव भलीभांति धारण कियागयाहै स्रोत याने कर्णादिक आकाश तत्त्वसे उत्पन्न हैं व कोठेकी पवित्रता उसी देहसे होती है ॥ ४७ ॥ और इस शरीरमें नासिका,केश, नखोंको पार्थिव जानिये अस्थि,धैर्य,गुरुता,त्वचा,मांस,हृदय, गुदा,नाभि,मेदा,यकृत,मज्जा,अन्न, आमाशय,नाडी, नसैं व पकाशय वेदके जाननेवाले इसीप्रकार कहतेहैं ॥४८।४९॥ नेत्रोंका शुक्लमण्डल क्रमसे पैत्तिक होताहै और नख मज्जा व इन्द्रियों की निर्मलता, वीर्य यह हृदय में क्रमसे होताहै ॥ ५० ॥ इस प्रकार बारह भांतिका परिणाम इस शरीरका कहाजाता है इस प्रकार पुण्यके लिये

न्धारितस्त्वसौ ॥ आकाशजानिस्रोतांसि तथाकोष्ठविविक्तता ॥ ४७ ॥ पार्थिवानीहजानीहि घ्राणकेशनखानिच ॥ अस्थीनिधैर्यंगुरुता त्वङ्मांसहृदयंगुदम् ॥ ४८ ॥ नाभिर्मेदोयकृन्मज्जा अन्नमामाशयःशिराः ॥ स्नायुपकाशयश्चैवं प्राहुर्वेदविदोद्विजाः ॥ ४९ ॥ नेत्रयोर्मण्डलंशुक्लं क्रमाद्भवतिपैत्तिकम् ॥ नखमज्जाखवैमल्यं शुक्रंहृदिक्रमाद्भवेत् ॥ ५० ॥ एवंद्वादशधाचास्य परिणामःप्रकीर्त्यते ॥ एवमेवविनिष्पन्नं शरीरंपुण्यहेतवे ॥ ५१ ॥ यथैवस्यन्दनःशुभ्रो भारसंवाहनायवै ॥ तैलाभ्यङ्गादिभिर्यत्नैर्बहुभिःपालनेनवा ॥ ५२ ॥ किंकृत्यंसाध्यतेतेन यदिभारंवहेन्नहि ॥ सर्वमेतेनदेहेन किंकृत्यंभोजनोत्तमैः ॥ ५३ ॥ वर्द्धतेनतुचेत्पुण्यं कुरुतेपशुवच्चतत् ॥ भवन्तिचात्रयेश्लोकास्तान्सर्वानवधारय ॥ ५४ ॥ यस्मिन्कालेचदेशेच वयसायादृशेनच ॥ कृतंशुभाशुभङ्कर्म तत्तथातेनभुज्यते ॥ ५५ ॥ तस्मात्सदाशुभंकार्यं कर्तव्यञ्चसुखार्थिभिः ॥ विच्छिद्यन्तेन्यथाभोगा ग्रीष्मेकुसरितोयथा ॥ ५६ ॥ यस्मात्पापेनदुःखानि तीव्राणिसुबहू

यह शरीर सिद्धहुआहै ॥ ५१ ॥ जैसे कि उत्तम रथ भार लेचलने के लिये होता है तैलाभ्यंग इत्यादिक बहुत यत्नों से व पालन से ॥ ५२ ॥ उससे क्या कार्य साधन कियाजाता है कि यदि वह भारको न लेचलै तो इस शरीरसे क्या सब कार्यहै क्योंकि यदि उत्तम भोजनोंसे बढताहै पुण्य नहीं करताहै तो वह शरीर पशु की नाईं है इस विषय में जो श्लोकहै उन सबों को सुनिये ॥ ५३ । ५४ ॥ कि जिस समय में व जिस देशमें जैसी अवस्था से शुभाशुभ कर्म कियागया है वह उससे वैसेही भोग कियाजाता है ॥ ५५ ॥ इस लिये सुख चाहनेवाले पुरुषोंको सदैव उत्तम कार्य करना चाहिये क्योंकि अन्यथा सुख नष्ट होजाते हैं जैसे कि ग्रीष्ममें क्षुद्रनदियां

सूखजाती हैं ॥ ५६ ॥ जिसलिये पातक के कारण बहुत से तीव्र दुःख होते हैं इस लिये पातक न करना चाहिये क्योंकि वह शरीर को पीड़ाकारक है॥ ५७ ॥ हे
साधो ! इस प्रकार मैंने शक्तिके अनुकूल तुम्हारे इस प्रश्नको वर्णन किया कि जिस प्रकार प्राणी पैदाहोताहै और जिस भांति नष्टहोताहै उसको सुनिये ॥५८॥ कि
आयुर्बल कर्मसे क्षीण होनेपर जब मनुष्यकी मृत्यु प्राप्तहोतीहै तब अपने कर्मके वशमें प्राप्त जीव यमदूतोंसे खींचाजाता है ॥ ५९ ॥ पुण्यके नाशहोनेपर पञ्चतन्मात्राओं
समेत और बुद्धि अहङ्कारसे संयुत जीव यमदूतोंकी फँसरियों से बँधकर शरीरको छोड़देताहै ॥६०॥ पुण्यकर्मसे जीव शिरके सात छिद्रोंके द्वारा याने मुख नेत्रादिकोंसे

न्यपि ॥ तस्मात्पापन्नकर्त्तव्यमात्मपीडाकरंहितत् ॥ ५७ ॥ एवन्तेवर्णितस्साधो प्रश्नोयंशक्तितोमया ॥ यथासञ्जा
यतेप्राणी यथाशृणुप्रलीयते ॥ ५८ ॥ आयुष्येकर्मणाक्षीणे सम्प्राप्तमरणेन्नृणाम् ॥ स्वकर्मवशगोदेही कृष्यतेयम
किङ्करैः ॥ ५९ ॥ पञ्चतन्मात्रसहितस्समेतोबुद्ध्यहंकृतैः ॥ पुण्यपापैर्यमैःपाशैर्बद्धोजीवस्त्यजेद्वपुः ॥ ६० ॥ शिरस्सप्त
भिश्छिद्रैर्निर्गच्छेत्पुण्यकर्मणा ॥ अधस्तःपापिनोयान्ति योगिनोब्रह्मरन्ध्रतः ॥ ६१ ॥ तत्क्षणात्सोथगृह्णातिशा
रीरंचातिवाहिकम् ॥ अङ्गुष्ठपर्वमात्रन्तु स्वप्राणैरेवनिर्मितम् ॥ ६२ ॥ ततस्तस्मिन्स्थितञ्जीवं देहंयमभटास्तथा ॥ ब
द्ध्वानयन्तिमार्गेण याम्येनचयथाबलम् ॥ ६३ ॥ तप्ताम्बरीषतुल्येन अयस्तप्तनिभेनच ॥ प्रतप्तसिकतेनैव ताम्रतप्त
निभेनच ॥ ६४ ॥ षडशीतिसहस्राणियोजनानांमहीतलात् ॥ कृष्यमाणोयमपुरीं नीयतेपापकृद्भटैः ॥६५॥ क्वचिच्छी
तंघर्मउग्रमन्धकारंक्वचिन्महत् ॥ अग्निसंकाशवदनैः काककङ्ककजम्बुकैः ॥ ६६ ॥ मक्षिकादंशमशकैर्भक्ष्यतेसर्पवृ

निकलताहै और पापी पुरुष नीचे के (गुदा) मार्गसे जाते हैं व योगीजन ब्रह्मछिद्रसे जातेहैं॥ ६१ ॥ इसके अनन्तर वह अपनेही प्राणोंसे निर्माण कियेहुये व अँगूठा
के पोदभर और बहुत चलनेवाले शरीर को ग्रहण करता है ॥ ६२ ॥ तदनन्तर उस शरीरमें जीव टिकता है और यमदूत शरीरको बांधकर यममार्गके द्वारा बलके
अनुसार लेजाते हैं ॥ ६३ ॥ जो मार्ग कि तचेहुये भारके सदृश व तचेलोहके समान और तचे ताम्र के सदृश बालूवाला है ॥ ६४ ॥ पृथ्वीसे छियासी हज़ार योजन
यमदूतों से खींचा जाताहुआ पापकारी पुरुष यमपुरीमें प्राप्त कियाजाताहै ॥६५॥ कहीं जाड़ा व भयङ्कर उष्णता और कहीं बड़ा अन्धकारहै और अग्निकेसमान मुखवाले

कौवा, कङ्क, सियार ॥ ६६ ॥ मक्षिका, डांस, मच्छड़ सांप व बीछियों से खायाजाता है और उनसे खायाहुआ भी प्राणी चिल्लाता है परन्तु मरता नहीं है ॥ ६७ ॥ और कहीं भयंकर राक्षसों से भक्षण कियाजाताहै व खींचाजाताहै और फेंकाजाताहै और अत्यन्त भयंकर बालूसे जलता हुआ प्राणी लेगया जाताहै ॥ ६८ ॥ और उस बड़े दुस्तर मार्गको प्राणी दश मुहूर्त्त याने आठ घण्टे में जाता है और उस समयको भी वह प्राणी वर्षभर के बराबर मानता है ॥ ६९ ॥ और पीब, रक्तसे कीचड़वाली भयंकर नदीको उतरताहै जो नदी कि बालरूपी सेवार व हरित भूमिवाली वैतरणी नामकहै ॥७०॥ तदनन्तर यमदूतोंसे वह प्राणी यमराजके आगे खड़ा कियाजाताहै

श्चिकैः ॥ भक्ष्यमाणोपितैर्जन्तुः क्रन्दतेम्रियतेनहि ॥६७॥क्वचिच्चभक्ष्यतेघोरै राक्षसैःकृष्यतेस्यते ॥ दह्यमानोतिघोरेण सैकतेनचनीयते ॥ ६८ ॥ मुहूर्त्तैर्दशभिर्याति तंमार्गमतिदुस्तरम् ॥ तत्कालंचाप्यसौवेत्ति पुरुषोवर्षसम्मितम् ॥ ६९ ॥ तार्यतेचनदीङ्घोरां पूयशोणितकर्दमाम् ॥ नदींवैतरणीन्नाम केशशैवलशाद्वला ॥ ७० ॥ ततोयमस्यपुरतः स्थीयतेयमकिङ्करैः ॥ पापीमहाभयंपश्येत्कालान्तकमुखैर्वृतम् ॥ ७१ ॥ पुण्यकर्मासौम्यरूपं धर्मराजंतदाकिल ॥ मनुष्याएवगच्छन्ति यमलोकन्नचापरे ॥ ७२ ॥ मरणानन्तरन्तेषांजन्तूनांयोनिप्रेरणम् ॥ ततोहिचैतेमनुजाः श्रूयन्तेनान्यजन्तवः ॥ ७३ ॥ धार्मिकःपूज्यतेतत्र पापःपाशगतोभवेत् ॥ धार्मिकाश्चयथायान्ति तंमार्गंवच्मितेद्विज ॥ ७४ ॥ आराममद्रुमदातारः फलपुष्पवतांयथा ॥ छाययाचसुखंयान्ति तथायेछत्रदानराः ॥ ७५ ॥ उपानहःप्रदाःपानैर्वितृषामूर्त्तिधा

पापी पुरुष काल व अन्तक इत्यादिकोंसे घिरेहुये महाभयानक यमराजको देखताहै ॥७१॥ और पुण्यकर्म करनेवाला पुरुष उस समय सौम्यरूपवाले धर्मराजको देखता है और मनुष्यही यमलोकको जातेहैं अन्य प्राणी नहीं जातेहैं ॥ ७२ ॥ क्योंकि उन जन्तुवोंके मरण उपरान्त योनिमें प्रेरणा होतीहै उसी कारण ये मनुष्य नरकमें सुने जाते हैं अन्य प्राणी नहीं सुनेजाते हैं ॥ ७३ ॥ धर्मवान् पुरुष वहां पूजाजाता है और पापी मनुष्य फँसरी में प्राप्त होताहै व हे ब्राह्मण ! जिस प्रकार धर्मवान् पुरुष जातेहैं उस मार्गको तुमसे कहताहूं ॥ ७४ ॥ बगीचा व वृक्षों के देनेवाले पुरुष जिस प्रकार फल फूलवाले वृक्षोंकी छायासे जातेहैं वैसेही जो छतुरी देने

वाले मनुष्य हैं वे जातेहैं ॥ ७५ ॥ व पनहियों को देनेवाले मूर्त्तिधारी पुरुष जलपान से प्यासरहित होतेहैं और सवारियों के देनेवाले और शय्या व आसन
देनेवाले पुरुष विमानोंके द्वारा जाते हैं ॥ ७६ ॥ और भोजन को देनेवाले पुरुष भक्ष्यभोजनों से तृप्तहोकर जातेहैं व दीपकको देनेवाले पुरुष प्रकाश समेत जातेहैं
और गऊ देनेवाले नर उस नदीमें सुखपूर्वक जातेहैं ॥ ७७ ॥ व श्रीसूर्यनारायण और महादेव व पुरुषोत्तम विष्णुजी को जो मनुष्य जन्मसे लगाकर भक्तिसे पूजते
हैं वे यमदूतोंसे पूजित होकर जातेहैं ॥ ७८ ॥ पृथ्वी, गऊ, सुवर्ण, लोह, तिल व रुई, लोन और सप्तधान्यको देकर मनुष्य सुखपूर्वक जातेहैं ॥ ७९ ॥ तदनन्तर वहांपर

रिणः ॥ विमानैर्यानदा यान्ति तथाशय्यासनप्रदाः ॥ ७६ ॥ भक्ष्यभोज्यैस्तथातृप्ता यान्तिभोजनदायिनः ॥ दीपप्र
दाःप्रकाशेन गोप्रदास्तांनदींसुखम् ॥ ७७ ॥ श्रीसूर्यंचमहादेवं भक्त्यायेपुरुषोत्तमम् ॥ जन्मप्रभृतितेयान्ति पूज्यमा
नायमानुगैः ॥ ७८ ॥ महींगाङ्काञ्चनंलोहं तिलान्कर्पासमेवच ॥ लवणंसप्तधान्यञ्च दत्त्वायान्तिसुखन्नराः ॥ ७९ ॥ ते
षांतत्रगतानाञ्च पापिनांपुण्यकर्मणाम् ॥ चित्रगुप्तःप्रेतयोनिं निरूपयतिवैततः ॥ ८० ॥ प्रेतलोकेसवसति ततःसंवत्स
रन्नरः ॥ वत्सरेणाचतेनास्य शरीरमभिजायते ॥ ८१ ॥ सोदकुम्भमथान्नादि बान्धवैर्यस्यदीयते ॥ दिनेदिनेसतद्भुक्त्वा
तेनवृद्धिंप्रयातिच ॥ ८२ ॥ पूर्वदत्तमथान्नाद्यं प्राप्नोतिस्वयमेवच ॥ स्वयंयेननदत्तन्तु तथादातानविद्यते ॥ ८३ ॥ न
चाप्युदकदातासौ क्षुत्तृड्भ्यामपिपीड्यते ॥ बान्धवैश्चोदकंदत्तं नदीभूत्वोपतिष्ठते ॥ ८४ ॥ मासिमासिचयच्छ्राद्धं षो

प्राप्तहुये उन पापी व पुण्यकर्मी मनुष्यों की प्रेतयोनि को चित्रगुप्त निरूपण करते हैं ॥ ८० ॥ तदनन्तर वह पुरुष वर्षभरतक प्रेतलोक में बसताहै और उसी वर्षभर
में इसका शरीर होजाताहै ॥ ८१ ॥ और जलकुम्भ समेत अन्नादिक जिस पुरुषको भाइयों से दियाजाता है वह दिन दिनमें उसको भोजनकर उससे वृद्धिको प्राप्त
होताहै ॥ ८२ ॥ पहले दियेहुये अन्नादिक को वह आपही प्राप्त होताहै और जिसने आपभी नहीं दियाहै और देनेवाला नही विद्यमानहै ॥ ८३ ॥ और जल देनेवाला
भी नहीं है यह पुरुष क्षुधा, प्यासस पीड़ित होताहै और भाइयों से दियाहुआ जल नदी होकर समीप प्राप्त होताहै ॥ ८४ ॥ और षोड़श श्राद्धपूर्वक जो महीने

महीने में श्राद्धहोती है वह जिसकी नहीं कीजाती है वह प्रेतयोनि से नहीं छूटता है ॥ ८५ ॥ मनुष्यों के दिनसे प्रेतलोक में दिन होताहै इस लिये वर्षभरतक प्रति-
दिन प्रेतके लिये अन्न देना चाहिये ॥ ८६ ॥ उन श्मशानिक यमदूत गणोंको मैं प्रणाम करताहूं जोकि शीत, पवन व आतप (घाम) से संयुत पापी पुरुषकी रक्षा
नहीं करते हैं ॥ ८७ ॥ जैसे कि विषम (कठिन) मनुष्य बन्धन में किसी मनुष्य की नहीं रक्षा करते हैं षोड़श श्राद्धपूर्वक जिसको प्रेतपिण्ड नहीं दियेजाते हैं
प्रेतता से उसकी मुक्तियुगों के बाद भी नहीं होतीहै इस लिये पुण्यवान् भाइयोंसे सपिण्डी करने पर मनुष्य ॥ ८८ । ८९ ॥ पूर्ण वर्षभर होनेपर सम्पूर्ण देहको प्राप्त

**डशश्राद्धपूर्वकम् ॥ तन्नैवक्रियतेयस्य प्रेतत्वात्सनमुच्यते ॥ ८५ ॥ मानुषेणादिनेनैव प्रेतलोकेदिनंस्मृतम् ॥ तस्माद्दि
नेदिनेदेयं प्रेतायान्नञ्चवत्सरम् ॥ ८६ ॥ तांश्चश्मशानिकानेव गणान्याम्यान्नमाम्यहम् ॥ शीतवातातपोपेतं येनर
क्षन्तिपापिनम् ॥ ८७ ॥ यथानबन्धनेकश्चिद्रक्ष्यतेविषमैर्नरैः ॥ प्रेतपिण्डानदीयन्ते षोडशश्राद्धपूर्वकाः ॥ ८८ ॥ य
स्यतस्यनमोक्षोस्ति प्रेतत्वाद्दैयुगैरपि ॥ ततस्सपिण्डीकरणे बान्धवैस्सुकृतैर्नरः ॥ ८९ ॥ पूर्णेसंवत्सरेदेहं सम्पूर्णंप्रति
पद्यते ॥ पापात्माघोररूपन्तु धार्मिकोदिव्यमुत्तमम् ॥ ९० ॥ ततस्सनरकंयाति स्वर्गंवास्वेनकर्मणा ॥ रौरवाद्याश्चन
रकाः पातालतलसंस्थिताः ॥ ९१ ॥ सुराद्याःसत्यपर्यन्तं स्वर्लोकस्योर्ध्वमाश्रिताः ॥ इतिहासपुराणेषु वेदस्मृतिषुयत्कृत
म् ॥ ९२ ॥ पुण्यन्तेनभवेत्स्वर्गो नरकस्तद्विपर्ययात् ॥ तत्रापिकालंवसति कर्मणामनुरूपतः ॥ ९३ ॥ अर्वाक्सपिण्डी
करणं यस्यवर्षाच्चवाकृतम् ॥ प्रेतत्वमपितस्यापि प्रोक्तंसंवत्सरंध्रुवम् ॥ ९४ ॥ यैरिष्टञ्चत्रिभिर्भेदैरर्चितंवासुरत्रयम् ॥**

होताहै पापात्मा भयङ्कररूपको प्राप्त होताहै व धर्मवान् उत्तम दिव्यरूप को प्राप्त होताहै ॥९०॥ तदनन्तर वह पुरुष अपने कर्मसे स्वर्ग या नरकको जाताहै और रौरव
आदिक नरक पातालतलमें स्थितहैं॥९१॥ और देवादिक स्वर्गलोकके ऊपर सत्यलोक तक टिकेहैं इतिहासपुराणों और वेद,स्मृतियों में जो पुण्य कियागयाहै उससे स्वर्ग
होताहै ओर उसके विपरीत नरक होता है और वहांभी कर्मोंके अनुसार समयतक बसताहै ॥ ९२ । ९३ ॥ और वर्षभर के इस पार जिसका सपिण्डीकरण होताहै
उसका भी प्रेतत्व निश्चयकर वर्षभरतक कहागया है ॥९४॥ जिन्होंने तीन भेदों से यज्ञ कियाहै या तीन देवताओंका पूजन कियाहै व वैसेही जो युद्धमें मारेगयेहैं वे

प्रेतलोक को नहीं जातेहैं ॥ ९५ ॥ केवल पुण्य से प्राणी पवित्र स्वर्गको जाताहै व केवल पापसे अन्धतम नरक को जाताहै और पाप पुण्यके मिश्रित होनेसे स्वर्ग व नरकको प्राप्तहोता है और इस प्राणीका वैसाही शरीर होताहै ॥ ९६ ॥ उत्पत्ति, मृत्यु व परलोकवास तुमसे किये हुये जिन तीन प्रश्नोंको मेरे पिताने कहाथा मैंने उनको वर्णन किया फिर क्या चाहते हो उसको मैं तुमसे कहूं ॥ ९७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेमराडूकेनप्रश्नत्रयवर्णनंनामपञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥

दो० । जयादित्य नामक रविहिं थप्यो कमठ द्विजराज । छियालिसें अध्याय में सोइ चरित सुखसाज ॥ अतिथि बोला कि तुमने जो इस परलोक के स्वरूपको

प्रेतलोकन्नतेयान्ति यथायेसमरेहताः ॥ ९५ ॥ शुद्धेनपुण्येनदिवञ्चशुद्धं पापेनशुद्धेनतथातमोन्धम् ॥ मिश्रेणपुस्वर्गन्न रकञ्चयाति देहस्तथैवास्यभवेच्चतादृक् ॥ ९६ ॥ प्रश्नत्रयञ्चेतितवप्रणीतमुत्पत्तिमृत्युपरलोकवासम् ॥ यदाहगुरुर्मेस मुदाजहार किम्भूयइच्छस्युततद्ददामि ॥ ९७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डे मराडूकेनप्रश्नत्रयवर्णनन्नाम पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

अतिथिरुवाच ॥ यदेतत्परलोकस्य स्वरूपमाहतंत्वया ॥ आगमंसमुपाश्रित्य तत्तथैवनसंशयः ॥ १ ॥ किंत्वत्रना स्तिकाःपापास्संदिह्यन्तेल्पचेतनाः ॥ तेषान्निस्संशयकृतं वेदकर्मफलंहितत् ॥ २ ॥ इहैवकस्यकस्यैव कर्मणःपापकस्य च ॥ प्रभावात्कीदृशोजायेत्कमठत्वंवदवेत्सिचेत् ॥ ३ ॥ कमठउवाच ॥ सर्वमेतत्प्रवक्ष्यामि स्थिरोभूत्वाशृणुष्वच ॥ यथा ममगुरुःप्राह यन्मेचेतसिसंस्थितम् ॥ ४ ॥ ब्रह्महाक्षयरोगीस्यात्पञ्चपातकिनस्त्वमी॥ सर्वसुकसर्वरोगीस्यात्सुरापः

वर्णन किया वह शास्त्र के आश्रितहोकर वैसाही है इसमें सन्देह नहीं है ॥ १ ॥ परन्तु इस विषय में थोडी बुद्धिवाले, पापी, नास्तिक सन्देह को प्राप्त होतेहैं उनका निस्सन्देह किया [illegible] यह [illegible] कर्मोंका फल होताहै ॥ २ ॥ हे कमठ ! किस किस पापकर्म के प्रभाव से इस संसार में कैसा मनुष्य पैदाहोताहै यदि जानते हो तो इसको कहिये ॥ ३ ॥ कमठ बोला [illegible] सम्पूर्ण चरित्रको कहताहूं स्थिरहोकर सुनिये कि जिस प्रकार मेरे पिताने कहाहै और जो मेरे चित्तमें भलीभांति टिकाहै ॥ ४ ॥ कि ये पांच पातकी

है याने ब्रह्मघाती क्षयरोगी होताहै व सर्वभक्षी सब रोगोंवाला होताहै और मदिरा पीनेवाला श्यामदांतोंवाला होताहै ॥ ५ ॥ सोना चुरानेवाला मनुष्य कुत्सितनखों वाला होताहै व गुरुकी शय्यापै बैठनेवाला पुरुष दुष्टचर्मवाला होताहै और साधुवोंकी निन्दा सुनकर मनुष्य बहिरा होताहै ॥ ६ ॥ और आपही अपने यशको कहने वाला पापी मनुष्य गूंगा होताहै और गुरुवों की आज्ञाका लोप करनेवाला मनुष्य अपस्मारी (मिरगी रोगवाला) होताहै ॥ ७ ॥ व उन गुरुवों का अपमान करने वाला पुरुष कीड़ा होताहै और साधुजनों की द्रव्य चुराने के लिये मनुष्य जितने पग देताहै ॥ ८ ॥ उतनेही वर्षतक वह नीचनर पंगुता को प्राप्तहोताहै और जो

श्यावदन्तकः ॥५॥ सुवर्णचौरःकुनखी दुश्चर्मागुरुतल्पगः ॥ निन्दामाकर्ण्यसाधूनां बधिरस्सम्प्रजायते ॥६॥ स्वयंकीर्त्तिकथश्चापि मूकःपापोभिजायते ॥ आज्ञालोपीगुरूणाञ्चअपस्मारीभवेन्नरः ॥ ७ ॥ अवज्ञाकारकस्तेषां कृमिरेवाभिजायते ॥ चौर्यार्थंसाधुद्रव्याणां दद्याद्यावत्पदानिच ॥८॥ तावद्वर्षाणिपङ्गुत्वं सम्प्राप्नोतिनराधमः ॥ दत्त्वाहरतितद्भूयो जायतेकृकलासकः॥कुपितान्नप्रसाद्यैव पूज्यान्स्याच्छीर्षरोगवान् ॥९॥ रजस्वलाञ्चगच्छंश्च चाण्डालस्सम्प्रजायते॥ १० ॥ वस्त्रापहारीश्वित्रीस्यात्कुष्ठकृष्णीतथाग्निदः ॥ दर्दुरोरूपहारीस्यात्कूटसाक्षीमुखेगदी ॥ ११ ॥ परदाराभिगमने रतःस्यादक्षिरोगवान् ॥ प्रतिज्ञांचाप्यकुर्वन्वा अल्पायुर्जायतेनरः ॥ १२ ॥ विप्रवृत्त्यापहारीस्याज्जीर्णरोगीसदाधमः ॥ नैष्ठिकान्नाशनाद्भूयान्मनुजोरोगवान्सदा ॥ १३ ॥ पत्नीबहुत्वेत्वेकायां रतोमेदःक्षयीभवेत् ॥ स्वामिनाधर्ममुक्तो

द्रव्यको देकर फिर हरलेताहै वह गिरगिटहोता है ॥ ९ ॥ और पूजनेयोग्य कोपित पुरुषों को न प्रसन्न कराकर मस्तक के रोगवाला होताहै और रजस्वला स्त्रीसे मैथुन करनेवाला पुरुष चाण्डाल होताहै ॥ १० ॥ व वसन हरनेवाला नर मण्डलकुष्ठवाला होताहै व अग्नि देनेवाला कालेकुष्ठवाला होताहै व चांदी को हरनेवाला पुरुष मेढक होताहै और झूंठी गवाही देनेवाला मनुष्य मुखरोगवाला होताहै ॥ ११ ॥ और पराई स्त्रियोंके गमन मे परायण पुरुष नेत्ररोगवाला होताहै और प्रतिज्ञा को न करताहुआ पुरुष थोडी आयुर्बलवाला होताहै ॥ १२ ॥ व ब्राह्मण की जीविका को हरनेवाला नीचनर सदैव जीर्णरोगवाला होता है और ब्रह्मचारी का अन्न

भोजन करनेसे मनुष्य सदैव रोगवान् होता है ॥१३॥ व बहुत स्त्रियोंके होनेपर जो एक ही स्त्रीमें स्नेह करता है वह मेदक्षयी होताहै और जिससे स्वामीने धर्मको कहा और वह उसको पाप समेत करता है ॥ १४ ॥ या आपही सब वस्तुको खाजाता वह अज्ञानी पुरुष जलोदररोगवाला होताहै और पीड़ित होतेहुये दुर्बल को जो बलवान् मनुष्य देखता है ॥ १५ ॥ वह अङ्गहीन होताहै व अन्नको चुराकर मनुष्य बैल होता है और व्यवहार में पक्षपात करनेवाला पुरुष जिह्वारोगवाला होता है ॥ १६ ॥ व धर्ममें लगेहुये पुरुषको मनाकर पुरुष स्त्रीसे वियोगी होताहै और आपही भोजन बनानेवाला जो पहले भोजन करताहै वह गलेके रोगको प्राप्तहोता

यस्तंसाधेनसमाचरेत् ॥ १४ ॥ स्वयंवाभक्षयेद्द्रव्यं समूढःस्याज्जलोदरी ॥ दुर्बलंपीड्यमानंयो बलवान्समुपेक्षते ॥ १५ ॥ अङ्गहीनःसचभवेदन्नंहृत्वावृषोभवेत् ॥ व्यवहारेपक्षपाती जिह्वारोगीभवेन्नरः ॥ १६ ॥ धर्मप्रवृत्तंसंवार्य पत्न्यासहवियोगवान् ॥ स्वयंपाकाग्रभोजीयो गलरोगमवाप्नुयात् ॥१७॥ पञ्चयज्ञानकृत्वैव भोक्तास्याद्ग्रामसूकरः ॥ पर्वमैथुनकृन्मेही परित्यज्यस्वगेहिनीम् ॥ १८ ॥ गणिकादिरक्तोमूढात्मा खल्वाटोवैनरोभवेत् ॥ परिक्लिष्टानिमित्रबन्धून्स्वामिनन्दयितानुगान् ॥ १९ ॥ परित्यज्यनिवृत्तात्मा क्लिष्टवृत्तिस्सदाभवेत् ॥ छद्मनोपचरेद्यस्तु पितरौस्वामिनंगुरुम् ॥ २० ॥ प्राप्तद्रव्यश्चातिकष्टात्परिभ्रंशोर्थतोभवेत् ॥ विश्वस्तस्यापहारीयो दुःखानांभाजनंभजेत् ॥ २१ ॥ दुर्बलोब्रह्मवाहीस कुटिलोयोभवेत्सदा ॥ जन्मान्धश्चापियोगोघ्नो निष्पशुर्दुःखदोगवाम् ॥ २२ ॥ निर्दयोगोषुयोमा

है ॥ १७ ॥ और पञ्चयज्ञोंको न करके भोजन करनेवाला मनुष्य ग्रामसूकर होता है व पर्वों में मैथुन करनेवाला प्रमेही होताहै अपनी स्त्रीको छोड़कर ॥१८॥ वेश्यादिकों में स्नेह करनेहारा मूढ़ चित्तवाला पुरुष खल्वाट अर्थात् खौरारोगवाला होताहै व क्लेशित मित्र, बन्धु, स्वामी, स्त्री व सेवकोंको ॥ १९ ॥ छोडकर निवृत्तचित्तवाला पुरुष सदैव क्लेशित जीविकावाला होताहै और जो छलसे माता,पिता,स्वामी व गुरुकी सेवा करता है ॥२०॥ वह बड़े दुःखसे द्रव्यको पाकर धनसे भ्रष्टहोता है विश्वास कियेहुये पुरुषकी द्रव्यको जो हरलेताहै वह दुःखोंका पात्र होता है॥ २१ ॥ और जो सदा कुटिल होकर ब्राह्मणों से भार लेचलाता है वह दुर्बल होता है

व जो गोघाती है वह जन्मान्ध होताहै और गौवोंको जो दुःखदायी होता है वह पशुहीन होताहै ॥ २२ ॥ और जो माघमें गौवोंमें निर्दयी होताहै वह सदैव मार्गमें
कष्टको प्राप्तहोताहै और जो सभामे पक्षपाती होताहै वह गलगण्डरोगी होताहै ॥२३॥ व सदैव क्रोधी पुरुष चाण्डाल होताहै और चुगुली करनेवाला मनुष्य मुखमें दुर्गन्ध-
वाला होताहै व छाग बेचनेवाला पुरुष बहेलिया होताहै और कुण्ड[1] (दोगला) पुरुषके यहां भोजन करनेवाला सेवक होताहै ॥ २४ ॥ नास्तिकपुरुष तिलपीड़क (तेली)
होताहै व श्रद्धाहीन नर आयुर्बलरहित होताहै अभक्ष्य भक्षण करनेवाला नर गण्डमाला रोगवाला होताहै और सबको दुःख करनेवाला दुःखी होताहै ॥२५॥ व अन्याय
से ज्ञान ग्रहण करनेवाला मनुष्य मूर्ख होताहै और शास्त्रोंको चुरानेवाला नर केकराक्ष (कञ्जा) होताहै व जो पुरुष पवित्र कथासे वैर करता है ॥ २६ ॥ नरक से

**घे सदासोध्वसुकष्टगः ॥ पक्षपातीसभायांयो गलगण्डीसजायते ॥ २३ ॥ सदाक्रोधीचचाण्डालः पूतिवक्त्रश्चसूच
कः ॥ अजविक्रयकृद्व्याधः कुण्डाशीभृतकोभवेत् ॥ २४ ॥ नास्तिकस्तिलपीडीस्यादश्रद्धोगतजीवितः ॥ अभक्ष्यादो
गण्डमाली विषादीसर्वदुःखकृत् ॥ २५ ॥ अन्यायतोज्ञानग्राही मूर्खोभवतिमानवः ॥ शास्त्रचौरःकेकराक्षः कथांपुण्यां
चद्वेष्टियः ॥ २६ ॥ कृमिवक्त्रस्सचभवेद्विभ्रष्टोनरकात्कुधीः ॥ देवद्विजगवांवृत्तिहारकोबहुभक्षकृत् ॥ २७ ॥ तडागारा
मभेत्तायो भवेद्विकलपाणिकः ॥ व्यवहारेछलग्राही भृत्यग्रस्तोभवेन्नरः ॥ २८ ॥ सदाप्रमेहरोगीस्यात् परदाररतोन
रः ॥ वातरोगीकुवैद्यःस्याद्दुश्चर्मागुरुतल्पगः ॥ २९ ॥ सदामेहीपशुरतिर्गोत्रस्त्रीमैथुनेपशुः ॥ स्वसारंमातरंपुत्रवधूंग**

भ्रष्टहोकर दुष्ट बुद्धिवाला वह पुरुष कीटमुखवाला होताहै व देवता, ब्राह्मण और गौवोंकी जीविका को हरनेवाला मनुष्य बहुत भोजन करनेवाला होताहै ॥ २७ ॥
और तड़ाग,बगीचा को जो तोडता है वह व्याकुल हाथोंवाला होताहै व व्यवहार में छलको ग्रहण करनेवाला पुरुष सेवकों से ग्रसाहुआ होताहै ॥ २८ ॥ और पराई
स्त्रीसे प्रीति करनेवाला पुरुष सदैव प्रमेहरोगी होताहै व निन्दित वैद्य वातरोगी होताहै और गुरुकी शय्या या स्त्रीमें गमन करनेवाला पुरुष दुष्टचर्मवाला होता
है ॥२९॥ और पशुओं से मैथुन करनेवाला पुरुष सदैव प्रमेही होताहै और वंशवाली स्त्रीसे मैथुन करनेवाला पुरुष पशु होता है और बहन व माता व पतोहू से गमन

१ सौभाग्यवती स्त्री में अन्य पुरुष से उत्पन्न हुये पुत्रको कुण्ड कहते हैं ॥

करनेवाला वीर्यरहित होताहै ॥ ३० ॥ कृतघ्न पुरुष सब कार्यों की निष्फलता को भोग करताहै हे ब्रह्मन् ! मैंने तुमसे पापियों का यही वृत्तान्त वर्णन किया ॥ ३१ ॥
और सब वृत्तान्तके वर्णन करनेमें चित्रगुप्त भी मोहित होतेहैं ये मनुष्य नरकसे भ्रष्टहोकर हज़ारों योनियोंको भोगकर ॥ ३२ ॥ इसप्रकारके लक्षणोंसे चिह्नित होतेहैं जो
धर्मको नहीं मानते हैं और जो व्यसनोंसे जीतेहुयेहैं ॥ ३३ ॥ वे ये शेष पापी पुरुष अनुमानसे जाननेयोग्यहैं और जिनका पाप नाशको प्राप्त होगयाहै व जो स्वर्गसे प्राप्त
हुयेहैं ॥३४॥ वे समस्त दुःखोंसे छूटकर केवल धर्मको भजतेहैं इस विषयमें ये श्लोक कहे हैं कि धर्म व दान से किया हुवा सुख होताहै और अधर्म से दुःखकी उत्पत्ति

घ्नवीर्यवान् ॥ ३० ॥ कृतघ्नस्सर्वकार्याणां विफलंसमुपाश्नुते ॥ इत्येवंतेमयाब्रह्मन् पापिनांपरिकीर्तितः ॥ ३१ ॥
चित्रगुप्तोपिमुह्येत सकलस्यानुवर्णने ॥ एतेनरकविभ्रष्टा भुक्त्वायोनीस्सहस्रशः ॥ ३२ ॥ एवंविधैश्चिह्निताश्च जाय
न्तैर्लक्षणैर्नराः ॥ येहिधर्मन्नमन्यन्ते तथायेव्यसनैर्जिताः ॥ ३३ ॥ अनुमानेनबोद्धव्यास्तएतेशेषपापिनः ॥ येषांत्वन्तं
गतंपापं स्वर्गाद्वायेसमागताः ॥ ३४ ॥ सर्वव्यसननिर्मुक्ता धर्ममेकंभजन्तिते ॥ भवन्तिचात्रश्लोकाः ॥ धर्मदानकृतं
सौख्यमधर्माद्दुःखसम्भवम् ॥ ३५ ॥ तस्माद्धर्मंसुखार्थाय कुर्यात्पापंविवर्जयेत् ॥ लोकद्वयेपियत्सौख्यं तद्धर्मात्
प्रोच्यतेयतः ॥ ३६ ॥ धर्मएवमतिंकुर्यात् सर्वकार्यार्थसिद्धये ॥ मुहूर्त्तमपिजीवेद्धि नरःशुक्लेनकर्मणा ॥ ३७ ॥ नकल्प
मपिजीवेच्च लोकद्वयविरोधिना ॥ इतिपृष्टंत्वयाविप्र यथाशक्त्यामयेरितम् ॥ ३८ ॥ असूक्तंसूक्तमथवाक्षन्तव्यंकिंच
दामिते ॥ नारदउवाच ॥ कमठस्यैतदाकर्ण्य त्वष्टवर्षस्यभाषितम् ॥ ३९ ॥ भगवान्भास्करःप्रीतो बभूवातीवविस्मि

होती है ॥ ३५ ॥ इसलिये सुखके लिये धर्म करै और पापको छोड़ देवै क्योंकि दोनों लोकों में जो सुख होता है वह धर्म से कहा जाता है ॥ ३६ ॥ समस्त कर्मों की
के लिये धर्महीमें बुद्धि करै और शुक्ल याने धर्मके कार्य से मुहूर्तभर जीवै ॥ ३७ ॥ परन्तु दोनों लोकों के वैरी पापसे कल्पभर न जीवै हे विप्रजी ! आपने
पूछा उसको मैंने अपनी शक्ति से वर्णन किया ॥ ३८ ॥ अच्छी भांति न कहा हुवा व भलीभांति कहा हुवा वचन आपसे क्षमा करने योग्यहै अब आपसे मैं
जी बोले कि आठवर्षवाले कमठ का यह वचन सुन कर ॥ ३९ ॥ भगवान् सूर्यनारायण जी प्रसन्न होते हुये बड़े विस्मय में प्राप्त हुये और उन्होंने

उस समय हारीत इत्यादिक ब्राह्मणोंकी प्रशंसा किया ॥ ४० ॥ व मनमें कहा कि अहो ऐसे उत्तम ब्राह्मणों से पृथ्वी धन्य है व ब्रह्मा धन्य हैं कि जिनकी मर्यादा पालन कीजाती है ॥ ४१ ॥ व इस समय इन उत्तम ब्राह्मणों से वेद धन्य हैं कि जिनके मध्य में यह बालक की बुद्धि प्रकटही ऐसी है ॥ ४२ ॥ और हारीत आदिकोंकी क्या बुद्धि होवैगी कि जिनको त्रिलोक का भी वृत्तान्त निस्सन्देह अप्रकट नहींहै ॥ ४३ ॥ जैसा कि नारदने इनको कहा था उससे ये बहुत अधिकहैं इस प्रकार उन ब्राह्मणोंकी प्रशंसा कर प्रसन्न होते हुये सूर्यनारायणजी बोले ॥ ४४ ॥ हे मुख्य ब्राह्मणो ! मैं सूर्य तुम लोगों के दर्शन के लिये सूर्यलोक से प्राप्त हुवाहूं और मुझ

तः ॥ प्रशशंसचतान्विप्रान् हारीतप्रमुखांस्तदा ॥ ४० ॥ अहोवसुमतीधन्या द्विजैरेवंविधोत्तमैः ॥ अथप्रजापतिर्ध न्यो यन्मर्यादाभिपाल्यते ॥ ४१ ॥ अमीभिर्ब्राह्मणवरैर्धन्यावेदाश्चसम्प्रति ॥ येषांमध्येबालबुद्धिरियमेतादृशीस्फु टा ॥ ४२ ॥ हारीतप्रमुखानांहि कावैबुद्धिर्भविष्यति ॥ असंशयंत्रिलोकस्य येषामविदितन्नहि ॥ ४३ ॥ यथैतान्नारदः प्राह भूयस्तस्मादमीबहु ॥ इतिप्रशस्यतान्विप्रान्प्रहृष्टोरविरब्रवीत् ॥ ४४ ॥ अहंसूर्योविप्रमुख्या युष्माकंदर्शनंकृ ते ॥ समागतस्सूर्यलोकात्प्राप्तंनेत्रफलंचमे ॥ ४५ ॥ भवद्भिर्वैविप्रमुख्यैस्सजल्पनसहासनात् ॥ अन्त्यजाअपिपूयन्ते किम्पुनर्मादृशाद्विज ॥ ४६ ॥ सर्वथानारदोधन्यो योसौत्रैलोक्यतत्त्ववित् ॥ युष्माभिर्वर्द्धतेश्रेयो यस्यवैधृत्यदानव त् ॥ ४७ ॥ प्रणमामिचवःसर्वान्मनोबुद्धिसमाधिभिः ॥ तपोवृत्तञ्चवार्द्धक्यं यतोवार्द्धक्यकारणम् ॥ ४८ ॥ वरंमत्तोवृ णीध्वञ्च दुर्लभंयंहृदीच्छथ ॥ यूयंस्वयंहिवरदा मत्सङ्गोमास्तुनिष्फलः ॥ ४९ ॥ देवतानांहिसंसर्गो निष्फलोनोपपद्य

को नेत्रोंका फल मिलगया ॥ ४५ ॥ हे द्विज ! तुम्हारे समान मुख्य ब्राह्मणों के साथ वार्तालाप करने से व साथ बैठने से चाण्डाल भी पवित्र होजाते हैं फिर मेरे सरीखे जनों को क्या कहना है ॥ ४६ ॥ नारद मुनि सब प्रकार से धन्य हैं जो ये कि त्रिलोक के तत्त्व को जाननेवाले है जिनका पुण्य कि तुम लोगों से वैधृत्य योग में दान की नाईं बढ़ता है ॥ ४७ ॥ मैं तुम सबों को मन, बुद्धि व समाधि से प्रणाम करता हूं क्योंकि तपस्या, आचरण व वृद्धता बुढ़ापे का कारण है ॥ ४८ ॥ जिस दुर्लभ वरदानको तुम हृदय मे चाहतेहो उसको मुझसे मागिये तुमलोग आपही वरदायकहो परन्तु मेरा संग मत निष्फल होवै ॥ ४९ ॥ क्योंकि देवताओंका

संग निष्फल नहीं सिद्ध होता है इसलिये मुझसे किसी वरदानको मांगिये मै उसे तुमलोगों को दूंगा ॥ ५० ॥ नारदजी बोले कि सूर्यनारायणका यह वचन सुनकर प्रसन्न होतेहुये उन द्विजोत्तमोंने बड़ी भक्ति से पाद्य, अर्घ, स्तुति व चन्दन से भलीभाति पूजनकर ॥ ५१ ॥ मंडलादिक महाजपों को जपते हुये उन्होंने सूर्यनारायण से कहा कि हे आदित्य ! आपकी जयहो व हे भानो ! तुम्हारी जयहो, हे अमल ! आपकी जयहो ॥ ५२ ॥ हे वेदपते, सूर्यनारायणजी ! आपकी जयहो हे दिनपते ! हमलोगों को तारिये तुम ब्राह्मणों के उत्तम देवताहो और ब्राह्मणों की सृष्टि त्वन्मय है याने उस सृष्टिमें आपही प्रधानहो ॥ ५३ ॥ तुमसे देखाहुआ यह हम लोगों

ते ॥ तस्मान्मत्तोवरंकिञ्चिद्वृणुध्वंप्रददामिवः ॥ ५० ॥ नारदउवाच ॥ इतिसूर्यवचःश्रुत्वा प्रहृष्टास्तेद्विजोत्तमाः ॥ सम्पूज्यपरयाभक्त्या पाद्यार्घस्तुतिचन्दनैः ॥ ५१ ॥ मण्डलादीन्महाजप्यान् गृणन्तःप्रोचिरेरविम् ॥ जयादित्यजयस्वामिञ्जयभानोजयामल ॥ ५२ ॥ जयवेदपतेसूर्यतारयास्मानहर्पते ॥ विप्राणांत्वंपरोदेवो विप्रसर्गोपित्वन्मयः ॥ ५३ ॥ नितरांपूतमेतन्नः स्थानंचेदंत्वयेक्षितम् ॥ अद्यनःसफलावेदा अद्यनःसफलाःक्रियाः ॥ अद्यनस्सफलंगेहं त्वयासङ्गस्यगोपते ॥ ५४ ॥ वरंयदिप्रदातासितदेनंप्रवृणीमहे ॥ अस्माकन्तुत्वयास्थानं नत्याज्यंहिकथञ्चन ॥ ५५ ॥ श्रीसूर्यउवाच ॥ यस्माद्भवद्भिःपूर्वन्तु जयादित्येतिप्रोदितम् ॥ जयादित्यइतिख्यातस्तस्मात्स्थास्येत्रसर्वदा ॥५६॥ यावन्महीसमुद्राश्च पर्वतानगराणिच ॥ तावत्स्थास्यामिहेविप्रा नहित्यक्ष्यामिकर्हिचित ॥ ५७ ॥ दारिद्र्यरोगसङ्घातान् दद्रूचकुष्ठमण्डलम् ॥ कुष्ठादीन्नाशयिष्यामि भजतामत्रसंस्थितः ॥ ५८ ॥ योमामत्रस्थितञ्चापि पू

अत्यन्त पवित्र होगया आज हमलोगों के वेद सफल होगये और आज हमारे कर्म सफल होगये हे गोपते ! आज आपसे समागम होकर हम लोगों का [illegible] गया ॥ ५४ ॥ यदि वरदान को देतेहो तो हम इस वरको मांगते हैं हमलोगों का स्थान तुमको किसी प्रकार न छोड़ना चाहिये ॥ ५५ ॥ श्रीसूर्यनारा- [illegible]लिये आप लोगों ने पहले जयादित्य ऐसा कहा उसी कारण यहां जयादित्य ऐसा प्रसिद्ध मैं सदैव टिकूंगा ॥ ५६ ॥ हे ब्राह्मणो ! जबतक पृथ्वी, [illegible] मैं टिकूंगा किसी प्रकार नहीं छोड़ूंगा ॥५७॥ व यहांपर भलीभांति टिकाहुआ मैं भजनेवाले पुरुषों के दारिद्र्य व रोगसमूहोंको व दाद व [illegible]

कुष्ठ के मण्डल इत्यादिक कुष्ठोंको नाश करूंगा ॥ ५८ ॥ और यहां टिकेहुये मुझ को जो मनुष्य पूजैगा उसकी पूजाको मैं सूर्यलोक से आकर ग्रहण करूंगा ॥ ५९ ॥
नारदजी बोले कि भगवान् सूर्यनारायण के ऐसा कहनेपर हारीतादिक द्विजोत्तमों ने वेदमें कहीहुई विधिसे मूर्त्तिको स्थापन किया ॥ ६० ॥ तदनन्तर ब्राह्मणों ने ऐसा
कहा कि हे कमठ! तुम्हारे लिये सूर्यनारायण स्वामी यहां स्थितहैं इस लिये पहले तुम सूर्यनारायणसे बोलो ॥ ६१ ॥ समस्त ब्राह्मणों से ऐसा कहेहुये उत्तम बोलने
वाले कमठने जयादित्य को प्रणामकर इस महास्तोत्र को गाया ॥ ६२ ॥ कि हे आदिदेव! तुम देखे नहीं गयेहो केवल भलीभांति यजुर्वेद में सुनेगयेहो ऐसा विद्वान्

जयिष्यतिमानवः ॥ सूर्यलोकात्समागत्य पूजांतस्यभजाम्यहम् ॥ ५९ ॥ नारदउवाच ॥ एवमुक्तेभगवता हारीताद्या
द्विजोत्तमाः ॥ मूर्त्तिंसंस्थापयामासुर्वेदोदितविधानतः ॥ ६० ॥ ततोद्विजाःप्राहुरेवं कमठत्वत्कृतेरविः ॥ अत्रस्वामीस्थित
स्तस्मात्प्रथमंब्रूहित्वंरविम् ॥ ६१ ॥ इत्युक्तोब्राह्मणैस्सर्वैःकमठोवाग्मिनांवरः ॥ प्रणिपत्यजयादित्यं महास्तोत्रमिदंज
गौ ॥ ६२ ॥ त्वन्नैवदृष्टःकेवलःसंश्रुतश्चयजुष्येवंव्याहरन्त्यादिदेव ॥ चतुर्विधाभारतीदूरदूरं धृष्टःस्तौमिस्वार्थकामःक्ष
मैतत् ॥ ६३ ॥ मार्त्तण्डसूर्यांशुरविस्तथेन्द्रो भानुर्भगश्चार्यमास्वर्णरेताः ॥ दिवाकरोमित्रविष्णुश्चदेवख्यातस्त्वंवै
द्वादशात्मानमस्ते ॥ ६४ ॥ लोकत्रयंवैतवगर्भगेहं पयोधरःप्रोच्यतेरन्ध्रमुग्रम् ॥ नक्षत्रमालाकुसुमाभिमाला तस्मै
नमोव्योमलिङ्गायतुभ्यम् ॥ ६५ ॥ त्वन्देवदेवस्त्वमनाथनाथस्त्वंपाह्युपायैःकृपणान्कृपालुः ॥ त्वंनेत्रनेत्रंजनबुद्धिबुद्धि
बुद्धेःपरस्त्वंजयजीवजीव ॥ ६६ ॥ दारिद्र्यदारिद्र्यनिधेर्निदानं रोगप्रयोगःप्रथितःपृथिव्याम् ॥ चिरञ्जयादित्यजयाप्र

कहते हैं व चार प्रकारकी वाणी बहुत दूर रहती है और स्वार्थ में परायण मैं ढीठ होकर स्तुति करताहूँ इसको क्षमा करियेगा ॥ ६३ ॥ हे देव! मार्तण्ड,सूर्य,अंशु,रवि,
इन्द्र, भानु, भग, अर्यमा, स्वर्णरेता, दिवाकर, मित्र व विष्णु तुम द्वादशात्मा प्रसिद्धहो तुम्हारे लिये नमस्कारहै ॥ ६४ ॥ तीनोंलोक तुम्हारा वासगृहहैं और मेघ
उग्रछिद्र कहा जाता है और नक्षत्रोंका समूह फूलोंकी माला है उन आकाश चिह्नवाले तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥ ६५ ॥ तुम देवताओं के देवताहो और अनाथों के
नाथहो और दयालु तुम दीन मनुष्यों की यत्नों से रक्षा करतेहो नेत्रोंके तुम नेत्रहो व मनुष्यों की बुद्धिकी बुद्धिहो और बुद्धिसे परेहो हे जीवके जिलानेवाले सूर्य!

तुम्हारी जयहो ॥ ६६ ॥ दरिद्रके भी दरिद्रके आदि कारणहो व रोगके प्रयोग पृथ्वी में प्रसिद्धहो हे आदित्य ! बहुत समयतक तुम उत्कर्षको प्राप्तहोवो हे अप्रमाणवाले
सूर्य ! तुम्हारी जयहो व्याधिसे ग्रसेहुये व रोगोंसे तिरस्कृत व टूटी नासिकावाले व भग्नशरीरवाले तथा चैतन्यतारहित पुरुषको माता पिता व भाई छोड़ देते हैं
व हे सूर्यनारायण, देव ! सबों से त्यागे हुये पुरुषको तुम पालतेहो इस लिये तुमसे अन्य और कौन देवता आपसे श्रेष्ठहै ॥ ६७।६८ ॥ तुम मेरे पिताहो व तुम माताहो
तुम मेरे गुरुहो और तुम्ही भाईहो, तुम मेरा धर्महो और तुम मेरा मोक्षमार्गहो हे देव ! मैं तुम्हारा सेवकहूँ त्यागिये या रक्षाकीजिये ॥ ६९ ॥ मैं पापीहूँ और मूढहूँ,

मेय व्याधिग्रस्तंकुष्ठरोगाभिभूतम् ॥ ६७ ॥ भग्नघ्राणंशीर्णदेहंविसंज्ञं मातापिताबान्धवास्सन्त्यजन्ति ॥ सर्वैस्त्य
क्तंपासिदेवविवस्वंस्त्वत्तोदेवःकोस्तिश्रेष्ठस्त्वदन्यः॥ ६८ ॥ त्वंमेपितात्वंजननीत्वमेव त्वंमेगुरुर्बान्धवाश्चत्वमेव ॥ त्वंमेध
र्मस्त्वञ्चमेमोक्षमार्गो दासस्तुभ्यंत्यजवारक्षदेव ॥ ६९ ॥ पापोस्मिमूढोस्मिमहोग्रकर्मा रौद्रोस्मिपापस्यनिधानम
स्मि ॥ तथापिनित्यंप्रणिपत्यपादयोर्भजामिभक्तान्पालयश्रीजयार्क ॥ ७० ॥ नारदउवाच ॥ एवंस्तुतोजयादित्यःकमठे
नमहात्मना ॥ स्निग्धगम्भीरयावाचा प्राहतंप्रहसन्निव ॥ ७१ ॥ जयादित्याष्टकमिदं यत्त्वयापरिकीर्तितम् ॥ अनेनं
स्तोष्यतेयस्तु भुवितस्यनदुर्लभम् ॥ ७२ ॥ रविवारेविशेषेणमांसमभ्यर्च्ययःपठेत् ॥ तस्यरोगाःप्रणश्यन्तिदारिद्र्यंच
नसंशयः ॥ ७३ ॥ त्वयाचतोपितोवत्स तवदद्मिवरन्त्वमुम् ॥ सर्वज्ञोभुविभूत्वात्वंततोमुक्तिमवाप्स्यसि ॥ ७४ ॥ त्वत्पिताप्यमू

बड़े भयङ्कर कर्मोंका करनेवाला हूँ, भयानक हूँ व पापकी खानिहूँ तौभी नित्यही प्रणामकर मैं तुमको भजताहूं भक्तोंको पालिये हे श्रीसूर्यनारायणजी ! आपकी जय
हो ॥ ७० ॥ नारदजी बोले कि इस प्रकार कमठ महात्मासे स्तुति कियेहुये जयादित्य जी हँसते हुयेसे स्नेहयुक्त के समान गम्भीर वाणीसे उस कमठ से बोले ॥ ७१ ॥
कि तुमने जो यह जयादित्याष्टक कहा है इससे जो स्तुति करैगा उसको पृथ्वी में कुछ दुर्लभ न होगा ॥ ७२ ॥ और विशेषकर रविवार के दिन मुझको जो भली
भांति पूजकर पढ़ै है उसके रोग व दारिद्र्य निस्सन्देह नाश होजाते हैं ॥ ७३ ॥ हे वत्स ! तुमसे प्रसन्न कराया हुआ मैं तुमको इस वरदानको देताहूँ कि पृथ्वीमें सर्वज्ञ

होकरे तदनन्तर तुम मुक्तिको पावोगे ॥ ७४ ॥ और तुम्हारा पिता कभी स्मृतिकारक होगा व हे वत्स ! मैं इस स्थानको कभी नहीं छोडूंगा ॥७५॥ ऐसा कहकर वे ब्राह्मणों से पूजित व स्तुति कियेहुये प्रभु भगवान् सूर्यनारायणजी उन द्विजेन्द्रों से आज्ञा लेकर वहीं अन्तर्द्धान होगये ॥ ७६ ॥ हे अर्जुनजी ! इस प्रकार इस पृथ्वी में जयादित्य जी कुँवारमहीने में उत्पन्नहुये हैं इस लिये यहांपर वह महीना बड़ा विशेषहै॥७७॥कुँवार महीने में रविवार के दिन जो जयादित्य को पूजता है वह मनुष्य करोड़ तीर्थोंमें नहाकर बड़ेभारी फलको भोगता है ॥ ७८ ॥ लालमालाओं करके पूजनसे व लालचन्दन, कुंकुम के लेपसे व सुगन्धित धूपों से व घीमें पकाये हुये नैवेद्यों

तिकारश्च कदाचित्प्रभविष्यति ॥ नचैतत्स्थानकंवत्स परित्यक्ष्यामिकर्हिचित् ॥ ७५ ॥ एवमुक्त्वासभगवान् ब्राह्मणै रर्चितःस्तुतः ॥ अनुज्ञाप्यद्विजेन्द्रांस्तांस्तत्रैवान्तर्दधेप्रभुः ॥ ७६ ॥ एवंपार्थसमुत्पन्नो जयादित्योऽत्रभूतले ॥ आश्विने मासितस्मात्समासोत्रातिविशिष्यते ॥ ७७ ॥ आश्विनेभानुवारेण योजयादित्यमर्चयेत् ॥ कोटितीर्थेनरःस्नात्वा सुमहत्फलमश्नुते ॥ ७८ ॥ पूजनाद्रक्तमाल्यैश्च रक्तचन्दनकुङ्कुमैः ॥ लेपनाद्गन्धधूपाद्यैर्नैवेद्यैर्घृतपाचितैः ॥ ७९ ॥ ब्रह्मघ्नश्चसुरापश्चस्तेयीचगुरुतल्पगः ॥ मुच्यतेसर्वपापेभ्यस्सूर्यलोकंसगच्छति ॥ ८० ॥ पुत्रदारधनान्यायुः प्राप्यसंसारकंसुखम् ॥ इष्टैःकामैस्समायुक्तः सूर्यलोकेवसेच्चिरम् ॥८१॥सर्वेषुरविवारेषु जयादित्यस्यदर्शनम् ॥ कीर्त्तनंस्मरणंचापि सर्वरोगोपशान्तिदम् ॥ ८२ ॥ अनादिनिधनन्देवमव्यक्तंतेजसान्निधिम् ॥ भक्त्यार्चयन्तिलीयन्ते सौरस्थानेनिरामये ॥ ८३ ॥ सूर्योपरागेसम्प्राप्तेरविकूपेसमाहितः ॥ स्नानंयःकुरुतेपार्थ होमंकुर्यात्प्रयत्नतः ॥८४॥ दानंचैवयथाशक्त्या

से ॥ ७९ ॥ ब्रह्मघाती, मदिरा पीनेवाला व चोर और गुरुकी शय्यापै बैठनेवाला पुरुष सब पातकों से छूटजाता है और वह सूर्यलोकको जाताहै ॥ ८० ॥ व पुत्र, स्त्री, धन, आयुर्बल व संसारी सुखको पाकर प्रियकामों से संयुक्त वह बहुत दिनोंतक सूर्यलोकमें बसता है ॥ ८१ ॥ सब रविवारों में जयादित्य का दर्शन, कीर्तन व स्मरण भी समस्त रोगोंकी शांतिका दायक है ॥ ८२ ॥ जन्म व मृत्युरहित, अव्यक्त तथा तेजोंके निधान सूर्यदेवको जो भक्तिसे पूजते हैं वे रोगरहित सूर्य के स्थानमें लीन होते हैं ॥ ८३ ॥ हे अर्जुनजी ! सूर्यग्रहण प्राप्तहोने पर सावधान होताहुआ जो मनुष्य सूर्यकूपमें स्नान करता है व बड़े उपाय से होम करता है ॥ ८४ ॥ और

जयादित्य के आगे स्थित होकर जो यथाशक्ति से दान करताहै हे अर्जुनजी ! तुम सावधानमनवाले हो व उसके पुण्यके माहात्म्य को सुनिये ॥ ८५ ॥ कुरुक्षेत्र में जो पुण्यहोती है व प्रभास, पुष्कर, काशी, प्रयाग और नैमिष में जो पुण्य प्राप्तहोती है ॥ ८६ ॥ उस पुण्यको मनुष्य जयादित्य की प्रसन्नता से प्राप्तहोता है ॥ ८७ ॥

इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांजयादित्यमाहात्म्यवर्णनन्नामषट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥ ● ॥ ❀ ॥

दो० । कोटितीर्थकर अहै जो अतुल अमित परभाव । सैंतालिस अध्याय में सोई चरित सुहाव ॥ अर्जुनजी बोले कि हे मुने ! कोटितीर्थ किसप्रकार उत्पन्नहुआ

जयादित्याग्रतःस्थितः ॥ तस्यपुण्यस्यमाहात्म्यं शृणुष्वैकमनाभव ॥ ८५ ॥ कुरुक्षेत्रेचयत्पुण्यंप्रभासेपुष्करेऽपि ॥ वाराणस्याञ्चयत्पुण्यं प्रयागेनैमिषेपिवा ॥ ८६ ॥ तत्पुण्यंलभतेमर्त्यो जयादित्यप्रसादतः ॥ ८७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेजयादित्यमाहात्म्यन्नामषट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥ * ॥ * ॥

अर्जुनउवाच ॥ कोटितीर्थंकथंजातं केनवानिर्मितम्पुरा ॥ कस्माद्वाकोटितीर्थानां फलमत्रोच्यतेमुने ॥ १ ॥ नारदउवाच ॥ यदामेस्थापितंस्थानं प्रसाद्याथमयाप्रभुः ॥ ब्रह्मलोकात्समानीतस्साक्षाद्ब्रह्मापितामहः ॥ २ ॥ ततोमध्याह्नसमयेस्नानार्थंसगतान्विधिः ॥ ३ ॥ सस्मारकोटितीर्थानि स्मृतान्यत्रागतानिच ॥ स्वर्गाच्चदशलक्षाणि सप्ततिश्चमहीतलात् ॥ ४ ॥ पातालाद्विंशलक्षाणि स्मृतान्यभ्यागतानिच ॥ अनेनप्रविभागेन लिङ्गान्यपिकुरूद्वह ॥५॥ आयातानिततोदृष्ट्वा विविधानिपितामहः॥ततोभिषेचनंकृत्वालिङ्गान्यभ्यर्च्यपद्मभूः ॥ ६ ॥ मध्याह्नकृत्यंसंसाध्य ममप्रे

है व पुरातन समय किसने निर्माण कियाहै और किस लिये यहांपर करोड़ों तीर्थों का फल कहा जाता है ॥ १ ॥ नारदजी बोले कि जब मैंने स्थानको स्थापन किया इसके अनन्तर मैंने साक्षात् प्रभु, पितामह ब्रह्माजी को प्रसन्न कराकर ब्रह्मलोकसे भलीभांति लाया ॥ २ ॥ तदनन्तर मध्याह्न समय में स्नानके लिये भगवान् ब्रह्माजीने ॥ ३ ॥ कोटितीर्थोंको स्मरण किया और स्मरण कियेहुये वे तीर्थ यहां आगये दशलाख तीर्थ स्वर्ग से आये व सत्तरलाख भूतल से आये ॥ ४ ॥ व स्मरण किये हुये बीसलाख तीर्थ पातालसे आये व हे कुरूद्वह ! इसी विभाग से लिंगभी आये ॥ ५ ॥ तदनन्तर उन विविध लिंगोंको देखकर कमल से उपजेहुये ब्रह्माजीने स्नान

कर तदनन्तर लिंगोंको पूजकर ॥ ६ ॥ मध्याह्न कार्यको साधनकर मुझको प्रेमसे वरदान दिया तदनन्तर भगवान् ब्रह्माजी ने यहा मनसे तडाग निर्माण किया ॥ ७ ॥ और पूजित तीर्थोंने भगवान् ब्रह्माजी से यह कहा कि हे भगवन्, ब्रह्माजी! हमलोग क्या करैं हे प्रभो! हम सबको आज्ञा दीजिये ॥ ८ ॥ उन तीर्थों के उस वचनको सुनकर प्रजापति ब्रह्माजी ने कहा कि सब तीर्थोंको इस तडाग में यहा टिकना चाहिये ॥ ९ ॥ और सब लिगोंको एक लिगमें स्थित होना चाहिये कि जिसके पूजन से व करोड़ तीर्थो के स्नान से व करोड लिगोंके पूजन से ॥ १० ॥ व दानसे जो फल होताहै वह यहांपर होगा यदि मेरा वचन सत्य है और जो यहां विधिपूर्वक

ध्यणावरन्ददौ ॥ ततोभगवताह्यत्र मनसानिर्मितंसरः ॥ ७ ॥ भगवानर्चितैस्तीर्थैरिदमूचेप्रजापतिः ॥ किंकुर्मोभगवन्धा तरादेशंदेहिनःप्रभो ॥ ८ ॥ तेषांतद्वचनंश्रुत्वा ब्रह्माप्राहप्रजापतिः ॥ एतस्मिन्सरसिस्थेयं तीर्थैस्सर्वैरथात्रच ॥ ९ ॥ एकस्मिश्चतथालिङ्गेसर्वलिङ्गैःसमर्चनात् ॥ कोटीनामेवतीर्थानां लिङ्गानांस्नानपूजया ॥ १० ॥ दानेनचफलंतत्र यदि सत्यंवचोमम ॥ श्राद्धंय कुरुतेचात्र पिण्डदानंयथाविधि ॥ ११ ॥ पितॄणामक्षयातृप्तिर्जायतेनात्रसंशयः ॥ स्नात्वातु योर्चयेद्देवं कोटीश्वरमनन्यधीः ॥ १२ ॥ कोटिलिङ्गार्चनफलं व्यक्तंतस्योपजायते ॥ त्रैलोक्येयानिलिङ्गानि गङ्गाद्या स्सरितस्तथा ॥ १३ ॥ तेषांमफलमाप्नोति कोटितीर्थावगाहनात् ॥ एवंदत्त्वावरंब्रह्मा ब्रह्मलोकंययौप्रभुः ॥ १४ ॥ को टितीर्थंप्रसञ्जातं ततप्रभृतिविश्रुतम् ॥ अस्मिंस्तीर्थेचपुण्यार्थं ब्रह्माद्यादेवसत्तमाः ॥ १५ ॥ यज्ञान्बहुविधान्कृत्वा ततस्सिद्धिंपरांययुः ॥ वसिष्ठाद्यैर्मुनिवरैस्तपश्चीर्णंपुरानघ ॥ १६ ॥ मनसोभीप्सितान्कामान्प्रापुरन्येतपोधनाः ॥ अ

श्राद्ध व पिण्डदान करता है ॥ ११ ॥ तो उसके पितरोंकी अक्षय तृप्ति होती है इसमें सन्देह नहीं है व एकाग्र बुद्धिवाला जो पुरुष नहाकर कोटीश्वर देवको पूजता है ॥ १२ ॥ उसको प्रकटही करोड़ लिंगों के पूजनका फल होता है त्रिलोकमें जो लिंग हैं व गङ्गादिक जो नदियां हैं ॥ १३ ॥ उनके फलको वह मनुष्य कोटितीर्थ के स्नानसे प्राप्तहोता है इस प्रकार वरदानको देकर प्रभु ब्रह्माजी ब्रह्मलोकको चलेगये ॥ १४ ॥ तबसे लगाकर कोटितीर्थ प्रसिद्ध हुआ है इस तीर्थमें पुण्यके लिये ब्रह्मादिक देवतोत्तम ॥ १५ ॥ बहुत प्रकारके यज्ञोंको करके तदनन्तर बड़ी सिद्धिको प्राप्तहुये व हे पापरहित अर्जुनजी! पुरातन समय यहा पर वसिष्ठादिक उत्तम मुनियोंने तपस्या

किया है ॥ १६ ॥ व तपस्यारूप धनवाले अन्य मुनियों ने मनके अभिलाषोंको पाया है हे अर्जुनजी ! पुरातन समय अत्रिमुनि ने यहां तपस्या कियाहै ॥ १७ ॥ व उन्हों ने कोटितीर्थ से दक्षिण और महापापहारी अत्रीश्वर सञ्ज्ञक उत्तम लिंगको थापाहै ॥ १८ ॥ और उस लिंगको थापकर उन्हों ने आगे तड़ाग निर्माण किया है उसमें नहाकर जो मनुष्य बड़े उपायसे अत्रीश्वर लिंगको भलीभांति पूजकर श्राद्ध करता है वह बहुत दिनोंतक शिवलोक में बसताहै व भारद्वाज मुनिने कोटितीर्थ तड़ाग के समीप ॥ १९ । २० ॥ तप किया है व हे महाबाहो ! उन्हों ने यज्ञोंको किया है और भारद्वाजेश्वर नामक मनोहर लिंग को स्थापित किया है ॥ २१ ॥ और

स्मिंस्तीर्थेपुरापार्थ अत्रिणाविहितन्तपः ॥ १७ ॥ कोटितीर्थाद्दक्षिणतः स्थापितंलिङ्गमुत्तमम् ॥ अत्रीश्वराभिसंज्ञन्तु महापापहरंपरम् ॥ १८ ॥ स्थापयित्वाचतंलिङ्गमग्रेचक्रेसरोवरम् ॥ तत्रस्नात्वाचयोमर्त्यः श्राद्धंकुर्यात्प्रयत्नतः ॥ १९ ॥ अत्रीश्वरंसमभ्यर्च्य रुद्रलोकेवसेच्चिरम् ॥ भारद्वाजेनमुनिना कोटितीर्थसरोवरे ॥ २० ॥ तपश्चीर्णंमहाबाहो यज्ञाश्च विहिताःकिल ॥ भारद्वाजेश्वरंलिङ्गं स्थापितंसुमनोहरम् ॥ २१ ॥ तत्रकृत्वासरोरम्यं परांमुदमवाप्तवान् ॥ तत्रस्नात्वा नरोभक्त्याश्राद्धं कुर्याद्विधानतः ॥ २२ ॥ भारद्वाजेश्वरम्पूज्य शिवलोकेमहीयते ॥ ततश्चकोटितीर्थेस्मिन् गौतमो भगवानृषिः ॥ २३ ॥ अतप्यततपोघोरमहल्यासङ्गमाशया ॥ तत्कामंप्राप्तवान्धीमान् परांमुदमुपागतः ॥ २४ ॥ अहल्यायाःसमायोगमस्यतीर्थप्रभावतः ॥ अस्मिन्क्षेत्रेमहालिङ्गं गौतमेश्वरसंज्ञकम् ॥ २५ ॥ स्थापयामासभगवानहल्यासरसस्तटे ॥ अर्जुनउवाच ॥ अहल्ययाकदाब्रह्मन्खानितंवैमहत्सरः ॥ २६ ॥ तन्ममाख्याहिसकलमहल्या

उन्हों ने वहां मनोहर तड़ाग करके उत्तम आनन्द को पाया है वहां नहाकर जो मनुष्य भारद्वाजेश्वर को पूजकर विधिसे भक्तिपूर्वक श्राद्ध करता है वह शिवलोक में पूजाजाता है तदनन्तर इस कोटितीर्थ में भगवान् गौतमऋषिने ॥ २२ । २३ ॥ अहल्या के समागमकी आशा से भयङ्कर तप किया व उन बुद्धिमानने उस मनोरथ को पाया और वे परम प्रसन्नताको प्राप्त हुये ॥ २४ ॥ इस तीर्थके प्रभाव से अहल्या का संयोग हुआ है और भगवान् गौतममुनि ने अहल्यातड़ाग के किनारेपै गौतमेश्वर नामक महालिंगको स्थापन किया है अर्जुनजी बोले कि हे ब्रह्मन् ! अहल्या से किस समय बड़ाभारी तड़ाग बनवाया गयाहै ॥ २५ । २६ ॥ अहल्यातड़ाग

के उस सम्पूर्ण कारणको मुझसे कहिये नारदजी बोले कि हे अर्जुनजी ! गौतमजी से अहल्या शापको प्राप्तहुई हैं यह प्रकटहै ॥ २७ ॥ कि पुरातनसमय इन्द्रके संयोग में वे अहल्याजी बड़े दुःखको प्राप्तहुई हैं तदनन्तर उन दुःखित मुनिने कोटिसंज्ञक तीर्थमें तप किया है ॥ २८ ॥ हे अर्जुनजी ! उस तपस्या से अहल्याके साथ संयोग को प्राप्तहुये तदनन्तर परमप्रसन्न होतीहुई उन पतिव्रता अहल्याजी ने इस क्षेत्रमें तीर्थों के जलोंसे पूर्ण बड़े पुण्यदायक तड़ागको कियाहै जो पुरुष अहल्यातड़ागमें स्नान व पिण्डदान करता है ॥ २९ । ३० ॥ वह गौतमेश्वर शिवजीको भलीभांति पूजकर ब्रह्मलोकको जाताहै हे नरश्रेष्ठ ! इसके उपरान्त अनेक मुनिभी कोटितीर्थ

हृदकारणम् ॥ अहल्याशापमापन्ना गौतमात्किलफाल्गुन ॥ २७॥ पुराचेन्द्रसमायोगे परन्दुःखमुपागता ॥ ततो दुःखीचसमुनिः कोटितीर्थेकरोत्तपः ॥ २८ ॥ तपसातेनवैपार्थ अहल्यासहसङ्गतः ॥ ततस्साध्वीपरंहृष्टा अत्रक्षेत्रेस रोवरम् ॥ २९ ॥ चकारसुमहत्पुण्यं तीर्थोदैःपरिपूरितम् ॥ अहल्यासरसिस्नानं पिण्डंदानंसमाचरेत् ॥ ३० ॥ गौतमे शंचसम्पूज्य ब्रह्मलोकंसगच्छति ॥ कोटितीर्थेनरश्रेष्ठ अनेकमुनयोप्यतः ॥ ३१ ॥ तपस्तप्त्वासुघोरञ्च परांसिद्धिमु पागताः ॥ राजभिर्बहुभिःपूर्वं तपोदानंतथाध्वराः ॥ ३२ ॥ अस्मिंस्तीर्थेसुविहिताः परांसिद्धिमुपागताः ॥ अस्यतीरेद्वि जंचैकं मिष्टान्नैर्यश्चतर्प्पयेत् ॥ ३३ ॥ तेनश्रद्धासहायेन कोटिर्भवतितर्प्पिता ॥ इष्ट्वात्रयज्ञमेकन्तु कोटियज्ञफलंभवेत् ॥ ३४ ॥ कन्यांब्राह्मेणविधिना दत्त्वाकोटिगुणंफलम् ॥ सर्वदानंकोटिगुणं कोटितीर्थेभवेद्यतः ॥ ३५ ॥ स्वर्गेमर्त्येचपाताले तस्मादेतत्सुदुर्लभम् ॥ ३६ ॥ इतिश्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेकोटितीर्थमाहात्म्यन्नाम सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥

में ॥ ३१ ॥ बडी विकराल तपस्याकर उत्तम सिद्धिको प्राप्तहुये हैं व पुरातन समय बहुत राजाओं ने तपस्या, दान व यज्ञोंको ॥ ३२ ॥ इस तीर्थमें किया है और वे परम सिद्धिको प्राप्तहुये हैं इस तड़ागके किनारे जो पुरुष मिष्टान्नों से एक ब्राह्मणको तृप्तकरता है ॥ ३३ ॥ श्रद्धा सहायवाले उस पुरुषसे करोड़ ब्राह्मण तृप्त किये गये और यहां पर एक यज्ञकरके कोटियज्ञों का फल होताहै ॥ ३४ ॥ और वेदकी विधिसे कन्याको देकर कोटिगुना फल होताहै क्योंकि कोटितीर्थ में सब दान कोटिगुना होताहै ॥ ३५ ॥ इस लिये स्वर्ग व मृत्युलोक और पाताल मे यह तीर्थ बहुत दुर्लभहै ॥ ३६ ॥ इति श्रीकोटितीर्थमाहात्म्यवर्णनन्नामसप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥

दो०। शालाएँ थाप्यो यथा नारद तीनहुँ देव। अरतालिस अध्याय में सोइ चरित सुखदेव॥ नारदजी बोले कि इसके अनन्तर अन्य उत्तम शाला स्थानको क-
हूँगा॥१॥ पुरातन समय स्थानके भलीभांति स्थापित करनेपर द्विजोत्तमोंने मुझसे कहा कि हे सुव्रत! स्थानकी रक्षाके लिये यत्न कीजिये॥२॥ तदनन्तर मैंने प्रतिज्ञा
किया कि स्थानकी रक्षाकरूंगा पश्चात् मैंने ब्रह्मा, विष्णु व शिवजी का आराधन किया॥३॥ तदनन्तर एकाग्र चित्तसे आराधन किये हुये वे तीनों सुरोत्तम प्रसन्न
हुये इसके अनन्तर भलीभांति आकर वे मुझसे बोले कि हे नारदजी! वरदान मांगिये॥४॥ उनको पूजकर मैंने कहा कि स्थानकी रक्षा कीजावै बहुत प्रसन्न कराये

नारदउवाच॥ अथान्यत्संप्रवक्ष्यामि शालामाहात्म्यमुत्तमम्॥१॥ संस्थापितेपुरास्थाने प्रोक्तोहंद्विजपुङ्गवैः॥
स्थानस्यरक्षणार्थाय ह्युपायंकुरुसुव्रत॥२॥ ततोमयाप्रतिज्ञातं करिष्येस्थानरक्षणम्॥ आराधितामयापश्चाद्ब्र
ह्मविष्णुमहेश्वराः॥३॥ त्रयस्त्वेकाग्रचित्तेन ततस्तुष्टास्सुरोत्तमाः॥ समागम्याथमाम्प्रोचुर्नारदव्रियतांवरः॥४॥
प्रोक्तंतानर्च्यचमया क्रियतांस्थानरक्षणम्॥ अयमेववरोमह्यं देयोदेवैस्सुतोषितैः॥५॥ स्थानलोपोयथानस्याद्य
थाकीर्त्तिर्भवेन्मम॥ एवमस्त्वितिदेवेशैः प्रतिज्ञातंतदामुने॥६॥ स्वांशेनप्रकरिष्यामो द्विजानांपरिरक्षणम्॥ एव
मुक्त्वाकलायुक्ता देवैस्त्रिभिरपिस्वयम्॥७॥ अन्तर्द्धानन्ततःप्राप्ताः सर्वेपिसुरसत्तमाः॥ ततोमयाद्विजैस्सार्द्धं शा
लाग्र्येस्थानरक्षणे॥८॥ स्थापिताश्चपृथग्देवास्त्रयस्त्रिभुवनेश्वराः॥ पीड्यमानायदाविप्राः केनापिचभवन्तिहि॥९॥
पूर्वाह्णेचापिऋग्वेदं मध्याह्नेप्ययजूंषिच॥ यामेतृतीयेसामानि तारस्वरमधीत्यच॥१०॥ शापंयस्यप्रदास्यन्ति

हुये देवताओं से मुझको यही वर देनेयोग्य है॥५॥ कि जिसप्रकार स्थानका लोप न होवै और मेरा यश होवै उस समय देवेश्वरों ने यह प्रतिज्ञा किया कि हे मुने!
ऐसाही होगा॥६॥ हम लोग अपने अंशसे ब्राह्मणोंकी रक्षाकरेंगे ऐसा कहकर कलाओं से संयुत तीनोंभी देवता अन्तर्द्धान होगये॥७॥ तदनन्तर सबभी सुरोत्तम
प्राप्तहुये उसके उपरान्त स्थानरक्षणवाली उत्तम शाला (मन्दिर) में ब्राह्मणों समेत मैंने॥८॥ अलग अलग त्रिलोकके स्वामी उन तीनों देवताओं का स्थापन
किया जब किसीसेभी ब्राह्मण पीड़ित होते हैं॥९॥ तब पूर्वाह्णमें ऋग्वेद, मध्याह्न में यजुर्वेद व तीसरे पहर में सामवेद को ॐकारस्वरपूर्वक पढ़कर॥१०॥ व

शालाके अगाड़ी बहुत क्रोधितहोते हुयेवे जिसको शाप देते हैं वह सात, आठ वर्ष के भीतर या तीन वर्षके अन्तरमें भस्मताको प्राप्तहोता है ॥ ११ ॥ यदि नारदजी के आगे आप लोगों ने स्थानरक्षाकी प्रतिज्ञा कियाहै तो उस सत्यसे हम लोगोंका वैरी क्षणभरमें भस्महोजावै हुम् ॥ १२ ॥ इस शापके मन्त्रसे निश्चयकर शत्रु भस्म होजाताहै वहांपर जो मनुष्य तीनो पुरुषोंकी शालाको प्रतिदिन देखताहै ॥१३॥ व उनको पूजताहै व प्रणाम करताहै यह पुरुष स्वर्गलोकमें पूजित होताहै ॥१४॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांशालात्रिपुरुषमाहात्म्यवर्णनन्नामाष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

शालाग्रेभृशरोषिताः ॥ सप्ताष्टवर्षमध्याद्वात्रिवर्षाद्भस्मतांव्रजेत् ॥ ११ ॥ प्रतिज्ञातास्थानरक्षा यदिवोनारदाग्रतः ॥ सत्येनतेननोवैरी भस्मीभवतुहुंक्षणात् ॥ १२ ॥ अनेनशापमन्त्रेण भस्मीभवतिनिश्चितम् ॥ शालांत्रिपुरुषान्तत्रयः पश्यतिदिनेदिने ॥ १३ ॥ अर्चयेत्प्रणमेन्नासौ स्वर्गलोकेमहीयते ॥ १४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेशाला त्रिपुरुषमाहात्म्यन्नामाष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

नारदउवाच ॥ अथान्यत्सम्प्रवक्ष्यामि मदीयसरसोमहत् ॥ १ ॥ माहात्म्यमतुलंपार्थ देवानामपिदुर्लभम् ॥ मया पूर्वंसरःखातं दर्भाङ्कुरशलाकया ॥ २ ॥ मृत्तिकाताम्रपात्रेण त्यक्ताबाह्येततःस्वयम् ॥ सर्वेषामेवतीर्थानामाहृत्योदक मुत्तमम् ॥ ३ ॥ तत्तत्रसरसिक्षिप्तं तेनसंपूरितंसरः ॥ आश्विनेमासिसम्प्राप्ते भानुवारेनरःशुचिः ॥ ४ ॥ श्राद्धंयःकु रुतेतत्र स्नानंदानंविशेषतः ॥ पितरस्तस्यतृप्यन्ति यावदाभूतसम्प्लवम् ॥ ५ ॥ नारदीयंसरोह्येतद्विख्यातंजगतीत

दो० । नारदमुनि कुशमूल सन विरच्यो रुचिर तड़ाग । उंचसवें अध्याय में कह्यो सो अति अनुराग ॥ नारदजी बोले कि हे अर्जुनजी ! इसके अनन्तर मैं अन्य चरितको कहताहू कि मेरे तडाग का बडाभारी अतुल माहात्म्य है जोकि देवताओं को भी दुर्लभ है पुरातन समय मैंने कुशके अँखुवाकी शलाका से तड़ागको खोदा है ॥ १ । २ ॥ तदनन्तर तावेके पात्रसे मिट्टी बाहर छोड़ी व आपही समस्त तीर्थों के उत्तम जलको लाकर ॥ ३ ॥ उसे उस तड़ाग मे फेंकदिया उससे तडाग पूर्ण होगया जब कुँवार महीना भलीभांति प्राप्तहोवै तब रविवारके दिन पवित्र होकर जो मनुष्य ॥ ४ ॥ वहां श्राद्ध करता है और विशेषकर स्नान दान करता है उसके

पितर कल्पपर्यन्त तृप्त रहते हैं ॥ ५ ॥ यह नारद का तड़ाग पृथ्वी में प्रसिद्ध है और बड़े पुण्ययोग से देवताओंको भी नहीं प्राप्तहोता है ॥ ६ ॥ यहां पर जो दान दिया जाता है और अग्नि में जो हवन किया जाता है और जप व अनशनव्रत साधन वह सब अक्षय जानै ॥ ७ ॥ नारदजी के उत्तम तड़ाग में नहाकर जो पुरुष श्रद्धासे नारदेश्वर शिवजीको पूजता है वह समस्त पातकों से छूटजाता है ॥ ८ ॥ हे अर्जुनजी ! पुरातन समय इस तीर्थ में आपने हितकी कामना से कद्रूके शापको छूटने के लिये सब नागोंने तपस्या कियाहै ॥ ९ ॥ तदनन्तर इस तीर्थ के प्रभावसे वे बड़ी सिद्धिको प्राप्तहुये हैं तदनन्तर नारदेश्वर के उत्तर भागमें बहुत प्रसन्नहोते

ले ॥ महतापुण्ययोगेन देवैरपिहिनाप्यते ॥ ६ ॥ यदत्रदीयतेदानं हूयतेयच्चपावके ॥ सर्वन्तदक्षयंविद्याज्जपोनशन साधनम् ॥ ७ ॥ नारदीयेसरःश्रेष्ठ स्नात्वायोनारदेश्वरम् ॥ पूजयेच्छ्रद्धयामर्त्यस्सर्वपापैःप्रमुच्यते ॥ ८ ॥ अत्रतीर्थेपु रापार्थ सर्वनागैस्तपःकृतम् ॥ कद्रूशापस्यमोक्षार्थमात्मनोहितकाम्यया ॥ ९ ॥ ततस्सिद्धिंपरांप्राप्तास्तीर्थस्यास्य प्रभावतः ॥ ततोनागेश्वरंलिङ्गं स्थापयामासुरूर्जितम् ॥ १० ॥ नारदादुत्तरेभागे सर्वेनागाःप्रहर्षिताः ॥ नारदीयेसरः श्रेष्ठे यःस्नात्वापूजयेद्धरम् ॥ ११ ॥ नागेश्वरंमहाभक्त्या तस्यपुण्यमनन्तकम् ॥ तेषांसर्पभयंनास्ति नागानांवचनं यथा ॥ १२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डे नागेश्वरमाहात्म्यन्नामैकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४९ ॥ * ॥

नारदउवाच ॥ अपराद्वारकानाम देवीचात्रास्तिपाण्डव ॥ साचब्रह्माण्डद्वारेवै सदैवविहितालया ॥ १ ॥ चतुर्विंश

हुये सब नागोंने बड़े हुये नागेश्वर लिंगको स्थापन किया है नारदजी के उत्तम तड़ाग में नहाकर जो पुरुष नागेश्वर शिवजी को बडी भक्ति से पूजता है उसको अनन्त पुण्य होतीहै और उनको सांपोंका डर नही होताहै जैसा कि नागोंका वचन है ॥ १० । ११ । १२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायामाषाटीकायानागेश्वरमाहात्म्यवर्णनन्नामैकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४९ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

दो० । नारदमुनि थाप्यो यथा देवि द्वारका नाम । पचासवें अध्यायमें सोइ चरित अभिराम ॥ नारदजी बोले कि हे पाण्डव ! यहांपर अन्य द्वारका नामक देवी है

और उन देवीजी ने सदैवही ब्रह्माण्ड द्वारपै स्थान कियाहै ॥ १ ॥ जोकि चौबिस करोड़ देवियों से रक्षितथीं तदनन्तर मैं बड़ीभारी तपस्या करके यहां लाया व प्रसन्न किया ॥ २ ॥ तदनन्तर उन द्वारवासिनी देवीजीको अन्य द्वारपै स्थापन किया चैतमहीने के कृष्णपक्ष में जो नवमी होवै है ॥३॥ उस दिन मनुष्य कुण्डमें स्नानकर उन देवीको पूजै क्योंकि उपहार, ताम्बूल, नैवेद्य व चन्दन, धूपादिक पूजनोंसे ॥४॥ सात जन्मोंमें किया हुआ पातक उसी क्षण नाश होजाता है व मनुष्य जिन जिन कामनाओंकी प्रार्थना करताहै उनको प्राप्तहोता है ॥ ५ ॥ और उस कुण्डमें केवल स्नानमात्र से वन्ध्या स्त्री पुत्रको पाती है व चैत महीनेकी नवमी में पुष्प धूपसे

तिकोटीभिर्देवीभिःपरिरक्षिता ॥ ततोदीर्घतपस्तप्त्वा मयानीतात्रतोपिता ॥ २ ॥ अपरस्मिंस्ततोद्वारे स्थापिताद्वारवासिनी ॥ नवमीचैत्रमासस्य कृष्णपक्षेभवेत्तुया ॥ ३ ॥ कुण्डेस्नानंनरःकृत्वा ताञ्चदेवींप्रपूजयेत् ॥ बलिताम्बूलनैवेद्यैर्गन्धधूपादिपूजनैः ॥ ४ ॥ सप्तजन्मकृतंपापं नाशमायातितत्क्षणात् ॥ यान्यान्प्रार्थयतेकामांस्तांस्तानाप्नोतिमानवः ॥ ५ ॥ बन्ध्याचलभतेपुत्रं स्नानमात्रेणतत्रवै ॥ नवम्यांचैत्रमासस्य पुष्पधूपाद्यपूजया ॥ ६ ॥ विघ्नांश्चनाशयेद्देवी सर्वसिद्धिंप्रयच्छति ॥ भक्तानांतत्क्षणादेव सत्यमेतन्नसंशयः ॥ ७ ॥ उत्तरेद्वारकाञ्चापि पूज्यैवंविधिनानरः ॥ एतदेवफलंसोपि प्राप्नुयान्मानवोत्तमः ॥ ८ ॥ उपोष्यनवरात्रञ्च स्नात्वाकुण्डेसमाहितः ॥ पूर्वद्वारेतुवैदेवी यास्थिताद्वारवासिनी ॥ ९ ॥ तस्याःपूजनमात्रेण प्राप्नुयाद्वाञ्छितंफलम् ॥ आश्विनेमासिसम्प्राप्ते नवरात्रेविशेषतः ॥ १० ॥ पूजयेद्देवताम्भक्त्या पुष्पधूपादितर्पणैः ॥ अपुत्रोलभतेपुत्रंनिर्धनोलभतेधनम् ॥ ११ ॥ वन्ध्याप्रसूयतेपार्थनात्रकार्या

पूजन करसे ॥ ६ ॥ देवीजी विघ्नोंको नाश करती हैं व भक्तोंको उसी क्षण समस्त सिद्धिको देती हैं यह सत्य है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ७ ॥ और मनुष्य उत्तरमें भी द्वारकादेवीको इसीविधिसे पूजकर वहभी उत्तम पुरुष इसी फलको प्राप्तहोताहै ॥८॥ नवरात्रमें उपासकर सावधान होताहुआ मनुष्य कुण्डमें नहाकर और पूर्व द्वारपै जो द्वारवासिनी देवी टिकी हैं ॥ ९ ॥ उनके पूजनमात्र से चाहेहुये फलको प्राप्तहोताहै कुँवार महीना प्राप्तहोनेपर नवरात्रमें विशेषकर ॥ १० ॥ भक्तिपूर्वक पुष्प,धूपादिक व तर्पणोंसे देवताका पूजनकरै तो पुत्रहीन मनुष्य पुत्रको प्राप्तहोताहै व निर्धनी धनकोपाताहै॥११॥और वन्ध्या स्त्री पुत्रको पैदाकरतीहै हे अर्जुनजी! इसमें विचार

न करना चाहिये ॥ १२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायाम्भाषाटीकायाकोटितीर्थद्वारकादेवीमाहात्म्यवर्णनन्नामपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ५० ॥
दो० । स्तुति नारदकी कहीं कृष्णचन्द्र यदुनन्द । इक्यावन अध्याय महँ सोइ चरित सुखकन्द ॥ नारदजी बोले कि हे अर्जुनजी ! ब्राह्मणोंकी कामनासे वहां पर मेरी भी मूर्ति है और वहां छत्र व दण्ड से शोभित मैं उस स्थानको नहीं छोड़ताहूं कातिक महीनेकी शुक्लपक्षवाली जो उत्तम एकादशी होतीहै ॥ १ । २ ॥ उस तिथिमें मेरा पूजन करके कलियुग का दोष छूट जाता है अर्जुनजी बोले कि बालकपनसे लगाकर मेरे हृदयमें यह सन्देह वर्तमान है ॥ ३ ॥ हे विप्रजी ! उसको पूछते

विचारणा॥१२॥इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेकोटितीर्थेद्वारकादेवीमाहात्म्यवन्नामपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥५०॥

नारदउवाच ॥ ममापिपार्थतत्रास्ते मूर्त्तिर्ब्राह्मणकाम्यया ॥ १ ॥ तत्रनाहंत्यजाम्यद्यच्छत्रदण्डविभूषितः ॥ कार्त्तिकस्यतुयाशुक्ला भवत्येकादशीशुभा ॥ २ ॥ तस्यांमदर्चनंकृत्वा कलिदोषाद्विमुच्यते ॥ अर्जुनउवाच ॥ बाल्यात्प्रभृतिसन्देहो ममायंहृदिवर्त्तते ॥ ३ ॥ पृच्छतस्तन्नमेविप्र नक्रोधंकर्त्तुमर्हसि ॥ सदात्वंमोक्षधर्मेषु परिनिष्ठाम्पराङ्गतः॥४॥ सर्वभूतसमोदान्तो रागद्वेषविवर्जितः ॥ सदाकलिकरोलोके निर्दयस्सर्वजन्तुषु ॥ ५ ॥ बहूनांहिसहस्राणि देवगन्धर्वरक्षसाम् ॥ राज्ञांमुनीनांदैत्यानां कलेर्नष्टानितेभवन् ॥ ६ ॥ कस्मादेषाचचेष्टाते सन्देहंमेहरद्विज ॥ सन्देहान्नसुखंशेते बाणविद्धोमृगोयथा ॥ ७ ॥ सूतउवाच ॥ शौनकेदंवचःश्रुत्वा फाल्गुनान्नारदोमुनिः ॥ प्रहसन्निवबाभ्रव्यवदनंसन्निरीक्षते ॥ ८ ॥ सचबाभ्रव्यनामावैहारीतस्यान्वयोद्भवः ॥ ब्राह्मणोनारदमुनेस्समीपंसम्प्रवर्त्तते ॥ ९ ॥ सच

हुये मेरे ऊपर तुम क्रोध करने के योग्य नहींहो कि सदैव तुम मोक्षधर्मों में उत्तम सिद्धिको प्राप्तहो ॥ ४ ॥ और सम्पूर्ण प्राणियों में समान व इन्द्रियजित् और स्नेह व वैरसे रहितहो परन्तु संसारमें समस्त प्राणियों में निर्दयीहोकर कलि (लड़ाई) करानेवालेहो ॥ ५ ॥ बहुत हज़ार देवता, गन्धर्व, राक्षस, राजा, मुनि व दैत्य तुम्हारी लड़ाई से नष्ट होगये हैं ॥ ६ ॥ हे विप्रजी ! तुम्हारा यह कर्म किस लियेहै मेरी इस सन्देहको दूरकीजिये क्योंकि सन्देहसे मनुष्य बाण से बेधेहुये मृगकी नाईं सुखपूर्वक नहीं सोताहै ॥ ७ ॥ सूतजी बोले कि हे शौनकजी ! अर्जुनसे यह वचन सुनकर नारदमुनि हँसतेहुये से बाभ्रव्यके मुखको देखने लगे ॥ ८ ॥ और वह बाभ्रव्य

नामक ब्राह्मण हारीत के वंशमें उत्पन्न था जोकि नारदमुनिके समीप वर्तमान था ॥ ९ ॥ वह महाबुद्धिमान् नारद के मनकी इच्छा को जानकर हँसताहुआसा कोमल वचन करके अर्जुन से बोला ॥ १० ॥ बाभ्रव्य बोला कि हे पाण्डव ! जैसा तुम नारदजीसे कहतेहो यह सत्य है इस वृत्तान्तमें सब मनुष्य भी संदेह को प्राप्त होते हैं ॥ ११ ॥ परन्तु जिसप्रकार मैंने श्रीकृष्णजी से सुनाहै उसको मैं तुमसे कहूंगा कि पहले कुछ समय के अन्तरमें सम्पूर्ण यादवों को प्रसन्न करनेवाले ॥ १२ ॥ प्रभु श्रीकृष्णजी उग्रसेन व वसुदेव और बभ्रुसमेत वहां महीसागर की यात्रामें आये ॥ १३ ॥ और बलभद्रजी व रुक्मिणी के पुत्र प्रद्युम्न और युयुधानादिकों समेत

ज्ञात्वामहाबुद्धिर्नारदस्यमनीषितम् ॥ प्रहसन्निवचोवाच फाल्गुनंस्निग्धयागिरा ॥ १० ॥ बाभ्रव्यउवाच ॥ सत्यमेत द्यथात्थत्वं नारदंप्रतिपाण्डव ॥ सर्वोपिचात्रवृत्तान्ते संशयंयातिमानवः ॥ ११ ॥ तदहन्तेप्रवक्ष्यामि यथाकृष्णान्म याश्रुतम् ॥ स्तोककालान्तरेपूर्वं सर्वयादवनन्दनः ॥ १२ ॥ महीसागरयात्रायां कृष्णस्तत्राययौप्रभुः ॥ उग्रसेनेनस हितो वसुदेवेनबभ्रुणा ॥ १३ ॥ रामेणरौक्मिणीयेन युयुधानादिभिस्तदा ॥ सचस्नात्वाज्ञातिमतां महीसागरसङ्गमे ॥ १४ ॥ पिण्डदानादिकृत्वाच दत्त्वादानानिभूरिशः ॥ गुहेश्वरादिलिङ्गानि यत्नतःप्रतिपूज्यच ॥ १५ ॥ स्नानंकृत्वाको टितीर्थे जयादित्यंसमर्च्यच ॥ आनर्चनारदमुनिमुक्तःकृष्णोमहामनाः ॥ १६ ॥ उग्रसेनेनराज्ञावै पूर्वजन्मजटायु ना ॥ मदादिविप्रमुख्यानां यदूनांचोपशृण्वताम् ॥ १७ ॥ उग्रसेनोमहाराजः कृष्णंप्रोवाचसंसदि ॥ उग्रसेनउवाच ॥ कृष्णपृच्छामिलोकेश संशयंवदतंमम ॥ १८ ॥ योयन्नाममहाबुद्धिर्नारदोविश्ववेदितः ॥ कस्मादेवातिचपलो वायुवद्

उन श्रीकृष्णजी ने उस समय महीसागरसंगम में नहाकर कुटुम्बियोंको ॥ १४ ॥ पिंडदानादि कर व बहुत से दानोंको देकर और गुहेश्वरादिक लिंगोंको यत्न से पूजकर ॥ १५ ॥ कोटितीर्थ में नहाकर जयादित्यको पूजकर नारद मुनिका पूजन किया तब पूर्वजन्म में जो जटायु थे उन उग्रसेन ने हम इत्यादिक ब्राह्मणों व यदुवंशियों के सुनते हुये उदारचित्तवाले श्रीकृष्णजी से कहा ॥ १६ । १७ ॥ महाराज उग्रसेन सभामें श्रीकृष्णजीसे बोले उग्रसेन बोले कि हे लोकेश श्रीकृष्णजी ! मैं जो पूंछताहूं उस संदेहको मुझसे कहिये कि ॥ १८ ॥ जो ये महाबुद्धिमान् नारदजी संसार में प्रसिद्धहैं ये किस कारण अतिचञ्चलहैं और पवनकी नाईं संसारमें घूमते

हैं ॥१९॥ व किस कारण इनको कलि (बखेड़ा) प्याराहै और किसलिये तुम्हारे ऊपर बड़े प्रसन्न रहते हैं श्रीकृष्णजी बोले कि हे राजन्! तुमने यह सब सत्य पूँछा है मैं तुमसे कहताहूँ ॥ २० ॥ कि पुरातन समय सृष्टिके मार्गमें वर्तमान पुत्रोंको नारदजीसे अन्यत्र पठायेहुये देखकर दक्षजीने मुनिश्रेष्ठ नारदजीको शापदिया है ॥ २१ ॥ कि घूमते हुये तुम्हारा इस संसार में स्थान (टिकना) न होगा और वैसेही दूसरे पुत्रोंको अन्यत्र चलाने के कारणसे चुगुलीके कहनेवाले होगे ॥ २२ ॥ इसप्रकार दोभाति से पुत्रोंको सृष्टिमार्ग से चलादेने के कारण दो शापोंको पाकर निराकरण करने के लिये समर्थभी नारदमुनि ने उसको वैसाही माना ॥ २३ ॥ क्योंकि इतनाही

भ्रमतेजगत् ॥ १९ ॥ कलिप्रियश्चकस्माद्वा कस्मात्त्वय्यतिप्रीतिमान् ॥ श्रीकृष्णउवाच ॥ सत्यंराजंस्त्वयापृष्टमेतत्सर्वंवदामिते ॥ २० ॥ दक्षेणतुपुराशप्तो नारदोमुनिसत्तमः ॥ सृष्टिमार्गेसुतान्वीक्ष्य नारदेनविवासितान् ॥ २१ ॥ नावस्थानञ्चलोकेस्मिन् भ्रमतस्तेभविष्यति ॥ पैशुन्यवक्ताचतथा द्वितीयानांप्रचालनात् ॥ २२ ॥ इतिशापद्वयंप्राप्य द्विविधात्मजचालनात् ॥ निराकर्तुंसमर्थोपि मुनिर्मेनेतथैवतत् ॥ २३ ॥ एतावान्साधुवादोहि यत्त्वमेतेश्वरःस्वयम् ॥ विनाशकालंचावेक्ष्य कलिंवर्द्धयतेयतः ॥ २४ ॥ सत्यंचवक्तितस्माच्च नसपापेनलिप्यते ॥ भ्रमतोपिचसर्वत्र नास्ययस्मात्पृथग्मनः ॥ २५ ॥ ध्येयाद्भवतिनैवस्याद्भ्रमदोषस्ततोस्यच ॥ यच्चप्रीतिर्मयित्वस्य परमात्तच्छृणुष्वच ॥ २६ ॥ अहंहिसर्वदास्तौमि नारदंदेवदर्शनम् ॥ महेन्द्रगादितेनैव स्तोत्रेणशृणुतन्नृप ॥ २७ ॥ उत्सङ्गाद्ब्रह्मणोजातो यस्याहंतानविद्यते ॥ अगुप्तश्रुतिचारित्रं नारदंतन्नमाम्यहम् ॥ २८ ॥ अरतिःक्रोधचापल्ये भयन्नैतानियस्यच ॥ अदी

प्रशंसनीय वादहै जोकि समर्थ होकर आपही क्षमाकरै जिस लिये विनाशका समय देखकर नारदजी कलिको बढ़ाते हैं ॥ २४ ॥ व सत्य कहते हैं उसी कारण वे पाप से नहीं लिप्तहोते हैं और जिस लिये सर्वत्र घूमतेहुये भी इनका मन ध्यान करने योग्य पुरुषसे भिन्न नहीं होताहै उसीकारण इनको घूमनेका दोष नहीं होताहै और जो मुझमें इनकी बड़ी प्रीति है उसको सुनिये ॥ २५ । २६ ॥ कि देवताके तुल्य दर्शनवाले नारदजी की मैं इन्द्रसे कहेहुये स्तोत्र से सदैव स्तुति करताहूँ हे राजन्! उसको सुनिये ॥ २७ ॥ कि जो ब्रह्माकी गोदीसे उत्पन्नहुये हैं और जिनके अहङ्कार नहीं विद्यमान है उन प्रकट वेद चरितवाले नारदजीको मैं प्रणाम करताहूँ ॥ २८ ॥

व वैर, क्रोध, चञ्चलता व भय ये जिनके नहीं हैं उन शीघ्र कार्यकारी बुद्धिमान् नारदजीको मैं नमस्कार करताहूं ॥ २९ ॥ और काम या लोभसे जो अन्यथा (झूंठ) वचन नहीं कहते हैं उन सब प्राणियों के उपासना करने योग्य नारदजी को मैं प्रणाम करताहूं ॥ ३० ॥ अध्यात्म की गति व तत्त्व (यथार्थ) के जाननेवाले, ज्ञानशक्तिवाले, इन्द्रियजित, सीधे और यथार्थ कहनेवाले उन नारदजीको मै प्रणाम करताहूं ॥ ३१ ॥ तेज, यश, बुद्धि, नीति, नम्रता, जन्म व तपस्या से वृद्ध नारद मुनिको मै प्रणाम करताहूँ ॥ ३२ ॥ सुख, शीलवालेव उत्तम वेषवाले, भले भोजनवाले, प्रकाशवाले व पवित्र, सुन्दर नेत्रोंवाले और अच्छे वचनोंवाले नारदमुनि को

र्घसूत्रंतन्धीरं नारदंप्रणमाम्यहम् ॥ २९ ॥ कामाद्वायदिवालोभाद्वाचंयोनान्यथावदेत् ॥ उपास्यंसर्वजन्तूनां नारद न्तंनमाम्यहम् ॥ ३० ॥ अध्यात्मगतितत्त्वज्ञं ज्ञानशक्तिंजितेन्द्रियम् ॥ ऋजुंयथार्थवक्तारं नारदन्तंनमाम्यहम् ॥ ३१ ॥ तेजसायशसाबुद्ध्या नयेनविनयेनच ॥ जन्मनातपसावृद्धं नारदंप्रणमाम्यहम् ॥ ३२ ॥ सुखशीलंसुसंवेषंसुभो जंभास्वरंशुचिम् ॥ सुचक्षुषंसुवाक्यञ्च नारदंप्रणमाम्यहम् ॥ ३३ ॥ कल्याणंकुरुतेबाढं पापंयास्मिन्नविद्यते ॥ नप्रीय तेपरार्थेन योसौतन्नौमिनारदम् ॥ ३४ ॥ वेदस्मृतिपुराणोक्तं धर्मंयोनित्यमास्थितः ॥ प्रियाप्रियविमुक्तन्तं नारदंप्रण माम्यहम् ॥ ३५ ॥ असक्तस्सर्वसङ्गेषु यस्सक्तात्मेवलक्ष्यते ॥ अदीर्घसंशयोवाग्मी नारदंप्रणमाम्यहम् ॥ ३६ ॥ नासू यत्यागमंकिञ्चित्तपःकृत्येनजीवति ॥ अवन्ध्यकालोवश्यात्मा तमहन्नौमिनारदम् ॥ ३७ ॥ कृतश्रमंकृतप्रज्ञं नचतृ

मैं प्रणाम करताहूँ ॥ ३३ ॥ जो बहुत कल्याण करतेहैं और जिनमें पाप नहीं विद्यमानहै और जो यह दूसरेके प्रयोजनसे नहीं तृप्त होतेहैं अर्थात् जो सदैव दूसरोंके प्रयोजन को चाहते हैं उन नारदजी को मै प्रणाम करताहूं ॥ ३४ ॥ वेद, स्मृति व पुराणोंमें कहेहुये धर्म्म पै जो नित्यही स्थितरहते हैं उन प्रिय व अप्रियसे छूटेहुये नारदको मैं प्रणाम करताहूँ ॥ ३५ ॥ जो समस्त सङ्गों में आसक्त नहीं हैं परन्तु आसक्तचित्तवाले से देख पडतेहै व थोडी सन्देहवाले और जो उत्तम वचनवालेहै उन नारदजीको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ३६ ॥ और जो शास्त्रसे कुछ भी द्रोह नहीं करते है और जो तपस्यासे जीते हैं व जो सफल समयवाले व वशीभूत चित्तवाले हैं उन नारदजी

को मैं प्रणाम करताहूँ ॥ ३७ ॥ परिश्रम किये व प्रवीण बुद्धिवाले और समाधि से अतृप्त व नित्यही यत्नमें सावधान उन नारदजी को मैं प्रणाम करताहूं ॥ ३८ ॥
जो द्रव्य मिलने में प्रसन्न नहीं होते हैं और न मिलने में जो दुःखी भी नहीं होते हैं और जो स्थिरबुद्धिवाले व अनासक्त चित्तवाले हैं उन नारदजी को मैं प्रणाम
करताहूं ॥ ३९ ॥ समस्त गुणोंसे संयुत, चतुर, पवित्र, निडर, समयके जाननेवाले व नीति के ज्ञाता उन नारदजी की शरण में मैं जाताहूँ ॥ ४० ॥ हे राजन् ! नारद
के इस स्तोत्रको मैं नित्यही जपताहूं उसी से मुनिश्रेष्ठ नारदजी मेरे ऊपर बड़ी प्रीति करते हैं ॥ ४१ ॥ जो अन्यभी मनुष्य पवित्र होकर इस स्तुतिको जपताहै उसके

तंसमाधितः ॥ नित्ययत्नाप्रमत्तञ्च नारदंतन्नमाम्यहम् ॥ ३८ ॥ ननुहृष्यत्यर्थलाभे योलाभेनव्यथत्यपि ॥ स्थिरबु
द्धिरसक्तात्मा तमहंनौमिनारदम् ॥ ३९ ॥ तंसर्वगुणसम्पन्नंदक्षंशुचिमकातरम् ॥ कालज्ञञ्चनयज्ञञ्च शरण्यंयामिनारद
म् ॥ ४० ॥ इमंस्तवन्नारदस्य नित्यंराजञ्जपाम्यहम् ॥ तेनमेपरमांप्रीतिं करोतिमुनिसत्तमः ॥ ४१ ॥ अन्योपिचशुचि
र्भूत्वा नित्यमेतांस्तुतिञ्जपेत् ॥ अचिरात्तस्यदेवर्षिः प्रसादंकुरुतेपरम् ॥ ४२ ॥ एतान्गुणान्नारदस्य समभ्याकर्ण्य
पार्थिव ॥ जपन्नित्यंस्तवंपुण्यं प्रीतस्तेभवितामुनिः ॥ ४३ ॥ बाभ्रव्यउवाच ॥ इतिकृष्णमुखाच्छ्रुत्वा नारदस्यगुणान्नृ
पः ॥ बभूवपरमप्रीतश्चक्रेतञ्चतथाचसः ॥ ४४ ॥ ततोनारदमभ्यर्च्यदत्त्वादानञ्चपुष्कलम् ॥ नारदीयद्विजाग्र्याणान्नार
दः प्रीयतामिति ॥ ४५ ॥ ययौद्वारवतींकृष्णः सभ्रातृज्ञातिबान्धवः ॥ तीर्थयात्रामिमांकृत्वा विधिवत्पुरुषोत्तमः ॥ ४६ ॥
तस्मात्त्वमपिकौरव्यनारदस्यगुणानिमान् ॥ श्रुत्वाश्रद्धामयोभूत्वा शृणुकृत्यंयदत्रच ॥ ४७ ॥ कार्तिकेशुक्लद्वादश्यां

ऊपर शीघ्रही नारदजी परमप्रसन्नता करते हैं ॥ ४२ ॥ हे राजन्! नारदमुनि के इनगुणोंको सुनकर तुमभी नित्य पुण्यदायक स्तोत्रको जपो तो नारदमुनि तुम्हारे ऊपर
प्रसन्नहोवैंगे ॥ ४३ ॥ बाभ्रव्य बोले कि श्रीकृष्णजी के मुख से इसप्रकार नारदके गुणोंको सुनकर वे उग्रसेनजी बहुत प्रसन्नहुये और उन्होंने उसको वैसाही किया ॥ ४४ ॥
तदनन्तर नारदजी को पूजकर व नारदजी प्रसन्नहोवैं इस लिये नारदजी के उत्तमद्विजोंको बहुतसा दानदेकर ॥ ४५ ॥ भाई और कुटुम्बी व बन्धुओं समेत पुरुषोत्तम
श्रीकृष्णजी इस तीर्थयात्रा को विधिपूर्वक करके द्वारकापुरी को चलेगये ॥ ४६ ॥ इस लिये हे अर्जुनजी ! तुमभी नारदजी के इन गुणोंको सुनकर व श्रद्धासंयुत होकर

यहां जो कार्य करनाचाहिये उसको सुनिये ॥४७॥ कि कातिक महीनेमें शुक्लपक्षवाली प्रबोधिनी एकादशीमें ये नारदमुनि विष्णुजीके ध्यान व समाधि से प्रबुद्ध होतेहैं याने जागते हैं तब ॥ ४८ ॥ उसी दिन यहींपर नारदजी से बनाये हुये कूपमें नहाकर सावधान होता हुआ मनुष्य बड़े उपाय से श्राद्धकरै ॥ ४९ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ! जिस प्रकार विष्णुजी ने योगनिद्रा को त्याग किया है वैसेही संसार के उपकार के लिये आपभी निद्राको छोड़िये ॥ ५० ॥ इस मन्त्रसे नारदजी को उठाकर छतुरी, धोती आदिक उत्तम पूजनों से पूजनकरै व श्रीकृष्णजीसे कहीहुई स्तुतिसे स्तुतिकरै ॥५१॥ और ब्राह्मणों को भक्तिसे प्रणामकर नारदजी प्रसन्नहोवैं इस लिये ब्राह्मणों को

प्रबोधिन्यामसौमुनिः ॥ विष्णोर्ध्यानसमाधिभ्यां प्रबुद्धोजायतेतदा ॥ ४८ ॥ तस्मिन्दिनेनारदेन निर्मितेत्रैवकूपके ॥ स्नानंकृत्वाप्रयत्नेन श्राद्धंकुर्यात्समाहितः ॥ ४९ ॥ योगनिद्रायथात्यक्ता हरिणामुनिसत्तम ॥ तथालोकोपकाराय भवानपिपरित्यज ॥ ५० ॥ इतिमन्त्रेणचोत्थाप्य नारदंपरिपूजयेत् ॥ कृष्णप्रोदितयास्तुत्या छत्रधौतार्चनैःशुभैः ॥ ५१ ॥ शक्त्याद्विजानांदेयंच छत्रंधौतंकमण्डलुम् ॥ प्रणम्यब्राह्मणान्भक्त्या नारदःप्रीयतामिति ॥ ५२ ॥ एवंकृते प्रसादात्स मुनेःपापात्प्रमुच्यते ॥ जायतेनकलिस्तस्यतथासौख्यंभवेदिह ॥ ५३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेनारदमाहात्म्यवर्णनन्नामैकपञ्चाशत्तमोध्यायः ॥ ५१ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सूतउवाच ॥ इतिबाभ्रव्यवचनमाकर्ण्यकुरुनन्दनः ॥ प्राणमन्नारदंभक्त्या विस्मितःपुलकान्वितः ॥ १ ॥ प्रणम्यचचिरङ्कालं पुनर्नारदमब्रवीत् ॥ गुप्तक्षेत्रस्यमाहात्म्यं संश्रुत्यैवंस्त्वन्मुखान्मुने ॥ २ ॥ तृप्तिंनैवाधिगच्छामि भूय

यथाशक्ति छतुरी, धोती व कमण्डलु को देवै ॥ ५२ ॥ ऐसा करनेपर नारदमुनिकी प्रसन्नतासे वह पातकसे छूटजाताहै और उसके बखेड़ा नहीं होताहै व इस लोक में सुखहोता है ॥ ५३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांनारदमाहात्म्यवर्णनन्नामैकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥ * ॥

दो० । होत आठ परकार को जिमि अष्टांगक योग । बावनवें अध्याय में सोई कथित नियोग ॥ इसप्रकार बाभ्रव्यके वचनको सुनकर कुरुनन्दन अर्जुनजीने भक्ति से नारद को प्रणाम किया व विस्मय में प्राप्तहुये व रोमांच से संयुत हुये ॥ १ ॥ व बहुत देरतक प्रणाम कर फिर नारद जीसे बोले कि हे मुने! तुम्हारे मुख से गुप्त-

क्षेत्र के माहात्म्य को सुनताहुआ मैं तृप्तिको नहीं प्राप्तहोताहूं इसलिये उसको फिर कहिये नारदजी बोले कि हे कुरूद्वह ! महालिंगकी महिमाको मैं कहूंगा ॥२।३॥ सावधान होतेहुये तुम गौतमेश्वर लिंग के उस माहात्म्य को सुनो। कि जो महायोगी व नैयायिक गौतम मुनि हुये हैं ॥ ४ ॥ वे अहल्या के पति प्रभु गौतमजी गोदावरी के लानेवाले हुये हैं और उन्हों ने गुप्तक्षेत्र के बड़े उत्तम माहात्म्य को जानकर ॥ ५ ॥ योग का संकट करतेहुये वहांपर बड़ीभारी तपस्या किया है तदनन्तर योग की सिद्धिको पाकर महात्मा गौतम जीने ॥ ६ ॥ गौतमेश्वर संज्ञासे लिंग को भलीभांति स्थापन किया व इस महालिंगको भलीभांति नहवाकर और चन्दन

स्तद्वक्तुमर्हसि ॥ नारदउवाच ॥ महालिङ्गस्यवक्ष्यामि महिमानंकुरूद्वह ॥ ३ ॥ गौतमेश्वरलिङ्गस्य सावधानःशृणुष्वतत् ॥ अक्षपादोमहायोगी गौतमोयोभवन्मुनिः ॥४॥ गोदावरीसमानेता अहल्यायाःपतिःप्रभुः ॥ गुप्तक्षेत्रस्यमाहात्म्यं सचज्ञात्वामहोत्तमम् ॥ ५ ॥ योगसंबाधनंकुर्वंस्तत्रतेपेतपोमहत् ॥ योगसिद्धिंततःप्राप्य गौतमेनमहात्मना ॥ ६ ॥ अत्रसंस्थापितंलिङ्गं गौतमेश्वरसंज्ञया ॥ संस्नाप्यैतन्महालिङ्गं चन्दनेनाविलिप्यच ॥ ७ ॥ सम्पूज्यपुष्पैर्विविधैर्गुग्गुलुंदाहयेत्पुनः ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तो रुद्रलोकेमहीयते ॥ ८ ॥ अर्जुनउवाच ॥ योगस्वरूपमिच्छामि श्रोतुंनारदतत्त्वतः ॥ योगंसर्वेप्रशंसन्ति यतस्सर्वोत्तमोत्तमम् ॥ ९ ॥ नारदउवाच ॥ समासात्तववक्ष्यामि योगतत्त्वंकुरूद्वह ॥ श्रवणादपिनैर्मल्यं यस्यस्यात्सेवनात्किमु ॥ १० ॥ चित्तवृत्तिनिरोधाख्यं योगतत्त्वंप्रकीर्त्यते ॥ तदष्टाङ्गप्रकारेण साधयन्तीहयोगिनः ॥ ११ ॥ यमश्चनियमश्चैव प्राणायामस्तृतीयकः ॥ प्रत्याहारोधारणाच ध्येयंध्यानञ्चसत्तमम् ॥ १२ ॥

से विलेपनकर ॥ ७ ॥ अनेक भांति के फूलों से भलीभांति पूजकर फिर गूगुल जलावै तो समस्त पातकों से छूटकर मनुष्य शिवलोक में पूजाजाता है ॥ ८ ॥ अर्जुनजी बोले कि हे नारद जी ! मैं योग के स्वरूप को यथार्थ से सुनना चाहताहूं क्योंकि सर्वोत्तम से भी उत्तम योगकी सब प्रशंसा करते हैं ॥ ९ ॥ नारदजी बोले कि हे कुरुनायक ! मैं योग के तत्त्व को तुम से संक्षेप से कहूंगा कि जिसके सुनने से भी निर्मलता होती है फिर सेवन से क्या कहना है ॥ १० ॥ चित्त की वृत्ति के निरोध (रोक) से संयुक्त योगतत्त्व कहाजाता है उसको इस संसार में योगीलोग अष्टांग प्रकार से साधन करते हैं ॥ ११ ॥ यम, नियम व

तीसरा प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्येय व उत्तम ध्यान ॥ १२ ॥ व समाधि यह अष्टांगयोग कहागया है हे पाण्डव ! इन आठों के प्रत्येक लक्षण को क्रम से सुनिये ॥ १३ ॥ कि जिनके साधन से मनुष्य योगको प्राप्तहोता है अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य व परिग्रह ॥ १४ ॥ ये पांच यम कहेगये हैं और इनके लक्षणको भी सुनिये कि जो पुरुष अपनी नाई हितके लिये समस्त प्राणियो में वर्तमान होता है ॥ १५ ॥ यह अहिंसा कहीगई है जोकि वेदमें कही है देखा व सुना हुआ और अनुमान न किया हुआ यथार्थता से अपना भोगा हुआ वृत्तान्त ॥ १६ ॥ पराई पीड़ासे रहित कैसे सत्य नहीं है याने सत्य है और विपत्तिमें भी पराई द्रव्य

समाधिरितिचाष्टाङ्गो योगस्सम्परिकीर्तितः ॥ प्रत्येकलक्षणंत्वेषामष्टानांश्रृणुपाण्डव ॥ १३ ॥ अनुक्रमान्नरोयेषां साधनाद्योगमश्नुते ॥ अहिंसासत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्य्यपरिग्रहौ ॥ १४ ॥ एतेपञ्चयमाःप्रोक्ताः श्रृणुत्वेषामपिलक्षणम् ॥ आत्मवत्सर्वभूतेषु योहितायप्रवर्त्तते ॥ १५ ॥ अहिंसैषासमाख्याता वेदसंविहिताचया ॥ दृष्टंश्रुतंनानुमितं स्वानुभूतंयथार्थतः ॥ १६ ॥ कथन्नसत्यमित्युक्तं परपीडाविवर्जितम् ॥ अनादानंपरस्वानामापद्यपिकथञ्चन ॥ १७ ॥ मनसाकर्मणावाचा तदस्तेयंप्रकीर्तितम् ॥ अमैथुनंयतीनाञ्च मनोवाक्कायकर्मणा ॥ १८ ॥ गुहास्थानाञ्चमनसा स्मृतएषपरिग्रहः ॥ एतेयमास्तवप्रोक्ताः पञ्चैवनियमाञ्छृणु ॥ १९ ॥ शौचन्तुष्टिस्तपश्चैव जपोभक्तिर्गुरोस्तथा ॥ एतेषामपिपञ्चानां पृथक्संश्रृणुलक्षणम् ॥ २० ॥ बाह्यमाभ्यन्तरञ्चैवद्विविधंशौचमुच्यते ॥ बाह्यन्तुमृज्जलैःप्रोक्तमान्तरंशुद्धमानसम् ॥ २१ ॥ न्यायेनागतयावृत्त्या भिक्षयावार्तयापिवा ॥ सन्तोषोयस्यसततं सातुष्टिरितिचोच्यते ॥ २२ ॥

का किसी प्रकार मन, वचन व कर्म से न लेना वह अस्तेय कहागया है और मन, वचन व कर्म से संन्यासियों का अमैथुन याने स्त्रीसङ्ग न करना या अकेले रहना ॥ १७।१८ ॥ कन्दराओ मे टिकेहुये जनोका यह परिग्रह मनके द्वारा कहा गयाहै ये यम तुमसे कहेगये और पांचही नियमों को सुनिये ॥ १९ ॥ कि शौच, तुष्टि, तपस्या, जप व गुरुकी भक्ति इन पाचोके अलग अलग लक्षणको सुनिये ॥ २० ॥ शौच दो प्रकार का कहा जाता है एक बाहरी व दूसरा भीतरी बाहरवाला शौच तो मिट्टी व जलों से कहा गया है व भीतर का शौच शुद्ध मन होता है ॥ २१ ॥ न्यायसे प्राप्त जीविका या भिक्षाकी जीविकासे जिसको सदैव सन्तोष रहताहै वही

तुष्टि ऐसी कही जातीहै ॥ २२ ॥ व फिर न्यून भोजनमें तत्पर होकर जो चान्द्रायणादिक कहेहुये व्रतोंको करता है वह तप कहा जाता है ॥ २३ ॥ और ॐकारका अभ्यास आदिक अपने वेदका पठन जप कहा गया है व शिवका जानना व गुरुमें भक्तिहोना गुरुभक्ति सुनीगई है ॥ २४ ॥ इस प्रकार यमों व नियमों को भली भांति साधनकर चतुर पुरुष सदैव प्राणायाम करै अन्यथा योगका साधक नहीं होताहै ॥२५॥ जिसलिये अशुद्ध शरीरवाले पुरुषके पवनका बड़ा कोप होताहै व पवन के कोपसे वह मनुष्य कुष्ठपन व जडतादिकको भोगताहै ॥ २६ ॥ इस लिये चतुर पुरुष शरीरको पवित्रकर अन्य वस्तुका यत्नकरै हे पाण्डव ! प्राणायाम का लक्षण

चान्द्रायणादीनि पुनस्तपांसिविहितानियः ॥ आहारलाघवपरः कुर्यात्तत्तपउच्यते ॥ २३ ॥ स्वाध्यायस्तुजपःप्रोक्तः प्रणवाभ्यसनादिकः ॥ शिवज्ञानंगुरौभक्तिर्गुरुभक्तिरितिश्रुता ॥ २४ ॥ एवंसंसाध्यनियमान् यमांश्चसुविचक्षणः ॥ प्राणायामंसदाध्यायेन्नान्यथायोगसाधकः ॥ २५ ॥ यतोऽशुचिशरीरस्य वायुकोपोमहान्भवेत् ॥ वायुकोपात्कुष्ठताञ्च जडत्वादीनुपाश्नुते ॥ २६ ॥ तस्माद्विचक्षणःशुद्धं कृत्वादेहंयतेत्परम् ॥ प्राणायामस्यवक्ष्यामि लक्षणंशृणुपाण्डव ॥ २७ ॥ प्राणापाननिरोधश्च प्राणायामःप्रकीर्तितः ॥ लघुमध्योत्तरीयाख्यः सचधीरैस्त्रिधोदितः ॥ २८ ॥ लघुर्द्वादशमात्रस्तु मात्रानिमिषउन्मिषः ॥ द्विगुणोमध्यमश्चोक्तस्त्रिगुणश्चोत्तमःस्मृतः ॥ २९ ॥ प्रथमेनजयेत्स्वेदं मध्यमेनतुवेपथुम् ॥ विषादञ्चतृतीयेन जयेद्दोषाननुक्रमात् ॥ ३० ॥ पद्माद्यमासनंकृत्वा रेचकंपूरकंतथा ॥ कुम्भकञ्चसुखासीनः प्राणायामंतथाभ्यसेत ॥ ३१ ॥ प्राणानामुपसंरोधः प्राणायामइतिस्मृतः ॥ यथापर्वतधातूनांध्मातानांदह्यतेम

कहता हूँ उसको सुनिये ॥ २७ ॥ कि प्राण व अपान पवनका रोंकना प्राणायाम कहागया है और वह विद्वानों से लघु, मध्यम, उत्तरीय नामक तीनभातिका कहा गया है ॥ २८ ॥ बारह मात्राका लघु होताहै और पलक मूँदने व खोलने के समयका नाम मात्राहै इसका दुगुना मध्यम कहा गया है व तिगुना उत्तम कहा गयाहै ॥ २९ ॥ पहले से पसीना को जीतै व मध्यम से कम्पको और तीसरे से विपाद को जीतै इस प्रकार क्रमसे दोषोंको जीतै ॥ ३० ॥ और पद्मादिक आसनकर सुखपूर्वक बैठाहुआ पुरुष रेचक, पूरक व कुम्भक प्राणायामका अभ्यास करै ॥ ३१ ॥ प्राणों का निरोध करना याने रोंकलेना यही प्राणायाम कहा गयाहै जैसे तचाईहुई पर्वत

की धातुवों का मल जलताहै ॥ ३२ ॥ वैसेही इन्द्रियों से कियाहुआ दोष प्राणायाम से जलता है और सौ कपिला गौवोंको देकर जो फल होताहै वह फल प्राणायाम से होता है इस लिये योगका जाननेवाला मनुष्य सदैव प्राणका निरोधकरै और प्राणायामसे दिव्य शान्तिआदिक क्रमसे सिद्ध होते हैं ॥ ३३ । ३४ ॥ व शान्ति, प्रशान्ति, दीप्ति व प्रसाद ये गुण क्रमपूर्वक होते है और सहजही में आनेवाले पापोंकी निवृत्ति होती है ॥ ३५ ॥ मनका निग्रह करना शान्ति ऐसा नामक प्रथम गुण उत्पन्न होताहै और लोभ व मोहात्मक समस्त दोषोंको मन व बुद्धिमे निराकरणकर जो प्राप्तिहोती है वह इस लोकमें प्रशान्ति कहीजाती है और भूत,भविष्य व दूर

लः ॥ ३२ ॥ तथेन्द्रियकृतोदोषः प्राणायामेनदह्यते ॥ गोशतंकापिलंदत्त्वा यत्फलंतत्फलंभवेत् ॥ ३३ ॥ प्राणायामेन योगज्ञस्तस्मात्प्राणंसदायमेत् ॥ प्राणायामेनसिद्ध्यन्ति दिव्याःशान्त्यादयःक्रमात् ॥ ३४ ॥ शान्तिःप्रशान्तिर्दीप्तिश्च प्रसादश्चयथाक्रमम् ॥ सहजागन्तुकानाञ्च पापानाञ्चनिवर्त्तनम् ॥ ३५ ॥ शमनंशान्तिरित्याख्यः प्रथमोजायते गुणः ॥ लोभमोहात्मकान्दोषान्निराकृत्यैवकृत्स्नशः ॥ ३६ ॥ मनसाप्रज्ञयाप्राप्तिः साप्रशान्तिरिहोच्यते ॥ अतीतानागतानाञ्च विप्रकृष्टतिरोहिणाम् ॥ ३७ ॥ अर्थानामिहसंवित्तिस्सादीप्तिरितिहोच्यते ॥ सर्वेन्द्रियप्रसादश्च बुद्धेर्वैमरुतामपि ॥ ३८ ॥ प्रसादइतिसप्रोक्तः प्राप्यमेवंचतुष्टयम् ॥ एवंफलंसदायोगी प्राणायामंसमभ्यसेत् ॥ ३९ ॥ मृदुत्वंसेव्यमानस्तु सिंहशार्दूलकुञ्जराः ॥ यथायान्तितथाप्राणो वश्योभवतिसाधितः ॥ ४० ॥ प्राणायामस्त्वयंप्रोक्तः प्रत्याहारमतःशृणु ॥ विषयेषुप्रवृत्तस्य चेतसोविनिवर्तनम् ॥ ४१ ॥ प्रत्याहारंविनिर्दिष्टं तस्यसंयमनंहितत् ॥ प्रत्याहारस्त्वयंप्रोक्तो

तथा छिपी हुई ॥ ३६ । ३७ ॥ वस्तुवों का यहां ज्ञान होना वही इस लोकमें दीप्ति कही जातीहै सब इन्द्रियोंका प्रसन्नहोना और बुद्धि व पवनोंका भी प्रसन्नहोना ॥३८॥ वह प्रसाद ऐसा गुण कहा गया है इस प्रकार चारगुण पाने योग्यहैं इसफलवाले प्राणायाम को योगी सदैव अभ्यास करै ॥ ३९ ॥ सेवन किये जातेहुये सिंह, व्याघ्र व हाथी जैसे मृदुता को प्राप्तहोते है वैसेही साधन कियाहुआ प्राण वश में होजाता है ॥ ४० ॥ यह प्राणायाम कहा गया इसके उपरान्त प्रत्याहार को सुनिये कि विषयों में वर्तमान चित्तका निवृत्त करना प्रत्याहार बतलाया गयाहै और उस चित्तका रोंकना वह प्रत्याहार है ॥ ४१ ॥ यह प्रत्याहार कहा गया अब धारणाके लक्षण

को सुनिये कि जैसे जलके चाहनेवाले पुरुष जलको पात्र व हाथ आदिक से धीरे धीरे ॥ ४२ ॥ पीते हैं वैसेही साधन किये हुये पवनको योगी पीता है वायु, लिंग, नाभि, हृदय, तालु व भौंहों के बीच ललाट में ॥ ४३ ॥ क्रमसे चतुर्दल कमल व षट्दल, दशपत्र, द्वादशदल, षोडशपत्र व द्विदल कमल में क्रमसे प्राणों को लावै ॥ ४४ ॥ चतुर पुरुष ब्रह्मरन्ध्र के द्वारा मस्तकमें प्राणको भलीभाति धारणकरै व बारह प्राणायामोंको करै यह धारणा कहीगई है ॥ ४५ ॥ इन दश धारणाओं को पाकर पुरुष अक्षर (ब्रह्म) की समताको प्राप्तहोता है और धारणा में टिकेहुये पुरुषको जो ध्येय (ध्यान करने योग्य) है उसका लक्षण तुम सुनो ॥ ४६ ॥ हे

धारणालक्षणंशृणु ॥ यथातोयार्थिनस्तोयं पात्रहस्तादिभिःशनैः ॥४२॥ आपिबेयुस्तथावायुं योगीपिबतिसाधितम् ॥
पायौलिङ्गेतथानाभ्यां हृदितात्वोर्भ्रुवोन्तरे ॥ ४३ ॥ चतुर्दलेषड्दशच द्वादशेषोडशेद्विके ॥ ४४ ॥ मूर्द्धनिब्रह्मरन्ध्रेण
प्राणंसन्धारयेत्कृती ॥प्राणायामोदशद्वौच धारणैषाप्रकीर्तिता ॥ ४५ ॥ दशैताधारणाःप्राप्य प्राप्नोत्यक्षरसाम्यताम्॥
धारणास्थस्ययद्ध्येयन्तस्यतच्छृणुलक्षणम् ॥ ४६॥ ध्येयंबहुविधम्पार्थ यस्यान्तोनोपलभ्यते॥ केचिच्छिवंहरिंकेचि
त् केचित्सूर्यंविधिम्परे ॥ ४७ ॥ केचिद्देवींमहाभूतान्युतध्यायन्तिकेचन ॥ तत्रयोयच्चध्यायेत सचतत्रप्रलीयते ॥ ४८ ॥
तस्मात्सदाशिवन्देवं पञ्चवक्त्रंहरंस्मरेत ॥ पद्मासनस्थितंगौरं वृषोपरिसुसंस्थितम् ॥ ४९ ॥ दशहस्तंसुप्रसन्नवदनं
ध्यानमास्थितम् ॥ ध्येयमेतत्तवप्रोक्तं तस्यध्यानंसमाचरेत ॥ ५० ॥ ध्यानस्यलक्षणंत्वेतन्निमेषार्द्धमपिस्फुटम् ॥
नपृथग्ध्यायतेध्येयाद्धारणायांसमास्थितः ॥ ५१ ॥ एवमेतान्दुरारोहां भूमिमास्थाययोगवित ॥ नकिञ्चिच्चिन्तये

अर्जुनजी ! ध्येय बहुत प्रकारका है कि जिसका अन्त नहीं मिलता है कोई सदाशिवजी को कोई विष्णुको कोई सूर्य व कोई ब्रह्माको ध्याते हैं ॥ ४७ ॥ व कोई देवी और कोई महाभूतोंको ध्याते हैं परन्तु उस विषय में जो जिसका ध्यान करताहै वह उसमें लीन होजाताहै ॥ ४८ ॥ इस लिये पांच मुखवाले सदाशिवदेव महा-देवजीको स्मरणकरै कि पद्मासन से बैठेहुये, गौरवर्ण व बैलके ऊपर बैठेहुये ॥४९॥ व दश हाथोंवाले, प्रसन्नमुखवाले व ध्यानमें स्थितहैं यह ध्यान तुमसे कहा गया उन सदाशिवजी का ध्यानकरै ॥ ५० ॥ और ध्यान का लक्षण यह है कि धारणामें स्थित मनुष्य आधे पलभर भी ध्येय देवतासे अलग न ध्यान करै ॥ ५१ ॥ इस

प्रकार दुःखसे चढ़ने योग्य इसभूमि(स्थान) में स्थितहोकर योग जाननेवाला मनुष्य पश्चात् कुछ न ध्यानकरै वह समाधि ऐसी कही जातीहै ॥ ५२ ॥ और भलीभांति
कहते हुये मुझसे समाधिके लक्षण को सुनिये कि शब्द, स्पर्श, रससेहीन व गन्ध रूपसे रहित ॥ ५३ ॥ उस उत्तम पुरुषको प्राप्त हुआ मनुष्य समाधि मे स्थित कहा
गयाहै और उसको प्राप्तहोकर मनुष्य कभी विघ्नों से तिरस्कृत नहीं होताहै ॥५४॥ और समाधि में टिकाहुआ पुरुष बडेभारी दुःखसे भी नहीं चलायमान होताहै यदि
उसके कानों में शङ्खादिक सैकड़ों बाजा बजायेजाते हैं ॥ ५५ ॥ व यदि नगारा पीटे जावैं तौभी वह पुरुष बाहरके शब्दको नहीं प्राप्त होता है चाबुक के प्रहारसे

त्पश्चात्सासमाधिरितीर्यते ॥ ५२ ॥ समाधेर्लक्षणंसम्यग्ब्रुवतोमेनिशामय ॥ शब्दस्पर्शरसैर्हीनं गन्धरूपविवर्जित
म् ॥ ५३ ॥ तंपरम्पुरुषंप्राप्तः समाधिस्थःप्रकीर्तितः ॥ तन्नुप्राप्यनरोविघ्नैर्नाभिभूयेतकर्हिचित् ॥ ५४ ॥ समाधिस्थ
स्तुदुःखेन गुरुणापिनचाल्यते ॥ शङ्खादिशतशस्तस्य वाद्यतेयदिकर्णयोः ॥ ५५ ॥ भेर्यश्चयदिहन्यन्ते शब्दंबाह्यन्न
विन्दति ॥ कशाप्रहाराभिहतो वह्निदग्धतनुस्तथा ॥ ५६ ॥ शीताद्येचस्थितेघोरे स्पर्शंबाह्यन्नविन्दति ॥ रूपेगन्धेरसे
त ॥ ५८ ॥ नस्वर्गेनचपाताले मानुषेक्वचतत्सुखम् ॥ समाधिन्निश्चलांप्राप्य यत्सुखंविन्दतेनरः ॥ ५९ ॥ एवमारूढ
बाह्ये तादृशस्यतुकाकथा ॥ ५७ ॥ दृष्ट्वायश्चैवमात्मानं समाधिंलभतेपुनः ॥ तृष्णावाथबुभुक्षावा नतंबाधेतकर्हिचि
योगस्य तस्यापिकुरुनन्दन ॥ पञ्चोपसर्गाःकटुकाः प्रवर्तन्तेयथाशृणु ॥ ६० ॥ प्रातिभःश्रावणोदेवो भ्रमावर्तोथभी

माराहुआ व अग्निसे जलीहुई देहवाला वह पुरुष ॥ ५६ ॥ भयङ्कर जाड़ इत्यादिक प्राप्तहोनेपर भी बाहरी स्पर्शको नहीं प्राप्तहोता है तो वैसे पुरुषको रूप, गन्ध व
रसमें क्या कहना है याने बाहरी रूप, रस व गन्धको भी किसी प्रकारसे नहीं प्राप्त होसक्ता है ॥ ५७ ॥ जो इस प्रकार आत्माको देखकर फिर समाधि को प्राप्त
होता है उसको किसी प्रकार प्यास व भूख नहीं बाधा करती है ॥ ५८ ॥ न स्वर्ग में और न पाताल मे फिर मनुष्यलोक में वह सुख कहां है कि जिस सुख को
मनुष्य अचल समाधि को प्राप्त होकर पाताहै ॥ ५९ ॥ हे कुरुनन्दन ! इस प्रकार उस योगारूढ पुरुष के भी पांच कटु उपद्रव जिस प्रकार वर्तमान होते हैं उनको

सुनिये ॥ ६० ॥ कि प्रातिभ, श्रावण, दैव, भ्रम व भयंकर आवर्त ये पांच उपद्रव हैं सब शास्त्रों का ज्ञान होना यह सात्त्विक प्रातिभ उत्पातहै ॥ ६१ ॥ उसमें जो पुरुष गर्वको ग्रहण करताहै वह शीघ्रही योगसे अलग होजाताहै और हज़ारों योजनोंसे शब्द का सुनना वह श्रावण नामक उत्पातहै ॥ ६२ ॥ यह दूसरा सात्त्विक उपसर्ग है इससे मत्तहोकर पुरुष नष्ट होजाताहै और जो आठों देवयोनियों को देखता है यह दैव उपसर्ग है ॥ ६३ ॥ यह भी सात्त्विक दोष है इस मद से पुरुष नष्ट हो जाताहै और जल के भँवर की नाईं जब ज्ञानरूपी भँवर में विकल होताहै ॥ ६४ ॥ यह आवर्त नामक राजस दोष बड़ा भयंकरहै और जो कि योगीका अवलम्बहीन

णः ॥ प्रतिभासर्वशास्त्राणां प्रातिभोयञ्चसात्त्विकः ॥ ६१ ॥ तत्रयोमदमादद्याद्योगाच्छीघ्रंच्यवेतसः ॥ योजनानांसहस्रेभ्यः श्रवणंश्रावणस्तुसः ॥ ६२ ॥ द्वितीयस्सात्त्विकश्चायमस्मान्मत्तोविनश्यति ॥ अष्टौपश्यतियोनीश्च देवानां दैवइत्यसौ ॥ ६३ ॥ अयञ्चसात्त्विकोदोषो मदादस्माद्विनश्यति ॥ आवर्तइवतोयस्य ज्ञानावर्तेयदाकुलः ॥ ६४ ॥ आवर्ताख्यस्त्वयंदोषो राजसस्समहाभयः ॥ भ्राम्यतेयन्निरालम्बं मनोदोषैश्चयोगिनः ॥ ६५ ॥ समस्ताधारविभ्रंशाद्भ्रमाख्यस्तामसोगुणः ॥ एतैर्नाशितयोगास्तु सकलादेवयोनयः ॥ ६६ ॥ उपसर्गैर्महाघोरैरावर्त्तन्तेपुनःपुनः ॥ प्रावृत्यकम्बलंशुक्लं योगीतस्मान्मनोमयम् ॥ ६७ ॥ चिन्तयेत्परमंब्रह्म कृत्वातत्प्रवणंमनः ॥ आहाराश्सात्त्विकाश्चैव संसेव्याश्सिद्धिमिच्छता ॥ ६८ ॥ राजसैस्तामसैश्चैवयोगीसिद्ध्येन्नकर्हिचित ॥ श्रद्दधानेषुदान्तेषु श्रोत्रियेषुमहात्मसु ॥ ६९ ॥ स्वधर्मादनपेतेषु भिक्षायाच्याचयोगिना ॥ भैक्ष्यंयवान्नंतक्रंवा पयःसंयावमेववा ॥ ७० ॥ फलंमूलंविपक्वंवा

मन दोषों से भ्रमित किया जाताहै ॥ ६५ ॥ सब आधारों के भ्रष्ट होने के कारण भ्रम नामक तामसी अवगुण है इन से नष्ट किये योगवाले सब देवयोनिवाले प्राणी ॥ ६६ ॥ बड़े भयंकर उत्पातों से बार बार भ्रमते हैं इस लिये श्वेत कम्बल आच्छादन कर योगी मनोमय परब्रह्म को उसमें मन झुकाकर चिन्तन करै और सिद्धि चाहनेवाले पुरुषको सात्त्विकी भोजन सेवन करना चाहिये ॥ ६७।६८ ॥ क्योंकि राजसी व तामसी भोजनो से योगी किसी प्रकार नहीं सिद्ध होताहै और श्रद्धावान्, इन्द्रियजित, वेदवित् व महात्माओं में ॥ ६९ ॥ और अपने धर्मसे अभिन्नजनों में योगी को भिक्षा मागना चाहिये और भिक्षामें पाया हुआ, यवान्न, मट्ठा या दूध

व गुम्फिया ॥ ७० ॥ या बिन पके फल, मूल, कुन, पीना, सत्तू वेही पवित्रभोजन योगियों को सिद्धिकारक हैं॥ ७१ ॥ योग साधन करनेवाला पुरुष लक्षणों से मृत्यु समय को जानकर सावधान होकर कालकी वंचना के लिये योग करै ॥ ७२ ॥ उन लक्षणों को मैं कहताहूं कि जिनसे योगका जाननेवाला पुरुष मृत्युको जानता है कि अरुण चर्म व वसनको धारे तथा गाती व प्रियपूर्वक हँसती हुई ॥ ७३ ॥ स्त्री स्वप्न में जिसको दक्षिण दिशा में ले जावै वह भी मनुष्य नहीं जीता है और स्वप्न में हँसते हुये व नंगे पुरुषको हँसकर॥७४॥ व इसको जो बहुतही देखै उसको मृत्यु में प्राप्त जानै रीछ व वानर की सवारी पै बैठकर गाता हुआ जो पुरुष

कणपिण्याकसक्तवः ॥ शुच्याहारास्तथातेवै योगिनांसिद्धिकारकाः ॥ ७१ ॥ मृत्युकालंविदित्वाच निमित्तैर्योगसाधकः ॥ योगंयुञ्जीतकालस्य वञ्चनार्थंसमाहितः ॥ ७२ ॥ निमित्तानिचवक्ष्यामि मृत्युंयैर्वेत्तियोगवित् ॥ रक्तचर्माम्बरधरा गायन्तीहसतीप्रियम् ॥ ७३ ॥ दक्षिणस्यान्नयेन्नारी स्वप्नेसोपिनजीवति ॥ नग्नञ्चपुरुषंस्वप्ने हसमानंप्रहस्यच ॥ ७४ ॥ एनञ्चवीक्षतेत्यर्थं तंविद्यान्मृत्युमागतम् ॥ ऋक्षवानरयुग्यस्थो गायन्योदक्षिणांदिशम् ॥ ७५ ॥ यातिमज्जेत्तुयःपङ्के गोमयेवानजीवति ॥ केशाङ्गारतुषाभस्मभुजगैर्निर्जलान्नदीम् ॥ ७६ ॥ एषामन्यतमैःपूर्णां दृष्ट्वास्वप्नेनजीवति ॥ करालैर्विकटैःकृष्णैः पुरुषैरुद्यतायुधैः ॥ ७७ ॥ पाषाणैस्ताडितःस्वप्ने सद्योमृत्युंव्रजेन्नरः ॥ सूर्य्योदयेयस्य शिवा क्रोशन्तीयातिसम्मुखम् ॥ ७८ ॥ विपरीतंपरीतंवासद्योमृत्युमृच्छति ॥ दीपंछिन्नंचयोवेत्ति वमत्यग्निं तथानिशि ॥ ७९ ॥ नात्मानंपरनेत्रस्थं वीक्ष्यतेनसजीवति ॥ शुक्रायुधञ्चार्द्धरात्रे दिवातारागणन्तथा ॥ ८० ॥ दृष्ट्वा

दक्षिण दिशाको जाताहै और जो कीचड़ में या गोमय में नहाता है वह नहीं जीता है और निर्जल नदी को बाल, अँगार, भूसी, भस्म व सांपों से ॥ ७५ । ७६ ॥ या इन के सिवाय अन्य वस्तुवों से स्वप्न में पूर्ण देखनेवाला पुरुष नहीं जीता है व विकट, भयंकर, काले व अस्त्रों को उठाये हुये पुरुषों से ॥ ७७ ॥ पत्थरों करके जो स्वप्न में माराजाता है वह मनुष्य शीघ्रही मृत्यु को प्राप्त होता है और सूर्योदय में चिल्लाती हुई सियारी जिसके सामने जाती है ॥ ७८ ॥ व बायें या दाहिने ओर जाती है वह मनुष्य शीघ्रही मृत्युको प्राप्त होता है और जो कटे हुये दीपको जानता है व रात में अग्नि को वमन करता है ॥ ७९ ॥

और पराये नेत्र में स्थित अपने शरीर को जो नहीं देखता है वह नहीं जीता है आधीरात में इन्द्रधनुष व दिन में नक्षत्रगणों को जो देखता है ॥ ८० ॥ और जो शरीरधारी पुरुष दृष्टि से अपनी छाया को क्षीण देखै व नासिका कुटिलताको प्राप्त होवै व कानों में नीचता, उच्चता होवै ॥ ८१ ॥ और जिसका बायां नेत्र बहने लगे उसकी मृत्यु समीपही है व मुख कुछ अरुणता को प्राप्त होवै और जब जीभ काली होजावै ॥ ८२ ॥ तब विद्वान् अपनी मृत्युको समीपही जानै व जो पुरुष ऊंट व गधे की सवारीसे स्वप्न में दक्षिण दिशा को जाता है व कानों को मूंदकर शब्द को भी न सुनै वह नहीं जियैगा वैसेही स्वप्न में गढ़े में गिरेहुये पुरुष का

न्येतसंक्षीणामात्मच्छायांयआत्मवान् ॥ नासिकावक्रतामेति कर्णयोर्निम्नतोन्नतिः ॥ ८१ ॥ नेत्रञ्चवामंस्रवति त
मीपतः ॥ आरक्ततामेतिमुखं जिह्वाचाप्यसितायदा ॥ ८२ ॥ तदाप्राज्ञोविजानीयादासन्नंमृत्युमात्मनः ॥
स्वप्नेप्रयातिदक्षिणाम् ॥ ८३ ॥ दिशंकर्णौपिधायापि निर्घोषंशृणुयान्नच ॥ नसजीवेत्तथास्वप्ने प
४ ॥ द्वारन्नचोत्तिष्ठतिच स्वभ्राद्दृष्टिश्चलोर्द्ध्वगा ॥ स्वप्नेग्निंप्रविशेद्यस्तु नचनिष्क्रामतेपुनः ॥
न्तंतस्यजीवितम् ॥ तथाभिहन्यतेदृष्टैर्भूतैरात्रावथोदिवा ॥ ८६ ॥ प्रकृतेर्विकृतिर्वापि त
रूणाञ्चपित्रोर्ज्ञानविदान्तथा ॥ ८७ ॥ निन्दामवज्ञांकुरुते भक्तोभूत्वानजीवति ॥
त ॥ ८८ ॥ धारणांसम्यगास्थाय समाधावचलोभवेत् ॥ यदिनेच्छतितंमृत्यु

...दृष्टि ऊपर को जातीहो और स्वप्नमें जो अग्निमें पैठे व फिर नहीं निकलै ॥ ८३ । ८४ । ८५ ॥ ...वैसेही चले हुये भूतों से रात या दिन में जो भागजाता है ॥ ८६ ॥ व जिसके स्वभाव का ...पिता ... ज्ञान के जाननेवाले जनोंकी ॥ ८७ ॥ जो भक्तहोकर निन्दा व अपमान करता है ...धारणा में स्थितहोकर समाधि में अचल होवै और यदि यह मृत्युको न

र्वकाः ॥ ५४ ॥

। व एकही याने आकाशसे धारण कर
सके उपरान्त सुनिये ॥ ४ ॥ छायाका नाश व उत्प...
होना ॥ ५ ॥ और दूरसे शब्द सुनना और सब प्राणियों के शब्द...
का देखना ॥ ६ ॥ ये आठ आकाश की सिद्धियां व पहलेवाली भी बत्ती...

चाहै तो मृत्युको नहीं प्राप्तहोता है ॥ ८९ ॥ अथवा मुक्तिको चाहता हुआ पुरुष ब्रह्मको मस्तक में विसर्जन करै और मुक्त होजाने पर जब देह स्थित रहती है तब फिर जो उपद्रव ॥ ९० ॥ योगी के समीप प्राप्तहोते हैं हे पाण्डव! उनको भी सुनिये कि ऐशान व राक्षसपुरमें, यक्ष और गन्धर्वनगर में ॥ ९१ ॥ व इन्द्र, सौम्य, प्रजापति और ब्रह्मपुर में आठ उत्तम सिद्धियां होती हैं उनको सुनिये कि पार्थिवा व जलमयी और तैजसी ॥ ९२ ॥ वाती, व्योमात्मिका, मानसी, अहम्भवा व मति ये प्रत्येक आठभांतिकी भिन्न हैं व क्रमसे दुगुनी दुगुनी हैं ॥ ९३ ॥ कि पहले आठ व अन्तमें चौंसठि हैं उसको सुनिये कि जिसप्रकार वे सिद्धियां हैं स्थूलता,

ततोनासौप्रपद्यते ॥ ८९ ॥ विमुक्तिमथवाञ्छन्तु विसृजेद्ब्रह्ममूर्द्धनि ॥ सन्तिदेहेविमुक्तेवा उपसर्गाश्चयेपुनः ॥ ९० ॥ योगिनंसमुपायान्ति शृणुतान्यपिपाण्डव ॥ ऐशानेराक्षसपुरेयक्षेगन्धर्वएववा ॥ ९१ ॥ ऐन्द्रेसौम्येप्रजापत्ये ब्राह्मेचाष्टसुसिद्धयः ॥ भवन्तिचाष्टौशृणुताः पार्थिवाप्याचतैजसी ॥ ९२ ॥ वातीव्योमात्मिकाचैव मानसाहंभवामतिः ॥ प्रत्येकमष्टधाभिन्ना द्विगुणाद्विगुणाक्रमात् ॥ ९३ ॥ पूर्वेचाष्टौचतुःषष्टिरन्तेशृणुचतद्यथा ॥ स्थूलताह्रस्वताबाल्यं वार्द्धक्यंयौवनंतथा ॥ ९४ ॥ नानाजातिस्वरूपञ्च चतुर्भिर्देहधारणम् ॥ पार्थिवांशंविनानित्यमष्टौपार्थिवसिद्धयः ॥ ९५ ॥ विजितेपृथिवीतत्त्वे याऐशान्येभवन्तिच ॥ भूमाविवजलेवासोनातुरोर्णवमाविशेत् ॥ ९६ ॥ सर्वत्रजलप्राप्तिश्च अपिशुष्कंध्रुवंस्थलम् ॥ धारणंत्रिभिर्देहस्य नदींचस्थापयेत्करे ॥ ९७ ॥ अव्रणत्वंशरीरस्य कान्तिश्चाप्यष्टकंस्मृतम् ॥ अष्टौपूर्वाइमाश्चाष्टौ राक्षसानांपुरेस्मृताः ॥ ९८ ॥ देहादग्निविनिर्माणं तत्तापभयवर्जितम् ॥ शक्तिर्दग्धुंचलोकानां ज

ह्रस्वता, बालपन, वृद्धता, युवापन ॥ ९४ ॥ व अनेक प्रकारकी जातिके स्वरूपको धारणकरना व पृथ्वी अंशके विना नित्य चारही महाभूतों याने जल, तेज, वायु, आकाशसे देह धारण होता है ये आठ पार्थिव सिद्धियां हैं ॥ ९५ ॥ जोकि पृथ्वी तत्त्व जीतने पर ईशानलोकमें होती हैं और भूमिकी तरह जलमें वासहोना और मनुष्य शीघ्रतासे समुद्रमें पैठजाता है ॥ ९६ ॥ व निश्चयकर सूखाभी स्थल होवै परन्तु सब कहीं जलकी प्राप्तिहोना और तीनही वस्तुवोंसे याने तेज, वायु, आकाशसे देहको धारणकरता है व नदीको हाथमें धरलेताहै ॥ ९७ ॥ और घाव न होना व शरीरकी शोभाहोना ये आठ सिद्धियां कहीगईं आठ पहलेवाली और आठ ये

राक्षसों के पुरकी सिद्धियां कहीगई हैं ॥ ९८ ॥ और देहसे अग्नि रचना व उसकी तापके डरसे रहित होना, लोकों के जलाने के लिये शक्तिहोना व जलके बीचमें अग्नि जलाना ॥ ९९ ॥ और हाथसे आग लेलेना व स्मरणमात्र से अग्निमें जली हुई वस्तुका निर्माण करना और दोही वस्तुओं से अर्थात् पवन व आकाश से देह धारण करना ॥ १०० ॥ पहलेवाली सोलह सिद्धियां व आठ तैजसी सिद्धियां ये यक्षस्थानमें हैं और मनके समान गतिहोना व प्राणियों के भीतर प्रवेश करना ॥ १ ॥ व खेलही से पर्वतादिक बड़े बोझों का चलना, लघुता, गुरुता व हाथों से पवन का धारण करना ॥ २ ॥ और अंगुली के अग्रभाग के निपातन से भूमिका सब कहीं

लमध्येऽग्निज्वालनम् ॥ ९९ ॥ अग्निग्रहश्चहस्तेन स्मृतिमात्रेणपावके ॥ भस्मीभूतस्यनिर्माणं द्वाभ्यांदेहस्यधारणम् ॥ १०० ॥ पूर्वाःषोडशचाप्यष्टौ तैजस्योयक्षसद्मनि ॥ मनोगतित्वंभूतानामन्तर्निवेशनन्तथा ॥ १ ॥ पर्वतादिमहाभारवहनंलीलयैवच ॥ लघुत्वंगौरवत्वंच पाणिभ्यांवायुधारणम् ॥ २ ॥ अङ्गुल्यग्रनिपातेन भूमेःसर्वत्रकम्पनम् ॥ देहधारणमेकेनगन्धर्वेवातसिद्धयः ॥ ३ ॥ चतुर्विंशतिपूर्वाश्च अष्टावेताश्चसिद्धयः ॥ गन्धर्वलोकेद्वात्रिंशदतऊर्ध्वंनिशामय ॥ ४ ॥ छायाविघातनिष्पत्तिरिन्द्रियाणामदर्शनम् ॥ आकाशगमनंनित्यमिन्द्रियाद्याःसमाःस्वयम् ॥ ५ ॥ दूरेचशब्दग्रहणंसर्वशब्दावगाहनम् ॥ तन्मात्रलिङ्गग्रहणंसर्वप्राणिनिदर्शनम् ॥ ६ ॥ अष्टौव्योमात्मिकाश्चैन्द्रे द्वात्रिंशदपिपूर्विकाः ॥ यथाकामोपलब्धिश्च यथाकामविनिर्गमम् ॥ ७ ॥ सर्वशक्तिमवश्चैवसर्वगुह्यनिदर्शनम् ॥ संसारदर्शनञ्चा

कांपना व एकही याने आकाशसे धारण करना ये वातसिद्धियां गन्धर्वलोक में हैं ॥ ३ ॥ चौबिस पहलेवाली और आठ ये सिद्धियां गन्धर्वलोकमें बत्तीस सिद्धियां हैं इसके उपरान्त सुनिये ॥ ४ ॥ छायाका नाश व उत्पन्नहोना, इन्द्रियों का न देख पड़ना व नित्यही आकाश में गमन करना व आपही इन्द्रिय आदिकों का शान्त होना ॥ ५ ॥ और दूरसे शब्द सुनना और सब प्राणियों के शब्दका जानलेना और तन्मात्र (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध) के चिह्नका ग्रहणकरना व समस्त प्राणियों का देखना ॥ ६ ॥ ये आठ आकाश की सिद्धियां व पहलेवाली भी बत्तीस सिद्धियां इन्द्रलोक में प्राप्त होती हैं और इच्छाके अनुकूल वस्तुका मिलना व इच्छाके अनु-

सार जाना ॥ ७ ॥ व सबकी शक्ति उत्पन्नहोना, सब गुप्त वस्तुवों का दर्शन और संसारभरको देखना ये मानसी आठ सिद्धियां ॥ ८ ॥ और चालीस पहलेवाली सिद्धियां ये सोमलोक में कहीगई हैं और काटना, तपाना, छेदना व संसारभर में घूमना ॥९॥ समस्त प्राणियों का प्रसन्नरहना और मृत्यु व कालका जीतना अहङ्कार से उत्पन्न ये आठ व पहलेवाली सिद्धिया प्रजापतिलोक में हैं ॥ १० ॥ और आकारही से संसारकी सृष्टि करना व अनुग्रह, प्रलय का अधिकार व लोकमें चित्त प्रवृत्त करना ॥ ११ ॥ व यह असमानता और चित्रमें प्रकटहोना व शान्तहोना तथा शुभ, अशुभ का करना ये आठ बुद्धिसे उपजेहुये गुण ॥ १२ ॥ और छप्पन पहलेवाले

पि मानस्योष्टौचसिद्धयः ॥ ८ ॥ चत्वारिंशाच्चपूर्वाश्चसोमलोकेस्मृतास्त्विमाः ॥ छेदनन्तापनंवेधं संसारपरिवर्त्तनम्॥ ९ ॥ सर्वभूतप्रसादत्वं मृत्युकालजयस्तथा ॥ अहङ्कारोद्भवाश्चाष्टौ प्राजापत्येचपूर्वकाः ॥ १० ॥ आकारेणजगत्सृष्टिस्तथानुग्रहमेवच ॥ प्रलयस्याधिकारश्चलोकेचित्तप्रवर्तनम्॥ ११ ॥ असादृश्यमिदंचित्रव्यक्तंनिर्वाणमेवच ॥ शुभेतरस्यकर्तृत्वमष्टौबुद्धिभवास्त्विमाः ॥ १२ ॥ षट्पञ्चाशत्तथापूर्वाश्चतुःषष्टिरिमेगुणाः ॥ ब्राह्मयेपदेप्रवर्तन्ते गुह्यमेतत्तवेरितम् ॥ १३ ॥ जीवस्यबुद्धिभेदेच सिद्धिष्वेतासुयोगिना ॥ सङ्गोनैवविधातव्यो भयात्पतनसम्भवात् ॥ १४ ॥ एतान्गुणान्निराकृत्य युञ्जतोयोगिनस्सदा ॥ सिद्धयोष्टौप्रवर्तन्ते योगसंसिद्धिकारकाः ॥ १५ ॥ अणिमालघिमाचैव महिमाप्राप्तिरेवच ॥ प्राकाम्यञ्चतथेशत्वं वशित्वञ्चतथापरम् ॥ १६ ॥ यत्रकामावसायत्वं माहेश्वरपदेस्थितिः ॥ सूक्ष्मात्सूक्ष्मत्वमणिमाशीघ्रत्वाल्लघिमास्मृता ॥ १७ ॥ वशित्वाद्दशितानाम सप्तमीसिद्धिरुत्तमा ॥ यत्रेच्छातत्रच

ये चौंसठि गुण ब्रह्माके स्थानमें वर्तमान हैं यह गुप्तचरित तुमसे कहा गया ॥१३॥ जीवके बुद्धिभेद होने पर भ्रष्टहोने से उपजे हुये डरसे इन सिद्धियों में योगीको सङ्ग न करना चाहिये ॥ १४ ॥ इन गुणोंको निराकरणकर सदैव योग करते हुये योगीके योगको भलीभांति सिद्ध करनेवाली आठ सिद्धियां वर्तमान होतीहैं ॥ १५ ॥ अणिमा, लघिमा, महिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व व अन्य वशित्व ये सिद्धियां प्राप्तहोती हैं ॥ १६ ॥ कि जिस सिद्धिमें कामोंकी समाप्ति होतीहै व माहेश्वर स्थानमें स्थिति होती है और सूक्ष्मसे सूक्ष्मता अणिमा है व शीघ्रतासे लघिमा कहीगई है ॥१७॥ और वशमें होना यह वशिता नामक सातवीं उत्तम सिद्धिहै कि जहां इच्छा

होवै वहां स्थितिहोवै व जिसमें कामोंकी समाप्तिहोती है ॥ १८ ॥ ईश्वरके पदपै प्राप्त पुरुषके ये सिद्धियां होती हैं उसी कारण न उत्पन्न होताहै न बढ़ता है और न नष्ट होताहै ॥ १९ ॥ इसप्रकार मुक्त ऐसा कहा गया है जोकि इस भांति मुक्तिको प्राप्तहोताहै जिस प्रकार जलमें फेंकाहुआ जल जलके साथ एकताको प्राप्तहोता है ॥ २० ॥ वैसेही योगीका जीव परमात्माके साथ समताको प्राप्तहोताहै ऐसा फल जानकर योगी सदैव योगका अभ्यास करै ॥ २१ ॥ इस योगार्थ में निर्मल योगीलोग इस उपमा को कहते हैं कि चन्द्रमा की किरणों के संयोगसे सूर्यकान्तमणि अग्निको ॥ २२ ॥ नहीं उत्पन्न करती है एक न होकर वही भी उपमा योगीकी है जैसे कपिंजल, मूस

स्थानं यत्रकामावसायिता ॥ १८ ॥ ऐश्वर्यंपदमाप्तस्य भवन्त्येताश्चसिद्धयः ॥ ततोनजायतेनैव वर्द्धतेनविनश्यति ॥ १९ ॥ एवंमुक्तइतिप्रोक्तो यएवंमुक्तिमाप्नुयात ॥ यथाजलंजलेनैक्यं निक्षिप्तमुपगच्छति ॥ २० ॥ तथैवसाम्यमभ्येति योगेनात्मापरात्मना ॥ एवंज्ञात्वाफलंयोगी सदायोगंसमभ्यसेत ॥ २१ ॥ अत्रोपमांव्याहरन्ति योगार्थेयोगिनोमलाः ॥ शशाङ्करश्मिसंयोगादर्ककान्तोहुताशनम् ॥ २२ ॥ समुत्सृजतिनैकस्मन्नुपमासापियोगिनः ॥ कपिञ्जलाखुनकुला वसन्तिस्वामिवद्गृहे ॥ २३ ॥ ध्वस्तेयान्त्यन्यतोदुःखंनतेषांसोपमीयते ॥ पिपीलिकामृदायद्वन्मुखाग्रेणकनीयसीं ॥ २४ ॥ करोतिमृद्भागचयं उपदेशस्सयोगिनः ॥ पशुपक्षिमनुष्याद्यैः पत्रपुष्पफलान्वितम् ॥ २५ ॥ वृक्षंविलुप्यमानन्तु बुद्ध्वासिद्ध्यन्तियोगिनः ॥ रुरुगात्रविषाणाग्रमालक्ष्यतिलकाकृति ॥ २६ ॥ सहतेनविवर्द्धन्तु योगीसिद्धिमुपाश्नुते ॥ जलपूर्णमुपादाय पात्रमारोहतेमुखः ॥ २७ ॥ तुङ्गमार्गंविलोक्यैवं विज्ञातंकिन्नयोगिना ॥ तद्वहंयत्रवस

व नेउले स्वामी की तरह घरमें बसते हैं ॥ २३ ॥ और घर नाश होने पर अन्यत्र चलेजाते हैं व उनको दुःख नहीं होताहै वही उपमा दीजाती है जैसे चींटी मुखके छोटे अग्रभागके द्वारा मिट्टी स ॥ २४ ॥ मिट्टी के भागका ढेर करदेती है वही उपदेश योगीको होताहै पत्र, पुष्प व फलों से संयुत वृक्षको पशु, पक्षी व मनुष्यों से काटे जातेहुये जानकर योगी सिद्धिको प्राप्तहोते हैं रुरु (मृगविशेष) के शरीर व सींगके अग्रभागको तिलक के आकार समान देखकर ॥ २५ । २६ ॥ योगी सिद्धिको भोगता है क्योंकि यह सींग उसकी देहके साथ बढ़ताहै ऊंचे मार्गको देखकर मनुष्य जलसे भरेहुये पात्रको लेकर जैसे चढ़ता है क्या योगीने ऐसा नहीं जानाहै वही घर है

जहां कि निवासहोवै और वही भोजनहै कि जिससे जीवन होताहै ॥ २७। २८ ॥ व जिससे प्रयोजन सिद्ध होता है व आपही योगकी सिद्धिके लिये होताहै वैसेही ज्ञानको योगी उपासनाकरै जोकि कार्यका साधकहोवै ॥ २९ ॥ और जो यह ज्ञानकी अधिकता है वह योगको विघ्न करनेवाली है यह जानने योग्य है यह जानने योग्य है इस प्रकार तृषित होकर जो विचरता है ॥ ३० ॥ वह हज़ार कल्पोसे भी जानने योग्य वस्तुको नहीं प्राप्तहोता है सङ्गको छोड़हुये व क्रोधको जीतकर थोड़े भोजनवाला जितेन्द्रिय मनुष्य ॥ ३१ ॥ बुद्धिसे द्वारोंको मूँदकर मनको ध्यान में लगावै और सात्त्विक भोजनको सेवै उसका सेवन न करै कि जिससे ज्ञानरहित

तिस्तद्धोऽज्यंयेनजीव्यते ॥ २८ ॥ येननिष्पद्यतेचार्थः स्वयंस्याद्योगसिद्धये ॥ तथाज्ञानमुपासीत योगीयत्कार्यसाधकम् ॥ २९ ॥ ज्ञानानांबहुताचेयं योगविघ्नकरं हिसा ॥ इदंज्ञेयमिदंज्ञेयमितियस्तृषितश्चरेत् ॥ ३० ॥ अपिकल्पसहस्रेणनैवज्ञेयमवाप्नुयात् ॥ त्यक्तसङ्गोजितक्रोधो लघ्वाहारोजितेन्द्रियः ॥ ३१ ॥ पिधायबुद्ध्याद्वाराणि मनोध्यानेनिवेशयेत् ॥ आहारंसात्त्विकंसेवेन्नतंयेनविचेतनः ॥ ३२ ॥ सादयन्योहिभुञ्जानो रौरवस्यप्रियातिथिः ॥ वाग्दण्डःकर्मदण्डश्च मनोदण्डश्चतेत्रयः ॥ ३३ ॥ यस्यैतेनियतादण्डा सत्रिदण्डीयतीस्मृतः ॥ अनुरागंजनोयाति परोक्षेगुणकीर्त्तनम् ॥ नबिभ्यतिचसत्त्वानि सिद्धेर्लक्षणमुच्यते ॥ ३४ ॥ अलौल्यमारोग्यमनिष्ठुरत्वं गन्धःशुभोमूत्रपुरीषमल्पम् ॥ ३५ ॥ कान्तिःप्रसादःस्वरसौम्यताच योगप्रवृत्तेःप्रथमंहिचिह्नम् ॥ समाहितोब्रह्मपरेऽप्रमादी शुचिस्तथैकान्तरतिर्जितेन्द्रियः ॥ ३६ ॥ समाप्नुयाद्योगमिमंमहात्मना विमुक्तिमाप्नोतिततश्चयोगतः ॥ कुलंपवित्रंजननीकृतार्थावसुन्ध

होजावै ॥ ३२ ॥ व क्लेशित करताहुआ जो भोजन करताहै वह रौरव नरकका प्यारा पाहुन होताहै वाणीका दण्ड, कर्मका दण्ड व मनका दण्ड वे तीनों दण्डहैं ॥ ३३ ॥ जिसके ये तीन दण्ड नियतहैं वह त्रिदण्डी यती कहा गयाहै मनुष्य जिससे स्नेह को प्राप्तहोवैं और परोक्ष में जिसके गुण कहेजावैं और जिससे प्राणी न डरै यह सिद्धिका लक्षण कहा जाता है ॥ ३४ ॥ अचञ्चलता, नीरोगता, कामलता, सुन्दर गन्ध व थोड़ा मूत्र, विष्ठा ॥ ३५ ॥ शोभा, प्रसन्नता, स्वरकी सुन्दरता यह योगमें प्रवृत्तिका प्रथम चिह्नहै सावधान व परब्रह्ममें प्रमादरहित, पवित्र एकान्त प्रीतिवाला, जितेन्द्रिय ॥ ३६ ॥ व उदारमनवाला पुरुष इस योगको प्राप्तहोताहै तदनन्तर योग

से विशेषकर मुक्तिको प्राप्तहोताहै उसका कुल पवित्र होगया व माता कृतार्थ होगई और उससे पृथ्वी भाग्यवती होगई ॥ ३७॥ कि जिसका चित्त मुक्तिके मार्गमें सुख-
सागर में डूबगया व परब्रह्म में चित्त लगगया है व विशेषकर शुद्ध व समान ढेला व सुवर्णवाला और महोत्सवयुक्त समस्त प्राणियों में बसता हुआ ॥ ३८ ॥ यती
(संन्यासी) सदैव रहनेवाले व विकाररहित उत्तम स्थान में जाकर फिर नहीं उत्पन्न होताहै मैंने इस योगरहस्यको वर्णन किया और इस प्रकारके योगको गौतम
मुनिने पायाहै ॥ ३९ ॥ हे अर्जुनजी ! दर्शन करते हुये पुरुषके कलियुग के पापविनाशक इस लिंगको उन गौतमजी ने स्थापन किया है जो पुरुष कुँवार महीने

**रामाग्यवतीचतेन ॥ ३७ ॥ विमुक्तिमार्गेसुखसिन्धुमग्नं लग्नंपरेब्रह्मणियस्यचेतः ॥ विशुद्धशुद्धस्समलोष्टकाञ्चनः
समस्तभूतेषुवसन्महोत्सवः ॥ ३८ ॥ स्थानंपरंशाश्वतमव्ययञ्च यतिर्हिंगत्वानपुनःप्रजायते ॥ इदंमयायोगरहस्य
मुक्तमेवंविधङ्गौतमःप्रापयोगम् ॥ ३९ ॥ तेनैतच्चस्थापितम्पार्थलिङ्गं सम्पश्यतोवैकलिकल्मषघ्नम् ॥ यश्चाश्विनेकृ
ष्णचतुर्दशीदिने रात्रौसमभ्यर्चतिलिङ्गमेतत् ॥ ४० ॥ महोपहारेणविमुक्तपापस्सयातियत्रास्तिसगौतमोमुनिः ॥ इदं
मयापार्थतवप्रणीतं गुप्तस्यक्षेत्रस्यसमासयोगात् ॥ ४१ ॥ माहात्म्यमेतत्सकलंशृणोतियस्सस्याद्विशुद्धःकिमुवच्मिभू
यः ॥ ४२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डे गौतमेश्वरमाहात्म्यन्नामद्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥ * ॥
नारदउवाच ॥ अतःपरंप्रवक्ष्यामि ब्रह्मेशंलिङ्गमुत्तमम् ॥ यस्यश्रवणमात्रेण वाजपेयफलंलभेत् ॥ १ ॥ एकदातु**

में कृष्णपक्षकी चौदसि के दिन रातको इस लिंगका बड़े उपहार से पूजन करता है ॥४०॥ वह पातकोंसे छूटकर वहां जाताहै जहां कि गौतम मुनिहैं हे अर्जुनजी !
गुप्तक्षेत्र के इस चरितको मैंने तुमसे संक्षेपसे वर्णन किया ॥४१॥ जो इस समस्त माहात्म्यको सुनताहै वह विशेषकर पवित्र होताहै अब फिर मैं क्या वर्णनकरूं ॥४२॥
इति श्रीस्कन्दपुराणकुमारिकाखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायाभाषाटीकायामष्टाङ्गयोगवर्णनपूर्वकगौतमेश्वरमाहात्म्यन्नामद्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥ ❀ ॥
दो० । नारदमुनि थाप्यो यथा ब्रह्मेशक शिवदेव । तिरपनके अध्यायमें सोई चरित सुभेव ॥ नारदजी बोले कि इसके उपरान्त उत्तम ब्रह्मेश लिङ्ग को कहताहू कि

जिसके सुननेही से वाजपेय यज्ञके फलको प्राप्त होताहै ॥ १ ॥ हे अर्जुन जी! पहले एक समय सृष्टि की इच्छावाले ब्रह्मा जीने डेढ़हज़ार वर्ष तक भयंकर तपस्या कियाहै ॥ २ ॥ तदनन्तर उस तपस्यासे प्रसन्न होकर पार्वतीजीके पति सदाशिवजीने इन लोककारक ब्रह्माजी के लिये निज मनोरथवाले वरदान को दियाहै ॥ ३ ॥ तदनन्तर प्रसन्न व बहुतही आनन्दित तथा कृतार्थ होकर ब्रह्माजीने क्षेत्र का माहात्म्य जानकर आपही लिंगका निर्माण किया ॥ ४ ॥ व ब्रह्मसर नामक समस्त पातकों के विनाशक तथा उत्तम व पुण्यदायक तड़ाग को महीनगर से पूर्व ओर खोदाहै ॥ ५ ॥ व इस तड़ाग के किनारे स्वामी शिवजी के महालिंग को थापाहै

पुरापार्थ सृष्टिकामेनब्रह्मणा ॥ तपःसुचरितंघोरं सार्द्धवर्षसहस्रकम् ॥ २ ॥ तपसातेनसन्तुष्टः पार्वतीपतिशङ्करः ॥ वरमस्मैततःप्रादाल्लोककर्त्रेस्ववाञ्छितम् ॥ ३ ॥ ततोहृष्टःप्रमुदितः कृतकृत्यःपितामहः ॥ ज्ञात्वाक्षेत्रस्यमाहात्म्यं स्वयंलिङ्गंचकारह ॥ ४ ॥ चखानचसरःपुण्यं नाम्नाब्रह्मसरःशुभम् ॥ महीनगरकात्पूर्वं महापातकनाशनम् ॥ ५ ॥ अस्य तीरेमहालिङ्गं स्थापयामासवैप्रभुम् ॥ तत्रदेवःस्वयंसाक्षाद्विद्यतेकिलशङ्करः ॥ ६ ॥ पुष्करादधिकंतीर्थं ब्रह्मेशन्नाम फाल्गुन ॥ तत्रस्नात्वानरोभक्त्या पिण्डदानंसमाचरेत् ॥ ७ ॥ दानञ्चैवयथाशक्त्या कार्त्तिक्याञ्चविशेषतः ॥ देवंप्रपूजयेद्भक्त्या ब्रह्मेशंहृष्टमानसः ॥ ८ ॥ पितरस्तस्यतुष्यन्ति यावदाभूतसम्प्लवम् ॥ पुष्करेषुचयत्पुण्यं कुरुक्षेत्रेरविग्रहे ॥ ९ ॥ गङ्गादिपुण्यक्षेत्रेषु यत्फलंप्राप्यतेनरैः ॥ तत्फलंसमवाप्नोति तीर्थस्यास्यावगाहनात् ॥ १० ॥ मोक्षलिङ्गस्यमाहात्म्यं शृणुपार्थमहाद्भुतम् ॥ मयास्थानहितार्थञ्चसमाराध्यमहेश्वरम् ॥ ११ ॥ स्थापितंप्रवरंलिङ्गं नाम्नामोक्षे

वहां पर साक्षात् सदाशिव जी प्रकटही विद्यमान हैं ॥ ६ ॥ हे अर्जुनजी! ब्रह्मेश नामक तीर्थ पुष्कर से अधिक है उसमें भक्तिसे नहाकर मनुष्य पिण्डदान करै ॥ ७ ॥ व यथाशक्ति से दान करै और कार्त्तिकी मे विशेषकर प्रसन्नमन होताहुआ पुरुष ब्रह्मेश नामक शिवदेव को भक्ति से पूजै ॥ ८ ॥ तो उसके पितर कल्पपर्यन्त तृप्त होते हैं पुष्करक्षेत्र में जो पुण्य है व सूर्यग्रहण मे कुरुक्षेत्र में जो पुण्य होती है ॥ ९ ॥ और गङ्गादिक पवित्र तीर्थों में मनुष्यों को जो पुण्य मिलती है उस फलको मनुष्य इस तीर्थ के स्नान से पाताहै ॥ १० ॥ हे अर्जुन! मोक्षलिंगके बड़े अद्भुत माहात्म्यको सुनिये कि मैने स्थानके हितके लिये महादेवजीका आराधनकर ॥ ११ ॥

मोक्षेश्वर नामक सदाशिवजी के उत्तम लिंगको थापाहै तदनन्तर हे अर्जुनजी ! कुशके अग्रभाग से मैंने कूप खनन किया [illegible] है ॥ १२ ॥ व लोकोंके रचने
वाले परमेष्ठी ब्रह्माजी को प्रसन्न कराकर और मनुष्योंको मोक्ष मिलने के लिये ब्रह्माके कमण्डलुसे सरस्वतीजी को मोक्षनाथ के इस कूपमें लाया हूं ॥ [illegible]
शुक्लपक्षमें जो चौदसि होती है ॥१३।१४॥ उस तिथिमें कुँवेमें नहाकर प्रेतोंको उद्देशकर जो तिलपिण्ड देताहै वह निश्चयकर मोक्षतीर्थ के फलको प्राप्तहोताहै ॥१५॥ कु[illegible]
व हे अर्जुनजी ! उसके कुलमें प्रेत नहीं होताहै इसमें सन्देह नहीं है इस तीर्थ के प्रभावसे प्रेत मोक्षको प्राप्तहोते हैं ॥ १६ ॥ व जयादित्य नामक उत्तम कूपमें यत्नसे

श्वरंहरम् ॥ दर्भाग्रेणततःपार्थ कूपंखनितवानहम् ॥ १२ ॥ प्रसाद्यलोककर्तारं ब्रह्माणंपरमेष्ठिनम् ॥ कमण्डलोर्ब्रह्मण
श्च समानीतासरस्वती ॥ १३ ॥ कूपेस्मिन्मोक्षनाथस्यलोकानांमोक्षप्राप्तये ॥ कार्त्तिकस्यतुमासस्य शुक्लपक्षेचतुर्द
शी ॥ १४ ॥ कूपेस्नात्वानरस्तस्यां तिलपिण्डंसमाचरेत् ॥ प्रेतानुद्दिश्यनियतं मोक्षतीर्थफलंलभेत् ॥ १५ ॥ कुलेन
जायतेतस्य प्रेतःपार्थनसंशयः ॥ प्रेतामोक्षंप्रगच्छन्ति तीर्थस्यास्यप्रभावतः ॥ १६ ॥ जयादित्येकूपवरे नरःस्नात्वा
प्रयत्नतः ॥ गर्गेश्वरंनमस्कृत्य नसगर्भेषुमज्जति ॥ १७ ॥ इदंमयापार्थतवप्रणीतं गुप्तस्यक्षेत्रस्यसमासयोगात् ॥ मा
हात्म्यमेतत्सकलंशृणोतियः सस्याद्विशुद्धःकिमुवच्मिभूयः ॥ १८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेब्रह्मेश्वर
माहात्म्यन्नामत्रिपञ्चाशत्तमोध्यायः ॥ ५३ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

अर्जुनउवाच ॥ गुप्तक्षेत्रमिदंकस्मात् कस्माद्गुप्तञ्चनारद ॥ यस्यप्रभावस्सुमहानेवंकस्माच्चसंश्रुतम् ॥ १ ॥ नारदउ

नहाकर व गर्गेश्वर को नमस्कार कर वह पुरुष गर्भमें नहीं पडता है ॥ १७ ॥ हे अर्जुनजी ! मैंने संक्षेपयोग से गुप्तक्षेत्रके इस माहात्म्यको तुमसे वर्णन किया इस
समस्त माहात्म्य को जो पुरुष सुनताहै वह विशेषकर शुद्ध होताहै अत्र फिर क्या वर्णन करूं ॥ १८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायां
भाषाटीकायांब्रह्मेश्वरलिङ्गमाहात्म्यवर्णनन्नामत्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५३ ॥ ॥ ॥ ॥

दो० । गुप्तक्षेत्र भयो यथा धर्म्म शापसों गुप्त । चौवनके अध्यायमें सोई चरित सुलुप्त ॥ अर्जुनजी बोले कि हे नारदजी ! यह गुप्तक्षेत्र किस कारणसे है व किस

लिये गुप्तहै कि जिसका प्रभाव ऐसाहै और यह किससे सुनागया है ॥ १ ॥ नारदजी बोले कि हे पाण्डव ! इस गुप्तक्षेत्र के कारणमें प्राचीन कथाको सुनिये कि जिस प्रकार यह शापसे गुप्तथा ॥ २ ॥ पुरातन समय किसी कारणमें समस्ततीर्थों के अधिदेवता मिलकर ब्रह्माजी को प्रणाम करने के लिये ब्रह्मसभा में गये ॥ ३ ॥ पुष्कर, प्रभास, नैमिष, अर्बुद व कुरुक्षेत्र और धर्मारण्य क्षेत्रके अधिदेवता ॥ ४ ॥ व वस्त्रापथक्षेत्र तथा फल्गुतीर्थ के जो देवताथे वे और केदारक्षेत्र तथा अन्यक्षेत्रों के स्वामी करोड़ों देवता ॥ ५ ॥ व सिन्धुनदी व समुद्र योगके देवता और महीसागर तीर्थ के देवता और गङ्गा व नर्मदादिक नदियों के अधिदेवता ॥ ६ ॥ और

वाच ॥ पुरातनीमत्रकथां गुप्तक्षेत्रस्यकारणे ॥ शृणुपाण्डवशापेन गुप्तमासीदिदंयथा ॥ २ ॥ पुरानिमित्तेकस्मिंश्चि त्सर्वतीर्थाधिदेवताः ॥ प्रणामायब्रह्मसदो ब्रह्माणंसहिताययुः ॥ ३ ॥ पुष्करस्यप्रभासस्य नैमिषस्यार्बुदस्यच ॥ कुरु क्षेत्रस्यक्षेत्रस्य धर्मारण्यस्यदेवताः ॥ ४ ॥ वस्त्रापथस्यक्षेत्रस्य फल्गुतीर्थस्यचापिये ॥ केदारस्यतथान्येषां क्षेत्राणां कोटिशोधिपाः ॥ ५ ॥ सिन्धुसागरयोगस्य महीसागरकस्यच ॥ गङ्गारेवामुखीनाञ्च नदीनामधिदेवताः ॥ ६ ॥ शो णह्रदपुरोगाणां ह्रदानांचाधिदेवताः ॥ तेसर्वेसङ्घशोभूत्वा श्रेष्ठज्ञानायचात्मनः ॥ ७ ॥ समुपाजग्मुरमला महतोब्रह्मण स्सभाम् ॥ ८ ॥ ततस्तीर्थानिसर्वाणि समायातानिवीक्ष्यसः ॥ उत्तस्थौसहितस्सर्वैस्सभासद्भिःपितामहः ॥ ९ ॥ प्रण म्यसर्वतीर्थेभ्यः प्रबद्धकरसम्पुटः ॥ तीर्थानिभगवानाह विस्मयोत्फुल्ललोचनः ॥ १० ॥ अद्यनस्सद्मसफलं युष्माभि रितिपावितम् ॥ वयञ्चपाविताभूयो युष्माकंदर्शनादपि ॥ तीर्थानान्दर्शनंश्रेयः स्पर्शनंस्नानमेवच ॥ ११ ॥ कीर्त्तनं

शोणनद पूर्वक कुण्डों के जो निर्मल अधिदेवता थे वे सब समूह होकर अपनाको श्रेष्ठ जानने के लिये महात्मा ब्रह्माजी की सभामें आये ॥ ७।८ ॥ तद[illegible] हुये समस्त तीर्थोंको देखकर सब सामाजिकों समेत वे ब्रह्माजी उठखड़े ॥ ९ ॥ और दोनों हाथोंको जोड़कर समस्त तीर्थोंको प्रणामकर [illegible] [illegible]जी ने विस्मयसे प्रफुल्लित लोचनोंवाले होकर कहा ॥ १० ॥ कि आपलोगों से पवित्र किया गया इस लिये हमारा स्थान सफल होगया [illegible] [illegible]लोगों के दर्शनसे भी हमलोग पवित्र

क्रियेगये क्योंकि तीर्थोंका दर्शन, स्पर्शन व स्नान कल्याणदायक होता है ॥ ११ ॥ व तीर्थोंका कीर्तन व स्मरणभी पुण्यरूप के सिवाय अन्य कुछ नहीं होता है बड़े पापोंसे संयुत व अत्यन्तही निठुर जो भयङ्कर प्राणी होते हैं ॥ १२ ॥ वेभी पवित्र होजाते हैं फिर धर्म्म में टिकेहुयें लोगोंको क्या कहना है ऐसा कहकर उन ब्रह्माजी ने पुलस्त्य पुत्रको आज्ञा दिया ॥१३॥ कि तीर्थों के लिये शीघ्रही अर्घको लाइये कि जिसप्रकार मैं पूजनकरूं पुलस्त्यजी बोले कि कमलसे उपजेहुये ब्रह्माजी ! असंख्य तीर्थ देख पड़ते हैं ॥ १४ ॥ हे पिताजी ! इस लिये मुझको आज्ञा देतेहो कि एक अर्घको लाइये कि जिससे धर्म के वचन में यह श्लोक गान किया जाताहै ॥ १५ ॥

स्मरणंचापि नस्यात्पुण्यंविनापरम् ॥ महापापान्विताःरौद्रास्तथायेस्युस्सुनिष्ठुराः ॥ १२॥ तेपितीर्थैःप्रपूयन्ते किम्पुन
र्धर्मसंस्थिताः ॥ एवमुक्त्वापुलस्त्यंस पुत्रमभ्यादिदेशह ॥ १३ ॥ शीघ्रमर्घंतीर्थहेतोस्समानययथार्चये ॥ पुलस्त्यउ
वाच ॥ असंख्यातानितीर्थानि दृश्यन्तेपद्मसम्भव ॥ १४ ॥ तदादिशासिमान्तात अर्घमेकमुपानय ॥ धर्मप्रवचनेश्लो
को यतएषप्रगीयते ॥ १५ ॥ भवेयुर्यद्यसंख्याता अर्घयोग्यास्समर्चने ॥ ततस्तेषांवरिष्ठाय दातव्योर्घः किलैककः ॥
१६ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ सत्यमेवतथावत्स त्वयाप्रोक्तमिदंवचः ॥ एवंकुरुष्वचार्घैकमानयार्घसुशीघ्रतः ॥ १७ ॥ नारदउ
वाच ॥ ततःपुलस्त्योवेगेन समानिन्येर्घमुत्तमम् ॥ तञ्चब्रह्माकरेगृह्य तीर्थान्याहेतिभारत ॥ १८ ॥ सर्वैर्भवद्भिस्संहत्य
मुख्यस्त्वेकःप्रकीर्त्तितः ॥ तस्मैचार्घंप्रयच्छामि नैवंमामनयंस्पृशेत ॥ १९ ॥ तीर्थान्यूचुः ॥ नवयंश्रेष्ठतांविद्मः कथञ्चननमो
नपरस्परम् ॥ अस्माद्धेतोश्चसम्प्राप्ता ज्ञात्वादेहित्वमेवतत ॥ २० ॥ श्रीब्रह्मोवाच ॥ नाहंवेद्मिश्रेष्ठतांवः कथञ्चन

कि पूजन में यदि असंख्य अर्घके योग्य जन होवैं तो उनके मध्यमें श्रेष्ठके लिये एक अर्घ देनाचाहिये ॥१६॥ ब्रह्माजी बोले कि हे वत्स ! तुमसे कहा हुआ यह वचन सत्यही है ऐसा कीजिये कि आज शीघ्रही एक अर्घको लाइये ॥ १७ ॥ नारदजी बोले कि तदनन्तर पुलस्त्यजी शीघ्रतासे एक उत्तम अर्घको लाये व उसको हाथमें लेकर हे भारत ! ब्रह्माजी ने तीर्थों से यह कहा ॥ १८ ॥ कि आप सब लोगों में मिलकर जो एक मुख्य कहा गयाहो उसके लिये मैं अर्घको देऊं इस प्रकार मुझको अन्याय नहीं स्पर्श करैगा ॥ १९ ॥ तीर्थ बोले कि हमलोग आपसमें किसी प्रकारसे श्रेष्ठता को नहीं जानते हैं इस लिये आपके समीप प्राप्तहुये हैं उसको जानकर आपही

दीजिये ॥ २० ॥ श्रीब्रह्माजी बोले कि हम किसीप्रकार आप लोगोंकी श्रेष्ठता को नहीं जानते हैं तुम सबोंके लिये नमस्कारहै क्योंकि सब अपारमहिमावालेहो इस लिये
आपही कहिये ॥ २१ ॥ जहां कि गङ्गा,गया,काशी,पुष्कर,नैमिष, कुरुक्षेत्र, नर्मदा व महीसागरका सङ्गम है ॥ २२ ॥ व प्रभासादिक सैकडों तीर्थ जहांपर हैं वहां हमारी
कौनसी बुद्धिहै नारदजी बोले कि ब्रह्माजी के ऐसा कहनेपर किसीने कुछ न कहा ॥ २३ ॥ तदनन्तर बहुत देरमें महीसागरसंगम यह बोला कि हे चतुराननजी !
इस अर्घको तुम शीघ्रही मुझे देवो ॥ २४ ॥ क्योंकि मेरे करोड़वें भागमें कोई नहीं पूर्णहोता है जिस लिये कि इन्द्रद्युम्न राजा से तचाई हुई पृथ्वी ॥ २५ ॥ समस्त

स्तुवः ॥ सर्वैचापारमाहात्म्याः स्वयमेववदन्त्वतः ॥ २१ ॥ यत्रगङ्गागयाकाशी पुष्करंनैमिषंतथा ॥ कुरुक्षेत्रंतथारेवा महीसागरसङ्गमः ॥ २२ ॥ प्रभासाद्यानिशतशो यत्रनस्तत्रकामतिः ॥ नारदउवाच ॥ एवमुक्तेपद्मभुवा कोपिनोवाच किञ्चन ॥ २३ ॥ चिरेणेदन्ततःप्राह महीसागरसङ्गमः ॥ ममैनमर्घंत्वंयच्छ चतुराननशीघ्रतः ॥ २४ ॥ यतःकोटिकलायांवा ममकोपिनपूर्यते ॥ यतश्चेन्द्रद्युम्नराज्ञा तप्यमानावसुन्धरा ॥ २५ ॥ सर्वतीर्थमयीभूता महीनामाभवन्नदी ॥ साचसर्वाणितीर्थानि संयुक्ताचमयासह ॥ २६ ॥ सर्वतीर्थमयस्तस्मादस्मिन्ख्यातोजगत्त्रये ॥ गुहेनचमहालिङ्गं कुमारेश्वरमीश्वरम् ॥ २७ ॥ संस्थाप्यतीर्थमुख्यत्वं ममदत्तंमहात्मना ॥ नारदेनापिमत्तीरे स्थानंसंस्थाप्यशोभनम् ॥ २८ ॥ सर्वेभ्यःपुण्यक्षेत्रेभ्यो दत्तंश्रैष्ठ्यंपुराामम ॥ एवंत्रिभिर्हेतुवरैर्ममैवार्घःप्रदीयताम् ॥ २९ ॥ गुणैकदेशेपिसमं ममतीर्थंनवैपरम् ॥ इत्युक्तेवचनेतत्र तीर्थराजेनभारत ॥ ३० ॥ सर्वैनोचुःकिञ्चनापि किंब्रह्मावक्ष्यतीतिनः ॥ ततोब्रह्मसु

तीर्थमयी होकर मही नामक नदीहुई और सब तीर्थों समेत वह मुझ सहित मिलगई ॥ २६ ॥ उसी कारण मैं इस त्रिलोकमें समस्त तीर्थमय प्रसिद्धहूं और महात्मा
स्वामिकार्त्तिकेयजी ने कुमारेश्वर नामक महालिंग शिवको भलीभाति थापकर मुझको तीर्थमुख्यता दिया और नारदजी ने भी मेरे किनारे पै उत्तम स्थान को थाप
कर ॥ २७ । २८ ॥ पुरातन समय मुझको सब पुण्यदायक क्षेत्रोसे श्रेष्ठता दियाहै इस प्रकार उत्तम तीन हेतुवों से मुझहीको अर्घ दियाजावै ॥ २९ ॥ क्योंकिमेरे गुण
के एकभागके तुल्य भी अन्य तीर्थ नहीं है हे भारत ! वहां तीर्थराजके ऐसा कहनेपर ॥ ३० ॥ सबोंने इससे कुछभी न कहा कि ब्रह्मा हमलोगोंसे क्या कहैंगे तदनन्तर.

श्वेतमाला व अनुलेपनोंवाले ब्रह्माके बडे पुत्र ॥ ३१ ॥ धर्म्मने दाहिनी भुजाको उठाकर यह वचन कहा कि अहो कष्टकी बात है तीर्थराजने अज्ञान से यह अच्छा
नहीं कहा ॥ ३२ ॥ क्योंकि उत्तम जनोंको अपने शरीर के होतेहुये भी गुण आपही न कहना चाहिये जो सभाओं में दूसरों को तिरस्कार करताहुआ आपही अपने
गुणोंको कहताहै ॥३३॥ यह राजस अहङ्कार निन्दित है इस लिये इस अहङ्कार से इन गुणों के होनेपर भी ॥३४॥ जिस लिये गर्व स्तम्भ किया गया इससे ध्वस्तरूप
वाला यह तीर्थ अप्रसिद्ध होकर स्तम्भतीर्थ ऐसा प्रसिद्धहोगा ॥ ३५ ॥ क्योंकि ब्रह्माजी ने भी गर्वका फल शीघ्रही पाया है तो अन्यको क्या कहना है धर्म्मदेव के ऐसा

तोज्येष्ठः श्वेतमाल्यानुलेपनः ॥ ३१ ॥ दक्षिणंबाहुमुद्धृत्यधर्मोवचनमब्रवीत् ॥ अहोकष्टमिदंकृतं तीर्थराजेनमोह
तः ॥ ३२ ॥ सन्तोपिनगुणावाच्याः स्वयंसद्भिःस्वकायतः ॥ स्वीयान्गुणान्स्वयंयोहि संसत्सुप्रक्षिपन्परान् ॥ ३३ ॥ ब्र
वीतिराजसस्त्वेषह्यहङ्कारोजुगुप्सितः ॥ तस्मादस्मादहङ्कारात्सत्स्वप्येषुगुणेषुच ॥ ३४ ॥ अप्रख्यातंध्वस्तरूपमिदंती
र्थंभविष्यति ॥ स्तम्भतीर्थमितिख्यातंस्तम्भोगर्वःकृतोयतः ॥ ३५ ॥ स्तम्भस्यहिफलंसद्यो ब्रह्मापिप्रापकिंपरः ॥ इ
त्युक्तेधर्मदेवेनहाहेतिरवउत्थितः ॥ ३६ ॥ तत्रशीघ्रंसमायातो योगीशोहञ्चपाण्डव ॥ गुहस्ततोवचःप्राह धर्मन्देवस
मागमे ॥ ३७ ॥ अयुक्तमेवशापोयद्दत्तोयंधर्मधाष्टर्यतः ॥ ब्रवीतुकोपिसर्वेषां तीर्थानांत्रिषुवर्तताम् ॥ ३८ ॥ येननार्घेना
र्हतेसौ महीसागरसङ्गमः ॥ तिष्ठन्नात्मगुणोयश्च तीर्थराजेनवर्णितः ॥ ३९ ॥ तत्रकोविगुणोनाम मिथ्यावादेयतोगुणः ॥
अहोनयुक्तंपालानां यदितेप्यविमृश्यच ॥ ४० ॥ एवमर्थान्करिष्यन्ति कंयान्तिशरणंप्रजाः ॥ एवमुक्तेगुहेनाथ धर्मो

कहनेपर हा हा ऐसा शब्द उठता भया ॥ ३६ ॥ हे पाण्डव ! वहांपर शीघ्रही योगीश्वर (स्वामिकार्त्तिकेयजी) व मैंभी आया तदनन्तर देवताओं की सभामें स्वामि-
कार्त्तिकेयजी ने धर्म से यह वचन कहा ॥ ३७ ॥ हे धर्म्म ! धृष्टता से जो यह शाप दियागया यह अयोग्यही किया गया क्योंकि तीनों लोकों में वर्तमान सब तीर्थों के
मध्यमें कोई भी कहै ॥३८॥ कि जिससे यह महीसागरसङ्गम अर्घ के योग्य नहीं है और जो टिकता हुआ अपना गुण तीर्थराजसे कहा गया ॥ ३९ ॥ उसमें प्रसिद्धता
में क्या अवगुण है क्योंकि मिथ्या कहने में अवगुण है अहो राजाओंको यह नहीं योग्यहै क्योंकि यदि वेभी न विचारकर ॥ ४० ॥ ऐसेही कार्यों को करैं तो प्रजा किस

की शरण में जावै ऐसा स्वामिकार्त्तिकेयजी के कहने पर धर्म्म वचन बोले ॥ ४१ ॥ कि यह सत्य है क्योंकि यह महीसागरसङ्गम सब तीर्थों की मुख्यताके योग्य है व ब्रह्माजीसे अर्घ के योग्यहै ॥ ४२ ॥ परन्तु अपने गुण न कहना चाहिये यह सज्जनों का सदैव नियम है पराया तिरस्कार व अपनी प्रशंसा करना ब्रह्माको भी चला देताहै ॥ ४३ ॥ पराये आक्षेप (तिरस्कार) समेत अपनी प्रशंसा को करतेहुये ययातिराजा क्या स्वर्गसे नहीं गिरे हैं याने स्वर्गसे भ्रष्टहुये है ॥ ४४ ॥ पुरातन समय बुद्धिमान् परमेश्वर ने जिन प्रमाणोंको किया है वे भलीभांति पालन करने योग्यहैं इससे उनको कौन विद्वान् उल्लंघन करैहै ॥ ४५॥ तुम्हारे पिताने आज्ञादेकर जिस

वचनमब्रवीत् ॥ ४१ ॥ सत्यमेतद्यदर्होयं महीसागरसङ्गमः ॥ मुख्यत्वंसर्वतीर्थानामर्घंचापिपितामहात् ॥ ४२ ॥ किन्तुनात्मगुणावाच्याः सतामेतत्सदाव्रतम् ॥ पराक्षेपःस्वप्रशंसा ब्रह्माणमपिचालयेत् ॥ ४३ ॥ स्वप्रशंसाम्प्रकुर्वाणःपराक्षेपसमन्विताम् ॥ किन्दिवःपृथिवीपालो ययातिर्नपपातह ॥ ४४ ॥ यानिपूर्वंप्रमाणानि कृतानीशेनधीमता॥ तानिसम्पालनीयानि तानिकोतिक्रमेद्बुधः ॥ ४५ ॥ तवपित्रासमादिश्य यदर्थंस्थापितावयम् ॥ पालयामःसदातच्चत्वंपालयितुमर्हसि ॥ ४६ ॥ ईश्वराश्चप्रमाणेन भवन्तोयदिकुर्वते ॥ तदस्माभिरिदंचोक्तं शासनंधीमतांवर ॥ ४७ ॥ एवमुक्त्वास्वीयमुद्रां भोक्तुकामंवृषंतथा ॥ अहंप्रस्तावमन्वीक्ष्यवाक्यमेतदुदैरयम् ॥ ४८ ॥ नमोधर्मायमहते विश्वधात्रेमहात्मने ॥ ब्रह्मविष्णुशिवैर्नित्यं पूजितायाघनाशिने ॥ ४९ ॥ यदिमुद्रांभवान्धर्म परिचक्षतिकर्हिचित् ॥ तद

लिये हमलोगों को थापा है सदैव उसको पालन करते हैं और तुमभी उसका पालन करने के योग्य हो ॥ ४६ ॥ हे बुद्धिमानों में श्रेष्ठ स्वामिकार्त्तिकेयजी! जिस लिये कि आपलोग समर्थ पुरुष प्रमाण से करते हैं इस लिये हमने यह शासन (आज्ञा) कहा ॥ ४७ ॥ व इसप्रकार अपना लक्षण कहकर भोजन को चाहनेवाले धर्म्म से प्रस्ताव को देखकर हमने इस वचन को कहा है ॥ ४८ ॥ कि महान् धर्म्म के लिये नमस्कार है व महात्मा विश्वधाता के लिये प्रणाम है और ब्रह्मा, विष्णु व शिवजी से नित्यही पूजित व पापनाशक धर्म्म के लिये नमस्कार है ॥ ४९ ॥ हे धर्म्म! यदि आप कभी अपने लक्षणको कहतेहो तो हमलोगों का किस कारण अभाव होताहै

हे प्रभो ! संसारको मत नाश कीजिये ॥ ५० ॥ और योगीश्वर स्वामिकार्त्तिकेयजी को भी तुम मानने के योग्यहो क्योंकि साक्षात् शिवजी के पुत्र शिवही की नाईं मानने योग्य हैं ॥ ५१ ॥ और स्वामिकार्त्तिकेयदेवजी तुम्हारा सम्मान करने योग्य हैं और तुम दोनोंकी एकतासे यह संसार सुखपूर्वक जियै ॥ ५२ ॥ हे मानद ! तीर्थ-राजको तुमसे दियाहुआ अपनी न प्रसिद्धिके लक्षणवाला यह शाप और अनुग्रह कियाजावै ॥ ५३ ॥ ऐसा कहतेहुये मेरी प्रशंसाकर ब्रह्माजी ने यह कहा कि हे धर्म ! नारदजी ने यह अच्छा कहा है इस वचनको कीजिये ॥ ५४ ॥ और स्वामिकार्त्तिकेयजी का सम्मान कीजिये क्योंकि स्वामिकार्त्तिकेयजी हमलोगों के स्वामी हैं ब्रह्माजी

स्माकंकुतोऽभावो माविश्वंनाशयप्रभो ॥ ५० ॥ योगीश्वरंगुहञ्चापि त्वंमानयितुमर्हसि ॥ शिववन्माननीयोहि यतः साक्षाच्छिवात्मजः ॥ ५१ ॥ त्वाञ्चदेवोगुहःस्वामी सम्मानयितुमर्हति ॥ युवयोरैक्यभावेन सुखंजीवेदिदंजगत् ॥ ५२ ॥ त्वयाप्रदत्तःशापोयमस्वप्रख्यातिलक्षणः ॥ अनुग्रहश्चक्रियतां तीर्थराजस्यमानद ॥ ५३ ॥ एवमुच्चरमाणम्मां प्रशस्याहापिपद्मभूः ॥ साध्वेतन्नारदेनोक्तं धर्मैतद्वचनंकुरु ॥ ५४ ॥ सम्मानयगुहञ्चापि गुहःस्वामीयतोहिनः ॥ एवमुक्तेब्रह्मणाच धर्मोवचनमब्रवीत ॥ ५५ ॥ नमोगुहायसिद्धाय किङ्करायस्यवैवयम् ॥ महीयांस्कन्दविज्ञप्तिंनाथैनामवधारय ॥ ५६ ॥ एतस्मादेतन्महातीर्थमप्रसिद्धंभविष्यति ॥ शनिवारेत्वमावस्या भवेत्तस्यांफलंहियत् ॥ ५७ ॥ महीसागरयात्रायां भवेत्तंचावधारय ॥ प्रभासदशयात्राभिस्सप्तभिःपुष्करस्यच ॥ ५८ ॥ अष्टाभिश्चप्रयागस्य तत्फलंप्रभविष्यति ॥ पञ्चभिःकुरुक्षेत्रस्यनकुलीशस्यचत्रिभिः ॥ ५९ ॥ अर्बुदस्यचयत्षड्भिस्तत्फलञ्चभविष्यति ॥ व

के ऐसा कहनेपर धर्म्म वचन बोले ॥ ५५ ॥ कि सिद्ध स्वामिकार्त्तिकेयजी के लिये प्रणाम है कि जिनके हमलोग किङ्कर हैं हे स्वामी महासेनजी ! हमारी इस विनयको सुनिये ॥ ५६ ॥ कि गर्वके कारण यह तीर्थ अप्रसिद्ध होगा और शनिवार को जो अमावस होवै उस अमावस में महीसागरकी यात्रा में जो फल होवै है उसको सुनिये ॥ ५७ ॥ कि प्रभासकी दश यात्राओं से व पुष्करकी सात यात्राओंसे ॥५८॥ व प्रयागकी आठ यात्राओं से जो फल होता है वही फल होगा व कुरुक्षेत्रकी पांच यात्राओं से और नकुलीशतीर्थकी तीन यात्राओं से ॥ ५९ ॥ व अर्बुदक्षेत्रकी छह यात्राओं से जो फल होता है वह फल उस दिन यहां होगा और वस्त्रापथतीर्थ की

तीन यात्राओं से व गङ्गाजीकी पांच यात्राओं से जो फल होता है ॥ ६० ॥ और कूपोदरी की चार यात्राओं से जो फल होता है वही फल यहां होगा वैसेही काशीकी छह यात्राओं से व गोदावरी की पांच यात्राओं से जो फल होता है ॥६१॥ वही फल स्तम्भतीर्थ में शनैश्चर अमावस के दिन होगा ऐसा वरदान देनेपर उस समय स्वामिकार्त्तिकेयजी प्रसन्नमन हुये ॥ ६२ ॥ व ब्रह्माने भी सावधान होकर स्तम्भतीर्थ के लिये अर्घदिया व अमित शोभावाले उन्हो ने सब तीर्थोंके मध्य में श्रेष्ठताको दिया ॥ ६३ ॥ और तीर्थों व स्वामी स्वामिकार्त्तिकेयजी का सम्मानकर उन्हों ने बिदा किया इस प्रकार पहले गुप्तक्षेत्र का यह कारण वर्तमान हुआ है ॥ ६४ ॥ व

स्नापथस्यतिसृभिर्गङ्गायाःपञ्चभिश्चयत् ॥ ६० ॥ कूपोदर्याश्चतुर्भिर्यत्तत्फलंप्रभविष्यति॥काश्याःषड्भिस्तथायत्स्याद्गोदावर्य्याश्चपञ्चभिः ॥ ६१ ॥ तत्फलंस्तम्भतीर्थेवै शनिदर्शेभविष्यति ॥ एवंदत्तेवरेस्कन्दस्तदाप्रीतमनाभवत् ॥ ६२ ॥ ब्रह्मापिस्तम्भतीर्थाय ददावर्घंसमाहितः ॥ ददौचसर्वतीर्थानां श्रेष्ठत्वममितद्युतिः ॥ ६३ ॥ तीर्थानिचगुहन्नाथं सम्मान्यविससर्जसः ॥ एवमेतत्पुरावृत्तं गुप्तक्षेत्रस्यकारणम् ॥ ६४ ॥ भूयश्चापिप्रसिद्ध्यर्थं धर्मेणोक्तञ्चयद्वचः ॥ समासतस्तत्सर्ववै मयोक्तञ्चकुरूद्वह ॥ ६५ ॥ यतोधर्मस्यरूपस्य नानारूपैःप्रवर्ततः ॥ परित्राणायभवतः कृष्णस्यचभवोभवेत् ॥ ६६ ॥ तदिदंवर्णितंतुभ्यं सर्वतीर्थफलंमहत् ॥ श्रुत्वैतदादितस्सर्वं पुमान्पापैःप्रमुच्यते ॥ ६७॥ सूतउवाच ॥ श्रुत्वेतिविजयोधीमान् प्रशशंससुविस्मितः ॥ विसृष्टोनारदाद्यैश्च द्वारकांप्रतिजग्मिवान् ॥ ६८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे कुमारिकाखण्डेऽर्जुनतीर्थयात्रावर्णनन्नामचतुष्पञ्चाशत्तमोध्यायः ॥ ५४ ॥ * ॥ * ॥

कुरुनायक ! फिरभी प्रसिद्धिके लिये धर्म्मने जिसवचनको कहा संक्षेप से वह सब मुझसे कहा गया ॥६५॥ जिस लिये कि अनेक प्रकारके रूपों से वर्तमान धर्मकेरूप की रक्षाके लिये आपका व कृष्णजी का जन्म होताहै ॥६६॥ वही यह तुमसे समस्त तीर्थोंका बडाभारी फल कहा गया इस सबको पहलेही से सुनकर मनुष्य पातकों से छूटजाता है ॥ ६७ ॥ सूतजी बोले कि यह सुनकर विस्मय में प्राप्तहोते हुये बुद्धिमान् अर्जुनजी ने प्रशंसा किया और नारदादिकों से बिदा कियेहुये वे द्वारकाको चलेगये ॥ ६८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायामर्जुनतीर्थयात्रावर्णनन्नामचतुष्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५४ ॥ ॐ ॥

दो० । गयो घटोत्कच ब्याह हित प्राग्ज्योतिषपुर नाम । पचपन के अध्याय मैं सोई चरित ललाम ॥ शौनक जी बोले कि हे सूतजी ! यह बडा अद्भुत गुप्तक्षेत्र का अतुल माहात्म्य कहागया जो कि पवित्रकारक व हर्ष को बढ़ानेवालाहै ॥ १ ॥ फिर सिद्धिलिंग का पहले जो यह माहात्म्य कीर्तन कियागया है कि चण्डिलकी सहायता से पुण्यात्मा विजयनामक सिद्धिमाताकी प्रसन्नतासे सिद्धि को प्राप्तहोगा यह चण्डिल नामक कौनहै व विजयनामक कौन है ॥ २।३ ॥ और उसने किसप्रकार सिद्धिमाता के प्रसाद से सिद्धि को पाया है इस को तत्त्व से कहिये सुननेको हम लोगों के आश्चर्य है ॥ ४ ॥ सज्जनों के चरित्र सुनने में किस को कौतुक नहीं

शौनकउवाच ॥ अत्यद्भुतमिदंसूत गुप्तक्षेत्रस्यपावनम् ॥ महन्माहात्म्यमतुलं कीर्तितंहर्षवर्द्धनम् ॥ १ ॥ पुनर्यत्सिद्धिलिङ्गस्य पूर्वंमाहात्म्यकीर्तनम् ॥ इत्युक्तंयत्प्रसादेन सिद्धिमातुस्तुसेत्स्यति ॥ २ ॥ विजयोनामपुण्यात्मा साहाय्याच्चण्डिलस्यच ॥ कोन्वसौचण्डिलोनाम विजयोनामकस्तथा ॥ ३ ॥ कथञ्चप्राप्तवान्सिद्धिं सिद्धिमातुःप्रसादतः ॥ एतदाचक्ष्वतत्त्वेन श्रोतुंकौतूहलंहिनः ॥ ४ ॥ सताञ्चरित्रश्रवणे कौतुकंकस्यनोभवेत् ॥ उग्रश्रवाउवाच ॥ साधुपृष्टमिदंविप्रदूरान्तरितमप्युत ॥ ५ ॥ श्रुतंद्वैपायनमुखात्कथांवक्ष्यामिचात्रवः ॥ पुराद्रुपदराजस्य पुत्रीमासाद्यपाण्डवाः ॥ ६ ॥ धृतराष्ट्रमतेपश्चादिन्द्रप्रस्थंन्यवेशयन् ॥ रक्षितावासुदेवेन कदाचित्तत्रपाण्डवाः ॥ ७ ॥ उपविष्टास्सभामध्येकथाश्चक्रुःपृथग्विधाः ॥ देवर्षिपितृभूतानां राज्ञाञ्चापिप्रकीर्तने ॥ ८ ॥ क्रियमाणेथतत्रागाद्भीमपुत्रोघटोत्कचः ॥ तन्दृष्ट्वाश्च

होता है उग्रश्रवा सूतजी बोले कि हे विप्र जी ! तुमने यह बहुतअच्छा पूंछा जो कि दूरान्तरित भी है ॥ ५ ॥ इस विषय में व्यासजीके मुख से सुनीहुई कथा को मैं तुम लोगों से कहूंगा कि पुरातन समय द्रुपदराजा की कन्या (द्रौपदी) को प्राप्तहोकर पाण्डव ॥ ६ ॥ पश्चात् धृतराष्ट्र के मत में प्राप्त होकर इन्द्रप्रस्थ(दिल्ली) में प्रवेश करते भये किसी समय वहां कृष्णजी से रक्षित पाण्डव लोगों ने ॥ ७ ॥ सभा के मध्य में बैठकर अनेक भांतिकी कथाओं को कहा व देव, ऋषि, पितर, भूत व राजाओं का कीर्तन ॥ ८ ॥ करनेपर वहां भीम का पुत्र घटोत्कच आया उसको देखकर पांचों भाइयों ने व पराक्रमी कृष्णजी ने ॥ ९ ॥ अचानकही

आसन से उठकर प्रसन्नतासंयुत हो लिपटा लिया और प्रणाम से झुककर उस भीमपुत्र ने भी उनको प्रणाम किया ॥ १० ॥ तदनन्तर आशीर्वादको देकर राजा युधिष्ठिर ने अपनी गोदीमें बिठा लिया व स्नेहसे मस्तक में सूँघकर जनोंकी सभामें उससे कहा ॥ ११ ॥ युधिष्ठिर बोले कि हे पुत्र ! कहां से आगमन होताहै और तुमने इस समयको कहां विहार किया क्या मामाके नष्टहोजाने पर सुखपूर्वक राज्य करतेहो ॥ १२ ॥ और हे हैडम्ब ! क्या देवों, ब्राह्मणों, गौओं व साधुओं में सदैव अपकार तो नहीं करतेहो और तुम कृष्ण व हमलोगों से प्रसन्न रहतेहो ॥१३॥ व हिडम्बका सब वन और उसकी सेनाके जो राक्षस हैं हे साधो ! तुमसे पालन

तरःपञ्चवासुदेवश्चवीर्यवान्॥९॥उत्थायसहसापीठादालिलिङ्गुर्मुदायुताः॥सचतान्प्रणतिप्रह्वोववन्देभीमनन्दनः॥१०॥ आशीर्दत्त्वाततोराज्ञास्वोत्सङ्गमुपवेशितः॥ आघ्रायस्नेहतोमूर्ध्निप्रोक्तश्चजनसंसदि ॥ ११ ॥ युधिष्ठिरउवाच ॥ कुतआगम्यतेपुत्र कुत्रायंविहृतस्त्वया॥कालःकच्चित्सुखंराज्यं कुरुषेमातुलेहते ॥ १२ ॥ कच्चिद्देवेषुविप्रेषु गोषुसाधुषुसर्वदा ॥ हैडम्बनापकुरुषे प्रीयसेत्वंहरेश्वनः ॥१३॥हिडम्बस्यवनंसर्वं तस्ययेसैन्यराक्षसाः ॥ पाल्यमानास्त्वयासाधो वर्द्धन्ते जनक्षेमकाः ॥१४॥ कच्चिन्नन्दतितेमाता भृशन्तेप्रियकारिणी॥कन्यैवयापुराभीमं त्यक्त्वामानंपतिंश्रिता॥१५॥इतिपृष्टोधर्मराज्ञा सारंहैडम्बिरब्रवीत् ॥ हतेस्मिन्सुदुराचारे मातुलेस्मिन्नियोजितः ॥ १६ ॥ तद्राज्यस्यासनेस्थाप्य दुष्टान्निघ्नंश्चरामिच ॥ माताकुशलिनीदेवी तपोदिव्यमुपाश्रिता॥ १७ ॥ मामुवाचसदापुत्र पितॄणांभक्तिकृद्भव ॥ सोहंमातुर्वचःश्रुत्वा मेरुपादात्समागतः ॥ १८ ॥ प्रणामायैवभवतां भक्तियुक्तेनचेतसा ॥ आत्मानञ्चमहत्यर्थे कस्मिंश्चित्तुनि

किये जातेहुये जनोंको कल्याण करनेवाले वे बढते हैं ॥ १४ ॥ और तुम्हारा बहुतहीप्यार करनेवाली तुम्हारी माता क्या प्रसन्नहै जोकि कन्यारूपिणी हिडिम्बा पहलेही मानको छोडकर भीमपति के आश्रित हुई ॥ १५ ॥ इसप्रकार युधिष्ठिर से पूँछेहुये घटोत्कच ने उत्तम वचन कहा कि इस दुराचारी मातुलके नाशहोजाने पर उसकी राज्यके आसन पै स्थापित होकर नियोजित किया गयाहूं और दुष्टोंको मारताहुआ मैं घूमताहूं और मेरीमाता देवी कुशलिनी होकर उत्तम तपस्यामें आश्रितहै ॥१६।१७॥ और उसने मुझसे कहा है कि हे पुत्र ! तुम सदैव पितरों के भक्तिकारक होवो सो मैं माताका वचन सुनकर मेरुके समीपवाले पर्वतसे भक्तिसंयुत चित्तसे आपलोगो

के प्रणाम के लिये आयाहूं और किसी बडे कार्य में आपलोगों से नियुक्त किये अपनाको चाहताहूं जिस लिये कि यह बड़ाभारी फलहै जोकि पुत्र सदैव पितरोंकी आज्ञाका पालनकरै ॥ १८ । १९ । २० ॥ उससे वह इस संसारमें मनुष्योंको जीतता है और यहां यशस्वी होता है ऐसा कहेहुये उस घटोत्कच को बार बार लिपटाकर राजा ॥ २१ ॥ धर्मराज (युधिष्ठिर) जी आनन्द समेत आंसुवों संयुक्त व गद्गद वचन समेत बोले कि हे पुत्र! हमलोगों के भक्तिकारी व सहायक तुम्हीं वर्तमानहो ॥ २२ ॥ हे हिडम्बाके पुत्र घटोत्कच! इसीलिये साधुलोग पुत्रको चाहते हैं क्योंकि तुम्हारे सरीखे पुत्र इस लोक व उस लोकमें तारते हैं ॥ २३ ॥ जैसी माताहोती है वैसाही

योजितम् ॥ १९ ॥ भवद्भिरहमिच्छामि फलंयस्मादिदंमहत् ॥ यदाज्ञापालनंपुत्रः पितॄणांसर्वदाचरेत् ॥ २० ॥ तेनेह लोकान्सजयेदिहजायेच्चकीर्त्तिमान् ॥ इत्युक्तवन्तंतंराजा परिरभ्यपुनःपुनः ॥ २१ ॥ उवाचधर्मराट्पुत्रं सानन्दाश्रुसगद्गदम् ॥ त्वमेवनोभक्तिकारी सहायश्चापिवर्तसे ॥ २२ ॥ एतदर्थंचहैडम्बे पुत्रमिच्छन्तिसाधवः ॥ इहामुत्रतारयन्ते त्वादृशाश्चापिपुत्रकाः ॥ २३ ॥ अवश्यंयादृशीमाता तादृशस्तनयोभवेत ॥ माताचतेभक्तिमती दृढंनस्त्वंच तादृशः ॥ २४ ॥ अहोसुदुष्करंदेवी कुरुतेमेप्रियावधूः ॥ याभर्तृप्रियमुल्लङ्घ्यतपएवसमाश्रिताः ॥ २५ ॥ नूनंकामेन भोगैर्वाकृत्यंबह्वानमेमनाक् ॥ दुष्कुलीनापियाभक्तासूतेपत्यञ्चभक्तिमत ॥ २६ ॥ कुलीनमेवतन्मन्येममेदंमतमुत्तमम् ॥ एवंबहूनिवाक्यानितानितानिवदन्नृपः ॥ २७ ॥ धर्मराजःसमाभाष्य केशववाक्यमब्रवीत् ॥ पुण्डरीकाक्ष जानासि यथाभीमादभूदयम् ॥ २८ ॥ जातमात्रस्तुयःस्वामिन्यौवनस्थोबभूवह ॥ अष्टानांदेवयोनीनांयतोजन्मचयौवनम् ॥ २९ ॥

पुत्र अवश्यकर होताहै तुम्हारी माता हमलोगों की दृढ़भक्तिमती है व तुमभी वैसेही हो ॥ २४ ॥ मेरीप्यारी स्त्री हिडम्बादेवी कठिन कर्म करती है जोकि पतिके प्रियको छोडकर तपही में आश्रित हुई ॥ २५ ॥ निश्चयकर कामसे या भोगों से स्त्री के साथ मेरा कुछ कार्य नहीं है जोकि दुष्ट कुलवाली भी भक्तिमती होकर भक्तिमान् पुत्रको पैदा करती है ॥ २६ ॥ उसको मैं कुलीन मानता हूँ मेरा यही मत उत्तमहै इस प्रकार उन उन बहुत वचनों को कहते हुये राजा ॥ २७ ॥ युधिष्ठिर सम्भाषण कर कृष्णजी से बोले कि हे पुण्डरीकाक्ष! क्या जानतेहो कि जिस प्रकार यह भीमसे हुआ है ॥ २८ ॥ हे स्वामिन्! पैदा होतेही जो युवावस्था में स्थित हुआहै जिस

लिये आठों देवयोनियों का जन्म व यौवन ॥ २९ ॥ उसीक्षण होवै है उसीकारण इसके उसीक्षण युवावस्था हुई है इस लिये हे कृष्णजी ! इसके योग्य स्त्री के लिये मेरे सदैव चिन्ता रहती है ॥ ३० ॥ हे सर्वज्ञ कृष्णजी! यह कहिये कि घटोत्कच के योग्य कहीं स्त्री देखपड़ती है जिससे कि आप त्रिलोकको भी जानतेहो ॥ ३१ ॥ इस लिये हिडम्बा के पुत्र घटोत्कच के योग्य वैसीही स्त्रीको कहने के योग्यहो धर्मराज युधिष्ठिर से ऐसा कहेहुये कृष्णजी ने क्षणभर ध्यानकर ॥ ३२ ॥ उस समय धर्मराज से यह वचन कहा कि हे राजन्! विद्यमान है इसके योग्य उत्तम स्त्रीको मैं कहूंगा ॥ ३३ ॥ जोकि इस समय उत्तम व मनोहर प्राग्ज्योतिषपुर में भलीभांति

सद्यएवभवेत्तस्मात्सद्योस्यास्तीतियौवनम् ॥ तदस्योचितदारार्थे सदाचिन्तास्तिकृष्णमे ॥ ३० ॥ उचितंवदहैडम्बेः क्कलत्रंप्रदृश्यते ॥ यद्भवान्कृष्णसर्वज्ञ त्रिलोकीमपिवेत्सिच ॥ ३१ ॥ हैडम्बेरुचितांदारां वक्तुमर्हसितादृशीम् ॥ एवमुक्तोधर्मराज्ञा क्षणंध्यात्वाजनार्दनः ॥ ३२ ॥ धर्मराजमिदंवाक्यंतदन्तरमथाब्रवीत् ॥ अस्तिराजन्प्रवक्ष्यामि दारामस्योचितांशुभाम् ॥ ३३ ॥ सांप्रतंसंस्थितांरम्येप्राग्ज्योतिषिपुरेवरे ॥ साचपुत्रीपुरापार्थदैत्यस्याद्भुतकर्मणः ॥ ३४ ॥ यौसोनरकदैत्यस्यप्राणतुल्यःसखाभवत ॥ सचमेनिहतोघोरः पाशदुर्गसमन्वितः॥ ३५ ॥ नरकश्चदुराचारो हतस्तद्वेत्सिसर्वतः ॥ ततोहतेमुरौदैत्ये मयातस्यसुताव्रजत् ॥३६॥ योद्धुंमामतिवीर्यासा घोराकामकटङ्कटा ॥ तत्ततोहंमहायुद्धे खड्गखेटकधारिणीम् ॥ ३७ ॥ अयोधयंमहाबाणैः खड्गधन्वसुनिःसृतैः ॥ खड्गेनचिच्छिदेबाणान् ममसाचमुरोःसुता ॥ ३८ ॥

टिकी है हे युधिष्ठिरजी! पहले अद्भुत कर्मवाले उस दैत्यकी वह कन्याथी ॥ ३४ ॥ जोकि यह नरक दैत्यका प्राणके समान मित्र हुआ है उस भयानक दैत्य को मैंने फँसरी व कोटों समेत मारडाला ॥ ३५ ॥ और दुराचारी नरकासुर मारागया उसको तुम सब तरह से जानतेहो मुझसे मुरु दैत्यके मरजाने पर तदनन्तर उसकी यह कन्या मुझसे युद्ध करने के लिये आई जोकि भयंकर व बड़े पराक्रमवाली तथा कामिनी थी तदनन्तर महायुद्ध में तलवार व खेटक नामक अस्त्रको धारनेवाली उससे मैंने ॥ ३६ । ३७ ॥ तलवार व धनुष से निकले हुये महाबाणों से युद्ध किया और मुरु दानवकी उस कन्याने तलवार से मेरे बाणोंको काटडाला ॥ ३८ ॥

व भलीभांति आकर उसने गरुडके मस्तकमें मारा और मूर्च्छा में प्राप्तहोकर वह गरुड़ अचैतन्य होगया ॥ ३९ ॥ तदनन्तर उसके मारनेके लिये मैंने चक्रको उठाया
व हे नराधिप ! मुझसे उठायेहुये चक्रको देखकर ॥ ४० ॥ कामाख्या नामक देवीने आगे खड़ीहोकर मुझसे वचन कहा कि हे पुरुषोत्तमजी ! इसको मारने के लिये
आप योग्य नहींहैं इसकी रक्षाकीजिये ॥४१॥ क्योंकि मैंने इसको न जीतने योग्य तलवार व खेटकको दियाहै व युद्धमें अनुपम बुद्धि व अनुपमशक्तिको दियाहै ॥४२॥
उसी कारण हे सुरोत्तम ! तुम विष्णुजी से भी वह नहीं जीतीगई ऐसा कहने पर उस समय मैंने देवीजीसे यह वचन कहा ॥ ४३ ॥ कि हे शुभे ! मैं निवृत्त होताहीं

समागम्यचखड्गेन गरुडंमूर्द्धन्यताडयत ॥ सचमोहसमाविष्टो गरुडोभूदचेतनः ॥ ३९ ॥ ततस्तस्यावधार्थाय मयाच
क्रंसमुद्यतम् ॥ चक्रंसमुद्यतंदृष्ट्वा मयातस्मिन्नराधिप ॥ ४० ॥ कामाख्यानाममान्देवी पुरःस्थित्वावचोब्रवीत ॥ नै
तांहन्तुंभवानर्हो रक्षैताम्पुरुषोत्तम ॥ ४१ ॥ अजेयन्तुमयाह्यस्या दत्तंखड्गंचखेटकम् ॥ बुद्धिरप्रतिमाचापि शक्तिश्चा
प्रतिमारणे ॥ ४२ ॥ ततस्त्वयाविष्णुनापि नजितासीत्सुरोत्तम ॥ एवमुक्तेतदादेवीं वचनंचाहमब्रवम् ॥ ४३ ॥ अहमे
वनिवृत्तोस्मिवारयैनाञ्चत्वंशुभे ॥ ततश्चालिङ्ग्यतांभक्त्याकामाख्यावाक्यमब्रवीत ॥ ४४ ॥ भद्रेरणान्निवर्तस्व नायं
हन्तुंकथञ्चन ॥ शक्यःकेनापिसमरे माधवोरणदुर्जयः ॥ ४५ ॥ नाभूदस्तिभविष्योवा तवोचितमिदंस्फुटम् ॥ अ
स्यभ्रातुर्हिभीमस्य स्नुषात्वञ्चभविष्यसि ॥ ४६ ॥ तस्मात्त्वंश्वशुरंभद्रे सम्मानयजनार्दनम् ॥ नचशोकस्त्वयाका
र्यः पितरंप्रतिपण्डितैः ॥ ४७ ॥ जातस्यहिध्रुवंमृत्युर्ध्रुवंजन्ममृतस्यच ॥ बहवःशास्त्रवेत्तारो वदकेनापिवार्यते ॥४८॥

हूं और इसको तुम मनाकरो तदनन्तर भक्तिसे उसको लिपटाकर कामाख्या वचन बोली ॥ ४४॥ कि हे भद्रे ! रणसे निवृत्तहोवो ये माधवजी समरमें किसीसेभी नहीं
मारे जासके हैं क्योंकि युद्धमें ये दुर्जय हैं ॥ ४५ ॥ इनके समान न कोई हुआहै न है न होनेवाला है इससे तुमको यह प्रकटही योग्य है क्योंकि इनके भाई भीमकी
तुम पतोहू होवोगी ॥ ४६ ॥ इस लिये हे भद्रे ! तुम श्वशुर कृष्णजी का सम्मान करो और पिताके निमित्त तुमको शोच न करना चाहिये क्योंकि पण्डितों ने यह
कहा है कि ॥ ४७ ॥ उत्पन्न प्राणीकी मृत्यु अवश्य है व मरेप्राणी का जन्म अवश्य कर होताहै बहुतसे शास्त्रके जाननेवाले हैं भला कहिये किसीसे भी मृत्यु वारण की-

जाती है ॥ ४८ ॥ ऋषि, देवता, महादैत्य व ऋग्, यजुः, सामके जाननेवालोंमें वृद्ध पुरुष व राजालोग उन सबोंको एक मृत्युकालमें प्राप्त कर देती है इससे भूत भविष्य का जाननेवाला इसविषयमें कहीं नहीं मोहित होताहै, ॥ ४९ ॥ इन जनार्दनसे तुम्हारे पिताकी मृत्यु प्रशंसा करनेके योग्यही है क्योंकि समस्त पातकों से छूटकर यह विष्णुजी के स्थानको चलागया ॥ ५० ॥ इस प्रकार कामाख्या से कहीहुई उस कामकटङ्कटा ने क्रोध छोडकर प्रीति से अङ्गोंसमेत मुझको प्रणाम किया ॥ ५१ ॥ व हे भरतर्षभ ! उसको मैंने आशीर्वाद देकर कहा कि भगदत्तसे पूजित तुम इसी नगर में टिको ॥ ५२ ॥ मैंने व देवीजी ने प्रसन्नतासे यहां भगदत्तको राजा किया है वह

ऋषींश्चदेवांश्चमहासुरांश्च त्रैविद्यवृद्धान्पुरुषान्नृपांश्च ॥ तान्मृत्युरेकोनयतेन्तकाले परावरज्ञोत्रनमुह्यतेकचित् ॥ ४९ ॥ श्लाघ्यएवाहितेमृत्युः पितुरस्माज्जनार्द्दनात् ॥ सर्वपातकनिर्मुक्तो गतोसौधामवैष्णवम् ॥ ५० ॥ एवंकामाख्ययाप्रोक्ता साचकामकटङ्कटा ॥ त्यक्त्वाक्रोधञ्चसम्प्रीत्या गात्रैस्तुप्रणताचमाम् ॥ ५१ ॥ तामहंचाशिषंदत्त्वा प्रावोचंभरतर्षभ ॥ अस्मिन्नेवपुरेतिष्ठ भगदत्तेनपूजिता ॥ ५२ ॥ मयादेव्याचतुष्ट्यात्र भगदत्तःकृतोनृपः ॥ सतेपूजां वह्वविधां करिष्यतिस्वसुर्यथा ॥ ५३ ॥ वसन्तेचात्रतंवीरं हैडम्बंपतिमाप्स्यसि ॥ एवमाश्वास्यतान्देवीं मौर्वींचाहंव्यसर्जयम् ॥ ५४ ॥ सास्थिताचपुरेतत्र गतोहंशक्रसद्मच ॥ ततोद्वारवतींप्राप्य त्वयासहसमागतः ॥ ५५ ॥ एवमेषोचितादारा हैडम्बेर्विद्यतेशुभा ॥ कामाख्येवरणेघोरा याविद्युदिवभासते ॥ ५६ ॥ नचरूपंवर्णितुंमे श्वशुरस्योचितंसतः ॥ साधोर्हिनैतदुचितं सर्वस्त्रीणांचवर्णनम् ॥ ५७ ॥ पुनरेवचसमयः कृतस्तंशृणुयस्तया ॥ योमांनिरुत्तरांप्रश्ने कृत्वैव

वहनकी नाईं तुम्हारी बहुत भांतिकी पूजाकरैगा ॥ ५३ ॥ और वसन्त में तुम यहींपर हिडम्बा के पुत्र घटोत्कच को पतिपावोगी इस प्रकार आश्वासन कर उस कामाख्या देवी व मौर्वीको मैंने बिदाकिया॥५४॥ और वह उस पुरमें टिकी व मैं इन्द्रके मन्दिरको गया तदनन्तर द्वारकामें प्राप्तहोकर तुमसे समागमहुआ॥५५॥ इसप्रकार यह उत्तम स्त्री घटोत्कचके योग्य है जोकि युद्धमें कामाख्या की नाईं भयंकर और बिजलीकी नाईं प्रकाशितहै ॥ ५६ ॥ मुझ सज्जन श्वशुरको उसका रूप वर्णनकरना योग्य नहीं है क्योंकि साधुवों को सब स्त्रियोंका यह वर्णन करना योग्य नहीं है ॥ ५७ ॥ फिर उसने जो यह ऐसी प्रतिज्ञा किया है उसको सुनिये कि जो पुरुष प्रश्नमें

मुझको निरुत्तरकर जीतैगा ॥ ५८ ॥ व जो मेरे समान बलवान् होगा वह मेरा पतिहोगा इस समय (प्रतिज्ञा) को सुनकर बहुत दैत्य व राक्षस ॥ ५९ ॥ उसके
जीतने के लिये आये और वे जीतकर मारेगये पहले जो जो इसके समीप गया है वह नहीं लौटाहै ॥ ६० ॥ जैसे कि अग्निकी जलतीहुई प्रभामें प्राप्तहोकर पाखियों
का समूह नहीं लौटता है इस प्रकार ऐसी मौर्वीको यदि जीतने के लिये महापराक्रमी घटोत्कच उत्साह करता है तो इसकी वह स्त्री निश्चय कर होगी युधिष्ठिरजी
बोले कि जिसके एक बड़ाभारी अवगुण है उसके सब गुणोंसे क्या कार्य है ॥ ६१ । ६२ ॥ क्योंकि दूधसे क्या किया जाताहै यदि वह विषमिश्रित होवै केवल साहस

विजयेत्पुमान् ॥ ५८ ॥ योमेप्रतिबलश्चापि समेभर्त्ताभविष्यति ॥ एनञ्चसमयंश्रुत्वा बहवोदैत्यराक्षसाः ॥ ५९ ॥ त
स्याजयार्थमगमंस्तेचजित्वाहतास्तथा ॥ योयएनाङ्गतःपूर्वं नससूयोन्यवर्त्तत ॥ ६० ॥ वह्नेरिवप्रभान्दीप्तां पतङ्गानांस
मुच्चयः ॥ एवमेतादृशींमौर्वीं जेतुमुत्सहतेयदि ॥ ६१ ॥ घटोत्कचोमहावीर्यो भार्यास्यनियतंभवेत् ॥ युधिष्ठिरउवा
च ॥ अलंसर्वगुणैस्तस्या यस्यास्त्वेकोऽगुणोमहान् ॥ ६२ ॥ क्रियतेकिंहिक्षीरेण यदितद्विषमिश्रितम् ॥ प्राणाधिकं
भीमसेनं कथंकेवलसाहसात् ॥ ६३ ॥ क्षिपयंतत्रवाक्यानांशुद्धानांचाप्यकोविदम् ॥ अन्याश्चापिस्त्रियस्सन्ति देशेदे
शेजनार्दन ॥ ६४ ॥ बह्व्यस्तासांवराङ्काञ्चिद्योषितंवक्तुमर्हसि ॥ भीमउवाच ॥ सत्यमुक्तंकेशवेन वाक्यंवक्तव्यमुत्तम
म् ॥ ६५ ॥ राज्ञापुनःस्नेहवशाद्यदुक्तंतन्नभातिमे ॥ कार्यंदुस्साध्यएवस्यात् क्षत्रियस्यपराक्रमः ॥ ६६ ॥ हरीन्द्रस्यै
वयूथेषु गजानान्मृगेषुच ॥ आत्माप्रख्यातिमानेयः सर्वथावीरपुङ्गवैः ॥ ६७ ॥ सचख्यातिंकथंजायेद्दुस्साध्यकरणा

से मै प्राणों से अधिक भीमसेन के पुत्र घटोत्कच को कैसे ॥ ६३ ॥ वहां पठाऊं जोकि शुद्ध वचनोंका भी अज्ञानी है हे जनार्दनजी ! देश देशमें और भी बहुतसी
स्त्रियां हैं ॥ ६४ ॥ उनमें से किसी उत्तम स्त्रीको तुम कहनेके योग्यहो भीमजी बोले कि बहुत प्रयोजनवाले उत्तम वचनको कृष्णजीने सत्य कहाहै ॥ ६५ ॥ फिर राजा
युधिष्ठिर ने स्नेहके वशसे जो कहा है वह मुझको नहीं अच्छा जानपडता है क्योंकि कठिनहीं कार्यमें क्षत्रियका पराक्रम होता है ॥ ६६ ॥ जैसे कि हाथियों के गणों
में सिंहका पराक्रम होता है मृगों में नहीं होता है व उत्तम वीरोंको सब प्रकार से आत्मा प्रसिद्धिमें प्राप्त करना चाहिये ॥ ६७ ॥ और कठिन कार्य करने के विना वह

कैसे प्रसिद्धि में प्राप्तहोवै हे पार्थ! हिडम्बा के पुत्र घटोत्कचकी रक्षा करना अपने वशमें नहीं प्राप्तहै ॥ ६८ ॥ क्योंकि जिस विधाताने इसको दिया है वही इसको
पालैगा और विज्ञानी पुरुषको सर्वथा ऊंचे स्थान पै चढ़ने में यत्न करना चाहिये ॥ ६९ ॥ वैसेही एकही घटोत्कच शीघ्रही मौर्वीको पावैगा अर्जुनजी बोले कि भीमसेन
ने केवल पराक्रमयुक्त वचन कहा है ॥ ७० ॥ और भाग्यके बलसे निर्बल मुझको सबल जानपड़ता है और जो पहले कामाख्या ने वचन कहा है उसको कृष्णजी
झूँठ नहीं कहते हैं ॥ ७१ ॥ कि कामाख्या ने कहाथा कि हे कल्याणरूपे ! जिसभांति भीमका पुत्र (घटोत्कच) तुम्हारे हाथको ग्रहणकरैगा इस हेतुसे वहां घटोत्कच

दते ॥ नह्यात्मवशगंपार्थ हैडम्बेयस्यरक्षणम् ॥ ६८ ॥ येनदत्तस्त्वयन्धात्रा सएनंपालयिष्यति ॥ सर्वथोच्चपदारोहे य
त्नःकार्योविजानता ॥ ६९ ॥ तथैकएवहैडम्बो मौर्वीमाप्नोतिमाचिरम् ॥ अर्जुनउवाच ॥ केवलंपौरुषपरं भीमेनोक्त
मिदंवचः ॥ ७० ॥ अबलंदैवहेतुत्वात्सबलंप्रतिभातिमे ॥ नमृषाहिवचोब्रूते कामाख्यायापुराब्रवीत् ॥ ७१ ॥ यथाभी
मसुतःपाणिं तवभद्रग्रहीष्यते ॥ अनेनहेतुनायातु शीघ्रंतत्रघटोत्कचः ॥ ७२ ॥ इतिमेरोचतेकृष्ण ब्रूहिकिन्तवरोच
ते ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ रोचतेमेवचस्तुभ्यं भीमस्यचमहात्मनः ॥ ७३ ॥ नहितुल्योभीमसेनबुद्धौवीर्येचकश्चन ॥ अ
न्तरेणचयोवेत्ति प्राप्तामेवमुरोस्सुताम् ॥ ७४ ॥ तच्छीघ्रंस्यात्तुहैडम्ब त्वञ्चकिम्पुत्रमन्यसे ॥ घटोत्कचउवाच ॥ न
हिन्यायाय्याःस्वकावक्तुं पूज्यानामग्रतोगुणाः ॥ ७५ ॥ प्रवृत्ताएवभासन्ते सद्गुणाश्चरवेःकराः ॥ सर्वथातत्करिष्यामि
पितरोयेनमेऽमलाः ॥ ७६ ॥ लज्जिष्यन्तिनसंसत्सु मयापुत्रेणपाण्डवाः ॥ एवमुक्त्वामहाबाहुरुत्थायप्रणनाम

शीघ्रही जावै ॥ ७२ ॥ हे कृष्णजी ! यह मुझको रुचता है आप कहिये कि तुमको क्या अच्छा जानपडता है श्रीभगवान् कृष्णजी बोले कि मुझको तुम्हारे व महात्मा
भीमजी के वचन अच्छे जानपडते है ॥ ७३ ॥ और भीमसेन की बुद्धि व बलमें कोई बराबर नही है जोकि चित्तसे मुरुकी कन्या को प्राप्तही जानता है ॥ ७४ ॥
और वह शीघ्रही होगा व हे घटोत्कच, पुत्र ! तुम क्या मानतेहो घटोत्कच बोले कि पूजनीय पुरुषोके आगे अपने गुण कहने योग्य नहीं होतेहैं ॥ ७५ ॥ क्योंकि उत्तम
जनोंके गुण व सूर्यकी किरणै वर्तमान होकर प्रकाशित होती हैं मै सर्वथा उस कर्म को करूंगा कि जिससे मेरे निर्मल पितर ॥७६॥ पाण्डवलोग मुझ पुत्रसे सभाओंमें

लज्जित न होवैंगे ऐसा कहकर महाबाहु घटोत्कचने उनको प्रणाम किया ॥ ७६ ॥ और पितरों से जयके आशीर्वादों से बढ़ाये हुये उसने जाने की इच्छा किया व जानेकी इच्छावाले उस घटोत्कच की प्रशंसाकर कृष्णजी ने यह कहा ॥ ७७ । ७८ ॥ कि कथा कहने के समय में जयको प्राप्तकरनेवाले मुझको स्मरण कीजियेगा कि जिस प्रकार शीघ्रही मैं तुम्हारी दुर्भेद्य बुद्धिको बढ़ाऊं ॥ ७९ ॥ यह कहकर व उसको लिपटाकर कृष्णजी ने आशीर्वाद समेत उसको बिदा किया ॥ ८० ॥ तदनन्तर हिडम्बा का पुत्र घटोत्कच सूर्याक्ष, कालाख्य व महोदर अनुगामियों समेत आकाशमार्ग में प्राप्तहोकर दिनान्त में प्राग्ज्योतिष नामक उस पुरको गया ॥ ८१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांघटोत्कचस्यप्राग्ज्योतिषपुरप्रयाणंनामपञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥

तान् ॥ ७७ ॥ जयाशीर्भिश्च पितृभिर्वर्द्धितो गन्तुमैच्छत ॥ तं गन्तुकाममाहेदमभिनन्द्य जनार्दनः ॥ ७८ ॥ कथाकथन काले मां स्मरेथास्त्वं जयावहम् ॥ यथा बुद्धिं सुदुर्भेद्यां वर्द्धयाम्यविलम्बतः ॥ ७९ ॥ इत्युक्त्वालिङ्ग्य तं कृष्णो ऽव्यसृजज्जय तमाशिषम् ॥ ८० ॥ ततो हिडम्बातनयो महौजाः सूर्याक्षकालाख्यमहोदरानुगः ॥ वियत्पथं प्राप्य जगाम तत्पुरं प्राग्ज्योतिषं नाम दिनव्यपाये ॥ ८१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे कुमारिकाखण्डे घटोत्कचस्य प्राग्ज्योतिषपुरप्रयाणं नाम पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥

* ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सूत उवाच ॥ सोऽथ प्राग्ज्योतिषाद्बाह्ये महोपवनसंस्थितम् ॥ सहस्रभूमिकं गेहमपश्यत हिरण्मयम् ॥ १ ॥ वेणुवीणामृदङ्गानां निःस्वनैः प्रतिपूजितम् ॥ सहस्रदशसंख्याभिश्चेटीभिरभिभूषितम् ॥ २ ॥ आयाद्भिः प्रतियाद्भिश्च भगदत्तस्य किङ्करैः ॥ किमिच्छतीति भगिनी पृच्छकैरभिपूरितम् ॥ ३ ॥ तदासाद्य स हैडम्बिर्मेरोः शिखरवद्गृहम् ॥ द्वारि स्थि

दो० । मौर्वीको प्रश्नादि सन जाति कीन जिमि ब्याह । छप्पन के अध्याय में कह्यो सो सहित उछाह ॥ सूतजी बोले कि इसके अनन्तर उस घटोत्कचने प्राग्ज्योतिषपुरके बाहर वाटिकामें स्थित सोने के सहस्रभूमिक मन्दिरको देखा ॥ १ ॥ जोकि वेणु, वीणा व मृदङ्गों के शब्दोंसे पूजित व दशहजार संख्यक दासियों से भूषितथा ॥ २ ॥ और बहन क्या चाहती है यह पूँछनेवाले तथा आते व जातेहुये भगदत्त के सेवकों से पूरित था ॥ ३ ॥ सुमेरुगिरिके शिखरकी नाईं उस घरके समीप

और वीर घटोत्कचने उससे प्रियपूर्वक कहा कि हे भद्रे ! वह मुरु दानवकी कन्या कहां
प्राप्तहोकर उस घटोत्कच ने द्वारपै बैठीहुई कर्णप्रावरणा सखीको देखा ॥ ४ ॥ कर्णप्रावरणा बोली कि हे महाबाहो ! व हे कामुक ! उस मौर्वी से तुम्हारा क्या प्रयोजन
है दूरदेशसे आयाहुआ मैं कामुक अतिथि उसको देखना चाहताहूँ ॥ ५ ॥ उसी की तीन दासियों में से मैं प्यारी दासीहूँ और हे घटोत्कच ! तुम्हारे रूपको देखकर मैं
है कि जिससे करोडों कामी पुरुष पहले मारडालेगये हैं ॥ ६ ॥ मेरे साथ आनन्द करो व सुखो को भोगकीजिये ॥ ८ ॥
रमूंगी ॥ ७ ॥ हे वीर ! तुम्हारे चरणो को प्रणामकर आपके वचन करनेवाली मैं स्थितहू इससे हे कामुक !

तांसन्ददर्श कर्णप्रावरणांसखीम् ॥ ४ ॥ तामाहललितंवीरो भद्रेसाक्वमुरोस्सुता ॥ कामुकोद्रष्टुमिच्छामि दूरदेशाग
तोतिथिः ॥ ५ ॥ कर्णप्रावरणोवाच ॥ किन्तवास्तिमहाबाहो तयामौर्व्याप्रयोजनम् ॥ कोटिशोनिहताःपूर्वं ययाकामु
ककामुकाः ॥ ६ ॥ अस्याश्चानुचरीणांहि दास्यस्मितिसृणांप्रिया ॥ तवरूपमहंदृष्ट्वा रमेयंवैघटोत्कच ॥ ७ ॥ प्रण
म्यपादयोर्वीर स्थितातेवचनङ्करी ॥ तन्मयासहमोदस्वभुङ्क्ष्वभोगांश्चकामुक ॥ ८ ॥ घटोत्कचउवाच ॥ कल्याणी
किंवदन्तीते प्रयुक्तास्योचिताशुभे ॥ पुनर्नैतद्वचस्तुभ्यं विशतेममचेतसि ॥ ९ ॥ वामःकामोयतोभद्रे यस्मिन्नुपानि
बध्यते ॥ सचात्रनैवबध्नाति तद्वयंकिम्प्रकुर्महे ॥ १० ॥ अद्यतेस्वामिनीदृष्टा जिताचाक्रीडतेमया ॥ तयावाविजि
तोयामि पूर्वेषांकामिनाङ्गतिम् ॥ ११ ॥ कर्णप्रावरणेतस्माच्छीघ्रमेवनिवेद्यताम् ॥ यथादर्शनमात्रेण पूजयत्यतिथिं
खला ॥ १२ ॥ इतिभैमेर्वचःश्रुत्वा प्रस्खलन्तीनिशाचरी ॥ प्रासादशिखरस्थान्तां मौर्वीमेवंवचोवदत् ॥ १३ ॥ देवि

परन्तु तुम्हारा यह वचन मेरे चित्तमें नहीं पैठताहै क्योंकि ॥ ९ ॥ हे भद्रे !
घटोत्कच बोला कि हे शुभे ! कहीहुई तुम्हारी कल्याणकारिणी व उत्तम वार्ता इसके योग्यहै
वाम (कठिन) काम जिसमें बँधजाता है उसी में बँधता है और वह यहां नहीं रुचिको बांधता है इससे हम क्या करैं ॥ १० ॥ आज देखी व जीतीहुई तुम्हारी
स्वामिनी मेरे साथ क्रीडा करैगी या उससे जीताहुआ मैं पहलेवाले मनुष्योंकी दशामें प्राप्तहूंगा ॥ ११ ॥ हे कर्णप्रावरणे ! इस लिये शीघ्रही निवेदन कीजिये कि जिस
प्रकार वह दुष्टा देखनेही से अतिथिको पूजै ॥ १२ ॥ भीमके पुत्र घटोत्कचके ऐसे वचनको सुनकर लरखरातीहुई निशाचरीने मन्दिर के शिखर पै बैठीहुई उस मौर्वीसे

वचन कहा ॥ १३ ॥ कि हे देवि ! त्रिलोकमें भी अतुलित छविवाला कोई श्रीमान् युवा पुरुष कामका अतिथि होकर तुम्हारे द्वारपै वर्तमान है इससे उस उस उत्तम
वस्तुको दीजिये ॥ १४ ॥ कटंकटा बोली कि शीघ्रही इस पुरुषको लाइये किस लिये देर कीजाती है कदाचित् समागम से मेरी प्रतिज्ञा पूर्णहोजावै ॥ १५ ॥ ऐसे वचन
जिससे कहेगये उस दासीने घटोत्कच के समीप प्राप्तहोकर कहा कि हे कामुक! उस मृत्यु के समीप तुम शीघ्रही जाओ ॥ १६ ॥ इसभांति कहेहुये उस घटोत्कच
ने वहीपर धनुषको छोड़कर घरमें प्रवेश किया जैसे कि मेंढकोंकी गुहामें सिंह पैठ जाता है ॥ १७ ॥ शुकगणों व कबूतर के समूहोंको व मदसे मतवाली सारिकाओं

**कोपियुवाश्रीमांस्त्रैलोक्येप्यमितप्रभः ॥ कामातिथिस्तवद्वारिवर्ततेदिशतत्परम् ॥ १४ ॥ कटङ्कटोवाच ॥ नीयतांशीघ्र
मेवासौ किमर्थञ्चविलम्ब्यते ॥ कदाचिदेवसङ्गत्या समयोमेनिपूर्य्यते ॥ १५ ॥ इत्युक्तवचनाचेटी प्राप्यावोचद्घटो
त्कचम् ॥ व्रजशीघ्रंकामुकत्वं तस्यामृत्योश्चसन्निधौ ॥ १६ ॥ इत्युक्तस्सप्रहस्यैव तत्रोत्सृज्यस्वकार्मुकम् ॥ प्रविवेशगृ
हंभैमिः सिंहोभेकगुहामिव ॥ १७ ॥ सपश्यच्छुकसङ्घातान्पारावतगणांस्तथा ॥ सारिकाश्चमदोन्मत्ता भैमिस्ताञ्चा
प्यपश्यत ॥ १८ ॥ रूपेणवयसाचैव रतेरप्यरतिङ्करीम् ॥ आन्दोलकसुखासीनां सर्वाभरणभूषिताम् ॥ १९ ॥ तांवि
द्युतमिवोन्नद्धां दृष्ट्वाभैमिरचिन्तयत् ॥ अहोकृष्णेनपित्रामे निर्दिष्टेयंममोचिता ॥ २० ॥ न्यायमेतत्कृतेपूर्वं नष्टाय
त्कामिनाङ्गणाः ॥ शरीरंयदपर्याप्तं चीयतेयदिकामिनाम् ॥ २१ ॥ कामिनीनांकृतेयेषां चीयताङ्गणनात्रका ॥ एवंबहु
विधंकामी चिन्तयन्नाहभैमिकः ॥ २२ ॥ निष्ठुरेवज्रहृदयेप्राप्तोहमतिथिस्तव ॥ उचितातत्सतांपूजा कुरुयातेहृदि**

को देखते हुये भीमके पुत्र उस घटोत्कच ने उसको भी देखा ॥ १८ ॥ जोकि रूप व अवस्थासे रतिकी भी अप्रीति करती थी और झूलन पै सुखपूर्वक बैठी व सब
गहनों से शोभित थी ॥ १९ ॥ बिजली की नाईं प्रकाशित उस स्त्रीको देखकर भीमके पुत्र घटोत्कच ने चिन्तन किया कि अहो बड़े आश्चर्य की बात है कि पिता
कृष्णजी ने इसको मेरे योग्य बतलाया है ॥ २० ॥ यह योग्यहै जोकि इसके लिये पहले कामियों के गणनष्ट हुये हैं यदि स्त्रियोंके लिये जिन कामियों का असमर्थ
शरीर नाश होताहै तो वह नाश होवै यहां क्या गिनती है इस प्रकार बहुतभांति से चिन्तन करते हुये कामी घटोत्कच ने कहा ॥ २१ । २२ ॥ कि हे वज्रके समान

हृदयवाली, निष्ठुरे ! मैं अतिथि तुम्हारे समीप प्राप्तहुआ हूँ इस लिये तुम्हारे हृदय में सन्तोष के योग्य पूजा जो स्थितहो उसको कीजिये ॥२३॥ यह हिडम्बाके पुत्रका वचन सुनकर उसके रूपसे वह कामकटंकटा विस्मितहुई और उस मूर्खिणीने अपनी निन्दा किया ॥ २४ ॥ कि मुझको धिक्कारहै धिक्कारहै जोकि मैंने पहले उस प्रतिज्ञा को कियाहै यदि पहले वह प्रतिज्ञा न की होती तो यह पति होता ॥ २५ ॥ इस प्रकार चिन्तन करती हुई वह घटोत्कच से वचन बोली कि हे भद्र ! तुम वृथाही आयेहो जीतेहुये फिर सुखपूर्वक जावो ॥ २६ ॥ अथवा यदि मुझको चाहते हो तो शीघ्रही कथाको कहिये और कथाको कहकर यदि मुझको सन्देह मे पतित

स्थिता ॥ २३ ॥ इतिहैडम्बवचनं श्रुत्वाकामकटङ्कटा ॥ विस्मिताभूत्तस्यरूपात् स्वान्निनिन्दचबालिशा ॥ २४ ॥ धिग्धिङ्मांयन्मयापूर्वं समयःसकृतोभवत् ॥ नकृतोभूद्यदिपुरा अभविष्यदसौपतिः ॥ २५ ॥ इतिसञ्चिन्तयन्तीसा भैमिवचनमब्रवीत् ॥ वृथात्वमागतोभद्र जीवन्याहिपुनस्सुखम् ॥ २६ ॥ अथकामयसेमान्त्वं तत्कथांशीघ्रमुच्चर ॥ कथामाभाष्ययदिमां सन्देहेपातयिष्यसि ॥ २७ ॥ ततोहंवशगाजाता अतोवासेव्यसेमया ॥ इत्युक्तवचनामेतां नेत्रोपान्तेनवीक्ष्यसः ॥ २८ ॥ स्मृत्वाचराचरकथं कृष्णमारब्धवान्कथाम् ॥ कस्यांचिदभवत्पत्न्यां युवाकोप्यजितेन्द्रियः ॥ २९ ॥ तस्यचैकासुताजज्ञे भार्याचापिमृताभवत् ॥ ततोबालककाम्पुत्रीं पुपोषचररक्षच ॥ ३० ॥ सायदाभूद्यौवनगा व्यञ्जितावयवाशुभा ॥ प्रोल्लसत्कुचमध्याङ्गी प्रोत्फुल्लमुखपङ्कजा ॥ ३१ ॥ तदास्यकामललितं बभूवचपितुर्मनः ॥ प्रोवाचताञ्चतनयां समालिङ्ग्यदुराशयः ॥ ३२ ॥ प्रतिहारकपुत्रीत्वं मयानीताचपोषिता ॥ भार्यार्थेसुचिरङ्कालं

करोगे ॥ २७ ॥ तो मैं वशगामिनी हूंगी व इसके अनन्तर मुझसे सेवितहोगे ऐसे कहेहुये वचनवाली इस मौर्वीको नेत्रके कटाक्षसे देखकर उसने ॥ २८ ॥ चराचर की कथावाले कृष्णजी को स्मरणकर कथाका प्रारम्भ किया कि किसी स्त्रीमें कोई निर्जितेन्द्रिय युवा पुरुष हुआ है ॥ २९ ॥ उसके एक कन्या उत्पन्नहुई और स्त्रीभी मरगई तदनन्तर छोटी कन्याको उसने पालन किया व रक्षा किया ॥ ३० ॥ जब वह उत्तम कन्या प्रकट अङ्गोंवाली व यौवन में प्राप्तहुई जोकि शोभित कुच व कटिवाली और प्रफुल्लित मुखकमलवाली थी ॥ ३१ ॥ तब इस पिताका मन कामदेव से चञ्चल होगया और दुष्ट आशयवाला वह उस कन्याको लिपटाकर वचन

बोला ॥ ३२ ॥ कि मायावी की तुम्ह कन्याको मैं लाया व बहुत दिनोंतक स्त्री के लिये पोषण किया है प्रिये ! उस कार्य के अर्थको साधन कीजिये ॥ ३३ ॥ उससमय
ऐसा कहीहुई उसने उस वचनको वैसेही माना और उस भार्याने उसको पतिभाव से भजा व उस पुरुषने उसको स्त्रीत्व से भजा ॥ ३४ ॥ तदनन्तर उस मदनगर्दभ
से उसके कन्या पैदाहुई तो कहिये कि वह उसकी नातिनि होती है या कन्या ॥ ३५ ॥ ऐसे प्रश्नको मुझसे शीघ्रही कहिये यदि तुम्हारे शक्ति है इस प्रश्नको सुनकर
उसने हृदय में बहुत भांति से चिन्तन किया ॥ ३६ ॥ परन्तु इस प्रश्न के निर्द्धार (निश्चय) को किसी प्रकार से नहीं देखती थी तदनन्तर प्रश्न से जीती हुई

**तत्कार्यंसाधयप्रिये ॥ ३३ ॥ इत्युक्त्वासाचमेनेच तत्तथैववचस्तदा ॥ पतित्वेनचभेजेतं भार्यात्वेनसतान्तथा ॥ ३४ ॥
ततस्तस्याःसुताजज्ञे तस्मान्मदनरासभात ॥ वदसातस्यभवतिकिन्दौहित्रीसुताथवा ॥ ३५ ॥ एवंप्रश्नंममब्रूहि शी
घ्रंचेच्छक्तिरस्तिते ॥ इतिप्रश्नंचसाश्रुत्वाचिन्तयद्बहुधाहृदि ॥ ३६ ॥ नचपश्यतिनिर्द्धारं प्रश्नस्यास्यकथञ्चन ॥ त
तःप्रश्नेनविजिता स्वांशक्तिंसमुपाददे ॥ ३७ ॥ अताडयद्गुह्यरज्जुं कराभ्यांदोलकस्यच ॥ ततोऽन्त्रांसिनिष्पेतुः कोटिशो
भीषणान्यपि ॥ ३८ ॥ सिंहव्याघ्रवराहाश्च महिषाश्चित्रकामृगाः ॥ समीक्ष्यतानसंख्येयान् पाटितुन्धावतोरुषा ॥ ३९ ॥
अपाटयन्नखैर्भीमैः कनिष्ठाङ्गुष्ठजैर्हसन् ॥ ततोविनिःसृतास्तत्र द्विगुणाराक्षसादयः ॥ ४० ॥ तेमौर्वीनिर्मिता
स्सर्वे त्वणादेवास्यभक्षिताः ॥ विजितायांस्वशक्तौच बलशक्तिंतथाददे ॥ ४१ ॥ उत्थायसहसादोलात् खड्गमादातुमै
च्छत ॥ उत्तिष्ठन्तींचतांस्वैरं भूमिरनुसृत्यजवाद्दिव ॥ ४२ ॥ केशेष्वादायसव्येन पाणिनापातयद्भुवि ॥ ततःकण्ठेसव्य**

उसने अपनी शक्ति को लिया ॥ ३७ ॥ और झूला की गुप्त रस्सी को हाथों से पकडकर मारा तदनन्तर बड़े भयङ्कर करोडों राक्षस निकले ॥ ३८ ॥ और
सिंह, व्याघ्र, वराह, महिष, चीता व मृग उत्पन्नहुये मारने के लिये क्रोध से दौडतेहुये उन असंख्य राक्षसादिकों को देखकर ॥ ३९ ॥ हँसतेहुये घटोत्कच ने
कनिष्ठा व अंगूठा से उपजे हुये नखों से फाडडाला तदनन्तर वहां दूने राक्षसादिक निकले ॥ ४० ॥ और मौर्वी से रचेहुये वे सब राक्षसादिक क्षणभर में इस से
भक्षितहुये व अपनी शक्ति के जीतजाने पर उसने बलशक्ति को लिया ॥ ४१ ॥ और झूला से अचानकही उठकर तलवार लेने की इच्छा किया घटोत्कच ने

उठतीहुई उसके पीछे वेग से जाकर ॥ ४२ ॥ बायें हाथ से बालों को पकडकर भूमि में गिरा दिया तदनन्तर कण्ठ पै बायां चरण धरकर व कतरनी को लेकर ॥ ४३ ॥ दाहिने हाथ से इसकी नासिका काटने की इच्छा किया तदनन्तर फरकती हुई मौर्वी ने धीरेसे यह घटोत्कच से कहा ॥ ४४ ॥ कि हे नाथ! तुमने प्रश्न,शक्ति व बल तीनों प्रकार से मुझ को जीत लिया इस लिये मुझ को छोड दीजिये तुम्हारे लिये नमस्कार है मैं तुम्हारी कार्यकारिणी हूं जो आप आज्ञादीजिये मैं उसको करूं ॥ ४५ ॥ घटोत्कच बोला कि यदि ऐसा है तो मैंने तुमको छोड़दिया और जो बलहो उसको फिर दिखलाइये इसभांति कही व छोड़ीहुई उसने इस घटोत्कच

पादं दत्त्वादायचकर्तिकाम् ॥ ४३ ॥ दक्षिणेनकरेणास्याश्छेत्तुमैच्छतनासिकाम् ॥ विस्फुरन्तीततोमौर्वी मन्दमाह घटोत्कचम् ॥ ४४ ॥ प्रश्नेनशक्त्याचबलेननाथ त्रिधात्वयाहंविजितानमस्ते ॥ तन्मुञ्चमाङ्कर्मकरीतवास्मि यदादिशत्वंप्रकरोमितच्च ॥ ४५ ॥ घटोत्कचउवाच ॥ यद्येवंतर्हिमुक्तासि भूयोदर्शययद्बलम् ॥ एवमुक्ताप्रणम्यैनं मुक्ताचाहप्रणम्यसा ॥ ४६ ॥ जानामित्वांमहाबाहो वीरंशक्तिमतांवरम् ॥ सर्वराक्षसभर्तारं त्रैलोक्येमितविक्रमम् ॥ ४७ ॥ गुह्यकाधिपतिस्त्वंहि कालनाभइतिस्मृतः ॥ षष्टिकोटिपतिर्यातस्त्वञ्चरक्षःपतिर्भुवि ॥ ४८ ॥ इतिमांप्राहकामाख्यासवंतत्संस्मराम्यहम् ॥ इहगेहंसानुगम्मे दत्तमप्यात्मनातव ॥ ४९ ॥ समादिशप्राणनाथ कमादेशङ्करोमिते ॥ घटोत्कचउवाच ॥ प्रच्छन्नैश्चैवघटते नविवाहःकथञ्चन ॥ ५० ॥ मौर्वियस्यहिवर्तन्ते पितरोबान्धवास्तथा ॥ तन्मांशीघ्रं

को प्रणामकर कहा ॥ ४६ ॥ कि हे महाबाहो! त्रिलोकमें अतुल बलवाले व समस्त राक्षसोंके स्वामी तथा शक्तिमानों में श्रेष्ठ व वीर तुमको मैं जानतीहूं ॥ ४७ ॥ और कालनाभ ऐसे कहेहुये तुम गुह्यकों के स्वामीहो और साठ करोड़ राक्षसों के स्वामी होकर तुम भूमि में राक्षसराजहो ॥ ४८ ॥ ऐसा मुझसे कामाख्या ने कहा है उस सब वृत्तान्तको मैं स्मरण करतीहूँ यहांपर मैंने आत्मा समेत व अनुगामियों समेत मन्दिर तुमको देदिया ॥ ४९ ॥ हे प्राणनाथ! आज्ञा दीजिये मैं तुम्हारी किस आज्ञा को करूं घटोत्कच बोला कि हे मौर्वि! जिसके पिता व भाई लोग विद्यमान है उन छिपे हुये पुरुषोंका किसी प्रकार विवाह नहीं होता है इस लिये हे शुभे! मुझको

शीघ्रही इन्द्रप्रस्थ जाने के लिये ले चलिये ॥ ५० । ५१ ॥ हमलोगों के वंशका यही क्रमहै कि स्त्री पतिको उधारती है वहां आज्ञाको पाकर मैं. तुम्हारा विवाह करूं-
गा ॥५२॥ सूतजी बोले कि तदनन्तर मौर्वीने भगदत्त स्वामीसे निवेदन किया और बहुत द्रव्यको लेकर इसके उपरान्त भगदत्त भाईको विदा किया ॥५३॥ तदनन्तर
अनेक द्रव्यों से संयुत व प्रशंसित उस मौर्वीने घटोत्कचको पीठपै चढ़ाकर दिल्ली को प्रयाण किया ॥ ५४ ॥ तदनन्तर कृष्णाजीने व पाण्डवोंने इसकी प्रशंसा किया
और उत्तम लग्नमें भीमके पुत्र घटोत्कचने इसका पाणिग्रहण किया ॥ ५५ ॥ कुरुवंशियों तथा राक्षसोंकी कहीहुई उत्तम विधिसे उसको व्याहकर घटोत्कचने उसके

**वहशुभे शक्रप्रस्थायसाम्प्रतम् ॥ ५१ ॥ अयंकुलक्रमोस्माकं यद्भार्यापतिमुद्धरेत् ॥ तत्रानुज्ञांसमासाद्य परिणेष्यामि
त्वामहम् ॥ ५२ ॥ सूतउवाच ॥ भगदत्तमथोनाथं ततोमौर्वीन्यवेदयत ॥ समादायबहुद्रव्यं विससर्जाथभ्रातरम् ॥
५३ ॥ ततःपृष्ठंसमारोप्य घटोत्कचमनिन्दिता ॥ नानाद्रव्यपरीवारा शक्रप्रस्थंसमाव्रजत ॥ ५४ ॥ ततोसौवासुदेवे
न पाण्डवैश्चाभिनन्दितः ॥ शुभेलग्नेपाणिमस्या जगृहेभीमनन्दनः ॥ ५५ ॥ कुरूणांराक्षसानाञ्च प्रोक्तोत्तमविधा
नतः ॥ उद्वाह्यतान्तद्धनैश्च तर्पयामासपाण्डवान् ॥ ५६ ॥ कुन्तीचद्रौपदीचोभे मुमुदातेनिरीक्ष्यताम् ॥ माङ्गल्यान्य
स्यचक्राते मौर्व्याश्चधनतस्तुते ॥ ५७ ॥ ततोविवाहेनिर्वृत्तेप्रतिपूज्यघटोत्कचम् ॥ भार्य्यासहितंराजा स्वराज्याय
समादिशत ॥ ५८ ॥ सोप्याज्ञांशिरसाचैव हैडिम्बिर्भार्य्ययासह ॥ शुभंहिडिम्बस्यवनं स्वराज्यंसमुपाव्रजत् ॥ ५९ ॥ ततो
राक्षसयोषाभिर्वीरोभीमिःप्रवर्द्धितः ॥ महोत्सवेनमहता स्वराज्येप्रमुमोदसः ॥ ६० ॥ ततोवनेषुचित्रेषु निम्नगापुलिनेषु**

धनोंसे पाण्डवोंको तृप्तकिया ॥ ५६ ॥ कुन्ती और द्रौपदी दोनो उस मौर्वीको देखकर प्रसन्न हुईं और उन्हों ने मौर्वी के धनसे इसके मङ्गल कार्य्योंको किया ॥ ५७ ॥
तदनन्तर जब विवाह निवृत्त होगया तब घटोत्कचको प्रतिपूजकर स्त्री रामेत उस को राजाने अपनी राज्यके लिये आज्ञादिया ॥५८॥ व हिडम्बाका पुत्र वह घटोत्कच
भी आज्ञाको मस्तक से मानकर स्त्री समेत हिडम्बा के उत्तम वनमें अपनी राज्यको आगया ॥ ५९ ॥ तदनन्तर भीमका पुत्र वह घटोत्कच वीर राक्षसों की
स्त्रियों से बढ़कर बड़ेभारी उछाह से अपनी राज्य पै प्रसन्न हुआ ॥ ६० ॥ तदनन्तर घटोत्कचने उस स्त्रीसमेत विचित्र वनोंमें व नदियों के किनारों में रमण किया जैसे

कि रावणने मन्दोदरीमे रमण कियाहै॥ ६१ ॥ बहुत दिनोंतक क्रीडा करते हुये उस बडी छबिवाले घटोत्कच के गर्भ उत्पन्न हुआ राक्षसों मे श्रेष्ठ वह घटोत्कचका पुत्र बालसूर्यके समान प्रभावान् था ॥ ६२ ॥ पैदा होतेही वह बालक बढ़ा व क्षणभर में युवावस्थाको प्राप्तहोगया जोकि नीले मेघसमूहोंकी नाईं शोभित और घड़ेकी तरह मुखवाला व जलते हुये नेत्रोंवाला था ॥ ६३ ॥ व जोकि उठे हुये बालोंवाला व उठे रोमोवाला था उस बालक ने प्रणामकर माता व पितासे कहा कि तुम दोनोंको मै प्रणाम करताहूं जोकि पैदाहुये मेरे गुरुहो ॥६४॥ आप दोनों से दियेहुये अपने नामको मैं चाहताहूं इसके उपरान्त जो उन्नतिदायक कल्याण कर्तव्यहो उसको

च ॥ रेमेसहतयाभैमिर्मन्दोदर्यैवरावणः ॥ ६१ ॥ चिरंविक्रीडतस्तस्य गर्भोजज्ञेमहाद्युतेः ॥ हैडम्बोराक्षसव्याघ्रो बाल सूर्यसमप्रभः ॥ ६२ ॥ सजातमात्रोववृधे क्षणाद्यौवनगोभवत् ॥ नीलमेघचयप्रख्यो घटास्योदीप्तलोचनः ॥ ६३ ॥ ऊर्द्धकेशश्चोर्द्धरोमा पितरौप्रणतोब्रवीत् ॥ प्रणमामियुवांचोभौ जातस्यप्रथमौगुरू ॥ ६४ ॥ भवद्भ्यांदत्तमिच्छामि ह्यभिधानंतथात्मनः ॥ अतःपरञ्चयच्छ्रेयःकर्तव्यंप्रोन्नतिप्रदम् ॥ ६५ ॥ ततोभैमिस्तमालिङ्ग्य पुत्रंवचनमब्रवीत् ॥ ब र्बराकारकेशत्वाद्बर्बरीकाभिधोभवान् ॥ ६६ ॥ भविष्यसिमहाबाहो कुलस्यानन्दवर्द्धनः ॥ ६७ ॥ श्रेयश्चतेयत्परमंच दृष्टं यत्कीर्त्यतेबहुविधंविप्रमुख्यैः ॥ पृच्छामहेतत्कुरुवंशनाथं गत्वापुरींद्वारकांवासुदेवम् ॥ ६८ ॥ इति श्रीस्कन्दपु राणेकुमारिकाखण्डे घटोत्कचविवाहवर्णनन्नामषट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥ * ॥ * ॥

कहिये ॥ ६५ ॥ तदनन्तर घटोत्कचने उस पुत्रको लिपटाकर वचन कहा कि बर्बर के समान बालहोनेके कारण आप बर्बरीक नामक ॥ ६६ ॥ होगे व हे महाबाहो! वंशके आनन्दको बढ़ानेवाले होगे ॥ ६७ ॥ और तुम्हारा जो उत्तम कल्याण देखा गया है व जो उत्तम ब्राह्मणों से बहुत भातिका कहा जाताहै उसको मैं द्वारकापुरी में जाकर कुरुवंश के स्वामी वासुदेव कृष्णजी से पूंछूंगा ॥ ६८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांघटोत्कचविवाहवर्णन न्नामषट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

दो० । गुप्तक्षेत्रमें कीन तप यथा घटोत्कच बाल । सत्तावन अध्याय में सोई चरित रसाल ॥ सूतजी बोले कि तदनन्तर वहां कामकटंकटा मौर्वी को छोड़कर बुद्धिमान् घटोत्कच अनुगामी पुत्र समेत आकाशमार्ग से द्वारका को गया ॥ १ ॥ राक्षस अनुगामीवाले उस घटोत्कच राक्षसको आतेहुये देखकर द्वारकावासी योधाओं ने बडा भयंकर शब्द किया ॥ २ ॥ और नवलाख वे योधा तैयार होकर जाते हैं जाते हैं यह कहने लगे व आपस में यह बोले कि आयेहुये दो राक्षस पैनेबाणों से गिरा दिये जावें ॥ ३ ॥ अस्त्रोंको लिये आतेहुये उन यदुवीरों को देखकर उस घटोत्कच ने बडी भुजाको उठाकर ऊंचेस्वर से कहा ॥ ४ ॥ कि हे वीरो ! मुझको

सूतउवाच ॥ ततोघटोत्कचोमुक्त्वा तत्रकामकटङ्कटाम् ॥ पुत्रेणानुगतोधीमान् वियताद्वारकांययौ ॥ १ ॥ आगच्छन्तंचतन्दृष्ट्वा राक्षसंराक्षसानुगम् ॥ द्वारकावासिनोयोधाश्चक्रुश्चात्युल्वणंरवम् ॥ २ ॥ यास्यामस्सुसन्नद्धा नवलक्षमितास्तुते ॥ राक्षसौद्वौसमायातौ पात्येतांविशिखैश्शितैः ॥ ३ ॥ तान्गृहीतायुधान्दृष्ट्वा यदुवीरान्घटोत्कचः ॥ उत्थायविपुलंबाहुं जगौतारस्वरेणसः ॥ ४ ॥ राक्षसंवित्तमांवीरा भीमपुत्रंघटोत्कचम् ॥ सुप्रियंवासुदेवस्य प्रणामार्थमुपागतम् ॥ ५ ॥ निवेदयन्तुमांप्राप्तं यादवेन्द्रायसात्मजम् ॥ इतितस्यवचःश्रुत्वा यादवेन्द्रंन्यवेदयन् ॥ ६ ॥ आहदेवस्सभास्थश्च शीघ्रमेवाव्रजत्वसौ ॥ ततःप्रवेशयामासुर्द्वारकान्तेघटोत्कचम् ॥ ७ ॥ सपुत्रस्सोपिरम्याणि वनान्युपवनानिच ॥ क्रीडाशैलांश्चहर्म्याणि सपश्यन्नागतस्सभाम् ॥ ८ ॥ सतत्रचोग्रसेनञ्च वसुदेवञ्चसात्यकिम् ॥ अक्रूररामप्रमुखान्ववन्देकृष्णमेवच ॥ ९ ॥ तत्पादयोःप्रपतितं समालिङ्ग्यसहात्मजम् ॥ साशिषंस्वसमीपस्थमुपवेश्यदस

भीमके पुत्र घटोत्कच राक्षस जानिये जोकि कृष्णको प्याराहूं और प्रणाम के लिये आयाहूं ॥ ५ ॥ पुत्र समेत प्राप्तहुये मुझको यदूत्तम श्रीकृष्णजी से बतलाइये उसका ऐसा वचन सुनकर यदूत्तम कृष्णजी से उन्हों ने निवेदन किया ॥ ६ ॥ और सभामें बैठेहुये कृष्णदेवजी बोले कि वह शीघ्रही आवै तदनन्तर उन्होंने घटोत्कच को शीघ्रही प्रवेश कराया ॥ ७ ॥ और पुत्र समेत वह घटोत्कच भी मनोहर वनों व उपवनों तथा क्रीड़ा पर्वत व मन्दिरों को देखताहुआ सभामें आया ॥ ८ ॥ वहां पर उग्रसेन, वसुदेव, सात्यकि, अक्रूर व बलभद्र इत्यादिकों को व श्रीकृष्णजी को उसने प्रणाम किया ॥ ९ ॥ पुत्र समेत चरणों में गिरेहुये उसको आशीर्वाद समेत

लिपटाकर और बिठाकर अपने समीप बैठेहुये उससे कृष्णजी यह बोले ॥ १० ॥ कि हे कुरुवंश के बढ़ानेवाले, राक्षसों में श्रेष्ठ, पुत्र ! क्या सब ओरसे कुशलहै और
तुम्हारा आना किस लिये हुआहै ॥ ११ ॥ घटोत्कच बोला कि हे देव ! आपकी प्रसन्नतासे मेरे सब ओर कुशल है और जिस कार्य्य के लिये मैं आयाहूं उस कारणको
सुनिये ॥ १२ ॥ कि तुमसे कहीहुई स्त्रीमें यह मेरे पुत्र पैदाहुआहै वह तुमसे प्रश्नको पूंछता है उसको सुनिये इसी लिये मैं आयाहूं ॥ १३ ॥ श्रीकृष्ण भगवान् बोले
कि हे मौर्वीके पुत्र वत्स ! कहिये व जो चाहतेहो उस सबको पूंछिये जैसे घटोत्कच मुझको बहुत प्याराहै वैसेही तुमहो ॥ १४ ॥ बर्बरीक बोला कि हे आदिदेव ! मन, बुद्धि

ब्रवीत् ॥ १० ॥ पुत्रराक्षसशार्दूल कुरूणांकुलवर्द्धन ॥ कुशलंसर्वतःकिञ्चित्किमर्थस्तेसमागमः ॥ ११ ॥ घटोत्कचउवा
च ॥ देवयुष्मत्प्रसादेन सर्वतःकुशलंमम ॥ श्रूयताङ्कारणंतच्च यदर्थमहमागतः ॥ १२ ॥ तवोपदिष्टभार्यायां जातोयंत
नयोमम ॥ सचप्रश्नंपृच्छतित्वां श्रूयतामागतस्त्वतः ॥ १३ ॥ भगवानुवाच ॥ वत्समौर्वेयब्रूहित्वं सर्वंपृच्छयदिच्छसि ॥
यथाघटोत्कचोमह्यं सुप्रियश्चतथाभवान् ॥ १४ ॥ वर्बरीकउवाच ॥ प्रणम्यत्वामादिदेवमनोबुद्धिसमाधिभिः ॥ पृच्छा
मिकेनश्रेयःस्याज्जन्तोर्जातस्यमाधव ॥ १५ ॥ केचिच्छ्रेयोधर्ममाहुरैश्वर्यंत्यागभोजनम् ॥ केचिद्दमंतपोद्रव्यं भो
गान्मुक्तिञ्चकेचन ॥ १६ ॥ तदेवंशतसंख्येषु श्रेयस्सुपुरुषोत्तम ॥ ममचैकंकुलस्यास्य श्रेयोमद्ब्रूहिनिश्चितम् ॥ १७ ॥
श्रीभगवानुवाच ॥ वत्सपृथक्पृथक्प्रोक्तं वर्णानांश्रेयउत्तमम् ॥ ब्राह्मणानांतपोमूलं दानाध्ययनएवच ॥ १८ ॥ धर्मप्र
कटनञ्चापि श्रेयउक्तंमनीषिभिः ॥ बलंसाध्यंपूर्वमेव क्षत्रियाणाम्प्रकीर्तितम् ॥ १९ ॥ दुष्टानांनाशनञ्चापि साधूनां

व समाधि से तुमको प्रणामकर पूंछताहूं कि हे माधवजी ! पैदाहुये प्राणीका किस कर्मसे कल्याण होताहै ॥ १५ ॥ कितेक जन धर्म्मको कल्याणरूप कहते है व कोई
ऐश्वर्य, दान व भोजनको कहते हैं व कोई दम, तपस्या, द्रव्य व भोगों को कहतेहैं व कोई मुक्तिको कहतेहैं ॥ १६ ॥ तो इस प्रकार सैकडों कल्याण होनेपर हे पुरुषो-
त्तम ! मुझसे इस वंशके एक कल्याणको कहिये जोकि निश्चितहोवै ॥ १७ ॥ श्रीकृष्णभगवान् बोले कि हे वत्स ! जातियो का उत्तम कल्याण अलग अलग कहा गयाहै
कि तप मूलवाला कल्याण ब्राह्मणोंका कहा गयाहै व दान, पढ़ना ॥ १८ ॥ और धर्म्मप्रकट करना भी विद्वानों से उत्तम कल्याण कहा गयाहै और क्षत्रियों का पहलेही

बल साधन करना कल्याण कहा गया है ॥ १९ ॥ और दुष्टोंका नाश करना व साधुवों का पालन करना कहा गया है और वैश्यों का पशुपालन व कृषी कर्म कहा गयाहै ॥ २० ॥ और शूद्रका कल्याण ब्राह्मण की सेवाहै व उस जीविकासे जीता हुआ शूद्र सुखी होता है अथवा अनेक प्रकार के शिल्पकर्मों से जिये व ब्राह्मणका हितकरै ॥ २१ ॥ स्त्रीमें प्रीति करनेवाला व सेवकों का पालक, पवित्र व श्रद्धापरायण ब्राह्मण नमस्कार से व मन्त्र से पञ्चयज्ञों को न छोड़े ॥ २२ ॥ आप क्षत्रिय के वंशमें उत्पन्नहो इस लिये जो कीजिये उसको सुनिये कि पहले तुम अतुल बल साधन करो उससे दुष्टोंकी शिक्षा कीजिये व साधुवोंका पालन कीजिये तो स्वर्गही

परिपालनम् ॥ पशुपाल्यञ्च वैश्यानां कृषिविज्ञानमेवच ॥ २० ॥ शूद्रस्य द्विजशुश्रूषा तयाजीवन्सुखी भवेत् ॥ शिल्पैर्वाविविधैर्जीवेद्द्विजातिहितमाचरेत ॥ २१ ॥ भार्यारतिर्भृत्यपोष्टा शुचिःश्रद्धापरायणः ॥ नमस्कारेण मन्त्रेण पञ्चयज्ञान्नहापयेत् ॥ २२ ॥ तद्भवान्क्षत्रियकुले जातोऽस्ति कुरु तच्छृणु ॥ बलं साधय पूर्वन्त्वमतुलं तेन शिक्षय ॥ २३ ॥ दुष्टान्पालय साधूंश्च स्वर्गमेवमवाप्स्यसि ॥ बलंचलप्स्यते पुत्र देवीनां सुप्रसादतः ॥ २४ ॥ तद्भवान्बलप्राप्त्यर्थं देव्याराधनमाचर ॥ २५ ॥ बर्बरीक उवाच ॥ कस्मिन्क्षेत्रे च कान्देवीं कथमाराधयाम्यहम् ॥ एतत्प्रसादप्रवणं मनः कृत्वा प्रकीर्तय ॥ २६ ॥ इतिपृष्टः क्षणं ध्यात्वा प्राह दामोदरो विभुः ॥ वत्स क्षेत्रं प्रवक्ष्यामि यत्र तप्स्यसि तत्तपः ॥ २७ ॥ गुप्तक्षेत्रमिति ख्यातं महीसागरसङ्गमे ॥ तत्र त्रिभुवनेयाश्च देव्यस्सन्ति पृथग्विधाः ॥ २८ ॥ नारदेन समानीतास्ताश्चैवं सुमहात्मना ॥ चतस्रस्तत्र दिग्देव्यो नवदुर्गाश्च सन्ति याः ॥ २९ ॥ समाराधयतागत्वा तासामैक्यं हि दुर्लभम् ॥ नित्यं पूजयतः पुत्र पुष्पधू

को पावोगे और हे पुत्र! देवियों की प्रसन्नतासे बल मिलता है ॥ २३ । २४ ॥ इस लिये आप बल मिलने के निमित्त देवीका आराधन कीजिये ॥ २५ ॥ बर्बरीक बोला कि किस क्षेत्रमें व किस देवीको मैं कैसे आराधन करूं मनको प्रसन्नतामें झुकाकर यह कहिये ॥ २६ ॥ ऐसा पूछेहुये श्रीकृष्णस्वामीजीने क्षणभर ध्यानकर कहा कि हे वत्स! मैं क्षेत्रको कहूंगा कि जहां तुम उस तपस्याको करोगे ॥ २७ ॥ महीसागरसङ्गममें जो गुप्तक्षेत्र ऐसा प्रसिद्ध है वहांपर वे देवियां महात्मा नारदजी से लाईगई हैं जो कि त्रिलोक में अनेक भांतिकी हैं वहां जो चार दिशाओं की देवियां हैं व जो नव दुर्गाहैं ॥ २८ । २९ ॥ उनको जाकर आराधन कीजिये और उनकी एकता दुर्लभ

है हे पुत्र ! नित्यही पुष्प, धूप व लेपनों तथा स्तुतियों व उपहारों से पूजते हुये तुम्हारे ऊपर वे जिसप्रकार प्रसन्न होवैं वैसेही पूजियेगा ॥ ३० । ३१ ॥ क्योंकि हे पुत्र ! देवियों के प्रसन्न होनेपर बल, धन, यश व पुत्र, उत्तम स्त्रियां, स्वर्ग व दुर्लभ मुक्तिपद मिलता है तुम से यह सत्य कहागया है ॥ ३२ ॥ ऐसा वर्वरीक से कह कर श्रीकृष्णजी घटोत्कच से बोले कि हे घटोत्कच ! तुम्हारा यह पुत्र बहुतही उत्तम हृदयवाला है ॥ ३३ ॥ इस लिये मैंने सुहृदय ऐसा दूसरा नाम दिया ऐसा कहकर लिपटा कर व अनेक भांति के धनों से भलीभांति तृप्तकर ॥ ३४ ॥ भगवान् कृष्णजीने गुप्तक्षेत्र के लिये आज्ञा दिया इसके अनन्तर वह कृष्ण व

पविलेपनैः ॥ ३० ॥ स्तुतिभिश्चोपहारैश्च यथातुष्यन्तितास्तव ॥ ३१ ॥ तुष्टासुदेवीषुबलंधनञ्च कीर्तिश्चपुत्रास्सुभगाश्चदाराः ॥ स्वर्गस्तथामुक्तिपदञ्चपुत्र सुदुर्लभंसत्यमेतत्तवोक्तम् ॥ ३२ ॥ एवमुक्त्वावर्वरीकं कृष्णःप्राहघटोत्कचम् ॥ घटोत्कचायंपुत्रस्ते दृढंसुहृदयोह्यसौ ॥ ३३ ॥ तस्मात्सुहृदयेत्येवं दत्तंनाममयाद्विकम् ॥ एवमुक्त्वासमालिङ्ग्य सन्तर्प्यविविधैर्धनैः ॥ ३४ ॥ गुप्तक्षेत्रायभगवान् वर्वरीकंसमादिशत् ॥ सोथकृष्णंनमस्कृत्य पितरंयादवान्स्थितान् ॥ ३५ ॥ अनुज्ञाप्यचतान्सर्वान् गुप्तक्षेत्रंसमाव्रजत् ॥ घटोत्कचोपिकृष्णेन विसृष्टस्सवनंययौ ॥ ३६ ॥ स्मरन्पुत्रगुणान्पश्चात् स्वराज्यंसमपालयत् ॥ ततःसुहृदयोधीमान् गुप्तक्षेत्रकृताश्रयः ॥ ३७ ॥ त्रिकालंपूजयामास देवीःकर्मसमाधिभिः ॥ नित्यंपुष्पैश्चधूपैश्च उपहारैःपृथग्विधैः ॥ ३८ ॥ तस्याराधयतोदेव्यस्तुतुषुर्हायनैस्त्रिभिः ॥ ततःप्रत्यक्षतोभूत्वा ददुस्तस्यमहात्मनः ॥ ३९ ॥ बलंयत्त्रिषुलोकेषु कस्यचिन्नास्तिदुर्लभम् ॥ ऊचुश्चकञ्चित्कालंत्वं वसात्रैवमहा

पिताको तथा बैठेहुये यदुवंशियों को प्रणामकर ॥ ३५ ॥ और उन सबोंसे आज्ञा को लेकर गुप्तक्षेत्र को चलागया व कृष्ण से बिदाहोकर वह घटोत्कच भी वनको गया ॥ ३६ ॥ और पश्चात् पुत्रके गुणोंको स्मरण करते हुये उस ने अपने राज्य का पालन किया तदनन्तर गुप्तक्षेत्र में आश्रय किये हुये उस बुद्धिमान् सुहृदय ने ॥ ३७ ॥ कर्म व समाधि से देवियोका त्रिकालपूजन किया नित्यही पुष्प, धूप व अनेक भांति के उपहारों से ॥ ३८ ॥ आराधन करते हुये उसके ऊपर तीन वर्षोंमें देवियां प्रसन्न हुईं व प्रत्यक्ष होकर उस महात्मा को वह बल दिया कि जो दुर्लभ बल तीनों लोकों में किसी के नहीं है और उन्होंने कहा कि हे महाद्युते ! तुम कुछ

समय तक यहाँ बसो ॥ ३६।४०॥ क्योंकि विजयकी सङ्गतिसे तुम बहुत कल्याण को पावोगे सब देवियों से ऐसा कहाहुआ वह वहाँ टिकताभया ॥ ४१ ॥ इस के उपरान्त विजयनामक मागध ब्राह्मण आया वह द्विजोत्तम समस्त पृथ्वीको चरणों से आक्रमणकर ॥ ४२ ॥ व काशीजी में विद्याका बल पाकर साधना के लिये आयाथा व गुहेश्वर इत्यादिक सातों लिंगोंको पूजतेहुये इसने ॥ ४३॥ बहुत दिनों तक विद्याफल की प्राप्तिके लिये देवियों का आराधन किया तदनन्तर उसके ऊपर प्रसन्न होतीहुई देवियों ने स्वप्नमें यह वचन कहा ॥ ४४ ॥ कि सिद्धिमाता के आगे आंगन में तुम सब विद्याओं की साधना करो और यह सुहृदय भक्त तुम्हारी सहा-

युते ॥ ४० ॥ सङ्गत्याविजयस्यत्वं भूयःश्रेयोह्यवाप्स्यसि ॥ इत्युक्तस्सर्वदेवीभिस्सतत्रैवव्यवस्थितः ॥ ४१ ॥ आजगामाथविजयो नाम्नामागधब्राह्मणः ॥ ससर्वांपृथिवींकृत्वा पादाक्रान्तांद्विजोत्तमः ॥ ४२ ॥ काश्यांविद्याबलंप्राप्य साधनार्थमुपाययौ ॥ गुहेश्वरमुखान्येष सप्तलिङ्गानिपूजयन् ॥ ४३ ॥ आराधयामासचिरन्देवीर्विद्याफलाप्तये ॥ ततस्तुष्टास्तस्यदेव्यः स्वप्नेप्रोचुरिदंवचः ॥ ४४ ॥ विद्याःसाधयत्वंसर्वाः सिद्धिमातुःपुराङ्गणे ॥ अयंभक्तस्सुहृदयस्साहाय्यन्ते करिष्यति ॥ ४५ ॥ ततस्तद्वचनंश्रुत्वा विजयस्तत्समाधितः ॥ उत्थायनत्वादेवीस्तं वन्नेभीमात्मजात्मजम् ॥ ४६ ॥ सोपिदेवीवचःश्रुत्वा मेनेसाहाय्यकारणम् ॥ ततःकृष्णचतुर्दश्यामुपोष्यविजयःशुचिः ॥ ४७ ॥ स्नात्वाभ्यर्च्यैवलिङ्गानि देवीश्चैवार्चयत्पृथक् ॥ कृत्वास्नानमुपोष्यैव बर्बरीकोन्तिकेभवत् ॥ ४८ ॥ प्रथमायान्ततोरात्रौ ययौसिद्धाम्बिकापुरः ॥ मण्डलंतत्रकृत्वाचभगाकारङ्करोणच ॥४९॥ अष्टदिक्षुचषट्कोणांश्च निसन्थैवससूत्रकान् ॥ कृष्णाजिनधरोभू

यता करेगा ॥ ४५ ॥ तदनन्तर उस वचन को सुनकर विजय ने उस समाधि से उठकर व देवियों का प्रणामकर भीमपुत्र (घटोत्कच) के पुत्र सुहृदयसे कहा ॥ ४६॥ उसने भी देवीका वचन सुनकर सहायताका कारण माना तदनन्तर कृष्णपक्ष की चतुर्दशी में उपासकर व पवित्रहोकर विजयने ॥ ३७ ॥ स्नानकर व लिगोंको पूजकर पृथक् देवियों का पूजन किया व बर्बरीक स्नान कर तथा उपास करके समीप में प्राप्तहुआ ॥ ४८ ॥ तदनन्तर पहली रातमें वह सिद्धाम्बिका के आगे प्राप्तहुआ और

वहां हाथसे भगके आकार मण्डलकर ॥४९॥ आठों दिशाओं में सूत्र समेत आठकीलों को गाडकर वर्वरीक से संयुत विजय मृगचर्मधारीहोकर ॥ ५० ॥ व शिखाको बांधकर दिग्बन्धनकर तदनन्तर उसने विधिका प्रारम्भ किया और मण्डल के मध्य शुद्ध कुण्डमें तीन मेखला बनाकर ॥ ५१ ॥ उसके उपरान्त वहींपर खदिर की तलवार धरकर व सब ओर कीलोंको धरकर इसके उपरान्त विजय ने वर्वरीक से कहा ॥ ५२ ॥ कि निद्रारहित व पवित्र बैठकर मैं देवी के स्तोत्रको कहता हुआ जबतक कर्म करताहूं कि जिस प्रकार विघ्न न होवै ऐसा कहकर महाबलवान् वर्वरीक के वहां बैठने पर ॥ ५३ ॥ यमी विजयने दाहको डुबातेहुये शोषण किया तदनन्तर

त्वा वर्वरीकसमन्वितः ॥ ५० ॥ शिखामाबध्यदिग्बन्धं कृत्वारेभेततोविधिम् ॥ मध्येवैमण्डलस्यापि कुण्डेशुद्धेत्रिमेखलाः॥ ५१ ॥ समर्प्यचततःखड्गंखादिरंस्थाप्यतत्रच ॥ संस्थाप्यकीलानभितो वर्वरीकमथाब्रवीत् ॥ ५२ ॥ शुचिर्विनिद्रस्संविष्टः स्तवन्देव्यास्समुच्चरन् ॥ यावत्कर्मकरोम्येष यथाविघ्नन्नजायते ॥ इत्युक्तेसंस्थितेतत्र वर्वरीकेमहाबले॥ ५३ ॥ विजयःशोषणन्दाहं प्लावयन्कृतवान्यमी॥ सुखासीनस्ततोभूत्वा गुंगुरुभ्योनमइति ॥ ५४ ॥ मन्त्रमष्टोत्तरशतंजप्त्वा गुरुभ्यः प्रणम्य च ततोगणेश्वरविधानमारब्धवान् ॥ ५५ ॥ अथातस्सम्प्रवक्ष्यामि मन्त्रंगणपतेःपरम् ॥ सर्वकार्यकरंस्वल्पं महार्थंसर्वसिद्धिदम् ॥ ५६ ॥ ॐगांगींगूंगैंगौंगःसप्ताक्षरोमन्त्रः ॥ ॐअस्यगणपतिमन्त्रस्य गणोनामऋषिःविघ्नेश्वरोदेवता गंबीजम् ॥ ॐशक्तिःपूजार्थेजपार्थेवा तिलकार्थेमनईप्सितार्थेहोमार्थेवाविनियोगइति ॥ ५७ ॥ साधकस्यपूर्वंतिलकप्रकरणम् ॥ ॐगांगणपतयेनमः ॥ इतितिलकस्योपरिअक्षतान्दद्यात् ॥५८॥ गांगणपत

सुखपूर्वक बैठकर गुं गुरुभ्योनमः इस ॥ ५४ ॥ मन्त्रको अष्टोत्तरशत जपकर व गुरुवों के लिये प्रणामकर उसके उपरान्त गणपतिविधि को प्रारम्भ किया ॥ ५५ ॥ इसके उपरान्त मैं गणेशजी का उत्तम मन्त्र कहताहूं जोकि समस्त कार्योंको करनेवाला अल्प व बहुत अर्थवान् और सब सिद्धियों को देनेवाला है ॥५६॥ ॐ गां गीं गूं गैं गौं गः यह सप्ताक्षर मन्त्र है और इस गणेश मन्त्र के गण नामक मुनि व विघ्नेश्वर देवता हैं और गं बीज व ॐ शक्तिहै और पूजन के लिये या जपके लिये या तिलक के लिये व मनोरथ के निमित्त अथवा होमके लिये विनियोग है याने उपर्युक्त जो कार्यहो उस एकको कहकर विनियोग करै ॥ ५७ ॥ पहले साधकको

तिलक करना चाहिये ॐ गां गणपतयेनमः इस मन्त्रसे तिलक के ऊपर अक्षतोंको देवै ॥ ५८ ॥ गां गणपतयेनमः यह तिलकका मन्त्रहै ॐ गौं नेत्रत्रयायवौषट् इस मन्त्रसे गणेशजी के लिये तीन पुष्पाञ्जली देकर मूलमन्त्रसे चन्दन, सुगन्ध, पुष्प, धूप, दीप नैवेद्य ताम्बूलादिकको देवै ॥ ५९ ॥ इसके उपरान्त मूलमन्त्रसे जपकरै एकसौ आठ, हज़ार, लाख या करोड यथाशक्ति जपकर दशांश हवनके लिये अग्नि का आवाहन करै ॥ ६० ॥ अग्निका आवाहन कर गं गणपतये स्वाहा इस मन्त्रसे गूगुल की गोलिया होममें देवै और विनियोग करै यह गणेश्वर महाकल्प समाप्त हुआ ॥ ६१ ॥ जो पुरुष इस प्रकार सब विघ्नों में उत्तम मन्त्रको साधै उसके सब

येनमः॥ इतितिलकमन्त्रः ॥ ॐगौंनेत्रत्रयायवौषट्इतिमन्त्रेणगणेशायपुष्पाञ्जलित्रयंदत्त्वा मूलमन्त्रेण चन्दनगन्ध पुष्पधूपदीपनैवेद्यताम्बूलादिकं दद्यात् ॥ ५९ ॥ अतऊर्ध्वंमूलमन्त्रेणजपंकुर्यात ॥ अष्टोत्तरशतंसहस्रंलक्षंकोटिञ्चे तियथाशक्तिजप्त्वाचदशांशहोमार्थेऽग्निमावाहयेत ॥ ६० ॥ अग्निमावाह्यगंगणपतयेस्वाहेतिमन्त्रेण गुग्गुलुगुटि काभिर्होमंविदध्यात ॥ विनियोगश्चेतिगणेश्वरोमहाकल्पः ॥ ६१ ॥ यएवंसर्वविघ्नेषु साधयेन्मन्त्रमुत्तमम् ॥ सर्वविघ्ना निनश्यन्तिमनोऽभीष्टञ्चसिद्ध्यति ॥ ६२ ॥ डाकिनीयातुधान्यश्च प्रेताद्याश्चभयङ्कराः ॥ शत्रूणाञ्जायतेनाशो वशीक रणमेवच ॥ ६३ ॥ इदंगणेश्वरङ्कल्पं विजानन्विजयोपिच ॥ तिलकंविधिनाकृत्वा जप्त्वाचाष्टोत्तरंशतम् ॥ ६४ ॥ द शांशगुटिकाहुत्वा पूज्यसिद्धिविनायकम् ॥ सिद्धिक्षेत्रस्यपालस्य चक्रेपूजान्ततोनिशि ॥ ६५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुरा णेकुमारिकाखण्डेमहाविद्यासाधनन्नाम सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५७ ॥

॥ * ॥ * ॥

विघ्न नाश होजाते हैं और मनोरथ सिद्ध होता है ॥ ६२ ॥ और डाकिनी, राक्षसी व भयङ्कर प्रेतादिक नाश होतेहैं व शत्रुओं का नाशहोताहै व वशीकरण है ॥ ६३ ॥ इस गणेश्वर कल्पको जानते हुये विजयने विधिसे तिलककर व अष्टोत्तरशत जपकर ॥ ६४ ॥ और दशांश गूगुल की गुटिका हवनकर व सिद्धिविनायकको पूजकर तदनन्तर रात्रिमें सिद्धिक्षेत्रपालका पूजन किया ॥ ६५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांमहाविद्यासाधनवर्णनन्नामसप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५७ ॥

॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

दो० । क्षेत्रपाल चौंसठि रच्यो जिमि मुखसों ईशान । अट्ठावन अध्यायमें कीन्हो सोइ बखान ॥ शौनकजी बोले कि हे सूतजी ! पहले हमलोगोंने गणेशकी उत्पत्ति को सुनाहै और क्षेत्रनाथ कैसे उत्पन्नहुये है सुनतेहुये हमलोगों से यह कहिये ॥ १ ॥ सूतजी बोले कि पूर्वकाल में तारक दैत्यसे पीड़ित होतेहुये देवता देवीजी समेत बैठेहुये शिवदेवजी को प्रणामकर यह बोले ॥ २ ॥ कि हे देव ! देवता, दैत्यों से दुर्जय व भयङ्कर तारक दैत्यसे हमलोग पीडित हैं व अपने स्थानसे भी गिरादिये गये ॥ ३ ॥ अर्द्धनारीश्वर (सदाशिव) जीके विना वह दुष्टात्मा दैत्य विष्णु व इन्द्र तथा अन्य भी किसी देवतासे नहीं मारा जासक्ताहै ॥४॥ उससे पीड़ित हमलोगों के

शौनकउवाच ॥ श्रुतासूतपुरास्माभिरुत्पत्तिर्गणपस्यच ॥ क्षेत्रनाथःकथंजज्ञे वदैतच्छृण्वतांहिनः ॥ १ ॥ सूतउवाच ॥ पुरातारकदैत्येन पीड्यमानादिवौकसः ॥ देवंदेव्यासहासीनं प्रणिपत्येदमब्रुवन् ॥ २ ॥ देवदैत्येनघोरेण दुर्जयेनसुरासुरैः ॥ पीडितास्तारकेणस्मः स्वस्थानाच्चापिच्याविताः ॥ ३ ॥ नविष्णुनानचेन्द्रेण नचान्येनापिकेनचित् ॥ शक्योहन्तुंसदुष्टात्मा अर्द्धनारीश्वरंविना ॥ ४ ॥ तेनसम्पीड्यमानानामस्माकंशरणम्भव ॥ इत्युक्त्वारुरुदुर्देवास्त्राहित्राहीतिचाब्रुवन् ॥ ५ ॥ ततोतिकृपयाविष्टा हरकण्ठस्यकालिमाम् ॥ गृहीत्वापार्वतीचक्रे नारीमेकांमहाभयाम् ॥ आत्मशक्तिंतत्रमुक्त्वा प्रोवाचेदंततःशुभा ॥ ६ ॥ यस्मादतीवकालासि तस्मात्त्वंकालिकाभव ॥ देवारिञ्चदुरात्मानंशीघ्रंनाशयशोभने ॥ ७ ॥ एवमुक्तामहारावा कालिकाप्राप्यतन्तदा ॥ रावेणैवमृतंचक्रे सानुगंतारकासुरम् ॥ ८ ॥ ततोपिसाश्मशानस्था महारावानमुञ्चत ॥ यैरासन्विह्वलालोकास्त्रयोपिप्रमृतास्तथा ॥ ९ ॥ ततोरुद्रोबालरूपं कृतंविश्वकृतेप्र

शरण (रक्षक) हूजिये ऐसा कहकर देवता रोने लगे व रक्षा कीजिये रक्षा कीजिये यहबोले ॥५॥ तदनन्तर बहुत दयासे संयुत पार्वतीजीने शिवजीके कण्ठकी (कालिमा) कालापन लेकर एक बडी भयानक स्त्रीको किया तदनन्तर अपनी शक्तिको उसमें छोडकर वे शुभदायिनी पार्वतीजी यह बोलीं ॥६॥ कि जिस लिये तुम बहुतही कालीहो इसकारण कालिकाहोवो व हे शोभने ! दुष्टात्मा देवशत्रु तारकासुर को शीघ्रही नाश कीजिये ॥ ७ ॥ इस प्रकार कहीहुई बडे शब्दवाली कालिकाजी उस समय उसके समीप प्राप्तहोकर शब्दही से अनुगामियों समेत तारकासुर को मारडाला ॥ ८ ॥ उसके उपरान्त श्मशानमें स्थित होकर उसने बड़ेभारी शब्दों को किया कि जिनसे

तीनोंलोक विकल होगये और बहुतसे मनुष्य मरगये ॥ ९ ॥ तदनन्तर स्वामी सदाशिवजी ने संसारके लिये बालकरूपको किया और रोते हुये शिवजी प्रेतस्थान (श्मशान) में आये ॥ १० ॥ तदनन्तर रोतेहुये बालक को गोदीमेंकर दयासयुत कालिकाजी ने मतरोवो यह कहती हुई दूधको पिलाया ॥ ११ ॥ और बालकने भी दूधके बहाने उसके अंगसे उपजेहुये क्रोधको पीलिया जो यह क्रोध कि शिवजी के कण्ठसे उत्पन्न विषसे पैदाहुआ था ॥ १२ ॥ उस समय क्रोधवाले स्वभाव के पीजानेपर कालिका सौम्य होगई तदनन्तर किये हुये बालकरूपको उस बालक ने त्यागने की इच्छा किया ॥ १३ ॥ व यह कहा कि यदि तुम्हारे भय हो तो अन्य

मुः ॥ रुदंस्तस्याः समीपेचाप्यागतः प्रेतसद्मनि ॥ १० ॥ रुदन्तंचततोबालंकृत्वोत्सङ्गेकृपान्विता ॥ कालिकापाययत्स्तन्यं मारुदेतिप्रजल्पती ॥ ११ ॥ स्तन्यव्याजेनबालोपिपपौक्रोधंतदङ्गजम् ॥ योसौहरात्कण्ठस्थविषादासीत्समुद्भूतः ॥ १२ ॥ पीतेक्रोधस्वभावेच सौम्यासीत्कालिकातदा ॥ बालोपिबालरूपंतत्त्यक्तुमैच्छत्ततःकृतम् ॥ १३ ॥ अस्तिचेद्भयतेभीतिरन्यान्द्रक्ष्यामिबालकान् ॥ चतुःषष्टिंक्षेत्रपालानित्युक्त्वासोसृजन्मुखात् ॥ १४ ॥ प्राहतान्बालरूपांश्च बालरूपीमहेश्वरः ॥ स्वर्गेषुपञ्चविंशानां पातालेषुचतावताम् ॥ १५ ॥ चतुर्दशानांभूलोकेवासोवःपालनंतथा ॥ अयमेवश्मशानस्थो भविताश्वाचवाहनम् ॥ नैवेद्यंभवतांभक्तंमाषतण्डुलमिश्रकम् ॥ १६ ॥ अनभ्यर्च्यचयोयुष्मान्किञ्चित्कार्यंविधास्यति ॥ तस्यतन्निष्फलंभावि मुक्तंप्रेतैश्चराक्षसैः ॥ १७ ॥ इत्युक्त्वाभगवान्रुद्रस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ क्षेत्रपालाःस्थिताश्चैव यथास्थानंनिरूपिताः ॥ १८ ॥ इतिवःक्षेत्रपालानां सृष्टिःप्रोक्तासमासतः ॥ आराधनंप्रव

बालकोंको रचूं यह कहकर उन शिवजी ने मुखसे चौंसठि क्षेत्रपालोंको रचा ॥ १४ ॥ और बालकरूपी शिवजी ने उन बालरूपी क्षेत्रपालों से कहा कि पचीस का स्वर्ग में वासहोवै व उतनेही याने पचीसका पातालों में निवासहोवै ॥ १५ ॥ और चौदह का पृथ्वीलोकमें निवासहोवै व पालन कीजिये और श्मशान में टिकाहुआ यह कुत्ता वाहन होगा और उडद व अक्षतों से मिश्रित भात आप लोगोंका नैवेद्य होगा ॥ १६ ॥ और जो तुमलोगों को न पूजकर कुछ कार्यकरैगा उसका वह कार्य निष्फल होगा और प्रेतों व राक्षसों से मुक्तहोगा ॥ १७ ॥ ऐसा कहकर भगवान् शिवजी वहींपर अन्तर्द्धान होगये और स्थान के अनुकूल निरूपित क्षेत्रपाल स्थितहुये ॥ १८ ॥

तुमलोगों से क्षेत्रपालों की यह सृष्टि संक्षेप से कहीगई और आराधन कहताहूं कि जिससे वे प्रसन्न होते हैं ॥ १९ ॥ जो ऊर्ध्वकेश व विरूप लोचनोंवाले हैं तथा जो नित्यही घोररूपी हैं व रक्तनेत्र और जो पिङ्गाक्ष हैं उन क्षेत्रपालों को मैं प्रणाम करताहूं ॥ २० ॥ अज्वर, अपकुम्भ व जो इडाचार हैं और इन्द्रमूर्ति, कोलनामक, उपपाद, रिपुंसन ॥ २१ ॥ सिद्धप, एककलिक, नीलपात, एकदंष्ट्र ॥ २२ ॥ व इरापति, अघहारी, विघ्नहारी, अन्तक, ऊर्ध्वपाद, कम्बल, खण्डन व खर ॥२३॥ गोमुख, जंघाल, गणनाथ, रावण, जटाल व अजटाल इन स्वर्गके क्षेत्रपालों को मैं नमस्कार करताहूं ॥ २४ ॥ ककार, हठकारी, टङ्कपाणि व खणि, टंककर्ण, जम्बर, स्फुलिङ्गस्थ,

क्ष्यामियेनप्रीताभवन्तिते ॥ १९ ॥ ऊर्ध्वकेशाविरूपाक्षानित्यंयेघोररूपिणः ॥ रक्तनेत्राश्चपिङ्गाक्षाःक्षेत्रपालान्नमामि तान् ॥ २० ॥ अज्वरोह्यपकुम्भश्च इडाचारस्तथैवयः ॥ इन्द्रमूर्तिश्चकोलाख्य उपपादोरिपुंसनः ॥ २१ ॥ सिद्धप श्चैककलिकोनीलपादेकदंष्ट्रकः ॥ २२ ॥ इरापतिश्चाघहारीविघ्नहारीतथान्तकः ॥ ऊर्ध्वपादःकम्बलश्चखण्डनःखरएव च ॥ २३ ॥ गोमुखश्चैवजङ्घालो गणनाथश्चरावणः ॥ जटालोप्यजटालश्च नौमिस्वःक्षेत्रपालकान् ॥ २४ ॥ ककारोहठ कारीच टङ्कपाणिःखणिस्तथा ॥ टङ्ककर्णोजम्बरश्च स्फुलिङ्गस्थस्तडिद्रुचिः ॥ २५ ॥ दन्तुरोघननादश्च नन्दकश्चत थापरः ॥ पेकात्कारश्चपाञ्चालोवर्वरोभीमरूपवान् ॥ २६ ॥ भग्नपक्षःकालमेघो दुर्दमोभास्वरस्तथा ॥ रौरवश्चापिलम्बो ष्ठोवर्जिणःसुजटालकः ॥ २७ ॥ सुगन्धोहुहुकश्चैवनौमिपातालरक्षकान् ॥ सर्वलिङ्गेषुहुङ्कारः श्मशानेषुभृगावहः ॥२८॥ महालक्षोवनेघोरेज्वालाक्षोवसतौस्थितः ॥ एकवृक्षश्चवृक्षेषुकरालवदनोनिशि ॥ २९ ॥ घण्टारवोगुहावासीपद्मख ञ्जोजलेस्थितः ॥ चत्वरेषुदुरारोहः पर्वतेकुरुतस्तथा ॥ ३० ॥ निर्झरेषुप्रवाहाख्यो माणिभद्रोनिधिष्वपि ॥ रसक्षेत्रेरसा

तडिद्रुचि ॥ २५ ॥ दन्तुर, घननाद व अन्य नन्दक, पेकात्कार, पांचाल, वर्बर व भीमरूपवान् ॥ २६ ॥ भग्नपक्ष, कालमेघ, दुर्दम, भास्वर, रौरव, लम्बोष्ठ, वर्जिण, सुजटालक ॥ २७ ॥ व सुगन्ध और हुहुक इन पातालरक्षकों को मैं प्रणाम करताहूं सब लिंगों में हुंकार व श्मशानों में भृगावह ॥ २८ ॥ और भयङ्कर वनमे महालक्ष व ज्वालाक्ष ग्राममें स्थित हैं और एकवृक्ष वृक्षों मे, करालवदन रात्रि मे ॥ २९ ॥ और घण्टारव गुहा मे बसनेवाले व पद्मखंज जल मे स्थित हैं और चत्वरों मे

दुरारोह व पर्वतमें कुरुत ॥ ३० ॥ झरनों में प्रवाह नामक व मणिभद्र निधियों में स्थित हैं रसक्षेत्रमें रसाध्यक्ष व यज्ञवाटमें कोटन टिके हैं ॥ ३१ ॥ जो ये चौदह
भूमि में व्याप्त होकर स्थित हैं उनको मैं नमस्कार करताहूं और इस प्रकार चौंसठि संख्यक क्षेत्रपालों की शरणमें मैं प्राप्तहोता हूं ॥ ३२ ॥ वे प्रसन्नहोवैं प्रसन्नहोवैं
और मेरे पूजने से तृप्तहोवैं इस प्रकार जो पवित्र पुरुष समस्त कार्यों में क्षेत्रपालों को पूजता है ॥ ३३ ॥ उसके ऊपर क्षेत्रपाल प्रसन्न होते हैं व उसके मनोरथको देते
हैं इस क्षेत्रपालकल्पको जानतेहुये विजयने ॥ ३४ ॥ पहले कहीहुई विधिसे पूजकर सिद्धिके लिये उनकी स्तुति किया तदनन्तर वटयक्षिणी देवीको प्रणामकर पूजन

ध्यक्षो यज्ञवाटेचकोटनः ॥ ३१ ॥ चतुर्दशभुवंव्याप्यस्थिताश्चैवन्नमामितान् ॥ एवंचतुःषष्टिमिताञ्छरणंयामिते
त्रपान् ॥ ३२ ॥ प्रसीदन्तुप्रसीदन्तु तृप्यन्तुममपूजया ॥ सर्वकार्येषुयश्चैवं क्षेत्रपानर्चयेच्छुचिः ॥ ३३ ॥ क्षेत्रपास्तस्य
तुष्यन्ति यच्छन्तिचतदीप्सितम् ॥ इदंक्षेत्रपकल्पञ्च विजानन्विजयस्तथा ॥ ३४ ॥ पूर्वोक्तविधिनाभ्यर्च्य सिद्धये
तुष्टुवेचतान् ॥ प्रणम्यचततोदेवीमानर्चवटयक्षिणीम् ॥ ३५ ॥ पुरायदानारदेन कलापग्रामतोद्विजाः ॥ समानीता
श्चैतैःसाकं सुनन्दानामब्राह्मणी ॥ ३६ ॥ विधवाभ्यागताचात्र तपस्तप्तुंमहीतटे ॥ साकृच्छ्राणिपराकादीन्यतिकृ
च्छ्राणिकुर्वती ॥ ३७ ॥ ज्येष्ठेभाद्रपदेचक्रे सावित्र्याद्वित्रिरात्रिकम् ॥ मासोपवासञ्चतथाकार्त्तिकेकुलनन्दिनी ॥ ३८ ॥
सप्तलिङ्गानिसम्पूज्य देवीपूजांसदाव्यधात् ॥ दर्शेस्नानंतथाचक्रे महीसागरसङ्गमे ॥ ३९ ॥ इत्यादिबहुभिस्तैस्तैर्नि
त्यंनियमपालनैः ॥ धूतपापाययौलोकमुमयाकृतस्वागता ॥ ४० ॥ अंशेनचवटेतस्मिन्सम्भूतावटयक्षिणी ॥ तस्या

किया ॥ ३५ ॥ पुरातन समय जब नारदजी कलापग्रामसे ब्राह्मणों को लाये हैं तब उनके साथ सुनन्दा नामक ब्राह्मणी ॥ ३६ ॥ जोकि विधवाथी वह महीनदी के
किनारे पै तपस्या करने के लिये यहां आई है कृच्छ्रचान्द्रायणादिक व पराकादिक अतिकृच्छ्रोंको करतीहुई उसने ॥ ३७ ॥ ज्येष्ठ व भाद्रपद के महीने में सावित्रीके
द्वित्रिरात्रिक व्रतको किया व कुलको आनन्द देनेवाली उसने कार्तिक महीने में मासोपवास किया ॥ ३८ ॥ और सात लिंगोंको पूजकर सदैव देवीका पूजन किया
व अमावस में महीसागरसङ्गम से स्नान किया ॥ ३९ ॥ इत्यादिक उन उन बहुत नियमों के पालनसे पापरहित होकर वह शिवलोकको चलीगई कि जिनका स्वागत

पार्वतीजीने किया ॥ ४० ॥ और अंशसे उस वटमें वटयक्षिणी उत्पन्नहुई और उससे प्रसन्नहोकर सिद्ध लिंगमें टिकेहुये सदाशिवजीने यह वरदान दिया ॥ ४१ ॥ कि पहले तुमको न पूजकर जो मनुष्य मुझको पूजैगा उसका वह सब निष्फल होजायगा और मेरा यह कहा हुआ पालन करनेही योग्य है ॥ ४२ ॥ इस लिये नित्यही वटमे स्थित वटयक्षिणी को पुष्पों, धूपों व नैवेद्यो से और इस मन्त्रके द्वारा भक्तिपूर्वक पूजन करै ॥ ४३ ॥ कि हे सुनन्दे ! तुम वन्दना करने योग्यहो मेरे इस पूजन को ग्रहण कीजिये और हे वटयक्षिणि ! मेरे ऊपर तुम सब समयों में प्रसन्नहोवो ॥ ४४ ॥ इस प्रकार उन वटयक्षिणीको भलीभाति पूजकर व प्रणामकर व क्षमापन

स्तुष्टोवरंप्राद।त्सिद्धलिङ्गस्थितोहरः ॥ ४१ ॥ अनभ्यर्च्यपुरात्वाञ्च मत्पूजांयःकरिष्यति ॥ तस्यतन्निष्फलंसर्वमित्यु क्तंपाल्यमेवमे ॥ ४२ ॥ तस्मात्प्रपूजयेन्नित्यं वटस्थांवटयक्षिणीम् ॥ पुष्पैर्धूपैश्चनैवेद्यैर्मन्त्रेणानेनभक्तितः ॥ ४३ ॥ सुनन्देवन्दनीयासि पूजामेतांगृहाणमे ॥ प्रसीदसर्वकालेषु ममत्वंवटयक्षिणि ॥ ४४ ॥ एवंसम्पूज्यतान्नत्वा क्षमा प्यवटयक्षिणीम् ॥ सर्वान्कामानवाप्नोति नरोनारीचसर्वदा ॥ ४५ ॥ विजयश्चापिमाहात्म्यमेवंजानन्महामतिः ॥ आ नर्चवटवृक्षस्थां शक्तितोवटयक्षिणीम् ॥ ४६ ॥ ततस्सिद्धाम्बिकान्नत्वा जप्तवानपराजिताम्॥महाविद्यांवैष्णवीन्तुसाध नेनसमन्विताम् ॥ ४७ ॥ यस्याःस्मरणमात्रेण सर्वदुःखक्षयोभवेत् ॥ तांविद्यांकीर्त्तयिष्यामि शृणुत्वंविप्रपुङ्गव ॥ ४८॥ ॐनमोभगवतेवासुदेवाय नमोनन्तायसहस्रशीर्षाय क्षीरोदार्णवशायिने शेषभोगपर्यङ्काय गरुडवाहनायपीतवाससे वासुदेवसङ्कर्षणप्रद्युम्नानिरुद्धायहयशिरसे च नृसिंहवामनत्रिविक्रमरामवरप्रदनमोस्तुतेऽसुरदैत्यदानवयक्षराक्षसभूत

कराकर मनुष्य व स्त्री सदैव समस्त कामनाओं को प्राप्तहोती है ॥ ४५ ॥ ऐसे माहात्म्यको जानतेहुये महाबुद्धिमान् विजय ने बरगदके वृक्षमें टिकीहुई वटयक्षिणी को शक्तिसे पूजन किया ॥ ४६ ॥ तदनन्तर सिद्धाम्बिका को प्रणामकर साधनसे संयुत वैष्णवी महाविद्या अपराजिताको जपा ॥ ४७ ॥ कि जिसके स्मरणमात्रसे समस्त दुःखोंका नाशहोता है हे द्विजोत्तम ! उस विद्याको मैं कहताहूं तुम सुनो ॥ ४८ ॥ भगवान्, वासुदेव के लिये नमस्कार है व हजार शिरोंवाले, क्षीरसागर में शयन करनेहारे अनन्तके लिये प्रणाम है तथा शेषशरीरशय्यावाले, गरुड़ वाहनवाले, पीतवसनवाले, वासुदेव, सकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध व हयशीर्ष के लिये प्रणाम है

हे नृसिंह, त्रिविक्रम, वामन, वरदायक, रामजी! तुम्हारे लिये नमस्कारहै असुर, दैत्य, दानव, यक्ष, राक्षस, भूत, प्रेत, पिशाच, कूष्माण्ड, सिद्धि योगिनी व स्कन्द पूर्वक ग्रहों तथा नक्षत्रग्रहों व अन्य भूतादिकों को मारिये मारिये पचाइये पचाइये मथिये मथिये विध्वंसन कीजिये विध्वंसन कीजिये भगाइये भगाइये और शङ्ख, चक्र, वज्र व गदा और मुशल से भस्मकीजिये कीजिये हे सहस्रबाहो, सहस्रचरणायुध ! आपकी जयहो जयहो हे अपराजित, अप्रतिहत, सहस्रलोचन ! ज्वलिये ज्वलिये चलिये चलिये हे विश्वरूप,बहुरूप,मधुसूदन,महावराह,महापुरुष,वैकुण्ठ, नारायण, पद्मनाभ, गोविन्द, दामोदर,हृषीकेश, समस्तअसुरविनाशक, समस्तभूत-

प्रेतपिशाचकूष्माण्डसिद्धियोगिनीस्कन्दपुरोगमान् ग्रहान्नक्षत्रग्रहांश्चान्यांश्च हनहन पचपच मथमथ विध्वंसय विध्वंसय विद्रावयविद्रावय शङ्खेनचक्रेणवज्रेणगदयामुशलेनभस्मीकुरुकुरु सहस्रबाहो सहस्रचरणायुध जयजय अपराजित अप्रतिहत सहस्रनेत्र ज्वल ज्वल प्रज्वल प्रज्वल विश्वरूप बहुरूप मधुसूदन महावराह महापुरुषवैकुण्ठ ॥ नारायण पद्मनाभ गोविन्द दामोदर हृषीकेश सर्वासुरोत्सादन सर्वभूतवशङ्कर सर्वदुःखप्रभेदन सर्वापत्प्रभञ्जन सर्वनागप्रमर्द्दन सर्वदेवमहेश्वर सर्वबन्धविमोक्षण सर्वाहितप्रमर्दन सर्वज्वरप्रणाशन सर्वग्रहनिवारण सर्वपापप्रशमन जनार्द्दन जनानन्दकरनमोस्तुतेस्वाहा ॥ ४९ ॥ इमामपराजितां वैष्णवींमहाविद्यांजपतिपठति शृणोति स्मरति धारयति कीर्त्तयतिच न तस्यवाय्वग्निवज्रोपलाशनिवर्षभयन्नसमुद्रभयन्न ग्रहभयमथचौरभयन्नभवेत् ॥ ५० ॥ क्वचिद्रात्र्यन्धकारे स्त्रीराजकुलविषोपविषगरदवशीकरणविद्वेषणोच्चाटनवधबन्धभयंवानभवेत् ॥ ५१ ॥ एतैर्मन्त्रप

वशाकारक, सकलदुःखप्रभेदन, समस्तविपत्तिविनाशन, सकलनागप्रमर्दन, सर्वदेव, महेश्वर, सर्वबन्धविमोक्षण, समस्तशत्रुप्रमर्दन, सर्वज्वरनाशक, सर्वग्रहनिवारक, सर्वपापप्रशमन, जनार्दन, भक्तानन्दकर ! तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥ ४९ ॥ इस अपराजिता, वैष्णवी महाविद्याको जो जपताहै या पढ़ताहै या सुनताहै अथवा स्मरण करता है अथवा धारण करता है या कीर्तन करता है उसके पवन, अग्नि, वज्र, पत्थर, वज्रपात व वर्षाका भय नहीं होताहै और समुद्रका भय नहीं होताहै और न ग्रहोंका भय होता है व चोरोंका भय नहीं होताहै ॥ ५० ॥ और कहीं रात्रिके अन्धकार में स्त्री, राजकुल, विष, उपविष तथा हालाहलदायक व वशीकरण,

विद्वेषण, उच्चाटन और वधबन्धन का भय नहीं होता है ॥ ५१ ॥ भलीभांति सिद्धिके लिये वृद्धों से पूजित इन मन्त्रपदों के कहने से उपर्युक्त भय नहीं होते हैं ॥ ५२ ॥ जैसे कि वह कहा जाताहै हे अभये, अनघे, अजिते, असिते, अमृते, अपराजिते ! हे पढ़नेवालेको सिद्धि देनेवाली, स्मरण करनेवाले को सिद्धि देनेवाली ! तुम एकहीहो हे अंशरहिते, ध्रुवे, अरुन्धति ! तुम सावित्री व गायत्री तथा जातदेवीहो हे समानस्तोके, सरस्वति ! ॥ ५३ ॥ हे धारिणि, सौदामिनि, मदनोन्मादिनि, अदिते, विनते, गौरि, गन्धारि, मातंगि, कृष्णे, यशोदे, सत्यवादिनि, ब्रह्मवादिनि, कालि, कपालिनि, इन्द्रे, सद्योपयाचनकारिणि ! जलस्थल में प्राप्त या आकाश में

दैरुदाहृतैर्वृद्धैस्संसिद्ध्यैपूजितैः ॥ ५२ ॥ तद्यथा ॥ नमोनमस्तेस्तुअभये अनघेअजिते असिते अमृते अपराजितेपठतःसिद्धेस्मरतःसिद्धेएकानंशेतथाध्रुवे ॥ अरुन्धतिसावित्रीगायत्रीजातदेवीसमानस्तोकेसरस्वति ॥ ५३ ॥ धारिणि सौदामिनिमदनोन्मादिनि अदितेविनतेगौरिगन्धारिमातङ्गि कृष्णेयशोदेसत्यवादिनि ब्रह्मवादिनि कालिकपालिनीन्द्रे सद्योपयाचनकारिणिजलस्थलगतमन्तरिक्षगतंवारक्षरक्षसर्वभूतभयोपद्रवेभ्योरक्षरक्षस्वाहा॥५४॥यस्याःप्रणश्यतेपुष्पंगर्भोवाप्रपतेद्यदि ॥ म्रियन्तेबालकायस्याः काकबन्ध्याचयाभवेत् ॥ ५५ ॥ साधारयेदिमांविद्यामेभिर्दोषैर्नलिप्यते ॥ रणेराजकुलेद्यूते नित्यंतस्यजयोभवेत् ॥ ५६ ॥ अस्त्रन्धारयतेह्येषां समरेकाण्डधारिणाम् ॥ गुल्मशूलाक्षिरोगाणां नित्यन्नाशकरीतथा ॥ ५७ ॥ शिरोरोगज्वराणांच नाशिनीसर्वदेहिनाम् ॥ ५८ ॥ तद्यथा ॥ हनहनकालीसर

प्राप्त मेरी रक्षाकीजिये रक्षाकीजिये और समस्त प्राणियों के भय व उपद्रवों से रक्षाकीजिये रक्षाकीजिये ॥ ५४ ॥ जिसका पुष्प नाशहोजाता है या यदि गर्भही गिरजाता है व जिसके बालक मरजाते हैं और जो काकबन्ध्या होती है ॥ ५५ ॥ वह इस विद्याको धारण करै तो इन दोषों से नहीं लिप्त होती है और जो पुरुष इस विद्याको धारण करता है उसकी युद्ध, राजकुल और जुवामें नित्यही जीत होतीहै ॥ ५६ ॥ क्योंकि युद्धमें बाण धारनेवाले इन पुरुषों के लिये महाविद्या अस्त्रको धारण करती है और गुल्म, शूल व नेत्ररोगों को नित्यही नाश करनेवाली है ॥ ५७ ॥ और समस्त प्राणियों के शिरवाले रोगों व ज्वरोंको नाशनेवाली है ॥ ५८ ॥ जैसे कि

इसी मन्त्रको कहते हैं ॥ हन हन काली सर सर गौरीधम धम विद्ये आलेनले माले गन्धे वेधे रावबरे विद्ये नाशय पापं हन दुःस्वप्नविनायकनाशिनि निर्जरी
रान्ध्ये दुन्दुभिनादे मानसवेगिनि शाङ्गिनि चक्रिणि वज्रिणि शूलिनि अपमृत्युविनाशिनि विनाशिनि विश्वेश्वरि द्राविडि के शवदयिते पाशुपति महिते दुर्दमनि दम-
नि शबरि किरातिनि ॐ हुं हुं हुं क्रं क्रं क्र त्वर त्वर उत्सादय उत्सादय ब्रह्माणि माहेश्वरि वाराहि विनायकि पूर्वादिशि ऐन्द्रि आग्नेयि चामुण्डे वारुणि वायव्ये
रक्षोगते प्रचण्डविद्योते इन्द्रोपेन्द्रभगिनि विजये शांतिस्वस्तिपुष्टिविवर्द्धनि कामांकुशे कामदुघे सर्वकामवरप्रदे सर्वभूतेषुवासिनि प्रतिविद्या कुरु कुरु आकर्षिणि

**सर गौरीधमधम विद्येआलेनलेमाले गन्धेवेधेरावववेरविद्ये नाशय पापंहनदुस्स्वप्नविनायकनाशिनिनिर्जरीसन्दये
दुन्दुभिनादेमानसवेगिनि शाङ्गिनिचक्रिणिवज्रिणिशूलिनिअपमृत्युविनाशिनिविनाशिनि विश्वेश्वरिद्राविडिके
शवदयितेपाशुपति॥ महितेदुर्दमनिदमनिशबरिकिरातिनिॐहुंहुंहुंक्रंक्रंक्रंत्वरत्वर उत्सादयउत्सादय ब्रह्माणिमाहेश्व
रिवाराहिविनायकिपूर्वादिशि ॥ ऐन्द्रिआग्नेयिचामुण्डे वारुणिवायव्ये रक्षोगतेप्रचण्डविद्योते इन्द्रोपेन्द्रभगिनि ॥
विजयेशान्तिस्वस्तिपुष्टिविवर्द्धनि कामाङ्कुशे कामदुघेसर्वकामवरप्रदे ॥ सर्वभूतेषुवासिनिप्रतिविद्याकुरुकुरु आकर्ष
णिवैशिनि ज्वालामालिनि तापनिशोषणि ॥ नीलपताकेमहागौरि महाश्रिये महामयूरि आदित्यरश्मिजाह्नवियम
घण्टेकिणिकिणि॥ चिन्तामणिसुरभिसुरोत्पन्ने कामदुघेयथामनीषितंकार्यं तन्ममसिद्ध्यतुस्वाहा ॥ ५९ ॥ ॐभूःस्वा
हा ॐभुवःस्वाहा ॐस्वःस्वाहा ॐभूर्भुवःस्वःस्वाहा॥ ६० ॥ यत्रैवगतंपापं यत्रैवप्रतिगच्छतुस्वाहा ॥ ॐबलेमहाबलेसि
द्धसाधनिस्वाहा ॥ ६१ ॥ इतितांसाधयामास वैष्णवीमपराजिताम् ॥ विजयःसंयतोभूत्वा मनोबुद्धिसमाधिभिः॥ ६२॥**

वैशिनि ज्वालामालिनि तापनि शोषणि नीलपताके महागौरि महाश्रिये महामयूरि आदित्यरश्मिजाह्नवि यमघण्टे किणि किणि चिन्तामणि सुरभिसुरोत्पन्ने कामदुघे
यथा मनीषितं कार्य तन्मम सिद्ध्यतु स्वाहा ॥ ५९ ॥ ॐ भूः स्वाहा ॐ भुवः स्वाहा ॐ स्वः स्वाहा ॐ भूर्भुवः स्वः स्वाहा ॥ ६० ॥ यत्रैवगतंपापयत्रैवप्रतिगच्छतुस्वाहा
ॐ बले महाबले सिद्धे साधनि स्वाहा ॥ ६१ ॥ इस प्रकार विजय ने संयम में प्राप्तहोकर मन, बुद्धि व समाधि से अपराजिता वैष्णवी का साधन किया ॥ ६२ ॥

हे द्विजोत्तमो ! जो मनुष्य साधन विनाभी इसको पढ़ताहै उसके भी समस्त विघ्न नाश होजाते हैं ॥ ६३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायामष्टाधिकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५८ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

दो० । भीम पौत्र मार्यो यथा बहुत राक्षसन वीर । उंसठि के अध्याय में कहत सोइ मतिधीर ॥ सूतजी बोले कि वहां स्वस्थहोकर सुबल व अतिबल संज्ञक मन्त्रोंके द्वारा अग्निमें तिल व अक्षतों से संयुत शर्करा को शीघ्रही हवन करते हुये इस विजयके ॥ १ ॥ एक पहर बीतने पर कोई स्त्री आई जोकि रक्तसे भीगेहुये एक

पएनांपठतेनित्यं साधनेनविनापिवा ॥ तस्यापिसर्वविघ्नाश्चनश्यन्तिद्विजपुङ्गवाः ॥ ६३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेऽष्टाधिकपञ्चाशत्तमोध्यायः ॥ ५८ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सूतउवाच ॥ आश्वस्यतत्रवह्नौच शर्करांक्षसरैर्युताम् ॥ जुह्वतोमन्त्रमुख्यैःसुबलातिबलसंज्ञकैः ॥ १ ॥ यामेतुप्रथमेयाति काचिन्नारीसमाययौ ॥ शोणिताक्तैकवसना तथाचोर्ध्वशिरोरुहा ॥ २ ॥ दारुणाक्षीशुक्लदन्ती भयस्यापिभयङ्करी ॥ सारुरोदमहारावं प्राप्यतंहोमभूमिकम् ॥ ३ ॥ तांदृष्ट्वाचक्षुभेसद्यो विजयोभीतिमागतः ॥ बर्बरीकश्चनिर्भीतस्तस्याःसम्मुखमाययौ ॥ ४ ॥ ततःकण्ठेतमाश्लिष्य तस्यामतिमतांवरः ॥ रुरोदद्विगुणंवीरो मेघवत्प्रलयेबहु ॥ ५ ॥ तन्दृष्ट्वाविस्मितासाच यावन्मुञ्चतितन्तदा ॥ तावन्निष्पीडितेकण्ठे मोक्तुंतस्मिन्नचाशकत् ॥ ६ ॥ पीड्यमानेचबलिना

वसनवाली व ऊपर उठेहुये बालोंवाली थी ॥ २ ॥ और भयङ्कर नेत्रोंवाली तथा श्वेत दांतोंवाली व भयको भी भय करनेवाली थी वह उस होमभूमि में प्राप्त होकर बडे शब्दसे रोनेलगी उसको देखकर भयमें प्राप्त होते हुये विजय शीघ्रही क्षोभित होगये और निडर बर्बरीक उसके सामने आये ॥ ३ । ४ ॥ तदनन्तर उसके गलेमे लिपटकर बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ बर्बरीकवीर उसके दूने बहुतही रोने लगे जैसे कि प्रलय में मेघ गरजते हैं ॥ ५ ॥ उनको देखकर विस्मित होती हुई वह उस समय जबतक उनको छोडै तबतक उस कण्ठके बहुत पीड़ित होने पर छोडनेके लिये न समर्थ हुई ॥ ६ ॥ बलवान् बर्बरीक ने जब बार बार उसका

कण्ठ पीड़ित किया तब वज्रसे मारेहुये पर्वतकी नाईं उसने अनेक भांतिके शब्दों को किया ॥ ७ ॥ तदनन्तर शब्दोंकोकर उसके उपरान्त रक्षाकीजिये छोड़िये ऐसा
कहतीहुई दयालु बर्बरीक से छोड़ीगई और चरणों में गिरीहुई वह यह बोली ॥८॥ कि तुम्हारे कार्यको करनेवाली मैं दासी तुम्हारी शरण में प्राप्तहूं महाजिह्वा ऐसी
मुझ कामरूपिणी राक्षसी को जानिये ॥ ९ ॥ जोकि काशी के श्मशानमें स्थानवाली और देवता व दानवों के गर्वको नाशनेवाली हूं हे वीर ! यदि मुझे दुर्लभ प्राण
दक्षिणाको दीजिये ॥ १० ॥ तो समस्त प्राणियोंको भयदेनेवाली मैं तपस्या करूंगी इस प्रयोजनमें मैं अपने देवताकी सौगन्द करतीहूं ॥ ११ ॥ यदि यह झूंठहोवै तो

कण्ठेतस्यामुहुर्मुहुः ॥ मुमोचविविधान्रावान् वज्राहतइवाचलः ॥ ७ ॥ त्वणंरावांस्ततोमुक्त्वा त्राहिमुञ्चेतिवादिनी ॥
ततःकृपालुनामुक्ता पादयोःपतिताब्रवीत् ॥ ८ ॥ शरणन्तेप्रपन्नास्मि दासीकर्मकरीतव ॥ महाजिह्वेतिमांविद्धि राक्षसीं
कामरूपिणीम् ॥ ९ ॥ काशीश्मशाननिलया देवदानवदर्पहा ॥ ददासियदिमेवीर दुर्लभांप्राणदक्षिणाम् ॥ १० ॥ तत
स्तपश्चरिष्यामि सर्वभूतभयप्रदा ॥ अस्मिन्नर्थेस्वदेवस्य शपथंप्रकरोम्यहम् ॥ ११ ॥ यद्येतद्वितथंकुर्यां भस्मीभूतान्त
तःक्षणात् ॥ एवंब्रुवाणांतांवीरो निगृह्यशपथैर्दृढम् ॥ १२ ॥ मुमोचसापिसंहृष्टा कृच्छ्रान्मुक्ताययौवनम् ॥ सोपिवीरः
खड्गधारीतत्रैवावस्थितोभवत् ॥ १३ ॥ ततोमध्यमरात्रौचगर्जितंश्रूयतेमहत् ॥ अन्धकारश्चसञ्जज्ञे तमोन्धनरकप्र
भम् ॥ १४ ॥ ददृशेचततःशैलः शतशृङ्गोतिविस्तरः ॥ नानाशिलाःप्रमुमुचे नानावृक्षाश्चसोच्छ्रयाः ॥ १५ ॥ नाना
निर्भरनिर्ह्रादं ववृषेशोणितंबहु ॥ तन्तथातुसमालोक्य निर्भीतोभैमिनन्दनः ॥ १६ ॥ पर्वताद्द्विगुणोभूत्वा पर्वतंसहसा

क्षणभरमें भस्मकर दीजियेगा इस प्रकार कहती हुई उसको वीर बर्बरीकने सौगन्दों से दृढतापूर्वक दण्डकर ॥ १२ ॥ छोड दिया और दुःखसे छूटीहुई वहभी वनको
चलीगई और तलवार को धारण कियेहुये वे बर्बरीक भी वहां स्थितहुये ॥ १३ ॥ तदनन्तर आधीरातमें बड़ाभारी गर्जित शब्द सुनपडा और अन्धतम नरकके समान
अन्धकार उत्पन्नहुआ ॥ १४ ॥ तदनन्तर सैकड़ों शिखरोंवाला बडा चौडा पर्वत देखपडा व उसने अनेक शिला तथा अनेक भांति के ऊंचे वृक्षोंको छोडा ॥ १५ ॥
व अनेक प्रवाहों से शब्दवाले बहुत रक्तकी वृष्टि किया उसको वैसा देखकर निडर भैमिनन्दन बर्बरीक ने ॥ १६ ॥ अचानकही कूदकर पर्वत से दुगुने होकर जब

पर्वतको लेकर और पर्वतही के अंशवाले पहाड़से मारा ॥ १७ ॥ तब वह टूटगया और पृथ्वीमण्डल में गिरपड़ा तदनन्तर सौ मस्तक व सौ पेटोंवाला तथा चार कोसकी देहवाला ॥ १८ ॥ रेफलेन्द्र मुखों से बडी ज्वालाओं को छोडताहुआ दौडा दौडतेहुये उसको देखकर बडाबली बर्बरीक ॥ १९ ॥ वैसेही रूपको धरकर गर्जते हुये उस दानवके सामने दौडा तदनन्तर आधीरातमे शीघ्रही उन दोनोंने विचित्रतापूर्वक भलीभांति ॥ २० ॥ बाणसमूहोंसे युद्ध किया जैसे कि वर्षा में दो मेघ युद्ध करैं जब दोनों के धनुष कटगये तब तलवारोंसे युद्ध करनेलगे व तलवारोंके टूट जानेपर दोनोंने घूसों से युद्ध किया ॥ २१ ॥ और दो पर्वतों की नाई शोभित उन

प्लुतः ॥ यदाभिजघ्नेसंहृत्य पर्वतांशेनभूभृता ॥ १७ ॥ तदाविशीर्णःसोभूच्च पतितोभूमिमण्डले ॥ ततोयोजनदेहीस शतशीर्षःशतोदरः ॥ १८ ॥ वक्त्रैर्मुञ्चन्महाज्वाला रेफलेन्द्रोऽभ्यधावत ॥ तन्धावमानन्दृष्ट्वैववर्वरीकोमहाबलः ॥ १९ ॥ विधायतादृशंरूपं नदंस्तञ्चाभ्यधावत ॥ ततोमध्यमरात्रौतौ लघुचित्रञ्चसुष्ठुच ॥ २० ॥ युयुधातेबाणजालैर्यथाप्रावृषितोयदौ ॥ छिन्नचापौचखड्गाभ्यां छिन्नखड्गौचमुष्टिभिः ॥ २१ ॥ पर्वताविवसम्प्रख्यौ चिरंयुयुधतुःस्थिरम् ॥ ततःकुक्षौसमुत्पाद्य भ्रामयित्वामुहूर्त्तकम् ॥ २२ ॥ भूमौप्रघर्षयामास प्रमृतञ्चमुमोचह ॥ चिक्षेपचाग्निकोणेतं महीसागररोधसि ॥ २३ ॥ तत्ररेफलपप्रख्यो ग्रामोद्यापिप्रवर्तते ॥ एवंसरेफलोनाम वृत्रतुल्यपराक्रमः ॥ २४ ॥ नाथोवन्त्याःश्मशानस्य विघ्नकृन्निहतोबलः ॥ तन्निहत्यपुनर्वीरो वर्वरीकःस्थितोभवत् ॥ २५ ॥ ततस्तृतीययामेतु प्रतीच्यांदिशिचाययौ ॥ पर्वताभामहानादा पादैःकम्पयतीवकुम् ॥ २६ ॥ दुहद्रुहाख्याकृत्यादी मेघभ्रष्टातडिद्यथा ॥ तामायान्तीन्त

बहुत देरतक स्थिरता से युद्ध किया उसके उपरान्त कोखिमें मारकर व थोडी देरतक घुमाकर ॥ २२ ॥ भूमि में पटक दिया और मरेहुये उसको छोड़दिया ग्निकोण में महीसागर के किनारे पै उसको फेंकदिया ॥ २३ ॥ वहा पर रेफलप नामक ग्राम आज भी वर्तमानहै ऐसा वह रेफल नामक वृत्रासुरके समान था ॥ २४ ॥ अवन्ती (उज्जयिनी) पुरीके श्मशानका स्वामी वह बलवान् विघ्नकारी मारागया उसको मारकर फिर वर्बरीक वीर स्थितहुये ॥ २५ ॥ तदनन्तर हर मे चरणोंसे भूमिको कँपातीहुई सी बड़े शब्दवाली व पर्वत के समान शोभावाली द्रुहद्रुहा नामक राक्षसी पश्चिम दिशामें आई जैसे कि मेघसे गिरीहुई

बिजलीहोवै आतीहुई उसको वैसीदेखकर सूर्य व अग्निके समान प्रभावान् ॥ २६ । २७ ॥ वर्वरीकने हँसते हुये संवेगपूर्वक जाकर रोंकलिया तदनन्तर वेगसे आती हुई उसकी चोंचमें घूंमों से मारकर ॥ २८ ॥ वहीं स्थापित किया और बहुतही पीडित वह वहींपर स्थितहुई तदनन्तर क्रोधित होतीहुई द्रुहद्रुहा राक्षसी ने बड़ा भारी शब्द कर कूदकर ॥ २९ ॥ शीघ्रही वर्वरीकको पृथ्वीमें उच्चतासे फेंकदिया तदनन्तर बहुतही गर्जकर चरण चोटको चलाया ॥ ३० ॥ और वीर वर्वरीक ने चरणों को पकड़कर भुजाओं के खेलही से फेंक दिया उसके उपरान्त उठकर फिर दौड़तीहुई उस राक्षसीको पकड़कर ॥ ३१ ॥ वर्वरीक ने घूंसासे इसको गिराकर तब तक गले

शादृष्ट्वा सूर्यवैश्वानरप्रभः ॥ २७ ॥ उपसृत्यजवाद्भैमी स्रोवप्रहसन्निव ॥ वेगात्ततःप्रद्रवन्तीं तुण्डेचाहत्यमुष्टिभिः ॥ २८ ॥ स्थापयामासतत्रैव तस्थौसातीवपीडिता ॥ ततःक्रुद्धामहारावं कृत्वाप्लुत्यद्रुहद्रुहा ॥ २९ ॥ जगत्यामाशुचिक्षेप वर्वरीकंतथोच्चकैः ॥ ततोनर्दित्वाचातीव पादघातममुञ्चत ॥ ३० ॥ पादौचवीरस्संगृह्य चिक्षेपभुजलीलया ॥ ततः पुनस्समुत्थाय धावन्तींतांनिगृह्यच ॥ ३१ ॥ मुष्टिनापातयित्वैतां तावत्कण्ठमपीडयत ॥ कण्ठंचास्यास्समापीड्य प्राणानत्याजयद्द्रुतम् ॥ ३२ ॥ एवंशीकोत्तरस्थानश्मशानैकपदोद्भवा ॥ शाकिनीपुरुषादीसा वर्वरीकेणसूदिता ॥ ३३ ॥ हत्वाताञ्चा।चिक्षेप प्रतीच्यामेवलीलया ॥ द्रुहद्रुहाह्वयश्चाद्यापि तत्रग्रामश्चवर्त्तते ॥ ३४ ॥ ततस्तत्रैवमन्त्रस्थो वर्वरीकोभिरक्षणे ॥ ततश्चतुर्थेयामेच प्राप्तःक्षपणकोद्भुतः ॥ ३५ ॥ मुण्डीनग्नोमयूराणां पिच्छधारीमहाव्रतः ॥ प्रोवाचचेदंवचनं हाहाकष्टमतीवभोः ॥ ३६ ॥ अहिंसापरमोधर्मस्तदग्निर्ज्वाल्यतेकुतः ॥ हूयमानेयतोवह्नौ सूक्ष्मजीवव

को पीडित किया व इसके गलेको भलीभांति पीडितकर वर्वरीक ने शीघ्रही प्राणोंको त्याग कराया ॥ ३२ ॥ इस प्रकार शीकोत्तर स्थान के श्मशान में उपजी हुई वह मनुष्यों को खानेवाली राक्षसी वर्वरीकसे मारीगई ॥ ३३ ॥ उसको मारकर वर्वरीक ने लीलासे पश्चिमही दिशामें फेंकदिया वहां द्रुहद्रुहा नामक ग्राम आजभी वर्तमान है ॥ ३४ ॥ तदनन्तर वहींपर सब ओरसे रक्षामें वर्वरीक स्थितहुये तदनन्तर चौथे पहर में मुण्डीनग्न नामक अद्भुत क्षपणक प्राप्तहुआ जोकि मयूरों के पङ्खोंको धारे और महानियमवान्था वह यह वचन बोला कि हे वर्वरीक ! हाय हाय बड़े कष्टकी बात है ॥ ३५ । ३६ ॥ अहिंसा परम धर्म है तो अग्नि क्यों जलाई जाती है क्योंकि

हवन कीजाती हुई अग्निमें छोटे जीवोंका वध बहुत होता है ॥ ३७ ॥ उसका यह वचन सुनकर हँसतेहुये वर्वरीक बोले कि अग्निमें हवन करनेपर सब देवताओं की
तृप्तिहोती है ॥ ३८ ॥ हे दुर्बुद्धे, पापिन्! तुम झूंठ कहतेहो इससे शिक्षाके योग्यहो ऐसा कहकर अचानकही आकर इसके समीप में स्थितहोकर ॥ ३९ ॥ घूंसों से
मारकर दांतों को गिरादिया और रक्तकी पातियोंसे संयुत मुखमध्यवाले तथा पृथ्वी में गिरेहुये उसको छोड़ दिया ॥ ४० ॥ और दैत्यके शरीर को धारनेवाला वह
भयङ्कर राक्षस क्षणभर में चैतन्यता को पाकर वर्वरीक के भयसे दौड़ा और गुफाके बिलमें पैठगया ॥ ४१ ॥ और घुड़कतेहुये क्रोधित वर्वरीक वेगसे उसके पीछेचले

घोमहान् ॥ ३७ ॥ श्रुत्वेदंवचनंतस्य वर्वरीकोब्रवीत्स्मयन् ॥ तर्पणंसर्वदेवानां हूयमानेचपावके ॥ ३८ ॥ अनृतंभाषसे
पाप शिक्षायोग्योसिदुर्मते ॥ इत्युक्त्वासहसोपेत्य समीपेवस्थितोस्यवै ॥ ३९ ॥ दन्तान्मुष्टिप्रहारैश्च समाहत्याभ्य
पातयत् ॥ रुधिरावलिवक्त्रान्तं मुमोचपतितंभुवि ॥ ४० ॥ सक्षणाच्चेतनांप्राप्य घोरोदैत्यवपुर्धरः ॥ भयाद्भैमेःप्रदुद्राव
गुहाविवरमाविशत् ॥ ४१ ॥ क्रुद्धोभैमिश्चतंवेगादनुवव्राजभर्त्सयन् ॥ वायुवेगेनदैत्योपि पातालतलमाविशत् ॥ ४२ ॥
बहुप्रभेतिनगरी षष्टियोजनमायता ॥ तस्यांविवेशसहसा तञ्चानुवर्वरीककः ॥ ४३ ॥ वर्वरीकंततोदृष्ट्वा नादोभूच्चप
लाशिनाम् ॥ धावध्वंहन्यतामेष छिद्यतांभिद्यतामिति ॥ ४४ ॥ तच्छ्रुत्वादैत्यवीराणां कोटयोनवभीषणाः ॥ नाना
युधधरावीरं वर्वरीकमुपाद्रवन् ॥ ४५ ॥ दृष्ट्वातान्कोटिशोदैत्यान् क्रोधीभीमात्मजात्मभूः ॥ निमील्यसहसानेत्रे ते
षांमध्यमधावत॥ ४६ ॥ पादघातैस्ततःकांश्चिद्भुजाघातैस्तथापरान् ॥ हृदयस्याभिघातैश्च क्षणान्निन्येयमक्षयम् ॥४७॥

और दैत्यभी पवन के समान वेगसे पातालतलमें पैठगया ॥ ४२ ॥ बहुप्रभा नामक साठि योजन की चौड़ी जो पुरीथी उसमें वह अचानकही पैठगया और
उसके पीछे वर्वरीक पैठगये ॥ ४३ ॥ उसके उपरान्त वर्वरीकको देखकर राक्षसों का यह शब्द हुआ कि दौडिये मारिये इसको काटिये व भेदन कीजिये ॥ ४४ ॥ उस
वचनको सुनकर नवकरोड़ भयङ्कर दैत्य अनेक प्रकार के अस्त्रोंको धारकर वर्वरीकके सामने दौड़े ॥ ४५ ॥ उन करोड़ों दैत्योंको देखकर घटोत्कचका पुत्र वह वर्वरीक
क्रोधित होकर अचानकही आखोंको मूँदकर उनके मध्यमें दौड़ा ॥ ४६ ॥ तदनन्तर उन्होंने कितने दैत्योंको चरणप्रहारों से व कितनों को भुजाघातो से और कितनों

को वक्षस्थल के प्रहारों से क्षणभर में यमस्थान में पठादिया ॥ ४७ ॥ जैसे कि क्रोधित होताहुआ कटी अर्थात् चटाई बनानेवाला नरकुलके वनको भूमि के
बराबर करदेवै वैसेही वर्बरीकने उस समेत नवकरोड राक्षसोंको मारा ॥४८॥ तदनन्तर उस समय वासुकी इत्यादिक नाग आये और उन्हों ने विविध वचनों से उत्तम
चित्तवाले वर्बरीककी स्तुति किया व कहा॥४९॥ कि हे घटोत्कचके पुत्र ! तुमने नागोंका बड़ा कार्य किया जोकि सेवकों समेत इस पलाशी नामक दैत्यको मारा ॥५०॥
हे वीर ! सेवकों समेत इस दुष्टात्मासे अनेक प्रकार के उपायो करके पीड़ितहोकर हमलोग पातालसे भी नीचे कियेगये ॥ ५१ ॥ इस लिये तुम नागों से मनोभिल-

**यथानलवनंक्रुद्धःकुर्याद्भूमिसमंकटी ॥ नवकोटिस्तथाजघ्ने सहतेनपलाशिनाम् ॥ ४८ ॥ ततोनागाःसमाजग्मु
र्वासुकीप्रमुखास्तदा ॥ तुष्टुवुर्विविधैर्वाक्यैरूचुःसुहृदयश्चते ॥ ४९ ॥ नागानांपरमंकृत्यं कृतन्तेभैमिनन्दन ॥ पलाशी
नामदैत्योयं नीतःसानुचरःक्षयम् ॥५०॥ अनेनाहिवयंवीरसानुगेनदुरात्मना ॥ पीडितानिविधोपायैः पातालादप्यधः
कृताः ॥ ५१ ॥ वरंवृणीष्वतंतस्मान्नागेभ्योभिमतंवरम् ॥ वरदाःसर्वएवस्म वयंतुभ्यंसुतोषिताः ॥ ५२ ॥ वर्बरीकउवा
च ॥ यदिदेयोवरोमह्यं तदेनंप्रवृणोम्यहम् ॥ सर्वविघ्नविनिर्मुक्तो विजयःसिद्धिमाप्नुयात् ॥ ५३ ॥ ततस्तथेतितंप्रोचुः
प्रहृष्टावायुभोजनाः ॥ सचतेभ्यःपुरींदत्त्वा निवृत्तोनागपूजितः ॥ ५४ ॥ विवरस्यतुरम्येण समागच्छन्महाप्रभम् ॥
सर्वरत्नमयंलिङ्गं स्थितंकल्पतरोरधः ॥ ५५ ॥ अर्च्यमानंसुबह्वीभिर्नागकन्याभिरैक्षत ॥ ततोसौविस्मयाविष्टो नाग
कन्याह्यपृच्छत ॥ ५६ ॥ केनेदंस्थापितंलिङ्गं सूर्यवैश्वानरप्रभम् ॥ लिङ्गादपिचतुर्दिक्षु मार्गानेतान्प्रकीर्तय ॥ ५७ ॥ इ**

षित उत्तम वरदान को मांगो क्योंकि बहुतही प्रसन्न कियेहुये हम सब लोग तुम्हारे लिये वरदायक हैं ॥ ५२ ॥ वर्बरीक बोले कि यदि मुझको वरदेने योग्य है तो मैं
इस वरको मांगताहूँ कि समस्त विघ्नोंसे छूटकर विजय सिद्धिको प्राप्तहोवै ॥ ५३ ॥ तदनन्तर पवनभोजी उन नागोंने उससे यह कहा कि वैसाही होगा और वे वर्बरीक
उन नागों के लिये पुरीको देकर व नागों से पूजित होकर लौटपड़े ॥ ५४ ॥ और बिलके मनोहर मार्ग से आते हुये उन्होंने समस्तरत्नमय व महाप्रकाशमान
तथा बहुतरी नागकन्याओं से पूजेजातेहुये कल्पवृक्षके नीचे स्थित लिङ्गको देखा तदनन्तर विस्मय में प्राप्तहोकर इन वर्बरीकने नागकन्याओं से पूछा ॥५५।५६॥ कि

सूर्य व अग्निके समान प्रकाशमान इस लिंगको किसने थापाहै और लिंगसे चारों दिशाओंमें जो ये मार्गगये हैं उनको कहिये ॥ ५७ ॥ ऐसे वीरके वचनको सुनकर बडीभारी कटि व स्तनोंवाली उन कन्याओं ने लज्जा समेत व मुसक्यानपूर्वक कटाक्षको छोड़कर यह कहा ॥ ५८ ॥ कि समस्त सर्पोंके राजा महात्मा शेषजी ने तपस्या करके यहा इस महालिंगको थापाहै ॥ ५९ ॥ जोकि दर्शन, स्पर्शन व पूजन करनेसे समस्त सिद्धियोंको देताहै और लिंगसे पूर्वओर यह मार्ग भूमिमें श्रीपर्वत को चलागयाहै ॥ ६० ॥ जोकि वहापर नागोंकी प्राप्तिके लिये एलापत्र नागसे बनाया गयाहै और लिंगसे दक्षिण ओर यह मार्ग भूमि में सूपरिक को जाता है ॥ ६१ ॥

तिवीरवचःश्रुत्वाबृहत्कटिपयोधराः ॥ सव्रीडंसस्मितापाङ्गंनिर्मुच्येदन्तमब्रुवन् ॥ ५८ ॥ सर्वपन्नगराजेन शेषेणसुमहात्मना ॥ तपस्तप्त्वामहालिङ्गमिदमत्रप्रतिष्ठितम् ॥ ५९ ॥ दर्शनात्स्पर्शनाद्ध्यानादर्चनात्सर्वसिद्धिदम् ॥ लिङ्गात्पूर्वेणमार्गोयं यातःश्रीपर्वतंभुवि ॥ ६० ॥ एलापत्रेणविहितोनागानांतत्रप्राप्तये ॥ दक्षिणेनचमार्गोयं यातिसूपरिकंभुवि ॥ ६१ ॥ कर्कोटकेननागेन कृतोयंतत्रप्राप्तये ॥ पश्चिमेनचमार्गोयं प्रभासंयातिसुप्रभम् ॥ ६२ ॥ ऐरावतेनविहितो नागानांगमनायच ॥ उत्तरेणचमार्गोयं यातिक्षेत्रंकुरोर्भुवि ॥ ६३ ॥ विहितस्तक्षकेणासौ गन्तुंतत्रमहात्मना ॥ ऊर्द्ध्वोयश्चापिमार्गोयं येनयातुंभवान्स्थितः ॥ ६४ ॥ गुप्तक्षेत्रेबुद्धिलिङ्गं गुहशक्त्याचयःकृतः ॥ इतीदंवर्णितंधीर विज्ञप्तिःश्रूयतांमम ॥ ६५ ॥ कोभवानधुनैवत्वं दैत्यपृष्ठगतोभवत् ॥ अधुनैकःसमायातः समायातोत्रनोवद ॥ ६६ ॥ वयञ्चसर्वा

वहांपर प्राप्तिके लिये इसको कर्कोटक नागने कियाहै और लिंगसे पश्चिम ओर यह मार्ग बहुत प्रकाशमान प्रभासक्षेत्रको जाता है ॥ ६२ ॥ जोकि नागों के जाने के लिये ऐरावत से रचागयाहै और उत्तर ओर यह मार्ग पृथ्वीमें कुरुक्षेत्रको जाताहै ॥ ६३ ॥ इसको तक्षक नागने वहां जानेके लिये बनायाहै और ऊपरवाला जो यह मार्ग है कि जिसमें जाने के लिये आप स्थितहो ॥ ६४ ॥ यह गुप्तक्षेत्र में बुद्धि लिंगको जाता है जोकि स्वामिकार्त्तिकेयजी की शक्तिसे रचागया है हे वीर! यह तो वर्णन कियागया अब मेरी विनयको सुनिये ॥ ६५ ॥ कि आप कौनहो इसी समय तुम दैत्य के पीछेगये थे और अब अकेले आयेहो यहां आयेहुये आप हम

लोगों से यह कहिये ॥६६॥ और हम सब आपकी दासी हैं व तुमको पति मांगती हैं क्योंकि हम सबों के साथ देवभूमियों में अनेक प्रकारकी क्रीड़ा कीजिये ॥ ६७ ॥ वर्वरीक बोले कि कुरुवंश में मैं पैदाहुआ हूँ और पाण्डु के पुत्र भीमका पौत्रहूं व वर्वरीक ऐसा प्रसिद्धहूं और उस दैत्यके मारने के लिये आयाथा ॥ ६८ ॥ और वह पापी दैत्य मारागया मैं फिर पृथ्वीको जाऊंगा हे कन्याओ! आप सबों से किसी प्रकार मेरा कार्य नहीं है ॥ ६९ ॥ क्योंकि मैं सदैव ब्रह्मचारी के व्रतमें स्थितहूं यह कहकर उस पूजित लिंगको दण्डाकी नाईं प्रणामकर ॥ ७० ॥ उन सबों से देखेहुये वे वर्वरीकवीर ऊपर चले तदनन्तर बाहर आकर वे वहां शोभित हुये ॥ ७१ ॥ और

एतेदास्यस्त्वांपतिंप्रवृणीमहे ॥ अस्माभिःसहितःक्रीडा विविधाःसुरभूमिषु ॥ ६७ ॥ वर्वरीकउवाच ॥ अहंकुरुकुलोत्पन्नः पाण्डुपुत्रस्यपौत्रकः ॥ वर्वरीकइतिख्यातस्तंदैत्यंहन्तुमागतः ॥ ६८ ॥ सचदैत्योहतोपापः पुनर्यास्येमहीतले ॥ भवतीभिश्चमेनास्ति कृत्यंभोभोःकथञ्चन ॥ ६९ ॥ ब्रह्मचारिव्रतंयस्मादहंसततमास्थितः ॥ इत्युक्त्वाभ्यर्चितंलिङ्गं प्रणिपत्यच दण्डवत् ॥ ७० ॥ ऊर्द्ध्वमाचक्रमेवीरः सर्वाभिस्ताभिरीक्षितः ॥ ततोवहिःसमागत्य उच्चकाशेसतत्रवै ॥ ७१ ॥ प्रहर्षेणैवपूर्वायाः प्रकाशयद्दशोदिशः ॥ तस्मिन्कालेचविजयःकर्मसर्वंसमाप्तवान् ॥ ७२ ॥ कान्तिसूर्यसमामाशु ऊर्द्ध्वमाचक्षमेक्षणात् ॥ ततोवियच्च्युतंदेवैः पुष्पवर्षमभून्महत् ॥ ७३ ॥ जगुर्गन्धर्वमुख्याश्च ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥ विजयोवर्वरीकश्च ततोवचनमब्रवीत् ॥ ७४ ॥ तवप्रसादाद्वीरेन्द्र सिद्धिःप्राप्तामयातुला ॥ चिरञ्जीवचिरन्नन्द चिरन्त्यजचिरञ्जय ॥ ७५ ॥ अतएवहिसाधूनां सङ्गमिच्छन्तिसाधवः ॥ औषधंसर्वदोषाणां भवत्सत्सङ्गमायतः ॥७६॥

बडे हर्षसे पूर्वदिशाको प्रकाशित कर देखपड़े और उस समय विजय ने समस्त कर्मको समाप्त किया ॥ ७२ ॥ और सूर्यके समान शोभाको ऊपर क्षणभर मे देखा तदनन्तर देवताओ से आकाश से छोडीहुई फूलोकी बहुत वृष्टिहुई ॥७३॥ मुख्य गन्धर्व गानेलगे व अप्सराओं के गण नाचने लगे तदनन्तर विजय ने वर्वरीक से वचन कहा ॥ ७४ ॥ कि हे वीरेन्द्र! तुम्हारी प्रसन्नता से मैंने अतुल सिद्धिको पाया चिरंजीवरहो और बहुत दिनतक प्रसन्नरहो व बहुत समयतक दानोंको देवो व बहुत दिनोंतक जीतको प्राप्तहोवो ॥ ७५ ॥ इसी से साधुलोग सज्जनो का साथ चाहते हैं जिस लिये कि सज्जनकी सङ्गति समस्त दोषोंकी औषध है ॥ ७६ ॥

और तुम सिन्दूर के समान प्रकाशमान व पराक्रमवान् तथा पवित्र व उत्तम होम में स्थित भस्मको हाथमें भरकर ग्रहण कीजिये ॥७७॥ शत्रुवों के स्थानवाले समर में छोड़तेहुये पुरुषकी यह भस्म अक्षय होजातीहै व मृत्युके शरीरको ध्वस्तकरैगी॥७८॥इसप्रकार शत्रुवोंके सकाश से तुम्हारी सुखपूर्वक जीतहोगी व बर्बरीक बोले कि इच्छा रहित होताहुआ जो पुरुष उपकार करता है वह साधु ऐसा कहा जाताहै ॥ ७९ ॥ और जो इच्छापूर्वक उपकार करता है उसकी साधुतामें कौन गुणहै इस लिये अन्यके लिये भस्म दीजिये मेरा इससे कोई भी प्रयोजन नहींहै ॥८०॥ मैं प्रसन्नतामे सुन्दरी दृष्टिके विना तुमसे इसको नहीं मांगताहूं देवता बोले कि कौरवों और

त्वञ्चहोमस्थितंभस्म सिन्दूरसदृशप्रभम् ॥ सत्त्ववच्चशुचिवरं पूर्य्यपाणौगृहाणच ॥ ७७ ॥ अक्षय्यमेतत्संग्रामे प्रथमन्तुप्रमुञ्चतः ॥ शत्रूणांस्थानकेमृत्योर्देहध्वस्तंकरिष्यति ॥ ७८ ॥ एवंसुखेनविजयः शत्रूणान्तेभविष्यति ॥ बर्बरीकउवाच॥उपकुर्यान्निराकाङ्क्षो यस्ससाधुरितीर्यते ॥७९ ॥ साकाङ्क्षमुपकुर्याद्यः साधुत्वेतस्यकोगुणः ॥ तद्देहि भस्मचान्यस्मै मदीयोर्थोनकोप्यतः ॥ ८० ॥ प्रसादसम्मुखींदृष्टिं विनानैतद्वृणोमिते ॥ देवाऊचुः ॥ कुरूणांपाण्डवानाञ्च भविष्यतिमहान्रणः ॥ ८१ ॥ ततोभूमिस्थितंभस्मप्राप्स्यन्तियदिकौरवाः ॥ महाननर्थोभविता पाण्डवानांततःस्फुटम् ॥ ८२ ॥ तस्माद्गृहाणभस्मत्वं सोपिचक्रेतथावचः ॥ देवीभिस्सहितादेवास्सम्मान्यविजयञ्चते ॥ ८३ ॥ सिद्धैश्वर्यंददुस्तस्मै सिद्धिसेनेतिनामच ॥ एवंसविजयोविप्राः सिद्धिंलेभेसुदुर्लभाम् ॥ ८४ ॥ बर्बरीकश्चकृत्वैतद्देवीभक्तिरतोवसत॥८५॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेविजयस्यसिद्धिलाभवर्णनन्नामैकोनषष्टितमोध्यायः ॥५९॥

पाण्डवोंका बड़ाभारी युद्धहोगा ॥ ८१ ॥ इसलिये यदि कौरव भूमि में स्थित भस्म को पावैंगे तो प्रकटही पाण्डवोंका बडा अनर्थ होगा ॥ ८२ ॥ इस लिये तुम भस्म को ग्रहणकरो उसने भी वैसेही वचन किया और देवियों समेत उन देवताओं ने विजय का सम्मानकर ॥ ८३ ॥ उनके लिये सिद्धैश्वर्य को दिया और सिद्धिसेन ऐसा नाम किया हे ब्राह्मणो ! इस प्रकार उस विजय ने अत्यन्त दुर्लभ सिद्धिको पाया है॥८४॥और बर्बरीक यह करके देवीजीकी भक्तिमें परायण होकर बसता भया ॥८५॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांविजयस्यसिद्धिलाभवर्णनन्नामैकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥ ५९ ॥ ❀ ॥

दो० । वर्बरीक अरु भीमसन भयो युद्ध विकराल। सोइ साठि अध्यायमें वर्णित चरित रसाल ॥ सूत जी बोले कि इसप्रकार देवी के आराधन में परायण व सप्त लिंगों के पूजन में तत्पर भीमपुत्र (घटोत्कच) के पुत्र वर्बरीकवीर जब वहां स्थित हुये ॥ १ ॥ तब कुछ समय के बाद जुवा में हारे हुये पाण्डव लोग उत्तम तीर्थ में स्नान करने के लिये क्रमसे वहां आये ॥ २ ॥ और क्षेत्रसे ईशान विदिशामें स्थित चण्डिका देवीको देखकर मार्ग से दुःखी द्रौपदी समेत पाचों पाण्डव बैठगये ॥३॥ और उस समय वहीपर चण्डिकागण बैठाथा आयेहुये उनवीरों को उस वर्बरीकने देखा ॥ ४ ॥ परन्तु इसने पाण्डवों को नहीं जाना और न पाण्डवोंने इसको जाना।

सूतउवाच ॥ एवंतत्रस्थितेवीरेदेव्याराधनतत्परे ॥ सप्तलिङ्गार्चनरतेभीमनन्दननन्दने ॥ १ ॥ ततःकालेनकेनापि पाण्डवाद्यूतनिर्जिताः ॥ तत्राजग्मुस्सुक्रमतस्तीर्थेस्नानकृतेशुभे ॥ २ ॥ विलोक्यचण्डिकांदेवीं क्षेत्रादीशानतः स्थिताम् ॥ आसेदुर्मार्गखिन्नास्ते द्रौपदीपञ्चमास्तदा ॥ ३ ॥ तत्रैवचोपविष्टोभूत्तदानींचण्डिकागणः ॥ वर्बरीकःसता [illegible]मागतानपश्यत ॥ ४ ॥ परंनासौवेदपाण्डून् पाण्डवास्तंचनोविदुः ॥ आजन्मयस्मान्नैवाभूत्पाण्डूनाञ्चास्य [illegible]: ॥ ५ ॥ ततःप्रविश्यमानेस्मिन्देवीमासाद्यपाण्डवाः ॥ पिटकाद्यंतत्रमुक्त्वा तृषयैतज्जलंतदा ॥ ६ ॥ ततोभी [illegible] जलंपातुंनिविशह ॥ प्रविशन्तंचतंप्राह युधिष्ठिरइदंवचः ॥ ७ ॥ उद्धृत्यभीमतोयंत्वं पादौप्रक्षाल्यमाव [illegible] दोषो महांस्त्वांचप्रपत्स्यते ॥ ८ ॥ एतद्राज्ञोवचोभीमस्तृषाव्याकुललोचनः ॥ अश्रुत्वैवविवेशा सौ कुण्डमध्ये [illegible] ॥ ९ ॥ सचदृष्ट्वाजलंपातुं तत्रैवकृतनिश्चयः ॥ मुखंहस्तौचचरणौक्षालयामासशुद्धये॥१०॥

क्योंकि जन्म से लगाकर [illegible] और पाप [illegible] विनाश नही हुआथा ॥ ५ ॥ तदनन्तर इसके पैठतेहुये पाण्डव लोग देवी के समीप प्राप्तहोकर वहीं पेटरिया आदिक छोड़कर उस समय प्यास से जलको [illegible] ॥ ६ ॥ तदनन्तर भीमसेनजी जल पीने के लिये कुण्डके बीच मे पैठे और पैठते हुये उनसे युधिष्ठिरजी यह वचन बोले ॥ ७ ॥ कि हे भीमसेन ! तुम जलको [illegible] बाहर चरणों को धोकर तदनन्तर जलको पियो नही तो तुमको बडा दोष प्राप्तहोगा ॥ ८ ॥ प्याससे विकल लोचनों वाले भीमसेनजी राजा युधिष्ठिरके इस वचनको न सुनकर जल की इच्छासे कुण्डके मध्यमें पैठगये ॥ ९ ॥ और जलको देखकर उन्होंने वहीं जल पीनेके लिये

निश्चयकर पवित्रताके लिये मुख,हाथो व चरणोंको धोया ॥ १० ॥ तदनन्तर जलको पिया क्योंकि अपवित्र पुरुषसे जो जल पियाहुआ होवै है उसकी देहमें पैठकर प्रेत व पिशाच उस जलको पीते हैं ॥ ११ ॥ इसभांति जब भीमसेनजी उस कुण्ड में चरण धोनेलगे तब उत्तम हृदयवाले वर्बरीक ने ऊपरसे यह सत्य वचन कहा ॥ १२ ॥ कि हे दुर्बुद्धे ! पाप निश्चयवाले तुम यह क्या करतेहो कि देवीजीके कुण्ड में मुख्य हाथों व चरणोंको धोतेहो ॥ १३ ॥ क्योंकि सदैव मैं इस जल से देवीजी को स्नान कराताहूँ इसी जल में तुम मलको फेंकतेहो क्या पापसे नहीं डरतेहो और ॥ १४ ॥ जो जल मलसे संयुत होता है वह मनुष्योंसे भी छूने योग्य

ततःपीतंजलंपुंसाह्यपवित्रेणयद्भवेत् ॥ प्रेताःपिशाचास्तद्देहं संक्रम्यप्रपिबन्तितत् ॥ ११ ॥ एवंप्रक्षाल्यमानेच पादौ तत्रवृकोदरे ॥ उपरिष्टात्तदाप्राह सत्यंसुहृदयोवचः ॥ १२ ॥ दुर्मतेभोःकिमेतत्त्वं कुरुषेपापनिश्चयः ॥ देवीकुण्डेक्षाल यसिमुखंपादौकरौतथा ॥ १३ ॥ यतोदेवीसदानेन जलेनस्नाप्यतेमया ॥ त्वमत्रतोयेक्षिपसि मलंपापान्नबिभ्य सि ॥ १४ ॥ मलाक्तंयद्भवेत्तोयमस्पृश्यंतन्नरैरपि ॥ कुतोदेवैश्चतत्तोयं स्पृश्यतेतत्त्वतोवद ॥ १५ ॥ शीघ्रंत्वंनिस्सरा स्माचकुण्डाद्भूत्वाबहिःपिब ॥ यद्येवमतिमूढोसितीर्थेषुभ्रमसेकुतः ॥ १६ ॥ भीमउवाच ॥ किमेतद्भाषसेक्रूर परुषंरा क्षसाधम ॥ यतस्तोयानिजन्तूनामुपभोगार्थमेवहि ॥ १७ ॥ यत्तीर्थेषुस्नानकार्यमुक्तंमुनिवरैरपि ॥ अङ्गप्रक्षालनंस्ना नमुक्तमानिन्दसेकुतः ॥ १८ ॥ यदिनक्रियतेस्नानमङ्गप्रक्षालनंतथा ॥ तत्किमर्थंपूर्तधर्माः क्रियन्तेधर्मशालि भिः ॥ १९ ॥ सुहृदय उवाच ॥ स्नातव्यंतीर्थमुख्येषु सत्यमेतन्नसंशयः ॥ चरेतुकिन्तुसंविश्य स्थावरेषुबहिःस्थि

नहीं होताहै फिर देवताओं से वह जल कैसे स्पर्श किया जाता है इसको यथार्थ कहिये ॥ १५ ॥ तुम शीघ्रही इस कुण्डसे निकलो और बाहर होकर जलको पियो यदि तुम ऐसे अत्यन्त मूढ़हो तो तीर्थों में क्यों घूमतेहो ॥ १६ ॥ भीमसेनजी बोले कि हे राक्षसों में नीच, क्रूर ! इस कठोर वचनको क्यों कहतेहो क्योंकि जल प्राणियों के भोगनेही के लिये है ॥ १७ ॥ जिस लिये उत्तम मुनियों ने भी तीर्थों में स्नानकार्य को कहा है और अङ्गों का धोना स्नान कहा गया है तो किस लिये निन्दा करतेहो ॥ १८ ॥ यदि स्नान व अङ्गोंका प्रक्षालन नहीं किया जाताहै तो धर्मवानों से किस लिये पूर्तधर्म (कूप, तड़ागादिक) किये जाते हैं ॥ १९ ॥ सुहृदय वर्बरीक

बोले कि मुख्यतीर्थों में स्नान करना चाहिये यह सत्यहै इसमें सन्देह नहीं है परन्तु चर तीर्थ अर्थात् नदी आदिकों में पैठकर नहाना चाहिये और स्थावर याने तडाग व कुण्डादिकोंमें बाहर स्थित होकर स्नान करना चाहिये॥ २० ॥ और स्थावरों (तडागादिकों) में भी वहा पैठकर स्नानकिया जाता है जहा कि देवस्नान के लिये भक्त जलको नहीं लेताहै ॥ २१ ॥ और वहा वह तडाग सौ हाथसे ऊपर किया जाताहै और पैठने में भी यह क्रम है कि बाहर चरणों को प्रक्षालन करै ॥ २२ ॥ उसके उपरान्त स्नानकरना चाहिये नहीं तो दोषभागी होताहै क्या तुमने ब्रह्मासे कहेहुये श्लोकको नहीं सुनाहै क्योंकि ॥२३॥ मल,मूत्र, विष्ठा, कफ व थूक और कुल्लाको जो

तः ॥ २० ॥ स्थावरेष्वपिसंविश्य तत्रस्नानंविधीयते ॥ नयत्रदेवस्नानायभक्तः संगृह्यतेजलम् ॥ २१ ॥ तच्चहस्तश ताद्रूर्ध्वं सरस्तत्रविधीयते ॥ संवेशोपिक्रमश्चायं पादौप्रक्षालयेद्बहिः ॥ २२ ॥ ततःस्नानंप्रकर्तव्यमन्यथादोषभाग्भ वेत् ॥ किंनश्रुतंत्वयाप्रोक्तः श्लोकःपद्मभुवापरः ॥ २३ ॥ मलंमूत्रंपुरीषञ्चश्लेष्मनिष्ठीवितंतथा ॥ गण्डूषमप्सुमुञ्चन्ति येतेब्रह्महभिःसमाः ॥ २४ ॥ तस्मान्निःसरशीघ्रं त्वंयद्येवमजितेन्द्रियः ॥ तत्किमर्थंदुराचार तीर्थेष्वटसिबालिश॥२५॥ यस्यहस्तौचपादौच मनश्चैवसुसंयतम् ॥ निर्विकाराःक्रियाःसर्वाः सहितीर्थफलंलभेत् ॥ २६ ॥ भीमउवाच ॥ अध र्मोवापिधर्मोस्तु निर्गन्तुंनैवशक्नुयाम् ॥ क्षुधातृषामयानित्यं वारितुंनैवशक्यते ॥ २७ ॥ सुहृदयउवाच॥ जीवितार्थं हित्वंकस्मात्पापंप्रकुरुषेवद ॥ किंनश्रुतस्त्वयाश्लोकः यःशिवेनसमीरितः ॥ २८ ॥ मुहूर्तमपिजीवेतनरःशुक्लेनकर्मणा॥

जलमें छोडते हैं वे ब्रह्मघाती के समानहैं ॥ २४ ॥ इस लिये तुम शीघ्रही निकलो और यदि तुम ऐसे अजितेन्द्रियहो तो हे दुराचारी, मूर्ख ! तीर्थोंमें क्यों घूमतेहो ॥२५॥ जिसके हाथ, पाव और मन बँधाहै उसके सब कर्म विकाररहित होते है और वह तीर्थोंके फलको पाताहै ॥ २६ ॥ भीमसेनजी बोले कि अधर्महो या धर्महो मैं निकलने के लिये नहीं समर्थ हूँ क्योंकि नित्यही मुझसे भूँख व प्यास रोंकने के लिये नही समर्थ होती है ॥ २७ ॥ सुहृदय बर्बरीकजी बोले कि जीवनार्थ याने जीने के लिये क्यों पाप करतेहो यह कहिये क्या तुमने उस श्लोकको नही सुना है जोकि शिवजी से कहा गया है ॥ २८ ॥ कि मनुष्य पुण्यकर्म से मुहूर्त्तभर जिये परन्तु दोनों

लोकों में विरोधी (पाप) कर्म से कल्पभरतक न जियै ॥ २९ ॥ भीमसेनजी बोले कि तुम्हारे काकशब्द से मेरे कान बहरे होगये मैं जलको अवश्य पियूंगा तुम इच्छापूर्वक विलापकरो या सूखो ॥ ३० ॥ सुहृदय बर्बरीक बोले कि धर्मके रक्षा करनेवाले क्षत्रियों के बंशमें मैं पैदाहुआ हूँ इससे किसी प्रकार तुमको पाप न करने दूंगा ॥ ३१ ॥ हमारे कुण्डसे तुम शीघ्रही ऊपर निकलो नहीं तो ईंटके खण्डों से मैं शीघ्रही तुम्हारे शिरको चूर्णकरूंगा ॥ ३२ ॥ यह कहकर ईंटको लेकर बर्बरीकने शिरके ऊपर छोड़ दिया और भीमसेनभी उसको बचाकर कूदकर बाहर आगये ॥ ३३ ॥ तदनन्तर आपस में घुड़कते हुये भयङ्कर पराक्रमवाले व युद्धके पारगामी

नकल्पमपिजीवेत लोकद्वयविरोधिना ॥ २९ ॥ भीमउवाच ॥ काकारावेणतेमह्यं कर्णौबधिरताङ्गतौ ॥ पास्याम्येवज लञ्चात्र कामंविलपशुष्यच ॥ ३० ॥ सुहृदयउवाच ॥ क्षत्रियाणांकुलेजातस्त्वहंधर्माभिरक्षिणाम् ॥ तस्मात्तेपातकंक र्तुं नदास्यामिकथञ्चन ॥ ३१ ॥ ऊर्ध्वमेवहिशीघ्रन्त्वमस्मत्कुण्डाद्विनिःसर ॥ इष्टकाशकलैःशीघ्रं चूर्णयिष्येशिर स्तव ॥ ३२ ॥ इत्युक्त्वाचेष्टकांगृह्य मुमोचशिरसःप्रति ॥ भीमश्चवञ्चयित्वातामुत्प्लुत्यबहिराव्रजत् ॥ ३३ ॥ भर्त्सय न्तौततश्चोभावन्योन्यंभीमविक्रमौ ॥ युयुधातेप्रलम्बाभ्यांबाहुभ्यांयुद्धपारगौ ॥ ३४ ॥ व्यूढोरस्कौदीर्घभुजौनियुद्धकु शलावुभौ ॥ मुष्टिभिःपार्ष्णिघातैश्च जानुभिश्चाजुजघ्नतुः ॥ ३५ ॥ ततोमुहूर्तात्क्रव्यादात्पर्यहीयतपाण्डवः ॥ हीय मानस्ततोभीम उद्यतोभूत्पुनःपुनः ॥ ३६ ॥ अहीयततोप्यङ्गववृद्धेवर्बरीककः ॥ ततोभीमंसमुत्पाट्य वर्बरीकोबला दिव ॥ ३७ ॥ निक्षिपेपततःक्रुद्धस्तदद्भुतमिवाभवत् ॥ मूर्च्छितंचैनमादायविस्फुरन्तंपुनःपुनः ॥ ३८ ॥ सागरायप्रचलितः

दोनोंने लम्बीभुजाओं से युद्ध किया ॥ ३४ ॥ जोकि दोनों चौड़े वक्षस्थलवाले व लम्बीभुजाओंवाले तथा युद्धमे निपुण थे उन्होंने घूंसों व एड़ियों की चोटोंसे और घुटनुवों से मारा ॥ ३५ ॥ तदनन्तर मुहूर्त्तभर में बर्बरीक राक्षस से पाण्डव भीमसेनजी अशक्त होगये उसके उपरान्त अशक्तहोतेहुये भीमसेनजी बारंबार उद्यत हुये और तबभी अशक्त हुये हे द्विजोत्तम! बर्बरीक बढ़ताभया तदनन्तर बर्बरीकने बलसे भीमको पटककर ॥ ३६ । ३७ ॥ उसके उपरान्त क्रोधितहोकर पीसडाला वह आश्चर्यसा होगया और मूर्च्छित तथा बार फरकतेहुये इन भीमसेनको लेकर ॥ ३८ ॥ वह बर्बरीक उस समय प्रसन्नता से उस जलमें फेंकने के लिये समुद्रको

चला परन्तु पाण्डवों ने इसको नहीं देखा और न द्रौपदीदेवी ने देखा ॥ ३९ ॥ उस अद्भुत पराक्रमवाले वीरने जब कुरुवीरों में मुख्य भीमसेनजी को पकड़ लिया
तब आकाशतलमें यह देखकर देवियों समेत देवताओं को आकाशमें बडा आश्चर्य हुआ ॥ ४० ॥ तदनन्तर उस समय समुद्र के किनारेपै प्राप्तहुये वर्वरीकको देखकर
आकाश में खड़ेहुये भगवान् शिवजी बोले ॥ ४१ ॥ कि अहो राक्षसों में श्रेष्ठ महाबली, वर्वरीक ! इन भरतोत्तम भीमसेनजीको छोड़ दीजिये जोकि तुम्हारे पितामह
(बाबा) हैं ॥ ४२ ॥ भाइयों संयुक्त व द्रौपदी समेत ये भीमसेनजी तीर्थयात्रा में घूमतेहुये इस तीर्थ में नहाने के लिये आये ॥ ४३ ॥ इस लिये कौरवनन्दन भी-

**नैप्तुंतत्रमुदाम्भसि ॥ ददृशुःपाण्डवानैव देवीपाञ्चालिकायिनः ॥ ३९ ॥ तथागृहीतेकुरुवीरमुख्ये वीरेणतेनाद्भुतविक्र-
मेण ॥ आश्चर्यमासीद्दिविदेवतानां देवीभिराकाशतलेनिरीक्ष्य ॥ ४० ॥ सागरस्यततस्तीरे वर्वरीकङ्गतंतदा ॥ निरी-
क्ष्यभगवान्रुद्रो वियत्स्थःसमभाषत ॥ ४१ ॥ भोभोराक्षसशार्दूलवर्वरीकमहाबल ॥ मुञ्चैनंभरतश्रेष्ठंभीमन्तवपिताम-
हम् ॥ ४२ ॥ अयंहितीर्थयात्रायां विचरन्भ्रातृभिर्युतः ॥ कृष्णयाचाप्यदस्तीर्थं स्नातुमेवाभ्युपाययौ ॥ ४३ ॥ सम्मा-
नंसर्वथातस्मादर्हःकौरवनन्दनः ॥ अपापोवासपापोवा पूज्यएवपितामहः ॥ ४४ ॥ सूतउवाच ॥ इतिरुद्रवचःश्रुत्वा
सहसातंविमुच्यसः ॥ न्यपतत्पादयोर्हाधिक्कष्टंकष्टञ्चप्राहसः ॥ ४५ ॥ क्षम्यतांक्षम्यतांचेतिपुनःपुनरवोचत ॥ शिर
श्चाताडयन्स्वीयंरुरोदचमुहुर्मुहुः ॥ ४६ ॥ तंतथापरिशोचन्तंमुह्यमानंमुहुर्मुहुः ॥ भीमसेनःसमालिङ्ग्य आघ्रायचवचो-
ब्रवीत ॥ ४७ ॥ वयन्त्वांनैवजानीमस्त्वं चास्माञ्जन्मकालतः ॥ अत्रवासश्चतेपुत्र जानामिक्षणसंयुतः ॥ ४८ ॥ परं**

मसेनजी सब प्रकारसे सम्मानके योग्यहैं क्योंकि चाहै पापहीनहो या पापीहो परन्तु पितामह पूजनेही के योग्य होता है ॥ ४४ ॥ सूतजी बोले कि इस प्रकार शिवजी
का वचन सुनकर अचानकही उन भीमसेनजी को छोड़ कर वह वर्वरीक चरणों में गिरपडा व उसने यह कहा कि हाय धिक्कारहै व बड़े कष्टकी बातहै ॥ ४५ ॥ और
वह यह बारबार बोला कि क्षमाकीजिये क्षमाकीजिये व अपने शिरको पीटतेहुये उसने बार बार रोदन किया ॥ ४६ ॥ उस प्रकार शोचते व बारबार मोहित होते
हुये उसको भीमसेनजी ने लिपटाकर व सूंघकर यह वचन कहा ॥ ४७ ॥ कि हमलोग तुमको नहीं जानतेहैं व तुम हम सबोंको नहीं जानतेहो हे पुत्र ! जन्मसमय

से लगाकर तुम्हारा यहां निवास है यह कृष्णमगेत मैं जानता था ॥ ४८ ॥ परन्तु सब भूलगया क्योंकि अनेक भांति के दुःखों से मोहित दुःखित जनोंका सब स्मरण
लुप्त होजाता है यह प्रकटही है ॥ ४९ ॥ इस लिये हम सबोंको यह दुःख समय वीतने मे हुआहै हे पुत्र! तुम मत शोचकरो तुम्हारा कुछभी दोष नहीं है ॥५०॥ क्योंकि
कुपथमें स्थित होनेपर सब क्षत्रियको शरीरका दण्डदेवै साधुओंका यही वर्ताव होताहै कि कुमार्ग मे चलते हुये ॥ ५१ ॥ पिता, माता, मित्र, भाई व पुत्रादिकोंको साधु
(उत्तम) जन नहीं छोड़ताहै मुझको यह बडाभारी हर्ष हुआ और मैं व मेरे पूर्वज पितरलोग धन्यहैं ॥ ५२ ॥ कि जिसके ऐसा धर्मका जाननेवाला व धर्मपालक पुत्र

तुविस्मृतंसर्वं नानादुःखैःप्रमुह्यताम् ॥ दुःखितानांयतःसर्वास्मृतिर्लुप्ताभवेत्स्फुटम् ॥ ४९ ॥ तदस्माकमिदन्दुःखं सर्वं
कालाभियानतः ॥ माशोचसित्वंतनयनतेदोषोस्तिचाण्वपि ॥ ५० ॥ यतःसर्वक्षत्रियस्य दद्याद्विपथिसंस्थिते ॥ क्ष
त्माभिदण्डंसाधूनांप्रवृत्तिःकुपथेयतः ॥ ५१ ॥ पितृमातृसुहृद्भ्रातृपुत्रादीन्नविमुञ्चति ॥ अतीवममहर्षोयं धन्योहं
पूर्वजाश्चमे ॥ ५२ ॥ यस्यत्वीदृशकःपुत्रो धर्मज्ञोधर्मपालकः ॥ वरार्हस्त्वंप्रशंसार्होममान्येषांमतान्तथा ॥ ५३ ॥ त
स्माच्छोकंविहायेमं स्वस्थोभवितुमर्हसि ॥ बर्बरीकउवाच ॥ पापंमान्तातताततत्वं ब्रह्मघ्नादपिकुत्सितम् ॥ ५४ ॥ अप्र
शस्यंनार्हसीहद्रष्टुंस्प्रष्टुमपिप्रभो ॥ सर्वेषामेवपापानां निष्कृतिःप्रोच्यतेद्विजैः ॥ ५५ ॥ पित्रोरभक्तस्यपुनर्निष्कृ
तिर्नैवविद्यते ॥ तद्येनदेहेनमयाताततातोभिपीडितः ॥ ५६ ॥ तत्स्वमेवपरित्यक्ष्ये महीसागरसङ्गमे ॥ मैवंभवेयमन्ये
षु अपिजन्मसुपातकी ॥ ५७ ॥ नमामस्मादभिप्रायादर्हःकोपिनिवर्त्तितुम् ॥ यतोंशेनविलिप्येत प्रायश्चित्तान्निवार

पैदाहुआ तुम वरदानके योग्यहो व मेरे तथा अन्य सज्जनों के बीचमें प्रशंसा के योग्यहो ॥ ५३ ॥ इस लिये इस शोचको छोडकर तुम स्वस्थ होने के योग्यहो बर्बरीक
बोले कि हे पिताके पिता याने पितामहजी! पापी व ब्रह्मघाती से भी निन्दित व अप्रशंसनीय मुझको तुम यहां देखने व छूनेके योग्य नहींहो क्योंकि हे प्रभो! सबही
पापोंका प्रायश्चित्त ब्राह्मणों से कहा जाता है ॥ ५४ । ५५ ॥ परन्तु माता पिताके अभक्तका प्रायश्चित्त नहीं विद्यमान है इस लिये मुझसे जिस शरीर करके पितामह
पीडित किया गया ॥ ५६ ॥ उसी अपने शरीरको मैं महीसागर के सङ्गममें त्याग करूंगा क्योंकि अन्य जन्मों में ऐसा पातकी न होऊं ॥ ५७ ॥ मुझको इस प्रयोजन

से लौटाने के लिये कोईभी नहीं योग्य है क्योंकि प्रायश्चित्त से लौटानेवाला पापके भागसे लिप्त (संयुत) होता है ॥ ५८ ॥ ऐसा कहकर कूदकर बलवान् वर्वरीक
एकार्णव याने महीसागरसङ्गमको चलागया और समुद्रभी कांपनेलगा कि मैं इसको किसप्रकार मारूं ॥ ५९ ॥ तदनन्तर वहांपर शिवजी समेत सिद्धाम्बिकाकी चारों
दिशाओं की देवियां लिपटाकर भलीभांति बिठाकर बोलीं ॥ ६० ॥ कि हे वीरेन्द्र ! बिनजाने हुये पाप करनेपर पातक नहीं होता है यह वचन शास्त्रों में कहा है इस
लिये तुम अन्यथा करने के लिये नहीं योग्यहो ॥ ६१ ॥ हे वर्वरीक ! पीछे लगेहुये इन अपने पितामह (बाबा) को देखो कि हे पुत्र ! हे पुत्र ! ऐसा कहतेहैं व तुम्हारे

कः ॥ ५८ ॥ एवमुक्त्वासमुत्प्लुत्ययययावेकार्णवंबली ॥ समुद्रोपिचकम्पेच कथमेनंनिहन्म्यहम् ॥५९॥ ततःसिद्धाम्बिका
याश्च देव्यस्तत्रचतुर्दिशाम् ॥ समालिङ्ग्यचसंस्थाप्य रुद्रेणसहिताजगुः ॥ ६० ॥ अज्ञातविहितेपापेनास्ति वीरेन्द्रक
ल्मषम् ॥ शास्त्रप्रोक्तमिदंवाक्यं नान्यथाकर्तुमर्हसि ॥६१॥ अमुञ्चपृष्ठलग्नन्त्वं पश्यभोःस्वपितामहम् ॥ पुत्रपुत्रेति
वाशान्तमनुत्वांमरणोन्मुखम् ॥ ६२ ॥ अधुनाचेत्स्वकंदेहंवीरत्वंपरित्यक्ष्यसि ॥ ततस्त्यक्ष्यतिभीमोपि पातकंतन्मह
त्तव ॥ ६३ ॥ एवंज्ञात्वाधारयत्वं स्वशरीरंमहामते ॥ अथचेत्त्यक्तुकामस्त्वं तत्रापिवचनंशृणु ॥६४॥ स्वल्पेनैवचकालेन
कृष्णाद्देवकिनन्दनात ॥ देहपातस्तवप्रोक्तस्तं प्रतीक्षयादिच्छसि ॥ ६५ ॥ यतोविष्णुकराद्वत्स देहपातोविशिष्यते ॥
तस्मात्प्रतीक्षतंकालमस्माकंवचनंकुरु ॥ ६६ ॥ एवमुक्तोनिववृतेवर्वरीकोपिदुर्मनाः ॥ रुद्रश्चदेवीश्चामुण्डां सोपाल

पश्चात् मरने को उद्यत हैं ॥ ६२ ॥ हे वीर ! इस समय यदि तुम अपना शरीर त्यागोगे तो भीमसेनजीभी अपने शरीरको छोड़ैंगे वह तुमको बड़ा पातकहोगा॥६३॥
ऐसा जानकर हे महामते ! तुम अपने शरीरको धारणकरो अथवा यदि तुम शरीर छोड़नेकी इच्छा करतेहो तो उस विषयमें भी वचनको सुनिये ॥ ६४ ॥ कि थोड़ेही
समय में देवकीजी के पुत्र कृष्णजी से तुम्हारे शरीरका नाश कहागया है यदि तुम यह चाहतेहो तो उस समयको परखिये ॥ ६५ ॥ हे वत्स ! जिस लिये कि विष्णुजी
के हाथ से शरीरका नाशहोना उत्तम है इस कारण उस समयको परखिये व हमसबों का वचन कीजिये ॥ ६६ ॥ ऐसा कहने पर उदासीन मनवाले वर्वरीक भी निवृत्त

हुये और शिवजी उपालम्भ (समझाना) समेत चामुण्डा देवीसे वचन बोले ॥ ६७ ॥ कि हे देवि ! तुम्हीं जानतीहो कि भूमिकार्यके लिये पाण्डव लोग शार्ङ्गधनु-
र्धारी कृष्णजी से रक्षितहोतेहैं तुमने उसकी क्यों उपेक्षा किया ॥ ६८ ॥ तुमने भलीभाति आकर इन भीमसेनजीकी रक्षाकिया और मैभी अपने भक्त श्रीकृष्णजी की
रक्षा करूंगा ॥ ६९ ॥ जिस लिये चण्डिका के कार्य में इसने बडाभारी युद्ध किया इस कारण चण्डिल नाम से यह संसारभर के पूजनीय होगा ॥ ७० ॥ ऐसा कहकर
सब मनुष्यों के देखते हुये देविया और सब देवता चलेगये व भीमसेनने भी उस वर्बरीक को लेकर पाण्डवों से समस्त वृत्तान्त को कहा ॥ ७१ ॥ और विस्मय में

म्मंवचोब्रवीत् ॥ ६७ ॥ त्वमेवदेविजानासिरक्ष्यन्तेशार्ङ्गधन्विना ॥ पाण्डवाभूमिकृत्यार्थेतत्तेकस्मादुपेक्षितम् ॥ ६८ ॥
त्वयाचसमुपागम्य रक्षितोयंवृकोदरः ॥ अहंचरक्षयिष्यामि स्वभक्तंकृष्णमप्युत ॥ ६९ ॥ यस्माच्चचण्डिकाकृत्ये
कृतोनेनमहारणः ॥ तस्माच्चण्डिलनाम्नायं विश्वपूज्योभविष्यति ॥ ७० ॥ एवमुक्त्वागताःसर्वे देवादेव्यश्चपश्यता
म् ॥ भीमोपितंसमादाय पाण्डुभ्यःसर्वमूचिवान् ॥७१॥ विस्मिताःपाण्डवास्तंच पूजयित्वापुनःपुनः ॥ यथोक्तविधिना
चक्रुस्तीर्थस्नानमतन्द्रिताः ॥ ७२ ॥ भीमोपियत्ररुद्रेणमोचितस्तत्रसुप्रभम् ॥ लिङ्गंसंस्थापयामास भीमेश्वरमिति
स्मृतम् ॥ ७३ ॥ ज्येष्ठेमासेकृष्णपक्षे चतुर्दश्यामुपोषितः ॥ रात्रौसम्पूज्यभीमेशं जन्मपापात्प्रमुच्यते ॥ ७४ ॥ यथै
वलिङ्गानिसुपूजितानि सप्तात्रमुख्यानिमहाफलानि ॥ भीमेश्वरंलिङ्गमिदंतथैव समस्तपापापहंसुपूज्यम् ॥ ७५ ॥
इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेभीमेश्वरलिङ्गस्थापनंनामषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥ * ॥

प्राप्तहोते हुये निरालसी पाण्डव लोग उनको बारबार पूजकर यथोक्त विधानसे तीर्थस्नान करतेभये ॥ ७२ ॥ और जहांपर शिवजी से छुडायेगयेथे वहांपर भीमसेन
नेभी भीमेश्वर ऐसे कहेहुये प्रकाशमान लिंगको भलीभांति स्थापन किया ॥ ७३ ॥ ज्येष्ठ महीने में कृष्णपक्ष की चतुर्दशी तिथिमें उपास रहकर मनुष्य भीमेश लिंगको
रात्रिमे पूजकर जन्मभरके पापसे छूट जाताहै ॥ ७४ ॥ जैसे यहांपर पूजित होतेहुये सात मुख्य लिंग बडेभारी फलदायक होतेहैं वैसेही समस्त पातकोंको हरनेवाला यह
भीमेश्वर लिंग भलीभांतिपूजने योग्यहै ॥ ७५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांभीमेश्वरलिङ्गस्थापनन्नामषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥

दो० । देवी स्तुतिकरि भीम जिमि पायो लोचन तीन । इकसठिके अध्याय में सोई चरित नवीन ॥ सूतजी बोले कि बड़े तेजवाले युधिष्ठिरजीने भाइयों समेत इस तीर्थ में सात रात्रियोंतक बसकर जानेके लिये इच्छा किया ॥ १ ॥ प्रातःकाल निर्मल होनेपर नहाकर उन युधिष्ठिरजी ने देवी व लिङ्गों को पूजकर तथा क्षेत्रकी प्रदक्षिणाकर देवी के स्तोत्रका जप किया ॥ २ ॥ कृष्णसे कहाहुआ जो स्तोत्र कि सदैव यात्राके समयों में जपने योग्यहै युधिष्ठिरजी बोले कि हे यथाशक्ति देवताओं से पूजने योग्य, कृष्णकी प्यारीबहन ! ॥ ३ ॥ मन, वचन व कर्मसे तुमको प्रणामकर मैं शरण में प्राप्तहोताहूं हे बलभद्र को अभय देनेवाली, कृष्णकी छविके समान

सूतउवाच ॥ उषित्वासप्तरात्राणि तीर्थेस्मिन्भ्रातृभिःसह ॥ युधिष्ठिरोमहातेजा गमनायोपचक्रमे ॥ १ ॥ प्रभातेविमलेस्नात्वादेवीलिङ्गान्यथार्च्यच ॥ कृत्वाप्रदक्षिणंक्षेत्रेदेवीस्तोत्रंजजापसः ॥ २ ॥ प्रयाणकालेषुसदाजप्यं कृष्णोक्तंकीर्त्तितम् ॥ युधिष्ठिरउवाच ॥ देवपूज्येयथाशक्तिः कृष्णस्यभगिनिप्रिये ॥ ३ ॥ नत्वात्वांशरणंयामि मनोवाक्कायकर्मभिः ॥ सङ्कर्षणायाभयदे कृष्णच्छविसमप्रभे ॥ ४ ॥ एकानंशेमहादेविपुत्रवत्त्राहिमांशुभे ॥ त्वयाततमिदंविश्वं जगदव्यक्तरूपया ॥ ५ ॥ इतिमत्वात्वाङ्गतोस्मिशरणंत्राहिमांशुभे ॥ कार्यारम्भेषुसर्वेषु सानुगेनमयातव ॥ ६ ॥ स्वत्रात्मा कल्पितोभद्रे ज्ञात्वैतदनुकम्पय ॥ इतिब्रुवाणंराजानं शिरोबद्धाञ्जलिन्तदा ॥ ७ ॥ वायुपुत्रःप्रहस्यैव सासूयमिदमब्रवीत ॥ येत्वांराजन्वदन्त्येवं सर्वज्ञोयंयुधिष्ठिरः ॥ ८ ॥ वृथैववचनंतेषांयत्त्वंवेत्सिनचाण्वपि ॥ कोहिप्रज्ञावतांमुख्यः सर्व

शोभावाली ! ॥ ४ ॥ तुम एकहीहो हे अंशरहिते, शुभे ! पुत्रकी नाईं मेरी रक्षा कीजिये अप्रकट रूपवाली तुमसे यह समस्त संसार विस्तारित है ॥ ५ ॥ यह मानकर मैं तुम्हारी शरण में प्राप्तहूं हे शुभे ! मेरी रक्षाकीजिये समस्त कार्योंके प्रारम्भों में अनुगामियों समेत मैंने अपने आत्मा को तुम्हारे कल्पित किया है भद्रे ! यह जानकर दयाकीजिये उस समय ऐसा कहते व मस्तक पै अञ्जली को बांधेहुये राजा युधिष्ठिरसे ॥ ६ । ७ ॥ पवनपुत्र भीमसेनजी ईर्षापूर्वक हँसकर यह वचन बोले कि हे राजन् ! जो मनुष्य तुमको ऐसा कहते हैं कि ये युधिष्ठिर सर्वज्ञ हैं ॥ ८ ॥ उनका वचन वृथाही है तुम कुछभी नहीं जानतेहो क्योंकि समस्त शास्त्रों के जाननेवालों

में श्रेष्ठ व बुद्धिमानों में मुख्य कौन पुरुष ॥९॥ स्त्रियोंकी शरण में प्राप्तहोवै है जैसे कि मूर्खबुद्धिवाले आपहो जिस लिये कि तुम ऐसा जानतेहो व सब शास्त्रों में यह कहा जाता है ॥ १० ॥ कि यह मूर्खिणी प्रकृति जड़है जिससे कि संसार मोहित है पुरुषको बुद्धि समेत व प्रकृतिको बुद्धिरहित ॥ ११ ॥ विद्वान् कहते हैं और पुरुष के पक्षमें मनुष्य हैं व प्रकृति के पक्षमें स्त्रियां हैं इस लिये हे वृथाबुद्धिवाले, युधिष्ठिरजी! तुम आपही पुरुष होकर ॥ १२ ॥ स्त्रीकी स्तुति करतेहो व प्रणाम करतेहो और मेरे बहुतही हास उत्पन्न होताहै यदि कोई पनहियों को शिरके ऊपर चढ़ावै ॥ १३ ॥ तो जैसे वह मूर्ख होता है वैसेही देवीजी की भक्तिमें परायण पुरुष है हे

शास्त्रविदांवरः ॥ ९ ॥ स्त्रीणांशरणमापद्येदज्ञबुद्धिर्यथाभवान् ॥ यतस्त्वमेवंवेत्सीदं सर्वशास्त्रेषुकीर्त्यते ॥ १० ॥ जडेयं प्रकृतिर्मूढाययासंमोहितंजगत् ॥ सचेतनश्चपुरुषंप्रकृतिश्चविचेतनीम् ॥ ११ ॥ प्राहुर्बुधानराःपक्षेपुंसश्चप्रकृतेःस्त्रियः ॥ तत्स्वयंपुरुषोभूत्वा युधिष्ठिरवृथामते ॥ १२ ॥ स्त्रियंस्तौषिचनौषित्वं हासोमेतीवजायते ॥ आरोहयेच्छिरसिवैकश्चिदे वमुपानहौ ॥ १३ ॥ यथासमूढोभवतिदेवीभक्तिरतस्तथा ॥ यदितेबन्दिवत्पार्थ तिष्ठेद्वाणीनवारिता ॥ १४ ॥ तत्किमर्थं महादेवं नस्तौषित्रिपुरान्तकम् ॥ विरूपाक्षेतिनामत्वान्महेशंनमहामते ॥ १५ ॥ ततःकिमर्थंस्तुत्यर्हंनस्तौषिपुरुषो त्तमम् ॥ यस्यप्रसादादस्माभिः प्राप्ताद्रुपदनन्दिनी ॥ १६ ॥ इन्द्रप्रस्थेतथाराज्यंराजसूयत्वमापसः ॥ विजयेनधनुर्ल ब्धं जरासन्धोमयाहतः ॥ १७ ॥ प्रत्याहर्तुंतथेच्छामः कौरवेभ्यःस्वकांश्रियम् ॥ यस्यप्रसादात्तंमुक्त्वाकृष्णंकस्तोषये

पार्थ! यदि बन्दीजनों की नाईं मना कीहुई तुम्हारी वाणी नहीं रुकती है ॥ १४ ॥ तो किस लिये त्रिपुरान्तक शिवजी की स्तुति नहीं करतेहो और हे महामते! विरूपाक्ष ऐसा नाम होनेके कारण यदि महेशजी की नहीं स्तुति करतेहो ॥ १५ ॥ तो किस लिये स्तुतिके योग्य पुरुषोत्तम कृष्णजीकी स्तुति नहीं करतेहो कि जिनके प्रसादसे हम लोगोंने द्रुपदकी कन्या द्रौपदीजी को पाया है ॥ १६ ॥ व दिल्ली में राज्यको पाया और तुमने उस राजसूययज्ञ को किया तथा अर्जुन ने धनुषको पाया व मैंने जरासन्ध को मारा है ॥ १७ ॥ और जिनके प्रसाद से हमलोग कौरवो से अपनी लक्ष्मीको फिर लेना चाहते है उन कृष्णजीको छोड़कर कौन पुरुष स्त्रीकी स्तुति

करैगा ॥ १८ ॥ अथवा आपही यदुवंशियों के उत्तम कुलमें पैदाहुये यादव श्रीकृष्णजी को जानकर बुद्धि थोड़ी होने के कारण से उनकी स्तुति नहीं करतेहो ॥ १९ ॥
तो किस लिये बड़े पराक्रमी उत्तम अर्जुनजीकी स्तुति नहीं करतेहो कि जिन्होंने पहले निशाने को बेध दिया है व जिन्होंने कर्णादिक वीरोंको मारडाला है ॥ २० ॥
व जिन्होंने उस खाण्डव वनको जलादिया और जिन्होंने यज्ञमें राजाओं को जीत लिया है व यह सुना जाताहै कि जिन अर्जुनने पराक्रमकर शिवजीको जीत
लिया है ॥ २१ ॥ भूमिलोकमें टिकेहुये इन अर्जुनकी शरण में जाइये व स्तुति कीजिये अथवा उन इन्द्रने मुझको राज्य क्यों नहीं दिया ॥ २२ ॥ यह मानकर

**त्विये ॥ १८ ॥ अथस्वयंयादवानामुत्पन्नंकुलउत्तमे ॥ ज्ञात्वाचैवत्वमल्पत्वाद्बुद्धेर्नस्तौषियादवम् ॥१९॥ तत्किमर्थं
महावीर्यं नस्तौष्यर्जुनमुत्तमम् ॥ येनविद्धंपुरालक्ष्यं येनकर्णादयोहताः ॥ २० ॥ येनतत्खाण्डवंदग्धं यज्ञेयेननृपा
जिताः ॥ श्रूयतेयेनविक्रम्य महेशानोपिनिर्जितः ॥ २१ ॥ भूलोकसंस्थितस्यास्य शरणंयाहिनौषिच ॥ अथवातेनश
क्रेण राज्यंमेनार्पितंकुतः ॥ २२ ॥ इतिमत्वावृथैवत्वं नस्तौषिभ्रातरंमम ॥ ततोमांवाकथंवीरं नस्तौषित्वंयुधिष्ठि
र ॥ २३ ॥ येनत्वंरक्षितःपूर्वं लाक्षागेहाग्निमध्यतः ॥ वृत्रेणाहत्यमद्रेशं नदींशुष्कांप्रतारितः ॥ २४ ॥ राजराजस्तथा
येन जरासन्धोनिपातितः ॥ पूर्वादिग्निर्जितायेन येनपूर्वंबकोहतः ॥ २५ ॥ हिडम्बश्चमहावीर्यः किर्म्मीरश्चाधुनावने ॥
कालेकालेचरक्षामि त्वामेवाहंसदानुगः ॥ २६ ॥ नतांपश्यामिरक्षन्तीं नत्वायांस्तौषिभारत ॥ अथक्षुधालुंज्ञात्वामां स**

तुम वृथाही मेरे भाईकी स्तुति नहीं करतेहो तो हे युधिष्ठिरजी! मुझ वीरकी क्यों नहीं स्तुति करतेहो ॥ २३ ॥ कि जिनसे पुरातन समय तुम लाक्षागृह में अग्नि के
बीचसे रक्षा कियेगये हो और मद्र देश के राजाको वृत्रसे मारकर सूखी नदीमें प्रतारित हुये याने पार कियेहो ॥ २४ ॥ तथा जिनसे राजाओंका राजा जरासन्ध मारा
गया व जिसने पूर्वदिशाको जीतलिया है और जिसने पहले बकासुर को मारा है ॥ २५ ॥ और महापराक्रमी हिडम्ब जिससे मारागया व इस समय वनमें किर्मीर
दैत्यको मारा व सदैवही अनुगामी होकर मैं प्रत्येक समय में तुम्हारी रक्षाकरताहूं ॥ २६ ॥ हे भारत! रक्षाकरती हुई उसको मैं नहीं देखताहूं कि जिसको प्रणामकर

तुम स्तुति करतेहो अथवा सदैव पेटभरनेवालों में श्रेष्ठ तथा क्षुधालु मुझको जानकर ॥ २७ ॥ व हे क्षमाकरनेवालों में श्रेष्ठ ! मुझको क्रूर व साहसी जानकर नहीं स्तुति करतेहो तो उत्तम संयमी होकर ॐकारको कहतेहुये तुम ॥ २८ ॥ मार्ग में क्यों नहीं प्राप्तहोतेहो क्योंकि वृथा आलाप करनेवाला दोषभागी होताहै प्रेत, पिशाच व राक्षस वृथा अनर्थक वचन कहनेवाले ॥ २९ ॥ मनुष्य मे प्रवेश करते हैं और उनसे प्रवेश कियाहुआ पुरुष बार बार निरर्थक वचनको कहताहै वृथा कहनेवाला पुरुष जिस वस्तुको भोजन करता है व कहीं जिस पुण्यको करता है ॥ ३० ॥ वह सब प्रेतादिकों की तृप्ति के लिये होता है ऐसा शास्त्रमें निश्चय किया गया है और

दौदरिकसत्तमम् ॥ २७ ॥ क्रूरंसाहसिकञ्चैव नस्तौषिक्षमिणांवर ॥ ततःसुसंयतोभूत्वा प्रणवंसमुदीरयन् ॥ २८ ॥ क थंनयासिमार्गेत्वं वृथालापोहिदोषभाक् ॥ प्रेताःपिशाचारक्षांसि वृथालापपरंनरम् ॥ २९ ॥ आविशन्तितदाविष्टोवक्ता वक्तिपुनःपुनः ॥ वृथालापीयदश्नाति यत्करोतिशुभंक्वचित् ॥ ३० ॥ प्रेतादितृप्तयेसर्वमितिशास्त्रविनिश्चयः ॥ नायंतस्या स्तिवैलोकः कुतएवपरोभवेत् ॥ ३१ ॥ तस्माद्विजानतायत्नात्त्याज्यमेववृथावचः ॥ एवंसंस्मारितोपित्वंयदिभूयः प्रवर्त्तसे ॥ ३२ ॥ भूताविष्टश्चिकित्स्योनोविविधैरौषधैर्भवान् ॥ इतिप्रवर्णितांश्रुत्वा भीमसेनेनभारतीम् ॥ ३३ ॥ पठा मिचप्रतिदिनंविहस्याहयुधिष्ठिरः ॥ नूनंत्वमल्पविज्ञानो वेदाधीतास्त्रयोवृथा ॥ ३४ ॥ मातरंसर्वभूतानामम्बिकांयन्नम न्यसे ॥ स्त्रीपक्षइतिमत्वातामवजानासिभोःकथम् ॥ ३५ ॥ स्त्रीसतीनप्रणम्याकिंत्वयाकुन्तीवृकोदर ॥ यदिनस्यान्महा

उसको यह लोकभी नहीं होता है तो परलोक कहां से होवै ॥ ३१ ॥ इस लिये विज्ञानी पुरुषको यत्नसे अनर्थक वचन त्यागना चाहिये इस प्रकार स्मरण कराये हुये भी तुम यदि फिर ऐसाही बर्ताव करोगे ॥ ३२ ॥ तो भूतों से आवेश कियेहुये आप अनेक प्रकारकी औषधों से चिकित्सा करने योग्य नहींहो भीमसेन से इस प्रकार वर्णन कीहुई वाणीको सुनकर ॥ ३३ ॥ युधिष्ठिरजी हँसकर बोले कि प्रतिदिन इस स्तोत्रको पढूंगा और तुम निश्चयकर अल्पज्ञानीहो व वृथाही तुमने तीनों वेदोंको पढ़ाहै ॥ ३४ ॥ क्योंकि सम्पूर्ण प्राणियों की माता भगवती को नहीं मानतेहो हे भीमसेन ! वे स्त्रीपक्षमें हैं ऐसा मानकर क्यों अपमान करतेहो ॥ ३५ ॥ हे भीमसेन

जी ! पतिव्रता श्री कुन्तीजी क्या तुमसे प्रणाम करने योग्य नहीं हैं यदि ब्रह्मा, विष्णु व शिवजी से पूजित महामाया न होतीं ॥ ३६ ॥ तो हे पार्थ ! तुम्हारे शरीर
की उत्पत्ति कैसे होती यह यथार्थ कहिये और ईश्वर परमात्मा को त्यागने के लिये कैसे नहीं समर्थ हैं ॥ ३७ ॥ जिन लिये देवीजी फिर उससे सेवितहुई उसीकारण
उनको बहुत बड़ीहुई मानताहूं वासुदेव कृष्णजी भी नित्यही परेसे भी परे उस शक्तिकी स्तुति करते हैं ॥ ३८ ॥ यदि मैं चिकित्सा करने के योग्यहूं तो चिकित्सा
में क्या होगा मूर्खता से महेश्वरी के विषयमें ऐसा फिर नहीं कहने योग्यहै ॥ ३९ ॥ यदि तुम सुखको चाहतेहो तो भूमिमें गिरकर उनकी शरणमें प्राप्तहूजिये भीमसेन

माया ब्रह्मविष्णुशिवार्चिता ॥ ३६ ॥ तवदेहोद्भवः पार्थ कथं स्यात्सत्यतो वद ॥ ईश्वरः परमात्मानं त्यक्तुं शक्तः कथं नहि ॥
३७ ॥ पुनर्सेवितोदेवी तेन मन्ये महोर्जिताम् ॥ वासुदेवोपि नित्यं तां स्तौति शक्तिं परात्पराम् ॥ ३८ ॥ अहं यदि चिकित्स्यः स्यां
चिकित्सायां च किं भवेत् ॥ नैवं भूयः प्रवक्तव्यं मौर्ख्यात्प्रति महेश्वरीम् ॥ ३९ ॥ भूमौ निपत्य शरणं यदि चेत्सुखमिच्छसि ॥
भीम उवाच ॥ सर्वोपायैर्बोधयन्ति चाटो हस्तगतं नरम् ॥ ४० ॥ इदमेवौषधं तत्र तैः सार्द्धं जल्पनं नहि ॥ जने जने मतिर्भिन्ना स
त्यमेतन्नृप स्फुटम् ॥ ४१ ॥ स्वाभीष्टं कुरुते सर्वः कुमार्गीभीष्टं वयं तथा ॥ नागायुतसमप्राणो वायुपुत्रो वृकोदरः ॥ ४२ ॥ न
स्त्रियं शरणं गच्छेद्वाङ्मात्रेण कथंचन ॥ इत्युक्त्वा वचनं भीमस्त्वनुवव्राज तं नृपम् ॥ ४३ ॥ राजापि सानुगो यातो न साधिव
तिमुहुर्ब्रुवन् ॥ ततः क्षणेति विक्लव इतश्चेतश्च प्रस्खलन् ॥ ४४ ॥ उवाच वचनं भीमः सुसंभ्रान्तो नृपं प्रति ॥ धर्मराज

जी बोले कि प्रेमसे मिथ्या कहनेवाले लोग हाथमें प्राप्त मनुष्य को सब उपायों से समझाते हैं ॥ ४० ॥ परन्तु उस विषयमें यही औषध है कि उनके साथ वार्ता न
करै हे राजन् ! यह प्रकटही सत्य है कि प्रत्येक मनुष्यमें बुद्धि भिन्नहोती है ॥ ४१ ॥ सब मनुष्य अपनी प्रिय वस्तुको करता है वैसेही जो प्रियहै उसको मैंभी करूंगा
दशहजार हाथियों के समान बलवाले पवनपुत्र भीमसेनजी ॥ ४२ ॥ किसी प्रकार वचनमात्रसे भी स्त्री की शरणमें न जाऊँगे यह वचन कहकर भीमसेनजी उन युधि-
ष्ठिर राजाके पीछे चले ॥ ४३ ॥ और यह अच्छा नहीं है ऐसा बार बार कहतेहुये अनुगामियों समेत राजायुधिष्ठिर भी चले तदनन्तर क्षणभरमें इधर उधर लरखराते

हुये व अत्यन्तही विकल ॥ ४४ ॥ भीमसेनजी संभ्रमितहोकर राजायुधिष्ठिर से वचन बोले कि हे महाबुद्धे, नृपोत्तम, धर्मराजजी ! मुझको देखिये ॥ ४५ ॥ कि मैं नेत्रों से नहीं देखताहूं यह मेरे क्या विकलता होगई राजायुधिष्ठिरजी बोले हे भीमसेनजी ! तुम्हारे ऊपर महेश्वरी देवीजी निश्चयकर क्रोधितहोगई हैं ॥ ४६ ॥ उसी से हे महासाहसप्रिय ! तुम्हारे नेत्र नष्ट होगये इस लिये इस समय परमेश्वरीकी शरण में जाइये ॥ ४७ ॥ तो कदाचित् फिर प्रसन्नहोकर ये तुमको फिर नेत्रोंको देवैं भीम-सेनजी बोले कि हे युधिष्ठिरजी ! मैंभी यही जानताहूं कि देवीजी ने मुझको शाप दिया है ॥ ४८ ॥ फिर मैं प्रभावके विश्वास के लिये सदैव उनकी निन्दाकरता

महाबुद्धे पश्यमांनृपसत्तम ॥ ४५ ॥ चक्षुर्भ्यांनैवपश्यामिवैकल्यंकिमिदंमम ॥ राजोवाच ॥ भीमभीमध्रुवंदेवी कुपितातेमहेश्वरी ॥४६॥ तेननष्टेचक्षुषीते महासाहसवल्लभ ॥ तत्सांप्रतमभिप्रेहिशरणंपरमेश्वरीम् ॥ ४७ ॥ पुनःप्रसन्नाते दद्यात् कदाचिन्नयनेपुनः ॥ भीमउवाच ॥ अहमप्यङ्गजानामि शप्तोदेव्यायुधिष्ठिर ॥ ४८ ॥ प्रभावप्रत्ययार्थंहि सदा निन्दामितांपुनः ॥ तस्मात्प्रभावंदृष्ट्वैवनिपत्यवसुधातले ॥ ४९ ॥ मनोवाग्बुद्धिभिर्गत्वा शरणंस्तौमिमातरम् ॥इत्युक्त्वा भ्रातरंज्येष्ठं साष्टाङ्गंप्रणिपत्यच ॥ ५० ॥ गत्वैवदेव्याःशरणं भीमस्तुष्टावमातरम् ॥ भीमउवाच ॥ सर्वभूताम्बिकेदेवि ब्रह्माण्डशतपत्रके ॥ ५१ ॥ बालिशंबालकंस्वीयं त्राहित्राहिनमोस्तुते ॥ त्वंब्राह्मीब्रह्मणःशक्तिर्वैष्णवीत्वञ्चशाम्भवी ॥ ५२ ॥ त्रिमूर्तेशक्तिरूपात्वं रक्षरक्षनमोस्तुते ॥ त्वमैन्द्रीचत्वमाग्नेयीत्वंयाम्यात्वंचनैर्ऋती ॥ ५३ ॥ त्वंवारुणी

था इस लिये प्रभावको देखकर व पृथ्वीतलमें गिरकर ॥ ४९ ॥ मन, वचन व बुद्धिसे शरण जाकर भगवती माताकी स्तुति करताहूँ यह कहकर बड़े भाई युधिष्ठिरको साष्टाग प्रणामकर ॥५०॥ व देवीजी की शरण में जाकर भीमसेनजी ने भगवती माताकी स्तुतिकिया भीमसेनजी बोले कि हे समस्त प्राणियोंकी माता, ब्रह्माण्डरूपी कमलवाली, देवि ! ॥ ५१ ॥ अपने मूर्ख बालककी रक्षाकीजिये रक्षाकीजिये तुम्हारे लिये नमस्कार है तुम ब्रह्माकी शक्ति ब्राह्मीहो व वैष्णवीहो और शैवीहो ॥ ५२ ॥ हे त्रिमूर्ते ! तुम शक्तिरूपिणीहो मेरी रक्षाकीजिये रक्षाकीजिये तुम्हारे लिये नमस्कार है तुम ऐन्द्रीहो व तुम्हीं आग्नेयीहो, तुम याम्या (यमराजकी शक्ति) हो और तुम्हीं

नैर्ऋतीहो ॥ ५३ ॥ तुम वारुणीहो, तुम्हीं वायव्याहो और तुम्हीं कौबेरी हो तुम्हारे लिये नमस्कार है हे शिवदेवि, वाराहि, नारसिंहि, जयदायिनि ! ॥ ५४ ॥ हे
कौमारि, कुलकल्याणि, कृपेश्वरि ! तुम्हारे लिये नमस्कार है तुम सूर्य मे तथा चन्द्रमा में व भौममें और तुम बुध में व बृहस्पति में बसतीहो ॥ ५५ ॥ और
तुम शुक्रमें, शनैश्चर में व तुम्हीं राहु और केतुमें बसतीहो तुम्हारे लिये नमस्कार है तुम ध्रुवचक्र में बसतीहो व सप्तर्षियों के नक्रमें तुम्हारी स्थितिहै ॥ ५६ ॥ हे भव-
चक्रे, आकाशचक्रे, भूतचक्रे! तुम्हारे लिये नमस्कारहै हे देवि ! तुम सातों द्वीपोंमें और सातों समुद्रोंमें स्थितहो ॥ ५७ ॥ और सातों पातालोंमें नीचे स्थितहो तुम्हारे

**त्वंवायव्यात्वंकौबेरीनमोस्तुते ॥ईशानदेविवाराहिनारसिंहिजयप्रदे ॥ ५४ ॥ कौमारिकुलकल्याणि कृपेश्वरिनमोस्तु
ते ॥ त्वंसूर्येत्वंतथासोमे त्वंभौमेत्वंबुधेगुरौ ॥ ५५ ॥ त्वंशुक्रेत्वंशनौराहौ त्वंकेतौचनमोस्तुते॥ त्वमसिध्रुवचक्रेत्वं मुनिच
क्रेचतेस्थितिः ॥ ५६ ॥ भवचक्रेखचक्रेचभूतचक्रेनमोस्तुते ॥ सप्तद्वीपेषुत्वंदेवि समुद्रेषुचसप्तसु ॥ ५७ ॥ सप्तस्वपिचपाता
लेष्वधःसंस्थानमोस्तुते ॥ चतुर्भुजेचतुर्वक्त्रे फलदेचत्वरप्रिये ॥ ५८ ॥ चराचरस्तुतेदेवि चरणौप्रणमामिते ॥ महा
घोरेमहारात्रिघण्टालिविकटेहले ॥ ५९ ॥ सततंसप्तमीपूज्ये नेत्रदेशरणंभव ॥ महानादेमहावीर्ये महामोहविनाशि
नि ॥ ६० ॥ महाबन्धापहेदेवि देहिनेत्रत्रयंमम ॥ मेरुवासिनिपिङ्गाभेनेत्रत्राणैककारिणि ॥ ६१ ॥ हुंहुंकारध्वस्तदैत्ये
शरण्येशरणंभव ॥ सर्वमङ्गलमाङ्गल्ये यदित्वंसत्यतोम्बिके ॥ ६२ ॥ ततोमेमङ्गलंदेहि नेत्रदानान्नमोस्तुते ॥ यदिस**

लिये नमस्कार है हे चतुर्भुजे, चतुर्मुखि, फलदे, चत्वरप्रिये ! ॥ ५८ ॥ हे चराचरस्तुते, देवि ! मैं तुम्हारे चरणोंको प्रणाम करताहूं हे महाघोरे, महारात्रि, घण्टालि,
विकटे, हले ! ॥ ५९ ॥ हे सदैव सप्तमी तिथिमें पूजनीये, नेत्रदायिनि ! शरण रक्षा करनेवाली) होवो हे महानादे, महावीर्ये, महामोहविनाशिनि ! ॥ ६० ॥ हे महाबन्ध-
विनाशिनि, देवि ! मुझे तीननेत्रों को दीजिये हे मेरुवासिनि, पिंगाभे ! तुम्हीं एक नेत्रोंकी रक्षाको करनेवालीहो ॥ ६१ ॥ हे हुंहुंकारसे दैत्योंको नाशनेवाली, शरण
के योग्य ! शरणहोवो हे अम्बिके, सर्वमङ्गलमांगल्ये ! यदि तुम सत्यही समस्त मङ्गलों को देनेवालीहो ॥ ६२ ॥ तो नेत्रदान से मुझको कल्याण दीजिये तुम्हारे

लिये नमस्कारहै यदि तुमने सबों के ऊपर दया कियाहै और तुम सत्यसे कृपावती हो ॥ ६३ ॥ तो मेरे ऊपर दयाकरो व नेत्रोंको दीजिये तुम्हारे लिये नमस्कार है हे देवि ! यदि इस कारण कोप करती हो कि यह पापीहै तो वृथाहीहै ॥ ६४ ॥ क्योंकि तुम मुझको क्या ऐसा नहीं मोहती हो इसलिये हे देवि ! तुम्हारे लिये नमस्कार है जो आपही धूलिको ऊपर फेंककर और उससे विरजावै और जैसे वह उसीकारण क्रोधकरै ॥ ६५ ॥ वैसेही तुम क्रोधकरती हो हे माता ! अपने रूपको दिखलाइये पाण्डव भीमसेनजी से इस प्रकार स्तुति कीहुई कृष्णकी छविके समान शोभावाली ॥ ६६ ॥ तथा स्त्रियोंसे सुन्दर मुखवाली भगवतीजी प्रत्यक्षहुई जोकि करोड़ों

वैऽनुगृहीताः सत्यतस्त्वंकृपावती ॥ ६३ ॥ ततःकृपांकुरुमयि देहिनेत्रेनमोस्तुते ॥ पापोयमितियद्देविप्रकुप्यसिवृथैव तत् ॥ ६४ ॥ त्वंमांमोहयसित्वेवं नहिकिन्तन्नमोस्तुते ॥ स्वयमुत्साद्यरेणुंवेष्टितस्तेनकुप्यति ॥ ६५ ॥ तथाकुप्य सिमेमातारूपंस्वीयंप्रदर्शय ॥ इतिस्तुतापाण्डवेन देवीकृष्णच्छविच्छविः ॥ ६६ ॥ रामाभिरामवदना प्रत्यक्षंसमजाय त ॥ विद्युत्कोटिसमाभासा मुकुटेनातिशोभिता ॥ ६७ ॥ सूर्यबिम्बप्रभाभ्याञ्च कुण्डलाभ्यांविभूषिता ॥ प्रवाहेनेवहारे ण सुरनद्याविराजिता ॥ ६८ ॥ कल्पद्रुमप्रसूनैश्च पूर्णावतंसमण्डला ॥ दन्तेन्दुकान्तिविध्वस्तभक्तमोहमहाभया ॥ ६९ ॥ खड्गचर्मशूलपात्रचतुर्भुजविराजिता ॥ वाससातडिदाभेन मेघलेखेववेष्टिता ॥ ७० ॥ जयेतिपुष्पवर्षैश्च शक्रा द्यैरभिपूजिता ॥ गणैर्देवीभिराकीर्णा शतपद्मैर्महाबलैः ॥ ७१ ॥ तांतादृशींव्योम्निदृष्ट्वा यथाबालोभिधावति ॥ तथा

बिजुलियों के समान व प्रकाशित मुकुट से बहुतही शोभित थीं ॥ ६७ ॥ और सूर्यबिम्बके समान प्रभावाले कुण्डलों से विभूषित थीं और श्रीगङ्गाजीके मनोहर प्रवाह के समान विराजित थीं ॥ ६८ ॥ व जोकि कल्पद्रुम के पुष्पोंसे पूरित कर्णपूर मण्डलवाली तथा दन्तरूपी चन्द्रमा की कान्तिसे भक्तोंके मोह व महाभय को विध्वंस करनेवाली थीं ॥ ६९ ॥ और तलवार, ढाल, त्रिशूल व पात्र समेत चारों भुजाओं से शोभितथीं और बिजुली के समान छविवाले वसन से मेघपङ्क्ति की नाईं वेष्टित थीं ॥ ७० ॥ और जयहो ऐसा कहकर इन्द्रादिक देवताओं से पुष्पवृष्टि के द्वारा पूजित थीं और महाबली सौपद्म संख्यक देवीके गणोंसे घिरीथीं ॥ ७१ ॥

आकाश में वैसी उन भगवती को देखकर जैसे बालक दौडता है वैसेही ये भीमसेनजी हे माता ! ऐसा कहतेहुये सामने दौड़े ॥ ७२ ॥ उस समय देवीजी के दर्श-
नहीं,से उत्तम तीननेत्रोंसे सयुतहुये और प्रणामकर बार २ यह बोले कि तुम्हारे लिये नमस्कार है नमस्कारहै ॥७३॥ हे कमललोचनि, देवि ! प्रसन्न होवो हे माता ! फिर
प्रसन्न होवो हे क्षमाशील (स्वभाव) वाली देवि ! मुझ पापीके ऊपर फिर प्रसन्न होवो॥७४॥ इसप्रकार स्तुतिकीहुई भगवतीने आपही पार्थिव भीमसेनजी को उठाकर व
गोदीमें बिठाकर दयासे इस वचन को कहा ॥ ७५ ॥ कि जिसलिये तुमने स्तोत्र को किया उसीसे तुम्हारे ऊपर मैं प्रसन्नहुई इसी कारण मैंने तीननेत्रोंको दिया दो

संमुखमाधावदंबमातारितिब्रुवन् ॥ ७२ ॥ दर्शनेनैवदेव्याश्च शुभ्रनेत्रत्रयस्तदा ॥ प्रणिपत्यनमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यंमु
हुर्जगौ ॥ ७३ ॥ प्रसीददेविपद्माक्षि पुनर्मातःप्रसीदमे ॥ पुनःप्रसीदपापस्य क्षमाशीलेप्रसीदमे ॥ ७४ ॥ एवंस्तुताभगव
ती स्वयमुत्थाप्यपार्थिवम् ॥ भीमंचोत्सङ्गमारोप्य कृपयेदंवचोब्रवीत् ॥ ७५ ॥ यत्त्वयाभिहितंस्तोत्रं तेनतुष्टातवोपरि ॥
अतोनेत्रत्रयंदत्तं द्वेबाह्येचान्तरंपरम् ॥ ७६ ॥ नाहंकोपंयत्रतत्र दर्शयामिवृकोदर ॥ त्वन्तुप्रधानपुरुषस्ततःक्रोधमद
र्शयम् ॥ ७७॥ नैतत्प्रियञ्चकृष्णस्यभ्रातुर्मेक्रोधमाचरम् ॥ भवन्तोवासुदेवस्ययतःप्राणाबहिश्चराः ॥ ७८ ॥ त्वञ्चनिन्द
सिमांनित्यं तच्चजानेवृकोदर ॥ मत्प्रभावपरिज्ञानहेतवेकीदृशास्थिति ॥ ७९ ॥ तदेवनैवभूयस्ते प्रकर्त्तव्यंकथञ्चन ॥
अधिक्षेपोहिपूज्यानामावहत्यधिकांरुजम् ॥८०॥ तदिदानींसर्वमेव क्षन्तव्यञ्चपरस्परम् ॥ यच्चब्रवीमित्वांवीर तन्निशा॥

बाहरवाले और तीसरा भीतर का नेत्र दियागया ॥ ७६ ॥ हे भीमसेनजी ! मैं जहां तहां क्रोधको नहीं दिखलाती हूं तुमतो मुख्य पुरुष हो इससे मैंने क्रोधको दिख-
लाया ॥ ७७ ॥ और मैंने जो क्रोध किया यह मेरे भाई कृष्णजी को नहीं प्रियहै क्योंकि आपलोग कृष्णजी के बाहर चलनेवाले प्राणहो ॥ ७८ ॥ हे भीमसेनजी !
तुम मुझको नित्यही मेरे प्रभाव को जानने के लिये निन्दते हो कि वह कैसाहै उसको मैं जानती हूं ॥ ७९ ॥ उसको तुम्हें फिर किसी प्रकार न करना चाहिये
क्योंकि पूजनीयजनोंका तिरस्कार अधिकरोग को प्राप्त करता है ॥ ८० ॥ वह सब इस समय आपसमें क्षमा करना चाहिये और हे भारत, वीर ! मैं तुमसे जो कहती

हू उसको सुनिये ॥ ८१ ॥ कि जब २ धर्मकी ग्लानि (न्यूनता) में विष्णुजी प्रकट होते है तब २ मै अवतार को लेकर इन विष्णुजी की सहायिनी होती हूं ॥ ८२ ॥ और इस समय व्यापक विष्णुजी वसुदेवके पुत्र हुये हैं व मैं भी एकही अंशरहित नामक नन्दगोप की कन्या हुईहूं ॥ ८३ ॥ इस लिये जैसे मेरे भाई भगवान् कृष्णजी पूजित है वैसेही आपलोग पाण्डव भी सदैव मेरे भाईहो ॥ ८४ ॥ जो उत्तम मनुष्य भीमकी बहन है इसी कारण मेरी स्तुतिकरैंगे प्रसन्नतासंयुत मैं उनके शत्रुओं का नाश करूगी ॥ ८५ ॥ व हे भाई ! धृतराष्ट्र के पुत्रोंके मारने के निमित्त महायुद्ध में नकुल भाईको दोगे तब मै तुम्हारे भुजाओं को हँसूंगी ॥८६॥

मयभारत ॥ ८१ ॥ यदायदाहिधर्मस्य ग्लानाबाविर्भवेद्धरिः ॥ तदातदावतीर्याहं विष्णोरस्यसहायिनी ॥ ८२ ॥ इदानींचहरिर्ज्जातो वसुदेवसुतोविभुः ॥ अहञ्चनन्दगोपस्यएकानंशाभिधासुता ॥ ८३ ॥ तद्यथाभगवान्कृष्णो मम भ्राताभिपूजितः ॥ भवन्तोपितथामह्यं भ्रातरःपाण्डवाःसदा ॥ ८४ ॥ येभीमभगिनीत्येवं मांस्तोष्यन्तिनरोत्तमाः ॥ सपत्नान्नाशयिष्यामि तेषांहर्षसमन्विता ॥ ८५ ॥ त्वञ्चभ्रातुर्यमंवीरं प्रदास्यसिमहारणे ॥ भुजयोस्तेहसिष्यासि धार्तराष्ट्रनिपातने ॥ ८६ ॥ कृत्वाराज्यञ्चवर्षाणि षट्त्रिंशत्तदनन्तरे ॥ वानप्रस्थस्यधर्मेण पृथ्वींपरिचरिष्यथ ॥ ८७ ॥ अस्मिन्नेवततोदेशे लोहोनाममहासुरः ॥ भवतांन्यस्तशस्त्राणांवधार्थंप्रक्रमिष्यति ॥ ८८ ॥ ततस्तंसर्वभूतानामवध्यंभवतांकृते ॥ अन्धंकृत्वापातयिष्येततस्तंमारयिष्यसि ॥८९॥ निस्तीर्यचहिमंसर्वं निमग्नाबालुकार्णवे ॥ स्वर्गयास्यथराजैकःसशरीरोगमिष्यति ॥ ९० ॥ अन्धोयत्रकृतोलोहो लोहाणाभिधयापुरम् ॥ भविष्यतिचतत्रैवस्थास्येहंकलयास

और छत्तीस वर्षतक राज्यकर उसके उपरान्त वानप्रस्थ के धर्मसे पृथ्वीपर तुमलोग घूमोगे ॥ ८७ ॥ तदनन्तर इसी देशमें धरेहुये अस्त्रोंवाले आपलोगों को मारनेके लिये लोहनामक महादैत्य घेरैगा ॥ ८८ ॥ उसके उपरान्त समस्त प्राणियों से अवध्य उस दैत्यको मैं आपलोगों के लिये अन्धकरके गिरादूंगी तब उसको तुम मारोगे ॥ ८९ ॥ तदनन्तर समस्त पालाको उतरकर तुमलोग बालुकार्णव में डूबकर स्वर्गको जाओगे और एक राजा युधिष्ठिर शरीर समेत स्वर्गको जावैगा ॥ ९० ॥

और जहांपर लोहासुर अन्त कियागया है वहांपर लोहाणनामक पुर होगा और वहींपर मैं सदैव अपनी कलासे टिकूंगी ॥ ९१ ॥ तदनन्तर कलियुग प्राप्तहोनेपर कल नामक मेरा भक्तहोगा उसके नामसे मैं कलेश्वरीहूँगी ॥ ९२ ॥ और अन्य बेलाकनामक मेरा उत्तमभक्त होगा उसके आराधन से कलियुग में मैं प्रसिद्धिको प्राप्तहूंगी ॥ ९३ ॥ और लोहाणनगर में भलीभांति टिकीहुई मुझको जो मनुष्य शुक्लपक्ष की सप्तमी में श्रद्धासे पूजैंगे उनसे मैं सब कहीं पूजितहूंगी ॥ ९४ ॥ और हे पाण्डव ! उस दिन भक्तिभावसे तृप्त कीहुई मैं सब अन्धोंको नेत्रदूंगी ॥ ९५ ॥ और वहांपर आप चरण के अंगूठे से कुण्डको करोगे उस दिन उस कुण्डमें स्नान

दा ॥ ९१ ॥ ततःकलियुगेप्राप्ते कलोनामभविष्यति ॥ ममभक्तस्तस्यनाम्ना भवेयन्तुकलेश्वरी ॥ ९२ ॥ वेलाकश्चापरो भक्तो भविष्यतिममोत्तमः ॥ तस्याराधनतःख्याति प्रयास्यामिकलौयुगे ॥ ९३ ॥ लोहाणसंस्थितांचैव येर्चयिष्यन्तिमांजनाः ॥ श्रद्धयासितसप्तम्यां तैश्चसर्वत्रपूजिता॥९४॥अन्धानान्नेत्रप्रदास्यामि सर्वेषांनयनान्यहम् ॥ तस्मिन्दिने तर्पिताहं भक्तिभावेनपाण्डव ॥ ९५॥ पादाङ्गुष्ठेनचभवांस्तत्रकुण्डंविधास्यति ॥ सर्वतीर्थस्नानतुल्यं तत्रस्नानञ्चतद्दिने ॥ ९६ ॥ मत्स्यानांनेत्रनेत्रस्थं तेजस्तन्मात्रमुत्तमम् ॥ उद्धृत्ययोजयिष्यामि साक्षंवैतद्भविष्यति ॥ ९७ ॥ एवंनाममहास्थानं कलौख्यातिङ्गमिष्यति ॥ लोहाणाख्यंमहाबाहोनामकेलेश्वरीतिच ॥ ९८ ॥ दुर्गमाख्यंततोहत्वा अस्मिन्क्षेत्रेचभारत ॥ दुर्गानाम्नीभविष्यामिमहीसागरपूर्वतः ॥ ९९ ॥ धर्मारण्येवसिष्यामि भवतांत्राणकारणात ॥ धर्मारण्यस्थिताञ्चैवयेर्चयिष्यन्तिमानवाः॥१००॥ आश्विनेमासिचैत्रेवा नवम्यांशुक्लपक्षके॥स्नात्वामहीसागरेच तेपांदा

समस्त तीर्थों के स्नानके बराबर होगा ॥ ९६ ॥ मछलियों के नेत्रनेत्र मे टिकेहुये तन्मात्र उत्तम तेजको निकालकर मैं युक्त करूंगी इस से वह नेत्रसमेत होगा ॥ ९७ ॥ हे महाबाहो ! उस प्रकार कलियुग में लोहाणनामक महास्थान प्रसिद्धिको प्राप्तहोगा और केलेश्वरी ऐसा नामहोगा ॥ ९८ ॥ तदनन्तर हे भारत ! इस क्षेत्र में दुर्गमनामक दैत्यको मारकर महीसागरके पूर्व और दुर्गानामक हूंगी ॥ ९९ ॥ व आप लोगोंकी रक्षाके कारण मैं धर्मारण्य में बसूंगी और धर्मारण्य में टिकीहुई

मुझको महीसागरमें नहाकर जो मनुष्य कुँवार या चैत्र महीने में शुक्लपक्ष में नवमी तिथिमें पूजैंगे उनके मनोरथ को दूंगी ॥ १०० । १ ॥ और श्रद्धासंयुत जो मनुष्य मुझको विधिपूर्वक पूजैंगे उनको पुत्र तथा पौत्र तथा स्वर्ग व मोक्षको दूंगी इसमें सन्देह नहीं है ॥ २ ॥ इसप्रकार मडालर व लोहाण में निवासहोगा और कलिकालके प्रवेश मे आपलोगों पाण्डवों के वंशमें उपजाहुआ वत्सराज मुझको यत्नसे प्रसन्न करैगा तदनन्तर उसके नामसे कलियुग में वत्सेश्वरी ऐसी मैं प्रसिद्ध हूंगी ॥ ३ । ४ ॥ और वत्सराज के समस्त अर्थोंको देनेवाली हूंगी और मेरे प्रसाद से वह राजा संसार को दुःख देनेवाली ॥ ५ ॥ अडालया नामक राक्षसी को उस

स्यामिवाञ्छितम् ॥ १ ॥ विधिनायेर्चयिष्यन्ति माञ्चश्रद्धासमन्विताः ॥ पुत्रपौत्रान्प्रदास्यामि स्वर्गंमोक्षंनसंशयः ॥ २ ॥ इत्थंमडालरेवासो लोहाणेचभविष्यति ॥ प्रवेशेचकलेःकाले भवतांवंशसम्भवः ॥ ३ ॥ वत्सराजःपाण्डवानां तोषयिष्यतियत्नतः ॥ तस्यनाम्नाततःख्याताभविष्यामिकलौयुगे ॥ ४ ॥ वत्सेश्वरीतिवत्सस्य राज्ञःसर्वार्थदायिनी ॥ मत्प्रसादात्सराजाच भुवनोत्तापकारिणीम् ॥ ५ ॥ अडालयांनामतदाराक्षसींनिहनिष्यति ॥ तस्याश्चापिवधस्थाने ह्यडालरमितिस्मृतम् ॥ ६ ॥ भविष्यतिपुरन्तत्र माञ्चसंस्थापयिष्यति ॥ अडालराभिधेग्रामे पूजयिष्यन्तियेजनाः ॥ ७ ॥ वत्सेश्वरींसिताष्टम्यामाश्विनेमासिसर्वदा ॥ धूपोपहारबलिभिःपूजयिष्यन्तिमानवाः ॥ ८ ॥ तेषांसर्वफलावाप्ति र्भविष्यतिनसंशयः ॥ इत्थंमडालरोवासो लोहाणेचभविष्यति ॥ ९ ॥ धर्मारण्येमहाक्षेत्रे महीसागरसन्निधौ ॥ सर्वलो कहितार्थाय लोहाणस्थांनिशम्यमाम् ॥ १० ॥ अन्धेकृतेमयालोहोबहुतप्त्वातपःमतु ॥ वृत्रासुरइवाजेयोलोकानुत्सा

समय मारैगा और उसके भी वधस्थान में अडालर ऐसा कहाहुआ ॥ ६ ॥ नगर होगा और वहांपर वह मुझको स्थापित करैगा और अडालर नामक ग्राममें जो मनुष्य मुझको पूजैंगे ॥७॥ व सदैव कुँवार महीनेमें शुक्लपक्ष की अष्टमी में धूप, उपहार व बलियों से जो मनुष्य वत्सेश्वरीको पूजैंगे ॥८॥ उनको निरसंदेह समस्त फलोंकी प्राप्तिहोगी इस प्रकार मडालर व लोहाणपुर मे मेरा निवास होगा ॥ ९ ॥ व महीसागर के समीप धर्मारण्य महाक्षेत्र मे निवासहोगा सब लोकोंके हितके लिये लोहाणनगरमे टिकीहुई मुझको सुनकर ॥ १० ॥ लोहनामक दैत्य मुझसे अन्ध करनेपर बहुत तपस्याकर वह वृत्रासुर की नाईं न जीतनेयोग्य होकर मनुष्यों-

को क्लेशदेवैंगा ॥ ११ ॥ और गयनामक विघ्नकारी अन्य दैत्य उससमय आप लोगों के प्रस्थानमें लोह दैत्यकी नाईं होगा उसको मैं नपुंसक करूंगी ॥ १२ ॥
और वहांपर गयत्रादा इस नामसे मुझको पूजेंगे और यहांपर गयत्राद ऐसा ग्राम प्रसिद्धहोगा ॥ १३ ॥ गयत्राद ग्राममें माघकी अष्टमीमें जो मनुष्य गयत्रादानामक
भगवतीको पूजेंगे उनके सब भी उपद्रव नाश होजावैंगे ॥ १४ ॥ और पाण्डवों से सदैव आराधन कीहुई मुझको जो क्रोध करावैंगे महाभयंकर स्थित उन पुरुषों
का पौरुष हरूंगी ॥ १५ ॥ और उनका सब वंश नपुंसक होगा कि जिस भयङ्कर व विकराल कलियुग में अतिनिर्घृणी व रौद्रजन होगा ॥ १६ ॥ इस प्रकार यहांपर

दयिष्यति ॥ ११ ॥ गयोनामापरोदैत्यो भवतांविघ्नकृत्तदा ॥ प्रस्थानेलोहवद्भावी करिष्येतंनपुंसकम् ॥ १२ ॥ गयत्रादे
तिमान्तत्र पूजयिष्यन्तिमानवाः ॥ ग्रामश्चापिगयत्रादोह्यत्रख्यातोभविष्यति ॥ १३ ॥ गयत्रादेगयत्रादांयेर्चयिष्यन्ति
मानवाः ॥ माघाष्टम्यांनशिष्यन्तितेषांसर्वेप्युपद्रवाः ॥ १४ ॥ येचमांकोपयिष्यन्ति पाण्डवाराधितांसदा ॥ तेषांपुंस्त्वंह
रिष्यामि महारौद्राधितिष्ठताम् ॥ १५ ॥ परिवारश्चतेषांवैषण्ढःसर्वोभविष्यति ॥ यस्मिन्कलियुगेघोरे रौद्रेरौद्रातिनिर्घृ
णः ॥ १६ ॥ एवंचतुर्थंतन्महत्स्थानमत्रभविष्यति ॥ भक्तस्तुचापिस्वर्गेषुगयोपिसुमहत्तपः ॥ १७ ॥ तत्त्वासोथपुनःपुंस्त्वं
लोकान्सम्पीडयिष्यति ॥ गयातीर्थंगतेचैव गयाध्वंसनकाम्यया ॥ १८ ॥ बुधएवजगत्स्वामी तत्रतंसूदयिष्यति ॥
इत्थंश्रमात्प्रीतवासा अवतार्यबुधःप्रभुः ॥ १९ ॥ बहूनिकृत्वाकर्माणिस्वस्थानंप्रतिपत्स्यते ॥ इतिसंक्षेपतःप्रोक्तं भविष्यं
पाण्डवामया ॥ २० ॥ भवतांचित्तनिर्वृत्यैश्रूयतांभूयएवच ॥ इदंतीर्थोत्तमंमह्यं संसेव्यंसर्वदाप्रियम् ॥ २१ ॥ कृतंय

मेरा यह चौथा स्थानहोगा और आपलोगोंके भी स्वर्ग जानेपर गयभी बड़ीभारी तपस्या ॥ १७ ॥ कर इसके उपरान्त पुरुषत्वको पाकर वह मनुष्यों को पीडित करैगा
और गयातीर्थ के नाशने की इच्छासे वह जब गयातीर्थ को जावैगा ॥ १८ ॥ तब वहांपर संसार के स्वामी बुधहीजी उसको नाश करैंगे इस प्रकार परिश्रम से पीत
वसनवाले बुध स्वामी अवतार लेकर ॥ १९ ॥ व बहुत से कार्योंको करके अपने स्थानको प्राप्त होवेंगे हे पाण्डवलोगो ! आपलोगों के चित्तके आनन्दके लिये मैंने
संक्षेपसे इस होनेवाले चरित्रको कहा और फिरभी सुनिये कि तीर्थोंमें उत्तम व प्यारा यह मेरा तीर्थ सदैव सेवनेयोग्यहै ॥ २०।२१ ॥ जो आपलोगोंने यहां आगमन

किया उससे मुझको बड़ी प्रसन्नता हुई और भीमके पौत्र (बर्बरीक) सेमैं दृढ़तापूर्वक प्रसन्न कराई गईहूँ ॥ २२ ॥ और वैसेही सब देवियों को उसने प्रसन्न किया है यह अन्यथा नहीं जाननेयोग्य है और उससे जो तीर्थ कियेगये हैं उनको आप लोग जाइये ॥ २३ ॥ और सब बाधाओं में मैंही स्मरण करनेयोग्य हूं व तुम सबोंसे मैं जाने के लिये पूंछती हूं क्योंकि तुमलोग मुझको कृष्णके समान हो ॥ २४ ॥ देवीजी का ऐसा वचन सुनकर विस्मय से प्रफुल्लित लोचनोंवाले पाण्डवलोगों ने बार बार प्रणामकर दीपककी नाईं गईहुई इन भगवतीको न देखा ॥ १२५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेदेनीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांकेलेश्वरीवत्से

दत्रागमनंतेनप्रीतिःपरामम ॥ भीमस्यचापिपौत्रेण दृढंसन्तोषितास्म्यहम् ॥ २२ ॥ देव्यस्तथैवसर्वाश्च एतज्ज्ञेयंनचान्यथा ॥ व्रजध्वञ्चापितीर्थानि यानितेनकृतानिच ॥ २३ ॥ आबाधास्वपिसर्वासु स्मरणीयाहमेवच ॥ आपृच्छेचापि वःसर्वान् यूयंकृष्णसमामम ॥२४॥ इतिदेव्यावचःश्रुत्वा विस्मयोत्फुल्ललोचनाः ॥ पुनःपुनःप्रणम्यैतां नापश्यन्दीपवद्गताम् ॥ १२५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेकेलेश्वरीवत्सेश्वरीदुर्गामाहात्म्यंनामैकषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥

सूतउवाच ॥ ततस्त्रयोदशेवर्षे व्यतीतेसमयेतदा ॥ उपप्लवेसङ्गतेषु सर्वराजसुपाण्डवाः ॥ १ ॥ योद्धुमागत्यसन्तस्थुः कुरुक्षेत्रेमहारथाः ॥ कौरवाश्चापिसन्तस्थुर्दुर्योधनपुरोगमाः ॥ २ ॥ ततोभीष्मेणचप्रोक्तं चरैःश्रुत्वायुधिष्ठिरः ॥ रथातिरथसंख्यार्थं राज्ञांमध्येवचोब्रवीत् ॥ ३ ॥ भीष्मेणविहितंकृष्ण रथातिरथवर्णनम् ॥ ततोदुर्योधनोपृच्छदिदंस्वीया

श्वरीदुर्गामाहात्म्यवर्णनंनामैकषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । कृष्ण दूरि जिमि कीन है भीमसेन को गर्व । बासठिके अध्याय में कह्यो चरित सोइ सर्व ॥ सूतजी बोले कि तदनन्तर तेरह वर्षका समय बीतनेपर उस समय उपद्रव में प्राप्तहुये समस्त राजाओं के मध्य में पाण्डव लोग ॥ १ ॥ युद्धके लिये आकर कुरुक्षेत्र में स्थितहुये और दुर्योधनपूर्वक कौरव महारथी भी भली भांति स्थितहुये ॥२॥ तदनन्तर रथी व अतिरथी योधाओं के गिनने के लिये भीष्मसे कहेहुये वचन को भेदिहा दूतोंके द्वारा सुनकर युधिष्ठिरजी राजाओं के मध्यमें

बोले ॥ ३ ॥ कि हे कृष्णजी ! भीष्मजीने जब रथी व अतिरथी योधाओं का वर्णन किया तब दुर्योधननै अपने महारथियोंसे यह पूँछा ॥ ४ ॥ कि सेना समेत इन पाण्ड-
वोंको कितने समय में कौन वीर मारैगा भीष्मजीने व कृपाचार्य ने महीनाभर में मारनेकी प्रतिज्ञा किया ॥ ५ ॥ वैसेही द्रोणाचार्य ने एक दिनमें व अश्वत्थामा ने
युद्धमें दश दिनरों मारनेकी प्रतिज्ञा किया व सदैव मुझको भय करनेवाले कर्णने छह दिनमें मारने की प्रतिज्ञा किया ॥ ६ ॥ और मैं उसको अपने महारथियों से पूँछता
हूं कि कौन योधा कितने समय से मारैगा राजा युधिष्ठिर का यह वचन सुनकर अर्जुनजी वचन को बोले ॥ ७ ॥ कि हे युधिष्ठिरजी ! भीष्मादिकों ने यह अयोग्य

न्महारथान् ॥ ४ ॥ ससैन्यान्पाण्डवानेतान्हन्यात्कालेनकेनकः ॥ मासेनतुप्रतिज्ञातुं भीष्मेणचकृपेणच ॥ ५ ॥
तथाद्रोणेनचाह्नाच दशाभिर्द्रौणिनारणे ॥ षड्भिःकर्णेनचतथा सदाममभयंकृता ॥ ६ ॥ तदहंस्वांश्चपृच्छामि केनका
लेनहन्तिकः ॥ एतच्छ्रुत्वावचोराज्ञः फाल्गुनोवाक्यमब्रवीत् ॥ ७ ॥ अयुक्तमेतद्भीष्माद्यैः प्रतिज्ञातंयुधिष्ठिर ॥ यतोजये
चविजये निश्चयोहिमृषान्नृप ॥ ८ ॥ तत्रापियेसन्तिनृपाः सन्नद्धारणसंस्थिताः ॥ पश्यैतान्पुरुषव्याघ्रान् कालकल्पा
न्दुरासदान् ॥ ९ ॥ द्रुपदञ्चविराटञ्च धृष्टद्युम्नञ्चकैकयम् ॥ सहदेवंसात्यकिञ्च चेकितानञ्चदुर्जयम् ॥ १० ॥ धृष्टद्युम्नं
सपुत्रञ्चमहावीर्यंघटोत्कचम् ॥ भीमादींश्चमहेष्वासान्केशवञ्चापराजितम् ॥ ११ ॥ मन्येहमेकस्त्वेतेषां हन्यात्कौरव
वाहिनीम् ॥ सन्नद्धाःप्रतिदृश्यन्ते भीष्माद्याबहवोरथाः ॥ १२ ॥ तेभ्योभयंनकार्यन्ते राजन्नेतेमृगाइव ॥ अस्माकंधनु
षांघोषैरिदानीमेवभारत ॥ १३ ॥ कौरवाविद्रविष्यन्ति सिंहत्रस्तामृगाइव ॥ वृद्धाद्भीष्माद्द्विजाद्वृद्धाद्द्रोणादपिकृपाद्

प्रतिज्ञा कियाहै क्योंकि हे राजन्! जीत व हारमें निश्चय झूंठही होतीहै ॥ ८ ॥ रणमें तैयार होकर जो भलीभांति स्थित राजा लोगहैं कालके समान असह्य इन नरो-
त्तमोंको देखिये ॥ ९ ॥ द्रुपद, विराट, धृष्टद्युम्न, कैकय, सहदेव, सात्यकी व दुःख से जीतनेयोग्य चेकितान ॥ १० ॥ और पुत्र समेत धृष्टद्युम्न व बड़े पराक्रमी घटो-
त्कच तथा बड़े धनुर्धर भीमादिकों को और दूसरों से न हारेहुये कृष्णजी को देखिये ॥ ११ ॥ मैं यह मानताहूं कि इनके मध्यमें एकवीर कौरवों की सेनाको नाशकरै
है भीष्मादिक बहुत से रथी वीर जो तैयारहुये देख पड़तेहैं ॥ १२ ॥ हे राजन्! तुमको उनसे भय न करना चाहिये ये मृगोंकी नाईं हैं हे भारत ! हम लोगोंके धनुषों के

शब्दोंसे इसीसमय कौरव भगजावैंगे जैसे कि सिंहसे डरेहुये मृगहोवैं बूढ़े भीष्मसे व वृद्ध द्रोणाचार्य द्विजसे व वृद्ध कृपाचार्यसे भी ॥१३।१४॥ और द्रोणके पुत्र दुर्बुद्धि तथा मूर्ख अश्वत्थामा से क्या डर है अथवा हे भारत ! चित्तके आनन्द के लिये शत्रुवों की सेनाओं में वधका जानना चाहते हो तो मेरा वचन सुनिये कि समरमें मैं एकही होऊं और सब रथी योधा खडेहोवैं ॥ १५ । १६ ॥ तो एक दिनमें भी सेना संयुत सब कौरवोंको भगादेऊं इस प्रकार अर्जुन का वचन सुनकर हँसतेहुये भीम के पौत्र बर्बरीक बोले ॥ १७ ॥ कि जिसने गुप्तक्षेत्र में तपस्या किया व जिसने देवियों को प्रसन्न कियाहै उसकी भुजाओं का बल अतुल है और उसका कहाहुआ

पि ॥ १४ ॥ बालिशात्किम्भयंद्रौणेर्द्रोणपुत्रस्यदुर्मतेः ॥ अथवाचित्तनिर्वृत्यै ज्ञातुमिच्छसिभारत ॥ १५ ॥ शत्रूणांप्रत्य नीकेषुवधंतच्छृणुमद्वचः ॥ एकोहमेवसंग्रामे सर्वेतिष्ठन्तुमेरथाः ॥ १६ ॥ एकाहेनक्षिपयेसर्वान् कौरवान्सैन्यसंयुतान् ॥ इत्यर्ज्जुनवचःश्रुत्वास्मयन्भैमिसुतोब्रवीत् ॥ १७ ॥ येनतप्तंगुप्तक्षेत्रे येनदेव्यःसुतोषिताः ॥ तस्यातुलंवाहुवलं तेन चोक्तंनिशम्यताम् ॥ १८ ॥ यद्ब्रवीमिवचःसत्यं शृणुध्वंतन्नराधिपाः ॥ आत्मनोवीर्यसदृशं केवलंनतुदर्पतः ॥ १९ ॥ यदार्येणप्रतिज्ञातमर्जुनेनमहात्मना ॥ नमर्षयामितद्वाक्यं कृताक्षेपोमहानयम् ॥ २० ॥ सर्वेभवन्तस्तिष्ठन्तु सार्ज्जुनाः सहकेशवाः॥एकान्मुहूर्तार्द्भीष्मादीन्सर्वान्नेष्येयमक्षयम् ॥ २१ ॥ मयितिष्ठतिकेनापि शस्त्रंग्राह्यंनसंयुगे ॥ स्वधर्मश पथोवोस्तु मृतेग्राह्यंततोमयि ॥ २२ ॥ पश्यध्वमेवलंवाह्वोर्देव्याराधनसम्भवम् ॥ माहात्म्यंगुप्तक्षेत्रस्य तथामुक्तिश्चपा

वचन सुनाजावै ॥ १८ ॥ हे राजाओ ! मैं जिस सत्य वचनको कहताहूं उसको सुनिये जोकि केवल अपने बलके समानहै गर्वसे नहीं कहाजाताहै ॥१९॥ महात्मा व आर्य अर्जुनजी ने जो प्रतिज्ञा कियाहै उस वचन को मैं नहीं सुनताहूं यह किया हुआ बडाभारी आक्षेप (तिरस्कार) है ॥ २० ॥ अर्जुन समेत व कृष्णजी समेत आपलोग खडेरहिये मैं एकही मुहूर्त्त में भीष्मादिक सबोंको यमराज के स्थानमें प्राप्त करदूंगा ॥ २१ ॥ युद्धमें जबतक मैं टिकाहूं तबतक किसीको भी शस्त्र न ग्रहण करना चाहिये आपलोगों को अपने धर्मकी सौगन्द है कि जब मैं मरजाऊं तदनन्तर तुम सबोंको शस्त्र ग्रहण करना चाहिये ॥ २२ ॥ देवीके आराधन से

उपजेहुये मेरे बाहुबल को देखिये हे पाण्डवो ! गुप्तक्षेत्र के माहात्म्य व मुक्तिको देखिये ॥ २३ ॥ और मेरे भयङ्कर धनुष व अक्षय तरकसों को देखिये जिस लिये
कि देवीजी से दीहुई तलवार है उसी कारण मैं इस वचन को कहताहूं ॥ २४ ॥ उसका ऐसा वचन सुनकर क्षत्रिय लोग विस्मय को प्राप्तहुये और निन्दा कियेहुये
अर्जुनजीने लजाकर श्रीकृष्णजीको देखा ॥२५॥ उन लज्जित अर्जुनजीसे कृष्णजी उत्तम वचन बोले कि घटोत्कचके पुत्र बर्बरीकने यह अपने योग्यही कहाहै ॥२६॥
पुरातन समय इसने पातालमें नव करोड़ संयुत पलाशी दैत्यको क्षणही भरमें माराहै यह बड़ा अद्भुत वृत्तान्त सुनाजाताहै ॥२७॥ फिर इससे मैं यह पूंछूंगा कि किस

ण्डवाः ॥ २३ ॥ पश्यध्वंमेधनुर्घोरं तूणीरावक्षयौतथा ॥ खड्गञ्चदेव्यादत्तं यत्ततोवच्मिवचस्त्विदम् ॥२४॥ इतितस्य
वचःश्रुत्वाक्षत्रियाविस्मयंययुः ॥ अर्ज्जुनश्चकृताक्षेपोलज्जितःकृष्णमैक्षत ॥ २५ ॥ तमाहलज्जितंकृष्णः फाल्गुनंपर
मंवचः ॥ आत्मौपयिकमेवेदं भैमिपुत्रोभ्यभाषत ॥ २६ ॥ नवकोटियुतोऽनेन पलाशीनिहतःपुरा ॥ क्षणादेवचपाता
लेश्रूयतेमहदद्भुतम् ॥ २७ ॥ पुनःपृच्छामहेत्वेनं केनोपायेनकौरवान् ॥ मुहूर्त्तार्द्धंसिब्रूहित्वंपृच्छ्यतांचाहतंजयः ॥ २८ ॥
ततःस्मयन्तंदेवेन्द्रो भैमिपुत्रमभाषत ॥ भीष्मद्रोणकृपद्रौणिकर्णदुर्योधनादिभिः ॥ २९ ॥ गुप्तांत्र्यम्बकदुर्जयां सेनांहं
सिकथंक्षणात् ॥ अयंसहान्विस्मयस्ते वचसाभैमिनन्दन ॥ ३० ॥ सम्भूतःसर्वराज्ञाञ्च फाल्गुनस्यचधीमतः ॥ तद्ब्रू
हिकेनोपायेनमुहूर्त्तार्द्धंसिकौरवान् ॥ ३१ ॥ उपायवीर्यन्तेज्ञात्वा विश्वस्तावयमप्युत ॥ इत्युक्तोवासुदेवेनसर्वभूतेश्वरेण

उपायसे तुम मुहूर्त्तभरमें कौरवों को मारोगे यह कहिये अर्जुनजीने उन श्रीकृष्णजी से कहा कि पूँछिये ॥२८॥ तदनन्तर मुसकराते हुये देवेन्द्र कृष्णजी ने घटोत्कच
के पुत्र बर्बरीक से कहा कि भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, कर्ण व दुर्योधनादिकों से रक्षित व शिवजी से भी दुर्जय कौरवों की सेनाको कैसे क्षणभर में मा-
रोगे हे भैमिपुत्र ! तुम्हारे वचन से यह बड़ाभारी आश्चर्य ॥ २९ । ३० ॥ सब राजाओं के व बुद्धिमान् अर्जुनजी के हुआहै इस लिये कहिये कि किस उपाय से
तुम मुहूर्त्तभर में कौरवों को मारोगे ॥ ३१ ॥ तुम्हारे उपाय का बल जानकर हमलोग भी विश्वास को प्राप्तहोवैं समस्त प्राणियों के स्वामी कृष्णजी से

ऐसा कहाहुआ ॥ ३२ ॥ सिंहके समान वक्षस्थलवाला, पर्वत के समान तथा अनेक प्रकार के भूषणोंसे भूषित और घड़ेके समान मुखवाला तथा घटशब्द के समान हास्यवाला, ऊपर उठेहुये बालोंवाला व अतिप्रकाशमान ॥ ३३ ॥ व बिजली के समान नेत्रोंवाला और पवन के समान वेगवान् जोकि क्षणभर में संसार को नाश करदेवै देवीजीसे दियेहुये अतुल बलवाला वह बर्बरीक बोला ॥ ३४ ॥ कि यदि उपाय के देखने में तुमलोगों का मनहै तो मैं दिखलाताहूं उसको कृष्णसमेत पाण्डव लोग देखैं ॥ ३५ ॥ ऐसा कहकर धनुष को चढ़ाकर शीघ्रता करतेहुये उसने गांसीरहित भी बाणको लगाया जोकि सिन्दूर के समान भस्मसे सम्पूर्ण था ॥ ३६ ॥

च ॥ ३२ ॥ सिंहवक्षाःपर्वताभो नानाभूषणभूषितः ॥ घटास्योघटहासश्च ऊर्ध्वकेशोतिदीप्तिमान् ॥ ३३ ॥ विद्युदक्षोवा युजवोयःक्षणान्नाशयेज्जगत् ॥ देवीदत्तातुलबलो बर्बरीकोभ्यभाषत ॥ ३४ ॥ यदिवोमानसंवीरा उपायस्यप्रदर्शने ॥ तदहंदर्शयाम्येष पश्यध्वंसहकेशवाः ॥ ३५ ॥ इत्युक्त्वाधनुरारोप्यसंदधेविशिखंत्वरन्॥ निःशल्यंचापिसम्पूर्णं सिन्दूरामेनभस्मना ॥ ३६ ॥ आकर्णमाकृष्यचतंमुमोच मुखादथोद्भूतमभूच्चभस्म ॥ सेनाद्वयेतच्चपपातशीघ्रंतत्रैवयत्रास्ति चमूःसमस्ता ॥ ३७ ॥ सर्वमर्मसुभीष्मस्य कण्ठेराधेयद्रोणयोः ॥ ३८ ॥ ऊरौदुर्योधनस्यापि शल्यस्यापिचवक्षसि ॥ कण्ठेचशकुनेर्नेत्रे भगदत्तस्यचापतत् ॥ ३९ ॥ कृष्णस्यपादतलकेकण्ठेद्रुपदमत्स्ययोः ॥ शिखण्डिनस्तथाकुक्षौकण्ठे सेनापतेस्तदा ॥ ४० ॥ पपातरक्तंतद्भस्म तत्रतेषाञ्चमर्मसु ॥ केवलंपञ्चपाण्डूनांकृपद्रौण्योश्चनास्पृशत् ॥ ४१ ॥ इतिस्कं

कानतक खींचकर उस बाणको छोड़ा इसके अनन्तर बाणके मुखसे भस्म उड़ी और वह भस्म शीघ्रही दोनों सेनाओं में वहीं गिरी जहां कि सब सेनाथी ॥ ३७ ॥ भीष्मजी के सब सुकुमार अंगोंमें और कर्ण व द्रोणाचार्य के कण्ठमें वह भस्म गिरी ॥ ३८ ॥ व दुर्योधन की जाघ पै व शल्यके भी वक्षस्थल में वह भस्म गिरी और शकुनि के भी कण्ठमे व भगदत्त के नेत्रमें भस्मगिरी ॥ ३९ ॥ और कृष्ण जीके चरणके नीचे व द्रुपद और मत्स्यके कण्ठमें गिरी और उस समय शिखण्डी की कोखिमें व सेनापति के कण्ठमें गिरी ॥ ४० ॥ वह लालभस्म वहांपर उन योधाओं के सुकुमार अङ्गोंमें गिरी केवल पांच पाण्डवों और कृपाचार्य व अश्वत्थामा

को उसने नहीं स्पर्श किया ॥ ४१ ॥ यह कर्म करके तदनन्तर फिर वर्बरीक बोला कि आपलोगोंने इसको देखा जो कि मैंने सुकुमार अङ्गको देखा ॥ ४२ ॥ इस समय मैं इनके मर्मस्थानों में देवीजीसे दियेहुये अमोघपैनेबाणों को मारूंगा उनसे ये क्षण भरमें मरजावैंगे ॥ ४३ ॥ तुम लोगोंको अपने धर्मकी सौगन्द है कि कहीं किसीको शस्त्र न लेना चाहिये मैं मुहूर्त्तभर में याने कच्ची दो घड़ी में इन शत्रुओं को पैने बाणों से गिरादूंगा ॥ ४४ ॥ तदनन्तर विस्मय चित्तवाले युधिष्ठिर इत्यादिकों का बड़ाभारी शब्द हुआ जोकि बहुत अच्छा बहुत अच्छा ऐसा कहरहेथे ॥ ४५ ॥ और क्रोधित होतेहुये कृष्णजी ने पैने चक्रसे इस प्रकार कहतेही हुये इस वर्बरीक के

त्वाततोभूयोवर्बरीकोभ्यभाषत ॥ दृष्टंभवद्भिरेवंयन्मयामर्मनिरीक्षितम् ॥ ४२ ॥ अधुनापातयिष्यामि मर्मस्वेषांशि ताञ्छरान् ॥ देवीदत्तानमोघाख्यांस्तैर्मरिष्यन्त्यमीक्षणात् ॥ ४३ ॥ शपथोवःस्वधर्मस्य शस्त्रंग्राह्यंनचकैश्चित् ॥ मुहू र्त्तात्पातयिष्यामि शत्रूनेताञ्छितैःशरैः ॥ ४४ ॥ ततोविस्मितचित्तानांयुधिष्ठिरपुरोगताम् ॥ आसीन्निनादःसुमहान् साधुसाध्वितिशंसताम् ॥ ४५ ॥ वासुदेवस्तुसंक्रुद्धश्चक्रेणानिशितेनच ॥ एवंब्रुवतएवास्यशिरश्छित्त्वान्यपातयत ॥ ४६ ॥ ततःक्षणात्सर्वमासीदविघ्नंराजमण्डलम् ॥ व्यलोकयन्केशवन्ते विस्मिताश्चाभवन्भृशम् ॥ ४७ ॥ किमेतदितिप्राहु श्चहतोभैमिसुतःकथम् ॥ पाण्डवाश्चापिमुमुचुरश्रूणिसहपार्थिवाः ॥ ४८ ॥ हाहापुत्रेतिचगृणन्प्रस्खलन्तःपदेपदे ॥ घ टोत्कचोऽपतद्दीनःपुत्रोपरिविमूर्च्छितः ॥ ४९ ॥ एतस्मिन्नन्तरेदेव्यश्चतुर्दशसमाययुः ॥ ५० ॥ सिद्धाम्बिकाक्रोधमता कपाली तारासुवर्णाचत्रिलोकजेत्री ॥ भाणेश्वरीचर्चिकाचैकवीरा योगेश्वरीचण्डिकात्रैपुराच ॥ ५१ ॥ भूताम्बिकाहर

शिरको काटकर गिरादिया ॥ ४६ ॥ तदनन्तर क्षणभर समस्त राजमण्डल विघ्नरहित हुआ और उन्होंने श्रीकृष्णजीको देखा व बहुतही विस्मय में प्राप्तहुये ॥ ४७ ॥ व उन्होंने कहा कि यह क्या हुआ घटोत्कच का पुत्र वर्बरीक कैसे मारागया और राजाओं समेत पाण्डव लोगोंने आंसुवोंको छोड़ा ॥ ४८ ॥ जोकि हा पुत्र! हा पुत्र! ऐसा कहतेहुये पग २ पै लरखराते थे और दुःखित घटोत्कच मूर्च्छित होकर पुत्रके ऊपर गिरपड़ा ॥ ४९ ॥ इसी अवसर में चौदह देवियां भलीभांति आगई ॥ ५० ॥ सिद्धा-म्बिका, क्रोधमता, कपाली, तारा, सुवर्णा न त्रिलोकजेत्री, भाणेश्वरी, चर्चिका, एकवीरा, योगेश्वरी, चण्डिका और त्रैपुरा ॥ ५१ ॥ भूताम्बिका व हरसिद्धि इनके समीप

प्राप्तहोकर इसके उपरान्त वे भयङ्कर देवियां स्थितहुईं तदनन्तर श्रीचण्डिका जी घटोत्कच को समझा कर व बड़ेस्वर से वचन बोलीं कि ॥ ५२ ॥ हे राजाओ! सब लोग सुनिये कि जिसकारण से विदितात्मा कृष्णजी ने बड़े बलवान् वर्वरीक को माराहै ॥ ५३ ॥ पुरातन समय सुमेरुगिरि के मस्तक पै भारसे पीड़ित पृथ्वी इकट्ठाहुये इन देवताओं से यह बोली कि मेरे भार को हरलीजिये ॥ ५४ ॥ तदनन्तर ब्रह्माने विष्णुजी से कहा कि तुम उपकार करो हे प्रभो! देवता तुम्हारे अनुगामी होवैंगे आप भारके हारक होवो ॥ ५५ ॥ तदनन्तर विकाररहित विष्णुजी ने उस वचनको वैसाही माना इसी अवसर में जो चौरासी करोड़ राक्षस थे उनके स्वामी

सिद्धिस्तथामुंसंप्राप्यतस्थुस्त्वथताभयंकराः॥श्रीचण्डिकाश्वास्यततोघटोत्कचंप्रोवाचवाक्यंमहतास्वरेण॥ ५२ ॥ शृणुध्वंपार्थिवाःसर्वे कृष्णेनविदितात्मना ॥ हेतुनायेननिहतोवर्वरीकोमहाबलः ॥ ५३ ॥ मेरुमूर्द्धिपुरापृथ्वी समवेतान्दिवौकसः ॥ भाराक्रान्ताजगादैतान् भारोपह्रियतांमम ॥ ५४ ॥ ततोब्रह्माप्राहविष्णुं भगवंस्त्वमुपाकुरु ॥ देवास्त्वानुगमिष्यन्तिभारहारीभवप्रभो ॥ ५५ ॥ ततस्तथेतितन्मेने वचनंविष्णुरव्ययः ॥ एतस्मिन्नन्तरेवाहुमुद्धृत्योच्चैरभाषत ॥ ५६ ॥ सूर्यवर्चेतिरक्षेन्द्रश्चतुराशीतिकोटयः ॥ किमर्थंमानुषेलोके भवद्भिर्जन्मकार्यते ॥ ५७ ॥ मयितिष्ठतिदोषाणामनेकानामिहास्यति ॥ सर्वेभवन्तोमोदध्वंस्वर्गेषुमहविष्णुना ॥ ५८ ॥ अहमेकोवतीर्य्यैनान्हनिष्यामिभुवोभरान् ॥ स्वधर्मशपथावोवै सन्तिचेज्जन्मप्राप्स्यथ ॥ ५९ ॥ इत्युक्तेवचनेब्रह्मा क्रुद्धस्तंसमभाषत ॥ दुर्मतेसर्वदेवानामविषह्यं महाभरम् ॥ ६० ॥ स्वसाध्यंब्रूहिदनुजशापयोग्योसिबालिश ॥ देशकालोचितंस्वीयं परस्यचचलंहृदा ॥ ६१ ॥ अवि

सूर्यवर्चा राक्षसेन्द्र ने भुजाको उठाकर उच्चप्रकार से कहा कि जब अनेक दोषोंको नाश करनेवाला मैं यहां टिकाहूं तब मनुष्यलोक में आपलोग क्यों जन्म कीजियेगा विष्णुजी समेत आप सबलोग स्वर्गमें आनन्द कीजिये ॥ ५६ । ५७ । ५८ ॥ और एक मैंही अवतार को लेकर पृथ्वीके भाररूप इन सबोंको मारूंगा यदि तुम लोग जन्मको प्राप्तहोवो तो तुम सबोंको अपने धर्मकी सौगन्द है ॥ ५९ ॥ ऐसा वचन कहनेपर क्रोधित होकर ब्रह्माने उससे कहा कि हे दुर्बुद्धे! जो महाभार सब देवताओं के असह्य है ॥ ६० ॥ उसको अपना से साधनेयोग्य कहतेहो इस लिये हे मूर्ख, दनुज! तुम शापके योग्यहौ क्योंकि देश व समय के योग्य तथा अपने

व पराये पराक्रम को हृदयसे ॥ ६१ ॥ न विचारकर जो पुरुष कहताहै वह दण्डके योग्य होताहै इस कारण पृथ्वीका भार हरने में जब युद्धका प्रारम्भ होवैगा ॥ ६२ ॥
तुम कृष्णजीसे शरीर नाशको प्राप्त होगे इसमें सन्देह नही है इसप्रकार ब्रह्माजीसे शापित इस सूर्यवर्चाने विष्णुजीसे यह याचना किया ॥ ६३ ॥ कि यदि इस भांति
नाशहोवे तो हे देव ! मैं एक प्रार्थना करताहूं कि जन्म से लगाकर मुझे सब प्रयोजनोंको साधनेवाली बुद्धिदीजिये ॥ ६४ ॥ तदनन्तर देवताओं की सभामें श्री-
कृष्णजी ने यह कहा कि वैसाही होगा और तुम्हारे शिरको देवियां पूजैंगी और तुम पूजनीय होगे ॥ ६५ ॥ इस प्रकार कहेहुये इसने व आपलोग देवताओंने अव-

**चार्येणपुरुषोवक्तिसोर्हतिदण्डनम् ॥ तस्माद्भूभारहरणे युद्धस्योपक्रमेसति ॥ ६२ ॥ शरीरनाशंकृष्णात्त्वमवाप्स्यसि
नसंशयम् ॥ एवंशप्तोब्रह्मणासौविष्णुमेतद्ययाचत ॥ ६३ ॥ यद्येवंभवितानाशस्तदेकंदेवप्रार्थये ॥ जन्मप्रभृतिमेदेहि
मतिंसर्वार्थसाधनीम् ॥ ६४ ॥ ततस्तथेतिसंप्राहकेशवोदेवसंसदि ॥ शिरस्तेपूजयिष्यन्तिदेव्यःपूज्योभविष्यसि ॥६५॥
इत्युक्तश्चावतीर्णोसौ भवन्तश्चतथासुराः ॥ सूर्यवर्चाःसचायंहिनिहतोभैमिपुत्रकः ॥ ६६ ॥ प्राक्शापंब्रह्मणस्स्मृत्वाहतोऽ
नेनमहात्मना ॥ तस्माद्दोषोनकृष्णोऽस्मिन्द्रष्टव्यःसर्वभूमिपैः ॥ ६७ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ यदुक्तंप्रिययादेव्या तत्त
थैवनसंशयः ॥ यद्येवमधुनानैव हन्यांब्रह्मवचोऽन्यथा ॥ ६८ ॥ ततोभवेदितिस्मृत्वा मयासौविनिपातितः ॥ ६९ ॥
गुप्तक्षेत्रेमयैवासौ नियुक्तोदेव्यनुस्मृतौ ॥ पूर्वदत्तंवरंस्वीयंस्मरतादेवसंसदि ॥ ७० ॥ इत्युक्त्वाचण्डिकांप्राहदेविभक्त
शिरस्त्विदम् ॥ अभ्युक्षसुधयाशीघ्रमजरंचामरंव्यधाः ॥ ७१ ॥ यथाराहुशिरस्तद्वत्तच्छिरःप्रणनामतम् ॥ उवाच**

तार लियाहै वह सूर्यवर्चा यही घटोत्कच का पुत्रहै जोकि मारागया है ॥ ६६ ॥ पहले ब्रह्माके शापको स्मरणकर इन महात्माने इसको माराहै इसलिये सब राजा-
ओंको इन श्रीकृष्णजी में दोष न देखना चाहिये ॥ ६७ ॥ श्रीभगवान् कृष्णजी बोले कि प्यारी भगवतीजी ने जो कहाहै वह वैसाही है इसमें सन्देह नही है यदि
मैं इस समय इसको न मारूं तो ब्रह्माका वह वचन अन्यथा होगा यह स्मरणकर मैंने इसको मारडाला ॥ ६८ । ६९ ॥ और देवसभा मे पहिले दियेहुये अपने वर-
दानको स्मरण करतेहु[illegible] मैंने गुप्तक्षेत्रमें इसको देवीके स्मरण में नियुक्त किया ॥ ७० ॥ यह कहकर चण्डिकाजी से कहा कि हे देवि ! इस भक्तके मस्तक को शीघ्रही

अमृतसे छिड़को और अजर अमर करो ॥ ७१ ॥ जैसे कि राहुका शिर हुआ है वैसेही होवै यह सुनकर उसके शिरने उन श्रीकृष्णजीको प्रणाम किया व कहा कि जिस प्रकार मैं युद्धको देखूं वह अनुमान कीजिये ॥ ७२ ॥ तदनन्तर मेघके समान गंभीर वचनवाले स्वामी श्रीकृष्णजी ने यह वचन कहा कि जबतक नक्षत्रों समेत पृथ्वी व चन्द्रमा सूर्य रहैंगे ॥ ७३ ॥ तबतक हे वत्स ! तुम सब मनुष्यों के पूजनीय होगे और समस्त देवीके लोकोंमें देवीकी नाईं विचरोगे ॥ ७४ ॥ व लोकोंमें अपने व देवीजी के भक्तोंको चाहेहुये अभिलाष को दोगे और वात, पित्त व कफमे उत्पन्न हुईं जो पीड़ायें बालकोंके होंगी उनको तुम सुखपूर्वक पूजन से शान्त करोगे और

यदिद्रक्ष्यामियुद्धंतदनुमन्यताम् ॥ ७२ ॥ ततःकृष्णोवचःप्राहमेघगम्भीरवाक्प्रभुः ॥ यावन्महीसनक्षत्रायावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥ ७३ ॥ तावत्त्वंसर्वलोकानां वत्सपूज्योभविष्यसि ॥ देवीलोकेषुसर्वेषु देवीवद्विचरिष्यसि ॥ ७४ ॥ स्वभक्तानाञ्चलोकेषु देवीनांदास्यसीप्सितम् ॥ बालानांयेभविष्यन्ति वातपित्तकफोद्भवाः ॥ ७५ ॥ पीडिकास्ताःसुखेनैवशमयिष्यसिपूजनात् ॥ इदञ्चशृङ्गमारुह्य पश्ययुद्धंयथाभवेत् ॥ ७६ ॥ धावन्त्येतेकौरवास्मान् वयंयास्यस्तत्रप्रति ॥ इत्युक्तेवासुदेवेनदेव्यश्चाम्बरमाविशन् ॥ ७७ ॥ बर्बरीकशिरश्चैवंगिरिशृङ्गमवापतत् ॥ देहस्यभूमिसंस्कारश्चाभवन्मूर्द्धनः ॥ ७८ ॥ ततोयुद्धंमहदभूत्कुरुपाण्डवसेनयोः ॥ ७९ ॥ अष्टादशाहंनिहता येचद्रोणकृपादयः ॥ दुर्योधनेहतेक्रूरेह्यष्टादशादिनात्यये ॥ ८० ॥ युधिष्ठिरोज्ञातिमध्ये गोविन्दंसमभाषत ॥ पुरुषोत्तमसंग्रामेसुहृदःसन्तारितास्त्वया ॥ ८१ ॥

इस शिखर पै चढ़कर जिसभांति युद्धहोवै उसको देखिये ॥ ७५ । ७६ ॥ कि ये कौरव हमारे सामने दौड़ेंगे व हम लोग इनके सामने जावैंगे विष्णुजी के ऐसा कहने पर देवियां आकाश में प्रवेश होगईं ॥ ७७ ॥ और ऐसेही वह बर्बरीक का मस्तक पर्वत के शिखर पै प्राप्तहुआ व देहका भूमि में संस्कार हुआ और मस्तक का नहीं भया ॥ ७८ ॥ तदनन्तर कौरवों और पाण्डवोंकी सेनाओंका अठारह दिनतक बड़ाभारी युद्धहुआ ॥ ७९ ॥ और जो द्रोण व कृपाचार्य इत्यादिकथे वे मारेगये व अठारह दिन बीत जानेपर जब क्रूर दुर्योधन मारागया तब ॥ ८० ॥ कुटुम्बियोंके मध्यमें युधिष्ठिरजी श्रीकृष्णजी से बोले कि हे पुरुषोत्तम ! युद्धमें हमलोगों की आपही

नाथने बार २ रक्षा किया हे पुरुषोत्तम, हरे ! तुम्हारे लिये नमस्कारहै उनका वचन सुनकर ईर्षा समेत भीमसेनजी यह वचन बोले कि ॥ ८१।८२ ॥ हे राजन् ! मैंने धृतराष्ट्र के पुत्रोंका विनाश कियाहै उन मुझको निराकरणकर पुरुषोत्तम कृष्णजीको तुम क्यों मूर्खकी नाईं कहतेहो ॥ ८३ ॥ हे पाण्डव ! धृष्टद्युम्न, अर्जुन व सा-त्यकी और मुझको निराकरणकर ऐसा कहतेहो इस लिये हे युधिष्ठिर ! तुमको धिक्कारहै ॥ ८४॥ अर्जुनजी बोले कि हे भीमसेनजी ! ऐसा मत कहिये मत कहिये तुम कृष्णजी को नहीं जानते हो क्योंकि मैंने व तुमने तथा अन्य ने शत्रुओं को नहीं माराहै ॥ ८५ ॥ चलताहुआ मैं उस समर में शत्रुओं को मारतेहुये एकही मनुष्य

त्वयैवनाथेनहरे नमस्तेपुरुषोत्तम ॥ श्रुत्वातस्यापिसासूयमिदंभीमोवचोब्रवीत् ॥ ८२ ॥ मयाध्वस्ताधार्तराष्ट्रास्तांनि राकृत्यमांनृप ॥ पुरुषोत्तमंकृष्णमिति मूढवत्किमब्रवीपित्वम् ॥ ८३ ॥ धृष्टद्युम्नंफाल्गुनञ्च सात्यकिंमाञ्चपाण्डव ॥ निराकृत्यब्रवीष्येवमतोधिक्त्वांयुधिष्ठिर ॥ ८४ ॥ अर्जुनउवाच ॥ मैवंमैवंभीमब्रूहिनत्वंवेत्सिजनार्दनम् ॥ नमयान त्वयापार्थनान्येनापिहताद्विषः ॥ ८५ ॥ एकंहिसर्वदागच्छन्नरंपश्यामिसंयुगे ॥ निघ्नन्तंशात्रवांस्तत्र नजानेकोप्ययंसा विति ॥ ८६॥ भीमउवाच ॥ विभ्रान्तोसिध्रुवंपार्थनात्रहन्तानरोपरः ॥ अथचेदस्तितत्पौत्रं शृङ्गस्थंवच्मिहन्तिकः ॥ ८७॥ उपसृत्यततोभीमो वर्वरीकमपृच्छत ॥ वदैतेकेननिहता धार्तराष्ट्राहिंसकाः ॥ ८८॥ वर्वरीकउवाच ॥ एकोमयापुमा न्दृष्टो युद्ध्यमानःपरैःसह ॥ स०यतःपञ्चवक्त्रःसदक्षिणेचैकवक्त्रकः ॥ ८९ ॥ स०यतोदशहस्तश्चधृतशूलाद्युदायुधः ॥

को देखताथा परन्तु मैं यह नहीं जानताहूं कि यह कौनहै ॥ ८६ ॥ भीमसेनजी बोले कि हे अर्जुनजी ! तुम निश्चयकर भ्रमित हो क्योंकि इस समरमें अन्य नर मारनेवाला नहीं था अथवा यदि अन्यहै तो शिखर पै टिकेहुये पौत्र वर्वरीक से पूछताहूं कि कौन मारता था ॥ ८७ ॥ तदनन्तर भीमसेनने समीप जाकर वर्वरीकसे पूंछा कि यह कहिये कि धृतराष्ट्र के पुत्रों दुर्योधनादिक शत्रुवों को किसने माराहै ॥ ८८ ॥ वर्वरीक बोले कि शत्रुवों के साथ लडतेहुये एक पुरुषको मैंने देखाहै वह बायें ओर पाचमुखोंवाला व दाहिनेओर एक मुखवाला था ॥ ८९ ॥ व जिसके बायेंओर दशहाथ और शूलादिक उठायेहुये अस्त्रोंको धारेथा और दाहिनेओर चार

हाथोंवाला तथा चक्रादिक उठायेहुये अस्त्रोंको धारण कियेथा ॥ ९० ॥ व बायेंओर जटाधारी तथा दाहिनेओर मुकुटको धारण कियेथा और बायेंओर भस्मको धारण
किये व दाहिने चन्दन समेत था ॥ ९१ ॥ व बायेंओर चन्द्रमाको धारण किये तथा दाहिनेओर कौस्तुभमणि की शोभाथी उसके दर्शन से मेरेभी बडाभारी डर उत्पन्न
हुआ था ॥ ९२ ॥ मैं ऐसे मनुष्यको देखाहै अन्य मनुष्य नहीं है जोकि उनको माराहै ऐसा कहनेपर आकाशसे बडे प्रकाशवाली पुष्पवृष्टि हुई ॥ ९३ ॥ और देवताओं
के बाजा बजनेलगे व उन देवताओं ने बहुत अच्छा बहुत अच्छा ऐसा कहा और पाण्डवलोग विस्मयको प्राप्तहुये व उन्होंने पुरुषोत्तम श्रीकृष्णजीको प्रणाम

दक्षिणेचचतुर्हस्तोधृतचक्राद्युदायुधः ॥ ९० ॥ सव्यतश्चजटाधारी दक्षिणेमुकुटोच्चयः ॥ सव्यतोभस्मधारीच दक्षिणे
चसचन्दनः ॥ ९१ ॥ सव्यतश्चन्द्रधारीचदक्षिणेकौस्तुभद्युतिः ॥ ममापितद्दर्शनतोमहद्भयमजायत ॥ ९२ ॥ ईदृशो
मेनरोदृष्टोनचान्योयोजघानतान् ॥ इत्युक्तेपुष्पवर्षन्तु खादासीत्सुमहत्प्रभम् ॥ ९३ ॥ सस्वनुर्देववाद्यानिसाधुसाध्विति
तेजगुः ॥ विस्मिताःपाण्डवास्त्वासन् प्रणेमुःपुरुषोत्तमम् ॥ ९४ ॥ विस्मितश्चाभवद्भीमो निश्वासांश्चाप्यमुञ्चत ॥ तत
स्तंकेशवःस्वामी समादायकरेदृढम् ॥ ९५ ॥ कुरुशार्दूलएहीति प्रोक्त्वासंस्मारकाश्यपम् ॥ आरुह्यगरुडंपश्चात्स्मृत
मात्रमुपस्थितम् ॥ ९६ ॥ भीमेनसहितोव्योम्नि प्रयातोदक्षिणांदिशम् ॥ ततोर्णवमतीत्यैवसुवेलंचमहागिरिम् ॥ ९७ ॥
लङ्कासमीपेदृष्ट्वैवसरःकृष्णोब्रवीद्वचः ॥ कुरुशार्दूलपश्येदं सरोद्वादशयोजनम् ॥ ९८ ॥ प्रविश्यैतत्सरःशीघ्रमानया
स्यतलात्मृदम् ॥ इत्युक्तोगरुडाच्छीघ्रं न्यपतत्सजलेबली ॥ ९९ ॥ योजनंचागमद्गच्छन्नधोनोतामपश्यत ॥ ततोभी

किया ॥ ९४ ॥ और भीमसेनजी विस्मितहुये व श्वासोंको छोड़नेलगे तदनन्तर स्वामी श्रीकृष्णजीने उन भीमसेनजी का हाथ पकडकर ॥ ९५ ॥ व हे कुरुश्रेष्ठ ! आइये
ऐसा कहकर गरुडजी को स्मरण किया पश्चात् स्मरणमात्र से समीप प्राप्तहुये गरुड़ पै चढ़कर ॥ ९६ ॥ भीमसेन समेत श्रीकृष्णजी आकाश में दक्षिण दिशाको
चलेगये तदनन्तर समुद्र व सुवेल नामक महापर्वत को नांघकर ॥ ९७ ॥ लङ्काके समीप तड़ागको देखकर श्रीकृष्णजी वचन बोले कि हे कुरुश्रेष्ठ ! बारह योजन
याने अड़तालिस कोस चौंड़े इस तड़ाग को देखिये ॥ ९८ ॥ और इस तड़ाग में पैठ कर इसके नीचेसे शीघ्रही मिट्टीको लाइये ऐसा कहेहुये वे बलवान् भीमसेनजी

जलमें शीघ्रही कूदपड़े ॥ ९९ ॥ व योजनभर गये और जातेहुये उन्होंने नीचे उस मिट्टीको न देखा तदनन्तर भस्महुये बलवाले भीमसेनजी निकलकर कृष्णाजी से बोले ॥ १०० ॥ कि यह बडाभारी तडाग गहरा है कितेक महाबलवान् लोग मुझ को खानेलगे तब किसी प्रकार से मैं निकला ॥ १ ॥ इस प्रकार कहेहुये तेजस्वी श्रीकृष्णाजी हँसतेहुये बडेभारी तड़ाग को अपने अँगूठे से ऊपर फेंकदिया तब वह नीचेका भाग ऊपरहोगया ॥ २ ॥ उसको देखकर विस्मयमें प्राप्त होतेहुये भीमसेनजी श्रीकृष्णाजीसे बोले कि हे श्रीकृष्णाजी ! यह क्याहै इसको मुझसे कहिये ॥ ३ ॥ श्रीभगवान् कृष्णाजी बोले कि पुरातन समय कुम्भकर्ण ऐसा प्रसिद्ध राक्षस हुआहै श्रीरामजी के बाणसे मारेहुये उस दुर्बुद्धिका मस्तक कटगया है ॥ ४ ॥ हे भीमसेनजी ! उसके शिरके तालुका यह बारह योजन चौड़ा खण्डहै जोकि

मोविनिःसृत्य भस्मवीर्योह्यभाषत ॥ १०० ॥ अगाधमेतत्सुमहत्सरः कैश्चिन्महाबलैः ॥ अहं खादितुमारब्धः कथंचिच्चापिनिर्गतः ॥ १ ॥ एवमुक्तोहसन्कृष्ण उच्चिक्षेपमहत्सरः ॥ स्वेनाङ्गुष्ठेनतेजस्वी तदधोर्ध्वमजायत ॥ २ ॥ तद्दृष्ट्वा विस्मितःप्राहकिमिदंकृष्णब्रूहिमे ॥ ३ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ कुम्भकर्णइतिख्यातः पूर्वमासीन्निशाचरः ॥ रामबाणहतस्यामूच्छिरश्छिन्नंसुदुर्मतेः ॥४॥ शिरस्तस्यतालुकंखण्डमेतद्वृकोदर ॥ योजनद्वादशायामं मृदिदिग्धंविचूर्णितम् ॥ ५ ॥ विधृतस्त्वन्तुयस्तैश्च सर्पगेहाभिधासुराः ॥ त्रिकूटस्यशिलाभिश्च चूर्णितायेचकोटिशः ॥६॥ एतेहिविश्वरिपवोनिहताःस्युरुपायतः ॥ गच्छामपाण्डवान्भीम द्रोणोहित्वरतेदृढम् ॥ ७ ॥ ततोभीमःप्रणम्याह मनोवाक्कायबुद्धिभिः ॥ कृतमाजन्मनःपूर्वं कुकृतंक्षमकेशव ॥ ८ ॥ पुरुषोत्तमभवान्नाथो बालिशस्यप्रसीदमे ॥ ततःक्षान्तमितिप्रोक्तं

मिट्टीमें फेंकागया व चूर्णकर डालागयाथा ॥ ५ ॥ और जिन्होंने तुमको पकड़लिया था वे सर्पगेह नामक दानव हैं जोकि करोड़ो दानव त्रिकूट पर्वत की शिलाओं से मारेगये हैं ॥ ६ ॥ संसार के शत्रु इन दानवों को मैंने यत्नसे माराहै हे भीमसेनजी ! मैं पाण्डवों के समीप जाताहूं क्योंकि द्रोणाचार्यजी दृढ़तासे शीघ्रता करते हैं ॥७॥ तदनन्तर भीमसेनजीने प्रणामकर कहा कि हे केशवजी ! पुरातन समय मैंने जन्मसे लगाकर मन, वचन, शरीर व बुद्धिसे जो पाप कियाहो उसको क्षमा कीजिये ॥ ८ ॥ हे पुरुषोत्तम ! आप स्वामीहो इससे मुझ मूर्खके ऊपर प्रसन्नहोवो तदनन्तर श्रीकृष्णाजी ने यह कहा कि मैंने क्षमा किया उसके उपरान्त भीमसेन

समेत श्रीकृष्णजी ॥ ६ ॥ फिर भी समर के आंगन में आकर वर्वरीक से वचन बोले कि हे सुहृदय वर्वरीक ! समस्त लोकोंमें नित्यही ॥ १० ॥ सब मनुष्यों से पूजित होकर और उनको उत्तमवरों को देवो और समस्त क्षेत्रोत्तमों में उत्तम गुप्तक्षेत्र तुमको न छोडना चाहिये ॥ ११ ॥ और बाहरस्थल में तुम्हारा निवासहोवै और हमारा जो पातक है उसको क्षमा कीजिये ऐसा कहेहुये वर्वरीकजी उन कृष्णजीको प्रणामकर प्रसन्नतासे अपनी इच्छापूर्वक चलेगये ॥ १२ ॥ और श्रीकृष्णचन्द्रभी अन्यकार्यों को कर स्वर्गको चलेगये हे ब्राह्मणो ! आपलोगों से यह वर्वरीककी उत्पत्ति वर्णन कीगई ॥ १३ ॥ और इनके स्तोत्रको कहताहूं कि जिससे यक्ष-

भीमेनमहितोहरिः ॥ ९ ॥ रणाजिरंभूपएत्य वर्वरीकंवचोब्रवीत् ॥ वर्वरीकसुहृदय सर्वलोकेषुनित्यशः ॥ १० ॥ पूजितः सर्वलोकैस्त्वं यच्छतेषांवरान्वरान् ॥ गुप्तक्षेत्रञ्चनत्याज्यं सर्वक्षेत्रोत्तमोत्तमम् ॥ ११ ॥ बहिःस्थलंतथावासः क्षमनो दुष्कृतञ्चयत् ॥ इत्युक्तस्तन्नमस्कृत्य भैमिःस्वैरंययौमुदा ॥ १२ ॥ वासुदेवोपिकार्याणि कृत्वान्यानिदिवङ्गतः ॥ इतिवो वर्णितोत्पत्तिर्वर्वरीकस्यब्राह्मणाः ॥ १३ ॥ स्तवञ्चास्यप्रवक्ष्यामि येनतुष्यतियक्षराट् ॥ १४ ॥ जयजयचतुरशीतिकोटिपरिवारसूर्यवर्चाभिधानयक्षराज जयभूभारहरणप्रवृत्तिलब्धशापप्राप्तनैर्ऋतयोनिसम्भव जयकामकटङ्कटाकुक्षिराजहंस ॥ १५ ॥ जयघटोत्कचानन्दवर्द्धनवर्वरीकाभिधान जयकृष्णोपदिष्टगुप्तक्षेत्रदेवीसमाराधनप्राप्तातुलवीर्यजयविजयसिद्धिदायक ॥ १६ ॥ जयपिङ्गलारेफलेन्द्रद्रुहद्रुहानवकोटीश्वरपलाशवनदावानल जयभूपातालान्त

राज वर्वरीक प्रसन्न होतेहैं ॥ १४ ॥ हे चौरासी करोड दानव परिवारवाले, सूर्यवर्चा नामक, यक्षराज ! आपकी जयहो जयहो हे पृथ्वी के भार हरने में प्रवृत्तिके कारण पायेहुये शापसे राक्षसयोनि में प्राप्त उत्पत्तिवाले ! आपकी जयहो हे कामकटंकटाकी कुक्षिके राजहंस ! आपकी जयहो ॥ १५ ॥ हे घटोत्कच के आनन्द को बढानेवाले, वर्वरीक नामक ! आपकी जयहो हे श्रीकृष्णजीके उपदेश से गुप्तक्षेत्र में देवीजीके समाराधनसे पायेहुये अतुल बलवाले ! आपकी जयहो हे विजय को सिद्धि देनेवाले ! आपकी जयहो ॥ १६ ॥ हे पिङ्गला व रेफलेन्द्र तथा द्रुहद्रुहा और नव करोड़ दानवों के स्वामी पलाशनामक दैत्यरूपी वनके लिये दावानल !

आपकी जयहो हे पृथ्वी व पाताल के बीचमें नागकन्याओं के परिहारक ! आपकी जयहो ! हे भीमसेनजी के मानको मर्दन करनेवाले ! आपकी जयहो ॥ १७ ॥ हे
सकल कौरवों की सेनाको मुहूर्त्तभर में मारने के लिये प्रवृत्त होनेवाले ! आपकी जयहो हे श्रीकृष्णजी के वरसे पायेहुये समस्त उत्तम वरदानों की सामर्थ्यवाले !
आपकी जयहो ॥ १८ ॥ हे कलिकाल में वन्दित ! आपकी जयहो जयहो तुम्हारे लिये नमस्कार है रक्षा कीजिये इस कारण आपके लिये नमस्कार है ॥ १९ ॥
हे द्विजोत्तमो ! जो पुरुष श्रावण में अमावस के दिन व वैशाख में कृष्णपक्ष की तेरसि में सुहृदय वर्वरीक को पूजकर इस स्तोत्र से स्तुति करता है ॥ २० ॥ उसके

रालेनागकन्यापरिहारकजयभीमसानमर्दन ॥ १७॥ जयसकलकौरवसैन्यमुहूर्त्तवधप्रवृत्त ॥ जयश्रीकृष्णवरलब्धसर्व
प्रवरवरदानसामर्थ्य ॥ १८ ॥ जयजयकलिकालवन्दितनमोस्तुते पाहिपाहीतिनमोस्तुते ॥ १९ ॥ अनेनयःसुहृद
यंश्रावणेभ्यर्च्यदर्शके ॥ वैशाखेचत्रयोदश्यां कृष्णपक्षेद्विजोत्तमाः ॥ २० ॥ सतदीयैःप्रवचनैःसंस्तवेतस्यतुष्यति ॥
इत्युक्तस्तान्नमस्कृत्य भैमिःस्वैरंययौमुदा ॥ २१ ॥ वासुदेवोपिकर्माणिसर्वाण्यूर्ध्वमकारयत ॥ २२ ॥ ततोविप्रानारदश्च
समाराध्यमहेश्वरम् ॥ महीनगरकेपुण्ये स्थापयामासशङ्करम् ॥ २३ ॥ लोकानाञ्चहितार्थाय केदारंलिङ्गमुत्तमम् ॥
अत्रीशादुत्तरेभागे महापापप्रणाशनम् ॥ २४ ॥ अग्निकुण्डेनरःस्नात्वा श्राद्धंकृत्वायथाविधि॥अत्रीशंचनमस्कृत्य
रुद्रलोकमवाप्नुयात॥२५॥जयादित्यंपूजयन्तिकूपेस्नात्वानरोत्तमाः॥जयादित्यंनमस्कृत्य केदारञ्चप्रपश्यति ॥ २६ ॥

वचनों से स्तुति मेंवे वर्वरीकजी उसके ऊपर प्रसन्न होतेहैं ऐसा कहेहुये वर्वरीकजी उनको नमस्कार कर प्रसन्नता से अपनी इच्छापूर्वक चलेगये॥ २१ ॥ और श्रीकृ-
ष्णजी ने भी इसके उपरान्त सब कर्मोंको कराया ॥ २२ ॥ तदनन्तर हे ब्राह्मणो ! नारदजीने महादेव का भलीभांति आराधन कर पुण्यदायक महीनगरमें शङ्करजी
को स्थापित किया ॥ २३ ॥ और लोकोंके हितके लिये अत्रीशसे उत्तरभाग में महापातकों को विनाशनेवाले उत्तम केदारलिंग को थापाहै ॥ २४ ॥ अग्निकुण्ड में
स्नानकर के मनुष्य विधिपूर्वक श्राद्धकर और अत्रीश्वर शिवजीको नमस्कार कर शिवलोक को प्राप्तहोताहै ॥ २५ ॥ और कूपमें नहाकर जो उत्तममनुष्य जयादित्य

को पूजते हैं व जयादित्य को नमस्कारकर जो केदारेश्वर को देखता है ॥ २६ ॥ वह फिर माताके दूधको नहीं पीताहै और मुक्तिका भागी होताहै तदनन्तर नीलकण्ठ शिवजी महात्मा नारदजी के लिये ॥ २७ ॥ वरदान देकर आपही उत्तम महीनगरमें टिकतेभये कोटितीर्थ में नहाकर जो मनुष्य नीलकण्ठजी को देखता है ॥ २८ ॥ जयादित्य की प्रसन्नता से उसके वंशका नाश नहीं होताहै और उसके कुलमें न रोग होता है न दरिद्र होताहै और न कलङ्क होताहै ॥ २९ ॥ और वे पुत्र पौत्रो से संयुत तथा धन धान्य से युक्त होकर इस लोकमें बहुत सुखोंको भोगकर सूर्यलोकमें बसते हैं ॥ ३० ॥ हे ब्राह्मणो! मैंने इस प्रकार संक्षेपसे गुप्तक्षेत्र को वर्णन किया

मातुःस्तन्यंपुनर्नैवसपिबेन्मुक्तिभाग्भवेत् ॥ ततोरुद्रोनीलकण्ठो नारदायमहात्मने ॥ २७ ॥ वरंदत्त्वास्वयंतस्थौ महीनगरकेशुभे ॥ कोटितीर्थेनरःस्नात्वा नीलकण्ठंप्रपश्यति ॥२८॥ नतस्यवंशनाशोस्ति जयादित्यप्रसादतः ॥ तेषां कुलेनरोगःस्यान्नदारिद्र्यंनलाञ्छनम् ॥ २९ ॥ पुत्रपौत्रसमायुक्ता धनधान्यसमन्विताः ॥ भुक्त्वाभोगानिहबहून् सूर्यलोकेवसन्तिते ॥ ३० ॥ इतिप्रोक्तंमयाविप्रा गुप्तक्षेत्रंसमासतः ॥ सप्तक्रोशप्रमाणञ्च क्षेत्रस्यास्यपुरोद्विजाः ॥ ३१ ॥ स्वयंभुवाप्रोक्तमिदं सर्वकामार्थसिद्धिदम् ॥ इतिवोवर्णितःपुण्यो महीसागरसङ्गमः ॥ ३२ ॥ शृण्वन्संकीर्तयंश्चैनंसर्वपापैःप्रमुच्यते ॥ यइदंश्रावयेद्विद्वान् माहात्म्यंतस्यसङ्गमे ॥ ३३॥ सर्वपापविनिर्मुक्तो रुद्रलोकमवाप्नुयात् ॥ गुप्तक्षेत्रस्य माहात्म्यं सकलंश्रावयेद्यदि ॥ सर्वैश्वर्यमवाप्नोति ब्रह्महत्यांव्यपोहति ॥ ३४ ॥ कोटितीर्थस्यमाहात्म्यं महीनगरकस्य

और हे ब्राह्मणो! इस क्षेत्रका प्रमाण सातकोस है वह पहलेही कहागया है ॥३१॥ ब्रह्माजी ने इस तीर्थको समस्त कामनाओं के अर्थ सिद्धिका दायक कहाहै आप लोगों से यह पुण्यदायक महीसागरसङ्गम वर्णन कियागया ॥ ३२ ॥ इसको सुनता व कीर्तन करताहुआ पुरुष सब पापोंसे छूटजाताहै और उस महीसागर के संगम में जो विद्वान् इस माहात्म्य को सुनाता है ॥ ३३ ॥ वह समस्त पातकों से छूटकर शिवजी के लोकको प्राप्तहोता है और यदि गुप्तक्षेत्र के समस्त माहात्म्य को जो पुरुष सुनाता है वह सब ऐश्वर्य को पाताहै व ब्रह्महत्या को नाश करताहै ॥ ३४ ॥कोटितीर्थ के और महीनगरके माहात्म्य को जो सुनता है और सुनाता है वह ब्रह्म-

भावके लिये समर्थ होता है याने ब्रह्ममें लीन होजाता है ॥ ३५ ॥ कोटितीर्थ में नहाकर व यत्नसे श्राद्धकरके यथाशक्ति से दानको देवै मुझ से उसका फल सुनिये ॥
३६ ॥ कि स्वर्ग, पाताल व मृत्युलोक में जो तीर्थ हैं उनके स्नान से जो पुण्य मिलती है उस फलको मनुष्य प्राप्त होता है ॥ ३७ ॥ पायेहुये दक्षिणावाले अश्व-
मेधादिक यज्ञोंके करने से और समस्त व्रत व तपस्याओं के करने से जो पुण्य मिलतीहै ॥ ३८ ॥ हे ब्राह्मणो ! वही पुण्य कोटितीर्थ में होती है इसमें सन्देह नहीं है ॥
३९ ॥ इस यशकारक व पापहारक और निश्चयकर पुण्यदायक तथा पवित्र व उत्तम चरित्र को जो पुरुष भक्तिसे सुनता है वह पुण्यभागी मनुष्य प्राणोंके नाश

च ॥ शृणोतिश्रावयेद्यस्तु ब्रह्मभूयायकल्पते ॥ ३५ ॥ कोटितीर्थेनरःस्नात्वा श्राद्धंकृत्वाचयत्नतः ॥ दानंदद्याद्यथाशक्त्या
शृणुध्वंतत्फलंहिमे ॥ ३६ ॥ स्वर्गपातालमर्त्येषु यानितीर्थानिसन्तिवै ॥ तेषांस्नानाच्चयत्पुण्यंतत्फलंप्राप्नुयान्नरः ॥
३७ ॥ अश्वमेधादिभिर्यज्ञैरिष्टैश्चैवाप्रदक्षिणैः ॥ सर्वव्रततपोभिश्च कृतैर्यत्पुण्यमाप्यते ॥ ३८ ॥ तत्पुण्यंजायतेविप्राःको
टितीर्थेनसंशयः ॥ ३९ ॥ इदंपवित्रंखलुपुण्यदायकं यशस्करंपापहरंपरन्तथा ॥ शृणोतिभक्त्यापुरुषःसपुण्यभागसुक्ष
येशम्भुपुरंव्रजेच्चवै ॥ ४० ॥ धन्यंयशस्यंनियतंसुपुण्यं सुमोक्षदंपापहरंनराणाम् ॥ शृणोतिनित्यंनियतःशुचिःपुमान्भि
त्वाद्विपोविष्णुपदंप्रयाति ॥ ४१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेगुप्तक्षेत्रमाहात्म्यंनामद्विषष्टितमोऽध्यायः ६२ ॥

होनेपर शिवलोक को प्राप्तहोता है ॥ ४० ॥ इस प्रशंसनीय, यशदायक व निश्चयकर पुण्यदायक तथा मनुष्यों को मोक्षदायक व पापहारक चरित्र को जो मनुष्य
पवित्र होकर नित्यही सुनता है वह शत्रुओंको नाशकर स्वर्गको प्राप्तहोताहै ॥ ४१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारिकाखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांगुप्तक्षेत्र
माहात्म्यंनामद्विषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥

॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

दो० । श्रीमहेश के दोउ चरण कमलन को शिर नाय ॥ यहि कुमारिकाखण्ड कर किय अनुवाद सुहाय ॥ १ ॥
जेहि पढ़ि सुनिकै सकल जन पावहिं हर्ष अपार ॥ सो भाषा अनुवाद किय मैं निज मति अनुसार ॥ २ ॥

इति स्कन्दपुराणकुमारिकाखण्डः ॥







इति स्कन्दपुराण कुमारिकाखण्डः समाप्तः

श्री

स्कन्दपुराण

नागरखण्ड-सटीक-